श्री चैतन्य चरितामृत

हिन्दी सम्पूर्ण



आदि लीला • मध्य लीला • अन्त्य लीला

नौ खण्डों का संयुक्त संकलन

रचयिता: श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी

श्रील प्रभुपाद के अनुवाद एवं तात्पर्य सहित

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत

श्रीचैतन्य-चरितामृत

आदि लीला, प्रथम खण्ड

अध्याय 1-7

मूल बंगला श्लोक, श्लोक का हिन्दी लिप्यन्तरण,

शब्दार्थ, अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य सहित

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

विषय-सूची

प्रस्तावना

भूमिका

परिचय

अध्याय एक

गुरुवर्ग

अध्याय दो

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु

अध्याय तीन

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य के बाह्य कारण

अध्याय चार

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य के गुह्य कारण

अध्याय पाँच

भगवान् नित्यानन्द बलराम की महिमाएँ।

अध्याय छह

श्रीअद्वैत आचार्य की महिमाएँ

अध्याय सात

भगवान् चैतन्य के पाँच स्वरूप

परिशिष्ट

लेखक परिचय

सन्दर्भ

विशेष शब्दावली

श्लोकानुक्रमणिका

उधृत श्लोकों की अनुक्रमणिका

बांग्ला वर्णमाला

बांग्ला उच्चारण सम्बन्धी निर्देश

प्रस्तावना

यहाँ पर प्रस्तुत की गई भगवान् चैतन्य की शिक्षाओं एवं भगवद्गीता में दी गई भगवान् कृष्ण की शिक्षाओं में कोई अन्तर नहीं है। भगवान् चैतन्य की शिक्षाएँ भगवान् कृष्ण की शिक्षाओं के व्यावहारिक प्रदर्शन हैं। भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण का अन्तिम उपदेश यह है कि हर व्यक्ति को उन्हीं भगवान् कृष्ण की शरण ग्रहण करनी चाहिए। भगवान् कृष्ण ऐसे शरणागत को वचन देते हैं कि वे तुरन्त उसका दायित्व अपने ऊपर ले लेंगे। अपने पूर्ण विस्तार, क्षीरोदकशायी विष्णु के माध्यम से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् इस सृष्टि का पालन करने के लिए पहले से ही उत्तरदायी हैं, लेकिन यह पालन अप्रत्यक्ष रूप से होता है। किन्तु जब भगवान् कहते हैं कि वे अपने शुद्ध भक्तों का दायित्व अपने ऊपर लेते हैं, तब वे वास्तव में प्रत्यक्ष रूप से ऐसा करते हैं। शुद्ध भक्त वह आत्मा है जो सदा-सदा के लिए भगवान् के शरणागत होता है, जिस प्रकार एक शिशु अपने माता-पिता को शरणागत होता है या एक पशु अपने मालिक को। शरणागति में मनुष्य को (1) भक्ति सम्पन्न करने के लिए अनुकूल वस्तुओं को ग्रहण करना चाहिए, (2) प्रतिकूल वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए, (3) भगवान् के संरक्षण पर दृढ़ विश्वास रखना चाहिए, (4) एकमात्र भगवान् की कृपा पर आश्रित रहना चाहिए, (5) भगवान् की इच्छा से पृथक् कोई इच्छा नहीं करनी चाहिए तथा (6) अपने आपको सदैव विनीत एवं दीन समझना चाहिए।

भगवान् चाहते हैं कि मनुष्य इन छह निर्देशों का पालन करते हुए उनकी शरण में आये, किन्तु संसार के अज्ञानी तथाकथित विद्वान इन निर्देशों को ठीक से समझ नहीं पाते और जनता को प्रेरित करते हैं कि वे इनका बहिष्कार करें। भगवद्गीता के नवें अध्याय के अन्त में भगवान् कृष्ण

प्रत्यक्ष आदेश देते हैं, "अपने मन को सदा मेरे चिन्तन में लगाओ, मेरे भक्त बनो, केवल मुझे नमस्कार करो और केवल मेरी पूजा करो। इस तरह मुझमें तल्लीन होने पर तुम निश्चित रूप से मुझे मेरे दिव्य धाम में प्राप्त कर सकोगे।" (भगवद्गीता 9.34) किन्तु ये आसुरी विद्वान जनता को भगवान् की शरण में न ले जाकर उसे निर्विशेष, अव्यक्त, नित्य, अजन्मा सत्य की ओर जाने के लिए भ्रमित करते हैं। निर्विशेष मायावादी विचारक यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि परम सत्य का आखरी लक्षण यह है कि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। यदि कोई सूर्य को यथारूप में जानना चाहता है, तो पहले उसे सूर्य की धूप का अनुभव करना होगा, फिर सूर्य ग्रह का और फिर यदि वह इस ग्रह में प्रविष्ट होने के लिए शक्तिमान बनता है, तो वह सूर्य के अधिष्ठाता देव को आमने-सामने देखने का सुअवसर प्राप्त कर सकता है। ये मायावादी विचारक अल्पज्ञान के कारण ब्रह्मतेज से आगे नहीं जा पाते, जिसकी तुलना सूर्य की धूप से की जा सकती है। उपनिषदों में इसकी पुष्टि की गई है कि भगवान् के असली मुख का दर्शन करने के लिए मनुष्य को ब्रह्म के जाज्वल्यमान तेज को भेदना होगा।

इसीलिए भगवान् चैतन्य व्रजराज के पोष्य पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष पूजा की शिक्षा देते हैं। वे यह भी सिखाते हैं कि वृन्दावन नामक स्थान भगवान् कृष्ण के समान ही है, क्योंकि भगवान् कृष्ण परम सत्य होने के कारण उनके नाम, गुण, रूप, लीला, पार्षद तथा साज-सामग्री और स्वयं कृष्ण में कोई भेद नहीं है। भगवान् की यही परम प्रकृति है। भगवान् चैतन्य यह भी सीखलाते हैं कि पूर्णता के सर्वोच्च स्तर पर पूजा की सर्वोच्च विधि व्रज की सुन्दरियों द्वारा अपनाई गई विधि है। ये सुन्दरियाँ (गोपियाँ) किसी भौतिक या आध्यात्मिक लाभ के उद्देश्य से रहित होकर कृष्ण से मात्र प्रेम करती थीं। भगवान् चैतन्य यह भी सीखाते हैं कि श्रीमद्भागवत दिव्य ज्ञान की निष्कलंक

कथा है और मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम विकसित करना है।

भगवान् चैतन्य की शिक्षाएँ सांख्य योग के आदि प्रवर्तक भगवान् कपिल द्वारा दी गई शिक्षाओं के समान हैं। यह प्रामाणिक योग-पद्धति भगवान् के दिव्य रूप का ध्यान करने की शिक्षा देती है। किसी शून्य या निराकार का ध्यान करने का प्रश्न ही नहीं उठता। जब योगासन के अभ्यास के बिना ही भगवान् विष्णु के दिव्य रूप का ध्यान किया जाता है, तब ऐसा ध्यान पूर्ण समाधि कहलाता है। इस प्रकार का ध्यान पूर्ण समाधि होता है, इसकी पुष्टि भगवद्गीता के छठे अध्याय के अन्त (6.47) में की गई है, जहाँ भगवान् कृष्ण कहते हैं कि सभी योगियों में से सर्वोत्तम योगी वह है, जो अपने हृदय में निरन्तर भगवान् का ध्यान प्रेम तथा भक्ति के साथ करता है।

भगवान् चैतन्य ने जनसमूह को अचिन्त्य-भेदाभेद-तत्त्वरूपी सांख्य दर्शन के आधार पर जिसमें परमेश्वर को उनकी सृष्टि से एक ही साथ एक और भिन्न माना जाता है, उपदेश दिया कि इस दर्शन का अभ्यास करने के लिए भगवान् के पवित्र नाम का जप एवं कीर्तन करना वही सबसे व्यावहारिक विधि है। उन्होंने शिक्षा दी कि भगवान् का पवित्र नाम भगवान् का शब्दावतार है और चूँकि भगवान् परम पूर्ण हैं, अतएव उनके पवित्र नाम एवं उनके दिव्य स्वरूप में कोई भेद नहीं है। इस प्रकार भगवान् का पवित्र नाम के जप के माध्यम से मनुष्य परमेश्वर का प्रत्यक्ष सान्निध्य प्राप्त कर सकता है। जो इस शब्द-ध्वनि का अभ्यास करता है, उसे विकास की तीन अवस्थाओं से होकर गुजरना होता है-अपराधयुक्त अवस्था, नामाभास अवस्था तथा शुद्धनाम की दिव्य अवस्था। जप की अपराधयुक्त अवस्था में सभी प्रकार के भौतिक सुखों की कामना बनी रहती है, किन्तु दूसरी अवस्था में समस्त भौतिक कल्मष से छुटकारा मिल जाता है। जब मनुष्य दिव्य अवस्था में स्थित

होता है, तब वह सर्वाधिक वाँछित पद प्राप्त करता है-भगवत्प्रेम की अवस्था। भगवान् चैतन्य ने शिक्षा दी कि मनुष्यों के लिए यही सर्वोच्च पूर्णता की अवस्था है।

योगाभ्यास का मुख्य उद्देश्य इन्द्रियों को नियन्त्रित करना है। समस्त इन्द्रियों का मूल केन्द्रीय नियन्त्रक है मन; अतएव सर्वप्रथम मन को कृष्णभावना में लगाकर उस पर नियन्त्रण प्राप्त करने का अभ्यास करना होगा। मन के स्थूल कार्यकलाप ज्ञानेन्द्रियों या कर्मेन्द्रियों के द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार व्यक्त होते हैं। मन के सूक्ष्म कार्यों में सोचना, अनुभव करना तथा इच्छा करना सम्मिलित हैं, जो मनुष्य की चेतना के अनुसार सम्पन्न किये जाते हैं, चाहे वे कलुषित हों या निष्कलुष। यदि मनुष्य का मन कृष्ण (उनके नाम, गुण, रूप, लीला, पार्षद, साज-सामग्री यानी परिकर) पर स्थिर रहता है, तो उसके सारे सूक्ष्म एवं स्थूल कार्यकलाप अनुकूल होते हैं। भगवद्गीता में चेतना के मार्जन की जो विधि दी गई है, उसमें कृष्ण के दिव्य कार्यकलापों के गुणगान से मन को कृष्ण में स्थिर करना, उनके मन्दिर को बुहारना, उनके मन्दिर में जाना, भगवान् के अलंकृत दिव्य स्वरूप का दर्शन करना, उनकी दिव्य महिमाओं का श्रवण करना, उन्हें अर्पित भोजन को ग्रहण करना, उनके भक्तों की संगति करना, उन्हें अर्पित किये गये पुष्प तथा तुलसी-दल को सँघना, भगवान् के कार्यों में संलग्न होना, भक्तों के प्रति द्वेष करने वालों पर क्रुद्ध होना आदि सम्मिलित हैं। मन तथा इन्द्रियों के कार्यों को रोक पाना सम्भव नहीं है, किन्तु चेतना में परिवर्तन लाकर इन कार्यों को शुद्ध बनाया जा सकता है। इस परिवर्तन का संकेत भगवद्गीता में मिलता है, जहाँ कृष्ण अर्जुन को योग-विद्या बतलाते हैं, जिसके द्वारा मनुष्य कर्मों के फल के बिना कर्म कर सकता है, "हे पार्थ, जब तुम ऐसी बुद्धि से कर्म करोगे, तब तुम कर्मों के बन्धन से अपने आपको मुक्त कर सकते हो।" (भगवद्गीता 2.39) कभी कभी मनुष्य किसी परिस्थितिवश यथा व्याधि आदि के कारण इन्द्रियतृप्ति को सीमित कर देता है, किन्तु ऐसी सीमाएँ अल्प-ज्ञानियों के लिए हैं। मन तथा इन्द्रियों को नियन्त्रित करने की वास्तविक

विधि को जाने बिना अल्पज्ञ व्यक्ति मन तथा इन्द्रियों को बलात् रोकना चाहते हैं, किन्तु अन्ततः उनसे पराजित होकर इन्द्रियतृप्ति की धारा में बह जाते हैं।

योग के विधि-विधान का पालन, विभिन्न आसन एवं प्राणायाम, इन्द्रियों को इन्द्रिय-विषयों से हटाना इत्यादि उन लोगों के लिए हैं, जो देहात्म-बुद्धि में बुरी तरह से लिप्त हैं। कृष्णभावनामृत को प्राप्त बुद्धिमान पुरुष अपनी इन्द्रियों को कर्म करने से बलात् नहीं रोकता, प्रत्युत वह अपनी इन्द्रियों को कृष्ण की सेवा में लगाता है। एक बच्चे को निष्क्रिय होने के लिए बाध्य करके कोई उसे खेलने से रोक नहीं सकता, प्रत्युत बच्चे को बेहतर कार्यों में लगाकर उसे निरर्थक कार्यों में लगने से रोका जा सकता है। इसी प्रकार योग के आठ नियमों (अष्टांग योग) द्वारा इन्द्रिय कार्यों का बलपूर्वक निरोध तो निम्न कोटि के व्यक्तियों के लिए संस्तुत किया जाता है। कृष्णभावनामृत के श्रेष्ठ कार्यों में लगे रहने से श्रेष्ठ व्यक्ति इस भौतिक संसार के निम्न कार्यों से स्वतः दूर हो जाते हैं।

इस प्रकार भगवान् चैतन्य हमें कृष्णभावनामृत के विज्ञान की शिक्षा देते हैं। यह विज्ञान परम पूर्ण है। शुष्क मानसिक चिन्तक (ज्ञानी) अपने आपको भौतिक आसक्ति से रोकने का प्रयास करते हैं, किन्तु सामान्यतया ऐसा देखा जाता है कि मन को वश में कर पाना अत्यन्त कठिन होता है और वह उन्हें विषय-भोगों की ओर खींच ले जाता है। किन्तु कृष्णभानाभावित व्यक्ति के लिए यह खतरा नहीं रहता। अतः मनुष्य को अपने मन तथा इन्द्रियों को कृष्णभावनाभावित कार्यों में लगाना होता है और भगवान् चैतन्य हमें इसकी व्यावहारिक विधि की शिक्षा देते हैं।

संन्यास ग्रहण करने के पूर्व भगवान् चैतन्य विश्वम्भर नाम से विख्यात थे। विश्वम्भर शब्द का अर्थ है सारे ब्रह्माण्ड का पालन करने वाला तथा सारे जीवों को मार्गदर्शन कराने वाला। यही पालनकर्ता तथा मार्गदर्शक, मानवता को ये सारी दिव्य शिक्षाएँ प्रदान करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य के रूप में प्रकट हुए। भगवान् चैतन्य जीवन की मूल आवश्यकताओं के आदर्श शिक्षक हैं।

वे कृष्ण-प्रेम के सर्वश्रेष्ठ वदान्य दाता हैं। वे समस्त करुणा तथा सौभाग्य के पूर्ण आगार हैं। जैसी कि श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता, महाभारत तथा उपनिषदों में पुष्टि हुई है, वे साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वयं कृष्ण हैं और इस कलहप्रिय युग में वे सबों के आराध्य हैं। उनके संकीर्तन आन्दोलन में हर कोई सम्मिलित हो सकता है। इसके लिए किसी पूर्व योग्यता की आवश्यकता नहीं होती। उनकी शिक्षाओं का पालन करने मात्र से ही कोई भी व्यक्ति पूर्ण मानव बन सकता है। यदि कोई मनुष्य इतना भाग्यशाली हो कि वह भगवान् श्री चैतन्य के द्वारा आकृष्ट होता है, तो उसे अपने जीवन-लक्ष्य में सफलता अवश्य प्राप्त होगी। दूसरे शब्दों में, जो लोग आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने में रुचि रखते हैं, वे भगवान् चैतन्य की कृपा से माया के बन्धन से सरलता से छूट सकते हैं। इस पुस्तक में प्रस्तुत उनकी शिक्षाएँ श्री चैतन्य भगवान् से अभिन्न हैं।

भौतिक शरीर में लिप्त रहकर बद्धजीव समस्त प्रकार के भौतिक कार्यों से इतिहास के पृष्ठों में वृद्धि करता रहता है। भगवान् चैतन्य की शिक्षाएँ मानव समाज को ऐसे व्यर्थ एवं क्षणिक कार्यों को रोकने में सहायता पहुँचा सकती हैं। इन शिक्षाओं से मानव आध्यात्मिक कार्यों के सर्वोच्च पद को प्राप्त कर सकता है जो भवबन्धन से मुक्ति पाने के बाद ही प्रारम्भ होते हैं। कृष्णभावनामृत में मुक्त अवस्था में किये जाने वाले ऐसे कार्य मानव पूर्णता के लक्ष्य के द्योतक हैं। भौतिक प्रकृति पर प्रभुता प्राप्त करने के प्रयास में मनुष्य जो मिथ्या प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, वह भ्रामक है। भगवान् चैतन्य की शिक्षाओं का अध्ययन करने से दिव्य ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और ऐसे ज्ञान से कोई भी आध्यात्मिक जगत् में उन्नति कर सकता है।

हर व्यक्ति को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। कोई भी व्यक्ति भौतिक प्रकृति के नियमों को रोक नहीं सकता, जो ऐसे कर्मों पर नियन्त्रण रखती है। जब तक मनुष्य सकाम कर्मों में लगा हुआ है, तब तक उसे जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयास में निराश होना पड़ेगा।

मुझे पूर्ण आशा है कि इस ग्रंथ श्रीचैतन्य-चरितामृत में वर्णित भगवान् चैतन्य की शिक्षाओं को हृदयंगम करने से मानव समाज को आध्यात्मिक जीवन का नवीन प्रकाश मिलेगा, जिससे शुद्ध आत्मा के लिए नवीन कर्मक्षेत्र खुल जायेगा।

ॐ तत्सत्

ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी

14 मार्च, 1968, चैतन्य महाप्रभु का जन्मदिन

श्री श्री राधा-कृष्ण मन्दिर, न्यूयॉर्क

भूमिका

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा उपदेशों का मुख्य ग्रन्थ है। श्री चैतन्य महाप्रभु उस महान् सामाजिक तथा धार्मिक

आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, जो भारत में 500 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जिसने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरी धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधाराओं को न केवल भारत में अपितु समग्र विश्व में प्रभावित किया है। उन श्रीकृष्ण चैतन्य के प्रभाव को प्रसारित करने में कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के प्रयासों का मुख्य योगदान रहा है, जो इस ग्रन्थ के अनुवादक तथा भाष्यकार होने के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) के संस्थापक-आचार्य भी हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु को अतीव ऐतिहासिक महत्त्व का पुरुष माना जाता है। किन्तु ऐतिहासिक विश्लेषण की हमारी पारम्परिक विधि, जो व्यक्ति को उनके समय की उपज के रूप में देखती है, यहाँ पर विफल हो जाती है, क्योंकि श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसे पुरुष हैं, जो ऐतिहासिक व्यवस्था के सीमित क्षेत्र से परे हैं।

जिस समय पश्चिम में मानव भौतिक ब्रह्माण्ड की संरचना का अध्ययन करने तथा नवीन सागरों और महाद्वीपों की खोज में समुद्री यात्राएँ करने में अपनी अनुसन्धानात्मक शक्ति लगा रहा था, तभी पूर्व में श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसी क्रान्ति का प्रवर्तन एवं कुशल नेतृत्व कर रहे थे, जो मनुष्य के आध्यात्मिक स्वभाव के सर्वोच्च विज्ञान सम्मत ज्ञान की दिशा में निर्दिष्ट था।

श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवनचरित के मुख्य ऐतिहासिक स्रोत मुरारि गुप्त तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा लिखे गये कड़चा (दैनन्दिनियाँ) हैं। मुरारि गुप्त एक वैद्य तथा श्रीकृष्ण चैतन्य के अन्तरंग पार्षद थे, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास ग्रहण करने तक के प्रारम्भिक चौबीस वर्षों के विषय में विस्तृत टिप्पणियाँ लिखीं। श्री चैतन्य महाप्रभु के अड़तालीस वर्षों के जीवन की शेष घटनाएँ श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्य अन्तरंग पार्षद स्वरूप दामोदर गोस्वामी के कड़चा में अंकित हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृत के तीन खण्ड हैं, जिन्हें लीला कहा जाता है। ये हैं-आदि लीला, मध्य लीला तथा अन्त्य लीला। मुरारि गुप्त का कड़चा ही आदि लीला का आधार है और स्वरूप दामोदर का कड़चा मध्य तथा अन्त्य लीलाओं के लिए विस्तृत विवरण प्रदान करता है।

आदिलीला के सत्रह अध्यायों में से प्रथम बारह अध्याय सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रस्तावना स्वरूप हैं। वैदिक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा कृष्णदास कविराज यह स्थापित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु कलियुग (जो पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जो भौतिकता, दम्भ तथा कलह का प्रतीक है) के लिए कृष्ण के अवतार हैं। लेखक यह भी प्रमाणित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण से अभिन्न हैं और अधम युग के पतितात्माओं को महामन्त्र के संकीर्तन का प्रचार करके शुद्ध भगवत्प्रेम उदारतापूर्ण वितरित करने के लिए अवतरित होते हैं। यह संकीर्तन महामन्त्र का बृहद् सार्वजनिक कीर्तन है। इसके उपरान्त कृष्णदास कविराज ने इस ग्रन्थ के बारहवें अध्याय में इस जगत् में श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का गुह्य प्रयोजन, उनके सह-अवतारों तथा प्रमुख भक्तों का वर्णन किया है और उनकी शिक्षाओं को सार रूप में प्रस्तुत की हैं। आदि लीला के शेष अध्यायों (13 से 17 तक) में लेखक ने चैतन्य महाप्रभु के दिव्य जन्म तथा संन्यास ग्रहण करने तक के जीवन का संक्षिप्त विवरण दिया है। इसमें उनके बचपन के चमत्कारों, अध्ययन, विवाह तथा प्रारम्भिक दार्शनिक शास्त्रार्थों के साथ-साथ उनके व्यापक संकीर्तन-आन्दोलन के संगठन तथा मुस्लिम सरकार द्वारा दमन के विरुद्ध उनके कानून अवज्ञा आन्दोलन का वर्णन है।

तीनों लीलाओं में सबसे लम्बी मध्यलीला की विषय वस्तु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा एक संन्यासी, शिक्षक, दार्शनिक तथा गुरु एवं योगी के रूप में सारे भारत की विस्तृत एवं घटनापूर्ण यात्राओं का विशद् वर्णन है। छह वर्षों की इस अवधि में श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्रमुख शिष्यों को शिक्षाएँ देते हैं। वे अपने समकालीन सुविख्यात दार्शनिकों तथा धर्मज्ञों से, जिनमें शंकराचार्य के

अनुयायी, बौद्ध तथा मुसलमान सम्मिलित हैं, शास्त्रार्थ करते हैं और उन्हें तथा उनके शिष्य तथा अनुयायी वर्गों को अपने दल में सम्मिलित करते हैं। इस खण्ड में उड़ीसा में होने वाले विशाल जगन्नाथ रथयात्रा उत्सव के अवसर पर चैतन्य महाप्रभु की चमत्कार-पूर्ण लीलाओं का विस्तृत विवरण सम्मिलित है।

अन्त्यलीला में श्री चैतन्य की प्रकट उपस्थिति के अन्तिम अठारह वर्षों का विवरण है, जिसे उन्होंने जगन्नाथ पुरी के सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर केनिकट लगभग एकान्त में बिताये। इन अन्तिम वर्षों में श्रीकृष्ण चैतन्य भाव-समाधि में गहरे उतरते गये, जो समस्त पूर्वी अथवा पाश्चात्य धार्मिक तथा साहित्यिक इतिहास में अद्वितीय है। उनके नित्य संगी स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा दिये गये प्रत्यक्षदर्शी विवरण, जिनसे श्री चैतन्य की शाश्वत तथा नित्य वर्धमान धार्मिक परमानन्द की अवस्था प्रकट होती है, आधुनिक मनोविज्ञानियों तथा प्रत्यक्षवादियों के धार्मिक अनुभवों की अनुसन्धानात्मक तथा विवरणात्मक क्षमताओं को स्पष्ट रूप से चुनौती देने वाले हैं।

इस महान् ग्रन्थ के रचयिता कृष्णदास कविराज गोस्वामी का जन्म 1507 ई. में हुआ था। वे चैतन्य महाप्रभु के विश्वस्त अनुयायी रघुनाथ दास गोस्वामी के शिष्य थे। रघुनाथ दास विख्यात वैरागी सन्त थे, जिन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा बतलाई गई चैतन्य महाप्रभु की समस्त लीलाओं को सुना था और स्मरण कर रखा था। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के निधन के बाद रघुनाथ दास ने अपने इन आराध्यों की विरह वेदना सहन न कर सकने के कारण गोवर्धन पर्वत से कूदकर आत्महत्या करने के उद्देश्य से वृन्दावन की यात्रा की। किन्तु वृन्दावन में उनकी भेंट चैतन्य महाप्रभु के दो सर्वाधिक अन्तरंग शिष्यों-रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से हुई, जिन्होंने उनसे आत्महत्या की योजना का परित्याग करने तथा चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम जीवन की प्रेरक घटनाओं को प्रकट करने के लिए प्रेरित किया। उस समय कृष्णदास कविराज गोस्वामी

भी वृन्दावन में रह रहे थे, जिन्हें रघुनाथ दास गोस्वामी ने श्री चैतन्य के दिव्य जीवन का पूर्ण विवरण प्रदान किया।

उस समय तक श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवन पर अनेक समसामयिक विद्वान तथा भक्तों द्वारा कई जीवन-चरित विषयक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। इनमें मुरारि गुप्त कृत श्रीचैतन्य-चरित, लोचन दास ठाकुर कृत चैतन्य-मंगल तथा वृन्दावन दास कृत चैतन्य-भागवत सम्मिलित हैं, जिनमें से चैतन्य भागवत के लेखक वृन्दावन दास ठाकुर को उस समय श्री चैतन्य के जीवन के विशेषज्ञ माने जाते थे। जब वृन्दावन दास इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना कर रहे थे, तब उन्होंने इस भय से श्री चैतन्य के जीवन की अनेक घटनाओं को, विशेषतया परवर्ती घटनाओं को सम्मिलित नहीं किया कि इससे ग्रन्थ का आकार बढ़ जायेगा। इस अन्तिम लीलाओं को सुनने के इच्छुक वृन्दावन के भक्तों ने कृष्णदास कविराज गोस्वामी से, जिन्हें वे महान् सन्त और विद्वान के रूप में सम्मान देते थे, यह अनुरोध किया कि इन घटनाओं का विस्तार से वर्णन करने वाले ग्रन्थ की रचना करें। इस अनुरोध पर तथा वृन्दावन के मदन मोहन अर्चाविग्रह की अनुमति तथा आशीर्वाद से उन्होंने श्रीचैतन्य चरितामृत की रचना प्रारम्भ की, जिसे चैतन्य महाप्रभु के गहन दर्शन तथा शिक्षाओं के सम्यक् प्रस्तुतीकरण, एवं जीवन-चरित विषयक श्रेष्ठता के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा गूढ़ शिक्षा के सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में आज सारे विश्व में मान्यता दी जा रही है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने वृद्धावस्था में इस ग्रंथ पर कार्य प्रारम्भ किया, जब उनका स्वास्थ्य गिर चुका था। जैसाकि उन्होंने स्वयं लिखा है, "अब मैं अति वृद्ध एवं अक्षमता से विक्षुब्ध हूँ। लिखते समय मेरे हाथ काँपते हैं, मुझे ठीक से किसी बात का स्मरण नहीं हो पाता, न ही मैं ठीक से देख या सुन सकता हूँ, फिर भी मैं लिखता हूँ जो कि अपने आप में एक महान् आश्चर्य

है।" तो भी उन्होंने इस अक्षम अवस्था में मध्यकालीन भारत के इस महान्तम साहित्यिक मणि को पूरा किया, जो साहित्यिक इतिहास के आश्चर्यों में एक है।

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, इसका अंग्रेजी अनुवाद कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा सम्पन्न किया गया, जो समग्र विश्व में भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा के सर्वाधिक विख्यात शिक्षक हैं। श्रील प्रभुपाद का भाष्य दो बँगला भाष्यों पर आधारित है—एक तो उनके गुरु, महान् वैदिक विद्वान, उपदेशक और संत श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, जिन्होंने भविष्यवाणी की थी कि, "एक समय ऐसा आयेगा, जब श्रीचैतन्य चरितामृत पढ़ने के लिए विश्वभर के लोग बँगला सीखेंगे और दूसरा भाष्य श्रील भक्तिसिद्धान्त के पिता भक्तिविनोद ठाकुर का जिन्होंने आधुनिक युग में श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के प्रचार में अयदूत का काम किया।

श्रील प्रभुपाद स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा में आते हैं। और वे पहले विद्वान हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य के अनुयायियों के प्रमुख ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। उनकी बँगला तथा संस्कृत में विद्वत्ता और श्रीकृष्ण चैतन्य के उपदेशों से उनका अन्तरंग परिचय ऐसा उपयुक्त मेल है, जो उन्हें इस महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ को अंग्रेजी भाषी संसार के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए सर्वाधिक योग्य बनाता है। वे जिस सहजता तथा स्पष्टता से कठिन दार्शनिक विचारों की स्थापना करते हैं, वह भारत की धार्मिक परम्परा से पूर्णतया अपरिचित पाठक को भी इन गहन तथा स्मरणीय ग्रन्थ को समझने तथा उसकी प्रशंसा करने के लिए समर्थ बनाता है।

तात्पर्य समेत सम्पूर्ण मूल पाठ को नौ सचित्र खण्डों में भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो समकालीन मनुष्य के बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रमुख महत्त्वपूर्ण योगदान का प्रतिनिधित्व करता है।

श्रील प्रभुपाद के द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत का हिन्दी अनुवाद उनके शताब्दी उत्सव के अवसर पर प्रकाशित किया जा रहा है, जो भारत के भक्तों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

-प्रकाशक

परिचय

(मूल रूप से अप्रैल 10-14, 1967 को अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ, न्यूयार्क के समक्ष ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत चैतन्य-चरितामृत-

भगवान् चैतन्य महाप्रभु की प्रामाणिक जीवनी–पर दिये गये पाँच प्रात:कालीन व्याख्यानों के रूप में)

चैतन्य का शाब्दिक अर्थ है "जीवन्त शक्ति," चरित का अर्थ है "चरित्र" और अमृत का अर्थ है "अमर।" सजीव प्राणी होने के नाते हम हिलडुल सकते हैं, किन्तु एक मेज ऐसा नहीं कर सकती, क्योंकि उसमें जीवनी शक्ति नहीं है। गति (हिलना-डुलना) तथा क्रियाशीलता को जीवनी शक्ति का चिह्न या लक्षण माना जा सकता है। निस्सन्देह, यह कहा जा सकता है कि जीवनी शक्ति के बिना कोई क्रियाशीलता नहीं आ सकती। यद्यपि भौतिक अवस्था में जीवनी शक्ति रहती है, किन्तु वह अमृत अर्थात् अमर नहीं होती। अतएव चैतन्य-चरितामृत शब्दों का अनुवाद "जीवन्त शक्ति का अमर चरित्र" के रूप में किया जा सकता है।

किन्तु यह जीवन्त शक्ति अमर रूप में कैसे प्रदर्शित होती है? यह इस भौतिक ब्रह्माण्ड में मनुष्य या किसी अन्य प्राणी द्वारा प्रदर्शित नहीं की जाती, क्योंकि हममें से कोई भी व्यक्ति इन शरीरों में अमर नहीं हैं। हममें जीवनी शक्ति है, हम कार्य करते हैं और हम अपनी प्रकृति तथा वैधानिक स्थिति से अमर हैं, किन्तु हम जिस भौतिक स्थिति में लाकर रखे गये हैं, उसमें हमारी अमरता का प्रदर्शन नहीं हो पाता। कठ-उपनिषद् में कहा गया है कि अमरता तथा जीवन्त शक्ति हम और ईश्वर दोनों में होती है। यद्यपि यह सच है कि हम तथा ईश्वर दोनों ही अमर हैं, किन्तु अन्तर तो है ही। हम जीव होने के नाते अनेक कर्म करते हैं, किन्तु हममें ऐसी प्रवृत्ति रहती है जिससे हम इस भौतिक प्रकृति में आ गिरते हैं। ईश्वर में ऐसी प्रवृत्ति नहीं पाई जाती। सर्वशक्तिमान होने के कारण वे कभी भी भौतिक प्रकृति के नियन्त्रण में नहीं आते। निस्सन्देह, भौतिक प्रकृति उनकी अचिन्त्य शक्तियों में से केवल एक शक्ति का प्रदर्शन है।

हमारे और ईश्वर के बीच का अन्तर समझने के लिए एक उदाहरण सहायक हो सकता है। हमें भूमि से आकाश में केवल बादल दिखते हैं, किन्तु यदि हम बादलों के ऊपर उड़कर जायँ तो हमें चमकता सूर्य दिखेगा। आकाश से गगनचुम्बी महल तथा शहर बहुत छोटे प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार ईश्वर के पद से यह समस्त भौतिक सृष्टि नगण्य एवं तुच्छ लगती है। बद्धजीव की प्रवृत्ति है कि वह उन ऊँचाइयों से नीचे आना चाहता है, जहाँ से विहंगावलोकन किया जा सकता है। किन्तु ईश्वर में यह प्रवृत्ति नहीं पाई जाती। माया में आ गिरने की प्रवृत्ति ईश्वर में नहीं है, जिस तरह सूर्य में यह प्रवृत्ति नहीं होती कि वह बादलों से नीचे आये। मायावादी तत्त्वज्ञानियों का मत है कि जब जीव तथा ईश्वर भी इस भौतिक जगत में आते हैं, तो दोनों ही माया के वश में रहते हैं। यही उनके दर्शन का दोष है।

हमें भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने में से एक जैसे नहीं समझने चाहिए। वे स्वयं कृष्ण हैं, सर्वोपरि व्यक्ति हैं, इसलिए वे कभी भी मायारूपी बादल द्वारा आवृत नहीं होते। कृष्ण, उनके विस्तार और यहाँ तक कि उनके उन्नत भक्त भी माया के बन्धन में कभी नहीं आते। भगवान् चैतन्य कृष्ण-भक्ति का उपदेश प्रदान करने के लिए इस पृथ्वी पर आये। दूसरे शब्दों में, वे स्वयं कृष्ण हैं जो जीवों को कृष्ण तक पहुँचने के सही मार्ग की शिक्षा देते हैं। वे उस शिक्षक की तरह हैं, जो अपने छात्र को कमजोर देखकर लेखनी लेकर लिखता है और बोलता जाता है—"इस तरह अ, आ, इ, ई लिखो।" इससे यह नहीं समझना चाहिए कि शिक्षक स्वयं अ, आ, इ, ई सीख रहा है। इसी तरह, यद्यपि भगवान् चैतन्य भक्त के वेश में प्रकट होते हैं, किन्तु हमें मूर्खतापूर्ण ढंग से यह नहीं सोचना चाहिए कि वे एक साधारण पुरुष हैं। हमें यह सदा स्मरण रखना होगा कि भगवान् चैतन्य स्वयं कृष्ण (ईश्वर) हैं, जो हमें शिक्षा दे रहे हैं कि किस तरह कृष्ण-भक्त बना जाय और हमें इसी प्रकाश में उनका अध्ययन करना चाहिए।

भगवद्गीता (18.66) में भगवान् कृष्ण कहते हैं, "सभी धर्मों को त्याग दो और मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।"

किन्तु हम कहते हैं, "अरे, शरण में जाऊँ? मेरे ऊपर तो अनेक उत्तरदायित्व हैं।"

और माया हमसे कहती है, "तुम ऐसा मत करना, नहीं तो तुम मेरे बन्धन से छूट जाओगे। मेरी चुंगाल में फँसे रहो और मैं तुम्हें लतियाती रहूंगी।"

यह सच है कि हम माया द्वारा निरन्तर उसी तरह लतियाते जा रहे हैं, जिस तरह कामुक गधे को एक गधी संभोग के लिए आते समय मुख पर लात मारती है। इसी प्रकार से कुत्ते तथा बिल्लियाँ भी मैथुन के समय हमेशा लड़ते-झगड़ते हैं। यहाँ तक कि जंगल के हाथी को पकड़ने के लिए उसे प्रशिक्षित हथिनी के द्वारा गड्डे तक ले जाया जाता है। हमें प्रकृति की इन चालों से शिक्षा लेनी चाहिए।

माया के पास हमें फँसाने के अनेक तरीके हैं और भौतिक जगत् में उसका सबसे प्रबल बन्धन (पाश) स्त्री है। निस्सन्देह, हम न तो पुरुष हैं, न स्त्री-क्योंकि ये उपाधियाँ हमारे बाह्य वस्त्र-शरीर को ही लागू होती हैं। वास्तव में हम सब कृष्ण के दास हैं। किन्तु बद्ध जीवन में हम सुन्दर स्त्रीरूपी लोहे की जंजीर से जकड़े हुए होते हैं। इस तरह प्रत्येक नर यौन-जीवन से बँधा है; अतएव जब भी कोई व्यक्ति भौतिक बन्धन से छूटने का प्रयास करना चाहे, तो उसे सबसे पहले अपनी काम-वासना को वश में करना सीखना चाहिए। अनियन्त्रित काम-वासना से मनुष्य पूरी तरह माया के बन्धन में फँस जाता है। भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने इस माया से चौबीस वर्ष की आयु में वैराग्य ग्रहण कर लिया था, यद्यपि उनकी पत्नी सोलह वर्ष की थीं और माता सत्तर वर्ष की थीं और वे ही

अपने परिवार के एकमात्र पुरुष सदस्य थे। यद्यपि वे ब्राह्मण थे और धनी नहीं थे, किन्तु उन्होंने संन्यास ले लिया और इस तरह पारिवारिक बन्धन से अपने को विलग कर लिया।

यदि हम पूर्णरूपेण कृष्णभावनामय बनना चाहते हैं, तो हमें माया के बन्धन को छोड़ना होगा। अथवा यदि हम माया के साथ बने रहना चाहते हैं, तो हमें इस तरह रहना होगा कि हम माया के वशीभूत न हों, जैसाकि भगवान् चैतन्य के घनिष्ठ भक्तों में से अनेक गृहस्थों ने किया। किन्तु संन्यासियों के प्रति भगवान् चैतन्य अत्यधिक कठोर थे—यहाँ तक कि छोटे हरिदास को जो कि एक महत्त्वपूर्ण कीर्तन गायक था, किसी युवती पर कामुक दृष्टि डालने के कारण उन्होंने निकाल दिया था। महाप्रभु ने उससे कहा-"तुम मेरे साथ एक संन्यासी के रूप में रह रहे हो, फिर भी एक स्त्री के प्रति कामुक दृष्टि से देखते हो।" दूसरे भक्तों ने हरिदास को क्षमा करने के लिए महाप्रभु से प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने उत्तर दिया, "तुम सब लोग उसे क्षमा कर उसके साथ रह सकते हो। मैं अकेला रहूँगा।" दूसरे प्रसंग में जब महाप्रभु को यह पता चला कि एक गृहस्थ भक्त की पत्नी गर्भवती है, तो उन्होंने उसके बच्चे का एक विशेष शुभ नाम रखने के लिए कहा। अतः जब महाप्रभु ने गृहस्थों के लिए संयमित संभोग की स्वीकृति दी थी, तब व्रत के दिन स्नान के बहाने डूबकी लगाकर पानी पीने की पद्धति अपनाकर दूसरों को ठगने के प्रयास करने वाले संन्यासियों के प्रति वे वज्र के समान कठोर थे। दूसरे शब्दों में, वे अपने अनुयायियों के बीच किसी भी प्रकार का कपट आचरण सहन नहीं कर सकते थे।

चैतन्य-चरितामृत हमें बतलाता है कि चैतन्य महाप्रभु ने लोगों को किस तरह माया के बन्धन तोड़कर अमर बनने की शिक्षा दी। अतएव जैसाकि पहले कहा गया है, इस शीर्षक का सही अनुवाद होगा, "जीवन्त शक्ति का अमर चरित्र।" परम जीवन्त शक्ति तो पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर हैं। वे परम पूर्ण व्यक्ति भी हैं। जीव असंख्य हैं और वे सभी व्यक्ति हैं। इसे समझना अत्यन्त सरल है-

हम सभी अपने विचारों तथा इच्छाओं में स्वतन्त्र व्यक्ति हैं और परमेश्वर भी एक व्यक्ति हैं। किन्तु वे इस बात में भिन्न हैं कि वे सर्वप्रमुख व्यक्ति हैं, जिनसे कोई पार नहीं पा सकता। क्षुद्र जीवों में एक जीव दूसरे से किसी न किसी मामले में बढ़कर हो सकता है। भगवान् भी इन सभी जीवों के समान एक व्यक्ति (व्यष्टि) हैं, किन्तु वे इस मामले में भिन्न हैं कि वे परम व्यक्ति हैं। ईश्वर अच्युत भी हैं, जैसाकि भगवद्गीता में उन्हें सम्बोधित किया गया है। अच्युत का अर्थ है "जो कभी पतित नहीं होता।" यह नाम उचित है, क्योंकि भगवद्गीता में अर्जुन को मोह हुआ था, किन्तु कृष्ण को नहीं हुआ था। कृष्ण अपनी अच्युतता का प्रदर्शन स्वयं करते हैं, जब वे अर्जुन से कहते हैं "जब मैं जब संसार में प्रकट होता हूँ, तब मैं ऐसा अपनी अन्तरंगा शक्ति से करता हूँ।" (भगवद्गीता 4.6)

इस तरह हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि जब कृष्ण भौतिक जगत में होते हैं, तब वे भौतिक शक्ति द्वारा पराजित हो जाते हैं। कृष्ण तथा उनके अवतार कभी भी भौतिक प्रकृति के वश में नहीं होते। वे सर्वथा मुक्त रहते हैं। वस्तुतः श्रीमद्भागवत में ईश्वरी प्रकृति वाला व्यक्ति उसे बतलाया गया है, जो भौतिक प्रकृति में रहते हुए भी उसके गुणों से प्रभावित नहीं होता। यदि एक भक्त तक ऐसी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है, तो परम भगवान् के विषय में तो कहना ही क्या?

वास्तविक प्रश्न तो यह है कि भौतिक जगत् में रहते हुए हम भौतिक कल्मष से कलुषित हुए बिना कैसे रह सकते हैं ? श्रील रूप गोस्वामी हमें बतलाते हैं कि हम इस जगत् में रहते हुए तभी अकलुषित रह सकते हैं, जब हम कृष्ण की सेवा को अपना अभीष्ट बना लें। तब कोई यह उचित रूप से प्रश्न कर सकता है, "मैं किस तरह सेवा कर सकता हूँ?" यह मात्र ध्यान करने की बात नहीं है, जो केवल मन का कार्य है, अपितु यह कृष्ण के लिए व्यावहारिक कार्य करने की बात है। ऐसे कार्य में हमें किसी भी संसाधन को उसका उपयोग किये बिना छोड़ना नहीं चाहिए। जो कुछ भी हो, जो कुछ भी हमारे पास हो, उसका उपयोग कृष्ण के लिए करना चाहिए। हम प्रत्येक वस्तु का–

टाइप-राइटर, मोटर-कार, हवाई जहाज, प्रक्षेपास्त्र-हर वस्तु का उपयोग कर सकते हैं। यदि हम लोगों को केवल कृष्णभावनामृत के विषय में बतलायें, तो भी हम सेवा करते हैं। इस तरह यदि हमारे मन, इन्द्रियाँ, वाणी, धन तथा शक्ति का उपयोग कृष्ण की सेवा में होता है, तो हम भौतिक प्रकृति में नहीं रह रहे हैं। आध्यात्मिक चेतना या कृष्णभावना के बल पर हम भौतिक प्रकृति के स्तर को पार कर जाते हैं। यह तथ्य है कि कृष्ण, उनके अंश तथा उनके भक्त अर्थात् वे जो उनके लिए कार्य करते हैं, भौतिक प्रकृति में नहीं होते, यद्यपि अल्पज्ञ यही सोचते हैं कि वे होते हैं।

चैतन्य-चरितामृत हमें शिक्षा देता है कि आत्मा अमर है और आध्यात्मिक जगत् के हमारे सारे कार्य भी अमर हैं। मायावादी लोग, जिनका विचार है कि परम पूर्ण निर्विशेष एवं निराकार है, यह दलील देते हैं कि स्वरूपसिद्ध आत्मा को बात करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु वैष्णवजन, जो कि कृष्ण के भक्त होते हैं, दलील देते हैं कि जब कोई साक्षात्कार की अवस्था को प्राप्त करता है, तभी वह सचमुच बोलने लगता है। वैष्णव कहता है, इसके पहले तो हम केवल बकवास कर रहे थे, अब हम अपनी वास्तविक बातें—कृष्ण की बातें–शुरू करें।" अपने मत के पक्ष में मायावादी जल की गगरी का दृष्टान्त देते हैं। वे कहते हैं कि जब गगरी जल से भरी नहीं होती तो छलकती चलती है और आवाज करती है, किन्तु जल से भरी होने पर नहीं छलकती और आवाज नहीं करती। तो क्या हम जल की गगरियाँ हैं? हमारी उपमा उनसे कैसे दी जा सकती है? अच्छी उपमा वह है जिसमें दो वस्तुओं में यथासम्भव अनेक समानताएँ हों। जल की गगरी जीवित शक्ति नहीं है, जबकि हम हैं। नित्य मौन ध्यान जल की गगरी के लिए अच्छा हो सकता है, किन्तु हमारे लिए वह पर्याप्त नहीं है। जब सचमुच कोई भक्त यह अनुभव करता है कि उसके पास कृष्ण के विषय में कहने के लिए बहुत कुछ है, तो प्रतिदिन चौबीसों घण्टे भी कम पड़ जाते हैं। जो मूर्ख होता है उसकी ख्याति तब तक रहती है, जब तक वह मौन रहता है, क्योंकि उसका मौन भंग होते ही उसकी पोल खुल

जाती है। चैतन्य-चरितामृत दिखलाता है कि परमेश्वर के यशोगान से अनेक अद्भुत बातों का पता चलता है।

चैतन्य-चरितामृत के प्रारम्भ में कृष्णदास कविराज गोस्वामी लिखते हैं, "मैं अपने गुरुओं को सादर नमस्कार करता हूँ।" वे यहाँ बहुवचन का प्रयोग गुरु-शिष्य परम्परा को इंगित करने के उद्देश्य से करते हैं। ऐसा नहीं है कि वे केवल अपने गुरु को नमस्कार करते हैं, वे तो पूरी परम्परा को, शिष्य-परम्परा की पूरी श्रृंखला को नमस्कार करते हैं, जो स्वयं कृष्ण से शुरू होती है। इस प्रकार "गुरुओं" शब्द के सम्बोधन से समस्त पूर्ववर्ती गुरुओं के प्रति लेखक का अतीव सम्मान प्रदर्शित होता है। गुरु-शिष्य परम्परा को नमस्कार करने के बाद लेखक अन्य भक्तों को, स्वयं भगवान् को, उनके अवतारों को, ईश्वर के विस्तारों को तथा कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति के प्रकाश को प्रणाम करते हैं। भगवान् चैतन्य महाप्रभु (जो कभी-कभी कृष्ण चैतन्य भी कहे जाते हैं) इन सबके मूर्तरूप हैं। वे एकसाथ भगवान्, गुरु, भक्त, अवतार, अंतरंगा शक्ति तथा ईश्वर के विस्तार हैं। वे अपने पार्षद नित्यानन्द के रूप में, ईश्वर के प्रथम विस्तार हैं, अद्वैत के रूप में वे अवतार हैं, गदाधर के रूप में वे अन्तरंगा शक्ति हैं और श्रीवास के रूप में वे भक्त की भूमिका में तटस्थ जीव हैं। इस तरह कृष्ण को अकेला नहीं सोचना चाहिए, अपितु अपने समस्त सनातन प्राकट्यों के साथ विद्यमान मानना चाहिए, जैसाकि रामानुजाचार्य ने बतलाया है। विशिष्टाद्वैत दर्शन में ईश्वर की शक्तियाँ, विस्तार तथा अवतार विविधता में एकता माने जाते हैं। दूसरे शब्दों में, ईश्वर इन सबों से अलग नहीं हैं, ये सभी मिलकर ईश्वर कहे जाते हैं।

वास्तव में, चैतन्य-चरितामृत नये भक्त के लिए नहीं है, क्योंकि यह आध्यात्मिक ज्ञान का स्नातकोत्तर अध्ययन है। आदर्श रूप में, मनुष्य को भगवद्गीता से प्रारम्भ करता है और श्रीमद्भागवत से आगे बढ़ता है और फिर चैतन्य-चरितामृत का अध्ययन करता है। यद्यपि ये सभी महान् शास्त्र

एकजैसे परम स्तर पर हैं, किन्तु तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से चैतन्य-चरितामृत सर्वोच्च स्तर पर माना जाता है। इसके प्रत्येक श्लोक की रचना पूर्ण है।

चैतन्य-चरितामृत के दूसरे श्लोक में लेखक भगवान् चैतन्य तथा भगवान् नित्यानन्द को नमस्कार करते हैं। वे भगवान् चैतन्य तथा नित्यानन्द की उपमा सूर्य और चन्द्रमा से देते हैं, क्योंकि वे भौतिक जगत् के अन्धकार को दूर करते हैं। इस उदाहरण में सूर्य और चन्द्रमा का उदय साथ-साथ हुआ है।

पाश्चात्य जगत में, जहाँ भगवान् चैतन्य का यश एक तरह से अज्ञात है, वहाँ यह पूछा जा सकता है, "कृष्ण चैतन्य कौन हैं?" इस प्रश्न का उत्तर चैतन्य-चरितामृत के लेखक श्रील कृष्णदास कविराज ने अपने ग्रंथ के तीसरे श्लोक में दिया है। सामान्यतया उपनिषदों में परम सत्य को निर्विशेष रूप में बताया गया है, किन्तु ईशोपनिषद् में परम सत्य के साकार पहलू का उल्लेख मिलता है, जहाँ हम निम्नलिखित श्लोक पाते हैं :

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

"हे प्रभु, हे समस्त जीवों के पालक, आपका वास्तविक मुख आपके चमकीले तेज से ढका हुआ है। कृपया उस आवरण को हटा लें और अपने शुद्ध भक्तों को अपना दर्शन दें।" (ईशोपनिषद्, मन्त्र 15) निर्विशेषवादियों (मायावादियों) में इतनी क्षमता नहीं होती कि वे ईश्वर के तेज को पार करके उस परम पुरुष तक पहुँच सकें, जिनसे यह प्रकाश उत्सर्जित होता है। किन्तु ईशोपनिषद् परमेश्वर की एक स्तुति है। ऐसा नहीं है कि उसमें निर्विशेष ब्रह्म का निषेध किया गया है, उसका वर्णन तो है ही, किन्तु उस ब्रह्म को भगवान् कृष्ण के शरीर का जाज्वल्यमान तेज कहा गया है। और

चैतन्य-चरितामृत से हमें पता लगता है कि भगवान् चैतन्य स्वयं कृष्ण हैं। दूसरे शब्दों में, श्रीकृष्ण चैतन्य ही निर्विशेष ब्रह्म के आधार हैं। परमात्मा, जो कि हर जीव के हृदय में और ब्रह्माण्ड के प्रत्येक परमाणु के भीतर विद्यमान हैं, चैतन्य महाप्रभु के अंशस्वरूप मात्र हैं। इसलिए श्रीकृष्ण चैतन्य ब्रह्म तथा सर्वव्यापी परमात्मा दोनों के आधार होने के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। इस प्रकार वे छः ऐश्वर्यों से युक्त हैं। ये हैं धन, यश, बल, सौन्दर्य, ज्ञान तथा वैराग्य। संक्षेप में, हमें जानना चाहिए कि वे ही कृष्ण हैं, परमेश्वर हैं और न तो कोई उनके समान है, न उनसे बढ़कर है। उनसे श्रेष्ठ किसी वस्तु की कल्पना नहीं की जा सकती। वे परम पुरुष हैं।

एक विश्वस्त भक्त श्रील रूप गोस्वामी, जिन्हें भगवान् चैतन्य ने लगातार दस दिनों से अधिक काल तक शिक्षा दी थी, उन्होंने लिखा है :

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते ।

कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः ॥

"मैं उन परम भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य को सादर नमस्कार करता हूँ, जो अन्य किसी अवतार, यहाँ तक कि स्वयं कृष्ण से भी अधिक वदान्य हैं, क्योंकि वे उस वस्तु को बिना मूल्य के प्रदान कर रहे हैं, जिसे अभी तक किसी ने नहीं दिया है और वह है कृष्ण का शुद्ध प्रेम।"

भगवान् चैतन्य अपनी शिक्षाएँ कृष्ण शरणागति से ही शुरू करते हैं। वे कर्मयोग, ज्ञानयोग या हठयोग जैसे मार्गों का अनुसरण नहीं करते, अपितु वे भौतिक अस्तित्व के उस छोर से शुरू करते हैं, जहाँ मनुष्य अपनी सारी भौतिक आसक्ति का परित्याग कर देता है। भगवद्गीता में कृष्ण आत्मा को पदार्थ से पृथक् बतलाते हुए अपना उपदेश प्रारम्भ करते हैं और अठारहवें अध्याय में उस बिन्दु पर समाप्त करते हैं, जहाँ आत्मा भक्ति में उनका शरणागत हो जाता है। मायावादी लोग

वहीं अपनी बात समाप्त कर देते हैं, किन्तु वास्तविक विवेचना तो वहीं से शुरू होती है। वेदान्त-सूत्र का शुभारम्भ-अथातो ब्रह्मजिज्ञासा से होता है : अब हम सर्वोपरि परम सत्य के विषय में पूछताछ प्रारम्भ करें।" इस तरह रूप गोस्वामी चैतन्य की प्रशंसा सभी अवतारों में से परम दयालु अवतार के रूप में करते हैं, क्योंकि वे भक्ति के सर्वोच्च स्वरूप को बतलाकर सबसे बड़ा उपहार प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में, वे किसी के भी द्वारा पूछे जाने वाले सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

भक्ति एवं भगवत्-साक्षात्कार की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। एक तरह से जो भी ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता है, वह भक्ति के स्तर पर स्थित होता है। किन्तु ईश्वर को महान् स्वीकार करना कुछ ही तो है, किन्तु अधिक नहीं। भगवान् चैतन्य ने आचार्य के रूप में यह शिक्षा दी कि हम ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं और सचमुच ही ईश्वर के मित्र, माता-पिता या प्रियतमा बन सकते हैं। भगवद्गीता में कृष्ण ने अर्जुन को अपना विश्वरूप दिखलाया, क्योंकि अर्जुन उनका परम प्रिय मित्र था। किन्तु कृष्ण को समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी के रूप में देखकर अर्जुन ने अपने इस मैत्री-भाव के लिए क्षमा माँगी। भगवान् चैतन्य इससे भी आगे निकल जाते हैं। भगवान् चैतन्य के माध्यम से हम कृष्ण के मित्र बन सकते हैं और इस मैत्री की कोई सीमा नहीं होगी। हम आदर या गौरव में नहीं, अपितु पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ कृष्ण के मित्र बन सकते हैं। यहाँ तक कि हम अपने को ईश्वर के पिता या माता के रूप में सम्बन्धित भी मान सकते हैं। यह दर्शन न केवल चैतन्य-चरितामृत का है। अपितु श्रीमद्भागवत का भी है। विश्व में ऐसे कोई अन्य शास्त्र नहीं हैं, जिसमें ईश्वर को भक्त के पुत्र रूप में माना गया हो। सामान्यतया ईश्वर को परम शक्तिमान पिता के रूप में देखा जाता है, जो अपने पुत्रों की माँगों को पूरा करने वाले हैं। किन्तु कभी कभी बड़े-बड़े भक्त अपनी भक्ति के आचरण में ईश्वर को अपने पुत्र के रूप में देखते हैं। तब पुत्र माँगता है और पिता तथा माता उन माँगों को पूरा करते हैं और कृष्ण की इच्छापूर्ति करते समय भक्त पिता या माता के समान बन

जाता है। इस तरह ईश्वर से लेने के स्थान पर हम ईश्वर को देने लगते हैं। इसी सम्बन्ध के कारण कृष्ण की माता यशोदा ने भगवान् से कहा, "यहाँ बैठो और खाओ, नहीं तो तुम मर जाओगे। ठीक से खाओ।" इस प्रकार कृष्ण हर वस्तु के स्वामी होने पर भी अपने भक्त की कृपा पर आश्रित रहते हैं। यह मैत्री का अद्वितीय स्तर है, जिसमें भक्त अपने आपको वास्तव में कृष्ण का पिता या माता मानता है।

किन्तु चैतन्य महाप्रभु का सबसे बड़ा उपहार उनकी यह शिक्षा थी कि कृष्ण को अपना प्रेमी मानना। इस सम्बन्ध में भगवान् अपने भक्त पर इतने आनुरक्त रहते हैं कि वे प्रेम-विनिमय करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। कृष्ण वृन्दावन की गोपियों के इतने अनुगृहीत थे कि वे अपने आपको उनके प्रेम का बदला देने में असमर्थ अनुभव करते थे। उन्होंने उनसे कह दिया, "मैं तुम्हारे प्रेम का प्रतिदान देने में असमर्थ हूँ, मेरे पास लौटाने के लिए कुछ भी नहीं है।" इस तरह प्रेमी तथा प्रेमिका के श्रेष्ठतम स्तर पर सम्पन्न की गई भक्ति का ज्ञान चैतन्य महाप्रभु ने ही प्रदान किया। इसे किसी पूर्ववर्ती अवतार या आचार्य ने कभी नहीं दिया था। अतएव श्रील रूप गोस्वामी के कथन के आधार पर कृष्णदास कविराज ने अपने इस ग्रंथ के चौथे श्लोक में लिखा है, "भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु सुनहरे वर्ण में कृष्ण हैं और वे मता शची के पुत्र हैं, शचीनन्दन हैं। वे उदारतम पुरुष हैं, क्योंकि वे सबको कृष्ण-प्रेम प्रदान करने के लिए आये। आप सब लोग उन्हें सदैव अपने हृदय में रखें। उनके माध्यम से कृष्ण को समझना सरल होगा।"

हम प्राय: यह वाक्यांश सुनते हैं "भगवत्प्रेम।" इस भगवत्प्रेम को कहाँ तक विकसित किया जा सकता है, इसे वैष्णव दर्शन से सीखा जा सकता है। भगवत्प्रेम का सैद्धान्तिक ज्ञान तो अनेक स्थानों में तथा अनेक शास्त्रों में मिल जायेगा, किन्तु वह भगवत्प्रेम वास्तव में है क्या और इसे किस

तरह विकसित किया जाता है, इसे तो वैष्णव साहित्य में ही पाया जा सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु के द्वारा तो भगवत्प्रेम अद्वितीय एवं सर्वोच्च विकास को प्राप्त हुआ है।

इस भौतिक जगत् में भी हमें प्रेम का अल्प ज्ञान हो सकता है। तो यह कैसे सम्भव होता है? यह हमारे मूल भगवत्प्रेम की उपस्थिति के कारण होता है। इस बद्ध जीवन में हमें जो भी अनुभव प्राप्त होता है, वह उन परमेश्वर में स्थित रहता है, जो प्रत्येक वस्तु के चरम स्रोत हैं। परमेश्वर के साथ अपने मूल सम्बन्ध में हम वास्तविक प्रेम पाते हैं और वही प्रेम भौतिक परिस्थितियों के द्वारा विकृत रूप में प्रतिबिम्बित होता है। हमारा वास्तविक प्रेम सतत एवं अन्तहीन होता है, किन्तु इस जगत् में जब वही प्रेम विकृत रूप में प्रतिबिम्बित होता है, तो इसमें निरन्तरता का अभाव रहता है और वह उन्मादयुक्त हो जाता है। यदि हम वास्तविक दिव्य प्रेम चाहते हैं, तो हमें अपने प्रेम को प्रेम के उन सर्वोपरि पात्र-भगवान् कृष्ण के प्रति स्थानान्तरित करना होगा। कृष्णभावना का यही मूलभूत सिद्धान्त है।

भौतिक चेतना में हम उस वस्तु से प्रेम करना चाहते हैं, जो रंचमात्र भी प्रेम के योग्य नहीं है। हम अपना प्रेम कुत्तों और बिल्लियों को देते हैं और साथ ही यह खतरा मोल लेते हैं कि मरते समय यदि हमने उनके विषय में सोचा, तो परिणामस्वरूप हमें कुत्तों या बिल्लियों के परिवार में जन्म लेना पड़ सकता है। मृत्यु के समय हमारी चेतना हमारे बाद के दूसरे जीवन को निश्चित करती है। यही एक कारण है कि वैदिक शास्त्र स्त्रियों के सतीत्व पर इतना अधिक बल देते हैं। यदि एक स्त्री उसके पति के प्रति अत्यधिक आसक्त है, तो मृत्यु के समय वह अपने पति के बारे में सोचेगी और दूसरे जीवन में वह एक पुरुष के शरीर को उन्नत होगी। साधारणतया एक पुरुष का जीवन स्त्री के जीवन से अच्छा होता है, क्योंकि एक पुरुष को आध्यात्मिक विज्ञान को समझने के लिए अच्छी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं।

किन्तु कृष्ण चेतना इतनी उत्तम है कि यह पुरुष और स्त्री में कोई भेद नहीं करती। भगवद्गीता (9.32) में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, "जो कोई–चाहे स्त्री, शूद्र, वैश्य अथवा निम्नयोनि में उत्पन्न कोई व्यक्ति–मेरा आश्रय ग्रहण करता है, वह निश्चित रूप से मेरा संग प्राप्त करता है।" यह कृष्ण का आश्वासन है।

चैतन्य महाप्रभु हमें सूचित करते हैं कि प्रत्येक देश में तथा प्रत्येक शास्त्र में भगवत्प्रेम का कुछ न कुछ संकेत मिलता है। किन्तु कोई भी यह नहीं जानता कि यह भगवत्प्रेम वास्तव में है क्या। किन्तु वैदिक शास्त्र इस मामले में अलग हैं, क्योंकि वे किसी व्यक्ति को भगवत्प्रेम का सही मार्गदर्शन करा सकते हैं। अन्य शास्त्र इसकी कोई जानकारी नहीं देते कि मनुष्य किस तरह ईश्वर से प्रेम कर सकता है। न ही ये शास्त्र वास्तव में इसकी परिभाषा देते हैं या वर्णन करते हैं कि वास्तव में ईश्वर क्या या कौन हैं? यद्यपि वे औपचारिकता की दृष्टि से भगवत्प्रेम का संवर्धन करते हैं, किन्तु उन्हें इसका कोई भी ज्ञान नहीं है कि इसे किस तरह सम्पन्न किया जाय। किन्तु चैतन्य महाप्रभु इसका व्यावहारिक प्रदर्शन करते हैं कि माधुर्य भाव में ईश्वर से किस तरह प्रेम किया जाय। श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीमती राधाराणी की भूमिका (भाव) ग्रहण करते हुए कृष्ण से प्रेम करने का प्रयास करते हैं, जैसाकि राधाराणी ने कृष्ण से प्रेम किया था। कृष्ण सदा ही राधाराणी के प्रेम से चकित रहते थे। वे पूछते थे, "राधाराणी मुझे इतना आनन्द किस तरह देती है?" राधाराणी का अध्ययन करने के लिए कृष्ण ने उनकी भूमिका ग्रहण की और अपने आपको समझने का प्रयास किया। भगवान् चैतन्य के अवतार का यही रहस्य है। चैतन्य महाप्रभु कृष्ण हैं, किन्तु हमें यह दिखाने के लिए कि कृष्ण से किस तरह प्रेम किया जाय, उन्होंने राधाराणी का भाव या उनकी भूमिका ग्रहण की। इसीलिए लेखक पाँचवे श्लोक में लिखते हैं, "मैं उन परम भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ, जो सदैव राधाराणी के भावों में मग्न रहते हैं।"

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि श्रीमती राधाराणी कौन हैं और राधा-कृष्ण क्या हैं? वास्तव में राधा-कृष्ण प्रेम का विनिमय है किन्तु यह कोई सामान्य प्रेम नहीं है। कृष्ण की अनन्त शक्तियाँ हैं, जिनमें से तीन प्रमुख हैं-अन्तरंगा, बहिरंगा तथा तटस्था। अन्तरंगा शक्ति के भी तीन विभाग हैं-सम्वित्, ह्लादिनी तथा सन्धिनी। ह्लादिनी शक्ति तो कृष्ण की आनन्ददायिनी शक्ति है। सारे जीवों में यह आनन्द की कामना करने वाली शक्ति है, क्योंकि सारे जीव आनन्द प्राप्त करने की चेष्टा करते रहते हैं। यह जीव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इस समय हम इस भौतिक जगत् में अपने शरीर के द्वारा अपनी ह्लादिनी शक्ति का भोग करने का प्रयास कर रहे हैं। हम शारीरिक सम्पर्क द्वारा भौतिक इन्द्रिय-विषयों से आनन्द प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। किन्तु हमें मूर्खतावश कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि कृष्ण जो सदैव आध्यात्मिक हैं, हमारी तरह इस भौतिक स्तर पर आनन्द की खोज करते हैं। भगवद्गीता में कृष्ण ने इस भौतिक ब्रह्माण्ड को नश्वर तथा दुःखों से भरा बतलाया है। तो फिर वे भौतिक पदार्थ में आनन्द की खोज क्यों करेंगे? वे परमात्मा हैं और उनका आनन्द भौतिक धारणा से परे है।

यह जानने के लिए कि कृष्ण किस प्रकार आनन्द का उपभोग करते हैं, हमें श्रीमद्भागवत के पहले नौ स्कंधों को और फिर दसवें स्कंध को पढ़ना चाहिए, जिसमें उनकी ह्लादिनी शक्ति का प्रदर्शन राधाराणी तथा व्रज की सुन्दरियों के साथ उनकी लीलाओं के रूप में हुआ है। दुर्भाग्यवश अज्ञानी व्यक्ति तुरन्त ही दशम स्कंध में कृष्ण-लीलाओं की ओर उन्मुख होते हैं। सामान्यतया कृष्ण द्वारा राधाराणी का आलिंगन अथवा गोपियों के साथ उनके रासनृत्य को सामान्य लोग नहीं समझ पाते, क्योंकि वे इन लीलाओं को संसारी काम-वासना के सन्दर्भ में देखते हैं। वे मूर्खतावश सोचते हैं कि कृष्ण उन्हीं के समान हैं और वे गोपियों का आलिंगन उसी प्रकार करते हैं, जिस प्रकार एक साधारण पुरुष किसी तरुणी का आलिंगन करता है। इस तरह कुछ लोग कृष्ण में इसीलिए रुचि

दिखलाते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि उनका धर्म यौनाचार की अनुमति देता है। यह कृष्णभक्ति या कृष्ण-प्रेम नहीं है, अपितु प्राकृत-सहजिया अर्थात् भौतिकतावादी काम-वासना है।

ऐसी त्रुटियों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि हम समझें कि वास्तव में यह राधा-कृष्ण हैं क्या? राधा तथा कृष्ण अपनी लीलाओं का प्रदर्शन कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति के माध्यम से करते हैं। कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति के अन्तर्गत ह्लादिनी शक्ति सर्वाधिक कठिन विषय है और जब तक कोई यह न जान ले कि कृष्ण क्या हैं, तब तक वह इसे नहीं समझ सकता। कृष्ण इस भौतिक जगत् में कोई आनन्द नहीं लेते, किन्तु उनके पास ह्लादिनी शक्ति रहती है। चूँकि हम भी कृष्ण के अंश हैं, अतएव हमारे भीतर भी ह्लादिनी शक्ति है, किन्तु हम उस ह्लादिनी शक्ति को पदार्थ में प्रदर्शित करना चाहते हैं। किन्तु कृष्ण इस तरह का व्यर्थ प्रयास नहीं करते। कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति का लक्ष्य है राधाराणी और वे अपनी शक्ति को राधाराणी के रूप में प्रकट करते हैं और फिर उनसे प्रेम-व्यवहार करते हैं। दूसरे शब्दों में, कृष्ण इस बहिरंगा शक्ति में आनन्द नहीं लेते, अपितु वे राधाराणी के रूप में अपनी अन्तरंगा शक्ति या ह्लादिनी शक्ति को प्रकट करते हैं और उनके साथ आनन्द लेते हैं। इस तरह कृष्ण अपनी अन्तरंगा ह्लादिनी शक्ति को भोग करने के लिए अपने आपको राधाराणी के रूप में प्रकट करते हैं। भगवान् के अनेक विस्तारों, अंशों तथा अवतारों में से भगवान् की यह ह्लादिनी शक्ति अग्रगण्य और मुख्य है।

ऐसा नहीं है कि राधाराणी कृष्ण से अलग हैं। राधाराणी भी कृष्ण हैं, क्योंकि शक्ति तथा शक्तिमान में कोई अन्तर नहीं होता है। शक्ति के बिना शक्तिमान का कोई अर्थ नहीं है और शक्तिमान के बिना शक्ति नहीं होती है। इसी तरह राधा के बिना कृष्ण का कोई अर्थ नहीं है और कृष्ण के बिना राधा का कोई अर्थ नहीं है। इसीलिए वैष्णव-दर्शन सर्वप्रथम भगवान् की अन्तरंगा ह्लादिनी शक्ति को नमस्कार करता है और उसकी पूजा करता है। इस तरह भगवान् तथा उनकी शक्ति को सदैव

राधा-कृष्ण कहकर सम्बोधित किया जाता है। इसी प्रकार जो नारायण की पूजा करते हैं, वे सर्वप्रथम लक्ष्मी का नाम लेकर लक्ष्मी-नारायण कहते हैं। इस तरह भगवान् राम की पूजा करने वाले सर्वप्रथम सीता का नाम लेते हैं। चाहे सीता-राम हो, राधा-कृष्ण या लक्ष्मी- नारायण, सबों में शक्ति सबसे पहले आती है।

राधा तथा कृष्ण एक हैं और जब कृष्ण आनन्द भोग करना चाहते हैं, तो वे अपने आपको राधाराणी के रूप में व्यक्त करते हैं। राधा तथा कृष्ण के बीच प्रेम का आध्यात्मिक विनिमय कृष्ण की अन्तरंगा ह्लादिनी शक्ति का वास्तविक प्रदर्शन है। यद्यपि हम कहते हैं कि "जब" कृष्ण चाहते हैं, किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि "कब"। हम ऐसा इसीलिए कहते हैं, क्योंकि बद्ध जीवन में हम मान लेते हैं कि हर वस्तु का प्रारम्भ है; किन्तु आध्यात्मिक जीवन में प्रत्येक वस्तु परम पूर्ण है, इसका न तो आदि होता है न अन्त। फिर भी यह समझने के लिए कि राधा और कृष्ण एक हैं तथा वे पृथक् भी हो जाते हैं, हमारे मन में "कब?" यह प्रश्न स्वतः उठता है। जब कृष्ण ने अपनी ह्लादिनी शक्ति

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य-अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज

श्रील ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के आध्यात्मिक गुरु

श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज के आध्यात्मिक गुरु और

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के अन्तरंग शिष्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

कृष्णभावनामृत से सम्पूर्ण जगत को लाभान्वित कराने वाले

कार्यक्रम के प्रणेता

श्री पञ्चतत्व : श्रीकृष्ण चैतन्य अपने अवतार (अद्वैत आचार्य), अपने विस्तार (नित्यानन्द प्रभु), अपनी प्रकट अन्तरंगाशक्ति (श्रीगदाधर) तथा अपने पूर्ण भक्त (श्री श्रीवास) के बीच (बाएँ से दाएँ)।

अज्ञान के अंधकार को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण चैतन्य तथा नित्यानन्द प्रभु सूर्य तथा चन्द्रमा की भाँति उदित हुए हैं।

गोपियों ने दीर्घकालीन विछोह के बाद अपने प्रिय कृष्ण को कुरुक्षेत्र में देखा।

अद्वैत आचार्य ने गंगाजल से युक्त तुलसीदल अर्पित किया और श्रीकृष्ण से अवतार लेने की याचना की।

“कभी-कभी माता मुझे अपना पुत्र मानकर मुझे बाँध देती है। वह मुझे अत्यन्त असहाय समझ कर मेरा लालन-पालन तथा रक्षण करती है।”

श्री चैतन्य महाप्रभु ने राधा भाव में प्रकट होकर पवित्र नाम के कीर्तन का प्रचार किया।

सुमेरु पर्वत के पूर्व की दिशा में क्षीर सागर है, जिसमें श्वेतद्वीप में एक श्वेत पुरी है, जहाँ पर भगवान् विष्णु अपनी प्रियतमा लक्ष्मी के साथ शेष के सिंहासन पर आसीन देखे जा सकते हैं।

“हे कृष्णदास! तुम वृन्दावन जाओ जहाँ तुम्हें सब कुछ प्राप्त होगा।”

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगी बारम्बार नाचते हैं जिससे भगवान् के अमृतोपम प्रेम का पान आसान हो सका।

प्रकाशानन्द नाम के एक प्रधान संन्यासी थे। उन्होंने चैतन्य महाप्रभु को एक मैले कुचेले स्थान पर बैठा देखा। उन्होंने चैतन्य महाप्रभु को बड़े आदर के साथ ले जाकर, सभा के मध्य में बिठाया।

जब मायावादी संन्यासियों ने महाप्रभु से वेदान्त-सूत्र की व्याख्या सुनी, तो उसी मुहूर्त से उनके मन बदल गये और चैतन्य महाप्रभु के आदेश से वे भी सदा 'कृष्ण' 'कृष्ण' उच्चारण करने लगे।

श्रीमती राधिका भगवान् कृष्ण की सारी इच्छाएँ पूर्ण करती हैं।

का भोग करने की इच्छा की, तब उन्होंने अपने आपको राधाराणी के अलग रूप में प्रकट किया और जब उन्होंने राधा के माध्यम से अपने आपको जानना चाहा, तब वे राधाराणी से मिल गये और वही सम्मिलित रूप भगवान् चैतन्य कहलाता है। यह सब श्रील कृष्णदास कविराज द्वारा चैतन्य-चरितामृत के पाँचवे श्लोक में समझाया गया है।

अगले श्लोक में लेखक बताते हैं कि कृष्ण ने चैतन्य महाप्रभु का रूप क्यों धारण किया? ऐसा बतलाया जाता है कि कृष्ण ने राधा के प्रेम की महिमा जाननी चाही थी। कृष्ण जानना चाहते थे कि, "वह मुझसे इतना प्रेम क्यों करती है? आखिर मुझ में ऐसा कौन-सा विशेष गुण है, जो उसे इस तरह आकृष्ट करता है? और वह वास्तव में किस प्रकार से मुझसे प्रेम करती है?" यह विचित्र लगता है कि परमेश्वर कृष्ण किसी के प्रेम से इस प्रकार आकृष्ट हों। एक पुरुष किसी स्त्री के प्रेम को इसलिए चाहता है, क्योंकि वह अपूर्ण है और उसमें कुछ कमी है। स्त्री का प्रेम, वह शक्ति और वह

आनन्द पुरुष में नहीं मिलता, अतएव मनुष्य स्त्री को चाहता है। किन्तु कृष्ण के साथ ऐसा नहीं है, क्योंकि वे स्वयं में पूर्ण हैं। इसीलिए कृष्ण ने आश्चर्य प्रकट किया : "मैं राधाराणी के द्वारा आकृष्ट क्यों होता हूँ? और जब राधाराणी मेरे प्रेम का अनुभव करती है, तब उसे कैसा लगता है?" इस प्रेम-व्यापार के सार का आस्वादन करने के लिए कृष्ण उसी तरह प्रकट हुए, जिस तरह समुद्र के क्षितिज पर चन्द्रमा प्रकट होता है। जिस तरह समुद्र मंथन से चन्द्रमा प्रकट हुआ था, उसी तरह आध्यात्मिक प्रेम-व्यापार के मंथन से चैतन्य महाप्रभु रूपी चन्द्रमा प्रकट हुए। निस्सन्देह, चैतन्य महाप्रभु का वर्ण सुनहला था, जैसाकि चन्द्रमा का होता है। यद्यपि यह आलंकारिक भाषा है, किन्तु इससे चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के पीछे जो अर्थ है वह प्रकट होता है। उनके आविर्भाव की पूर्ण महत्ता की व्याख्या बाद के अध्यायों में की जायेगी।

चैतन्य-चरितामृत के सातवें श्लोक में चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करने के बाद कृष्णदास कविराज भगवान् नित्यानन्द को नमस्कार करते हैं। वे बतलाते हैं कि भगवान् नित्यानन्द बलराम हैं, जो महाविष्णु के उद्गम हैं। कृष्ण के प्रथम विस्तार बलराम हैं, जिनका एक अंश संकर्षण के रूप में प्रकट होता है। संकर्षण के बाद वे प्रद्युम्न रूप में प्रकट होते हैं। इस तरह उनके अनेक विस्तार होते हैं। यद्यपि विस्तार अनेक हैं, किन्तु श्रीकृष्ण ही स्रोत हैं, जैसी कि ब्रह्म-संहिता से पुष्टि होती है। वे उस मूल दीपक के तुल्य हैं, जिससे हजारों-लाखों दीपक जलाये जाते हैं। यद्यपि मूल दीपक से अनेक दीपक जलाये जा सकते हैं, किन्तु स्रोत के रूप में मूल दीपक की अपनी पहचान होती है। इस तरह कृष्ण अनेक रूपों में अपना विस्तार करते हैं और ये सारे विस्तार विष्णु-तत्त्व कहलाते हैं। विष्णु एक विशाल दीपक हैं और हम सब छोटे-छोटे दीपक हैं, किन्तु हैं सभी कृष्ण के ही अंश।

जब भौतिक ब्रह्माण्ड की सृष्टि करनी होती है, तब विष्णु अपना विस्तार महाविष्णु के रूप में करते हैं। ये महाविष्णु कारणसागर में शयन करते हैं और अपने नासारन्ध्रों से श्वास के साथ सारे

ब्रह्माण्डों को बाहर निकालते हैं। इस तरह महाविष्णु तथा कारणसागर से समस्त ब्रह्माण्डों की सृष्टि होती है और ये सारे ब्रह्माण्ड, जिनमें हमारा ब्रह्माण्ड भी सम्मिलित है, कारणसागर में तैरते रहते हैं। इस सन्दर्भ में वामन की कथा आती है, जिन्होंने जब अपने तीन पग भरे, तो उनका पाँव इस ब्रह्माण्ड के आवरण को भेद गया और इस तरह से उनके पग से बने छेद से कारणसागर का पानी बहने लगा। कहा जाता है कि यही जलप्रवाह गंगा नदी बन गया। इसीलिए गंगा को विष्णु का सबसे पवित्र जल माना जाता है और वह सारे हिन्दुओं द्वारा हिमालय से लेकर बंगाल की खाड़ी तक पूजित है।

वास्तव में महाविष्णु बलराम के विस्तार हैं, जो कृष्ण के प्रथम विस्तार हैं और वृन्दावन की लीलाओं में कृष्ण के भाई हैं। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—इस महामन्त्र में "राम" बलराम के लिए आया है। चूँकि भगवान् नित्यानन्द बलराम के विस्तार हैं, अतएव "राम" शब्द भगवान् नित्यानन्द का भी सूचक है। इस तरह हरे कृष्ण, हरे राम में न केवल कृष्ण तथा बलराम को अपितु भगवान् चैतन्य तथा भगवान् नित्यानन्द को भी सम्बोधित किया जाता है। चैतन्य-चरितामृत की विषय-वस्तु मुख्यतः इस भौतिक सृष्टि से परे की विवेचना से सम्बन्धित है। जगत् का भौतिक विस्तार माया कहलाता है, क्योंकि इसका अस्तित्व शाश्वत नहीं है। चूँकि यह कभी प्रकट होता है और कभी अप्रकट रहता है, इसलिए यह माया (भ्रामक) माना जाता है। किन्तु इस नश्वर जगत से परे एक उच्चतर प्रकृति है, जिसका संकेत भगवद्गीता (8.20) में प्राप्त होता है :

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात् सनातनः ।

यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥

“तथापि एक दूसरी अव्यक्त प्रकृति भी है, जो इस व्यक्त तथा अव्यक्त पदार्थ से परे शाश्वत तथा दिव्य है। यह सर्वोच्च है और कभी विनष्ट नहीं होती है। जब इस जगत् का सब कुछ नष्ट हो जाता है, तब वह अंश उसी तरह बना रहता है।” इस भौतिक जगत् की एक व्यक्त स्थिति है और एक अव्यक्त स्थिति है। परा (श्रेष्ठ) प्रकृति व्यक्त और अव्यक्त भौतिक प्रकृति से परे है। यह परा प्रकृति वह जीवन्त शक्ति है, जो समस्त जीवों के शरीरों में उपस्थित रहती है। यह शरीर अपरा (निकृष्ट) प्रकृति अर्थात् पदार्थ से बना हुआ है, किन्तु परा (श्रेष्ठ) प्रकृति से ही शरीर गतिमान होता है। इस परा प्रकृति का लक्षण है। चेतना। इस तरह आध्यात्मिक जगत् में जहाँ हर वस्तु परा प्रकृति से बनी होती है, सब कुछ चेतन होता है। भौतिक जगत् में जड़ पदार्थ चेतन नहीं होते, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में कोई भी वस्तु जड़ नहीं है। वहाँ की मेज भी चेतन है, धरती भी चेतन है, वृक्ष भी चेतन हैं—सभी चेतन हैं।

यह कल्पना कर पाना सम्भव नहीं है कि यह भौतिक जगत् कहाँ तक विस्तीर्ण है। भौतिक जगत् में हर वस्तु की गणना कल्पना या किसी अपूर्ण विधि से की जाती है, किन्तु वैदिक साहित्य भौतिक जगत् से परे क्या है, उसके विषय में वास्तविक सूचना देते हैं क्योंकि प्रायोगिक साधनों से इस भौतिक प्रकृति से परे किसी वस्तु की जानकारी पा सकना सम्भव नहीं है। जिन्हें केवल प्रायोगिक ज्ञान में विश्वास है वे वैदिक प्रमाणों में सन्देह कर सकते हैं, क्योंकि ऐसे लोग इतनी-सी गणना नहीं कर सकते कि यह ब्रह्माण्ड कितनी दूरी तक फैला है, न ही वे ब्रह्माण्ड के भीतर बहुत दूर तक जा सकते हैं। जो हमारी चिन्तन शक्ति से परे है वह अचिन्त्य कहलाता है। अचिन्त्य के विषय में तर्क या चिन्तन करना व्यर्थ है। यदि कोई वस्तु सचमुच अचिन्त्य है, तो उसके बारे में चिन्तन या प्रयोग नहीं किया जा सकता। हमारी शक्ति सीमित है और हमारा इन्द्रिय-बोध भी सीमित है, अतएव हमें अचिन्त्य विषयवस्तु के बारे में वैदिक प्रमाणों पर ही निर्भर रहना होगा। हमें परा (श्रेष्ठ) प्रकृति

सम्बन्धी ज्ञान को बिना तर्क किये स्वीकार करना होगा। भला जिस वस्तु तक हमारी पहुँच नहीं है, उसके विषय में तर्क करना किस तरह सम्भव है? दिव्य विषयवस्तु को समझने की विधि स्वयं भगवान् कृष्ण ने भगवद्गीता (4.1) में दी है, जहाँ कृष्ण चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ में अर्जुन को बतलाते हैं :

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।

विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

"मैंने योग के इस अविनाशी ज्ञान का उपदेश सूर्य देव विवस्वान को दिया और विवस्वान ने मनुष्य जाति के पिता मनु को दिया और मनु ने अपनी पारी में इसका उपदेश इक्ष्वाकु को दिया।" यही परम्परा-विधि है। इसी तरह श्रीमद्भागवत में वर्णन है कि कृष्ण ने ब्रह्माण्ड के प्रथम सृजित जीव ब्रह्मा के हृदय में ज्ञान प्रदान किया। ब्रह्मा ने वह उपदेश अपने शिष्य नारद को दिया और नारद ने उसे अपने शिष्य व्यासदेव को दिया। व्यासदेव ने इसे मध्वाचार्य को दिया और मध्वाचार्य से यही ज्ञान माधवेन्द्र पुरी को मिला, उनसे ईश्वर पुरी को तथा ईश्वर पुरी से चैतन्य महाप्रभु को मिला।

कोई पूछ सकता है कि यदि चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं, तो फिर उन्हें गुरु की आवश्यकता क्यों हुई? निस्सन्देह, उन्हें गुरु की आवश्यकता नहीं थी, किन्तु वे आचार्य (उदाहरण देकर शिक्षा देने वाला) की भूमिका निभा रहे थे, अतएव उन्होंने गुरु स्वीकार किया। यहाँ तक कि स्वयं कृष्ण ने गुरु स्वीकार किया था, क्योंकि यही पद्धति है। इस तरह भगवान् मनुष्यों के लिए आदर्श प्रस्तुत करते हैं। किन्तु हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् इसलिए गुरु स्वीकार करते हैं, क्योंकि उनमें ज्ञान का अभाव है। वे तो मात्र गुरु-शिष्य परम्परा को स्वीकार करने की महत्ता पर बल देना चाहते हैं। उस परम्परा का ज्ञान वास्तव में स्वयं भगवान् से आता है और यदि यह ज्ञान अविच्छिन्न चला

आये, तो वह पूर्ण होता है। भले ही हम उस मूल पुरुष से सम्पर्क न कर सकें, जिसने सर्वप्रथम उसे प्रदान किया, किन्तु हम इस संप्रेषण विधि से वही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि परम सत्य भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मा के हृदय में दिव्य ज्ञान स्थानान्तरित किया। हृदय से होकर ज्ञान प्राप्त करने की यह एक विधि हुई । इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करने की दो विधियाँ हैं- एक निर्भर करती है समस्त जीवों के हृदयों में निवास करने वाले परमात्मा स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पर और दूसरी गुरु पर निर्भर करती है, जो कृष्ण का अंश होता है। इस तरह कृष्ण बाहर से तथा भीतर से, दोनों ही तरह से सूचना प्रदान करते हैं। हमें उसे केवल ग्रहण करना होता है। यदि ज्ञान को इस तरह से प्राप्त किया जाता है, तो फिर वह चाहे अचिन्त्य हो या न हो, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

श्रीमद्भागवत में वैकुण्ठ-लोकों के विषय में पर्याप्त सूचना दी हुई है, जो भौतिक ब्रह्माण्ड से परे हैं। इसी प्रकार चैतन्य-चरितामृत में भी प्रचुर परिमाण में अचिन्त्य सूचना दी गई है। प्रयोगात्मक ज्ञान के द्वारा इस सूचना को प्राप्त करने की चेष्टा सम्भव नहीं है। इस ज्ञान को मात्र स्वीकार करना होता है। वैदिक विधि के अनुसार शब्द अर्थात् दिव्य ध्वनि को प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जाता है। वैदिक ज्ञान में शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यदि यह शुद्ध है, तो इसे प्रामाणिक माना जाता है। यहाँ तक कि भौतिक जगत् में भी टेलीफोन या रेडिओ द्वारा हजारों मील से भेजी गई बहुत-सी सूचना को हम स्वीकार करते हैं। इस तरह हम अपने दैनिक जीवन में भी शब्द को प्रमाण मानते हैं। यद्यपि हम सूचना देने वाले को नहीं देख सकते, किन्तु उसकी सूचना को शब्द के आधार पर वैध स्वीकार करते हैं। तभी तो वैदिक ज्ञान के सम्प्रेषण में शब्द-ध्वनि अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

वेद हमें बतलाते हैं कि इस भौतिक प्राकट्य से परे परव्योम में अनेक विस्तृत ग्रह हैं। यह भौतिक प्राकट्य समग्र सृष्टि का केवल एक लघु अंश है। इस भौतिक प्राकट्य में केवल यही ब्रह्माण्ड सम्मिलित नहीं है, अपितु अन्य असंख्य ब्रह्माण्ड भी सम्मिलित हैं। किन्तु ये सारे भौतिक ब्रह्माण्ड

मिलकर सम्पूर्ण सृष्टि का केवल एक चौथाई अंश बनाते हैं। बाकी तीन चौथाई सृष्टि तो परव्योम (आध्यात्मिक आकाश) में स्थित है। उस व्योम में असंख्य ग्रह तैरते रहते हैं और वे वैकुण्ठ-लोक कहलाते हैं। प्रत्येक वैकुण्ठ-लोक की अध्यक्षता नारायण अपने चार विस्तारों-संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा वासुदेव-के साथ करते हैं। चैतन्य-चरितामृत के आठवें श्लोक में कृष्णदास कविराज कहते हैं कि यही संकर्षण भगवान् नित्यानन्द हैं।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, सारे भौतिक ब्रह्माण्ड भगवान् के द्वारा महाविष्णु के रूप में उत्पन्न किये जाते हैं। जिस प्रकार स्त्री तथा पुरुष के मिलन से संतान उत्पन्न होती है, उसी प्रकार महाविष्णु अपनी पत्नी माया अर्थात् भौतिक प्रकृति से मिलते हैं। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (14.4) में कृष्ण के इस कथन से होती है :

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।

तासां ब्रह्म महद् योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥

"हे कुन्ती-पुत्र, यह समझना चाहिए कि समस्त योनियों की सृष्टि इस भौतिक प्रकृति के द्वारा सम्भव होती है और मैं उनका बीज प्रदन करने वाला पिता हूँ।" विष्णु माया अर्थात् भौतिक प्रकृति पर मात्र दृष्टिपात करके उसे गर्भित करते हैं। यह आध्यात्मिक विधि है। भौतिक रूप से हम अपने शरीर के केवल एक विशेष अंग से ही गर्भ स्थापित कर सकते हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण या महाविष्णु किसी भी अंग से गर्भ स्थापित कर सकते हैं। भगवान् मात्र दृष्टिपात से भौतिक प्रकृति के गर्भ में असंख्य जीवों को स्थापित कर सकते हैं। ब्रह्म-संहिता से पुष्टि होती है कि भगवान् का आध्यात्मिक शरीर इतना शक्तिशाली है कि उनके शरीर का कोई भी अंग अन्य किसी भी अंग का कार्य सम्पन्न कर सकता है। हम केवल अपने हाथों से या त्वचा से ही स्पर्श कर सकते हैं, किन्तु कृष्ण दृष्टिपात

द्वारा भी स्पर्श कर सकते हैं। हम केवल अपनी आँखों से ही देख सकते हैं, हम उनसे स्पर्श नहीं कर सकते या सुगन्ध नहीं ले सकते। किन्तु कृष्ण अपनी आँखों से सँघ सकते हैं और खा भी सकते हैं। जब हम कृष्ण को भोजन अर्पित करते हैं, तो हम उन्हें खाते हुए नहीं देखते, किन्तु वे केवल भोजन पर दृष्टिपात करके खा लेते हैं। हम कल्पना ही नहीं कर सकते कि आध्यात्मिक जगत् में, जहाँ हर वस्तु आध्यात्मिक है, वस्तुएँ किस प्रकार से कार्य करती हैं। ऐसा नहीं है कि कृष्ण खाते नहीं या हम कोरी कल्पना करते हैं कि वे खाते हैं। वे सचमुच खाते हैं, किन्तु उनकी खाने की क्रिया हमसे भिन्न होती है। जब हम पूर्ण रूप से आध्यात्मिक स्तर पर होंगे, तब हमारा और उनका खाना एक-समान होगा। उस स्तर पर शरीर का प्रत्येक भाग अन्य किसी भी भाग का कार्य कर सकेगा।

सृष्टि करने के लिए विष्णु को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती। उन्हें ब्रह्मा को जन्म देने के लिए लक्ष्मी देवी की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि ब्रह्मा का जन्म एक कमल-पुष्प से होता है, जो विष्णु की नाभि से निकलता है। लक्ष्मी देवी विष्णु के चरणों पर बैठी रहती हैं और उनकी सेवा करती हैं। इस भौतिक जगत् में सन्तान उत्पन्न करने के लिए संभोग करने की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में पत्नी की सहायता के बिना पुरुष जितनी चाहे, सन्तानें उत्पन्न कर सकता है। अतः वहाँ संभोग जैसी कोई वस्तु नहीं है। चूँकि हमें आध्यात्मिक शक्ति का कोई अनुभव नहीं है, अतएव हम सोचते हैं कि विष्णु की नाभि से ब्रह्मा का जन्म मात्र कपोलकल्पना है। हम इसे जानते नहीं हैं कि आध्यात्मिक शक्ति इतनी शक्तिशाली है कि यह कुछ भी कर सकती है। भौतिक शक्ति तो कतिपय नियमों पर आश्रित है, किन्तु आध्यात्मिक शक्ति पूर्णतया स्वतन्त्र है।

महाविष्णु के रोमकूपों के भीतर बीजों की तरह असंख्य ब्रह्माण्ड निवास करते हैं और जब वे श्वास छोड़ते हैं, तब सारे ब्रह्माण्ड प्रकट होते हैं। भौतिक जगत् में हमें ऐसा कोई अनुभव प्राप्त नहीं

है, किन्तु पसीना आने के विषय में हमें इसके विकृत प्रतिबिम्ब का अनुभव होता है। हम महाविष्णु के एक श्वास की अवधि का अनुमान नहीं लगा सकते, क्योंकि एक बार की साँस में सारे ब्रह्माण्ड उत्पन्न और विनष्ट होते हैं। ब्रह्म-संहिता में यह कहा गया है। ब्रह्माजी केवल एक श्वास की अवधि तक जीवित रहते हैं और हमारे काल-माप के अनुसार ब्रह्मा का एक दिन अर्थात् 12 घण्टे 4,32,00,00,000 वर्षों का होता है और ब्रह्मा अपने एक सौ वर्षों तक जीवित रहते हैं। फिर भी ब्रह्मा का सारा जीवन महाविष्णु की एक श्वास में निहित रहता है। अतएव हमारे लिए महाविष्णु की साँस लेने की शक्ति का अनुमान लगा पाना सम्भव नहीं है। ये महाविष्णु भगवान् नित्यानन्द के केवल आंशिक प्राकट्य हैं। इसे चैतन्य चरितामृत के लेखक नौवें श्लोक में वर्णन करते हैं।

दसवें तथा ग्यारहवें श्लोक में कृष्णदास कविराज वर्णन करते हैं कि गर्भोदकशायी विष्णु और क्षीरोदकशायी विष्णु क्रमशः महाविष्णु के स्वांश विस्तार हैं। ब्रह्माजी गर्भोदकशायी विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल से प्रकट होते हैं और उस कमल की नाल के भीतर अनेक ग्रह-मण्डल विद्यमान हैं। फिर ब्रह्माजी समग्र मानव समाज, पशुसमाज–प्रत्येक वस्तु की सृष्टि करते हैं। क्षीरोदकशायी विष्णु ब्रह्माण्ड के भीतर क्षीर-सागर पर शयन करते हैं। इस ब्रह्माण्ड के वे नियन्ता तथा पालक हैं। इस तरह ब्रह्मा स्रष्टा हैं, विष्णु पालक हैं, और जब प्रलयकाल आता है, तब शिव सब कुछ समाप्त कर देते हैं।

इस प्रकार चैतन्य-चरितामृत के पहले ग्यारह श्लोकों में कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने चैतन्य महाप्रभु की विवेचना साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में और भगवान् नित्यानन्द की बलराम के रूप में की है, जो कृष्ण के प्रथम विस्तार हैं। इसके बाद बारहवें और तेरहवें श्लोकों में उन्होंने चैतन्य महाप्रभु के अन्य प्रधान पार्षद अद्वैताचार्य का वर्णन किया है, जो महाविष्णु के अवतार हैं। इस प्रकार अद्वैताचार्य भी भगवान् हैं या यों कहें कि भगवान् के विस्तार

हैं। अद्वैत शब्द का अर्थ है द्वैतरहित और उनका नाम ऐसा है क्योंकि वे भगवान् से अभिन्न हैं। वे आचार्य भी कहलाते हैं, क्योंकि उन्होंने कृष्णभावनामृत का प्रसार किया। इस प्रकार वे चैतन्य महाप्रभु ही की तरह हैं। यद्यपि भगवान् चैतन्य स्वयं श्रीकृष्ण हैं, किन्तु वे सामान्य जनों को कृष्ण से प्रेम करने की विधि बतलाने के लिए भक्तरूप में प्रकट हुए। इसी प्रकार यद्यपि अद्वैताचार्य भगवान् हैं, फिर भी वे कृष्णभावनामृत का ज्ञान वितरित करने के लिए प्रकट हुए। इस प्रकार वे भी भगवान् हैं, जो भक्त के रूप में अवतरित हुए।

भगवान् चैतन्य की लीलाओं में कृष्ण पाँच विभिन्न अंशों में प्रकट होते हैं, जिन्हें पंच-तत्त्व कहते हैं, जिन्हें श्रील कृष्णदास कविराज चैतन्य-चरितामृत के चौदहवें श्लोक में नमस्कार करते हैं। कृष्ण तथा उनके सारे पार्षद भगवद्भक्तों के रूप में प्रकट होते हैं-श्रीकृष्ण चैतन्य, नित्यानन्द प्रभु, श्री अद्वैताचार्य, श्री गदाधर प्रभु तथा श्रीवास प्रभु। सभी प्रकार से चैतन्य महाप्रभु अपने सारे भक्तों की शक्ति के उद्गम हैं। चूँकि बात ऐसी है, अतएव यदि हम कृष्णभावना को सही ढंग से सम्पन्न करने के लिए चैतन्य महाप्रभु की शरण लेते हैं, तो यह निश्चित है कि हम प्रगति करेंगे। नरोत्तम दास ठाकुर के एक गीत में कहा गया है, "हे भगवान् चैतन्य, मुझ पर कृपा करें। आपके समान दयालु दूसरा कोई नहीं है। मेरी यह याचना अत्यन्त अविलम्बनीय है, क्योंकि आपका ध्येय है पतितात्माओं का उद्धार करना और मुझ से बढ़कर अधिक पतित अन्य कोई नहीं है। इसलिए मैं आपसे प्राथमिकता के आधार पर कृपा की याचना करता हूँ।"

पन्द्रहवें श्लोक से, कृष्णदास कविराज गोस्वामी सीधे कृष्ण को नमस्कार करना प्रारम्भ कर देते हैं। कृष्णदास कविराज वृन्दावन के निवासी तथा महान् भक्त थे। वे अपने परिवार के साथ बंगाल के बर्दवान जिले के एक छोटे-से गाँव कटवा में रहते थे। वे अपने परिवार वालों के साथ राधा-कृष्ण की पूजा करते थे और एक बार जब उनके परिवार में भक्ति के विषय में कुछ गलतफहमी हुई, तो

नित्यानन्द प्रभु ने स्वप्न में कृष्णदास कविराज को उपदेश दिया कि वे घर छोड़कर वृन्दावन चले जायें। यद्यपि वे अत्यधिक वृद्ध थे, किन्तु वे उसी रात वृन्दावन में निवास करने के लिए चल पड़े। जब वे वहाँ थे, तब वे चैतन्य महाप्रभु के प्रधान शिष्यों, कुछ गोस्वामियों से मिले। वृन्दावन के भक्तों ने उनसे प्रार्थना की कि वे चैतन्य-चरितामृत लिखें। यद्यपि उन्होंने लेखन-कार्य वृद्धावस्था में शुरू किया, किन्तु श्री चैतन्य की कृपा से वह पूरा हो गया। आज चैतन्य महाप्रभु के दर्शन और जीवन के विषय में यह सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ है।

जब कृष्णदास कविराज गोस्वामी वृन्दावन में रह रहे थे, तब वहाँ मन्दिरों की संख्या अधिक नहीं थी। उस समय मदन-मोहन, गोविन्दजी तथा गोपीनाथ-ये ही तीन प्रमुख मन्दिर थे। वे एक वृन्दावनवासी के रूप में इन मन्दिरों के अर्चाविग्रहों को नमस्कार करते हैं और भगवान् से अनुग्रह करने की प्रार्थना करते हैं, "चूँकि आध्यात्मिक जीवन में मेरी प्रगति अत्यन्त मन्द है, अतएव मैं आपसे सहायता की याचना कर रहा हूँ।" चैतन्य-चरितामृत के पन्द्रहवें श्लोक में कृष्णदास सर्वप्रथम मदनमोहन विग्रह को सादर नमस्कार करते हैं, जो कृष्णभावनामृत में प्रगति करने में सहायक हो सकते हैं। कृष्णभावनामृत सम्पादित करते समय हमारा पहला कर्तव्य होता है कृष्ण को जानना तथा उनके साथ अपने सम्बन्ध को जानना। कृष्ण को जानना स्वयं को जानना है और स्वयं को जानना कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को जानना है। चूँकि यह सम्बन्ध मदनमोहन विग्रह की पूजा करके सीखा जा सकता है, अतएव कृष्णदास कविराज गोस्वामी सर्वप्रथम उनसे अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

जब यह सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, तो सोलहवें श्लोक में कृष्णदास अभिधेय विग्रह गोविन्द को अपनी प्रणति निवेदन करते हैं। गोविन्द विग्रह को अभिधेय विग्रह कहा जाता है, क्योंकि वे हमें दिखाते हैं कि राधा और कृष्ण की सेवा कैसे की जाए। मदनमोहन विग्रह केवल यह स्थापित

करते हैं कि "मैं आपका सनातन सेवक हूँ।" किन्तु गोविन्द के साथ सेवा की वास्तविक स्वीकृति दिखती है। गोविन्द वृन्दावन में नित्य निवास करते हैं। वृन्दावन के आध्यात्मिक जगत् में महले चिन्तामणि के बने होते हैं, गाएँ प्रचुर दूध देने वाली होती हैं जिन्हें सुरभि कहा जाता है और वहाँ के वृक्ष कल्पवृक्ष कहलाते हैं, क्योंकि व्यक्ति जो भी कामना करता है, वे उसे पूर्ण करते हैं। वृन्दावन में कृष्ण सुरभि गौवों को चराते हैं और वहाँ की हजारों-लाखों गोपियाँ उनकी पूजा करती हैं, जो सब सक्ष्मीयाँ होती हैं। जब कृष्ण भौतिक जगत् में अवतरित होते हैं, तब यही वृन्दावन उनके साथ अवतरित होता है, जिस तरह किसी विख्यात व्यक्ति के साथ उसका दल चलता है। चूँकि जब कृष्ण आते हैं, तो उनकी भूमि भी साथ आती है, अतः वृन्दावन को इस भौतिक जगत् से परे अवस्थित माना जाता है। इसीलिए भक्तगण भारत में स्थित वृन्दावन की शरण लेते हैं, क्योंकि यह मूल वृन्दावन की प्रतिकृति माना जाता है। भले ही हम शिकायत करें कि यहाँ पर कोई कल्पवृक्ष नहीं है, किन्तु जब गोस्वामीगण वहाँ रह रहे थे, तब कल्पवृक्ष विद्यमान थे। ऐसा नहीं है कि कोई भी जाकर इन वृक्षों से माँगने लगे। पहले उसे भक्त बनना होगा। गोस्वामीगण किसी भी वृक्ष के नीचे केवल एक रात ठहरते थे और ये वृक्ष उनकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। सामान्य व्यक्ति के लिए यह बहुत अद्भुत लग सकता है, किन्तु ज्यों ज्यों मनुष्य भक्ति में प्रगति करता है, त्यों त्यों यह सब अनुभव होने लगता है।

वृन्दावन का वास्तविक अनुभव उन व्यक्तियों को ही हो पाता है, जो भौतिक आनन्द से विमुख हो चुके हैं। एक महान् भक्त पूछता है, "कब मेरा मन भौतिक भोग की लालसा से शुद्ध हो सकेगा, जिससे मैं वृन्दावन का दर्शन कर सकें?" हम जितने ही अधिक कृष्णभावनाभावित होंगे और जितने ही अग्रसर होंगे, सारी वस्तुएँ उतनी ही आध्यात्मिक लगने लगेंगी। इस प्रकार कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने भारत के वृन्दावन को आध्यात्मिक आकाश में स्थित वृन्दावन जैसा ही माना

और चैतन्य-चरितामृत के सोलहवें श्लोक में वे राधाराणी तथा कृष्ण को वृन्दावन में एक कल्पवृक्ष के नीचे रत्नजटित सिंहासन पर आसीन बतलाते हैं। वहाँ कृष्ण की प्रिय गोपियाँ राधा तथा कृष्ण की सेवा गाकर, नाचकर, ताम्बूल तथा जलपान देकर और उन्हें फूलों से सजाकर करती हैं। आज भी भारत में लोग झूलते हुए सिंहासनों को सजाते हैं और जुलाई-अगस्त मास में इस दृश्य को पुनरुज्जीवित करते हैं। सामान्यतया उस समय लोग वहाँ के अर्चाविग्रहों को नमस्कार करने वृन्दावन जाते हैं।

अन्त में कृष्णदास कविराज गोस्वामी पाठकों को गोपीनाथ विग्रह के नाम पर आशीर्वाद देते हैं। गोपीनाथ विग्रह गोपियों के स्वामी के रूप में कृष्ण हैं। कृष्ण सारी गोपियों को अपनी वंशी की ध्वनि से आकृष्ट करते थे और जब गोपीयाँ अपने घर के सारे कामकाज छोड़कर आ जाती थीं, तब कृष्ण उनके साथ नृत्य करते थे। ये सारे कार्यकलाप श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध में वर्णित हैं। ये गोपियाँ कृष्ण की बाल्यावस्था की संगिनी थीं और उनमें से बहुत-सी विवाहिता थीं, क्योंकि भारत में लड़कियों का विवाह सामान्यतया बारह वर्ष की आयु में हो जाता है। हाँ, लड़कों का विवाह अठारह वर्ष के पूर्व नहीं होता; अतएव कृष्ण, जो उस समय पंद्रह या सोलह वर्ष के थे, विवाहित नहीं थे। फिर भी वे इन लड़कियों को उनके घरों से बुलाते और अपने साथ नृत्य करने के लिए आमन्त्रित करते थे। यह नृत्य रासलीला कहलाता है और यह वृन्दावन की लीलाओं का सर्वाधिक उच्च स्तर का विलास है। इसीलिए कृष्ण गोपीनाथ कहलाते हैं, क्योंकि वे गोपियों के प्रिय प्राणनाथ हैं।

कृष्णदास कविराज गोस्वामी भगवान् गोपीनाथ से आशीर्वाद प्रदान करने को कहते हैं : "वे गोपीनाथ अर्थात् कृष्ण आपको आशीर्वाद प्रदान करें। आप गोपीनाथ द्वारा आशीष प्राप्त करें।" जिस प्रकार कृष्ण अपनी वंशी की मधुर ध्वनि से गोपियों को आकृष्ट कर लेते थे, श्रीचैतन्य-

चरितामृत के लेखक प्रार्थना करते हैं कि उसी प्रकार गोपीनाथ अपनी दिव्य ध्वनि से इसके पाठकों के मन को भी आकृष्ट कर लें।

अध्याय एक

गुरुवर्ग

श्री चैतन्य महाप्रभु और कोई नहीं बल्कि श्री राधा और कृष्ण के संयुक्त रूप हैं। वे उन भक्तों के जीवन-आधार हैं, जो श्रील रूप गोस्वामी के चरणकमलों का दृढ़ता से अनुसरण करते हैं। श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी, प्रारम्भिक जीवन में विश्वम्भर नाम से प्रख्यात भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के सर्वाधिक विश्वासपात्र सेवक थे। श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी, श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी के दो प्रधान अनुयायी हैं। श्रील रूप गोस्वामी के प्रत्यक्ष शिष्य श्रील रघुनाथदास गोस्वामी थे। श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के प्रत्यक्ष शिष्य हैं।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी के प्रत्यक्ष शिष्य श्रील नरोत्तम दास ठाकुर थे, जिन्होंने श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती को अपना सेवक बनाया। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठकुर ने श्रील जगन्नाथदास बाबाजी को शिष्य रूप में स्वीकार किया, जिन्होंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुर को दीक्षित किया और इन्होंने श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी को दीक्षा दी, जो मुझ अकिंचन के दिव्य गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज के गुरु हैं।

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु से चली आ रही गुरु-शिष्य परम्परा से सम्बन्धित हूँ, अतएव श्रीचैतन्य-चरितामृत के इस संस्करण में कुछ भी ऐसा नहीं होगा, जो मेरे लघु मस्तिष्क की उपज हो, अपितु यह साक्षात् भगवान् द्वारा ग्रहण किये गये भोजन का अवशेष मात्र होगा। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का सम्बन्ध तीनों गुणों से बने भौतिक संसार से नहीं है। वे जीव की अपूर्ण इन्द्रियों

की पहुँच से परे दिव्य धरातल से सम्बन्धित हैं। यह दिव्य धरातल बड़े से बड़े संसारी पंडित की भी पहुँच से तब तक परे रहता है जब तक वह विनीत भाव से दिव्य ध्वनि के श्रवण के लिए समर्पित नहीं होता, क्योंकि केवल उसी भाव में रहकर मनुष्य को श्री चैतन्य महाप्रभु के सन्देश की अनुभूति हो सकती है। इसलिए यहाँ पर जो भी वर्णन किया जायेगा, उसका सम्बन्ध जड़ मनों की तर्कवादी आदतों से उत्पन्न प्रयोगात्मक विचारों से नहीं होगा। इस पुस्तक की विषयवस्तु मनगढन्त नहीं, अपितु ऐसा वास्तविक आध्यात्मिक अनुभव है, जिसकी अनुभूति उपर्युक्त गुरु-शिष्य परम्परा को स्वीकार करने पर ही की जा सकती है। इस परम्परा की शिक्षाओं से किसी भी प्रकार के भटकाव से पाठक चैतन्य-चरितामृत के रहस्य को समझने की जगह उलझकर रह जायेगा। यह दिव्य साहित्य उसी के स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए है, जिसने उपनिषदों तथा वेदान्त-सूत्र जैसे वैदिक साहित्य एवं श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीता जैसे उनके स्वाभाविक भाष्यों की अनुभूति प्राप्त कर ली है।

श्रीचैतन्य-चरितामृत का यह संस्करण उन निष्ठावान विद्वानों के अध्ययन हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है, जो सचमुच ही परम सत्य की खोज में लगे हुए हैं। यह किसी मानसिक तर्कवादी का दम्भपूर्ण पाण्डित्य नहीं है, अपितु ऐसे श्रेष्ठ अधिकारी के आदेश का पालन करने का निष्ठावान प्रयास है, जिसकी सेवा ही इस विनम्र प्रयास का जीवनाधार है। यह प्रामाणिक शास्त्रों की शिक्षाओं से बिल्कुल भी नहीं भटकता, अतएव जो कोई भी परम्परा का पालन करता है, वह केवल श्रवण-विधि से ही इस पुस्तक के सार का साक्षात्कार कर सकेगा।

श्रीचैतन्य-चरितामृत का प्रथम अध्याय संस्कृत के उन चौदह श्लोकों से प्रारम्भ होता है, जिनमें परम सत्य का वर्णन किया गया है। इसके आगे के तीन संस्कृत श्लोकों में वृन्दावन के तीन प्रधान अर्चाविग्रहों-श्री राधा-मदनमोहन, श्री राधा-गोविन्ददेव तथा श्री राधा-गोपीनाथजी का वर्णन हुआ है। चौदह श्लोकों में से पहला श्लोक परम सत्य की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है और समूचा

प्रथम अध्याय वास्तव में इसी श्लोक के लिए समर्पित है, जो श्री चैतन्य महाप्रभु को उनके छह विभिन्न दिव्य विस्तारों में वर्णन करता है।

जिस प्रथम प्राकट्य का वर्णन हुआ है, वह गुरु का है, जो दीक्षा-गुरु तथा शिक्षा गुरु, इन दो अंशों में प्रकट होते हैं। ये दोनों एकरूप हैं, क्योंकि दोनों ही परम सत्य के प्रकाश रूप हैं। इसके बाद भक्तों का वर्णन हुआ है, जिनकी दो श्रेणियाँ हैं-नवशिक्षित तथा स्नातक। इसके बाद भगवान् के अवतारों का वर्णन हुआ है, जिन्हें भगवान् से अभिन्न बतलाया गया है। इन अवतारों की तीन विभागों में चर्चा की गई है-भगवान् के शक्त्यावेश अवतार, भगवान् के गुणावतार तथा भगवान् के अंशावतार। इस सन्दर्भ में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष प्रकाशों तथा दिव्य लीलाओं हेतु उनके प्रकाशों की विवेचना की गई। है। इसके बाद भगवान् की शक्तियों के बारे में विचार किया गया है, जिनमें से तीन प्रमुख प्राकट्यों का वर्णन हुआ है। ये हैं-वैकुण्ठ की प्रेयसियाँ, द्वारका धाम की महारानियाँ तथा इन सबसे ऊपर व्रजधाम की सुन्दरियाँ। सबसे अन्त में साक्षात् भगवान् आते हैं, जो इन समस्त प्राकट्यों के उद्गम हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके स्वांश विस्तार (अंश विभवः)-ये सभी साक्षात् भगवान् अर्थात् शक्तिमान परम सत्य की कोटि में आते हैं। उनके भक्त तथा नित्य पार्षद उनकी शक्तियाँ हैं। शक्ति तथा शक्तिमान मूलतः एक हैं, किन्तु उनके कार्य भिन्न भिन्न रूप में प्रकट होते हैं, अतएव वे साथ ही साथ भिन्न भी हैं। इस तरह परम सत्य एक होकर भी अनेक रूपों में प्रकट होते हैं। यह दार्शनिक सत्य वेदान्त-सूत्रों के अनुसार है और यह अचिन्त्य-भेदाभेद तत्त्व कहलाता है, जिसका अर्थ है एक साथ भिन्न तथा अभिन्न होना। इस अध्याय के अन्तिम अंश में श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु की दिव्य स्थिति का वर्णन उपर्युक्त आस्तिक तथ्यों के सन्दर्भ में किया गया है।

वन्दे गुरूनीश-भक्तानीशमीशावतारकान्।

तत्प्रकाशांश्च तच्छक्तीः कृष्ण-चैतन्य-संज्ञकम् ॥1॥

वन्दे-मैं सादर नमस्कार करता हूँ; गुरून्–गुरुओं को; ईश-भक्तान्-भगवान् के भक्तों को; ईशम्-परमेश्वर को; ईश-अवतारकान्-भगवान् के अवतारों को; तत्-भगवान् के; प्रकाशान्–प्राकट्यों को; च-तथा; तत्-भगवान् की; शक्तीः-शक्तियों को; कृष्ण-चैतन्य–श्रीकृष्ण चैतन्य; संज्ञकम्-नामक।

अनुवाद

मैं समस्त गुरुओं, भगवद्भक्तों, भगवान् के अवतारों, उनके पूर्ण अंशों, उनकी शक्तियों तथा स्वयं आदि भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य को सादर नमस्कार करता हूँ।

वन्दे श्री कृष्ण-चैतन्य-नित्यानन्दौ सहोदितौ।

गौड़ोदये पुष्पवन्तौ चित्रौ शन्दौ तमो-नुदौ ॥2॥

वन्दे मैं सादर नमस्कार करता हूँ; श्री-कृष्ण-चैतन्य-भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य को; नित्यानन्दौ-और भगवान् नित्यानन्द को; सह-उदितौ–एक साथ उदय हुए; गौड़-उदये-गौड़ के पूर्वी क्षितिज पर; पुष्पवन्तौ–सूर्य तथा चन्द्र दोनों साथ में; चित्रौ-आश्चर्यजनक; शम्-दौ-आशीर्वाद देते हुए; तमः-नुदौ-अन्धकार मिटाने के लिए।

अनुवाद

मैं सूर्य तथा चन्द्रमा के समान श्रीकृष्ण चैतन्य तथा भगवान् नित्यानन्द दोनों को सादर नमस्कार करता हूँ। वे गौड़ के क्षितिज पर अज्ञान के अन्धकार को दूर करने तथा आश्चर्यजनक रूप से सबको आशीर्वाद प्रदान करने के लिए एकसाथ उदय हुए हैं।

यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनु-भा।

य आत्मान्तर्यामी पुरुष इति सोऽस्यांश-विभवः ।।

षड्-ऐश्वर्यैः पूर्णो य इह भगवान्स स्वयमयं

न चैतन्याकृष्णाजगति पर-तत्त्वं परमिह ॥3॥

यत्-जो; अद्वैतम्-अद्वैत; ब्रह्म-निर्विशेष ब्रह्म; उपनिषदि-उपनिषदों में; तत्-जो; अपि-भी, निश्चित रूप से; अस्य-उनका; तनु-भा-उनके दिव्य शरीर का तेज; यः-जो; आत्मा-परमात्मा; अन्तः-यामी-अन्तर्निवास करने वाले भगवान्; पुरुषः-परम भोक्ता; इति–इस तरह; सः-वे; अस्य–उनका; अंश-विभवः–पूर्ण विस्तार; षट्-ऐश्वर्यैः-सभी छः ऐश्वर्यों सहित; पूर्णः–पूर्ण; यः-जो; इह-यहाँ; भगवान्-भगवान्; सः-वे; स्वयम्-स्वयं; अयम्-यह; न-नहीं; चैतन्यात्-भगवान् चैतन्य की अपेक्षा; कृष्णात्-भगवान् कृष्ण की अपेक्षा; जगति–विश्व में; पर-उच्चतर; तत्त्वम्-सत्य; परम्-अन्य; इह-यहाँ।

अनुवाद

जिसे उपनिषदों में निर्विशेष ब्रह्म कहा गया है, वह उनके शरीर का तेजमात्र है और जो भगवान् अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में जाने जाते हैं, वे उनके अंशमात्र हैं। भगवान् चैतन्य छहों ऐश्वर्यों से युक्त स्वयं भगवान् कृष्ण हैं। वे परम सत्य हैं और कोई भी अन्य सत्य न तो उनसे बड़ा है, न उनके तुल्य है।

अनर्पित-चरी चिरात्करुणयावतीर्णः कलौ

समर्पयितुमुन्नतोज्वल-रसां स्व-भक्ति-श्रियम् ।

हरिः पुरट-सुन्दर-द्युति-कदम्ब-सन्दीपितः

सदा हृदय-कन्दरे स्फुरतु वः शची-नन्दनः ॥4॥

अनर्पित-अर्पित न किया हुआ; चरीम्-पहले किया हुआ; चिरात्-दीर्घ समय से; करुणया-अहैतुकी कृपा से; अवतीर्णः-प्रकट हुए; कलौ–कलियुग में; समर्पयितुम्-अर्पित करने के लिए; उन्नत-उन्नत; उज्वल-रसाम्-माधुर्य रस; स्व-भक्ति-अपनी भक्ति का; श्रियम्-निधि; हरिः-परम भगवान्; पुरट-स्वर्ण की अपेक्षा; सुन्दर-सुन्दर; द्युति-कान्ति का; कदम्ब-बहुत अधिक; सन्दीपितः-प्रज्वलित; सदा-सदा; हृदय-कन्दरे-हृदय की गहराई में; स्फुरतु-प्रकट हों; वः-आपके; शची-नन्दनः-शचिमाता के पुत्र।

अनुवाद

श्रीमती शचीदेवी के पुत्र के नाम से विख्यात वे महाप्रभु आपके हृदय की गहराई में दिव्य रूप से विराजमान हों। पिघले सोने की आभा से दीप्त, वे कलियुग में अपनी अहैतुकी कृपा से अपनी सेवा के अत्यन्त उत्कृष्ट तथा दीप्त आध्यात्मिक रस के ज्ञान को, जिसे इसके पूर्व अन्य किसी अवतार ने प्रदान नहीं किया था, प्रदान करने के लिए अवतीर्ण हुए

राधा कृष्ण-प्रणय-विकृतिह्लदिनी शक्तिरस्माद्

एकात्मानावपि भुवि पुरा देह-भेदं गतौ तौ ।

चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तदद्वयं चैक्यमाप्तं

राधा-भाव-द्युति-सुवलितं नौमि कृष्ण-स्वरूपम् ॥5॥

राधा-श्रीमती राधारानी; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; प्रणय-प्रेम का; विकृतिः-परिवर्तन, रूपान्तर; ह्लादिनी शक्तिः-ह्रदिनी शक्ति; अस्मात्-इससे; एक-आत्मानौ-दोनों एक ही रूप में; अपि-

यद्यपि; भुवि-पृथ्वी पर; पुरा–अनादि काल से; देह-भेदम्-पृथक् रूप; गतौ–प्राप्त किए; तौ-इन दोनों में; चैतन्य-आख्यम्-चैतन्य-नाम से विख्यात; प्रकटम्-प्रकट; अधुना–सम्प्रति; तत्-द्वयम्-वे दोनों; च–तथा; ऐक्यम्-ऐक्य; आप्तम्-प्राप्त किए; राधा-श्रीमती राधारानी का; भाव-भाव; द्युति-कान्ति; सु-वलितम्-जो सुसज्जित हैं; नौमि-मैं नमस्कार करता हूँ; कृष्ण-स्वरूपम् उन्हें जिनका रूप कृष्ण जैसा है।

अनुवाद

श्री राधा तथा कृष्ण की माधुर्य लीलाएँ भगवान् की अन्तरंगा ह्लादिनी शक्ति की दिव्य अभिव्यक्तियाँ हैं। यद्यपि राधा तथा कृष्ण अभिन्न हैं, किन्तु उन्होंने अपने आपको अनादि काल से पृथक् कर रखा है। अब ये दोनों दिव्य स्वरूप पुनः श्रीकृष्ण चैतन्य के रूप में मिलकर एक हो गये हैं। मैं उनको नमस्कार करता हूँ, जो साक्षात् कृष्ण होते हुए भी श्रीमती राधारानी के भाव तथा अंगकान्ति के साथ प्रकट हुए हैं।

श्री-राधायाः प्रणय-महिमा कीदृशो वानयैवा-

स्वाद्यो ग्रेनाद्भुत-मधुरिमा कीदृशो वा मदीयः ।

सौख्यं चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेति लोभात्

तद्भावाढूयः समजनि शची-गर्भ-सिन्धौ हरीन्दुः ॥ 6॥

श्री-राधायाः-श्रीमती राधारानी के; प्रणय-महिमा-प्रेम की महानताः कीदृशः-किस प्रकार की; वा–अथवा; अनया-इस (राधा) से; एव-ही; आस्वाद्यः–आस्वाद लेने योग्य; येन-उस प्रेम से; अद्भुत-मधुरिमा-अद्भुत माधुर्य; कीदृशः-किस प्रकार का; वा-अथवा; मदीयः-मुझसे; सौख्यम्-सुख;

च-तथा; अस्याः-उसका; मत्-अनुभवतः-मेरे माधुर्य की अनुभूति से; कीदृशम्-किस प्रकार का; वा–अथवा; इति-इस प्रकार; लोभात्-लोभ से; तत्-उनकी; भाव-आढूयः-उनके भावों से ओतप्रोत; समजनि-जन्म लिया; शची-गर्भ–श्रीमती शचि देवी की कोख से; सिन्धौ-समुद्र में; हरि-भगवान् कृष्ण; इन्दुः–चन्द्र के समान।

अनुवाद

श्रीमती राधारानी के प्रेम की महिमा; अपने (भगवान् के) उन गुणों, जिनका आस्वादन केवल श्रीमती राधारानी प्रेम के माध्यम से करती हैं; एवं उनके प्रेम की मधुरता का आस्वादन करने पर राधारानी जिस सुख का अनुभव करती हैं, उसे समझने के लिए भगवान् श्री हरि राधा के भावों में विभोर होकर श्रीमती शचीदेवी की कोख से उसी प्रकार प्रकट हुए, जिस तरह समुद्र से चन्द्रमा प्रकट होता है।

सङ्कर्षणः कारण-तोय-शायी

गद-शायी च पयोब्धि-शायी ।

शेषश्च यस्यांश-कलाः स नित्या-

नन्दाख्य-रामः शरणं ममास्तु ॥7॥

सङ्कर्षणः-आध्यात्मिक आकाश में महासकंर्षण; कारण-तोय-शायी-कारणोदकशायी विष्णु, जो कारण सागर में रहते हैं; गर्भ-उद-शायी–गर्भादकशायी विष्णु, जो ब्रह्माण्ड के गर्भादक सागर में रहते हैं; च–तथा; पयः-अब्धि-शायी-क्षीरोदकशायी विष्णु, जो क्षीरसागर में रहते हैं; शेषः-विष्णु की शय्या शेषनाग; च-तथा; यस्य–जिनका; अंश-पूर्णांश; कलाः–तथा पूर्ण अंश के अंश;

सः-वे; नित्यानन्द-आख्य-नित्यानंद प्रभु के नाम से जाने जाने वाले; रामः-भगवान् बलराम; शरणम्-आश्रय; मम–मेरे; अस्तु-हो।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द राम मेरे सतत स्मरण के विषय बनें। संकर्षण, शेषनाग तथा विभिन्न विष्णु भगवान्, जो कारण समुद्र, गर्भ समुद्र तथा क्षीर समुद्र में शयन करते हैं, वे उनके अंश तथा अंशों के भी अंश (कला) हैं।

मायातीते व्यापि-वैकुण्ठ-लोके

पूर्णैश्वर्ये श्री-चतुर्व्यह-मध्ये।

रूपं ग्रस्योद्भाति सङ्कर्षणाख्यं

तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥8॥

माया-अतीते-भौतिक सृष्टि से परे; व्यापि–सर्वव्यापक; वैकुण्ठ-लोके-आध्यात्मिक जगत् में, वैकुण्ठ लोक में; पूर्ण-ऐश्व–पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त; श्री-चतुः-व्यूह-मध्ये-चतुर्व्यह विस्तार में (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरूद्ध); रूपम्-रूप; यस्य–जिनका; उद्भाति-प्रकट होता है; सङ्कर्षण-आख्यम्-संकर्षण नामक; तम्-उनको; श्री-नित्यानन्द-रामम्-भगवान् नित्यानन्द के रूप में भगवान् बलराम को; प्रपद्ये-मैं शरणागत होता हूँ।

अनुवाद

मैं उन श्री नित्यानन्द राम के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ, जो चतुर्व्यह (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध) के मध्य संकर्षण के नाम से विख्यात हैं। वे भौतिक सृष्टि से परे वैकुण्ठ लोक में निवास करते हैं और समस्त ऐश्वर्यों से युक्त हैं।

माया-भर्ताजाण्ड-सङ्घाश्रयाङ्गः

शेते साक्षात्कारणाम्भोधि-मध्ये ।

यस्यैकांशः श्री-पुमानादि-देवस्

तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥9॥

माया-भर्ता-माया के स्वामी; अज-अण्ड-सङ्ग–ब्रह्माण्डों के समूह का; आश्रय-आश्रय; अङ्गः–जिनका शरीर; शेते वे लेटे हैं; साक्षात्-प्रत्यक्ष रूप में; कारण-अम्भोधि-मध्ये कारण सागर के मध्य; यस्य–जिनका; एक-अंशः-एक अंश; श्री-पुमान्–परम पुरुष; आदि-देवः-पुरुष के मूल अवतार; तम्-उन्हें; श्री-नित्यानन्द-रामम्-भगवान् नित्यानंद के रूप में भगवान् बलराम को; प्रपद्ये-मैं शरण में जाता हूँ।

अनुवाद

मैं श्री नित्यानन्द राम के चरणों में पूर्ण नमस्कार करता हूँ, जिनके अंशरूप कारणोदकशायी विष्णु कारण समुद्र में शयन करने वाले आदि पुरुष हैं, माया के पति हैं और समस्त ब्रह्माण्डों के आश्रय हैं।

यस्यांशांशः श्रील-गर्भोद-शायी

यन्नाभ्यब्जे लोक-सङ्घात-नालम् ।

लोक-स्रष्टुः सूतिका-धाम धातुस् ।

तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥10॥

यस्य–जिनका; अंश-अंशः–पूर्णांश का अंश, श्रील-गर्भ-उद-शायी–गर्भोदकशायी विष्णु; यत्-जिनका; नाभि-अब्ज़म्-नाभि कमल; लोक-सङ्गात-लोकों का समूह; नालम्-जिनकी नाल पर टिके हैं; लोक-स्रष्टः-ग्रहों के स्रष्टा ब्रह्माजी की; सूतिका-धाम-जन्म स्थान; धातुः-स्रष्टा का; तम्-उन्हें; श्री-नित्यानन्द-रामम्-भगवान् नित्यानंद के रूप में भगवान् बलराम को; प्रपद्ये-मैं शरणागत होता हूँ।

अनुवाद

मैं उन श्री नित्यानन्द राम के चरणों में पूर्ण नमस्कार करता हूँ, जिनके अंश गर्भोदकशायी विष्णु हैं। इन्हीं गर्भोदकशायी विष्णु की नाभि से कमल प्रस्फुटित होता है, जो ब्रह्माण्ड के शिल्पी ब्रह्मा का जन्मस्थान है। इस कमल की नाल असंख्य लोकों का विश्राम-स्थल है।

यस्यांशांशांशः परात्माखिलानां

पोष्टा विष्णुर्भाति दुग्धाब्धि-शायी ।

क्षौणी-भर्ता यत्कला सोऽप्यनन्तस्

तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥11॥

यस्य–जिनका; अंश-अंश-अंशः–पूर्णांश के अंश के अंश; पर-आत्मा-परमात्मा; अखिलानाम्-सभी जीवों के; पोष्टा-पोषक; विष्णुः-विष्णु; भाति-प्रकट होते हैं; दुग्ध-अब्धि-शायी-क्षीरोदकशायी विष्णु; क्षौणी-भर्ता-पृथ्वी के भर्ता; यत्-जिनका; कला-अंश का अंश; सः–वे; अपि-

निश्चित रूप से; अनन्तःशेषनाग; तम्-उनको; श्री-नित्यानन्द-रामम्-भगवान् नित्यानन्द के रूप में भगवान् बलराम की; प्रपद्ये-मैं शरण में जाता हूँ।

अनुवाद

मैं उन श्री नित्यानन्द राम के चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ, जिनके गौण अंश क्षीरसागर में शयन करने वाले विष्णु हैं। वे क्षीरोदकशायी विष्णु ही समस्त जीवों के परमात्मा और समस्त ब्रह्माण्डों के पालक हैं। शेषनाग उनके अंशांश हैं।

महा-विष्णुर्जगत्कर्ता मायया यः सृजत्यदः ।

तस्यावतार एवायमद्वैताचार्य ईश्वरः ॥ 12॥

महा-विष्णुः–महा विष्णु; जगत्-कर्ता–जगत् के स्रष्टा; मायया-माया से; यः-जो; सृजति–रचते हैं; अदः-उस ब्रह्माण्ड को; तस्य-उनका; अवतारः–अवतार; एव-निश्चित रूप से; अयम्-ये; अद्वैत-आचार्यः-अद्वैताचार्य; ईश्वरः-भौतिक कारण के आश्रय, भगवान्।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य महाविष्णु के अवतार हैं, जिनका मुख्य कार्य माया की क्रियाओं द्वारा भौतिक जगत् की सृष्टि करना है।

अद्वैतं हरिणाद्वैतादाचा भक्ति-शंसनात् ।

भक्तावतारमीशं तमद्वैताचार्यमाश्रये ॥13॥

अद्वैतम्-अद्वैत के नाम से जाने जाने वाले; हरिणा-भगवान् हरि से; अद्वैतात्-अभिन्न होने से; आचार्यम्-आचार्य नामक; भक्ति-शंसनात्-श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रसार से; भक्त-अवतारम्-भक्त के रूप में अवतार; ईशम्-परम भगवान् को; तम्-उनको; अद्वैत-आचार्यम्-अद्वैत आचार्य को; आश्रये-मैं शरण में जाता हूँ।

अनुवाद

हरि अर्थात् परमेश्वर से अभिन्न होने के कारण वे अद्वैत कहलाते हैं और भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने के कारण वे आचार्य कहलाते हैं। वे भगवान् के भक्तों के स्वामी तथा भक्तावतार हैं। अतएव मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ।

पञ्च-तत्त्वात्मकं कृष्णं भक्त-रूप-स्वरूपकम् ।

भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्त-शक्तिकम् ॥ 14॥

पञ्च-तत्त्व-आत्मकम्-पाँच दिव्य तत्त्वों से समाहित; कृष्णम्-भगवान् कृष्ण को; भक्त-रूप-भक्त के रूप में; स्व-रूपकम्-भक्त के विस्तार में; भक्त-अवतारम्-भक्त के अवतार में; भक्त-आख्यम्-भक्त के नाम से प्रसिद्ध; नमामि-मैं नमस्कार करता हूँ; भक्त-शक्तिकम्-भक्त को शक्ति प्रदान करने वाले परमेश्वर की शक्ति।

अनुवाद

मैं उन परमेश्वर कृष्ण को सादर नमस्कार करता हूँ, जो अपने भक्तरूप, भक्तस्वरूप, भक्तावतार, शुद्ध भक्त और भक्तशक्ति रूपी लक्षण से अभिन्न हैं।

जयतां सुरतौ पोर्मम मन्द-मतेर्गती ।

मत्सर्वस्व-पदाम्भोजौ राधा-मदन-मोहनौ ॥15॥

जयताम्-उनकी जय हो; सु-रतौ–सर्वाधिक कृपालु अथवा माधुर्य प्रेम में अनुरक्त; पङ्गोः–उसकी जो पंगु (लंगड़ा) हो; मम–मेरा; मन्द-मतेः-मूर्ख; गती-आश्रय; मत्-मेरे; सर्वस्व-सर्वस्व; पद-अम्भोजौ–जिनके चरणकमल; राधा-मदन-मोहनौ-राधारानी एवं मदनमोहन।

अनुवाद

सर्वथा दयालु राधा तथा मदनमोहन की जय हो! मैं पंगु तथा कुबुद्धि हूँ, फिर भी वे मेरे मार्गदर्शक हैं और उनके चरणकमल मेरे लिए सर्वस्व हैं।

दीव्यद्वृन्दारण्य-कल्प-द्रुमाधः-

श्रीमद्लागार-सिंहासनस्थौ ।

श्रीमद्राधा-श्रील-गोविन्द-देवौ

प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि ॥16॥

दीव्यत्-चमकते हुए; वृन्दा-अरण्य-वृन्दावन के वनों में; कल्पद्रुम-कल्पवृक्ष; अधः-नीचे; श्रीमत्-सर्वाधिक सुन्दर; रत्न-आगार-रत्नजड़ित मन्दिर में; सिंह-आसन-स्थौ–सिहांसन पर बैठे; श्रीमत्-अत्यन्त सुन्दर; राधा-श्रीमती राधारानी; श्रील-गोविन्द-देवौ-श्री गोविन्द देव; प्रेष्ठ-आलीभिः-अत्यन्त अन्तरंग पार्षदों द्वारा; सेव्यमानौ-सेवित; स्मरामि-मैं स्मरण करता हूँ।

अनुवाद

श्री श्री राधा-गोविन्द वृन्दावन में कल्पवृक्ष के नीचे रत्नों के मन्दिर में तेजोमय सिंहासन के ऊपर विराजमान होकर अपने सर्वाधिक अन्तरंग पार्षदों द्वारा सेवित होते हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।

श्रीमानरास-रसारम्भी वंशीवट-तट-स्थितः ।

कर्षन्वेणु-स्वनैर्गोपीर्गोपी-नाथः श्रियेऽस्तु नः ॥17॥

श्रीमान्–अत्यन्त सुन्दर; रास-रास नृत्य; रस-रस का; आरम्भी–प्रारम्भ करने वाले; वंशी-वट-वंशी वट; तट-तट पर; स्थितः-खड़े होकर; कर्षन्–आकर्षित करते हुए; वेणु–बाँसुरी की; स्वनैः-ध्वनि से; गोपीः-गोपियाँ; गोपी-नाथः-श्री गोपीनाथ; श्रिये-वरदान; अस्तु-हों; नः-हमारे लिए।

अनुवाद

रासनृत्य के दिव्य रस के प्रवर्तक श्री श्रील गोपीनाथ वंशीवट के तट पर खड़े हैं और अपनी प्रसिद्ध बाँसुरी की ध्वनि से गोपियों के ध्यान को आकृष्ट कर रहे हैं। वे हम सबको अपना आशीर्वाद प्रदान करें।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥18॥

जय जय जय जय; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य की; जय-जय हो; नित्यानन्द-प्रभु नित्यानन्द की; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैताचार्य की जय; जय-जय; गौर-भक्त-वृन्द-भगवान् चैतन्य के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य तथा नित्यानन्द की जय हो, अद्वैतचन्द्र की जय हो और श्री गौर (चैतन्य महाप्रभु) के समस्त भक्तों की जय हो!

एइ तिन ठाकुर गौड़ीयाके करियाछेन आत्मसात्।

ए तिनेर चरण वन्दों, तिने मोर नाथ ॥19॥

एइ–इन; तिन–तीन; ठाकुर-विग्रहों; गौड़ीयाके–गौड़ीय वैष्णवों ने; करियाछेन-कर लिया है; आत्मसात् निमग्न; ए-इन; तिनेर–तीनों के; चरण-चरणकमलों; वन्दों-मैं पूजा करता हूँ; तिने–ये तीनों; मोर–मेरे; नाथ–स्वामी हैं।

अनुवाद

वृन्दावन के इन तीन विग्रहों (मदनमोहन, गोविन्द तथा गोपीनाथ) ने गौड़ीय वैष्णवों (चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों) के हृदय एवं आत्मा को निमग्न कर दिया है। मैं उनके चरणकमलों की पूजा करता हूँ, क्योंकि वे मेरे हृदय के स्वामी हैं।

तात्पर्य

श्रीचैतन्य-चरितामृत के ग्रन्थकर्ता वृन्दावन के तीन अर्चाविग्रहों-श्री राधा-मदनमोहन, श्री राधा-गोविन्ददेव तथा श्री राधा-गोपीनाथजी–को सादर नमस्कार करते हैं। ये तीनों अर्चाविग्रह उन बंगाली वैष्णवों अर्थात् गौड़ीय वैष्णवों के जीवनाधार हैं, जिनके मन में वृन्दावन में निवास करने की सहज प्रवृत्ति है। श्री चैतन्य महाप्रभु का दृढ़ता से अनुगमन करने वाले गौड़ीय वैष्णव दिव्य ध्वनि के कीर्तन द्वारा ईश्वर की पूजा करते हैं। इस कीर्तन का उद्देश्य भगवान् के साथ ऐसा दिव्य सम्बन्ध स्थापित करना होता है, जिसमें पारस्परिक प्रेम रस का आदान-प्रदान हो और अन्त में प्रेमाभक्ति की

वांछित सफलता की प्राप्ति हो। ये तीनों अर्चाविग्रह मनुष्य के विकास की तीन भिन्न भिन्न अवस्थाओं में पूजे जाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी भक्ति में विकास के इन सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन करते हैं।

गौड़ीय वैष्णव अठारह दिव्य अक्षरों से रचित उन वैदिक स्तुतियों में चरम लक्ष्य का अनुभव करते हैं, जिसमें कृष्ण की उपासना मदनमोहन, गोविन्द तथा गोपीजनवल्लभ के रूप में की जाती है। मदनमोहन वे हैं, जो प्रेम के देवता कामदेव को मोहित करने वाले हैं। गोविन्द वे हैं, जो इन्द्रियों तथा गौवों को प्रसन्न करने वाले हैं तथा गोपीजनवल्लभ गोपियों के दिव्य प्रेमी हैं। कृष्ण स्वयं मदनमोहन, गोविन्द, गोपीजनवल्लभ तथा अन्य असंख्य नामों से पुकारे जाते हैं, क्योंकि वे अपने भक्तों के साथ विभिन्न लीलाएँ करते हैं।

मदनमोहन, गोविन्द तथा गोपीजनवल्लभ-इन तीनों अर्चाविग्रहों के अपने अपने विशेष गुण हैं। मदनमोहन की पूजा का अर्थ है भगवान् के साथ अपने भूले हुए सम्बन्ध को पुनः स्थापित करना। भौतिक जगत् में हम इस समय भगवान् के साथ अपने शाश्वत सम्बन्ध के प्रति बुरी तरह से अज्ञान में हैं। पङ्गो: का अर्थ होता है ऐसा व्यक्ति, जो अपने बल पर चल-फिर नहीं सकता तथा मन्दमतेः वह है, जो भौतिक कार्यकलापों में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण कम बुद्धिमान होता है। ऐसे व्यक्तियों के लिए सबसे अच्छा यही होगा कि वे सकाम कर्मों में या मानसिक चिन्तन (ज्ञान) में सफलता की आकांक्षा न करें, अपितु इसके बदले केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण ग्रहण करें। जीवन की पूर्णता मात्र भगवान् की शरण ग्रहण करने में है। अतएव हमें अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रारम्भ में मदनमोहन की पूजा करनी चाहिए जिससे वे हमें आकृष्ट कर सकें और हमारी भौतिक इन्द्रियतृप्ति की आसक्ति को मिटा सकें। नये भक्तों के लिए मदनमोहन के साथ ऐसा सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है। जब मनुष्य प्रबल अनुराग के साथ भगवान् की सेवा करना चाहता है,

तो फिर वह दिव्य सेवा के धरातल पर गोविन्द की पूजा करता है। गोविन्द समस्त आनन्दों के आगार हैं। जब कृष्ण तथा भक्तों की कृपा से कोई भक्ति में पूर्णता प्राप्त कर लेता है, तब वह कृष्ण की सराहना व्रजबालाओं को आनन्द देने वाले विग्रह, गोपीजनवल्लभ के रूप में कर सकता है।

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस भक्ति-विधि की व्याख्या तीन चरणों में की है, इसीलिए वृन्दावन में इन आराध्य अर्चाविग्रहों की स्थापना विभिन्न गोस्वामियों द्वारा की गई। वे उन गौड़ीय वैष्णवों के परम प्रिय हैं, जो प्रतिदिन कम-से-कम एक बार मन्दिरों में अवश्य जाते हैं। इन तीनों अर्चाविग्रहों के मन्दिरों के अतिरिक्त भी वृन्दावन में अन्य अनेक मन्दिरों की स्थापना की गई है- यथा जीव गोस्वामी का राधा-दामोदर मन्दिर, श्यामानन्द गोस्वामी का श्यामसुन्दर मन्दिर, लोकनाथ गोस्वामी का गोकुलानन्द मन्दिर तथा गोपाल भट्ट गोस्वामी का राधारमण मन्दिर। इस समय वृन्दावन में स्थित 5000 मन्दिरों में से सात प्रमुख मन्दिर चार सौ वर्षों से भी पुराने हैं और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

"गौड़ीय" भारत के उस भाग का सूचक है, जो हिमालय पर्वत का दक्षिणी तथा विन्ध्याचल का उत्तरी भाग है और जो आर्यावर्त कहलाता है। भारत का यह भाग पाँच भागों या पाँच प्रदेशों (पञ्च गौड़ देश) में विभाजित है—सारस्वत (कश्मीर तथा पंजाब), कान्यकुब्ज (उत्तर प्रदेश जिसमें आधुनिक लखनऊ शहर सम्मिलित है), मध्य गौड़ (मध्य प्रदेश), मैथिल (बिहार तथा बंगाल का अंश) तथा उत्कल (बंगाल का अंश तथा पूरा उड़ीसा)। कभी-कभी बंगाल को गौड़देश कहा जाता है, क्योंकि एक तो यह मैथिल का अंश है और दूसरे हिन्दू राजा राज-लक्ष्मण सेन की राजधानी का नाम गौड़ था। यह प्राचीन राजधानी बाद में गौड़पुर और फिर क्रमशः मायापुर कहलाने लगी।

उड़ीसा के भक्तगण उड़िया, बंगाल के भक्तगण गौड़ीय तथा दक्षिण भारत के भक्तगण द्राविड़ भक्त कहलाते हैं। चूँकि आर्यावर्त में पाँच प्रदेश हैं, अतएव दक्षिण भारत अर्थात् दाक्षिणात्य भी पाँच

प्रदेशों में विभाजित है, जो पञ्चद्रविड़ कहलाते हैं। चारों वैष्णव गुरु-शिष्य परम्पराओं के प्रमुख अधिकारी चार वैष्णव आचार्य तथा मायावाद सम्प्रदाय के श्रीपाद शंकराचार्य भी इन्हीं पंचद्रविड़ प्रदेशों में प्रकट हुए थे। गौड़ीय वैष्णवों द्वारा मान्य चार वैष्णव आचार्यों में से श्री रामानुज आचार्य आन्ध्र प्रदेश के दक्षिणी भाग में महाभूतपुरी में प्रकट हुए थे, श्री मध्व आचार्य मैंगलोर जिले के पाजकम (विमानगिरि के निकट) स्थान में, श्री विष्णुस्वामी पाण्ड्य में तथा श्री निम्बार्क दूर दक्षिण में मुंगेर-पटन में प्रकट हुए थे।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मध्व आचार्य से गुरु-शिष्य परम्परा की श्रृंखला ग्रहण की, किन्तु उनके सम्प्रदाय के वैष्णवजन उन तत्त्ववादियों को स्वीकार नहीं करते, जो अपने आपको माध्व सम्प्रदाय का होने का दावा करते हैं। मध्व के अनुयायियों की तत्त्ववादी शाखा से अपने को स्पष्ट रूप से भिन्न बताने के लिए बंगाल के वैष्णवजन अपने आपको गौड़ीय वैष्णव कहते हैं। श्री मध्व आचार्य गौड़पूर्णानन्द के नाम से भी जाने जाते हैं, अतएव माध्व-गौड़ीय सम्प्रदाय नाम गौड़ीय वैष्णवों की गुरु-शिष्य परम्परा के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। हमारे गुरुदेव ॐ विष्णुपाद श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज माध्वगौड़ीय सम्प्रदाय में ही दीक्षित थे।

ग्रन्थेर आरम्भे करि ‘मङ्गलाचरण’ ।

गुरु, वैष्णव, भगवान्, तिनेर स्मरण ॥ 20॥

ग्रन्थेर—इस ग्रन्थ के; आरम्भे-प्रारम्भ में; करि-मैं करता हूँ; मङ्गल-आचरण-मंगल अर्चना; गुरु-गुरु; वैष्णव-भगवान् के भक्तों को; भगवान्-भगवान्; तिनेर-इन तीनों को; स्मरण-स्मरण करके।

अनुवाद

इस कथा के आरम्भ में मैंने गुरु, भगवद्भक्तों तथा भगवान् का स्मरण करने मात्र से उनके आशीर्वाद की कामना की है।

तिनेर स्मरणे हय विघ्न-विनाशन ।

अनायासे हय निज वाञ्छित-पूरण ॥21॥

तिनेर-इन तीनों के; स्मरणे-स्मरण से; हय–होता है; विन-विनाशन–सभी विघ्नों का विनाश; अनायासे-अत्यन्त आसानी से; हय होता है; निज-अपनी निजी; वाञ्छित-अभीष्ट वस्तु की; पूरण–पूर्ति।

अनुवाद

ऐसा स्मरण समस्त कठिनाइयों का विनाश करता है और मनुष्य की अपनी इच्छाओं को अत्यन्त सरलतापूर्वक पूरा करने में सहायक सिद्ध होता है।

से मङ्गलाचरण हय त्रि-विध प्रकार ।

वस्तु-निर्देश, आशीर्वाद, नमस्कार ॥22॥

से-उस; मङ्गल-आचरण-मंगलाचरण; हय होता है; त्रि-विध-तीन प्रकार का; प्रकार-प्रकार; वस्तु-निर्देश-निर्दिष्ट वस्तु; आशीः-वाद-आशीर्वाद; नमः-कार-नमस्कार।

अनुवाद

मंगलाचरण (आवाहन) में तीन विधियाँ निहित हैं-लक्ष्य-वस्तु को परिभाषित करना, आशीर्वाद देना तथा नमस्कार करना।

प्रथम दुइ श्लोके इष्ट-देव-नमस्कार।

सामान्य-विशेष-रूपे दुइ त' प्रकार ॥23॥

प्रथम-पहले; दुइ-दो; श्लोके–श्लोकों में; इष्ट-देव-इष्ट देव; नमस्कार-नमस्कार; सामान्य-सामान्य; विशेष-रूपे-विशेष रूप से; दुई–दोनों; त'–निश्चित ही; प्रकार-प्रकार।

अनुवाद

प्रथम दो श्लोक सामान्य तथा विशेष रूप से उन भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं, जो पूजा के लक्ष्य (आराध्य) हैं।

तृतीय श्लोकेते करि वस्तुर निर्देश।

याहा हइते जानि पर-तत्त्वेर उद्देश ॥24॥

तृतीय श्लोकेते-तीसरे श्लोक में; करि-मैं करता हूँ; वस्तुर-वस्तु का; निर्देश-निर्देश; याहा हइते–जिससे; जानि–मैं समझता हूँ; पर-तत्त्वेर-परम सत्य का; उद्देश-उद्देश्य।

अनुवाद

तीसरे श्लोक में मैं उन परम सत्य का संकेत कर रहा हूँ, जो परम तत्त्व हैं। ऐसे वर्णन से मनुष्य परम सत्य का दर्शन कर सकता है।

चतुर्थ श्लोकेते करि जगते आशीर्वाद।

सर्वत्र मागिये कृष्ण-चैतन्य-प्रसाद ॥25॥

चतुर्थ-चौथे; श्लोकेत-श्लोक में; करि-मैं करता हूँ; जगते–जगत् के लिए; आशीः-वाद-आशीर्वाद; सर्वत्र-सर्वत्र; मागिये-मैं माँग रहा हूँ; कृष्ण-चैतन्य-भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की; प्रसाद-कृपा।

अनुवाद

चतुर्थ श्लोक में मैंने चैतन्य महाप्रभु से सब पर कृपा करने के लिए प्रार्थना करते हुए भगवान् से सम्पूर्ण जगत् को आशीर्वाद देने का आवाहन किया है।

सेइ श्लोके कहि बाह्यावतार-कारण ।

पञ्च षष्ठ श्लोके कहि मूल-प्रयोजन ॥ 26 ॥

सेइ श्लोके-उसी श्लोक में; कहि-मैं बताता हूँ; बाह्य–बाह्य; अवतार-भगवान् चैतन्य के अवतार के लिए; कारण-कारण; पञ्च-पाँचवे; षष्ठ-और छठे; श्लोके-श्लोकों में; कहि-मैं कहता हूँ; मूल-मूल; प्रयोजन-प्रयोजन।

अनुवाद

उस श्लोक में मैंने चैतन्य महाप्रभु के अवतार के बाह्य कारण की व्याख्या की है, किन्तु पाँचवे तथा छठे श्लोकों में मैंने उनके अवतार के मुख्य कारण की व्याख्या की है।

एइ छय श्लोके कहि चैतन्येर तत्त्व ।

आर पञ्च श्लोके नित्यानन्देर महत्त्व ॥ 27॥

एइ–इन; छय-छः; श्लोके–श्लोकों में; कहि-मैं वर्णन कर रहा हूँ; चैतन्येर-चैतन्य महाप्रभु का; तत्त्व-सत्य; आर-और अधिक; पञ्च श्लोके-पाँच श्लोकों में; नित्यानन्देर-भगवान् नित्यानन्द का; महत्त्व-महत्त्व।

अनुवाद

इन छः श्लोकों में मैंने चैतन्य महाप्रभु के तत्त्व के सम्बन्ध में वर्णन किया है, जबकि अगले पाँच श्लोकों में मैंने नित्यानन्द प्रभु की महिमा का वर्णन किया है।

आर दुई श्लोके अद्वैत-तत्त्वाख्यान।

आर एक श्लोके पञ्च-तत्त्वेर व्याख्यान ॥28॥

आर-और आगे; दुइ श्लोके-दो श्लोकों में; अद्वैत-श्री अद्वैत प्रभु का; तत्त्व-त?व का; आख्यान-वर्णन; आर-और अधिक; एक श्लोके-एक श्लोक में; पञ्च-तत्त्वेर-पंच तत्त्व का; व्याख्यान व्याख्यान।

अनुवाद

इससे अगले दो श्लोकों में अद्वैत प्रभु के तत्त्व का वर्णन है और उसके बाद के श्लोक में पंचतत्त्व (भगवान्, उनके स्वांश, उनके अवतार, उनकी शक्तियाँ तथा उनके भक्तों) का वर्णन हुआ है।

एइ चौह श्लोके करि मङ्गलाचरण।

तँहि मध्ये कहि सब वस्तु-निरूपण ॥ 29॥

एइ चौद्द श्लोके-इन चौदह श्लोकों में; करि-मैं करता हूँ; मङ्गलाचरण-मंगलाचरण; तँहि-अतः उसमें; मध्ये-बीच में; कहि-मैं वर्णन करता हूँ; सब-सब; वस्तु-वस्तु का; निरूपण-वर्णन।

अनुवाद

इस तरह ये चौदह श्लोक मंगलाचरण के रूप में हैं और ये परम सत्य का वर्णन करते हैं।

सब श्रोता-वैष्णवेरे करि' नमस्कार।

एइ सब श्लोकेर करि अर्थ-विचार॥ 30॥

सब-सब; श्रोता-श्रोतागण; वैष्णवेरे-वैष्णवों को; करि'-करके; नमस्कार-नमस्कार; एइ सब श्लोकेर-इन सभी चौदह श्लोकों का; करि-मैं करता हूँ; अर्थ–अर्थ; विचार-विश्लेषण।

अनुवाद

इन सारे श्लोकों की जटिलताओं की व्याख्या आरम्भ करने के पूर्व मैं अपने समस्त वैष्णव पाठकों को नमस्कार करता हूँ।

सकल वैष्णव, शुन करि' एक-मन।

चैतन्य-कृष्णेर शास्त्र-मत-निरूपण॥ 31॥

सकल-सभी; वैष्णव-हे भगवान् के भक्तों; शुन-कृपया सुनें; करि'-करके; एक-मन-एकाग्र मन; चैतन्य–भगवान् चैतन्य महाप्रभुः कृष्णेर-भगवान् श्रीकृष्ण के; शास्त्र-शास्त्र; मत–अनुसार; निरूपण-निर्णय, निष्कर्ष।

अनुवाद

मैं अपने समस्त वैष्णव पाठकों से प्रार्थना करता हूँ कि वे प्रामाणिक शास्त्रों में निरूपित श्रीकृष्ण चैतन्य की इस कथा को ध्यान से पढ़े और सुनें।

तात्पर्य

भगवान् चैतन्य स्वयं परम सत्य कृष्ण हैं। इसकी पुष्टि प्रामाणिक आध्यात्मिक शास्त्रों के प्रमाण से होती है। कभी-कभी लोग प्रामाणिक शास्त्रों के प्रमाण के बिना तथा अपनी मनोकल्पना के आधार पर किसी व्यक्ति को ईश्वर मान बैठते हैं, किन्तु चैतन्य-चरितामृत के लेखक अपने कथनों की पुष्टि शास्त्रों का प्रमाण देकर करते हैं। इस प्रकार वे चैतन्य महाप्रभु को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सिद्ध करते हैं।

कृष्ण, गुरु, भक्त, शक्ति, अवतार, प्रकाश।

कृष्ण एइ छय-रूपे करेन विलास॥ 32॥

कृष्ण–परम भगवान् श्रीकृष्ण; गुरु-आध्यात्मिक गुरु; भक्त-भक्त; शक्ति-शक्तियाँ; अवतार–अवतार; प्रकाश-पूर्णांश; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; एइ छय-रूपे-इन छ: रूपों में; करेन विलास-आनन्द करते हैं।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण अपने आपको गुरु, भक्त, विभिन्न शक्तियों, अवतारों तथा परिपूर्ण प्रकाशों में प्रकट करके विलास करते हैं। ये छहों रूप एक ही में समाहित हैं।

एइ छय तत्त्वेर करि चरण वन्दन।

प्रथमे सामान्ये करि मङ्गलाचरण॥ 33॥

एइ–इन; छय-छः; तत्त्वेर-इन विस्तारों की; करि-मैं करता हूँ; चरण-चरणकमल; वन्दन-वन्दना; प्रथमे-पहले; सामान्ये-सामान्य तौर पर; करि-मैं करता हूँ; मङ्गल-आचरण-मंगलाचरण।

अनुवाद

इसीलिए मैंने एक सत्य के इन छ: विविध रूपों के चरणकमलों की वन्दना मंगलाचरण द्वारा की है।

वन्दे गुरूनीश-भक्तानीशमीशावतारकान् ।

तत्प्रकाशांश्च तच्छक्तीः कृष्ण-चैतन्य-संज्ञकम् ॥ 34॥

वन्दे मैं सादर नमस्कार करता हूँ; गुरून्-आध्यात्मिक गुरुओं को; ईश-भक्तान्-परमेश्वर के भक्तों को; ईशम्-भगवान् को; ईश-अवतारकान्-भगवान् के अवतारों को; तत्-परम भगवान् के; प्रकाशान्-प्राकट्यों को; च–तथा; तत्-परमेश्वर के; शक्तीः-शक्तियों की; कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य; संज्ञकम्-नामक।

अनुवाद

मैं गुरुओं, भगवद्भक्तों, ईश्वर के अवतारों, उनके पूर्ण अंशों (प्रकाशों), उनकी शक्तियों तथा स्वयं आदि भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य को सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य

कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने इस संस्कृत श्लोक की रचना अपने ग्रंथ का शुभारम्भ करने के लिए की है और अब वे इसकी विस्तृत व्याख्या करेंगे। वे परम सत्य के छः सिद्धान्तों को सादर नमस्कार करते हैं। गुरून् बहुवचन में दिया गया है, क्योंकि प्रामाणिक शास्त्रों पर आधारित

आध्यात्मिक शिक्षाएँ देने वाला कोई भी व्यक्ति गुरु के रूप में स्वीकार किया जाता है। यद्यपि अन्य लोग भी नौसिखियों को मार्ग दिखलाने में सहायता करते हैं, किन्तु वह गुरु, जो सर्वप्रथम महामन्त्र से दीक्षित करता है, वह दीक्षा-गुरु है और वे सन्त महात्मा जो कृष्णभावना में प्रगति करने के लिए उपदेश देते हैं, वे शिक्षा-गुरु कहलाते हैं। दीक्षा-गुरु तथा शिक्षा-गुरु समान होते हैं और कृष्ण के प्राकट्य होते हैं, भले ही उनकी क्रियाएँ भिन्न-भिन्न हों। इनका कार्य बद्धजीवों को भगवधाम वापस जाने में मार्गदर्शन करना है। इसीलिए कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने नित्यानन्द प्रभु को तथा छः गोस्वामियों को गुरु की कोटि में स्वीकार किया है।

ईशभक्तान् भगवद्भक्तों का सूचक है-यथा श्री श्रीवास तथा अन्य समस्त अनुयायी जो भगवान् की शक्तियाँ हैं और गुणात्मक दृष्टि से उनसे अभिन्न हैं। ईशावतारकान् अद्वैत प्रभु जैसे आचार्यों का सूचक है, जो ईश्वर के अवतार हैं। तत्-प्रकाशान् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रत्यक्ष प्राकट्य नित्यानन्द प्रभु तथा दीक्षा-गुरु का सूचक है। तच्छक्तीः श्री चैतन्य महाप्रभु की आध्यात्मिक शक्तियों का सूचक है। गदाधर, दामोदर तथा जगदानन्द अन्तरंगा शक्ति से सम्बन्धित हैं।

ये छहों तत्त्व भिन्न भिन्न रूप में प्रकट होकर भी समान रूप से आराध्य हैं। कृष्णदास कविराज सर्वप्रथम इन्हीं को नमस्कार करते हैं, ताकि वे हमें चैतन्य महाप्रभु की पूजा करने की विधि की शिक्षा दें। भगवान् की बहिरंगा शक्ति, जो माया कहलाती है, कभी भी भगवान् के संग नहीं रह सकती, जिस प्रकार प्रकाश की उपस्थिति में अन्धकार नहीं रह सकता। फिर भी यह अन्धकार प्रकाश का कृत्रिम रूप से अस्थायी तौर पर ढक जाना ही है, अतः उसका प्रकाश से स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नहीं है।

मन्त्र-गुरु आर यत शिक्षा-गुरु-गण ।

ताँहार चरण आगे करिये वन्दन ॥ 35॥

मन्त्र-गुरु-दीक्षा गुरु; आर-और; यत–जितने भी हों; शिक्षा-गुरु-गण-शिक्षा-गुरु-गण; ताँहार-उन सबके; चरण-चरणकमलों को; आगे-पहले; करिये-मैं करता हूँ; वन्दन–सादर नमस्कार।

अनुवाद

मैं सर्वप्रथम अपने दीक्षा गुरु तथा अपने समस्त शिक्षा गुरुओं के चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी ने अपने शोधग्रंथ भक्ति-सन्दर्भ (202) में बतलाया है कि शुद्ध वैष्णवों का लक्ष्य शुद्ध भक्तिमय सेवा है और मनुष्य को ऐसी सेवा अन्य भक्तों की संगति में करनी होती है। भगवान् कृष्ण के भक्तों की संगति से मनुष्य में कृष्णभावनामृत का उदय होता है और वह भगवान् की प्रेमाभक्ति की ओर उन्मुख होता है। भक्ति के क्रमिक बोध द्वारा परमेश्वर तक पहुँचने की यही विधि है। यदि कोई व्यक्ति अनन्य भक्ति की कामना करता है, तो उसके लिए कृष्ण के भक्तों की संगति करनी आवश्यक है, क्योंकि केवल ऐसी संगति द्वारा ही बद्धजीव में दिव्य प्रेम के प्रति रुचि उत्पन्न हो सकती है। इस तरह वह अपने विशिष्ट स्वरूप तथा अपने में नित्य निहित दिव्य रस में भगवान् के साथ अपने नित्य सम्बन्ध को फिर से जागृत कर सकता है।

यदि कोई व्यक्ति कृष्णभावनाभावित कार्यों द्वारा कृष्ण के प्रति प्रेम विकसित कर लेता है, तो वह परम सत्य को जान सकता है; किन्तु जो व्यक्ति मात्र तर्कों द्वारा ईश्वर को जानना चाहता है, वह कभी सफल नहीं होगा, न ही वह अनन्य भक्ति का आस्वादन ही कर पायेगा। इसका रहस्य यह है कि व्यक्ति को भगवद्-विज्ञान को भलीभाँति परिचित भक्तों से विनीत भाव से श्रवण करना होगा

और गुरु के निर्देशन में सेवा-विधि प्रारम्भ करनी होगी। ऐसा भक्त जो भगवान् के नाम, रूप, गुण आदि के प्रति पहले से ही आकृष्ट है, उसे उसकी विशिष्ट भक्ति विधि की ओर निर्देशित कर दिया जा सकता है; उसे तर्क द्वारा भगवान् तक पहुँचने में अपना समय नष्ट करने की जरूरत नहीं है। दक्ष गुरु भलीभाँति जानता है कि वह अपने शिष्य की शक्ति को भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में किस प्रकार लगाये। इस तरह वह भक्त को उसकी विशेष प्रवृत्ति के अनुसार विशिष्ट भक्ति-कार्य में प्रवृत्त करता है। भक्त का एक ही दीक्षा-गुरु होना चाहिए, क्योंकि शास्त्रों में एक से अधिक गुरु को स्वीकार करना सदैव वर्जित है। किन्तु शिक्षा-गुरुओं को स्वीकार करने की संख्या में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। सामान्यतया वह गुरु जो शिष्य को निरन्तर आध्यात्मिक विज्ञान की शिक्षा देता है, वही बाद में उसका दीक्षा-गुरु भी बन जाता है।

यह सदैव स्मरण में रखना चाहिए कि जो व्यक्ति गुरु ग्रहण करने तथा दीक्षित होने के लिए अनिच्छुक रहता है, वह भगवधाम वापस जाने के प्रयास में अवश्य ही निष्फल होगा। समुचित ढंग से दीक्षा न पाने वाला व्यक्ति भले ही अपने आपको महान् भक्त के रूप में प्रस्तुत करता फिरे, किन्तु वास्तव में उसे आध्यात्मिक साक्षात्कार के मार्ग में प्रगति करने में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ेगा, जिसके कारण उसे इस भौतिक अस्तित्व से छुटकारा नहीं मिल सकेगा। ऐसे असहाय व्यक्ति की तुलना पतवार-रहित जहाज से की जाती है, क्योंकि ऐसा जहाज कभी भी अपने गन्तव्य तक नहीं पहुँच पाता। अतएव यह आवश्यक है कि यदि कोई भगवत्कृ पा के लिए आकांक्षी है, तो उसे गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए। गुरु की सेवा अनिवार्य है। यदि भक्त को अपने गुरु की प्रत्यक्ष सेवा करने का अवसर न मिल पाये, तो उसे चाहिए कि वह गुरु के उपदेशों का स्मरण करके उनकी सेवा करे। गुरु के उपदेशों तथा साक्षात् गुरु में कोई अन्तर नहीं है। अतएव उनकी अनुपस्थिति में उनके निर्देश-वचन ही शिष्य के लिए गर्व के विषय होने चाहिए। यदि कोई यह सोचता है कि उसे

किसी से, यहाँ तक कि गुरु से भी परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं है, तो वह तुरन्त ही भगवान् के चरणकमलों के प्रति अपराधी बन जाता है। ऐसा अपराधी कभी भी भगवान् के धाम को वापस नहीं जा सकता। यह आवश्यक है कि गम्भीर व्यक्ति शास्त्रीय आदेशों के अनुसार प्रामाणिक गुरु चुने। श्री जीव गोस्वामी का परामर्श है कि वंश-परम्परा या सामाजिक तथा धार्मिक प्रथा से चले आने वाले गुरु को स्वीकार नहीं करना चाहिए। आध्यात्मिक ज्ञान में वास्तविक प्रगति के लिए योग्य गुरु की खोज करनी चाहिए।

श्री-रूप, सनातन, भट्ट-रघुनाथ ।

श्री-जीव, गोपाल-भट्ट, दास-रघुनाथ ॥ 36॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; सनातन-सनातन गोस्वामी; भट्ट-रघुनाथ–रघुनाथ भट्ट गोस्वामी; श्री-जीव-श्रील जीव गोस्वामी; गोपाल-भट्ट-गोपाल भट्ट गोस्वामी; दास-रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, श्री भट्ट रघुनाथ, श्री जीव गोस्वामी, श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी तथा श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी मेरे शिक्षा-गुरु हैं।

एइ छय गुरु-शिक्षा-गुरु ग्रे आमार ।

ताँ'-सबार पाद-पद्मे कोटि नमस्कार ॥ 37॥

एइ-ये; छय-छः; गुरु-गुरु; शिक्षा-गुरु-शिक्षा गुरु; ये-जो हैं; आमार-मेरे; ताँ'-सबार-इन सबके; पाद-पद्म-चरणकमलों पर; कोटि-एक करोड़; नमस्कार-नमस्कार।

अनुवाद

ये छहों मेरे शिक्षा-गुरु हैं, अतएव उनके चरणकमलों में मेरा कोटि-कोटि नमस्कार है।

तात्पर्य

छहों गोस्वामियों को अपने शिक्षा-गुरु स्वीकार करके लेखक विशेष रूप से यह स्पष्ट कर देते हैं कि यदि कोई उन गोस्वामियों के प्रति आज्ञाकारी नहीं है, तो उसे गौड़ीय वैष्णव नहीं मानना चाहिए।

भगवानेर भक्त व्रत श्रीवास प्रधान।

ताँ'-सभार पाद-पद्मे सहस्र प्रणाम ॥ 38॥

भगवानेर- भगवान् के; भक्त-भक्त; व्रत-जितने; श्रीवास प्रधान-जिनमें श्री श्रीवास प्रमुख हैं; ताँ'-सभार-उन सबके; पाद-पद्म-चरणकमलों में; सहस्र-हजारों; प्रणाम–सादर प्रणाम।

अनुवाद

भगवान् के असंख्य भक्तों में श्रीवास ठाकुर अग्रणी हैं। मैं उनके चरणकमलों में हजारों बार सादर नमस्कार करता हूँ।

अद्वैत आचार्य प्रभुर अंश-अवतार।

ताँर पाद-पद्मे कोटि प्रणति आमार ॥ 39॥

अद्वैत आचार्य-अद्वैताचार्य; प्रभुर-भगवान् के; अंश-अंश; अवतार–अवतार; ताँर–उनके; पाद-पद्म-चरणकमलों में; कोटि-कोटि; प्रणति–सादर प्रणाम; आमार-मेरे।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य भगवान् के अंशावतार हैं, अतएव मैं उनके चरणकमलों में करोड़ों बार नमस्कार करता हूँ।

नित्यानन्द-राय—प्रभुर स्वरूप-प्रकाश ।

ताँर पाद-पद्म वन्दो याँर मुञि दास ॥40॥

नित्यानन्द-राय-भगवान् नित्यानन्द; प्रभुर-परम भगवान् के; स्व-रूप-प्रकाश-स्वरूप प्राकट्य; ताँर-उनके; पाद-पद्म-चरणकमलों में; वन्दो-मैं सादर प्रणाम करता हूँ; याँर–जिनका; मुञि-मैं हूँ; दास-दास।

अनुवाद

श्रील नित्यानन्द राम भगवान् के पूर्ण विस्तार हैं और मैंने उनसे दीक्षा प्राप्त की है। अतएव मैं उनके चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ।

गदाधर-पण्डितादि—प्रभुर निज-शक्ति ।

ताँ'-सबार चरणे मोर सहस्र प्रणति ॥41॥

गदाधर-पण्डित-आदि-जिनके गदाधर पण्डित आदि प्रमुख हैं; प्रभुर–परम भगवान् के; निज-शक्ति-अन्तरंगा शक्तियाँ; ताँ'-सबार-उन सबके; चरणे-चरणकमलों में; मोर-मेरा; सहस्र-सहस्र; प्रणति–सादर प्रणाम।

अनुवाद

मैं भगवान् की अन्तरंगा शक्तियों को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनमें श्री गदाधर प्रभु प्रमुख हैं।

श्री-कृष्ण-चैतन्य प्रभु स्वयं-भगवान् ।

ताँहार पदारविन्दे अनन्त प्रणाम ॥42॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु; प्रभु-परम भगवान्; स्वयम्-भगवान्-आदि भगवान्; ताँहार-उनके; पद-अरविन्दे-चरणकमलों में; अनन्त-अनन्त; प्रणाम-सादर प्रणाम।

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु साक्षात् भगवान् हैं, अतएव मैं उनके चरणकमलों में असंख्य बार दण्डवत् प्रणाम करता हूँ।

सावरणे प्रभुरे करिया नमस्कार ।

एइ छय तेंहो यैछे–करिये विचार ॥43॥

स-आवरणे-पार्षदों सहित; प्रभुरे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; करिया-करके; नमस्कार–सादर नमस्कार; एइ–इन; छय–छः; तेंहो-वे; यैछे-वे कैसे हैं; करिये-मैं करता हूँ; विचार-चर्चा, विचार।

अनुवाद

भगवान् (चैतन्य महाप्रभु) तथा उनके समस्त पार्षदों को नमस्कार करने के बाद अब मैं उन छह विविधताओं की एकता की व्याख्या करने का प्रयत्न करूँगा।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अनेक अनन्य भक्त हैं और ये सभी भगवान् के चारों ओर रहने वाले पार्षद माने जाते हैं। कृष्ण की पूजा उनके भक्तों के साथ की जानी चाहिए। अतएव ये विविध सिद्धान्त वह सनातन सामग्री है, जिसके माध्यम से परम सत्य तक पहुँचा जा सकता है।

यद्यपि आमार गुरु–चैतन्येर दास ।

तथापि जानिये आमि ताँहार प्रकाश ॥44॥

यद्यपि यद्यपि; आमार-मेरे; गुरु-गुरु; चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु के; दास–दास; तथापि-तथापि; जानिये-जानता हूँ; आमि-मैं; ताँहार-भगवान् के; प्रकाश-प्रत्यक्ष प्राकट्य।

अनुवाद

यद्यपि मैं जानता हूँ कि मेरे गुरु श्री चैतन्य के दास हैं, तथापि मैं उन्हें भगवान् के स्वयं प्रकाश के रूप में जानता हूँ।

तात्पर्य

हर जीव मूलतः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दास है और गुरु भी उनका दास होता है। फिर भी गुरु भगवान् की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति होता है। इस दृढ़ विश्वास के सहारे शिष्य कृष्णभावनामृत में प्रगति कर सकता है। गुरु कृष्ण से अभिन्न है, क्योंकि वह कृष्ण का प्राकट्य है।

नित्यानन्द प्रभु आदि गुरु हैं, जो कृष्ण के प्रथम प्रत्यक्ष प्रकाश या विस्तार रूपी साक्षात् बलराम हैं। वे भगवान् कृष्ण को उनकी लीलाओं में सहायता करते हैं और वे भगवान् के सेवक हैं।

हर जीव सनातन रूप से श्रीकृष्ण चैतन्य का दास है; अतएव गुरु भी चैतन्य महाप्रभु के दास के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो सकता। गुरु का सनातन कर्म यह है कि वह शिष्यों को सेवाभाव का प्रशिक्षण देकर भगवत्सेवा का विस्तार करे। गुरु कभी भी अपने आपको भगवान् के रूप में प्रस्तुत नहीं करता, वह तो भगवान् का प्रतिनिधि माना जाता है। प्रामाणिक शास्त्रों में व्यक्ति को भगवान् होने का दावा करना वर्जित है, किन्तु प्रामाणिक गुरु भगवान् का सर्वाधिक आज्ञाकारी एवं विश्वस्त दास होता है, अतएव उसका सम्मान कृष्ण के समान ही होना चाहिए।

गुरु कृष्ण-रूप हन शास्त्रेर प्रमाणे ।

गुरु-रूपे कृष्ण कृपा करेन भक्त-गणे ॥45॥

गुरु-गुरु; कृष्ण-रूप-कृष्ण के समान; हन-है; शास्त्रेर-शास्त्र के प्रमाणे-प्रमाण से; गुरु-रूपे-गुरु रूप में; कृष्ण-भगवान् श्रीकृष्ण; कृपा-कृपा; करेन-बांटते हैं; भक्त-गणे-अपने भक्तों में।

अनुवाद

समस्त प्रामाणिक शास्त्रों के सुविचारित मत के अनुसार गुरु कृष्ण से अभिन्न होता है। भगवान् कृष्ण गुरु के रूप में भक्तों का उद्धार करते हैं।

तात्पर्य

शिष्य का गुरु से सम्बन्ध वैसा ही होता है, जैसाकि भगवान् के साथ उसका सम्बन्ध । गुरु अपने आपको सदैव भगवान् का सबसे विनीत दास कहकर प्रस्तुत करता है, किन्तु शिष्य को चाहिए कि वह उसको भगवान् के व्यक्त प्रतिनिधि के रूप में देखे।

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कहिंचित् ।

न मर्त्य-बुद्ध्यासूयेत सर्व-देव-मयो गुरुः ॥46॥

आचार्यम्-आचार्य; माम्-मुझे; विजानीयात्-जानना चाहिए; न अवमन्येत–किसी को अनादर नहीं करना चाहिए; कर्हिचित्-कभी भी; न-कभी नहीं; मर्त्य-बुद्ध्या-उसे सामान्य जीव समझकर; असूयेत–किसी को ईर्ष्या करनी चाहिए; सर्व-देव-सभी देवताओं के; मयः-प्रतिनिधि; गुरुः–गुरु।

अनुवाद

"आचार्य को मेरा ही स्वरूप समझना चाहिए और किसी भी तरह से उसका अपमान नहीं करना चाहिए। उसे सामान्य व्यक्ति मानकर उससे ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वे समस्त देवताओं के प्रतिनिधि होते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.17.27) से लिया गया है, जिसे भगवान् कृष्ण ने उद्धव द्वारा चारों वर्णाश्रमों के विषय में पूछे गये प्रश्न के उत्तर में कहा था। भगवान् विशेष रूप से यह शिक्षा दे रहे थे कि गुरु के संरक्षण में एक ब्रह्मचारी को किस प्रकार आचरण करना चाहिए। गुरु अपने शिष्यों द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं का भोक्ता नहीं है। वह तो माता-पिता के तुल्य होता है। जिस प्रकार बच्चा माता-पिता की सावधानीपूर्वक की देखरेख के बिना बड़ा नहीं हो सकता, उसी तरह गुरु की देखरेख के बिना कोई दिव्य-सेवा के स्तर तक ऊपर नहीं उठ सकता।

गुरु आचार्य भी कहलाता है अर्थात् वह आध्यात्मिक विज्ञान का दिव्य प्राचार्य (प्रोफेसर) होता है। मनुसंहिता (2.140) में आचार्य के कर्तव्यों की व्याख्या हुई है, जिसमें बतलाया गया है कि प्रामाणिक गुरु शिष्यों का भार अपने ऊपर लेता है, गूढ़ से गूढ़ वैदिक ज्ञान की शिक्षा देता है

और उनको दूसरा जन्म देता है। आध्यात्मिक विज्ञान के अध्ययन के लिए शिष्य को दीक्षा देना उपनीति कहलाता है, जिसका अर्थ है वह संस्कार जो शिष्य को गुरु के समीप लाता है। जो गुरु के समीप नहीं लाया जा सकता, उसको जनेऊ नहीं दिया जा सकता और इसीलिए वह शूद्र कहलाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य के शरीर पर जनेऊ का होना गुरु द्वारा दी गई दीक्षा का सूचक है। यदि इसे मात्र उच्च कुल में जन्म होने के दम्भ का प्रदर्शन करने के लिए धारण किया जाता है, तो यह व्यर्थ है। गुरु का धर्म है कि वह शिष्य को जनेऊ-संस्कार के साथ दीक्षा दे। इस संस्कार अर्थात् शुद्धि-क्रिया के पश्चात् गुरु वास्तव में शिष्य को वेदों की शिक्षा देना प्रारम्भ करता है। जन्म से शूद्र को ऐसी दीक्षा देना वर्जित नहीं है, यदि गुरु इसकी अनुमति दे; क्योंकि वही शिष्य को ब्राह्मण का अधिकार दे सकता है, यदि वह उसे पूरी तरह योग्य समझे। वायु-पुराण में आचार्य की परिभाषा इस प्रकार दी गई है, "वह जो समस्त वैदिक साहित्य के सार को जाने, वेदों के अभिप्राय की व्याख्या करे, उनके विधि-विधानों का पालन करे और अपने शिष्यों को उसी तरह से कर्म करने की शिक्षा दे।"

केवल असीम कृपावश ही भगवान् गुरु के रूप में प्रकट होते हैं। अतएव आचार्य के आचरण में भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति के अतिरिक्त अन्य कामों का कोई स्थान नहीं हैं। वे परम सेवक-भगवान् होते हैं। ऐसे सुस्थिर भक्त की शरण ग्रहण करना श्रेयस्कर है, जो आश्रय-विग्रह, अर्थात् शरण लेने योग्य ईश्वर का प्राकट्य कहलाता है।

यदि कोई अपने आपको आचार्य के रूप में प्रस्तुत करता है, किन्तु उसमें भगवान् के लिए सेवा का भाव नहीं होता, तो उसे अपराधी समझना चाहिए। उसकी यह अपराधी प्रवृत्ति उसे आचार्य बनने के लिए अयोग्य बनाती है। प्रामाणिक गुरु सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अनन्य भक्ति में रत रहता है। इसी के बल पर वह भगवान् का प्रत्यक्ष प्राकट्य तथा श्री नित्यानन्द प्रभु के प्रामाणिक

प्रतिनिधि के रूप में जाना जाता है। ऐसा गुरु आचार्यदेव कहलाता है। भौतिक लोग ईर्ष्यालु स्वभाव होने तथा इन्द्रियतृप्ति की प्रवृत्ति से असन्तुष्ट रहने के कारण प्रामाणिक आचार्य की आलोचना करते हैं। किन्तु वस्तुतः प्रामाणिक आचार्य भगवान् से अभिन्न होता है; अतएव ऐसे आचार्य से ईर्ष्या करने का अर्थ है, स्वयं भगवान् से ईर्ष्या करना। इससे दिव्य साक्षात्कार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, शिष्य को सदैव गुरु को श्रीकृष्ण का स्वरूप जानकर उसका सम्मान करना चाहिए। किन्तु साथ ही उसे सदा स्मरण रखना होगा कि गुरु को भगवान् की दिव्य लीलाओं की नकल करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। छद्म गुरु अपने आपको सभी तरह से श्रीकृष्ण के समकक्ष दिखाकर अपने शिष्यों की भावनाओं का दुरुपयोग करते हैं। किन्तु ऐसे निर्विशेषवादी अपने शिष्यों को केवल पथभ्रष्ट ही कर सकते हैं, क्योंकि उनका चरम उद्देश्य तो भगवान् में लीन होना होता है। यह भक्ति सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के विरुद्ध है।

वास्तविक वैदिक दर्शन तो अचिन्त्य-भेदाभेद-तत्त्व है, जो यह स्थापित करता है कि हर वस्तु भगवान् से एक होकर भी भिन्न होती है। श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी पुष्टि करते हैं कि प्रामाणिक गुरु का वास्तविक पद यही है। उनके अनुसार गुरु को मुकुन्द (श्रीकृष्ण) के साथ उसके घनिष्ठ सम्बन्ध के सन्दर्भ में देखना चाहिए। श्रील जीव गोस्वामी ने अपने भक्ति-सन्दर्भ (213) में स्पष्ट बतलाया है कि एक शुद्ध भक्त का गुरु तथा शिवजी को भगवान् जैसा ही मानना यह सूचित करता है कि वे भगवान् को अत्यन्त प्रिय हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे सभी दृष्टि से भगवान् के तुल्य हैं। श्रील रघुनाथ गोस्वामी तथा श्रील जीव गोस्वामी के पदचिह्नों पर चलते हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर जैसे बाद के आचार्यों ने इसी सत्य की पुष्टि की है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने गुरु-अष्टकम् में इसकी पुष्टि की है कि सारे प्रामाणिक शास्त्र गुरु को भगवान् से अभिन्न होने के रूप में स्वीकार करते हैं, क्योंकि वे भगवान् के अत्यन्त प्रिय तथा विश्वासपात्र दास होते हैं।

इसीलिए गौड़ीय वैष्णव श्रील गुरुदेव की पूजा भगवान् के दास के रूप में करते हैं। भक्ति सम्बन्धी सारे प्राचीन साहित्य में तथा श्रील नरोत्तम दास ठाकुर, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं अन्य अनन्य वैष्णवों के वर्तमान भजनों में गुरु को या तो श्रीमती राधारानी के विश्वासपात्र संगियों में से एक के रूप में या श्रील नित्यानन्द प्रभु के प्रकट प्रतिनिधि के रूप में माना गया है।

शिक्षा-गुरुके त' जानि कृष्णेर स्वरूप।

अन्तर्यामी, भक्त-श्रेष्ठ,—एइ दुइ रूप ॥47॥

शिक्षा-गुरुके-शिक्षा गुरु जो उपदेश देता है; त'–निश्चित रूप से; जानि-मैं जानता हूँ; कृष्णेर-कृष्ण के; स्व-रूप-प्रत्यक्ष प्रतिनिधि; अन्तर्यामी–अन्तर्यामी परमात्मा; भक्त-श्रेष्ठ-भक्त श्रेष्ठ; एइ-ये; दुइ-दो; रूप-रूप।

अनुवाद

मनुष्य को शिक्षा-गुरु को कृष्ण का स्वरूप समझना चाहिए। भगवान् कृष्ण स्वयं को परमात्मा रूप में तथा भगवान् के सर्वश्रेष्ठ भक्त के रूप में प्रकट करते हैं।

तात्पर्य

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कहते हैं कि शिक्षा-गुरु श्रीकृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि होता है। श्रीकृष्ण स्वयं हम सबको भीतर एवं बाहर से गुरु-रूप में शिक्षा देते रहते हैं। भीतर से वे हमारे नित्य संगी परमात्मा के रूप में शिक्षा देते हैं और बाहर से वे गुरु की भाँति भगवद्गीता की शिक्षा देते हैं। शिक्षा-गुरु दो प्रकार के होते हैं। एक वह जो मुक्तावस्था में भक्ति के ध्यान में पूर्णतया निमग्न रहता है और दूसरा वह जो समुचित शिक्षाओं द्वारा शिष्य की आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत

करता है। इस प्रकार भक्ति-विज्ञान के उपदेशों को वस्तुपरक तथा आत्मपरक रूप में विभाजित किया जाता है। कृष्ण से मिलाने के लिए अधिकृत होने के कारण आचार्य वास्तव में शिष्य के आध्यात्मिक ज्ञान को समृद्ध बनाता है और इस प्रकार उसे भक्ति-कार्यों के प्रति जाग्रत करता है।

जब कोई व्यक्ति स्वरूपसिद्ध गुरु से ज्ञान प्राप्त करके भगवान् विष्णु की सेवा में अपने आपको लगाता है, तब अभिधेय भक्ति का शुभारम्भ होता है। भक्ति की ये क्रियाएँ अभिधेय अर्थात् कर्तव्य कहलाती हैं। हमारे एकमात्र आश्रय परमेश्वर ही हैं और जो व्यक्ति यह शिक्षा देता है कि कृष्ण तक किस प्रकार पहुँचा जाये, वह भगवान् का कार्यकारी रूप होता है। आश्रयदाता (शरणदाता) भगवान् तथा दीक्षा–गुरुओं और शिक्षा–गुरुओं में कोई भेद नहीं होता। यदि कोई मूर्खतावश इनमें अन्तर करता है, तो वह भक्ति साधना में अपराध करता है।

श्रील सनातन गोस्वामी आदर्श गुरु हैं, क्योंकि वे व्यक्ति को मदनमोहन के चरणकमलों की शरण प्रदान करते हैं। भले ही कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अपना सम्बन्ध भूल जाने के कारण वृन्दावन क्षेत्र की यात्रा न कर सके, किन्तु सनातन गोस्वामी की कृपा से उसे वृन्दावन में रहकर समस्त आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने का अच्छा अवसर मिल सकता है। श्री गोविन्दजी अर्जुन को भगवद्गीता की शिक्षा देकर शिक्षा-गुरु जैसा कार्य करते हैं। वे आदि उपदेशक हैं, क्योंकि वे हमें उपदेश देते हैं और अपनी सेवा करने का अवसर प्रदान करते हैं। दीक्षा-गुरु श्रील मदनमोहन विग्रह का साकार स्वरूप होता है, जबकि शिक्षा-गुरु श्रील गोविन्ददेव विग्रह का साकार प्रतिनिधि होता है। इन दोनों अर्चाविग्रहों की पूजा वृन्दावन में की जाती है। श्रील गोपीनाथ आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए चरम आकर्षण हैं।

नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश

ब्रह्मायुषापि कृतमृद्ध-मुदः स्मरन्तः ।

योऽन्तर्बहिस्तनु-भृतामशुभं विधुन्वन्

आचार्य-चैत्य-वपुषा स्व-गतिं व्यनक्ति ॥48॥

न एव–बिल्कुल नहीं; उपयन्ति-अभिव्यक्त करने में सक्षम; अपचितिम्-अपना आभार; कवयः-विद्वान भक्तगण; तव-आपका; ईश-हे भगवान्; ब्रह्म-आयुषा-ब्रह्माजी की आयु की अवधि में; अपि के बावजूद; कृतम्-महान् कार्य; ऋद्ध–बढ़े हुए; मुदः-प्रसन्नता, हर्ष; स्मरन्तः–याद करते हुए; यः-जो; अन्तः–अन्दर; बहिः-बाहर; तनु-भृताम्-देहधारी; अशुभ-अशुभ; विधुन्वन्–बिखेरते हुए; आचार्य-गुरु; चैत्य-परमात्मा के; वपुषा–रूपों से; स्व-अपने; गतिम्-पथ; व्यनक्ति–दिखाते हो।

अनुवाद

“हे प्रभु! दिव्य कविगण एवं आध्यात्मिक विज्ञान में दक्ष व्यक्ति, ब्रह्मा के समान दीर्घायु प्राप्त करके भी आपके प्रति अपनी कृतज्ञता को पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सके, क्योंकि आप दो रूपों में, बाहर से आचार्य के रूप में और भीतर से परमात्मा के रूप में, देहधारी जीव को अपने पास आने का निर्देश देकर मुक्ति प्रदान करने के लिए प्रकट होते हैं।”

तात्पर्य

यह श्रीमद्भागवत (11.29.6) का श्लोक है, जो श्री उद्धव द्वारा श्रीकृष्ण से योग विषयक सारे उपदेश सुनने के बाद कहा गया था।

तेषां सतत-युक्तानां भजतां प्रीति–पूर्वकम् ।

ददामि बुद्धि-योगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥49॥

तेषाम् उनको; सतत-युक्तानाम्-सदैव लीन रहने वाले; भजताम्-भक्तिमय सेवा में लगे; प्रीति–पूर्वकम्-प्रीतिपूर्वक; ददामि-मैं देता हूँ; बुद्धि-योगम्-वास्तविक बुद्धिमत्ता; तम्-वह; येन–जिससे; माम्-मुझे; उपयान्ति–पास आते हैं; ते–वे।

अनुवाद

"जो लोग निरन्तर मेरी भक्ति में संलग्न रहते हुए प्रेमपूर्वक मेरी सेवा करते हैं, उन्हें मैं ऐसा ज्ञान प्रदान करता हूँ जिससे वे मेरे पास आ सकें।"

तात्पर्य

भगवद्गीता (10.10) का यह श्लोक स्पष्ट रूप से बतलाता है कि गोविन्ददेव किस प्रकार अपने प्रामाणिक भक्त को शिक्षा देते हैं। भगवान् यह घोषित करते हैं कि जो उनकी दिव्य प्रेममयी सेवा में निरन्तर लगे रहते हैं, उन्हें वे आस्तिक ज्ञान का प्रकाश देकर अपने प्रति अनुरक्ति प्रदान करते हैं। दिव्य चेतना की इस जागृति से भक्त मुग्ध हो जाता है और इस तरह वह अपने नित्य दिव्य रस का आस्वादन करता है। ऐसी जागृति केवल उन्हें प्रदान की जाती है, जो भक्ति द्वारा भगवान् की दिव्य प्रकृति के बारे में आश्वस्त रहते हैं। वे जानते हैं कि परम सत्य, जो कि पूर्ण आध्यात्मिक एवं सर्वशक्तिमान पुरुष हैं, अद्वितीय हैं और उनकी इन्द्रियाँ पूर्णतया दिव्य हैं, वे समस्त सृष्टि के उद्गम हैं। ऐसे शुद्ध भक्त सदैव कृष्ण के ज्ञान में तथा कृष्णभावना में निमग्न रहकर विचारों एवं अनुभूतियों का आदान-प्रदान उसी तरह करते हैं, जिस तरह बड़े-बड़े विज्ञानी वैज्ञानिक परिषदों में अपनी खोज के परिणामों एवं अपने दृष्टिकोणों पर विचार-विमर्श करते हैं। कृष्ण के विषय में इस प्रकार के विचार-विनिमयों से भगवान् को प्रसन्नता होती है; अतएव वे ऐसे भक्तों को समस्त ज्ञान प्रदान करने का अनुग्रह करते हैं।

यथा ब्रह्मणे भगवान्स्वयमुपदिश्यानुभावितवान् ॥50॥

यथा-जिस प्रकार; ब्रह्मणे-ब्रह्माजी को; भगवान्-भगवान्; स्वयम्-स्वयं; उपदिश्य-उपदेश देकर; अनुभावितवान्-अनुभव कराया।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने ब्रह्मा को शिक्षा दी और उन्हें स्वरूपसिद्ध बनाया।

तात्पर्य

यह अंग्रेजी कहावत कि भगवान् उनकी सहायता करते हैं, जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं, दिव्य क्षेत्र में भी लागू होती है। प्रामाणिक शास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं, जिनमें भगवान् भीतर से गुरु के रूप में कार्य करते हैं। उन्होंने ही इस विराट् सृष्टि के प्रथम जीव ब्रह्मा को गुरु के रूप में शिक्षा दी थी। जब ब्रह्माजी सबसे पहले उत्पन्न हुए, तो वे विराट् सृष्टि का निर्माण करने में अपनी सृजनात्मक शक्ति का उपयोग नहीं कर सके। प्रारम्भ में केवल ध्वनि थी, जिससे तप शब्द गूंज रहा था, जो सूचित करता है कि आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए कठिनाइयों को स्वीकार करना होगा। आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए मनुष्य को सारे इन्द्रिय भोगों से विरत होकर सभी प्रकार के कष्टों को अपनी इच्छा से स्वीकार करना चाहिए। यही तपस्या कहलाती है। इन्द्रियों का भोक्ता कभी भी ईश्वर, ईश्वरत्व या आस्तिक विज्ञान की अनुभूति प्राप्त नहीं कर सकता। इस तरह जब ब्रह्माजी श्रीकृष्ण के द्वारा तपशब्द-ध्वनि से दीक्षित कर दिये गये, तो वे तप में लग गये और विष्णु की कृपा से आध्यात्मिक साक्षात्कार के द्वारा दिव्य जगत्, श्री वैकुण्ठ का दर्शन करने में समर्थ हो सके। आधुनिक विज्ञान रेडियो, टेलीविजन तथा कम्प्यूटर जैसी भौतिक खोजों के बल पर सम्पर्क स्थापित कर सकता है, किन्तु मनुष्यों के मूल पिता ब्रह्मा ने तपस्या द्वारा जिस विज्ञान का आवाहन किया,

वह इससे भी अधिक सूक्ष्म था। समय आने पर भौतिक विज्ञानी यह भी जान सकेंगे कि हम वैकुण्ठ-लोक के साथ किस प्रकार सम्पर्क स्थापित करते हैं। ब्रह्माजी ने भगवान् की शक्तियों के विषय में जिज्ञासा की, तो भगवान् ने इनका उत्तर निम्नलिखित छह कथनों के रूप में दिया। ये उपदेश, जिन्हें श्रीमद्भागवत (2.9.31-36) से उद्धृत किया जा रहा है, उन्हें भगवान् द्वारा परम गुरु के रूप में दिये गये थे।

ज्ञानं परम-गुह्यं मे यद्विज्ञान-समन्वितम् ।

स-रहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥51॥

ज्ञानम्-ज्ञान; परम-परम; गुह्यम्-गुप्त; मे-मेरे बारे में; यत्-जो; विज्ञान-अनुभूति; समन्वितम् से पूर्णतया युक्त; स-रहस्यम्-रहस्य सहित; तत्-उसका; अङ्गम्-पूरक भाग; च-और; गृहाण-लेने का प्रयास करना; गदितम्-वर्णित; मया-मेरे द्वारा।

अनुवाद

"मैं जो तुमसे कहूँगा उसे ध्यानपूर्वक सुनो, क्योंकि मेरे विषय में जो दिव्य ज्ञान है, वह न केवल वैज्ञानिक है, अपितु रहस्यों से पूर्ण भी है।"

तात्पर्य

श्रीकृष्ण का दिव्य ज्ञान ब्रह्म के निर्विशेष ज्ञान से अधिक गहन है, क्योंकि इसमें न केवल उनके रूप एवं व्यक्तित्व का, अपितु उनसे सम्बन्धित हर वस्तु का भी ज्ञान निहित रहता है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो कृष्ण से सम्बन्धित न हो। भाव यह है कि श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है किन्तु साथ ही उनके आदि व्यक्तित्व को छोड़कर अन्य कुछ भी श्रीकृष्ण नहीं है। यह

ज्ञान पूर्ण दिव्य विज्ञान है और विष्णु ब्रह्माजी को इसी विज्ञान का पूर्ण ज्ञान देना चाह रहे थे। इस ज्ञान के रहस्य की चरम परिणति भगवान् के प्रति व्यक्तिगत अनुरक्ति है, जिसके फलस्वरूप प्रत्येक 'कृष्ण-विहीन' वस्तु से विरक्ति हो जाती है। इस अवस्था तक पहुँचने के नौ वैकल्पिक दिव्य साधन हैं-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, पूजा, प्रार्थना, दास्यभाव में सेवा, भगवान् के साथ बन्धुत्व तथा आत्म-समर्पण। ये उसी भक्ति के विभिन्न अंग हैं, जो दिव्य रहस्य से परिपूर्ण है। भगवान् ने ब्रह्मा से कहा कि चूँकि वे उनसे प्रसन्न हैं, अत: वे अपनी कृपा से इस रहस्य को प्रकट कर रहे हैं।

यावानहं यथा-भावो यदूप-गुण-कर्मकः ।

तथैव तत्त्व-विज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥52॥

यावान्–जैसा मैं अपने शाश्वत रूप में हूँ; अहम्-मैं; यथा-जैसे भी; भावः-दिव्य अस्तित्व; यत्-जो कुछ; रूप-विभिन्न रूप-रंग; गुण-गुण; कर्मकः-लीला; तथा एव-वैसे ही; तत्त्व-विज्ञानम्-यथार्थ अनुभूति; अस्तु-हो; ते तुम्हारी; मत्-मेरी; अनुग्रहात्-अहैतुकी कृपा से।

अनुवाद

"मेरी अहैतुकी कृपा से तुम्हें मेरे व्यक्तित्व, स्वरूप, गुण तथा लीला सम्बन्धी सत्य के बारे में सारा ज्ञान प्राप्त हो जाये।"

तात्पर्य

भगवान् के दिव्य साकार रूप रहस्यमय हैं और इन रूपों के लक्षण भी रहस्यमय हैं, जो संसारी तत्त्वों से बनी किसी भी वस्तु से सर्वथा भिन्न हैं। भगवान् के अनन्त रूप, जैसे श्री श्यामसुन्दर, श्री नारायण, श्री राम तथा गौरसुन्दर; इन रूपों के रंग (यथा श्वेत, लाल, पीला, बादलों जैसा श्याम

आदि); उनके गुण, यथा शुद्ध भक्तों के लिए साकार रूप तथा शुष्क चिन्तकों के लिए निर्विशेष ब्रह्म पहलू; उनकी असामान्य लीलाएँ यथा गोवर्धन पर्वत उठाना, द्वारका में 16 हजार से अधिक रानियों से विवाह करना तथा व्रजबालाओं के साथ रास में प्रवेश करना, रास के समय जितनी गोपियाँ थीं उतने रूपों में विस्तार करना—ये तथा अन्य असंख्य असामान्य कार्य तथा गुण, सारे के सारे रहस्यमय हैं। इसका एक पक्ष भगवद्गीता के वैज्ञानिक ज्ञान में प्रस्तुत हुआ है, जिसका अध्ययन तथा सम्मान सभी श्रेणी के पंडितों द्वारा विश्वभर में किया जाता है और जिसकी उतनी ही टीकाएँ हैं, जितने अनुभववादी दार्शनिक हैं। इन रहस्यों के सत्य का उद्घाटन अवरोह विधि से ब्रह्मा के समक्ष किया गया। इसमें आरोह विधि कारगर नहीं होती। भगवान् की यह कृपा ब्रह्मा जैसे भक्त पर होती है, फिर प्रामाणिक गुरु-शिष्य परम्परा से ब्रह्मा से नारद तक, फिर नारद से व्यास और व्यासदेव से शुकदेव आदि तक पहुँचती है। हम अपने भौतिक प्रयासों से भगवान् के रहस्यों को नहीं खोज सकते। ये रहस्य भगवान् की कृपा से योग्य भक्तों को ही प्रकट होते हैं। ये रहस्य विभिन्न श्रेणी के भक्तों को उनकी सेवा-प्रवृत्ति के क्रमिक विकास के अनुपात में प्रकट होते हैं। दूसरे शब्दों में, वे निर्विशेषवादी जो अपने तुच्छ ज्ञान तथा रुग्ण चिन्तन के बल पर आश्रित रहते हैं और ऊपर बतायी गई श्रवण, कीर्तन तथा अन्य प्रकार की सेवा नहीं करते, वे अध्यात्म के उस रहस्यमय क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर पाते, जहाँ परम सत्य एक दिव्य पुरुष हैं, जो भौतिक तत्त्वों के समस्त कल्मषों से मुक्त हैं। भगवान् का रहस्य जान लेने पर वह निर्विशेष पहलू नष्ट हो जाता है, जिसकी अनुभूति सामान्य अध्यात्मवादियों को होती है, जो केवल भौतिक स्तर पर रहकर आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश पाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत्सदसत्परम् ।

पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥53॥

अहम्-मैं भगवान्; एव–निश्चय ही; आसम्-अस्तित्व में था; एव–केवल; अग्रे-सृष्टि के पूर्व; न-कभी नहीं; अन्यत्-अन्य कोई वस्तु; यत्-जो; सत्-प्रभाव, परिणाम; असत्-कारण; परम्-परम; पश्चात्-अन्त में; अहम्-मैं, भगवान्; यत्-जो; एतत्-यह सृष्टि; च-भी; यः-जो; अवशिष्येत-रहती है; सः-वह; अस्मि-हूँ; अहम्-मैं भगवान्।

अनुवाद

"सृष्टि के पूर्व केवल मैं ही विद्यमान रहता हूँ और किसी भी स्थूल, सूक्ष्म या प्रारम्भिक घटना का अस्तित्व नहीं होता। सृष्टि के बाद मैं ही हर वस्तु में विद्यमान रहता हूँ और प्रलय के बाद मैं ही शाश्वत रूप से विद्यमान रहता हूँ।"

तात्पर्य

अहम् का अर्थ है "मैं"; अतएव वह वक्ता जो अहम् अर्थात् मैं कह रहा है, उसका व्यक्तित्व अवश्य होना चाहिए। मायावादी दार्शनिक इस अहम् शब्द से निर्विशेष ब्रह्म का अर्थ लगाते हैं। इन मायावादियों को अपने व्याकरण के ज्ञान पर बहुत गर्व होता है; किन्तु जिस किसी भी व्यक्ति को व्याकरण का वास्तविक ज्ञान है, वह समझ सकता है कि अहम् का अर्थ "मैं" होता है और "मैं" से व्यक्ति सूचित होता है। अतएव ब्रह्माजी से अपने दिव्य रूप का वर्णन करते हुए अहम् शब्द का प्रयोग करते हैं। अहम् का विशिष्ट अर्थ होता है। यह ऐसा अस्पष्ट शब्द नहीं है, जिसकी मनमानी व्याख्या की जा सके। जब भगवान् कृष्ण अहम् शब्द का उच्चारण करते हैं, तो यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी का सूचक नहीं हो सकता।

सृष्टि के पूर्व तथा इसके प्रलय के बाद केवल भगवान् तथा उनके पार्षद ही विद्यमान रहते हैं; भौतिक तत्त्वों का अस्तित्व नहीं रहता। इसकी पुष्टि वैदिक साहित्य में हुई है। वासुदेवो वा इदमग्र

आसीन्न ब्रह्मा न च शङ्करः-सृष्टि के पूर्व न तो ब्रह्मा का अस्तित्व था न शिव का। केवल विष्णु विद्यमान थे। विष्णु अपने धाम वैकुण्ठ में रहते हैं। आध्यात्मिक आकाश में असंख्य वैकुण्ठ ग्रह हैं और विष्णु अपने पार्षदों एवं साज-सामग्री के साथ उनमें से प्रत्येक में निवास करते हैं। भगवद्गीता में भी इसकी पुष्टि हुई है कि यद्यपि समय-समय पर सृष्टि का नाश होता है, किन्तु एक ऐसा भी धाम है, जिसका कभी नाश नहीं होता। "सृष्टि" शब्द तो भौतिक सृजन का सूचक है, क्योंकि आध्यात्मिक जगत् में न तो सृजन है न प्रलय, क्योंकि वहाँ तो हर वस्तु शाश्वत है।

भगवान् यहाँ इंगित करते हैं कि भौतिक सृष्टि के पूर्व वे अपने समस्त दिव्य ऐश्वर्यों–यथा शक्ति, सम्पत्ति, सौन्दर्य, ज्ञान, यश तथा वैराग्य के साथ पूर्ण रूप से विद्यमान थे। यदि कोई राजा के विषय में सोचता है, तो स्वाभाविक है कि वह उसके सचिवों, मन्त्रियों, सेनापतियों, महलों इत्यादि के विषय में भी सोचता है। जब एक राजा के पास इतना ऐश्वर्य होता है, तो फिर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के ऐश्वर्य के विषय में व्यक्ति केवल कल्पना करने की चेष्टा ही कर सकता है। अतएव जब भगवान् अहम् कहते हैं, तो इसका अर्थ यही होता है कि वे अपनी पूर्ण शक्ति के साथ विद्यमान हैं, जिसमें सारे ऐश्वर्य निहित होते हैं।

यत् शब्द ब्रह्म अर्थात् भगवान् के निर्विशेष तेज को बतलाता है। ब्रह्म-संहिता (5.40) में कहा गया है- तद्ब्रह्म निष्कलम् अनन्तम् अशेष-भूतम्-ब्रह्मतेज असीम रूप से विस्तारित होने वाला है। जिस प्रकार सूर्य एक स्थिर ग्रह है और सूर्य प्रकाश अपने स्रोत से असीम रूप से विस्तारित होता है, उसी प्रकार परम सत्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और उनकी शक्ति का तेज अर्थात् ब्रह्म का तेज असीम रूप से विस्तारित होता है। इसी ब्रह्मशक्ति से सृष्टि प्रकट होती है, जिस प्रकार धूप से बादल प्रकट होते हैं। बादल से वर्षा होती है। वर्षा से वनस्पति होती है और वनस्पति से फूल-फल होते हैं, जो अन्य अनेक जीवधारियों के लिए जीवनाधार होते हैं। इसी प्रकार भगवान् के शरीर की तेजोमय

कान्ति अनन्त ब्रह्माण्डों की सृष्टि का कारण है। यह ब्रह्मतेज निर्विशेष होता है, किन्तु इस शक्ति के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही हैं। उनके धाम वैकुण्ठ में यह ब्रह्मज्योति उनसे ही निकलती है। वे कभी भी निराकार नहीं होते। चूँकि निर्विशेषवादी ब्रह्मशक्ति के उद्गम को नहीं समझ पाते, इसीलिए वे भ्रमवश निर्विशेष ब्रह्म को ही चरम लक्ष्य मान बैठते हैं। किन्तु जैसाकि उपनिषदों में कहा गया है, भगवान् के मुख को देखने के लिए मनुष्य को निर्विशेष तेज का भेदन करना होता है। यदि कोई सूर्यप्रकाश के उद्गम तक पहुँचना चाहे, तो उसे सूर्य तक पहुँचने के लिए सूर्य-प्रकाश से होकर यात्रा करनी होगी और तब वहाँ के अधिष्ठाता देव से मिला जा सकता है। परम सत्य तो परम पुरुष, भगवान् हैं, जैसाकि श्रीमद्भागवत में बतलाया गया है।

सत् का अर्थ है "कार्य," असत् का अर्थ है "कारण" तथा "परम" का अर्थ है, परम सत्य जो कार्य-कारण से परे है। सृष्टि का कारण महत् तत्त्व कहलाता है, जिसका अर्थ है समग्र भौतिक शक्ति और इसका प्रभाव सृष्टि स्वयं है। किन्तु प्रारम्भ में न तो कारण था, न कार्य; वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से उसी प्रकार प्रकट हुए, जिस प्रकार काल-शक्ति का निर्गमन होता है। इसका वर्णन वेदान्त-सूत्र में हुआ है (जन्माद्यस्य यतः)। महत् तत्त्व का उद्गम भगवान् से ही है। इसकी पुष्टि पूरे श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीता में हुई है। भगवद्गीता (10.8) में भगवान् कहते हैं-अहं सर्वस्य प्रभवः- "मैं समस्त सृष्टियों का मूल स्रोत हूँ।" भौतिक ब्रह्माण्ड नश्वर होने के कारण कभी व्यक्त रहता है, तो कभी अव्यक्त, किन्तु इसकी शक्ति भगवान् से ही उद्भूत होती है। सृष्टि के पूर्व न तो कार्य था, न कारण, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने पूर्ण ऐश्वर्य तथा शक्ति सहित विद्यमान थे।

पश्चादहम् शब्द यह सूचित करता है कि भगवान् प्रकट सृष्टि के विलय के बाद भी विद्यमान रहते हैं। भौतिक जगत् के नष्ट होने के बाद भी भगवान् वैकुण्ठ में व्यक्तिगत रूप से रहते हैं। सृष्टि के समय भी वे यथारूप वैकुण्ठ में रहते हैं और साथ ही भौतिक ब्रह्माण्डों के भीतर परमात्मा रूप में

भी रहते हैं। इसकी पुष्टि ब्रह्म-संहिता (5.37) से होती है। गोलोक एव निवसति यद्यपि वे वैकुण्ठ में गोलोक वृन्दावन में सतत तथा पूर्णरूपेण उपस्थित रहते हैं, तो भी वे सर्वव्यापी हैं (अखिलात्म-भूतः)। भगवान् का यह सर्वव्यापक रूप परमात्मा कहलाता है। भगवद्गीता में कहा गया है- अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः-प्रकट विश्व भगवान् की शक्ति का प्रदर्शन है। सारे भौतिक तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार) भगवान् की अपरा (कनिष्ठ) शक्ति का प्रदर्शन है और सारे जीव उनकी परा (श्रेष्ठ) शक्ति हैं। चूँकि भगवान् की शक्ति उनसे भिन्न नहीं है, अतएव हर वस्तु जिसका अस्तित्व है, वास्तव में कृष्ण का निर्विशेष पहलू है। सूर्य का प्रकाश, धूप तथा ऊष्मा सूर्य से भिन्न नहीं हैं, किन्तु साथ ही साथ वे सूर्य की शक्तियाँ हैं। इसी प्रकार महत् तत्त्व तथा सारे जीव भगवान् की शक्तियाँ हैं और वे एकसाथ भगवान् से अभिन्न हैं तथा उनसे भिन्न भी हैं। इसीलिए भगवान् कहते हैं, "मैं ही सब कुछ हूँ," क्योंकि प्रत्येक वस्तु उनकी शक्ति है, अतएव वह उनसे अभिन्न है।

योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् सूचित करता है कि सृष्टि के नष्ट होने के बाद भगवान् ही शेष रह जाते हैं। आध्यात्मिक जगत् का लोप कभी नहीं होता। यह भगवान् की अन्तरंगा शक्ति के अन्तर्गत आता है, अतएव इसका अस्तित्व शाश्वत है। जब बाह्य जगत् समाप्त हो जाता है, तब गोलोक तथा उसके अतिरिक्त वैकुण्ठ जगत् में आध्यात्मिक कार्यकलाप, भौतिक काल से निबंध होकर चलते रहते हैं, क्योंकि आध्यात्मिक जगत् में भौतिक काल का कोई अस्तित्व नहीं होता। इसीलिए भगवद्गीता (15.6) में कहा गया है- यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम "जिस धाम से फिर कोई लौटकर इस भौतिक जगत् में नहीं आता, वही भगवान् का परम धाम है।"

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।

तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः ॥54॥

ऋते-बिना; अर्थम् मूल्य, अर्थ; यत्-जो; प्रतीयेत–प्रतीत होता है; न-नहीं; प्रतीयेत–प्रतीत होता है; च–निश्चित रूप से; आत्मनि–मुझ से सम्बन्धित; तत्-वह; विद्यात्-तुम्हें जानना चाहिए; आत्मनः–मेरी; मायाम्-माया को; यथा-यथा; आभासः-आभास, प्रतिबिम्ब; यथा-यथा; तमः-अन्धकार।

अनुवाद

जो कुछ मेरे बिना सत्य प्रतीत होता है, वह निश्चित रूप से मेरी भ्रामक शक्ति माया है, क्योंकि मेरे बिना किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं हो सकता है। यह छाया में असली प्रकाश के प्रतिबिम्ब जैसा है, क्योंकि प्रकाश में न तो छाया होती है, न प्रतिबिम्ब।

तात्पर्य

पिछले श्लोक में परम सत्य तथा उनकी प्रकृति के विषय में बतलाया गया है। परम सत्य को जानने के लिए वास्तव में सापेक्ष सत्य को भी जानना होगा। यह सापेक्ष सत्य, जो माया या भौतिक प्रकृति कहलाता है, उसकी यहाँ व्याख्या की गई है। माया का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। जो अल्पज्ञ है, वह माया के अद्भुत कार्यकलापों से मोहित हो जाता है, किन्तु वह यह नहीं जानता कि इन कार्यकलापों के पीछे परमेश्वर का निर्देशन है। भगवद्गीता (9.10) में कहा गया है-मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्—यह भौतिक प्रकृति कृष्ण की अध्यक्षता में कार्य कर रही है और चर तथा अचर प्राणियों को उत्पन्न कर रही है।

माया अर्थात् भौतिक प्राकट्य के भ्रामक अस्तित्व की असली प्रकृति की स्पष्ट व्याख्या श्रीमद्भागवत में की गई है। परम सत्य एक तत्त्व है और सापेक्ष सत्य का अस्तित्व परम सत्य के साथ उसके सम्बन्ध पर निर्भर करता है। माया का अर्थ है शक्ति; अतएव सापेक्ष सत्य की व्याख्या परम

सत्य की शक्ति के रूप में की जाती है। चूँकि परम तथा सापेक्ष सत्यों में अन्तर कर पाना कठिन है, अतएव इसको स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण दिया जा सकता है। परम सत्य की तुलना सूर्य से की जा सकती है, जिसे दो सापेक्ष सत्यों द्वारा समझा जा सकता है : प्रतिबिम्ब और अंधकार। अंधकार सूर्य-प्रकाश की अनुपस्थिति है, तो प्रतिबिम्ब है अंधकार में सूर्य प्रकाश का प्रक्षेपण। न तो अंधकार का, न ही प्रतिबिम्ब का स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। अंधकार तभी होता है, जब सूर्य-प्रकाश अवरुद्ध हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई सूर्य की ओर मुख करके खड़ा हो, तो उसकी पीठ अंधकार में होगी। चूँकि अंधकार सूर्य की अनुपस्थिति में रहता है, अतएव यह सूर्य के सापेक्ष है। आध्यात्मिक जगत् की तुलना वास्तविक सूर्य-प्रकाश से की जाती है और भौतिक जगत् की तुलना अंधकारग्रस्त क्षेत्रों से की जाती है, जहाँ सूर्य दृष्टिगोचर नहीं होता।

जब भौतिक जगत् अत्यन्त अद्भुत लगता है, तो यह परम सूर्य-प्रकाश अर्थात् परम सत्य का विकृत प्रतिबिम्ब होता है, जिसकी पुष्टि वेदान्त-सूत्र में की गई है। जो कुछ यहाँ दिखता है, उसका सार परम सत्य में रहता है। जिस प्रकार अन्धकार सूर्य से काफी दूरी पर रहता है, उसी प्रकार यह भौतिक जगत् भी आध्यात्मिक जगत् से बहुत दूर है। वैदिक साहित्य हमें निर्देश देता है कि हम अन्धकारमय क्षेत्रों (तमः) से मोहित न हों, अपितु परम सत्य के प्रकाशमय क्षेत्रों (योगि-धाम) में पहुँचने का प्रयत्न करें।

आध्यात्मिक जगत् अत्यन्त देदीप्यमान रहता है, किन्तु भौतिक जगत् अन्धकार से ग्रस्त रहता है। भौतिक जगत् में अन्धकार को, विशेषतया रात्रि में, भगाने के लिए सूर्य-प्रकाश, चन्द्रमा के प्रकाश या कृत्रिम प्रकाश की आवश्यकता होती है, क्योंकि भौतिक जगत् स्वभाव से अन्धकारमय है। इसीलिए परमेश्वर ने सूर्य-प्रकाश तथा चन्द्रमा के प्रकाश की व्यवस्था की है। किन्तु

उनके धाम में न तो सूर्य-प्रकाश की आवश्यकता होती है न चाँदनी या बिजली की, क्योंकि वहाँ की हर वस्तु स्वयं तेजोमय है, जैसाकि भगवद्गीता (15.6) में कहा गया है।

जो सापेक्ष, नश्वर तथा परम सत्य से दूर है, वह माया या अज्ञान कहलाता है। जैसाकि भगवद्गीता में बतलाया गया है, यह माया दो रूपों में प्रदर्शित होती है। निकृष्ट माया जड़ पदार्थ है और श्रेष्ठ माया जीव है। इसी प्रसंग में ही जीवों को माया कहा जाता है, केवल इसलिए कि वे भौतिक जगत् की भ्रामक संरचनाओं तथा कार्यकलापों में संलिप्त हैं। वास्तव में जीव माया नहीं हैं, क्योंकि वे परमेश्वर की उत्कृष्ट परा शक्ति के अंश हैं और यदि वे ना चाहें, तो उनके लिए माया से आवृत होना आवश्यक नहीं है। आध्यात्मिक जगत् में जीवों के कार्यकलाप माया से ढके नहीं हैं; वे मुक्त आत्माओं के वास्तविक, शाश्वत कार्यकलाप हैं।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।

प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥55॥

यथा-यथा; महान्ति–भौतिक; भूतानि-पदार्थ; भूतेषु-जीवों में; उच्च-अवचेषु-बड़े तथा छोटे दोनों; अनु–पश्चात्; प्रविष्टानि-भीतर स्थित; अप्रविष्टानि-बाहर स्थित; तथा-तथा; तेषु-उनमें; नन; तेषु-उनमें; अहम्-मैं।

अनुवाद

जिस प्रकार भौतिक तत्त्व सारे जीवों के शरीरों में प्रवेश करते हैं, फिर भी उनके बाहर रहते हैं, उसी तरह मैं सारी भौतिक सृष्टियों के भीतर विद्यमान रहता हूँ, फिर भी मैं उनके भीतर नहीं रहता।

तात्पर्य

स्थूल भौतिक तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश) सूक्ष्म भौतिक तत्त्वों (मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार) से मिलकर इस भौतिक जगत् के शरीरों की रचना करते हैं; फिर भी वे इन शरीरों से भी परे हैं। किसी भी भौतिक पदार्थ की रचना इन्हीं भौतिक तत्त्वों के विभिन्न अनुपातों में सम्मिश्रण या संयोग के अतिरिक्त कुछ नहीं होती। ये तत्त्व शरीर के भीतर और बाहर, दोनों ही तरह रहते हैं। उदाहरणार्थ, यद्यपि आकाश अन्तरिक्ष में स्थित है, किन्तु यह शरीर के भीतर भी प्रवेश करता है। इसी प्रकार, भौतिक शक्ति के कारणस्वरूप भगवान् भौतिक जगत् के भीतर भी रहते हैं और उससे परे भी। भौतिक जगत् के भीतर उनकी उपस्थिति के बिना यह विराट् शरीर विकसित नहीं हो सकता था, जिस प्रकार कि भौतिक शरीर के भीतर आत्मा के न होने से शरीर विकसित नहीं हो पाता। सारा भौतिक जगत् इसीलिए विकसित एवं पालित होता है, क्योंकि भगवान् परमात्मा के रूप में उसके भीतर प्रविष्ट होते हैं। भगवान् अपने सर्वव्यापक परमात्मा रूप में बड़े से बड़े से लेकर छोटे से छोटे प्रत्येक जीव में प्रविष्ट होते हैं। उनकी उपस्थिति की अनुभूति उसे ही हो सकती है, जिसमें विनयशीलता का अनूठा गुण हो, जिसके कारण वह शरणागत हो जाता है। इसी विनयशीलता का विकास ही आनुपातिक आध्यात्मिक अनुभूति का वह कारण बनता है, जिससे मनुष्य भगवान् का व्यक्तिगत रूप में साक्षात्कार कर सकता है, जिस प्रकार एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से आमने-सामने मिलता है।

भगवान् के प्रति दिव्य आसक्ति विकसित होने के कारण ही शरणागत व्यक्ति को सर्वत्र अपने प्रिय की उपस्थिति का अनुभव होता है और उसकी सारी इन्द्रियाँ भगवान् की प्रेममयी सेवा में लगी रहती हैं। उसके नेत्र वृन्दावन की दिव्य भूमि में कल्पवृक्ष के नीचे एक अलंकृत सिंहासन पर आसीन प्रेमीयुगल श्री राधा और कृष्ण को देखने में व्यस्त रहते हैं। उसकी नाक भगवान् के चरणकमलों की दिव्य सुगन्ध सूंघने में लगी रहती है। इसी प्रकार उसके कान वैकुण्ठ से आने वाले

सन्देशों को सुनने में और उसके हाथ भगवान् तथा उनके पार्षदों के चरणकमलों का आलिंगन करने में लगे रहते हैं। इस तरह भगवान् शुद्ध भक्त को भीतर और बाहर से दर्शन देते हैं। यह भक्ति के सम्बन्ध के रहस्यों में से एक है, जिसमें भक्त तथा भगवान् स्वतःस्फूर्त प्रेम से बँधे रहते हैं। इस प्रेम को प्राप्त करना ही हर जीव के जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्व-जिज्ञासुनात्मनः ।

अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥56॥

एतावत्-यहाँ तक; एव–निश्चय ही; जिज्ञास्यम्-जिज्ञासा करनी चाहिए; तत्त्व-परम सत्य की; जिज्ञासुना-जिज्ञासु से; आत्मनः-स्वयं का; अन्वय-सीधे; व्यतिरेकाभ्याम्-और परोक्ष रूप से; यत्-जो कुछ; स्यात्-हो; सर्वत्र सर्वत्र; सर्वदा-सदा।

अनुवाद

"अतएव दिव्य ज्ञान में रुचि रखने वाले व्यक्ति को सर्वव्यापी सत्य को जानने के लिए इसके विषय में सदैव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रीति से जिज्ञासा करनी चाहिए।"

तात्पर्य

जो लोग इस भौतिक विश्व से अत्यन्त दूर स्थित दिव्य जगत् का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गम्भीर हैं, उन्हें इस विज्ञान को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रीति से सीखने के लिए प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए। उसे इच्छित गन्तव्य तक पहुँचने के साधनों एवं इस मार्ग में आने वाले व्यवधानों दोनों को ही जानना चाहिए। गुरु जानता है कि नये शिष्य के स्वभाव को किस तरह नियमित करना चाहिए। अतएव निष्ठावान छात्र को गुरु से इस विज्ञान के सारे पहलुओं को सीखना चाहिए।

सम्पन्नता की विभिन्न कोटियाँ एवं मानदण्ड होते हैं। भौतिक श्रम में लगे हुए साधारण व्यक्ति की सुख-सुविधा का स्तर सबसे घटिया होता है, क्योंकि इसका सम्बन्ध शरीर से होता है। ऐसी शारीरिक सुविधा का सर्वोच्च स्तर सकाम कर्मी द्वारा प्राप्त किया जाता है, जो अपने पुण्यकर्मों के कारण स्वर्ग अर्थात् शक्ति प्राप्त सृजनशील देवताओं के लोक तक पहुँचता है। किन्तु स्वर्ग में सुखी जीवन की धारणा निर्विशेष ब्रह्म में प्राप्त होने वाले सुख की तुलना में नगण्य होती है और यह ब्रह्मानन्द जो निर्विशेष ब्रह्म में प्राप्त होता है, भगवत्प्रेम के सागर की तुलना में बछड़े के खुर की छाप में भरे जल के समान होता है। जब मनुष्य में भगवान् के प्रति शुद्ध प्रेम उत्पन्न हो जाता है, तब भगवान् के सान्निध्य से उसे दिव्य सुख का सागर प्राप्त होता है। जीवन की इस अवस्था तक पहुँचने के लिए अपने आप को योग्य बनाना सर्वोच्च सिद्धि है।

मनुष्य को चाहिए कि वह भगवद्धाम वापस जाने के लिए टिकट खरीदने का प्रयास करे। ऐसे टिकट का दाम उसके लिए तीव्र इच्छा है, जो सरलता से नहीं जगती, भले ही कोई हजारों जन्मों तक लगातार पुण्यकर्म क्यों न करता रहे। समय के साथ सारे भौतिक सम्बन्ध नष्ट हो जायेंगे, किन्तु यदि एक बार कोई भगवान् के साथ किसी विशेष रस में सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तो यह भौतिक जगत् के संहार के बाद भी नहीं टूटता।

मनुष्य को गुरु के पारदर्शी माध्यम द्वारा यह समझना चाहिए कि भगवान् सर्वत्र अपने दिव्य स्वभाव में विद्यमान रहते हैं और भगवान् के साथ जीवों के सम्बन्ध इस भौतिक जगत् में भी प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र बने रहते हैं। आध्यात्मिक जगत् में भगवान् के साथ पाँच प्रकार के सम्बन्ध पाये जाते हैं- शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य । इन रसों के विकृत प्रतिबिम्ब भौतिक जगत् में पाये जाते हैं। जमीन, घर, सामान तथा अन्य जड़ पदार्थ शान्त अथवा तटस्थ रूप में सम्बन्धित रहते हैं, जबकि सेवक दास्य सम्बन्ध में कार्य करते हैं। मित्रों के बीच पारस्परिक

आदान-प्रदान सख्य कहलाता है, बालक के प्रति माता-पिता का स्नेह वात्सल्य कहलाता है और पति-पत्नी का प्रेम-व्यवहार माधुर्य कहलाता है। भौतिक जगत् में ये पाँचों सम्बन्ध मूल शुद्ध भावों के विकृत प्रतिबिम्ब होते हैं। प्रामाणिक गुरु के मार्गदर्शन में इन पांचों शुद्ध भावों का पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सम्बन्ध समझना चाहिए और इनमें सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए। भौतिक जगत् में विकृत रसों से हताशा आती है। यदि इन रसों को भगवान् कृष्ण के साथ स्थापित किया जाये, तो उसका परिणाम सनातन आनन्दमय जीवन होता है।

चैतन्य-चरितामृत के इस तथा पिछले तीन श्लोकों से, जो श्रीमद्भागवत से चुने गये हैं, चैतन्य महाप्रभु के आन्दोलन को समझा जा सकता है। श्रीमद्भागवत में 18000 श्लोक हैं, जिन्हें अहमेवासमेवाग्रे (53) से प्रारम्भ करके यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा (56) में अन्त होने वाले इन चार श्लोकों में सार रूप में प्रस्तुत किया गया है। इनमें से पहले श्लोक (53) में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रकृति की व्याख्या की गई है। दूसरे श्लोक (54) में आगे बतलाया गया है कि भगवान् भौतिक शक्ति अर्थात् माया की कार्यशैली से अलिप्त रहते हैं। सारे जीव जो कि भगवान् कृष्ण के अंश होते हैं, बहिरंगा शक्ति द्वारा नियन्त्रित होते हैं, और वे आध्यात्मिक होते हुए भी भौतिक जगत् में भौतिक शक्ति द्वारा निर्मित शरीरों के भीतर कैद हो जाते हैं। इसी श्लोक में भगवान् के साथ जीवों के शाश्वत सम्बन्ध की व्याख्या की गई है। अगले श्लोक (55) में यह उपदेश है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्तियों द्वारा जीवों तथा भौतिक शक्ति से एकसाथ एक होकर, भिन्न भी हैं। यह ज्ञान अचिन्त्य-भेदाभेद-तत्त्व कहलाता है। जब कोई व्यक्तिगत जीव परम भगवान् कृष्ण की शरण में जाता है, तो वह भगवान् के लिए सहज दिव्य प्रेम विकसित कर सकता है। यही शरणागति की विधि मनुष्य के मूल चिन्तन का विषय होना चाहिए। अगले श्लोक (56) में कहा गया है कि बद्धजीव को अन्ततः प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए और उनसे भौतिक तथा

आध्यात्मिक जगतों को एवं अपनी स्थिति को पूर्ण रूप से समझना चाहिए। यहाँ पर अन्वयव्यतिरेकाभ्याम् शब्द, जिनका अर्थ "प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से" है, सुझाते हैं कि मनुष्य को भक्ति की विधि के दोनों पहलुओं को सीखना चाहिए-उसे प्रत्यक्ष रीति से भक्ति-विधि सम्पन्न करनी चाहिए तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रगति में आने वाली बाधाओं से बचना चाहिए।

चिन्तामणिर्जयति सोमगिरिर्गुरु

शिक्षा-गुरुश्च भगवान्शिखि-पिञ्छ-मौलिः ।

यत्पाद-कल्पतरु-पल्लव-शेखरेषु

लीला-स्वयंवर-रसं लभते जयश्रीः ॥57॥

चिन्तामणिः जयति–चिन्तामणि की जय हो; सोम-गिरिः-सोमगिरी (दीक्षा गुरु); गुरुः–आध्यात्मिक गुरु; मे-मेरे; शिक्षा-गुरुः–शिक्षा गुरु; च-और; भगवान्-भगवान्; शिखि-पिञ्छ–मोर पंखों सहित; मौलिः–जिनका सिर; यत्-जिनका; पाद-चरणकमल का; कल्प-तरु-कल्पवृक्षों की भाँति; पल्लव-नवीन पत्रों की तरह; शेखरेषु-पाँव के नाखूनों पर; लीला-स्वयम्-वर-माधुर्य लीलाओं का; रसम्-रस; लभते-मिलता है; जय-श्रीः-श्रीमती राधारानी।

अनुवाद

"चिन्तामणि तथा मेरे दीक्षा-गुरु सोमगिरि की जय हो। मेरे शिक्षा-गुरु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की जय हो, जो अपने मुकुट में मोरपंख धारण करते हैं। कल्पवृक्ष तुल्य उनके चरणकमलों की छाया में जयश्री (राधारानी) नित्य संगिनी के रूप में दिव्य रस का आस्वादन करती हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक कृष्ण-कर्णामृत से लिया गया है, जिसे बिल्वमंगल ठाकुर नामक एक महान् वैष्णव संन्यासी ने लिखा था, जिन्हें लीलाशुक भी कहा जाता है। वे भगवान् की नित्य लीलाओं में प्रविष्ट होने के लिए उत्कट इच्छुक थे और वे सात सौ वर्षों तक वृन्दावन में ब्रह्म-कुण्ड के समीप रहे, जो आज भी स्नान करने के सरोवर के रूप में विद्यमान है। बिल्वमंगल ठाकुर का जीवनचरित श्री वल्लभ-दिग्विजय नामक पुस्तक में दिया हुआ है। वे द्रविड प्रदेश में आठवीं सदी शक सम्वत् में उत्पन्न हुए और विष्णुस्वामी के प्रमुख शिष्य थे। द्वारका में शंकराचार्य के मठ में मन्दिरों तथा मठों की जो सूची मिलती है, उसमें बिल्वमंगल का नाम वहाँ के द्वारकाधीश मन्दिर के संस्थापक के रूप में उल्लिखित है। उन्होंने अपने अर्चाविग्रह की सेवा का भार वल्लभ भट्ट के शिष्य, हरि ब्रह्मचारी, को सौंपा था।

बिल्वमंगल ठाकुर ने वास्तव में भगवान् कृष्ण की लीलाओं में प्रवेश किया था। उन्होंने कृष्ण-कर्णामृत नामक पुस्तक में अपने दिव्य अनुभवों एवं उपलब्धियों का उल्लेख किया है। इस पुस्तक के प्रारम्भ में उन्होंने अपने विभिन्न गुरुओं को अपना नमस्कार अर्पित किया है और यह ध्यान देने की बात है कि उन्होंने सबकी समान रूप से वन्दना की है। उन्होंने जिस प्रथम गुरु का उल्लेख किया है, वह है चिन्तामणि, जो उनकी शिक्षा-गुरुओं में से एक थीं, क्योंकि उसने ही उन्हें सर्वप्रथम आध्यात्मिक मार्ग दिखलाया था। चिन्तामणि एक वेश्या थीं, जिनसे अपने प्रारम्भिक जीवन में बिल्वमंगल की घनिष्ठता थी। चिन्तामणि ने उन्हें भक्ति-पथ पर चलने की प्रेरणा दी थी। चूँकि उसने ही कृष्ण-प्रेम द्वारा सिद्धि के लिए प्रयास करने हेतु इस संसार को त्यागने के लिए बिल्वमंगल को प्रेरित किया था, इसीलिए बिल्वमंगल ठाकुर ने सर्वप्रथम उसे ही नमस्कार किया है। तत्पश्चात् वे अपने दीक्षा-गुरु सोमगिरि को नमस्कार करते हैं और उसके बाद पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को, क्योंकि वे भी उनके शिक्षा-गुरु थे। वे स्पष्ट रूप से मोरपंखों से युक्त मुकुट धारण करने

वाले भगवान् का उल्लेख करते हैं, क्योंकि वृन्दावन के स्वामी गोपकुमार कृष्ण बिल्वमंगल से बातचीत करने और उन्हें दूध देने आया करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण की इस स्तुति में वे वर्णन करते हैं कि जयश्री अर्थात् लक्ष्मी देवी, श्रीमती राधारानी दिव्य माधुर्य रस का आनन्द लेने के लिए उनके चरणकमलों की छाया में आश्रय लेती हैं। सम्पूर्ण कृष्ण-कर्णामृत ग्रन्थ श्रीकृष्ण तथा श्रीमती राधारानी की दिव्य लीलाओं को समर्पित है। यह ऐसी पुस्तक है, जिसे श्रीकृष्ण के सर्वोच्च उन्नत भक्तों को पढ़ना तथा समझना चाहिए।

जीवे साक्षात्नाहि ताते गुरु चैत्य-रूपे ।

शिक्षा-गुरु हय कृष्ण-महान्त-स्वरूपे ॥58॥

जीवे-जीव द्वारा; साक्षात्-सीधा अनुभव; नाहि-नहीं है; ताते–अतः; गुरु-गुरु; चैत्य-रूपे-परमात्मा के रूप में; शिक्षा-गुरु-शिक्षा गुरु जो शिक्षा देता है; हय-प्रतीत होता है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; महान्त-महानतम भक्त; स्व-रूपे–के रूप में।

अनुवाद

परमात्मा की उपस्थिति का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया जा सकता, अतएव वे हमारे समक्ष मुक्त भक्त के रूप में प्रकट होते हैं। ऐसा गुरु साक्षात् कृष्ण के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं होता।

तात्पर्य

बद्धजीव के लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से प्रत्यक्ष रीति से भेंट कर पाना सम्भव नहीं होता, किन्तु यदि वह निष्ठावान भक्त बन जाता है और गम्भीरतापूर्वक भक्ति करता है, तो भगवान् कृष्ण उस पर कृपा करने एवं उसमें भगवत्-सेवा की सुप्त प्रवृत्ति को जाग्रत करने के लिए शिक्षा-गुरु

भेजते हैं। यह उपदेशक उस भाग्यशाली बद्धजीव की बाह्य इन्द्रियों के समक्ष प्रकट होता है और साथ ही साथ वह भक्त भीतर से चैत्यगुरु कृष्ण द्वारा मार्ग-निर्देशन प्राप्त करता है, जो हर जीव के हृदय में गुरु-रूप में आसीन हैं।

ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ।

सन्त एवास्य छिन्दन्ति मनो-व्यासङ्गमुक्तिभिः ॥ 59॥

ततः-इसलिए; दुःसङ्गम्-बुरी संगति; उत्सृज्य-त्यागकर; सत्सु–भक्तों के साथ; सज्जेत–संगति करनी चाहिए; बुद्धिमान् बुद्धिमान व्यक्ति; सन्तः–भक्तगण; एव–निश्चित रूप से; अस्य–किसी का; छिन्दन्ति-काट देते हैं; मनः-व्यासङ्गम्--गलत आसक्तियाँ; उक्तिभिः–उनकी शिक्षा से।

अनुवाद

"अतएव बुरी संगति से दूर रहकर केवल भक्तों का संग करना चाहिए। अपने अनुभूत उपदेशों से ऐसे सन्तजन उस ग्रंथि को काट सकते हैं, जो व्यक्ति को भक्ति के प्रतिकूल कार्यों से जोड़ती है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.26.26) का है, जिसे भगवान् कृष्ण ने उद्धव से कहा था और जो उद्धवगीता के नाम से जाने जाने वाले श्लोकों के अन्तर्गत आता है। इस वार्ता का सम्बन्ध पुरूरवा तथा स्वर्गलोक की अप्सरा उर्वशी से है। जब उर्वशी ने पुरूरवा को त्याग दिया, तो वियोग के कारण पुरूरवा अत्यधिक दु:खी रहने लगा और उसे इस शोक पर विजय प्राप्त करना सीखना पड़ा।

यह संकेत किया गया है कि दिव्य विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि मनुष्य अवांछित व्यक्तियों की संगति से दूर रहे और सदैव ऐसे सन्तों तथा महात्माओं का संग करे,

जो दिव्य ज्ञान की शिक्षाएँ देने में समर्थ हों। ऐसे स्वरूप-सिद्ध भक्तों के शक्तिशाली शब्द हृदय को भेदकर वर्षों की अवांछित कुसंगति से संचित गलत धारणाओं को नष्ट कर देते हैं। नवदीक्षित भक्त के लिए दो प्रकार के व्यक्ति हैं, जिनका संग अवांछित है-(1) ऐसे निपट भौतिकतावादी जो सर्वदा इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते हैं तथा (2) ऐसे नास्तिक जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा नहीं करते, किन्तु अपनी इन्द्रियों तथा अपनी मानसिक सनकों की सेवा अपनी तार्किक आदतों के सन्दर्भ में करते हैं। जो बुद्धिमान व्यक्ति दिव्य साक्षात्कार की खोज में हैं, उन्हें अत्यन्त सतर्कतापूर्वक इनकी संगति से दूर रहना चाहिए।

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्घ-संविदो

भवन्ति हृत्कर्ण-रसायनाः कथाः ।

तज्जोषणादाश्वपवर्ग-वर्मनि

श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥ 60॥

सताम्-भक्तों की; प्रसङ्गात्-घनिष्ठ संगति से; मम-मेरा; वीर्य-संविदः-आध्यात्मिक शक्ति से पूर्ण वार्तालाप; भवन्ति–प्रतीत होते हैं; हृत्-हृदय को; कर्ण-और कानों को; रस-आयनाः-मधुरता का स्रोत; कथाः-कथाएँ; तत्-उनके; जोषणात्-उचित अनुशीलन से; आशुतुरन्त; अपवर्ग–मुक्ति के; वर्मनि-पथ पर; श्रद्धा-श्रद्धा; रतिः–आकर्षण; भक्तिः–प्रेमभक्ति; अनुक्रमिष्यति–एक दूसरे का अनुकरण करेगी।

अनुवाद

"केवल भक्तों की संगति में ही भगवान् के आध्यात्मिक शक्तिशाली सन्देश की ठीक से चर्चा की जा सकती है और इस संगति में उसका श्रवण अत्यन्त आनन्ददायक होता है। भक्तों से श्रवण करने पर दिव्य अनुभव का यह मार्ग तुरन्त खुल जाता है और धीरे-धीरे उस ज्ञान में मनुष्य की दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है, जो क्रमशः आकर्षण एवं भक्ति में परिणत हो जाती है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (3.25.25) में आया है, जहाँ कपिलदेव अपनी माता देवहूति द्वारा पूछे गये भक्ति की विधि विषयक प्रश्नों का उत्तर देते हैं। ज्यों-ज्यों कोई भक्ति-कार्यों में प्रगति करता जाता है, त्यों-त्यों यह विधि अधिकाधिक स्पष्ट एवं उत्साहजनक होती जाती है। जब तक मनुष्य को गुरु के उपदेशों के पालन से यह आध्यात्मिक उत्साह प्राप्त नहीं हो पाता, तब तक प्रगति करना सम्भव नहीं होता। अतएव इन उपदेशों के पालन के लिए रुचि का विकास होना, वही किसी की भक्ति की परीक्षा है। प्रारम्भ में योग्य गुरु से भक्ति विज्ञान के श्रवण द्वारा विश्वास उत्पन्न करना चाहिए। तत्पश्चात् जैसे-जैसे वह भक्तों की संगति करता है और गुरु की शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारने की चेष्टा करता है, वैसे-वैसे भक्ति सम्पन्न करने के कारण उसके सारी गलत धारणाएँ तथा अन्य अवरोध दूर हो जाते हैं। जैसे-जैसे वह भगवान् के सन्देशों को श्रवण करता रहता है, वैसे-वैसे भगवान् की दिव्य सेवा के प्रति प्रबल अनुराग उत्पन्न होता रहता है और यदि वह इस प्रकार दृढ़-भाव से आगे बढ़ता है, तो उसे निश्चित रूप से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का रागानुग (स्वतःस्फूर्त) प्रेम प्राप्त होता है।

ईश्वर-स्वरूप भक्त ताँर अधिष्ठान।

भक्तेर हृदये कृष्णेर सतत विश्राम ॥61॥

ईश्वर–ईश्वर; स्वरूप-वैसा ही रूप; भक्त-भक्त; ताँर–उनका; अधिष्ठान–निवास; भक्तेर–भक्त के; हृदये-हृदय में; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; सतत-सदा; विश्राम-विश्राम।

अनुवाद

भगवान् की प्रेमाभक्ति में निरन्तर संलग्न रहने वाला शुद्ध भक्त भगवान् के समान ही होता है, जो सदैव उसके हृदय में आसीन रहते हैं।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अद्वय हैं, अतएव वे सर्वशक्तिमान हैं। उनकी अचिन्त्य शक्तियों में तीन प्रधान शक्तियाँ हैं। भक्त इन शक्तियों में से एक माना जाता है, वह कभी शक्तिमान नहीं माना जाता। शक्तिमान तो सदैव भगवान् होते हैं। ये शक्तियाँ शाश्वत सेवा के निमित्त ही उनसे सम्बन्धित होती हैं। बद्ध-अवस्था में जीव कृष्ण तथा गुरु की कृपा से परम सत्य की सेवा करने की अपनी मनोवृत्ति को जाग्रत कर सकता है। तब भगवान् उसके हृदय में स्वयं को प्रकट करते हैं और तब वह जान सकता है कि कृष्ण हर शुद्ध भक्त के हृदय में आसीन हैं। वस्तुतः कृष्ण प्रत्येक जीव के हृदय में विराजमान हैं, किन्तु केवल भक्त ही इस तथ्य की अनुभूति कर सकता है।

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।

मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥ 62॥

साधवः–साधुगण; हृदयम्-हृदय; मह्यम्-मेरे; साधूनाम् साधुओं का; हृदयम्-हृदय; तु–निस्सन्देह; अहम्-मैं; मत्-मेरी अपेक्षा; अन्यत्-अन्य; ते-वे; न-नहीं; जानन्ति–जानते हैं; न-नहीं; अहम्-मैं; तेभ्यः-उनकी अपेक्षा; मनाक्-थोड़ा सा; अपि-भी।

अनुवाद

"सन्त तो मेरे हृदय हैं और एकमात्र मैं ही उनका हृदय हूँ। वे मेरे अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानते, इसलिए मैं उनके अतिरिक्त अन्य किसी को अपना नहीं मानता।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (9.4.68) में दुर्वासा मुनि तथा महाराज अम्बरीष के बीच उत्पन्न हुई गलतफहमी के प्रसंग में आया है। इस गलतफहमी के कारण दुर्वासा मुनि ने राजा को मारने का प्रयास किया। तभी भगवान् का सुप्रसिद्ध अस्त्र सुदर्शन चक्र भक्त राजा की रक्षा के लिए घटनास्थल पर प्रकट हुआ। जब सुदर्शन चक्र ने दुर्वासा मुनि पर आक्रमण किया, तो वे इस अस्त्र के भय से भागे और स्वर्ग के सारे बड़े बड़े देवताओं की शरण माँगने पहुँचे। उनमें से कोई भी उनकी रक्षा करने में समर्थ न हो सका, अतएव दुर्वासा मुनि ने भगवान् विष्णु से क्षमा याचना की। किन्तु भगवान् विष्णु ने उन्हें परामर्श दिया कि यदि वे क्षमा चाहते हैं, तो उनसे नहीं, अपितु महाराज अम्बरीष से क्षमा पा सकते हैं। इस सन्दर्भ में भगवान् विष्णु ने यह श्लोक कहा था। भगवान् परिपूर्ण एवं सभी समस्याओं से मुक्त होने के कारण अपने भक्तों की प्राणपण से रक्षा करते हैं। उनकी एकमात्र चिन्ता यही रहती है कि अपने चरणों में शरण लेने वालों को वे कैसे ऊपर उठायें और उनकी रक्षा करें। यही दायित्व गुरु को भी सौंपा जाता है। प्रामाणिक गुरु की चिन्ता यही रहती है कि जिन भक्तों ने उन्हें भगवान् का प्रतिनिधि मानकर उनकी शरण ग्रहण की है, वे किस तरह भक्ति में अग्रसर हों। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को अपने उन भक्तों का सदैव ध्यान रहता है, जो उनके चरणकमलों की शरण में आकर उनसे सम्बन्धित ज्ञान के अनुशीलन में पूरी तरह व्यस्त रहते हैं।

भवद्विधा भागवतास्तीर्थ-भूताः स्वयं विभो ।

तीर्थी-कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः-स्थेन गदा-भृता ॥63 ॥

भवत्-आप; विधाः-की भाँति; भागवताः-भक्तगण; तीर्थ-तीर्थस्थान; भूताः-वर्तमान; स्वयम्-स्वयं; विभो-हे सर्वशक्तिमान; तीर्थी-कुर्वन्ति–तीर्थस्थान बनाते हैं;

तीर्थानि–तीर्थस्थान को; स्व-अन्तः-स्थेन-उनके हृदयों में रहकर; गदा-भृता-भगवान् के द्वारा।

अनुवाद

"आपके समान सन्त स्वयं तीर्थस्थान होते हैं। अपनी पवित्रता के कारण, वे भगवान् के नित्य संगी होते हैं; अतः वे तीर्थस्थानों को भी पावन बना सकते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.13.10) में महाराज युधिष्ठिर द्वारा विदुर से कहा गया है। महाराज युधिष्ठिर अपने सन्तस्वरूप चाचा का, जो तीर्थस्थानों की यात्रा कर रहे थे, इस तरह स्वागत करते हैं। महाराज युधिष्ठिर ने उनसे कहा कि उन जैसे शुद्ध भक्त तो स्वयं मूर्तिमान तीर्थस्थान हैं, क्योंकि उनके हृदयों में सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का वास रहता है। उनकी संगति से पापी पुरुष अपने पापफलों से मुक्त हो जाते हैं; इसलिए जहाँ-जहाँ शुद्ध भक्त जाता है, वही तीर्थस्थान बन जाता है। तीर्थ स्थानों का महत्त्व ऐसे शुद्ध भक्तों की उपस्थिति के कारण ही होता है।

सेइ भक्त-गण हय द्वि-विध प्रकार।

पारिषद्गण एक, साधक-गण आर ॥64॥

सेइ–इन; भक्त-गण-भक्तगण; हय-हैं; द्वि-विध-दो; प्रकार-प्रकार; पारिषत्-गण-वास्तविक भक्त; एक-एक; साधक-गण-भावी भक्त; आर-अन्य।

अनुवाद

ऐसे शुद्ध भक्त दो प्रकार के होते हैं–निजी संगी (पारिषत्) तथा नवदीक्षित भक्त (साधकगण)।

तात्पर्य

भगवान् के शुद्ध सेवक उनके निजी संगी माने जाते हैं, जबकि पूर्णता प्राप्त करने के लिए प्रयासरत भक्त नवदीक्षित (साधक) कहे जाते हैं। संगियों में से कुछ तो भगवान् के ऐश्वर्य के प्रति आकृष्ट रहते हैं और कुछ भगवान् के माधुर्य-प्रेम के प्रति आकृष्ट रहते हैं। पहले प्रकार के भक्त वैकुण्ठ लोक में ऐश्वर्ययुक्त भक्ति करते हैं, जबकि दूसरे प्रकार के भक्तों को वृन्दावन में स्थान दिया जाता है, जहाँ वे श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष सेवा कर सकें।

ईश्वरेर अवतार ए-तिन प्रकार।

अंश-अवतार, आर गुण-अवतार ॥65॥

शक्त्यावेश-अवतार तृतीय ए-मत।

अंश-अवतार–पुरुष-मत्स्यादिक ग्रत ॥66॥

ईश्वरेर-भगवान् के; अवतार–अवतार; ए-तिन-ये तीन प्रकार-प्रकार; अंश-अवतार-अंश अवतार; आर—तथा; गुण-अवतार-गुणावतार; शक्ति-आवेश-अवतार-शक्त्याविष्ट अवतार;

तृतीय-तीसरा; ए-मत-इस तरह; अंश-अवतार-अंशावतार; पुरुष–तीन पुरुषावतार; मत्स्य-मत्स्य अवतार; आदिक–इत्यादि; यत-सभी।

अनुवाद

ईश्वर के अवतारों के तीन वर्ग हैं-अंशावतार, गुणावतार तथा शक्त्यावेश अवतार। पुरुष तथा मत्स्य अवतार अंशावतारों के उदाहरण हैं।

ब्रह्मा विष्णु शिव–तिन गुणावतारे गणि ।

शक्त्यावेश—सनकादि, पृथु, व्यास-मुनि ॥67॥

ब्रह्मा-ब्रह्माजी; विष्णु-भगवान् विष्णु; शिव-शिवजी; तिन-तीन; गुण-अवतारे-भौतिक प्रकृति के तीन गुणों को नियन्त्रित करने वाले अवतारों में; गणि-मैं गिनता हूँ; शक्ति-आवेश-शक्त्याविष्ट अवतार; सनक-आदि-चार कुमार; पृथु-राजा पृथु; व्यास-मुनि-व्यासदेव।

अनुवाद

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव गुणावतार हैं। शक्त्यावेश अवतार हैं-कुमारगण, राजा पृथु तथा महामुनि व्यास (जिन्होंने वेदों का संकलन किया)।

दुइ-रूपे हय भगवानेर प्रकाश ।

एके त’ प्रकाश हय, आरे त’ विलास ॥ 68 ॥

दुइ-रूपे-दो रूपों में; हय-हैं; भगवानेर-भगवान् के; प्रकाश-प्राकट्य; एके-एक में; त’–निश्चय ही; प्रकाश-प्राकट्य; हय-है; आरे-अन्य में; त’-निश्चय ही;

विलास-लीलाओं में रत।

अनुवाद

भगवान् अपने आपको दो रूपों में प्रकट करते हैं-प्रकाश तथा विलास।

तात्पर्य

भगवान् अपने व्यक्तिगत साकार रूपों को दो मुख्य वर्गों में प्रकट करते हैं। प्रकाश रूप भगवान् कृष्ण द्वारा अपनी लीलाओं के लिए प्रकट किये जाते हैं और इनके रूप उन्हीं के समान होते हैं। जब भगवान् ने द्वारका में सोलह हजार रानियों से विवाह किया, तो उन्होंने सोलह हजार प्रकाश विस्तारों द्वारा ऐसा किया। इसी तरह रासनृत्य के समय प्रत्येक गोपी के निकट एकसाथ नृत्य करने के लिए उन्होंने एक जैसे प्रकाश रूपों में अपना विस्तार किया। किन्तु जब भगवान् अपने विलास रूपों को प्रकट करते हैं, तो वे सब उनके शारीरिक रूप से कुछ न कुछ भिन्न होते हैं। बलरामजी भगवान् कृष्ण के प्रथम विलास रूप हैं और वैकुण्ठ में चतुर्भुज नारायण रूप बलराम के विस्तार हैं। श्रीकृष्ण तथा बलराम के शरीरों में केवल इतना ही अन्तर है कि उनके शरीर के रंग भिन्न हैं। इसी प्रकार वैकुण्ठ में श्री नारायण के चार हाथ हैं, जबकि कृष्ण के केवल दो हाथ हैं। भगवान् के जिन विस्तारों में ऐसे शारीरिक अन्तर प्रकट होते हैं, वे विलास-विग्रह कहलाते हैं।

एकइ विग्रह यदि हय बहु-रूप ।

आकारे त' भेद नाहि, एक स्वरूप ॥ 69॥

महिषी-विवाहे, यैछे यैछे कैल रास ।

इहाके कहिये कृष्णेर मुख्य 'प्रकाश' ॥ 70 ॥

एकइ-वही एक; विग्रह-विग्रह; यदि यदि; हय-होते हैं; बहु-रूप-बहु रूप; आकारे-आकार में; त'–निश्चित रूप से; भेद-भेद; नाहि-नहीं है; एक-एक; स्वरूप-स्वरूप; महिषी-द्वारका की रानियों के साथ; विवाहे-विवाह में; छे यैछे-एक ही प्रकार से; कैल-उन्होंने किया; रास–रास नृत्य; इहाके–यह; कहिये-मैं कहता हूँ; कृष्णेर-कृष्ण के; मुख्य–मुख्य; प्रकाश-प्रकाश विग्रह।

अनुवाद

जब भगवान् स्वयं को अनेक रूपों में विस्तारित करते हैं, जो अपने अपने स्वरूपों में अभिन्न होते हैं, जैसाकि भगवान् कृष्ण ने सोलह हजार रानियों के साथ विवाह करते समय तथा रासनृत्य करते समय किया था, तब भगवान् के ऐसे रूप मुख्य प्रकाश (प्रकाश-विग्रह) कहलाते हैं।

चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत्पृथक् ।

गृहेषु यष्ट-साहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥79॥

चित्रम्-विचित्र; बत-ओह; एतत्-यह; एकेन–एक के साथ; वपुषा–रूप; युगपत् एक साथ; पृथक्-अलग; गृहेषु-घरों में; द्वि-अष्ट-साहस्रम्-सोलह हजार; स्त्रियः-सभी रानियाँ; एकः-एक ही कृष्ण; उदावहत्-विवाह किया।

अनुवाद

"यह अद्भुत लगता है कि अद्वय श्रीकृष्ण ने सोलह हजार रानियों से उनके अपने अपने घरों में विवाह करने के लिए अपने आपको सोलह हजार एकसमान रूपों में विस्तारित कर लिया।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.69.2) का है।

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपी-मण्डल-मण्डितः ।

योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ॥72॥

रास-उत्सवः–रासोत्सव; सम्प्रवृत्तः–आरम्भ किया गया; गोपी-मण्डल-गोपी-समूहों से; मण्डितः-सुसज्जित; योग-ईश्वरेण-सभी योग शक्तियों के स्वामी से; कृष्णेन-भगवान् कृष्ण से; तासाम्-उनका; मध्ये-मध्य में; द्वयोः द्वयोः–प्रत्येक दो के।

अनुवाद

"जब गोपियों के समूहों से घिरकर भगवान् कृष्ण ने रासनृत्य का उत्सव प्रारम्भ किया, तो समस्त योग शक्तियों के स्वामी ने अपने आपको प्रत्येक दो-दो गोपियों के बीच में स्थापित किया।"

तात्पर्य

यह श्लोक भी श्रीमद्भागवत (10.33.3) से लिया गया है।

प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्व-निकटं स्त्रियः ।

यं मन्येरन्नभस्तावद्विमान-शत-सङ्कलम् ॥73॥

दिवौकसां स-दाराणामत्यौत्सुक्य-भृतात्मनाम् ।

ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्प-वृष्टयः ॥74॥

प्रविष्टेन-प्रविष्ट होने पर; गृहीतानाम्-आलिंगन करने वालों काः कण्ठे-गले पर; स्व-निकटम्-अपनी ओर स्थित; स्त्रियः-गोपियाँ; यम्-जिसको; मन्येरन् सोचती भी; नभः-आकाश; तावत्-एकदम; विमान–विमानों के; शत-सैंकड़ों; सङ्कलम्-इकट्ठे होकर; दिव-ओकसाम्-देवताओं के;

स-दाराणाम्-अपनी पत्नियों के साथ; अति-औत्सुक्य-उत्सुकता सहित; भृत-आत्मनाम्-जिनके मन भरे थे; ततः-तब; दुन्दुभयः-दुन्दुभियाँ; नेदुः–बजाई; निपेतुः-गिरे; पुष्प-वृष्टयः-फूलों की वर्षा।

अनुवाद

"इस प्रकार जब गोपियाँ तथा कृष्ण परस्पर मिल गये, तो हर गोपी ने यही सोचा कि कृष्ण केवल उसका ही प्रगाढ़ आलिंगन कर रहे हैं। भगवान् की इस अद्भुत लीला को देखने के लिए स्वर्ग के देवता तथा उनकी पलियाँ, जो कि रासनृत्य देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे, अपने सैंकड़ों विमानों में आकाश में उड़ने लगे। उन्होंने फूलों की वर्षा की और वे मधुर ताल से दुन्दुभियाँ बजाने लगे।"

तात्पर्य

यह श्लोक भी श्रीमद्भागवत (10.33.3-4) से लिया गया है।

अनेकत्र प्रकटता रूपस्यैकस्य यैकदा ।

सर्वथा तत्स्वरूपैव स प्रकाश इतीर्यते ॥75॥

अनेकत्र–अनेक स्थानों पर; प्रकटता-प्राकट्य; रूपस्य-रूप का; एकस्य-एक की; या–जो; एकदा-एक समय; सर्वथा-सर्वथा; तत्-उनका; स्वरूप-स्वरूप; एव-निश्चित रूप से; सः-वह; प्रकाशः-प्रकट रूप; इति-इस प्रकार; ईर्यते-कहलाता है।

अनुवाद

यदि समान लक्षण वाले अनेक रूप एकसाथ प्रदर्शित हों, तो ऐसे रूप भगवान् के प्रकाश-विग्रह कहलाते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी द्वारा संकलित लघु भागवतामृत (1.21) से लिया गया है।

एकइ विग्रह किन्तु आकारे हय आन।

अनेक प्रकाश हय, विलास' तार नाम ॥ 76 ॥

एकइ-एक; विग्रह-रूप; किन्तु–किन्तु; आकारे-आकार में; हय-है; आन-भिन्न; अनेक-अनेक; प्रकाश-प्राकट्य; हय-प्रकट होते हैं; विलास-विलास रूप; तार-उसका; नाम-नाम।

अनुवाद

किन्तु जब अनेक रूप एक-दूसरे से कुछ-कुछ भिन्न होते हैं, तो वे विलास-विग्रह कहलाते हैं।

स्वरूपमन्याकारं यत्तस्य भाति विलासतः।

प्रायेणात्म-समं शक्त्या स विलासो निगद्यते ॥ 77॥

स्वरूपम्-भगवान् का निजी रूप; अन्य-अन्य; आकारम् शरीर के लक्षण; यत्-जो; तस्य-उनका; भाति-प्रतीत होता है; विलासतः-विशिष्ट लीलाओं से; प्रायेन-लगभग; आत्म-समम्-अपने जैसी; शक्त्या -उनकी शक्ति से; सः-वह; विलासः-विलास (लीला) रूप; निगद्यते-कहलाता है।

अनुवाद

"जब भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्ति से विभिन्न आकारों में अपने अनेक रूप दिखलाते हैं, तो ऐसे रूपों को विलास-विग्रह कहते हैं।"

तात्पर्य

यह भी लघु भागवतामृत (1.15) का एक अन्य श्लोक है।

यैछे बलदेव, परव्योमे नारायण।

यैछे वासुदेव प्रद्युम्नादि सङ्कर्षण ॥78॥

यैछे-जैसे; बलदेव-बलदेव; पर-व्योमे-परव्योम में; नारायण-भगवान् नारायण; यैछे-जैसे; वासुदेव-वासुदेव; प्रद्युम्न-आदि-प्रद्युम्न आदि; सङ्कर्षण-संकर्षण।

अनुवाद

ऐसे विलास-विग्रहों के उदाहरण हैं बलदेव, वैकुण्ठधाम में नारायण तथा चतुर्व्यह अर्थात् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध।

ईश्वरेर शक्ति हय ए-तिन प्रकार।

एक लक्ष्मी-गण, पुरे महिषी-गण आर ॥79॥

व्रजे गोपी-गण आर सभाते प्रधान।

व्रजेन्द्र-नन्दन या'ते स्वयं भगवान् ॥80॥

ईश्वरेर–भगवान् की; शक्ति-शक्ति; हय-है; ए-तिन-ये तीन; प्रकार-प्रकार की; एक-एक; लक्ष्मी-गण-वैकुण्ठ में लक्ष्मियाँ; पुरे-द्वारका में; महिषी-गण-रानियाँ: आर-तथा; व्रजे-वृन्दावन में; गोपी-गण-गोपियाँ; आर-और; सभाते-उन सब में; प्रधान मुख्य, प्रधान; व्रज-इन्द्र-नन्दन-व्रजराज के पुत्र कृष्ण; या'ते-क्योंकि; स्वयम्-स्वयं; भगवान्-आदि भगवान्।

अनुवाद

भगवान् की शक्तियाँ (लीला संगिनियाँ) तीन प्रकार की हैं-वैकुण्ठ में लक्ष्मियाँ, द्वारका में रानियाँ तथा वृन्दावन में गोपियाँ। इन सबमें गोपियाँ सर्वश्रेष्ठ हैं, क्योंकि उन सबको व्रजराज के पुत्र, आदि भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त है।

स्वयं-रूप कृष्णेर काय-व्यूह ताँर सम ।

भक्त सहिते हय ताँहार आवरण ॥81॥

स्वयम्-रूप-उनका अपना मौलिक रूप (द्विभुजधारी कृष्ण); कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; काय-व्यूह–निजी विस्तार; ताँर-उनके साथ; सम-बराबर; भक्त-भक्तगण; सहिते-उनके संग; हय हैं; ताँहार-उनके; आवरण-आवरण।

अनुवाद

आदि भगवान् श्रीकृष्ण के निजी संगी उनके भक्तगण हैं, जो उनसे एकरूप हैं। वे अपने भक्तों के समूह (परिकर) के साथ पूर्ण हैं।

तात्पर्य

श्रीकृष्ण तथा उनके विविध स्वरूप विस्तार शक्ति में अभिन्न हैं। ये स्वरूप विस्तार अन्य गौण विस्तारों या सेवक विस्तारों से सम्बन्धित हैं, जो भक्त कहलाते हैं।

भक्त आदि क्रमे कैल सबार वन्दन ।

ए-सबार वन्दन सर्व-शुभेर कारण ॥82॥

भक्त-भक्तगण; आदि-आदि; क्रमे-क्रम के अनुसार; कैल–किया; सबार-मण्डली की; वन्दन-वन्दना; ए-सबार-इस सभी की; वन्दन-वन्दना; सर्व-शुभेर-सभी सौभाग्य; कारण-स्रोत, कारण।

अनुवाद

अब मैंने विविध स्तरों के सभी भक्तों की पूजा कर ली है। इनकी पूजा समस्त सौभाग्य का स्रोत है।

तात्पर्य

भगवान् की प्रार्थना करने के लिए मनुष्य को सर्वप्रथम उनके भक्तों तथा संगियों (पार्षदों) की प्रार्थना करनी चाहिए।

प्रथम श्लोके कहि सामान्य मङ्गलाचरण ।

द्वितीय श्लोकेते करि विशेष वन्दन ॥83॥

प्रथम-प्रथम; श्लोके–श्लोक में; कहि-मैं कहता हूँ; सामान्य सामान्य; मङ्गल-आचरण-मंगल-अर्चना; द्वितीय-दूसरे; श्लोकेत-श्लोक में; करि-मैं करता हूँ; विशेष-विशेष; वन्दन-प्रार्थना।

अनुवाद

पहले श्लोक में मैंने सामान्य आशीर्वाद का आवाहन किया है, किन्तु दूसरे श्लोक में मैंने भगवान् से एक विशेष रूप में प्रार्थना की है।

वन्दे श्री-कृष्ण-चैतन्य-नित्यानन्दौ सहोदितौ ।

गौड़ोदये पुष्पवन्तौ चित्रौ शन्दौ तमो-नुदौ ॥84॥

वन्दे-मैं सादर प्रणाम करता हूँ; श्री-कृष्ण-चैतन्य-भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य को; नित्यानन्दौ–और प्रभु नित्यानन्द को; सह-उदितौ–एक साथ उदित हुए; गौड़-उदये-गौड़ देश के पूर्वी क्षितिज में; पुष्पवन्तौ–सूर्य एवं चन्द्र एक साथ; चित्रौ–आश्चर्यजनक; शम्-दौ-आशीर्वाद देते हुए; तमः-नुदौ-अन्धकार को मिटाते हुए।

अनुवाद

"मैं श्रीकृष्ण चैतन्य तथा नित्यानन्द प्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जो सूर्य तथा चन्द्रमा के समान हैं। वे एक ही साथ गौड़ के क्षितिज पर अज्ञान का अन्धकार दूर करने तथा सबको अद्भुत आशीर्वाद प्रदान करने के लिए उदित हुए हैं।"

व्रजे ग्ने विहरे पूर्वे कृष्ण-बलराम ।

कोटी-सूर्य-चन्द्र जिनि दोंहार निज-धाम ॥85॥

सेइ दुइ जगतेरे हइया सदय ।

गौड़देशे पूर्व-शैले करिला उदय ॥86॥

व्रजे-व्रज (वृन्दावन) में; ये-जो; विहरे-क्रीड़ा करते थे; पूर्वे-पहले; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; बलराम-भगवान् बलराम; कोटी-कोटि; सूर्य-सूर्य, चन्द्र–चन्द्र; जिनि-से अधिक; दोंहार-दोनों का; निज-धाम-ज्योति, प्रकाश; सेइ-इन; दुइ-दोनों; जगतेरे–ब्रह्माण्ड के लिए; हइया-होकर; सदय-दयालु; गौड़-देशे-गौड़ प्रदेश में; पूर्व-शैले–पूर्व क्षितिज पर; करिला-किया; उदय-उदय हुए।

अनुवाद

श्रीकृष्ण तथा बलराम, जो भगवान् हैं और पहले वृन्दावन में प्रकट हुए थे तथा सूर्य और चन्द्रमा से करोड़ों गुना अधिक तेजवान थे, अब विश्व की पतित अवस्था देखकर अनुकम्पावश गौड़देश (पश्चिमी बंगाल) के पूर्वी क्षितिज पर उदित हुए हैं।

श्री-कृष्ण-चैतन्य आर प्रभु नित्यानन्द ।

याँहार प्रकाशे सर्व जगतानन्द ॥ 87॥

श्री कृष्ण-चैतन्य–भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य; आर—तथा; प्रभु नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; याँहार–जिनके; प्रकाशे-प्राकट्य पर; सर्व-सभी; जगत्-जगत्; आनन्द-आनन्द से पूर्ण।

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य तथा प्रभु नित्यानन्द के आविर्भाव ने विश्व को आनन्द से परिपूरित कर दिया है।

सूर्य-चन्द्र हरे यैछे सब अन्धकार ।

वस्तु प्रकाशिया करे धर्मेर प्रचार ॥88॥

एइ मत दुइ भाइ जीवेर अज्ञान- ।

तमो-नाश करि' कैल तत्त्व-वस्तु-दान ॥89॥

सूर्य-चन्द्र-सूर्य तथा चन्द्र; हरे-हर लेते हैं; यैछे-जैसे; सब-सारा; अन्धकार-अन्धकार; वस्तु–सत्य; प्रकाशिया-प्रकट करते हुए; करे-करते हैं; धर्मेर-धर्म के, स्वजात प्रकृति के प्रचार-प्रचार करते

हुए; एइ मत-इस प्रकार; दुइ-दोनों; भाइ–भाई; जीवेर-जीव के; अज्ञान-अज्ञान का; तमः-अन्धकार का; नाश-विनाश; करि'-करते हुए; कैल-किया; तत्त्व-वस्तु-परम सत्य का; दान-दान।

अनुवाद

जिस प्रकार सूर्य तथा चन्द्रमा उदय होकर अंधकार को दूर कर देते हैं और हर वस्तु की प्रकृति को प्रकट कर देते हैं, उसी तरह ये दोनों भाई जीवों के अज्ञान के अन्धकार को दूर करते हैं और उन्हें परम सत्य के ज्ञान से प्रकाशित करते हैं।

अज्ञान-तमेर नाम कहिये कैतव ।

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-वाञ्छा आदि सब ॥90॥

अज्ञान-तमेर-अज्ञान का अन्धकार; नाम-नाम; कहिये-मैं कहता हूँ; कैतव-धोखा देने की प्रक्रिया; धर्म-धार्मिकता; अर्थ-आर्थिक विकास; काम-इन्द्रियतृप्ति; मोक्ष-मोक्ष; वाञ्छा-की इच्छा के लिए; आदि-आदि; सब-सब।

अनुवाद

अज्ञान का अंधकार कैतव अर्थात् छल कहलाता है, जो धार्मिकता, आर्थिक विकास, इन्द्रियतृप्ति तथा मुक्ति के साथ प्रारम्भ होता है।

धर्मः प्रोज्झित-कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां

वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिव-दं ताप-त्रयोन्मूलनम् ।

श्रीमद्भागवते महा-मुनि-कृते किं वा परैरीश्वरः

सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥91॥

धर्मः-धर्म; प्रोज्झित–पूर्णतः तिरस्कृत; कैतवः-जिसमें फल की इच्छा; अत्र-इसमें; परमः-परम; निर्मत्सराणाम्-शत प्रतिशत पवित्र हृदय वालों का; सताम्-भक्तों का; वेद्यम्-समझना चाहिए; वास्तवम्-वास्तविक; अत्र-यहाँ, इसमें; वस्तु-वस्तु; शिव-दम्-शुभ करते हुए; ताप-त्रय–त्रिताप; उन्मूलनम् नष्ट करना; श्रीमत् सुन्दर; भागवते-भागवत् पुराण में; महा-मुनि-महामुनि (व्यासदेव) द्वारा; कृते-संकलित किया; किम्-क्या; वा-निस्सन्देह; परैः-अन्यों के साथ; ईश्वरः-ईश्वर; सद्यः-तत्काल; हृदि-हृदय में; अवरुध्यते-स्थित हो जाता है; अत्र-यहाँ; कृतिभिः-पुण्यात्माओं द्वारा; शुश्रूषुभिः–सुनने की इच्छा वाले; तत्-क्षणात्-तत्क्षण।

अनुवाद

"महामुनि व्यासदेव द्वारा चार मूल श्लोकों से संकलित महान् शास्त्र श्रीमद्भागवत अत्यन्त उन्नत एवं दयालु भक्तों का वर्णन करता है और भौतिकता से प्रेरित धार्मिकता की प्रवंचना की विधियों को पूरी तरह बहिष्कृत करता है। यह शाश्वत धर्म के सर्वोच्च सिद्धान्त को प्रतिपादित करता है, जो जीव के तीन प्रकार के तापों को वास्तव में कम करने वाला और पूर्ण सम्पन्नता तथा ज्ञान का सर्वोच्च आशीष प्रदान करने वाला है। जो लोग विनीत सेवाभाव से इस शास्त्र के सन्देश को सुनने के इच्छुक हैं, वे तुरन्त ही भगवान् को अपने हृदयों में बन्दी बना सकते हैं। अतएव श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्य किसी शास्त्र की आवश्यकता नहीं रह जाती।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.1.2) में आया है। महामुनिकृते शब्दों से यह सूचित होता है कि श्रीमद्भागवत का संकलन महर्षि व्यासदेव द्वारा हुआ है, जो कभी-कभी नारायण महामुनि के नाम

से जाने जाते हैं, क्योंकि वे नारायण के अवतार हैं। अतएव व्यासदेव कोई सामान्य पुरुष नहीं हैं, अपितु वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शक्त्यावेश अवतार हैं। उन्होंने सुन्दर भागवत का संकलन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके भक्तों की कुछ लीलाओं का वर्णन करने के लिए किया।

श्रीमद्भागवत में वास्तविक धर्म तथा कैतव धर्म में स्पष्ट अन्तर किया गया है। वेदान्त-सूत्र पर इस मौलिक तथा प्रामाणिक भाष्य के अनुसार ऐसे अनेक अपसम्प्रदाय हैं, जो धर्म के नाम से चलते हैं, किन्तु वे धर्म के वास्तविक सार-तत्त्व की उपेक्षा करते हैं। जीव का वास्तविक धर्म उसका स्वाभाविक अन्तर्निहित गुण है, जबकि कैतव धर्म अविद्या का ऐसा रूप है, जो कुछ प्रतिकूल दशाओं के अन्तर्गत जीव की शुद्ध चेतना को कृत्रिम रूप से ढक देता है। जब कृत्रिम धर्म मन पर नियंत्रण कर लेता है तो वास्तविक धर्म निष्क्रिय हो जाता है। जीव शुद्ध मन से श्रवण करके इस सुप्त धर्म को पुन: जाग्रत कर सकता है।

श्रीमद्भागवत द्वारा संस्तुत धर्म का पथ अपूर्ण धार्मिकता के समस्त रूपों से भिन्न है। धर्म के विषय में निम्नलिखित तीन विभागों के अन्तर्गत विचार किया जा सकता है : (1) सकाम कर्म का पथ (2) ज्ञान तथा योग शक्तियों का पथ (3) पूजा तथा भक्ति का पथ।

सकाम कर्म का पथ (कर्मकाण्ड) भले ही मनुष्य की भौतिक दशा को ऊपर उठाने के निमित्त धार्मिक अनुष्ठानों से अलंकृत क्यों न हो, वह प्रवंचना (ठगी) है, क्योंकि यह मनुष्य को कभी भी भौतिक अस्तित्व से मुक्ति दिलाने में और सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त कराने में सक्षम नहीं बना सकता। जीव भौतिक अस्तित्व के कष्टों से मुक्ति पाने के लिए निरन्तर संघर्ष करता है; किन्तु सकाम कर्म का पथ (कर्मकाण्ड) उसे भौतिक संसार के क्षणिक सुख-दुःख की ओर ले जाता है। सकाम पुण्यकर्म से मनुष्य ऐसे पद को प्राप्त होता है, जहाँ उसे क्षणिक भौतिक सुख का अनुभव होता है, किन्तु पापकर्म उसे भौतिक इच्छाओं तथा अभाव की कष्टमय स्थिति की ओर ले जाते हैं। यदि मनुष्य को

भौतिक सुख की पूर्णतम स्थिति में भी रख दिया जाये, तो भी वह जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा रोग के कष्टों से मुक्त नहीं हो सकता। अतएव भौतिक दृष्टि से सुखी व्यक्ति को उस शाश्वत सुख की आवश्यकता रहती है, जो सकाम कर्म के रूप में भौतिक धार्मिकता से कभी भी नहीं मिल सकती।

ज्ञान के अनुशीलन का मार्ग (ज्ञानमार्ग) तथा योग शक्तियों का मार्ग (योगमार्ग) समान रूप से संकटपूर्ण हैं, क्योंकि मनुष्य को यह पता नहीं चल पाता कि इन अनिश्चित मार्गों का अनुसरण करने पर कोई कहाँ जायेगा। एक आरोहपंथी दार्शनिक आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में भले ही अनेकानेक जन्मों तक मानसिक तर्कवितर्क क्यों न करता रहे, किन्तु जब तक वह सत्त्वगुण की शुद्धतम अवस्था को प्राप्त नहीं कर लेता–अर्थात् जब तक वह भौतिक तर्कवितर्क के धरातल से ऊपर नहीं उठ जाता, तब तक वह यह नहीं जान पाता कि हर वस्तु भगवान् वासुदेव से उद्भूत होती है। भगवान् के निर्विशेष पहलू से आसक्ति होने के कारण वह वासुदेव-ज्ञान की दिव्य अवस्था तक ऊपर नहीं उठ पाता और अपने मन की अशुद्ध दशा के कारण वह मुक्ति की उच्चतम अवस्था तक पहुँचने पर भी पुनः भवसागर में आ गिरता है। उसका यह अध:पतन भगवान् की सेवा में स्थिरता न होने के कारण होता है।

जहाँ तक योगियों की योगशक्तियों का सम्बन्ध है, ये भी आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में भौतिक बाधाएँ ही हैं। एक जर्मन विद्वान, जो भारत में आकर ईश्वर-भक्त हो गया था, उसने कहा है कि भौतिक विज्ञान ने पहले ही प्रशंसनीय प्रगति कर ली है, जिससे वह योगियों की योगशक्तियों की नकल कर सकता है। अतएव वह योगियों की योगशक्तियाँ सीखने के लिए भारत नहीं आया है, अपितु वह भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा का मार्ग सीखने आया है, जिसका उल्लेख महान् शास्त्र श्रीमद्भागवत में किया गया है। योगशक्तियों से योगी भौतिक दृष्टि से शक्तिशाली बन सकता है और इस प्रकार अन्य भौतिक विज्ञानों की तरह वे जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग के दु:खों से क्षणिक छुटकारा

दिला सकती हैं, किन्तु ऐसी योगशक्तियाँ इन कष्टों से कभी भी स्थायी रूप से छुटकारा नहीं दिला सकतीं। अतएव भागवत सम्प्रदाय के अनुसार धार्मिकता का यह मार्ग भी अनुयायियों को ठगने की विधि है। भगवद्गीता में स्पष्ट बतलाया गया है कि सर्वाधिक उन्नत तथा शक्तिशाली योगी वह है, जो अपने हृदय में निरन्तर भगवान् का चिन्तन कर सके और भगवान् की प्रेममयी सेवा में लगा रह सके।

असंख्य प्रशासकीय देवताओं की पूजा का मार्ग कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड की उपर्युक्त विधियों से भी अधिक खतरनाक तथा अनिश्चित है। दुर्गा, शिव, गणेश, सूर्य जैसे अनेक देवों तथा निर्विशेष विष्णु रूप की यह पूजा विधि वे लोग स्वीकार करते हैं जो इन्द्रियतृप्ति की उत्कट इच्छा से अन्धे हो चुके होते हैं। शास्त्रों में वर्णित अनुष्ठानों को इस माँग तथा अभाव के युग में ठीक प्रकार सम्पन्न कर पाना अत्यन्त कठिन है। किन्तु जब इन अनुष्ठानों को समुचित रीति से सम्पन्न किया जाता है, तब यह मनुष्य की इन्द्रियतृप्ति की इच्छा को निश्चित रूप से पूरा कर सकते हैं। किन्तु ऐसी विधियों से मिलने वाली सफलता निस्सन्देह क्षणिक होती है और यह केवल अल्पज्ञों के लिए ही उपयुक्त है। यही भगवद्गीता का निर्णय है। किसी भी विवेकशील व्यक्ति को ऐसे क्षणिक लाभों से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए।

उपर्युक्त वर्णित तीनों धार्मिक मार्गों में से कोई भी मार्ग भौतिक अस्तित्व के तीन प्रकार के कष्टों से-अर्थात् शरीर तथा मन से उत्पन्न कष्टों, अन्य जीवों द्वारा दिये गये कष्टों तथा देवताओं द्वारा दिये गये कष्टों से मनुष्य को छुटकारा नहीं दिला सकता। किन्तु श्रीमद्भागवत में वर्णित धर्म अपने अनुयायियों को तीनों प्रकार के कष्टों से स्थायी मुक्ति दिलाने में समर्थ है। भागवत सर्वोच्च धर्म अर्थात् जीव को उसकी मूल स्थिति, भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में पुनः स्थापित करने का वर्णन करता है। यह सर्वोच्च धर्म इन्द्रियतृप्ति की इच्छाओं, सकाम कर्म तथा ब्रह्म से तदाकार होने के उद्देश्य से ज्ञान के अनुशीलन की इच्छा के कल्मष से मुक्त है।

स्थूल या सूक्ष्म इन्द्रियतृप्ति पर आधारित किसी भी धर्म को कैतव (छद्म) धर्म मानना चाहिए, क्योंकि यह अपने अनुयायियों को शाश्वत संरक्षण प्रदान करने में असमर्थ होती है। यहाँ प्रोज्झित शब्द महत्त्वपूर्ण है। प्र का अर्थ है। "पूर्ण" तथा उज्झित सूचक है बहिष्कार का। सकाम कर्म के रूप में धार्मिकता प्रत्यक्ष रूप से इन्द्रियतृप्ति की स्थूल विधि है, जबकि ब्रह्म से तदाकार होने के उद्देश्य से आध्यात्मिक ज्ञान के अनुशीलन की विधि इन्द्रियतृप्ति की सूक्ष्म विधि है। भागवत धर्म अर्थात् जीव के सनातन कर्म रूपी दिव्य धर्म में स्थूल या सूक्ष्म इन्द्रियतृप्ति पर आधारित ऐसी समस्त दिखावटी धार्मिकता का पूर्णतया बहिष्कार किया जाता है।

भागवत-धर्म अर्थात् श्रीमद्भागवत में वर्णित धार्मिक सिद्धान्त का प्राथमिक पाठ भगवद्गीता है। यह उन सर्वोच्च कोटि के मुक्त पुरुषों के लिए है, जो दिखावटी धार्मिकता की इन्द्रियतृप्ति को बहुत कम महत्त्व देते हैं। सकाम कर्मी, योगी, आरोहपंथी दार्शनिक तथा मुक्तिकामी अपनी भौतिक स्थिति को ऊपर उठाने के विषय में ही चिन्तित रहते हैं। लेकिन भगवद्भक्तों में ऐसी कोई स्वार्थी आकांक्षा नहीं रहती। वे परम भगवान् की सेवा केवल उन्हें प्रसन्न करने के लिए ही करते हैं। श्री अर्जुन तथाकथित अहिंसक तथा धार्मिक व्यक्ति बनकर अपनी इन्द्रियों को तृप्त करना चाहते थे, अतएव उन्होंने पहले युद्ध न करने का निश्चय किया। किन्तु जब वे भागवत-धर्म के सिद्धान्तों में पूरी तरह स्थित हो गये, जिसमें भगवान् की इच्छा के प्रति पूर्ण समर्पित होने को चरम लक्ष्य माना गया है, तो उन्होंने अपना निर्णय बदल दिया और वे भगवान् की तुष्टि के लिए युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। तब उन्होंने कहा :

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।

स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

"हे कृष्ण! हे अच्युत ! अब मेरा मोह दूर हो गया है। आपकी कृपा से मेरी स्मृति वापस आ गई है और अब मैं दृढ़ तथा सन्देह-मुक्त हूँ तथा आपके आदेशानुसार कर्म करने के लिए प्रस्तुत हूँ।" (भगवद्गीता 18.73) इस शुद्ध चेतना में स्थित रहना जीव की वैधानिक स्थिति है। किसी भी तथाकथित धार्मिक विधि, जो इस अनन्य आध्यात्मिक स्थिति में बाधक बनती है, उसे धार्मिकता की छद्म-विधि मानना चाहिए।

धर्म का वास्तविक स्वरूप ईश्वर की स्वयंस्फूर्त प्रेमाभक्ति है। भगवान् के साथ जीव का यह सेवा-सम्बन्ध शाश्वत है। भगवान् को वस्तु अर्थात् यथार्थ तत्त्व के रूप में तथा जीवों को वास्तव अर्थात् सापेक्ष अस्तित्व में वस्तु के असंख्य प्रतिरूपों के रूप में वर्णित किया गया है। परम वस्तु के साथ इन वास्तव अंशों का सम्बन्ध कभी भी नष्ट नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह जीव का अन्तर्निहित सनातन गुण है।

भौतिक प्रकृति के साथ सम्बन्ध के कारण ही सारे जीव भौतिक चेतनारूपी रोग के विविध लक्षण प्रदर्शित करते हैं। इस भवरोग का निवारण करना ही मनुष्य-जीवन का चरम लक्ष्य है। जिस विधि से इस रोग का उपचार होता है, वह भागवत-धर्म या सनातन-धर्म कहलाता है। इसी का वर्णन श्रीमद्भागवत के पृष्ठों में किया गया है। अतएव जो भी व्यक्ति अपने पूर्वजन्म के पुण्यकर्मों के आधार पर श्रीमद्भागवत का श्रवण करने के लिए उत्सुक होता है, वह अपने हृदय में तुरन्त ही भगवान् की उपस्थिति का अनुभव करता है और अपने जीवन के लक्ष्य की पूर्ति करता है।

तार मध्ये मोक्ष-वाञ्छा कैतव-प्रधान ।

याहा हैते कृष्ण-भक्ति हय अन्तर्धान ॥92॥

तार-उनके; मध्ये-मध्य में; मोक्ष-वाञ्छा-परम में विलीन हो जाने की अभिलाषा; कैतव-धोखा देने की प्रक्रियाओं की; प्रधान-प्रधान, प्रमुख; याहा हैते–जिनसे; कृष्ण-भक्ति-भगवान् कृष्ण की भक्ति; हय–होती है; अन्तर्धान-लोप।

अनुवाद

सर्वोपरि में तदाकार होकर मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा करना प्रधान कैतव धर्म है, क्योंकि इससे कृष्ण की प्रेममयी सेवा का स्थायी तौर पर लोप हो जाता है।

तात्पर्य

निर्विशेष ब्रह्म में विलीन होने की इच्छा नास्तिकता का सूक्ष्मतम रूप है। जब मुक्ति के वेश में छिपी ऐसी नास्तिकता को प्रोत्साहन मिलता है, तब मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के भक्ति-मार्ग पर चल पाने में पूर्णतया अशक्त हो जाता है।

"प्र-शब्देन मोक्षाभिसन्धिरपि निरस्तः" इति ॥ 93॥

प्र-शब्देन–'प्र' उपसर्ग से; मोक्ष-अभिसन्धिः-मोक्ष की इच्छा; अपि-निश्चित रूप से; निरस्तः–निरस्त की गई है; इति–इस प्रकार।

अनुवाद

"उपसर्ग 'प्र' (श्रीमद्भागवत के श्लोक में) सूचित करता है कि मुक्ति की इच्छा का पूरी तरह से बहिष्कार कर दिया जाता है।"

तात्पर्य

यह श्रीमद्भागवत के महान् भाष्यकार श्रीधर स्वामी की एक टिप्पणी है।

कृष्ण-भक्तिर बाधक—यत शुभाशुभ कर्म ।

सेह एक जीवेर अज्ञान-तमो-धर्म ॥ 94॥

कृष्ण-भक्तिर-कृष्ण भक्ति की; बाधक-बाधाएँ; ग्रत–सभी; शुभ-अशुभ–शुभ या अशुभ; कर्म–कार्यकलाप; सेह-वह; एक-एक; जीवेर-जीव की; अज्ञान-तमः-अज्ञान का अन्धकार; धर्म–लक्षण।

अनुवाद

सभी प्रकार के शुभ तथा अशुभ कार्यकलाप, जो भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य प्रेममयी सेवा में बाधक होते हैं, वे तमोगुण से उत्पन्न कर्म हैं।

तात्पर्य

भगवान् चैतन्य तथा भगवान् नित्यानन्द की जो काव्यमयी उपमा सूर्य तथा चन्द्र से दी गई है, वह अत्यन्त सार्थक है। सारे जीव आध्यात्मिक स्फुलिंग हैं और उनकी वैधानिक स्थिति पूर्ण कृष्णभावना में भगवान् की भक्ति करना है। तथाकथित पुण्य कर्म तथा अन्य कर्मकांडीय अनुष्ठान, चाहे वे शुभ हों या अशुभ तथा भवबन्धन से छूटने की इच्छा-ये सभी इन आध्यात्मिक स्फुलिंगों के आवरण माने जाते हैं। जीवों को इन अनावश्यक आवरणों से मुक्त होना चाहिए और कृष्णभावना में पूरी तरह से प्रवृत्त होना चाहिए। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् नित्यानन्द के आविर्भाव का प्रयोजन आत्मा के अन्धकार को हटाना है। उनके आविर्भाव के पूर्व जीवों के ये सारे व्यर्थ के

कार्यकलाप कृष्णभावनामृत को ढके हुए थे; किन्तु इन दोनों भाइयों के आविर्भाव के बाद लोगों के हृदय निर्मल हो रहे हैं और वे कृष्णभावनामृत की अपनी वास्तविक स्थिति को पुनः प्राप्त कर रहे हैं।

याँहार प्रसादे एइ तमो हय नाश ।

तमो नाश करि' करे तत्त्वेर प्रकाश ॥ 95॥

याँहार–जिनकी; प्रसादे कृपा से; एइ–यह; तमः-अन्धकार; हय-है; नाश-नष्ट; तमः-अन्धकार; नाश-विनाश; करि'-करके; करे-करता है; तत्त्वेर-सत्य की; प्रकाश-प्रकाशित होता।

अनुवाद

भगवान् श्री चैतन्य तथा भगवान् नित्यानन्द की कृपा से अज्ञान का यह अन्धकार दूर होता है और सत्य प्रकाशित होता है।

तत्त्व-वस्तु—कृष्ण, कृष्ण-भक्ति, प्रेम-रूप ।

नाम-सङ्कीर्तन—सब आनन्द-स्वरूप ॥ 96 ॥

तत्त्व-वस्तु-परम सत्य; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण की भक्तिमय सेवा; प्रेम-रूप-भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेम-रूप; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का संकीर्तन; सब-सब; आनन्द–आनन्द का; स्वरूप-स्वरूप।

अनुवाद

परम सत्य तो श्रीकृष्ण हैं और शुद्ध प्रेम में प्रकट होने वाली कृष्ण के प्रति प्रेममयी भक्ति पवित्र नाम के सामूहिक कीर्तन द्वारा प्राप्त की जाती है, जो सारे आनन्द की सार है।

सूर्य चन्द्र बाहिरेर तमः से विनाशे ।

बहिर्वस्तु घट-पट-आदि से प्रकाशे ॥ 97॥

सूर्य-सूर्य; चन्द्र-चन्द्र; बाहिरेर–बाह्य जगत् का; तमः-अन्धकार; से-वे; विनाशे-नष्ट करते हैं; बहिः-वस्तु–बाहरी वस्तुएँ; घट-घड़े; पट-आदि-प्लेटें आदि; से-वे; प्रकाशे-प्रकाशित करते हैं।

अनुवाद

सूर्य तथा चन्द्रमा बाह्य जगत् के अन्धकार को विनष्ट करते हैं और इस तरह घड़ों तथा भोजन पात्रों जैसी बाह्य भौतिक वस्तुओं को प्रकाशित करते हैं।

दुइ भाइ हृदयेर क्षालि' अन्धकार ।

दुइ भागवत-सङ्गे करान साक्षात्कार ॥98॥

दुइ-दोनों; भाइ–भाई; हृदयेर–हृदय के; क्षालि'–पवित्र करना; अन्धकार-अन्धकार; दुइ भागवत–दोनों भागवतों की; सङ्गे-संगति से; करान-करते हैं; साक्षात्-कार-साक्षात्कार।

अनुवाद

किन्तु ये दोनों भाई (भगवान् चैतन्य तथा भगवान् नित्यानन्द) हृदय के भीतर के अन्धकार को विनष्ट करते हैं और इस तरह ये दो प्रकार के भागवतों (भगवान् से सम्बन्धित व्यक्तियों या वस्तुओं) से मिलाने में मनुष्य की सहायता करते हैं।

एक भागवत बड़-भागवत-शास्त्र ।

आर भागवतभक्त भक्ति-रस-पात्र ॥ 99॥

एक-एक; भागवत-भगवान् के सम्बन्धित; बड़-महान्; भागवत-शास्त्र-श्रीमद्भागवतम्; आर-दूसरा; भागवत-भागवत; भक्त-शुद्ध भक्त; भक्ति-रस-भक्ति-रस; पात्र–पात्र।

अनुवाद

एक भागवत है महान् शास्त्र श्रीमद्भागवत और दूसरा है भक्ति-रस में निमग्न शुद्ध भक्त।

दुइ भागवत द्वारा दिया भक्ति-रस ।

ताँहार हृदये ताँर प्रेमे हय वश ॥ 100॥

दुइ-दोनों; भागवत-भागवत; द्वारा–द्वारा; दिया–दिया; भक्ति-रस-भक्तिरस; ताँहार-अपने भक्त के; हृदये-हृदय में; ताँर-उसके प्रेमे-प्रेम से; हय-होते हैं; वश-नियंत्रण में।

अनुवाद

इन दो भागवतों के कार्यों के माध्यम से भगवान् जीव के हृदय में दिव्य प्रेममयी सेवा के रस का संचार करते हैं और इस तरह भक्त के हृदय में स्थित भगवान् भक्त के प्रेम से वशीभूत हो जाते हैं।

एक अद्भुत सम-काले दोंहार प्रकाश ।

आर अद्भुत चित्त-गुहार तमः करे नाश ॥ 101॥

एक-एक अद्भुत-अद्भुत; सम-काले-उसी समय; दोंहार-दोनों का; प्रकाश-प्राकट्य; आर-अन्य; अद्भुत-अद्भुत; चित्त-गुहार-हृदय की गहराई का; तमः-अन्धकार; करे-करते हैं; नाश-नाश।

अनुवाद

पहला आश्चर्य यह है कि दोनों भाई एकसाथ प्रकट होते हैं और दूसरा यह कि वे हृदय की गहराई (अन्तर्मन) को प्रकाशित करते हैं।

एइ चन्द्र सूर्य दुइ परम सदय ।

जगतेर भाग्ये गौड़े करिला उदय ॥ 102॥

एइ-ये; चन्द्र–चन्द्र; सूर्य–सूर्य; दुइ-दोनों; परम-परम; स-दय-दयालु; जगतेर–विश्व के लोगों के भाग्ये-भाग्य से; गौड़े-गौड़ प्रदेश में; करिला-किया; उदय-प्रकट हुए।

अनुवाद

ये दोनों, सूर्य तथा चन्द्रमा, संसार के लोगों के प्रति अत्यन्त दयालु हैं। इस तरह समस्त लोगों के सौभाग्य हेतु वे बंगाल के क्षितिज पर उदित हुए हैं।

तात्पर्य

सेनवंश की सुप्रसिद्ध प्राचीन राजधानी गौड़देश या गौड़ के नाम से विख्यात थी और वर्तमान माल्दा जिले में स्थित थी। बाद में यह राजधानी नवद्वीप के पास गंगा की पश्चिम दिशा में स्थित नवें अथवा मध्यवर्ती द्वीप में स्थानान्तरित कर दी गई थी, जो आज मायापुर के नाम से विख्यात है और तब यह गौड़पुर कहलाती थी। वहीं चैतन्य महाप्रभु प्रकट हुए और वहीं नित्यानन्द प्रभु बीरभूम जिले से आकर उनसे मिले। वे गौड़देश के क्षितिज पर कृष्णभावनामृत के विज्ञान का प्रसार करने के लिए प्रकट हुए और यह भविष्यवाणी की गई है। कि जिस तरह सूर्य तथा चन्द्रमा धीरे धीरे पश्चिम दिशा में चले जाते हैं, उसी तरह पाँच सौ वर्ष पूर्व उन्होंने जो आन्दोलन प्रारम्भ किया था, वह उनकी कृपा से पाश्चात्य सभ्यताओं तक पहुँच जायेगा।

चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु बद्धजीवों के पाँच प्रकार के अज्ञान को दूर भगाते हैं। महाभारत में उद्योगपर्व के 43वें अध्याय में अज्ञान के इन पाँचों प्रकारों का वर्णन हुआ है। ये हैं-(1) शरीर को ही आत्मा मानना (2) भौतिक इन्द्रियतृप्ति को चरम सुख मानना (3) भौतिक पहचान के कारण चिन्तित होना (4) शोक करना (5) यह सोचना कि परम सत्य के परे भी कुछ है। चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं से ये पाँच प्रकार के अज्ञान समूल नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य जो कुछ देखता है या अनुभव करता है, वह सब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति का प्रदर्शन मात्र जानना चाहिए। प्रत्येक वस्तु कृष्ण की ही अभिव्यक्ति है।

सेइ दुइ प्रभुर करि चरण वन्दन ।

याँहा हइते विघ्न-नाश अभीष्ट-पूरण ॥ 103॥

सेइ-ये; दुइ-दोनों; प्रभुर-भगवानों के; करि-मैं करता हूँ; चरण-चरण; वन्दन-वन्दना; याँहा हइते-जिनसे; विघ्न-नाश-विघ्न-नाश; अभीष्ट-पूरण-इच्छाओं की पूर्ति।

अनुवाद

अतएव आइये हम इन दोनों प्रभुओं के पवित्र चरणों की पूजा करें। इस प्रकार आत्म-साक्षात्कार के मार्ग की सारी कठिनाइयों से छुटकारा मिल सकता है।

एइ दुइ श्लोके कैल मङ्गल-वन्दन ।

तृतीय श्लोकेर अर्थ शुन सर्व-जन ॥ 104॥

एइये, इन; दुइ-दो; श्लोके–श्लोकों में; कैल-मैंने की; मङ्गल-मंगल; वन्दन-वन्दना; तृतीय-तीसरे; श्लोकेर-श्लोक के; अर्थ-अर्थ; शुन-कृपया सुनिए; सर्व-जन-सब लोग।

अनुवाद

मैंने इन दोनों श्लोकों के माध्यम से भगवान् से आशीष प्राप्त करने की कामना की है (इस अध्याय के श्लोक 1 और 2)। अब कृपा करके तृतीय श्लोक के तात्पर्य को ध्यानपूर्वक सुनें।

वक्तव्य-बाहुल्य, ग्रन्थ-विस्तारेर डरे ।

विस्तारे ना वर्णि, सारार्थ कहि अल्पाक्षरे ॥105॥

वक्तव्य-बोले जाने वाले शब्दों का; बाहुल्य-अधिकता; ग्रन्थ-ग्रंथ की; विस्तारेर-बड़ी पुस्तक की; डरे-डर के मारे; विस्तारे–विस्तृत रूप में; ना-नहीं; वर्णि-मैं वर्णन करता हूँ; सार-अर्थ-संक्षिप्त अर्थ, सार; कहि-मैं कहता हूँ; अल्प-अक्षरे-थोड़े शब्दों में।

अनुवाद

इस ग्रंथ के विस्तार-भय से मैं जान-बूझकर विस्तृत वर्णन से बच रहा हूँ। मैं यथासम्भव संक्षेप में सार-वर्णन करूँगा।

“मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता” इति ॥106॥

मितम्-संक्षिप्त; च-और; सारम्-सार; च-तथा; वचः-वाणी; हि-निश्चय ही; वाग्मिता-वाक्पटुता; इति–इस तरह।

अनुवाद

“संक्षेप में कहा गया साररूपी सत्य ही सच्ची वाक्पटुता है।”

शुनिले खण्डिबे चित्तेर अज्ञानादि दोष ।

कृष्णे गाढ़ प्रेम हबे, पाइबे सन्तोष ॥ 107॥

शुनिले-सुनने पर; खण्डिबे दूर करेगा; चित्तेर-हृदय की; अज्ञान-आदि-अज्ञानता आदि; दोष-दोष; कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; गाढ़-प्रगाढ़; प्रेम-प्रेम; हबे-होगा; पाइबे-प्राप्त करेगा; सन्तोष-संतोष।

अनुवाद

विनीत भाव से इसका श्रवण करने मात्र से ही मनुष्य का हृदय अज्ञान के सारे दोषों से मुक्त हो जायेगा और उसे कृष्ण का प्रगाढ़ प्रेम प्राप्त होगा। यही शान्ति का मार्ग है।

श्री-चैतन्य-नित्यानन्द-अद्वैत-महत्त्व ।

ताँर भक्त-भक्ति-नाम-प्रेम-रस-तत्त्व ॥108॥

भिन्न भिन्न लिखियाछि करिया विचार ।

शुनिले जानिबे सब वस्तु-तत्त्व-सार ॥109॥

श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द का; अद्वैत-श्री अद्वैत का; महत्त्व-महत्त्व; ताँर-उनके; भक्त-भक्तगण; भक्ति-भक्ति; नाम-नाम; प्रेम-प्रेम; रस-रस; तत्त्व-वास्तविक प्रकृति; भिन्न भिन्न भिन्न भिन्न; लिखियाछि–जो मैंने लिखा; करिया-करना; विचार-विचार; शुनिले-सुनकर; जानिबे-जानेगा; सब-सब; वस्तु-तत्त्व-सार–परम सत्य का सार।

अनुवाद

यदि कोई धैर्यपूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु तथा श्री अद्वैत प्रभु एवं उनके भक्तों, भक्ति-कार्यों, नाम, यश तथा उनके दिव्य प्रेममय आदान-प्रदानों के रसों की महिमा का श्रवण

करेगा, तो वह परम सत्य के सार को जान सकेगा। इसलिए मैंने इनका वर्णन (चैतन्य-चरितामृत में) तर्क तथा विवेक के साथ किया है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥110॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों पर; यार–जिसकी ; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य-चरितामृत नामक ग्रंथ; कहे वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की स्तुति करते हुए, सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए और उनके चरणों का अनुसरण करते हुए मैं, कृष्णदास, श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्री चैतन्य-चरितामृत आदि लीला के "गुरु-वर्ग" नामक प्रथम अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय दो

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु

इस अध्याय में बताया गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ही साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। अतएव ब्रह्मज्योति श्री चैतन्य महाप्रभु की शारीरिक कान्ति है और हर जीव के हृदय में स्थित अन्तर्यामी परमात्मा उनके अंश-स्वरूप हैं। इस सम्बन्ध में पुरुष-अवतारों की भी व्याख्या की गई है। महाविष्णु समस्त बद्धजीवों के आगार हैं, किन्तु प्रामाणिक शास्त्रों में इसकी पुष्टि हुई है। कि भगवान् कृष्ण ही परम स्रोत हैं और असंख्य विस्तारों के उद्गम हैं। उन असंख्य विस्तारों में नारायण भी सम्मिलित हैं, जो कि मायावादी दार्शनिकों द्वारा सामान्यतया परम सत्य के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। भगवान् के प्राभव तथा वैभव प्रकाशों की एवं अंशावतारों तथा शक्त्यावतारों की भी व्याख्या की गई है। भगवान् कृष्ण के बाल्यकाल तथा युवावस्था की चर्चा की गई है और यह बतलाया गया है कि उनकी युवावस्था के प्रारम्भ में उनकी जो आयु है, वही उनका शाश्वत रूप है।

आध्यात्मिक आकाश में असंख्य आध्यात्मिक ग्रह हैं, जिन्हें वैकुण्ठ कहते हैं और जो भगवान् की अन्तरंगा शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं। इसी तरह से असंख्य भौतिक ब्रह्माण्ड उनकी

बहिरंगा शक्ति से और सारे जीव उनकी तटस्था शक्ति से प्रकट होते हैं। चूँकि श्रीकृष्ण चैतन्य, भगवान् कृष्ण से भिन्न नहीं हैं, अतएव वे समस्त कारणों के कारण हैं, कोई कारण उनसे परे नहीं है। वे सनातन हैं और उनका स्वरूप आध्यात्मिक है। चैतन्य महाप्रभु प्रत्यक्षतः भगवान् कृष्ण हैं, जैसाकि प्रामाणिक शास्त्रों के साक्ष्यों से सिद्ध होता है। इस अध्याय में बल दिया गया है कि जो भक्त कृष्णभावनामृत में अग्रसर होना चाहता है, उसे कृष्ण के साकार रूप, उनकी तीन प्रमुख शक्तियाँ, उनकी लीलाओं तथा उनके साथ जीवों के सम्बन्ध का ज्ञान होना चाहिए।

श्री-चैतन्य-प्रभुं वन्दे बालोऽपि यदनुग्रहात् ।

तरेन्नाना-मत-ग्राह-व्याप्तं सिद्धान्त-सागरम् ॥1॥

श्री-चैतन्य-प्रभुम्-श्री चैतन्य महाप्रभु को; वन्दे मैं नमस्कार करता हूँ; बालः-एक अज्ञानी बालक; अपि-भी; यत्-जिसकी; अनुग्रहात् दया से; तरेत्-पार कर सके; नाना-विभिन्न; मत-मत (प्रस्ताव); ग्राह-घड़ियाल, मगर; व्याप्तम्-से भरे हुए; सिद्धान्त-सिद्धान्त, निष्कर्ष; सागरम्-सागर।

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करता हूँ, जिनकी कृपा से एक अबोध बालक भी निर्णायक सत्य रूपी सागर को पार कर सकता है, जो विभिन्न सिद्धान्त रूपी मगरों से भरा हुआ है।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से एक अनुभवहीन और अशिक्षित बालक को भी उस अज्ञान के सागर से उबारा जा सकता है, जो भयावह जलचरों के तुल्य विविध दार्शनिक सिद्धान्तों से भरा है। बुद्ध का दर्शन, ज्ञानियों का तर्क, पतञ्जलि तथा गौतम की योग-

पद्धतियाँ तथा कणाद, कपिल एवं दत्तात्रेय जैसे दार्शनिकों की प्रणालियाँ अविद्या के सागर में खतरनाक जीवों के तुल्य हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से इन साम्प्रदायिक मतों से बचकर तथा कृष्ण के चरणकमलों को जीवन के चरम लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर ज्ञान के सार की वास्तविक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। बद्धजीवों पर उदार अनुग्रह के लिए चलो हम सब श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा करें।

कृष्णोत्कीर्तन-गान-नर्तन-कला-पाथोजनि-भ्राजिता

सद्भक्तावलि-हंस-चक्र-मधुप-श्रेणी-विहारास्पदम् ।

कर्णानन्द-कल-ध्वनिर्वहतु मे जिह्वा-मरु-प्राङ्गणे

श्री-चैतन्य दयानिधे तव लसल्लीला-सुधा-स्वधुनी ॥2॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का; उत्कीर्तन-संकीर्तन; गान–गान; नर्तन-नृत्य; कला-अन्य कलाओं का; पाथः-जनि-कमलों सहित; भ्राजिता–अलंकृत; सत्-भक्त-शुद्ध भक्तों की; आवलि-पंक्तियाँ; हंस-राजहंसों की; चक्र-चक्रवाक पक्षी; मधु-प–मधुमक्खियाँ; श्रेणी–झुंड की भाँति; विहार-विहार के; आस्पदम् निवास; कर्ण-आनन्दि-कर्णप्रिय; कल-मधुर; ध्वनिः-ध्वनि; वहतु-बहने दो; मे-मेरी; जिह्वा-जिह्वा; मरु-मरुस्थल जैसी; प्राङ्गणे प्रांगण में; श्री-चैतन्य दयानिधे-दयानिधि श्री चैतन्य महाप्रभु से; तव-आपका; लसत्-चमकने वाला; लीला-सुधा-लीलामृत; स्वर्धनी–गंगा।

अनुवाद

हे मेरे दयालु भगवान् श्री चैतन्य! आपकी दिव्य लीलाओं का अमृततुल्य गंगाजल मेरी मरुस्थल जैसी जीभ पर बहता रहे। कृष्ण के पवित्र नाम का उच्च स्वर से कीर्तन, गान, नर्तन रूपी वे कमल के फूल जो अनन्य भक्तों के आनन्द-धाम हैं, इस जल को सुशोभित करने वाले हैं। ये भक्त हंसों, चक्रवाकों तथा भ्रमरों के तुल्य हैं। नदी के प्रवाह से मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है, जो उनके कानों को आनन्दित करती है।

तात्पर्य

हमारी जीभें हमेशा व्यर्थ की ध्वनियाँ करने में लगी रहती हैं, जो हमें दिव्य शान्ति का अनुभव करने में किसी तरह की सहायता नहीं करतीं। जीभ की तुलना मरुस्थल से की गई है, क्योंकि मरुस्थल को उर्वर तथा फलदायक बनाने के लिए निरन्तर ताजे जल की आपूर्ति की आवश्यकता होती है। जल एक ऐसी वस्तु है, जिसकी मरुस्थल में सर्वाधिक आवश्यकता होती है। कला, संस्कृति, राजनीति, सामाजिकता, शुष्क दर्शन, कविता इत्यादि संसारी विषयों से मिलने वाला क्षणिक आनन्द जल की बूंद जैसा है, क्योंकि इन विषयों में दिव्य आनन्द के गुणात्मक लक्षण दिखाई देने पर भी ये भौतिक गुणों में निमग्न रहते हैं। इसीलिए न तो सामूहिक रूप से न व्यक्तिगत रूप से वे मरुस्थल-तुल्य जीभ की असीम आवश्यकताओं की तुष्टि कर पाते हैं। अतएव विभिन्न सम्मेलनों में उच्च स्वर में बोलते रहने पर भी मरुस्थल तुल्य जीभ सूखी की सूखी ही रहती है। इसी कारण से विश्व के सभी लोगों को चाहिए कि वे श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों को बुलायें, जिनकी तुलना उन हंसों से की जाती है, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के सुन्दर चरणकमलों के चारों ओर तैरते रहते हैं या उन मधुमक्खियों से की जाती है, जो उनके चरणकमलों के आसपास मधु की खोज में दिव्य आनन्द के साथ गुंजार करती रहती हैं। भौतिक सुख की शुष्कता उन तथाकथित दार्शनिकों द्वारा आर्द्र (नम) नहीं हो सकती, जो ब्रह्म, मुक्ति तथा ऐसी ही काल्पनिक शुष्क वस्तुओं की रट

लगाते हैं। आत्मा की आवश्यकता भिन्न है। आत्मा को श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा तथा उनके अनेक प्रामाणिक भक्तों द्वारा ही सान्त्वना प्रदान की जा सकती है, जो नकली महाप्रभु बनने के लिए भगवान् के चरणकमलों को नहीं छोड़ते, अपितु उन मधुमक्खियों की भाँति उनके चरणकमलों से लिपटे रहते हैं, जो मधु से सिक्त कमल के फूल को कभी नहीं छोड़तीं।

चैतन्य महाप्रभु का कृष्णभावनामृत आन्दोलन भगवान् कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित नृत्य और गायन से परिपूर्ण है। यहाँ पर इसकी तुलना गंगा के शुद्ध जल से की गई है, जो कमल के फूलों से भरा रहता है। इन कमलों के भोक्ता शुद्ध भक्त हैं, जो भ्रमरों और हंसों के समान हैं। वे स्वर्गलोक की नदी गंगा के प्रवाह की भाँति कीर्तन करते रहते हैं। लेखक की कामना है कि ऐसी मधुर उठती तरंगें उसकी जीभ को सिक्त कर दें। वह विनीत होकर अपनी तुलना उन भौतिकतावादी व्यक्तियों से करते हैं, जो सदा शुष्क बातों में लगे रहते हैं, जिनसे कोई तुष्टि नहीं मिल पाती। यदि वे अपनी शुष्क जीभों को भगवन्नाम के कीर्तनहरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे में लगायें, जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने किया, तो उन्हें आस्वादन करने के लिए मधुर अमृत प्राप्त हो जायेगा और वे आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ 3 ॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-भगवान् चैतन्य की; जय-जय हो; नित्यानन्द-प्रभु नित्यानन्द की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैताचार्य की जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-भगवान् गौरांग के भक्तों की।

अनुवाद

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैताचार्य की जय हो तथा भगवान् गौरांग के भक्तों की जय हो।

तृतीय श्लोकेर अर्थ करि विवरण ।

वस्तु-निर्देश-रूप मङ्गलाचरण ॥4॥

तृतीय-तीसरे; श्लोकेर–श्लोक का; अर्थ–अर्थ; करि-मैं करता हूँ; विवरण-विवरण; वस्तु-परम सत्य का; निर्देश-रूप-चित्रण-रूप में; मङ्गल-मंगल; आचरण-आचरण।

अनुवाद

सर्वप्रथम मैं (प्रथम चौदह श्लोकों में से) तीसरे श्लोक के अर्थ का वर्णन करूँगा। यह एक शुभ ध्वनि है, जो परम सत्य का वर्णन करती है।

यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनु-भा

य आत्मान्तर्यामी पुरुष इति सोऽस्यांश-विभवः ।

षड्-ऐश्वर्यैः पूर्णो य इह भगवान्स स्वयमयं

न चैतन्यात्कृष्णाजगति पर-तत्त्वं परमिह ॥5॥

यत् वह जो; अद्वैतम्-अद्वय; ब्रह्म-निर्विशेष ब्रह्म; उपनिषदि-उपनिषदों में; तत्-वह; अपि-निश्चित रूप से; अस्य-उनका; तनु-भा-उनके दिव्य शरीर की आभा; यः-जो; आत्मा-परमात्मा; अन्तः-यामी–अन्तर्यामी भगवान्; पुरुषः-परम भोक्ता; इति–इस तरह; सः-वे; अस्य-उनके; अंश-विभवः–पूर्ण अंश का विस्तार; षट्-ऐश्वर्यैः-छः ऐश्वर्यों सहित; पूर्णः–पूर्ण; यः-जो; इह-यहाँ;

भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; सः-वे; स्वयम्-स्वयं; अयम्-यह; न-नहीं; चैतन्यात्-भगवान् चैतन्य की अपेक्षा; कृष्णात्-भगवान् कृष्ण की अपेक्षा; जगति–जगत् में; पर-उच्चतर; तत्त्वम्-सत्य; परम्-अन्य; इह-यहाँ।

अनुवाद

जिसका वर्णन उपनिषदों में निर्विशेष ब्रह्म के रूप में हुआ है, वह उनके शरीर का तेज मात्र है और परमात्मा के रूप में जाने जाने वाले भगवान् उनके स्थानीय पूर्ण अंश हैं। भगवान् चैतन्य छः ऐश्वर्यों से पूर्ण स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हैं। वे परम सत्य हैं और अन्य कोई सत्य न उनसे बड़ा है, न उनके समान है।

तात्पर्य

उपनिषदों के संकलनकर्ता निर्विशेष ब्रह्म की बड़ी प्रशंसा करते हैं। वैदिक साहित्य की अत्यन्त उन्नत अंग मानी जाने वाली उपनिषदें उन व्यक्तियों के लिए हैं, जो भौतिक संगति से मुक्त होना चाहते हैं और ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रामाणिक गुरु के पास जाते हैं। उपसर्ग उप सूचित करता है कि मनुष्य को परम सत्य के विषय में ज्ञान गुरु से प्राप्त करना चाहिए। जिसे अपने गुरु पर श्रद्धा होती है, वह वास्तव में दिव्य उपदेश प्राप्त करता है और ज्यों-ज्यों भौतिक जीवन के प्रति उसकी आसक्ति शिथिल पड़ती जाती है, त्यों-त्यों वह आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने में समर्थ बनाता है। उपनिषदों का दिव्य ज्ञान मनुष्य को भौतिक अस्तित्व के बन्धन से मुक्त कर सकता है और इस प्रकार मुक्त होने पर मनुष्य आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करता हुआ पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर के आध्यात्मिक जगत् को प्राप्त कर सकता है।

आध्यात्मिक प्रकाश का शुभारम्भ निर्विशेष ब्रह्म की अनुभूति से होता है। ऐसी अनुभूति भौतिक विविधताओं के क्रमिक निषेध से प्राप्त होती है। निर्विशेष ब्रह्म की अनुभूति परम सत्य की आंशिक एवं दूर की अनुभूति है, जो ज्ञान मार्ग द्वारा प्राप्त होती है। इसकी तुलना दूर से देखे गये उस पर्वत से की जा सकती है, जिसे वह धुंधले बादल-सा समझता है। पर्वत धुंधला बादल नहीं होता, किन्तु हमारी अपूर्ण दृष्टि के कारण वह दूर से ऐसा लगता है। परम सत्य की अपूर्ण या धुंधली अनुभूति में आध्यात्मिक विविधता दिखाई नहीं देती। इसीलिए यह अनुभव अद्वैतवाद अर्थात् परम सत्य के एकत्व की अनुभूति कहलाता है।

ब्रह्म का निर्विशेष चमकता तेज भगवान् श्रीकृष्ण के व्यक्तिगत साकार शरीर की किरणें हैं। चूँकि श्री गौर-सुन्दर अर्थात् श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं, अतएव ब्रह्म तेज उनके दिव्य शरीर की किरणें हैं। इसी प्रकार परमात्मा चैतन्य महाप्रभु के पूर्ण अंश हैं। प्रत्येक हृदय में स्थित अन्तर्यामी समस्त जीवों के नियामक हैं। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (15.15) में हुई है, जहाँ भगवान् कृष्ण कहते हैं- सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः–"मैं हर एक के हृदय में स्थित हूँ।"भगवद्गीता (5.29) में यह भी कहा गया है-भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्-जो यह सूचित करता है कि परमात्मा स्वरूप भगवान् हर वस्तु के स्वामी हैं। इसी प्रकार ब्रह्म- संहिता (5.35) में कहा गया है- अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थम्-भगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं-हर जीव के हृदय के भीतर तथा प्रत्येक परमाणु में भी। इस तरह इस परमात्मा स्वरूप में भगवान् सर्वव्यापी हैं।

इसके साथ ही, भगवान् चैतन्य समस्त ऐश्वर्य, बल, यश, सौन्दर्य, ज्ञान तथा वैराग्य के भी स्वामी हैं, क्योंकि वे स्वयं श्रीकृष्ण हैं। वे पूर्ण कहलाते हैं। श्री चैतन्य के रूप में भगवान् आदर्श त्यागी हैं, जिस तरह श्री राम आदर्श राजा थे। भगवान् चैतन्य ने संन्यास ग्रहण किया और अपने जीवन में अतीव अद्भुत सिद्धान्तों का आदर्श प्रस्तुत किया। संन्यास में कोई उनकी समता नहीं कर

सकता। यद्यपि कलियुग में संन्यास ग्रहण करना सामान्यतया वर्जित है, लेकिन चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण किया, क्योंकि वे पूर्ण वैरागी थे। अन्य लोग उनका अनुकरण नहीं कर सकते, किन्तु वे यथासम्भव उनके चरण-चिह्नों का अनुसरण ही कर सकते हैं। जो लोग जीवन के इस आश्रम (सन्यास आश्रम) के लिए अयोग्य हैं, उन्हें शास्त्रों का कठोर आदेश है कि वे इसे ग्रहण न करें। किन्तु चैतन्य महाप्रभु वैराग्य तथा अन्य सारे ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं। अतएव वे परम सत्य के सर्वोच्च सिद्धान्त हैं।

चैतन्य महाप्रभु का तात्त्विक विश्लेषण करने पर पता चलेगा कि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से भिन्न नहीं हैं; न तो कोई उनसे बढ़कर है, न उनके तुल्य है। भगवद्गीता (7.7) में भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं- मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय-हे धनञ्जय (अर्जुन) ! मुझसे बढ़कर कोई सत्य नहीं है। इस तरह इसकी पुष्टि की गई है कि श्रीकृष्ण चैतन्य से बढ़कर कोई सत्य नहीं है।

निर्विशेष ब्रह्म उन लोगों का लक्ष्य होता है, जो दिव्य ज्ञान की पुस्तकों का अनुशीलन करते हैं और परमात्मा उन लोगों का लक्ष्य है, जो योग का अभ्यास करते हैं। किन्तु जो भगवान् को जानता है, वह ब्रह्म तथा परमात्मा के साक्षात्कार से भी आगे निकल जाता है, क्योंकि भगवान् परम ज्ञान के सर्वोच्च स्तर हैं।

भगवान् सच्चिदानन्द (सनातन जीवन, ज्ञान तथा आनन्द) के पूर्ण स्वरूप हैं। परम पूर्ण के सत् अंश के साक्षात्कार से भगवान् के निर्विशेष ब्रह्म पहलू की अनुभूति होती है। परम पूर्ण के चित् अंश से भगवान् के अन्तर्यामी स्वरूप परमात्मा की अनुभूति होती है। किन्तु ये दोनों अनुभूतियाँ आंशिक हैं। पूर्ण के इन दोनों में से किसी एक का साक्षात्कार आनन्द की अनुभूति में सहायक नहीं बनता। आनन्द की ऐसी अनुभूति के बिना परम सत्य का ज्ञान अपूर्ण होता है।

कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा लिखित चैतन्य-चरितामृत के इस श्लोक की पुष्टि श्रील जीव गोस्वामी कृत तत्त्व-सन्दर्भ के एक समानान्तर कथन से होती है। तत्त्व-सन्दर्भ के नवें खण्ड में कहा गया है कि कभी-कभी परम सत्य को निर्विशेष ब्रह्म के रूप में माना जाता है, जो आध्यात्मिक होते हुए भी परम सत्य का आंशिक प्रतिनिधित्व करने वाला होता है। वैकुण्ठ के अधिष्ठाता देव नारायण को श्रीकृष्ण के ही विस्तार समझना चाहिए, किन्तु श्रीकृष्ण परम सत्य हैं, जो सारे जीवों के दिव्य प्रेम के विषय हैं।

ब्रह्म, आत्मा, भगवान्–अनुवाद तिन।

अङ्ग-प्रभा, अंश, स्वरूप तिन विधेय-चिह्न ॥ 6 ॥

ब्रह्म-निर्विशेष ब्रह्म; आत्मा-स्थानीय परमात्मा; भगवान्-भगवान्; अनुवाद-विषय; तिन-तीन; अङ्ग-प्रभा-शरीर की आभा; अंश-आंशिक प्राकट्य; स्वरूप-स्वरूप; तिन-तीन; विधेय-चिह्न चिह्न।

अनुवाद

निर्विशेष ब्रह्म, स्थानीय परमात्मा तथा भगवान्-ये तीन उद्देश्य हैं और चमकदार ज्योति, आंशिक प्राकट्य तथा मूल स्वरूप ये इन तीनों को निर्दिष्ट करने वाले क्रमिक लक्षण हैं।

अनुवाद आगे, पाछे विधेय स्थापन।

सेइ अर्थ कहि, शुन शास्त्र-विवरण ॥7॥

अनुवाद-विषय; आगे-पहले; पाछे-पीछे; विधेय–विधेय, निर्दिष्ट बात; स्थापन-स्थापना; सेइ-यह; अर्थ–अर्थ; कहि-मैं कहता हूँ; शुन-कृपया सुनो; शास्त्र-विवरण-शास्त्रों के विवरण को।

अनुवाद

विधेय सदैव उद्देश्य के बाद आता है। अब मैं इस श्लोक का अर्थ शास्त्रों के अनुसार बतलाऊँगा।

स्वयं भगवान्कृष्ण, विष्णु-परतत्त्व ।

पूर्ण ज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व ॥8॥

स्वयम्-स्वयं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; विष्णु-सर्वव्यापी विष्णु; पर-तत्त्व-परम सत्य; पूर्ण-ज्ञान–पूर्ण ज्ञान; पूर्ण-आनन्द–पूर्ण आनन्द; परम-परम; महत्त्व महत्त्व।

अनुवाद

भगवान् के आदि स्वरूप कृष्ण सर्वव्यापी विष्णुतत्त्व हैं। वे पूर्ण ज्ञान तथा पूर्ण आनन्द हैं। वे परम दिव्य हैं।

'नन्द-सुत' बलि' याँरे भागवते गाइ ।

सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य-गोसाञि ॥9॥

नन्द-सुत–नन्द महाराज के पुत्र; बलि'-जैसे; याँरे–जो; भागवते- श्रीमद्भागवत में; गाइ-गाया जाता है; सेइ-वही; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतीर्ण-अवतरित हुए हैं; चैतन्य-गोसाञि-भगवान् चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

जिन्हें श्रीमद्भागवत नन्द महाराज के पुत्र के रूप में बतलाता है, वही भगवान् चैतन्य के रूप में इस पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं।

तात्पर्य

साहित्य में अच्छी रचना के आलंकारिक सिद्धान्तों के अनुसार विधेय अर्थात् निर्दिष्ट बात के पूर्व उद्देश्य (कर्ता) आना चाहिए। वैदिक साहित्य में प्रायः ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् का उल्लेख होता है, अतएव ये तीनों पद दिव्य ज्ञान समझने के विषय कहलाते हैं। किन्तु यह बहुविदित नहीं है कि जिसे निर्विशेष ब्रह्म के रूप में पहचाना जाता है, वह श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य शरीर का तेज है। न ही व्यापक रूप से यह भी ज्ञात है कि परमात्मा, चैतन्य महाप्रभु के केवल अंश विस्तार हैं, क्योंकि चैतन्य महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं। अतएव भगवान् चैतन्य के तेज के रूप में ब्रह्म, उनके अंश विस्तार के रूप में परमात्मा और चैतन्य महाप्रभु से अभिन्न भगवान् श्रीकृष्ण के जो वर्णन हैं, उनकी पुष्टि प्रामाणिक वैदिक साहित्य के साक्ष्य पर होनी चाहिए।

लेखक सर्वप्रथम इसकी पुष्टि करना चाहते हैं कि वेदों का सार विष्णुतत्त्व अर्थात् परम सत्य, सर्वव्यापक ईश्वर, विष्णु हैं। विष्णुतत्त्व की विभिन्न कोटियाँ हैं, जिनमें सर्वोच्च परम विष्णुतत्त्व भगवान् कृष्ण हैं, जिसकी पुष्टि भगवद्गीता में तथा सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में की गई है। श्रीमद्भागवत में वही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को नन्दसुत अर्थात् राजा नन्द के पुत्र कहा गया है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी कहते हैं कि नन्दसुत ही फिर से श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए हैं और वे अपने इस कथन का आधार वैदिक साहित्य का वह निर्णय बताते हैं, जिसमें कहा गया है कि भगवान् कृष्ण तथा चैतन्य महाप्रभु में कोई अन्तर नहीं है। लेखक इसको सिद्ध करेंगे। यदि यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीकृष्ण समस्त तत्त्वों (सत्यों) के अर्थात् ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् के उद्गम हैं और श्रीकृष्ण तथा भगवान् चैतन्य महाप्रभु में कोई अन्तर नहीं है, तो फिर यह समझने में कोई भी

कठिनाई नहीं होगी कि श्री चैतन्य महाप्रभु ही उन समस्त तत्त्वों के भी उद्गम हैं। वही परम सत्य, जो विभिन्न अनुभूति वाले जिज्ञासुओं के समक्ष प्रकट होता है, ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् कहलाता है।

प्रकाश-विशेषे तेंह धरे तिन नाम ।

ब्रह्म, परमात्मा आर स्वयं-भगवान् ॥ 10॥

प्रकाश-प्राकट्य का; विशेषे–विविध रूप में; तेह-वे; धरे-धरते हैं; तिन-तीन; नाम-नाम; ब्रह्म-ब्रह्म; परमात्मा-परमात्मा; आर-तथा; स्वयम्-स्वयं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

अपने विभिन्न प्राकट्यों की दृष्टि से वे तीन पहलूओं में विख्यात हैं, जो निर्विशेष ब्रह्म, स्थानीय परमात्मा तथा आदि भगवान् कहलाते हैं।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी ने अपने भागवत-सन्दर्भ नामक ग्रंथ में भगवान् शब्द की व्याख्या की है। समस्त चिन्त्य तथा अचिन्त्य शक्तियों से ओतप्रोत ईश्वर ही परम पूर्ण हैं। निर्विशेष ब्रह्म परम सत्य का आंशिक प्राकट्य होता है, जिसकी अनुभूति इन पूर्ण शक्तियों की अनुपस्थिति में होती है। भगवान् शब्द का पहला अक्षर भ है, जिसका अर्थ है, "पालक" तथा "रक्षक"। अगले शब्द ग का अर्थ है, "अग्रणी," "आगे बढ़ाने वाला" तथा "सृजनकर्ता (स्रष्टा)"। वका अर्थ है, "निवास करना" (सारे जीव भगवान् में निवास करते हैं और भगवान् हर जीव के हृदय में निवास करते हैं)। इन सारे सिद्धान्तों को मिलाने से भगवान् शब्द ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, प्रभाव आदि की अचिन्त्य शक्ति

को बतलाता है, जो समस्त प्रकार की निम्नताओं (क्षुद्रताओं) से रहित है। ऐसी अचिन्त्य शक्तियों के बिना न तो पूर्णतः पालन करना सम्भव है, न रक्षा करना। हमारी आधुनिक सभ्यता अनेक महान् वैज्ञानिकों के मस्तिष्कों द्वारा की गई वैज्ञानिक व्यवस्थाओं से नियंत्रित है। अतएव हम उस विराट् मस्तिष्क के विषय में केवल कल्पना कर सकते हैं, जिसकी व्यवस्था से अनेक ग्रहों तथा उपग्रहों का गुरुत्व स्थिर है और जिससे उस अनन्त आकाश की उत्पत्ति होती है, जिसमें ग्रह-उपग्रह तैर रहे हैं। यदि हम समझते हैं कि मनुष्य-निर्मित उपग्रह को कक्षा में स्थापित करने के लिए बुद्धि की आवश्यकता है, तो यह सोचना मूर्खता होगी कि विभिन्न ग्रह-मण्डलों की व्यवस्था के पीछे विराट् बुद्धि की आवश्यकता नहीं है। यह विश्वास करना कि किसी श्रेष्ठ बुद्धि की श्रेष्ठ व्यवस्था के बिना ही सभी विराट् ग्रह तैर रहे हैं, तर्कसंगत नहीं है। इस विषय की व्याख्या भगवद्गीता (15.13) में स्पष्ट रूप से की गई है, जहाँ भगवान् कहते हैं, "मैं प्रत्येक ग्रह में प्रवेश करता हूँ और वे मेरी ही शक्ति से वे कक्षा में स्थिर रहते हैं।" यदि ये ग्रह भगवान् के नियंत्रण में न होते, तो वे उसी तरह बिखर जाते, जिस तरह वायु में धूल के कण बिखर जाते हैं। आधुनिक विज्ञानी भगवान् की इस अचिन्त्य शक्ति की केवल अव्यावहारिक व्याख्या ही कर सकते हैं।

भ, ग तथा व-इन अक्षरों की शक्तियाँ विभिन्न अर्थ बतलाने वाली हैं। भगवान् अपने विभिन्न शक्तिशाली प्रतिनिधियों के द्वारा हर वस्तु का पालन तथा संरक्षण करते हैं, किन्तु अपने भक्तों की रक्षा तथा पालन वे स्वयं करते हैं; जिस प्रकार एक राजा अपने निजी सन्तानों की रक्षा एवं पालन स्वयं करता है, जबकि राज्य के संरक्षण एवं पालन का कार्य विभिन्न प्रशासनिक प्रतिनिधियों पर छोड़ देता है। जैसाकि भगवद्गीता से पता चलता है, भगवान् अपने भक्तों के अग्रणी (नेता) हैं और भगवान् अपने प्रिय भक्तों को स्वयं आदेश देते हैं कि भक्ति के मार्ग पर किस तरह निश्चित रूप से प्रगति करनी चाहिए और इस तरह भगवद्धाम पहुँचना चाहिए। भगवान् अपने भक्तों द्वारा अर्पित

समस्त पूजन को ग्रहण करते हैं और उनके लिए वे ही लक्ष्य हैं। भगवान् अपने भक्तों में दिव्य भगवत्प्रेम की भावना उत्पन्न करने के लिए अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करते हैं। ऐसा करने के लिए वे कभी-कभी अपने भक्त की भौतिक आसक्ति को बलपूर्वक छीन लेते हैं और उसकी सारी भौतिक सुरक्षा के साधनों को अस्तव्यस्त कर देते हैं, जिससे भक्त पूरी तरह से भगवान् के संरक्षण पर निर्भर रहे। इस प्रकार वे अपने आपको भक्तों के मार्गदर्शक के रूप में सिद्ध करते हैं।

भौतिक जगत् के सृजन, पालन तथा संहार से भगवान् का सीधा सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि वे अपनी अन्तरंगा शक्ति से उत्पन्न साधनों के साथ दिव्य आनन्द को भोगने में नित्य व्यस्त रहते हैं। तो भी भौतिक शक्ति तथा तटस्था शक्ति (जीवों) के संचालक होने के कारण वे अपना विस्तार पुरुष-अवतारों के रूप में करते हैं, जिन्हें उन्हीं के समान शक्ति प्रदत्त रहती है। ये पुरुष-अवतार भी भगवत्तत्त्व की कोटि में आते हैं, क्योंकि इनमें से हर एक भगवान् के आदि रूप के समकक्ष है। सारे जीव उनके सूक्ष्म अंश हैं और गुणात्मक रूप से उन्हीं के समान हैं। वे इस भौतिक जगत् में भौतिक भोग के लिए भेजे जाते हैं, जिससे वे स्वतन्त्र व्यक्ति होने की अपनी इच्छा पूर्ण कर लें; किन्तु इतने पर भी वे भगवान् की परम इच्छा के अधीन रहते हैं। भगवान् परमात्मा के रूप में ऐसे भौतिक भोग की व्यवस्था का निरीक्षण करते हैं। इस प्रसंग में एक अस्थायी मेले का दृष्टान्त उपयुक्त होगा। यदि किसी राज्य के नागरिक कुछ समय के लिए आनन्द उठाने की इच्छा से एक मेले में एकत्र होते हैं, तो सरकार इसके निरीक्षण के लिए एक विशेष अधिकारी नियुक्त कर देती है। ऐसे अधिकारी को सारे सरकारी अधिकार प्राप्त रहते हैं, अतएव वह सरकार से अभिन्न होता है। मेला समाप्त हो जाने पर ऐसे अधिकारी की आवश्यकता नहीं रहती और वह अपने घर लौट जाता है। परमात्मा की तुलना ऐसे अधिकारी से की जाती है।

जीव सर्वेसर्वा नहीं होते। वे निस्सन्देह भगवान् के अंश होते हैं और गुणात्मक रूप से उनसे एकरूप होते हैं, फिर भी वे उनके नियन्त्रण में रहते हैं। इस तरह वे कभी भी भगवान् के तुल्य या उनसे एकाकार नहीं होते। जीव के संग रहने वाले भगवान् परमात्मा होते हैं। अतएव क्षुद्र जीव एवं परम हस्ती (परमात्मा) को समान स्तर पर नहीं मानना चाहिए।

भौतिक जगत् के सृजन, पालन तथा संहार के समय जो सर्वव्यापी सत्य सदैव विद्यमान रहता है और समाधि में सारे जीव जिसमें निवास करते हैं, वह निर्विशेष ब्रह्म कहलाता है।

वदन्ति तत्तत्त्व-विदस्तत्त्वं व्रज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ 11॥

वदन्ति–वे कहते हैं; तत्व ह; तत्त्व-विदः–विद्वान आत्मा, ज्ञानी पुरुष; तत्त्वम्-परम सत्य; यत्-जो; ज्ञानम्-ज्ञान; अद्वयम्-अद्वय; ब्रह्म-ब्रह्म; इति-इस प्रकार; परमात्मा-परमात्मा; इति–इस प्रकार; भगवान्-भगवान्; इति इस प्रकार; शब्द्यते-कहलाता है।

अनुवाद

“परम सत्य को जानने वाले विद्वान-अध्यात्मवादी कहते हैं कि यह अद्वय ज्ञान तत्त्व है, जो निर्विशेष ब्रह्म, स्थानीय परमात्मा तथा भगवान् कहलाता है।”

तात्पर्य

यह संस्कृत श्लोक श्रीमद्भागवत (1.2.11) में आया है, जिसमें सूत गोस्वामी समस्त शास्त्रों के सार विषयक उन प्रश्नों का उत्तर देते हैं, जिन्हें शौनक आदि ऋषियों ने उनसे पूछा था। तत्त्वविदः ऐसे व्यक्तियों के लिए आया है, जो परम सत्य के ज्ञान से युक्त हैं। वे आध्यात्मिक स्तर पर होने के

कारण द्वैतरहित होकर ज्ञान को निश्चय ही समझ सकते हैं। परम सत्य कभी ब्रह्म, कभी परमात्मा और कभी भगवान् के रूप में जाना जाता है। जिन्हें सत्य का ज्ञान है, वे जानते हैं कि जो मनुष्य शुष्क तर्कवितर्क द्वारा परम सत्य तक पहुँचना चाहता है, अन्ततोगत्वा उसे निर्विशेष ब्रह्म की अनुभूति होगी। जो व्यक्ति योगाभ्यास द्वारा परम सत्य तक पहुँचना चाहता है, उसे परमात्मा का साक्षात्कार होगा, किन्तु जिसे पूर्ण ज्ञान एवं आध्यात्मिक बोध है, वह भगवान् के आध्यात्मिक साकार स्वरूप का साक्षात्कार करता है।

भगवान् के भक्त जानते हैं कि व्रजराज के पुत्र श्रीकृष्ण परम सत्य हैं। वे कृष्ण के नाम, रूप, गुण तथा लीलाओं में भेदभाव नहीं करते। जो भगवान् के दिव्य नाम, रूप तथा गुणों को भगवान् से अलग करना चाहता है, वह परम ज्ञान से विहीन है। शुद्ध भक्त जानता है कि जब वह "कृष्ण" के दिव्य नाम का उच्चारण करता है, तब श्रीकृष्ण दिव्य ध्वनि के रूप में वहाँ उपस्थित होते हैं। इसलिए वह परम आदर एवं श्रद्धा के साथ उच्चारण करता है। जब वह श्रीकृष्ण के रूपों का दर्शन करता है, तब वह भगवान् से भिन्न अन्य कुछ नहीं देखता। यदि कोई इसके विपरीत देखता है, तो समझना चाहिए कि वह परम के ज्ञान में प्रशिक्षित नहीं है। परम के ज्ञान का यह अभाव माया कहलाता है। जो कृष्णभावनाभावित नहीं होता, वह द्वैत ज्ञान के अन्तर्गत माया के वशीभूत होता है। परम सत्य में भगवान् के सारे प्राकट्य अद्वैत होते हैं, जिस प्रकार मायापति विष्णु के विविध रूप अद्वैत हैं। निर्विशेष ब्रह्म को मानने वाले अनुभववादी दार्शनिक केवल इस ज्ञान को स्वीकार करते हैं कि जीव भगवान् से भिन्न नहीं है और परमात्मा की खोज करने वाले योगी इतना ही स्वीकार करते हैं कि शुद्ध जीव परमात्मा से भिन्न नहीं है। किन्तु शुद्ध भक्त की परम धारणा में अन्य सभी सम्मिलित रहते हैं। भक्त कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता है, अतएव उसकी अनुभूति सर्वाधिक पूर्ण है।

ताँहार अङ्गेर शुद्ध किरण-मण्डल।

उपनिषत्कहे ताँरे ब्रह्म सुनिर्मल ॥12॥

ताँहार-उनका; अङ्गेर-शरीर का; शुद्ध-शुद्ध; किरण-किरणों का; मण्डल-क्षेत्र; उपनिषत्-उपनिषद्; कहे-कहते हैं; ताँरे–उनको; ब्रह्म-ब्रह्म; सु-निर्मल-दिव्य।

अनुवाद

जिसे उपनिषदें दिव्य निर्विशेष ब्रह्म कहती हैं, वह उन्हीं परम पुरुष के प्रकाशमान तेज का मण्डल है।

तात्पर्य

मुण्डक उपनिषद् के तीन मन्त्रों (2.2.9-11) से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शारीरिक तेज के विषय में इस प्रकार की जानकारी प्राप्त होती है :

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।

तच्छुभं ज्योतिषां ज्योतिस्तद यद् आत्मविदो विदुः।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र-तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वं इदं विभाति।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण

अधश्चोर्ध्वं च परसृतं ब्रह्मे-वेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्

“भौतिक आवरण के परे आध्यात्मिक जगत् में असीम ब्रह्म-तेज है, जो भौतिक कल्मष से रहित है। वह तेजवान श्वेत प्रकाश अध्यात्मवादियों द्वारा समस्त प्रकाशों का प्रकाश माना जाता है। उस क्षेत्र में प्रकाश के लिए सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा का प्रकाश, अग्नि, बिजली-कुछ भी नहीं चाहिए। वस्तुतः भौतिक जगत् में जो भी प्रकाश प्रकट होता है, वह उस परम प्रकाश का परावर्तन मात्र है। वही ब्रह्म आगे है, पीछे है, उत्तर में है, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में है और वही ऊपर तथा नीचे भी है। दूसरे शब्दों में, वह परम ब्रह्म तेज भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही आकाशों में परिव्याप्त होता है।”

चर्म-चक्षे देखे यैछे सूर्य निर्विशेष ।

ज्ञान-मार्गे लेते नारे कृष्णेर विशेष ॥13॥

चर्म-चक्षे–खुले नेत्रों से; देखे-कोई देखता है; यैछे-जैसे; सूर्य–सूर्य; निर्विशेष-विविधता के बिना; ज्ञान-मार्गे–ज्ञान-मार्ग से; लैते–स्वीकार करना; नारे-असम्भव; कृष्णेर- भगवान् कृष्ण की; विशेष-विविधता।

अनुवाद

जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने नग्न नेत्रों से सूर्य को केवल एक चमकीली वस्तु के अतिरिक्त और किसी रूप में नहीं जान सकता, उसी तरह केवल दार्शनिक चिन्तन से वह कृष्ण की दिव्य विविधताओं को नहीं समझ सकता।

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्ड-कोटि-

कोटीष्वशेष-वसुधादि-विभूति-भिन्नम् ।

तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेष-भूतं

गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥14॥

यस्य–जिसकी; प्रभा-ज्योति; प्रभवतः-प्रभावशील; जगत्-अण्ड–ब्रह्माण्ड का; कोटि-कोटीषु-करोड़ो में; अशेष-असीम; वसुधा-आदि-ग्रहों सहित; विभूति-ऐश्वर्यो सहित; भिन्नम्-भिन्न भिन्न होना; तत्-वह; ब्रह्म-ब्रह्म; निष्कलम्-पूर्ण; अनन्तम्-अनन्त; अशेष-भूतम्-पूर्ण होकर; गोविन्दम्-भगवान् गोविन्द; आदि-पुरुषम्-आदि-पुरुष; तम्-उनकी; अहम्-मैं; भजामि-वन्दना करता हूँ।

अनुवाद

"मैं उन आदि भगवान् गोविंद की पूजा करता हूँ, जो महान् शक्ति से सम्पन्न हैं। उनके दिव्य स्वरूप का दीप्तिमान तेज निर्विशेष ब्रह्म है, जो परम, पूर्ण तथा असीम है और जो करोड़ों ब्रह्माण्डों में असंख्य प्रकार के ग्रहों को उनके विभिन्न ऐश्वर्यों के साथ प्रदर्शित करता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक ब्रह्म-संहिता (5.40) में आया है। असंख्य ब्रह्माण्डों में से प्रत्येक ब्रह्माण्ड विभिन्न संरचना तथा वायुमंडल वाले ग्रहों से पूर्ण है। ये सारे के सारे उस असीम अद्वैत ब्रह्म या पूर्ण से उद्भूत होते हैं, जो परम ज्ञान में विद्यमान है। उस असीम ब्रह्म तेज का उद्गम भगवान् गोविन्द का दिव्य शरीर है, जिनको आदि भगवान् के रूप में सादर नमस्कार किया जाता है।

कोटी कोटी ब्रह्माण्डे ये ब्रह्मेर विभूति ।

सेइ ब्रह्म गोविन्देर हय अङ्ग-कान्ति ॥15॥

कोटी-करोड़ों; कोटी-करोड़ों; ब्रह्म-अण्डे–ब्रह्माण्डों में; ये-जो; ब्रह्मर-ब्रह्म का; विभूति-ऐश्वर्य; सेइ-वह; ब्रह्म-ब्रह्म; गोविन्देर-भगवान् गोविन्द का; हय-है; अङ्ग-कान्ति-शारीरिक तेज।

अनुवाद

(ब्रह्माजी ने कहा :) "निर्विशेष ब्रह्म के ऐश्वर्य करोड़ों ब्रह्माण्डों में परिव्याप्त होते हैं। यह ब्रह्म भगवान् गोविन्द का शारीरिक तेज मात्र होता है।"

सेइ गोविन्द भजि आमि, तेहों मोर पति ।

ताँहार प्रसादे मोर हय सृष्टि-शक्ति ॥16॥

सेइ-वही; गोविन्द–भगवान् गोविन्द; भजि-पूजा करता हूँ; आमि-मैं; तेहों-वे; मोर-मेरे; पति-स्वामी; ताँहार-उनकी; प्रसादे कृपा से; मोर-मेरा; हय होता है; सृष्टि-सृष्टि की; शक्ति-शक्ति।

अनुवाद

"मैं भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ। वे ही मेरे स्वामी हैं। केवल उन्हीं की कृपा से मुझमें ब्रह्माण्ड का सृजन करने की शक्ति है।"

तात्पर्य

यद्यपि सूर्य अन्य ग्रहों से बहुत दूर स्थित है, किन्तु उसकी किरणें उन सबका भरण-पोषण करती हैं। निस्सन्देह, सूर्य समूचे ब्रह्माण्ड के ऊपर अपनी ऊष्मा तथा प्रकाश वितरण करता है। इसी प्रकार परम सूर्यरूपी गोविन्द अपनी विभिन्न शक्तियों के रूप में अपनी ऊष्मा तथा प्रकाश का विस्तार करते हैं। सूर्य की ऊष्मा तथा उसका प्रकाश सूर्य से अभिन्न होते हैं। इसी प्रकार, गोविन्द की असीम शक्तियाँ स्वयं गोविंद से अभिन्न हैं। अतएव सर्वव्यापी ब्रह्म सर्वव्यापी गोविन्द हैं।

भगवद्गीता (14.27) में स्पष्ट उल्लेख है कि निर्विशेष ब्रह्म गोविन्द पर आश्रित है। परम ज्ञान की यही वास्तविक धारणा है।

मुनयो वात-वासनाः श्रमणा ऊर्ध्व-मन्थिनः ।

ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शान्ताः सन्यासिनोऽमलाः ॥ 17॥

मुनयः–सन्तगण; वात-वासनाः-नग्न; श्रमनाः-जो कठोर तपस्या करते हैं; ऊर्ध्व-ऊँचे; मन्थिनः-जिनका वीर्य; ब्रह्म-आख्यम्-ब्रह्मलोक के नाम से प्रसिद्ध; धाम-धाम को; ते-वे; यान्ति-जाते हैं; शान्ताः-शान्त मन वाले, ब्रह्म में स्थिर; सन्यासिनः-संन्यासीगण; अमलाः-शुद्ध।

अनुवाद

"वे नग्न साधु तथा संन्यासी, जो कठोर शारीरिक तपस्या करते हैं, जो अपने वीर्य को मस्तिष्क तक ऊपर उठा सकते हैं (ऊर्ध्व-रेता हैं) तथा जो ब्रह्म में पूर्णतया स्थित हैं, वे ब्रह्मलोक नामक मण्डल में निवास कर सकते हैं।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (11.6.47) के इस श्लोक में, वातवासनाः उन साधुओं के लिए आया है, जो किसी भी भौतिक वस्तु, यहाँ तक कि वस्त्र की भी परवाह नहीं करते, अपितु प्रकृति पर ही पूर्ण रूप से आश्रित रहते हैं। ऐसे साधु कठोर शीत या झुलसती गर्मी में भी अपने शरीरों को नहीं ढकते। वे शरीर के कष्टों से दूर न रहने के लिए महान् प्रयत्न करते हैं और वे द्वार-द्वार जाकर भीख माँगकर जीवित रहते हैं। वे जाने या अनजाने में भी वीर्य स्खलित नहीं करते। वे ऐसे ब्रह्मचर्य से वीर्य को मस्तिष्क तक ले जाते हैं। इस तरह वे अत्यधिक बुद्धिमान बन जाते हैं और उनकी स्मृति प्रखर हो

उठती है। उनका मन कभी भी परम सत्य के चिन्तन से विचलित नहीं होता, न ही वे भौतिक भोग की भावना से कभी कलुषित होते हैं। ऐसे साधु-संन्यासी कठोर अनुशासन में की गई तपस्या के अभ्यास से ऐसी शान्त दशा को प्राप्त होते हैं, जो प्रकृति के गुणों से परे है और वे निर्विशेष ब्रह्म में समा जाते हैं।

आत्मान्तर्यामी याँरे स्रोग-शास्त्रे कय।

सेह गोविन्देर अंश विभूति ये हय ॥18॥

आत्मा अन्तः-यामी–अन्तस्थित परमात्मा; झाँरे–जो; स्रोग-शास्त्रे-योग-शास्त्रों में; कय–कहा जाता है; सेह-कि; गोविन्देर-गोविन्द का; अंश-पूर्णांश; विभूति-विस्तार; ये-जो; हय-है।

अनुवाद

जिन्हें योगशास्त्रों में अन्तर्यामी परमात्मा कहकर वर्णित किया जाता है, वे भी गोविन्द के निजी विस्तार के अंश हैं।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वभाव से प्रसन्नचित्त हैं। उनके आमोद-प्रमोद या उनकी लीलाएँ पूर्णतया दिव्य हैं। वे अस्तित्व के चतुर्थ आयाम में रहते हैं, क्योंकि यद्यपि भौतिक जगत् लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई से प्रतिबन्धित रहता है, किन्तु भगवान् अपने शरीर, रूप तथा अस्तित्व में पूर्णतया असीम होते हैं। वे भौतिक जगत् के भीतर के किसी भी व्यापार से स्वयं जुड़े हुए नहीं होते हैं। भौतिक जगत् उनके पुरुष-अवतारों के विस्तारों से सृजित होता है, जो समग्र भौतिक शक्ति तथा

सारे बद्धजीवों का मार्गदर्शन करते हैं। पुरुष के तीन विस्तारों को समझकर जीव भौतिक जगत् के केवल 24 तत्त्वों के ज्ञान की अवस्था को पार कर सकता है।

महाविष्णु के विस्तारों में से एक क्षीरोदकशायी विष्णु हैं, जो प्रत्येक जीव के भीतर परमात्मा हैं। समस्त जीवों के परमात्मा अथवा द्वितीय पुरुष के रूप में वे गर्भोदकशायी विष्णु कहलाते हैं। असंख्य ब्रह्माण्डों के स्रष्टा या आदि कारण अथवा प्रथम पुरुष जो कारण सागर में शयन करते हैं, वे महाविष्णु कहलाते हैं। ये तीनों पुरुष भौतिक जगत् के व्यापारों का निर्देशन करते हैं। प्रामाणिक शास्त्र निर्देश देते हैं कि हर व्यक्तिगत जीव परमात्मा के साथ अपने सम्बन्ध को पुनः जागृत करे। निस्सन्देह, योग ऐसी विधि है, जिससे परमात्मा के रूप में जाने जाने वाले पुरुष से सम्बन्ध स्थापित करके भौतिक तत्त्वों के प्रभाव का अतिक्रमण किया जा सकता है। जिस किसी ने सृजन की प्रक्रिया की जटिलताओं का भलीभाँति अध्ययन किया है, वह बड़ी सरलता से जान सकता है कि ये परमात्मा परम पुरुष श्रीकृष्ण के अंश हैं।

अनन्त स्फटिके यैछे एक सूर्य भासे ।

तैछे जीवे गोविन्देर अंश प्रकाशे ॥19॥

अनन्त-अनन्त; स्फटिके-रत्नों में; यैछे-जैसे; एक-एक; सूर्य-सूर्य; भासे-प्रकट होता है; तैछे-जैसे; जीवे-जीव में; गोविन्देर-गोविन्द का; अंश-अंश; प्रकाशे-प्रकट होता है।

अनुवाद

जिस प्रकार एक ही सूर्य असंख्य रत्नों में प्रतिबिम्बित होता दिखता है, उसी प्रकार गोविन्द (परमात्मा रूप में) समस्त जीवों के हृदयों में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

सूर्य एक विशिष्ट स्थान पर स्थित होता है, किन्तु असंख्य रत्नों में प्रतिबिम्बित होता है और असंख्य स्थानीय रूपों में प्रकट होता है। इसी प्रकार यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने दिव्य धाम गोलोक वृन्दावन में नित्य विद्यमान रहते हैं, किन्तु वे हर प्राणी के हृदय में परमात्मा रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं। उपनिषदों में कहा गया है कि जीव तथा परमात्मा एक ही वृक्ष पर बैठे दो पक्षियों की तरह हैं। परमात्मा जीव को उसके विगत कर्मों के फलस्वरूप सकाम कर्मों में प्रवृत्त करते हैं, किन्तु स्वयं परमात्मा को ऐसे कार्यों से कोई प्रयोजन नहीं रहता। ज्योंही जीव सकाम कर्म करना बन्द कर देता है और भगवान् (परमात्मा) की श्रेष्ठता को समझकर उनकी सेवा करने लगता है, त्योंही वह सारी उपाधियों से मुक्त हो जाता है और उस शुद्ध स्थिति में भगवद्धाम अर्थात् वैकुण्ठ में प्रवेश करता है।

परमात्मा सारे जीवों के पथप्रदर्शक होकर भी, जीवों की इच्छाओं को पूरा करने में हाथ नहीं बँटाते, किन्तु वे भौतिक प्रकृति के द्वारा उनकी पूर्ति के लिए व्यवस्था करते हैं। ज्योंही जीव परमात्मा के साथ अपने शाश्वत सम्बन्ध के प्रति जागरूक हो उठता है और उन्हीं का सहारा लेने लगता है, त्योंही वह भौतिक भोग के बन्धन से मुक्त हो जाता है। ईसाई दार्शनिक कर्म के विधान में विश्वास नहीं करते, अतएव वे तर्क देते हैं कि यह कहना बेहूदा होगा कि मनुष्य को अपने उन पूर्व कर्मों के फल भोगने के लिए बाध्य होना पड़ता है, जिनसे वह अनजान है। एक अपराधी को पहले न्यायालय में गवाहों द्वारा उसके दुष्कर्मों से अवगत कराया जाता है और तब दण्ड दिया जाता है। यदि मृत्यु पूर्ण विस्मृति है, तो फिर मनुष्य को पुराने दुष्कर्मों के लिए दण्डित क्यों किया जाना चाहिए? परमात्मा की धारणा इन गलत तर्कों का एकमात्र अकाट्य उत्तर है। परमात्मा हर जीव के विगत कर्मों के साक्षी हैं। मनुष्य भले ही अपने बचपन के कार्यों को स्मरण न रखे, किन्तु उसका पिता, जिसने उसे अनेक

अवस्थाओं से गुजरते देखा है, निश्चित रूप से स्मरण रखता है। इसी प्रकार अनेक जन्मों में जीव के शरीर में अनेक परिवर्तन होते हैं, किन्तु परमात्मा सदैव उसके साथ रहते हैं, अतएव वे उसके विभिन्न शरीरों में से गुजरने से होने वाले विकास के बाद भी, उसके सारे कार्यों को याद रखते हैं।

अथ वा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥20॥

अथ वा–अथवा; बहुना-और अधिक; एतेन–इससे; किम्-क्या लाभ; ज्ञातेन-जानने से; तव-तुम्हारे द्वारा; अर्जुन–हे अर्जुन; विष्टभ्य-व्याप्त होने से; अहम्-मैं; इदम् यह; कृत्स्नम् सम्पूर्ण; एक-अंशेन-एक अंश से; स्थितः-स्थित; जगत्-ब्रह्माण्ड।

अनुवाद

[भगवान् कृष्ण ने कहा :] "अब मैं तुमसे और अधिक क्या कहूँ? मैं केवल अपने एक अंश के द्वारा इस विराट् जगत् में व्याप्त रहता हूँ।"

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से अपनी शक्तियों का वर्णन करते हुए भगवद्गीता (10.42) का यह श्लोक कहा है।

तमिममहमजं शरीर-भाजां

हृदि हृदि धिष्ठितमात्म-कल्पितानाम् ।

प्रति-दृशमिव नैकधार्कमेकं

समधिगतोऽस्मि विधूत-भेद-मोहः ॥21॥

तम्-उन्हें; इमम्-यह; अहम्-मैं; अजम्-अजन्मा; शरीर-भाजाम्-देहधारी बद्धात्माओं का; हृदि हृदि–प्रत्येक हृदय में; धिष्ठितम्-स्थित; आत्म-अपने आप; कल्पितानाम्-जो कल्पित हैं; प्रति-दृशम्-प्रत्येक दृष्टि के लिए; इव-की भाँति; न एक-धा-एक प्रकार से नहीं; अर्कम्-सूर्य; एकम्-एक; समधिगतः-जिसने प्राप्त कर लिया है; अस्मि-मैं हूँ; विधूत-दूर हुआ; भेद-मोहः-जिसकी द्वैत की मिथ्या धारणा।

अनुवाद

[भीष्म पितामह ने कहा :]"जिस प्रकार एक ही सूर्य विभिन्न दर्शकों को भिन्न भिन्न रूप से अवस्थित प्रतीत होता है, उसी तरह हे अजन्मा, आप हर जीव में परमात्मा के रूप में भिन्न भिन्न प्रकार से प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं। किन्तु जब दर्शक अपने आपको आपके सेवक-रूप में जान लेता है, तो उसमें ऐसा द्वैत नहीं रह पाता। इस प्रकार अब मैं आपके शाश्वत रूपों को समझने में समर्थ हूँ और भलीभाँति जानता हूँ कि परमात्मा आपके अंश मात्र हैं।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (1.9.42) का यह श्लोक कुरुओं के पितामह भीष्मदेव ने तब कहा था, जब वे अपने जीवन के अन्तिम काल में शरशय्या पर लेटे थे। जब महाराज युधिष्ठिर मरणासन्न भीष्म से नैतिक तथा धार्मिक उपदेश ग्रहण कर रहे थे, तब उस स्थान पर अर्जुन, कृष्ण तथा उनके असंख्य मित्र, प्रशंसक, परिजन तथा ऋषि-मुनि एकत्र हुए थे। ज्योंही भीष्म का अन्तिम समय आ गया, त्योंही उन्होंने भगवान् कृष्ण की ओर देखते हुए यह श्लोक कहा था।

जिस प्रकार एक सूर्य अनेक व्यक्तियों के लिए देखने की वस्तु है, उसी तरह भगवान् कृष्ण के एक अंश, जो हर जीव के हृदय में परमात्मा रूप में रहते हैं, विविध प्रकार से दिखलाई पड़ने वाली वस्तु हैं। जो व्यक्ति भगवान् कृष्ण की सनातन सेवा में अपने आपको लगाकर उनके निकट सम्पर्क में आता है, वह परमात्मा को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के स्थानीय अंश के रूप में देखता है। भीष्मदेव जानते थे कि परमात्मा उन भगवान् कृष्ण के अंश रूप हैं, जिन्हें वे परम, अजन्मे दिव्य रूप में समझते थे।

सेइत गोविन्द साक्षाच्चैतन्य गोसाञि ।

जीव निस्तारिते ऐछे दयालु आर नाइ ॥22॥

सेइत-वह; गोविन्द-गोविन्द; साक्षात्-साक्षात्; चैतन्य–भगवान् चैतन्य; गोसाञि-गोसांई; जीव-पतित जीवगण; निस्तारिते-उद्धार के लिए; ऐछे-ऐसे; दयालु-दयालु भगवान्; आर-अन्य; नाइ–नहीं है।

अनुवाद

वही गोविन्द स्वयं चैतन्य गोसांई के रूप में प्रकट होते हैं। अन्य कोई प्रभु पतित आत्माओं का उद्धार करने में इतने दयालु नहीं हैं।

तात्पर्य

ब्रह्म तथा परमात्मा के पहलूओं के सन्दर्भ में गोविन्द का वर्णन कर चुकने के बाद श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक अब यह सिद्ध करने के लिए तर्क पेश करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु वही व्यक्ति हैं। वही श्रीकृष्ण कृष्ण-भक्त के वेश में उन पतित मानवों का उद्धार करने के लिए इस मर्त्य

लोक में अवतरित हुए हैं, जो भगवद्गीता की व्याख्या जानने के बाद भी भगवान् को नहीं समझ पाये। भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रत्यक्ष उपदेश दिया है कि परमेश्वर एक व्यक्ति हैं; निर्विशेष ब्रह्म उनका दीप्तिमान तेज है और परमात्मा उनके अंश रूप हैं। अत: सारे मनुष्यों को उपदेश दिया गया था कि सारे संसारी "वाद" को त्यागकर वे श्रीकृष्ण के मार्ग का अनुसरण करें। किन्तु अपराधियों ने इस उपदेश को ठीक से नहीं समझा, क्योंकि उनमें ज्ञान की कमी थी। अतएव अपनी अहैतुकी असीम कृपा के कारण श्रीकृष्ण श्री चैतन्य गोसांई के रूप में पुनः आये।

श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक बल देकर बताते हैं कि भगवान् चैतन्य महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण हैं। वे श्रीकृष्ण के प्रकाश या विलास रूपों के विस्तार नहीं हैं। वे स्वयं-रूप गोविन्द हैं। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने जो सम्बन्धित शास्त्रीय साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं, उनके अतिरिक्त भी असंख्य शास्त्रीय कथन हैं, जिनके अनुसार चैतन्य महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं। यहाँ पर निम्नलिखित कथन उद्धृत किये जा सकते हैं :

(1) चैतन्य उपनिषद् (5) से-गौरः सर्वात्मा महापुरुषो महात्मा महायोगी त्रिगुणातीतः सत्त्वरूपो भक्तिं लोके काश्यति–"भगवान् गौर, जो सर्वव्यापी परमात्मा हैं, वे उस महान् सन्त तथा शक्तिशाली योगी के रूप में प्रकट होते हैं, जो त्रिगुणातीत हैं और दिव्य कर्म के प्रतीक हैं। वे सारे विश्व में भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार करते हैं।"

(2) श्वेताश्वतर उपनिषद् (6.7 तथा 3.12) से :

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं

तं देवतानां परमं च दैवतम् ।

पतिं पतीनां परमं परस्ताद्

विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

“हे परमेश्वर, आप परम महेश्वर, समस्त देवताओं के आराध्य देव तथा समस्त प्रभुओं के प्रभु हैं। आप समस्त नियामकों के नियामक, परमेश्वर, प्रत्येक पूज्य वस्तु के स्वामी हैं।”

महान् प्रभु पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्तकः ।

सुनिर्मलाम् इमां प्राप्तिम् ईशानो ज्योतिरव्ययः ॥

“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् महाप्रभु हैं, जो दिव्य प्रकाश को विस्तारित करते हैं। उनके सम्पर्क में आने का अर्थ है, अविनाशी ब्रह्मज्योति के सम्पर्क में आना।”

(3) मुण्डक उपनिषद् (3.1.3) से :

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्ण ।

कर्तारम् ईशं पुरुषं ब्रह्म-योनिम् ॥

“जो स्वर्णिम रंग वाले भगवान्, परमेश्वर, परमकर्ता–परम ब्रह्म के उद्गम-का दर्शन करता है, वह मुक्त हो जाता है।”

(4) श्रीमद्भागवत (11.5.33-34 तथा 7.9.38) से :

ध्येयं सदा परिभवघ्नम् अभीष्ट दोंहे

तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।

भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

“हम उन भगवान् के चरणकमलों में सादर नमस्कार करते हैं, जिनका मनुष्य को सदैव ध्यान करना चाहिए। वे अपने भक्तों के अपमानों को नष्ट करते हैं, उनके दुःखों को दूर करते हैं और उनकी आकांक्षाओं को पूरा करते हैं। वे समस्त तीर्थों के आगार तथा समस्त मुनियों के आश्रय हैं और शिवजी तथा ब्रह्माजी द्वारा पूजनीय हैं। वे जन्म तथा मृत्यु के सागर को पार करने के लिए देवताओं की नौका हैं।

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मी

धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।

मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

“हम उन भगवान् के चरणकमलों में सादर नमस्कार करते हैं, जिनका मनुष्य को सदैव ध्यान करना चाहिए। उन्होंने अपना गृहस्थ जीवन त्याग दिया और अपनी नित्य सहचरी को त्याग दिया, जिसकी प्रशंसा स्वर्ग के निवासी तक करते हैं। वे उन पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए जंगल में गये, जो भौतिक शक्ति माया द्वारा मोह में डाल दिए जाते हैं।”

प्रह्लाद कहते हैं :

इत्थं नृतिर्यगृषिदेव झषावतारै-

र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत् प्रतीपान् ।

धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं

छन्नः कलौ यदभवत्त्रियुगोऽथ सत्वम् ॥

“हे प्रभु, आप मनुष्यों, पशुओं, देवताओं, ऋषियों, जलचरों इत्यादि के परिवारों में नाना अवतार लेकर संसार के सारे शत्रुओं का विनाश करते हैं। इस तरह आप संसार को दिव्य ज्ञान से प्रकाशित करते हैं। हे महापुरुष, आप कलियुग में कभी-कभी प्रच्छन्न अवतार के रूप में प्रकट होते हैं। इसलिए आप त्रियुग (केवल तीन युगों में प्रकट होने वाले) कहलाते हैं।”

(5) कृष्णयामल-तंत्र से :

पुण्यक्षेत्रे नवद्वीपे भविष्यामि शचीसुतः-“मैं नवद्वीप की पवित्र भूमि में शचीदेवी के पुत्र के रूप में प्रकट हूँगा।”

(6) वायुपुराण से :

कलौ सङ्कीर्तनारम्भे भविष्यामि शची-सुतः-“कलियुग में, जब संकीर्तन आन्दोलन का शुभारम्भ होगा, तब मैं शचीदेवी के पुत्र के रूप में अवतरित हूँगा।”

(7) ब्रह्मयामल-तंत्र से :

अथवाहं धराधामे भूत्वा मद्भक्तरूपधृक् ।

मायायां च भविष्यामि कलौ सङ्कीर्तनागमे ।

“कभी-कभी मैं पृथ्वी पर भक्त के वेश में प्रकट होता हूँ। विशेषतया मैं कलियुग में संकीर्तन आन्दोलन का प्रारम्भ करने के लिए शची के पुत्र के रूप में प्रकट होता हूँ।”

(8) अनन्त संहिता से :

य एव भगवान् कृष्णो राधिकाप्राणवल्लभः ।

सृष्ट्यादौ स जगन्नाथो गौर आसीन्महेश्वरि ॥

"साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण, जो श्रीमती राधारानी के प्राण हैं और ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन तथा संहार के स्वामी हैं, हे महेश्वरी, वे ही गौर रूप में प्रकट होते हैं।"

पर-व्योमेते वैसे नारायण नाम ।

षड्-ऐश्वर्य-पूर्ण लक्ष्मी-कान्त भगवान् ॥23॥

पर-व्योमेते-दिव्य जगत् में; वैसे-स्थित हैं; नारायण-भगवान् नारायण; नाम-नामक; षट्-ऐश्वर्य-छः प्रकार के ऐश्वर्य; पूर्ण–पूर्ण; लक्ष्मी-कान्त-श्रीदेवी लक्ष्मी के पति; भगवान्-भगवान्।

अनुवाद

दिव्य जगत् के सर्वेसर्वा भगवान् नारायण छः ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं। वे लक्ष्मीपति भगवान् हैं।

वेद, भागवत, उपनिषत्, आगम ।

'पूर्ण-तत्त्व' याँरे कहे, नाहि याँर सम ॥24॥

वेद-वेद; भागवत-श्रीमद्भागवतम्; उपनिषत्-उपनिषद्; आगम-अन्य दिव्य साहित्य; पूर्ण-तत्त्वपूर्ण सत्य; याँरे–जिनका; कहे-वे कहते हैं; नाहि नहीं है; याँर-जिनके; सम-समान।

अनुवाद

परमेश्वर वे हैं, जिन्हें वेदों, उपनिषदों तथा अन्य दिव्य साहित्य में परम पूर्ण के रूप में वर्णित किये गये हैं। उनके तुल्य कोई नहीं है।

तात्पर्य

वेदों में परम सत्य के साकार स्वरूप विषयक अनेक प्रामाणिक कथन मिलते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

(1) ऋक् संहिता (1.22.20) से :

तद् विष्णोः परमं पदं ।

सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीव चक्षुराततम् ॥

"भगवान् विष्णु परम सत्य हैं, जिनके चरणकमलों का दर्शन पाने के लिए सारे देवता सदैव लालायित रहते हैं। वे सूर्यदेव की भाँति अपनी शक्ति-किरणों से हर वस्तु में व्याप्त हैं। वे अपूर्ण आँखों को निर्विशेष लगते हैं।"

(2) नारायणाथर्व-शिर उपनिषद् (1-2) से :

नारायणादेव समुत्पद्यन्ते नारायणात् प्रवर्तन्ते नारायणे प्रलीयन्ते... अथ नित्यो नारायणः... नारायण एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्... शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित्। "नारायण से ही हर वस्तु उत्पन्न होती है, उन्हीं के द्वारा ही हर वस्तु का पालन होता है और उन्हीं में ही हर वस्तु का विलय होता है। इसलिए नारायण शाश्वत रूप से विद्यमान रहते हैं। इस समय जो भी

वस्तु विद्यमान है या जो भविष्य में उत्पन्न होगी, वह शुद्ध अर्चाविग्रह नारायण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। नारायण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।"

(3) नारायण उपनिषद् (1.4) से : यतः प्रसूता जगतः प्रसूती–नारायण ही वे स्रोत हैं, जिनसे समस्त ब्रह्माण्ड उद्भूत हुआ है।"

(4) हयशीर्ष पञ्चरात्र से : परमात्मा हरिर्देवः–"हरि परमेश्वर हैं।"

(5) श्रीमद्भागवत (11.3.34-35) से :

नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।

निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्म-वित्तमाः ॥

"हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ, कृपया हमें नारायण के पद के विषय में बताइए, जो ब्रह्म तथा परमात्मा के नाम से भी विख्यात हैं।"

स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य

यत् स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च ।

देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन

सञ्जीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र ॥

"हे राजन्, उन्हें जानो जिनका कोई कारण नहीं है, फिर भी वे सृष्टि, पालन एवं प्रलय के कारण हैं। वे चेतना की तीन अवस्थाओं में-यथा जागृति, स्वप्न तथा प्रगाढ़ निद्रा_तथा इनसे परे भी विद्यमान

हैं। वे शरीर, इन्द्रियों, प्राण तथा हृदय को जीवन शक्ति प्रदान करते हैं, जिससे वे गति करते हैं। उन्हें परम पूर्ण के रूप में जानो।"

भक्ति-योगे भक्त पाय याँहार दर्शन ।

सूर्य येन सविग्रह देखे देवगण ॥ 25 ॥

भक्ति-योगे-भक्ति योग से; भक्त-भक्त; पाय-पाता है; याँहार–जिनका; दर्शन-दर्शन; सूर्य-सूर्यदेव; येन-जैसा; स-विग्रह-विग्रह सहित, रूप सहित; देखे-देखते हैं; देव-गण-स्वर्ग के निवासी।

अनुवाद

भक्तगण अपनी सेवा के माध्यम से भगवान् को उसी तरह देखते हैं, जिस प्रकार स्वर्ग के निवासी सूर्यदेव को देखते हैं।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का एक शाश्वत रूप है, जिसे भौतिक आँखों से या मानसिक कल्पना से नहीं देखा जा सकता। केवल दिव्य भक्ति द्वारा भगवान् के इस दिव्य रूप को समझा जा सकता है। यहाँ पर इसकी तुलना सूर्यदेव के व्यक्तित्व के दर्शन करने की योग्यताओं से की गई है। सूर्यदेव एक व्यक्ति हैं, जो यद्यपि हमारी आँखों को नहीं दिखते, किन्तु उन्हें देवतागण उच्चतर लोकों से देख सकते हैं, क्योंकि उनकी आँखें सूर्यदेव को चारों ओर से घेरने वाले तीव्र प्रकाश के पार देखने के लिए सक्षम हैं। प्रत्येक ग्रह का अपना वायुमण्डल होता है, जो भौतिक प्रकृति की व्यवस्था पर निर्भर करता है। अतएव किसी विशेष ग्रह तक पहुँचने के लिए विशेष शारीरिक बनावट होनी आवश्यक है। पृथ्वी के निवासी चन्द्रमा तक पहुँचने में सक्षम हो सकते हैं, किन्तु स्वर्ग के निवासी

सूर्य जैसे अग्निमय मंडल में भी पहुँच सकते हैं। पृथ्वी के मनुष्य के लिए जो असम्भव है, वह स्वर्ग के देवताओं के लिए सुगम है, क्योंकि उनके शरीर भिन्न प्रकार के होते हैं। इसी प्रकार परम भगवान् का दर्शन करने के लिए मनुष्य के पास भक्ति की आध्यात्मिक आँखें होनी चाहिए। जो परम सत्य के विषय में वैज्ञानिक विचारधारा के अनुसार दिव्य ध्वनि की सहायता लिये बिना कल्पना करने के आदी हैं, उनके लिए भगवान् दुर्लभ हैं। आरोह पद्धति से परम सत्य के निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है किन्तु परम दिव्य पुरुष का नहीं।

ज्ञान-योग-मार्गे ताँरे भजे येइ सब ।

ब्रह्म-आत्म-रूपे ताँरे करे अनुभव ॥ 26 ॥

ज्ञान–दार्शनिक चिन्तन के; योग-और गूढ़ योग के; मार्गे–मार्गों पर; ताँरे–उनकी; भजे–पूजा करते हैं; येइ-जो; सब-सब; ब्रह्म-निर्विशेष ब्रह्म के; आत्म-और परमात्मा के; रूपे-रूपों में; ताँरे–उन्हें; करे-करते हैं; अनुभव-देखते हैं, अनुभूति करते हैं।

अनुवाद

जो लोग ज्ञान तथा योग के मार्गों पर चलते हैं, वे भगवान् ही की पूजा करते हैं, क्योंकि वे निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में उन्हीं का अनुभव करते हैं।

तात्पर्य

जो लोग परम सत्य की खोज करने के लिए मानसिक तर्कवितर्क (ज्ञानमार्ग) में आसक्त हैं या योग में स्थित होकर ध्यान करना चाहते हैं, वे क्रमशः भगवान् के निर्विशेष तेज तथा उनके अंश (परमात्मा) के पास पहुँचते हैं। ऐसे व्यक्ति भगवान् के शाश्वत रूप का अनुभव नहीं कर सकते।

उपासना-भेदे जानि ईश्वर-महिमा ।

अतएव सूर्य ताँर दियेत उपमा ॥ 27॥

उपासना-भेदे-पूजा के विविध मार्गों से; जानि-मैं जानता हूँ; ईश्वर-परम ईश्वर की; महिमा-महिमा; अतएव इसलिए; सूर्य-सूर्य; ताँर–उनकी; दियेत–दी गई थी; उपमा-उपमा।

अनुवाद

इसलिए पूजा के विविध प्रकारों से भगवान् की महिमा को उसी प्रकार समझा जा सकता है, जिस प्रकार सूर्य की उपमा से पता लगता है।

सेइ नारायण कृष्णेर स्वरूप-अभेद ।

एकइ विग्रह, किन्तु आकार-विभेद ॥28॥

सेइ-वे; नारायण-भगवान् नारायण; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; स्वरूप-मूल स्वरूप; अभेद-अभिन्न; एकइ–एक; विग्रह-पहचान; किन्तु किन्तु; आकार-आकार; विभेद-अन्तर।

अनुवाद

नारायण तथा श्रीकृष्ण एक ही ईश्वर हैं, किन्तु एक होकर भी उनके शारीरिक लक्षण भिन्न हैं।

इँहोत द्वि-भुज, तिंहो धरे चारि हाथ ।

इँहो वेणु धरे, तिंहो चक्रादिक साथ ॥ 29॥

इँहोत-ये; द्वि-भुज-द्विभुज धारी; तिंहो-वे; धरे-धारण करते हैं; चारि–चार; हाथ-भुजाएँ; इँहो-ये; वेणु–बाँसुरी; धरे–धारण किए हैं; तिंहो-वे; चक्र-आदिक-चक्र, आदि; साथ-के सहित।

अनुवाद

इन ईश्वर (श्रीकृष्ण) के दो हाथ हैं और वे मुरली धारण करते हैं, जबकि दूसरे (नारायण) के चार हाथ हैं, जिनमें वे शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करते हैं।

तात्पर्य

नारायण श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं। वस्तुतः वे एक ही व्यक्ति हैं, जो भिन्न भिन्न रूपों में प्रकट होते हैं, जिस प्रकार उच्च न्यायालय का न्यायाधीश अपने कार्यालय तथा अपने घर में भिन्न-भिन्न रूप में रहता है। नारायण रूप में ईश्वर चार भुजाओं से युक्त होते हैं, जबकि कृष्ण रूप में वे दो हाथों से युक्त होते हैं।

नारायणस्त्वं न हि सर्व-देहिनाम्

आत्मास्यधीशाखिल-लोक-साक्षी ।

नारायणोऽङ्गं नर-भू-जलायनात्

तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥30॥

नारायणः- भगवान् नारायण; त्वम्-आप; न-नहीं; हि निश्चय ही; सर्व-सभी; देहिनाम्-देहधारियों के; आत्मा-परमात्मा; असि-आप हैं; अधीश-हे भगवान्; अखिल-लोक-अखिल लोकों के; साक्षी–साक्षी; नारायणः–नारायण के नाम से प्रसिद्ध; अङ्गम्-पूर्णांश; नर-नर का; भू–उत्पन्न;

जल-जल में; अयनात्-आश्रय स्थान के कारण; तत्व ह; च–तथा; अपि-निश्चय ही; सत्यम्-सर्वोच्च सत्य; न-नहीं; तव-आपका; एव–बिल्कुल; माया-माया।

अनुवाद

हे प्रभुओं के प्रभु! आप सारी सृष्टि के द्रष्टा हैं। आप निस्सन्देह हर एक के प्रियतम प्राण हैं। तो क्या आप मेरे पिता श्री नारायण नहीं हैं? नारायण का अर्थ है, वे जिसका घर जल में है, जो 'नर' (गर्भोदकशायी विष्णु) से उत्पन्न हुए हैं और वे नारायण तो आपके अंश हैं। आपके सारे पूर्ण अंश दिव्य हैं। वे परम पूर्ण हैं और वे माया द्वारा सृजित नहीं हैं।"

तात्पर्य

यह कथन श्रीमद्भागवत (10.14.14) से लिया गया है। इसे ब्रह्माजी ने भगवान् कृष्ण की स्तुति करते समय कहा था, जब ब्रह्मा भगवान् कृष्ण द्वारा अपनी योगशक्ति का प्रदर्शन किये जाने पर पराजित हो गये थे। ब्रह्मा ने यह देखने के लिए भगवान् कृष्ण की परीक्षा ली थी कि क्या सचमुच पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही गोप-बालक के रूप में क्रीड़ा कर रहे हैं। ब्रह्मा ने अन्य सारे बालकों को उनके बछड़ों समेत चरागाह से चुरा लिया था, किन्तु चरागाह लौटकर उन्होंने देखा कि सारे बालक तथा बछड़े वहीं पर थे, क्योंकि भगवान् कृष्ण ने उन्हें फिर से उत्पन्न कर दिया था। जब ब्रह्मा ने कृष्ण की यह योगशक्ति देखी, तो उन्होंने हार मान ली और उन्होंने भगवान् की स्तुति सृष्टि के स्वामी एवं हर वस्तु के द्रष्टा के रूप में तथा हर एक जीव के भीतर स्थित परमात्मा के रूप में एवं सबको प्रिय कहकर की। वही भगवान् कृष्ण नारायण अर्थात् ब्रह्मा के पिता हैं, क्योंकि भगवान् कृष्ण के पूर्ण अंश गर्भोदकशायी विष्णु ने अपने आपको गर्भ सागर में स्थापित करके अपने शरीर से ब्रह्मा

को जन्म दिया था। कारण सागर में महाविष्णु तथा जन-जन के हृदय में परमात्मा रूप क्षीरोदकशायी विष्णु भी परम सत्य के दिव्य विस्तार हैं।

शिशु वत्स हरि' ब्रह्मा करि अपराध ।

अपराध क्षमाइते मागेन प्रसाद ॥ 31॥

शिशु-साथी; वत्स-बछडे; हरि'-चुराकर; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; करि-करना; अपराध-अपराध; अपराध-अपराध; क्षमाइते-क्षमा करने के लिए; मागेन-प्रार्थना की; प्रसाद-दया।

अनुवाद

कृष्ण के साथियों तथा बछड़ों को चुराने का अपराध करने के बाद ब्रह्मा ने अपने अपराध के लिए भगवान् से क्षमा याचना की और दया करने की याचना की।

तोमार नाभि-पद्म हैते आमार जन्मोदय ।

तुमि पिता-माता, आमि तोमार तनय ॥32॥

तोमार-आपके; नाभि-पद्म–नाभि कमल; हैते-से; आमार-मेरा; जल्म-उदय-जन्म; तुमि-आप; पिता-पिता; माता-माता; आमि-मैं; तोमार-आपका; तनय-पुत्र।

अनुवाद

मैंने उस कमल से जन्म लिया, जो आपकी नाभि से निकला था। इस तरह आप मेरे पिता-माता दोनो हैं और मैं आपका पुत्र हूँ।

पिता माता बालकेर ना लय अपराध ।

अपराध क्षम, मोरे करह प्रसाद ॥ 33 ॥

पिता-पिता; माता-माता; बालकेर-बालक का; ना-नहीं; लय-गम्भीरता से लेते हैं; अपराध-अपराध; अपराध-अपराध; क्षम-कृपया क्षमा करें; मोरे-मुझे; करह-कृपया दर्शाएँ; प्रसाद-दया।

अनुवाद

"माता-पिता अपनी सन्तान के अपराधों को कभी गम्भीरतापूर्वक नहीं लेते। अतएव मैं आपसे क्षमा-याचना करता हूँ और आपका आशीर्वाद चाहता हूँ।"

कृष्ण कहेन–ब्रह्मा, तोमार पिता नारायण।

आमि गोप, तुमि कैछे आमार नन्दन ॥ 34॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कहेन–कहते हैं; ब्रह्मा-हे ब्रह्माजी; तोमार-आपके; पिता- पिता; नारायण-भगवान् नारायण; आमि-मैं (हूँ); गोप-ग्वाला; तुमि-आप; कैछे-कैसे; आमार-मेरे; नन्दन-पुत्र।

अनुवाद

श्रीकृष्ण ने कहा, "हे ब्रह्मा! आपके पिता तो नारायण हैं। मैं तो एक गोप-बालक हूँ। आप मेरे पुत्र किस तरह हो सकते हैं?"

ब्रह्मा बलेन, तुमि कि ना हओ नारायण।

तुमि नारायण–शुन ताहार कारण ॥ 35॥

ब्रह्मा-ब्रह्माजी; बलेन-कहते हैं; तुमि-आप; कि ना हओ-क्या नहीं हो; नारायण-भगवान् नारायण; तुमि-आप; नारायण-भगवान् नारायण; शुन–कृपया सुनें; ताहार-उसका; कारण-कारण।

अनुवाद

ब्रह्मा ने उत्तर दिया, "क्या आप नारायण नहीं हैं? आप अवश्य नारायण हैं। कृपया सुनें, मैं इसके प्रमाण देता हूँ।

प्राकृताप्राकृत-सृष्ट्ये यत जीव-रूप ।

ताहार ये आत्मा तुमि मूल-स्वरूप ॥ 36॥

प्राकृत-भौतिक; अप्राकृत-आध्यात्मिक; सृष्ट्ये-सृष्टियों में; यत–जितने भी हों; जीव-रूप-जीव; ताहार–उनके; ये-जो; आत्मा-परमात्मा; तुमि-आप; मूल-स्वरूप-मूल स्रोत।

अनुवाद

"भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों के सारे जीव आखिर आप से ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि आप उन सबके परमात्मा हैं।"

तात्पर्य

यह वैश्विक प्राकट्य भौतिक प्रकृति के तीन गुणों की पारस्परिक प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुआ है। दिव्य जगत् में ऐसे भौतिक गुण नहीं होते, फिर भी यह आध्यात्मिक विविधताओं से परिपूर्ण होता है। उस आध्यात्मिक जगत् में असंख्य जीव भी हैं, जो नित्यमुक्त जीव हैं और भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेममयी सेवा में लगे हुए हैं। भौतिक जगत् के भीतर रहने वाले बद्धजीव भौतिक प्रकृति

के तीन तापों एवं कष्टों से पीड़ित होते रहते हैं। वे नाना योनियों में विद्यमान रहते हैं, क्योंकि वे परमेश्वर की दिव्य प्रेमाभक्ति से सदैव विमुख हैं।

संकर्षण समस्त जीवों के मूल उद्गम हैं, क्योंकि सारे जीव उनकी तटस्था शक्ति के विस्तार हैं। इनमें से कुछ भौतिक प्रकृति द्वारा बद्ध हैं, जबकि अन्य आध्यात्मिक प्रकृति के संरक्षण में हैं। भौतिक प्रकृति आध्यात्मिक प्रकृति के बद्ध रूप का प्राकट्य है, जिस प्रकार धुआँ अग्नि की बद्ध अवस्था है। धुआँ अग्नि पर निर्भर है, किन्तु प्रज्वलित अग्नि में धुएँ के लिए कोई स्थान नहीं रहता। धुआँ बाधक है, जबकि अग्नि सेवा करती है। दिव्य जगत् के निवासियों का सेवाभाव केन्द्रीय भोक्ता भगवान् के साथ पाँच प्रकार के सम्बन्धों में प्रकट होता है। भौतिक जगत् में हर व्यक्ति संसारी सुख तथा दुःख का आत्मकेन्द्रित भोक्ता होता है। वह अपने आपको सर्वेसर्वा मानकर माया का भोग करना चाहता है, किन्तु वह सफल नहीं हो पाता, क्योंकि वह स्वतन्त्र नहीं होता। वह भगवान् संकर्षण की शक्ति का सूक्ष्म कण-मात्र होता है। सारे जीव भगवान् के वश में हैं, इसीलिए वे नारायण कहलाते हैं।

पृथ्वी यैछे घट-कुलेर कारण आश्रय।

जीवेर निदान तुमि, तुमि सर्वाश्रय ॥ 37॥

पृथ्वी-पृथ्वी; यैछे-जैसे; घट–मिट्टी के मटकों के; कुलेर-समूह का; कारण-कारण; आश्रय-आश्रय; जीवेर–जीवों का; निदान-मूल कारण; तुमि-आप; तुमि-आप; सर्व-आश्रय-सबके आश्रय।

अनुवाद

“जिस प्रकार पृथ्वी मिट्टी के बने समस्त पात्रों (घड़ों) का मूल कारण एवं आश्रय है, उसी प्रकार आप समस्त जीवों के परम कारण एवं आश्रय हैं।

तात्पर्य

जिस प्रकार यह विस्तृत पृथ्वी समस्त मिट्टी के पात्रों की सामग्री की स्रोत है, उसी प्रकार परमात्मा समस्त जीवों की सारी सामग्री के मूल स्रोत हैं। समस्त कारणों के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही सारे जीवों के कारण हैं। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (7.10) में की गई है, जहाँ भगवान् कहते हैं- बीजं मां सर्वभूतानाम् ("मैं सारे जीवों का बीज हूँ") और उपनिषदों में कहा गया है– नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानाम् ("भगवान् सारे शाश्वत जीवों में परम अग्रणी हैं")।

भगवान् समस्त जड़ तथा चेतन जगत् के स्रोत हैं। विशिष्टाद्वैतवाद दर्शन के समर्थक वेदान्त-सूत्र की व्याख्या यह कहकर करते हैं कि यद्यपि जीव के दो प्रकार के शरीर होते हैं—सूक्ष्म (मन, बुद्धि तथा अहंकार) एवं स्थूल (पाँच मूल तत्त्वों से युक्त) और यद्यपि वह इस प्रकार तीन शारीरिक आयामों (स्थूल, सूक्ष्म तथा आध्यात्मिक) में रहता है, फिर भी वह अन्ततः आध्यात्मिक जीव ही होता है। इसी प्रकार भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों को उत्पन्न करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् परमात्मा हैं। जिस प्रकार व्यष्टि आत्मा अपने स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों में प्रायः एकसमान है, उसी प्रकार भगवान् भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों में प्रायः एकरूप जैसे हैं। यह भौतिक जगत् पदार्थ पर आधिपत्य जताने का प्रयास कर रहे बद्धजीवों से भरा है। वह भौतिक जगत् भगवान् की बहिरंगा शक्ति की अभिव्यक्ति है और आध्यात्मिक जगत् जो भगवान् के पूर्ण सेवकों से भरा है, वह भगवान् की अंतरंगा शक्ति की अभिव्यक्ति है। चूँकि सारे जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के क्षुद्र स्फुलिंग हैं, अतएव भगवान् भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही जगतों में परमात्मा हैं। भगवान् चैतन्य के अनुयायी वैष्णव अचिन्त्य-भेदाभेद तत्त्व के दर्शन पर बल देते हैं, जिसके अनुसार भगवान् हर वस्तु के कार्य-कारण होने के कारण अचिन्त्य रूप से एक ही साथ अपनी शक्ति की अभिव्यक्तियों के साथ एक तथा उनसे भिन्न हैं।

‘नार’-शब्दे कहे सर्व जीवेर निचय।

‘अयन’-शब्देते कहे ताहार आश्रय ॥ 38॥

नार-शब्दे–नार शब्द से; कहे-अर्थ होता है; सर्व जीवेर—सभी जीवों का; निचय-समूह; अयन-शब्देते-अयन शब्द से; कहे-अर्थ होता है; ताहार-उनका; आश्रय-आश्रय।

अनुवाद

“नार’ शब्द समस्त जीवों के समुच्चय को बताता है और ‘अयन’ शब्द उन सबके आश्रय को बतलाने वाला है।

अतएव तुमि हओ मूल नारायण।

एइ एक हेतु, शुन द्वितीय कारण ॥39॥

अतएव–इसलिए; तुमि-आप; हओ-हैं; मूल-मूल; नारायण-नारायण; एइ-यह; एक-एक; हेतु-कारण; शुन–कृपया सुनें; द्वितीय-दूसरा; कारण कारण।

अनुवाद

“अतएव आप आदि नारायण हैं। यह हुआ पहला कारण। अब मैं दूसरा कारण बताता हूँ, कृपया उसे सुनें।

जीवेर ईश्वर–पुरुषादि अवतार।

ताँहा सबा हैते तोमार ऐश्वर्य अपार ॥40॥

जीवेर-जीवों के; ईश्वर-परम भगवान्; पुरुष-आदि-पुरुष अवतार आदि; अवतार–अवतार; ताँहा-उन; सबा-सब; हैते–अपेक्षाकृत; तोमार-आपका; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; अपार-असीम।

अनुवाद

जीवों के प्रत्यक्ष ईश्वर पुरुष अवतार हैं। किन्तु आपका ऐश्वर्य एवं शक्ति उनसे कहीं अधिक उन्नत हैं।

अतएव अधीश्वर तुमि सर्व पिता ।

तोमार शक्तिते ताँरा जगत्रक्षिता ॥41॥

अतएव–अतएव; अधीश्वर–आदि भगवान्; तुमि-आप; सर्व-सबके; पिता–पिता; तोमार-आपकी; शक्तिते-शक्ति से; ताँरा–वे; जगत्-सृष्टि के; रक्षिता–रक्षक।

अनुवाद

“अतएव आप हर एक के आदि पिता, आदि स्वामी हैं। वे (पुरुषावतार) आपकी शक्ति से ही ब्रह्माण्डों के रक्षक हैं।

नारेर अयन याते करह पालन ।

अतएव हओ तुमि मूल नारायण ॥42॥

नारेर जीवों का; अयन-आश्रय; याते-जिनको; करह-आप देते हैं; पालन-पालन-पोषण; अतएव–अतएव; हओ-हैं; तुमि-आप; मूल-मूल; नारायण-नारायण।

अनुवाद

"चूँकि आप समस्त जीवों के आश्रयों की रक्षा करते हैं, अतएव आप मूल नारायण हैं।

तात्पर्य

भौतिक जगतों में जीवों के अधिष्ठाता देव तीन पुरुष अवतार हैं। किन्तु श्रीकृष्ण द्वारा प्रदर्शित शक्ति इन पुरुषों से कहीं अधिक विस्तृत है। अतएव श्रीकृष्ण आदि पिता तथा स्वामी हैं, जो अपने विभिन्न पूर्ण अंशों के माध्यम से समस्त सृष्टियों की रक्षा करते हैं। चूँकि वे जीव-समुदाय के आश्रयों को भी धारण करते हैं, अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं है कि श्रीकृष्ण आदि (मूल) नारायण हैं।

तृतीय कारण शुन श्री-भगवान् ।

अनन्त ब्रह्माण्ड बहु वैकुण्ठादि धाम ॥43॥

तृतीय-तीसरा; कारण-कारण; शुन-कृपया सुनें; श्री-भगवान्-हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; अनन्त-अनन्त; ब्रह्म-अण्ड–ब्रह्माण्ड; बहु-बहुत; वैकुण्ठ-आदि-वैकुण्ठ आदि; धाम-धाम।

अनुवाद

हे प्रभु! हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्! कृपया मेरे तीसरे कारण को सुनें। ब्रह्माण्ड असंख्य हैं और दिव्य वैकुण्ठ लोक अनेक हैं।

इथे यत जीव, तार त्रै-कालिक कर्म ।

ताहा देख, साक्षी तुमि, जान सब मर्म ॥44॥

इथे-इनमें; यत-जितने; जीव-जीव; तार-उनके; त्रै-कालिक-भूत, वर्तमान और भविष्य; कर्म-कर्म; ताहा–वे, जो; देख-आप देखते हैं; साक्षि–साक्षी; तुमि-आप; जान-आप जानते हैं; सब-सब का; मर्मभेद।

अनुवाद

"आप इस भौतिक जगत् में तथा दिव्य जगत् दोनों में समस्त जीवों के भूत, वर्तमान तथा भविष्य के समस्त कर्मों को देखते हैं। चूँकि आप इन सब कर्मों के साक्षी हैं, अतः आप सब का सार जानते हैं।

तोमार दर्शने सर्व जगतेर स्थिति ।

तुमि ना देखिले कारो नाहि स्थिति गति ॥45॥

तोमार-आपके; दर्शने-दर्शन से; सर्व-सब; जगतेर-ब्रह्माण्ड का; स्थिति-पालन-पोषण; तुमि-आप; ना देखिले–नहीं देख रहे हो; कारो-किसी का; नाहि-नहीं है; स्थिति–रुकना; गति–चलना।

अनुवाद

"सारे जगत् इसलिए विद्यमान हैं, क्योंकि उन पर आपका निरीक्षण है। आपके निरीक्षण के बिना कोई न तो जीवित रह सकता है, न हिल सकता है और न अस्तित्व बनाये रख सकता है।

नारेर अयन य़ाते कर दरशन ।

ताहातेओ हओ तुमि मूल नारायण ॥ 46॥

नारेर–जीवों की; अयन-गति; याते-क्योंकि; कर-आप करते हैं; दरशन-दर्शन; ताहातेओ-अतः; हओ-हैं; तुमि-आप; मूल-मूल; नारायण-नारायण।

अनुवाद

"आप सारे जीवों की गतियों का निरीक्षण करते हैं। इसलिए भी। आप आदि भगवान् नारायण हैं।"

तात्पर्य

श्रीकृष्ण अपने परमात्मा रूप में दिव्य तथा भौतिक सृष्टि दोनों के ही सभी जीवों के हृदयों में वास करते हैं। परमात्मा रूप में वे समस्त जीवों के भूत, वर्तमान तथा भविष्य में संपादित समस्त कर्मों का अवलोकन करते हैं। श्रीकृष्ण जानते हैं कि जीवों ने गत सैकड़ों-हजारों जन्मों में कौन-से कर्म किये, वे जो कुछ अब कर रहे हैं उसे देखते हैं, अतएव वे उनके वर्तमान कर्मों के उन फलों से अवगत रहते हैं, जो भविष्य में फलित होंगे। जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है-भौतिक शक्ति के ऊपर उनके दृष्टिपात करते ही सम्पूर्ण विराट् जगत् उत्पन्न हो जाता है। उनकी अध्यक्षता के बिना कुछ भी अस्तित्व में रह नहीं सकता। चूँकि वे उस स्थान को भी देख सकते हैं, जहाँ समस्त जीव-समुच्चय आश्रय लेता है, अतएव वे मूल नारायण हैं।

कृष्ण कहेन–ब्रह्मा, तोमार ना बुझि वचन।

जीव-हृदि, जले वैसे सेइ नारायण ॥47॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कहेन–कहते हैं; ब्रह्मा-हे ब्रह्मा; तोमार-आपका; ना-नहीं; बुझि-मैं समझता हूँ; वचन-वचन, कथन; जीव-जीव का; हृदि हृदय में; जले–जल में; वैसे-बैठे हैं; सेइ-वे; नारायण-भगवान् नारायण।

अनुवाद

कृष्ण ने कहा, "हे ब्रह्मा! जो आप कह रहे हैं, उसे मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। भगवान् नारायण तो वे हैं, जो समस्त जीवों के हृदयों में आसीन रहते हैं और कारण सागर के जल में शयन करते हैं।"

ब्रह्मा कहे–जले जीवे येइ नारायण ।

से सब तोमार अंश—ए सत्य वचन ॥48॥

ब्रह्मा-ब्रह्माजी; कहे-कहते हैं; जले-जल में; जीवे-जीव में; येइ-जो; नारायण-नारायण; से-वे; सब-सब; तोमार-आपके; अंश-पूर्ण अंश; ए-यह; सत्य-सत्य; वचन-वचन।

अनुवाद

ब्रह्मा ने उत्तर दिया, "मैंने जो कहा है, वह सत्य है। वही भगवान् नारायण जो जल में तथा सारे जीवों के हृदयों में रहते हैं, आपके अंश मात्र

कारणाब्धि-गर्भोदक-क्षीरोदक-शायी ।

माया-द्वारे सृष्टि करे, ताते सब मायी ॥49॥

कारण-अब्धि-कारणोदकशायी विष्णु; गर्भ-उदक-गर्भोदकशायी विष्णु; क्षीर-उदक-शायी-क्षीरोदकशायी विष्णु; माया-द्वारे-भौतिक शक्ति से; सृष्टि-सृष्टि; करे-वे करते हैं; ताते-अतः; सब-सब; मायी-मायावी।

अनुवाद

"नारायण के कारणोदकशायी, गर्भोदकशायी तथा क्षीरोदकशायी रूप भौतिक शक्ति के सहयोग से सृजन कार्य करते हैं। इस प्रकार वे माया से जुड़े हुए हैं।

सेइ तिन जल-शायी सर्व-अन्तर्यामी ।

ब्रह्माण्ड-वृन्देर आत्मा ये पुरुष-नामी ॥50॥

सेइ-वे; तिन-तीन; जल-शायी-जल में लेटे हुए; सर्व-सबके; अन्तः यामी-अन्तर्यामी; ब्रह्म-अण्ड–ब्रह्माण्डों के; वृन्देर-समूह के; आत्मा-परमात्मा; ये-जो; पुरुष-पुरुष; नामी-नामक।

अनुवाद

"जल में शयन करने वाले ये तीनों विष्णु सबके परमात्मा हैं। समस्त ब्रह्माण्डों के परमात्मा प्रथम पुरुष के नाम से विख्यात हैं।

हिरण्य-गर्भेर आत्मा गर्भोदक-शायी ।

व्यष्टि-जीव-अन्तर्यामी क्षीरोदक-शायी ॥51॥

हिरण्य-गर्भेर-सभी जीवों के; आत्मा-परमात्मा; गर्भ-उदक-शायी–गर्भोदकशायी विष्णु; व्यष्टि व्यक्तिगत; जीव-जीव; अन्तः-यामी–परमात्मा; क्षीर-उदक-शायी-क्षीरोदकशायी विष्णु।

अनुवाद

“गर्भोदकशायी विष्णु सारे जीव-समुदाय के परमात्मा हैं और क्षीरोदकशायी विष्णु हर व्यक्तिगत जीव के परमात्मा हैं।

ए सभार दर्शनेते आछे माया-गन्ध ।

तुरीय कृष्णेर नाहि मायार सम्बन्ध ॥52॥

ए-यह; सभार–सभा के दर्शनेते-देखने में; आछे-है; माया-गन्ध-माया से सम्बन्ध; तुरीय-चौथा; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; नाहि-नहीं है; मायार-भौतिक शक्ति का; सम्बन्ध–सम्बन्ध।

अनुवाद

ऊपर से हमें दिखता है कि इन पुरुषों का सम्बन्ध माया से है, किन्तु इनके ऊपर, चतुर्थ आयाम में भगवान् कृष्ण हैं, जिनका भौतिक शक्ति (माया) से कोई सम्पर्क नहीं होता।

तात्पर्य

कारणोदकशायी विष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु-इन तीनों पुरुषों का सम्बन्ध भौतिक शक्ति माया से है, क्योंकि माया द्वारा ही ये भौतिक जगतों की सृष्टि करते हैं। ये तीनों पुरुष, जो कि क्रमशः कारण, गर्भ तथा क्षीर सागरों में शयन करते हैं, प्रत्येक वस्तु के परमात्मा हैं। कारणोदकशायी विष्णु सामूहिक ब्रह्माण्डों के परमात्मा हैं, गर्भोदकशायी विष्णु सामूहिक जीवों के और क्षीरोदकशायी विष्णु प्रत्येक व्यक्तिगत जीव के परमात्मा हैं। ये सभी भौतिक शक्ति के कार्यों के प्रति किसी न किसी रूप में आकृष्ट रहते हैं, इसलिए ऐसा कहा जा सकता है कि इनमें माया के

प्रति कुछ स्नेह है। किन्तु स्वयं श्रीकृष्ण की अपनी दिव्य स्थिति माया से तनिक भी रंजित नहीं है। उनकी दिव्य अवस्था तुरीय अर्थात् चतुर्थ आयाम की अवस्था कहलाती है।

विराडू हिरण्य-गर्भश्च कारणं चेत्युपाधयः ।

ईशस्य व्रत्रिभिहनं तुरीयं तत्प्रचक्षते ॥53॥

विराट्-विराट् सृष्टि; हिरण्य-गर्भः-हिरण्य गर्भ सृष्टि; च-और; कारणम्-कारण सृष्टि; च-तथा; इति–इस प्रकार; उपाधयः-विशिष्ट उपाधियाँ; ईशस्य-भगवान् की; यत्-वह जो; त्रिभिः-ये तीन; हीनम् बिना; तुरीयम्-चौथी; तत्व ह; प्रचक्षते-मानी जाती है।

अनुवाद

भौतिक जगत् में भगवान् की उपाधियाँ विराट्, हिरण्यगर्भ तथा कारण हैं। किन्तु वे इन तीन उपाधियों से परे अन्ततोगत्वा चतुर्थ आयाम (तुरीय) में रहते हैं।"

तात्पर्य

परम पूर्ण का घटनामय प्राकट्य (विराट्), हर वस्तु के तात्त्विक आत्मा (हिरण्यगर्भ) तथा कारण (कारण या कारण-प्रकृति)-ये उन पुरुषों की उपाधियों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं, जो भौतिक सृष्टि के लिए उत्तरदायी हैं। दिव्य स्थिति इन उपाधियों से परे है, अतएव वह चतुर्थ आयाम की स्थिति कहलाती है। यह श्रीमद्भागवत के एक श्लोक (11.15.16) पर श्रीधर स्वामी द्वारा की गई टीका से लिया गया है।

यद्यपि तिनेर माया लइया व्यवहार ।

तथापि तत्स्पर्श नाहि, सभे माया-पार ॥54॥

यद्यपि-यद्यपि; तिनेर-इन तीन की; माया-भौतिक शक्ति; लइया-लेकर; व्यवहार-व्यवहार; तथापि-तथापि; तत्-उसका; स्पर्श-स्पर्श; नाहि-नहीं है; सभे-वे सभी; माया-पार-माया से परे।

अनुवाद

"यद्यपि भगवान् के ये तीनों स्वरूप भौतिक शक्ति से सीधे सम्बन्धित हैं, लेकिन यह शक्ति इनमें से किसी का भी स्पर्श नहीं करती। ये सब माया से परे हैं।

एतदीशनमीशस्य प्रकृति-स्थोऽपि तद्गुणैः ।

न युज्यते सदात्म-स्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥55॥

एतत्-यह; ईशनम्-ऐश्वर्य; ईशस्य-भगवान् का; प्रकृति-स्थः—भौतिक प्रकृति में स्थित; अपि-यद्यपि; तत्-माया के; गुणैः-गुणों से; न-नहीं; युज्यते-प्रभावित नहीं होता है; सदा-सदा; आत्म-स्थैः-अपनी ही प्रकृति में स्थित; यथा-जैसे; बुद्धिः-बुद्धि; तत्-उनकी; आश्रया-जिसने आश्रय लिया है।

अनुवाद

"यह भगवान् का ऐश्वर्य है। यद्यपि वे भौतिक प्रकृति में स्थित रहते हैं, फिर भी वे प्रकृति के गुणों से कभी भी प्रभावित नहीं होते। उसी प्रकार जो लोग उनकी शरण में जा चुके हैं और जिन्होंने अपनी बुद्धि उन पर स्थिर कर ली है, वे प्रकृति के गुणों से प्रभावित नहीं होते।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.11.38) से लिया गया है। जिन लोगों ने भगवान् के चरणों में शरण ले ली है, वे भौतिक जगत् में रहते हुए भी उससे अपनी पहचान नहीं करते। शुद्ध भक्त भले ही भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों से सम्बन्ध रखते हों, किन्तु कृष्णभावनामृत में अपनी दिव्य चेतना के

कारण वे भौतिक गुणों से प्रभावित नहीं होते। ऐसे भक्तों को भौतिक कार्यकलापों का जादू आकर्षित नहीं कर पाता। अतएव भगवान् तथा उनके अधीन काम करने वाले उनके भक्त भौतिक कल्मष से सदैव मुक्त रहते हैं।

सेइ तिन जनेर तुमि परम आश्रय ।

तुमि मूल नारायण इथे कि संशय ॥56॥

सेइ-ये; तिन–तीन; जनेर-पूर्णाश की; तुमि-आप; परम-परम; आश्रय-आश्रय; तुमि-आप; मूल-आदि; नारायण-नारायण; इथे—इसमें; कि-क्या; संशय-संशय।

अनुवाद

"आप इन तीनों पुरुषावतारों के परम आश्रय हैं। इस तरह इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि आप आदि नारायण हैं।

तात्पर्य

ब्रह्मा ने पुष्टि की है कि भगवान् कृष्ण परमेश्वर हैं एवं वे ही क्षीरोदकशायी विष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा कारणोदकशायी विष्णु (महाविष्णु) नामक तीन पुरुषावतारों के स्रोत हैं। अपनी लीलाओं के लिए भगवान् कृष्ण के चार मूल प्राकट्य हैं-अर्थात् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध। प्रथम पुरुष अवतार जो कारण सागर में महाविष्णु हैं और समग्र भौतिक शक्ति के स्रष्टा हैं, वे संकर्षण के विस्तार हैं। द्वितीय पुरुष गर्भोदकशायी विष्णु हैं, जो प्रद्युम्न के विस्तार हैं और तृतीय पुरुष क्षीरोदकशायी विष्णु हैं, जो अनिरुद्ध के विस्तार हैं। ये सभी उन नारायण के ही प्राकट्यों (प्रकाश) की कोटि में आते हैं, जो श्रीकृष्ण के प्रकाश हैं।

सेइ तिनेर अंशी परव्योम-नारायण।

तेह तोमार विलास, तुमि मूल-नारायण ॥57॥

सेइ-ये; तिनेर–तीनों के; अंशी–स्रोत, उद्गम; पर-व्योम-पर व्योम में; नारायण-भगवान् नारायण; तेह-वे; तोमार-आपकी; विलास-लीला-विस्तार; तुमि-आप; मूल-मूल; नारायण-नारायण।

अनुवाद

"इन तीनों स्वरूपों के स्रोत आध्यात्मिक आकाश (परव्योम) में स्थित नारायण हैं। वे आपके विलास-विस्तार हैं। अतएव आप परम नारायण हैं।"

अतएव ब्रह्म-वाक्ये—परव्योम-नारायण।

तेंहो कृष्णेर विलास—एइ तत्त्व-विवरण ॥58॥

अतएव–अतएव; ब्रह्म-ब्रह्माजी का; वाक्ये-कथन में; पर-व्योम-परव्योम में; नारायण-भगवान् नारायण; तेंहो-वे; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; विलास-लीला अवतार; एइ–यह; तत्त्व-सत्य का; विवरण-वर्णन।

अनुवाद

अतएव ब्रह्मा के वचनों के अनुसार दिव्य जगत् के अधिष्ठाता-विग्रह नारायण कृष्ण के विलास-विस्तार हैं। अब यह पूरी तरह सिद्ध हो चुका

एइ श्लोक तत्त्व-लक्षण भागवत-सार।

परिभाषा-रूपे इहार सर्वत्राधिकार ॥59॥

एइ-यह; श्लोक-श्लोक; तत्त्व-सत्य, तत्त्व; लक्षण-लक्षण करते हुए; भागवत-श्रीमद्भागवतम् के; सार-सार; परिभाषा-पर्यायों द्वारा; रूपे–रूप में; इहार-इस (श्रीमद्भागवतम्) का; सर्वत्र-हर जगह, सर्वत्र; अधिकार-अधिकार-क्षेत्र।

अनुवाद

इस श्लोक (श्लोक 30) में सूचित सत्य श्रीमद्भागवत का सार है। यह निर्णय पर्यायों के माध्यम से सर्वत्र लागू होता है।

ब्रह्म, आत्मा, भगवान् कृष्णेर विहार।

ए अर्थ ना जानि' मूर्ख अर्थ करे आर ॥60॥

ब्रह्म-निर्विशेष ब्रह्म; आत्मा-परमात्मा; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; विहार–प्राकट्य; ए-यह; अर्थ–अर्थ; ना-नहीं; जानि'–जानकर; मूर्ख-मूर्ख लोग; अर्थ-अर्थ; करे-करते हैं; आर-अन्य।

अनुवाद

मूर्ख विद्वान नहीं जानते कि ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् सभी श्रीकृष्ण के पहलू हैं, अतएव वे तरह-तरह से तर्कवितर्क करते हैं।

अवतारी नारायण, कृष्ण अवतार।

तेह चतुर्भुज, इँह मनुष्य-आकार ॥61॥

अवतारी–अवतारों के स्रोत; नारायण-भगवान् नारायण; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतार–अवतार; तेह-वे; चतुः-भुज-चतुर्भुज; इँह-यह; मनुष्य-मनुष्य की भाँति; आकार-रूप।

अनुवाद

चूँकि नारायण के चार हाथ हैं, जबकि कृष्ण मनुष्य की तरह दिखते हैं, अतएव उनका कहना है कि नारायण तो मूल ईश्वर हैं, जबकि कृष्ण अवतार मात्र हैं।

तात्पर्य

कुछ पंडितों का तर्क है कि नारायण मूल भगवान् हैं और कृष्ण उनके अवतार हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण के केवल दो हाथ होते हैं, जबकि नारायण के चार हाथ होते हैं। ऐसे मूर्ख पंडित परम तत्त्व के स्वरूप को नहीं समझते।

ए-मते नाना-रूप करे पूर्व-पक्ष ।

ताहारे निर्जिते भागवत-पद्य दक्ष ॥ 62॥

एइ-मते-इसलिए; नाना-अनेक; रूप-रूप; करे-करते हैं; पूर्व-पक्ष-आपत्ति, विरोध; ताहारे-उनको; निजिते-पराजित करते हैं; भागवत- श्रीमद्भागवतम् का; पद्य-पद्य; दक्ष–निपुण।

अनुवाद

इस प्रकार उनके तर्क नानारूपों में प्रकट होते हैं, किन्तु भागवत काव्य इन सबका बड़ी ही दक्षता से खंडन करता है।

वदन्ति तत्तत्त्व-विदस्तत्त्वं ग्नज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥63 ॥

वदन्ति–वे कहते हैं; तत्-वह; तत्त्व-विदः-विद्वान जन; तत्त्वम्-परम सत्य; यत्-जो; ज्ञानम्-ज्ञान; अद्वयम्-अद्वय; ब्रह्म–ब्रह्म; इति—इस प्रकार; परमात्मा-परमात्मा; इति–इस प्रकार; भगवान्-भगवान्; इति–इस तरह; शब्द्यते-जाना जाता है।

अनुवाद

"परम सत्य को जानने वाले विद्वान अध्यात्मवादी कहते हैं कि यह अद्वय ज्ञान है और यही निर्विशेष ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा भगवान् कहलाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.2.11) से लिया गया गया है।

शुन भाइ एइ श्लोक करह विचार ।

एक मुख्य-तत्त्व, तिन ताहार प्रचार ॥64॥

शुन-कृपया सुनो; भाइ–भाइयों; एइ–इसे; श्लोक-श्लोक; करह-कृपया करो; विचार-विचार; एक-एक; मुख्य-प्रमुख; तत्त्व-तत्त्व; तिन-तीन; ताहार-उसका; प्रचार–प्राकट्य।

अनुवाद

मेरे भाइयों, कृपा करके इस श्लोक की व्याख्या को सुनो और इसके अर्थ पर विचार करो : एक मूल तत्त्व अपने तीन विभिन्न पहलूओं में जाना जाता है।

अद्वय-ज्ञान तत्त्व-वस्तु कृष्णेर स्वरूप ।

ब्रह्म, आत्मा, भगवान् तिन ताँर रूप ॥65॥

अद्वय-ज्ञान-अद्वय ज्ञान; तत्त्व-वस्तु-परम सत्य; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; स्व-रूप-स्वरूप; ब्रह्म-ब्रह्म; आत्मा-परमात्मा; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; तिन-तीन; ताँर-उनके; रूप-रूप।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण स्वयं परम अद्वय सत्य हैं, आखरी वास्तविकता हैं। वे अपने आपको ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्-इन तीन पहलूओं में प्रकट करते हैं।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत से लिये गये इस श्लोक (1.2.11) में मुख्य शब्द भगवान् साकार परमेश्वर का सूचक है तथा ब्रह्म एवं परमात्मा परम पुरुष के सहगामी विस्तार हैं, जिस तरह सरकार तथा उसके मंत्री सर्वोपरि राजा के अधीन होते हैं। दूसरे शब्दों में, मुख्य सत्य तीन विभिन्न अवस्थाओं में प्रकट होता है। परम सत्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्म तथा परमात्मा रूप में भी विख्यात हैं, यद्यपि ये सारे पहलू एक (अभिन्न) हैं।

एइ श्लोकेर अर्थे तुमि हैला निर्वचन।

आर एक शुन भागवतेर वचन ॥66॥

एइ–यह; श्लोकेर-श्लोक के; अर्थे–अर्थ से; तुमि-आप; हैला-हो गये हैं; निर्वचन–अवाक्; आर-अन्य; एक-एक; शुन-कृपया सुनो; भागवतेर- श्रीमद्भागवत का; वचन-वचन, कथन।

अनुवाद

इस श्लोक के तात्पर्य ने तुम्हें तर्क करने से रोक दिया है। अब तुम श्रीमद्भागवत का अन्य श्लोक सुनो।

एते चांश-कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।

इन्द्रारि-व्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे ॥ 67॥

एते-ये; च–तथा; अंश-पूर्ण अंश; कलाः-पूर्णांश के अंश (कला); पुंसः-पुरुष अवतारों के; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; तु–किन्तु; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; स्वयम्-स्वयं; इन्द्र-अरि–इन्द्र के शत्रु; व्याकुलम् से पूर्ण; लोकम् विश्व; मृडयन्ति–प्रसन्न करते हैं; युगे युगे-प्रत्येक युग में ठीक समय पर।

अनुवाद

परमेश्वर के ये सारे अवतार या तो पुरुष अवतारों के अंश हैं या अंशों के अंश (कला) हैं। लेकिन कृष्ण स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। प्रत्येक युग में, जब जब इन्द्र के शत्रु संसार को विचलित करते हैं, तब तब वे अपने विभिन्न स्वरूपों के माध्यम से जगत् की रक्षा करते हैं।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (1.3.28) का यह श्लोक निश्चित रूप से इस धारणा का निषेध करता है कि श्रीकृष्ण विष्णु या नारायण के अवतार हैं। भगवान् श्रीकृष्ण आदि भगवान् एवं समस्त कारणों के सर्वोपरि कारण हैं। यह श्लोक स्पष्ट रूप से सूचित करता है कि भगवान् के विभिन्न अवतार-यथा श्री राम, नृसिंह तथा वराह-निस्सन्देह, विष्णु-तत्त्व हैं, किन्तु वे सबके सब या तो मूल भगवान् श्रीकृष्ण के अंश हैं या उनके अंशों के अंश (कला) हैं।

सब अवतारेर करि सामान्य लक्षण।

तार मध्ये कृष्ण-चन्द्रेर करिल गणन ॥ 68 ॥

सब-सब; अवतारेर–अवतारों के; करि–बनाने; सामान्य-सामान्य; लक्षण-लक्षण; तार-उनके; मध्ये-मध्य में; कृष्ण-चन्द्रेर–भगवान् श्रीकृष्ण की; करिल किया; गणन-गणना।

अनुवाद

भागवत सामान्य रीति से अवतारों के लक्षणों तथा कार्यों का वर्णन करता है और इन्हीं में श्रीकृष्ण की गणना करता है।

तबे सूत गोसाञि मने पाञा बड़ भय।

यार ये लक्षण ताहा करिल निश्चय ॥ 69॥

तबे-तब; सूत गोसाञि-सूत गोस्वामी; मने-मन में; पाञा-पाना; बड़-बड़ा; भय-भय; यार–जिनका; ये-जिन; लक्षण-लक्षण; ताहा-वह; करिल-उन्होंने बताया; निश्चय–निश्चित रूप से।

अनुवाद

इससे सूत गोस्वामी अत्यधिक आशंकित हो उठे और उन्होंने प्रत्येक अवतार को उनके विशिष्ट लक्षणों से विभेदित किया।

अवतार सब–पुरुषेर कला, अंश।

स्वयं-भगवान्कृष्ण सर्व-अवतंस ॥ 70 ॥

अवतार-अवतार; सब-सब; पुरुषेर-पुरुष अवतारों के; कला-पूर्णाश के अंश; अंश-पूर्ण अंश; स्वयम्-स्वयं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; सर्व-सबके; अवतंस-शिखर।

अनुवाद

ईश्वर के सारे अवतार या तो पुरुष अवतारों के पूर्ण अंश या पूर्ण अंश के अंश (कला) हैं, किन्तु आदि भगवान् तो श्रीकृष्ण ही हैं। वे समस्त अवतारों के स्रोत पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

पूर्व-पक्ष कहे तोमार भाल त' व्याख्यान।

परव्योम-नारायण स्वयं-भगवान् ॥71॥

पूर्व-पक्ष-विरोधी पक्ष; कहे-कहता है; तोमार-तुम्हारा; भाल–अच्छा; त'-निश्चित ही; व्याख्यान-व्याख्यान; पर-व्योम-पर व्योम में स्थित; नारायण-भगवान् नारायण; स्वयम्-स्वयं; भगवान्-भगवान्।

अनुवाद

एक विपक्षी कह सकता है, "यह तो तुम्हारी व्याख्या है, किन्तु वास्तव में परम भगवान् तो नारायण हैं, जो दिव्य लोक में स्थित हैं।

तेह आसि' कृष्ण-रूपे करेन अवतार।

एइ अर्थ श्लोके देखि कि आर विचार ॥72॥

तेह-वे (नारायण); आसि'-आते हैं; कृष्ण-रूपे-कृष्ण-रूप में; करेन-करते हैं; अवतार–अवतार; एइ–यह; अर्थ-अर्थ; श्लोके-इस श्लोक में; देखि-मैं देखता हूँ; कि-क्या; आर-और; विचार-विचार।

अनुवाद

"वे (नारायण) भगवान् कृष्ण के रूप में अवतार लेते हैं। मेरी दृष्टि में यही इस श्लोक का अर्थ है। अब और आगे विचार करने की आवश्यकता नहीं है।"

तारे कहे–केने कर कुतर्कानुमान ।

शास्त्र-विरुद्धार्थ कभु ना हय प्रमाण ॥73॥

तारे-उसको; कहे-कहता है; केने-क्यों; कर—तुम करते हो; कु-तर्क-कुतर्क; अनुमान–अनुमान; शास्त्र-विरुद्ध शास्त्रों के विपरीत; अर्थ-अर्थ; कभु–किसी समय; ना–नहीं; हय-है; प्रमाण-प्रमाण।

अनुवाद

हम ऐसे भ्रान्त व्याख्याकार को इस प्रकार उत्तर दे सकते हैं, "तुम ऐसा कुतर्क क्यों प्रस्तुत करते हो? जो व्याख्या शास्त्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध होती है, वह कभी भी साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं की जाती।

अनुवादमनुक्त्वा तु न विधेयमुदीरयेत् ।

न ह्यलब्धास्पदं किञ्चित्कुत्रचित्प्रतितिष्ठति ॥ 74॥

अनुवादम्-विषय; अनुक्त्वा न कहकर; तु–किन्तु; न—नहीं; विधेयम्-विधेय; उदीरयेत्-बोलना चाहिए; न-नहीं; हि–निश्चय ही; अलब्ध-आस्पदम् निश्चित स्थिति के बिना; किञ्चित्-कुछ; कुत्रचित्-कहीं; प्रतितिष्ठति–टिकता है।

अनुवाद

कर्ता के पूर्व उसकी निर्दिष्ट बात (विधेय) का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि समुचित आधार के बिना वह खड़ा नहीं रह सकता।

तात्पर्य

यह अलंकार नियम एकादशी-तत्त्व के तेरहवें स्कन्ध में शब्दों के आलंकारिक प्रयोग के सम्बन्ध में आया है। अज्ञात कर्म (विधेय) को ज्ञात कर्ता (उद्देश्य) के पहले नहीं रखना चाहिए, क्योंकि यदि कर्ता पहले नहीं रखा जाता, तो कर्म (विधेय) का कोई अर्थ नहीं निकलता।

अनुवाद ना कहिया ना कहि विधेय ।

आगे अनुवाद कहि, पश्चाद्विधेय ॥75॥

अनुवाद-विषय; ना कहिया–कहे बिना; ना-नहीं; कहि-मैं कहता हूँ; विधेय-विधेय; आगे-पहले; अनुवाद-विषय; कहि-मैं कहता हूँ; पश्चात्-बाद में; विधेय-विधेय।

अनुवाद

“यदि मैं उद्देश्य (कर्ता) का उल्लेख न करूँ, तो मैं विधेय का उल्लेख नहीं करता हूँ। अतएव पहले मैं उद्देश्य का उल्लेख करूँगा और तब विधेय का।

‘विधेय’ कहिये तारे, ये वस्तु अज्ञात।

‘अनुवाद’ कहि तारे, येइ हय ज्ञात ॥ 76 ॥

विधेय-विधेय; कहिये-मैं कहता हूँ; तारे-उसको; ये-जो; वस्तु-वस्तु; अज्ञात-अज्ञात; अनुवाद-विषय; कहि-मैं कहता हूँ; तारे-उसको; येइ-जो; हय-है; ज्ञात-ज्ञात।

अनुवाद

“किसी वाक्य का विधेय वह है, जो पाठक को अज्ञात होता है, जबकि उद्देश्य (कर्ता) वह है, जो उसे ज्ञात रहता है।

यैछे कहि,—एइ विप्र परम पण्डित।

विप्र—अनुवाद, इहार विधेय—पाण्डित्य ॥77॥

यैछे-जैसे; कहि-मैं कहता हूँ; एइ-यह; विप्र-ब्राह्मण; परम-परम; पण्डित-विद्वान; विप्र-ब्राह्मण; अनुवाद-विषय; इहार—इसका; विधेय-विधेय; पाण्डित्य-ज्ञान, विद्वत्ता।

अनुवाद

“उदाहरणार्थ, हम कह सकते हैं, यह विप्र महान् पण्डित है। इस वाक्य में विप्र उद्देश्य है और उसका पाण्डित्य विधेय है।

विप्रत्व विख्यात तार पाण्डित्य अज्ञात।

अतएव विप्न आगे, पाण्डित्य पश्चात ॥78॥

विप्रत्व-विप्र होने का गुण; विख्यात–विख्यात; तार-उसकी; पाण्डित्य–विद्वत्ता; अज्ञात-अज्ञात; अतएव–अतएव; विप्र-विप्र शब्द; आगे-पहले; पाण्डित्य-ज्ञान, विद्वत्ता; पश्चात-बाद में।

अनुवाद

"मनुष्य का विप्र होना ज्ञात है, किन्तु उसका पाण्डित्य अज्ञात है। अतएव व्यक्ति की पहचान पहले की जाती है और उसके पाण्डित्य की बाद में।

तैछे इँह अवतार सब हैल ज्ञात।

कार अवतार?—एइ वस्तु अविज्ञात ॥79॥

तैछे-उसी प्रकार; इँह-ये; अवतार–अवतार; सब-सब; हैल-थे; ज्ञात–ज्ञात; कार–जिनके; अवतार–अवतार; एइ–यह; वस्तु-वस्तु; अविज्ञात-अज्ञात।

अनुवाद

इसी प्रकार, ये सारे अवतार ज्ञात थे, किन्तु ये किनके अवतार थे, यह ज्ञात न था।

'एते'-शब्दे अवतारेर आगे अनुवाद।

'पुरुषेर अंश' पाछे विधेय-संवाद ॥80॥

एते-शब्दे-एते (ये) शब्द में; अवतारेर–अवतारों के आगे-पहले; अनुवाद-विषय; पुरुषेर–पुरुष अवतारों का; अंश-पूर्णांश; पाछे—बाद में; विधेय–विधेय के; संवाद-सन्देश।

अनुवाद

“पहले ‘एते’ (ये) शब्द से उद्देश्य (अवतार) की स्थापना होती है। तत्पश्चात् ‘पुरुषावतारों के पूर्ण अंश’ विधेय के रूप में आये हैं।

तैछे कृष्ण अवतार-भितरे हैल ज्ञात ।

ताँहार विशेष-ज्ञान सेइ अविज्ञात ॥81॥

तैछे-उसी प्रकार; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतार-भितरे-अवतारों में से; हैल-थे; ज्ञात–ज्ञात; ताँहार—उनका; विशेष-ज्ञान-विशेष ज्ञान; सेइ-वह; अविज्ञात-अज्ञात।

अनुवाद

“इसी प्रकार से, जब पहले कृष्ण की गणना अवतारों में हो चुकी, तो भी उनके विषय में विशिष्ट ज्ञान अज्ञात था।

अतएव ‘कृष्ण’-शब्द आगे अनुवाद

‘स्वयं-भगवत्ता’ पिछे विधेय-संवाद ॥82॥

अतएव–अतएव; कृष्ण-शब्द-कृष्ण शब्द; आगे-पहला; अनुवाद-विषय; स्वयम्-भगवत्ता-स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; पिछे-बाद में; विधेय–विधेय में; संवाद-सन्देश।

अनुवाद

“अतएव सबसे पहले ‘कृष्ण’ शब्द उद्देश्य के रूप में आता है, जिसके बाद विधेय आता है, जो उनके आदि भगवान् रूप को बतलाने वाला है।

कृष्णेर स्वयं-भगवत्ता—इहा हैल साध्य ।

स्वयं-भगवानेर कृष्णत्व हैल बाध्य ॥83॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; स्वयम्-भगवत्ता-स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होना; इहा-यह; हैल-था; साध्य-साध्य करना था; स्वयम्-भगवानेर-भगवान् का; कृष्णत्व-भगवान् कृष्ण होना; हैल-था; बाध्य-अनिवार्य।

अनुवाद

"इससे यह प्रमाणित होता है कि श्रीकृष्ण आदि भगवान् हैं। इसलिए आदि भगवान् अनिवार्य रूप से कृष्ण ही हैं।

कृष्ण यदि अंश हैत, अंशी नारायण।

तबे विपरीत हैत सूतेर वचन ॥84॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यदि यदि; अंश-पूर्ण अंश; हैत-होते; अंशी–सभी अंशों के स्रोत; नारायण-भगवान् नारायण; तबे-तब; विपरीत–विपरीत; हैत–होता; सूतेर-सूत गोस्वामी का; वचन-कथन।

अनुवाद

"यदि कृष्ण पूर्ण अंश होते और नारायण आदि भगवान् (अंशी), तो सूत गोस्वामी का कथन विपरीत हो जाता।

नारायण अंशी येइ स्वयं-भगवान्।

तेह श्री कृष्ण—ऐछे करित व्याख्यान ॥85॥

नारायण-भगवान् नारायण; अंशी–सभी अवतारों का स्रोत; येइ-जो; स्वयम्-भगवान्–स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; तेह-वे; श्री-कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ऐछे-इस तरह; करित–किया होता; व्याख्यान-व्याख्यान।

अनुवाद

"तब वे यह कहते, 'समस्त अवतारों के उद्गम नारायण मूल भगवान् हैं और वे श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुए।

भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव ।

आर्ष-विज्ञ-वाक्ये नाहि दोष एइ सब ॥86॥

भ्रम-गलती; प्रमाद-भ्रम; विप्रलिप्सा-धोखेबाजी; करण-अपाटव-इन्द्रियों की अपूर्णता; आर्ष-प्रामाणिक सन्तों का; विज्ञ-वाक्ये—विवेकपूर्ण शब्दों में; नाहि-नहीं; दोष-दोष; एइ-ये; सब-सब।

अनुवाद

प्रामाणिक ऋषियों के वचनों में त्रुटियाँ, मोह, ठगने की प्रवृत्ति तथा भ्रान्त अनुभूति (इन्द्रियों की अपूर्णता) नहीं होतीं।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में अवतारों, पुरुष के पूर्ण अंशों की सूची दी गई है, जिसमें भगवान् कृष्ण का नाम भी है। लेकिन भागवत में आगे बतलाया गया है कि कृष्ण का विशिष्ट पद पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्

के रूप में है। चूँकि कृष्ण आदि भगवान् हैं, अतएव तर्क एवं विवेक से पुष्टि होती है कि उनका पद सदैव सर्वोच्च है।

यदि कृष्ण नारायण के पूर्ण विस्तार होते, तो मूल श्लोक अलग ढंग से रचा गया होता। तब निश्चय ही, इसका क्रम उलट दिया गया होता। किन्तु मुक्त ऋषियों के वचनों में त्रुटियाँ, मोह, छलछद्म या अपूर्ण अनुभूति नहीं हो सकती। अतएव इस कथन में कोई त्रुटि नहीं है कि कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। श्रीमद्भागवत के सारे संस्कृत कथन दिव्य ध्वनियाँ हैं। श्रील व्यासदेव ने पूर्ण साक्षात्कार के बाद इन कथनों को व्यक्त किया है; अतएव ये पूर्ण हैं, क्योंकि व्यासदेव जैसे मुक्त ऋषिगण कभी भी अलंकार-व्यवस्था में कोई त्रुटि नहीं करते। जब तक मनुष्य इस तथ्य को स्वीकार नहीं करता, तब तक शास्त्रों से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त करने की चेष्टा व्यर्थ है।

भ्रम का अर्थ है मिथ्या ज्ञान या त्रुटियाँ-यथा रजु को सर्प या किसी सीप को सोना मान लेना। ध्यान न देना या सच्चाई को गलत समझना प्रमाद है। विप्रलिप्सा ठगने की प्रवृत्ति है। करणापाटव भौतिक इन्द्रियों की अपूर्णता का सूचक है। ऐसी अपूर्णताओं के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। जो वस्तु बहुत दूरी पर है या अत्यन्त लघु होती है, उसे आँखें नहीं देख पातीं। यहाँ तक कि मनुष्य अपनी आँख की पलक को नहीं देख पाता, जो उसकी आँख के निकटतम है और यदि उसे पीलिया जैसा रोग हो जाये, तो उसे हर वस्तु पीली दिखाई देती है। इसी प्रकार कान दूर की आवाज नहीं सुन सकते। चूँकि भगवान्, उनके पूर्ण अंश तथा स्वरूपसिद्ध भक्त दिव्य पद पर स्थित रहते हैं, अतएव वे ऐसे अभावों से दिग्भ्रमित नहीं होते।

विरुद्धार्थ कह तुमि, कहिते कर रोष ।

तोमार अर्थे अविमृष्ट-विधेयांश-दोष ॥87॥

विरुद्ध-अर्थ-विपरीत अर्थ; कह-कहते हो; तुमि-आप; कहिते-संकेत करते हुए; कर-आप करते हैं; रोष-क्रोध; तोमार-तुम्हारा; अर्थे–अर्थ में; अविमृष्ट-विधेय-अंश—बिना विचार का विधेय-भाग; दोष-दोष।

अनुवाद

"तुम विरुद्ध बात कहते हो और जब इसकी ओर इंगित किया जाता है, तो तुम क्रोधित होते हो। तुम्हारी व्याख्या में स्थानभ्रष्ट विधेय का दोष है। यह अविचारणीय तालमेल है।

याँर भगवत्ता हैते अन्येर भगवत्ता ।

'स्वयं-भगवान्'-शब्देर ताहातेइ सत्ता ॥88॥

याँर–जिनका; भगवत्ता-भगवत्ता का गुण; हैते-से; अन्येर–अन्यों का; भगवत्ता-भगवत्ता का गुण; स्वयम्-भगवान्-शब्देर-स्वयं भगवान् शब्द का; ताहातेइ-उसमें; सत्ता-अस्तित्व।

अनुवाद

"केवल वे भगवान्, जो अन्य समस्त भगवत्ताओं के उद्गम हैं, स्वयं भगवान् या आदि भगवान् कहलाने के पात्र हैं।

दीप हैते यैछे बहु दीपेर ज्वलन ।

मूल एक दीप ताहा करिये गणन ॥ 89॥

दीप-दीपक; हैते-से; यैछे-जैसे; बह-बहुत से; दीपेर-दीपकों का; ज्वलन-जलाना; मूल-मूल; एक-एक; दीप-दीपक; ताहा-वह; करिये-मैं करता हूँ; गणन-गणना

अनुवाद

जब एक दीपक से अन्य अनेक दीपक जलाये जाते हैं, तो मैं उसे ही आदि (मूल) दीपक मानता हूँ।

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता (5.46) में कहा गया है कि विष्णुतत्त्व या परम भगवत् तत्त्व दीपक की भाँति है, क्योंकि उनके विस्तार सभी प्रकार से मूल स्रोत के तुल्य होते हैं। एक जलता दीपक असंख्य अन्य दीपकों को जला सकता है, जो यद्यपि निकृष्ट नहीं हैं, तो भी उस एक दीपक को मूल माना जाना चाहिए, जिससे अन्य सभी दीपक जलाए गये हैं। इसी प्रकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुतत्त्व के पूर्ण अंशों में अपना विस्तार करते हैं और यद्यपि वे समान रूप से शक्तिशाली होते हैं, फिर भी मूल शक्तिशाली भगवान् ही उद्गम माने जाते हैं। यह दृष्टान्त शिवजी तथा ब्रह्माजी जैसे गुणावतारों के प्राकट्य की भी व्याख्या करता है। श्रील जीव गोस्वामी के मतानुसार-शम्भोस्तु तमोऽधिष्ठानत्वात् कज्जलमयसूक्ष्मदीपशिखास्थानीयस्य न तथा साम्यम्-"शम्भुतत्त्व कजली से ढके दीपक की भाँति है, क्योंकि शिवजी तमोगुण के प्रभारी हैं। ऐसे दीपक से बहुत कम प्रकाश आता है। अतएव शिवजी की शक्ति विष्णुतत्त्व की शक्ति की बराबरी नहीं कर सकती।"

तैछे सब अवतारेर कृष्ण से कारण ।

आर एक श्लोक शुन, कुव्याख्या-खण्डन ॥90॥

तैछे-उसी प्रकार; सब-सब; अवतारेर–अवतारों के; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; से-वे; कारण कारण; आर-अन्य; एक-एक; श्लोक-श्लोक; शुन–कृपया सुनो; कु-व्याख्या-गलत व्याख्या; खण्डन–खण्डन।

अनुवाद

"इसी प्रकार से कृष्ण समस्त कारणों एवं समस्त अवतारों के कारण हैं। सारी भ्रान्त व्याख्याओं के खंडन हेतु अब दूसरा श्लोक सुनो।"

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।

मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥91॥

दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ।

वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा ॥92॥

अत्र- श्रीमद्भागवतम् में; सर्गः-ब्रह्माण्ड के तत्त्वों की उत्पत्ति; विसर्गः–ब्रह्मा का सृजन; च-और; स्थानम्-सृष्टि का पालन पोषणम्-भगवद्-भक्तों का पोषण; ऊतयः-कार्यकलाप के लिए प्रोत्साहन; मनु-अन्तर-मनुओं द्वारा नियत कर्तव्य; ईश-अनुकथाः-भगवान् के अवतारों का वर्णन; निरोधः-सृष्टि का समापन; मुक्तिः–मुक्ति; आश्रयः-परम आश्रय, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; दशमस्य-दसवाँ (आश्रय); विशुद्धि-अर्थम्पू र्ण ज्ञान के लिए; नवानाम्-नौ का; इह-यहाँ; लक्षणम्-लक्षण, प्रकृति; वर्णयन्ति–वर्णन करते हैं; महा-आत्मानः-महात्माजन; श्रुतेन–प्रार्थना से; अर्थेन-व्याख्या से; च-यथा; अञ्जसा-सीधा।

अनुवाद

"इसमें (श्रीमद्भागवत में) दस विषयों का वर्णन किया गया है । (1) ब्रह्माण्ड के अवयवों की सृष्टि, (2) ब्रह्मा की सृष्टि, (3) सृष्टि का पालन, (4) श्रद्धावानों के प्रति विशिष्ट अनुग्रह, (5) कर्म के लिए प्रेरणाएँ, (6) नियमों का पालन करने वाले मनुष्यों के कर्तव्य, (7) भगवान् के अवतारों का

वर्णन, (8) सृष्टि का संहार, (9) स्थूल तथा सूक्ष्म जगत् से मुक्ति तथा (10) परम आश्रय पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्। दसवाँ विषय अन्य सबके आश्रय हैं। परम आश्रय और अन्य नौ विषयों में अन्तर दिखाने के लिए महाजनों ने प्रार्थनाओं या प्रत्यक्ष व्याख्याओं के द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन नवों का वर्णन किया है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत से लिये गये ये श्लोक (2.10.1-2) उन दस विषयों की सूची देते हैं, जिनका वर्णन भागवत के मूल पाठ में हुआ है। इन सबमें दसवाँ सार (मूल विषय) है और अन्य नौ इसी सार से निकले हुए पद हैं। ये दसों विषय इस प्रकार हैं :

(1) सर्ग-विष्णु द्वारा की गई प्राथमिक सृष्टि, पाँच स्थूल तत्त्वों, पाँच इन्द्रिय-अनुभूति के विषयों, दस इन्द्रियों, मन, बुद्धि, मिथ्या अहंकार तथा समग्र भौतिक शक्ति या विराट् रूप का उल्लेख।

(2) विसर्ग-गौण सृष्टि अथवा ब्रह्मा द्वारा ब्रह्माण्ड में चर तथा अचर शरीरों को उत्पन्न करने का कार्य।

(3) स्थान-भगवान् विष्णु द्वारा ब्रह्माण्ड का पालन। विष्णु का कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण है और उनकी महिमा ब्रह्माजी तथा शिवजी से अधिक है, क्योंकि ब्रह्माजी के स्रष्टा तथा शिवजी के संहारकर्ता होने के उपरान्त भी विष्णु पालनकर्ता हैं।

(4) पोषण-भगवान् द्वारा भक्तों की विशेष देखभाल तथा सुरक्षा। जिस प्रकार राजा अपने राज्य तथा प्रजा का पालन करता है, किन्तु फिर भी अपने परिवार के लोगों का विशेष ध्यान रखता

है, उसी प्रकार भगवान् अपने उन भक्तों की विशेष देखभाल करते हैं, जो पूर्णतया उनके शरणागत हैं।

(5) ऊति-सृष्टि की प्रेरणा या प्रेरक शक्ति जो देश, काल तथा पात्र की आवश्यकताओं के अनुसार सारे अन्वेषणों का कारण है।

(6) मन्वन्तर–उन मनुओं द्वारा नियंत्रित काल, जो उन जीवों के लिए विधि-विधान सिखाते हैं, जो मानव-जीवन में पूर्णता प्राप्त करना चाहते हैं। मनु द्वारा मनुसंहिता में वर्णित नियमों से ऐसी पूर्णता का मार्गदर्शन होता है।

(7) ईशानुकथा—भगवान् एवं पृथ्वी पर उनके अवतारों तथा उनके भक्तों के कार्यकलापों के विषय में शास्त्रीय जानकारी। प्रगतिशील मानव जीवन के लिए इन विषयों से सम्बन्धित शास्त्र अनिवार्य हैं।

(8) निरोध-सृष्टि में प्रयुक्त सारी शक्तियों को समेटना। ऐसी शक्तियाँ कारण सागर में नित्य शयन करने वाले भगवान् से उद्भूत हैं। ब्रह्माण्ड, जो उनके श्वास के साथ प्रकट होते हैं, पुनः यथासमय लुप्त हो जाते हैं।

(9) मुक्ति-शरीर तथा मन के स्थूल एवं सूक्ष्म आवरणों द्वारा बँधे बद्धजीवों की मुक्ति। आत्मा सारी भौतिक आसक्ति से मुक्त होकर और स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक शरीरों को त्यागकर अपने मूल आध्यात्मिक शरीर में आध्यात्मिक आकाश (वैकुण्ठ) को प्राप्त कर सकता है और वैकुण्ठ-लोक या कृष्ण-लोक में भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में लग सकता है। जब आत्मा अपने मूल वैधानिक पद में स्थित होता है, तो वह मुक्त कहा जाता है। इस भौतिक शरीर में रहते हुए भी आत्मा भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लग सकता है और जीवन्मुक्त बन सकता है।

(10) आश्रय-दिव्य परम तत्त्व जिनसे प्रत्येक वस्तु उद्भूत है, जिन पर हर वस्तु आश्रित है और प्रलय के बाद जिनमें हर वस्तु विलीन होती है। वे सभी के उद्गम एवं आश्रय हैं। आश्रय परम ब्रह्म भी कहलाता है, यथा वेदान्त-सूत्र में (अथातो ब्रह्म जिज्ञासा, जन्माद्यस्य यतः)। श्रीमद्भागवत इस परम ब्रह्म को विशेषतः आश्रय रूप में वर्णन करता है। यह आश्रय श्रीकृष्ण ही हैं, अतएव जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि कृष्ण तत्त्व का अध्ययन किया जाये।

श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण को सम्पूर्ण जगतों का आश्रय मानता है, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हर वस्तु के परम स्रोत एवं सबके चरम लक्ष्य हैं।

यहाँ पर दो भिन्न भिन्न सिद्धान्तों पर विचार करना होगा-आश्रय अर्थात् शरण प्रदान करने वाला तत्त्व तथा आश्रित–अर्थात् शरण लेने की इच्छा रखने वाले। आश्रित मूल तत्त्व आश्रय के अधीन रहता है। प्रथम नौ श्रेणियाँ, जिनका वर्णन श्रीमद्भागवत के प्रथम नौ स्कन्धों में सृष्टि से लेकर मोक्ष पर्यन्त हुआ है, जिसमें पुरुषावतार, अवतार, तटस्था शक्ति या जीव तथा बहिरंगा शक्ति या भौतिक जगत् का समावेश हुआ है-ये सभी आश्रित हैं। किन्तु श्रीमद्भागवत की स्तुतियों का लक्ष्य आश्रयतत्त्व पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हैं। श्रीमद्भागवत के वर्णन में दक्ष महात्माओं ने बड़े यत्न से अन्य नौ श्रेणियों की पहचान की है-कभी प्रत्यक्ष कथा के रूप में तो कभी अप्रत्यक्ष वर्णनों-यथा कहानियों के रूप में। ऐसा करने का वास्तविक प्रयोजन परम पूर्ण श्रीकृष्ण को भलीभाँति जानना है, क्योंकि भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही सृष्टियाँ श्रीकृष्ण के शरीर पर आश्रित हैं।

आश्रय जानिते कहि ए नव पदार्थ।

ए नवेर उत्पत्ति-हेतु सेइ आश्रयार्थ ॥93॥

आश्रय-परम आश्रय; जानिते-जानने के लिए; कहि-मैं वर्णन करता हूँ; ए-ये; नव-नौ; पद-अर्थ-श्रेणियाँ; ए-ये; नवेर-नौ की उत्पत्ति-उत्पत्ति का; हेतु–कारण; सेइ-वह; आश्रय-आश्रय का; अर्थ-अर्थ।

अनुवाद

मैंने हर वस्तु के चरम आश्रय को स्पष्ट रूप से जानने के लिए अन्य नौ श्रेणियों का वर्णन किया है। इन नवों की उत्पत्ति का कारण उनका आश्रय कहा गया है, जो ठीक ही है।

कृष्ण एक सर्वाश्रय, कृष्ण सर्व-धाम ।

कृष्णेर शरीरे सर्व-विश्वेर विश्राम ॥94॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; एक-एक; सर्व-आश्रय-सबके आश्रय; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; सर्व-धाम-सबके धाम; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; शरीरे-शरीर में; सर्व-विश्वेर-सभी ब्रह्माण्डों के; विश्राम-आश्रय।

अनुवाद

“भगवान् श्रीकृष्ण सबके आश्रय एवं धाम हैं। सारे ब्रह्माण्ड कृष्ण के शरीर पर आश्रित हैं।

दशमे दशमं लक्ष्यमाश्रिताश्रय-विग्रहम् ।

श्री-कृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत् ॥ 95॥

दशमे-दशवें स्कन्ध में; दशमम्-दसवाँ विषय; लक्ष्यम्-देखने योग्य; आश्रित-आश्रित के; आश्रय-आश्रय के; विग्रहम्-जो रूप हैं; श्री-कृष्ण-आख्यम्-भगवान् कृष्ण कहलाने वाले; परम्-परम; धाम-धाम; जगत्-धाम-ब्रह्माण्ड के धाम; नमामि-मैं नमस्कार करता हूँ; तत्-उनको।

अनुवाद

श्रीमद्भागवत का दसवाँ स्कन्ध दसवें लक्ष्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्रकट करता है, जो समस्त शरणागत जीवों के आश्रय हैं। वे श्रीकृष्ण कहलाते हैं और वे सारे ब्रह्माण्डों के परम स्रोत (उद्गम) हैं। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक पर की गई श्रीधर स्वामी की टीका से लिया गया है।

कृष्णेर स्वरूप, आर शक्ति-त्रय-ज्ञान ।

याँर हय, ताँर नाहि कृष्णेते अज्ञान ॥ 96 ॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; स्व-रूप-स्वरूप, वास्तविक प्रकृति; आर-तथा; शक्ति-त्रय-तीन शक्तियों का; ज्ञान-ज्ञान; याँर–जिनका; हय-है; ताँर उसका; नाहि-नहीं है; कृष्णेते-भगवान् कृष्ण में; अज्ञान-अज्ञान।

अनुवाद

“जो श्रीकृष्ण के वास्तविक स्वरूप को तथा उनकी तीन विभिन्न शक्तियों को जानता है, वह उनके विषय में अनजान नहीं रह सकता।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी अपने ग्रंथ भागवत्-सन्दर्भ (16) में बतलाते हैं कि परम तत्त्व, परम सत्य अपनी उन शक्तियों द्वारा जो मानव मन की चिन्तनशक्ति से परे स्वाभाविक क्रम में कार्यशील होती हैं, अपने चारों दिव्य पहलूओं में एकसाथ विद्यमान रहते हैं—अपना रूप, अपना निर्विशेष तेज, अपने शक्तिमय अंश (जीव) तथा समस्त कारणों के प्रमुख कारण। परम पूर्ण की तुलना सूर्य से की जाती है, क्योंकि वह भी अपने चार पहलूओं में विद्यमान रहता है- सूर्यदेव, उसके चमकीले मंडल का तेज, सूर्यलोक के भीतर सूर्य की किरणें तथा अन्य अनेक वस्तुओं में सूर्य का प्रतिबिम्ब। सीमित कल्पनाओं से दिव्य परम सत्य के अस्तित्व की पुष्टि करने की आकांक्षा पूरी नहीं की जा सकती, क्योंकि वे हमारे सीमित तर्कवादी मस्तिष्कों के दायरे से परे हैं। सत्य की ईमानदार खोज में हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमारे लघु मस्तिष्कों के लिए उनकी शक्तियाँ अचिन्त्य हैं। अन्तरिक्ष की खोज के लिए विश्व के महानतम वैज्ञानिकों ने काम किया है, फिर भी भौतिक सृष्टि के मूलभूत ज्ञान से सम्बन्धित ऐसी असंख्य समस्याएँ हैं जो उनका सामना करने वाले वैज्ञानिकों को उलझन में डालने वाली हैं। ऐसा भौतिक ज्ञान आध्यात्मिक प्रकृति से बहुत हटकर है, अतएव परम सत्य के कार्य एवं उनकी व्यवस्थाएँ निश्चय ही अचिन्त्य हैं।

परम सत्य की मूल शक्तियाँ तीन बताई जाती हैं—अन्तरंगा, बहिरंगा तथा तटस्था। अपनी अन्तरंगा शक्ति द्वारा परमेश्वर अपने मूल रूप में आध्यात्मिक जगतों को प्रकट करते हैं, जो वैकुण्ठ-लोक कहलाते हैं। इनका अस्तित्व सनातन रूप से बना रहता है और ये भौतिक जगत् के संहार के बाद भी विद्यमान रहते हैं। अपनी तटस्था शक्ति से भगवान् अपने अंशरूपी जीवों में अपना विस्तार करते हैं, जिस प्रकार सूर्य समस्त दिशाओं में अपनी किरणें वितरित करता है। अपनी बहिरंगा शक्ति

से भगवान् भौतिक जगत् की सृष्टि करते हैं, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से कुहरा उत्पन्न करता है। भौतिक सृष्टि शाश्वत वैकुण्ठ प्रकृति का विकृत प्रतिबिम्ब है।

परम सत्य की इन तीनों शक्तियों का वर्णन विष्णु पुराण में भी हुआ है, जिसमें यह कहा गया है कि जीव गुण में अन्तरंगा शक्ति के समान है, जबकि बहिरंगा शक्ति समस्त कारणों के कारण द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रित होती है। भ्रामक शक्ति माया जीव को उसी तरह दिग्भ्रमित करती है, जिस प्रकार कुहरा सूर्य के प्रकाश को रोककर पैदल चलने वाले को दिग्भ्रमित करता है। यद्यपि माया की शक्ति भगवान् के अंश रूप जीवों की तटस्था शक्ति से निकृष्ट होती है, तो भी इसमें जीवों को नियन्त्रित करने की क्षमता रहती है, जिस तरह कुहरा सूर्य की किरणों के कुछ अंश को आवृत कर लेता है, भले ही वह सूर्य को आवृत नहीं कर सकता। सारे जीव माया से आच्छादित होकर विभिन्न योनियों में विकसित होते हैं, जिनमें उन्हें क्षुद्र चींटी से लेकर ब्रह्माण्ड के स्रष्टा, ब्रह्मा तक के शरीर प्राप्त होते हैं। निर्विशेष दृष्टि में समस्त कारणों का मुख्य कारण प्रधान है। यह प्रधान भगवान् ही हैं, जिन्हें मनुष्य अन्तरंगा शक्ति में प्रत्यक्ष देख सकता है। वे अपनी अचिन्त्य शक्ति से सर्वव्यापक भौतिक रूप ग्रहण करते हैं। यद्यपि ये तीनों शक्तियाँ–अन्तरंगा, बहिरंगा तथा तटस्था-अन्ततः एक हैं, किन्तु क्रिया में वे भिन्न हैं, जिस तरह कि एक ही विद्युत शक्ति भिन्न भिन्न अवस्थाओं में शीत तथा ऊष्मा उत्पन्न कर सकती है। बहिरंगा तथा तटस्था शक्ति में ऐसी भिन्न अवस्थाएँ पाई जाती हैं, किन्तु मूल अन्तरंगा शक्ति में ऐसी अवस्थाएँ नहीं होतीं, न ही बहिरंगा शक्ति की अवस्थाएँ तटस्था शक्ति में पाई जाती हैं; न इसके विपरीत ही होता है। जो व्यक्ति परमेश्वर की इन समस्त शक्तियों की जटिलताओं को समझ पाता है, वह अल्प ज्ञान के प्रभाव में आकर अनुभववादी मायावादी नहीं बना रह सकता।

कृष्णेर स्वरूपेर हय षड्-विध विलास ।

प्राभव-वैभव-रूपे द्वि-विध प्रकाश ॥ 97॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; स्वरूपेर-रूप का; हय-हैं; षट्-विध-छः प्रकार; विलास-लीला-रूप; प्राभव-वैभव-रूपे-प्राभव एवं वैभव श्रेणियों में; द्वि-विध-दो प्रकार के प्रकाश-प्राकट्य।

अनुवाद

भगवान् श्रीकृष्ण अपने छः मूल विस्तारों में विलास करते हैं। प्राभव तथा वैभव-ये उनके दो प्राकट्य हैं।

तात्पर्य

अब श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक भगवान् कृष्ण के असंख्य विस्तारों का वर्णन करते हैं। भगवान् मूलतः दो कोटियों में अपना विस्तार करते हैं : प्राभव तथा वैभव। प्राभव रूप श्रीकृष्ण के ही सदृश पूर्णतया शक्तिशाली होते हैं, किन्तु वैभव रूप आंशिक तौर पर शक्तिशाली होते हैं। प्राभव रूप शक्तियों के साथ प्रकट होते हैं, जबकि वैभव रूप विभूतियों के साथ प्रकट होते हैं। शक्तिशाली प्राभव रूप के प्राकट्य भी दो प्रकार के होते हैं–क्षणिक तथा शाश्वत। मोहिनी, हंस तथा शुक्ल रूप युगविशेष के परिप्रेक्ष्य में क्षणिक हैं। भौतिक अनुमान के अनुसार अन्य कम प्रसिद्ध प्राभव रूप ये हैं : धन्वन्तरि, ऋषभ, व्यास, दत्तात्रेय तथा कपिल। वैभव प्रकाश रुपों में कूर्म, मत्स्य, नर-नारायण, वराह, हयग्रीव, पृश्निगर्भ, बलदेव, यज्ञ, विभु, सत्यसेन, हरि, वैकुण्ठ, अजित, वामन, सार्वभौम, ऋषभ, विष्वक्सेन, धर्मसेतु, सुधाम, योगेश्वर तथा बृहद्भानु रूपों के नाम गिनाये जा सकते हैं।

अंश-शक्त्यावेश-रूपे द्वि-विधावतार।

बाल्य पौगण्ड धर्म दुइ त' प्रकार ॥98॥

अंश-पूर्ण अंश; शक्ति-आवेश-शक्त्यावेश; रूपे-रूपों में; द्वि-विध-दो प्रकार के; अवतार–अवतार; बाल्य-बाल्यावस्था; पौगण्ड-कुमारावस्था; धर्म-आयु के लक्षण; दुइ-दो; त'–निश्चय ही; प्रकार-प्रकार।

अनुवाद

"उनके अवतार दो प्रकार के हैं-आंशिक तथा शक्त्यावेश। वे दो अवस्थाओं में प्रकट होते हैं—बाल्य तथा पौगण्ड (कुमारावस्था)।

तात्पर्य

विलास रूपों की संख्या छह है। अवतार दो प्रकार के हैं-शक्त्यावेश तथा अंशावेश। ये अवतार भी प्राभव तथा वैभव प्राकट्यों की कोटि में आते हैं। बाल्य तथा पौगण्ड भगवान् श्रीकृष्ण के दो विशिष्ट स्वरूप हैं, किन्तु उनका स्थायी स्वरूप तो उनका नित्य किशोर रूप है। मूल भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा सदैव इसी सनातन किशोर रूप में की जाती है।

किशोर-स्वरूप कृष्ण स्वयं अवतारी ।

क्रीड़ा करे एइ छय-रूपे विश्व भरि' ॥99॥

किशोर-स्वरूप-किशोर रूप जिनका असली रूप है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; स्वयम्-स्वयं; अवतारी–सभी अवतारों के उद्गम; क्रीड़ा करे-वे क्रीड़ा करते हैं; एइ-ये; छय-रूपे-छ: रूपों में; विश्व-ब्रह्माण्ड; भरि'-पोषण करना।

अनुवाद

नित्य किशोर रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण समस्त अवतारों के उद्गम, मूल भगवान् हैं। वे ब्रह्माण्ड-भर में अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए इन छह रूपों में अपना विस्तार करते हैं।

एइ छय-रूपे हय अनन्त विभेद।

अनन्त-रूपे एक-रूप, नाहि किछु भेद॥ 100॥

एइ-ये; छय-रूपे-छः रूपों में; हय-हैं; अनन्त-अनन्त; विभेद-विभेद; अनन्त-रूपे-अनन्त रूपों में; एक-रूप-एक रूप; नाहि-नहीं है; किछु–कोई; भेद-भेद।

अनुवाद

इन छः रूपों के असंख्य भेद हैं। यद्यपि वे अनेक हैं, किन्तु सभी एक हैं। उनके बीच कोई अन्तर नहीं है।

तात्पर्य

भगवान् छह विभिन्न स्वरूपों में प्रकट होते हैं-(1) प्राभव, (2) वैभव, (3) शक्त्यावेश अवतार, (4) अंशावतार, (5) बाल्य तथा (6) पौगण्ड। भगवान् श्रीकृष्ण, जिनका स्थायी स्वरूप किशोर रूप है, इन छहों रूपों में अपनी लीलाएँ सम्पन्न करके आनन्द-भोग करते हैं। इन छह रूपों में भगवान् के अनन्त रूप होते हैं। सारे जीव भगवान् के विभिन्न-अंश हैं। ये सभी एक ही अद्वितीय भगवान् की विविधता व्यक्त करने वाले अंश हैं।

चिच्छक्ति, स्वरूप-शक्ति, अन्तरङ्गा नाम।

ताहार वैभव अनन्त वैकुण्ठादि धाम॥ 101॥

चित्-शक्ति-आध्यात्मिक शक्ति; स्वरूप-शक्ति-स्वरूप शक्ति; अन्तः-अङ्गा-अन्तरंगा ; नाम-नामक; ताहार-उसका; वैभव-प्राकट्य; अनन्त-अनन्त; वैकुण्ठ-आदि-वैकुण्ठ आदि; धाम-धाम।

अनुवाद

"चित्-शक्ति, जिसे स्वरूप-शक्ति अथवा अन्तरंगा शक्ति भी कहा जाता है, अनेक रूपों में अपना प्रदर्शन करती है। यह भगवान् के धाम तथा उसके वैभव को धारण करती है।

माया-शक्ति, बहिरङ्गा, जगत्कारण ।

ताहार वैभव अनन्त ब्रह्माण्डेर गण ॥ 102॥

माया-शक्ति-माया शक्ति; बहिः-अङ्गा–बहिरंगा; जगत्-कारण-जगत् का कारण; ताहार-उसका; वैभव-वैभव प्राकट्य; अनन्त-असीम; ब्रह्म-अण्डेर-ब्रह्माण्डों का; गण-गण, समूह।

अनुवाद

"माया शक्ति कहलाने वाली बहिरंगा शक्ति विविध भौतिक शक्तियों से सम्पन्न असंख्य ब्रह्माण्डों की कारण है।"

जीव-शक्ति तटस्थाख्य, नाहि यार अन्त ।

मुख्य तिन शक्ति, तार विभेद अनन्त ॥ 103॥

जीव-शक्ति-जीव शक्ति; तट-स्थ-आख्य-तटस्था नामक; नाहि-नहीं है; यार–जिसका; अन्त–अन्त; मुख्य–मुख्य; तिन-तीन; शक्ति-शक्तियाँ; तार–उनका; विभेद-विभेद; अनन्त-अनन्त।

अनुवाद

“इन दोनों के बीच की तटस्था शक्ति असंख्य जीवों की बनी है। ये ही तीन प्रधान शक्तियाँ हैं, जिनके असंख्य भेद और उपभेद हैं।

तात्पर्य

भगवान् की अन्तरंगा शक्ति, जिसे चित्-शक्ति कहते हैं, दिव्य वैकुण्ठ जगत् में विविधता प्रदर्शित करती है। हमारे अतिरिक्त ऐसे असंख्य मुक्त जीव हैं, जो भगवान् के असंख्य स्वरूपों के साथ रहते हैं। भौतिक जगत् बहिरंगा शक्ति को प्रदर्शित करता है, जिसमें जीवों को पूरी स्वतन्त्रता है कि भवबन्धन से छूटकर वे भगवद्धाम वापस जाएँ। श्वेताश्वतर उपनिषद् (6.8) हमें बतलाती है :

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते

न तत्समयाभ्यधिकश्च दृश्यते ।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते ।

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

“भगवान् अद्वितीय हैं। उन्हें स्वयं न तो कुछ करने की आवश्यकता होती है, न ही उनकी भौतिक इन्द्रियाँ होती हैं। न तो कोई उनके तुल्य है, न कोई उनसे बढ़कर है। उनके पास विभिन्न नामों वाली विविध असीम शक्तियाँ हैं, जो उनके भीतर स्वतन्त्र लक्षणों के रूप में विद्यमान रहती हैं और उन्हें पूर्ण ज्ञान, शक्ति तथा लीलाएँ प्रदान करती हैं।”

ए-मत स्वरूप-गण, आर तिन शक्ति ।

सभार आश्रय कृष्ण, कृष्णे सभार स्थिति ॥ 104॥

ए-मत-इस प्रकार; स्वरूप-गण-व्यक्तिगत रूप; आर-और; तिन-तीन; शक्ति-शक्तियाँ; सभार–सारी सभा के; आश्रय-आश्रय; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; सभार-सारी सभा की; स्थिति-स्थिति।

अनुवाद

“ये भगवान् के मुख्य स्वरूप, विस्तार और उनकी तीन शक्तियाँ हैं। ये सभी परम पूर्ण श्रीकृष्ण से प्रकट हैं। ये सब उन्हीं में स्थित हैं।

यद्यपि ब्रह्माण्ड-गणेर पुरुष आश्रय ।

सेइ पुरुषादि सभार कृष्ण मूलाश्रये ॥105॥

यद्यपि-यद्यपि; ब्रह्म-अण्ड-गणेर-ब्रह्माण्ड-समूह का; पुरुष-पुरुष अवतार; आश्रय-आश्रय; सेइ-वह; पुरुष-आदि-पुरुषावतारों आदि का; सभार-सभा का; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मूल-आश्रय-मूल आश्रय।

अनुवाद

यद्यपि तीनों पुरुष सारे ब्रह्माण्डों के आश्रय हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण इन पुरुषों के मूल स्रोत हैं।

स्वयं भगवान्कृष्ण, कृष्ण सर्वाश्रय ।

परम ईश्वर कृष्ण सर्व-शास्त्रे कय ॥ 106 ॥

स्वयम्-स्वयं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; सर्व-आश्रय-सबके आश्रय; परम-परम; ईश्वर-ईश्वर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; सर्व-शास्त्रे-सभी शास्त्र; कय–कहते हैं।

अनुवाद

“इस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण मूल आदि भगवान् एवं अन्य सारे विस्तारों के उद्गम हैं। सारे प्रामाणिक शास्त्र श्रीकृष्ण को परमेश्वर के रूप में स्वीकार करते हैं।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द-विग्रहः ।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्व-कारण-कारणम् ॥107॥

ईश्वरः-ईश्वर; परमः-परम; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; सत्-सनातन अस्तित्व; चित्-परम ज्ञान; आनन्द-परम आनन्द; विग्रहः–जिनका रूप; अनादिः-अनादि; आदिः-आदि; गोविन्दः-भगवान् गोविन्द; सर्व-कारण-कारणम्-सभी कारणों के कारण।

अनुवाद

“गोविन्द नाम से विख्यात कृष्ण परम नियन्ता हैं। उनका शरीर शाश्वत, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबके उद्गम हैं। उनका कोई उद्गम नहीं है, क्योंकि वे समस्त कारणों के मूल कारण हैं।”

तात्पर्य

यह ब्रह्म-संहिता के पाँचवें अध्याय का पहला श्लोक है।

ए सब सिद्धान्त तुमि जान भाल-मते ।

तबु पूर्व-पक्ष कर आमा चालाइते ॥ 108॥

ए-ये; सब-सब; सिद्धान्त-सिद्धान्त; तुमि-तुम; जान-जानते हो; भाल-मते-अच्छी तरह; तबु-फिर भी; पूर्व-पक्ष-आपत्ति; कर-तुम उठाते हो; आमा–मुझे; चालाइते-व्यर्थ की चिन्ता देने के लिए।

अनुवाद

तुम शास्त्रों के इन सारे सिद्धान्तों को भलीभाँति जानते हो। किन्तु मुझे क्षुब्ध करने के लिए ही सारे तर्क-वितर्क उत्पन्न करते हो।"

तात्पर्य

जिस विद्वान ने शास्त्रों का विस्तृत अध्ययन किया है, वह श्रीकृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार करने में संकोच नहीं कर सकता। यदि कोई ऐसा व्यक्ति इस विषय पर तर्क करता है, तो समझना चाहिए कि वह अपने प्रतिपक्षियों के मनों को विक्षुब्ध करने के लिए ही ऐसा कर रहा है।

सेइ कृष्ण अवतारी व्रजेन्द्र कुमार।

आपने चैतन्य-रूपे कैल अवतार ॥109॥

सेड़-वह; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतारी–सभी अवतारों के उद्गम; व्रजेन्द्र-कुमार-व्रज के राजा के पुत्र; आपने–प्रत्यक्ष रूप में; चैतन्य-रूपे-चैतन्य महाप्रभु के रूप में; कैल-किया; अवतार–अवतार।

अनुवाद

वे भगवान् श्रीकृष्ण ही व्रजराज के पुत्र कहलाते हैं, जो समस्त अवतारों के स्रोत हैं। वे स्वयं भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए हैं।

अतएव चैतन्य गोसाञि परतत्त्व-सीमा ।

ताँरे क्षीरोद-शायी कहि, कि ताँर महिमा ॥ 110॥

अतएव–अतएव; चैतन्य गोसाञि-चैतन्य महाप्रभु; पर-तत्त्व-सीमा-परम सत्य की सर्वोच्च सीमा; ताँरे–उनको; क्षीरोद-शायी-क्षीरोदकशायी विष्णु; कहि-यदि मैं कहूँ; कि-क्या; ताँर-उनकी; महिमा-महिमा।

अनुवाद

अतएव भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु परम सत्य हैं। उन्हें क्षीरोदकशायी विष्णु कहकर पुकारने से उनकी महिमा नहीं बढ़ती।

सेइ त' भक्तेर वाक्य नहे व्यभिचारी ।

सकल सम्भवे ताँते, याते अवतारी ॥ 111॥

सेइ-वह; त'–निश्चित रूप से; भक्तेर-भक्त का; वाक्य-कथन; नहे-नहीं है; व्यभिचारी-व्यतिक्रम; सकल-सभी; सम्भवे-समभावनाएँ; ताँते–उनमें; याते-चूँकि; अवतारी–सभी अवतारों के उद्गम।

अनुवाद

किन्तु निष्ठावान भक्त के मुख से निकले ऐसे शब्द कभी मिथ्या नहीं हो सकते। उनमें सारी सम्भावनाएँ निहित हैं, क्योंकि वे आदि भगवान् हैं।

अवतारीर देहे सब अवतारेर स्थिति ।

केहो कोन-मते कहे, येमन झार मति ॥ 112॥

अवतारीर-स्रोत का; देहे-देह में; सब-सब; अवतारेर–अवतारों की स्थिति-स्थिति; केहो-किसी के; कोन-मते-किसी प्रकार; कहे-कहता है; येमन-इस भाँति; यार–जिसकी; मति–राय।

अनुवाद

अन्य सारे अवतार मूल भगवान् के आदि शरीर में शक्तिमान के रूप में स्थित हैं। अतएव अपने मत के अनुसार कोई उन्हें किसी भी एक अवतार के रूप में सम्बोधित कर सकता है।

तात्पर्य

भक्त द्वारा भगवान् को उनके पूर्ण विस्तारों के विविध नामों में से किसी एक नाम से सम्बोधित किया जाना विरोधाभास नहीं है, क्योंकि मूल भगवान् में ये सारे विस्तार सन्निहित रहते हैं। चूँकि सारे पूर्ण विस्तार आदि पुरुष में अवस्थित रहते हैं, अतएव वे इन नामों में से किसी एक नाम द्वारा पुकारे जा सकते हैं। श्रीचैतन्य-भागवत (मध्य 6.95) में श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं, "मैं क्षीरसागर में शयन कर रहा था, किन्तु नाड़ा (श्री अद्वैत प्रभु)' की पुकार ने मुझे जगा दिया।" यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु अपने क्षीरोदकशायी विष्णु रूप का उल्लेख कर रहे हैं।

कृष्णके कहये केह-नर-नारायण ।

केहो कहे, कृष्ण हय साक्षावामन ॥113॥

कृष्णके–भगवान् कृष्ण; कहये-कहते हैं; केह-कोई; नर-नारायण-नर-नारायण; केहो–कोई; कहे-कहते हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; हय-हैं; साक्षात् साक्षात्; वामन-भगवान् वामन।

अनुवाद

कुछ लोग कहते हैं कि श्रीकृष्ण साक्षात् नर-नारायण हैं। अन्य लोग कहते हैं कि वे साक्षात् वामन हैं।

केहो कहे, कृष्ण क्षीरोद-शायी अवतार।

असम्भव नहे, सत्य वचन सबार ॥114॥

केहो–कोई; कहे-कहता है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; क्षीरोद-शायी-क्षीरोदकशायी विष्णु; अवतार–अवतार; असम्भव-असम्भव; नहे–नहीं है; सत्य-सत्य; वचन-वचन; सबार-सबका।

अनुवाद

कुछ लोग कहते हैं कि कृष्ण क्षीरोदकशायी विष्णु के अवतार हैं। इनमें से कोई भी कथन असम्भव नहीं है। प्रत्येक कथन अन्यों की ही तरह सत्य है।

तात्पर्य

लघु भागवतामृत (5.383) में आया है कि :

अतएव पुराणादौ केचिन् नर-सखात्मताम्

महेन्द्रानुजतां केचित् केचित् क्षीराब्धि-शायिताम्।

सहस्रशीर्षत केचित् केचिद् वैकुण्ठनाथताम्

ब्रूयुः कृष्णस्य मुनयस्तत्तवृत्त्यनुगामिनः ॥

“आदि भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके भक्तों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध के अनुसार सारे पुराण उनका विविध नामों से वर्णन करते हैं। कभी वे नारायण कहे जाते हैं, कभी उपेन्द्र (वामन), स्वर्ग के राजा इन्द्र के छोटे भाई, तो कभी क्षीरोदकशायी विष्णु। कभी वे सहस्र फन वाले शेषनाग कहलाते हैं, तो कभी वैकुण्ठपति कहलाते हैं।”

केहो कहे, पर-व्योमे नारायण हरि ।

सकल सम्भवे कृष्णे, याते अवतारी ॥115॥

केहो–कोई; कहे-कहता है; पर-व्योमे-आध्यात्मिक विश्व में; नारायण भगवान् नारायण; हरि-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; सकल सम्भवे-सारी सम्भावनाएँ; कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; धाते-चूँकि; अवतारी-सभी अवतारों के उद्गम।

अनुवाद

कुछ उन्हें हरि या दिव्य लोक का नारायण कहते हैं। कृष्ण के लिए सब कुछ सम्भव है, क्योंकि वे आदि भगवान् हैं।

सब श्रोता-गणेर करि चरण वन्दन ।

ए सब सिद्धान्त शुन, करि’ एक मन ॥ 116 ॥

सब-सब; श्रोता-गणेर-श्रोतागण का; करि-मैं करता हूँ; चरण-चरणकमल में; वन्दन–प्रार्थना; ए-ये; सब-सब; सिद्धान्त-सिद्धान्त, निष्कर्ष; शुन-कृपया सुनो; करि’-करके; एक-एक; मन–मन।

अनुवाद

मैं इस कथा को सुनने या पढ़ने वाले समस्त लोगों के चरणों में नमस्कार करता हूँ। कृपा करके इन सारे कथनों के सार को ध्यान से सुनें।

तात्पर्य

श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक अपने पाठकों के चरणों में दण्डवत् प्रणाम करके विनीत भाव से अनुरोध करते हैं कि वे परम सत्य-विषयक इन निष्कर्षों को मनोयोग से सुनें। ऐसे तर्कों को सुनने से किसी को चूकना नहीं चाहिए, क्योंकि ऐसे ज्ञान से ही मनुष्य कृष्ण को पूरी तरह जान सकता है।

सिद्धान्त बलिया चित्ते ना कर अलस।

इहा हइते कृष्णे लागे सुदृढ़ मानस॥ 117॥

सिद्धान्त-सिद्धान्त; बलिया-विचार करके; चित्ते-मन में; ना कर-न करो; अलस-आलसी; इहा-यह; हइते-से; कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; लागे–अवस्थित हो जाता है; सुदृढ़-सुदृढ़; मानस-मन।

अनुवाद

निष्ठापूर्ण जिज्ञासु को चाहिए कि ऐसे सिद्धान्तों की व्याख्या को विवादास्पद मानकर उनकी उपेक्षा न करे, क्योंकि ऐसी व्याख्याओं से मन दृढ़ होता है। इस तरह मनुष्य का मन श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्त होता है।

तात्पर्य

ऐसे अनेक जिज्ञासु हैं, जो भगवद्गीता पढ़ने के उपरान्त भी अपूर्ण ज्ञान के कारण कृष्ण को सही ढंग से नहीं समझ पाते और इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे एक सामान्य ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। मनुष्य को कृष्ण विषयक सत्य को समझने में विशेष सतर्क रहना चाहिए। यदि आलस्यवश कोई व्यक्ति कृष्ण के विषय में ठीक से नहीं समझ पाता, तो वह भक्ति सम्प्रदाय के विषय में उन लोगों की तरह भ्रमित हो सकता है, जो अपने आपको उन्नत भक्त घोषित करते हैं और मुक्तात्माओं द्वारा यदाकदा प्रदर्शित किये जाने वाले दिव्य लक्षणों की नकल करते हैं। यद्यपि अदीक्षित व्यक्ति को भक्त बनने के लिए प्रेरित करने में विचारों तथा तर्कों का सहारा लेना सर्वोपयुक्त विधि है, लेकिन भक्ति में लगे नवदीक्षितों को शास्त्रों, प्रामाणिक भक्तों तथा गुरु के दृष्टिकोण के माध्यम से सतर्कता के साथ कृष्ण को समझना चाहिए। ऐसे अधिकारियों के मुख से श्रीकृष्ण के विषय में श्रवण किये बिना श्रीकृष्ण की भक्ति में प्रगति नहीं हो सकती। प्रामाणिक शास्त्रों में भक्ति प्राप्त करने के नौ साधनों का उल्लेख है, जिसमें सबसे पहला साधन किसी प्रामाणिक अधिकारी से श्रवण करना है। भक्ति का बीज श्रवण तथा कीर्तन के जल से सींचे बिना अंकुरित नहीं हो सकता। मनुष्य को चाहिए कि आध्यात्मिकता की दृष्टि से उन्नत स्रोतों से विनीत होकर दिव्य सन्देश को प्राप्त करे और अपने तथा अपने श्रोताओं के लाभ के लिए उसी सन्देश का पुनः उच्चारण करे।

जब ब्रह्मा ने अनुभववादी दर्शन तथा सकामकर्मों के अनुशीलन से रहित शुद्ध भक्तों की स्थिति का वर्णन किया, तो उन्होंने भक्ति-मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों से श्रवण करने की विधि की संस्तुति की। ऐसे मुक्तात्मा, जो वास्तविक दिव्य ध्वनि का उच्चारण करने में समर्थ हैं, उनके पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए मनुष्य भक्ति की सर्वोच्च अवस्था तक पहुँच सकता है और इस तरह महाभागवत बन सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को जो उपदेश दिया (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 22.65), उससे हम सीखते हैं कि :

शास्त्रयुक्त्ये सुनिपुण, दृढ़श्रद्धा याँर।

“उत्तम अधिकारी” सेइ तारये संसार॥

“जो व्यक्ति शास्त्रों के निष्कर्षों को समझने में निपुण होता है और जो भगवान् के लिए पूर्णतः समर्पित हो जाता है, वह दूसरों को वास्तव में भवबन्धन से छुड़ाने में समर्थ है।” उपदेशामृत (3) में श्रील रूप गोस्वामी उपदेश देते हैं। कि भक्तियोग में तेजी से प्रगति करने के लिए मनुष्य को अत्यधिक तत्पर रहना चाहिए और प्रामाणिक शास्त्रों में निर्दिष्ट तथा गुरु द्वारा बताए गये कर्तव्यों को सम्पन्न करने के लिए दृढ़तापूर्वक प्रयास करना चाहिए। मुक्तात्माओं का अनुसरण तथा शुद्ध भक्तों का संग ऐसे कार्यों को समृद्ध करते हैं।

ऐसे नकली भक्त जो अपने आपको उन्नत वैष्णव के रूप में विज्ञापित करना चाहते हैं और इस तरह पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुकरण तो करते हैं, किन्तु उनके सिद्धान्तों का पालन नहीं करते, वे श्रीमद्भागवत (2.3.24) के शब्दों में पाषाण-हृदय वाले कहे गये हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने उनकी ऐसी दशा पर यह टिप्पणी की है- बहिरश्रुपुलकयोः सतोरपि यद्धृदयं न विक्रियेत तदश्मसारम् इति कनिष्ठाधिकारिणाम् एव अश्रुपुलकादि मत्त्वेऽपि अश्मसारहृदयतया निन्दैषा–“जो लोग अभ्यासवश अश्रु गिराते हैं, किन्तु जिनके हृदयों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, वे निम्नतम कोटि के पाषाण- हृदयी भक्त कहलाते हैं। कृत्रिम विधि से प्रेरित होकर उनका नकली क्रन्दन सदैव निन्दनीय है।” उपर्युक्त वांछित हृदय परिवर्तन भक्ति के प्रतिकूल कुछ भी करने में संकोच के रूप में दृष्टिगत होता है। ऐसा हृदय-परिवर्तन लाने के लिए श्रीकृष्ण तथा उनकी शक्तियों के विषय में निर्णायक व्याख्या की चर्चा करना नितान्त आवश्यक है। छद्म भक्त ऐसा सोच सकते हैं कि केवल आँसू बहाने से ही मनुष्य को दिव्य पद प्राप्त हो जायेगा, भले ही उसके हृदय में वास्तविक परिवर्तन न हुआ हो। किन्तु दिव्य अनुभूति के बिना ऐसा अभ्यास व्यर्थ है। दिव्य ज्ञान के निष्कर्ष से विहीन

छद्म भक्त सोचते हैं कि बनावटी आँसू बहाने से उनका उद्धार हो जायेगा। इसी तरह से अन्य छद्म भक्त सोचते हैं कि पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रंथों को अध्ययन करने का परामर्श उचित नहीं है, जिस तरह शुष्क दर्शनों का अध्ययन उचित नहीं है। किन्तु पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुसरण करते हुए श्रील जीव गोस्वामी ने शास्त्रों के निष्कर्षों को षट्-सन्दर्भ नामक छ: सन्दर्भ ग्रंथों में दृढ़ता से लिपिबद्ध किया है। ऐसे नकली भक्त जिन्हें ऐसे निष्कर्षों का बहुत कम ज्ञान होता है, वे स्वरूपसिद्ध भक्तों द्वारा प्रदत्त भक्ति के अनुकूल निर्देशों को स्वीकार करने में उत्साह नहीं दिखलाते, अतः वे शुद्ध भक्ति सम्पन्न करने में असफल रह जाते हैं। ऐसे नकली भक्त उन निर्विशेषवादियों के समान हैं, जो भक्ति को साधारण सकाम कर्मों से बेहतर नहीं मानते।

चैतन्य-महिमा जानि ए सब सिद्धान्ते ।

चित्त दृढ़ हञा लागे महिमा-ज्ञान हैते ॥118॥

चैतन्य-महिमा-चैतन्य महाप्रभु की महिमा; जानि-मैं जानता हूँ; ए-इन; सब-सब; सिद्धान्ते-सिद्धान्तों से; चित्त-मन; दृढ़-दृढ़; हञा-होना; लागे-दृढ़ हो जाता है; महिमा-ज्ञान-महिमा का ज्ञान; हैते-से।

अनुवाद

ऐसे निर्णायक अध्ययन द्वारा मैं चैतन्य महाप्रभु की महिमा को जानता हूँ। इन महिमाओं को जान लेने से ही मनुष्य बलवान बन सकता है और उनके प्रति अनुराग में सुस्थिर हो सकता है।

तात्पर्य

श्रीकृष्ण के विषय में ज्ञान के सही निर्णय तक पहुँचकर और आचार्यों के निष्कर्षों का प्रामाणिक अध्ययन करके ही श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमाओं को जाना जा सकता है।

चैतन्य-प्रभुर महिमा कहिबार तरे ।

कृष्णेर महिमा कहि करिया विस्तारे ॥ 119॥

चैतन्य-प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमा-महिमाएँ, कहिबार तरे–कहने के लिए; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; महिमा-महिमाएँ, कहि-मैं कहता हूँ; करिया-करके; विस्तारे--विस्तार से।

अनुवाद

मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु का महिमा-वर्णन करने के लिए ही श्रीकृष्ण की महिमाओं का विस्तार से वर्णन करने का प्रयास किया है।

चैतन्य-गोसाञिर एइ तत्त्व-निरूपण ।

स्वयं-भगवान्कृष्ण व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ 120॥

चैतन्य-गोसाञिर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; एइ--यह; तत्त्व-सत्य का; निरूपण-निरूपण; स्वयम्-भगवान्–स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; व्रजेन्द्र-नन्दन-ब्रजेन्द्र के पुत्र।

अनुवाद

निष्कर्ष यह है कि श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं व्रजराज के पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥121॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों पर; यार–जिनके; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत ग्रंथ; कहे वर्णन करता है; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए एवं उनकी दया की सदा आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत के आदि लीला, द्वितीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु का वर्णन भगवान् के रूप में किया गया है।

अध्याय तीन

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य के बाह्य कारण

इस अध्याय में लेखक ने श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतरण के बाह्य कारणों की पूर्ण व्याख्या की है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी लीलाएँ प्रदर्शित करने के बाद यही उचित समझा कि वे एक भक्त के रूप में अवतरित हों, जिससे वे अपने एवं अपने सेवकों, मित्रों, माता-पिता तथा प्रेमिकाओं के मध्य सेवा तथा प्रेम के दिव्य रस के विनिमय की स्वयं व्याख्या कर सकें। वैदिक साहित्य के अनुसार इस कलियुग में मनुष्य का सर्वप्रमुख धर्म नाम- सङ्कीर्तन या भगवान् के पवित्र नाम का सामूहिक कीर्तन करना है। इस युग के अवतार इसी विधि का विशेष उपदेश देते हैं, किन्तु परमेश्वर एवं उनके भक्तों के बीच चार मुख्य प्रकार के प्रेम-व्यापारों में सम्पन्न होने वाली गुह्य प्रेमाभक्ति की व्याख्या केवल स्वयं कृष्ण ही कर सकते हैं। इसीलिए स्वयं भगवान् कृष्ण अपने पूर्ण अंशों समेत श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए। जैसाकि इस अध्याय में बतलाया गया है, इसी निमित्त भगवान् कृष्ण नवद्वीप में श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के रूप में स्वयं प्रकट हुए।

यहाँ पर कृष्णदास कविराज ने चैतन्य महाप्रभु की पहचान स्वयं श्रीकृष्ण के रूप में स्थापित करने के लिए श्रीमद्भागवत तथा अन्य शास्त्रों से पर्याप्त प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने भगवान् चैतन्य के शारीरिक लक्षणों का वर्णन किया है, जो केवल भगवान् के ही शरीर में दृष्टिगोचर होते हैं और इस तरह उन्होंने यह सिद्ध किया है कि श्री चैतन्य अपने निजी पार्षदों-श्री नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर, श्रीवास तथा अन्य भक्तों के साथ हरे-कृष्ण-कीर्तन की विशेष महत्ता का उपदेश देने के लिए प्रकट हुए। भगवान् चैतन्य का आविर्भाव महत्त्वपूर्ण होने के साथ गुह्य भी है। वे केवल शुद्ध भक्तों द्वारा तथा केवल शुद्ध भक्तियोग की प्रक्रिया द्वारा समझे जा सकते हैं। भगवान् ने अपने आपको भक्त के रूप में प्रस्तुत करके भगवान् के रूप में अपनी पहचान को छिपाने का प्रयास किया, किन्तु उनके शुद्ध भक्तों ने उन्हें उनके विशेष लक्षणों से पहचान लिया। वेद तथा पुराण श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव की भविष्यवाणी करते हैं, तो भी कभी-कभी वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रच्छन्न अवतार कहे जाते हैं।

अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के पिता के समकालीन थे। उन्हें इस बात का दुःख था कि भगवान् कृष्ण का आविर्भाव हो जाने के बाद भी संसार की हालत खराब थी, क्योंकि कृष्ण-भक्ति में किसी को रुचि नहीं थी। लोग भगवान् को इस हद तक भूल चुके थे कि अद्वैत प्रभु को विश्वास हो चुका था कि भगवद्भक्ति के विषय में लोगों को स्वयं कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई प्रशिक्षित नहीं कर सकता। इसीलिए अद्वैत आचार्य ने भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की कि वे चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हों। उन्होंने तुलसीदल तथा गंगाजल अर्पित करते हुए भगवान् से प्रकट होने के लिए व्याकुल भाव से प्रार्थना की। भगवान् अपने शुद्ध भक्तों पर तुष्ट होकर उन्हें प्रसन्न करने के लिए अवतरित होते हैं। इस तरह अद्वैत आचार्य से प्रसन्न होकर श्री चैतन्य महाप्रभु प्रकट हुए।

श्री चैतन्य-प्रभुं वन्दे यत्पादाश्रय-वीर्घतः ।

सङ्गखात्याकर-व्रातादज्ञः सिद्धान्त-सन्मणीन् ॥ 1॥

श्री-चैतन्य-प्रभुम्-श्री चैतन्य महाप्रभु को; वन्दे-मैं सादर प्रणाम करता हूँ; यत्-जिनके; पाद-आश्रय-चरणकमलों के आश्रय के; वीर्यतः-बल से; सङ्गह्णाति–एकत्रित करता है; आकर-व्रातात्-शास्त्र रूपी खानों के समूह से; अज्ञः-एक अज्ञानी; सिद्धान्त-सिद्धान्त के; सत्-मणीन्-सर्वोत्कृष्ट रत्न।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ। उनके चरणकमलों की शरण के प्रभाव से मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी प्रामाणिक शास्त्रों की खानों में से सैद्धान्तिक सत्य के मूल्यवान रत्नों को एकत्र कर सकता है।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैताचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैतचन्द्र प्रभु की जय हो और श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

तृतीय श्लोकेर अर्थ कैल विवरण ।

चतुर्थ श्लोकेर अर्थ शुन भक्त-गण ॥ 3॥

तृतीय-तीसरे; श्लोकेर–श्लोक का; अर्थ-अर्थ; कैल-किया; विवरण–विवरण; चतुर्थ-चौथे; श्लोकेर-श्लोक का; अर्थ-अर्थ; शुन-कृपया सुनो; भक्त-गण-हे भक्तगण।

अनुवाद

मैं तीसरे श्लोक का तात्पर्य बता चुका हूँ। हे भक्तजन, अब कृपा करके ध्यानपूर्वक चौथे श्लोक का अर्थ सुनें।

अनर्पित-चरी चिरात्करुणयावतीर्णः कलौ

समर्पयितुमुन्नतोज्वल-रसां स्व-भक्ति-श्रियम् ।

हरिः पुरट-सुन्दर-द्युति-कदम्ब-सन्दीपितः

सदा हृदय-कन्दरे स्फुरतु वः शची-नन्दनः ॥4॥

अनर्पित-नहीं दिया; चरीम्-पहले; चिरात् दीर्घ काल से; करुणया-अहैतुकी दया से; अवतीर्णः-अवतरित हुए; कलौ–कलियुग में; समर्पयितुम्-प्रदान करने के लिए; उन्नत-उन्नत; उज्वल-रसाम्-उज्जवल माधुर्य रस; स्व-भक्ति-अपनी भक्ति का; श्रियम्-खजाना; हरिः-परमेश्वर; पुरट-सुवर्ण से; सुन्दर-अधिक सुन्दर; द्युति-द्युति; कदम्ब-समूह; सन्दीपितः-प्रकाशित; सदा-सदैव; हृदय-कन्दरे-हृदय की गहराई में; स्फुरतु-वे प्रकट हुए; वः-आपका; शची-नन्दनः–माता शची का पुत्र।

अनुवाद

वे भगवान्, जो श्रीमती शचीदेवी के पुत्र के रूप में विख्यात हैं, आपके हृदय की गहराई में दिव्य स्थान ग्रहण करें। वे पिघले सोने की देदीप्यमान द्युति से युक्त होकर इस कलियुग में अपनी अहैतुकी कृपा से भक्ति का सर्वोच्च रस-माधुर्य रस-प्रदान करने के लिए अवतरित हुए हैं, जिसे इसके पूर्व अन्य किसी अवतार ने प्रदान नहीं किया है।"

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध-माधव (1.2) नामक नाट्यकृति का है, जिसका संकलन एवं सम्पादन श्रील रूप गोस्वामी द्वारा किया गया है।

पूर्ण भगवान्कृष्ण व्रजेन्द्र कुमार ।

गोलोके व्रजेर सह नित्य विहार ॥5॥

पूर्ण–पूर्ण; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; व्रजेन्द्र-कुमार-व्रजेन्द्र नन्दन; गोलोके–गोलोक में; व्रजेर सह-व्रजधाम सहित; नित्य-नित्य; विहार-लीलाएँ।

अनुवाद

व्रजराज के पुत्र श्रीकृष्ण परम भगवान् हैं। वे अपने सनातन धाम गोलोक में, जिसमें व्रजधाम भी सम्मिलित है, अपनी दिव्य लीलाओं का आनन्द लेते हैं।

तात्पर्य

पिछले अध्याय में यह सिद्ध किया जा चुका है कि व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण छः ऐश्वर्यों से युक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। वे अपने लोक, गोलोक में विविध दिव्य ऐश्वर्यों का सदैव भोग करते हैं। दिव्य ग्रह कृष्ण-लोक में भगवान् की शाश्वत लीलाएँ अप्रकट कहलाती हैं, क्योंकि वे बद्धजीवों की पहुँच

के बाहर होती हैं। भगवान् कृष्ण सदैव सर्वत्र उपस्थित रहते हैं, किन्तु जब वे हमारी आँखों के समक्ष नहीं होते, तो वे अप्रकट कहलाते हैं।

ब्रह्मार एक दिने तिंहो एक-बार।

अवतीर्ण हञा करेन प्रकट विहार ॥ 6॥

ब्रह्मार–ब्रह्माजी के; एक–एक; दिने–दिन में; तिंहो-वे; एक-बार-एक बार; अवतीर्ण-अवतरित; हजा–होकर; करेन-करते हैं; प्रकट-प्रकट; विहार-लीलाएँ।

अनुवाद

वे ब्रह्मा के एक दिन में एक ही बार इस जगत् में अपनी दिव्य लीलाएँ प्रकट करने के लिए अवतरित होते हैं।

सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि, चारि-युग जानि।

सेइ चारि-युगे दिव्य एक-युग मानि ॥7॥

सत्य-सत्य, त्रेतात्रेता; द्वापर-द्वापर; कलि-कलि; चारि-युग-चतुर्युग; जानि-हम जानते हैं; सेइ-ये; चारि-युगे–चार युगों में; दिव्य-दिव्य; एक-युग-एक युग; मानि-हम मानते हैं।

अनुवाद

हम जानते हैं कि युग चार हैं, यथा सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग। ये चारों मिलकर एक दिव्य युग की रचना करते हैं।

एकात्तर चतुर्युगे एक मन्वन्तर।

चौद्द मन्वन्तर ब्रह्मार दिवस भितर ॥8॥

एकात्तर-इकहत्तर; चतुः-मुंगे-चतुर्युगों में; एक-एक; मनु-अन्तर–मन्वन्तर; चौद्द-चौदह; मनु-अन्तर-मनु का काल; ब्रह्मार-ब्रह्माजी का; दिवस–एक दिन; भितर–के भीतर।

अनुवाद

एकहत्तर दिव्य युग मिलकर एक मन्वन्तर बनाते हैं। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मन्वन्तर होते हैं।

तात्पर्य

मन्वन्तर एक मनु द्वारा शासन करने की अवधि है। ब्रह्मा के जीवन का एक दिन (बारह घंटे) चौदह मनुओं के शासन काल के बराबर है और ब्रह्मा की रात्रि भी इतनी ही बड़ी होती है। ये गणनाएँ सूर्य-सिद्धान्त नामक प्रामाणिक खगोल-विज्ञान की पुस्तक में दी हुई हैं। इस पुस्तक का बंगाली अनुवाद खगोल विज्ञान तथा गणित के महान् पंडित बिमल प्रसाद दत्त ने किया। यही बाद में भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी कहलाये और ये ही हमारे कृपालु गुरु थे। सूर्य-सिद्धान्त के अनुवाद के लिए इन्हें सिद्धान्त सरस्वती पदवी से विभूषित किया गया और जब उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया, तो उनके नाम के साथ गोस्वामी महाराज की पदवी जुड़ गई।

‘वैवस्वत’-नाम एइ सप्तम मन्वन्तर।

साताइश चतुर्युग ताहार अन्तर ॥9॥

वैवस्वत-नाम-वैवस्वत नामक; एइ-यह; सप्तम-सातवाँ; मनु-अन्तर–मन्वन्तर; साताइश-सत्ताइस; चतुः-युग-चतुर्युग; ताहार-उनके; अन्तर-कालान्तर।

अनुवाद

वर्तमान मनु सातवें मनु हैं और ये वैवस्वत (विवस्वान के पुत्र) कहलाते हैं। अब तक उनकी आयु के सत्ताइस दिव्य युग (27*43,20,000 सौर वर्ष) बीत चुके हैं।

तात्पर्य

चौदह मनुओं के नाम इस प्रकार हैं-(1) स्वायम्भुव, (2) स्वारोचिष, (3) उत्तम, (4) तामस, (5) रैवत, (6) चाक्षुष, (7) वैवस्वत, (8) सावर्णि, (9) दक्ष-सावर्णि, (10) ब्रह्म-सावर्णि, (11) धर्म-सावर्णि, (12) रुद्रपुत्र (रुद्र-सावर्णि), (13) रौच्य या देव-सावर्णि तथा (14) भौत्यक या इन्द्र-सावर्णि।

अष्टाविंश चतुर्युगे द्वापरेर शेषे ।

व्रजेर सहिते हय कृष्णेर प्रकाशे ॥10॥

अष्टाविंश-अट्ठाइसवें; चतुः-युगे-चतुर्युग में; द्वापरेर-द्वापर युग के; शेषे–अन्त में; व्रजेर सहिते-व्रज सहित; हय है; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; प्रकाशे-प्रकट होना।

अनुवाद

अट्ठाइसवें दिव्य युग के द्वापर युग के अन्त में भगवान् कृष्ण अपने शाश्वत व्रजधाम के सम्पूर्ण साज-सामान के साथ पृथ्वी पर प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

अब वैवस्वत मनु का शासन काल है, जिसमें चैतन्य महाप्रभु प्रकट होते हैं। सर्वप्रथम भगवान् कृष्ण अट्ठाइसवें दिव्य-युग के द्वापर युग के अन्त में प्रकट होते हैं और तब उसी दिव्य-युग के कलियुग में चैतन्य महाप्रभु प्रकट होते त्याग दें। अपने ऐसे सभी कार्यकलापों को दिखलाने के बाद भगवान् अन्तर्धान हो जाते हैं।

यथेष्ट विहरि कृष्ण करे अन्तर्धान।

अन्तर्धान करि' मने करे अनुमान ॥13॥

यथा-इष्ट-यथेष्ठ; विहरि'–विहार करके; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करे-करते हैं; अन्तर्धान–अन्तर्धान; अन्तर्धान करि'-अन्तर्धान होकर; मने-मन में; करे-वे करते हैं; अनुमान–अनुमान।

अनुवाद

जब तक इच्छा होती है, भगवान् कृष्ण अपनी दिव्य लीलाओं का आस्वादन करते हैं और पुनः अन्तर्धान हो जाते हैं। किन्तु अन्तर्धान होने के बाद वे इस प्रकार सोचते हैं :

चिर-काल नाहि करि प्रेम-भक्ति दान।

भक्ति विना जगतेर नाहि अवस्थान ॥14॥

चिर-काल-दीर्घ काल तक; नाहि करि-मैंने नहीं किया; प्रेम-भक्ति-प्रेम भक्ति; दान-दान; भक्ति-भक्ति; विना-बिना; जगतेर–जगत् का; नाहि-नहीं; अवस्थान-अस्तित्व।

अनुवाद

"दीर्घ काल से मैंने अपनी अनन्य प्रेमाभक्ति का दान विश्व के निवासियों को नहीं दिया। ऐसी प्रेममयी अनुरक्ति के बिना भौतिक जगत् का अस्तित्व व्यर्थ है।

तात्पर्य

भगवान् कदाचित् ही शुद्ध दिव्य प्रेम प्रदान करते हैं, किन्तु सकाम कर्मों और अनुभवसिद्ध चिंतन से रहित ऐसे शुद्ध भगवत्प्रेम के बिना व्यक्ति जीवन में पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता।

सकल जगते मोरे करे विधि-भक्ति ।

विधि-भक्त्ये व्रज-भाव पाइते नाहि शक्ति ॥ 15॥

सकल-सब; जगते–ब्रह्माण्ड में; मोरे-मुझे; करे-वे करते हैं; विधि-भक्ति-विधिवत् भक्ति; विधि-भक्त्ये-विधिवत् भक्ति से; व्रज-भाव-व्रज के निवासियों के भाव; पाइते-पाने के लिए; नाहि-नहीं; शक्ति-शक्ति।

अनुवाद

"संसार में शास्त्रों के निर्देशानुसार सर्वत्र मेरी पूजा की जाती है। किन्तु ऐसे विधि-विधानों का पालन करने मात्र से व्रजभूमि के भक्तों के प्रेमभावों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

ऐश्वर्य-ज्ञानेते सब जगत्मिश्रित ।

ऐश्वर्य-शिथिल-प्रेमे नाहि मोर प्रीत ॥16॥

ऐश्वर्य-ज्ञानेते-ऐश्वर्यों के ज्ञान से; सब-सब; जगत्-जगत्; मिश्रित-मिलाजुला; ऐश्वर्य-शिथिल-प्रेमे-ऐश्वर्य के कारण निर्बल प्रेम को; नाहि-नहीं है; मोर-मेरी; प्रीत-प्रीति।

अनुवाद

"मेरे ऐश्वर्य को जानते हुए सारा संसार मुझे भय एवं सम्मान की दृष्टि से देखता है। किन्तु ऐसे सम्मान से शिथिल हुई भक्ति मुझे आकृष्ट नहीं करती।"

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण ने प्रकट होने के बाद सोचा कि उन्होंने तो दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य रसों में भक्तों के साथ अपने दिव्य व्यवहारों का वितरण किया ही नहीं। कोई भी व्यक्ति वैदिक साहित्य से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विज्ञान को समझ सकता है और इस तरह उनका भक्त बन सकता है और वह शास्त्रों में वर्णित विधि-विधानों के अनुसार उनकी पूजा कर सकता है, किन्तु इस तरह से वह यह नहीं जान सकता कि व्रजभूमि के निवासियों द्वारा कृष्ण किस प्रकार सेवित होते हैं। शास्त्रों में उल्लिखित विधि-विधानों को सम्पन्न कर लेने से ही कोई वृन्दावन में भगवान् के आचार-व्यवहारों को नहीं समझ सकता। शास्त्रों के निर्देशों का पालन करके कोई भले ही भगवान् की महिमाओं को समझने में आगे बढ़ जाये, किन्तु इस तरह वह उनसे व्यक्तिगत व्यवहार करने का अवसर प्राप्त नहीं कर सकता। भगवान् की उत्कृष्ट महिमाओं को समझने में अधिक ध्यान देने से भगवान् के साथ व्यक्तिगत प्रेम व्यवहार स्थापित करने के अवसर कम हो जाते हैं। ऐसे प्रेम व्यवहार के सिद्धान्तों का पाठ पढ़ाने के लिए ही भगवान् ने श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट होने का निश्चय किया।

ऐश्वर्य-ज्ञाने विधि-भजन करिया।

वैकुण्ठके याय चतुर्विध मुक्ति पाञा ॥ 17॥

ऐश्वर्य-ज्ञाने-ऐश्वर्यों के ज्ञान में; विधि-विधि-विधान के अनुसार; भजन-पूजा; करिया-करना; वैकुण्ठके-वैकुण्ठ को; याय–वे जाते हैं; चतुः-विध–चार प्रकार की; मुक्ति-मुक्ति; पाञा-पाकर।

अनुवाद

“भय तथा सम्मान में ऐसी वैधी भक्ति करके मनुष्य वैकुंठ जा सकता है और चार प्रकार की मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

सार्टि, सारूप्य, आर सामीप्य, सालोक्य ।

सायुज्य ना लय भक्त याते ब्रह्म-ऐक्य ॥18॥

साष्टि-भगवान् के बराबर ऐश्वर्य; सारूप्य-भगवान् जैसा स्वरूप; आर-और; सामीप्य-भगवान् के साथ निजी संगति; सालोक्य वैकुण्ठ ग्रह पर निवास; सायुज्य-भगवान् से एकता; ना लय-वे स्वीकार नहीं करते; भक्त-भक्तगण; याते-से; ब्रह्म-ऐक्य-ब्रह्म से ऐक्य।

अनुवाद

“ये मुक्तियाँ हैं-सार्टि (भगवान् तुल्य ऐश्वर्य की प्राप्ति), सारूप्य (भगवान् जैसा ही रूप प्राप्त करना), सामीप्य (भगवान् का निजी पार्षद बनना) तथा सालोक्य (वैकुण्ठ ग्रह पर निवास करना)। किन्तु भक्तगण सायुज्य मुक्ति को कभी स्वीकार नहीं करते, क्योंकि यह ब्रह्म से तादात्म्य है।”

तात्पर्य

जो लोग शास्त्रों में उल्लिखित अनुष्ठानों के अनुसार भक्ति में लगे रहते हैं, उन्हें ये विभिन्न प्रकार की मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं। यद्यपि ऐसे भक्त सार्टि, सारूप्य, सामीप्य तथा सालोक्य मुक्ति प्राप्त करते हैं, किन्तु उन्हें इन मुक्तियों की परवाह नहीं होती, क्योंकि ऐसे भक्त भगवान् की दिव्य प्रेममयी

सेवा से ही सन्तुष्ट रहते हैं। पाँचवे प्रकार की मुक्ति सायुज्य है, जिसे केवल पूजा अनुष्ठान करने वाले भक्त भी कभी स्वीकार नहीं करते। सायुज्य अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के ब्रह्म-तेज में समा जाना तो निर्विशेषवादियों की ही आकांक्षा होती है। भक्त कभी भी सायुज्य मुक्ति की परवाह नहीं करता।

युग-धर्म प्रवर्ताइमु नाम-सङ्कीर्तन ।

चारि भाव-भक्ति दिया नाचामु भुवन ॥19॥

युग-धर्म-युगधर्म; प्रवर्तामु-मैं उद्घाटन करूँगा; नाम-सङ्कीर्तन–नाम संकीर्तन; चारि–चार; भाव-भाव; भक्ति-भक्ति; दिया-देना; नाचामु-मैं नचाऊँगा; भुवन-संसार।

अनुवाद

"मैं युगधर्म नाम-संकीर्तन का अर्थात् पवित्र नाम के सामूहिक कीर्तन का प्रवर्तन स्वयं करूँगा। मैं संसार को प्रेमाभक्ति के चार रसों की अनुभूति कराकर प्रेम-विभोर होकर नृत्य करने के लिए प्रवृत्त करूँगा।"

आपनि करिमु भक्त-भाव अङ्गीकारे ।

आपनि आचरि' भक्ति शिखाइमु सबारे ॥20॥

आपनि-अपनी, निजी; करिमु-मैं बनाऊँगा; भक्त-भाव-भक्त की स्थिति; अङ्गीकारे-स्वीकृति; आपनि–स्वयं; आचरि'-अभ्यास करके; भक्ति-भक्ति; शिखाइमु-मैं सिखाऊँगा; सबारे-सबको।

अनुवाद

मैं भक्त की भूमिका स्वीकार करूँगा और स्वयं भक्ति का अभ्यास करके उसकी शिक्षा दूँगा।

तात्पर्य

जब कोई किसी शुद्ध भक्त के संग में आता है, तो वह इतना ऊपर उठ जाता है कि वह सार्टि, सारूप्य, सामीप्य या सालोक्य मुक्ति की भी आकांक्षा नहीं करता, क्योंकि वह अनुभव करता है कि ऐसी मुक्ति एक प्रकार की इन्द्रियतृप्ति है। शुद्ध भक्त भगवान् से कभी भी अपने निजी लाभ के लिए कुछ नहीं माँगते । यहाँ तक कि यदि उन्हें निजी लाभ प्रदान भी किये जाते हैं, तो वे उन्हें स्वीकार नहीं करते, क्योंकि उनकी एक मात्र आकांक्षा यही रहती है। कि वे अपनी दिव्य प्रेममयी सेवा से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तुष्ट करें। भक्ति के इस सर्वोच्च रूप को भगवान् के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं सिखा सकता। अतएव जब भगवान् हरे-कृष्ण-कीर्तन की महिमा का प्रसार करने के लिए कलियुग में अवतरित हुए, तो उन्होंने दिव्य स्वयंस्फूर्त (रागानुग) प्रेम के स्तर पर भक्तियोग का भी वितरण किया। आध्यात्मिक जीवन के सर्वोच्च सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिए वे स्वयं भगवान् श्री चैतन्य के रूप में एक भक्त बनकर प्रकट हुए।

आपने ना कैले धर्म शिखान ना याय ।

एइ त' सिद्धान्त गीता-भागवते गाय ॥21॥

आपने-स्वयं; ना कैले–यदि अभ्यास न किया जाए; धर्म-धर्म; शिखान–सिखाना; ना याय-आगे नहीं बढ़ता; एइ–यह; त'–निश्चय ही; सिद्धान्त-सिद्धान्त, निष्कर्ष; गीता- भगवद्गीता में; भागवते- श्रीमद्भागवत में; गाय-वे गाते हैं।

अनुवाद

“जब तक कोई स्वयं भक्ति का अभ्यास नहीं करता, तब तक वह दूसरों को इसकी शिक्षा नहीं दे सकता। इस निष्कर्ष की पुष्टि वस्तुतः पूरी गीता तथा भागवत में हुई है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ 22॥

यदा यदा-जब जब; हि-निश्चय ही; धर्मस्य-धार्मिक सिद्धान्तों की; ग्लानिः-हानि; भवति–होती है; भारत-हे भरत के वंशज; अभ्युत्थानम्-वृद्धि; अधर्मस्य-अधर्म की; तदा-तब; आत्मानम्-स्वयं को; सृजामि-प्रकट करता हूँ; अहम्-मैं।

अनुवाद

“हे भरतवंशी, जब जब और जहाँ जहाँ धर्म का ह्रास होता है और अधर्म में वृद्धि होती है, तब तब मैं स्वयं अवतरित होता हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्म-संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥23॥

परित्राणाय–मुक्ति के लिए, संरक्षण के लिए; साधूनाम्-भक्तों को; विनाशाय-विनाश के लिए; च-तथा; दुष्कृताम्-पापियों के; धर्म-धर्म के सिद्धान्त; संस्थापन-अर्थाय-स्थापित करने के लिए; सम्भवामि-मैं प्रकट होता हूँ; युगे युगे-प्रत्येक युग में।

अनुवाद

"पवित्रात्माओं का उद्धार करने तथा दुष्टों का विनाश करने के साथ साथ धर्म की पुनःस्थापना करने के लिए मैं प्रत्येक युग में प्रकट होता हूँ।

तात्पर्य

श्लोक 22 तथा 23 भगवद्गीता (4.7-8) से हैं, जिन्हें भगवान् कृष्ण ने कहा था। इसके बाद के श्लोक 24 तथा 25 भी भगवद्गीता (3.24, 21) से ही हैं।

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्या कर्म चेदहम् ।

सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ 24॥

उसीदेयुः-विनष्ट हो जायेंगे; इमे-ये; लोकाः-विश्व; न कुर्नाम्-न करूँ; कर्म-कार्य; चेत् यदि; अहम्-मैं; सङ्करस्य–अवांछित प्रजा; च–तथा; कर्ता-स्रष्टा; स्याम्-होऊँगा; उपहन्याम्-खराब करूँगा; इमाः–इन; प्रजाः-जीवों का।

अनुवाद

"यदि मैं धर्म के सही सिद्धान्तों का प्रदर्शन न करता, तो ये सारे जगत् विनष्ट हो जाते और मैं अवांछित जनसंख्या का कारण बनता तथा इन सारे जीवों को विनष्ट कर देता।"

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥25॥

यत् यत्-जो कुछ, जैसा जैसा; आचरति-व्यवहार करता है; श्रेष्ठः-श्रेष्ठ पुरुष; तत् तत्-वही; एव–निश्चय ही; इतरः-साधारण; जनः-लोग; सः-वह; यत्-जो कुछ; प्रमाणम्-मानदण्ड; कुरुते-करता है; लोकः-लोग; तत्-वही; अनुवर्तते-अनुगमन करता है।

अनुवाद

"महान् पुरुष जो भी आचरण करता है, सामान्य जन उसका अनुगमन करते हैं। वह आदर्श कार्यों से जो भी मानदण्ड स्थापित करता है, उसका ही अनुसरण सारा जगत् करता है।'

युग-धर्म-प्रवर्तन हय अंश हैते ।

आमा विना अन्ये नारे व्रज-प्रेम दिते ॥ 26 ॥

युग-धर्म-युगधर्म; प्रवर्तन-स्थापना; हय-है; अंश-पूर्णांश; हैते-से; आमा–मेरे; विना-बिना; अन्ये-दूसरा; नारे-नहीं कर सकता; व्रज-प्रेम-व्रजवासियों की भाँति प्रेम करना; दिते-प्रदान करना।

अनुवाद

"मेरे पूर्ण अंश प्रत्येक युग के लिए धर्म के सिद्धान्तों की स्थापना कर सकते हैं। किन्तु मेरे अतिरिक्त अन्य कोई वह प्रेमाभक्ति प्रदान नहीं कर सकता, जो व्रज के निवासियों द्वारा सम्पन्न की गई थी।

सन्त्ववतारा बहवः

पङ्कज-नाभस्य सर्वतोभद्राः ।

कृष्णादन्यः को वा

लतास्वपि प्रेम-दो भवति ॥ 27॥

सन्तु-होने दो; अवतारा:-अवतार; बहव:-बहुत; पङ्कज-नाभस्य-भगवान् के जिनकी नाभि से कमल का पुष्प उगता है; सर्वत:-भद्रा:–पूर्णतया शुभ; कृष्णात्-भगवान् कृष्ण की अपेक्षा; अन्य:-अन्य; क: वा-जो सम्भवत:; लतासु-शरणागत जीवों पर; अपि-भी; प्रेम-द:-प्रेम के देनेवाले; भवति–होते हैं।

अनुवाद

"हो सकता है कि भगवान् के सर्व-कल्याणकारी अनेक अवतार हों, किन्तु श्रीकृष्ण के अतिरिक्त ऐसा कौन है, जो शरणागतों को भगवत्प्रेम प्रदान कर सके?"

तात्पर्य

बिल्वमंगल ठाकुर की रचनाओं से लिया गया यह श्लोक लघुभागवतामृत (1.5.37) में पाया जाता है।

ताहाते आपन भक्त-गण करि' सङ्गे ।

पृथिवीते अवतरि' करिमु नाना रङ्गे ॥ 28॥

ताहाते-उसमें; आपन-मेरा अपना; भक्त-गण-भक्तगण; करि'–करूँगा; सङ्गे-मिलकर; पृथिवीते-पृथ्वी पर अवतरि'–अवतरित होकर; करिमु-मैं करूँगा; नाना-विविध; रङ्गे–रंग की लीलाएँ।

अनुवाद

“अतएव मैं अपने भक्तों के संग पृथ्वी पर प्रकट होकर विविध रंगमयी लीलाएँ संपादन करूँगा।”

एत भावि’ कलि-काले प्रथम सन्ध्याय।

अवतीर्ण हैला कृष्ण आपनि नदीयाय ॥29॥

एत-इस प्रकार; भावि’-सोचकर; कलि-काले-कलियुग में प्रथम-पहली; सन्ध्याय-संध्या में; अवतीर्ण हैला–अवतीर्ण हुए; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; आपनि स्वयं; नदीयाय-नदिया में।

अनुवाद

इस प्रकार से सोचते हुए स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कलियुग के प्रारम्भ में (प्रथम संध्या में) नदिया में अवतरित हुए।

तात्पर्य

प्रथम-सन्ध्या युग का प्रारम्भ है। खगोल विज्ञान की गणना के अनुसार युग बारह भागों में विभाजित किया जाता है। इन बारह भागों में से पहला भाग प्रथम-सन्ध्या कहलाता है। शेष-सन्ध्या पिछले युग का अन्तिम भाग होती है और यह प्रथम सन्ध्या के साथ मिलकर दो युगों की सन्धि का निर्माण करती है। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार कलियुग की प्रथम-सन्ध्या 36,000 सौर वर्षों तक रहती है। चैतन्य महाप्रभु कलियुग की प्रथम-सन्ध्या में प्रकट हुए जब 4,586 सौर वर्ष बीत चुके थे।

चैतन्य-सिंहेर नवद्वीपे अवतार।

सिंह-ग्रीव, सिंह-वीर्य, सिंहेर हुङ्कार ॥ 30॥

चैतन्य-सिंहेर-सिंह समान चैतन्य महाप्रभु; नवद्वीपे-नवद्वीप में; अवतार–अवतार; सिंह-ग्रीव–सिंह की ग्रीवा वाले; सिंह-वीर्य–सिंह की शक्ति; सिंहेर हुङ्कार–सिंह की गरज।

अनुवाद

इस प्रकार सिंहरूप भगवान् चैतन्य नवद्वीप में प्रकट हुए हैं। उनके कंधे सिंह जैसे हैं, उनकी शक्ति सिंह जैसी है और उनका उच्च स्वर सिंह जैसा है।

सेइ सिंह वसुक्जीवेर हृदय-कन्दरे ।

कल्मष-द्विरद नाशे याँहार हुङ्कारे ॥31॥

सेइ-वह; सिंह-सिंह; वसुक्-बैठने दो; जीवेर-जीवों की; हृदय-हृदय; कन्दरे-गुफा में; कल्मष-कल्मषों की, पापों की; द्वि-रद-हाथी; नाशे-नष्ट करता है; याँहार-जिसकी; हुङ्कारे-गरज।

अनुवाद

वह सिंह प्रत्येक जीव के हृदय के भीतर आसीन हो। इस प्रकार वे अपनी गर्जना से मनुष्य के हाथी जैसे पापों को दूर करें।

प्रथम लीलाय ताँर 'विश्वम्भर' नाम ।

भक्ति-रसे भरिल, धरिल भूत-ग्राम ॥ 32॥

प्रथम-पहली; लीलाय-लीलाओं में; ताँर-उनका; विश्वम्भर नाम-विश्वम्भर नाम; भक्ति-रसे-भक्ति रस के साथ; भरिल-उन्होंने भर दिया; धरिल-बचाया; भूत-ग्राम-सभी जीवों को।

अनुवाद

अपनी प्रारम्भिक लीलाओं में वे विश्वम्भर नाम से जाने जाते हैं, क्योंकि वे संसार को भक्तिरूपी अमृत से आप्लावित कर देते हैं और इस तरह जीवों का उद्धार करते हैं।

डुभृधातुर अर्थ—पोषण, धारण।

पुषिल, धरिल प्रेम दिया त्रिभुवन॥ 33॥

डुभृञ्-डुभृञ् के रूप में जाने जाने वाले; धातुर–धातु का; अर्थ-अर्थ; पोषण-पोषण; धारण-धारण; पुषिल-पोषित; धरिल-धारण किया हुआ; प्रेम दिया-भगवत् प्रेम बाँटा; त्रि-भुवन–त्रिभुवन में।

अनुवाद

"डुभृञ्" क्रिया-धातु (जो विश्वम्भर शब्द की मूल है) पोषण तथा पालन की सूचक है। वे (चैतन्य महाप्रभु) भगवत्प्रेम का वितरण करके तीनों लोकों का पालन-पोषण करते हैं।

शेष-लीलाय धरे नाम 'श्री-कृष्ण-चैतन्य'।

श्रीकृष्ण जानाये सब विश्व कैल धन्य॥ 34॥

शेष-लीलाय-अपनी अन्तिम लीलाओं में; धरे-उन्होंने धारण किया; नाम-नाम; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य; श्री-कृष्ण-भगवान् कृष्ण के विषय में; जानाये-उन्होंने सिखाया; सब-सब; विश्व-संसार; कैल-बनाया; धन्य-धन्य।

अनुवाद

अपनी अन्तिम लीलाओं में वे भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य के नाम से विख्यात हैं। वे भगवान् श्रीकृष्ण के नाम तथा महिमा के बारे में शिक्षा देकर सारे संसार को आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु केवल चौबीस वर्ष की आयु तक गृहस्थ आश्रम में रहे। तत्पश्चात् वे संन्यास आश्रम में प्रविष्ट हुए और अड़तालीस वर्ष की आयु तक इस भौतिक जगत् में प्रकट रूप में रहे। अतएव उनके कार्यों का अन्तिम अंश-शेष-लीला–चौबीस वर्षों तक रहा।

कुछ तथाकथित वैष्णवों का कहना है कि वैष्णव सम्प्रदाय में श्री चैतन्य महाप्रभु के आने तक संन्यास नहीं लिया जाता था। यह बहुत बुद्धिमानी वाला प्रस्ताव नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीपाद केशव भारती से संन्यास ग्रहण किया था, जो शंकर सम्प्रदाय के थे, जिसमें संन्यासियों के लिए केवल दस नामों का अनुमोदन होता है। किन्तु श्रीपाद शंकराचार्य के आविर्भाव के बहुत पहले से संन्यास आश्रम का अस्तित्व विष्णु स्वामी की वैष्णव परम्परा में था। इस परम्परा में दस प्रकार के संन्यासों के नाम तथा त्रिदण्ड धारण करने वाले 108 प्रकार के संन्यासियों के नाम पाये जाते हैं। इसकी सम्पुष्टि वैदिक नियमों द्वारा होती है। अतएव शंकराचार्य के आविर्भाव के पहले भी वैष्णव-संन्यास का अस्तित्व था, किन्तु वे जो वैष्णव संन्यास के बारे में कुछ भी नहीं जानते, व्यर्थ ही यह घोषित करते हैं कि वैष्णव सम्प्रदाय में संन्यास नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु के काल में समाज में शंकराचार्य का अत्यधिक प्रभाव था। लोग सोचते थे कि संन्यास केवल शंकराचार्य की परम्परा में ही ग्रहण किया जा सकता था।

श्री चैतन्य महाप्रभु चाहते तो गृहस्थ बने रहकर भी प्रचार के कार्यों को सम्पन्न करते रहते, किन्तु उन्होंने देखा कि गृहस्थ जीवन उनके उद्देश्य में बाधक है। अतएव उन्होंने संन्यास ग्रहण करने

का निश्चय किया। चूँकि उनके संन्यास ग्रहण करने का उद्देश्य जनता का ध्यान आकृष्ट करना भी था, अतएव सामाजिक प्रथा को किसी प्रकार से विचलित न करने की इच्छा से उन्होंने शंकराचार्य की परम्परा में एक संन्यासी से संन्यास-दीक्षा ली, यद्यपि वैष्णव सम्प्रदाय में भी संन्यास दिया जाता था।

शंकर सम्प्रदाय में संन्यासियों को दस भिन्न प्रकार के नाम दिये जाते हैं-(1) तीर्थ, (2) आश्रम, (3) वन, (4) अरण्य, (5) गिरि, (6) पर्वत, (7) सागर, (8) सरस्वती, (9) भारती तथा (10) पुरी। संन्यास में प्रवेश करने के पूर्व ब्रह्मचारी को, जो कि संन्यासी का सहायक होता है, ब्रह्मचारी के नामों में से कोई एक नाम दिया जाता है। तीर्थ तथा आश्रम उपाधि वाले संन्यासी सामान्यतया द्वारका में रहते हैं और उनका ब्रह्मचारी नाम स्वरूप होता है। वन तथा अरण्य नामक संन्यासी पुरुषोत्तम या जगन्नाथपुरी में रहते हैं और उनका ब्रह्मचारी नाम प्रकाश होता है। गिरि, पर्वत तथा सागर उपाधि वाले सामान्यतया बदरिकाश्रम में रहते हैं और उनका ब्रह्मचारी नाम आनन्द होता है। सरस्वती, भारती तथा पुरी उपाधि वाले सामान्यतया दक्षिण भारत में शृंगेरी में रहते हैं और उनका ब्रह्मचारी नाम चैतन्य होता है।

श्रीपाद शंकराचार्य ने भारत में चारों दिशाओं-उत्तर, दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम में चार मठ स्थापित किये और इन्हें अपने चार संन्यासी शिष्यों को सौंप दिया। अब इन चार मुख्य मठों के अन्तर्गत मठों की सैकड़ों शाखाएँ हैं और यद्यपि उनमें औपचारिक एकरूपता है, किन्तु उनकी कार्यप्रणाली में बहुत अन्तर है। इन मठों के चार विभिन्न सम्प्रदाय आनन्दवार, भोगवार, कीटवार तथा भूमिवार के नाम से विख्यात हैं और कालक्रम से इनमें विभिन्न विचारों तथा नारों का विकास हुआ है।

परम्परा के नियमानुसार शंकर सम्प्रदाय में संन्यास आश्रम में प्रवेश करने के इच्छुक व्यक्ति को पहले एक प्रामाणिक संन्यासी के अधीन ब्रह्मचारी के रूप में प्रशिक्षण लेना होता है। ब्रह्मचारी

का नाम उस समूह के अनुसार निश्चित होता है, जिस समूह का वह संन्यासी होता है। श्री चैतन्य ने केशव भारती से संन्यास दीक्षा ली। जब वे सर्वप्रथम केशव भारती के पास गये, तो उन्हें ब्रह्मचारी के रूप में स्वीकार किया गया और उनका नाम श्रीकृष्ण चैतन्य ब्रह्मचारी रखा गया। संन्यास ग्रहण कर लेने के बाद उन्होंने कृष्ण चैतन्य नाम रखना पसन्द किया।

गुरु-शिष्य परम्परा के महान् आचार्यों ने यह नहीं बतलाया है कि चैतन्य महाप्रभु ने भारती से संन्यास लेने के बाद अपने नाम के साथ भारती क्यों नहीं लगाया। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज ने स्वयं आगे आकर इसके विषय में व्याख्या दी है कि शंकर सम्प्रदाय का संन्यासी यह सोचता है। कि वह सर्वोपरि बन गया है, अतएव श्री चैतन्य ने ऐसी भ्रान्ति से बचने के लिए अपना नाम श्रीकृष्ण चैतन्य रखा और अपने आपको नित्य सेवक के रूप में स्थापित किया। ब्रह्मचारी से आशा की जाती है कि वह गुरु की सेवा करेगा, अतएव उन्होंने अपने गुरु की सेवा को अस्वीकार नहीं किया। ऐसे पद को स्वीकार करना शिष्य तथा गुरु के पारस्परिक सम्बन्ध के अनुकूल है।

प्रामाणिक जीवनियों में यह भी उल्लेख मिलता है कि भगवान् श्री चैतन्य ने संन्यास ग्रहण करते समय दण्ड तथा भिक्षा-पात्र धारण किया, जो संन्यास आश्रम के प्रतीक हैं।

তাঁর যুগাবতার জানি' গর্গ মহাশয়।

কৃষ্ণের নাম-করণে করিয়াছে নির্ণয়॥ 35॥

তাঁর-उनका; युग-अवतार-युग अवतार; जानि'-जानकर; गर्ग-गर्गमुनि; महाशय-महाशय; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; नाम-करणे-नाम करण संस्कार में; करियाछे–किया; निर्णय–निर्णय।

अनुवाद

उनको (चैतन्य को) कलियुग के लिए अवतार जानकर ही गर्गमुनि ने कृष्ण के नामकरण संस्कार के समय उनके आविर्भाव की भविष्यवाणी की थी।

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनु-युगं तनूः ।

शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ 36॥

आसन्–थे; वर्णाः-रंग; त्रयः–तीन; हि-निश्चय ही; अस्य-इसके; गृह्णतः–जो प्रकट कर रहा है; अनु-युगम्-युग के अनुसार; तनूः-शरीर; शुक्लः -श्वेत; रक्तः-लाल; तथा तथा; पीतः-पीत; इदानीम्-अब; कृष्णताम्-काला; गतः-पाया।

अनुवाद

"जब यह बालक (कृष्ण) विभिन्न युगों में प्रकट होता है, तो उसके अन्य तीन रंग होते हैं- श्वेत, लाल तथा पीत। इस समय यह दिव्य श्याम (कृष्ण) रंग में प्रकट हुआ है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.8.13) से लिया गया है।

शुक्ल, रक्त, पीत-वर्ण–एइ तिन द्युति ।

सत्य-त्रेता-कलि-काले धरेन श्री-पति ॥ 37॥

शुक्ल-श्वेत; रक्त-लाल; पीत-वर्ण-पीला रंग; एइये; तिन-तीन; द्युति-चमक; सत्य-सत्ययुग में; त्रेता–त्रेतायुग में; कलि-काले-कलियुग में; धरेन-धारण करते हैं; श्री-पति-लक्ष्मी पति।

अनुवाद

श्वेत, लाल तथा पीत-ये तीन शारीरिक कान्तियाँ हैं, जिन्हें लक्ष्मीदेवी के पति भगवान् क्रमशः सत्य, त्रेता तथा कलियुग में धारण करते हैं।

इदानीं द्वापरे तिंहो हैला कृष्ण-वर्ण ।

एइ सब शास्त्रागम-पुराणेर मर्म ॥ 38॥

इदानीम्-अब; द्वापरे–द्वापर युग में; तिंहो-वे; हैला-हो गये; कृष्ण-वर्ण-श्याम वर्ण के; एइथे; सब-सब; शास्त्र-आगम-और वैदिक शास्त्र; पुराणेर-पुराणों के; मर्म–मर्म, रहस्य।

अनुवाद

अब द्वापर युग में भगवान् श्याम रंग लेकर अवतरित हुए थे। इस सन्दर्भ में पुराणों तथा अन्य वैदिक ग्रंथों के कथनों का यही सार है।

द्वापरे भगवान्श्यामः पीत-वासा निजायुधः ।

श्री-वत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ 39॥

द्वापरे द्वापर युग में; भगवान्-भगवान्; श्यामः-श्याम; पीत-वासाः-पीत वस्त्रों वाले; निज-अपने; आयुधः-अस्त्रों सहित; श्रीवत्स-आदिभिः-श्रीवत्स आदि; अङ्कैः-शारीरिक चिह्नों से; च-और; लक्षणैः-कौस्तुभ मणि जैसे बाह्य लक्षणों से; उपलक्षितः-लक्षित।

अनुवाद

द्वापर युग में भगवान् कृष्ण वर्ण में प्रकट होते हैं। वे पीत वस्त्र धारण करते हैं, वे अपने आयुध (हथियार) लिए रहते हैं तथा कौस्तुभ मणि एवं श्रीवत्स चिह्न से अलंकृत रहते हैं। उनके लक्षणों का ऐसा वर्णन किया गया है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.5.27) का है। इसे राजा निमि से नौ राजयोगियों में सर्वप्रमुख सन्त करभाजन ने विभिन्न युगों में भगवान् के विविध स्वरूपों के सम्बन्ध में बतलाते हुए कहा था।

कलि-युगे युग-धर्म—नामेर प्रचार।

तथि लागि' पीत-वर्ण चैतन्यावतार ॥40॥

कलि-युगे–कलियुग में; युग-धर्म-युग की धार्मिक रीति; नामेर–पवित्र नाम का; प्रचार–प्रचार; तथि–यह; लागि'-इसके लिए; पीत-वर्ण-पीले रंग वाले; चैतन्य-अवतार–चैतन्य महाप्रभु का अवतार।

अनुवाद

कलियुग की धार्मिक विधि यह है कि भगवान् के पवित्र नाम की महिमाओं का प्रसार किया जाये। केवल इसी उद्देश्य से भगवान् पीत रंग लेकर श्री चैतन्य रूप में अवतरित हुए हैं।

तात्पर्य

इस कलियुग में हर एक के लिए धर्म की व्यावहारिक विधि यही है कि वह ईश्वर के नाम का कीर्तन करे। इसका सूत्रपात इस युग में भगवान् श्री चैतन्य ने किया। भक्तियोग का शुभारम्भ ही पवित्र

नाम के कीर्तन से होता है, जिसकी पुष्टि मध्वाचार्य ने मुण्डक उपनिषद् के अपने भाष्य में की है। उन्होंने नारायण-संहिता के इस श्लोक का प्रमाण दिया है :

द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पञ्चरात्रैस्तु केवलैः ।

कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः ॥

द्वापर युग में लोगों को भगवान् विष्णु की पूजा नारद-पञ्चरात्र तथा अन्य ऐसे प्रामाणिक पुस्तकों के विधानों के द्वारा ही करनी चाहिए। किन्तु कलियुग में लोगों को चाहिए कि वे केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पवित्र नामों का कीर्तन करें।" हरे कृष्ण मन्त्र का उल्लेख कई उपनिषदों में विशेष रूप से किया गया है, यथा कलि-सन्तरण उपनिषद् में, जहाँ यह कहा गया है :

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम् ।

नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते ॥

समस्त वैदिक साहित्य में खोजने के बाद इस युग के लिए हरे कृष्ण के कीर्तन से अधिक उत्कृष्ट अन्य कोई धर्म-विधि नहीं मिलेगी।"

तप्त-हेम-सम-कान्ति, प्रकाण्ड शरीर ।

नव-मेघ जिनि कण्ठ-ध्वनि ये गम्भीर ॥41॥

तप्त-हेम-पिघले सोने की तरह; सम-कान्ति–वैसी चमक; प्रकाण्ड-बहुत, प्रकाण्ड; शरीर-शरीर; नव-मेघ-नए मेघ; जिनि-जीतकर; कण्ठ-ध्वनि-कण्ठ-ध्वनि; ये-वह; गम्भीर-गम्भीर।

अनुवाद

उनके विस्तृत शरीर की कान्ति पिघले सोने के समान है। उनकी गम्भीर वाणी नये उमड़े बादलों की गर्जना को परास्त करने वाली है।

दैर्घ्य-विस्तारे येइ आपनार हात ।

चारि हस्त हय 'महा-पुरुष' विख्यात ॥ 42 ॥

दैर्घ्य-लम्बाई में; विस्तारे-चौड़ाई में; येइ-जो; आपनार-अपना स्वयं का; हात-हाथ; चारि-चार; हस्त-हस्त; हय-है; महा-पुरुष–महापुरुष; विख्यात–के रूप में विख्यात।

अनुवाद

जो व्यक्ति अपने हाथ से चार हाथ ऊँचा और इतना ही चौड़ा होता है, वह महापुरुष कहलाता है।

'न्यग्रोध-परिमण्डल' हय ताँर नाम ।

न्यग्रोध-परिमण्डल-तनु चैतन्य गुण-धाम ॥43॥

न्यग्रोध-परिमण्डल-न्यग्रोध परिमण्डल; हय-है; ताँर-उसका; नाम-नाम; न्यग्रोध-परिमण्डल-न्यग्रोध परिमण्डल; तनु-ऐसे शरीर वाले; चैतन्य-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; गुण-धाम-सद्गुणों के धाम।

अनुवाद

ऐसा व्यक्ति "न्यग्रोध परिमण्डल" कहलाता है। समस्त सद्गुणों के मूर्तिमन्त स्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु का शरीर न्यग्रोध परिमण्डल है।

तात्पर्य

ये शारीरिक लक्षण भगवान् के अतिरिक्त, जिन्होंने बद्धजीवों को अपनी ही माया में लगा रखा है, अन्य किसी में नहीं पाये जाते। ये लक्षण निश्चय ही विष्णु के अवतार के सूचक हैं, और किसी के नहीं।

आजानुलम्बित-भुज कमल-लोचन।

तिलफुल-जिनि-नासा, सुधांशु-वदन ॥44॥

आ-जानु-लम्बित-भुज-भुजाएँ जो घुटनों तक पहुँचती हो; कमल-लोचन–कमल लोचनों वाले; तिल-फुल-तिल पौधे के फूल; जिनि-जीतकर; नासा–जिनकी नासिका; सुधा-अंशु-वदन-जिनका चेहरा चन्द्रमा की तरह।

अनुवाद

उनकी भुजाएँ इतनी लम्बी हैं कि वे उनके घुटनों तक पहुँचती हैं, उनकी आँखें कमल के फूलों के सदृश हैं, उनकी नासिका तिल के फूल और उनका मुखमंडल चन्द्रमा के समान सुन्दर है।

शान्त, दान्त, कृष्ण-भक्ति-निष्ठा-परायण।

भक्त-वत्सल, सुशील, सर्व-भूते सम ॥ 45 ॥

शान्त-शान्त; दान्त-नियंत्रित; कृष्ण-भक्ति-भगवान् कृष्ण की भक्ति को; निष्ठा-परायण–पूर्ण रूपे समर्पित; भक्त-वत्सल-भक्तों के प्रिय; सु-शील–सुशील, अच्छे चरित्र वाले; सर्व-भूते-सभी जीवों को; सम-बराबर, समान।

अनुवाद

वे शान्त, संयमित तथा भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य सेवा में निष्ठा परायण हैं। वे अपने भक्तों के प्रति स्नेहिल हैं, सुशील हैं और सारे जीवों पर समभाव रखने वाले हैं।

चन्दनेर अङ्गद-बाला, चन्दन-भूषण ।

नृत्य-काले परि' करेन कृष्ण-सङ्कीर्तन ॥ 46॥

चन्दनेर–चन्दन को; अङ्गद-बाजूबन्द; बाला-चूड़ियाँ; चन्दन-चन्दन लेप; भूषण-भूषण; नृत्य-काले नृत्य के समय; परि' पहनते हैं; करेन-करते हैं; कृष्ण-सङ्कीर्तन-कृष्ण नाम का संकीर्तन।

अनुवाद

वे चन्दन के बने कंगनों और बाजूबन्दों से विभूषित हैं और वे चन्दन के लेप से मंडित हैं। वे श्रीकृष्ण-संकीर्तन में नृत्य करने के उद्देश्य से ही ये आभूषण धारण करते हैं।

एइ सब गुण लञा मुनि वैशम्पायन ।

सहस्रनामे कैल तर नाम-गणन ॥47॥

एइये; सब-सब; गुण-गुण; लञा-लेकर; मुनि-मुनि; वैशम्पायन-वैषम्पायन; सहस्रनामे-विष्णुसहस्र नाम में; कैल-किया; ताँर-उनका; नाम-गणन-नाम सम्मिलित।

अनुवाद

श्री चैतन्य के इन सारे गुणों को लिपिबद्ध करते हुए मुनि वैशम्पायन ने विष्णुसहस्रनाम में उनका नाम सम्मिलित कर लिया है।

दुइ लीला चैतन्येर–आदि आर शेष ।

दुइ लीलाय चारि चारि नाम विशेष ॥48॥

दुइ-दो; लीला-लीलाएँ, चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु की; आदि-आदि, प्रारम्भिक; आर-और; शेष-अन्तिम; दुइ-दो; लीलाय-लीलाओं में; चारि–चार; चारि-चार; नाम-नाम; विशेष-विशेष।

अनुवाद

श्री चैतन्य की लीला के दो विभाग हैं-आदि लीला तथा शेष लीला। इन दोनों लीलाओं में उनके चार-चार नाम हैं।

सुवर्ण-वर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।

सन्यास-कृच्छमः शान्तो निष्ठा-शान्ति-परायणः ॥49॥

सुवर्ण-सोने के; वर्णः-रंगवाले; हेम-अङ्गः-पिघले सोने जैसे शरीर वाले; वर-अङ्गः-सुन्दरतम शरीर वाले; चन्दन-अङ्गदी-जिनके शरीर पर चंदन का लेप था; सन्यास-कृत्-संन्यासी जीवन जीते हुए; शमः-शम; शान्तः शान्त; निष्ठा-निष्ठा; शान्ति–शान्ति के; परायणः-परायण।

अनुवाद

अपनी आदि लीला में वे सुनहरे अंग वाले गृहस्थ के रूप में प्रकट होते हैं। उनके अंग-प्रत्यंग सुन्दर तथा उनका चन्दन-लेपित शरीर पिघले सोने जैसा लगता है। शेष लीला में वे संन्यास ग्रहण करते हैं और वे समभाव वाले तथा शान्त रहते हैं। वे शान्ति तथा भक्ति के सर्वोच्च धाम हैं, क्योंकि वे निर्विशेषवादी अभक्तों को चुप करा देते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक महाभारत (दानधर्म, विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र) से लिया गया है। श्रील बलदेव विद्याभूषण ने विष्णुसहस्रनाम की टीका नामार्थ-सुधा नाम से की है, जिसमें इस श्लोक की व्याख्या करते हुए उन्होंने बतलाया है कि उपनिषदों के प्रमाण के अनुसार श्री चैतन्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। वे व्याख्या करते हैं कि सुवर्ण-वर्ण: का अर्थ है सुनहरा शरीर। वे यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्ण कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् (मुण्डक उपनिषद् 3.1.3) वैदिक निर्देश का भी प्रमाण देते हैं। रुक्म-वर्णं कर्तारम्-ईशम् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सूचक है, जिनके शरीर का रंग पिघले सोने जैसा है। पुरुषम् का अर्थ है परमेश्वर और ब्रह्मयोनिम् सूचित करता है कि वे परम ब्रह्म भी हैं। यह प्रमाण भी यही सिद्ध करता है कि श्री चैतन्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। सुनहरे रंग वाले भगवान् के वर्णन का दूसरा अर्थ यह भी है कि श्री चैतन्य का व्यक्तित्व सोने के समान मोहक है। श्रील बलदेव विद्याभूषण ने वराङ्ग शब्द का अर्थ "अपूर्व सुन्दर" लिया है।

श्री चैतन्य ने गृहस्थ जीवन त्यागकर अपने उद्देश्य का प्रचार करने के लिए संन्यास ग्रहण किया। उनमें कई दृष्टिकोणों से समभाव है। पहला, वे भगवान् के गुह्य सत्य का वर्णन करते हैं और दूसरा, वे ज्ञान तथा कृष्ण के प्रति अनुरक्ति द्वारा हर एक को तुष्ट करते हैं। वे शान्त हैं, क्योंकि वे उन सारे विषयों का परित्याग करते हैं, जो कृष्ण की सेवा से सम्बन्धित नहीं हैं। श्रील बलदेव विद्याभूषण ने बतलाया है कि निष्ठा शब्द बताता है कि वे श्रीकृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन में अत्यन्त दृढ़ थे।

श्री चैतन्य ने सारे भक्ति-विरोधियों का, विशेषतया अद्वैतवादियों का दमन किया, जो वास्तव में परमेश्वर के साकार रूप के प्रतिकूल होते हैं।

व्यक्त करि' भागवते कहे बार बार।

कलि-युगे धर्म–नाम-सङ्कीर्तन सार ॥50॥

व्यक्त–व्यक्त; करि'–करके; भागवते- श्रीमद्भागवत् में; कहे-वे कहते हैं; बार बार-बार बार; कलि-युगे–कलियुग में; धर्म-धर्म; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम संकीर्तन; सार-सार।

अनुवाद

श्रीमद्भागवत में यह बारम्बार स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कलियुग में धर्म का सार कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करना है।

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम्।

नाना-तन्त्र-विधानेन कलावपि यथा शृणु ॥51॥

इति–इस प्रकार; द्वापरे द्वापर युग में; उरु-ईश-हे राजन्; स्तुवन्ति–वे स्तुति करते हैं; जगत्-ईश्वरम्-जगत् के स्वामी; नाना-नाना प्रकार के; तन्त्र-शास्त्रों के; विधानेन-विधानों से; कलौ–कलियुग में; अपि-भी; यथा-जैसे; शृणु कृपया सुनो।

अनुवाद

हे राजन्, इस प्रकार द्वापर युग में लोगों ने ब्रह्माण्ड के स्वामी की पूजा की। वे कलियुग में भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा शास्त्रोक्त विधियों से करते हैं। कृपा करके इसे मुझसे सुनें।"

तात्पर्य

यह श्लोक सन्त करभाजन द्वारा श्रीमद्भागवत (11.5.31) में कहा गया है।

कृष्ण-वर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र-पार्षदम् ।

यज्ञैः सङ्कीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सु-मेधसः ॥52॥

कृष्ण-वर्णम्-कृष्ण अक्षरों को दोहराते हुए; त्विषा-अंग कांती; अकृष्णम्-काला नहीं (सुनहरा); स-अङ्ग-साथियों सहित; उपाङ्ग–सेवक; अस्त्र-अस्त्र; पार्षदम्-पार्षद, विश्वस्त साथी; यज्ञैः-यज्ञ से; सङ्कीर्तन-प्रायैः–प्रायः संकीर्तन-युक्त; ग्रजन्ति–वे पूजा करते हैं; हि-निश्चय ही; सु-मेधसः-बुद्धिमान व्यक्ति।

अनुवाद

"कलियुग में बुद्धिमान व्यक्ति ईश्वर के उन अवतार की पूजा करने के लिए सामूहिक कीर्तन करते हैं, जो कृष्ण-नाम का निरन्तर गान करते हैं। यद्यपि उनका शरीर श्यामवर्ण का नहीं है, किन्तु वे स्वयं कृष्ण हैं। उनके साथ उनके पार्षद, सेवक, आयुध तथा विश्वस्त संगी रहते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.5.32) से लिया गया है। श्रील जीव गोस्वामी भागवत पर लिखित अपने भाष्य क्रमसन्दर्भ में इस श्लोक की टीका करते हुए कहते हैं कि भगवान् कृष्ण सुनहरे शरीर के साथ भी प्रकट होते हैं। ये सुनहरे कृष्ण ही भगवान् चैतन्य हैं, जिनकी पूजा इस युग में बुद्धिमान मनुष्यों द्वारा की जाती है। इसकी पुष्टि गर्गमुनि द्वारा श्रीमद्भागवत में की गई है, जिन्होंने कहा है कि यद्यपि बालक कृष्ण श्याम वर्ण के हैं, किन्तु वे अन्य तीन रंगों-लाल, श्वेत तथा पीत में

भी प्रकट होते हैं। उन्होंने श्वेत तथा लाल रंग के शरीरों का प्रदर्शन क्रमशः सत्ययुग तथा त्रेतायुग में किया। उन्होंने शेष रंग-पीला-सुनहरा को तब तक प्रदर्शित नहीं किया, जब तक वे श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट नहीं हुए, जिन्हें गौर हरि नाम से जाने जाते हैं।

श्रील जीव गोस्वामी कृष्णवर्णम् की व्याख्या श्रीकृष्ण चैतन्य के रूप में करते हैं। कृष्णवर्ण तथा कृष्णचैतन्य एक ही हैं। कृष्ण नाम भगवान् कृष्ण तथा चैतन्य कृष्ण दोनों में आता है। श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, किन्तु वे सदैव कृष्ण का गुणगान करने में लगे रहते हैं और इस तरह उनके नाम तथा रूप का कीर्तन एवं स्मरण करके दिव्य आनन्द प्राप्त करते हैं। भगवान् कृष्ण स्वयं चैतन्य महाप्रभु के रूप में सर्वोच्च उपदेश देने के लिए प्रकट होते हैं।

भगवान् चैतन्य सदैव कृष्ण-नाम का कीर्तन करते हैं और उसका वर्णन भी करते हैं। चूँकि वे स्वयं कृष्ण हैं, अतएव जो भी उनसे मिलेगा वह भी स्वतः कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करेगा और फिर अन्यों के सामने उसका वर्णन करेगा। वे मनुष्य में दिव्य कृष्णभावनामृत भर देते हैं, जिससे कीर्तन करने वाला दिव्य आनन्द में निमग्न हो जाता है। इसलिए वे हर प्रकार से हर व्यक्ति के समक्ष प्रत्यक्ष या शब्द द्वारा कृष्ण के रूप में प्रकट होते हैं। केवल श्री चैतन्य का दर्शन करने से ही मनुष्य को तत्काल भगवान् कृष्ण का स्मरण हो आता है। अतएव मनुष्य उन्हें विष्णुतत्त्व के रूप में स्वीकार कर सकता है। दूसरे शब्दों में, श्री चैतन्य स्वयं भगवान् कृष्ण हैं।

साङ्गोपाङ्गास्त्र-पार्षदम् से यह भी सूचित होता है कि श्री चैतन्य भगवान् कृष्ण हैं। उनका शरीर चन्दन के आभूषणों एवं चन्दन-लेप से सदैव अलंकृत रहता है। वे अपने अपूर्व सौन्दर्य से अपने युग के सारे लोगों को वशीभूत करते हैं। अन्य अवतारों में भगवान् ने कभी-कभी असुरों को परास्त करने के लिए अस्त्रों का उपयोग किया, किन्तु इस युग में भगवान् अपने सर्व आकर्षक स्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में उन्हें परास्त करते हैं। श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि उनका सौन्दर्य

ही उनका अस्त्र या हथियार है, जिससे असुरों का दमन होता है। चूँकि वे सर्वाकर्षक हैं, अतएव यह समझना चाहिए कि सारे देवता उनके संगियों के रूप में उनके साथ-साथ रहते थे। उनके कार्य असाधारण तथा उनके संगी अलौकिक थे। जब वे सङ्कीर्तन आन्दोलन का प्रचार कर रहे थे, तब बंगाल तथा उड़ीसा के अनेक महान् विद्वान तथा आचार्य उनके प्रति आकृष्ट हो गये। चैतन्य महाप्रभु सदैव अपने सर्वश्रेष्ठ पार्षदों यथा नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर तथा श्रीवास के साथ रहते हैं।

श्रील जीव गोस्वामी वैदिक साहित्य से एक श्लोक प्रस्तुत करते हैं, जिसमें यह कहा गया है कि यज्ञों के प्रदर्शन या उत्सव सम्पन्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उनकी टीका है कि ऐसे बाह्य दिखावों में लगने के स्थान पर लोगों को जाति, रंग, वर्ण आदि का भेदभाव न करके चैतन्य महाप्रभु की पूजा करने के लिए एकसाथ एकत्र होकर हरे कृष्ण कीर्तन करना चाहिए। कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम् बतलाता है कि कृष्ण-नाम को प्रधानता दी जानी चाहिए। भगवान् श्री चैतन्य ने कृष्णभावनामृत की शिक्षा दी और कृष्ण-नाम का कीर्तन किया। अतएव श्री चैतन्य की पूजा करने के लिए सबको मिलकर महामन्त्र का कीर्तन करना चाहिए-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे ॥ गिरजाघरों, मन्दिरों या मस्जिदों में पूजा का प्रसार सम्भव नहीं, क्योंकि लोगों की रुचि इस में नहीं रही, किन्तु हरे कृष्ण का कीर्तन कहीं भी और कभी भी किया जा सकता है। इस प्रकार श्री चैतन्य की पूजा करते हुए लोग सर्वोच्च कर्म कर सकते हैं और परमेश्वर को प्रसन्न करने का सर्वोच्च धार्मिक प्रयोजन पूरा कर सकते हैं।

भगवान् श्री चैतन्य के सुप्रसिद्ध शिष्य श्रील सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा है, "दिव्य भक्तियोग के सिद्धान्त के समाप्त हो जाने पर भक्ति-विधि का पुनरुद्धार करने के लिए श्रीकृष्ण चैतन्य प्रकट हुए हैं। वे इतने दयालु हैं कि वे कृष्ण-प्रेम का वितरण कर रहे हैं। हर एक को उनके चरणकमलों के प्रति

अधिकाधिक आकृष्ट होना चाहिए, जिस प्रकार गुंजार करती मधुमक्खियाँ कमल के फूल के प्रति आकृष्ट होती हैं।"

शुन, भाइ, एइ सब चैतन्य-महिमा ।

एइ श्लोके कहे ताँर महिमार सीमा ॥53॥

शुन-कृपया सुनो; भाइ–भाइयों; एइ-यह; सब-सब; चैतन्य–चैतन्य महाप्रभु की; महिमा-महिमाएँ; एइ-यह; श्लोके–श्लोक; कहे-कहता है; ताँर–उनकी; महिमार-महिमाओं की; सीमा-सीमा।

अनुवाद

प्रिय भाइयों, कृपया चैतन्य महाप्रभु की इन सारी महिमाओं को सुनो। यह श्लोक स्पष्टतया उनके कार्यकलापों तथा लक्षणों का सार प्रस्तुत करता है।

'कृष्ण' एइ दुइ वर्ण सदा याँर मुखे ।

अथवा, कृष्णके तिंहो वर्णे निज सुखे ॥54॥

कृष्ण-कृष्ण; एइ-ये; दुइ-दोनों; वर्ण–अक्षर; सदा-सदा; याँर-जिनके; मुखे-मुख में; अथवा-अथवा; कृष्णके–भगवान् कृष्ण के; तिंहो-वे; वर्णे वर्णन करते हैं; निज-अपने स्वयं के; सुखे-सुख में।

अनुवाद

'कृष्' तथा 'ण' ये दो अक्षर सदैव उनके मुख में रहते हैं; अथवा, वे अत्यन्त हर्ष के साथ कृष्ण का निरन्तर वर्णन करते हैं।

कृष्ण-वर्ण-शब्देर अर्थ दुइ त प्रमाण ।

कृष्ण विनु ताँर मुखे नाहि आइसे आन ॥55॥

कृष्ण-वर्ण-शब्देर–'कृष्ण वर्ण' शब्द के; अर्थ–अर्थ; दुइ-दो; त–निश्चित रूप से; प्रमाण-प्रमाण, उदाहरण; कृष्ण-कृष्ण; विनु-के बिना; ताँर उनके; मुखे-मुख में; नाहि आइसे नहीं आता; आन–अन्य कुछ।

अनुवाद

"कृष्णवर्ण" शब्द के ये ही दो अर्थ हैं। वस्तुतः कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी उनके मुख से नहीं निकलता।

केह ताँरे बले यदि कृष्ण-वरण ।

आर विशेषणे तार करे निवारण ॥56॥

केह-कोई: ताँरे–उनको; बले-कहता है; यदि-यदि; कृष्ण-काला; वरण-रंग; आर-दूसरा; विशेषणे-विशेषण में; तार-उसका; करे-करता है; निवारण-निवारण।

अनुवाद

यदि कोई उन्हें श्याम रंग (वर्ण) वाला कहने का प्रयास करता है, तो अगला विशेषण (त्विषा अकृष्णम्) तुरन्त ही उसका निवारण करता है।

देह-कान्त्ये हय तेंहो अकृष्ण-वरण ।

अकृष्ण-वरणे कहे पीत-वरण ॥57॥

देह-कान्त्ये-शरीर की आभा में; हय-है: तेंहो-वे; अकष्ण-काले नहीं; वरण-रंग; अकृष्ण-वरणे-ऐसे रंग से जो काला नहीं; कहे-अर्थ है; पीत–पीला; वरण-वर्ण।

अनुवाद

उनके शरीर की कान्ति निश्चित रूप से श्याम (कृष्ण) नहीं है। वे श्याम नहीं हैं, इससे यह सूचित होता है कि उनका रंग पीला है।

कलौ यं विद्वांसः स्फुटमभियजन्ते द्युति-भराद्

अकृष्णाङ्गं कृष्णं मख-विधिभिरुत्कीर्तन-मयैः ।

उपास्यं च प्राहुर्यमखिल-चतुर्थाश्रम-जुषां

स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥58॥

कलौ–कलियुग में; यम्-जिनको; विद्वांसः–विद्वान; स्फुटम् स्पष्ट रूप से प्रकट; अभियजन्ते-पूजा करते हैं; द्युति-भरात्-शारीरिक आभा के आधिक्य के कारण; अकृष्ण-अङ्गम्-जिनके अङ्ग काले नहीं हैं; कृष्णम्-भगवान् कृष्ण; मख-विधिभिः-यज्ञ सम्पन्न करके; उत्कीर्तन-मयैः–पवित्र नाम के ऊँचे स्वर के उच्चारण से युक्त; उपास्यम्-पूज्य पदार्थ; च-और; प्राहुः-उन्होंने कहा; यम्-जिनको; अखिल-सब; चतुर्थ-आश्रम-जुषाम्-उन सबके जो संन्यास आश्रम में हैं; सः–वे; देवः-भगवान्; चैतन्य-आकृतिः-चैतन्य महाप्रभु के रूप वाले; अतितराम्-बहुत अधिक; नः-हम पर; कृपयतु-वे कृपा करें।

अनुवाद

कलियुग में पवित्र नाम के संकीर्तन-यज्ञ द्वारा विद्वान लोग उन भगवान् कृष्ण की पूजा करते हैं, जो श्रीमती राधारानी की भावनाओं के तीव्र वेग के कारण अब अकृष्ण हैं। वे उन परमहंसों के एकमात्र आराध्य-देव हैं, जिन्होंने चतुर्थ आश्रम (संन्यास) की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर ली है। ऐसे पूर्ण पुरुषोत्तम चैतन्य महाप्रभु हम पर अपनी अहैतुकी कृपा प्रदर्शित करें।"

तात्पर्य

यह श्लोक द्वितीय श्री चैतन्याष्टक 1 से है और श्रील रूप गोस्वामी कृत स्तव-माला से लिया गया है।

प्रत्यक्ष ताँहार तप्त-काञ्चनेर द्युति ।

याँहार छटाय नाशे अज्ञान-तमस्तति ॥59॥

प्रत्यक्ष–प्रत्यक्ष, स्पष्ट; ताँहार-उनका; तप्त-पिघला हुआ; काञ्चनेर-सोने की; द्युति-चमक; याँहार–जिसकी; छटाय-चमक से; नाशे-नष्ट हो जाती है; अज्ञान-अज्ञान; तमस्तति-अन्धकार की सीमा।

अनुवाद

उनके पिघले सोने जैसे चमकीले रंग को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, जो अज्ञान के अंधकार को दूर करता है।

जीवेर कल्मष-तमो नाश करिबारे ।

अङ्ग-उपाङ्ग-नाम नाना अस्त्र धरे ॥ 60॥

जीवेर-जीव का; कल्मष-पापमय कर्म; तमः-अन्धकार; नाश करिबारे-नाश करने हेतु; अङ्ग–साथी, पार्षद; उपाङ्ग–भक्तगण; नाम-पवित्र नाम; नाना-विविध; अस्त्र-अस्त्र; धरे-वे धारण करते हैं।

अनुवाद

जीवों का पापमय जीवन अज्ञान से उत्पन्न होता है। उस अज्ञान को नष्ट करने के लिए वे अनेक अस्त्र अपने साथ लाये हैं यथा उनके पूर्णांशरूपी पार्षद, उनके भक्त तथा उनका पवित्र नाम।

भक्तिर विरोधी कर्म-धर्म वा अधर्म ।

ताहारऽकल्मष' नाम, सेइ महा-तमः ॥ 61॥

भक्तिर- भक्ति के विरोधी-विरोधी; कर्म-कर्म; धर्म-धार्मिक; वा-अथवा; अधर्म-अधार्मिक; ताहार-उसका; कल्मष-पाप; नाम-नाम; सेइ-यह; महा-तमः-महा अंधकार।

अनुवाद

सबसे बड़े अज्ञानरूप वे धार्मिक या अधार्मिक कार्यकलाप हैं, जो भक्ति के विरोधी होते हैं। वे कल्मष अर्थात् पाप कहलाते हैं।

बाहु तुलि' हरि बलि' प्रेम-दृष्ट्ये चाय ।

करिया कल्मष नाश प्रेमेते भासाय ॥62॥

बाहु तुलि'–भुजाएँ उठाकर; हरि बलि'–पवित्र नाम का कीर्तन करके; प्रेम-दृष्ट्ये-गहन प्रेम की उनकी दृष्टि से; चाय-वे देखते हैं; करिया-करके; कल्मष-पापों को; नाश-नाश; प्रेमेते-ईश्वर प्रेम में; भासाय-बाढ़ ला देते हैं।

अनुवाद

अपनी भुजाएँ उठाकर, पवित्र नाम का कीर्तन करते हुए और सबको गहन प्रेम से देखते हुए वे समस्त पापों को दूर कर देते हैं और भगवान् के प्रेम से सबको आप्लावित कर देते हैं।

स्मितालोकः शोकं हरति जगतां यस्य परितो

गिरां तु प्रारम्भः कुशल-पटली पल्लवयति ।

पदालम्भः कं वा प्रणयति न हि प्रेम-निवहं

स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ 63 ॥

स्मित–मुस्कुराकर; आलोकः-दृष्टि; शोकम्–शोक; हरति हर लेते हैं; जगताम्-जगत् का; यस्य–जिसका; परितः-चारों ओर; गिराम्-वाणी के; तु-भी; प्रारम्भः-प्रारम्भ; कुशल-कुशल; पटलीम्-समूह; पल्लवयति–प्रल्लवित करता है; पद-आलम्भः-चरणकमल पकड़कर; कम् वा-जो सम्भवतः; प्रणयति ले जाता है; न–नहीं; हि-निश्चय ही; प्रेम-निवहम्-भगवत् प्रेम की मात्रा; सः-वे; देवः–भगवान्; चैतन्य-आकृतिः-चैतन्य महाप्रभु के रूप में; अतितराम्-अत्यन्त; नः-हम पर; कृपयतु-कृपा करें।

अनुवाद

"श्री चैतन्य के रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हम पर अपनी अहैतुकी कृपा की वृष्टि करें। उनकी स्मितहास्य युक्त दृष्टि तुरन्त ही संसार के सारे शोकों को दूर कर देती है और उनकी वाणी शुभ भक्ति-लताओं को पल्लवित कर जीवन प्रदान करती है। उनके चरणकमलों की शरण लेने से तुरन्त ही दिव्य भगवत्प्रेम का उदय होता है।"

श्री-अङ्ग, श्री-मुख येइ करे दरशन ।

तार पाप-क्षय हय, पाय प्रेम-धन ॥ 64॥

श्री-अङ्ग-उनका शरीर; श्री-मुख-उनका मुख; येइ-कोई जो; करे-करता है; दरशन-दर्शन; तार–उनका; पाप-क्षय-पापों का अन्त; हय-होता है; पाय-पाता है; प्रेम-धन-भगवत्प्रेम का धन।

अनुवाद

जो कोई भी उनके सुन्दर शरीर या सुन्दर मुख का दर्शन करता है, वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है और भगवत्प्रेम रूपी सम्पत्ति को प्राप्त करता है।

अन्य अवतारे सब सैन्य-शस्त्र सङ्गे ।

चैतन्य-कृष्णेर सैन्य अङ्ग-उपाङ्गे ॥65॥

अन्य-अन्य; अवतारे–अवतारों में; सब-सब; सैन्य-सैनिक; शस्त्र-शस्त्र; सङ्गे-सहित; चैतन्य-कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का चैतन्य महाप्रभु के रूप में; सैन्य-सैनिक; अङ्ग-पूर्ण अंश; उपाङ्गे-और साथी।

अनुवाद

अन्य अवतारों में भगवान् सेना तथा अस्त्रों समेत अवतरित हुए, किन्तु इस अवतार में उनकी सेना उनके पूर्ण अंश तथा पार्षद हैं।

सदोपास्यः श्रीमान्धृत-मनुज-कायैः प्रणयितां

वहद्भिर्गीर्वाणैर्गिरिश-परमेष्ठि-प्रभृतिभिः ।

स्व-भक्तेभ्यः शुद्धां निज-भजन-मुद्रामुपदिशन्

स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥66॥

सदा-सदा; उपास्यः-पूज्य; श्रीमान्–सुन्दर, श्रीमान्; धृत-जिन्होंने स्वीकार किया; मनुज-कायैः–मानव शरीर; प्रनयिताम्-प्रेम; वहद्भिः-जो प्रेम रखते थे; गिः-वाणैः-देवताओं से; गिरिश-शिवजी; परमेष्ठि-ब्रह्माजी; प्रभृतिभिः-जिन में प्रमुख थे; स्व-भक्तेभ्यः-अपने भक्तों के लिए; शुद्धाम्-शुद्ध; निज-भजन-अपनी पूजा; मुद्राम्-चिह्न; उपदिशन्-उपदेश देते हुए; सः-वे; चैतन्यः-चैतन्य महाप्रभु; किम्-क्या; मे-मेरा; पुनः-फिर; अपि निश्चित रूप से; दृशोः-दो नेत्रों का; ग्रास्यति–वे जायेंगे; पदम्-निवासस्थान।

अनुवाद

“भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु शिवजी तथा ब्रह्माजी समेत समस्त देवताओं के परम आराध्य देव हैं। ये देवता सामान्य मनुष्यों के वेश में उनके प्रति प्रेम प्रदर्शन करते हुए आये। वे अपने भक्तों को अपनी शुद्ध भक्ति का उपदेश देते हैं। क्या वे पुनः मेरे दृष्टिपथ पर विराजमान होंगे?”

तात्पर्य

यह श्लोक श्री रूप गोस्वामी कृत स्तवमाला का प्रथम श्री चैतन्याष्टक 1 है।

आङ्गोपाङ्ग अस्त्र करे स्व-कार्य-साधन ।

‘अङ्ग’-शब्देर अर्थ आर शुन दिया मन ॥ 67॥

आङ्ग-उपाङ्ग-पूर्णांश एवं पार्षद; अस्त्र-अस्त्र; करे-करते हैं; स्व-कार्य-अपना कार्य; साधन–कर्तव्य; अङ्ग-शब्देर-अङ्ग शब्द का अर्थ-अर्थ; आर-अन्य; शुन-सुनो; दिया-देना; मन–मन।

अनुवाद

उनके पूर्ण अंश तथा पार्षद अपना निजी विशेष कर्तव्य मानकर उनके अस्त्रों का कार्य करते हैं। कृपया मुझसे ‘‘अङ्ग’’ शब्द का दूसरा अर्थ सुनो।

‘अङ्ग’-शब्दे अंश कहे शास्त्र-परमाण ।

अङ्गेर अवयव उपाङ्ग’-व्याख्यान ॥ 68 ॥

अङ्ग-शब्दे-अंग शब्द से; अंश-अंश; कहे-कहता है; शास्त्र-शास्त्र; परमाण-प्रमाण; अङ्गेर–अंग का; अवयव–भाग; उपाङ्ग-व्याख्यान-उपांग शब्द का वर्णन।

अनुवाद

प्रामाणिक शास्त्रों के प्रमाण के अनुसार शारीरिक अंग भी अंश कहलाता है और अंग के अंश को उपांग कहते हैं।

नारायणस्त्वं न हि सर्व-देहिनाम्

आत्मास्यधीशाखिल-लोक-साक्षी ।

नारायणोऽङ्गं नर-भू-जलायनात्

तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ 69॥

नारायणः-भगवान् नारायण; त्वम्-आप; न-नहीं; हि-निश्चय ही; सर्व-सभी; देहिनाम्-देहधारियों के; आत्मा-परमात्मा; असि-आप हैं; अधीश-हे स्वामी; अखिल-लोक-सारे विश्व के; साक्षी–साक्षी; नारायणः–नारायण नाम से; अङ्गम्-पूर्णांश; नर-नर का; भू-उत्पन्न; जल-जल में; अयनात्-आश्रय-स्थल के कारण; तत्-वह; च-और; अपि निश्चित रूप से; सत्यम्-सर्वोपरि सत्य; न-नहीं; तव-आपकी; एव-ही; माया-माया।

अनुवाद

"हे प्रभुओं के प्रभु! आप सारी सृष्टि के दृष्टा हैं। आप हर एक के परम प्रिय प्राण हैं। तो इसलिए क्या आप मेरे पिता नारायण नहीं हैं? 'नारायण' उसका सूचक है, जिसका निवास नर (गर्भोदकशायी विष्णु) से उत्पन्न जल में है और वे नारायण आपके पूर्ण अंश हैं। आपके सारे पूर्ण अंश दिव्य हैं। वे परम पूर्ण हैं और माया द्वारा सृजित नहीं हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.14.14) का है, जिसे ब्रह्माजी ने भगवान् कृष्ण से कहा था।

जल-शायी अन्तर्यामी येइ नारायण।

सेहो तोमार अंश, तुमि मूल नारायण ॥ 70 ॥

जल-शायी-जलशायी; अन्तः-यामी–अन्तर्यामी परमात्मा; येइ-वे जो; नारायण-भगवान् नारायण; सेहो-वे; तोमार-आपके; अंश-पूर्णांश; तुमि-आप; मूल-मूल; नारायण-नारायण।

अनुवाद

हर एक के हृदय में विद्यमान रहने वाले नारायण तथा जल (कारण, गर्भ तथा क्षीर) में रहने वाले नारायण आपके ही पूर्ण अंश हैं। अतएव आप मूल नारायण हैं।

'अङ्ग'-शब्दे अंश कहे, सेहो सत्य हय ।

माया-कार्य नहे—सब चिदानन्द-मय ॥71॥

अङ्ग-शब्दे-अंग शब्द से; अंश-पूर्णांश; कहे-अर्थात्; सेहो-वह; सत्य-सत्य; हय-है; माया-भौतिक शक्ति का; कार्य-कार्य; नहे-नहीं है; सब-सब; चित्-आनन्द-मय-ज्ञान और आनन्द से युक्त।

अनुवाद

'अंग' शब्द निश्चय ही पूर्ण अंश का सूचक है। ऐसे प्राकट्यों को कभी भी भौतिक प्रकृति की उपज नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वे सभी दिव्य, ज्ञान एवं आनन्द से पूर्ण हैं।

तात्पर्य

भौतिक जगत् में यदि किसी मूल पदार्थ से एक अंश (अंग) लिया जाये, तो उस मूल पदार्थ में कमी आ जाती है। किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पर माया के कार्यों का लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता। ईशोपनिषद् कहती है :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

“भगवान् परम पूर्ण हैं और चूँकि वे परम पूर्ण हैं, अतएव उनसे जितने भी उद्भव होते हैं, यथा यह घटनामय जगत्, फिर भी वे परम पूर्ण रहते हैं। परम पूर्ण से जो भी उत्पन्न होता है, वह अपने आप में भी पूर्ण होता है। चूँकि वे परम पूर्ण हैं, अतएव उनमें से अनेक पूर्ण इकाइयाँ प्रकट होने पर भी वे पूर्ण शेष बने रहते हैं।” (ईशोपनिषद्, मंगलाचरण)

परम सत्य की दुनिया में एक और एक मिलकर एक होता है और एक में से एक घटाने पर भी एक ही बचा रहता है। अतएव मनुष्य को भौतिकता की दृष्टि से परमेश्वर के अंश की कल्पना नहीं करनी चाहिए। आध्यात्मिक जगत् में भौतिक शक्ति का कोई प्रभाव नहीं होता एवं अंश की भौतिक गणना नहीं होती। भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय में भगवान् कहते हैं कि सारे जीव उनके अंश हैं। भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों में असंख्य जीव हैं, किन्तु फिर भी भगवान् कृष्ण अपने आपमें पूर्ण रहते हैं। यह सोचना भ्रम होगा कि भगवान् के अंश सारे ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त हैं, अतएव भगवान् अपना व्यक्तित्व खो बैठे हैं। यह तो भौतिक गणना है। ऐसी गणनाएँ केवल भौतिक शक्ति माया के प्रभाव के अधीन सम्भव हैं। आध्यात्मिक जगत् में भौतिक शक्ति की अनुभूति केवल उसकी अनुपस्थिति से ही होती है।

विष्णुतत्त्व कोटि में एक विस्तार से दूसरा विस्तार होने से शक्ति का क्षय नहीं होता, ठीक उसी तरह जिस प्रकार एक दीपक से दूसरा दीपक जलाने पर प्रकाश का क्षय नहीं होता। मूल दीपक से हजारों दीपक जलाये जा सकते हैं और हर दीपक की शक्ति समान होगी। इस तरह यह समझना चाहिए कि कृष्ण तथा भगवान् चैतन्य से लेकर राम, नृसिंह, वराह आदि जितने भी विभिन्न विष्णु तत्त्व विभिन्न युगों में प्रकट होते हैं, वे समान परम शक्ति से सम्पन्न होते हैं।

ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे देवता भौतिक शक्ति माया के संसर्ग में आते हैं, अतएव उनकी शक्तियाँ विभिन्न स्तरों की होती हैं। किन्तु विष्णु के समस्त अवतार शक्ति में समान होते हैं, क्योंकि माया का प्रभाव उनके निकट तक नहीं आ सकता।

अद्वैत, नित्यानन्द—चैतन्येर दुइ अङ्ग ।

अङ्गेर अवयव-गण कहिये उपाङ्ग ॥72॥

अद्वैत-अद्वैताचार्य; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु के; दुइ-दोनों; अङ्ग–अंग, भाग; अङ्गेर-अंगों का; अवयव-गण-भाग; कहिये-मैं कहता हूँ; उपाङ्ग–भाग।

अनुवाद

श्री अद्वैत प्रभु और श्री नित्यानन्द प्रभु दोनों ही चैतन्य महाप्रभु के पूर्ण अंश हैं। इस प्रकार वे उनके शरीर के अंग हैं। इन दोनों अंगों के अंश उपांग कहलाते हैं।

अङ्गोपाङ्ग तीक्ष्ण अस्त्र प्रभुर सहिते ।

सेइ सब अस्त्र हय पाषण्ड दलिते ॥73॥

अङ्ग-उपाङ्ग–पूर्ण अंश एवं अंश; तीक्ष्ण-तीक्ष्ण; अस्त्र-अस्त्र; प्रभुर सहिते-चैतन्य महाप्रभु सहित; सेइ-वे; सब-सब; अस्त्र-अस्त्र; हय हैं; पाषण्ड-नास्तिक; दलिते-नष्ट करने के लिए।

अनुवाद

इस तरह भगवान् अपने अंगों तथा उपांगों रूपी तीक्ष्ण अस्त्रों से सुसज्जित हैं। ये सारे अस्त्र श्रद्धाविहीन नास्तिकों का दलन करने में सक्षम हैं।

तात्पर्य

यहाँ पर पाषण्डशब्द अत्यन्त सार्थक है। जो व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की तुलना देवताओं से करता है, वह पाषण्ड कहलाता है। ये पाषण्ड व्यक्ति परमेश्वर को संसारी स्तर तक नीचे लाने का प्रयास करते हैं। ये कभी-कभी अपना कल्पित भगवान् ला खड़ा करते हैं या किसी सामान्य व्यक्ति को भगवान् मानकर उसका भगवान् होने का विज्ञापन करते हैं। ये इतने मूर्ख होते हैं कि किसी को चैतन्य या कृष्ण का अगला अवतार बताते हैं, भले ही उसके कार्यकलाप प्रामाणिक अवतार से कितने ही विपरीत क्यों न हों। इस तरह वे अबोध जनता को मूर्ख बनाते हैं। जो व्यक्ति बुद्धिमान है और वैदिक ग्रन्थों के आधार पर भगवान् के लक्षणों का अध्ययन करता है, वह इन पाषण्डों द्वारा मोहग्रस्त नहीं हो सकता।

पाषण्ड या नास्तिक व्यक्ति भगवान् की लीलाओं या भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति को नहीं समझ सकते। उनकी समझ में भक्ति सामान्य सकाम कर्म से श्रेष्ठतर नहीं है। किन्तु जैसाकि भगवद्गीता (4.8) में पुष्टि हुई है, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके भक्त पुण्यात्माओं की रक्षा करते हैं और दुष्टों को दण्ड देते हैं (परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्) और इस तरह इन मूर्ख नास्तिकों पर नियन्त्रण रखते हैं। दुष्टजन सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का निषेध करने की चेष्टा करते हैं और भक्ति के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। किन्तु भगवान् अपने प्रामाणिक प्रतिनिधियों को भेजते हैं और इस मूर्खता को नियन्त्रित करने के लिए स्वयं अवतरित होते हैं।

नित्यानन्द गोसाञि साक्षात् हलधर ।

अद्वैत आचार्य गोसाञि साक्षातीश्वर ॥74॥

नित्यानन्द गोसाञि-भगवान् नित्यानन्द गोसांई; साक्षात् साक्षात्; हल-धर–हलधर, भगवान् बलराम; अद्वैत आचार्य गोसाञि-श्री अद्वैताचार्य गोसांई; साक्षात् साक्षात्; ईश्वर-भगवान्।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द गोसांई साक्षात् हलधर (भगवान् बलराम) हैं और अद्वैत आचार्य साक्षात् ईश्वर हैं।

श्रीवासादि पारिषद सैन्य सङ्गे लञा।

दुइ सेनापति बुले कीर्तन करिया ॥75 ॥

श्रीवास-आदि-श्रीवास आदि; पारिषद-पार्षद; सैन्य-सैनिक; सङ्गे–के साथ; लञा-ले जाकर; दुइ-दोनों; सेना-पति–सेनापति; बुले-यात्रा करते हैं; कीर्तन करिया-पावन नाम का कीर्तन करते हुए।

अनुवाद

ये दोनों सेनापति, श्रीवास ठाकुर जैसे अपने सैनिकों के साथ, पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन करते हुए सर्वत्र विचरण करते हैं।

पाषण्ड-दलन-वाना नित्यानन्द राय।

आचार्य-हुङ्कारे पाप-पाषण्डी पलाय ॥76 ॥

पाषण्ड-दलन-नास्तिकों के दमन के; वाना-लक्षण वाले; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; राय–सन्माननीय; आचार्य-अद्वैताचार्य के; हुङ्कारे–युद्ध की ललकार; पाप-पाप; पाषण्डी-और नास्तिक; पलाय-पलायन कर जाते हैं।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के स्वरूप से ही सूचित होता है कि वे पाषण्डियों के दलनकर्ता हैं। अद्वैत आचार्य की ऊंची गर्जना से सारे पाप तथा सारे पाषण्डी भाग खड़े होते हैं।

सङ्कीर्तन-प्रवर्तक श्रीकृष्ण-चैतन्य ।

सङ्कीर्तन-यज्ञे ताँरे भजे, सेइ धन्य ॥77॥

सङ्कीर्तन-प्रवर्तक-संकीर्तन के प्रवर्तक; श्री-कृष्ण-चैतन्य-भगवान् चैतन्य महाप्रभुः सङ्कीर्तन-संकीर्तन; ग्रज्ञे-यज्ञ से; ताँरे–उनकी; भजे–पूजा करते हैं; सेइ-वे; धन्य-भाग्यशाली।

अनुवाद

भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य संकीर्तन (भगवन्नाम के सामूहिक कीर्तन) के प्रवर्तक हैं। जो संकीर्तन के माध्यम से उनकी पूजा करता है, वह निस्सन्देह भाग्यवान है।

सेइ त' सुमेधा, आर कुबुद्धि संसार ।

सर्व-यज्ञ हैते कृष्ण-नाम-ग्रज्ञ सार ॥78 ॥

सेइ-वे; त'–निश्चय ही; सु-मेधा-बुद्धिमान; आर-अन्य; कु-बुद्धि-दुर्बुद्धि; संसार–भौतिक जगत् में; सर्व-यज्ञ हैते–अन्य सभी यज्ञों की अपेक्षा; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण के नाम जप का; यज्ञ-यज्ञ; सार–सर्वोत्तम।

अनुवाद

ऐसा व्यक्ति सचमुच बुद्धिमान है, जबकि अन्य अल्पज्ञानी व्यक्तियों को जन्म-मृत्यु के चक्र को भोगना पड़ता है। समस्त यज्ञों में भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु संकीर्तन आन्दोलन के जनक एवं प्रवर्तक हैं। जो व्यक्ति संकीर्तन आन्दोलन के निमित्त अपना जीवन, धन, बुद्धि तथा वाणी समर्पित करके उनकी पूजा करता है, उसे भगवान् मान्यता देते हैं और आशीर्वाद प्रदान करते हैं। अन्य सारे लोग मूर्ख कहे जा सकते हैं, क्योंकि जिन सारे यज्ञों में मनुष्य अपनी शक्ति लगाता है, उनमें से संकीर्तन आन्दोलन के लिए किया गया यज्ञ सर्वाधिक यशस्वी है।

कोटि अश्वमेध एक कृष्ण नाम सम ।

येइ कहे, से पाषण्डी, दण्डे तारे ग्रम ॥79॥

कोटि-करोड़; अश्वमेध-अश्वमेध यज्ञ; एक-एक; कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; नाम-नाम; सम-बराबर, समान; येइ-जो; कहे-कहता है; से-वह; पाषण्डी–नास्तिक; दण्डे-दण्ड (सजा) देते हैं; तारे-उसको; ग्रम-यमराज।

अनुवाद

जो व्यक्ति यह कहता है कि एक करोड़ अश्वमेध यज्ञ भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन के तुल्य है, वह निश्चित रूप से नास्तिक है। उसे यमराज अवश्य दण्डित करते हैं।

तात्पर्य

भगवान् के पवित्र नाम, हरे कृष्ण के कीर्तन में जिन दस अपराधों की सूची बताई गई है, उसमें आठवाँ अपराध धर्मव्रतत्यागहुतादिसर्वशुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः है। ईश्वर के पवित्र नाम कीर्तन की तुलना ब्राह्मणों या सन्तों को दान देने, परोपकारी शैक्षिक संस्थान खोलने, मुफ्त भोजन बाँटने जैसे पुण्यकार्यों से नहीं करनी चाहिए। पुण्यकार्यों का फल कभी भी कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन की तुलना नहीं कर सकता।

वादक शास्त्री का कथन है :

गोकोटिदानं ग्रहे खगस्य

प्रयागगङ्गोदककल्पवासः ।

यज्ञायुतं मेरुसुवर्णदानं

गोविन्दकीर्तेर न समं शतांशैः ॥

"यदि कोई सूर्यग्रहण के समय एक करोड़ गायें भी दान में दे, यदि वह गंगा-यमुना के संगम में करोड़ वर्ष तक निवास करे, या यज्ञ में ब्राह्मणों को स्वर्ण का पर्वत दान दे दे, तो भी वह हरे-कृष्ण के कीर्तन से प्राप्त होने वाले लाभ का शतांश भी अर्जित नहीं कर सकता।" दूसरे शब्दों में, जो व्यक्ति हरे कृष्ण कीर्तन को एक पुण्यकर्म मानता है, वह पूर्णतया दिग्भ्रमित है। निस्सन्देह, यह पुण्य है, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि कृष्ण तथा उनका नाम दिव्य होने के कारण समस्त संसारी पुण्यकार्यों से

सर्वथा परे हैं। पुण्यकर्म भौतिक स्तर पर होता है, किन्तु कृष्ण-नाम का कीर्तन नितान्त आध्यात्मिक स्तर पर होता है। अतएव, भले ही पाषण्डी इसे न समझें, किन्तु पुण्यकर्म कभी भी नाम-कीर्तन की समता नहीं कर सकता।

'भागवत-सन्दर्भ-ग्रन्थेर मङ्गलाचरणे।

ए-श्लोक जीव-गोसाबि करियाछेन व्याख्याने ॥80॥

भागवत-सन्दर्भ-ग्रन्थेर-भागवत सन्दर्भ नामक ग्रंथ के; मङ्गल-आचरणे-मंगलाचरण में; ए-श्लोक-यह श्लोक; जीव-गोसाञि-जीव गोस्वामी; करियाछेन-किया है; व्याख्याने वर्णन में।

अनुवाद

भागवत-सन्दर्भ के मंगलाचरण में श्रील जीव गोस्वामी ने इसकी व्याख्या में निम्नलिखित श्लोक दिया है।

अन्तः कृष्णं बहिरं दर्शिताङ्गादि-वैभवम्।

कलौ सङ्कीर्तनाद्यैः स्म कृष्ण-चैतन्यमाश्रिताः ॥81॥

अन्तः–अन्दर से; कृष्णम्-भगवान् कृष्ण; बहिः–बाहर से; गौरम्-श्वेत वर्ण वाले; दर्शित-दर्शाया; अङ्ग–अंग; आदि-आरम्भ होकर; वैभवम्-विस्तार; कलौ–कलियुग में; सङ्कीर्तन-आद्यैः-संकीर्तन आदि से; स्म-निश्चित रूप से; कृष्ण-चैतन्यम्-चैतन्य महाप्रभु को; आश्रिताः-आश्रित।

अनुवाद

“मैं भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु का आश्रय ग्रहण करता हूँ, जो बाहर से गौर वर्ण के हैं, किन्तु भीतर से स्वयं कृष्ण हैं। इस कलियुग में वे भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन करके अपने विस्तारों अर्थात् अपने अंगों तथा उपांगों का प्रदर्शन करते हैं।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी ने श्लोक 52 में उद्धृत श्रीमद्भागवत के श्लोक (कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्...) को अपने ग्रंथ भागवत-सन्दर्भ या षट्-सन्दर्भ के मंगलाचरण के रूप में दिया है। यह श्लोक (81) भी उन्हीं का है, जो भागवत के श्लोक की उसी ग्रन्थ के दूसरे श्लोक के रूप में व्याख्या ही है। श्रीमद्भागवत का यह श्लोक नौ महर्षियों में से एक श्री करभाजन द्वारा कहा गया है और इसकी विस्तृत व्याख्या जीव गोस्वामी के ग्रंथ षट्-सन्दर्भ की टीका सर्वसंवादिनी में दी हुई है।

अन्तः कृष्ण उस व्यक्ति का निर्देश करता है, जो निरन्तर कृष्ण का चिन्तन करता है। यह श्रीमती राधारानी का प्रधान गुण है। यद्यपि अनेक भक्त सदैव कृष्ण का चिन्तन करते हैं, किन्तु वे गोपियों से आगे नहीं जा सकते। गोपियों में श्रीमती राधारानी कृष्ण का चिन्तन करनेवालों में सर्वप्रमुख हैं। श्रीमती राधारानी की कृष्ण-चेतना अन्य सारे भक्तों की चेतना से बढ़कर है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण को समझने के लिए श्रीमती राधारानी का स्थान ग्रहण किया; अतएव वे सदैव राधारानी के ही समान सदैव कृष्ण का चिन्तन करते रहे। भगवान् कृष्ण के चिन्तन द्वारा वे सदैव कृष्ण को आवृत किये रहे।

श्रीकृष्ण चैतन्य जो ऊपर से गौर वर्ण के थे और जिनका रंग पिघले सोने जैसा था, उन्होंने अपने नित्य पार्षदों, ऐश्वर्यों, अंशों तथा अवतारों को एकसाथ प्रकट किया। उन्होंने हरे-कृष्ण-कीर्तन की विधि का प्रचार किया और जो उनके चरणकमलों का आश्रय लेते हैं, वे धन्य हैं।

उप-पुराणेह शुनि श्रीकृष्ण-वचन ।

कृपा करि व्यास प्रति करियाछेन कथन ॥82॥

उप-पुराणेह-उपपुराणों में; शुनि-हम सुनते हैं; श्रीकृष्ण-वचन-भगवान् कृष्ण के वचन; कृपा करि-कृपा करके; व्यास प्रति–व्यास देव के प्रति; करियाछेन-उन्हों ने की; कथन-बोले।

अनुवाद

उपपुराणों में हम श्रीकृष्ण को व्यासदेव पर यह कहकर अपनी कृपा प्रदर्शित करते सुनते हैं।

अहमेव क्वचिद्ब्रह्मन्सन्यासाश्रममाश्रितः ।

हरि-भक्तिं ग्राहयामि कलौ पाप-हतान्नरान् ॥83॥

अहम्-मैं; एव–निश्चय ही; क्वचित्-कहीं; ब्रह्मन्-हे ब्राह्मण; सन्यास-आश्रमम्-संन्यास आश्रम का; आश्रितः-आश्रय लेकर; हरि-भक्तिम्-भगवद् भक्ति; ग्राहयामि-मैं दूँगा; कलौ–कलियुग में; पाप-हतान्–पापियों को; नरान्–मनुष्यों को।

अनुवाद

हे विद्वान ब्राह्मण, कभी-कभी मैं कलियुग के पतित लोगों को भगवद्भक्ति के लिए प्रेरित करने हेतु संन्यास आश्रम ग्रहण करता हूँ।"

भागवत, भारत-शास्त्र, आगम, पुराण ।

चैतन्य-कृष्ण-अवतारे प्रकट प्रमाण ॥84॥

भागवत- श्रीमद्भागवतम्; भारत-शास्त्र-महाभारत; आगम-वैदिक साहित्य; पुराण-पुराण; चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु के रूप में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; अवतारे-अवतार में; प्रकट-प्रकट किया; प्रमाण-प्रमाण।

अनुवाद

श्रीमद्भागवत, महाभारत, पुराण तथा अन्य वैदिक साहित्य यह सिद्ध करने के लिए प्रमाण देते हैं कि श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के अवतार हैं।

प्रत्यक्षे देखह नाना प्रकट प्रभाव ।

अलौकिक कर्म, अलौकिक अनुभाव ॥85॥

प्रत्यक्षे–प्रत्यक्ष रूप में; देखह-जरा देखो; नाना-विविध; प्रकट-प्रकट; प्रभाव-प्रभाव; अलौकिक-अलौकिक; कर्म-कर्म; अलौकिक-अलौकिक; अनुभाव-कृष्णभावनामृत में अनुभूति।

अनुवाद

कोई भी व्यक्ति भगवान् चैतन्य के प्रकट प्रभाव को उनके असाधारण कार्यों तथा असामान्य कृष्ण-भावानुभूति से भी प्रत्यक्ष देख सकता है।

देखिया ना देखे व्रत अभक्तेर गण ।

उलूके ना देखे येन सूर किरण ॥86॥

देखिया-देखकर; ना देखे-वे नहीं देखते हैं; व्रत-सब कुछ; अभक्तेर-अभक्तों का; गण-समूह; उलूके-उल्लू; ना देखे–नहीं देखता है; येन-जैसे; सूर्येर–सूर्य की किरण-किरणें।

अनुवाद

किन्तु श्रद्धाविहीन अभक्त लोग स्पष्ट दिखाई देने वाली वस्तु को भी नहीं देखते, जिस तरह उल्लू सूर्य की किरणों को नहीं देखते।

त्वां शील-रूप-चरितैः परम-प्रकृष्टैः

सत्त्वेन सात्त्विकतया प्रबलैश्च शास्त्रैः ।

प्रख्यात-दैव-परमार्थ-विदां मतैश्च

नैवासुर-प्रकृतयः प्रभवन्ति बोद्धम् ॥ 87॥

त्वाम्-आप; शील-चरित्र; रूप-रूप; चरितैः–कार्यों से; परम-परम; प्रकृष्टैः-श्रेष्ठ; सत्त्वेन–विशेष शक्ति से; सात्त्विकतया-सत्त्वगुण से; प्रबलैः-प्रबल; च-तथा; शास्त्रैः-शास्त्रों से; प्रख्यात–प्रसिद्ध (से); दैव-दैवी; परम-अर्थ-विदाम्-वे जो परम लक्ष्य को जानते हैं; मतैः-मतों से; च-तथा; न-नहीं; एव-निश्चित रूप से; आसुर-प्रकृतयः-आसुरी प्रकृति वाले; प्रभवन्ति-समर्थ हैं; बोद्धम्-जानने के लिए।

अनुवाद

“हे प्रभु, जो लोग आसुरी वृत्तियों से प्रभावित हैं, वे आपकी अनुभूति नहीं कर सकते। यद्यपि आप अपने महान् कार्यों, रूपों, चरित्र तथा असामान्य शक्ति के कारण स्पष्ट रूप से सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनकी पुष्टि सभी सात्विक शास्त्रों और दिव्य प्रकृति वाले विख्यात अध्यात्मवादियों द्वारा होती है।”

तात्पर्य

यह श्लोक रामानुजाचार्य के गुरु श्री यामुनाचार्य कृत स्तोत्र-रत्न (12) से है। प्रामाणिक शास्त्रों में कृष्ण के दिव्य कार्य, लक्षण, स्वरूप, गुण आदि का वर्णन रहता है और विश्व के सर्वाधिक प्रामाणिक शास्त्र भगवद्गीता में स्वयं कृष्ण अपना वर्णन करते हैं। यही नहीं, वेदान्त-सूत्र का भाष्य कहलाने वाले श्रीमद्भागवत में कृष्ण की और अधिक व्याख्या मिलती है। इस तरह श्रीकृष्ण को इन प्रामाणिक शास्त्रों ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार किया है, मनुष्यों की स्वीकृति मात्र के माध्यम से नहीं। आधुनिक युग में एक वर्ग के मूर्ख सोचते हैं कि वे किसी को भी ईश्वर के पद पर उसी तरह निर्वाचित कर सकते हैं, जिस प्रकार वे किसी को राजनैतिक प्रशासन के सर्वोच्च पद पर निर्वाचित कर सकते हैं। लेकिन दिव्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सम्यक् वर्णन प्रामाणिक शास्त्रों में किया गया है। भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि केवल मूर्ख ही यह सोचकर उनका उपहास करते हैं कि कोई भी व्यक्ति कृष्ण की तरह बोल सकता है।

ऐतिहासिक सन्दर्भो के अनुसार भी कृष्ण के कार्यकलाप अतीव असाधारण हैं। कृष्ण ने पुष्टि की है, "मैं ईश्वर हूँ" और उन्होंने तदनुसार कार्य भी किया है। मायावादी सोचते हैं कि हर व्यक्ति ईश्वर होने का दावा कर सकता है, किन्तु यह उनका भ्रम है, क्योंकि कृष्ण के अतिरिक्त दूसरा कोई भी ऐसे असाधारण कार्य नहीं कर सकता। जब वे अपनी माता की गोद में शिशु थे, तब उन्होंने पूतना राक्षसी का वध किया। तत्पश्चात् उन्होंने तृणावर्त, वत्सासुर तथा बक नामक राक्षसों का वध किया। जब वे कुछ बड़े हुए, तब उन्होंने अघासुर तथा ऋषभासुर को मारा। अतएव ईश्वर प्रारम्भ से ही ईश्वर होते हैं। ध्यान करने से कोई ईश्वर बन सकता है, ऐसा विचार हास्यास्पद है। भले ही कोई कठिन प्रयास से ईश्वरीय प्रकृति का अनुभव कर ले, किन्तु वह ईश्वर कभी नहीं बन पाएगा। जो असुर यह सोचते हैं कि कोई भी ईश्वर बन सकता है, वे निन्दनीय हैं।

प्रामाणिक शास्त्रों की रचना व्यासदेव, नारद, असित तथा पराशर जैसे महापुरुषों द्वारा की गई है, जो साधारण पुरुष नहीं हैं। वैदिक जीवन-शैली के समस्त अनुयायियों ने इन विख्यात पुरुषों को स्वीकार किया है, जिनके प्रामाणिक शास्त्र वैदिक साहित्य के अनुरूप हैं। फिर भी असुर उनके कथनों पर विश्वास नहीं करते और जान-बूझकर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके भक्तों का विरोध करते हैं। आजकल सामान्य व्यक्तियों को तथाकथित ईश्वर अवतार के रूप में कुछ मनमाने शब्दों को लिख देने का और अन्य साधारण व्यक्तियों द्वारा उसे प्रामाणिक मान लेने की रीति चल पड़ी है। इस आसुरी मनोवृत्ति की भर्त्सना भगवद्गीता के सातवें अध्याय में की गई है, जहाँ यह कहा गया है कि जो दुष्ट तथा अधम हैं, जो मूर्ख तथा गधे हैं, वे अपनी आसुरी प्रकृति के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर को स्वीकार नहीं कर सकते। उनकी तुलना उलूकों (उल्लुओं) से की गई है, जो सूर्य के प्रकाश में अपनी आँखें नहीं खोल सकते। चूँकि वे सूर्य-प्रकाश को नहीं सह सकते, अतएव वे अपने आपको सूर्य से छिपाते फिरते हैं और कभी उसका दर्शन नहीं करते। उन्हें विश्वास ही नहीं होता कि ऐसा कोई प्रकाश है भी।

आपना लुकाइते कृष्ण नाना यत्न करे ।

तथापि ताँहार भक्त जानये ताँहारे ॥88॥

आपना-अपने आपको; लुकाइते-छुपाना; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; नाना-विविध; यत्न–प्रयत्न; करे-करते हैं; तथापि तथापि; ताँहार-उनके; भक्त-भक्तगण; जानये-जान जाते हैं; ताँहारे-उन्हें।

अनुवाद

भगवान् श्रीकृष्ण अपने आपको छिपाने का प्रयत्न अनेक प्रकार से करते हैं, फिर भी उनके भक्त उन्हें यथार्थ रूप में जान ही लेते हैं।

उल्लङ्घित-त्रिविध-सीम-समातिशायि-

सम्भावनं तव परिव्रढ़िम-स्वभावम् ।

माया-बलेन भवतापि निगुह्यमानं

पश्यन्ति केचिदनिशं त्वदनन्य-भावाः ॥89॥

उल्लङ्घित-उल्लंधित; त्रि-विध-तीन प्रकार; सीम-सीमाएँ; सम-समान; अतिशायि–और बढ़ने वाली; सम्भावनम्-जिससे; तव-आपकी; परिव्रढ़िम-सर्वोच्चता की; स्वभावम्-स्वभाव; माया-बलेन-माया के बल पर; भवता-आपका; अपि-यद्यपि; निगुह्यमानम्-छुपा हुआ; पश्यन्ति–वे देखते हैं; केचित्-कुछ; अनिशम्-सदा; त्वत्-आपको; अनन्य-भावाः-जो अनन्य भाव से समर्पित हैं।

अनुवाद

हे प्रभु, भौतिक प्रकृति के भीतर हर वस्तु काल, देश तथा विचार से सीमित है। फिर भी आपके गुण अद्वितीय तथा असीम होने से ऐसी सीमाओं से सदैव परे होते हैं। कभी-कभी आप इन गुणों को अपनी ही शक्ति से ढक लेते हैं, फिर भी आपके अनन्य भक्त हर परिस्थिति में आपका दर्शन पाने में समर्थ हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक भी यामुनाचार्य कृत स्तोत्र-रत्न (13) से लिया गया है। माया के प्रभाव से आवृत प्रत्येक वस्तु देश, काल तथा विचार की सीमाओं में बँधी है। यहाँ तक कि बड़ी से बड़ी अभिव्यक्ति जिसकी हम कल्पना कर सकते हैं, अर्थात् आकाश की भी सीमाएँ हैं। किन्तु प्रामाणिक शास्त्रों से

यह स्पष्ट है कि आकाश से परे भी सात आवरण हैं और इनमें से हर एक अपने पूर्ववर्ती आवरण से 10 गुना अधिक मोटा होता जाता है। आवरण की ये परतें विस्तृत हैं, किन्तु आकाश सीमित है, चाहे आवरण हों या नहीं। स्थान तथा काल विषयक हमारी चिन्तन-शक्ति भी सीमित है। काल शाश्वत है; हम करोड़ों तथा अरबों वर्षों की कल्पना कर सकते हैं, किन्तु वह भी काल के विस्तार का अपर्याप्त अनुमान होगा। अतएव हमारी अपूर्ण इन्द्रियाँ न तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की महानता के विषय में सोच सकती हैं, न ही हम उन्हें काल या अपनी चिन्तन-शक्ति की सीमाओं में बाँध सकते हैं। तदनुसार उनकी स्थिति उल्लंधित शब्द से वर्णित की जाती है। वे देश, काल तथा विचार से परे हैं। यद्यपि वे उन सबके भीतर प्रतीत होते हैं, किन्तु भगवान् उनसे परे रहते हैं। जहाँ भगवान् का दिव्य अस्तित्व देश, काल तथा विचार से छिप जाता है, वहीं भगवान् के शुद्ध भक्त उन्हें देश, काल तथा विचार से परे उनके साकार रूप में देख सकते हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि भगवान् सामान्य व्यक्तियों की आँखों से नहीं दिखते, किन्तु जो लोग अपनी दिव्य भक्ति के कारण इन आवरणों से परे हैं, वे उन्हें देख सकते हैं।

सूर्य बादल से आच्छादित हुआ मालूम पड़ सकता है, किन्तु वास्तव में ये तो बादल के नीचे खड़े तुच्छ मानव की आँखें हैं, जो आच्छादित हैं, न कि सूर्य। यदि यही तुच्छ मानव हवाई जहाज से बादल के ऊपर जाये, तो वह सूर्य तथा धूप को बिना अवरोध के देख सकता है। इसी प्रकार, यद्यपि माया का आवरण प्रबल होता है, किन्तु भगवद्गीता (7.14) में भगवान् कहते हैं :

दैवी ह्येषागुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

"मेरी यह दैवी शक्ति, जो भौतिक प्रकृति के तीन गुणों से बनी है, उसे जीत पाना अत्यन्त कठिन है। किन्तु जो लोग मेरी शरण में आ जाते हैं, वे सरलता से इसके पार जा सकते हैं।" भ्रामक शक्ति माया के प्रभाव को पार कर पाना अत्यन्त कठिन है, किन्तु जो लोग भगवान् के चरणकमलों को पकड़ने के लिए दृढ़संकल्प हैं, वे माया की पकड़ से मुक्त हो जाते हैं। इसलिए शुद्ध भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझ सकते हैं, किन्तु असुरगण अपने दुष्ट स्वभाव के कारण अनेक शास्त्रों एवं ईश्वर के असामान्य कार्यकलापों को देखते हुए भी भगवान् को समझ नहीं सकते।

असुर-स्वभावे कृष्णे कभु नाहि जाने ।

लुकाइते नारे कृष्ण भक्त-जन-स्थाने ॥90 ॥

असुर-स्वभावे-आसुरी स्वभाव वाले; कृष्णे-भगवान् कृष्ण; कभु-कभी भी; नाहि-नहीं; जाने-जानते; लुकाइते छुपना; नारे-सक्षम नहीं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; भक्त-जन-शुद्ध भक्तों के; स्थाने–स्थान पर।

अनुवाद

जो आसुरी स्वभाव के हैं, वे कभी भी कृष्ण को नहीं जान सकते, किन्तु कृष्ण अपने शुद्ध भक्तों से अपने आपको छिपा नहीं पाते।

तात्पर्य

जो लोग रावण तथा हिरण्यकशिपु की तरह आसुरी स्वभाव बना लेते हैं, वे ईश्वर की सत्ता को ललकारने के कारण कभी भी भगवान् कृष्ण को नहीं जान सकते। किन्तु श्रीकृष्ण अपने शुद्ध भक्तों से अपने आपको कभी नहीं छिपा सकते।

द्वौ भूत-सर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।

विष्णु-भक्तः स्मृतो दैव आसुरस्तद्विपर्ययः ॥91॥

द्वौ-दो; भूत-जीवों का; सर्गौ-प्रवृत्ति, झुकाव; लोके-विश्व में; अस्मिन्-इसमें; दैवः-ईश्वरीय; आसुरः-आसुरी; एव-निश्चित रूप से; च-तथा; विष्णु-भक्तः–भगवान् विष्णु का भक्त; स्मृतः-याद किया जाता है; दैवः-ईश्वरीय; आसुरः-आसुरी; तत्-विपर्ययः-उसका विपरीत।

अनुवाद

इस भौतिक संसार में दो प्रकार के लोग होते हैं। एक तो वे जो आसुरी हैं और दूसरे वे जो दैवी हैं। भगवान् विष्णु के भक्त दैवी हैं, किन्तु जो इनके सर्वथा विपरीत हैं, वे असुर कहलाते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक पद्मपुराण का है। विष्णुभक्त अर्थात् कृष्णभावनाभावित भक्त देव कहलाते हैं। नास्तिक लोग जो ईश्वर में विश्वास नहीं करते या स्वयं को ईश्वर घोषित करते हैं, वे असुर कहलाते हैं। असुरगण सदैव नास्तिक भौतिकतावादी कार्यों में लगे रहते हैं और भौतिक संसाधनों को इन्द्रियतृप्ति के कार्यों में प्रयुक्त करने की विधियाँ खोजते रहते हैं। विष्णुभक्त अर्थात् कृष्णभावनाभावित भक्त भी सक्रिय रहते हैं, किन्तु उनका लक्ष्य भक्ति द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तुष्ट करना होता है। ऊपर से ये दोनों श्रेणी के लोग एक ही दिशा में कार्य करते प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु चेतना में अन्तर होने के कारण उनके प्रयोजन एक-दूसरे के सर्वथा विपरीत रहते हैं। असुरगण निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए कार्य करते हैं, जबकि भक्तगण भगवान् की तुष्टि के लिए कार्य करते हैं। दोनों ही परिश्रम करते हैं, किन्तु उनके उद्देश्य भिन्न भिन्न होते हैं।

कृष्णभावनामृत आन्दोलन देवों या भक्तों के लिए है। असुर न तो कृष्णभावनाभावित कार्यों में सम्मिलित हो सकते हैं, न कृष्णभावनाभावित भक्त आसुरी कार्यों में सम्मिलित हो सकते हैं अथवा इन्द्रियतृप्ति के लिए कुत्तों तथा बिल्लियों की तरह कार्य कर सकते हैं। कृष्णभावनाभावित भक्तों को ऐसे कार्य तनिक भी नहीं भाते। भक्तगण जीवन की उतनी ही आवश्यकताओं को स्वीकार करते हैं, जितने से वे कृष्णभावनामृत में कार्य करने के लिए सशक्त रह सकें। उनकी शेष शक्ति कृष्णभावनामृत को विकसित करने में खर्च होती है, जिसके द्वारा वे सदैव, यहाँ तक कि अन्तिम समय में भी, कृष्ण का चिन्तन करते हुए भगवधाम वापस जा सकें।

आचार्य गोसाञि प्रभुर भक्त-अवतार।

कृष्ण-अवतार-हेतु याँहार हुङ्कार ॥ 92॥

आचार्य गोसाञि-अद्वैताचार्य गोसांइ; प्रभुर-भगवान् के; भक्त-अवतार-भक्त के अवतार; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; अवतार–अवतार का; हेतु-कारण; याँहार–जिनकी; हुङ्कार-ऊँची गर्जना।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य गोस्वामी भक्त के रूप में भगवान् के अवतार हैं। उनकी ऊँची गर्जना से ही कृष्ण अवतरित हुए थे।

कृष्ण यदि पृथिवीते करेन अवतार।

प्रथमे करेन गुरु-वर्गेर सञ्चार ॥ 93 ॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यदि-यदि; पृथिवीते-पृथ्वी पर; करेन-करते हैं; अवतार-अवतार; प्रथमे-पहले; करेन-करते हैं; गुरु-वगैर-आदरणीय गुरूवर्ग का; सञ्चार-अवतार।

अनुवाद

जब भी श्रीकृष्ण इस धरा पर अवतरित होना चाहते हैं, तब सर्वप्रथम वे अपने पूज्य गुरुवर्गों को अवतरित कराते हैं।

पिता माता गुरु आदि ग्रत मान्य-गण ।

प्रथमे करेन सबार पृथिवीते जनम ॥94॥

पिता-पिता; माता-माता; गुरु-गुरु; आदि-आदि; ग्रत-सब; मान्य-गण-आदरणीय सदस्य; प्रथमे-पहले; करेन-वे करते हैं; सबार-सबका; पृथिवीते-पृथ्वी पर; जनम-जन्म।

अनुवाद

इस प्रकार सर्वप्रथम पृथ्वी पर आदरणीय लोगों यथा उनके पिता, माता तथा गुरु का जन्म होता है।

माधव-ईश्वर-पुरी, शची, जगन्नाथ ।

अद्वैत आचार्य प्रकट हैला सेइ साथ ॥ 95॥

माधव-माधवेन्द्र पुरी; ईश्वर-पुरी-ईश्वर पुरी; शची-शचीमाता; जगन्नाथ–जगन्नाथ मिश्र; अद्वैत आचार्य-अद्वैताचार्य; प्रकट-प्रकट; हैला–हुए; सेइ–यह; साथ-सहित।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी, ईश्वर पुरी, श्रीमती शचीमाता तथा श्रील जगन्नाथ मिश्र-ये सभी श्री अद्वैत आचार्य के साथ साथ प्रकट हुए।

तात्पर्य

जब भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने मानव रूप में अवतरित होते हैं, तो वे उसके पूर्व अपने भक्तों को भेज देते हैं, जो उनके पिता, गुरु तथा संगियों के रूप में नाना प्रकार की भूमिका ग्रहण करते हैं। ऐसे महापुरुष पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अवतरण के पूर्व प्रकट होते हैं। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के पूर्व उनके भक्त श्री माधवेन्द्र पुरी, उनके गुरु श्री ईश्वर पुरी, उनकी माता श्रीमती शचीदेवी, उनके पिता श्री जगन्नाथ मिश्र और श्री अद्वैत आचार्य प्रकट हो चुके थे।

प्रकटिया देखे आचार्य सकल संसार।

कृष्ण-भक्ति गन्ध-हीन विषय-व्यवहार॥ 96॥

प्रकटिया-प्रकट होकर; देखे-उन्होंने देखा; आचार्य-अद्वैताचार्य; सकल-सब; संसार–भौतिक संसार; कृष्ण-भक्ति-भगवान् कृष्ण की भक्ति; गन्ध-हीन–बिना किसी चिह्न के; विषय-विषयों के व्यवहार-व्यवहार।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने प्रकट होने के बाद देखा कि संसार श्रीकृष्ण की भक्ति से विहीन है, क्योंकि लोग भौतिक व्यापारों में व्यस्त थे।

केह पापे, केह पुण्ये करे विषय-भोग।

भक्ति-गन्ध नाहि, याते याय भव-रोग॥ 97॥

केह-कोई; पापे-पाप कर्मों में; केह-कोई; पुण्ये-पुण्य कर्मों में; करे-करता है; विषय-इन्द्रिय के विषयों में; भोग-भोग; भक्ति-गन्ध-भक्ति का चिह्न; नाहि-नहीं; य़ाते-जिससे; याय-चला जाता है; भव-रोग-भवरोग।

अनुवाद

प्रत्येक व्यक्ति, चाहे पापवश हो या पुण्यवश, भौतिक भोग में लगा हुआ था। कोई भी भगवान् की दिव्य सेवा में रुचि नहीं रखता था, जिससे जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा प्राप्त हो सकता है।

तात्पर्य

अद्वैत आचार्य ने सम्पूर्ण जगत् को भौतिक पुण्य तथा पाप के व्यापारों में व्यस्त देखा। भक्ति या कृष्णभावनामृत का कहीं कोई नामोनिशान नहीं था। सच्चाई यह है कि इस भौतिक जगत् में कृष्णभावनामृत के अतिरिक्त किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति भगवान् की कृपा से हो जाती है। हाँ, कभी-कभी हमें अपने कुप्रबन्ध के कारण अभाव का अनुभव होता है, किन्तु असली समस्या यह है कि लोग अब कृष्णभावनामृत के सम्पर्क में नहीं रहे। हर व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति में तो लगा है, किन्तु उसके पास अपनी वास्तविक समस्याओं-जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि का अन्तिम समाधान खोज निकालने की कोई योजना नहीं है। ये चार भौतिक कष्ट भवरोग अर्थात् भौतिक रोग कहलाते हैं। ये केवल कृष्णभावनामृत द्वारा ही ठीक हो सकते हैं। अतएव मानव समाज के लिए कृष्णभावनामृत सब से बड़ा वरदान है।

लोक-गति देखि' आचार्य करुण-हृदय।

विचार करेन, लोकेर कैछे हित हय ॥98॥

लोक-गतिलोकगति; देखि'–देखकर; आचार्य-अद्वैताचार्य; करुण-हृदय-करुण हृदय वाले; विचार करेन-विचार करते हैं; लोकेर विश्व का; कैछे-कैसे; हित-हित; हय होगा।

अनुवाद

संसार के कार्यकलापों को देखकर आचार्य को दया आई और वे विचार करने लगे कि वे जनता का हित किस तरह करें।

तात्पर्य

जनता के कल्याण हेतु इस प्रकार की गम्भीर रुचि मनुष्य को प्रामाणिक आचार्य बनाती है। आचार्य कभी भी अपने अनुयायियों का शोषण नहीं करता। चूँकि आचार्य भगवान् का विश्वस्त सेवक होता है, अतएव उसका हृदय मनुष्यों के कष्टों के प्रति करुणा से ओतप्रोत रहता है। वह जानता है कि सारे कष्ट भगवद्भक्ति के अभाव के कारण हैं, अतएव वह लोगों के कार्यों को बदलने के लिए सदैव मार्ग खोजता रहता है, जिससे उन्हें भक्ति प्राप्त हो सके। यही आचार्य की योग्यता है। यद्यपि श्री अद्वैत प्रभु स्वयं यह कार्य कर सकने के लिए समर्थ थे, लेकिन एक विनीत सेवक की तरह उन्होंने सोचा कि भगवान् के साक्षात् प्रकट हुए बिना समाज की पतित अवस्था को सुधारा नहीं जा सकता।

माया के कठोर बन्धन में इस भौतिक जगत् के प्रथम श्रेणी के बन्दी भ्रमवश अपने आपको सुखी मानते हैं, क्योंकि वे धनी, शक्तिशाली, साधनसम्पन्न हैं। ये मूर्ख प्राणी यह भी नहीं जानते कि वे भौतिक प्रकृति के हाथों में केवल कठपुतली के समान हैं और किसी भी क्षण भौतिक प्रकृति के निर्दय षड्यंत्र उनके सारे ईश्वरविमुख कार्यों की योजनाओं को धूल में मिला सकते हैं। ऐसे मूर्ख बन्दी यह भी नहीं देख पाते कि वे कृत्रिम साधनों से अपनी स्थिति को कितना ही क्यों न सुधार लें, किन्तु

बारम्बार जन्म, मृत्यु, व्याधि तथा वृद्धावस्था की विपत्तियाँ सदा उनके वश के बाहर हैं। मूर्ख होने के कारण वे जीवन की इन प्रमुख समस्याओं की उपेक्षा करते हुए मिथ्या बातों में लगे रहते हैं, जिनसे उनकी वास्तविक समस्याओं का समाधान नहीं मिल पाता। वे जानते हैं कि वे मृत्यु या रोग अथवा वृद्धावस्था का कष्ट नहीं भोगना चाहते, किन्तु माया के वशीभूत होने के कारण वे नितान्त लापरवाह रहते हैं और इन समस्याओं का समाधान करने के लिए कुछ भी नहीं करते। इसे माया कहते हैं। माया द्वारा वशीभूत हुए लोग मृत्यु के बाद विस्मृति के गर्त में चले जाते हैं और अपने कर्म के अनुसार अगले जन्म में कुत्ता या देवता बनते हैं, यद्यपि अधिकांश कुत्ते ही बनते हैं। अगले जन्म में देवता बनने के लिए उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्ति करनी आवश्यक है, अन्यथा प्रकृति के नियमानुसार उनका कुत्ता या सुअर बनना निश्चित है।

तृतीय श्रेणी के बन्दी, भौतिक दृष्टि से कम ऐश्वर्यवान होने के कारण प्रथम श्रेणी के बन्दियों का अनुकरण करने का प्रयास करते हैं, क्योंकि उन्हें भी अपने बन्दी होने के विषय में वास्तविक ज्ञान नहीं होता। इस तरह वे भी भ्रामक भौतिक प्रकृति द्वारा दिग्भ्रमित हो जाते हैं। किन्तु यह आचार्य का कार्य है कि वह प्रथम तथा तृतीय श्रेणी के बन्दियों के कार्यों को बदल दे, जिससे उन्हें वास्तविक लाभ हो। इस उद्यम के कारण वह भगवान् का अत्यन्त प्रिय भक्त बन जाता है। भगवान् भगवद्गीता में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मानव समाज में भक्त से बढ़कर उन्हें अन्य कोई प्रिय नहीं है, क्योंकि वह जगत् के वास्तविक लाभ के लिए ईश्वर के सन्देश का प्रचार करने के उपायों की खोज करते हुए भगवान् की सेवा में सर्वदा लगा रहता है। कलियुग के तथाकथित आचार्य अपने अनुयायियों के कष्टों को कम करने के लिए उतना चिन्तित नहीं रहते, जितना कि वे उनके संसाधनों का दोहन करने में लगे रहते हैं। किन्तु एक आदर्श आचार्य के रूप में श्री अद्वैत प्रभु संसार की दशा को सुधारने के प्रति चिन्तित थे।

आपनि श्री कृष्ण यदि करेन अवतार।

आपने आचरि' भक्ति करेन प्रचार ॥99॥

आपनि-स्वयं; श्री-कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यदि-यदि; करेन-वे करते हैं; अवतार–अवतार; आपने-अपना; आचरि'-अभ्यास करना; भक्ति-भक्ति; करेन-करते हैं; प्रचार–प्रचार।

अनुवाद

(अद्वैत आचार्य ने सोचा :) "यदि श्रीकृष्ण अवतार के रूप में प्रकट हों, तो वे स्वयं अपने व्यक्तिगत उदाहरण द्वारा भक्ति का प्रचार कर सकते हैं।

नाम विनु कलि-काले धर्म नाहि आर।

कलि-काले कैछे हबे कृष्ण अवतार ॥100॥

नाम विनु-पवित्र नाम के अतिरिक्त; कलि-काले-कलियुग में; धर्म-धर्म; नाहि-नहीं है; आर-अन्य; कलि-काले-कलियुग में; कैछे-कैसे; हबे-होगा; कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; अवतार–अवतार।

अनुवाद

इस कलियुग में भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन के अतिरिक्त अन्य कोई धर्म नहीं है, लेकिन इस युग में भगवान् किस तरह अवतार लेंगे?"

शुद्ध-भावे करिब कृष्णेर आराधन।

निरन्तर सदैन्ये करिब निवेदन ॥ 101॥

शुद्ध-भावे-शुद्ध मनोभाव से; करिब–मैं करूँगा; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; आराधन-पूजा; निरन्तर निरन्तर; स-दैन्ये-विनम्र भाव से; करिब–मैं करूँगा; निवेदन निवेदन।

अनुवाद

"मैं शुद्ध मन से कृष्ण की पूजा करूँगा। मैं उनसे निरन्तर विनीत भाव से निवेदन करूँगा।

आनिया कृष्णेरे करों कीर्तन सञ्चार ।

तबे से 'अद्वैत' नाम सफल आमार ॥102॥

आनिया-लाकर; कृष्णेरे-भगवान् कृष्ण; करों-मैं करता हूँ; कीर्तन-कीर्तन; सञ्चार–आरम्भ; तबे-तब; से-यह; अद्वैत-अद्वैत; नाम-नाम; स-फल-सफल; आमार-मेरा।

अनुवाद

मेरा 'अद्वैत' नाम तभी सार्थक होगा, जब मैं कृष्ण को पवित्र नाम-संकीर्तन आन्दोलन का प्रवर्तन करने के लिए प्रेरित कर सकेंगा।"

तात्पर्य

अद्वैतवादी मायावादी दार्शनिक, जो झूठे ही विश्वास करता है कि वह भगवान् से अभिन्न है, अद्वैत प्रभु की तरह भगवान् से प्रार्थना नहीं कर सकता। अद्वैत प्रभु भगवान् से अभिन्न हैं, किन्तु वे पूर्णांश के रूप में निरन्तर भगवान् की सेवा करते हैं, भगवान् में समा नहीं जाते। मायावादियों के लिए यह अचिन्त्य है, क्योंकि वे भौतिक इन्द्रियानुभूति के सन्दर्भ में सोचते हैं और यह सोचते हैं कि अद्वैतवाद के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपनी पृथक् पहचान खो दे। किन्तु इस श्लोक से यह स्पष्ट है कि अद्वैत प्रभु अपनी पृथक् पहचान बनाये रखकर भी भगवान् से अभिन्न हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अचिन्त्य-भेदाभेद तत्त्व-एक साथ भगवान् से एकरूपता तथा भिन्नता–का प्रचार किया। चिन्तनीय द्वैत (भेद) तथा अद्वैत (अभेद) अपूर्ण इन्द्रियों की अनुभूतियाँ हैं, जो दिव्यता तक नहीं पहुँच पातीं, क्योंकि दिव्यता सीमित शक्ति की अनुभूति से परे है। किन्तु अद्वैत प्रभु के कार्य अचिन्त्य अभेद का यथार्थ प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। अतएव जो कोई श्री अद्वैत प्रभु की शरण में जाता है, वह सरलता से अचिन्त्य-भेदाभेद दर्शन को समझ सकता है।

कृष्ण वश करिबेन कोनाराधने ।

विचारिते एक श्लोक आइल ताँर मने ॥ 103 ॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; वश करिबेन-वश में करूँगा; कोन् आराधने-किस पूजा के; विचारिते-विचार करते समय; एक-एक; श्लोक-श्लोक; आइल-आया; ताँर–उनके; मने-मन में।

अनुवाद

जब वे पूजा द्वारा कृष्ण को वश में करने के विषय में सोच रहे थे, तब उनके मन में निम्नलिखित श्लोक आया।

तुलसी-दल-मात्रेण जलस्य चुलुकेन वा ।

विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्त-वत्सलः ॥ 104॥

तुलसी–तुलसी का; दल-पत्ता, दल; मात्रेण-मात्र से; जलस्य-जल का; चुलुकेन-हथेली से; वा–तथा; विक्रीणीते-बेचते हैं; स्वम्-अपने; आत्मानम्-स्वयं को; भक्तेभ्यः-भक्तों को; भक्त-वत्सलः- भगवान् कृष्ण जो भक्तों को प्रिय हैं।

अनुवाद

"अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त वत्सल श्रीकृष्ण अपने आपको उस भक्त के हाथ बेच देते हैं, जो उन्हें केवल तुलसीदल तथा एक अंजलिभर जल अर्पित करता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक गौतमीय तन्त्र से लिया गया है।

एइ श्लोकार्थ आचार्य करेन विचारण ।

कृष्णके तुलसी-जल देय येइ जन ॥ 105॥

तार ऋण शोधिते कृष्ण करेन चिन्तन- ।

'जल-तुलसीर सम किछु घरे नाहि धन' ॥106 ॥

एइ–यह; श्लोक-श्लोक का; अर्थ–अर्थ; आचार्य-अद्वैताचार्य; करेन-करते हैं; विचारण-सोचकर; कृष्णके–भगवान् कृष्ण को; तुलसी-जल-तुलसी और जल; देय-देते हैं; येइ जन-वह व्यक्ति जो; तार–उनको; ऋण ऋण; शोधिते-अदा करना; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करेन-करते हैं; चिन्तन–चिन्तन; जल-तुलसीर सम-जल एवं तुलसी के समान; किछु–कोई; घरे–घर में; नाहि-नहीं है; धन-धन, सम्पत्ति।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने इस श्लोक के अर्थ पर इस प्रकार विचार किया : "जो कृष्ण को तुलसीदल तथा जल अर्पित करता है, उसके ऋण को चुकाने की कोई विधि न पाकर भगवान् कृष्ण सोचते हैं, "मेरे पास ऐसी कोई सम्पत्ति नहीं जो तुलसीदल तथा जल की समता कर सके।

तबे आत्मा वेचि’ करे ऋणेर शोधन।

एत भावि’ आचार्य करेन आराधन ॥107॥

तबे-तब; आत्मा-स्वयं; वेचि’–बेचकर; करे-करते हैं; ऋणेर-ऋण की; शोधन–भुगतान; एत-इस प्रकार; भावि’-सोचकर; आचार्य-अद्वैताचार्य; करेन-करते हैं; आराधन-पूजा।

अनुवाद

इस प्रकार भगवान् अपने आपको भक्त के हाथ अर्पित करके अपना ऋण चुकाते हैं। इस तरह विचार करके आचार्य ने भगवान् की आराधना प्रारम्भ कर दी।

तात्पर्य

भक्ति द्वारा भगवान् कृष्ण को एक तुलसीदल तथा थोड़े से जल से सरलतापूर्वक प्रसन्न किया जा सकता है। जैसाकि भगवद्गीता (9.26) में भगवान् कहते हैं कि यदि कोई भक्तिपूर्वक उन्हें एक पत्र, एक फूल, एक फल या कुछ जल अर्पित करता है (पत्रं पुष्पं फलं तोयम्), तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं। वे अपने भक्तों की सेवा विश्वभर में कहीं भी स्वीकार करते हैं। संसार के किसी भी भाग में गरीब से गरीब भक्त भी एक छोटा-सा फूल, फल या पत्र तथा थोड़ा सा जल प्राप्त कर सकता है और यदि इन्हें, अथवा विशेष रूप से तुलसीदल तथा गंगाजल, कृष्ण को भक्तिपूर्वक अर्पित किया जाता है, तो वे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। कहा जाता है कि कृष्ण ऐसी भक्ति से इतने प्रसन्न हो जाते हैं कि इसके बदले में वे अपने भक्त को आत्मसमर्पण कर देते हैं। श्रील अद्वैत आचार्य इस तथ्य को जानते थे, इसलिए उन्होंने तुलसीदल तथा गंगाजल से भगवान् की पूजा करके उनसे अवतरित होने के लिए आवाहन करने का निश्चय किया।

गङ्गा-जल, तुलसी-मञ्जरी अनुक्षण।

कृष्ण-पाद-पद्म भावि' करे समर्पण॥ 108॥

गङ्गा-जल-गंगाजल; तुलसी-मञ्जरी–तुलसी मंजरी; अनुक्षण-लगातार; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; पाद-पद्म-चरणकमल; भावि'-का चिन्तन करते हुए; करे-करते हैं; समर्पण-समर्पण।

अनुवाद

श्रीकृष्ण के चरणकमलों का चिन्तन करते हुए उन्होंने गंगाजल में तुलसी मंजरियाँ मिलाकर निरन्तर अर्पित कीं।

कृष्णेर आह्वान करे करिया हुङ्कार।

ए-मते कृष्णेरे कराइल अवतार॥109॥

कृष्णेर- भगवान् कृष्ण का; आह्वान-आवाहन; करे-करते हैं; करिया-करके; हुङ्कार-ऊँचे आवाज से; ए-मते—इस प्रकार; कृष्णेरे-भगवान् कृष्ण; कराइल-करवाया; अवतार–अवतार।

अनुवाद

उन्होंने जोर-जोर से श्रीकृष्ण से विनती की और इस तरह कृष्ण का अवतरित होना सम्भव हुआ।

चैतन्येर अवतारे एइ मुख्य हेतु।

भक्तेर इच्छाय अवतरे धर्म-सेतु॥ 110॥

चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु के अवतारे-अवतार में; एइ–यह; मुख्य-प्रमुख; हेतु-कारण, भक्तेर-भक्त की; इच्छाय-इच्छा से; अवतरे-वे अवतरित होते हैं; धर्म-सेतु-धर्म के संरक्षक।

अनुवाद

अतएव श्री चैतन्य के अवतार का मुख्य कारण अद्वैत आचार्य की यह विनती है। धर्म के संरक्षक भगवान् अपने भक्त की इच्छा से प्रकट होते हैं।

त्वं भक्ति-योग-परिभावित-हृत्सरोज

आस्से श्रुतेक्षित-पथो ननु नाथ पुंसाम् ।

यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति

तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥ 111॥

त्वम्-आप; भक्ति-योग-भक्ति योग से; परिभावित–परिपूर्ण; हृत्-हृदय के; सरोजे–कमल पर; आस्से–निवास करते हैं; श्रुत-सुना हुआ; ईक्षित–देखा हुआ; पथः-जिनका मार्ग; ननु–निश्चित रूप से; नाथ–हे नाथ; पुंसाम्-भक्तों से; यत् यत्-जो जो; धिया-मन से; ते–वे; उरु-गाय-हे भगवान्, जो उत्तम विधियों से महिमान्वित हैं; विभावयन्ति–का ध्यान करते हैं; तत् तत्-वह वह; वपुः-रूप; प्रणयसे-आप प्रकट करते हैं; सत्-अपने भक्तों को; अनुग्रहाय–अनुग्रह करने के लिए।

अनुवाद

हे प्रभु, आप अपने शुद्ध भक्तों की दृष्टि तथा श्रुति में सदैव वास करते हैं। आप उनके कमल सदृश हृदयों में भी निवास करते हैं, जो भक्ति द्वारा निर्मल हो चुके होते हैं। हे भगवान्, आप उत्कृष्ट

स्तुतियों से महिमान्वित होते हैं। आपके भक्त आपके जिन सनातन रूपों में आपका स्वागत करते हैं, उन रूपों में प्रकट होकर आप उन पर विशेष अनुग्रह करते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (3.9.11) में आया है। यह एक स्तुति है, जिसमें ब्रह्माजी सृष्टि कार्य करने के लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से उनका आशीर्वाद माँगते हैं। भगवान् विषयक ज्ञान वैदिक शास्त्रों के विवरणों से प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, ब्रह्म-संहिता (5.29) में भगवान् कृष्ण के धाम का वर्णन मिलता है, जो चिन्तामणि से बना है और जहाँ गोपबालक के रूप में भगवान् की सेवा करने के लिए लाखों लक्ष्मियाँ हैं। मायावादी लोग सोचते हैं कि भक्तों ने कृष्ण के स्वरूप की कल्पना की है, किन्तु प्रामाणिक शास्त्रों ने वास्तव में ही कृष्ण तथा उनके विविध दिव्य रूपों का वर्णन किया है।

श्रुतेक्षित-पथः में श्रुत शब्द से वेदों का अभिप्राय है तथा ईक्षित यह इंगित करता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझने की विधि है वैदिक शास्त्रों का समुचित अध्ययन। भगवान् या उनके रूप के विषय में कोई कल्पना नहीं कर सकता। ऐसी कल्पना उन लोगों को मान्य नहीं है, जो ज्ञानालोक प्राप्त करने के सम्बन्ध में गम्भीर हैं। यहाँ पर ब्रह्मा कहते हैं कि वैदिक ग्रंथों के समुचित अध्ययन से कृष्ण को जाना जा सकता है। यदि कोई भगवान् के रूप, नाम, गुण, लीलाओं तथा साज-सामग्री के अध्ययन से उनके प्रति आकृष्ट हो जाता है, तो वह भक्ति कर सकता है और भगवान् का दिव्य रूप सदा के लिए उसके हृदय में अंकित हो जायेगा। जब तक भक्त वास्तव में भगवान् के लिए दिव्य प्रेम उत्पन्न नहीं कर लेता, तब तक वह अपने हृदय में भगवान् का निरन्तर चिन्तन नहीं कर सकता। भगवान् की ऐसी स्थायी स्मृति योग-विधि की भव्य सिद्धि है, जैसाकि भगवद्गीता के छठे अध्याय (6.47) में पुष्टि की गई है कि जो कोई ऐसे भाव में निमग्न रहता है, वह सर्वश्रेष्ठ योगी

है। ऐसी दिव्य निमग्नता समाधि कहलाती है। जो शुद्ध भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का निरन्तर चिन्तन करता रहता है, वही भगवान् का दर्शन पाने का अधिकारी है।

उरुगाय (दिव्य स्तुतियों द्वारा जिनकी महिमा गाई जाती है, ऐसे भगवान्) के विषय में तब तक व्यक्ति कुछ नहीं कह सकता, जब तक वह आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत न हो। जैसाकि ब्रह्म-संहिता में पुष्टि हुई है, भगवान् के अनन्त रूप हैं (अद्वैतम् अच्युतम् अनादिम् अनन्तरूपम्)। भगवान् असंख्य स्वांश रूपों में अपना विस्तार करते हैं। जब कोई भक्त इन असंख्य रूपों के विषय में सुनकर किसी एक रूप के प्रति अनुरक्त हो जाता है और निरन्तर उसी का चिन्तन करता है, तो भगवान् उसके समक्ष उसी रूप में प्रकट होते हैं। भगवान् कृष्ण उन भक्तों को विशेष रूप से सुखकर लगने वाले हैं, जिनके हृदय में वे सदैव उपस्थित रहते हैं, क्योंकि उन भक्तों में उच्च दिव्य प्रेम रहता है।

एइ श्लोकेर अर्थ कहि सक्षेपेर सार।

भक्तेर इच्छाय कृष्णेर सर्व अवतार ॥112॥

एइ–यह; श्लोकेर-श्लोक का; अर्थ-अर्थ; कहि-मैं वर्णन करता हूँ; सङ्क्षेपेर-संक्षेप में; सार-सार; भक्तेर-भक्त की; इच्छाय-इच्छा से; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; सर्व-सभी; अवतार–अवतार।

अनुवाद

इस श्लोक का भावार्थ यह है कि भगवान् अपने शुद्ध भक्तों की इच्छा से अपने असंख्य शाश्वत रूपों में प्रकट होते हैं।

चतुर्थ श्लोकेर अर्थ हैल सुनिश्चिते।

अवतीर्ण हैला गौर प्रेम प्रकाशिते ॥113॥

चतुर्थ–चौथे; श्लोकेर-श्लोक का; अर्थ–अर्थ; हैल–था; सुनिश्चिते-निश्चित रूप में; अवतीर्ण हैला-अवतरित हुए; गौर-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; प्रेम-ईश्वर प्रेम; प्रकाशिते-प्रकट करने के लिए।

अनुवाद

इस प्रकार मैंने चौथे श्लोक का अर्थ निश्चित कर दिया है। गौरांग महाप्रभु ईश्वर के अनन्य प्रेम का प्रचार करने के लिए अवतार के रूप में प्रकट हुए।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥114॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों पर; यार–जिनकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत ग्रन्थ; कहे-कहता है; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए, सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा से, मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत, आदि लीला के "श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य के बाह्य कारण" का वर्णन करने वाले तृतीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय चार

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य के गुह्य कारण

चैतन्य-चरितामृत महाकाव्य के इस अध्याय में कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने इस बात पर बल दिया है कि भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी तीन प्रमुख प्रयोजनों के कारण प्रकट हुए थे। पहला प्रयोजन था श्रीकृष्ण के साथ दिव्य प्रेम का आदान-प्रदान करने वाली प्रमुख गोपी श्रीमती राधारानी की स्थिति का आस्वादन करना। भगवान् कृष्ण श्रीमती राधारानी के साथ दिव्य प्रेम-व्यापार के विनिमय के आगार हैं। इन प्रेम-व्यापारों का विषय स्वयं भगवान् हैं और राधारानी आश्रय हैं। इस प्रकार विषयरूप भगवान् ने आश्रय- पद पर स्थित राधारानी के प्रेम-भाव का आस्वादन करना चाहा।

उनके प्राकट्य का दूसरा कारण था, स्वयं अपने दिव्य माधुर्य रस को समझना। भगवान् कृष्ण पूर्णतया मधुर हैं। कृष्ण के प्रति राधारानी का आकर्षण सर्वोत्कृष्ट है और उस आकर्षण का अनुभव करने तथा अपने ही दिव्य माधुर्य को समझने के लिए उन्होंने राधारानी की मनोवृत्ति स्वीकार की।

चैतन्य महाप्रभु के प्रकट होने का तीसरा कारण था, राधारानी द्वारा आस्वादित आनन्द का उपभोग करना। भगवान् ने सोचा कि राधारानी निस्सन्देह उनके सान्निध्य का उपभोग कर रही थीं और वे राधारानी का सान्निध्य उपभोग कर रहे थे, किन्तु आध्यात्मिक युगल के मध्य दिव्य रस का विनिमय श्रीकृष्ण की अपेक्षा श्रीमती राधारानी को अधिक आनन्द प्रदान करता था। श्रीमती राधारानी को कृष्ण के सान्निध्य में कहीं अधिक दिव्य आनन्द प्राप्त होता था, जिसे वे राधा का स्थान ग्रहण किये बिना नहीं समझ सकते थे। किन्तु श्रीकृष्ण के लिए श्रीमती राधारानी की तरह आनन्द प्राप्त कर पाना असम्भव था, क्योंकि वे इस पद से पूर्णतया अपरिचित थे। कृष्ण दिव्य पुरुष हैं और राधारानी दिव्य स्त्री हैं। अतएव कृष्ण को प्रेम करने के दिव्य आनन्द को जानने के लिए भगवान् कृष्ण स्वयं चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने श्रीमती राधारानी के भावों तथा उनकी शारीरिक कान्ति को ग्रहण किया।

भगवान् श्री चैतन्य इन्हीं गुह्य इच्छाओं को पूरा करने एवं हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे / हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे के कीर्तन की विशेष महत्ता का प्रचार करने तथा अद्वैत प्रभु के आवाहन को पूरा करने के लिए प्रकट हुए। ये गौण कारण थे।

श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी भगवान् श्री चैतन्य के विश्वस्त भक्तों में प्रधान थे। उनकी डायरी के आलेखों से भगवान् के इन गुह्य प्रयोजनों का पता चला है। इन उद्घाटनों की पुष्टि श्रील रूप गोस्वामी की विविध प्रार्थनाओं तथा श्लोकों द्वारा हुई है।

यह अध्याय भी कामवासना तथा प्रेम के अन्तर को विशेष रूप से बताने वाला है। कृष्ण तथा राधा के प्रेम-व्यापार का विनिमय भौतिक कामवासना से सर्वथा भिन्न है। अतएव लेखक ने उनमें स्पष्ट भेद किया है।

श्री-चैतन्य-प्रसादेन तद्रूपस्य विनिर्णयम् ।

बालोऽपि कुरुते शास्त्रं दृष्ट्वा व्रज-विलासिनः ॥1॥

श्री-चैतन्य-प्रसादेन–श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से; तत्-उनके; रूपस्य-रूप का; विनिर्णयम्-पूर्ण निश्चय; बाल-बालक; अपि-भी; कुरुते-करता है; शास्त्रम्-शास्त्र; दृष्ट्वा-देखकर; व्रज-विलासिनः-जो व्रज लीला का आनन्द लेते हैं।

अनुवाद

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से एक मूर्ख बालक भी शास्त्रों की दृष्टि के अनुसार व्रज-लीलाओं के भोक्ता भगवान् कृष्ण के वास्तविक स्वभाव का पूर्ण वर्णन कर सकता है।

तात्पर्य

इस संस्कृत श्लोक का अर्थ वही समझ सकता है, जिसे चैतन्य महाप्रभु की अहैतुकी कृपा प्राप्त हो चुकी हो। परमेश्वर होने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण दृष्टि के भौतिक उपकरणों से प्रत्यक्ष नहीं हो सकते। वे अभक्तों के बौद्धिक करतबों के जवाब में प्रकट न होने का अधिकार आरक्षित रखते हैं। इतने पर भी एक छोटा बालक भी श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से श्रीकृष्ण को एवं वृन्दावन भूमि में उनकी दिव्य लीलाओं को सरलता से समझ सकता है।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानंद की जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैताचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

चतुर्थ श्लोकेर अर्थ कैल विवरण।

पञ्चम श्लोकेर अर्थ शुन भक्त-गण ॥ 3॥

चतुर्थ-चौथे; श्लोकेर-श्लोक के; अर्थ-अर्थ; कैल-किया; विवरण–विवरण; पञ्चम–पाँचवें; श्लोकेर-श्लोक के; अर्थ-अर्थ; शुन-कृपया सुनो; भक्त-गण-हे भक्तों।

अनुवाद

मैंने चतुर्थ श्लोक के अर्थ का वर्णन किया है। अब, हे भक्तों! कृपा करके पाँचवे श्लोक की व्याख्या सुनो।

मूल-श्लोकेर अर्थ करिते प्रकाश।

अर्थ लागाइते आगे कहिये आभास ॥4॥

मूल-मूल; श्लोकेर-श्लोक के; अर्थ-अर्थ; करिते-करने के लिए; प्रकाश-प्राकट्य; अर्थ-अर्थ; लागाइते-स्पर्श करना; आगे-पहले; कहिये-मैं कहूँगा; आभास-संकेत।

अनुवाद

मूल श्लोक की व्याख्या करने के लिए मैं पहले इसका अर्थ बताऊँगा।

चतुर्थ श्लोकेर अर्थ एइ कैल सार।

प्रेम-नाम प्रचारिते एइ अवतार ॥5॥

चतुर्थ-चौथे; श्लोकेर-श्लोक के; अर्थ–अर्थ; एइ–यह; कैल-दिया; सार-सार; प्रेम-भगवत् प्रेम; नाम-पावन नाम; प्रचारिते-प्रचार करने के लिए; एइ–यह; अवतार–अवतार।

अनुवाद

मैंने चतुर्थ श्लोक का सार रूपी अर्थ दे दिया है-यह अवतार (श्री चैतन्य महाप्रभु) पवित्र नाम के कीर्तन का प्रचार करने तथा भगवत्प्रेम के प्रसार के लिए होता है।

सत्य एइ हेतु, किन्तु एहो बहिरङ्ग।

आर एक हेतु, शुन, आछे अन्तरङ्ग ॥ 6 ॥

सत्य-सत्य; एइ–यह; हेतु-कारण; किन्तु किन्तु; एहो–यह; बहिरङ्ग–बाह्य; आर-अन्य; एक-एक; हेतु-कारण; शुन-कृपया सुनो; आछे-है; अन्तरङ्ग–आन्तरिक।

अनुवाद

यद्यपि यह सच है, किन्तु यह तो भगवान् के अवतार का बाह्य कारण है। कृपा करके भगवान् के आविर्भाव का एक अन्य कारण-गुह्य कारण-भी सुनें।

तात्पर्य

इस ग्रंथ के तीसरे अध्याय के चौथे श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि चैतन्य महाप्रभु कृष्ण-प्रेम तथा उनके दिव्य पवित्र नाम, हरे कृष्ण के कीर्तन को वितरित करने के लिए अवतरित हुए। यह उनके आविर्भाव का गौण प्रयोजन था। वास्तविक प्रयोजन भिन्न है, जैसाकि हम इस अध्याय में देखेंगे।

पूर्वे येन पृथिवीर भार हरिबारे ।

कृष्ण अवतीर्ण हैला शास्त्रेते प्रचारे ॥7॥

पूर्वे-प्राचीन काल में; येन-जैसे; पृथिवीर-पृथ्वी का; भार–भार, बोझ; हरिबारे-हरने के लिए; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतीर्ण-अवतीर्ण; हैला–हुए; शास्त्रेते-शास्त्र; प्रचारे-घोषणा करते हैं।

अनुवाद

शास्त्र यही घोषणा करते हैं कि इसके पूर्व भगवान् कृष्ण पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतरित हुए थे।

स्वयं-भगवानेर कर्म नहे भार-हरण ।

स्थिति-कर्ता विष्णु करेन जगत्पालन ॥8॥

स्वयम्-भगवानेर-मूल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का; कर्म-कार्य; नहे-नहीं है; भार-हरण-भार हरना; स्थिति-कर्ता-पोषक; विष्णु-भगवान् विष्णु; करेन-करते हैं; जगत्-पालन-जगत् का पालन-पोषण।

अनुवाद

किन्तु यह भार उतारना पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का कार्य नहीं है। पालनकर्ता भगवान् विष्णु ही ब्रह्माण्ड की रक्षा करते हैं।

किन्तु कृष्णेर येइ हय अवतार-काल ।

भार-हरण-काल ताते हइल मिशाल ॥9॥

किन्तु-किन्तु; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; येइ-वह जो; हय है; अवतार–अवतार का; काल-काल; भार-हरण-भार हरना; काल-काल; ताते-उसमें; हइल-हो गया; मिशाल-मिश्रण।

अनुवाद

किन्तु संसार का भार उतारने का काल कृष्ण के अवतार-काल के साथ मिश्रित हो गया।

तात्पर्य

भगवद्गीता से हमें जानकारी मिलती है कि भगवान् समय समय पर काल के प्रभाव से नष्ट हो चुकी आध्यात्मिक संस्कृति के उद्धार के लिए प्रकट होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण द्वापर युग के अन्त में मानव समाज की आध्यात्मिक संस्कृति को पुनर्जीवित करने और अपनी दिव्य लीलाओं को व्यक्त करने के लिए प्रकट हुए थे। विष्णु सृजित विश्व का पालन करने हेतु अधिकृत भगवान् हैं और वे ही प्रधान अधिष्ठाता भी हैं, जो सृष्टि के अनुचित प्रशासन को ठीक करते हैं। किन्तु श्रीकृष्ण आदि

भगवान् हैं। उनका अवतार ऐसे प्रशासनिक सामंजस्य के लिए नहीं, अपितु अपनी दिव्य लीलाओं का प्रदर्शन करने और पतितात्माओं को भगवद्धाम की ओर आकृष्ट करने के लिए होता है।

किन्तु पिछले द्वापर युग के अन्त में प्रशासनिक सुधार का समय एवं श्रीकृष्ण के आविर्भाव का समय एक हो गया। अतएव जब श्रीकृष्ण प्रकट हुए, तो पालनकर्ता भगवान् विष्णु भी उन्हीं में मिल गये, क्योंकि परम पुरुष भगवान् के सारे अंश उनके आविर्भाव के समय उन्हीं में मिल जाते हैं।

पूर्ण भगवानवतरे येइ काले ।

आर सब अवतार ताँते आसि' मिले ॥10॥

पूर्ण–पूर्ण; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; अवतरे-अवतरित होते हैं; येइ-वह; काले-उस समय; आर-अन्य; सब-सब; अवतार–अवतार; ताँते–उनमें; आसि'-आकर; मिले-मिलते हैं।

अनुवाद

जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अवतरित होते हैं, तब भगवान् के अन्य सारे अवतार उनमें आकर मिल जाते हैं।

नारायण, चतुर्व्यह, मत्स्याद्यवतार ।

युग-मन्वन्तरावतार, व्रत आछे आर ॥11॥

सबे आसि' कृष्ण-अङ्गे हय अवतीर्ण ।

ऐछे अवतरे कृष्ण भगवान्पूर्ण ॥12॥

नारायण-भगवान् नारायण; चतुः-व्यूह-चतुर्दूह; मत्स्य-आदि-मत्स्य आदि; अवतार–अवतार; युग-मन्व्-अन्तर-अवतार-युग तथा मन्वंतर अवतार; ग्रत–जितने; आछे-हैं; आर-अन्य; सबे-सब; आसि-आकर; कृष्ण-अड़े-भगवान् कृष्ण के शरीर में; हय हैं; अवतीर्ण-अवतीर्ण; ऐछे-इस प्रकार; अवतरे-अवतरित होते हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; पूर्ण–पूर्ण।

अनुवाद

भगवान् नारायण, चार मूल विस्तार (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध), मत्स्य तथा अन्य लीला अवतार, युगावतार तथा मन्वन्तर अवतार-तथा अन्य जितने सारे अवतार हैं-वे सभी कृष्ण के शरीर में अवतरित होते हैं। इस प्रकार पूर्ण भगवान्, साक्षात् श्रीकृष्ण प्रकट होते

अतएव विष्णु तखन कृष्णेर शरीरे ।

विष्णु-द्वारे करे कृष्ण असुर-संहारे ॥13॥

अतएव–अतएव; विष्णु भगवान् विष्णु; तखन-उस समय; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; शरीरे शरीर में; विष्णु-द्वारे- भगवान् विष्णु द्वारा; करे-करते हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; असुर-संहारे-असुरों का संहार।

अनुवाद

अतएव उस समय भगवान् विष्णु भगवान् कृष्ण के शरीर में उपस्थित रहते हैं और भगवान् कृष्ण उनके माध्यम से असुरों का संहार करते हैं।

आनुषङ्ग-कर्म एइ असुर-मारण ।

ये लागि' अवतार, कहि से मूल कारण ॥14॥

आनुषङ्ग-कर्म-गौण कार्य; एइ–यह; असुर-असुरों का; मारण-वध करना; ये-वह; लागि'–के लिए; अवतार–अवतार; कहि-मैं कहूँगा; से-वह; मूल-मूल; कारण-कारण।

अनुवाद

इस प्रकार असुरों का संहार तो गौण कार्य होता है। अब मैं कृष्ण के अवतार का मुख्य कारण बतलाऊँगा।

प्रेम-रस-निय़स करिते आस्वादन।

राग-मार्ग भक्ति लोके करिते प्रचारण ॥ 15॥

रसिक-शेखर कृष्ण परम-करुण।

एइ दुइ हेतु हैते इच्छार उद्गम ॥16॥

प्रेम-रस-ईश्वर प्रेम का रस; निर्यास-सार; करिते-करने के लिए; आस्वादन-आस्वादन; राग-मार्ग–स्वाभाविक आकर्षण का मार्ग; भक्ति-भक्ति; लोके-जगत् में; करिते-करने के लिए; प्रचारण–प्रचार; रसिक-शेखर-परम आनन्दित; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; परम-करुण-परम दयालु; एइ-ये; दुइ-दोनों; हेतु-कारण; हैते-से; इच्छार-इच्छा का; उद्गम-उद्गम।

अनुवाद

अवतार लेने की भगवान् की इच्छा दो कारणों से उत्पन्न हुई थी-वे भगवत्प्रेम रस के माधुर्य का आस्वादन करना चाह रहे थे और वे संसार में भक्ति का प्रसार रागानुगा (स्वयंस्फूर्त) अनुरक्ति

के स्तर पर करना चाहते थे। इस तरह वे परम प्रफुल्लित (रसिकशेखर) एवं परम करुणामय नाम से विख्यात हैं।

तात्पर्य

श्रीकृष्ण के अवतार के समय कृष्ण के भीतर स्थित विष्णु द्वारा कंस तथा जरासंध जैसे असुरों अथवा अश्रद्धालुओं का वध किया गया। श्रीकृष्ण द्वारा किया गया प्रतीत होने वाला इस प्रकार का वध एक नित्यकर्म जैसा सामान्य और प्रासंगिक कार्य था; किन्तु भगवान् कृष्ण के आविर्भाव का वास्तविक प्रयोजन व्रजभूमि में अपनी दिव्य लीलाओं का मंचन करना था और इस तरह जीव तथा परमेश्वर के बीच पारस्परिक प्रेम-विनिमय में दिव्य रस की चरम परिणति का प्रदर्शन करना था। रस के इस पारस्परिक विनिमय को रागभक्ति अर्थात् दिव्य अनुरागवश भगवान् की भक्तिमय सेवा कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सारे बद्धजीवों को बताना चाहते हैं कि वे विधिभक्ति अर्थात् निर्धारित नियमों के अन्तर्गत सम्पन्न की जाने वाली भक्तिमय सेवा की अपेक्षा रागभक्ति के द्वारा अधिक आकृष्ट होते हैं। वेदों (तैत्तिरीय उपनिषद् 2.7) में कहा गया है- रसो वै सः-परम सत्य समस्त प्रकार की प्रेम-भावनाओं के पारस्परिक विनिमय के आगार हैं। वे अहैतुक रूप से कृपामय हैं और वे हमें रागभक्ति का यह अधिकार प्रदान करना चाहते हैं। इस तरह वे अपनी अंतरंगा शक्ति से प्रकट हुए। वे किसी बाह्य शक्ति द्वारा अवतरित होने के लिए बाध्य नहीं किये गये।

ऐश्वर्य-ज्ञानेते सब जगत्मिश्रित ।

ऐश्वर्य-शिथिल-प्रेमे नाहि मोर प्रीत ॥ 17॥

ऐश्वर्य ज्ञानेते-ऐश्वर्य के ज्ञान से; सब-सब; जगत्-जगत्; मिश्रित-मिश्रित; ऐश्वर्य-शिथिल-ऐश्वर्य से शिथिल; प्रेमे-प्रेम में; नाहि-नहीं है; मोर-मेरी; प्रीत–प्रसन्नता।

अनुवाद

(भगवान् कृष्ण ने सोचा :) "सारा ब्रह्माण्ड मेरे ऐश्वर्य भाव से पूरित है, किन्तु उस ऐश्वर्य के भाव से दुर्बल हुआ प्रेम मुझे सन्तुष्ट नहीं करता।

आमारे ईश्वर माने, आपनाके हीन ।

तार प्रेमे वश आमि ना हइ अधीन ॥18॥

आमारे-मुझे; ईश्वर–ईश्वर; माने-मानते हैं; आपनाके–स्वयं; हीन-हीन; तार-उसका; प्रेमे-प्रेम से; वश–वश में होना; आमि-मैं; ना हइ–नहीं हूँ; अधीन–अधीन।

अनुवाद

यदि कोई मुझे परमेश्वर समझता है और अपने आपको मेरे अधीन मानता है, तो मैं न तो उसके प्रेम के अधीन होता हूँ, न ही उसका प्रेम मुझे वश में कर सकता है।

आमाके त' ये ये भक्त भजे येइ भावे ।

तारे से से भावे भजि,—ए मोर स्वभावे ॥19॥

आमाके-मुझे; त'–निश्चित रूप से; ये ये-जो जो; भक्त-भक्त; भजे–पूजा करते हैं; येइ-जो; भावे-भाव में; तारे-उसे; से से-उसी; भावे-भाव में; भजि-मैं प्रतिदान करता हूँ, आदान प्रदान करता हूँ; ए-यह; मोर-मेरे; स्वभावे-स्वभाव में।

अनुवाद

“मेरा भक्त जिस भी दिव्य रस में मेरी पूजा करता है, उसी भाव में मैं उसके साथ आदान-प्रदान करता हूँ। यह मेरा सहज स्वभाव है।

तात्पर्य

भगवान् अपने सहज स्वभाव के कारण भक्तों के समक्ष उनमें अन्तर्निहित भक्ति के अनुसार प्रकट होते हैं। वृन्दावन की लीलाओं से यह प्रदर्शित हो चुका है कि यद्यपि लोग प्रायः आदरपूर्वक भगवान् को पूजते हैं, किन्तु भगवान् तो तब अधिक प्रसन्न होते हैं, जब भक्त उन्हें अपना प्रिय पुत्र, निजी सखा या अपने प्रियतम के रूप में मानता है और ऐसे स्वाभाविक स्नेह के साथ उनकी सेवा करता है। ऐसे दिव्य सम्बन्धों से भगवान् प्रेम के अधीनस्थ पात्र बन जाते हैं। ऐसा शुद्ध भगवत्प्रेम न तो व्यर्थ की भक्तिहीन इच्छाओं से दूषित होता है, न ही सकाम कर्म या शुष्क ज्ञान से मिश्रित होता है। यह शुद्ध और सहज भगवत्प्रेम होता है, जो परम अवस्था में स्वतः स्फुरित होता है। यह भक्ति ऐसे अनुकूल वातावरण में सम्पन्न होती है, जो भौतिक स्नेह से मुक्त होता है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

मम वत्मनुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥20॥

ये-सब जो; यथा-जैसे; माम्-मेरे; प्रपद्यन्ते-शरणागत होते हैं; तान्–उन्हें; तथा-वैसे; एव-ही; भजामि-प्रतिदान देता हूँ; अहम्-मैं; मम-मेरा; वर्म-मार्ग; अनुवर्तन्ते–अनुगमन करते हैं; मनुष्याः - सारे मनुष्य; पार्थ-हे पार्थ; सर्वशः-सभी प्रकार से।

अनुवाद

“मेरे भक्तजन जिस किसी रूप में मेरी शरण में आते हैं, मैं उन्हें उसी के अनुसार पुरस्कृत करता हूँ। हे पृथापुत्र, सारे लोग सभी प्रकार से मेरे पथ का अनुसरण करते हैं।'

तात्पर्य

भगवद्गीता (4.11) में भगवान् कृष्ण पुष्टि करते हैं कि पहले (कुरुक्षेत्र युद्ध से लगभग 12 करोड़ वर्ष पूर्व) उन्होंने सूर्यदेव को गीता का गूढ़ ज्ञान बतलाया था। यह सन्देश गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा आगे प्राप्त होता गया, किन्तु कालक्रम में जब यह श्रृंखला किसी तरह टूट गई, तो भगवान् श्रीकृष्ण फिर से प्रकट हुए और उन्होंने भगवद्गीता का उपदेश अर्जुन को प्रदान किया। उस समय भगवान् ने यह श्लोक अपने मित्र अर्जुन से कहा था।

मोर पुत्र, मोर सखा, मोर प्राण-पति ।

एइ-भावे येइ मोरे करे शुद्ध-भक्ति ॥21॥

आपनाके बड़ माने, आमारे सम-हीन ।

सेइ भावे हइ आमि ताहार अधीन ॥22॥

मोरमेरा; पुत्र-पुत्र; मोर-मेरा; सखा-मित्र; मोर-मेरे; प्राण-पति-जीवन के स्वामी; एइ भावे-इस प्रकार; येइ-वे जो; मोरे-मुझे; करे-करते हैं; शुद्ध-भक्ति-शुद्ध भक्ति; आपनाके-स्वयं; बड़-बड़ा; माने-वह मानता है; आमारे-मुझे; सम-समान; हीनया हीन, निम्न; सेइ भावे-उसी प्रकार; हइ-हूँ; आमि-मैं; ताहार-उसके; अधीन-अधीन।

अनुवाद

“यदि कोई मुझे अपना पुत्र, अपना मित्र या अपना प्रेमी मानकर और अपने आपको महान् एवं मुझको अपने समान या अपने से निम्न मानकर मेरी शुद्ध प्रेमाभक्ति करता है, तो मैं उसके अधीन हो जाता हूँ।

तात्पर्य

चैतन्य-चरितामृत में तीन प्रकार की भक्तियों का वर्णन हुआ है- भक्ति (साधारण भक्ति), शुद्ध भक्ति तथा विद्ध भक्ति (मिश्रित भक्ति)।

जब भक्ति किसी भौतिक प्रयोजन से-सकाम कर्म, ज्ञान या योग के उद्देश्य से की जाती है, तो यह मिश्रित या विद्ध भक्ति कहलाती है। भगवद्गीता में भक्तियोग के अतिरिक्त कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा ध्यानयोग का भी वर्णन हुआ है। योग का अर्थ है परमेश्वर से जुड़ना, जो केवल भक्ति के माध्यम से सम्भव है। भक्ति में परिणत होने वाले सकाम कर्म, दार्शनिक तर्कवितर्क तथा योगाभ्यास क्रमशः कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा ध्यानयोग कहलाते हैं। किन्तु ऐसी भक्ति तीन प्रकार के भौतिक कर्मों से मिश्रित रहती है।

जो लोग शरीर की पहचान आत्मा के रूप में करते हैं, उनके लिए पुण्यकर्म या कर्मयोग की संस्तुति की जाती है। जो लोग मन की पहचान आत्मा रूप में करते हैं, उनके लिए दार्शनिक चिन्तन या ज्ञानयोग की संस्तुति की जाती है। किन्तु आध्यात्मिक स्तर पर स्थित होने वाले भक्तों को मिश्रित (विद्ध) भक्ति की भौतिक धारणाओं की आवश्यकता नहीं होती। ऐसी मिश्रित भक्ति का सीधा उद्देश्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति प्रेम नहीं है। अतएव प्रामाणिक शास्त्रों के अनुसार सम्पन्न की जाने वाली भक्ति ऐसी विद्ध भक्ति से श्रेष्ठतर होती है, क्योंकि यह सभी प्रकार के भौतिक कल्मष से मुक्त

होती है। यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्रसन्न करने मात्र के उद्देश्य से कृष्णभावनामृत में सम्पन्न की जाती है।

जो लोग भगवान् से स्वयंस्फूर्त प्रेम करते हैं और भौतिक लाभ नहीं चाहते, वे आकृष्ट भक्त कहलाते हैं। वे भगवान् की सेवा में स्वतः आकृष्ट होते हैं और स्वरूपसिद्ध महात्माओं के चरणचिह्नों पर चलते हैं। शुद्ध भगवत्प्रेम से प्रकट हुई उनकी शुद्ध भक्ति प्राधिकृत शास्त्रों के विधि-विधानों को पार कर जाती है। कभी-कभी प्रेमानुभूति विधि-विधानों को पार कर जाती है, लेकिन ऐसी अनुभूति पूर्णतया आध्यात्मिक स्तर पर होती है और इसकी नकल नहीं की जा सकती। विधि-विधानों से सामान्य भक्त ईश्वर के पूर्ण प्रेम की अवस्था तक ऊपर उठ जाता है। कृष्ण के लिए शुद्ध प्रेम ही शुद्ध भक्ति की पूर्णता है। और शुद्ध भक्ति रागानुगा भक्ति से अभिन्न है।

वैकुण्ठ-लोकों में विधि-विधानों का त्रुटिरहित पालन किया जाता है। इन नियमों का कड़ाई से पालन करने पर मनुष्य वैकुण्ठ-लोकों को प्राप्त कर सकता है। किन्तु रागानुगा भक्ति अर्थात् स्वयंस्फूर्त शुद्ध प्रेममयी सेवा तो केवल कृष्ण-लोक में दृष्टिगत होती है।

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।

दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥23॥

मयिमेरी; भक्तिः-भक्ति; हि-निश्चित रूप से; भूतानाम्-जीवों का; अमृतत्वाय-शाश्वत जीवन; कल्पते-लाता है; दिष्ट्या-सौभाग्य से; यत्-जो; आसीत्-था; मत्-मेरे लिए; स्नेहः-स्नेह; भवतीनाम्-आप सबका; मत्-मेरा; आपनः-पाना।

अनुवाद

"जीवों द्वारा मेरे प्रति की गई भक्ति उनके सनातन जीवन को पुनरुज्जीवित करती है। हे व्रजबालाओं, मेरे प्रति तुम्हारा स्नेह तुम्हारा सौभाग्य है, क्योंकि इसी एकमात्र साधन से तुम लोगों ने मेरा अनुग्रह प्राप्त किया है।"

तात्पर्य

शुद्ध भक्ति का प्रतिनिधित्व व्रजभूमि (वृन्दावन) के निवासियों के कार्यों द्वारा होता है। सूर्यग्रहण के अवसर पर भगवान् द्वारका से आये और समन्त-पञ्चक स्थान पर वृन्दावनवासियों से मिले। यह भेंट व्रजभूमि की बालाओं के लिए अत्यन्त वेदनामयी थी, क्योंकि भगवान् कृष्ण उन लोगों को बाह्य रूप से त्यागकर द्वारका में रहने चले गये थे। किन्तु भगवान् ने यह श्लोक (भागवत 10.82.44) कहकर व्रज की बालाओं की शुद्ध भक्ति के लिए कृतज्ञता प्रदर्शित की।

माता मोरे पुत्र-भावे करेन बन्धन ।

अतिहीन-ज्ञाने करे लालन पालन ॥24॥

माता-माता; मोरे-मुझे; पुत्र-भावे-पुत्र के भाव में; करेन-करती है; बन्धन-बन्धन; अति-हीन-ज्ञाने-अत्यन्त असहाय सोचकर; करे-करती है; लालन-पालन; पालन-लालन, संरक्षण।

अनुवाद

"मेरी माता कभी-कभी अपने पुत्र के रूप में मुझे बाँध देती है। वह मुझे अत्यन्त असहाय समझकर मेरा लालन-पालन करती है।

सखा शुद्ध-सख्ये करे, स्कन्धे आरोहण ।

तुमि कोन्बड़ लोक,—तुमि आमि सम ॥ 25 ॥

सखा–मित्र; शुद्ध-सख्ये-शुद्ध मित्रता में; करे–करता है; स्कन्धे कन्धों पर; आरोहण-चढ़कर; तुमि-तुम; कोन्-क्या; बड़-बड़ा; लोक-मनुष्य; तुमि-तुम; आमि-मैं; सम-वही।

अनुवाद

"मेरे मित्र शुद्ध मैत्री के कारण मेरे कन्धों पर यह कहते हुए चढ़ जाते हैं कि, 'तुम किस तरह के बड़े व्यक्ति हो? तुम और हम समान हैं।'

प्रिया यदि मान करि' करये भर्सन।

वेद-स्तुति हैते हरे सेइ मोर मन ॥26॥

प्रिया-प्रेमिका; यदि यदि; मान करि'-रूठ जाना; करये करती हैं; भर्सन-डाँटना; वेद-स्तुति–वैदिक स्तुतियाँ; हैते–से; हरे-हर लेता है; सेइ-वह; मोर-मेरा; मन-मन।

अनुवाद

यदि मेरी प्रियतमा रूठकर मेरी भत्र्सना करती है, तो वह वेदों की पावन स्तुतियों से बढ़कर मेरे मन का हरण कर लेती है।

तात्पर्य

उपनिषदों के अनुसार सारे जीव परम पुरुष भगवान् पर आश्रित हैं। जैसाकि कहा गया है (कठोपनिषद् 5.3)-नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम् एको बहूनां यो विदधाति कामान्–एक सनातन व्यक्ति द्वारा अन्य सारे सनातन जीवों का पालन किया जाता है। चूँकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अन्य सारे जीवों का पालन करते हैं, अतएव वे जीव उनके आश्रित रहते हैं। यहाँ तक कि प्रेम-व्यापार के आदान-प्रदान के समय भी भक्त उन पर आश्रित रहते हैं।

किन्तु अत्यन्त शुद्ध दिव्य प्रेम के विनिमय के अवसर पर कभी-कभी आश्रित भक्त प्रधान पुरुष के ऊपर भी प्रभुत्व जमाना चाहता है। जो कोई प्रेमपूर्वक भगवान् से उनके माता-पिता के रूप में व्यवहार करता है, वह कभी-कभी भगवान् के पद का भी अतिक्रमण कर जाता है। इसी प्रकार उनकी प्रेमिकाएँ भी कभी-कभी भगवान् के पद से आगे बढ़ जाती हैं। किन्तु ऐसे प्रयास उच्चतम प्रेम के प्रतीक हैं। केवल शुद्ध प्रेम से ही भगवान् पर आश्रित प्रेमी भगवान् की भर्त्सना करता है। भगवान् इस भर्त्सना का आनन्द लेते हुए इसे बहुत ही प्रेम से स्वीकार करते हैं। स्वाभाविक प्रेम के प्रदर्शन से ऐसे कार्य अत्यन्त मनोरंजक बन जाते हैं। आदरपूर्वक भगवान् की पूजा करते समय ऐसा सहज प्रेम प्रकट नहीं हो पाता, क्योंकि भक्त भगवान् को अपने से श्रेष्ठ मानता है।

भक्ति के विधि-विधान तो उनके लिए हैं, जिनमें ईश्वर का सहज प्रेम जाग्रत नहीं हुआ है। जब सहज प्रेम जागृत उत्पन्न हो जाता है, तब सारे विधि-विधान गौण हो जाते हैं और तब ईश्वर तथा भक्त के बीच शुद्ध प्रेम प्रकट होता है। यद्यपि प्रेम की ऐसी स्थिति में भक्त कभी-कभी भगवान् से श्रेष्ठ जान पड़ता है या विधि-विधानों का उल्लंघन करता प्रतीत होता है, किन्तु ऐसे व्यवहार भय तथा सम्मान से युक्त विधि-विधानों के माध्यम से प्रकट होने वाले सामान्य व्यवहारों से कहीं अधिक उन्नत होते हैं। जो भक्त भगवान् के प्रेम में पूरी तरह अनुरक्त होने के कारण समस्त उपाधियों से वास्तव में मुक्त होता है, वह ईश्वर के प्रति स्वयंस्फूर्त रागानुग प्रेम प्रकट करता है, जो विधि-विधानों से युक्त भक्ति से सदैव श्रेष्ठ होता है।

प्रेमी तथा प्रेमिका के बीच प्रयुक्त होने वाली अनौपचारिक भाषा शुद्ध स्नेह की परिचायक है। जब भक्तगण अपने प्रियतम को अत्यन्त आदर के पात्र के रूप में पूजते हैं, तब स्वयंस्फूर्त प्रेमभावों का अभाव दृष्टिगोचर होता है। जब नवदीक्षित भक्त उन वैदिक निर्देशों का पालन करता है, जो भगवान् के शुद्ध प्रेम से रहित भक्तों को नियंत्रित करते हैं, तो वह ईश्वर के प्रति स्वयंस्फूर्त प्रेम प्रदर्शित

करने वाले भक्त की तुलना में ऊपर से अधिक सम्माननीय लग सकता है। किन्तु वस्तुतः ऐसा रागानुग प्रेम, विधि-भक्ति से कहीं अधिक श्रेष्ठ होता है। ऐसा शुद्ध भगवत्प्रेम कम स्नेही भक्त द्वारा की गई सम्मान-युक्त भक्ति से सभी प्रकार से अधिक महिमामय होता है।

एइ शुद्ध-भक्त लञा करिमु अवतार ।

करिब विविध-विध अद्भुत विहार ॥27॥

वैकुण्ठाद्ये नाहि ये ये लीलार प्रचार ।

से से लीला करिब, याते मोर चमत्कार ॥28॥

एइ-ये; शुद्ध-भक्त-शुद्ध भक्त; लञा–लेकर; करिमु-मैं करूँगा; अवतार-अवतार; करिब–मैं करूँगा; विविध-विध-विविध प्रकार; अद्भुत-अद्भुत; विहार-लीलाएँ; वैकुण्ठ-आद्ये-वैकुण्ठ लोकों में; नाहि-नहीं; ये ये-जो जो; लीलार–लीलाओं की; प्रचार-प्रचार; से से–नहीं; लीला-लीलाएँ; करिब–मैं करूँगा; याते-जिनमें; मोर–मेरा; चमत्कार-चमत्कार।

अनुवाद

“मैं इन शुद्ध भक्तों को अपने साथ लेकर अवतरित हुँगा और अनेक प्रकार की ऐसी अद्भुत क्रीड़ाएँ करूँगा, जो वैकुण्ठ में भी अज्ञात हैं। मैं ऐसी ऐसी लीलाओं का प्रसार करूँगा, जो स्वयं मुझे भी आश्चर्यचकित करने वाली होंगी।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में भगवान् कृष्ण अपने भक्तों को शुद्ध भक्ति की अवस्था तक क्रमशः विकास करने की शिक्षा देते हैं। इस तरह वे समय समय पर अपने उत्कृष्ट दर्शन तथा उपदेशों में चित्रित विविध अद्भुत लीलाओं में भाग लेने के लिए भक्त के रूप में अवतरित होते हैं।

आध्यात्मिक आकाश में असंख्य वैकुण्ठ ग्रह हैं और इन सबमें भगवान् अपने शाश्वत भक्तों द्वारा सम्पन्न आदरभावयुक्त भक्ति को स्वीकार करते हैं। अतएव भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सर्वाधिक गुह्य लीलाएँ प्रदर्शित करते हैं, जिनका आनन्द वे दिव्य जगत् में लेते हैं। ऐसी लीलाएँ इतनी आकर्षक होती हैं कि वे भगवान् तक को आकर्षित करती हैं और इस तरह वे भगवान् श्री चैतन्य के रूप में उनका आस्वादन करते हैं।

मो-विषये गोपी-गणेर उपपति-भावे ।

योग-माया करिबेक आपन-प्रभावे ॥29॥

मो-विषये-मेरे सम्बन्ध में; गोपी-गणेर-गोपियों का; उपपति–विवाहित स्त्री का प्रेमी; भावे-भाव में; योग-माया–योग माया, भगवान् कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति; करिबेक-करूँगा; आपन-उनके अपने; प्रभावे-प्रभाव से।

अनुवाद

“योगमाया के प्रभाव से गोपियों में यह भाव प्रेरित होगा कि मैं उनका उपपति हूँ।

तात्पर्य

योगमाया उस अन्तरंगा शक्ति का नाम है, जो भगवान् को आत्मविस्मृति कराती है और उन्हें विभिन्न दिव्य रसों में स्थित उनके शुद्ध भक्तों के प्रेम का विषय बनाती है। यही योगमाया शक्ति

व्रज की गोपियों के मन में एक आध्यात्मिक भाव उत्पन्न करती है, जिससे वे कृष्ण को अपना उपपति समझती हैं। इस भाव की तुलना भौतिक अवैध सम्बन्धों (कामवासना) से कभी नहीं की जा सकती। इसका यौन-मनोविज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं होता, यद्यपि ऐसे भक्तों का शुद्ध प्रेम यौन-व्यापार जैसा प्रतीत होता है। मनुष्य को यह निश्चित रूप से स्मरण रखना होगा कि इस विराट् भौतिक जगत् में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं होती, जिसका वास्तविक प्रतिरूप आध्यात्मिक जगत् में न पाया जाता हो। सारा भौतिक जगत् दिव्यता से उत्पन्न है। भौतिक जगत में प्रेमी-प्रेमिका का वासनात्मक प्रेम दिव्य वास्तविकता का विकृत प्रतिबिम्ब मात्र होता है। किन्तु इसे अध्यात्म-विज्ञान की पर्याप्त शिक्षा प्राप्त किये बिना नहीं समझा जा सकता।

आमिह ना जानि ताहा, ना जाने गोपी-गण ।

दुँहार रूप-गुणे दुँहार नित्य हरे मन ॥ 30॥

आमिह-मैं; ना जानि–नहीं जानूँगा; ताहा-वह; ना जाने–नहीं जानेंगी; गोपी-गण-गोपियाँ; दुँहार-दोनों के; रूप-गुणे-रूप तथा गुण; दुँहार-दोनों के; नित्य-हमेशा; हरे-हर लेते हैं; मन–मन।

अनुवाद

इसे न तो गोपियाँ जान सकेंगी, न मैं, क्योंकि हमारे मन सदैव एक-दूसरे के सौन्दर्य तथा गुणों पर मोहित रहेंगे।

तात्पर्य

आध्यात्मिक आकाश में जितने भी वैकुण्ठ ग्रह हैं, उनमें नारायण अधिष्ठाता देव हैं। उनके भक्तों के रूप उन्हीं के जैसे होते हैं और वहाँ पर भक्ति का विनिमय आदर के स्तर पर होता है। किन्तु

इन समस्त वैकुण्ठ ग्रहों के भी ऊपर गोलोक या कृष्णलोक है, जहाँ आदि भगवान् कृष्ण अपनी ह्लादिनी शक्ति को मुक्त प्रेम-व्यवहारों में पूर्ण रूप से प्रकट करते हैं। चूँकि भौतिक जगत् के भक्त इन लीलाओं के विषय में लगभग कुछ भी नहीं जानते, अतएव भगवान् उन्हें ये लीलाएँ दिखाने की इच्छा करते हैं।

गोलोक वृन्दावन में परकीय-रस के नाम से एक प्रकार का प्रेम-विनिमय होता है। यह एक विवाहिता स्त्री का अपने पति को छोड़कर अन्य व्यक्ति के लिए आकर्षण जैसा है। भौतिक जगत् में इस प्रकार का सम्बन्ध बहुत खराब माना जाता है, क्योंकि यह आध्यात्मिक जगत् के परकीय रस का विकृत प्रतिबिम्ब है, जहाँ इसे सर्वोच्च प्रेम-व्यापार माना जाता है। भक्त तथा भगवान् के बीच ऐसी भावनाएँ योगमाया के प्रभाव से प्रस्तुत की जाती हैं। भगवद्गीता (9.13) बतलाती है कि सर्वोच्च स्तर के भक्त देवमाया या योगमाया के संरक्षण में रहते हैं- महात्मानस्तु मां पार्थ दैवी प्रकृतिमाश्रिताः। जो वास्तव में महात्मा हैं, वे सदैव भगवान् की सेवा में लगे रहकर कृष्णभावना में पूर्णत: निमग्न रहते हैं। वे दैवी प्रकृति या योगमाया के संरक्षण में रहते हैं। योगमाया ऐसी स्थिति ला देती है कि जिसमें भक्त मात्र कृष्ण से प्रेम करने के लिए सारे विधि-विधानों का अतिक्रमण करने को तैयार हो जाता है। भक्त स्वभाव से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति आदर के नियमों का उल्लंघन करना नहीं चाहता, किन्तु योगमाया के प्रभाव से वह भगवान् से अधिक अच्छे ढंग से प्रेम करने के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाता है।

जो लोग भौतिक शक्ति के वशीभूत होते हैं, वे योगमाया के कार्यकलापों को तनिक भी समझ नहीं सकते, क्योंकि बद्धजीव शायद ही भगवान् तथा भक्त के बीच के शुद्ध विनिमय को समझ सके। किन्तु विधि-विधानों के अन्तर्गत सम्पन्न की गई भक्ति द्वारा मनुष्य काफी ऊपर उठ सकता है और तब योगमाया के अधीन होकर शुद्ध प्रेम के व्यापारों को समझने लगता है।

योगमाया शक्ति द्वारा प्रेरित आध्यात्मिक प्रेमभाव में श्रीकृष्ण तथा व्रज की बालाएँ दोनों ही आध्यात्मिक आनन्द में अपने आपको भूल जाते हैं। ऐसी विस्मृति के प्रभाव से गोपियों की मनमोहक सुन्दरता उन भगवान् की दिव्य तुष्टि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिन्हें भौतिक कामवासना से कोई सम्बन्ध नहीं होता। चूँकि भगवान् का आध्यात्मिक प्रेम सारी सांसारिकता से ऊपर है, अतएव बाहर से ऐसा लगता है कि गोपियाँ संसारी नैतिकता के नियमों का अतिक्रमण कर रही हैं। यह बात संसारी नैतिकतावादियों को निरन्तर परेशान करती रहती है। अतएव योगमाया भगवान् तथा उनकी लीलाओं को संसारी व्यक्तियों की आँखों से ओझल रखती है, जिसकी पुष्टि भगवद्गीता (7.25) में की गई है, जिसमें भगवान् कहते हैं कि वे हर एक के सामने प्रकट न होने का अधिकार सुरक्षित रखते हैं।

योगमाया के कार्य कभी भगवान् तथा गोपियों को प्रेम के आनन्दातिरेक में मिलाते हैं, तो कभी उनका विछोह कराते हैं। भगवान् के ये दिव्य प्रेम-व्यवहार परम सत्य के निराकार रूप में आबद्ध मायावादियों के लिए अकल्पनीय हैं। इसीलिए भगवान् संसारियों के समक्ष उन्हें सर्वोच्च आध्यात्मिक साक्षात्कार कराने के लिए स्वयं प्रकट होते हैं और स्वयं भी उस रस का आस्वादन करते हैं। भगवान् इतने दयालु हैं कि वे पतितात्माओं को अपने साथ भगवधाम वापस ले जाने के लिए स्वयं अवतरित होते हैं, जहाँ श्रृंगारिक भगवद्-प्रेमालापों का आस्वादन नित्य ही उनके सही रूप में किया जाता है। ऐसे प्रेमालाप उस विकृत कामवासना से भिन्न हैं, जिसे पतितात्मा अपनी रुग्ण अवस्था में पूजते हैं और उनमें लिप्त होते हैं। भगवान् इसलिए रासलीला प्रदर्शित करते हैं कि जिससे पतितात्मा अपनी रुग्ण नैतिकता तथा धार्मिकता का परित्याग करने के लिए प्रेरित हों और वास्तविकता भोगने के लिए भगवधाम के प्रति आकृष्ट हों। रासलीला को तत्त्व से समझने वाला

व्यक्ति निश्चित रूप से सांसारिक कामवासना से घृणा करेगा। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति के लिए उचित माध्यम द्वारा भगवान् की रासलीला का श्रवण उसे भौतिक काम-सुख से सर्वथा विरक्त कर देगा।

धर्म छाड़ि' रागे दुँहे करये मिलन।

कभु मिले, कभु ना मिले,—दैवेर घटन ॥ 31॥

धर्म छाड़ि'-धर्माचार त्यागकर; रागे-प्रेम में; दुँहे-दोनों; करये-करते हैं; मिलन-मिलन; कभु-कभी-कभी; मिले-वे मिलते हैं; कभु-कभी-कभी; ना मिले-वे नहीं मिलते हैं; दैवेर-भाग्य की; घटन–घटना।

अनुवाद

शुद्ध अनुरक्ति हमें नैतिक तथा धार्मिक कर्तव्यों की कीमत पर भी मिलाएगी। भाग्य कभी हमें पास ला देगा, तो कभी हमें विलग कर देगा।

तात्पर्य

गोपियाँ अर्धरात्रि में कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि सुनकर उनसे मिलने के लिए घरों से बाहर आ गईं। इसी को लेकर श्रील रूप गोस्वामी ने एक सुन्दर श्लोक (देखिए आदिलीला, 5.224) की रचना की है, जिसमें चाँदनी रात में यमुना के तट पर खड़े अपने होठों पर बाँसुरी धारण किये हुए गोविन्द नामक सुन्दर किशोर का वर्णन है। जो लोग समाज, मैत्री तथा प्रेम की भौतिकतावादी जीवन-शैली भोगना चाहते हैं, उन्हें गोविन्द का दर्शन करने यमुना-तट पर नहीं जाना चाहिए। भगवान् कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि इतनी मधुर है कि इससे गोपियाँ अपने परिजनों के सारे सम्बन्धों को भूल गईं और अर्धरात्रि में दौड़कर कृष्ण के पास पहुँच गईं।

इस प्रकार से गृहत्याग करके गोपियों ने गृहस्थ जीवन के वैदिक विधानों का उल्लंघन किया। इससे यह सूचित होता है कि जब कृष्ण के प्रति प्रेम के सहज भाव पूर्णतया प्रकट होते हैं, तब भक्त परम्परागत सामाजिक नियमों की उपेक्षा कर सकता है। भौतिक जगत् में हम उपाधियों से बँधे हुए हैं, किन्तु शुद्ध भक्ति तो तब शुरू होती है, जब मनुष्य सारी उपाधियों से मुक्त हो जाता है। जब कृष्ण के लिए प्रेम जाग्रत होता है, तब सारी उपाधियों को पार कर लिया जाता है।

श्रीकृष्ण का अपने सर्वाधिक प्रिय अंशों के प्रति स्वाभाविक आकर्षण ऐसे उत्साह को जन्म देता है, जिससे श्रीकृष्ण तथा गोपियाँ परस्पर मिलने को बाध्य हो जाते हैं। इस दिव्य उत्साह को अनुभव करने के लिए प्रेमी तथा प्रेमिका के बीच वियोग की भावना होनी आवश्यक है। भौतिक यातनाओं की दशा में कोई भी व्यक्ति वियोग का दुःख नहीं चाहता। किन्तु आध्यात्मिक जगत में यही वियोग परम स्वभाव का होने के कारण दिव्य रूप धारण करके प्रेम के बन्धन को दृढ़ बनाता है और प्रेमी तथा प्रेमिका में मिलने की इच्छा को बढ़ाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से वियोग वास्तविक मिलन से अधिक आस्वाद्य है, क्योंकि मिलन में प्रेमी तथा प्रेमिका दोनों के उपस्थित रहने के कारण प्रबल उत्सुकता का अभाव रहता है।

एइ सब रस-निर्यास करिब आस्वाद ।

एइ द्वारे करिब सब भक्तेरे प्रसाद ॥ 32॥

एइ-ये; सब-सब; रस-निर्यास-रसों का सार; करिब–मैं करूँगा; आस्वाद-आस्वादन; एइ द्वारे-इससे; करिब–मैं करूँगा; सब-सब; भक्तेरे-भक्तों पर; प्रसाद-कृपा।

अनुवाद

मैं इन सारे रसों के सार का आस्वादन करूँगा और इस तरह सारे भक्तों पर अनुग्रह करूँगा।

व्रजेर निर्मल राग शुनि' भक्त-गण।

राग-मार्गे भजे येन छाड़ि' धर्म-कर्म ॥ 33॥

व्रजेर-व्रज का; निर्मल-निर्मल; राग-प्रेम; शुनि'–सुनकर; भक्त-गण-भक्तगण; राग-मार्गे–सहज प्रेम के पथ पर; भजे–वे पूजा करते हैं; येन–ताकि; छाड़ि'–छोड़कर; धर्म-धर्म; कर्म–सकाम कर्म।

अनुवाद

"तब व्रजवासियों के शुद्ध प्रेम के विषय में सुनकर भक्तगण समस्त धार्मिक अनुष्ठानों एवं सकाम कर्मों को त्याग कर रागानुग प्रेम के मार्ग में मेरी पूजा करेंगे।"

तात्पर्य

अनेक स्वरूप-सिद्ध आत्माओं ने, यथा रघुनाथ दास गोस्वामी तथा राजा कुलशेखर ने जोरदार शब्दों में संस्तुति की है कि हमें नैतिकता तथा धार्मिकता के सारे परम्परागत नियमों का उल्लंघन करके भी भगवान् के प्रति स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न करना चाहिए। श्री रघुनाथ दास गोस्वामी ने, जो वृन्दावन के छः गोस्वामियों में से एक हैं, मनः शिक्षा नामक अपनी प्रार्थनाओं में लिखा है कि मनुष्य को पूरे मनोयोग से केवल राधा-कृष्ण की पूजा करनी चाहिए। न धर्म नाधर्मं श्रुतिगणनिरुक्तं किल कुरु-मनुष्य को वैदिक अनुष्ठान करने या मात्र विधि-विधानों का पालन करने में अधिक रुचि नहीं रखनी चाहिए।

इसी प्रकार राजा कुलशेखर ने मुकुन्दमाला स्तोत्र (5) नामक अपने ग्रंथ में लिखा है :

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे

यद्भाव्यं तद्भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपम् ।

एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि

त्वत् पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥

“मुझे न तो धार्मिक अनुष्ठान करने, न ही पृथ्वी का राज्य ग्रहण करने के प्रति आकर्षण है। मुझे इन्द्रिय-भोग की भी परवाह नहीं है-वे मेरे पूर्वकर्मों के अनुसार आते और जाते रहें। मेरी एकमात्र इच्छा यही है कि मैं भगवान् के चरणकमलों की भक्तिमय सेवा में स्थिर रहूँ, भले ही मुझे यहाँ बारम्बार जन्म क्यों न लेना पड़े।”

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रितः ।

भजते तादृशीः क्रीड़ा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ 34॥

अनुग्रहाय-कृपा दिखाने हेतु; भक्तानाम्-भक्तों को; मानुषम्-मानुषी; देहम्-शरीर; आश्रितः स्वीकार करके; भजते–वे भोगते हैं; तादृशीः-ऐसी; क्रीड़ाः-लीलाएँ, याः-जिन्हें; श्रुत्वा-सुनकर; तत्-परः- पूर्णतया तत्पर; भवेत् हो जाना चाहिए।

अनुवाद

“कृष्ण अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए अपना सनातन नर रूप प्रकट करते हैं तथा अपनी लीलाएँ करते हैं। ऐसी लीलाएँ सुन लेने के बाद मनुष्य को उनकी सेवा में लग जाना चाहिए।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.33.36) से लिया गया है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य स्वरूप के असंख्य विस्तार हैं, जो आध्यात्मिक जगत् में नित्य विद्यमान हैं। यह भौतिक जगत् आध्यात्मिक जगत् का विकृत प्रतिबिम्ब मात्र है; आध्यात्मिक जगत् में प्रत्येक वस्तु दोषरहित रूप में प्रकट होती है। वहाँ पर हर वस्तु अपने मूल रूप में होती है और काल के प्रभाव से मुक्त रहती है। आध्यात्मिक जगत् की परिस्थितियों को काल न तो बिगाड़ सकता है, न ही उनमें बाधक बन सकता है। वहाँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विभिन्न स्वरूप अपनी वैधानिक स्थिति में स्थित विभिन्न जीवों द्वारा पूजे जाते हैं। आध्यात्मिक जगत् में सब कुछ शुद्ध सत्त्व है। किन्तु भौतिक जगत् का सत्त्वगुण रजो तथा तमोगुण से कलुषित रहता है।

यह कहावत कि भक्ति के लिए मनुष्य जीवन सबसे उपयुक्त है, इसलिए यह विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि केवल इसी जीवन में जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपने शाश्वत सम्बन्ध को पुनः स्थापित कर सकता है। भौतिक जगत् में योनियों के चक्र में मानव-योनि सर्वोच्च मानी जाती है। यदि कोई इस सर्वोच्च भौतिक रूप का लाभ उठा सकता है, तो वह भगवान् की भक्ति की स्थिति को पुनः प्राप्त कर सकता है।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अवतार सारी योनियों में होते हैं, यद्यपि मनुष्य के लिए ऐसा सोच पाना असम्भव है। भगवान् की लीलाएँ जीवों के विभिन्न प्रकार के शरीरों की अनुभव-क्षमता के अनुसार वर्गीकृत होती हैं। जब भगवान् मनुष्य रूप में प्रकट होते हैं, तब वे मानव समाज को सर्वाधिक कृपा प्रदान करते हैं। तभी मानव जाति भगवान् की विविध प्रकार की नित्य सेवा में संलग्न होने का अवसर प्राप्त करती है।

भगवान् की किसी विशेष लीला के वर्णन की स्वाभाविक विशेष प्रशंसा जीव की वैधानिक स्थिति की सूचक है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य-ये कृष्ण के साथ पाँच मूल सम्बन्ध

हैं। इनमें से अनेक भावों से समृद्ध माधुर्य सम्बन्ध वह सर्वोच्च पूर्ण अवस्था है, जिसमें भक्त को सर्वाधिक आस्वाद्य रस प्राप्त होता है।

विकास क्रम की विविध स्थितियों में जीवों से विविध भावों का आदान-प्रदान करने के लिए भगवान् विविध अवतारों में-मत्स्य, कूर्म, वराह, परशुराम, राम, बुद्ध आदि में प्रकट होते हैं। माधुर्य प्रेम, जिसे परकीय-रस कहते हैं, वह भगवान् कृष्ण तथा उनके भक्तों द्वारा प्रदर्शित अद्वितीय प्रेम की पूर्णता है।

तथाकथित भक्तों का एक सहजिया वर्ग भगवान् की लीलाओं का अनुकरण करने का प्रयास करता है, यद्यपि उन्हें भगवान् की ह्लादिनी शक्ति के विस्तारों के माधुर्य प्रेम का कोई ज्ञान नहीं रहता। उनके इस छिछले बनावटी अनुकरण से भगवान् के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध की प्रगति के पथ में तबाही हो सकती है। भौतिक कामवासना में लिप्त होने की तुलना शुद्ध सात्विक आध्यात्मिक प्रेम से कभी भी नहीं की जा सकती। सहजियों के कार्यकलाप उन्हें इन्द्रिय तथा मन के भौतिक कल्मष में और नीचे गिराने वाले होते हैं। कृष्ण की दिव्य लीलाएँ उन भगवान् अधोक्षज के प्रति सनातन दास्य भाव को प्रदर्शित करने वाली हैं, जो भौतिक इन्द्रियों की अनुभूति से परे हैं। भौतिकतावादी बद्धजीव दिव्य प्रेम-विनिमय को नहीं समझते, किन्तु वे भक्ति के नाम पर इन्द्रियतृप्ति में लिप्त होना चाहते हैं। जो गैरजिम्मेदार लोग राधा-कृष्ण की लीलाओं को सामान्य व्यापार समझते हैं, वे परमेश्वर के कार्यकलापों को कभी नहीं समझ सकते। रासनृत्य की व्यवस्था कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति योगमाया द्वारा की जाती है और यह भौतिकता से ग्रस्त व्यक्तियों की समझ से परे है। विकृत मनोवृत्ति वाले सहजिया लोग तत्परत्वेन निर्मलम् एवं तत्परो भवेत् जैसे वचनों की गलत व्याख्या करते हैं और अपने अज्ञान का कीचड़ दिव्यता पर उछालना चाहते हैं। वे तादृशी: क्रीड़ाः की गलत व्याख्या करके भगवान् कृष्ण का अनुकरण करने के बहाने कामवासना में लिप्त होना चाहते हैं।

किन्तु मनुष्य को चाहिए कि वह प्रामाणिक गोस्वामियों की शिक्षाओं द्वारा इन शब्दों के सार को समझे। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने छः गोस्वामियों की स्तुति में ऐसे आध्यात्मिक व्यापारों को समझ पाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की है।

रूप रघुनाथ पदे हइबे आकुति ।

कबे हाम बुझब से युगल पीरिति ।।

"जब मैं गोस्वामियों के साहित्य को समझने के लिए उत्सुक हूँगा, तभी मैं राधा तथा कृष्ण के दिव्य प्रेम-व्यापार को समझ सकेंगा।" दूसरे शब्दों में, जब तक कोई गोस्वामी की परम्परा के अन्तर्गत शिक्षा नहीं लेता, तब तक वह राधा तथा कृष्ण को नहीं समझ सकता। बद्धजीव स्वभाव से ईश्वर के आध्यात्मिक अस्तित्व को समझने में अरुचि दिखलाते हैं और यदि वे भौतिकतावाद में लिप्त रहकर भगवान् की लीलाओं की दिव्यता को जानने का प्रयत्न करते भी हैं, तो वे निश्चित रूप से सहजियों की ही तरह भूल करेंगें।

'भवेत्' क्रिया विधिलिं, सेइ इहा कय ।

कर्तव्य अवश्य एइ, अन्यथा प्रत्यवाय ।। 35।।

भवेत्-हो जाए; क्रिया-क्रिया; विधि-लिं-अनिवार्यता का भाव; सेइ-वह; इहा-यहाँ; कय–कहता है; कर्तव्य-करने योग्य; अवश्य–अवश्य; एइ–यह; अन्यथा-अन्यथा; प्रत्यवाय-क्षति।

अनुवाद

यहाँ पर 'भवेत्' क्रिया अनिवार्यता के भाव में प्रयुक्त हुई है और यह हमें बतलाती है कि इसे अवश्य किया जाना चाहिए। इसकी अवहेलना का अर्थ होगा कर्तव्य का परित्याग।

तात्पर्य

यह अनिवार्यता का भाव शुद्ध भक्तों पर लागू होता है। नवदीक्षित इन व्यापारों को तभी समझ सकेंगे, जब वे किसी दक्ष गुरु के निर्देशन में नियमित भक्ति के पद को प्राप्त कर लेंगे। तब वे भी राधा तथा कृष्ण के प्रेम-व्यापारों को सुनने के अधिकारी हो सकेंगे।

जब तक मनुष्य भौतिक बद्ध जीवन में है, तब तक नैतिक तथा अनैतिक कार्यों में कठोर अनुशासन की आवश्यकता रहती है। परम जगत् दिव्य है और ऐसे भेदभाव से मुक्त है, क्योंकि उसमें उन्माद का होना सम्भव नहीं है। किन्तु इस भौतिक जगत् में कामवासना के वेग के कारण नैतिक तथा अनैतिक चरित्र में अन्तर करने की आवश्यकता रहती है। आध्यात्मिक जगत् में यौन क्रियाएँ नहीं होतीं। वहाँ पर प्रेमी तथा प्रेमिका में शुद्ध दिव्य प्रेम एवं शुद्ध आनन्द का ही आदान-प्रदान होता है।

जो व्यक्ति रस के दिव्य सौन्दर्य द्वारा आकृष्ट नहीं हो पाया है, वह भौतिक आकर्षण की ओर निश्चित रूप से अध:पतित होगा और भौतिक कल्मष में कर्म करता हुआ नरक के अंधतम क्षेत्र में चला जायेगा। किन्तु राधा-कृष्ण के माधुर्य-प्रेम को समझकर वह तथाकथित पुरुष तथा स्त्री के भौतिक प्रेम के बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार यदि कोई कृष्ण के प्रति नन्द-यशोदा के वात्सल्य-प्रेम को समझ लेता है, तो वह सांसारिक वात्सल्य-प्रेम में पड़ने से बच जायेगा। यदि कोई कृष्ण को अपना सर्वोपरि सखा मान लेता है, तो उसके लिए भौतिक मैत्री निरर्थक हो जायेगी और उसे संसारी झगड़ालुओं की तथाकथित मैत्री से निराश नहीं होना पड़ेगा। यदि वह कृष्ण के सेवक बनने के भाव द्वारा आकृष्ट होता है, तो उसे भौतिक स्थिति की पतित अवस्था में भौतिक शरीर की सेवा इस झूठी आशा से नहीं करनी होगी कि वह भविष्य में स्वामी बनेगा। इसी प्रकार जो शान्त रस (तटस्थ अवस्था) में कृष्ण की महानता का दर्शन करता है, उसे निर्विशेषवादी या शून्यवादी दर्शन

की तथाकथित मुक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि वह कृष्ण की दिव्य प्रकृति द्वारा आकृष्ट नहीं होता है, तो फिर वह भौतिक भोग द्वारा अवश्य आकृष्ट होगा और पाप तथा पुण्यकर्मों के बन्धन में पड़कर एक शरीर से दूसरे में देहान्तर करता हुआ भौतिक जगत् में बना रहेगा। केवल कृष्णभावनामृत में मनुष्य जीवन की चरम पूर्णता को प्राप्त कर सकता है।

एइ वाञ्छा यैछे कृष्ण-प्राकट्य-कारण ।

असुर-संहार—आनुषङ्ग प्रयोजन ॥ 36॥

एइ मत चैतन्य-कृष्ण पूर्ण भगवान् ।

युग-धर्म-प्रवर्तन नहे ताँर काम ॥ 37॥

एइ-यह; वाञ्छा-इच्छा; यैछे-जैसे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के प्राकट्य-प्राकट्य के लिए; कारण-कारण; असुर-संहार-असुर का संहार; आनुषङ्ग–गौण; प्रयोजन-कारण; एइ मत-इस तरह; चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु के रूप में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; पूर्ण–पूर्ण; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; युग-धर्म-युग का धर्म; प्रवर्तन-प्रवर्तन; नहे-नहीं है; ताँर–उनकी; काम-इच्छा।

अनुवाद

जिस प्रकार ये इच्छाएँ श्रीकृष्ण के प्राकट्य की मूल कारण हैं और असुरों का वध मात्र प्रासंगिक आवश्यकता होती है, उसी प्रकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य द्वारा युगधर्म का प्रवर्तन प्रासंगिक है।

कोन कारणे यबे हैल अवतारे मन ।

युग-धर्म-काल हैल से काले मिलन ॥ 38॥

कोन कारणे-किसी कारण वश; यबेजब; हैल–हुआ; अवतारे-अवतार में; मन-इरादा; युग-धर्म-युगधर्म के लिए; काल-काल; हैल-था; से काले-उस समय; मिलन-मिलन।

अनुवाद

जब भगवान् ने अन्य कारण से अवतरित होना चाहा, तो युगधर्म के प्रवर्तन का भी समय आकर उपस्थित हुआ।

दुइ हेतु अवतरि' लञा भक्त-गण।

आपने आस्वादे प्रेम-नाम-सङ्कीर्तन ॥ 39॥

दुइ-दो; हेतु-कारण; अवतरि'–अवतार लेना; लञा-लेकर; भक्त-गण-भक्तगण; आपने–स्वयं; आस्वादे-आस्वादन करते हैं; प्रेम-भगवत् प्रेम; नाम-सङ्कीर्तन–तथा नाम संकीर्तन।

अनुवाद

इस प्रकार भगवान् दो कारणों से अपने भक्तों के साथ अवतरित हुए और उन्होंने नाम संकीर्तन द्वारा प्रेमरूपी अमृत का आस्वादन किया।

सेइ द्वारे आचण्डाले कीर्तन सञ्चारे।

नाम-प्रेम-माला गाँथि' पराइल संसारे ॥40॥

सेइ द्वारे-उसीसे; आ-चण्डाले–चण्डालों में भी; कीर्तन-कीर्तन; सञ्चारे-वे संचार करते हैं; नाम-पावन नामों का; प्रेम–तथा ईश्वर प्रेम का; माला-माला; गाँथि'-गूंथकर; पराइल-उन्होंने पहना दी; संसारे-समस्त भौतिक संसार।

अनुवाद

इस तरह उन्होंने अछूतों में भी कीर्तन का विस्तार किया। उन्होंने पवित्र नाम तथा प्रेम की माला गूंथकर सारे भौतिक संसार को पहना दी।

एइ-मत भक्त-भाव करि' अङ्गीकार ।

आपनि आचरि' भक्ति करिल प्रचार ॥41॥

एइ-मत-इस तरह; भक्त-भाव-भक्त की स्थिति; करि'-करके; अङ्गीकार-स्वीकार; आपनि–स्वयं; आचरि'-आचरण करके; भक्ति-भक्ति; करिल-किया; प्रचार-प्रचार।

अनुवाद

इस प्रकार, भक्त का भाव धारण करके उन्होंने भक्ति का प्रचार किया और साथ में स्वयं उसका अभ्यास भी किया।

तात्पर्य

जब रूप गोस्वामी प्रयाग (इलाहाबाद) में श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले, तो उन्होंने यह निवेदन करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार किया कि वे कृष्ण के अन्य सभी अवतारों से अधिक उदार हैं, क्योंकि वे कृष्ण-प्रेम का वितरण कर रहे थे। उनका उद्देश्य भगवत्प्रेम का विस्तार करना था। मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है भगवत्प्रेम की स्थिति को प्राप्त करना। श्री चैतन्य महाप्रभु ने किसी नई धर्म प्रणाली की खोज नहीं की, जैसाकि कभी-कभी लोग मान लेते हैं। धार्मिक प्रणालियाँ ईश्वर के अस्तित्व का दर्शन कराने के लिए हैं, जिनके पास सामान्यतः भौतिक वरदाता के रूप में पहुँचा जाता है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु का दिव्य उद्देश्य हर एक को भगवत्प्रेम वितरित

करना है। जो भी भगवान् को परमेश्वर के रूप में स्वीकार कर ले, वह हरे-कृष्ण के कीर्तन की विधि को अपनाकर भगवान् का प्रेमी बन सकता है। अतएव चैतन्य महाप्रभु सर्वाधिक उदार हैं। भक्ति का यह उदार प्रचार केवल स्वयं कृष्ण के लिए ही सम्भव है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण हैं।

भगवद्गीता में कृष्ण ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को आत्मसमर्पण करने के दर्शन की शिक्षा दी है। जो भगवान् को आत्मसमर्पण कर देता है, वह उनसे प्रेम करना सीखकर आगे प्रगति कर सकता है। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित कृष्णभावनामृत आन्दोलन विशेषतया उन लोगों के लिए है, जो हर वस्तु के नियामक भगवान् के अस्तित्व से अवगत हैं। उनका उद्देश्य लोगों को यह शिक्षा देना है कि दिव्य प्रेमाभक्ति में अपने आपको किस प्रकार लगायें। वे साक्षात् कृष्ण हैं, जो भक्त के पद से अपनी ही सेवा की शिक्षा देते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के सनातन रूप में भक्त की भूमिका को स्वीकार करना भगवान् का दूसरा अद्भुत गुण है। बद्धजीव अपने अपूर्ण प्रयास से भगवान् तक नहीं पहुँच सकता, अतएव यह अद्भुत बात है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने श्री गौरांग के रूप में सबके लिए अपने पास तक पहुँचना सरल बना दिया है।

स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने चैतन्य महाप्रभु को राधारानी के भाव से युक्त स्वयं कृष्ण अथवा राधा तथा कृष्ण का सम्मिलित रूप कहा है। भगवान् चैतन्य का उद्देश्य दिव्य प्रेम में कृष्ण के माधुर्य का आस्वादन करना था। वे अपने आपको स्वयं कृष्ण मानने की परवाह नहीं करते, क्योंकि वे राधारानी का पद चाहते हैं। हमें यह स्मरण में रखना चाहिए। तथाकथित भक्तों का एक वर्ग जो नदिया-नागरी या गौर-नागरी नाम से जाना जाता है, यह नकल उतारता है कि उनमें चैतन्य महाप्रभु के प्रति गोपियों का भाव है, किन्तु वे भूल जाते हैं कि भगवान् चैतन्य ने कभी भी अपने आपको भोक्ता कृष्ण के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, अपितु भोग्य या कृष्ण-भक्त के रूप में ही प्रस्तुत किया। प्रामाणिक होने का दावा करने वाले अनधिकारी व्यक्तियों की कपोल कल्पनाएँ चैतन्य महाप्रभु को

मान्य नहीं हैं। गौर-नागरी जैसे वर्ग की अभिव्यक्तियाँ भगवान् चैतन्य के उद्देश्य को निष्ठापूर्वक पूरा करने में बाधक ही हैं। भगवान् चैतन्य निस्सन्देह स्वयं कृष्ण हैं और वे सदैव श्रीमती राधारानी से अभिन्न हैं। किन्तु भगवान् ने जिस विप्रलम्भ भाव को गुह्य कारणवश धारण किया, उसे सेवा के नाम पर छेड़ना नहीं चाहिए। संसारी व्यक्ति को आध्यात्मिक विषयों में अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और इस तरह भगवान् को रुष्ट नहीं करना चाहिए। मनुष्य को इस प्रकार की भक्ति सम्बन्धी अनियमितता के प्रति सदा सतर्क रहना चाहिए। भक्त का उद्देश्य यह नहीं है कि कृष्ण के लिए वह उपद्रव खड़ा करे। जैसाकि श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है, भक्ति तो आनुकूल्येन अर्थात् कृष्ण के अनुकूल होती है। कृष्ण के प्रतिकूल चलना भक्ति नहीं है। कंस कृष्ण का शत्रु था। वह सदैव कृष्ण का चिन्तन करता था, किन्तु शत्रु के रूप में ऐसा करता था। मनुष्य को इस प्रकार की तथाकथित प्रतिकूल सेवा से सदा बचना चाहिए।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने राधारानी की भूमिका स्वीकार की है और हमें इस पद का समर्थन करना चाहिए, जैसाकि स्वरूप दामोदर ने गम्भीरा में (पुरी में वह कमरा जिसमें चैतन्य महाप्रभु रहते थे) किया। वे श्री चैतन्य महाप्रभु को राधारानी की उन वियोग-भावनाओं का स्मरण हमेशा दिलाते रहते, जो श्रीमद्भागवत में वर्णित हैं और श्री चैतन्य महाप्रभु उनके इस सहयोग की प्रशंसा करते थे। किन्तु वे गौर-नागरी, जो श्री चैतन्य महाप्रभु को भोक्ता और अपने आपको उनके भोग्य के स्थान में रखते हैं, न तो श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा मान्य हैं, न उनके अनुयायियों द्वारा। नकल करने वाले इन मूर्खा को आशीर्वाद प्राप्त होना तो दूर, उल्टे ये पूर्णतया अलग पड़ जाते हैं। इनकी कल्पनाएँ श्री चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं। कृष्ण द्वारा दिव्य भोग के सिद्धान्त को राधारानी की भूमिका में कृष्ण के वियोग की दिव्य अनुभूतियों से नहीं मिलाया जा सकता।

दास्य, सख्य, वात्सल्य, आर ये शृङ्गार।

चारि प्रेम, चतुर्विध भक्त-इ आधार ॥42॥

दास्य-दासता; सख्य–मैत्री; वात्सल्य-वात्सल्य; आर-और; ये-वह; शृङ्गार-माधुर्य प्रेम; चारी–चार प्रकार; प्रेम-भगवत् प्रेम; चतुः-विध–चार प्रकार; भक्त-इ-भक्तगण; आधार–प्राप्तकर्ता, पात्र।

अनुवाद

चार प्रकार के भक्त भगवत्प्रेम के चार प्रकार के रसों के पात्र हैं। ये रस हैं-दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा श्रृंगार।

निज निज भाव सबे श्रेष्ठ करि' माने ।

निज-भावे करे कृष्ण-सुख आस्वादने ॥43॥

निज निज-अपने अपने; भाव-भाव; सबे-सब; श्रेष्ठ करि'–श्रेष्ठ करके; माने-मानता है; निज-भावे-अपने भाव में; करे-करता है; कृष्ण-सुख-भगवान् कृष्ण के साथ सुख; आस्वादने-आस्वादन।

अनुवाद

हर प्रकार का भक्त यह मानता है कि उसका भाव सर्वश्रेष्ठ है और इस प्रकार उस भाव में वह भगवान् कृष्ण के साथ परम सुख का आस्वादन करता है।

तटस्थ हइया मने विचार यदि करि ।

सब रस हैते शृङ्गारे अधिक माधुरी ॥44॥

तट-स्थ हइया-तटस्थ रहकर; मने-मन में; विचार-विचार; यदि-यदि; करि-करके; सब रस-सब रस; हैते–की अपेक्षा; शृङ्गारे-माधुर्य प्रेम में; अधिक–अधिक; माधुरी–मिठास।

अनुवाद

किन्तु यदि हम तटस्थ होकर इन भावों की तुलना करें, तो हम पायेंगे कि इनमें श्रृंगार रस ही अन्य सब मधुरताओं में सर्वश्रेष्ठ है।

तात्पर्य

भगवान् से दिव्य सम्बन्ध रखने में कोई न तो किसी से ऊँचा है न नीचा, क्योंकि निरपेक्ष क्षेत्र में सारी वस्तुएँ समान हैं। किन्तु इन सम्बन्धों के निरपेक्ष होने के उपरान्त भी उनमें आध्यात्मिक अन्तर होते हैं। अतएव माधुर्य-प्रेम के दिव्य सम्बन्ध (माधुर्य रस) को सर्वोच्च पूर्णता माना जाता है।

यथोत्तरमसौ स्वाद-विशेषोल्लासमय्यपि।

रतिर्वासनया स्वाद्वी भासते कापि कस्यचित् ॥ 45 ॥

यथा-उत्तरम्-एक के बाद एक; असौ-वह; स्वाद-विशेष-विशिष्ट स्वाद के; उल्लास-मयी-बढ़ती हुई; अपि-यद्यपि; रतिः-प्रेम; वासनया-विभिन्न वासना से; स्वाद्वी-मीठा; भासते-होता है; का अपि-कोई; कस्यचित्-किसी (भक्त) का।

अनुवाद

उल्लासमयी रति (प्रेम) विभिन्न स्वादों में, एक-दूसरे से बढ़कर, अनुभव की जाती है। किन्तु जिस रति का स्वाद क्रमशः उच्चतम होता है, वह माधुर्य-रस के रूप में प्रकट होती है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृत-सिन्धु (2.5.38) से लिया गया है।

अतएव मधुर रस कहि तार नाम ।

स्वकीया-परकीया-भावे द्वि-विध संस्थान ॥ 46॥

अतएव-अतएव; मधुर-मधुर; रस-रस; कहि-मैं कहता हूँ; तार-उसका; नाम-नाम; स्वकीया-स्वकीया (अपना); परकीया-तथा परकीया (दूसरे का) नामक; भावे-भाव में; द्वि-विध-दो प्रकार; संस्थान–अवस्थाएँ, स्थितियाँ।

अनुवाद

इसीलिए मैं इसे मधुर रस कहता हूँ। इसके भी दो विभाग हैं- स्वकीया अर्थात् विवाहित तथा परकीया अर्थात् अविवाहित प्रेम।

परकीया-भावे अति रसेर उल्लास ।

व्रज विना इहार अन्यत्र नाहि वास ॥47॥

परकीया-भावे-परकीया भाव में अथवा विवाह के अतिरिक्त माधुर्य सम्बन्ध; अति-बहुत अधिक; रसेर-रस की; उल्लास-वृद्धि; व्रज विना-व्रज बिना; इहार-इसका; अन्यत्र-अन्यत्र; नाहि-नहीं; वास–निवास।

अनुवाद

परकीया मधुर भाव में रस की अत्यधिक वृद्धि होती है। ऐसा प्रेम व्रज के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

व्रज-वधू-गणेर एइ भाव निरवधि ।

तार मध्ये श्री-राधाय भावेर अवधि ॥48॥

व्रज-वधू-गणेर-व्रज की वधुएँ; एइ-यह; भाव-भाव; निरवधि-असीम; तार मध्ये-उनके बीच; श्री-राधाय–श्रीमती राधारानी; भावेर-भाव की; अवधि–उच्चतम सीमा।

अनुवाद

यह भाव व्रजबालाओं में असीम है, किन्तु उनमें भी यह श्री राधा में अपनी पूर्णता को प्राप्त है।

प्रौढ़ निर्मल-भाव प्रेम सर्वोत्तम ।

कृष्णेर माधुर्य-रस-आस्वाद-कारण ॥49॥

प्रौढ़-परिपक्व; निर्मल-भाव-निर्मल भाव; प्रेम-प्रेम; सर्व-उत्तम-सर्वोत्तम; कृष्णेर- भगवान् कृष्ण का; माधुर्य-रस-माधुर्य रस के; आस्वाद-आस्वादन का; कारण-कारण।

अनुवाद

उनका शुद्ध परिपक्व प्रेम अन्य सभी के प्रेम को पार कर जाता है। उनका प्रेम कृष्ण द्वारा माधुर्य रस की मधुरता का आस्वादन किये जाने का कारण है।

अतएव सेइ भाव अङ्गीकार करि' ।

साधिलेन निज वाञ्छा गौराङ्ग-श्री-हरि ॥50॥

अतएव–अतएव; सेइ भाव-वह भाव; अङ्गीकार करि'–स्वीकार करके; साधिलेन-पूरी की; निज-अपनी; वाञ्छा-इच्छा; गौराङ्ग–चैतन्य महाप्रभु; श्री-हरि-श्री भगवान्।

अनुवाद

इसलिए गौरांग महाप्रभु ने, जो साक्षात् श्री हरि हैं, राधा के भावों को स्वीकार किया और इस तरह अपनी निजी इच्छाओं की पूर्ति की।

तात्पर्य

प्रेम के आदान-प्रदान के चार प्रकारों-दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य–में से माधुर्य परिपूर्ण माना जाता है। किन्तु माधुर्य रस को और दो विभागों में बाँटा गया है-स्वकीय तथा परकीय। विधिवत् विवाहित पति रूप में कृष्ण के साथ सम्बन्ध स्वकीय तथा उपपति के रूप में कृष्ण के साथ सम्बन्ध परकीय कहलाता है। दक्ष विवेचकों का निर्णय है कि परकीय रस की दिव्य अनुभूति श्रेष्ठ होती है, क्योंकि वह अधिक उल्लासमयी होती है। माधुर्य रस की यह अवस्था उनमें पाई जाती है, जिन्होंने तीव्र प्रेम में भगवान् को यह जानते हुए आत्मसमर्पण कर दिया है कि उपपति के साथ ऐसा अवैध प्रेम समाज द्वारा मान्य नहीं है। ऐसे भगवत्प्रेम में जो संकट निहित रहता है, वह इस भाव को उस सम्बन्ध से अधिक श्रेष्ठ बना देता है, जिसमें ऐसा संकट रहता ही नहीं। किन्तु ऐसे संकट की वैधता केवल दिव्य लोक में ही सम्भव है। ईश्वर के स्वकीय तथा परकीय माधुर्य रसों का भौतिक जगत् में कोई अस्तित्व नहीं होता और परकीय रस में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता, किन्तु वह केवल गोलोक वृन्दावन के एक विभाग वृन्दावन या व्रज में देखने को मिलता है।

कुछ भक्त सोचते हैं कि कृष्ण गोलोक वृन्दावन में निरन्तर उपभोग करते हैं और केवल कभी-कभी परकीय रस का भोग करने व्रज में आते हैं। किन्तु वृन्दावन के छः गोस्वामियों ने बतलाया है कि व्रज में कृष्ण की लीलाएँ गोलोक वृन्दावन की अन्य लीलाओं के ही समान शाश्वत हैं। व्रज गोलोक वृन्दावन का गुह्य अंश है। कृष्ण ने इस धरातल पर अपनी व्रज लीलाएँ प्रदर्शित कीं और ऐसी ही लीलाएँ गोलोक वृन्दावन स्थित व्रज में नित्य प्रदर्शित होती हैं, जहाँ परकीय रस का नित्य अस्तित्व है।

इस महाकाव्य के तृतीय अध्याय में श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने इस हकीकत को स्पष्ट स्वीकार किया है कि कृष्ण इस भौतिक जगत् में द्वापर युग के अन्त में वैवस्वत मनु के अट्ठाइसवें चतुर्युग में प्रकट होते हैं और अपने साथ व्रजधाम को लेकर आते हैं, जो उनकी सर्वोच्च लीलाओं का सनातन धाम है। जिस प्रकार भगवान् अपनी ही अन्तरंगा शक्ति द्वारा प्रकट होते हैं, उसी तरह वे अपनी उसी अन्तरंगा शक्ति के माध्यम से अपनी सारी साज-सामग्री भी। लेकर आते हैं। उन्हें किसी बाह्य सहायता की आवश्यकता नहीं होती। यहाँ चैतन्य चरितामृत में यह भी कहा गया है कि परकीय भाव केवल उसी दिव्य क्षेत्र में पाया जाता है, अन्यत्र नहीं। यह सर्वोच्च भाव दिव्य जगत् के गुह्यतम अंश में ही पाया जा सकता है, किन्तु भगवान् की अहैतुकी कृपा से हम उस अदृश्य व्रज की एक झलक प्राप्त कर सकते हैं।

व्रज में गोपियों द्वारा आस्वादन किया जाने वाला दिव्य रस श्रीमती राधारानी में सर्वोत्तम रूप में पाया जाता है। दिव्य माधुर्य रस को आत्मसात् करने की पराकाष्ठा श्रीमती राधारानी द्वारा प्रदर्शित की जाती है, जिनकी भावनाएँ स्वयं भगवान् की समझ से भी बाहर हैं। उनकी प्रेमाभक्ति की तीव्रता आनन्दातिरेक का सर्वोच्च रूप है। इस दिव्य रस के माध्यम से भगवान् के गुणों का आस्वादन करने में श्रीमती राधारानी अप्रतिम हैं। इसीलिए भगवान् ने श्री गौरांग महाप्रभु के रूप में

राधारानी का पद ग्रहण करना स्वीकार किया। तभी उन्होंने परकीय रस की सर्वोच्च अवस्था का आस्वादन किया, जैसा दिव्य धाम व्रज में व्यक्त होता है।

सुरेशानां दुर्गं गतिरतिशयेनोपनिषदां

मुनीनां सर्व-स्वं प्रणत-पटलीनां मधुरिमा ।

विनिर्मासः प्रेम्णो निखिल-पशु-पालाम्बुज-दृशां

स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥51॥

सुर-ईशानाम्-देवताओं के राजाओं का; दुर्गम्-किला, दुर्ग; गतिः-गति; अतिशयेन-भलीभाँति; उपनिषदाम्-उपनिषदों का; मुनीनाम्-मुनियों का; सर्व-स्वम्-सब कुछ; प्रणत-पटलीनाम्-भक्तों के समूहों का; मधुरिमा-मधुरता; विनिर्मासः-सार; प्रेम्णः-प्रेम का; निखिल–सब; पशु-पाला-ग्वालिनों का; अम्बुज-दृशाम्-कमलनयन वाले; सः–वे; चैतन्यः-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; किम्-क्या; मे-मेरा; पुनः पुनः; अपि-निश्चित रूप से; दृशोः-दो नेत्रों का; यास्यति–आयेंगे; पदम्-निवासस्थान।

अनुवाद

“भगवान् चैतन्य देवताओं के आश्रय, उपनिषदों के लक्ष्य, समस्त मुनियों के सर्वस्व, अपने भक्तों के सुन्दर आश्रय एवं कमल-नयनी गोपियों के प्रेम के सार हैं। क्या वे फिर से मुझे दिख सकेंगे?”

अपारं कस्यापि प्रणयि-जन-वृन्दस्य कुतुकी

रस-स्तोमं हृत्वा मधुरमुपभोक्तुं कमपि यः ।

रुचं स्वामावत्रे द्युतिमिह तदीयां प्रकटयन्

स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥52॥

अपारम्-असीम; कस्य अपि-किसी एक के; प्रणयि-जन-वृन्दस्य-प्रेमिकाओं के वृन्द के; कुतुकी-यह जो अद्भुत; रस-स्तोमम्-रसों का समूह; हृत्वा-चुराकर; मधुरम्-मधुर; उपभोक्तुम्-भोगने के लिए; कम् अपि किसी; यः-जो; रुचम्-चमक; स्वाम्-अपनी; आवत्रे-छुपकर; द्युतिम्-चमक; इह-यहाँ; तदीयाम्-उनसे सम्बन्धित; प्रकटयन्-प्राकट्य से; सः-वे; देवः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; चैतन्य-आकृतिः-चैतन्य महाप्रभु के रूपवाले; अतितराम्-बहुत अधिक; नः-हमारे ऊपर; कृपयतु कृपा करें।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण ने अपनी असंख्य प्रेमिकाओं में से एक (श्री राधा) के असीम अमृतमय प्रेम-रस का आस्वादन करना चाहा, अतएव उन्होंने चैतन्य महाप्रभु का स्वरूप धारण किया है। उन्होंने अपने कृष्ण-वर्ण को छिपाकर उनका (श्री राधा का) तेजमय पीत (गौर) वर्ण धारण कर उस प्रेम का आस्वादन किया है। वे भगवान् चैतन्य हमें अपना अनुग्रह प्रदान करें।"

तात्पर्य

श्लोक 51 तथा 52 श्रील रूप गोस्वामी कृत स्तवमाला से उधृत क्रमशः प्रथम श्री चैतन्याष्टक 2 तथा द्वितीय श्री चैतन्याष्टक 3 हैं।

भाव-ग्रहणेर हेतु कैल धर्म-स्थापन।

तार मुख्य हेतु कहि, शुन सर्व-जन ॥53॥

भाव-ग्रहणेर-भाव ग्रहण करने के; हेतु-कारण; कैल–किया; धर्म-धर्म; स्थापन–स्थापना करना; तार-उसका; मुख्य–मुख्य; हेतु-कारण; कहि-मैं कहता हूँ; शुन–कृपया सुनो; सर्व-जन-सब लोग।

अनुवाद

उल्लासमय प्रेम स्वीकार करना मुख्य कारण है, जिसके लिए वे प्रकट हुए और उन्होंने इस युग के लिए धर्म की पुनः स्थापना की। अब मैं उस कारण की व्याख्या करूँगा। कृपया हर कोई सुने।

मूल हेतु आगे श्लोकेर कैल आभास ।

एबे कहि सेइ श्लोकेर अर्थ प्रकाश ॥54॥

मूल हेतु-मूल कारण; आगे-आरम्भ में; श्लोकेर-श्लोक का; कैल-दिया; आभास-आभास; एबे-अब; कहि-मैं कहूँगा; सेइ-वह; श्लोकेर–श्लोक का; अर्थ-अर्थ; प्रकाश-प्रकट।

अनुवाद

उस श्लोक के विषय में संकेत करने के बाद, जिसमें भगवान् के अवतार लेने के प्रमुख कारण का वर्णन हुआ है, अब मैं उसका पूर्ण अर्थ प्रकट करूँगा।

राधा कृष्ण-प्रणय-विकृतिह्लादिनी शक्तिरस्माद्

एकात्मानावपि भुवि पुरा देह-भेदं गतौ तौ ।

चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तदद्वयं चैक्यमाप्तं

राधा-भाव-द्युति-सुवलितं नौमि कृष्ण-स्वरूपम् ॥55॥

राधा-श्रीमती राधारानी; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; प्रणय-प्रेम का; विकृतिः-रूपान्तर; ह्लादिनी शक्तिः–ह्लादिनी शक्ति; अस्मात्-इससे; एक-आत्मानौ-दोनों एक आत्मा हैं; अपि-यद्यपि; भुवि-पृथ्वी पर; पुरा–अनादि काल से; देह-भेदम्-पृथक् शरीर वाले; गतौ–प्राप्त किया; तौ-वे दोनों; चैतन्य-आख्यम्-श्री चैतन्य नाम वाले; प्रकटम्-प्रकट; अधुना-सम्प्रति, अब; तत्-द्वयम्-वे दोनों; च–तथा; ऐक्यम्-एक्य, एकता; आप्तम्-प्राप्त किया; राधा-श्रीमती राधारानी; भाव-भाव; द्युति-चमक; सुवलितम्-जो सुसज्जित हैं; नौमि मैं नमस्कार करता हूँ; कृष्ण-स्वरूपम्-श्रीकृष्ण के स्वरूप वाला।

अनुवाद

श्री राधा और कृष्ण के प्रेम-व्यापार भगवान् की अन्तरंगा ह्लादिनी शक्ति की दिव्य अभिव्यक्तियाँ हैं। यद्यपि राधा तथा कृष्ण अपने स्वरूपों में एक हैं, किन्तु उन्होंने अपने आपको शाश्वत रूप से पृथक् कर लिया है। अब ये दोनों दिव्य स्वरूप पुनः श्रीकृष्ण चैतन्य के रूप में संयुक्त हुए हैं। मैं उनको नमस्कार करता हूँ, क्योंकि वे स्वयं कृष्ण होकर भी श्रीमती राधारानी के भाव तथा अंगकान्ति को लेकर प्रकट हुए हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी की डायरी से लिया गया है। यह श्रीचैतन्य-चरितामृत के प्रथम चौदह श्लोकों में से पाँचवा श्लोक है।

राधा-कृष्ण एक आत्मा, दुइ देह धरि।

अन्योन्ये विलसे रस आस्वादन करि' ॥56॥

राधा-कृष्ण-राधा तथा कृष्ण; एक-एक; आत्मा-आत्मा; दुइ-दो; देह-शरीर; धरि–धारण किए हुए हैं; अन्योन्ये-एक दूसरे को; विलसे-आनन्द लेते हैं; रस-प्रेम रस; आस्वादन करि'–आस्वादन करते हुए।

अनुवाद

राधा तथा कृष्ण एक ही हैं, किन्तु उन्होंने दो शरीर धारण कर रखे हैं। इस प्रकार वे प्रेम-रस का आस्वादन करते हुए एक-दूसरे का उपभोग करते हैं।

तात्पर्य

भौतिकतावादियों के लिए राधा तथा कृष्ण के दोनों दिव्य व्यक्तित्व एक गुत्थी बने हुए हैं। श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी की डायरी से उधृत राधा तथा कृष्ण का उपर्युक्त विवरण संक्षिप्त व्याख्या है; किन्तु इन दोनों महान् व्यक्तियों के रहस्य को समझने के लिए महान् आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि चाहिए। एक व्यक्ति दो रूपों में आनन्द भोग रहा है। श्रीकृष्ण शक्तिमान हैं और श्रीमती राधारानी अन्तरंगा शक्ति हैं। वेदान्त दर्शन के अनुसार शक्ति तथा शक्तिमान में कोई अन्तर नहीं है, दोनों एक हैं। इन दोनों में अन्तर नहीं किया जा सकता, जिस प्रकार अग्नि को ऊष्मा से पृथक् नहीं किया जा सकता।

परम पूर्ण में जो कुछ भी है, वह सब सापेक्ष अस्तित्व में अचिन्त्य लगता है। अतएव सापेक्ष ज्ञान में शक्तिमान तथा शक्ति के एकत्व के इस सत्य को ग्रहण कर पाना कठिन है। श्री चैतन्य द्वारा प्रतिपादित अचिन्त्य-भेदाभेद तत्त्व का दर्शन ही एकमात्र साधन है, जिससे अध्यात्म की ऐसी गुत्थियाँ सुलझाई जा सकती हैं।

निस्सन्देह, राधारानी श्रीकृष्ण की अन्तरंगा शक्ति हैं और वे निरन्तर श्रीकृष्ण के आनन्द को बढ़ाती रहती हैं। निर्विशेषवादी इसे तब तक नहीं समझ सकते, जब तक वे किसी महाभागवत भक्त की सहायता न लें। "राधा" नाम ही बतलाता है कि वे श्रीकृष्ण के विलास की शाश्वत रूप से सर्वोच्च स्वामिनी हैं। इस तरह वे जीव की सेवा को श्रीकृष्ण तक पहुँचाने की माध्यम हैं। इसीलिए वृन्दावन के भक्त श्रीमती राधारानी की कृपा चाहते हैं, जिससे वे श्रीकृष्ण के प्रिय सेवक के रूप में स्वीकृत हो सकें।

श्री चैतन्य महाप्रभु लौह युग के बद्ध पतितात्माओं को भगवान् के सर्वोच्च दिव्य सम्बन्ध के नियम बतलाने के लिए उनके पास चलकर स्वयं जाते हैं। श्री चैतन्य के कार्यकलाप मुख्यतः उनकी अन्तरंगा शक्ति के ह्लादिनी अंश की भूमिका का निर्वाह करते हैं।

परम पूर्ण व्यक्तित्व श्रीकृष्ण दिव्य अस्तित्व, पूर्ण ज्ञान एवं पूर्ण आनन्द के सर्वशक्तिमान स्वरूप हैं। उनकी अन्तरंगा शक्ति सर्वप्रथम सत् के रूप में अर्थात् भगवान् के अस्तित्व-कार्य का विस्तार करने वाले अंश के रूप में प्रकट होती है। यही शक्ति पूर्ण ज्ञान प्रदर्शित करने पर चित् या सम्वित् कहलाती है, जो भगवान् के दिव्य रूपों का विस्तार करती है। अन्त में वही शक्ति आनन्द प्रदान करने के कारण ह्लादिनी कहलाती है। इस प्रकार भगवान् अपनी अन्तरंगी शक्ति को तीन दिव्य विभागों में प्रदर्शित करते हैं।

सेइ दुइ एक एबे चैतन्य गोसाञि ।

रस आस्वादिते दोंहे हैला एक-ठाञि ॥57॥

सेइ-ये; दुइ-दोनों; एक-एक; एबे-अब; चैतन्य गोसाञि-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; रस-रस; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; दोंहे दोनों; हैला-हो गये हैं; एक-ठाञि–एक देह।

अनुवाद

अब वे रसास्वादन हेतु श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में एक शरीर में प्रकट हुए हैं।

इथि लागि' आगे करि तार विवरण ।

याहा हैते हय गौरेर महिमा-कथन ॥58॥

इथि लागि'-इस के लिए; आगे-पहले; करि-मैं करूँगा; तार-उसका; विवरण-विवरण; याहा हैते–जिससे; हय-है; गौरेर–चैतन्य महाप्रभु का; महिमा-महिमा; कथन-वर्णन करना।

अनुवाद

अतएव मैं सर्वप्रथम राधा तथा कृष्ण की स्थिति स्पष्ट करूँगा। उसी वर्णन के द्वारा भगवान् चैतन्य की महिमा जानी जा सकेगी।

राधिका हयेन कृष्णेर प्रणय-विकार।

स्वरूप-शक्ति-'ह्लादिनी' नाम याँहार ॥59॥

राधिका-श्रीमती राधारानी; हयेन-हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; प्रणय-विकार-प्रेम की रूपान्तर; स्वरूप-शक्ति-निजी शक्ति; ह्लादिनी–ह्लादिनी; नाम-नामक; याँहार-जिनका।

अनुवाद

श्रीमती राधिका कृष्ण-प्रेम की रूपान्तर हैं। वे ह्लादिनी नामक उनकी अन्तरंगा शक्ति हैं।

ह्लादिनी कराय कृष्णे आनन्दास्वादन ।

ह्लादिनीर द्वारा करे भक्तेर पोषण ॥60॥

ह्लादिनी-ह्लादिनी शक्ति; कराय-करवाती है; कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; आनन्द-आस्वादन–आनन्द का आस्वादन; ह्लादिनीर द्वारा–ह्लादिनी शक्ति द्वारा; करे-करती है; भक्तेर-भक्त का; पोषण-पोषण।

अनुवाद

यह ह्लादिनी शक्ति कृष्ण को आनन्द देती है और उनके भक्तों का पोषण करती है।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी ने अपने प्रीति-सन्दर्भ नामक ग्रंथ में ह्लादिनी शक्ति के विषय में विस्तृत विवेचना की है। उनके अनुसार वेदों का स्पष्ट कथन है, मनुष्य केवल भक्ति से भगवान् के पास जा सकता है। केवल भक्ति से मनुष्य भगवान् का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर सकता है। भक्ति से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् आकृष्ट होते हैं; फलतः वैदिक ज्ञान की सर्वोपरि श्रेष्ठता भक्ति के विज्ञान को जानने में है।"

वह कौन-सा विशेष आकर्षण है, जिससे भगवान् भक्तिमय सेवा को स्वीकार करने के लिए उत्साहित होते हैं ? और उस भक्तिमय सेवा की प्रकृति क्या है? वैदिक शास्त्र बतलाते हैं कि परम सत्य अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् आत्मनिर्भर हैं और माया कभी भी उन्हें प्रभावित नहीं कर सकती। अतएव वह शक्ति जो परमेश्वर को वश में करती है, वह नितान्त आध्यात्मिक होनी चाहिए। ऐसी शक्ति कभी भी भौतिक नहीं हो सकती। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा भोगा जाने वाला आनन्द भौतिक नहीं हो सकता, जैसाकि निर्विशेषवादियों की ब्रह्मानन्द की धारणा होती है। भक्ति दो के

बीच का आदान-प्रदान होता है, अतएव यह कभी भी किसी मनुष्य के भीतर स्थित नहीं हो सकता। अतएव आत्म-साक्षात्कार के आनन्दब्रह्मानन्द को भक्ति के समतुल्य नहीं माना जा सकता।।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की तीन अंतरंगा शक्तियाँ हैं-ह्लादिनी शक्ति या आनन्द प्रदायिनी शक्ति, सन्धिनी शक्ति या अस्तित्व की शक्ति एवं सम्वित् शक्ति या ज्ञान शक्ति। विष्णु पुराण (1.12.69) में भगवान् को इस प्रकार सम्बोधित किया गया है, "हे प्रभु, आप सबके आश्रय हैं। ह्लादिनी, सन्धिनी तथा सम्वित्-ये तीन गुण एक आध्यात्मिक शक्ति के रूप में आप में विद्यमान हैं। किन्तु वे भौतिक गुण जो सुख, दुःख तथा दोनों के मिश्रण को उत्पन्न करते हैं, आप में नहीं रहते, क्योंकि आप में भौतिक गुण नहीं पाये जाते।"

ह्लादिनी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आनन्दमयता का साकार रूप है, जिसके द्वारा वे आनन्द का भोग करते हैं। चूँकि यह ह्लादिनी शक्ति भगवान् में सतत उपस्थित रहती है, अतएव निर्विशेषवादियों के इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि भगवान् भौतिक सतोगुण में प्रकट होते हैं। निर्विशेषवादियों का निष्कर्ष इस वैदिक तथ्य से विरुद्ध है कि भगवान् दिव्य ह्लादिनी शक्ति से युक्त होते हैं। जब भगवत्कृपा से किसी भक्त में भगवान् की ह्लादिनी शक्ति प्रकट होती है, तो उस प्राकट्य को भगवत्प्रेम कहा जाता है। भगवत्प्रेम भगवान् की ह्लादिनी शक्ति का दूसरा उपनाम है। अतएव भगवान् तथा भक्त के बीच भक्ति का जो आदान-प्रदान होता है, वह भगवान् की दिव्य ह्लादिनी शक्ति का प्रदर्शन है।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य आनन्द में निरन्तर वृद्धि करने वाली शक्ति भौतिक नहीं होती, किन्तु शंकराचार्य के अनुयायी इसे भौतिक मानते हैं, क्योंकि उन्हें परमेश्वर तथा उनकी ह्लादिनी शक्ति के स्वरूप का ज्ञान नहीं है। ये अज्ञानी लोग निर्विशेष आध्यात्मिक आनन्द तथा आध्यात्मिक

ह्लादिनी शक्ति की विविधता के बीच के भेद को नहीं समझ सकते। यह ह्लादिनी शक्ति भगवान् को समस्त दिव्य आनन्द प्रदान करती है और भगवान् अपने शुद्ध भक्त को ऐसी शक्ति प्रदान करते हैं।

सच्चिदानन्द, पूर्ण, कृष्णेर स्वरूप ।

एक-इ चिच्छक्ति ताँर धरे तिन रूप ॥ 61॥

सत्-चित्-आनन्द-सत्-चिन्त आनन्द; पूर्ण–पूर्ण; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; स्व-रूप-निजी रूप; एक-इ-एक; चित्-शक्ति-चित शक्ति, आध्यात्मिक शक्ति; ताँर-उनकी; धरे-प्रकट होती है; तिन–तीन; रूप-रूप।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण का शरीर शाश्वत (सत्), ज्ञानमय (चित्) तथा आनन्द से पूर्ण (आनन्द) है। उनकी एक ही आध्यात्मिक शक्ति तीन रूपों में प्रकट होती है।

आनन्दांशे ह्लादिनी, सदंशे सन्धिनी ।

चिदंशे सम्वित्— यारे ज्ञान करि' मानि ॥ 62 ॥

आनन्द-अंशे–आनन्द भाग में; ह्लादिनी–ह्लादिनी शक्ति; सत्-अंशे-शाश्वत भाग में; सन्धिनी-शाश्वत शक्ति; चित्-अंशे–ज्ञान अंश में; सम्वित्-ज्ञान की पूर्ण शक्ति; यारे-जो; ज्ञान करि'-ज्ञान के रूप में; मानि–मैं स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

ह्लादिनी उनके आनन्द का पक्ष है, सन्धिनी उनके नित्य अस्तित्व का और सम्वित चित् अंश का पक्ष है, जिसे ज्ञान के रूप में भी स्वीकार किया जाता है।

तात्पर्य

अपने शोध-ग्रंथ भागवत-सन्दर्भ (श्लोक 103) में श्रील जीव गोस्वामी ने भगवान् की शक्तियों की व्याख्या इस प्रकार की है। जिस दिव्य शक्ति से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपना अस्तित्व बनाए रखते हैं, वह सन्धिनी कहलाती है। जिस दिव्य शक्ति से वे अपने आपको जानते हैं और दूसरों को अपने बारे में जानने देते हैं, वह सम्वित् कहलाती है। जिस दिव्य शक्ति से वे दिव्य आनन्द को धारण करते हैं और भक्तों को आनन्द प्रदान करते हैं, वह ह्लादिनी कहलाती है।

इन शक्तियों की पूर्ण अभिव्यक्ति विशुद्ध-सत्त्व कहलाती है और जब भगवान् यहाँ प्रकट होते हैं, तो इस भौतिक जगत् में भी यह आध्यात्मिक विविधता प्रदर्शित होती है। अतएव भौतिक जगत् में भगवान् की लीलाएँ तथा उनके स्वरूप तनिक भी भौतिक नहीं होते; वे नितान्त शुद्ध आध्यात्मिक स्तर पर होते हैं। भगवद्गीता में पुष्टि हुई है कि जो भी भगवान् के प्राकट्य, कार्यों एवं तिरोधान की दिव्य प्रकृति को समझता है, वह इस जगत् के वर्तमान अस्थायी निवास को छोड़ने पर भौतिक बन्धन से मुक्त होने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने और अपने तथा भगवान् के बीच ह्लादिनी शक्ति के कार्यकलापों का आदान-प्रदान करने के लिए आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश कर सकता है। संसारी सत्त्वगुण में रजोगुण तथा तमोगुण का स्पर्श रहता है। इसीलिए संसारी सत्त्व मिश्रित होने के कारण मिश्र सत्त्व कहलाता है। किन्तु विशुद्ध सत्त्व की दिव्य विविधता समस्त भौतिक गुणों से पूर्णतया मुक्त रहती है। अतएव विशुद्ध सत्त्व का वातावरण भगवान् तथा उनकी दिव्य लीलाओं को अनुभव करने के लिए उचित होता है। आध्यात्मिक विविधता भौतिक परिस्थितियों से सदा स्वतन्त्र रहती है और भगवान् से अभिन्न होती

है, क्योंकि दोनों ही परम हैं। भगवान् तथा उनके भक्त सम्वित् शक्ति के बल से एक साथ ह्लादिनी शक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।

प्रकृति के भौतिक गुण बद्धजीवों को वश में रखते हैं, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् इन गुणों से कभी प्रभावित नहीं होते, जैसाकि सभी वैदिक ग्रंथ प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से पुष्टि करते हैं। स्वयं भगवान् कृष्ण श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध (11.25.12) में कहते हैं- सत्त्वं रजस्तम इति गुणा जीवस्य नैव मे–"सतो, रजो तथा तमोगुण बद्धजीवों से सम्बन्धित हैं, किन्तु मुझ (भगवान्) से नहीं। इसकी पुष्टि विष्णु पुराण में निम्न प्रकार से की गई है :

सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र न प्राकृता गुणाः ।

स शुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु ॥

"भगवान् विष्णु सतो, रजो तथा तमो गुणों से परे हैं। उनमें कोई भौतिक गुण नहीं पाये जाते। वे आदि पुरुष, नारायण, जो सदैव दिव्य पद पर आसीन हैं, हम पर प्रसन्न हों।" श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध (10.27.4) में इन्द्र ने कृष्ण की प्रशंसा निम्नवत् की :

विशुद्ध-सत्त्वं तव धाम शान्तं

तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ।

मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो

न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥

"हे प्रभु, आपका धाम विशुद्ध सत्त्व है, अर्थात् भौतिक गुणों से अविचलित रहता है और वहाँ के कार्यकलाप आपके चरणकमलों की दिव्य प्रेमाभक्ति से युक्त होते हैं। भक्तों के पुण्य तथा तपस्या

ऐसे कार्यकलापों को बढ़ाते हैं, जो रजो तथा तमो गुणों के कल्मष से सदा मुक्त होते हैं। भौतिक गुण किसी भी अवस्था में आपका स्पर्श तक नहीं कर सकते।"

जब प्रकृति के गुण प्रकट नहीं होते, तो वे सत्त्वगुण कहलाते हैं। जब वे बाह्य रूप से प्रकट होते हैं और तरह-तरह के भौतिक अस्तित्व को उत्पन्न करने में सक्रिय होते हैं, तो वे रजोगुण कहलाते हैं। और जब सक्रियता तथा विविधता का अभाव होता है, तो वे तमोगुण कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में, चिन्तन सत्त्वगुण है, कार्यशीलता रजोगुण है और निष्क्रियता तमोगुण है। इन सारे भौतिक गुणों के ऊपर विशुद्ध-सत्त्व होता है। जब इसमें सन्धिनी शक्ति की प्रधानता होती है, तो यह सबके अस्तित्व के रूप में दृष्टिगोचर होती है। जब सम्वित् शक्ति की प्रधानता होती है, तो यह दिव्य ज्ञान के रूप में अनुभव की जाती है और जब ह्लादिनी शक्ति की प्रधानता होती है, तो यह भगवान् के सर्वाधिक गुह्य प्रेम के रूप में अनुभव की जाती है। इन तीनों का एक साथ प्राकट्य विशुद्ध सत्त्व भगवान् के धाम का मुख्य लक्षण है।

इसलिए परम सत्य वास्तविकता का सार है, जो तीन शक्तियों में सदैव प्रकट होता है। भगवान् की अन्तरंगा शक्ति की अभिव्यक्ति अचिन्त्य विविधता-पूर्ण आध्यात्मिक जगत् है, तटस्था शक्ति की अभिव्यक्ति जीव है और बहिरंगा शक्ति की अभिव्यक्ति भौतिक जगत् है। इसलिए परम सत्य में चार तत्त्व रहते हैं—स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, उनकी अन्तरंगा शक्ति, उनकी तटस्था शक्ति तथा उनकी बहिरंगा शक्ति। भगवान् का स्वरूप तथा उनके विस्तारों का स्वरूप- स्वयं रूप एवं वैभव प्रकाश–अन्तरंगा शक्ति के प्रत्यक्ष भोक्ता हैं, जो आध्यात्मिक जगत् को नित्य रूप से प्रकट करती है और शक्ति के प्रकट रूपों में अत्यन्त गोपनीय है। बाह्य प्राकट्य या भौतिक शक्ति ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक के बद्धजीवों को शरीर का आवरण प्रदान करती है। यह आवरण

शक्ति भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के अन्तर्गत प्रकट होती है और उच्च तथा निम्न योनि के जीवों द्वारा विविध प्रकार से अनुभव की जाती है।

अन्तरंगा शक्ति के तीनों विभागों-सन्धिनी, सम्वित् तथा ह्लादिनी शक्तियों में प्रत्येक विभाग बहिरंगा शक्तियों में से किसी एक को प्रभावित करता है, जिससे बद्धजीव क्रियाशील रहते हैं। ऐसा प्रभाव भौतिक प्रकृति के तीन गुणों को प्रकट करता है, जिससे यह निश्चित रूप से सिद्ध होता है कि सारे जीव, जो तटस्था शक्ति हैं, भगवान् के नित्य सेवक हैं, अतएव वे अन्तरंगा अथवा बहिरंगा शक्ति द्वारा नियन्त्रित होते हैं।

ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित्त्वय्येका सर्व-संस्थितौ ।

ह्लाद-ताप-करी मिश्रा त्वयि नो गुण-वर्जिते ॥ 63॥

ह्लादिनी–ह्लादिनी शक्ति; सन्धिनी–अस्तित्व की शक्ति; सम्वित्-ज्ञान शक्ति; त्वयि-आप में; एका-एक; सर्व-संस्थितौ–जो सभी के आधार हैं; ह्लाद-आह्लाद; ताप-ताप, दु:ख; करी-करते हैं; मिश्रा-दोनों का मिश्रण; त्वयि-आप में; न उ-नहीं; गुण-वर्जिते-जो भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों से रहित हैं।

अनुवाद

हे प्रभु, आप सबके आश्रय हैं। ह्लादिनी, सन्धिनी तथा सम्वित्-ये तीनों आप में एक ही आध्यात्मिक शक्ति के रूप में रहती हैं। किन्तु सुख, दु:ख तथा इन दोनों के मिश्रण को उत्पन्न करने वाले भौतिक गुण आप में नहीं पाये जाते, क्योंकि आप में भौतिक गुण नहीं होते।"

तात्पर्य

यह श्लोक विष्णु पुराण (1.12.69) से लिया है।

सन्धिनीर सार अंश—'शुद्ध-सत्त्व' नाम।

भगवानेर सत्ता हय याहाते विश्राम ॥ 64॥

सन्धिनीर-अस्तित्व की शक्ति; सार-सार; अंश-अंश; शुद्ध-सत्त्व-शुद्ध सत्त्व (शुद्ध अस्तित्व); नाम-नामक; भगवानेर-भगवान् का; सत्ता-अस्तित्व, सत्ता; हय-है; याहाते-जिसमें; विश्राम–विश्राम।

अनुवाद

सन्धिनी शक्ति का सार अंश शुद्ध सत्त्व है। भगवान् कृष्ण का अस्तित्व इसी पर निर्भर है।

माता, पिता, स्थान, गृह, शय्यासन आर।

ए-सब कृष्णेर शुद्ध-सत्त्वेर विकार ॥65॥

माता-माता; पिता-पिता; स्थान-स्थान; गृह–घर; शय्य-आसन-आसन एवं शय्या; आर-और; ए-सब-ये सब; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; शुद्ध-सत्त्वेर-शुद्ध सत्त्व के; विकार-रूपान्तर।

अनुवाद

कृष्ण के माता, पिता, धाम, गृह, शय्या, आसन इत्यादि सभी शुद्ध सत्त्व के रूपान्तर हैं।

तात्पर्य

कृष्ण के माता-पिता, घर-बार सभी कुछ एक ही विशुद्ध सत्त्व में प्रदर्शित होते हैं। शुद्ध सत्त्व में स्थित व्यक्ति ही भगवान् के रूप, गुण तथा अन्य लक्षणों को समझ सकता है। कृष्णभावनामृत

का प्रारम्भ शुद्ध सत्त्व के स्तर से होता है। यद्यपि प्रारम्भ में कृष्ण की अनुभूति का आभास होता है, किन्तु कृष्ण की वास्तविक अनुभूति वासुदेव के रूप में होती है, जो सब शक्तियों के चरम स्वामी हैं अथवा समस्त शक्तियों के मूल अधिष्ठाता देव हैं। जब जीव प्रकृति के तीनों गुणों से अतीत होकर विशुद्ध सत्त्व में स्थित होता है, तब वह अपनी सेवा की भावना से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप, गुण तथा अन्य लक्षणों की अनुभूति प्राप्त कर सकता है। भगवान् सदैव आध्यात्मिक अस्तित्व में रहते हैं, अतः उनको समझने के लिए शुद्ध सत्त्व के पद पर स्थित होना आवश्यक है।

कृष्ण सदैव पूर्ण रूप से आध्यात्मिक हैं। उनके माता-पिता के अतिरिक्त उनका सारा साज-सामान भी सन्धिनी शक्ति की अभिव्यक्ति या विशुद्ध सत्त्व का रूपान्तर होता है। अधिक स्पष्ट करना चाहें तो कह सकते हैं कि अन्तरंगा शक्ति की यह सन्धिनी शक्ति आध्यात्मिक जगत् की समस्त विचित्रता को बनाए रखती है और उसे प्रकट करती है। भगवधाम में भगवान् के दास- दासियाँ, उनकी प्रियतमाएँ, उनके माता-पिता तथा अन्य सभी आध्यात्मिक अस्तित्व रूप सन्धिनी शक्ति के रूपान्तर होते हैं। इसी तरह बहिरंगा शक्ति में सन्धिनी शक्ति का अस्तित्व भौतिक जगत् की विविधता का विस्तार करता है, जिसमें हमें आध्यात्मिक जगत् की झलक मिल सकती है।

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव-शब्दितं

यदीयते तत्र पुमानपावृतः ।

सत्त्वे च तस्मिन्भगवान्वासुदेवो

ह्यधोक्षजो मे मनसा विधीयते ॥ 66 ॥

सत्त्वम्-सत्त्व; विशुद्धम् शुद्ध; वसुदेव-शब्दितम्-वसुदेव नामक; यत्-जिससे; ईयते-प्रकट होता है; तत्र-उसमें; पुमान्–पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर; अपावृतः-किसी आवरण के बिना; सत्त्वे-सत्त्व

में; च-तथा; तस्मिन्-वह; भगवान्-भगवान वासुदेवः-वासुदेव; हि-निश्चय ही; अधोक्षजः-जो इन्द्रियों से परे हैं; मे-मेरा; मनसा मन से; विधीयते-पाये जाते हैं।

अनुवाद

"शुद्ध सत्त्व की दशा, जिसमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् किसी भी आवरण के बिना प्रकट होते हैं, वसुदेव कहलाती है। उस शुद्ध अवस्था में, भौतिक इन्द्रियों से परे और वासुदेव कहलाने वाले भगवान् मेरे मन में अनुभूत होते हैं।"

तात्पर्य।

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (4.3.23) से लिया गया है। यह श्लोक शिवजी द्वारा तब कहा गया, जब उन्होंने सती के पिता दक्ष का विष्णु के प्रतिद्वन्द्वी होने के कारण तिरस्कार किया था। इससे निस्सन्देह पुष्टि होती है कि भगवान् कृष्ण का नाम, यश, उनके गुण तथा उनका सारा साज-सामान भगवान् की अन्तरंगा शक्ति की सन्धिनी शक्ति में विद्यमान रहते हैं।

कृष्णे भगवत्ता-ज्ञान-संवितेर सार।

ब्रह्म-ज्ञानादिक सब तार परिवार॥ 67॥

कृष्ण-कृष्ण में; भगवत्ता–मूल भगवान् होने का गुण; ज्ञान-ज्ञान; संवितेर–ज्ञान शक्ति का; सार-सार; ब्रह्म-ज्ञान-ब्रह्म ज्ञान; आदिक-आदि; सब-सब; तार-उसका; परिवार–परिवार।

अनुवाद

सम्वित् शक्ति का सार यह ज्ञान है कि श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। अन्य सारे ज्ञान, यथा ब्रह्मज्ञान, इसके अवयव हैं।

तात्पर्य

सम्वित् शक्ति के कार्यकलापों से ज्ञान का प्रभाव उत्पन्न होता है। भगवान् तथा जीव दोनों ही ज्ञाता हैं। कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के कारण हर वस्तु का हर स्थान पर ज्ञान रहता है, अतएव उनके ज्ञान में कोई बाधा नहीं आती। वे किसी वस्तु को मात्र देखकर जान सकते हैं; किन्तु सामान्य जीव के ज्ञान में अनेक बाधाएँ आती हैं। जीव के ज्ञान के तीन विभाग होते हैं—प्रत्यक्ष ज्ञान, अप्रत्यक्ष ज्ञान तथा विकृत ज्ञान। आँख, कान, नाक, हाथ जैसी भौतिक इन्द्रियों से भौतिक पदार्थों की जो इन्द्रिय अनुभूति होती है, वह निश्चय ही विकृत ज्ञान को उत्पन्न करती है। यह भ्रम भौतिक शक्ति की ही प्रस्तुति है, जो सम्वित् शक्ति द्वारा विकृत रूप में प्रभावित होती है। इन्द्रिय अनुभूति की पहुँच से परे किसी वस्तु का निषेधात्मक ज्ञान अप्रत्यक्ष ज्ञान है, जो सर्वथा अपूर्ण नहीं होता, किन्तु निर्विशेष आध्यात्मिक अनुभूति एवं अद्वैतवाद के रूप में केवल आंशिक ज्ञान उत्पन्न करता है। किन्तु जब ज्ञान का सम्वित् अंश उसी अन्तरंगा शक्ति की ह्लादिनी शक्ति से प्रकाशित होता है, तो वे मिलकर कार्य करते हैं और तभी मनुष्य को भगवज्ञान प्राप्त हो सकता है। सम्वित् शक्ति को उसी अवस्था में बनाये रखना चाहिए। भौतिक ज्ञान तथा अप्रत्यक्ष आध्यात्मिक ज्ञान सम्वित् शक्ति के गौण उत्पाद हैं।

ह्लादिनीर सार ‘प्रेम’, प्रेम-सार ‘भाव’ ।

भावेर परम-काष्ठा, नाम ‘महा-भाव’ ॥ 68 ॥

ह्लादिनीर-ह्लादिनी शक्ति का; सार–सार; प्रेम-भगवत् प्रेम; प्रेम-सार-ऐसे प्रेम का सार; भाव-भाव; भावेर-भाव की; परम-काष्ठा-उच्चतम सीमा; नाम-नामक; महा-भाव-महाभाव।

अनुवाद

ह्लादिनी शक्ति का सार भगवत्प्रेम है, भगवत्प्रेम का सार भाव है और भाव का चरम विकास महाभाव है।

तात्पर्य

ह्लादिनी शक्ति से भगवत्प्रेम उत्पन्न होता है, जिसके दो विभाग होते हैं—भगवान् का शुद्ध प्रेम तथा मिश्रित प्रेम । ह्लादिनी शक्ति श्रीकृष्ण से प्रकट होती है और भगवान् को आकर्षित करने के लिए जीव को प्रदान की जाती है। केवल तभी जीव भगवान् का शुद्ध प्रेमी बनता है। किन्तु जब यही ह्लादिनी शक्ति बहिरंगा भौतिक शक्ति से मिश्रित होकर जीव से उत्पन्न होती है, तो वह कृष्ण को आकर्षित नहीं करती; उल्टे जीव भौतिक शक्ति की चकाचौंध से आकर्षित हो जाता है। उस समय जीव भगवत्प्रेम में उन्मत्त होने के बदले भौतिक इन्द्रिय भोग के पीछे उन्मत्त हो उठता है। तब भौतिक प्रकृति के गुणों का संग करने के कारण वह इसकी दुःखदायी भावनाओं की अन्तः क्रियाओं से बद्ध हो जाता है।

महाभाव-स्वरूपा श्री-राधा-ठाकुराणी ।

सर्व-गुण-खनि कृष्ण-कान्ता-शिरोमणि ॥ 69॥

महा-भाव-महाभाव का; स्वरूपा-स्वरूप; श्री-राधा-ठाकुराणी-श्रीमती राधारानी; सर्व-गुण-सब गुणों की; खनि–खान; कृष्ण-कान्ता-भगवान् कृष्ण की प्रेयसिओं की; शिरोमणि-शिरोमणि।

अनुवाद

श्री राधा ठाकुराणी महाभाव की मूर्त रूप हैं। वे समस्त सद्गुणों की खान हैं और भगवान् कृष्ण की सारी प्रियतमाओं में शिरोमणि हैं।

तात्पर्य

ह्लादिनी शक्ति का निर्मल कार्य व्रजबालाओं तथा उनमें सर्वोपरि श्रीमती राधारानी के व्यवहार में प्रदर्शित होता है। ह्लादिनी शक्ति का सार है भगवत्प्रेम और भगवत्प्रेम का सार है भाव। इस भाव की पराकाष्ठा महाभाव है। श्रीमती राधारानी दिव्य चेतना की इन तीनों अवस्थाओं की साक्षात् मूर्ति हैं। इसलिए वे भगवत्प्रेम की सर्वोच्च सिद्धान्त हैं और श्रीकृष्ण को सर्वाधिक प्रिय हैं।

तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वथाधिका।

महाभाव-स्वरूपेयं गुणैरतिवरीयसी ॥ 70 ॥

तयोः–उनका; अपि-भी; उभयोः-दोनों का (चन्द्रावली एवं राधारानी का); मध्ये-के मध्य; राधिका–श्रीमती राधारानी; सर्वथा-सर्वथा; अधिका-अधिक; महा-भाव-स्वरूपा-महाभाव स्वरूपा; इयम्-यह; गुणैः-सद्गुणों सहित; अतिवरीयसी–सर्वोत्तम।

अनुवाद

“इन दो गोपियों (राधारानी तथा चन्द्रावली) में श्रीमती राधारानी सभी प्रकार से श्रेष्ठ हैं। वे महाभाव की मूर्तिमन्त स्वरूप हैं और सद्गुणों में सर्वोपरि हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत उज्ज्वल नीलमणि (राधा-प्रकरण 3) से लिया गया है।

कृष्ण-प्रेम-भावित याँर चित्तेन्द्रिय-काय।

कृष्ण-निज-शक्ति राधा क्रीड़ार सहाय ॥71॥

कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; भावित-भावित; याँर–जिसका; चित्त-मन; इन्द्रिय-इन्द्रियाँ; काय—शरीर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; निज-शक्ति-उनकी अपनी शक्ति; राधा-श्रीमती राधारानी; क्रीड़ार-लीलाएँ; सहाय–साथी।

अनुवाद

उनका मन, इन्द्रियाँ तथा शरीर कृष्ण-प्रेम में रँगे हुए हैं। वे कृष्ण की निजी शक्ति हैं और वे उनकी लीलाओं में उनकी सहायता करती हैं।

तात्पर्य

श्रीमती राधारानी कृष्ण के समान ही आध्यात्मिक हैं। उन्हें भौतिक नहीं मानना चाहिए। वे निश्चित रूप से उन बद्धजीवों के समान नहीं हैं, जिनके भौतिक इन्द्रियों से आवृत स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक शरीर हैं। वे पूर्णतया आध्यात्मिक हैं और उनका शरीर तथा मन दोनों वही आध्यात्मिक स्वरूप हैं। चूँकि उनका शरीर आध्यात्मिक है, अतः उनकी इन्द्रियाँ भी आध्यात्मिक हैं। इस तरह उनका शरीर, मन तथा इन्द्रियाँ कृष्ण-प्रेम से पूर्णतया दीप्तिमान हैं। वे साक्षात् ह्लादिनी शक्ति की मूर्तिमन्त स्वरूप हैं, अतएव वे श्रीकृष्ण के उपभोग की एकमात्र स्रोत हैं।

श्रीकृष्ण ऐसी किसी वस्तु का भोग नहीं कर सकते, जो आन्तरिक रूप से उनसे भिन्न हो। अतएव राधा तथा श्रीकृष्ण अभिन्न हैं। श्रीकृष्ण की अन्तरंगा शक्ति के सन्धिनी अंश से श्रीकृष्ण का सर्वाकर्षक स्वरूप प्रकट होता है और वही अन्तरंगा शक्ति ह्लादिनी रूप में श्रीमती राधारानी को प्रस्तुत करती है, जो सर्वाकर्षक को भी आकृष्ट करती है। श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं में श्रीमती राधारानी की कोई समानता नहीं कर सकता।

आनन्द-चिन्मय-रस-प्रतिभाविताभिस्

ताभिर्य एव निज-रूपतया कलाभिः ।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्म-भूतो

गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥72॥

आनन्द–आनन्द; चित्-तथा ज्ञान; मय-से युक्त; रस-रस; प्रति–प्रतिक्षण; भावीताभिः-जो भावित हैं; ताभिः-उनसे; यः-जो; एव–निश्चित रूप से; निज-रूपतया-अपने स्वरूप से; कलाभिः-जो उनकी ह्लादिनी शक्ति के अंश हैं; गोलोक-गोलोक वृन्दावन में; एव-ही; निवसति–निवास करते हैं; अखिल-आत्म–सभी के आत्मा स्वरूप; भूतः-जिनका अस्तित्व है; गोविन्दम्-भगवान् गोविन्द; आदि-पुरुषम्-आदि पुरुष; तम्-उनको; अहम्-मैं; भजामि-भजता हूँ।

अनुवाद

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो अपने निजी धाम गोलोक में अपने ही आध्यात्मिक स्वरूप के सदृश एवं ह्लादिनी शक्ति के मूर्तिमन्त स्वरूप राधा के साथ निवास करते हैं। उनकी संगिनियाँ उनकी वे विश्वस्त सखियाँ हैं, जो उनके शारीरिक स्वरूप की विस्तार हैं। और नित्य आनन्दमय आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक ब्रह्म-संहिता (5.37) से लिया गया है।

कृष्णेरे कराय यैछे रस आस्वादन ।

क्रीड़ार सहाय यैछे, शुन विवरण ॥73॥

कृष्णेरे-भगवान् कृष्ण को; कराय-करवाया; यैछे-कैसे; रस-रस; आस्वादन-आस्वादन; क्रीड़ार-लीलाओं का; सहाय–सहायक; यैछे-कैसे; शुन-कृपया सुनो; विवरण-वर्णन।

अनुवाद

अब कृपा करके सुनिये कि किस तरह कृष्ण की प्रियतमाएँ उन्हें रस का आस्वादन कराने में तथा उनकी लीलाओं में सहायक बनती हैं।

कृष्ण-कान्ता-गण देखि त्रि-विध प्रकार।

एक लक्ष्मी-गण, पुरे महिषी-गण आर ॥74॥

व्रजाङ्गना-रूप, आर कान्ता-गण-सार।

श्री-राधिका हैते कान्ता-गणेर विस्तार ॥75॥

कृष्ण-कान्ता-गण-भगवान् कृष्ण की प्रेमिकाएँ, देखि-मैं देखता हूँ; त्रि-विध-तीन; प्रकार-प्रकार की; एक-एक; लक्ष्मी-गण-लक्ष्मियाँ; पुरेनगर में; महिषी-गण-रानियाँ; आर-और; व्रज-अङ्गना-व्रज की सुन्दरीयाँ; रूप-रूप वाली; आर-दूसरे प्रकार की; कान्ता-गण-प्रेमिकाएँ; सार-सार; श्री-राधिका हैते–श्रीमती राधारानी से; कान्ता-गणेर-कृष्ण की प्रेमिकाएँ; विस्तार–विस्तार।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण की प्रिय प्रेमिकाएँ तीन प्रकार की हैं-लक्ष्मियाँ, रानियाँ तथा व्रज की गोपिकाएँ। गोपिकाएँ इन तीनों में सर्वोपरि हैं। ये सारी प्रेमिकाएँ राधिका की विस्तार हैं।

अवतारी कृष्ण यैछे करे अवतार।

अंशिनी राधा हैते तिन गणेर विस्तार ॥76 ॥

अवतारी–सभी अवतारों के उद्गम; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यैछे-जैसे; करे-करते हैं, लेते हैं; अवतार-अवतार; अंशिनी-सभी अंशों की स्रोत; राधा-श्रीमती राधारानी; हैते–से; तिन-तीन; गणेर-समूहों के; विस्तार–विस्तार।

अनुवाद

जिस प्रकार स्रोत-रूप भगवान् कृष्ण सारे अवतारों के कारण , उसी प्रकार श्री राधा इन समस्त प्रेमिकाओं की कारण हैं।

वैभव-गण येन ताँर अङ्ग-विभूति ।

बिम्ब-प्रतिबिम्ब-रूप महिषीर तति ॥ 77॥

वैभव-गण-विस्तार; येन-जैसी हो; ताँर–उनका; अङ्ग-शरीर; विभूति-शक्तिशाली विस्तार, विभूति; बिम्ब-प्रतिबिम्ब; प्रतिबिम्ब-प्रतिबिम्ब का परावर्तित रूप; रूप-रूपवाले; महिषीर-रानियों का; तति–विस्तार।

अनुवाद

लक्ष्मियाँ श्रीमती राधिका की आंशिक अभिव्यक्तियाँ हैं और रानियाँ उनके रूप की प्रतिबिम्ब हैं।

लक्ष्मी-गण ताँर वैभव-विलासांश-रूप ।

महिषी-गण वैभव-प्रकाश-स्वरूप ॥78॥

लक्ष्मी-गण-लक्ष्मियाँ; ताँर-उनकी; वैभव-विलास-वैभव विलास की तरह; अंश-पूर्ण अंश; रूप-रूप वाली; महिषी-गण-रानियाँ, वैभव-प्रकाश-वैभव प्रकाश का; स्वरूप-स्वभाव वाली।

अनुवाद

लक्ष्मियाँ उनकी पूर्ण अंश हैं और वे वैभवविलास रूपों को प्रदर्शित करती हैं। रानियाँ उनके वैभव प्रकाश की रूप हैं।

आकार स्वभाव-भेदे व्रज-देवी-गण ।

काय-व्यूह-रूप ताँर रसेर कारण ॥79॥

आकार-आकार, रूप वाली; स्वभाव-स्वभाव वाली; भेदे-भेदों सहित; व्रज-देवी-गण-व्रज की गोपियाँ; काय-उनके शरीर वाली; व्यूह-विस्तार, व्यूह; रूप-रूप वाली; ताँर–उनका; रसेर-इसका; कारण-साधन।

अनुवाद

व्रजदेवियों के विविध शारीरिक स्वरूप होते हैं। वे उनकी (श्रीमती राधारानी की) विस्तार हैं और रस का पोषण करने में सहायक हैं।

बहु कान्ता विना नहे रसेर उल्लास ।

लीलार सहाय लागि' बहुत प्रकाश ॥80॥

बहु-अनेक; कान्ता-प्रेमीकाएँ; विना-बिना; नहे-नहीं है; रसेर-रस का; उल्लास-परमानन्द, अधिक आह्लाद; लीलार–लीलाओं का; सहाय–सहायक; लागि'-होने के लिए; बहुत-बहुत; प्रकाश-प्रकाश, विस्तार।

अनुवाद

अनेक प्रेमिकाओं के बिना रस में ऐसा उल्लास नहीं रहता। अतएव भगवान् की लीलाओं में सहायता करने के लिए श्रीमती राधारानी के अनेक विस्तार हैं।

तार मध्ये व्रजे नाना भाव-रस-भेदे।

कृष्णके कराय रासादिक-लीलास्वादे ॥81॥

तार मध्ये-उनके मध्य; व्रजे-व्रज में; नाना-विविध; भाव-भावों का; रस तथा रसों के; भेदे-भेदों से; कृष्णके-भगवान् कृष्ण; कराय-कराते हैं; रास-आदिक-रास नृत्य से शुरू करके; लीला-लीलाएँ; आस्वादे-आस्वादन।

अनुवाद

इन में व्रज की प्रेमिकाओं के कई समूह हैं, जिनके नाना प्रकार के भाव तथा रस हैं। वे कृष्ण को रासनृत्य तथा अन्य लीलाओं की सारी माधुरी का आस्वादन कराने में सहायक होती हैं।

तात्पर्य

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, (कृष्ण तथा राधा दो होकर भी एक हैं। वे अभिन्न हैं। कृष्ण अपना विस्तार पुरुषों जैसे अनेक अवतारों तथा पूर्ण अंशों में करते हैं। इसी प्रकार श्रीमती राधारानी भी लक्ष्मियों, रानियों तथा व्रजबालाओं के विविध रूपों में अपना विस्तार करती हैं। श्रीमती

राधारानी के ऐसे विस्तार उनके पूर्ण अंश हैं। कृष्ण के ये सारे स्त्री-रूप उनके विष्णु रूप के अंशों के अनुरूप विस्तारित होते हैं। इन अंशों की तुलना मूल रूप के प्रतिबिम्ब रूपों से की गई है। मूल तथा प्रतिबिम्ब रूपों में कोई अन्तर नहीं होता। कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति के स्त्री-प्रतिबिम्ब स्वयं कृष्ण के समान ही होते हैं।

कृष्ण के व्यक्तित्व के पूर्ण विस्तार वैभव-विलास तथा वैभव-प्रकाश कहलाते हैं और राधा के विस्तार भी ऐसे ही वर्णित किए गये हैं। लक्ष्मियाँ राधारानी के वैभव-विलास रूप हैं तथा रानियाँ वैभव-प्रकाश रूप हैं। राधारानी की निजी सखियाँ अर्थात् व्रजबालाएँ उनके शरीर की प्रत्यक्ष विस्तार हैं। उनके निजी शरीर के दिव्य अंश होने के कारण तथा दिव्य स्थिति में होने के कारण वे श्रीमती राधारानी के परम निर्देशन के अन्तर्गत भगवान् कृष्ण की लीलाओं में प्रेम के विविध आदान-प्रदान के लिए उत्तरदायी हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में भोग का विविधता के माध्यम से पूर्णरूपेण आस्वादन किया जाता है। राधारानी जैसी अनेक बालाएँ हैं, जिन्हें गोपियाँ या सखियाँ भी कहा जाता है। उनके साहचर्य से दिव्य रस की तीव्रता बढ़ जाती है। नाना प्रकार की नायिकाएँ कृष्ण के लिए आस्वादन की स्रोत हैं, अतएव श्रीमती राधारानी की ये विस्तार श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति को बढ़ाने के लिए आवश्यक हैं। उनके दिव्य प्रेम-विनिमय वृन्दावन में लीलाओं के सर्वोत्कृष्ट व्यवहार हैं। श्रीमती राधारानी अपने शरीर के इन अंशों द्वारा कृष्ण को रासनृत्य तथा अन्य कार्यों का आस्वादन कराने में सहायक होती हैं। श्रीमती राधारानी रासलीला पुष्प की केन्द्रीय पंखुड़ी होने के कारण वे निम्नलिखित श्लोकों में प्राप्त नामों से भी प्रसिद्ध हैं।

गोविन्दानन्दिनी राधा, गोविन्द-मोहिनी ।

गोविन्द-सर्वस्व, सर्व-कान्ता-शिरोमणि ॥82॥

गोविन्द-आनन्दिनी–गोविन्द को आनन्द प्रदान करनेवाली; राधा-श्रीमती राधारानी; गोविन्द-मोहिनी-गोविन्द को मोहित करनेवाली; गोविन्द-सर्वस्व-भगवान् गोविन्द की सर्वेसर्वा; सर्व-कान्ता- भगवान् की सारी प्रेमिकाओं की; शिरोमणि-शिरोमणि।

अनुवाद

श्री राधा गोविन्द को आनन्द देने वाली हैं और वे गोविन्द को मोहने वाली भी हैं। वे गोविन्द की सर्वस्व हैं और उनकी समस्त प्रेयसियों में शिरोमणि हैं।

देवी कृष्ण-मयी प्रोक्ता राधिका पर-देवता ।

सर्व-लक्ष्मी-मयी सर्व-कान्तिः सम्मोहिनी परा ॥83॥

देवी-तेजोमयी, देवी; कृष्ण-मयी-भगवान् कृष्ण से अभिन्नः प्रोक्ता–कहलाने वाली; राधिका-श्रीमती राधारानी; पर-देवता–अत्यन्त पूज्य; सर्व-लक्ष्मी-मयी-सारी लक्ष्मियों से बढ़कर; सर्व-कान्तिः–सर्व कान्ति से युक्त; सम्मोहिनी-भगवान् कृष्ण को पूर्णतया मोहने वाली; परा–परा शक्ति।

अनुवाद

“दिव्य देवी श्रीमती राधारानी भगवान् श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष प्रतिरूप हैं। वे समस्त लक्ष्मियों में केन्द्रीय व्यक्तित्व हैं। वे सर्व-आकर्षक भगवान् को आकर्षित करने के सारे आकर्षणों से युक्त हैं। वे भगवान् की आदि अन्तरंगा शक्ति हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक बृहगौतमीय तन्त्र से लिया गया है।

‘देवी’ कहि द्योतमाना, परमा सुन्दरी ।

किम्वा, कृष्ण-पूजा-क्रीड़ार वसति नगरी ॥84॥

देवी-देवी शब्द; कहि-मैं कहता हूँ; द्योतमाना-चमकने वाली; परमा-परम; सुन्दरी–सुन्दरी; किम्वा-अथवा; कृष्ण-पूजा-भगवान् कृष्ण की पूजा का; क्रीड़ार तथा क्रीड़ाओं का; वसति-आश्रय; नगरी-नगरी।

अनुवाद

“देवी” का अर्थ है “ज्योतिर्मयी तथा परम सुन्दरी।” अथवा इसका अर्थ हो सकता है- “भगवान् कृष्ण की पूजा एवं उनकी प्रेम-क्रीड़ाओं की सुन्दर धाम।”

कृष्ण-मयी—कृष्ण यार भितरे बाहिरे ।

याँहा याँहा नेत्र पड़े ताँहा कृष्ण स्फुरे ॥ 85 ॥

कृष्ण-मयी–कृष्णमयी शब्द; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यार–जिनके; भितरे-भीतर; बाहिरे–बाहिर; याँहा याँहा-जहाँ कहीं; नेत्र-नेत्र; पड़े-पड़ते हैं; ताँहा-वहाँ; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; स्फुरे प्रकट होते हैं, दिखते हैं।

अनुवाद

“कृष्णमयी” का अर्थ है, “जिसके भीतर तथा बाहर भगवान् कृष्ण हों।” वे जहाँ भी दृष्टिपात करती हैं, वहाँ कृष्ण को देखती हैं।

किम्वा, प्रेम-रस-मय कृष्णेर स्वरूप ।

ताँर शक्ति ताँर सह हय एक-रूप ॥86॥

किम्वा-अथवा; प्रेम-रस-प्रेमरस; मय-का बना; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; स्वरूप-स्वरूप; ताँर-उनकी; शक्ति-शक्ति; ताँर सह-उनके साथ; हय-है; एक-रूप-एकरूपी।

अनुवाद

अथवा, "कृष्णमयी" का अर्थ यह है कि वे भगवान् कृष्ण से अभिन्न हैं, क्योंकि वे प्रेम-रस की प्रतिमूर्ति हैं। भगवान् कृष्ण और उनकी शक्ति एक ही हैं।

तात्पर्य

कृष्णमयी के दो भावार्थ हैं। पहला ऐसा व्यक्ति जो अपने भीतर और बाहर सदैव कृष्ण के बारे ही सोचता है और जहाँ भी जाता है या जो भी देखता है, सदैव कृष्ण का ही स्मरण करता है; वह कृष्णमयी कहलाता है। साथ ही, चूँकि कृष्ण-प्रेम से पूर्ण हैं, अतः उनकी प्रेमाशक्ति राधारानी उनसे अभिन्न होने के कारण कृष्णमयी कहलाती हैं।

कृष्ण-वाञ्छा-पूर्ति-रूप करे आराधने ।

अतएव 'राधिका' नाम पुराणे वाखाने ॥87॥

कृष्ण-वाञ्छा-भगवान् कृष्ण की इच्छा का; पूर्ति-रूप-पूर्ण करना; करे–करती है; आराधने-पूजा; अतएव–अतएव; राधिका–श्रीमती राधिका; नाम-नामक; पुराणे-पुराणों में; वाखाने-वर्णन में।

अनुवाद

उनकी पूजा (आराधना) भगवान् कृष्ण की इच्छाएँ पूर्ण करना है। इसीलिए पुराणों में उन्हें राधिका कहा गया है।

तात्पर्य

"सधा" नाम आराधना शब्द से निकला है, जिसका अर्थ है "पूजा"। अतएव जो कृष्ण की पूजा में सर्वोपरि हो, वह राधिका अर्थात् सबसे बड़ी सेविका कहलाती है।

अनयाराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः ।

यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥88॥

अनया इससे; आराधितः-पूजित; नूनम् निश्चित रूप से; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; हरिः-भगवान् कृष्ण; ईश्वरः-ईश्वर; यत् जिनसे; नः-हमें; विहाय-अलग छोड़कर; गोविन्दः–गोविन्द; प्रीतः–प्रसन्न होकर; ग्राम्-जिनको; अनयत्-ले आये; रहः-एकान्त स्थान पर।

अनुवाद

उनके द्वारा भगवान् की सचमुच अच्छी पूजा की गई है, अतएव भगवान् गोविन्द ने प्रसन्न होकर हम सबको पीछे छोड़ दिया है और उन्हें एकान्त स्थान में ले गये हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.30.28) का है।

अतएव सर्व-पूज्या, परम-देवता ।

सर्व-पालिका, सर्व जगतेर माता ॥89॥

अतएव–अतएव; सर्व-पूज्या-सबके द्वारा पूजित; परम-परम; देवता-देवी; सर्व-पालिका-सब की रक्षिका; सर्व जगतेर-सभी ब्रह्माण्डों की; माता-माता।

अनुवाद

अतएव राधा परम देवता अर्थात् परम देवी, हैं और वे सबके लिए पूजनीय हैं। वे सबकी रक्षा करने वाली हैं और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की माता

'सर्व-लक्ष्मी' शब्द पूर्वे करियाछि व्याख्यान।

सर्व-लक्ष्मी-गणेर तिंहो हन अधिष्ठान ॥90॥

सर्व-लक्ष्मी-शब्द-'सर्वलक्ष्मी' शब्द; पूर्वे-पूर्वकाल में; करियाछि-मैंने किया है; व्याख्यान-व्याख्यान; सर्व-लक्ष्मी-गणेर-सर्व लक्ष्मियों का; तिंहो-वे; हन-है; अधिष्ठान–स्रोत।

अनुवाद

मैं "सर्वलक्ष्मी" का अर्थ पहले ही बतला चुका हूँ। राधा समस्त लक्ष्मियों की आदि स्रोत हैं।

किम्वा, 'सर्व-लक्ष्मी कृष्णेर षड्-विध ऐश्वर्य।

ताँर अधिष्ठात्री शक्ति–सर्व-शक्ति-वर्य ॥91॥

किम्वा-अथवा; सर्व-लक्ष्मी-'सर्वलक्ष्मी' शब्द; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; षट्-विध–छः प्रकार के; ऐश्वर्य–ऐश्वर्य; ताँर–उनकी; अधिष्ठात्री–प्रमुख; शक्ति-शक्ति; सर्व-शक्ति-सर्व शक्तियों की; वर्य–सर्वोत्तम।

अनुवाद

अथवा "सर्वलक्ष्मी" शब्द यह बतलाता है कि वे श्रीकृष्ण के छह ऐश्वर्यों का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करती हैं। अतएव वे भगवान् कृष्ण की सर्वोपरि शक्ति हैं।

सर्व-सौन्दर्य-कान्ति वैसये याँहाते।

सर्व-लक्ष्मी-गणेर शोभा हय याँहा हैते ॥92॥

सर्व-सौन्दर्य-सर्व सौन्दर्य; कान्ति–कान्ति; वैसये-बैठती है; याँहाते-जिनमें; सर्व-लक्ष्मी-गणेर-सभी लक्ष्मियों की; शोभा–शोभा; हय-है; याँहा हैते–जिनसे।

अनुवाद

सर्वकान्ति शब्द सूचित करता है कि उनके शरीर में समस्त सौन्दर्य तथा कान्ति का आश्रय है। सारी लक्ष्मियाँ उन्हीं से अपना सौन्दर्य प्राप्त करती हैं।

किम्वा 'कान्ति'-शब्दे कृष्णेर सब इच्छा कहे।

कृष्णेर सकल वाञ्छा राधातेइ रहे ॥93॥

किम्वा-अथवा; कान्ति-शब्दे-'कान्ति' शब्द से; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; सब-सब; इच्छा-इच्छाएँ; कहे-कहते हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; सकल-सभी; वाञ्छा-इच्छाएँ; राधातेइ–श्रीमती राधारानी में; रहे-रहती हैं।

अनुवाद

कान्ति शब्द का यह भी अर्थ हो सकता है-"भगवान् कृष्ण की सारी इच्छाएँ।" भगवान् कृष्ण की सारी इच्छाएँ श्रीमती राधारानी में निहित हैं।

राधिका करेन कृष्णेर वाञ्छित पूरण ।

'सर्व-कान्ति'-शब्देर एइ अर्थ विवरण ॥94॥

राधिका–श्रीमती राधारानी; करेन-करती हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; वाञ्छित-इच्छित कार्य; पूरण–पूर्ण करना; सर्व-कान्ति-शब्देर-सर्वकान्ति' शब्द का; एइ–यह अर्थ-अर्थ; विवरण–विवरण।

अनुवाद

श्रीमती राधिका भगवान् कृष्ण की सारी इच्छाएँ पूर्ण करती हैं। यही "सर्वकान्ति" शब्द का अर्थ है।

जगत्मोहन कृष्ण, ताँहार मोहिनी ।

अतएव समस्तेर परा ठाकुराणी ॥95॥

जगत्-मोहन-जगत् को मोहने वाले; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ताँहार-उनको; मोहिनी–मोहने वाली; अतएव–अतएव; समस्तेर–सभी की; परा–प्रमुख; ठाकुराणी-देवी।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण जगत् को मोहित करते हैं, किन्तु श्री राधा उन्हें भी मोहित करती हैं। अतएव वे सारी देवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं।

राधा–पूर्ण-शक्ति, कृष्ण–पूर्ण-शक्तिमान् ।

दुइ वस्तु भेद नाइ, शास्त्र-परमाण ॥ 96 ॥

राधा-श्रीमती राधारानी; पूर्ण-शक्ति–पूर्ण शक्ति; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; पूर्ण-शक्तिमान्–सारी शक्तियों के स्वामी; दुइ-दोनों; वस्तु-वस्तुएँ; भेद-अन्तर; नाइ–नहीं है; शास्त्र-परमाण–प्रामाणिक शास्त्रों का प्रमाण।

अनुवाद

श्री राधा पूर्ण शक्ति हैं और भगवान् कृष्ण पूर्ण शक्ति के स्वामी हैं। जैसाकि प्रामाणिक शास्त्रों का प्रमाण है, ये दोनों भिन्न नहीं हैं।

मृगमद, तार गन्ध–यैछे अविच्छेद ।

अग्नि, ज्वालाते—यैछे कभु नाहि भेद ॥ 97॥

मृग-मद-कस्तूरी; तार-उसकी; गन्ध–सुगन्ध; यैछे-जैसे; अविच्छेद–अविच्छेद्य; अग्नि-अग्नि; ज्वालाते-तापमान; यैछे-जैसे; कभु-कोई; नाहि-नहीं है; भेद-अन्तर।

अनुवाद

जिस तरह कस्तूरी तथा उसकी सुगन्ध एक-दूसरे से पृथक् नहीं होते अथवा अग्नि और उसकी ऊष्मा अभिन्न हैं, उसी तरह वे (राधा तथा कृष्ण) अभिन्न हैं।

राधा-कृष्ण ऐछे सदा एक-इ स्वरूप ।

लीला-रस आस्वादिते धरे दुइ-रूप ॥98॥

राधा-कृष्ण-राधा कृष्ण; ऐछे-इस प्रकार; सदा-सदा; एक-इ-एक; स्वरूप-स्वरूप; लीला-रस-लीला रस; आस्वादिते-आस्वादन के लिए; धरे-धारण करते हैं; दुइ-रूप-दो रूप।

अनुवाद

इस प्रकार राधा तथा कृष्ण एक हैं, फिर भी उन्होंने लीला-रस का आस्वादन करने के लिए दो रूप धारण कर रखे हैं।

प्रेम-भक्ति शिखाइते आपने अवतरि।

राधा-भाव-कान्ति दुई अङ्गीकार करि' ॥99॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-रूपे कैल अवतार।

एइ त' पञ्चम श्लोकेर अर्थ परचार ॥100॥

प्रेम-भक्ति-भगवत् प्रेम में भक्ति; शिखाइते-सिखाने के लिए; आपने-स्वयं; अवतरि–अवतार लेना; राधा-भाव-श्रीमती राधारानी के भाव में; कान्ति–कान्ति; दुइ-दो; अङ्गीकार करि'–स्वीकार किया; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के; रूपे रूप में; कैल–लिया; अवतार-अवतार; एइ-यह; त'–निश्चित रूप से; पञ्चम–पाँचवें; श्लोकेर–श्लोक का; अर्थ-अर्थ; परचार–व्याख्या की है।

अनुवाद

प्रेमाभक्ति का प्रचार करने के लिए कृष्ण श्री राधा के भाव तथा वर्ण (कान्ति) को लेकर श्रीकृष्ण चैतन्य के रूप में प्रकट हुए। इस प्रकार मैंने पाँचवे श्लोक के अर्थ की व्याख्या की है।

षष्ठ श्लोकेर अर्थ करिते प्रकाश ।

प्रथमे कहिये सेइ श्लोकेर आभास ॥ 101॥

षष्ठ-छठे; श्लोकेर–श्लोक का; अर्थ-अर्थ; करिते-करने के लिए; प्रकाश-व्याख्या करने; प्रथमे-पहले; कहिये-मैं कहूँगा; सेइ-वह; श्लोकेर-श्लोक के; आभास-आभास।

अनुवाद

छठे श्लोक की व्याख्या करने के लिए सर्वप्रथम मैं इसके अर्थ का संकेत दूँगा।

अवतरि' प्रभु प्रचारिल सङ्कीर्तन ।

एहो बाह्य हेतु, पूर्वे करियाछि सूचन ॥102॥

अवतरि'–अवतार लेकरः प्रभु-भगवान् नेः प्रचारिल-प्रचार किया; सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का संकीर्तन; एहो–यह; बाह्य–बाह्य; हेतु-कारण; पूर्वे-पहले; करियाछि-मैंने दे दिया है; सूचन–सूचना, संकेत।

अनुवाद

भगवान् संकीर्तन का प्रचार करने के लिए अवतरित हुए। यह बाह्य प्रयोजन है, जैसाकि मैं पहले ही इंगित कर चुका हूँ।

अवतारेर आर एक आछे मुख्य-बीज ।

रसिक-शेखर कृष्णेर सेइ कार्य निज ॥ 103 ॥

अवतारेर–अवतार का; आर-दूसरा; एक-एक; आछे-है; मुख्य-बीज-मुख्य कारण; रसिक-शेखर-प्रेम रस के श्रेष्ठ भोक्ता; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; सेइ-वह; कार्य-कार्य; निज-निजी, अपना।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण के अवतार का एक प्रमुख कारण है। यह प्रेम-विनिमय के सर्वश्रेष्ठ भोक्ता के रूप में उनके अपने कार्यकलापों से उत्पन्न होता है।

अति गूढ़ हेतु सेइ त्रि-विध प्रकार।

दामोदर-स्वरूप हैते याहार प्रचार ॥104॥

अति-बहुत; गूढ़-गूढ़; हेतु-कारण; सेइ-वह; त्रि-विध-तीन; प्रकार-प्रकार; दामोदर-स्वरूप हैते–स्वरूप दामोदर से; याहार–जिसका प्रचार-प्रचार।

अनुवाद

यह अत्यन्त गुह्य कारण तीन प्रकार का है। इसको स्वरूप दामोदर ने प्रकट किया है।

स्वरूप-गोसाञि—प्रभुर अति अन्तरङ्ग।

ताहाते जानेन प्रभुर ए-सब प्रसङ्ग ॥ 105॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोसांई; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; अति-अत्यन्त; अन्तरङ्ग–विश्वस्त साथी; ताहाते-उससे; जानेन–वे जानते हैं; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; ए-सब-ये सब; प्रसङ्ग-प्रसंग।

अनुवाद

स्वरूप गोसांई महाप्रभु के अत्यन्त अन्तरंग पार्षद हैं। अतएव वे इन सब प्रसंगों को भलीभाँति जानते हैं।

तात्पर्य

महाप्रभु के संन्यास ग्रहण करने के पूर्व नवद्वीप के निवासी पुरुषोत्तम भट्टाचार्य ने संन्यास आश्रम ग्रहण करना चाहा था। इसलिए वे घर छोड़कर बनारस चले गये, जहाँ उन्होंने एक मायावादी संन्यासी से ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर लिया। ब्रह्मचारी बनने के बाद उनका नाम श्री दामोदर स्वरूप पड़ा। उसके कुछ समय बाद उन्होंने संन्यास ग्रहण किये बिना ही बनारस छोड़ दिया और वे नीलाचल अर्थात् जगन्नाथपुरी आये, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु रहते थे। वे चैतन्य महाप्रभु से वहाँ मिले और फिर उन्होंने उनकी सेवा में अपना जीवन अर्पित कर दिया। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के सचिव तथा नित्य पार्षद बन गये। वे उपयुक्त भजन गाकर महाप्रभु की ह्लादिनी शक्ति को वर्धित करते रहते और ये भजन महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय लगते थे। स्वरूप दामोदर चैतन्य महाप्रभु के गुप्त उद्देश्य को समझ सकते थे और उन्हीं की कृपा से महाप्रभु के सारे भक्त उनके वास्तविक प्रयोजन को समझ सके।

स्वरूप दामोदर की पहचान राधारानी के द्वितीय विस्तार, ललितादेवी के रूप में की गई है। किन्तु कवि कर्णपूर रचित प्रामाणिक गौर-गणोद्देश-दीपिका में स्वरूप दामोदर को गोलोक वृन्दावन में भगवान् की सेवा करने वाली विशाखा देवी बतलाया गया है। अतएव श्री स्वरूप दामोदर को राधारानी का प्रत्यक्ष विस्तार माना जाता है, जो भगवान् को राधारानी के भाव का अनुभव कराते हैं।

राधिकार भाव-मूर्ति प्रभुर अन्तर।

सेइ भावे सुख-दुःख उठे निरन्तर॥ 106॥

राधिकार–श्रीमती राधारानी का; भाव-मूर्ति-भाव मूर्ति; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; अन्तर-हृदय; सेइ-वह; भावे-स्थिति में; सुख-दुःख-सुख दुःख; उठे-उठते हैं; निरन्तर–निरन्तर।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु का हृदय श्रीमती राधिका के भावों की मूर्ति है। इस प्रकार उसमें हर्ष तथा पीड़ा की भावनाएँ निरन्तर उठती रहती हैं।

तात्पर्य

चैतन्य महाप्रभु का हृदय श्रीमती राधारानी के भावों से परिपूर्ण था और उनका रूप उनसे मिलता-जुलता था। स्वरूप दामोदर ने उनके इस भाव को राधा-भावमूर्ति कहा है। जो भौतिक स्तर पर इन्द्रियतृप्ति में लगा हुआ है, वह राधा-भाव को नहीं समझ सकता है; किन्तु जो इन्द्रियतृप्ति के वेगों से मुक्त है, वह इसे समझ सकता है। राधा-भाव को गोस्वामियों से समझना चाहिए, क्योंकि वे ही इन्द्रियों के वास्तविक नियन्त्रक होते हैं। ऐसे प्रामाणिक स्रोतों से यह जाना जा सकता है कि श्रीमती राधारानी का भाव पाँच दिव्य रसों में सर्वश्रेष्ठ माधुर्य रस की चरम सिद्धि है और यह कृष्ण-प्रेम की परम पूर्णता है।

ये दिव्य व्यापार दो स्तरों पर समझे जा सकते हैं। एक उच्च स्तर कहलाता है और दूसरा अति उच्च स्तर कहलाता है। द्वारका में प्रदर्शित प्रेम-व्यापार उच्च स्तरीय हैं, जबकि अति उच्च स्तर वृन्दावन की लीलाओं के प्रदर्शन में प्राप्त हो पाता है। चैतन्य महाप्रभु का भाव निश्चित रूप से अति उच्च स्तरीय है।

शुद्ध भक्ति में संलग्न बुद्धिमान व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन से समझ सकता है कि वे अपने हृदय में सदैव कृष्ण-वियोग का अनुभव करते थे। उसी वियोग में कभी-कभी उन्हें लगता

था कि उन्हें कृष्ण मिल गये हैं और वे उनके साथ मिलन-सुख भोग रहे हैं। इस वियोग तथा मिलन की महत्ता विशिष्ट है। यदि कोई इसे जाने बिना भगवान् श्री चैतन्य के उच्च पद को समझने का प्रयास करता है, तो उसे अवश्य ही गलतफहमी होगी। सर्वप्रथम उसे पूर्णतया स्वरूपसिद्ध बनना होगा। अन्यथा वह भगवान् की पहचान नागर अर्थात् व्रजबालाओं के भोक्ता के रूप में करेगा और रसाभास की गलती कर बैठेगा।

शेष-लीलाय प्रभुर कृष्ण-विरह-उन्माद ।

भ्रम-मय चेष्टा, आर प्रलाप-मय वाद ॥107॥

शेष-लीलाय-अन्तिम लीलाओं में; प्रभुर--चैतन्य महाप्रभु की; कृष्ण-विरह-भगवान् कृष्ण के विरह से; उन्माद-उन्माद; भ्रम-मय-भ्रमित; चेष्टा-चेष्टाएँ; आर-और; प्रलाप-मय-प्रलापमय; वाद-बात।

अनुवाद

अपनी लीलाओं के अन्तिम भाग में श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण के वियोग के उन्माद से अभिभूत थे। वे भ्रान्तिपूर्ण कार्य बैठते थे और भ्रान्तचित्त होकर प्रलाप करते थे।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् के विरह में भक्त की सर्वोच्च भावदशा को प्रकट करते थे। यह प्रदर्शन अलौकिक था, क्योंकि वे विरह भाव में परम पूर्ण थे। किन्तु भौतिकतावादी इसे नहीं समझ सकते। कभी-कभी भौतिकतावादी विद्वान उन्हें बीमार या पागल मानते हैं। उनकी समस्या यह है कि ऐसे लोग सदैव भौतिक इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते हैं और भक्त तथा भगवान् के भावों को कभी नहीं

समझ सकते। भौतिकतावादियों के विचार अत्यन्त गर्हित होते हैं। वे सोचते हैं कि वे दिखाई देने वाले स्थूल पदार्थों को अपनी इन्द्रियों द्वारा भोग सकते हैं और वे चैतन्य महाप्रभु के दिव्य आदान-प्रदान के लक्षणों के बारे में भी इसी तरह सोचते हैं। किन्तु महाप्रभु केवल तभी समझे जा सकते हैं, जब मनुष्य स्वरूप दामोदर जैसे गोस्वामियों की शिक्षाओं के आधार पर उन्हें समझने का प्रयास करे। नदीया-नागरियों जैसे तथाकथित भक्तों के वर्ग के सिद्धान्तों का अनुमोदन स्वरूप दामोदर या छः गोस्वामियों जैसे प्रामाणिक अधिकारी विद्वानों द्वारा कभी भी नहीं किया जाता। गौरांग-नागरियों की धारणाएँ मात्र मनगढंत कल्पनाएँ हैं और वे पूर्णतया मानसिक स्तर पर ही रहते हैं।

राधिकार भाव यैछे उद्धव-दर्शने।

सेइ भावे मत्त प्रभु रहे रात्रि-दिने॥ 108॥

राधिकार-श्रीमती राधारानी का; भाव-भाव; यैछे-जैसे; उद्धव-दर्शने-श्री उद्धव को देखने में; सेइ-वह; भावे-उस स्थिति में; मत्त-उन्माद में; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; रहे-रहते; रात्रि-दिने–दिन रात।

अनुवाद

जिस प्रकार उद्धव को देखकर राधिका पागल सी हो गई थीं, उसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु विरह के उन्माद से रात-दिन अभिभूत रहते थे।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण लेने वाले समझ सकते हैं। कि उनकी (चैतन्य महाप्रभु की) भगवान् कृष्ण की विरह भाव में की जाने वाल आराधना की जो विधि है, वही भगवान्

की असली पूजा है। जब विरह की भावनाएँ अत्यन्त तीव्र हो उठती हैं, तभी श्रीकृष्ण-मिलन की अवस्था प्राप्त हो पाती है।

सहजिया जैसे तथाकथित भक्त सस्ती कल्पना करते हैं कि वे वृन्दावन में कृष्ण से मिल रहे हैं। ऐसी कल्पना भले ही लाभप्रद हो, किन्तु कृष्ण से वास्तविक मिलन श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा सिखाये गये विरह-भाव द्वारा ही सम्भव है।

रात्रे प्रलाप करे स्वरूपेर कण्ठ धरि' ।

आवेशे आपन भाव कहये उघाड़ि' ॥ 109॥

रात्रे-रात को; प्रलाप–प्रलाप; करे-करते; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर के; कण्ठ धरि'-गले लगकर; आवेशे-आवेश में; आपन-अपना; भाव-भाव; कहये-कहते हैं; उघाड़ि'–प्रचुर।

अनुवाद

रात में वे स्वरूप दामोदर के गले में अपनी बाँहें डालकर शोक में प्रलाप करते थे। वे आवेश में आकर अपने हृदय की बात कह देते थे।

यबे येइ भाव उठे प्रभुर अन्तर ।

सेइ गीति-श्लोके सुख देन दामोदर ॥110॥

यबे-जब; येइ-वह; भाव-भाव; उठे-उठता है; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु के; अन्तर–हृदय में; सेइ-वह; गीति-गीत से; श्लोके-या श्लोक से; सुख-सुख; देन-देता है; दामोदर-स्वरूप दामोदर।

अनुवाद

जब उनके हृदय में कोई विशेष भाव उठता था, तब स्वरूप दामोदर उसी तरह का गीत गाकर या श्लोक सुनाकर उन्हें सन्तुष्ट करते थे।

एबे कार्य नाहि किछु ए-सब विचारे।

आगे इहा विवरिब करिया विस्तारे ॥111॥

एबे–अब; कार्य-कार्य; नाहि-नहीं है; किछु–कोई; ए-सब-ये सब; विचारे-विचार में; आगे-आगे; इहा-यह; विवरिब–मैं वर्णन करूँगा; करिया-करके; विस्तारे-विस्तार में।

अनुवाद

अभी इन लीलाओं का विश्लेषण करना आवश्यक नहीं है। मैं इन सबको आगे चलकर विस्तार से बतलाऊँगा।

पूर्वे व्रजे कृष्णेर त्रि-विध वयो-धर्म।

कौमार, पौगण्ड, आर कैशोर अतिमर्म ॥ 112॥

पूर्वे-पहले; व्रजे-व्रज में; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; त्रि-विध-तीन प्रकार; वयः-धर्म-आयु के लक्षण; कौमार-कुमारावस्था; पौगण्ड-पौगण्ड; आर-और; कैशोर-किशोरावस्था; अति-मर्म-अति मर्म, विशेषतया।

अनुवाद

पूर्व में भगवान् कृष्ण ने व्रज में तीन अवस्थाओं-कौमार, पौगण्ड तथा कैशोर-का प्रदर्शन किया। इनमें से उनकी किशोर अवस्था विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

वात्सल्य-आवेशे कैल कौमार सफल ।

पौगण्ड सफल कैल लञा सखावल ॥113॥

वात्सल्य–वात्सल्य प्रेम के; आवेशे-आवेश में; कैल-किया; कौमार-कौमार, बचपन; स-फल-सफल; पौगण्ड-पौगण्ड, लड़कपन; स-फल-सफल; कैल–किया; लञा-साथ ले जाते हुए; सखा-आवल-मित्रगण।

अनुवाद

माता-पिता के स्नेह ने उनकी कौमार अवस्था (बचपन) को सफल बनाया। उनकी पौगण्ड अवस्था अपने मित्रों के साथ सफल बनी।

राधिकादि लञा कैल रासादि-विलास ।

वाञ्छा भरि' आस्वादिल रसेर निर्वास ॥114॥

राधिका-आदि-श्रीमती राधारानी तथा अन्य गोपियाँ; लञा-साथ लेकर; कैल-किया; रास-आदि-रासनृत्य आदि; विलास-लीलाएँ; वाञ्छा भरि'-इच्छा पूर्ति; आस्वादिल-उन्होंने आस्वाद लिया; रसेर-रस का; निर्यास-सार।

अनुवाद

युवावस्था (किशोरावस्था) में उन्होंने श्रीमती राधिका तथा अन्य गोपियों के साथ रासनृत्य आदि लीलाओं में अपनी इच्छापूर्ति करते हुए रस के सार का आस्वादन किया।

कैशोर-वयसे काम, जगत्सकल ।

रासादि-लीलाय तिन करिल सफल ॥115॥

कैशोर-वयसे–किशोरावस्था में; काम-माधुर्य प्रेम; जगत्-सकल-सारे जगत् में; रास-आदि-रास आदि; लीलाय-लीलाओं से; तिन-तीन; करिलकिया; स-फल-सफल।

अनुवाद

अपनी किशोरावस्था में भगवान् कृष्ण ने अपनी तीनों अवस्थाओं एवं सारे ब्रह्माण्ड को रासनृत्य जैसी माधुर्य-प्रेम की लीलाओं से सफल बनाया।

सोऽपि कैशोरक-वयो मानयन्मधुसूदनः ।

रेमे स्त्री-रल-कूट-स्थः क्षपासु क्षपिताहितः ॥116॥

सः-वे; अपि-विशेषतया; कैशोरक-वयः–किशोरावस्था; मानयन्-आदर करके मधु-सूदनः–मधु असुर का वध करने वाले; रेमे-आनन्द लिया; स्त्री-रल-गोपियों का; कूट-समूह; स्थः-स्थित; क्षपासु-शरद की रातों को; क्षपित-अहितः-जो संकटों को हरते हैं।

अनुवाद

भगवान् मधुसूदन ने शरदकालीन रातों में रत्नसदृश गोपियों के मध्य लीलाओं में अपनी किशोरावस्था का आनन्द लिया। इस तरह उन्होंने जगत् के समस्त दुर्भाग्य को दूर किया।"

तात्पर्य

यह श्लोक विष्णु पुराण (5.13.60) से लिया गया है।

वाचा सूचित-शर्वरी-रति-कला-प्रागल्भ्यया राधिका

व्रीड़ा-कुञ्चित-लोचनां विरचयन्नग्रे सखीनामसौ ।

तद्वक्षो-रुह-चित्र-केलि-मकरी-पाण्डित्य-पारं गतः

कैशोरं सफली-करोति कलयन्कुले विहारं हरिः ॥117॥

वाचा-वाणी से; सूचित-प्रकट करके; शर्वरी–रात की; रति-प्रेमपूर्ण लीलाएँ; कला-अंश, भाग; प्रागल्भ्यया-महत्त्व; राधिकाम्-श्रीमती राधारानी; व्रीड़ा-लज्जा से; कुञ्चित-लोचनाम्-अपने नेत्र बन्द करके; विरचयन् करके; अग्रे-पहले; सखीनाम्-अपनी सखियों के; असौ-वह एक; तत्-उनके; वक्षः-रुह-स्तनों पर; चित्र-केलि-विविध लीलाओं से; मकरी-मत्स्य के चित्र बनाने में; पाण्डित्य-कला निपुणता की; पारम्-सीमा; गतः-जो पहुँचे, जिन्होंने दिखाई; कैशोर-किशोरावस्था; स-फली-करोति-सफल करते हैं; कलयन्–करके; कुल्ले-कुंजों में; विहारम्-लीलाएँ; हरिः-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"जब भगवान् कृष्ण ने श्रीमती राधारानी से विगत रात में उनके साथ रति-क्रीड़ा से सम्बन्धित शब्द उनकी सखियों के समक्ष कहे, तो लज्जा से उनकी आँखें बन्द हो गईं। उस समय उन्होंने उनके वक्षस्थल पर खिलवाड़ करते हुए मत्स्य के चित्र खींचने में चातुर्य की पराकाष्ठा का प्रदर्शन किया। इस तरह भगवान् हरि ने लताकुंज में राधा तथा उनकी सखियों के साथ लीलाएँ करके अपनी किशोरावस्था को सफल बनाया।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृत-सिन्धु (2.1.231) से लिया गया है।

हरिरेष न चेदवातरिष्यन्

मथुरायां मधुराक्षि राधिका च।

अभविष्यदियं वृथा विसृष्टिर

मकराङ्कस्तु विशेषतस्तदात्र ॥ 118॥

हरिः-भगवान् कृष्ण; एषः–यह; न-नहीं; चेत्-यदि; अवातरिष्यत्-अवतरित हुए होते; मथुरायाम्-मथुरा में; मधुर-अक्षि-हे सुन्दर नेत्रों वाली (पौर्णमासी); राधिका-श्रीमती राधिका; च-और; अभविष्यत्-होती; इयम्-यह; वृथा-वृथा; विसृष्टिः-सृष्टि; मकर-अङ्कः-प्रेम के देवता, कामदेव; तु-तब; विशेषतः-विशेषतः; तदा-तब; अत्र-इसमें।

अनुवाद

हे पौर्णमासी, यदि भगवान् हरि श्रीमती राधारानी सहित मथुरा में अवतरित न हुए होते, तो यह सारी सृष्टि और विशेषतया कामदेव, विफल हो गये होते।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत विदग्ध-माधव (7.3) में है, जिसे श्री वृन्दादेवी ने कहा था।

एइ मत पूर्वे कृष्ण रसेर सदन।

यद्यपि करिल रस-निर्यास-चर्वण ॥ 119॥

तथापि नहिल तिन वाञ्छित पूरण।

ताहा आस्वादिते यदि करिल यतन ॥ 120॥

एइ मत-इस प्रकार; पूर्वे-पहले; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; रसेर–रसका; सदन-आगार, संग्रह; यद्यपि-यद्यपि; करिल–किया; रस-रस का; निर्यास-सार; चर्वण-चर्वण; तथापि तथापि; नहिल–नहीं था; तिन-तीन; वाञ्छित-वांछित इच्छाएँ; पूरण–पूरा करना; ताहा-वह; आस्वादिते-आस्वादन के लिए; यदि यदि; करिल-किये थे; यतन-प्रयत्न।

अनुवाद

यद्यपि समस्त रसों के आगार भगवान् कृष्ण ने इस तरह से पहले ही प्रेम-रस के सार का चर्वण किया था, तो भी वे तीन इच्छाओं को पूरी करने में असमर्थ थे, यद्यपि उन्होंने उनका आस्वादन करने का प्रयास किया था।

ताँहार प्रथम वाञ्छा करिये व्याख्यान ।

कृष्ण कहे,–'आमि हड रसेर निदान ॥121॥

ताँहार-उनकी; प्रथम-पहली; वाञ्छा-इच्छा; करिये-मैं करता हूँ; व्याख्यान-व्याख्यान; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कहे-कहते हैं; आमि-मैं; हइ-हूँ; रसेर–रसका; निदान-मूल कारण।

अनुवाद

सर्वप्रथम मैं उनकी पहली इच्छा की व्याख्या करूँगा। कृष्ण कहते हैं, "मैं सारे रसों का मूल कारण हूँ।

पूर्णानन्द-मय आमि चिन्मय पूर्ण-तत्त्व ।

राधिकार प्रेमे आमा कराय उन्मत्त ॥ 122॥

पूर्ण-आनन्द-मय–पूर्ण आनन्द से निर्मित; आमि-मैं; चित्-मय-आध्यात्मिक पूर्ण-तत्त्वपूर्ण सत्य; राधिकार–श्रीमती राधारानी; प्रेम-प्रेम; आमा–मुझे; कराय-करता है; उन्मत्त-उन्मत्त।

अनुवाद

“मैं पूर्ण आध्यात्मिक सत्य हूँ और मैं पूर्ण आनन्द से युक्त हूँ, किन्तु श्रीमती राधारानी का प्रेम मुझे उन्मत्त कर देता है।

ना जानि राधार प्रेमे आछे कत बल ।

ये बले आमारे करे सर्वदा विह्वल ॥123॥

ना जानि-मैं नहीं जानता; राधार–श्रीमती राधारानी के प्रेमे-प्रेम में; आछे-है; कत-कितना; बल-बल; ये-जो; बले-बल; आमारे-मुझे; करे-करता है; सर्वदा-सदा; विह्वल-विह्वल।

अनुवाद

“मैं राधा के प्रेम की उस शक्ति को नहीं जानता, जिससे वह मुझे सर्वदा विह्वल बनाती है।

राधिकार प्रेम–गुरु, आमि—शिष्य नट ।

सदा आमा नाना नृत्ये नाचाय उद्भट ॥ 124॥

राधिकार–श्रीमती राधिका का; प्रेम-प्रेम; गुरु-गुरू; आमि-मैं; शिष्य-शिष्य; नट-नर्तक; सदा-सदा; आमा–मुझे; नाना विविध; नृत्ये नृत्यों का; नाचाय-नचाता है; उद्भट-अद्भुत।

अनुवाद

“राधिका का प्रेम मेरा गुरु है और मैं उसका नर्तक शिष्य हूँ। उसका प्रेम मुझे विविध प्रकार के अभिनव नृत्य के लिए प्रेरित करता है।”

कस्माद्वन्दे प्रिय-सखि हरेः पाद-मूलात्कुतोऽसौ

कुण्डारण्ये किमिह कुरुते नृत्य-शिक्षा गुरुः कः ।

तं त्वन्मूर्तिः प्रति-तरु-लतं दिग्विदिक्षु स्फुरन्ती

शैलूषीव भ्रमति परितो नर्तयन्ती स्व-पश्चात् ॥ 125॥

कस्मात्-कहाँ से; वृन्दे-हे वृन्दा; प्रिया-सखि-हे प्रिय सखी; हरेः-भगवान् हरि के; पाद-मूलात्-चरणकमल से; कुतः–कहाँ; असौ-वे (भगवान् कृष्ण); कुण्ड-अरण्ये-राधाकुण्ड के तट पर वन में; किम्-क्या; इह-यहाँ; कुरुते-वे करते हैं; नृत्य-शिक्षाम् नृत्य अभ्यास; गुरुः–गुरु; कः-जो; तम्-उनको; त्वत्-मूर्तिः–आपका रूप; प्रति-तरु-लतम्-प्रत्येक वृक्ष एवं लता पर; दिक्-विदिक्षु-सभी दिशाओं में; स्फुरन्ती-प्रकट होते हैं; शैलूषी-दक्ष नर्तक; इव-की भाँति; भ्रमति-घूमती है; परितः-चारों ओर; नर्तयन्ती–नचाती हैं; स्व-पश्चात्-अपने पीछे।

अनुवाद

“हे प्यारी सखी वृन्दा, तुम कहाँ से आ रही हो?”

“मैं श्री हरि के चरणों से आ रही हूँ।”

“वे कहाँ हैं?”

“वे राधाकुण्ड के तट पर स्थित वनप्रदेश में हैं।”

“वे वहाँ क्या कर रहे हैं?”

“वे नृत्य सीख रहे हैं।”

“उनका गुरु कौन है?”

“राधा, तुम्हारी मूर्ति उन्हें पीछे पीछे नचा रही है और स्वयं एक चतुर नर्तकी की तरह हर वृक्ष तथा हर लता में सभी दिशाओं में अपने आपको प्रकट कर रही है।”

तात्पर्य

यह श्लोक कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत गोविन्द लीलामृत (8.77) से लिया गया है।

निज-प्रेमास्वादे मोर हय ये आह्लाद ।

ताहा ह’ते कोटि-गुण राधा-प्रेमास्वाद ॥126॥

निज-अपने; प्रेम-प्रेम; आस्वादे-आस्वादन करने में; मोर-मेरा; हय-है; ये-जो कुछ; आह्लाद-आह्लाद; ताहा ह'ते-उसकी अपेक्षा; कोटि-गुण-कोटि गुणा अधिक; राधा-श्रीमती राधारानी का; प्रेम-आस्वाद-प्रेम आस्वादन।

अनुवाद

श्रीमती राधारानी के प्रति मेरे प्रेम के आस्वादन से मुझे जो भी आनन्द मिलता है, उससे वह मेरी अपेक्षा करोड़ गुना अधिक प्रेम का आस्वादन करती है।

आमि यैछे परस्पर विरुद्ध-धर्माश्रय ।

राधा-प्रेम तैछे सदा विरुद्ध-धर्म-मय ॥127॥

आमि-मैं; यैछे-जैसे; परस्पर-आपस में; विरुद्ध-धर्म–विरोधी तत्त्वों का; आश्रय-आश्रय; राधा-प्रेम-श्रीमती राधारानी का प्रेम; तैछे-वैसे ही; सदा-सदा; विरुद्ध-धर्म-मय-विरोधी तत्त्वोंवाला है।

अनुवाद

जिस प्रकार मैं समस्त परस्पर-विरोधी गुणों का आगार हूँ, उसी प्रकार राधा का प्रेम भी वैसे ही विरोधाभासों से सदैव पूर्ण रहता है।

राधा-प्रेमा विभु–यार बाड़िते नाहि ठाञि ।

तथापि से क्षणे क्षणे बाड़ये सदाइ ॥ 128॥

राधा-प्रेमा-श्रीमती राधारानी का प्रेम; विभु-सर्वव्यापक; यार–जिसका; बाड़िते-बढ़ने का; नाहि-नहीं है; ठाञि-स्थान; तथापि तथापि; से-वह; क्षणे क्षणे-प्रतिक्षण; बाड़ये-बढ़ता है; सदाइ-सदा।

अनुवाद

“राधा का प्रेम सर्वव्यापी है, उसमें विस्तार की कोई गुंजाईश नहीं है। फिर भी वह निरन्तर बढ़ता रहता है।

याहा वइ गुरु वस्तु नाहि सुनिश्चित ।

तथापि गुरुर धर्म गौरव-वर्जित ॥ 129॥

याहा–जो; वइ-अतिरिक्त; गुरु-बड़ी; वस्तु-वस्तु; नाहि-नहीं है; सुनिश्चित-सुनिश्चित; तथापि तथापि; गुरुर–महत्त्व का; धर्म–लक्षण; गौरव-वर्जित-अभिमान रहित।

अनुवाद

निश्चित रूप से उसके प्रेम से बढ़कर कुछ भी नहीं है। लेकिन उसका प्रेम गर्व से रहित है। यह उसकी महानता का सूचक है।

याहा हैते सुनिर्मल द्वितीय नाहि आर ।

तथापि सर्वदा वाम्य-वक्र-व्यवहार ॥ 130॥

याहा हैते–जिसकी अपेक्षा; सु-निर्मल-अत्यन्त निर्मल; द्वितीय-दूसरा; नाहि-नहीं है; आर-अन्य; तथापि तथापि; सर्वदा-सदा; वाम्य-विकृत; वक्र-टेढ़ा; व्यवहार–व्यवहार।

अनुवाद

“उसके प्रेम से बढ़कर शुद्ध कुछ भी नहीं है। किन्तु उसका आचरण सदैव प्रतिकूल एवं वक्र रहता है।”

विभुरपि कलयन्सदाभिवृद्धि

गुरुरपि गौरव-चर्यया विहीनः ।

मुहुरुपचित-वक्रिमापि शुद्धो

जयति मुर-द्विषि राधिकानुरागः ॥131॥

विभुः सर्वव्यापक; अपि-यद्यपि; कलयन्-बताया; सदा-सदा; अभिवृद्धिम्-अभिवृद्धि; गुरुः–महत्त्वपूर्ण; अपि-यद्यपि; गौरव-चर्यया विहीनः-अभिमानमय आचरण से विहीन; मुहुः–बारम्बार; उपचित-बढ़ा हुआ; वक्रिमाद्विविधता, कपट, अपि-यद्यपि शुद्धः-शुद्ध; जयति–जय हो; मुर-द्विषि-मुरासुर के शत्रु, कृष्ण के लिए; राधिका-श्रीमती राधारानी का; अनुरागः-प्रेम।

अनुवाद

"मुर असुर के शत्रु कृष्ण के लिए राधा के प्रेम की जय हो! यद्यपि वह सर्वव्यापी है, किन्तु वह प्रतिक्षण बढ़ता जाता है। यद्यपि वह महत्त्वपूर्ण है, किन्तु वह गर्व से विहीन है। यद्यपि वह शुद्ध है, किन्तु सदैव कपट से भरा रहता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत दान-केलि-कौमुदी (2) से लिया गया है।

सेइ प्रेमार श्री-राधिका परम 'आश्रय'।

सेइ प्रेमार आमि हइ केवल 'विषय' ॥132॥

सेइ-वह; प्रेमार-प्रेम की; श्री-राधिका-श्रीमती राधारानी; परम-परम; आश्रय-आश्रय; सेइ-वह; प्रेमार-प्रेम का; आमि-मैं; हइ–हूँ; केवल–केवल; विषय-विषय।

अनुवाद

"श्री राधिका उसी प्रेम की परम आश्रय हैं और मैं उसका एकमात्र विषय हूँ।"

विषय-जातीय सुख आमार आस्वाद।

आमा हैते कोटि-गुण आश्रयेर आह्लाद ॥133॥

विषय जातीय–विषय से सम्बन्धित; सुख-सुख; आमार-मेरा; आस्वाद-आस्वादन; आमा हैते–मेरी अपेक्षा; कोटि-गुण-करोड़ गुना अधिक; आश्रयेर–आश्रय के; आह्लाद-आह्लाद।

अनुवाद

"मैं उस आनन्द का आस्वादन करता हूँ, जो प्रेम के विषय के लिए सर्वथा उपयुक्त है। किन्तु उस प्रेम की आश्रय राधा का आनन्द करोड़ गुना अधिक है।

आश्रय-जातिय सुख पाइते मन धाय।

यत्न आस्वादिते नारि, कि करि उपाय ॥ 134॥

आश्रय-जातीय-आश्रय से सम्बन्धित; सुख-सुख; पाइते-पाने के लिए; मन-मन; धाय-पीछा करता है; यत्न–यत्न से; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; नारि-मैं अक्षम हूँ; कि-क्या; करि-मैं करूँ; उपाय-उपाय।

अनुवाद

"मेरा मन आश्रय द्वारा अनुभव किये जाने वाले आनन्द का आस्वादन करने के लिए दौड़ रहा है, किन्तु मैं सारे प्रयत्नों के बावजूद भी उसका आस्वादन नहीं कर सकता। मैं उसका आस्वादन कैसे करूँ?"

कभु यदि एइ प्रेमार हइये आश्रय।

तबे एइ प्रेमानन्देर अनुभव हय ॥135॥

कभु–सभी; यदि-यदि; एइ–यह; प्रेमार-प्रेम का; हइये-मैं हो जाता हूँ; आश्रय-आश्रय; तबे-तब; एइ–यह; प्रेम-आनन्देर-प्रेमानन्द का; अनुभव–अनुभव; हय–होता है।

अनुवाद

"यदि कभी मैं उस प्रेम का आश्रय बन पाऊँ, तभी मैं उस आनन्द का आस्वादन कर सकता हूँ।"

तात्पर्य

विषय तथा आश्रय कृष्ण तथा उनके भक्त के बीच आदान-प्रदान सम्बन्धी दो महत्त्वपूर्ण शब्द हैं। भक्त आश्रय कहलाता है और उसके प्रियपात्र कृष्ण विषय कहलाते हैं। आश्रय तथा विषय के मध्य होने वाले प्रेम-विनिमय में अनेक अवयव निहित रहते हैं, जो विभाव, अनुभाव, सात्त्विक तथा व्यभिचारी कहलाते हैं। विभाव के दो उपविभाग किये गये हैं-आलम्बन तथा उद्दीपन। आलम्बन के भी दो विभाग किये जा सकते हैं- आश्रय तथा विषय।राधा तथा कृष्ण के प्रेम-व्यापार में राधारानी आश्रय हैं और कृष्ण विषय हैं। भगवान् की दिव्य चेतना उनसे कहती है, "मैं कृष्ण हूँ और मैं विषय के रूप में आनन्द का अनुभव करता हूँ। आश्रय रूपा राधारानी द्वारा आस्वादित आनन्द मेरे द्वारा अनुभव किये जा रहे आनन्द से अनेक गुना अधिक है।" इसीलिए आश्रय की कोटि का आनन्द अनुभव करने के लिए कृष्ण श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए।

एत चिन्ति' रहे कृष्ण परम-कौतुकी ।

हृदये बाड़ये प्रेम-लोभ धक्धकि ॥136॥

एत चिन्ति’-यह सोचकर; रहे-रहते हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; परम-कौतुकी-अत्यन्त उत्सुक; हृदये-हृदय में; बाड़ये-बढ़ता है; प्रेम-लोभ-प्रेम के लिए तीव्र इच्छा; धक्धकि-धधकती।

अनुवाद

इस प्रकार से सोचते हुए भगवान् कृष्ण उस प्रेम का आस्वादन करने के लिए उत्सुक थे। उस प्रेम का आस्वादन करने की उत्कट इच्छा उनके हृदय में अग्नि के समान प्रज्वलित होने लगी।

एइ एक, शुन आर लोभेर प्रकार।

स्व-माधुर्य देखि’ कृष्ण करेन विचार॥ 137॥

एइ–यह; एक-एक; शुन-कृपया सुनो; आर-अन्य; लोभेर-उत्कट इच्छा का; प्रकार-प्रकार; स्व-माधुर्घ-अपना माधुर्य; देखि’–देखकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करेन-करते हैं; विचार-विचार।

अनुवाद

यह एक इच्छा है। अब कृपया दूसरी इच्छा के बारे में सुनें। अपना खुद का सौन्दर्य देखकर भगवान् कृष्ण विचार करने लगे।

अद्भुत, अनन्त, पूर्ण मोर मधुरिमा।

त्रि-जगते इहार केह नाहि पाय सीमा॥138॥

अद्भुत-अद्भुत; अनन्त-अनन्त; पूर्ण–पूर्ण; मोर-मेरी; मधुरिमा–मिठास; त्रि-जगते–तीनों भुवनों में; इहार-इसकी; केह-कोई; नाहि-नहीं; पाय-पाता है; सीमा-सीमा।

अनुवाद

"मेरी माधुरी अद्भुत, अनन्त एवं पूर्ण है। तीनों लोकों में कोई इसकी सीमा नहीं पा सकता।

एइ प्रेम-द्वारे नित्य राधिका एकलि ।

आमार माधुर्यामृत आस्वादे सकलि ॥ 139॥

एइ–यह; प्रेम-द्वारे-प्रेम द्वारा; नित्य-सदा; राधिका–श्रीमती राधारानी; एकलि-अकेली; आमार-मुझे; माधुर्य-अमृत-माधुर्य-अमृत; आस्वादे-आस्वादन करती है; सकलि-सब।

अनुवाद

"केवल राधिका अपने प्रेम-बल से मेरी माधुरी के सारे अमृत का आस्वादन करती है।"

यद्यपि निर्मल राधार सत्प्रेम-दर्पण।

तथापि स्वच्छता तार बाढ़े क्षणे क्षण ॥ 140॥

यद्यपि यद्यपि, निर्मल-निर्मल; राधार–श्रीमती राधारानी का; सत्-प्रेम-वास्तविक प्रेम का; दर्पण-दर्पण; तथापि तथापि; स्वच्छता-स्वच्छता; तार-उसका; बाढ़े-बढ़ता है; क्षणे क्षण–प्रतिक्षण।

अनुवाद

यद्यपि राधा का प्रेम दर्पण की तरह स्वच्छ है, किन्तु इसकी स्वच्छता प्रतिक्षण बढ़ती जाती है।

आमार माधुर्य नाहि बाढ़िते अवकाशे ।

ए-दर्पणेर आगे नव नव रूपे भासे ॥141॥

आमार-मेरा; माधुर्य-माधुर्य; नाहि-नहीं; बाढ़िते-बढ़ाने के लिए; अवकाशे-अवसर; ए-दर्पणेर आगे-इस दर्पण के सामने; नव नव-नये नये; रूपे-रूप में; भासे-चमकता है।

अनुवाद

"मेरे माधुर्य में विस्तार की सम्भावना नहीं है, किन्तु उस दर्पण के समक्ष यह नित्य-नवीन सौन्दर्य के साथ चमकता है।

मन्माधुर्य राधार प्रेम दोंहे होड़ करि' ।

क्षणे क्षणे बाड़े दोंह, केह नाहि हारि ॥142॥

मत्-माधुर्य–मेरा माधुर्य; राधार–श्रीमती राधारानी का; प्रेम-प्रेम; दोंहे-दोनों इकठ्ठ; होड़ करि'–चुनौती देते हुए; क्षणे क्षणे-प्रतिक्षण; बाड़े-बढ़ते हैं; दोंहे-दोनों; केह नाहि-कोई नहीं; हारि-पराजित होते हैं।

अनुवाद

"मेरे माधुर्य एवं राधा के प्रेम-रूपी दर्पण के बीच निरन्तर स्पर्धा चलती रहती है। वे दोनों बढ़ते जाते हैं, किन्तु उनमें से कोई हारना नहीं जानता।"

आमार माधुर्य नित्य नव नव हय ।

स्व-स्व-प्रेम-अनुरूप भक्ते आस्वादय ॥ 143 ॥

आमार-मेरा; माधुर्य-माधुर्य; नित्य-नित्य; नव नव–नया नया; हय–होता है; स्व-स्व-प्रेम-अनुरूप-अपने अपने प्रेम के अनुसार; भक्ते-भक्त; आस्वादय–आस्वादन करता है।

अनुवाद

मेरा माधुर्य दिन-प्रतिदिन नवीन होता रहता है। भक्तगण अपने अपने प्रेम के अनुसार उसका आस्वादन करते हैं।

दर्पणाद्ये देखि' यदि आपन माधुरी ।

आस्वादिते हय लोभ, आस्वादिते नारि ॥144॥

दर्पण-आद्य-दर्पण से आरम्भ करके; देखि'–देखकर; यदि-यदि; आपन-अपना;माधुरी-माधुर्य; आस्वादिते-आस्वादन करने हेतु; हय-है; लोभ-लोभ; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; नारि-मैं सक्षम नहीं हूँ।

अनुवाद

यदि मैं अपने माधुर्य को दर्पण में देखता हूँ, तो उसका आस्वादन करने को मन करता है, किन्तु फिर भी मैं ऐसा नहीं कर सकता।

विचार करिये यदि आस्वाद-उपाय ।

राधिका-स्वरूप हइते तबे मन धाय ॥ 145॥

विचार-विचार; करिये-मैं करता हूँ; यदि-यदि; आस्वाद-आस्वादन करने के लिए; उपाय-उपाय; राधिका-स्वरूप-श्रीमती राधारानी की प्रकृति; हइते-होने के लिए; तबे-तब; मन-मन; धाय-पीछा करता है।

अनुवाद

“यदि मैं उसका आस्वादन करने का उपाय सोचता हूँ, तो मैं राधिका के पद के लिए लालायित जान पड़ता हूँ।”

तात्पर्य

कृष्ण का आकर्षण अद्भुत एवं असीम है। कोई इसका अन्त नहीं पा सकता। केवल श्रीमती राधारानी अपने आश्रय पद से ऐसी व्यापकता का आस्वादन कर सकती हैं। श्रीमती राधारानी के दिव्य प्रेम का दर्पण पूर्णतया स्वच्छ रहता है, किन्तु कृष्ण को जानने की दिव्य विधि से यह स्वच्छतर एवं स्वच्छतम प्रतीत होता है। राधारानी के हृदय रूपी दर्पण में कृष्ण के दिव्य लक्षण अधिकाधिक नवीन एवं तरोताजा लगते हैं। दूसरे शब्दों में, कृष्ण का आकर्षण श्रीमती राधारानी को जानने के अनुपात में बढ़ता है। इनमें से प्रत्येक दूसरे का स्थान लेना चाहता है। दोनों में से कोई भी प्रेम की उत्कटता की वृद्धि में पराजित नहीं होना चाहता। श्रीमती राधारानी के क्रमशः बढ़ते हुए प्रेम-भाव को समझने की इच्छा से ही भगवान् कृष्ण श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए।

अपरिकलित-पूर्वः कश्चमत्कार-कारी

स्फुरति मम गरीयानेष माधुर्य-पूरः ।

अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य ग्यं लुब्ध-चेताः

सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव ॥146॥

अपरिकलित-अनुभव नहीं किया; पूर्वः-पहले; कः-कौन; चमत्कार-कारी-चमत्कार करके; स्फुरति प्रकट होता है; मम-मेरा; गरीयान्-अधिक बड़ा; एषः–यह; माधुर्य-पूरः-माधुर्य की अधिकता; अयम्-यह; अहम्-मैं; अपि-भी; हन्त–खेद है; प्रेक्ष्य-देखकर; ग्रम्-जो; लुब्ध-चेताः-मेरा

लुब्ध मन; सरभसम्-तीव्रता से; उपभोक्तुम्-भोग करने हेतु; कामये-इच्छा करता हूँ; राधिका इव-श्रीमती राधारानी की तरह।

अनुवाद

"वह कौन है, जो मुझसे भी अधिक माधुर्य की प्रचुरता को प्रकट कर रहा है, जिसका इसके पूर्व कभी अनुभव नहीं किया गया और जो सबको आश्चर्य में डाल रहा है? हाय! मेरा मन इस सौन्दर्य को देखकर मोहग्रस्त हो गया है और मैं स्वयं तीव्रता से श्रीमती राधारानी की भाँति इसका उपभोग करना चाहता हूँ।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत ललित-माधव (8.34) से लिया गया है। यह श्लोक भगवान् कृष्ण ने द्वारका के रत्नजटित फव्वारे में अपने ही सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब देखने के बाद कहा था।

कृष्ण-माधुर्येर एक स्वाभाविक बल।

कृष्ण-आदि नर-नारी करये चञ्चल॥ 147॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; माधुर-माधुर्य का; एक-एक; स्वाभाविक-स्वाभाविक; बल-बल; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; आदि–समेत; नर-नारी-नर-नारी; करये-करता है; चञ्चल-चञ्चल।

अनुवाद

कृष्ण के सौन्दर्य में एक स्वाभाविक शक्ति है-यह स्वयं कृष्ण समेत सारे नर-नारियों के हृदयों को पुलकित कर देता है।

श्रवणे, दर्शने आकर्षये सर्व-मन ।

आपना आस्वादिते कृष्ण करेन यतन ॥148॥

श्रवणे-श्रवण में; दर्शने-देखने में; आकर्षये-आकर्षित करते हैं; सर्व-मन-सबके मनों को; आपना-स्वयं; आस्वादिते-आस्वादन लेने के लिए; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करेन-करते हैं; यतन-प्रयत्न।

अनुवाद

उनकी मधुर वाणी तथा बाँसुरी को सुनकर या उनके सौन्दर्य को देखकर सबके मन आकृष्ट हो जाते हैं। यहाँ तक कि स्वयं भगवान् कृष्ण भी उस माधुर्य का आस्वादन करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं।

ए माधुर्यामृत पान सदा येइ करे।

तृष्णा-शान्ति नहे, तृष्णा बाढ़े निरन्तरे ॥149॥

ए-यह; माधुर्य-अमृत-मधुरता का अमृत; पान-पीता है; सदा-सदा; येइ-वह व्यक्ति जो; करे-करता है; तृष्णा-शान्ति-प्यास की तृप्ति; नहे-नहीं है; तृष्णा-प्यास; बाढ़े-बढ़ती है; निरन्तरे–निरन्तर॥

अनुवाद

जो व्यक्ति उस माधुरी के अमृत का निरन्तर पान करता है, उसकी तृष्णा (प्यास) कभी नहीं बुझती। बल्कि वह निरन्तर बढ़ती जाती है।

अतृप्त हइया करे विधिर निन्दन ।

अविदग्ध विधि भाल ना जाने सृजन ॥ 150॥

अतृप्त-अतृप्त; हइया-होकर; करे-करते हैं; विधिर-ब्रह्माजी की; निन्दन-निन्दा; अविदग्ध-अनुभवहीन; विधि-ब्रह्माजी; भाल–अच्छा; ना जाने नहीं जानते; सृजन-सृजन।

अनुवाद

ऐसा व्यक्ति अतृप्त होने के कारण ब्रह्माजी की निन्दा यह कहकर करने लगता है कि उन्हें ठीक से सृजन कला नहीं आती, अपितु वे निपट अनुभवहीन हैं।

कोटि नेत्र नाहि दिल, सबे दिल दुइ ।

ताहाते निमेष,—कृष्ण कि देखिब मुञि ॥151॥

कोटि-करोड़; नेत्र-नेत्र; नाहि दिल-नहीं दिये; सबे-सबको; दिल-दिये; दुइ-दो; ताहाते-उसमें; निमेष-पलक झपकना; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कि कैसे; देखिब-देखेंगी; मुञि-मैं।

अनुवाद

उन्होंने कृष्ण का सौन्दर्य देखने के लिए करोड़ों आँखें क्यों नहीं दीं। उन्होंने केवल दो आँखें दी हैं और वे भी पलक झपकती रहती हैं। तो भला मैं कृष्ण के सुन्दर मुख को कैसे देख सकेंगी?

अटति यद्भवानह्नि काननं

त्रुटिगायते त्वामपश्यताम् ।

कुटिल-कुन्तलं श्री-मुखं च ते

जड़ उदीक्षतां पक्ष्म-कृशाम् ॥ 152॥

अटति-जाते हैं; यत्-जब; भवान्-आप; अह्नि-दिन में; काननम्-वन को; त्रुटिः—आधा क्षण; युगायते-युग की भाँति प्रतीत होता है; त्वाम्-आपको; अपश्यताम्-जो नहीं देखते उनका; कुटिल-कुन्तलम्-धुंधराले बाल के सजे हुए; श्री-मुखम् सुन्दर मुख: च-तथा; ते-आपका; जड़ः-मूर्ख; उदीक्षताम्-देखते हुए; पक्ष्म-कृत्-पलकों को बनाने वाला; दृशाम्-आँखों की।

अनुवाद

(गोपियों ने कहा :) "हे कृष्ण! जब आप दिन में वन में चले जाते हैं और हम आपके सुन्दर धुंघराले बालों से घिरे मधुर मुखमंडल को नहीं देखतीं, तो हमारे लिए आधा क्षण भी एक युग के समान बन जाता है। तब हम उस स्रष्टा को निरा मूर्ख मानती हैं, जिसने हमारी उन आँखों के ऊपर पलकें बना दी हैं, जिनसे हम आपको देखती हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.31.15) में आया है और गोपियों की उक्ति के रूप में है।

गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं

यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्म-कृतं शपन्ति।

दृग्भिहंदी-कृतमलं परिरभ्य सर्वास्

तद्भावमापुरपि नित्य-ग्रुजां दुरापम्॥ 153॥

गोप्यः-गोपियाँ; च-तथा; कृष्णम्-भगवान् कृष्ण; उपलभ्य-देखकर; चिरात्-बहुत समय के बाद; अभीष्टम् इच्छित वस्तु; यत्-प्रेक्षणे-जिनको देखने में; दृशिषु-आँखों में; पक्ष्म-कृतम्-पलकों को बनाने वाला; शपन्ति-शाप; दृग्भिः -आँखों से; हृदी कृतम्-जो हृदयों में प्रवेश कर गई; अलम्-

पर्याप्त; परिरभ्य-आलिंगन करके; सर्वाः-सभी; तत्-भावम्-प्रसन्नता की उस दशा को; आपुः–प्राप्त किया; अपि-यद्यपि; नित्य-ग्रुजाम्-सिद्ध योगियों द्वारा; दुरापम्-पाने में कठिन।

अनुवाद

"गोपियों ने दीर्घकालीन विछोह के बाद अपने प्रिय कृष्ण को कुरुक्षेत्र में देखा। उन्होंने अपने नेत्रों के माध्यम से अपने हृदयों में उन्हें प्राप्त किया और उनका आलिंगन किया। उन्हें इतना उत्कट हर्ष हुआ कि सिद्ध योगियों को भी ऐसा हर्ष प्राप्त नहीं हो सकता। गोपियाँ स्रष्टा को यह कहकर कोसने लगीं कि उसने पलकें क्यों बनाईं, जो उनके देखने में बाधक बन रही हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.82.39) से लिया गया है।

कृष्णावलोकन विना नेत्र फल नाहि आन ।

येइ जन कृष्ण देखे, सेइ भाग्यवान् ॥ 154॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवलोकन-देखना; विना-बिना; नेत्र-नेत्र; फल-फल; नाहि-नहीं; आन–अन्य; येइ-जो; जन-व्यक्ति; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; देखे-देखता है; सेइ-वह; भाग्यवान्-भाग्यवान्।

अनुवाद

कृष्ण के दर्शन के अतिरिक्त नेत्रों के लिए कोई दूसरी पूर्णता नहीं है। जो भी उनका दर्शन पाता है, वह सचमुच परम भाग्यशाली है।

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः

सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ।

वक्त्रं व्रजेश-सुतयोरनुवेणु-जुष्टं

यैर्वा निपीतमनुरक्त-कटाक्ष-मोक्षम् ॥ 155॥

अक्षण्वताम्-आँख वालों का; फलम्-फल; इदम्-यह; न-नहीं; परम्-अन्य; विदामः-हम जानते हैं; सख्यः-हे सखियों; पशून्–गौएँ; अनुविवेशयतोः–एक जंगल से दूसरे जंगल में ले जाना; वयस्यैः-उसी आयु की अपने सखाओं के साथ; वक्त्रम्-मुख; व्रज-ईश-महाराज नन्द; सुतयोः–दो पुत्रों का; अनुवेणु-जुष्टम्-बांसुरियाँ धारण किए हुए; यैः-जिससे; वा-अथवा; निपीतम्-आत्मसात् किए; अनुरक्त-प्रेम से; कट-अक्ष-कटाक्ष; मोक्षम्-छोड़ते हैं।

अनुवाद

(गोपियों ने कहा :) "हे सखियों, वे आँखें, जो महाराज नन्द के पुत्रों के सुन्दर मुखों का दर्शन करती हैं, निश्चय ही भाग्यशाली हैं। जैसे ही ये दोनों पुत्र (श्रीकृष्ण और बलराम) अपने सखाओं के साथ गायों को अपने आगे रखकर वन में प्रवेश करते हैं, वे अपने होंठों पर अपनी बाँसुरियाँ रख लेते हैं और वृन्दावन के निवासियों की ओर प्रेम-पूर्ण दृष्टिपात करते हैं। जिनके पास आँखें हैं, हमारे विचार में उनके लिए इससे बढ़कर कोई अन्य दर्शनीय वस्तु नहीं है।"

तात्पर्य

यदि कोई पर्याप्त भाग्यशाली है, तो वह गोपियों की भाँति कृष्ण को निरन्तर देख सकता है। ब्रह्म-संहिता में कहा गया है कि वे ऋषिगण जिनके नेत्रों में शुद्ध प्रेम का अंजन लगा हुआ है,

श्यामसुन्दर (कृष्ण) के रूप को अपने हृदयों के भीतर निरन्तर देख सकते हैं। श्रीमद्भागवत (10.21.7) का यह श्लोक शरद ऋतु के आगमन पर गोपियों द्वारा गाया गया था।

गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं

लावण्य-सारमसमोर्ध्वमनन्य-सिद्धम् ।

दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुरापम्

एकान्त-धाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥ 156॥

गोप्यः-गोपियों ने; तपः–तप; किम्-क्या; अचरन्किया; यत् जिससे; अमुष्य-ऐसे (भगवान् कृष्ण) का; रूपम्-रूप; लावण्य-सारम् सुन्दरता का सार; असम-ऊर्ध्वम्-अद्वितीय, अतुलनीय; अनन्य-सिद्धम्-किसी और आभूषण से पूर्ण न किए जाने वाला, आत्मपूर्ण; दृग्भिः–नेत्रों से; पिबन्ति-वे पीती हैं; अनुसव-अभिनवम्-निरन्तर नवीन; दुरापम्-अप्राप्य; एकान्त-धाम-एक मात्र धाम; यशसः-यशस्वी; श्रियः-सौन्दर्य का; ऐश्वरस्य–ऐश्वर्य युक्त।

अनुवाद

[मथुरा की स्त्रियों ने कहा :]"न जाने गोपियों ने कौन सा तप किया है? वे अपनी आँखों से भगवान् कृष्ण के स्वरूप के अमृत का निरन्तर पान करती हैं, जो लावण्य का सार है तथा जिसके बराबर या जिससे बढ़कर और कुछ नहीं है। यह लावण्य सौन्दर्य, यश तथा ऐश्वर्य का एकमात्र आश्रय है। यह स्वयं में सम्पूर्ण, चिर नवीन तथा अतीव विरल है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.44.14) से लिया गया है। जब मथुरा की स्त्रियों ने कृष्ण तथा बलराम को कंस के अखाड़े में मुष्टिक तथा चाणूर नामक कंस के महान् मल्लों के साथ देखा, तो उन्होंने ऐसा कहा था।

अपूर्व माधुरी कृष्णेर, अपूर्व तार बल ।

याहार श्रवणे मन हय टलमल ॥ 157॥

अपूर्व–अपूर्व; माधुरी-मधुरता; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; अपूर्व-अपूर्व; तार-उनका; बल-बल; याहार–जिसका; श्रवणे-सुनने में; मन–मन; हय हो जाता है; टलमल-अस्थिर।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण की माधुरी अद्वितीय है और उनका बल भी अद्वितीय है। ऐसी सुन्दरता के श्रवण मात्र से मन चंचल हो उठता है।

कृष्णेर माधुर्ये कृष्णे उपजय लोभ ।

सम्यकास्वादिते नारे, मने रहे क्षोभ ॥158॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; माधुर्ये-माधुर्य में; कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; उपजय-उठती हैं, उत्पन्न होती है; लोभ-उत्सुकता; सम्यक्-पूर्यारूपेण; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; नारे-सक्षम नहीं; मने-मन में; रहे-रहता है; क्षोभ–क्षोभ, खेद।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण का सौन्दर्य स्वयं उन्हें ही आकृष्ट करता है। किन्तु उसका पूर्णतया आनन्द न ले सकने के कारण उनका मन खिन्न बना रहता है।

एइ त द्वितीय हेतुर कहिल विवरण ।

तृतीय हेतुर एबे शुनह लक्षण ॥ 159॥

एइ-यह; त'–निश्चित रूप से; द्वितीय-दूसरा; हेतुर–कारण का; कहिल–कहा गया है; विवरण–विवरण; तृतीय-तीसरे; हेतुर–कारण की; एबे-अब; शुनह–कृपया सुनो; लक्षण-लक्षण।

अनुवाद

यह उनकी द्वितीय इच्छा का विवरण है। अब मैं तीसरी इच्छा का वर्णन करता हूँ। कृपया ध्यान से सुनें।

अत्यन्त-निगूढ़ एइ रसेर सिद्धान्त ।

स्वरूप-गोसाञि मात्र जानेन एकान्त ॥ 160॥

अत्यन्त-अत्यन्त; निगूढ़-गहरा; एइ-यह; रसेर-रस का; सिद्धान्त-सिद्धान्त, निष्कर्ष; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; मात्र-मात्र; जानेन-जानते हैं; एकान्त-अधिक।

अनुवाद

रस का यह निष्कर्ष अत्यन्त गूढ़ है। एकमात्र स्वरूप दामोदर ही इसके विषय में ठीक से जानते हैं।

येबा केह अन्य जाने, सेहो ताँहा हैते ।

चैतन्य-गोसाञिर तेह अत्यन्त मर्म याते ॥ 161॥

येबा-जो कोई; केह-कोई; अन्य-अन्य; जाने-जानता है; सेहो-वह; ताँहा हैते-उनसे, (स्वरूप दामोदर से); चैतन्य-गोसाञिर–चैतन्य महाप्रभु का; तेह-वह; अत्यन्त-अत्यन्त; मर्म–मर्म, भेद; याते-चूँकि।

अनुवाद

यदि कोई अन्य व्यक्ति इसे जानने का दावा करता है, तो उसने उनसे ही सुना होगा, क्योंकि वे श्री चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त अन्तरंग पार्षद थे।

गोपी-गणेर प्रेमेर 'रूढ़-भाव' नाम ।

विशुद्ध निर्मल प्रेम, कभु नहे काम ॥162॥

गोपी-गणेर-गोपियों का; प्रेमेर-प्रेम का; रूढ़-भाव-रूढ़भाव; नाम-नामक; विशुद्ध-विशुद्ध; निर्मल-निर्मल; प्रेम-प्रेम; कभु-कभी भी; नहे-नहीं है; काम-कामवासना।

अनुवाद

गोपियों का प्रेम 'रूढ़ भाव' कहलाता है। यह विशुद्ध एवं निष्कलंक है। यह कभी भी कामवासना नहीं होता।

तात्पर्य

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, कृष्ण के साथ प्रेम-व्यापार के मामले में गोपियों का स्थान दिव्य है। उनका भाव रूढ-भाव कहलाता है। यद्यपि यह भौतिक कामवासना जैसा लगता है,

किन्तु इसे संसारी कामवासना जैसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि यह शुद्ध तथा निर्मल भगवत्प्रेम है।

प्रेमैव गोप-रामानां काम इत्यगमत्प्रथाम् ।

इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः ॥ 163 ॥

प्रेम-प्रेम; एव–केवल; गोप-रामानाम्-व्रज की स्त्रीयों की; कामः-काम वासना; इति-जैसे; अगमत्-गई; प्रथाम्-प्रसिद्धि; इति-इस प्रकार; उद्धव-आदयः-श्री उद्धव आदि से लेकर; अपि-भी; एतम्-यह; वाञ्छन्ति–इच्छा करते हैं; भगवत्-प्रियाः-भगवान् के प्रिय भक्तगण।

अनुवाद

“गोपियों का शुद्ध प्रेम 'काम’ के नाम से विख्यात हो गया है। श्री उद्धव जैसे भगवान् के भक्त उस प्रेम का आस्वादन करने की इच्छा करते हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृत-सिन्धु (1.2.285) से लिया गया है।

काम, प्रेम,—दोंहाकार विभिन्न लक्षण ।

लौह आर हेम यैछे स्वरूपे विलक्षण ॥ 164॥

काम-काम-वासना; प्रेम-प्रेम; दोंहाकार-दोनों का; विभिन्न–विभिन्न; लक्षण-लक्षण; लौह-लोहा; आर-और; हेम–सुवर्ण; यैछे-जैसे; स्वरूपे-स्वभाव में, स्वरूप में; विलक्षण-पृथक्।

अनुवाद

काम तथा प्रेम के लक्षण अलग अलग होते हैं, जिस प्रकार लोहे और सोने के स्वभाव भिन्न भिन्न होते हैं।

तात्पर्य

व्यक्ति को कामवासना और शुद्ध-प्रेम के बीच अन्तर करने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि उनके बीच अत्यधिक भिन्नता होने के कारण वे अलग अलग श्रेणी के हैं। वे एक दूसरे से उसी प्रकार भिन्न हैं, जिस प्रकार लोहा सोने से भिन्न होता है।

आत्मेन्द्रिय-प्रीति-वाञ्छा—तारे बलि'काम' ।

कृष्णेन्द्रिय-प्रीति-इच्छा धरे 'प्रेम' नाम ॥ 165॥

आत्म-इन्द्रिय-प्रीति-अपनी खुद की इन्द्रियों के आनन्द के लिए; वाञ्छा-इच्छा: तारे-उसको; बलि-मैं कहता हूँ; काम–काम वासना; कृष्ण-इन्द्रिय-प्रीति-भगवान् कृष्ण की इन्द्रियों के आनन्द हेतु; इच्छा-इच्छा; धरे-धारण करना, रखना; प्रेम-प्रेम; नाम-नाम।

अनुवाद

अपनी खुद की इन्द्रियों की तृप्ति करने की इच्छा 'काम' है, किन्तु कृष्ण की इन्द्रियों को तुष्ट करने की इच्छा 'प्रेम' है।

तात्पर्य

प्रामाणिक शास्त्रों में शुद्ध प्रेम का वर्णन निम्न प्रकार से हुआ है :

सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे ।

यद्भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्तितः ॥

“यदि प्रेम-सम्बन्ध के ध्वंस होने का पर्याप्त कारण होने पर भी यह ध्वंस नहीं होता है, तो ऐसा घनिष्ठ प्रेम सम्बन्ध शुद्ध कहलाता है।”

आश्रित गोपियाँ कृष्ण से ऐसे ही शुद्ध प्रेम से बँधी थीं। उनके लिए इन्द्रियतृप्ति पर आधारित कामवासना का प्रश्न ही नहीं था। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य सभी प्रकार से कृष्ण को सुखी बनाना था, भले ही उन्हें अपने स्वार्थों की बलि क्यों न देनी पड़े। उन्होंने एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण की तुष्टि के लिए अपने आत्माओं को समर्पित कर दिया था। गोपियों तथा कृष्ण के बीच रंचमात्र भी कामवासना नहीं थी।

श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक बलपूर्वक कहते हैं कि कामवासना निजी इन्द्रिय-भोग का विषय है। वेदों में वर्णित सारे नियामक विधान जिनका सम्बन्ध लोकप्रियता, पितृत्व, धन आदि की इच्छाओं से है, इन्द्रियतृप्ति की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। इन्द्रियतृप्ति का कार्य जन-हित, राष्ट्रीयता, धर्म, परोपकार, नैतिक नियम, बाइबिल के आदेश, स्वास्थ्य विषयक निर्देश, सकाम कर्म, लज्जा, सहिष्णुता, आत्म सुख, भौतिक बन्धन से मोक्ष, उन्नति, परिवार के प्रति स्नेह या सामाजिक बहिष्कार अथवा कानूनी दण्ड के बहाने किया जा सकता है, किन्तु ये सब इन्द्रियतृप्ति के उपविभाग ही हैं। ये सारे उत्तम कार्य मूलतः अपनी खुद की इन्द्रियतृप्ति के लिए सम्पन्न किये जाते हैं, क्योंकि इन बहुविज्ञापित नैतिक तथा धार्मिक नियमों को लागू करते समय कोई भी व्यक्ति अपने स्वार्थों की बलि नहीं दे सकता। किन्तु इन सबसे ऊपर एक दिव्य अवस्था होती है, जिसमें व्यक्ति अपने आपको परम भगवान् श्रीकृष्ण का सनातन सेवक मानता है। इस सेवाभाव में सम्पन्न किये जाने वाले सारे कार्य शुद्ध भगवत्प्रेम कहलाते हैं, क्योंकि वे श्रीकृष्ण की चरम इन्द्रियतृप्ति के लिए सम्पन्न किये

जाते हैं। किन्तु जो भी कार्य फल-प्राप्ति के भोग के उद्देश्य से किया जाता है, वह इन्द्रियतृप्ति का कार्य कहलाता है। ऐसे कार्य कभी स्थूल रूप में तो कभी सूक्ष्म रूप में देखे जाते हैं।

कामेर तात्पर्य—निज-सम्भोग केवल ।

कृष्ण-सुख-तात्पर्य-मात्र प्रेम त' प्रबल ॥ 166 ॥

कामेर–काम वासना का; तात्पर्य–तात्पर्य, प्रयोजन; निज-निज, अपनी; सम्भोग-संभोग; केवल–केवल; कृष्ण-सुख-भगवान् कृष्ण के सुख हेतु; तात्पर्य तात्पर्य; मात्र-केवल; प्रेम-प्रेम; त'–निश्चय ही; प्रबल-प्रबल।

अनुवाद

काम का लक्ष्य अपनी खुद की इन्द्रियों का भोग करना मात्र है। किन्तु प्रेम भगवान् कृष्ण के सुख (भोग) का ध्यान रखता है और इसलिए यह अत्यन्त शक्तिशाली होता है।

लोक-धर्म, वेद-धर्म, देह-धर्म, कर्म ।

लज्जा, धैर्य, देह-सुख, आत्म-सुख-मर्म ॥ 167॥

दुस्त्यज आर्य-पथ, निज परिजन ॥

स्व-जने करये व्रत ताड़न-भर्सन ॥ 168॥

सर्व-त्याग करि' करे कृष्णेर भजन ।

कृष्ण-सुख-हेतु करे प्रेम-सेवन ॥ 169॥

लोक-धर्म–लोक धर्म; वेद-धर्म-वेद धर्म, वेदों के आदेश; देह-धर्म-देह धर्म, शरीर की आवश्यकताएँ, कर्म–सकाम कर्म; लज्जा–लज्जा; धैर्य-धैर्य; देह-सुख-देह सुख; आत्म-सुख-आत्मसुख; मर्म-मर्म, सार; दुस्त्यज-त्यागने में कठिन; आर्य-पथ-वर्णाश्रम का मार्ग; निज-अपने; परिजन-परिवार जन; स्व-जने-अपना परिवार; करये-करते हैं; व्रत-सब; ताड़न-ताड़ना, सजा; भर्सन-डांट-डपट; सर्व-त्याग करि-सब कुछ त्यागकर; करे-करते हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; भजन-पूजा; कृष्ण-सुख-हेतु-भगवान् कृष्ण की प्रसन्नता के लिए; करे-करते हैं; प्रेम-प्रेम के कारण; सेवन–सेवा।

अनुवाद

सामाजिक रीतियाँ, शास्त्रीय आदेश, शारीरिक आवश्यकताएँ, सकाम कर्म, लज्जा, धैर्य, शारीरिक सुख, इन्द्रियतृप्ति तथा वर्णाश्रम-धर्म का वह मार्ग, जिसे छोड़ पाना कठिन है-गोपियों ने अपने परिवार के साथ साथ इन सबको त्याग दिया है और अपने परिजनों के दण्ड तथा फटकार को सहा है। यह सब उन्होंने भगवान् कृष्ण की सेवा के लिये किया। वे उनके (कृष्ण के) आनन्द के लिए उनकी प्रेममयी सेवा करती हैं।

इहाके कहिये कृष्णे दृढ़ अनुराग।

स्वच्छ धौत-वस्त्रे यैछे नाहि कोन दाग॥ 170॥

इहाके–यह; कहिये-मैं कहता हूँ; कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; दृढ़-दृढ़; अनुराग-प्रेम: स्वच्छ-स्वच्छ; धौत-निर्मल; वस्त्रे-वस्त्र में; यैछे-जैसे; नाहि-नहीं; कोन-कुछ; दाग-दाग।

अनुवाद

यह भगवान् कृष्ण के प्रति दृढ़ अनुराग कहलाता है। यह उसी तरह शुद्ध निष्कलंक है, जिस तरह दागरहित स्वच्छ वस्त्र।

तात्पर्य

श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक सबको इन्द्रियतृप्ति के कार्यों को त्यागने और गोपियों की तरह भगवान् की इच्छा के साथ पूरी तरह जुड़ जाने का उपदेश देते हैं। भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण का यही आखरी उपदेश है। हमें भगवान् को प्रसन्न करने के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार रहना चाहिए, यहाँ तक कि वैदिक सिद्धान्तों या नैतिक नियमों का उल्लंघन करने के लिए भी। भगवत्प्रेम का यही मानदण्ड है। शुद्ध भगवत्प्रेम में ऐसे कार्य उसी तरह निष्कलंक हैं, जिस तरह पूर्णरूपेण धुला सफेद कपड़ा। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की चेतावनी है कि हर वस्तु के परित्याग के विचार का यह गलत अर्थ नहीं लगा लेना चाहिए कि शरीर तथा मन सम्बन्धी आवश्यक कर्तव्यों का त्याग भी कर देना चाहिए। ऐसे कर्तव्य इन्द्रियतृप्ति नहीं होते, यदि वे कृष्ण-सेवा के विचार से किये जाएँ।

अतएव काम-प्रेमे बहुत अन्तर ।

काम–अन्ध-तमः, प्रेम–निर्मल भास्कर ॥ 171॥

अतएव–अतएव; काम-प्रेमे-काम-वासना और प्रेम में; बहुत-बहुत; अन्तर-अन्तर; काम-काम-वासना; अन्ध-तमः-गहरा अँधेरा; प्रेम-प्रेम; निर्मल-निर्मल; भास्कर-सूर्य।

अनुवाद

अतएव काम तथा प्रेम बिल्कुल भिन्न होते हैं। काम घने अंधेरे की भाँति होता है, किन्तु प्रेम चमकते सूर्य के समान है।

अतएव गोपी-गणेर नाहि काम-गन्ध ।

कृष्ण-सुख लागि मात्र, कृष्ण से सम्बन्ध ॥ 172॥

अतएव–अतएव; गोपी-गणेर-गोपियों का; नाहि-नहीं; काम-गन्ध-तनिक वासना; कृष्ण-सुख-भगवान् कृष्ण के सुख; लागि–के लिए; मात्र केवल; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; से-वह; सम्बन्ध–सम्बन्ध।

अनुवाद

इस प्रकार गोपियों के प्रेम में काम की रंचमात्र भी गन्ध नहीं है। कृष्ण के साथ उनका सम्बन्ध एकमात्र उनके (कृष्ण के) सुख के लिए है।

यत्ते सुजात-चरणाम्बुरुहं स्तनेषु

भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।

तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित्

कूर्पादिभिर्भमति धीर्भवदायुषां नः ॥173 ॥

यत्-जो; ते-आपके; सुजात-बहुत कोमल; चरण-अम्बु-रुहम्-चरणकमल; स्तनेषु-स्तनों पर; भीताः-डरकर; शनैः-धीरे से; प्रिय-वे प्रिय; दधीमहि-हम रखती हैं; कर्कशेषु-कठोर, खुरदरा; तेन-उनके साथ; अटवीम्-मार्ग; अटसि-आप घूमते हैं; तत्-वे; व्यथते-कष्ट मिलता हैं, पीड़ा होती है; न-

नहीं; किम् स्वित्-हम चकित होते हैं; कूर्प-आदिभिः–कङ्करों आदि से; भ्रमति-घूमते हैं; धीः-मन; भवत्-आयुषाम्-जिनके लिए आप ही जीवन हैं; नः-हमारा।

अनुवाद

"हे प्रिय! आपके चरणकमल इतने कोमल हैं कि हम उन्हें अपने वक्षस्थलों पर डरती हुईं धीरे से रखती हैं कि कहीं आपके चरणों में चोट न लग जाये। हमारे प्राण एकमात्र आप पर आश्रित हैं। इसलिए हमारे मन इस आशंका से भरे रहते हैं कि आपके कोमल चरण जंगल के मार्ग पर चलते हुए कहीं कंकड़ों से क्षत-विक्षत न हो जाएँ।"

तात्पर्य।

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.31.19) से लिया गया है, जिसे गोपियों ने तब कहा था, जब श्रीकृष्ण उन्हें रासलीला के बीच में ही छोड़कर चले गये थे।

आत्म-सुख-दुःखे गोपीर नाहिक विचार।

कृष्ण-सुख-हेतु चेष्टा मनो-व्यवहार॥ 174॥

आत्म-सुख-दुःखे-अपने सुख-दुःख में; गोपीर-गोपियों का; नाहिक-नहीं: विचार-विचार; कृष्ण-सुख-हेतु-कृष्ण के सुख के लिए; चेष्टा-चेष्टा; मनः-मन का; व्यवहार-व्यवहार।

अनुवाद

गोपियाँ अपने खुद के सुख या दुःख की तनिक भी परवाह नहीं करतीं। उनकी सारी शारीरिक तथा मानसिक चेष्टाएँ भगवान् कृष्ण को आनन्द पहुँचाने की दिशा में लगी रहती हैं।

कृष्ण लागि’ आर सब करे परित्याग।

कृष्ण-सुख-हेतु करे शुद्ध अनुराग॥ 175॥

कृष्ण लागि’–भगवान् कृष्ण के लिए; आर-अन्य; सब-सब; करे-करते हैं; परित्याग-परित्याग करते हैं; कृष्ण-सुख-हेतु-भगवान् कृष्ण की प्रसन्नता हेतु; करे-करते हैं; शुद्ध-शुद्ध; अनुराग-आसक्ति।

अनुवाद

उन्होंने कृष्ण के लिए अपना सब कुछ त्याग दिया। कृष्ण को सुख देने के लिए उनमें शुद्ध अनुराग है।

एवं मदर्थोज्झित-लोक-वेद-

स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः।

मया परोक्षं भजता तिरोहितं।

मासूयितुं मार्हथ तत्प्रियं प्रियाः॥ 176॥

एवम्-इस प्रकार; मत्-अर्थ-मेरे लिए; उज्झित-अस्वीकार किया; लोक-सार्वजनिक रीतिरिवाज; वेद-वैदिक आदेश; स्वानाम्-अपने परिवार; हि-निश्चित रूप से; वः-आपका; मयि–मुझे; अनुवृत्तये-आदर बढ़ाने के लिए; अबलाः-हे नारियों; मया-मेरे द्वारा; परोक्षम्-परोक्ष; भजता-अनुग्रह करने के लिए; तिरोहितम्-दृष्टि से ओझल; मा–मुझे; असूयितुम्-अप्रसन्न होना; मा अर्हथ-आप इसके योग्य नहीं; तत्-इसलिए; प्रियम्-जो प्रिय है; प्रियाः-हे प्रिय गोपियों।

अनुवाद

“मेरी प्रिय गोपियों, तुम सबने मेरे लिए सामाजिक रीतियों, शास्त्रीय आदेशों और अपने परिजनों का परित्याग किया है। मैं तुम्हारी एकाग्रता बढ़ाने के उद्देश्य से ही तुम लोगों के पीछे छिप गया था। चूँकि मैं तुम्हारे ही लाभ के लिए छिप गया था, अतएव तुम लोगों को मुझ पर अप्रसन्न नहीं होना चाहिए।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.32.21) का है जिसे भगवान् कृष्ण ने रासलीला क्षेत्र में लौटने पर कहा था।

कृष्णेर प्रतिज्ञा एक आछे पूर्व हैते ।

ये यैछे भजे, कृष्ण तारे भजे तैछे ॥ 177॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की प्रतिज्ञा–प्रतिज्ञा; एक-एक; आछे-है; पूर्व हैते-पहले से ही; ये-जो भी; यैछे-जैसे; भजे-पूजा करता है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तारे-उसको; भजे-आदान-प्रदान करते हैं; तैछे-वैसे।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण ने पहले से वचन दे रखा है कि वे अपने भक्तों से उसी प्रकार से आदान-प्रदान करेंगे, जिस प्रकार से वे उनकी पूजा करेंगे।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

मम वर्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ 178 ॥

ये-वे जो; यथा-जैसे; माम्-मुझे; प्रपद्यन्ते–शरण में आते हैं; तान्–उनको; तथा–वैसे; एव–निश्चय ही; भजामि पुरस्कार देता हूँ; अहम्-मैं; मम-मेरा; वर्म-पथ; अनुवर्तन्ते–अनुगमन करते हैं; मनुष्याः-मनुष्य; पार्थ-पार्थ; सर्वशः-सभी तरह से।

अनुवाद

"हे पृथा-पुत्र, मेरे भक्त जिस किसी प्रकार से मेरी शरण में आते हैं, मैं उसी के अनुसार उन्हें पुरस्कार प्रदान करता हूँ। सारे व्यक्ति सभी तरह से मेरे मार्ग का अनुसरण करते हैं।"

तात्पर्य

कृष्ण कभी भी गोपियों के प्रति कृतघ्न नहीं हुए, क्योंकि जैसा वे भगवद्गीता के इस श्लोक (4.11) में अर्जुन के समक्ष घोषणा करते हैं, वे अपने भक्तों से उनके द्वारा की गई दिव्य प्रेमाभक्ति की मात्रा के अनुसार आदान- प्रदान करते हैं। हर व्यक्ति उस मार्ग का अनुसरण करता है, जो उन तक पहुँचता है, किन्तु उस मार्ग पर प्रगति की विभिन्न कोटियाँ हैं और अपनी प्रगति के अनुसार ही उसे भगवान् की अनुभूति हो पाती है। मार्ग एक है, किन्तु चरम लक्ष्य तक पहुँचने की प्रगति भिन्न-भिन्न होती है, अतएव इस लक्ष्य की अनुभूति–परम भगवान् की अनुभूति का अनुपात भी भिन्न-भिन्न होता है। गोपियों को सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त हुआ और श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुष्टि की है कि गोपियों द्वारा की जाने वाली भगवत्-पूजा की विधि से श्रेष्ठतर विधि अन्य कोई नहीं है।

से प्रतिज्ञा भङ्ग हैल गोपीर भजने।

ताहाते प्रमाण कृष्ण-श्री-मुख-वचने ॥ 179॥

से-वह; प्रतिज्ञा–प्रतिज्ञा; भङ्ग हैल-भंग हो गई; गोपीर-गोपियों की; भजने-पूजा से; ताहाते-उसमें; प्रमाण-प्रमाण; कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; श्री-मुख-वचने-मौखिक शब्दों से।

अनुवाद

गोपियों की पूजा से वह प्रतिज्ञा भंग हो चुकी है, जैसाकि स्वयं भगवान् कृष्ण स्वीकार करते हैं।

न पारयेऽहं निरवद्य-संयुजां

स्व-साधु-कृत्यं विबुधायुषापि वः ।

या माभजन्दुर्जय-गेह-शृङ्खलाः

संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥ 180॥

न–नहीं; पारये-करने में सक्षम हूँ; अहम्-मैं; निरवद्य-संयुजाम्-वे जो पूरी तरह स्वार्थ रहित हैं; स्व-साधु-कृत्यम्-उचित पुरस्कार; विबुध-आयुषा-देवताओं की आयु जितना; अपि-यद्यपि; वः-आपको; याः-जो; मा–मुझे; अभजन्–पूजा की है; दुर्जय-गेह-शृङ्खलाः-गृहस्थ जीवन की जंजीरें जिनसे छूटना कठिन है; संवृश्च्य-काटना; तत्-वह; वः–आपका; प्रतियातु-लौटाया जाए; साधुना-शुभ कर्मों से।

अनुवाद

“हे गोपियों, मैं तुम्हारी निष्कलंक सेवा का ऋण ब्रह्मा के जीवनकाल में भी नहीं चुका सकता। मुझसे तुम लोगों का सम्बन्ध भत्र्सना से परे है। तुम लोगों ने उन सारे पारिवारिक बन्धनों को

तोड़कर मेरी पूजा की है, जिनको तोड़ पाना कठिन होता है। अतएव तुम लोगों के यशस्वी कार्य ही तुम्हारे प्रेम का प्रतिदान है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.32.22) से लिया गया है, जिसे स्वयं कृष्ण ने गोपियों का विरह गीत सुनने के बाद उनके पास लौटने पर स्वयं कहा था।

तबे ग्ने देखिये गोपीर निज-देहे प्रीत ।

सेहो त' कृष्णेर लागि, जानिह निश्चित ॥ 181॥

तबे–अब; ये-जो कुछ; देखिये-हम देखते हैं; गोपीर-गोपियों की; निज-देहे-अपने शरीरों के लिए; प्रीत–आसक्ति; सेहो-वह; त'-निश्चित रूप से; कृष्णेर लागि भगवान् कृष्ण के लिए; जानिह–जानो; निश्चित–निश्चित ही।

अनुवाद

अब गोपियाँ जो भी स्नेह अपने शरीरों के प्रति दिखाती हैं, उसे एकमात्र भगवान् कृष्ण के निमित्त ही जानना चाहिए।

तात्पर्य

गोपियों द्वारा भगवान् के प्रति प्रदर्शित स्वार्थरहित प्रेम की कोई समता नहीं कर सकता। अतएव गोपियों द्वारा अपने शरीरों की सजा में जो सतर्कता हमें दिखती है, उसको समझने में हमें गलती नहीं करनी चाहिए। गोपियाँ अपने आपको अधिक से अधिक सुन्दर ढंग से सजाती थीं, जिससे कृष्ण उन्हें देखकर प्रसन्न हों। उनकी कोई गलत इच्छा नहीं थी। उन्होंने अपना शरीर और

अपना सर्वस्व श्रीकृष्ण की सेवा में यह सोचकर अर्पित कर दिया कि उनके शरीर कृष्ण के भोग के निमित्त ही थे। वे अपने आपको यही समझकर सुसज्जित करती थीं कि श्रीकृष्ण उन्हें देखकर और उनका स्पर्श करके प्रसन्न होंगे।

'एइ देह कैले आमि कृष्णे समर्पण ।

ताँर धन ताँर इहा सम्भोग-साधन ॥ 182॥

एइ-यह; देह-शरीर; कैलँ–किया है; आमि-मैं; कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; समर्पण-समर्पण; ताँर–उनका; धन-धन; ताँर-उनका; इहा-था; सम्भोग-साधन-आनन्द प्रदान करता है।

अनुवाद

(गोपियाँ सोचती हैं :) "मैंने यह शरीर भगवान् कृष्ण को समर्पित कर दिया है। वे ही इसके स्वामी हैं और यह उन्हें आनन्द देता है।"

ए-देह-दर्शन-स्पर्शे कृष्ण-सन्तोषण' ।

एइ लागि' करे देहेर मार्जन-भूषण ॥183॥

ए-देह-इस शरीर के दर्शन-दर्शन से; स्पर्शे-स्पर्श से; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; सन्तोषण-संतोष; एइ लागि'-इसके लिए; करे-वे करते हैं; देहेर–शरीर का; मार्जन-स्वच्छ; भूषण-सजाना।

अनुवाद

"इस शरीर को देखकर तथा इसका स्पर्श करके कृष्ण को आनन्द प्राप्त होता है। इसी कारण से वे अपने शरीर को स्वच्छ करती एवं सजाती हैं।"

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते ।

ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढ़-प्रेम-भाजनम् ॥184॥

निज-अङ्गम्-अपना शरीर; अपि-यद्यपि; याः-जो; गोप्यः-गोपियाँ; मम-मेरा; इति–इस प्रकार सोचकर; समुपासते-सजावट में लगना; ताभ्यः-उनकी अपेक्षा; परम्-परम; न-नहीं; मे-मेरे लिए; पार्थ-हे अर्जुन; निगूढ़-प्रेम-प्रगाढ़ प्रेम; भाजनम्-पात्र।

अनुवाद

"हे अर्जुन, गोपियों से बढ़कर मेरे लिए प्रगाढ़ प्रेम का पात्र कोई दूसरा नहीं है। वे अपने शरीरों को स्वच्छ करती तथा सजाती हैं, क्योंकि वे उन्हें मेरा समझती हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक आदि पुराण का है और यह कृष्ण का कथन है।

आर एक अद्भुत गोपी-भावेर स्वभाव ।

बुद्धिर गोचर नहे याहार प्रभाव ॥ 185॥

आर-अन्य; एक-एक; अद्भुत-अद्भुत; गोपी-भावेर-गोपियों के भाव का; स्वभाव-स्वभाव; बुद्धिर-बुद्धि का; गोचर-अनुभूति की वस्तु; नहे-नहीं है; याहार-जिसका प्रभाव-प्रभाव।

अनुवाद

गोपियों के भाव का एक दूसरा अद्भुत स्वभाव है। इसका प्रभाव बुद्धि की समझ से परे है।

गोपी-गण करे यबे कृष्ण-दरशन ।

सुख-वाञ्छा नाहि, सुख हय कोटि-गुण ॥186॥

गोपी-गण-गोपियाँ; करे–करती हैं; यबेजब; कृष्ण-दरशन-कृष्ण का दर्शन; सुख-वाञ्छा-सुख की इच्छा; नाहि-नहीं है; सुख-सुख; हय-है; कोटि-गुण-करोड़ों गुना।

अनुवाद

जब गोपियाँ भगवान् कृष्ण का दर्शन करती हैं, तब उन्हें असीम आनन्द प्राप्त होता है, यद्यपि उन्हें ऐसे आनन्द की थोड़ी सी भी इच्छा नहीं होती।

गोपीका-दर्शने कृष्णेर ये आनन्द हय ।

ताहा हैते कोटि-गुण गोपी आस्वादय ॥ 187॥

गोपिका-दर्शने-गोपियों को देखने में; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; ये-जो कुछ; आनन्द–आनन्द; हय-है; ताहा हैते–उसकी अपेक्षा; कोटि-गुण-करोड़ों गुना अधिक; गोपी-गोपियाँ; आस्वादय-आस्वादन करती हैं।

अनुवाद

गोपियों को देखकर कृष्ण को जितना आनन्द मिलता है, उससे करोड़ों गुना आनन्द गोपियों को मिलता है।

तात्पर्य

गोपियों के अद्भुत गुण कल्पनातीत हैं। उन्हें आत्मतुष्टि की थोड़ी सी भी इच्छा नहीं होती, फिर भी जब कृष्ण उन्हें देखकर प्रसन्न होते हैं, तो उस आनन्द से गोपियाँ कृष्ण से करोड़ों गुना अधिक प्रसन्नता का अनुभव करती हैं।

ताँ सबार नाहि निज-सुख-अनुरोध ।

तथापि बाढ़ये सुख, पड़िल विरोध ॥188॥

ताँ सबार–उन सबका; नाहिं-नहीं; निज-सुख-अपने सुख के लिए; अनुरोध-अनुरोध; तथापि तथापि; बाढ़ये-बढ़ता है; सुख–सुख; पड़िल–हुआ, प्रतीत हुआ; विरोध–विरोध।

अनुवाद

गोपियों को निजी सुख की कोई इच्छा नहीं है, फिर भी उनका आनन्द बढ़ता जाता है। यह निश्चित रूप से विरोधाभास है।

ए विरोधेर एक मात्र देखि समाधान ।

गोपिकार सुख कृष्ण-सुखे पर्यवसान ॥189॥

ए-यह; विरोधेर-विरोधाभास का; एक-एक; मात्र केवल; देखि-मैं देखता हूँ; समाधान-समाधान, हल; गोपिकार-गोपियों का; सुख-सुख; कृष्ण-सुखे–भगवान् कृष्ण के सुख में; पर्यवसान-समागम, अन्त।

अनुवाद

इस विरोधाभास का मुझे केवल एक ही समाधान दृष्टिगत होता है कि गोपियों का सुख उनके प्रिय कृष्ण के सुख में निहित है।

तात्पर्य

गोपियों की स्थिति बड़ी उलझन भरी है, क्योंकि निजी आनन्द न चाहते हुए भी यह आनन्द उन पर थोपा गया था। इस उलझन का समाधान यह है। कि श्रीकृष्ण का सुख का भाव गोपियों के सुख द्वारा सीमित है। इसीलिए वृन्दावन के भक्त गोपियों, अर्थात् राधारानी तथा उनकी संगिनियों की सेवा करना चाहते हैं। यदि किसी को गोपियों की कृपा प्राप्त हो जाती है, तो उसे कृष्ण की कृपा सरलता से प्राप्त हो जाती है, क्योंकि गोपियों के कहने पर कृष्ण किसी भक्त की सेवा तुरन्त स्वीकार कर लेते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण के स्थान पर गोपियों को प्रसन्न करना चाहा। किन्तु उनके समकालीन उन्हें समझ नहीं पाये, और इस कारण से श्री चैतन्य महाप्रभु गृहस्थ आश्रम छोड़कर संन्यासी बन गये।

गोपिका-दर्शने कृष्णेर बाढ़ प्रफुल्लता ।

से माधुर्य बाढ़े यार नाहिक समता ॥ 190॥

गोपिका-दर्शने-गोपियों को देखने में; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; बाढ़े-बढ़ती है; प्रफुल्लता–प्रसन्नता; से-वह; माधुर्य–माधुर्य; बाढ़े-बढ़ता है; यार-जिसकी; नाहिक-नहीं है; समता-समानता।

अनुवाद

जब भगवान् कृष्ण गोपियों को देखते हैं, तो उनकी प्रसन्नता बढ़ जाती है और उनकी अद्वितीय माधुरी भी बढ़ जाती है।

आमार दर्शने कृष्ण पाइल एत सुख ।

एइ सुखे गोपीर प्रफुल्ल अङ्ग-मुख ॥ 191॥

आमार दर्शने मुझे देखने में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; पाइल-प्राप्त किया; एत-इतना; सुख–सुख; एइ–इस; सुखे-सुख में; गोपीर-गोपियों का; प्रफुल्ल प्रफुल्ल; अङ्ग-मुख-मुख तथा शरीर।

अनुवाद

(गोपियाँ सोचती हैं :) "हमें देखकर कृष्ण को इतना सुख मिला है।" इस विचार से उनके मुखों तथा शरीरों की पूर्णता तथा सुन्दरता बढ़ जाती है।

गोपी-शोभा देखि' कृष्णेर शोभा बाढ़े यत ।

कृष्ण-शोभा देखि' गोपीर शोभा बाढ़े तत ॥ 192॥

गोपी-शोभा-गोपियों का सौन्दर्य; देखि'–देखकर; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; शोभा–सौन्दर्य; बाढ़े-बढ़ता है; यत–जितना; कृष्ण-शोभा–जितना भगवान् कृष्ण का सौन्दर्य है; देखि'–देखकर; गोपीर-गोपियों का; शोभा-सौन्दर्य; बाढ़े-बढ़ता है; तत-उतना अधिक।

अनुवाद

गोपियों की सुन्दरता देखकर भगवान् कृष्ण की सुन्दरता बढ़ जाती है। और गोपियाँ भगवान् कृष्ण की सुन्दरता को जितना अधिक देखती हैं, उतना ही अधिक उनका सौन्दर्य बढ़ जाता है।

एइ-मत परस्पर पड़े हुड़ाहुड़ि ।

परस्पर बाढ़े, केह मुख नाहि मुड़ि ॥ 193॥

एइ मत-इस प्रकार; परस्पर-परस्पर; पड़े-होता है; हुड़ाहुड़ि-होड़ लग जाती है; परस्पर-परस्पर; बाढ़े-बढ़ जाता है; केह-कोई; मुख-मुख; नाहि-नहीं; मुड़ि-ढकना।

अनुवाद

इस प्रकार उनके बीच होड़ लग जाती है, जिसमें कोई भी अपनी हार स्वीकार नहीं करता।

किन्तु कृष्णेर सुख हय गोपी-रूप-गुणे ।

ताँर सुखे सुख-वृद्धि हये गोपी-गणे ॥194॥

किन्तु किन्तु; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; सुख-सुख; हय-है; गोपी-रूप-गुणे-गोपियों के गुणों एवं सौन्दर्य में; ताँर–उनके; सुखे-सुख में; सुख-वृद्धि–सुख की वृद्धि; हये-होती है; गोपी-गणे-गोपियों में।

अनुवाद

किन्तु कृष्ण गोपियों के सौन्दर्य तथा उनके सद्गुणों से आनन्द प्राप्त करते हैं। और जब गोपियाँ उनके आनन्द को देखती हैं, तो उनकी प्रसन्नता बढ़ जाती है।

अतएव सेइ सुख कृष्ण-सुख पोखे ।

एइ हेतु गोपी-प्रेमे नाहि काम-दोषे ॥195॥

अतएव-अतएव; सेइ-वह; सुख-सुख; कृष्ण-सुख-भगवान् कृष्ण का सुख; पोषे–परिपोषण करता है; एइ-यह; हेतु-कारण; गोपी-प्रेमे-गोपीयों के प्रेम में; नाहि-नहीं; काम-दोषे-वासना का दोष।

अनुवाद

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोपियों की प्रसन्नता से भगवान् कृष्ण की प्रसन्नता का पोषण होता है। इस कारण से गोपियों के प्रेम में कामदोष नहीं पाया जाता।

तात्पर्य

सुन्दर गोपिकाओं को देखकर कृष्ण आनन्दित होते हैं और इससे गोपियाँ भी आनन्दित होती हैं; फलतः उनके तरुण मुखमण्डल तथा शरीर खिल उठते हैं। गोपियों तथा कृष्ण के बीच सौन्दर्य बढ़ाने की यह प्रतिस्पर्धा असीम है और इतनी सूक्ष्म है कि कभी-कभी संसारी नैतिकतावादी इन व्यापारों को विशुद्ध काम" मान बैठते हैं। किन्तु ये प्रेम-व्यापार रंच-मात्र भी भौतिक नहीं हैं, क्योंकि कृष्ण को प्रसन्न करने की गोपियों की उत्कट इच्छा से सारा वातावरण शुद्ध भगवत्प्रेम से पूरित हो जाता है, जिसमें कामवासना की गंध भी नहीं होती।

उपेत्य पथि सुन्दरी-ततिभिराभिरभ्यर्चितं

स्मिताङ्कर-करम्बितैर्नटदपाङ्ग-भङ्गी-शतैः ।

स्तन-स्तवक-सञ्चरन्नयन-चञ्चरीकाञ्चलं

व्रजे विजयिनं भजे विपिन-देशतः केशवम् ॥ 196॥

उपेत्य-अपने महलों पर चढ़कर; पथि-पथ पर; सुन्दरी-ततिभिः आभिः-व्रज की महिलाओं द्वारा; अभ्यर्चितम्-जिन की पूजा की जाती है; स्मित-अङ्कर-करम्बितैः-कोमल मुस्कान के अंकुरों से मिलकर; नटत्-नृत्य करती हुई; अपाङ्ग–नजरों का; भङ्गी-शतैः-सैकंड़ों अदाओं से; स्तन-स्तवक-स्तन; सञ्चरत्-इधर उधर चलती फिरती; नयन-दो नयनों का; चञ्चरीक-मधुमक्खियों की

भाँति; अञ्चलम्-उनको जिनके कोने; व्रजे-व्रज में; विजयिनम्-आते हुए; भजे-मैं पूजा करता हूँ; विपिन-देशतः–वन से; केशवम्-भगवान् केशव।

अनुवाद

"मैं भगवान् केशव की पूजा करता हूँ। कृष्ण के व्रज के वन से लौटते समय गोपियाँ अपने महलों की छतों पर चढ़ जाती हैं और सैकड़ों प्रकार की तिरछी चितवनों तथा मन्द मुस्कानों द्वारा मार्ग में उनसे मिलकर उनकी पूजा करती हैं। उनके दोनों नेत्र विशाल काले भौंरे के समान गोपियों के स्तनों पर विचरण करते हैं।"

तात्पर्य

यह कथन श्रील रूप गोस्वामी द्वारा संकलित स्तवमाला के केशवाष्टक (8) में आया है।

आर एक गोपी-प्रेमेर स्वाभाविक चिह्न ।

ये प्रकारे हय प्रेम काम-गन्ध-हीन ॥197॥

आर-अन्य; एक-एक; गोपी-प्रेमेर-गोपियों के प्रेम का; स्वाभाविक-स्वाभाविक; चिह्न-चिह्न; ये-जो; प्रकारे प्रकार से; हय-है; प्रेम-प्रेम; काम-गन्ध-हीन–लेशमात्र वासना से भी रहित।

अनुवाद

गोपियों के प्रेम का एक अन्य स्वाभाविक लक्षण भी है, जो यह दिखलाता है कि इसमें लेशमात्र भी कामवासना नहीं है।

गोपी-प्रेमे करे कृष्ण-माधुर्येर पुष्टि ।

माधुर्यें बाढ़ाय प्रेम हञा महा-तुष्टि ॥ 198॥

गोपी-प्रेमे-गोपियों का प्रेम; करे-करता है; कृष्ण-माधुर-भगवान् कृष्ण की मधुरता की; पुष्टि-पुष्टि; माधुर्ये-माधुर्य; बाढ़ाय-बढ़ाता है; प्रेम-प्रेम; हञा-होकर; महा-तुष्टि-अत्यन्त प्रसन्न होकर।

अनुवाद

गोपियों का प्रेम भगवान् कृष्ण के माधुर्य का पोषण करता है। बदले में यह माधुर्य उनके प्रेम को वर्धित करता है, क्योंकि वे अत्यधिक तुष्ट हो जाती हैं।

प्रीति-विषयानन्दे तदाश्रयानन्द ।

ताँहा नाहि निज-सुख-वाञ्छार सम्बन्ध ॥199॥

प्रीति-विषय-आनन्दे-प्रेम के विषय के आनन्द में; तत्-उस प्रेम का; आश्रय-आनन्द-आश्रय का आनन्द; ताँहा-वह; नाहि-नहीं; निज-सुख-वाञ्छार–निजी सुख की इच्छा का; सम्बन्ध–सम्बन्ध।

अनुवाद

प्रेम के आश्रय का सुख उस प्रेम के विषय के सुख में है। यह खुद की तृप्ति की इच्छा का सम्बन्ध नहीं है।

निरुपाधि प्रेम याँहा, ताँहा एइ रीति ।

प्रीति-विषय-सुखे आश्रयेर प्रीति ॥ 200॥

निज-प्रेमानन्दे कृष्ण-सेवानन्द बाधे ।

से आनन्देर प्रति भक्तेर हय महा-क्रोधे ॥201॥

निरुपाधि-उपाधिरहित; प्रेम-प्रेम; याँहा-जो; ताँहा-वह; एइ-यह; रीति-रीति; प्रीति-विषय-प्रेम के विषय में; सुखे-सुख में; आश्रयेर–उस प्रेम के आश्रय का; प्रीति-प्रसन्नता; निज-अपनी; प्रेम-प्रेम का; आनन्दे-आनन्द से; कृष्ण-भगवान् कृष्ण को; सेव-आनन्द-सेवा का आनन्द; बाधे-रुक जाता है; से-वह; आनन्देर प्रति-आनन्द के प्रति; भक्तेर-भक्त का; हय-है; महा-क्रोधे–महान् क्रोध।

अनुवाद

जहाँ भी स्वार्थरहित प्रेम होता है, वहाँ उसकी यही रीति है। जब प्रीति का विषय प्रसन्न होता है, तो प्रीति के आश्रय को आनन्द प्राप्त होता है। जब प्रेम का आनन्द भगवान् कृष्ण की सेवा में बाधक बनता है, तो भक्त ऐसे आनन्द पर क्रुद्ध हो उठता है।

तात्पर्य

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, गोपियाँ आश्रित प्रेमिकाएँ हैं और श्रीकृष्ण प्रेम के पात्र–पूर्ण विषय हैं। आश्रित का प्रेम विषय के प्रेम का पोषण करता है। गोपियों को अपने निजी सुख की कोई इच्छा न थी। उनके सुख की अनुभूति अप्रत्यक्ष थी, क्योंकि यह कृष्ण के आनन्द पर आश्रित थी। ईश्वर का निस्वार्थ प्रेम ऐसा ही होता है। ऐसा शुद्ध प्रेम तभी सम्भव होता है, जब प्रेम- विषय के सुख से प्रेम-आश्रय को सुख मिले। ऐसा शुद्ध प्रेम तभी आदर्श प्रस्तुत करता है, जब प्रेमिका अपने सेवा के उस आनन्द की निन्दा करती है। कि जो उसकी सेवा सम्पन्न करने में बाधक बनता है।

अङ्ग-स्तम्भारम्भमुत्तुङ्गयन्तं

प्रेमानन्दं दारुको नाभ्यनन्दत् ।

कंसारातेजने येन साक्षाद्

अक्षोदीयानन्तरायो व्यधायि ॥ 202॥

अङ्ग–अंग; स्तम्भ-आरम्भम्-सम्मोहन का आरम्भ होना; उत्तुङ्गयन्तम्-जो पहुँचा रहा था; प्रेम-आनन्दम्-प्रेम का आनन्द; दारुकः-दारुक, भगवान् का सारथी; न-नहीं; अभ्यनन्दत्-स्वागत किया; कंस-अरातेः-कंस के शत्रु भगवान् कृष्ण का; वीजने-चामर से पंखा झलने में; येन-जिससे; साक्षात्-साक्षात्; अक्षोदीयान्-अधिक; अन्तरायः-अवरोध; व्यधायि-उत्पन्न किया गया है।

अनुवाद

"श्री दारुक ने अपने प्रेम के भाव का आस्वादन नहीं किया, क्योंकि इससे उसके अंग स्तंभित हो गये, जिसके कारण भगवान् कृष्ण पर उसका पंखा झलना बाधित हो गया।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृत-सिन्धु (3.2.62) से लिया गया है।

गोविन्द-प्रेक्षणाक्षेपि-बाष्प-पूराभिवर्षिणम् ।

उच्चैरनिन्ददानन्दमरविन्द-विलोचना ॥ 203॥

गोविन्द-भगवान् गोविन्द का; प्रेक्षण-दर्शन; आक्षेपि-रोकना; बाष्प-पूर-अश्रु-समूह; अभिवर्षिणम्-जो बरसाते हैं; उच्चैः–बलपूर्वक; अनिन्दत्-निन्दा की; आनन्दम्-आनन्द; अरविन्द-विलोचना-कमलनयनी राधारानी।

अनुवाद

कमलनयनी राधारानी ने उस प्रेमानन्द की भर्त्सना की, जिसके कारण अश्रु बहने लगे और जिससे उन्हें गोविन्द का दर्शन पाने में बाधा पहुँची।"

तात्पर्य

यह श्लोक भी भक्तिरसामृत-सिन्धु (2.3.54) से लिया गया है।

आर शुद्ध-भक्त कृष्ण-प्रेम-सेवा विने ।

स्व-सुखार्थ सालोक्यादि ना करे ग्रहणे ॥ 204॥

आर-और; शुद्ध-भक्त-शुद्ध भक्त; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम के कारण; सेवा–सेवा; विने-बिना; स्व-सुख-अर्थ-अपने सुख के लिए; सालोक्य-आदि-सोलोक्य (भगवान् के आध्यात्मिक लोक में निवास करने) आदि पाँच प्रकार की मुक्तियाँ; ना करे–नहीं करते; ग्रहणे-स्वीकार।

अनुवाद

यही नहीं, शुद्ध भक्त पाँच प्रकार की मुक्ति के माध्यम से अपने निजी सुख की कामना के लिए कृष्ण की प्रेममयी सेवा कभी नहीं छोड़ते।

तात्पर्य

एकमात्र कृष्ण से प्रेम करने वाले उनके शुद्ध भक्त किसी भी प्रकार की मुक्ति को एकदम ठुकरा देते हैं, चाहे वह भगवान् से तादात्म्य हो अथवा सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सार्टि मुक्तियाँ हों।

मद्गुण-श्रुति-मात्रेण मयि सर्व-गुहाशये ।

मनो-गतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥205॥

मत्-मेरे; गुण-गुण; श्रुति-मात्रेण-श्रवण मात्र से; मयि–मुझे; सर्व-गुहा-सभी हृदयों में; आशये-जो स्थित हूँ; मनः-गतिः-मन की गति; अविच्छिन्ना-बिना रुकावट के; यथा-यथा; गङ्गा-अम्भसः-गंगा के दैवी जल का; अम्बुधौ–समुद्र को।

अनुवाद

जिस प्रकार गंगा नदी का दैवी जल अबाध गति से बहकर समुद्र में मिलता है, उसी प्रकार मेरे भक्तों के मन मेरा गुणगान सुनते ही सबके हृदयों में वास करने वाले मुझ तक चले आते हैं।"

लक्षणं भक्ति-योगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।

अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ 206॥

लक्षणम्-लक्षण; भक्ति-योगस्य-भक्ति का; निर्गुणस्य-प्रकृति के तीन गुणों से परे; हि-निश्चित रूप से; उदाहृतम्-का उदाहरण दिया जाता है; अहैतुकी–निस्वार्थ; अव्यवहिता–बिना अवरोध के; या–जो; भक्तिः-भक्ति; पुरुषोत्तमे-भगवान् की।

अनुवाद

पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति के ये लक्षण हैं-यह निस्वार्थ होती है और यह किसी भी तरह रोकी नहीं जा सकती।

सालोक्य-सार्टि-सारूप्य-सामीप्यैकत्वमप्युत ।

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥207॥

सालोक्य-सालोक्य, मेरे ही लोक में रहना; सार्टि–मेरे समान ऐश्वर्य होना; सारूप्य-मेरे जैसा रूप होना; सामीप्य–मेरे साथ सीधा सम्पर्क होना; एकत्वम्-मेरे साथ एकत्व; अपि-भी; उत-या; दीयमानम्-दिया जा रहा; न-नहीं; गृह्णन्ति–स्वीकार करते हैं; विना विना; मत्-सेवनम्-मेरी सेवा; जनाः-भक्त गण।

अनुवाद

मेरे भक्त मेरी सेवा के बदले में सालोक्य, साष्टि, सारूप्य, सामीप्य अथवा मेरे साथ तादात्म्यता की मुक्तियों को मेरे देने पर भी स्वीकार नहीं करते।"

तात्पर्य

ये तीन श्लोक श्रीमद्भागवत (3.29.11-13) से लिए गये हैं और कपिलदेव के रूप में भगवान् कृष्ण द्वारा उच्चारित हैं।

मत्सेवया प्रतीतं ते सालोक्यादि-चतुष्टयम्।

नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्काल-विप्लुतम्॥ 208॥

मत्-मेरी; सेवया-सेवा से; प्रतीतम्-प्राप्त करके; ते-वे; सालोक्य-आदि-सालोक्य आदि मुक्ति; चतुष्टयम्-चार प्रकार की; न इच्छन्ति–नहीं चाहते; सेवया-सेवा से; पूर्णाः–पूर्ण; कुतः–कहाँ; अन्यत्-अन्य वस्तुएँ; काल-विप्लुतम्-जो काल के साथ लुप्त हो जाती हैं।

अनुवाद

मेरे भक्त मेरी सेवा द्वारा अपनी इच्छाएँ पूरी करने के बाद, ऐसी सेवा से सहज प्राप्य चार प्रकार की मुक्तियों को स्वीकार नहीं करते। तो फिर वे काल के प्रवाह के साथ नष्ट होने वाले किसी आनन्द को स्वीकार क्यों करने लगे?"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (9.4.67) से लिया गया है, जिसमें भगवान् ने महाराज अम्बरीष की विशेषताओं के बारे में कहा था। ब्रह्म में तदाकार होना जीव द्वारा स्वर्ग में रहने के समान क्षणभंगुर है। दोनों ही काल द्वारा नियन्त्रित हैं अतः इनमें से कोई भी स्थायी नहीं होता।

काम-गन्ध-हीन स्वाभाविक गोपी-प्रेम ।

निर्मल, उज्वल, शुद्ध येन दग्ध हेम ॥ 209॥

काम-गन्ध-हीन-काम-वासना की तनिक भी गंध के बिना; स्वाभाविक-स्वाभाविक; गोपी-प्रेम-गोपियों का प्रेम; निर्मल-निर्मल; उज्वल-उज्जवल; शुद्ध-शुद्ध; येन–की भाँति; दग्ध हेम–पिघले सुवर्ण की।

अनुवाद

गोपियों के सहज प्रेम में काम की गंध नहीं आती। यह निर्दोष, उज्वल एवं पिघले सोने की भाँति शुद्ध है।

कृष्णेर सहाय, गुरु, बान्धव, प्रेयसी ।

गोपिका हयेन प्रिया शिष्या, सखी दासी ॥210॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; सहाय–सहायक; गुरु-गुरु; बान्धव-बन्धुगण; प्रेयसी-पत्नियाँ; गोपिका-गोपियाँ; हयेन-हैं; प्रिया-प्रिय; शिष्या-शिष्य; सखी-सखियाँ; दासी–दासियाँ।

अनुवाद

गोपियाँ भगवान् कृष्ण की सहायिकाएँ, गुरु, मित्र, पत्नियाँ, प्रिय शिष्या, विश्वासपात्राएँ तथा दासियाँ हैं।

सहाया गुरवः शिष्या भुजिष्या बान्धवाः स्त्रियः ।

सत्यं वदामि ते पार्थ गोप्यः किं मे भवन्ति न ॥ 211॥

सहायाः-सहायक; गुरवः-गुरुजन; शिष्याः-शिष्यगण; भुजिष्याः-भृत्य, सेवक; बान्धवाः-मित्र; स्त्रियः-पत्नियाँ; सत्यम्-सत्य; वदामि-मैं कहता हूँ; ते-तुम्हें; पार्थ-हे अर्जुन; गोप्यः-गोपियाँ; किम्-क्या; मे-मेरे लिए; भवन्ति-हैं; न-नहीं।

अनुवाद

हे पार्थ, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। गोपियाँ मेरी सहायिकाएँ, गुरु, शिष्या, सेविकाएँ, मित्र तथा प्रेयसियाँ हैं। मैं नहीं जानता कि वे मेरे लिए क्या नहीं हैं?"

तात्पर्य

यह श्लोक गोपी-प्रेमामृत में भगवान् कृष्ण द्वारा कहा गया था।

गोपिका जानेन कृष्णेर मनेर वाञ्छित ।

प्रेम-सेवा-परिपाटी, इष्ट-समीहित ॥ 212॥

गोपिका-गोपियाँ; जानेन–जानती हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; मनेर-मन की; वाञ्छित-वांछित बात; प्रेम-सेवा-प्रेम में सेवा की; परिपाटी–पूर्णता; इष्ट-समीहित-जीवन के इच्छित ध्येय को प्राप्त करना।

अनुवाद

गोपियाँ कृष्ण की इच्छाओं को जानती हैं और वे यह भी जानती हैं। कि उनके आनन्द के लिए किस प्रकार प्रेममयी सेवा पूर्ण रूप से करनी चाहिए। वे अपने प्रियतम की तुष्टि के लिए उनकी सेवा दक्षतापूर्वक करती हैं।

मन्माहात्म्यं मत्सपर्या मच्छुद्धां मन्मनो-गतम् ।

जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः ॥ 213॥

मत्-माहात्म्यम्-मेरी महानता; मत्-सपद्यम्-मेरी सेवा; मत्-श्रद्धाम्-मेरा आदर; मत्-मनः-गतम्-मेरी मनोभावना; जानन्ति–वे जानती हैं; गोपिकाः-गोपियाँ; पार्थ-हे अर्जुन; न-नहीं; अन्ये-अन्य; जानन्ति–जानते हैं; तत्त्वतः-तत्त्व से।

अनुवाद

“हे पार्थ, गोपियाँ मेरी महानता, मेरी प्रेममयी सेवा, मेरे सम्मान तथा मेरी मनोभावना को जानती हैं। वस्तुतः अन्य कोई इन्हें जान नहीं सकता।”

तात्पर्य

यह श्लोक आदि पुराण में आया है, जिसे कृष्ण ने अर्जुन से कहा था।

सेइ गोपी-गण-मध्ये उत्तमा राधिका ।

रूपे, गुणे, सौभाग्ये, प्रेमे सर्वाधिका ॥ 214॥

सेइ-ये; गोपी-गण-गोपियाँ; मध्ये-के मध्य; उत्तमा–उत्तम; राधिका-श्रीमती राधारानी; रूपे रूप में; गुणे-गुणों में; सौभाग्ये-सौभाग्य में; प्रेमे-प्रेम में; सर्व-अधिका-सर्वाधिक।

अनुवाद

गोपियों में श्रीमती राधिका सर्वोपरि हैं। वे सौन्दर्य, सदगुण, सौभाग्य तथा प्रेम में सबसे बढ़कर हैं।

तात्पर्य

समस्त गोपियों में श्रीमती राधारानी सर्वाधिक उन्नत हैं। वे सबसे सुन्दर और सबसे योग्य हैं। और इनसे भी बड़ी बात यह है कि वे कृष्ण की सबसे बड़ी प्रेयसी हैं।

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।

सर्व-गोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्त-वल्लभा ॥215॥

यथा-जैसे; राधा-श्रीमती राधारानी; प्रिया–प्रिया; विष्णोः–भगवान् कृष्ण को; तस्याः-उनका; कुण्डम्-स्नान गृह; प्रियम्-अत्यन्त प्रिय; तथा-तथा; सर्व-गोपीषु-सभी गोपियों में; सा-वे; एव-निश्चित रूप से; एका-अकेली; विष्णोः- भगवान् कृष्ण की; अत्यन्त-वल्लभा–सर्वाधिक प्रिय।

अनुवाद

"जिस प्रकार राधा भगवान् कृष्ण को प्रिय हैं, उसी तरह उनका स्नान स्थल (राधाकुंड) भी उन्हें प्रिय है। अकेले वे ही समस्त गोपियों में से उनकी सबसे अधिक प्रिय हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक पद्म पुराण से लिया गया है।

त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या ग्रत्र वृन्दावनं पुरी ।

तत्रापि गोपिकाः पार्थ यत्र राधाभिधा मम ॥216॥

त्रैलोक्ये–तीन लोक में; पृथिवी-पृथ्वी; धन्या-भाग्यशाली; यत्र-जहाँ; वृन्दावनम्-वृन्दावन; पुरी-नगरी; तत्र-वहाँ; अपि-निश्चय ही; गोपिकाः-गोपियाँ; पार्थ-हे अर्जुन; यत्र-जहाँ; राधा-श्रीमती राधारानी; अभिधा-नामक; मम–मेरी।

अनुवाद

हे पार्थ, तीनों लोकों में यह पृथ्वी विशेष रूप से भाग्यशालिनी है, क्योंकि इसी पर वृन्दावन नगरी स्थित है। और वृन्दावन में भी गोपियाँ विशेष रूप से महिमामण्डित हैं, क्योंकि मेरी श्रीमती राधारानी उन्हीं में से है।"

तात्पर्य

यह श्लोक आदि पुराण से लिया गया है। ये अर्जुन के प्रति कृष्ण के वचन हैं।

राधा-सह क्रीड़ा रस-वृद्धिर कारण ।

आर सब गोपी-गण रसोपकरण ॥ 217॥

राधा-सह-श्रीमती राधारानी सहित; क्रीड़ा-लीलाएँ; रस-रस की; वृद्धिर-वृद्धि; कारण-कारण; आर-अन्य; सब-सब; गोपी-गण-गोपियाँ; रस-उपकरण-रस की सामग्री।

अनुवाद

अन्य सारी गोपियाँ राधारानी के साथ कृष्ण की लीलाओं के आनन्द को बढ़ाने वाली हैं। गोपियाँ उनके पारस्परिक सुख में उपकरण का कार्य करती हैं।

तात्पर्य

कहा जाता है कि गोपियों के पाँच वर्ग हैं—सखियाँ, नित्य सखियाँ, प्राण सखियाँ, प्रिय सखियाँ तथा परम प्रेष्ठ सखियाँ। वृन्दावन धाम की महारानी श्रीमती राधारानी की ये गौरवर्णा सखियाँ कृष्ण के काम-भावों को उद्दीप्त करने में निपुण हैं। परम-प्रेष्ठ सखियाँ आठ हैं और राधा-कृष्ण के आनन्द-व्यापारों में वे कभी कृष्ण का पक्ष लेती हैं, तो कभी राधारानी का। वे ऐसा इसलिए करती हैं कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए, जिसमें वे एक दूसरे के विरुद्ध पक्ष लेती दिखाई दें। इससे रस-विनिमय अधिक रुचिकर बन जाता है।

तात्पर्य

समस्त गोपियों में श्रीमती राधारानी सर्वाधिक उन्नत हैं। वे सबसे सुन्दर और सबसे योग्य हैं। और इनसे भी बड़ी बात यह है कि वे कृष्ण की सबसे बड़ी प्रेयसी हैं।

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।

सर्व-गोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्त-वल्लभा ॥ 215॥

यथा-जैसे; राधा-श्रीमती राधारानी; प्रिया-प्रिया; विष्णोः–भगवान् कृष्ण को; तस्याः-उनका; कुण्डम्-स्नान गृह; प्रियम्-अत्यन्त प्रिय; तथा–तथा; सर्व-गोपीषु-सभी गोपियों में; सा-वे; एव-निश्चित रूप से; एका-अकेली; विष्णोः-भगवान् कृष्ण की; अत्यन्त-वल्लभा–सर्वाधिक प्रिय।

अनुवाद

"जिस प्रकार राधा भगवान् कृष्ण को प्रिय हैं, उसी तरह उनका स्नान स्थल (राधाकुंड) भी उन्हें प्रिय है। अकेले वे ही समस्त गोपियों में से उनकी सबसे अधिक प्रिय हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक पद्म पुराण से लिया गया है।

त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या यत्र वृन्दावनं पुरी।

तत्रापि गोपिकाः पार्थ यत्र राधाभिधा मम ॥ 216॥

त्रैलोक्ये-तीन लोक में; पृथिवी-पृथ्वी; धन्या भाग्यशाली; यत्र-जहाँ; वृन्दावनम्-वृन्दावन; पुरी-नगरी; तत्र-वहाँ; अपि-निश्चय ही; गोपिकाः-गोपियाँ; पार्थ-हे अर्जुन; यत्र-जहाँ; राधा-श्रीमती राधारानी; अभिधा-नामक; मम–मेरी।

अनुवाद

"हे पार्थ, तीनों लोकों में यह पृथ्वी विशेष रूप से भाग्यशालिनी है, क्योंकि इसी पर वृन्दावन नगरी स्थित है। और वृन्दावन में भी गोपियाँ विशेष रूप से महिमामण्डित हैं, क्योंकि मेरी श्रीमती राधारानी उन्हीं में से है।"

तात्पर्य

यह श्लोक आदि पुराण से लिया गया है। ये अर्जुन के प्रति कृष्ण के वचन हैं।

राधा-सह क्रीड़ा रस-वृद्धिर कारण ।

आर सब गोपी-गण रसोपकरण ॥ 217॥

राधा-सह-श्रीमती राधारानी सहित; क्रीड़ा-लीलाएँ; रस-रस की; वृद्धि–वृद्धि; कारण-कारण; आर-अन्य; सब-सब; गोपी-गण-गोपियाँ; रस-उपकरण-रस की सामग्री।

अनुवाद

अन्य सारी गोपियाँ राधारानी के साथ कृष्ण की लीलाओं के आनन्द को बढ़ाने वाली हैं। गोपियाँ उनके पारस्परिक सुख में उपकरण का कार्य करती हैं।

तात्पर्य

कहा जाता है कि गोपियों के पाँच वर्ग हैं-सखियाँ, नित्य सखियाँ, प्राण सखियाँ, प्रिय सखियाँ तथा परम प्रेष्ठ सखियाँ। वृन्दावन धाम की महारानी श्रीमती राधारानी की ये गौरवर्णा सखियाँ कृष्ण के काम-भावों को उद्दीप्त करने में निपुण हैं। परम-प्रेष्ठ सखियाँ आठ हैं और राधा-कृष्ण के आनन्द-व्यापारों में वे कभी कृष्ण का पक्ष लेती हैं, तो कभी राधारानी का। वे ऐसा इसलिए करती हैं कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए, जिसमें वे एक दूसरे के विरुद्ध पक्ष लेती दिखाई दें। इससे रस-विनिमय अधिक रुचिकर बन जाता है।

कृष्णेर वल्लभा राधा कृष्ण-प्राण-धन ।

ताँहा विनु सुख-हेतु नहे गोपी-गण ॥ 218॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; वल्लभा-प्यारी, प्रिया; राधा-श्रीमती राधारानी; कृष्ण-प्राण-धन-भगवान् कृष्ण की जीवन-धन; ताँहा-उनके; विनु–बिना; सुख-हेतु-सुख का कारण; नहे-नहीं हैं; गोपी-गण-गोपियाँ।

अनुवाद

राधा कृष्ण की प्राणप्रिया हैं और वे उनके जीवन की सम्पत्ति हैं। उनके बिना गोपियाँ कृष्ण को आनन्द नहीं दे सकतीं।

कंसारिरपि संसार-वासना-बद्ध-शृङ्खलाम् ।

राधामाधाय हृदये तत्याज व्रज-सुन्दरीः ॥ 219॥

कंस-अरिः-कंस के शत्रु भगवान् कृष्ण; अपि-भी; संसार–रासलीला के सार के लिए; वासना-वासना से; बद्ध-बद्ध; शृङ्खलाम्-जो श्रृंखला के समान थी; राधाम्-श्रीमती राधारानी; आधाय-ले जाकर; हृदये हृदय में; तत्याज-एक ओर छोड़ दिया; व्रज-सुन्दरीः-अन्य गोपियों को।

अनुवाद

“कंस के शत्रु भगवान् कृष्ण ने रासनृत्य के समय अन्य सारी गोपियों को एक ओर छोड़ दिया और श्रीमती राधारानी को अपने हृदय में स्थापित किया, क्योंकि वे भगवान् की इच्छाएँ पूरी करने में उनकी सहायिका हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक गीतगोविन्द (3.1) से लिया गया है। इसमें जयदेव गोस्वामी ने श्रीकृष्ण द्वारा रासलीला छोड़कर श्रीमती राधारानी की खोज में जाने का वर्णन किया है।

सेइ राधार भाव लञा चैतन्यावतार ।

युग-धर्म नाम-प्रेम कैल परचार ॥ 220॥

सेइ-वह; राधार–श्रीमती राधारानी का; भाव-भाव; लञा-लेकर; चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु का अवतार–अवतार; युग-धर्म-युगधर्म; नाम-प्रेम-भगवान् का पावन नाम और प्रेम; कैल-किया; परचार–प्रचार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु वही राधा-भाव लेकर प्रकट हुए। उन्होंने इस युग के धर्म-भगवन्नाम संकीर्तन तथा भगवान् के शुद्ध प्रेम-का प्रचार किया।

सेइ भावे निज-वाञ्छा करिल पूरण ।

अवतारेर एइ वाञ्छा मूल कारण ॥221॥

सेइ-वह; भावे-भाव में; निज-वाञ्छा-अपनी कामनाओं में; पूरण–पूर्ण; अवतारेर–अवतार की; एइ–यह; वाञ्छा-इच्छा; मूल-मूल; कारण कारण।

अनुवाद

श्रीमती राधारानी के भाव में उन्होंने अपनी इच्छाएँ भी पूरी कीं। यही उनके अवतार का मुख्य कारण है।

श्री-कृष्ण-चैतन्य गोसाञि व्रजेन्द्रकुमार।

रस-मय-मूर्ति कृष्ण साक्षात्शृङ्गार ॥222॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य गोसाबि-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु; व्रजेन्द्र कुमार-राजा नन्द के पुत्र; रस-मय-समय; मूर्ति-मूर्ति; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; साक्षात्-साक्षात्; शृङ्गार-शृंगार।

अनुवाद

भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य साक्षात् रस-विग्रह कृष्ण (व्रजेन्द्रकुमार) हैं। वे साक्षात् श्रृंगार मूर्ति हैं।

सेइ रस आस्वादिते कैल अवतार।

आनुसङ्गे कैल सब रसेर प्रचार ॥ 223॥

सेइ-वह; रस-रस; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; कैल-किया, लिया; अवतार–अवतार; आनुसङ्गे–गौण उद्देश्य; कैल–किया; सब-सब; रसेर–रसों का; प्रचार–प्रचार।

अनुवाद

वे उस माधुर्य रस का आस्वादन करने और संयोगवश समस्त रसों का प्रचार करने के लिए अवतरित हुए।

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-

श्रेणी-श्यामल-कोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम्।

स्वच्छन्दं व्रज-सुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः

शृङ्गारः सखि मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीड़ति ॥ 224॥

विश्वेषाम्-सभी गोपियों का; अनुरञ्जनेन–मनोरंजन करने से; जनयन्-उत्पन्न करके; आनन्दम्-आनन्द; इन्दीवर-श्रेणी-नीलकमलों की पंक्ति की भाँति; श्यामल-श्यामल; कोमलैः-और कोमल; उपनयन्–लाकर; अङ्गैः-अपने अंगों से; अनङ्ग-उत्सवम्-कामदेव के लिए उत्सव; स्वच्छन्दम्-बिना किसी अवरोध के, अपनी इच्छा से; व्रज-सुन्दरीभिः-व्रज की सुन्दरियों द्वारा; अभितः-दोनों ओर; प्रति-अङ्गम्-प्रत्येक अंग; आलिङ्गितः-आलिंगन करने पर; शृङ्गारः-शृंगार; सखि-हे सखी; मूर्तिमान्–मूर्तिमान; इव की भाँति; मधौ–वसन्त ऋतु में; मुग्धः-मुग्ध, मोहित होकर; हरिः-भगवान् हरि; क्रीड़ति-खेलते हैं।

अनुवाद

"हे सखियों, जरा देखो न, किस तरह श्रीकृष्ण वसन्त ऋतु का आनन्द ले रहे हैं। उनके प्रत्येक अंग का आलिंगन गोपियों द्वारा हो रहा है, जिससे वे साक्षात् श्रृंगार मूर्ति प्रतीत हो रहे हैं। वे अपनी दिव्य लीलाओं से समस्त गोपियों एवं सारी सृष्टि को सुख प्रदान करते हैं। उन्होंने अपने कोमल श्यामवर्ण नीलकमल सदृश भुजाओं एवं चरणों से कामदेव के लिए एक उत्सव की सृष्टि कर दी है।"

तात्पर्य

यह श्लोक गीतगोविन्द (1.11) से लिया गया है।

श्री-कृष्ण-चैतन्य गोसाञि रसेर सदन ।

अशेष-विशेषे कैल रस आस्वादन ॥225॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य गोसाञि-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; रसेर-रस का; सदन–निवास; अशेष-विशेषे–आमोद-प्रमोद के असीम प्रकार; कैल–किया; रस-रस; आस्वादन-आस्वादन।

अनुवाद

भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य रस के धाम हैं। उन्होंने स्वयं रस की मधुरता का आस्वादन अनन्त विधियों से किया।

सेइ द्वारे प्रवर्ताइल कलि-युग-धर्म ।

चैतन्येर दासे जाने एइ सब मर्म ॥226॥

सेइ द्वारे-उसी प्रकार; प्रवर्ताइल-उन्होंने प्रवर्तन किया; कलि-युग-कलियुग का; धर्म-धर्म; चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु का; दासे–दास; जाने-जानता है; एइ-ये; सब-सब; मर्म-भेद, मर्म।

अनुवाद

इस तरह उन्होंने कलियुग के लिए धर्म का प्रवर्तन किया। श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त इन सारे सत्यों को जानते हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् कृष्ण हैं, जो गोपियों के प्रेम के परम भोक्ता हैं। वे दिव्य रसों के आश्रित सुख का आस्वादन करने के लिए गोपियों की भूमिका ग्रहण करते हैं। वे इस उद्देश्य से प्रकट तो हुए, किन्तु साथ ही उन्होंने इस युग के लिए धार्मिक विधि का प्रचार अत्यन्त आकर्षक ढंग से किया। केवल उनके विश्वस्त भक्त ही इस दिव्य रहस्य को जान सकते हैं।

अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द, श्रीनिवास।

गदाधर, दामोदर, मुरारि, हरिदास ॥ 227॥

आर ग्रत चैतन्य-कृष्णेर भक्त-गण।

भक्ति-भावे शिरे धरि सबार चरण ॥ 228॥

अद्वैत आचार्य-अद्वैताचार्य; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; श्रीनिवास–श्रीवास पण्डित; गदाधर-गदाधर पण्डित; दामोदर-स्वरूप दामोदर; मुरारि-मुरारी गुप्त; हरिदास-हरिदास ठाकुर; आर-अन्य; व्रत-सभी; चैतन्य-कृष्णेर-श्रीकृष्ण चैतन्य के; भक्त-गण-भक्तगण; भक्ति-भावे-भक्तिभाव में; शिरे-मेरे सिर पर; धरि-मैं धारण करता हूँ; सबार-उन सबके; चरण-चरणकमल।

अनुवाद

मैं अद्वैत आचार्य, भगवान् नित्यानन्द, श्रीवास पंडित, गदाधर पंडित, स्वरूप दामोदर, मुरारि गुप्त, हरिदास ठाकुर तथा श्रीकृष्ण चैतन्य के अन्य सभी भक्तों को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके उनके चरणकमलों को अपने सिर पर धारण करता हूँ।

तात्पर्य

श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक हमें शिक्षा देते हैं कि यदि हम श्री चैतन्य महाप्रभु को सचमुच जानना चाहते हैं, तो हमें उनके ऐसे सभी शुद्ध अन्तरंग भक्तों को सादर नमस्कार करना चाहिए।

षष्ठ-श्लोकेर एइ कहिल आभास।

मूल श्लोकेर अर्थ शुन करिये प्रकाश ॥ 229॥

षष्ठ-श्लोकेर-छठे श्लोक का; एइ–यह; कहिल–कहा गया है; आभास–आभास; मूल श्लोकेर-मूल श्लोक का; अर्थ-अर्थ; शुन-कृपया सुनो; करिये प्रकाश-मैं प्रकट कर रहा हूँ।

अनुवाद

मैंने छठे श्लोक का संकेत कर दिया है। अब मैं उस मूल श्लोक का अर्थ उद्घाटित कर रहा हूँ, कृपा करके सुनें।

श्री-राधायाः प्रणय-महिमा कीदृशो वानयैवा-

स्वाद्यो ग्रेनाद्भुत-मधुरिमा कीदृशो वा मदीयः ।

सौख्यं चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेति लोभात्

तद्भावाढ्यः समजनि शची-गर्भ-सिन्धौ हरीन्दुः ॥ 230॥

श्री-राधायाः–श्रीमती राधारानी की; प्रणय-महिमा-प्रेम की महिमा; कीदृशः-किस प्रकार; वा-अथवा; अनया-इनसे (राधा); एव-अकेले; आस्वाद्यः-आस्वादन किए जाने योग्य; येन-उस प्रेम से; अद्भुत-मधुरिमा-अद्भुत माधुर्य; कीदृशः-किस प्रकार का; वा-अथवा; मदीयः-मेरा; सौख्यम्-सुख; च-और; अस्याः-उसका; मत्-अनुभवतः–मेरी माधुर्य की अनुभूति से; कीदृशम् किस प्रकार का; वा-अथवा; इति-इस प्रकार; लोभात्-लोभ से; तत्-उसके; भाव-आढ्यः-भावों से युक्त; समजनि-जन्म लिया; शची-गर्भ-शची देवी की कोख से; सिन्धौ-समुद्र में; हरि-भगवान् कृष्ण; इन्दुः-चन्द्र की भाँति।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के प्रेम की महिमा को, उनके अद्भुत गुण जिनका आस्वादन केवल राधारानी ही अपने प्रेम के माध्यम से करती है, उसको तथा उनके प्रेम की मधुरता का अनुभव करने पर वे जिस सुख का अनुभव करती हैं, उसको समझने की इच्छा से परम भगवान् श्रीहरि राधा के भावों में विभोर होकर श्रीमती शचीदेवी की कोख से उसी प्रकार प्रकट हुए, जिस प्रकार समुद्र से चन्द्रमा प्रकट होता है।"

ए सब सिद्धान्त गूढ़,—कहिते ना युयाय।

ना कहिले, केह इहार अन्त नाहि पाय ॥231॥

ए-ये; सब-सब; सिद्धान्त-सिद्धान्त; गूढ़-अत्यन्त गुह्य; कहिते-कहने के लिए; ना-नहीं; युयाय-उचित; ना-नहीं; कहिले–कहने में; केह-किसी के; इहार-इसका; अन्त–अन्त; नाहि-नहीं; पाय-पाता है।

अनुवाद

इन सारे सिद्धान्तों को जनसामान्य के समक्ष प्रकट करना अनुचित है। किन्तु यदि इन्हें प्रकट नहीं किया जाता, तो इन्हें कोई भी नहीं समझ सकेगा।

अतएव कहि किछु करिजा निगूढ़।

बुझिबे रसिक भक्त, ना बुझिबे मूढ़ ॥ 232॥

अतएव–अतएव; कहि-मैं कहता हूँ; किछु-कुछ; करिना-सार; निगूढ़-मात्र; बुझिबे-समझ सकते हैं; रसिक-रसिक जन; भक्त-भक्त; ना-नहीं; बुझिबे-समझेंगे; मूढ़-धूर्त, मूढ़।

अनुवाद

इसलिए मैं केवल उनका सार ही प्रकट करूँगा, जिससे रसिक भक्त तो इन्हें समझ लें, किन्तु जो मूर्ख हैं, वे समझ न सकें।

हृदये धरये ये चैतन्य-नित्यानन्द ।

ए-सब सिद्धान्ते सेइ पाइबे आनन्द ॥ 233॥

हृदये-हृदय में; धरये-धारण करता है; ये-कोई भी जो; चैतन्यश्री चैतन्य महाप्रभुः नित्यानन्द– तथा भगवान् नित्यानन्द; ए-सब-ये सब; सिद्धान्ते-आध्यात्मिक सिद्धान्तों से; सेइ-वह पुरुष; पाइबे-पायेगा; आनन्द-आनन्द।

अनुवाद

जिस किसी ने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु को अपने हृदय में धारण कर लिया है, वह इन सारे दिव्य सिद्धान्तों को सुनकर परम आनन्दित होगा।

ए सब सिद्धान्त हय आमेर पल्लव ।

भक्त-गण-कोकिलेर सर्वदा वल्लभ ॥234॥

ए-ये; सब-सब; सिद्धान्त-सिद्धान्त; हय-हैं; आमेर-आम की; पल्लव-शाखाएँ, भक्त-गण-भक्तगण; कोकिलेर उनके लिए जो कोयलों के समान हैं; सर्वदा-सदा; वल्लभ-प्रिय।

अनुवाद

ये सारे सिद्धान्त आम के वृक्ष की नवांकुरित शाखाओं के समान हैं। ये कोयल रूपी भक्तों के लिए सदैव प्रिय हैं।

अभक्त-उष्टेर इथे ना हय प्रवेश ।

तबे चित्ते हय मोर आनन्द-विशेष ॥ 235॥

अभक्त-अभक्त; उष्टेर-ऊँट के; इथे-इसमें; ना-नहीं; हय-है; प्रवेश-प्रवेश; तबे-तब; चित्ते-मेरे हृदय में; हय-है; मोर-मेरा; आनन्द-विशेष-विशेष आनन्द।

अनुवाद

ऊँट समान अभक्त इन विषयों में प्रवेश नहीं कर सकते। इसलिए मेरे मन में विशेष प्रसन्नता है।

ये लागि कहिते भय, से यदि ना जाने ।

इहा वइ किबा सुख आछे त्रिभुवने ॥ 236 ॥

ये लागि–जिसके विषय में; कहिते भय-कहने में भय लगे; से यदि नाजाने–यदि वे नहीं जानते; इहा वइ-इसके अतिरिक्त; किबा-क्या; सुख-सुख; आछे-है; त्रि-भुवने–तीनों भुवनों में।

अनुवाद

मैं उनके डर से कहना नहीं चाहता, किन्तु यदि वे नहीं समझते तो तीनों लोकों में इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है?

अतएव भक्त-गणे करि नमस्कार ।

निःशङ्के कहिये, तार हौक्चमत्कार ॥237॥

अतएव–अतएव; भक्त-गणे-भक्तों को; करि-मैं करता हूँ; नमस्कार–नमस्कार; निःशङ्के-निशंक होकर; कहिये-मैं कहता हूँ; तार-भक्तों का; हौक्-होने दो; चमत्कार-चमत्कार।

अनुवाद

अतएव भक्तों को नमस्कार करके मैं उनके संतोष के लिए बिना किसी संकोच के कहूँगा।

कृष्णेर विचार एक आछये अन्तरे ।

पूर्णानन्द-पूर्ण-रस-रूप कहे मोरे ॥ 238॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; विचार-विचार; एक-एक; आछये-है; अन्तरे-हृदय में; पूर्ण-आनन्द–पूर्ण आध्यात्मिक आनन्द; पूर्ण-रस-रूप-दिव्य रस से पूर्ण; कहे मोरे-वे मुझे कहते हैं।

अनुवाद

एक बार भगवान् कृष्ण ने अपने मन में विचार किया, "सारे लोग कहते हैं कि मैं आनन्द तथा समस्त रसों से पूर्ण हूँ।

आमा हइते आनन्दित हय त्रिभुवन ।

आमाके आनन्द दिबे—ऐछे कोन्जन ॥ 239॥

आमा हइते-मुझसे; आनन्दित-आनन्दित; हय–हो जाते हैं; त्रिभुवन–तीनों भुवन; आमाके–मुझको; आनन्द दिबे-आनन्द दे; ऐछे-ऐसा; कोन् जन-कौन व्यक्ति।

अनुवाद

“सारा संसार मुझ से ही आनन्द प्राप्त करता है। क्या ऐसा भी कोई है, जो मुझे आनन्द दे सके?

आमा हैते यार हय शत शत गुण।

सेइ-जन आह्लादिते पारे मोर मन ॥ 240॥

आमा हैते–मेरी अपेक्षा; यार–जिसका; हय-है; शत शत गुण-सैंकड़ों गुण अधिक; सेइ-जन-वह व्यक्ति; आह्लादिते-प्रसन्नता देने के लिए; पारे-सक्षम है; मोर-मेरे; मन-मन को।

अनुवाद

जिस व्यक्ति में मुझसे सैकड़ों गुना अधिक गुण हों, वही मेरे मन को आनन्दित कर सकता है।

आमा हैते गुणी बड़ जगते असम्भव।

एकलि राधाते ताहा करि अनुभव ॥241॥

आमा हैते–मेरी अपेक्षा; गुणी-गुणवान; बड़-बड़ा; जगते–जगत् में; असम्भव-सम्भव नहीं है; एकलि–अकेली; राधाते–श्रीमती राधारानी में; ताहा–वह; करि अनुभव-मैं समझ सकता हूँ।

अनुवाद

मुझसे अधिक गुणवान व्यक्ति को इस जगत् में खोज पाना असम्भव है। किन्तु एकमात्र राधा में मुझे उस व्यक्ति की उपस्थिति जान पड़ती है, जो मुझे आनन्द दे सके।

कोटि-काम जिनि’ रूप यद्यपि आमार।

असमोर्ध्व-माधुर्घ–साम्य नाहि झार ॥242॥

मोर रूपे आप्यायित हय त्रिभुवन।

राधार दर्शने मोर जुड़ाय नयन ॥ 243॥

कोटि-काम-करोड़ों कामदेव; जिनि'–जीतकर; रूप-सौन्दर्य; यद्यपि यद्यपि; आमार-मेरा; असम-ऊर्ध्व-अतुलनीय एवं अद्वितीय; माधुर्य–मधुरता; साम्य-समानता; नाहि-नहीं है; यार–जिनका; मोर–मेरी; रूपे-सुन्दरता में; आप्यायित–प्रसन्न; हय-हो जाते हैं; त्रि-भुवन–तीनों भुवन; राधार–श्रीमती राधारानी का; दर्शने-देखकर; मोर-मेरा; जुड़ाय–सन्तुष्ट होते हैं; नयन–नयन।

अनुवाद

यद्यपि मेरा सौन्दर्य एक करोड़ कामदेवों को पराजित करने वाला है, यद्यपि यह अतुलनीय और अद्वितीय है तथा तीनों जगतों को आनन्दित करने वाला है, किन्तु राधारानी के दर्शन से मेरे नेत्रों को आनन्द प्राप्त होता है।

मोर वंशी-गीते आकर्षये त्रिभुवन।

राधार वचने हरे आमार श्रवण ॥ 244॥

मोर-मेरा; वंशी-गीते-बाँसुरी की तान से; आकर्षये-मैं आकृष्ट करता हूँ; त्रि-भुवन–तीन लोक; राधार वचने-श्रीमती राधारानी के वचन; हरे-विजय प्राप्त करता है; आमार-मेरी; श्रवण-श्रवण शक्ति।

अनुवाद

“मेरी दिव्य बाँसुरी की ध्वनि तीनों लोकों को आकर्षित करती है, किन्तु मेरे कान श्रीमती राधारानी के मधुर शब्दों से मुग्ध हो जाते हैं।

यद्यपि आमार गन्धे जगत्सुगन्ध ।

मोर चित्त-प्राण हरे राधा-अङ्ग-गन्ध ॥ 245 ॥

यद्यपि यद्यपि; आमार-मेरे; गन्धे-सुगन्ध से; जगत्-सारा ब्रह्माण्ड; सु-गन्ध-सुगन्ध; मोर-मेरा; चित्त-प्राण-मन एवं हृदय; हरे-आकर्षित करता है; राधा-श्रीमती राधारानी का; अङ्ग-अंग; गन्ध–सुगन्ध।

अनुवाद

“यद्यपि मेरा शरीर सम्पूर्ण सृष्टि को सुगन्ध प्रदान करता है, किन्तु राधारानी के अंगों की सुगन्धि मेरे मन तथा हृदय को मोहित कर देती है।

यद्यपि आमार रसे जगत्सरस ।

राधार अधर-रस आमा करे वश ॥ 246 ॥

यद्यपि यद्यपि; आमार-मेरे; रसे–रस से; जगत्-आखिल ब्रह्माण्ड; स-रस-रस से पूर्ण, स्वादिष्ट; राधार–श्रीमती राधारानी का; अधर-रस-अधरों का रस; आमा–मुझे; करे-करता है; वश-वश में।

अनुवाद

“यद्यपि सम्पूर्ण सृष्टि मेरे कारण विभिन्न रसों से पूरित है, किन्तु मैं श्रीमती राधारानी के अधरों के अमृत-रस पर मुग्ध हूँ।

यद्यपि आमार स्पर्श कोटीन्दु-शीतल ।

राधिकार स्पर्शे आमा करे सुशीतल ॥ 247॥

प्रद्यपि यद्यपि; आमार-मेरा; स्पर्श-स्पर्श; कोटि-इन्दु-करोड़ों चन्द्र; शीतल-शीतल; राधिकार–श्रीमती राधारानी का; स्पर्शे-स्पर्श; आमा–मुझे; करे-करता है; सु-शीतल-अत्यन्त शीतल।

अनुवाद

यद्यपि मेरा स्पर्श एक करोड़ चन्द्रमाओं से भी शीतल है, किन्तु मैं श्रीमती राधिका के स्पर्श से शीतल हो उठता हूँ।

एइ मत जगतेर सुखे आमि हेतु ।

राधिकार रूप-गुण आमार जीवातु ॥ 248॥

एइ मत-इस प्रकार; जगतेर-सारे जगत् का; सुखे-सुख के विषय में; आमि-मैं हूँ; हेतु–कारण; राधिकार–श्रीमती राधारानी का; रूप-गुण-रूप एवं गुण; आमार-मेरा; जीवातु-जीवन तथा आत्मा।

अनुवाद

इस तरह यद्यपि मैं सम्पूर्ण जगत् के सुख का उद्गम हूँ, किन्तु श्री राधिका के सौन्दर्य एवं गुण मेरे जीवन और आत्मा हैं।

एइ मत अनुभव आमार प्रतीत।

विचारि' देखिये यदि, सब विपरीत॥ 249॥

एइ मत-इस प्रकार; अनुभव-स्वेहिल भाव; आमार-मेरी; प्रतीत–समझ जाना; विचारि'-विचार से; देखिये-मैं देखता हूँ; यदि-यदि; सब-सब कुछ; विपरीत-विपरीत।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के प्रति मेरी स्नेहिल भावनाओं को इस रूप में समझा जा सकता है, किन्तु जब मैं विचार करके देखता हूँ, तो मैं उन्हें विपरीत पाता हूँ।

राधार दर्शने मोर जुड़ाय नयन।

आमार दर्शने राधा सुखे अगेयान॥ 250॥

राधार–श्रीमती राधारानी का; दर्शने-दर्शन में; मोर-मेरा; जुड़ाय–सन्तुष्ट होते है; नयन–नेत्र; आमार-मेरे; दर्शने-दर्शन में; राधा-श्रीमती राधारानी; सुखे-सुख में; अगेयान-अधिकतर उन्नत।

अनुवाद

जब मैं श्रीमती राधारानी पर दृष्टि डालता हूँ, तो मेरी आँखें पूर्णतया तृप्त हो जाती हैं, किन्तु मुझे देखकर वह और भी अधिक तुष्ट होती है।

परस्पर वेणु-गीते हरये चेतन।

मोर भ्रमे तमालेरे करे आलिङ्गन॥ 251॥

परस्पर-एक दूसरे के विरूद्ध; वेणु-गीते-बाँस का गायन; हरये-आकर्षित करता है; चेतन-चेतना; मोर-मेरी; भ्रमे-गलती के; तमालेरे-तमाल नामक काला वृक्ष; करे वह करता है; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

"बाँसों की परस्पर रगड़ से वंशी के समान जो मर्मर स्वर निकलता है, वह राधारानी की चेतना को हर लेता है, क्योंकि वह इसे मेरी वंशी की ध्वनि समझती है। वह मेरे भ्रम में तमाल वृक्ष का आलिंगन करती है।

कृष्ण-आलिङ्गन पाइनु, जनम सफले ।

कृष्ण-सुखे मग्न रहे वृक्ष करि' कोले ॥ 252॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; आलिङ्गन-आलिंगन; पाइनु-मुझे मिला है; जनम स-फले-मेरा जन्म अब सफल हो गया है; कृष्ण-सुखे-कृष्ण को प्रसन्न करने में; मग्न-मग्न; रहे-वह रहती है; वृक्ष-वृक्ष; करि'-लेकर; कोले–गोद में।

अनुवाद

"वह सोचती है, 'मुझे कृष्ण का आलिंगन मिल रहा है, अतएव मेरा जीवन सार्थक हो गया है। इस प्रकार वह वृक्ष को अपनी भुजाओं में भरकर कृष्ण को प्रसन्न करने में मग्न रहती है।"

अनुकूल-वाते यदि पाय मोर गन्ध ।

उड़िया पड़िते चाहे, प्रेमे हय अन्ध ॥ 253॥

अनुकूल-वाते-अनुकूल वायु में; यदि-यदि; पाय-है; मोर-मेरी; गन्ध–सुगन्ध; उड़िया-उड़ना; पड़िते-गिरना; चाहे वह चाहती है; प्रेमे-प्रेम में; हय–हो जाती है; अन्ध-अन्धी।

अनुवाद

"जब अनुकूल वायु मेरे शरीर की सुगन्ध को उस तक ले जाती है, तो वह प्रेमान्ध हो उठती है और उस वायु में उड़ना चाहती है।

ताम्बूल-चर्वित यबे करे आस्वादने।

आनन्द-समुद्रे डुबे, किछुइ ना जाने ॥254॥

ताम्बूल-ताम्बूल, पान, सुपारी; चर्वित-चबाया हुआ; यबे-जब; करे–करती है; आस्वादने-आस्वादन; आनन्द-समुद्रे-दिव्य आनन्द के सागर में; डुबे-डूब जाती है; किछुइ-कुछ भी; ना-नहीं; जाने-जानती।

अनुवाद

जब वह मेरे द्वारा चर्वित पान का आस्वादन करती है, तो वह आनन्द के समुद्र में डूब जाती है और सब कुछ भूल जाती है।

आमार सङ्गमे राधा पाय ग्ने आनन्द।

शत-मुखे बलि, तबु ना पाई तार अन्त ॥ 255॥

आमार-मेरी; सङ्गमे-संगति में; राधा-श्रीमती राधारानी; पाय-प्राप्त करती है; ये-जो कुछ; आनन्द–दिव्य आनन्द; शत-मुखे सैकड़ों मुखों से; बलि-यदि मैं कहूँ; तबु-फिर भी; ना-नहीं; पाइ-मैं पहुँचता हूँ; तार–इसके; अन्त–अन्त।

अनुवाद

“मैं सैकड़ों मुखों से उस दिव्य आनन्द को व्यक्त नहीं कर सकता, जिसे वह मेरी संगति से प्राप्त करती है।

लीला-अन्ते सुखे इँहार अङ्गेर माधुरी।

ताहा देखि’ सुखे आमि आपना पाशरि॥ 256॥

लीला-अन्ते-हमारी लीलाओं के अन्त में; सुखे-सुख में; इँहारश्रीमती राधारानी का; अङ्गेर-शरीर का; माधुरी-माधुर्य; ताहा-वह; देखि’–देखकर; सुखे-सुख में. आमि-मैं; आपना स्वयं को; पाशरि-भूल जाता हूँ।

अनुवाद

“अपनी परस्पर-लीलाओं के अन्त में उसके वर्ण की कान्ति को देखकर मैं सुख में मग्न होकर अपनी खुद की पहचान भूल जाता हूँ।

दोहार ये सम-रस, भरत-मुनि माने।

आमार व्रजेर रस सेह नाहि जाने॥ 257॥

दोंहार-दोनों का; ये-जो कुछ; सम-रस-सम रस; भरत-मुनि-भरत मुनि नामक सन्त; माने–स्वीकार करते हैं; आमार-मेरा; व्रजेर-वृन्दावन का; रस-रस; सेह-वे; नाहि-नहीं; जाने-जानते।

अनुवाद

“भरत मुनि ने कहा है कि प्रेमी तथा प्रेमिका के रस समान होते हैं। किन्तु मेरे वृन्दावन के रस को वे भी नहीं जानते।

तात्पर्य

भरत मुनि जैसे दक्ष कामशास्त्रवेत्ता के अनुसार भौतिक सम्भोग के समय नर तथा नारी को समान सुख मिलता है। किन्तु आध्यात्मिक जगत् में ये सम्बन्ध भिन्न होते हैं और उसे संसारी विशेषज्ञ भी नहीं जानते।

अन्येर सङ्गमे आमि व्रत सुख पाइ ।

ताहा हैते राधा-सुख शत अधिकाइ ॥258॥

अन्येर-अन्य; समे-मिलने से; आमि-मैं; ग्रत-सब; सुख-सुख; पाइ–पाता हैं. ताहा हैते-तब वह; राधा-सुख-राधारानी की संगति से मिला सुख; शत-एक सौ गुना; अधिकाइ–बढ़ जाता है।

अनुवाद

मुझे राधारानी से मिलने पर जो सुख प्राप्त होता है, वह अन्यों से मिलने पर प्राप्त होने वाले सुख से सैकड़ों गुना अधिक होता है।

निर्भूतामृत-माधुरी-परिमलः कल्याणि बिम्बाधरो

वक्त्रं पङ्कज-सौरभं कुहरित-श्लाघा-भिदस्ते गिरः ।

अङ्गं चन्दन-शीतलं तनुरियं सौन्दर्य-सर्वस्व-भाक्

त्वामासाद्य ममेदमिन्द्रिय-कुलं राधे मुहुर्मोदते ॥ 259॥

निर्भूत-पराजित करता है; अमृत-अमृत की; माधुरी-मधुरता; परिमलः–जिसकी सुवास; कल्याणि-है सर्वाधिक शुभ; बीम्ब-अधरः-लाल ओठ; वक्त्रम्-मुख; पङ्कज-सौरभम्जो कमल की भाँति सुगन्ध देती है; कुहरित-कोयल की मधुर आवाज; श्लाघा-गर्व; भिदः-जो पराजित करते हैं; ते तुम्हारी; गिरः-वाणी; अङ्गम्-अंग; चन्दन-शीतलम्-चन्दन के लेप की भाँति शीतल; तनुः-शरीर; इयम्-यह; सौन्दर्य-सुन्दरता का; सर्व-स्व-भाक्-सब कुछ प्रकट करनेवाली; त्वाम्-तुम; आसाद्य-आस्वादन करके; मम–मेरी; इदम्-यह; इन्द्रिय-कुलम्-सभी इन्द्रियाँ; राधे-हे श्रीमती राधारानी; मुहुः–बारम्बार; मोदते-प्रसन्न होती हैं।

अनुवाद

“हे कल्याणी राधारानी, तुम्हारा शरीर समस्त सौन्दर्य का स्रोत है। तुम्हारे लाल लाल अधर अमृत-माधुरी की अनुभूति से भी कोमल हैं, तुम्हारा मुख कमल के फूल की सुगन्धि से ओतप्रोत है, तुम्हारी मधुर वाणी कोयल की ध्वनि को परास्त करने वाली है और तुम्हारे अंग-प्रत्यंग चन्दन-लेप से भी शीतल हैं। मेरी सभी दिव्य इन्द्रियाँ सदगुणों से अलंकृत तुम्हारा आस्वादन करके परम आह्लादित होती हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक भगवान् कृष्ण द्वारा राधा से कहा गया है और श्रील रूप गोस्वामी कृत ललित-माधव (9.9) में अंकित है।

रूपे कंस-हरस्य लुब्ध-नयनां स्पर्शेऽतिहृष्यत्त्वचं

वाण्यामुत्कलित-श्रुतिं परिमले संछ-नासा-पुटाम् ।

आरज्यद्रसनां किलाधर-पुटे न्यञ्चन्मुखाम्भोरुहां

दम्भोगीर्ण-महा-धृतिं बहिरपि प्रोद्यद्विकाराकुलाम् ॥ 260॥

रूपे-सौन्दर्य में; कंस-हरस्य-कंस के शत्रु कृष्ण के; लुब्ध-बंधकर; नयनाम्-जिनकी आँखें; स्पर्शे-स्पर्श में; अति-हृष्यत्-अत्यन्त प्रसन्न; त्वचम्-जिसका शरीर; वाण्याम्-वाणी के स्पन्दन में; उत्कलित-अत्यन्त उत्सुक; श्रुतिम्-जिनके कान; परिमले-सुगन्ध में; संहृष्ट-हर्ष में चुराये गये; नासा-पुटाम्-जिनके नथुने; आरज्यत्-पूर्णतया आकर्षित होकर; रसनाम्-जिनकी जिह्वा; किल–क्या कहा जाये; अधर-पुटे-अधरों को; न्यञ्चत्-झुककर; मुख-जिनका मुख; अम्भः-रुहाम्-कपलपुष्प की भाँति; दम्भ-अभिमान से; उद्गीर्ण-प्रकट करते हुए; महा-धृतिम्-महान् धैर्य; बहिः-बाहर से; अपि-यद्यपि, प्रोद्यत् प्रकट करते हुए; विकार-विकार; आकुलाम्-आकुल होकर।

अनुवाद

“उनकी आँखें कंस के शत्रु भगवान् कृष्ण के सौन्दर्य पर मुग्ध हैं। उनका शरीर कृष्ण के स्पर्श से आनन्द-पुलकित होता है। उनके कान सदैव उनकी मधुर ध्वनि की ओर आकृष्ट होते हैं। उनकी नाक उनकी सुगन्ध से मुग्ध होती है और उनकी जीभ उनके कोमल अधरों का अमृतपान करने के लिए लालायित रहती है। वे आत्मसंयम का बहाना करके अपने कमल सदृश मुख को लटकाये

रहती हैं, किन्तु वे कृष्ण के प्रति उनके स्वयंस्फूर्त रागानुग प्रेम के बाह्य लक्षण को प्रकट होने से रोक नहीं सकतीं।"

तात्पर्य

इस प्रकार श्रील रूप गोस्वामी राधारानी के मुख का वर्णन करते हैं।

ताते जानि, मोते आछे कोन एक रस ।

आमार मोहिनी राधा, तारे करे वश ॥ 261॥

ताते-उस पर; जानि–मैं समझ सकता हूँ; मोते-मुझ में; आछे-है; कोन-कुछ, कोई; एक-एक; रस-दिव्य रस; आमार-मेरी; मोहिनी-मोहिनी, जादूगरनी; राधा-श्रीमती राधारानी; तारे-उसका; करे वश-पराजित करता है।

अनुवाद

"यह विचार करने पर मैं समझ सकता हूँ कि मुझमें कोई अज्ञात रस है, जो मुझे मोहित करने वाली श्रीमती राधारानी को सम्पूर्ण रूप से वश में करता है।

आमा हैते राधा पाय ये जातीय सुख ।

ताहा आस्वादिते आमि सदाइ उन्मुख ॥ 262॥

आमा हैते–मुझसे; राधा-श्रीमती राधारानी; पाय-लेती है; ये-जो कुछ; जातीय-के प्रकार का; सुख-सुख; ताहा-वह; आस्वादिते-आस्वादन के लिए; आमि-मैं; सदाइ–सदा; उन्मुख-अत्यन्त उत्सुक।

अनुवाद

मैं सदैव उस सुख का आस्वादन करने के लिए उत्सुक रहता हूँ, जो राधारानी मुझसे प्राप्त करती है।

नाना यत्न करि आमि, नारि आस्वादिते ।

सेइ सुख-माधुर्य-घ्राणे लोभ बाढ़ चित्ते ॥ 263 ॥

नाना-विविध; यत्न–प्रयास; करि-करता हूँ; आमि-मैं; नारि-मैं सक्षम नहीं हैं; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; सेइ-वह; सुख-सुख का; माधुर्य–माधुर्य; घ्राणे-सूंघने से; लोभ-लोभ; बाढ़े-बढ़ता है; चित्ते–मन में।

अनुवाद

“अनेक प्रयत्नों के बाद भी मैं उसका आस्वादन करने के लिए समर्थ नहीं हो सका। किन्तु जब मैं इसकी मधुरता को सँघता हूँ, तो उस सुख का आस्वादन करने की मेरी इच्छा बढ़ जाती है।

रस आस्वादिते आमि कैल अवतार ।

प्रेम-रस आस्वादिल विविध प्रकार ॥264॥

रस-रस; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; आमि-मैंने; कैल–किया, लियाः अवतार–अवतार; प्रेम-रस-प्रेम का दिव्य रस; आस्वादिल-मैंने चखा; विविध प्रकार-विविध प्रकार का।

अनुवाद

पहले मैं रसों का आस्वादन करने के लिए संसार में प्रकट हुआ था और मैंने शुद्ध प्रेम के रसों का अनेक प्रकार से आस्वादन किया।

राग-मार्गे भक्त भक्ति करे ये प्रकारे।

ताहा शिखाइल लीला-आचरण-द्वारे ॥ 265॥

राग-मार्गे–स्वाभाविक प्रेम के मार्ग पर; भक्त-भक्त; भक्ति-भक्ति; करे-करता है; ये प्रकारे-जिस प्रकार से; ताहा-वह; शिखाइल-मैंने सिखाई; लीला-लीलाएँ; आचरण-द्वारे-व्यावहारिक आचरण के द्वारा।।

अनुवाद

"मैंने भक्तों को रागानुग प्रेम से प्रकट होने वाली भक्ति की शिक्षा अपनी लीलाओं का प्रदर्शन करके प्रदान की।

एइ तिन तृष्णा मोर नहिल पूरण।

विजातीय-भावे नहे ताहा आस्वादन ॥266 ॥

एइ–ये; तिन–तीन; तृष्णा-इच्छाएँ, मोर–मेरी; नहिल–नहीं थी, नहीं हुई; पूरण-पूर्ण; विजातीय–सम्बन्ध के दूसरे साथी का; भावे-भाव में; नहे-सम्भव नहीं है; ताहा-वह; आस्वादन–आस्वादन।

अनुवाद

“किन्तु मेरी ये तीन इच्छाएँ पूरी नहीं हुईं, क्योंकि विपरीत पद में इनका आस्वादन नहीं किया जा सकता।

राधिकार भाव-कान्ति अङ्गीकार विने ।

सेइ तिन सुख कभु नहे आस्वादने ॥ 267॥

राधिकार–श्रीमती राधारानी; भाव-कान्ति–प्रेम का भाव; अङ्गीकार–स्वीकार करना; विने–विना; सेइ-वे; तिन–तीन; सुख-सुख; कभु-कभी भी; नहे–सम्भव नहीं है; आस्वादने-आस्वादन।

अनुवाद

“यदि मैं श्री राधिका के प्रेम-भाव तथा कान्ति को स्वीकार नहीं करूँगा, तो ये तीन इच्छाएँ पूरी नहीं हो सकेगी।

राधा-भाव अङ्गीकरि’ धरि’ तार वर्ण ।

तिन-सुख आस्वादिते हब अवतीर्ण ॥ 268॥

राधा-भाव-श्रीमती राधारानी के भाव; अङ्गीकरि’–स्वीकार करके; धरि’–धारण करके; तार वर्ण-उसके शारीरिक वर्ण; तिन-तीन; सुख-सुख; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; हब-मैं करूँगा; अवतीर्ण-अवतार लूँगा।

अनुवाद

अतएव राधारानी के भावों को तथा उनके शारीरिक वर्ण को धारण करके इन तीनों इच्छाओं को पूरा करने के लिए मैं अवतरित हुँगा।"

सर्व-भावे कैल कृष्ण एइ त निश्चय ।

हेन-काले आइल युगावतार-समय ॥ 269॥

सर्व-भावे-सब तरह से; कैल-किया; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; एइ-यह; त'-निश्चय ही; निश्चय–निर्णय; हेन-काले—इस समय; आइल-आया; युग-अवतार-युग अवतार का; समय-समय।

अनुवाद

इस तरह भगवान् कृष्ण इस निर्णय पर पहुँचे। उसी समय युगावतार का समय भी आ गया।

सेइ-काले श्री-अद्वैत करेन आराधन ।

ताँहार हुङ्कारे कैल कृष्णे आकर्षण ॥ 270 ॥

सेइ-काले-उस समय; श्री-अद्वैत-अद्वैताचार्य; करेन-करते हैं; आराधन-पूजा; ताँहार-उनकी; हुङ्कारे-जोर से, ऊंची आवाज में; कैल–किया; कृष्णे-भगवान् कृष्ण का; आकर्षण-आकर्षण।

अनुवाद

उस समय श्री अद्वैत निष्ठा से उनकी पूजा कर रहे थे। उन्होंने अपनी तेज पुकार से भगवान् को आकृष्ट किया।

पिता-माता, गुरु-गण, आगे अवतारि' ।

राधिकार भाव-वर्ण अङ्गीकार करि' ॥ 271॥

नव-द्वीपे शची-गर्भ-शुद्ध-दुग्ध-सिन्धु ।

ताहाते प्रकट हैला कृष्ण पूर्ण इन्दु ॥ 272 ॥

पिता-माता-पिता-माता; गुरु-गण-गुरुगण; आगे-पहले; अवतारि'–अवतार लेकर; राधिकार-श्रीमती राधारानी का; भाव-वर्ण-दिव्य भाव की कांती; अङ्गीकार करि'–स्वीकार करके; नवद्वीपे-नवद्वीप में; शची-गर्भ-शची की कोख से; शुद्ध-शुद्ध; दुग्ध-सिन्धु–दुग्ध का समुद्र; ताहाते-उसमें; प्रकट-प्रकट; हैला-हो गये; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; पूर्ण इन्दु–पूर्ण चन्द्र।

अनुवाद

सर्वप्रथम भगवान् कृष्ण ने अपने माता-पिता एवं गुरुजनों को प्रकट होने दिया। स्वयं कृष्ण, राधिका का भाव एवं उनका वर्ण लेकर, नवद्वीप में क्षीर सागर के समान माता शची की कोख से पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रकट हुए।

एइ त' करिलुँ षष्ठ श्लोकेर व्याख्यान ।

श्री-रूप-गोसाञिर पाद-पद्म करि' ध्यान ॥ 273॥

एइ त'-इस प्रकार; करिलुँ-मैंने की है; षष्ठ श्लोकेर-छठे श्लोक की; व्याख्यान-व्याख्या; श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; गोसाञिर-गोसांई की, प्रभु की; पाद-पद्म-चरणकमल; करि'–करके; ध्यान-ध्यान।

अनुवाद

मैंने श्री रूप गोस्वामी के चरणकमलों का ध्यान करके छठे श्लोक की इस तरह व्याख्या की है।

एइ दुइ श्लोकेर आमि ये करिल अर्थ।

श्री-रूप-गोसाञिर श्लोक प्रमाण समर्थ॥ 274॥

एइ-ये; दुइ-दोनों; श्लोकेर-श्लोंको की; आमि-मैंने; ये-जो कुछ; करिल-दिया; अर्थ-अर्थ; श्री-रूप-गोसाञिर-श्री रूप गोस्वामी का; श्लोक-श्लोक; प्रमाण-प्रमाण; समर्थ-समर्थ, सक्षम।

अनुवाद

मैं इन दो श्लोकों (प्रथम अध्याय के श्लोक 5 तथा 6) की व्याख्या की पुष्टि श्रील रूप गोस्वामी के श्लोक से कर सकता हूँ।

अपारं कस्यापि प्रणयि-जन-वृन्दस्य कुतुकी

रस-स्तोमं हृत्वा मधुरमुपभोक्तुं कमपि यः।

रुचं स्वामावत्रे द्युतिमिह तदीयां प्रकटयन्

स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु॥ 275॥

अपारम्-असीम; कस्य अपि-किसी का भी; प्रणयि-जन-वृन्दस्य-प्रेमियों के समूह का; कुतुकी-जो उत्सुक है; रस-स्तोमम्-रस के समूह का; हृत्वा-चुराकर; मधुरम्-मधुर; उपभोक्तुम्-भोगने हेतु; कम् अपि-कोई भी; यः-जो; रुचम्-चमक; स्वाम्-अपनी; आवख्ने–ढ़का हुआ; द्युतिम्-चमक; इह-यहाँ; तदीयाम्-उनसे सम्बन्धित; प्रकटयन्-प्रकट करके; सः-वे; देवः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; चैतन्य-आकृतिः-चैतन्य महाप्रभु का रूप; अतितराम्-अत्यन्त; नः-हम पर; कृपयतु-कृपा करें।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण प्रेमिकाओं के समूह में से एक (श्री राधा) के असीम प्रेम के अमृत रस का आस्वादन करना चाहते थे; अतएव उन्होंने चैतन्य महाप्रभु का स्वरूप धारण किया है। उन्होंने राधा के तेजोमय गौरवर्ण से अपने श्यामवर्ण को छिपाते हुए उस प्रेम का आस्वादन किया है। वे चैतन्य महाप्रभु हम सबको अपनी कृपा प्रदान करें।

तात्पर्य

यह श्रील रूप गोस्वामी कृत स्तवमाला के अन्तर्गत द्वितीय चैतन्याष्टक का तृतीय श्लोक है।

मङ्गलाचरणं कृष्ण-चैतन्य-तत्त्व-लक्षणम् ।

प्रयोजनं चावतारे श्लोक-षट्कैर्निरूपितम् ॥ 276॥

मङ्गल-आचरणम्-मंगलाचरण; कृष्ण-चैतन्य-कृष्ण चैतन्य महाप्रभु का; तत्त्व-लक्षणम्-सत्य के लक्षण; प्रयोजनम्-प्रयोजन; च-भी; अवतारे-अपने अवतार के विषय में; श्लोक-श्लोक; षट्कैः-छ: से; निरूपितम्-बताये गये, निरूपित किए।

अनुवाद

इस प्रकार प्रथम छह श्लोकों में मंगलाचरण, श्री चैतन्य के तत्त्व का अनिवार्य लक्षण एवं उनके प्राकट्य के कारण को प्रस्तुत किया गया है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 277॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों में; यार-जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत ग्रंथ; कहे वर्णन करता है; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

मैं कृष्णदास श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए और उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए तथा उनके पदचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत की आदि-लीला के "श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य के गुह्य कारण शीषर्क" चतुर्थ अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय पाँच

भगवान् नित्यानन्द बलराम की महिमाएँ

इस अध्याय में मुख्यतया श्री नित्यानन्द प्रभु के मुख्य स्वभाव एवं उनकी महिमाओं का वर्णन किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं और लीलाओं के लिए उनके प्रथम विस्तार श्री बलराम हैं।

इस भौतिक जगत् की सीमा के पार आध्यात्मिक आकाश, परव्योम है, जिसमें अनेक आध्यात्मिक ग्रह हैं, जिनमें कृष्णलोक सर्वश्रेष्ठ है। कृष्णलोक अर्थात् कृष्ण के निवास के तीन विभाग हैं, जिनके नाम हैं द्वारका, मथुरा तथा गोकुल। इस धाम में भगवान् अपना विस्तार चार पूर्ण अंश-अवतारों में करते हैं-कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न (दिव्य कामदेव) तथा अनिरुद्ध। ये चारों मूल चतुर्व्यूह कहलाते हैं।

कृष्णलोक में एक दिव्य स्थान है, जो श्वेतद्वीप या वृन्दावन कहलाता है। कृष्णलोक के नीचे आध्यात्मिक आकाश में वैकुण्ठ ग्रह हैं। प्रत्येक वैकुण्ठ ग्रह में प्रथम चतुर्व्यह के विस्तारूप एक चतुर्भुज नारायण रहते हैं। कृष्णलोक में मूल संकर्षण भगवान् श्री बलराम के रूप में हैं और इन संकर्षण से एक और संकर्षण का विस्तार महासंकर्षण के रूप में होता है, जो वैकुण्ठ-ग्रहों में से एक में निवास करते हैं। अपनी अन्तरंगा शक्ति से महासंकर्षण परव्योम में सारे ग्रहों की दिव्य स्थिति को बनाये रखते हैं, जहाँ के निवासी सदैव मुक्त रहते हैं। वहाँ पर भौतिक शक्ति का बिल्कुल भी प्रभाव नहीं रहता। इन लोकों में द्वितीय चतुर्व्यह विद्यमान रहते हैं।

वैकुण्ठ-लोकों से बाहर श्रीकृष्ण की निर्विशेष अभिव्यक्ति पाई जाती है, जो ब्रह्मलोक कहलाती है। ब्रह्मलोक की दूसरी ओर दिव्य कारण-समुद्र है। इस कारण-समुद्र की दूसरी ओर भौतिक शक्ति रहती है, किन्तु उसका स्पर्श नहीं करती। इस कारण-समुद्र में संकर्षण के मूल पुरुष विस्तार महाविष्णु रहते हैं। ये महाविष्णु भौतिक शक्ति पर दृष्टि डालते हैं और अपने दिव्य शरीर के प्रतिबिम्ब से वे भौतिक तत्त्वों में अपने आपको मिला देते हैं।

भौतिक तत्त्वों की उद्गम होने के कारण भौतिक शक्ति प्रधान कहलाती है और भौतिक शक्ति की अभिव्यक्ति के उद्गम के रूप में यह माया कहलाती है। किन्तु भौतिक प्रकृति जड़ होती है, क्योंकि इसे कुछ भी करने की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं रहती। इसे महाविष्णु के दृष्टिपात द्वारा जगत् का निर्माण करने की शक्ति प्रदान की जाती है। अतएव भौतिक शक्ति इस भौतिक जगत् का मूल कारण नहीं होती, बल्कि भौतिक प्रकृति पर महाविष्णु की दिव्य दृष्टि से भौतिक जगत् उत्पन्न होता है।

महाविष्णु पुनः हर ब्रह्माण्ड में गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में, जो सारे जीवों के आगार हैं, प्रवेश करते हैं। गर्भोदकशायी विष्णु से क्षीरोदकशायी विष्णु का विस्तार होता है, जो हर जीव के परमात्मा हैं। गर्भोदकशायी विष्णु का भी हर ब्रह्माण्ड में अपना वैकुण्ठ-लोक होता है, जहाँ वे परमात्मा या ब्रह्माण्ड के परम नियन्ता के रूप में रहते हैं। गर्भोदकशायी विष्णु ब्रह्माण्ड के जलमय अंश में शयन करते हैं और ब्रह्माण्ड के प्रथम जीव ब्रह्मा को उत्पन्न करते हैं। काल्पनिक विश्वरूप गर्भोदकशायी विष्णु का आंशिक प्राकट्य है।

हर ब्रह्माण्ड के वैकुण्ठ-लोक में एक क्षीर सागर होता है और उस सागर के भीतर श्वेतद्वीप नामक एक द्वीप होता है, जहाँ भगवान् विष्णु निवास करते हैं। इस तरह इस अध्याय में दो श्वेतद्वीपों का वर्णन हुआ है-एक तो कृष्ण के धाम में और दूसरा प्रत्येक ब्रह्माण्ड के क्षीर सागर में। कृष्ण के धाम का श्वेतद्वीप वृन्दावन धाम से अभिन्न है, जहाँ कृष्ण अपनी प्रेममयी लीलाएँ प्रदर्शित करने के

लिए प्रकट होते हैं। हर ब्रह्माण्ड के श्वेतद्वीप में भगवान् शेष रहते हैं, जो विष्णु की सेवा उनका छत्र, पादुका, शय्या, तकिया, वस्त्र, निवासस्थान, जनेऊ, सिंहासन इत्यादि बनकर करते हैं।

कृष्णलोक में भगवान् बलदेव नित्यानन्द प्रभु हैं। अतएव नित्यानन्द प्रभु मूल संकर्षण हैं और महासंकर्षण तथा ब्रह्माण्डों में पुरुषों के रूप में उनके विस्तार नित्यानन्द प्रभु के पूर्ण अंश विस्तार हैं।

इस अध्याय में लेखक ने अपना घर छोड़कर वृन्दावन की तीर्थयात्रा करने और वहाँ पर सफलता प्राप्त करने का वर्णन किया है। इस विवरण से पता चलता है कि उनकी मूल पितृभूमि तथा उनका जन्मस्थान कटवा जिले के झामटपुर नामक गाँव में था, जो नैहाटी के निकट है। कृष्णदास कविराज के भाई ने नित्यानन्द प्रभु के महान् भक्त श्री मीनकेतन रामदास को अपने घर पर बुलाया था, किन्तु गुणार्णव मिश्र नामक पुरोहित ने उनका ठीक से आदर नहीं किया और कृष्णदास कविराज गोस्वामी के भाई भी नित्यानन्द प्रभु की महिमाओं को न पहचान सकने के कारण पुरोहित की तरफ हो गये। इसलिए रामदास खिन्न हुए और अपनी वंशी तोड़ डाली और वहाँ से चले गये। यह कृष्णदास कविराज गोस्वामी के भाई के लिए एक महान् दुर्घटना थी। किन्तु उसी रात नित्यानन्द प्रभु ने कृपापूर्वक कृष्णदास कविराज गोस्वामी को स्वप्न में दर्शन दिया और उन्होंने आदेश दिया कि अगले दिन वे वृन्दावन के लिए यात्रा आरम्भ करें।

वन्देऽनन्ताद्भुतैश्वर्यं श्री-नित्यानन्दमीश्वरम्।

यस्येच्छया तत्स्वरूपमज्ञेनापि निरूप्यते ॥1॥

वन्दे-मैं नमस्कार करता हूँ; अनन्त-असीम; अद्भुत–एवं अद्भुत; ऐश्वर्यम्-जिनका ऐश्वर्य; श्री-नित्यानन्दम्-भगवान् नित्यानन्द को; ईश्वरम्-ईश्वर; यस्य–जिनकी; इच्छया-इच्छा से; तत्-स्वरूपम्-उनके स्वरूप; अज्ञेन–अज्ञानी से; अपि-भी; निरूप्यते-समझा जा सकता है।

अनुवाद

मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री नित्यानन्द प्रभु को नमस्कार करता हूँ, जिनका ऐश्वर्य अद्भुत तथा असीम है। उनकी इच्छा होने पर एक मूर्ख भी उनके स्वरूप को समझ सकता है।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय नित्यानन्द–भगवान् नित्यानन्द की जय हो; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैताचार्य की जय हो; जय गौर-भक्त-वृन्द-चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! और श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

एइ षट्श्लोके कहिल कृष्ण-चैतन्य-महिमा ।

पञ्च-श्लोके कहि नित्यानन्द-तत्त्व-सीमा ॥3॥

एइ-यह; षट्-श्लोके-छः श्लोकों में; कहिल–वर्णन किया है; कृष्ण-चैतन्य-महिमा-श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमाएँ, पञ्च-श्लोके–पाँच श्लोकों में; कहि-मैं वर्णन करूँगा; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द के; तत्त्व-तत्त्व का; सीमा-सीमा।

अनुवाद

मैंने श्रीकृष्ण चैतन्य की महिमा का वर्णन छह श्लोकों में किया है। अब मैं पाँच श्लोकों में भगवान् श्री नित्यानन्द की महिमा का वर्णन करूँगा।

सर्व-अवतारी कृष्ण स्वयं भगवान्।

ताँहार द्वितीय देह श्री-बलराम ॥4॥

सर्व-अवतारी–सभी अवतारों के उद्गम; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; स्वयम्-स्वयं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; ताँहार—उनका; द्वितीय-द्वितीय; देह-शरीर का विस्तार; श्री-बलराम-भगवान् बलराम।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण समस्त अवतारों के स्रोत हैं। भगवान् बलराम उनके द्वितीय शरीर हैं।

तात्पर्य

भगवान् श्रीकृष्ण परम भगवान् हैं, आदि पुरुष हैं, ईश्वर के मूल स्वरूप हैं और उनके प्रथम विस्तार श्री बलराम हैं। भगवान् अपना विस्तार असंख्य रूपों में कर सकते हैं। जिन रूपों में असीम

शक्ति होती है, वे स्वांश कहलाते हैं और जिनकी शक्ति सीमित होती है, वे (जीव) विभिन्नांश कहलाते हैं।

एकइ स्वरूप दोंहे, भिन्न-मात्र काय।

आद्य काय-व्यूह, कृष्ण-लीलार सहाय ॥5॥

एक–एक; स्वरूप-स्वरूप; दोंहे-दोनों; भिन्न-मात्र काय-केवल दो विभिन्न शरीर; आद्य-मूल; काय-व्यूह-चतुर्व्यह विस्तार; कृष्ण-लीलार-भगवान् कृष्ण की लीलाओं में; सहाय-सहायता।

अनुवाद

वे दोनों एक ही रूप हैं। केवल उनके शरीर में अन्तर है। भगवान् बलराम कृष्ण के प्रथम शारीरिक विस्तार (कायव्यूह) हैं और कृष्ण की दिव्य लीलाओं में सहायक होते हैं।

तात्पर्य

बलराम श्रीकृष्ण के स्वांश विस्तार हैं, अतएव कृष्ण तथा बलराम की शक्ति में कोई अन्तर नहीं है। अन्तर केवल उनके शारीरिक गठन में है। भगवान् के प्रथम विस्तार होने के कारण बलराम प्रथम चतुर्व्यह में प्रधान विग्रह हैं और भगवान् कृष्ण के दिव्य कार्यकलापों में अग्रणी सहायक हैं।

सेइ कृष्ण—नवद्वीपे श्री-चैतन्य-चन्द्र।

सेइ बलराम–सङ्गे श्री-नित्यानन्द ॥6॥

सेइ कृष्ण-मूल कृष्ण; नवद्वीपे-नवद्वीप में; श्री-चैतन्य-चन्द्र-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; सेइ बलराम-वे भगवान् बलराम; सङ्गे–उनके साथ; श्री-नित्यानन्द–भगवान् नित्यानन्द।

अनुवाद

वे मूल भगवान् कृष्ण नवद्वीप में श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए और श्री बलराम उनके साथ श्री नित्यानन्द प्रभु के रूप में प्रकट हुए।

सङ्कर्षणः कारण-तोय-शायी

गर्भोद-शायी च पयोब्धि-शायी।

शेषश्च यस्यांश-कलाः स नित्या-

नन्दाख्य-रामः शरणं ममास्तु ॥7॥

सङ्कर्षणः-आध्यात्मिक आकाश में महा संकर्षण; कारण-तोय-शायी-कारणोदकशायी विष्णु जो कारण सागर में शयन करते हैं; गर्भ-उद-शायी–गर्भोदकशायी विष्णु जो ब्रह्माण्ड के गर्भोदक सागर में शयन करते हैं; च-तथा; पयः-अब्धि-शायी-क्षीरोदकशायी विष्णु जो क्षीरोदक सागर में शयन करते हैं; शेषः-शेषनाग, विष्णु की शय्या; च-और; यस्य–जिनका; अंश—पूर्ण अंश; कलाः–तथा पूर्ण अंश के अंश; सः–वे; नित्यानन्द-आख्य-भगवान् नित्यानन्द नामक; रामः-भगवान् बलराम; शरणम्-आश्रय, शरण; मम–मेरे; अस्तु हो।

अनुवाद

वे श्री नित्यानन्द राम मेरे निरन्तर स्मरण के लक्ष्य बनें, जिनके पूर्णांश तथा पूर्णांश के अंश संकर्षण, शेषनाग तथा वे विष्णु हैं, जो क्रमशः कारण-सागर, गर्भ-सागर तथा क्षीर-सागर में शयन करते हैं।

तात्पर्य

श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने यह श्लोक अपनी डायरी में श्री नित्यानन्द प्रभु को सादर नमस्कार करने के लिए लिखा । यही श्लोक श्री चैतन्य-चरितामृत के प्रथम चौदह श्लोकों में से सातवाँ श्लोक है॥

श्री-बलराम गोसाञि मूल-सङ्कर्षण ।

पञ्च-रूप धरि' करेन कृष्णेर सेवन ॥8॥

श्री-बलराम-श्री बलराम; गोसाञि-भगवान्; मूल-सङ्कर्षण-मूल संकर्षण; पञ्च-रूप धरि'–पाँच-रूप धारी; करेन-करते हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; सेवन–सेवा।

अनुवाद

भगवान् बलराम मूल संकर्षण हैं। वे भगवान् कृष्ण की सेवा करने के लिए पाँच अन्य रूप धारण करते हैं।

आपने करेन कृष्ण-लीलार सहाय ।

सृष्टि-लीला-कार्य करे धरि' चारि काय ॥9॥

आपने–स्वयं; करेन-करते हैं; कृष्ण-लीलार सहाय-भगवान् कृष्ण की लीलाओं में सहायता; सृष्टि-लीला-सृष्टि लीला का; कार्य-कार्य; करे-करते हैं; धरि'–स्वीकार करके, धारण करके; चारि काय-चार शरीर।

अनुवाद

वे स्वयं भगवान् कृष्ण की लीलाओं में सहायता करते हैं और चार अन्य रूपों में सृजन-कार्य भी करते हैं।

सृष्ट्यादिक सेवा,—ताँर आज्ञार पालन ।

'शेष'-रूपे करे कृष्णेर विविध सेवन ॥10॥

सृष्टि-आदिक सेवा-सृष्टि-कार्य में सेवा; ताँर–उनकी; आज्ञार-आज्ञा का पालन-पालन; शेष-रूपे-भगवान् शेष के रूप में; करे-करते हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; विविध सेवन–विविध सेवाएँ।

अनुवाद

वे सृष्टि-कार्य में भगवान् कृष्ण के आदेशों का पालन करते हैं और भगवान् शेष के रूप में वे कृष्ण की अनेक प्रकार से सेवा करते हैं।

तात्पर्य

अधिकारीजनों का मत है कि मूल चतुर्व्यह में प्रधान श्री बलराम मूल संकर्षण भी हैं। कृष्ण के प्रथम विस्तार बलराम अपना विस्तार पाँच रूपों में करते हैं-(1) महासंकर्षण, (2) कारणाब्धिशायी, (3) गर्भोदकशायी, (4) क्षीरोदकशायी तथा (5) शेष। ये पाँचों पूर्ण अंश आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों ही जगतों के कारणस्वरूप हैं। इन पाँचों रूपों में श्री बलराम भगवान् कृष्ण को उनके कार्यकलापों में सहायता करते हैं। इनमें से प्रथम चार विराट् जगत् की उत्पत्ति के कारण हैं और शेष भगवान् की निजी सेवा के लिए उत्तरदायी हैं। शेष अनन्त कहलाते हैं, क्योंकि वे असंख्य प्रकारों से भगवान् के अनन्त विस्तारों की सेवा करते हैं। श्री बलराम सेवक भगवान् हैं, जो

स्थिति तथा ज्ञान के सारे कार्यों में भगवान् कृष्ण की सेवा करते हैं। नित्यानन्द प्रभु जो सेवक भगवान् बलराम ही हैं, वे अपने निरन्तर सान्निध्य से गौरांग महाप्रभु की वैसी ही सेवा करते हैं।

सर्व-रूपे आस्वादये कृष्ण-सेवानन्द ।

सेइ बलराम–गौर-सङ्गे नित्यानन्द ॥11॥

सर्व-रूपे–इन सभी रूपों में; आस्वादये-आस्वादन करते हैं; कृष्ण-सेवा-आनन्द-कृष्ण-सेवा का दिव्य आनन्द; सेइ बलराम-वे भगवान् बलराम; गौर-सङ्गे–गौर सुन्दर के साथ; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द।

अनुवाद

वे अपने समस्त रूपों में कृष्ण की सेवा करने के दिव्य आनन्द का आस्वादन करते हैं। वे बलराम ही भगवान् गौरसुन्दर के सहचर नित्यानन्द प्रभु हैं।

सप्तम श्लोकेर अर्थ करि चारि-श्लोके ।

याते नित्यानन्द-तत्त्व जाने सर्व-लोके ॥12॥

सप्तम श्लोकेर–सातवें श्लोक का; अर्थ-अर्थ; करि-मैं करता हूँ; चारि-श्लोके-चार श्लोकों में; याते-जिनमें; नित्यानन्द-तत्त्व-भगवान् नित्यानन्द का तत्त्व; जाने–हम जानते हैं; सर्व-लोके-विश्वभर में।

अनुवाद

मैंने इस सातवें श्लोक की व्याख्या लगातार चार श्लोकों में की है। इन श्लोकों से सारा संसार नित्यानन्द प्रभु के विषय में सत्य को जान सकता है।

मायातीते व्यापि-वैकुण्ठ-लोके

पूर्णैश्वर्यै श्री-चतुर्व्यह-मध्ये।

रूपं ग्रस्योद्भाति सङ्कर्षणाख्यं

तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥13॥

माया-अतीते-भौतिक सृष्टि के परे; व्यापि–सर्वव्यापी; वैकुण्ठ-लोके-वैकुण्ठ लोक में; पूर्ण-ऐश्व–पूर्ण ऐश्वर्य सहित; श्री-चतुः-व्यूह-मध्ये-चतुह विस्तार में (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध); रूपम्-रूप; यस्य–जिनका; उद्भाति-प्रकट होता है; सङ्कर्षण-आख्यम्-संकर्षण नामक; तम्-उनको; श्री-नित्यानन्द-रामम्-भगवान् नित्यानन्द के रूप में भगवान् बलराम की; प्रपद्ये-मैं शरण लेता हूँ।

अनुवाद

मैं उन श्री नित्यानन्द राम के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ, जो चतुर्व्यह के मध्य संकर्षण नाम से विख्यात हैं (चतुर्व्यह में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध सम्मिलित हैं)। वे समस्त ऐश्वर्यों से युक्त हैं और इस भौतिक जगत् से बहुत दूर वैकुण्ठ-लोक में निवास करते हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी की डायरी से लिया गया है। यह श्रीचैतन्य-चरितामृत के प्रथम चौदह श्लोकों में से आठवाँ श्लोक है।

प्रकृतिर पार ‘परव्योम-नामे धाम ।

कृष्ण-विग्रह यैछे विभूत्यादि-गुणवान् ॥14॥

प्रकृतिर-भौतिक प्रकृति; पार–परे; पर-व्योम-आध्यात्मिक आकाश; नामे-नाम में; धाम-धाम; कृष्ण-विग्रह-भगवान् कृष्ण का विग्रह; यैछे-जैसे; विभूति-आदि-छः ऐश्वर्यों की भाँति; गुण-वान्-दिव्य गुणों सहित।

अनुवाद

भौतिक प्रकृति से परे परव्योम अर्थात् आध्यात्मिक आकाश है। यह साक्षात् कृष्ण की ही तरह समस्त दिव्य गुणों-यथा छह ऐश्वर्यों से युक्त है।

तात्पर्य

सांख्य दर्शन के अनुसार यह भौतिक जगत् चौबीस तत्त्वों से बना है। ये हैं–पाँच स्थूल तत्त्व, तीन सूक्ष्म तत्त्व, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच इन्द्रिय-विषय तथा महत् तत्त्व (सम्पूर्ण भौतिक शक्ति)। प्रत्यक्षवादी दार्शनिक इन तत्त्वों से परे जाने में असमर्थ होने के कारण सोचते हैं कि इनसे परे कोई भी वस्तु अव्यक्त होनी चाहिए। किन्तु चौबीस तत्त्वों से परे का जगत् अव्यक्त नहीं है, क्योंकि भगवद्गीता में इसे सनातन कहा गया है। व्यक्त तथा अव्यक्त (व्यक्ताव्यक्त) भौतिक प्रकृति से परे सनातन प्रकृति है, जो परव्योम अर्थात् आध्यात्मिक आकाश कहलाती है। वह प्रकृति आध्यात्मिक स्वभाव की होती है, अतएव वहाँ कोई गुणात्मक अन्तर नहीं होता। वहाँ हर वस्तु आध्यात्मिक है, उत्तम है और हर वस्तु में श्रीकृष्ण का आध्यात्मिक रूप होता है। यह परव्योम श्रीकृष्ण की व्यक्त अन्तरंगा शक्ति है। यह उनकी बहिरंगा शक्ति से व्यक्त हुए भौतिक आकाश से भिन्न है।

श्रीकृष्ण की निर्विशेष प्रकाशमान किरणों से निर्मित सर्वव्यापी ब्रह्म आध्यात्मिक जगत् में वैकुण्ठ ग्रहों के साथ विद्यमान हैं। हमें परव्योम (आध्यात्मिक आकाश) का कुछ-कुछ अनुमान भौतिक आकाश की तुलना से लग सकता है, क्योंकि भौतिक आकाश में सूर्य की किरणों की तुलना ब्रह्मज्योति से की जा सकती है, क्योंकि ब्रह्मज्योति भगवान् की प्रकाशमान किरणें है। ब्रह्मज्योति में असंख्य वैकुण्ठ जगत् होते हैं, जो आध्यात्मिक होने के कारण स्वत: प्रकाशित रहते हैं और उनकी चमक सूर्य से अनेक गुना अधिक होती है। प्रत्येक वैकुण्ठ-लोक में भगवान् श्रीकृष्ण, उनके असंख्य पूर्णांश तथा पूर्णांशों के अंश की प्रधानता रहती है। आध्यात्मिक आकाश के सर्वोच्च भाग में कृष्णलोक नामक ग्रह है, जिसके तीन विभाग हैं-द्वारका, मथुरा तथा गोलोक अथवा गोकुल।

कट्टर भौतिकतावादी के लिए यह भगवान् का धाम वैकुण्ठ निश्चय ही एक रहस्य है। किन्तु जो अज्ञानी है उसके लिए पर्याप्त ज्ञान के अभाव में हर वस्तु एक रहस्य होती है। भगवान् का धाम कोरी कल्पना नहीं है। यहाँ तक कि अनेक भौतिक ग्रह, जो लाखों-करोड़ों की संख्या में हमारे सिर के ऊपर तैर रहे हैं, आज भी अज्ञानियों के लिए रहस्य बने हुए हैं। भौतिक विज्ञानी अब इस रहस्य को जानने का प्रयत्न कर रहे हैं और एक दिन ऐसा आ सकता है, जब इस पृथ्वी के लोग बाह्य अन्तरिक्ष में यात्रा करने में सक्षम होंगे और इन लाखों ग्रहों की विविधता को अपनी आँखों से देख सकेंगे। प्रत्येक ग्रह में उतनी ही भौतिक विविधता है, जितनी कि हम अपने ग्रह में पाते हैं।

यह पृथ्वी-लोक विराट् सृष्टि का केवल एक नगण्य स्थान है। फिर भी वैज्ञानिक प्रगति की मिथ्या भावना से गर्वित मूर्ख लोग इस लोक के तथाकथित आर्थिक विकास की खोज में अपनी शक्ति को केन्द्रित किये हुए हैं और उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि अन्य ग्रहों में नाना प्रकार की आर्थिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। आधुनिक खगोल विज्ञान के अनुसार चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति पृथ्वी से भिन्न है। अतएव यदि मनुष्य चन्द्रमा पर जायेगा, तो वहाँ पर भारी बोझ उठा सकेगा और लम्बी

छलाँग लगा सकेगा। रामायण में वर्णन आता है कि हनुमान पर्वत जैसा भारी बोझ उठा सकते थे और सागर पार कर सकते थे। आधुनिक खगोल विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि ऐसा निस्सन्देह सम्भव है।

आधुनिक सभ्य मनुष्य का सबसे बड़ा रोग यह है कि उसे शास्त्रों की हर बात पर अविश्वास है। श्रद्धाविहीन अविश्वासी लोग आध्यात्मिक साक्षात्कार में कोई प्रगति नहीं कर सकते, क्योंकि वे आध्यात्मिक शक्ति को नहीं समझ सकते। बरगद के एक छोटे-से फल में सैकड़ों बीज होते हैं और हर बीज में एक अन्य विशाल बरगद का वृक्ष उत्पन्न करने की शक्ति निहित रहती है, जिससे लाखों ऐसे और फल उत्पन्न हो सकते हैं। प्रकृति का यह नियम हमारी आँखों के सामने दिखता है, किन्तु यह किस तरह कार्य करता है, यह हमारी समझ से परे है। यह भगवान् की शक्ति का केवल तुच्छ उदाहरण है। ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जिन्हें कोई भी विज्ञानी नहीं समझा सकता।

वास्तव में हर वस्तु अचिन्त्य है, क्योंकि सत्य केवल उपयुक्त व्यक्तियों के समक्ष ही प्रकट किया जाता है। यद्यपि ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र चींटी तक अनेक प्रकार के जीव हैं, किन्तु उनमें ज्ञान का विकास भिन्न होता है, अतः ज्ञान को सही स्रोत से प्राप्त करने की आवश्यकता है। वस्तुत: यह ज्ञान हम एकमात्र वैदिक स्रोतों से ही प्राप्त कर सकते हैं। चारों वेद, पुराण, महाभारत, रामायण और उनके पूरक शास्त्र जिन्हें स्मृतियाँ कहा जाता है ये सभी ज्ञान के प्रामाणिक स्रोत हैं। यदि हम वास्तव में ज्ञान संचय करने के इच्छुक हैं, तो हमें इन्हीं स्रोतों से बिना संकोच के ज्ञान ग्रहण करना चाहिए।

हो सकता है यह शास्त्रीय ज्ञान प्रारम्भ में अविश्वसनीय लगे, क्योंकि हमारी संशयवादी प्रवृत्ति हर वस्तु की पुष्टि हमारे क्षुद्र मस्तिष्क द्वारा करना चाहती है, किन्तु ज्ञान प्राप्त करने के चिन्तनपरक साधन सदैव अपूर्ण होते हैं। प्रामाणिक शास्त्रों में प्रतिपादित पूर्ण ज्ञान की पुष्टि महान् आचार्यों द्वारा की जाती है, जो अपनी अनेक टीकाएँ छोड़ गये हैं। इनमें से किसी भी आचार्य ने शास्त्रों में अविश्वास

प्रकट नहीं किया। जो व्यक्ति शास्त्रों में अविश्वास प्रकट करता है, वह नास्तिक है और नास्तिक चाहे कितना भी महान् क्यों न हो, उससे हमें परामर्श नहीं लेना चाहिए। अनेक विविधताओं से युक्त शास्त्रों में दृढ़ श्रद्धा रखने वाला उपयुक्त व्यक्ति है, जिससे वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा ज्ञान प्रारम्भ में अचिन्त्य लग सकता है, किन्तु जब उपयुक्त अधिकारी उसके अर्थ को समझाता है, तो उसके विषय में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

सर्वग, अनन्त, विभु–वैकुण्ठादि धाम ।

कृष्ण, कृष्ण-अवतारेर ताहाजि विश्राम ॥ 15 ॥

सर्व-ग--सर्वव्यापक; अनन्त-अनन्त; विभु–महानतम; वैकुण्ठ-आदि धाम-वैकुण्ठलोक नामक सभी स्थल; कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; कृष्ण-अवतारेर–भगवान् कृष्ण के अवतारों का; ताहाजि-वहाँ; विश्राम-विश्राम, निवास।

अनुवाद

वह वैकुण्ठ धाम सर्वव्यापी, अनन्त एवं परम पूर्ण है। वह भगवान् कृष्ण तथा उनके अवतारों का आवास है।

ताहार उपरि-भागे 'कृष्ण-लोक'-ख्याति ।

द्वारका-मथुरा-गोकुल–त्रि-विधत्वे स्थिति ॥ 16॥

ताहार–उन सबका; उपरि-भागे-ऊपरी भाग में; कृष्ण-लोक-ख्याति–कृष्ण लोक नामक ग्रह; द्वारका-मथुरा-गोकुल-द्वारका, मथुरा एवं वृन्दावन नामक तीन स्थल; त्रि-विधत्वे-तीन विभागों में; स्थिति-स्थित।

अनुवाद

उस आध्यात्मिक आकाश के सर्वोच्च भाग में कृष्णलोक नामक आध्यात्मिक लोक है। इसके तीन विभाग हैं-द्वारका, मथुरा तथा गोकुल।

सर्वोपरि श्री-गोकुल–ब्रजलोक-धाम ।

श्री-गोलोक, श्वेतद्वीप, वृन्दावन नाम ॥17॥

सर्व-उपरि–उन सबसे ऊपर; श्री-गोकुल-श्री गोकुल नामक स्थान; व्रज-लोक-धाम-व्रज लोक; श्री-गोलोक-गोलोक; श्वेत-द्वीप-श्वेतद्वीप; वृन्दावन नाम-वृन्दावन नामक भी।

अनुवाद

इनमें से सर्वोच्च श्री गोकुल है, जो व्रज, गोलोक, श्वेतद्वीप तथा वृन्दावन भी कहलाता है।

सर्वग, अनन्त, विभु, कृष्ण-तनु-सम ।

उपर्युधो व्यापियाछे, नाहिक नियम ॥18॥

सर्व-ग-सर्वव्यापी; अनन्त-अनन्त; विभु-महानतम; कृष्ण-तनु-सम-कृष्ण के दिव्य शरीर के जैसा; उपरि-अधः-ऊपर नीचे; व्यापियाछे–विस्तृत; नाहिक-नहीं है; नियम-नियम।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण के दिव्य शरीर के ही समान गोकुल सर्वव्यापी, अनन्त तथा सर्वोपरि है। यह किसी प्रतिबन्ध के बिना ऊपर तथा नीचे तक विस्तृत है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की परम्परा के महान् आचार्य तथा दार्शनिक श्रील जीव गोस्वामी ने अपने ग्रंथ कृष्ण-सन्दर्भ में कृष्ण के धाम की चर्चा की है। भगवद्गीता में भगवान् "मेरा धाम" का उल्लेख करते हैं। श्रील जीव गोस्वामी कृष्ण के धाम के स्वभाव का परीक्षण करते हुए स्कन्द पुराण का प्रसंग लाते हैं, जिसमें कहा गया है :

या यथा भुवि वर्तन्ते पुर्यो भगवतः प्रियाः ।

तास्तथा सन्ति वैकुण्ठे तत्तल्लीलार्थमादृताः ॥

"भौतिक जगत् में द्वारका, मथुरा तथा गोकुल जैसे भगवद्धाम वैकुण्ठ-धाम में स्थित भगवद्धामों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतिरूप हैं।" उस वैकुण्ठ-धाम का असीम आध्यात्मिक आकाश (परव्योम) भौतिक जगत् से बहुत दूर और ऊपर है। इसकी पुष्टि स्वायम्भुव-तन्त्र में शिव-पार्वती के बीच हुई चर्चा से होती है, जो चौदह अक्षरों वाले मन्त्र के प्रभाव के विषय में है। उसमें कहा गया है :

नानाकल्पलताकीर्ण वैकुण्ठं व्यापकं स्मरेत् ।

अधः साम्यं गुणानां च प्रकृतिः सर्वकारणम् ॥

"मन्त्र का जप करते समय मनुष्य को सदैव आध्यात्मिक जगत् (वैकुण्ठ) का स्मरण करना चाहिए, जो अत्यन्त विस्तीर्ण है और कोई भी मनवांछित वस्तु देने वाले कल्पवृक्षों से युक्त है। इस वैकुण्ठ क्षेत्र के नीचे भौतिक शक्ति (प्रकृति) है, जिससे भौतिक जगत् उत्पन्न होता है।" भगवान् कृष्ण के लीला-स्थान–यथा द्वारका, मथुरा तथा वृन्दावन–कृष्णलोक में स्वतन्त्र एवं सनातन रूप से स्थित हैं। वे भगवान् कृष्ण के वास्तविक धाम हैं और वे निश्चित रूप से भौतिक जगत् के ऊपर स्थित हैं।

वृन्दावन या गोकुल नामक धाम गोलोक भी कहलाता है। ब्रह्म-संहिता में वर्णन हुआ है कि भगवद्धाम का सर्वोच्च भाग गोकुल सहस्र पंखुड़ियों वाले कमलपुष्प के समान है। उस कमल जैसे लोक का बाह्य भाग वर्गाकार स्थान जैसा है, जो श्वेतद्वीप कहलाता है। गोकुल के भीतरी भाग में श्रीकृष्ण के रहने की विशद व्यवस्था है, जहाँ वे नन्द-यशोदा जैसे शाश्वत पार्षदों के साथ रहते हैं। यह दिव्य धाम मूल शेष या अनन्त रूप श्री बलदेव की शक्ति के कारण विद्यमान है। तन्त्रों में भी इसकी पुष्टि हुई है, जिनमें बलदेव के पूर्ण अंश श्री अनन्तदेव के धाम को भगवद्धाम कहा गया है। गोकुल वृन्दावन की सीमा से बाहर स्थित वर्गाकार श्वेतद्वीप के अन्तर्गत वृन्दावन धाम सबसे भीतरी धाम है।

जीव गोस्वामी के अनुसार वैकुण्ठ को ब्रह्मलोक भी कहते हैं। नारद-पंचरात्र में विजय के रहस्य का वर्णन करते हुए कहा गया है :

तत्सर्वोपरि गोलोके तत्र लोकोपरि स्वयम् ।

विहरेत् परमानन्दी गोविन्दोऽतुलनायकः ॥

“गोपियों के प्रभु गोकुल के प्रधान विग्रह गोविन्द सदैव आध्यात्मिक आकाश के सर्वोच्च भाग गोलोक नामक स्थान में आनन्द का उपभोग करते हैं।”

जीव गोस्वामी द्वारा दिये गये प्रामाणिक साक्ष्य के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कृष्णलोक आध्यात्मिक आकाश (परव्योम) में सर्वश्रेष्ठ लोक है, जो भौतिक जगत् से बहुत दूर है। कृष्ण की विविध लीलाओं में दिव्य विविधताओं के उपभोग के लिए वहाँ तीन विभाग हैं और ये लीलाएँ द्वारका, मथुरा तथा गोकुल-इन तीनों धामों में सम्पन्न होती हैं। जब कृष्ण इस ब्रह्माण्ड में अवतरित होते हैं, तब वे इन्हीं के समान नाम वाले स्थानों में लीलाओं का आनन्द लेते

हैं। पृथ्वी पर ये स्थान मूल धामों से अभिन्न हैं, क्योंकि वे दिव्य जगत् के मूल पवित्र स्थानों के प्रतिरूप हैं। वे स्वयं कृष्ण जैसे ही उत्तम हैं और समान रूप से पूजनीय हैं। भगवान् श्री चैतन्य ने घोषित किया कि व्रजराज के पुत्र-रूप में उपस्थित होने वाले भगवान् कृष्ण पूजनीय हैं और वृन्दावन धाम भी समान रूप से पूजनीय है।

ब्रह्माण्डे प्रकाश तार कृष्णेर इच्छाय ।

एकइ स्वरूप तार, नाहि दुइ काय ॥19॥

ब्रह्माण्डे–भौतिक ब्रह्माण्ड में प्रकाश-प्राकट्य; तार–इसका; कृष्णेर इच्छाय-भगवान् कृष्ण की सर्वोपरि इच्छा से; एकइ-वही है; स्वरूप-स्वरूप; तार–इसका; नाहि-नहीं; दुइ-दो; काय-शरीर।

अनुवाद

वह धाम भगवान् कृष्ण की इच्छा से भौतिक जगत् के भीतर प्रकट होता है। यह मूल गोकुल से अभिन्न है। ये दो भिन्न-भिन्न स्थान नहीं हैं।

तात्पर्य

उपर्युक्त धाम सर्वशक्तिमान भगवान् कृष्ण की इच्छा से संचल हैं। जब श्रीकृष्ण इस पृथ्वी पर प्रकट होते हैं, तब वे अपने धामों को भी बिना किसी परिवर्तन के उसी रूप में प्रकट कर सकते हैं। मनुष्य को चाहिए कि इस धरा के धामों तथा वैकुण्ठ के धामों में यह सोचकर भेदभाव न करे कि जो धरा पर हैं, वे भौतिक हैं और आदि वैकुण्ठ के धाम आध्यात्मिक हैं। वे सभी आध्यात्मिक हैं। हम वर्तमान बद्ध अवस्था में पदार्थ से परे कुछ अनुभव ही नहीं कर सकते; अतएव हमें सारे धाम तथा भगवान् का अर्चारूप दोनों ही भौतिक रूप से मिलते-जुलते प्रकट हुए लगते हैं, जिससे हमें

भौतिक नेत्रों से दिव्य को देखने की सुविधा मिल जाती है। प्रारम्भ में नये भक्त के लिए यह समझ पाना कठिन हो सकता है, किन्तु ज्यों-ज्यों वह भक्ति में अग्रसर होता जायेगा, उसके लिए यह सरलतर हो जायेगा और उसे इन भौतिक रूपों में ही भगवान् की उपस्थिति दृष्टिगोचर होगी।

चिन्तामणि-भूमि, कल्प-वृक्ष-मय वन।

चर्म-चक्षे देखे तारे प्रपञ्चेर सम ॥20॥

चिन्तामणि-भूमि-चिन्तामणि की भूमि; कल्प-वृक्ष-मय-कल्पवृक्षों से पूर्ण; वन-वन; चर्म-चक्षे-भौतिक नेत्र; देखे-देखते हैं; तारे–यह; प्रपञ्चेर सम-भौतिक सृष्टि के समान।

अनुवाद

वहाँ की भूमि चिन्तामणि की बनी हुई है और वन कल्पवृक्षों से पूर्ण हैं। भौतिक आँखें इसे सामान्य स्थान के रूप में देखती हैं।

तात्पर्य

भगवत्कृपा से भगवान् के धाम तथा भगवान् स्वयं एकसाथ अपनी मूल महत्ता खोये बिना विद्यमान रह सकते हैं। जब कोई भगवान् के प्रति पूर्णरूपेण प्रेम तथा स्नेह विकसित कर लेता है, तभी वह उन धामों को उनके मूल स्वरूपों में देख सकता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु की परम्परा के महान् आचार्य श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने हमारे लाभ के लिए कहा है कि मनुष्य को धाम पूरी तरह तभी दिख सकते हैं, जब वह अपने मन से प्रकृति पर शासन करने की भावना को पूरी तरह से निकाल दे। उसकी आध्यात्मिक दृष्टि का विकास पदार्थ का अनावश्यक भोग करने की दूषित प्रवृत्ति को त्यागने के अनुपात में होता है। यदि कोई रोगी

व्यक्ति किसी घृणित आदत के कारण बीमार पड़ता है, तो उसे चिकित्सक की राय मानने के लिए तैयार रहना चाहिए और इसके सहज परिणामस्वरूप उसे रोग के कारण को त्यागने का प्रयास करना चाहिए। रोगी यदि चाहे कि घृणित आदत को न छोड़े और चिकित्सक उसे ठीक कर दे, तो ऐसा सम्भव नहीं है। किन्तु आधुनिक भौतिक सभ्यता एक रुग्ण पर्यावरण का पोषण कर रही है। जीव भगवान् की ही भाँति एक आध्यात्मिक स्फुलिंग है। अन्तर इतना ही है कि भगवान् महान् हैं और जीव क्षुद्र है। गुण की दृष्टि से वे एक हैं, किन्तु मात्रा की दृष्टि से वे भिन्न हैं। अतएव वैधानिक रूप से आध्यात्मिक होने के कारण जीव केवल आध्यात्मिक आकाश में ही सुखी रह सकता है, जहाँ वैकुण्ठ लोक नामक अनेक आध्यात्मिक ग्रह हैं। इसलिए भौतिक देह से बद्ध आध्यात्मिक जीव को चाहिए कि वह रोग के कारण को बढ़ावा न दे, अपितु रोग से छुटकारा पाये।

मूर्ख व्यक्ति अपनी भौतिक सम्पदाओं में निमग्न रहकर व्यर्थ ही जनता के नेता बनने का दम्भ भरते हैं, किन्तु वे मनुष्य के आध्यात्मिक मूल्य की उपेक्षा करते हैं। ऐसे मोहग्रस्त नेता भले ही बहुवर्षीय योजनाएँ क्यों न बनायें, किन्तु वे जनता को भौतिक प्रकृति के तीनों तापों से प्रभावित अवस्था में सुखी नहीं बना सकते। कोई कितना ही संघर्ष क्यों न करे, वह प्रकृति के नियमों को वश में नहीं कर सकता। उसे प्रकृति के आखरी नियम मृत्यु का शिकार बनना ही पड़ेगा। जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि-ये जीव की रुग्ण अवस्था के लक्षण हैं। अतएव मानव जीवन का चरम लक्ष्य इन कष्टों से छूटकर भगवद्धाम वापस जाना होना चाहिए।

प्रेम-नेत्रे देखे तार स्वरूप-प्रकाश ।

गोप-गोपी-सङ्गे याँहा कृष्णेर विलास ॥21॥

प्रेम-नेत्रे-भगवत् प्रेम के नेत्रों से; देखे-कोई देखता है; तार-इसका; स्वरूप-प्रकाश-स्वरूप का प्राकट्य; गोप-गोपजन; गोपी-सड़े-गोपियों के साथ; याँहा-जहाँ; कृष्णेर विलास-भगवान् कृष्ण की लीलाएँ।

अनुवाद

किन्तु भगवत्प्रेम से पूरित नेत्रों से मनुष्य इस स्थान के वास्तविक स्वरूप को देख सकता है, जहाँ भगवान् कृष्ण ग्वालबालों और गोपियों के साथ अपनी लीलाएँ करते हैं।

चिन्तामणि-प्रकर-सद्मसु कल्प-वृक्ष-

लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम् ।

लक्ष्मी-सहस्र-शत-सम्भ्रम-सेव्यमानं

गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥22॥

चिन्तामणि-चिन्तामणि; प्रकर-बने हुए; सद्मसु-आवासों में; कल्प-वृक्ष-कल्पवृक्षों के लक्ष-लाखों से; आवृतेषु-घिरे हुए; सुरभीः-सुरभी गौवों से; अभिपालयन्तम्-चराते हुए; लक्ष्मी-भाग्यलक्ष्मियों के; सहस्र-हजारों का; शत-सैंकड़ों से; सम्भ्रम-अत्यन्त सम्मान सहित; सेव्यमानम्-सेवित; गोविन्दम्-गोविन्द; आदि-पुरुषम्-आदि पुरुष; तम्-उनकी; अहम्-मैं; भजामि-पूजा करता हूँ।

अनुवाद

“मैं उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली गौओं का चिन्तामणियों से निर्मित और करोड़ों कल्पवृक्षों से घिरे अपने धाम में पालन करते हैं। उनकी सेवा में सदैव सैकड़ों-हजारों लक्ष्मियाँ अत्यन्त आदर एवं स्नेह के साथ तत्पर रहती हैं।”

तात्पर्य

यह ब्रह्म-संहिता (5.29) का श्लोक है। कृष्ण के धाम का यह विवरण हमें उस दिव्य स्थान के विषय में निश्चित जानकारी देता है, जहाँ का जीवन न केवल सनातन, ज्ञानमय तथा आनन्दमय है, अपितु जहाँ प्रचूर वनस्पति, दूध, रत्न तथा सुन्दर घर और उद्यान हैं, जिनकी देखरेख सुन्दर बालाओं द्वारा की जाती है, जो सब लक्ष्मियाँ हैं। कृष्णलोक आध्यात्मिक आकाश का सर्वोच्च ग्रह है और उसके नीचे असंख्य लोक हैं, जिनका वर्णन श्रीमद्भागवत में हुआ है। ब्रह्माजी को आत्म-साक्षात्कार के प्रारम्भ में नारायण की कृपा से वैकुण्ठ-लोकों का दिव्य दृश्य दिखाया गया था। बाद में कृष्ण की कृपा से उन्हें कृष्णलोक का भी दिव्य दृश्य दिखाया गया। यह दिव्य दृश्य टेलीविजन में चन्द्रमा से प्राप्त होने वाले प्रसारण की भाँति है, जिसे अपने भीतर तपस्या और ध्यान से प्राप्त किया जाता है, जबकि टेलीविजन में तरंगों को पकड़ने की यान्त्रिक प्रक्रिया से ऐसा सम्भव होता है।

श्रीमद्भागवत (द्वितीय स्कंध) में बतलाया गया है कि वैकुण्ठ-लोक में भौतिक प्रकृति के सतो, रजो तथा तमो गुणों का कोई प्रभाव नहीं होता। भौतिक जगत् में सत्त्वगुण ही सर्वोच्च है, जो सच्चाई, मानसिक संतुलन, शुचि, इन्द्रिय-संयम, सरलता, आवश्यक ज्ञान, ईश्वर में श्रद्धा, वैज्ञानिक ज्ञान इत्यादि विशिष्टताओं से युक्त है। फिर भी ये सारे गुण कामवासना तथा अपूर्णता से मिश्रित रहते हैं। किन्तु वैकुण्ठ में पाये जाने वाले गुण ईश्वर की अन्तरंगा शक्ति की अभिव्यक्ति हैं, अतएव ये नितान्त आध्यात्मिक तथा दिव्य हैं, जिनमें भौतिक कल्मष का नामोनिशान नहीं रहता। कोई भी भौतिक ग्रह, यहाँ तक कि सत्यलोक भी गुण की दृष्टि से वैकुण्ठ लोकों की समता नहीं कर सकता,

जहाँ भौतिक जगत् के पाँच पैदायशी गुण-अज्ञान, क्लेश, अहंकार, क्रोध तथा द्वेष-अनुपस्थित रहते हैं।

भौतिक जगत् की हर वस्तु सृजित की गई है। हमारी अनुभूति के अन्तर्गत हम जो कुछ भी सोच सकते हैं, यहाँ तक कि हमारे शरीर तथा मन की भी सृष्टि हुई है। सृष्टि की यह निर्माण प्रक्रिया ब्रह्मा के जीवन से शुरू हुई और यह सृजन-सिद्धान्त रजोगुण के कारण सम्पूर्ण भौतिक ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। किन्तु वैकुण्ठ-लोक में रजोगुण अनुपस्थित है, अतएव वहाँ किसी वस्तु की सृष्टि नहीं हुई, वहाँ की हर वस्तु शाश्वत है। और चूँकि वहाँ तमोगुण नहीं है, इसलिए वहाँ संहार या विनाश का प्रश्न ही नहीं उठता। भौतिक जगत् में उपर्युक्त सत्त्वगुण को विकसित करके मनुष्य हर वस्तु को स्थायी बनाने का प्रयास कर सकता है, किन्तु चूँकि भौतिक जगत् में सत्त्वगुण के साथ रजो तथा तमोगुण मिश्रित रहते हैं, इसलिए विद्वान विज्ञानियों के लाख प्रयत्नों के बावजूद भी कोई भी वस्तु यहाँ स्थायी नहीं रह सकती। इसीलिए हमें इस भौतिक जगत् में शाश्वतता, पूर्ण ज्ञान तथा आनन्द का कोई अनुभव नहीं है। किन्तु वैकुण्ठ लोक में गुणों की पूर्ण अनुपस्थिति के कारण हर वस्तु सच्चिदानन्दमय है। हर वस्तु बोल सकती है, चल सकती है, सुन सकती है और अनन्त काल तक परम आनन्दमय अस्तित्व में देख सकती है। ऐसी स्थिति होने से देश और काल का-भूत, वर्तमान और भविष्य रूप में-वहाँ कोई प्रभाव नहीं होता। परमव्योम में कोई परिवर्तन नहीं दिखता, क्योंकि वहाँ काल का कोई प्रभाव नहीं है। फलतः उस बहिरंगा शक्ति माया का प्रभाव भी अनुपस्थित रहता है, जो हमें अधिकाधिक भौतिकतावादी बनने और भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को भूलने के लिए प्रेरित करती है।

हम लोग भगवान् के दिव्य शरीर से निकलने वाली किरणों की आध्यात्मिक स्फुलिंग होने के कारण उनसे शाश्वत रूप से सम्बन्धित हैं और गुण की दृष्टि से उनके तुल्य हैं। भौतिक शक्ति

आध्यात्मिक स्फुलिंग का एक आवरण है, किन्तु वैकुण्ठ-लोक में भौतिक आवरण न होने के कारण वहाँ के जीव अपने स्वरूप को भूलते नहीं। उन्हें भगवान् के साथ अपनी इस वैधानिक स्थिति में अपने सम्बन्ध का पूर्ण ज्ञान है कि उन्हें भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा करनी है। चूँकि वे लोग भगवान् की दिव्य सेवा में निरन्तर लगे रहते हैं, अतएव यह स्वाभाविक निष्कर्ष निकलता है कि उनकी इन्द्रियाँ भी दिव्य होती हैं, क्योंकि भौतिक इन्द्रियों से भगवान् की सेवा नहीं की जा सकती। वैकुण्ठ-लोक के निवासियों की भौतिक इन्द्रियाँ नहीं होतीं, जिससे वे भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व जमा सकें।

अल्पज्ञानी मनुष्य इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भौतिक गुणों से शून्य स्थान किसी न किसी प्रकार की रूपविहीन शून्यता होगा। वस्तुत: आध्यात्मिक जगत् में गुण होते हैं, किन्तु वे भौतिक गुणों से भिन्न हैं, क्योंकि वहाँ की हर वस्तु शाश्वत, अनन्त तथा शुद्ध है। वहाँ का वातावरण स्वतः प्रकाशित है, अतएव वहाँ सूर्य, चन्द्र, अग्नि, बिजली इत्यादि की आवश्यकता नहीं पड़ती। उस धाम में पहुँचने वाला व्यक्ति भौतिक शरीर लेकर इस भौतिक जगत् में वापस नहीं आता। वैकुण्ठ-लोकों में आस्तिकों तथा नास्तिकों में कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि वहाँ के सारे निवासी भौतिक गुणों से मुक्त होते हैं। इस तरह सुर तथा असुर समान रूप से भगवान् के आज्ञाकारी प्रिय दास होते हैं।

वैकुण्ठ-लोक के निवासियों के शरीर का रंग चमकीला श्यामल होता है, जो भौतिक जगत् के सफेद तथा काले रंगों से अधिक मोहक और आकर्षक होता है। आध्यात्मिक होने के कारण उनके शरीरों की समता भौतिक जगत् की किसी चीज से नहीं की जा सकती। चमकीले बादल में बिजली चमकने से जो सौन्दर्य उत्पन्न होता है, वह उनकी सुन्दरता का एक संकेत मात्र देता है। सामान्यतया वैकुण्ठ के निवासी पीताम्बर धारण करते हैं। उनके शरीर सुकुमार तथा आकर्षक गठन

वाले होते हैं और उनकी आँखें कमल की पंखुड़ियों के समान होती हैं। भगवान् विष्णु के ही समान वैकुण्ठ के निवासी चतुर्भुज होते हैं, जिनमें वे शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं। उनके वक्षस्थल सुन्दर रूप से चौड़े होते हैं और ऐसे हारों से पूरी तरह सुसज्जित होते हैं, जो इस भौतिक जगत् में कभी दृष्टिगोचर नहीं होने वाले अमूल्य रत्नों से जटित देदीप्यमान हीरे जैसी धातु के बने होते हैं। वैकुण्ठ के निवासी सदा शक्तिशाली तथा तेजवान होते हैं। उनमें से कुछ के रंग लाल प्रवाल जैसी बिल्ली की आँखों तथा कमलपुष्पों के समान होते हैं और उनके कानों में मूल्यवान रत्नों से सजे कुंडल रहते हैं। वे सिर पर मालाओं के समान पुष्प मुकुट धारण करते हैं।

वैकुण्ठ में विमान होते हैं, किन्तु वे तेज आवाज नहीं करते। भौतिक विमान रंचमात्र भी सुरक्षित नहीं होते, वे कभी भी गिर सकते हैं और नष्ट हो सकते हैं, क्योंकि पदार्थ सभी तरह से अपूर्ण होता है। किन्तु वैकुण्ठ में विमान भी आध्यात्मिक होते हैं और वे दिव्य रूप से अत्यधिक तेजवान और दीप्त होते हैं। इन विमानों में न उद्योगपति, न राजनीतिज्ञ, न ही योजना-आयोग के सदस्य उड़ान भरते हैं, न ही ये सामान या डाक का परिवहन करते हैं, क्योंकि ये सब चीजें वहाँ अज्ञात हैं। ये विमान केवल आनन्द-उड़ानें भरने के लिए होते हैं और वैकुण्ठ के निवासी अपनी अप्सरातुल्य सुन्दर प्रेमिकाओं के साथ इनमें उड़ान भरते हैं। इसलिए वैकुण्ठ के नर-नारियों से युक्त ये विमान आध्यात्मिक आकाश की सुन्दरता की वृद्धि करते हैं। ये कितने सुन्दर लगते हैं, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती, किन्तु इनकी सुन्दरता की उपमा उन बादलों से दी जा सकती हैं, जो चाँदी-सी चमकीली बिजली की शाखाओं से युक्त रहते हैं। वैकुण्ठ-लोक का आध्यात्मिक आकाश सदा इसी तरह से अलंकृत रहता है।

भगवान् की अन्तरंगा शक्ति का पूर्ण ऐश्वर्य वैकुण्ठ में देखने को मिलता है, जहाँ लक्ष्मियाँ भगवान् के चरणकमलों की सेवा में सदैव लगी रहती हैं। ये लक्ष्मियाँ अपनी सखियों समेत सदैव

दिव्य आनन्द के उत्सवमय वातावरण का सृजन करती हैं। सदैव भगवान् की महिमाओं का गान करती हुईं, वे एक क्षण के लिए भी मौन नहीं रहतीं।

परव्योम में असंख्य वैकुण्ठ-लोक होते हैं और इनकी संख्या भौतिक आकाश में स्थित लोकों की तुलना में तिगुनी होती है। इस तरह बेचारा भौतिकतावादी ऐसे लोक में राजनैतिक समंजन बनाये रखने की चेष्टा करने में लगा हुआ है, जो ईश्वर की सृष्टि में बहुत तुच्छ है। इस पृथ्वी ग्रह की बात जाने दें, अपनी आकाश गंगाओं में बिखरे असंख्य ग्रहों समेत यह सारा ब्रह्माण्ड सरसों के एक बोरे में से सरसों के एक बीज के समान है। किन्तु बेचारा भौतिकतावादी यहाँ पर सुख से रहने की योजना बनाता है और अत्यन्त मूल्यवान मानव ऊर्जा को ऐसे कामों में नष्ट करता है, जिनका अन्त हताशा में होना निश्चित है। यदि वह अपना समय व्यापारिक तर्कवितर्क में न बिताकर सादगी से रहने और आध्यात्मिक चिन्तन में लगाता, तो वह अन्तहीन भौतिकतावादी अशान्ति से अपने आपको बचा सकता था।

यदि भौतिकतावादी व्यक्ति विकसित भौतिक सुविधाओं का भोग करना चाहे, तो वह अपने आपको ऐसे ग्रहों में ले जा सकता है, जहाँ वह इस पृथ्वी-ग्रह की अपेक्षा कहीं अधिक भौतिक आनन्द उठा सकता है। अतएव सबसे अच्छी योजना यही होगी कि वह इस शरीर को त्यागने के बाद परव्योम लौट जाने की तैयारी करे। किन्तु, यदि वह भौतिक सुविधाओं को भोगने के लिए उतारू ही है, तो वह योगशक्तियों का उपयोग करके अपने आपको भौतिक आकाश के अन्य ग्रहों में स्थानांतरित कर सकता है। इस कार्य के लिए अन्तरिक्ष-यात्रियों के खिलौने तुल्य यान उपयुक्त नहीं हैं, ये तो केवल बालसुलभ आमोद-प्रमोद जैसे ही हैं। अष्टांग योग विधि एक भौतिकतावादी कला है, जिसमें वायु को उदर से नाभि तक, नाभि से हृदय तक और हृदय से कंधे की अस्थि से होते हुए नेत्र-गोलकों तक, फिर वहाँ से मस्तिष्क और मस्तिष्क से इच्छित लोक को स्थानान्तरित

किया जाता है। भौतिकतावादी विज्ञानी वायु तथा प्रकाश के वेगों को ध्यान में रखता है, किन्तु उसे मन तथा बुद्धि के वेगों का पता नहीं है। हमें अपने मन के वेग का सीमित अनुभव है, क्योंकि हम क्षण-भर में अपने मन को लाखों मील दूर के स्थान पर ले जा सकते हैं। बुद्धि तो इससे भी सूक्ष्म है। बुद्धि से भी सूक्ष्म आत्मा है, जो मन तथा बुद्धि की तरह पदार्थ नहीं है, किन्तु प्रति-पदार्थ या चेतन होता है। आत्मा बुद्धि की अपेक्षा लाखों गुना सूक्ष्म तथा शक्तिशाली होता है। इस तरह हम एक ग्रह से दूसरे ग्रह की यात्रा करते समय आत्मा के वेग की केवल कल्पना ही कर सकते हैं। यह कहने की जरूरत नहीं है कि आत्मा अपनी खुद की शक्ति से यात्रा करता है, किसी प्रकार के भौतिक यान की सहायता से नहीं।

आहर-निद्रा-भय-मैथुन की पशु-सभ्यता ने आधुनिक मनुष्य को दिग्भ्रमित कर दिया है, जिससे वह यह नहीं समझ पाता कि आत्मा कितना शक्तिशाली है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, आत्मा दिव्य स्फुलिंग है, जो सूर्य, चन्द्रमा या बिजली से लाखों गुना शक्तिशाली एवं दीप्तियुक्त है। जब मनुष्य अपनी वास्तविक पहचान आत्मा के रूप में नहीं कर पाता, तो उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु श्री नित्यानन्द प्रभु के साथ मनुष्य को इसी प्रकार की पथभ्रष्ट करने वाली सभ्यता से बचाने के लिए प्रकट हुए।

श्रीमद्भागवत में यह भी बतलाया गया है कि योगी किस तरह ब्रह्माण्ड के समस्त लोकों में विचरण करते हैं। जब प्राण-शक्ति मस्तिष्क तक ऊपर ले जायी जाती है, तो सम्भावना यही रहती है कि यह शक्ति आँखों, नाक, कानों आदि से फूट निकले, क्योंकि ये स्थान प्राणशक्ति के सप्तम चक्र कहलाते हैं। किन्तु योगी चाहें तो वायु को रुद्ध करके इन छिद्रों को बन्द कर सकते हैं। तब योगी प्राणवायु को भौहों के बीच एकाग्र करता है। इस अवस्था में योगी उस ग्रह का चिन्तन कर सकता है, जिसमें वह शरीर छोड़ने के बाद प्रवेश करना चाहता है। तब वह यह निर्णय कर सकता है कि

वह दिव्य वैकुण्ठ में कृष्ण-धाम को जाना चाहता है, जहाँ से फिर इस जगत् में नहीं आना होगा या वह भौतिक ब्रह्माण्ड के उच्चतर लोकों में जाना चाहता है। एक सिद्ध योगी इन दो में से कुछ भी करने के लिए स्वतन्त्र रहता है।

वह सिद्ध योगी जिसने पूर्ण-चेतना में रहते हुए अपना शरीर त्यागने की विधि में सफलता प्राप्त कर ली है, उसके लिए एक लोक से दूसरे लोक तक की यात्रा करना उतना ही आसान है, जितना किसी आदमी के लिए सामान खरीदने के लिए किसी दुकान तक पैदल जाना। जैसाकि पहले बतलाया जा चुका है, भौतिक शरीर तो आत्मा का आवरण मात्र है। मन तथा बुद्धि भीतरी आवरण हैं तथा पृथ्वी, जल, वायु आदि से बना स्थूल शरीर आत्मा का बाहरी आवरण है। फलत: ऐसा उन्नत व्यक्ति जिसने योग-विधि से आत्म-साक्षात्कार कर लिया है, जो आत्मा तथा पदार्थ के सम्बन्ध को जानता है, वह आत्मा के स्थूल वस्त्र को इच्छानुसार भलीभाँति त्याग सकता है। भगवान् की कृपा से इसके लिए हमें पूरी छूट है। चूँकि भगवान् हम पर दयालु हैं, अतएव हम कहीं भी-परव्योम में अथवा भौतिक आकाश के किसी भी लोक में इच्छानुसार रह सकते हैं। किन्तु इस स्वतन्त्रता के दुरुपयोग से हम भौतिक जगत् में गिर जाते हैं और बद्ध जीवन के तीनों तापों को सहन करते हैं। आत्मा की अपनी इच्छा के कारण भौतिक जगत् में दु:खमय जीवन बिताने का सुन्दर चित्रण मिल्टन कृत "पैराडाइज लॉस्ट" (खोया हुआ स्वर्ग) पुस्तक में हुआ है। इसी प्रकार आत्मा अपनी पसन्द से "पैराडाइज" की पुन: प्राप्ति करके भगवद्धाम वापस जा सकता है।

मृत्यु के आपात समय में मनुष्य अपनी प्राण-शक्ति को दोनों भौहों के बीच स्थिर करके जहाँ भी जाना चाहे उसका निर्णय कर सकता है। यदि वह इस भौतिक जगत् से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहता, तो वह क्षण-भर से भी कम समय में वैकुण्ठ-लोक पहुँच सकता है, जहाँ उसे पूर्ण आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हो जाता है, जो वहाँ के आध्यात्मिक वातावरण के लिए सर्वथा उपयुक्त

होता है। उसे स्थूल और सूक्ष्म दोनो रूपों में इस भौतिक जगत् को छोड़ने की केवल इच्छा करनी होती है और फिर प्राण-शक्ति को सिर के ऊपरी भाग में चढ़ाकर सिर के छिद्र से, जिसे ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं, शरीर को छोड़ना होता है। योगाभ्यास में सिद्ध व्यक्ति के लिए यह सरल है।

निस्सन्देह, मनुष्य को स्वतंत्र इच्छा प्रदान की गई है, अत: उसे छूट है कि यदि वह भौतिक जगत् से मुक्त नहीं होना चाहता, तो वह ब्रह्मपद (ब्रह्मा के पद) का जीवन भोग सकता है और सिद्धलोक की यात्रा कर सकता है, जहाँ भौतिकता की दृष्टि से सिद्ध लोग रहते हैं, जिनमें गुरुत्वाकर्षण, स्थान तथा काल को नियन्त्रित करने की शक्ति रहती है। भौतिक ब्रह्माण्ड के इन उच्चतर लोकों में जाने के लिए मनुष्य को मन तथा बुद्धि (अर्थात् सूक्ष्म पदार्थ) को त्यागना नहीं पड़ता, उसे केवल स्थूल पदार्थ (स्थूल भौतिक शरीर) को त्यागना होता है।

प्रत्येक लोक का अपना विशेष वायुमण्डल होता है और यदि कोई भौतिक ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत किसी विशेष लोक की यात्रा करना चाहता है, तो उस व्यक्ति को उस लोक-विशेष के वायुमण्डल के अनुसार अपने शरीर को अनुकूल बनाना होता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति भारत से यूरोप जाना चाहता है, जहाँ की जलवायु पृथक् है, तो उसे उसी के अनुसार अपने वस्त्र बदलने पड़ते हैं। इसी तरह यदि कोई वैकुण्ठ-लोक जाना चाहता है, तो उसे अपने शरीर को पूरी तरह परिवर्तित करना होगा। किन्तु यदि वह उच्चतर भौतिक लोकों में जाना चाहता है, तो वह मन, बुद्धि तथा अहंकार के सूक्ष्म आवरण को धारण किये रह सकता है, किन्तु उसे पृथ्वी, जल, अग्नि इत्यादि से बने स्थूल वस्त्र (शरीर) को छोड़ना होता है।

जब मनुष्य दिव्य लोक को जाता है, तो उसे स्थूल तथा सूक्ष्म-दोनों शरीरों को बदलना पड़ता है, क्योंकि उसे परव्योम में आध्यात्मिक रूप में ही पहुँचना होता है। यदि व्यक्ति चाहे तो मृत्यु के समय वस्त्र का यह परिवर्तन इच्छानुसार स्वत: हो जाता है।

भगवद्गीता में पुष्टि की गई है कि शरीर का त्याग करते समय मनुष्य की जैसी इच्छा होती है, उसी के अनुसार वह अगला शरीर प्राप्त करता है। मन की इच्छा आत्मा को अनुकूल वातावरण में ले जाती है, जिस प्रकार वायु सुगन्ध को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती है। दुर्भाग्यवश जो योगी नहीं है, और निपट भौतिकतावादी हैं और जो जीवन-भर इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते हैं, वे मृत्यु के समय शारीरिक तथा मानसिक दशाओं की इस प्रकार की अव्यवस्था से घबरा जाते हैं। ऐसे निपट भोगी व्यक्ति इच्छाओं, भावों तथा व्यतीत किए हुए जीवन के अनुभव के आधार पर अपने हित के प्रतिकूल वस्तुओं की इच्छा करते हैं और इस तरह मूर्खतावश ऐसा नया शरीर ग्रहण करते हैं, जिससे उनके भौतिक कष्ट बने रहते हैं।

इसलिए मन तथा बुद्धि का विधिवत् प्रशिक्षण आवश्यक है, जिससे मनुष्य मृत्यु के समय इस लोक में, या किसी अन्य भौतिक लोक में या वैकुण्ठ में उपयुक्त शरीर पाने की इच्छा कर सके। जो सभ्यता अविनाशी आत्मा की उत्तरोत्तर प्रगति पर विचार नहीं करती, वह अज्ञानमय पशु-जीवन को बढ़ावा देती है।

यह सोचना मूर्खता है कि मरने पर हर आत्मा एक ही स्थान पर जाता है। या तो मृत्यु के समय जिस स्थान की इच्छा की जाती है, आत्मा वहाँ जाता है। या शरीर त्यागने के बाद विगत जीवन के कर्मों के अनुसार उसे शरीर धारण करने के लिए बाध्य किया जाता है। एक भौतिकतावादी तथा योगी में अन्तर इतना ही है कि भौतिकतावादी अपने अगले शरीर का निर्धारण नहीं कर सकता, जबकि योगी इच्छानुसार उच्च लोकों में भोग करने के लिए उपयुक्त शरीर प्राप्त कर सकता है। निपट भौतिकतावादी व्यक्ति जीवन भर इन्द्रियतृप्ति में लगा रहता है-वह अपने परिवार के उदर-पोषण के लिए सारा दिन कमाता है और रात में या तो वह सम्भोग में अपनी शक्ति का क्षय करता है या फिर दिन-भर के कामकाज के बारे में सोचता हुआ सो जाता है। एक भौतिकतावादी का यही नीरस

जीवन है। यद्यपि ऐसे लोग व्यापारी, वकील, राजनीतिज्ञ, प्रोफेसर, न्यायाधीश, कुली, जेबकतरे, मजदूर आदि नामों से जाने जाते हैं, किन्तु ये सारे ही भौतिकतावादी खाने, सोने, भयभीत रहने और इन्द्रियतृप्ति करने में लगे रहते हैं और इस तरह भोग में लगे रहने और आत्म-साक्षात्कार द्वारा अपने जीवन को पूर्ण बनाने की परवाह न करने के कारण अपने मूल्यवान जीवन को नष्ट कर देते हैं।

किन्तु योगी अपने जीवन को पूर्ण बनाने का प्रयास करते हैं; इसीलिए भगवद्गीता का आदेश है कि हर व्यक्ति योगी बने। योग आत्मा को भगवान् की सेवा में जोड़ने की एक प्रणाली है। ऐसे योग का अभ्यास केवल श्रेष्ठ मार्गदर्शक के निरीक्षण में ही सम्भव है। इसमें अपनी सामाजिक स्थिति बदलने के आवश्यकता नहीं होती। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, योगी बिना किसी यान्त्रिक सहायता के, इच्छानुसार कहीं भी जा सकता है, क्योंकि योगी अपने मन तथा बुद्धि को शरीर के भीतर प्रवाहित होने वाली वायु में स्थापित कर सकता है और श्वास को नियंत्रित करके उस वायु को शरीर के बाहर सारे ब्रह्माण्ड में प्रवाहित वायु से मिला सकता है। इस ब्रह्माण्ड-वायु की सहायता से योगी किसी भी ग्रह की यात्रा कर सकता है और उसके वातावरण के अनुसार शरीर प्राप्त कर सकता है। इस विधि को समझने के लिए इसकी तुलना हम रेडियो-सन्देशों के इलेक्ट्रानिक प्रसारण से कर सकते हैं। रेडियो ट्रान्समीटर की सहायता से किसी एक स्टेशन पर उत्पन्न हुई ध्वनि तरंगें सारी पृथ्वी पर कुछ ही क्षणों में यात्रा कर सकती हैं। लेकिन ध्वनि तो आकाश से उत्पन्न होती है, और जैसा पहले बताया जा चुका है, मन आकाश से भी सूक्ष्म है और बुद्धि मन से भी सूक्ष्म होती है। आत्मा बुद्धि से भी सूक्ष्म है और स्वभाव से ही यह पदार्थ से पूर्णतः भिन्न है। इस प्रकार हम कल्पना कर सकते हैं कि आत्मा कितनी तेजी से पूरे ब्रह्माण्ड में यात्रा कर सकता है।

मन, बुद्धि तथा आत्मा को नियन्त्रित करने की अवस्था तक पहुँचने के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण, उपयुक्त जीवन-शैली तथा उपयुक्त संग की आवश्यकता होती है। ऐसा प्रशिक्षण निश्छल

प्रार्थना, भक्ति, योग-सिद्धि में सफलता एवं आत्मा तथा परमात्मा के कार्यकलापों में तादात्म्य पर आश्रित है। कोई निपट भौतिकतावादी चाहे वह अनुभववादी दार्शनिक हो, वैज्ञानिक हो, मनोवैज्ञानिक या कुछ भी हो, वह कुण्ठित प्रयासों तथा वाग्जाल के माध्यम से ऐसी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

जो भौतिकतावादी लोग यज्ञ करते हैं, वे उन निपट भौतिकतावादियों से अच्छे हैं, जो प्रयोगशालाओं और परीक्षण-नलियों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानते। यज्ञ करने वाले ऐसे उन्नत भौतिकतावादी वैश्वानर नामक ग्रह पर पहुँच सकते हैं, जो सूर्य जैसा अग्निमय ग्रह है। यह ग्रह ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च ग्रह ब्रह्मलोक के रास्ते में पड़ता है और इस ग्रह पर ऐसा उन्नत भौतिकतावादी अपने सारे पापों तथा उनके प्रभावों से अपने आपको मुक्त कर सकता है। जब ऐसा भौतिकतावादी शुद्ध हो जाता है, तो वह ध्रुवलोक के परिक्रमा पथ तक पहुँच सकता है। इस परिक्रमा पथ को शिशुमार चक्र कहते हैं। इसी में ब्रह्माण्ड के आदित्य लोक तथा वैकुण्ठ-लोक स्थित हैं।

ऐसा शुद्ध भौतिकतावादी, जिसने अनेक यज्ञ किये हैं, घोर तपस्या की है और अपना अधिकांश धन दान में दे दिया है, वही ध्रुवलोक जैसे लोकों को जा सकता है। यदि वहाँ पर वह और अधिक योग्य बन जाता है, तो वह और ऊँचे परिक्रमा पथों को बेधकर ब्रह्माण्ड की नाभि से ऊपर उठकर महर्लोक पहुँच सकता है, जहाँ भृगु मुनि जैसे मुनियों का वास है। महर्लोक में इस ब्रह्माण्ड के आंशिक प्रलय-काल तक रहा जा सकता है। यह प्रलय तब प्रारम्भ होता है, जब इस ब्रह्माण्ड के सबसे निम्न भाग से अनन्तदेव धधकती अग्नि उत्पन्न करते हैं। इस अग्नि की ऊष्मा महर्लोक तक पहुँच जाती है। तब महर्लोक के निवासी ब्रह्मलोक पहुँच जाते हैं, जिसका अस्तित्व परार्ध काल की दुगुनी अवधि तक रहता है।

ब्रह्मलोक में असंख्य विमान हैं, जो यन्त्रों से नहीं, अपितु मन्त्रों से चलते हैं। ब्रह्मलोक में मन तथा बुद्धि की उपस्थिति के कारण इसके निवासियों को सुख तथा दु:ख की अनुभूति होती है, लेकिन वृद्धावस्था, मृत्यु, भय या दु:ख के लिए शोक करने का कोई कारण नहीं होता। किन्तु वे प्रलय की अग्नि में जलते दु:खी जीवों के प्रति करुणा-भाव का अनुभव करते हैं। ब्रह्मलोक के निवासियों के पास स्थूल भौतिक शरीर नहीं होते, जिन्हें मृत्यु आने पर बदलना पड़े, किन्तु वे अपने सूक्ष्म शरीरों को आध्यात्मिक शरीरों में परिणत करते हैं और परव्योम में प्रवेश करते हैं। ब्रह्मलोक के निवासी तीन प्रकार से पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं। अपने पुण्यकर्मों के बल पर ब्रह्मलोक पहुँचने वाले पुण्यात्मा ब्रह्मा के पुनर्जीवन के बाद विभिन्न ग्रहों के स्वामी बनते हैं। गर्भोदकशायी विष्णु की पूजा करने वाले लोग ब्रह्मा के साथ मुक्ति-लाभ करते हैं और भगवान् के शुद्ध भक्त तुरन्त ही ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर परव्योम में प्रवेश करते हैं।

असंख्य ब्रह्माण्ड बुलबुलों के समूह के समान एकसाथ विद्यमान हैं, अतएव उनमें से कुछ ही कारण सागर के जल से घिरे हुए हैं। कारणोदकशायी विष्णु के दृष्टिपात से आंदोलित होकर भौतिक प्रकृति सारे के सारे आठ तत्त्वों को उत्पन्न करती है, जो धीरे धीरे सूक्ष्म से स्थूल में विकसित होते जाते हैं। अहंकार का एक अंश आकाश है, इसका एक अंश वायु है, वायु का एक अंश अग्नि है, अग्नि का एक अंश जल है और जल का एक अंश पृथ्वी है। इस प्रकार एक ब्रह्माण्ड फूल कर 4 अरब मील व्यास का हो जाता है। जो योगी क्रमिक मुक्ति चाहता है, उसे ब्रह्माण्ड के सारे विभिन्न आवरणों को भेदना पड़ता है, जिसमें भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के सूक्ष्म आवरण भी सम्मिलित हैं। जो ऐसा कर लेता है, उसे फिर कभी इस मर्त्य लोक में आना नहीं पड़ता।

शुकदेव गोस्वामी के अनुसार भौतिक तथा आध्यात्मिक आकाशों का यह विवरण न तो काल्पनिक है, न आदर्शवादी। वैदिक स्तोत्रों में वास्तविक तथ्य अंकित किये जाते हैं और जब ब्रह्मा

ने भगवान् वासुदेव को प्रसन्न कर लिया था, तब उन्होंने ये तथ्य ब्रह्मा को बतलाए थे। किसी को जीवन की पूर्णता तभी मिल सकती है, जब उसे वैकुण्ठ तथा भगवान् का निश्चित ज्ञान हो। मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का चिन्तन एवं वर्णन करे, क्योंकि भगवद्गीता तथा भागवत पुराण दोनों में इसकी संस्तुति की गई है और ये दोनों ग्रंथ वेदों के प्रामाणिक भाष्य हैं। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन सभी विषयों को इस युग के पतितात्माओं द्वारा अपनाने हेतु सुलभ बनाया है और श्रीचैतन्य-चरितामृत में उन्हें इसीलिए प्रस्तुत किया गया है, जिससे सम्बन्धित सभी लोग उन्हें सरलता से समझ सकें।

मथुरा-द्वारकाय निज-रूप प्रकाशिया ।

नाना-रूपे विलसये चतुर्व्यह हैञा ॥23॥

मथुरा-मथुरा में; द्वारकाय-द्वारका में; निज-रूप-निजी रूप; प्रकाशिया-प्रकट करते हुए; नाना-रूपे-नाना प्रकार से; विलसये-लीलाओं का आनन्द लेते हैं; चतुः-व्यूह हैञा-चतुर्व्युह रूपों में विस्तार करके।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण अपने निजी रूप को मथुरा तथा द्वारका में प्रकाशित करते हैं। वे चतुर्व्यह रूपों में अपना विस्तार करके नाना प्रकार से लीलाओं का आनन्द लेते हैं।

वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्ध ।

सर्व-चतुर्व्यह-अंशी, तुरीय, विशुद्ध ॥ 24॥

वासुदेव-भगवान् वासुदेव; सङ्कर्षण-भगवान् संकर्षण; प्रद्युम्न-भगवान् प्रद्युम्न; अनिरुद्ध-तथा भगवान् अनिरूद्ध; सर्व-चतुः-व्यूह–सभी चतुर्व्यह विस्तारों के; अंशी-स्रोत; तुरीय-दिव्य; विशुद्ध-विशुद्ध।

अनुवाद

वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध-ये चार मूल चतुर्व्यह रूप हैं, जिनसे अन्य सारे चतुर्व्यह रूप प्रकट होते हैं। वे सभी शुद्ध रूप से दिव्य हैं।

एइ तिन लोके कृष्ण केवल-लीला-मय ।

निज-गण लञा खेले अनन्त समय ॥25॥

एइ-ये; तिन-तीन; लोके–स्थानों में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; केवल–केवल; लीला-मय-लीला से पूर्ण; निज-गण लञा-अपने निजी पार्षदों सहित; खेले-वे खेलते हैं; अनन्त समय-असीम समय तक।

अनुवाद

केवल इन्हीं तीन स्थानों में (द्वारका, मथुरा तथा गोकुल में) लीलामय भगवान् कृष्ण अपने निजी संगियों के साथ अनन्त लीलाएँ करते हैं।

पर-व्योम-मध्ये करि' स्वरूप प्रकाश ।

नारायण-रूपे करेन विविध विलास ॥26॥

पर-व्योम-मध्ये-आध्यात्मिक आकाश के बीच; करि'-करके; स्वरूप प्रकाश-अपनी पहचान प्रकट करके; नारायण-रूपे-भगवान् नारायण के रूप में; करेन-करते हैं; विविध विलास-विविध लीलाएँ।

अनुवाद

परव्योम के वैकुण्ठ-लोकों में भगवान् नारायण रूप में प्रकट होते हैं और नाना प्रकार से लीलाएँ करते हैं।

स्वरूप-विग्रह कृष्णेर केवल द्वि-भुज ।

नारायण-रूपे सेइ तनु चतुर्भुज ॥27॥

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म, महैश्वर्य-मय ।

श्री-भू-नीला-शक्ति याँर चरण सेवय ॥28॥

स्वरूप-विग्रह-स्वरूप विग्रह; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; केवल–केवल; द्वि-भुज-द्विभुज; नारायण-रूपे-भगवान् नारायण के रूप में; सेइ-वह; तनु-शरीर; चतुः-भुज-चतुर्भुज; शङ्ख-चक्र-शंख तथा चक्र, गदागदा; पद्म-कमल पुष्प; महा-महान्; ऐश्वर्य-मय-ऐश्वर्य से पूर्ण; श्री–श्री नामक; भू-भू नामक; नीला-नील नामक; शक्ति-शक्तियाँ; याँर–जिनकी; चरण सेवय-चरणकमलों की सेवा करती हैं।

अनुवाद

कृष्ण के निजी रूप में केवल दो भुजाएँ होती हैं, किन्तु उनके नारायण रूप में चार भुजाएँ रहती हैं। भगवान् नारायण शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं और वे परम ऐश्वर्यमय हैं। श्री, भू तथा नीला नामक शक्तियाँ उनके चरणकमलों की सेवा करती हैं।

तात्पर्य

वैष्णवधर्म के रामानुज तथा मध्व सम्प्रदायों में श्री, भू तथा नीला शक्तियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। बंगाल में नीला शक्ति को कभी-कभी लीला-शक्ति कहा जाता है। ये तीनों शक्तियाँ वैकुण्ठ में चतुर्भुज नारायण की सेवा में लगी रहती हैं। श्री सम्प्रदाय के प्रपन्नामृत ग्रंथ में तीन आलवारों की कथा है, जिसमें बतलाया गया है कि भूत योगी, सर योगी तथा भ्रान्त योगी-इन तीन आलवारों ने किस तरह गेहली नामक गाँव में साक्षात् चतुर्भुज नारायण का दर्शन किया। इस ग्रन्थ में नारायण का वर्णन इस प्रकार मिलता है :

ताक्ष्यधिरूढं तडिदम्बुदानं

लक्ष्मीधरं वक्षसि पङ्कजाक्षम् ।

हस्तद्वयेशोभितशङ्खचक्रं

विष्णु ददृशुर्भगवन्तमाद्यम् ॥

आजानुबाहुं कमनीयगात्रं

पार्श्वद्वये शोभितभूमिनीलम् ।

पीताम्बरं भूषणभूषिताङ्गं

चतुर्भुजं चन्दनरुषिताङ्गम् ॥

“उन्होंने गरुड़ पर आसीन कमलनेत्र भगवान् विष्णु को लक्ष्मी को अपने वक्षस्थल पर लगाये देखा। वे बिजली की चमक से युक्त नीले बादल के समान थे और वे अपनी चार भुजाओं में से दो में शंख तथा चक्र धारण किये हुए थे। उनकी भुजाएँ घुटने के नीचे तक थीं और उनके सभी सुन्दर अंग चन्दन से लेपित थे तथा चमकते आभूषणों से अलंकृत थे। वे पीताम्बर धारण किये हुए थे और उनके पीछे दोनों ओर भूमि तथा नीला नामक उनकी शक्तियाँ खड़ी थीं।”

सीतोपनिषद् में श्री, भू तथा नीला नामक शक्तियों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है- महालक्ष्मीर्देवेशस्य भिन्नाभिन्नरूपा चेतनाचेतनात्मिका। सा देवी त्रिविधा भवति-शक्त्यात्मना इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिः साक्षाच्छक्तिरिति। इच्छाशक्तिस्त्रिविधा भवति, श्री-भूमि-नीलात्मिका। “भगवान् की सर्वोपरि शक्ति महालक्ष्मी विविध प्रकारों से अनुभव की जाती हैं। वे भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों में विभाजित हैं और दोनों ही रूपों में वे इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति तथा अन्तरंगा शक्ति के रूप में कार्य करती हैं। इच्छाशक्ति पुनः तीन में विभाजित है। ये हैं-श्री, भू तथा नीला।”

भगवद्गीता (4.6) के अपने भाष्य में मध्वाचार्य ने शास्त्रों का प्रमाण देते हुए बतलाया है कि माता भौतिक प्रकृति, जिसका विचार मायाशक्ति दुर्गा के रूप में किया जाता है, तीन विभागों में विभाजित है- श्री, भू तथा नीला। वह उन लोगों के लिए भ्रामक शक्ति माया है, जो आध्यात्मिक शक्ति में कमजोर हैं, क्योंकि ऐसी शक्तियाँ भगवान् विष्णु द्वारा उत्पन्न शक्तियाँ हैं। यद्यपि प्रत्येक शक्ति का असीम से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु वे भगवान् के आश्रित हैं, क्योंकि भगवान् सभी शक्तियों के स्वामी हैं।

अपने भगवत् सन्दर्भ ग्रन्थ (श्लोक 23) में श्रील जीव गोस्वामी प्रभु कहते हैं, "पद्मपुराण भगवान् के नित्य मंगल धाम का उल्लेख करता है, जो समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण है, जिनमें श्री, भू तथा नीला शक्तियाँ भी सम्मिलित हैं। महा-संहिता जिसमें भगवान् के दिव्य नाम तथा रूप की व्याख्या की गई है, उसमें भी जीवों के प्रसंग में दुर्गा का परमात्मा की शक्ति के रूप में उल्लेख है। अन्तरंगा शक्ति का सम्बन्ध उनके निजी कार्यों से है और भौतिक शक्ति तीन गुणों को प्रकट करती है।" वे अन्य प्रामाणिक शास्त्रों का प्रमाण देते हुए बतलाते हैं कि श्री भगवान् की वह शक्ति है, जो ब्रह्माण्ड का पालन करती है, भू ब्रह्माण्ड की सर्जक शक्ति है और नीला या दुर्गा सृष्टि का संहार करने वाली शक्ति है। ये सारी शक्तियाँ जीवों पर लागू होती हैं और ये मिलकर जीव-माया कहलाती हैं।

यद्यपि केवल ताँर क्रीड़ा-मात्र धर्म ।

तथापि जीवेरे कृपाय करे एक कर्म ॥29॥

यद्यपि-यद्यपि; केवल–केवल; ताँर-उनकी; क्रीड़ा-मात्र-लीला मात्र; धर्म-लक्षण; तथापि–तथापि; जीवेरे-पतित आत्माओं को; कृपाय-अहैतुकी कृपा से; करे-करते हैं; एक-एक; कर्म-कार्य।

अनुवाद

यद्यपि उनकी लीलाएँ उनके एकमात्र विशेष कार्य हैं, किन्तु वे अपनी अहैतुकी कृपा से पतितात्माओं के लिए एक कार्य करते हैं।

सालोक्य-सामीप्य-सार्टि-सारूप्य-प्रकार ।

चारि मुक्ति दिया करे जीवेर निस्तार ॥30॥

सालोक्य–सोलोक्य मुक्ति; सामीप्य-सामीप्य मुक्ति; सार्टि-सार्टि मुक्ति; सारूप्य-सारूप्य मुक्ति; प्रकार-प्रकार; चारि–चार; मुक्ति-मुक्ति; दिया-देना; करे-करते हैं; जीवेर-पतित आत्माओं का निस्तार-उद्धार।

अनुवाद

वे पतितात्माओं को चार प्रकार की मुक्ति-सालोक्य, सामीप्य, सार्टि तथा सारूप्य-प्रदान करके उनका उद्धार करते हैं।

तात्पर्य

मुक्तात्मा दो प्रकार के होते हैं-एक वे जो भगवान् की कृपा से मुक्त होते हैं और दूसरे वे जो अपने प्रयास से मुक्त होते हैं। जो व्यक्ति अपने प्रयासों से मुक्त होता है, वह निर्विशेषवादी कहलाता है और वह ब्रह्मज्योति में लीन हो जाता है। किन्तु वे भगवद्भक्त जो भक्ति द्वारा मुक्ति-लाभ करते हैं, उन्हें चार प्रकार की मुक्तियाँ प्रदान की जाती हैं। ये हैं सालोक्य (भगवान् के समान पद), सामीप्य भगवान् का निरन्तर सान्निध्य), सार्टि (भगवान् के ही समान ऐश्वर्य) तथा सारूप्य (भगवान् जैसा रूप)।

ब्रह्म-सायुज्य-मुक्तेर ताहा नाहि गति ।

वैकुण्ठ-बाहिरे हय ता'-सबार स्थिति ॥31॥

ब्रह्म-सायुज्य–परम ब्रह्म में लीन होना; मुक्तेर–मुक्ति का; ताहा-वहाँ (वैकुण्ठ में); नाहि-नहीं; गति-प्रवेश; वैकुण्ठ-बाहिरे-वैकुण्ठ लोकों के बाहर; हय-है; ता'-सबार स्थिति–उन सबका निवास।

अनुवाद

जिन्हें ब्रह्म-सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है, वे वैकुण्ठ-लोक में प्रविष्ट नहीं हो सकते। उनका निवास वैकुण्ठ-लोक के बाहर होता है।

वैकुण्ठ-बाहिरे एक ज्योतिर्मय मण्डल ।

कृष्णेर अङ्गेर प्रभा, परम उज्वल ॥ 32॥

वैकुण्ठ-बाहिरे-वैकुण्ठ लोकों के बाहर; एक-एक; ज्योतिः-मय मण्डल-ज्योतिमय मण्डल; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; अङ्गेर-शरीर की; प्रभा-किरणे; परम-परम; उज्वल-चमकीली, उज्वल।

अनुवाद

वैकुण्ठ-लोक के बाहर दीप्तियुक्त तेज का वायुमण्डल है, जो भगवान् कृष्ण के शरीर की परम उज्वल किरणों से बना होता है।

'सिद्ध-लोक' नाम तार प्रकृतिर पार ।

चित्स्वरूप, ताँहा नाहि चिच्छक्ति विकार ॥33॥

'सिद्ध-लोक'–सिद्ध लोक; नाम-नामक; तार-ज्योतिर्मय मण्डल का; प्रकृतिर पार–इस भौतिक प्रकृति से परे; चित्-स्वरूप-ज्ञान से भरपूर; ताँहा-वहाँ; नाहि-नहीं है; चित्-शक्ति-विकार-दिव्य शक्ति की विविधता।

अनुवाद

यह भाग सिद्धलोक कहलाता है और भौतिक प्रकृति के परे होता है। यह आध्यात्मिक होता है, किन्तु इसमें आध्यात्मिक विविधता नहीं रहती।

सूर्य-मण्डल येन बाहिरे निर्विशेष ।

भितरे सूर रथ-आदि सविशेष ॥ 34॥

सूर्य-मण्डल-सूर्य मण्डल; येन–की भाँति; बाहिरे-बाहर से; निर्विशेष-निर्विशेष, विविधताहीन; भितरे-भीतर; सूर्येर–सूर्यदेव के; रथ-आदि-रथ एवं अन्य वस्तुओं का ऐश्वर्य; स-विशेष-विविधता सहित।

अनुवाद

यह सूर्य के चारों ओर पाये जाने वाले समरूप तेज के समान है। किन्तु सूर्य के भीतर रथ, घोड़े तथा सूर्यदेव के अन्य ऐश्वर्य रहते हैं।

तात्पर्य

कृष्ण के धाम वैकुण्ठ के बाहर, जिसे परव्योम कहते हैं, कृष्ण की शारीरिक किरणों का प्रकाशमान तेज रहता है। यह ब्रह्मज्योति कहलाता है। उस तेज का दिव्य क्षेत्र सिद्धलोक या ब्रह्मलोक कहलाता है। जब निर्विशेषवादियों को मुक्ति-लाभ मिलता है, तो वे इसी ब्रह्मलोक के तेज में मिल जाते हैं। यह दिव्य क्षेत्र निस्सन्देह आध्यात्मिक है, किन्तु इसमें आध्यात्मिक कार्यकलापों या विविधता की अभिव्यक्ति नहीं होती। इसकी उपमा सूर्य की चमक से दी जाती है। सूर्य की चमक के भीतर सूर्य का गोला होता है, जिसमें सभी प्रकार की विविधता रहती है।

कामाद्वेषाद्भयात्स्नेहा यथा भक्त्येश्वरे मनः ।

आवेश्य तदधं हित्वा बहवस्तगतिं गताः ॥ 35 ॥

कामात्-वासना से प्रभावित; द्वेषात्-द्वेष से; भयात्-भय से; स्नेहात्-स्नेह से; यथा-जैसे; भक्त्या -भक्ति से; ईश्वरे-भगवान् में; मनः-मन; आवेश्य-पूर्णतः लगाकर; तत्व ह; अघम्-पापमय कर्म; हित्वा-त्यागकर; बहवः–बहुत से; तत्व ह; गतिम्-गन्तव्य स्थान; गताः-पहुँचकर।

अनुवाद

जिस तरह भगवान् की भक्ति से भगवद्धाम प्राप्त किया जा सकता है, उसी तरह कइयों ने अपने पापमय कर्मों को त्यागकर तथा काम, क्रोध, भय या स्नेह के द्वारा अपने मन को भगवान् में लगाकर उसी गति को प्राप्त किया है।"

तात्पर्य

जिस प्रकार शक्तिशाली सूर्य अपनी प्रखर किरणों से सभी प्रकार की गन्दगी को शुद्ध कर सकता है, उसी प्रकार पूर्ण दिव्यरूप भगवान् उस मनुष्य के सारे भौतिक गुणों को शुद्ध कर सकते हैं, जिसे वे आकृष्ट करते हैं। यहाँ तक कि यदि कोई व्यक्ति भगवान् के प्रति सांसारिक वासना से प्रभावित होकर भी आकृष्ट होता है, तो ऐसा आकर्षण भगवान् की कृपा से आध्यात्मिक प्रेम में परिणत हो जाता है। इसी तरह यदि कोई भय तथा शत्रुतावश भगवान् के प्रति आकृष्ट होता है, तो वह भी भगवान् के आध्यात्मिक आकर्षण द्वारा शुद्ध हो जाता है। यद्यपि ईश्वर महान् हैं और जीव तुच्छ है, फिर भी वे दोनों आध्यात्मिक व्यक्ति हैं। अतएव ज्योंही जीव की स्वतन्त्र इच्छा से पारस्परिक भाव विनिमय होने लगता है, त्योंही वे महान् दिव्य पुरुष उस क्षुद्र जीव को आकर्षित करते हैं और इस तरह उसे भव-बन्धन से छुड़ा लेते हैं। यह श्लोक श्रीमद्भागवत (7.1.30) से लिया गया है।

यदरीणां प्रियाणां च प्राप्यमेकमिवोदितम्।

तद्ब्रह्म-कृष्णयरैक्यात्किरणार्कोपमा-जुषोः ॥36॥

यत्-वह; अरीणाम्-भगवान् के शत्रुओं का; प्रियाणाम्-भक्तों का जो भगवान् को अत्यन्त प्रिय हैं; च–तथा; प्राप्यम्-गन्तव्य स्थान; एक-एक ही; इव-इस तरह; उदितम्–कहाँ; तत्-वह; ब्रह्म-निर्विशेष ब्रह्म का; कृष्णयोः-और भगवान् कृष्ण का; ऐक्यात्-एकत्व के कारण; किरण–सूर्यकिरणें, धूप; अर्क-और सूर्य; उपमा-उपमा, तुलना; जुषोः-से समझी जाती है।

अनुवाद

जहाँ यह कहा गया है कि भगवान् के शत्रु तथा भक्त एक ही गति प्राप्त करते हैं, वहाँ इसका आशय यह है कि ब्रह्म तथा भगवान् कृष्ण अन्ततः एक ही हैं। इसे सूर्य तथा सूर्य-प्रकाश के दृष्टान्त से समझा जा सकता है, जिसमें ब्रह्म सूर्य-प्रकाश के समान है और स्वयं कृष्ण सूर्य के समान हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृत-सिन्धु (1.2.278) से लिया गया है। इसके रचयिता श्रील रूप गोस्वामी ने इसी विषय की और अधिक व्याख्या लघु भागवतामृत (पूर्व 5.41) में की है। उसमें वे विष्णु पुराण (4.15.1) का उल्लेख करते हैं, जिसमें मैत्रेय मुनि ने जय तथा विजय के बारे में पराशर से यह पूछा कि हिरण्यकशिपु किस तरह अगले जन्म में रावण बना और देवताओं से अधिक भौतिक सुख भोग करता रहा, किन्तु उसने मुक्ति प्राप्त नहीं की, यद्यपि जब वह शिशुपाल के रूप में उत्पन्न हुआ और कृष्ण से कलह करने पर मारा गया, तो उसने मुक्ति प्राप्त की और वह कृष्ण के शरीर में लीन हो गया। इसका उत्तर पराशर ने यह दिया कि हिरण्यकशिपु भगवान् नृसिंहदेव को पहचान नहीं पाया कि वे भगवान् विष्णु थे। उसने सोचा कि नृसिंहदेव कोई सामान्य जीव हैं, जिसने अपने विविध पुण्यकर्मों से ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया है। रजोगुण के वशीभूत होकर उसने नृसिंहदेव

के स्वरूप को न जानते हुए उन्हें सामान्य जीव मान लिया था। फिर भी नृसिंहदेव के हाथों मारे जाने के कारण हिरण्यकशिपु अगले जीवन में रावण बना और असीम ऐश्वर्य का स्वामी बना। अपने असीम भौतिक भोग-विलास के कारण रावण राम को भगवान् के रूप में स्वीकार नहीं कर सका। इसीलिए राम के हाथों मारे जाने पर भी रावण ने सायुज्य प्राप्त नहीं किया अर्थात् भगवान् के शरीर में लीन होकर एकाकार नहीं हो सका। रावण के रूप में वह राम की पत्नी जानकी के प्रति अत्यधिक आकृष्ट था और इसी आकर्षण के कारण वह राम का दर्शन प्राप्त कर सका। किन्तु राम को विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार न करने के कारण रावण ने उन्हें एक सामान्य जीव समझा। इसीलिए जब वह राम के हाथों मारा गया, तो उसे शिशुपाल के रूप में जन्म लेने का अवसर मिला, जिसके पास इतना ऐश्वर्य था कि वह अपने आपको कृष्ण का प्रतियोगी मानने लगा था। यद्यपि शिशुपाल कृष्ण से सदैव द्वेष रखता था, किन्तु वह बारम्बार कृष्ण का नाम लेता रहता था और कृष्ण के सुन्दर स्वरूप का सदैव चिन्तन करता था। इस प्रकार कृष्ण का निरन्तर चिन्तन और नाम उच्चारण करते रहने से, प्रतिकूल भाव से ही सही, वह अपने पापमय कर्मों के कल्मष से शुद्ध हो गया। जब शिशुपाल अपने शत्रु कृष्ण के चक्र द्वारा मारा गया, तो कृष्ण के निरन्तर स्मरण करने के कारण उसके सारे पापफल धुल गये और वह कृष्ण के शरीर में लीन होकर मोक्ष का भागी बना।

इस घटना से यह समझना चाहिए कि जो व्यक्ति कृष्ण को अपना शत्रु मानता है और उनके हाथों मारा जाता है, वह भी मोक्ष प्राप्त करके कृष्ण से तदाकार हो सकता है। तो फिर उन भक्तों की तो बात ही क्या, जो कृष्ण को सदैव अनुकूल भाव से अपने स्वामी या मित्र मानते हैं? इन भक्तों को कृष्ण के शारीरिक तेज ब्रह्मलोक से भी अच्छा स्थान प्राप्त होना चाहिए। भक्तगण उस निर्विशेष ब्रह्मतेज में स्थित नहीं हो सकते, जिसमें निर्विशेषवादी तदाकार होना चाहते हैं। भक्तों को तो वैकुण्ठ-लोक या कृष्णलोक में स्थान दिया जाता है।

मैत्रेय मुनि तथा पराशर मुनि के बीच हुई यह वार्ता इस बात पर केन्द्रित थी कि क्या भक्तगण प्रत्येक युग में जय तथा विजय की भाँति इस भौतिक जगत् में आते रहते हैं, जिन्हें कुमारों ने ऐसा शाप दिया था। हिरण्यकशिपु, रावण तथा शिशुपाल के विषय में मैत्रेय को उपदेश देते समय पराशर ने यह नहीं कहा कि ये असुर पूर्वजन्म में जय तथा विजय थे। उन्होंने तीन जन्मों के माध्यम से देहान्तरण का वर्णन-मात्र किया। यह आवश्यक नहीं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वैकुण्ठ के पार्षद सभी कल्पों में, जब-जब भगवान् अवतार लें, उनके शत्रुओं की भूमिका निभाएँ। जय तथा विजय का पतन" एक विशेष कल्प में हुआ था। वे प्रत्येक कल्प में असुर की भूमिका निभाने के लिए नहीं आते। यह सोचना नितान्त गलत होगा कि प्रत्येक कल्प में भगवान् के कुछ पार्षद असुर बनने के लिए वैकुण्ठ से अध:पतित होते हैं।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में वे सारी प्रवृत्तियाँ होती हैं, जो जीव में पाई जाती हैं, क्योंकि वे प्रधान जीवन्त हस्ती हैं। इसीलिए यह स्वाभाविक है कि कभी-कभी भगवान् विष्णु युद्ध करना चाहते हैं। जिस प्रकार उनमें सृजन, भोग, सख्य, वत्सलता आदि की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं, उसी तरह उनमें युद्ध करने की भी प्रवृत्ति होती है। कभी-कभी बड़े बड़े जमींदार तथा राजा लोग पहलवानों को रखते हैं, जिनसे वे क्रीड़ा-युद्ध करते हैं; उसी तरह विष्णु भी अपने लिए ऐसी व्यवस्था करते हैं। जो असुर इस भौतिक जगत् में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से युद्ध करते हैं, वे कभी-कभी उनके पार्षद होते हैं। जब असुरों की कमी हो जाती है और भगवान् युद्ध करना चाहते हैं, तो वे वैकुंठ के अपने कुछ पार्षदों को उकसाकर यहाँ पर आने और असुर की भूमिका अदा करने के लिए प्रेरित करते हैं। जब यह कहा जाता है कि शिशुपाल कृष्ण के शरीर में समा गया, तो यह ध्यान रखना चाहिए कि इस किस्से में वह जय या विजय न था, अपितु वास्तविक असुर था।

श्रील सनातन गोस्वामी ने अपने बृहद्-भागवतामृत ग्रन्थ में बतलाया है। कि भगवान् के ब्रह्मतेज में एकाकार होकर मुक्ति प्राप्त करने को जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि नहीं माना जा सकता, क्योंकि कंस जैसे असुर, जो ब्राह्मणों तथा गौवों को मारने के लिए कुख्यात थे, उस मोक्ष को प्राप्त हुए। भक्तों के लिए ऐसा मोक्ष निन्दनीय है। भक्त वास्तव में दिव्य पद पर अवस्थित होते हैं, जबकि अभक्त नरक जाने के पात्र होते हैं। भक्त के जीवन में तथा असुर के जीवन में अन्तर होता है और उनकी अनुभूतियाँ उसी तरह पृथक् होती हैं, जिस तरह स्वर्ग और नरक के बीच अन्तर है।

असुर सदैव भक्तों से द्वेष रखते हैं और ब्राह्मणों तथा गायों का वध करते हैं। असुरों के लिए ब्रह्मतेज में तदाकार होना अत्यन्त महिमाशाली हो सकता है, किन्तु भक्तों के लिए यह नारकीय है। भक्त के जीवन का लक्ष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की प्रेमाभक्ति में पूर्णता प्राप्त करना है। जो लोग ब्रह्मतेज में समा जाने की आकांक्षा रखते हैं, वे भी असुरों की तरह निन्दनीय हैं। जो भक्तगण भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगे रहकर उनका सान्निध्य प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, वे बेहतर हैं।

तैछे पर-व्योमे नाना चिच्छक्ति-विलास ।

निर्विशेष ज्योतिर्बिम्ब बाहिरे प्रकाश ॥37॥

तैछे-उस तरह; पर-व्योमे-परव्योम में; नाना-विविधताएँ; चित्-शक्ति-विलास-आध्यात्मिक शक्ति की लीलाएँ; निर्विशेष-निर्विशेष; ज्योतिः-ज्योति का; बिम्ब-प्रतिबिम्ब; बाहिरे–बाह्य रूप से; प्रकाश-प्रकट होता हैं।

अनुवाद

इस तरह परव्योम में आध्यात्मिक शक्ति के अन्तर्गत अनेक प्रकार की लीलाएँ होती हैं। वैकुण्ठ-लोकों के बाहर प्रकाश का निर्विशेष प्रतिबिम्ब प्रकट होता है।

निर्विशेष-ब्रह्म सेइ केवल ज्योतिर्मय।

सायुज्येर अधिकारी ताँहा पाय लय ॥ 38॥

निर्विशेष-ब्रह्म-निर्विशेष ब्रह्मज्योति; सेइ-वह; केवल–केवल; ज्योतिः-मय-ज्योतिर्मय किरणे; सायुज्येर-सायुज्य मुक्ति(भगवान् से तदाकार होना); अधिकारी–जो इसके लिए योग्य है; ताँहा-वहाँ (निर्विशेष ब्रह्मज्योति में); पाय-पाता है; लय-लीन होना।

अनुवाद

उस निर्विशेष ब्रह्मतेज में केवल भगवान् की तेजोमय किरणें होती हैं। जो लोग सायुज्य मुक्ति के लिए उपयुक्त होते हैं, वे उस तेज में समा जाते हैं।

सिद्ध-लोकस्तु तमसः पारे यत्र वसन्ति हि।

सिद्धा ब्रह्म-सुखे मग्ना दैत्याश्च हरिणा हताः ॥39॥

सिद्ध-लोकः-सिद्धलोक अथवा निर्विशेष ब्रह्म; तु–किन्तु; तमसः–अन्धकार का; पारे–के अधिकार क्षेत्र से परे; यत्र-जहाँ; वसन्ति-बसते हैं; हि-निश्चय ही; सिद्धाः-आध्यात्मिक रूप से पूर्ण; ब्रह्म-सुखे-परम पूर्ण के साथ एवं होने का दिव्य सुख; मग्नाः-लीन; दैत्याः च–तथा असुरगण; हरिणा-भगवान् से; हताः–मारे गये।

अनुवाद

“तमो क्षेत्र (भौतिक ब्रह्माण्ड) के परे सिद्धलोक का क्षेत्र स्थित है। वहाँ पर सिद्धगण ब्रह्मानन्द में मग्न होकर निवास करते हैं। भगवान् के द्वारा मारे गये असुर भी उसी क्षेत्र को प्राप्त करते हैं।”

तात्पर्य

तमस् का अर्थ है अन्धकार। भौतिक जगत् अन्धकारमय है और भौतिक जगत् के परे प्रकाश है। दूसरे शब्दों में, सम्पूर्ण भौतिक आकाश को पार करके प्रकाशमान परव्योम में पहुँचा जाता है, जिसका निर्विशेष तेज सिद्धलोक कहलाता है। मायावादी दार्शनिक जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर में समा जाना चाहते हैं और कंस तथा शिशुपाल जैसे असुर व्यक्ति भी, जो कृष्ण के द्वारा मारे गये हैं, उसी ब्रह्मतेज में प्रवेश करते हैं। जो योगी पतञ्जलि की योग-पद्धति के अनुसार ध्यान द्वारा तादात्म्य प्राप्त करना चाहते हैं, वे भी उसी सिद्धलोक में पहुँचते हैं। यह श्लोक ब्रह्माण्ड पुराण से लिया गया है।

सेइ पर-व्योमे नारायणेर चारि पाशे ।

द्वारका-चतुर्व्यहेर द्वितीय प्रकाशे ॥40॥

सेइ-वह; पर-व्योमे-परव्योम में; नारायणेर-भगवान् नारायण की; चारि पाशे-चारों ओर; द्वारका-द्वारका; चतुर्-व्यूहेर–चार ओर का विस्तार; द्वितीय-दूसरा; प्रकाशे-प्राकट्य।

अनुवाद

उस परव्योम में नारायण के चारों ओर द्वारका के चतुर्व्यह के द्वितीय विस्तार रहते हैं।

तात्पर्य

परव्योम में कृष्ण-धाम स्थित द्वारका के चतुर्व्यह रूपों का दूसरा प्राकट्य विद्यमान है। ये सारे रूप आध्यात्मिक होते हैं और भौतिक गुणों से अप्रभावित रहने वाले होते हैं। इन रूपों में श्री बलदेव महासंकर्षण के रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं।

परव्योम के सारे कार्य शुद्ध आध्यात्मिक स्थिति में अन्तरंगा शक्ति के द्वारा प्रकट होते हैं। वे छ: दिव्य ऐश्वर्यों में विस्तार करते हैं और वे सभी समस्त जीवों के परम उद्गम तथा लक्ष्य महासंकर्षण की अभिव्यक्तियाँ हैं। आध्यात्मिक स्फुलिंग, जिन्हें जीव कहा जाता है, यद्यपि जीवशक्ति नामक तटस्था शक्ति से सम्बन्धित होते हैं, किन्तु वे भौतिक शक्ति के प्रभाव में रहते हैं। चूँकि ये स्फुलिंग भगवान् की अन्तरंगा तथा बहिरंगा दोनों ही शक्तियों से सम्बन्धित रहते हैं, अतएव ये तटस्था शक्ति से सम्बन्धित माने जाते हैं।

भगवान् का चतुर्युह, जो वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध नाम से विख्यात है, उस पर विचार करते हुए श्रीपाद शंकराचार्य की अध्यक्षता में मायावादियों ने वेदान्त-सूत्र की सूक्तियों की व्याख्या इस प्रकार की है, जो निर्विशेषवादी मत के अनुकूल हो। किन्तु वृन्दावन के छ: गोस्वामियों में प्रधान श्रील रूप गोस्वामी ने अपने लघु भागवतामृत में, जो कि वेदान्त-सूत्रों की सूक्तियों का स्वाभाविक भाष्य है, इन निर्विशेषवादियों को सटीक उत्तर दिया है।

श्रील रूप गोस्वामी ने लघु भागवतामृत में पद्म पुराण से प्रमाण दिया है। कि परव्योम में चार दिशाएँ हैं, जो पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण के अनुरूप हैं, जिनमें वासुदेव, संकर्षण, अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न स्थित हैं। ये ही रूप भौतिक आकाश में भी स्थित हैं। पद्म पुराण में परव्योम में वेदवतीपुर नामक स्थान का भी उल्लेख है, जहाँ वासुदेव निवास करते हैं। संकर्षण सत्यलोक से ऊपर आये हुए विष्णुलोक में निवास करते हैं। संकर्षण का अन्य नाम महासंकर्षण है। प्रद्युम्न द्वारकापुर में निवास करते हैं और अनिरुद्ध क्षीर-सागर स्थित श्वेतद्वीप में अनन्त शय्या के नाम से प्रसिद्ध नित्य शेष-शय्या पर शयन करते हैं।

वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्ध ।

‘द्वितीय चतुर्व्यह’ एइ–तुरीय, विशुद्ध ॥41॥

वासुदेव-वासुदेव; सङ्कर्षण-संकर्षण; प्रद्युम्न-प्रद्युम्न; अनिरुद्ध-अनिरुद्ध; द्वितीय चतुः-व्यूह-दूसरा चतुर्व्यह विस्तार; एई–यह; तुरीय-दिव्य; विशुद्ध-सभी भौतिक प्रदूषण से रहित।

अनुवाद

इस द्वितीय चतुर्व्यह में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध आते हैं। वे नितान्त दिव्य हैं।

तात्पर्य

श्रीपाद शंकराचार्य ने वेदान्त-सूत्र के द्वितीय अध्याय के द्वितीय खण्ड की 42वीं सूक्ति (उत्पत्त्यसम्भवात्) की व्याख्या में चतुर्व्यह की पथभ्रष्ट करने वाली विवेचना की है। श्रीचैतन्य-चरितामृत के 41 से 47 वें श्लोक तक में श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी परम सत्य के व्यक्तिगत साकार रूप के विषय में श्रीपाद शंकराचार्य के भ्रामक आक्षेपों का उत्तर देते हैं।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् या परम सत्य कोई भौतिक वस्तु जैसे नहीं हैं, जो प्रयोगात्मक ज्ञान या इन्द्रिय अनुभूति से जाने जा सकें। नारद पञ्चरात्र में स्वयं नारायण ने शिवजी से इस तथ्य की व्याख्या की है। किन्तु शिव के अवतार शंकराचार्य को अपने प्रभु नारायण के आदेश से अद्वैतवादियों को भ्रमित करना पड़ा, जो कि जीवन का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण मानते हैं। बद्ध अवस्था में सारे जीवों में चार मूल दोष रहते हैं, जिनमें से ठगने की प्रवृत्ति एक है। शंकराचार्य ने अद्वैतवादियों को इस ठगने की प्रवृत्ति के द्वारा अत्यधिक भ्रमित किया है।

वास्तव में वैदिक साहित्य में विवेचित चतुर्व्यह रूपों को बद्धजीव तर्कवितर्क द्वारा नहीं समझ सकता। अतएव चतुर्व्यहों को उसी रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए, जिस रूप में वे वर्णित हैं। वेदों का प्रमाण ऐसा है कि अपने सीमित अनुभव से किसी बात को न समझते हुए भी मनुष्य को चाहिए कि वह वैदिक आदेश को स्वीकार कर ले और अपने अधूरे ज्ञान के अनुरूप व्याख्याएँ न करे। किन्तु शंकराचार्य ने अपने शारीरक-भाष्य में अद्वैतवादियों के भ्रम को बढ़ाया ही है।

चतुर्व्यूहों का आध्यात्मिक अस्तित्व है, जिसे वासुदेव सत्त्व (शुद्ध सत्त्व) में ही अनुभव किया जा सकता है, जो वासुदेव के ज्ञान में पूर्ण निमग्नता से युक्त होता है। ये चतुर्व्यह रूप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के छः ऐश्वर्यों से पूर्ण रहते हैं और अन्तरंगा शक्ति के भोक्ता होते हैं। भगवान् को दरिद्र या शक्तिहीन अथवा दूसरे शब्दों में, क्लीव समझना मात्र धूर्तता है। यह धूर्तता बद्धजीव का व्यापार बन चुका है और इससे उसका मोह बढ़ता है। जो आध्यात्मिक जगत् और भौतिक जगत् के अन्तर को नहीं समझ सकता, वह दिव्य चतुर्व्यहों की स्थिति की परीक्षा करने या जानने का अधिकारी नहीं है। पूज्य श्रीपाद शंकराचार्य वेदान्त सूत्र के द्वितीय खण्ड, अध्याय दो, श्लोक 42-45 की टीका में आध्यात्मिक जगत् में इन चतुर्व्यूहों के अस्तित्व का निषेध करने का व्यर्थ प्रयास करते हैं।

श्री शंकराचार्य कहते हैं (सूत्र 42) कि भक्तगण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव अर्थात् श्रीकृष्ण को एक, भौतिक गुणों से मुक्त तथा आनन्द से पूर्ण दिव्य तथा शाश्वत शरीर वाले मानते हैं। वे उन भक्तों के चरम लक्ष्य हैं, जो यह विश्वास करते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् चार अन्य सनातन दिव्य रूपों-वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध-में अपना विस्तार करते हैं। मूल विस्तार वासुदेव से क्रमशः संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध विस्तारित होते हैं। वासुदेव का अन्य नाम परमात्मा है। संकर्षण का दूसरा नाम जीव है। प्रद्युम्न का अन्य नाम मन है और अनिरुद्ध का अन्य नाम अहंकार

है। इन विस्तारों में वासुदेव को भौतिक प्रकृति के स्रोत माना जाता है। अतएव शंकराचार्य का कहना है कि संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध मूल कारण की सृष्टियाँ हैं।

महात्माओं का कहना है कि नारायण जिन्हें परमात्मा कहते हैं, भौतिक प्रकृति से परे हैं और यह वैदिक साहित्य के कथनों के अनुसार है। मायावादी भी मानते हैं कि नारायण विविध रूपों में अपना विस्तार कर सकते हैं। शंकराचार्य कहते हैं कि वे भक्तों की समझ के उस अंश के विषय में तर्क नहीं करना चाहते, किन्तु वे इस विचार का विरोध करते हैं कि संकर्षण का जन्म वासुदेव से, प्रद्युम्न का संकर्षण से और अनिरुद्ध का प्रद्युम्न से होता है, क्योंकि यदि संकर्षण को वासुदेव के शरीर से उत्पन्न जीवों के प्रतिनिधि माना जाता है, तो सारे जीवों को अनित्य होना चाहिए। ऐसा माना जाता है कि भगवान् की दीर्घकालीन मन्दिर-पूजा, वैदिक साहित्य के अध्ययन तथा भगवान् को प्राप्त करने के लिए योग तथा पुण्यकार्य करके सारे जीव भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाते हैं। किन्तु यदि किसी समय सारे जीव भौतिक प्रकृति द्वारा उत्पन्न किये गये होते, तो वे अनित्य होते और उन्हें मुक्त होने तथा भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं हो सकता। यदि कारण का निषेध होता है, तो कार्य का भी निषेध हो जाता है। वेदान्त-सूत्र के द्वितीय खण्ड के द्वितीय अध्याय में आचार्य वेदव्यास ने भी इस विचार का खंडन किया है। कि जीव कभी उत्पन्न हुए थे (नात्मा श्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः)। चूँकि जीवों की सृष्टि नहीं होती है, अत: वे नित्य (शाश्वत) हैं।

शंकराचार्य कहते हैं (सूत्र 43) कि भक्तगण सोचते हैं कि इन्द्रियों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रद्युम्न का आविर्भाव संकर्षण से हुआ, जो जीवों का प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु हम यह कभी भी अनुभव नहीं कर सकते कि मनुष्य कभी इन्द्रियों को जन्म दे सकता है। भक्तगण यह भी कहते हैं कि अनिरुद्ध का आविर्भाव प्रद्युम्न से हुआ और अनिरुद्ध अहंकार का प्रतिनिधित्व करते

हैं। किन्तु शंकराचार्य का कहना है कि जब तक भक्तगण यह न दिखला सकें कि अहंकार तथा ज्ञान के साधन किस तरह किसी व्यक्ति से उत्पन्न हो सकते हैं, तब तक वेदान्त-सूत्र की ऐसी व्याख्या स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि अन्य दार्शनिक भी सूत्रों को इस प्रकार से स्वीकार नहीं करते।

शंकराचार्य यह भी कहते हैं (सूत्र 44) कि वे भक्तों के इस विचार को नहीं मानते कि संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध भगवान् के ही समान शक्तिशाली हैं और वे ज्ञान, सम्पत्ति, बल, यश, सौन्दर्य तथा त्याग नामक छः ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं तथा किसी निश्चित समय पर जन्म होने के दोष से मुक्त हैं। भले ही वे पूर्ण विस्तार हों, तो भी जन्म होने का दोष रहता है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध पृथक्-पृथक् व्यक्ति होने के कारण एक नहीं हो सकते। अतएव यदि इन्हें परम, पूर्ण तथा समान स्वीकार कर लिए जाते हैं, तो ईश्वर अनेक हो जायेंगे। किन्तु कई ईश्वर हैं, इसे स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सारे कार्यों के लिए एक सर्वशक्तिमान ईश्वर को स्वीकार करना पर्याप्त होगा। एक से अधिक ईश्वरों को मानना इस निष्कर्ष के विरुद्ध होगा कि भगवान् वासुदेव अद्वितीय हैं। यदि हम यह मान भी लें कि ईश्वर के चतुर्व्यूह समान हैं, तो भी हम अनित्यता के विरोधी दोष से बच नहीं सकते। जब तक हम यह न स्वीकार कर लें कि व्यक्तियों में कुछ न कुछ भेद होते हैं, तब तक इस विचार का कोई अर्थ नहीं होता कि संकर्षण वासुदेव के विस्तार हैं, प्रद्युम्न संकर्षण के विस्तार हैं और अनिरुद्ध प्रद्युम्न के विस्तार हैं। कार्य तथा कारण में कुछ अन्तर होना ही चाहिए। उदाहरणार्थ, बर्तन उस मिट्टी से भिन्न है, जिससे वह बना होता है और इस तरह हम यह निश्चय कर सकते हैं कि मिट्टी कारण है और बर्तन कार्य है। ऐसे अन्तरों के बिना कार्य-कारण का कोई प्रयोजन नहीं होता। साथ ही, पंचरात्र सिद्धान्त के अनुयायी वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध में ज्ञान तथा गुण के आधार पर कोई अन्तर स्वीकार नहीं करते। भक्तगण इन सारे विस्तारों को एक मानते हैं, किन्तु वे इन चतुर्व्यह विस्तारों तक ही एकत्व को क्यों सीमित रखते हैं? निश्चय ही, हमें ऐसा नहीं

करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र चींटी तक सारे जीव वासुदेव के विस्तार हैं, जैसाकि समस्त श्रुतियों तथा स्मृतियों ने स्वीकार किया है। शंकराचार्य यह भी कहते हैं (सूत्र 45) कि पंचरात्र का पालन करने वाले भक्तों का कहना है कि ईश्वर के गुण तथा गुणों के स्वामी स्वयं ईश्वर एक ही हैं। किन्तु भागवत मत वाले यह कैसे कहते हैं कि ज्ञान, सम्पत्ति, बल, यश, सौंदर्य और त्याग–ये छः ऐश्वर्य भगवान् वासुदेव से अभिन्न हैं? यह असम्भव है।

श्रील रूप गोस्वामी ने अपने लघु भागवतामृत (पूर्व 5.165-193) में चतुर्व्यह रूपों-वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध की भक्तों द्वारा की गई व्याख्या के सम्बन्ध में श्रीपाद शंकराचार्य द्वारा लगाये गये आरोपों का खण्डन किया है। रूप गोस्वामी कहते हैं कि नारायण के ये चारों विस्तार परव्योम में विद्यमान हैं और वहाँ वे महावस्थ के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनमें से वासुदेव की पूजा हृदय के भीतर ध्यान द्वारा की जाती है, क्योंकि वे हृदय के अधिष्ठाता देव हैं, जैसाकि श्रीमद्भागवत (4.3.23) में बतलाया गया है।

द्वितीय विस्तार संकर्षण तो लीलाओं के लिए वासुदेव के निजी स्वांश विस्तार हैं और चूँकि वे समस्त जीवों के आगार हैं, इसलिए वे कभी-कभी जीव कहलाते हैं। संकर्षण का सौन्दर्य प्रकाश की किरणों को बिखेरने वाले असंख्य पूर्णमासी के चन्द्रमाओं से भी अधिक है। वे अहंकार के तत्त्व रूप में पूजनीय हैं। उन्होंने अनन्तदेव को पालन की सारी शक्तियाँ प्रदान कर रखी हैं। सृष्टि के विलय हेतु वे अपने आपको रुद्र, अधर्म, अहि (सर्प), अन्तक (यमराज) तथा असुरों में परमात्मा के रूप में प्रकट करते हैं।

तृतीय विस्तार प्रद्युम्न हैं, जो संकर्षण से प्रकट होते हैं। जो लोग विशेष रूप से बुद्धिमान हैं, वे बुद्धि के तत्त्व के रूप में संकर्षण के इस प्रद्युम्न विस्तार की पूजा करते हैं। लक्ष्मीदेवी इलावृत वर्ष नामक स्थान में प्रद्युम्न के यश का सदैव गान करती हैं और अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करती

हैं। उनका रंग कभी सुनहला तो कभी आकाश में उमड़े नवीन वर्षाकाल के बादलों की तरह श्यामल रहता है। वे भौतिक जगत् की सृष्टि के स्रोत हैं और उन्होंने अपना सृजनात्मक तत्त्व कामदेव को प्रदान कर रखा है। उन्हीं के निर्देश से ही समस्त पुरुष तथा देवतागण और अन्य जीव पुनर्जनन के लिए आवश्यक शक्ति से कार्यरत रहते हैं।

चतुर्व्यह के चौथे विस्तार अनिरुद्ध की महान् सन्तों और मनोवैज्ञानिकों के द्वारा मन के तत्त्व के रूप में पूजा की जाती है। उनका रंग श्यामल मेघ की भाँति श्याम है। वे वैश्विक प्राकट्य के भरण-पोषण में लगे रहते हैं और वे धर्म, मनु तथा देवताओं के परमात्मा हैं। वैदिक शास्त्र मोक्ष-धर्म सूचित करता है। कि प्रद्युम्न पूरे मन के देवता हैं, जबकि अनिरुद्ध पूर्ण अहंकार के देवता हैं, किन्तु चतुर्व्यह रूपों के विषय में जितना भी इसके पूर्व कहा गया है, उसकी पुष्टि पञ्चरात्र तन्त्रों में पूर्णरूपेण होती है।

लघु भागवतामृत (पूर्व 5.86-100) में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों का बहुत ही स्पष्ट वर्णन हुआ है। शंकराचार्य के कथनों का खण्डन करते हुए महावराह पुराण कहता है:

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः ।

हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित् ॥

“भगवान् के समस्त विविध विस्तार दिव्य और शाश्वत हैं और वे सभी भौतिक सृष्टि के विभिन्न ब्रह्माण्डों में बारम्बार अवतरित होते रहते हैं। उनके शरीर सच्चिदानन्द रूप होने से अमर हैं, उनके क्षय होने की सम्भावना नहीं है, क्योंकि वे भौतिक जगत् की सृष्टियाँ नहीं हैं। उनके स्वरूप नितान्त आध्यात्मिक, समस्त आध्यात्मिक गुणों से सदैव युक्त एवं भौतिक कल्मष से रहित होते हैं।”

इन कथनों की पुष्टि करते हुए नारद पञ्चरात्र बल देकर कहता है :

मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युतः ।

रूपभेदमवाप्नोति ध्यान भेदात् तथाच्युतः ॥

“अच्युत भगवान् अपने शरीर को पूजा की विविध विधियों के अनुसार नाना प्रकार से अभिव्यक्त कर सकते हैं, जिस तरह वैदूर्य मणि अपने आपको नीले तथा पीले जैसे अनेक रंगों में प्रकट कर सकती है।” प्रत्येक अवतार अन्यों से पृथक् होता है। यह भगवान् की अचिन्त्य शक्ति से सम्भव है, जिसके द्वारा वे अपने आपको एक, विविध अंशों तथा इन अंशों के उद्गम के रूप में एकसाथ प्रदर्शित कर सकते हैं। उनकी अचिन्त्य शक्तियों के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।

कृष्ण अद्वितीय हैं, किन्तु वे विभिन्न शरीरों में प्रकट होते हैं, जैसाकि श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध में नारद ने कहा है :

चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक् ।

गृहेषु द्वयष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥

“यह सचमुच अद्भुत है कि एक कृष्ण 16,000 प्रासादों में 16,000 रानियों को पत्नीरूप में ग्रहण करने के लिए एकसाथ पृथक्-पृथक् कृष्ण बन गये हैं।” (भागवत 10.69.2) पद्मपुराण में यह भी कहा गया है :

स देवो बहुधा भूत्वा निर्गुणः पुरुषोत्तमः।

एकीभूय पुनः शेते निर्दोषो हरिरादिकृत् ॥

“वही आदि पुरुष भगवान् पुरुषोत्तम, जो सदैव समस्त भौतिक गुणों एवं भौतिक कल्मष से रहित हैं, अपने आपको विविध रूपों में प्रदर्शित कर सकते हैं और साथ ही एक रूप में शयन कर सकते हैं।”

श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध (10.40.7) में कहा गया है- यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्येकमूर्तिकम्-”हे प्रभु, यद्यपि आप अनेक रूपों में अपने आपको प्रकट करते हैं, किन्तु आप अद्वितीय हैं। अतएव शुद्ध भक्त एकाग्र चित्त से केवल आपकी ही पूजा करते हैं।” कूर्म पुराण में कहा गया है :

अस्थूलश्चानणुश्चैव स्थूलोऽणुश्चैव सर्वतः ।

अवर्णः सर्वतः प्रोक्तः श्यामो रक्तान्तलोचनः ॥

“भगवान् निराकार होकर भी साकार हैं, विराट् होकर भी परमाणुवत् हैं। वे वर्णरहित होकर भी श्यामल और रक्त-नेत्र वाले हैं।” भौतिक दृष्टि से यह परस्पर विरोधी प्रतीत हो सकता है, किन्तु यदि हम यह समझ लें कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्तियाँ अचिन्त्य हैं, तो हम उनसे सम्बन्धित इन तथ्यों को शाश्वत रूप से सम्भव स्वीकार कर सकते हैं। अपनी वर्तमान अवस्था में हम न तो आध्यात्मिक कार्यों को और न उनके घटनाक्रम को समझ सकते हैं और यद्यपि भौतिक सन्दर्भ में ये अचिन्त्य हैं, किन्तु हमें ऐसे विरोधी भावों को अस्वीकार नहीं करना चाहिए।

यद्यपि ऊपर से यह अचिन्त्य लगता है, किन्तु परमेश्वर के लिए ऐसे विरोधी तत्त्वों का निराकरण कर लेना सम्भव है। श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध (6.9.34-37) में इसकी स्थापना हुई है:

हे भगवान्, आपकी दिव्य लीलाएँ तथा विलास अचिन्त्य लगते हैं, क्योंकि वे भौतिक विचार के कार्य-कारण प्रभावों से सीमित नहीं हैं। आप शारीरिक कार्य किये बिना ही सब कुछ कर

सकते हैं। वेद बतलाते हैं कि परम सत्य की विविध शक्तियाँ हैं और उन्हें स्वयं कुछ नहीं करना पड़ता। हे प्रभु, आप भौतिक गुणों से सर्वथा रहित हैं। आप किसी की सहायता के बिना ही सारे गुणात्मक भौतिक विश्व का सृजन, पालन और संहार कर सकते हैं, किन्तु इन सारे कार्यों से आपमें कोई परिवर्तन नहीं आता। आप अपने कर्मफलों को स्वीकार नहीं करते, जैसाकि सामान्य असुर तथा देवता करते हैं। वे इस भौतिक जगत् में अपने कर्मफल का कष्ट या सुख भोगते हैं। आप अपने कर्मफलों से प्रभावित हुए बिना अपनी पूर्ण आध्यात्मिक शक्ति में नित्य अवस्थित रहते हैं। इसे हम ठीक से समझ नहीं पाते।

चूँकि आपके छ: ऐश्वर्य असीम हैं, अतएव आपके दिव्य गुणों की गणना कोई नहीं कर सकता। दार्शनिक तथा अन्य विचारवान पुरुष भौतिक जगत् की परस्पर विरोधी अभिव्यक्तियों तथा तर्कों के प्रस्तावों एवं निर्णयों से विचलित हो जाते हैं। वाग्जाल से मोहग्रस्त एवं शास्त्रों की विभिन्न गणनाओं से विचलित होने के कारण उनके सिद्धान्त आपका स्पर्श नहीं कर पाते, क्योंकि आप हर एक के शासक एवं नियन्ता हैं और आपकी महिमा कल्पना से परे है।

आपकी अचिन्त्य शक्ति आपको संसारी गुणों से विरक्त रखती है। आपका शुद्ध दिव्य ज्ञान भौतिक चिन्तन से अतीत होने के कारण आपको समस्त चिन्तन-विधियों से परे रखता है। आपकी अचिन्त्य शक्ति के कारण आपमें कुछ भी परस्पर विरोधी नहीं है।

“लोग कभी-कभी आपको साकार या निराकार मान सकते हैं, किन्तु आप एक हैं। जो लोग मोहग्रस्त या भ्रमित हैं, उन्हें रस्सी तरह तरह के सर्प की भाँति प्रतीत हो सकती है। जो लोग आपके विषय में अनिश्चित हैं, ऐसे मोहग्रस्त लोगों के लिए ही आपने उनकी अनिश्चित स्थितियों के अनुरूप विविध दार्शनिक विधियाँ बनाई हैं।”

हमें आध्यात्मिक तथा भौतिक कर्मों के अन्तर को सदैव स्मरण में रखना चाहिए। परमेश्वर पूर्ण आध्यात्मिक होने के कारण बाह्य सहायता के बिना कोई भी कार्य कर सकते हैं। भौतिक जगत् में यदि हम एक मिट्टी का घड़ा भी बनाना चाहें, तो हमें उसके लिए कच्ची सामग्री (उपादान), एक मशीन तथा एक मजदूर की आवश्यकता होगी। किन्तु हमें इस विचार को परमेश्वर के कार्यों पर आरोपित नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे बिना किसी वस्तु के, जो हमारी कल्पना में आवश्यक प्रतीत होती है, क्षण-भर में कोई भी वस्तु बना सकते हैं। जब भगवान् किसी विशेष उद्देश्य को पूरा करने के लिए अवतरित होते हैं, तो इससे यह इंगित नहीं होता कि वे बिना प्रकट हुए यह कार्य पूरा करने में असमर्थ हैं। वे इच्छा मात्र से कुछ भी कर सकते हैं, किन्तु अपनी अहैतुकी कृपा से वे अपने भक्तों पर आश्रित जान पड़ते हैं। वे यशोदा माता के पुत्र के रूप में इसलिए प्रकट नहीं होते कि वे उनके लालन-पालन पर आश्रित हैं, अपितु इसलिए कि वे अपनी अहैतुकी कृपा से ऐसी भूमिका स्वीकार करते हैं। जब वे अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए प्रकट होते हैं, तब वे स्वाभाविक रूप से उनके लिए कष्ट सहन करते हैं।

भगवद्गीता में कहा गया है कि हर जीव के प्रति समदर्शी होने के कारण भगवान् के न तो शत्रु हैं, न मित्र, किन्तु वे ऐसे भक्तों के प्रति विशेष रूप से वत्सल हैं, जो सदैव प्रेम से उनका स्मरण करते रहते हैं। इसीलिए तटस्थता और पक्षपात भगवान् के दिव्य गुणों में से हैं और ये गुण उनकी अचिन्त्य शक्ति के कारण ठीक से समंजित हो जाते हैं। भगवान् परब्रह्म हैं अर्थात् वे निर्विशेष ब्रह्म के स्रोत हैं, जो उनकी तटस्थता का सर्वव्यापी गुण है। किन्तु अपने साकार रूप में वे समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी होने के कारण अपने भक्तों का पक्ष लेकर पक्षपात का प्रदर्शन करते हैं। पक्षपात, तटस्थता तथा अन्य ऐसे सारे गुण ईश्वर में विद्यमान रहते हैं, अन्यथा सृष्टि में इनका अनुभव न हो पाता। चूँकि वे पूर्ण अस्तित्व हैं, अतएव निरपेक्ष परमेश्वर में सारी वस्तुएँ उचित ढंग से समंजित हैं। सापेक्ष जगत्

में ऐसे गुण विकृत रूप में प्रदर्शित होते हैं, इसीलिए हमें अद्वैतता विकृत प्रतिबिम्ब के रूप में अनुभव होती है। चूँकि आध्यात्मिक जगत् में घटनाओं के घटित होने की विधि को समझाने का कोई तर्कपूर्ण उपाय नहीं है, इसीलिए कभी-कभी भगवान् अनुभव की परिधि से परे बतलाये जाते हैं। किन्तु यदि हम एकमात्र भगवान् की अचिन्त्यता को स्वीकार कर लें, तो उनमें सारी वस्तुओं का सामंजस्य प्राप्त कर सकते हैं। अभक्त भगवान् की अचिन्त्य शक्ति को नहीं समझ सकते, इसीलिए उनके लिए यह कहा जाता है कि भगवान् उनकी चिन्तनीय-अभिव्यक्ति की परिधि से परे हैं। ब्रह्म-सूत्र के प्रणेता इस तथ्य को स्वीकार करते हैं और कहते हैं-श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सामान्य व्यक्ति के लिए अचिन्त्य हैं, इसलिए वे केवल वैदिक आदेशों के प्रमाण द्वारा ही समझे जा सकते हैं। स्कन्द पुराण में पुष्टि हुई है-अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्-"जो विषय सामान्य व्यक्तियों के लिए अचिन्त्य हैं, उनके विषय में तर्क नहीं करना चाहिए।" हमें भौतिक रत्नों तथा जड़ीबूटियों में भी अद्भुत गुण मिलते हैं। कभी-कभी उनके गुण सचमुच ही अचिन्त्य प्रतीत होते हैं। अतएव जब तक हम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में अचिन्त्य शक्तियों को स्वीकार नहीं कर लेते, तब तक उनकी श्रेष्ठता स्थापित नहीं की जा सकती। इन्हीं अचिन्त्य शक्तियों के कारण ही भगवान् की महिमा को समझना कठिन बतलाया गया है।

मानव-समाज में अज्ञानता तथा वाक्चातुरी अति सामान्य हैं, किन्तु इनसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों को समझने में कोई सहायता नहीं मिलती। ऐसे अज्ञान तथा वाक्चातुरी को मान्यता देने पर हम भगवान् के छः ऐश्वर्यों में उनकी पूर्णता को स्वीकार नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, भगवान् के छ: ऐश्वर्यों में से पूर्ण ज्ञान भी एक है। अतएव भगवान् में अज्ञान की कल्पना कैसे की जा सकती है? वैदिक उपदेश तथा विचारपूर्ण तर्क बतलाते हैं कि भगवान् द्वारा सृष्टि का पालन और उसी के साथ-साथ उसके पालन के प्रति उदासीनता भगवान् की अचिन्त्य

शक्तियों के कारण परस्पर-विरोधी नहीं हो सकते। जो व्यक्ति सर्प के विचार में सदैव डूबा रहता है, उसे रस्सी भी सदा सर्प जैसी लगती है। इसी प्रकार जो व्यक्ति भौतिक गुणों द्वारा मोहग्रस्त हुआ रहता है और परम सत्य विषयक ज्ञान से रहित होता है, उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उसके विभिन्न मोहग्रस्त निर्णयों के अनुसार प्रतीत होते हैं।

कोई तर्क कर सकता है कि यदि परम सत्य सर्वज्ञ (ब्रह्म) तथा पूर्ण छः ऐश्वर्यों से युक्त भगवान् हैं, तो अवश्य ही उनमें द्वैत का दोष आ जाता है। ऐसे तर्क का खण्डन करने के लिए स्वरूपद्वयम् ईक्ष्यते सूक्ति की घोषणा है कि ऊपर से भले ही ऐसा प्रतीत हो, किन्तु परम सत्य में द्वैत की सम्भावना नहीं है, क्योंकि विभिन्न अभिव्यक्तियों में वे एक ही हैं। किन्तु यह समझ लेने पर कि परम सत्य अपनी शक्तियों के प्रभाव द्वारा विविध लीलाएँ प्रदर्शित करते हैं, तुरन्त ही उनकी अचिन्त्य परस्पर विरोधी शक्तियों की ऊपरी असंगति हट जाती है। श्रीमद्भागवत (3.4.16) में भगवान् की अचिन्त्य शक्ति का निम्नलिखित वर्णन मिलता है :

कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते

दुर्गाश्रयोऽथारिभयात् पलायनम् ।

कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः

स्वात्मतेः खिद्यति धीर्विदामिह ॥

“यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी वे कर्म करते हैं। यद्यपि वे अजन्मा हैं, फिर भी वे जन्म लेते हैं, यद्यपि वे काल होने के कारण सबके लिए भयप्रद हैं, किन्तु अपने शत्रु के भय से वे मथुरा छोड़कर एक दुर्ग में शरण लेने भाग जाते हैं। यद्यपि वे आत्मनिर्भर हैं, फिर भी वे 16 हजार स्त्रियों से विवाह करते हैं। ये लीलाएँ अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति को भी भ्रमित

करने वाली एवं परस्पर-विरोधी लगती हैं।" यदि भगवान् के ये कार्यकलाप वास्तविक न होते, तो ऋषि-मुनि उनके द्वारा उलझन में क्यों पड़ते ? अतएव ऐसे कार्यकलापों को कभी भी काल्पनिक नहीं मानना चाहिए। जब भी भगवान् इच्छा करते हैं, उनकी अचिन्त्य शक्ति (योगमाया) ऐसी लीलाएँ उत्पन्न करने और उन्हें संपन्न करने में सहायक बनती है।

पञ्चरात्र-शास्त्र महान् आचार्यों द्वारा स्वीकृत मान्य वैदिक शास्त्र हैं। ये शास्त्र रजो तथा तमो गुणों की उपज नहीं हैं। इसीलिए विद्वान एवं ब्राह्मण इन्हें सात्वत संहिता कहते हैं। इन शास्त्रों के आदि वक्ता पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण हैं। इसका विशेष उल्लेख मोक्ष-धर्म (349.68) में हुआ है, जो महाभारत के शान्तिपर्व का अंश है। नारद तथा व्यास जैसे मुक्त ऋषि-मुनि जो बद्ध-जीव के चार दोषों से मुक्त हैं, इन शास्त्रों का प्रचार करने वाले हैं। श्री नारद मुनि पञ्चरात्र शास्त्र के मूल वक्ता हैं। श्रीमद्भागवत को भी सात्वत-संहिता माना जाता है। वस्तुत: श्री चैतन्य महाप्रभु ने घोषित किया है-श्रीमद्भागवतम् पुराणममलम्-"श्रीमद्भागवत निष्कलंक पुराण है। ऐसे ईर्ष्यालु सम्पादक तथा विद्वान, जो पञ्चरात्र शास्त्र के नियमों का खंडन करने के लिए उसे गलत ढंग से प्रस्तुत करते हैं, अत्यन्त निन्दनीय हैं। आधुनिक युग में, ऐसे ईर्ष्यालु विद्वानों ने कृष्ण द्वारा कही गई भगवद्गीता की भी भ्रामक टीकाएँ करके यह दिखाने का प्रयास किया है कि कृष्ण का अस्तित्व ही नहीं है। पञ्चरात्रिक विधि की मायावादियों ने किस तरह गलत व्याख्या की है, उसे

निम्नलिखित शब्दों में दिखलाया गया है :

(1) वेदान्त-सूत्र के 2.2.42 वें सूत्र की टीका करते हुए श्रीपाद शंकराचार्य ने यह दावा किया है कि संकर्षण एक सामान्य जीव हैं, किन्तु किसी भी वैदिक शास्त्र में इसका प्रमाण नहीं मिलता कि किसी भक्त ने कभी कहा हो कि संकर्षण एक सामान्य जीव हैं। वे विष्णु तत्त्व के अच्युत स्वांश विस्तार हैं और वे भौतिक प्रकृति की सृष्टि से परे हैं। वे जीवों के मूल उद्गम हैं। उपनिषदों की घोषणा

है-नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्-"वे समस्त जीवों में सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं। अतएव वे विभु-चैतन्य हैं अर्थात् महानतम हैं। वे इस जगत् एवं सूक्ष्म जीवों के प्रत्यक्ष कारणस्वरूप हैं। वे अनन्त जीव हैं, जबकि सामान्य जीव अत्यन्त क्षुद्र हैं। अतएव उन्हें कभी भी सामान्य जीव नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह प्रामाणिक शास्त्रों के विरुद्ध निष्कर्ष होगा। जीव भी जन्म-मरण की मर्यादा से परे हैं। यह वेदों का कथन है और जो शास्त्रों के आदेशों का पालन करते हैं तथा वास्तव में गुरु-शिष्य परम्परा से जुड़े हैं, वे इसे स्वीकार करते हैं।

(2) शंकराचार्य द्वारा वेदान्त-सूत्र के 2.2.43 वें सूत्र की जो टीका की गई है, उसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि समस्त विष्णु-तत्त्वों में, जो अनेक प्रकार से विस्तारित हैं, मूल विष्णु मूल संकर्षण हैं। मूल का अर्थ है। "आदि" । संकर्षण भी विष्णु ही हैं, किन्तु उनसे अन्य सारे विष्णुओं का विस्तार होता है। इसकी पुष्टि ब्रह्म-संहिता (5.46) से होती है, जिसमें कहा गया है कि जिस प्रकार एक दीपक से जलाया गया दूसरा दीपक मूल दीपक की तरह ही जलता है, उसी तरह जो विष्णु मूल संकर्षण से प्रकट होते हैं, वे आदि विष्णु जैसे ही होते हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह उन भगवान् गोविन्द की पूजा करे, जो इस प्रकार स्वयं का विस्तार करते हैं।

(3) चवालीसवें सूत्र पर शंकराचार्य की टीका के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि पञ्चरात्र के सिद्धान्तों पर चलने वाला कोई भी भक्त इस कथन को कभी भी स्वीकार नहीं करेगा कि विष्णु के सारे विस्तार भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व हैं, क्योंकि यह विचार पूर्णतया गलत है। यहाँ तक कि स्वयं श्रीपाद शंकराचार्य ने 42वें सूत्र की टीका करते हुए स्वीकार किया है कि भगवान् स्वत: विविध प्रकार से अपना विस्तार कर सकते हैं। अतएव 42वें और 44वें सूत्र की उनकी टीकाएँ परस्पर-विरोधी हैं। मायावादी टीकाओं का यही दोष है कि वे एक स्थान पर एक कथन और दूसरे स्थान पर दूसरा परस्पर-विरोधी कथन करते हैं और इसका उपयोग वे भागवत विचार का खंडन करने की

युक्ति के रूप में करते हैं। इस प्रकार मायावादी टीकाकार प्रामाणिक सिद्धान्तों का पालन भी नहीं करते। यह ध्यान देने की बात है कि भागवत सम्प्रदाय नारायण के चतुर्व्यह रूपों को स्वीकार करता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अनेक ईश्वरों को मानता है। भक्तगण भलीभाँति जानते हैं कि परम सत्य भगवान् अद्वितीय हैं। वे कभी भी बहु ईश्वर-आराधक नहीं होते, क्योंकि यह वेदों के आदेशों के विरुद्ध है। भक्तगण दृढ़ श्रद्धापूर्वक विश्वास करते हैं कि नारायण दिव्य हैं और वे विभिन्न दिव्य शक्तियों के अचिन्त्य स्वामी हैं। अतएव हमारा कहना है कि विद्वान लोग श्रील रूप गोस्वामी कृत लघु भागवतामृत को पढ़े, जिसमें इन विचारों की स्पष्ट व्याख्या की गई है। श्रीपाद शंकराचार्य ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध कार्य-कारण द्वारा विस्तार करते हैं। वे उनकी उपमा मिट्टी तथा मिट्टी के बने पात्रों से देते हैं। किन्तु यह पूर्णतया अज्ञान है, क्योंकि उनके विस्तारों में कार्य-कारण जैसी कोई वस्तु नहीं है (नान्यद् यत् सदसत्परम्)। कूर्म पुराण में भी पुष्टि हुई है-देहदेहिविभेदोऽयं नेश्वरे विद्यते क्वचित्–"भगवान् के शरीर और आत्मा में कोई अन्तर नहीं है। कारण-कार्य भौतिक हैं। उदाहरणार्थ, यह देखा जाता है कि पिता का शरीर पुत्र के शरीर का कारण है, किन्तु आत्मा न तो कारण है न कार्य है। आध्यात्मिक स्तर पर ऐसे कोई भेद नहीं रहते, जो हमें कार्य-कारण में देखने को मिलते हैं। चूँकि भगवान् के सभी रूप आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं, अतएव वे समान रूप से भौतिक प्रकृति के नियामक हैं। चतुर्थ आयाम में रहने के कारण वे दिव्य धरातल पर अधिष्ठाता स्वरूप हैं। उनके विस्तारों में रंचमात्र भौतिक कल्मष नहीं है, क्योंकि भौतिक नियम उन्हें प्रभावित नहीं कर सकते। भौतिक जगत् के बाहर इस तरह का कार्य-कारण का नियम नहीं पाया जाता। अतएव कार्य-कारण का ज्ञान पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पूर्ण, दिव्य विस्तारों तक नहीं पहुँच सकता। वैदिक साहित्य से यह सिद्ध होता है :

ॐ पूर्णम् अदः पूर्णम् इदं पूर्णात्पूर्णम् उदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णम् एवावशिष्यते ॥

“भगवान् पूर्ण हैं, वे पूर्णतया पूर्ण होने के कारण उनसे निकलने वाले सारे उद्भव, यथा यह घटनामय जगत् पूर्ण के रूप में सुसज्जित हैं। पूर्ण से जो कुछ उत्पन्न होता है, वह भी अपने आपमें पूर्ण होता है। चूँकि वे पूर्ण हैं, अतएव उनमें से अनेक इकाइयाँ उद्भूत होने पर भी वे पूरे के पूरे शेष रहते हैं।” (बृहदारण्यक उपनिषद् 5.1) यह स्पष्ट है कि अभक्त भगवान् विष्णु के बाह्य पहलू रूप सम्पूर्ण जगत् की समता माया के नियन्ता भगवान् या उनके चतुर्व्यह रूपों से करने के लिए भक्ति के सारे नियमों का उल्लंघन करते हैं। माया तथा आत्मा या माया तथा भगवान् की समता करना नास्तिकता का चिह्न है। यह विराट् सृष्टि जो ब्रह्मा से लेकर चींटी को प्रकट करती है, वह परमेश्वर का बाह्य लक्षण है। जैसाकि भगवद्गीता में पुष्टि की गई है (एकांशेन स्थितो जगत्), भौतिक जगत भगवान् की शक्ति का एक चतुर्थांश है। माया शक्ति की विराट् अभिव्यक्ति भौतिक प्रकृति है और इस भौतिक प्रकृति की हर वस्तु पदार्थ से बनी हुई है। अतएव भौतिक प्रकृति के विस्तारों की तुलना भगवान् के चतुर्व्यह विस्तारों से नहीं करनी चाहिए, किन्तु दुर्भाग्यवश मायावादी सम्प्रदाय वाले ऐसा ही करने का अनुचित प्रयास करते हैं।

(4) वेदान्त-सूत्र के पैंतालीसवें सूत्र (2.2.45) पर शंकराचार्य की टीका का उत्तर देने के लिए दिव्य गुणों एवं उनकी आध्यात्मिक प्रकृति का सार लघु भागवतामृत (पूर्व 5.208-214) में इस प्रकार दिया हुआ है, “कुछ लोग कहते हैं कि परम तत्त्व समस्त गुणों से शून्य होना चाहिए, क्योंकि गुणों का प्रदर्शन केवल पदार्थ में होता है। उनके अनुसार सारे गुण क्षणभंगुर मरीचिका की भाँति हैं। किन्तु यह स्वीकार्य नहीं है। चूँकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् परम पूर्ण हैं, अतएव उनके गुण उनसे अभिन्न हैं। उनका रूप, नाम, गुण तथा उनसे सम्बन्धित सब कुछ उन्हीं के समान आध्यात्मिक है। परम भगवान् का प्रत्येक गुणात्मक विस्तार उनसे अभिन्न है। चूँकि परम सत्य भगवान् समस्त

आनन्द के आगार हैं, अतएव उनसे उद्भूत सारे दिव्य गुण भी आनन्द के आगार हैं। इसकी पुष्टि ब्रह्मतर्क नामक शास्त्र में हुई है। इसके अनुसार भगवान् हरि स्वयं गुणवान हैं, अतएव विष्णु तथा उनके शुद्ध भक्त उनके अपने दिव्य गुणों से भिन्न नहीं हो सकते। विष्णु पुराण में भगवान् विष्णु की पूजा निम्नलिखित शब्दों में की गई है-"भगवान् हम सबके प्रति दयालु हों। उनका अस्तित्व भौतिक गुणों से कभी भी दूषित नहीं होता। उसी विष्णु पुराण में यह भी कहा गया है कि भगवान् के सारे गुण यथा ज्ञान, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, बल तथा प्रभाव उनसे अभिन्न माने जाते हैं। इसकी पुष्टि पद्म पुराण द्वारा भी होती है, जो यह बतलाता है कि जब भी भगवान् गुणों से रहित कहे जाते हैं, तब इसका अर्थ यह लगाना चाहिए कि वे भौतिक गुणों से रहित हैं। श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध (1.16.29) में कहा गया है, 'हे धर्म, कृष्ण के व्यक्तित्व से सभी उत्तम एवं उदात्त गुण सर्वदा प्रकट होते हैं और भक्त तथा अध्यात्मवादी भी, जो श्रद्धालु बनना चाहते हैं, वे ऐसे दिव्य गुणों से युक्त होना चाहते हैं। इसलिए यह जान लेना चाहिए कि परम आनन्द के दिव्य रूप भगवान् श्रीकृष्ण समस्त आनन्दमय दिव्य गुणों एवं अचिन्त्य शक्तियों के स्रोत हैं। इस सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध, छब्बीसवें अध्याय के 21, 25, 27 तथा 28 संख्यक श्लोकों को पढ़ना चाहिए।

श्रीपाद रामानुजाचार्य ने भी वेदान्त-सूत्र पर लिखे गये अपने भाष्य श्रीभाष्य में शंकर के तर्कों का खंडन किया है : "श्रीपाद शंकराचार्य ने पञ्चरात्रों की समता नास्तिक कपिल के दर्शन से करने का प्रयास किया है और इस तरह यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पंचरात्रों से वैदिक आदेशों का खंडन होता है। पंचरात्र बतलाता है कि संकर्षण नामक जीव का व्यक्तित्व समस्त कारणों के कारण वासुदेव से उद्भूत हैं। मनरूपी प्रद्युम्न संकर्षण से निकले हैं। और अहंकार रूपी अनिरुद्ध प्रद्युम्न से निकले हैं। किन्तु कोई यह नहीं कह सकता कि जीव जन्म लेता है या उत्पन्न किया जाता है, क्योंकि ऐसा कथन वेदसम्मत नहीं है। कठ उपनिषद (2.18) में कहा गया है कि व्यक्तिगत आत्मा

रूप में सारे जीवों का न तो जन्म होता है, न मृत्यु। सारा वैदिक साहित्य घोषित करता है कि सारे जीव सनातन हैं। अतएव जब यह कहा जाता है कि संकर्षण जीव हैं, तो इससे यह इंगित होता है कि वे जीवों के अधिष्ठाता देव हैं। इसी प्रकार प्रद्युम्न मन के और अनिरुद्ध अहंकार के अधिष्ठाता देव हैं।

"ऐसा कहा गया है कि प्रद्युम्न अर्थात् मन की उत्पत्ति संकर्षण से हुई। किन्तु यदि संकर्षण जीव होते, तो यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि जीव मन का कारण नहीं हो सकता। वैदिक आदेश बतलाते हैं कि हर वस्तु, जिसमें प्राण, मन तथा इन्द्रियाँ सम्मिलित हैं, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से उत्पन्न होती हैं। जीव से मन की उत्पत्ति होनी असम्भव है, क्योंकि वेदों का कथन है कि हर वस्तु परम सत्य परमेश्वर से उद्भूत है।

"किसी के भी द्वारा अखण्डनीय तथ्यों से संपन्न शास्त्रों के अनुसार संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध में परम पूर्ण भगवान् के समस्त शक्तिमय गुण पाये जाते हैं। अतएव चतुर्व्यह रूप कभी भी सामान्य जीव नहीं माने जाने चाहिए। इनमें से हर एक परम अद्वय भगवान् का पूर्ण विस्तार है और इस तरह हर एक अपने ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, प्रभाव, वीर्य तथा शक्तियों में परमेश्वर से अभिन्न है। पञ्चरात्रों के प्रमाण की उपेक्षा नहीं की जा सकती। जिन अप्रशिक्षित लोगों ने पंचरात्रों का ठीक से अध्ययन नहीं किया है, वे ही सोचते हैं कि जीव के जन्म या उत्पत्ति के विषय में पंचरात्र श्रुतियों का खण्डन करता है। इस प्रसंग में हमें श्रीमद्भागवत का निर्णय मानना चाहिए जो इस प्रकार है, वासुदेव नाम से विख्यात एवं अपने शरणागत भक्तों के प्रति अतीव वत्सल परम अद्वय भगवान् चतुर्व्यह के रूपों में अपना विस्तार करते हैं, जो उनके अधीन हैं, किन्तु साथ ही सभी प्रकार से उनसे अभिन्न हैं।' पौष्कर संहिता का कथन है, "शास्त्र यह संस्तुति करते हैं कि जो ब्राह्मण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चतुर्व्यह रूपों की पूजा करते हैं, वे आगम (प्रामाणिक वैदिक साहित्य) कहलाते हैं। समस्त वैष्णव

साहित्य में कहा गया है कि इन चतुर्व्यह रूपों की पूजा करना उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव की पूजा करने के समान है, जो अपने विभिन्न विस्तारों में छः ऐश्वर्यों से युक्त होकर अपने भक्तों के निर्धारित कर्तव्यों के फलों की भेंटें स्वीकार कर सकते हैं। नृसिंह, राम, शेष तथा कूर्म जैसे लीला विस्तारों की पूजा व्यक्ति को संकर्षण चतुर्व्यह की पूजा के पद तक उठाती है। उस पद से ऊपर उठकर मनुष्य परम ब्रह्म वासुदेव की पूजा करने के पद तक पहुँचता है। पौष्कर संहिता में कहा गया है, "यदि विधिपूर्वक पूजा की जाये, तो भगवान् वासुदेव को प्राप्त किया जा सकता है। यह स्वीकार करना होगा कि संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध भगवान् वासुदेव के ही तुल्य हैं, क्योंकि वे सभी अचिन्त्य शक्ति से युक्त हैं और वासुदेव जैसे दिव्य रूप ग्रहण कर सकते हैं। संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध कभी जन्म नहीं लेते, किन्तु शुद्ध भक्तों के समक्ष वे विभिन्न अवतारों के रूप में प्रकट हो सकते हैं। यह वैदिक साहित्य का निर्णय है। भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्ति से भक्तों के समक्ष प्रकट हो सकते हैं-यह तथ्य पंचरात्रों की शिक्षाओं के विरुद्ध नहीं है। चूँकि संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध क्रमशः समस्त जीवों, समग्र मन तथा समग्र अहंकार के अधिष्ठाता देव हैं, अतएव 'जीव,' 'मन' तथा 'अहंकार' के रूप में संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध की उपाधियाँ शास्त्रों के कथनों के विरुद्ध नहीं हैं। ये पद इन देवों के नामों के द्योतक हैं, जिस प्रकार 'व्योम' तथा 'ज्योति' शब्द कभी-कभी परम ब्रह्म की ओर संकेत करते हैं।

"शास्त्र जीव के जन्म या उत्पत्ति को पूरी तरह नकारते हैं। परम संहिता में वर्णन हुआ है कि अन्यों के काम आने वाली भौतिक प्रकृति वस्तुत: जड़ है और सदैव बदलती रहती है। भौतिक प्रकृति का क्षेत्र सकाम कर्मियों का कार्यक्षेत्र है और चूँकि भौतिक क्षेत्र बाह्य रूप से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सम्बन्धित है, अतएव यह भी नित्य है। प्रत्येक संहिता में जीव को नित्य माना गया है और पंचरात्रों में तो जीव के जन्म को बिल्कुल अस्वीकार किया गया है। प्रत्येक उत्पन्न हुई वस्तु

का संहार भी अवश्यंभावी है। अत: यदि हम जीव का जन्म मानते हैं, तो हमें इसके संहार को भी मानना पड़ेगा। किन्तु वैदिक साहित्य का कथन है कि जीव सनातन है, अतएव मनुष्य को चाहिए कि जीव को किसी विशेष समय में उत्पन्न हुआ न सोचे। परम संहिता के प्रारम्भ में यह निश्चित रूप से कहा गया है कि भौतिक प्रकृति निरन्तर परिवर्तनशील है। अतएव 'प्रारम्भ,' 'संहार' तथा ऐसे ही अन्य शब्द केवल भौतिक प्रकृति पर लागू होते हैं।

"इन सब बातों पर विचार करने पर हमें समझ लेना चाहिए कि शंकराचार्य का यह कथन कि संकर्षण जीव के रूप में उत्पन्न होते हैं, वैदिक कथनों के सर्वथा विरुद्ध है। उनकी मान्यताएँ उपर्युक्त तर्कों से पूरी तरह खंडित हो जाती हैं। इस सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत (3.1.34) पर श्रीधर स्वामी की टीका अत्यन्त सहायक है।"

संकर्षण को सामान्य जीव सिद्ध करने के शंकराचार्य के तर्कों के विस्तृत खंडन के लिए श्रीभाष्य पर श्रीमत् सुदर्शनाचार्य कृत श्रुत प्रकाशिका नामक भाष्य का सन्दर्भ लिया जा सकता है।

मूल चतुर्व्यह अर्थात् कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध का विस्तार एक अन्य चतुर्व्यह के रूप में होता है, जो परव्योम में वैकुण्ठ-लोक में विद्यमान है। अतएव परव्योम के चतुर्व्यह द्वारका के मूल चतुर्व्यह की द्वितीय अभिव्यक्ति है। जैसा ऊपर कहा गया है, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध भगवान् के अपरिवर्तनीय दिव्य पूर्णांश विस्तार हैं, जिनका भौतिक गुणों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। द्वितीय चतुर्व्यह में संकर्षण रूप न केवल बलराम का प्रतिनिधित्व करता है, अपितु कारण सागर का आदि कारण भी है, जहाँ कारणोदकशायी विष्णु शयन करते हैं और जिनकी श्वास से असंख्य ब्रह्माण्डों के बीज निकलते रहते हैं।

परव्योम में शुद्ध सत्त्व नामक आध्यात्मिक सृजनात्मक शक्ति रहती है, जो शुद्ध आध्यात्मिक शक्ति है और सारे वैकुण्ठ-लोकों का पोषण ज्ञान, सम्पत्ति, वीर्य आदि पूर्ण ऐश्वर्यों समेत करती है। शुद्ध सत्त्व के ये सारे कार्य महासंकर्षण की शक्तियों के द्योतक हैं, जो भौतिक जगत् में कष्ट भोगने वाले सारे जीवों के चरम आगार हैं। जब इस विराट् सृष्टि का संहार हो जाता है, तो स्वभाव से अविनाशी जीव महासंकर्षण के शरीर में विश्राम करते हैं। इसीलिए संकर्षण कभी-कभी समग्र जीव कहे जाते हैं। आध्यात्मिक स्फुलिंग के रूप में सारे जीवों में भौतिक प्रकृति के सान्निध्य में निष्क्रिय बने रहने की प्रवृत्ति होती है, जिस प्रकार आग के स्फुलिंग में आग से बाहर निकलने पर तुरन्त बुझ जाने की प्रवृत्ति होती है। किन्तु जीव का आध्यात्मिक स्वभाव परम पुरुष की संगति में रहकर फिर से प्रज्वलित किया जा सकता है। चूँकि जीव कभी पदार्थ में तो कभी आत्मा में प्रकट हो सकता है, इसलिए जीव तटस्था शक्ति कहलाता है।

संकर्षण उन कारण विष्णु के उद्गम स्रोत हैं, जो अपने मूल स्वरूप में ब्रह्माण्डों की सृष्टि करते हैं। वही संकर्षण श्री नित्यानन्द राम के एक पूर्ण अंश विस्तार हैं।

ताँहा ये रामेर रूप—महा-सङ्कर्षण ।

चिच्छक्ति-आश्रय तिंहो, कारणेर कारण ॥42॥

ताँहा-वहाँ; ये-जो; रामेर रूप-बलराम के निजी लक्षण; महा-सङ्कर्षण-महा संकर्षण; चित्-शक्ति-आश्रय-आध्यात्मिक शक्ति के आश्रय; तिंहो-वे; कारणेर कारण-सर्व कारणों के कारण।

अनुवाद

वहाँ पर (परव्योम में) बलराम के साकार स्वरूप, जो महासंकर्षण कहलाते हैं, आध्यात्मिक शक्ति के आश्रय हैं। वे मूल कारण हैं, अर्थात् समस्त कारणों के कारण हैं।

चिच्छक्ति-विलास एक—‘शुद्ध-सत्त्व’ नाम ।

शुद्ध-सत्त्व-मयं व्रत वैकुण्ठादि-धाम ॥43॥

चित्-शक्ति-विलास-आध्यात्मिक शक्ति में लीलाएँ; एक-एक; शुद्ध-सत्त्व नाम-शुद्ध-सत्त्व नामक, शुद्ध अस्तित्व, भौतिक कल्मष से रहित; शुद्ध-सत्त्व-मय-शुद्ध आध्यात्मिक अस्तित्व का; व्रत-सभी; वैकुण्ठ-आदि-धाम-वैकुण्ठ लोक।

अनुवाद

आध्यात्मिक शक्ति की एक लीला विशुद्ध सत्त्व के रूप में वर्णित है। इसमें सारे वैकुण्ठ-धाम सम्मिलित हैं।

षड्-विधैश्वर्य ताँहा सकल चिन्मय ।

सङ्कर्षणेर विभूति सब, जानिह निश्चय ॥44॥

षट्-विध-ऐश्वर्य-छ: प्रकार के ऐश्वर्य; ताँहा-वहाँ; सकल चित्-मय-सब कुछ आध्यात्मिक; सङ्कर्षणेर-भगवान् संकर्षण का; विभूति सब-सभी विभिन्न विभूतियाँ; जानिह निश्चय-निश्चयात्मक रूप से जानते हैं।

अनुवाद

सारे छहों ऐश्वर्य आध्यात्मिक हैं। इसे निश्चित रूप से जानिए कि ये सब संकर्षण के ऐश्वर्य की ही अभिव्यक्तियाँ हैं।

‘जीव-नाम तटस्थाख्य एक शक्ति हय ।

महा-सङ्कर्षण–सब जीवेर आश्रय ॥45॥

जीव-जीव; नाम-नामक; तट-स्था-आख्य-तटस्था शक्ति नामक; एक-एक; शक्ति-शक्ति; हय-है; महा-सङ्कर्षण-महासंकर्षण; सब-सब; जीवेर-जीवों के; आश्रय-आश्रय।

अनुवाद

एक तटस्था शक्ति है, जो जीव कहलाती है। महासंकर्षण समस्त जीवों के आश्रय हैं।

याँहा हैते विश्वोत्पत्ति, याँहाते प्रलय।

सेइ पुरुषेर सङ्कर्षण समाश्रय ॥46॥

याँहा हैते–जिनसे; विश्व-उत्पत्ति-भौतिक विश्व की उत्पत्ति; याँहाते-जिनमें; प्रलय-प्रलय, लीन होना; सेइ पुरुषेर-उसी भगवान् की; सङ्कर्षण-संकर्षण; समाश्रय-मूल आश्रय।

अनुवाद

संकर्षण पुरुष के मूल आश्रय हैं, जिनसे यह जगत् उत्पन्न होता है और जिनमें यह विलीन हो जाता है।

सर्वाश्रय, सर्वाद्भुत, ऐश्वर्य अपार।

'अनन्त' कहते नारे महिमा याँहार ॥47॥

सर्व-आश्रय-सबके आश्रय; सर्व-अद्भुत-हर प्रकार से अद्भुत; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; अपार–जिसका पार न पाया जा सके, अपार; अनन्त-अनन्त शेष; कहिते नारे-कह नहीं सकते; महिमा याँहार–जिनकी महिमाएँ।

अनुवाद

वे (संकर्षण) सबके आश्रय हैं। वे हर प्रकार से अद्भुत हैं और उनका ऐश्वर्य अपार है, यहाँ तक कि अनन्त भी उनकी महिमा का वर्णन नहीं कर सकते।

तुरीय, विशुद्ध-सत्त्व, 'सङ्कर्षण' नाम ।

तिंहो याँर अंश, सेइ नित्यानन्द-राम ॥48॥

तुरीय-दिव्य; विशुद्ध-सत्त्व-विशुद्ध अस्तित्व; सङ्कर्षण नाम-संकर्षण नामक; तिंहो याँर अंश-जिनके संकर्षण भी एक अंश हैं; सेइ नित्यानन्द-राम-उनका नाम है। बलराम अर्थात् नित्यानन्द।

अनुवाद

वे दिव्य शुद्ध सत्त्व संकर्षण नित्यानन्द बलराम के अंश विस्तार हैं।

अष्टम श्लोकेर कैल सङ्क्षेपे विवरण ।

नवम श्लोकेर अर्थ शुन दिया मन ॥49॥

अष्टम-आठवें; श्लोकेर-श्लोक का; कैल-मैंने किया है; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; विवरण–विवरण; नवम-नौवें; श्लोकेर-श्लोक का; अर्थ-अर्थ; शुन-कृपया सुनो; दिया मन-मन लगाकर।

अनुवाद

मैंने आठवें श्लोक का संक्षिप्त विवेचन किया है। अब कृपा करके ध्यानपूर्वक नवें श्लोक की व्याख्या सुनें।

माया-भर्ताजाण्ड-सङ्घाश्रयाङ्गः

शेते साक्षात्कारणाम्भोधि-मध्ये।

यस्यैकांशः श्री-पुमानादि-देवस्

तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥50॥

माया-भर्ता-माया के स्वामी; अज-अण्ड-सङ्घ–ब्रह्माण्ड समूह के; आश्रय-आश्रय; अङ्गः-जिनका शरीर; शेते–वे लेटे हैं; साक्षात्-साक्षात्; कारण-अम्भोधि-मध्ये–कारण सागर के बीच; यस्य–जिनका; एक-अंशः–एक भाग; श्री-पुमान्-परम पुरुष; आदि-देवः-आदि पुरुष अवतार; तम्-उनको; श्री-नित्यानन्द-रामम्-भगवान् नित्यानन्द के रूप में भगवान् बलराम की; प्रपद्ये-मैं शरण लेता हूँ।

अनुवाद

मैं श्री नित्यानन्द राम के चरणों में पूर्ण दण्डवत् प्रणाम अर्पित करता हैं, जिनके अंशरूप कारण-सागर में लेटे हुए कारणोदकशायी विष्णु आदि पुरुष हैं, माया के पति हैं और समस्त ब्रह्माण्डों के आश्रय हैं।

वैकुण्ठ-बाहिरे येइ ज्योतिर्मय धाम।

ताहार बाहिरे 'कारणार्णव' नाम ॥51॥

वैकुण्ठ-बाहिरे-वैकुण्ठ लोकों के बाहर; येइ-वह; ज्योतिः-मय धाम-निर्विशेष ब्रह्मज्योति; ताहार बाहिरे-उस ज्योति के बाहर; कारण-अर्णव नाम–कारण नामक सागर।

अनुवाद

वैकुण्ठ ग्रहों के बाहर निर्विशेष ब्रह्मतेज है और इस तेज से परे कारणार्णव या कारण सागर है।

तात्पर्य

निर्विशेष प्रकाशमान तेज, जो निर्विशेष ब्रह्म कहलाता है, वह आध्यात्मिक आकाश में वैकुण्ठ ग्रहों का बाह्य आकाश है। इस निर्विशेष ब्रह्म से परे महान् कारण सागर है, जो भौतिक आकाश तथा आध्यात्मिक आकाश के बीच स्थित है। भौतिक प्रकृति इस कारण समुद्र की गौण उत्पाद है।

जब कारण सागर में शयन करने वाले कारणोदकशायी विष्णु भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात करते हैं, तो ब्रह्माण्डों की सृष्टि होती है। फलतः कृष्ण को स्वयं भौतिक सृष्टि से कुछ भी लेना-देना नहीं होता। भगवद्गीता पुष्टि करती है कि भगवान् भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात करते हैं और इस तरह प्रकृति अनेक ब्रह्माण्डों को जन्म देती है। किन्तु न तो गोलोकवासी कृष्ण, न ही वैकुण्ठवासी नारायण भौतिक सृष्टि के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आते हैं। वे भौतिक शक्ति से पूर्णतया अलग रहते हैं।

कारणोदकशायी विष्णु के रूप में महासंकर्षण का यह कार्य है कि भौतिक सृष्टि पर दृष्टिपात करें, जो कारण सागर की सीमाओं से परे स्थित है। भौतिक प्रकृति का भगवान् से इतना ही सम्बन्ध है कि वे उस पर दृष्टिपात करते हैं, इससे आगे कुछ भी नहीं। कहा जाता है कि वह उनकी दृष्टि की शक्ति से ही गर्भधारण करती है। भौतिक शक्ति या माया कारण सागर को स्पर्श तक नहीं करती, क्योंकि भगवान् की दृष्टि बहुत दूर से उस पर केन्द्रित होती है।

भगवान् की दृष्टि-शक्ति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड-शक्ति को सक्रिय करती है और इस तरह उसका कार्य तुरन्त ही प्रारम्भ हो जाता है। इससे यह सूचित होता है कि भौतिक प्रकृति कितनी भी

शक्तिशाली क्यों न हो, उसमें अपनी खुद की कोई शक्ति नहीं होती। उसकी क्रियाशीलता भगवान् की कृपा से प्रारम्भ होती है और तब सम्पूर्ण जागतिक सृष्टि नियमबद्ध रूप में प्रकट होती है। गर्भधारण करने वाली स्त्री के दृष्टान्त से इस विषय को समझने में कुछ सहायता मिल सकती है। माता निष्क्रिय रहती है, किन्तु पिता उसके गर्भ में अपनी शक्ति स्थापित करता है और इस तरह वह गर्भवती हो जाती है। वह अपने गर्भ में शिशु-जन्म के लिए आवश्यक सामग्री की पूर्ति करती है। इसी प्रकार भगवान् भी भौतिक प्रकृति को सक्रिय बनाते हैं, जिससे फिर वह विश्व के विकास हेतु सामग्री प्रदान करती है।

भौतिक प्रकृति की दो भिन्न अवस्थाएँ हैं। एक प्रधान कहलाती है, जो विश्व के विकास के लिए भौतिक सामग्री प्रदान करती है और दूसरी माया कहलाती है, जो समुद्र के बुलबुलों के समान क्षणभंगुर अपने अवयवों को प्रकट करती है। वास्तव में भौतिक प्रकृति की क्षणभंगुर अभिव्यक्ति मूलत: भगवान् के आध्यात्मिक दृष्टिपात से उत्पन्न होती है। भगवान् सृष्टि के प्रत्यक्ष या सुदूरवर्ती कारण हैं और भौतिक प्रकृति अप्रत्यक्ष या तात्कालिक कारण है। भौतिकतावादी विज्ञानी अपने तथाकथित अन्वेषणों के कारण हुए जादुई परिवर्तनों से गर्वित होकर पदार्थ के पीछे ईश्वर की वास्तविक शक्ति को नहीं देख सकते। इसलिए विज्ञान के करतब लोगों को मानव-जीवन के लक्ष्य को भुलाकर ईश्वरविहीन सभ्यता की ओर लिए जा रहे हैं। जीवन-लक्ष्य को भूलकर, भौतिकतावादी लोग आत्मनिर्भरता के पीछे भागते रहते हैं। उन्हें यह पता ही नहीं होता कि ईश्वर की कृपा से भौतिक प्रकृति पहले से ही आत्मनिर्भर है। इस प्रकार सभ्यता के नाम पर अव्यवस्था फैलाते हुए वे लोग प्रकृति की सहज आत्मनिर्भरता में असंतुलन उत्पन्न कर देते हैं।

मूल कारण को न जानकर भौतिक प्रकृति को ही सर्वेसर्वा मानना अज्ञान है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु आध्यात्मिक ज्ञान का दीप जलाकर इसी अज्ञान के अंधकार को दूर करने और समस्त जगत् को प्रकाशित करने के लिए अपनी अहैतुकी कृपा से प्रकट हुए।

माया किस प्रकार कृष्ण की शक्ति से कार्य करती है, इसे समझाने के लिए श्री श्रीचैतन्य-चरितामृत के रचयिता अग्नि में रखी लोहे की छड़ का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं-यद्यपि यह छड़ अग्नि नहीं होती, किन्तु यह लाल होकर स्वयं अग्नि जैसा कार्य करती है। इसी प्रकार भौतिक प्रकृति की सारी क्रियाएँ तथा प्रतिक्रियाएँ वास्तव में भौतिक प्रकृति के कार्य नहीं होतीं, अपितु पदार्थ के माध्यम से प्रकट हुई भगवान् की शक्ति की क्रियाएँ तथा प्रतिक्रियाएँ होती हैं। विद्युत शक्ति ताँबे के माध्यम से संचारित है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि ताँबा ही बिजली है। यह विद्युत शक्ति एक दक्ष व्यक्ति के नियन्त्रण में विद्युत-केन्द्र में उत्पन्न की जाती है। इसी तरह प्राकृतिक नियमों के मायाजाल के पीछे एक महान् पुरुष रहता है, जो विद्युत-केन्द्र के यांत्रिक अभियंता जैसा व्यक्ति होता है। उन्हीं की बुद्धि से यह सम्पूर्ण सृष्टि व्यवस्थित रूप से परिचालित होती है।

भौतिक कार्यों को प्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न करने वाले प्रकृति के गुण भी मूलतः नारायण द्वारा सक्रिय बनाये जाते हैं। एक सरल उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी : जब कुम्हार मिट्टी से घड़ा तैयार करता है, तो कुम्हार का चाक, उसके यांत्रिक उपकरण तथा मिट्टी उस घड़े के तात्कालिक कारण होते हैं, किन्तु कुम्हार मुख्य कारण होता है। इसी प्रकार नारायण समस्त भौतिक सृष्टियों के प्रधान कारण हैं, जबकि भौतिक शक्ति पदार्थ रूपी अवयवों की पूर्ति करती है। अतएव नारायण के बिना अन्य सारे कारण वैसे ही व्यर्थ हैं, जैसे कि कुम्हार के बिना उसका चाक तथा अन्य उपकरण व्यर्थ होते हैं। चूँकि भौतिक विज्ञानी भगवान् की उपेक्षा करते हैं, इससे ऐसा लगता है कि वे कुम्हार के चाक, उसकी गति, कुम्हार के यांत्रिक उपकरणों और घड़े की सामग्री के प्रति अधिक चिन्तित

रहते हैं, किन्तु कुम्हार के विषय में उन्हें कोई ज्ञान नहीं रहता। अतएव आधुनिक विज्ञान ने ईश्वरविहीन अपूर्ण सभ्यता को जन्म दिया है, जो परम कारण के विषय में पूर्णतया अनजान है। वैज्ञानिक प्रगति का अभिप्राय किसी महान् लक्ष्य की प्राप्ति होना चाहिए और वह महान् लक्ष्य परम पुरुष भगवान् होने चाहिएँ। भगवद्गीता में कहा गया है कि अनेकानेक जन्मों तक खोज करने के बाद ही प्रयोगात्मक विचारधारा के महत्त्व पर जोर देने वाले ज्ञानवान पुरुष, समस्त कारणों के कारण भगवान् को जान पाते हैं। जब कोई उन्हें पूरी तरह जान लेता है, तब वह उनकी शरण स्वीकार करता है और महात्मा बन जाता है।

वैकुण्ठ बेड़िया एक आछे जल-निधि ।

अनन्त, अपार—तार नाहिक अवधि ॥52॥

वैकुण्ठ-वैकुण्ठ के दिव्य लोकों की; बेड़िया-चारों ओर; एक-एक; आछे-है; जल-निधि-जलनिधि; अनन्त-अनन्त; अपार-अपार; तार-उसकी; नाहिक-नहीं; अवधि–सीमा।

अनुवाद

वैकुण्ठ के चारों ओर अपार जलराशि है, जो अनन्त, अगाध और असीम है।

वैकुण्ठेर पृथिव्यादि सकल चिन्मय ।

मायिक भूतेर तथि जन्म नाहि हय ॥53॥

वैकुण्ठेर-आध्यात्मिक जगत् की; पृथिवी-आदि-पृथ्वी, जल आदि; सकल-सब; चित्-मय-आध्यात्मिक; मायिक–भौतिक; भूतेर-तत्त्वों का; तथि-वहाँ; जन्म-उत्पत्ति; नाहि हय-नहीं हैं।

अनुवाद

वैकुण्ठ में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश-सभी आध्यात्मिक हैं। वहाँ भौतिक तत्त्व नहीं पाये जाते।

चिन्मय-जल सेइ परम कारण ।

यार एक कणा गङ्गा पतित-पावन ॥54॥

चित्-मय-चिन्मय; जल-जल; सेइ-वह; परम कारण-परम कारण; यार-जिसकी; एक–एक; कणा-बूंद; गङ्गा-पवित्र गंगा नदी; पतित-पावन-पतित आत्माओं को पावन करने वाली।

अनुवाद

अतएव परम कारण स्वरूप कारण सागर का जल आध्यात्मिक है। पवित्र गंगा नदी, जो उसकी एक बूंद मात्र है, पतितात्माओं को शुद्ध बनाती है।

सेइ त' कारणार्णवे सेइ सङ्कर्षण ।

आपनार एक अंशे करेन शयन ॥55॥

सेइ-वह; त'-निश्चय ही; कारण-अर्णवे-कारणार्णव में या कारण सागर में; सेइ-वह; सङ्कर्षण-भगवान् संकर्षण; आपनार-अपना ही; एक-एक; अंशे-अंश से; करेन शयन-शयन करते हैं।

अनुवाद

उस सागर में भगवान् संकर्षण के एक पूर्ण अंश शयन करते हैं।

महत्वष्टा पुरुष, तिंहो जगत्कारण ।

आद्य-अवतार करे मायाय ईक्षण ॥56॥

महत्-स्रष्टा-समग्र भौतिक शक्ति के निर्माता; पुरुष-पुरुष; तिंहो-वे; जगत्-कारण-भौतिक वैश्विक प्राकट्य के कारण; आद्य-मूल; अवतार–अवतार; करे-करते हैं; मायाय-भौतिक शक्ति पर; ईक्षण-दृष्टिपात।

अनुवाद

वे समग्र भौतिक शक्ति के सृजनकर्ता प्रथम पुरुष के नाम से जाने जाते हैं। वे समस्त ब्रह्माण्डों के कारण एवं प्रथम पुरुष अवतार माया के ऊपर दृष्टिपात करते हैं।

माया-शक्ति रहे कारणाब्धिर बाहिरे ।

कारण-समुद्र माया परशिते नारे ॥57॥

माया-शक्ति-भौतिक शक्ति; रहे-रहती है; कारण-अब्धिर-कारण सागर; बाहिरे-बाहर; कारण-समुद्र–कारण सागर; माया-भौतिक शक्ति; परशिते नारे-स्पर्श नहीं कर सकती।

अनुवाद

मायाशक्ति कारण सागर के बाहर निवास करती है। माया इसके जल को स्पर्श नहीं कर सकती।

सेइ त मायार दुई-विध अवस्थिति ।

जगतेर उपादान ‘प्रधान’, प्रकृति ॥58॥

सेइ-वह; त'–निश्चित रूप से; मायार-भौतिक शक्ति के; दुइ-विध-दो प्रकार; अवस्थिति-अस्तित्व; जगतेर-भौतिक संसार का; उपादान–अवयव; प्रधान–प्रधान नामक; प्रकृति-भौतिक प्रकृति।

अनुवाद

माया का अस्तित्व दो प्रकार का होता है। एक प्रधान या प्रकृति कहलाता है। यह भौतिक जगत् के अवयवों (उपादानों) की पूर्ति करता है।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की बहिरंगा शक्ति माया दो भागों में विभक्त है। माया ही भौतिक जगत् की कारण है और वही सृजन की सामग्री (उपादान) उपलब्ध करने वाली माध्यम है। वैश्विक प्राकट्य की कारण होने के फलस्वरूप वह माया कहलाती है और वैश्विक प्राकट्य की सामग्री की पूर्ति करने के कारण वह प्रधान कहलाती है। श्रीमद्भागवत (11.24.1-4) में बहिरंगा शक्ति के इन विभागों का स्पष्ट वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवत में ही अन्यत्र (10.63.26) जगत् के सृजन की सामग्री एवं कारण का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो

द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ।

तत्सङ्घातो बीजरोह

प्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥

“हे प्रभु! काल, कर्म, भाग्य तथा प्रकृति-ये बहिरंगा शक्ति के कारण पक्ष माया के चार अंश हैं। बद्ध प्राण-शक्ति, सूक्ष्म भौतिक अवयव, जिन्हें द्रव्य कहते हैं तथा भौतिक प्रकृति (वह कार्यक्षेत्र जिसमें मिथ्या अहंकार आत्मा के रूप में कार्य करता है), ग्यारह इन्द्रियाँ और पाँच तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश) शरीर के ये कुल सोलह अवयव-ये सब माया के अवयव (उपादान) हैं। शरीर कर्म से उत्पन्न होता है और कर्म शरीर से उत्पन्न होता है, उसी तरह जिस प्रकार वृक्ष से बीज उत्पन्न होता है और फिर बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है। यही पारस्परिक कार्य-कारण का क्रम माया कहलाता है। हे स्वामी, आप मुझे इस कार्य-कारण के चक्र से बचा सकते हैं। मैं आपके चरणकमलों की पूजा करता हूँ।”

यद्यपि जीव मुख्य रूप से माया के कारण (निमित्त) अंश से सम्बन्धित है, फिर भी इसका संचालन माया के अवयवों द्वारा होता है। माया के कारण अंश में तीन शक्तियाँ कार्यरत रहती हैं- ज्ञान, इच्छा तथा कर्म। भौतिक अवयव प्रधान के रूप में माया की अभिव्यक्ति होते हैं। दूसरे शब्दों में, जब माया के तीन गुण सुप्त अवस्था में रहते हैं, तो वे प्रकृति, अव्यक्त या प्रधान रूप में रहते हैं। अव्यक्त शब्द प्रधान का दूसरा नाम है। अव्यक्त अवस्था में भौतिक प्रकृति विविधता से रहित होती है। यह विविधता माया के प्रधान अंश द्वारा व्यक्त होती है। अतएव प्रधान शब्द अव्यक्त या प्रकृति से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

जगत्कारण नहे प्रकृति जड़-रूपा।

शक्ति सञ्चारिया तारे कृष्ण करे कृपा ॥59॥

जगत्-भौतिक जगत् का; कारण–कारण; नहे–नहीं हो सकती; प्रकृति-भौतिक प्रकृति; जड़-रूपा–जड़ रूपा, कर्म के बिना; शक्ति–शक्ति; सञ्चारिया-संचार करके; तारे-जड़ भौतिक प्रकृति पर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करे-करते हैं; कृपा-दया, कृपा।

अनुवाद

चूँकि प्रकृति जड़ तथा निष्क्रिय है, अतएव यह वास्तव में भौतिक जगत् की कारण नहीं हो सकती। लेकिन भगवान् कृष्ण जड़ निष्क्रिय भौतिक प्रकृति में अपनी शक्ति संचारित करके अपनी कृपा प्रदर्शित करते हैं।

कृष्ण-शक्त्ये प्रकृति हय गौण कारण ।

अग्नि-शक्त्ये लौह यैछे करये जारण ॥60॥

कृष्ण-शक्त्ये-कृष्ण की शक्ति से; प्रकृति-भौतिक प्रकृति; हय-हो जाती है; गौण-गैण; कारण-कारण; अग्नि-शक्त्ये—अग्नि की शक्ति से; लौह-लोहा; यैछे-जैसे; करये-हो जाता है; जारण-शक्तिशाली या रक्तोष्ण।

अनुवाद

इस तरह भगवान् कृष्ण की शक्ति के द्वारा प्रकृति गौण कारण बन जाती है, जिस तरह लोहा अग्नि की शक्ति से लाल हो जाता है।

अतएव कृष्ण मूल-जगत्कारण ।

प्रकृति कारण यैछे अजा-गल-स्तन ॥61॥

अतएव–अतएव; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मूल-मूल; जगत्-कारण-जगत् के कारण; प्रकृति-भौतिक प्रकृति; कारण कारण; यैछे-ठीक जैसे; अजा-गल-स्तन-बकरी के गले पर के स्तन।

अनुवाद

अतएव भगवान् कृष्ण इस जगत् के प्राकट्य के मूल कारण हैं। प्रकृति तो बकरी के गले से लटकने वाले उन स्तनों की भाँति है, जिनसे दूध नहीं निकलता।

तात्पर्य

बहिरंगा शक्ति मायाशक्ति कहलाती है। यह अवयव (सामग्री) उपलब्ध कराने वाली के रूप में प्रधान या प्रकृति से युक्त होती है तथा कारण-अंश के रूप में माया से युक्त होती है। जड़ भौतिक प्रकृति इस भौतिक जगत् का वास्तविक कारण नहीं है, क्योंकि कृष्ण के पूर्ण विस्तार कारणार्णवशायी महाविष्णु सारे अवयवों (उपादानों) को सक्रिय बनाते हैं। भौतिक प्रकृति में अवयवों की पूर्ति करने की शक्ति इसी प्रकार आती है। यहाँ पर लोहे का उदाहरण दिया गया है, जिसमें गर्म करने या जलाने का गुण नहीं होता, किन्तु वही लोहा अग्नि के सम्पर्क में आकर लाल हो जाता है और गर्मी दे सकता है तथा अन्य वस्तुओं को जला सकता है। भौतिक प्रकृति भी लोहे की भाँति है, क्योंकि उसमें भी अग्नितुल्य विष्णु का स्पर्श पाये बिना कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं होती। भगवान् विष्णु अपनी दृष्टि शक्ति से भौतिक प्रकृति को उत्तेजित करते हैं और तब लौह-तुल्य भौतिक प्रकृति सामग्री प्रदान करने में सक्षम हो जाती है, जिस तरह गरम लोहा जलाने का कार्य कर सकता है। प्रकृति स्वतन्त्र रूप से सामग्री की आपूर्ति करने में सक्षम नहीं है। इसकी स्पष्ट व्याख्या ईश्वर के अवतार श्री कपिलदेव द्वारा श्रीमद्भागवत (3.28.40) में की गई है :

यथोल्मुकाद् विस्फुलिङ्गाद् धूमाद् वापि स्वसम्भवात् ।

अप्यात्मत्वेनाभिमताद् यथाग्निः पृथगुल्मुकात् ॥

“यद्यपि धुआँ, जलती लकड़ी तथा स्फुलिंग सभी मिलकर अग्नि के अवयव कहलाते हैं, फिर भी जलती लकड़ी अग्नि से भिन्न होती है और धुआँ जलती लकड़ी से भिन्न होता है।” सारे भौतिक तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि इत्यादि) धुएँ के समान हैं, सारे जीव स्फुलिंग तुल्य हैं और प्रधान के रूप में भौतिक प्रकृति जलती लकड़ी के समान है। किन्तु ये सभी मिलकर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से शक्ति प्राप्त करते हैं और तब अपनी पृथक् क्षमता प्रदर्शित कर पाते हैं। दूसरे शब्दों में, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सारी सृष्टि के मूल हैं। भौतिक प्रकृति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दृष्टि-शक्ति से सक्रिय होने पर ही कुछ प्रदान कर सकती है।

जिस प्रकार स्त्री पुरुष का वीर्य धारण करने के बाद ही सन्तान को जन्म दे सकती है, उसी प्रकार भौतिक प्रकृति भी महाविष्णु की दृष्टि-शक्ति प्राप्त होने पर ही भौतिक अवयवों को प्रदान कर सकती है। अतएव प्रधान पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अध्यक्षता से कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (9.10) में की गई है-मयाध्यक्षेणप्रकृतिः सूयते सचराचरम्- सम्पूर्ण भौतिक शक्ति अर्थात् प्रकृति भगवान् की अध्यक्षता में कार्य करती है। भौतिक तत्त्वों के मूल स्रोत कृष्ण हैं। अतएव कृष्ण को भुलाकर भौतिक प्रकृति को ही इन तत्त्वों का स्रोत मानने का नास्तिक सांख्य दार्शनिकों का प्रयास ठीक उसी तरह व्यर्थ है, जिस प्रकार बकरी के गले से लटकते हुए स्तन के समान दिखने वाले पिण्ड से दूध प्राप्त करने का प्रयास व्यर्थ होता है।

माया-अंशे कहि तारे निमित्त-कारण ।

सेह नहे, य़ाते कर्ता-हेतु–नारायण ॥62॥

माया-अंशे–भौतिक प्रकृति के दूसरे भाग को; कहि-मैं कहता हूँ; तारे-उसको; निमित्त-कारण-तात्कालिक कारण; सेह नहे-वह नहीं हो सकता; याते-क्योंकि; कर्ता-हेतु-मूल कारण; नारायण-भगवान् नारायण।

अनुवाद

भौतिक प्रकृति का माया अंश विश्व के प्राकट्य का तात्कालिक कारण है। किन्तु यह वास्तविक कारण नहीं हो सकता, क्योंकि मूल कारण तो भगवान् नारायण हैं।

घटेर निमित्त-हेतु यैछे कुम्भकार।

तैछे जगतेर कर्ता–पुरुषावतार ॥63॥

घटेर-मिट्टी के घड़े का; निमित्त-हेतु-मूल कारण; यैछे-जैसे; कुम्भकार-कुम्हार; तैछे—इसी प्रकार; जगतेर कर्ता-भौतिक जगत् के स्रष्टा; पुरुष-अवतार–पुरुष अवतार या कारणार्णवशायी विष्णु।

अनुवाद

जिस प्रकार मिट्टी के पात्र का मूल कारण कुम्हार है, उसी तरह भौतिक जगत् के स्रष्टा प्रथम पुरुषावतार (कारणार्णवशायी विष्णु) हैं।

कृष्ण—कर्ता, माया ताँर करेन सहाय।

घटेर कारण—चक्र-दण्डादि उपाय ॥ 64॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कर्ता-स्रष्टा; माया-भौतिक शक्ति; ताँर-उनकी; करेन-करती है; सहाय-सहायता; घटेर कारण-घड़े का कारण; चक्र-दण्ड-आदि-चक्र, दण्ड आदि; उपाय-साधन।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण स्रष्टा हैं और माया उपकरण के रूप में उनकी सहायता के लिए है, ठीक वैसे ही जैसे कुम्हार का चाक तथा अन्य उपकरण पात्र के साधन-रूप कारण होते हैं।

दूर हैते पुरुष करे मायाते अवधान।

जीव-रूप वीर्घ ताते करेन आधान ॥65॥

दूर हैते-दूर से; पुरुष–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; करे-करते हैं; मायाते-भौतिक शक्ति पर; अवधान–दृष्टिपात करके; जीव-रूप-जीव; वीर्य-वीर्य, बीज; ताते-उसमें; करेन-करते हैं; आधान–गर्भवती।

अनुवाद

प्रथम पुरुष दूर से माया पर दृष्टिपात करते हैं और इस प्रकार वे जीव रूपी वीर्य से गर्भाधान कराते हैं।

एक अङ्गाभासे करे मायाते मिलन।

माया हैते जन्मे तबे ब्रह्माण्डेर गण ॥66॥

एक-एक; अङ्ग-आभासे-शारीरिक परछाई; करे-करता है; मायाते-भौतिक शक्ति में; मिलन-मिश्रण; माया-भौतिक शक्ति माया; हैते-से; जन्मे–जन्म लेता है; तबे-तब; ब्रह्म-अण्डेर गण-ब्रह्माण्ड का समूह।

अनुवाद

उसके शरीर की प्रतिफलित किरणें माया से मिलती हैं, जिसके फलस्वरूप माया अनेक ब्रह्माण्डों को जन्म देती है।

तात्पर्य

वैदिक निष्कर्ष यही है कि बद्धजीवों को दिखने वाला प्रकट जगत् परम सत्य भगवान् द्वारा उनकी विशिष्ट शक्तियों से उत्पन्न किया गया है, यद्यपि नास्तिक मानते हैं कि यह जगत् भौतिक प्रकृति द्वारा उत्पन्न हुआ है। परम सत्य भगवान् की शक्ति तीन प्रकार से प्रदर्शित होती है- आध्यात्मिक, भौतिक और तटस्था। परम सत्य अपनी आध्यात्मिक शक्ति से अभिन्न हैं। भौतिक शक्ति इसी आध्यात्मिक शक्ति के सम्पर्क में आने पर ही कार्य कर सकती है और इस तरह क्षणिक भौतिक जगत् सक्रिय प्रतीत होता है। बद्ध अवस्था में तटस्था शक्ति के सारे जीव आध्यात्मिक तथा भौतिक शक्तियों के मिश्रण होते हैं। तटस्था शक्ति मूलतः आध्यात्मिक शक्ति के अधीन है, किन्तु सारे जीव इस भौतिक जगत् में भौतिक शक्ति के वशीभूत होकर अनन्त काल से विस्मृति की दशा में भटक रहे हैं।

बद्ध अवस्था का कारण आध्यात्मिक स्तर की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का दुरुपयोग है, क्योंकि इससे जीव आध्यात्मिक शक्ति की संगति से अलग हो जाता है। किन्तु जब जीव भगवान् की कृपा से या उनके शुद्ध भक्त की कृपा से ज्ञान प्राप्त करता है और अपनी प्रेममयी सेवा की मूल स्थिति को पुनः प्राप्त करने की ओर उन्मुख होता है, तब वह शाश्वत आनन्द तथा ज्ञान के अत्यन्त शुभ धरातल पर स्थित होता है। जब जीव स्वतन्त्र भाव से यह सोचता है कि वह शक्ति नहीं अपितु शक्तिमान है, तब वह तटस्थ शक्तिरूप जीव अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करके सनातन सेवा के भाव से विमुख हो जाता है। अपने अस्तित्व की इस भ्रान्त धारणा के वशीभूत होकर वह भौतिक प्रकृति पर अपना प्रभुत्व जताने लगता है।

भौतिक प्रकृति आध्यात्मिक शक्ति के सर्वथा विपरीत प्रतीत होती है। तथ्य तो यह है कि भौतिक शक्ति आध्यात्मिक शक्ति के सम्पर्क में आने पर ही कार्य कर सकती है। कृष्ण की शक्ति मूलतः आध्यात्मिक है, किन्तु वह नाना रूपों में कार्य करती है-यथा विद्युत शक्ति, जो ठंडा या गरम करने के विविध कार्य कर सकती है। भौतिक शक्ति आध्यात्मिक शक्ति ही है, जो भ्रम के आवरण से या माया से आच्छादित है। अतएव भौतिक शक्ति कार्य करने में आत्मनिर्भर नहीं है। भौतिक शक्ति में कृष्ण अपनी आध्यात्मिक शक्ति लगाते हैं; तभी वह कार्य कर पाती है, जिस तरह लोहा अग्नि में गरम होने के बाद ही अग्नि की तरह कार्य कर सकता है। भौतिक शक्ति तभी कार्य कर सकती है, जब वह आध्यात्मिक शक्ति द्वारा अधिकृत होती है।

जब जीव भौतिक शक्ति के आवरण से आच्छादित हो जाता है, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति होते हुए भी वह आध्यात्मिक शक्ति के कार्यकलापों को भूल जाता है और सोचता है कि जगत् में जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह अद्भुत है। किन्तु पूरी तरह से कृष्णभावना में, भक्ति में लगा रहने वाला व्यक्ति सदैव आध्यात्मिक शक्ति में स्थित है। वह समझ सकता है। कि भौतिक शक्ति का कोई स्वतन्त्र सामर्थ्य नहीं होता। जितने भी कार्य सम्पन्न हो रहे हैं, वे आध्यात्मिक शक्ति की सहायता के कारण हो रहे हैं। भौतिक शक्ति, जो आध्यात्मिक शक्ति का विकृत रूप है, उससे हर वस्तु विकृत होकर प्रस्तुत होती है; फलस्वरूप द्वैतावस्था तथा भ्रान्ति उत्पन्न होती है। भौतिक विज्ञानी तथा दार्शनिक भौतिक प्रकृति के जादू से वशीभूत होकर यह मान बैठते हैं कि भौतिक शक्ति स्वयमेव कार्य करती है, अतएव बकरी के गले पर लटकते स्तन जैसे दिखने वाले चमड़ी के पिण्ड से दूध प्राप्त करने का प्रयास करने वाले भ्रान्त व्यक्ति की तरह वे हताश हो जाते हैं। जिस तरह चर्म के इन थैलों (स्तनों) से दूध प्राप्त करने की आशा व्यर्थ है, उसी तरह यदि कोई चाहे

कि वह भौतिक शक्ति से पैदा किये गये सिद्धान्त प्रस्तुत करके सृष्टि के मूल कारण को समझने में सफल होगा, तो इसकी कोई सम्भावना नहीं है। ऐसा प्रयास अज्ञानता का सूचक है।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भौतिक शक्ति माया या भ्रमणा कहलाती है, क्योंकि वह दो सामथ्र्यों के कारण (भौतिक तत्त्व प्रदान करके तथा जगत् की सृष्टि करके) बद्धजीव को सृष्टि के वास्तविक सत्य को समझने में अक्षम बनाती है। किन्तु जब जीव पदार्थ के बद्ध जीवन से मुक्त हो जाता है, तब वह भौतिक प्रकृति के दो विभिन्न कार्यों, आच्छादित करने तथा मोहग्रस्त करने को समझ सकता है।

सृष्टि के स्रोत पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। भगवद्गीता (9.10) में पुष्टि की गई है कि यह प्रकट जगत् परमेश्वर के निर्देशन में कार्य कर रहा है, जो भौतिक शक्ति को तीन भौतिक गुण प्रदान करते हैं। इन गुणों से सक्रिय होकर भौतिक शक्ति द्वारा दिये गये तत्त्व नाना प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं, जिस प्रकार एक चित्रकार लाल, पीले तथा नीले-इन तीन रंगों को मिलाकर तरह-तरह के चित्र तैयार करता है। इनमें से पीला रंग सत्त्वगुण का, लाल रजोगुण का और नीला तमोगुण का द्योतक है। अतएव रंगीन भौतिक सृष्टि इन्हीं तीन गुणों की अन्तक्रिया से बनी है और 81 प्रकार के मिश्रण प्रदर्शित करती है। (तीन गुना तीन नौ होता है और नौ गुना नौ 81 होता है।) भौतिक शक्ति से भ्रमित होकर बद्धजीव इन 81 प्रकार की अभिव्यक्तियों से मोहित होकर भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व जताना चाहता है, जिस प्रकार एक पतंगा अग्नि का भोग करना चाहता है। यह भ्रम या मोह बद्धजीव द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपने सनातन सम्बन्ध को भूल जाने का प्रतिफल होता है। बद्ध होने पर भौतिक शक्ति जीव को बाध्य करती है कि वह इन्द्रियतृप्ति में रत हो, जबकि आध्यात्मिक शक्ति से प्रबुद्ध हुआ व्यक्ति अपने सनातन सम्बन्ध के अनुसार भगवान् की सेवा में रत होता है।

कृष्ण आध्यात्मिक जगत् के मूल कारण और भौतिक जगत् के प्रच्छन्न कारण हैं। वे तटस्था शक्ति अर्थात् जीवों के भी मूल कारण हैं। वे उन जीवों के अग्रणी एवं पालक हैं, जो तटस्था शक्ति कहलाते हैं, क्योंकि ये जीव आध्यात्मिक शक्ति के संरक्षण में या भौतिक शक्ति के आवरण के अन्तर्गत कार्य कर सकते हैं। आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव से हम समझ सकते हैं कि केवल कृष्ण में ही स्वतन्त्रता दिखती है और कृष्ण अपनी अचिन्त्य शक्ति द्वारा इच्छानुसार कार्य करने में सक्षम हैं।

भगवान् परम पूर्ण हैं और सारे जीव परम पूर्ण के अंश हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा जीवों का यह सम्बन्ध शाश्वत है। किसी को गलती से यह नहीं सोचना चाहिए कि आध्यात्मिक पूर्ण को क्षुद्र भौतिक शक्ति द्वारा छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटा जा सकता है। भगवद्गीता में इस मायावाद सिद्धान्त का समर्थन नहीं होता, प्रत्युत उसमें यह स्पष्ट कहा गया है कि जीव शाश्वत रूप से सर्वोपरि आध्यात्मिक पूर्ण के छोटे अंश हैं। जिस प्रकार कोई अंश कभी भी पूर्ण के समान नहीं हो सकता, उसी प्रकार परम पूर्ण का क्षुद्र अंश होने के कारण जीव कभी भी परम पूर्ण भगवान् की समता नहीं कर सकता। यद्यपि भगवान् तथा जीव मात्रा की दृष्टि से क्रमशः पूर्ण तथा अंशों के रूप में सम्बन्धित हैं, किन्तु गुण की दृष्टि से सारे अंश पूर्ण के साथ समान हैं। इस तरह यद्यपि सारे जीव गुणात्मक दृष्टि से भगवान् जैसे होते हैं, किन्तु वे सापेक्ष पद पर होते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर सारी वस्तुओं के नियामक हैं और जीव या तो भौतिक शक्ति द्वारा या आध्यात्मिक शक्ति द्वारा सदैव नियन्त्रित होते हैं। अतएव जीव कभी भी भौतिक या आध्यात्मिक शक्तियों का नियन्ता नहीं बन सकता। जीव की स्वाभाविक स्थिति यह है कि वह सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अधीन होता है। जब कोई इस स्थिति में कार्य करना स्वीकार करता है, तो उसे जीवन की पूर्णता प्राप्त होती है, किन्तु इस सिद्धान्त के विरुद्ध विद्रोह करने पर वह बद्ध अवस्था को प्राप्त होता है।

अगण्य, अनन्त व्रत अण्ड-सन्निवेश।

तत-रूपे पुरुष करे सबाते प्रकाश ॥67 ॥

अगण्य-असंख्य; अनन्त-अनन्त; व्रत-सब; अण्ड–ब्रह्माण्ड; सन्निवेश-समूह; तत-रूपे-उतने ही रूपों में; पुरुष-भगवान्; करे-करते हैं; सबाते-उनमें से प्रत्येक में; प्रकाश-प्राकट्य, प्रकाश।

अनुवाद

पुरुष असंख्य ब्रह्माण्डों में से प्रत्येक में प्रवेश करते हैं। वे अपने आपको उतने ही पृथक् रूपों में प्रकट करते हैं, जितने कि ब्रह्माण्ड हैं।

पुरुष-नासाते यबे बाहिराय श्वास।

निश्वास सहिते हय ब्रह्माण्ड-प्रकाश ॥ 68॥

पुरुष-नासाते-भगवान् के नथुनों से; यबे-जब; बाहिराय-बाहर निकलता है; श्वास-श्वास; निश्वास सहिते-नि:श्वास के साथ; हय–होता है; ब्रह्माण्ड-प्रकाश–ब्रह्माण्डों का प्राकट्य।

अनुवाद

जब पुरुष श्वास छोड़ते हैं, तो प्रत्येक उच्छवास के साथ ब्रह्माण्ड प्रकट होते हैं।

पुनरपि श्वास यबे प्रवेशे अन्तरे।

श्वास-सह ब्रह्माण्ड पैशे पुरुष-शरीरे ॥69॥

पुनरपि-तत्पश्चात्; श्वास-श्वास; यबे-जब; प्रवेशे-प्रवेश करता है; अन्तरे-अन्दर; श्वास-सह-उस श्वास के साथ; ब्रह्माण्ड–ब्रह्माण्ड; पैशे-प्रवेश करते हैं; पुरुष-शरीरे-भगवान् के शरीर में।

अनुवाद

तत्पश्चात् जब वे श्वास लेते हैं, तब सारे ब्रह्माण्ड पुनः उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

तात्पर्य

कारणोदकशायी विष्णु के रूप में भगवान् प्रकृति को अपनी दृष्टि से गर्भित करते हैं। उस दृष्टि के दिव्य अणु आत्मा के कण अथवा आध्यात्मिक परमाणु होते हैं, जो विगत वैश्विक प्राकट्यों में उनके व्यक्तिगत कर्म के बीज के अनुसार विभिन्न योनियों में प्रकट होते हैं। भगवान् स्वयं अपने अंश रूप में असंख्य ब्रह्माण्डों का समूह उत्पन्न करते हैं और इन ब्रह्माण्डों में से प्रत्येक में गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रवेश कर जाते हैं। भगवद्गीता में उनका माया के सम्पर्क में आना वायु तथा आकाश के उदाहरण द्वारा समझाया गया है। आकाश प्रत्येक भौतिक वस्तु में प्रवेश करता है, फिर भी यह हमसे दूर रहता है।

गवाक्षेर रन्ध्र येन त्रसरेणु चले ।

पुरुषेर लोम-कूपे ब्रह्माण्डेर जाले ॥ 70 ॥

गवाक्षेर-कमरों की खिड़कियों के; रन्ध्र-छिद्रों के भीतर; येन-की भाँति; त्रसरेणु-छः अणु इकठ्ठ; चले-चलते हैं; पुरुषेर-भगवान् के; लोम-कूपे-रोम-छिद्रों में; ब्रह्माण्डेर-ब्रह्माण्डों के; जाले-जाली।

अनुवाद

जिस प्रकार धूल के छोटे-छोटे कण खिड़की के छेदों से निकल जाते हैं, उसी तरह ब्रह्माण्डों के समूह पुरुष के रोम-छिद्रों से होकर निकल जाते हैं।

यस्यैक-निश्वसित-कालमथावलम्ब्य

जीवन्ति लोम-विलजा जगदण्ड-नाथाः ।

विष्णुर्महान्स इह यस्य कला-विशेषो

गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥ 71॥

यस्य–जिनके; एक-एक; निश्वसित-नि:श्वास के; कालम्-समय; अथ इस प्रकार; अवलम्ब्य का सहारा लेकर; जीवन्ति–जीवित रहते हैं; लोम-विल-जाः-बाल के छिद्रों में विकसित; जगत्-अण्ड-नाथाः–ब्रह्माण्डों के स्वामी (ब्रह्मागण); विष्णुः महान्–परम स्वामी, महाविष्णु; सः-वह; इह-यहाँ; यस्य–जिनका; कला-विशेषः-विशिष्ट अंश या विस्तार; गोविन्दम्-भगवान् गोविन्द; आदि-पुरुषम्-आदि पुरुष; तम्-उनकी; अहम्-मैं; भजामि-पूजा करता हूँ।

अनुवाद

“ब्रह्मागण तथा भौतिक लोकों के अन्य स्वामी महाविष्णु के रोमछिद्रों से उत्पन्न होते हैं और उनके एक उच्छवास-काल तक जीवित रहते हैं। मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, महाविष्णु जिनके पूर्ण अंश के अंश हैं।”

तात्पर्य

भगवान् की सृजन-शक्ति का यह वर्णन ब्रह्म-संहिता (5.48) से लिया गया है, जिसकी रचना ब्रह्माजी ने आत्म-साक्षात्कार होने के बाद की। जब महाविष्णु श्वास छोड़ते हैं, तो ब्रह्माण्ड के आध्यात्मिक बीज अणुओं जैसे कणों के रूप में उनसे प्रकट होते हैं। ये कण परमाणु के आकार से तिगुने होते हैं और उन धूल-कणों जैसे हैं, जो एक छोटे-से छेद में से होकर सूर्य की किरणों में दिखते

हैं। आज के परमाणु-शोध के दिनों में परमाणु विज्ञानियों के लिए यह जानना सार्थक होगा कि सारा ब्रह्माण्ड किस तरह भगवान् के शरीर से निकलने वाले आध्यात्मिक परमाणुओं से विकसित होता है।

क्वाहं तमो-महदहं-ख-चराग्नि-वार्मू-

संवेष्टिताण्ड-घट-सप्त-वितस्ति-कायः ।

क्वेदृग्विधाविगणिताण्ड-पराणु-च-

वाताध्व-रोम-विवरस्य च ते महित्वम् ॥72॥

क्व–कहाँ; अहम्-मैं; तमः-भौतिक प्रकृति; महत्–समग्र भौतिक शक्ति; अहम्-मिथ्या अहंकार; ख-आकाश; चर–वायु; अग्नि-अग्नि; वाः-जल; भू-पृथ्वी; संवेष्टित-से घिरे हुए; अण्ड-घट-घड़े जैसे ब्रह्माण्ड से; सप्त-वितस्ति-सात बलिश्त; कायः-शरीर; क्व–कहाँ; ईदृक्-ऐसा; विध-जैसा; अविगणित-असीम; अण्ड-ब्रह्माण्ड; पर-अणु-चर्या–बारीक धूल की तरह उड़ती हुई; वात-अध्व–वायु छिद्र; रोम-शरीर पर के बाल के; विवरस्य–छिद्रों की; च-और; ते-आपकी; महित्वम्-महिमा।

अनुवाद

“मैं अपने हाथ के सात बित्ताओं के माप वाला क्षुद्र प्राणी कहाँ हूँ? मैं भौतिक प्रकृति, समग्र भौतिक शक्ति, मिथ्या अहंकार, आकाश, वायु, जल तथा पृथ्वी से निर्मित इस ब्रह्माण्ड से घिरा हुआ हूँ। और आपकी महिमा क्या है? आपके शरीर के रोमकूपों से असंख्य ब्रह्माण्ड उसी तरह निकल रहे हैं, जिस प्रकार खिड़की के छेद से धूल के कण निकलते हैं।”

तात्पर्य

जब ब्रह्माजी ने कृष्ण के सारे बछड़ों तथा ग्वालबालों को चुरा लिया और लौटकर देखा कि सारे बछड़े तथा बालक अब भी कृष्ण के साथ घूम रहे हैं, तो उन्होंने अपनी हार मानकर यह स्तुति की। (श्रीमद्भागवत 10.14.11) एक बद्धजीव, यहाँ तक कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड के कार्यों की व्यवस्था करने वाले ब्रह्माजी जैसे महान् जीव भी भगवान् के साथ अपनी तुलना नहीं कर सकते, क्योंकि भगवान् अपने शरीर के छिद्रों से निकलने वाली आध्यात्मिक किरणों मात्र से असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न कर सकते हैं। भौतिक विज्ञानियों को चाहिए कि वे श्री ब्रह्माजी की स्तुति से, ईश्वर की तुलना में हमारी तुच्छता के विषय में शिक्षा ग्रहण करें। ब्रह्माजी की इन स्तुतियों में उन लोगों के सीखने के लिए बहुत कुछ है, जो शक्ति का संचय करके मिथ्या गर्व से फूले रहते हैं।

अंशेर अंश येइ, ‘कला’ तार नाम ।

गोविन्देर प्रतिमूर्ति श्री-बलराम ॥73॥

अंशेर-अंश का; अंश-अंश; येइ-वह जो; कला-कला या पूर्णांश का अंश; तार–इसका; नाम-नाम; गोविन्देर-भगवान् गोविन्द का; प्रति-मूर्ति-प्रतिमूर्ति; श्री-बलराम-भगवान् बलराम।

अनुवाद

सम्पूर्ण के अंश का अंश ‘कला' कहलाता है। श्री बलराम तो भगवान् गोविन्द के प्रतिरूप हैं।

ताँर एक स्वरूप–श्री-महा-सङ्कर्षण ।

ताँर अंश ‘पुरुष’ हय कलाते गणन ॥ 74॥

ताँर-उनका; एक-एक; स्वरूप-स्वरूप; श्री-महा-सङ्कर्षण- भगवान् महा संकर्षण; ताँर-उनका; अंश-अंश; पुरुष–महाविष्णु अवतार; हय-है; कलाते गणन-कला माने जाते हैं।

अनुवाद

बलराम के निजी विस्तार महासंकर्षण कहलाते हैं और उनके अंश 'पुरुष' कला (अर्थात् पूर्ण अंश के अंश) कहलाते हैं।

याँहाके त' कला कहि, तिंहो महा-विष्णु ।

महा-पुरुषावतारी तेंहो सर्व-जिष्णु ॥75॥

याँहाके–जिनको; त'–निश्चय ही; कला कहि-मैं कला कहता हूँ; तिंहो-वे; महा-विष्णु-भगवान् महाविष्णु; महा-पुरुषावतारी–महाविष्णु, अन्य पुरुष अवतारों के उद्गम; तेंहो-वे; सर्व-जिष्णु-सर्वव्यापक।

अनुवाद

मैं कहता हूँ कि यह कला महाविष्णु हैं। वे महापुरुष हैं, जो अन्य पुरुषों के स्रोत हैं और जो सर्वव्यापी हैं।

गर्भोद-क्षीरोद-शायी दोंहे 'पुरुष' नाम ।

सेइ दुइ, झाँर अंश, विष्णु, विश्व-धाम ॥ 76 ॥

गर्भ-उद-ब्रह्माण्ड में गर्भोदक नाम से जाने जाने वाले सागर में; क्षीर-उद-शायी-जो क्षीरोदक सागर में लेटते हैं; दोंहे-उनमें से दोनों; पुरुष नाम-पुरुष के नाम से विख्यात भगवान् विष्णु; सेइ-वे; दुइ-दोनों; याँर अंश-जिनके पूर्ण अंश; विष्णु विश्व-धाम-सभी ब्रह्माण्डों के धाम भगवान् विष्णु।

अनुवाद

गर्भोदकशायी तथा क्षीरोदकशायी दोनों पुरुष कहलाते हैं। वे प्रथम पुरुष और समस्त ब्रह्माण्डों के धाम कारणोदकशायी विष्णु के पूर्ण अंश हैं।

तात्पर्य

लघु भागवतामृत में पुरुष के लक्षण वर्णित किये गये हैं। ग्रंथकार ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अवतारों का वर्णन करते हुए विष्णु पुराण (6.8.59) से प्रमाण दिया है, जिसमें कहा गया है, "मैं उन पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को सादर नमस्कार करता हूँ, जो छह प्रकार के भौतिक द्वैतों के कल्मष से सदैव मुक्त रहते हैं, जिनके पूर्ण अंश महाविष्णु जगत् की सृष्टि करने के लिए पदार्थ पर दृष्टिपात करते हैं; जो एकजैसे अनेक दिव्य रूपों में अपना विस्तार करते हैं; जो सारे जीवों के स्वामी हैं, जो भौतिक शक्ति के कल्मष से सदैव मुक्त रहने वाले हैं और जो इस भौतिक जगत् में प्रकट होने पर हमारे समान प्रतीत होते हैं, यद्यपि उनका रूप सदैव आध्यात्मिक, आनन्दमय तथा दिव्य होता है।" रूप गोस्वामी ने इस कथन के सार रूप में बतलाया है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का वह पूर्ण विस्तार जो भौतिक शक्ति के सहयोग से कार्य करता है, पुरुष कहलाता है।

विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः ।

एकं तु महतः स्रष्ट द्वितीयं त्वण्ड-संस्थितम् ।

तृतीयं सर्व-भूत-स्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते ॥77॥

विष्णोः-भगवान् विष्णु का; तु–निश्चित रूप से; त्रीणि-तीन; रूपाणि-रूप; पुरुष-आख्यानि-पुरुष के रूप में विख्यात; अथो-कैसे; विदुः-वे जानते हैं; एकम्-उनमें से एक; तु–किन्तु; महतः स्रष्टु–समग्र भौतिक शक्ति के स्रष्टा; द्वितीयम्-दूसरा; तु–किन्तु; अण्ड-संस्थितम् ब्रह्माण्ड में स्थित; तृतीयम्-तीसरा; सर्व-भूत-स्थम्-सर्व जीवों के हृदय में; तानि-ये तीन; ज्ञात्वा-जानकर; विमुच्यते-मुक्त हो जाता है।

अनुवाद

"विष्णु के तीन रूप हैं, जो पुरुष कहलाते हैं। पहला रूप महाविष्णु है, जो सम्पूर्ण भौतिक शक्ति (महत्) के स्रष्टा हैं, दूसरा रूप गर्भोदकशायी है, जो प्रत्येक ब्रह्माण्ड में स्थित रहते हैं और तीसरा रूप क्षीरोदकशायी है, जो हर जीव के हृदय में निवास करते हैं। जो व्यक्ति इन तीनों को जानता है, वह माया के चंगुल से मुक्त हो जाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक लघु भागवतामृत (पूर्व खण्ड 2.9) में आया है, जिसे सात्वत तन्त्र से लिया गया है।

यद्यपि कहिये तौँरे कृष्णेर 'कला' करि।

मत्स्य-कूर्माद्यवतारेर तिंहो अवतारी ॥78॥

यद्यपि यद्यपि; कहिये-मैं कहता हूँ; तौरे–उनको; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; कला-अंश का अंश; करि–करके; मत्स्य-मत्स्य अवतार; कूर्म-आदि-कूर्मावतार आदि; अवतारेर–इन सभी अवतारों के; तिंहो-वे; अवतारी-मूल स्रोत।

अनुवाद

यद्यपि कारणोदकशायी विष्णु को भगवान् कृष्ण की 'कला' कहा जाता है, किन्तु वे मत्स्य, कूर्म तथा अन्य अवतारों के उद्गम हैं।

एते चांश-कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ।

इन्द्रारि-व्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे ॥79॥

एते-ये सारे; च-भी; अंश-कलाः-अंश के अंश; पुंसः-परम पुरुष के; कृष्णः तु-किन्तु भगवान् कृष्ण; भगवान्-आदि भगवान्; स्वयम्-स्वयं; इन्द्र-अरि-दैत्य; व्याकुलम्-व्याकुल; लोकम्-सभी लोक; मृड़यन्ति–उन्हें प्रसन्न करते हैं; युगे युगे-विभिन्न युगों में।

अनुवाद

"भगवान् के ये सारे अवतार या तो पुरुषावतारों के पूर्ण अंश हैं या पूर्णांशों अंश हैं। किन्तु कृष्ण तो स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। जब संसार इन्द्र के शत्रुओं से व्याकुल हो जाता है, तब वे प्रत्येक युग में अपने विभिन्न स्वरूपों के द्वारा संसार की रक्षा करते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.3.28) का है।

सेइ पुरुष सृष्टि-स्थिति-प्रलयेर कर्ता ।

नाना अवतार करे, जगतेर भर्ता ॥80॥

सेइ-वे; पुरुष- भगवान्; सृष्टि-स्थिति-प्रलयेर-सृष्टि, पालन तथा प्रलय; कर्ता-करने वाले; नाना-विभिन्न; अवतार–अवतार; करे-करते हैं; जगतेर–भौतिक जगत् के; भर्ता-पालक।

अनुवाद

वे पुरुष (कारणोदकशायी विष्णु) सृजन, पालन और संहार करने वाले हैं। वे नाना अवतारों में अपने आपको प्रकट करते हैं, क्योंकि वे जगत् के पालनहार हैं।

सृष्ट्यादि-निमित्ते येइ अंशेर अवधान ।

सेइ त' अंशेरे कहि 'अवतार' नाम ॥81॥

सृष्टि-आदि-निमित्ते-सृष्टि, पालन एवं विनाश के लिए; येइ-जो; अंशेर अवधान-अंश को प्रकट करनेवाले; सेइ त'–निश्चय ही वे; अंशेरे कहि-मैं उस पूर्णांश अवतार के विषय में कहता हूँ; अवतार नाम-"अवतार" के नाम से।

अनुवाद

सृजन, पालन तथा संहार के निमित्त प्रकट होने वाले भगवान् के अंश, जो महापुरुष के नाम से जाने जाते हैं, अवतार कहलाते हैं।

आद्यावतार, महा-पुरुष, भगवान् ।

सर्व-अवतार-बीज, सर्वाश्रय-धाम ॥ 82॥

आद्य-अवतार-आदि अवतार; महा-पुरुष- भगवान् महाविष्णु; भगवान्-भगवान्; सर्व-अवतार-बीज-सभी अवतारों के बीज; सर्व-आश्रय-धाम-सबके आश्रय।

अनुवाद

वे महापुरुष भगवान् से अभिन्न हैं। वे मूल अवतार, अन्य सबके बीज तथा हर वस्तु के आश्रय हैं।

आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य

कालः स्वभावः सदसन्मनश्च ।

द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि

विराट्स्वराट्स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥83॥

आद्यः अवतारः-आदि अवतार; पुरुषः-महाविष्णु; परस्य-भगवान् का; कालः–काल; स्वभावः-स्वभाव; सत्-असत्-कार्य तथा कारण; मनः च-और मन; द्रव्यम्-पाँच तत्त्व; विकारः-मिथ्या अहंकार का विकार; गुणः-प्रकृति के गुण; इन्द्रियाणि-इन्द्रियाँ; विराट्-विराट् रूप; स्वरा-पूर्ण स्वतंत्रता; स्थास्नु-अचर; चरिष्णु-चर; भूम्नः-परम भगवान् का।

अनुवाद

“पुरुष (महाविष्णु) पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रमुख अवतार हैं। काल, स्वभाव, प्रकृति (कार्य-कारण के रूप में), मन, भौतिक तत्त्व, मिथ्या अहंकार, प्रकृति के गुण, इन्द्रियाँ, विराट् रूप, पूर्ण स्वतन्त्रता तथा चर और अचर प्राणी अन्ततः उनके ऐश्वर्य रूप में प्रकट होते हैं।”

तात्पर्य

लघु भागवतामृत में अवतारों एवं उनके लक्षणों का वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि जब भगवान् कृष्ण भौतिक जगत् के सृजनात्मक कार्यकलाप चलाने के लिए अवतरित होते हैं, तो वे अवतार कहलाते हैं। अवतारों की दो कोटियाँ हैं- शक्त्यावेश भक्त तथा तएकात्म रूप (स्वयं भगवान्)। तएकात्म रूप के उदाहरण शेष हैं और भक्त के उदाहरण श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव हैं। श्रील बलदेव विद्याभूषण ने टीका की है कि यह भौतिक जगत् ईश्वर का आंशिक राज्य है, जहाँ विशेष कार्य सम्पन्न करने के लिए भगवान् कभी-कभी प्रकट होते हैं। भगवान् कृष्ण जिस अंश के द्वारा ऐसे कार्य सम्पन्न करते हैं, वे महाविष्णु कहलाते हैं, जो समस्त अवतारों के शुभारम्भ हैं। अनुभवहीन वैज्ञानिक मान लेते हैं कि भौतिक शक्ति भौतिक जगत् के लिए कारण तथा अवयव दोनों प्रदान करती है और जीव भौतिक प्रकृति के भोक्ता हैं। किन्तु भागवत विचारधारा के भक्त सारी स्थिति की सूक्ष्म छानबीन कर लेने के बाद समझ सकते हैं कि भौतिक प्रकृति न तो स्वतन्त्र रूप से भौतिक अवयवों की पूर्ति कर सकती है, न ही भौतिक जगत् का कारण बन सकती है। भौतिक प्रकृति महापुरुष महाविष्णु के दृष्टिपात से ही भौतिक सामग्री की पूर्ति करने की क्षमता प्राप्त करती है और उनसे शक्ति प्राप्त कर लेने पर वह भौतिक जगत् की कारण कहलाती है। भौतिक प्रकृति के ये दोनों गुण-भौतिक जगत् का कारण तथा इसकी सामग्री का स्रोत होना-परमेश्वर के दृष्टिपात के कारण विद्यमान हैं। भगवान् के वे विभिन्न विस्तार जो भौतिक प्रकृति को शक्ति प्रदान करते हैं, वे पूर्ण विस्तार या अवतार कहलाते हैं। जिस प्रकार एक दीप से अनेक दीप प्रज्वलित किये जा सकते हैं, उसी तरह ये सारे पूर्ण विस्तार तथा अवतार विष्णु के तुल्य ही होते हैं। फिर भी माया को नियन्त्रित करने के कार्यकलापों के कारण वे कभी-कभी मायिक अर्थात् माया से सम्बन्धित कहलाते हैं। यह श्लोक श्रीमद्भागवत (2.6.42) से लिया गया है।

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ।

सम्भूतं षोड़श-कलमादौ लोक-सिसृक्षया ॥ 84॥

जगृहे स्वीकार किया; पौरुषम्-पुरुष अवतार; रूपम्-रूप; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; महत्-आदिभिः–समग्र भौतिक शक्ति आदि से; सम्भूतम्-उत्पन्न हुई; षोड़श-सोलह; कलम्-शक्तियाँ; आदौ-शुरू में; लोक–भौतिक लोक; सिसृक्षया-निर्माण करने की इच्छा से।

अनुवाद

"सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् ने भौतिक सृष्टि के समस्त अवयवों (उपादानों) के साथ पुरुष अवतार के रूप में अपना विस्तार किया। सर्वप्रथम उन्होंने सृष्टि के लिए उपयुक्त सोलह प्रधान शक्तियों का सृजन किया। ऐसा उन्होंने भौतिक ब्रह्माण्डों को प्रकट करने के उद्देश्य से किया।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.3.1) का है। श्रीमद्भागवत पर मध्व की टीका में बतलाया गया है कि आध्यात्मिक जगत् में निम्नलिखित सोलह आध्यात्मिक शक्तियाँ पाई जाती हैं :

(1) श्री, (2) भू, (3) लीला, (4) कान्ति, (5) कीर्ति, (6) तुष्टि, (7) गीर्, (8) पुष्टि, (9) सत्या, (10) ज्ञानाज्ञान, (11) जया उत्कर्षिणी, (12) विमला, (13) योगमाया, (14) प्रह्वी, (15) ईशाना तथा (16) अनुग्रहा। श्री बलदेव विद्याभूषण ने लघु भागवतामृत के अपने भाष्य में बतलाया है कि उपर्युक्त सोलह शक्तियाँ अन्य नौ नामों से भी जानी जाती हैं : (1) विमला, (2) उत्कर्षिणी, (3) ज्ञाना, (4) क्रिया, (5) योगा, (6) प्रह्वी, (7) सत्या, (8) ईशाना तथा (9) अनुग्रहा। श्रील जीव गोस्वामी ने भागवत् सन्दर्भ (श्लोक 103) में इनके नाम इस प्रकार गिनाये हैं-श्री, पुष्टि, गीर्, कान्ति,

कीर्ति, तुष्टि, इला, जया, विद्याविद्या, माया, सम्वित्, सन्धिनी, ह्लादिनी, भक्ति, मूर्ति, विमला, योगा, प्रह्वी, ईशाना, अनुग्रहा इत्यादि। ये सारी शक्तियाँ भगवान् के प्रभाव के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करती हैं।

यद्यपि सर्वाश्रय तिंहो, ताँहाते संसार।

अन्तरात्मा-रूपे तिंहो जगताधार ॥ 85॥

यद्यपि यद्यपि; सर्व-आश्रय-सबके आश्रय; तिंहो-वे (भगवान्); ताँहाते-उनमें; संसार-संसार, भौतिक सृष्टि; अन्तः-आत्मा-रूपे-अन्तरात्मा (परमात्मा) के रूप में; तिंहो-वे; जगत्-आधार-सारे जगत् के आश्रय।

अनुवाद

यद्यपि भगवान् हर वस्तु के आश्रय हैं और सारे ब्रह्माण्ड उन्हीं पर आश्रित हैं, किन्तु वे परमात्मा रूप में प्रत्येक वस्तु के आधार भी हैं।

प्रकृति-सहिते ताँर उभय सम्बन्ध।

तथापि प्रकृति-सह नाहि स्पर्श-गन्ध ॥86॥

प्रकृति-सहिते-भौतिक शक्ति के साथ; ताँर–उनका; उभय सम्बन्ध-दोनों सम्बन्ध; तथापि तथापि; प्रकृति-सह-भौतिक प्रकृति के साथ; नाहि-नहीं है; स्पर्श-गन्ध-तनिक भी सम्बन्ध।

अनुवाद

इस तरह यद्यपि वे भौतिक शक्ति से दो प्रकार से जुड़े हुए हैं, तो भी उसके साथ उनका रंचमात्र भी सम्बन्ध नहीं है।

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी लघु भागवतामृत में भगवान् की गुणातीत दिव्य स्थिति पर टीका करते हुए कहते हैं कि भौतिक प्रकृति के नियन्ता तथा अध्यक्ष होने के कारण विष्णु का सम्बन्ध भौतिक गुणों से है। यह सम्बन्ध योग कहलाता है। किन्तु जो व्यक्ति बन्दीगृह की देखभाल करता है, वह बन्दी भी हो, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार यद्यपि भगवान् विष्णु गुणात्मक प्रकृति की अध्यक्षता या संचालन करते हैं, किन्तु प्रकृति के भौतिक गुणों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। भगवान् विष्णु के विस्तार सदैव अपनी श्रेष्ठता बनाये रखते हैं; वे कभी भी भौतिक गुणों से सम्बन्धित नहीं होते। कोई यह तर्क कर सकता है कि महाविष्णु का भौतिक गुणों से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि यदि वे इस तरह सम्बन्धित होते, तो श्रीमद्भागवत में यह न कहा गया होता कि भौतिक प्रकृति लज्जा के मारे भगवान् के पीछे रहती है, क्योंकि वह जीवों को भगवान् से विमुख बनाने का प्रशंसारहित कार्य करती है। इस तर्क के उत्तर में कहा जा सकता है कि गुण शब्द का अर्थ है "नियमन"। इस ब्रह्माण्ड में भगवान् विष्णु, ब्रह्माजी तथा शिवजी प्रकृति के तीनों गुणों के नियन्ता के रूप में हैं और इन गुणों के साथ उनका सम्बन्ध योग कहलाता है। किन्तु इससे यह सूचित नहीं होता कि ये तीनों महापुरुष प्रकृति के गुणों से बँधे हैं। विशेषतया, भगवान् विष्णु सदा इन तीनों गुणों के नियन्ता रहते हैं। अतएव उनका इन गुणों के वश में होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यद्यपि प्रकृति में उत्पत्ति तथा उपादान-आपूर्ति के गुण भगवान् द्वारा दृष्टिपात के कारण होते हैं, किन्तु इस दृष्टिपात से भगवान् पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यद्यपि भगवान् की इच्छा से भौतिक

जगत् में विभिन्न गुणात्मक परिवर्तन होते हैं, किन्तु भगवान् विष्णु में किसी प्रकार का भौतिक लगाव, परिवर्तन या विकार आने की कोई सम्भावना नहीं होती।

एतदीशनमीशस्य प्रकृति-स्थोऽपि तद्गुणैः ।

न युज्यते सदात्म-स्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥87॥

एतत्-यह है; ईशनम्-ऐश्वर्य; ईशस्य-भगवान् का; प्रकृति-स्थः-इस भौतिक जगत् में; अपि–यद्यपि; तत्-गुणैः-भौतिक गुणों से; न युज्यते-कभी प्रभावित नहीं होते; सदा-सदा; आत्म-स्थैः-अपनी ही शक्ति में स्थित; यथा-जैसे; बुद्धिः-बुद्धि; तत्-उनके; आश्रया-भक्त।

अनुवाद

"यह भगवान् का ऐश्वर्य है कि वे भौतिक प्रकृति के भीतर रहते हुए भी प्रकृति के गुणों से कभी प्रभावित नहीं होते। इसी प्रकार जिन लोगों ने उनकी शरण ग्रहण की है तथा जिन्होंने अपनी बुद्धि को उनमें स्थिर कर रखा है, वे प्रकृति के गुणों से प्रभावित नहीं होते।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.11.38) का है।

एइ मत गीतातेह पुनः पुनः कय ।

सर्वदा ईश्वर-तत्त्व अचिन्त्य-शक्ति हय ॥88॥

एइ मत-इस प्रकार; गीतातेह-भगवद्गीता में; पुनः पुनः–बारम्बार; कय–कहा गया है; सर्वदा-सदा; ईश्वर-तत्त्व-परम सत्य का तत्त्व; अचिन्त्य-शक्ति हय-अचिन्त्य है।

अनुवाद

इस प्रकार भगवद्गीता भी बारम्बार कहती है कि परम सत्य में सदैव अचिन्त्य शक्ति होती है।

आमि त' जगते वसि, जगतामाते ।

ना आमि जगते वसि, ना आमा जगते ॥89॥

आमि-मैं; त'–निश्चय ही; जगते-भौतिक जगत् में; वसि-स्थित; जगत्-सारी भौतिक सृष्टि; आमाते-मुझमें; ना-नहीं; आमि-मैं; जगते-भौतिक जगत् में; वसि-स्थित; ना-नहीं; आमा–मुझमें; जगते-भौतिक जगत्।

अनुवाद

(भगवान् कृष्ण ने कहा :) "मैं भौतिक जगत् में स्थित हूँ और यह जगत् मुझ पर आश्रित है। तथापि इसके साथ ही मैं न तो भौतिक जगत् में स्थित हूँ, न वह सचमुच ही मुझ पर आश्रित है।

तात्पर्य

भगवान् की इच्छा से शक्ति प्राप्त हुए बिना किसी प्रकार का अस्तित्व सम्भव नहीं है। अतएव सारा दृश्य जगत् भगवान् की शक्ति पर आश्रित है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि भौतिक जगत् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से एक है। बादल आकाश में रह सकता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आकाश तथा बादल एक हैं। इसी प्रकार गुणात्मक भौतिक प्रकृति और इसके पदार्थ कभी भी परमेश्वर से अभिन्न नहीं होते। भौतिक प्रकृति या माया के ऊपर प्रभुत्व जताने की प्रवृत्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का गुण नहीं हो सकती। जब वे भौतिक जगत् में अवतरित होते हैं, तो वे

अपना आध्यात्मिक स्वभाव बनाये रखते हैं और भौतिक गुणों से एक नहीं होते। वे आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों ही जगतों में सारी शक्तियों के सदैव नियन्ता होते हैं। उनका दिव्य स्वभाव सदैव अकलुषित रहता है। भगवान् अपनी लीलाओं के लिए भौतिक जगत् में विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं और अन्तर्धान होते हैं; फिर भी वे समस्त प्राकट्यों के उद्गम हैं।

भौतिक जगत् का भगवान् से पृथक् अस्तित्व कभी भी नहीं हो सकता, किन्तु भौतिक प्रकृति से उनका सम्बन्ध रहने पर भी वे प्रकृति के प्रभाव के कभी अधीन नहीं होते। उनका शाश्वत आनन्द तथा ज्ञान का मूल रूप कभी भी भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के अधीन नहीं होता। भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों की यही विशिष्टता है।

अचिन्त्य ऐश्वर्य एइ जानिह आमार।

एइ त' गीतार अर्थ कैल परचार॥ 90॥

अचिन्त्य-अचिन्त्य; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; एइ-यह; जानिह-तुम्हें जानना चाहिए। आमार-मेरा; एइ त'-यह; गीतार अर्थ- भगवद्गीता का अर्थ; कैल परचार-भगवान् कृष्ण ने प्रचार किया।

अनुवाद

"हे अर्जुन, तुम इसे मेरा अचिन्त्य ऐश्वर्य समझो।" भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने इसी अर्थ का प्रचार किया है।

सेइ त' पुरुष याँर 'अंश' धरे नाम।

चैतन्येर सङ्गे सेइ नित्यानन्द-राम॥ 91॥

सेइ त’-वह; पुरुष–परम पुरुष; याँर–जिनका; अंश-अंश; धरे नाम-जाना जाता है; चैतन्येर सड़े-चैतन्य महाप्रभु के साथ; सेइ-वह; नित्यानन्द-राम-भगवान् नित्यानन्द अथवा बलराम।

अनुवाद

नवे महापुरुष (कारणोदकशायी विष्णु) चैतन्य महाप्रभु के प्रिय संगी भगवान् नित्यानन्द बलराम के पूर्ण अंश हैं।

एइ त’ नवम श्लोकेर अर्थ-विवरण ।

दशम श्लोकेर अर्थ शुन दिया मन ॥92॥

एइ त’-इस प्रकार; नवम श्लोकेर-नवम श्लोक का; अर्थ-विवरण-अर्थ का वर्णन; दशम श्लोकेर-दशमें श्लोक का; अर्थ-अर्थ; शुन-सुनो; दिया मन-ध्यान देकर।

अनुवाद

इस तरह मैंने नवें श्लोक की व्याख्या कर दी है और अब मैं दसवें श्लोक की व्याख्या करूँगा। कृपया ध्यानपूर्वक सुनें।

यस्यांशांशः श्रील-गर्भाद-शायी

यन्नाभ्यब्जे लोक-सङ्घात-नालम् ।

लोक-स्रष्टुः सूतिका-धाम धातुस्

तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥ 93॥

यस्य–जिनके; अंश-अंशः-स्वांश का अंश; श्रील-गर्भ-उद-शायी-गर्भोदकशायी विष्णु; यत्-जिनका; नाभि-अब्जम्-नाभि कमल; लोक-सङ्गात-लोक समूह; नालम्-नाल जो स्तम्भ अथवा आधार है; लोक-स्रष्टुः-ग्रहों के स्रष्टा ब्रह्माजी; सूतिका-धाम-जन्म स्थान; धातुः-स्रष्टा का; तम्-उनको; श्री-नित्यानन्द-रामम्-भगवान् नित्यानन्द के रूप में भगवान् बलराम की; प्रपद्ये-मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

अनुवाद

मैं उन श्री नित्यानन्द राम के चरणों में नमस्कार करता हूँ, जिनके पूर्णांश के अंश गर्भोदकशायी विष्णु हैं। इन गर्भोदकशायी विष्णु की नाभि से कमल उत्पन्न होता है, जो ब्रह्माण्ड के शिल्पी ब्रह्मा का जन्मस्थान है। इस कमल की नाल असंख्य लोकों का विश्राम-स्थल है।

तात्पर्य

महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गया है कि जो प्रद्युम्न हैं, वे ही अनिरुद्ध हैं। वे ही ब्रह्मा के पिता भी हैं। इस तरह गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु कमल से उत्पन्न ब्रह्मा के आदि देव प्रद्युम्न के पूर्णांश विस्तारों से अभिन्न हैं। प्रद्युम्न ही ब्रह्मा को जगत् की व्यवस्था का निर्देश देते हैं। श्रीमद्भागवत (3.8.15-16) में ब्रह्मा के जन्म का पूरा विवरण दिया हुआ है।

तीनों पुरुषों के लक्षणों का वर्णन करते हुए लघु भागवतामृत में कहा गया है कि गर्भोदकशायी विष्णु का रूप चतुर्भुज है। जब वे स्वयं ब्रह्माण्ड के भीतर प्रविष्ट होते हैं और क्षीरसागर में लेट जाते हैं, तब वे क्षीरोदकशायी विष्णु कहलाते हैं, जो समस्त जीवों तथा देवताओं के परमात्मा हैं। सात्वत तन्त्र में कहा गया है कि तृतीय पुरुषावतार क्षीरोदकशायी विष्णु हर एक के हृदय में

परमात्मा के रूप में स्थित हैं। ये क्षीरोदकशायी विष्णु लीलाओं के लिए गर्भोदकशायी विष्णु के एक विस्तार हैं।

सेइ त' पुरुष अनन्त-ब्रह्माण्ड सृजिया।

सब अण्डे प्रवेशिला बहु-मूर्ति हञा ॥94॥

सेइ-वह; त'–निश्चित रूप से; पुरुष–अवतार; अनन्त-ब्रह्माण्ड–अनन्त ब्रह्माण्ड; सृजिया-सृष्टि करके; सब-सब; अण्डे-अण्ड रूप ब्रह्माण्डों में; प्रवेशिला-प्रविष्ट हुए; बहु-मूर्ति हञा–विविध रूपों में।

अनुवाद

करोड़ों ब्रह्माण्डों की रचना करने के बाद प्रथम पुरुष श्री गर्भोदकशायी के रूप में हर एक ब्रह्माण्ड में भिन्न रूप से प्रविष्ट हो गये।

भितरे प्रवेशि' देखे सब अन्धकार।

रहिते नाहिक स्थान करिल विचार ॥ 95॥

भितरे–ब्रह्माण्ड के भीतर; प्रवेशि'–प्रविष्ट होकर; देखे-वे देखते हैं; सब-सब; अन्धकार-अन्धकार; रहिते-रहने के लिए; नाहिक-नहीं है; स्थान-स्थान; करिल विचार-विचार किया।

अनुवाद

ब्रह्माण्ड में प्रवेश करने पर उन्होंने केवल अंधकार देखा, जहाँ रहने योग्य कोई स्थान न था। तब वे इस प्रकार विचार करने लगे।

निजाङ्ग-स्वेद-जल करिल सृजन।

सेइ जले कैल अर्ध-ब्रह्माण्ड भरण ॥96॥

निज-अङ्ग–अपने ही शरीर के; स्वेद-जल-पसीने का पानी; करिल–किया; सृजन-सृजन; सेइ जले-उसी जल से; कैल-किया; अर्ध-ब्रह्माण्ड-आधा ब्रह्माण्ड; भरण-भर दिया।

अनुवाद

तब उन्होंने अपने शरीर के पसीने से जल उत्पन्न किया और उस जल से आधा ब्रह्माण्ड भर दिया।

ब्रह्माण्ड-प्रमाण पञ्चाशत्कोटि-योजन।

आयाम, विस्तार, दुइ हय एक सम ॥ 97॥

ब्रह्माण्ड-प्रमाण-ब्रह्माण्ड की माप; पञ्चाशत्-पचास; कोटि-करोड़; योजन-आठ मील की लम्बाई, योजन; आयाम-लम्बाई; विस्तार-चौड़ाई; दुई–दोनों; हय-हैं; एक सम–एक समान।

अनुवाद

ब्रह्माण्ड की माप पचास करोड़ योजन है। इसकी लम्बाई तथा चौड़ाई एकसमान है।

जले भरि' अर्ध ताँहा कैल निज-वास।

आर अर्धे कैल चौद्द-भुवन प्रकाश ॥98॥

जले-जल से; भरि'–भरकर; अर्ध-आधा; ताँहा-वहाँ; कैल-किया; निज-वास-अपना निवास; आर-अन्य, दूसरे; अर्धे-आधे में; कैल-किये; चौद्द-भुवन-चौदह भुवन; प्रकाश-प्रकट।

अनुवाद

जब आधा ब्रह्माण्ड जल से भर गया, तो उन्होंने उसी में अपना निवासस्थान बनाया और शेष आधे में चौदह भुवन प्रकट किये।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध के पाँचवे अध्याय में 14 भुवनों के नाम गिनाये गये हैं। ऊपरी लोक हैं (1) भू, (2) भुवर्, (3) स्वर्, (4) महर्, (5) जनस्, (6) तपस् तथा (7) सत्य। सात अधोलोक हैं-(1) तल, (2) अतल, (3) वितल, (4) नितल, (5) तलातल, (6) महातल तथा (7) सुतल। सारे अधोलोक मिलकर पाताल कहलाते हैं। ऊपरी लोकों में भू, भुवर् तथा स्वर् स्वर्गलोक कहलाते हैं और शेष मर्त्यलोक कहलाते हैं। इस तरह समस्त ब्रह्माण्ड त्रिलोक कहलाता है।

ताँहाइ प्रकट कैल वैकुण्ठ निज-धाम ।

शेष-शयन-जले करिल विश्राम ॥ 99॥

ताँहाइ-वहाँ; प्रकट-प्रकट; कैल-किया; वैकुण्ठ-वैकुण्ठ लोक; निज-धाम-अपना धाम; शेष-भगवान् शेष की; शयन–शय्या पर; जले-जल में; करिल-किया; विश्राम-विश्राम।

अनुवाद

वहाँ उन्होंने अपने धाम के रूप में वैकुण्ठ को प्रकट किया और भगवान् शेष की शय्या पर वे जल में विश्राम करने लगे।

अनन्त-शय्याते ताँहा करिल शयन ।

सहस्र मस्तक ताँर सहस्र वदन ॥100 ॥

सहस्र-चरण-हस्त, सहस्र-नयन ।

सर्व-अवतार-बीज, जगत्कारण ॥101॥

अनन्त-शय्याते-भगवान् अनन्त को शय्या बनाकर; ताँहा-वहाँ; करिल शयन-शयन किया, लेट गये; सहस्र-हजारों; मस्तक-शीर्ष; ताँर-उनके; सहस्र वदन-हजारों मुख; सहस्र-सहस्रों; चरण-चरण; हस्त-हाथ; सहस्र-नयन-हजारों नेत्र; सर्व-अवतार-बीज-सभी अवतारों के बीज; जगत्-कारण-भौतिक संसार के कारण।

अनुवाद

वे वहाँ अनन्त को अपनी शय्या बनाकर लेट गये। भगवान् अनन्त हजारों सिर, हजारों मुख, हजारों नेत्र और हजारों हाथ-पाँव वाले दिव्य सर्प हैं। वे सभी अवतारों के बीज हैं और भौतिक जगत् के कारण हैं।

तात्पर्य

गर्भोदकशायी विष्णु के पसीने से उत्पन्न जलराशि में विष्णु के पूर्ण अंश शेष पर भगवान् शयन करते हैं, जिनका वर्णन श्रीमद्भागवत तथा चारों वेदों में इस प्रकार हुआ है :

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठदशाङ्गुलम् ॥

“अनन्तशयन नामक विष्णु रूप के हजारों हाथ-पाँव तथा हजारों आँखें हैं। वे भौतिक जगत् के भीतर सारे अवतारों के वास्तविक जनक हैं।”

ताँर नाभि-पद्म हैते उठिल एक पद्म ।

सेइ पद्मे हैल ब्रह्मार जन्म-सद्म ॥102॥

ताँर-उनका; नाभि-पद्म–नाभि कमल; हैते–से; उठिल--उठा, उगा; एक-एक; पद्म-कमल पुष्प; सेइ पद्म-उस कमल पर; हैल-वहाँ था; ब्रह्मार-ब्रह्माजी का; जन्म-सद्म-जन्म स्थान।

अनुवाद

उनकी नाभि से एक कमल-पुष्प उत्पन्न हुआ, जो ब्रह्माजी का जन्म-स्थान बन गया।

सेइ पद्म-नाले हैल चौद्द-भुवन ।

तेंहो ब्रह्मा हा सृष्टि करिल सृजन ॥103॥

सेइ पद्म-नाले-उस कमल की नाल में; हैल–थे; चौद्द-भुवन–चौदह भुवन; तेंहो-वे स्वयं; ब्रह्मा हा–ब्रह्मा के रूप में; सृष्टि-सृष्टि; करिल सृजन-सृजन किया।

अनुवाद

उस कमल की नाल के भीतर चौदह भुवन थे। इस प्रकार भगवान् ने ब्रह्मा के रूप में सारी सृष्टि का सृजन किया।

विष्णु-रूप हञा करे जगत्पालने ।

गुणातीत-विष्णु स्पर्श नाहि माया-गुणे ॥104॥

विष्णु-रूप-भगवान् विष्णु का रूप; हा-होकर; करे-करते हैं; जगत् पालने-भौतिक जगत् का पालन; गुण-अतीत–भौतिक गुणों के परे; विष्णु-भगवान् विष्णु; स्पर्श-स्पर्श; नाहि-नहीं; माया-गुणे-भौतिक गुणों में।

अनुवाद

और भगवान् विष्णु के रूप में वे सारे जगत् का पालन करते हैं। समस्त भौतिक गुणों से परे होने के कारण भगवान् विष्णु का भौतिक गुणों से किसी तरह का स्पर्श नहीं होता।

तात्पर्य

श्री बलदेव विद्याभूषण कहते हैं कि यद्यपि विष्णु भौतिक जगत् में सत्त्वगुण के अधिष्ठाता देव हैं, किन्तु वे सत्त्वगुण से कभी भी प्रभावित नहीं होते, क्योंकि वे अपनी परम इच्छा से ही उस गुण का निर्देशन करते हैं। यह कहा जाता है। कि सारे जीव भगवान् की इच्छा मात्र से समस्त सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं। वामन पुराण में कहा गया है कि वही विष्णु विभिन्न गुणों के निर्देशन करने के लिए ब्रह्मा तथा शिव के रूप में अपना विस्तार करते हैं।

चूँकि भगवान् विष्णु सत्त्वगुण का विस्तार करते हैं, अतएव उनका नाम सत्त्वतनु है। क्षीरोदकशायी विष्णु के विविध अवतार सत्त्वतनु के नाम से जाने जाते हैं। इसीलिए समस्त वैदिक ग्रंथों में विष्णु को सारे भौतिक गुणों से मुक्त माना गया है। श्रीमद्भागवत (10.88.5) में कहा गया है :

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुरुष: प्रकृतेः परः।

स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत् ॥

“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि भौतिक प्रकृति के गुणों से सदैव अकलुषित रहते हैं, क्योंकि वे इस भौतिक जगत् से परे हैं। वे ब्रह्माजी इत्यादि समस्त देवताओं के ज्ञान के स्रोत हैं और हर वस्तु के साक्षी हैं। अतएव जो भगवान् विष्णु की पूजा करता है, वह भी भौतिक प्रकृति के कल्मष से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। चूँकि विष्णु की पूजा करने से मनुष्य भौतिक प्रकृति के कल्मष से मुक्त हो सकता है, अतएव वे सत्त्वतनु कहलाते हैं, जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है।

रुद्र-रूप धरि करे जगत्संहार।

सृष्टि-स्थिति-प्रलय-इच्छाय याँहार॥ 105॥

रुद्र-रूप-शिवजी का रूप धरि’-धारण करके; करे-करते हैं; जगत् संहार-भौतिक जगत् का संहार; सृष्टि-स्थिति-प्रलय-सृष्टि, पालन और संहार; इच्छाय-इच्छा से; याँहार-जिनकी।

अनुवाद

वे रुद्र का रूप धारण करके सृष्टि का संहार करते हैं। इस तरह सृजन, पालन तथा संहार उनकी इच्छा से होता है।

तात्पर्य

महेश्वर या शिवजी न तो सामान्य जीव हैं और न ही भगवान् विष्णु के बराबर हैं। ब्रह्म-संहिता में विष्णु तथा शिव की अच्छी तरह तुलना करते हुए कहा गया है कि विष्णु दूध के समान हैं और शिव दही के समान है। दही दूध की तरह नहीं होता, किन्तु फिर भी यह दूध ही होता है।

हिरण्य-गर्भ, अन्तर्यामी, जगत्कारण।

याँर अंश करि’ करे विराट-कल्पन॥106॥

हिरण्य-गर्भ-हिरण्यगर्भ, भौतिक जगत् के कारण; अन्तः-यामी–अन्तर्यामी, परमात्मा; जगत्-कारण-भौतिक जगत् के कारण; ग्रॉर अंश करि'-उनका विस्तार करके; करे-करते हैं; विराट-कल्पन-विराट् रूप की कल्पना।

अनुवाद

वे परमात्मा, हिरण्यगर्भ अर्थात् भौतिक जगत् के कारण हैं। विराट् रूप उनका अंश माना जाता है।

हेन नारायण,—याँर अंशेर अंश ।

सेइ प्रभु नित्यानन्द सर्व-अवतंस ॥ 107॥

हेन-ऐसा; नारायण-भगवान् नारायण; याँर–जिनका; अंशेर-स्वांश का; अंश-अंश; सेइ-वह; प्रभु-प्रभु, भगवान्; नित्यानन्द–नित्यानन्द; सर्व-अवतंस–सभी अवतारों के उद्गम।

अनुवाद

वे भगवान् नारायण, भगवान् नित्यानन्द बलराम के पूर्णांश के अंश मात्र हैं। भगवान् नित्यानन्द समस्त अवतारों के स्रोत हैं।

दशम श्लोकेर अर्थ कैल विवरण ।

एकादश श्लोकेर अर्थ शुन दिया मन ॥ 108॥

दशम-दसवें; श्लोकेर-श्लोक का; अर्थ-अर्थ; कैल–किया है; विवरण-वर्णन; एकादश-ग्यारहवें; श्लोकेर-श्लोक का; अर्थ-अर्थ; शुन-कृपया सुनो; दिया मन-मन से।

अनुवाद

इस तरह मैंने दसवें श्लोक का अर्थ बतला दिया है। अब कृपया पूरे मनोयोग से ग्यारहवें श्लोक का अर्थ सुनें।

यस्यांशांशांशः परात्माखिलानां

पोष्टा विष्णुर्भाति दुग्धाब्धि-शायी।

क्षौणी-भर्ता यत्कला सोऽप्यनन्तस्

तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥109॥

यस्य–जिनका; अंश-अंश-अंशः-स्वांश के अंश के भी अंश; पर-आत्मा-परमात्मा; अखिलानाम्-सभी जीवों के; पोष्टा-पालनकर्ता; विष्णुः-विष्णु; भाति-प्रकट होते हैं; दुग्ध-अब्धि-शायी-क्षीरोदकशायी विष्णु; क्षौणी-भर्ता-पृथ्वी के पालनकर्ता; यत्-जिनके; कला-अंश के अंश; सः-वे; अपि-निश्चित रूप से; अनन्तः–शेषनाग; तम्-उनको; श्री-नित्यानन्द-रामम्-भगवान् नित्यानन्द के रूप में भगवान् बलराम को; प्रपद्ये-मैं शरणागत होता हूँ।

अनुवाद

मैं उन श्री नित्यानन्द राम के चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ, जिनके गौण अंश क्षीरोदकशायी विष्णु हैं। वे क्षीरोदकशायी विष्णु ही समस्त जीवों के परमात्मा और समस्त ब्रह्माण्डों के पालक हैं। शेषनाग उनके अंशांश हैं।

नारायणेर नाभि-नाल-मध्येते धरणी।

धरणीर मध्ये सप्त समुद्र ये गणि ॥110॥

नारायणेर-भगवान् नारायण की; नाभि-नाल-नाभि से निकली नाल; मध्येते-भीतर; धरणी-भौतिक ग्रह; धरणीर मध्ये-भौतिक ग्रहों में के; सप्त-सात; समुद्र-समुद्र; ये गणि-वे गिनते हैं।

अनुवाद

सारे भौतिक लोक उस कमलनाल के भीतर स्थित हैं, जो भगवान् नारायण की नाभि कमल से निकला है। इन लोकों के मध्य सात समुद्र

ताँहा क्षीरोदधि-मध्ये 'श्वेतद्वीप' नाम ।

पालयिता विष्णु,—ताँर सेइ निज धाम ॥111॥

ताँहा-उसमें; क्षीर-उदधि-मध्ये-क्षीर सागर की मध्य में; श्वेतद्वीप नाम-श्वेतद्वीप नामक द्वीप में; पालयिता विष्णु-पालक भगवान् विष्णु; ताँर–उनका; सेइ-वह; निज धाम-अपना निवासस्थान।

अनुवाद

वहाँ क्षीर सागर के मध्य में श्वेतद्वीप है, जो पालनकर्ता विष्णु का धाम है।

तात्पर्य

ज्योतिष ग्रंथ सिद्धान्त-शिरोमणि में विभिन्न समुद्रों के नाम इस प्रकार दिये गये हैं : (1) लवण सागर, (2) क्षीर सागर, (3) दधि सागर, (4) घृत सागर, (5) इक्षु-रस सागर, (6) सुरा सागर तथा (7) मीठे जल का सागर। लवण सागर के दक्षिण में क्षीर सागर है, जहाँ क्षीरोदकशायी विष्णु निवास करते हैं। वहाँ ब्रह्मा इत्यादि देवता उनकी पूजा करते हैं।

सकल जीवेर तिंहो हये अन्तर्यामी।

जगत्पालक तिंहो जगतेर स्वामी ॥112॥

सकल-सब; जीवेर-जीवों के; तिंहो-वे; हये-हैं; अन्तः-यामी-अन्तर्यामी, परमात्मा; जगत्-पालक–के जगत् के पालक; तिंहो-वे; जगतेर स्वामी–भौतिक जगत् के स्वामी।

अनुवाद

वे सारे जीवों के परमात्मा हैं। वे इस भौतिक जगत् का पालन करते हैं और वे इसके स्वामी हैं।

तात्पर्य

इस ब्रह्माण्ड में विष्णु-लोक का वर्णन लघु-भागवतामृत (पूर्व 2.36-42) में प्राप्त है, जो विष्णु धर्मोत्तर से लिया गया है-"रुद्र-लोक अर्थात् शिवजी के लोक के ऊपर विष्णु-लोक नामक ग्रह है, जिसकी परिधि 4 लाख मील है और जो किसी भी मर्त्य प्राणी की पहुँच के बाहर है। इस विष्णु-लोक के ऊपर तथा सुमेरु पर्वत के पूर्व में लवण सागर में महाविष्णु लोक है, जो एक सुनहरा द्वीप है। कभी-कभी ब्रह्माजी तथा अन्य देवतागण भगवान् विष्णु से भेंट करने वहाँ पर जाते हैं। भगवान् विष्णु लक्ष्मी सहित वहाँ शयन करते हैं और कहा जाता है कि वर्षा ऋतु के चार महीने वे शेषशय्या पर शयन करने का आनन्द लेते हैं। सुमेरु पर्वत के पूर्व की दिशा में क्षीर सागर है, जिसमें श्वेतद्वीप में एक श्वेत नगरी है, जहाँ पर भगवान् विष्णु अपनी प्रियतमा लक्ष्मी के साथ शेष के सिंहासन पर आसीन देखे जा सकते हैं। विष्णु का यह रूप भी वर्षा ऋतु के चार महीनों में शयन का आनन्द लेता है। क्षीरसागर में यह श्वेतद्वीप लवण सागर के ठीक दक्षिण में स्थित है। गणना के अनुसार श्वेतद्वीप का क्षेत्रफल 2 लाख वर्ग मील है। यह दिव्य सुन्दर द्वीप भगवान् विष्णु तथा उनकी प्रियतमा

को प्रसन्न करने के लिए कल्पवृक्षों से सज्जित रहता है।" ब्रह्माण्ड-पुराण, विष्णु-पुराण, महाभारत तथा पद्म-पुराण में श्वेतद्वीप का सन्दर्भ मिलता है और श्रीमद्भागवत (11.15.18) में निम्नलिखित सन्दर्भ पाया जाता है :

श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्ध धर्ममये मयि।

धारयञ्छवे ततां याति षड्भिर्मिरहितो नरः ॥

हे उद्धव, तुम जान लो कि श्वेतद्वीप में विष्णु का दिव्य रूप मेरे रूप से दिव्यता की दृष्टि से अभिन्न है। जो भी श्वेतद्वीप के इन स्वामी को अपने हृदय में धारण करता है, वह छः भौतिक कष्टों-भूख, प्यास, जन्म, मृत्यु, शोक तथा मोह-को पार कर सकता है। इस तरह वह अपने आदि दिव्य रूप को प्राप्त कर सकता है।"

युग-मन्वन्तरे धरि' नाना अवतार।

धर्म संस्थापन करे, अधर्म संहार ॥113॥

युग-मनु-अन्तरे–मनु के युग और मन्वन्तर में; धरि'-धारण करके; नाना-विविध; अवतार–अवतार; धर्म संस्थापन करे-धर्म की स्थापना करते हैं; अधर्म संहार-अधर्म का नाश करके।

अनुवाद

वास्तविक धर्म के सिद्धान्तों को स्थापित करने और अधर्म के सिद्धान्तों का विनाश करने के लिए भगवान् विभिन्न युगों और मन्वन्तरों में विविध अवतारों में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

क्षीर सागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु ब्रह्माण्ड के नियमों को बनाये रखने और उत्पात के कारणों को विनष्ट करने के लिए विविध रूपों में अवतरित होते हैं। ऐसे अवतार हर मन्वन्तर में (प्रत्येक मनु के राज्य काल में, जो 71 x 43,20,000 वर्ष तक जीवित रहते हैं) देखे जाते हैं। ब्रह्मा के एक दिन में ऐसे 14 मनु जन्म लेते और मरते हैं, जिससे अगले मनु को स्थान मिलता है।

देव-गणे ना पाय याँहार दरशन ।

क्षीरोदक-तीरे याइ' करेन स्तवन ॥ 114॥

देव-गणे–देवगण; ना-नहीं; पाय-पाते हैं; याँहार–जिनका; दरशन–दर्शन; क्षीर-उदक-तीरे-क्षीर सागर के तट पर; याइ'-जाते हैं; करेन स्तवन-स्तुति करने के लिए।

अनुवाद

उनका दर्शन न पाकर देवतागण क्षीर सागर के तट पर जाते हैं और उनकी स्तुति करते हैं।

तात्पर्य

स्वर्लोक आदि लोकों में रहने वाले स्वर्ग के निवासी तक श्वेतद्वीप में भगवान् विष्णु का दर्शन नहीं कर पाते । वे द्वीप तक नहीं पहुँच पाते–केवल क्षीर सागर के तट तक पहुँचकर भगवान् की दिव्य स्तुति करते हैं कि वे विशेष अवसरों पर अवतार के रूप में प्रकट हों।

तबे अवतरि' करे जगत्पालन ।

अनन्त वैभव ताँर नाहिक गणन ॥115॥

तबे-उस समय; अवतरि'–अवतरित होकर; करे-करते हैं; जगत् पालन-भौतिक जगत् का पालन; अनन्त-अनन्त; वैभव-ऐश्वर्य; ताँर-उनकी; नाहिक–नहीं है; गणन-गिनती।

अनुवाद

तब वे भौतिक संसार का पालन करने के लिए अवतरित होते हैं। उनके अनन्त ऐश्वर्य की गणना नहीं की जा सकती।

सेइ विष्णु हय याँर अंशांशेर अंश ।

सेइ प्रभु नित्यानन्द सर्व-अवतंस ॥116॥

सेइ-वे; विष्णु-भगवान् विष्णु; हय-हैं; याँर-जिनके; अंश-अंशेर-स्वांश का अंश; अंश-अंश; सेइ-वे; प्रभु-प्रभु; नित्यानन्द-नित्यानन्द; सर्व-अवतंस-सभी अवतारों के स्रोत।

अनुवाद

ये भगवान् विष्णु नित्यानन्द प्रभु के पूर्णांश के अंश के भी अंश हैं, क्योंकि भगवान् नित्यानन्द समस्त अवतारों के उद्गम हैं।

तात्पर्य

श्वेतद्वीप के स्वामी में सृजन तथा संहार की महान् शक्ति है। श्री नित्यानन्द प्रभु संकर्षण के आदि रूप साक्षात् बलदेव होने के कारण श्वेतद्वीप के भगवान् के आदि रूप हैं।

सेइ विष्णु 'शेष'-रूपे धरेन धरणी ।

काँहा आछे मही, शिरे, हेन नाहि जानि ॥117॥

सेइ-वे; विष्णु-भगवान् विष्णु; शेष-रूपे-भगवान् शेष के रूप में; धरेन-धारण करते हैं; धरणी-लोकों को; काँहा-जहाँ; आछे-हैं; मही-लोक; शिरे–सिर पर; हेन नाहि जानि–मैं समझ नहीं सकता।

अनुवाद

वही भगवान् विष्णु भगवान् शेष के रूप में सारे लोकों को अपने शिरों पर धारण करते हैं, यद्यपि वे यह नहीं जानते कि वे कहाँ हैं, क्योंकि अपने सिरों पर उन्हें उनके अस्तित्व का आभास नहीं हो पाता।

सहस्र विस्तीर्ण याँर फणार मण्डल ।

सूर्य जिनि' मणि-गण करे झल-मल ॥ 118॥

सहस्र-हजारों; विस्तीर्ण–विस्तीर्ण; याँर–जिनके; फणार–फनों का; मण्डल-समूह; सूर्य-सूर्य; जिनि'–जीतकर; मणि-गण-मणियाँ; करे-करते हैं; झल-मल-चमकते हैं।

अनुवाद

उनके हजारों फैले हुए फन सूर्य को भी मात देने वाली चमचमाती मणियों से सज्जित रहते हैं।

पञ्चाशत्कोटि-योजन पृथिवी-विस्तार ।

याँर एक-फणे रहे सर्षप-आकार ॥ 119॥

पञ्चाशत्-पचास; कोटि-करोड़ों; योजन-योजन, आठ मील; पृथिवी-ब्रह्माण्ड की; विस्तार-चौड़ाई; याँर-जिनके; एक-फणे-एक फन पर; रहे-रहता है; सर्षप-आकार-सरसों के बीज की भाँति।

अनुवाद

यह ब्रह्माण्ड जिसका व्यास पचास करोड़ योजन है, उनके एक फन पर इस तरह टिका है, मानो सरसों का बीज हो।

तात्पर्य

श्वेतद्वीप के स्वामी शेष नाग के रूप में अपना विस्तार करते हैं, जो अपने असंख्य फनों पर सारे लोकों को धारण करते हैं। इन विशाल ब्रह्माण्डों की तुलना सरसों के बीजों से की गई है, जो शेषनाग के दिव्य फनों पर टिके हुए हैं। वैज्ञानिकों का गुरुत्वाकर्षण नियम भगवान् संकर्षण की शक्ति की आंशिक व्याख्या है। संकर्षण नाम शब्द-रूप में गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त से सम्बन्धित है। श्रीमद्भागवत (5.17.21) में शेषनाग का प्रसंग आता है, जहाँ कहा गया है :

यमाहुरस्य स्थिति जन्मसंयमं

त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ।

न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित् स्थितं

भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥

“हे प्रभु, वेदों की स्तुतियाँ घोषित करती हैं कि आप सृजन, पालन तथा संहार के मुख्य कारण हैं। किन्तु वस्तुतः आप सारी सीमाओं से परे हैं और इसीलिए अनन्त कहलाते हैं। आपके सहस्रों फनों पर असंख्य ब्रह्माण्ड सरसों के दानों की तरह इतने नगण्य लगते हैं कि आपको उनके भार का पता भी नहीं चलता।” भागवत में ही (5.25.2) आगे यह कहा गया है :

यस्येदं क्षिति-मंडलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षण

ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते।

“भगवान् अनन्तदेव के हजारों फन हैं। प्रत्येक फन एक लोक को धारण किये रहता है, जो सरसों के बीज जैसा लगता है।”

सेइ त’ ‘अनन्त' ‘शेष’–भक्त-अवतार।

ईश्वरेर सेवा विना नाहि जाने आर ॥120॥

सेइ त’-वे; अनन्त-भगवान् अनन्त; शेष—शेषावतार; भक्त-अवतार-भक्त के अवतार; ईश्वरेर सेवा-ईश्वर की सेवा; विना-बिना; नाहि-नहीं; जाने-जानते हैं; आर-और कुछ।

अनुवाद

वे अनन्त शेष ईश्वर के भक्त अवतार हैं। वे भगवान् कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानते।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ कृष्ण-सन्दर्भ में शेषनाग का वर्णन इस प्रकार किया है : “श्री अनन्तदेव के हजारों मुख हैं और वे पूर्ण स्वाधीन हैं। वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। वे उनके आदेश की सदा प्रतीक्षा करते रहते हैं। संकर्षण वासुदेव के प्रथम विस्तार हैं और चूँकि वे अपनी खुद की इच्छा से प्रकट होते हैं, अतएव स्वराट् अर्थात् पूर्णतया स्वाधीन कहलाते हैं। अतएव वे असीम हैं और देश-काल की सारी सीमाओं से परे हैं। वे स्वयं एक हजार शीश वाले शेष के रूप में प्रकट होते हैं।” स्कन्द पुराण के अयोध्या-माहात्म्य अध्याय में इन्द्र देव ने अपने समक्ष लक्ष्मण के रूप में खड़े भगवान् शेष से प्रार्थना की, “कृपया अपने नित्य धाम

विष्णु-लोक को चले जाएँ, जहाँ आपके अंश शेष अपने फनों समेत उपस्थित हैं। इस तरह लक्ष्मण को पाताल लोक के क्षेत्र में भेजकर इन्द्र भी अपने लोक को वापस चले गये। यह उद्धरण इंगित करता है कि चतुर्व्यह के संकर्षण भगवान् राम के साथ लक्ष्मण के रूप में अवतरित होते हैं। जब भगवान् राम अन्तर्धान हो जाते हैं, तो शेष भी अपने आपको लक्ष्मण से विलग कर लेते हैं। और वे अपने पाताल क्षेत्र को लौट जाते हैं। लक्ष्मण अपने धाम वैकुण्ठ चले जाते हैं।

लघु-भागवतामृत में निम्नलिखित विवरण मिलता है : "द्वितीय चतुर्व्यह के संकर्षण राम के रूप में प्रकट होते हैं, जिनके साथ शेष रहते हैं, जो ग्रहों को धारण किये रहते हैं। शेष के दो स्वरूप हैं। एक तो ग्रहों को धारण करने वाले और दूसरा शय्यारूप सेवक का। ग्रहों को धारण करने वाले शेष संकर्षण के शक्ति-अवतार हैं, अतएव कभी-कभी वे भी संकर्षण कहलाते हैं। शेष का शय्यारूप स्वरूप भगवान् के नित्य सेवक का है।"

सहस्र-वदने करे कृष्ण-गुण गान।

निरवधि गुण गान, अन्त नाहि पान॥ 121॥

सहस्र-वदने-सहस्रों मुखों में; करे-करते हैं; कृष्ण-गुण गान-कृष्ण के गुणों का गान; निरवधि-निरन्तर; गुण गान-दिव्य गुणों का गान; अन्त नाहि पान-अन्त नहीं पाते।

अनुवाद

अपने एक हजारों मुखों से वे भगवान् कृष्ण का महिमा-गान करते हैं, किन्तु इस प्रकार सदैव गुणगान करते रहने पर भी वे भगवान् के गुणों का कभी पार नहीं पाते।

सनकादि भागवत शुने याँर मुखे।

भगवानेर गुण कहे, भासे प्रेम-सुखे ॥122॥

सनक-आदि-सनक, सनन्द आदि महान् सन्त; भागवत-श्रीमद्भागवत; शुने-सुनते हैं; याँर मुखे-जिनके मुख से; भगवानेर-भगवान् के; गुण-गुण; कहे-कहते हैं; भासे-तैरते हैं; प्रेम-सुखे-भगवत् प्रेम के दिव्य आनन्द में।

अनुवाद

चारों कुमार उनके मुख से श्रीमद्भागवत सुनते हैं और भगवत्प्रेम के दिव्य आनन्द में मग्न होकर उसे दुहराते चलते हैं।

छत्र, पादुका, शय्या, उपाधान, वसन।

आराम, आवास, यज्ञ-सूत्र, सिंहासन ॥123॥

छत्र-छत्र; पादुका-पादुका; शय्याशय्या; उपाधान-तकिया; वसन-पोशाक; आराम–विश्राम करने की कुर्सी; आवास-निवास; यज्ञ-सूत्र-यज्ञोपवीत, जनेउ; सिंह-आसन-सिंहासन।

अनुवाद

वे निम्नलिखित सभी रूपों को धारण करके भगवान् कृष्ण की सेवा करते हैं-छाता, पादुका, शय्या, तकिया, वस्त्र, आरामकुर्सी, निवासस्थान, यज्ञोपवीत तथा सिंहासन।

एत मूर्ति-भेद करि कृष्ण-सेवा करे।

कृष्णेर शेषता पाञा ‘शेष’ नाम धरे ॥124॥

एत-इतने; मूर्ति-भेद-विभिन्न रूप; करि'-करके; कृष्ण-सेवा करे-भगवान् कृष्ण की सेवा करते हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; शेषता-अन्त; पाञा–पाकर; शेष नाम धरे–शेष नाग का नाम धारण करते हैं।

अनुवाद

उन्होंने कृष्ण की दासता की चरम सीमा प्राप्त कर ली है, अतएव वे भगवान् शेष कहलाते हैं। वे कृष्ण की सेवा के लिए नाना रूप धारण करते हैं और इस तरह उनकी सेवा करते हैं।

सेइ त' अनन्त, याँर कहि एक कला।

हेन प्रभु नित्यानन्द, के जाने ताँर खेला॥ 125॥

सेइ त'–वे; अनन्त-भगवान् अनन्त; याँर-जिनका; कहि-मैं कहता हूँ; एक कला-अंश का एक भाग; हेन-ऐसा; प्रभु नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; के-कौन; जाने-जानते हैं, ताँर-उनकी; खेला–लीलाएँ।

अनुवाद

भगवान् अनन्त जिस पुरुष की कला हैं अर्थात् पूर्णांश के अंश हैं, वे नित्यानन्द प्रभु हैं। अतएव नित्यानन्द प्रभु की लीलाओं को भला कौन जान सकता है?

ए-सब प्रमाणे जानि नित्यानन्द-तत्त्व-सीमा।

ताँहाके 'अनन्त' कहि, कि ताँर महिमा॥126॥

ए-सब-ये सब; प्रमाणे-प्रमाणों से; जानि–मैं जानता हूँ; नित्यानन्द-तत्त्व-सीमा-भगवान् नित्यानन्द के सत्य की सीमा; ताँहाके–उनको (भगवान् नित्यानन्द बलराम); अनन्त-भगवान् अनन्त; कहि-यदि मैं कहूँ; कि तारे महिमा-उनकी कौन सी महिमा की बात है।

अनुवाद

इन सब प्रमाणों से हम नित्यानन्द प्रभु के तत्त्व की सीमा को जान सकते हैं। किन्तु उन्हें अनन्त कहने में कौन-सी महिमा है?

अथवा भक्तेर वाक्य मानि सत्य करि' ।

सकल सम्भवे ताँते, याते अवतारी ॥127॥

अथवा-अथवा; भक्तेर वाक्य-शुद्ध भक्त द्वारा कही गई बात; मानि–मैं स्वीकार करता हूँ; सत्य करि'-सत्य मानकर; सकल-सब कुछ; सम्भवे-सम्भव; ताँते–उनके; याते-क्योंकि; अवतारी–सभी अवतारों के मूल स्रोत।

अनुवाद

किन्तु मैं इसे सत्य स्वीकार करता हूँ, क्योंकि यह भक्तों का वचन है। वे (नित्यानन्द प्रभु) समस्त अवतारों के उद्गम हैं, अतएव उनके लिए सब कुछ सम्भव है।

अवतार-अवतारी–अभेद, ये जाने ।

पूर्वे यैछे कृष्णके केहो काहो करि' माने ॥128॥

अवतार-अवतारी–अवतार और सभी अवतारों के स्रोत; अभेद-एक जैसे; ये जाने-जो कोई जानता हो; पूर्वे-पहले; यैछे-जैसे; कृष्णके–भगवान् कृष्ण को; केहो-कोई; काहो-कहीं; करि'-करके; माने-मानता है।

अनुवाद

वे जानते हैं कि अवतार तथा समस्त अवतारों के उद्गम में कोई भेद नहीं होता। पहले भगवान् कृष्ण विभिन्न लोगों द्वारा विभिन्न सिद्धांतों के सन्दर्भ में समझे जाते थे।

केहो कहे, कृष्ण साक्षात्लर-नारायण।

केहो कहे, कृष्ण हय साक्षात्वामन ॥129॥

केहो कहे-कोई कहता है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; साक्षात् साक्षात्; नर-नारायण-भगवान् नर-नारायण; केहो कहे-कोई कहता है; कृष्ण हय-कृष्ण हैं; साक्षात् वामन-भगवान् वामनदेव।

अनुवाद

कुछ लोग कहते थे कि कृष्ण साक्षात् भगवान् नर-नारायण थे और कुछ उन्हें वामनदेव का अवतार कहते थे।

केहो कहे, कृष्ण क्षीरोद-शायी अवतार।

असम्भव नहे, सत्य वचन सबार ॥ 130॥

केहो कहे-कोई कहता है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; क्षीरोद-शायी अवतार-क्षीरोदकशायी भगवान् विष्णु के अवतार; असम्भव नहे-असम्भव नहीं; सत्य-सत्य; वचन सबार–प्रत्येक का कथन।

अनुवाद

कुछ लोग भगवान् कृष्ण को भगवान् क्षीरोदकशायी का अवतार कहते थे। ये सारे नाम सत्य हैं; कुछ भी असम्भव नहीं है।

कृष्ण यबे अवतरे सर्वांश-आश्रय ।

सर्वांश आसि' तबे कृष्णेते मिलय ॥131॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यबे-जब; अवतरे-अवतार लेते हैं; सर्व-अंश-आश्रय-अन्य सभी विष्णु तत्त्वों के आश्रय; सर्व-अंश-सभी पूर्णांश; आसि-आते हैं; तबे-उस समय; कृष्णेते-कृष्ण में; मिलय-मिल जाते हैं।

अनुवाद

जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण अवतरित होते हैं, तब वे समस्त पूर्ण अंशों के आश्रय होते हैं। इस तरह उस समय उनके सारे पूर्ण अंश उनके साथ मिल जाते हैं।

येइ येइ रूपे जाने, सेइ ताहा कहे ।

सकल सम्भवे कृष्णे, किछु मिथ्या नहे ॥132॥

येइ येइ-जो कुछ, जिस किसी रूपे-रूप में; जाने-कोई जानता है; सेइ-वह; ताहा–उस; कहे-कहता है; सकल सम्भवे कृष्णे-कृष्ण में सब कुछ सम्भव है; किछु मिथ्या नहे-इसमें कोई झूठ नहीं।

अनुवाद

जो जिस रूप में भगवान् को जानता है, वह उसी रूप में उनका वर्णन करता है। इसमें कुछ गलत नहीं है, क्योंकि कृष्ण के लिए सब कुछ सम्भव है।

तात्पर्य

इस प्रसंग में हम एक घटना का वर्णन करना चाहेंगे, जो हमारे दो संन्यासियों के बीच तब घटी, जब हम हैदराबाद में हरे कृष्ण महामन्त्र का प्रचार कर रहे थे। उनमें से एक ने कहा कि "हरे राम" श्री बलराम का द्योतक है, किन्तु दूसरे ने विरोध किया कि "हरे राम" का अर्थ भगवान् राम है। अन्त में यह विवाद मेरे पास पहुँचा, तो मैंने निर्णय दिया कि यदि कोई "हरे राम' में "राम" का अर्थ "श्री बलराम" करता है और दूसरा इसी का अर्थ "भगवान् रामचन्द्र" करता है, तो दोनों सही हैं, क्योंकि श्री बलराम तथा भगवान् राम में कोई अन्तर नहीं है। यहाँ श्रीचैतन्य-चरितामृत में कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने इसी निर्णय को कह सुनाया है :

येइ येइ रूपे जाने, सेइ ताहा कहे।

सकल सम्भवे कृष्णे, किछु मिथ्या नहे॥

यदि कोई भगवान् रामचन्द्र को हरे राम ध्वनि से पुकारता है और इसका अर्थ "हे भगवान् रामचन्द्र!" समझता है, तो वह बिल्कुल सही है। इसी तरह यदि कोई कहता है कि हरे राम का अर्थ

“हे श्री बलराम!” है, तो वह भी सही है। जो लोग विष्णुतत्त्व से अवगत रहते हैं, वे इन बातों पर झगड़ते नहीं।

लघु भागवतामृत में श्रील रूप गोस्वामी ने बतलाया है कि कृष्ण क्षीरोदकशायी विष्णु तथा परव्योम में नारायण हैं और वे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के नामों से प्रसिद्ध चतुर्व्यह में अपना विस्तार करते हैं। उन्होंने इस विचार का खण्डन किया है कि कृष्ण नारायण के अवतार हैं। कुछ भक्त मानते हैं कि नारायण आदि भगवान् हैं और कृष्ण अवतार हैं। यहाँ तक कि शंकराचार्य ने भगवद्गीता की टीका में नारायण को दिव्य परम पुरुष भगवान् के रूप में स्वीकार किया है, जो देवकी तथा वसुदेव के पुत्र कृष्ण के रूप में अवतरित हुए। अतएव इस विषय को समझना कठिन हो सकता है, किन्तु गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय ने, जिसके अग्रणी श्रील रूप गोस्वामी हैं, भगवद्गीता के इस सिद्धान्त की स्थापना की है कि हर वस्तु के उद्गम कृष्ण हैं, जो भगवद्गीता में कहते हैं- अहं सर्वस्य प्रभवः–”मैं हर वस्तु का मूल स्रोत हूँ।” इस “हर वस्तु' में नारायण भी आ जाते हैं। इसलिए रूप गोस्वामी ने अपने लघु भागवतामृत में स्थापित किया है कि आदि भगवान् कृष्ण हैं, नारायण नहीं।

इस सन्दर्भ में उन्होंने श्रीमद्भागवत का यह श्लोक (3.2.15) लिया गया स्वशान्तरूपेष्वितरैः स्वरूपै-

रभ्यर्घमानेष्वनुकम्पितात्मा ।

परावरेशो महदंशयुक्तो

ह्यजोऽपि जातो भगवान् यथाग्निः ॥

“जब वसुदेव जैसे भगवान् के शुद्ध भक्त कंस जैसे भयानक असुरों से बहुत सताये जाते हैं, तब भगवान् कृष्ण अपने समस्त लीला-विस्तारों-यथा वैकुण्ठनाथ–से मिल जाते हैं और अजन्मा होकर भी उसी तरह प्रकट होते हैं, जिस तरह अरणि काष्ठ के घर्षण से अग्नि प्रकट हो जाती है।” अरणि काष्ठ का उपयोग बिना दियासलाई या अन्य किसी लौ के यज्ञ-अग्नि प्रज्वलित करने के लिए किया जाता है। जिस तरह अरणि काष्ठ से अग्नि उत्पन्न हो जाती है, उसी तरह भक्तों और अभक्तों के बीच संघर्ष होता है, तब भगवान् प्रकट होते हैं। जब कृष्ण प्रकट होते हैं, तब वे अपने सारे विस्तारों-यथा नारायण, वासुदेव, संकर्षण, अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न–समेत प्रकट होते हैं। कृष्ण अपने अन्य अवतारों यथा नृसिंहदेव, वराह, वामन, नर-नारायण, हयग्रीव तथा अजित से सदैव युक्त रहते हैं। वृन्दावन में कभी-कभी कृष्ण ऐसे अवतारों के कार्यों को प्रदर्शित करते हैं।

ब्रह्माण्ड-पुराण में कहा गया है, “जो भगवान् वैकुण्ठ में सभी जीवों के मित्र चतुर्भुज नारायण कहलाते हैं और क्षीर सागर में श्वेतद्वीप के स्वामी कहलाते हैं और जो समस्त पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ हैं, वे ही नन्द के पुत्र के रूप में प्रकट हुए। अग्नि में तरह-तरह के आकार के स्फुलिंग रहते हैं, कुछ बड़े होते हैं, तो कुछ छोटे छोटे स्फुलिंगों की उपमा जीवों से दी जाती है और बड़े स्फुलिंगों की भगवान् कृष्ण के विष्णु-अंशों से। सारे अवतार कृष्ण से ही प्रकट होते हैं। और अपनी लीलाएँ समाप्त करने पर वे पुनः कृष्ण में समा जाते हैं।”

इसीलिए विभिन्न पुराणों में कृष्ण को कभी नारायण, तो कभी क्षीरोदकशायी विष्णु, कभी गर्भोदकशायी विष्णु और कभी-कभी वैकुण्ठनाथ कहा गया है। चूँकि कृष्ण सदैव सम्पूर्ण हैं, मूल संकर्षण कृष्ण में रहते हैं और चूँकि सारे अवतार मूल संकर्षण से प्रकट होते हैं, अतएव यह समझना चाहिए कि वे अपनी परम इच्छा से कृष्ण की उपस्थिति में भी, विभिन्न अवतारों को प्रकट कर

सकते हैं। इसीलिए महर्षियों ने विभिन्न नामों से भगवान् का गुणगान किया है। अतएव यदि समस्त अवतारों के उद्गम उन मूल पुरुष को कभी-कभी अवतार कहा जाये, तो इसमें कोई त्रुटि नहीं है।

अतएव श्री-कृष्ण-चैतन्य गोसाञि ।

सर्व अवतार-लीला करि' सबारे देखाइ ॥ 133॥

अतएव–अतएव; श्री-कृष्ण-चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; गोसाञि-भगवान्; सर्व-सभी; अवतार-लीला-विभिन्न अवतारों की लीलाएँ; करि'–करके; सबारे-प्रत्येक को; देखाइ-उन्होंने दिखाई।

अनुवाद

इसलिए भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबके सामने सभी विभिन्न अवतारों की सभी लीलाएँ प्रदर्शित की हैं।

एइ-रूपे नित्यानन्द 'अनन्त'-प्रकाश ।

सेइ-भावे—कहे मुञि चैतन्येर दास ॥134॥

एइ-रूपे-इस प्रकार; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; अनन्त-प्रकाश-अनन्त प्राकट्य; सेइ-भावे-उस दिव्य भाव में; कहे-वे कहते हैं; मुञि-मैं; चैतन्येर दास-भगवान् चैतन्य का दास।

अनुवाद

इस तरह भगवान् नित्यानन्द के अनन्त अवतार हैं। दिव्य भाव में वे अपने आपको चैतन्य महाप्रभु का दास कहते हैं।

कभु गुरु, कभु सखा, कभु भृत्य-लीला।

पूर्वे येन तिन-भावे व्रजे कैल खेला ॥135॥

कभु-कभी-कभी; गुरु-गुरु; कभु-कभी-कभी; सखा-मित्र; कभु-कभी-कभी; भृत्य-लीला-दास के रूप में लीलाएँ; पूर्वे-पहले; येन-जैसे; तिन-भावे-तीन विभिन्न भावों में; व्रजे-वृन्दावन में, कैल खेला-कृष्ण के साथ खेलते हैं।

अनुवाद

वे भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा कभी उनके गुरु के रूप में तो कभी मित्र के रूप में और कभी दास के रूप में करते हैं, जिस प्रकार भगवान् बलराम ने व्रज में इन तीन विभिन्न भावों में भगवान् कृष्ण के साथ क्रीड़ाएँ कीं।

वृष हञा कृष्ण-सने माथा-माथि रण।

कभु कृष्ण करे ताँर पाद-संवाहन ॥ 136॥

वृष हञा–बैल बनकर; कृष्ण-सने-कृष्ण के साथ; माथा-माथि रण-सिरों से लड़ना; कभु-कभी-कभी; कृष्ण-कृष्ण; करे-करते हैं; ताँर–उनकी; पाद-संवाहन-पाँव की मालिश करना, पाँवों को दबाना।

अनुवाद

भगवान् बलराम कृष्ण के सिर से अपना सिर भिड़ाकर वृष की तरह लड़ते हैं। और कभी-कभी भगवान् कृष्ण बलरामजी के चरण दबाते

आपनाके भृत्य करि’ कृष्णे प्रभु जाने।

कृष्णेर कलार कला आपनाके माने ॥137॥

आपनाके–स्वयं; भृत्य करि’–दास समझकर; कृष्ण-कृष्ण; प्रभु-स्वामी; जाने-वे जानते हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; कलार कला-पूर्णांश का पूर्णांश; आपनाके-स्वयं; माने-वे मानते हैं।

अनुवाद

वे अपने आपको दास मानते हैं और कृष्ण को अपना स्वामी मानते हैं। इस प्रकार वे अपने आपको कृष्ण के अंश का भी अंश मानते हैं।

वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम्।

अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंचेरतुः प्राकृतौ यथा ॥138॥

वृषायमाणौ-बैलों की भाँति बनकर; नर्दन्तौ-गर्जने की आवाज निकालकर; युयुधाते-दोनों लड़ते थे; परस्परम्-परस्पर; अनुकृत्य-नकल करके; रुतैः-चीखों के साथ; जन्तून्-पशू; चेरतुः-खेल करते थे; प्राकृतौ-साधारण बालक; यथा-जैसे।

अनुवाद

“सामान्य बालकों की तरह एक-दूसरे से लड़ते समय वे वृषों की तरह गर्जन कर रहे थे और तरह-तरह के पशुओं की आवाजे निकालते थे।”

तात्पर्य

यह तथा आगे के उद्धरण श्रीमद्भागवत से हैं (10.11.40 तथा 10.15.14)।

क्वचिक्रीड़ा-परिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम् ।

स्वयं विश्रामयत्या पाद-संवाहनादिभिः ॥ 139॥

क्वचित्-कभी-कभी; क्रीड़ा-खेल; परिश्रान्तम्-बहुत थककर; गोप-उत्सङ्ग-ग्वाले की गोद में; उपबर्हणम्-जिसका तकिया; स्वयम्-भगवान् कृष्ण स्वयं; विश्रामयति–विश्राम देना; आर्यम्-अपने बड़े भाई; पाद-संवाहन-आदिभिः-उनके पाँव आदि दबाकर।

अनुवाद

"कभी-कभी जब कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता भगवान् बलराम खेलने के बाद थक जाते और अपना सिर किसी ग्वालबाल की गोद में रख देते, तो स्वयं भगवान् कृष्ण उनके पाँव दबाकर उनकी सेवा करते।"

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नातासुरी ।

प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥140॥

का-कौन; इयम्-यह; वा-अथवा; कुतः–कहाँ से; आयाता–आई है; दैवी-दैवी; वा-अथवा; नारी–नारी; उत-अथवा; आसुरी–आसुरी; प्रायः–प्रायः; माया-माया; अस्तु-वह अवश्य होगी; मे-मेरे; भर्तुः-स्वामी भगवान् कृष्ण की; न-नहीं; अन्या-अन्य; मे-मेरी; अपि-निश्चय ही; विमोहिनी-विमोहिनी।

अनुवाद

"यह योगशक्ति कौन है और यह कहाँ से आई है? वह दैवी है या आसुरी ? यह मेरे प्रभु भगवान् कृष्ण की मायाशक्ति होगी, क्योंकि उसके अतिरिक्त मुझे और कौन मोहित कर सकता है?"

तात्पर्य

भगवान् की क्रीड़ा-लीलाओं से ब्रह्मा के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ, अतएव उन्होंने कृष्ण की प्रभुता की परीक्षा करने के लिए अपनी योगशक्ति से भगवान् के सारे बछड़ों और सारे गोपाल बालकों को चुरा लिया। किन्तु श्रीकृष्ण ने सारे बछड़ों तथा बालकों को फिर से खेत में प्रतिस्थापित करके इसका उत्तर दिया। ऐसे अद्भुत प्रतिकार पर आश्चर्यचकित हुए श्री बलराम के विचारों को इस श्लोक में लिपिबद्ध किया गया है (भागवत 10.13.37)।

यस्याङ्घि-पङ्कज-रजोऽखिल-लोक-पालैर्

मौल्युत्तमैधृतमुपासित-तीर्थ-तीर्थम् ।

ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः

श्रीशोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥ 141॥

यस्य–जिनके; अघ्रि-पङ्कज-चरणकमल; रजः-रज; अखिल-लोक-अखिल लोक मण्डल; पालैः-स्वामीयों से; मौलि-उत्तमैः-अमूल्य मुकुटों वाले सिर पर; धृतम्-धारण किए जाते हैं; उपासित-पूजित; तीर्थ-तीर्थम्-तीर्थस्थानों को पवित्र करनेवाले; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; भवः-शिवजी; अहम् अपि-मैं भी; यस्य–जिनका; कलाः-अंश; कलायाः-पूर्णांश का; श्रीः-लक्ष्मी देवी; च-और; उद्वहेम–हम धारण करते हैं; चिरम्-शाश्वत रूप से, चिरकाल से सदा; अस्य-उनकी; नृप-आसनम्-राजा का सिंहासन; क्व-कहाँ।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण के लिए सिंहासन का क्या महत्त्व है? विभिन्न लोकों के स्वामी उनके चरणकमलों की धूल को अपने मुकुटधारी शिरों पर धारण करते हैं। यह धूल तीर्थस्थलों को पवित्र बनाती है। यहाँ तक कि ब्रह्माजी, शिवजी, लक्ष्मी और मैं, जो कि उनके पूर्णांश के अंश हैं, अपने अपने सिरों पर उस धूल को सदैव धारण करते हैं।”

तात्पर्य

जब कौरवों ने बलदेव को अपनी ओर मिलाने के लिए उनकी चापलूसी की और श्रीकृष्ण के बारे में भला-बुरा कहा, तब भगवान् बलदेव ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह श्लोक कहा था (भागवत 10.68.37)।

एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य ।

यारे यैछे नाचाय, से तैछे करे नृत्य ॥142॥

एकले-अकेले; ईश्वर–पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर; कृष्ण-कृष्ण; आर-अन्य; सब-सब; भृत्य-सेवक, दास; यारे-जिनको; यैछे-जैसे; नाचाय-वे नचाते हैं; से-वे; तैछे-उसी प्रकार; करे नृत्य-नृत्य करते हैं।

अनुवाद

एकमात्र भगवान् कृष्ण ही परम नियन्ता हैं और अन्य सभी उनके सेवक हैं। वे जैसा चाहते हैं, वैसे उन्हें नचाते हैं।

एइ मत चैतन्य-गोसाञि एकले ईश्वर ।

आर सब पारिषद, केह वा किङ्कर ॥143॥

एइ मत-इस प्रकार; चैतन्य-गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु; एकले-अकेले; ईश्वर-ईश्वर; आर सब–बाकी सब; पारिषद-पार्षद; केह-कोई; वा-अथवा; किङ्कर–दास।

अनुवाद

इसी प्रकार भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ही एकमात्र नियन्ता हैं। अन्य सभी उनके पार्षद या सेवक हैं।

गुरु-वर्ग, नित्यानन्द, अद्वैत आचार्य।

श्रीवासादि, आर व्रत—लघु, सम, आर्य ॥144॥

सबे पारिषद, सबे लीलार सहाय।

सबा लञा निज-कार्य साधे गौर-राय ॥145॥

गुरु-वर्ग-वरिष्ठ जन; नित्यानन्द–भगवान् नित्यानन्द; अद्वैत आचार्य–तथा अद्वैताचार्य; श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर एवं अन्य; आर-अन्य; व्रत-सब; लघु, सम, आर्य-कनिष्ठ, समान अथवा ज्येष्ठ; सबे-सभी; पारिषद-पार्षद; सबे-प्रत्येक; लीलार सहाय-लीलाओं में सहायक; सबा लञा–सभी को लेकर; निज-कार्य-अपना उद्देश्य; साधे-सम्पन्न करते हैं; गौर-राय-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

उनके गुरुजन यथा भगवान् नित्यानन्द, अद्वैत आचार्य तथा श्रीवास ठाकुर एवं उनके अन्य भक्त-चाहे वे छोटे हों, समवयस्क हों या वरिष्ठ हों-सभी उनके पार्षद हैं, जो उनकी लीलाओं में सहायक होते हैं। गौरांग महाप्रभु उनकी सहायता से अपने लक्ष्यों की पूर्ति करते हैं।

अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द,—दुइ अङ्ग।

दुइ-जन लञा प्रभुर व्रत किछु रङ्ग ॥ 146 ॥

अद्वैत आचार्य श्री अद्वैत आचार्य; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; दुइ अङ्ग-भगवान् के दो अंग; दुइ-जन लञा–दोनों को लेकर; प्रभुर-भगवान् चैतन्य महाप्रभु के; ग्रत–सभी; किछु—कुछ; रङ्ग-लीलाएँ।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य तथा श्रील नित्यानन्द प्रभु, जो भगवान् के पूर्ण अंश हैं, उनके प्रधान पार्षद हैं। इन दोनों के साथ महाप्रभु विभिन्न प्रकार से अपनी लीलाएँ करते हैं।

अद्वैत-आचार्य-गोसाञि साक्षातीश्वर।

प्रभु गुरु करि' माने, तिंहो त' किङ्कर ॥147॥

अद्वैत-आचार्य-अद्वैताचार्य; गोसाञि-भगवान्; साक्षात् ईश्वर–साक्षात् परम ईश्वर; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; गुरु करि' माने–उन्हें गुरु मानते हैं; तिंहो त' किङ्कर-किन्तु वे दास हैं।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य साक्षात् भगवान् हैं। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें अपने गुरु के रूप में स्वीकार करते हैं, किन्तु अद्वैत आचार्य भगवान् के दास हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु सदा अद्वैत प्रभु का अपने पिता के समान आदर करते थे क्योंकि अद्वैत प्रभु आयु में उनके पिता से भी बड़े थे। तो भी अद्वैत प्रभु हमेशा अपने आपको चैतन्य महाप्रभु का दास ही मानते रहे। श्री अद्वैत प्रभु तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु ईश्वर पुरी दोनों ही माधवेन्द्र पुरी के शिष्य थे, जो नित्यानन्द प्रभु के भी गुरु थे। इस तरह अद्वैत प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के चाचा-गुरु थे, अतएव आदरणीय थे; क्योंकि अपने गुरु के गुरुभाइयों का आदर वैसे ही करना चाहिए, जैसे अपने गुरु का। इस तरह सभी प्रकार से श्री अद्वैत प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु से श्रेष्ठ थे, फिर भी उन्होंने अपने आपको श्री चैतन्य महाप्रभु का आश्रित समझा।

आचार्य-गोसाञिर तत्त्व ना याय कथन ।

कृष्ण अवतारि येंहो तारिल भुवन ॥148॥

आचार्य-गोसाञिर-अद्वैताचार्य का; तत्त्व-तत्त्व; ना याय कथन-वर्णन नहीं किया जा सकता; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतारि–अवतरण करवाकर; येंहो-जो; तारिल-तार दिया; भुवन-सारे जगत् को।

अनुवाद

मैं अद्वैत आचार्य के तत्त्व का वर्णन नहीं कर सकता। उन्होंने कृष्ण का अवतरण कराकर सारे विश्व का उद्धार किया है।

नित्यानन्द-स्वरूप पूर्वे हइया लक्ष्मण ।

लघु-भ्राता हैया करे रामेर सेवन ॥149॥

नित्यानन्द-स्वरूप- भगवान् नित्यानन्द स्वरूप; पूर्वे-पहले; हइया–होकर; लक्ष्मण-लक्ष्मण, भगवान् रामचन्द्र के छोटे भाई; लघु-भ्रात्रा हैया–छोटा भाई बनकर; करे-करते हैं; रामेर सेवन-भगवान् रामचन्द्र की सेवा।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द स्वरूप पूर्वजन्म में लक्ष्मण के रूप में प्रकट हुए थे और उन्होंने भगवान् रामचन्द्र की सेवा उनके छोटे भाई के रूप में की थी।

तात्पर्य

शंकर सम्प्रदाय के संन्यासियों में ब्रह्मचारियों को कई नामों से पुकारा जाता है। हर संन्यासी के कुछ सहायक होते हैं, जिन्हें ब्रह्मचारी कहते हैं, जो संन्यासी के नाम के अनुसार विभिन्न नामों से जाने जाते हैं। ऐसे ब्रह्मचारियों में चार नाम हैं-स्वरूप, आनन्द, प्रकाश तथा चैतन्य। नित्यानन्द प्रभु ब्रह्मचारी थे, उन्होंने कभी संन्यास नहीं लिया। ब्रह्मचारी के रूप में उनका नाम नित्यानन्द स्वरूप था, अतएव वे जिस संन्यासी के आश्रय में रह रहे थे, उनका नाम शंकराचार्य सम्प्रदाय के तीर्थ या आश्रम में से होगा, क्योंकि ऐसे संन्यासी के सहायक ब्रह्मचारी के नामों में से एक नाम स्वरूप है।

रामेर चरित्र सब,—दुःखेर कारण ।

स्वतन्त्र लीलाय दुःख सहेन लक्ष्मण ॥ 150॥

रामेर चरित्र सब-भगवान् रामचन्द्र की सभी लीलाएँ; दुःखेर कारण-दुःख का कारण; स्व-तन्त्र-यद्यपि स्वतंत्र; लीलाय-लीलाओं में; दुःख–दुःख; सहेन लक्ष्मण-लक्ष्मण सहन करते हैं।

अनुवाद

भगवान् राम के कार्यकलाप दुःखों से भरे थे, किन्तु लक्ष्मण ने स्वेच्छा से उस दुःख को सहन किया।

निषेध करिते नारे, याते छोट भाइ ।

मौन धरि' रहे लक्ष्मण मने दुःख पाइ' ॥151॥

निषेध करिते नारे-भगवान् रामचन्द्र को मना करने में अक्षम; याते-क्योंकि; छोट भाइ–छोटा भाई; मौन धरि'-चुप होकर; रहे-रहते हैं; लक्ष्मण-लक्ष्मण; मने-मन में; दुःख-दुःख; पाइ'–लेते हैं।

अनुवाद

छोटे भाई के रूप में वे भगवान् राम को उनके संकल्प से रोक नहीं सके, अतएव वे मौन रहे, भले ही मन ही मन वे दुःखी थे।

कृष्ण-अवतारे ज्येष्ठ हैला सेवार कारण ।

कृष्णके कराइल नाना सुख आस्वादन ॥152॥

कृष्ण-अवतारे-भगवान् कृष्ण के अवतार में; ज्येष्ठ हैला–वे बड़े भाई हो गये; सेवार कारण-सेवा के लिए; कृष्णके-कृष्ण की; कराइल-करवाया; नाना-विविध; सुख-सुख; आस्वादन-आस्वादन।

अनुवाद

जब भगवान् कृष्ण प्रकट हुए, तो वे (बलराम) उनकी मन भर के सेवा करने एवं सभी प्रकार के सुखों का भोग कराने के लिए उनके बड़े भाई बने।

राम-लक्ष्मण-कृष्ण-रामेर अंश-विशेष।

अवतार-काले दोंहे दोंहाते प्रवेश ॥ 153॥

राम-लक्ष्मण-रामचन्द्र तथा लक्ष्मण; कृष्ण-रामेर अंश-विशेष-भगवान् कृष्ण और भगवान् बलराम के विशेष विस्तार; अवतार-काले–अवतार के समय; दोंहे-दोनों (राम और लक्ष्मण); दोंहाते प्रवेश-उन दोनों में (कृष्ण और बलराम में) प्रविष्ट कर गये।

अनुवाद

श्री राम तथा श्री लक्ष्मण, जो क्रमशः भगवान् कृष्ण तथा बलराम के पूर्ण अंश हैं, कृष्ण तथा बलराम के आविर्भाव के समय उनमें प्रविष्ट हो गये।

तात्पर्य

लघु भागवतामृत ने विष्णु धर्मोत्तर का सन्दर्भ देते हुए बतलाया है कि राम वासुदेव के अवतार हैं, लक्ष्मण संकर्षण के अवतार हैं, भरत प्रद्युम्न के तथा शत्रुघ्न अनिरुद्ध के अवतार हैं। पद्म पुराण में रामचन्द्र को नारायण कहा गया है तथा लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को क्रमशः शेष, चक्र तथा शंख कहा गया है। स्कन्द पुराण के रामगीत में लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न को भगवान् राम के तीन परिचारक कहा गया है।

सेइ अंश लञा ज्येष्ठ-कनिष्ठाभिमान।

अंशांशि-रूपे शास्त्रे करये व्याख्यान ॥154॥

सेइ अंश लञा-उसी स्वांश को लेकर; ज्येष्ठ-कनिष्ठ-अभिमान-अपने आपको ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ समझते हुए; अंश-अंशि-रूपे–विस्तार तथा आदि भगवान् के रूप में; शास्त्रे-प्रामाणिक शास्त्रों में; करये-करते हैं; व्याख्यान-व्याख्यान।

अनुवाद

कृष्ण तथा बलराम छोटे और बड़े भाई के रूप में प्रकट होते हैं, किन्तु शास्त्रों में उन्हें आदि भगवान् तथा उनके अंश बतलाया गया है।

रामादि-मूर्तिषु कला-नियमेन तिष्ठन्

नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु ।

कृष्णः स्वयं समभवत्परमः पुमान् यो

गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥155॥

राम-आदि-भगवान् राम आदि का अवतार; मूर्तिषु-विविध रूपों में; कला-नियमेन–स्वांश के आदेश से; तिष्ठन्-होते हुए; नाना-विविध; अवतारम्-अवतार; अकरोत्-सम्पन्न किया; भुवनेषु-भुवनों में; किन्तु किन्तु; कृष्णः- भगवान् कृष्ण; स्वयम्-स्वयं; समभवत्-प्रकट हुए; परमः-परम; पुमान्–पुरुष; यः-जो; गोविन्दम्-भगवान् गोविन्द को; आदि-पुरुषम्-आदि पुरुष; तम्-उनको; अहम्-मैं; भजामि-नमस्कार करता हूँ।

अनुवाद

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो अपने विविध पूर्ण अंशों से विविध रूपों तथा भगवान् राम आदि अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं, किन्तु जो भगवान् कृष्ण के अपने परम मूल रूप में स्वयं प्रकट होते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण ब्रह्म-संहिता (5.39) का है।

श्री-चैतन्य—सेइ कृष्ण, नित्यानन्द–राम ।

नित्यानन्द पूर्ण करे चैतन्येर काम ॥156॥

श्री-चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य; सेइ कृष्ण-वे मूल कृष्ण; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द, राम-बलराम; नित्यानन्द–भगवान् नित्यानन्द; पूर्ण करे-पूर्ण करते हैं; चैतन्येर काम-श्री चैतन्य महाप्रभु की सभी इच्छाएँ।

अनुवाद

भगवान् चैतन्य ही भगवान् कृष्ण हैं और श्री नित्यानन्द भगवान् बलराम हैं। भगवान् नित्यानन्द श्री चैतन्य महाप्रभु की सारी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं।

नित्यानन्द-महिमा-सिन्धु अनन्त, अपार ।

एक कणा स्पर्श मात्र,—से कृपा ताँहार ॥157॥

नित्यानन्द-महिमा-भगवान् नित्यानन्द की महिमाओं का; सिन्धु-समुद्र; अनन्त-अनन्द; अपार-अपार; एक कणा-एक अंश; स्पर्शि-मैं स्पर्श करता हूँ; मात्र केवल; से-वह; कृपा-कृपा; ताँहार-उनकी।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द की महिमाओं का सागर अनन्त और अगाध है। केवल उनकी कृपा से ही मैं इसकी एक बूंद का स्पर्श कर सकता हूँ।

आर एक शुन ताँर कृपार महिमा ।

अधम जीवेरे चढ़ाइल ऊर्ध्व-सीमा ॥158॥

आर-अन्य; एक-एक; शुन-कृपया सुनो; तर कृपार महिमा-उनकी कृपा की महिमा; अधम जीवेरे-अधम जीव; चढ़ाइल-उन्होंने ऊपर उठाया; ऊर्ध्व-सीमा-उच्चतम सीमा तक।

अनुवाद

कृपया उनकी कृपा की दूसरी महिमा सुनें। उन्होंने एक पतित जीव को सर्वोच्च सीमा तक ऊपर उठाया है।

वेद-गुह्य कथा एइ अयोग्य कहिते ।

तथापि कहिये ताँर कृपा प्रकाशिते ॥ 159॥

वेद-वेदों की भाँति; गुह्य-अत्यन्त गुप्त; कथा-घटना; एइ–यह; अयोग्य कहिते-प्रकट करने के लिए अयोग्य; तथापि तथापि; कहिये-मैं कहता हूँ; ताँर-उनकी; कृपा-कृपा; प्रकाशिते-प्रकट करने के लिए।

अनुवाद

इसे प्रकट करना उचित नहीं होगा, क्योंकि इसे वेदों के समान ही गुप्त रखना चाहिए; फिर भी मैं इसे कह रहा हूँ, जिससे उनकी कृपा सबको ज्ञात हो जाये।

उल्लास-उपरि लेखों तोमार प्रसाद ।

नित्यानन्द प्रभु, मोर क्षम अपराध ॥ 160॥

उल्लास-उपरि-उल्लास के कारण; लेखों-मैं लिखता हूँ; तोमार प्रसाद-आपकी कृपा; नित्यानन्द प्रभु-नित्यानन्द प्रभु; मोर-मेरे; क्षम-कृपया क्षमा करें; अपराध-अपराध।

अनुवाद

हे नित्यानन्द प्रभु! मैं अत्यन्त उल्लास के साथ आपकी कृपा के बारे में लिख रहा हूँ। कृपया मेरे इस अपराध के लिए आप मुझे क्षमा कर दें।

अवधूत गोसाञिर एक भृत्य प्रेम-धाम ।

मीनकेतन रामदास हय ताँर नाम ॥161 ॥

अवधूत-भिक्षुक; गोसाञिर-भगवान् नित्यानन्द का; एक-एक; भृत्य-दास; प्रेम-धाम-प्रेम के आगार; मीनकेतन-मीनकेतन; राम-दास-रामदास; हय-है; ताँर-उसका; नाम-नाम ।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के एक सेवक थे, जिनका नाम श्री मीनकेतन रामदास था, जो प्रेम के आगार थे।

आमार आलये अहोरात्र-सङ्कीर्तन।

ताहाते आइला तेंहो पात्रा निमन्त्रण ॥ 162॥

आमार आलये-मेरे घर में; अहः-रात्र-दिन-रात; सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण मंत्र का संकीर्तन; ताहाते-इस कारण; आइला–आये; तेंहो-वे; पात्रा निमन्त्रण-निमंत्रण पाकर।

अनुवाद

मेरे घर में अखण्ड संकीर्तन था, अतएव आमन्त्रित किये जाने पर वे वहाँ पर आये।

महा-प्रेम-मय तिंहो वसिला अङ्गने।

सकल वैष्णव ताँर वन्दिला चरणे ॥ 163॥

महा-प्रेम-मय-महाप्रेम में डूबे हुए; तिंहो-वे; वसिला-बैठ गये; अङ्गने-आंगन में; सकल वैष्णव-अन्य सभी वैष्णव; ताँर-उनकी; वन्दिला-पूजा की; चरणे-चरणकमल।

अनुवाद

भावजन्य प्रेम में निमग्न होकर वे मेरे आँगन में बैठ गये और सारे वैष्णव उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करने लगे।

नमस्कार करिते, कार उपरेते चड़े।

प्रेमे कार वंशी मारे, काहाके चापड़े ॥164॥

नमस्कार करिते-नमस्कार करते समय, नीचे झुकते समय; कार–किसी के; उपरेते-शरीर पर; चड़े-ऊपर चढ़े; प्रेमे-भावावेश में; का रे-कोई; वंशी-बांसुरी; मारे-मारते; काहाके-कोई; चापड़े-थप्पड़।

अनुवाद

भगवत्प्रेम के आनन्द में वे कभी नमस्कार करने वाले के कंधे पर चढ़ जाते, कभी अन्यों को अपनी बाँसुरी से मारते या उन्हें मुख पर धीरे से चपत लगा देते।

ये नयन देखिते अश्रु हय मने यार ।

सेइ नेत्रे अविच्छिन्न वहे अश्रु-धार ॥ 165॥

ये-उनकी; नयन-आँखें; देखिते-देखने पर; अश्रु-अश्रु; हय-प्रकट होते हैं; मने-मन से; यार–किसी का; सेइ नेत्रे-उसके नेत्रों में; अविच्छिन्न-लगातार; वहे-बहती है; अश्रु-धार-अश्रु-धारा।

अनुवाद

जब कोई मीनकेतन रामदास की आँखें देखता, तो उसके नेत्रों से भी स्वतः अश्रु बहने लगते, क्योंकि मीनकेतन रामदास के नेत्रों से अश्रु की धारा निरन्तर बहती रहती थी।

कभु कोन अङ्गे देखि पुलक-कदम्ब ।

एक अङ्गे जाड्य ताँर, आर अङ्गे कम्प ॥ 166॥

कभु-कभी-कभी; कोन-कोई; अङ्गे–शरीर के अंगों में; देखि-मैं देखता हूँ; पुलक-कदम्ब-कदम्ब-पुष्पों की भाँति आनन्द का फूटना; एक अङ्गे–शरीर के एक अंग में; जाड्य-जड़ हो गया; ताँर-उसका; आर अड़े-दूसरे अंग में; कम्प–कम्पन।

अनुवाद

कभी उनके शरीर के कुछ भागों में कदम्ब फूलों के समान आनन्द का उभार दृष्टिगत होता और कभी शरीर का एक अंग जड़ हो जाता, जबकि दूसरा अंग काँपने लगता था।

नित्यानन्द बलि' यबे करेन हुङ्कार।

ताहा देखि' लोकेर हय महा-चमत्कार ॥167॥

नित्यानन्द–नित्यानन्द नाम; बलि'–कहना; यबे-जब कभी; करेन हुङ्कार-ऊँची आवाज करना; ताहा देखि'–उसे देखकर; लोकेर-लोगों का; हय-है; महा-चमत्कार-महा-चमत्कार और आश्चर्य।

अनुवाद

जब भी वे नित्यानन्द का नाम लेकर जोर से चीत्कार करते, तो उनके आसपास के लोग अत्यधिक विस्मित हो जाते थे।

गुणार्णव मिश्र नामे एक विप्र आर्छे।

श्री-मूर्ति-निकटे तेंहो करे सेवा-कार्य ॥ 168॥

गुणार्णव मिश्र-गुणार्णव मिश्र के नामे-नाम से; एक-एक; विप्र-ब्राह्मण; आर्य-अत्यन्त आदरणीय; श्री-मूर्ति-निकटे-अर्चाविग्रह के पास; तेंहो-वह; करे-करता है; सेवा-कार्य-सेवा कार्य।

अनुवाद

श्री गुणार्णव मिश्र नामक एक सम्माननीय ब्राह्मण अर्चाविग्रह की सेवा करता था।

अङ्गने आसिया तेंहो ना कैल सम्भाष ।

ताहा देखि' क्रुद्ध हञा बले रामदास ॥ 169॥

अङ्गने-आंगन में; आसिया-आकर; तेंहो-वह; ना-नहीं; कैल-किया; सम्भाष–बातचीत; ताहा देखि'–इसे देखकर; क्रुद्ध हञा-क्रुद्ध होकर; बले-कहते हैं; राम-दास-श्री रामदास।

अनुवाद

जब मीनकेतन आँगन में बैठे थे, तो इस ब्राह्मण ने उनका सम्मान नहीं किया। यह देखकर, श्री रामदास क्रुद्ध हुए और बोले।

'एइ त' द्वितीय सूत रोमहरषण ।

बलदेव देखि' ये ना कैल प्रत्युद्गम' ॥170 ॥

एइ त'–यह; द्वितीय-दूसरा; सूत रोमहरषण-रोमहर्षण-सूत; बलदेव देखि'–भगवान् बलराम को देखकर; ये–जो; ना-नहीं; कैल–किया; प्रत्युद्गम-खड़े होना।

अनुवाद

“यहाँ मैं दूसरा रोमहर्षण सूत देख रहा हूँ, जो भगवान् बलराम को देखकर सम्मान प्रदर्शित करने के लिए उठ खड़ा नहीं हुआ।

एत बलि’ नाचे गाय, करये सन्तोष।

कृष्ण-कार्य करे विप्र–ना करिल रोष ॥171॥

एत बलि’-यह कहकर; नाचे-वे नाचते हैं; गाय-गाते हैं, कीर्तन करते हैं; करये सन्तोष-सन्तुष्ट हो गये; कृष्ण-कार्य-अर्चाविग्रह की पूजा का कार्य; करे-करता है; विप्र-ब्राह्मण; ना करिल-नहीं हुआ; रोष-क्रुद्ध।

अनुवाद

यह कहकर वे जी-भरकर नाचने-गाने लगे, किन्तु वह ब्राह्मण क्रुद्ध नहीं हुआ, क्योंकि तब वह भगवान् कृष्ण की सेवा में लगा था।

तात्पर्य

मीनकेतन रामदास नित्यानन्द प्रभु के बहुत बड़े भक्त थे। जब वे कृष्णदास कविराज के घर में प्रविष्ट हुए, तो उस समय गुणार्णव मिश्र नामक पुजारी, जो उनके घर में स्थापित अर्चाविग्रह की पूजा कर रहा था, उसने उनका उचित सम्मान नहीं किया। ऐसी ही घटना नैमिषारण्य में ऋषियों की सभा में रोमहर्षण सूत के प्रवचन के समय घटी। भगवान् बलदेव उस सभा में प्रविष्ट हुए, किन्तु रोमहर्षण सूत व्यासासन पर बैठे थे, अतएव वे भगवान् बलदेव को नमस्कार करने नीचे नहीं उतरे। गुणार्णव मिश्र के आचरण से ऐसा लगा कि भगवान् नित्यानन्द के प्रति उसके मन में अधिक सम्मान

नहीं था। यह बात मीनकेतन रामदास को बिल्कुल अच्छी नहीं लगी। इस कारण मीनकेतन रामदास की मनोवृत्ति भक्तों द्वारा कभी निन्दित नहीं होती।

उत्सवान्ते गेला तिंहो करिया प्रसाद।

मोर भ्राता-सने ताँर किछु हैल वाद॥ 172॥

उत्सव-अन्ते-उत्सव के पश्चात्; गेला–चले गये; तिंहो-वे; करिया प्रसाद-कृपा करके; मोर-मेरे; भ्राता-सने–भाई के साथ; ताँर-उसका; किछु-कुछ; हैल–था; वाद-वाद-विवाद।

अनुवाद

उत्सव समाप्त होने पर मीनकेतन रामदास हर एक को आशीर्वाद देकर चले गये। उस समय मेरे भाई के साथ उनका कुछ विवाद उठ खड़ा हुआ।

चैतन्य-प्रभुते ताँर सुदृढ़ विश्वास।

नित्यानन्द-प्रति ताँर विश्वास-आभास॥ 173॥

चैतन्य-प्रभुते-श्री चैतन्य महाप्रभु में; ताँर-उसका; सु-दृढ़-दृढ़; विश्वास–विश्वास; नित्यानन्द-प्रति-भगवान् नित्यानन्द को; ताँर-उसका; विश्वास-आभास–विश्वास का तनिक आभास।

अनुवाद

मेरे भाई की भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु में अटूट श्रद्धा थी, किन्तु भगवान् नित्यानन्द में थोड़ी सी ही श्रद्धा थी।

इहा जानि' रामदासेर दुःख हइल मने।

तबे त’ भ्रातारे आमि करिनु भर्सने ॥ 174॥

इहा-वह; जानि’–जानकर; राम-दासेर-सन्त रामदास का; दुःख–दुःख; हइल-हुआ; मने-मन में; तबे-उस समय; त’–निश्चय ही; भ्रातारे-मेरे भाई को; आमि–मैं; करिनु–किया; भर्सने-भर्त्सना, झिड़क।

अनुवाद

यह जानकर रामदास मन ही मन खिन्न हुए। तब मैंने अपने भाई की भर्त्सना की।

दुइ भाइ एक-तनु–समान-प्रकाश ।

नित्यानन्द ना मान, तोमार हबे सर्व-नाश ॥ 175॥

दुइ भाइ-दोनों भाई; एक-तनु-एक शरीर; समान-प्रकाश-समान रूप; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; ना माने-तुम विश्वास नहीं करते; तोमार-तुम्हारा; हबे-होगा; सर्व-नाश-सर्वनाश।

अनुवाद

मैंने उससे कहा, “ये दोनों भाई एक शरीर जैसे हैं; वे दोनों एकरूप हैं। यदि तुम भगवान् नित्यानन्द में श्रद्धा नहीं रखते, तो तुम्हारा पतन होगा।”

एकेते विश्वास, अन्ये ना कर सम्मान ।

“अर्ध-कुक्कुटी-न्याय” तोमार प्रमाण ॥ 176॥

एकेते विश्वास–एक में विश्वास; अन्ये-दूसरे में; ना-नहीं; कर-करते हो; सम्मान-सम्मान; अर्ध-कुक्कुटी-न्याय-आधी मुर्गी स्वीकार करने का न्याय; तोमार-तुम्हारा; प्रमाण-प्रमाण।

अनुवाद

“यदि एक में तुम्हारा विश्वास है, किन्तु दूसरे के प्रति अनादर है, तो तुम्हारा तर्क “अर्ध कुक्कुटी न्याय”* के समान है, जिसमें आधी मुर्गी का तर्क स्वीकार किया जाता है।

किंवा, दोंहा ना मानिन्ना हओ त’ पाषण्ड ।

एके मानि’ आरे ना मानि,–एइ-मत भण्ड ॥ 177॥

किंवा अन्यथा; दहा-वे दोनों; ना-नहीं; मानिञा–स्वीकार करके; हओ-तुम हो जाते हो; त’–निश्चित रूप से; पाषण्ड–नास्तिक; एके-उनमें से एक; मानि’–स्वीकार करके; आरे-दूसरे; ना मानिन स्वीकार करके; एइ-मत-इस प्रकार का विश्वास; भण्ड-कपट, दम्भ।

अनुवाद

“एक भाई को मानना और दूसरे का अनादर करना और इस तरह दम्भी बनना, उससे तो यह बेहतर होगा कि दोनो भाईयों को न मानकर नास्तिक बनना।”

*एक मूर्ख किसान ने एक बार सोचा कि वह अपनी मुर्गी का सिर काटकर धन बचा लेगा, क्योंकि उसे खाना देना पड़ता था और उसकी पूँछ को बना रहने देगा, क्योंकि यह अण्डे देती थी। अतः अर्ध कुक्कुटी न्याय की कहावत निकली जिसका पारिभाषिक अर्थ है “आधी-मुर्गी का तर्क।”

क्रुद्ध हैया वंशी भाङ्गि’ चले रामदास ।

तत्काले आमार भ्रातार हैल सर्व-नाश ॥178॥

क्रुद्ध हैया–अत्यन्त क्रुद्ध होकर; वंशी-बाँसुरी; भाङ्गि-तोड़कर; चले-चल दिये; राम-दास-रामदास; तत्-काले-उस समय; आमार-मेरा; भ्रातार-भाई का; हैल-था; सर्व-नाश-सर्वनाश।

अनुवाद

अतः श्री रामदास ने क्रोध में अपनी वंशी तोड़ डाली और वहाँ से चले गये और उसी समय मेरे भाई का सर्वनाश हो गया।

एइ त कहिल ताँर सेवक-प्रभाव ।

आर एक कहि ताँर दयार स्वभाव ॥179॥

एइ त'-इस प्रकार; कहिल–व्याख्या की, वर्णन किया; ताँर–उनकी; सेवक-प्रभाव-सेवक की शक्ति; आर-अन्य; एक-एक; कहि-मैं कहता हूँ; ताँर–उनकी; दयार-दया का; स्वभाव-स्वभाव, लक्षण।

अनुवाद

इस तरह मैंने भगवान् नित्यानन्द के सेवकों की शक्ति का वर्णन किया है। अब मैं उनकी कृपा की दूसरी विशेषता का वर्णन करूँगा।

भाइके भर्तिसनु मुञि, लबा एइ गुण ।

सेइ रात्रे प्रभु मोरे दिला दरशन ॥180 ॥

भाइके-मेरा भाई; भर्तिसनु-डाँटा; मुञि-मैं; लञा-लेकर; एइ–यह; गुण-सद्गुण के रूप में; सेइ रात्रे-उसी रात; प्रभु-मेरे प्रभु; मोरे-मुझे; दिला–दिया; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

उस रात भगवान् नित्यानन्द ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिये, क्योंकि अपने भाई की भर्त्सना करके मैंने अच्छा कार्य किया था।

नैहाटि-निकटे झामटपुर' नामे ग्राम।

ताँहा स्वप्ने देखा दिला नित्यानन्द-राम ॥181॥

नैहाटि-निकटे–नैहाटी गाँव के निकट; झामटपुर-झामटपुर; नामे-नाम से; ग्राम-गाँव; ताँहा-वहाँ; स्वप्ने–स्वप्न में; देखा-प्रकट हुए; दिला–दिया; नित्यानन्द-राम-भगवान् नित्यानन्द बलराम।

अनुवाद

नैहाटी के निकटवर्ती झामटपुर गाँव में नित्यानन्द प्रभु ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिया।

तात्पर्य

अब झामटपुर तक रेलवे लाइन जाती है। यदि कोई वहाँ जाना चाहे, तो वह कटवा रेलवे लाइन से रेलगाड़ी पकड़ सकता है और सीधे सालार स्टेशनं जा सकता है। वहाँ से सीधे झामटपुर जाया जा सकता है।

दण्डवत् हैया आमि पडिनु पायेते।

निज-पाद-पद्म प्रभु दिला मोर माथे ॥182॥

दण्डवत् हैया–दण्डवत् प्रणाम किया; आमि-मैं; पड़िनु–गिर गया; पायेते-उनके चरणकमलों पर; निज-पाद-पद्म-उनके अपने चरणकमल; प्रभु-भगवान्; दिला–रखे; मोर-मेरे; माथे-सिर पर।

अनुवाद

उन्हें नमस्कार करके मैं उनके चरणों पर गिर पड़ा, तब उन्होंने मेरे सिर पर अपने चरणकमल रख दिये।

'उठ', 'उठ' बलि' मोरे बले बार बार।

उठि' ताँर रूप देखि' हैनु चमत्कार ॥183॥

उठ उठ-उठो, उठो; बलि'–कहकर; मोरे-मुझे; बले-कहते हैं; बार बार-बारम्बार; उठि'–उठकर; ताँर-उनका; रूप देखि'–रूप देखकर; हैनु-हो गया; चमत्कार–चकित।

अनुवाद

उन्होंने मुझसे बारम्बार कहा-"उठो, उठो!" उठने पर मैं उनका सौन्दर्य देखकर अत्यधिक विस्मित हुआ।

श्याम-चिक्कण कान्ति, प्रकाण्ड शरीर।

साक्षात्कन्दर्प, यैछे महा-मल्ल-वीर ॥184॥

श्याम-श्याम; चिक्कण-चिकना; कान्ति-चमक; प्रकाण्ड–भारी; शरीर-शरीर; साक्षात्-साक्षात्; कन्दर्प-कामदेव; यैछे-जैसे; महा-मल्ल-अत्यन्त मजबूत और बलवान; वीर–वीर।

अनुवाद

उनका रंग चिकना श्यामल वर्ण का था। वे अपने लम्बे, बलिष्ठ, वीर-जैसे शारीरिक आकार के कारण साक्षात् कामदेव जैसे लग रहे थे।

सुवलित हस्त, पद, कमल-नयान।

पट्ट-वस्त्र शिरे, पट्ट-वस्त्र परिधान॥ 185॥

सुवलित–सुनिर्मित; हस्त-हाथ; पद-पाँवों; कमल-नयान-कमलनयन; पट्ट-वस्त्र-रेशमी वस्त्र; शिरे–सिर पर; पट्ट-वस्त्र-रेशमी पोशाक; परिधान-पहनावा।

अनुवाद

उनके हाथ, बाँहें तथा पाँव अत्यन्त सुन्दर थे और उनकी आँखें कमल के फूलों जैसी थीं। वे रेशमी वस्त्र पहने थे और उनके सिर पर रेशमी पगड़ी थी।

सुवर्ण-कुण्डल कर्णे, स्वर्णाङ्गद-वाला।

पायेते नूपुर बाजे, कण्ठे पुष्प-माला॥186॥

सुवर्ण-कुण्डल-सुवर्ण कुण्डल; कर्णे-कानों में; स्वर्ण-अङ्गद-सुवर्ण बाजुबन्द; वाला और चूड़ियाँ; पायेते-पाँव पर; नूपुर-नूपुर; बाजे-बजते हैं; कण्ठे-गले में; पुष्प-माला-पुष्प माला।

अनुवाद

वे कानों में सोने के कुण्डल पहने हुए थे और उनके बाजूबन्द तथा कंगन सोने के थे। वे अपने पाँवों में रुनझुन करती पायल तथा अपने गले में फूलों की माला धारण किये हुए थे।

चन्दन-लेपित-अङ्ग, तिलक सुठाम।

मत्त-गज जिनि मद-मन्थर पयान॥ 187॥

चन्दन–चन्दन लेप से; लेपित-लेपित, लिपा हुआ; अङ्ग-शरीर; तिलक सुठाम-तिलक से सुशोभित; मत्त-गज-मत्त हाथी; जिनि'–मात करती थी, बढ़कर; मद-मन्थर-शराब पीकर मस्त हुआ हुए; पयान–चलना फिरना, गति।

अनुवाद

उनका शरीर चन्दन से लेपित था और वे तिलक से सुशोभित हो रहे थे। उनकी चाल मदमत्त हाथी को लज्ञाने वाली थी।

कोटि-चन्द्र जिनि' मुख उज्वल-वरण।

दाड़िम्ब-बीज-सम दन्त ताम्बूल-चर्वण ॥188॥

कोटि-चन्द्र-लाखों चन्द्र; जिनि'–बढ़कर; मुख–मुख; उज्वल-वरण-उज्जवल वर्ण का; दाडिम्ब-बीज-अनार के बीज; सम–के समान; दन्त-दांत; ताम्बूल-चर्वण-पान सुपारी चबाने से।

अनुवाद

उनका मुखमण्डल करोड़ों चन्द्रमाओं से भी अधिक सुन्दर था और पान खाने के कारण उनके दाँत अनार के दानों जैसे लग रहे थे।

प्रेमे मत्त अङ्ग डाहिने-वामे दोले।

'कृष्ण' 'कृष्ण' बलिया गम्भीर बोल बले ॥189॥

प्रेमे-प्रेम में; मत्त-लीन; अङ्ग-सारा शरीर; डाहिने-दाहिनी ओर को; वामे-बाँई ओर को; दोले-हिलता है; कृष्ण कृष्ण-कृष्ण कृष्ण; बलिया-बोलते हुए; गम्भीर-गम्भीर; बोल-शब्द; बले-बोल रहे थे।

अनुवाद

उनका शरीर इधर-उधर, दाएँ-बाएँ हिल रहा था, क्योंकि वे प्रेम में मग्न थे। वे गम्भीर वाणी से "कृष्ण, कृष्ण" उच्चारण कर रहे थे।

राङ्गा-यष्टि हस्ते दोले येन मत्त सिंह ।

चारि-पाशे वेड़ि आछे चरणेते भृङ्ग ॥190॥

राङ्गा-ग्रष्टि-लाल छड़ी; हस्ते–हाथ में; दोले-हिलती है; येन–की तरह; मत्त-मस्त, पागल; सिंह-सिंह; चारि-पाशे-चारों ओर; वेड़ि-घेरे हुए; आछे-है; चरणेते-चरणकमलों पर; भृङ्ग-भौंरे।

अनुवाद

उनके हाथ में उनकी लाल छड़ी हिल रही थी, जिससे वे मदमत्त सिंह की तरह लग रहे थे। उनके चरणों के चारों ओर भौंरे मँडरा रहे थे।

पारिषद-गणे देखि सब गोप-वेशे ।

'कृष्ण' 'कृष्ण' कहे सबे सप्रेम आवेशे ॥191॥

पारिषद-गणे-पार्षद गण; देखि-देखकर; सब-सब; गोप-वेशे-गोपों के वेष में; कृष्ण कृष्ण-कृष्ण कृष्ण; कहे-कहते हैं; सबे-सभी; स-प्रेम–सप्रेम; आवेशे-आवेश में।

अनुवाद

उनके भक्त ग्वालबालों की तरह वस्त्र धारण किये हुए थे और उनके चरणों को अनेक भौरों की तरह घेरे हुए थे। वे प्रेमावेश में मग्न होकर "कृष्ण, कृष्ण" उच्चारण कर रहे थे।

शिङ्गा वांशी बाजाय केह, केह नाचे गाय ।

सेवक योगाय ताम्बूल, चामर ढुलाय ॥ 192॥

शिङ्गा वांशी-सींग और बाँसुरियाँ; बाजाय-बजाते हैं; केह-कुछ; केह-कुछ; नाचे-नृत्य करते हैं; गाय-गाते हैं; सेवक-सेवक; योगाय-देता है; ताम्बूल-पान-सुपारी; चामर-चामर; ढुलाय-झलता है।

अनुवाद

उनमें से कुछ सिंगा तथा वंशी बजा रहे थे और शेष नृत्य-गान कर रहे थे। कुछ पान अर्पित कर रहे थे और कुछ उन्हें चामर डुला रहे थे।

नित्यानन्द-स्वरूपेर देखिया वैभव ।

किबा रूप, गुण, लीला—अलौकिक सब ॥ 193॥

नित्यानन्द-स्वरूपेर-भगवान् नित्यानन्द के स्वरूप का; देखिया-देखकर; वैभव-ऐश्वर्य; किबा रूप-कितना अद्भुत रूप; गुण-गुण; लीला-लीलाएँ; अलौकिक-अलौकिक; सब-सब।

अनुवाद

इस प्रकार मैंने श्री नित्यानन्द स्वरूप में ऐसा ऐश्वर्य देखा। उनके अद्भुत रूप, गुण और लीलाएँ, सब अलौकिक हैं।

आनन्दे विह्वल आमि, किछु नाहि जानि ।

तबे हासि' प्रभु मोरे कहिलेन वाणी ॥ 194॥

आनन्दे-दिव्य आनन्द में; विह्वल-विह्वल; आमि-मैं; किछु-कुछ; नाहि-नहीं; जानि-जानता हूँ; तबे-उस समय; हासि'–मुस्करा कर; प्रभु-भगवान्; मोरे-मुझसे; कहिलेन–कहते हैं; वाणी-कुछ शब्द।

अनुवाद

मैं दिव्य आनन्द से विभोर था और कुछ भी नहीं जान पा रहा था। तभी प्रभु नित्यानन्द हँसे और मुझसे इस प्रकार बोले।

आरे आरे कृष्णदास, ना करह भय ।

वृन्दावने याह, ताँहा सर्व लभ्य हय ॥ 195॥

आरे आरे-अरे! अरे !; कृष्ण-दास-कृष्णदास; ना-नहीं; करह-करो; भय-भय; वृन्दावने याह-वृन्दावन जाओ; ताँहा-वहाँ; सर्व-प्रत्येक वस्तु; लभ्य–उपलब्ध; हय-है।

अनुवाद

"अरे कृष्णदास! तुम डरो नहीं। वृन्दावन जाओ, क्योंकि वहाँ तुम्हें सब कुछ प्राप्त होगा।"

एत बलि' प्रेरिला मोरे हातसानि दिया ।

अन्तर्धान कैल प्रभु निज-गण लञा ॥196॥

एत बलि'-यह कहकर; प्रेरिला-भेज दिया; मोरे-मुझे; हातसानि-हाथ के इशारे से; दिया-देकर; अन्तर्धान कैल–अन्तर्धान हो गये; प्रभु-मेरे स्वामी; निज-गण लञा-अपने निजी साथियों को लेकर।

अनुवाद

यह कहकर उन्होंने अपना हाथ हिलाकर मुझे वृन्दावन की ओर निर्देशित किया। फिर वे अपने संगियों समेत अन्तर्धान हो गये।

मूर्च्छित हइया मुञि पड़िनु भूमिते ।

स्वप्न-भङ्ग हैल, देखि, हाछे प्रभाते ॥ 197॥

मूच्छित हइया-मूर्छित होकर; मुञि-मैं; पड़िनु–गिर गया; भूमिते-भूमि पर; स्वप्न-भङ्ग-स्वपन के भंग होने पर; हैल-हो गया; देखि-मैंने देखा; हाछे-था; प्रभाते-प्रात:काल का प्रकाश।

अनुवाद

मैं मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा, मेरा स्वप्न टूट गया और जब मुझे होश आया, तो मैंने देखा कि प्रातःकाल हो चुका था।

कि देखिनु कि शुनिनु, करिये विचार ।

प्रभु-आज्ञा हैल वृन्दावन याइबार ॥ 198॥

कि देखिनु-मैंने क्या देखा; कि शुनिनु-मैंने क्या सुना; करिये विचार-मैं विचार करने लगा; प्रभु-आज्ञा-अपने स्वामी की आज्ञा; हैल-था; वृन्दावन-वृन्दावन को; याइबार-जाना।

अनुवाद

मैंने जो कुछ देखा और सुना था उस पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भगवान् ने मुझे तुरन्त ही वृन्दावन जाने का आदेश दिया है।

सेइ क्षणे वृन्दावने करिनु गमन।

प्रभुर कृपाते सुखे आइनु वृन्दावन ॥199॥

सेइ क्षणे-तत्क्षण; वृन्दावने-वृन्दावन की ओर; करिनु-मैंने किया; गमन-गमन; प्रभुर कृपाते-भगवान् नित्यानन्द की कृपा से; सुखे-अत्यन्त प्रसन्न होकर; आइनु–पहुँचा; वृन्दावन-वृन्दावन में।

अनुवाद

मैं उसी क्षण वृन्दावन के लिए चल पड़ा और उनकी कृपा से मैं बड़ी प्रसन्नतापूर्वक वृन्दावन पहुँच गया।

जय जय नित्यानन्द, नित्यानन्द-राम।

याँहार कृपाते पाइनु वृन्दावन-धाम ॥200॥

जय जय-जय जय; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द की; नित्यानन्द-राम-भगवान् बलराम की, जो नित्यानन्द के रूप में प्रकट हुए; याँहार कृपाते-जिनकी कृपा से; पाइनु-मुझे मिला; वृन्दावन-धाम-वृन्दावन में आश्रय।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द बलराम की जय हो, जिनकी कृपा से मुझे वृन्दावन के दिव्य धाम में शरण प्राप्त हुई।

जय जय नित्यानन्द, जय कृपा-मय ।

याँहा हैते पाइनु रूप-सनातनाश्रय ॥ 201॥

जय जय जय जय; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द की; जय कृपा-मय-परम दयालु प्रभु की जय हो; याँहा हैते–जिनसे; पाइनु-मुझे मिला; रूप-सनातन-आश्रय-रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के चरणकमलों में आश्रय।

अनुवाद

कृपालु प्रभु नित्यानन्द की जय हो, जय हो, जिनकी कृपा से मैंने श्री रूप तथा श्री सनातन के चरणकमलों में शरण प्राप्त की!

याँहा हैते पाइनु रघुनाथ-महाशय ।

याँहा हैते पाइनु श्री-स्वरूप-आश्रय ॥202॥

याँहा हैते–जिनसे; पाइनु-मुझे दिया; रघुनाथ-महा-आशय-रघुनाथ दास गोस्वामी का आश्रय; याँहा हैते–जिनसे; पाइनु-मुझे मिला; श्री-स्वरूप-आश्रय-स्वरूप दामोदर गोस्वामी के चरणों पर आश्रय।

अनुवाद

उनकी कृपा से मुझे श्री रघुनाथदास गोस्वामी जैसे महापुरुष की शरण प्राप्त हुई है और उन्हीं की कृपा से मैंने श्री स्वरूप दामोदर का आश्रय प्राप्त किया है।

तात्पर्य

जो व्यक्ति श्री श्री राधा तथा कृष्ण की सेवा करने में दक्ष बनने का इच्छुक हो, उसे सदैव स्वरूप दामोदर गोस्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी तथा रघुनाथदास गोस्वामी के मार्गदर्शन में रहने की आकांक्षा करनी चाहिए। इन गोस्वामियों का संरक्षण प्राप्त करने के लिए मनुष्य को नित्यानन्द प्रभु की कृपा प्राप्त करनी आवश्यक है। लेखक ने इन दो श्लोकों में इसी तथ्य को बतलाने का प्रयास किया है।

सनातन-कृपाय पाइनु भक्तिर सिद्धान्त ।

श्री-रूप-कृपाय पाइनु भक्ति-रस-प्रान्त ॥ 203॥

सनातन-कृपाय-सनातन गोस्वामी की कृपा से; पाइनु-मैंने पाया; भक्तिर सिद्धान्त-भक्ति के सिद्धान्त; श्री-रूप-कृपाय-श्रील रूप गोस्वामी की कृपा से; पाइनु-मैंने पाया; भक्ति-रस-प्रान्त-भक्तिरस की सीमा।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी की कृपा से मैंने भक्ति के अन्तिम निष्कर्ष प्राप्त किये हैं और श्री रूप गोस्वामी की कृपा से मैंने भक्ति के सर्वोच्च अमृत का आस्वादन किया है।

तात्पर्य

भक्ति-विज्ञान के शिक्षक श्री सनातन गोस्वामी प्रभु ने कई पुस्तकें लिखीं, जिनमें से बृहद्-भागवतामृत अत्यधिक प्रसिद्ध है। जो कोई भी व्यक्ति भक्त, भक्ति तथा कृष्ण के विषय में जानना चाहता है, उसे यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। सनातन गोस्वामी ने भी श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध का एक विशेष भाष्य भी लिखा है, जो दशम टिप्पणी कहलाता है। यह ग्रंथ इतना उत्कृष्ट है कि इसे पढ़कर भगवान् कृष्ण की प्रेममयी लीलाओं को अत्यन्त गहराई से समझा जा सकता है। सनातन गोस्वामी कृत एक अन्य पुस्तक है हरि-भक्ति-विलास, जो सभी वर्ग के वैष्णवों-वैष्णव गृहस्थों, वैष्णव ब्रह्मचारियों, वैष्णव वानप्रस्थियों तथा वैष्णव संन्यासियों के लिए विधि-विधानों को बताने वाली है। किन्तु यह पुस्तक विशेषतया वैष्णव गृहस्थों के लिए लिखी गई थी। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी ने विलाप-कुसुमाञ्जलि नामक अपनी स्तुति के छठे श्लोक में सनातन गोस्वामी के प्रति अपना आभार निम्न प्रकार से व्यक्त किया है :

वैराग्ययुग्भक्तिरसं प्रयत्नै-

रपाययन्मामनभीप्सुमन्धम् ।

कृपाम्बुधिर्यः परदुःखदुःखी

सनातनस्तं प्रभुमाश्रयामि ॥

“मैं वैराग्य से युक्त भक्तिरस को पीने के लिए अनिच्छुक था, किन्तु सनातन गोस्वामी ने अपनी अहैतुकी कृपा से मुझे इसे पीने को बाध्य किया, अन्यथा मैं ऐसा न कर पाता। अतएव वे करुणा के सिन्धु हैं। वे मुझ जैसे पतितात्माओं पर विशेष दयालु हैं, अतएव मेरा कर्तव्य है कि मैं उनके चरणों में सादर नमस्कार करूँ।” कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने भी चैतन्य-चरितामृत के अन्तिम अनुभाग में रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी और श्रील जीव गोस्वामी का नाम विशेष रूप से वर्णन किया

है और इन तीनों गुरुओं के साथ साथ रघुनाथदास के भी चरणकमलों पर अपना सादर नमस्कार अर्पण किया है। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी ने भी सनातन गोस्वामी को भक्ति-विज्ञान के शिक्षक के रूप में स्वीकार किया है। श्रील रूप गोस्वामी तो भक्तिरसाचार्य कहे गये हैं। उनकी सुप्रसिद्ध कृति भक्तिरसामृत-सिन्धु भक्ति-विज्ञान है और इसे पढ़कर भक्ति का अर्थ समझा जा सकता है। उनकी दूसरी प्रसिद्ध कृति उज्ज्वल नीलमणि है, जिसमें उन्होंने भगवान् कृष्ण तथा राधारानी के प्रेम-व्यापार तथा दिव्य लीलाओं का विस्तृत वर्णन किया है।

जय जय नित्यानन्द-चरणारविन्द ।

याँहा हैते पाइनु श्री-राधा-गोविन्द ॥204॥

जय जय-जय जय; नित्यानन्द- भगवान् नित्यानन्द की; चरण-अरविन्द-चरणारविन्द; याँहा हैते–जिनसे; पाइनु-मैंने पाया; श्री-राधा-गोविन्द-श्री राधा और गोविन्द का आश्रय।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द प्रभु के चरणारविन्दों की जय हो, क्योंकि मैंने उनकी कृपा से श्री राधा-गोविन्द को प्राप्त किया है!

तात्पर्य

श्रील नरोत्तमदास ठाकुर, जो अपनी काव्य कृति प्रार्थना के लिए विख्यात हैं, उन्होंने अपनी एक प्रार्थना में शोक व्यक्त किया है, "भगवान् नित्यानन्द कब मुझ पर कृपा करेंगे, जिससे कि मैं सारी भौतिक इच्छाओं को भूल सकेंगा?" श्रील नरोत्तमदास ठाकुर पुष्टि करते हैं कि जब तक मनुष्य शरीर तथा इन्द्रियों की आवश्यकताओं को पूरा करने की भौतिक इच्छाओं से मुक्त नहीं हो जाता,

तब तक वह भगवान् कृष्ण के दिव्य धाम वृन्दावन को समझ नहीं सकता। वे इसकी भी पुष्टि करते हैं कि छ: गोस्वामियों के निर्देश का पालन किये बिना कोई राधा तथा कृष्ण के प्रेम-व्यवहारों को नहीं समझ सकता। एक अन्य श्लोक में नरोत्तमदास ठाकुर ने कहा है कि नित्यानन्द प्रभु की अहैतुकी कृपा के बिना कोई राधा तथा कृष्ण की लीलाओं में प्रवेश नहीं कर सकता।

जगाइ माधाइ हैते मुञि से पापिष्ठ ।

पुरीषेर कीट हैते मुञि से लघिष्ठ ॥205॥

जगाइ माधाइ-जगाई माधाई दो भाई, हैते–की अपेक्षा; मुञि-मैं; से-वह; पापिष्ठ-अधिक पापी; पुरीषेर–मल में; कीट-कीड़े; हैते–की अपेक्षा; मुञि-मैं हूँ; से-वह; लघिष्ठ-निम्नतर।

अनुवाद

मैं जगाइ तथा माधाइ से भी अधिक पापी हूँ और मल के कीट से भी तुच्छ हूँ।

मोर नाम शुने येइ तार पुण्य क्षय ।

मोर नाम लय येइ तार पाप होय ॥206॥

मोर नाम-मेरा नाम; शुने-सुनता है; येइ-जो कोई; तार-उसका; पुण्य क्षय-पुण्य का क्षय; मोर नाम–मेरा नाम; लय-लेता है; येइ-जो कोई; तार-उसका; पाप-पाप; हय-है।

अनुवाद

जो भी मेरा नाम सुनता है, उसके पुण्यकर्मों के फल नष्ट हो जाते हैं और जो मेरा नाम लेता है, वह पापी बन जाता है।

एमन निघृण मोरे केबा कृपा करे।

एक नित्यानन्द विनु जगत्भितरे ॥ 207॥

एमन-ऐसा; निघृण-घृणास्पद; मोरे-मुझे; केबा-कौन; कृपा-कृपा; करे-करता है; एक-एक; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; विनु–बिना, अतिरिक्त; जगत्-जगत्; भितरे-के भीतर।

अनुवाद

इस जगत् में नित्यानन्द के बिना मुझ जैसे घृणास्पद मनुष्य पर कौन अपनी दया प्रदर्शित कर सकता था?

प्रेमे मत्त नित्यानन्द कृपा-अवतार।

उत्तम, अधम, किछु ना करे विचार ॥208॥

प्रेमे-प्रेमावेश में; मत्त-मत्त, पागल; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; कृपा-कृपालु; अवतार–अवतार; उत्तम–उत्तम; अधम-अधम; किछु-कोई; ना-नहीं; करे-करते; विचार-विचार, भेद।

अनुवाद

चूँकि वे प्रेमावेश में मत्त रहते हैं और कृपा के अवतार हैं, अतएव वे अच्छे-बुरे में भेदभाव नहीं करते।

ये आगे पड़ये, तारे करये निस्तार।

अतएव निस्तारिला मो-हेन दुराचार ॥209॥

ये-जो कोई; आगे-आगे; पड़ये-गिरता है; तारे-उसको; करये-करता है; निस्तार-उद्धार; अतएव–अतएव; निस्तारिला-मुक्त किया; मो-मुझ जैसे; हेन-ऐसा; दुराचार-पापी एवं पतित व्यक्ति।

अनुवाद

जो उनके समक्ष भूमि पर गिरते हैं, वे उनका उद्धार कर देते हैं। अतएव उन्होंने मुझ जैसे पापी तथा पतित व्यक्ति का उद्धार कर दिया है।

मो-पापिष्ठे आनिलेन श्री-वृन्दावन ।

मो-हेन अधमे दिला श्री-रूप-चरण ॥ 210॥

मो-पापिष्ठे-मुझ जैसे पापी; आनिलेन-वे लाये; श्री-वृन्दावन-वृन्दावन को; मो-हेन–मुझ जैसे पर; अधमे-अधम पर; दिला-उद्धार किया; श्री-रूप-चरण-रूप गोस्वामी के चरणकमल।

अनुवाद

यद्यपि मैं पापी हूँ और अत्यन्त अधम हूँ, फिर भी उन्होंने मुझे श्री रूप गोस्वामी के चरणकमलों का आश्रय प्रदान किया है।

श्री-मदन-गोपाल-श्री-गोविन्द-दरशन ।

कहिबार योग्य नहे ए-सब कथन ॥211॥

श्री-मदन-गोपाल-श्री मदन गोपाल; श्री-गोविन्द-भगवान् राधा-गोविन्द; दरशन-दर्शन; कहिबार-बोलने के लिए; ग्रोग्य-योग्य; नहे-नहीं; ए-सब कथन-ये सब गुह्य शब्द।

अनुवाद

मैं भगवान् मदनगोपाल तथा भगवान् गोविन्द के दर्शन के विषय में ये सारे गोपनीय शब्द कहने के योग्य नहीं हूँ।

वृन्दावन-पुरन्दर श्री-मदन-गोपाल ।

रास-विलासी साक्षात्व्रजेन्द्र कुमार ॥212॥

वृन्दावन-पुरन्दर-वृन्दावन के प्रमुख अर्चाविग्रह; श्री-मदन-गोपाल–भगवान् मदन गोपाल; रास-विलासी–रास लीलाओं के भोक्ता; साक्षात्-साक्षात्; व्रजेन्द्र-कुमार-नन्द महाराज के पुत्र।

अनुवाद

वृन्दावन के प्रमुख अर्चाविग्रह भगवान् मदन गोपाल रासनृत्य के भोक्ता हैं और व्रजराज के साक्षात् पुत्र हैं।

श्री-राधा-ललिता-सङ्गे रास-विलास ।

मन्मथ-मन्मथ-रूपे याँहार प्रकाश ॥213॥

श्री-राधा-श्रीमती राधारानी; ललिता-उनकी निजी सखी ललिता; सङ्गे–के साथ; रास-विलास-रास नृत्य को भोगना, आनन्द लेना; मन्मथ-कामदेव का; मन्मथ-रूपे-कामदेव के रूप में; याँहार–जिनका; प्रकाश-रूप प्रकट करता है।

अनुवाद

वे श्रीमती राधारानी, श्री ललिता तथा अन्यों के साथ रासनृत्य का आनन्द लेते हैं। वे कामदेवों के भी कामदेव के रूप में अपने आपको प्रकट करते हैं।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमान-मुखाम्बुजः ।

पीताम्बर-धरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ-मन्मथः ॥214॥

तासाम्-उनमें से; आविरभूत्-प्रकट हुए; शौरिः-भगवान् कृष्ण; स्मयमान-मुसकराते हुए; मुख-अम्बुजः-कमल-मुख; पीत-अम्बर-धरः-पीत वस्त्र धारी; स्रग्वी-पुष्पमाला से सुशोभित; साक्षात्-साक्षात्; मन्मथ-कामदेव के; मन्मथः–कामदेव।

अनुवाद

"पीताम्बर धारण किये तथा फूलों की माला से अलंकृत, गोपियों के मध्य स्मितहास्य से युक्त कमलमुख वाले भगवान् कृष्ण कामदेव के हृदय को भी मोहने वाले लग रहे थे।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.32.2) से लिया गया है।

स्व-माधुर्ये लोकेर मन करे आकर्षण ।

दुइ पाशे राधा ललिता करेन सेवन ॥215॥

स्व-माधुर्ये-अपने माधुर्य से; लोकेर-सभी लोगों का; मन-मन; करे-करते हैं; आकर्षण-आकर्षित; दुइ पाशे-दोनों ओर; राधा-श्रीमती राधारानी; ललिता-तथा उनकी सखी ललिता; करेन-करती हैं; सेवन–सेवा।

अनुवाद

उनके दोनों ओर राधा तथा ललिता सेवा करती हैं। इस तरह वे अपनी माधुरी से सबके हृदयों को आकृष्ट करते हैं।

नित्यानन्द-दया मोरे ताँरे देखाइल ।

श्री-राधा-मदन-मोहने प्रभु करि' दिल ॥ 216॥

नित्यानन्द-दया-भगवान् नित्यानन्द की दया; मोरे-मुझ पर; ताँरे–मदनमोहन; देखाइल-दिखाई; श्री-राधा-मदन-मोहने-श्री राधा-मदनमोहन; प्रभु करि' दिल मेरे भगवान् तथा स्वरूप के रूप में दिया।

अनुवाद

प्रभु नित्यानन्द की कृपा ने मुझे श्री मदनमोहन का दर्शन कराया और श्री मदनमोहन को मेरे प्रभु तथा स्वामी के रूप में मुझे प्रदान किया।

मो-अधमे दिल श्री-गोविन्द दरशन ।

कहिबार कथा नहे अकथ्य-कथन ॥217॥

मो-अधर्म–मुझ जैसे घृणित का; दिल-उद्धार किया; श्री-गोविन्द दरशन-भगवान् श्री गोविन्द का दर्शन; कहिबार-यह कहने के लिए; कथा-शब्द; नहे-नहीं हैं; अकथ्य-अकथ्य; कथन-वर्णन।

अनुवाद

उन्होंने मुझ जैसे अधम को भगवान् गोविन्द का दर्शन कराया। न तो शब्द इसका वर्णन कर सकते हैं, न ही इसे प्रकट करना उपयुक्त होगा।

वृन्दावने योग-पीठे कल्प-तरु-वने ।

रत्न-मण्डप, ताहे रत्न-सिंहासने ॥218॥

श्री-गोविन्द वसियाछेन व्रजेन्द्र-नन्दन ।

माधुर्य प्रकाशि' करेन जगत्मोहन ॥219॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; योग-पीठे-प्रमुख मन्दिर में; कल्प-तरु-वने-कल्पतरूओं के वन में; रत्न-मण्डप-रत्नों से निर्मित मण्डप; ताहे-इस पर; रत्न-सिंह-आसने-रत्नों के सिंहासन पर; श्री गोविन्द-भगवान् गोविन्द; वसियाछेन–विराजमान थे; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र; माधुर्य प्रकाशि'-अपना माधुर्य दिखाते हुए; करेन-करते हैं; जगत् मोहन-सारे जगत् को मोह लेते हैं।

अनुवाद

कल्पतरुओं के वन के मध्य वृन्दावन के प्रमुख मन्दिर में रत्नों से बनी वेदी पर व्रजराज के पुत्र भगवान् गोविन्द रत्नों के सिंहासन पर बैठे हुए हैं और अपनी पूर्ण महिमा तथा माधुरी को प्रकाशित करते हुए सम्पूर्ण जगत् को मोहित कर रहे हैं।

वाम-पाचे श्री-राधिका सखी-गण-सङ्गे ।

रासादिक-लीला प्रभु करे कत रङ्गे ॥220॥

वाम-पार्थे–बाँई ओर; श्री-राधिका-श्रीमती राधारानी; सखी-गण-सङ्गे-अपनी सखियों के संग; रास-आदिक-लीला-रस नृत्य जैसी लीलाएँ; प्रभु-भगवान् कृष्ण; करे-करते हैं; कत रङ्गे–कई प्रकार से।

अनुवाद

उनकी बाँई ओर श्रीमती राधारानी तथा उनकी निजी सखियाँ हैं। भगवान् गोविन्द उनके साथ रासलीला तथा अन्य अनेक लीलाओं का आनन्द लेते हैं।

याँर ध्यान निज-लोके करे पद्मासन।

अष्टादशाक्षर-मन्त्रे करे उपासन ॥221॥

याँर-जिनका; ध्यान-ध्यान; निज-लोके-अपने लोक में; करे-करते हैं; पद्म-आसन-ब्रह्माजी; अष्टादश-अक्षर-मन्त्रे-18 अक्षरों से निर्मित मन्त्र से; करे-करते हैं; उपासन-उपासना।

अनुवाद

अपने लोक में कमल आसन पर बैठे हुए ब्रह्माजी सदैव उनका ध्यान करते हैं और अष्टदशाक्षर (अठारह अक्षरों वाले) मन्त्र से उनकी पूजा करते हैं।

तात्पर्य

ब्रह्माजी अपने लोक में वहाँ के निवासियों के साथ भगवान् गोविन्द के स्वरूप अर्थात् कृष्ण की पूजा अठारह शब्दों वाले मन्त्र से करते हैं, जो इस प्रकार है- क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। जिन लोगों ने एक प्रामाणिक गुरु से दीक्षा ले रखी है और जो दिन में तीन बार गायत्री मंत्र का जप करते हैं, वे इस अठारह अक्षर वाले (अष्टादशाक्षर) मन्त्र को जानते हैं। ब्रह्मलोक तथा उससे नीचे वाले लोकों के निवासी इसी मन्त्र का ध्यान करते हुए गोविन्द की पूजा करते हैं। ध्यान तथा कीर्तन में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु वर्तमान युग में इस ग्रह पर ध्यान करना

सम्भव नहीं है। अतएव हरे कृष्ण जैसे महामंत्र का जोर-जोर से उच्चारण करने के साथ ही अष्टादशाक्षर मन्त्र का मन्द उच्चारण करने की संस्तुति की जाती है।

ब्रह्माजी सर्वोच्च लोक ब्रह्मलोक या सत्यलोक में रहते हैं। हर लोक का एक अधिष्ठाता देव होता है। जैसे सत्यलोक के अधिष्ठाता देव ब्रह्माजी हैं, इसी तरह स्वर्ग में इन्द्र, सूर्यलोक में सूर्यदेव विवस्वान अधिष्ठाता देव हैं। हर लोक के निवासियों तथा अधिष्ठाता देवताओं को ध्यान या कीर्तन द्वारा गोविन्द की पूजा करने की संस्तुति की जाती है।

चौद्द-भुवने याँर सबे करे ध्यान ।

वैकुण्ठादि-पुरे याँर लीला-गुण गान ॥222॥

चौद्द-भुवने-चौदह लोकों में; याँर–जिनका; सबे-सभी; करे ध्यान-ध्यान करते हैं; वैकुण्ठ-आदि-पुरे-वैकुण्ठ ग्रहों में; याँर–जिनका; लीला-गुण-लीलाएँ; गान–जपते हैं।

अनुवाद

चौदह लोकों के सारे लोग उनका ध्यान करते हैं और वैकुण्ठ-लोक के सारे निवासी उनके गुणों एवं लीलाओं का गायन करते हैं।

याँर माधुरीते करे लक्ष्मी आकर्षण ।

रूप-गोसाञि करियाछेन से-रूप वर्णन ॥223॥

याँर-जिनके; माधुरीते-माधुर्य; करे-करती है; लक्ष्मी-लक्ष्मी देवी; आकर्षण-आकर्षण; रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी; करियाछेन–किया है; से-वह; रूप-रूप का; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

उनकी माधुरी से लक्ष्मीजी आकर्षित हो जाती हैं, जिसका वर्णन श्रील रूप गोस्वामी ने इस प्रकार किया है।

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी ने अपने लघु भागवतामृत में पद्म पुराण से उद्धरण दिया है, जिसमें बतलाया गया है कि लक्ष्मीदेवी भगवान् कृष्ण के आकर्षक रूप को देखकर उनकी ओर आकृष्ट हुई थीं और भगवान् कृष्ण की कृपा प्राप्त करने के उद्देश्य से वे उनके ध्यान में लग गई थीं। जब कृष्ण ने उनसे पूछा कि वे इतने संयम से क्यों ध्यान करती हैं, तो लक्ष्मी देवी ने उत्तर दिया, "मैं वृन्दावन की गोपियों की तरह आपकी संगिनी बनना चाहती हूँ।" यह सुनकर भगवान्। कृष्ण ने कहा कि ऐसा होना बिलकुल असम्भव है। तब लक्ष्मीदेवी ने कहा कि वे भगवान् के वक्षस्थल पर स्वर्णरेखा के रूप में स्थित रहना चाहती हैं। भगवान् ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और तब से लक्ष्मीजी सदैव उनके वक्षस्थल पर स्वर्ण-रेखा के रूप में स्थित हैं। श्रीमद्भागवत (10.16.36) में भी लक्ष्मी देवी की तपस्या तथा ध्यान का उल्लेख मिलता है, जहाँ कालिय नाग की पत्नियों (नाग-पत्नियों) ने कृष्ण की स्तुति करते हुए कहा था कि लक्ष्मीजी भी गोपी के रूप में उनका सान्निध्य और उनके चरणकमलों की धूल चाहती हैं।

स्मेरां भङ्गी-त्रय-परिचितां साचि-विस्तीर्ण-दृष्टिं

वंशी-न्यस्ताधर-किशलयामुज्ज्वलां चन्द्रकेण।

गोविन्दाख्यां हरि-तनुमितः केशि-तीर्थोपकण्ठे

मा प्रेक्षिष्ठास्तव यदि सखे बन्धु-सङ्गेऽस्ति रङ्गः ॥224॥

स्मेराम्-मुसकराते हुए; भङ्गी-त्रय-परिचिताम्-तीन स्थानों पर मुड़े हुए अर्थात् गर्दन, कमर और घुटनों पर मुड़े हुए; साचि-विस्तीर्ण-दृष्टिम् इधर उधर विस्तीर्ण दृष्टि डालते हुए; वंशी बांसुरी पर; न्यस्त–रखे हुए; अधर-होंठ, अधर; किशलयाम्-नए खिले; उज्वलाम्-उज्जवल; चन्द्रकेण-चांदनी से; गोविन्द-आख्याम्-गोविन्द नामक भगवान्; हरि-तनुम्-भगवान् का दिव्य शरीर; इतः–यहाँ; केशि-तीर्थ-उपकण्ठे–केशीघाट की पड़ोस में यमुना के तट पर; मा–नहीं; प्रेक्षिष्ठाः-देखो; तव-तुम्हारा; यदि-यदि; सखे-हे सखे; बन्धु-सङ्गे–सांसरिक मित्रों को; अस्ति–है; रङ्गः-आसक्ति।

अनुवाद

"हे मित्र, यदि तुम अपने संसारी मित्रों के प्रति वास्तव में आसक्त हो, तो यमुना-तट पर केशीघाट में खड़े भगवान् गोविन्द के स्मितहास्य युक्त मुखमण्डल की ओर मत देखना। वे नेत्रों से कटाक्षपात करते हुए अपने होठों पर बाँसुरी धारण करते हैं, जो नव पल्लव के समान प्रतीत होती है। उनका त्रिभंगिमायुक्त दिव्य शरीर चाँदनी में अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीत होता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृत-सिन्धु (1.2.239) से लिया गया है, जो व्यावहारिक भक्ति के सम्बन्ध में है। सामान्यतया लोग अपने बद्ध जीवन में समाज, मैत्री तथा प्रेम के आनन्द में लगे रहते हैं। ऐसा तथाकथित प्रेम, प्रेम न होकर कामवासना है। किन्तु लोग प्रेम की ऐसी मिथ्या समझ से सन्तुष्ट हैं। मिथिला के महान् पंडित कवि विद्यापति ने कहा है कि इस भौतिक जगत् में समाज, मैत्री तथा पारिवारिक प्रेम से प्राप्त होने वाला आनन्द जल की एक बूंद के समान है, किन्तु हमारे हृदय तो समुद्र जैसा आनन्द चाहते हैं। इस तरह हृदय की तुलना भौतिक अस्तित्वरूपी मरुस्थल से की

गई है, जिसे अपनी शुष्कता दूर करने के लिए आनन्द-रूपी सागर के जल की आवश्यकता होती है। यदि मरुस्थल में जल की एक बूंद हो, तो भले ही कोई यह कहे कि यह जल है, किन्तु इतने कम जल का कोई महत्त्व नहीं है। इसी प्रकार इस भौतिक जगत् में कोई भी व्यक्ति समाज, मैत्री तथा प्रेम के व्यवहार से सन्तुष्ट नहीं है। अतएव यदि कोई अपने हृदय में वास्तविक आनन्द चाहता है, तो उसे गोविन्द के चरणकमलों की खोज करनी चाहिए। इस श्लोक में रूप गोस्वामी इंगित करते हैं कि यदि कोई समाज, मैत्री तथा प्रेम के आनन्द से सन्तुष्ट रहना चाहता है, तो उसे गोविन्द के चरणकमलों की शरण में नहीं जाना चाहिए, क्योंकि यदि वह उनके चरणकमलों में शरण लेता है, तो वह उस तथाकथित लेशमात्र आनन्द को भूल जायेगा। किन्तु जो इस तथाकथित आनन्द से सन्तुष्ट नहीं है, उसे गोविन्द के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए, जो वृन्दावन में यमुना-तट पर केशीतीर्थ या केशीघाट पर खड़े रहते हैं और समस्त गोपियों को अपनी दिव्य प्रेममयी सेवा की ओर आकर्षित करते हैं।

साक्षात्व्रजेन्द्र-सुत इथे नाहि आन ।

येबा अज्ञे करे ताँरे प्रतिमा-हेन ज्ञान ॥ 225 ॥

साक्षात्-साक्षात्; व्रजेन्द्र-सुत–नन्द महाराज के पुत्र; इथे-इस विषय में; नाहि-नहीं है; आन-कोई अपवाद; येबा-जो भी; अज्ञे-एक मूर्ख व्यक्ति; करे-करता है; ताँरे-उनको; प्रतिमा-हेन–मूर्ति की भाँति; ज्ञान-ऐसा विचार।

अनुवाद

निस्सन्देह, वे साक्षात् व्रजराज के पुत्र हैं। जो मूर्ख है, वही उन्हें मूर्ति मानता है।

सेइ अपराधे तार नाहिक निस्तार ।

घोर नरकेते पड़े, कि बलिब आर ॥226॥

सेइ अपराधे-उस अपराध से; तार-उसका; नाहिक–नहीं है; निस्तार–छुटकारा, मुक्ति; घोर–घोर; नरकेते–नारकीय अवस्था में; पड़े-गिर जाता है; कि बलिब-मैं क्या कहूँ; आर-और अधिक।

अनुवाद

उस अपराध के कारण वह कभी मुक्त नहीं हो सकता। वस्तुतः वह घोर नरक में जा पड़ेगा। इससे अधिक मैं क्या कहूँ?

तात्पर्य

अपने ग्रन्थ भक्तिसन्दर्भ में जीव गोस्वामी ने कहा है कि जो भक्ति के विषय में वास्तव में गम्भीर हैं, वे मिट्टी, धातु, पत्थर या काष्ठ से बनी मूर्ति के रूप तथा भगवान् के वास्तविक रूप में कोई अन्तर नहीं करते। भौतिक जगत् में व्यक्ति तथा उसकी फोटो, चित्र या मूर्ति अलग-अलग होते हैं। किन्तु भगवान् कृष्ण की मूर्ति तथा स्वयं कृष्ण भिन्न-भिन्न नहीं हैं, क्योंकि भगवान् परम पूर्ण हैं। जिसे हम पत्थर, काष्ठ तथा धातु कहते हैं, वे भगवान् की शक्तियाँ हैं और शक्ति कभी भी शक्तिमान से पृथक् नहीं हो सकती। जैसाकि हम पहले कह चुके हैं, सूर्य-किरण की शक्ति को शक्तिमान सूर्य से पृथक् नहीं किया जा सकता। अतएव भौतिक शक्ति भले ही भगवान् से पृथक् प्रतीत हो, किन्तु दिव्य रूप में वह भगवान् से अभिन्न होती है।

भगवान् कहीं भी और सर्वत्र प्रकट हो सकते हैं, क्योंकि उनकी विविध शक्तियाँ धूप की तरह सर्वत्र फैली हुई हैं। अतएव हमें समझना चाहिए कि हम जो कुछ भी देखते हैं, वह भगवान् की शक्ति है। हमें भगवान् तथा मिट्टी, धातु, काष्ठ या रंग से बने उनके अरूप में भेद नहीं करना चाहिए। यदि किसी ने इस चेतना को विकसित नहीं किया है, तो भी उसे अपने गुरु के उपदेशों से इसे सिद्धान्त

के रूप में स्वीकार करना चाहिए और मन्दिर में अर्चा-मूर्ति की पूजा भगवान् से अभिन्न मानकर करनी चाहिए।

पद्म पुराण में यह विशेष उल्लेख मिलता है कि जो कोई मन्दिर में भगवान् के रूप को काष्ठ, पत्थर या धातु से बना मानता है, वह निश्चय ही नारकीय दशा को प्राप्त होता है। निर्विशेषवादी मन्दिर में भगवान् के स्वरूप की पूजा के विरोधी होते हैं और अपने आपको हिन्दू कहने वाला एक ऐसा समूह भी है, जो ऐसी पूजा की निन्दा करता है। उनके द्वारा वेदों की मान्यता का कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि सारे आचार्यों ने, यहाँ तक कि निर्विशेषवादी शंकराचार्य ने भी भगवान् के दिव्य रूप की पूजा करने की संस्तुति की है। शंकराचार्य जैसे मायावादी पाँच रूपों की पूजा, पञ्चोपासना, की संस्तुति करते हैं, जिनमें भगवान् विष्णु सम्मिलित हैं। किन्तु वैष्णवगण भगवान् विष्णु के विविध रूपों की यथा राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम तथा रुक्मिणी-कृष्ण की पूजा करते हैं। मायावादी स्वीकार करते हैं कि प्रारम्भ में भगवान् के स्वरूप की पूजा आवश्यक है, किन्तु वे सोचते हैं कि अन्त में हर वस्तु निर्विशेष हो जाती है। क्योंकि वे अन्ततः भगवान् के स्वरूप की पूजा के विरुद्ध रहते हैं, अतएव चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें अपराधी कहा है।

जो लोग शरीर को आत्मा मानते हैं, उन्हें श्रीमद्भागवत में भौम इज्य-धी: कहकर निन्दित किया गया है। भौम का अर्थ है पृथ्वी तथा इज्य-धी: का अर्थ है पूजक। भौम इज्य-धी: दो प्रकार के होते हैं वे जो अपनी जन्मभूमि की पूजा करते हैं, यथा राष्ट्रवादी जो अपनी मातृभूमि के लिए अनेक त्याग करते हैं तथा वे जो भगवान् के रूप की पूजा की भर्त्सना करते हैं। किसी को न तो पृथ्वी की पूजा करनी चाहिए, न अपनी जन्मभूमि की; न ही उसे हमारी सुविधा के लिए धातु या काष्ठ के बने भगवान् के स्वरूप की ही भर्त्सना करनी चाहिए। भौतिक वस्तुएँ भी भगवान् की ही शक्ति हैं।

हेन ये गोविन्द प्रभु, पाइनु याँहा हैते ।

ताँहार चरण-कृपा के पारे वर्णिते ॥ 227॥

हेन–इस प्रकार; ग्रे गोविन्द-यह भगवान् गोविन्द; प्रभु-स्वामी; पाइनु मुझे मिले; याँहा हैते–जिनसे; ताँहार-उनके; चरण-कृपा-चरणकमलों की कृपा, के-कौन; पारे-कर सकता है; वर्णिते-वर्णन।

अनुवाद

अतएव ऐसा कौन है, जो उनके (नित्यानन्द के) उन चरणकमलों की कृपा का वर्णन कर सके, जिनसे मैंने इन भगवान् गोविन्द की शरण प्राप्त की है?

वृन्दावने वैसे यत वैष्णव-मण्डल ।

कृष्ण-नाम-परायण, परम-मङ्गल ॥ 228॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; वैसे-हैं; यत-सब; वैष्णव-मण्डल-भक्त गण; कृष्ण-नाम-परायण-भगवान् कृष्ण के नाम में मग्न होना; परम-मङ्गल–परम शुभ।

अनुवाद

वृन्दावन में रहने वाले सारे वैष्णवजन कृष्ण के परम मंगलमय नाम के कीर्तन में मग्न रहते हैं।

याँर प्राण-धन—नित्यानन्द-श्री-चैतन्य ।

राधा-कृष्ण-भक्ति विने नाहि जाने अन्य ॥ 229॥

याँर–जिसका; प्राण-धन-प्राणधन, जीवन एवं आत्मा; नित्यानन्द-श्री-चैतन्य भगवान् नित्यानन्द और चैतन्य महाप्रभु; राधा-कृष्ण-राधा तथा कृष्ण को; भक्ति-भक्ति; विने–बिना; नाहि जाने अन्य-और कुछ नहीं जानते।

अनुवाद

भगवान् चैतन्य तथा नित्यानन्द उन वैष्णवों के प्राणधन हैं, जो श्री श्री राधा-कृष्ण की भक्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानते।

से वैष्णवेर पद-रेणु, तार पद-छाया।

अधमेरे दिल प्रभु-नित्यानन्द-दया ॥230॥

से वैष्णवेर-उन सभी वैष्णवों की; पद-रेणु-चरण रज; तार–उनके; पद-छाया-पाँव की छाया; अधमेरे-ईस पतित आत्मा को; दिल-दिया; प्रभु-नित्यानन्द-दया-भगवान् नित्यानन्द प्रभु की दया।

अनुवाद

इस पतितात्मा को भगवान् नित्यानन्द की कृपा से ही वैष्णवों के चरणकमलों की धूल और छाया प्राप्त हो सकी है।

'ताँहा सर्व लभ्य हय'–प्रभुर वचन।

सेइ सूत्र–एइ तार कैल विवरण ॥ 231॥

ताँहा-उस स्थान पर; सर्व-सब कुछ; लभ्य–उपलब्ध; हय-है; प्रभुर–प्रभु का; वचन-वचन; सेइ सूत्र-वही सूत्र; एइ–यह; तार–उनका; कैल विवरण-वर्णन किया गया है।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द ने कहा, "वृन्दावन में सभी वस्तुएँ सुलभ हैं।" मैंने उनके संक्षिप्त कथन की यहाँ विस्तृत व्याख्या की है।

से सब पाइनु आमि वृन्दावने आय ।

सेइ सब लभ्य एइ प्रभुर कृपाय ॥232॥

से सब-यह सब; पाइनु–प्राप्त किया; आमि-मैं; वृन्दावने-वृन्दावन में; आय-आकर; सेइ सब-यह सब; लभ्य–उपलब्ध; एइ–यह; प्रभुर कृपाय- भगवान् नित्यानन्द की कृपा से।

अनुवाद

मैंने वृन्दावन आकर यह सब प्राप्त किया है और यह नित्यानन्द प्रभु की कृपा से सम्भव हो सका है।

तात्पर्य

वृन्दावन के सारे निवासी वैष्णव हैं। वे सर्व मंगलमय हैं, क्योंकि वे कृष्ण के पवित्र नाम का किसी न किसी तरह सदैव कीर्तन करते रहते हैं। यद्यपि उनमें से कुछ लोग भक्ति के विधि-विधानों का कठोरता से पालन नहीं करते, किन्तु वे कृष्णभक्त ही है और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृष्ण-नाम का जप करते रहते हैं। चाहे किसी काम से या बिना काम के, जब वे सड़कों से होकर गुजरते हैं, तो राधा या कृष्ण का नाम लेकर एक-दूसरे का अभिवादन करते हैं। इस तरह वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शुभ होते हैं।

वर्तमान वृन्दावन शहर गौड़ीय वैष्णवों द्वारा स्थापित किया गया है, क्योंकि छः गोस्वामी यहाँ आये और उन्होंने अपने-अपने मन्दिर यहाँ बनवाये। वृन्दावन में जितने मन्दिर हैं, उनमें से 90 प्रतिशत गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के हैं, जो चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द की शिक्षाओं के अनुयायी हैं। इनमें से सात मन्दिर अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। वृन्दावन के निवासी राधा और कृष्ण की पूजा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानते। हाल के कुछ वर्षों में कुछ धर्माधर्मविचार-विहीन तथाकथित पुजारियों ने, जो अपने आपको पक्का गोस्वामी जाति का बतलाते हैं, देवताओं की पूजा व्यक्तिगत रूप से चालू की है, किन्तु इसमें कोई भी कट्टर वैष्णव भाग नहीं लेता। जो लोग वैष्णव विधि से भक्ति-कार्य संपादन के प्रति गम्भीर हैं, वे देवताओं की ऐसी पूजा में भाग नहीं लेते।

गौड़ीय वैष्णव कभी भी राधा-कृष्ण तथा भगवान् चैतन्य में कोई भेद नहीं मानते। उनका कहना है कि चूँकि चैतन्य महाप्रभु राधा तथा कृष्ण के सम्मिलित रूप हैं, अतएव वे राधा तथा कृष्ण से भिन्न नहीं हैं। किन्तु कुछ भ्रान्त लोग यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि वे अत्यन्त उन्नत हैं क्योंकि उन्हें राधा-कृष्ण के नाम के स्थान पर गौर प्रभु का नाम-कीर्तन करने में अधिक गौरव का अनुभव होता है। इस तरह वे जान-बूझकर भगवान् चैतन्य तथा राधा-कृष्ण में अन्तर करते हैं। उनके अनुसार नदीयानागरी पद्धति जो उनके उर्वर मस्तिष्क की हाल ही की उपज है, गौर चैतन्य की पूजा है, किन्तु उन्हें राधा तथा कृष्ण की पूजा पसन्द नहीं है। वे यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि चूँकि भगवान् चैतन्य स्वयं राधा तथा कृष्ण के संयुक्त रूप में प्रकट हुए थे, अतएव राधा तथा कृष्ण की पूजा करने की आवश्यकता नहीं है। चैतन्य महाप्रभु के ऐसे तथाकथित भक्तों द्वारा किये जाने वाले भेदभाव को शुद्ध भक्त विध्वंसक मानते हैं। जो कोई भी राधा-कृष्ण तथा गौरांग में भेदभाव करता है, उसे माया के हाथों का खिलौना समझना चाहिए।

कुछ लोग ऐसे हैं, जो चैतन्य महाप्रभु की पूजा के विरुद्ध हैं, क्योंकि वे उन्हें संसारी समझते हैं। किन्तु कोई भी सम्प्रदाय, जो चैतन्य महाप्रभु तथा राधा-कृष्ण में भेदभाव करता है, चाहे वह राधा-कृष्ण को चैतन्य से अलग मानकर पूजा करता हो या चैतन्य महाप्रभु की पूजा करता हो, किन्तु राधा-कृष्ण की पूजा नहीं करता हो, वह प्राकृत सहजिया वर्ग का होता है।

श्री चैतन्य-चरितामृत के प्रणेता कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्लोक 225 तथा 226 में भविष्यवाणी की है कि भविष्य में जो लोग पूजा की काल्पनिक विधियाँ बनायेंगे, वे धीरे धीरे राधा-कृष्ण की पूजा छोड़ देंगे और यद्यपि वे अपने आपको चैतन्य महाप्रभु के भक्त कहेंगे, किन्तु अन्त में वे चैतन्य महाप्रभु की भी पूजा छोड़ देंगे और भौतिक-कार्यकलापों में पतित हो जायेंगे। भगवान् चैतन्य के सच्चे उपासकों के जीवन का चरम लक्ष्य श्री श्री राधा तथा कृष्ण की पूजा करना होता है।

आपनार कथा लिखि निर्लज्ज हइया।

नित्यानन्द-गुणे लेखाय उन्मत्त करिया॥ 233॥

आपनार-निजी; कथा-वर्णन; लिखि-मैं लिखता हूँ; निर्लज्ज हइया-निर्लज्ज होकर; नित्यानन्द-गुणे-नित्यानन्द के गुण; लेखाय-लिखवाते हैं; उन्मत्त करिया-उन्मन्त करके।

अनुवाद

मैंने बिना किसी संकोच के अपनी निजी कहानी लिख दी है। भगवान् नित्यानन्द के गुण मुझे उन्मत्त बनाकर ये सब बातें लिखने के लिए बाध्य कर देते हैं।

नित्यानन्द-प्रभुर गुण-महिमा अपार।

‘सहस्र-वदने’ शेष नाहि पाय याँर ॥ 234॥

नित्यानन्द-प्रभुर–नित्यानन्द प्रभु का; गुण-महिमा-दिव्य गुणों की महिमा; अपार-अपार; सहस्र-वदने–हजारों मुखों में; शेष-अन्त; नाहि-नहीं; पाय-मिलता; याँर-जिसका।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द के दिव्य गुणों की महिमाएँ अगाध हैं; यहाँ तक कि भगवान् शेष भी अपने हजारों मुखों से उनकी सीमा को नहीं पा सकते।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 235 ॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथदास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; यार–जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत ग्रंथ; कहे-वर्णन करता है; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए, सदैव उनकी दया की कामना करते हुए मैं, कृष्णदास, उनके पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदि-लीला के “नित्यानन्द बलराम की महिमाएँ' शीर्षक पाँचवे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय छह

श्री अद्वैत आचार्य की महिमाएँ

अद्वैत आचार्य के तत्त्वों का वर्णन दो श्लोकों में हुआ है। कहा जाता है। कि भौतिक प्रकृति की दो विशिष्टताएँ हैं–निमित्त कारण तथा उपादान कारण। उपादान कार्यकलाप महाविष्णु द्वारा और निमित्त कार्यकलाप महाविष्णु के अन्य रूप अद्वैत द्वारा सम्पन्न होते हैं। वही अद्वैत, जो भौतिक जगत् के अधीक्षक हैं, चैतन्य महाप्रभु का साथ देने के लिए अद्वैत आचार्य के रूप में अवतरित हुए हैं। जब उन्हें चैतन्य महाप्रभु के दास के रूप में सम्बोधित किया जाता है, तो उनकी महिमा बढ़ जाती है, क्योंकि जब तक ऐसी दास-भावना से मनुष्य प्रेरित नहीं होगा, तब तक वह भगवान् कृष्ण की भक्ति से प्राप्त होने वाले रस को नहीं समझ सकता।

वन्दे तं श्रीमदद्वैता-चार्यमद्भुत-चेष्टितम् ।

यस्य प्रसादादज्ञोऽपि तत्स्वरूपं निरूपयेत् ॥ 1॥

वन्दे-मैं सादर नमस्कार करता हूँ; तम्-उनको; श्रीमत्-सभी ऐश्वर्यों के साथ; अद्वैत-आचार्यम्-श्री अद्वैताचार्य; अद्भुत-चेष्टितम्-जिनके कार्यकलाप अद्भुत हैं; यस्य-जिनकी; प्रसादात्-कृपा से; अज्ञः अपि-एक मूर्ख व्यक्ति भी; तत्-स्वरूपम्-उनके लक्षण; निरूपयेत्-वर्णन कर सकता है।

अनुवाद

मैं श्री अद्वैत आचार्य को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनके सारे कार्यकलाप अद्भुत हैं। उनकी कृपा से मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी उनके गुणों का वर्णन कर सकता है।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की जय-जय हो; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द की; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैताचार्य की जय हो; जय गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

अनुवाद

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैत आचार्य की जय हो! और श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

पञ्च श्लोके कहिल श्री-नित्यानन्द-तत्त्व ।

श्लोक-द्वये कहि अद्वैताचार महत्त्व ॥3॥

पञ्च श्लोके–पाँच श्लोकों में; कहिल-वर्णन किया; श्री-नित्यानन्द-तत्त्व-श्री नित्यानन्द के सिद्धान्त का; श्लोक-द्वये-दो श्लोकों में; कहि-मैं वर्णन करता हूँ; अद्वैत-आचार-अद्वैताचार्य की; महत्त्व-महिमाएँ।

अनुवाद

मैंने पाँच श्लोकों में श्री नित्यानन्द प्रभु के तत्त्व का वर्णन किया है। अब अगले दो श्लोकों में मैं श्री अद्वैत आचार्य की महिमा का वर्णन करूँगा।

महा-विष्णुर्जगत्कर्ता मायया यः सृजत्यदः ।

तस्यावतार एवायमद्वैताचार्य ईश्वरः ॥4॥

महा-विष्णुः–महाविष्णु, सृष्टि के आश्रय; जगत्-कर्ता–जगत् के स्रष्टा; मायया-माया से; यः-जो; सृजति–सृजन करते हैं; अदः-वह ब्रह्माण्ड; तस्य-उनका; अवतारः-अवतार; एव–निश्चय ही; अयम्-यह; अद्वैत-आचार्यः-अद्वैताचार्य; ईश्वरः-ईश्वर, भौतिक सृष्टि के आश्रय।

अनुवाद

भगवान् अद्वैत आचार्य महाविष्णु के अवतार हैं, जिनका मुख्य कार्य है माया द्वारा जगत् की सृष्टि करना।

अद्वैतं हरिणाद्वैतादाचा भक्ति-शंसनात् ।

भक्तावतारमीशं तमद्वैताचार्यमाश्रये ॥5॥

अद्वैतम्-अद्वैत के नाम से विख्यात; हरिणा-भगवान् हरि के साथ; अद्वैतात्-अभिन्न होने से; आचार्यम्-आचार्य नामक; भक्ति-शंसनात्-श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रचार से; भक्त-अवतारम्-भक्त के रूप में अवतार; ईशम्-परमेश्वर; तम्-उनको; अद्वैत-आचार्यम्-अद्वैत आचार्य को; आश्रये-मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

अनुवाद

वे भगवान् हरि से अभिन्न हैं, अतएव वे अद्वैत कहलाते हैं और वे भक्ति सम्प्रदाय का प्रसार करते हैं, अतः वे आचार्य कहलाते हैं। वे भगवान् हैं और भगवान् के भक्त-अवतार हैं, इसलिए मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ।

अद्वैत-आचार्य गोसाञि साक्षातीश्वर।

याँहार महिमा नहे जीवेर गोचर ॥6॥

अद्वैत-आचार्य-अद्वैत आचार्य; गोसाञि-गोस्वामी; साक्षात् ईश्वर–साक्षात् भगवान्; याँहार महिमा-जिनकी महिमाएँ; नहे-नहीं; जीवेर गोचर-सामान्य जीवों की पहुँच में।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य निस्सन्देह साक्षात् भगवान् हैं। उनकी महिमा सामान्य जीवों की कल्पना शक्ति से परे है।

महा-विष्णु सृष्टि करेन जगदादि कार्य।

ताँर अवतार साक्षातद्वैत आचार्य ॥7॥

महा-विष्णु-मूल विष्णु; सृष्टि-सृष्टि; करेन-करते हैं; जगत्-आदि-भौतिक जगत्; कार्य-कार्य; ताँर-उनका; अवतार–अवतार; साक्षात्-साक्षात्; अद्वैत आचार्य-प्रभु अद्वैत आचार्य।

अनुवाद

ब्रह्माण्डों की सृष्टि का सारा कार्य महाविष्णु करते हैं। श्री अद्वैत आचार्य उनके प्रत्यक्ष अवतार हैं।

ये पुरुष सृष्टि-स्थिति करेन मायाय ।

अनन्त ब्रह्माण्ड सृष्टि करेन लीलाय ॥8॥

ये पुरुष-वे पुरुष जो; सृष्टि-स्थिति-सृष्टि एवं पालन; करेन-करते हैं; मायाय-माया के द्वारा; अनन्त ब्रह्माण्ड-असीम ब्रह्माण्ड; सृष्टि-सृष्टि; करेन-करते हैं; लीलाय-लीलाओं से।

अनुवाद

वे ही पुरुष अपनी बहिरंगा शक्ति से सृजन और पालन करते हैं। वे अपनी लीलाओं के रूप में असंख्य ब्रह्माण्डों की सृष्टि करते हैं।

इच्छाय अनन्त मूर्ति करेन प्रकाश ।

एक एक मूर्ते करेन ब्रह्माण्डे प्रवेश ॥9॥

इच्छाय-अपनी इच्छा से; अनन्त मूर्ति-असीम रूप; करेन-करते हैं; प्रकाश-प्रकट; एक एक–प्रत्येक; मूर्त-रूप; करेन-करते हैं; ब्रह्माण्डे–ब्रह्माण्ड में प्रवेश-प्रवेश।

अनुवाद

वे अपनी इच्छा से अपने आपको असंख्य रूपों में प्रकट करते हैं और इन रूपों के द्वारा वे प्रत्येक ब्रह्माण्ड में प्रवेश करते हैं।

से पुरुषेर अंश—अद्वैत, नाहि किछु भेद ।

शरीर-विशेष ताँर–नाहिक विच्छेद ॥10॥

से-वे; पुरुषेर-भगवान् के; अंश-अंश; अद्वैत-अद्वैत आचार्य; नाहि-नहीं; किछु-कोई; भेद-अन्तर; शरीर-विशेष-दूसरा विशेष दिव्य शरीर; ताँर-उनका; नाहिक विच्छेद-पृथक् नहीं।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य उन पुरुष के अंश हैं, अतएव वे उनसे भिन्न नहीं हैं। निस्सन्देह, श्री अद्वैत आचार्य पृथक् नहीं, अपितु उन पुरुष के अन्य रूप हैं।

सहाय करेन ताँर लइया 'प्रधान' ।

कोटि ब्रह्माण्ड करेन इच्छाय निर्माण ॥ 11॥

सहाय करेन-वे सहायता करते हैं; ताँर-उनका; लइया-से; प्रधान-भौतिक शक्ति; कोटि-ब्रह्माण्ड-कोटि ब्रह्माण्ड; करेन-करते हैं; इच्छाय-मात्र इच्छा से; निर्माण-निर्माण।

अनुवाद

वे (अद्वैत आचार्य) पुरुष की लीलाओं में सहायक बनते हैं, जिनकी भौतिक शक्ति तथा जिनकी इच्छा से वे असंख्य ब्रह्माण्डों का निर्माण करते हैं।

जगत्मङ्गल अद्वैत, मङ्गल-गुण-धाम ।

मङ्गल-चरित्र सदा, 'मङ्गल' याँर नाम ॥12॥

जगत्-मङ्गल-जगत् के लिए सर्वरूपेण मंगलकारी (शुभ); अद्वैत-अद्वैत आचार्य; मङ्गल-गुण-धाम–सभी मांगलिक (शुभ) गुणों के धाम; मङ्गल-चरित्र-सभी लक्षण शुभ हैं; सदा-सदा; मङ्गल-शुभ; याँर नाम-जिनका नाम।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य सारे जगत् के लिए मंगलकारी हैं, क्योंकि वे समस्त मंगल गुणों के आगार हैं। उनके लक्षण, कार्य तथा नाम सदैव मंगलकारी हैं।

तात्पर्य

श्री अद्वैत प्रभु, जो महाविष्णु के अवतार हैं, एक आचार्य या शिक्षक हैं। उनके सारे कार्य तथा विष्णु के अन्य सारे कार्यकलाप मंगलमय हैं। जो व्यक्ति भगवान् विष्णु की लीलाओं में सर्व-मंगलमयता देखता है, वह भी उसी के साथ मंगलमय बन जाता है। चूँकि भगवान् विष्णु सभी मंगल के स्रोत हैं, अतएव जो भी भगवान् विष्णु की भक्ति से आकृष्ट होता है, वह मानव समाज की सबसे बड़ी सेवा कर सकता है। भौतिक जगत् के बहिष्कृत व्यक्ति शुद्ध भक्ति को जीवों के सनातन कार्य के रूप में समझने से इनकार कर देते हैं और वे नहीं मानते कि शुद्ध भक्ति जीव की बद्ध जीवन से वास्तविक मुक्ति है। ऐसे लोग अल्प ज्ञान के कारण सभी प्रकार की भक्ति से वंचित हो जाते हैं।

अद्वैत प्रभु के उपदेशों में सकाम कर्म या निर्विशेष मुक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है। किन्तु भौतिक शक्ति के आकर्षण से मोहित व्यक्ति यह नहीं समझ सके कि अद्वैत प्रभु विष्णु से अभिन्न

हैं। ऐसे लोग अपनी निर्विशेष विचारधारा से उनका अनुसरण करना चाहते थे। अद्वैत प्रभु द्वारा ऐसे व्यक्तियों को दण्डित करने का प्रयास भी शुभ है। भगवान् विष्णु तथा उनके कार्यकलाप प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समस्त सौभाग्य प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में, भगवान् विष्णु का कृपापात्र बनना और उनके द्वारा दण्डित किया जाना एक समान है, क्योंकि विष्णु के सारे कार्यकलाप परम मंगलमय होते हैं। कुछ लोगों के अनुसार अद्वैत प्रभु का दूसरा नाम मंगल था। निमित्त-अवतार अर्थात् किसी विशेष कार्य के निमित्त भगवान् विष्णु के अवतार के रूप में वे आपूर्ति कर्ता या प्रकृति के उपादान हैं। किन्तु उन्हें कभी भी भौतिक नहीं समझना चाहिए। उनके सारे कार्य आध्यात्मिक हैं। जो भी उनके विषय में सुनता है और उनकी महिमा का गान करता है, वह स्वयं महिमान्वित होता है, क्योंकि ऐसे कार्य से मनुष्य सारी विपदाओं से मुक्त हो जाता है। विष्णु के स्वरूप को किसी भौतिक कल्मष या मायावाद से नहीं जोड़ना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को भगवान् विष्णु के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि इस ज्ञान से मनुष्य पूर्णता की चरम अवस्था प्राप्त कर सकता है।

कोटि अंश, कोटि शक्ति, कोटि अवतार।

एत लञा सृजे पुरुष सकल संसार ॥13॥

कोटि अंश-कोटि अंश; कोटि शक्ति-कोटि शक्तियाँ; कोटि अवतार-कोटि अवतार; एत-ये सब; लञा–लेकर; सृजे-सृजन करते हैं; पुरुष-आदि पुरुष, महाविष्णु; सकल संसार–सभी भौतिक संसार।

अनुवाद

महाविष्णु अपने कोटि-कोटि अंशों, शक्तियों तथा अवतारों से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं।

माया यैछे दुइ अंश—'निमित्त', 'उपादान'।

माया निमित्त'-हेतु, उपादान–प्रधान' ॥14॥

पुरुष ईश्वर ऐछे द्वि-मूर्ति हइया।

विश्व-सृष्टि करे 'निमित्त' 'उपादान' लञा ॥15॥

माया-माया, बाह्य शक्ति; यैछे-जैसे; दुइ अंश-दो भाग; निमित्त-कारण; उपादान-उपादान, अवयव; माया-भौतिक शक्ति; निमित्त-हेतु-मूल कारण; उपादान-उपादान, अवयव; प्रधान-तत्कालिक कारण; पुरुष-भगवान् विष्णु; ईश्वर–ईश्वर, भगवान्; ऐछे-उस तरह; द्वि-मूर्ति हइया-दो रूपों को लेकर; विश्व-सृष्टि करे-इस भौतिक जगत् का सृर्जन करते हैं; निमित्त-मूल कारण; उपादान-भौतिक कारण; लञा–के साथ।

अनुवाद

जिस प्रकार बहिरंगा शक्ति के दो भाग होते हैं–निमित्त तथा उपादान; माया निमित्त कारण और प्रधान उपादान कारण है। उसी तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु भी निमित्त तथा उपादान कारणों के आधार पर भौतिक जगत् की सृष्टि करने के लिए दो स्वरूप धारण करते हैं।

तात्पर्य

सृष्टि का मूल कारण जानने के लिए दो प्रकार की शोध की जाती हैं। एक निष्कर्ष यह है कि सनातन, ज्ञानमय तथा आनन्दमय पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् इस विराट् जगत् के अप्रत्यक्ष कारण हैं

और आध्यात्मिक जगत् के प्रत्यक्ष कारण हैं, जहाँ वैकुण्ठ-लोक नामक असंख्य आध्यात्मिक ग्रह हैं और जहाँ उनका निजी धाम गोलोक वृन्दावन भी है। दूसरे शब्दों में, जगत् दो हैं-भौतिक जगत् तथा आध्यात्मिक जगत् । जिस तरह भौतिक जगत् में असंख्य ग्रह और ब्रह्माण्ड हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् में असंख्य आध्यात्मिक ग्रह तथा ब्रह्माण्ड हैं, जिनमें वैकुण्ठ लोक तथा गोलोक भी सम्मिलित हैं। परमेश्वर भौतिक तथा आध्यात्मिक, इन दोनों जगतों के कारण हैं। दूसरा मत निस्सन्देह, यह है कि यह विराट् जगत् अज्ञात अव्यक्त शून्य से उत्पन्न हुआ। यह तर्क निरर्थक है।

प्रथम मत वेदान्त दार्शनिकों द्वारा मान्य है और दूसरा मत सांख्य स्मृति की नास्तिक दार्शनिक पद्धति द्वारा समर्थित है, जो वेदान्ती दार्शनिक मत का सीधे खंडन करती है। भौतिक विज्ञानियों को कोई प्रबुद्ध आध्यात्मिक सार-तत्त्व नहीं दिखता, जो सृष्टि का कारण हो सके। ऐसे नास्तिक सांख्य दार्शनिक यह सोचते हैं कि ज्ञान के लक्षण तथा असंख्य जीवों में दिखने वाली जीवनी शक्ति जगत् के तीन गुणों द्वारा उत्पन्न होते हैं। अतएव सांख्यवादी सृष्टि के मूल कारण के\ विषय में वेदान्त-मत के विरुद्ध हैं।

वास्तविकता तो यह है कि निरपेक्ष परम आत्मा ही प्रत्येक प्रकार की सृष्टि के कारण हैं और वे शक्ति तथा शक्तिमान दोनों के रूप में सदैव पूर्ण हैं। यह प्रकट जगत् उन परम पुरुष की शक्ति द्वारा उत्पन्न है, जिनमें सारी शक्तियाँ निहित हैं। वे दार्शनिक, जो जगत् के विषय में विचार करते हैं, वे केवल पदार्थ की अद्भुत शक्तियों को ही समझ पाते हैं। ऐसे दार्शनिक ईश्वर की धारणा को भौतिक शक्ति की उपज मानते हैं। इनके मतों के अनुसार शक्ति का स्रोत भी शक्ति की उपज होता है। ऐसे दार्शनिकों का ऐसा सोचना गलत है। कि जगत् के सारे जीव भौतिक शक्ति से उत्पन्न होते हैं। और वे यह भी सोचते हैं कि परम निरपेक्ष चेतन व्यक्ति भी इसी प्रकार भौतिक शक्ति की उपज होना चाहिए।

चूँकि भौतिकतावादी दार्शनिक तथा विज्ञानी अपनी अपूर्ण इन्द्रियों के साथ बहुत अधिक व्यस्त रहते हैं, इसलिए वे स्वाभाविक रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राण भी भौतिक मिश्रण की उपज है। किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। पदार्थ आत्मा की उपज है। भगवद्गीता के अनुसार परम आत्मा या भगवान् सारी शक्तियों के स्रोत हैं। जब कोई देश तथा काल की सीमाओं में बँधकर किसी सीमित वस्तु की शोध करता है, तो वह सृष्टि के वैचित्र्य दर्शन से आश्चर्यचकित रहता है, अतएव वह सम्मोहित होकर शोधकार्य में लगा रहता है। यह अनुमान (आरोह) विधि है। किन्तु ज्ञान की तर्कसंगत (अवरोह) विधि में परम पुरुष भगवान् समस्त कारणों के कारण के रूप में स्वीकार किये जाते हैं, जो विविध शक्तियों से पूर्ण हैं और जो न तो निर्विशेष हैं, न शून्य हैं। परम पुरुष की निर्विशेष अभिव्यक्ति उनकी शक्ति का एक अन्य प्रदर्शन है। अतएव यह मत कि पदार्थ ही सृष्टि का मूल कारण है, वास्तविकता से पूर्णरूपेण दूर है। यह भौतिक जगत् अचिन्त्य शक्तिमान भगवान् के दृष्टिपात से उत्पन्न होता है। भौतिक प्रकृति में इस परम सत्ता द्वारा शक्ति संचारित होती है और देश तथा काल की सीमाओं के अन्तर्गत बद्धजीव भौतिक सृष्टि को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है। दूसरे शब्दों में, भौतिक दार्शनिक तथा वैज्ञानिक की दृष्टि में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अनुभूति उनकी भौतिक शक्ति की अभिव्यक्ति द्वारा होती है। जो व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सामर्थ्य को या उनकी विविधतापूर्ण शक्तियों को, शक्तियों के स्रोत और शक्तियों के बीच के सम्बन्ध से अनजान होने के कारण नहीं जानता, वह सदैव त्रुटि कर सकता है, जिसे विवर्त कहते हैं। जब तक भौतिकतावादी विज्ञानी तथा दार्शनिक सही निष्कर्ष पर नहीं पहुँचेंगे, तब तक वे परम सत्य के वास्तविक ज्ञान से वंचित रहकर भौतिक धरातल पर मँडराते रहेंगे।

महान् वैष्णव दार्शनिक श्रील बलदेव विद्याभूषण ने वेदान्त-सूत्र पर लिखी गई अपनी टीका गोविन्द भाष्य में भौतिकतावादी मत की बहुत ही सुन्दर व्याख्या की है। वे लिखते हैं :

“सांख्य दार्शनिक कपिल ने विभिन्न तात्त्विक सत्यों को अपने निजी मत के अनुसार जोड़ा है। उसके अनुसार भौतिक प्रकृति सतो, रजो तथा तमो-इन तीन गुणों के संतुलन से बनी है। भौतिक प्रकृति ने भौतिक शक्ति अर्थात् महत् को उत्पन्न किया और महत् ने मिथ्या अहंकार को जन्म दिया। अहंकार ने पाँच तन्मात्राएँ (इन्द्रियानुभूति के पाँच विषय) उत्पन्न कीं, जिनसे दस इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ), मन तथा पाँच स्थूल तत्त्व उत्पन्न हुए। इन चौबीस तत्त्वों के साथ पुरुष या भोक्ता को सम्मिलित कर लेने पर पच्चीस विभिन्न सत्य हो जाते हैं। इन पच्चीस तत्त्वों की अव्यक्त अवस्था ही प्रकृति कहलाती है। भौतिक प्रकृति के गुण तीन विभिन्न अवस्थाओं में सुख, दुःख तथा मोह के कारणों में, साथ दे सकते हैं। सत्त्वगुण भौतिक सुख का कारण है, रजोगुण भौतिक दुःख का कारण है और तमोगुण मोह का कारण है। हमारी भौतिक अनुभूति सुख, दुःख तथा मोह इन्हीं तीन अभिव्यक्तियों तक सीमित है। उदाहरणार्थ, एक सुन्दर स्त्री उस व्यक्ति के लिए निस्सन्देह सुख का कारण है, जो उसे पत्नी के रूप में रखता है, किन्तु वही स्त्री अन्य व्यक्ति के लिए दुःख का कारण बनती है, जिसे वह उपेक्षित करती है या जिस पर वह क्रोध करती है; और यदि वह किसी व्यक्ति को त्याग देती है, तो वह मोह का कारण बनती है।

“इन्द्रियाँ दो प्रकार की हैं-दस बाह्य इन्द्रियाँ तथा एक आन्तरिक इन्द्रिय-मन। इस प्रकार कुल ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। कपिल के अनुसार भौतिक प्रकृति नित्य और सर्वशक्तिमान है। मूलत: कोई आत्मा नहीं होता है और पदार्थ का कोई कारण नहीं होता। पदार्थ ही हर वस्तु का प्रधान कारण है। यहसमस्त कारणों का सर्वव्यापी कारण है। सांख्य दर्शन समग्र शक्ति (महत् तत्त्व), मिथ्या अहंकार तथा इन्द्रियानुभूति के पाँच विषयों (तन्मात्राओं) को भौतिक प्रकृति की सात विभिन्न अभिव्यक्तियाँ मानता है, जिसके दो पहलू हैं-भौतिक कारण (उपादान) तथा निमित्त कारण। पुरुष या भोक्ता अपरिवर्तित रहता है, किन्तु भौतिक प्रकृति सदैव परिवर्तित होती रहती है। यद्यपि भौतिक प्रकृति

जड़ है, किन्तु यह अनेक प्राणियों के लिए भोग तथा मोक्ष की कारण है। इसके कार्यकलाप इन्द्रिय-अनुभूति से परे हैं; फिर भी श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा उनका अनुमान लगाया जा सकता है। भौतिक प्रकृति एक है, किन्तु तीन गुणों की पारस्परिक क्रिया के कारण यह समग्र शक्ति (महत् तत्त्व) तथा अद्भुत जगत् उत्पन्न कर सकती है। ऐसे परिवर्तनों के कारण भौतिक प्रकृति दो रूपों में विभक्त हो जाती है—निमित्त कारण तथा उपादान (भौतिक) कारण। पुरुष या भोक्ता निष्क्रिय तथा भौतिक गुणों से रहित होता है, यद्यपि साथ ही साथ, वह प्रत्येक शरीर में ज्ञान के प्रतीक-रूप में स्थित होने के कारण स्वामी होता है। भौतिक कारण समझ लेने पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि निष्क्रिय होने के कारण पुरुष सभी प्रकार के भोग से या अध्यक्षता से दूर रहता है। प्रकृति (भौतिक प्रकृति) तथा पुरुष (भोक्ता) का स्वभाव बतलाने के बाद सांख्य दर्शन इस बात पर बल देता है कि यह सृष्टि उनके संयोग या निकटता से उत्पन्न है। ऐसे मिलन से ही भौतिक प्रकृति में जीवन के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु इसका अनुमान लगाया जा सकता है कि पुरुष या भोक्ता में नियंत्रण तथा भोग की शक्तियाँ रहती हैं। जब पर्याप्त ज्ञान के अभाव में पुरुष मोहग्रस्त होता है, तो वह अपने आपको भोक्ता अनुभव करता है, किन्तु जब वह पूर्णतया ज्ञानमय होता है, तो मुक्त हो जाता है। सांख्य दर्शन में पुरुष को सदैव प्रकृति के कार्यों से उदासीन बतलाया जाता है।

"सांख्य दार्शनिक तीन प्रकार के प्रमाणों को मानता है-प्रत्यक्ष अनुभूति, अनुमान तथा वैदिक प्रमाण। जब ऐसा प्रमाण सिद्ध होता है, तो सब कुछ परिपूर्ण होता है। तुलना की प्रक्रिया ऐसी ही परिपूर्णता के अन्तर्गत होती है। ऐसे प्रमाण से परे कोई अन्य प्रमाण नहीं है। प्रत्यक्ष अनुभूति तथा परम्परागत वैदिक प्रमाण के विषय में अधिक वादविवाद नहीं है। सांख्य दर्शन प्रणाली में जगत् के कारणस्वरूप तीन प्रकार की विधियाँ हैं- परिणामात् (रूपान्तर), समन्वयात् (समन्वय) तथा शक्तित: (शक्ति का प्रदर्शन)।"

श्रील बलदेव विद्याभूषण ने वेदान्त-सूत्र के अपने भाष्य में इस मत का खंडन करने का प्रयास किया है, क्योंकि उनका विचार है कि भौतिक सृष्टि के इन तथाकथित कारणों को न मानने से सम्पूर्ण सांख्य दर्शन का खण्डन हो जाता है। भौतिकतावादी दार्शनिक पदार्थ को सृष्टि का भौतिक कारण (उपादान) तथा निमित्त कारण मानते हैं। उनके अनुसार पदार्थ प्रत्येक प्रकार की अभिव्यक्ति का कारण है। सामान्यतया वे जल के घड़े तथा मिट्टी का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। मिट्टी जल के घड़े का कारण है, किन्तु मिट्टी कारण तथा कार्य दोनों हो सकती है। जल का घड़ा कार्य है और मिट्टी इसकी कारण है, किन्तु मिट्टी सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। वृक्ष पदार्थ है, किन्तु वृक्ष फल उत्पन्न करता है। जल पदार्थ है, किन्तु जल बहता है। इस तरह सांख्यवादियों का कहना है कि पदार्थ गति तथा उत्पादन का कारण है। अतः पदार्थ को जगत् में प्रत्येक वस्तु का उपादान तथा निमित्त कारण माना जा सकता है। इसलिए श्रील बलदेव विद्याभूषण ने प्रधान के स्वभाव को निम्न प्रकार से प्रतिपादित किया है :

“भौतिक प्रकृति जड़ है, अतएव वह पदार्थ का कारण नहीं बन सकती-न उपादान कारण, न निमित्त कारण। किन्तु जगत् की अद्भुत व्यवस्था और उसका संचालन देखकर सामान्यतया ऐसा लगता है कि इस व्यवस्था के पीछे कोई जीवित मस्तिष्क है, क्योंकि इसके बिना ऐसी व्यवस्था सम्भव नहीं हो सकती। हमें यह सोचना भी नहीं चाहिए कि चेतन निर्देश के बिना ऐसी व्यवस्था हो सकती है। अपने व्यावहारिक अनुभव में हमने कभी नहीं देखा कि जड़ ईंटें अपने आप किसी विशाल भवन का निर्माण करती हैं।

“जल के घड़े का दृष्टान्त स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि जल के घड़े को सुख तथा दुःख की अनुभूति नहीं होती। ऐसी अनुभूति तो भीतर रहती है। अतएव आवृत करने वाले शरीर या जल के घड़े से इसका कोई साम्य नहीं है।

कभी-कभी भौतिक विज्ञानी सुझाव देता है कि वृक्ष पृथ्वी के भीतर से, बिना किसी माली की सहायता के, स्वतः उगता है, क्योंकि यह पदार्थ की प्रवृत्ति है। वे जीवों की जन्मजात अन्त:प्रेरणा को भौतिक मानते हैं। किन्तु ऐसी शारीरिक अन्त:प्रेरणा जैसी भौतिक प्रवृत्तियों को स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता, क्योंकि इनसे शरीर के भीतर आत्मा के अस्तित्व का आभास मिलता है। वास्तव में वृक्ष या किसी प्राणी के शरीर में कोई प्रवृत्ति या अन्त:प्रेरणा नहीं होती। प्रवृत्ति तथा अन्त:प्रेरणा का अस्तित्व इसलिए होता है, क्योंकि शरीर के भीतर आत्मा होता है। इस प्रसंग में कार तथा ड्राइवर का दृष्टान्त अत्यन्त लाभप्रद होगा। कार में दाहिने-बाएँ घूमने की प्रवृत्ति रहती है, किन्तु कोई यह नहीं कह सकता कि ड्राइवर के निर्देश के बिना कार एक पदार्थ के रूप में बाएँ और दाहिने मुड़ सकती है। भौतिक कार में उसके अन्दर बैठे ड्राइवर की इच्छाओं से स्वतन्त्र न तो कोई प्रवृत्ति होती है न अन्त:प्रेरणा। यही सिद्धान्त जंगल में उगने वाले वृक्षों की स्वत:वृद्धि पर लागू होता है। यह वृद्धि इसलिए होती है, क्योंकि वृक्ष के भीतर आत्मा उपस्थित होता है।

"कभी-कभी कुछ मूर्ख लोग यह मान बैठते हैं कि चूँकि धान के ढेर से बिच्छू उत्पन्न होते हैं, इसलिए धान बिच्छुओं को उत्पन्न करता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि मादा बिच्छू धान के भीतर अंडे देती है और धान के सड़ने से अंडों में से कई छोटे-छोटे बच्चे बाहर निकल आते हैं। इसका अर्थ यह तो नहीं होता कि धान बिच्छुओं को जन्म देता है। इसी प्रकार कभी-कभी गन्दे बिस्तरों में खटमल आते दिखाई देते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है। कि बिस्तर इन खटमलों को जन्म देता है। यह तो ऐसा है कि गन्दे बिस्तरों का लाभ उठाकर जीव पैदा हो जाते हैं। जीवित प्राणियों के विभिन्न प्रकार होते हैं। उनमें से कुछ भ्रूण से निकलते हैं, कुछ अंडों से और कुछ पसीने की खमीर से। विभिन्न प्राणियों की उत्पत्ति के विभिन्न स्रोत हैं, किन्तु इससे किसी को यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि पदार्थ से ऐसे जीव उत्पन्न हो जाते हैं।

भौतिकतावादियों द्वारा दिया जाने वाला यह दृष्टान्त कि पौधे पृथ्वी से स्वतः निकलते हैं, इसी सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं। किसी विशेष दशा का लाभ उठाकर जीव पृथ्वी से उत्पन्न होता है। बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार प्रत्येक जीव को अपने पूर्व कर्मों के अनुसार दैवी अध्यक्षता के अन्तर्गत एक प्रकार का शरीर धारण करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। शरीर कई तरह के होते हैं और दैवी व्यवस्था के कारण जीव विभिन्न प्रकार के शरीर धारण करते हैं।

"जब कोई व्यक्ति सोचता है कि "मैं यह कर रहा हूँ" तो इसमें "मैं" शरीर का सूचक नहीं है; यह शरीर से भी कुछ अधिक का या 'शरीर के भीतर' का सूचक है। इस तरह शरीर के वर्तमान रूप में न प्रवृत्ति है न अन्त:प्रेरणा। प्रवृत्तियाँ तथा अन्त:प्रेरणा शरीर के भीतर आत्मा से सम्बन्धित हैं। भौतिकतावादी वैज्ञानिक कभी-कभी यह सुझाते हैं कि स्त्री तथा पुरुष के शरीरों की प्रवृत्तियों से ही उनका मिलन होता है और इसीसे शिशु का जन्म होता है। किन्तु सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष सदैव अप्रभावित रहता है, तो फिर यह जन्म देने की प्रवृत्ति कहाँ से आती है?

"कभी-कभी भौतिक वैज्ञानिक दूध का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं, जो स्वतः दही में बदल जाता है। इसी तरह बादलों से वर्षा का स्वच्छ जल पृथ्वी पर आता है और विभिन्न वृक्षों को जन्म देता है। वही जल अनेक प्रकार के फूलों-फलों में प्रविष्ट होकर तरह-तरह के स्वाद-गंध उत्पन्न करता है। इसीलिए उनका कहना है कि पदार्थ अपने आप अनेक प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न करता है। इस तर्क के उत्तर में बृहदारण्यक उपनिषद् के उसी सिद्धान्त को दुहराया जाता है—विभिन्न प्रकार के जीवों को उच्चतर शक्ति की व्यवस्था के अनुसार विभिन्न प्रकार के शरीर दिये जाते हैं। विभिन्न जीवों को उनके पूर्व कर्मों के अनुसार विशेष प्रकार का शरीर ग्रहण करने का अवसर प्रदान किया जाता है, उदाहरणार्थ, वृक्ष, पशु, पक्षी के शरीर और इन परिस्थितियों में उनकी विभिन्न मनोवृत्तियाँ विकसित होती हैं। भगवद्गीता में भी इसकी पुष्टि हुई है :

पुरुष: प्रकृतिस्थो हि भुड़े प्रकृतिजान् गुणान्।

कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥

‘भौतिक प्रकृति में जीव प्रकृति के तीनों गुणों का भोग करते हुए जीवन-शैली का अनुसरण करता है। भौतिक प्रकृति के साथ उसकी संगति के कारण ऐसा होता है। इस तरह उसे विविध अच्छी-बुरी योनियों में जन्म प्राप्त होता है।’ (भगवद्गीता 13.22) आत्मा को विभिन्न प्रकार के शरीर प्रदान किये जाते हैं। उदाहरणार्थ, यदि आत्माओं को विभिन्न प्रकार के वृक्षों के शरीर न प्रदान किये जाते, तो विविध प्रकार के फूल-फल उत्पन्न नहीं हो सकते। हर श्रेणी का वृक्ष विशेष प्रकार के फूल और फल उत्पन्न करता है और ऐसा नहीं है कि विभिन्न श्रेणियों में अन्तर नहीं है। किसी एक वृक्ष में कई रंग के फूल नहीं खिलते, न ही कई स्वाद के फल लगते हैं। उनकी कुछ निश्चित श्रेणियाँ हैं, जिस प्रकार कि मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों तथा अन्य योनियों में होती हैं। इस संसार में असंख्य जीव हैं और प्रकृति के विभिन्न गुणों के अनुसार उनके कार्यों के कारण उन्हें विभिन्न प्रकार के शरीर प्राप्त करने का अवसर दिया जाता है।

“इस तरह यह समझ लेना चाहिए कि प्रधान अथवा पदार्थ जीवित प्राणी की प्रेरणा के बिना कार्य नहीं कर सकता। इसलिए यह भौतिकतावादी सिद्धान्त स्वीकार्य नहीं है कि पदार्थ स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है। पदार्थ प्रकृति कहलाता है, जो स्त्री-शक्ति की ओर संकेत करता है। स्त्री प्रकृति है, जो स्त्रीलिंग है। स्त्री पुरुष के संयोग के बिना शिशु उत्पन्न नहीं कर सकती। पुरुष से शिशु का जन्म होता है, क्योंकि पुरुष आत्मा का प्रवेश स्त्री के गर्भ में कराता है, जो कि उसके वीर्य में आश्रय ग्रहण करके बैठा होता है। स्त्री भौतिक कारण (उपादान) होने के कारण आत्मा के लिए शरीर प्रदान करती है और निमित्त कारण के रूप में वह शिशु को जन्म देती है। किन्तु भले ही स्त्री शिशु के जन्म का उपादान तथा निमित्त कारण प्रतीत होती हो, किन्तु मूलतः पुरुष अर्थात् नर ही शिशु के जन्म का

कारण होता है। इसी प्रकार यह भौतिक जगत् भी अनेक प्रकार की अभिव्यक्तियों को प्रकाशित करता है, क्योंकि गर्भोदकशायी विष्णु ब्रह्माण्ड में प्रवेश कर जाते हैं। वे न केवल ब्रह्माण्ड के भीतर विद्यमान रहते हैं, अपितु सारे सजीव प्राणियों के भीतर एवं अणु अणु के भीतर भी विद्यमान रहते हैं। ब्रह्म-संहिता से हमें ज्ञात होता है कि भगवान् न केवल ब्रह्माण्ड में, अपितु प्रत्येक परमाणु में एवं प्रत्येक जीव के हृदय में भी उपस्थित रहते हैं। अतएव जिस किसी को भी पदार्थ तथा आत्मा का यथेष्ठ ज्ञान है, वह इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करेगा कि पदार्थ ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि का कारण है।

"कभी-कभी भौतिकतावादी यह तर्क देते हैं कि गाय जिस घास को खाती है, उससे स्वतः दूध उत्पन्न हो जाता है। उसी तरह भौतिक प्रकृति विभिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत नाना प्रकार के जीवों को उत्पन्न करती है। इस तरह मूलतः पदार्थ ही कारण है। इस तर्क का खंडन करते हुए हम कह सकते हैं कि गाय की ही योनि का पशु बैल भी तो घास खाता है, किन्तु वह क्यों दूध नहीं देता? ऐसी स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि विशेष योनि के साथ घास दूध उत्पन्न करता है। निष्कर्ष यह होना चाहिए कि एक उच्चतर व्यवस्था होती है, जिसकी पुष्टि भगवद्गीता (9.10) में की गई है, जहाँ भगवान् कहते हैं- मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्-'हे कुन्तीपुत्र,' यह भौतिक प्रकृति मेरी अध्यक्षता में कार्य कर रही है और समस्त चर तथा अचर जीवों को उत्पन्न कर रही है। भगवान् मयाध्यक्षेण ('मेरी अध्यक्षता में') शब्द का प्रयोग करते हैं। जब वे चाहते हैं कि गाय घास खाकर दूध उत्पन्न करे, तो दूध उत्पन्न हो सकता है और जब वे नहीं चाहते, तो उसी घास से दूध उत्पन्न नहीं हो सकता। यदि यह भौतिक प्रकृति का नियम होता कि घास से दूध उत्पन्न होता है, तो घास के ढेर से भी दूध उत्पन्न हो सकता था। किन्तु ऐसा सम्भव नहीं है। यदि इसी घास को किसी स्त्री को दिया जाए, तो दूध उत्पन्न नहीं हो सकता। भगवद्गीता के कथन का यही तात्पर्य है कि उच्चतर

आदेश के अन्तर्गत ही कोई घटना घट सकती है। पदार्थ में स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न करने की शक्ति नहीं होती। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि पदार्थ, जिसे कोई आत्म-ज्ञान नहीं होता, वह भौतिक सृष्टि का कारण नहीं हो सकता। अन्तिम स्रष्टा तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही हैं।

"यदि पदार्थ को सृष्टि का मूल कारण मान लिया जाता, तो संसार के सारे प्रामाणिक शास्त्र व्यर्थ हो जाते, क्योंकि प्रत्येक शास्त्र में और विशेषतया मनुस्मृति जैसे वैदिक शास्त्र में, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को परम स्रष्टा कहा गया है। मनुस्मृति को मानवता के लिए सर्वोच्च वैदिक निर्देश माना जाता है। मनु मनुष्य जाति के लिए नीति (कानून) के प्रवर्तक हैं और मनुस्मृति में स्पष्ट उल्लेख है कि सृष्टि के पूर्व ब्रह्माण्ड के भीतर की पूरी जगह अन्धकारमय थी-बिना किसी जानकारी तथा विविधता के और स्वप्न के समान नितान्त अवलम्बहीन अवस्था में थी। सब कुछ अन्धकारमय था। तब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने ब्रह्माण्ड में प्रवेश किया और अदृश्य रहते हुए भी दृश्य जगत् की सृष्टि की। भौतिक जगत् में भगवान् अपनी व्यक्तिगत साकार उपस्थिति के द्वारा प्रकट नहीं दिखते, किन्तु विविधतापूर्ण भौतिक सृष्टि की उपस्थिति इसका प्रमाण है कि हर वस्तु उनके निर्देशन में उत्पन्न की गई है। वे अपनी समस्त सृजनात्मक शक्तियों समेत ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट हुए और इस तरह उन्होंने असीम आकाश के अंधकार को दूर किया।

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के स्वरूप को दिव्य, अति सूक्ष्म, सनातन, सर्वव्यापी, अचिन्त्य, अतएव बद्धजीवों की भौतिक इन्द्रियों के लिए अप्रकट कहा गया है। भगवान् ने अनेक जीवों में विस्तार करने की इच्छा की और इस इच्छा से ही उन्होंने ब्रह्माण्ड में सर्वप्रथम विशाल जलराशि उत्पन्न की और फिर उस जल में जीवों का गर्भाधान किया। गर्भाधान की इस क्रिया से एक बृहत्काय शरीर प्रकट हुआ, जो हजारों सूर्य की भाँति प्रकाशित हो रहा था और वह शरीर प्रथम सृष्टि-तत्त्व ब्रह्मा थे। विष्णु पुराण में महर्षि पराशर ने भी इसकी पुष्टि की है। वे कहते हैं कि हमें दिखने वाला यह

प्रकट जगत् भगवान् विष्णु से उत्पन्न हुआ है और उनके संरक्षण में स्थित है। वे विराट् जगत् के प्रमुख पालनकर्ता तथा संहारकर्ता हैं।

"यह दृश्य जगत् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की विविधतापूर्ण शक्तियों में से एक है। जिस प्रकार मकड़ी लार निकालकर अपनी ही गति से सर्वप्रथम जाल बुनती है, किन्तु अन्त में उसे अपने शरीर के भीतर समेट लेती है, उसी प्रकार विष्णु अपने दिव्य शरीर से इस जगत् को उत्पन्न करते हैं और अन्त में अपने में ही इसे समेट लेते हैं। वेदों के ज्ञाता समस्त महामुनियों ने यह स्वीकार किया है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही मूल स्रष्टा हैं।

"कभी-कभी यह दावा किया जाता है कि महान् दार्शनिकों के निर्विशेष तर्कवितर्क धार्मिक अनुष्ठान के सिद्धान्तों से रहित ज्ञान की समृद्धि के लिए हैं। किन्तु धार्मिक अनुष्ठान के सिद्धान्त वास्तव में आध्यात्मिक ज्ञान की वृद्धि के लिए होते हैं। धार्मिक अनुष्ठान को सम्पन्न करने से मनुष्य अन्तत: इस सर्वोपरि ज्ञान को समझ जाता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव ही हर वस्तु के कारण हैं और इस तरह वह ज्ञान के चरम लक्ष्य को प्राप्त करता है। भगवद्गीता में स्पष्ट कहा गया है कि जो लोग अनुष्ठानों से विहीन कोरे ज्ञान के समर्थक हैं, वे अनेकानेक जन्मान्तरों के चिन्तन के बाद ज्ञान में प्रगति कर पाते हैं और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वासुदेव ही हर वस्तु के परम कारण हैं। जीवन के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के फलस्वरूप ऐसा उन्नत विद्वान या दार्शनिक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण में जाता है। धार्मिक अनुष्ठान तो भौतिक जगत् में कलुषित मनों को स्वच्छ बनाने के लिए होते हैं और इस कलियुग का विशेष लक्षण यह है कि मनुष्य भगवान् के पवित्र नामों-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे । हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे॥ के कीर्तन द्वारा मन को सरलता से शुद्ध कर सकता है।

“एक वैदिक आदेश है- सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति (कठोपनिषद् 1.2.15)–सारा वैदिक ज्ञान एक तरह से पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर की खोज कर रहा है। इसी प्रकार दूसरा एक वैदिक आदेश है- नारायणपरा वेदाः-सारे वेद नारायण अर्थात् परम भगवान् को समझने के लिए हैं। इसी प्रकार भगवद्गीता में भी पुष्टि हुई है-वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः-सारे वेदों के द्वारा कृष्ण एकमात्र जानने योग्य हैं। अतएव वेदों को समझने, वैदिक यज्ञ करने और वेदान्त-सूत्रों का चिन्तन करने का मूल प्रयोजन भगवान् कृष्ण को समझना है। यदि निर्विशेषवादियों के शून्यवाद अथवा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अस्तित्वहीनता को स्वीकार कर लिया जाये, तो वेदों का सारा अध्ययन अर्थहीन हो जाता है। निर्विशेष चिन्तन का उद्देश्य वैदिक प्रमाणों को त्रुटिपूर्ण सिद्ध करना है। अतएव किसी भी निर्विशेष तर्कवादी प्रस्तुतीकरण को वेद-विरोधी समझना चाहिए। निर्विशेषवादियों का चिन्तन वेदों के सिद्धान्तों का पालन नहीं करता, अतः उनका निष्कर्ष वेदों के सिद्धान्तों के विरुद्ध समझना चाहिए। जिसका समर्थन वैदिक सिद्धान्तों से न होता हो, उसे काल्पनिक तथा यथार्थ प्रमाण से विहीन मानना चाहिए। अतएव वैदिक साहित्य की कोई भी निर्विशेष व्याख्या स्वीकार्य नहीं हो सकती।

“यदि कोई अप्रामाणिक शास्त्र अथवा तथाकथित शास्त्र को स्वीकार करके वेदों के प्रमाणों को गलत साबित करना चाहे, तो उसके लिए परम सत्य के विषय में सही निष्कर्ष पर आना अत्यन्त कठिन होगा। दो परस्पर-विरोधी शास्त्रों में समन्वय लाने के लिए वेदों का सहारा लेना चाहिए, क्योंकि वेदों के सन्दर्भो को ही अन्तिम निर्णय माना जाता है। जब हम किसी विशेष शास्त्र का उल्लेख करें, तो उसे प्रामाणिक होना चाहिए और इस अधिकृतता के लिए उसे पूरी तरह से वैदिक निर्देशों के अनुरूप होना चाहिए। यदि कोई स्वनिर्मित वैकल्पिक मत प्रस्तुत करता है, तो वह मत स्वत: ही अर्थहीन सिद्ध होगा, क्योंकि कोई भी मत जो वैदिक प्रमाण को अर्थहीन सिद्ध करने का प्रयास करता है, वह तुरन्त स्वयं को अर्थहीन सिद्ध कर देता है। वेदों के अनुयायी गुरु-शिष्य परम्परा

में मनु तथा पराशर को एकमत से प्रामाणिक स्वीकार करते हैं। किन्तु उनके कथन नास्तिक कपिल का समर्थन नहीं करते, क्योंकि वेदों में जिस कपिल का उल्लेख हुआ है, वे भिन्न कपिल हैं-कर्दम तथा देवहूति के पुत्र। नास्तिक कपिल तो अग्निवंशी है और बद्धजीवों में से एक है। किन्तु कर्दम मुनि के पुत्र कपिल को वासुदेव के अवतार के रूप में स्वीकार किया जाता है। पद्म पुराण में इसका साक्ष्य प्राप्त है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव कपिल के रूप में अवतरित होते हैं और अपने आस्तिक सांख्य दर्शन के विस्तार द्वारा सारे देवताओं को तथा आसुरि नामक ब्राह्मण को शिक्षा देते हैं। नास्तिक कपिल के मत में वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध कई कथन हैं। नास्तिक कपिल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नहीं मानता। वह कहता है कि जीव स्वयं भगवान् है और उससे बढ़कर अन्य कोई नहीं है। उसके तथाकथित बद्ध और मुक्त जीवन विषयक विचार भौतिकतावादी हैं और वह सनातन काल की महत्ता को स्वीकार करने से मना करता है। ऐसे सारे कथन वेदान्त-सूत्र के नियमों के विरुद्ध हैं।"

आपने पुरुष–विश्वेर 'निमित्त'-कारण।

अद्वैत-रूपे उपादान' हन नारायण ॥16॥

आपने-निजी; पुरुष-भगवान् विष्णु; विश्वेर-अखिल भौतिक जगत्; निमित्त कारण-मूल कारण; अद्वैत-रूपे-अद्वैत के रूप में; उपादान-भौतिक कारण; हन-हो जाते हैं; नारायण-भगवान् नारायण।

अनुवाद

स्वयं भगवान् विष्णु भौतिक जगत् के निमित्त कारण हैं और श्री अद्वैत के रूप में नारायण उपादान या भौतिक कारण हैं।

‘निमित्तांशे’ करे तेंहो मायाते ईक्षण।

‘उपादान’ अद्वैत करेन ब्रह्माण्ड-सृजन ॥17॥

निमित्त-अंशे–मूल कारण के अंश में; करे-करते हैं; तेंहो-वे; मायाते-बाह्य शक्ति में; ईक्षण-दृष्टिपात; उपादान-भौतिक कारण; अद्वैत-अद्वैत आचार्य; करेन-करते हैं; ब्रह्माण्ड-सृजन-भौतिक जगत् का सृजन।

अनुवाद

भगवान् विष्णु अपने निमित्त अंश के रूप में भौतिक शक्ति के ऊपर दृष्टिपात करते हैं और श्री अद्वैत उपादान कारण के रूप में भौतिक जगत् की सृष्टि करते हैं।

यद्यपि साङ्ख्य माने, ‘प्रधान’–कारण।

जड़ हइते कभु नहे जगत्सृजन ॥18॥

यद्यपि यद्यपि; साङ्ख्य-सांख्य दर्शन; माने-मानता है; प्रधान-तत्त्व, अवयव; कारण-कारण; जड़ हइते-जड़ से; कभु-कभी भी; नहे-नहीं है; जगत्-सृजन-भौतिक जगत् का सृजन।

अनुवाद

यद्यपि सांख्य दर्शन मानता है कि भौतिक अवयव ही कारण हैं, किन्तु जगत् की सृष्टि कभी भी मृत पदार्थ से नहीं होती।

निज सृष्टि-शक्ति प्रभु सञ्चारे प्रधाने।

ईश्वरेर शक्त्ये तबे हये त’ निर्माणे ॥19॥

निज-अपनी; सृष्टि-शक्ति-सृजन की शक्ति; प्रभु-भगवान्; सञ्चारे-संचार करते हैं; प्रधाने-तत्त्वों में; ईश्वरेर शक्त्ये-ईश्वर की शक्ति से; तबे-तब; हये-है; त'–निश्चित रूप से; निर्माणे-सृष्टि का आरम्भ।

अनुवाद

भगवान् अपनी सृजन शक्ति द्वारा भौतिक अवयवों को संचारित करते हैं। इसके बाद भगवान् की शक्ति से सृष्टि-कार्य सम्पन्न होता है।

अद्वैत-रूपे करे शक्ति-सञ्चारण।

अतएव अद्वैत हयेन मुख्य कारण ॥20॥

अद्वैत-रूपे-अद्वैत आचार्य के रूप में; करे-करते हैं; शक्ति-सञ्चारण-शक्ति का संचार; अतएव–अतएव; अद्वैत-अद्वैत आचार्य; हयेन-हैं; मुख्य कारण-मूल कारण।

अनुवाद

अद्वैत के रूप में वे भौतिक अवयवों (उपादानों) में सृजन शक्ति का संचार करते हैं। अतएव अद्वैत ही सृष्टि के मूल कारण हैं।

अद्वैत-आचार्य कोटि-ब्रह्माण्डेर कर्ता।

आर एक एक मूर्त्ये ब्रह्माण्डेर भर्ता ॥21॥

अद्वैत-आचार्य-अद्वैत आचार्य; कोटि-ब्रह्माण्डेर कर्ता-करोड़ो ब्रह्माण्डों के स्रष्टा; आर-और; एक एक–प्रत्येक; मूर्त्ये–विस्तार से; ब्रह्माण्डेर भर्ता-ब्रह्माण्ड के पालक।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों के स्रष्टा हैं और अपने विस्तार (गर्भोदकशायी विष्णु) द्वारा वे प्रत्येक ब्रह्माण्ड का पालन करते हैं।

सेइ नारायणेर मुख्य अङ्ग–अद्वैत ।

‘अङ्ग’-शब्दे अंश करि’ कहे भागवत ॥22॥

सेइ-वे; नारायणेर-भगवान् नारायण के; मुख्य अङ्ग–मुख्य अंग; अद्वैत-अद्वैत आचार्य; अङ्ग-शब्दे-अङ्ग शब्द से; अंश करि’–पूर्ण अंश मानकर; कहे-कहते हैं; भागवत- श्रीमद्भागवतम्।

अनुवाद

श्री अद्वैत नारायण के मुख्य अंग हैं। श्रीमद्भागवत’ में ‘‘अंग’’ को ही भगवान् का ‘‘पूर्ण अंश’’ कहा गया है।

नारायणस्त्वं न हि सर्व-देहिनाम्

आत्मास्यधीशाखिल-लोक-साक्षी ।

नारायणोऽङ्गं नर-भू-जलायनात्

तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥23॥

नारायणः-भगवान् नारायण; त्वम्-आप; न-नहीं; हि-निश्चित रूप से; सर्व-सब; देहिनाम्-देहधारियों के; आत्मा-परमात्मा; असि-आप हैं; अधीश-हे भगवान्; अखिल-लोक-सभी जगतों के; साक्षी–साक्षी; नारायणः–नारायण नाम से विख्यात; अङ्गम् पूर्णांश; नर-नर के; भू-उत्पन्न हुए;

जल-जल में; अयनात्-आश्रय-स्थान के कारण; तत्व ह; च-और; अपि-निश्चित रूप से; सत्यम्-परम सत्य; न-नहीं; तव-आपका; एव–बिल्कुल; माया-माया।

अनुवाद

हे समस्त प्रभुओं के प्रभु, आप समस्त सृष्टि को देखने वाले हैं। आप हर एक को प्राणों से प्रिय हैं। इसलिए क्या आप मेरे पिता नारायण नहीं हैं?'नारायण' वे हैं, जिनका आवास नर (गर्भोदकशायी विष्णु) से उत्पन्न जल में है और वही नारायण आपके पूर्ण अंश हैं। आपके सारे पूर्ण अंश दिव्य हैं। वे परम पूर्ण हैं और माया द्वारा रचित नहीं हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.14.14) से लिया गया है।

ईश्वरेर अङ्ग' अंश—चिदानन्द-मय ।

मायार सम्बन्ध नाहि' एइ श्लोके कय ॥24॥

ईश्वरेर–भगवान् का; अङ्ग–अंग; अंश-अंश; चित्-आनन्द-मय-सर्वथा आध्यात्मिक; मायार-भौतिक शक्ति का; सम्बन्ध–सम्बन्ध; नाहि'–नहीं है; एइ श्लोके-यह श्लोक; कय-कहता है।

अनुवाद

यह श्लोक बतलाता है कि भगवान् के सारे अंग तथा पूर्ण अंश आध्यात्मिक हैं। उनका भौतिक शक्ति (माया) से कोई सम्बन्ध नहीं है।

'अंश' ना कहिया, केने कह तारे 'अङ्ग' ।

‘अंश’ हैते ‘अङ्ग,’ याते हय अन्तरङ्ग ॥ 25॥

अंश-अंश; ना कहिया–नहीं कहते; केने-क्यों; कह-आप कहते हैं; ताँरे-उनको; अङ्ग–अंग; अंश हैते–अंश की अपेक्षा; अङ्ग–अंग; याते-क्योंकि; हय-है; अन्तरङ्ग–अधिक।

अनुवाद

तब श्री अद्वैत को अंश न कहकर अंग क्यों कहा गया? इसका कारण है कि “अंग” अधिक घनिष्ठता का सूचक है।

महा-विष्णुर अंश—अद्वैत गुण-धाम ।

ईश्वरे अभेद, तेञि ‘अद्वैत’ पूर्ण नाम ॥26॥

महा-विष्णुर-भगवान् महाविष्णु के; अंश-अंश; अद्वैत-अद्वैत आचार्य; गुण-धाम–सभी गुणों के आगार; ईश्वरे-भगवान् से; अभेद-अभिन्न; तेजि-अतएव; अद्वैत-अभिन्न; पूर्ण नाम-पूर्ण नाम।

अनुवाद

समस्त सद्-गुणों के आगार श्री अद्वैत महाविष्णु के प्रमुख अंग हैं। उनका पूरा नाम अद्वैत है, क्योंकि वे सभी प्रकार से उन भगवान् से अभिन्न

पूर्वे यैछे कैल सर्व-विश्वेर सृजन ।

अवतरि’ कैल एबे भक्ति-प्रवर्तन ॥27॥

पूर्वे-पहले; यैछे-जैसे; कैल–किया; सर्व-सभी; विश्वेर-ब्रह्माण्डों का; सृजन-सृजन; अवतरि’–अवतरित होकर; कैल–किया; एबे-अब; भक्ति-प्रवर्तन-भक्ति सम्प्रदाय का उद्घाटन।

अनुवाद

जिस तरह पूर्वकाल में उन्होंने ब्रह्माण्डों की रचना की थी, उसी तरह अब वे भक्ति-पथ का सूत्रपात करने के लिए अवतरित हुए हैं।

जीव निस्तारिल कृष्ण-भक्ति करि' दान।

गीता-भागवते कैल भक्तिर व्याख्यान ॥28॥

जीव-जीव; निस्तारिल-उद्धार किया; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण भक्ति; करि'-करके; दान-दान; गीता-भागवते- भगवद्गीता और श्रीमद्भागवत में; कैल-किया; भक्तिर व्याख्यान-भक्ति का वर्णन।

अनुवाद

उन्होंने सारे जीवों को कृष्ण-भक्ति का उपहार देकर उनका उद्धार किया। उन्होंने भक्ति के प्रकाश में 'भगवद्गीता' तथा 'श्रीमद्भागवत' की व्याख्या की।

तात्पर्य

यद्यपि श्री अद्वैत प्रभु विष्णु के अवतार हैं, लेकिन बद्धजीवों के कल्याण हेतु उन्होंने अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सेवक के रूप में प्रकट किया और अपने सारे कार्यों में उन्होंने अपने आपको सनातन सेवक के रूप में प्रदर्शित किया। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु ने भी यही सिद्धान्त प्रकट किया, यद्यपि वे भी विष्णु-तत्त्व हैं। यदि श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द तथा श्री अद्वैत प्रभु ने इस भौतिक जगत् में अपनी सर्वशक्तिमान विष्णु-शक्तियों को प्रकट किया होता, तो लोग कहीं अधिक बड़े निर्विशेषवादी, अद्वैतवादी तथा आत्मपूजक बन गये होते, जैसे कि वे इस युग के दुष्प्रभाव के कारण बन चुके हैं। इसीलिए भगवान् तथा उनके विभिन्न अवतारों

एवं रूपों ने बद्धजीवों को भक्ति की दिव्य अवस्था तक पहुँचाने हेतु उपदेश देने के लिए भक्तों की भूमिका ग्रहण की। अद्वैत आचार्य विशेष रूप से बद्धजीवों को भक्ति की शिक्षा देना चाहते थे। आचार्य शब्द का अर्थ है "शिक्षक"। ऐसे शिक्षक का विशिष्ट कार्य है लोगों को कृष्णभावनाभावित बनाना। अद्वैत आचार्य के पदचिह्नों पर चलने वाले प्रामाणिक शिक्षक के लिए सारे विश्व में कृष्णभावनामृत के सिद्धान्तों का प्रसार करने के अतिरिक्त कोई अन्य कार्य नहीं है। आचार्य की वास्तविक योग्यता यही है कि वह अपने आपको भगवान् के दास के रूप में प्रस्तुत करे। ऐसे प्रामाणिक आचार्य उन नास्तिक व्यक्तियों के आसुरी कार्यों का समर्थन कभी नहीं कर सकते, जो अपने आपको ईश्वर कहते हैं। आचार्य का प्रमुख कार्य यह है कि वह निर्दोष जनता के समक्ष अपने आपको ईश्वर कहलाने वाले ऐसे वञ्चकों का विरोध करे।

भक्ति-उपदेश विनु ताँर नाहि कार्य ।

अतएव नाम हैल अद्वैत आचार्य ॥29॥

भक्ति-उपदेश-भक्ति का उपदेश; विनु–बिना; ताँर-उनका; नाहि-नहीं है; कार्य-कार्य; अतएव–अतएव; नाम-नाम; हैल-हो गया; अद्वैत आचार्य-सर्वोपरि आचार्य अद्वैत प्रभु।

अनुवाद

उनके पास भक्ति की शिक्षा देने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं है, अतएव उनका नाम अद्वैत आचार्य है।

वैष्णवेर गुरु तेंहो जगतेर आर्य ।

दुइ-नाम-मिलने हैल 'अद्वैत-आचार्य' ॥30॥

वैष्णवेर-भक्तों के; गुरु-गुरु; तेंहो-वे; जगतेर आर्य-जगत् के सर्व सम्मानित व्यक्ति; दुइ-नाम-मिलने-दो नामों को मिलाने से; हैल-हुआ; अद्वैत-आचार्य-अद्वैत आचार्य नाम।

अनुवाद

वे समस्त भक्तों के गुरु हैं और संसार के सबसे आदरणीय व्यक्ति हैं। इन दोनों नामों के योग से उनका नाम अद्वैत आचार्य है।

तात्पर्य

श्री अद्वैत आचार्य वैष्णवों के आदि गुरु हैं और वे सभी वैष्णवों द्वारा पूज्य हैं। वैष्णवों को अद्वैत आचार्य के चरणचिह्नों पर चलना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से ही मनुष्य भगवान् की भक्तिमय सेवा में लग सकता है।

कमल-नयनेर तेंहो, य़ाते 'अङ्ग' 'अंश' ।

कमलाक्ष करि धरे नाम अवतंस ॥ 31॥

कमल-नयनेर-कमलनयन के; तेंहो-वे; याते-चूँकि; अङ्ग–अंग; अंश-भाग; कमल-अक्ष-कमलनयन; करि'-वह मानकर; धरे-धारण करते हैं; नाम-नाम; अवतंस-आंशिक विस्तार।

अनुवाद

चूँकि वे कमलनयन परमेश्वर के अंग या अंश हैं, इसलिए उनका नाम कमलाक्ष भी है।

ईश्वर-सारूप्य पाय पारिषद-गण ।

चतुर्भुज, पीत-वास, यैछे नारायण ॥ 32॥

ईश्वर-सारूप्य-ईश्वर के स्वरूप जैसा; पाय-पाते हैं; पारिषद-गण-पार्षद गण; चतुर्भुज-चतुर्भुज; पीत-वास-पीताम्बर; यैछे-जैसे; नारायण-भगवान् नारायण।

अनुवाद

उनके पार्षदों के शारीरिक रूप भी भगवान् जैसे होते हैं। उन सबके चार हाथ होते हैं और वे नारायण की तरह पीताम्बर धारण करते हैं।

अद्वैत-आचार्य—ईश्वरेर अंश-वर्य।

ताँर तत्त्व-नाम-गुण, सकलि आश्चर्य॥ 33॥

अद्वैत-आचार्य-प्रभु अद्वैत आचार्य; ईश्वरेर–भगवान् के; अंश-वर्य-प्रमुख अंश; ताँर-उनका; तत्त्व-तत्त्व; नाम-नाम; गुण-गुण; सकलि-सब; आश्चर्य-आश्चर्यजनक।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य परमेश्वर के प्रमुख अंग हैं। उनके तत्त्व, नाम तथा गुण-सभी अद्भुत हैं।

याँहार तुलसी-जले, याँहार हुङ्कारे।

स्व-गण सहिते चैतन्येर अवतारे॥34॥

याँहार–जिनके; तुलसी-जले-तुलसी दल और गंगाजल से; याँहार–उनको; हुङ्कारे-ऊँचे स्वर में; स्व-गण-उनके निजी पार्षदों; सहिते-के सहित; चैतन्येर–श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतारे-अवतार में।

अनुवाद

उन्होंने कृष्ण की पूजा तुलसीदल तथा गंगाजल से की और उच्च स्वर से उन्हें पुकारा। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी पार्षदों सहित पृथ्वी पर अवतरित हुए।

याँर द्वारा कैल प्रभु कीर्तन प्रचार ।

याँर द्वारा कैल प्रभु जगनिस्तार ॥ 35 ॥

याँर द्वारा–जिनके द्वारा; कैल-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कीर्तन प्रचार-संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार; याँर द्वारा–जिनके द्वारा; कैल–किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जगत् निस्तार-सारे संसार का उद्धार।

अनुवाद

उन्हीं (अद्वैत आचार्य) के द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन आन्दोलन का प्रसार किया और उन्हीं के द्वारा उन्होंने संसार का उद्धार किया।

आचार्य गोसाञिर गुण-महिमा अपार ।

जीव-कीट कोथाय पाइबेक तार पार ॥36॥

आचार्य गोसाञिर-अद्वैत आचार्य के; गुण-महिमा-गुणों की महिमा; अपार-अपार; जीव-कीट-कीट के समान जीव; कोथाय–कहाँ; पाइबेक-पाएगा; तार-उसका; पार–पार।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य की महिमा तथा उनके गुण असीम हैं। तो फिर क्षुद्र जीव उनका पार कैसे पा सकते हैं?

आचार्य गोसाञि चैतन्येर मुख्य अङ्ग ।

आर एक अङ्ग ताँर प्रभु नित्यानन्द ॥ 37॥

आचार्य गोसाञि-अद्वैत आचार्य; चैतन्येर–श्री चैतन्य महाप्रभु के; मुख्य–मुख्य; अङ्ग–अंग; आर-अन्य; एक-एक; अङ्ग–अंग; ताँर-भगवान् चैतन्य महाप्रभु का; प्रभु नित्यानन्द-प्रभु नित्यानन्द।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख्य अंग हैं। उनके दूसरे अंग नित्यानन्द प्रभु हैं।

प्रभुर उपाङ्ग–श्रीवासादि भक्त-गण ।

हस्त-मुख-नेत्र-अङ्ग चक्राद्यस्त्र-सम ॥ 38॥

प्रभुर उपाङ्ग–चैतन्य महाप्रभु के लघु अंग; श्रीवास-आदि-श्रीवास आदि; भक्त-गण-भक्तगण; हस्त-हाथ; मुख–मुख; नेत्र-नेत्र; अङ्ग–शरीर के अंग; चक्र-आदि-चक्र आदि; अस्त्र-अस्त्र; सम-समान।

अनुवाद

श्रीवास आदि भक्तगण उनके लघु अंग हैं। वे उनके हाथ, मुँह, आँखें तथा चक्र एवं अन्य अस्त्रों की तरह हैं।

ए-सब लइया चैतन्य-प्रभुर विहार ।

ए-सब लइया करेन वाञ्छित प्रचार ॥39॥

ए-सब-ये सब; लइया-लेकर; चैतन्य-प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; विहार-लीलाएँ; ए-सब-वे सब; लइया-लेकर; करेन-करते हैं; वाञ्छित प्रचार-अपने उद्देश्य का प्रचार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन सबके साथ अपनी लीलाएँ कीं और उनको साथ लेकर उन्होंने अपने वांछित उद्देश्य का प्रचार किया।

माधवेन्द्र-पुरीर इँहो शिष्य, एइ ज्ञाने ।

आचार्य-गोसाञिरे प्रभु गुरु करि' माने ॥40॥

माधवेन्द्र-पुरीर-माधवेन्द्र पुरी के; इँहो-अद्वैत आचार्य; शिष्य-शिष्य; एइ ज्ञाने-इस विचार से; आचार्य-गोसाञिरे-अद्वैत आचार्य को प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गुरु-आध्यात्मिक गुरु; करि'-मानकर; माने-उनकी आज्ञा का पालन करते हैं।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु यह सोचकर कि "वे (श्री अद्वैत आचार्य) श्री माधवेन्द्र पुरी के शिष्य हैं, उन्हें अपने गुरु के समान आदर देते हुए उनकी आज्ञा का पालन करते हैं।

तात्पर्य

श्री माधवेन्द्र पुरी मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा के आचार्यों में से एक हैं। माधवेन्द्र पुरी के दो प्रमुख शिष्य थे-ईश्वर पुरी और अद्वैत प्रभु। अतएव गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा में है। इस तथ्य को गौर-गणोद्देश दीपिका तथा प्रमेय रलावली जैसे प्रामाणिक ग्रंथों द्वारा तथा गोपाल गुरु गोस्वामी द्वारा स्वीकार किया गया है। गौर-गणोद्देश दीपिका (22) में

गौड़ीय वैष्णवों की गुरु-शिष्य परम्परा का निम्नलिखित विवरण स्पष्ट दिया हुआ है, "ब्रह्माजी वैकुण्ठपति विष्णु के प्रत्यक्ष शिष्य हैं। उनके शिष्य नारद हैं, नारद के शिष्य व्यास हैं और व्यास के शिष्य हैं शुकदेव गोस्वामी तथा मध्वाचार्य। पद्मनाभ आचार्य मध्वाचार्य के शिष्य हैं और नरहरि पद्मनाभ आचार्य के शिष्य हैं। माधव नरहरि के शिष्य हैं, अक्षोभ्य माधव के शिष्य हैं और जयतीर्थ अक्षोभ्य के शिष्य हैं। जयतीर्थ के शिष्य ज्ञानसिन्धु हैं और इनके शिष्य हैं महानिधि। महानिधि के शिष्य विद्यानिधि है और इनके शिष्य हैं राजेन्द्र। राजेन्द्र के शिष्य हैं जयधर्म और इनके शिष्य हैं पुरुषोत्तम। इनके शिष्य व्यासतीर्थ और इनके शिष्य लक्ष्मीपति हुए, जिनके शिष्य हैं माधवेन्द्र पुरी।"

लौकिक-लीलाते धर्म-मर्यादा-रक्षण ।

स्तुति-भक्त्ये करेन ताँर चरण वन्दन ॥41॥

लौकिक-लौकिक, लोकप्रिय; लीलाते-लीलाओं में; धर्म-मर्नादा-धर्म मर्यादा; रक्षण–पालन; स्तुति-स्तुति; भक्त्ये-भक्ति से; करेन-वे करते हैं; ताँर-अद्वैत आचार्य के; चरण-चरणकमल; वन्दन-वन्दना।

अनुवाद

धर्म के सिद्धान्तों की मर्यादा बनाये रखने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु स्तुति तथा भक्ति के साथ श्री अद्वैत आचार्य के चरणकमलों की वन्दना करते हैं।

चैतन्य-गोसाञिके आचार्य करे 'प्रभु'-ज्ञान ।

आपनाके करेन ताँर 'दास'-अभिमान ॥42॥

चैतन्य-गोसाञिके-श्री चैतन्य महाप्रभु को; आचार्य-अद्वैत आचार्य; करे-करते हैं; प्रभु-ज्ञान-अपने स्वामी जानकर; आपनाके–स्वयं को; करेन-करते हैं; ताँर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; दास-दास के तौर पर; अभिमान-विचार।

अनुवाद

किन्तु श्री अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को अपना स्वामी मानते हैं और अपने आपको चैतन्य महाप्रभु का दास मानते हैं।

तात्पर्य

रूप गोस्वामी ने भक्तिरसामृत सिन्धु (1.1.38) में भक्ति के अद्वितीय गुण की व्याख्या इस प्रकार की है :

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्धगुणीकृतः ।

नैति भक्तिसुखाम्भोधेः परमाणुतुलामपि ॥

“निर्विशेष ब्रह्म के साक्षात्कार से प्राप्त होने वाले दिव्य आनन्द को यदि करोड़ गुना कर दिया जाए, तो भी वह भक्ति के सागर के एक परमाणु की भी तुलना नहीं कर सकता।” इसी प्रकार भावार्थ दीपिका में कहा गया है :

त्वत्कथामृतपाथोधौ विहरन्तो महामुदः ।

कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम् ॥

“जो लोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य कथाओं में आनन्द लेते हैं, उनके लिए भगवान् की दिव्य लीलाओं के श्रवण से प्राप्त होने वाले सुख के आगे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-इन चारों का सुख एक तिनके के समान है।” जो लोग भौतिक भोग से छूटकर कृष्ण के चरणकमलों की दिव्य सेवा में लगे रहते हैं, उन्हें निर्विशेष अद्वैतवाद की कथाओं के प्रति कोई आकर्षण नहीं रहता। पद्म पुराण में कार्तिक मास के माहात्म्य में कहा गया है, जो कि भक्तगण प्रार्थना करते हैं :

वरं देव मोक्षं न मोक्षावधिं वा

न चान्यं वृणेऽहं वरेशादपीह ।

इदं ते वपुर्नाथ गोपालबालं

सदा मे मनस्याविरास्तां किमन्यैः ॥

कुवेरात्मजौ बद्धमूर्येव यद्वत्

त्वया मोचितौ भक्तिभाजौ कृतौ च ।

तथा प्रेमभक्तिं स्वकां में प्रयच्छ

न मोक्षे ग्रहो मेऽस्ति दामोदरेह ॥

“हे प्रभु, आपके वृन्दावन की बाल-लीलाओं का निरन्तर स्मरण हमारे लिए निर्विशेष ब्रह्म में समा जाने की आकांक्षा से श्रेयस्कर है। आपने अपनी बाल-लीलाओं के समय कुवेर के दो पुत्रों को मोक्ष प्रदान किया और उन्हें अपना महान् भक्त बना दिया। इसी तरह, मेरी इच्छा है कि आप मोक्ष प्रदान करने के स्थान पर मुझे अपनी ऐसी ही भक्ति प्रदान करें। हयशीर्षीयश्रीनारायणव्यूहस्तव में नारायण-स्तोत्र नामक अध्याय में कहा गया है :

न धर्मं काममर्थं वा मोक्षं वा वरदेश्वर ।

प्रार्थये तव पादाब्जे दास्यमेवाभिकामये ॥

“हे प्रभु, मैं न तो धार्मिक बनना चाहता हूँ, न आर्थिक विकास या इन्द्रियतृप्ति का स्वामी बनना चाहता हूँ, न ही मैं मुक्ति चाहता हूँ। हे परम वरदायक, यद्यपि मैं आपसे इन सबको प्राप्त कर सकता हूँ, किन्तु मैं इनकी याचना नहीं करता। मैं तो इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि मैं दास के रूप में आपके चरणकमलों में सदैव लगा रहूँ।” यद्यपि नृसिंहदेव ने प्रह्लाद महाराज को सभी प्रकार के वर प्रदान किए थे, किन्तु प्रह्लाद महाराज ने इनमें से किसी को भी स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वे केवल भगवान् के चरणकमलों की सेवा में लगे रहना चाहते थे। इसी प्रकार शुद्ध भक्त चाहता है कि उसे प्रह्लाद महाराज की तरह भक्ति का ही वरदान प्राप्त हो । भक्तगण हनुमान का भी आदर करते हैं, क्योंकि वे सदा के लिए भगवान् राम के दास बने रहे। महान् भक्त हनुमान ने प्रार्थना की :

भवबन्धच्छिदे तस्यै स्पृहयामि न मुक्तये ।

भवान् प्रभुरहं दास इति यत्र विलुप्यते ॥

“मैं न तो मुक्ति चाहता हूँ, न ब्रह्मतेज में समा जाना, क्योंकि इनमें भगवान् का दास होने की धारणा पूर्णतया समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार नारद पञ्चरात्र में कहा गया है :

धर्मार्थकाममोक्षेषु नेच्छा मम कदाचन ।

त्वत्पाद पङ्कजस्याधो जीवितं दीयतां मम ॥

“मैं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-इन चारों में से कुछ भी नहीं चाहता। मैं तो दास के रूप में भगवान् के चरणों में लगा रहना चाहता हूँ।” राजा कुलशेखर अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक मुकुन्दमाला स्तोत्र में प्रार्थना करते हैं :

नाहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः

कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम् ।

रम्यारामामृदुतनुलतानन्दने नाभिरन्तु

भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम् ॥

“हे प्रभु, मैं न तो इस भौतिक बन्धन से मुक्त होने के लिए आपकी पूजा करता हूँ, न अपने आपको भौतिक स्थिति की नारकीय दशा से बचाना चाहता हूँ, न ही सुन्दर उद्यान में सुन्दर पत्नी के साथ भोग करने के लिए प्रार्थना करता हूँ। मेरी एकमात्र इच्छा यही है कि मैं आपकी सेवा के पूर्ण उल्लास से सदैव परिपूरित रहूँ।” (मुकुन्दमाला स्तोत्र 4) श्रीमद्भागवत के तीसरे तथा चौथे स्कंधों में भी ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं, जिनमें भक्त भगवान् से यही प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी सेवा में लगे रहें (भागवत 3.4.15, 3.25.34, 3.25.36, 4.8.22, 4.9.10 तथा 4.20.24)।

सेइ अभिमान-सुखे आपना पासरे ।

‘कृष्ण-दास’ हओ-जीवे उपदेश करे ॥43॥

सेइ-वह; अभिमान-सुखे-उस विचार की प्रसन्नता में; आपना-स्वयं; पासरे-वे भूल जाते हैं; कृष्ण-दास हओ-आप भगवान् कृष्ण के दास हैं; जीवे-जीव; उपदेश करे-वे उपदेश करते हैं।

अनुवाद

वे उसी भाव के हर्ष में अपने आपको भूल जाते हैं और सभी जीवों को शिक्षा देते हैं कि, "तुम सभी लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के दास हो।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य भक्ति इतनी उल्लासमयी होती है कि स्वयं भगवान् भी भक्त की भूमिका ग्रहण करते हैं। अपनी सर्वश्रेष्ठता को भूलकर वे सारे संसार को शिक्षा देते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा किस तरह की जाये।

कृष्ण-दास-अभिमाने ये आनन्द-सिन्धु ।

कोटी-ब्रह्म-सुख नहे तार एक बिन्दु ॥44॥

कृष्ण-दास-अभिमाने-कृष्ण के दास होने के विचार से; ग्रे-वे; आनन्द-सिन्धु-दिव्य आनन्द के सागर; कोटी-ब्रह्म-सुख-परम के साथ एक हो जाने के दिव्य आनन्द का करोड़ गुना; नहे-नहीं; तार-दिव्य आनन्द का सागर; एक-एक; बिन्दु-बिन्दु।

अनुवाद

श्रीकृष्ण के प्रति दास्य भाव आत्मा में ऐसा आनन्द-सागर उत्पन्न कर देता है कि यदि ब्रह्म से एकाकार होने के सुख को एक करोड़ गुना कर दिया जाये, तो भी वह इसकी एक बूंद की समानता नहीं कर सकता।

मुञि ये चैतन्य-दास आर नित्यानन्द ।

दास-भाव-सम नहे अन्यत्र आनन्द ॥45॥

मुञि-मैं; ये-वह; चैतन्य-दास–भगवान् चैतन्य के दास; आर-और; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द के; दास-भाव-दास भाव; सम–के समान; नहे-नहीं; अन्यत्र-और कहीं नहीं; आनन्द-दिव्य आनन्द।

अनुवाद

वे कहते हैं, "श्री नित्यानन्द और मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के सेवक हैं।" अन्यत्र कहीं भी ऐसा सुख नहीं है, जैसा इस सेवा-भाव में मिलता है।

परम-प्रेयसी लक्ष्मी हृदये वसति।

तेंहो दास्य-सुख मागे करिया मिनति ॥ 46॥

परम-प्रेयसी-परम प्रिय प्रेमिका; लक्ष्मी-लक्ष्मीदेवी; हृदये-वक्ष स्थल पर; वसति-निवास करती हैं; तेंहो-वे; दास्य-सुख–दासी होने का सुख; मागे-मांगती हैं; करिया-करके; मिनति-प्रार्थना।

अनुवाद

यद्यपि भगवान् के वक्षस्थल पर उनकी परम प्रेयसी लक्ष्मीदेवी निवास करती हैं, किन्तु फिर भी उनकी यही याचना रहती है कि उन्हें उनके चरणों की सेवा का आनन्द प्राप्त होता रहे।

दास्य-भावे आनन्दित पारिषद-गण।

विधि, भव, नारद आर शुक, सनातन ॥47॥

दास्य-भावे-दास्य भाव में; आनन्दित-अत्यन्त हर्षित होकर; पारिषद-गण-सभी पार्षद; विधि–ब्रह्माजी; भव–शिवजी; नारद-महामुनि नारद; आर-एवं; शुक–शुकदेव गोस्वामी; सनातन-सनातन कुमार।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण के सारे पार्षद (संगी), यथा ब्रह्मा, शिव, नारद, शुक तथा सनातन कुमार दास्यभाव में अत्यधिक प्रसन्न रहते हैं।

नित्यानन्द अवधूत सबाते आगल ।

चैतन्येर दास्य-प्रेमे हइला पागल ॥48॥

नित्यानन्द अवधूत-सन्त प्रभु नित्यानन्द; सबाते-सब में; आगल-अग्रणी; चैतन्येर दास्य-प्रेमे-श्री चैतन्य महाप्रभु के दास होने के दिव्य भावपूर्ण प्रेम में; हइला पागल-पागल हो गये, उन्मत्त हो गये।

अनुवाद

विचरण करने वाले अवधूत साधु श्री नित्यानन्द भगवान् चैतन्य के समस्त पार्षदों में अग्रणी हैं। वे भगवान् चैतन्य की सेवा के आनन्द में पागल हो गये।

श्रीवास, हरिदास, रामदास, गदाधर ।

मुरारि, मुकुन्द, चन्द्रशेखर, वक्रेश्वर ॥49॥

ए-सब पण्डित-लोक परम-महत्त्व ।

चैतन्येर दास्ये सबाय करये उन्मत्त ॥50॥

श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; हरिदास-हरिदास ठाकुर; रामदास–रामदास; गदाधर-गदाधर; मुरारि—मुरारि; मुकुन्द मुकुन्द; चन्द्रशेखर–चन्द्रशेखर; वक्रेश्वर–वक्रेश्वर; ए-सब-वे सब; पण्डित-लोक-अत्यन्त विद्वान; परम-महत्त्व-अत्यन्त यशस्वी चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु के; दास्ये-दास्य भाव; सबाय–वे सभी; करये उन्मत्त-उन्मत्त करते हैं।

अनुवाद

श्रीवास, हरिदास, रामदास, गदाधर, मुरारि, मुकुन्द, चन्द्रशेखर तथा वक्रेश्वर सभी अत्यन्त यशस्वी हैं और महान् पण्डित हैं, किन्तु भगवान् चैतन्य के प्रति दास्यभाव उन्हें उन्मत्त बनाये रखता है।

एइ मत गाय, नाचे, करे अट्टहास ।

लोके उपदेशे,—'हओ चैतन्येर दास' ॥51॥

एइ मत-इस प्रकार; गाय-गाते हैं, कीर्तन करते हैं; नाचे-नृत्य करते हैं; करे-करते हैं; अट्ट-हास-उन्मत्त होकर हँसते हैं; लोके-सामान्य लोगों को; उपदेशे-उपदेश देते हैं; हओ-हो जाते हैं; चैतन्येर दास-श्री चैतन्य महाप्रभु के दास।

अनुवाद

इस तरह वे सभी पागलों की तरह नाचते, गाते और हँसते हैं तथा सभी को यही उपदेश देते हैं, "श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेमी दास बनो।"

चैतन्य-गोसाञि मोरे करे गुरु ज्ञान ॥

तथापिह मोर हय दास-अभिमान ॥52॥

चैतन्य-गोसाञि-चैतन्य महाप्रभुः मोरे-मुझे; करे-करते हैं; गुरु-ज्ञान-अपना आध्यात्मिक गुरु समझते हैं; तथापिह-तथापि; मोर-मेरा; हय-है; दास-अभिमान-उनका दास होने का विचार।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य सोचते हैं, "चैतन्य महाप्रभु मुझे अपना गुरु मानते हैं, तो भी मैं अपने आपको उनका दास मात्र अनुभव करता हूँ।"

कृष्ण-प्रेमेर एइ एक अपूर्व प्रभाव ।

गुरु-सम-लघुके कराय दास्य-भाव ॥53॥

कृष्ण-प्रेमेर-कृष्ण-प्रेम का; एइ–यह; एक–एक; अपूर्व प्रभाव-अपूर्व प्रभाव; गुरु-गुरु के पद पर होने वालों को; सम-समान स्तर पर; लघुके–कनिष्ठ लोगों को; कराय-बनाता है; दास्य-भाव-दासता का भाव।

अनुवाद

कृष्ण-प्रेम का यही एक अपूर्व प्रभाव है कि यह गुरुजनों, समवयस्कों तथा कनिष्ठजनों को भगवान् कृष्ण के प्रति सेवा भाव से प्रेरित करता है।

तात्पर्य

भक्ति के दो प्रकार हैं- पाञ्चरात्रिक विधि तथा भागवत की दिव्य प्रेममयी सेवा की विधि। जो लोग पाञ्चरात्रिक विधान में लगे रहते हैं, उनका भगवत्प्रेम ऐश्वर्य तथा आदर के स्तर पर

आधारित रहता है, किन्तु राधा तथा कृष्ण की पूजा नितान्त दिव्य प्रेम के स्तर पर होती है। यहाँ तक कि कृष्ण के वरिष्ठ जन की भूमिका निभाने वाले तक भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेममयी सेवा करने का अवसर प्राप्त करते हैं। ऐसे भक्तों का दास्य भाव समझ पाना कठिन है, जो भगवान् के गुरुजन की भूमिका ग्रहण करते हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण के प्रति विशिष्ट सेवा की पराकाष्ठा के प्रसंग में उसे भलीभाँति समझा जा सकता है। इसका जीवन्त उदाहरण है कृष्ण के प्रति माता यशोदा की सेवा, जो अति विशिष्ट है। भगवान् अपने नारायण रूप में केवल उन्हीं पार्षदों की सेवाएँ स्वीकार कर सकते हैं, जो उन्हीं के समान या उनसे कम भूमिका निभाते हैं; किन्तु अपने कृष्ण रूप में वे अपने पिता, शिक्षक तथा अन्य गुरुजनों की तथा उसके साथ ही अपने समकक्ष वालों एवं अपने आश्रितों की भी सेवाएँ ग्रहण करते हैं। यह अत्यन्त आश्चर्यजनक है।

इहार प्रमाण शुन–शास्त्रेर व्याख्यान ।

महदनुभव य़ाते सुदृढ़ प्रमाण ॥54॥

इहार-इसका प्रमाण-प्रमाण; शुन-कृपया सुनो; शास्त्रेर व्याख्यान-प्रामाणिक शास्त्रों में वर्णन; महत्-अनुभव-महात्माओं का अनुभव; याते-जिससे; सुदृढ़-सुदृढ़; प्रमाण-प्रमाण।

अनुवाद

इसके प्रमाण के लिए प्रामाणिक शास्त्रों में वर्णित उदाहरणों का श्रवण करें, जिनकी पुष्टि महात्माओं की अनुभूति द्वारा भी होती है।

अन्येर का कथा, व्रजे नन्द महाशय ।

तार सम 'गुरु' कृष्णेर आर केह नये ॥55॥

शुद्ध-वात्सल्ये ईश्वर-ज्ञान नाहि तार ।

ताहाकेइ प्रेमे कराय दास्य-अनुकार ॥56॥

अन्येर–अन्यों का; का-क्या; कथा-कहा जाये; व्रजे-वृन्दावन में; नन्द महाशय-नन्द महाराज; तार सम-उनकी तरह; गुरु-ज्येष्ठ, अग्रज; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; आर-अन्य; केह-कोई भी; नय-नहीं; शुद्ध-वात्सल्ये-दिव्य पितृ-प्रेम में; ईश्वर-ज्ञान-भगवान् का; नाहि-नहीं; तार-उसका; ताहाकेइ-उसको; प्रेमे-प्रेम; कराय-बनाता है; दास्य-अनुकार-दास होने का भाव।

अनुवाद

व्रज में कृष्ण के लिए नन्द महाराज से बढ़कर कोई अधिक पूज्य गुरुजन नहीं है, क्योंकि अपने दिव्य पितृप्रेम के कारण उन्हें इसका ज्ञान ही नहीं है कि उनके पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। फिर भी यह प्रेम उन्हें अपने आपको कृष्ण का दास होने का अनुभव कराता है; औरों का तो क्या कहना?

तेंहो रति-मति मागे कृष्णेर चरणे ।

ताहार श्री-मुख-वाणी ताहाते प्रमाणे ॥57॥

तेंहो-वे भी; रति-मति–प्रेम तथा आकर्षण; मागे-माँगते हैं; कृष्णेर चरणे-कृष्ण के चरणकमलों में; ताहार–उनका; श्री-मुख-वाणी-उनके मुख से निकले शब्द; ताहाते-उसमें; प्रमाणे-प्रमाण।

अनुवाद

वे भी भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में अनुरक्ति और भक्ति के लिए प्रार्थना करते हैं, जैसाकि स्वयं उनके मुख से निकले शब्द इसके साक्षी

शुन उद्धव, सत्य, कृष्ण–आमार तनय ।

तेंहो ईश्वर–हेन यदि तोमार मने लय ॥58॥

तथापि ताँहाते रहु मोर मनो-वृत्ति ।

तोमार ईश्वर-कृष्णे हौक मोर मति ॥ 59॥

शुन उद्धव–प्रिय उद्धव, कृपया सुनो; सत्य-सत्य; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; आमार तनय–मेरा पुत्र; तेंहो-वह; ईश्वर–ईश्वर; हेन–इस प्रकार; यदि-यदि; तोमार-तुम्हारा; मने-मन; लय-लेता है; तथापि तथापि; ताँहाते-उसको; रहु-हो; मोर-मेरा; मनः-वृत्ति-मानसिक भाव; तोमार-तुम्हारा; ईश्वर-कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; हौक-होने दो; मोर-मेरा; मति-ध्यान।

अनुवाद

“हे उद्धव, कृपया सुनो। यह सच है कि कृष्ण मेरा पुत्र है, किन्तु फिर भी यदि तुम सोचते हो कि वह ईश्वर है, तो भी उसके लिए मैं अपने पुत्र का भाव ही रखूगा। अतएव मेरी प्रार्थना है कि मेरा मन तुम्हारे भगवान् कृष्ण के प्रति अनुरक्त हो।

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्ण-पादाम्बुजाश्रयाः ।

वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रहृणादिषु ॥60॥

मनसः-मन की; वृत्तयः-वृत्तियाँ, मनोवृत्तियाँ (सोचना, अनुभव करना तथा इच्छा करना); नः-हमारी; स्युः-होने दो; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; पाद-अम्बुज-चरणकमल; आश्रयाः-आश्रित; वाचः-वचन; अभिधायिनीः-बोलना, उच्चारण करना; नाम्नाम्-उनके नामों का; कायः-शरीर; तत्-उनको; प्रह्वण-आदिषु-उनको नमन आदि करना।

अनुवाद

हमारे मन तुम्हारे भगवान् कृष्ण के चरणों में अनुरक्त हों, हमारी जिह्वाएँ उनके पवित्र नामों का कीर्तन करें और हमारे शरीर उनके समक्ष दण्डवत् प्रणाम करें।

कर्मभिर्भाग्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ।

मङ्गलाचरितैर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥61॥

कर्मभिः–कार्यकलापों से; भ्राम्यमाणानाम्-भौतिक ब्रह्माण्ड में भ्रमण करनेवालों का; यत्र-जहाँ भी; क्व अपि-कहीं भी; ईश्वर-इच्छया-ईश्वर की परम इच्छा से; मङ्गल-आचरितैः-शुभ कर्मो से; दानैः-दान तथा परोपकार; रतिः-आकर्षण; नः-हमारा; कृष्णे-कृष्ण में; ईश्वरे-ईश्वर।

अनुवाद

“हम ईश्वर की इच्छा से अपने कर्मवश भौतिक ब्रह्माण्ड में जहाँ भी भ्रमण करें, हमारे पुण्यकर्म भगवान् कृष्ण के प्रति हमारी अनुरक्ति को बढ़ाते रहें।”

तात्पर्य

उपर्युक्त श्लोक श्रीमद्भागवत (10.47.66-67) से लिया गया है, जिन्हें महाराज नन्द तथा उनके संगी वृन्दावनवासियों ने मथुरा से आये उद्धव से कहा था।

श्रीदामादि व्रजे यत सखार निचय ।

ऐश्वर्य-ज्ञान-हीन, केवल-सख्य-मयं ॥ 62॥

श्रीदामा-आदि-कृष्ण के श्रीदामा आदि मित्र; व्रजे-वृन्दावन में; यत-सब; सखार-मित्रों का; निचय-समूह; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य का; ज्ञान-ज्ञान; हीन-बिना; केवल-केवल; सख्य-मय-सख्यमय।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण के वृन्दावन के मित्र, जिनमें श्रीदामा मुख्य हैं, उनके प्रति शुद्ध सख्य प्रेम रखते हैं। उन्हें भगवान् के ऐश्वर्यों का कोई ज्ञान नहीं

कृष्ण-सङ्गे युद्ध करे, स्कन्धे आरोहण ।

तारा दास्य-भावे करे चरण-सेवन ॥ 63॥

कृष्ण-सङ्गे–कृष्ण के साथ; युद्ध करे-युद्ध करते हैं; स्कन्धे-उनके कन्धों पर; आरोहण-चढ़कर; तारा–वे; दास्य-भावे-भगवान् कृष्ण के दास की भावना में; करे-करते हैं; चरण-सेवन–चरणकमलों की सेवा।

अनुवाद

यद्यपि वे भगवान् से लड़ते हैं और उनके कन्धों पर चढ़ जाते हैं, किन्तु दास्यभाव में वे उनके चरणकमलों की पूजा करते हैं।

पाद-संवाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः ।

अपरे हत-पाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥ 64॥

पाद-संवाहनम्-पाँव दबाना; चक्रुः–किया; केचित्-उनमें से कुछ; तस्य-भगवान् कृष्ण की; महा-आत्मनः- भगवान् की; अपरे–अन्य; हत–नष्ट किया; पाप्मानः-जिनके पापी जीवनों के कर्मों के फल; व्यजनैः-हाथ में लिए पंखों से; समवीजयन्-पंखा झला।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के कुछ मित्र उनके पाँव दबाते थे और अन्य मित्र, जिनके पाप-कर्मफल नष्ट हो चुके थे, अपने हाथ में पंखा लेकर उन पर पंखा झलते थे।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.15.17) से लिया गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि तालवन में धेनुकासुर का वध करने के बाद भगवान् कृष्ण तथा बलराम गोप-बालकों के साथ किस तरह खेल रहे थे।

कृष्णेर प्रेयसी व्रजे यत गोपी-गण ।

याँर पद-धूलि करे उद्धव प्रार्थन ॥65॥

याँ-सबार उपरे कृष्णेर प्रिय नाहि आन् ।

ताँहारा आपनाके करे दासी-अभिमान ॥66॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; प्रेयसी-प्रेमिकाएँ; व्रजे-वृन्दावन में; यत-सब; गोपी-गण-गोपियाँ; याँर–जिनका; पद-धूलि-चरणरज; करे-करती हैं; उद्धव-उद्धव; प्रार्थन–चाहते हैं; याँ-सबार-उनमें से सब; उपरे–परे; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; प्रिय–प्रिय; नाहि-नहीं है; आन-अन्य कोई; ताँहारा-वे सब; आपनाके–स्वयं को; करे-करते हैं; दासी-अभिमान-दासी होने का अभिमान।

अनुवाद

यहाँ तक कि वृन्दावन में भगवान् कृष्ण की प्रेयसी गोपियाँ भी, जिनके चरणों की धूल की कामना श्री उद्धव ने की थी और जिनसे बढ़कर कृष्ण को अन्य कोई भी प्रिय नहीं है, अपने आपको कृष्ण की दासियाँ मानती हैं।

व्रज-जनार्ति-हन्वीर योषितां

निज-जन-स्मय-ध्वंसन-स्मित।

भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो

जल-रुहाननं चारु दर्शय ॥67॥

व्रज-जन-आर्ति-हन्-जो वृन्दावनवासियों की दु:खदायक दशाओं को कम करता है; वीर-वीर का; योषिताम्-स्त्रियों का; निज-निजी; जन-साथियों का; स्मय-अभिमान; ध्वंसन–नाश करके; स्मित–जिनकी मुसकान; भज–पूजा करते हैं; सखे-हे मित्र; भवत्-किङ्करीः-आपकी दासियाँ; स्म-निश्चित रूप से; नः-हमें; जल-रुह-आननम्-ठीक कमल पुष्प की भाँति मुख है जिनका; चारु-आकर्षण; दर्शय–दिखाओ।

अनुवाद

हे प्रभु, हे वृन्दावन के निवासियों के कष्टों के हर्ता! हे समस्त स्त्रियों के नायक! अपनी मृदु मधुर मुस्कान से अपने भक्तों के गर्व को नष्ट करने वाले हे भगवान्! हे सखे! हम आपकी दासियाँ हैं। कृपया हमारी इच्छापूर्ति करें और हमें अपने आकर्षक कमलमुख का दर्शन प्रदान करें।"

तात्पर्य

यह श्लोक गोपियों के साथ कृष्ण के रासनृत्य से सम्बन्धित है और श्रीमद्भागवत (10.31.6) से लिया गया है। जब कृष्ण नृत्य के बीच से ही अपनी संगिनियों से अदृश्य हो गये, तो गोपियों ने कृष्ण के विरह में ऐसा गाया।

अपि बत मधु-पुर्यामाग्न-पुत्रोऽधुनास्ते

स्मरति स पितृ-गेहान्सौम्य बन्धूंश्च गोपान्।

क्वचिदपि स कथां नः किङ्करिणां गृणीते

भुजमगुरु-सुगन्धं मूर्त्येधास्यत्कदा नु॥ 68॥

अपि-निश्चित रूप से; बत-शोचनीय, दुःखप्रद; मधु-पुर्याम्-मथुरा नगरी में; आर्य-पुत्रः-नन्द महाराज के पुत्र; अधुना-अब; आस्ते-रहते हैं; स्मरति-याद करते हैं; सः-वे; पितृ-गेहान्–उनके पिता के घरेलु कामकाज; सौम्य-हे महात्मा (उद्धव); बन्धून्-उनके बहुत से मित्र; च–तथा; गोपान्–गोप; क्वचित्-कभी-कभी; अपि-अथवा; सः-वे; कथाम्-बातें करते हैं; नः-हमारी; किङ्करीणाम् दासियों की; गृणीते-बात करते हैं; भुजम्-भुजा; अगुरु-सु-गन्धम्-अगरु की सुगन्ध वाला; मूनि–सिर पर; अधास्यत्-रखेंगी; कदा-कब; नु-हो सकता है।

अनुवाद

“हे उद्धव! यह सचमुच दुःख की बात है कि कृष्ण मथुरा में वास कर रहे हैं। क्या उन्हें अपने पिता के घरेलु कार्यो, अपने मित्रों तथा ग्वालबालों की याद आती है? हे महात्मा! क्या वे कभी हम दासियों के विषय में बात करते हैं? वे कब हमारे मस्तकों को अपने अगुरु-सुगन्धित हाथ से स्पर्श करेंगे?”

तात्पर्य

यह श्लोक भी श्रीमद्भागवत (10.47.21) में भ्रमर गीत अनुभाग में आया है। जब उद्धव वृन्दावन आये, तो कृष्ण के पूर्ण वियोग में श्रीमती राधरानी ने इस प्रकार गाया था।

ताँ-सबार कथा रहु,–श्रीमती राधिका ।

सबा हैते सकलांशे परम-अधिका ॥69॥

तेंहो याँर दासी हैञा सेवेन चरण ।

याँर प्रेम-गुणे कृष्ण बद्ध अनुक्षण ॥ 70 ॥

ताँ-सबार-गोपियों की; कथा-बातचीत; रहु-छोड़ दो; श्रीमती राधिका–श्रीमती राधारानी; सबा हैते–उन सब की अपेक्षा; सकल-अंशे-हर पहलू से; परम-अधिका-सर्वोच्च उन्नत; तेंहो-वह भी; याँर-जिनकी; दासी–दासी; हैञा–होकर; सेवेन–पूजा करती है; चरण-चरणकमल; याँर-जिनके; प्रेम-गुणे-प्रेम गुणों के कारण; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; बद्ध-अनुगृहीत, बद्ध; अनुक्षण-सदा।

अनुवाद

अन्य गोपियों का तो कहना ही क्या, यहाँ तक कि श्रीमती राधिका, जो उन सबमें हर प्रकार से श्रेष्ठ हैं और जिन्होंने अपने प्रेम-गुणों द्वारा श्रीकृष्ण को सदा के लिए बाँध लिया है, उनकी दासी के रूप में उनकी चरण-सेवा करती हैं।

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महा-भुज ।

दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥71॥

हा–हे; नाथ–मेरे स्वामी; रमण-हे मेरे पति; प्रेष्ठ-हे मेरे परम प्रिय; क्व असि क्व असि-आप कहाँ हैं, आप कहाँ हैं; महा-भुज-महाभुजा वाले; दास्याः –दासी की; ते-आप; कृपणायाः-आपकी अनुपस्थिति से अत्यन्त दु:खी; मे-मुझे; सखे-हे सखी; दर्शय-दिखाओ; सन्निधिम्-आपकी निकटता।

अनुवाद

"हे नाथ! हे मेरे पति! हे परम प्रिय! हे बलिष्ठ भुजाओं वाले! आप कहाँ हैं? आप कहाँ हैं? हे सखे, अपनी दासी के समक्ष आप प्रकट क्यों नहीं होते, जो आपकी अनुपस्थिति के कारण अत्यन्त दु:खी है?"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.30.39) से लिया गया है। जब रासनृत्य अपने चरम वेग पर था, तब कृष्ण अन्य सारी गोपियों को छोड़कर केवल श्रीमती राधारानी को ही अपने साथ ले गये। उस समय सारी गोपियाँ विलाप करने लगीं और अपने पद से गर्वित श्रीमती राधारानी ने कृष्ण से प्रार्थना की कि वे जहाँ चाहें वहाँ उन्हें उठाकर ले चलें। तब कृष्ण तुरन्त उस स्थान से अन्तर्धान हो गये और श्रीमती राधारानी विलाप करने लगीं।

द्वारकाते रुक्मिण्यादि यतेक महिषी ।

ताँहाराओ आपनाके माने कृष्ण-दासी ॥72॥

द्वारकाते-द्वारकाधाम में; रुक्मिणी-आदि-रुक्मिणी आदि; यतेक-वे सब; महिषी-रानियाँ; ताँहाराओ-वे सब भी; आपनाके–स्वयं; माने-मानती हैं; कृष्ण-दासी-कृष्ण की दासियाँ।

अनुवाद

द्वारकाधाम में रुक्मिणी इत्यादि सारी रानियाँ भी अपने आपको भगवान् कृष्ण की दासियाँ मानती हैं।

चैद्याय मार्पयितुमुद्यत-कार्मुकेषु

राजस्वजेय-भट-शेखरिताङ्घि-रेणुः ।

निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजावि-यूथात्

तच्छी-निकेत-चरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥73॥

चैद्याय–शिशुपाल को; मा–मुझे; अर्पयितुम्-दान में देना; उद्यत-उठाए; कार्मुकेषु-जिनके धनुष बाण; राजसु-जरासंघ राजाओं आदि में; अजेय-अजेय; भट-सैनिकों की; शेखरित-अघ्रि-रेणुः-जिनके चरणकमलों की धूलि मुकुट है; निन्ये-बल से ले गये; मृग-इन्द्रः-शेर; इव-की तरह; भागम्-भाग; अज-बकरियों का; अवि-तथा भेड़ों का; यूथात्-उनके बीच से; तत्-वे; श्री-निकेत-लक्ष्मी के आश्रय का; चरणः-चरणकमल; अस्तु-हो; मम–मेरी; अर्चनाय-अर्चना के लिए।

अनुवाद

“जब जरासन्ध तथा अन्य राजा अपने अपने धनुष-बाण उठाये मुझे शिशुपाल को दान रूप देने को उद्यत थे, तो उन्होंने मुझे उनके बीच से बलपूर्वक उसी प्रकार खींच लिया, जिस प्रकार सिंह अपना भाग भेड़ों और बकरियों के बीच में से ले जाता है। अतः उनके चरणकमलों की धूलि अजेय सैनिकों का ताज है। वे चरणकमल जो लक्ष्मीजी के आश्रय हैं, मेरी पूजा के अभीष्ट बनें।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.83.8) से लिया गया है, जिसे महाराणी रुक्मिणी ने कहा था।

तपश्चरन्तीमाज्ञाय स्व-पाद-स्पर्शनाशया ।

सख्योपेत्याग्रहीत्पाणिं साहं तद्गृह-मार्जनी ॥74॥

तपः–तपस्या; चरन्तीम्-करते हुए; आज्ञाय-जानते हुए; स्व-पाद-स्पर्शन-उनके चरण-स्पर्श करने की; आशया-इच्छा से; सख्या-उनके मित्र अर्जुन के साथ; उपेत्य-आकर; अग्रहीत्-स्वीकार किया; पाणिम्-मेरा हाथ; सा-वह स्त्री; अहम्-मैं; तत्-उनकी; गृह-मार्जनी-घर को साफ करने वाली।

अनुवाद

यह जानते हुए कि मैं उनके चरणकमलों का स्पर्श पाने के लिए तपस्या कर रही हूँ, वे अपने मित्र अर्जुन के साथ आये और उन्होंने मेरा पाणिग्रहण किया। फिर भी मैं श्रीकृष्ण के घर का फर्श बुहारने में लगी हुई मात्र एक दासी हूँ।"

तात्पर्य

पिछले श्लोक की तरह यह श्लोक भी श्रीमद्भागवत (10.83.11) का है और समन्तपंचक में कुरुवंश तथा यदुवंश की स्त्रियों की भेंट से सम्बन्धित है। उस भेंट में कृष्ण की रानी कालिन्दी ने द्रौपदी से इस प्रकार कहा था।

आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृह-दासिकाः ॥

सर्व-सङ्ग-निवृत्त्याद्धा तपसा च बभूविम ॥ 75 ॥

आत्मारामस्य-भगवान् की जो आत्माराम (आत्म सन्तुष्ट) हैं; तस्य-उनकी; इमाः- सब; वयम्-हम; वै–निश्चय ही; गृह-दासिकाः-घर की दासियाँ; सर्व-सब; सङ्ग-संगति; निवृत्त्या पूर्णतया निवृत्त होकर; अद्धा-सीधे; तपसा-तपस्या के कारण; च-भी; बभूविम-हम हो गई हैं।

अनुवाद

"हम अपनी तपस्या तथा सारी आसक्तियों के त्याग से, अपने में ही सन्तुष्ट रहने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के घर की दासियाँ बन पाई हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.83.39) से लिया गया है, जिसमें उसी घटना के समय कृष्ण की अन्य रानी लक्ष्मणा ने द्रौपदी से ये वचन कहे थे।

आनेर कि कथा, बलदेव महाशय ।

याँर भाव–शुद्ध-सख्य-वात्सल्यादि-मय ॥ 76 ॥

आनेर-दूसरों का; कि कथा-क्या कहना; बलदेव-भगवान् बलदेव; महाशय-भगवान्; याँर–उनका; भाव-भाव; शुद्ध-सख्य-शुद्ध मित्रता; वात्सल्य-आदि-मय-पैतृक स्नेह के साथ।

अनुवाद

औरों की बात छोड़िये, यहाँ तक कि भगवान् बलदेव भी शुद्ध सख्य तथा वात्सल्य-प्रेम जैसी भावनाओं से पूर्ण हैं।

तात्पर्य

यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् बलदेव का आविर्भाव भगवान् कृष्ण के जन्म से पहले हो चुका था, जिससे वे कृष्ण के पूज्य अग्रज थे, किन्तु वे भी कृष्ण के नित्य सेवक की तरह कार्य किया करते थे। परव्योम में सारे वैकुण्ठ-लोकों में कृष्ण के चतुर्व्यह रूपों की प्रधानता रहती है। ये बलदेव के प्रत्यक्ष विस्तार हैं। यह भगवान् की अपनी विशेषता है कि परव्योम का हर व्यक्ति अपने आपको भगवान् का सेवक मानता है। सामाजिक प्रथा के अनुसार भले ही कोई कृष्ण से वरिष्ठ हो, किन्तु तथ्य तो यह है कि सभी लोग कृष्ण की सेवा में लगे रहते हैं। अतएव परव्योम में या भौतिक व्योम में, सभी विभिन्न लोकों में, न तो कोई भगवान् से आगे जा सकता है न उनसे सेवा करा सकता है। इसके विपरीत, हर कोई भगवान् कृष्ण की सेवा में लगा रहता है। फलत: जो व्यक्ति भगवान् की जितनी अधिक सेवा करता है, वह उतना ही महत्त्वपूर्ण बनता है। और इसके विपरीत, जो जितना ही कृष्ण की दिव्य सेवा से विहीन होता है, वह उतना ही भौतिक कल्मष रूपी दुर्भाग्य को आमंत्रण देता है। भौतिक जगत् में यद्यपि सारे भौतिकतावादी ईश्वर से एक होना चाहते हैं या उनसे स्पर्धा करना चाहते हैं, किन्तु हर व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भगवान् की सेवा में लगा रहता है। जो व्यक्ति जितना ही अधिक कृष्ण की सेवा को भूल जाता है, वह उतना ही अधिक मृत:प्राय है। अतएव जब किसी में शुद्ध कृष्णभावना उत्पन्न होती है, तो वह तुरन्त ही कृष्ण के प्रति नित्य दास्यभाव उत्पन्न कर लेता है।

तेंहो आपनाके करेन दास-भावना ।

कृष्ण-दास-भाव विनु आछे कोन जना ॥77॥

तेंहो-वे भी; आपनाके–स्वयं; करेन-करते हैं; दास-भावना-दास की भावना; कृष्ण-दास-भाव-कृष्ण के दास होने का विचार; विनु–बिना; आछे-है; कोन-कौन; जना–व्यक्ति।

अनुवाद

वे भी अपने आपको भगवान् कृष्ण का दास समझते हैं। निस्सन्देह, ऐसा कौन होगा जो भगवान् कृष्ण का दास होने का यह भाव न रखता हो?

सहस्र-वदने येंहो शेष-सङ्कर्षण ।

दश देह धरि' करे कृष्णेर सेवन ॥ 78॥

सहस्र-वदने-सहस्र मुखों से; येंहो-जो; शेष-सङ्कर्षण- भगवान् शेष, संकर्षण के अवतार; दश–दस; देह-शरीर; धरि'–स्वीकार करके; करे-करते हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; सेवन–सेवा।

अनुवाद

वे जो शेष रूपी संकर्षण हैं, वे अपने हजारों मुखों से, दस रूपों को प्रकट करके श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं।

अनन्त ब्रह्माण्डे रुद्र–सदाशिवेर अंश ।

गुणावतार तेंहो, सर्व-देव-अवतंस ॥79॥

अनन्त-असीम; ब्रह्माण्डे–ब्रह्माण्डों में; रुद्र-शिवजी; सदाशिवेर अंश-सदाशिव के अंश; गुण-अवतार-गुण अवतार; तेंहो-वे भी; सर्व-देव-अवतंस-सभी देवताओं के भूषण।

अनुवाद

सदाशिव के विस्तारूप रुद्र, जो असंख्य ब्रह्माण्डों में प्रकट होते हैं और अनन्त ब्रह्माण्डों में देवताओं के अलंकार हैं, वे एक गुणावतार भी हैं।

तात्पर्य

रुद्र या शिवजी के ग्यारह विस्तार हैं, जो इस प्रकार हैं-अजैकपात, अहिब्रध्न, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, देवश्रेष्ठ, त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी तथा अपराजित। इनके अतिरिक्त रुद्र के आठ रूप हैं, जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा सोमयाजी कहे जाते हैं। सामान्यतया इन रुद्रों के पाँच मुख, तीन नेत्र तथा दस भुजाएँ होती हैं। कभी-कभी रुद्र की तुलना ब्रह्मा से की जाती है और वे जीव माने जाते हैं। किन्तु जब रुद्र की व्याख्या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अंश विस्तार के रूप में की जाती है, तब उनकी तुलना शेष से की जाती है। इसलिए शिवजी एकसाथ भगवान् विष्णु के विस्तार तथा सृष्टि का संहार करने में सक्षम होने के कारण जीव माने जाते हैं। भगवान् विष्णु के अंशरूप में वे हर कहलाते हैं और भौतिक गुणों से अतीत होते हैं, किन्तु तमोगुण के सम्पर्क में आने पर वे प्रकृति के भौतिक गुणों द्वारा कलुषित प्रतीत होते हैं। इसकी व्याख्या श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्म-संहिता में की गई है। श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध में कहा गया है कि जब प्रकृति जड़ अव्यक्त अवस्था में रहती है, तब उससे रुद्र का सान्निध्य होता है, किन्तु जब प्रकृति के गुण क्षुब्ध हो उठते हैं, तो वे दूर से प्रकृति के साथ रहते हैं। ब्रह्म-संहिता में विष्णु तथा शिवजी के बीच जो सम्बन्ध है, उसकी उपमा दूध तथा दही से दी गई है। दूध में कुछ पदार्थ मिलाकर दही बनाया जाता है और दूध तथा दही में समान पदार्थ होने पर भी उनके कार्य भिन्न-भिन्न हैं। इसी प्रकार शिवजी भगवान् विष्णु के अंश हैं, फिर भी जगत् के संहार में भाग लेने के कारण वे उसी तरह बदले गये माने जाते हैं, जिस प्रकार दूध दही में बदल जाता है। पुराणों में शिवजी को कभी ब्रह्मा के सिरों से, तो कभी विष्णु के सिर से प्रकट होते दिखाया जाता है। संहारकर्ता रुद्र का जन्म संकर्षण से होता है, जो सारी सृष्टि को जला सकते हैं। वायुपुराण में वर्णन मिलता है कि सदाशिव एक वैकुण्ठ-लोक में रहते हैं। ये सदाशिव भगवान् कृष्ण के लीलावतार के प्रत्यक्ष विस्तार होते हैं। कहा जाता है

कि सदाशिव (शम्भु) इन्हीं वैकुण्ठलोकों के सदाशिव (भगवान् विष्णु) के अंश हैं और उनकी प्रेयसी महामाया लक्ष्मी या रमादेवी की अंश है। महामाया भौतिक प्रकृति का उद्गम या जन्मस्थान है।

तेंहो करेन कृष्णेर दास्य-प्रत्याश ।

निरन्तर कहे शिव, 'मुञि कृष्ण-दास' ॥80॥

तेंहो-वे; करेन-करते हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; दास्य-प्रत्याश-दास होने की प्रत्याशा; निरन्तर–निरन्तर; कहे-कहते हैं; शिव-शिवजी; मुञि-मैं; कृष्ण-दास-कृष्ण का दास।

अनुवाद

वे भी भगवान् कृष्ण के दास ही बनने की कामना करते हैं। श्री सदाशिव हमेशा यही कहते हैं, "मैं भगवान् कृष्ण का दास हूँ।"

कृष्ण-प्रेमे उन्मत्त, विह्वल दिगम्बर ।

कृष्ण-गुण-लीला गाय, नाचे निरन्तर ॥81॥

कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम में; उन्मत्त-उन्मत्त; विह्वल-विह्वल; दिगम्बर–नग्न; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; गुण-गुण; लीला-लीलाएँ; गाय-गाते हैं; नाचे-नाचते हैं; निरन्तर निरन्तर।

अनुवाद

कृष्ण के प्रेम में उन्मत्त होकर वे विह्वल बन जाते हैं और बिना वस्त्र के निरन्तर नृत्य करते रहते हैं तथा भगवान् कृष्ण के गुणों एवं उनकी लीलाओं के विषय में गाते रहते हैं।

पिता-माता-गुरु-सखा-भाव केने नय ।

कृष्ण-प्रेमेर स्वभावे दास्य-भाव से करय ॥82॥

पिता-पिताश्री; माता-माताश्री; गुरु-गुरू; सखा–मित्र; भाव-भाव; केने नय-होने दो; कृष्ण-प्रेमेर-कृष्ण-प्रेम का; स्वभावे-सहज स्वभाव; दास्य भाव-दास बनने की भावना; से-वह; करय-करता है।

अनुवाद

सारे भाव, चाहे वे पिता के, माता के, गुरु के या मित्र के हों, दास्यभाव से पूरित हैं। कृष्ण-प्रेम का यही स्वभाव है।

एक कृष्ण—सर्व-सेव्य, जगतीश्वर ।

आर यत सब,—ताँर सेवकानुचर ॥83॥

एक कृष्ण-एक भगवान् कृष्ण; सर्व-सेव्य-सभी से सेव्य होने के योग्य; जगत्-ईश्वर–ब्रह्माण्ड के स्वामी; आर यत सब–बाकी सब; ताँर-उनके; सेवक-अनुचर-दासों के दास॥

अनुवाद

ब्रह्माण्ड के एकमात्र स्वामी भगवान् कृष्ण सबके द्वारा सेव्य होने के योग्य हैं। निस्सन्देह, प्रत्येक व्यक्ति उनके दासों का दास होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

सेइ कृष्ण अवतीर्ण–चैतन्य-ईश्वर ।

अतएव आर सब,—ताँहार किङ्कर ॥84॥

सेइ-वे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतीर्ण-अवतरित हुए; चैतन्य-ईश्वर–भगवान् चैतन्य ने; अतएव–अतएव; आर-अन्य; सब-सब; ताँहार किङ्कर-उनके दास।

अनुवाद

वे भगवान् कृष्ण ही चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए हैं। अतएव सारे लोग उनके दास हैं।

केह माने, केह ना माने, सब ताँर दास ।

ये ना माने, तार हय सेइ पापे नाश ॥85 ॥

केह माने-कोई स्वीकार करता है; केह ना माने-कोई नहीं स्वीकार करता; सब ताँर दास-उनके सभी दास; ये ना माने-जो नहीं स्वीकार करता; तार-उसका; हय–होता है; सेइ-वह; पापे-पापकर्म में; नाश-नाश।

अनुवाद

कुछ लोग उन्हें स्वीकार करते हैं और कुछ नहीं करते, तो भी सारे लोग उनके दास हैं। जो उन्हें स्वीकार नहीं करता, वह अपने पापकर्मों से विनष्ट हो जायेगा।

तात्पर्य

जब जीव अपनी वैधानिक स्थिति को भूल जाता है, तो वह भौतिक साधनों का भोक्ता बनने की चेष्टा करता है। कभी-कभी वह इस विचार से भी दिग्भ्रमित होता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा परम पूर्ण स्तर का कार्य नहीं है। दूसरे शब्दों में, वह सोचता है कि जीव के लिए भगवान् की सेवा के अतिरिक्त और भी अन्य कार्य हैं। ऐसा मूर्ख व्यक्ति यह नहीं जानता कि वह चाहे जिस

पद पर हो, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में भगवान् के सेवा-कार्यों में लगा रहता है। वास्तव में, यदि कोई व्यक्ति भगवान् की सेवा नहीं करता, तो सारे अमंगल कार्य उसे ग्रस लेते हैं, क्योंकि भगवान् चैतन्य की सेवा सूक्ष्म जीवों का वैधानिक स्वरूप है। चूँकि जीव सूक्ष्म है, अतएव भौतिक भोग का मोह उसे खींचता है और वह अपनी वैधानिक स्थिति भूलकर पदार्थ का भोग करना चाहता है। किन्तु जब उसकी सुप्त कृष्णभावना जागृत होती है, तो वह पदार्थ की सेवा छोड़कर भगवान् की सेवा में लग जाता है। दूसरे शब्दों में, जब जीव अपनी वैधानिक स्थिति को भूला हुआ होता है, तब वह भौतिक प्रकृति पर अपना प्रभुत्व जताना चाहता है। उस समय भी वह भगवान् का दास बना रहता है, किन्तु अयोग्य या कलुषित दशा में।

चैतन्येर दास मुञि, चैतन्येर दास।

चैतन्येर दास मुञि, ताँर दासेर दास ॥86॥

चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु का; दास-दास; मुञि-मैं; चैतन्येर दास-भगवान् चैतन्य का दास; चैतन्येर दास मुञि-मैं चैतन्य महाप्रभु का दास हूँ; ताँर दासेर दास-उनके दास का दास।

अनुवाद

"मैं चैतन्य महाप्रभु का दास हूँ, मैं चैतन्य महाप्रभु का दास हूँ। मैं चैतन्य महाप्रभु का दास हूँ और उनके दासों का दास हूँ।"

एत बलि' नाचे, गाय, हुङ्कार गम्भीर।

क्षणेके वसिला आचार्य हैञा सुस्थिर ॥ 87॥

एत बलि'-यह कहकर; नाचे-नाचते हैं; गाय-गाते हैं; हुङ्कार-ऊँचे स्वर में; गम्भीर-गम्भीर; क्षणेके–क्षण में; वसिला-बैठते हैं; आचार्य-अद्वैत आचार्य; हैञा सु-स्थिर-अत्यन्त धीर होकर।

अनुवाद

यह कहकर अद्वैत प्रभु नाचते हैं तथा जोर-जोर से गाते हैं। फिर अगले क्षण वे चुप होकर बैठ जाते हैं।

भक्त-अभिमान मूल श्री-बलरामे ।

सेइ भावे अनुगत ताँर अंश-गणे ॥88॥

भक्त-अभिमान-अपने आपको भक्त समझना; मूल-मूल; श्री-बलरामे-भगवान् बलराम में; सेइ भावे-उसी भाव में; अनुगत-अनुगामी; ताँर अंश-गणे-उनके सभी अंश।

अनुवाद

निस्सन्देह, दास्य भाव के उद्गम भगवान् बलराम हैं। उनके बाद के सारे अंश इसी परमानन्द भाव से प्रभावित होते हैं।

ताँर अवतार एक श्री-सङ्कर्षण ।

भक्त बलि' अभिमान करे सर्व-क्षण ॥89॥

ताँर अवतार–उनका अवतार; एक-एक; श्री-सङ्कर्षण-भगवान् संकर्षण; भक्त बलि'–भक्त के रूप में; अभिमान-अभिमान, खयाल; करे-करते हैं; सर्व-क्षण-सदा।

अनुवाद

उनके एक अवतार स्वरूप भगवान् संकर्षण अपने आपको उनका नित्य दास मानते हैं।

ताँर अवतार आन श्री-युत लक्ष्मण।

श्री-रामेर दास्य तिंहो कैल अनुक्षण ॥90॥

ताँर अवतार–उनका अवतार; आन-अन्य; श्री-युत-सभी सौन्दर्य तथा ऐश्वर्य के साथ; लक्ष्मण-भगवान् लक्ष्मण; श्री-रामेर-श्री रामचन्द्र के; दास्य-दासता; तिंहो-वे; कैल–किया; अनुक्षण-सदैव।

अनुवाद

उनके दूसरे अवतार लक्ष्मण जो अतीव सुन्दर एवं ऐश्वर्ययुक्त हैं, सदैव भगवान् राम की सेवा करते हैं।

सङ्कर्षण-अवतार कारणाब्धि-शायी।

ताँहार हृदये भक्त-भाव अनुयायी ॥91॥

सङ्कर्षण-अवतार–भगवान् संकर्षण के अवतार; कारण-अब्धि-शायी–कारण सागर में सोये हुए भगवान् विष्णु; ताँहार-उनके; हृदये-हृदय में; भक्त-भाव-भक्त होने का भाव; अनुयायी-तदनुसार।

अनुवाद

कारण सागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु, भगवान् संकर्षण के अवतार हैं, फलतः उनके हृदय में भक्त होने का भाव सदैव विद्यमान रहता है।

ताँहार प्रकाश-भेद, अद्वैत-आचार्य ।

काय-मनो-वाक्ये ताँर भक्ति सदा कार्य ॥92॥

ताँहार-उनका; प्रकाश-भेद-पृथक् विस्तार; अद्वैत-आचार्य-अद्वैत आचार्य; काय-मनः-वाक्ये-अपने तन, मन एवं वचन से; ताँर-उनकी; भक्ति-भक्ति; सदा-सदा; कार्य-कार्य।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य उनके पृथक् विस्तार हैं। वे सदैव मन, वचन तथा कर्म से उनकी भक्ति में मग्न रहते हैं।

वाक्ये कहे, 'मुञि चैतन्येर अनुचर' ।

मुञि ताँर भक्त—मने भावे निरन्तर ॥93॥

वाक्ये-शब्दों से; कहे-वे कहते हैं; मुञि-मैं हूँ, चैतन्येर अनुचर-श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुयायी; मुञि-मैं; ता –उनका; भक्त-भक्त; मने-उनके मन में; भावे-इस भाव में; निरन्तर–निरन्तर।

अनुवाद

वे अपनी वाणी से घोषित करते हैं, "मैं भगवान् चैतन्य का दास हूँ।" इस तरह अपने मन में वे सदैव सोचते हैं, "मैं उनका भक्त हूँ।"

जल-तुलसी दिया करे कायाते सेवन ।

भक्ति प्रचारिया सब तारिला भुवन ॥ 94॥

जल-तुलसी–गंगाजल एवं तुलसीदल; दिया–दिया, भेंट किया; करे-करते हैं; कायाते–तन से; सेवन-पूजा; भक्ति-भक्ति; प्रचारिया-प्रचार; सब-सब; तारिला-उद्धार किया; भुवन–ब्रह्माण्ड।

अनुवाद

उन्होंने गंगाजल तथा तुलसीदल अर्पित करके अपने शरीर से भगवान् की पूजा की और भक्ति के प्रचार द्वारा सारे ब्रह्माण्ड का उद्धार किया।

पृथिवी धरेन येइ शेष-सङ्कर्षण ।

काय-व्यूह करि' करेन कृष्णेर सेवन ॥95॥

पृथिवी-लोक; धरेन-धारण करते हैं; येइ-वे जो; शेष-सङ्कर्षण-भगवान् शेष संकर्षण; काय-व्यूह करि'-विविध शरीरों में अपना विस्तार करके; करेन-करते हैं; कृष्णेर सेवन–भगवान् कृष्ण की सेवा।

अनुवाद

अपने फनों पर सारे ब्रह्माण्डों को धारण करने वाले शेष संकर्षण भगवान् कृष्ण की सेवा करने के लिए अपना विस्तार विविध शरीरों में करते हैं।

एइ सब हय श्री कृष्णेर अवतार ।

निरन्तर देखि सबार भक्तिर आचार ॥96॥

एइ सब–वे सभी; हय-हैं; श्री-कृष्णेर अवतार-भगवान् कृष्ण के अवतार; निरन्तर-निरन्तर; देखि-मैं देखता हूँ; सबार-सब; भक्तिर आचार-भक्त का आचरण।

अनुवाद

ये सभी भगवान् कृष्ण के अवतार हैं, फिर भी हम उन्हें सदैव भक्तों की तरह कार्य करते हुए पाते हैं।

ए-सबाके शास्त्रे कहे 'भक्त-अवतार' ।

'भक्त-अवतार'-पद उपरि सबार ॥ 97॥

ए-सबाके–वे सब; शास्त्रे-शास्त्र; कहे-कहते हैं; भक्त-अवतार-भक्त अवतार; भक्त-अवतार-भक्त के रूप में ऐसे अवतार का; पद-पद; उपरि सबार-अन्य सभी पदों से ऊपर।

अनुवाद

शास्त्र उन्हें भक्त-अवतार कहते हैं। ऐसे अवतार का पद अन्य सबके ऊपर है।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं, किन्तु भक्त की भूमिका के रूप में उनका प्राकट्य बद्धजीवों के लिए सब ऐश्वर्यों से युक्त अन्य अवतारों की तुलना में अधिक लाभप्रद होता है। कभी-कभी बद्धजीव भगवान् के इन ऐश्वर्ययुक्त अवतारों को समझने के प्रयास में मोहग्रस्त हो जाता है। भगवान् कृष्ण ने प्रकट होकर अनेक असाधारण कार्य किये और कुछेक भौतिकतावादियों ने उन्हें गलत समझा, किन्तु जब वे भगवान् चैतन्य रूप में प्रकट हुए, तो उन्होंने अपने ऐश्वर्यों का अधिक प्रदर्शन नहीं किया, अतएव कुछ ही बद्धजीव मोहग्रस्त हुए। अनेक मूर्ख भगवान् को ठीक से न समझ पाने के कारण अपने आपको भगवान् का अवतार मान बैठते हैं, किन्तु इसका परिणाम यह होता है कि इस भौतिक शरीर का त्याग करने के बाद वे सियारों की योनि में

प्रवेश करते हैं। जो लोग अवतार के वास्तविक महत्त्व को नहीं समझ पाते, उन्हें दण्डस्वरूप ऐसी ही अधम योनि में अवश्य जाना पड़ेगा। वे बद्धजीव जो झूठे अहंकार से फूले रहते हैं और परमेश्वर से एकाकार हो जाना चाहते हैं, वे मायावादी बनते हैं।

एक-मात्र 'अंशी'–कृष्ण, 'अंश'–अवतार।

अंशी अंशे देखि ज्येष्ठ-कनिष्ठ-आचार ॥98॥

एक-मात्र-मात्र एक; अंशी–सभी अवतारों के उद्गम; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अंश-अंश के; अवतार-अवतार; अंशी–सभी अवतारों के स्रोत; अंशे-अवतार में; देखि–हम देख सकते हैं; ज्येष्ठ-ज्येष्ठ; कनिष्ठ-कनिष्ठ; आचार-आचरण।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण समस्त अवतारों के उद्गम हैं और अन्य सभी उनके अंश या अंशावतार हैं। हम देखते हैं कि पूर्ण तथा अंश क्रमशः ज्येष्ठ तथा कनिष्ठ की तरह व्यवहार करते हैं।

ज्येष्ठ-भावे अंशीते हय प्रभु-ज्ञान।

कनिष्ठ-भावे आपनाते भक्त-अभिमान ॥ 99॥

ज्येष्ठ-भावे-ज्येष्ठ होने के भाव में; अंशीते-सभी अवतारों के मूल उद्गम में; हय-है; प्रभु-ज्ञान-प्रभु के रूप में ज्ञान; कनिष्ठ-भावे-कनिष्ठ भाव में; आपनाते-स्वयं में; भक्त-अभिमान-भक्त होने का अभिमान।

अनुवाद

जब वे अपने आपको स्वामी मानते हैं, तब समस्त अवतारों के उद्गम में ज्येष्ठ भाव होता है और जब वे अपने आपको भक्त मानते हैं, तब उनमें कनिष्ठ भाव होता है।

तात्पर्य

किसी वस्तु का एक अंग अंश कहलाता है और जिससे वह अंश पृथक् किया जाता है, वह पूर्ण (अंशी) कहलाता है। अतएव अंश पूर्ण (अंशी) में निहित रहता है। भगवान् पूर्ण (अंशी) हैं और भक्त उनके अंश हैं। यही भगवान् और भक्त के बीच का सम्बन्ध है। भक्तों की भी श्रेणियाँ होती हैं- जैसे ज्येष्ठ और कनिष्ठ। जब भक्त ज्येष्ठ होता है, तो वह प्रभु कहलाता है और जब छोटा होता है, तो भक्त कहलाता है। परम पूर्ण तो कृष्ण हैं, और बलदेव तथा सारे विष्णु अवतार उनके अंश हैं। अतएव भगवान् कृष्ण अपनी ज्येष्ठ स्थिति को जानते हैं और सारे विष्णु अवतार भक्तों के रूप में अपनी अपनी स्थितियों से अवगत होते हैं।

कृष्णेर समता हैते बड़े भक्त-पद ।

आत्मा हैते कृष्णेर भक्त हय प्रेमास्पद ॥100॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के साथ; समता-समता; हैते–इसकी अपेक्षा; बड़-बड़ा; भक्त-पद-भक्त पद; आत्मा हैते–स्वयं की अपेक्षा; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; भक्त-भक्त; हय-है; प्रेम-आस्पद-प्रेम का पात्र।

अनुवाद

भक्त होना भगवान् कृष्ण की समता से बढ़कर है, क्योंकि भक्तगण भगवान् कृष्ण को अपने से भी अधिक प्रिय हैं।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से तादात्म्य की धारणा भगवान् की सनातन सेवा से निकृष्ट है, क्योंकि भगवान् कृष्ण अपने भक्तों के प्रति अपने आप से भी अधिक वत्सल हैं। श्रीमद्भागवत (9.4.68) में भगवान् ने स्पष्ट कहा है :

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।

मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥

“भक्तगण मेरे हृदय हैं और मैं भक्तों का हृदय हूँ। मेरे भक्त मेरे अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानते और इसी प्रकार मैं अपने भक्तों के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानता।” यही है भगवान् और उनके भक्तों के बीच का घनिष्ठ सम्बन्ध।

आत्मा हैते कृष्ण भक्ते बड़ करि’ माने ।

इहाते बहुत शास्त्र-वचन प्रमाणे ॥101॥

आत्मा हैते–स्वयं की अपेक्षा; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; भक्ते-उनका भक्त; बड़ कर माने–बड़ा मानते हैं; इहाते-इस सम्बन्ध में; बहुत-बहुत; शास्त्र-वचन-प्रामाणिक शास्त्रों के कथन; प्रमाणे प्रमाण।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण अपने भक्तों को अपने से भी बढ़कर मानते हैं। इस सन्दर्भ में शास्त्रों में प्रचुर प्रमाण प्राप्त होते हैं।

न तथा मे प्रिय-तम आत्म-योनिर्न शङ्करः ।

न च सङ्कर्षणो न श्रीवात्मा च यथा भवान् ॥ 102॥

न तथा-इतना नहीं; मे-मेरा; प्रिय-तमः-प्रियतम; आत्म-योनिः–ब्रह्माजी; न शङ्करः-शंकर नहीं; न च न ही; सङ्कर्षणः- भगवान् संकर्षण; न-न ही; श्रीः-लक्ष्मी; न–न ही; एव–निश्चित रूप से; आत्मा-मैं स्वयं; च-और; यथा-जैसे; भवान्-तुम।

अनुवाद

"हे उद्धव! तुम्हारे समान मुझे न ब्रह्मा, न शंकर, न संकर्षण, न लक्ष्मी, न स्वयं मैं ही प्रिय हूँ।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.14.15) का है।

कृष्ण-साम्ये नहे ताँर माधुर्यास्वादन ।

भक्त-भावे करे ताँर माधुर्घ चर्वण ॥103॥

कृष्ण-साम्ये-कृष्ण के समान स्तर पर; नहे-नहीं; ताँर-उनका; माधुर्य-आस्वादन-माधुर्य का आस्वादन करते हुए; भक्त-भावे-भक्त के भाव में; करे-करता है; ताँर–उनका; माधुर्घ चर्वण-माधुर्य का आस्वादन।

अनुवाद

जो अपने आपको कृष्ण के समकक्ष मानते हैं, वे भगवान् कृष्ण की मधुरता का आस्वादन नहीं कर सकते। इसका आस्वादन तो केवल दास्य भाव के माध्यम से किया जा सकता है।

शास्त्रेर सिद्धान्त एइ,—विज्ञेर अनुभव ।

मूढ़-लोक नाहि जाने भावेर वैभव ॥104॥

शास्त्रेर–प्रामाणिक शास्त्रों का; सिद्धान्त-सार, निष्कर्ष; एइ-यह; विज्ञेर अनुभव-अनुभवी भक्तों की अनुभूति; मूढ़-लोक-मूर्ख एवं धूर्त; नाहि जाने नहीं जानते; भावेर वैभव-भक्ति का ऐश्वर्य।

अनुवाद

प्रामाणिक शास्त्रों का यह निष्कर्ष अनुभवी भक्तों की अनुभूति भी है। किन्तु मूर्ख तथा धूर्त लोग भक्तिमय भावों के इस ऐश्वर्य को नहीं समझ सकते।

तात्पर्य

जब किसी व्यक्ति को सारूप्य मुक्ति प्राप्त होती है, जिसमें विष्णु जैसा आध्यात्मिक रूप प्राप्त होता है, तब वह कृष्ण के निजी पार्षदों के सम्बन्ध का आस्वादन नहीं कर पाता। किन्तु कृष्ण के भक्त कभी-कभी उनके साथ प्रेममय सम्बन्ध के कारण अपनी पहचान भूल जाते हैं—कभी-कभी वे अपने आपको कृष्ण से एक समान मानते हैं और इस तरह और भी अधिक दिव्य रस का आस्वादन करते हैं। किन्तु सामान्य लोग अपनी मूर्खता के कारण भगवान् के दास्य रस को भूलकर हर वस्तु के मालिक बन जाना चाहते हैं। किन्तु जब कोई व्यक्ति सचमुच आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत होता है, तब वह बिना संकोच के भगवान् के दिव्य दास्यभाव को स्वीकार कर सकता है।

भक्त-भाव अङ्गीकरि' बलराम, लक्ष्मण ।

अद्वैत, नित्यानन्द, शेष, सङ्कर्षण ॥ 105॥

कृष्णेर माधुर्य-रसामृत करे पान ।

सेइ सुखे मत्त, किछु नाहि जाने आन ॥106॥

भक्त-भाव-भक्त होने का भाव; अङ्गीकरि'–स्वीकार करके; बलराम-भगवान् बलराम; लक्ष्मण-भगवान् लक्ष्मण; अद्वैत-अद्वैत आचार्य; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; शेष-भगवान् शेष; सङ्कर्षण-भगवान् संकर्षण; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; माधुर्य-दिव्य आनन्द; रस-अमृत-ऐसे रस का अमृत; करे पान-वे पीते हैं; सेइ सुखे-ऐसे आनन्द में; मत्त-मत्त, उन्मत्त; किछु-कुछ भी; नाहि-नहीं; जाने-जानते; आन–अन्य।

अनुवाद

बलदेव, लक्ष्मण, अद्वैत आचार्य, भगवान् नित्यानन्द, भगवान् शेष तथा संकर्षण अपने आपको भगवान् के भक्त तथा दास मानकर भगवान् कृष्ण के दिव्य आनन्द के अमृत-रस का आस्वादन करते हैं। वे सभी इसी सुख से उन्मत्त रहते हैं और इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं जानते।

अन्येर आछुक्कार्य, आपने श्री-कृष्ण ।

आपन-माधुर्घ-पाने हइला सतृष्ण ॥ 107॥

अन्येर–दूसरों का; आछुक्-होने दो; कार्य-कार्य; आपने-अपना; श्री-कृष्ण-भगवान् श्रीकृष्ण; आपन-माधुर्घ-अपना माधुर्य; पाने-पीने के लिए; हइला–हो गये; स-तृष्ण-अत्यन्त उत्सुक।

अनुवाद

औरों की तो बात ही क्या, स्वयं भगवान् कृष्ण भी अपने माधुर्य का आस्वादन करने के इच्छुक रहते हैं।

स्वा-माधुर्य आस्वादिते करेन यतन ।

भक्त-भाव विनु नहे ताहा आस्वादन ॥108॥

स्वा-माधुर्य-अपना माधुर्य; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; करेन तन-प्रयास करते हैं; भक्त-भाव-भक्त होने का भाव; विनु–बिना; नहे–नहीं है; ताहा–उसका; आस्वादन–आस्वादन।

अनुवाद

वे अपने माधुर्य का आस्वादन खुद करना चाहते हैं, किन्तु भक्त के भाव को स्वीकार किये बिना वे ऐसा नहीं कर सकते।

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण ने भक्त के दिव्य रस का आस्वादन करना चाहा, अतएव उन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट होकर भक्त की भूमिका ग्रहण करना स्वीकार किया।

भक्त-भाव अङ्गीकरि' हैला अवतीर्ण ।

श्री-कृष्ण-चैतन्य-रूपे सर्व-भावे पूर्ण ॥ 109॥

भक्त-भाव-भक्त होने का भाव; अङ्गीकरि'–स्वीकार करके; हैला-हो गये; अवतीर्ण-अवतरित; श्रीकृष्ण-चैतन्य-रूपे-श्रीकृष्ण चैतन्य के रूप में; सर्व-भावे पूर्ण-सब भावों से पूर्ण।

अनुवाद

अतएव भगवान् कृष्ण ने भक्त के भाव को स्वीकार किया और सभी प्रकार से पूर्ण भगवान् चैतन्य के रूप में अवतरित हुए।

नाना-भक्त-भावे करेन स्व-माधुर्य पान।

पूर्व करियाछि एइ सिद्धान्त व्याख्यान ॥ 110॥

नाना-भक्त-भावे-भक्त के विविध भाव; करेन-करते हैं; स्व-माधुर्य पान-अपने ही माधुर्य का पान करके; पूर्वे-पहले; करियाछि-मैंने चर्चा की; एइ–यह; सिद्धान्त-निष्कर्ष, सार; व्याख्यान-व्याख्यान, वर्णन।

अनुवाद

वे भक्त के विविध भावों के माध्यम से अपनी माधुरी का आस्वादन करते हैं। मैंने पहले ही इस सिद्धान्त की व्याख्या कर दी है।

तात्पर्य

भगवान् श्री चैतन्य जो श्री गौरहरि के नाम से जाने जाते हैं, वे सारे रसों-यथा शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य-का आस्वादन करने में पूर्ण हैं। वे विभिन्न श्रेणियों के भक्तों के भाव को स्वीकार करके इन सम्बन्धों के समस्त रसों का आस्वादन करने में पूर्ण हैं।

अवतार-गणेर भक्त-भावे अधिकार।

भक्त-भाव हैते अधिक सुख नाहि आर ॥111॥

अवतार-गणेर-सभी अवतारों का; भक्त-भावे-भक्त के भाव में; अधिकार-अधिकार है; भक्त-भाव-भक्त होने का भाव; हैते–की अपेक्षा; अधिक-अधिकतर; सुख–सुख; नाहि-नहीं; आर-और कुछ।

अनुवाद

सारे अवतारों को भक्तों का भाव पाने का अधिकार है। इससे बढ़कर अन्य कोई आनन्द नहीं है।

तात्पर्य

भगवान् विष्णु के विभिन्न अवतारों को भक्त रूप में अवतरित होकर भगवान् कृष्ण के सेवकों की भूमिका ग्रहण करने का अधिकार है। जब कोई अवतार अपने ईश्वरत्व के भाव को त्यागकर सेवक की भूमिका ग्रहण करते हैं, तो उन्हें पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की भूमिका ग्रहण करने की अपेक्षा अधिक रस प्राप्त होता है।

मूल भक्त-अवतार श्री-सङ्कर्षण ।

भक्त-अवतार तँहि अद्वैते गणन ॥112॥

मूल-मूल; भक्त-भक्त का; अवतार–अवतार; श्री-सङ्कर्षण-भगवान् श्री संकर्षण; भक्त-अवतार-भक्त के अवतार; तँहि-उन जैसा; अद्वैते–अद्वैत आचार्य; गणन-गिने जाते हैं।

अनुवाद

मूल भक्त-अवतार संकर्षण हैं। श्री अद्वैत की गिनती ऐसे ही अवतारों में की जाती है।

तात्पर्य

यद्यपि श्री अद्वैत प्रभु विष्णु श्रेणी के हैं, किन्तु वे श्री चैतन्य महाप्रभु की दासता उनके पार्षद के रूप में प्रदर्शित करते हैं। जब भगवान् विष्णु दास के रूप में प्रकट होते हैं, तब वे भगवान् कृष्ण

के भक्त का अवतार कहलाते हैं। श्री संकर्षण महावैकुण्ठ-लोकवासी विष्णु के अवतार हैं और चतुर्व्यह अवतारों में प्रमुख हैं। वे मूल भक्त-अवतार हैं। कारण सागर में शयन करने वाले भगवान् महाविष्णु संकर्षण के दूसरे रूप हैं। वे मूल भगवान् हैं, जो जगत् के भौतिक (उपादान) तथा निमित्त कारणों पर दृष्टिपात करते हैं। अद्वैत प्रभु को महाविष्णु का अवतार माना जाता है। संकर्षण के सभी पूर्ण विस्तार भगवान् कृष्ण के अप्रत्यक्ष विस्तार हैं। इस कारण से भी अद्वैत प्रभु गौर कृष्ण के नित्य दास हैं। इसीलिए वे भक्त-अवतार माने जाते हैं।

अद्वैत-आचार्य गोसाञिर महिमा अपार।

याँहार हुङ्कारे कैल चैतन्यावतार॥ 113॥

अद्वैत-आचार्य-अद्वैताचार्य; गोसाञिर-भगवान् की; महिमा अपार-असीम महिमा; याँहार–जिनकी; हुङ्कारे-आवाज से; कैल-हुआ; चैतन्य-अवतार–चैतन्य महाप्रभु का अवतार।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य की महिमाएँ अपार हैं, क्योंकि उनकी निष्ठावान हुंकार से ही इस पृथ्वी पर भगवान् श्री चैतन्य का अवतरण हो सका।

सङ्कीर्तन प्रचारिया सब जगत्तारिल।

अद्वैत-प्रसादे लोक प्रेम-धन पाइल॥114॥

सङ्कीर्तन प्रचारिया-संकीर्तन के प्रचार से; सब-सब; जगत्-जगत्; तारिल-उद्धार किया, तारा; अद्वैत-प्रसादे-अद्वैत आचार्य की कृपा से; लोक-सभी लोग; प्रेम-धन पाइल-ईश्वर प्रेम रूपी धन।

अनुवाद

उन्होंने संकीर्तन के प्रचार द्वारा ब्रह्माण्ड का उद्धार किया। इस तरह श्री अद्वैत की कृपा से ही संसार के लोगों को भगवत्प्रेम रूपी खजाना प्राप्त हुआ।

अद्वैत-महिमा अनन्त के पारे कहिते।

सेइ लिखि, येइ शुनि महाजन हैते ॥115॥

अद्वैत-महिमा-अद्वैत आचार्य की महिमाएँ; अनन्त-अनन्त; के-कौन; पारे-कर सकता है, सक्षम है; कहिते-कहने के लिए; सेइ-वह; लिखि-मैं लिखता हूँ; येइ-जो कुछ; शुनि–मैं सुनता हूँ; महाजन हैते–अधिकारियों से।

अनुवाद

भला अद्वैत आचार्य की असीम महिमाओं का वर्णन कौन कर सकता है? यहाँ मैं वही लिख रहा हूँ, जैसा मैंने महापुरुषों से जाना है।

आचार्य-चरणे मोर कोटि नमस्कार।

इथे किछु अपराध ना लबे आमार ॥ 116॥

आचार्य-चरणे-अद्वैताचार्य के चरणकमलों में; मोर-मेरे; कोटि नमस्कार-करोड़ों बार नमस्कार करता हूँ; इथे—इस सम्बन्ध में; किछु-कुछ; अपराध-अपराध; ना लबे-कृपया न लें; आमार-मेरे।

अनुवाद

मैं श्री अद्वैत आचार्य के चरणकमलों पर करोड़ों बार नमस्कार करता हूँ। कृपया इसमें अपराध न मानें।

तोमार महिमा-कोटि-समुद्र अगाध ।

ताहार इयत्ता कहि,—ए बड़े अपराध ॥117॥

तोमार महिमा-आपकी महिमाएँ, कोटि-समुद्र अगाध-कोटि कोटि समुद्रों जितनी अगाध (प्रगाढ़); ताहार–उनकी; इयत्ता-माप; कहि-मैं कहता हूँ; ए-यह; बड़-बड़ा; अपराध-अपराध।

अनुवाद

आपकी महिमाएँ करोड़ों समुद्रों के समान अगाध हैं। इसकी माप की बात करना अवश्य ही महा-अपराध है।

जय जय जय श्री-अद्वैत आचार्य ।

जय जय श्री-चैतन्य, नित्यानन्द आर्य ॥118॥

जय जय-जय जय; जय-जय हो; श्री-अद्वैत आचार्य श्री अद्वैताचार्य की जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु की; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; आर्य-महान्।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य की जय हो, जय हो! श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्रेष्ठ श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो, जय हो!

दुइ श्लोके कहिल अद्वैत-तत्त्व-निरूपण ।

पञ्च-तत्त्वेर विचार किछु शुन, भक्तगण ॥119॥

दुइ श्लोके-दो श्लोकों में; कहिल-वर्णन किया है; अद्वैत-अद्वैत; तत्त्व-निरूपण-तत्त्व का निरूपण; पञ्च-तत्त्वेर-पाँच तत्त्वों में से; विचार-विचार; किछु-कुछ; शुन-कृपया सुनो; भक्त-गण-हे भक्तों!

अनुवाद

इस तरह मैंने दो श्लोकों में अद्वैत आचार्य के तत्त्व का वर्णन किया है। हे भक्तों! अब पंचतत्त्वों के विषय में सुनिये।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥120॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों में; यार–जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत- चैतन्य चरितामृत ग्रन्थ; कहे-वर्णन करता हूँ; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों पर प्रार्थना करते हुए, सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं, कृष्णदास, उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदि-लीला के अन्तर्गत श्री अद्वैत आचार्य की महिमाएँ विषयक छठे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय सात

भगवान् चैतन्य के पाँच स्वरूप

अगत्येक-गतिं नत्वा हीनार्थाधिक-साधकम् ।

श्री-चैतन्यं लिख्यतेऽस्य प्रेम-भक्ति-वदान्यता ॥1॥

अगति–सर्वाधिक पतितों के; एक–केवल एक; गतिम्-गति; नत्वा-नमस्कार करने के बाद; हीन-हीन, निम्न; अर्थ-अर्थ; अधिक-उससे बड़ा; साधकम्-जो कर सकता है; श्री-चैतन्यम्-श्री चैतन्य महाप्रभु को; लिख्यते-लिखा जा रहा है; अस्य-भगवान् चैतन्य महाप्रभु का; प्रेम-प्रेम; भक्ति-भक्ति; वदान्यता-महानता, बड़प्पन।

अनुवाद

मैं सर्वप्रथम उन श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जो इस भौतिक जगत् में समस्त प्रकार की सम्पत्ति से विहीन व्यक्ति के लिए जीवन के चरम लक्ष्य हैं और आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करने वाले के लिए एकमात्र अर्थ हैं। इस तरह मैं उन भगवान् की प्रेममयी भक्ति के उदार योगदान के विषय में लिखने जा रहा हूँ।

तात्पर्य

मनुष्य भौतिक अस्तित्व की बद्ध अवस्था में निस्सहायता के वातावरण में रहता है, किन्तु माया के वशीभूत होकर बद्धजीव यह सोचता है कि वह अपने देश, समाज, मैत्री तथा प्रेम के द्वारा पूर्णतया सुरक्षित है। उसे यह पता नहीं रहता कि मृत्यु के समय ये सब उसे नहीं बचा सकते। भौतिक प्रकृति के नियम इतने कठोर हैं कि हमारी सम्पत्ति हमें मृत्यु के क्रूर हाथों से बचा नहीं सकती। भगवद्गीता (13.9) में कहा गया है- जन्म-मृत्यु-जराव्याधिदु:ख दोषानुदर्शनम्-जो सचमुच प्रगति कर रहा है, उसे दु:खी जीवन के चार तत्त्वों-जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि–पर सदैव विचार करना चाहिए। जब तक मनुष्य भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं कर लेता, तब तक वह इन दु:खों से

बच नहीं सकता। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त बद्धजीवों के एकमात्र आश्रय हैं। फलतः बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी भौतिक सम्पत्ति में आस्था नहीं रखता, अपितु वह पूर्ण रूप से भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है। ऐसा व्यक्ति अकिञ्चन कहलाता है अर्थात् ऐसा व्यक्ति जिसके पास इस भौतिक जगत् में कुछ भी नहीं होता। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अकिञ्चन-गोचर भी कहे जाते हैं, क्योंकि वे ऐसे व्यक्ति द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं, जिसकी आस्था भौतिक सम्पत्ति में नहीं रहती। अतएव ऐसा पूर्णतया शरणागत व्यक्ति, जो भौतिक सम्पत्ति पर निर्भर नहीं होता, उसके लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ही एकमात्र आश्रय हैं।

प्रत्येक व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम तथा अन्ततः मोक्ष पर आश्रित है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु अपने उदार चरित्र के कारण मोक्ष से भी श्रेष्ठ वस्तु प्रदान करने वाले हैं। इसलिए इस श्लोक के हीनार्थाधिक साधकम् शब्द यह इंगित करते हैं कि यद्यपि भौतिक आकलन के अनुसार मोक्ष का पद धर्म, अर्थ तथा काम के निम्न-स्तरीय पदों से बड़ा है, किन्तु मोक्ष से भी ऊपर भक्ति एवं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य प्रेम का पद है। श्री चैतन्य महाप्रभु इस महान् वरदान को प्रदान करने वाले हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है- प्रेमा पुमा महान्–"भगवत्प्रेम समस्त मानव समाज के लिए परम वरदान है।" इसीलिए श्री चैतन्य-चरितामृत के लेखक श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी सर्वप्रथम चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करते हैं और तब भगवत्प्रेम का वरदान प्रदान करने में उनकी उदारता का वर्णन करते हैं।

जय जय महाप्रभु श्री-कृष्ण-चैतन्य ।

ताँहार चरणाश्रित, सेइ बड़ धन्य ॥2॥

जय-जय हो; जय-जय हो; महाप्रभु–महाप्रभु की; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य; ताँहार-उनके; चरण-आश्रित-जिसने चरणकमलों की शरण ली है; सेइ-वह; बड़-बहुत; धन्य-धन्य।

अनुवाद

मैं भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की जय-जयकार करता हूँ। जिसने उनके चरणकमलों की शरण ले रखी है, वह सर्वाधिक धन्य व्यक्ति है।

तात्पर्य

प्रभु का अर्थ है स्वामी। श्री चैतन्य महाप्रभु सभी प्रभुओं के प्रभु हैं, इसलिए वे महाप्रभु कहलाते हैं। जो व्यक्ति श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की शरण लेता है, वह बड़ा भाग्यशाली है, क्योंकि उनकी कृपा से वह भगवान् की प्रेमाभक्ति के पद को प्राप्त हो सकता है, जो मोक्ष से भी बढ़कर है।

पूर्वे गुर्वादि छय तत्त्वे कैल नमस्कार।

गुरु-तत्त्व कहियाछि, एबे पाँचेर विचार ॥3॥

पूर्वे-प्रारम्भ में; गुरु-आदि-गुरु आदि; छय-छः; तत्त्वे-तत्त्वों में; कैल-मैंने किया है; नमस्कार-नमस्कार; गुरु-तत्त्व-गुरु को समझने का तत्त्व; कहियाछि-मैंने पहले ही वर्णन किया है; एबे-अब; पाँचेर-पाँचों का; विचार-विचार, वर्णन।

अनुवाद

मैं प्रारम्भ में गुरु-तत्त्व की व्याख्या कर चुका हूँ। अब मैं पंचतत्त्व की विवेचना करने की चेष्टा करूँगा।

तात्पर्य

चैतन्य-चरितामृत, आदिलीला के प्रथम खण्ड में लेखक श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने दीक्षा-गुरु तथा शिक्षा-गुरु का वर्णन वन्दे गुरुन् ईश-भक्तान् ईशमीशावतारकान् से शुरू होने वाले श्लोक में किया है। उस श्लोक के छः आध्यात्मिक विषयों में से गुरु विषयक तत्त्व का वर्णन हो चुका है।

अब लेखक अन्य पाँच तत्त्वों का वर्णन करेंगे। वे हैं-ईश-तत्त्व, उनका विस्तार तत्त्व, उनका अवतार तत्त्व, उनका शक्ति तत्त्व तथा उनका भक्त तत्त्व।

पञ्च-तत्त्व अवतीर्ण चैतन्येर सङ्गे ।

पञ्च-तत्त्व लञा करेन सङ्कीर्तन रङ्गे ॥4॥

पञ्च-तत्त्व-ये पाँच तत्त्व; अवतीर्ण-अवतरित हुए; चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु के साथ; सङ्गे–के संग में; पञ्च-तत्त्व-वही पाँच तत्त्व; लञा-अपने साथ लेकर; करेन-वे करते हैं; सङ्कीर्तन-संकीर्तन; रङ्गे–अत्यन्त आनन्द में।

अनुवाद

ये पाँचों तत्त्व श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ अवतरित होते हैं और इस तरह महाप्रभु अत्यन्त हर्षपूर्वक अपना संकीर्तन आन्दोलन सम्पन्न करते हैं।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (11.5.32) में श्री चैतन्य महाप्रभु विषयक निम्नलिखित कथन मिलता है :

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।

यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥

“कलियुग में बुद्धिमान लोग भगवान् की पूजा पार्षदों समेत संकीर्तन यज्ञ द्वारा करेंगे।” श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ उनके पूर्ण विस्तार श्री नित्यानन्द प्रभु, उनके अवतार श्री अद्वैत प्रभु, उनकी अन्तरंगा शक्ति रूप श्री गदाधर प्रभु तथा उनकी तटस्था शक्ति रूप श्रीवास प्रभु रहते हैं। वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के कारण इन सबके स्वामी हैं। हमें यह जानना चाहिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु सदैव इन अन्य तत्त्वों के साथ रहते हैं। अतएव जब हम श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु-नित्यानन्द श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादि-गौर-भक्त-वृन्द कहकर चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करते हैं, तभी वह नमस्कार पूर्ण होता है। हम कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचारक होने के नाते सर्वप्रथम पंचतत्त्व मन्त्र- श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौर-भक्त-वृन्द का उच्चारण करके श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करते हैं और तब हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का कीर्तन करते हैं। हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में दस प्रकार के अपराध हो सकते हैं, किन्तु इस पंचतत्त्व मन्त्र- जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द, श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द के उच्चारण में इन अपराधों पर विचार नहीं किया जाता। श्री चैतन्य महाप्रभु महावदान्यावतार अर्थात् सर्वाधिक उदार अवतार कहलाते हैं, क्योंकि वे पतितात्माओं के अपराधों पर ध्यान नहीं देते। अतएव हमें महामन्त्र कीर्तन (हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे ।।) का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए सर्वप्रथम श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण ग्रहण करनी चाहिए, पंचतत्त्व महामन्त्र को सीखना चाहिए और तब हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करना चाहिए। तभी यह अत्यधिक प्रभावशाली होगा।

श्री चैतन्य महाप्रभु का लाभ उठाते हुए अनेक विवेकहीन अनैतिक भक्त अपना एक मनगढ़न्त महामन्त्र बना लेते हैं। कभी-कभी वे गाते हैं- भज निताई गौर राधे श्याम हरे कृष्ण हरे राम या श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द। किन्तु वास्तव में समस्त पंचतत्त्व नामों (श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौर-भक्त-वृन्द) का कीर्तन करना चाहिए और तब सोलह अक्षरों वाले हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे महामन्त्र का। किन्तु ये अनैतिक कम बुद्धि वाले लोग पूरी विधि को अस्त-व्यस्त कर देते हैं। निस्सन्देह, वे भी भक्त हैं, अतएव अपनी भावनाओं को इस तरह व्यक्त कर सकते हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के शुद्ध भक्त जिस विधि की संस्तुति करते हैं, वह है-पहले पूर्ण पंचतत्त्व मन्त्र का कीर्तन करना और तब महामन्त्र-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे-का कीर्तन करना।

पञ्च-तत्त्व–एक-वस्तु, नाहि किछु भेद ।

रस आस्वादिते तबु विविध विभेद ॥5॥

पञ्च-तत्त्व–पाँच तत्त्व; एक-वस्तु–पाँच होकर भी एक; नाहि-नहीं; किछु-कुछ; भेद-भेद; रस-रस; आस्वादिते-आस्वादन करने में; तबु-फिर भी; विविध-विविध; विभेद-भेद।

अनुवाद

आध्यात्मिक दृष्टि से इन पाँच तत्त्वों में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि दिव्य धरातल पर सभी वस्तुएँ परम पूर्ण होती हैं। तथापि आध्यात्मिक जगत् में भी विविधता होती हैं और इन आध्यात्मिक विविधताओं का आस्वादन करने के लिए उनमें अन्तर करना आवश्यक होता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपनी अनुभाष्य टीका में पंचतत्त्वों का वर्णन इस प्रकार किया है : परम शक्तिमान भगवान् पाँच प्रकार की लीलाओं का आस्वादन करने के लिए पंचतत्त्व के सदस्यों के रूप में प्रकट होते हैं। वास्तव में उनमें कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि वे परम धरातल पर स्थित होते हैं। किन्तु वे विभिन्न प्रकार के आध्यात्मिक रसों का आस्वादन करने के लिए विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक विविधता का प्रकाश करके निर्विशेषवादियों के लिए चुनौती प्रस्तुत करते हैं। वेदों में कहा गया है- परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते–"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की विभिन्न शक्तियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार से जानी जाती हैं।" वेदों के इस कथन से यह जाना जा सकता है कि आध्यात्मिक जगत् में रसों या आस्वादों के नित्य विभेद पाये जाते हैं। श्री गौरांग, श्री नित्यानन्द, श्री अद्वैत, श्री गदाधर तथा श्रीवास ठाकुर-ये सभी एक ही धरातल पर हैं, किन्तु यदि कोई आध्यात्मिक रूप से उनमें अन्तर करना चाहे, तो उसे यह जानना होगा कि श्री चैतन्य महाप्रभु भक्त-रूप हैं, नित्यानन्द प्रभु भक्त के गुरु के रूप में प्रकट होते हैं, अद्वैत प्रभु भक्तावतार हैं, गदाधर प्रभु भक्त की शक्ति हैं और श्रीवास ठाकुर शुद्ध भक्त हैं। इस प्रकार उनमें आध्यात्मिक भेद हैं। भक्त रूप (श्री चैतन्य महाप्रभु), भक्त स्वरूप (नित्यानन्द प्रभु) तथा भक्त अवतार (श्री अद्वैत प्रभु) का वर्णन क्रमशः स्वयं भगवान्, भगवान् के प्रत्यक्ष प्राकट्य तथा भगवान् के पूर्ण अंश के रूप में हुआ है और वे सभी विष्णु की कोटि में आते हैं। यद्यपि भगवान् की आध्यात्मिक तथा तटस्था शक्तियाँ भगवान् विष्णु से अभिन्न हैं, किन्तु वे आश्रित (अधीनस्थ) तत्त्व के रूप में हैं, जबकि विष्णु आश्रय तत्त्व हैं। यद्यपि वे समान धरातल पर हैं, किन्तु दिव्य रसों के आस्वादन की सुविधा के लिए वे भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट हुए हैं। किन्तु वास्तव में एक दूसरे से उनके भिन्न होने की कोई सम्भावना नहीं है, क्योंकि पूजक (उपासक) तथा पूज्य (उपास्य) को किसी भी अवस्था में विलग नहीं किया जा सकता। परम धरातल पर एक को दूसरे के बिना नहीं समझा जा सकता।

पञ्च-तत्त्वात्मकं कृष्णं भक्त-रूप-स्वरूपकम् ।

भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्त-शक्तिकम् ॥ 6॥

पञ्च-तत्त्व-आत्मकम्-पाँच दिव्य तत्त्वों को समझकर; कृष्णम्-भगवान् कृष्ण को; भक्त-रूप-भक्त के रूप में; स्वरूपकम्-भक्त के विस्तार में; भक्त-अवतारम्-भक्त के अवतार में; भक्त-आख्यम्-भक्त के नाम से जाने जाने वाले; नमामि-मैं नमस्कार करता हूँ; भक्त-शक्तिकम् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति।

अनुवाद

मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूँ जो भक्त, भक्त के विस्तार, भक्त के अवतार, शुद्ध भक्त और भक्त-शक्ति-इन पाँच रूपों में प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य

श्री नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के भ्राता के रूप में उनके प्रत्यक्ष विस्तार हैं। वे साक्षात् सच्चिदानन्द विग्रह हैं। उनका शरीर दिव्य है और भक्ति भाव से पूरित है। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु भक्त रूप कहलाते हैं और श्री नित्यानन्द प्रभु भक्त-स्वरूप (भक्त के विस्तार) कहलाते हैं। भक्त के अवतार श्री अद्वैत प्रभु विष्णु-तत्त्व हैं और उसी कोटि में आते है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस के धरातलों पर भी भक्तों के विविध प्रकार होते हैं। श्री दामोदर, श्री गदाधर तथा श्री रामानन्द विभिन्न शक्तियाँ हैं। इससे परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते—इस वैदिक सूत्र की पुष्टि होती है और ये सारे भक्त मिलकर श्री चैतन्य महाप्रभु बनाते हैं, जो साक्षात् कृष्ण हैं।

स्वयं भगवान्कृष्ण एकले ईश्वर ।

अद्वितीय, नन्दात्मज, रसिक-शेखर ॥7॥

स्वयम्-स्वयं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; एकले-अकेले; ईश्वर-ईश्वर, परम नियन्ता; अद्वितीय–बिना किसी और के, अद्वितीय; नन्द-आत्मज-महाराज नन्द के पुत्र के रूप में प्रकट हुए; रसिक-रसों के भोक्ता, रसिक; शेखर-चोटी, शिखर।

अनुवाद

समस्त आनन्द के आगार कृष्ण परम नियन्ता, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। कोई न तो कृष्ण से बड़ा है न उनके तुल्य है, फिर भी वे महाराज नन्द के पुत्र के रूप में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में कविराज गोस्वामी भगवान् कृष्ण का सही-सही वर्णन यह कहते हुए करते हैं कि यद्यपि उनके समान या उनसे बढ़कर कोई नहीं है और वे समस्त आध्यात्मिक आनन्द के स्रोत हैं, फिर भी वे महाराज नन्द और यशोदा माता के पुत्र-रूप में प्रकट होते हैं।

रासादि-विलासी, व्रजललना-नागर।

आर यत सब देख,—ताँर परिकर ॥8॥

रास-आदि-रास नृत्य; विलासी–भोक्ता; व्रज-ललना-वृन्दावन की गोपियाँ; नागर-नागर; आर-अन्य; व्रत-सब; सब–प्रत्येक; देख–जानना चाहिए; ताँर–उनकी; परिकर-संगिनी।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण रासनृत्य के परम भोक्ता हैं। वे व्रज की बालाओं के नायक हैं और अन्य सारे मात्र उनके संगी हैं।

तात्पर्य

यहाँ पर रासादि विलासी (अर्थात् "रास नृत्य के भोक्ता") शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। रासनृत्य का आनन्द एकमात्र श्रीकृष्ण ही भोग सकते हैं, क्योंकि वे ही वृन्दावन की युवतियों के परम नायक हैं। अन्य सारे उनके भक्त तथा संगी हैं। यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की समानता करने वाला कोई नहीं है, किन्तु ऐसे अनेक अनैतिक धूर्त हैं, जो श्रीकृष्ण के रासनृत्य का अनुकरण करते हैं। वे मायावादी हैं और लोगों को चाहिए कि उनसे सतर्क रहें। रासनृत्य एकमात्र श्रीकृष्ण के द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है, अन्य किसी के द्वारा नहीं।

सेइ कृष्ण अवतीर्ण श्री-कृष्ण-चैतन्य ।

सेइ परिकर-गण सङ्गे सब धन्य ॥9॥

सेइ कृष्ण-वही भगवान् कृष्ण; अवतीर्ण-अवतीर्ण हुए हैं; श्री-कृष्ण-चैतन्य-भगवान् चैतन्य महाप्रभु के रूप में; सेइ-वे; परिकर-गण-साथी; सङ्गे–उनके साथ; सब-सब; धन्य-धन्य।

अनुवाद

वे ही भगवान् कृष्ण अपने ही समान यशस्वी शाश्वत संगियों के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए।

एकले ईश्वर-तत्त्व चैतन्य-ईश्वर ।

भक्त-भावमय ताँर शुद्ध कलेवर ॥10॥

एकले–मात्र एक व्यक्ति; ईश्वर-तत्त्व-ईश्वर, परम नियन्ता; चैतन्य-चैतन्य, परम जीवन शक्ति; ईश्वर-नियन्ता; भक्त-भाव-मय-भक्त के भाव से युक्त; ताँर-उनका; शुद्ध-शुद्ध, दिव्य; कलेवर-देह।

अनुवाद

परम नियन्ता श्री चैतन्य महाप्रभु एकमात्र भगवान् हैं, जो भावविभोर होकर भक्त बन गये हैं, फिर भी उनका शरीर दिव्य है और भौतिक रूप से कलुषित नहीं है।

तात्पर्य

तत्त्व या सत्य अनेक प्रकार के हैं, जिनमें ईश-तत्त्व, जीव-तत्त्व तथा शक्ति-तत्त्व सम्मिलित हैं। ईश-तत्त्व से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु का बोध होता है, जो कि परम जीवनी शक्ति रूप हैं। कठ उपनिषद् में कहा गया है-नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्-भगवान् परम नित्य एवं परम जीवनी शक्ति (चेतना) हैं। जीव भी नित्य हैं और वे जीवनी शक्तियाँ भी हैं, किन्तु वे आकार में अत्यन्त सूक्ष्म हैं, जबकि परमेश्वर परम जीवनी शक्ति और परम नित्य हैं। परम नित्य कभी भी नश्वर भौतिक प्रकृति का शरीर धारण नहीं करते, जबकि परम नित्य के अंश रूप जीवों में ऐसी प्रवृत्ति पाई जाती है। इस प्रकार वैदिक मन्त्रों के अनुसार परमेश्वर असंख्य जीवों के सर्वोपरि स्वामी हैं।

किन्तु मायावादी दार्शनिक सूक्ष्म जीवों को परम पुरुष के समान बताने का प्रयास करते हैं। वे उनमें कोई अन्तर नहीं देखते, इसलिए उनका दर्शन अद्वैतवाद कहलाता है। किन्तु वस्तुत: उनमें अन्तर है। यह श्लोक विशेषतया मायावादियों को यह बताने के लिए है कि पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर परम नियन्ता हैं। ये परम नियन्ता स्वयं कृष्ण हैं, किन्तु दिव्य लीला के लिए भगवान् ने भक्त का रूप-श्री चैतन्य महाप्रभु का रूप-स्वीकार किया है।

जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण इस ग्रह पर मनुष्य के रूप में आते हैं, तो कुछ धूर्त उन्हें सामान्य मनुष्य मान बैठते हैं। जो लोग इस प्रकार से गलत सोचते हैं, उन्हें मूढ या मूर्ख कहा जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह मूर्खतावश चैतन्य महाप्रभु को कहीं सामान्य मनुष्य न मान बैठे। उन्होंने भक्त का भाव तो स्वीकार किया है, किन्तु वे परम भगवान् हैं। चैतन्य महाप्रभु के समय से ही कृष्ण के अनेक नकली अवतार हुए हैं, जो यह नहीं समझ सकते कि चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं, सामान्य मनुष्य नहीं। जो अल्पज्ञानी हैं, वे किसी मनुष्य को ईश्वर कहकर प्रचारित करते हैं और इस तरह अपने "ईश्वरों" की सृष्टि करते हैं। यही उनकी भूल है। अतएव ताँर शुद्ध कलेवर–जैसे कथन हमें सतर्क करते हैं कि चैतन्य महाप्रभु का शरीर भौतिक नहीं, अपितु पूर्ण रूप से आध्यात्मिक है। अतएव चैतन्य महाप्रभु को सामान्य भक्त नहीं मानना चाहिए, यद्यपि उन्होंने भक्त का रूप धारण किया है। फिर भी यह अच्छी तरह जान लेना होगा कि यद्यपि चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, चूँकि उन्होंने भक्त भाव स्वीकार किया, इसलिए उनकी लीलाओं को समझने में भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए और उन्हें कृष्ण के समकक्ष नहीं मानना चाहिए। इसी कारण से जब-जब श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण या विष्णु कहकर सम्बोधित किया जाता था, तो वे अपने कान बन्द कर लेते थे, क्योंकि उन्हें यह पसन्द न था कि कोई उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कहकर सम्बोधित करे। भक्तों का एक वर्ग गौराङ्ग-नागरी कहलाता है, जो चैतन्य महाप्रभु के विग्रह का प्रयोग करते हुए कृष्ण की लीलाओं का मंचन करता है। यह भूल है, जिसे रसाभास कहा जाता है। जहाँ चैतन्य महाप्रभु भक्त रूप में आनन्द उठाने का प्रयत्न कर रहे हों, वहाँ उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कहकर विचलित नहीं करना चाहिए।

कृष्ण-माधुर्येर एक अद्भुत स्वभाव ।

आपना आस्वादिते कृष्ण करे भक्त-भाव ॥11॥

कृष्ण-माधुर-कृष्ण की परम आह्लादिनी शक्ति; एक-एक है; अद्भुत-अद्भुत; स्वभाव-स्वभाव; आपना–स्वयं; आस्वादिते-आस्वादन के लिए; कृष्ण–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण; करे-करते हैं; भक्त-भाव-भक्त का भाव स्वीकार करते हैं।

अनुवाद

कृष्ण का दिव्य माधुर्य रस इतना अद्भुत है कि स्वयं कृष्ण इसका पूर्णतया आस्वादन करने के लिए भक्त का रूप धारण करते हैं।

तात्पर्य

यद्यपि कृष्ण आनन्द के आगार हैं, किन्तु वे भक्त का रूप धारण करके इसका आस्वादन करने की विशेष इच्छा रखते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि चैतन्य महाप्रभु भक्त के रूप में विद्यमान हैं, किन्तु वे स्वयं कृष्ण हैं। इसलिए वैष्णवजन गाते हैं- श्रीकृष्णचैतन्य राधा-कृष्ण नहे अन्य–"राधा तथा कृष्ण का सम्मिलित रूप श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु हैं।" श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा है, चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्वयं चैक्यमाप्तम्-राधा तथा कृष्ण एक होकर चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए।

इथे भक्त-भाव धरे चैतन्य गोसाञि।

'भक्त-स्वरूप' ताँर नित्यानन्द-भाई ॥12॥

इथे-इस कारण से; भक्त-भाव-भक्त का भाव; धरे स्वीकार करते हैं, धारण करते हैं; चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु; गोसाञि-दिव्य गुरु; भक्त-स्वरूप-ठीक शुद्ध भक्त की भाँति; ताँर-उनके; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; भाइ–भाई।

अनुवाद

इसी कारण से परम शिक्षक श्री चैतन्य महाप्रभु भक्त का रूप स्वीकार करते हैं और भगवान् नित्यानन्द को अपने ज्येष्ठ भाई के रूप में स्वीकार करते हैं।

'भक्त-अवतार' ताँर आचार्य-गोसाञि।

एइ तिन तत्त्व सबे प्रभु करि' गाइ ॥13॥

भक्त-अवतार–भक्त के रूप में अवतार; ताँर-उनका; आचार्य-गोसाञि-परम गुरु, अद्वैत आचार्य प्रभु; एइ–ये सब; तिन–तीन; तत्त्व-तत्त्व; सबे-सब; प्रभु-प्रभु; करि'-ऐसे विचार से; गाइ-हम गाते हैं।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य भगवान् चैतन्य के भक्त-अवतार हैं। इसलिए ये तीनों तत्त्व (चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत गोसांई) आश्रय देने वाले या प्रभु हैं।

तात्पर्य

गोसाञि का अर्थ है गोस्वामी। जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों तथा मन पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है, वह गोस्वामी या गोसात्रि कहलाता है। जो व्यक्ति ऐसा नियन्त्रण नहीं रख पाता, वह गोदास अर्थात् इन्द्रियों का दास कहलाता है और वह गुरु नहीं बन सकता। जो गुरु अपनी इन्द्रियों तथा मन पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है, वह गोस्वामी कहलाता है। यद्यपि गोस्वामी उपाधि अनैतिक लोगों के लिए वंशानुगत उपाधि बन चुकी है, किन्तु वास्तव में यह उपाधि श्री रूप गोस्वामी से प्रारम्भ हुई, जो अपने आपको सामान्य गृहस्थ तथा सरकारी मन्त्री के रूप में प्रस्तुत करते थे, किन्तु चैतन्य

महाप्रभु के उपदेश से वे गोस्वामी का उच्च पद प्राप्त कर सके। अतएव गोस्वामी वंशानुगत उपाधि का नहीं, अपितु व्यक्ति की योग्यता का सूचक है। जब कोई आध्यात्मिक दृष्टि से ऊपर उठ जाता है, तो जात-पात के भेदभाव के बिना वह गोस्वामी कहलाया जा सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु तथा श्री अद्वैत गोसांई प्रभु स्वाभाविक गोस्वामी हैं, क्योंकि वे विष्णुतत्त्व हैं। इसीलिए वे सभी प्रभु (स्वामी) हैं और वे कभी-कभी चैतन्य गोसांई, नित्यानन्द गोसांई तथा अद्वैत गोसांई कहलाते हैं। दुर्भाग्यवश जिन लोगों के पास गोस्वामी की योग्यता नहीं होती, उनके तथाकथित वंशजों ने इस उपाधि का वंशानुगत या व्यापारिक उपाधि के रूप में स्वीकार कर लिया है। किन्तु यह आचरण शास्त्र-सम्मत नहीं है।

एक महाप्रभु, आर प्रभु दुइजन ।

दुइ प्रभु सेवे महाप्रभुर चरण ॥14॥

एक महाप्रभु–एक महाप्रभु; आर प्रभु दुइजन–तथा दूसरे दो प्रभु (नित्यानन्द एवं अद्वैत प्रभु); दुइ प्रभु-दो प्रभु (नित्यानन्द तथा अद्वैत गोसांई); सेवे-सेवा करते हैं; महाप्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; चरण-चरणकमल।

अनुवाद

उनमें से एक महाप्रभु हैं और अन्य दो प्रभु हैं। ये दोनों प्रभु महाप्रभु के चरणकमलों की सेवा करते हैं।

तात्पर्य

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु तथा श्री अद्वैत प्रभु एक ही विष्णु तत्त्व से सम्बन्धित हैं, तो भी श्री चैतन्य महाप्रभु को सर्वश्रेष्ठ होने के रूप में स्वीकार किये जाते हैं और अन्य दो प्रभु उनकी दिव्य प्रेममयी सेवा में सामान्य जीवों को यह शिक्षा देने के लिए लगे रहते हैं कि हम में से हर एक जीव श्री चैतन्य महाप्रभु पर आश्रित है। चैतन्य-चरितामृत में ही अन्यत्र (आदि 5.142) कहा गया है-एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य-कृष्ण एकमात्र ईश्वर हैं और अन्य सभी अर्थात् विष्णु तत्त्व तथा जीव तत्त्व भगवान् की सेवा में रत रहते हैं। विष्णु तत्त्व (यथा नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत) और जीव तत्त्व (यथा श्रीवासादि गौर-भक्त-वृन्द) दोनों ही भगवान् की सेवा करते हैं, किन्तु विष्णु तत्त्व सेवकों तथा जीव तत्त्व सेवकों में अन्तर समझना आवश्यक है। जीव तत्त्व सेवक अर्थात् गुरु वास्तव में ईश्वर का सेवक होता है। जैसाकि पिछले श्लोकों में कहा जा चुका है, परम जगत् में ऐसा अन्तर नहीं होता, फिर भी परमेश्वर तथा उनके आश्रितों में भेद करने के लिए ऐसे अन्तरों पर ध्यान देना आवश्यक है।

एइ तिन तत्त्व,–‘सर्वाराध्य’ करि मानि ।

चतुर्थ ग्ने भक्त-तत्त्व,—‘आराधक’ जानि ॥15॥

एइ तिन तत्त्व-ये तीनों तत्त्व; सर्व-आराध्य-सबके आराध्य (पूज्य); करि मानि-ऐसा स्वीकार करके; चतुर्थ-चौथा; ये-जो है; भक्त-तत्त्व-भक्त तत्त्व; आराधक-आराधक; जानि–मैं समझता हूँ।

अनुवाद

ये तीन तत्त्व (चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु) सभी जीवों द्वारा पूजनीय हैं और चौथे तत्त्व (श्री गदाधर प्रभु) उनके आराधक अर्थात् पूजक माने जाते हैं।

तात्पर्य

श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में पंचतत्त्वों की सत्यता के बारे में व्याख्या करते हुए कहते हैं कि हमें यह समझना चाहिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु परम आश्रय तत्त्व हैं और नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु उनके आश्रित हैं, किन्तु वे भी आश्रय तत्त्व हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु परम भगवान् हैं और नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु उनके प्राकट्य हैं। वे सभी विष्णु तत्त्व हैं, अतएव जीवों द्वारा पूजनीय हैं। यद्यपि पंचतत्त्वों के अन्तर्गत अन्य दो तत्त्व-शक्ति तत्त्व तथा जीव तत्त्व, जो कि गदाधर तथा श्रीवास के रूप में जाने जाते हैं–परमेश्वर के आराधक या पूजक हैं, किन्तु वे एक ही श्रेणी में आते हैं, क्योंकि वे सनातन रूप से भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में लगे रहते हैं।

श्रीवासादि यत कोटि कोटि भक्त-गण ।

‘शुद्ध-भक्त’-तत्त्व-मध्ये ताँ-सबार गणन ॥16॥

श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर आदि भक्त; व्रत-अन्य सब; कोटि कोटि-कोटि कोटि, असंख्य; भक्त-गण-भक्तगण; शुद्ध-भक्त-शुद्ध भक्त; तत्त्व-मध्ये-सत्य में; ताँ-सबार–वे सब; गणन-गिने जाते हैं।

अनुवाद

भगवान् के शुद्ध भक्त असंख्य हैं, जिनमें श्रीवास ठाकुर प्रमुख हैं। ये सभी शुद्ध भक्त कहलाते हैं।

गदाधर-पण्डितादि प्रभुर ‘शक्ति’-अवतार ।

‘अन्तरङ्ग-भक्त’ करि’ गणन याँहार ॥17॥

गदाधर-गदाधर; पण्डित-पण्डित; आदि-आदि; प्रभुर-प्रभु की; शक्ति–शक्ति; अवतार–अवतार; अन्तरङ्ग–अत्यन्त गुप्त; भक्त-भक्त; करि'–स्वीकार करके; गणन-गणना; याँहार–जिनकी।

अनुवाद

गदाधर पंडित इत्यादि भक्तों को भगवान् की अंतरंगा शक्ति का अवतार मानना चाहिए। वे भगवान् की सेवा में लगे हुए अन्तरंग भक्त हैं।

तात्पर्य

श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर श्लोक 16 तथा 17 के सन्दर्भ में अपने अनुभाष्य में बतलाते हैं : "कुछ विशेष लक्षण होते हैं जिनसे अन्तरंग भक्त तथा शुद्ध भक्त जाने जाते हैं। सारे शुद्ध भक्त शक्ति-तत्त्व हैं। इनमें से कुछ माधुर्य प्रेम में अवस्थित हैं, तो अन्य वात्सल्य, सख्य तथा दास्य प्रेम में अवस्थित हैं। निश्चय ही, ये सभी भक्त हैं, किन्तु जब इनकी तुलना की जाती है, तो माधुर्य प्रेम में स्थित भक्त अन्यों से श्रेष्ठ माने जाते हैं। इसलिए जो भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के माधुर्य प्रेम में अवस्थित हैं, वे श्री चैतन्य महाप्रभु के सर्वोच्च अन्तरंग भक्त माने जाते हैं। ऐसे भक्त जो नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु की सेवा करते हैं, वे सामान्यतया वात्सल्य, सख्य, दास्य तथा शान्त रस में अवस्थित होते हैं। जब ऐसे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति अतीव अनुरक्ति उत्पन्न कर लेते हैं, तो वे भी माधुर्य रस के अन्तरंग भक्तों के समुदाय में आ जाते हैं।" भक्ति का यह क्रमिक विकास श्री नरोत्तमदास ठाकुर द्वारा निम्न प्रकार से वर्णित है :

गौराङ्ग बलिते हबे पुलक शरीर।

हरि हरि बलिते नयने ब'बे नीर॥

आर कबे निताइचाँद करुणा करिबे ।

संसारवासना मोर कबे तुच्छ हबे ॥

विषय छाडिया कबे शुद्ध हवे मन ।

कबे हाम हेरब श्रीवृन्दावन ॥

रूप रघुनाथ-पदे हइबे आकुति ।

कबे हाम बुझब श्रीयुगलपिरीति ॥

“वह समय कब आयेगा, जब चैतन्य महाप्रभु का नाम लेते ही मेरा शरीर पुलकित हो उठेगा और वह समय कब आयेगा, जब हरे कृष्ण नाम का कीर्तन करते ही अश्रुओं की निरन्तर धारा प्रवाहित होने लगेगी? नित्यानन्द प्रभु मुझ पर कब दयालु होंगे और भौतिक भोग की इच्छाओं से मुझे मुक्त करा देंगे? कब मेरा मन भौतिक आनन्द की इच्छाओं के कल्मष से पूर्णतया मुक्त हो सकेगा? तभी मेरे लिए वृन्दावन को समझ पाना सम्भव हो सकेगा। यदि मैं रूप गोस्वामी तथा रघुनाध दास गोस्वामी आदि छ: गोस्वामियों की शिक्षाओं में अनुराग उत्पन्न कर सकें, तो क्या मेरे लिए राधा तथा कृष्ण के माधुर्य रस को समझना सम्भव होगा?” श्री चैतन्य महाप्रभु की भक्ति में अनुरक्ति होने से भावावेश की स्थिति तुरन्त प्राप्त होती है। उस दशा में जब वह नित्यानन्द प्रभु के प्रति प्रेम उत्पन्न कर लेता है, तो वह भौतिक संसार की सारी आसक्ति से मुक्त हो जाता है और तब वह भगवान् की वृन्दावन लीलाओं को समझने का पात्र बन जाता है। उस दशा में जब वह छ: गोस्वामियों के प्रति प्रेम विकसित करता है, तब वह राधा तथा कृष्ण के माधुर्य प्रेम को समझ सकता है। ये शुद्ध भक्त की प्रगति की विभिन्न अवस्थाएँ हैं, जिनसे होकर शुद्ध भक्त राधा तथा कृष्ण एवं श्री चैतन्य महाप्रभु की माधुर्य प्रेममयी सेवा के घनिष्ठ सम्बन्ध के स्तर तक ऊपर उठ सकता है।

याँ-सबा लञा प्रभुर नित्य विहार।

याँ-सबा लञा प्रभुर कीर्तन-प्रचार ॥18॥

याँ-सबा लञा करेन प्रेम आस्वादन।

याँ-सबा लञा दान करे प्रेम-धन ॥19॥

याँ-सबा–सब; लञा-साथ मिलकर; प्रभुर-भगवान् की; नित्य-नित्य; विहार-लीला; याँ-सबा-वे सब जो हैं; लञा-साथ देते हैं; प्रभुर-भगवान् का; कीर्तन-संकीर्तन; प्रचार-प्रचार; याँ-सबा–जिन व्यक्तियों के साथ; लञा–संगति में; करेन-वे करते हैं; प्रेम-ईश-प्रेम; आस्वादन-आस्वादन; याँ-सबा-वे जो हैं; लञा-संगति में; दान करे-दान देते हैं, प्रेम-धन-ईश्वर-प्रेम।

अनुवाद

अन्तरंग भक्त या शक्ति-समूह भगवान् की लीलाओं में नित्य संगी होते हैं। भगवान् केवल उन्हीं के साथ संकीर्तन आन्दोलन के प्रसार हेतु अवतरित होते हैं, उन्हीं के साथ वे माधुर्य रसका आस्वादन करते हैं और केवल उन्हीं के साथ वे जनसामान्य को इस भगवत्प्रेम का वितरण करते हैं।

तात्पर्य

श्री रूप गोस्वामी अपनी पुस्तक उपदेशामृत में शुद्ध भक्त तथा अन्तरंग या विश्वासपात्र भक्तों का अन्तर बतलाते हुए निम्नलिखित विकास क्रम अंकित करते हैं-हजारों कर्मियों में से एक व्यक्ति तब श्रेष्ठ बनता है, जब वह पूर्ण वैदिक ज्ञान को प्राप्त करता है। ऐसे अनेक विद्वानों तथा दार्शनिकों में से जो कोई वास्तव में भौतिक बन्धन से मुक्त होता है, वह श्रेष्ठ है और ऐसे अनेक सचमुच मुक्त

व्यक्तियों में से जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का भक्त होता है, उसे सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। ऐसे अनेक भगवान् के दिव्य प्रेमियों में से गोपियाँ श्रेष्ठ हैं और गोपियों में भी श्रीमती राधिका सर्वश्रेष्ठ हैं। श्रीमती राधिका भगवान् कृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं। इसी तरह उनके कुंड यथा श्यामकुण्ड तथा राधाकुण्ड भी भगवान् को अत्यधिक प्रिय हैं।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने ग्रंथ अनुभाष्य में टीका की है कि पाँच तत्त्वों में से दो तो शक्ति तत्त्व हैं और शेष तीन शक्तिमान् तत्त्व हैं। अनन्य तथा अन्तरंग दोनों ही प्रकार के भक्त कृष्णभावनामृत के अनुकूल अनुशीलन में लगे रहते हैं। वे दार्शनिक चिन्तन या सकाम कर्मों से रंचमात्र भी प्रभावित नहीं होते। ये सभी शुद्ध भक्त माने जाते हैं और इनमें से जो भक्त एकमात्र माधुर्य प्रेम में लगे रहते हैं, वे माधुर्य भक्त या अन्तरंग भक्त कहलाते हैं। वात्सल्य, सख्य तथा दास्य रस की प्रेममयी सेवाएँ ईश्वर के माधुर्य प्रेम में सम्मिलित हैं। निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक अन्तरंग भक्त ईश्वर का शुद्ध भक्त होता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्रत्यक्ष विस्तार नित्यानन्द प्रभु के साथ अपनी लीलाओं के आनन्द का उपभोग करते हैं। उनके शुद्ध भक्त तथा उनके तीन पुरुष अवतार–कारणोदकशायी विष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु संकीर्तन आन्दोलन का प्रतिपादन करने के लिए सदैव भगवान् के साथ रहते हैं।

सेइ पञ्च-तत्त्व मिलि' पृथिवी आसिया।

पूर्व-प्रेमभाण्डारेर मुद्रा उघाड़िया ॥20॥

पाँचे मिलि लुटे प्रेम, करे आस्वादन।

यत यत पिये, तृष्णा बाढ़े अनुक्षण ॥21॥

सेई-वे; पञ्च-तत्त्व–पाँच तत्त्व; मिलि'–मिलकर; पृथिवी-इस पृथ्वी पर; आसिया-उतरकर, अवतरित होकर; पूर्व-मौलिक; प्रेम-भाण्डारेर-दिव्य प्रेम के आगार; मुद्रा मुद्रा; उघाड़िया-तोड़कर; पाँचे मिलि'–ये सब पाँच मिलकर; लुटे-लूट लेते हैं; प्रेम-भगवत्प्रेम; करे आस्वादन–आस्वादन करते हैं; यत यत-जितना; पिये-पीते हैं; तृष्णा-इच्छा; बाढ़े-बढ़ती है; अनुक्षण-बारम्बार।

अनुवाद

कृष्ण के गुण दिव्य प्रेम के आगार माने जाते हैं। जब कृष्ण विद्यमान थे, तब यह प्रेम का आगार निश्चय ही उनके साथ आया था, किन्तु वह पूरी तरह से सीलबन्द था। किन्तु जब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने पंचतत्त्व के संगियों के साथ आये, तो उन्होंने दिव्य कृष्ण-प्रेम का आस्वादन करने के लिए कृष्ण के दिव्य प्रेमागार की सील तोड़कर उसे लूट लिया। वे ज्यों-ज्यों उसका आस्वादन करते गये, त्यों-त्यों और अधिक आस्वादन करने की उनकी तृष्णा बढ़ती ही गई।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु महावदान्यावतार कहलाते हैं, क्योंकि वे साक्षात् कृष्ण होते हुए भी दीन पतितात्माओं के प्रति श्रीकृष्ण से बढ़कर दयावान हैं। जब भगवान् श्रीकृष्ण विद्यमान थे, तब उनकी इच्छा थी कि हर कोई उनकी शरण में आये और उन्होंने वादा किया था कि तभी वे उसको संरक्षण प्रदान करेंगे। किन्तु जब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने संगियों समेत इस पृथ्वी पर आये, तो उन्होंने भेदभाव त्यागकर दिव्य भगवत्प्रेम का वितरण किया। इसीलिए श्री रूप गोस्वामी समझ गये कि श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हैं, क्योंकि भगवान् के अतिरिक्त ऐसा कौन होगा, जो परम पुरुष के अन्तरंग प्रेम का वितरण कर सके।

पुनः पुनः पियाइया हय महामत्त ।

नाचे, कान्दे, हासे, गाय, यैछे मद-मत्त ॥22॥

पुनः पुनः–बारम्बार; पियाइया–पिलाते हैं; हय-होते हैं; महा-मत्त-अत्यन्त उन्मत्त; नाचे-नाचते हैं; कान्दे-चिल्लाते हैं; हासे-हँसते हैं; गाय-गाते हैं, कीर्तन करते हैं; यैछे-जैसे; मद-मत्त-मदिरा पान किया हो।

अनुवाद

स्वयं श्री पंचतत्त्वों ने पुनः पुनः नाचकर इस तरह भगवत्प्रेम रूपी अमृत को पीना सुगम बनाया। वे नाचते, रोते, हँसते और गाते थे, मानो उन्मत्त हों और इस तरह उन्होंने भगवत्प्रेम का वितरण किया।

तात्पर्य

सामान्यतया लोग कीर्तन तथा नर्तन का वास्तविक अर्थ नहीं समझ सकते। श्री श्रीनिवास आचार्य ने गोस्वामियों का वर्णन करते हुए कहा है, कृष्णोत्कीर्तनगाननर्तनपरौ–न केवल चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगी ही इस कीर्तन तथा नर्तन का प्रदर्शन करते थे, अपितु अगली पीढ़ी में छः गोस्वामियों ने भी उनका अनुसरण किया। वर्तमान कृष्णभावनामृत आन्दोलन भी इसी सिद्धान्त का पालन करता है, इसीलिए केवल कीर्तन तथा नर्तन से हमें विश्वभर में अच्छी स्वीकृति मिली है। किन्तु यह जान लेना होगा कि यह कीर्तन तथा नर्तन इस भौतिक जगत् का नहीं है। वास्तव में ये दिव्य कार्यकलाप हैं, क्योंकि कोई जितना ही कीर्तन और नर्तन में रत होता है, वह उतना ही अधिक भगवत्प्रेम रूपी अमृत का आस्वादन कर सकता है।

पात्रापात्र-विचार नाहि, नाहि स्थानास्थान ।

येइ याँहा पाय, ताँहा करे प्रेम-दान ॥23॥

पात्र-पात्र; अपात्र-कुपात्र; विचार-विचार; नाहि-नहीं है; नाहि-नहीं हैं; स्थान-उचित स्थान; अस्थान-अनुचित स्थान; येइ-कोई; याँहा-जहाँ भी; पाय-अवसर पाता है; ताँहा-वहीं; करे-करते हैं; प्रेम-दान-भगवत्प्रेम का दान।

अनुवाद

भगवत्प्रेम का वितरण करते समय श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों ने कभी यह विचार नहीं किया कि कौन सुपात्र है और कौन नहीं है, इसका वितरण कहाँ किया जाये और कहाँ नहीं। उन्होंने कोई शर्त नहीं रखी। जहाँ कहीं भी अवसर मिला, पंचतत्त्व के सदस्यों ने भगवत्प्रेम का वितरण किया।

तात्पर्य

कुछ ऐसे धूर्त हैं, जो चैतन्य महाप्रभु के सन्देश के विरुद्ध कृष्णभावनामृत आन्दोलन की आलोचना करते हुए कहते हैं कि इसने यूरोपियों तथा अमरीकियों को ब्राह्मणों के रूप में सम्मिलित करके उन्हें संन्यास दीक्षा दी है। किन्तु यहाँ पर हमें प्रामाणिक कथन प्राप्त होता है कि भगवत्प्रेम के वितरण में यह विचार नहीं करना चाहिए कि पात्र यूरोपीय है, कि अमरीकी, हिन्दू है या मुसलमान इत्यादि। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार जहाँ कहीं भी सम्भव हो, करना चाहिए और उन सभी लोगों को स्वीकार कर लेना चाहिए जो इस प्रकार ब्राह्मणों, हिन्दुओं या भारतीयों से भी बढ़कर वैष्णव बन जाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु की आकांक्षा थी कि उनका नाम पृथ्वी के ग्राम-ग्राम तथा शहर-शहर में फैले। अतएव जब चैतन्य महाप्रभु का सम्प्रदाय सारे विश्व में फैल चुका है, तो जो इसे अंगीकार करते हैं, क्या उन्हें वैष्णव, ब्राह्मण तथा संन्यासी के रूप में स्वीकार न किया जाए? ऐसे

मूर्खतापूर्ण तर्क कभी-कभी ईर्ष्यालु धूर्तों द्वारा उठाये जाते हैं, किन्तु कृष्णभावनाभावित भक्त इनकी थोड़ी-सी भी परवाह नहीं करते। हम तो पंचतत्त्वों द्वारा नियत सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन करते हैं।

लुटिया, खाइया, दिया, भाण्डार उजाड़े।

आश्चर्य भाण्डार, प्रेम शत-गुण बाड़े ॥24॥

लुटिया-लूटना, लूटकर; खाइया-खाते हैं; दिया–वितरण करते हैं; भाण्डार-भण्डार; उजाड़े-खाली कर दिया; आश्चर्य-आश्चर्यजनक; भाण्डार-भण्डार, गोदाम; प्रेम-भगवत्प्रेम; शत-गुण-सौगुना; बाड़े-बढ़ता है।

अनुवाद

यद्यपि पंचतत्त्व के सदस्यों ने भगवत्प्रेम के भण्डार को लूटा और इसकी सामग्री का आस्वादन किया तथा उसे बाँट दिया, फिर भी उसमें कोई कमी नहीं हुई, क्योंकि यह अद्भुत भण्डार इतना भरा-पूरा है कि ज्यों-ज्यों प्रेम का वितरण किया जाता है, त्यों-त्यों इसकी आपूर्ति सैकड़ों गुना बढ़ जाती है।

तात्पर्य

कृष्ण के एक नकली अवतार ने एक बार अपने शिष्य से कहा कि मैंने तुम्हें अपना सारा ज्ञान दे दिया है, अतएव अब मैं रिक्त हो चुका हूँ और आध्यत्मिक रूप से दिवालिया हो गया हूँ। ऐसे ठग जनता को ठगने के लिए इस प्रकार बोलते हैं, किन्तु वास्तविक आध्यात्मिक चेतना इतनी पूर्ण होती है कि ज्यों-ज्यों इसका वितरण किया जाता है, त्यों-त्यों यह बढ़ती जाती है। दिवालियापन

ऐसा शब्द है, जो भौतिक जगत् में लागू होता है, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में भगवत्प्रेम का भण्डार कभी भी न समाप्त होने वाला है। कृष्ण करोड़ों-अरबों जीवों की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हैं और यदि समस्त असंख्य जीव कृष्णभावनाभावित होना चाहें, तो भी न तो भगवत्प्रेम की कमी होगी, न ही उनके पालन-पोषण में कोई कमी आयेगी। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन एक व्यक्ति के द्वारा चलाया गया था और किसी ने भी हमारा भरण-पोषण नहीं किया। किन्तु इस समय हम विश्वभर में लाखों डालर खर्च कर रहे हैं और यह आन्दोलन बढ़ता ही जा रहा है। अतएव अभाव का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। भले ही ईर्ष्यालु लोग जलते रहें, किन्तु यदि हम अपने सिद्धान्तों का पालन करें और पंचतत्त्वों के पदचिह्नों का अनुसरण करें, तो यह आन्दोलन बनावटी स्वामियों, संन्यासियों, धर्मज्ञों, दार्शनिकों या वैज्ञानिकों के रोके नहीं रुकेगा, क्योंकि यह समस्त भौतिक प्रभावों से परे है। अतएव जो लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं, उन्हें ऐसे धूर्ती तथा मूर्खा से डरना नहीं चाहिए।

उछलिल प्रेम-वन्या चौदिके वेड़ाय ।

स्त्री, वृद्ध, बालक, नुवा, सबारे डुबाय ॥25॥

उछलिल-विह्वल हो गये; प्रेम-वन्या-भगवत्प्रेम की बाढ़ से; चौदिके-सभी दिशाओं में; वेड़ाय-चारों ओर; स्त्री-महिलाएँ; वृद्धवृद्ध पुरूष; बालक-बालक; युवा–युवक; सबारे—सभी; डुबाय-डूब गये।

अनुवाद

भगवत्प्रेम की बाढ़ से सारी दिशाएँ आप्लावित होने लगीं और इस तरह से युवक, वृद्ध, स्त्रियाँ तथा बच्चे उस बाढ़ में डूबने लगे।

तात्पर्य

जब भगवत्प्रेम के भण्डार की वस्तुएँ इस प्रकार वितरित होती हैं, तब ऐसी प्रबल बाढ़ आती है कि समग्र स्थल भाग जलमग्न हो जाता है। कभी-कभी श्रीधाम मायापुर में वर्षाऋतु के बाद बहुत बाढ़ आ जाती है। यह इसका संकेत है कि श्री चैतन्य महाप्रभु की जन्मभूमि से भगवत्प्रेम की बाढ़ को सारे विश्व में फैलना चाहिए, क्योंकि इससे वृद्धों, युवकों, स्त्रियों तथा बच्चों में से हर एक को लाभ मिल सकेगा। श्री चैतन्य महाप्रभु का कृष्णभावनामृत आन्दोलन इतना प्रबल है कि यह सारे विश्व को प्रेम में डुबा सकता है और सभी वर्ग के व्यक्तियों को भगवत्प्रेम की ओर उन्मुख कर सकता है।

सज्जन, दुर्जन, पङ्गु, जड़, अन्ध-गण ।

प्रेम-वन्याय डुबाइल जगतेर जन ॥26॥

सत्-जन-सज्जन पुरुष; दुर्जन-दुर्जन; पङ्गु-लंगड़े; जड़-अक्षम, अशक्त; अन्ध-गण-अन्धे लोग; प्रेम-वन्याय-भगवत्प्रेम की बाढ़ में; डुबाइल-डूब गये; जगतेर-सारे जगत् में; जन-लोग।

अनुवाद

कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे विश्व को आप्लावित कर देगा और हर एक को डुबा देगा, चाहे वह भद्र व्यक्ति हो, या धूर्त, लँगड़ा या अशक्त अथवा अंधा।

तात्पर्य

यहाँ पुन: यह बात दोहराई जा सकती है कि भले ही ईर्ष्यालु धूर्त विरोध प्रकट करें कि यूरोपियों तथा अमरीकियों को जनेऊ (यज्ञोपवीत) या संन्यास नहीं दिया जा सकता, किन्तु इस पर

विचार करने की आवश्यकता ही नहीं कि कौन भद्र है और कौन धूर्त है, क्योंकि यह एक आध्यात्मिक आन्दोलन है, जो बाहरी मांस-मज्जा पर ध्यान नहीं देता। यह पंचतत्त्व के निर्देश के अनुसार समुचित रीति से चलाया जा रहा है और इसमें विधि-विधानों का कड़ाई से पालन होता है, अतएव इसे बाह्य अवरोधों से कुछ भी लेना-देना नहीं है।

जगत्डुबिल, जीवेर हैल बीज नाश ।

ताहा देखि पाँच जनेर परम उल्लास ॥27॥

जगत्-सारा संसार; डुबिल-डूब गया; जीवेर-जीवों का; हैल-हो गया; बीज-बीज; नाश-पूर्णत: नष्ट; ताहा–तब; देखि'–देखकर; पाञ्च–पाँच; जनेर-लोगों का; परम-परम; उल्लास-उल्लास, हर्ष।

अनुवाद

जब पंचतत्त्व के पाँच सदस्यों ने देखा कि सारा संसार भगवत्प्रेम में डूब चुका है और जीवों में भौतिक भोग का बीज पूरी तरह नष्ट हो चुका है, तो वे सभी अत्यधिक प्रसन्न हुए।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में लिखा है कि चूँकि सारे जीव भगवान् की तटस्था शक्ति से सम्बन्धित हैं, अतएव प्रत्येक जीव में कृष्णभावनाभावित होने की सहज प्रवृत्ति रहती है, भले ही उसी के साथ भौतिक भोग का बीज भी उसके भीतर क्यों न रहता हो। भौतिक भोग का बीज भौतिक प्रकृति द्वारा सिंचित होकर भवबन्धन रूपी वृक्ष बन जाता है और फल प्रदान करता है, जिससे जीवों को सभी प्रकार के भौतिक भोग प्राप्त होते हैं। ऐसी भौतिक

सुविधाओं को भोगने का अर्थ है, तीन प्रकार के भौतिक दुःखों से पीड़ित होना। किन्तु जब प्रकृति के नियमानुसार बाढ़ आती है, तब पृथ्वी के भीतर के बीज निष्क्रिय हो जाते हैं। इसी प्रकार जब भगवत्प्रेम की बाढ़ सारे विश्व में परिव्याप्त हो जाती है, तो भौतिक भोग के बीज शक्तिहीन हो जाते हैं। इस प्रकार कृष्णभावनामृत आन्दोलन जितना अधिक फैलता है, भौतिक भोग की इच्छा उतनी ही घटती जाती है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन की वृद्धि के साथ ही भौतिक भोग का बीज स्वत: शक्तिहीन होता जाता है।

जो लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन को भगवान् चैतन्य की कृपा से विश्वभर में फैलता देखकर ईर्ष्या करते हैं, उन्हें चाहिए कि वे प्रसन्न हों, जैसाकि यहाँ पर परम उल्लास शब्दों द्वारा सूचित होता है। किन्तु कनिष्ठ-अधिकारी या प्राकृत भक्त (ऐसे भौतिकतावादी भक्त जो आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत नहीं हैं) होने के कारण ही वे प्रसन्न होने के स्थान पर ईर्ष्या करते हैं और इसीलिए वे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में दोष निकालते रहते हैं। फिर भी श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वती अपने ग्रंथ चैतन्य चन्द्रामृत में लिखते हैं कि भगवान् चैतन्य श्रीकृष्ण के कृष्णभावनामृत आन्दोलन से प्रभावित होने पर भौतिकतावादी लोग अपनी पत्नी तथा बच्चों के बारे में बोलना त्याग देते हैं, तथाकथित विद्वान वैदिक साहित्य का उबाऊ अध्ययन त्याग देते हैं, योगी अपना अव्यावहारिक योगाभ्यास त्याग देते हैं, तपस्वी अपनी कठोर तपस्या त्याग देते हैं और संन्यासी सांख्य दर्शन का अध्ययन करना त्याग देते हैं। इस तरह वे सभी भगवान् चैतन्य की भक्ति योग की विधियों के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं और कृष्णभावनामृत से बढ़कर अन्य किसी रस का आस्वादन नहीं कर सकते।

यत यत प्रेम-वृष्टि करे पञ्च-जने ।

तत तत बाढ़े जल, व्यापे त्रि-भुवने ॥28॥

यत-जितने अधिक; यत-इतने अधिक प्रेम-वृष्टि-भगवत्प्रेम की वर्षा; करे-करते हैं; पञ्च-जने-पंचतत्तव के पाँच सदस्य; तत तत-इतना जितना; बाढ़े-बढ़ता है; जल-जल; व्यापे–फैलता है; त्रि-भुवने–तीनों भुवनों में।

अनुवाद

पंचतत्त्व के पाँचों सदस्य भगवत्प्रेम की जितनी अधिक वृष्टि कराते हैं, उतनी ही अधिक बाढ़ बढ़ती जाती है और वह सारे विश्व में परिव्याप्त हो जाती है।

तात्पर्य

कृष्णभावनामृत आन्दोलन न तो रूढ़िवादी है, न निष्क्रिय। मूर्खा तथा धूर्ती द्वारा उठाये गये इन आक्षेपों के बावजूद कि यूरोपीय तथा अमरीकी म्लेच्छों को ब्राह्मण या संन्यासी के रूप में मान्यता नहीं दी जा सकती, यह आन्दोलन सारे विश्व में परिव्याप्त होगा। यहाँ पर यह इंगित हुआ है कि यह विधि परिव्याप्त होगी और कृष्णभावनामृत से सारे जगत् को आप्लावित कर देगी।

मायावादी, कर्म-निष्ठ कुतार्किक-गण।

निन्दक, पाषण्डी यत पड़या अधम ॥29॥

सेइ सब महादक्ष धाञा पलाइल।

सेइ वन्या ता-सबारे छुड़िते नारिल ॥30॥

मायावादी-मायावादी दार्शनिक; कर्म-निष्ठ-सकाम कर्मी; कुतार्किक-गण-कुतर्की-गण; निन्दक-निन्दक; पाषण्डी–पाखण्डी, अभक्त; यत-सब; पड़या–विद्यार्थी; अधम–अधम वर्ग; सेइ

सब–वे सब; महा-दक्ष-अत्यन्त दक्ष (चालाक); धाञा-दौड़ना; पलाइल-चले गये; सेइ वन्या-वह बाढ़; ता-सबारे-वे सब; छुडिते-स्पर्श करना; नारिल-न कर सके।

अनुवाद

मायावादी, सकाम कर्मी, छद्म तार्किक, निन्दा करने वाले, अभक्त तथा निम्न श्रेणी के विद्यार्थी कृष्णभावनामृत आन्दोलन से दूर रहने में बड़े दक्ष होते हैं, अतएव कृष्णभावनामृत की बाढ़ उनका स्पर्श नहीं कर पाती।

तात्पर्य

बनारस के प्रकाशानन्द सरस्वती जैसे भूतकाल के मायावादी दार्शनिक की ही तरह आधुनिक मायावादी चैतन्य महाप्रभु के कृष्णभावनामृत आन्दोलन में रुचि नहीं रखते। वे इस भौतिक जगत् के महत्त्व को नहीं जानते; वे इसे मिथ्या मानते हैं और यह नहीं समझ पाते कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसका किस तरह उपयोग कर सकता है। वे निर्विशेष विचारों में इतने मग्न रहते हैं। कि समस्त आध्यात्मिक विविधता को वे भौतिक मान बैठते हैं। क्योंकि वे ब्रह्मज्योति जैसी भ्रान्त धारणा के आगे कुछ भी नहीं जानते, अतः वे यह नहीं समझ सकते कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण आध्यात्मिक हैं, अतएव भौतिक माया की धारणा से परे हैं। जब कभी कृष्ण स्वयं या भक्त रूप में अवतरित होते हैं, तब ये मायावादी दार्शनिक उन्हें सामान्य व्यक्ति मान लेते हैं। भगवद्गीता (9.11) में इसकी भर्त्सना की गई है :

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।

परं भावमजानन्तो मम भूत-महेश्वरम्॥

"जब मैं मनुष्य रूप में अवतरित होता हूँ, तो मूर्ख लोग मेरा उपहास करते हैं। वे सबके परमेश्वर के रूप में मेरे दिव्य स्वभाव को नहीं जानते।"

ऐसे अन्य ठग व्यक्ति भी होते हैं, जो अपने आपको भगवान् का अवतार बतलाकर भगवान् के अवतरित होने की घटना का दुरुपयोग करते हैं और इस तरह अबोध जनता को ठगते हैं। ईश्वर के अवतार को शास्त्रों में दिए गये कथनों की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए और उसे असाधारण कार्य करने चाहिए। हमें चाहिए कि किसी धूर्त को ईश्वर का अवतार न मानें, अपितु भगवान् की तरह कार्य करने की उसकी क्षमता की परीक्षा लें। उदाहरणार्थ, कृष्ण ने अर्जुन को भगवद्गीता का उपदेश दिया और अर्जुन ने भी कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मानकर हमारे समझने के लिए भगवान् से प्रार्थना की कि वे अपना विराट् रूप प्रकट करें। इस तरह उन्होंने कृष्ण की परीक्षा ली कि वे सचमुच भगवान् हैं या नहीं। इसी प्रकार हमें चाहिए कि ईश्वर के तथाकथित अवतार की परीक्षा हम आदर्श मापदण्ड के अनुसार करें। हमें चाहिए कि हम उसकी योगशक्तियों के प्रदर्शन से भ्रमित न होकर शास्त्रों के कथनानुसार ईश्वर के तथाकथित अवतार की परीक्षा लें। चैतन्य महाप्रभु को शास्त्रों में कृष्ण का अवतार कहा गया है, अतएव यदि कोई चैतन्य महाप्रभु की नकल करना चाहता है और अपने आपको अवतार घोषित करता है, तो उसे अपना अधिकार प्रमाणित करने के लिए शास्त्रों से प्रमाण प्रस्तुत करने चाहिए।

ताहा देखि' महाप्रभु करेन चिन्तन ।

जगडुबाइते आमि करिलुँ यतन ॥31॥

केह केह एड़ाइल, प्रतिज्ञा होइल भङ्ग ।

ता-सबा डुबैते पातिब किछु रङ्ग ॥32॥

ताहा देखि'–यह प्रगति देखकर; महाप्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन-करते हैं; चिन्तन–चिन्तन, सोच; जगत्-सारा संसार; डुबाइते-डूबाने का; आमि-मैंने; करिलुँ–प्रयास किया; यतन-प्रयास; केह केह-उनमें से कुछ; एड़ाइल-बच निकले; प्रतिज्ञा–प्रतिज्ञा; हइल–हो गये; भङ्ग-टूट गई; ता-सबा-वे सब; डुबाइते-उनको डुबाने की; पातिब सोच निकालूँगा; किछु-कुछ; रङ्ग-तरकीब।

अनुवाद

यह देखकर कि मायावादी तथा अन्य लोग पलायन कर रहे हैं, चैतन्य महाप्रभु ने सोचा, "मेरी इच्छा थी कि प्रत्येक व्यक्ति भगवत्प्रेम की इस बाढ़ में डूब जाए, किन्तु उनमें से कुछ लोग भाग निकले हैं। अतएव मैं उन्हें भी डुबाने का कोई उपाय निकालूँगा।"

तात्पर्य

यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण बात कही गई है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ऐसा मार्ग निकालना चाहते थे, जिससे वे मायावादियों तथा कृष्णभावनामृत आन्दोलन में रुचि न रखने वाले ऐसे ही अन्य लोगों को पकड़ सकें। यह आचार्य का लक्षण है। एक आचार्य, जो भगवान् की सेवा करने के लिए आता है, उससे यह उम्मीद नहीं की जाती कि वह घिसे-पिटे मार्ग पर चलेगा, क्योंकि उसे ऐसे मार्ग और साधन ढूँढने होंगे, जिनसे कृष्णभावनामृत का प्रसार हो सके। कभी-कभी ईर्ष्यालु लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन की इसलिए आलोचना करते हैं, क्योंकि इसमें भगवत्प्रेम वितरण हेतु लड़कों तथा लड़कियों को समान रूप से लगाया जाता है। वे यह नहीं जानते कि यूरोप तथा अमरीका जैसे देशों में लड़के तथा लड़कियाँ दोनों मुक्त रूप से परस्पर मिलते हैं, ये धूर्त तथा मूर्ख कृष्णभावनामृत में लगे लड़के-लड़कियों के परस्पर मिलने की आलोचना करते हैं। किन्तु इन धूर्तों

को यह सोचना चाहिए कि किसी समाज की प्रथाएँ सहसा नहीं बदली जा सकतीं। फिर भी लड़कों तथा लड़कियों दोनों को प्रचारक बनने की शिक्षा दी जाती है, इसलिए ये लड़कियाँ सामान्य लड़कियाँ नहीं रह जातीं, अपितु कृष्णभावनामृत का प्रचार करने वाले अपने भाइयों के समकक्ष ही होती हैं। इसलिए आध्यात्मिक कार्यों में लड़कों तथा लड़कियों दोनों को लगाना कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचार की दृष्टि से एक नीति है। जो ईर्ष्यालु मूर्ख लोग लड़कों तथा लड़कियों के परस्पर मिलने की आलोचना करते हैं, उन्हें अपनी मूर्खता से ही सन्तुष्ट रहना पड़ेगा, क्योंकि वे सोच ही नहीं सकते कि कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए किस तरह से इस कार्य के लिए उपयुक्त साधनों का उपयोग किया जाए। उनकी घिसी-पिटी विधियों से कृष्णभावनामृत का प्रसार नहीं हो सकेगा। इसीलिए हम जो कुछ कर रहे हैं, वह चैतन्य महाप्रभु की कृपा से पूर्ण है, क्योंकि उन्होंने ही कृष्णभावनामृत से दूर रहने वालों को पकड़ने के लिए एक मार्ग का आविष्कार करने के लिए अनुमोदन किया था।

एत बलि' मने किछु करिया विचार।

सन्यास-आश्रम प्रभु कैला अङ्गीकार॥ 33॥

एत बलि'-यह कहकर; मने-मन में; किछु-कुछ; करिया-किया; विचार-विचार; सन्यास-आश्रम-संन्यास आश्रम; प्रभु-प्रभु; कैला–किया; अङ्गीकार–स्वीकार।

अनुवाद

इस प्रकार महाप्रभु ने पूरी तरह विचार करने के बाद संन्यास आश्रम ग्रहण किया।

तात्पर्य

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को संन्यास ग्रहण करने की आवश्यकता न थी, क्योंकि वे साक्षात् भगवान् हैं। अतएव उन्हें जीवन के देहात्म बोध से कोई प्रयोजन नहीं था। श्री चैतन्य महाप्रभु आठों वर्षों तथा आश्रमों-अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास–में से किसी के साथ सम्बन्धित नहीं हैं। उन्होंने अपने आपको सर्वोपरि आत्मा के रूप में माना था। श्री चैतन्य महाप्रभु या इस मामले में कोई भी शुद्ध भक्त कभी भी अपने आपको जीवन के इन सामाजिक तथा आध्यात्मिक विभागों से नहीं जोड़ता, क्योंकि भक्त सदैव समाज की इन विविध श्रेणियों से परे होता है। तो भी भगवान् श्री चैतन्य ने इस आधार पर संन्यास ग्रहण करना स्वीकार किया कि जब वे संन्यासी बन जायेंगे, तो हर व्यक्ति उनका सम्मान करेगा और इससे हर व्यक्ति का मंगल होगा। यद्यपि उन्हें संन्यास ग्रहण करने की कोई आवश्यकता न थी, किन्तु उन्होंने उन लोगों के मंगल हेतु ऐसा किया जो उन्हें सामान्य मनुष्य मानते थे। उनके संन्यास ग्रहण करने का प्रमुख कारण मायावादी संन्यासियों का उद्धार करना था। यह इसी अध्याय में आगे स्पष्ट हो जायेगा।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने "मायावादी" शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है : "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जीवन की भौतिक अवधारणा से परे हैं। मायावादी वह है, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के शरीर को माया से बना हुआ मानता है और जो भगवान् के धाम को तथा उन तक पहुँचने की विधि, भक्ति को भी माया ही मानता है। मायावादी भक्ति के सारे साधनों को माया मानता है।" माया इस भौतिक स्थिति की सूचक है, जिसका विशेष लक्षण सकाम कर्मों की प्रतिक्रिया भुगतना है। मायावादी लोग भक्ति को ऐसा ही सकाम कर्म मानते हैं। उनके अनुसार जब भागवत् अर्थात् भक्तगण दार्शनिक चिन्तन से शुद्ध हो जायेंगे, तभी उनकी मुक्ति हो सकेगी। भक्ति के विषय में ऐसा तर्कवितर्क करने वाले लोग कुतार्किक (झूठे तार्किक) कहलाते हैं और जो लोग भक्ति को सकाम कर्म मानते हैं, वे कर्मनिष्ठ कहलाते हैं। जो लोग भक्ति की आलोचना करते हैं, वे निन्दक

कहलाते हैं। इसी प्रकार वे अभक्त, जो भक्ति-कार्यों को भौतिक मानते हैं, पाषण्डी कहलाते हैं और इसी प्रकार का दृष्टिकोण रखने वाले विद्वान अधम पडुया कहलाते हैं।

कुतार्किक, निन्दक, पाषण्डी तथा अधम पडुया—इन सबने श्री चैतन्य महाप्रभु के भगवत्प्रेम-विकास के आन्दोलन के लाभ से अपने आपको दूर रखा। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु को इन पर दया आई, जिसके कारण ही उन्होंने संन्यास ग्रहण करने का निश्चय किया, क्योंकि ये सब उन्हें संन्यासी के रूप में देखकर उनका सम्मान करेंगे। आज भी भारत में संन्यास आश्रम का आदर किया जाता है। यहाँ तक कि संन्यासी की वेशभूषा से ही भारतीय जनता में आदर भाव जगता है। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्ति सम्प्रदाय के प्रचार की सुविधा के लिए संन्यास स्वीकार किया, यद्यपि उन्हें आध्यात्मिक जीवन के इस चतुर्थ आश्रम में प्रवेश करने की कोई आवश्यकता न थी।

चब्बिश वत्सर छिला गृहस्थ-आश्रमे ।

पञ्च-विंशति वर्षे कैल यति-धर्मे ॥ 34॥

चब्बिश-चौबीस; वत्सर-वर्ष; छिला–वे रहे; गृहस्थ-गृहस्थ आश्रमे-आश्रम में; पञ्च–पाँच; विंशति-बीस; वर्षे वर्ष में; कैल–किया; यति-धर्मे–संन्यास आश्रम स्वीकार किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु चौबीस वर्षों तक गृहस्थ जीवन में रहे और पच्चीसवें वर्ष के आरम्भ में उन्होंने संन्यास आश्रम स्वीकार कर लिया।

तात्पर्य

आध्यात्मिक जीवन के चार आश्रम हैं-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास और प्रत्येक आश्रम के चार विभाग हैं। ब्रह्मचारी आश्रम के विभाग हैं, सावित्र्य, प्राजापत्य, ब्राह्म तथा बृहत्। गृहस्थाश्रम के विभाग हैं, वार्ता (वृत्ति वाले), सञ्चय (एकत्र करने वाले), शालीन (जो किसी से कुछ भी नहीं माँगते) तथा शिलोच्छन (जो धान के खेतों से अन्न बटोरते हैं)। इसी तरह वानप्रस्थाश्रम के विभाग हैं, वैखानस, वालखिल्य, औडम्बर तथा फेणप और संन्यासाश्रम के विभाग हैं, कुटीचक, बहूदक, हंस तथा निष्क्रिय। संन्यासियों के जिन दो प्रकारों का वर्णन श्रीमद्भागवत (1.13.26-27) में हुआ है, वे हैं धीर तथा नरोत्तम ।शकाब्द 1432 (1510 ई.) के जनवरी मास के अन्त में श्री चैतन्य महाप्रभु ने शंकर सम्प्रदाय के श्री केशव भारती से संन्यास आश्रम ग्रहण किया।

सन्यास करिया प्रभु कैला आकर्षण ।

यतेक पालाञाछिल तार्किकादिगण ॥ 35॥

सन्यास-संन्यास आश्रम; करिया–स्वीकार करके; प्रभु-प्रभु; कैला–किया; आकर्षण-आकर्षण; यतेक-सब; पालाञाछिल–भाग गये; तार्किक-आदि-गण-तर्कवादी लोग एवं ऐसे अन्य सभी।

अनुवाद

संन्यास आश्रम स्वीकार कर लेने पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबका ध्यान आकृष्ट किया, जो उनसे बचते फिरते थे, जिनमें से तार्किक लोग प्रमुख थे।

पड़या, पाषण्डी, कर्मी, निन्दकादि यत ।

तारा आसि' प्रभु-पाय हय अवनत ॥ 36॥

पड़या–विद्यार्थी; पाषण्डी-पाखण्डी; कर्मी-सकाम कर्मी; निन्दक-आदि-निन्दक आदि; यत-सब; तारा–वे; आसि-आकर; प्रभु-प्रभु के; पाय-चरणकमल; हय-हो गये; अवनत-शरण में आ गये।

अनुवाद

इस प्रकार विद्यार्थी, पाखण्डी, सकाम कर्मी तथा आलोचक-ये सभी भगवान् के चरणकमलों में आ-आकर आत्मसमर्पण करने लगे।

अपराध क्षमाइल, डुबिल प्रेम-जले ।

केबा एड़ाइबे प्रभुर प्रेम-महाजाले ॥37॥

अपराध-अपराध; क्षमाइल-क्षमा किया; डुबिल-लीन हो गये; प्रेम-जले-भगवत् प्रेम के सागर में; केबा-दूसरा कौन; एड़ाइबे-चला जायेगा; प्रभुर–प्रभु का; प्रेम–प्रिय; महा-जाले–महाजाल।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबको क्षमा प्रदान की और वे सभी भक्ति के सागर में निमग्न हो गये, क्योंकि ऐसा कोई भी नहीं था, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के अद्वितीय प्रेम रूपी जाल से बच सके।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु आदर्श आचार्य थे। आचार्य एक आदर्श शिक्षक होता है, जो प्रामाणिक शास्त्रों के प्रयोजन को जानता है, उनके आदर्शों के अनुसार ठीक आचरण करता है और अपने शिष्यों को इन्हीं सिद्धान्तों को ग्रहण करने की शिक्षा भी देता है। आदर्श आचार्य के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु सभी तरह के नास्तिकों तथा भौतिकतावादियों को वशीभूत करने के लिए उपाय निकालते रहते थे। प्रत्येक आचार्य के पास अपने आध्यात्मिक आन्दोलन के प्रचारार्थ विशेष साधन

होते हैं, जिससे लोग कृष्णभावनामृत में सम्मिलित हों। अतएव किसी एक आचार्य की विधि दूसरे आचार्य से भिन्न हो सकती है, किन्तु उनका चरम लक्ष्य एक ही रहता है। श्रील रूप गोस्वामी की संस्तुति है :

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ।

सर्वे विधि-निषेधा स्युरेतयोरेव किङ्कराः ।

एक आचार्य को ऐसा उपाय निकालना चाहिए, जिससे लोग किसी न किसी प्रकार से कृष्णभावना की ओर उन्मुख हों। सबसे पहले उन्हें कृष्णभावनाभावित बनना चाहिए और तब उन्हें सारे विधि-विधानों से धीरे-धीरे परिचित कराया जाना चाहिए। हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में श्री चैतन्य महाप्रभु की इसी नीति का अनुसरण करते हैं। उदाहरणार्थ, पाश्चात्य देशों में लड़के तथा लड़कियाँ मुक्त रूप से परस्पर मिलते-जुलते हैं, अतएव उन्हें कृष्णभावनामृत के प्रति आकर्षित करने के लिए उनकी आदतों तथा प्रथाओं के विषय में विशेष छूट देने की आवश्यकता है। आचार्य को ऐसा उपाय निकालना चाहिए कि जिससे सभी लोग भक्ति में दीक्षित हों। अतएव, मैं संन्यासी होते हुए भी कभी-कभी इन लड़कों तथा लड़कियों के विवाह कराने के कार्य में सम्मिलित होता हूँ, यद्यपि संन्यास के इतिहास में आज तक किसी भी संन्यासी ने अपने शिष्यों के विवाह में स्वयं भाग नहीं लिया है।

सबा निस्तारिते प्रभु कृपा-अवतार ।

सबा निस्तारिते करे चातुरी अपार ॥ 38॥

सबा–सब; निस्तारिते-उद्धार करने के लिए; प्रभु-भगवान्, प्रभु; कृपा-कृपा; अवतार–अवतार; सबा-सब; निस्तारिते-उद्धार करने हेतु; करे-किया; चातुरी-योजनाएँ: अपार-अपार, असीम।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए प्रकट हुए। अतएव उन्होंने उन्हें माया के प्रभाव से मुक्त कराने के लिए अनेक उपाय ढूँढ निकाले।

तात्पर्य

पतितात्माओं पर दया दिखाना आचार्य का कार्य है। इस सन्दर्भ में देश-काल-पात्र (स्थान, समय तथा व्यक्ति) पर विचार करना होता है। चूँकि हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में यूरोपीय तथा अमरीकी लड़के तथा लड़कियाँ साथ-साथ प्रचार करते हैं, अतएव अल्पज्ञ लोग आलोचना करते हैं कि वे बिना रोक-टोक के परस्पर मिलते हैं। यूरोप तथा अमरीका में लड़के तथा लड़कियाँ बिना रोक-टोक के मिलते-जुलते हैं और उन्हें समान अधिकार प्राप्त होते हैं; अतएव पुरुषों को स्त्रियों से बिल्कुल अलग रखना सम्भव नहीं है। फिर भी हम पुरुषों तथा स्त्रियों को भलीभाँति शिक्षा देते हैं कि किस तरह प्रचार-कार्य किया जाए और वे बहुत ही अच्छी तरह यह कार्य सम्पन्न करते हैं। हाँ, हम अवैध यौन सम्बन्ध का कड़ाई से निषेध करते हैं। जो लड़के तथा लड़कियाँ विवाहित नहीं हैं, उन्हें न तो एकसाथ सोने दिया जाता है, न साथ-साथ रहने दिया जाता है। हर मन्दिर में उनके रहने की पृथक्-पृथक् व्यवस्था है। गृहस्थ मन्दिर के बाहर रहते हैं, क्योंकि पति तथा पत्नी तक को मन्दिर में एकसाथ रहने की अनुमति नहीं दी जाती। इसके परिणाम बड़े ही आश्चर्यजनक हैं। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही श्री चैतन्य महाप्रभु एवं भगवान् कृष्ण के उपदेशों का प्रचार दुगने उत्साह के साथ करते हैं।

इस श्लोक में सबा निस्तारिते करे चातुरी अपार से यह इंगित होता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु हर एक का उद्धार करना चाहते थे। इसलिए यह सिद्धान्त बना है कि प्रचारक को शास्त्रों द्वारा अनुमोदित विधि-विधानों का कड़ाई से पालन करना चाहिए, किन्तु साथ ही ऐसा उपाय निकालना चाहिए, जिससे पतितों के उद्धार के लिए प्रचार-कार्य पूरे जोर-शोर के साथ चलता रहे।

तबे निज भक्त कैल यत म्लेच्छ आदि।

सबे एड़ाइल मात्र काशीर मायावादी ॥39॥

तबे-तत्पश्चात्; निज-अपना; भक्त-भक्त; कैल-परिवर्तित किया; यत-सब; म्लेच्छ-म्लेच्छ, जो वैदिक सिद्धान्तों का पालन नहीं करता; आदि-सूची में सबसे ऊपर; सबे-वे सब; एड़ाइल-बच गये; मात्र-मात्र; काशीर-वाराणसी; मायावादी-मायावादी।

अनुवाद

सभी लोग, यहाँ तक कि म्लेच्छ तथा यवन भी श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त बना लिए गये। केवल शंकराचार्य के निर्विशेषवादी अनुयायी (मायावादी) ही उनसे बचते रहे।

तात्पर्य

इस श्लोक में यह स्पष्ट इंगित हुआ है कि यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुसलमानों तथा अन्य म्लेच्छों को अपना भक्त बना लिया था, किन्तु शंकराचार्य के निर्विशेषवादी अनुयायी नहीं बदले जा सके। चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास आश्रम ग्रहण करने के बाद अनेक कर्मनिष्ठों, अर्थात् सकाम कर्म में लिप्त रहने वालों, सार्वभौम भट्टाचार्य जैसे महान् तार्किकों, प्रकाशानन्द सरस्वती जैसे निन्दकों, जगाई तथा माधाई जैसे पाषण्डियों (अभक्तों) और मुकुन्द तथा उसके मित्रों जैसे अधम

पड़ुयाओं (अधम विद्यार्थियों) को अपने सम्प्रदाय में परिवर्तित किया। ये सभी धीरे-धीरे भगवान् के भक्त बन गये, यहाँ तक कि पठान (मुसलमान) भी, किन्तु निर्विशेषवादियों को बदल पाना कठिन था, जो कि सबसे बुरे अपराधी थे, क्योंकि वे बड़ी ही कुशलता से चैतन्य महाप्रभु के उपायों से बच निकलते थे।

काशीर मायावादियों का वर्णन करते हुए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने बतलाया है कि जो लोग अनुभववादी ज्ञान से या प्रत्यक्ष इन्द्रियानुभूति से मोहग्रस्त हैं और इस तरह इस सीमित भौतिक जगत् को भी अपने भौतिक अनुमानों से मापने के लिए विचार करते हैं, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रत्यक्ष इन्द्रिय बोध से जानी जाने वाली प्रत्येक वस्तु माया या भ्रम है। वे यह मत बनाये रखते हैं कि यद्यपि परम सत्य इन्द्रिय बोध की परिधि से बाहर है, किन्तु उसमें कोई आध्यात्मिक विविधता या भोग नहीं रहता। काशीर मायावादियों के अनुसार आध्यात्मिक जगत् केवल शून्य है। वे न तो परम सत्य के पुरुष (व्यक्ति) रूप में विश्वास करते हैं, न ही आध्यात्मिक जगत् में उनके नाना प्रकार के कार्यों में विश्वास करते हैं। यद्यपि उनके पास उनके अपने ही तर्क होते हैं, जो बहुत सशक्त नहीं होते, किन्तु उन्हें परम सत्य के नाना प्रकार के कार्यों का कोई बोध नहीं होता। ये निर्विशेषवादी, जो शंकराचार्य के अनुयायी हैं, वे सामान्यतया काशीर मायावादी (वाराणसी में निवास करने वाले निर्विशेषवादी) कहलाते हैं।

वाराणसी के निकट निर्विशेषवादियों का एक अन्य समुदाय है, जो सारनाथ मायावादियों के नाम से जाना जाता है। वाराणसी शहर के बाहर सारनाथ नामक एक स्थान है, जहाँ एक विशाल बौद्ध स्तूप है। वहाँ बौद्धदर्शन के अनेक अनुयायी रहते हैं और वे सारनाथ मायावादी कहलाते हैं। सारनाथ के मायावादी वाराणसी के मायावादियों से भिन्न हैं, क्योंकि वाराणसी के मायावादी यह प्रचार करते हैं कि निर्विशेष ब्रह्म सत्य है, परन्तु भौतिक विविधता मिथ्या है; किन्तु सारनाथ के

मायावादी इस बात पर भी नहीं विश्वास करते कि परम सत्य या ब्रह्म माया के विपरित है। उनके अनुसार भौतिकतावाद ही परम सत्य की एकमात्र अभिव्यक्ति है।

वास्तव में काशीर तथा सारनाथ मायावादी दोनों एवं साथ ही अन्य दार्शनिक, जिन्हें आत्मा विषयक ज्ञान नहीं होता, निपट भौतिकतावाद के पक्षधर हैं। इनमें से किसी को भी परम सत्य या वैकुण्ठ के विषय में कोई ज्ञान नहीं होता। सारनाथ के मायावादी जैसे दार्शनिक, जो परम सत्य के आध्यात्मिक अस्तित्व के बारे में विश्वास नहीं करते, किन्तु भौतिक वैचित्र्य को ही सब कुछ मानते हैं, यह विश्वास नहीं करते कि प्रकृति दो प्रकार की है—अपरा (भौतिक) तथा परा (आध्यात्मिक)- जिनका वर्णन भगवद्गीता में मिलता है। वास्तव में न तो वाराणसी के, न ही सारनाथ के मायावादी अपने अल्पज्ञान के कारण भगवद्गीता के सिद्धान्तों को स्वीकारते हैं।

चूँकि ये मायावादी, जिन्हें पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता, भक्तियोग के सिद्धान्तों को नहीं समझ सकते, अतएव इन्हें उन अभक्तों की श्रेणी में रखना चाहिए, जो कृष्णभावनामृत आन्दोलन के विरोधी हैं। कभी-कभी इन मायावादियों द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले अवरोधों के कारण हमें बड़ी असुविधा होती है, किन्तु हम उनके तथाकथित दर्शन की परवाह नहीं करते, क्योंकि हम भगवद्गीता यथारूप में प्रतिपादित अपने दर्शन का प्रचार करते हैं और इससे हमें सफल परिणाम प्राप्त हुए हैं। ये दोनों प्रकार के मायावादी ऐसा सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं, मानो भक्ति उनके मानसिक चिन्तन का विषय हो और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भक्तियोग की विषयवस्तु माया की सृष्टि है और कृष्ण, भक्ति तथा भक्त भी माया हैं। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने ठीक कहा है- मायावादी कृष्णे अपराधी–"सारे मायावादी भगवान् कृष्ण के अपराधी हैं।" (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 17.129) कृष्णभावनामृत आन्दोलन को समझ पाना उनके लिए सम्भव नहीं है; अतएव हम उनके दार्शनिक निष्कर्षों की परवाह नहीं करते। ऐसे झगड़ालू मायावादी अपने तथाकथित तर्क को प्रस्तुत करने में

कितने ही दक्ष क्यों न हों, हम उन्हें हर तरह से परास्त करके अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन को आगे बढ़ाते जाते हैं। उनकी मानसिक कल्पना की उड़ान हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन की प्रगति को रोक नहीं सकती, क्योंकि यह पूर्णतया आध्यात्मिक है और ऐसे मायावादियों के नियंत्रण में नहीं है।

वृन्दावन याइते प्रभु रहिला काशीते ।

मायावादि-गण ताँरे लागिल निन्दिते ॥40॥

वृन्दावन-पवित्र स्थान वृन्दावन; याइते-वहाँ जाते समय; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; रहिला-रहे; काशीते-वाराणसी में; मायावादि-गण-मायावादी दार्शनिक; ताँरे-उनको; लगिल-आरम्भ किया; निन्दिते-उनकी निन्दा करना।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जाते समय वाराणसी से होकर गुजर रहे थे, तो मायावादी संन्यासी दार्शनिकों ने अनेक प्रकार से उनकी निन्दा की।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु को पूर्ण शक्ति के साथ कृष्णभावना का प्रचार करते समय अनेक मायावादी दार्शनिकों का सामना करना पड़ा। इसी प्रकार हमें भी विरोध करने वाले स्वामियों, योगियों, मायावादियों, वैज्ञानिकों, दार्शनिकों तथा अन्य मानसिक तर्कवादियों का सामना करना पड़ता है और भगवान् कृष्ण की कृपा से हम उन सबको बिना कठिनाई के परास्त करते जाते हैं।

सन्यासी हुइया करे गायन, नाचन ।

ना करे वेदान्त-पाठ, करे सङ्कीर्तन ॥41॥

सन्यासी-संन्यासी; हइया-ऐसी स्थिति स्वीकार करके; करे-करता है; गायन-गायन; नाचन-नृत्य; ना करे–नहीं करता; वेदान्त-पाठ-वेदान्त दर्शन का अध्ययन; करे सङ्कीर्तन-मात्र संकीर्तन करता है।

अनुवाद

(निंदकों ने कहा :) "संन्यासी होकर भी वह वेदान्त के अध्ययन में रुचि नहीं लेता, किन्तु इसके बदले नाचने और संकीर्तन करने में सदैव लगा रहता है।

तात्पर्य

इसे सौभाग्य कहें या दुर्भाग्य, हमें भी ऐसे मायावादी मिलते रहते हैं, जो हमारी कीर्तन-विधि की आलोचना करते हैं और हम पर अध्ययन में रुचि न रखने का दोष लगाते हैं। वे यह नहीं जानते कि हमने कितने ही ग्रंथों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है और हमारे मन्दिरों के अनुयायी इन्हें नियमित रूप से प्रातः, दोपहर और संध्या समय पढ़ते हैं। हम पुस्तकें लिखते और छापते रहते हैं और हमारे अनुयायी उन्हें पढ़ते हैं तथा विश्वभर में वितरित भी करते हैं। कोई भी मायावादी संप्रदाय इतनी पुस्तकें प्रस्तुत नहीं कर सकता, जितनी हमने की हैं, फिर भी वे हम पर दोषारोपण करते रहते हैं कि हम अध्ययन में रुचि नहीं रखते। ऐसे दोषारोपण पूर्ण रूप से गलत हैं। यद्यपि हम अध्ययन करते हैं, किन्तु मायावादियों की व्यर्थ की बातों का अध्ययन नहीं करते।

मायावादी संन्यासी न तो कीर्तन करते हैं, न ही नृत्य करते हैं। उनकी मुख्य शास्त्रीय आपत्ति यह है कि यह कीर्तन तथा नृत्य की विधि तौर्यत्रिक है, जिससे यह सूचित होता है कि संन्यासी को ऐसे कार्यों से पूरी तरह बचना चाहिए और अपना समय वेदान्त अध्ययन में लगाना चाहिए। वास्तव

में ऐसे व्यक्ति यह समझते ही नहीं कि वेदान्त का तात्पर्य क्या है। भगवद्गीता (15.15) में कृष्ण कहते हैं-वेदैश्च सर्वैर् अहम् एव वेद्यो वेदान्तकृद् वेदविद एव चाहम्- "सभी वेदों के द्वारा मुझे जाना जाता है। निस्सन्देह मैं वेदान्त का संग्रह करने वाला हूँ और मैं ही वेदों का ज्ञाता हूँ।"भगवान् कृष्ण ही वेदान्त के वास्तविक संग्रहकर्ता हैं और वे जो कुछ भी कहते हैं, वह वेदान्त दर्शन है। यद्यपि मायावादी लोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा प्रस्तुत किये गये उस वेदान्त के ज्ञान से विहीन होते हैं, जो श्रीमद्भागवत के दिव्य रूप में है, फिर भी उन्हें अपने अध्ययन पर बड़ा गर्व रहता है। उनके द्वारा वेदान्त दर्शन को विकृत रूप में प्रस्तुत किये जाने के बुरे प्रभावों का पूर्वानुमान करके ही श्रील व्यासदेव ने वेदान्त-सूत्र के भाष्य के रूप में श्रीमद्भागवत का संकलन किया। श्रीमद्भागवत, भाष्योऽयं ब्रह्मसूत्राणाम् है; दूसरे शब्दों में, ब्रह्मसूत्र के सूत्रों में निहित समस्त वेदान्त दर्शन का वर्णन श्रीमद्भागवत के पृष्ठों में विस्तारपूर्वक हुआ है। इस तरह वेदान्त दर्शन का सच्चा प्रतिपादक वह कृष्णभावनाभावित व्यक्ति है, जो सदैव भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत जैसे ग्रंथों का अध्ययन करता है और उन्हें समझता है तथा इन ग्रंथों के तात्पर्यों की शिक्षा सारे विश्व को देता है। मायावादी लोगों को वेदान्त दर्शन पर एकाधिकार रखने का अत्यधिक गर्व है, किन्तु भक्तों के पास वेदान्त पर उनके स्वाभाविक भाष्य यथा श्रीमद्भागवत तथा आचार्यों द्वारा लिखित अन्य भाष्य हैं। गौड़ीय वैष्णवों की टीका गोविन्द भाष्य कहलाती है।

मायावादियों का यह आरोप कि भक्तगण वेदान्त का अध्ययन नहीं करते, पूर्ण रूप से गलत है। मायावादी लोगों को यह पता नहीं कि कीर्तन करना, नृत्य करना तथा श्रीमद्भागवत के सिद्धान्तों का प्रचार करना, जिसे भागवत् धर्म कहते हैं, वेदान्त के अध्ययन के समकक्ष ही है। चूँकि वे सोचते हैं कि वेदान्त दर्शन का पठन संन्यासियों का एकमात्र कार्य है और चूँकि उन्होंने चैतन्य महाप्रभु को ऐसा प्रत्यक्ष अध्ययन करते नहीं पाया, इसलिए वे उनकी आलोचना करने लगे। श्रीपाद शंकराचार्य

ने वेदान्त दर्शन के अध्ययन पर विशेष बल दिया है। वेदान्त वाक्येषु सदा रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्त:-"केवल कौपीन बाँधने वाले पक्के संन्यासी को चाहिए कि वह वेदान्त-सूत्र के दार्शनिक कथनों का सदा आनन्द ले। ऐसे संन्यासी को अत्यन्त भाग्यशाली समझना चाहिए।" मायावादियों ने वाराणसी में श्री चैतन्य महाप्रभु की इसलिए निन्दा की, क्योंकि उनका आचरण इन सिद्धान्तों के अनुसार नहीं था। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन मायावादी संन्यासियों पर विशेष अनुग्रह किया और प्रकाशानन्द सरस्वती तथा सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ वेदान्त शास्त्रार्थ द्वारा उनका उद्धार किया।

मूर्ख सन्यासी निज-धर्म नाहि जने।

भावुक हइया फेरे भावुकेर सने ॥42॥

मूर्ख-मूर्ख, अशिक्षित; सन्यासी-संन्यासी; निज-धर्म-निजी कर्तव्य; नाहि-नहीं; जाने-जानता; भावुक-भावुक; हइया-होकर; फेरे-घूमता फिरता है; भावुकेर-दूसरे भावुक व्यक्तियों के साथ; सने-साथ।

अनुवाद

यह चैतन्य महाप्रभु तो अनपढ़ संन्यासी है, अतएव वह अपने वास्तविक कर्म को नहीं जानता। वह मात्र भावों में बहकर अन्य भावुकों के साथ इधर-उधर घूमता रहता है।"

तात्पर्य

मूर्ख मायावादी यह नहीं जानते कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन दिव्य विज्ञान के ठोस दर्शन पर आधारित है। इसलिए वे इस गलत निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। कि जो नाचते तथा कीर्तन करते हैं,

उनमें दार्शनिक ज्ञान नहीं होता है। किन्तु जो वास्तव में कृष्णभावनाभावित हैं, उन्हें वेदान्त दर्शन के सार का पूर्ण ज्ञान होता है, क्योंकि वे वेदान्त दर्शन के वास्तविक भाष्य श्रीमद्भागवत का अध्ययन करते हैं और भगवद्गीता यथारूप में प्राप्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वास्तविक वचनों का पालन करते हैं। भागवत्दर्शन या भागवत् धर्म को समझने के बाद वे आध्यात्मिक रूप से पूर्णतया सचेत या कृष्णभावनाभावित हो जाते हैं, अतएव उनका नाचना और कीर्तन करना भौतिक धरातल पर नहीं, बल्कि आध्यात्मिक धरातल पर होता है। यद्यपि सारे लोग साधारण रूप से 'हरे कृष्ण वालों के नाम से लोकप्रिय इन भक्तों के भावपूर्ण कीर्तन और नृत्य की प्रशंसा करते हैं, किन्तु मायावादी इन कार्यों को अपने अल्पज्ञान के कारण समझ नहीं पाते।

ए सब शुनिया प्रभु हासे मने मने ।

उपेक्षा करिया कारो ना कैल सम्भाषणे ॥43॥

ए सब-ये सब; शुनिया-सुनकर; प्रभु-प्रभु; हासे-हँस पड़े; मने मने-अपने मन में; उपेक्षा-उपेक्षा; करिया-करके; कारो-किसी के साथ; न-नहीं; कैल-किया; सम्भाषणे-बातचीत, वार्तालाप।

अनुवाद

ये सारी निन्दा सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु मन में हँसने लगे। इन सारे दोषारोपणों को अस्वीकार करते हुए उन्होंने मायावादियों से बात नहीं की।

तात्पर्य

कृष्णभावनाभावित भक्त के रूप में हम मायावादी दार्शनिकों से बातें करके अपना मूल्यवान समय व्यर्थ नष्ट करना नहीं चाहते, किन्तु जब भी ऐसा अवसर आता है, हम बड़े ही उत्साह और सफलता के साथ उन्हें अपना दर्शन बतलाकर शान्त करते हैं।

उपेक्षा करिया कैल मथुरा गमन।

मथुरा देखिया पुनः कैल आगमन ॥44॥

उपेक्षा–उपेक्षा करके; करिया-ऐसा करने से; कैल–किया; मथुरा-मथुरा नगरी; गमन-यात्रा करके; मथुरा-मथुरा; देखिया-दर्शन करने के बाद; पुनः-फिर; कैल आगमन-वापस आये।

अनुवाद

इस प्रकार वाराणसी-मायावादियों की निन्दा की उपेक्षा करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु मथुरा की ओर आगे बढ़े और मथुरा जाने के बाद वे पुनः उस स्थिति का सामना करने के लिए लौट आये।

तात्पर्य

भगवान् चैतन्य महाप्रभु जब पहली बार वाराणसी आये, तो उन्होंने मायावादी दार्शनिकों से बात नहीं की, किन्तु उन सबको वेदान्त के वास्तविक प्रयोजन के प्रति आश्वस्त करने के उद्देश्य से वे मथुरा से फिर वाराणसी लौट आये।

काशीते लेखक शूद्र-श्रीचन्द्रशेखर।

ताँर घरे रहिला प्रभु स्वतन्त्र ईश्वर ॥45॥

काशीते-वाराणसी में; लेखक-लेखक; शूद्र-शूद्र कुल में उत्पन्न; श्री-चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर; ताँर घरे-उसके घर में; रहिला-रहे; प्रभु–महाप्रभु; स्वतन्त्र–स्वतन्त्र; ईश्वर-परम नियन्ता।

अनुवाद

इस बार श्री चैतन्य महाप्रभु चन्द्रशेखर नामक शूद्र या कायस्थ के घर पर रुके, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में वे पूर्णतया स्वतन्त्र हैं।

तात्पर्य

इस बार श्री चैतन्य महाप्रभु चन्द्रशेखर नामक एक कर्मचारी के घर रुके, यद्यपि संन्यासी से यह आशा नहीं की जाती कि वह किसी शूद्र के घर पर निवास करेगा। पाँच सौ वर्ष पूर्व, विशेषतया बंगाल में, यह प्रथा थी कि ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति ही ब्राह्मण माना जाता था और शेष सारे लोग, जो अन्य कुलों में यहाँ तक कि क्षत्रिय तथा वैश्य जैसी उच्च जातियों में भी-जन्म लेते थे, वे शूद्र अब्राह्मण कहलाते थे। इसलिए यद्यपि चन्द्रशेखर उत्तरी भारत के एक कायस्थ परिवार का एक क्लर्क था, किन्तु वह शूद्र माना जाता था। इसी प्रकार सुवर्ण वणिक जाति के वैश्य बंगाल में शूद्र माने जाते थे। यहाँ तक कि वैद्य, जो सामान्यतया चिकित्सक होते थे, वे भी शूद्र माने जाते थे। किन्तु चैतन्य महाप्रभु को यह बनावटी सिद्धान्त मान्य न था, जिसे कुछ स्वार्थी लोगों ने समाज में चालू कर दिया था। बाद में कायस्थ, वैद्य और वणिक सभी लोग तथाकथित ब्राह्मणों के विरोध के बावजूद भी जनेऊ धारण करने लगे।

चैतन्य महाप्रभु के समय से पहले, बंगाल का राजा बल्लाल सेन निजी ईर्ष्या के कारण, सुवर्ण वणिक जाति की भर्त्सना करता था। यह जाति बंगाल की अत्यन्त धनवान जाति है, क्योंकि ये साहूकार हैं और सोने-चांदी का व्यापार करते हैं। इसलिए बल्लाल सेन सुवर्णवणिक साहूकारों

से धन उधार लेता था। किन्तु जब वह दीवालिया हो गया, तो सुवर्णवणिक साहूकारों ने उसे धन देना बन्द कर दिया। फलतः वह नाराज हो गया और उसने समूचे सुवर्णवणिक समाज की शूद्र जाति कहकर भर्त्सना की। उसने ब्राह्मणों को भी प्रेरित किया कि वे सुवर्णवणिकों को वेदानुयायी न मानें, किन्तु कुछ ब्राह्मणों ने उसका कहना माना और कुछ ब्राह्मणों ने नहीं माना। ब्राह्मणों में भी मतभेद हो गया, अतएव जिन लोगों ने सुवर्णवणिक जाति का समर्थन किया उन्हें भी ब्राह्मण जाति से निकाल दिया गया। आज भी वही पक्षपात चल रहा है।

आज भी बंगाल में ऐसे बहुत से वैष्णव परिवार हैं, जो जन्मजात ब्राह्मण नहीं हैं, किन्तु वैष्णव तन्त्रों के अनुसार शिष्यों को दीक्षा देने और यज्ञोपवतीत प्रदान करने का कार्य आचार्यों की भाँति करते हैं। उदाहरणार्थ, ठाकुर रघुनन्दन आचार्य, ठाकुर कृष्णदास, नवनी होडा तथा रसिकानन्द देव (श्यामानन्द प्रभु के शिष्य) के परिवारों में यज्ञोपवीत संस्कार होता है, जैसाकि कट्टर जाति-गोस्वामियों में होता है और यह प्रथा विगत तीन या चार सौ वर्षों से चली आ रही है। वे ब्राह्मण परिवारों में उत्पन्न लोगों को अपना शिष्य बनाते हैं और वे प्रामाणिक गुरु हैं और विग्रह के साथ शालग्राम शिला की पूजा करते हैं। अभी तक यह शालग्राम-शिला की पूजा हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में शुरू नहीं की गई है, किन्तु शीघ्र ही यह हमारे मन्दिरों में अर्चना-मार्ग (अर्चाविग्रह पूजा) के अभिन्न अंग के रूप में शुरू की जायेगी।

तपन-मिश्रेर घरे भिक्षा-निर्वाहण ।

सन्न्यासीर सङ्गे नाहि माने निमन्त्रण ॥46॥

तपन-मिश्रेर–तपन मिश्र के; घरे-घर में; भिक्षा–भिक्षा लेकर; निर्वाहण-निर्वाह किया; सन्न्यासीर–अन्य मायावादी संन्यासियों के साथ; सङ्गे-उसकी संगति में; नाहि-कभी नहीं; माने–स्वीकार किया; निमन्त्रण-निमन्त्रण।

अनुवाद

सैद्धान्तिक तौर पर श्री चैतन्य महाप्रभु तपन मिश्र के घर पर भोजन करते थे। वे न तो अन्य संन्यासियों से मिलते-जुलते थे, न ही उनका निमंत्रण स्वीकार करते थे।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का यह आदर्श आचरण सिद्ध करता है कि वैष्णव संन्यासी न तो मायावादी संन्यासियों का निमंत्रण स्वीकार कर सकता है, न उनसे घुलमिल सकता है।

सनातन गोसाञि आसि' ताँहाइ मिलिला ।

ताँर शिक्षा लागि' प्रभु दु-मास रहिला ॥47॥

सनातन-सनातन; गोसाञि-एक महान् भक्त; आसि'-वहाँ आकर; ताँहै-वहाँ वाराणसी में; मिलिल-उनसे मिले; ताँर-उनकी; शिक्षा-शिक्षा; लागि'–के कारण; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; दु-मास-दो मास; रहिला-वहाँ रहे।

अनुवाद

जब सनातन गोस्वामी बंगाल से आये, तो वे श्री चैतन्य महाप्रभु से तपन मिश्र के ही घर पर मिले थे, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें भक्ति की शिक्षा देने के लिए लगातार दो मास तक रहे थे।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को गुरु-शिष्य परम्परा में शिक्षा प्रदान की। सनातन गोस्वामी संस्कृत तथा अन्य भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान थे, किन्तु जब तक उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु से उपदेश प्राप्त नहीं किया, तब तक उन्होंने वैष्णव आचरण के विषय में कुछ भी नहीं लिखा। उनकी अत्यन्त सुप्रसिद्ध पुस्तक हरिभक्ति विलास श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के अनुसार लिखी गई, जिसमें वैष्णवों के लिए निर्देश दिये गये हैं। इस पुस्तक में सनातन गोस्वामी ने निश्चित निर्देश दिया है कि प्रामाणिक गुरु द्वारा समुचित दीक्षा प्राप्त करने से मनुष्य तुरन्त ब्राह्मण बन सकता है। इस सन्दर्भ में वे कहते हैं।

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रस-विधानतः ।

तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥

जिस प्रकार रासायनिक प्रक्रिया द्वारा पारा मिलाने से काँसा सोने में बदल जाता है, उसी प्रकार प्रामाणिक गुरु से भलीभाँति शिक्षा प्राप्त करके तथा दीक्षा लेकर व्यक्ति तुरन्त ब्राह्मण बन सकता है। कभी-कभी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न व्यक्ति इसका विरोध करते हैं, किन्तु इस सिद्धान्त के विरुद्ध उनके पास कोई प्रबल तर्क नहीं है। कृष्ण तथा उनके भक्त की कृपा से मनुष्य के जीवन में परिवर्तन हो सकता है। श्रीमद्भागवत में जहाति बन्धम् तथा शुद्ध्यन्ति जैसे शब्दों से इसकी पुष्टि होती है। जहाति बन्धम् बतलाता है कि जीव विशेष प्रकार के शरीर के कारण बद्ध होता है। शरीर निश्चय ही एक बाधा है, किन्तु शुद्ध भक्त की संगति करके तथा उसके उपदेशों पर चलकर इस अवरोध से बचा जा सकता है। मनुष्य भक्त के कड़े मार्गदर्शन में दीक्षित होकर नियमित ब्राह्मण बन सकता है। श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि किस तरह शुद्ध भक्त की संगति से एक अ-ब्राह्मण

ब्राह्मण में बदल सकता है। प्रभविष्णवे नमः- भगवान् विष्णु इतने शक्तिमान हैं कि वे जो चाहें कर सकते हैं। अतएव भगवान् के शुद्ध भक्त के मार्गदर्शन में रहने वाले भक्त के शरीर को बदलना विष्णु के लिए कोई कठिन कार्य नहीं है।

तौरे शिखाइला सब वैष्णवेर धर्म ।

भागवत-आदि शास्त्रेर व्रत गूढ़ मर्म ॥48॥

तौरे–उनको (सनातन गोस्वामी को); शिखाइला–भगवान् ने सिखाया; सब-सब; वैष्णवेर-वैष्णवों का; धर्म-धर्म; भागवत-श्रीमद्भागवत; आदि-शुरू करके; शास्त्रेर-प्रामाणिक शास्त्रों का; व्रत-सब; गूढ़-गूढ़; मर्म-मर्म, रहस्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने गूढ़ निर्देशों को प्रकट करने वाले श्रीमद्भागवत जैसे शास्त्रों के आधार पर सनातन गोस्वामी को भक्त के सभी नियमित कार्यों के विषय में शिक्षा दी।

तात्पर्य

परम्परा पद्धति में प्रामाणिक गुरु से प्राप्त उपदेशों को प्रामाणिक वैदिक शास्त्रों पर भी आधारित होना चाहिए। जो व्यक्ति परम्परा में आता है, वह मनमाना आचरण नहीं कर सकता। चैतन्य महाप्रभु के वैष्णव सम्प्रदाय में आने वाले ऐसे अनेक तथाकथित अनुयायी, जो शास्त्रों के प्रमाणों का पालन नहीं करते, वे अपसम्प्रदाय माने जाते हैं, जिसका अर्थ है "सम्प्रदाय से विलग। इनमें से कुछ समूह आउल, बाउल, कर्ताभजा, नेडा, दरवेश, सांइ, सहजिया, सखीभेकी, स्मार्त,

जातगोसांई, अतिवाड़ी, चूड़ाधारी तथा गौरांग-नागरी कहलाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु की परम्परा का दृढ़ता से पालन करने वालों को इन अपसम्प्रदायों की संगति नहीं करनी चाहिए।

जिसने प्रामाणिक गुरु से शिक्षा प्राप्त नहीं की, वह वैदिक साहित्य को समझ नहीं सकता। इस बात पर बल देने के लिए भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते समय स्पष्ट कहा था कि तुम मेरे भक्त तथा अन्तरंग सखा हो, इसीलिए तुम भगवद्गीता के रहस्य को समझ सकते हो। अतएव निष्कर्ष यह निकलता है कि जो व्यक्ति प्रामाणिक शास्त्रों के रहस्य को जानना चाहता है, उसे प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए, उससे विनीत भाव से सुनना चाहिए तथा उसकी सेवा करनी चाहिए। तभी शास्त्रों का तात्पर्य समझ में आ सकेगा। वेदों में कहा गया है (श्वेताश्वतर उपनिषद् 6.23) :

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।

तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

"शास्त्रों का वास्तविक तात्पर्य उसे प्रकट हो पाता है, जो परमात्मा तथा गुरु दोनों में अविचल श्रद्धा रखता है।" श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का उपदेश है-साधु-शास्त्र-गुरु-वाक्य, हृदये करिया ऐक्य–अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि आध्यात्मिक जीवन के वास्तविक उद्देश्य को समझने के लिए साधु, शास्त्र तथा गुरु के उपदेशों को माने । न तो साधु (या वैष्णव) न ही प्रामाणिक गुरु ऐसी कोई बात कहता है, जो प्रामाणिक शास्त्रों की परिधि में न हो। इस तरह प्रामाणिक शास्त्रों के वचन प्रामाणिक गुरु तथा साधुओं के वचनों के ही अनुरूप होते हैं। अतएव ज्ञान के इन तीन महत्त्वपूर्ण स्रोतों के अनुसार ही आचरण करना चाहिए।

इतिमध्ये चन्द्रशेखर, मिश्र-तपन ।

दुःखी हा प्रभु-पाय कैल निवेदन ॥49॥

इति-मध्ये-इस दौरान; चन्द्रशेखर-चन्द्रशेखर नामक क्लर्क; मिश्र-तपन-और तपन मिश्र; दुःखी ह–अत्यन्त दु:खी होकर; प्रभु-पाय-भगवान् के चरणकमलों में; कैल-किया; निवेदन-एक अनुरोध।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु सनातन गोस्वामी को उपदेश दे रहे थे, तो चन्द्रशेखर तथा तपन मिश्र दोनों ही अत्यन्त दुःखी हुए। अतएव उन्होंने भगवान् के चरणों में एक निवेदन किया।

कतेक शुनिब प्रभु तोमार निन्दन ।

ना पारि सहिते, एबे छाड़िब जीवन ॥50॥

कतेक-कितना; शुनिब-हम सुनेंगे; प्रभु-हे प्रभु; तोमार-आपकी; निन्दन-निन्दा; ना पारि-हम समर्थ नहीं हैं; सहिते-सहन करने के; एबे-अब; छाड़िब-त्याग देंगे; जीवन-जीवन।

अनुवाद

हम लोग कब तक आपके आचरण का विरोध करने वाले इन आलोचकों द्वारा की जा रही निन्दा को सहन करें? ऐसी निन्दा सुनने से तो यही अच्छा होगा कि हम अपने प्राण त्याग दें।

तात्पर्य

नियमित वैष्णव आचरण के सम्बन्ध में श्री चैतन्य महाप्रभु का सबसे महत्त्वपूर्ण आदेश यह है कि वैष्णव को वृक्ष के समान सहिष्णु तथा तृण के समान विनीत होना चाहिए।

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

“मनुष्य को चाहिए कि अपने आपको रास्ते में पड़ी हुई घास से भी तुच्छ मानकर विनीत भाव से भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करे। उसे वृक्ष से भी अधिक सहनशील तथा मिथ्या प्रतिष्ठा की भावना से रहित होना चाहिए और अन्यों को सम्मान देने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए। ऐसी मनोदशा में वह भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन निरन्तर कर सकता है।” इतने पर भी, इन आदेशों को देने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगाई तथा माधाई के दुर्व्यवहार को सहन नहीं किया। जब उन दोनों ने नित्यानन्द प्रभु पर आघात किया, तो वे तुरन्त ही क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने उन दोनों को मार डालना चाहा। केवल नित्यानन्द प्रभु की कृपा के कारण ही वे दोनों बच सके। मनुष्य को अपने निजी आचरण में अत्यन्त विनीत होना चाहिए। वैष्णव को अपमानित होने पर भी सहिष्णु बना रहना चाहिए और क्रुद्ध नहीं होना चाहिए। किन्तु यदि किसी के गुरु या अन्य वैष्णव की निन्दा हो रही हो, तो उसे क्रोध से आग-बबूला हो जाना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने आचरण द्वारा यह करके दिखलाया था। मनुष्य को किसी वैष्णव की निन्दा के प्रति सहिष्णु नहीं होना चाहिए और इन तीनों में से एक कार्य तुरन्त करना चाहिए। यदि कोई किसी वैष्णव की निन्दा कर रहा है, तो उसे तर्कों से तथा उच्चतर प्रमाण से रोक देना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता, तो उसे वहीं पर अपने प्राण दे देने चाहिए। किन्तु यदि वह ऐसा भी नहीं कर सकता, तो उसे वहाँ से चले जाना चाहिए। जब श्री चैतन्य महाप्रभु बनारस अर्थात् काशी में थे, तो मायावादी संन्यासी यह कहकर अनेक प्रकार से उनकी निन्दा करते थे कि संन्यासी होकर भी वे कीर्तन तथा नृत्य में लगे रहते हैं। तपन मिश्र तथा चन्द्रशेखर ने यह आलोचना सुनी, तो उनके लिए यह असह्य हो गया, क्योंकि वे चैतन्य महाप्रभु के महान् भक्त थे। किन्तु वे इसे रोक नहीं पाये, अतएव उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु से

निवेदन किया कि अब उनसे यह निन्दा सही नहीं जाती, अतएव उन्होंने अपने प्राण छोड़ने का निश्चय किया है।

तोमारे निन्दये यत सन्यासीर गण ।

शुनिते ना पारि, फाटे हृदय-श्रवण ॥51॥

तोमारे-आपकी; निन्दये-निन्दाएँ; यत-सब; सन्यासीर गण-मायावादी संन्यासी गण; शुनिते-सुनने के लिए; ना-नहीं; पारि-सहन करना; फाटे-फट जाते हैं; हृदय-हमारे हृदय; श्रवण-इस निन्दा को सुनते सुनते।

अनुवाद

"सारे मायावादी संन्यासी आपकी आलोचना कर रहे हैं। हम ऐसी आलोचना सहन नहीं कर सकते, क्योंकि यह निन्दा हमारे हृदयों को विदीर्ण कर रही है।"

तात्पर्य

यह कृष्ण तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति वास्तविक प्रेम की अभिव्यक्ति है। वैष्णवों की तीन कोटियाँ हैं-कनिष्ठ अधिकारी, मध्यम अधिकारी तथा उत्तम अधिकारी। कनिष्ठ अधिकारी अर्थात् वैष्णव जीवन की निम्नतम अवस्था में रहने वाले वैष्णव को शास्त्रों में दृढ़ विश्वास होता है, किन्तु वह उनके निष्कर्षों से परिचित नहीं रहता। दूसरे स्तर का भक्त अर्थात् मध्यम अधिकारी शास्त्रों के निष्कर्षों से पूर्णतया परिचित होता है और उसे अपने गुरु तथा भगवान् में अचल श्रद्धा होती है। अतएव वह अभक्तों से बचता है और सरल व्यक्तियों को उपदेश देता है। किन्तु महाभागवत् या उत्तम अधिकारी जो कि भक्ति की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त होता है, वह किसी को भी वैष्णव

नियमों के विरुद्ध नहीं पाता, क्योंकि वह अपने अतिरिक्त हर एक को वैष्णव मानता है। श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेश का सार यही है कि मनुष्य अपने आपको एक वृक्ष से अधिक सहिष्णु समझे और अपने आपको मार्ग में पड़े हुए तिनके से भी तुच्छ माने (तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना)। किन्तु भले ही कोई भक्त उत्तम भावगत पद को प्राप्त हो, उसे प्रचारक बनने के लिए मध्यम अधिकारी पद तक नीचे उतरना होगा, क्योंकि प्रचारक को अन्य वैष्णव की निन्दा सहन नहीं करनी चाहिए। यद्यपि कनिष्ठ अधिकारी भी ऐसी निन्दा सहन नहीं कर सकता, किन्तु वह ऐसी निन्दा को शास्त्रीय प्रमाणों का उद्धरण देकर रोक पाने में समर्थ नहीं होता। इसीलिए चन्द्रशेखर तथा तपन मिश्र को कनिष्ठ अधिकारी समझना होगा, क्योंकि वे बनारस के संन्यासियों के तर्कों का खण्डन नहीं कर पाये। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु से कार्यवाही करने के लिए निवेदन किया, क्योंकि उन्हें लगा कि वे ऐसी आलोचना सहन नहीं कर सकते, भले ही वे इसे रोक नहीं सकते थे।

इहा शुनि रहे प्रभु ईषत् हासिया ।

सेइ काले एक विप्र मिलिल आसिया ॥52॥

इहा-यह; शुनि–सुनकर; रहे-रहे; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; ईषत्-थोड़ा सा; हासिया-हँसकर; सेइ काले-उस समय; एक-एक; विप्र-ब्राह्मण; मिलिल-मिला; आसिया-वहाँ आकर।

अनुवाद

जब तपन मिश्र तथा चन्द्रशेखर इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु से बातें कर रहे थे, तो वे थोड़ा मुसकाये और मौन रहे। उसी समय एक ब्राह्मण उनसे मिलने आया।

तात्पर्य

क्योंकि स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु की निन्दा की गई थी, अतएव उन्हें खेद नहीं हुआ और वे हँस रहे थे। यह आदर्श वैष्णव आचरण है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आलोचना सुनकर क्रुद्ध न हो, किन्तु यदि अन्य वैष्णवों की आलोचना हो रही हो, तो उसे पूर्वकथित विधि से कार्यवाही करनी चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु तपन मिश्र तथा चन्द्रशेखर नामक अपने शुद्ध भक्तों पर अतीव कृपालु थे, अतएव उनकी कृपा से वहाँ पर वह ब्राह्मण तुरन्त आया। भगवान् ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता से अपने भक्तों की प्रसन्नता के लिए ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी।

आसि' निवेदन करे चरणे धरिया ।

एक वस्तु मागों, देह प्रसन्न हइया ॥53॥

आसि'-वहाँ आकर; निवेदन-निवेदन; करे-किया; चरणे-चरणकमलों को; धरिया-पकड़कर; एक-एक; वस्तु-वस्तु; मागों-आपसे माँगता हूँ; देह-कृपया मुझे दो; प्रसन्न–प्रसन्न होकर; हइया-होकर।

अनुवाद

वह ब्राह्मण तुरन्त ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़ा और प्रार्थना करने लगा कि वे प्रसन्न होकर उसके प्रस्ताव को स्वीकार करें।

तात्पर्य

वैदिक आदेश है- तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेनसेवया—मनुष्य को अपने गुरुजन के पास विनीत भाव से जाना चाहिए (भगवद्गीता 4.34)। अपने से बड़े गुरुजन को ललकारा नहीं जा सकता, प्रत्युत अत्यन्त विनीत होकर गुरु अथवा वरिष्ठ जनों के समक्ष अपना सुझाव रखा जा सकता

है। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी आचरण से आदर्श शिक्षक हैं और उन्हीं की तरह उनके सारे शिष्य भी हैं। इस तरह इस ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु की संगति से शुद्ध होकर इन सिद्धान्तों का पालन करते हुए उनके समक्ष अपना प्रस्ताव रखा। वह श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़ा और इस तरह बोला।

सकल सन्न्यासी मुञि कैनु निमन्त्रण ।

तुमि यदि आइस, पूर्ण हय मोर मन ॥54॥

सकल-सब; सन्न्यासी-संन्यासी; मुञि-मैं; कैनु–किया; निमन्त्रण-निमंत्रण दिया; तुमि-आप; यदि-यदि; आइस-आयें; पूर्ण–पूर्ण; हय-हो; मोर-मेरा; मन-मन।

अनुवाद

"हे प्रभु, मैंने बनारस के सारे संन्यासियों को अपने घर पर आमन्त्रित किया है। यदि आप मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर लें, तो मेरी इच्छा पूर्ण हो जायेगी।"

तात्पर्य

यह ब्राह्मण जानता था कि उस समय बनारस में श्री चैतन्य महाप्रभु ही एकमात्र वैष्णव संन्यासी थे और अन्य सभी मायावादी थे। गृहस्थ का यह धर्म है कि वह कभी-कभी संन्यासियों को घर पर भोजन के लिए आमन्त्रित करे। यह गृहस्थ-ब्राह्मण सारे संन्यासियों को अपने घर पर बुलाना चाह रहा था, किन्तु उसे यह भी पता था कि श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रण स्वीकार करने के लिए राजी कर पाना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि वहाँ पर मायावादी संन्यासी भी उपस्थित होंगे। अतएव

उसने उनके चरणों पर गिरकर निवेदन किया कि वे दया करके उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लें। इस तरह विनीत होकर उसने अपनी इच्छा प्रकट की।

ना याह सन्यासि-गोष्ठी, इहा आमि जानि ।

मोरे अनुग्रह कर निमन्त्रण मानि' ॥55॥

ना–नहीं; याह-आप जाते हो; सन्यासि-गोष्ठी-मायावादी संन्यासियों की संगति; इहा-यह; आमि-मैं; जानि-जानता हूँ; मोरे-मुझे; अनुग्रह-कृपा; कर-करनी होगी; निमन्त्रण-निमन्त्रण; मानि'–स्वीकार करके।

अनुवाद

"हे प्रभु, मैं जानता हूँ कि आप अन्य संन्यासियों से कभी मिलते-जुलते नहीं हैं, किन्तु आप कृपया मुझ पर दयालु हों और मेरा निमन्त्रण स्वीकार करें।"

तात्पर्य

आचार्य अर्थात् वैष्णव मत का महापुरुष सिद्धान्तों का पक्का होता है, किन्तु वह वज्र के समान कठोर होते हुए भी कभी-कभी गुलाब के फूल जैसा कोमल हो जाता है। इस तरह वह वास्तव में स्वतन्त्र होता है। वह समस्त विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करता है, किन्तु कभी-कभी इस नीति में शिथिलता का प्रदर्शन भी करता है। यह सर्वविदित था कि श्री चैतन्य महाप्रभु कभी भी मायावादी संन्यासियों से मिलते नहीं हैं, फिर भी उन्होंने उस ब्राह्मण की प्रार्थना स्वीकार कर ली, जैसाकि अगले श्लोक में बताया गया है।

प्रभु हासि' निमन्त्रण कैल अङ्गीकार ।

सन्यासीरे कृपा लागि’ ए भङ्गी ताँहार ॥56॥

प्रभु-प्रभु; हासि’–मुस्कराकर; निमन्त्रण-निमंत्रण; कैल-किया; अङ्गीकार-स्वीकार; सन्यासीरे-मायावादी संन्यासियों को; कृपा-उन पर कृपा दिखाने के लिए; लागि’–विषय में; ए-यह; भङ्गी-भाव; ताँहार-उनके।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने हँसते हुए उस ब्राह्मण का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। उन्होंने मायावादी संन्यासियों पर कृपा प्रदर्शित करने के लिए ही ऐसी चेष्टा की।

तात्पर्य

तपन मिश्र तथा चन्द्रशेखर ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर निवेदन किया कि वे दोनों किस तरह बनारस के संन्यासियों द्वारा महाप्रभु की आलोचना से दु:खी हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने हँस भर दिया। फिर भी वे अपने भक्तों की इच्छा पूरी करना चाह रहे थे और ऐसा अवसर आ ही गया, जब उस ब्राह्मण ने आकर प्रार्थना की कि वे अन्य संन्यासियों के बीच में उपस्थित होने का उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लें। ऐसा सुयोग भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता द्वारा ही सम्भव हो सका।

से विप्र जानेन प्रभु ना या’न का’र घरे ।

ताँहार प्रेरणाय ताँरे अत्याग्रह करे ॥57॥

से-वह; विप्र-ब्राह्मण; जानेन–इसे जानता था; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; ना-कभी नहीं; या’न–जाते हैं; का’र–किसी के; घरे-घर में; सँहार-उनकी; प्रेरणाय-प्रेरणा से; ताँरे-उनको; अत्याग्रह करे-निमंत्रण स्वीकार करने के लिए बहुत जोर दिया।

अनुवाद

वह ब्राह्मण जानता था कि भगवान् चैतन्य महाप्रभु कभी किसी अन्य के घर नहीं गये, फिर भी भगवान् से प्रेरित होकर उसने उनसे सच्चे हृदय से प्रार्थना की कि वे उसके इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लें।

आर दिने गेला प्रभु से विप्र-भवने ।

देखिलेन, वसियाछेन सन्न्यासीर गणे ॥58॥

आर-अगले; दिने–दिन; गेला-गये; प्रभु–महाप्रभु; से-वह; विप्र-ब्राह्मण; भवने-के घर में; देखिलेन-उन्होंने देखा; वसियाछेन-वहाँ बैठे हुए; सन्न्यासीर-सभी संन्यासियों को; गणे-समूह में।

अनुवाद

अगले दिन जब भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु उस ब्राह्मण के घर गये, तो उन्होंने वहाँ पर बनारस के सारे संन्यासियों को बैठे देखा।

सबा नमस्करि' गेला पाद-प्रक्षालने ।

पाद प्रक्षालन करि वसिला सेइ स्थाने ॥ 59॥

सबा-सबको; नमस्करि'-नमस्कार करके; गेला-गये; पाद-पाँव; प्रक्षालने-धोने के लिए; पाद-पाँव; प्रक्षालन-धोकर; करि-करके; वसिला-बैठ गये; सेइ-उसी; स्थाने–स्थान पर।

अनुवाद

ज्योंही श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे संन्यासियों को देखा, त्योंही उन्होंने सबको नमस्कार किया और तब वे अपने पाँव धोने चले गये। पाँव धोने के बाद वे उसी स्थान पर बैठ गये।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मायावादी संन्यासियों को नमस्कार करके सबके प्रति बड़ी स्पष्टता से अपनी विनयशीलता का परिचय दिया। वैष्णवों को किसी के प्रति अनादर प्रकट नहीं करना चाहिए और संन्यासी के प्रति तो कभी भी नहीं। श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है-अमानिना मानदेन–मनुष्य को चाहिए कि अन्यों का सम्मान करे, किन्तु अन्यों से अपने सम्मान की आशा न करे। संन्यासी को हमेशा नंगे पाँव चलना चाहिए, अतएव जब भी वह किसी मन्दिर या भक्तों की सभा में प्रवेश करे, तो सर्वप्रथम उसे अपने पाँव धोने चाहिए और फिर समुचित स्थान पर बैठना चाहिए। भारत में अब भी यह प्रथा है कि लोग अपने जूतों को एक नियत स्थान पर रखकर पाँव धोकर नंगे पाँव मन्दिर में प्रवेश करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु आदर्श आचार्य हैं और जो लोग उनका अनुसरण करते हैं, उन्हें चाहिए कि उनके द्वारा सिखायी भक्ति की विधियों का अभ्यास करें।

वसिया करिला किछु ऐश्वर्य प्रकाश ।

महातेजोमय वपु कोटि-सूर्याभास ॥60॥

वसिया-बैठने के पश्चात्; करिला-दिखलाई; किछु-कुछ; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य, योग शक्ति; प्रकाश-प्रकट की; महा-तेजो-मय-बहुत तेजमयी; वपु–शरीर; कोटि-करोड़ों; सूर्य-सूर्य; आभास-चमक।

अनुवाद

भूमि पर बैठने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान तेज प्रकट करके अपनी योग-शक्ति का प्रदर्शन किया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के रूप में समस्त शक्तियों से ओतप्रोत हैं। अतएव उनके लिए करोड़ों सूर्यों का प्रकाश प्रकट करना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण योगेश्वर के रूप में अर्थात् समस्त योगशक्तियों के स्वामी के रूप में जाने जाते हैं। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं, अतएव वे कोई भी योगशक्ति प्रदर्शित कर सकते हैं।

प्रभावे आकर्षिल सब सन्न्यासीर मन ।

उठिल सन्यासी सब छाड़िया आसन ॥61॥

प्रभावे-इस ज्योति से; आकर्षिल-उन्होंने आकर्षित किया; सब-सब; सन्न्यासीर-मायावादी संन्यासियों के; मन-मन को; उठिल-खड़े हो गये; सन्यासी-सभी मायावादी संन्यासी; सब-सब; छाड़िया-छोड़कर; आसन-आसन।

अनुवाद

जब सारे संन्यासियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर का तेजोमय प्रकाश देखा, तो उनके चित्त आकृष्ट हो गये। वे सभी तुरन्त अपना आसन छोड़कर सम्मान में खड़े हो गये।

तात्पर्य

सामान्य व्यक्तियों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए कभी-कभी साधु पुरुष, आचार्य तथा शिक्षक असामान्य ऐश्वर्य का प्रदर्शन करते हैं। मूर्खा का ध्यान आकृष्ट करने के लिए यह आवश्यक

होता है, किन्तु साधु पुरुष को ऐसी शक्ति का दुरुपयोग निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं करना चाहिए, जैसाकि अपने आपको ईश्वर घोषित करने वाले बनावटी साधु करते हैं। एक जादूगर भी ऐसी अद्भुत कुशलता दिखा सकता है, जिन्हें सामान्य लोग न समझ पायें, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि जादूगर ईश्वर है। अपनी योगशक्ति का प्रदर्शन करके लोगों का ध्यान आकृष्ट करना और फिर इस अवसर का लाभ उठाकर अपने आपको ईश्वर घोषित करना घोर पाप है। एक सच्चा साधु पुरुष कभी भी अपने आपको ईश्वर घोषित नहीं करता, अपितु अपने आपको सदा ईश्वर के दास के रूप में प्रस्तुत करता है। ईश्वर के दास को योगशक्ति प्रदर्शित करने की कोई आवश्यकता नहीं है और न वह ऐसा करना ही चाहता है, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का विनीत दास उनकी ओर से अपने कार्य ऐसे अद्भुत ढंग से करता है कि सामान्य व्यक्ति उसकी तरह कार्य करने का दुस्साहस नहीं कर सकता। फिर भी साधु पुरुष कभी ऐसे कार्यों का श्रेय खुद नहीं लेता, क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि जब वह भगवत्कृपा से कोई अद्भुत कार्य करता है, तो उसका श्रेय स्वामी को जाता है, न कि दास को।

प्रकाशानन्द-नामे सर्व सन्यासि-प्रधान ।

प्रभुके कहिल किछु करिया सम्मान ॥62॥

प्रकाशानन्द-प्रकाशानन्द; नामे-नामक; सर्व-सभी; सन्यासि-प्रधान-मायावादी संन्यासियों में मुख्य; प्रभुके–महाप्रभु को; कहिल–कहा; किछु-कुछ; करिया-उन्हें दिखाकर; सम्मान-सम्मान।

अनुवाद

उन सारे मायावादी संन्यासियों के मुखिया (अग्रणी) का नाम प्रकाशानन्द सरस्वती था। उसने खड़े होकर बड़े ही सम्मान के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु को इस प्रकार सम्बोधित किया।

तात्पर्य

चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे मायावादी संन्यासियों को नमस्कार किया था, इसी प्रकार उनके मुखिया प्रकाशानन्द ने भी महाप्रभु के प्रति अपना सम्मान व्यक्त किया।

इहाँ आइस, इहाँ आइस, शुनह श्रीपाद ।

अपवित्र स्थाने वैस, किबा अवसाद ॥ 63 ॥

इहाँ आइस-यहाँ आइये; इहाँ आइस-यहाँ आइये; शुनह–कृपया सुनें; श्रीपाद-श्रीपाद, आप; अपवित्र-अपवित्र; स्थाने–स्थान; वैस-आप बैठे हैं; किबा–यह क्या है; अवसाद-शोक।

अनुवाद

"हे श्रीपाद, कृपया यहाँ आइये। कृपया यहाँ आइये। आप उस अपवित्र स्थान में क्यों बैठे हैं? आप के शोक का कारण क्या है?"

तात्पर्य

यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु तथा प्रकाशानन्द सरस्वती के बीच का अन्तर दिखाया गया है। भौतिक जगत् में हर व्यक्ति अपने आपको महत्त्वपूर्ण और महान् बतलाना चाहता है, किन्तु चैतन्य महाप्रभु ने तो अत्यन्त विनीत होकर अपना परिचय दिया था। सारे मायावादी उच्च आसन पर बैठे थे और श्री चैतन्य महाप्रभु ऐसे स्थान पर बैठे, जो स्वच्छ भी नहीं था। अतएव मायावादी संन्यासियों ने सोचा कि शायद वे किसी कारणवश खिन्न हैं, अतएव प्रकाशानन्द सरस्वती ने उनकी खिन्नता का कारण जानना चाहा।

प्रभु कहे,—आमि हइ हीन-सम्प्रदाय ।

तोमा-सबार सभाय वसिते ना युयाय ॥ 64॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; आमि-मैं; हइ-हूँ; हीन-सम्प्रदाय-निम्न-आध्यात्मिक श्रेणी का; तोमा-सबार-आप सब से; सभायसभा में; वसिते-बैठने के लिए; ना–कभी नहीं; ग्रुयाय-मैं हिम्मत कर सकता हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं निम्न कोटि का संन्यासी हूँ। अतएव मैं आप लोगों के साथ बैठने के योग्य नहीं हूँ।"

तात्पर्य

मायावादी संन्यासियों को अपने संस्कृत के ज्ञान का और शंकर सम्प्रदाय वाला होने का सदैव बड़ा गर्व रहता है। उनकी यह मान्यता है कि जब तक कोई ब्राह्मण न हो और संस्कृत का अच्छा विद्वान न हो, विशेषतया व्याकरण में, तब तक वह न तो संन्यास आश्रम ग्रहण कर सकता है, न प्रचार-कार्य कर सकता है। मायावादी संन्यासी अपने वाग्जाल तथा व्याकरणिक रचनाओं से समस्त शास्त्रों की गलत व्याख्या करते रहते हैं, फिर भी श्रीपाद शंकराचार्य ने प्राप्ते सन्निहिते काले न हि न हि रक्षति डुकृञ करणे श्लोक में ऐसे वाग्जाल की स्वयं भर्त्सना की है। इसमें डुकृञ शब्द संस्कृत के उपसर्ग और प्रत्यय प्रयोग से सम्बन्धित है। शंकराचार्य ने अपने शिष्यों को चेतावनी दी है कि यदि वे व्याकरण के नियमों में ही लगे रहेंगे और गोविन्द की पूजा नहीं करेंगे, तो वे ऐसे मूर्ख सिद्ध होंगे जिनका उद्धार नहीं किया जा सकता। किन्तु श्रीपाद शंकराचार्य के आदेशों के उपरान्त भी, मूर्ख मायावादी संन्यासी संस्कृत व्याकरण पर आधारित वाग्जाल में ही व्यस्त रहते हैं।

मायावादी संन्यासी गर्व से फूले नहीं समाते यदि उनके पास तीर्थ, आश्रम तथा सरस्वती जैसी उन्नत संन्यास-उपाधियाँ होती हैं। मायावादियों में भी, जो अन्य सम्प्रदाय के होते हैं और अन्य उपाधियाँ धारण करते हैं, जैसे वन, अरण्य या भारती, उन्हें निम्न कोटि के संन्यासी माने जाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने भारती सम्प्रदाय से संन्यास ग्रहण किया था, इसलिए वे अपने आपको प्रकाशानन्द सरस्वती की तुलना में निम्न संन्यासी मानते थे। मायावादी सम्प्रदाय के संन्यासी वैष्णव संन्यासियों से अलग रहने के लिए अपने आपको सर्वदा अति उच्च आध्यात्मिक स्तर के मानते हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन्हें विनीत एवं अभिमानरहित बनने की शिक्षा देने के उद्देश्य से अपने आपको निम्न संन्यासी सम्प्रदाय का माना। इस तरह वे यह स्पष्ट रूप से बता देना चाहते थे कि संन्यासी वह है, जो आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत हो। जो आध्यात्मिक ज्ञान में आगे हो, उसे ऐसे ज्ञान से विहीन व्यक्ति की तुलना में श्रेष्ठतर पद पर आसीन मानना चाहिए।

मायावादी सम्प्रदाय के संन्यासी सामान्यतया वेदान्ती कहलाते हैं, मानो वेदान्त पर उनका एकाधिकार हो। किन्तु वस्तुत: वेदान्ती ऐसे व्यक्ति का सूचक है, जो कृष्ण को भलीभाँति जानता है। जैसाकि भगवद्गीता (15.15) में पुष्टि की गई है-वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः-समस्त वेदों के द्वारा कृष्ण ही जानने होते हैं। ये तथाकथित मायावादी वेदान्ती यह नहीं जानते कि कृष्ण हैं कौन; अतएव उनकी यह वेदान्ती उपाधि अर्थात् "वेदान्त दर्शन का जानने वाला" मात्र दम्भ है। मायावादी संन्यासी अपने आपको हमेशा सच्चा संन्यासी मानते हैं और वैष्णव संन्यासियों को ब्रह्मचारी मानते हैं। ऐसी आशा की जाती है कि ब्रह्मचारी संन्यासी की सेवा करे और उसे अपने गुरु के रूप में स्वीकार करे। अतएव मायावादी संन्यासी अपने आपको गुरु ही नहीं, अपितु जगद्गुरु घोषित करते हैं, यद्यपि वे समस्त विश्व को देख नहीं सकते। कभी-कभी वे भव्य वेशभूषा धारण करते हैं और शोभायात्राओं में हाथी पर चढ़कर चलते हैं। इस तरह वे सदैव गर्वित रहते हैं और अपने आपको जगद्गुरु मानते हैं। किन्तु

श्रील रूप गोस्वामी ने बतलाया है कि वस्तुतः जगद्गुरु उस व्यक्ति को कहते है, जो अपनी जीभ, मन, वाणी, उदर, जननेन्द्रिय तथा क्रोध पर नियन्त्रण रखे। पृथिवीं स शिष्यात्-ऐसा जगद्गुरु सारे जगत् में शिष्य बनाने के लिए पूरी तरह योग्य होता है। कभी-कभी मिथ्या प्रतिष्ठावश योग्यताओं से रहित मायावादी संन्यासी उन वैष्णव संन्यासियों को तंग करते हैं तथा उनकी निन्दा करते हैं, जो भगवान् की सेवा में विनीत भाव से लगे रहते हैं।

आपने प्रकाशानन्द हातेते धरिया ।

वसाइला सभा-मध्ये सम्मान करिया ॥65॥

आपने शरीर से; प्रकाशानन्द-प्रकाशानन्द; हातेते-उनके हाथ से; धरिया-पकड़कर; वसाइला–बैठाया; सभा-मध्ये-सबके बीच में, सबके मध्य; सम्मान-सम्मानपूर्वक; करिया-देकर।

अनुवाद

किन्तु प्रकाशानन्द सरस्वती ने स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु का हाथ पकड़कर बड़े ही सम्मान के साथ उन्हें सभा के मध्य में बैठाया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति प्रकाशानन्द सरस्वती के आदरपूर्ण आचरण की प्रशंसा की जानी चाहिए। ऐसा आचरण अज्ञात सुकृति कहलाने योग्य है अर्थात् ऐसा पुण्यकर्म जो अनजाने ही सम्पन्न किया जाता है। इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने बड़ी ही चतुराई से प्रकाशानन्द सरस्वती को अज्ञात सुकृति की ओर अग्रसर होने का सुअवसर प्रदान किया, जिससे वे भविष्य में वास्तव में वैष्णव संन्यासी बन सकें।

पुछिल, तोमार नाम ‘श्री-कृष्ण-चैतन्य’ ।

केशव-भारतीर शिष्य, ताते तुमि धन्य ॥66॥

पुछिल–पूछा; तोमार-आपका; नाम-नाम; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य; केशव-भारतीर शिष्य-आप केशव भारती के शिष्य हैं; ताते-उस सम्बन्ध में; तुमि-आप हैं; धन्य-धन्य।

अनुवाद

तब प्रकाशानन्द सरस्वती ने कहा, “मेरी समझ में आपका नाम श्रीकृष्ण चैतन्य है। आप तो श्री केशव भारती के शिष्य हैं और इसीलिए आप धन्य हैं।”

साम्प्रदायिक सन्यासी तुमि, रह एइ ग्रामे ।

कि कारणे आमा-सबार ना कर दर्शने ॥67॥

साम्प्रदायिक-सम्प्रदाय के; सन्यासी-मायावादी संन्यासी; तुमि-आप हैं; रह-रहते हैं; एइ-इस; ग्रामे-वाराणसी में; कि कारणे-किस कारण; आमा-सबार-हमारे साथ; ना-नहीं; कर—प्रयास करते; दर्शने-मिलने-जुलने का।

अनुवाद

“आप तो हमारे शंकर सम्प्रदाय के हैं और हमारे गाँव वाराणसी में रहते हैं। तो फिर आप हम लोगों का संग क्यों नहीं करते? आप हमसे मिलने से भी क्यों कतराते हैं?”

तात्पर्य

एक वैष्णव संन्यासी या आध्यात्मिक ज्ञान की दूसरी अवस्था को प्राप्त वैष्णव (मध्यम अधिकारी) चार सिद्धान्तों को समझ सकता है। ये हैं—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, भक्त, अबोध तथा ईर्ष्यालु और वह इनसे पृथक्-पृथक् आचरण करता है। वह ईश्वर से अपना प्रेम बढ़ाना चाहता है, भक्तों से मित्रता करना चाहता है और अबोध लोगों के बीच कृष्णभावनामृत का प्रचार करना चाहता है। किन्तु वह उन द्वेषी एवं ईर्ष्यालुओं से दूर रहता है, जो कृष्णभावनामृत आन्दोलन से ईर्ष्या करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसका दृष्टान्त स्वयं प्रस्तुत किया, इसीलिए प्रकाशानन्द सरस्वती ने पूछा कि वे उनसे मिलते-जुलते या बोलते क्यों नहीं। चैतन्य महाप्रभु ने दृष्टान्त प्रस्तुत करके इसकी पुष्टि की कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचारक को सामान्यतया मायावादी संन्यासियों से बातें करने में समय नष्ट नहीं करना चाहिए, किन्तु जब शास्त्र पर आधारित तर्क हों, तो वैष्णव को चाहिए कि वह आगे आकर बात करे और उन्हें दर्शन में परास्त करे।

मायावादी संन्यासियों के अनुसार शंकराचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा में संन्यास ग्रहण करने वाला व्यक्ति ही वैदिक संन्यासी है। कभी-कभी प्रतिवाद किया जाता है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन में प्रचार करने वाले संन्यासी सच्चे संन्यासी नहीं होते, क्योंकि वे ब्राह्मण कुलों के नहीं होते। मायावादी लोग उसे संन्यास नहीं देते, जो जन्मजात ब्राह्मण नहीं होता। किन्तु दुर्भाग्यवश वे यह नहीं जानते कि इस समय हर व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है (कलौ शूद्र सम्भवः)। यह जान लेना चाहिए कि इस युग में कोई भी ब्राह्मण नहीं है, क्योंकि जो लोग जन्म मात्र से ब्राह्मण होने का दावा करते हैं, उनमें ब्राह्मणों की योग्यता नहीं पाई जाती। भले ही कोई अब्राह्मण कुल में जन्म क्यों न ले, यदि उसमें ब्राह्मण की योग्यता पाई जाती है, तो उसको ब्राह्मण के रूप में स्वीकार करना चाहिए, जैसाकि श्रील नारद मुनि तथा महान् सन्त श्रीधर स्वामी ने पुष्टि की है। श्रीमद्भागवत में भी इसका उल्लेख हुआ है। नारद तथा श्रीधर स्वामी पूरी तरह मानते हैं कि जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता,

किन्तु उसमें ब्राह्मण के गुण होने आवश्यक है। इस तरह हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में किसी ऐसे व्यक्ति को संन्यास नहीं देते, जिसमें ब्राह्मण के निर्धारित गुण न हों। यद्यपि यह तथ्य है कि जब तक कोई ब्राह्मण न हो, तब तक वह संन्यासी नहीं बन सकता, किन्तु यह सिद्धान्त वैध नहीं है कि ब्राह्मण कुल में जन्मा अयोग्य व्यक्ति ब्राह्मण होता है, जबकि अब्राह्मण परिवार में जन्मा ब्राह्मण गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ब्राह्मण न माना जाए। कृष्णभावनामृत आन्दोलन श्रीमद्भागवत के आदेशों का दृढ़ता से पालन करता है और सुने-सुनाए तथा मनगढन्त प्रमाणों से बचता है।

सन्यासी हइया कर नर्तन-गायन ।

भावुक सब सङ्गे लञा कर सङ्कीर्तन ॥ 68॥

सन्यासी-संन्यास; हइया-स्वीकार करके; कर-आप करते हैं; नर्तन-गायन-नर्तन एवं गायन; भावुक-भावुक व्यक्तियों में; सब-सब; सङ्गे-आपकी संगति में; लञा-उन्हें स्वीकार करके; कर-आप करते हैं; सङ्कीर्तन-संकीर्तन।

अनुवाद

“आप तो संन्यासी हैं, तो फिर भावुकों के साथ अपने संकीर्तन आन्दोलन में कीर्तन करने और नाचने में क्यों लगे रहते हैं?”

तात्पर्य

यह श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए प्रकाशानन्द सरस्वती की चुनौती है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं कि वेदान्त दर्शन की खोज के लक्ष्य-रूप श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृपा करके यह निश्चित कर दिया है कि वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करने का सुपात्र कौन

है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिक्षाष्टक में ऐसे पात्र की प्रथम योग्यता का वर्णन इस प्रकार किया है :

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

इस कथन से इंगित होता है कि मनुष्य गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से वेदान्त-दर्शन के विषय में सुन या बोल सकता है। उसे अत्यन्त विनीत और दीन होना चाहिए-वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु तथा तिनके से भी अधिक विनीत होना चाहिए। उसे स्वयं के लिए सम्मान की कामना नहीं होनी चाहिए, किन्तु उसे दूसरों को सम्मान देने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। वैदिक ज्ञान को समझने का पात्र बनने के लिए उसमें ये योग्यताएँ होनी चाहिए।

वेदान्त-पठन, ध्यान,—सन्न्यासीर धर्म ।

ताहा छाड़ि' कर केने भावुकेर कर्म ॥ 69॥

वेदान्त-पठन–वेदान्त दर्शन का पठन; ध्यान-ध्यान; सन्न्यासीर-संन्यासी का; धर्म-धर्म; ताहा छाड़ि'–उन्हें छोड़कर; कर-आप करते हैं; केने-क्यों; भावुकेर-भावुकों के; कर्म-कर्म।

अनुवाद

ध्यान तथा वेदान्त-अध्ययन-ये ही संन्यासी के एकमात्र कर्तव्य हैं। आप इन भावुकों के साथ नाचने के लिए इन कर्तव्यों का त्याग क्यों कर देते हैं?

तात्पर्य

जैसाकि श्लोक 41 के सन्दर्भ में बतलाया जा चुका है, मायावादी संन्यासी कीर्तन तथा नृत्य करने का अनुमोदन नहीं करते। सार्वभौम भट्टाचार्य की ही भाँति प्रकाशानन्द सरस्वती ने श्री चैतन्य महाप्रभु को एक पथभ्रष्ट तरुण संन्यासी मान रखा था, इसलिए उन्होंने उनसे पूछा कि वे संन्यासी का कर्तव्य न निभाकर भावुकों के साथ क्यों संग करते हैं।

प्रभावे देखिये तोमा साक्षात्नारायण।

हीनाचार कर केने, इथे कि कारण॥ 70॥

प्रभावे-अपने ऐश्वर्य में; देखिये-मैं देखता हूँ; तोमा-आप; साक्षात् साक्षात्; नारायण-भगवान् नारायण; हीन-आचार-निम्न कोटि का व्यवहार; कर-आप करते हैं; केने-क्यों; इथे-इसमें; कि-क्या है; कारण-कारण।

अनुवाद

"आप स्वयं नारायण के समान तेजवान लगते हैं। क्या आप इसका कारण बता सकते हैं कि आपने निम्न वर्ग के लोगों जैसा आचरण क्यों अपना रखा है?"

तात्पर्य

अपने वैराग्य, वेदान्त-अध्ययन, ध्यान तथा दैनिक कठोर विधि-विधान के कारण मायावादी संन्यासी निश्चित रूप से पुण्य कार्य करने में सक्षम होते हैं। इस तरह प्रकाशानन्द सरस्वती अपनी पुण्यशीलता के कारण यह समझ सके कि चैतन्य महाप्रभु कोई सामान्य व्यक्ति नहीं अपितु साक्षात् भगवान् हैं। साक्षात् नारायण-वे उन्हें साक्षात् नारायण मानते थे। मायावादी संन्यासी एक-दूसरे को नारायण कहकर सम्बोधित करते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि वे सभी या तो नारायण होने जा रहे हैं

या अगले जन्म में नारायण में लीन हो जायेंगे। प्रकाशानन्द सरस्वती जान गये थे कि चैतन्य महाप्रभु पहले ही नारायण बन चुके हैं और उन्हें अगले जन्म की प्रतीक्षा नहीं करनी है। वैष्णव तथा मायावादी दर्शनों में एक अन्तर यह है कि मायावादी दार्शनिक सोचते हैं कि अपने शरीरों को त्यागने के बाद वे नारायण के शरीर में लीन होकर नारायण बनेंगे, किन्तु वैष्णव दार्शनिक यह समझते हैं कि शरीर की मृत्यु के बाद उन्हें आध्यात्मिक दिव्य शरीर प्राप्त होगा, जिसमें वे नारायण का सान्निध्य प्राप्त कर सकते हैं।

प्रभु कहे—शुन, श्रीपाद, इहार कारण।

गुरु मोरे मूर्ख देखि' करिल शासन ॥71॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने उत्तर दिया; शुन-कृपया सुनो; श्रीपाद-श्रीपाद; इहार-इसका; कारण-कारण; गुरु-मेरे गुरु ने; मोरे-मुझे; मूर्ख-मूर्ख; देखि'-समझकर; करिल-उन्होंने किया; शासन-दण्ड दिया।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री प्रकाशानन्द सरस्वती को उत्तर दिया, मान्यवर, कृपया इसका कारण सुनिये। मेरे गुरुदेव ने मुझे एक मूर्ख समझकर मेरी भर्त्सना की।"

तात्पर्य

जब प्रकाशानन्द सरस्वती ने श्री चैतन्य महाप्रभु से पूछा कि उन्होंने क्यों न तो वेदान्त अध्ययन किया और न ध्यान किया, तो श्री चैतन्य ने अपने आपको पहले दर्जे के मूर्ख के रूप में प्रस्तुत किया, क्योंकि वे यह सूचित करना चाहते थे कि धूर्ती तथा मूर्खा के इस वर्तमान युग, कलियुग

में वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करने तथा ध्यान करने से पूर्णता प्राप्त नहीं की जा सकती। शास्त्रों की दृढ़तापूर्ण संस्तुति है :

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामेव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

"इस कलह और दिखावे के युग में उद्धार का एकमात्र साधन है भगवन्नाम का कीर्तन। इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। अन्य कोई साधन नहीं है। अन्य कोई साधन नहीं है।" कलियुग में साधारण लोग इतने पतित हो जाते हैं कि उनके लिए केवल वेदान्त-सूत्र का अध्ययन करके पूर्णता प्राप्त करना सम्भव नहीं है। इसलिए मनुष्य को सच्चे मन से निरन्तर भगवन्नाम कीर्तन करते रहना चाहिए।

मूर्ख तुमि, तोमार नाहिक वेदान्ताधिकार ।

'कृष्ण-मन्त्र' जप सदा,—एइ मन्त्र-सार ॥72॥

मूर्ख तुमि-तुम मूर्ख हो; तोमार-तुम्हारी; नाहिक-नहीं हैं; वेदान्त–वेदान्त दर्शन; अधिकार-योग्यता; कृष्ण-मन्त्र-कृष्ण मन्त्र (हरे कृष्ण); जप-जप; सदा-सदा; एइ-यह; मन्त्र-मंत्र; सार–सारे वैदिक ज्ञान का सार।

अनुवाद

"उन्होंने कहा, 'तुम मूर्ख हो। तुम वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करने के योग्य नहीं हो; अतएव तुम्हें चाहिए कि तुम सदैव कृष्ण नाम का जप करो। यह समस्त मन्त्रों या वैदिक स्तोत्रों का सार है।"

तात्पर्य

इस प्रसंग में श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज टीका करते हैं, "यदि कोई अपने गुरु के मुख से सुने गये शब्दों के अनुसार ठीक-ठीक उसी प्रकार कर्म करता है, तो वह अपने जीवन के लक्ष्य में पूरी तरह सफल हो सकता है।" इस प्रकार गुरु के शब्दों को ग्रहण करना श्रौतवाक्य कहलाता है, जिससे इंगित होता है कि शिष्य को अविचलित भाव से गुरु के आदेशों का पालन करना चाहिए। इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि शिष्य को चाहिए कि वह गुरु के वचनों को अपना प्राणाधार माने। यहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु इसकी पुष्टि यह कहकर करते हैं कि चूँकि उनके गुरु ने उन्हें श्रीकृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन का ही आदेश दिया था, इसलिए वे उनके आदेश के अनुसार हरे कृष्ण महामन्त्र का सदैव कीर्तन करते हैं ('कृष्णमन्त्र जप सदा-एइ मन्त्र-सार)।

कृष्ण प्रत्येक वस्तु के स्रोत हैं। अतएव जब कोई व्यक्ति पूर्णतया कृष्णभावनाभावित होता है, तो यह समझना चाहिए कि कृष्ण के साथ उसका सम्बन्ध पूर्णतया स्वीकृत हो गया है। कृष्णभावनामृत के बिना यह सम्बन्ध अधूरा होता है; अतएव वह अपनी वैधानिक स्थिति में अवस्थित नहीं होता। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं, समस्त ब्रह्माण्ड के गुरु हैं, फिर भी उन्होंने शिष्य का पद इसलिए स्वीकार किया, जिससे वे आदर्श प्रस्तुत कर सकें कि किस तरह भक्त को अपने गुरु के आदेश का पालन निरन्तर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते हुए करना चाहिए। जो लोग वेदान्त-दर्शन के अध्ययन के प्रति अत्यधिक उन्मुख हैं, उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इस युग में, वास्तव में वेदान्त का अध्ययन करने के लिए कोई भी योग्य नहीं है, इसलिए अच्छा यही होगा कि भगवन्नाम का कीर्तन किया जाए, क्योंकि यही समस्त वैदिक ज्ञान का सार है, जिसकी पुष्टि स्वयं कृष्ण ने भगवद्गीता (15.15) में की है :

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो ।

वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्

“सारे वेदों द्वारा जानने योग्य मैं ही हूँ। निस्सन्देह, मैं ही वेदान्त का संकलनकर्ता हूँ और मैं ही वेदों का ज्ञाता हूँ।”

जो मूर्ख हैं, वे ही गुरु की सेवा छोड़ देते हैं और अपने आपको आध्यात्मिक ज्ञान में अग्रणी मानते हैं। ऐसे मूर्खा को रोकने के लिए ही चैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको आदर्श शिष्य के रूप में प्रस्तुत किया। गुरु भलीभाँति जानता है कि प्रत्येक शिष्य को किस तरह किसी विशेष कार्य में लगाया जाए, किन्तु यदि शिष्य अपने आपको गुरु से अधिक बुद्धिमान माने और उसके आदेश को न मानकर स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करे, तो वह अपने हाथों अपनी आध्यात्मिक प्रगति को रोक देता है। हर शिष्य को अपने आपको कृष्ण-विज्ञान में पूर्णतया अनजान मानना चाहिए और कृष्णभावनामृत में दक्ष होने के लिए गुरु के आदेशों का पालन करने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। शिष्य को अपने गुरु के समक्ष मूर्ख बने रहना चाहिए। इसीलिए कभी-कभी कुछ छद्म-अध्यात्मवादी ऐसा गुरु बनाते हैं, जो शिष्य होने के भी योग्य नहीं होता, क्योंकि वे उसे अपने वश में रखना चाहते हैं। आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए यह निरर्थक है।

जो कृष्णभावनामृत को अपूर्ण रीति से जानता है, वह वेदान्त-दर्शन नहीं जान सकता। कृष्णभावनामृत के बिना वेदान्त-अध्ययन का दिखावा बहिरंगा शक्ति माया का लक्षण है और जब तक कोई भी व्यक्ति इस नित्य परिवर्तनशील भौतिक शक्ति की मदोन्मत्तता से आकृष्ट होता रहता है, तब तक वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्ति से पथभ्रष्ट होता रहता है। वेदान्त-दर्शन का वास्तविक अनुयायी समग्र ब्रह्माण्ड के पालनकर्ता एवं महान् से भी महानतम भगवान् विष्णु का भक्त होता है। जब तक मनुष्य सीमित की सेवा के कार्यक्षेत्र से ऊपर नहीं उठ जाता, तब तक वह असीम के पास नहीं पहुँच सकता। असीम का ज्ञान ही वास्तविक ब्रह्मज्ञान अर्थात् सर्वोपरि का ज्ञान

है। जो लोग सकाम कर्म तथा तार्किक ज्ञान के प्रति आकृष्ट हैं, वे भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम के महत्त्व को नहीं जान सकते, जो पूर्णतया शुद्ध है, नित्य मुक्त है और आनन्दमय है। जिसने भगवान् से अभिन्न भगवन्नाम की शरण ले ली है, उसे वेदान्त-दर्शन के अध्ययन की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि वह पहले ही ऐसा अध्ययन पूरा कर चुका होता है।

जो व्यक्ति कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने के लिए अयोग्य है, किन्तु जो कृष्ण के नाम को कृष्ण से भिन्न मानकर कृष्ण को समझने के लिए वेदान्त अध्ययन करता है, वह प्रथम श्रेणी का मूर्ख है, जिसकी पुष्टि चैतन्य महाप्रभु ने निजी आचरण द्वारा की है। जो दार्शनिक चिन्तक वेदान्त-दर्शन को अपनी आजीविका बनाना चाहते हैं, वे भी माया के प्रभाव के ही अन्तर्गत माने जाते हैं। जो व्यक्ति भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन सदा करता रहता है, वह पहले से भवसागर पार कर चुका होता है, अतएव निम्न कुल में जन्मा व्यक्ति भी यदि भगवन्नाम का कीर्तन करता है, तो उसे वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करने की आवश्यकता से परे समझा जाता है। इस सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत (3.33.7) का कथन है :

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्

यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।

तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या

ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥

"यदि चंडाल कुल में जन्मा व्यक्ति कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करता है, तो यह समझना चाहिए कि उसने अपने पूर्वजन्म में सभी तरह की तपस्याएँ सम्पन्न कर ली होंगी और सारे वैदिक यज्ञ सम्पन्न कर लिए होंगे।" एक अन्य उद्धरण है :

ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदोऽप्यथर्वणः ।

अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥

“जो व्यक्ति ह तथा रि इन दो अक्षरों का उच्चारण करता है, समझ लो कि उसने चारों वेद-साम, ऋक्, यजुः तथा अथर्व–पढ़ लिए हैं।”

इन श्लोकों का लाभ उठाने वाले कुछ सहजिया, जो हर बात को सस्ती समझते हैं, अपने आपको उच्च वैष्णव समझते हैं, किन्तु वेदान्त-सूत्र या वेदान्त-दर्शन का स्पर्श तक नहीं करते। किन्तु एक सच्चे वैष्णव को वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करना चाहिए, किन्तु यदि वेदान्त-दर्शन का अध्ययन कर लेने के बाद वह भगवन्नाम का कीर्तन नहीं करता, तो वह मायावादी से अधिक अच्छा नहीं है। अतएव किसी को मायावादी नहीं होना चाहिए, फिर भी उसे वेदान्त-दर्शन के विषय से अनजान भी नहीं रहना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रकाशानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करते समय अपने वेदान्त ज्ञान का परिचय दिया था। अतएव यह समझना होगा कि एक वैष्णव को वेदान्त-दर्शन में पूर्णतया दक्ष होना चाहिए, किन्तु उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि वेदान्त अध्ययन ही सर्वस्व है, फलतः पवित्र भगवन्नाम के जप से विरत रहा जाए। भक्त को एक ही साथ वेदान्त-दर्शन के ज्ञान की और नाम-कीर्तन की महत्ता जाननी चाहिए। यदि कोई वेदान्त का अध्ययन करके मायावादी बन जाता है, तो समझ लो कि उसने वेदान्त को नहीं समझा। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (15.15) में की गई है। वेदान्त का अर्थ है, “ज्ञान का अन्त।” ज्ञान का चरम अन्त कृष्ण का ज्ञान है, जो अपने नाम से अभिन्न हैं। सस्ते वैष्णव (सहजिया) वेदान्त-अध्ययन की परवाह नहीं करते, जिसकी चारों आचार्यों ने टीका की है। गौड़ीय सम्प्रदाय में वेदान्त का भाष्य मिलता है, जो गोविन्द भाष्य कहलाता है, किन्तु सहजिये ऐसे भाष्यों को अस्पृश्य दार्शनिक चिंतन मानते हैं और आचार्यों को मिश्र भक्त मानते हैं। इस तरह वे नरक जाने के लिए अपना रास्ता साफ कर देते हैं।

कृष्ण-मन्त्र हैते हबे संसार-मोचन।

कृष्ण-नाम है पाबे कृष्णेर चरण ॥73॥

कृष्ण-मन्त्र-हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन; हैते–से; हबे-यह होगा; संसार–भौतिक संसार; मोचन–मोचन, उद्धार; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण के पावन नाम; हैते–से; पाबे-मिलेंगे; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; चरण-चरणकमल।

अनुवाद

"कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन मात्र से मनुष्य को भौतिक संसार से छुटकारा मिल सकता है। निस्सन्देह, केवल हरे-कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने से उसे भगवान् के चरणकमलों के दर्शन हो सकते हैं।

तात्पर्य

अपने अनुभाष्य में श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी कहते हैं कि मनुष्य को दिव्य ज्ञान प्राप्त होते ही जो प्रभाव देखने को मिलता है, वह यह है कि वह माया के बन्धन से तुरन्त छूट जाता है और भगवान् की सेवा में पूर्णतया लग जाता है। जब तक मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मुकुन्द की सेवा नहीं करता, तब तक वह बहिरंगा शक्ति के अधीन किए जा रहे सकाम कर्मों से मुक्त नहीं हो सकता। किन्तु जब कोई निरपराध भाव से भगवन्नाम का जप करता है, तो वह दिव्य पद प्राप्त कर सकता है, जो जीवन की भौतिक अवधारणा से सर्वथा मुक्त होता है। भगवान् की सेवा करते हुए भक्त भगवान् के साथ पाँच सम्बन्धों में से किसी एक के द्वारा सम्बन्धित होता है। ये हैं-शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य; और इस सम्बन्ध में वह दिव्य आनन्द का आस्वादन करता है। ऐसा सम्बन्ध शरीर तथा मन से परे होता है। जब मनुष्य को यह अनुभूति हो जाती है कि भगवान् का

पवित्र नाम भगवान् से अभिन्न है, तो वह पवित्र भगवन्नाम का जप-कीर्तन करने का पूर्ण पात्र बन जाता है। ऐसे भावमय कीर्तन करने वाले और नाचने वाले का भगवान् से सीधा सम्बन्ध है, ऐसा समझना चाहिए।

वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार आध्यात्मिक विकास के तीन चरण हैं-सम्बन्ध ज्ञान, अभिधेय तथा प्रयोजन। सम्बन्ध ज्ञान पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपने मूल सम्बन्ध को स्थापित करने का सूचक है, अभिधेय उस वैधानिक सम्बन्ध के अनुसार कर्म करने का सूचक है तथा प्रयोजन जीवन का चरम लक्ष्य है, जिसमें भगवत्प्रेम का विकास होता है (प्रेमा पुमर्थो महान्)। यदि मनुष्य गुरु के आदेशानुसार विधि-विधानों पर अटल रहता है, तो उसे अपना जीवन-लक्ष्य सरलता से प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन के प्रति आसक्त है, उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की प्रत्यक्ष सेवा करने का अवसर आसानी से मिल जाता है। उसे उस व्याकरण के शब्दजाल में पड़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती, जिसमें मायावादी संन्यासी सामान्यतया लिप्त रहते हैं। श्री शंकराचार्य ने भी इसी बात पर बल दिया है-न हि न हि रक्षति डुकृञ्-करणे–"मात्र व्याकरण के प्रत्यय और उपसर्ग के जाल में पड़े रहने से मनुष्य अपने आपको मृत्यु के पाश से बचा नहीं सकता।" व्याकरण का शब्दजाल रचने वाले लोग उस भक्त को मोहग्रस्त नहीं कर सकते, जो हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में लगा रहता है। भगवान् की शक्ति को हरे और स्वयं भगवान् को कृष्ण के रूप में सम्बोधित करने से भगवान् शीघ्र ही भक्त के हृदय में स्थित हो जाते हैं। इस तरह राधा तथा कृष्ण को सम्बोधित करने से मनुष्य भगवान् की प्रत्यक्ष सेवा करता है। जब वह भगवान् तथा उनकी शक्ति को हरे कृष्ण मन्त्र के द्वारा सम्बोधित करता है, तो सारे प्रामाणिक शास्त्रों एवं सारे ज्ञान का सार विद्यमान रहता है, क्योंकि यह दिव्य ध्वनि बद्धजीव को पूरी तरह मुक्त करके उसे सीधे भगवान् की सेवा में लगा देती है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको महामूर्ख के रूप में प्रस्तुत किया, फिर भी उनका दृढ़ विश्वास था कि उन्होंने अपने गुरु से जो कुछ भी सुना था, वह श्रीमद्भागवत (1.7.6) में व्यासदेव द्वारा कहे गये सिद्धान्तों के अनुसार था।

अनर्थोपशमं साक्षाद् भक्ति योगमधोक्षजे ।

लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥

"जीव के वे भौतिक दु:ख जो उसके लिए आवश्यक नहीं हैं, भक्ति की विधि द्वारा दूर किये जा सकते हैं। किन्तु अधिकांश लोग इसे नहीं जानते, इसीलिए विद्वान व्यासदेव ने इस परम सत्य विषयक वैदिक साहित्य (श्रीमद्भागवत) का संकलन किया।"भक्ति योग का अभ्यास करने से मनुष्य सारी गलत धारणाओं से एवं भौतिक जगत् की उलझनों से बच सकता है, अतएव व्यासदेव ने श्री नारद के आदेशानुसार अत्यन्त कृपा का प्रदर्शन करते हुए श्रीमद्भागवत प्रदान किया, जिससे बद्धजीव माया के बन्धन से छुटकारा पा सकें। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु ने उन्हें आदेश दिया कि मनुष्य को नियमित रूप से समीक्षा करते हुए श्रीमद्भागवत पढ़ना चाहिए, जिससे वह धीरे-धीरे हरे-कृष्ण-महामन्त्र के कीर्तन में अनुरक्त हो सके।

भगवान् का पवित्र नाम तथा भगवान् अभिन्न हैं। जो मनुष्य माया के बन्धन से पूर्णरूपेण मुक्त होता है, वह इस तथ्य को समझ सकता है। यह ज्ञान गुरु की कृपा से प्राप्त होता है और इसके कारण मनुष्य सर्वोपरि दिव्य पद को प्राप्त होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको मूर्ख के रूप में प्रस्तुत किया, क्योंकि अपने गुरु की शरण में जाने के पूर्व वे यह नहीं जानते थे कि केवल कीर्तन करने से सारे भौतिक क्लेशों से छुटकारा मिल सकता है। किन्तु ज्योंही वे अपने गुरु के आज्ञाकारी दास बन गये और उनके उपदेशों का पालन करने लगे, त्योंही उन्हें तुरन्त ही मुक्ति का मार्ग दिख

गया। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा किया जाने वाला हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन समस्त अपराधों से रहित समझा जाना चाहिए। भगवन्नाम के प्रति दस अपराधों की सूची इस प्रकार है : (1) भगवान् के भक्त की निन्दा करना, (2) भगवान् तथा देवताओं को समान स्तर का मानना या यह सोचना कि ईश्वर अनेक हैं, (3) गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करना, (4) शास्त्रों (वेदों) के प्रमाण की उपेक्षा करना, (5) भगवान् के पवित्र नाम का मनमाना अर्थ निकालना, (6) नाम जप के बल पर पाप करना, (7) श्रद्धाविहीन को भगवन्नाम की महिमा का उपदेश देना, (8) भौतिक पुण्यकर्म से भगवन्नाम के जप की तुलना करना, (9) भगवन्नाम का जप करते समय सतर्क न रहना तथा (10) भगवन्नाम जप करने पर भी भौतिक आसक्ति बनाए रखना।

नाम विनु कलि-काले नाहि आर धर्म ।

सर्व-मन्त्र-सार नाम, एइ शास्त्र-मर्म ॥74॥

नाम-पावन नाम; विनु–बिना; कलि-काले-इस कलियुग में; नाहि-नहीं है; आर-अन्य पर्याय; धर्म-धर्म; सर्व-सब; मन्त्र-मंत्र; सार-सार; नाम-पवित्र नाम; एइ–यह है; शास्त्र-प्रामाणिक शास्त्र का; मर्म-मर्म, रहस्य।

अनुवाद

“इस कलियुग में भगवन्नाम के कीर्तन से बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है, क्योंकि यह समस्त वैदिक स्तोत्रों का सार है। यही सारे शास्त्रों का तात्पर्य है।”

सत्ययुग, त्रेतायुग तथा द्वापर युग में गुरु-शिष्य परम्परा पद्धति के नियमों का कड़ाई से सम्मान होता था, किन्तु वर्तमान युग अर्थात् कलियुग में लोग इस श्रौत परम्परा अर्थात् गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के महत्त्व की उपेक्षा करते हैं। इस युग में लोग यह तर्क करते हैं कि वे अपने

सीमित ज्ञान तथा अनुभूति से परे जो कुछ है, उसे विज्ञान के तथाकथित अवलोकन तथा प्रयोगों के माध्यम से समझ सकते हैं; वे यह नहीं जानते कि वास्तविक सत्य तो मनुष्य को अधिकारी व्यक्तियों से प्राप्त होता है। यह तर्क करने की प्रवृत्ति वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है और जो ऐसा करता है, उसके लिए यह समझ पाना अत्यन्त कठिन होता है कि कृष्ण का पवित्र नाम स्वयं कृष्ण जितना ही अच्छा है। चूँकि कृष्ण एवं उनका नाम अभिन्न हैं, अतएव पवित्र नाम शाश्वत रूप से शुद्ध तथा भौतिक कल्मष से रहित होता है। यह दिव्य ध्वनि के रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही है। पवित्र नाम भौतिक ध्वनि से सर्वथा भिन्न है, जैसाकि नरोत्तमदास ठाकुर द्वारा पुष्टि की गई है : गोलोकेर प्रेमधन, हरिनाम सङ्कीर्तन-हरिनाम संकीर्तन की दिव्य ध्वनि वैकुण्ठ से प्राप्त हुई है। इस तरह भले ही प्रायोगिक ज्ञान एवं तथाकथित "वैज्ञानिक विधि' में आसक्त रहने वाले भौतिकतावादी हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन में श्रद्धा न रखें, किन्तु सच्चाई यह है कि हरे कृष्ण महामन्त्र के अपराधरहित कीर्तन मात्र से मनुष्य सारी सूक्ष्म तथा स्थूल भौतिक दशाओं से मुक्त हो सकता है। दिव्य लोक वैकुण्ठ कहलाता है। वैकुण्ठ का अर्थ है "चिन्तामुक्त।" भौतिक जगत् में हर वस्तु चिन्ता (कुण्ठा) से भरी है, जबकि आध्यात्मिक जगत् (वैकुण्ठ) में हर वस्तु चिन्ता से मुक्त है। अतएव जो विभिन्न चिन्ताओं से ग्रस्त हैं, वे सब चिन्ताओं से मुक्त हरे कृष्ण मन्त्र को नहीं समझ सकते। वर्तमान युग में हरे कृष्ण महामन्त्र की ध्वनि ही एकमात्र विधि है, जो भौतिक कल्मष से परे दिव्य स्थिति में है। पवित्र नाम बद्धजीव का उद्धार कर सकता है, इसलिए यहाँ पर इसे सर्व-मन्त्र-सार अर्थात् वैदिक स्तोत्रों का सार कहा गया है।

ऐसा नाम जो इस भौतिक जगत् की किसी वस्तु का निर्देश करता है, वह तर्क तथा प्रयोगात्मक ज्ञान का विषय बन सकता है, किन्तु परम जगत् में नाम तथा नामी, यश तथा यशस्वी अभिन्न हैं। इसी तरह परम से सम्बन्धित गुण, लीलाएँ और अन्य सब कुछ भी परम होता है। यद्यपि

मायावादी अद्वैतवाद को मानते हैं, किन्तु वे भगवान् के नाम तथा स्वयं भगवान् में भेद करते हैं। इस नामापराध के कारण वे क्रमशः ब्रह्मज्ञान के अपने उच्च पद से पतित हो जाते हैं, जिसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (10.2.32) में की गई है।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मद् अङ्घ्रयः

यद्यपि वे कठिन तपस्या करके ब्रह्मज्ञान के उच्च पद को प्राप्त करते हैं, किन्तु परम सत्य का अपूर्ण ज्ञान होने के कारण वे पतित हो जाते हैं। यद्यपि वे सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छान्दोग्य उपनिषद् 3.14.1)-हर वस्तु ब्रह्म है-इस वैदिक मन्त्र को मानते हैं, किन्तु वे यह नहीं समझ पाते कि पवित्र नाम भी ब्रह्म है। यदि वे महामन्त्र का नियमित जप करें, तो वे इस भ्रान्ति से मुक्त हो सकते हैं। पवित्र नाम की सुयोग्य रीति से शरण लिए बिना कोई भी व्यक्ति पवित्र नाम के कीर्तन की अपराधी अवस्था से मुक्त नहीं हो सकता।

एत बलि' एक श्लोक शिखाइल मोरे।

कण्ठे करि' एइ श्लोक करिह विचारे ॥75॥

एत बलि'-यह कहकर; एक श्लोक-एक श्लोक; शिखाइल-सिखाया; मोरे-मुझे; कण्ठे-कण्ठस्थ में; करि'-रखकर; एइ–यह; श्लोक-श्लोक; करिह-आप को करना चाहिए; विचारे-विचार।

अनुवाद

हरे कृष्ण महामन्त्र की शक्ति का वर्णन करने के बाद मेरे गुरु ने मुझे दूसरा श्लोक सिखाया और मुझे यह उपदेश दिया कि मैं इसे सदैव अपने कण्ठ के भीतर रखें।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ 76 ॥

हरेः नाम-भगवान् का पावन नाम; हरेः नाम-भगवान् का पावन नाम; हरेः नाम-भगवान् का पावन नाम; एव–निश्चित रूप से; केवलम् केवल; कलौ–इस कलियुग में; न अस्ति–नहीं है; एव–निश्चित रूप से; न अस्ति–नहीं है; एव-निश्चित रूप से; न अस्ति–नहीं है; एव–निश्चित रूप के; गतिः-गति; अन्यथा-इसके अलावा।

अनुवाद

"इस कलियुग में आध्यात्मिक उन्नति के लिए हरिनाम, हरिनाम, हरिनाम के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है, अन्य कोई विकल्प नहीं है, अन्य कोई विकल्प नहीं है।"

तात्पर्य

आध्यात्मिक जीवन की उन्नति के लिए शास्त्रों की संस्तुति है कि सत्ययुग में ध्यान, त्रेतायुग में भगवान् विष्णु के लिए यज्ञ तथा द्वापर युग में मन्दिर में भगवान् की विशद पूजा की जानी चाहिए, किन्तु कलियुग में एकमात्र भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन द्वारा ही आध्यात्मिक प्रगति की जा सकती है। इसकी पुष्टि अनेक शास्त्रों में की गई है। श्रीमद्भागवत में इस विषय में अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। बारहवें स्कन्ध (3.51) में कहा गया है कि :

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति हि एको महान् गुणः ।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥

कलियुग में अनेक दोष हैं, क्योंकि लोगों को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है, फिर भी इस युग को एक विशेष वर प्राप्त है-वह यह है कि हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन मात्र से मनुष्य सारे भौतिक कल्मष से मुक्त हो सकता है और इस तरह आध्यात्मिक जगत् को प्राप्त कर सकता है। नारद पञ्चरात्र में भी हरे कृष्ण महामन्त्र की प्रशंसा इस प्रकार की गई है :

त्रयो वेदाः षडङ्गानि छन्दांसि विविधाः सुराः

सर्वमष्टाक्षरान्त:स्थं यच्चान्यदपि वाङ्मयम्

सर्ववेदान्तसारार्थः संसारार्णवतारण: ॥

"तीन प्रकार के वैदिक कृत्य (कर्म काण्ड, ज्ञान काण्ड और उपासना काण्ड), छन्द अर्थात् वैदिक स्तोत्र तथा देवताओं को प्रसन्न करने की विधियाँ–यह समस्त वैदिक ज्ञान का सार हरे कृष्ण हरे कृष्ण इन आठ अक्षरों में निहित है। यही सारे वेदान्त की वास्तविकता है। अज्ञान के सागर को पार करने का एकमात्र साधन पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन है।" इसी प्रकार कलिसन्तरण उपनिषद् का कथन है-"हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे-ये सोलह नाम जो बत्तीस अक्षरों से बने हैं, कलियुग के दुष्प्रभावों को दूर करने के लिए एकमात्र साधन हैं। सारे वेदों में यही देखा जाता है कि अज्ञान के सागर को पार करने के लिए पवित्र भगवन्नाम के कीर्तन करने के अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं है। इसी प्रकार मुण्डक उपनिषद् की टीका करते हुए श्री मध्वाचार्य ने नारायण संहिता से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है :

द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पञ्चरात्रैस्तु केवलैः ।

कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः ॥

"द्वापर युग में कृष्ण या विष्णु केवल पञ्चरात्रिकी विधि से भव्य पूजा द्वारा प्रसन्न किये जा सकते हैं, किन्तु कलियुग में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि केवल पवित्र नाम के कीर्तन द्वारा पूजे जा सकते हैं और प्रसन्न किये जा सकते हैं।" श्रील जीव गोस्वामी भक्ति-सन्दर्भ (श्लोक 284) में पवित्र भगवन्नाम के कीर्तन के विषय में निम्न प्रकार से जोरदार संस्तुति करते हैं :

ननु भगवन्नामात्मका एव मन्त्राः, तत्र विशेषेण नमः शब्दाद्यलकृताः श्रीभगवता श्रीमऋषिभिश्चाहितशक्तिविशेषाः, श्रीभगवता समम् आत्मसम्बन्ध विशेषप्रतिपादकाश्च तत्र केवलानि श्री भगवन्नामान्यपि निरपेक्षाण्येव परम पुरुषार्थफलपर्यन्तदानसमर्थानि ततो मन्त्रेषु नामतोऽप्यधिकसामर्थ्य लब्धे कथं दीक्षाद्यपेक्षा उच्चते-यद्यपि स्वरूपतो नास्ति, तथापि प्रायः स्वभावतो देहादिसम्बन्धेन कदर्यशीलानां विक्षिप्तचित्तानां जनानां तत्सङ्कोचीकरणाय श्रीमऋषिप्रभृतिभिरत्रार्चनमार्गे क्वचित् क्वचित् काचित् काचिन् मर्यादा स्थापितास्ति।

श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि सारे वैदिक मन्त्रों का सार है- भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन। प्रत्येक मन्त्र नम ॐ उपसर्ग से प्रारम्भ होता है और अन्ततः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के नाम को सम्बोधित करता है। भगवान् की परम इच्छा से नारद तथा अन्य ऋषियों द्वारा उच्चारित प्रत्येक मन्त्र में विशेष शक्ति होती है। पवित्र भगवन्नाम के कीर्तन से परमेश्वर के साथ जीव का दिव्य सम्बन्ध तुरन्त जागृत हो उठता है।

भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने के लिए किसी साज-सामग्री की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से जुड़ने के फलस्वरूप सारे वांछित फल तुरन्त प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि जो पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन करता है, उसे दीक्षा लेने या भक्ति के अन्य कार्य करने की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि यह सच है कि पवित्र भगवन्नाम के कीर्तन में सदैव लगे रहने वाले को किसी प्रकार की दीक्षा की

आवश्यकता नहीं है, किन्तु सामान्यतया यह देखा जाता है कि भक्त अपने पूर्वजन्म के भौतिक कल्मष के कारण अनेक गलत भौतिक आदतों के प्रति आसक्त रहता है। इन सारे कल्मषों से शीघ्र छुटकारा पाने के लिए यह आवश्यक है कि वह मन्दिर में भगवान् की पूजा में लगे। बद्ध जीवन के कल्मष के कारण उत्पन्न चंचलता को कम करने के लिए मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा आवश्यक है। इस तरह नारद ने अपनी पाञ्चरात्रिकी-विधि में तथा अन्य ऋषियों ने कभी-कभी इस बात पर बल दिया है कि प्रत्येक बद्धजीव में इन्द्रिय-भोग के कारण जो देहात्म बुद्धि है, उस इन्द्रिय-भोग को नियन्त्रित करने के लिए मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा के विधि-विधान होने आवश्यक हैं। श्रील रूप गोस्वामी ने बतलाया है कि मुक्तात्माओं द्वारा पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन किया जा सकता है, किन्तु जितने जीवों को हमें दीक्षा देनी पड़ती है, लगभग वे सभी बद्ध होते हैं। अत: यह सलाह दी जाती है कि अपराधरहित होकर तथा विधि-विधानों के अनुसार, पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन किया जाए; फिर भी लोग अपनी विगत बुरी आदतों के कारण इन नियमों का पालन नहीं करते। इसलिए साथ-साथ अर्चाविग्रह की पूजा के विधि-विधानों की आवश्यकता है।

एइ आज्ञा पाञा नाम लइ अनुक्षण।

नाम लेते लैते मोर भ्रान्त हैल मन ॥ 77॥

एइ–यह; आज्ञा-आज्ञा; पाञा-पाकर; नाम-पवित्र नाम; लइ-जप करता हूँ; अनुक्षण-सदा; नाम-पावन नाम; लैते–स्वीकार करके; लैते–स्वीकार करके; मोर-मेरी; भ्रान्त-भ्रान्ति; हैल-हो रही; मन-मन में।

अनुवाद

चूँकि मुझे अपने गुरु से यह आदेश मिला है, अतएव मैं पवित्र नाम का सदैव जप करता हूँ। किन्तु मैं सोचता हूँ कि पवित्र नाम का बार बार जप-कीर्तन करते करते मैं मोहग्रस्त हो गया हूँ।

धैर्य धरिते नारि, हैलाम उन्मत्त ।

हासि, कान्दि, नाचि, गाइ, यैछे मदमत्त ॥78 ॥

धैर्य-धैर्य; धरिते-धरकर; नारि-लेने में अक्षम; हैलाम-मैं हो गया हूँ; उन्मत्त-उन्मत्त; हासि-हँसता हूँ; कान्दि-रोता हूँ; नाचि-नृत्य करता हूँ; गाइ–गाता हूँ; यैछे-इतना जितना कि; मदमत्त-पागल पुरुष।

अनुवाद

शुद्ध भावावेश में भगवन्नाम का कीर्तन करते हुए मैं अपने आपको भूल जाता हूँ। इस प्रकार मैं पागल की तरह हँसता, रोता, नाचता और गाता हूँ।

तबे धैर्य धरि' मने करिलुँ विचार ।

कृष्ण-नामे ज्ञानाच्छन्न हइल आमार ॥79॥

तबे-उसके पश्चात्; धैर्य-धैर्य; धरि'-धरकर; मने-मन में; करिलुँ-मैंने किया; विचार-विचार; कृष्ण-नामे-कृष्ण के पावन नाम का; ज्ञान आच्छन्न-अपने ज्ञान को ढक लिया; हइल हो गया है; आमार-मेरा।

अनुवाद

"इसलिए धैर्य धारण करके मैं सोचने लगा कि कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन ने मेरे समस्त आध्यात्मिक ज्ञान को आच्छादित कर लिया है।"

तात्पर्य

इस श्लोक में श्री चैतन्य महाप्रभु यह इंगित करते हैं कि कृष्ण के पवित्र नाम-कीर्तन के लिए मनुष्य को भगवत्-ज्ञान के दार्शनिक पक्षों के विषय में विचार करने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह स्वतः भावाविष्ट हो उठता है और बिना सोचे-विचारे तुरन्त ही पागल मनुष्य की तरह कीर्तन करने, नाचने, हँसने, रोने तथा गाने लगता है।

पागल हइलाँ आमि, धैर्य नाहि मने ।

एत चिन्ति' निवेदिलुँ गुरुर चरणे ॥80॥

पागल-पागल व्यक्ति; हइलाँ-मैं हो गया हूँ; आमि-मैं; धैर्य-धैर्य; नाहि-नहीं; मने-मन में; एत-इस प्रकार; चिन्ति'-सोचकर; निवेदिलुँ–सौंप दिया; गुरुर–गुरु के; चरणे-चरणकमलों में।

अनुवाद

"मैंने देखा कि पवित्र नाम का कीर्तन करने से मैं पागल हो गया हूँ, तो मैंने तुरन्त ही अपने गुरु के चरणकमलों में निवेदन किया।"

तात्पर्य

आदर्श शिक्षक के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु हमें रास्ता दिखलाते हैं कि शिष्य को अपने गुरु के साथ किस तरह व्यवहार करना चाहिए। जब भी उसे किसी बात में सन्देह हो, उसे स्पष्टीकरण के लिए अपने गुरु के पास जाना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने बतलाया कि कीर्तन करते और

नाचते हुए उन्हें भावोन्माद सा सवार हो गया, जो केवल मुक्तात्मा के लिए ही सम्भव है। वे मुक्तावस्था में भी सन्देह उठने पर अपने गुरु के पास जाते और उन्हें हर बात बताते थे। इसलिए किसी भी अवस्था में, यहाँ तक कि मुक्त होने पर भी, हमें चाहिए कि अपने आपको गुरु से स्वतन्त्र न मानें, अपितु ज्योंही आध्यात्मिक जीवन की प्रगति विषयक कोई सन्देह उठे, हमें तुरन्त गुरु को बतलाना चाहिए।

किबा मन्त्र दिला, गोसाञि, किबा तार बल ।

जपिते जपिते मन्त्र करिल पागल ॥81॥

किबा-किस प्रकार का; मन्त्र-मंत्र; दिला-आपने दिया है; गोसाञि-मेरे स्वामी; किबा-क्या है; तार–इसकी; बल-शक्ति; जपिते-जपने से; जपिते-जपने से; मन्त्र-मंत्र; करिल-मुझे किया है; पागल-पागल।

अनुवाद

"हे प्रभु, आपने मुझे कैसा मन्त्र दिया है? मैं तो इस महामन्त्र का कीर्तन करने मात्र से पागल हो गया हूँ।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने शिक्षाष्टक में प्रार्थना करते हैं :

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।

शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्द विरहेण मे ॥

“हे गोविन्द ! आपके विरह की अनुभूति करते हुए मुझे एक क्षण भी बारह वर्ष या उससे अधिक लगता है। मेरी आँखों से आँसुओं की धारा अविरत वर्षाधारा के समान प्रवाहित होती है और आपकी अनुपस्थिति में मैं इस जगत् में शून्य ही शून्य अनुभव करता हूँ।' भक्त की यही आकांक्षा होती है कि जब वह हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करे, तो उसके नेत्र सजल हों, उसकी वाणी रुद्ध हो जाए और उसका हृदय धड़कने लगे। भगवन्नाम का कीर्तन करने के ये शुभ लक्षण हैं। भाव-दशा में मनुष्य को गोविन्द की उपस्थिति के बिना सारा जगत् शून्य लगना चाहिए। यह गोविन्द के विरह का लक्षण है। भौतिक जीवन में हम सभी गोविन्द से विलग रहकर भौतिक इन्द्रियतृप्ति में मग्न रहते हैं। इसलिए आध्यात्मिक स्तर पर जब मनुष्य को होश आता है, तो वह गोविन्द से मिलने के लिए इतना आतुर हो उठता है कि उसे गोविन्द के बिना सारा जगत् शून्य लगने लगता है।

हासाय, नाचाय, मोरे कराय क्रन्दन ।

एत शुनि’ गुरु हासि बलिला वचन ॥82॥

हासाय-मुझे हँसाता है; नाचाय-मुझे नचाता है; मोरे-मुझे; कराय-यह कराता है; क्रन्दन–रुलाता; एत-इस प्रकार; शुनि’–सुनकर; गुरु-मेरे गुरु; हासि-हँसते हुए; बलिला–बोले; वचन-शब्द॥

अनुवाद

भाववश पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन करने से मैं नाचने, हँसने और रोने लगता हूँ।' जब मेरे गुरु ने यह सब सुना, तो वे हँसने लगे और मुझसे बोले।

तात्पर्य

जब शिष्य आध्यात्मिक जीवन में ठीक से प्रगति करता है, तो इससे गुरु को प्रसन्नता होती है और वह भी यह सोचकर भाववश हँसता है कि "मेरा शिष्य कितना सफल हो चुका है !" वह इतना प्रसन्न होता है कि वह अपने शिष्य की उन्नति से आनन्द अनुभव करके हँसने लगता है, जिस प्रकार कि मुस्कराते हुए माता-पिता अपने छोटे से बालक के खड़े होने या घुटने के बल चलने के प्रयास को देखकर आनन्दित होते हैं।

कृष्ण-नाम-महा-मन्त्रेर एइ त स्वभाव ।

येइ जपे, तार कृष्णे उपजये भाव ॥83॥

कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम; महा-मन्त्रेर–महामंत्र का; एइ त'—यह है इसका; स्वभाव-स्वभाव; येइ-कोई; जपे-जपता है; तार-उसका; कृष्णे-कृष्ण में; उपजये-विकसित होता है; भाव-भाव।

अनुवाद

"यह हरे कृष्ण महामन्त्र का स्वभाव है कि जो भी इसका कीर्तन करता है, उसमें तुरन्त ही कृष्ण के लिए प्रेमपूर्ण भाव उत्पन्न हो जाता है।

तात्पर्य

इस श्लोक में यह बतलाया गया है कि जो कोई हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करता है, उसमें 'भाव' विकसित हो जाता है, जो ऐसा बिन्दु है जहाँ से अनुभूति प्रारम्भ होने लगती है। यह भगवान् के लिए मौलिक प्रेम विकसित करने की प्रारम्भिक अवस्था है। भगवान् कृष्ण भगवद्गीता (10.8) में इस भाव अवस्था के बारे में कहते हैं :

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।

इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥

“मैं समस्त आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों का उद्गम हूँ। सभी वस्तुएँ मुझ से ही प्रकट होती हैं। बुद्धिमान लोग इसे भलीभाँति जानकर मेरी भक्ति में लगते हैं और पूरे मनोयोग से मेरी पूजा करते हैं।” नवशिक्षित शिष्य श्रवण, कीर्तन, भक्तों की संगति तथा विधि-विधानों के अभ्यास से शुभारम्भ करता है और इस तरह अपनी सारी अनावश्यक बुरी आदतों को नष्ट कर देता है। इस प्रकार वह कृष्ण के प्रति अनुरक्ति का विकास कर लेता है और वह कृष्ण को क्षण-भर के लिए भी नहीं भुला पाता। भाव को एक तरह से आध्यात्मिक जीवन की सफल अवस्था मानना चाहिए।

निष्ठावान जिज्ञासु अपने गुरु से भगवन्नाम को श्रवण द्वारा प्राप्त करता है और दीक्षा प्राप्त कर लेने के बाद वह गुरु द्वारा बताये गये नियमों का पालन करता है। इस प्रकार जब भगवन्नाम की समुचित सेवा की जाती है, तो फिर भगवन्नाम की आध्यात्मिक प्रकृति स्वतः विस्तारित होती है। दूसरे शब्दों में, भक्त पवित्र नाम का अपराधरहित जप करने की योग्यता प्राप्त करता है। जब इस तरह वह भगवन्नाम का जप करने का पूर्ण रूप से पात्र बन जाता है, तो वह संसार-भर में शिष्य बनाने के लिए योग्य बनता है और सचमुच जगद्गुरु बन जाता है। तब उसके प्रभाव में आकर सारा विश्व हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने लग जाता है। इस तरह ऐसे गुरु के सारे शिष्यों में कृष्ण के प्रति अनुरक्ति बढ़ जाती है, फलत: वह कभी रोता है, तो कभी हँसता है, कभी नाचता है, तो कभी कीर्तन करता है। ये लक्षण शुद्ध भक्त के शरीर में बहुत ही स्पष्ट दिखते हैं। कभी-कभी कृष्णभावनामृत आन्दोलन के हमारे अनुयायी जब कीर्तन करते और नाचते हैं, तो भारत में भी लोग यह देखकर आश्चर्य करते हैं कि इन विदेशियों ने किस तरह इस भाव दशा में कीर्तन करना और नाचना सीख लिया है। किन्तु जैसाकि चैतन्य महाप्रभु ने बतलाया है, यह अभ्यास से नहीं होता, क्योंकि जो भी

हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन निष्ठा से करता है, उस में ये लक्षण बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के प्रकट होते हैं।

हरे कृष्ण महामन्त्र की दिव्य प्रकृति को न जानने वाले अनेक मूर्ख लोग कभी-कभी हमें इस मन्त्र का ऊँचे स्वर से कीर्तन करने से रोकते हैं, किन्तु जो हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन सम्पन्न करने में वास्तव में उन्नत है, वह दूसरों को भी कीर्तन करने के लिए प्रेरित करता है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी बतलाते हैं-कृष्णशक्ति विना नहे तार प्रवर्तन-भगवान् कृष्ण से विशेष शक्ति पाये बिना कोई हरे कृष्ण महामन्त्र की महिमा का प्रचार नहीं कर सकता। जैसे जैसे भक्त हरे कृष्ण मन्त्र का प्रचार करते हैं, वैसे वैसे सारे विश्व की जनता पवित्र नाम की महिमा को समझने का अवसर प्राप्त करती है। कीर्तन करते, नाचते अथवा भगवन्नाम का श्रवण करते समय मनुष्य को स्वतः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्मरण होता है और चूँकि पवित्र नाम तथा कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है, अतएव कीर्तन करने वाला तुरन्त ही कृष्ण से जुड़ जाता है। इस प्रकार जुड़ने पर भक्त भगवान् के प्रति सेवा की अपनी मूल प्रवृत्ति को विकसित कर लेता है। निरन्तर कृष्ण की सेवा करने की इस प्रवृत्ति में, जिसे भाव कहते हैं, वह अनेक प्रकार से सदैव कृष्ण के विषय में सोचता है। जो इस भाव दशा को प्राप्त कर लेता है, वह माया के बन्धन में नहीं रहता। जब भक्त में इस भाव-अवस्था के साथ कम्पन, स्वेद, अश्रु आदि जुड़ जाते हैं, तब भक्त को क्रमशः कृष्ण-प्रेम प्राप्त हो जाता है।

कृष्ण का पवित्र नाम महामन्त्र कहलाता है। नारद पञ्चरात्र में वर्णित अन्य मन्त्र केवल मन्त्र हैं, किन्तु भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन महामन्त्र कहलाता है।

कृष्ण-विषयक प्रेमा–परम पुरुषार्थ ।

यार आगे तृण-तुल्य चारि पुरुषार्थ ॥84॥

कृष्ण-विषयक-कृष्ण के विषय में; प्रेमी-प्रेम; परम-परम; पुरुष-अर्थ-जीवन के ध्येय को पाना; यार–जिनका; आगे-सामने; तृण-तुल्य-सड़क पर तृण के समान; चारि–चार; पुरुष-अर्थ-पुरुषार्थ।

अनुवाद

"धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये जीवन के चार पुरुषार्थ के रूप में जाने जाते हैं, किन्तु भगवत्प्रेम के समक्ष, जो कि पाँचवाँ तथा सर्वोच्च पुरुषार्थ है, ये चारों पुरुषार्थ मार्ग में पड़े तृण के समान तुच्छ प्रतीत होते हैं।"

तात्पर्य

भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करते हुए मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष जैसी भौतिक प्रगतियों की कामना नहीं करनी चाहिए। चैतन्य महाप्रभु ने कहा है कि जीवन की सर्वोच्च सिद्धि कृष्ण-प्रेम विकसित करना है (प्रेमा पुमा महान् श्रीचैतन्यमहाप्रभोर् मतम् इदम्)। जब हम भगवत्प्रेम की तुलना धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष से करते हैं, तो हम यह समझ सकते हैं कि ये उपलब्धियाँ बुभुक्षुओं अर्थात् भौतिक जगत् का भोग करने के इच्छुकों या मुमुक्षुओं अर्थात् भौतिक जगत् से मोक्ष पाने के इच्छुकों के लिए अति वांछनीय उपलब्धियाँ हो सकती हैं, किन्तु ये उस शुद्ध भक्त के लिए अति नगण्य हैं, जिसने भगवत्प्रेम की प्रारम्भिक अवस्था भाव विकसित कर ली है।

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-ये भौतिक जगत् के धर्म के चार सिद्धान्त हैं। अतएव श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में घोषणा की गई है- धर्म: प्रोज्झित कैतवोऽत्र–इन चारों भौतिक सिद्धान्तों के रूप में ठगने वाली धार्मिक प्रणालियों का श्रीमद्भागवत में पूर्णतया बहिष्कार किया गया है, क्योंकि श्रीमद्भागवत केवल यही सिखाता है कि सुप्त भगवत्प्रेम को किस प्रकार विकसित किया

जाए। भगवद्गीता श्रीमद्भागवत का प्रारम्भिक अध्ययन है; इसीलिए उसका अन्त इन शब्दों के साथ होता है- सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज–"समस्त प्रकार के धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आओ।" (भगवद्गीता 18.66) इस साधन को ग्रहण करने के लिए मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के सारे विचारों का परित्याग कर देना चाहिए और जो इन चारों से परे है, ऐसे भगवान् की सेवा में पूरी तरह लग जाना चाहिए। भगवत्प्रेम आत्मा का मूल कार्य है और यह आत्मा तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की ही तरह शाश्वत होता है। यह शाश्वतता सनातन कहलाती है। जब भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपनी प्रेममयी सेवा को पुनरुज्जीवित कर लेता है, तो यह समझना चाहिए कि उसे वांछित जीवन-लक्ष्य प्राप्त करने में सफलता मिल चुकी है। उस समय हर काम पवित्र नाम की कृपा से स्वतः सम्पन्न हो जाता है और भक्त की आध्यात्मिक उन्नति स्वतः होने लगती है।

पञ्चम पुरुषार्थ—प्रेमानन्दामृत-सिन्धु ।

मोक्षादि आनन्द यार नहे एक बिन्दु ॥85॥

पञ्चम–पाँचवाँ; पुरुष-अर्थ-पुरुषार्थ, जीवन का ध्येय; प्रेम-आनन्द–भगवत् प्रेम का दिव्य आनन्द; अमृत-शाश्वत; सिन्धु-सागर; मोक्ष-आदि-मोक्ष आदि धर्म के सिद्धान्त; आनन्द–उनसे प्राप्त आनन्द; यार–जिनका; नहे–कभी नहीं तुलनीय; एक-एक; बिन्दु-बिन्दु।

अनुवाद

"जिस भक्त में भाव का सचमुच विकास हो चुका होता है, उसे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष से प्राप्त होने वाला आनन्द समुद्र की तुलना में एक बूंद जैसा लगता है।"

कृष्ण-नामेर फल–'प्रेमा', सर्व-शास्त्रे कय ।

भाग्ये सेइ प्रेमा तोमाय करिल उदय ॥86॥

कृष्ण-नामेर-भगवान् के पावन नाम का; फल-फल, परिणाम; प्रेमा–भगवत्प्रेम; सर्व-सब; शास्त्रे-शास्त्र; कय–वर्णन करते हैं; भाग्ये-सौभाग्यवश; सेइ-वह; प्रेमा-भगवत्प्रेम; तोमाय-तुमने; करिल–किया है; उदय-उदय हुआ।

अनुवाद

"सभी प्रामाणिक शास्त्रों का यह निर्णय है कि मनुष्य को अपना सुप्त भगवत्प्रेम जागृत करना चाहिए। तुमने पहले से ऐसा कर लिया है, इसलिए तुम अतीव भाग्यशाली हो।"

प्रेमार स्वभावे करे चित्त-तनु क्षोभ ।

कृष्णेर चरण-प्राप्त्ये उपजाय लोभ ॥87॥

प्रेमार-भगवत् प्रेम से; स्वभावे-स्वभाव से; करे-यह उत्पन्न करता है; चित्त-चेतना; तनु-शरीर; क्षोभ उत्तेजित; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; चरण-चरणकमल; प्राप्त्ये-प्राप्त करने के लिए; उपजाय-हो जाता है; लोभ-लोभ।

अनुवाद

"भगवत्प्रेम की यह विशेषता है कि स्वभाववश यह मनुष्य के शरीर में दिव्य लक्षण उत्पन्न करता है और उसे भगवान् के चरणकमलों की शरण प्राप्त करने के लिए अधिकाधिक लोभी बना देता है।"

प्रेमार स्वभावे भक्त हासे, कान्दे, गाय ।

उन्मत्त हइया नाचे, इति-उति धाय ॥88 ॥

प्रेमार-ऐसे भगवत्प्रेम से; स्वभावे-स्वभाव से; भक्त-भक्त; हासे-हँसता है; कान्दे-रोता है; गाय-गाता है; उन्मत्त-उन्मत्त; हइया-होकर; नाचे-नाचता है; इति-यहाँ; उति-वहाँ; धाय-दौड़ता है।

अनुवाद

"जब मनुष्य में सचमुच भगवत्प्रेम उत्पन्न हो जाता है, तो वह स्वभावतः कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी गाता है और कभी पागल की तरह इधर-उधर दौड़ता फिरता है।"

तात्पर्य

इसके सम्बन्ध में भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी कहते हैं कि कभी-कभी ऐसे लोग भावपूर्ण शारीरिक लक्षण प्रदर्शित करते हैं, जिनमें भगवत्प्रेम लेशमात्र भी नहीं होता। वे कभी-कभी बनावटी ढंग से पागलों की तरह हँसते, रोते तथा नाचते हैं, किन्तु इससे कृष्णभावनामृत में उन्नति करने में कोई सहायता नहीं मिलती। बल्कि मनुष्य को चाहिए कि जब स्वाभाविक रूप से आवश्यक शारीरिक लक्षण उत्पन्न होने लगें, तो इस प्रकार के शरीर के बनावटी लक्षणों को बन्द कर दे। वास्तविक आध्यात्मिक हँसी, रोदन तथा नृत्य द्वारा प्रकट होने वाला वास्तविक आनन्दमय जीवन कृष्णभावनामृत में वास्तविक प्रगति के लक्षण हैं। ये लक्षण उस व्यक्ति को प्राप्त हो सकते हैं, जो भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में स्वत: लगा रहता है। यदि कोई विकसित हुए बिना कृत्रिम ढंग से ऐसे लक्षणों की नकल करता है, तो वह मानव-जीवन के आध्यात्मिक जीवन में उत्पात खड़ा कर देता है।

स्वेद, कम्प, रोमाञ्चाश्रु, गद्गद, वैवर्य ।

उन्माद, विषाद, धैर्य, गर्व, हर्ष, दैन्य ॥89॥

एत भावे प्रेमा भक्तगणेरे नाचाय।

कृष्णेर आनन्दामृत-सागरे भासाय ॥90॥

स्वेद-पसीना; कम्प-कंपन; रोमाञ्च-रोमांच; अश्रु-अश्रु; गद्गद-गद्गद् होना; वैवर्य-शरीर का रंग बदलना; उन्माद-उन्माद; विषाद-विषाद; धैर्य-धैर्य; गर्व-अभिमान, गर्व; हर्ष-हर्ष; दैन्य-विनम्रता; एत-बहुत प्रकार से; भावे-भाव में; प्रेमा-ईश-प्रेम; भक्त-गणेरे-भक्तों को; नाचाय-नचाता है; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; आनन्द-दिव्य आनन्द; अमृत-अमृत; सागरे-सागर में; भासाय-तैरता है।

अनुवाद

"पसीना, कँपकँपी, रोओं का खड़ा होना, आँसू, वाणी का अवरोध, पीला पड़ना, पागलपन, विषाद, धैर्य, गर्व, हर्ष तथा दीनता-ये भगवत्प्रेम के विविध प्राकृतिक लक्षण हैं, जो भक्त को हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन करते समय दिव्य आनन्द के सागर में नचाते और तैराते हैं।"

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी अपने ग्रंथ प्रीतिसन्दर्भ (श्लोक 66) में भगवत्प्रेम की इस अवस्था का वर्णन करते हैं- भगवत्प्रीति रूपा वृत्तिर्मायादिमयी न भवति, किम् तर्हि, स्वरूपशक्त्यानन्दरूपा, यदानन्दपराधीनः श्रीभगवान् अपीति। इसी प्रकार 69वें श्लोक में वे और आगे व्याख्या करते हैं- तदेवं प्रीतेर्लक्षणं चित्तद्रवस्तस्य च रोमहर्षादिकम्। कथञ्चिजातेऽपि चित्तद्रवे रोमहर्षादिके वा न चेदाशयशुद्धिस्तदापि न भक्तेः सम्यग् आविर्भाव इति ज्ञापितम्। आशयशुद्धिर्नाम चान्यतात्पर्य परित्यागः प्रीतितात्पर्य च। अतएवानिमित्ता स्वाभाविकी चेति तद्विशेषणम्।दिव्य भगवत्प्रेम भौतिक

शक्ति के अन्तर्गत नहीं आता, क्योंकि यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दिव्य आनन्द और ह्लादिनी शक्ति है। चूँकि भगवान् दिव्य आनन्द के वशीभूत हैं, अतएव जब किसी को ऐसे भगवत्प्रेम के आनन्द का स्पर्श होता है, तो उसका हृदय द्रवित हो उठता है और शरीर में रोमांच आदि लक्षण प्रकट हो आते हैं। कभी-कभी व्यक्ति में हृदय द्रवित होने तथा रोमांच आदि दिव्य लक्षण तो देखे जाते हैं, किन्तु उसका आचरण आदर्श नहीं होता। इससे पता चलता है कि उसे अभी भक्तिमय जीवन की पूर्णता प्राप्त नहीं हो पाई। दूसरे शब्दों में, जो व्यक्ति भाववश नाचता है, किन्तु नाचने और रोने के बाद भौतिक व्यापारों के प्रति आकृष्ट होता दिखता है, उसे भक्ति की वह पूर्णता नहीं प्राप्त हुई है, जिसे आशय-शुद्धि कहते हैं। जिसे आशय-शुद्धि प्राप्त हो जाती है, वह भौतिक भोग से पूर्णतया विरक्त हो जाता है और दिव्य भगवत्प्रेम में डूब जाता है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आशय-शुद्धि के लक्षण तभी प्रकट होते हैं, जब भक्त की सेवा का कोई भौतिक कारण नहीं होता और वह नितान्त आध्यात्मिक होती है। श्रीमद्भागवत (1.2.6) में भगवत्प्रेम के यही लक्षण बतलाये गये हैं :

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

“वह धर्म सर्वश्रेष्ठ है, जो अपने अनुयायियों को भगवत्प्रेम में भावमय बना देता है और जो निष्काम तथा भौतिक बाधाओं से मुक्त होता है, क्योंकि केवल इसीसे आत्मा पूरी तरह प्रसन्न हो सकता है।”

भाल हैल, पाइले तुमि परम-पुरुषार्थ ।

तोमार प्रेमेते आमि हैलाँ कृतार्थ ॥91॥

भाल हैल-अच्छा हो; पाइले–पाया है; तुमि-तुमने; परम-पुरुषार्थ-जीवन का सर्वोत्तम ध्येय; तोमार-तुम्हारे; प्रेमेते-भगवत्प्रेम के विकास से; आमि-मैं; हैलाँ–होता हूँ; कृत-अर्थ-कृतार्थ।

अनुवाद

"हे पुत्र, यह तो अच्छा हुआ कि तुमने भगवत्प्रेम विकसित करके जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है। इस तरह तुमने मुझे अत्यधिक प्रसन्न कर लिया है और मैं तुम्हारा अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।"

तात्पर्य

प्रामाणिक शास्त्रों के अनुसार यदि कोई गुरु किसी एक व्यक्ति को भी शुद्ध भक्त बना लेता है, तो उसका जीवन-उद्देश्य पूरा हो जाता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर सर्वदा कहा करते थे, "मेरे पास जितनी सम्पत्ति, मन्दिर तथा मठ हैं, यदि उन्हें देकर मैं एक भी व्यक्ति को शुद्ध भक्त बना सकें, तो मेरा उद्देश्य पूरा हो जायेगा। किन्तु कृष्ण-विज्ञान को समझना बहुत कठिन है और भगवत्प्रेम विकसित करना तो और भी कठिन है। अत: यदि श्री चैतन्य महाप्रभु एवं गुरु की कृपा से किसी शिष्य को शुद्ध भक्ति का पद प्राप्त हो सके, तो गुरु अत्यधिक प्रसन्न होता है। यदि शिष्य गुरु के लिए धन लाता है, तो वह उतना प्रसन्न नहीं होता, जितना यह देखकर कि उसका शिष्य नियमों का पालन कर रहा है और आध्यात्मिक जीवन में प्रगति कर रहा है। गुरु ऐसे उन्नत शिष्य से अत्यन्त प्रसन्न होता है और उससे कृतार्थता का अनुभव करता है।

नाच, गाओ, भक्त-सङ्गे कर सङ्कीर्तन ।

कृष्ण-नाम उपदेशि' तार' सर्व-जन ॥92॥

नाच-नाचते रहो; गाओ-गाते रहो; भक्त-सङ्गे–भक्तों के संग; कर-जारी रखो; सङ्कीर्तन-पावन नाम का संकीर्तन करते रहो; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम; उपदेशि'–उपदेश देते हुए; तार'-उद्धार करो; सर्व-जन-सभी पतित आत्माओं का।

अनुवाद

"हे पुत्र, भक्तों के साथ तुम नृत्य और कीर्तन करना चालू रखो। बाहर जाकर कृष्ण नाम-कीर्तन के महत्त्व का प्रचार करो, क्योंकि इस विधि से तुम सारे पतितात्माओं का उद्धार कर सकोगे।"

तात्पर्य

गुरु की दूसरी अभिलाषा यह होती है कि उसके शिष्य न केवल कीर्तन, नृत्य तथा नियमों का पालन करें, अपितु दूसरों का उद्धार करने के लिए संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार भी करें। क्योंकि कृष्णभावनामृत आन्दोलन इस सिद्धान्त पर आधारित है कि शिष्य न केवल भक्ति में यथासम्भव पक्का बने, अपितु दूसरों के लाभ हेतु उसका प्रचार भी करे। अनन्य भक्तों की दो श्रेणियाँ हैं– गोठ्यानन्दी तथा भजनानन्दी। भजनानन्दी वह है, जो स्वयं भक्ति का अनुशीलन करने से सन्तुष्ट होता है, जबकि गोठ्यानन्दी केवल स्वयं पूर्ण बनने से सन्तुष्ट नहीं होता, किन्तु दूसरों को भी भगवन्नाम का लाभ उठाते और आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करते देखना चाहता है। इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रह्लाद महाराज हैं। जब नृसिंहदेव ने उन्हें वर माँगने को कहा, तो प्रह्लाद महाराज ने कहा :

नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्या-

स्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ।

शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थ-

यो माया सुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ॥

“हे प्रभु, न तो मुझे कोई कष्ट है और न ही आपसे मुझे कोई वर चाहिए, क्योंकि मैं आपके पवित्र नाम का कीर्तन करके परम सन्तुष्ट हूँ। यही मेरे लिए पर्याप्त है, क्योंकि जब भी मैं कीर्तन करता हूँ, मैं तुरन्त दिव्य आनन्द के सागर में मग्न हो जाता हूँ। बस आपके प्रेम से विहीन अन्यों को देखकर ही मुझे कष्ट होता है। वे क्षणभंगुर भौतिक सुख के लिए भौतिक कार्यकलापों में सड़ रहे हैं और मात्र इन्द्रियतृप्ति के लिए दिन-रात श्रम करते हुए भगवत्प्रेम में अनुरक्ति न होने से अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं। मैं केवल उन्हीं के लिए शोकमग्न हूँ और माया के बन्धन से उनका उद्धार करने के लिए तरह तरह की योजनाएँ बना रहा हूँ।” (भागवत 7.9.43)

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में बतलाते हैं, जो व्यक्ति अपनी निष्ठापूर्ण सेवा से अपने गुरु का ध्यान आकर्षित कर लेता है, वह अपने ही समान कृष्णभावनाभावित भक्तों के साथ नृत्य और कीर्तन करना चाहता है। गुरु ऐसे शिष्य को अधिकार देता है कि वह विश्वभर में पतितात्माओं का उद्धार करे। जो उन्नत भक्त नहीं हैं, वे एकान्त में हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करना पसन्द करते हैं।”भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार ऐसे कार्य एक प्रकार की ठग-विद्या के अन्तर्गत आते हैं, क्योंकि वे हरिदास ठाकुर जैसे महापुरुषों के कार्यकलापों का नकल करते हैं। मनुष्य को चाहिए कि ऐसे महापुरुषों की नकल करने का प्रयास न करे। बल्कि हर व्यक्ति को श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार सारे विश्व में करने का प्रयास करना चाहिए और इस तरह आध्यात्मिक जीवन को सफल बनाना चाहिए। जो व्यक्ति प्रचार-कार्य में निपुण नहीं है, वह बुरी संगति से बचते हुए एकान्त में कीर्तन कर सकता है, किन्तु जो सचमुच उन्नत है, उसके लिए प्रचार करना तथा भक्ति से विरक्त लोगों से मिलना हानिप्रद नहीं होगा। भक्त अभक्तों को अपनी संगति का

अवसर देता है, किन्तु उनके दुराचरण से प्रभावित नहीं होता। इस तरह शुद्ध भक्त के कार्यों से भगवत्प्रेम से विहीन लोग भी एक न एक दिन भगवान् के भक्त बनने का अवसर प्राप्त कर लेते हैं। इसके सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का उपदेश है कि श्रीमद्भागवत के नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः (10.33.30) श्लोक तथा भक्तिरसामृत सिन्धु के निम्नलिखित श्लोक (1.2.255) की चर्चा करें :

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः ।

निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते ॥

मनुष्य को चाहिए कि वह महापुरुषों के कार्यों की नकल न करे। उसे भौतिक भोग से विरक्त रहकर कृष्ण की सेवा से सम्बन्धित हर वस्तु को स्वीकार करना चाहिए।

एत बलि' एक श्लोक शिखाइल मोरे ।

भागवतेर सार एइ–बले वारे वारे ॥93॥

एत बलि'-यह कहकर; एक-एक; श्लोक-श्लोक; शिखाइल-सिखाया है; मोरे–मुझे; भागवतेर- श्रीमद्भागवत का; सार-सार; एइ–यह है; बले-उन्होंने वहा; वारे वारे-बारम्बर।

अनुवाद

"यह कहकर मेरे गुरु ने मुझे श्रीमद्भागवत का एक श्लोक सिखलाया। यह सम्पूर्ण भागवत की शिक्षाओं का सार है; अतएव उन्होंने मुझे इस श्लोक को बारम्बार सुनाया।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत का यह श्लोक (11.2.40) वसुदेव को भागवत धर्म सिखलाने के लिए नारद मुनि ने कहा था। वसुदेव को तो भागवत धर्म का फल पहले से मिल चुका था, क्योंकि भगवान् कृष्ण उनके घर में पुत्र रूप में प्रकट हुए थे। फिर भी दूसरों को शिक्षा देने के लिए उन्होंने श्री नारद मुनि से भागवत् धर्म की प्रक्रिया को समझने के लिए फिर सुनने की इच्छा प्रकट की। यह महान् भक्त की विनम्रता है।

एवं-व्रतः स्व-प्रिय-नाम-कीर्त्या

जातानुरागो द्रुत-चित्त उच्चैः ।

हसत्यथो रोदिति रौति गायत्य्

उन्माद-वन्नृत्यति लोक-बाह्यः ॥ 94॥

एवम्-व्रतः-जब व्यक्ति कीर्तन करने और नृत्य करने के व्रत में इस तरह व्यस्त हो जाता है; स्व-अपना; प्रिय–प्रिय; नाम-पावन नाम; कीर्त्या-जपने से; जात-इस प्रकार विकसित करता है; अनुरागः-अनुराग, आसक्ति; द्रुत-चित्तः-अत्यन्त उत्सुकता से; उच्चैः-ऊँची आवाज में; हसति-हँसता है; अथो-भी; रोदिति-रोता है; रौति–उत्तेजित हो जाता है; गायति-कीर्तन करता है; उन्माद-वत्-पागल की भाँति; नृत्यति-नृत्य करता है; लोक-बाह्यः-दूसरों की परवाह न करते हुए।

अनुवाद

“जब कोई व्यक्ति वास्तव में उन्नत होता है और अपने प्रिय भगवान् के नाम का कीर्तन करने में रुचि लेता है, तो वह विक्षुब्ध हो उठता है और ऊँचे स्वर से पवित्र नाम का कीर्तन करने

लगता है। वह हँसता भी है और रोता भी है और पागल की तरह दूसरों की परवाह न करते हुए कीर्तन भी करता है।"

एइ ताँर वाक्ये आमि दृढ़ विश्वास धरि।

निरन्तर कृष्ण-नाम सङ्कीर्तन करि॥ 95॥

सेइ कृष्ण-नाम कभु गाओयाय, नाचाय।

गाहि, नाचि नाहि आमि आपन-इच्छाय॥ 96॥

एइ–यह; ताँर-उनके (मेरे गुरु के); वाक्ये शब्दों में; आमि-मैं; दृढ़-दृढ़; विश्वास-विश्वास; धरि-घरकर; निरन्तर निरन्तर; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; सङ्कीर्तन-संकीर्तन; करि-जारी रखता हूँ; सेइ-वह; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; कभु-कभी-कभी; गाओयाय-गायन करवाता है; नाचाय-नृत्य करवाता है; गाहि-कीर्तन करने से; नाचि-नृत्य करना; नाहि-नहीं; आमि-मैं स्वयं; आपन-अपनी; इच्छाय-इच्छा।

अनुवाद

"मुझे अपने गुरु के इन वचनों पर दृढ़ विश्वास है, अतएव मैं एकान्त में तथा भक्तों के संग में सदैव भगवन्नाम का कीर्तन करता हूँ। भगवान् कृष्ण का वही पवित्र नाम कभी-कभी मुझे नचाता है और गायन कराता है। इसीलिए मैं नाचता और गाता हूँ। कृपया ऐसा न सोचें कि मैं जान-बूझकर ऐसा करता हूँ। यह अपने आप होता है।"

तात्पर्य

जो व्यक्ति अपने गुरु के वचनों में श्रद्धा नहीं रख सकता, अपितु स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है, उसे कभी भी भगवन्नाम कीर्तन करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। वेदों में (श्वेताश्वतर उपनिषद् 6.23 में) कहा गया है :

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

"जिन महात्माओं में भगवान् तथा गुरु दोनों के प्रति निर्विवाद श्रद्धा विद्यमान रहती है, उन्हें वैदिक ज्ञान का भावार्थ स्वत: प्रकट हो जाता है।" यह वैदिक आदेश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसकी पुष्टि अपने निजी आचरण द्वारा की है। उन्होंने अपने गुरु के शब्दों में विश्वास करके संकीर्तन आन्दोलन का सूत्रपात किया, जिस प्रकार कि हमने अपने गुरु के वचनों में विश्वास करके वर्तमान कृष्णभावनामृत आन्दोलन चालू किया है। वे चाहते थे कि प्रचार हो और हमने उनके शब्दों पर विश्वास करके उन्हें किसी न किसी तरह पूरा करने का प्रयास किया और अब यह आन्दोलन सारे विश्व में सफल हो चुका है। अतएव गुरु के वचनों में और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में श्रद्धा रखना ही सफलता का रहस्य है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कभी भी अपने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया और संकीर्तन आन्दोलन के प्रसार को रोका नहीं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ने अपना शरीर-त्यागते समय अपने सारे शिष्यों को आदेश दिया था कि वे एकसाथ मिलकर चैतन्य महाप्रभु के सन्देश का विश्वभर में प्रचार करें। किन्तु बाद में कुछेक स्वार्थी मूर्ख शिष्यों ने उनके आदेश का उल्लंघन कर दिया। उनमें से हर शिष्य संगठन का अध्यक्ष बनना चाहता था; अतएव वे गुरु के आदेशों की उपेक्षा करके अदालतों में लड़ने लगे और सारा कार्य व्यर्थ गया। हमें इस पर गर्व नहीं है, किन्तु सत्य की व्याख्या होनी चाहिए। हमें अपने गुरु के वचनों पर विश्वास था, अतएव हमने

अपने विनीत ढंग से-असहाय होते हुए भी उसे चालू रखा, किन्तु उस परम अधिकारी के आदेश के आध्यात्मिक बल पर ही यह आन्दोलन सफल हुआ है।

यह समझ लेना होगा कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु कीर्तन करते थे और नाचते थे, तो वे आध्यात्मिक जगत् की ह्लादिनी शक्ति के प्रभाव से ऐसा करते थे। न तो वे पवित्र भगवन्नाम को कोई भौतिक शब्द मानते थे, न ही कोई शुद्ध भक्त भूलकर भी हरे कृष्ण मन्त्र को भौतिक संगीत की अभिव्यक्ति मानता है। भगवान् चैतन्य ने कभी भी भगवन्नाम का स्वामी (अधिकारी) बनने का प्रयास नहीं किया, बल्कि उन्होंने हमें शिक्षा दी कि हमें किस तरह पवित्र भगवन्नाम का दास बनना चाहिए। यदि कोई भगवन्नाम का कीर्तन केवल दिखावा करने के लिए, सफलता का रहस्य समझे बिना करता है, तो उसके पित्त-स्राव में वृद्धि हो सकती है, किन्तु उसे कभी भी नाम-जप में पूर्णता प्राप्त नहीं होगी। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको इस रूप में प्रस्तुत किया, "मैं एक महामूर्ख हूँ, और मुझे उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं है। मैंने वेदान्त-सूत्र का वास्तविक अर्थ समझने के लिए न तो शंकर सम्प्रदाय की, न ही मायावादी संन्यासियों की व्याख्याओं का पालन किया। मैं मायावादी दार्शनिकों के अतार्किक तर्कों से अत्यधिक भयभीत रहता हूँ। अतएव मैं सोचता हूँ कि वेदान्त-सूत्र की उनकी व्याख्याओं के बारे में मुझे कोई अधिकार नहीं है। मेरा दृढ़ विश्वास है। कि पवित्र भगवन्नाम के कीर्तन मात्र से भौतिक संसार की सारी भ्रान्तियाँ दूर हो सकती हैं। मेरा विश्वास है कि पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन करने से ही मनुष्य को भगवान् के चरणकमलों की शरण प्राप्त हो सकती है। कलह और असहमति के इस युग में भौतिक बन्धनों से मुक्ति का एकमात्र उपाय भगवन्नाम कीर्तन है।"

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा-"मैं नाम का कीर्तन करने से उन्मत्त-सा हो गया हूँ। किन्तु अपने गुरु से पूछने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चार पुरुषार्थों

की प्राप्ति के लिए प्रयास करने की अपेक्षा श्रेयस्कर यही होगा कि किसी न किसी प्रकार दिव्य भगवत्प्रेम विकसित किया जाए। यही जीवन की सर्वोच्च सफलता है। जिसे यह भगवत्प्रेम प्राप्त हो जाता है, वह जनसमुदाय की परवाह न करते हुए स्वभाववश कीर्तन करता है और नाचता है।" जीवन की यह अवस्था भागवत् जीवन (भक्त का जीवन) कहलाती है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे बतलाया, "मैंने कभी दिखावे के लिए कीर्तन तथा नृत्य नहीं किया। मैं तो अपने गुरु के वचनों पर दृढ़ विश्वास रखकर नाचता तथा कीर्तन करता हूँ। यद्यपि मायावादी दर्शनिकों को मेरा यह नाचना तथा कीर्तन करना पसन्द नहीं है, किन्तु तो भी मैं गुरु वचनों के बल पर यह करता हूँ। अतएव निष्कर्ष यह निकलता है कि मुझे नाचने तथा कीर्तन करने के इन कार्यों का कोई श्रेय नहीं मिलना चाहिए, क्योंकि ये तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा से स्वतः सम्पन्न होते हैं।"

कृष्ण-नामे ये आनन्द-सिन्धु-आस्वादन ।

ब्रह्मानन्द तार आगे खातोदक-सम ॥ 97॥

कृष्ण-नामे-भगवान् के पावन नाम में; ये-जो; आनन्द–दिव्य आनन्द; सिन्धु-सागर; आस्वादन-आस्वादन; ब्रह्म-आनन्द–निराकार विचारधारा का दिव्य आनन्द; तार-इसके; आगे-आगे; खात-उदक-नहर में थोड़े जल के; सम-समान।

अनुवाद

"हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन से जिस दिव्य आनन्द सिन्धु का आस्वादन होता है, उसकी तुलना में निर्विशेष ब्रह्म के साक्षात्कार से प्राप्त होने वाला आनन्द (ब्रह्मानन्द) नहर के अल्प छीछले जल के समान है।"

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु (1.1.38) में कहा गया है :

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्धगुणीकृतः ।

नैति भक्तिसुखाम्भोधेः परमाणुतुलामपि ॥

“यदि ब्रह्मानन्द को दस लाख गुना कर दिया जाए, तो इतनी मात्रा का ब्रह्मानन्द शुद्ध भक्ति से प्राप्त होने वाले आनन्द के एक परमाणु के समान भी नहीं हो सकता।”

त्वत्साक्षात्करणाह्लाद-विशुद्धाब्धि-स्थितस्य मे ।

सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्माण्यपि जगद्गुरो ॥98॥

त्वत्-आपका; साक्षात्-साक्षात्; करण-ऐसा कार्य; आह्लाद-आह्लाद; विशुद्ध-विशुद्ध; अब्धि-समुद्र; स्थितस्य-स्थिर होकर; मे-मुझसे; सुखानि–सुख; गोष्पदायन्ते-बछड़े के खुर से बना एक छोटा गड्डा; ब्राह्मणि-शून्यवादी ब्रह्मज्ञान से उपलब्ध आनन्द; अपि-भी; जगत्-गुरो-हे जगद्गुरु।

अनुवाद

“हे प्रभु! हे ब्रह्माण्ड के स्वामी! चूँकि मैंने आपका साक्षात् दर्शन किया है, इसलिए मेरा दिव्य आनन्द सागर के समान हो गया है। अब उस सागर में स्थित मैं अन्य तथाकथित आनन्द को बछड़े के खुर की छाप में समाये जल की भाँति अनुभव करता हूँ।”

तात्पर्य

शुद्ध भक्ति से जो दिव्य आनन्द मिलता है, वह सागर के समान होता है, जबकि भौतिक सुख तथा निर्विशेष ब्रह्म के साक्षात्कार से मिलने वाला सुख बछड़े की खुर की छाप में भरे जल के समान है। यह हरिभक्ति सुधोदय का श्लोक है (14.36)।

प्रभुर मिष्ट-वाक्य शुनि' सन्न्यासीर गण।

चित्त फिरि' गेल, कहे मधुर वचन ॥ 99॥

प्रभुर–प्रभु के; मिष्ट-वाक्य-मधुर वाक्य (शब्द); शुनि'–सुनकर; सन्न्यासीर गण-संन्यासियों के सभी दल; चित्त-चेतना; फिरि'-बदल गई; गेल-गई; कहे–कहा; मधुर-मधुर; वचन–शब्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की मधुर वाणी सुनकर सारे मायावादी संन्यासी प्रभावित हो उठे। उनके चित्त बदल गये और उन्होंने मीठी वाणी में कहा।

तात्पर्य

मायावादी संन्यासी चैतन्य महाप्रभु से उनकी यह आलोचना करने के लिए वाराणसी में मिले थे कि वे संकीर्तन आन्दोलन में क्यों भाग लेते हैं। उन्हें संकीर्तन आन्दोलन पसन्द नहीं था। संकीर्तन आन्दोलन के विरुद्ध यह आसुरी स्वभाव निरन्तर बना हुआ है। जिस तरह यह चैतन्य महाप्रभु के समय में था, उसी तरह उनसे पूर्व, प्रह्लाद महाराज के समय में भी था। वे अपने पिता के न चाहने पर भी संकीर्तन करते थे और पिता तथा पुत्र के बीच मतभेद का यही कारण था। भगवद्गीता (7.15) में भगवान् कहते है :

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

मायया पहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

“जो दुष्ट नितान्त मूर्ख हैं, जो मनुष्यों में अधम हैं, जिनका ज्ञान माया द्वारा हर लिया गया है तथा वे जो आसुरी स्वभाव के हैं-वे मेरी शरण में नहीं आते।” मायावादी संन्यासी आसुरं भावमाश्रिता: हैं अर्थात् उन्होंने असुरों का मार्ग अपना रखा है, जो भगवान् के रूप के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते। मायावादी कहते हैं कि हर वस्तु का आखरी उद्गम निर्विशेष है और इस तरह वे ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हैं। यह कहना कि ईश्वर नहीं हैं, ईश्वर का प्रत्यक्ष निषेध है। किन्तु यह कहना कि ईश्वर हैं, किन्तु उनके न तो हाथ, पाँव या सिर होते हैं और न वे बोल सकते हैं, न सुन सकते हैं, न खा सकते हैं, यह उनके अस्तित्व के निषेध करने का नकारात्मक मार्ग है। जो व्यक्ति देख नहीं सकता वह अन्धा कहलाता है, जो चल नहीं सकता वह लँगड़ा कहलाता है, जिसके हाथ नहीं है, वह असहाय होता है, जो बोल नहीं सकता वह गूंगा कहलाता है और जो सुन नहीं सकता वह बहरा कहलाता है। मायावादियों की यह कल्पना है कि ईश्वर के न हाथ हैं, न आँखें, न पाँव, न कान। वे एक तरह से ईश्वर को अन्धे, बहरे, गूंगे, लँगड़े, असहाय इत्यादि कहकर उनका अपमान करते हैं। इसलिए भले ही वे अपने आपको महान् वेदान्ती क्यों न कहते रहें, वे वास्तव में मायया पहृतज्ञाना हैं। दूसरे शब्दों में, वे प्रकांड पंडित तो लगते हैं, किन्तु उनके ज्ञान का सार मानो निकाल लिया गया है।

निर्विशेष मायावादी सदैव वैष्णवों का विरोध करते रहते हैं, क्योंकि वैष्णवजन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को परम कारण मानकर उनकी सेवा करना चाहते हैं, उनसे बातें करना चाहते हैं और उन्हें देखना चाहते हैं, जिस प्रकार भगवान् भी अपने भक्तों को देखने और उनसे बातें करने, उनके साथ भोजन और नृत्य करने के लिए उत्सुक रहते हैं। प्रेम के ये निजी आदान-प्रदान मायावादी संन्यासियों को नहीं भाते। इसलिए बनारस के मायावादी संन्यासियों द्वारा चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने का मूल

उद्देश्य उनके ईश्वर की साकार विचारधारा को परास्त करना था। किन्तु प्रचारक के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन मायावादी संन्यासियों के मनों को बदल दिया। वे सभी महाप्रभु की मधुर वाणी से द्रवित हो उठे और उनके मित्र बनकर उनसे मधुर वाणी में बातें करने लगे। इसी तरह सभी प्रचारकों को विरोधियों का सामना करना पड़ेगा, किन्तु उन्हें और अधिक शत्रुतापूर्ण नहीं बनाना चाहिए। वे तो पहले से ही शत्रु हैं और यदि हम उनसे रुक्ष भाव से या अशिष्टता से बातें करेंगे, तो उनकी शत्रुता केवल बढ़ेगी। अतएव जहाँ तक हो सके, हमें चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए और विरोधियों को शास्त्रों के उद्धरण देकर तथा आचार्यों के प्रमाण प्रस्तुत करके प्रभावित करना चाहिए। इसी प्रकार से हमें भगवान् के सारे शत्रुओं को परास्त करने का प्रयास करना चाहिए।

ये किछु कहिले तुमि, सब सत्य हय ।

कृष्ण-प्रेमा सेइ पाय, यार भाग्योदय ॥100॥

ये-सब; किछु-वह; कहिले-आपने कहा; तुमि-आप; सब–प्रत्येक वस्तु; सत्य-सत्य; हय होता है; कृष्ण-प्रेमा-कृष्ण-प्रेम; सेइ-कोई; पाय-पाता है; यार-जिसका; भाग्य-उदय-भाग्य उदय होता है।

अनुवाद

प्रिय चैतन्य महाप्रभु, आपने जो भी कहा है, वह सब सच है। जिसके ऊपर भाग्य की कृपा होती है, उसे ही भगवत्प्रेम प्राप्त होता है।

तात्पर्य

जैसाकि चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी से कहा है (चैतन्य चरितामृत, मध्य 19.151), जो व्यक्ति वास्तव में अत्यन्त भाग्यशाली होता है, वही कृष्णभावनामृत का प्रारम्भ कर सकता है :

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव ।

गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्तिलताबीज ।

ऐसे करोड़ों जीव हैं, जो भौतिक प्रकृति के नियमों से बद्ध हो चुके हैं और वे विभिन्न शरीर धारण किये हुए इस ब्रह्माण्ड के ग्रह मण्डलों में विचरण कर रहे हैं। इनमें से जो भाग्यवान होता है, वही कृष्ण-कृपा से किसी प्रामाणिक गुरु से मिलता है और भक्ति के अर्थ को समझता है। वह प्रामाणिक गुरु या आचार्य के निर्देशन में भक्ति सम्पन्न करके भगवत्प्रेम विकसित करता है। इस तरह जिसमें कृष्णप्रेम जाग्रत हो जाता है और वह अचिन्त्य भगवान् का भक्त बन जाता है, उसे अत्यधिक भाग्यवान समझा जाता है। मायावादी संन्यासियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने इस तथ्य को स्वीकार किया। यद्यपि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति बनना आसान नहीं है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से यह सम्भव है, जैसाकि आगे इस कथा से स्पष्ट हो जायेगा।

कृष्ण भक्ति कर—इहाय सबार सन्तोष ।

वेदान्त ना शुन केने, तार किबा दोष ॥101॥

कृष्ण-कृष्ण की भक्ति-भक्ति; कर-करना; इहाय-इस विषय में; सबार–प्रत्येक का; सन्तोष-सन्तोष है; वेदान्त–वेदान्त-सूत्र का दर्शन; ना-नहीं; शुन-सुनो; केने-क्यों; तार-दर्शन का; किबा-क्या है; दोष-दोष।

अनुवाद

"हे महोदय, आपके कृष्ण के भक्त होने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। हममें से हर कोई इससे सन्तुष्ट है। किन्तु आप वेदान्त-सूत्र पर विचार-विमर्श करने से क्यों कतराते हैं? इसमें क्या दोष है?"

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है, "मायावादी संन्यासी यह स्वीकार करते हैं कि श्री शंकराचार्य-कृत शारीरक भाष्य ही वेदान्त-सूत्र का वास्तविक अर्थ बताने वाला है। दूसरे शब्दों में, मायावादी संन्यासी शंकराचार्य द्वारा दी गई वेदान्त-सूत्र की व्याख्याओं को मानते हैं, जो अद्वैतवाद पर आधारित हैं। इस तरह वे वेदान्त-सूत्र, उपनिषदों तथा ऐसे अन्य सारे वैदिक साहित्य की व्याख्या अपने निर्विशेषवादी ढंग से करते हैं।" महान् मायावादी संन्यासी सदानन्द योगीन्द्र ने वेदान्त सार नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें वे कहते हैं :

वेदान्तो नाम उपनिषत् प्रमाणम् ।

तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च ॥

सदानन्द योगीन्द्र के अनुसार श्री शंकराचार्य ने शारीरक भाष्य में वेदान्त-सूत्र तथा उपनिषदों को जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वे ही एकमात्र वैदिक प्रमाण हैं। किन्तु वास्तव में वेदान्त तो वैदिक ज्ञान के सार का सूचक है और यह तथ्य नहीं है कि शंकराचार्य ने शारीरक भाष्य में जो कुछ लिख दिया है, उसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। वैष्णव आचार्यों ने भी अन्य वेदान्त भाष्य लिखे हैं, जो न तो शंकराचार्य का अनुगमन करते हैं, न उनके सम्प्रदाय के कल्पनापूर्ण भाष्यों को मानते हैं। उनके भाष्य द्वैतदर्शन पर आधारित हैं। शंकराचार्य तथा उनके अनुयायी अद्वैतवादी हैं और वे यह स्थापित करना चाहते हैं कि ईश्वर तथा जीव एक हैं। परमेश्वर की पूजा करने के बदले वे स्वयं को

ईश्वर के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे चाहते हैं कि लोग ईश्वर के रूप में उनकी पूजा करें। ऐसे लोग वैष्णव आचार्यों की व्याख्याओं को स्वीकार नहीं करते जो शुद्धाद्वैत, शुद्धद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत तथा अचिन्त्यभेदाभेद नाम से जाने जाते हैं। मायावादी इन दर्शनों पर विचार-विमर्श नहीं करते, क्योंकि उनको अपने केवलाद्वैत दर्शन पर पूरा विश्वास है। वेदान्त-सूत्र को समझने के लिए इसी दर्शन को मान्य बताकर वे कृष्ण के शरीर को भौतिक तत्त्वों से बना बतलाते हैं और कृष्ण की प्रेमाभक्ति को वे भावुकता मानते हैं। वे इसीलिए मायावादी कहलाते हैं, क्योंकि उनके अनुसार कृष्ण का शरीर माया से बना हुआ है और भक्तों द्वारा सम्पन्न की जाने वाली प्रेमाभक्ति भी माया होती है। वे ऐसी भक्ति को कर्मकाण्ड का एक पक्ष मानते हैं। उनके मतानुसार भक्ति मानसिक चिन्तन या कभी-कभी ध्यान ही है। मायावादी तथा वैष्णव दर्शनों में यही अन्तर है।

एत शुनि' हासि' प्रभु बलिला वचन।

दुःख ना मानह यदि, करि निवेदन ॥102॥

एत-इस प्रकार; शुनि'–सुनकर; हासि'–मुस्कुराकर; प्रभु-चैतन्य महाप्रभुः बलिला–बोले; वचन-वचन; दुःख-दुःखी; ना-नहीं; मानह–इसे मानो; यदि-यदि; करि-मैं कहता हूँ, करता हूँ; निवेदन–आपको निवेदन।

अनुवाद

मायावादी संन्यासियों को इस प्रकार बोलते हुए सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु थोड़ा मुस्काये और बोले, "हे महाशयों, यदि आप बुरा न मानें तो मैं वेदान्त दर्शन के सम्बन्ध में कुछ कहूँ।"

तात्पर्य

मायावादी संन्यासियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रशंसा करते हुए उनसे पूछा, कि वे वेदान्त दर्शन पर विचार-विमर्श क्यों नहीं करते ? वास्तव में, वैष्णवों के सभी कार्य वेदान्त दर्शन पर ही आधारित है। वैष्णवजन वेदान्त की उपेक्षा नहीं करते, किन्तु वे शारीरक भाष्य के आधार पर वेदान्त को समझने का प्रयास नहीं करते। इसीलिए भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने मायावादी संन्यासियों की अनुमति लेकर स्थिति को स्पष्ट करने के लिए वेदान्त दर्शन के विषय में कुछ कहना चाहा।

वैष्णव विश्व के सबसे बड़े दार्शनिक होते हैं और इनमें से सबसे बड़े श्रील जीव गोस्वामी प्रभु थे। उनके दर्शन को चार सौ से कम वर्षों बाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर महाराज ने फिर से प्रस्तुत किया। अतएव हमें यह अच्छी तरह जान लेना होगा कि वैष्णव दार्शनिक न तो भावुक हैं, न ही सहजियों जैसे साधारण निम्न स्तर के भक्त। सारे वैष्णव आचार्य प्रकाण्ड विद्वान थे, जिन्हें वेदान्त दर्शन का पूर्ण ज्ञान था, क्योंकि वेदान्त दर्शन जाने बिना कोई आचार्य नहीं बन सकता। वैदिक सिद्धान्तों का अनुसरण करने वाले भारतीय अध्यात्मवादियों में आचार्य के रूप में मान्य होने के लिए अध्ययन द्वारा या श्रवण द्वारा वेदान्त दर्शन का प्रकाण्ड विद्वान होना आवश्यक है।

वेदान्त दर्शन का अनुगमन करने से भक्ति का विकास होता है। इसका उल्लेख श्रीमद्भागवत (1.2.12) में हुआ है :

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया ।

पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥

इस श्लोक में भक्त्या श्रुतगृहीतया शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इससे सूचित होता है कि भक्ति को उपनिषदों तथा वेदान्त-सूत्र के दर्शन पर आधारित होना चाहिए। श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है :-

श्रुतिस्मृतिपुराणादि पञ्चरात्रविधि विना।

ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते।

"वेदों, पुराणों, पञ्चरात्रों इत्यादि के प्रमाण बिना सम्पन्न की जाने वाली भक्ति को कोरी भावुकता मानना चाहिए, क्योंकि इससे समाज में केवल उत्पात मचता है।" वैष्णवों की अनेक कोटियाँ हैं (यथा कनिष्ठ अधिकारी, मध्यम अधिकारी तथा उत्तम अधिकारी); किन्तु मध्यम अधिकारी प्रचारक बनने के लिए भक्त को वेदान्त-सूत्र एवं अन्य वैदिक साहित्य का विद्वान होना आवश्यक है, क्योंकि जब भक्तियोग का विकास वेदान्त दर्शन के आधार पर होता है, तब वह यथार्थ एवं स्थायी होता है। इस सम्बन्ध में हम श्रीमद्भागवत के ऊपर दिये गये श्लोक (1.2.12) का अनुवाद तथा तात्पर्य उधृत करना चाहेंगे :

अनुवाद

गम्भीर जिज्ञासु या मुनि जो ज्ञान तथा वैराग्य से युक्त होता है, वह वेदान्त-श्रुति से सुनने के आधार पर सम्पन्न की जाने वाली भक्तिमय सेवा से ही परम सत्य की अनुभूति करता है।

तात्पर्य

परम सत्य का पूर्ण साक्षात्कार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव की भक्तिमय सेवा की प्रक्रिया द्वारा होता है, क्योंकि वे परिपूर्ण परम सत्य हैं। ब्रह्म उनका दिव्य शारीरिक तेज है और परमात्मा उनकी आंशिक अभिव्यक्ति है। अतएव ब्रह्म या परमात्मा की अनुभूति परम सत्य की केवल आंशिक अनुभूति होती है। मनुष्य चार प्रकार के होते हैं-कर्मी, ज्ञानी, योगी तथा भक्त। कर्मी तो भौतिकतावादी होते हैं, जबकि शेष तीन अध्यात्मवादी होते हैं। प्रथम श्रेणी के अध्यात्मवादी भक्त वे हैं, जिन्हें परम पुरुष की अनुभूति होती है। दूसरी श्रेणी के अध्यात्मवादी वे हैं, जिन्हें परम पुरुष के

पूर्ण अंश का आंशिक साक्षात्कार ही हुआ है और तृतीय श्रेणी के अध्यात्मवादी वे हैं, जिन्हें परम पुरुष के आध्यात्मिक तेज की केवल झाँकी ही मिल पाती है। जैसाकि भगवद्गीता तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में कहा गया है, परम पुरुष का साक्षात्कार भक्ति द्वारा किया जाता है, जिसकी पृष्ठभूमि में पूर्ण ज्ञान तथा भौतिक संगति से वैराग्य रहता है। हम यह पहले ही बता चुके हैं कि भक्ति से ज्ञान और भौतिक संगति से वैराग्य उत्पन्न होते हैं। चूँकि ब्रह्म और परमात्मा की अनुभूतियाँ परम सत्य की अपूर्ण अनुभूतियाँ हैं, अतः परम सत्य की अनुभूति हेतु ब्रह्म तथा परमात्मा का साक्षात्कार करने के साधन अर्थात् ज्ञान और योग-मार्ग भी अपूर्ण हैं। भक्ति ही एकमात्र पूर्ण विधि है, जिससे गम्भीर जिज्ञासु को परम सत्य की अनुभूति हो सकती है। ऐसी भक्ति की नींव पूर्ण ज्ञान तथा भौतिक संगति से वैराग्य पर आधारित होती है और यह वेदान्त-श्रुति के श्रवण द्वारा सुदृढ़ होती है। अतः भक्ति कम बुद्धि वाले अध्यात्मवादियों के लिए नहीं होती।

भक्तों की तीन श्रेणियाँ होती हैं-प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय वर्ग। तृतीय श्रेणी के भक्त अर्थात् नौसिखिये भक्त ज्ञानविहीन होते हैं और वे भौतिक संगति से विरक्त भी नहीं होते। वे तो मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा की प्रारम्भिक प्रक्रिया के प्रति ही आकृष्ट होते हैं। ऐसे भक्त भौतिक भक्त कहलाते हैं। ऐसे भक्त आध्यात्मिक लाभ की अपेक्षा भौतिक लाभ के प्रति अधिक आसक्त रहते हैं। अतः मनुष्य को इस भौतिक भक्ति से ऊपर उठकर भक्ति की द्वितीय अवस्था की ओर प्रगति करनी चाहिए। इस द्वितीय अवस्था में भक्त को भक्ति के चार तत्त्व दिखाई पड़ते हैं-परमेश्वर, उनके भक्त, अबोध जन तथा ईर्ष्यालु। मनुष्य को कम-से-कम इस द्वितीय श्रेणी के भक्त की अवस्था तक ऊपर उठना चाहिए, जिससे वह परम सत्य को जानने का अधिकारी बन सके।

अतः तृतीय श्रेणी के भक्त को भक्ति सम्बन्धी आदेश भागवत् के प्रामाणिक स्रोतों से प्राप्त करने होते हैं। पहला भागवत सुस्थापित भक्त है। दूसरा भागवत ईश्वर का सन्देश है। अतः तृतीय

श्रेणी के भक्त को भक्ति के उपदेश प्राप्त करने के लिए भक्त के पास जाना आवश्यक है। ऐसा भक्त कोई व्यापारी नहीं होता, जो भागवत बाँचने के व्यापार द्वारा अपनी जीविका चलाता हो। ऐसे भक्त को शुकदेव गोस्वामी के प्रतिनिधि सूत गोस्वामी जैसा होना चाहिए और उसे समस्त जनता के चतुर्दिक कल्याण के लिए भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करना चाहिए। नये भक्त को प्रामाणिक व्यक्तियों से सुनने में बहुत कम रुचि रहती है। ऐसा नया भक्त अपनी इन्द्रियतृप्ति हेतु किसी व्यावसायिक व्यक्ति से सुनने का दिखावा करता है। इस प्रकार के श्रवण तथा कीर्तन से सारा मामला बिगड़ चुका है, अतः मनुष्य को इस दोषपूर्ण विधि के प्रति अत्यन्त सतर्क रहने की आवश्यकता है। भगवद्गीता या श्रीमद्भागवत में निहित भगवान् के दिव्य सन्देश निस्सन्देह दिव्य विषय हैं, किन्तु तो भी व्यावसायिक व्यक्ति से उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह उन्हें उसी प्रकार विषाक्त कर देता है, जिस प्रकार सर्प अपनी जीभ के स्पर्श मात्र से दूध को विषाक्त बना देता है।

अतएव सच्चे भक्त को उपनिषद्, वेदान्त-सूत्र जैसे वैदिक साहित्य को तथा पूर्ववर्ती गोस्वामियों द्वारा छोड़े गये अन्य साहित्य को अपनी उन्नति के लिए सुनना चाहिए। ऐसे साहित्य का श्रवण किये बिना उसकी वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। श्रवण तथा आदेशों का पालन किये बिना भक्ति का दिखावा व्यर्थ है और यह भक्ति के पथ में अवरोध जैसा है। अतएव जब तक भक्ति श्रुति, स्मृति, पुराण तथा पञ्चरात्र प्रमाणों जैसे सिद्धान्तों पर स्थापित न हो, तब तक ऐसे भक्ति के दिखावे का तुरन्त त्याग करना चाहिए। किसी अनधिकृत भक्त को कभी भी शुद्ध भक्त की मान्यता नहीं दी जानी चाहिए। वैदिक साहित्य से ऐसे सन्देशों को आत्मसात् करने से अपने भीतर अन्तर्यामी परमात्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है। यही समाधि कहलाती है।

इहा शुनि' बले सर्व सन्न्यासीर गण ।

तोमाके देखिये यैछे साक्षात्नारायण ॥103॥

इहा-यह; शुनि'–सुनकर; बले-बोले; सर्व-सभी; सन्न्यासीर-मायावादी संन्यासियों का; गण-समूह, दल; तोमाके-आपको; देखिये-हम देखते हैं; यैछे-ठीक इस तरह; साक्षात्-साक्षात्; नारायण-नारायण।

अनुवाद

यह सुनकर मायावादी संन्यासी कुछ नम्र हुए और उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को साक्षात् नारायण के रूप में सम्बोधित किया और स्वीकार किया कि वे सचमुच नारायण हैं।

तात्पर्य

मायावादी संन्यासी एक दूसरे को नारायण कहकर सम्बोधित करते हैं। जब वे किसी अन्य संन्यासी को देखते हैं, तो ॐ नमो-नारायणाय ("नारायण, मैं आपको नमस्कार करता हूँ") कहकर सम्मान प्रदर्शित करते हैं, यद्यपि वे अच्छी तरह जानते रहते हैं कि वह किस प्रकार का नारायण है। नारायण तो चतुर्भुजी हैं, किन्तु यद्यपि वे नारायण होने के विचार से फूले रहते हैं, किन्तु उनके दो ही हाथ होते हैं। चूँकि उनका दर्शन यह बतलाता है कि नारायण तथा सामान्य व्यक्ति समान स्तर पर होते हैं, इसलिए वे कभी-कभी दरिद्रनारायण शब्द का प्रयोग करते हैं, जिसका आविष्कार ऐसे एक तथाकथित स्वामी ने किया था, जिसे वेदान्त-दर्शन का कोई ज्ञान न था। अतएव ये सारे मायावादी संन्यासी जो अपने आपको नारायण कहते थे, वे नारायण के पद से अनजान थे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनकी तपस्या के कारण उन्हें महाप्रभु को साक्षात् नारायण के रूप में समझने के लिए समर्थ बनाया। श्री चैतन्य महाप्रभु सचमुच भगवान् नारायण हैं, जो नारायण के भक्त-रूप में प्रकट हुए हैं और इस तरह मायावादी संन्यासियों ने उन्हें साक्षात् नारायण और अपने आपको गर्वित छद्म नारायण समझकर, उनसे इस प्रकार कहा।

तोमार वचन शुनि’ जुड़ाय श्रवण ।

तोमार माधुरी देखि’ जुड़ाय नयन ॥104॥

तोमार-आपका; वचन-वचन; शुनि’–सुनकर; जुड़ाय-अत्यन्त सन्तुष्ट होकर; श्रवण-श्रवण; तोमार-आपका; माधुरी-अमृत; देखि-देखकर; जुड़ाय-तुष्ट होते हैं; नयन हमारे नयन।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “हे चैतन्य महाप्रभु, सच बात तो यह है कि हम आपके वचन सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हैं और इसके अतिरिक्त आपका शारीरिक स्वरूप इतना मोहक है कि आपको देखकर हम अत्यन्त संतोष को अनुभव कर रहे हैं।

तात्पर्य

शास्त्रों में कहा गया है :

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः ।

सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः।

“कोई न तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को, न ही उनके नाम, रूप, गुण या परिकर को भौतिकता से कलुषित अपनी इन्द्रियों द्वारा समझ सकता है, किन्तु यदि वह उनकी सेवा करता है, तो वे अपने आपको प्रकाशित करते हैं।” (भक्तिरसामृत सिन्धु 1.2.234) यहाँ पर मायावादी संन्यासियों द्वारा नारायण की सेवा का प्रभाव देखा जा सकता है। चूँकि उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति थोड़ा सम्मान प्रदर्शित किया और चूँकि वे धार्मिक थे तथा संन्यास के कठोर विधि-विधानों का पालन करने वाले थे, अत: उन्हें वेदान्त-दर्शन का कुछ-कुछ ज्ञान हो गया था और वे भगवान् चैतन्य

महाप्रभु की कृपा से जान सके कि श्री चैतन्य महाप्रभु छः ऐश्वर्यों से युक्त स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अतिरिक्त कोई दूसरे नहीं हैं। इन ऐश्वर्यों में से एक है उनका सौन्दर्य। मायावादी संन्यासियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के अद्वितीय शारीरिक सौन्दर्य से पहचान लिया कि वे साक्षात् नारायण हैं। वे तथाकथित संन्यासियों के मनगढन्त दरिद्रनारायण जैसे नारायण नहीं थे।

तोमार प्रभावे सबार आनन्दित मन ।

कभु असङ्गत नहे तोमार वचन ॥ 105॥

तोमार-आपके; प्रभावे-प्रभाव से; सबार–प्रत्येक का; आनन्दित-आनन्दित; मन–मन; कभु-कभी भी; असङ्गत–असंगत, अनुचित; नहे-नहीं; तोमार-आपका; वचन-वचन, भाषण।

अनुवाद

"हे महोदय, आपके प्रभाव से हमारे मन अत्यधिक सन्तुष्ट हैं और हमें विश्वास है कि आपके वचन कभी अनुपयुक्त नहीं होंगे। अतएव आप वेदान्त-सूत्र के विषय में कहें।"

तात्पर्य

इस श्लोक में तोमार प्रभावे (आपके प्रभाव से) शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। जब तक कोई अध्यात्म में उन्नत नहीं होता, तब तक वह श्रोताओं को प्रभावित नहीं कर सकता। भक्तिविनोद ठाकुर का गीत है,-शुद्ध-भकत-चरण-रेणु, भजन-अनुकूल–"जब तक व्यक्ति शुद्ध भक्त का संग नहीं करता, तब तक वह भक्ति को समझने के लिए प्रभावित नहीं हो सकता।" ये मायावादी संन्यासी भाग्यवान थे कि इनकी भक्त के रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से भेंट हुई और निस्सन्देह, वे भगवान् से अत्यधिक प्रभावित भी हुए। वे जानते थे कि पूर्णतया उन्नत अध्यात्मवादी कभी कोई झूठी बात

नहीं कहता, उसके सारे शब्द उपयुक्त होते हैं और वैदिक कथनों से मेल खाते हैं। अत्यधिक अनुभूति-प्राप्त व्यक्ति कभी ऐसी कोई बात नहीं कहता, जो अर्थपूर्ण न हो। मायावादी दार्शनिक अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने का दावा करते हैं, लेकिन इसका कोई अर्थ नहीं होता, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने कभी ऐसी निरर्थक बातें नहीं कही। मायावादी संन्यासी उनके व्यक्तित्व के प्रति आश्वस्त थे, अतएव वे उनसे वेदान्त-दर्शन का तात्पर्य सुनना चाहते थे।

प्रभु कहे, वेदान्त-सूत्र ईश्वर-वचन।

व्यास-रूपे कैल याहा श्री-नारायण॥ 106॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहना प्रारम्भ किया; वेदान्त-सूत्र-वेदान्त-सूत्र का दर्शन; ईश्वर-वचन–ईश्वर के वचन, भगवान् द्वारा कथित; व्यास-रूपे-व्यासदेव के रूप में; कैल-उन्होंने किया है; याहा–जो कुछ; श्री-नारायण-श्री नारायण।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "वेदान्त दर्शन व्यासदेव के रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण द्वारा कहे गये वचन हैं।"

तात्पर्य

वेदान्त-सूत्र जो वैदिक ज्ञान को समझने की विधियों को प्रकट करने वाले सूत्रों का संकलन है, वह वैदिक ज्ञान का संक्षिप्त रूप है। इसका शुभारम्भ अथातो ब्रह्मजिज्ञासा शब्दों से होता है, जिसका अर्थ है-"अब परम सत्य के विषय में प्रश्न पूछने का समय है।" मनुष्य जीवन विशेषतया

इसी उद्देश्य के लिए है, अतएव वेदान्त-सूत्र संक्षेप में मानव उद्देश्य को बताता है। इसकी पुष्टि वायु तथा स्कन्द पुराणों के वचनों से होती है, जो सूत्र की परिभाषा इस प्रकार देते हैं :

अल्पाक्षरम् असन्दिग्धं सारवत् विश्वतोमुखम् ।

अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥

"सूत्र सूक्तियों का वह संकलन है, जो सारे ज्ञान के सार को कम-से-कम शब्दों में व्यक्त करता है। इसे सर्वत्र लागू होना चाहिए और भाषा की दृष्टि से त्रुटिरहित होना चाहिए।" इन सूत्रों से परिचित किसी भी व्यक्ति को वेदान्त-सूत्र की जानकारी भी होनी चाहिए, जो विद्वानों में निम्नलिखित अतिरिक्त नामों से भी जाना जाता है-(1) ब्रह्मसूत्र, (2) शारीरक, (3) व्यास-सूत्र, (4) बादरायण-सूत्र, (5) उत्तर मीमांसा तथा (6) वेदान्त-दर्शन।

वेदान्त-सूत्र में चार अध्याय हैं और हर अध्याय में चार पाद (विभाग) हैं। अतएव वेदान्त-सूत्र को षोडश पाद अर्थात् सोलह विभागों वाला भी कहा जा सकता है। प्रत्येक पाद की विषयवस्तु पाँच भिन्न-भिन्न विषयों (अधिकरणों) में पूर्णत: वर्णित है, जिन्हें पारिभाषिक दृष्टि से प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन कहा जाता है। प्रत्येक विषयवस्तु की व्याख्या प्रतिज्ञा अथवा विषय के उद्देश्य की घोषणा के सन्दर्भ में अवश्य की जाती है। वेदान्त-सूत्र के प्रारम्भ में जो प्रतिज्ञा दी गई है, वह है- अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा–जिससे सूचित होता है कि इस ग्रंथ की रचना परम सत्य के विषय में जिज्ञासा की प्रतिज्ञा के साथ की गई थी। इसी प्रकार कारण बतलाये जाने चाहिए (हेतु), तथ्यों पर आधारित उदाहरण दिये जाने चाहिए (उदाहरण), विषयवस्तु को क्रमशः समझने योग्य बनाना चाहिए (उपनय) और अन्त में वैदिक शास्त्रों से प्रमाण देकर इसका समर्थन किया जाना चाहिए (निगमन)।

महान् कोषकार हेमचन्द्र के अनुसार वेदान्त उपनिषदों तथा वेदों के ब्राह्मण अंश के तात्पर्य का द्योतक है। प्रोफेसर आप्टे ने अपने शब्दकोष में वेदों के ब्राह्मण अंश का वर्णन उस अंश के रूप में किया है, जो विविध यज्ञों में स्तुतियों के प्रयोग के नियमों को बतलाता है और उनकी उत्पत्ति की विस्तृत विवेचना करता है, जिसे वह कभी-कभी लम्बे-लम्बे पौराणिक कथाओं के दृष्टान्तों के रूप में प्रस्तुत करता है। यह वेदों के मंत्र विभाग से पृथक् है। हेमचन्द्र ने कहा है कि वेदों का पूरक वेदान्त-सूत्र कहलाता है। वेद का अर्थ है ज्ञान और अन्त का अर्थ है सीमा, अन्त। दूसरे शब्दों में, वेदों के चरम उद्देश्य का समुचित ज्ञान ही वेदान्त ज्ञान कहलाता है। वेदान्त-सूत्र के सूत्रों में दिए गये ऐसे ज्ञान की पुष्टि उपनिषदों द्वारा होनी चाहिए।

विद्वानों के अनुसार ज्ञान के तीन उद्गम हैं, जो प्रस्थान-त्रय कहलाते हैं। इन विद्वानों के अनुसार वेदान्त भी ऐसा एक उद्गम है, क्योंकि यह तर्क तथा युक्ति के आधार पर वैदिक ज्ञान को प्रस्तुत करता है। भगवद्गीता (13.5) में भगवान् ने कहा है-ब्रह्मसूत्र पदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः- "ब्रह्मसूत्र में कार्य और कारण सम्बन्धी वैध तर्क तथा युक्ति द्वारा जीवन के चरम उद्देश्य की जानकारी निश्चित की गई है। अतएव वेदान्त-सूत्र न्याय-प्रस्थान कहलाता है। और उपनिषदें श्रुति-प्रस्थान कहलाते हैं। इसी तरह गीता, महाभारत तथा पुराण स्मृति प्रस्थान कहलाते हैं। अध्यात्म सम्बन्धी सारे वैज्ञानिक ज्ञान की पुष्टि श्रुति, स्मृति तथा तर्कपूर्ण प्रमाण के आधार पर होनी चाहिए।

ऐसा कहा जाता है कि वैदिक ज्ञान तथा वेदों का पूरक साहित्य जो सात्वत पञ्चरात्र कहलाता है, दोनों पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण के श्वास से प्रकट हुए हैं। वेदान्त-सूत्र का संकलन श्री नारायण के शक्त्यावेश अवतार श्रील व्यासदेव द्वारा किया गया, यद्यपि कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि इसका संकलन अपान्तरतमा नामक एक महर्षि ने किया। किन्तु पञ्चरात्र तथा वेदान्त-सूत्र में एक ही मत व्यक्त हुए हैं। अत: श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुष्टि की है कि इन दोनों के मत में कोई

अन्तर नहीं है। महाप्रभु घोषित करते हैं कि चूँकि वेदान्त-सूत्र का संकलन श्रील व्यासदेव द्वारा किया गया, इसलिए वह श्री नारायण के श्वास से प्रकट हुआ समझा जा सकता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि जब व्यासदेव वेदान्त-सूत्र का संकलन कर रहे थे, तब उनके समकालीन सात अन्य सन्त महापुरुष भी इसी तरह के कार्य में लगे हुए थे। ये सन्त थे आत्रेय ऋषि, आश्मरथ्य, औडुलोमि, काष्र्णाजिनि, काशकृत्स्न, जैमिनि तथा बादरी। इनके अतिरिक्त यह भी बतलाया जाता है कि व्यासदेव के पूर्व पाराशरी तथा कर्मन्दी भिक्षु ने भी वेदान्त-सूत्र की चर्चा की थी।

जैसा ऊपर बताया जा चुका है, वेदान्त-सूत्र में चार अध्याय हैं। प्रथम दो अध्यायों में पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर के साथ जीव के सम्बन्ध की व्याख्या की गई है। इसे सम्बन्ध-ज्ञान कहा जाता है। तीसरे अध्याय में यह बतलाया गया है कि पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर के सम्बन्ध में जीव किस प्रकार कर्म कर सकता है। यह अभिधेय ज्ञान कहलाता है। परमेश्वर के साथ जीव के सम्बन्ध का वर्णन श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा इस तरह किया गया है : जीवेर 'स्वरूप' हय कृष्णेर 'नित्य दास'-"जीव परमेश्वर का नित्य दास है।" (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 20.108) इसलिए उस सम्बन्ध में कर्म करने के लिए मनुष्य को साधन भक्ति करनी चाहिए अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा के लिए नियत कर्तव्य करने चाहिए। यह अभिधेय-ज्ञान कहलाता है। चौथे अध्याय में इस प्रकार की भक्ति के परिणाम (प्रयोजन-ज्ञान) का वर्णन हुआ है। इस प्रकार जीवन का चरम लक्ष्य भगवद्धाम वापस जाना है। वेदान्त-सूत्र के अनावृत्तिः शब्दात् शब्द इसी चरम लक्ष्य को सूचित करते हैं।

नारायण के शक्त्यावेश अवतार श्रील व्यासदेव ने वेदान्त-सूत्र की रचना की और इसे अप्रामाणिक भाष्यों से बचाने के लिए स्वयं ही अपने गुरु नारद के आदेश से इसका मौलिक भाष्य श्रीमद्भागवत के रूप में लिखा। श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त प्रमुख वैष्णव आचार्यों द्वारा रची गई

वेदान्त-सूत्र की अनेक टीकाएँ हैं और इनमें से हर एक में भगवान् की भक्ति का स्पष्ट वर्णन हुआ है। जो लोग शंकर भाष्य का अनुगमन करते हैं, केवल उन लोगों ने वेदान्त-सूत्र का वर्णन निर्विशेष शैली में किया है, जिसमें विष्णु भक्ति का कहीं नामोल्लेख भी नहीं है। सामान्यतया लोग वेदान्त-सूत्र के इस निर्विशेष वर्णन अर्थात् शारीरक भाष्य को बहुत पसन्द करते हैं, किन्तु जिन-जिन भाष्यों में भगवान् विष्णु की भक्ति का अभाव है, उन्हें उद्देश्य की दृष्टि से मूल वेदान्त-सूत्र से अलग समझना चाहिए। दूसरे शब्दों में, श्री चैतन्य महाप्रभु ने निश्चित रूप से इस बात की पुष्टि की कि विष्णुभक्ति के आधार पर वैष्णव आचार्यों द्वारा लिखे गये भाष्य ही वेदान्त-सूत्र की वास्तविक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं, शंकराचार्य का शारीरक भाष्य नहीं।

भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव ।

ईश्वरेर वाक्ये नाहि दोष एइ सब ॥107॥

भ्रम-त्रुटि; प्रमाद-मोह; विप्रलिप्सा-धोखा देने के तरीके; करण-अपाटव-भौतिक इन्द्रियों की अपूर्णता; ईश्वरेर–भगवान् के; वाक्ये-भाषण में; नाहि-नहीं है; दोष-दोष; एइ सब-ये सब।

अनुवाद

“भगवान् के शब्दों में त्रुटि, मोह, प्रवंचना (ठगी) तथा इन्द्रिय-अपूर्णता जैसे भौतिक दोष नहीं पाये जाते।

तात्पर्य

त्रुटि का अर्थ है किसी वस्तु को यथार्थ रूप में स्वीकार करने के बदले भिन्न रूप में स्वीकार करना अथवा मिथ्या ज्ञान को स्वीकार करना। उदाहरणार्थ, अँधेरे में पड़ी रस्सी को देखकर उसे साँप

समझा जा सकता है या चमकती सीपी को सोना समझा जा सकता है। ये त्रुटियाँ हैं। इसी प्रकार सुनने में असावधानी के कारण उत्पन्न गलत ज्ञान को मोह कहते है। ऐसा त्रुटिपूर्ण ज्ञान दूसरों को प्रदान करने को छल या ठगी कहते हैं। भौतिकतावादी वैज्ञानिक तथा दार्शनिक सामन्यतया हो सकता है" अथवा "शायद" जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं, क्योंकि उन्हें पूर्ण तथ्यों का वास्तविक ज्ञान नहीं होता। अतएव उनके द्वारा दूसरों को शिक्षा देना ठगी का उदाहरण है। भौतिकतावादी व्यक्ति का सबसे बडा दोष यह है कि उसकी इन्द्रियाँ अपूर्ण होती हैं। उदाहरणार्थ, यद्यपि हमारी आँखों में देखने की शक्ति है, किन्तु ये आँखें दूर की वस्तुओं को नहीं देख सकतीं, न ही अपने निकट स्थित पलकों को देख पाती हैं। हमारी अपूर्ण आँखों को सूर्य एक तश्तरी जैसा लगता है और जिसे पीलिया रोग होता है, उसे सब कुछ पीला ही पीला दिखता है। अतएव ऐसी अपूर्ण आँखों द्वारा अर्जित ज्ञान पर हम विश्वास नहीं कर सकते। इसी तरह कान भी समान रूप से अपूर्ण हैं। हम बहुत दूर होने वाली ध्वनि को तब तक नहीं सुन सकते, जब तक हम कान में टेलीफोन नहीं लगा लेते। इसी प्रकार सारी इन्द्रियों का विश्लेषण करने पर हम समझ सकते हैं कि वे सभी अपूर्ण हैं। अतएव इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करना व्यर्थ है। वैदिक विधि है अधिकारी विद्वान (महाजन) से सुनना। भगवान् भगवद्गीता (4.2) में कहते हैं-एवं परम्परा प्राप्तम् इमं राजर्षयो विदुः–"यह परम विज्ञान गुरु-शिष्य परम्परा से प्राप्त किया गया और राजर्षियों ने इसे यथारूप समझा।" हमें टेलीफोन से नहीं, अपितु एक प्रामाणिक गुरू से सुनना चाहिए, क्योंकि उसी के पास वास्तविक ज्ञान रहता है।

उपनिषत्सहित सूत्र कहे येइ तत्त्व ।

मुख्य-वृत्त्ये सेइ अर्थ परम महत्त्व ॥ 108॥

उपनिषत्-उपनिषद्; सहित–सहित; सूत्र-वेदान्त-सूत्र; कहे-कहता है; येइ-विषय; तत्त्व-तत्त्व में; मुख्य-वृत्त्ये-मुख्य विचार से; सेइ-वही सत्य; अर्थ-अर्थ; परम-परम; महत्त्व-महत्त्व, महिमा।

अनुवाद

परम सत्य का वर्णन तो उपनिषदों तथा ब्रह्मसूत्र में किया गया है, किन्तु इनके श्लोकों को उनके यथार्थ रूप में समझना आवश्यक है। समझने की यही परम महिमा है।

तात्पर्य

शंकराचार्य के समय से यह एक चलन बन चुका है कि शास्त्रों से सम्बन्धित हर वस्तु की व्याख्या अप्रत्यक्ष रूप से की जाए। विद्वान अपने-अपने ढंग से व्याख्या करने में गर्व का अनुभव करते हैं और घोषित करते हैं कि जो जिस रूप में चाहे वैदिक शास्त्रों को समझ सकता है। यह "जैसा चाहो" की विधि मूर्खता है और इससे वैदिक संस्कृति में उत्पात उठ खड़ा हुआ है। वैज्ञानिक ज्ञान को कोई मनमाने ढंग से स्वीकार नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, गणितीय विज्ञान में दो और दो मिलाकर चार ही होता है, इसे न कोई तीन बना सकता है, न पाँच। यद्यपि वास्तविक ज्ञान को बदल पाना सम्भव नहीं है, फिर भी वैदिक ज्ञान को मनमाने ढंग से समझने का चलन चल पड़ा है। इसीलिए हमने भगवद्गीता यथारूप प्रस्तुत की है। हमने मनगढंत अर्थ नहीं निकाले हैं। कभी-कभी कुछ टीकाकार कहते हैं कि भगवद्गीता के पहले श्लोक में कुरुक्षेत्र शब्द शरीर के लिए आया है, किन्तु हम इसे नहीं मानते। हम समझते हैं कि कुरुक्षेत्र एक ऐसा स्थान है, जो आज भी विद्यमान है और वैदिक कथनानुसार यह धर्मक्षेत्र अर्थात् तीर्थस्थल है। आज भी लोग वहाँ वैदिक यज्ञ करने जाते हैं। किन्तु मूर्ख टीकाकार कहते हैं कि कुरुक्षेत्र का अर्थ शरीर है और पाँचों पाण्डव पाँच इन्द्रियाँ हैं। इस प्रकार वे अर्थ को विकृत करते हैं और लोगों को पथभ्रष्ट करते हैं। यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु पुष्टि करते हैं कि उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र समेत अन्य वैदिक साहित्य को, चाहे वह श्रुति हो या स्मृति या न्याय, उनके मूल कथनों के अनुसार समझना चाहिए। वैदिक साहित्य के सीधे अर्थ का वर्णन करना

महिमाशाली है, किन्तु उसका वर्णन अपने खुद के ढंग से अपूर्ण इन्द्रियों तथा ज्ञान के आधार पर करना भयावह त्रुटि है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने वेदों की ऐसी व्याख्या के प्रयास की निन्दा की है।

उपनिषदों में से निम्नलिखित ग्यारह उपनिषद् सर्वोपरि माने जाते हैं-ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक तथा श्वेताश्वतर। किन्तु मुक्तिकोपनिषद के श्लोक 30-39 में 108 उपनिषदों का वर्णन है। उनके नाम इस प्रकार हैं-(1) ईशोपनिषद्, (2) केनोपनिषद्, (3) कठोपनिषद्, (4) प्रश्नोपनिषद्, (5) मुण्डकोपनिषद्, (6) माण्डूक्योपनिषद्, (7) तैत्तिरीयोपनिषद्, (8) ऐतरेयोपनिषद्, (9) छान्दोग्योपनिषद्, (10) बृहदारण्यकोपनिषद्, (11) ब्रह्मोपनिषद्, (12) कैवल्योपनिषद्, (13) जाबालोपनिषद्, (14) श्वेताश्वतरोपनिषद्, (15) हंसोपनिषद्, (16) आरुणेयोपनिषद्, (17) गर्भोपनिषद्, (18) नारायणोपनिषद्, (19) परमहंसोपनिषद्, (20) अमृतबिन्दूपनिषद्, (21) नाद-बिन्दूपनिषद्, (22) शिरोपनिषद्, (23) अथर्व-शिखोपनिषद्, (24) मैत्रायण्युपनिषद्, (25) कौशीतक्युपनिषद्, (26) बृहज्जाबालो-पनिषद्, (27) नृसिंहतापनीयोपनिषद्, (28) कालाग्निरुद्रोपनिषद्, (29) मैत्रेय्युपनिषद्, (30) सुबालोपनिषद्, (31) क्षुरिकोपनिषद्, (32) मन्त्रिकोपनिषद्, (33) सर्वसारोपनिषद्, (34) निरालम्बोपनिषद्, (35) शुकरहस्योपनिषद्, (36) वज्रसूचिकोपनिषद्, (37) तेजो-बिन्दूपनिषद्, (38) नाद-बिन्दूपनिषद्, (39) ध्यानबिन्दूपनिषद्, (40) ब्रह्म-विद्योपनिषद्, (41) योग-तत्त्वोपनिषद्, (42) आत्मबोधो-पनिषद्, (43) नारद-परिव्राजकोपनिषद्, (44) त्रिशिख्युपनिषद्, (45) सीतोपनिषद्, (46) योग-चूडामणि उपनिषद्, (47) निर्वाणोपनिषद्, (48) मण्डल-ब्राह्मणोपनिषद्, (49) दक्षिणामूर्ति-उपनिषद्, (50) शरभो-पनिषद्, (51) स्कन्दोपनिषद्, (52) महानारायणोपनिषद्, (53) अद्वय-तारकोपनिषद्, (54) रामरहस्योपनिषद्, (55) रामतापण्युपनिषद्, (56) वासुदेवोपनिषद्, (57) मुग़लोपनिषद्, (58) शाण्डिल्योपनिषद्, (59) पैंगलोपनिषद्, (60)

भिक्षुपनिषद्, (61) महदुपनिषद्, (62) शारीरकोपनिषद्, (63) योगशिखोपनिषद्, (64) तुरीयातीतोपनिषद्, (65) संन्यासोपनिषद्, (66) परमहंस परिव्राजकोपनिषद्, (67) मालिको-पनिषद्, (68) अव्यक्तोपनिषद्, (69) एकाक्षरोपनिषद्, (70) पूर्णोपनिषद्, (71) सूर्योपनिषद्, (72) अक्ष्युपनिषद्, (73) अध्यात्मोपनिषद्, (74) कुण्डिकोपनिषद्, (75) सावित्र्युपनिषद्, (76) आत्मोपनिषद्, (77) पाशुपतोपनिषद्, (78) परम् ब्रह्मोपनिषद्, (79) अवधूतोपनिषद्, (80) त्रिपुरातपनोपनिषद्, (81) देव्युपनिषद्, (82) त्रिपुरोपनिषद्, (83) कठरुद्रोपनिषद्, (84) भावनोपनिषद्, (85) हृदयोपनिषद्, (86) योगकुण्डलिन्युपनिषद्, (87) भस्मोपनिषद्, (88) रुद्राक्षोपनिषद्, (89) गणोपनिषद्, (90) दर्शनोपनिषद्, (91) तारसारोपनिषद्, (92) महावाक्योपनिषद्, (93) पञ्चब्रह्मोपनिषद्, (94) प्राणाग्नि-होत्रोपनिषद्, (95) गोपाल तापन्युपनिषद्, (96) कृष्णोपनिषद्, (97) याज्ञवल्क्योपनिषद्, (98) वराहोपनिषद्, (99) शात्यायनि उपनिषद्, (100) हयग्रीवोपनिषद्, (101) दत्तात्रेयोपनिषद्, (102) गारुडोपनिषद्, (103) कलि उपनिषद्, (104) जाबाल्युपनिषद्, (105) सौभाग्योपनिषद्, (106) सरस्वती रहस्योपनिषद्, (107) बढ़चोपनिषद्, (108) मुक्तिको-पनिषद्। इस प्रकार सामान्यतया 108 उपनिषद् माने जाते हैं, जिनमें से ग्यारह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं, जिनका वर्णन पहले हो चुका है।

गौण-वृत्ये येबा भाष्य करिल आचार्य ।

ताहार श्रवणे नाश हय सर्व कार्य ॥109॥

गौण-वृत्ये-अप्रत्यक्ष अर्थ से; येबा-जो; भाष्य-टीका; करिल-तैयार की; आचार्य–शंकराचार्य; ताहार-इसके; श्रवणे-श्रवण में; नाश-नाश; हय-होता है; सर्व-सब; कार्य-कार्य।

अनुवाद

"श्रीपाद शंकराचार्य ने समस्त वैदिक साहित्य की व्याख्या अप्रत्यक्ष अर्थों में की है। जो ऐसी व्याख्या सुन लेता है, वह विनष्ट हो जाता है।"

ताँहार नाहिक दोष, ईश्वर-आज्ञा पाञा ।

गौणार्थ करिल मुख्य अर्थ आच्छादिया ॥110॥

ताँहार-श्री शंकराचार्य का; नाहिक-नहीं है; दोष-दोष; ईश्वर-ईश्वर; आज्ञा-आज्ञा; पाञा-पाकर; गौण-अर्थ-अप्रत्यक्ष अर्थ; करिल-करते हैं; मुख्य–मुख्य; अर्थ-अर्थ; आच्छादिया-ढककर, आच्छादित करके।

अनुवाद

"इसमें शंकराचार्य का कोई दोष नहीं है, क्योंकि उन्होंने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेशानुसार ही वेदों के वास्तविक उद्देश्य को आच्छादित किया।"

तात्पर्य

वैदिक साहित्य को वास्तविक ज्ञान का स्रोत माना जाता है, किन्तु यदि व्यक्ति उसे यथार्थ रूप में ग्रहण नहीं करेगा, तो वह पथभ्रष्ट हो जायेगा। उदाहरणार्थ, भगवद्गीता एक महत्त्वपूर्ण वैदिक ग्रंथ है, जिसकी शिक्षा अनेकानेक वर्षों से दी जाती रही है। किन्तु इसकी टीका कई धूर्त टीकाकारों ने मनमाने ढंग से की है, जिसके फलस्वरूप लोगों को इसका लाभ नहीं मिला और किसी को यह नहीं पता लगा कि कृष्णभावनामृत ही अन्तिम लक्ष्य है। किन्तु अब भगवद्गीता के उद्देश्य को यथारूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, अतएव चार-पाँच वर्षों के थोड़े समय में ही संसार-भर के हजारों लोग कृष्णभावनाभावित हो चुके हैं। वैदिक साहित्य की प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष व्याख्या में यही अन्तर है।

इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है-मुख्य-वृत्ये सेइ अर्थ परम महत्त्व–"वैदिक साहित्य के प्रत्यक्ष अर्थ की, बिना गलत टीका के, शिक्षा देना गौरवपूर्ण है।" दुर्भाग्यवश, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेश से श्री शंकराचार्य ने नास्तिकों को धोखा देने के लिए, उन्हें आस्तिक बनाने के लिए नास्तिकता तथा आस्तिकता के बीच का मार्ग निकाला और ऐसा करने के लिए उन्होंने वैदिक ज्ञान की प्रत्यक्ष विधि को त्यागकर अप्रत्यक्ष विधि अपनाई। इसी उद्देश्य से उन्होंने वेदान्त-सूत्र पर अपना शारीरक भाष्य लिखा।

इसलिए शारीरक भाष्य को अधिक महत्त्व देना उचित नहीं है। वेदान्त दर्शन को समझने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह श्रीमद्भागवत का अध्ययन करे, जिसका शुभारम्भ-ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, जन्माद्यस्य यतोऽन्वयाद् इतरतश्चार्थेष्वभिज्ञ: स्वराट् से होता है और जिसका अर्थ है, "मैं वसुदेव के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूँ, जो सर्वव्यापी परम पुरुष भगवान् हैं। मैं दिव्य सत्य रूपी उन भगवान् का ध्यान करता हूँ, जो समस्त कारणों के कारण हैं, जिनसे सारे ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं, जिनमें वे स्थित रहते हैं और जिनके द्वारा वे पुनः विनष्ट हो जाते हैं। मैं उन शाश्वत तेजस्वी भगवान् का ध्यान करता हूँ, जो समस्त प्राकट्य के बारे में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से जानते हुए भी पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। (भागवत 1.1.1) श्रीमद्भागवत ही वेदान्त-सूत्र का वास्तविक भाष्य है। दुर्भाग्यवश यदि कोई शंकराचार्य कृत शारीरक भाष्य के प्रति आकृष्ट होता है, तो समझ लीजिये कि उसका आध्यात्मिक जीवन विनष्ट हो गया।

कोई तर्क कर सकता है कि जब शंकराचार्य शिवजी के अवतार हैं, तो फिर उन्होंने लोगों को इस तरह क्यों ठगा? इसका उत्तर यह है कि उन्होंने अपने स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेश से ऐसा किया। इसकी पुष्टि स्वयं शिवजी ने पद्म पुराण में की है :

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते ।

मयैव कल्पितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥

ब्रह्मणश्चापरं रूपं निर्गुणं वक्ष्यते मया ।

सर्वस्वं जगतोऽप्यस्य मोहनार्थं कलौ युगे ॥

वेदान्ते तु महाशास्त्रे मायावादमवैदिकम् ।

मयैववक्ष्यते देवि जगतां नाशकारणात् ॥

शिवजी ने अपनी पत्नी पार्वती को बतलाया, "मायावाद दर्शन अपवित्र (असच्छास्त्र) है। यह प्रच्छन्न बौद्धवाद है। हे पार्वती, मैं कलियुग में ब्राह्मण रूप में इस कल्पित मायावाद दर्शन का उपदेश देता हूँ। नास्तिकों को ठगने के लिए मैं बतलाता हूँ कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् रूप और गुणों से रहित होते हैं। इसी तरह वेदान्त की व्याख्या करते समय मैं भगवान् के साकार रूप का निषेध करते हुए सारी जनता को नास्तिकता की ओर पथभ्रष्ट करने के लिए उसी मायावाद का वर्णन करता हूँ।" शिव पुराण में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने शिवजी से कहा :

द्वापरादौ युगे भूत्वा कलया मानुषादिषु ।

स्वागमैः कल्पितैस्त्वं च जनान्मविमुखान् कुरु ॥

"कलियुग में वेदों के कल्पित अर्थों की व्याख्या करके लोगों को मोहित और पथभ्रष्ट करो।" ये पुराणों के वर्णन हैं।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि मुख्यवृत्तिः (प्रत्यक्ष अर्थ) अभिधावृत्ति है अर्थात् जिसके अर्थ को लोग शब्दकोश से तुरन्त समझ लेते हैं, किन्तु गौणवृत्ति (अप्रत्यक्ष अर्थ) वह अर्थ है, जिसकी लोग शब्दकोश के बिना ही कल्पना कर लेते हैं। उदाहरणार्थ,

एक राजनीतिज्ञ ने कहा है कि कुरुक्षेत्र शरीर का द्योतक है, किन्तु शब्दकोश में ऐसी परिभाषा कहीं भी नहीं मिलती। इसलिए यह काल्पनिक अर्थ गौणवृत्ति है, जबकि शब्दकोशों में पाया जाने वाला प्रत्यक्ष अर्थ मुख्यवृत्ति या अभिधावृत्ति है। यही दोनों में अन्तर है। श्री चैतन्य महाप्रभु का कहना है कि मनुष्य वैदिक साहित्य को अभिधावृत्ति से समझते हैं और गौणवृत्ति से उसका परित्याग करते हैं। कभी-कभी आवश्यकतानुसार वैदिक साहित्य का वर्णन लक्षणावृत्ति या गौणवृत्ति के सन्दर्भ में किया जाता है, किन्तु ऐसी व्याख्याओं को स्थायी सत्य नहीं मानना चाहिए।

उपनिषदों तथा वेदान्त-सूत्र में व्याख्याओं का उद्देश्य परम सत्य के साकार रूप को दार्शनिक विधि से प्रतिष्ठित करना है। किन्तु निर्विशेषवादी अपने दर्शन को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से लक्षणावृत्ति के अनुसार इन व्याख्याओं का स्वीकार करते हैं। इस तरह वे तत्त्ववादी अर्थात् परम सत्य की खोज में न रहकर, मायावादी बन जाते हैं अर्थात् भौतिक शक्ति द्वारा मोहित हो जाते हैं। जब वैष्णव सम्प्रदाय के चार आचार्यों में से एक श्री विष्णुस्वामी ने शुद्धाद्वैतवाद के विषय में अपना भाष्य प्रस्तुत किया, तो मायावादियों ने इस दर्शन का तुरन्त लाभ उठाया और अपने अद्वैतवाद या केवलाद्वैतवाद को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। इस केवलाद्वैतवाद को पूर्णतया परास्त करने के लिए ही श्री रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद नामक अपना दर्शन और श्री मध्वाचार्य ने अपना तत्त्ववाद दर्शन प्रस्तुत किया। ये दोनों ही मायावादियों के लिए अवरोधक हैं, क्योंकि ये उनके दर्शन को पूर्णतया परास्त करने वाले हैं। वैदिक दर्शन के छात्र अच्छी तरह जानते हैं कि श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद तथा श्री मध्वाचार्य के तत्त्ववाद, निर्विशेष मायावाद दर्शन का कितना प्रबल विरोध करते हैं। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने वेदान्त दर्शन के प्रत्यक्ष अर्थ को स्वीकार किया और इस तरह मायावाद दर्शन को तुरन्त परास्त कर दिया। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपना मत व्यक्त किया

कि जो भी शारीरक भाष्य के सिद्धान्तों का अनुसरण करता है, उसका विनाश अवश्यम्भावी है। इसकी पुष्टि पद्म पुराण में की गई है, जहाँ शिवजी पार्वती से कहते हैं :

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम् ।

येषां श्रवणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि ॥

अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयाल्लोक गर्हितम् ।

कर्मस्वरूपत्याज्यत्वम् अत्र च प्रतिपाद्यते ॥

सर्वकर्मपरिभ्रंशान् नैष्कर्म्य तत्र चोच्यते ।

परात्मजीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते ॥

"प्रिये, मैंने मायावाद दर्शन के माध्यम से जिस तरह अज्ञान फैलाया है, उसकी व्याख्या सुनो। मात्र इसे सुनकर बड़े से बड़ा विद्वान भी पतित हो जायेगा। यह दर्शन निश्चय ही जनता के लिए अत्यन्त अशुभ है और इसमें मैंने वेदों के वास्तविक अर्थ की गलत व्याख्या की है और संस्तुति की है कि कर्म से मुक्ति पाने के लिए सारे कर्मों का त्याग कर दो। मैंने इस मायावाद दर्शन में जीवात्मा तथा परमात्मा को एक बतलाया है।" श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके अनुयायियों ने मायावाद दर्शन की किस तरह भर्त्सना की है, इसका वर्णन श्रीचैतन्य-चरितामृत, अन्त्यलीला (अध्याय 2 श्लोक 94-99) में मिलता है, जहाँ स्वरूप दामोदर गोस्वामी कहते हैं कि जो कोई मायावाद दर्शन समझने को उत्सुक हो, उसे भ्रान्त-चित्त माना जाना चाहिए। यह उस व्यक्ति पर विशेष रूप से लागू होता है, जो शारीरक भाष्य पढ़कर अपने आपको ईश्वर से अभिन्न मानता है। मायावादी दार्शनिकों ने अपने तर्कों को ऐसी आलंकारिक आकर्षक भाषा में प्रस्तुत किया है कि मायावादी दर्शन सुनकर एक

महाभागवत का मन भी कभी-कभी बदल जाता है। एक सच्चा वैष्णव कभी ऐसा दर्शन स्वीकार नहीं कर सकता है, जो ईश्वर तथा जीव को एक मानता हो।

'ब्रह्म'-शब्दे मुख्य अर्थे कहे भगवान् ।

चिदैश्वर्य-परिपूर्ण, अनू-समान ॥111॥

ब्रह्म-परम सत्य; शब्दे-इस शब्द से; मुख्य–मुख्य; अर्थे–अर्थ; कहे-कहते हैं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; चित्-ऐश्वर्य-आध्यात्मिक ऐश्वर्य; परिपूर्ण–परिपूर्ण; अनूर्ध्व-किसी द्वारा भी न पराजित; समान–किसी के भी बराबर नहीं।

अनुवाद

"प्रत्यक्ष ज्ञान के अनुसार, परम सत्य ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, जिनमें सारे आध्यात्मिक ऐश्वर्य रहते हैं। कोई न तो उनके तुल्य है, न उनसे बड़ा है।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के इस कथन की पुष्टि श्रीमद्भागवत (1.2.11) में हुई है :

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।

"विद्वान अध्यात्मवादी, जो इस परम सत्य को जानते हैं, इस अद्वय तत्त्व को ब्रह्म, परमात्मा या भगवान् कहते हैं।" परम सत्य अन्ततः भगवान् हैं, जो आंशिक रूप में परमात्मा और अस्पष्ट रूप में निर्विशेष ब्रह्म समझे जाते हैं। भगवान् अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर सभी प्रकार से ऐश्वर्यवान हैं

और कोई न तो उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (7.7) में भी हुई है, जहाँ भगवान् कहते हैं- मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय- "हे धनंजय (अर्जुन) ! मुझसे बढ़कर कोई सत्य नहीं है।" ऐसे अन्य अनेक श्लोक हैं, जो सिद्ध करते हैं कि परम सत्य को अन्ततः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के रूप में समझना होगा।

ताँहार विभूति, देह,—सब चिदाकार।

चिद्विभूति आच्छादि' ताँरे कहे निराकार ॥112॥

ताँहार-उनका (पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का); विभूति-आध्यात्मिक शक्ति; देह-शरीर; सब-सब; चित्-आकार-आध्यात्मिक रूप; चित्-विभूति-आध्यात्मिक ऐश्वर्य; आच्छादि'-ढककर, आच्छादित करके; ताँरे–उनको; कहे-कहता है; निराकार-बिना रूप के, निराकार।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सम्बन्धी हर वस्तु आध्यात्मिक होती है, जिसमें उनका शरीर, ऐश्वर्य तथा साज-सामग्री सम्मिलित हैं। किन्तु मायावाद दर्शन उनके आध्यात्मिक ऐश्वर्य को छिपाकर निर्विशेषवाद का समर्थन करता है।"

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता में कहा गया है-ईश्वरः परम: कृष्ण: सच्चिदानन्द विग्रह:-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का शरीर आध्यात्मिक है जो सनातन है एवं पूर्ण ज्ञान तथा आनन्द से युक्त है। इस भौतिक जगत् में हर एक का शरीर इसके विपरीत-नश्वर, अज्ञानता से भरा तथा दु:खमय होता है। अतएव

जब कभी भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् निराकार कहे जाते हैं, तब इससे यही सूचित होता है कि उनका शरीर हमारे जैसा भौतिक नहीं है।

मायावादी दार्शनिक यह नहीं जानते कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् किस प्रकार रूपविहीन (निराकार) हैं। भगवान् का हमारे जैसा रूप नहीं है, अपितु उनका रूप आध्यात्मिक होता है। इसे न जानते हुए मायावादी दार्शनिक केवल यही एकपक्षीय तर्क देते हैं कि भगवान् या ब्रह्म निराकार है। इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर वैदिक साहित्य से अनेक उद्धरण देते हैं। यदि कोई इन वैदिक कथनों के वास्तविक या प्रत्यक्ष अर्थ को स्वीकार करता है, तो वह समझ सकता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का शरीर आध्यात्मिक (सच्चिदानन्द विग्रहः) होता है।

बृहदारण्यक उपनिषद (5.1.1) में कहा गया है- पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। इससे सूचित होता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का शरीर आध्यात्मिक होता है, क्योंकि भले ही वे अनेक रूपों में विस्तार करते हैं, किन्तु वे वैसे ही बने रहते हैं। भगवद्गीता (10.8) में भगवान् कहते हैं-अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते-"मैं सबका उद्गम हूँ। हर वस्तु मुझ से उत्पन्न है।" मायावादी दार्शनिक भौतिक दृष्टिकोण से सोचते हैं कि यदि परम सत्य अपना विस्तार हर वस्तु में करने लगें, तो उनका मूल रूप समाप्त हो जायेगा। इस प्रकार वे सोचते हैं कि विराट् रूप के अतिरिक्त भगवान् का कोई अन्य रूप हो ही नहीं सकता। किन्तु बृहदारण्यक उपनिषद् के मन्त्र- पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते-से इसकी पुष्टि होती है-"यद्यपि वे अनेक प्रकार से विस्तार करते हैं, फिर भी वे अपने मूल व्यक्तित्व को बनाये रखते हैं। उनका मूल आध्यात्मिक शरीर उसी प्रकार बना रहता है। इसी प्रकार कहीं और कहा गया है-विचित्र शक्तिः पुरुषः पुराण:-"आदि पुरुष, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की विविध शक्तियाँ हैं।" और श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा गया है-स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयं धर्मावहं पापनुदं भगेशम्–"वे भौतिक सृष्टि के उद्गम हैं और उन्हीं के कारण हर वस्तु

बदलती है। वे धर्म के रक्षक हैं और समस्त पापकर्मों के विनाशक हैं। वे सारे ऐश्वर्यों के स्वामी हैं।" (श्वेताश्वतर उपनिषद्6.6) वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्–"अब मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को महान् से महानतम समझता हूँ। वे सूर्य के समान तेजस्वी हैं और इस भौतिक जगत् से परे हैं।" (श्वेताश्वतर उपनिषद् 3.8) पतिं पतीनां परमं परस्तात्–"वे सारे स्वामियों के स्वामी हैं, सभी श्रेष्ठों में श्रेष्ठ हैं।" (श्वेताश्वतर उपनिषद् 6.7) महान् प्रभु पुरुष:-"वे सर्वोपरि स्वामी तथा परम पुरुष हैं।" (श्वेताश्वतर उपनिषद् 3.12) परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते–"हम उनके ऐश्वर्यों को अनेक प्रकारों से समझ सकते हैं।" (श्वेताश्वतर उपनिषद् 6.8) इसी प्रकार ऋग्वेद में कहा गया है-तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः–"विष्णु सर्वश्रेष्ठ हैं और जो सचमुच विद्वान हैं, वे केवल उनके ही चरणकमलों का चिन्तन करते हैं।" प्रश्न उपनिषद (6.3) में कहा गया है–स ईक्षांचक्रे–"उन्होंने भौतिक जगत् पर दृष्टिपात किया।" ऐतरेय उपनिषद (1.1.1-2) में कहा गया है–स ऐक्षत–"उन्होंने भौतिक सृष्टि पर दृष्टिपात किया।" तथा स इमाल्लोकान् असृजत–"उन्होंने इस सम्पूर्ण भौतिक जगत् की सृष्टि की।"

इस प्रकार उपनिषदों तथा वेदों से अनेक श्लोकों का प्रमाण दिया जा सकता है, जो यह सिद्ध करते हैं कि परम भगवान् निराकार निर्विशेष नहीं हैं। कठ उपनिषद (2.2.13) में यह भी कहा गया है-नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम् एको बहूनां यो विदधाति कामान्–"वे परम शाश्वत चेतन पुरुष हैं, जो अन्य सारे जीवों का पालन करते हैं। इन सारे वैदिक सन्दर्भो से यह जाना जा सकता है कि परम सत्य एक पुरुष हैं और न तो उसके कोई तुल्य है, न उनसे बढ़कर है। यद्यपि ऐसे अनेक मूर्ख मायावादी दार्शनिक हैं, जो अपने आपको कृष्ण से भी बड़ा मानते हैं, किन्तु कृष्ण असमौर्ध्व हैं—न तो कोई उनके तुल्य है, न उनसे बड़ा है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् (3.19) का वाक्य है, अपाणिपादो जवनो ग्रहीता–यह श्लोक बताता है कि परम सत्य के न तो हाथ हैं न पाँव। यद्यपि यह निराकार वर्णन है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भगवान् का कोई रूप नहीं है। उनका एक आध्यात्मिक रूप है, जो भौतिक रूपों से भिन्न होता है। इस श्लोक में चैतन्य महाप्रभु इस अन्तर को स्पष्ट कर देते हैं।

चिदानन्द–तेंहो, ताँर स्थान, परिवार।

ताँरे कहे—प्राकृत-सत्त्वेर विकार ॥113॥

चित्-आनन्द-आध्यात्मिक आनन्द; तेंहो-वे हैं; ताँर-उनका; स्थान-स्थान; परिवार–परिवार; ताँरे–उनको; कहे-कोई कहता है; प्राकृत-प्राकृत, भौतिक; सत्त्वेर-सात्त्विक; विकार-विकार।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् आध्यात्मिक शक्तियों से युक्त हैं। अतएव उनका शरीर, नाम, यश तथा परिकर-सभी आध्यात्मिक हैं। मायावादी दार्शनिक अज्ञानतावश कहते हैं कि ये सब केवल भौतिक सत्त्वगुण के रूपान्तर मात्र हैं।"

तात्पर्य

भगवद्गीता के सातवें अध्याय में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने अपनी शक्तियों के दो स्पष्ट विभाग बतलाये हैं- प्राकृत तथा अप्राकृत या परा-प्रकृति तथा अपरा-प्रकृति। विष्णु पुराण में भी यही अन्तर बताया गया है। मायावादी दार्शनिक इन दो प्रकृतियों-भौतिक एवं आध्यात्मिक–को नहीं समझ पाते, किन्तु जो वास्तव में बुद्धिमान है, वह उन्हें समझ सकता है। भौतिक प्रकृति में अनेक प्रकार

की विविधता तथा कार्यकलापों को समझकर भी ये मायावादी दार्शनिक आध्यात्मिक जगत् के आध्यात्मिक भेदों को क्यों नकारते हैं? भागवत (10.2.32) का कथन है :

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-

स्त्वय्यस्तभावाद् अविशुद्धबुद्धयः ।

जो अपने आपको मुक्त समझते हैं, किन्तु जिन्हें अभी तक आध्यात्मिक जगत् की जानकारी नहीं है, उनकी बुद्धि स्पष्ट नहीं है। इस श्लोक में अविशुद्धबुद्धयः शब्द मलिन बुद्धि को सूचित करने वाला है। ये मायावादी दार्शनिक मलिन बुद्धि या अल्प ज्ञान के कारण भौतिक तथा आध्यात्मिक विविधताओं के बीच अन्तर नहीं समझ सकते; अतएव वे आध्यात्मिक विविधता के विषय में सोच नहीं पाते, क्योंकि वे यह मानकर चलते हैं कि सारी विविधताएँ भौतिक ही होती हैं।

अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु इस श्लोक में बतलाते हैं कि परम सत्य या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का शरीर आध्यात्मिक होता है, जो भौतिक शरीरों से भिन्न होता है और इस तरह उनके नाम, धाम, परिकर तथा गुण-सारे के सारे आध्यात्मिक होते हैं। भौतिक प्रकृति के सत्त्वगुण को आध्यात्मिक विविधता से कुछ भी लेना-देना नहीं होता। किन्तु मायावादी दार्शनिक आध्यात्मिक विविधता को ठीक से समझ ही नहीं पाते; अतएव वे भौतिक जगत् के निषेध को ही आध्यात्मिक जगत् मानते हैं। आध्यात्मिक जगत् में सतो, रजो तथा तमोगुण अपना काम नहीं कर सकते, इसलिए उसे निर्गुण कहा गया है, जिसका निर्देश भगवद्गीता में स्पष्ट स्पष्ट रूप से किया गया है। (त्रैगुण्यविषया वेदा निस्वैगुण्यो भवार्जुन)। भौतिक जगत् भौतिक प्रकृति के तीन गुणों की अभिव्यक्ति है; किन्तु आध्यात्मिक जगत् में पहुँचने के लिए व्यक्ति को इन गुणों से मुक्त होना पड़ता है, क्योंकि वहाँ इनका

प्रभाव पूर्णतया अनुपस्थित रहता है। अगले श्लोक में श्री चैतन्य महाप्रभु शिवजी को मायावाद दर्शन से विलग कर देंगे।

ताँर दोष नाहि, तेंहो आज्ञा-कारी दास ।

आर येइ शुने तार हय सर्व-नाश ॥114॥

ताँर-उनका, शिवजी का; दोष-दोष; नाहि-नहीं है; तेंहो-वे; आज्ञा-कारी-आज्ञाकारी; दास–दास; आर-अन्य; येइ-कोई; शुने-सुनता है (मायावादी दर्शन); तार-उसका; हय-हो जाता है; सर्व-नाश-सर्वनाश।

अनुवाद

"शिवजी के अवतार श्री शंकराचार्य निर्दोष हैं, क्योंकि वे भगवान् के आज्ञाकारी दास होने के कारण उनके आदेश का पालन मात्र कर रहे हैं। लेकिन जो लोग उनके मायावादी दर्शन का पालन करते हैं, उनका विनाश अवश्यम्भावी है। उनकी सारी आध्यात्मिक प्रगति विनष्ट हो जायेगी।"

तात्पर्य

मायावादी दार्शनिक व्याकरण के इन्द्रजाल से अपना वेदान्त ज्ञान प्रदर्शित करने में बड़े गर्व का अनुभव करते हैं, किन्तु भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण प्रमाणित करते हैं कि ये माययापहृतज्ञान हैं-अर्थात् माया के कारण वास्तविक ज्ञान से विहीन हैं। माया दो प्रकार की शक्तियों से अपने दो कार्य सम्पन्न करती है-प्रक्षेपात्मिका शक्ति अर्थात् जीव को भवसागर में डालने की शक्ति से तथा आवरणात्मिका शक्ति अर्थात् जीव के ज्ञान को आच्छादित करने की शक्ति से। आवरणात्मिका शक्ति का कार्य माययापहृतज्ञानाः शब्द द्वारा भगवद्गीता में बतलाया गया है।

कृष्ण की दैवी माया इन मायावादी दार्शनिकों का ज्ञान क्यों हर लेती है, इसकी भी व्याख्या भगवद्गीता में आसुरं भावमाश्रिताः शब्दों द्वारा की गई है। आसुरं भावमाश्रिता: ऐसे व्यक्ति की ओर संकेत करते हैं, जो भगवान् के अस्तित्व को नहीं मानते। मायावादी जो भगवान् के अस्तित्व को नहीं मानते, वे दो वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं-वाराणसी के शंकरवादी तथा सारनाथ के बौद्ध। ये दोनों ही समुदाय मायावादी हैं और उनके नास्तिक दर्शन के कारण भगवान् कृष्ण उनका ज्ञान हर लेते हैं। इनमें से कोई भी समुदाय साकार ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। बौद्ध दार्शनिक खुले रूप से आत्मा तथा ईश्वर दोनों का निषेध करते हैं और यद्यपि शंकरवादी खुलकर ईश्वर का निषेध नहीं करते, किन्तु वे कहते हैं कि परम पूर्ण निराकार हैं। इस तरह बौद्ध तथा शंकरवादी दोनों ही अविशुद्धबुद्धय: हैं अर्थात् ज्ञान तथा बुद्धि में अपूर्ण तथा अशुद्ध हैं।

सबसे विख्यात मायावादी विद्वान सदानन्द योगीन्द्र ने वेदान्त सार नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उसने शंकराचार्य के दर्शन की व्याख्या की है और शंकर दर्शन के सभी अनुयायी उसके कथनों को बड़ा महत्त्व देते हैं। इस वेदान्त सार में सदानन्द योगीन्द्र ने ब्रह्म को ज्ञान से युक्त तथा द्वैतरहित सच्चिदानन्द कहा है और वे अज्ञान (जड़) को सत् तथा असत् से भिन्न ज्ञान मानते हैं। यह प्रायः अचिन्त्य है, किन्तु यह तीन भौतिक गुणों का प्रतिफल है। इस तरह वे शुद्ध ज्ञान के अतिरिक्त हर वस्तु को भौतिक मानते है। अज्ञान का केन्द्र कभी-कभी सर्वव्यापी माना जाता है, तो कभी व्यक्तिगत। इस तरह उनके मतानुसार सर्वव्यापी विष्णु तथा व्यष्टि जीव दोनों अज्ञान के उत्पाद होते हैं।

सरल भाषा में सदानन्द योगीन्द्र का यह मत है कि चूँकि हर वस्तु निराकार है, अतएव विष्णु तथा व्यष्टि आत्मा दोनों की धारणाएँ अज्ञान के उत्पाद हैं। वे यह भी बतलाते हैं कि वैष्णवों की विशुद्ध सत्त्व धारणा प्रधान (सृष्टि का मुख्य सिद्धान्त) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उनकी मान्यता

है कि जब सर्वव्यापी ज्ञान विशुद्ध सत्त्व जो सत्त्वगुण का रूपान्तर है, उसके द्वारा कलुषित हो जाता है, तभी भगवान् की धारणा उत्पन्न होती है, जो सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ परम शासक, परमात्मा, समस्त कारणों के कारण, परमेश्वर आदि हैं। सदानन्द योगीन्द्र के अनुसार ईश्वर सारे अज्ञान के आगार हैं, अतएव भले ही वे सर्वज्ञ कहे जायें, किन्तु जो सर्वशक्तिमान ईश्वर के अस्तित्व को नकारता है, वह ईश्वर से बढ़कर है। अतएव उनका निष्कर्ष यह है कि ईश्वर भौतिक अज्ञान के रूपान्तर हैं और जीव अज्ञान से आच्छादित है। इस तरह वे सामूहिक तथा व्यक्तिगत अस्तित्व को अंधकारमय बतलाते हैं। मायावादी दार्शनिकों के अनुसार, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके नित्य दास रूप जीव की वैष्णव धारणा अज्ञान की अभिव्यक्ति है। किन्तु यदि हम भगवद्गीता में दिये गये भगवान् कृष्ण के निर्णय को मानें, तो मायावादी माययापहृत ज्ञान या समस्त ज्ञान से विहीन माने जा सकते हैं, क्योंकि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अस्तित्व को नहीं मानते या यह बलपूर्वक कहते हैं कि उनका अस्तित्व भौतिक धारणा माया से उत्पन्न है। ये असुरों के लक्षण हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य से वार्तालाप के अवसर पर कहा है (चैतन्य चरितामृत, मध्य 6.169) :

जीवेर निस्तार लागि ‘सूत्र कैल व्यास।

मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश।

व्यासदेव ने तो इस भौतिक जगत् से बद्धजीवों का उद्धार करने के लिए वेदान्त-सूत्र की रचना की, किन्तु शंकराचार्य ने मनमाने ढंग से वेदान्त-सूत्र को प्रस्तुत करके निश्चित रूप से मानव समाज को सबसे बड़ी हानि पहुँचाई है; क्योंकि जो भी उनके मायावादी दर्शन का अनुसरण करता है, उसका सर्वनाश हो जाता है। वेदान्त-सूत्र में भक्ति का स्पष्ट संकेत दिया गया है, किन्तु मायावादी

दार्शनिक परम पुरुष के आध्यात्मिक शरीर को स्वीकार करने से मना करते हैं और न यह मानते हैं कि जीव का परमेश्वर से पृथक् व्यक्तिगत अस्तित्व है। इस तरह उन्होंने विश्वभर में नास्तिकतावादी उत्पात मचा रखा है, क्योंकि ऐसा निष्कर्ष शुद्ध भक्ति की दिव्य प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है। भगवान् की सत्ता का निषेध करते हुए परमेश्वर से एकाकार होने की कभी न पूरी होने वाली मायावादियों की इच्छा आध्यात्मिक ज्ञान की सर्वाधिक विपदाग्रस्त भ्रान्त विवेचना है। जो भी इस दर्शन का अनुसरण करता है, उसका इस भौतिक जगत् में स्थायी रूप में रहना एक दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य बन जाता है। इसीलिए वे अविशुद्धबुद्धयः अर्थात् अशुद्ध ज्ञान वाले कहलाते हैं। उनका ज्ञान अशुद्ध होने के कारण उनकी सारी तपस्याएँ असफल और व्यर्थ हो जाती हैं। इस तरह भले ही उन्हें प्रथम दृष्टि में बड़े विद्वानों के रूप में सम्मानित किया जाए, किन्तु अन्ततोगत्वा वे राजनीति, सामाजिक कार्य इत्यादि भौतिक कार्यों पर उतर आते हैं। इस तरह परमेश्वर से एकाकार होने के स्थान पर वे पुनः इन भौतिक कार्यकलापों से एक हो जाते हैं। इसकी व्याख्या श्रीमद्भागवत (10.2.32) में की गई है :

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ।

वास्तव में, मायावादी दार्शनिक आध्यात्मिक जीवन की तपस्याओं का कड़ाई से पालन करते हैं और इस तरह वे निविर्शेष ब्रह्म पद तक ऊपर उठ जाते हैं, किन्तु भगवान् के चरणकमलों की उपेक्षा करने के कारण वे पुनः भौतिक अस्तित्व में आ गिरते हैं।

प्राकृत करिया माने विष्णु-कलेवर ।

विष्णु-निन्दा आर नाहि इहार उपर ॥115॥

प्राकृत-प्राकृत, भौतिक; करिया-ऐसा मानकर; माने-मानता है; विष्णु भगवान् विष्णु का; कलेवर–शरीर; विष्णु-निन्दा-भगवान् विष्णु की निन्दा करता; आर-इससे परे; नाहि-नहीं; इहार-इसके; उपर-ऊपर।

अनुवाद

"जो व्यक्ति भगवान् विष्णु के दिव्य शरीर को भौतिक प्रकृति से बना मानता है, वह भगवान् के चरणकमलों में सबसे बड़ा अपराधी है। इससे बढ़कर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अन्य कोई निन्दा नहीं है।"

तात्पर्य

श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी बतलाते हैं कि परम सत्य का विविधतापूर्ण साकार स्वरूप विष्णुतत्त्व है और इस ब्रह्माण्ड का सृजन करने वाली भौतिक शक्ति विष्णु की शक्ति है। सृजनात्मक शक्ति मात्र भगवान् की शक्ति है। किन्तु मूर्ख लोग यह निष्कर्ष निकालते हैं कि भगवान् ने अपने आपको निराकार रूप में वितरित किया है, अतएव उनका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है। किन्तु निराकार ब्रह्म की न तो कोई शक्ति हो सकती है, न ही वैदिक साहित्य बतलाता है कि माया किसी अन्य माया द्वारा आच्छादित होती है। फिर भी विष्णुमाया (परास्य शक्तिः) के सैंकड़ों-हजारों सन्दर्भ मिलते हैं। भगवद्गीता (7.14) में कृष्ण मम माया (मेरी शक्ति) का उल्लेख करते हैं। माया का नियन्त्रण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा होता है; ऐसा नहीं है कि वे माया द्वारा आच्छादित हों। अतएव भगवान् विष्णु भौतिक शक्ति (माया) की उपज नहीं हो सकते। वेदान्त-सूत्र के प्रारम्भ में ही कहा गया है जन्माद्यस्य यतः, जिससे यह इंगित होता है कि भौतिक शक्ति माया भी परम ब्रह्म से उद्भूत है। तो फिर वे माया से किस तरह आच्छादित हो सकते हैं? यदि ऐसा सम्भव हो सकता, तो भौतिक

शक्ति माया परम ब्रह्म से भी बढ़कर होती। किन्तु ये सरल तर्क भी मायावादी दार्शनिकों की समझ में नहीं आते, अतएव भगवद्गीता में उनके लिए प्रयुक्त शब्द माययापहृतज्ञान सर्वथा उपयुक्त है। जो भी सदानन्द योगीन्द्र के तर्क अनुसार विष्णु को भौतिक शक्ति माया की उपज सोचता है, उसे तुरन्त मूढ़ मानना चाहिए, क्योंकि उसका ज्ञान माया द्वारा हर लिया गया है।

भगवान् विष्णु देवताओं की कोटि में नहीं रखे जा सकते। केवल वे ही भगवान् विष्णु को देवता मानते हैं, जो मायावाद दर्शन द्वारा वस्तुतः मोहग्रस्त हैं और अभी भी अज्ञान के अंधकार में डूबे हुए हैं। यह तो ऋग्वेद के मन्त्र ॐ तद्विष्णोः परमं पदं (" विष्णु सदैव उच्च पद पर हैं') के सर्वथा विरुद्ध है। इस मन्त्र की पुष्टि भगवद्गीता में भी हुई है—मत्तः परतरं नान्यत्-भगवान् कृष्ण या विष्णु से श्रेष्ठ कोई सत्य नहीं है। अतएव जिनका ज्ञान मोहग्रस्त हो चुका है, वे ही भगवान् विष्णु को देवता मानते हैं। इसीलिए वे सुझाव देते हैं। कि कोई चाहे भगवान् विष्णु की पूजा करे या देवी काली (दुर्गा) की या जिस किसी की, सभी से एक-सा फल प्राप्त होगा। यह एक मूर्खतापूर्ण निष्कर्ष है, जिसे भगवद्गीता (9.25) में स्वीकार नहीं किया गया है, क्योंकि उसमें स्पष्ट कहा गया है- यान्ति देवव्रता देवान्...यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्-देवताओं के उपासक क्रमशः देवताओं के लोकों को जायेंगे, किन्तु परम भगवान् के भक्त वापस उनके घर, भगवान् के धाम को लौट जायेंगे। भगवद्गीता (7.14) में भगवान् कृष्ण स्पष्ट रूप से कहते हैं कि उनकी भौतिक शक्ति माया से पार पाना अत्यन्त दुष्कर है (दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया)। माया का प्रभाव इतना प्रबल होता है कि बड़े बड़े विद्वान तथा अध्यात्मवादी भी माया से आच्छादित हो जाते हैं और अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समान मान बैठते हैं। किन्तु वास्तव में माया के प्रभाव से अपने आपको मुक्त करने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण में जाए, जैसाकि कृष्ण भगवद्गीता (7.14) में भी कहते हैं-मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। निष्कर्ष यह है कि भगवान् विष्णु इस भौतिक

सृष्टि के नहीं हैं, अपितु आध्यात्मिक जगत् के हैं। भगवान् विष्णु को भौतिक शरीर से युक्त बतलाना या देवताओं से उनकी समानता करना भगवान् विष्णु की सबसे अपराधपूर्ण निन्दा है और भगवान् विष्णु के चरणकमलों पर अपराध करने वाले कभी भी आध्यात्मिक ज्ञान में प्रगति नहीं कर सकते। वे माययापहृतज्ञान कहलाते हैं अर्थात् वे लोग जिनकी बुद्धि माया द्वारा हर ली गई है।

जो व्यक्ति यह सोचता है कि भगवान् विष्णु के शरीर एवं उनके आत्मा में अन्तर है, वह अज्ञान के गहनतम अन्धकार में रहता है। विष्णु के शरीर तथा उनके आत्मा में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि वे अद्वयज्ञान अर्थात् एक ही ज्ञान हैं। इस जगत् में भौतिक शरीर तथा आध्यात्मिक आत्मा में भेद होता है, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में ऐसा अन्तर नहीं होता, क्योंकि वहाँ हर वस्तु आध्यात्मिक होती है। मायावादी दार्शनिकों का सबसे बड़ा अपराध यही है कि वे भगवान् विष्णु तथा जीवों को एक मानते हैं। इस सन्दर्भ में पद्म पुराण का कथन है : अर्चे विष्णौ शिलाधिरुषु नरमतिर्वैष्णवे जाति बुद्धिः ...यस्य वा नारकी सः-"जो अर्चामूर्ति अर्थात् भगवान् विष्णु की पूजनीय मूर्ति को पत्थर, गुरु को सामान्य व्यक्ति तथा वैष्णव को किसी जाति-पाति का मानता है, वह नारकीय बुद्धि वाला होता है।" जो ऐसे निष्कर्षों का अनुसरण करता है, उसका सर्वनाश हो जाता है।

ईश्वरेर तत्त्व—येन ज्वलित ज्वलन।

जीवेर स्वरूप—यैछे स्फुलिङ्गेर कण ॥116॥

ईश्वरेर तत्त्व–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का तत्त्व; येन–की भाँति है; ज्वलित-प्रज्वलित; ज्वलन–अग्नि; जीवेर-जीवों का; स्वरूप-स्वरूप; यैछे-की भाँति है; स्फुलिङ्गेर-चिंगारी; कण-अंश।

अनुवाद

"भगवान् प्रज्वलित महान् अग्नि के समान हैं और सारे जीव उस अग्नि की छोटी-छोटी चिंगारियों के समान हैं।

तात्पर्य

यद्यपि चिनगारियाँ तथा अग्नि दोनों ही अग्नि हैं और दोनों में जला देने की शक्ति रहती है, किन्तु उन दोनों की जलाने की शक्तियाँ समान नहीं होतीं। जो व्यक्ति वैधानिक दृष्टि से एक छोटी चिंगारी (स्फुलिंग) के समान है, उसे भव्य विशाल अग्नि जैसा बनने का कृत्रिम प्रयास क्यों करना चाहिए? ऐसा अज्ञान के कारण होता है। अतएव मनुष्य को समझ लेना चाहिए कि न तो पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर को, न ही स्फुलिंगवत् जीव को भौतिक पदार्थ से कुछ लेना-देना होता है, किन्तु जब आध्यात्मिक स्फुलिंग भौतिक जगत् के सम्पर्क में आता है, तो उसका अग्निवत् गुण समाप्त हो जाता है। बद्धजीवों की अवस्था ऐसी ही है। चूँकि वे भौतिक जगत् के सम्पर्क में हैं, अतः उनका आध्यात्मिक गुण मृतप्राय हो गया है, किन्तु ये आध्यात्मिक स्फुलिंग कृष्ण के अंश होने के कारण, जैसाकि भगवद्गीता में भगवान् ने कहा है (ममैवांशः), वे इस भौतिक संसर्ग से मुक्त होकर अपनी मूल अवस्था पुनः प्राप्त कर सकते हैं। यह शुद्ध दार्शनिक ज्ञान है। भगवद्गीता में आध्यात्मिक स्फुलिंगों को सनातन कहा गया है, अतएव भौतिक शक्ति अर्थात् माया उनकी वैधानिक स्थिति को प्रभावित नहीं कर सकती।

कुछ लोग तर्क कर सकते हैं कि, "आध्यात्मिक स्फुलिंगों को उत्पन्न करने की आवश्यकता ही क्या है?" इसका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है : परम भगवान् सर्वशक्तिमान हैं, अतएव उनके पास असीम तथा सीमित दोनों शक्तियाँ होती हैं। सर्वशक्तिमान का यही अर्थ है। सर्वशक्तिमान

होने के लिए उन्हें असीम शक्तियों की ही नहीं, वरन् सीमित शक्तियों की भी आवश्यकता रहती है। इस तरह अपनी सर्वशक्तिमत्ता प्रदर्शित करने के लिए वे दोनों का प्रदर्शन करते हैं। जीवों को सीमित शक्ति प्रदान की जाती है, यद्यपि वे भगवान् के ही अंश हैं। भगवान् अपनी असीम शक्तियों द्वारा आध्यात्मिक जगत् का और सीमित शक्तियों से भौतिक जगत् का प्रदर्शन करते हैं। भगवद्गीता (7.5) में भगवान् कहते हैं :

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि में पराम् ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।

"हे महाबाहु अर्जुन, इन निकृष्ट शक्तियों के अतिरिक्त मेरी एक उत्कृष्ट शक्ति भी है, जो सारे जीवों के रूप में निकृष्ट भौतिक प्रकृति के संसाधनों का दोहन कर रही है।" जीवभूत या जीव अपनी सीमित शक्तियों से इस भौतिक जगत् का नियन्त्रण करते हैं। सामान्यतया लोग वैज्ञानिकों तथा प्राद्योगिकी विशेषज्ञों के कार्यों से चकित हो जाते हैं। वे माया के वशीभूत होकर सोचते हैं कि ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है, वे ही सब कुछ कर सकते हैं, किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। यह जगत् सीमित है, अतएव उनका अस्तित्व भी सीमित है। इस भौतिक जगत् की हर वस्तु सीमित है, इसीलिए सृजन, पालन और संहार होता है। किन्तु असीम शक्ति वाले जगत् में-आध्यात्मिक जगत् में न तो सृजन होता है, न संहार।

यदि भगवान् के पास सीमित तथा असीम दोनों प्रकार की शक्तियाँ न होतीं, तो वे सर्वशक्तिमान न कहलाते। अणोरणीयान् महतो महीयान्–"वे बड़े में सबसे बड़े और छोटे में सबसे छोटे हैं।" वे जीवों के रूप में छोटे से भी छोटे हैं और कृष्ण के रूप में बड़े से भी बड़े हैं। यदि ऐसा कोई न होता जिसका नियन्त्रण करना हो, तो परम नियन्ता (ईश्वर) की धारणा का कुछ अर्थ न होता,

जिस प्रकार कि प्रजा के बिना राजा का कोई अर्थ नहीं होता। यदि सारी प्रजा राजा बन जाए, तो फिर राजा तथा सामान्य जनता में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा। अत: परम नियन्ता होने के लिए भगवान् को नियन्त्रण में रखने के लिए सृष्टि की आवश्यकता होती है। जीवों के अस्तित्व का मूल सिद्धान्त चिद् विलास अर्थात् आध्यात्मिक आनन्द कहलाता है। सर्वशक्तिमान भगवान् अपनी आनन्ददायिनी शक्ति जीवों के रूप में प्रदर्शित करते हैं। वेदान्त-सूत्र (1.1.12) में भगवान् को आनन्दमयोऽभ्यासात् कहा गया है। वे स्वभाव से समस्त आनन्दों के आगार हैं और चूँकि वे आनन्द भोगना चाहते हैं, इसलिए उन्हें आनन्द देने के लिए या आनन्द के लिए प्रेरित करने के लिए शक्तियाँ तो चाहिए ही। परम सत्य विषयक यह पूर्ण दार्शनिक सिद्धान्त है।

जीव-तत्त्व—शक्ति, कृष्ण-तत्त्व—शक्तिमान्।

गीता-विष्णुपुराणादि ताहाते प्रमाण ॥117॥

जीव-तत्त्व-जीव-तत्त्व; शक्ति-शक्ति; कृष्ण-तत्त्व-कृष्ण तत्त्व; शक्ति-मान्-शक्तिशाली; गीता-श्रीमद् भगवद्गीता; विष्णु-पुराण-आदि-विष्णु पुराण तथा अन्य पुराण; ताहाते-उनमें; प्रमाण-प्रमाण है।

अनुवाद

"सारे जीव शक्तियाँ हैं, शक्तिमान नहीं। शक्तिमान तो कृष्ण हैं। इसका बहुत ही स्पष्ट वर्णन भगवद्गीता, विष्णु पुराण तथा अन्य वैदिक साहित्य में किया गया है।"

तात्पर्य

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, आध्यात्मिक ज्ञान के प्रगति-पथ पर तीन प्रस्थान होते हैं-न्याय प्रस्थान (वेदान्त दर्शन), श्रुति प्रस्थान (उपनिषद् एवं वैदिक मन्त्र) तथा स्मृति प्रस्थान (भगवद्गीता, महाभारत, पुराण आदि)। दुर्भाग्यवश मायावादी दार्शनिकों को स्मृति प्रस्थान स्वीकार्य नहीं है। वैदिक साक्ष्यों पर आधारित निष्कर्ष स्मृति कहलाते हैं। कभी-कभी मायावादी दार्शनिक भगवद्गीता तथा पुराणों के प्रमाण को नहीं मानते। इसे अर्धकुक्कुटीन्याय या 'आधी मुर्गी तर्क' कहा जाता है (आदि लीला, 5.176 देखें)। यदि कोई वैदिक साहित्य में विश्वास करता है, तो उसे महान् आचार्यों द्वारा मान्य सारे वैदिक साहित्य को स्वीकार करना चाहिए, किन्तु मायावादी दार्शनिक केवल न्याय प्रस्थान तथा श्रुति प्रस्थान को मान्यता देते हैं और स्मृति प्रस्थान का बहिष्कार कर देते हैं। किन्तु यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु गीता, विष्णु पुराण इत्यादि से साक्ष्य देते हैं, जो स्मृति प्रस्थान है। कोई भी व्यक्ति भगवद्गीता तथा महाभारत एवं पुराणों जैसे वैदिक साहित्य की उक्ति में भगवान् को नकार नहीं सकता। इसलिए चैतन्य महाप्रभु भगवद्गीता का श्लोक (7.5) उद्धृत करते हैं।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीव-भूतां महा-बाहो ग्रयेदं धार्यते जगत् ॥ 118॥

अपरा-अपरा, निम्न शक्ति; इयम्-यह भौतिक संसार; इतः—इससे परे; तु–किन्तु; अन्याम्-अन्य; प्रकृतिम्-प्रकृति, शक्ति; विद्धि-तुम्हें जाननी चाहिए; मे–मेरी; पराम्-परा शक्ति; जीव-भूताम्-वे जीव हैं; महा-बाहो-हे महाबाहो; ग्रया–जिससे; इदम्-यह भौतिक संसार; धाग्नते-चलायमान हैं, कार्य करता है; जगत्-संसार।

अनुवाद

“हे महाबाहु अर्जुन, इन अपरा (निकृष्ट) शक्तियों के अतिरिक्त मेरी एक परा (उत्कृष्ट) शक्ति भी है, जो उन सारे जीवों के रूप में है, जो इस भौतिक, निकृष्ट प्रकृति के संसाधनों का दोहन कर रहे हैं।

तात्पर्य

भगवद्गीता में बतलाया गया है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश-ये पाँच तत्त्व परम सत्य की स्थूल शक्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त तीन सूक्ष्म शक्तियाँ भी हैं-यथा मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार अर्थात् इस घटनामय जगत् के साथ अपनी पहचान। इस तरह सारा प्रकट विश्व आठ शक्तियों में बँटा है और ये सभी अपरा (निकृष्ट) शक्तियाँ हैं। जैसाकि भगवद्गीता में बतलाया गया है (मम माया दुरत्यया), अपरा शक्ति माया इतनी प्रबल होती है कि यद्यपि जीव का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु इसकी प्रबल शक्ति से जीव (जीवभूत) अपनी वास्तविक स्थिति को भूल जाता है और इसीसे अपनी पहचान करने लगता है। कृष्ण स्पष्ट रूप से कहते हैं कि भौतिक शक्ति से परे एक उच्चतर शक्ति है, जो जीवभूत कहलाती है। यह उच्चतर शक्ति भौतिक शक्ति के सम्पर्क में आकर सारे भौतिक जगत् के कार्यकलापों का संचालन करती है।

परम कारण तो कृष्ण हैं (जन्माद्यस्य यतः), जो विविध प्रकार से कार्यरत शक्तियों के उद्गम हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पास अपरा तथा परा दोनों शक्तियाँ होती हैं। इनमें अन्तर यही होता है कि परा शक्ति वास्तविक है, जबकि अपरा शक्ति इस उच्चचर शक्ति की प्रतिबिम्ब स्वरूप है। दर्पण या जल में पड़ने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब सूर्य जैसा प्रतीत होता है, किन्तु सूर्य होता नहीं। इसी प्रकार यह भौतिक जगत् आध्यात्मिक जगत् का प्रतिबिम्ब मात्र है। यह यथार्थ प्रतीत होते हुए भी यथार्थ होता नहीं, केवल क्षणिक प्रतिबिम्ब होता है, जबकि आध्यात्मिक जगत् सच्ची वास्तविकता है।

यह भौतिक जगत्, अपने सूक्ष्म तथा स्थूल रूपों सहित, आध्यात्मिक जगत् का प्रतिबिम्ब मात्र होता है।

जीव भौतिक शक्ति की उपज नहीं है; वह आध्यात्मिक शक्ति है, किन्तु पदार्थ के सम्पर्क में आने से वह अपनी पहचान भूल जाता है। इस तरह जीव अपनी पहचान पदार्थ के साथ करता है और प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ, वैज्ञानिक, दार्शनिक आदि के वेश में भौतिक कार्यकलापों में उत्साह के साथ लग जाता है। उसे बिल्कुल पता नहीं रहता कि वह तनिक भी भौतिक उपज नहीं है, अपितु नितान्त आध्यात्मिक है। इस प्रकार अपनी वास्तविक पहचान खो देने से वह इस भौतिक जगत् में कठिन संघर्ष करता है। हरे कृष्ण आन्दोलन अथवा कृष्णभावनामृत आन्दोलन उसकी मूल चेतना को जागृत करने का प्रयास कर रहा है। गगनचुम्बी इमारत बनाने में उसका कार्यकलाप उसकी बुद्धि का प्रमाण है, किन्तु इस तरह की बुद्धि जरा भी उन्नत नहीं है। मनुष्य को जान लेना चाहिए कि उसकी वास्तविक चिन्ता इस भौतिक जगत् से मुक्त होने में है, क्योंकि यदि वह भौतिक कार्यकलापों में अपने मन को लगाता है, तो उसे बारम्बार भौतिक शरीर धारण करना होगा और इस तरह वह भले ही अपने आपको बुद्धिमान कहे, किन्तु भौतिक चेतना में वह तनिक भी बुद्धिमान नहीं माना जायेगा। जब हम कृष्णभावनामृत आन्दोलन की बात करते हैं, जिसका उद्देश्य लोगों को बुद्धिमान बनाना है, तो बद्धजीव इसका गलत अर्थ लगाते हैं। वह देहात्म बुद्धि में इतना मग्न रहता है कि वह यह सोचता ही नहीं कि गगनचुम्बी इमारत बनाने, बड़ी-बड़ी सड़कें तथा कारें निर्माण करने के अतिरिक्त भी बुद्धि पर आधारित अन्य कार्यकलाप हो सकते हैं। यह माययापहृत ज्ञान का अर्थात् माया के प्रभाव के कारण बुद्धि राँवा देने का प्रमाण है। जब जीव ऐसी धारणाओं से मुक्त हो जाता है, तब वह मुक्त कहलाता है। वास्तविक रूप में मुक्त हो जाने पर वह भौतिक जगत् से अपनी पहचान

नहीं बनाता। मुक्ति का लक्षण ही यह है कि भौतिक कार्यकलापों में व्यर्थ में न लगकर आध्यात्मिक कार्यों में लगा जाये।

दिव्य प्रेममयी सेवा करना आत्मा का आध्यात्मिक कर्म है। मायावादी दार्शनिक भौतिक कर्म तथा इस आध्यात्मिक कर्म को समझने में भूल करते हैं, किन्तु भगवद्गीता (14.26) पुष्टि करती है :

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।

स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

जो व्यक्ति शुद्ध भक्ति (अव्यभिचारिणी भक्ति) के आध्यात्मिक कार्यों में लगा रहता है, वह तुरन्त ही दिव्य पद पर उन्नति करता है और उसे ब्रह्मभूत माना जाना चाहिए जिसका अर्थ यह है कि वह अब भौतिक जगत् में नहीं, अपितु आध्यात्मिक जगत् में है। भक्ति तो आलोक अथवा जागृति है। जब कोई जीव गुरु के निर्देशन में आध्यात्मिक कर्म करता है, तो उसको पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है और वह समझने लगता है कि वह ईश्वर नहीं अपितु ईश्वर का दास है। जैसाकि चैतन्य महाप्रभु ने कहा है (चैतन्य चरितामृत, मध्य 20.108)-जीवेर 'स्वरूप' हय-कृष्णेर 'नित्यदास–जीव की वास्तविक पहचान यह है कि वह परमेश्वर का सनातन सेवक है। जब तक मनुष्य को यह बोध नहीं हो जाता, तब तक वह अज्ञान में पड़ा रहता है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (7.19) में भगवान् द्वारा की गई है-बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते...स महात्मा सुदुर्लभ:-"अनेक जन्मों तक जीवन-संघर्ष तथा ज्ञान का अनुशीलन करते रहने पर जब मनुष्य को वास्तविक ज्ञान होता है, तब वह मेरी शरण में आता है। ऐसा उन्नत महात्मा अत्यन्त दुर्लभ होता है। इस तरह मायावादी दार्शनिक ज्ञान

में तो बहुत उन्नत लगते हैं, किन्तु फिर भी वे पूर्ण नहीं होते। पूर्णता प्राप्त करने के लिए उन्हें स्वेच्छा से कृष्ण की शरण ग्रहण करनी होगी।

विष्णु-शक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्र-ज्ञाख्या तथा परा।

अविद्या-कर्म-संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥ 119॥

विष्णु-शक्तिः- भगवान् विष्णु की शक्ति; परा–परा, आध्यात्मिक; प्रोक्ता–कही गई है; क्षेत्र-ज्ञ-आख्या-क्षेत्रज्ञ नामक शक्ति; तथा— तथा; परा–परा, आध्यात्मिक; अविद्या-अज्ञान; कर्म-सकाम कर्म; संज्ञा-नाम से जाने जाने वाले; अन्या–अन्य; तृतीया-तीसरी; शक्तिः-शक्ति; इष्यते-ऐसी जानी जाती है।

अनुवाद

"भगवान् विष्णु की शक्तियाँ तीन तरह की हैं-आध्यात्मिक शक्ति, जीव तथा अज्ञान। आध्यात्मिक शक्ति ज्ञान से परिपूर्ण है; जीव यद्यपि आध्यात्मिक शक्ति से सम्बन्धित है, किन्तु वे मोहग्रस्त होने के पात्र हैं और तीसरी शक्ति जो अज्ञान से भरी है, सदैव सकाम कर्मों में दृष्टिगोचर होती है।"

तात्पर्य

यह विष्णु पुराण (6.7.61) से लिया गया है।

भगवद्गीता से लिये गये पिछले श्लोक में यह स्थापित किया गया है कि जीवों को भगवान् की शक्तियों की श्रेणी में रखा जाता है। भगवान् शक्तिमान हैं और शक्ति के अनेक प्रकार हैं (परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते)। विष्णुपुराण से लिये गये उपर्युक्त श्लोक से भी इसकी पुष्टि होती है। शक्तियाँ

कई प्रकार की हैं और इन्हें तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, जिनके नाम हैं आध्यात्मिक (अंतरंगा), तटस्था तथा बहिरंगा।

आध्यात्मिक शक्ति का प्राकट्य आध्यात्मिक जगत् (वैकुण्ठ) में होता है। कृष्ण के रूप, गुण, कर्म तथा परिकर सभी आध्यात्मिक हैं। इसकी भी पुष्टि भगवद्गीता (4.5) में हुई है।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥

"यद्यपि मैं अजन्मा हूँ और मेरा दिव्य शरीर कभी नष्ट नहीं होता और यद्यपि मैं सारे जीवों का स्वामी हूँ, किन्तु तो भी मैं अपनी आध्यात्मिक शक्ति से हर युग में अपने मूल दिव्य रूप में प्रकट होता हूँ।" आत्ममाया आध्यात्मिक शक्ति का सूचक है। जब कृष्ण इस या किसी अन्य ब्रह्माण्ड में अवतरित होते हैं, तो वे ऐसा अपनी आध्यात्मिक शक्ति से करते हैं। हम भौतिक शक्ति के बल पर जन्म लेते हैं, किन्तु जैसाकि विष्णु पुराण के सन्दर्भ से यहाँ कहा गया है, क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीव आध्यात्मिक शक्ति से सम्बन्धित है; अतएव जब हम अपने आपको भौतिक शक्ति के प्रभाव से मुक्त कर लेते हैं, तब हम आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश कर सकते हैं।

भौतिक शक्ति अंधकार की शक्ति या आध्यात्मिक कार्यों में पूर्ण अज्ञानता की शक्ति है। भौतिक शक्ति में जीव सकाम कर्म में प्रवृत्त होता है, क्योंकि वह सोचता है कि वह भौतिक शक्ति के प्रसार से सुखी बन सकता है। यह तथ्य इस कलियुग में विशेष रूप से उजागर होता है, क्योंकि मानव समाज आध्यात्मिक प्रकृति को समझे बिना भौतिक कार्यकलापों को बढ़ाता जाता है। आज के लोगों को अपनी आध्यात्मिक पहचान का लगभग कोई ज्ञान नहीं है। वे अपने आपको भौतिक जगत् के तत्त्वों से उत्पन्न मानते हैं और यह मानते हैं कि शरीर के विनाश के साथ ही हर वस्तु नष्ट

हो जायेगी। इसलिए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जब तक भौतिक इन्द्रियों वाला यह भौतिक शरीर है, तब तक इन्द्रियों का यथासम्भव भोग कर लिया जाए। नास्तिक होने के कारण उन्हें इसकी परवाह नहीं होती कि उनका कोई अगला जीवन भी है। ऐसे कार्यों को इस श्लोक में अविद्याकर्मसंज्ञान्या कहा गया है।

भौतिक शक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति से पृथक् होती है। इस तरह उसकी सृष्टि मूलत: भगवान् द्वारा की गई है, लेकिन वे उसके भीतर विद्यमान नहीं रहते। भगवान् ने इसकी पुष्टि भगवद्गीता (9.4) में इस प्रकार की है-मत्स्थानि सर्वभूतानि—"सारी वस्तुएँ मुझ पर आश्रित हैं।" इससे सूचित होता है कि हर वस्तु भगवान् की निजी शक्ति पर आश्रित है। उदाहरणार्थ, सारे लोक बाह्य अन्तरिक्ष में टिके हैं, जो कृष्ण की भिन्ना शक्ति है। भगवान् भगवद्गीता (7.4) में बतलाते हैं :

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार-ये आठों मेरी भिन्ना भौतिक शक्तियाँ हैं।" भिन्ना भौतिक शक्तियाँ इस तरह कार्य करती हैं मानो स्वतन्त्र हों, किन्तु यहाँ यह कहा गया है कि ऐसी शक्तियाँ वास्तविक होने पर भी स्वतन्त्र नहीं हैं, केवल अलग की गई शक्तियाँ हैं।

भिन्ना शक्ति को एक व्यावहारिक उदाहरण से समझा जा सकता है। मैं डिक्टाफोन में बोलकर पुस्तक लिखता हूँ और जब इस डिक्टाफोन को फिर से चलाया जाता है, तो ऐसा लगता है कि मैं स्वयं बोल रहा हूँ, किन्तु वास्तव में मैं नहीं बोल रहा होता। मैं पहली बार स्वयं बोला था, किन्तु बाद में डिक्टाफोन टेप, जो मुझ से अलग (पृथक्) है, ठीक मेरी ही तरह कार्य करता है। इसी

प्रकार भौतिक शक्ति मूलत: पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से उद्भूत होती है, किन्तु वह उनसे पृथक् होकर कार्य करती है, यद्यपि इसके लिए शक्ति भगवान् से ही प्राप्त होती है। भगवद्गीता (9.10) में भी यही बताया गया है-मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्-"हे कुन्ती-पुत्र, यह भौतिक प्रकृति मेरी अध्यक्षता में कार्य करती है और यह सारे जड़ तथा चेतन जीवों को उत्पन्न करती है।" पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अध्यक्षता में अथवा उनके निर्देशन में, भौतिक शक्ति इस तरह कार्य करती है, मानो वह स्वतन्त्र हो, जबकि वास्तव में वह स्वतन्त्र नहीं है।

विष्णु पुराण से लिये गये इस श्लोक में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की समग्र शक्ति के तीन विभाग बताये गये हैं-आध्यात्मिक या अन्तरंगा शक्ति, तटस्था शक्ति या क्षेत्रज्ञ (जीव) तथा भौतिक शक्ति जो भगवान् से भिन्न है और स्वतन्त्र रूप से कार्यशील प्रतीत होती है। जब श्रील व्यासदेव ने ध्यान तथा आत्म-साक्षात्कार द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दर्शन प्राप्त किया, तो उन्होंने उनके पीछे भगवान् की भिन्ना शक्ति को भी खड़े देखा (अपश्यत् पुरुषं पूर्ण मायां च तदपाश्रयम्)। व्यासदेव ने यह भी अनुभव किया कि जीवों के ज्ञान को आच्छादित करने वाली यही भिन्ना शक्ति या भौतिक शक्ति है। यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम्)। यह भिन्ना भौतिक शक्ति जीवों को मोहित कर लेती है और इस प्रकार वे इसके वशीभूत होकर अत्यधिक श्रम करते हैं और उन्हें पता ही नहीं रहता कि वे अपने जीवन के लक्ष्य को पूरा नहीं कर रहे हैं। दुर्भाग्यवश उनमें से अधिकांश अपने आपको शरीर समझते हैं, इसलिए भौतिक इन्द्रियों का अन्धाधुन्ध भोग करना चाहते हैं, क्योंकि मृत्यु आने पर तो सब कुछ समाप्त हो ही जायेगा। यह नास्तिक दर्शन कभी भारत में भी फैला था, जिसे कभी चार्वाक मुनि ने प्रचारित किया था। उन्होंने कहा था :

ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् यावज्जीवेत सुखं जीवेत् ।

भस्मीभूतस्य देहस्य कुतः पुनरागमनो भवेत् ॥

उनका मत था कि जब तक मनुष्य जीवित है, तब तक छककर घी खाये। भारत में घी अनेक व्यंजन बनाने में मूलभूत सामग्री है। हर कोई अच्छा भोजन खाना चाहता है, इसलिए चार्वाक मुनि ने परामर्श दिया कि अधिक से अधिक घी खाया जाये। कोई कह सकता है, "भई, मेरे पास तो पैसे नहीं हैं, मैं घी कैसे खरीदें?" किन्तु चार्वाक मुनि कहते हैं, "यदि तुम्हारे पास पैसे नहीं है, तो माँगो, उधार लो या चोरी करो, किन्तु जैसे भी हो घी प्राप्त करके जीवन का भोग करो।" जो लोग आगे यह आपत्ति करते हैं कि माँगना, उधार लेना या चोरी करना जैसे अनधिकृत कार्य अपराध हैं, जिनके लिए उन्हें दोषी ठहराया जायेगा, उनके लिए चार्वाक मुनि का उत्तर है, "तुम्हें उत्तरदायी नहीं ठहराया जायेगा। मरने पर ज्यों ही तुम्हारा शरीर भस्म होकर राख हो जायेगा, तो सब कुछ समाप्त हो जायेगा।

यह अज्ञान कहलाता है। भगवद्गीता बतलाती है कि शरीर नष्ट होने से कोई मरता नहीं (न हन्यते हन्यमाने शरीरे) । एक शरीर के विनाश का अर्थ है। दूसरा शरीर पाना (तथा देहान्तर प्राप्तिः)। अतएव भौतिक जगत् में दायित्वविहीन कार्य करना बहुत खतरनाक है। आत्मा तथा इसके देहान्तर को जाने बिना लोग भौतिक शक्ति से आकृष्ट होकर ऐसे अनेकानेक कार्यों में लग जाते हैं, मानो केवल भौतिक ज्ञान के बल पर ही सुखी बना जा सकता है, आध्यात्मिक जगत् का कोई महत्त्व ही नहीं है। इसलिए सम्पूर्ण भौतिक जगत् तथा इसके कार्यकलापों को अविद्याकर्म संज्ञान्या कहा गया है।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की इस भिन्ना-शक्ति या भौतिक शक्ति के अन्तर्गत कर्म करने वाले मनुष्यों के अज्ञान को दूर करने के लिए ही भगवान् अवतरित होते हैं, जिससे उन्हें आध्यात्मिक कार्यों की मूल प्रकृति का स्मरण हो सके (यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत)। ज्योंही वे अपनी मूल प्रकृति से विचलित होते हैं, त्योंही भगवान् उन्हें यह शिक्षा देने के लिए आते हैं-

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज-"हे प्रिय जीवों, तुम सारे भौतिक कार्यों का परित्याग करके अपनी सुरक्षा के लिए केवल मेरी शरण में आओ।" (भगवद्गीता 18.66)

यह चार्वाक मुनि का कथन है कि मनुष्य को घी खरीदकर जीवन का आनन्द भोगने के लिए भीख माँगना, उधार लेना या धन चुराना तक उचित है। (ऋणं कृत्वा घृतम् पिबेत्)। इस तरह भारत के महानतम नास्तिक चार्वाक मुनि तक यह संस्तुति करते हैं कि घी खाओ, मांस नहीं। कोई सोच भी नहीं सकता था कि मनुष्य बाघ तथा कुत्तों की तरह मांस खाये, किन्तु लोग इतने गिर चुके हैं कि वे पशु बन गये हैं और वे यह दावा भी नहीं कर सकते कि उनके पास मानव सभ्यता भी है।

हेन जीव-तत्त्व लञा लिखि' पर-तत्त्व।

आच्छन्न करिल श्रेष्ठ ईश्वर-महत्त्व ॥120॥

हेन–इतनी तिरस्कृत; जीव-तत्त्व-जीव तत्त्व; लञा–लेकर; लिखि'–लिखकर; पर-तत्त्व–पर तत्त्व; आच्छन्न-ढकी हुई, आच्छादित; करिल-किया; श्रेष्ठ-श्रेष्ठ, भगवान्; ईश्वर-ईश्वर की; महत्त्व-महिमाएँ।

अनुवाद

"मायावादी दर्शन इतना गिरा हुआ है कि वह नगण्य जीवों को परम सत्य, भगवान् मानता है और इस तरह वह परम सत्य के महिमा तथा श्रेष्ठत्व को अद्वैतवाद से ढक देता है।"

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की टीका है कि सारे वैदिक शास्त्रों में जीवतत्त्व को भगवान् की शक्तियों में से एक बताया गया है। यदि कोई जीव को परम पूर्ण के सूक्ष्म स्फुलिंग के

रूप में स्वीकार नहीं करता, लेकिन जीवतत्त्व की समता परम ब्रह्म या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से करता है, तो यह समझना चाहिए कि उसका सारा दर्शन अज्ञान पर आधारित है। दुर्भाग्यवश श्रीपाद शंकराचार्य ने जान-बूझकर जीवतत्त्व को परमेश्वर के तुल्य घोषित किया है। अतएव उनका पूरा दर्शन भ्रम पर आधारित है और यह उन लोगों को नास्तिक बनाने में सहायक होता है, जिनका जीवन-लक्ष्य अधूरा रह गया हो। किन्तु जैसाकि भगवद्गीता में वर्णन हुआ है, मानव जीवन का लक्ष्य परम भगवान् की शरण में जाकर उनका भक्त बनना है। किन्तु मायावादी दर्शन मनुष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अस्तित्व को नकारकर अपने आपको भगवान् मानने के लिए प्रेरित करके उसे पथभ्रष्ट करता है। इस तरह इसने लाखों अबोध मनुष्यों को पथभ्रष्ट किया है।

व्यासदेव ने वेदान्त-सूत्र में बतलाया है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् शक्तिमान हैं और प्रत्येक भौतिक या आध्यात्मिक वस्तु उनकी शक्ति से ही प्रकट होती है। भगवान् या परम ब्रह्म ही हर वस्तु के मूल या उद्गम स्रोत हैं। (जन्माद्यस्य यतः) और अन्य सारे जगत् भगवान् की विभिन्न शक्तियों से प्रकट होते हैं। इसकी पुष्टि विष्णु पुराण द्वारा भी होती है :

एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा ।

परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत् ॥

“इस जगत् में हमें जो कुछ भी दिखता है, वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की विभिन्न शक्तियों का विस्तार मात्र है, जो उस अग्नि के समान है, जो एक स्थान पर रखी रहने पर भी दूर दूर तक प्रकाश फैलाती है। यह एक जीवन्त उदाहरण है। इसी प्रकार यह कहा गया है कि जिस तरह सूर्य की शक्ति, यानी सूर्य-प्रकाश में जगत् की सारी वस्तुएँ विद्यमान हैं, उसी तरह हर वस्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आध्यात्मिक तथा भौतिक शक्तियों के कारण विद्यमान है। अतः यद्यपि कृष्ण अपने धाम में

रहते हैं (गोलोक एव निवसत्य-खिलात्मभूतः), जहाँ वे गोपों तथा गोपियों के साथ अपनी दिव्य लीलाओं का आनन्द लेते हैं, फिर भी वे सर्वत्र, यहाँ तक कि ब्रह्माण्ड के कण-कण में विद्यमान रहते हैं (अण्डान्तरस्थ परमाणुचयान्तरस्थम्)। यह वैदिक साहित्य का निर्णय है।

दुर्भाग्यवश, मायावादी दर्शन ने यह दावा करके कि जीव ईश्वर है, लोगों को पथभ्रष्ट करते हुए सारे विश्व में उत्पात मचा रखा है और प्रायः हर व्यक्ति इसके फलस्वरूप ईश्वरविहीन बन चुका है। इस तरह मायावादी दार्शनिकों ने परमेश्वर के यश को म्लान करके मानव समाज का सबसे बड़ा अहित किया है। मायावादी दार्शनिकों के इन्हीं अत्यन्त गर्हित कार्यों की प्रतिक्रिया स्वरूप चैतन्य महाप्रभु ने हरे कृष्ण महामन्त्र का सूत्रपात किया।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामेव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

“इस कलह तथा दम्भ के युग में मुक्ति का एकमात्र साधन भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना है। इसके अलावा दूसरा कोई रास्ता नहीं है, दूसरा कोई रास्ता नहीं है, दूसरा कोई रास्ता नहीं है।” लोगों को चाहिए कि वे हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने मात्र में लग जाएँ, क्योंकि इस तरह वे क्रमश: यह समझने लगेंगे कि वे भगवान् नहीं हैं, जैसाकि मायावादी दार्शनिक शिक्षा देते हैं, अपितु वे भगवान् के सनातन सेवक हैं। ज्योंही मनुष्य भगवान् की दिव्य सेवा में लग जाता है, वह मुक्त हो जाता है।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।

स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

“जो पूर्णतया भक्ति में लगा रहता है और किसी भी परिस्थिति में पतित नहीं होता, वह भौतिक प्रकृति के सारे गुणों को तुरन्त पार करके ब्रह्म पद को प्राप्त होता है।” (भगवद्गीता 14.26) अतएव हरे कृष्ण आन्दोलन या कृष्णभावनामृत आन्दोलन उन मूर्ख जीवों के लिए एकमात्र आशा की किरण है, जो यह सोचते हैं कि या तो ईश्वर हैं ही नहीं और यदि हैं भी, तो वे निराकार हैं और हम भी ईश्वर हैं। ये भ्रान्तियाँ अत्यन्त घातक हैं और इनका निराकरण करने का एकमात्र उपाय है-हरे कृष्ण आन्दोलन का प्रसार करना।

व्यासेर सूत्रेते कहे ‘परिणाम’-वाद।

‘व्यास भ्रान्त’ बलि’ तार उठाइल विवाद॥ 121॥

व्यासेर-श्रील व्यासदेव के; सूत्रेते-सूत्रों में; कहे-वर्णन करते हैं; परिणाम-परिवर्तन; वाद-दर्शन; व्यास-श्रील व्यासदेव; भ्रान्त-भ्रान्त, गलत; बलि’–उन पर आरोप लगाकर; तार–उनका; उठाइल-उठाया; विवाद-विवाद, आपत्ति।

अनुवाद

“श्रील व्यासदेव ने अपने वेदान्त-सूत्र में वर्णन किया है कि प्रत्येक वस्तु भगवान् की शक्ति के रूपान्तर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। किन्तु शंकराचार्य ने यह टीका करके कि व्यासदेव गलत थे, सारे जगत् को पथभ्रष्ट किया। इस तरह उन्होंने पूरे विश्व में आस्तिकता का घोर विरोध किया है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर बतलाते हैं, “श्रील व्यासदेव कृत वेदान्त-सूत्र में यह निश्चित रूप से कहा गया है कि सारे जगत् भगवान् की विभिन्न शक्तियों के रूपान्तर के परिणाम हैं। किन्तु

शंकराचार्य भगवान् की शक्ति को नहीं मानते; अपितु यह समझते हैं कि खुद भगवान् ही रूपान्तरित होते हैं। उन्होंने अनेक स्पष्ट वैदिक तथ्यों को तोड़मरोड़कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यदि भगवान् या परम सत्य रूपान्तरित होंगे, तो उनका एकत्व गड़बड़ी जायेगा। इसलिए उन्होंने श्रील व्यासदेव के ऊपर आरोप लगाया कि वे गलत थे। अतएव उन्होंने अपने अद्वैत दर्शन को विकसित करते हुए विवर्तवाद या मायावाद की स्थापना की है।"

ब्रह्मसूत्र के द्वितीय अध्याय का प्रथम सूत्र है- तदनन्यत्वम् आरम्भ शब्दादिभ्यः। शंकराचार्य ने अपने शारीरक भाष्य में इस सूत्र की टीका करते हुए वाचारम्भणं विकारो नामधेयम् नामक कथन को छन्दोग्य उपनिषद् (6.1.4) से यह सिद्ध करने के लिए उद्धृत किया है कि भगवान् की शक्ति के रूपान्तर को स्वीकार करना दोषपूर्ण है। उन्होंने शक्ति के इस रूपान्तर का गलत तरीके से विरोध किया है, जिसकी व्याख्या आगे की जायेगी। ईश्वर के बारे में उनकी यह धारणा निराकार है, इसलिए वे यह नहीं विश्वास करते कि सारा जगत् भगवान् की शक्तियों का रूपान्तर है, क्योंकि परम सत्य की विविध शक्तियों को मान लेने का अर्थ होगा परम सत्य को निराकार नहीं, अपितु साकार मानना। मनुष्य अपनी शक्ति के रूपान्तर से अनेक वस्तुओं को उत्पन्न कर सकता है। उदाहरणार्थ, एक व्यापारी अपनी शक्ति का रूपान्तर बड़े-बड़े कारखानों या व्यापार-संगठनों की स्थापना करने में करता है, फिर भी वह एक व्यक्ति ही रहता है, भले ही उसकी शक्ति का रूपान्तर अनेक कारखानों तथा व्यापार-संगठनों में हो चुका हो। मायावादी दार्शनिक इस सीधी-सी बात को नहीं समझ पाते। उनका छोटा मस्तिष्क तथा उनका अल्प ज्ञान उन्हें पर्याप्त प्रकाश प्रदान नहीं कर पाते, जिससे वे यह अनुभव कर सकें कि जब मनुष्य की शक्ति रूपान्तरित होती है, तो मनुष्य खुद जैसे का तैसा रहता है, वह रूपान्तरित नहीं होता।

शंकराचार्य को इस तथ्य पर विश्वास नहीं था कि परम सत्य की शक्ति रूपान्तरित होती है, अतएव उन्होंने मायावाद के सिद्धान्त की स्थापना की। इस सिद्धान्त के अनुसार परम सत्य कभी रूपान्तरित नहीं होता, किन्तु हम सोचते हैं कि ऐसा होता है और यही माया है। शंकराचार्य परम सत्य की शक्ति के रूपान्तर में विश्वास नहीं करते, क्योंकि वे दावा करते हैं कि सारी वस्तुएँ एक हैं, अतएव जीव भी परमेश्वर के साथ एकाकार है। यही उनका मायावाद है।

श्रील व्यासदेव ने बतलाया है कि परम सत्य ऐसे व्यक्ति हैं, जो विविध शक्तियों से युक्त हैं। उन्होंने इच्छा की कि सृष्टि हो और अपने दृष्टिपात से (स ऐक्षत) इस भौतिक जगत् की सृष्टि की (स असृजत)। सृष्टि करने के बाद भी वे वही पुरुष बने रहते हैं; वे प्रत्येक वस्तु में रूपान्तरित नहीं होते। यह स्वीकार करना होगा कि भगवान् की अचिन्त्य शक्तियाँ होती हैं और उनके आदेश तथा उनकी इच्छा से ही नाना प्रकार के रूपान्तर प्रकट होते हैं। वैदिक साहित्य में कहा गया है-स तत्त्वतोऽन्यथा-बुद्धिर्विकार इत्युदाहृतः। इस मन्त्र से सूचित होता है कि एक तथ्य से दूसरा तथ्य उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ पिता एक तथ्य है और उस पिता से उत्पन्न पुत्र एक दूसरा तथ्य है। इस तरह दोनों ही सत्य हैं, यद्यपि इनमें से एक दूसरे से उत्पन्न हुआ है। यह दूसरी उत्पत्ति जो पहले सत्य से पृथक् सत्य है, वह विकार अर्थात् ऐसा रूपान्तर कहलाता है, जिसके फलस्वरूप गौण-उत्पाद पैदा होती है। परम ब्रह्म परम सत्य हैं और उनसे उत्पन्न अन्य शक्तियाँ जिनका अलग अस्तित्व है, यथा जीव और यह जगत्, वे भी सत्य हैं। यह रूपान्तर का उदाहरण है, जिसे विकार या परिणाम कहते हैं। विकार का दूसरा उदाहरण दिया जा सकता है-दूध एक सत्य है, किन्तु वही दूध दही में रूपान्तरित हो सकता है। इस तरह दही दूध का विकार है, यद्यपि दूध तथा दही के अवयव एक ही हैं।

छान्दोग्य-उपनिषद् में यह मन्त्र आता है-ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्। यह मन्त्र निस्सन्देह बतलाता है कि सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म है। परम सत्य की अचिन्त्य शक्तियाँ होती हैं, जैसाकि श्वेताश्वतर उपनिषद

में समर्थन हुआ है (परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते) और यह सारा प्रकट जगत् परमेश्वर की इन विभिन्न शक्तियों का प्रमाण है। परमेश्वर एक तथ्य हैं, अतएव परमेश्वर द्वारा जो कुछ भी सृजित हुआ है, वह भी वास्तविक है। हर वस्तु सत्य और पूर्ण (पूर्णम्) है, किन्तु मूल पूर्णम् अर्थात् पूर्ण परम सत्य जैसे के तैसे बने रहते हैं। पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय। परम सत्य इतने पूर्ण हैं कि यद्यपि उनसे असंख्य शक्तियाँ प्रकट होती हैं और अनेक सृष्टियाँ प्रकट होती हैं, जो उनसे भिन्न लगती हैं, तो भी वे अपना व्यक्तित्व बनाये रखते हैं। उनमें किसी भी दशा में ह्रास नहीं होता।

निष्कर्ष यह निकलता है कि सम्पूर्ण प्रकट सृष्टि परमेश्वर की शक्ति का रूपान्तर है; परमेश्वर या परम सत्य का खुद का नहीं; वे सदैव वैसे ही बने रहते हैं। भौतिक जगत् तथा जीव आदि स्रोत भगवान्, या परम सत्य या ब्रह्म के विकार हैं। दूसरे शब्दों में, परम सत्य या ब्रह्म मूल उपादान हैं और अन्य सभी इसी उपादान के रूपान्तर हैं। इसकी पुष्टि तैत्तिरीय उपनिषद् (3.1) में भी हुई है- यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।" यह सम्पूर्ण प्रकट जगत् परम सत्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा सम्भव बनाया गया है। इस श्लोक से सूचित होता है कि परम सत्य ब्रह्म मूल कारण हैं और जीव तथा जगत् का प्राकट्य इसके परिणाम हैं। चूँकि कारण सत्य है, अतएव परिणाम भी वास्तविक हैं। ये माया नहीं हैं। शंकराचार्य ने असंतुलित भाव से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इस जगत् को तथा जीवों को भगवान् के गौण-उत्पाद मानना माया है, क्योंकि भौतिक जगत् तथा जीवों के अस्तित्व (उनके मतानुसार) परम सत्य से सर्वथा भिन्न हैं। ज्ञान के ऐसे खिलवाड़ से मायावादी दार्शनिकों ने ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या नारे का प्रचार किया है, जिसके अनुसार परम सत्य तथ्य है, किन्तु जगत् के प्राकट्य तथा जीव मात्र माया हैं, अथवा ये सभी परम सत्य हैं और भौतिक जगत् तथा जीव का कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है।

अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि शंकराचार्य ने परमेश्वर, जीव तथा भौतिक प्रकृति को अविभाज्य तथा अज्ञान के रूप में प्रस्तुत करके पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की महिमा को आच्छादित करना चाहा है। वे मानते हैं कि यह भौतिक जगत् मिथ्या अर्थात् असत्य है, किन्तु यह बहुत बड़ी भूल है। यदि पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर तथ्य (सत्य) हैं, तो फिर उनकी सृष्टि मिथ्या कैसे हो सकती है? सामान्य व्यवहार तक में भौतिक जगत् को मिथ्या नहीं सोचा जा सकता। इसीलिए वैष्णव दार्शनिक कहते हैं कि यह भौतिक सृष्टि मिथ्या नहीं, अपितु क्षणिक है। यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से भिन्न है, परन्तु इसका सृजन भगवान् की शक्ति से बड़े ही अद्भुत ढंग से हुआ है, अतएव इसे मिथ्या कहना निन्दनीय है।

अभक्तगण भौतिक प्रकृति की अद्भुत सृष्टि की वास्तव में प्रशंसा करते हैं, किन्तु वे इस सृष्टि के मूल कारण रूप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की बुद्धि और शक्ति की प्रशंसा नहीं कर पाते। किन्तु श्रीपाद रामानुजाचार्य ऐतरेय उपनिषद् (1.1.1) के एक वैदिक सूत्र आत्मा वा इदमग्र आसीत् का उल्लेख करते हैं, जो यह बताता है कि सृष्टि के पूर्व परमात्मा या परम सत्य विद्यमान थे। यदि कोई तर्क करे कि, यदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पूर्णतया आध्यात्मिक हैं, तो वे सृष्टि के उद्गम किस प्रकार हो सकते हैं और उनमें एकसाथ भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियाँ कैसे हो सकती हैं ?" इस चुनौती का उत्तर देने के लिए श्रीपाद रामानुजाचार्य तैत्तिरीय उपनिषद (3.1) के निम्नलिखित मन्त्र का प्रमाण देते हैं :

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते

येन जातानि जीवन्ति

यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ॥

यह मन्त्र पुष्टि करता है कि सम्पूर्ण प्रकट जगत् परम सत्य से प्रकट होता है, उन्हीं पर आश्रित होता है और प्रलय के बाद पुनः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् या परम सत्य के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। जीव मूलतः आध्यात्मिक है और जब वह आध्यात्मिक जगत् में या परमेश्वर के शरीर में प्रविष्ट होता है, तब भी व्यक्तिगत आत्मा के रूप में उसकी अलग पहचान बनी रहती है। इस सन्दर्भ में श्रीपाद रामानुजाचार्य उदाहरण देते हैं कि जब कोई हरा पक्षी हरे वृक्ष में प्रवेश करता है, तो वह वृक्ष से एकाकार नहीं हो जाता। यद्यपि वह वृक्ष की हरियाली से घुला-मिला प्रतीत होता है, किन्तु पक्षी के रूप में वह अपनी अलग पहचान बनाये रखता है। इसी तरह से दूसरा उदाहरण दिया जा सकता है। जब कोई पशु जंगल में जाता है, तो वह भले ही जंगल से एकाकार होता दिखाई दे, किन्तु वह अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व बनाये रखता है। उसी प्रकार भौतिक जगत् में भौतिक शक्ति तथा तटस्था शक्ति वाले जीव अपना पृथक्-पृथक् अस्तित्व बनाये रखते हैं। इस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्तियाँ इस जगत् के भीतर पारस्परिक क्रिया करती हैं, किन्तु वे अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखती हैं। अत: भौतिक या आध्यात्मिक शक्तियों के साथ मिलन व्यक्तित्व के विनाश का सूचक नहीं है। श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार यद्यपि भगवान् की सारी शक्तियाँ एक हैं, फिर भी वे अपनी-अपनी अलग पहचान (वैशिष्ट्य) बनाये रखती हैं।

श्रीपाद शंकराचार्य ने वेदान्त-सूत्र के आनन्दमयोऽभ्यासात् शब्दों की गलत व्याख्या करके पाठकों को पथभ्रष्ट करने का प्रयास किया है। यही नहीं, उन्होंने व्यासदेव में भी त्रुटियाँ ढूँढने का प्रयास किया है। यहाँ पर वेदान्त-सूत्र के सभी सूत्रों की परीक्षा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हम वेदान्त-सूत्र पर एक अलग ग्रंथ लिखना चाहते हैं।

परिणाम-वादे ईश्वर हयेन विकारी ।

एत कहि' 'विवर्त'-वाद स्थापना ये करि ॥ 122॥

परिणाम-वादे-शक्ति के परिवर्तन के तर्क को स्वीकार करके; ईश्वर-ईश्वर; हयेन-हो जाते हैं; विकारी-विकारी, परिवर्तित; एत कहि'–ऐसा कहकर; विवर्त-भ्रम, माया; वाद-तर्क, सिद्धान्त; स्थापना-स्थापना; ये-क्या; करि–करते हैं।

अनुवाद

"शंकराचार्य के अनुसार भगवान् की शक्ति के रूपान्तर (विकार) के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने से अप्रत्यक्ष रीति से परम सत्य के रूपान्तरित होने का भ्रम उत्पन्न होता है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की टीका है कि यदि कोई परिणामवाद अर्थात् शक्ति के रूपान्तर को ठीक से नहीं समझता, तो वह इस प्रकट भौतिक जगत् तथा जीव विषयक सत्य को कुछ और ही समझ बैठेगा। छान्दोग्य उपनिषद् (6.8.4) में कहा गया है, सन्मूलाः सौम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः। भौतिक जगत् तथा जीव पृथक्-पृथक् हैं और वे शाश्वत सत्य हैं, मिथ्या नहीं हैं। किन्तु शंकराचार्य ने व्यर्थ ही इस डर से कि परिणामवाद (शक्ति के रूपान्तर) से ब्रह्म रूपान्तरित (विकारी) हो जायेंगे, यह मान लिया है कि भौतिक जगत् तथा जीव दोनों ही मिथ्या हैं और उनका कोई व्यक्तित्व नहीं है। उन्होंने वाग्जाल द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जीवों तथा भौतिक जगत् की व्यक्तिगत पहचान भ्रामक है और उन्होंने रज्जु (रस्सी) को सर्प मानने या सीपी को सोना समझने के दृष्टान्त दिये हैं। इस तरह उन्होंने अत्यन्त घृणित ढंग से सामान्य लोगों को ठगा है।

रज्जु को सर्प समझने का दृष्टान्त माण्डूक्य उपनिषद् में उल्लिखित है, किन्तु वहाँ पर इसका आशय शरीर को आत्मा समझने की भूल कर बैठने की व्याख्या करना है। चूँकि आत्मा वास्तव में आध्यात्मिक कण है, जैसाकि भगवद्गीता (ममैवांशो जीवलोके) में इसकी पुष्टि हुई है, माया

(विवर्तवाद) के कारण पशु सदृश मनुष्य शरीर को आत्मा मानने लगता है। यह विवर्त या माया का सही उदाहरण है। अतत्त्वतोऽन्यथा बुद्धिर्विवर्त इत्युदाहृतः श्लोक ऐसे विवर्त का वर्णन करता है। असली तथ्यों को न जानना और परिणामस्वरूप एक वस्तु को भूल से दूसरी मानना (यथा शरीर को ही स्वयं या आत्मा मान बैठना) विवर्तवाद कहलाता है। प्रत्येक बद्धजीव, जो शरीर को आत्मा मानता है, वह इस विवर्तवाद द्वारा मोहित होता है। जब कोई सर्वशक्तिमान भगवान् की अचिन्त्य शक्ति को भूल जाता है, तब वह इसी विवर्तवाद का शिकार होता है।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कभी भी बदले बिना यथारूप में किस प्रकार रहते हैं, इसकी व्याख्या ईशोपनिषद में मिलती है- पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। ईश्वर पूर्ण हैं। यदि उनसे एक पूर्ण जगत् को निकाल लिया जाए, तो भी वे पूर्ण ही रहते हैं। यह भौतिक सृष्टि भगवान् की शक्ति से प्रकट है, किन्तु वे तब भी वही व्यक्ति बने रहते हैं। उनका रूप, परिकर, गुण इत्यादि कभी क्षीण नहीं होते। श्रील जीव गोस्वामी अपने परमात्म-सन्दर्भ ग्रन्थ में विवर्तवाद की टीका इस प्रकार करते हैं : "विवर्तवाद के प्रभाव में आकर मनुष्य पृथक् हस्तीयों को अर्थात् प्रकट जगत् तथा जीवों को ब्रह्म से एकाकार मान बैठता है। ऐसा वास्तविक तथ्य के प्रति पूर्ण अनभिज्ञता के कारण होता है। परम सत्य या परब्रह्म सर्वदा एक और अपरिवर्तनीय रहते हैं। वे अस्तित्व की अन्य सारी धारणाओं से पूर्णतया मुक्त रहते हैं। वे मिथ्या अहंकार से पूर्णतया मुक्त होते हैं, क्योंकि उनका स्वरूप पूर्ण आध्यात्मिक है। उनका अज्ञान तथा भ्रान्ति (विवर्तवाद) के प्रभाव में आना नितान्त असम्भव है। परम सत्य हमारी कल्पना से परे हैं। हमें स्वीकार करना चाहिए कि उनमें निर्मल गुण पाये जाते हैं, जो प्रत्येक जीव में नहीं होते। वे सामान्य जीवों के दोषों से रंच-भर भी कलुषित नहीं होते, इसलिए हमें परम सत्य को अचिन्त्य शक्तियों से युक्त समझना चाहिए।"

वस्तुतः परिणाम-वाद–सेइ से प्रमाण।

देहे आत्म-बुद्धि–एइ विवर्तेर स्थान ॥123॥

वस्तुतः–वास्तव में; परिणाम-वाद-शक्ति के परिवर्तन का सिद्धान्त, शक्ति के विकार का सिद्धान्त; सेइ-वह; से-केवल; प्रमाण-प्रमाण; देहे-शरीर में; आत्म-बुद्धि-आत्म-बोध; एइ-यह; विवर्तेर-माया का, भ्रम का; स्थान-स्थान।

अनुवाद

"शक्ति का रूपान्तर एक जाँचा हुआ तथ्य है। यह आत्मा के देहात्मभाव की गलत धारणा है, जो भ्रम या विवर्त है।"

तात्पर्य

जीव आध्यात्मिक स्फुलिंग है, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का अंश है। दुर्भाग्यवश वह शरीर को आत्मा समझ लेता है और यह भ्रान्ति ही विवर्त अर्थात् 'असत्य को सत्य के रूप में स्वीकार कर लेना' कहलाती है। यह शरीर आत्मा नहीं है, किन्तु पशुतुल्य तथा मूर्ख व्यक्ति इसे ऐसा ही समझते हैं। विवर्त आत्मा के स्वरूप में परिवर्तन का द्योतक नहीं होता। यह भ्रान्त धारणा कि शरीर ही आत्मा है, वही विवर्त है। उसी प्रकार जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की बहिरंगा शक्ति, भगवद्गीता में उल्लिखित आठ स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक तत्त्वों (भूमिरापोऽनलो वायु इत्यादि) से युक्त होकर, विभिन्न अवस्थाओं में क्रिया-प्रतिक्रिया व्यक्त करती है, उस समय भगवान् परिवर्तित नहीं होते।

अविचिन्त्य-शक्ति-मुक्त श्री-भगवान्।

इच्छाय जगद्रूपे पाय परिणाम ॥124॥

अविचिन्त्य-अचिन्त्य; शक्ति-शक्ति; मुक्त-युक्त; श्री-ऐश्वर्य-पूर्ण; भगवान्-भगवान्; इच्छाय-उनकी इच्छा से; जगत्-रूपे-प्रकट जगत् के रूप में; पाय-हो जाते हैं; परिणाम-उनकी शक्ति से परिवर्तित।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सभी तरह से ऐश्वर्यवान हैं। अतएव उन्होंने अपनी अचिन्त्य शक्तियों से भौतिक जगत् को रूपान्तरित कर दिया है।

तथापि अचिन्त्य-शक्त्ये हय अविकारी ।

प्राकृत चिन्तामणि ताहे दृष्टान्त ये धरि ॥125॥

तथापि-तथापि; अचिन्त्य-शक्त्ये-अचिन्त्य शक्ति से; हय-रहते हैं; अविकारी-अविकारी, परिवर्तन के बिना; प्राकृत-भौतिक; चिन्तामणि-चिन्तामणि पत्थर; ताहे-उस दृष्टि से; दृष्टान्त–दृष्टान्त; ये-जो; धरि–हम स्वीकार करते हैं।

अनुवाद

“पारस पत्थर अपनी शक्ति से लोहे को सोने में बदल देता है, फिर भी स्वयं वैसा ही रहता है। इस दृष्टान्त द्वारा हम यह समझ सकते हैं कि यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी असंख्य शक्तियों का रूपान्तर करते हैं, किन्तु वे स्वयं अपरिवर्तित रहते हैं।”

नाना रत्न-राशि हय चिन्तामणि हैते ।

तथापिह मणि रहे स्वरूपे अविकृते ॥126॥

नाना-प्रकार; रत्न-राशि-अमूल्य रत्न; हय–सम्भव हो जाते हैं; चिन्तामणि-चिन्तामणि, हैते–से; तथापिह-तथापि, निश्चित रूप से; मणि-चिन्तामणि; रहे-रहता है; स्वरूपे-आपने मूल-रूप में; अविकृते-अविकृत।

अनुवाद

"यद्यपि पारस पत्थर (चिन्तामणि) अनेक प्रकार के मूल्यवान रत्नों को उत्पन्न करता है, किन्तु वह वैसा ही रहता है। वह अपने मूल रूप को नहीं बदलता।

प्राकृत-वस्तुते यदि अचिन्त्य-शक्ति हय।

ईश्वरेर अचिन्त्य-शक्ति,—इथे कि विस्मय॥ 127॥

प्राकृत-वस्तुते-भौतिक वस्तुएँ; यदि-यदि; अचिन्त्य-अचिन्त्य; शक्ति–शक्ति; हय–सम्भव होती है; ईश्वरेर-भगवान् की; अचिन्त्य-अचिन्त्य; शक्ति-शक्ति; इथे-इसमें; कि-क्या; विस्मय-आश्चर्यजनक।

अनुवाद

"यदि भौतिक वस्तुओं में ऐसी अचिन्त्य शक्ति हो सकती है, तो फिर हमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्ति में क्यों विश्वास नहीं करना चाहिए?"

तात्पर्य

इस श्लोक में दिये गये श्री चैतन्य महाप्रभु के तर्क को सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है यदि वह सूर्य की क्रियाओं के विषय में ही सोच-विचार करे, जो अनन्त काल से असीम ऊष्मा तथा प्रकाश देता आ रहा है, किन्तु फिर भी उसकी शक्ति का थोड़ा भी ह्रास नहीं

हुआ है। आधुनिक विज्ञान का विश्वास है कि सूर्य के प्रकाश द्वारा ही सारे जगत् का पालन होता है और वास्तव में यह देखा जा सकता है कि किस तरह सूर्य-प्रकाश की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं से ब्रह्माण्ड-भर में व्यवस्था बनी हुई है। वनस्पतियों का उगना तथा ग्रहों का भ्रमण तक सूर्य की ऊष्मा और प्रकाश के ही कारण सम्पन्न होता है। इसलिए कभी-कभी आधुनिक वैज्ञानिक सूर्य को सृष्टि का मूल कारण मान लेते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि सूर्य तो माध्यम मात्र है, क्योंकि इसकी भी रचना पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सर्वोपरि शक्ति द्वारा हुई है। सूर्य तथा पारस पत्थर के अतिरिक्त भी ऐसी अन्य अनेक भौतिक वस्तुएँ हैं, जो अपनी शक्ति को अनेक प्रकार से रूपान्तरित करती हैं और फिर भी वे जैसी की तैसी बनी रहती हैं। अतएव भगवान् के लिए, जो मूल कारण हैं, यह आवश्यक नहीं कि अपनी विभिन्न शक्तियों के रूपान्तरों या परिवर्तनों के कारण वे भी परिवर्तित हों।

विवर्तवाद तथा परिणामवाद की श्रीपाद शंकराचार्य द्वारा जो व्याख्या की गई है, उसकी असत्यता की पहचान वैष्णव आचार्यों द्वारा, विशेषतया जीव गोस्वामी द्वारा, की जा चुकी है, जिनका मत है कि शंकराचार्य वेदान्त-सूत्र को वास्तव में समझे ही नहीं। आनन्दमयोऽभ्यासात्- वास्तव में केवल इसी एक सूत्र की शंकराचार्य ने जो व्याख्या की है, उसमें मयट् प्रत्यय में जो वाग्जाल का आश्रय लिया गया है, उससे सिद्ध होता है कि उन्हें वेदान्त-सूत्र का बहुत कम ज्ञान था। वे वेदान्त दर्शन के सूत्रों द्वारा केवल अपने निर्विशेषवाद की पुष्टि करना चाह रहे थे। किन्तु वस्तुत: वे ऐसा करने में असफल रहे हैं, क्योंकि वे सशक्त तर्क प्रस्तुत नहीं कर पाये। इस सन्दर्भ में श्रील जीव गोस्वामी ब्रह्मपुच्छेप्रतिष्ठा सूत्र (तैत्तिरीय उपनिषद् 2.5) का प्रमाण देते हैं, जिससे यह वैदिक प्रमाण प्राप्त होता है कि ब्रह्म ही प्रत्येक वस्तु का उद्गम है। इस श्लोक की व्याख्या करते समय श्रीपाद शंकराचार्य ने विभिन्न संस्कृत शब्दों का ऐसा अर्थ लगाया है, जिससे वे जीव गोस्वामी के अनुसार, यह कहना चाहते हैं कि व्यासदेव को उच्च तर्क शास्त्र का बहुत कम ज्ञान था। वेदान्त-सूत्र के

वास्तविक अर्थ से ऐसे मनमाने भटकाव से ऐसे लोगों के एक वर्ग का जन्म हुआ है, जो शब्दजाल से वैदिक साहित्य, विशेषतया भगवद्गीता, का अपरोक्ष अर्थ निकालने का प्रयास करते हैं। इनमें से एक ने तो यहाँ तक कह डाला है कि कुरुक्षेत्र शब्द शरीर के अर्थ में आया है। ऐसी व्याख्या से यही लगता है कि न तो भगवान् कृष्ण को, न ही व्यासदेव को सही शब्दप्रयोग या व्युत्पत्ति आती थी। उन्होंने लोगों को ऐसी कल्पना करने के लिए प्रेरित किया है कि न तो कृष्ण को इसका पता था कि वे क्या बोल रहे हैं, न व्यासदेव को पता था कि वे क्या लिख रहे हैं, अतः भगवान् कृष्ण मायावादियों को अपने ग्रंथ की व्याख्या करने के लिए छोड़ गये। किन्तु ऐसी व्याख्याएँ केवल यही बताती हैं। कि उनके समर्थकों को बहुत कम दार्शनिक ज्ञान था।

इस तरह से वेदान्त-सूत्र तथा अन्य वैदिक साहित्य का मिथ्या अपरोक्ष अर्थ निकालने में व्यर्थ समय नष्ट करने के स्थान पर मनुष्य को चाहिए कि इन ग्रंथों के शब्दों को यथारूप स्वीकार कर ले। इसीलिए भगवद्गीता यथारूप प्रस्तुत करते समय हमने मूल शब्दों के अर्थों को बदला नहीं है। इसी तरह यदि वेदान्त-सूत्र को मनमानी तथा द्वेषपूर्ण मिलावट के बिना मूल रूप में पढ़ा जाए, तो यह आसानी से समझ में आ जायेगा। इसीलिए श्रील व्यासदेव श्रीमद्भागवत (1.1.1) में प्रथम सूत्र जन्माद्यस्य यतः से प्रारम्भ करके वेदान्त-सूत्र की व्याख्या करते हैं।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्।

“मैं उनका (भगवान् कृष्ण का) ध्यान करता हूँ, जो दिव्य सत्य रूप हैं, समस्त कारणों के आदि कारण हैं, जिनसे सारे प्रकट ब्रह्माण्डों का उदय होता है, जिनमें उनकी स्थिति रहती है और जिनके द्वारा फिर वे विनष्ट कर दिये जाते हैं। मैं शाश्वत तेजस्वी उन भगवान् का ध्यान करता हूँ, जो प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सारे जगत् को जानते हुए भी पूर्ण स्वतन्त्र रहते हैं।” पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अच्छी तरह जानते हैं कि हर कार्य को किस तरह पूर्णरूपेण किया जाता है। वे अभिज्ञ-सदैव पूर्णतया

अवगत होते हैं। इसलिए भगवद्गीता (7.26) में भगवान् ने कहा है कि वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य की हर बात जानते हैं, किन्तु उन्हें केवल भक्त ही वास्तविक रूप में जानते हैं, अन्य कोई नहीं। इसलिए भक्तगण भगवान् को कम से कम आंशिक रूप में जानते हैं, किन्तु ऐसे मायावादी दार्शनिक जो परम सत्य को समझने के लिए वृथा तर्कवितर्क करते रहते हैं, व्यर्थ ही अपना समय नष्ट करते हैं।

'प्रणव' से महावाक्य–वेदेर निदान।

ईश्वर-स्वरूप प्रणव सर्व-विश्व-धाम ॥128॥

प्रणव-ओंकार; से-वह; महा-वाक्य-दिव्य ध्वनि; वेदेर-वेदों का; निदान-मूल सिद्धान्त; ईश्वर-स्वरूप–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सीधा प्रतिनिधित्व; प्रणव-ओंकार; सर्व-विश्व-सभी ब्रह्माण्डों का; धाम-आगार है।

अनुवाद

वैदिक साहित्य के प्रमुख शब्द अर्थात् वैदिक ॐकार की ध्वनि, समस्त वैदिक ध्वनियों का आधार है। इसलिए ॐकार को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ध्वनि रूप तथा जगत् के आगार के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

तात्पर्य

भगवद्गीता (8.13) में ॐकार की महिमा का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

यह श्लोक बतलाता है कि ॐकार या प्रणव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करता है। अतएव यदि कोई मरते समय केवल ॐकार का स्मरण करता है, तो वह भगवान् का स्मरण करता है। इसलिए वह तुरन्त वैकुण्ठ-लोक को भेजा जाता है। ॐकार समस्त वैदिक मन्त्रों का मूल सिद्धान्त है, क्योंकि यह भगवान् कृष्ण का प्रतिनिधित्व करता है, जिनको जानना समस्त वेदों का चरम लक्ष्य है, जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है (वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः)। किन्तु मायावादी दार्शनिक भगवद्गीता में बताये गये इन सरल तथ्यों को नहीं समझ पाते; फिर भी उन्हें वेदान्ती होने का गर्व रहता है। इसीलिए हम लोग वेदान्ती दार्शनिकों को कभी-कभी विदन्ती अर्थात् बिना दाँत वाला (वि-रहित, बिना; दन्ती–दाँत वाला) कहते हैं। शंकर दर्शन के कथन, जो कि मायावादी दार्शनिक के दाँतों जैसे हैं, सदा से वैष्णव आचार्यों यथा रामानुजाचार्य जैसे महान् आचार्यों के प्रबल तर्कों द्वारा खण्डित होते रहे हैं। श्रीपाद रामानुजाचार्य तथा मध्वाचार्य मायावादी दार्शनिकों के दाँत तोड़ने वाले हैं, जिन्हें 'दन्तविहीन' या विदन्ती कहा जा सकता है।

जैसा ऊपर कहा गया है, भगवद्गीता (8.13) में दिव्य ध्वनि ॐकार की व्याख्या हुई है :

ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

"इस योगाभ्यास में सुस्थापित हो जाने के बाद तथा पवित्र शब्द ॐ, जो अक्षरों का परम संयोग है, उसका उच्चारण करते हुए यदि कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का चिन्तन करता है और अपने शरीर का त्याग करता है, तो वह निश्चय ही वैकुण्ठ के आध्यात्मिक ग्रहों को जाता है।" यदि कोई यह सचमुच समझ जाता है कि ॐकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की ध्वनि-अभिव्यक्ति है, तो चाहे वह ॐकार का उच्चारण करे या हरे कृष्ण मन्त्र का, परिणाम निश्चय ही एक-सा निकलता है।

पुनः भगवद्गीता (9.17) में ही ॐकार की दिव्य ध्वनि की व्याख्या की गई है :

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।

वेद्यं पवित्रम् ॐकार ऋक् साम यजुरेव च ॥

"मैं इस ब्रह्माण्ड का पिता, माता, आश्रय तथा पितामह हूँ। मैं ज्ञातव्य, पवित्र करने वाला तथा ॐ शब्द हूँ। मैं ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद भी हूँ।"

इसी तरह भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के तेईसवें श्लोक में दिव्य ध्वनि ॐ की और अधिक व्याख्या की गई है :

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणत्रिविधः स्मृतः ।

ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥

"सृष्टि के आदि काल से ॐ तत् सत् ये तीन शब्द परम सत्य (ब्रह्म) को बतलाने के लिए प्रयुक्त होते आये हैं। ब्राह्मणों द्वारा वैदिक मंत्र-पाठ करते समय तथा भगवान् की तुष्टि के लिए यज्ञ करते समय इनका उच्चारण होता रहा है।"

सारे वैदिक साहित्य में ॐकार की महिमा का उल्लेख विशेष रूप से हुआ है। श्रील जीव गोस्वामी ने अपने भागवत् सन्दर्भ नामक शोध-ग्रंथ में लिखा है कि वैदिक साहित्य में ॐकार को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पवित्र नाम की ध्वनि तरंग माना गया है। केवल इसी दिव्य ध्वनि-तरंग से बद्धजीव माया के प्रभाव से छूट सकता है। कभी-कभी ॐकार को उद्धारक या तार भी कहा जाता है। श्रीमद्भागवत का शुभारम्भ ॐकार ध्वनि से होता है- ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। इसलिए महान् भाष्यकार श्रीधर स्वामी ने ॐकार को ताराङ्कर अर्थात् भौतिक जगत् से उद्धार का बीज कहा है।

चूँकि भगवान् परम पूर्ण हैं, अतएव उनका पवित्र नाम तथा उनकी ध्वनि-तरंग ॐकार भी उन्हीं के समान हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि पवित्र नाम या ॐकार, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दिव्य प्रतिनिधि है, भगवान् की समस्त शक्तियों से युक्त है।

नाम्नामकारि बहुधा निज सर्वशक्ति-

स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।

भगवान् के पवित्र नाम की पवित्र ध्वनि में सारी शक्तियाँ निहित हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भगवान् का पवित्र नाम या ॐकार साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् है। दूसरे शब्दों में, जो कोई ॐकार तथा भगवान् के पवित्र नाम हरे कृष्ण का उच्चारण करता है, वह भगवान् से उनके ध्वनि रूप में तुरन्त मिलता है। नारद पञ्चरात्र में स्पष्ट कहा गया है कि जो अष्टाक्षर अर्थात् ॐ नमो नारायणाय नामक आठ अक्षर वाले मन्त्र का जप करता है, उसके समक्ष साक्षात् भगवान् नारायण प्रकट होते हैं। माण्डूक्य उपनिषद् की भी ऐसी घोषणा है कि वैकुण्ठ-लोक में जो कुछ भी दिखता है, वह ॐकार की आध्यात्मिक शक्ति का विस्तार है।

श्रील जीव गोस्वामी ने समस्त उपनिषदों के आधार पर यह कहा है कि ॐकार सर्वोपरि परम सत्य है और सारे आचार्यों तथा प्रामाणिक विद्वानों ने इसे इसी रूप में स्वीकार किया है। ॐकार अनादि, परिवर्तनरहित, परम तथा सारे ह्रास एवं बाह्य कल्मष से मुक्त होता है। ॐकार हर वस्तु का आदि, मध्य और अन्त है और जो भी जीव ॐकार को इस रूप में समझ लेता है, वह आध्यात्मिक स्वरूप की पूर्णता को ॐकार में प्राप्त करता है। प्रत्येक जीव के हृदय में स्थित होने के कारण ॐकार ईश्वर है, जैसाकि भगवद्गीता (18.61) में पुष्ट हुआ है (ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति)। विष्णु के समान ही सर्वव्यापी होने के कारण ॐकार विष्णु के समान ही है। जो ॐकार तथा भगवान् विष्णु

को अभिन्न रूप में जानता है, उसे शोक या मोह नहीं सताते। जो ॐकार का उच्चारण करता है, वह शूद्र न रहकर तुरन्त ही ब्राह्मण पद को प्राप्त होता है। ॐकार के उच्चारण मात्र से सारी सृष्टि को एक इकाई या भगवान् की शक्ति के विस्तार रूप में समझा जा सकता है। इदं हि विश्व भगवानिवेतरो यतो जगत्-स्थान-निरोधसम्भवाः-"भगवान् स्वयं यह प्रकट विश्व हैं, फिर भी वे उससे अलिप्त हैं। उन्हीं से यह प्रकट विश्व उद्भूत हुआ है, उन्हीं पर आश्रित है और प्रलय के बाद उन्हीं में प्रविष्ट होता है।" (भागवत 1.5.20) यद्यपि जो यह नहीं समझता, वह भिन्न निष्कर्ष निकालता है, किन्तु श्रीमद्भागवत के अनुसार सम्पूर्ण विराट् जगत् भगवान् की शक्ति का विस्तार रूप है। भगवान् के पवित्र नाम ॐकार के उच्चारण द्वारा ही इस बात की अनुभूति की जा सकती है।

किन्तु मनुष्य को मूर्खतावश यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि चूँकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सर्वशक्तिमान हैं, अत: हमने उनका चित्रण करने के लिए अ, उ तथा म इन तीनों अक्षरों को जोड़कर एक संयोग बना दिया है। वास्तव में दिव्य ध्वनि ॐकार अ, उ तथा म इन तीनों अक्षरों का संयोग तो है, किन्तु इसमें दिव्य शक्ति होती है और जो भी इसका उच्चारण करता है, उसे तुरन्त ही अनुभव होने लगेगा कि ॐकार तथा भगवान् विष्णु अभिन्न हैं। कृष्ण घोषित करते हैं-प्रणवः सर्ववेदेषु–"मैं सारे वैदिक मन्त्रों में ॐ अक्षर हूँ।" (भगवद्गीता 7.8) अतएव यह निष्कर्ष निकालना होगा कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अनेक अवतारों में से ॐकार ध्वनि-अवतार है। सारे वेदों को यह मत मान्य है। मनुष्य को यह सदा स्मरण में रखना होगा कि भगवान् का पवित्र नाम तथा भगवान् स्वयं सदैव अभिन्न हैं (अभिन्नत्वान् नामनामिनोः)। चूँकि ॐकार समस्त वैदिक ज्ञान का मूल सिद्धान्त है, अतएव किसी भी वैदिक स्तोत्र के उच्चारण के पूर्व इसका उच्चारण किया जाता है। ॐकार के बिना कोई भी वेद मन्त्र सफल नहीं होता। इसीलिए गोस्वामियों का अभिमत है कि प्रणव

(ॐकार) पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है और उन्होंने ॐकार का विश्लेषण इसके अक्षरों के अनुसार किया है :

अकारेणोच्यते कृष्णः सर्वलोकैकनायकः ।

की उकारेणोच्यते राधा मकारो जीववाचकः ॥

ॐकार तीन अक्षरों से मिलकर बना है-अ, उ तथा म। अकारेणोच्यते कृष्ण:-अ अक्षर (अकार) कृष्ण का सूचक है, जो सर्वलोकैकनायक: अर्थात् सारे जीवों तथा भौतिक एवं आध्यात्मिक लोकों के नायक हैं। नायक का अर्थ है नेता। वे सर्वोच्च नेता हैं (नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्)। उ अक्षर (उकार) कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति श्रीमती राधारानी का सूचक है और म अक्षर (मकार) जीवों को निर्देशित करता है। इस प्रकार ॐ कृष्ण, उनकी शक्ति और उनके नित्य सेवकों का मिश्रण है। दूसरे शब्दों में, ॐकार कृष्ण, उनके नाम, यश, लीला, परिकर, विस्तार, भक्तगण, शक्तियाँ तथा उनसे सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु का द्योतक है। जिस प्रकार चैतन्य-चरितामृत के इस श्लोक में चैतन्य महाप्रभु ने कहा है सर्वविश्वधाम-ॐकार उसी प्रकार से प्रत्येक वस्तु का आश्रय है, जिस प्रकार कृष्ण प्रत्येक वस्तु के आश्रय हैं (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्)।

मायावादी दार्शनिक अनेक वैदिक मन्त्रों को महावाक्य अर्थात् प्रमुख वैदिक मन्त्र मानते हैं- यथा तत्त्वमसि (छान्दोग्य उपनिषद् 6.8.7), इदं सर्व यदयम् आत्मा तथा ब्रह्मदं सर्वम् (बृहदारण्यक उपनिषद् 2.5.1), आत्मैवेदं सर्वम् (छान्दोग्य उपनिषद् 7.25.2) तथा नेह नानास्ति किञ्चन (कठ उपनिषद् 2.1.11)। यही सबसे बड़ी भूल है। केवल ॐकार ही महावाक्य है। शेष सारे मन्त्र जिन्हें मायावादी महावाक्य मानते हैं, केवल गौण हैं। उन्हें महावाक्य या महामन्त्र नहीं माना जा सकता। तत्त्वमसि मन्त्र वेदों के केवल आंशिक ज्ञान का द्योतक है, जबकि ॐकार वेदों के पूर्ण ज्ञान का

प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए वह दिव्य ध्वनि जिसमें सारा वैदिक ज्ञान निहित है, वह ॐकार (प्रणव) है।

शंकराचार्य के अनुयायी जितने भी शब्दों का उच्चारण करते हैं, उनमें से ॐकार के अतिरिक्त अन्य कोई महावाक्य माने जाने योग्य नहीं है। वे मात्र सामयिक टिप्पणियाँ करने वाले हैं। किन्तु शंकराचार्य ने कभी भी महावाक्य ॐकार के उच्चारण पर बल नहीं दिया, उन्होंने एकमात्र तत्त्वमसि को महावाक्य माना है। जीव के ईश्वर होने की कल्पना करते हुए उन्होंने वेदान्त-सूत्र के सारे मन्त्रों की गलत व्याख्या करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जीवों का तथा परम सत्य का पृथक्-पृथक् अस्तित्व नहीं है। यह वैसा ही है, जैसाकि राजनीतिज्ञ अहिंसा को भगवद्गीता से प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं। कृष्ण असुरों के लिए हिंसक थे, किन्तु यह सिद्ध करना कि वे हिंसक नहीं थे, अन्ततोगत्वा कृष्ण को नकारना है। जिस तरह भगवद्गीता की ऐसी व्याख्याएँ हास्यास्पद हैं, उसी तरह वेदान्त-सूत्र की शंकराचार्य की व्याख्या भी हास्यास्पद है और कोई भी विवेकशील तथा तर्कशील व्यक्ति इसे स्वीकार नहीं करेगा। वर्तमान में केवल तथाकथित वेदान्ती ही वेदान्त-सूत्र की गलत व्याख्या नहीं करते, किन्तु अन्य धूर्त लोग भी ऐसा करते हैं, जो इतने नीच हैं कि संन्यासियों तक को मांस, मछली तथा अंडा खाने का सुझाव देते हैं। इस तरह शंकर के तथाकथित अनुयायी या निर्विशेष मायावादी अधिकाधिक अधोगति को प्राप्त हो रहे हैं। भला ऐसे नीच लोग उस वेदान्त-सूत्र की व्याख्या कैसे कर सकते हैं, जो समस्त वैदिक ज्ञान का सार है?

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने खुले शब्दों में कहा है-मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश– "जो कोई मायावादियों से वेदान्त-सूत्र की टीका सुनता है, समझो उसका सर्वनाश हो गया।" जैसाकि भगवद्गीता (15.15) में बतलाया गया है-वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः-सारे वेदों का लक्ष्य कृष्ण को जानना है। किन्तु मायावादी दर्शन ने हर व्यक्ति को कृष्ण से विमुख किया है। अतएव संसार को ऐसी

अधोगति से बचाने के लिए विश्वभर में कृष्णभावनामृत आन्दोलन की भारी आवश्यकता है। प्रत्येक विवेकशील तथा बुद्धिमान व्यक्ति को मायावादियों की दार्शनिक व्याख्याओं को त्यागकर वैष्णव आचार्यों की व्याख्या स्वीकार करनी चाहिए। वेदों के वास्तविक उद्देश्य को समझने के लिए मनुष्य को भगवद्गीता यथारूप पढ़नी चाहिए।

सर्वाश्रय ईश्वरेर प्रणव उद्देश ।

‘तत्त्वमसि’ वाक्य हय वेदेर एकदेश ॥129॥

सर्व-आश्रय-सबके आश्रय; ईश्वरेर–भगवान् के; प्रणव-ॐकार; उद्देश-उद्देश्य; तत् त्वम् असि-तत् त्वम् असि वैदिक मंत्र (“तुम वही हो”); वाक्य-कथन; हय-हो जाता है; वेदेर-वैदिक साहित्य का; एक-देश-आंशिक समझ।

अनुवाद

प्रणव (ॐकार) को समस्त वैदिक ज्ञान के आगार के रूप में प्रस्तुत करना ही भगवान् का उद्देश्य है। तत्त्वमसि शब्द वैदिक ज्ञान की केवल आंशिक व्याख्या है।

तात्पर्य

तत्त्वमसि का अर्थ है, “तुम वही आध्यात्मिक सत्ता हो।”

‘प्रणव, महा-वाक्य–ताहा करि’ आच्छादन ।

महावाक्ये करि’ तत्त्वमसि’र स्थापन ॥ 130॥

प्रणव-ओंकार; महा-वाक्य-प्रमुख मंत्र; ताहा–वह; करि'-करके; आच्छादन-आच्छादित; महा-वाक्ये मुख्य मंत्र में; करि-मैं करता हूँ; 'तत् त्वम् असि र स्थापन-तत् त्वम् असि की स्थापना।

अनुवाद

"प्रणव (ॐकार) वेदों में महावाक्य (महामन्त्र) है। शंकराचार्य के अनुयायी इसे आच्छादित करके तत्त्वमसि मन्त्र पर बिना किसी प्रमाण के बल देते हैं।"

तात्पर्य

मायावादी दार्शनिक तत्त्वमसि, सोऽहम् जैसे कथनों पर तो बल देते हैं, किन्तु वे वास्तविक महामन्त्र, प्रणव (ॐकार) पर बल नहीं देते। अतएव वैदिक ज्ञान की गलत व्याख्या करने के कारण वे भगवान् के चरणकमलों मे सबसे बड़े अपराधी हैं। चैतन्य महाप्रभु स्पष्ट कहते हैं-मायावादी कृष्णे अपराधी–"मायावादी दार्शनिक भगवान् कृष्ण के सबसे बड़े अपराधी हैं।" भगवान् कृष्ण घोषित करते हैं :

तानहं द्विषत: क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।

क्षिपाम्यजस्रमशुभान् आसुरीष्वेव योनिषु॥

"जो लोग ईर्ष्यालु तथा दुष्ट हैं, जो मनुष्यों में सबसे अधम हैं, उन्हें मैं निरन्तर भौतिक संसार रूपी सागर में विभिन्न आसुरी योनियों में डाल देता हूँ।" (भगवद्गीता 16.19) आसुरी योनियाँ मायावादी दार्शनिकों के मरने की प्रतीक्षा में रहती हैं, क्योंकि ये लोग कृष्ण से ईर्ष्या करते हैं। जब भगवद्गीता (9.34) में कृष्ण कहते हैं-मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ("अपने मन को सदा मेरा चिन्तन करने में, मेरा भक्त बनने में, मुझे ही नमस्कार करने तथा मेरी पूजा करने में लगाओ"), तो एक

आसुरी विद्वान कहता है कि यह कृष्ण नहीं हैं, जिसकी शरण में मनुष्य को जाना है। वह विद्वान इस जीवन में तो कष्ट भोग ही रहा है और यदि यह निर्धारित कष्ट इस जीवन में पूरा नहीं होता, तो अगले जन्म में उसे फिर भोगना पड़ेगा। मनुष्य को इस बात में अत्यन्त सावधान रहना चाहिए कि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से ईर्ष्या न करे। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु अगले श्लोक में वेदों के उद्देश्य को स्पष्टतया बतलाते हैं।

सर्व-वेद-सूत्रे करे कृष्णेर अभिधान ।

मुख्य-वृत्ति छाड़ि' कैल लक्षणा-व्याख्यान ॥131॥

सर्व-वेद-सूत्रे-सभी वेदान्त-सूत्रों में; करे–स्थापित करता है; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; अभिधान–व्याख्या; मुख्य-वृत्ति-मुख्य व्याख्या; छाड़ि'–छोड़कर; कैल-किया; लक्षणा–अप्रत्यक्ष; व्याख्यान-व्याख्यान।

अनुवाद

"सारे वैदिक सूत्रों तथा साहित्य का लक्ष्य भगवान् कृष्ण को ही समझना है, किन्तु शंकराचार्य के अनुयायियों ने वेदों के वास्तविक अर्थ को अपनी अप्रत्यक्ष व्याख्याओं से आच्छादित कर दिया है।

तात्पर्य

कहा गया है :

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।

आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥

“वैदिक साहित्य में, जिसमें रामायण, पुराण तथा महाभारत सम्मिलित हैं, आदि से लेकर अन्त तक तथा बीच में भी केवल भगवान् हरि की ही व्याख्या की गई है।”

स्वतः-प्रमाण वेद-प्रमाण-शिरोमणि ।

लक्षणा करिले स्वतः-प्रमाणता-हानि ॥ 132॥

स्वतः-प्रमाण–स्वत: प्रमाण, अपने आप में प्रमाणित; वेद-वैदिक साहित्य; प्रमाण-प्रमाण; शिरोमणि-उच्चतम; लक्षणा–व्याख्या; करिले-करना; स्वतः-प्रमाणता-स्वतः प्रमाणित; हानि-खो जाता है।

अनुवाद

“स्वत:प्रमाणित वैदिक साहित्य सभी प्रमाणों में सर्वोपरि है, किन्तु यदि इस साहित्य की व्याख्या की जाती है, तो इसकी स्वत:प्रमाणितता नष्ट हो जाती है।

तात्पर्य

हम अपने कथनों के समर्थन हेतु वैदिक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, किन्तु यदि हम इसकी व्याख्या अपने खुद के निर्णय के अनुसार करें, तो वैदिक साहित्य का प्रमाण अधूरा या व्यर्थ हो जाता है। दूसरे शब्दों में, वैदिक साहित्य की व्याख्या करने से वैदिक प्रमाण का मूल्य घट जाता है। जब कोई व्यक्ति वैदिक साहित्य का उद्धरण देता है, तो ऐसा समझा जाता है कि उद्धरण प्रामाणिक है। भला कोई ऐसे प्रमाण को अपने वश में कैसे ला सकता है? यह तो अंकुर या कली को ही नष्ट करने के समान है, जिससे कि पुष्प तथा फल उत्पन्न ही न हो सकें (principiis obsta)।

एइ मत प्रतिसूत्रे सहजार्थ छाड़िया ।

गौणार्थ व्याख्या करे कल्पना करिया ॥133॥

एइ मत-इस प्रकार; प्रति-सूत्रे-वेदान्त-सूत्र के प्रत्येक मंत्र में; सहज-अर्थ-स्पष्ट सामान्य अर्थ; छाड़िया-त्यागकर; गौण-अर्थ-गौण अर्थ; व्याख्या-व्याख्या; करे-वह करता है; कल्पना करिया-कल्पना करके।

अनुवाद

"मायावाद सम्प्रदाय के सदस्यों ने वैदिक साहित्य के वास्तविक एवं सरलता से समझे जाने वाले अर्थ को छोड़कर अपने दर्शन को सिद्ध करने के लिए अपनी कल्पना शक्ति के अनुसार अप्रत्यक्ष (गौण) अर्थ प्रचलित किये हैं।"

तात्पर्य

दुर्भाग्यवश शंकराचार्य की व्याख्या ने प्रायः सम्पूर्ण जगत् को आच्छादित कर दिया है। इसलिए वैदिक साहित्य के मूल, सरलता से समझे जाने वाले सहज सार को प्रस्तुत करने की अत्यधिक आवश्यकता है। इसीलिए हमने भगवद्गीता यथारूप के प्रस्तुतिकरण से ऐसा करना प्रारम्भ कर दिया है और हम समूचे वैदिक साहित्य को उसके प्रत्यक्ष शब्दार्थ के रूप में प्रस्तुत करना चाह रहे हैं।

एइ मते प्रतिसूत्रे करेन दूषण।

शुनि' चमत्कार हैल सन्न्यासीर गण ॥ 134॥

एइ मते-इस प्रकार; प्रति-सूत्रे-प्रत्येक सूत्र में; करेन-दिखाता है; दूषण-दोष; शुनिया-सुनकर; चमत्कार-आश्चर्यचकित हो गये; हैल-वे हो गये; सन्न्यासीर–सभी मायावादियों का; गण–दल॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस प्रकार शंकराचार्य द्वारा की गई प्रत्येक सूत्र की व्याख्या की और त्रुटियाँ दिखला दीं, तो वहाँ पर उपस्थित सारे मायावादी संन्यासी आश्चर्यचकित रह गये।

सकल सन्यासी कहे,—'शुनह श्रीपाद।

तुमि ने खण्डिले अर्थ, ए नहे विवाद ॥135॥

सकल-सभी; सन्यासी-मायावादी संन्यासी; कहे-कहते हैं; शुनह–कृपया सुनो; श्रीपाद-हे श्रीपाद; तुमि-आप; ग्रे-वह; खण्डिले–खण्डित किया; अर्थ-अर्थ; ए-यह; नहे-नहीं; विवाद-विवाद।

अनुवाद

सारे मायावादी संन्यासियों ने कहा, "हे श्रीपाद, आप कृपया यह जान लें कि हमें वास्तव में आपके द्वारा इन अर्थों के खण्डन के बारे में कोई विवाद नहीं है, क्योंकि आपने तो इन सूत्रों की स्पष्ट समझ प्रदान की है।"

आचार्य-कल्पित अर्थ,—इहा सभे जानि।

सम्प्रदाय-अनुरोधे तबु ताहा मानि ॥136॥

आचार्य-शंकराचार्य; कल्पित-कल्पित; अर्थ-अर्थ; इहा-यह; सभे–हम सब; जानि–जानते हैं; सम्प्रदाय-अनुरोधे–किन्तु अपने सम्प्रदाय के हित में; तबु-फिर भी; ताहा-वह; मानि-हम स्वीकार करते हैं।

अनुवाद

हम जानते हैं कि यह सारा वाग्जाल शंकराचार्य की कल्पना से उद्भूत है, किन्तु हम उसी सम्प्रदाय के होने के कारण इसे स्वीकार करते हैं, यद्यपि हम इससे सन्तुष्ट नहीं हैं।

मुख्यर्थ व्याख्या कर, देखि तोमार बल’ ।

मुख्याथै लागाल प्रभु सूत्र-सकल ॥ 137॥

मुख्य-अर्थ-मुख्य अर्थ, प्रत्यक्ष अर्थ; व्याख्या-व्याख्या; कर-आप करते हैं; देखि-देखें; तोमार-आपका; बल-बल, शक्ति; मुख्य-अर्थ-प्रत्यक्ष अर्थ; लागाल-आरम्भ किया; प्रभु-प्रभु; सूत्र-सकल-वेदान्त-सूत्र के सभी सूत्रों की।

अनुवाद

मायावादी संन्यासियों ने आगे कहा, “अब हम देखना चाहते हैं कि आप इन सूत्रों की उनके प्रत्यक्ष अर्थ में कितनी अच्छी तरह व्याख्या कर सकते हैं।” यह सुनकर चैतन्य महाप्रभु ने वेदान्त-सूत्र की प्रत्यक्ष व्याख्या करना प्रारम्भ किया।

बृहद्वस्तु ‘ब्रह्म’ कहि—‘श्री-भगवान् ।

षड्-विधैश्वर्य-पूर्ण, पर-तत्त्व-धाम ॥138॥

बृहत्-वस्तु–सार जो महानतम से बढ़कर है; ब्रह्म--ब्रह्म के नाम से ज्ञात; कहि-हम कहते हैं; श्री-भगवान्–श्री भगवान्; षट्-छः; विध-विविधताएँ; ऐश्वर्घ–ऐश्वर्य; पूर्ण–पूर्ण; पर-तत्त्व-परम सत्य; धाम-आगार।

अनुवाद

"ब्रह्म जो कि बड़े से भी बड़ा है, पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् है। वे छः ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं; अतएव वे परम सत्य तथा परम ज्ञान के आगार हैं।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि परम सत्य की अनुभूति तीन अवस्थाओं में होती है- निर्विशेष ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा अन्ततः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्। निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति के विस्तार हैं, जो छः ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं-ये हैं धन, यश, बल, सौन्दर्य, ज्ञान तथा त्याग। भगवान् छहों ऐश्वर्यों से युक्त हैं, अतएव वे परम ज्ञान में अन्तिम सत्य हैं।

स्वरूप-ऐश्वर्ये ताँर नाहि माया-गन्ध ।

सकल वेदेर हय भगवान्से सम्बन्ध' ॥139॥

स्वरूप-अपने आदि रूप में; ऐश्वर्ये-ऐश्वर्य; ताँर-उनके; नाहि-नहीं है; माया-गन्ध-भौतिक जगत् का कल्मष; सकल-सब में; वेदेर-वेदों के; हय-ऐसा है; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; से-वह; सम्बन्ध–सम्बन्ध।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने मूल रूप में भौतिक जगत् के कल्मष से रहित छह दिव्य ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं। यह समझना होगा कि समस्त वैदिक साहित्य में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही परम लक्ष्य हैं।"

ताँरे 'निर्विशेष' कहि, चिच्छक्ति ना मानि ।

अर्ध-स्वरूप ना मानिले पूर्णता हय हानि ॥140॥

तारै–उनको; निर्विशेष-र्निविशेष; कहि-हम कहते हैं; चित्-शक्ति-आध्यात्मिक शक्ति; ना-नहीं; मानि–मानते; अर्ध-अर्ध; स्वरूप-स्वरूप; ना-नहीं; मानिले–मानते; पूर्णता पूर्णता; हय-हो जाती है; हानि-दोष, हानि।

अनुवाद

"जब हम परमेश्वर को निविष कहते हैं, तब हम उनकी आध्यात्मिक शक्तियों को नकारते हैं। तार्किक दृष्टि से जब तुम आधा सत्य स्वीकार करते हैं, तब आप पूरे सत्य को नहीं समझ सकते।"

तात्पर्य

उपनिषदों में कहा गया है :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

यह श्लोक जो ईशोपनिषद्, बृहदारण्यक उपनिषद् तथा अन्य कई उपनिषदों में आया है, बतलाता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् छः ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं। उनका पद अद्वितीय है, क्योंकि उनके पास धन, बल, प्रभाव, सौन्दर्य, ज्ञान तथा त्याग है। ब्रह्म का अर्थ है सबसे बड़ा, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तो महानतम से भी महान् हैं, जिस तरह ब्रह्माण्ड-भर में व्याप्त सूर्य-प्रकाश की तुलना में सूर्य का गोला बड़ा होता है। यद्यपि अल्पज्ञानी व्यक्ति के लिए ब्रह्माण्ड-भर में व्याप्त सूर्य-प्रकाश ही बहुत बड़ा लगता है, किन्तु सूर्य-प्रकाश से भी बड़ा होता है सूर्य और सूर्य से भी बड़े हैं सूर्यदेव। इसी प्रकार निर्विशेष ब्रह्म महानतम नहीं है, भले ही हमें ऐसा लगे। निर्विशेष ब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का

केवल शारीरिक तेज है, किन्तु भगवान् का दिव्य रूप निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा दोनों से बड़ा होता है। इसीलिए वैदिक साहित्य में जहाँ कहीं भी ब्रह्म शब्द आया है, उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का द्योतक समझना चाहिए।

भगवद्गीता में भगवान् को परब्रह्म भी कहा गया है। मायावादी तथा अन्य लोग कभी-कभी ब्रह्म को ठीक से समझ नहीं पाते, क्योंकि प्रत्येक जीव भी ब्रह्म है। इसलिए कृष्ण को परब्रह्म कहा गया है। वैदिक साहित्य में जहाँ-जहाँ "ब्रह्म" या "परब्रह्म" शब्दों का प्रयोग हुआ है, वहाँ उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का द्योतक समझना चाहिए। यही उनका वास्तविक अर्थ है। चूँकि सम्पूर्ण वैदिक साहित्य ब्रह्म के विषय में है, अतएव कृष्ण ही वैदिक ज्ञान के चरम लक्ष्य हैं। निर्विशेष ब्रह्मज्योति भगवान् के साकार रूप पर आश्रित है। इसलिए ब्रह्मज्योति भले ही प्रथम साक्षात्कार हो, किन्तु परम पुरुष को पाने के लिए इसके भीतर प्रवेश करने की आवश्यकता है, जैसाकि ईशोपनिषद में उल्लेख है; तभी ज्ञान पूर्ण होता है। भगवद्गीता (7.19) में भी इसकी पुष्टि की गई है- बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते। चिन्तन द्वारा परम सत्य की खोज तब पूर्ण होती है, जब कोई कृष्ण को समझने के बिन्दु तक आता है और उनकी शरण में जाता है। पूर्ण ज्ञान का वास्तविक विषय यही है।

निर्विशेष ब्रह्म के रूप में परम सत्य विषयक अधूरी अनुभूति भगवान् के पूर्ण ऐश्वर्यों का निषेध करती है। परम सत्य के विषय में यह घातक ज्ञान है। जब तक परम सत्य के सारे पहलूओं- निर्विशेष ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा अन्ततः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्–को स्वीकार नहीं किया जाता, तब तक ज्ञान अधूरा रहता है। अपने वेदार्थ-संग्रह में श्रीपाद रामानुजाचार्य कहते हैं :

ज्ञानेन धर्मेण स्वरूपमपि निरूपितम् ।

ए न तु ज्ञानमात्रं ब्रह्मेति कथमिदम् अवगम्यते ॥

इस प्रकार वे इंगित करते हैं कि परम सत्य के वास्तविक स्वरूप को उनके ज्ञान और गुणों के आधार पर समझा जा सकता है। परम सत्य को केवल ज्ञान से पूर्ण समझ लेना पर्याप्त नहीं होगा। वैदिक साहित्य (मुण्डक उपनिषद् 1.1.9) में यह उक्ति आती है- यः सर्वज्ञः सर्ववित्, जिसका अर्थ यह है कि परम सत्य हर बात को पूरी तरह से जानते हैं, किन्तु वेदों से ही हमें यह भी ज्ञात होता है कि परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, जिसके अनुसार वे न केवल हर बात को जानते हैं, अपितु अपनी विविध शक्तियों का उपयोग करके वे तदनुसार कार्य भी करते हैं। अतएव यह जान लेना कि ब्रह्म अर्थात् सर्वोपरि चेतन है, पर्याप्त नहीं होगा। हमें यह भी जानना होगा कि वे अपनी विविध शक्तियों के माध्यम से कैसे चेतनापूर्वक कार्य करते हैं। मायावाद दर्शन हमें केवल परम सत्य की चेतना के विषय में बतलाता है, उस चेतना के द्वारा वे किस तरह कार्य करते हैं, इसकी जानकारी नहीं देता। यही इस दर्शन का दोष है।

भगवान्प्राप्ति-हेतु ये करि उपाय ।

श्रवणादि भक्ति कृष्ण-प्राप्तिर सहाय ॥141॥

भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; प्राप्ति-हेतु-उन्हें प्राप्त करने के साधन; ये-क्या; करि-मैं करता हूँ; उपाय-उपाय; श्रवण-आदि-श्रावण आदि भक्ति; भक्ति-भक्ति; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; प्राप्तिर–उनको प्राप्त करने के लिए; सहाय-उपाय, साधन।

अनुवाद

“श्रवण से प्रारम्भ करके भक्ति द्वारा ही मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तक पहुँच सकता है। उनके पास पहुँचने का यही एकमात्र साधन है।”

तात्पर्य

मायावादी दार्शनिक केवल ब्रह्म को मात्र पूर्ण ज्ञान समझकर सन्तुष्ट हो जाते हैं, किन्तु वैष्णव दार्शनिक न केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में विस्तार से जानते हैं, अपितु उन तक सीधे पहुँचने की विधि भी जानते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसकी विधि बतलाई है, जो नवधा भक्ति है और जिसका शुभारम्भ श्रवण से होता है :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम् ॥

(भागवत 7.5.23)

नवधाभक्ति के नौ अंग इस प्रकार हैं-कृष्ण के बारे में श्रवण करना, उनका कीर्तन करना, उनका स्मरण करना, उनके चरणकमलों की सेवा करना, मन्दिर में उनकी पूजा करना, उनकी स्तुतियाँ करना, दास-रूप में उनकी सेवा करना, उनसे सख्य भाव रखना और बिना किसी शर्त के उनकी शरण में जाना। केवल नवधाभक्ति के अभ्यास द्वारा, जिसमें भगवान् के सम्बन्ध में श्रवण करना सर्वप्रमुख है (श्रवणादि), भगवान् तक सीधे पहुँचा जा सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रवण की इस विधि के महत्त्व पर काफी बल दिया है। उनके अनुसार, यदि लोगों को कृष्ण के विषय में श्रवण करने का अवसर दिया जाए, तो वे निश्चय ही अपनी सुप्त चेतना या भगवत्प्रेम को धीरे-धीरे विकसित कर लेंगे। श्रवणादिशुद्धचित्ते करये उदय (चैतन्य चरितामृत, मध्य 22.107)। हर एक में ईश्वर के प्रति प्रेम सुप्त रूप में रहता है, और यदि मनुष्य को भगवान् के विषय में श्रवण करने का अवसर प्रदान किया जाए, तो वह प्रेम विकसित हो सकता है। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी सिद्धान्त पर कार्य करता है। हम लोगों को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में केवल श्रवण करने का अवसर देते

हैं और खाने के लिए उन्हें प्रसाद देते हैं। इसका वास्तविक फल यह है कि विश्वभर में लोग इस विधि को अपना रहे हैं और कृष्ण के शुद्ध भक्त बन रहे हैं। हमने आम लोगों को कृष्ण के विषय में सुनने तथा कृष्ण का प्रसाद ग्रहण करने का अवसर प्रदान करने के लिए विश्वभर में सैकड़ों केन्द्र खोल रखे हैं। ये दोनों विधियाँ हर एक, यहाँ तक कि एक बालक भी अपना सकता है। चाहे कोई निर्धन हो या धनी, विद्वान हो या मूर्ख, काला हो या गोरा, वृद्ध हो या बालक-जो भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में सुनता है और प्रसाद ग्रहण करता है, वह भक्ति के दिव्य स्तर तक ऊपर उठ जाता है।

सेइ सर्व-वेदेर 'अभिधेय' नाम।

साधन-भक्ति हैते हय प्रेमेर उद्गम ॥142॥

सेइ सर्व-वेदेर-सभी वैदिक साहित्य का वही सार है; अभिधेय नाम-अभिधेय नामक प्रक्रिया अथवा भक्तियुक्त क्रियाएँ; साधन-भक्ति-इस प्रक्रिया का दूसरा नाम "साधन भक्ति"; हैते–इससे; हय-है; प्रेमेर-भगवत् प्रेम का; उद्गम-जागरण, उद्गम।

अनुवाद

"गुरु के निर्देशानुसार इस संयमित साधन भक्ति का अभ्यास करने पर मनुष्य का सुप्त भगवत् प्रेम निश्चित रूप से जागृत हो उठता है। यह विधि अभिधेय कहलाती है।"

तात्पर्य

श्रवण तथा कीर्तन से प्रारम्भ होने वाली भक्ति के अभ्यास से बद्धजीव का अशुद्ध हृदय शुद्ध हो जाता है और इस तरह वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपने सनातन सम्बन्ध को समझ सकता है। इस सनातन सम्बन्ध का वर्णन श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा इस प्रकार किया गया है- जीवेर

‘स्वरूप’ हय कृष्णेर नित्यदास–जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सनातन दास है। इस सम्बन्ध के प्रति आश्वस्त हो जाने पर जीव वैसे कार्य करता है। यह अभिधेय कहलाता है। इसके बाद आती है प्रयोजन सिद्धि अर्थात् जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति। यदि कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपने इस सम्बन्ध को समझकर वैसे कार्य करता है, तो उसका जीवन-उद्देश्य स्वतः परिपूर्ण हो जाता है। मायावादी दार्शनिक आत्म-साक्षात्कार की पहली अवस्था से भी चूक जाते हैं, क्योंकि उनमें ईश्वर के साकार होने की कोई धारणा नहीं होती। भगवान् सबके स्वामी हैं और केवल वे ही ऐसे पुरुष हैं, जो सारे जीवों की सेवा स्वीकार कर सकते हैं, किन्तु मायावाद दर्शन में इस ज्ञान का अभाव रहता है, इसलिए मायावादियों को ईश्वर के साथ अपने सम्बन्ध का भी ज्ञान नहीं हो पाता। वे झूठे ही सोचते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर है या प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर के तुल्य है। इसलिए जीव की वास्तविक स्थिति उनको स्पष्ट न होने के कारण वे आगे बढ़े भी तो कैसे? यद्यपि मायावादी दार्शनिकों को अपने मुक्त होने का गर्व रहता है, किन्तु वे भगवान् के चरणकमलों की अवज्ञा करने के कारण पुनः भौतिक कार्यकलापों में आ गिरते हैं। यही पतन्ति अध: कहलाता है :

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्त-मानिन

स्त्वय्यस्त-भावादविशुद्धबुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनादृत युष्मदङ्घ्रयः ॥

(भागवत 10.2.32)

यहाँ यह कहा गया है कि जो लोग अपने आपको मुक्त समझते हैं, किन्तु भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को न जानने के कारण भक्ति नहीं करते, वे निश्चय ही पथभ्रष्ट हैं। मनुष्य को चाहिए

कि वह भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को जाने और उसी के अनुसार कर्म करे। तभी उसके जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो सकेगा।

कृष्णेर चरणे हय यदि अनुराग।

कृष्ण विनु अन्यत्र तार नाहि रहे राग॥ 143॥

कृष्णेर-कृष्ण के; चरणे-चरणकमलों में; हय-हो जाता है; यदि-यदि; अनुराग-अनुराग; कृष्ण–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण; विनु–बिना; अन्यत्र-और कहीं; तार-उसका; नाहि-नहीं; रहे-रहती; राग-आसक्ति, प्रेम।

अनुवाद

"यदि कोई भगवत्प्रेम उत्पन्न कर लेता है और कृष्ण के चरणकमलों में अनुरक्त हो जाता है, तो धीरे-धीरे अन्य सारी वस्तुओं से उसकी आसक्ति लुप्त हो जाती है।"

तात्पर्य

यह भक्ति में प्रगति की परीक्षा है। जैसाकि श्रीमद्भागवत (11.2.42) में कहा गया है-भक्तिपरेषानुभवो विरक्तिरन्यत्र च–भक्ति में भक्त की अनुरक्ति केवल कृष्ण से होती है; तब वह अन्य अनेक वस्तुओं में आसक्त रहना नहीं चाहता। यद्यपि मायावादी दार्शनिकों को मुक्ति-मार्ग पर अत्यधिक अग्रसर माना जाता है, किन्तु हम देखते हैं कि कुछ समय के बाद वे राजनीतिक तथा परोपकारी कार्यों पर उतर आते हैं। अनेक बड़े बड़े संन्यासी जिन्हें मुक्त तथा अत्यन्त उन्नत माना जाता है, वे फिर से भौतिकतावादी कार्यकलापों में उतर आते हैं, यद्यपि उन्होंने इस जगत् को मिथ्या (झूठा) कहकर छोड़ दिया था। किन्तु जब कोई भक्त भक्ति विकसित कर लेता है, तब वह फिर से

ऐसे परोपकारी कार्यों में आसक्त नहीं होता। वह केवल भगवान् की सेवा करने के लिए ही प्रेरित होता है और वह ऐसी सेवा में अपना सारा जीवन लगा देता है। वैष्णव तथा मायावादी दार्शनिकों में यही अन्तर है। इसलिए भक्ति व्यावहारिक है, जबकि मायावादी दर्शन मात्र मानसिक चिन्तन है।

पञ्चम पुरुषार्थ सेइ प्रेम-महाधन ।

कृष्णेर माधुर्घ-रस कराय आस्वादन ॥ 144॥

पञ्चम–पाँचवाँ; पुरुष-अर्थ-जीवन का उद्देश्य; सेइ-वह; प्रेम-ईश्वर-प्रेम; महा-धन–महान् धन; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; माधुर्य-माधुर्य प्रेम; रस-रस; कराय-कराता है; आस्वादन-आस्वादन।

अनुवाद

"भगवत्प्रेम इतना उन्नत होता है कि इसे मानव जीवन का पाँचवा लक्ष्य माना जाता है। भगवत्प्रेम जागृत करके कोई भी व्यक्ति माधुर्य प्रेम के पद को प्राप्त कर सकता है और इसी जीवन काल में ही उसका आस्वादन कर सकता है।"

तात्पर्य

मायावादी दार्शनिक मुक्ति को ही जीवन की चरम सिद्धि मानते हैं, जो सिद्धि का चतुर्थ पद है। सामान्यतया लोग जीवन के चार प्रमुख लक्ष्यों (पुरुषार्थों) से परिचित हैं। ये हैं-धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। किन्तु भक्ति तो मुक्ति के भी ऊपर के पद पर स्थित है। दूसरे शब्दों में, वास्तविक रूप से मुक्त व्यक्ति ही भगवत्प्रेम (कृष्णप्रेम) के अर्थ को समझ सकता है। रूप गोस्वामी को उपदेश देते हुए

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा था-कोटिमुक्तमध्ये 'दुर्लभ' एक कृष्णभक्त–"करोड़ों मुक्त व्यक्तियों में से कोई एक व्यक्ति ही कृष्ण का भक्त बन पाता है।"

सबसे अधिक उन्नत मायावादी दार्शनिक मुक्ति पद तक ऊपर उठ सकता है, किन्तु कृष्ण-भक्ति तो ऐसी मुक्ति से भी बढ़कर है। श्रील व्यासदेव ने इस तथ्य की व्याख्या श्रीमद्भागवत (1.1.2) में इस प्रकार की है:

धर्म: प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां

वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।

"भागवत पुराण उन सारे भौतिकता से प्रेरित धर्मों का पूर्ण तिरस्कार करते हुए उस सर्वोच्च सत्य की प्रतिष्ठा करता है, जो केवल उन भक्तों को ही समझ में आ सकता है, जिनके हृदय शुद्ध हैं।" यह सर्वोच्च सत्य वास्तविकता है, जो सबके कल्याण हेतु माया से भिन्न है। ऐसा सत्य तापत्रय को समूल नष्ट करने वाला है।" वेदान्त-सूत्र की व्याख्या करने वाला श्रीमद्भागवत ग्रंथ परमो निर्मत्सराणाम् के लिए है अर्थात् उनके लिए है, जो ईर्ष्या से पूरी तरह दूर रहते हैं। मायावादी दार्शनिक ईश्वर के अस्तित्व से ईर्ष्या करते हैं, अतएव वेदान्त-सूत्र वास्तव में उनके लिए नहीं है। वे व्यर्थ ही वेदान्त-सूत्र में अपनी टाँग अड़ाते हैं, किन्तु उनमें इसे समझने का सामर्थ्य नहीं है, जैसेकि वेदान्त-सूत्र के लेखक अपने भाष्य श्रीमद्भागवत में लिखते हैं कि यह उनके लिए है जिनके हृदय शुद्ध हैं (परमो निर्मत्सराणाम्) । यदि कोई कृष्ण से ईर्ष्या करता है, तो वह वेदान्त-सूत्र या श्रीमद्भागवत को कैसे समझ सकता है? मायावादियों का मुख्य पेशा है, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को अपमानित करना। उदाहरणार्थ, यद्यपि भगवद्गीता में कृष्ण चाहते हैं कि हम उनकी शरण में जाएँ, किन्तु वर्तमान भारत के एक महान् पंडित एवं तथाकथित दार्शनिक ने विरोध किया है कि हमें "कृष्ण की शरण में

थोड़े जाना है। इसलिए वह ईर्ष्यालु है। चूँकि विभिन्न मायावादी कृष्ण से ईर्ष्या करते हैं, अतएव वे वेदान्त-सूत्र को समझ नहीं पाते। भले ही वे मुक्त क्यों न हो चुके हों, जैसाकि वे झूठे ही दावा करते हैं, किन्तु कृष्णदास कविराज गोस्वामी यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु के इस कथन को दुहराते हैं कि कृष्ण-प्रेम मुक्ति की अवस्था से परे है।

प्रेमा हैते कृष्ण हय निज भक्त-वश ।

प्रेमा हैते पाय कृष्णेर सेवा-सुख-रस ॥145 ॥

प्रेमा-कृष्ण-प्रेम; हैते-से; कृष्ण-कृष्ण; हय-हो जाते हैं; निज-अपने; भक्त-वश-भक्तों के वश में; प्रेमा-ईश-प्रेम; हैते–से; पाय-वह पाता है; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; सेवा-सुख-रस-भक्ति रस।

अनुवाद

“महानतम से भी महान् परम भगवान् भक्तिमय सेवा के कारण अत्यन्त तुच्छ भक्त के भी वश में हो जाते हैं। भक्ति की ऐसी सुन्दर तथा उन्नत प्रकृति है कि अनन्त भगवान् सूक्ष्म जीव की भक्ति के कारण उसके अधीन हो जाते हैं। भगवान् के साथ भक्ति-कार्यों के आदान-प्रदान में भक्त को भक्ति के दिव्य रस का वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है।

तात्पर्य

भक्त के लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से तदाकार होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान् (कृष्ण कर्णामृत 107)। श्रील बिल्वमंगल ठाकुर अपने निजी अनुभव के आधार पर कहते हैं कि यदि कोई भगवत्प्रेम विकसित कर लेता है, तो मुक्ति उसकी दासी बन जाती है और उसके लिए महत्त्वहीन हो जाती है। मुक्ति भक्त के समक्ष खड़ी रहती है और सब प्रकार

की सेवा करने के लिए उत्सुक रहती है। मायावादी दार्शनिकों का मुक्ति का मानदण्ड भक्त के लिए अत्यन्त नगण्य है, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भी भक्ति द्वारा उसके अधीन हो जाते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो अर्जुन के सारथी बने और जब अर्जुन ने आदेश दिया कि वे उसका रथ दोनों सेनाओं के बीच ले चलें (सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत) तो उन्होंने आज्ञा का पालन किया। भगवान् और भक्त का सम्बन्ध ऐसा होता है कि भगवान् महानतम से भी महान् होते हुए भी अपने तुच्छ भक्त की निष्ठायुक्त एवं अनन्य भक्ति के कारण उसकी सेवा करने के लिए तत्पर रहते हैं।

सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन नाम ।

एइ तिन अर्थ सर्व-सूत्रे पर्यवसान ॥146॥

सम्बन्ध–सम्बन्ध; अभिधेय-कार्यरत कर्तव्य प्रयोजन-जीवन का प्रयोजन; नाम-नाम; एइ-नहीं; तिन-तीन; अर्थ-अर्थ; सर्व-सभी; सूत्रे-वेदान्त-सूत्रों में; पर्यवसान-अन्तिम सीमा।

अनुवाद

"वेदान्त-सूत्र के प्रत्येक सूत्र में जिन तीन विषयों की व्याख्या की गई है, वे हैं-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अपना सम्बन्ध, उस सम्बन्ध के अनुसार कार्यकलाप तथा जीवन का चरम लक्ष्य (भगवत्प्रेम विकसित करना), क्योंकि इन तीनों में ही सम्पूर्ण वेदान्त दर्शन की चरम परिणति है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (5.5.5) में कहा गया है :

पराभवस्तावबोधजातो

यावन्न जिज्ञासत आत्म-तत्त्वम् ॥

“जब तक मनुष्य अपना जीवन-लक्ष्य नहीं जानता, तब तक उसे अपने सारे कार्यों में पराजय मिलती है। ब्रह्म के विषय में जिज्ञासु होकर ही जीवन-लक्ष्य समझा जा सकता है। ऐसी जिज्ञासा से ही ब्रह्मसूत्र का शुभारम्भ होता है-अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।मनुष्य को यह जानने की जिज्ञासा होनी चाहिए कि वह कौन है, ब्रह्माण्ड क्या है, ईश्वर क्या हैं और उसके, ईश्वर तथा भौतिक जगत् के बीच का सम्बन्ध क्या है। ऐसे प्रश्न बिल्ली या कुत्ते नहीं कर सकते, किन्तु ये प्रश्न सच्चे मनुष्य के मन में उठने चाहिए। इन चारों बातों का ज्ञान सम्बन्ध ज्ञान कहलाता है-स्वयं के विषय में ज्ञान, ब्रह्माण्ड, परमेश्वर तथा इनका आन्तरिक सम्बन्ध। जब भगवान् से ऐसा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, तो अगला कार्यक्रम होता है इस सम्बन्ध के अनुसार कर्म करना। यह अभिधेय अर्थात् भगवान् के सम्बन्ध में किया जाने वाला कर्म कहलाता है। ऐसे नियत कर्म कर लेने के बाद जब मनुष्य को जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य-भगवत्प्रेम-प्राप्त हो जाता है, तो उसे प्रयोजन सिद्धि मिल जाती है अर्थात् मनुष्य जीवन का लक्ष्य परिपूर्ण हो जाता है। ब्रह्मसूत्र या वेदान्त-सूत्र में इन विषयों को अच्छी तरह समझाया गया है। अतएव जो व्यक्ति वेदान्त-सूत्र को इन सिद्धान्तों के सन्दर्भ में नहीं समझता, वह केवल अपना समय बरबाद कर रहा है। यही श्रीमद्भागवत (1.2.8) का कहना है :

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भले ही कोई बड़ा भारी विद्वान क्यों न हो और अपने नियत कार्यों को कितनी ही तल्लीनता से क्यों न करता हो, किन्तु यदि अन्ततः वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में जिज्ञासा नहीं करता और श्रवणं कीर्तनम् के प्रति उदासीन बना रहता है, तो उसने जो कुछ भी किया है, वह समय का

अपव्यय मात्र है। मायावादी दार्शनिक अपने, प्रकट विश्व के तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पारस्परिक सम्बन्ध को न समझ पाने के कारण मात्र अपना समय नष्ट करते हैं और उनका दार्शनिक चिन्तन व्यर्थ होता है।

एइ-मत सर्व-सूत्रेर व्याख्यान शुनिया ।

सकल सन्यासी कहे विनय करिया ॥147॥

एइ-मत-इस प्रकार; सर्व-सूत्रेर–वेदान्त-सूत्र के सभी सूत्रों के; व्याख्यान-व्याख्यान; शुनिया-सुनने से; सकल-सब; सन्यासी–मायावादी संन्यासियों के दल; कहे-कहा; विनय-विनम्र होकर; करिया-ऐसा करके।

अनुवाद

जब सारे मायावादी संन्यासियों ने सम्बन्ध, अभिधेय तथा प्रयोजन के आधार पर श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रस्तुत की गई व्याख्या सुनी, तो वे अत्यन्त विनीत होकर बोले।

तात्पर्य

जो कोई व्यक्ति वेदान्त दर्शन को समझने का इच्छुक है, उसे श्री चैतन्य महाप्रभु तथा वैष्णव आचार्यों की व्याख्याएँ स्वीकार करनी चाहिए, क्योंकि इन्होंने भी भक्तियोग के सिद्धान्तों के अनुसार वेदान्त-सूत्र पर भाष्य लिखे हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से वेदान्त-सूत्र की व्याख्या सुनकर प्रकाशानन्द सरस्वती समेत सारे संन्यासी अत्यन्त विनीत एवं उनके आज्ञाकारी बन गये और वे इस प्रकार बोले।

वेदमय-मूर्ति तुमि,—साक्षालारायण ।

क्षम अपराध,—पूर्वे ये कैलुँ निन्दन ॥148॥

वेद-मय-साक्षात् वैदिक ज्ञान; मूर्ति-मूर्ति; तुमि-आप; साक्षात्-साक्षात्; नारायण-नारायण; क्षम-क्षमा; अपराध-अपराध; पूर्वे-पहले; ये-जो; कैलुँ-हमने किया है; निन्दन-निन्दा।

अनुवाद

"हे महोदय, आप साक्षात् वैदिक ज्ञान और साक्षात् नारायण हैं। कृपा करके हमें उन सारे अपराधों के लिए क्षमा कर दें, जिन्हें हमने आपकी आलोचना करके पहले किये हैं।"

तात्पर्य

भक्तियोग का पूरा मार्ग ही विनीत और समर्पित होने की विधि पर आधारित है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से सारे मायावादी संन्यासी उनकी वेदान्त-सूत्र की व्याख्या सुनकर अत्यन्त विनीत एवं समर्पित हो चुके थे। उन्होंने वेदान्त-सूत्र का अध्ययन न करने एवं कीर्तन तथा नृत्य मात्र करने के लिए महाप्रभु की जो आलोचना की थी, उसके लिए क्षमा माँगी। हम महाप्रभु के पदचिह्नों का ही अनुसरण करते हुए कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रचार कर रहे हैं। भले ही हम वेदान्त-सूत्रों में अधिक पटु न हों और उनके अर्थों को न समझ पाते हों, किन्तु हम आचार्यों के पदचिह्नों पर चल रहे हैं। चूँकि हम महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण दृढ़तापूर्वक तथा आज्ञाकारी होकर कर रहे हैं, अतएव यह मान लेना होगा कि हम वेदान्त-सूत्र के विषय में हर वस्तु जानते हैं।

सेइ हैते सन्न्यासीर फिरि गेल मन ।

'कृष्ण' 'कृष्ण' नाम सदा करये ग्रहण ॥149॥

सेइ हैते–उस समय से लेकर; सन्न्यासीर-सारे मायावादी संन्यासी; फिरि-बदल; गेल-गये; मन–मन; कृष्ण कृष्ण-कृष्ण का पावन नाम; नाम-नाम; सदा-सदा; करये-करते हैं; ग्रहण-स्वीकार।

अनुवाद

जब मायावादी संन्यासियों ने महाप्रभु से वेदान्त-सूत्र की व्याख्या सुनी, उसी क्षण से उनके मन बदल गये और चैतन्य महाप्रभु के आदेश से वे भी सदा "कृष्ण! कृष्ण!" उच्चारण करने लगे।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि कभी-कभी सहजिया वर्ग के भक्तगण यह अभिमत व्यक्त करते हैं कि प्रकाशानन्द सरस्वती तथा प्रबोधानन्द सरस्वती एक ही व्यक्ति हैं। प्रबोधानन्द सरस्वती श्री चैतन्य महाप्रभु के एक महान् वैष्णव भक्त थे, किन्तु प्रकाशानन्द सरस्वती, जो कि बनारस के मायावादी संन्यासियों के मुखिया थे, एक भिन्न व्यक्ति थे। प्रबोधानन्द सरस्वती रामानुज संप्रदाय से सम्बन्धित थे, जबकि प्रकाशानन्द सरस्वती शंकराचार्य सम्प्रदाय के थे। प्रबोधानन्द सरस्वती ने कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से चैतन्य-चन्द्रामृत, राधा-रससुधानिधि, संगीत-माधव, वृन्दावन-शतक तथा नवद्वीप-शतक प्रमुख हैं। अपनी दक्षिण भारत की यात्रा के समय श्री चैतन्य महाप्रभु की भेंट श्री प्रबोधानन्द सरस्वती से हुई थी, जिनके दो भाई थे-वेंकट भट्ट तथा तिरुमलय भट्ट, जो रामानुज सम्प्रदाय के वैष्णव थे। गोपाल भट्ट गोस्वामी प्रबोधानन्द सरस्वती के भतीजे थे। ऐतिहासिक तथ्यों से पता चलता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने 1433 शकाब्द अर्थात् 1511 ई. के चातुर्मास्य काल में दक्षिण भारत की यात्रा की थी, तभी वे रामानुज सम्प्रदाय के प्रबोधानन्द से मिले थे। तो फिर वही व्यक्ति शंकर-सम्प्रदाय के सदस्य के रूप में उनसे दो वर्ष बाद 1435 शकाब्द में

कैसे मिल सकता है? अतएव यह निष्कर्ष निकालना होगा कि सहजिया सम्प्रदाय वालों का यह अनुमान कि प्रबोधानन्द सरस्वती तथा प्रकाशानन्द सरस्वती एक ही व्यक्ति थे, मात्र भ्रम है।

एइ-मते ताँ-सबार क्षमि' अपराध ।

सबाकारे कृष्ण-नाम करिला प्रसाद ॥150॥

एइ-मते-इस प्रकार; ताँ-सबार-सभी संन्यासियों का; क्षमि'-क्षमा करके; अपराध-अपराध; सबकारे-वे सभी; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम; करिला-दिया; प्रसाद प्रसाद के रूप में।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने मायावादी संन्यासियों के सारे अपराध क्षमा कर दिये और उन पर बड़ी कृपा करके उन्हें कृष्णनाम का आशीर्वाद प्रदान किया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के कृपावतार हैं। श्रील रूप गोस्वामी ने उन्हें महावदान्यावतार अर्थात् सर्वाधिक उदार अवतार कहकर सम्बोधित किया है। वे उन्हें करुणयावतीर्ण: कलौ भी कहते हैं अर्थात् इस कलियुग में वे अपनी महान् कृपा के कारण ही अवतीर्ण हुए हैं। यहाँ इसी का दृष्टान्त है। श्री चैतन्य महाप्रभु मायावादी संन्यासियों से मिलना नहीं चाहते थे, क्योंकि वे उन्हें कृष्ण के चरणकमलों पर अपराधी मानते थे, किन्तु यहाँ पर वे उन्हें क्षमा कर देते हैं (ताँ-सबार क्षमि 'अपराध), यह प्रचार कार्य में एक दृष्टान्त है। आपनि आचरि 'भक्तिशिखाइमु सबारे। श्री चैतन्य महाप्रभु हमें यह सिखलाते हैं कि उपदेशकों की जिनसे भेंट होती है, वे सभी लगभग कृष्णभावनामृत के विरोधी होने के साथ ही अपराधी भी होते हैं, किन्तु उपदेशकों

का कर्तव्य है कि उन्हें कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रति आश्वस्त करें और उन्हें हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए प्रेरित करें। हम संकीर्तन आन्दोलन के प्रचार-कार्य को अनेक विरोधियों के होने पर भी चालू रखे हुए हैं और अफ्रीका जैसे विश्व के सुदूर देशों में भी इस कीर्तन-विधि को लोग अपना रहे हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपराधियों को भी हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने के लिए प्रेरित करके कृष्णभावनामृत आन्दोलन की सफलता का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। हमें चाहिए कि हम आदरपूर्वक चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों पर चलें और इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम अपने प्रयासों में सफल होंगे।

तबे सब सन्यासी महाप्रभुके लैया ।

भिक्षा करिलेन सभे, मध्ये वसाइया ॥151॥

तबे-तत्पश्चात्; सब-सब; सन्यासी-मायावादी संन्यासी; महाप्रभुके–चैतन्य महाप्रभु; लैया–उनको लेकर; भिक्षा करिलेन–प्रसाद लिया, भोजन किया; सभे-सबने मिलकर; मध्ये मध्य में; वसाइया-उन्हें बैठाकर।

अनुवाद

इसके बाद सारे संन्यासियों ने महाप्रभु को अपने मध्य में ले लिया और सबने मिलकर भोजन किया।

तात्पर्य

इसके पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु न तो मायावादी संन्यासियों से मिलते-जुलते थे, न उनसे बातें करते थे, किन्तु अब उन्होंने उनके साथ भोजन किया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जब चैतन्य

महाप्रभु ने उन्हें हरे कृष्ण कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया और उनके अपराधों को क्षमा कर दिया, तो वे पवित्र हो गये; अतएव उनके साथ भोजन करने या भगवत्प्रसाद ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं थी, यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु यह जान रहे थे कि यह भोजन अर्चाविग्रह को अर्पित नहीं हुआ है। मायावादी संन्यासी अर्चाविग्रह की पूजा नहीं करते, या करते हैं, तो शिव के विग्रह की पूजा या पञ्चोपासना (विष्णु, शिव, दुर्गादेवी, गणेश तथा सूर्य की पूजा) करते हैं। यहाँ हम किसी देवता या विष्णु का कोई उल्लेख नहीं पाते, फिर भी चैतन्य महाप्रभु ने संन्यासियों के साथ इस आधार पर भोजन किया कि उन लोगों ने हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन किया था और उन्होंने उनके सारे अपराध माफ कर दिये थे।

भिक्षा करि' महाप्रभु आइला वासाघर।

हेन चित्र-लीला करे गौराङ्ग-सुन्दर ॥152॥

भिक्षा–भिक्षा; करि''–लेकर; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु; आइला-लौट आये; वासाघर–अपने निवासस्थान पर; हेन-इस प्रकार; चित्र-लीला-विचित्र लीला; करे-करते हैं; गौराङ्ग-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; सुन्दर–अति सुन्दर।

अनुवाद

मायावादी संन्यासियों के साथ भोजन करने के बाद गौरसुन्दर कहलाने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निवास स्थान को लौट आये। इस प्रकार महाप्रभु अपनी विचित्र लीलाएँ करते हैं।

चन्द्रशेखर, तपन मिश्र, आर सनातन।

शुनि' देखि' आनन्दित सबाकार मन ॥ 153॥

चन्द्रशेखर-चन्द्रशेखर; तपन मिश्र-तपन मिश्र; आर-तथा; सनातन-सनातन; शुनि'–सुनकर; देखि-देखकर; आनन्दित-बहुत प्रसन्न हुए; सबाकार–वे सब; मन-मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के तर्कों को सुनकर तथा उनकी विजय देखकर चन्द्रशेखर, तपन मिश्र तथा सनातन गोस्वामी सभी अत्यधिक प्रसन्न हुए।

तात्पर्य

यहाँ इसका एक उदाहरण है कि संन्यासी को किस प्रकार प्रचार करना चाहिए। जब श्री चैतन्य महाप्रभु वाराणसी गये, तो वे अकेले थे। उनके साथ बड़ी टोली न थी। किन्तु वहाँ पर उन्होंने चन्द्रशेखर तथा तपन मिश्र से मित्रता कर ली थी और सनातन गोस्वामी भी उनसे मिलने आये थे। इस तरह वहाँ पर उनके अनेक मित्र न होते हुए भी अपने दृढतापूर्ण प्रचार तथा वेदान्त दर्शन पर स्थानीय संन्यासियों से तर्क करने में अपनी विजय के कारण वे देश के उस भाग में अत्यधिक विख्यात हो गये, जैसाकि अगले श्लोक में बताया गया है।

प्रभुके देखिते आइसे सकल सन्यासी ।

प्रभुर प्रशंसा करे सब वाराणसी ॥ 154॥

प्रभुके–चैतन्य महाप्रभु को; देखिते-देखने के लिए; आइसे–वे आये; सकल-सब; सन्यासी-मायावादी संन्यासी; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु की प्रशंसा–प्रशंसा; करे-वे करते हैं; सब-सब; वाराणसी-वाराणसी नगर की।

अनुवाद

इस घटना के बाद वाराणसी के अनेक मायावादी संन्यासी महाप्रभु को मिलने के लिए आये और सारे नगर ने उनकी प्रशंसा की।

वाराणसी-पुरी आइला श्री-कृष्ण-चैतन्य ।

पुरी-सह सर्व-लोक हैल महा-धन्य ॥155॥

वाराणसी-वाराणसी नाम के; पुरी-नगर; आइला–आये; श्री-कृष्ण-चैतन्य भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभुः पुरी-नगर; सह-साथ; सर्व-लोक-सभी लोग; हैल-हो गये; महा-धन्य-कृतज्ञ, आभारी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के वाराणसी आने के कारण नगर के साथ उसके सारे लोग महाधन्य हुए।

लक्ष लक्ष लोक आइसे प्रभुके देखिते ।

महा-भिड़ हैल द्वारे, नारे प्रवेशिते ॥ 156॥

लक्ष लक्ष-लाखों; लोक-लोग; आइसे–आये; प्रभुके–महाप्रभु को; देखिते-देखने के लिए; महा-भिड़-बड़ी भीड़; हैल-वहाँ हो गई; द्वारे द्वार पर; नारे-न हो सके; प्रवेशिते-प्रविष्ट।

अनुवाद

उनके निवासस्थान के द्वार पर इतनी अधिक भीड़ हो गई कि उसकी संख्या लाखों तक पहुँच गई।

प्रभु यबे या’न विश्वेश्वर-दरशने ।

लक्ष लक्ष लोक आसि' मिले सेइ स्थाने ॥ 157॥

प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; यबे-जब; ग्रान-जाते हैं; विश्वेश्वर-विश्वेश्वर, वाराणसी के देवता (अर्चाविग्रह); दरशने-दर्शन करने के लिए; लक्ष लक्ष-लाखों; लोक-लोग; आसि'-आते हैं; मिले-मिलते हैं; सेइ-वह; स्थाने-उस स्थान पर।

अनुवाद

जब महाप्रभु विश्वेश्वर मन्दिर में दर्शन करने गये, तो उनका दर्शन पाने के लिए लाखों लोग वहाँ एकत्रित हो गये।

तात्पर्य

इस श्लोक की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श्री चैतन्य महाप्रभु नियमित रूप से वाराणसी स्थित (शिवजी के) विश्वेश्वर मन्दिर का दर्शन करते थे। वैष्णव सामान्यतया किसी देवता के मन्दिर में दर्शन करने नहीं जाते, किन्तु यहाँ हम पाते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु नियमित रूप से वाराणसी के प्रमुख अर्चाविग्रह विश्वेश्वर मन्दिर का दर्शन करते थे। सामान्यतया वाराणसी में मायावादी संन्यासी तथा शिवजी के उपासक रहते हैं, तो फिर यह कैसे हुआ कि वैष्णव संन्यासी के रूप में चैतन्य महाप्रभु भी विश्वेश्वर मन्दिर में दर्शन करने जाते थे? इसका उत्तर यह है कि कोई भी वैष्णव देवताओं के प्रति धृष्टतापूर्ण व्यवहार नहीं करता। वह सबका समुचित आदर करता है, यद्यपि वह देवता को कभी भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के तुल्य नहीं मानता।

ब्रह्म-संहिता में शिवजी, ब्रह्माजी, सूर्यदेव, गणेश तथा भगवान् विष्णु को नमस्कार करने के मन्त्र हैं। इन सबकी पूजा निर्विशेषवादियों द्वारा पञ्चोपासना के रूप में की जाती है। निर्विशेषवादी अपने मन्दिरों में भगवान् विष्णु, शिवजी, सूर्यदेव, दुर्गादेवी और कभी-कभी ब्रह्माजी के भी विग्रह

स्थापित करते हैं और यह प्रथा आज भी हिन्दू धर्म के नाम पर भारत में विद्यमान है। वैष्णवजन भी इन सारे देवताओं की पूजा कर सकते हैं, किन्तु ब्रह्म-संहिता के नियमों के ही अनुसार, जिसकी संस्तुति श्री चैतन्य महाप्रभु ने की है। इस सन्दर्भ में ब्रह्म-संहिता में आये शिवजी, ब्रह्माजी, दुर्गादेवी, सूर्यदेव तथा गणेश विषयक मन्त्र देखे जा सकते हैं :

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका

छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा।

इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

"बहिरंगा शक्ति, माया, जो चित् शक्ति की छाया की तरह है, समस्त लोगों के द्वारा दुर्गा रूप में पूजित है, जो इस संसार की सृष्टि, पालन तथा संहार करने वाली हैं। मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जिनकी इच्छा के अनुसार दुर्गा स्वयं कार्य करती हैं।" (ब्रह्म-संहिता 5.44)

क्षीरं यथा दधि विकारविशेषयोगात्

सञ्जायते न हि ततः पृथगस्ति हेतोः।

यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्याद्री

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“अम्लों की क्रिया से दूध दही में परिणत हो जाता है, फिर भी कार्य रूपी दही न तो अपना कारणरूप दूध है न उससे भिन्न है। मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जिनका शम्भु रूप इसी प्रकार का रूपान्तर है, जिससे कि संहार का कार्य सम्पन्न हो सके।” (ब्रह्म-संहिता 5.45)

भास्वान् यथाश्मशकलेषु निजेषु तेजः

स्वीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र ।

ब्रह्मा य एष जगदण्ड-विधानकर्ता

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“मैं उन आदि गोविन्द की पूजा करता हूँ, जिनसे उनके भिन्न अंश ब्रह्मा को भौतिक संसार के नियमन की शक्ति उसी प्रकार प्राप्त होती है, जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश के एक अंश को सूर्यकान्त नामक मणियों के तेज के रूप में प्रकट करता है।” (ब्रह्म-संहिता 5.49)

यपादपल्लवयुगं विनिधाय कुम्भ-

द्वन्द्वे प्रणामसमये स गणाधिराजः ।

विघ्नान् विहन्तुमलमस्य जगत्त्रयस्य

कि गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जिनके चरणकमलों को गणेशजी सदैव अपने हाथी रूपी सिर से निकले दो कुम्भों पर धारण किये रहते हैं, जिससे कि उन्हें तीनों लोकों में प्रगति के पथ पर आने वाले सारे अवरोधों को नष्ट करने की शक्ति प्राप्त हो।” (ब्रह्म-संहिता 5.50)।

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणां

राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः ।

म यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“अनन्त तेजयुक्त सूर्य, जो सारे ग्रहों का राजा है और अच्छे आत्मा का प्रतिबिम्ब है, इस जगत् की आँख के तुल्य है। मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जिनके आदेश का पालन करते हुए सूर्य काल के चक्र पर आरूढ़ होकर अपनी यात्रा पूरी करता है।” (ब्रह्म-संहिता 5.52)।

ये सारे देवता कृष्ण के दास हैं, वे कृष्ण के तुल्य नहीं हैं। अतएव यदि कोई पञ्चोपासना मन्दिर में जाये भी, जिसका ऊपर उल्लेख हुआ है, तो उसे चाहिए कि वह विग्रहों को उस रूप में स्वीकार न करे, जिस रूप में निर्विशेषवादी मानते हैं। उन सबको व्यक्तिगत देवता मानना चाहिए, किन्तु ये सभी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आज्ञा का पालन करने वाले हैं। उदाहरणार्थ, पद्म पुराण के अनुसार शंकराचार्य शिवजी के अवतार माने जाते हैं। उन्होंने भगवान् के आदेशानुसार मायावाद दर्शन का प्रचार किया। हम श्लोक 114 के अन्तर्गत इसकी व्याख्या कर चुके हैं। ताँर दोष नाहि, तेंहो आज्ञाकारी दास। “इसमें शंकराचार्य का कोई दोष नहीं है, क्योंकि उन्होंने तो इस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेशानुसार वेदों के वास्तविक उद्देश्य को आच्छादित कर दिया है।” यद्यपि शिवजी ने ब्राह्मण (शंकराचार्य) के रूप में मायावाद के गलत दर्शन का प्रचार किया, फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है कि चूँकि उन्होंने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेश पर ऐसा किया, इसलिए इसमें उनका कोई दोष नहीं है (ताँर दोष नाहि)।

हमें चाहिए कि सभी देवताओं का समुचित आदर करें। यदि हम एक चींटी तक का सम्मान कर सकते हैं, तो फिर देवताओं का क्यों नहीं ? किन्तु हमें यह सदैव जानना चाहिए कि कोई भी देवता न तो भगवान् के तुल्य है, न उनसे बड़ा है। एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य–"केवल कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और अन्य सारे देवता, जिनमें शिवजी, ब्रह्माजी, देवी दुर्गा तथा गणेश आते हैं, उनके दास हैं।" जहाँ प्रत्येक व्यक्ति भगवान् के उद्देश्य की पूर्ति करता है, वहाँ हम जैसे क्षुद्र जीवों का क्या कहना? हम निश्चय ही भगवान् के सनातन दास हैं। मायावादी दर्शन की मान्यता है कि देवता, जीव तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्–सभी समान हैं। अतएव यह वैदिक ज्ञान का सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण और झूठा विचार है।

स्नान करिते यबे या'न गङ्गा-तीरे ।

ताहाञि सकल लोक हय महा-भिड़े ॥158॥

स्नान-स्नान; करिते-करने के लिए; यबे-जब; या'न-जाते हैं; गङ्गा-गंगा; तीरे-तट पर; ताहाञि-वहीं पर उसी समय, सकल-सब; लोक-लोग; हय-इकठे हो जाते; महा-भिड़े-बड़ी संख्या में।

अनुवाद

जब भी श्री चैतन्य महाप्रभु स्नान करने के लिए गंगा के किनारे जाते, तभी सैकड़ों-हजारों लोगों की भारी भीड़ वहाँ एकत्र हो जाती।

बाहु तुलि' प्रभु बले,—बल हरि हरि ।

हरि-ध्वनि करे लोक स्वर्ग-मर्त्य भरि' ॥ 159॥

बाहु तुलि'–बाहें (भुजाएँ) उठाकर; प्रभु–चैतन्य महाप्रभु; बले-बोलते; बल–आप सब बोलें; हरि हरि-हरि हरि, भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; हरि-ध्वनि-हरि शब्द की ध्वनि; करे-करते; लोक-सभी लोक; स्वर्ग-मर्त्य-स्वर्ग में, आकाश में और पृथ्वी पर; भरि'–पूर्णतया भरकर।

अनुवाद

जब भी भीड़ बढ़ जाती, श्री चैतन्य महाप्रभु खड़े हो जाते और अपने दोनों हाथ उठाकर "हरि! हरि!" का उच्चारण करते, जिसके प्रत्युत्तर में लोग फिर "हरि! हरि!" उच्चारण करते और इस ध्वनि से धरती और आकाश दोनों भर जाते।

लोक निस्तारिया प्रभुर चलिते हैल मन।

वृन्दावने पाठाइला श्री-सनातन॥ 160॥

लोक-लोग; निस्तारिया-उद्धार करके; प्रभुर–महाप्रभु का; चलिते-चलने के लिए; हैल-हो गया; मन–मन; वृन्दावने-वृन्दावन की ओर; पाठाइला–भेजा; श्री-सनातन-सनातन गोस्वामी।

अनुवाद

इस प्रकार सामान्य लोगों का उद्धार करके महाप्रभु ने वाराणसी से प्रस्थान करने की इच्छा की। उन्होंने श्री सनातन गोस्वामी को शिक्षा देकर वृन्दावन भेजा।

तात्पर्य

महाप्रभु का वृन्दावन से लौटकर वाराणसी में रुकने का वास्तविक प्रयोजन सनातन गोस्वामी से भेंट करके उन्हें शिक्षा देना था। सनातन गोस्वामी महाप्रभु से उनके वाराणसी लौटने पर मिले, जहाँ महाप्रभु ने दो महीने तक वैष्णव दर्शन तथा वैष्णव कार्यकलापों के रहस्यों की शिक्षा

प्रदान की। महाप्रभु ने उन्हें पूरी शिक्षा देने के बाद उन्हें अपना आदेश पालन करने के लिए वृन्दावन भेज दिया। जब सनातन गोस्वामी वृन्दावन गये, तो वहाँ कोई मन्दिर न थे। पूरा शहर एक खुले मैदान की तरह खाली था। सनातन गोस्वामी ने यमुना के किनारे अपना आसन जमाया और कुछ काल बाद धीरे-धीरे उन्होंने पहला मन्दिर बनवाया। फिर अन्य मन्दिर बने और अब तो यह नगर मन्दिरों से भरा हुआ है, जिनकी संख्या 5000 के लगभग है।।

रात्रि-दिवसे लोकेर शुनि' कोलाहल ।

वाराणसी छाड़ि' प्रभु आइला नीलाचल ॥ 161॥

रात्रि-रात; दिवसे–दिन; लोकेर-सभी सामान्य लोग; शुनि–सुनकर; कोलाहल-कोलाहल, शोर; वाराणसी-वाराणसी नगर; छाड़ि'–छोड़कर; प्रभु-भगवान्; आइला-लौट गये; नीलाचल-पुरी को।

अनुवाद

चूँकि वाराणसी नगरी सदैव लोगों की भीड़ एवं कोलाहल से भरी रहती थी, अतएव सनातन को वृन्दावन भेजकर श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी लौट आये।

एइ लीला कहिब आगे विस्तार करिया ।

सङ्क्षेपे कहिलाँ इहाँ प्रसङ्ग पाइया ॥162॥

एइ-ये; लीला-लीलाएँ, कहिब-मैं कहूँगा; आगे-आगे, कुछ समय बाद; विस्तार–विस्तार से वर्णन; करिया-करके; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिलाँ-मैंने कही हैं; इहाँ इस जगह; प्रसङ्ग-प्रसंग; पाइया-लाभ उठाकर।

अनुवाद

मैंने यहाँ पर महाप्रभु की इन लीलाओं का संक्षेप में वर्णन किया है, किन्तु बाद में मैं इनका विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा।

एइ पञ्च-तत्त्व-रूपे श्री-कृष्ण-चैतन्य ।

कृष्ण-नाम-प्रेम दिया विश्व कैला धन्य ॥ 163॥

एइ–यह; पञ्च-तत्त्व-रूपे–पाँच रूपों में भगवान् श्रीकृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; प्रेम-कृष्ण-प्रेम; दिया–दिया; विश्व-सारा संसार; कैला-किया; धन्य-धन्य।

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु तथा उनके पंचतत्त्व पार्षदों ने भगवान् के पवित्र नाम का वितरण भगवत्प्रेम जगाने के लिए सारे ब्रह्माण्ड में किया। इस तरह सारा ब्रह्माण्ड धन्य हो गया।

तात्पर्य

यहाँ पर यह कहा गया है कि चैतन्य महाप्रभु ने अपने संगियों के साथ संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार करके सारे ब्रह्माण्ड को धन्य कर दिया। चैतन्य महाप्रभु ने 500 वर्ष पूर्व अपनी उपस्थिति से सारे ब्रह्माण्ड को पहले ही पवित्र बनाया है, अतएव अब जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों पर चलकर और आचार्यों के उपदेशों का पालन करते हुए महाप्रभु की निष्ठापूर्वक सेवा करने का प्रयास करेगा, वह सारे ब्रह्माण्ड में हरे कृष्ण महामन्त्र के पवित्र नाम का प्रचार करने में सफल हो सकेगा। कुछ ऐसे मूर्ख आलोचक हैं, जो यह कहते हैं कि यूरोपवासियों तथा अमरीकी

लोगों को संन्यास नहीं दिया जा सकता, किन्तु यहाँ हम यह देख रहे हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार सारे ब्रह्माण्ड में करना चाह रहे थे। प्रचार-कार्य के लिए संन्यासी आवश्यक हैं। ये आलोचक सोचते हैं कि प्रचार-कार्य के लिए केवल भारतीयों या हिन्दुओं को ही संन्यास दिया जाना चाहिए, किन्तु उनका ज्ञान व्यावहारिक दृष्टि से शून्य है। संन्यासियों के बिना प्रचार-कार्य में बाधा पड़ेगी। अतएव चैतन्य महाप्रभु के आदेश के अनुसार तथा उनके पार्षदों के आशीर्वाद से इस विषय में भेदभाव नहीं बरतना चाहिए, किन्तु विश्वभर के लोगों को प्रचार करने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और उन्हें संन्यास दिया जाना चाहिए, जिससे कि चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आन्दोलन का यह सम्प्रदाय असीमित रूप से विस्तार प्राप्त करे। हमें मूर्खा की आलोचना की परवाह नहीं है। हम अपना कार्य करते रहेंगे और चैतन्य महाप्रभु तथा उनके पंचतत्त्व पार्षदों के आशीर्वाद पर ही आश्रित रहेंगे।

मथुराते पाठाइल रूप-सनातन ।

दुइ सेनापति कैल भक्ति प्रचारण ॥ 164॥

मथुराते-मथुरा की ओर; पाठाइल-भेजे; रूप-सनातन-रूप और सनातन गोस्वामी दोनों भाई; दुई-वे दोनों; सेना-पति-सेनापति के रूप में; कैल-उन्होंने उन्हें बनाया; भक्ति-भक्ति; प्रचारण–प्रचार के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी इन दो सेनापतियों को वृन्दावन भेज दिया।

तात्पर्य

जब रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी वृन्दावन गये, तो वहाँ एक भी मन्दिर न था। किन्तु अपने प्रचार द्वारा उन्होंने धीरे-धीरे अनेक मन्दिर बनवाये। सनातन गोस्वामी ने मदनमोहन मन्दिर बनवाया और रूप गोस्वामी ने गोविन्दजी मन्दिर बनवाया। इसी प्रकार उनके भतीजे जीव गोस्वामी ने राधा-दामोदर मन्दिर, श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी ने राधारमण मन्दिर, श्री लोकनाथ गोस्वामी ने गोकुलानन्द मन्दिर तथा श्यामानन्द गोस्वामी ने श्यामसुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया था। इस तरह धीरे-धीरे अनेक मन्दिर बने प्रचार-कार्य के लिए मन्दिरों का निर्माण भी आवश्यक होता है। इन गोस्वामियों ने न केवल ग्रंथ लिखे, अपितु मन्दिर भी बनवाये; क्योंकि प्रचार-कार्य के लिए इन दोनों की आवश्यकता होती है। श्री चैतन्य महाप्रभु चाहते थे कि उनका संकीर्तन आन्दोलन सारे विश्व में परिव्याप्त हो जाए। अब चूँकि अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ ने चैतन्य सम्प्रदाय के प्रचार का यह कार्य अपने हाथों में लिया है, अतएव इसके सदस्यों को न केवल विश्व के प्रत्येक नगर तथा ग्राम में मन्दिर बनवाने चाहिए, अपितु जो पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं, उनका वितरण भी करना चाहिए और इन पुस्तकों की संख्या को भी बढ़ाना चाहिए। पुस्तकों के वितरण तथा मन्दिरों के निर्माण कार्य को साथ-साथ समानान्तर रेखाओं की भाँति चलना चाहिए।

नित्यानन्द-गोसाळे पाठाइला गौड़-देशे ।

तेंहो भक्ति प्रचारिला अशेष-विशेषे ॥ 165॥

नित्यानन्द-प्रभु नित्यानन्द; गोसाजे-आचार्य; पाठाइला–भेजे गये थे; गौड़-देशे-बंगाल में; तेंहो-वे; भक्ति-भक्ति; प्रचारिला–प्रचार किया; अशेष-विशेषे-बहुत व्यापक रीति से।

अनुवाद

जिस तरह रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी मथुरा की ओर भेजे गये थे, उसी तरह नित्यानन्द प्रभु को चैतन्य महाप्रभु ने सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार करने के लिए बंगाल भेजा था।

तात्पर्य

बंगाल में नित्यानन्द प्रभु का नाम अत्यन्त विख्यात है। निस्सन्देह, जो कोई नित्यानन्द प्रभु को जानता है, समझ लो कि वह श्री चैतन्य महाप्रभु को भी जानता है। किन्तु कुछ ऐसे पथभ्रष्ट भक्त हैं, जो श्री चैतन्य महाप्रभु की अपेक्षा नित्यानन्द प्रभु की महत्ता पर अधिक बल देते हैं। यह ठीक नहीं है न ही श्री चैतन्य महाप्रभु पर नित्यानन्द प्रभु की अपेक्षा अधिक बल दिया जाना चाहिए। चैतन्य-चरितामृत के लेखक कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने अपना घर इसीलिए छोड़ दिया, क्योंकि उनका भाई नित्यानन्द प्रभु की अपेक्षा चैतन्य महाप्रभु की महत्ता पर अधिक बल देता था। वास्तव में यह विचार किये बिना कि नित्यानन्द बड़े हैं या चैतन्य महाप्रभु या कि अद्वैत प्रभु, हमें चाहिए कि किसी भेदभाव के बिना पंचतत्त्व का सम्मान करें। सबका समान आदर होना चाहिए- श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द, श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादिगौर-भक्तवृन्द। भगवान् चैतन्य या भगवान् नित्यानन्द के सारे भक्त पूज्य हैं।

आपने दक्षिण देश करिला गमन ।

ग्रामे ग्रामे कैला कृष्ण-नाम प्रचारण ॥ 166॥

आपने–स्वयं; दक्षिण देश-दक्षिण भारत; करिला-गये; गमन-यात्रा करते हुए; ग्रामे ग्रामे-प्रत्येक गाँव में; कैला-उन्होंने किया; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण के पावन नाम का प्रचारण–प्रचार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं दक्षिण भारत गये, जहाँ उन्होंने गाँव-गाँव तथा नगर-नगर में भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का प्रचार किया।

सेतुबन्ध पर्यन्त कैला भक्तिर प्रचार ।

कृष्ण-प्रेम दिया कैला सबार निस्तार ॥167॥

सेतुबन्ध-सेतुबन्ध, जहाँ भगवान् रामचन्द्र ने अपना पुल बनाया; पर्य्यन्त–उस स्थान तक; कैला–किया; भक्तिर-भक्ति का प्रचार-प्रचार; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; दिया-प्रदान किया; कैला-किया; सबार-सब का; निस्तार-उद्धार।

अनुवाद

इस प्रकार महाप्रभु भारत प्रायद्वीप के दक्षिण धुर तक गये, जिसे सेतुबन्ध (कुमारी अन्तरीप) कहते हैं। उन्होंने सर्वत्र भक्ति सम्प्रदाय तथा कृष्ण-प्रेम का वितरण किया और इस तरह सबका उद्धार किया।

एइ त कहिल पञ्च-तत्त्वेर व्याख्यान ।

इहार श्रवणे हय चैतन्य-तत्त्व ज्ञान ॥168॥

एइ त'–यह; कहिल-वर्णन किया; पञ्च-तत्त्वेर-पंचतत्त्व का; व्याख्यान-व्याख्यान; इहार-इसका; श्रवणे-सुनकर; हय–होता है; चैतन्य-तत्त्व-चैतन्य महाप्रभु के सत्य-तत्त्व का; ज्ञान–ज्ञान।

अनुवाद

इस तरह मैंने पंचतत्त्व के सत्य की व्याख्या की है। जो इस व्याख्या को सुनता है, उसका श्री चैतन्य महाप्रभु विषयक ज्ञान बढ़ता है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु को समझने में पंचतत्त्व महत्त्वपूर्ण कारक है। सहजिया लोग पंचतत्त्व के महत्त्व को नहीं जानते, इसलिए वे अपने खुद के नारे बनाते रहते हैं, यथा-भज निताइ गौर, राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम, या श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द, हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द। ऐसे उच्चारण भले ही अच्छे पद्य हों, किन्तु इनसे हमें भक्ति में प्रगति करने की सहायता नहीं मिलती। ऐसे उच्चारणों में अनेक विसंगतियाँ हैं, जिनकी चर्चा यहाँ न करना ही ठीक होगा। वास्तव में पंचतत्त्व नामों का उच्चारण करते समय उन्हें नमस्कार करना चाहिए- श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द। ऐसे उच्चारण से मनुष्य को हरे कृष्ण महामन्त्र का निरपराध कीर्तन करने की क्षमता के लिए आशीर्वाद प्राप्त होते हैं। हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते समय इसका भी पूरा-पूरा उच्चारण करना चाहिए-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे। हमें चाहिए कि कल्पनाशील भक्तों द्वारा बनाये गये किसी नारे को मूर्खतावश ग्रहण न करें। यदि हम जप से कोई लाभ उठाना चाहते हैं, तो हमें महान् आचार्यों का अनुसरण कड़ाई से करना होगा। इसकी पुष्टि महाभारत में हुई है- महाजनो येन गतः स पन्थाः—"जिस पथ से होकर आचार्य तथा महापुरुष गण चलते हैं, वही प्रगति का वास्तविक मार्ग है।"

श्री-चैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैत,—तिन जन ।

श्रीवास-गदाधर-आदि यत भक्त-गण ॥169॥

श्री-चैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैत-श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु; तिन-ये तीन; जन-व्यक्ति; श्रीवास-गदाधर-श्रीवास तथा गदाधर; आदि-आदि; यत-सब; भक्त-गण-भक्तगण।

अनुवाद

पंचतत्त्व महामन्त्र का कीर्तन करते समय श्री चैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर तथा श्रीवास के नामों का, उनके अनेक भक्तों समेत उच्चारण करना चाहिए। यही विधि है।

संबाकार पादपद्म कोटि नमस्कार।

यैछे तैछे कहि किछु चैतन्य-विहार॥ 170॥

सबाकार-वे सब; पाद-प-चरणकमलों पर; कोटि-करोड़ों, अनगिनत, असंख्य; नमस्कार-नमस्कार; यैछे तैछे-किसी न किसी तरह; कहि-मैं कहता हूँ; किछु-कुछ; चैतन्य-विहार-चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के बारे में।

अनवाद

मैं पंचतत्त्व को पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार मेरे विचार से मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के विषय में कुछ वर्णन कर सकूँगा।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥171॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; झार–जिनके; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करता है; कृष्ण-दास-कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए और सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण-प्रेम के संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार समूचे संसार में करना चाहते थे, अतएव अपने जीवन काल में उन्होंने संकीर्तन आन्दोलन को प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने विशेष रूप से श्री रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी को वृन्दावन और नित्यानन्द को बंगाल भेजा तथा स्वयं दक्षिण भारत गये। इस प्रकार वे शेष जगत् में अपने सम्प्रदाय का प्रचार-कार्य अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के ऊपर छोड़ गये। इस संघ के सदस्यों को सदैव स्मरण रखना होगा कि यदि वे आचार्यों के आदेशानुसार नियमों का दृढ़ता से पालन करेंगे और निष्ठापूर्वक प्रचार करेंगे, तो उन्हें निश्चित रूप से श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रभूत आशीर्वाद प्राप्त होगा और उनका प्रचार-कार्य सारे विश्व में सर्वत्र सफल होगा।

इस प्रकार श्री चैतन्य-चरितामृत आदिलीला के अन्तर्गत "भगवान् चैतन्य के पाँच स्वरूप" शीर्षक सातवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा विरचित

श्रीचैतन्य-चरितामृत

आदि लीला - भाग 2

अध्याय 8-17

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

श्रीचैतन्य-चरितामृत

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।

जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत

श्रीचैतन्य-चरितामृत

आदि लीला, द्वितीय खण्ड

अध्याय 8-17

मूल बंगला श्लोक, श्लोक का हिन्दी लिप्यन्तरण,

शब्दार्थ, अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य सहित

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

विषय-सूची

भूमिका

अध्याय आठ

लेखक का कृष्ण तथा गुरु से आदेश प्राप्त करना

अध्याय नौ

भक्ति का कल्पवृक्ष

अध्याय दस

चैतन्य-वृक्ष के स्कन्ध, शाखाएँ तथा उपशाखाएँ

अध्याय ग्यारह

भगवान् नित्यानन्द के विस्तार

अध्याय बारह

अद्वैत आचार्य तथा गदाधर पण्डित के विस्तार

अध्याय तेरह

श्री चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव

अध्याय चौदह

श्री चैतन्य महाप्रभु की बाल-लीलाएँ

अध्याय पंद्रह

महाप्रभु की पौगण्ड-लीलाएँ

अध्याय सोलह

महाप्रभु की बाल्य तथा कैशोर लीलाएँ।

अध्याय सत्रह

चैतन्य महाप्रभु की युवावस्था की लीलाएँ

परिशिष्ट

लेखक परिचय

सन्दर्भ

विशेष शब्दावली

श्लोकानुक्रमणिका

उधृत श्लोकों की अनुक्रमणिका

बांग्ला वर्णमाला

बांग्ला उच्चारण सम्बन्धी निर्देश

भूमिका

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा उपदेशों का मुख्य ग्रन्थ है। श्री चैतन्य महाप्रभु उस महान् सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, जो भारत में 500 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जिसने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरी धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधाराओं को न केवल भारत में अपितु समग्र विश्व में प्रभावित किया है। उन श्रीकृष्ण चैतन्य के प्रभाव को प्रसारित करने में कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के प्रयासों का मुख्य योगदान रहा है, जो इस ग्रन्थ के अनुवादक तथा भाष्यकार होने के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) के संस्थापक-आचार्य भी हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु को अतीव ऐतिहासिक महत्त्व का पुरुष माना जाता है। किन्तु ऐतिहासिक विश्लेषण की हमारी पारम्परिक विधि, जो व्यक्ति को उनके समय की उपज के रूप में देखती है, यहाँ पर विफल हो जाती है, क्योंकि श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसे पुरुष हैं, जो ऐतिहासिक व्यवस्था के सीमित क्षेत्र से परे हैं।

जिस समय पश्चिम में मानव भौतिक ब्रह्माण्ड की संरचना का अध्ययन करने तथा नवीन सागरों और महाद्वीपों की खोज में समुद्री यात्राएँ करने में अपनी अनुसन्धानात्मक शक्ति लगा रहा था, तभी पूर्व में श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसी क्रान्ति का प्रवर्तन एवं कुशल नेतृत्व कर रहे थे, जो मनुष्य के आध्यात्मिक स्वभाव के सर्वोच्च विज्ञान सम्मत ज्ञान की दिशा में निर्दिष्ट था।

श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवनचरित के मुख्य ऐतिहासिक स्रोत मुरारि गुप्त तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा लिखे गये कड़चा (दैनन्दिनियाँ) हैं। मुरारि गुप्त एक वैद्य तथा श्रीकृष्ण चैतन्य के अन्तरंग पार्षद थे, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास ग्रहण करने तक के प्रारम्भिक चौबीस वर्षों के विषय में विस्तृत टिप्पणियाँ लिखीं। श्री चैतन्य महाप्रभु के अड़तालीस वर्षों के जीवन की शेष घटनाएँ श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्य अन्तरंग पार्षद स्वरूप दामोदर गोस्वामी के कड़चा में अंकित हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृत के तीन खण्ड हैं, जिन्हें लीला कहा जाता है। ये हैं-आदि लीला, मध्य लीला तथा अन्त्य लीला। मुरारि गुप्त का कड़चा ही आदि लीला का आधार है और स्वरूप दामोदर का कड़चा मध्य तथा अन्त्य लीलाओं के लिए विस्तृत विवरण प्रदान करता है।

आदिलीला के सत्रह अध्यायों में से प्रथम बारह अध्याय सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रस्तावना स्वरूप हैं। वैदिक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा कृष्णदास कविराज यह स्थापित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु कलियुग (जो पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जो भौतिकता, दम्भ तथा कलह का प्रतीक है) के लिए कृष्ण के अवतार हैं। लेखक यह भी प्रमाणित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण से अभिन्न हैं और अधम युग के पतितात्माओं को महामन्त्र के संकीर्तन का प्रचार करके शुद्ध भगवत्प्रेम उदारतापूर्ण वितरित करने के लिए अवतरित होते हैं। यह संकीर्तन महामन्त्र का बृहद् सार्वजनिक कीर्तन है। इसके उपरान्त कृष्णदास कविराज ने इस ग्रन्थ के बारहवें अध्याय में इस जगत् में श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का गुह्य प्रयोजन, उनके सह-अवतारों तथा प्रमुख भक्तों का वर्णन किया है और उनकी शिक्षाओं को सार रूप में प्रस्तुत की हैं। आदि लीला के शेष अध्यायों (13 से 17 तक) में लेखक ने चैतन्य महाप्रभु के दिव्य जन्म तथा संन्यास ग्रहण करने तक के जीवन का संक्षिप्त विवरण दिया है। इसमें उनके बचपन के चमत्कारों, अध्ययन, विवाह तथा प्रारम्भिक

दार्शनिक शास्त्रार्थों के साथ-साथ उनके व्यापक संकीर्तन-आन्दोलन के संगठन तथा मुस्लिम सरकार द्वारा दमन के विरुद्ध उनके कानून अवज्ञा आन्दोलन का वर्णन है।

तीनों लीलाओं में सबसे लम्बी मध्यलीला की विषय वस्तु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा एक संन्यासी, शिक्षक, दार्शनिक तथा गुरु एवं योगी के रूप में सारे भारत की विस्तृत एवं घटनापूर्ण यात्राओं का विशद् वर्णन है। छह वर्षों की इस अवधि में श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्रमुख शिष्यों को शिक्षाएँ देते हैं। वे अपने समकालीन सुविख्यात दार्शनिकों तथा धर्मज्ञों से, जिनमें शंकराचार्य के अनुयायी, बौद्ध तथा मुसलमान सम्मिलित हैं, शास्त्रार्थ करते हैं और उन्हें तथा उनके शिष्य तथा अनुयायी वर्गों को अपने दल में सम्मिलित करते हैं। इस खण्ड में उड़ीसा में होने वाले विशाल जगन्नाथ रथयात्रा उत्सव के अवसर पर चैतन्य महाप्रभु की चमत्कार-पूर्ण लीलाओं का विस्तृत विवरण सम्मिलित है।

अन्त्यलीला में श्री चैतन्य की प्रकट उपस्थिति के अन्तिम अठारह वर्षों का विवरण है, जिसे उन्होंने जगन्नाथ पुरी के सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर केनिकट लगभग एकान्त में बिताये। इन अन्तिम वर्षों में श्रीकृष्ण चैतन्य भाव-समाधि में गहरे उतरते गये, जो समस्त पूर्वी अथवा पाश्चात्य धार्मिक तथा साहित्यिक इतिहास में अद्वितीय है। उनके नित्य संगी स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा दिये गये प्रत्यक्षदर्शी विवरण, जिनसे श्री चैतन्य की शाश्वत तथा नित्य वर्धमान धार्मिक परमानन्द की अवस्था प्रकट होती है, आधुनिक मनोविज्ञानियों तथा प्रत्यक्षवादियों के धार्मिक अनुभवों की अनुसन्धानात्मक तथा विवरणात्मक क्षमताओं को स्पष्ट रूप से चुनौती देने वाले हैं।

इस महान् ग्रन्थ के रचयिता कृष्णदास कविराज गोस्वामी का जन्म 1507 ई. में हुआ था। वे चैतन्य महाप्रभु के विश्वस्त अनुयायी रघुनाथ दास गोस्वामी के शिष्य थे। रघुनाथ दास विख्यात वैरागी सन्त थे, जिन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा बतलाई गई चैतन्य महाप्रभु की समस्त

लीलाओं को सुना था और स्मरण कर रखा था। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के निधन के बाद रघुनाथ दास ने अपने इन आराध्यों की विरह वेदना सहन न कर सकने के कारण गोवर्धन पर्वत से कूदकर आत्महत्या करने के उद्देश्य से वृन्दावन की यात्रा की। किन्तु वृन्दावन में उनकी भेंट चैतन्य महाप्रभु के दो सर्वाधिक अन्तरंग शिष्यों-रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से हुई, जिन्होंने उनसे आत्महत्या की योजना का परित्याग करने तथा चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम जीवन की प्रेरक घटनाओं को प्रकट करने के लिए प्रेरित किया। उस समय कृष्णदास कविराज गोस्वामी भी वृन्दावन में रह रहे थे, जिन्हें रघुनाथ दास गोस्वामी ने श्री चैतन्य के दिव्य जीवन का पूर्ण विवरण प्रदान किया।

उस समय तक श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवन पर अनेक समसामयिक विद्वान तथा भक्तों द्वारा कई जीवन-चरित विषयक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। इनमें मुरारि गुप्त कृत श्रीचैतन्य-चरित, लोचन दास ठाकुर कृत चैतन्य-मंगल तथा वृन्दावन दास कृत चैतन्य-भागवत सम्मिलित हैं, जिनमें से चैतन्य भागवत के लेखक वृन्दावन दास ठाकुर को उस समय श्री चैतन्य के जीवन के विशेषज्ञ माने जाते थे। जब वृन्दावन दास इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना कर रहे थे, तब उन्होंने इस भय से श्री चैतन्य के जीवन की अनेक घटनाओं को, विशेषतया परवर्ती घटनाओं को सम्मिलित नहीं किया कि इससे ग्रन्थ का आकार बढ़ जायेगा। इस अन्तिम लीलाओं को सुनने के इच्छुक वृन्दावन के भक्तों ने कृष्णदास कविराज गोस्वामी से, जिन्हें वे महान् सन्त और विद्वान के रूप में सम्मान देते थे, यह अनुरोध किया कि इन घटनाओं का विस्तार से वर्णन करने वाले ग्रन्थ की रचना करें। इस अनुरोध पर तथा वृन्दावन के मदन मोहन अर्चाविग्रह की अनुमति तथा आशीर्वाद से उन्होंने श्रीचैतन्य चरितामृत की रचना प्रारम्भ की, जिसे चैतन्य महाप्रभु के गहन दर्शन तथा शिक्षाओं के

सम्यक् प्रस्तुतीकरण, एवं जीवन-चरित विषयक श्रेष्ठता के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा गूढ़ शिक्षा के सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में आज सारे विश्व में मान्यता दी जा रही है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने वृद्धावस्था में इस ग्रंथ पर कार्य प्रारम्भ किया, जब उनका स्वास्थ्य गिर चुका था। जैसाकि उन्होंने स्वयं लिखा है, "अब मैं अति वृद्ध एवं अक्षमता से विक्षुब्ध हूँ। लिखते समय मेरे हाथ काँपते हैं, मुझे ठीक से किसी बात का स्मरण नहीं हो पाता, न ही मैं ठीक से देख या सुन सकता हूँ, फिर भी मैं लिखता हूँ जो कि अपने आप में एक महान् आश्चर्य है।" तो भी उन्होंने इस अक्षम अवस्था में मध्यकालीन भारत के इस महान्तम साहित्यिक मणि को पूरा किया, जो साहित्यिक इतिहास के आश्चर्यों में एक है।

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, इसका अंग्रेजी अनुवाद कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा सम्पन्न किया गया, जो समग्र विश्व में भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा के सर्वाधिक विख्यात शिक्षक हैं। श्रील प्रभुपाद का भाष्य दो बँगला भाष्यों पर आधारित है—एक तो उनके गुरु, महान् वैदिक विद्वान, उपदेशक और संत श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, जिन्होंने भविष्यवाणी की थी कि, "एक समय ऐसा आयेगा, जब श्रीचैतन्य चरितामृत पढ़ने के लिए विश्वभर के लोग बँगला सीखेंगे और दूसरा भाष्य श्रील भक्तिसिद्धान्त के पिता भक्तिविनोद ठाकुर का जिन्होंने आधुनिक युग में श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के प्रचार में अयदूत का काम किया।

श्रील प्रभुपाद स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा में आते हैं। और वे पहले विद्वान हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य के अनुयायियों के प्रमुख ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। उनकी बँगला तथा संस्कृत में विद्वत्ता और श्रीकृष्ण चैतन्य के उपदेशों से उनका अन्तरंग परिचय ऐसा उपयुक्त मेल है, जो उन्हें इस महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ को अंग्रेजी भाषी संसार के समक्ष प्रस्तुत

करने के लिए सर्वाधिक योग्य बनाता है। वे जिस सहजता तथा स्पष्टता से कठिन दार्शनिक विचारों की स्थापना करते हैं, वह भारत की धार्मिक परम्परा से पूर्णतया अपरिचित पाठक को भी इन गहन तथा स्मरणीय ग्रन्थ को समझने तथा उसकी प्रशंसा करने के लिए समर्थ बनाता है।

तात्पर्य समेत सम्पूर्ण मूल पाठ को नौ सचित्र खण्डों में भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो समकालीन मनुष्य के बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रमुख महत्त्वपूर्ण योगदान का प्रतिनिधित्व करता है।

श्रील प्रभुपाद के द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत का हिन्दी अनुवाद उनके शताब्दी उत्सव के अवसर पर प्रकाशित किया जा रहा है, जो भारत के भक्तों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

-प्रकाशक

अध्याय आठ

लेखक का कृष्ण तथा गुरु से आदेश प्राप्त करना

श्रीचैतन्य-चरितामृत के आठवें अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में दिया है। इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु की महिमाओं का वर्णन किया गया है और यह भी बतलाया गया है कि यदि कोई हरे कृष्ण मन्त्र के जप में अपराध करता है, तो उसे कई वर्षों तक जप करते रहने पर भी भगवत्प्रेम प्राप्त नहीं हो पाता। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अष्ट-सात्त्विक-विकार नामक शारीरिक लक्षणों के कृत्रिम प्रदर्शन के प्रति सबको आगाह करते हैं, क्योंकि यह भी एक अपराध है। श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द, श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि-गौरभक्तवृन्द–इन पंचतत्त्व नामों का भक्त को गम्भीरता एवं निष्ठा के साथ कीर्तन करना चाहिए। ये सभी आचार्य भक्त को अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान करेंगे और धीरे-धीरे उसके हृदय को शुद्ध बनायेंगे। जब वह वास्तव में शुद्ध हो जायेगा तो उसे स्वतः ही हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में आनन्द का अनुभव होगा। कविराज द्वारा श्री चैतन्य-चरितामृत की रचना करने के पूर्व श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने श्रीचैतन्य-भागवत नामक एक ग्रन्थ लिखा था। कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने केवल उन्हीं विषयों को श्रीचैतन्य-चरितामृत में लिया है, जिनकी व्याख्या वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा चैतन्य भागवत में नहीं की गई। कृष्णदास कविराज गोस्वामी अपनी वृद्धावस्था में वृन्दावन गये और श्री मदनमोहन के आदेश पर उन्होंने श्रीचैतन्य-चरितामृत की रचना की। इस तरह अब हम इसके दिव्य आनन्द का रसास्वादन कर सकते हैं।

वन्दे चैतन्य-देवं तं भगवन्तं यदिच्छया।

प्रसभं नर्त्यते चित्रं लेख-रङ्गे जड़ोऽप्ययम् ॥1॥

वन्दे-मैं सादर नमस्कार करता हूँ; चैतन्य-देवम्-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को; तम्-उनको; भगवन्तम्-भगवान् को; यत्-इच्छया-जिनकी इच्छाओं से; प्रसभम्-अचानक; नर्त्यते-नृत्य करता है; चित्रम्-अद्भुत ढंग से; लेख-रङ्गे-लिखने के मामले में; जड़ः-जड़ मूर्ख; अपि-भी; अयम्-यह।

अनुवाद

मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करता हूँ, जिनकी इच्छा से मैं नाचते हुए कुत्ते के समान बन गया हूँ और मूर्ख होते हुए भी मैंने सहसा श्रीचैतन्य-चरितामृत लिखने का कार्य अपने हाथों में लिया है।

जय जय श्री कृष्ण-चैतन्य गौरचन्द्र।

जय जय परमानन्द जय नित्यानन्द ॥2॥

जय जय-जय जय; श्रीकृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुः गौर-चन्द्र-जिनका नाम है भगवान् गौराङ्ग; जय जय-जय जय; परमानन्द-परमानन्द; जय-जय हो; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु की।

अनुवाद

मैं गौरसुन्दर नाम से विख्यात श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ। मैं सदैव प्रसन्न रहने वाले नित्यानन्द प्रभु को भी सादर नमस्कार करता हूँ।

जय जयाद्वैत आचार्य कृपामय।

जय जय गदाधर पण्डित महाशय॥ 3॥

जय जय जय जय; अद्वैत-अद्वैत प्रभु को; आचार्य-आचार्य, शिक्षक; कृपामय-अत्यन्त दयालु; जय जय-जय जय; गदाधर-गदाधर; पण्डित–विद्वान; महाशय-महापुरुष।

अनुवाद

मैं अद्वैत आचार्य को सादर नमस्कार करता हूँ, जो अत्यन्त कृपालु हैं। साथ ही मैं महान् विद्वान महापुरुष गदाधर पण्डित को भी नमस्कार करता हूँ।

जय जय श्रीवासादि ग्रत भक्त-गण।

प्रणत हुइया वन्दों सबार चरण॥4॥

जय जय-जय जय; श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर आदि को; मत-सब; भक्त-गण-भक्तगण; प्रणत-नमस्कार करते हुए; हइया-ऐसा करते हुए; वन्दों-मैं वन्दना करता हूँ; सबार-सब; चरण-चरणकमल।

अनुवाद

मैं श्रीवास ठाकुर तथा महाप्रभु के अन्य सारे भक्तों को सादर नमस्कार करता हूँ। मैं उनके सामने गिरकर प्रणाम करता हूँ और उनके चरणकमलों की पूजा करता हूँ।

तात्पर्य

कृष्णदास कविराज गोस्वामी सर्वप्रथम हमें पंचतत्त्व-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत प्रभु, गदाधर प्रभु और श्रीवास प्रभु एवं अन्य भक्तों को नमस्कार करने की शिक्षा देते हैं। हमें श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादिगौरभक्तवृन्द मन्त्र में साररूप में बताये गये पंचतत्त्व को नमस्कार करने के सिद्धान्त का कड़ाई से पालन करना चाहिए। हमें किसी भी प्रचार-उत्सव के पूर्व–विशेषतया हरे कृष्ण महामन्त्र–हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे-का कीर्तन करने के पूर्व पंचतत्त्व के नामों का उच्चारण करना चाहिए और उनको नमस्कार करना चाहिए।

मूक कवित्व करे याँ-सबार स्मरणे ।

पङ्गु गिरि लङ्घ, अन्ध देखे तारा-गणे ॥5॥

मूक-गूंगा; कवित्व-कवि; करे-हो जाता है; याँ–जिनका; सबार-सब; स्मरणे-स्मरण करके; पङ्ग-लंगड़ा; गिरि–पर्वत; लछे-पार करता है; अन्ध-अंधा; देखे-देखता है; तारा-गणे-तारे।

अनुवाद

पंचतत्त्व के चरणकमलों का स्मरण करने से गंगा व्यक्ति कवि बन सकता है, लंगड़ा पर्वतों को पार कर सकता है और अंधा व्यक्ति आकाश के तारों को देख सकता है।

तात्पर्य

वैष्णव दर्शन में पूर्णता प्राप्त करने के तीन मार्ग हैं-साधनसिद्ध अर्थात् विधि-विधानों के अनुसार भक्ति सम्पन्न करने के द्वारा प्राप्त की गई पूर्णता, नित्यसिद्ध अर्थात् कृष्ण को कभी भी न भूलने के कारण प्राप्त की गई शाश्वत पूर्णता तथा कृपासिद्धि अर्थात् गुरु अथवा अन्य वैष्णव की

कृपा से प्राप्त की गई पूर्णता। यहाँ पर कविराज गोस्वामी कृपासिद्ध पर बल दे रहे हैं। यह कृपा भक्त की योग्यता पर आश्रित नहीं होती। ऐसी कृपा से यदि भक्त गुंगा भी हो, तो वह बोलने लगता है या भगवान् की महिमा का गुणगान करने के लिए लिखने लगता है, यदि लँगड़ा हो तो भी वह पर्वत को लाँघ जाता है तथा अंधा होकर भी आकाश के तारे देख सकता है।

ए-सब ना माने येइ पण्डित सकल ।

ता-सबार विद्या-पाठ भेक-कोलाहल ॥ 6 ॥

ए-सब-ये सब; ना-नहीं; माने-मानते; येइ-कोई; पण्डित–तथाकथित विद्वान; सकल-सब; ता-सबार-उन सबका; विद्या-पाठ-विद्या अनुशीलन; भेक-मेंढकों का; कोलाहल-टर्राना।

अनुवाद

ऐसे तथाकथित पण्डित, जो श्रीचैतन्य-चरितामृत के इन कथनों पर विश्वास नहीं करते, उनके द्वारा शिक्षा का अनुशीलन मेढ़कों की जोरदार टर्र-टर्र के समान है।

तात्पर्य

वर्षा ऋतु में मेढकों की टर्र-टर्र की आवाज जंगल में बड़े जोर से गूँजती है, जिसके फलस्वरूप अंधेरे में सर्प उनकी टर्र-टर्र को सुनकर उनके निकट जाते हैं और उन्हें निगल जाते हैं। इसी प्रकार विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों की, जिन्हें आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता, तथाकथित शैक्षिक ध्वनियाँ इन टर्र-टर्र करते मेढकों के समान होती हैं।

एइ सब ना माने येबा करे कृष्ण-भक्ति ।

कृष्ण-कृपा नाहि तारे, नाहि तार गति ॥7॥

एइ-ये; सब-सब; ना माने–नहीं स्वीकार करते; येबा-कोई जो; करे-करता है; कृष्ण-भक्ति कृष्ण भक्ति; कृष्ण-कृपा-कृष्ण की कृपा; नाहि-नहीं है; तारे-उसको; नाहि-नहीं है; तार-उसको; गति-प्रगति।

अनुवाद

जो पंचतत्त्व की महिमा को स्वीकार नहीं करता और फिर भी कृष्णभक्ति का दिखावा करता है, उसे न तो कृष्ण की कृपा प्राप्त हो सकती है, न ही वह अपने चरम लक्ष्य की ओर आगे बढ़ सकता है।

तात्पर्य

यदि कोई सचमुच कृष्णभावना के कार्यों में रुचि रखता है, तो उसे आचार्यों द्वारा स्थापित किये गये विधि-विधानों का पालन करने के लिए तैयार रहना चाहिए और उनके निष्कर्षों से अवगत होना चाहिए। शास्त्र कहते हैं-धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः (महाभारत, वन पर्व 313.117)। कृष्णभावनामृत के रहस्य को समझ पाना अत्यन्त कठिन है, किन्तु जो व्यक्ति पूर्ववर्ती आचार्यों के आदेशों के अनुसार आगे बढ़ता है और गुरु-शिष्य परम्परा से चले आ रहे पूर्ववर्ती आचार्यों के पदचिह्नों पर चलता है, उसे सफलता अवश्य मिलेगी, अन्यों को नहीं। इस सम्बन्ध में श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं- छाड़िया वैष्णव-सेवा निस्तार पेयेछे केबा-गुरु तथा आचार्यों की सेवा किये बिना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती।" अन्यत्र वे कहते हैं:

एइ छय गोसाञि याँर–मुइ ताँर दास ।

ताँ-सबार पद-रेणु मोर पञ्च-ग्रास ॥

“मैं तो उस व्यक्ति को ही मानता हूँ, जो छः गोस्वामियों के पदचिह्नों पर चलता है और ऐसे व्यक्ति की चरण-धूलि मेरा भोजन है।”

पूर्वे यैछे जरासन्ध-आदि राज-गण ।

वेद-धर्म करि’ करे विष्णुर पूजन ॥8॥

पूर्वे-पहले; यैछे-जिस प्रकार; जरासन्ध-राजा जरासन्ध; आदि-आदि; राज-गण-राजा गण; वेद-धर्म-वैदिक रीतियों का अनुगमन; करि’–करके; करे-करते हैं; विष्णुर–भगवान् विष्णु का; पूजन-पूजन।

अनुवाद

प्राचीनकाल में जरासंध (कंस का ससुर) जैसे राजाओं ने वैदिक अनुष्ठानों का कड़ाई से पालन किया और इस तरह विष्णु की पूजा की।

तात्पर्य

इन श्लोकों में चैतन्य-चरितामृत के लेखक कृष्णदास कविराज गोस्वामी पंचतत्त्व की पूजा की महत्ता पर अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक बल दे रहे हैं। यदि कोई गौरसुन्दर या कृष्ण का भक्त बन जाता है, किन्तु पंचतत्त्व (श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादिगौरभक्तवृन्द) को महत्त्व नहीं देता, तो उसके कार्यकलाप अपराध माने जाते हैं, अथवा श्रील रूप गोस्वामी के शब्दों में उन्हें उत्पात कहा जायेगा। अतएव मनुष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण या गौरसुन्दर का भक्त बनने के पूर्व पंचतत्त्व को सम्मान देने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

कृष्ण नाहि माने, ताते दैत्य करि’ मानि ।

चैतन्य ना मानिले तैछे दैत्य तारे जानि ॥9॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; नाहि-नहीं; माने–स्वीकार करते; ताते–अतः; दैत्य-असुर; करि' मानि–हम स्वीकार करते हैं; चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; ना–बिना; मानिले-स्वीकार किये; तैछे-उसी प्रकार; दैत्य-असुर; तारे-उसको; जानि–हम जानते हैं।

अनुवाद

जो कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नहीं स्वीकार करता, वह निश्चय ही असुर है। इसी तरह जो श्री चैतन्य महाप्रभु को उन्हीं भगवान् कृष्ण के रूप में नहीं स्वीकार करता, उसे भी असुर ही समझना चाहिए।

तात्पर्य

प्राचीनकाल में जरासंध जैसे राजा हुए हैं, जो वैदिक अनुष्ठानों का पालन कठोरता से करते थे, दान देते थे, कुशल क्षत्रियों जैसा कार्य करते थे, समस्त क्षत्रिय गुणों से सम्पन्न थे और ब्राह्मण-संस्कृति के प्रति भी आज्ञाकारी थे, किन्तु कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार नहीं करते थे। जरासंध ने कृष्ण पर कई बार आक्रमण किया, किन्तु हर बार निस्सन्देह, वह पराजित होता रहा। अतः जरासन्ध जैसा कोई भी व्यक्ति, जो वैदिक अनुष्ठानों का तो पालन करता हो, किन्तु कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार न करता हो, उसे असुर समझा जाना चाहिए। इसी तरह जो व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु को साक्षात् कृष्ण नहीं स्वीकार करता, वह भी असुर है। प्रामाणिक शास्त्रों का यही निष्कर्ष है। अतएव कृष्ण-भक्ति बिना गौरसुन्दर की तथाकथित भक्ति और गौरसुन्दर की भक्ति के बिना कृष्ण की तथाकथित भक्ति, ये दोनों भक्ति-विहीन कार्यकलाप हैं। जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत के पथ पर सफल होना चाहता है, उसे गौरसुन्दर तथा कृष्ण दोनों के

व्यक्तित्व का पूरा ज्ञान होना चाहिए। गौरसुन्दर के व्यक्तित्व को जानने का अर्थ है श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादिगौरभक्तवृन्द को जानना। चैतन्य- चरितामृत के लेखक महापुरुषों के अनुगामी होने के कारण कृष्णभावनामृत में सिद्धि-लाभ के लिए इस सिद्धान्त पर बल दे रहे हैं।

मोरे ना मानिले सब लोक हबे नाश ।

इथि लागि' कृपार्द्र प्रभु करिल सन्न्यास ॥10॥

मोरे-मुझे; ना–बिना; मानिले स्वीकार किये; सब-सब; लोक-सामान्य जन; हबे-हो जायेगा; नाश-नाश; इथि-इसके लिए; लागि'–के कारण; कृपा-आर्द्र-कृपालु; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; करिल-स्वीकार किया; सन्न्यास-संन्यास आश्रम।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने विचार किया, "जब तक लोग मुझे स्वीकार नहीं करेंगे, वे विनष्ट हो जायेंगे।" इसलिए कृपालु महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण किया।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (12.3.51) में कहा गया है-कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्त-सङ्गः परं व्रजेत्–"हरे कृष्ण मन्त्र या कृष्ण-नाम का कीर्तन करने मात्र से ही मनुष्य मुक्त हो जाता है और अपने घर, भगवधाम वापस चला जाता है। यह कृष्णभावना चैतन्य महाप्रभु की कृपा से ही प्राप्त की जानी चाहिए। जब तक कोई श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके पार्षदों को सफलता के एकमात्र साधन नहीं स्वीकार करता, तब तक उसे पूर्ण कृष्णभावनामृत की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी विचार से महाप्रभु

ने संन्यास स्वीकार किया, क्योंकि तभी लोग उनका सम्मान करेंगे और शीघ्र ही कृष्णभावनामृत के स्तर तक उठ सकेंगे। चूँकि चैतन्य महाप्रभु, जो कि स्वयं कृष्ण हैं, उन्होंने कृष्णभावनामृत आन्दोलन का सूत्रपात किया, अतएव उनकी कृपा के बिना कोई भी व्यक्ति कृष्णभावनामृत के दिव्य स्तर को प्राप्त नहीं कर सकता।

सन्यासि-बुद्ध्ये मोरे करिबे नमस्कार ।

तथापि खण्डिबे दुःख, पाइबे निस्तार ॥11॥

सन्यासि-बुद्ध्ये-संन्यासी के दृष्टिकोण से; मोरे-मुझे; करिबे–वे करेंगे; नमस्कार-नमस्कार करेंगे; तथापि तथापि, अतः; खण्डिबे-घट जायेगा; दुःख–दुःख; पाइबे-पायेंगे; निस्तार–छुटकारा।

अनुवाद

"यदि कोई व्यक्ति मुझे एक सामान्य संन्यासी मानकर भी नमस्कार करता है, तो उसके सांसारिक दुःख घट जायेंगे और अन्ततः उसे मुक्ति प्राप्त होगी।"

तात्पर्य

कृष्ण इतने दयालु हैं कि वे सदैव बद्धजीवों को भौतिक स्तर से मुक्त करने के विषय में ही सोचा करते हैं। इसीलिए कृष्ण अवतरित होते हैं, जैसाकि भगवद्गीता (4.7) में स्पष्ट उल्लेख है :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

“हे भरतवंशी, जब जब और जहाँ जहाँ धर्म की हानि होती है, और अधर्म की प्रधानता होने लगती है, तब तब मैं अवतरित होता हूँ।” कृष्ण सदा ही जीवों की कई प्रकार से रक्षा करते हैं। वे स्वयं आते हैं, वे अपने अन्तरंग भक्तों को भेजते हैं और अपने पीछे भगवद्गीता जैसे शास्त्र छोड़कर जाते हैं। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए कि लोग माया के बन्धन से मुक्त होने के आशीर्वाद का लाभ उठा सकें। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसीलिए संन्यास ग्रहण किया, जिससे उन्हें सामान्य संन्यासी मानने वाला कोई मूर्ख भी उनका सम्मान करे और उसका भौतिक दुःख घट सके और वह माया के बन्धन से छूट सके। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती बताते हैं कि श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु श्री राधा और कृष्ण के संयुक्त रूप हैं (महाप्रभु श्रीचैतन्य, राधा-कृष्ण-नहे अन्य)। अतएव जब मूर्खा ने महाप्रभु को सामान्य व्यक्ति समझकर उनका अनादर करना शुरू किया, तो कृपालु महाप्रभु ने इन अपराधियों का उद्धार करने के लिए संन्यास ले लिया, जिससे ये लोग उन्हें संन्यासी मानकर उनको नमस्कार करें। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सामान्य लोगों पर अपनी महान् कृपा प्रदान करने के लिए संन्यास ग्रहण किया, जो उन्हें साक्षात् राधा-कृष्ण रूप में नहीं सराह सकते।

हेन कृपामय चैतन्य ना भजे येइ जन ।

सर्वोत्तम हइलेओ तारे असुरे गणन ॥12॥

हेन-ऐसे; कृपामय–कृपालु; चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; ना-नहीं; भजे–पूजा करता; येइ-जो; जन-व्यक्ति; सर्वोत्तम-सर्वोत्तम; हइलेओ-उसके ऐसा होने के बावजूद; तारे-उसको; असुरे-असुरों के बीच; गणन-गणना।

अनुवाद

जो व्यक्ति दयालु भगवान्, चैतन्य महाप्रभु का सम्मान नहीं करता या उनकी पूजा नहीं करता, उसे असुर समझना चाहिए, भले ही उसे मानव समाज में कितना ही प्रतिष्ठित क्यों न माना जाता हो।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाराज कहते हैं, "हे जीवों, तुम कृष्णभावनामृत को अपनाओ। यही श्री चैतन्य महाप्रभु का सन्देश है।" चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिक्षाष्टक में कृष्णभावनामृत के यही दर्शन का उपदेश दिया है और कहा है- इहा हैते सर्व सिद्धि हइबे तोबार–"हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने से मनुष्य को जीवन की सारी सिद्धियाँ मिल जायेंगी।" अतएव जो उनका सम्मान नहीं करता या इन समस्त करुणामय भावों के बावजूद उनकी कृपा को नहीं समझ सकता, वह असुर है या भगवान् विष्णु की प्रामाणिक भक्ति का विरोधी है, भले ही उसे मानव समाज में अत्यन्त उच्च स्थान क्यों न प्राप्त हो। असुर शब्द ऐसे व्यक्ति का द्योतक है, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की भक्ति का विरोध करता है। यह ध्यान देने की बात है कि जब तक मनुष्य श्री चैतन्य महाप्रभु की आराधना नहीं करता, तब तक कृष्ण-भक्त बनना व्यर्थ है और जब तक मनुष्य कृष्ण की पूजा नहीं करता, तब तक श्री चैतन्य महाप्रभु का भक्त बनना भी व्यर्थ है। ऐसी भक्ति को कलियुगी भक्ति मानना चाहिए। इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि नास्तिक स्मार्त या पाँच प्रकार के देवों के पूजक थोड़ी-सी भौतिक सफलता के लिए भगवान् विष्णु की पूजा तो करते हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति कुछ सम्मान प्रदर्शित नहीं करते। ऐसे लोग उन्हें सामान्य व्यक्ति मानते हुए गौरसुन्दर तथा श्रीकृष्ण में भेदभाव बरतते हैं। ऐसी भावना भी आसुरी है और आचार्यों के निष्कर्ष के विरुद्ध है। ऐसा निष्कर्ष कलियुग का परिणाम है।

अतएव पुनः कहों ऊर्ध्व-बाहु हञा ।

चैतन्य-नित्यानन्द भज कुतर्क छाड़िया ॥13॥

अतएव–अतएव; पुनः–फिर; कहों-मैं कहता हूँ; ऊर्ध्व-उठाकर; बाहु–भुजाएँ; हञा–करके; चैतन्यश्री चैतन्य महाप्रभु; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; भज–पूजा करो; कुतर्क-व्यर्थ बातें; छाड़िया–छोड़कर।

अनुवाद

इसलिए मैं अपनी भुजाएँ उठाकर फिर कहता हूँ कि हे मित्रों, झूठे तर्कों को छोड़कर श्री चैतन्य तथा नित्यानन्द की पूजा करो!

तात्पर्य

चूँकि यदि कोई व्यक्ति कृष्ण-भक्ति करता है, किन्तु श्रीकृष्ण चैतन्य तथा नित्यानन्द प्रभु को नहीं समझता, तो वह अपना समय व्यर्थ गॅवाएगा। इसलिए कृष्णदास कविराज गोस्वामी हर एक से प्रार्थना करते हैं कि वे श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु और पंचतत्त्व की पूजा करें। वे हर एक को विश्वास दिलाते हैं कि जो भी व्यक्ति ऐसा करेगा, वह कृष्णभावनामृत में अवश्य सफल होगा।

यदि वा तार्किक कहे,—तर्क से प्रमाण ।

तर्क-शास्त्रे सिद्ध येइ, सेइ सेव्यमान ॥14॥

यदि-यदि; वा–अथवा; तार्किक तर्क-वितर्क करने वाला; कहे-कहता है; तर्क-तर्क; से-वह; प्रमाण-प्रमाण; तर्क-शास्त्रे-तर्क-शास्त्र में; सिद्ध-सिद्ध करना; येइ-जो कुछ; सेइ-वह; सेव्यमान-पूज्य हैं।

अनुवाद

तर्कशास्त्री कहते हैं, "जब तक तर्क द्वारा ज्ञान प्राप्त न कर लिया जाए, तब तक भला कोई आराध्य देव के बारे में निश्चय कैसे कर सकता है?"

श्री-कृष्ण-चैतन्य-दया करह विचार।

विचार करिते चित्ते पाबे चमत्कार॥ 15॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु; दया-उनकी दया; करह-करो; विचार-विचार; विचार-जब ऐसा विचार; करिले-आप करेंगे; चित्ते-अपने मन में; पाबे-आप पायेंगे; चमत्कार–चमत्कार।

अनुवाद

यदि आप सचमुच तर्क में रुचि रखते हैं, तो इसका प्रयोग श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा पर कीजिये। यदि आप ऐसा करेंगे, तो पायेंगे कि यह अत्यन्त अद्भुत है।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की टीका है कि सामान्य लोग जीवन के बारे में अपनी संकुचित विचारधारा के कारण अनेक प्रकार के मानवोपयोगी कार्य खोज निकालते हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा चलाये जाने वाले मानव कल्याण कार्य भिन्न हैं। उन तर्कशास्त्रियों के लिए जो तर्कसम्मत तथ्य को ही स्वीकार करना चाहते हैं, यह भी एक तथ्य है कि तर्क के बिना परम सत्य को स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं उठता। दुर्भाग्यवश जब ऐसे तर्कशास्त्री श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा के बिना ऐसे मार्ग पर प्रवृत्त होते हैं, तो वे तर्क के स्तर पर ही रह जाते हैं और आध्यात्मिक जीवन में प्रगति नहीं कर पाते। किन्तु यदि कोई तर्कशास्त्री इतना बुद्धिमान होता है कि अपने तर्कों

का प्रयोग मूल आध्यात्मिक सार को सूक्ष्म रूप से समझने के लिए करता है, तो उसकी समझ में आयेगा कि भौतिक तर्क से प्राप्त खोखले ज्ञान से वह उन परम सत्य को नहीं जान सकता, जो अपूर्ण इन्द्रियों की पहुँच के परे हैं। इसीलिए महाभारत में कहा गया है-अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत् (महाभारत, भीष्म पर्व 5.22)। जो सांसारिक प्राणियों की कल्पना या चिन्तनशक्ति के परे है, भला उस तक केवल तर्क-वितर्क द्वारा कैसे पहुँचा जा सकता है? तर्क की आध्यात्मिक शक्ति बहुत कम होती है और आध्यात्मिक ज्ञान में इसका प्रयोग करने पर यह सदैव अपूर्ण रहती है। सांसारिक तर्क प्रस्तुत करने पर मनुष्य प्रायः परम सत्य के विषय में गलत निष्कर्ष पर पहुँचता है और ऐसे निष्कर्षों के फलस्वरूप मनुष्य सियार जैसी योनि को प्राप्त हो सकता है।

इतना होने पर भी जो लोग तर्क और न्याय द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्त को समझने के इच्छुक हैं, उनका स्वागत है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी उन्हें इस प्रकार सम्बोधित करते हैं, "आप श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा की अग्नि-परीक्षा कीजिये और यदि आप सचमुच तर्कशास्त्री हैं, तो आप इस ठीक निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि चैतन्य महाप्रभु से अधिक कृपालु अन्य कोई नहीं है।" तर्कशास्त्री अन्य मानव कल्याणकारी कार्यों की तुलना चैतन्य महाप्रभु के कृपामय कार्यों से भले ही कर लें। यदि उनका निर्णय निष्पक्ष है, तो वे यह समझ जायेंगे कि अन्य कोई मानवतावादी कार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यों से बढ़कर नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति शरीर के आधार पर जन-कल्याण के कार्यों में लगा हुआ है, किन्तु भगवद्गीता (2.18) से हमें पता चलता है, अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिण:-"भौतिक शरीर आखिर नष्ट होने वाला है, जबकि आत्मा शाश्वत है।" श्री चैतन्य महाप्रभु के परोपकारी कार्य शाश्वत आत्मा के सम्बन्ध में किये जाते हैं। किन्तु यदि कोई शरीर को लाभ पहुँचाना चाहता है, तो वह नष्ट हो जायेगा और मनुष्य को अपने वर्तमान कार्यों के अनुसार दूसरा शरीर ग्रहण करना पड़ेगा। अतएव

जो व्यक्ति देहान्तरण के इस विज्ञान को नहीं समझता और शरीर को ही सर्वेसर्वा मानता है, उसकी बुद्धि अधिक उन्नत नहीं होती। श्री चैतन्य महाप्रभु ने शरीर की आवश्यकताओं की उपेक्षा किये बिना आध्यात्मिक प्रगति प्रदान की, जिससे मानवता का शुद्धीकरण हो सके। अतएव यदि तर्कशास्त्री निष्पक्ष निर्णय करें, तो वे पायेंगे कि श्री चैतन्य महाप्रभु महावदान्यावतार अर्थात् सर्वाधिक उदार अवतार हैं। यहाँ तक कि वे कृष्ण से भी अधिक उदार हैं। भगवान् कृष्ण की यह अपेक्षा थी कि लोग उनकी शरण में आएँ, किन्तु उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के समान भगवत्प्रेम का खुलकर वितरण नहीं किया। इसीलिए श्रील रूप गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को इन शब्दों में नमस्कार किया है- नमो महावदान्याय कृष्णप्रेम-प्रदाय ते। कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः। भगवान् कृष्ण ने भगवद्गीता प्रदान की, जिससे कृष्ण यथारूप समझे जा सकते हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु, जो साक्षात् कृष्ण ही हैं, उन्होंने लोगों को बिना किसी भेदभाव के कृष्ण-प्रेम प्रदान किया।

बहु जन्म करे यदि श्रवण, कीर्तन ।

तबु त' ना पाय कृष्ण-पदे प्रेम-धन ॥ 16 ॥

बहु-बहुत; जन्म-जन्म; करे-करता है; यदि-यदि; श्रवण-श्रवण, कीर्तन-कीर्तन; तबु तभी, फिर भी; त'–के बावजूद; ना-नहीं; पाय-पाता; कृष्ण-पदे-कृष्ण के चरणकमलों में, प्रेम-धन-भगवत्प्रेम।

अनुवाद

यदि कोई हरे कृष्ण महामन्त्र के जप में दस अपराध करता रहता है, तो वह चाहे अनेक जन्मों तक पवित्र नाम का जप करने का प्रयास क्यों न करे, उसे भगवत्प्रेम प्राप्त नहीं हो सकेगा, जो इस जप का चरम लक्ष्य है।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु को स्वीकार किये बिना कोई व्यक्ति चाहे अनेकानेक वर्षों तक हरे कृष्ण मन्त्र का जप क्यों न करता रहे, उसे भक्ति-पद प्राप्त होने की कोई सम्भावना नहीं है। मनुष्य को चाहिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा शिक्षाष्टक (3) में दिये गये आदेश का दृढ़ता से पालन करे :

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

"मनुष्य को चाहिए कि अपने आपको सड़क पर पड़े तिनके से भी तुच्छ समझते हुए विनीत भाव से भगवन्नाम का कीर्तन करे। मनुष्य को वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु होना चाहिए, मिथ्या प्रतिष्ठा की भावना से पूर्णतया रहित होना चाहिए और दूसरों को सम्मान देने के लिए तत्पर रहना चाहिए। ऐसी चेतना में मनुष्य भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन निरन्तर कर सकता है।" जो दस प्रकार के अपराधों से मुक्त होकर इस शिक्षा का पालन करता है, वह कृष्णभावनामृत में सफल होता है और अन्तत: भगवद्भक्ति प्राप्त करता है।

मनुष्य को यह जान लेना चाहिए कि भगवन्नाम तथा स्वयं भगवान् अभिन्न हैं। पवित्र नाम के कीर्तन में अपराधरहित हुए बिना इस निष्कर्ष तक नहीं पहुँचा जा सकता। हम अपनी भौतिक दृष्टि के अनुसार नाम तथा वस्तु में अन्तर देखते हैं, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में परम तत्त्व सदैव पूर्ण होता है; परम तत्त्व के नाम, रूप, गुण तथा लीलाएँ स्वयं परम तत्त्व के समान होते हैं। इस तरह यदि कोई अपने आपको पवित्र नाम का नित्य दास मानता है और इसी भाव से पवित्र नाम का वितरण सारे संसार में करता है, तो उसे भगवान् का नित्य दास माना जाता है। जो इस भाव से,

अपराधरहित होकर कीर्तन करता है, वह निश्चय ही समझ जाता है कि भगवान् का पवित्र नाम तथा भगवान् अभिन्न हैं। पवित्र नाम का संग करना और पवित्र नाम का कीर्तन करना भगवान् से प्रत्यक्ष संग करने के बराबर है। भक्तिरसामृतसिन्धु में स्पष्ट कहा गया है-सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः। जब मनुष्य पवित्र नाम की सेवा में लगता है, तो पवित्र नाम प्रकट होता है। विनीत भाव में ऐसी सेवा जीभ से आरम्भ होती है। सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ-मनुष्य को चाहिए कि अपनी जीभ को पवित्र नाम की सेवा में लगाये। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी सिद्धान्त पर आधारित है। हम कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सारे सदस्यों को पवित्र नाम की सेवा में लगाने का प्रयत्न करते हैं। पवित्र नाम तथा कृष्ण अभिन्न हैं, इसलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अनुयायी न केवल निरपराध भाव से भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करते हैं, अपितु वे अपनी जीभों को कोई ऐसी वस्तु नहीं खाने देते, जो पहले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को अर्पित न हुई हो। भगवान् कहते हैं :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

“यदि कोई प्रेम तथा भक्तिपूर्वक मुझे एक पत्ती, फूल, फल या जल अर्पित करता है, तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ। (भगवद्गीता 9.26) इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के विश्वभर में अनेक मन्दिर हैं और प्रत्येक मन्दिर में भगवान् को भोजन अर्पित किया जाता है। भगवान् की इच्छापूर्ति के लिए भक्तगण निरपराध भाव से भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करते हैं और वे ऐसी कोई वस्तु नहीं खाते, जो पहले भगवान् को अर्पित न की गई हो। भक्ति में जीभ के कार्य हैं-हरे कृष्ण महामन्त्र का उच्चारण करना और भगवान् को अर्पित प्रसाद खाना।

ज्ञानतः सु-लभा मुक्तिभुक्तिर्यज्ञादि-पुण्यतः ।

सेयं साधन-साहस्त्रैर्हरि-भक्तिः सु-दुर्लभा ॥17॥

ज्ञानतः-ज्ञान के अनुशीलन से; सु-लभा–आसानी से प्राप्य; मुक्तिः–मुक्ति; भुक्तिः–इन्द्रिय-भोग; यज्ञ-आदि-यज्ञ आदि; पुण्यतः-पुण्य-कर्म करने से; सा-वह; इयम्-यह; साधन-साहस्त्रैः-हजारों यज्ञ करना; हरि-भक्तिः–हरि भक्ति; सु-दुर्लभा-अत्यन्त दुर्लभ।

अनुवाद

"दार्शनिक ज्ञान के अनुशीलन से मनुष्य अपनी आध्यात्मिक स्थिति को समझ सकता है और इस तरह मुक्ति पा सकता है; यज्ञ तथा पुण्यकर्मों को सम्पन्न करके मनुष्य उच्चतर ग्रहमण्डल में इन्द्रियतृप्ति प्राप्त कर सकता है, किन्तु भगवान् की भक्तिमयी सेवा इतनी दुर्लभ है कि ऐसे हजारों यज्ञ करके भी यह प्राप्त नहीं की जा सकती।"

तात्पर्य

प्रह्लाद महाराज उपदेश देते हैं :

मतिर्न कृष्णे परत: स्वतो वा

मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्

(भागवत 7.5.30)

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घि

स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।

महीयसां पादरजोऽभिषेकं

निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥

(भागवत 7.5.32)

इन श्लोकों की आपस में चर्चा की जानी चाहिए। इनका तात्पर्य यह है कि औपचारिक वैदिक कर्मकाण्ड करने से किसी को कृष्णभक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। मनुष्य को शुद्ध भक्त की शरण लेनी आवश्यक है। नरोत्तम दास ठाकुर गाते हैं- छाड़िया वैष्णव-सेवा निस्तार पायेछे केबा–"शुद्ध वैष्णव की सेवा किये बिना भला किसकी उन्नति हुई है?" यह प्रह्लाद महाराज का कथन है कि जब तक शुद्ध वैष्णव की चरण-धूलि स्वीकार नहीं की जाती, तब तक भक्ति प्राप्त करने की कोई सम्भावना नहीं है। यही रहस्य है। उपर्युक्त तन्त्रवचन, जो कि भक्तिरसामृतसिंधु से उद्धृत है, इस सम्बन्ध में हमारा आदर्श मार्गदर्शक है।

कृष्ण यदि छुटे भक्ते भुक्ति मुक्ति दिया ।

कभु प्रेम-भक्ति ना देन राखेन लुकाइया ॥18॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यदि-यदि; छुटे-छूट जाते हैं; भक्ते-भक्त को; भुक्ति-भौतिक भोग; मुक्ति-मोक्ष; दिया-देकर; कभु-कभी भी; प्रेम-भक्ति-प्रेम भक्ति; ना-नहीं; देन-देते; राखेन-रखते हैं; लुकाइया-छुपाकर।

अनुवाद

यदि भक्त भगवान् से भौतिक इन्द्रियतृप्ति या मुक्ति चाहता है, तो कृष्ण उसे तुरन्त दे देते हैं, किन्तु शुद्ध भक्ति को वे छिपाकर रखते हैं।

राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां

दैवं प्रियः कुल-पतिः क्व च किङ्करो वः ।

अस्त्वेवमङ्ग भगवान्भजतां मुकुन्दो

मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्ति-योगम् ॥19॥

राजन्हे राजन्; पतिः-स्वामी; गुरुः–गुरु; अलम्-निश्चित रूप से; भवताम्-आप का; यदूनाम्-यदुओं का; दैवम्-भगवान्; प्रियः-अत्यन्त प्रिय; कुल-पतिः–कुल के स्वामी, कुल का मुखिया; क्व-कभी-कभी; च-भी; किङ्करः-दास; वः-आप; अस्तु-हैं; एवम्-इस प्रकार; अङ्ग–फिर भी; भगवान्-भगवान्; भजताम्-वे जो भक्ति में लगे हैं; मुकुन्दः-भगवान् कृष्ण; मुक्तिम्-मुक्ति; ददाति देते हैं; कहिंचित्-कभी-कभी; स्म निश्चित रूप से; न-नहीं; भक्ति-योगम्-भक्ति।

अनुवाद

[महर्षि नारद ने कहा] "हे महाराज युधिष्ठिर, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण आपकी सहायता के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। वे आपके स्वामी, गुरु, ईश्वर, प्रिय मित्र तथा आपके परिवार के मुखिया हैं। फिर भी वे कभी-कभी आपके दास या आज्ञापालक का कार्य करना स्वीकार कर लेते हैं। आप अत्यन्त भाग्यशाली हैं, क्योंकि यह सम्बन्ध केवल भक्तियोग द्वारा ही सम्भव हो पाता है। भगवान् मुक्ति तो सरलता से दे सकते हैं, किन्तु वे किसी को भक्तियोग आसानी से नहीं प्रदान करते, क्योंकि वे उस प्रक्रिया से भक्त के साथ बँध जाते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (5.6.18) से लिया गया है। शुकदेव गोस्वामी ने ऋषभदेव के चरित्र का वर्णन करते समय भक्तियोग तथा मुक्ति में अन्तर बताने के लिए इस श्लोक को कहा था। यदुओं

तथा पांडवों के सम्बन्धों के कारण ही कभी कृष्ण उनके स्वामी की तरह कार्य करते थे, कभी उनके सलाहकार, कभी मित्र, कभी परिवार के मुखिया और कभी उनके सेवक की तरह भी कार्य करते थे। एक बार कृष्ण युधिष्ठिर द्वारा शान्ति समझौते के विषय में लिखा गया पत्र दुर्योधन के पास लेकर गये थे। इसी प्रकार वे अर्जुन के सारथी भी बने थे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भक्तियोग में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् और भक्त के बीच एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यह सम्बन्ध दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस के रूप में स्थापित होता है। यदि भक्त मात्र मुक्ति चाहता है, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उसे यह सहज ही दे देते हैं, जैसाकि बिल्वमंगल ठाकुर ने पुष्टि की है। मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान्–भक्त के लिए मुक्ति उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि वह तो किसी भी रूप में सेवा करने के लिए सदैव उसके द्वार पर प्रतीक्षा करती रहती है। अतएव भक्त को वृन्दावनवासियों के आचरण से आकृष्ट होना चाहिए, क्योंकि वे कृष्ण के साथ एक सम्बन्ध बनाए रहते हैं। वहाँ की भूमि, जल, गायें, वृक्ष तथा पुष्प शान्त रस में कृष्ण की सेवा करते हैं, कृष्ण के सेवक दास्य भाव में और कृष्ण के गोपमित्र सख्य भाव में उनकी सेवा करते हैं। इसी प्रकार ज्येष्ठ गोपियाँ तथा गोप, कृष्ण की सेवा माता, पिता, चाचा तथा अन्य सम्बन्धियों के रूप में करते हैं तथा तरुण गोपियाँ माधुर्य रस में कृष्ण की सेवा करती हैं।

भक्ति करते समय मनुष्य को स्वाभाविक रूप से इन दिव्य सम्बन्धों में से किसी एक में कृष्ण की सेवा करने में उन्मुख होना चाहिए। यही जीवन की असली सफलता है। भक्त के लिए मुक्ति पा लेना अधिक कठिन नहीं है। यहाँ तक कि जो कृष्ण से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाता, वह भी ब्रह्मतेज में तदाकार होकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है। यह सायुज्य मुक्ति कहलाती है। वैष्णवजन सायुज्य मुक्ति को कभी भी नहीं स्वीकार करते, यद्यपि वे मुक्ति के अन्य रूपों को–यथा सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य तथा सार्टि कभी-कभी को स्वीकार करते हैं। किन्तु शुद्ध भक्त किसी भी प्रकार

की मुक्ति स्वीकार नहीं करता। वह तो दिव्य सम्बन्ध में कृष्ण की सेवा ही करना चाहता है। यह आध्यात्मिक जीवन की पूर्ण अवस्था है। मायावादी दार्शनिक ब्रह्मतेज में समा जाना चाहते हैं, जबकि भक्तगण मुक्ति के इस पक्ष की सदैव अवहेलना करते हैं। श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती ठाकुर ने इस प्रकार की मुक्ति, जो कैवल्य (सर्वोपरि से एक होना) कहलाती है, उसके विषय में कहा है, कैवल्य नरकायते–"परमेश्वर से एक होना नरक जाने के समान ही है।" इसीलिए मायावादी दर्शन, जो ब्रह्म से एकाकार होना है, भक्त के लिए नरकतुल्य है। वह उसे कभी स्वीकार नहीं करता। मायावादी दार्शनिक यह नहीं जानते कि यदि वे ब्रह्मतेज में समा भी जाएँ, तो भी इससे उन्हें आखरी विश्राम नहीं मिलेगा। आत्मा कभी भी ब्रह्मतेज में निष्क्रिय नहीं रह सकता, कुछ काल के बाद वह सक्रिय होना ही चाहेगा। किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को न जानने के कारण उसमें आध्यात्मिक सक्रियता नहीं रहती, अतएव और अधिक क्रियाशीलता के लिए उसे इस भौतिक जगत् में गिरना ही पड़ता है। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (10.2.32) में इस प्रकार हुई है :

आरुह्य कृष्छेण परं पदं ततः ।

पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घयः ।

चूँकि मायावादी दार्शनिकों को भगवान् की दिव्य सेवा के विषय में कोई जानकारी नहीं होती, अतएव भौतिक कार्यकलापों से मुक्ति पाने और ब्रह्मतेज में समा जाने के बाद भी उन्हें इस भौतिक जगत् में अस्पताल या स्कूल खोलने अथवा इसी तरह के लोकोपयोगी कार्य करने के लिए फिर से आना पड़ता है।

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य-अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

श्री पञ्चतत्व-श्री चैतन्य, प्रभु नित्यानन्द, श्री अद्वैत, गदाधर तथा श्रीवास सभी भगवत्प्रेम का सर्वत्र प्रचार करने के लिए मिल कर एकाकार हो गये हैं।

गोविन्दजी के मन्दिर में हजारों सेवक मणियों से अलंकृत स्वर्ण सिंहासन पर आसीन भगवान् की सेवा सदैव करते हैं।

मायापुर, पश्चिम बंगाल में प्रसाद वितरण।

1885 में श्रील ठाकुर भक्तिविनोद ने लिखा: "ओह, वह दिन कब आएगा जब भाग्यशाली अंग्रेज, फ्रेंच, रशियन, जर्मन और अमेरिकन लोग हाथों में ध्वज, मृदंग और करताल लेकर सड़कों और शहरों में कीर्तन करेंगे और बंगाली भक्तों के हाथों में हाथ मिलाएंगे। 1974 में, चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव दिन पर, कृष्णकृपामूर्ति ए.सी.भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के शिष्यों द्वारा श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की यह इच्छा पूरी हुई।

जब कृष्णदास कविराज ने श्री चैतन्य चरितामृत लिखने की अनुमति मांगने के लिए मदन-मोहन के विग्रह से प्रार्थना की, तब संमति प्रदर्शित करते हुए श्रीविग्रह के गले का हार खिसककर नीचे गिरा और पुजारी ने आदरपूर्वक वह हार कृष्णदास के गले में डाल दिया।

बेनापोल में हरे कृष्ण मन्त्र का जप करते हुए हरिदास ठाकुर की परीक्षा स्वयं मायादेवी ने ली।

हरिदास ठाकुर के निधन के पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु उनका शरीर लेकर भावविभोर।

चैतन्य महाप्रभु ने मुरारी गुप्त के घर में, जो चैतन्य वृक्ष के इक्कीसवीं शाखा हैं, अपना वराह रूप प्रकट किया।

श्री शचीमाता ने देखा कि, यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु बहुत दूर जगन्नाथ पुरी में थे, फिर भी उन्होंने अन्न खा लिया था।

श्री चैतन्य महाप्रभु, सनातन गोस्वामी को आँगन में आया हुआ देख कर, तेजी से उनके पास गये और उनका आलिंगन करने के बाद स्वयं भावविभोर हो गये।

शिखि माहिति ने स्वप्न में देखा कि चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर देखने गये हैं और वे वहाँ जगन्नाथ के शरीर में प्रवेश करके पुनः उससे निकल कर जगन्नाथ विग्रह का दर्शन कर रहे हैं।

जब सीता ठाकुराणी अपने साथ अनेक खाने की वस्तुएँ, वस्त्र तथा अन्य उपहार लेकर शचीदेवी के घर आई तो वे नवजात शिशु को देख कर चकित थी, क्योंकि उन्हें लगा कि यह शिशु, साक्षात् गोकुल का कृष्ण है, केवल रंग का अन्तर है।

शचीमाता ने महाप्रभु के हाथों से मिट्टी छीन ली और पूछा "इसे क्यों खा रहे हो?"

एक दिन अद्वैत आचार्य प्रभु ने चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे कृपा करके अपना वह विश्वरूप दिखलायें जिसे उन्होंने अर्जुन को दिखलाया था। महाप्रभु ने यह प्रस्ताव मान लिया।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने काजी को आश्वस्त किया कि वह सारे पापों से मुक्त है।

हेन प्रेम श्री-चैतन्य दिला यथा तथा ।

जगाइ माधाइ पर्यन्त—अन्येर का कथा ॥ 20॥

हेन-ऐसा; प्रेम-भगवत्-प्रेम; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; दिला–दिया; यथा-कहीं भी; तथा-हर जगह; जगाइ-जगाइ; माधाइ–माधाइ; पर्यन्त–उन तक को; अन्येर–दूसरों का; का-क्या कहा जाए; कथा-शब्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस कृष्ण-प्रेम को यत्र-तत्र, सर्वत्र, यहाँ तक कि जगाइ तथा माधाइ जैसे सर्वाधिक पतितों को भी मुक्तहस्त होकर प्रदान किया है। तो भला उन सबके विषय में क्या कहा जाए, जो पहले से पवित्र तथा उन्नत हैं?

तात्पर्य

मानव समाज के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दी गई भेंटों तथा अन्यों की भेंटों में अन्तर यह है कि तथाकथित परोपकारी और मानवीय कार्यकर्ताओं ने मानव समाज को शरीर से सम्बन्धित कुछ राहत दी है, जबकि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवत्प्रेम द्वारा भगवद्धाम वापस जाने के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन प्रदान करते हैं। यदि इन दोनों भेंटों की तुलना की जाए, तो जो व्यक्ति थोड़ा-सा भी गम्भीर होगा, वह श्री चैतन्य महाप्रभु को ही सर्वाधिक श्रेय प्रदान करेगा। इसीलिए कविराज गोस्वामी ने इस आशय के साथ ही कहा है :

श्रीकृष्णचेतन्य-दया करह विचार।

विचार करिले चित्ते पाबे चमत्कार॥

“यदि आप तर्क में सचमुच रुचि रखते हैं, तो कृपया उसका प्रयोग श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा पर कीजिये। यदि आप ऐसा करेंगे तो पायेंगे कि यह अतीव अद्भुत है।” (चैतन्य-चरितामृत, आदि 8.15)।

श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का कहना है :

दीन-हीन यत छिल, हरि-नामे उद्धारिल

तार साक्षी जगाइ माधाइ।

जगाइ तथा माधाइ दोनों भाई इस कलियुग के पापी लोगों के प्रतिनिधि हैं। वे समाज में अत्यन्त ऊत्पात मचाने वाले व्यक्ति थे, क्योंकि वे मांसभक्षक, शराबी, स्त्री-लंपट, धूर्त तथा चोर थे। फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका उद्धार किया, तो फिर गम्भीर, पवित्र, भक्त तथा विवेकवान व्यक्तियों के विषय में क्या कहना। भगवद्गीता भी पुष्टि करती है (किं पुनर्ब्रह्मणः पुण्या भक्ता राजर्षयः तथा) कि ब्राह्मण तुल्य सुयोग्य भक्तों और राजर्षियों के लिए तो कहना ही क्या ? जो भी व्यक्ति शुद्ध भक्त की संगति से कृष्णभावनाभावित हो जाता है, वह भगवद्धाम वापस जाने का पात्र बन जाता है। भगवद्गीता (9.32) में भगवान् घोषणा करते हैं :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम्॥

“हे पृथापुत्र, जो मेरी शरण में आ जाते हैं, वे भले ही निम्न कुल में जन्मे हों-स्त्रियाँ, वैश्य तथा शूद्र ही क्यों न हों-वे परम गति को प्राप्त कर सकते हैं।”

श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगाइ तथा माधाइ नामक दो पतित भाइयों का उद्धार किया, किन्तु आज के समय में पूरी दुनिया जगाइयों तथा माधाइयों-अर्थात् व्यभिचारियों, मांसभक्षकों, जुआरियों, चोरों तथा अन्य धूर्तों से भरी हुई है, जो समाज में सभी तरह के उत्पात करते हैं। ऐसे व्यक्तियों के कार्य अब सामान्य व्यवहार जैसे हो चुके हैं। शराबी, व्यभिचारी, मांसाहारी, चोर या ठग होना अब बुरा नहीं माना जाता, क्योंकि मानव समाज ऐसी बातों को आत्मसात् कर चुका है। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं होता कि ऐसे व्यक्तियों के दुर्गुण मानव-समाज को माया के चंगुल से छुड़ाने में सहायता करेंगे। उल्टे, ये लोग मानवता को भौतिक प्रकृति की कठोर प्रतिक्रियाओं में फँसा देंगे। मनुष्य के सारे कार्यकलाप भौतिक प्रकृति के गुणों के प्रभाव में सम्पन्न होते हैं (प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः)। चूँकि लोग अब तमोगुण तथा कुछ हद तक रजोगुण के प्रभाव में कार्य करते हैं और उनमें जरा सा भी सत्त्वगुण नहीं पाया जाता, इसीलिए वे अधिकाधिक लोभी तथा कामी होते जा रहे हैं, क्योंकि इन गुणों की संगति करने का यही परिणाम होता है। तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये–"भौतिक प्रकृति के इन दो निम्न गुणों का संग करने से मनुष्य कामी तथा लोभी बन जाता है।" (भागवत 1.2.19) वस्तुतः आधुनिक मानव-समाज में हर व्यक्ति लोभी तथा कामी है, अतएव उसके उद्धार का एकमात्र साधन है श्री चैतन्य महाप्रभु का संकीर्तन आन्दोलन, जो सारे जगाइयों तथा माधाइयों को सत्त्वगुण के सर्वोच्च पद अर्थात् ब्राह्मण संस्कृति तक ले जा सकता है।

श्रीमद्भागवत (1.2.18-19) का वचन है :

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ।

भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥

तदा रजस्तमो भावाः काम लोभादयश्च ये ।

चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥

मानव-समाज में फैली अस्तव्यस्तता को देखते हुए यदि कोई सचमुच सुख-शान्ति चाहता है, तो उसे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सम्मिलित होना चाहिए और निरन्तर भागवत-धर्म में लग जाना चाहिए। इससे सारा अज्ञान तथा विषयवासना दूर हो जाते हैं और इनके दूर हो जाने पर मनुष्य को लोभ तथा काम से भी छुटकारा मिल जाता है। लोभ तथा काम से मुक्त होने पर मनुष्य में ब्राह्मण के गुण आ जाते हैं, और जब ब्राह्मण के गुणों वाला व्यक्ति और प्रगति करता है, तब वह वैष्णव-पद को प्राप्त कर लेता है। इसी वैष्णव पद पर पहुँचकर मनुष्य अपने सुप्त भगवत्प्रेम को जागृत कर सकता है और ऐसा करते ही उसका जीवन सफल हो जाता है।

आज के मानव-समाज में विशेष रूप से तमोगुण ही पोषित हो रहा है, यद्यपि रजोगुण के भी कुछ लक्षण विद्यमान हैं। काम तथा लोभ से भरे होने के कारण संसार की सारी जनसंख्या में अधिकांश लोग शूद्र हैं तथा कुछ वैश्य हैं और धीरे-धीरे वे केवल शूद्र बनते जा रहे हैं। साम्यवाद शूद्रों का आन्दोलन है और पूंजीवाद वैश्यों के लिए है। शूद्रों तथा वैश्यों की आपसी लड़ाई से समाज की पतित अवस्था के कारण धीरे-धीरे साम्यवादी विजयी होंगे और ऐसा होते ही समाज में जो कुछ बचा है, वह भी विनष्ट हो जायेगा। यदि साम्यवादी मनोवृत्ति का कोई मुकाबला कर सकता है, तो वह कृष्णभावनामृत आन्दोलन है, जो साम्यवादियों में भी साम्यवादी समाज की असली चेतना जगा सकता है। साम्यवादी विचारधारा के अनुसार सरकार को ही वस्तु का मालिक होना चाहिए। लेकिन कृष्णभावनामृत आन्दोलन इस धारणा को विस्तार देते हुए ईश्वर को प्रत्येक वस्तु के स्वामी के रूप में स्वीकार करता है। लोग इसे नहीं समझ सकते, क्योंकि उन्हें ईश्वर की कोई धारणा नहीं है। किन्तु कृष्णभावनामृत आन्दोलन उन्हें ईश्वर को समझने तथा यह समझने में सहायक बन सकता है कि हर वस्तु ईश्वर की है। चूँकि हर वस्तु ईश्वर की सम्पत्ति है और सारे ही जीव-मनुष्य ही नहीं अपितु

पशु, पक्षी, वृक्ष इत्यादि भी ईश्वर की सन्तानें हैं, अतएव हर एक को भगवत् चेतना के साथ ईश्वर पर आश्रित रहकर जीने का अधिकार है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही सार-तत्त्व है।

स्वतन्त्र ईश्वर प्रेम-निगूढ़-भाण्डार।

बिलाइल यारे तारे, ना कैल विचार ॥ 21॥

स्वतन्त्र–पूर्णतः स्वतंत्र; ईश्वर–ईश्वर; प्रेम-प्रेम; निगूढ़-अत्यन्त गुप्त; भाण्डार-भण्डार; बिलाइल-वितरित किया; यारे-किसी को भी; तारे-प्रत्येक को; ना-नहीं; कैल-किया; विचार-विचार।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। अतएव वे अत्यन्त गुह्य रूप से संचित वरदान भगवत्प्रेम को बिना भेद-भाव के हर एक को वितरित कर सकते हैं।

तात्पर्य

भगवान् चैतन्य के आन्दोलन का यही लाभ है। यदि कोई किसी प्रकार से भी हरे कृष्ण आन्दोलन के सम्पर्क में आता है, तो चाहे वह शूद्र हो, वैश्य हो, या जगाइ, माधाइ या इनसे भी नीच हो, आध्यात्मिक चेतना में उसकी प्रगति होती है और उसमें तुरन्त ही भगवत्प्रेम विकसित हो जाता है। अब हमें इसका वास्तविक अनुभव है कि सारे विश्व में यह आन्दोलन एकमात्र हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन से अनेक ऐसे लोगों को भगवत्प्रेमी बना रहा है। वस्तुतः श्री चैतन्य महाप्रभु सारे विश्व के गुरु के रूप में प्रकट हुए हैं। वे अपराधियों तथा निर्दोषों में भेदभाव नहीं करते। कृष्ण-प्रेम-प्रदाय ते– वे हर एक को मुक्तहस्त से भगवत्प्रेम प्रदान करते हैं। इसका वास्तविक अनुभव किया जा सकता है, जैसाकि अगले श्लोक में बतलाया गया है।

अद्यापिह देख चैतन्य-नाम येइ लय।

कृष्ण-प्रेमे पुलकाश्रु-विह्वल से हय ॥22॥

अद्यापिह-आज तक भी; देख-आप देखते हैं; चैतन्य-नाम-श्री चैतन्य महाप्रभु का नाम; येइ-कोई भी; लय-जो लेता है; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम में; पुलक-अश्रु–रोमांच-अश्रु; विह्वल-भावविभोर; से-वह; हय हो जाता है।

अनुवाद

चाहे कोई अपराधी हो या निर्दोष, यदि "श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द" का कीर्तन कोई अभी भी करता है, तो वह भावविभोर हो उठता है और उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं।

तात्पर्य

प्राकृत सहजिये जो निताई गौर राधेश्याम का कीर्तन करते हैं, उन्हें भागवत निष्कर्ष का बहुत कम ज्ञान होता है और वे वैष्णव विधि-विधानों का पालन बहुत कम ही करते हैं; किन्तु चूँकि वे भज-निताइ-गौर का कीर्तन करते हैं, अतएव उनके कीर्तन से तुरन्त ही अश्रु तथा आनन्दातिरेक के अन्य भावलक्षण प्रकट हो आते हैं। यद्यपि वे वैष्णव-दर्शन के सिद्धान्तों को नहीं जानते और ज्ञान में अधिक उन्नत नहीं होते, किन्तु वे इन लक्षणों से बहुत से लोगों को अपने अनुयायी हो जाने के लिए आकृष्ट करते हैं। निस्सन्देह, उनके भावाश्रु अन्ततः उनके सहायक बन सकते हैं, क्योंकि शुद्ध भक्त के संपर्क में आते ही उनके जीवन सफल हो जायेंगे। यहाँ तक कि प्रारम्भ में भी निताई गौर के पवित्र नाम का कीर्तन करने के फलस्वरूप भगवत्प्रेम के मार्ग में उनकी प्रगति तेजी से दिखाई देने लगती है।

‘नित्यानन्द’ बलिते हय कृष्ण-प्रेमोदय।

आउलाय सकल अङ्ग, अश्रु-गङ्गा वय ॥23॥

नित्यानन्द बलिते-नित्यानन्द प्रभु का नाम लेते समय; हय हो जाता है; कृष्ण-प्रेम-उदय-कृष्ण-प्रेम का उदय; आउलाय–विचलित; सकल-सब; अङ्ग-शरीर के अंग; अश्रु-गङ्गा-गंगा जल की भाँति अश्रु; वय-बहते हैं।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु का नाम लेने से ही मनुष्य में कृष्ण-प्रेम जागृत हो जाता है। इस प्रकार उसके सारे अंगप्रत्यंग भावातिरेक से व्याकुल हो उठते हैं और उसकी आँखों से गंगा की धारा के समान अश्रु बहने लगते हैं।

‘कृष्ण-नाम’ करे अपराधेर विचार।

कृष्ण बलिले अपराधीर ना हय विकार ॥24॥

कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; करे-करता है; अपराधे-अपराधों का; विचार-विचार; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; बलिले–यदि कोई जपता है; अपराधीर-अपराधियों का; ना–कभी नहीं; हय-होता है; विकार-विकार, परिवर्तन।

अनुवाद

हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करते समय अपराधों पर विचार किया जाता है। इसलिए केवल हरे कृष्ण का कीर्तन करने से कोई भावदशा को प्राप्त नहीं होता।

तात्पर्य

हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के पूर्व श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द के नामों का उच्चारण करना लाभप्रद होता है, क्योंकि श्रीकृष्ण चैतन्य तथा प्रभु नित्यानन्द-इन दो पवित्र नामों के उच्चारण से मनुष्य तुरन्त भावविभोर हो उठता है और यदि वह इसके बाद हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करता है, तो वह सारे अपराधों से मुक्त हो जाता है।

हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करते समय दस अपराधों से बचना चाहिए। पहला अपराध है उन महापुरुषों की निन्दा करना जो भगवन्नाम का वितरण करने में लगे हुए हैं। शास्त्र (चैतन्य चरितामृत, अन्त्य 7.11) में कहा गया है-कृष्णशक्ति विना नहे तार प्रवर्तन–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से शक्ति प्राप्त किये बिना कोई हरे कृष्ण महामन्त्र के पवित्र नामों का वितरण नहीं कर सकता। अतएव इस कार्य में लगे किसी भक्त की निन्दा नहीं करनी चाहिए।

श्री पद्मपुराण का कथन है :

सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते ।

यतः ख्यातिं यातं कथमुसहते तद्विगर्हाम् ॥

हरे कृष्ण महामन्त्र की महिमा का प्रचार करने में लगे महान् सन्त पुरुषों की निन्दा करना पवित्र नाम के चरणकमलों पर घोर अपराध है। हरे कृष्ण महामन्त्र की महिमा के प्रचारक की आलोचना नहीं करनी चाहिए। यदि कोई ऐसा करता है, तो वह अपराधी है। नाम-प्रभु, जो कृष्ण से अभिन्न हैं, ऐसे निन्दनीय कार्य को कभी सहन नहीं करेंगे, भले ही कोई कितना बड़ा भक्त क्यों न कहा जाता हो।

द्वितीय नामापराध का वर्णन इस प्रकार है :

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादिसकलं ।

धिया भिन्नं पश्येत् स खलु हरिनामाहित करः ॥

इस भौतिक जगत् में विष्णु का नाम सर्वमंगलदायक है। विष्णु के नाम, रूप, गुण तथा लीलाएँ—ये सभी दिव्य, परम ज्ञान हैं। अतएव जो कोई भगवान् के नाम, अथवा उनके दिव्य रूप, गुण, या लीलाओं को भौतिक समझकर उनसे भगवान् को पृथक् करना चाहता है, वह अपराध करता है। इसी प्रकार शिवजी जैसे देवताओं के नामों को विष्णु के नाम के समान बताना अथवा दूसरे शब्दों में, शिवजी तथा अन्य देवताओं को ईश्वर के अन्य रूप मानकर विष्णु के ही समान बताना भी निन्दनीय है। यह भगवान् के पवित्र नाम के चरणकमलों पर दूसरा अपराध है।

भगवान् के पवित्र नाम के चरणकमलों पर तीसरा अपराध है गुरोरवज्ञा– अर्थात् गुरु को भौतिक मानकर उसके उच्च पद से ईर्ष्या करना। चौथा अपराध है श्रुतिशास्त्र निन्दनम्-वैदिक साहित्य जैसे चारों वेदों तथा पुराणों की निन्दा करना। पाँचवा अपराध अर्थ-वादः है-ऐसा मानना कि नाम की महिमा को बढ़ा-चढ़ाकर कहा गया है। इसी प्रकार छठा अपराध है हरिनाम्नि कल्पनम्-हरि नाम को काल्पनिक मानना।

सातवें अपराध का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

नाम्नो बलाद्यस्य हि पापबुद्धि

न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः ।

यह सोचकर कि हरे कृष्ण मन्त्र सारे पापकर्मों के फलों को नष्ट करने वाला है, अतएव पापकर्म करते रहना और उन्हें काटने के लिए हरे कृष्ण मन्त्र का उच्चारण करना हरिनाम के चरणकमलों पर सबसे बड़ा अपराध है।

आठवें अपराध का वर्णन इस प्रकार हुआ है- धर्मव्रतत्यागहुतादिसर्व शुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः। हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन को धार्मिक अनुष्ठान मानना अपराध है। धार्मिक उत्सव मनाना, व्रत करना, वैराग्य का अभ्यास करना तथा यज्ञ करना ये भौतिकतावादी शुभ-कार्य हैं। हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन की तुलना कभी ऐसे भौतिकतावादी धार्मिक कार्यों से नहीं की जानी चाहिए। यह भगवान् के पवित्र नाम के चरणकमलों पर अपराध है :

नवाँ अपराध इस प्रकार है।

अश्रद्धधाने विमुखेऽप्यशृण्वति

यश्चोपदेशः शिवनामापराधः ।

ऐसे लोगों के बीच पवित्र नाम महिमा का प्रचार करना अपराध है, जिनमें बुद्धि न हो या जिन्हें इस विषय में कोई श्रद्धा न हो। ऐसे लोगों को हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन को सुनने का अवसर तो प्रदान करना चाहिए, किन्तु प्रारम्भ में उन्हें नाम की महिमा अथवा आध्यात्मिक महत्ता के विषय में उपदेश नहीं दिया जाना चाहिए। नाम का निरन्तर श्रवण करने से उनके हृदय शुद्ध होंगे और तब वे नाम की दिव्य स्थिति को समझ सकेंगे।

दसवाँ अपराध इस प्रकार है :

श्रुतेऽपि नाममाहात्मये य: प्रीतिरहितोनरः ।

अहंममादिपरमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत ॥

यदि कोई भगवान् के दिव्य नाम की महिमा सुनने के बाद भी जीवन में भौतिकतावादी विचारधारा रखता है और सोचता है कि, "मैं यह शरीर हूँ और इस शरीर से सम्बन्धित सारी वस्तुएँ मेरी हैं (अहं ममेति)," और हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन के प्रति सम्मान तथा प्रेम प्रदर्शित नहीं करता, तो यह भी एक अपराध है।

तदश्म-सारं हृदयं बतेदं

यद्गृह्यमाणैर्हरि-नामधेयैः ।

न विक्रियेताथ ग्रदा विकारो

नेत्रे जलं गात्र-रुहेषु हर्षः ॥25॥

तत्-वह; अश्म-सारम्-लोहे की भाँति कठोर; हृदयम्-हृदय; बत-ओह!; इदम्-यह; यत्-जो; गृह्यमाणैः-जप करने के बावजूद; हरि-नामधेयैः-भगवान् के पावन नाम पर ध्यान करने के; न-नहीं; विक्रियेत–परिवर्तन होना; अथ-इस तरह; यदा-जब; विकारः-विकार, परिवर्तन; नेत्रे-आँखों में; जलम्-अश्रु; गात्र-रुहेषु-शरीर के रोम-छिद्रों में; हर्षः-हर्ष।

अनुवाद

"यदि हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते हुए किसी का हृदय परिवर्तित नहीं होता, उसके नेत्रों से अश्रु नहीं बहते, उसका शरीर कंपित नहीं होता, न ही उसे रोमांच होता है, तो यह समझना चाहिए कि उसका हृदय लोहे के समान कठोर है। ऐसा भगवन्नाम के चरणकमलों पर अपराधों के कारण होता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (2.3.24) का है। इस श्लोक की टीका करते हुए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर लिखते हैं कि कभी-कभी महाभागवत अर्थात् अत्यन्त उन्नत भक्त के शरीर में ऐसे दिव्य लक्षण–यथा आँखों में अश्रु-नहीं दिखते, जबकि कभी-कभी कनिष्ठ अधिकारी कृत्रिम रूप से उनका प्रदर्शन करता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि कनिष्ठ अधिकारी (नया भक्त) महाभागवत से अधिक उन्नत है। हरे कृष्ण महामन्त्र के जप से हृदय में होने वाले असली परिवर्तन की परीक्षा यही है कि मनुष्य भौतिक भोग से विरक्त हो जाता है। यही असली परिवर्तन है। भक्तिपरेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र च (भगवत 11.2.42) । आध्यात्मिक जीवन में असली प्रगति तो तब होती है, जब मनुष्य भौतिक भोग से अत्यन्त विरक्त हो जाता है। यदि कभी यह पाया जाये कि हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करते समय कोई कनिष्ठ अधिकारी (नया भक्त) आँखों में कृत्रिम आँसू तो लाता है, किन्तु भौतिक वस्तुओं में पूरी तरह आसक्त रहता है, तो यह समझना चाहिए कि उसका हृदय वास्तव में परिवर्तित नहीं हुआ है। परिवर्तन तो मनुष्य के असली कार्यकलापों में परिलक्षित होना चाहिए।

‘एक’ कृष्ण-नामे करे सर्व-पाप नाश ।

प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश ॥26॥

एक-एक; कृष्ण-नामे-भगवान् कृष्ण का पावन नाम जपने से; करे-करता है; सर्व-सभी; पाप-पापमय जीवन; नाश-नाश, प्रेमेर-भगवत्-प्रेम का; कारण-कारण; भक्ति-भक्ति; करेन-हो जाती है; प्रकाश-प्रकट।

अनुवाद

निरपराध होकर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने मात्र से सारे पाप-कर्म दूर हो जाते हैं और भगवत्प्रेम की कारणस्वरूपा शुद्ध भक्ति प्रकट होती है।

तात्पर्य

जब तक मनुष्य पापमय जीवन से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक वह भगवान् की भक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (7.28) में हुई है :

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

"जिन लोगों ने पूर्वजन्म में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये हैं और जिनके पापकर्म समूल नष्ट हो चुके हैं, वे मोह के द्वन्द्व से मुक्त हो जाते हैं और वे संकल्पपूर्वक अपने आपको मेरी सेवा में लगाते हैं।" जो व्यक्ति पापमय जीवन के सारे कलंकों से निर्मल हो चुका है, वह अविचलित या द्वन्द्वरहित होकर भगवद्भक्ति में लग जाता है। इस युग में यद्यपि लोग अत्यधिक पापी हैं, किन्तु हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन मात्र से उन्हें अपने पापों के फलों से छुटकारा मिल जाता है। एक कृष्णनामे– केवल कृष्ण के नाम के कीर्तन से यह सम्भव हो जाता है। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (12.3.51) में हुई है : कीर्तनाद् एव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः। चैतन्य महाप्रभु ने भी हमें यही सिखलाया है। वे रास्ते में चलते हुए कीर्तन करते थे :

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे ।

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे ॥

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्ष माम् ।

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम् ॥

राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम् ।

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम् ॥

यदि कोई कृष्ण नाम का सदैव कीर्तन करता है, तो वह धीरे-धीरे पापमय जीवन के सारे फलों से मुक्त हो जाता है, बशर्ते कि वह निरपराध भाव से जप करे और हरे कृष्ण मन्त्र के जप के बल पर और अधिक पापकर्म न करे। इस तरह मनुष्य शुद्ध हो जाता है और उसकी भक्ति से उसका सुप्त भगवत्प्रेम जागृत हो उठता है। केवल हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने से तथा पाप एवं अपराध न करने से उसका जीवन शुद्ध हो जाता है और वह सिद्धि की पाँचवी अवस्था को प्राप्त करता है अर्थात् भगवान् की प्रेमाभक्ति में प्रवृत्त होता है (प्रेमा पुमर्थो महान्)।

प्रेमेर उदये हय प्रेमेर विकार ।

स्वेद-कम्प-पुलकादि गद्गदाश्रुधार ॥ 27॥

प्रेमेर-भगवत्-प्रेम की; उदये-जब जागृति होती है (जब उत्पन्न होता है); हय-यह ऐसा हो जाता है; प्रेमेर-भगवत्-प्रेम का; विकार–परिवर्तन; स्वेद-पसीना; कम्प-कंपन; पुलक-आदि-हृदय की धड़कन आदि; गद्गद-गद्गद; अश्रु-धार-अश्रु-धारा।

अनुवाद

जब किसी में सचमुच भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति जागृत होती है, तो इससे शरीर में स्वेद, कम्पन, हृदय का स्पन्दन, वाणी का अवरोध तथा आँखों में अश्रु जैसे रूपान्तरण उत्पन्न होते हैं।

तात्पर्य

असली भगवत्प्रेम होने पर मनुष्य के शरीर में स्वतः ये रूपान्तरण प्रकट होते हैं। मनुष्य को उनकी कृत्रिम रूप से नकल नहीं करनी चाहिए। भौतिक वस्तु के लिए इच्छा करना हमारा रोग है; यहाँ तक कि आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करते समय भी हम भौतिक प्रतिष्ठा चाहते हैं। मनुष्य को इस रोग से मुक्त होना चाहिए। शुद्ध भक्ति तो अन्याभिलाषिताशून्यम् अर्थात् किसी भौतिक वस्तु की इच्छा से रहित होनी चाहिए। उन्नत भक्तों में अनेक शारीरिक विकार प्रकट होते हैं, जो भावविभोरता के लक्षण हैं, किन्तु जनता से सस्ती प्रशंसा पाने के लिए उनका अनुकरण नहीं करना चाहिए। जब मनुष्य को वस्तुत: उच्च पद प्राप्त होता है, तब भावविभोरता के लक्षण स्वतः प्रकट हो जायेंगे; उसे उनकी नकल करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

अनायासे भव-क्षय, कृष्णेर सेवन ।

एक कृष्ण-नामेर फले पाइ एत धन ॥28॥

अनायासे–सहज ही; भव-क्षय-जन्म-मरण के चक्र का अन्त; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; सेवन–सेवा; एक-एक; कृष्ण-नामेर-कृष्ण-नाम का जप; फले-फल-स्वरूप; पाइ-हमें मिलता है; एत-इतना; धन-धन।

अनुवाद

हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के फलस्वरूप मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन में इतनी अधिक उन्नति होती है कि उसके भौतिक जीवन का अन्त तथा भगवत्प्रेम की प्राप्ति एक साथ होते हैं। कृष्ण का पवित्र नाम इतना शक्तिशाली है कि केवल एक नाम के उच्चारण से उसे ये दिव्य सम्पत्ति सहज ही उपलब्ध हो जाती है।

हेन कृष्ण-नाम यदि लय बहु-बार ।

तबु यदि प्रेम नहे, नहे अश्रुधार ॥ 29॥

तबे जानि, अपराध ताहाते प्रचुर ।

कृष्ण-नाम-बीज ताहे ना करे अङ्कुर ॥ 30॥

हेन-ऐसा; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पवित्र नाम; यदि-यदि; लय-कोई लेता है; बहु-बार-बारम्बार; तबु–फिर भी; यदि-यदि; प्रेम-भगवत्-प्रेम; नहे-नहीं दिखता; नहे अश्रु-धार-आँखों में अश्रु नहीं होते; तबे-तब; जानि–मैं समझता हूँ; अपराध-अपराध; ताहाते-वहाँ (उस प्रक्रिया में); प्रचुर–ढेर सारे; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम; बीज-बीज; ताहे-उन कार्यकलापों में; ना-नहीं; करे-करते हैं; अङ्कर-बीज का फूटना।

अनुवाद

यदि भगवान् के पवित्र नाम का बारम्बार जप करते रहने पर भी मनुष्य में भगवान् के प्रति प्रेम विकसित नहीं होता और उसकी आँखों में अश्रु प्रकट नहीं होते, तो इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जप में उसके अपराधों के फलस्वरूप कृष्ण-नाम का बीज अंकुरित नहीं हो रहा है।

तात्पर्य

यदि कोई अपराध-सहित हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करता है, तो उसे वांछित फल नहीं मिलता। अतएव उसे बड़ी ही सावधानी के साथ उन अपराधों से बचना चाहिए, जिनका वर्णन श्लोक 24 के सम्बन्ध में किया जा चुका है।

चैतन्य-नित्यानन्दे नाहि एसब विचार ।

नाम लेते प्रेम देन, वहे अश्रुधार ॥ 31॥

चैतन्य-नित्यानन्दे-चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु का नाम जपते समय; नाहि-नहीं होते; एसब-ये सब; विचर-विचार; नाम-पावन नाम; लेते–मात्र जपने से; प्रेम-भगवत्-प्रेम; देन–वे देते हैं; वहे-बहती है; अश्रु-धार-नेत्रों में अश्रुओं की धारा।

अनुवाद

किन्तु यदि कोई थोड़ी भी श्रद्धा के साथ भगवान् चैतन्य तथा नित्यानन्द के पवित्र नामों का कीर्तन करता है, तो वह सारे अपराधों से तुरन्त ही मुक्त हो जाता है। इस तरह वह ज्योंही हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करता है, त्योंही उसे भगवत्प्रेम की भावविभोरता का अनुभव होता है।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि यदि कोई श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द की शरण लेता है और उनके इस उपदेश का पालन करता है कि वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु तथा घास से भी अधिक विनीत बनो, तो उसे शीघ्र ही भगवान् की प्रेमाभक्ति का स्तर प्राप्त होता है और उसके नेत्रों में आँसू आ जाते हैं। हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन के समय कुछ अपराधों पर ध्यान रखना आवश्यक है, किन्तु गौर नित्यानन्द के नामों के उच्चारण में ऐसी बात नहीं है। अतएव यदि कोई जीवन-भर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करे, किन्तु उसका जीवन पापकर्मों से भरा रहे, तो उसके लिए भगवान् की प्रेमाभक्ति प्राप्त कर सकना अत्यन्त कठिन होगा। किन्तु यदि अपराधी होते हुए भी वह गौर नित्यानन्द के नामों का कीर्तन करता है, तो उसके सारे पाप-कर्मों के फल तुरन्त दूर हो जाते हैं। इसलिए मनुष्य को सबसे पहले चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द के पास जाना चाहिए या गुरु-गौरांग की पूजा करनी चाहिए और तब राधा-कृष्ण की पूजा के स्तर पर आना चाहिए। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में शिष्यों को पहले गुरु-गौरांग की पूजा का उपदेश दिया

जाता है और जब वे कुछ उन्नति कर लेते हैं, तब राधा-कृष्ण का अर्चाविग्रह स्थापित किया जाता है और उन्हें भगवान की पूजा में लगाया जाता है।

अन्ततः राधा-कृष्ण तक पहुँचने के लिए सर्वप्रथम गौर-नित्यानन्द की शरण में जाना आवश्यक है। इस सन्दर्भ में श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का गीत है :

गौराङ्ग बलिते ह'बे पुलक शरीर

हरि हरि बलिते नयने ब'बे नीर

आर कबे निताइचांदेर करुणा करिब

संसारवासना मोर कबे तुच्छ हवे

विषय छाड़िया कबे शुद्ध हवे मन

कबे हाम हेरब श्रीवृन्दावन ।।

प्रारम्भ में मनुष्य को श्री गौरसुन्दर के पवित्र नाम का नियमित कीर्तन करना चाहिए और तब नित्यानन्द प्रभु के नाम का। इस प्रकार मनुष्य का हृदय भौतिक भोग की मलिन इच्छाओं से निर्मल हो सकेगा। तब वह भगवान् कृष्ण की पूजा करने वृन्दावन धाम जा सकता है। श्री चैतन्य तथा नित्यानन्द की कृपा हुए बिना वृन्दावन जाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यदि मनुष्य का चित्त शुद्ध नहीं है, तो वह वृन्दावन जाकर भी वृन्दावन का दर्शन नहीं कर सकता। वास्तव में वृन्दावन जाने का अर्थ है भक्तिरसामृत सिन्धु, विदग्ध माधव, ललित माधव तथा छः गोस्वामियों द्वारा लिखित अन्य पुस्तकों को पढ़कर इन गोस्वामियों की शरण ग्रहण करना। इस तरह से राधा-कृष्ण के दिव्य प्रेम भाव को समझा जा सकता है। कबे हाम बुझब से युगलपिरीति। राधा-कृष्ण का माधुर्य-

प्रेम सामान्य मानवीय व्यापार नहीं है; यह पूर्णतया दिव्य है। राधा-कृष्ण को समझने, उनकी पूजा करने तथा उनकी प्रेमाभक्ति में लगने के लिए मनुष्य को श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा चैतन्य महाप्रभु के प्रत्यक्ष शिष्य छ: गोस्वामियों से मार्गदर्शन ग्रहण करना चाहिए।

सामान्य व्यक्ति के लिए राधा-कृष्ण की पूजा की अपेक्षा श्री चैतन्य तथा नित्यानन्द प्रभु या पंचतत्त्व की पूजा करना सरल है। जब तक कोई परम भाग्यशाली न हो, तब तक उसे सीधे राधा-कृष्ण की पूजा करने के लिए नहीं कहना चाहिए। एक नया शिष्य, जिसे शास्त्रों का पर्याप्त ज्ञान नहीं है या अनुभूति नहीं है, उसे राधा-कृष्ण की पूजा या हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन नहीं करना चाहिए। यदि वह ऐसा करता भी है, तो उसे वांछित फल नहीं मिल पाता। अतएव मनुष्य को निताई-गौर के नामों का कीर्तन करना चाहिए और झूठी प्रतिष्ठा को ताक पर रखकर उनकी पूजा करनी चाहिए। चूँकि इस जगत् का प्रत्येक व्यक्ति पापकर्मों से न्यूनाधिक प्रभावित होता ही है, अतएव प्रारम्भ में यह नितान्त आवश्यक है कि वह गुरु-गौरांग की पूजा करे और उनकी कृपा की याचना करे, क्योंकि ऐसा करने से अपनी सारी अयोग्यताओं के बावजूद भी वह राधा-कृष्ण विग्रह की पूजा करने का पात्र बन जाता है।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देना होगा कि भगवान् कृष्ण तथा गौरसुन्दर दोनों ही नाम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अभिन्न हैं। इसलिए कभी भी यह नहीं सोचना चाहिए कि एक नाम दूसरे से अधिक सक्षम है। फिर भी इस युग के लोगों की स्थिति को देखते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम का कीर्तन हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन से अधिक आवश्यक है, क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु सर्वाधिक दयालु अवतार हैं और उनकी कृपा अपेक्षाकृत शीघ्र प्राप्त हो जाती है। अतएव मनुष्य को सर्वप्रथम श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द का कीर्तन करते

हुए श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण लेनी चाहिए। गौर नित्यानन्द की सेवा करने से मनुष्य भवबन्धन से मुक्त हो जाता है और राधा-कृष्ण विग्रह की पूजा करने के योग्य बन जाता है।

स्वतन्त्र ईश्वर प्रभु अत्यन्त उदार ।

ताँरे ना भजिले कभु ना हय निस्तार ॥ 32॥

स्वतन्त्र ईश्वर–पूर्णतः स्वतंत्र भगवान्; प्रभु–महाप्रभु; अत्यन्त–अत्यन्त; उदार-उदार; ताँरे–उनको; ना-बिना; भजिले-पूजा किए; कभु ना-कभी भी नहीं; हय होता है; निस्तार–छुटकारा, मुक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु स्वतन्त्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और वे अत्यन्त दयालु हैं। उनकी पूजा किये बिना किसी को मुक्ति नहीं मिल सकती।

तात्पर्य

श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इस प्रसंग में कहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा करने के लिए राधा-कृष्ण की पूजा का परित्याग नहीं करना चाहिए। केवल राधा-कृष्ण या चैतन्य महाप्रभु की पूजा करके कोई आगे नहीं बढ़ सकता। मनुष्य को छः गोस्वामियों के आदेशों का उल्लंघन करने का प्रयास नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे आचार्य हैं और चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय हैं। इसीलिए नरोत्तमदास ठाकुर गाते हैं :

रूपरघुनाथपदे हइबे आकुति

कबे हाम बुझब से युगलपिरीति ।

भक्त को श्रील रूप गोस्वामी से लेकर रघुनाथ दास गोस्वामी तक सारे छ: गोस्वामियों का विनीत अनुयायी होना चाहिए। उनके आदेशों का पालन न करके गौरसुन्दर एवं राधा-कृष्ण की पूजा की कल्पना करना महान् अपराध है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य नरक को जाता है। यदि कोई छ: गोस्वामियों के आदेशों की उपेक्षा करता है और उसके बाद भी राधा-कृष्ण का तथाकथित भक्त बनता है, तो वह राधा-कृष्ण के असली भक्तों की आलोचना ही करता है। इस मनोकल्पना के फलस्वरूप वह गौरसुन्दर को सामान्य भक्त मानता है, अतएव वह राधा-कृष्ण की सेवा करने में प्रगति नहीं कर सकता।

ओरे मूढ़ लोक, शुन चैतन्य-मङ्गल ।

चैतन्य-महिमा य़ाते जानिबे सकल ॥ 33 ॥

ओरे-आप सब; मूढ़-मूर्ख; लोक-लोगों; शुन-जरा सुनो; चैतन्य-मङ्गल–चैतन्य मंगल नामक पुस्तक; चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु की महिमा-महिमाएँ; य़ाते-जिसमें; जानिबे-आप पायेंगे; सकल-सभी।

अनुवाद

अरे मूर्खा, जरा श्री चैतन्य-मंगल तो पढ़ो! इस ग्रंथ को पढ़कर तुम श्री चैतन्य महाप्रभु की सारी महिमाओं को समझ सकते हो।

तात्पर्य

श्री वृन्दावन दास ठाकुर कृत श्री चैतन्य-भागवत का मूल शीर्षक श्री चैतन्य-मंगल था, किन्तु बाद में जब श्री लोचनदास ठाकुर ने श्री चैतन्य-मंगल नाम से एक दूसरी पुस्तक लिख दी, तो

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने अपनी पुस्तक का नाम बदल दिया और अब वह चैतन्य-भागवत के नाम से विख्यात है। इस ग्रंथ में श्री चैतन्य महाप्रभु का जीवन विस्तार से दिया गया है और कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने पहले ही हमें यह सूचित कर दिया है। कि वृन्दावन दास ठाकुर ने जिस अंश का वर्णन नहीं किया, उसी का वर्णन उन्होंने अपने ग्रंथ श्रीचैतन्य चरितामृत में किया है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा श्री चैतन्य-भागवत को मान्यता देना इसका सूचक है कि वे गुरु-शिष्य परम्परा को मानते हैं। दिव्य साहित्य का लेखक कभी भी अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का अतिक्रमण नहीं करना चाहता।

कृष्ण-लीला भागवते कहे वेद-व्यास ।

चैतन्य-लीलार व्यास वृन्दावन-दास ॥ 34॥

कृष्ण-लीला-भगवान् कृष्ण की लीलाएँ, भागवते- श्रीमद्भागवत में; कहे-कहते हैं; वेद-व्यास–व्यासदेव, वैदिक साहित्य के रचयिता; चैतन्य-लीलार–चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; व्यास-संकलन कर्ता; वृन्दावन-दास-वृन्दावन दास हैं।

अनुवाद

जिस तरह व्यासदेव ने श्रीमद्भागवत में कृष्ण की सारी लीलाओं का संकलन किया है, उसी तरह ठाकुर वृन्दावन दास ने चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन किया है।

वृन्दावन-दास कैल ‘चैतन्य-मङ्गल’ ।

याँहार श्रवणे नाशे सर्व अमङ्गल ॥ 35॥

वृन्दावन-दास-वृन्दावन दास; कैल-संकलन किया; चैतन्य-मङ्गल- चैतन्य मंगल नामक पुस्तक; याँहार–जिसके; श्रवणे-सुनने से; नाशे-नाश होता है; सर्व-सब; अमङ्गल-अमंगल का।

अनुवाद

ठाकुर वृन्दावन दास ने श्री चैतन्य-मंगल की रचना की, जिसके सुनने से सारे अमंगल नष्ट हो जाते हैं।

चैतन्य-निताइर य़ाते जानिये महिमा ।

याते जानि कृष्ण-भक्ति-सिद्धान्तेर सीमा ॥ 36॥

चैतन्य-निताइर–श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु का; माते-जिसमें; जानिये-कोई जान सकता है; महिमा-सभी महिमाएँ; य़ाते-जिनमें; जानि-मैं समझ सकता हूँ; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण-भक्ति; सिद्धान्तेर-निष्कर्ष की; सीमा-सीमा।

अनुवाद

श्री चैतन्य मंगल पढ़कर मनुष्य श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु की सारी महिमाओं या सत्य को समझ सकता है और भगवान् कृष्ण की भक्ति के चरम निष्कर्ष तक पहुँच सकता है।

तात्पर्य

यद्यपि भक्तिपूर्ण सेवा को समझने के लिए श्रीमद्भागवत प्रामाणिक ग्रंथ है, किन्तु अत्यन्त विस्तृत होने के कारण थोड़े ही लोग इसके भावार्थ को समझ सकते हैं। श्रीमद्भागवत न्याय प्रस्थान कहलाने वाले वेदान्त-सूत्र की मूल टीका है। अकाट्य तर्क व न्याय द्वारा परम सत्य को समझाने के लिए वेदान्त-सूत्र लिखा गया था, इसलिए इसकी सहज टीका-श्रीमद्भागवत अत्यन्त विस्तृत है।

पेशेवर कथाकारों ने ऐसा प्रचार कर रखा है कि श्रीमद्भागवत में केवल कृष्ण की रासलीला का ही वर्णन है, यद्यपि इसका वर्णन केवल दसवें स्कंध (अध्याय 29-33 में) में हुआ है। इस तरह इन लोगों ने पाश्चात्य जगत् के सम्मुख कृष्ण को महान् स्त्री-वशीकर्ता के रूप में प्रस्तुत किया है, इसलिए कभी-कभी अपने प्रचार-कार्य के दौरान हमें ऐसी भाँतियों से निपटना पड़ता है। श्रीमद्भागवत को समझने में जो दूसरी कठिनाई सामने आती है, वह है पेशेवर कथाकारों द्वारा भागवत्-सप्ताह का प्रचलन–अर्थात् सात दिनों में भागवत की कथाएँ सुनाना। वे एक सप्ताह में श्रीमद्भागवत को समाप्त करना चाहते हैं, जबकि यह इतना विशद ग्रंथ है कि इसके एक श्लोक की भी ठीक से व्याख्या करने पर यह तीन महीनों में भी समाप्त नहीं हो सकता। ऐसी परिस्थिति में सामान्य व्यक्ति के लिए वृन्दावन दास ठाकुर-कृत चैतन्य-भागवत को पढ़ना अत्यन्त सहायक है, क्योंकि इस तरह से भक्ति, कृष्ण, चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु को ठीक से समझे जा सकते हैं। श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है :

श्रुति-स्मृति पुराणादिपञ्चरात्रविधि विना ।

ऐकान्तिकी हरेभक्तिरुत्पातायैव कल्पते ॥

ऐसी भगवद्भक्ति, जो उपनिषदों, पुराणों, नारद पञ्चरात्र आदि प्रामाणिक वैदिक ग्रंथों की उपेक्षा करती है, समाज के लिए अनावश्यक उत्पात मात्र है।" श्रीमद्भागवत को ठीक से न समझने के कारण लोग कृष्णतत्त्व के विषय में दिग्भ्रमित होते हैं। किन्तु श्रील वृन्दावन दास ठाकुर की पुस्तक पढ़कर मनुष्य इस विज्ञान को सरलता से समझ सकता है।

भागवते यत भक्ति-सिद्धान्तेर सार ।

लिखियाछेन इँहा जानि' करिया उद्धार ॥ 37॥

भागवते- श्रीमद्भागवत में; यत-सब; भक्ति-सिद्धान्तेर-भक्ति समझने में; सार-सार; लिखियाछेन–लिखा है; इँहा-इस; जानि'-मैं जानता हूँ; करिया-करके; उद्धार-उद्धृत।

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने श्री-चैतन्य-मंगल (जो बाद में श्री-चैतन्य-भागवतकहलाया) में श्रीमद्भागवत से प्रामाणिक उद्धरण देते हुए भक्ति के निष्कर्ष और सार प्रस्तुत किये हैं।

'चैतन्य-मङ्गल' शुने यदि पाषण्डी, यवन।

सेह महा-वैष्णव हय ततक्षण॥ 38॥

चैतन्य-मङ्गल-चैतन्य मंगल नामक ग्रन्थ; शुने-जो कोई सुनता है; यदि यदि; पाषण्डी–महा नास्तिक; यवन-वैदिक संस्कृति में विश्वास न करने वाला; सेह-वह भी; महा-वैष्णव-महान् भक्त; हय हो जाता है; ततक्षण-उसी समय।

अनुवाद

यदि बड़ा से बड़ा नास्तिक भी चैतन्य मंगल को सुने, तो वह तुरन्त महान् भक्त बन जाता है।

मनुष्ये रचिते नारे ऐछे ग्रन्थ धन्य।

वृन्दावन-दास-मुखे वक्ता श्री-चैतन्य॥ 39॥

मनुष्ये-मनुष्य; रचिते-संकलित; नारे–नहीं हो सकती; ऐछे-ऐसी; ग्रन्थ-पुस्तक; धन्य-इतनी महिमायुक्त; वृन्दावन-दास-वृन्दावन दास ठाकुर, लेखक; मुखे-उनके मुख से; वक्ता-वक्ता; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

इस पुस्तक का विषय इतना भव्य है कि लगता है मानो श्री वृन्दावन दास ठाकुर की रचना के माध्यम से साक्षात् श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं बोल रहे हों।

तात्पर्य

श्रील-सनातन गोस्वामी ने अपने ग्रंथ हरिभक्ति-विलास में लिखा है :

अवैष्णवमुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतम् ।

श्रवणं नैव कर्तव्यं सच्छिष्टं यथा पयः ।

“मनुष्य को कृष्ण के बारे में अवैष्णव से कुछ नहीं सुनना चाहिए। सर्प के होंठों से छुआ गया दूध विषाक्त हो जाता है। इसी प्रकार किसी अवैष्णव द्वारा कृष्ण सम्बन्धी कही गई बातें विषैली होती हैं।”

ऐसा दिव्य साहित्य जो वैदिक सिद्धान्तों तथा पुराणों एवं पाञ्चरात्रिक विधि के निष्कर्ष का दृढ़ता से पालन करता हो, केवल शुद्ध भक्त द्वारा ही लिखा जा सकता है। यह सामान्य पुरुष के बूते में नहीं है कि वह भक्ति पर ग्रंथ लिखे, क्योंकि उसकी रचनाएँ प्रभावशाली नहीं होंगी। कोई कितना ही बड़ा पण्डित तथा अलंकारमयी भाषा में लिखने में निपुण क्यों न हो, किन्तु इससे दिव्य साहित्य को समझने में कोई सहायता नहीं मिलती। यदि भक्त द्वारा रचित साहित्य दोषयुक्त भाषा में भी क्यों

न लिखा गया हो, तो भी वह मान्य होता है। जबकि किसी तथाकथित संसारी विद्वान द्वारा रचित दिव्य साहित्य, भले ही उसका साहित्यिक प्रस्तुतीकरण कितना ही उत्तम क्यों न हो, वह मान्य नहीं हो सकता। भक्त के लिखने के पीछे का रहस्य यह है कि जब वह भगवान् की लीलाओं के बारे में लिखता है, तो वह अकेला नहीं लिखता, बल्कि भगवान् उसकी सहायता करते हैं। भगवद्गीता (10.10) में कहा गया है-ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।जब भक्त भगवान् के चरणों में बैठकर सेवाभाव से लिखता है, तो उसके भीतर से भगवान् इतनी बुद्धि प्रदान करते हैं कि वह भगवान् के निकट बैठकर पुस्तकें लिखता चला जाता है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी इसकी पुष्टि करते हैं कि जो कुछ वृन्दावन दास ठाकुर ने लिखा, वह वास्तव में चैतन्य महाप्रभु की वाणी थी, उन्होंने तो उसको केवल दोहराया है। यही बात श्रीचैतन्य-चरितामृत पर भी लागू होती है। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी ने अपनी वृद्धावस्था में अक्षम हो जाने पर श्रीचैतन्य-चरितामृत की रचना की, किन्तु यह इतना उत्कृष्ट ग्रंथ है कि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज कहा करते थे कि, "एक समय ऐसा आयेगा, जब संसार के लोग श्रीचैतन्य-चरितामृत पढ़ने के लिए बाँग्ला भाषा सीखेंगे।" हम श्रीचैतन्य-चरितामृत को अंग्रेजी में प्रस्तुत कर रहे हैं और यह नहीं जानते कि यह कितना सफल होगा, किन्तु यदि कोई मूल चैतन्य-चरितामृत को बाँग्ला भाषा में पढ़ेगा, तो वह भक्ति में अधिकाधिक आनन्द का आस्वादन करेगा।

वृन्दावन-दास-पदे कोटि नमस्कार ।

ऐछे ग्रन्थ करि' तेंहो तारिला संसार ॥40॥

वृन्दावन-दास-पदे-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर के चरणकमलों में; कोटि-करोड़ों; नमस्कार-नमस्कार; ऐछे-ऐसा; ग्रन्थ-पुस्तक; करि'-संकलित करके; तेंहो–उन्होंने; तारिला-उद्धार किया; संसार-सारे संसार का।

अनुवाद

मैं वृन्दावन दास ठाकुर के चरणकमलों पर कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ। उनके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति सभी पतितात्माओं के उद्धार के लिए ऐसा अद्भुत ग्रंथ नहीं लिख सकता था।

नारायणी–चैतन्येर उच्छिष्ट-भाजन।

ताँर गर्भे जन्मिला श्री-दास-वृन्दावन ॥41॥

नारायणी–नारायणी; चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु महाप्रभु का; उच्छिष्ट-भाजन-जूठा खाने वाली; ताँर-उसके; गर्भ-गर्भ में; जन्मिला-जन्म लिया; श्री-दास-वृन्दावन-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर।

अनुवाद

नारायणी सदा चैतन्य महाप्रभु का जूठन खाया करती थी। श्रील वृन्दावन दास ठाकुर उसी की कोख से जन्मे थे।

तात्पर्य

कवि कर्णपूर द्वारा लिखित गौरगणोद्देश-दीपिका में बतलाया गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के पार्षद कौन कौन थे और उसके पूर्व वे क्या थे; उसके श्लोक 43 में नारायणी के विषय में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है :

अम्बिकायाः स्वसा यासीन् नाम्ना श्रील-किलिम्बिका

क्रोच्छिष्टं प्रभुञ्जाना सेयं नारायणी मता।

जब भगवान् कृष्ण शिशु थे, तब अम्बिका नामक स्त्री ने उन्हें पाला था। किलिम्बिका उसकी छोटी बहन थी। श्री चैतन्य के अवतार के समय यही किलिम्बिका श्री चैतन्य महाप्रभु का जूठन खाया करती थी। यही किलिम्बिका नारायणी थी, जो श्रीवास ठाकुर की भांजी थी। बाद में जब यह बड़ी हुई और उसकी शादी हो गई, तो उसकी कोख से श्रील वृन्दावन दास ठाकुर का जन्म हुआ। भगवान् कृष्ण का भक्त अपनी भगवत् सेवा के अनुसार विख्यात होता है। इस तरह हम श्रील वृन्दावन दास ठाकुर को नारायणी के पुत्र के रूप में जानते हैं। इस सन्दर्भ श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर लिखते हैं कि उनके पैतृक वंश का कोई पता नहीं है, क्योंकि उसे जानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

ताँर कि अद्भुत चैतन्य-चरित-वर्णन।

याहार श्रवणे शुद्ध कैल त्रि-भुवन ॥42॥

ताँर- श्रील वृन्दावन दास ठाकुर का; कि-क्या; अद्भुत-अद्भुत; चैतन्य-चरित-चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; वर्णन-वर्णन; याहार–जिनका; श्रवणे-श्रवण करने से; शुद्ध-शुद्ध; कैल-किया; त्रि-भुवन–तीनों लोकों को।

अनुवाद

अहा! चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का कैसा ही अद्भुत वर्णन उन्होंने दिया है! तीनो लोकों में जो भी उसे सुनता है, वह शुद्ध (पवित्र) हो जाता है।

अतएव भज, लोक, चैतन्य-नित्यानन्द।

खण्डिबे संसार-दुःख, पाबे प्रेमानन्द ॥43॥

अतएव–अतएव; भज-पूजा करो; लोक-हे सामान्य जन; चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; खण्डिबे-नष्ट हो जायेगा; संसार-दुःख-भौतिक जीवन की दुःखद स्थिति; पाबे–वह पायेगा; प्रेमानन्द-भक्ति का दिव्य आनन्द।

अनुवाद

हर एक से मेरा आग्रह है कि चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु द्वारा दी गई भक्ति-विधि को अपनायें और इस तरह भौतिक संसार के दुःखों से मुक्त होकर भगवान् की प्रेमाभक्ति प्राप्त करें।

वृन्दावन-दास कैल 'चैतन्य-मङ्गल' ।

ताहाते चैतन्य-लीला वर्णिल सकल ॥44॥

वृन्दावन-दास-श्रील वृन्दावनदास ठाकुर; कैल-किया; चैतन्य-मङ्गल-चैतन्य मंगल नामक पुस्तक; ताहाते-उस पुस्तक में; चैतन्य-लीला-चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; वर्णिल-वर्णन कीं; सकल-सब कुछ।

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने चैतन्य-मंगल लिखा है और उसमें चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का पूरी तरह विस्तार से वर्णन किया है।

सूत्र करि' सब लीला करिल ग्रन्थन ।

पाछे विस्तारिया ताहार कैल विवरण ॥ 45 ॥

सूत्र करि'-रूपरेखा बनाकर; सब-सब; लीला-लीलाएँ; करिल-कीं; ग्रन्थन-पुस्तक में लिखीं; पाछे-बाद में; विस्तारिया–विस्तार से; ताहार–वे सभी; कैल–किया; विवरण-वर्णन।

अनुवाद

उन्होंने सर्वप्रथम संक्षेप में महाप्रभु की लीलाएँ दी हैं और बाद में उनका विस्तार से वर्णन किया है।

चैतन्य-चन्द्रेर लीला अनन्त अपार।

वर्णिते वर्णिते ग्रन्थ हइल विस्तार ॥46॥

चैतन्य-चन्द्रेर–चैतन्य महाप्रभु महाप्रभु की; लीला-लीलाएँ; अनन्त-असीम; अपार–अगाध, अथाह; वर्णिते-वर्णन करके; वणिते वर्णन करके; ग्रन्थ-पुस्तक; हइल-हो गई; विस्तार–विस्तृत।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अनन्त तथा अगाध हैं, अतएव इन सबका वर्णन करने से यह ग्रंथ विशालकाय बन गया है।

विस्तार देखिया किछु सङ्कोच हैल मन।

सूत्र-धृत कोन लीला ना कैल वर्णन ॥47॥

विस्तार–विस्तृत; देखिया-देखकर; किछु-कुछ; सङ्कोच-संकोच सहित; हैल-हो गया; मन-मन; सूत्र-धृत-रूपरेखा लेकर; कोन-कुछ; लीला-लीलाएँ; ना-नहीं; कैल-किया; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

उन्हें इसे इतना विस्तृत देखकर बाद में उन्हें लगा कि उनमें से कुछ का वर्णन ठीक-ठीक नहीं हो पाया है।

नित्यानन्द-लीला-वर्णने हइल आवेश ।

चैतन्येर शेष-लीला रहिल अवशेष ॥48॥

नित्यानन्द–भगवान् नित्यानन्द; लीला-लीलाएँ; वर्णने-वर्णन सम्बन्धी; हइल-था; आवेश-हर्ष; चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु का; शेष-लीला-उनके जीवन के शेष भाग की लीलाएँ; रहिल-रह गई; अवशेष-बाकी।

अनुवाद

उन्होंने नित्यानन्द प्रभु की लीलाओं का भावमय वर्णन किया है, किन्तु चैतन्य महाप्रभु की अन्त्य-लीलाएँ अनकही रह गई।

सेइ सब लीलार शुनिते विवरण ।

वृन्दावन-वासी भक्तेर उत्कण्ठित मन ॥49॥

सेइ-वे; सब-सब; लीलार–लीलाओं का; शुनिते-सुनने के लिए; विवरण-विवरण; वृन्दावन-वासी-वृन्दावन वासी; भक्तेर-भक्तों का; उत्कण्ठित-आतुर, उत्सुक; मन-मन।

अनुवाद

वृन्दावन के सारे भक्त इन लीलाओं को सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहते थे।

वृन्दावने कल्प-द्रुमे सुवर्ण-सदन।

महा-योगपीठ ताहाँ, रल-सिंहासन ॥50॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; कल्प-द्रुमे कल्पवृक्षों में; सुवर्ण-सदन–सुवर्ण सिंहासन; महा-महान्; योग-पीठ-पावन मन्दिर; ताहाँ-वहाँ; रत्न-रत्नजड़ित; सिंहासन-सिंहासन।

अनुवाद

वृन्दावन नामक महान् तीर्थस्थल में कल्पवृक्ष के नीचे रत्नों से जड़ित एक सुनहला सिंहासन है।

ताते वसि' आछे सदा व्रजेन्द्र-नन्दन।

'श्री-गोविन्द-देव' नाम साक्षात्मदन ॥51॥

ताते-उस सिंहासन पर; वसि'–विराजमान; आछे-वहाँ हैं; सदा-सदा; व्रजेन्द्र-नन्दन-महाराज नन्द के पुत्र; श्री-गोविन्द-देव-श्री गोविन्द देव; नाम-नामक; साक्षात्-साक्षात्; मदन-दिव्य कामदेव।

अनुवाद

उस सिंहासन पर नन्द महाराज के पुत्र श्री गोविन्ददेव विराजमान हैं, जो दिव्य कामदेव हैं।

राज-सेवा हय ताँहा विचित्र प्रकार।

दिव्य सामग्री, दिव्य वस्त्र, अलङ्कार ॥52॥

राज-सेवा-राजसी सेवा; हय की जाती है; ताँहा-वहाँ; विचित्र-विचित्र; प्रकार-सभी प्रकार की; दिव्य-दिव्य; सामग्री–सामग्री; दिव्य-दिव्य; वस्त्र-वत्र; अलङ्कार-आभूषण।

अनुवाद

वहाँ पर गोविन्द देव की नाना प्रकार से राजसी सेवा की जाती है। उनके वस्त्र, आभूषण तथा साज-सामग्री सभी दिव्य हैं।

सहस्त्र सेवक सेवा करे अनुक्षण ।

सहस्र-वदने सेवा ना याय वर्णन ॥53॥

सहस्र-हजारों; सेवक-सेवक; सेवासेवा; करे-करते हैं; अनुक्षण-सदा; सहस्र-हजारों; वदने-मुखों से; सेवा-सेवा की प्रक्रिया; ना–सम्भव नहीं; याय-चलती रहती है; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

गोविन्दजी के उस मन्दिर में हजारों सेवक भक्ति-भाव से सदैव भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं। हजारों मुखों से भी इस सेवा का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

सेवार अध्यक्ष—श्री-पण्डित हरिदास ।

ताँर यशः-गुण सर्व-जगते प्रकाश ॥54॥

सेवार-सेवा का; अध्यक्ष-मुखिया, प्रबन्धक; श्री-पण्डित हरिदास-हरिदास पण्डित; ताँर–उनका; यशः–यश; गुण-गुण; सर्व-जगते सारे संसार में; प्रकाश-प्रसिद्ध है।

अनुवाद

उस मन्दिर के मुख्य सेवक श्री हरिदास पण्डित हैं। उनके गुण तथा उनका यश सारे जगत् में प्रसिद्ध है।

तात्पर्य

श्री हरिदास पण्डित, गदाधर पण्डित के शिष्य श्री अनन्त आचार्य के शिष्य थे।

सुशील, सहिष्णु, शान्त, वदान्य, गम्भीर ।

मधुर-वचन, मधुर-चेष्टा, महा-धीर ॥55॥

सुशील-सुशील, विनम्र; सहिष्णु-सहनशील; शान्त-शान्त; वदान्य-दयालु; गम्भीर-गम्भीर; मधुर-वचन-मधुर भाषी; मधुर-चेष्टा–मधुर चेष्टा वाले; महा-धीर-अत्यन्त धीर।

अनुवाद

सुशील, सहनशील, शान्त, वदान्य, गम्भीर, मृदुभाषी तथा अत्यन्त धीर थे।

सबार सम्मान-कर्ता, करेन सबार हित ।

कौटिल्य-मात्सर्य-हिंसा ना जाने ताँर चित ॥56॥

सबार-सबका; सम्मान-कर्ता–सम्मान करनेवाले; करेन-करते हैं; सबार-सबका; हित-हित; कौटिल्य कूटनीति से मुक्त; मात्सर्य-ईर्ष्या; हिंसा-द्वेष; ना जाने नहीं जानता; ताँर-उनका; चित-हृदय।

अनुवाद

वे सबको सम्मान देते थे और सबकी भलाई के लिए कार्य करते थे। उनके मन में कूटनीति, ईर्ष्या तथा द्वेष लेशमात्र भी नहीं थे।

कृष्णेर ये साधारण सद्गुण पञ्चाश ।

से सब गुणेर ताँर शरीरे निवास ॥57॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; ग्रे-वह; साधारण-साधारण; सत्-गुण-सद्गुण; पञ्चाश-पचास; से-वे; सब-सब; गुणेर-गुण; ताँर-उनके; शरीरे-शरीर में; निवास-हमेशा स्थित थे।

अनुवाद

उनके शरीर में भगवान् कृष्ण के पचास गुण विद्यमान थे।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिंधु में श्रीकृष्ण के दिव्य गुणों का उल्लेख हुआ है। इनमें से पचास मुख्य हैं (अयं नेता सुरम्याङ्गः...इत्यादि) और श्री हरिदास पण्डित में भी किञ्चित् मात्रा में ये सभी गुण विद्यमान थे। चूँकि सारे जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अंश हैं, अतएव श्रीकृष्ण में विद्यमान ये पचासों गुण मूलरूप में हर जीव में अल्प मात्रा में पाये जाते हैं। बद्धजीवों में, भौतिक प्रकृति के सम्पर्क में रहने के कारण ये गुण दृष्टिगोचर नहीं होते, किन्तु जब कोई शुद्ध भक्त बन जाता है, तो ये सारे गुण स्वतः प्रकट होते हैं। इसका उल्लेख श्रीमद्भागवत (5.18.12) में हुआ है, जैसाकि अगले श्लोक से स्पष्ट है।

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना

सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।

हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा

मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥58 ॥

यस्य-जो; अस्ति-है; भक्तिः -भक्ति; भगवति-भगवान् के प्रति; अकिञ्चना-निःस्वार्थ; सर्वैः-सब; गुणैः-गुण; तत्र-वहाँ; समासते-प्रकट हो जाते हैं; सुराः-सभी देवताओं सहित; हरौ– भगवान् की; अभक्तस्य-अभक्त; कुतः–कहाँ; महत्-गुणाः-महान् गुण; मनः-रथेन–मनगढंत; असति-भौतिक अस्तित्व; धावतः–पर दौड़ते; बहिः-बाहर से।

अनुवाद

"यदि किसी में कृष्ण के प्रति अविचल भक्तिमयी श्रद्धा है, तो उसमें कृष्ण तथा सारे देवताओं के सद्गुण धीरे-धीरे प्रकट होते रहते हैं। किन्तु जिसमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति भक्ति नहीं होती, उसमें सुयोग्यता नहीं होती, क्योंकि वह मनोकल्पना द्वारा भगवान् के बाह्य रूप भौतिक जगत् में लगा रहता है।"

पण्डित-गोसाञि शिष्य–अनन्त आचार्य।

कृष्ण-प्रेममय-तनु, उदार, सर्व-आग्न ॥59॥

पण्डित-गोसाञि-पण्डित गदाधर के; शिष्य-शिष्य; अनन्त आचार्य-अनन्त आचार्य; कृष्ण-प्रेममय-सदा ईश्वर-प्रेम से युक्त; तनु-शरीर; उदार-उदार; सर्व-सभी प्रकार से; आर्य-उन्नत।

अनुवाद

अनन्त आचार्य गदाधर पण्डित के शिष्य थे। उनका शरीर सदैव भगवत्प्रेम में निमग्न रहता था। वे उदार थे और सभी प्रकार से उन्नत थे।

ताँहार अनन्त गुण के करु प्रकाश।

ताँर प्रिय शिष्य इँह–पण्डित हरिदास ॥60॥

ताँहार-उनके; अनन्त-अनन्त; गुण-गुण; के-कौन; करु–सकना; प्रकाश-दर्शाना; ताँर–उनके; प्रिय-प्रिय; शिष्य-शिष्य; इँह-यह व्यक्ति; पण्डित हरिदास-हरिदास पण्डित।

अनुवाद

अनन्त आचार्य समस्त सद्गुणों के आगार थे। उनके बड़प्पन का अनुमान कोई नहीं लगा सकता। पण्डित हरिदास उन्हीं के प्रिय शिष्य थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं कि, "श्री अनन्त आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के नित्य पार्षदों में से एक हैं। पहले भगवान् कृष्ण के अवतार के समय वे आठ गोपियों में से एक सुदेवी नामक गोपी थे। गौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक 165) में ऐसा कहा गया है- अनन्ताचार्यगोस्वामी या सुदेवी पुरा व्रजे–'अनन्त आचार्य गोस्वामी प्राचीनकाल में व्रज में सुदेवी गोपी थे।' जगन्नाथ पुरी या पुरुषोत्तम क्षेत्र में अनन्त आचार्य द्वारा स्थापित गंगामाता मठ है। इस मठ की गुरु-शिष्य परम्परा में वे विनोद मंजरी कहलाते हैं। उनके एक शिष्य थे हरिदास पण्डित गोस्वामी, जो श्री रघुगोपाल तथा श्री रासमंजरी के नाम से भी जाने जाते हैं। उनकी शिष्या लक्ष्मीप्रिया पुटिया की राजकुमारी गंगामाता की मौसी थीं। गंगामाता जयपुर के कृष्ण मिश्र से श्री रसिकराय नामक एक विग्रह ले आई थीं, जिन्हें उन्होंने जगन्नाथ पुरी में सार्वभौम के घर में स्थापित किया था। श्री अनन्त आचार्य के बाद की पाँचवी पीढ़ी के शिष्य श्री वनमाली थे। छठी पीढ़ी में श्री भगवान् दास हुए जो बंगाली थे। सातवीं पीढ़ी में मधुसूदन दास हुए जो उड़िया थे। आठवीं पीढ़ी में नीलाम्बर दास, फिर नवीं पीढ़ी में नरोत्तम दास, दसवीं पीढ़ी में पीताम्बर दास और ग्यारहवीं पीढ़ी में माधव दास हुए। इस समय गंगामाता मठ के प्रभारी बारहवीं पीढ़ी के शिष्य हैं।"

चैतन्य-नित्यानन्दे ताँर परम विश्वास।

चैतन्य-चरिते ताँर परम उल्लास॥ 61॥

चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; नित्यानन्दे-भगवान् नित्यानन्द में; ताँर-उनकी; परम-परम; विश्वास-श्रद्धा; चैतन्य-चरिते-चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं में; ताँर–उनका; परम-परम; उल्लास-सन्तोष।

अनुवाद

पण्डित हरिदास को चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु में प्रगाढ़ श्रद्धा थी। अतएव उनकी लीलाओं तथा गुणों को जानने से उन्हें परम तुष्टि होती थी।

वैष्णवेर गुण-ग्राही, ना देखये दोष।

काय-मनो-वाक्ये करे वैष्णव-सन्तोष॥ 62॥

वैष्णवेर-भक्तों के; गुण-ग्राही–सद्गुण अपनाकर; ना-नहीं; देखये-देखते; दोष-कोई दोष; काय-मनः-वाक्ये-हृदय और आत्मा से; करे-करते हैं; वैष्णव-भक्त; सन्तोष-सन्तोष।

अनुवाद

वे वैष्णवों के सद्गुणों को सदैव स्वीकार करते थे और उनमें वे कोई दोष नहीं पाते थे। वे वैष्णवों को तुष्ट करने में ही अपना तन-मन लगाते थे।

तात्पर्य

वैष्णव का यह गुण है कि वह अदोषदर्शी होता है अर्थात् वह दूसरों के दोषों को कभी नहीं देखता। निस्सन्देह, हर मनुष्य में सद्गुण तथा दोष दोनों पाये जाते हैं। इसीलिए कहा गया है कि सज्जना गुणमिच्छन्ति दोषमिच्छन्ति पामरा:-प्रत्येक व्यक्ति में दोषों तथा सद्गुणों का संयोग होता है। किन्तु गम्भीर होने के कारण वैष्णवजन मनुष्य के गुणों को ही ग्रहण करते हैं, उसके दोषों को नहीं-वैसे ही जैसे मक्खियाँ घाव हूँढती हैं और मधुमक्खियाँ मधु। हरिदास पण्डित को किसी वैष्णव में कभी कोई दोष नहीं दिखा। वे उसके सद्गुणों पर ही विचार करते थे।

निरन्तर शुने तेंहो 'चैतन्य-मङ्गल' ।

ताँहार प्रसादे शुनेन वैष्णव-सकल ॥ 63 ॥

निरन्तर-सदा; शुने-सुनते; तेंहो-वे; चैतन्य-मङ्गल-चैतन्य मंगल पुस्तक; ताँहार-उनकी; प्रसादे-दया से; शुनेन–सुनना; वैष्णव-सकल-अन्य सभी वैष्णव।

अनुवाद

वे सदैव चैतन्य मंगल का पाठ सुनते थे और उनकी कृपा से अन्य सारे वैष्णव भी इसे सुना करते थे।

कथाय सभा उज्वल करे येन पूर्ण-चन्द्र ।

निज-गुणामृते बाड़ाय वैष्णव-आनन्द ॥ 64॥

कथाय-शब्दों से; सभा–सभा; उज्वल-उज्वल; करे-करते; येन-जैसे; पूर्ण-चन्द्र–पूर्ण चन्द्र; निज-अपनी; गुण-अमृते-गुणों का अमृत; बाड़ाय-बढ़ाते; वैष्णव-भक्तों के; आनन्द-आनन्द।

अनुवाद

वे चैतन्य मंगल पढ़कर सारी वैष्णव सभा को पूर्ण चन्द्रमा की भाँति आलोकित करते थे और अपने गुणों के अमृत से उनके दिव्य आनन्द को वर्धित करते थे।

तेंहो अति कृपा करि' आज्ञा कैला मोरे ।

गौराङ्गेर शेष-लीला वर्णिबार तरे ॥65॥

तेंहो-उन्होंने; अति-अत्यन्त; कृपा-दया; करि'-करके; आज्ञा-आज्ञा; कैला-दी; मोरे मुझको; गौराङ्गेर–चैतन्य महाप्रभु की; शेष-लीला-लीलाओं का अन्तिम भाग; वर्णिबार-वर्णन करके; तरे-इस विषय के लिए।

अनुवाद

उन्होंने अपनी अहैतुकी कृपा से मुझे श्री चैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाओं को लिखने का आदेश दिया।

काशीश्वर गोसाञिर शिष्य–गोविन्द गोसाञि ।

गोविन्देर प्रिय-सेवक ताँर सम नाञि ॥66॥

काशीश्वर गोसाञिर-काशीश्वर गोस्वामी के; शिष्य-शिष्य; गोविन्द-गोविन्द; गोसाञि-गोसांई; गोविन्देर-गोविन्द के; प्रिय-सेवक-अत्यन्त गोपनीय सेवक; ताँर-उनके; सम-समान; नाञि-कोई नहीं है।

अनुवाद

वृन्दावन में भगवान् गोविन्द की सेवा में लगे पुरोहित गोविन्द गोसांई काशीश्वर गोसांई के शिष्य थे। गोविन्द अर्चाविग्रह को उनसे बढ़कर कोई अन्य सेवक प्रिय न था।

तात्पर्य

श्रील भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "काशीश्वर गोसांई श्री चैतन्य महाप्रभु के समकालीन व्यक्तियों में से एक थे, जो जगन्नाथ पुरी में महाप्रभु के साथ थे। काशीश्वर गोसांई का अन्य नाम काशीश्वर पण्डित भी था। वे ईश्वर पुरी के शिष्य तथा काँजीलाल कानु वंश से सम्बन्धित वासुदेव भट्टाचार्य के पुत्र थे। उनका उपनाम चौधरी था। उनका भांजा रुद्रपण्डित था, जो वल्लभपुर का मूल पुरोहित था। यह स्थान चातरा नामक गाँव में है, जो श्रीरामपुर रेलवे स्टेशन से लगभग एक मील दूर है। यहाँ पर राधा-गोविन्द तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के अर्चाविग्रह स्थापित हैं। काशीश्वर गोसांई अत्यन्त बलवान् व्यक्ति थे, अतएव जब चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर आते थे तो वे भीड़ से उनकी रक्षा करते थे। उनका दूसरा कार्य था, कीर्तन के बाद भक्तों में प्रसाद वितरण करना।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर भी वल्लभपुर के इस मन्दिर में गये थे। उस समय इसके प्रभारी अधिकारी श्री शिवचन्द्र चौधरी नामक एक शैव थे, जो काशीश्वर गोसांई के भाई के वंशज थे। वल्लभपुर में प्रतिदिन नौ किलो चावल, तरकारी तथा अन्य भोज्य पदार्थ पकाने का स्थायी प्रबन्ध था। इस गाँव के निकट ही काफी भूमि है, जो अर्चाविग्रह की सम्पत्ति है और जिसमें धान उगाया जाता था। दुर्भाग्यवश काशीश्वर गोसांई के भाई के वंशजों ने इस भूमि का काफी अंश बेच दिया है, अतएव अब विग्रह-पूजा में व्यवधान आ गया है।

गौरगणोद्देश-दीपिका (137) में कहा गया है कि वृन्दावन में शृंगार नामक कृष्ण का एक सेवक श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के समय काशीश्वर गोसांई के रूप में अवतरित हुआ। जब हम गृहस्थ थे, तो हम भी कभी-कभी वल्लभपुर के इस मन्दिर में जाते थे और वहाँ दोपहर का प्रसाद ग्रहण करते थे। इस मन्दिर के अर्चाविग्रह श्री श्री राधा-गोविन्द तथा गौरांग-विग्रह अत्यन्त सुन्दर हैं। वल्लभपुर के ही निकट जगन्नाथ का एक सुन्दर मन्दिर है। हम कभी-कभी इस जगन्नाथ मन्दिर में भी प्रसाद ग्रहण करते थे। ये दोनों मन्दिर कलकत्ता के निकट श्रीरामपुर रेलवे स्टेशन से एक मील की परिधि में स्थित हैं।

यादवाचार्य गोसाञि श्री-रूपेर सङ्गी ।

चैतन्य-चरिते तेंहो अति बड़ रङ्गी ॥ 67॥

यादवाचार्य-यादवाचार्य; गोसाञि-गुरु; श्री-रूपेर-श्रील रूप गोस्वामी के; सङ्गी-साथी; चैतन्य-चरिते-चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं में; तेंहो-वे; अति-अत्यन्त; बड़-बड़ी; रङ्गी–उत्साही, रसिक।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी के नित्य पार्षद श्री यादवाचार्य गोसांई भी चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को सुनने तथा उनका कीर्तन करने में अत्यन्त उत्साह दिखलाते थे।

पण्डित-गोसाञिर शिष्य—भुगर्भ गोसाञि ।

गौर-कथा विना आर मुखे अन्य नाइ ॥ 68॥

पण्डित-गोसाञिर-पण्डित गोसांई (गदाधर पण्डित) के; शिष्य-शिष्य; भुगर्भ गोसाञि-भूगर्भ गोसांई; गौर-कथा-चैतन्य महाप्रभु की कथा; विना-बिना; आर-अन्य; मुखे-इसके मुख में; अन्य नाइ–और कुछ नहीं।

अनुवाद

पण्डित गोसांई के शिष्य भूगर्भ गोसांई चैतन्य महाप्रभु सम्बन्धी कथाओं में सदैव लगे रहते थे। उसके अतिरिक्त वे और कुछ भी नहीं जानते थे।

ताँर शिष्य–गोविन्द पूजक चैतन्य-दास।

मुकुन्दानन्द चक्रवर्ती, प्रेमी कृष्णदास ॥69॥

ताँर शिष्य-उनके शिष्य; गोविन्द-गोविन्द अर्चाविग्रह; पूजक-पुजारी; चैतन्य-दास-चैतन्य दास; मुकुन्दानन्द चक्रवर्ती-मुकुन्दानन्द चक्रवर्ती; प्रेमी–भगवान् के महान् प्रेमी; कृष्णदास-कृष्णदास।

अनुवाद

इनके शिष्यों में से थे, गोविन्द अर्चाविग्रह के पुजारी चैतन्यदास, मुकुन्दानन्द चक्रवर्ती तथा महाभागवत कृष्णदास।

आचार्य-गोसाञिर शिष्य-चक्रवर्ती शिवानन्द।

निरवधि ताँर चित्ते चैतन्य-नित्यानन्द ॥70॥

आचार्य-गोसाञिर-आचार्य गोसांई के; शिष्य-शिष्य; चक्रवर्ती शिवानन्द-शिवानन्द चक्रवर्ती; निरवधि-सदा; ताँर–उनके; चित्ते-हृदय में; चैतन्य नित्यानन्द-चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द स्थित हैं।

अनुवाद

अनन्त आचार्य के शिष्यों में से शिवानन्द चक्रवर्ती हुए, जिनके हृदय में चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु निरन्तर वास करते थे।

आर यत वृन्दावने बैसे भक्त-गण ।

शेष-लीला शुनिते सबार हैल मन ॥71॥

आर यत-अन्य कई; वृन्दावने-वृन्दावन में; बैसे-निवासी; भक्त-गण-भक्तगण; शेष-लीला-चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के अन्तिम भाग; शुनिते-सुनने के लिए; सबार-प्रत्येक का; हैल–हो गया; मन–मन।

अनुवाद

इनके अतिरिक्त वृन्दावन में अन्य अनेक महान् भक्त थे। वे सभी चैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाओं को सुनने के इच्छुक थे।

मोरे आज्ञा करिला सबे करुणा करिया ।

ताँ-सबार बोले लिखि निर्लज्ज हड्या ॥72॥

मोरे-मुझको; आज्ञा–आज्ञा; करिला-दी; सबे-सब; करुणा-दयालु; करिया-करके; ताँ-सबार-उन सबकी; बोले-आज्ञा से; लिखि-मैं लिखता हूँ; निर्लज-निर्लज्ज होकर; हइया–होकर।

अनुवाद

इन सभी भक्तों ने कृपा करके मुझे श्री चैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाओं के सम्बन्ध में लिखने का आदेश दिया। यद्यपि मैं निर्लज्ज हूँ, किन्तु उन्हीं के आदेश से मैंने यह चैतन्य-चरितामृत लिखने का प्रयास किया है।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य लीलाओं के विषय में लिखना कोई आसान काम नहीं है। जब तक मनुष्य को आचार्यों या उन्नत भक्तों द्वारा शक्ति प्रदान न की गई हो, तब तक वह ऐसा दिव्य साहित्य नहीं लिख सकता, क्योंकि ऐसे सारे साहित्य को सन्देहातीत होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, इस में बद्धजीवों के एक भी दोष यथा त्रुटि, मोह, ठगी तथा अपूर्ण इन्द्रिय-बोध नहीं होना चाहिए। कृष्ण के वचन एवं गुरु-शिष्य परम्परा के वचन, जो कृष्ण के आदेशों का वहन करते हैं, वास्तव में प्रामाणिक हैं। दिव्य साहित्य लिखने की शक्ति प्राप्त कर पाना एक विशेषाधिकार है, जो लेखक के लिए बड़े ही गर्व का विषय होता है। एक विनम्र वैष्णव के रूप में, इस प्रकार शक्ति पाकर कृष्णदास कविराज गोस्वामी को अत्यधिक लज्जा लगी कि उन्हें ही अब चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन करना होगा।

वैष्णवेर आज्ञा पाञा चिन्तित-अन्तरे ।

मदन-गोपाले गेलाँ आज्ञा मागिबारे ॥73॥

वैष्णवेर-सारे वैष्णव भक्तों की; आज्ञा-आज्ञा; पाञा-पाकर; चिन्तित-अन्तरे-मन में चिन्ता; मदन-गोपाले-श्री मदनमोहन के मन्दिर को; गेलाँ-मैं गया; आज्ञा-आज्ञा; मागिबारे–पाने के लिए।

अनुवाद

वैष्णवों की आज्ञा प्राप्त करने के बाद, लेकिन अपने मन में चिन्तित होने के कारण मैं वृन्दावन के मदनमोहन मन्दिर में उनकी भी आज्ञा लेने के लिए गया।

तात्पर्य

एक वैष्णव सदैव गुरु तथा कृष्ण का आदेश मानता है। श्रीचैतन्य-चरितामृत का लेखन उन्हीं की कृपा से कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा सम्पन्न हुआ। कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने उन सभी भक्तों को, जिनका उल्लेख हो चुका है, अपना गुरु माना एवं मदनगोपाल (श्री मदनमोहन विग्रह) को साक्षात् कृष्ण माना। अतः उन्होंने दोनों से ही आज्ञा प्राप्त की और जब उन्हें गुरु तथा कृष्ण दोनों की कृपा प्राप्त हो गई, तभी वे यह दिव्य ग्रंथ श्रीचैतन्य-चरितामृत लिख सके। सबको इस उदाहरण का अनुसरण करना चाहिए। जो भी व्यक्ति कृष्ण के विषय में कुछ लिखना चाहता है, उसे सर्वप्रथम गुरु तथा कृष्ण की अनुमति प्राप्त करनी चाहिए। कृष्ण तो सबके हृदय में वास करते हैं और गुरु उनका साक्षात् बाह्य प्रतिनिधि होता है। इस तरह कृष्ण भीतर और बाहर स्थित हैं-अन्तर्बहिः। मनुष्य को चाहिए कि सर्वप्रथम वह प्रतिदिन सोलह माला जप करके और विधि-विधानों का कड़ाई से पालन करके शुद्ध भक्त बने। इस प्रकार जब उसे लगे कि वह वास्तव में वैष्णव-पद पर आसीन है, तब उसे अपने गुरु की आज्ञा लेनी चाहिए और उस आज्ञा की पुष्टि उसके हृदय में स्थित कृष्ण द्वारा भी होनी चाहिए। तब यदि कोई अत्यन्त निष्ठावान् तथा शुद्ध है, तो वह दिव्य साहित्य लिख सकता है, चाहे वह पद्य हो या गद्य।

दरशन करि कैलुँ चरण वन्दन ।

गोसाञि-दास पूजारी करे चरण-सेवन ॥74॥

दरशन-दर्शन करके; करि–करके; कैलुँ–किया; चरण-चरणकमल; वन्दन-वन्दना; गोसाञि-दास–गोसांई दास; पूजारी–पुजारी; करे-करते हैं; चरण-चरणकमल; सेवन–सेवा।

अनुवाद

जब मैं मदनमोहन के मन्दिर में दर्शन करने गया, तो पुजारी गोसांई दास भगवान् के चरणों की सेवा कर रहे थे। मैंने भी भगवान् के चरणकमलों पर प्रार्थना की।

प्रभुर चरणे यदि आज्ञा मागिल ।

प्रभु-कण्ठ हैते माला खसिया पड़िल ॥75 ॥

प्रभुर-भगवान् के; चरणे-चरणकमलों में; यदि-जब; आज्ञा-आज्ञा; मागिल-माँगी; प्रभु-कण्ठ–प्रभु के कण्ठ; हैते–से; माला-माला; खसिया–फिसलकर; पड़िल-गिर गई।

अनुवाद

जब मैंने भगवान् से आज्ञा माँगी, तो तुरन्त ही उनके गले से एक माला खिसककर नीचे आ गई।

सब वैष्णव-गण हरि-ध्वनि दिल ।

गोसाञि-दास आनि' माला मोर गले दिल ॥ 76 ॥

सब-सब; वैष्णव-भक्त; गण-गण, समूह; हरि-ध्वनि-हरे कृष्ण की ध्वनि; दिल-की; गोसाञि-दास–गोसांई दास; आनि'–लाकर; माला-माला; मोर-मेरे; गले–गले में; दिल-डाल दी।

अनुवाद

ज्योंही यह घटना घटी तो वहाँ पर खड़े सारे वैष्णवजनों ने जोर से 'हरिबोल!' की हर्षध्वनि की और पुजारी गोसांई दास ने वह माला लाकर मेरे गले में डाल दी।

आज्ञा-माला पाञा आमार हुइल आनन्द ।

ताहाङिकरिनु एइ ग्रन्थेर आरम्भ ॥ 77॥

आज्ञा-माला-आदेश की माला; पाञा-पाकर; आमार-मेरा; हइल-हो गया; आनन्द–आनन्द; ताहाङि–वहीं पर; करिनु-प्रयास किया; एइ–यह; ग्रन्थेर-श्रीचैतन्य चरितामृत की; आरम्भ-शुरूआत।

अनुवाद

इस माला को भगवान् के आदेश के रूप में पाकर मैं अत्यधिक प्रसन्न हुआ और तुरन्त ही मैंने वहीं पर यह ग्रंथ लिखना प्रारम्भ कर दिया।

एइ ग्रन्थ लेखाय मोरे 'मदन-मोहन' ।

आमार लिखन येन शुकेर पठन ॥78 ॥

एइ-यह; ग्रन्थ-ग्रन्थ; लेखाय-लिखाते हैं; मोरे-मुझको; मदन-मोहन-मदनमोहन के अर्चाविग्रह; आमार-मेरा; लिखन-लिखना; येन-जैसे; शुकेर-तोते का; पठन-रटना।

अनुवाद

वास्तव में श्रीचैतन्य चरितामृत मेरा लिखा हुआ नहीं है, अपितु श्री मदनमोहन द्वारा लिखाया गया है। मेरा लिखना तो तोते जैसा दोहराना (पुनरावृत्ति) है।

तात्पर्य

सारे भक्तों का यही मनोभाव होना चाहिए। जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् किसी भक्त को मान्यता देते हैं, तो वे उसे बुद्धि देते हैं और बतलाते हैं कि किस तरह भगवद्धाम वापस जाया जाये। इसकी पुष्टि श्रीमद्भगवद्गीता (10.10) में हुई है :

तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

"जो लोग निरन्तर प्रेमपूर्वक मेरी भक्तिमय सेवा में लगे रहते हैं, उन्हें मैं ज्ञान प्रदान करता हूँ, जिससे वे मेरे पास आ सकें।" भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगने के लिए हर व्यक्ति को छूट है, क्योंकि वैधानिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति भगवान् का दास है। भगवान् की सेवा में लगना जीव का स्वाभाविक कार्य है, किन्तु वह माया द्वारा अच्छादित होने के कारण इसे कठिन कार्य समझ बैठता है। किन्तु यदि वह अपने आपको गुरु के मार्गदर्शन में रखता है और सारा काम निष्ठा से करता है, तो हर एक के हृदय में वास करने वाले भगवान् तुरन्त ही उसे निर्देश देते हैं कि उनकी सेवा किस तरह की जाए (ददामि बुद्धियोगं तम्)। भगवान् यह निर्देश देते हैं, जिससे भक्त का जीवन पूर्ण हो जाता है। शुद्ध भक्त जो भी कार्य करता है, वह परमेश्वर के निर्देश के अनुसार होता है। श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक इसकी पुष्टि कर रहे हैं कि उन्होंने जो भी लिखा है, वह श्री मदनमोहन विग्रह के निर्देशानुसार हो रहा था।

सेइ लिखि, मदन-गोपाल ये लिखाय।

काष्ठेर पुत्तली येन कुहके नाचाय ॥79॥

सेइ लिखि-मैं वही लिखता हूँ; मदन-गोपाल–मदनगोपाल के अर्चाविग्रह; ये-जो कुछ; लिखाय–मुझे लिखाते हैं; काष्ठेर-लकड़ी की; पुत्तली-कठपुतली; येन-की भाँति; कुहके-जादूगर; नाचाय-नचाता है।

अनुवाद

जिस प्रकार जादूगर कठपुतली को नचाता है, उसी प्रकार मदनगोपाल मुझे जो-जो आदेश देते हैं, मैं वही लिखता हूँ।

तात्पर्य

यह शुद्ध भक्त की स्थिति है। मनुष्य को अपने ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं लेनी चाहिए, अपितु भगवान् की शरण में रहना चाहिए। वे ही चैत्य गुरु अर्थात् अंत:करण से आध्यात्मिक गुरु के रूप में निर्देश देंगे। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भीतर तथा बाहर से भक्त को मार्गदर्शन करने में प्रसन्न होते हैं। वे भीतर से परमात्मा के रूप में मार्गदर्शन करते हैं और बाहर से गुरु के रूप में।

कुलाधिदेवता मोर–मदन-मोहन।

याँर सेवक-रघुनाथ, रूप, सनातन ॥80॥

कुल-अधिदेवता–कुलदेवता; मोर-मेरे; मदन-मोहन-भगवान् मदनमोहन; याँर-जिनके; सेवक-सेवक; रघुनाथ–रघुनाथ दास गोस्वामी; रूप-रूप गोस्वामी; सनातन-सनातन गोस्वामी।

अनुवाद

मैं मदनमोहन को अपने कुलदेवता के रूप में स्वीकार करता हूँ, जिनकी उपासना करने वालों में रघुनाथ दास गोस्वामी, श्री रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी शामिल हैं।

वृन्दावन-दासेर पाद-पद्म करि' ध्यान।

ताँर आज्ञा लञा लिखि याहाते कल्याण ॥81॥

वृन्दावन-दासेर-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर के; पाद-पद्म-चरणकमल; करि'-करके; ध्यान-ध्यान; ताँर–उनकी; आज्ञा-आज्ञा; लजा-पाकर; लिखि–मैं लिखता हूँ, याहाते-जिस आज्ञा में; कल्याण-शुभ।

अनुवाद

तब मैंने श्रील वृन्दावन दास ठाकुर के चरणकमलों पर प्रार्थना करके उनकी अनुमति माँगी और उनकी अनुमति पा लेने के बाद मैंने यह मंगलमय ग्रंथ लिखने का प्रयास किया है।

तात्पर्य

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने न केवल वैष्णवों तथा मदनमोहन की आज्ञा प्राप्त की, अपितु वृन्दावन दास ठाकुर से भी आज्ञा प्राप्त की, जिन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का व्यास माना जाता है।

चैतन्य-लीलाते 'व्यास' वृन्दावन-दास।

ताँर कृपा विना अन्ये ना हय प्रकाश ॥82॥

चैतन्य-लीलाते-चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन करने में; व्यास–व्यासदेव; वृन्दावन-दास-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर हैं; ताँर–उनकी; कृपा-कृपा; विना-बिना; अन्ये-अन्य; ना-कभी नहीं; हय–होता; प्रकाश-प्रकट।

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के प्रामाणिक लेखक हैं। अतएव उनकी कृपा के बिना इन लीलाओं का वर्णन नहीं किया जा सकता।

मूर्ख, नीच, क्षुद्र मुञि विषय-लालस ।

वैष्णवाज्ञा–बले करि एतेक साहस ॥ 83 ॥

मूर्ख-मूर्ख; नीच-नीच; क्षुद्र-क्षुद्र; मुञि-मैं; विषय-भौतिक; लालस-इच्छा करता हूँ; वैष्णव-वैष्णवों की; आज्ञा-आज्ञा; बले-के बल पर; करि-मैं करता हूँ; एतेक-इतना; साहस-साहस, शक्ति।

अनुवाद

मैं मूर्ख, निम्न कुल में उत्पन्न तथा क्षुद्र हूँ और सदा ही भौतिक भोग की इच्छा करता हूँ। फिर भी वैष्णवों की आज्ञा के कारण मैं इस दिव्य ग्रंथ को लिखने के लिए अत्यन्त उत्साहित हूँ।

श्री-रूप-रघुनाथ-चरणेर एइ बल ।

याँर स्मृते सिद्ध हय वाञ्छित-सकल ॥84॥

श्री-रूप-श्री रूप गोस्वामी; रघुनाथ–रघुनाथ दास गोस्वामी; चरणेर-चरणकमलों की; एइ-यह; बल-बल; याँर-जिनको; स्मृते-याद करके; सिद्ध–सफल; हय–होती हैं; वाञ्छित-सकल-सारी इच्छाएँ।

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी तथा रघुनाथदास गोस्वामी के चरणकमल ही मेरे बल के स्रोत हैं। उनके चरणकमलों के स्मरण से मनुष्य की सारी इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥85॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; यार–जिसकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत ग्रन्थ; कहे-वर्णन करता है; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों पर प्रार्थना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए मैं, कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत, आदिलीला के आठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें लेखक द्वारा प्रामाणिक अधिकारियों कृष्ण तथा गुरु से आदेश प्राप्त करने का वर्णन हुआ है।

अध्याय नौ

भक्ति का कल्पवृक्ष

श्रील भक्तिविनाद ठाकुर ने अपने ग्रंथ अमृत-प्रवाह-भाष्य में नवें अध्याय का सारांश निम्न प्रकार से दिया है। इस अध्याय में श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक ने "भक्ति के कल्प वृक्ष" के रूप में एक आलंकारिक उदाहरण की कल्पना की है। वे विश्वम्भर नामधारी चैतन्य महाप्रभु को इस वृक्ष को लगाने वाले (माली) मानते हैं, क्योंकि वही प्रमुख व्यक्ति हैं, जिन्होंने इसका भार अपने ऊपर लिया है। परम भोक्ता के रूप में उन्होंने इसके फलों का भोग स्वयं किया है और उन्हें बाँटा भी है। इस वृक्ष का बीज सर्वप्रथम चैतन्य महाप्रभु की जन्मभूमि नवद्वीप में बोया गया, फिर यह वृक्ष पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ पुरी) में लाया गया और उसके बाद वृन्दावन में। इसका बीज सर्वप्रथम श्रील माधवेन्द्र पुरी में फलित हुआ और फिर उनके शिष्य श्री ईश्वर पुरी में। बड़े ही आलंकारिक ढंग से बतलाया गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु वृक्ष और वृक्ष का तना दोनों ही हैं। परमानन्द पुरी तथा अन्य आठ बड़े-बड़े संन्यासी इस वृक्ष की दूर-दूर तक फैलने वाली जड़े हैं। इसके मुख्य तने से दो विशेष शाखाएँ निकलती हैं-अद्वैत प्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु और इन शाखाओं से अन्य शाखाएँ तथा उपशाखाएँ निकलती हैं। यह वृक्ष सारे जगत् को घेरे हुए है और इसके फल हर एक को वितरित

होने हैं। इस तरह चैतन्य महाप्रभु-रूपी वृक्ष समग्र संसार को मोहने वाला है। ध्यान रहे कि यह आलंकारिक उदाहरण चैतन्य महाप्रभु के उद्देश्य की व्याख्या करने के निमित्त है।

तं श्रीमत्कृष्ण-चैतन्य-देवं वन्दे जगद्गुरुम् ।

यस्यानुकम्पया श्वापि महाब्धि सन्तरेत्सुखम् ॥ 1॥

तम्-उनको; श्रीमत् समग्र ऐश्वर्य से युक्त; कृष्ण-चैतन्य-देवम्-भगवान् कृष्ण चैतन्यदेव; वन्दे मैं नमस्कार करता हूँ; जगत्-गुरुम्-जगद् गुरु; यस्य–जिनकी; अनुकम्पया-कृपा से; श्वा अपि-एक कुत्ता भी; महा-अब्धिम्-महासागर; सन्तरेत्-तैर सकता है; सुखम्-बिना कठिनाई के।

अनुवाद

मैं अखिल जगत् के गुरु श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनकी कृपा से एक कुत्ता भी महासागर को पार कर सकता है।

तात्पर्य

कभी-कभी देखा जाता है कि कुत्ता कुछ दूर तक पानी में तैर सकता है और फिर किनारे लौट आता है। किन्तु यहाँ पर यह कहा गया है कि श्रीकृष्ण चैतन्य की कृपा से कुत्ता महासागर के आर-पार तैर सकता है। इसी प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत के रचयिता कृष्णदास कविराज गोस्वामी अपने आपको असहाय बतलाते हुए कहते हैं कि उनमें अपनी खुद की कोई शक्ति नहीं है, किन्तु वैष्णवों तथा मदनमोहन विग्रह के माध्यम से व्यक्त हुई श्री चैतन्य की कृपा से वे दिव्य सागर को पार करके श्रीचैतन्य-चरितामृत प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं।

जय जय श्री कृष्ण-चैतन्य गौरचन्द्र ।

जय जयाद्वैत जय जय नित्यानन्द ॥2॥

जय जय-जय जय; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; गौरचन्द्र-जिनका नाम है गौरहरि; जय जय-जय जय; अद्वैत-अद्वैत गोसांई की; जय जय-जय जय; नित्यानन्द–नित्यानन्द की।

अनुवाद

उन श्रीकृष्ण चैतन्य की जय हो, जो गौरहरि कहलाते हैं! अद्वैताचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु की जय हो!

जय जय श्रीवासादि गौर-भक्त-गण।

सर्वाभीष्ट-पूर्ति-हेतु याँहार स्मरण ॥ 3 ॥

जय जय-जय जय; श्रीवास-आदि-श्रीवास तथा अन्य; गौर-भक्त-गण-चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों को; सर्व-अभीष्ट-सभी इच्छाओं; पूर्ति–पूर्ति; हेतु-के लिए; याँहार–जिनका; स्मरण-स्मरण।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर इत्यादि चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो! मैं अपनी सारी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उनके चरणकमलों का स्मरण करता हूँ।

तात्पर्य

यहाँ पर लेखक पंचतत्त्व की उसी पूजा विधि का अनुसरण करते हैं, जिसका वर्णन आदिलीला के सातवें अध्याय में हो चुका है।

श्री-रूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ।

श्री-जीव, गोपाल-भट्ट, दास-रघुनाथ ॥4॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; सनातन-श्रील सनातन गोस्वामी; भट्ट रघुनाथ–श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी; श्री-जीव-श्री जीव गोस्वामी; गोपाल-भट्ट- श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी; दास-रघुनाथ–रघुनाथ दास गोस्वामी।

अनुवाद

मैं छहों गोस्वामियों-रूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ, श्री जीव, गोपाल भट्ट तथा दास रघुनाथ-का भी स्मरण करता हूँ।

तात्पर्य

दिव्य साहित्य के लेखन की यही विधि है। जिस भावुक व्यक्ति में वैष्णव-गुण नहीं होते, वह दिव्य ग्रंथ नहीं लिख सकता। ऐसे अनेक मूर्ख हैं, जो कृष्ण-लीला को कला का विषय मानकर गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाओं के विषय में लिखते हैं या चित्र बनाते हैं और कभी-कभी तो वे अत्यन्त अश्लील ढंग से उन्हें प्रदर्शित करते हैं। वे मूर्ख भौतिक इन्द्रियतृप्ति में आनन्द लेते हैं, किन्तु जो व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करना चाहता है, उसे ऐसे गन्दे साहित्य से अति सावधानी से बचना चाहिए। जब तक कोई कृष्ण तथा वैष्णवों का दास नहीं बनता, जिस प्रकार कि श्री चैतन्य महाप्रभु, उनके पार्षदों और शिष्यों को नमस्कार करते हुए कृष्णदास कविराज गोस्वामी अपने आपको प्रस्तुत करते हैं, तब तक उसे दिव्य साहित्य लिखने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

एसब-प्रसादे लिखि चैतन्य-लीला-गुण।

जानि वा ना जानि, करि आपन-शोधन ॥5॥

एसब–इन सब की; प्रसादे कृपा से; लिखि-मैं लिखता हूँ; चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु की; लीला-गुण-लीलाएँ और गुण; जानि-जानता हूँ; वा–अथवा; ना-नहीं; जानि-जानता; करि–करो; आपन-अपना; शोधन–शोधन, शुद्धि।

अनुवाद

इन सारे वैष्णवों तथा गुरुओं की कृपा से ही मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं और गुणों के बारे में लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। चाहे जानकर हो अथवा अनजाने में, मैं आत्मशुद्धि के लिए ही यह पुस्तक लिख रहा हूँ।

तात्पर्य

दिव्य ग्रंथ के लेखन का सम्पूर्ण सार यही है। मनुष्य को विनीत एवं शुद्ध प्रामाणिक वैष्णव होना चाहिए। उसे प्रतिष्ठा के लिए नहीं, अपितु आत्मशुद्धि के लिए दिव्य साहित्य लिखना चाहिए। भगवान् की लीलाओं के विषय में लिखकर वह भगवान् की प्रत्यक्ष संगति प्राप्त करता है। उसे यह महत्त्वाकांक्षा नहीं होनी चाहिए कि "मैं महान् लेखक बन जाऊँगा और लेखक के रूप में विख्यात होऊँगा।" ये तो भौतिक इच्छाएँ हैं। व्यक्ति को आत्मशुद्धि के लिए लिखना चाहिए-चाहे वह प्रकाशित हो या अप्रकाशित ही रहे। यदि सचमुच वह लिखने में निष्ठावान् है, तो उसकी सारी इच्छाएँ पूरी होंगी। कोई महान् लेखक बनता है कि नहीं, यह संयोग की बात है। दिव्य साहित्य लिखने का प्रयास भौतिक नाम तथा यश के लिए नहीं करना चाहिए।

माला-कारः स्वयं कृष्ण-प्रेमामर-तरुः स्वयम् ।

दाता भोक्ता तत्फलानां यस्तं चैतन्यमाश्रये ॥6॥

माला-कारः-माली; स्वयम्-स्वयं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; प्रेम-प्रेम; अमर-दिव्य; तरुः–वृक्ष; स्वयम्-स्वयं; दाता–दाता; भोक्ता–भोक्ता; तत्-फलानाम्-उस वृक्ष के सभी फलों का; यः-वह जो; तम्-उनको; चैतन्यम्-चैतन्य महाप्रभु महाप्रभु का; आश्रये-मैं आश्रय लेता हूँ।

अनुवाद

मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण लेता हूँ, जो स्वयं कृष्ण-प्रेम रूपी वृक्ष हैं, इसके माली हैं और इसके फलों के प्रदाता तथा भोक्ता दोनों हैं।

प्रभु कहे, आमि 'विश्वम्भर' नाम धरि।

नाम सार्थक हय, यदि प्रेमे विश्व भरि ॥7॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; आमि-मैं; विश्वम्भर-विश्वम्भर; नाम-नाम; धरि-स्वीकार करता हूँ; नाम-नाम; सार्थक–सार्थक; हय होता है; यदि यदि; प्रेमे-भगवत्प्रेम में; विश्व-सारा ब्रह्माण्ड; भरिभरा जाना।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने सोचा, "मेरा नाम विश्वम्भर अर्थात् अखिल ब्रह्माण्ड का पालन करने वाला है। यह नाम तभी सार्थक बनेगा, यदि मैं अखिल ब्रह्माण्ड को भगवत्प्रेम से भर दें।"

एत चिन्ति' लैला प्रभु मालाकार-धर्म।

नवद्वीपे आरम्भिला फलोद्यान-कर्म ॥8॥

एत चिन्ति’-इस प्रकार सोचकर; लैला ले लिया; प्रभु–महाप्रभु; माला-कार-धर्म–माली का कर्तव्य; नवद्वीपे-नवद्वीप में; आरम्भिला-आरम्भ किया; फल-उद्यान-बाग; कर्म-कर्म।

अनुवाद

इस प्रकार सोचते हुए उन्होंने माली का कार्य स्वीकार किया और नवद्वीप में एक उद्यान (बगीचा) लगाना प्रारम्भ कर दिया।

श्री-चैतन्य मालाकार पृथिवीते आनि’ ।

भक्ति-कल्पतरु रोपिला सिञ्चि’ इच्छा-पानि ॥9॥

श्री-चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; माला-कार-माली; पृथिवीते-पृथ्वी पर; आनि’–लाकर; भक्ति-कल्प-तरु-भक्तिरूपी कल्पतरु; रोपिला-बोया; सिञ्चि’–सींचा; इच्छा-इच्छा; पानि-पानी।

अनुवाद

इस प्रकार महाप्रभु भक्ति-रूपी कल्पवृक्ष को इस पृथ्वी पर ले आये और स्वयं इसके माली बने। उन्होंने बीज बोया और उसे अपनी इच्छा-रूपी जल से सींचा।

तात्पर्य

अनेक स्थलों पर भक्ति की तुलना लता से की गई है। मनुष्य को अपने हृदय के भीतर भक्ति-लता का बीज बोना होता है। ज्यों-ज्यों वह नियमित रूप से श्रवण और कीर्तन करता है, यह बीज उगकर धीरे-धीरे परिपक्व वृक्ष बनता है और फिर उसमें भगवत्प्रेम रूपी भक्ति का फल लगता है, जिसे माली बिना व्यवधान के भोग सकता है।

जय श्री माधवपुरी कृष्ण-प्रेम-पूर।

भक्ति-कल्पतरुर तेंहो प्रथम अङ्कुर ॥10॥

जय-जय जय; श्री माधव-पुरी-श्री माधवेन्द्रपुरी की; कृष्ण-प्रेम-पूर-कृष्ण-प्रेम के आगार; भक्ति-कल्प-तरुर-भक्ति रूपी कल्पतरु; तेंहो-वे हैं; प्रथम-प्रथम; अङ्कर-अंकुर, पौधा।

अनुवाद

कृष्ण-भक्ति के आगार श्री माधवेन्द्र पुरी की जय हो! वे भक्ति के कल्पवृक्ष हैं और उन्हीं में भक्ति का प्रथम बीज अंकुरित हुआ।

तात्पर्य

श्री माधवेन्द्र पुरी श्री माधव पुरी के नाम से भी जाने जाते हैं। वे मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा से सम्बन्धित थे और एक प्रख्यात संन्यासी थे। श्री चैतन्य महाप्रभु शिष्यानुक्रम में श्री माधवेन्द्र पुरी से तीसरे क्रम में शिष्य थे। मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा में पूजा-विधि कर्मकाण्ड से बोझिल थी, जिसमें भगवत्प्रेम का नामोनिशान लगभग न के बराबर था। श्री माधवेन्द्र पुरी उस गुरु-शिष्य परम्परा में प्रथम व्यक्ति थे, जिनमें भगवत्प्रेम के लक्षण प्रकट हुए और जिन्होंने एक कविता लिखी जिसकी प्रथम पंक्ति थी- अयि दीनदयार्द्रनाथ!इसी कविता में चैतन्य महाप्रभु के भगवत्प्रेम के अनुशीलन का बीज निहित है।

श्री-ईश्वरपुरी-रूपे अङ्कर पुष्ट हैल।

आपने चैतन्य-माली स्कन्ध उपजिल ॥11॥

श्री-ईश्वर-पुरी-श्री ईश्वर पुरी; रूपे-रूप में; अङ्कर-बीज; पुष्ट-पुष्ट; हैल-हो गया; आपने-स्वयं; चैतन्य-माली-श्री चैतन्य महाप्रभु नामक माली; स्कन्ध-तना; उपजिल-विकसित हो गया।

अनुवाद

इसके बाद भक्ति का बीज श्री ईश्वरपुरी के रूप में अंकुरित हुआ और फिर श्री चैतन्य महाप्रभु जो स्वयं माली थे, उस भक्ति रूपी वृक्ष का मुख्य तना बने।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं कि "श्री ईश्वरपुरी कुमारहट्ट के निवासी थे, जहाँ अब कामरहट्ट नामक रेलवे स्टेशन है। पास ही हालिसहर नामक एक अन्य स्टेशन है, जो कलकत्ता के पूर्वी विभाग के पूर्वी रेलवे से सम्बन्धित है।"

ईश्वरपुरी का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे श्रील माधवेन्द्र पुरी के सर्वाधिक प्रिय शिष्य थे। श्रीचैतन्य-चरितामृत के अन्तिम भाग के आठवें अध्याय में श्लोक 28-31 में कहा गया है।

ईश्वरपुरी गोसाञि करे श्रीपाद सेवन

स्वहस्ते करेन मलमूत्रादि मार्जन।

निरन्तर कृष्णनाम कराय स्मरण

कृष्णनाम कृष्णलीला शुनाय अनुक्षण।

तुष्ट हञा पुरी ताँरे कैल आलिङ्गन

वर दिला कृष्णे तोमार हउक प्रेमधन।

सेइ हइते ईश्वरपुरी प्रेमेर सागर

“श्री माधवेन्द्र पुरी अपने जीवन के अन्तिम समय में अशक्त हो गये थे और हिल-डुल नहीं सकते थे। ईश्वर पुरी पूर्णरूपेण उनकी सेवा करते थे, यहाँ तक कि उनका मलमूत्र भी वे स्वयं साफ करते थे। ईश्वर पुरी ने सदैव हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करके और श्री माधवेन्द्र पुरी को उनके अन्तिम समय में भगवान् कृष्ण की लीलाओं का स्मरण कराकर उनके शिष्यों में से सर्वाधिक सेवा की। इस तरह माधवेन्द्र पुरी ने अत्यधिक प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया, ‘हे प्रिय बालक, भगवान् कृष्ण से मैं यही विनती कर सकता हूँ कि वे तुम पर प्रसन्न हों।’ इस प्रकार ईश्वर पुरी अपने गुरु श्री माधवेन्द्र पुरी की कृपा से भगवत्प्रेम के महासागर में महान् भक्त बन गये।” श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती अपने गुर्वष्टक में लिखते हैं- यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि–“गुरु की कृपा से ही कृष्ण की कृपा का वर मिलता है। कोई गुरु की कृपा के बिना कुछ भी उन्नति नहीं कर सकता।” गुरु की कृपा से ही मनुष्य पूर्ण बनता है, जैसाकि इस उदाहरण से स्पष्ट है। वैष्णव की रक्षा सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् करते हैं, किन्तु यदि वह अशक्त प्रतीत होता है, तो इससे उसके शिष्यों को सेवा करने का अवसर मिलता है। ईश्वर पुरी ने अपनी सेवा से गुरु को प्रसन्न कर लिया और अपने गुरु के आशीर्वाद से वे इतने महान् पुरुष बन गये कि भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने उनको अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया।

श्रील ईश्वर पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु थे, किन्तु चैतन्य महाप्रभु को दीक्षा देने के पूर्व वे नवद्वीप गये थे और गोपीनाथ आचार्य के घर कुछ महीने रहे थे। तभी चैतन्य महाप्रभु का उनसे परिचय हुआ था। कहा जाता है कि तब वे श्री चैतन्य महाप्रभु को कृष्णलीलामृत नामक अपनी

पुस्तक सुनाकर उनकी सेवा किया करते थे। इसका वर्णन श्री चैतन्य-भागवत (आदिखण्ड, ग्यारहवाँ अध्याय) में मिलता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने दूसरों के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया कि किस प्रकार गुरु का आज्ञाकारी शिष्य बना जाए। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु, ईश्वर पुरी के जन्मस्थान कुमारहट्ट गये और उनके जन्म-स्थल से कुछ मिट्टी लेते आये, जिसे वे सावधानी से रखते थे और नित्य उसमें से कुछ अंश प्रतिदिन खाया करते थे। चैतन्य-भागवत, आदिखण्ड के सत्रहवें अध्याय में इसका वर्णन हुआ है। यह अब भक्तों के लिए प्रथा बन गई है कि भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के दृष्टान्त का अनुसरण करते हुए वहाँ जाते हैं और उस स्थान से कुछ मिट्टी लाते हैं।

निजाचिन्त्य-शक्त्ये माली हञा स्कन्ध हय ।

सकल शाखार सेइ स्कन्ध मूलाश्रय ॥12॥

निज-उनकी अपनी; अचिन्त्य-अचिन्त्य; शक्त्ये-शक्ति से; माली–माली; हञा-होकर; स्कन्ध-तना; हय-हो गये; सकल-सब; शाखार-अन्य शाखाओं का; सेइ-वह; स्कन्ध–तना; मूल-आश्रय-मूल आधार।

अनुवाद

अपनी अचिन्त्य शक्तियों के कारण महाप्रभु एकसाथ माली, तना तथा शाखाएँ बने।

परमानन्द पुरी, आर केशव भारती ।

ब्रह्मानन्द पुरी, आर ब्रह्मानन्द भारती ॥13॥

विष्णु-पुरी, केशव-पुरी, पुरी कृष्णानन्द ।

श्री-नृसिंहतीर्थ, आर पुरी सुखानन्द ॥14॥

एइ नव मूल निकसिल वृक्ष-मूले।

एइ नव मूले वृक्ष करिल निश्चले ॥15॥

परमानन्द पुरी-परमानन्द पुरी; आर-और; केशव भारती–केशव भारती; ब्रह्मानन्द पुरी–ब्रह्मानन्द पुरी; आर-और; ब्रह्मानन्द भारती–ब्रह्मानन्द भारती; विष्णु-पुरी-विष्णु पुरी; केशव-पुरी–केशव पुरी; पुरी कृष्णानन्द–कृष्णानन्द पुरी; श्री-नृसिंह-तीर्थ-श्री नृसिंह तीर्थ; आर-और; पुरी सुखानन्द-सुखानन्द पुरी; एइ नव-ये सब नौ; मूल-जडें; निकसिल-फलीभूत हुईं; वृक्ष-मूले वृक्ष के तने में; एइ नव मूले-इन नौ जड़ों में; वृक्ष-वृक्ष; करिल निश्चले–अत्यन्त मजबूत हो गया।

अनुवाद

श्री परमानन्द पुरी, केशव भारती, ब्रह्मानन्द पुरी, ब्रह्मानन्द भारती, श्री विष्णु पुरी, केशव पुरी, कृष्णानन्द पुरी, श्री नृसिंह तीर्थ तथा सुखानन्द पुरी-ये नौ संन्यासी वे जड़े हैं, जो उस वृक्ष के तने से फूटीं। इस तरह इन नौ जड़ों के बल पर वह वृक्ष दृढ़ता से खड़ा रहा।

तात्पर्य

परमानन्द पुरी : परमानन्द पुरी उत्तरप्रदेश के त्रिहुत जिले के एक ब्राह्मण परिवार के थे। माधवेन्द्र पुरी इनके गुरु थे। माधवेन्द्र पुरी से सम्बन्ध होने के फलस्वरूप परमानन्द पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु को बहुत प्रिय थे। चैतन्य-भागवत, अन्त्यखण्ड में निम्नलिखित कथन है :

संन्यासीर मध्ये ईश्वरेर प्रियपात्र

आर नाहि एक पुरी गोसाञि से मात्र

दामोदरस्वरूप परमानन्दपुरी

संन्यासि पार्षदे एइ दुइ अधिकारी

निरवधि निकटे थाकेन दुइजन

प्रभुर संन्यासे करे दण्डेर ग्रहण

पुरी ध्यानपर दामोदरेर कीर्तन

यतप्रीति ईश्वरेर पुरी-गोसाञिरे

दामोदर-स्वरूपेरओ तत प्रीति करे।

“माधवेन्द्र पुरी को संन्यासी शिष्यों में से ईश्वर पुरी तथा परमानन्द पुरी अत्यन्त प्रिय थे। इस प्रकार संन्यासी स्वरूप दामोदर की तरह परमानन्द पुरी भी श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे और उनके नित्य पार्षद थे। जब चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास लिया, तब परमानन्द पुरी ने उन्हें दण्ड (डण्डा) प्रदान किया। परमानन्द पुरी सदैव ध्यान में और श्री स्वरूप दामोदर हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में मग्न रहते थे। जिस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु अपने गुरु श्री ईश्वर पुरी का पूरा आदर करते थे, उसी तरह वे परमानन्द पुरी तथा स्वरूप दामोदर का भी आदर करते थे।” चैतन्य-भागवत (अन्त्य खण्ड, अध्याय 3) में वर्णन है कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पहले पहल परमानन्द पुरी को देखा, तो उन्होंने निम्नलिखित रूप में अपने भाव व्यक्त किये :

आजि धन्य लोचन, सफल आजि जन्म

सफल आमार आजि हैल सर्वधर्म ।

प्रभु बले आजि मोर सफल संन्यास

आजि माधवेन्द्र मोरे हइला प्रकाश।

"आज मेरी आँखें, मेरा मन, मेरे धार्मिक कृत्य तथा मेरा संन्यास स्वीकार करना-ये सभी धन्य हो गये हैं, क्योंकि मेरे सामने आज परमानन्द पुरी के रूप में माधवेन्द्र पुरी प्रकट हुए हैं।" चैतन्य-भागवत में आगे कहा गया है :

कथोक्षणे अन्योऽन्ये करेन प्रणाम।

परमानन्दपुरी चैतन्येर प्रियधाम॥

"इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने परम प्रिय परमानन्द पुरी से सादर नमस्कार का आदान-प्रदान किया।" परमानन्द पुरी ने जगन्नाथ मन्दिर के पश्चिमी भाग के पीछे एक छोटा-सा मठ स्थापित किया, जहाँ उन्होंने जल के लिए एक कुआँ खुदवाया। लेकिन पानी खारा था, इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् जगन्नाथ से प्रार्थना की कि वे गंगाजल को इस कुएँ में प्रवाहित करके इसे मीठा बना दें। जब भगवान जगन्नाथ ने प्रार्थना स्वीकार कर ली, तो महाप्रभु ने सारे भक्तों से कहा कि आज से परमानन्द पुरी के कुएँ के जल को गंगाजल के समान मानें, क्योंकि भक्तों को इसका जल पीने या इससे नहाने से गंगास्नान करने या गंगाजल-पान करने जैसा ही लाभ मिलेगा। ऐसा व्यक्ति निश्चय ही शुद्ध भगवत्प्रेम का विकास करेगा। चैतन्य भागवत (अन्त्य 3.255) में ऐसा कहा गया है :

प्रभु बले आमि ये आछिये पृथिवीते।

निश्चयै जानिह पुरीगोसाञिर प्रीते॥

“श्री चैतन्य महाप्रभु कहा करते थे, ‘मैं इस दुनिया में केवल श्री परमानन्द पुरी के सर्वोत्कृष्ट व्यवहार के कारण ही रह रहा हूँ।” गौरगणोद्देश दीपिका (श्लोक 118) का कथन है-पुरी श्री परमानन्दो य आसीद् उद्धवः पुरा–“परमानन्द पुरी श्री उद्धव ही थे।” उद्धव भगवान् कृष्ण के मित्र तथा चाचा के पुत्र थे और चैतन्य-लीला में यही उद्धव श्री चैतन्य महाप्रभु के मित्र तथा गुरु-शिष्य परम्परा में उनके चाचा-गुरु हुए।

केशव भारती : सरस्वती, भारती तथा पुरी सम्प्रदाय दक्षिण भारत के श्रृंगेरी मठ से सम्बन्धित हैं और श्री केशव भारती, जो भारती सम्प्रदाय के थे, उस समय कटवा स्थित मठ में रह रहे थे। कुछ प्रामाणिक मतों के अनुसार यद्यपि केशव भारती का सम्बन्ध शंकर सम्प्रदाय से था, किन्तु पहले वे एक वैष्णव द्वारा दीक्षित हो चुके थे। माधवेन्द्र पुरी से दीक्षा प्राप्त करने के कारण वे वैष्णव माने जाते हैं, क्योंकि कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने माधवेन्द्र पुरी से संन्यास लिया था। खाटुण्डी नामक गाँव में, जो बर्दवान जिले में कान्दरा डाकखाने के अन्तर्गत है, केशव भारती द्वारा आरम्भ की गई विग्रह-पूजा और मन्दिर आज भी विद्यमान है। उस मठ के प्रबन्धकों के अनुसार पुजारी केशव भारती के वंशज हैं और कुछ लोगों के अनुसार विग्रह के पुजारी केशव भारती के पुत्रों के वंशज हैं। गृहस्थ जीवन में उन्हें दो पुत्र हुए-निशापति तथा उषापति। निशापति के वंश का ही एक सदस्य श्री नकड़िचन्द्र विद्यारत्न नामक ब्राह्मण उस मन्दिर का पुजारी था, जब श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती वहाँ गये थे। कुछ लोगों के अनुसार इस मन्दिर के पुजारी केशव भारती के भाई के वंशज हैं। अन्य मत के लोग उन्हें माधव भारती के वंशज मानते हैं, जो केशव भारती के एक अन्य शिष्य थे। माधव भारती के शिष्य बलभद्र भी बाद में भारती सम्प्रदाय के संन्यासी बने। उनके गृहस्थ जीवन में उनके मदन तथा गोपाल दो पुत्र थे। मदन का पारिवारिक उपनाम भारती था, जो औरिया गाँव में रहता था

और गोपाल का पारिवारिक उपनाम ब्रह्मचारी था, जो देण्डुड गाँव में रहता था। इन दोनों वंशों के अनेक वंशज आज भी जीवित हैं।

गौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक 52) में कहा गया है :

मथुरायां यज्ञसूत्रं पुरा कृष्णाय यो मुनिः ।

ददौ सान्दीपनिः सोऽभूदद्य केशवभारती ॥

"सान्दीपनि मुनि, जिन्होंने पुराकाल में कृष्ण तथा बलराम का यज्ञोपवीत संस्कार कराया था, बाद में वे ही केशव भारती बने।" उन्होंने ही श्री चैतन्य महाप्रभु को संन्यास दिया। गौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक 117) में केशव भारती के बारे में एक अन्य कथन भी है- इति केचित् प्रभाषन्तेऽक्रूरः केशवभारती–"कुछ प्रमाणों के अनुसार केशव भारती अक्रूर के अवतार हैं।" केशव भारती ने 1432 शकाब्द (सन् 1510 ई.) में श्री चैतन्य महाप्रभु को कटवा में संन्यास दिया। इसका उल्लेख वैष्णवमञ्जूषा (भाग 2) में हुआ है।

ब्रह्मानन्द पुरी : जब श्री चैतन्य महाप्रभु नवद्वीप में कीर्तन करते थे, उस समय से श्री ब्रह्मानन्द पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के पार्षद थे। जगन्नाथ पुरी में भी वे चैतन्य महाप्रभु महाप्रभु के साथ रहे। यहाँ पर ध्यान देना होगा कि ब्रह्मानन्द नाम न केवल मायावादी संन्यासियों का होता है, अपितु वैष्णव संन्यासियों का भी होता है। हमारे एक मूर्ख गुरु-भाई ने हमारे संन्यासी ब्रह्मानन्द स्वामी की यह कहकर आलोचना की कि यह तो मायावादी नाम है। वह मूर्ख यह भी नहीं जानता था कि ब्रह्मानन्द केवल निर्विशेष ब्रह्म का ही सूचक नहीं होता है। परब्रह्म या परम ब्रह्म कृष्ण हैं। अतएव कृष्ण का भक्त भी ब्रह्मानन्द कहला सकता है। यह इस तथ्य से भी स्पष्ट होता है कि ब्रह्मानन्द पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रमुख संन्यासी-पार्षदों में से एक थे।

ब्रह्मानन्द भारती : ब्रह्मानन्द भारती श्रीकृष्ण चैतन्य से मिलने जगन्नाथ धाम गये। उस समय वे अपने शरीर को ढकने के लिए केवल मृगचर्म पहनते थे और चैतन्य महाप्रभु ने अप्रत्यक्ष रूप से इंगित किया था कि उन्हें उनका मृगचर्म पहनना अच्छा नहीं लगता। अतएव ब्रह्मानन्द भारती मृगचर्म पहनना त्यागकर वैष्णव संन्यासियों जैसा केसरिया (गेरुआ) कौपीन पहनने लगे। वे कुछ काल तक श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ जगन्नाथ पुरी में रहे।

मध्य-मूल परमानन्द पुरी महा-धीर।

अष्ट दिके अष्ट मूल वृक्ष कैल स्थिर॥ 16॥

मध्य-मूल-बीच की जड़; परमानन्द पुरी-परमानन्द पुरी; महा-धीर-महा गम्भीर; अष्ट दिके-आठ दिशाओं में; अष्ट मूल-आठ जड़ें; वृक्ष-वृक्ष; कैल स्थिर–स्थिर हो गया।

अनुवाद

धीर गम्भीर परमानन्द पुरी मुख्य (केन्द्रीय) जड़ बने और आठों दिशाओं में अन्य आठ जड़ों समेत श्री चैतन्य महाप्रभु रूपी वृक्ष सुस्थिर हो गया।

स्कन्धेर उपरे बहु शाखा उपजिल।

उपरि उपरि शाखा असङ्ख्य हइल॥17॥

स्कन्धेर उपरे–तने के ऊपर; बहु शाखा-अनेक शाखाएँ; उपजिल-उग पड़ीं; उपरि उपरि-और उनके ऊपर; शाखा-अन्य शाखाएँ; असङ्ख्य -असंख्य; हइल-फलीभूत हुई।

अनुवाद

तने से अनेक शाखाएँ फूटीं और उनके भी ऊपर अनेक उपशाखाएँ निकलीं।

विश विश शाखा करि' एक एक मण्डल ।

महा-महा-शाखा छाइल ब्रह्माण्ड सकल ॥18॥

विश विश–बीस, बीस; शाखा शाखाएँ; करि'–समूह बनाकर; एक एक मण्डल-एक एक झुंड (मंडल) बनाते हैं; महा-महा-शाखा-बड़ी शाखाएँ; छाइल-ढककर; ब्रह्माण्ड–सारे ब्रह्माण्ड; सकल-सभी।

अनुवाद

इस तरह चैतन्य रूपी वृक्ष की शाखाओं से एक गुच्छा या समाज बना और बड़ी-बड़ी शाखाएँ सारे ब्रह्माण्ड में छा गईं।

तात्पर्य

हमारा अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ चैतन्य-वृक्ष की ही एक शाखा है।

एकैक शाखाते उपशाखा शत शत ।

यत उपजिल शाखा के गणिबे कत ॥19॥

एकैक-प्रत्येक शाखा; शाखाते-शाखा में; उपशाखा-उपशाखाएँ; शत शत-सौ-सौ; यत-सब; उपजिल-उग गईं; शाखा शाखाएँ, के-कौन; गणिबे-गिन सकता है; कत-कितनी।

अनुवाद

हर शाखा से सैकड़ों उपशाखाएँ फूटीं। इस तरह कितनी शाखाएँ निकलीं, इसकी गिनती कोई नहीं कर सकता।

मुख्य मुख्य शाखा-गणेर नाम अगणन ।

आगे त' करिब, शुन वृक्षेर वर्णन ॥20॥

मुख्य मुख्य–मुख्य-मुख्य; शाखा-गणेर-शाखाओं का; नाम-नाम; अगणन-अनगिनत; आगे-आगे, बाद में; त' करिब-मैं करूँगा; शुन-कृपया सुनें; वृक्षेर वर्णन-चैतन्य वृक्ष का वर्णन।

अनुवाद

मैं इन असंख्य शाखाओं में से सर्वप्रमुख शाखाओं का नाम गिनाने का प्रयत्न करूँगा। कृपया चैतन्य-वृक्ष का वर्णन सुनें।

वृक्षेर उपरे शाखा हैल दुइ स्कन्ध ।

एक 'अद्वैत' नाम, आर 'नित्यानन्द' ॥21॥

वृक्षेर–वृक्ष के; उपरे ऊपर; शाखा शाखा; हैल-हो गई; दुइ-दो; स्कन्ध-तने; एक-एक; अद्वैत-श्री अद्वैत प्रभु; नाम-नाम की; आर-और; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

वृक्ष के ऊपरी तने के दो भाग हो गये। एक तने का नाम श्री अद्वैत प्रभु था और दूसरे का श्री नित्यानन्द प्रभु।

सेइ दुइ-स्कन्धे बहु शाखा उपजिल ।

तार उपशाखा-गणे जगत्छाइल ॥ 22 ॥

सेइ-वह; दुइ-स्कन्धे-दो तनों में; बहु-बहुत; शाखा-शाखाएँ; उपजिल-उग गईं; तार-उनका; उपशाखा-गणे-उपशाखाएँ; जगत्-सारा जगत्; छाइल-ढक गया।

अनुवाद

इन दोनों तनों से अनेक शाखाएँ एवं उपशाखाएँ उत्पन्न हुईं, जो सारे जगत् पर छा गईं।

बड़ शाखा, उपशाखा, तार उपशाखा ।

यत उपजिल तार के करिबे लेखा ॥ 23 ॥

बड़ शाखा-बड़ी शाखाएँ; उपशाखा-उपशाखाएँ; तार–उनकी; उपशाखा-उपशाखाएँ; ग्रत-वे सब; उपजिल-उग गईं; तार–उनकी; के-कौन; करिबे-गिन सकता है; लेखा-या लिख सकता है।

अनुवाद

ये शाखाएँ तथा उपशाखाएँ और उनकी भी उपशाखाएँ इतनी अधिक हो गईं कि उन सबके विषय में लिख पाना असम्भव है।

शिष्य, प्रशिष्य, आर उपशिष्य-गण ।

जगत्व्यापिल तार नाहिक गणन ॥24॥

शिष्य-शिष्य; प्रशिष्य-शिष्यों के शिष्य; आर-और; उपशिष्य-गण-प्रशंसक; जगत्-सारा जगत्; व्यापिल-फैल गये; तार-उसकी; नाहिक-कोई नहीं है; गणन-गिनती।

अनुवाद

इस तरह शिष्य, उनके शिष्य और उन सबके प्रशंसक सारे जगत् में फैल गये। इन सबको गिना पाना सम्भव नहीं है।

उड़म्बर-वृक्ष येन फले सर्व अङ्गे ।

एइ मत भक्ति-वृक्षे सर्वत्र फल लागे ॥ 25 ॥

उड़म्बर-वृक्ष-एक बड़ा अंजीर का वृक्ष; येन-जैसे; फले-फल उगते हैं; सर्व-सब; अङ्गे-पूरे शरीर पर; एइ–यह; मत-की तरह; भक्ति-वृक्षे–भक्ति-वृक्ष; सर्वत्र-सर्वत्र; फल-फल; लागे-लगते हैं।

अनुवाद

जिस प्रकार विशाल अंजीर वृक्ष में सर्वत्र फल लगते हैं, उसी तरह भक्ति-वृक्ष के प्रत्येक अंग में फल लगे।

तात्पर्य

यह भक्ति-वृक्ष इस भौतिक जगत् का वृक्ष नहीं है। यह आध्यात्मिक जगत् में उगता है, जहाँ शरीर के विभिन्न अंगों में अन्तर नहीं होता। यह एक प्रकार से चीनी के वृक्ष के समान है, जिसके किसी भी भाग का आस्वादन किया जाए, वह सर्वदा मीठा ही लगेगा। भक्ति-वृक्ष में अनेक प्रकार की शाखाएँ, पत्तियाँ और फल होते हैं, किन्तु वे सब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा के लिए होते हैं। भक्ति की नौ भिन्न-भिन्न विधियाँ हैं (श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यम् आत्मनिवेदनम्), किन्तु ये सभी भगवान् की सेवा के निमित्त हैं। अतएव चाहे कोई श्रवण करे, कीर्तन करे, स्मरण करे या पूजा करे, उसके कृत्यों का एक जैसा ही फल मिलेगा। इनमें से कौन-सी विधि किसी भक्त के लिए उचित होगी, यह उसकी रुचि पर निर्भर करेगा।

मूल-स्कन्धेर शाखा आर उपशाखा-गणे ।

लागिला ये प्रेम-फल,—अमृतके जिने ॥26॥

मूल-स्कन्धेर-बड़े तने की; शाखा-शाखाएँ; आर-और; उपशाखा-गणे-उपशाखाएँ; लागिला-जैसे लगी थी; ये-जो; प्रेम-फल-प्रेमफल; अमृतके जिने-ऐसा फल अमृत को भी मात करता है।

अनुवाद

चूँकि श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु मूल तना थे, अतएव शाखाओं तथा उपशाखाओं में जो फल लगे, उनका स्वाद अमृत से भी बढ़कर था।

पाकिल ये प्रेम-फल अमृत-मधुर ।

विलाय चैतन्य-माली, नाहि लय मूल ॥ 27॥

पाकिल-पके हुए; ये-वे; प्रेम-फल-भगवत्प्रेम का फल; अमृत-अमृत समान; मधुर-मधुर; विलाय-बाँटते हैं; चैतन्य-माली–माली के रूप में चैतन्य महाप्रभु; नाहि-नहीं; लय-लेते; मूल-मूल्य, कीमत।

अनुवाद

फल पकते गये और मीठे तथा अमृतमय हो गये। माली श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें कोई मूल्य माँगे बिना ही वितरित कर दिया।

त्रि-जगते यत आछे धन-रत्नमणि ।

एक-फलेर मूल्य करि’ ताहा नाहि गणि ॥ 28 ॥

त्रि-जगते–तीनों जगतों में; यत-जितना; आछे-है; धन-रल-मणि-सम्पत्ति और धन; एक-फलेर-एक फल का; मूल्य-मूल्य; करि’-हिसाब करके; ताहा-वह; नाहि-नहीं; गणि-गिनके।

अनुवाद

भक्ति के ऐसे एक अमृतमय फल के मूल्य की बराबरी तीनों लोक की सारी सम्पदा भी नहीं कर सकती।

मागे वा ना मागे केह, पात्र वा अपात्र ।

इहार विचार नाहि जाने, देय मात्र ॥29॥

मागे-माँगता है; वा–अथवा; ना-नहीं; मागे-माँगता है; केह-कोई; पात्र–पात्र, योग्य; वा–अथवा; अपात्र-अपात्र; इहार-इसका; विचार-विचार; नाहि-नहीं; जाने-जानते; देय-देते हैं; मात्र मात्र।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसका विचार किये बिना ही भक्तिरूपी फल का वितरण किया कि कौन इसे माँगता है, कौन नहीं अथवा कौन उसको पाने का पात्र है और कौन कुपात्र।

तात्पर्य

चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आन्दोलन का यही सकल-सार है। इस संकीर्तन आन्दोलन को सुनने या इसमें भाग लेने का पात्र कौन है और कौन नहीं, इस प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता।

अतः इसका प्रचार भेदभाव-रहित होकर करना चाहिए। संकीर्तन आन्दोलन के प्रचारकों का एकमात्र प्रयोजन बिना रुकावट के प्रचार-कार्य करना होना चाहिए। यही वह विधि है, जिसके द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु ने विश्व में इस संकीर्तन आन्दोलन का सूत्रपात किया।

अञ्जलि अञ्जलि भरि' फेले चतुर्दिशे ।

दरिद्र कुड़ाञा खाय, मालाकार हासे ॥ 30॥

अञ्जलि-मुट्ठी; अञ्जलि-मुट्ठी; भरि'-भरकर; फेले-बाँटते हैं; चतुर्-दिशे–चारों दिशाओं में; दरिद्र-निर्धन; कुड़ाञा–पकड़कर; खाय-खाते हैं; माला-कार-माली; हासे मुस्कुराते हैं।

अनुवाद

दिव्य माली श्री चैतन्य महाप्रभु ने अंजुली में भर-भरकर सभी दिशाओं में फल बाँट दिये और जब गरीब, भूखे लोगों ने यह फल खाया, तो माली परम आनन्दित होकर मुस्कुराते रहे।

मालाकार कहे,—शुन, वृक्ष-परिवार ।

मूलशाखा-उपशाखा यतेक प्रकार ॥ 31॥

माला-कार-माली; कहे-कहा; शुन-सुनो; वृक्ष-परिवार-भक्ति के इस दिव्य वृक्ष का परिवार; मूल-शाखा–मुख्य शाखाएँ; उपशाखा-उपशाखाएँ; यतेक-बहुत; प्रकार-प्रकार।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति-वृक्ष की विभिन्न प्रकार की शाखाओं तथा उपशाखाओं को संबोधित किया :

अलौकिक वृक्ष करे सर्वेन्द्रिय-कर्म ।

स्थावर हइया धरे जङ्गमेर धर्म ॥32॥

अलौकिक-आध्यात्मिक; वृक्ष-वृक्ष; करे-करता है; सर्व-इन्द्रिय-सब इन्द्रियों का; कर्म-कर्म; स्थावर-जड़; हइया-होकर; धरे–स्वीकार करता है; जङ्गमेर–चलने-फिरने वाला; धर्म–कार्यकलाप।

अनुवाद

चूँकि भक्ति-वृक्ष दिव्य होता है, अतएव इसका प्रत्येक अंग अन्य सारे अंगों का कार्य सम्पन्न कर सकता है। यद्यपि वृक्ष अचर माना जाता है, किन्तु ऐसा होते हुए भी यह वृक्ष जंगम (चलने वाला) है।

तात्पर्य

भौतिक जगत् में हम सबका यह अनुभव है कि वृक्ष एक स्थान पर ही खड़े रहते हैं, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में वृक्ष एक स्थान से दूसरे स्थान जा सकते हैं। इसलिए आध्यात्मिक जगत् की हर वस्तु अलौकिक अर्थात् दिव्य कहलाती है। ऐसे वृक्ष की अन्य विशेषता यह है कि यह व्यापक रूप से कार्य कर सकता है। भौतिक जगत् में वृक्ष की जड़ें पृथ्वी के अन्दर जाकर अपना भोजन एकत्र करती हैं, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में वृक्ष के ऊपरी भाग की टहनियाँ तथा पत्तियाँ भी जड़ों का काम कर सकती हैं।

ए वृक्षेर अङ्ग हय सब सचेतन ।

बाड़िया व्यापिल सबे सकल भुवन ॥ 33॥

ए-यह; वृक्षेर–चैतन्य रूपी वृक्ष के; अङ्ग–भाग, अङ्ग; हय-हैं; सब-सब; सचेतन-चेतन; बाड़िया-बढ़ रहे; व्यापिल-आप्लावित; सबे-सारे भाग; सकल-सब; भुवन–जगत्।

अनुवाद

इस वृक्ष के सारे अंग आध्यात्मिक रूप से सचेतन हैं और वे ज्यों-ज्यों बढ़ते हैं त्यों-त्यों सारे जगत् में फैल जाते हैं।

एकला मालाकार आमि काहाँ काहाँ याब ।

एकला वा कत फल पाड़िया विलाब ॥ 34॥

एकला-अकेला; माला-कार-माली; आमि-मैं हूँ; काहाँ–कहाँ; काहाँ-कहाँ; याब-मैं जाऊँ; एकला–अकेला; वा-अथवा; कत-कितने; फल-फल; पाड़िया-उठाकर; विलाब–बाँटूंगा।

अनुवाद

"मैं ही अकेला माली हूँ। मैं कितने स्थानों में जा सकता हूँ? मैं कितने फल तोड़ और बाँट सकता हूँ?"

तात्पर्य

यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु इंगित करते हैं कि हरे कृष्ण महामन्त्र का वितरण मिलकर करना चाहिए। यद्यपि वे पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर हैं, किन्तु वे शोक करते हैं, "मैं अकेले कैसे कार्य कर सकता हूँ? मैं अकेले कैसे फल तोड़कर सारे जगत् में वितरण कर सकता हूँ?" इससे संकेत मिलता है कि सभी श्रेणी के भक्तों को मिलकर देश-काल अथवा परिस्थिति का विचार किये बिना हरे कृष्ण महामन्त्र का वितरण करना चाहिए।

एकला उठाञा दिते हय परिश्रम ।

केह पाय, केह ना पाय, रहे मने भ्रम ॥ 35 ॥

एकला-अकेला; उठाञा-उठाना; दिते-देना; हय–यह हो जाता है; परिश्रम-बहुत परिश्रम का; केह-कोई; पाय-पाता है; केह-कोई; ना-नहीं; पाय-पाता; रहे-रहता है; मने-मन में; भ्रम-भ्रम, आशंका।

अनुवाद

"अकेले फलों को तोड़कर उन्हें वितरित करना निश्चित ही अत्यधिक परिश्रम का कार्य है, परन्तु इतने पर भी मुझे सन्देह है कि कुछ लोग उन्हें प्राप्त कर पाएँगे और कुछ नहीं।"

अतएव आमि आज्ञा दिलुँ सबकारे ।

याहाँ ताहाँ प्रेम-फल देह' यारे तारे ॥ 36॥

अतएव–अतएव; आमि-मैं; आज्ञा-आज्ञा; दिलुँ–देता हूँ; सबाकारे-हर एक को; याहाँ–जहाँ कहीं; ताहाँ-हर जगह; प्रेम-फल-भगवत्-प्रेम का फल; देह'–बाँटो; यारे-किसी को भी; तारे-प्रत्येक को।

अनुवाद

"अतएव मैं इस ब्रह्माण्ड के हर व्यक्ति को आज्ञा देता हूँ कि वह इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन को स्वीकार करे और इसे सर्वत्र वितरित करे।"

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित एक गीत है :

एनेछि औषधि माया नाशिबार लागि'

हरिनाम महामन्त्र लओ तुमि मागि'

भक्तिविनोद प्रभु-चरणे पड़िया

सेइ हरिनाम मन्त्र लइल मागिया ॥

श्री चैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन आन्दोलन का सूत्रपात माया के उस मोह को दूर करने के लिए किया, जिसके कारण इस भौतिक जगत् का हर व्यक्ति अपने आपको पदार्थ से उत्पन्न हुआ मानता है और इसलिए शरीर के प्रति अपने अनेक कर्तव्यों को निभाता है। वास्तव में जीव शरीर नहीं अपितु आत्मा है। उसे ज्ञान तथा आनन्द से सदैव पूर्ण होने की आध्यात्मिक आवश्यकता है, किन्तु दुर्भाग्यवश वह अपने आपको शरीर मान लेता है, जिससे कभी वह अपने आपको मनुष्य, कभी पशु, कभी वृक्ष, कभी जलचर तो कभी देवता इत्यादि के रूप में पाता है। इस तरह हर शरीर बदलने के साथ ही वह अलग प्रकार की चेतना विकसित करते हुए अलग प्रकार के कार्य करता है और इस तरह इस भौतिक संसार में अधिकाधिक फँसता जाता है और लगातार एक शरीर से दूसरे शरीर में देहान्तरण करता रहता है। माया के वशीभूत होकर वह भूत या भविष्य पर विचार नहीं करता, केवल वर्तमान के अल्पकालिक जीवन से सन्तुष्ट रहता है। इस माया या मोह को दूर करने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु संकीर्तन आन्दोलन लाये हैं और वे हर एक से प्रार्थना करते हैं कि लोग इसे अंगीकार करके वितरित करें। जो व्यक्ति सचमुच ही श्री भक्तिविनोद ठाकुर का अनुयायी है, उसे चैतन्य महाप्रभु के इस निवेदन को तुरन्त स्वीकार करते हुए उनके चरणकमलों में नमस्कार

करके हरे कृष्ण महामंत्र की याचना करनी चाहिए। यदि कोई इतना भाग्यशाली हो कि महाप्रभु से हरे कृष्ण महामन्त्र की याचना कर सके तो उसका जीवन सफल हो जाए।

एकला मालाकार आमि कत फल खाब ।

ना दिया वा एइ फल आर कि करिब ॥ 37॥

एकला-अकेला; माला-कार-माली; आमि-मैं; कत-कितने; फल-फल; खाब–खा लूँगा; ना–बिना; दिया–दिये; वा-अथवा; एइ-यह; फल-फल; आर-दूसरा; कि–क्या; करिब–मैं करूँगा।

अनुवाद

"मैं अकेला माली हूँ। यदि मैं इन्हें वितरित न करूँ तो मैं इनका क्या करूँगा? अकेले में कितने फल खा सकता हूँ?"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति के इतने फल उत्पन्न किये कि उन्हें सारे विश्व में वितरित कर देना जरूरी था; अन्यथा वे अकेले इतने सारे फलों को कैसे चख सकते थे और आस्वादन का आनन्द कैसे ले सकते थे? श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण के अवतरित होने का मूल कारण था श्रीमती राधारानी के कृष्ण के प्रति प्रेम को समझना और उस प्रेम का आस्वादन करना। चूँकि भक्ति के वृक्ष के फल असंख्य थे, अतएव वे बिना किसी रोक-टोक के हर एक को बाँट देना चाहते थे। इसलिए श्रील रूप गोस्वामी लिखते है :

अनर्पितचरी चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ

समर्पयितुम् उन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम् ।

हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः

सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः ॥

यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अनेक अवतार पहले हो चुके हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के समान उदार, दयालु तथा वदान्य कोई न था, क्योंकि उन्होंने भक्ति के सबसे रहस्यमय पक्ष-राधा-कृष्ण के माधुर्य प्रेम का वितरण किया। इसलिए श्री रूप गोस्वामी प्रभुपाद चाहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त भक्तों के हृदयों में निरन्तर वास करें, क्योंकि तभी वे श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण के प्रेम-व्यापारों को समझ सकेंगे और उनका आस्वादन कर सकेंगे।

आत्म-इच्छामृते वृक्ष सिञ्चि निरन्तर।

ताहाते असङ्ख्य फल वृक्षेर उपर ॥ 38॥

आत्म-स्वयं; इच्छा-अमृते-इच्छा रूपी अमृत से; वृक्ष-वृक्ष; सिञ्चि–सींचना; निरन्तर–निरन्तर; ताहाते-वहाँ; असङ्ख्य-असंख्य; फल-फल; वृक्षेर-वृक्ष के; उपर-ऊपरी भाग।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य इच्छा से सारे वृक्ष पर पानी छिड़का गया है और इस तरह भगवत्प्रेम के असंख्य फल लगे हैं।

तात्पर्य

ईश्वर असीम हैं और उनकी इच्छाएँ भी असीम हैं। अनन्त फलों का यह उदाहरण भौतिक सन्दर्भ में भी उपयुक्त है, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की इच्छा से इतने फल, अन्न तथा खाद्य पदार्थ उत्पन्न हो सकते हैं कि सारे लोग अपनी क्षमता से दस गुना अधिक खायें, तो भी वे समाप्त

न हों। इस भौतिक जगत् में कृष्णभावना के सिवा अन्य किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है। यदि लोग कृष्णभावनाभावित हो जाएँ, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य कृपा से इतना अधिक खाद्य पदार्थ उत्पन्न हो सकता है कि लोगों की सारी आर्थिक समस्याएँ दूर हो जाएँ। इस तथ्य को आसानी से समझा जा सकता है। फल-फूल का उत्पादन हमारी इच्छा पर नहीं, अपितु परमेश्वर की परम इच्छा पर निर्भर करता है। यदि वे प्रसन्न रहें, तो पर्याप्त फल-फूल प्रदान कर सकते हैं, किन्तु यदि लोग नास्तिक तथा ईश्वरविहीन हैं, तो प्रकृति भगवान् की इच्छा से खाद्य पदार्थों की पूर्ति को सीमित कर देती है। उदाहरणार्थ, कभी-कभी कम वर्षा होने से भारत के अनेक प्रान्तों में, विशेषतया महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश एवं अन्य निकटवर्ती राज्यों में खाद्य पदार्थों का घोर अभाव हो जाता है। इस विषय में तथाकथित विज्ञानी तथा अर्थशास्त्री कुछ भी नहीं कर सकते। अतएव सारी समस्याओं को हल करने के लिए मनुष्य को चाहिए कि कृष्णभावनाभावित बनकर तथा भगवान् की नित्य भक्तिपूर्वक पूजा करके परमेश्वर की कृपा प्राप्त करने की चेष्टा करे।

अतएव सब फल देह' यारे तारे।

खाइया हउक् लोक अजर अमरे॥ 39॥

अतएव–अतएव; सब-सब; फल-फल; देह'-बाँटो; यारे तारे-हर एक को; खाइया-खाना; हउक्-वे हों; लोक-सभी लोग; अजर-वृद्धावस्था रहित; अमरे–मृत्यु के बिना।

अनुवाद

इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन का वितरण सारे विश्व में करो, जिससे सारे लोग इन फलों को खाकर अन्ततः वृद्धावस्था तथा मृत्यु से मुक्त हो सकें।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा चलाया गया कृष्णभावनामृत आन्दोलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि जो इसे स्वीकार करता है, वह जन्म, मृत्यु तथा वृद्धावस्था से मुक्त होकर शाश्वत बन जाता है। लोग यह समझ नहीं पाते कि जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा रोग, यही जीवन के चार असली क्लेश हैं। वे इतने मूर्ख हैं कि इन चारों क्लेशों के समक्ष घुटने टेक देते हैं, क्योंकि वे हरे कृष्ण महामन्त्र के दिव्य उपचार को नहीं जानते। केवल हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन से सारे क्लेशों से छुटकारा पाया जा सकता है, किन्तु लोग माया के वशीभूत होकर इस आन्दोलन को गम्भीरता से स्वीकार नहीं करते। अतएव जो लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के वास्तविक सेवक हैं, उन्हें चाहिए कि मानव समाज के सर्वाधिक लाभ के लिए इस आन्दोलन का विश्वभर में विस्तार करें। निस्सन्देह, पशु तथा निम्न योनियाँ इस आन्दोलन को समझने में असमर्थ हैं, किन्तु यदि कुछ ही मनुष्य इसे गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करें, तो उनके उच्च स्वर में कीर्तन से पशु, वृक्ष तथा अन्य निम्न योनियों सहित सारे जीव लाभान्वित होंगे। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर से पूछा कि वे मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य जीवों को कैसे लाभ पहुँचा सकते हैं, तो श्रील हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया कि हरे कृष्ण महामन्त्र इतना शक्तिशाली है कि यदि इसका उच्च स्वर से उच्चारण किया जाए, तो सबके सब इससे लाभान्वित होंगे, जिसमें निम्न योनियाँ भी सम्मिलित हैं।

जगत्व्यापिया मोर हबे पुण्य ख्याति ।

सुखी हइया लोक मोर गाहिबेक कीर्ति ॥40॥

जगत् व्यापिया-सारे संसार में प्रसार करते हुए; मोर–मेरा; हबे-होगा; पुण्य-पुण्य; ख्याति-प्रसिद्धि; सुखी-सुखी; हइया-होकर; लोक-सभी लोग; मोर-मेरा; गाहिबेक-महिमान्वित करेंगे; कीर्ति-यश।

अनुवाद

“यदि फलों को सारे विश्व में वितरित किया जाए, तो पुण्यात्मा के रूप में मेरी ख्याति सर्वत्र फैलेगी और सारे लोग अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मेरे नाम की महिमा का गान करेंगे।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की यह भविष्यवाणी अब सच हो रही है। भगवान् के पवित्र नाम, हरे कृष्ण महामन्त्र, के कीर्तन द्वारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन का विश्वभर में वितरण हो रहा है और जो लोग भ्रमपूर्ण अस्त-व्यस्त जीवन बिता रहे थे, वे अब दिव्य सुख का अनुभव कर रहे हैं। उन्हें संकीर्तन में शान्ति मिल रही है, अतएव वे इस आन्दोलन के परम लाभ को स्वीकार कर रहे हैं। यह श्री चैतन्य महाप्रभु का आशीर्वाद है। उनकी भविष्यवाणी अब वास्तव में पूरी हो रही है और जो लोग गम्भीर तथा विवेकशील हैं, वे इस महान् आन्दोलन के महत्त्व को समझ रहे हैं।

भारत-भूमिते हैल मनुष्य जन्म यार।

जन्म सार्थक करि’ कर पर-उपकार ॥41॥

भारत-भारत की; भूमिते-भूमि में; हैल–हुआ है; मनुष्य-मनुष्य; जन्म-जन्म; यार–जिसका; जन्म-ऐसा जन्म; सार्थक-सफल ; करि’-ऐसा करके; कर-करो; पर दूसरों पर; उपकार-उपकार।

अनुवाद

“जिसने भारतभूमि (भारतवर्ष) में मनुष्य जन्म लिया है, उसे अपना जीवन सफल बनाना चाहिए और अन्य सारे लोगों के लाभ के लिए कार्य करना चाहिए।”

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की उदारता इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण श्लोक में व्यक्त हुई है। यद्यपि वे बंगाल में जन्मे थे और बंगालियों का उनके प्रति विशेष कर्तव्य है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु केवल बंगालियों को ही नहीं, अपितु भारत के सारे निवासियों को सम्बोधित कर रहे हैं। भारतभूमि में ही वास्तविक मानव सभ्यता विकसित हो सकती है।

जैसाकि वेदान्त-सूत्र में कहा गया है, मानव जीवन विशेष रूप से भगवत्-साक्षात्कार के लिए है : अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। जो भी भारतभूमि (भारतवर्ष) में जन्म लेता है, उसे यह विशेष अवसर प्राप्त है कि वह वैदिक सभ्यता के उपदेश तथा मार्गदर्शन का लाभ उठा सके। वह स्वतः आध्यात्मिक जीवन के मूल सिद्धान्तों को पा लेता है, क्योंकि 99.9 प्रतिशत भारतीय लोग, यहाँ तक कि गाँव के सीधे सादे किसान तथा अशिक्षित लोग भी आत्मा के देहान्तरण, विगत तथा भावी जीवन एवं ईश्वर में विश्वास करते हैं और स्वाभाविक रूप से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् या उनके प्रतिनिधि की पूजा करना चाहते हैं। ये विचार भारत में जन्म लेने वालों को स्वाभाविक रूप से उत्तराधिकार में मिलते हैं। भारत में अनेक पवित्र तीर्थस्थान हैं-जैसे गया, बनारस, मथुरा, प्रयाग, वृन्दावन, हरिद्वार, रामेश्वरम् तथा जगन्नाथ पुरी, और वहाँ आज भी लोग लाखों की संख्या में जाते हैं। यद्यपि भारत के वर्तमान नेता सामान्य जनता को ईश्वर, अगले जन्म, तथा पुण्य और पापमय जीवन के भेद में विश्वास न करने के लिए प्रेरित करते हैं और यद्यपि उन्हें शराब पीने, मांस खाने तथा तथाकथित रूप से सभ्य बनने की शिक्षा देते हैं, फिर भी लोग चार पापों से भयभीत रहते हैं-अवैध सम्बन्ध, मांसाहार, नशा तथा जुआ। जब भी कोई धार्मिक उत्सव मनाया जाता है, तो लोग हजारों की संख्या में एकत्र होते हैं। हमें इसका वास्तविक अनुभव है। जब भी हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन कोई संकीर्तन-उत्सव कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, अहमदाबाद या हैदराबाद जैसे किसी बड़े शहर में मनाता है, तो सुनने के लिए हजारों लोग आते हैं। कभी-कभी हम अंग्रेजी में बोलते हैं,

लेकिन अधिकांश लोग अंग्रेजी न समझने पर भी हमें सुनने आते हैं। जब भगवान् के नकली अवतार भी बोलते हैं, तो भी हजारों लोग एकत्र होते हैं, क्योंकि भारतभूमि में जन्मे हर व्यक्ति में सहज आध्यात्मिक प्रवृत्ति पाई जाती है और उसे आध्यात्मिक जीवन के मूल सिद्धान्त सिखलाये जाते हैं। उन्हें केवल वैदिक सिद्धान्तों के विषय में कुछ और अधिक बताये जाने की आवश्यकता है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु यहाँ कहते हैं- जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार-यदि भारतीयों को वैदिक सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाए, तो वे समग्र जगत् के लिए सर्वाधिक उपयोगी, कल्याणकारी कार्य सम्पन्न कर सकने में समर्थ हैं।

आज कृष्णभावना या भगवद्भावना की कमी के कारण सारा जगत् अंधकार में है, क्योंकि यह जीवन चार प्रकार के पापों-मांसाहार, अवैध सम्बन्ध, जुआ तथा नशा--से ढका हुआ है। अतएव लोगों को इन पापकर्मों से दूर हटाने के लिए जोरदार प्रचार-कार्य की आवश्यकता है। इससे शान्ति तथा सम्पन्नता आयेगी; ठगों, चोरों और लंपटों की संख्या घटेगी और सारा मानव समाज भगवद्-भावनामय बनेगा।

हमारे द्वारा विश्वभर में कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रसार का व्यावहारिक प्रभाव यह हुआ है कि सर्वाधिक पतित, लम्पट व्यक्ति भी उन्नत सन्त बन रहे हैं। यह विश्व के लिए केवल एक भारतीय का विनम्र सेवा-कार्य है। यदि श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशानुसार सारे भारतीय इस पथ का अनुसरण करते, तो भारत विश्व को एक अद्वितीय उपहार दे सकता था और इस तरह भारत महिमा चारों ओर फैलती। किन्तु भारत तो अब एक दरिद्रता से ग्रस्त देश माना जाता है और जब भी अमरीका या किसी अन्य अमीर देश का कोई व्यक्ति भारत आता है, तो उसे सड़कों के किनारे अनेक लोग लेटे हुए मिलते हैं, जिन्हें दो समय भरपेट भोजन भी नहीं मिल पाता। ऐसी भी संस्थाएँ हैं, जो इन गरीब लोगों के कल्याण के नाम पर सारे विश्व से धन तो एकत्र करती हैं, किन्तु उसे वे

अपनी खुद की इन्द्रियतृप्ति के पीछे खर्च करते हैं। किन्तु अब श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार कृष्णभावनामृत आन्दोलन आरम्भ किया गया है और लोग इस आन्दोलन से लाभान्वित हो रहे हैं। अतएव अब भारत के अग्रणी व्यक्तियों का कर्तव्य है कि इस आन्दोलन की महत्ता को समझें और अनेक भारतीयों को प्रशिक्षित करके इस आन्देलन का प्रचार करने के लिए उन्हें भारत से बाहर भेजें। लोग इसे स्वीकार करेंगे, इससे भारतीयों तथा विश्व के अन्य लोगों में सहयोग बढ़ेगा और तब श्री चैतन्य महाप्रभु का उद्देश्य पूर्ण होगा। तब श्री चैतन्य महाप्रभु की कीर्ति सारे विश्व में फैलेगी और लोग न केवल इस जन्म में, अपितु अगले जन्म में भी स्वाभाविक रूप से सुखी, शान्त तथा समृद्ध होंगे, क्योंकि जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, जो कोई भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को समझता है, वह आसानी से जन्म-मरण के चक्र से छूट जायेगा, अर्थात् मोक्ष पा लेगा और भगवधाम वापस जायेगा। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु प्रत्येक भारतीय से आग्रह करते हैं कि वह दुनिया को भयावह गड़बड़ी से बचाने के लिए उनके आन्दोलन का प्रचारक बने ।

यह केवल भारतीयों का ही नहीं, अपितु हर एक का कर्तव्य है और हमें अत्यधिक प्रसन्नता है कि अमरीकी तथा यूरोपीय बालक तथा बालिकाएँ हमारे इस आन्दोलन में गम्भीरतापूर्वक सहयोग कर रहे हैं। मनुष्य को यह निश्चित रूप से जान लेना होगा कि सारे मानव समाज के लिए सर्वोत्तम कल्याणकारी कार्य है, मनुष्य में भगवद्भावना या कृष्णभावना को जागृत करना। अतएव हर व्यक्ति को इस महान् आन्दोलन में सहयोग करना चाहिए। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (10.22.35) में की गई है, जो अगले श्लोक के रूप में दिया गया है।

एतावजन्म-साफल्यं देहिनामिह देहिषु ।

प्राणैरधिया वाचा श्रेय-आचरणं सदा ॥ 42 ॥

एतावत्-यहाँ तक; जन्म-जन्म की; साफल्यम्-पूर्णता, सिद्धि; देहिनाम्-देहधारियों की; इह-इस संसार में; देहिषु-देहधारियों की ओर; प्राणैः-प्राणों से; अर्थैः-धन से; धिया–बुद्धि से; वाचा-वाणी से; श्रेयः-शाश्वत सौभाग्य; आचरणम्-वास्तव में कार्य करते हुए; सदा-सदा।

अनुवाद

"यह हर जीव का कर्तव्य है कि वह अपने जीवन, धन, बुद्धि, तथा वाणी से दूसरों के लाभ के लिए कल्याण-कार्य करे।"

तात्पर्य

सामान्य कार्य दो प्रकार के होते हैं- श्रेयस अर्थात् ऐसे कार्य जिनका अन्तिम परिणाम लाभकारी तथा मंगलकारी होता है तथा प्रेयस् अर्थात् जो तुरन्त ही लाभकारी तथा मंगलकारी होते हैं। उदाहरणार्थ, बच्चों को खेलने का शौक होता है। वे शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्कूल नहीं जाना चाहते और सोचते हैं कि अपने मित्रों के साथ रात-दिन खेलना ही उनके जीवन का लक्ष्य है। यहाँ तक कि भगवान् कृष्ण के दिव्य जीवन में भी हम देखते हैं कि जब वे बालक थे, तो उन्हें अपने ही समवयस्क ग्वालबालों के साथ खेलना अत्यन्त प्रिय था। वे खाना खाने तक के लिए घर नहीं जाते थे। माता यशोदा को स्वयं वहाँ जाकर उन्हें घर लाने के लिए फुसलाना पड़ता था। अतएव यह बच्चे का स्वभाव है कि वह रात-दिन खेल में लगा रहता है और अपने स्वास्थ्य तथा अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों की भी परवाह नहीं करता। यह प्रेयस् अर्थात् तुरन्त लाभकारी कार्यों का उदाहरण है। किन्तु कुछ कार्य श्रेयस् भी होते हैं, जो अन्ततः मंगलप्रद होते हैं। वैदिक सभ्यता के अनुसार मनुष्य को भगवद्भावनामय होना चाहिए। उसे यह जानना चाहिए कि ईश्वर क्या हैं? यह भौतिक जगत् क्या है?

वह कौन है और उनके परस्पर सम्बन्ध क्या हैं? यह श्रेयस् अर्थात् अन्ततः मंगलप्रद कार्य कहलाता है।

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक में बतलाया गया है कि मनुष्य को श्रेयस् कार्य में रुचि रखनी चाहिए। श्रेयस् के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे अपना सर्वस्व-अपना जीवन, धन तथा वाणी--केवल अपने लिए ही नहीं, अपितु दूसरों के लिए अर्पित कर देने चाहिए। किन्तु जब तक वह अपने निजी जीवन में श्रेयस् में रुचि नहीं लेगा, तब तक वह दूसरों को श्रेयस् का उपदेश नहीं दे सकता।

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उद्धृत यह श्लोक मनुष्यों पर लागू होता है, पशुओं पर नहीं। जैसाकि पिछले श्लोक में मनुष्य-जन्म शब्द से इंगित किया गया है, ये आदेश मनुष्यों के लिए है। दुर्भाग्यवश आज के लोग यद्यपि मानव-देह धारण किए हुए हैं, फिर भी आचरण में वे पशुओं से भी बदतर होते जा रहे हैं। यह आधुनिक शिक्षा का दोष है। आधुनिक शिक्षक मानव-जीवन के उद्देश्य को नहीं जानते; उन्हें इसी की चिन्ता रहती है कि वे अपने देश या मानव-समाज की आर्थिक दशा को कैसे उन्नत बनाएँ। यह भी आवश्यक है। वैदिक सभ्यता में तो मानव-जीवन के सारे पक्षों पर विचार किया गया है-इनमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष सम्मिलित हैं। किन्तु मानवता की पहली आवश्यकता धर्म है। धार्मिक बनने के लिए मनुष्य को ईश्वर के आदेशों के अनुसार चलना होता है; किन्तु दुर्भाग्यवश इस युग के लोगों ने धर्म का तिरस्कार कर दिया है और वे आर्थिक उन्नति में लगे हुए हैं। अतएव धन पाने के लिए वे किसी भी हद तक जा सकते हैं। आर्थिक उन्नति के लिए येन-केन प्रकारेण धन प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। मनुष्य को केवल अपने शरीर तथा आत्मा को बनाये रखने भर के लिए धन कमाना चाहिए। किन्तु आधुनिक आर्थिक विकास, बिना किसी धार्मिक आधार के किया जा रहा है, अतएव लोग लालची, विषयी तथा धन के पीछे पागल बनते जा रहे

हैं। वे केवल रजोगुण तथा तमोगुण को विकसित कर रहे हैं और प्रकृति के अन्य गुण-सत्त्वगुण तथा ब्राह्मण-गुणों की उपेक्षा कर रहे हैं। इसीलिए सारा समाज अस्त-व्यस्त दशा में है।

भागवत के अनुसार बुद्धिमान मनुष्य का कर्तव्य है कि वह इस तरह कर्म करे कि मानव समाज जीवन के चरम लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर सके। ऐसा ही श्लोक विष्णु-पुराण (3.12.45) में भी आता है, जो नीचे उद्धृत है।

प्राणिनामुपकाराय यदेवेह परत्र च ।

कर्मणा मनसा वाचा तदेव मति–मान्भजेत् ॥43॥

प्राणिनाम्-सभी प्राणियों के; उपकाराय-लाभ के लिए; यत्-जो कोई; एव-निश्चित रूप से; इह-इस संसार में अथवा इस जीवन में; परत्र-अगले जीवन में; च-और; कर्मणा-कर्म से; मनसा-मन से; वाचा-वाणी से; तत्व ह; एव-निश्चय ही; मति-मान्-बुद्धिमान; भजेत्-कार्य करना चाहिए।

अनुवाद

"बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कार्यों, विचारों तथा शब्दों से ऐसे कर्म करे, जो सारे प्राणियों के लिए इस जन्म में तथा अगले जन्म में मंगलकारी हो सकें।"

तात्पर्य

दुर्भाग्यवश सामान्य लोग यह नहीं जानते कि अगले जीवन में क्या होने वाला है। अपने आपको अगले जीवन के लिए तैयार करना सामान्य धारणा है और यह वैदिक सभ्यता का सिद्धान्त है, किन्तु आज के समय में विश्वभर में लोगों को अगले जीवन के बारे में विश्वास नहीं है। यहाँ तक कि बड़े-बड़े प्रभावशाली प्रोफेसर तथा अन्य शिक्षाविद् यह कहते हैं कि शरीर समाप्त होते ही सब

कुछ समाप्त हो जाता है। यह नास्तिक दर्शन मानव-सभ्यता को खत्म कर रहा है। लोग मनमाने तौर पर सभी प्रकार के पापकर्म करते हैं और इस तरह मानव-जीवन का विशेषाधिकार तथाकथित नेताओं के शैक्षिक प्रचार-कार्य से नष्ट होता जा रहा है। वास्तविकता तो यह है कि यह जीवन अगले जीवन की तैयारी के लिए है। विकास के क्रम में मनुष्य अनेक योनियों या रूपों से होकर गुजरा है और यह मनुष्य जीवन उसके लिए इससे श्रेष्ठ जीवन प्राप्त करने का एक सुअवसर होता है। इसकी व्याख्या भगवद्गीता (9.25) में हुई है :

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ।

"जो लोग देवताओं की पूजा करते हैं, वे देवताओं के बीच जन्म लेंगे; जो भूतप्रेतों की पूजा करते हैं, वे ऐसे जीवों के बीच जन्म लेंगे; जो अपने पूर्वजों की पूजा करते हैं, वे अपने पूर्वजों के बीच रहेंगे तथा जो मेरी पूजा करते हैं, वे मेरे साथ रहेंगे।" अतएव मनुष्य चाहे तो देवलोक जा सकता है, चाहे तो पितृलोक को जा सकता है, चाहे तो पृथ्वी लोक में रह सकता है या भगवद्धाम वापस जा सकता है। आगे इसकी पुष्टि भगवद्गीता (4.9) में भी हुई है-त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।कृष्ण को तत्त्व से जानने वाला इस शरीर को त्यागने के बाद इस लोक में फिर से भौतिक शरीर धारण करने नहीं आता, किन्तु वह भगवधाम चला जाता है। शास्त्रों में यह ज्ञान उपलब्ध है और लोगों को इसे समझने का अवसर दिया जाना चाहिए। यदि कोई एक जन्म में भगवद्धाम वापस नहीं जा पाता, तो वैदिक सभ्यता उसे यह अवसर प्रदान करती है कि वह ऊपर के लोक स्वर्ग को जाए, जहाँ पर देवता वास करते हैं और पुनः पशु-जीवन में पतित न हो। आज के लोग इस ज्ञान को महान् विज्ञान होते हुए भी नहीं समझते, क्योंकि वे अशिक्षित हैं और इसे न स्वीकार करने के लिए प्रशिक्षित किये जाते हैं। आधुनिक मानव समाज की ऐसी भयावह स्थिति है। फलतः कृष्णभावनामृत आन्दोलन ही

एकमात्र आशा की किरण है, जो बुद्धिमान व्यक्तियों के ध्यान को जीवन के श्रेष्ठ लाभ की ओर आकृष्ट कर सकता है।

माली मनुष्य आमार नाहि राज्य-धन ।

फल-फुल दिया करि' पुण्य उपार्जन ॥44॥

माली–माली; मनुष्य-मनुष्य; आमार-मेरा; नाहि-नहीं है; राज्य–राज्य; धन-धन; फल-फल; फुल-फूल; दिया-देना; करि'-करता हूँ; पुण्य-पुण्य; उपार्जन-कमाना।

अनुवाद

मैं तो केवल माली हूँ। मेरे पास न तो साम्राज्य है, न बहुत सारा धन है। मेरे पास तो केवल कुछ फल और फूल हैं, जिनका उपयोग मैं अपने जीवन में पुण्य प्राप्त करने के लिए करना चाहता हूँ।

तात्पर्य

मानव-समाज के कल्याण-कार्यों के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं को किसी धनी व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, जो इस बात का द्योतक है कि मानवता के कल्याण कार्य करने के लिए मनुष्य का धनी या ऐश्वर्यवान होना आवश्यक नहीं है। कभी-कभी धनी व्यक्तियों को इसका गर्व हो जाता है कि वे ही मानव-समाज के लिए कल्याणप्रद कार्य कर सकते हैं, अन्य लोग नहीं। इसका जीता-जागता उदाहरण यह है कि जब वर्षा के अभाव के कारण भारत में अकाल पड़ता है, तो धनी वर्ग के कुछ लोग सरकार की सहायता से बड़े आयोजन करके खाद्य सामग्री का वितरण बड़े ही गर्व के साथ करते हैं, मानो ऐसे कार्यों से ही लोगों को लाभ पहुँचाया जा सकता है। मान लीजिये

कि अन्न न होता, तो फिर ये धनी लोग किस तरह अन्न वितरण करते? अन्न का उत्पादन पूरी तरह से ईश्वर के हाथ में है। यदि पानी न बरसे, तो अन्न की उपज नहीं होगी और ये तथाकथित धनी व्यक्ति तब लोगों में अन्न का वितरण नहीं कर सकेंगे।

अतएव जीवन का असली उद्देश्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्रसन्न करना है। श्रील रूप गोस्वामी ने भक्तिरसामृतसिंधु में कहा है कि भक्ति इतनी महान् है कि यह हर व्यक्ति के लिए लाभप्रद तथा मंगलप्रद है। चैतन्य महाप्रभु ने भी घोषणा की है कि मानव समाज में भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए किसी को बहुत धनी होना आवश्यक नहीं है। कोई भी जो इस कला को जानता है, इसे कर सकता है और मानवता को सर्वोच्च लाभ दिला सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने आपको माली बताते हैं, जो स्वाभाविक रूप से अधिक धनी नहीं होता, किन्तु जिसके पास कुछ फल और फूल तो रहते ही हैं। कोई भी व्यक्ति कुछ फल-फूल एकत्र करके पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को भक्तिमयी सेवा द्वारा प्रसन्न कर सकता है। जैसाकि भगवद्गीता (9.26) में भगवान् संस्तुति करते हैं :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः ।

भले ही मनुष्य अपनी सम्पत्ति, धन या ऐश्वर्य से भगवान् को प्रसन्न न कर पाये, किन्तु कोई भी व्यक्ति कुछ फल या फूल एकत्र करके उन्हें भगवान् को अर्पित कर सकता है। भगवान् कहते हैं कि यदि कोई भक्तिपूर्वक ऐसी भेंट लाता है, तो वे उसे स्वीकार करते हैं और खाते हैं। जब कृष्ण खाते हैं, तो सारा विश्व सन्तुष्ट होता है। महाभारत में एक कथा है कि किस प्रकार कृष्ण के भोजन करने से दुर्वासा मुनि के साठ हजार शिष्य तुष्ट हो गये। अतएव यह तथ्य है कि यदि हम अपने प्राणों

से (प्राणैः), अपने धन से (अर्थैः), अपनी बुद्धि से (धिया) या अपनी वाणी से (वाचा) पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्रसन्न कर सकें, तो सारा संसार स्वतः सुखी हो जायेगा। इसलिए हमारा मुख्य कर्तव्य यह है कि हम अपने कार्यों, अपने धन, तथा अपने शब्दों से परमेश्वर को प्रसन्न करें। यह बहुत ही सरल है। भले ही किसी के पास धन न रहे, वह हर एक को हरे कृष्ण मन्त्र का उपदेश दे सकता है। वह घर-घर जाकर हर एक से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने का अनुरोध कर सकता है। इस तरह सारे विश्व की स्थिति सुखमय तथा शान्तिपूर्ण हो सकेगी।

माली हञा वृक्ष हइलाँ एइ त' इच्छाते ।

सर्व-प्राणीर उपकार हय वृक्ष हैते ॥ 45 ॥

माली हञा–यद्यपि मैं माली हूँ; वृक्ष हइलाँ-मैं वृक्ष भी हूँ; एइ त'-यह है; इच्छाते-मेरी इच्छा से; सर्व-प्राणीर-सभी प्राणियों का; उपकार-उपकार; हय-है; वृक्ष-वृक्ष; हैते–से।

अनुवाद

यद्यपि मैं माली का कार्य कर रहा हूँ, किन्तु मैं वृक्ष भी बनना चाहता हूँ, क्योंकि इस तरह मैं सबको लाभ पहुँचा सकता हूँ।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु मानव-समाज के सर्वाधिक कल्याणकारी पुरुष हैं, क्योंकि लोगों को सुखी बनाना ही उनकी एकमात्र अभिलाषा है। उनका संकीर्तन आन्दोलन लोगों को सुखी बनाने के विशेष उद्देश्य के लिए ही है। वे स्वयं वृक्ष बनना चाह रहे थे, क्योंकि वृक्ष सबसे उपकारी जीव माना

जाता है। अगले श्लोक में, जो श्रीमद्भागवत (10.22.33) से है, स्वयं कृष्ण ने वृक्ष के अस्तित्व की अत्यधिक प्रशंसा की है।

अहो एषां वरं जन्म सर्व-प्राण्युपजीविनाम् ।

सु-जनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः ॥ 46॥

अहो-ओह, जरा देखो; एषाम्-इन वृक्षों का; वरम्-श्रेष्ठ; जन्म-जन्म; सर्व-सभी प्राणि-प्राणी; उपजीविनाम्-पोषण देनेवाले का; सु-जनस्य इव-महापुरुषों की भाँति; येषाम्-जिनसे; वै-निश्चित रूप से; विमुखाः–निराश; यान्ति–चला जाता है; न-नहीं; अर्थिनः-जो कुछ माँगता है।

अनुवाद

"जरा देखो तो! ये वृक्ष किस तरह हर जीव का पालन कर रहे हैं। इनका जन्म सफल है। इनका आचरण महापुरुषों जैसा है, क्योंकि जो कोई भी वृक्ष से कुछ माँगता है, वह कभी निराश होकर नहीं जाता।"

तात्पर्य

वैदिक सभ्यता के अनुसार क्षत्रियों को महान् पुरुष माना जाता है, क्योंकि यदि कोई मनुष्य क्षत्रिय राजा के पास जाता है और दान माँगता है, तो राजा कभी मना नहीं करेगा। वृक्षों की तुलना ऐसे ही नेक क्षत्रियों से की जाती है, क्योंकि वृक्षों से सब लोग सभी तरह के लाभ उठाते हैं-कोई फल लेता है, कोई फूल लेता है, तो कोई पत्ती या टहनी लेता है और कुछ लोग वृक्ष को काटते भी हैं, किन्तु फिर भी वृक्ष बेहिचक सभी को दान देता है।

बिना सोचे-विचारे अनावश्यक रूप से वृक्ष काटना मनुष्य की लम्पटता का दूसरा उदाहरण है। कागज उद्योग के लिए लाखों वृक्ष काटे जाते हैं और उस कागज से मानव समाज के तरंगी सन्तोष के लिए कूड़ा साहित्य छापा जाता है। दुर्भाग्यवश ऐसे उद्योगपति अपने औद्योगिक विकास के कारण इस जीवन में तो प्रसन्न हो जाते हैं, किन्तु उन्हें इसका पता नहीं रहता कि उन पर इन जीवों को मारने का आरोप लगेगा, जो अभी वृक्ष के रूप में हैं।

यह श्लोक श्रीमद्भागवत का है, जिसे कृष्ण ने अपने सखाओं से उस समय कहा था, जब वे गोपियों का चीरहरण (वस्त्रहरण लीला) करके एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे। इस श्लोक को उद्धृत करके श्री चैतन्य महाप्रभु हमें यह शिक्षा देते हैं कि हमें वृक्षों के समान सहिष्णु और उपयोगी होना चाहिए, जो अपनी शरण में आने वाले जरूरतमन्द व्यक्तियों को हर वस्तु प्रदान करते हैं। जरूरतमन्द व्यक्ति वृक्षों से तथा पशुओं से भी अनेक लाभ उठा सकता है, किन्तु आधुनिक सभ्यता में लोग इतने कृतघ्न हो चुके हैं कि वे वृक्षों तथा पशुओं का शोषण करके उनका वध कर देते हैं। ये आधुनिक सभ्यता के कुछ पापकर्म हैं।

एइ आज्ञा कैल यदि चैतन्य-मालाकार ।

परम आनन्द पाइल वृक्ष-परिवार ॥47॥

एइ–यह; आज्ञा–आज्ञा; कैल-दी; यदि-जब; चैतन्यश्री चैतन्य महाप्रभु; माला-कार-माली के रूप में; परम-परम; आनन्द-आनन्द; पाइल-पाया; वृक्ष-वृक्ष का; परिवार–परिवार।

अनुवाद

वृक्ष के वंशज (श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त) महाप्रभु से यह प्रत्यक्ष आदेश पाकर अत्यन्त प्रसन्न थे।

तात्पर्य

यह श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा है कि 500 वर्ष पूर्व नवद्वीप में संकीर्तन आन्दोलन के परोपकारी कार्यों का जो सूत्रपात किया गया था, वह सारे मनुष्यों के हित में सारे विश्व में फैले। दुर्भाग्यवश चैतन्य महाप्रभु के ऐसे अनेक तथाकथित अनुयायी हैं, जो मन्दिर बनवाने, अर्चाविग्रहों का प्रदर्शन करने, कुछ धन एकत्र करने तथा उसका उपयोग खाने और सोने के लिए करने में ही सन्तुष्ट रहते हैं। उनके द्वारा संसार-भर में श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय के प्रचार का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु ऐसा करने में अक्षम होते हुए भी यदि कोई अन्य व्यक्ति उसे करता है, तो वे ईर्ष्या करते हैं। यह स्थिति है महाप्रभु के आधुनिक अनुयायियों की। कलियुग इतना प्रबल है कि इससे महाप्रभु के तथाकथित अनुयायी भी प्रभावित हो जाते हैं। कम-से-कम महाप्रभु के अनुयायियों को भारत से बाहर जाकर उनके सम्प्रदाय का विश्वभर में प्रचार करना चाहिए, क्योंकि यही चैतन्य महाप्रभु का उद्देश्य है। चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों को जी-जान से उनकी इच्छा पूरी करने के लिए वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु और रास्ते में पड़े तिनके से भी अधिक विनीत बनना चाहिए।

येइ याहाँ ताहाँ दान करे प्रेम-फल ।

फलास्वादे मत्त लोक हइल सकल ॥48॥

येइ-कोई भी; याहाँ-जहाँ कहीं; ताहाँ-कहीं भी; दान-दान; करे-देता है; प्रेम-फल–भगवत्-प्रेम का फल; फल-फल; आस्वादे-आस्वादन करके; मत्त-उन्मत्त होकर; लोक-लोग; हइल-हो जाते हैं; सकल-सभी।

अनुवाद

भगवत्प्रेम का फल इतना स्वादिष्ट होता है कि भक्त इसको जहाँ कहीं भी बाँटता है, विश्वभर में कहीं भी, जो इस फल का आस्वादन करता है, वह तुरन्त मदमस्त हो उठता है।

तात्पर्य

यहाँ पर महाप्रभु द्वारा वितरित किये गये अद्भुत फल का वर्णन हुआ है। हमें इसका व्यावहारिक अनुभव है कि जो इस फल को ग्रहण करता है और उसे सच्चे मन से चखता है, वह इसके पीछे तुरन्त दीवाना हो जाता है और महाप्रभु के उपहार हरे कृष्ण महामन्त्र से मदोन्मत्त होकर अपनी सारी बुरी आदतें छोड़ देता है। श्रीचैतन्य-चरितामृत की सारी उक्तियाँ इतनी व्यावहारिक हैं कि कोई भी इनको परख सकता है। जहाँ तक हमारी बात है, हम तो भगवत्प्रेम के महान् फल को महामन्त्र-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे–के कीर्तन के माध्यम से वितरित करने की सफलता के प्रति पूर्णतया आश्वस्त हैं।

महा-मादक प्रेम-फल पेट भरि' खाय।

मातिल सकल लोक—हासे, नाचे, गाय ॥49॥

महा-मादक-अत्यधिक नशेवाला; प्रेम-फल-भगवत्प्रेम का यह फल; पेट-पेट; भरि'-भरकर; खाय-खाने दो; मातिल-पागल हो गये; सकल लोक-सभी सामान्य लोग; हासे-हँसते हैं; नाचे-नाचते हैं; गाय-गाते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा वितरित भगवत्प्रेम रूपी फल इतना मादक है कि जो भी पेट भर खाता है, वह तुरन्त ही उससे उन्मत्त हो उठता है और स्वतः ही कीर्तन करता, नाचता, हँसता और आनन्द लेता है।

केह गड़ागड़ि याय, केह त' हुङ्कार।

देखि' आनन्दित हञा हासे मालाकार ॥50॥

केह-उनमें से कुछ; गड़ागड़ि याय-भूमि पर लेटते हैं; केह-उनमें से कुछ; त'–निश्चित रूप से; हुङ्कार-जोर से चिल्लाते हैं; देखि'–यह देखकर; आनन्दित–प्रसन्न होकर; हञा-होकर; हासे-हँसते हैं; माला-कार-महान् माली।

अनुवाद

जब महान् माली श्री चैतन्य महाप्रभु देखते हैं कि लोग कीर्तन करते हैं, नाचते और हँसते हैं और कुछ लोग भूमि पर लोटपोट होते हैं तथा कुछ हुंकार भरते हैं, तो वे परम आनन्दित होकर मुस्कुराते हैं।

तात्पर्य

कृष्णभावनामृत के हरे कृष्ण आन्दोलन में लगे हुए लोगों के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु का यह मनोभाव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हम इस्कॉन संस्थान के प्रत्येक केन्द्र में हर रविवार के दिन एक प्रीति-भोज का आयोजन करते हैं और जब हम वास्तव में देखते हैं कि लोग हमारे केन्द्र में आते हैं, कीर्तन करते हैं, नाचते हैं, प्रसाद ग्रहण करते हैं, हर्षित होते हैं और पुस्तकें खरीदते हैं, तो हमें विश्वास हो जाता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ऐसे दिव्य कार्यों में सदैव उपस्थित रहते हैं और वे इससे अत्यन्त

प्रसन्न तथा तुष्ट हो रहे हैं। अतएव इस्कॉन के सदस्यों को सिद्धान्तों के अनुसार इस आन्दोलन को अधिकाधिक बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु प्रसन्न होकर मुस्काते हुए अपनी कृपादृष्टि डालेंगे और यह आन्दोलन सफल होगा।

एइ मालाकार खाय एइ प्रेम-फल ।

निरवधि मत्त रहे, विवश-विह्वल ॥51॥

एइ-यह; माला-कार-महान् माली; खाय-खाते हैं; एइ–यह; प्रेम-फल-भगवत्प्रेम का फल; निरवधि-सदा; मत्त-उन्मत्त होकर; रहे-रहते हैं; विवश-जैसे असहाय; विह्वल-जैसे मोहग्रस्त।

अनुवाद

यह महान् माली, श्री चैतन्य महाप्रभु, स्वयं इस फल को खाते हैं; फलस्वरूप वे निरन्तर उन्मत्त रहते हैं, मानों असहाय एवं मोहग्रस्त हों।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का कार्य ही है कि अपने आचरण द्वारा लोगों को शिक्षा दी जाए। वे कहते हैं-आपनी आचरि 'भक्ति करिल प्रचार (चैतन्य चरितामृत, आदि 4.41)। मनुष्य को सर्वप्रथम स्वयं आचरण करना चाहिए, तब शिक्षा देनी चाहिए। असली शिक्षक का यही कार्य है। कोई जिस सिद्धान्त का प्रचार कर रहा है, जब तक वह स्वयं उसे नहीं समझता, तब तक उसका प्रभाव नहीं पड़ता। अतएव मनुष्य को न केवल चैतन्य-सम्प्रदाय के दर्शन को समझना होगा, अपितु अपने जीवन में उसे उतारना भी होगा।

श्री चैतन्य महाप्रभु हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते करते कभी-कभी मूर्च्छित हो जाते थे और घंटों बेहोश पड़े रहते थे। शिक्षाष्टक (7) में उनकी प्रार्थना है :

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।

शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्द-विरहेण मे ॥

"हे गोविन्द ! आपके विरह में मुझे एक क्षण बारह वर्ष या इससे भी अधिक लगता है। मेरी आँखों से वर्षा की बौछारों के समान अश्रु की धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं और आपकी अनुपस्थिति में मुझे यह जगत् बिल्कुल शून्य लगता है।" यह पूर्ण अवस्था है, जो हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने तथा भगवत्प्रेम रूपी फल के खाने से मिलती है, जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने दिखलाया है। मनुष्य को इस अवस्था की कृत्रिम रूप से नकल नहीं करनी चाहिए, किन्तु यदि वह गम्भीर है और नियमों का निष्ठा से पालन करता है और हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करता है, तो वह घड़ी आयेगी जब ये लक्षण प्रकट होंगे। उसकी आँखें अश्रुपूरित हो उठेगी, वह महामन्त्र का ठीक से उच्चारण नहीं कर सकेगा और भावावेश में उसका हृदय स्पन्दित हो उठेगा। श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि इसकी नकल नहीं करनी चाहिए, अपितु भक्त को ऐसी कामना करनी चाहिए कि वह दिन आये, जब ऐसी समाधि के लक्षण उसके शरीर में स्वत: प्रकट हों।

सर्व-लोके मत्त कैला आपन-समान ।

प्रेमे मत्त लोक विना नाहि देखि आन ॥52॥

सर्व-लोके-सभी लोग; मत्त-उन्मत्त; कैला-उन्होंने किया; आपन-स्वयं को; समान–समान; प्रेमे-भगवत्प्रेम में; मत्त-उन्मत्त; लोक-सामान्य लोग; विना-बिना; नाहि-नहीं; देखि-हम देखते हैं; आन-और कुछ।

अनुवाद

महाप्रभु ने अपने संकीर्तन आन्दोलन से हर एक को अपनी तरह मत्त बना दिया। हमें ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं मिलता, जो उनके संकीर्तन आन्दोलन द्वारा मदमस्त न हो उठा हो।

ये ये पूर्वे निन्दा कैल, बलि' मातोयाल ।

सेहो फल खाय, नाचे, बले-भाल भाल ॥53॥

ये ये-जो व्यक्ति; पूर्वे-पहले; निन्दा-निन्दा; कैल-करते थे; बलि'–कहकर; मातोयाल-शराबी; सेहो वही लोग; फल-फल; खाय-खाते हैं; नाचे-नाचते हैं; बले-बोलते हैं; भाल भाल-बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।

अनुवाद

जिन लोगों ने पहले श्री चैतन्य महाप्रभु को शराबी कहकर उनकी आलोचना की थी, उन्होंने भी फल खाया और वे, "बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!" कहकर नाचने लगे।

तात्पर्य

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन आन्दोलन प्रारम्भ किया, तो मायावादियों, नास्तिकों तथा मूख ने अनावश्यक रूप से उनकी भी आलोचना की थी। अतः स्वाभाविक है कि ऐसे लोग हमारी भी आलोचना की है। ऐसे लोग सदैव रहेंगे और वे सदैव ऐसी हर बात की आलोचना करते रहेंगे, जो मानव समाज के लिए असल में उत्तम है; किन्तु संकीर्तन आन्दोलन के प्रचारकों को ऐसी आलोचना से घबराना नहीं चाहिए। ऐसे मूर्खा को आमंत्रित करना चाहिए और प्रसाद ग्रहण करने तथा अपने साथ कीर्तन करने और नाचने के लिए कहना चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे उन्हें बदल

देना चाहिए। यही हमारी नीति होनी चाहिए। हाँ, जो हमारे साथ आना चाहता हो, उसे निष्ठावान तथा जीवन के आध्यात्मिक विकास के प्रति गम्भीर होना चाहिए। तभी ऐसा व्यक्ति हमारे साथ मात्र कीर्तन करके, नाचकर और प्रसाद ग्रहण करके थोड़े समय के बाद यह कहने लगेगा कि यह आन्दोलन बहुत ही उत्तम है। किन्तु जो व्यक्ति भौतिक लाभ या निजी तृप्ति के निम्न आशय के साथ सम्मिलित होना चाहता है, वह कभी भी इस आन्दोलन के दर्शन को हृदयंगम नहीं कर सकेगा।

एइ त कहिलँ प्रेम-फल-वितरण ।

एबे शुन, फल-दाता ये ये शाखा-गण ॥54॥

एइ-यह; त'–फिर भी; कहिलू-मैंने व्याख्या की है। प्रेम-फल-भगवत्-प्रेम के फल की; वितरण–वितरण, बाँटने; एबे-अब; शुन-सुनो; फल-दाता–फलदाता; ये ये-जो जो; शाखा-गण-शाखाएँ।

अनुवाद

महाप्रभु द्वारा भगवत्प्रेम रूपी फल के वितरण का वर्णन करने के बाद अब मैं चैतन्य महाप्रभु रूपी वृक्ष की विभिन्न शाखाओं का वर्णन करना चादूँगा।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥55॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों में; यार-जिनकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य-चरितामृत नामक ग्रंथ; कहे-वर्णन करता हूँ; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए और उनकी कृपा की सदैव आकांक्षा करते हुए, मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के नवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें भक्तिरूपी कल्प-वृक्ष का वर्णन है।

अध्याय दस

चैतन्य-वृक्ष के स्कन्ध, शाखाएँ तथा उपशाखाएँ

इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु नामक वृक्ष की शाखाओं का वर्णन हुआ है।

श्री-चैतन्य-पदाम्भोज-मधुपेभ्यो नमो नमः ।

कथञ्चिदाश्रयाद् येषां श्वापि तद्गन्ध-भाग्भवेत् ॥ 1॥

श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; पद-अम्भोज-चरणकमल; मधु-मधु; पेभ्यः-उनको जो पीते हैं; नमः-सादर नमस्कार; नमः-सादर नमस्कार; कथञ्चित्-थोड़ा सा; आश्रयात्-आश्रय लेकर; येषाम्-जिनका; श्वा-कुत्ता; अपि-भी; तत्-गन्ध-कमल पुष्प की सुगंध; भाक्-भागीदार; भवेत् हो सकता है।

अनुवाद

मैं भ्रमरों के समान उन भक्तों के चरणकमलों में बारम्बार नमस्कार करता हूँ, जो चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के मधु का निरन्तर आस्वादन करते हैं। यदि कुत्ते जैसा अभक्त भी किसी प्रकार ऐसे भक्तों की शरण में पहुँच जाता है, तो उसे भी कमल के फूल की सुगन्धि का आनन्द प्राप्त होता है।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में कुत्ते का दृष्टान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सामान्यतया कुत्ता किसी समय भक्त नहीं बनता, किन्तु कभी-कभी यह देखा जाता है कि भक्त का कुत्ता भी धीरे-धीरे भक्त बन जाता है। हमने वास्तव में देखा है कि कुत्ते में तुलसी के पौधे के लिए भी कोई आदर नहीं होता। बल्कि, वह स्वभाववश तुलसी के पौधे पर पेशाब करना चाहता है। अतएव कुत्ता पहले दर्जे का अभक्त होता है। लेकिन श्री चैतन्य महाप्रभु का संकीर्तन आन्दोलन इतना प्रबल है कि कुत्ते जैसा अभक्त भी चैतन्य महाप्रभु के भक्त की संगति से धीरे-धीरे भक्त बन सकता है। चैतन्य महाप्रभु के एक महान् गृहस्थ भक्त श्रील शिवानन्द सेन जब जगन्नाथ पुरी जा रहे थे, तो एक कुत्ता उनसे आकर्षित होकर उनके साथ चल पड़ा। यह कुत्ता उनके साथ चलता रहा और अन्त में चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने जा पहुँचा; फलतः उसको मोक्ष मिल गया। इसी प्रकार श्रीवास ठाकुर के घर के कुत्ते तथा बिल्लियाँ

भी मोक्ष-लाभ प्राप्त कर सके। बिल्लियों, कुत्तों तथा अन्य पशुओं से भक्त बनने की आशा नहीं की जाती, किन्तु शुद्ध भक्त की संगति में इनका भी उद्धार हो जाता है।

जय जय श्री कृष्ण-चैतन्य-नित्यानन्द ।

जयाद्वैतचन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत प्रभु की जय हो; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-चैतन्य महाप्रभु के भक्तों जिन में श्रीवास मुख्य है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत प्रभु की जय हो और श्रीवास समेत चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो!

एइ मालीर—एइ वृक्षेर अकथ्य कथन ।

एबे शुन मुख्य-शाखार नाम-विवरण ॥ 3 ॥

एइ मालीर-इस माली का; एइ वृक्षेर-इस वृक्ष का; अकथ्य कथन-अचिन्त्य वर्णन; एबे–अब; शुन-सुनो; मुख्य–मुख्य; शाखार–शाखाओं के; नाम-नामों का; विवरण-वर्णन।

अनुवाद

माली तथा वृक्ष के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु का वर्णन अकल्पनीय है। अब इस वृक्ष की शाखाओं के विषय में ध्यान से सुनिये।

चैतन्य गोसाञि यत पारिषद-चय ।

गुरु-लघु-भाव ताँर ना हय निश्चय ॥4॥

चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु; गोसाञि-परम आध्यात्मिक गुरू का; यत-सब; पारिषद-चय–पार्षद समूह; गुरु-लघु-भाव-बड़े एवं छोटे के मनोभाव; ताँर-उनके; ना-नहीं; हय-होते हैं; निश्चय–निश्चित।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के अनेक पार्षद थे, किन्तु इनमें से किसी को भी ऊँचा या नीचा नहीं समझना चाहिए। इसका निर्धारण नहीं किया जा सकता।

यत यत महान्त कैला ताँ-सबार गणन ।

केह करिबारे नारे ज्येष्ठ-लघु-क्रम ॥5॥

यत यत–जितने वहाँ है; महान्त-महान् भक्त; कैला-बनाये; ताँ-सबार-उन सबको; गणन-गिनती; केह-वे सभी; करिबारे नारे–नहीं कर सकते; ज्येष्ठ-ज्येष्ठ; लघु-कनिष्ठ; क्रम-क्रम।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय के सारे महापुरुषों की गणना इन भक्तों में होती है, किन्तु इनमें कौन छोटा है और कौन बड़ा-इसका अन्तर नहीं हो सकता।

अतएव ताँ-सबारे करि' नमस्कार ।

नाम-मात्र करि, दोष ना लबे आमार ॥6॥

अतएव–अतएव; ताँ-सबारे उन सबको; करि'-करके; नमस्कार-नमस्कार करता हूँ; नाम-मात्र-नाम-मात्र में; करि-मैं करता हूँ; दोष-दोष; ना-नहीं; लबे-लेना; आमार-मेरा।

अनुवाद

मैं उन सबको आदर स्वरूप नमस्कार करता हूँ। मेरी उनसे विनती है कि वे मेरे अपराधों पर ध्यान न दें।

वन्दे श्री कृष्ण-चैतन्य-प्रेमामर-तरोः प्रियान् ।

शाखा-रूपान्भक्त-गणान्कृष्ण-प्रेम-फल-प्रदान् ॥7॥

वन्दे-मैं नमस्कार करता हूँ; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रेम-अमर-तरोः–भगवत्प्रेम से भरे शाश्वत वृक्ष का; प्रियान्–भक्तों की; शाखा-रूपान्–शाखाओं के रूप में; भक्तगणान् सभी भक्त; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; फल-फल के; प्रदान्–दाता, देनेवाले।

अनुवाद

मैं भगवत्प्रेम के शाश्वत् वृक्ष-रूपी श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त प्रिय भक्तों को नमस्कार करता हूँ। मैं इस वृक्ष की समस्त शाखाओं-रूपी महाप्रभु के उन भक्तों को नमस्कार करता हूँ, जो कृष्ण-प्रेम रूपी फल का वितरण करते हैं।

तात्पर्य

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी चैतन्य महाप्रभु के समस्त प्रचारक भक्तों को ऊँच-नीच का भेदभाव किये बिना नमस्कार करते हुए एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश इस समय भगवान् चैतन्य के ऐसे अनेक मूर्ख तथाकथित भक्त हैं, जो ऐसा भेद करते हैं। उदाहरणार्थ,

"प्रभुपाद" की उपाधि आध्यात्मिक गुरुओं को विशेषकर प्रख्यात गुरुओं को अर्पित की जाती है, जैसे श्रील रूप गोस्वामी प्रभुपाद, श्रील जीव गोस्वामी प्रभुपाद या श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद। किन्तु जब हमारे शिष्यों ने अपने गुरु को "प्रभुपाद" के रूप में सम्बोधित करना चाहा, तो कुछ मूर्ख लोग ईर्ष्या करने लगे। वे हरे कृष्ण आन्दोलन के प्रचार-कार्य पर विचार किये बिना ही हमारे शिष्यों से इसलिए ईर्ष्या करने लगे, क्योंकि उन्होंने अपने गुरु को प्रभुपाद कहकर सम्बोधित करना शुरू कर दिया था। फलतः उन्होंने कृष्णभावनामृत आन्दोलन के महत्त्व को कम करने के लिए अन्य ऐसे ही ईष्र्यालु व्यक्तियों के साथ मिलकर एक गुट बना लिया। ऐसे ही मूर्खा को सुधारने के उद्देश्य से कृष्णदास कविराज गोस्वामी स्पष्ट कहते हैं-केह करिबारे नारे ज्येष्ठ-लघु- क्रम। जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रामाणिक प्रचारक होगा, उसे महाप्रभु के असली भक्तों का सम्मान करना चाहिए। उसे किसी एक प्रचारक को महान् और दूसरे को तुच्छ मानकर ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। यह भौतिक भेदभाव है, जिसका आध्यात्मिक स्तर पर कोई महत्व नहीं है। इसीलिए कृष्णदास कविराज गोस्वामी चैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय के उन समस्त प्रचारकों का समान रूप से आदर करते हैं, जिनकी उपमा वृक्ष की शाखाओं से की गई है। इस्कॉन भी इनमें से एक शाखा है, अतएव महाप्रभु के समस्त निष्ठावान भक्तों द्वारा इसका आदर किया जाना चाहिए।

श्रीवास पण्डित, आर श्री-राम पण्डित ।

दुइ भाइ–दुइ शाखा, जगते विदित ॥8॥

श्रीवास पण्डित-श्रीवास पण्डित; आर-और; श्री-राम पण्डित-श्रीराम पण्डित; दुइ भाइ–दोनों भाई; दुइ शाखा-दो शाखाएँ; जगते-संसार में; विदित–प्रसिद्ध।

अनुवाद

श्रीवास पण्डित तथा श्रीराम पण्डित-इन दोनों भाइयों से दो शाखाएँ प्रारम्भ हुईं, जो संसार में सर्वविदित हैं।

तात्पर्य

गौर-गणोद्देश दीपिका (श्लोक 90) में श्रीवास पण्डित (श्रीवास ठाकुर) को नारद मुनि और उनके छोटे भाई श्रीराम पण्डित को नारद के घनिष्ठ मित्र पर्वत मुनि का अवतार माना गया है। श्रीवास पण्डित की पत्नी मालिनी को कृष्ण की धाय अम्बिका की अवतार माना गया है, जिसने भगवान् कृष्ण को अपने स्तनों से दूध पिलाया था। और जैसाकि पहले बताया जा चुका है, श्रीचैतन्य भागवत के लेखक ठाकुर वृन्दावन दास की माता नारायणी, जो श्रीवास पण्डित की भतीजी थीं, कृष्ण-लीला में अम्बिका की बहन थीं। श्रीचैतन्य-भागवत से पता चलता है कि महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने के बाद श्रीवास पण्डित ने भी विरहवश नवद्वीप छोड़ दिया था और वे कुमारहट्ट में रहने लगे थे।

श्रीपति, श्रीनिधि—ताँर दुइ सहोदर ।

चारि भाइर दास-दासी, गृह-परिकर ॥9॥

श्रीपति-श्रीपति; श्रीनिधि-श्रीनिधि; ताँर-उनके; दुइ-दो; सहोदर-अपने भाई; चारि-चार; भाइर–भाई; दास-दासी-परिवार के सदस्य, दास और दासियाँ; गृह-परिकर-सभी एक ही परिवार में गिने जाते हैं।

अनुवाद

उनके अन्य दो भाइयों के नाम श्रीपति तथा श्रीनिधि थे। उन चारों भाइयों, उनके नौकरों तथा नौकरानियों को एक बृहद् शाखा माना जाता है।

दुइ शाखार उपशाखाय ताँ-सबार गणन ।

याँर गृहे महाप्रभुर सदा सङ्कीर्तन ॥10॥

दुइ शाखार-दो शाखाओं की; उपशाखाय-उपशाखाओं पर; ताँ-सबार-उन सबकी; गणन-गिनती; याँर गृहे-जिनके घर में; महाप्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; सदा-सदा; सङ्कीर्तन-संकीर्तन।

अनुवाद

इन दोनों शाखाओं से निकलने वाली उपशाखाओं की कोई गिनती नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु नित्य ही श्रीवास पण्डित के घर में संकीर्तन किया करते थे।

चारि भाइ सवंशे करे चैतन्येर सेवा ।

गौरचन्द्र विना नाहि जाने देवी-देवा ॥ 11 ॥

चारि भाइ-चारों भाई; सवंशे-सारे परिवार जनों के साथ; करे-करते हैं; चैतन्येर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; सेवा–सेवा; गौरचन्द्र-गौरचन्द्र (श्री चैतन्य महाप्रभु); विना-के अतिरिक्त; नाहि जाने-नहीं जानते; देवी–देवी; देवा–अथवा देवता।

अनुवाद

ये चारों भाई तथा उनके पारिवारिक सदस्य श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में पूरी तरह लगे रहते थे। वे अन्य किसी देवता या देवी को नहीं जानते थे।

तात्पर्य

श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने कहा है-अन्य देवाश्रय नाइ, तोमारे कहिनु भाइ, एइ भक्ति परम-कारण-यदि कोई शुद्ध भक्त बनना चाहता है, तो उसे किसी देवता या देवी की शरण में नहीं जाना चाहिए। मूर्ख मायावादी कहते हैं कि देवताओं की पूजा करना पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर की पूजा के समान है; किन्तु यह सही नहीं है। इस दर्शन के कारण लोग नास्तिकता की ओर उन्मुख होते हैं। जिसे इसका कोई अनुमान नहीं है कि वास्तव में ईश्वर हैं क्या, वह अपने द्वारा कल्पित किसी भी रूप को या किसी भी धूर्त को जिसे वह स्वीकार कर ले, ईश्वर मान लेता है। इस तरह से सस्ते देवताओं या ईश्वर के अवतारों को मान लेना वास्तव में नास्तिकता है। अतएव हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि जो लोग देवताओं को या अपने आपको ईश्वर का अवतार घोषित करने वालों को पूजते हैं, वे सभी नास्तिक हैं। उनका ज्ञान नष्ट हो चुका होता है, जिसकी पुष्टि भगवद्गीता (7.20) द्वारा होती है-कामैस्तैस्तैर्हतज्ञाना: प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता:-"जिनके मन भौतिक इच्छाओं के फलस्वरूप विकृत हो चुके हैं, वे देवताओं की शरण ग्रहण करते हैं।' दुर्भाग्यवश, जो लोग कृष्णभावनामृत का अनुशीलन नहीं करते और वैदिक ज्ञान को सही ढंग से नहीं समझते, वे किसी भी धूर्त को ईश्वर का अवतार मान लेते हैं और उनका यह कहना है कि मात्र किसी देवता की पूजा करके अवतार बना जा सकता है। ऐसे गलत दार्शनिक विचार हिन्दू धर्म के नाम पर चल रहे हैं, लेकिन कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसको समर्थन नहीं देता। वस्तुतः हम इनकी डटकर भर्त्सना करते हैं। देवताओं एवं तथाकथित ईश्वर के अवतारों की ऐसी पूजा को शुद्ध कृष्णभावनामृत आन्दोलन से जोड़कर कभी भी नहीं देखा जाना चाहिए।

'आचार्यरत्न' नाम धरे बड़ एक शाखा।

ताँर परिकर, ताँर शाखा-उपशाखा ॥12॥

आचार्यरल-आचार्यरत्न; नाम-नाम; धरे-वे स्वीकार करते हैं; बड़-बड़ी; एक-एक; शाखा-शाखा; ताँर-उसके; परिकर-साथी; ताँर-उसकी; शाखा–शाखा; उपशाखा-उपशाखाएँ।

अनुवाद

'आचार्यरत्न' एक अन्य बड़ी शाखा थे और उनके पार्षद उपशाखाएँ थे।

आचार्यरलेर नाम 'श्री-चन्द्रशेखर'—।

याँर घरे देवी-भावे नाचिला ईश्वर ॥ 13 ॥

आचार्यरत्नेर-आचार्यरत्न का; नाम-नाम; श्री-चन्द्रशेखर-श्री चन्द्रशेखर; याँर-जिनके; घरे-घर में; देवी-भावे-देवी के भाव में; नाचिला-नृत्य किया; ईश्वर–श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

आचार्यरत्न को श्री चन्द्रशेखर आचार्य भी कहते थे। उनके घर में एक नाटक में चैतन्य महाप्रभु ने लक्ष्मी का अभिनय किया था।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में नाटक भी खेले जाते थे, किन्तु इसमें भाग लेने वाले शुद्ध भक्त होते थे। किसी बाहरी व्यक्ति को इसमें आने की अनुमति नहीं दी जाती थी। इस्कॉन के सदस्यों को इसका अनुसरण करना चाहिए। जब भी वे श्री चैतन्य महाप्रभु या भगवान् कृष्ण के जीवन के विषय में किसी नाटक का मंचन करें, तब अभिनयकर्ता शुद्ध भक्त ही होने चाहिए। पेशेवर अभिनेताओं तथा नाट्यकारों को भक्ति का कोई ज्ञान नहीं होता, अतएव यद्यपि वे अत्यन्त कलापूर्ण ढंग से अभिनय कर सकते हैं, लेकिन ऐसे प्रदर्शनों में प्राण नहीं होते। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

ठाकुर ऐसे अभिनेता को यात्रादले नारद कहते थे, जिसका अर्थ है "पाखण्डी नारद।" कभी-कभी कोई अभिनेता नाटक में नारद का अभिनय करता है, यद्यपि उसका निजी जीवन नारद जैसा बिल्कुल नहीं होता, क्योंकि वह भक्त नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् कृष्ण की लीला सम्बन्धी अभिनय में ऐसे अभिनेताओं की आवश्यकता नहीं है।

श्री चैतन्य महाप्रभु चन्द्रशेखर के घर में अद्वैत प्रभु, श्रीवास ठाकुर तथा अन्य भक्तों के साथ नाटक किया करते थे। जिस स्थान पर चन्द्रशेखर का घर था, अब वह व्रजपत्तन कहलाता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इस स्थान पर श्री चैतन्य मठ की एक शाखा की स्थापना की। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास लेने का निश्चय कर लिया, तो इसकी सूचना श्री नित्यानन्द प्रभु ने श्री चन्द्रशेखर आचार्य को दी; अतएव जब महाप्रभु ने कटवा में केशव भारती से संन्यास ग्रहण किया, तब वे उपस्थित थे। वे ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने नवद्वीप में महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने की बात के समाचार दिये। श्री चन्द्रशेखर आचार्य चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं के समय उपस्थित थे। अतएव उन्हें श्री चैतन्य-वृक्ष की दूसरी शाखा माना जाता है।

पुण्डरीक विद्यानिधि—बड़-शाखा जानि ।

याँर नाम लञा प्रभु कान्दिला आपनि ॥14॥

पुण्डरीक विद्यानिधि-पुण्डरीक विद्यानिधि; बड़-शाखा-एक अन्य बड़ी शाखा; जानि–मैं जानता हूँ; याँर नाम-जिनका नाम; लजा-लेकर; प्रभु–महाप्रभु; कान्दिला-रोए; आपनि-स्वयं।

अनुवाद

तृतीय बड़ी शाखा पुण्डरीक विद्यानिधि थे, जो श्री चैतन्य महाप्रभु को इतने प्रिय थे कि कभी-कभी उनकी अनुपस्थिति में महाप्रभु स्वयं रो पड़ते थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (54) में श्रील पुण्डरीक विद्यानिधि को कृष्णलीला में श्रीमती राधारानी के पिता बतलाया गया है। अतएव चैतन्य महाप्रभु उन्हें पिता तुल्य मानते थे। पुण्डरीक विद्यानिधि के पिता बाणेश्वर नाम से प्रसिद्ध थे। एक अन्य मत के अनुसार वे शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी थे और उनकी माता का नाम गंगादेवी था। एक मत के अनुसार बाणेश्वर श्री शिवराम गंगोपाध्याय के वंशज थे। पुण्डरीक विद्यानिधि का मूल निवास पूर्वी बंगाल (आजकल बाँग्ला देश) में ढाका के निकट बाघिया गाँव में था, जिसमें वारेन्द्र कुल के ब्राह्मण परिवार रहते थे। कभी-कभी ये वारेन्द्र ब्राह्मण एक अन्य कुल के राढीय ब्राह्मणों से झगड़ पड़ते थे। इसलिए पुण्डरीक विद्यानिधि के परिवार का बहिष्कार कर दिया गया, जिससे वे सम्मानपूर्वक न रह सके।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं कि इस परिवार का एक सदस्य वृन्दावन में रह रहा है, जिसका नाम सरोजानन्द गोस्वामी है। इस परिवार की एक विशेषता यह थी कि हर सदस्य को केवल एक ही पुत्र था या पुत्र था ही नहीं, अतएव यह परिवार बहुत विस्तृत नहीं था। पूर्वी बंगाल में चट्टग्राम नामक जिले में एक स्थान है, जिसका नाम हाटहाजारी है, जिससे कुछ ही दूरी पर मेखला ग्राम है, जहाँ पुण्डरीक विद्यानिधि के पूर्वज रहते थे। चट्टग्राम से घोड़े, बैलगाड़ी अथवा स्टीमर द्वारा मेखलाग्राम पहुँचा जा सकता है। स्टीमर स्टेशन का नाम अन्नपूर्णार घाट है। यहाँ से दो मील दक्षिण-पश्चिम की ओर पुण्डरीक विद्यानिधि का जन्मस्थान है। यहाँ पर पुण्डरीक विद्यानिधि ने जो मन्दिर बनवाया था, वह अब बहुत जीर्ण हो गया है और उसकी मरम्मत किये जाने की आवश्यकता है। इसके बिना यह मन्दिर शीघ्र ही ध्वस्त हो सकता है। इस मन्दिर में ईंटों पर दो लेख खुदे हैं, किन्तु वे इतने पुराने हैं कि उन्हें पढ़ा नहीं जा सकता। इस मन्दिर

से 200 गज दक्षिण की ओर एक दूसरा मन्दिर है और कुछ लोग कहते हैं कि यही पुण्डरीक विद्यानिधि द्वारा बनवाया गया प्राचीन मन्दिर है।

श्री चैतन्य महाप्रभु पुण्डरीक विद्यानिधि को "पिता" कहते थे और उन्होंने उन्हें प्रेमनिधि की उपाधि दी थी। पुण्डरीक विद्यानिधि बाद में गदाधर पण्डित के गुरु और स्वरूप दामोदर के घनिष्ठ मित्र बने। गदाधर पण्डित ने पहले पुण्डरीक विद्यानिधि को सामान्य साहूकार समझा था, किन्तु बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु के बतलाने पर वे उनके शिष्य बन गये। पुण्डरीक विद्यानिधि के जीवन की एक अन्य घटना जगन्नाथ मन्दिर के पुजारी की निन्दा करने से सम्बन्धित है, जिसके दण्डस्वरूप जगन्नाथ प्रभु ने स्वयं उनके मुँह पर चपत लगाई। इसका उल्लेख श्रीचैतन्य-भागवत के अन्त्य खण्ड के अध्याय सात में हुआ है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर हमें बतलाते हैं कि उनके समय में पुण्डरीक विद्यानिधि के परिवार के दो वंशज जीवित थे, जिनके नाम श्री हरकुमार स्मृतितीर्थ तथा श्रीकृष्णकिंकर विद्यालंकार थे। अधिक जानकारी के लिए वैष्णव-मञ्जुषा नामक शब्दकोश देखना चाहिए।

बड़ शाखा,—गदाधर पण्डित-गोसाञि ।

तेंहो लक्ष्मी-रूपा, ताँर सम केह नाइ ॥15॥

बड़ शाखा-बड़ी शाखा; गदाधर पण्डित-गोसाञि-गदाधर पण्डित के वंशज या शिष्य; तेंहो–गदाधर पण्डित; लक्ष्मी-रूपा-भगवान् कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति के अवतार; ताँर-उनके; सम-समान; केह-कोई भी; नाइ–नहीं है।

अनुवाद

चौथी शाखा गदाधर पण्डित को श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति के अवतार के रूप में वर्णित किया जाता है। अतएव उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (147-53) में कहा गया है, "श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति पहले वृन्दावनेश्वरी नाम से विख्यात थीं। अब श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं में श्री गदाधर पण्डित के रूप में उनका आविर्भाव हुआ है।" श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने इंगित किया है कि कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति लक्ष्मी के रूप में वे भगवान् को पहले श्यामसुन्दर वल्लभा के रूप में अत्यन्त प्रिय थीं। वही श्यामसुन्दर वल्लभा चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं में गदाधर पण्डित के रूप में उपस्थित रहीं। पहले वे ललिता सखी के रूप में श्रीमती राधारानी की सेवा के लिए सर्वदा समर्पित थीं। इस प्रकार गदाधर पण्डित एक साथ श्रीमती राधारानी तथा ललिता सखी के अवतार हैं। चैतन्य-चरितामृत के इस खण्ड के बारहवें अध्याय में गदाधर पण्डित के वंशजों अथवा उनकी गुरु-शिष्य परम्परा का वर्णन हुआ है।

ताँर शिष्य-उपशिष्य,—ताँर उपशाखा ।

एइमत सब शाखा-उपशाखार लेखा ॥16॥

ताँर–उनके; शिष्य-शिष्य; उपशिष्य-उपशिष्य एवं प्रशंसक; ताँर-उसकी; उपशाखा-उपशाखाएँ; एइमत-इस प्रकार; सब-सब; शाखा-शाखाएँ; उपशाखार-उपशाखाएँ; लेखा-लिखकर वर्णन करना।

अनुवाद

उनके शिष्य तथा प्रशिष्य उनकी उपशाखाएँ हैं। उन सबका वर्णन कर पाना कठिन होगा।

वक्रेश्वर पण्डित–प्रभुर बड़ प्रिय भृत्य ।

एक-भावे चब्बिश प्रहर याँर नृत्य ॥17॥

वक्रेश्वर पण्डित-वक्रेश्वर पण्डित; प्रभुर–महाप्रभु के; बड़-अत्यन्त; प्रिय–प्रिय; भृत्य-सेवक; एक-भावे-लगातार वही भाव में; चब्बिश–चौबीस; प्रहर–तीन घण्टे का एक प्रहर; याँर-जिनका; नृत्य-नृत्य।

अनुवाद

वृक्ष की पाँचवीं शाखा वक्रेश्वर पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय सेवक थे। वे बहत्तर घंटे तक लगातार भावविभोर होकर नृत्य कर सकते थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश दीपिका (71) में कहा गया है कि वक्रेश्वर पण्डित अनिरुद्ध के अवतार थे, जो विष्णु-चतुर्यूह (वासुदेव, संकर्षण, अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न) में से एक थे। वे लगातार 72 घंटे तक अद्भुत ढंग से नृत्य कर सकते थे। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीवास पण्डित के घर पर अभिनय में भाग लिया था, तब वक्रेश्वर पण्डित मुख्य नर्तकों में से एक थे और वे लगातार उतनी देर तक नाचते रहे। श्री चैतन्य महाप्रभु के एक उड़िया भक्त श्री गोविन्द दास ने अपनी पुस्तक गौर कृष्णोदय में वक्रेश्वर पण्डित के जीवन-चरित्र का वर्णन किया है। उड़ीसा में वक्रेश्वर पण्डित के अनेक शिष्य हैं और वे उड़िया होते हुए भी गौड़ीय वैष्णव कहलाते हैं। इन शिष्यों में श्री गोपाल गुरु तथा उनके शिष्य श्री ध्यानचन्द्र गोस्वामी उल्लेखनीय हैं।

आपने महाप्रभु गाय याँर नृत्य-काले ।

प्रभुर चरण धरि' वक्रेश्वर बले ॥18॥

आपने–स्वयं; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गाय-गाते; याँर–जिनके; नृत्य-काले-नृत्य के समय; प्रभुर–महाप्रभु के; चरण-चरणकमल; धरि'-पकड़कर; वक्रेश्वर–वक्रेश्वर पण्डित; बले-बोले।

अनुवाद

जब वक्रेश्वर पण्डित नाच रहे थे, तब स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु ने गाना गाया। फलतः वक्रेश्वर पण्डित महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और इस प्रकार बोले।

"दश-सहस्र गन्धर्व मोरे देह' चन्द्रमुख ।

तारा गाय, मुञि नाचों—तबे मोर सुख" ॥19॥

दश-सहस्र-दस हजार; गन्धर्व-गन्धर्व लोक के निवासी; मोरे-मुझे; देह'–कृपया दें; चन्द्र-मुख-चन्द्र मुख; तारा गाय-उन्हें गाने दो; मुञि नाचों-मुझे नाचने दो; तबे-तब; मोर-मेरा; सुख–सुख।

अनुवाद

"हे चन्द्रमुख! कृपया मुझे आप दस हजार गन्धर्व दें। जब मैं नाचूं और वे गाएँ, तब मैं परम प्रसन्न होऊँगा।"

तात्पर्य

गन्धर्वलोक के निवासी गन्धर्व स्वर्गिक गवैयों के रूप में विख्यात हैं। जब भी स्वर्गलोक में गायन की आवश्यकता होती है, तब गाने के लिए गन्धर्वों को बुलाया जाता है। गन्धर्व लगातार कई दिनों तक गा सकते हैं, इसीलिए वक्रेश्वर पण्डित चाहते थे कि जब ये गाएँ तो वे स्वयं नाचें।

प्रभु बले—तुमि मोर पक्ष एक शाखा ।

आकाशे उड़िताम यदि पाँ आर पाखा ॥20॥

प्रभु बले-भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; तुमि-तुम; मोर–मेरा; पक्ष-पंख; एक–एक; शाखा-एक पक्षीय; आकाशे-आकाश में, उड़िताम-मैं उड़ सकता; यदि-यदि; पाँ-मैं पा सकता; आर-एक अन्य; पाखा–पंख।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मेरे पास तुम्हारे समान केवल एक ही पंख है, किन्तु यदि मेरे पास दूसरा पंख होता तो मैं निश्चय ही आकाश में उड़ता!"

पण्डित जगदानन्द प्रभुर प्राण-रूप ।

लोके ख्यात येंहो सत्यभामार स्वरूप ॥ 21॥

पण्डित जगदानन्द-पण्डित जगदानन्द; प्रभुर–महाप्रभु के; प्राण-रूप-जीवन तथा प्राण रूप; लोके–संसार में; ख्यात–प्रसिद्ध; येंहो-जो; सत्यभामार-सत्यभामा; स्वरूप-स्वरूप।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु की छठी शाखा पण्डित जगदानन्द थे, जो महाप्रभु के प्राणस्वरूप माने जाते थे। वे सत्यभामा (भगवान् कृष्ण की पटरानियों में से एक) के अवतार माने जाते हैं।

तात्पर्य

जगदानन्द पण्डित ने श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ अनेक लीलाएँ कीं। इनमें से मुख्य थे कि वे महाप्रभु के नित्य पार्षद थे और श्रीवास पण्डित तथा चन्द्रशेखर आचार्य के घरों में महाप्रभु की लीलाओं में विशेष रूप से सम्मिलित होते थे।

प्रीत्ये करिते चाहे प्रभुर लालन-पालन ।

वैराग्य-लोक-भये प्रभु ना माने कखन ॥ 22 ॥

प्रीत्ये-प्रेम में; करिते-करना; चाहे-चाहते थे; प्रभुर–महाप्रभु का; लालन-पालन-लालन-पालन; वैराग्य-संन्यास; लोक-भये-लोगों के डर से; प्रभु–महाप्रभु; ना-नहीं; माने–स्वीकार किया; कखन-किसी समय।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित (सत्यभामा के अवतार रूप में) सदैव चैतन्य महाप्रभु की सुविधाओं का ध्यान रखते थे, किन्तु संन्यासी होने के कारण महाप्रभु उनके द्वारा प्रदत्त सुविधाओं को स्वीकार नहीं करते थे।

दुइ-जने खमटि लागाय कोन्दल ।

ताँर प्रीत्येर कथा आगे कहिब सकल ॥ 23 ॥

दुइ-जने-दोनों व्यक्ति; खट्मटि-छोटी छोटी बातों पर लड़ना; लागाय-जारी रहे; कोन्दल-झगड़ा; ताँर-उनका; प्रीत्येर-स्नेह; कथा-कथन; आगे-आगे; कहिब-मैं कदूँगा; सकल-सब।

अनुवाद

कभी-कभी वे दोनों छोटी-छोटी बातों पर झगड़ते हुए प्रतीत होते थे, किन्तु ये झगड़े उनके प्रेम पर आधारित होते थे, जिनके बारे में मैं आगे बतलाऊँगा।

राघव-पण्डित–प्रभुर आद्य-अनुचर।

ताँर एक शाखा मुख्य–मकरध्वज कर ॥24॥

राघव पण्डित--राघव पण्डित; प्रभुर–महाप्रभु के; आद्य-मूल; अनुचर-अनुयायी; ताँर–उनकी; एक-एक; शाखा शाखा; मुख्य–मुख्य; मकरध्वज-मकरध्वज; कर-उपनाम।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के मूल अनुयायी राघव पण्डित सातवीं शाखा कहे जाते हैं। उनसे एक अन्य उपशाखा निकली, जिसमें मकरध्वज कर मुख्य थे।

तात्पर्य

मकरध्वज का कुलनाम कर था। आजकल कायस्थ जाति में यह उपनाम प्रायः पाया जाता है। गौरगणोद्देश-दीपिका (166) में बताया गया है :

धनिष्ठा भक्ष्यसामग्री कृष्णायादाद् व्रजेऽमिताम्

सैव साम्प्रतं गौरांगप्रियो राघव-पण्डितः।

राघव पण्डित पहले भगवान् कृष्ण की लीलाओं के समय व्रज की एक अन्तरंग गोपी थे, जिसका नाम धनिष्ठा था। धनिष्ठा नाम की यह गोपी कृष्ण के लिए सदैव भोजन बनाया करती थी।

ताँहार भगिनी दमयन्ती प्रभुर प्रिय दासी ।

प्रभुर भोग-सामग्री ये करे बार-मासि ॥ 25॥

ताँहार-उसकी; भगिनी–बहिन; दमयन्ती-दमयन्ती; प्रभुर-प्रभु की; प्रिय-प्रिय; दासी–दासी; प्रभुर–प्रभु की; भोग-सामग्री-भोग सामग्री; ये-जो; करे-करता है; बार-मासि-वर्ष भर।

अनुवाद

राघव पण्डित की बहिन दमयन्ती महाप्रभु की प्रिय सेविका थी। वह सदैव विभिन्न भोग-सामग्री एकत्र करके महाप्रभु के लिए भोजन बनाती थी।

तात्पर्य

अपने अनुभाष्य में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर लिखते हैं : गौरगणोद्देश-दीपिका (167) में उल्लेख है-गुणमाला व्रजे यासीद् दमयन्ती तु तत्स्वसा–अब गुणमाला नामक गोपी राघव पण्डित की बहन दमयन्ती के रूप में प्रकट हुई है। पूर्वी बंगाल रेलवे में कलकत्ता के सियालदह स्टेशन के आगे सोदपुर नामक एक स्टेशन है, जो कलकत्ता से बहुत दूर नहीं है। इस स्टेशन से एक मील से कम दूरी पर गंगा नदी के पश्चिम में पाणिहाटि नाम का एक गाँव है, जहाँ अब भी राघव पण्डित का आवासीय मकान है। राघव पण्डित की समाधि एक पक्के चबूतरे के रूप में है, जिस पर एक लता फैली है। पास के जीर्ण मन्दिर में मदनमोहन का अर्चाविग्रह भी है। इस मन्दिर की व्यवस्था स्थानीय जमींदार श्री शिवचन्द्र राय चौधरी करते हैं। मकरध्वज कर भी पाणिहाटि के ही निवासी थे।

से सब सामग्री यत झालिते भरिया।

राघव लइया या'न गुपत करिया ॥26॥

से सब-ये सब; सामग्री–सामग्री; यत-वे सब; झालिते भरिया-थैलों में भरकर; राघव-राघव पण्डित; लइया-लेकर; या'न-जाते; गुपत करिया-छुपाकर॥

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु पुरी में थे, तो उनके लिए दमयन्ती जो भोजन तैयार करती, उसे उसका भाई राघव दूसरों की नजर से बचाकर एक थैली में ले जाया करता था।

बार-मास ताहा प्रभु करेन अङ्गीकार।

'राघवेर झालि' बलि' प्रसिद्धि याहार ॥27॥

बार-मास-वर्ष भर; ताहा-वह सब भोजन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन-किया; अङ्गीकार-स्वीकार; राघवेर झालि-राघव पण्डित के थैले; बलि'-नाम से; प्रसिद्धि-प्रसिद्धि; याहार–जिसकी।

अनुवाद

महाप्रभु बारहों महीने यह भोजन स्वीकार करते। ये थैलियाँ अब भी 'राघवेर झालि' अर्थात् "राघव पण्डित की थैलियाँ" के नाम से विख्यात हैं।

से-सब सामग्री आगे करिब विस्तार।

याहार श्रवणे भक्तेर वहे अश्रुधार ॥28॥

से-सब-ये सब वस्तुएँ; सामग्री-भोजन सामग्री; आगे-आगे; करिब–मैं वर्णन करूँगा; विस्तार–विस्तार से; याहार–जिसको; श्रवणे-सुनने से; भक्तेर-भक्तों की; वहे-बहती; अश्रु-धार-अश्रुधारा।

अनुवाद

मैं श्री राघव पण्डित की थैली की सामग्री के बारे में इस ग्रंथ में आगे वर्णन करूँगा। इस वृत्तान्त को सुनकर भक्तगण प्रायः रो उठते हैं और उनकी आँखों से अश्रु झरने लगते हैं।

तात्पर्य

राघवेर झालि का विस्तृत विवरण श्रीचैतन्य-चरितामृत की अन्त्यलीला के दसवें अध्याय में खोजा जा सकता है।

प्रभुर अत्यन्त प्रिय–पण्डित गङ्गादास ।

याँहार स्मरणे हय सर्व-बन्ध-नाश ॥29॥

प्रभुर–महाप्रभु के; अत्यन्त–अत्यन्त; प्रिय–प्रिय; पण्डित गङ्गादास-पण्डित गंगादास; याँहार–जिनको; स्मरणे-याद करने से; हय-हो जाता है; सर्व-बन्ध-नाश-सब बन्धनों से छुटकारा।

अनुवाद

पण्डित गंगादास श्री चैतन्य वृक्ष की आठवीं प्रिय शाखा थे। जो व्यक्ति उनके कार्यों का स्मरण करता है, वह सारे बन्धनों से मुक्त हो जाता

चैतन्य-पार्षद–श्री-आचार्य पुरन्दर ।

पिता करि’ याँरे बले गौराङ्ग-सुन्दर ॥ 30॥

चैतन्य-पार्षद-चैतन्य महाप्रभु के पार्षद; श्री-आचार्य पुरन्दर–श्री आचार्य पुरन्दर; पिता-पिता; करि’-मानकर; याँरे–जिन्हें; बले-कहते; गौराङ्ग-सुन्दर–भगवान् चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

श्री आचार्य पुरन्दर नवीं शाखा थे, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के नित्य पार्षद थे। महाप्रभु उन्हें अपने पिता के रूप में मानते थे।

तात्पर्य

चैतन्य भागवत में बतलाया गया है कि जब भी चैतन्य महाप्रभु राघव पण्डित के घर जाते, तो निमंत्रण पाने पर पुरन्दर आचार्य के यहाँ भी तुरन्त जाया करते थे। पुरन्दर आचार्य भी सर्वाधिक भाग्यशाली समझे जाते हैं, क्योंकि महाप्रभु उन्हें अपने पिता कहा करते थे और बड़े प्रेम से उनका आलिंगन किया करते थे।

दामोदर-पण्डित शाखा प्रेमेते प्रचण्ड ।

प्रभुर उपरे सेंहो कैल वाक्य-दण्ड ॥ 31॥

दामोदर-पण्डित-दामोदर पण्डित; शाखा-अन्य (दसवीं) शाखा; प्रेमेते-प्रेम में; प्रचण्ड–अति उन्नत; प्रभुर–महाप्रभु के; उपरे—ऊपर; ⟶हो–जिन्होंने; कैल–किया; वाक्य-दण्ड-शब्दों में दण्ड दिया।

अनुवाद

चैतन्य वृक्ष की दसवीं शाखा, दामोदर पण्डित, भगवान् चैतन्य के प्रेम में इतना आगे बढ़े हुए थे कि एक बार उन्होंने महाप्रभु को बिना किसी झिझक के कड़े शब्द कहकर प्रताड़ित किया।

दण्ड-कथा कहिब आगे विस्तार करिया ।

दण्डे तुष्ट प्रभु ताँरे पाठाइला नदीया ॥ 32॥

दण्ड-कथा-ऐसे दण्ड का वर्णन; कहिब-मैं कदूँगा; आगे-आगे; विस्तार–विस्तृत वर्णन; करिया-करके; दण्डे-दण्ड के विषय में; तुष्ट प्रभु–महाप्रभु ने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर; ताँरे–उनको; पाठाइला-वापस भेजा; नदीया-नदिया (बंगाल का एक जिला)।

अनुवाद

इस दण्ड-वृत्तान्त का वर्णन मैं चैतन्य-चरितामृत में आगे करूँगा। महाप्रभु इस दण्ड से इतने तुष्ट हुए कि उन्होंने दामोदर पण्डित को नवद्वीप भेज दिया।

तात्पर्य

दामोदर पण्डित पहले व्रजधाम में शैब्या के नाम से जाने जाते थे और ये चैतन्य महाप्रभु का सन्देश उनकी माता शची तक पहुँचाते थे। रथयात्रा के समय ये शचीमाता का सन्देश महाप्रभु तक ले जाते थे।

ताँहार अनुज शाखा—शङ्कर-पण्डित ।

‘प्रभु-पादोपाधान’ याँर नाम विदित ॥ 33॥

ताँहार–उनका, दामोदर पण्डित का; अनुज–छोटा भाई; शाखा-ग्यारहवीं शाखा; शङ्कर-पण्डित-शंकर पण्डित; प्रभु–महाप्रभु के; पाद-उपधान-जूते; याँर–जिनका; नाम-नाम; विदित-प्रसिद्ध।

अनुवाद

दामोदर पण्डित के छोटे भाई ग्यारहवीं शाखा थे, जिनका नाम शंकर पण्डित था। उन्हें महाप्रभु की पादुकाओं के रूप में माना जाता था।

सदाशिव-पण्डित याँर प्रभु-पदे आश ।

प्रथमेइ नित्यानन्देर याँर घरे वास ॥ 34॥

सदाशिव-पण्डित-सदाशिव पण्डित; याँर–जिनका; प्रभु-पदे–महाप्रभु के चरणकमलों में; आश–निरन्तर अभिलाषा; प्रथमेइ-प्रारम्भ में; नित्यानन्देर-नित्यानन्द प्रभु की; याँर-जिनके; घरे घर में; वास–निवास-स्थान।

अनुवाद

बारहवीं शाखा, सदाशिव पण्डित, सदैव महाप्रभु के चरणकमलों कीसेवा करने के लिए उत्सुक रहते थे। यह उनका अच्छा सौभाग्य था कि जब नित्यानन्द प्रभु नवद्वीप आये, तो वे उन्हीं के घर रूके।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत (अन्त्यखण्ड, अध्याय 9) में उल्लेख है कि सदाशिव पण्डित शुद्ध भक्त थे और नित्यानन्द प्रभु उनके घर में ही रहते थे।

श्रीनृसिंह-उपासक—प्रद्युम्न ब्रह्मचारी।

प्रभु ताँर नाम कैला 'नृसिंहानन्द' करि' ॥ 35॥

श्री-नृसिंह-उपासक-भगवान् नृसिंहदेव के पूजक; प्रद्युम्न ब्रह्मचारी–प्रद्युम्न ब्रह्मचारी; प्रभु–महाप्रभु; ताँर–उनका; नाम-नाम; कैला-बदल दिया; नृसिंहानन्द-नृसिंहानन्द; करि'-ऐसे नाम से।

अनुवाद

तेरहवीं शाखा प्रद्युम्न ब्रह्मचारी थे। चूँकि वे भगवान् नृसिंहदेव के उपासक थे, इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका नाम बदलकर नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी कर दिया था।

तात्पर्य

श्रीचैतन्य-चरितामृत, अन्त्यलीला के दूसरे अध्याय में प्रद्युम्न ब्रह्मचारी का वर्णन हुआ है। वे चैतन्य महाप्रभु के महान् भक्त थे और महाप्रभु ने उनका नाम बदलकर नृसिंहानन्द कर दिया था। जब वे पाणिहाटी स्थित राघव पण्डित के घर से शिवानन्द के घर आ रहे थे, तब श्री चैतन्य महाप्रभु नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी के हृदय में प्रकट हुए। कृतज्ञ होकर श्री नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी जगन्नाथ, नृसिंहदेव तथा श्री चैतन्य महाप्रभु इन तीन विग्रहों का भोग ही भोजन के तौर पर स्वीकार करते थे। इसका उल्लेख चैतन्य-चरितामृत (अन्त्यलीला, द्वितीय अध्याय, श्लोक 48-78) में हुआ है। जब नृसिंहानन्द को यह जानकारी मिली कि श्री चैतन्य महाप्रभु कुलिया से वृन्दावन के लिए प्रस्थान कर रहे हैं, तो वे ध्यानमग्न हो गये और उन्होंने मन ही मन कुलिया से लेकर वृन्दावन तक एक सुन्दर मार्ग का निर्माण कर दिया। किन्तु बीच ही में उन्होंने ध्यान भंग करके अन्य भक्तों को बतलाया कि इस बार महाप्रभु वृन्दावन तक नहीं, अपितु कानाइ नाटशाला तक ही जायेंगे। इसका वर्णन मध्यलीला में अध्याय एक के अन्तर्गत 155 से 162 वें श्लोकों में हुआ है। गौरगणोद्देश-दीपिका के

श्लोक 74 में कहा गया है-आवेशश्च तथा ज्ञेयो मिश्रे प्रद्युम्न संज्ञके–श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रद्युम्न मिश्र अर्थात् प्रद्युम्न ब्रह्मचारी का नाम नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी रख दिया, क्योंकि उनके हृदय में भगवान् नृसिंहदेव प्रकट हुए थे। कहा जाता है कि भगवान् नृसिंहदेव उनसे प्रत्यक्ष बातें करते थे।

नारायण-पण्डित एक बड़ई उदार ।

चैतन्य-चरण विनु नाहि जाने आर ॥ 36॥

नारायण-पण्डित–नारायण पण्डित; एक-एक; बड़इ-बहुत; उदार-उदार; चैतन्य-चरण-भगवान् चैतन्य के चरणकमल; विनु–बिना; नाहि-नहीं; जाने-जानते; आर-और कुछ।

अनुवाद

चौदहवीं शाखा नारायण पण्डित थे, जो एक महान् एवं उदार भक्त थे और चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के अतिरिक्त अन्य कोई आश्रय नहीं जानते थे।

तात्पर्य

नारायण पण्डित श्रीवास ठाकुर के संगियों में से एक थे। चैतन्य भागवत (अत्यखंड, अध्याय 8, श्लोक 36) में उल्लेख है कि वे श्रीवास ठाकुर के भाई श्रीराम पण्डित के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने जगन्नाथ पुरी गये थे।

श्रीमान्पण्डित शाखा–प्रभुर निज भृत्य ।

देउटि धरेन, यबे प्रभु करेन नृत्य ॥ 37॥

श्रीमान्-पण्डित-श्रीमान् पण्डित; शाखा शाखा; प्रभुर–महाप्रभु की; निज-अपनी; भृत्य-सेवक; देउटि–मशाल की रोशनी; धरेन-उठाते; यबे-जब ; प्रभु-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; करेन-करते; नृत्य-नृत्य।

अनुवाद

पन्द्रहवीं शाखा श्रीमान् पण्डित थे, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के नित्य सेवक थे। जब महाप्रभु नृत्य करते थे, तब वे मशाल लिए रहते थे।

तात्पर्य

जब श्री चैतन्य महाप्रभु संकीर्तन किया करते थे, तब श्रीमान पण्डित उनके साथ रहा करते थे। जब चैतन्य महाप्रभु ने देवी लक्ष्मी का वेश धारण करके नवद्वीप की सड़कों में नृत्य किया था, तो श्रीमान पण्डित मार्ग में प्रकाश करने के लिए मशाल लिए रहते थे।

शुक्लाम्बर-ब्रह्मचारी बड़ भाग्यवान् ।

याँर अन्न मागि' काड़ि' खाइला भगवान् ॥ 38 ॥

शुक्लाम्बर-ब्रह्मचारी–शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी; बड़-अत्यन्त; भाग्यवान्-भाग्यशाली; याँर-जिनका; अन्न-भोजन; मागि'-माँगकर; काड़ि-छीनकर; खाइला–खाया; भगवान्-भगवान्।

अनुवाद

सोलहवीं शाखा, शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी अत्यन्त भाग्यशाली थे, क्योंकि चैतन्य महाप्रभु परिहास करते हुए या गम्भीर होकर उनसे भोजन माँगते थे और कभी-कभी उनसे बलपूर्वक छीनकर खा लेते थे।

तात्पर्य

कहा जाता है कि नवद्वीप के निवासी शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी संकीर्तन आन्दोलन में महाप्रभु के पहले पार्षद थे। जब महाप्रभु गया से दीक्षित होकर लौटे, तब वे शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के यहाँ रुके, क्योंकि वे इस भक्त से भगवान् कृष्ण की लीलाएँ सुनना चाहते थे। शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी नवद्वीप के निवासियों से भिक्षा के रूप में चावल माँगकर लाते और उसे पकाते । महाप्रभु इस चावल को बड़े ही चाव से खाया करते। कहा जाता है कि शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी पूर्वजन्म में भगवान् कृष्ण की वृन्दावन लीलाओं के समय याज्ञिक ब्राह्मणों की पत्नियों में से एक थे। भगवान् कृष्ण ने इन याज्ञिक ब्राह्मणों की पत्नियों से भिक्षा माँगी थी। श्री चैतन्य महाप्रभु ने शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी से चावल माँगकर वैसी ही लीला की।

नन्दन-आचार्य-शाखा जगते विदित ।

लुकाइया दुइ प्रभुर याँर घरे स्थित ॥ 39॥

नन्दन-आचार्य-नन्दन आचार्य; शाखा-सतरहवीं शाखा; जगते-संसार में; विदित–प्रसिद्ध; लुकाइया-छुपकर; दुइ-दो; प्रभुर–प्रभुओं के; याँर-जिनके; घरे-घर में; स्थित रहते।

अनुवाद

चैतन्य वृक्ष की सत्रहवीं शाखा, नन्दन आचार्य जगतविदित हैं, क्योंकि दोनों प्रभु (चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु) कभी-कभी उनके घर में छिप जाया करते थे।

तात्पर्य

नवद्वीप में महाप्रभु की कीर्तन-लीलाओं के समय उनके साथ रहने वाले दूसरे पार्षद नन्दन आचार्य थे। अवधूत के रूप में श्रील नित्यानन्द प्रभु ने अनेक तीर्थयात्राएँ कीं और जब वे पहले पहल श्री नवद्वीप धाम आये, तब वे नन्दन आचार्य के घर में छिपकर रहे। यहीं पर पहले पहले उन्होंने चैतन्य महाप्रभु के भक्तों से भेंट की। जब चैतन्य महाप्रभु ने अपना महाप्रकाश दिखलाया, तब उन्होंने रामाइ पण्डित से कहा कि जाकर अद्वैत प्रभु को बुला लाये, जो नन्दन आचार्य के घर में छिपे थे और महाप्रभु जान गये थे कि अद्वैत प्रभु छिपे हुए हैं। इसी प्रकार कभी-कभी श्री चैतन्य महाप्रभु भी नन्दन आचार्य के घर में छिप जाते थे। इस प्रसंग के लिए चैतन्य-भागवत मध्यखण्ड के अध्याय 6 तथा 17 देखें।

श्री-मुकुन्द-दत्त शाखा–प्रभुर समाध्यायी ।

याँहार कीर्तने नाचे चैतन्य-गोसाञि ॥40॥

श्री-मुकुन्द-दत्त-श्री मुकुन्द दत्त; शाखा-एक अन्य शाखा; प्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; समाध्यायी-सहपाठी; याँहार–जिनके; कीर्तने-संकीर्तन में; नाचे-नृत्य करते; चैतन्य-गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के सहपाठी श्री मुकुन्द दत्त चैतन्य वृक्ष की एक अन्य शाखा थे। जब वे गाते थे, तब श्री चैतन्य महाप्रभु नाचा करते थे।

तात्पर्य

श्री मुकुन्द दत्त का जन्म चट्टग्राम जिले के छन्हरा नामक गाँव में हुआ था, जो थाना पटिया के अन्तर्गत आता है। यह गाँव पुण्डरीक विद्यानिधि के घर से दस क्रोश अर्थात् लगभग बीस मील दूरी पर है। गौरगणोद्देश दीपिका (श्लोक 140) में कहा गया है :

व्रजे स्थितौ गायको यो मधुकण्ठ-मधुव्रतौ ।

मुकुन्द वासुदेवौ तौ दत्तौ गौराङ्ग-गायकौ ॥

"व्रज में दो प्रसिद्ध गायक थे, जिनके नाम थे मधुकण्ठ तथा मधुव्रत। वे चैतन्य-लीला में मुकुन्द तथा वासुदेव दत्त के रूप में प्रकट हुए, जो चैतन्य महाप्रभु की मंडली के गायक थे।" जब श्री चैतन्य विद्यार्थी थे, तब मुकुन्द दत्त उनके सहपाठी मित्र थे और वे आये दिन आपस में तार्किक वाद-विवाद किया करते थे। कभी-कभी तर्क के बहाने चैतन्य महाप्रभु उनसे भिड़ जाया करते थे। इसका वर्णन चैतन्य भागवत (आदिखण्ड, अध्याय 11 तथा 12) में हुआ है। जब भगवान् चैतन्य महाप्रभु गया से लौटे, तब मुकुन्द दत्त ने उन्हें कृष्णलीला के विषय में श्रीमद्भागवत के श्लोक सुनाकर आनन्दविभोर कर दिया। उन्हीं के प्रयास से गदाधर पण्डित गोस्वामी पुण्डरीक विद्यानिधि के शिष्य बने, जिसका उल्लेख श्रीचैतन्य-भागवत, मध्य खण्ड के सातवें अध्याय में हुआ है। जब मुकुन्द दत्त श्रीवास प्रभु के आँगन में गाते, तब महाप्रभु उनके गान के साथ नाचते थे और जब भगवान् चैतन्य ने 21 घंटे का सात प्रहरिया भावावेश प्रदर्शित किया, तो मुकुन्द दत्त ने गाकर समारोह का शुभारम्भ किया। कभी-कभी चैतन्य महाप्रभु उन्हें खड़जाठिया बेटा कहकर भर्त्सना करते थे, क्योंकि वे अनेक अभक्तों के उत्सवों में सम्मिलित होते रहते थे। इसका वर्णन चैतन्य-भागवत, मध्य खण्ड के दसवें अध्याय में मिलता है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने लक्ष्मीदेवी का वेश धारण करके चन्द्रशेखर के घर में नाचना शुरू किया, तो पहला गीत मुकुन्द दत्त ने ही गाया था।

संन्यास की इच्छा प्रकट करने के पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु सबसे पहले मुकुन्द दत्त के घर गये, किन्तु उस समय मुकुन्द दत्त ने प्रार्थना की कि संन्यास लेने के पूर्व वे और कुछ दिनों तक संकीर्तन आन्दोलन चालू रखें। इसका वर्णन चैतन्य-भागवत, मध्यखण्ड, अध्याय 26 में हुआ है। चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने का समाचार नित्यानन्द प्रभु द्वारा गदाधर पण्डित, चन्द्रशेखर आचार्य तथा मुकुन्द दत्त को दिया गया, अतएव ये सारे लोग कटवा गये और वहाँ पर उन्होंने महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने के लिए कीर्तन तथा सारी साज-सामग्री का आयोजन किया। महाप्रभु द्वारा संन्यास लेने के बाद वे सभी उनके साथ गये और विशेष रूप से नित्यानन्द प्रभु, गदाधर प्रभु तथा गोविन्द तो उनके साथ-साथ पुरुषोत्तम क्षेत्र तक गये। इस सन्दर्भ में चैतन्य भागवत अन्त्य खण्ड, अध्याय दो देखना चाहिए। जलेश्वर नामक स्थान में नित्यानन्द प्रभु ने चैतन्य महाप्रभु का संन्यास-दण्ड तोड़ दिया। उस समय मुकुन्द दत्त भी उपस्थित थे। वे प्रतिवर्ष महाप्रभु से भेंट करने के लिए बंगाल से जगन्नाथ पुरी जाया करते थे।

वासुदेव दत्त—प्रभुर भृत्य महाशय।

सहस्र-मुखे याँर गुण कहिले ना हय ॥41॥

वासुदेव दत्त-वासुदेव दत्त; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु के; भृत्य-सेवक; महाशय-महाशय; सहस्र-मुखे-हजारों मुखों से; याँर–जिनके; गुण-गुण; कहिले-वर्णन करने के; ना-कभी नहीं; हय–हो सकता।

अनुवाद

श्री चैतन्य वृक्ष की उन्नीसवीं शाखा, वासुदेव दत्त, एक महापुरुष एवं महाप्रभु के सर्वाधिक अन्तरंग भक्त थे। उनके गुणों का वर्णन हजारों मुखों से भी नहीं किया जा सकता।

तात्पर्य

वासुदेव दत्त मुकुन्द दत्त के भाई थे और वे भी चट्टग्राम के निवासी थे। चैतन्य-भागवत में कहा गया है- याँर स्थाने कृष्ण हय आपने विक्रय-वासुदेव दत्त इतने शक्तिशाली भक्त थे कि उन्होंने कृष्ण को मोल ले लिया था। वासुदेव दत्त श्रीवास पण्डित के घर रुके थे और चैतन्य भागवत में बतलाया गया है कि वासुदेव दत्त से महाप्रभु इतने प्रसन्न थे और उनके प्रति इतने वत्सल थे कि वे कहा करते थे, "मैं तो केवल वासुदेव दत्त की सम्पत्ति हूँ। मेरा शरीर वासुदेव दत्त को प्रसन्न करने के ही निमित्त है और वह मुझे कहीं भी बेच सकता है।" उन्होंने तीन बार प्रतिज्ञा की कि यह सत्य है और इन वचनों में कोई अविश्वास न करे। उन्होंने कहा, "मेरे प्रिय भक्तों, मैं तुम लोगों से सच कहता हूँ। मेरा शरीर विशेष रूप से वासुदेव दत्त के ही निमित्त है।" वासुदेव दत्त ने रघुनाथ दास (जो बाद में रघुनाथदास गोस्वामी बने) के गुरु श्री यदुनन्दन आचार्य को दीक्षा दी। इसका वर्णन चैतन्य-चरितामृत, अन्त्यलीला के अध्याय छह, श्लोक 161 में मिलेगा। वासुदेव दत्त बड़ी ही उदारता के साथ धन का खर्च करते थे; अतएव महाप्रभु ने शिवानन्द सेन से उनका सरखेल अर्थात् सचिव बनने को कहा, जिससे उनके अपव्यय पर अंकुश लग सके। वासुदेव दत्त सारे जीवों के प्रति इतने दयालु थे कि वे उनके पापों के फल को अपने ऊपर ले लेना चाहते थे, जिससे श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उनका उद्धार हो सके। इसका वर्णन चैतन्य-चरितामृत, मध्यलीला के पन्द्रहवें अध्याय में श्लोक 159 से 180 तक हुआ है।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं कि, "नवद्वीप रेलवे स्टेशन के पास पूर्वस्थली नामक एक रेलवे स्टेशन है और उससे एक मील की दूरी पर मामगाछि नामक एक गाँव है, जो वृन्दानव दास ठाकुर की जन्मभूमि है। वहीं पर इस समय मदनगोपाल का एक मन्दिर है, जिसकी स्थापना वासुदेव दत्त ने की थी।" अब गौड़ीय मठ के भक्तों ने इस मन्दिर का भार अपने ऊपर ले लिया है और वहाँ पर सुन्दर ढंग से सेवापूजा चलती है। प्रतिवर्ष नवद्वीप परिक्रमा करने

वाले सभी यात्री मामगाछि भी जाते हैं। जबसे श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने नवद्वीप-परिक्रमा-समारोह का उद्घाटन किया, तब से इस मन्दिर की व्यवस्था बहुत अच्छी हो गई है।

जगते यतेक जीव, तार पाप ला ।

नरक भुञ्जिते चाहे जीव छाड़ाइया ॥42॥

जगते-संसार में; यतेक-सब; जीव-जीव; तार–उनके; पाप-पाप; लजा-लेकर; नरक-नरक; भुञ्जिते-भोगना; चाहे–चाहते थे; जीव-जीव; छाड़ाइया-उनका उद्धार करके।

अनुवाद

श्रील वासुदेव दत्त ठाकुर चाहते थे कि सारे संसार के लोगों के पापकर्मों का भोग वे ही करें, जिससे चैतन्य महाप्रभु उन लोगों का उद्धार कर सकें।

हरिदास-ठाकुर शाखार अद्भुत चरित ।

तिन लक्ष नाम तेंहो लयेन अपतित ॥43॥

हरिदास-ठाकुर-हरिदास ठाकुर; शाखार–शाखा का; अद्भुत-अद्भुत; चरित-चरित्र, लक्षण; तिन-तीन; लक्ष-लाख; नाम-नाम; तेंहो-वे; लयेन-जपते; अपतित-बिना अवरोध के।

अनुवाद

चैतन्य वृक्ष की बीसवीं शाखा हरिदास ठाकुर थे। उनका चरित्र अद्भुत था। वे निर्बाध रूप से प्रतिदिन 3 लाख बार कृष्ण-नाम का जप करते थे।

तात्पर्य

सचमुच ही भगवन्नाम का 3 लाख बार जप करना आश्चर्यजनक है। न तो कोई सामान्य व्यक्ति ऐसा कर सकता है, न ही किसी को हरिदास ठाकुर के इस आचरण की नकल करनी चाहिए। किन्तु यह अनिवार्य है कि हर व्यक्ति हरे कृष्ण मन्त्र का जप करने के एक निश्चित व्रत को पूरा करे। इसीलिए हमने अपने संघ के हर अनुयायी के लिए निर्धारित कर दिया है कि प्रतिदिन कम से कम 16 माला जप करे। ऐसे जप को उच्च कोटि का होने के लिए निरपराध होना चाहिए। अपराधरहित नाम का जप यान्त्रिक ढंग से किये जाने वाले जप से कहीं अधिक शक्तिशाली होता है। चैतन्य भागवत (आदि खण्ड, अध्याय 2) में कहा गया है कि हरिदास ठाकुर का जन्म बुढन ग्राम में हुआ था, किन्तु कुछ काल बाद वे गंगातट पर स्थित फुलिया में आकर रहने लगे, जो शान्तिपुर के निकट है। मुसलमान मैजिस्ट्रेट (काजी) द्वारा दण्डित होने के वृत्तान्त से (चैतन्य-भागवत, आदि खण्ड, अध्याय 16) पता चलता है कि हरिदास ठाकुर कितने विनम्र एवं उदार थे और किस तरह उन्होंने महाप्रभु की अहैतुकी कृपा प्राप्त की थी। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा अभिनीत नाटकों में हरिदास ठाकुर पुलिस अफसर की भूमिका निभाते थे। जब वे बेनापोल में हरे कृष्ण महामन्त्र का जप कर रहे थे, तब साक्षात् मायादेवी ने उनकी परीक्षा ली थी। हरिदास के तिरोभाव का वर्णन चैतन्य-चरितामृत, अन्त्यलीला के अध्याय 11 में हुआ है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि हरिदास ठाकुर खुलना जिले के बुढन नामक ग्राम में जन्मे थे। पहले यह गाँव सातक्षीरा डिवीजन के अन्तर्गत चौबीस परगना जिले में था।

ताँहार अनन्त गुण–कहि दिंमात्र ।

आचार्य गोसाञि याँरे भुञ्जाय श्राद्ध-पात्र ॥44॥

ताँहार-हरिदास ठाकुर के; अनन्त-अनन्त; गुण-गुण; कहि-मैं कहता हूँ; दिं-मात्र-एक अंश मात्र; आचार्य गोसाञि-श्री अद्वैत आचार्य प्रभु; याँरे–जिनको; भुञ्जाय-खाने को दिया; श्राद्ध-पात्र-भगवान् विष्णु का प्रसाद।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के दिव्य गुणों का कोई अन्त न था। यहाँ मैं उनके गुणों के मात्र एक अंश का ही उल्लेख कर रहा हूँ। वे इतने महान् थे कि अद्वैत गोस्वामी ने जब अपने पिता का श्राद्ध-संस्कार किया, तो उन्हें ही पहली थाली भेंट की।

प्रह्लाद-समान ताँर गुणेर तरङ्ग ।

यवन-ताड़नेओ याँर नाहिक भू-भङ्ग ॥45॥

प्रह्लाद-समान-ठीक प्रह्लाद महाराज की भाँति; ताँर-उनके; गुणेर-गुण; तरङ्ग-तरंगें; यवन-मुस्लिमों के; ताड़नेओ-अत्याचार से भी; याँर-जिनकी; नाहिक-नहीं था; भू-भङ्ग-जरा सी भी भृकुटी उठाना।

अनुवाद

उनके उत्तम गुणों की तरंगें प्रह्लाद महाराज की जैसी थीं। जब मुसलमान शासक ने उन्हें दण्ड दिया, तो उन्होंने अपनी भौंह तक नहीं उठाई।

तेंहो सिद्धि पाइले ताँर देह लञा कोले ।

नाचिल चैतन्य-प्रभु महा-कुतूहले ॥ 46 ॥

तेंहो-उन्होंने; सिद्धि-सिद्धि, पूर्णता; पाइले–पाने के बाद; ताँर–उनका; देह-शरीर; लञा-लेकर; कोले–गोद में; नाचिल-नृत्य किया; चैतन्य-प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; महा-कुतूहले–अत्यन्त आवेश में।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के दिवंगत होने पर स्वयं महाप्रभु उनके शरीर को अपनी गोद में लेकर बड़े ही भावावेश में नाचने लगे थे।

ताँर लीला वर्णियाछेन वृन्दावन-दास।

येबा अवशिष्ट, आगे करिब प्रकाश ॥47॥

ताँर-उनकी; लीला-लीलाएँ; वर्णियाछेन-वर्णन की; वृन्दावन-दास-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर; येबा-जो कुछ भी; अवशिष्ट-वर्णन करना बाकी रहा; आगे-इस पुस्तक में आगे; करिब–मैं करूँगा; प्रकाश-प्रकट।

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने चैतन्य भागवत में हरिदास ठाकुर की लीलाओं का विशद वर्णन किया है। जो कुछ शेष रह गया है, उसे मैं इसी पुस्तक में आगे बतलाने का प्रयास करूँगा।

ताँर उपशाखा—यत कुलीन-ग्रामी जन ॥

सत्यराज-आदि ताँर कृपार भाजन ॥48॥

ताँर उपशाखा-उनकी उपशाखा; यत-सब; कुलीन-ग्रामी जन-कुलीन ग्राम के लोग; सत्यराज-सत्यराज; आदि-आदि; ताँर–उनकी; कृपार कृपा का; भाजन-पात्र।

अनुवाद

श्री हरिदास ठाकुर की एक उपशाखा में कुलीन ग्राम के निवासी थे। इनमें से सत्यराज खान या सत्यराज वसु सर्वाधिक प्रसिद्ध थे, जिन्हें हरिदास ठाकुर की पूरी पूरी कृपा प्राप्त थी।

तात्पर्य

सत्यराज खान गुणराज खान के पुत्र तथा रामानन्द वसु के पिता थे। हरिदास ठाकुर चातुर्मास्य में कुछ समय तक कुलीन ग्राम में रहते थे, जहाँ वे हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करते थे। वहाँ उन्होंने वसु परिवार के वंशजों को अपना कृपापात्र बनाया। सत्यराज खान को रथयात्रा उत्सव के समय जगन्नाथ अर्चाविग्रह के लिए रेशमी रस्से लाने का सेवा-कार्य सौंपा गया था। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु से गृहस्थ भक्तों के धर्म के विषय में जो जिज्ञासाएँ की थीं, उनके उत्तर मध्यलीला खण्ड में अध्याय 15 तथा 16 में सविस्तार दिये हुए हैं। कुलीन ग्राम हावड़ा से बर्दवान जाने वाली नई रेलवे लाइन पर जौग्राम नामक रेलवे स्टेशन से दो मील की दूरी पर स्थित है। महाप्रभु कुलीन ग्राम के निवासियों की बड़ी प्रशंसा करते थे और कहते थे कि कुलीन ग्राम का कुत्ता भी उन्हें अत्यन्त प्रिय है।

श्री-मुरारि गुप्त शाखा–प्रेमेर भाण्डार।

प्रभुर हृदय द्रवे शुनि' दैन्य याँर ॥49॥

श्री-मुरारि गुप्त-श्री मुरारि गुप्त; शाखा-शाखा; प्रेमेर-भगवत्-प्रेम का; भाण्डार-आगार; प्रभुर–महाप्रभु का; हृदय-हृदय; द्रवे-पिघलता है; शुनि'–सुनकर; दैन्य-दैन्य, दीनता; याँर–जिनकी।

अनुवाद

श्री चैतन्य वृक्ष की इक्कीसवीं शाखा, मुरारि गुप्त, भगवत्प्रेम के भंडार थे। उनकी अत्यधिक दीनता तथा विनयशीलता से महाप्रभु का हृदय द्रवित हो उठता था।

तात्पर्य

श्री मुरारि गुप्त ने श्रीचैतन्य-चरित नामक एक पुस्तक लिखी। वे महाप्रभु की पितृभूमि श्रीहट्ट के वैद्य परिवार के थे और बाद में नवद्वीप के निवासी बन गये। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के अग्रजों में से एक थे। महाप्रभु ने अपना वराह-रूप मुरारि गुप्त के ही घर में दिखलाया था (चैतन्य भागवत, मध्य खण्ड, अध्याय 3)। जब महाप्रभु ने अपना महाप्रकाश रूप प्रकट किया, तब वे मुरारि गुप्त के समक्ष भगवान् रामचन्द्र के रूप में प्रकट हुए थे। एक बार जब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु साथ-साथ श्रीवास ठाकुर के घर बैठे थे, तब मुरारि गुप्त ने सर्वप्रथम चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार किया था और श्री नित्यानन्द प्रभु को बाद में। चूँकि नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु से उम्र में बड़े थे, इसलिए महाप्रभु ने टिप्पणी की थी कि मुरारि गुप्त ने सामाजिक शिष्टाचार का उल्लंघन किया है। उन्हें चाहिए था कि वे पहले नित्यानन्द प्रभु को नमस्कार करते, तब उन्हें। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से मुरारि गुप्त को श्री नित्यानन्द प्रभु के पद का पता चला, अतएव अगले दिन उन्होंने श्री नित्यानन्द को ही पहले नमस्कार किया और तब महाप्रभु को। तब महाप्रभु ने मुरारि गुप्त को अपना जूठा पान दिया। एक बार शिवानन्द सेन ने महाप्रभु को ऐसा भोजन भेंट किया, जिसे अधिक घी में पकाया गया था, जिससे महाप्रभु बीमार पड़ गये और वे मुरारि गुप्त के घर अपना

इलाज कराने गये। भगवान् चैतन्य ने मुरारि गुप्त के जलपात्र से थोड़ा जल पिया, जिससे वे स्वस्थ हो गये। कुपच का सहज इलाज थोड़ा-सा जल पीना है और चूँकि मुरारि गुप्त वैद्य थे, अतएव उन्होंने महाप्रभु को पीने के लिए कुछ जल दिया, जिससे वे स्वस्थ हो गये।

जब श्रीवास ठाकुर के घर महाप्रभु चतुर्भुज मूर्ति के रूप में प्रकट हुए, तब मुरारि गुप्त उनका वाहन गरुड़ बने और आवेश में आकर महाप्रभु उनकी पीठ पर चढ़ गये। मुरारी गुप्त की इच्छा थी कि वे महाप्रभु के प्रयाण से पहले अपना शरीर त्यागें, किन्तु महाप्रभु ने उन्हें ऐसा करने से मना कर दिया। इसका वर्णन चैतन्य-भागवत मध्य खण्ड अध्याय 20 में मिलता है। एक दिन जब चैतन्य महाप्रभु भावावेश में वराह मूर्ति के रूप में प्रकट हुए, तो मुरारि गुप्त ने उनकी स्तुति की। वे भगवान् रामचन्द्र के महान् भक्त थे और उनकी एकनिष्ठ भक्ति का वर्णन चैतन्य-चरितामृत, मध्यलीला, अध्याय 15 में श्लोक 137 से 157 में मिलता है।

प्रतिग्रह नाहि करे, ना लय कार धन ।

आत्म-वृत्ति करि' करे कुटुम्ब भरण ॥50॥

प्रतिग्रह नाहि करे-किसी से दान स्वीकार नहीं करते थे; ना-नहीं; लय-लेना; कार–किसी का; धन-धन; आत्म-वृत्ति-अपना रोजगार; करि'–करके; करे-किया; कुटुम्ब-परिवार; भरण-पालन।

अनुवाद

श्रील मुरारि गुप्त ने न तो कभी अपने मित्रों से कोई दान लिया, न ही किसी से कोई धन लिया। वे वैद्य का कार्य करके अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे।

तात्पर्य

यह ध्यान देने की बात है कि किसी गृहस्थ को किसी से भिक्षावृत्ति करके अपनी जीविका नहीं चलानी चाहिए। उच्च जाति के प्रत्येक गृहस्थ को अपना अपना ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य धर्म का निर्वाह करना चाहिए, लेकिन उसे दूसरों की सेवा (नौकरी) नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यह शूद्रों का धर्म है। उसे अपने पेशे से जो कमाई हो, उसे ही स्वीकार करनी चाहिए। ब्राह्मण के कार्य हैं- यजन, याजन, पठन, पाठन, दान तथा प्रतिग्रह। ब्राह्मण को विष्णु का उपासक होना चाहिए और उसे दूसरों को विष्णु-पूजा करने की शिक्षा देनी चाहिए। क्षत्रिय जमींदार बन सकता है और कर संग्रह करके या किरायादारों से किराया संग्रह करके अपनी जीविका चला सकता है। वैश्य कृषि या सामान्य व्यापार का पेशा अपना सकता है। मुरारि गुप्त का जन्म वैद्यवंश में हुआ था, अतएव वे वैद्यवृत्ति करते थे और उससे जो आमदनी होती थी, उसी से अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। जैसाकि श्रीमद्भागवत में कहा गया है, हर एक को अपना धर्म निर्वाह करके पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर को तुष्ट करना चाहिए। यही जीवन की पूर्णता है। यह प्रणाली दैववर्णाश्रम कहलाती है। मुरारि गुप्त आदर्श गृहस्थ थे, क्योंकि वे भगवान् रामचन्द्र तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के महान् भक्त थे। वे वैद्य वृत्ति द्वारा अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे और साथ ही अपनी क्षमता के अनुसार चैतन्य महाप्रभु को प्रसन्न रखने का सर्वोत्तम प्रयास करते थे। यही आदर्श गृहस्थ-जीवन है।

चिकित्सा करेन यारे हइया सदय ।

देह-रोग भाव-रोग,—दुइ तार क्षय ॥51॥

चिकित्सा–चिकित्सा; करेन-की; यारे-जिस पर; हइया-होकर; सदय-दयालु; देह-रोग-शरीर का रोग; भाव-रोग-भौतिक रोग; दुइ-दोनों; तार-उसका; क्षय-कम हुए।

अनुवाद

जब मुरारि गुप्त अपने रोगियों का उपचार करते, तो उनकी कृपा से रोगियों के शारीरिक तथा आध्यात्मिक दोनों तरह के रोग कम हो जाते थे।

तात्पर्य

मुरारि गुप्त शारीरिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के रोगों का उपचार कर सकते थे, क्योंकि पेशे से वे वैद्य थे और आध्यात्मिक प्रगति के मामले में भगवान् के महान् भक्त थे। यह मानवता की सेवा का एक उदाहरण है। हर व्यक्ति को यह जान लेना चाहिए कि मानव-समाज में दो प्रकार के रोग होते हैं। एक भौतिक रोग है, जो शरीर से सम्बन्धित होता है, किन्तु मुख्य रोग तो आध्यात्मिक है। जीव सनातन है, किन्तु जब वह भौतिक शक्ति के सम्पर्क में आता है, तो वह जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि के चक्र में फँस जाता है। आज के वैद्यों को मुरारि गुप्त से शिक्षा लेनी चाहिए। यद्यपि आधुनिक परोपकारी चिकित्सक बड़े-बड़े अस्पताल खोलते हैं, किन्तु आत्मा के भवरोग को ठीक करने के लिए एक भी अस्पताल नहीं है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन ने इस रोग को दूर करने का बीड़ा उठाया है, किन्तु लोग इसकी उतनी सराहना नहीं करते, क्योंकि उन्हें इस रोग का पता ही नहीं है। रोगी व्यक्ति को उचित दवा तथा उचित आहार दोनों की आवश्यकता पड़ती है, अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन भवरोग से पीड़ित लोगों को हरे कृष्ण महामन्त्र रूपी औषधि तथा प्रसाद का आहार प्रदान करता है। शारीरिक रोगों से छुटकारा दिलाने के लिए अनेक अस्पताल तथा चिकित्सा-केन्द्र हैं, किन्तु आत्मा के भवरोग को अच्छा करने के लिए ऐसे कोई अस्पताल नहीं हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के केन्द्र एकमात्र मान्य अस्पताल हैं, जो मनुष्य को जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि से छुटकारा दिला सकते हैं।

श्रीमान्सेन प्रभुर सेवक प्रधान।

चैतन्य-चरण विनु नाहि जाने आन ॥52॥

श्रीमान् सेन–श्रीमान सेन; प्रभुर–महाप्रभु के; सेवक-सेवक; प्रधान-प्रधान; चैतन्य-चरण-चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; विनुविना; नाहि-नहीं; जाने-जानते; आन-और कुछ।

अनुवाद

श्री चैतन्य वृक्ष की बाईसवीं शाखा, श्रीमान सेन, श्री चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक थे। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते थे।

तात्पर्य

श्रीमान सेन नवद्वीप के निवासी थे और चैतन्य महाप्रभु के नित्य पार्षद थे।

श्री-गदाधर दास शाखा सर्वोपरि ।

काजी-गणेर मुखे येह बोलाइल हरि ॥53॥

श्री-गदाधर दास-श्री गदाधर दास; शाखा-अन्य शाखा; सर्व-उपरि–सर्वोपरि; काजी-गणेर-काजियों के; मुखे-मुख में; येह-जिन्होंने; बोलाइल–बुलवाया; हरि-हरि का पावन नाम।

अनुवाद

तेईसवीं शाखा, श्री गदाधर दास, सर्वोपरि समझे जाते थे, क्योंकि उन्होंने सारे मुसलमान काजियों को हरिनाम कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया था।

तात्पर्य

कलकत्ता से लगभग 8 से 10 मील की दूरी पर गंगा नदी के तट पर एंडियादह ग्राम है। श्रील गदाधर दास इसी गाँव के निवासी माने जाते थे (एंडियादहवासी गदाधर दास)। भक्तिरत्नाकर के सातवें अध्याय में बतलाया गया है कि चैतन्य महाप्रभु के तिरोधान के बाद गदाधर दास नवद्वीप से कटवा आ गये। उसके बाद वे एंडियादह में आकर रहने लगे। कहा जाता है कि वे उसी तरह श्रीमती राधारानी के शरीर की छुति थे, जिस तरह श्रील गदाधर पण्डित गोस्वामी स्वयं श्रीमती राधारानी के अवतार थे। कभी-कभी चैतन्य महाप्रभु को राधाभावद्युति सुवलित अर्थात् श्रीमती राधारानी के भावों और उनकी शारीरिक द्युति से युक्त कहा जाता है। गदाधर दास यही द्युति अर्थात् आभा हैं। गौरगणोद्देश-दीपिका (154) में उन्हें श्रीमती राधारानी की अंश-शक्ति कहा गया है। उनकी गणना श्रील गौर हरि तथा नित्यानन्द प्रभु दोनों ही के संगियों में होती है। श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त-रूप में वे माधुर्य रस में भगवान् कृष्ण के पार्षदों में से एक थे, और नित्यानन्द प्रभु के भक्त के रूप में वे शुद्ध भक्ति युक्त भगवान् कृष्ण के सखाओं में से एक माने जाते हैं। यद्यपि वे नित्यानन्द प्रभु के संगी थे, किन्तु वे ग्वालबाल नहीं थे। वे दिव्य माधुर्य रस में स्थित थे। उन्होंने कटवा में श्री गौरसुन्दर के मन्दिर की स्थापना की थी।

1434 शकाब्द (1512 ई.) में, जब महाप्रभु ने श्री नित्यानन्द प्रभु को बंगाल में संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार करने के लिए शक्ति-संचारित कर दिया, तब श्री गदाधर दास नित्यानन्द प्रभु के मुख्य सहायकों में से एक थे। उन्होंने हर एक व्यक्ति से हरे कृष्ण महामन्त्र कीर्तन करने का अनुरोध करके संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार किया। हर एक श्रील गदाधर दास की प्रचार की इस सरल विधि को अपना सकता है, चाहे वह समाज के किसी भी पद पर हो। मनुष्य को केवल नित्यानन्द प्रभु का निष्ठावान् एवं गम्भीर सेवक होना चाहिए और घर-घर में इस सम्प्रदाय का प्रचार करना चाहिए।

जब श्रील गदाधर दास प्रभु हरि कीर्तन आन्दोलन का प्रचार कर रहे थे, तो एक मैजिस्ट्रेट (काजी) उनके इस आन्दोलन के अत्यन्त विरुद्ध था। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए श्रील गदाधर दास एक रात काजी के घर गये और उससे अनुरोध किया कि वह हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन किया करे। काजी ने उत्तर दिया, "ठीक है, मैं कल हरे कृष्ण का कीर्तन करूँगा।" यह सुनकर गदाधर दास प्रभु नाचने लगे और बोले, "कल क्यों ? आपने तो आज से ही हरे कृष्ण मन्त्र का उच्चारण कर लिया है, अतएव इसे चालू रखिये।"

गौरगणोद्देश दीपिका (श्लोक 154, 155) में कहा गया है :

राधाविभूतिरूपा या चन्द्रकान्तः पुरा व्रजे ।

स श्रीगौराङ्गनिकटे दासवंश्यो गदाधरः ॥

पूर्णानन्दा व्रजे यासीद बलदेवप्रियाग्रणी ।

सापि कार्यवशाद् एव प्राविशत्तं गदाधरम् ॥

श्रील गदाधर दास को श्रीमती राधारानी के तेज चन्द्रकान्त और बलराम की प्रिय सखी पूर्णानन्दा का संयुक्त रूप माना जाता है। इस तरह श्रील गदाधर दास प्रभु, चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के संगियों में एक थे।

एक बार जब गदाधर दास नित्यानन्द प्रभु के साथ जगन्नाथ पुरी से बंगाल लौट रहे थे, तो वे आत्म विस्मृत होकर जोर-जोर से इस तरह बोलने लगे, मानों वे व्रजभूमि की दही बेचने वाली कोई युवती हों। इसे श्रील नित्यानन्द प्रभु ने देखा। दूसरी बार जब वे गोपी-भाव में मग्न थे, तो उन्होंने अपने सिर पर गंगाजल से भरा घड़ा उठा लिया, मानो वे दूध बेच रहे हों। जब चैतन्य महाप्रभु

वृन्दावन जाते समय राघव पण्डित के घर आये थे, तो गदाधर दास उनके दर्शन करने गये थे और श्री चैतन्य महाप्रभु इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उनके सिर पर अपना चरण रख दिया था। जब गदाधर प्रभु एंडियादह में थे, तो उन्होंने वहाँ पर पूजन के लिए एक बालगोपाल-मूर्ति स्थापित की। श्री माधव घोष ने श्री नित्यानन्द प्रभु तथा श्री गदाधर दास की सहायता से दान-खण्ड नामक एक नाटक का आयोजन किया था। चैतन्य भागवत (अन्त्य खण्ड अध्याय 5 श्लोक 318-94) में इसका वर्णन है।

श्रील गदाधर दास प्रभु की समाधि एंडियादह ग्राम में है, जो पहले संयोगी वैष्णवों के कब्जे में थी और बाद में काल्ना के सिद्ध भगवान् दास बाबाजी के नियंत्रण में चली गई। उनके आदेश से कलकत्ता के नारिकेलडांगा के मल्लिक परिवार के एक सदस्य श्री मधुसूदन मल्लिक ने वहाँ पर 1256 बंगाब्द (1849 ई.) में एक पाटवाटी (मठ) स्थापित किया। उन्होंने श्री राधाकान्त नामक विग्रह की पूजा की भी व्यवस्था की। उनके पुत्र बलाइचांद मल्लिक ने 1312 बंगाब्द, (1905 ईस्वी) में गौरनिताई के विग्रह स्थापित किये। इस तरह मन्दिर के सिंहासन पर गौर नित्यानन्द विग्रह तथा राधा-कृष्ण विग्रह दोनों हैं। सिंहासन के नीचे एक पत्थर में संस्कृत में लेख खुदा है। इस मन्दिर में गोपेश्वर के रूप में शिवजी की भी छोटी-सी मूर्ति है। प्रवेश द्वार के एक ओर पत्थर पर यह सारा वृत्तान्त लिखा है।

शिवानन्द सेन—प्रभुर भृत्य अन्तरङ्ग ।

प्रभु-स्थाने याइते सबे लयेन याँर सङ्ग ॥54॥

शिवानन्द सेन–शिवानन्द सेन; प्रभुर–महाप्रभु के; भृत्य-सेवक; अन्तरङ्ग–अन्तरंग; प्रभु-स्थाने-जगन्नाथ पुरी में जहाँ महाप्रभु ठहरे हुए थे; याइते-जाते समय; सबे-सब; लयेन–लिया; याँर-जिनका; सङ्ग-आश्रय।

अनुवाद

वृक्ष की चौबीसवीं शाखा, चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त विश्वासपात्र सेवक शिवानन्द सेन थे। जो कोई महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी जाता, वह श्री शिवानन्द सेन के यहाँ आश्रय और मार्गदर्शन पाता।

प्रतिवर्षे प्रभु-गण सङ्गेते लाइया ।

नीलाचले चलेन पथे पालन करिया ॥55॥

प्रति-वर्षे–प्रतिवर्ष; प्रभु-गण-चैतन्य महाप्रभु के भक्त; सङ्क्ते-उनके साथ; लाइया-लेकर; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; चलेन-जाते; पथे रास्ते में; पालन-पालन, देखभाल; करिया-करके।

अनुवाद

वे प्रतिवर्ष भगवान् चैतन्य का दर्शन करने के लिए भक्तों की टोली को बंगाल से जगन्नाथ पुरी ले जाया करते थे। यात्रा पर जाते समय वे सारी टोली का खर्च वहन किया करते थे।

भक्ते कृपा करेन प्रभु ए-तिन स्वरूपे ।

'साक्षात्,' 'आवेश' आर 'आविर्भाव'-रूपे ॥56॥

भक्ते-भक्तों को; कृपा-कृपा; करेन-देते; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; ए-ये; तिन-तीन; स्वरूपे-रूपों में; साक्षात् साक्षात्; आवेश-भगवान् द्वारा शक्ति से आवेशित; आर-और; आविर्भाव-प्राकट्य; रूपे-रूपों में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों पर तीन रूपों में अहैतुकी कृपा प्रदान करते हैं-अपने प्रत्यक्ष प्राकट्य (साक्षात्) द्वारा, किसी शक्ति प्रदत्त व्यक्ति के भीतर अपने पराक्रम (आवेश) द्वारा तथा अपने आविर्भाव द्वारा।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का साक्षात् रूप उनकी निजी उपस्थिति है। आवेश संचारित की गई शक्ति को सूचित करता है, जैसे कि नकुल ब्रह्मचारी में निहित शक्ति। आविर्भाव का अर्थ यह है कि स्वयं उपस्थित न होने पर भी भगवान् का प्रकट होना। उदाहरणार्थ, श्री शचीमाता अपने घर में श्री चैतन्य महाप्रभु को भोग लगाती थीं, यद्यपि वे दूर जगन्नाथ पुरी में रहते थे और जब वे भोजन अर्पण करने के बाद आँखें खोलतीं, तो देखतीं कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने वास्तव में भोजन खा लिया है। इसी प्रकार जब श्रीवास ठाकुर संकीर्तन करते, तब महाप्रभु की अनुपस्थिति में भी सबको उनकी उपस्थिति का अनुभव होता। यह आविर्भाव का दूसरा उदाहरण है।

‘साक्षाते’ सकल भक्त देखे निर्विशेष ।

नकुल ब्रह्मचारि-देहे प्रभुर ‘आवेश’ ॥57॥

साक्षाते-साक्षात्; सकल-सभी; भक्त-भक्त; देखे-देखते हैं; निर्विशेष-कुछ विशेष नहीं किन्तु जैसे वे हैं; नकुल ब्रह्मचारी-नकुल ब्रह्मचारी; देहे-शरीर में प्रभुर-महाप्रभु के; आवेश-शक्ति के आवेश।

अनुवाद

प्रत्येक भक्त की उपस्थिति में श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रकट होना साक्षात् कहलाता है। नकुल ब्रह्मचारी में विशेष शक्ति के लक्षण रूप में उनका प्राकट्य, आवेश का उदाहरण है।

‘प्रद्युम्न ब्रह्मचारी’ ताँर आगे नाम छिल ।

‘नृसिंहानन्द’ नाम प्रभु पाछे त’ राखिल ॥58 ॥

प्रद्युम्न ब्रह्मचारी–प्रद्युम्न ब्रह्मचारी; ताँर–उनका; आगे-पहले; नाम-नाम; छिल-था; नृसिंहानन्द-नृसिंहानन्द; नाम-नाम; प्रभु–महाप्रभु; पाछे-बाद में; त’–निश्चित रूप से; राखिल-इसे रखा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रद्युम्न ब्रह्मचारी का नाम बदलकर नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी रख दिया।

ताँहाते हइल चैतन्येर ‘आविर्भाव’ ।

अलौकिक ऐछे प्रभुर अनेक स्वभाव ॥59॥

ताँहाते-उसमें; हइल–था; चैतन्येर–श्री चैतन्य महाप्रभु का; आविर्भाव-आविर्भाव; अलौकिक-असाधारण; ऐछे-उस तरह; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; अनेक-अनेक; स्वभाव-स्वभाव।

अनुवाद

उसके शरीर में आविर्भाव के लक्षण थे। ऐसा प्राकट्य अलौकिक होता है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने विभिन्न स्वरूपों से ऐसी अनेक लीलाएँ प्रदर्शित कीं।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (73-74) में कहा गया है कि नकुल ब्रह्मचारी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के आवेश को और प्रद्युम्न ब्रह्मचारी ने आविर्भाव को प्रदर्शित किया। वैसे तो चैतन्य महाप्रभु के सैंकड़ों-हजारों भक्त हैं, किन्तु उनमें कोई विशेष लक्षण प्रकट नहीं होता, किन्तु जब श्री चैतन्य महाप्रभु का कोई भक्त विशेष शक्ति के साथ कार्य करता है, तब वह आवेश लक्षण को प्रदर्शित करता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं संकीर्तन आन्दोलन का प्रसार किया और उन्होंने भारतवर्ष के सारे निवासियों को इस सम्प्रदाय को स्वीकार करने की और फिर विश्वभर में इसका प्रचार करने की सलाह दी। जो भक्त ऐसे आदेशों का पालन करते हैं, उनके शरीर में जो लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, वे आवेश कहलाते हैं। श्रील शिवानन्द सेन ने नकुल ब्रह्मचारी के शरीर में आवेश के ऐसे लक्षण देखें, जो चैतन्य महाप्रभु सरीखे थे। चैतन्य-चरितामृत का कथन है कि इस कलियुग में भगवान् के नाम का प्रसार ही एकमात्र आध्यात्मिक कार्य है, किन्तु यह कार्य वही कर सकता है, जिसे भगवान् कृष्ण शक्ति प्रदान करें। जिस विधि से भक्त को ऐसी शक्ति प्राप्त होती है, वह आवेश या कभी-कभी शक्त्यावेश कहलाती है।

प्रद्युम्न ब्रह्मचारी पहले काल्ना के पियरीगंज नामक गाँव के निवासी थे। इसका वर्णन श्रीचैतन्य-चरितामृत (अन्त्यलीला, अध्याय 2) में तथा श्रीचैतन्य भागवत (अन्त्य खण्ड, अध्याय 3 तथा 9) में मिलता है।

आस्वादिल ए सब रस सेन शिवानन्द ।

विस्तारि’ कहिब आगे एसब आनन्द ॥ 60॥

आस्वादिल–चखे; ए-ये; सब-सब; रस-रस; सेन शिवानन्द-शिवानन्द सेन; विस्तारि’–स्पष्ट रूप से वर्णन करके; कहिब-मैं कदूँगा; आगे-बाद में; एसब-यह सब; आनन्द–दिव्य आनन्द।

अनुवाद

श्रील शिवानन्द सेन को साक्षात्, आवेश तथा आविर्भाव तीनों लक्षणों का अनुभव था। इस दिव्य आनन्दपूर्ण विषय का विस्तृत वर्णन मैं बाद में स्पष्ट रूप से करूँगा।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाराज द्वारा श्रील शिवानन्द सेन का वर्णन इस प्रकार किया गया है : "शिवानन्द सेन कुमारहट्ट जिसे हालिसहर भी कहा जाता है, के निवासी थे और भगवान् के महान् भक्त थे। कुमारहट्ट से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर कांचड़ापाड़ा नामक एक अन्य गाँव है, जहाँ पर गौरगोपाल के विग्रह हैं, जिनकी स्थापना शिवानन्द सेन ने की थी। उन्होंने ही कृष्णराय का एक मन्दिर भी स्थापित किया था, जो आज भी विद्यमान है। शिवानन्द सेन, परमानन्द सेन के पिता थे, जो पुरीदास या कवि कर्णपूर के नाम से भी जाने जाते हैं। परमानन्द सेन ने अपनी पुस्तक गौरगणोद्देश-दीपिका (176) में लिखा है कि वृन्दावन की दो गोपियाँ, जिनके पहले के नाम वीरा तथा दूती थे, मिलकर उनका पिता बनीं। श्रील शिवानन्द सेन भगवान् चैतन्य के उन समस्त भक्तों का मार्गदर्शन करते थे, जो बंगाल से जगन्नाथ पुरी जाया करते थे और वे उनकी यात्रा का सारा व्यय स्वयं वहन करते थे। इसका वृत्तान्त चैतन्य-चरितामृत, मध्यलीला (अध्याय 16, श्लोक 19-27) में मिलता है।

श्रील शिवानन्द सेन के तीन पुत्र थे-चैतन्य दास, रामदास तथा परमानन्द। जैसाकि ऊपर बताया गया है, यह अन्तिम पुत्र बाद में कवि कर्णपूर बना और वह गौरगणोद्देश-दीपिका का लेखक है। इनके गुरु श्रीनाथ पण्डित थे, जो शिवानन्द सेन के पुरोहित थे। वासुदेव दत्त के अपव्यय के कारण शिवानन्द सेन को उनके खर्च की निगरानी करने के लिए नियुक्त किया गया। श्री शिवानन्द सेन को

श्री चैतन्य महाप्रभु के साक्षात्, आवेश, तथा आविर्भाव लक्षणों का वास्तविक अनुभव था। एक बार जगन्नाथ पुरी जाते समय वे एक कुत्ते को साथ ले गये और अन्त्यलीला के प्रथम अध्याय में बतलाया गया है कि इस कुत्ते को इनकी संगति के कारण बाद में मोक्ष प्राप्त हुआ। जब श्रील रघुनाथ दास, जो बाद में रघुनाथ दास गोस्वामी बने, अपने पैतृक घर से भागकर चैतन्य महाप्रभु के पास गये, तो उनके पिता ने शिवानन्द सेन को पत्र लिखकर उनके बारे में जानकारी माँगी। जब उन्होंने पूरी जानकारी लिख भेजी, तो रघुनाथ दास के पिता ने शिवानन्द सेन के पास कुछ नौकर तथा धन भेजा, जिससे रघुनाथ दास की देखभाल हो सके। एक बार शिवानन्द सेन ने श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर आमन्त्रित करके उन्हें इतना खिलाया कि उन्हें कुपच हो गया और वे बीमार-जैसे हो गये। जब यह बात शिवानन्द सेन के ज्येष्ठ पुत्र चैतन्य दास को मालूम हुई, तो उन्होंने कुपच की कुछ दवा दी, जिससे चैतन्य प्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। इसका वर्णन अन्त्यलीला (अध्याय 10, श्लोक 142-151) में हुआ है।

एक बार जगन्नाथ पुरी जाते समय सारे भक्तों को एक वृक्ष के नीचे रहना पड़ा, जहाँ पर कोई मकान या कोई छप्पर भी न था, जिससे नित्यानन्द प्रभु बहुत नाराज हो गये। ऐसा लगा कि वे भूख से व्याकुल थे। अतएव उन्होंने शिवानन्द के पुत्रों को मरने का शाप दे दिया। इससे शिवानन्द की पत्नी अत्यन्त शोकाकुल हो उठीं और वे रोने लगीं। वे सोचने लगीं, चूँकि यह शाप नित्यानन्द प्रभु ने दिया है, तो वे सचमुच मर जायेंगे। जब बाद में शिवानन्द लौटे और अपनी पत्नी को रोते देखा तो पूछा, "तुम क्यों रो रही हो? यदि नित्यानन्द प्रभु की इच्छा है, तो हम सभी क्यों न मर जायें।" जब शिवानन्द सेन लौटे तो नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें देखा। उन्होंने उन्हें लात मारते हुए कहा कि, "मैं भूखा हूँ, तुमने भोजन का प्रबन्ध क्यों नहीं किया?" ऐसा व्यवहार है अपने भक्तों के साथ प्रभु का। श्रील

नित्यानन्द प्रभु ने सामान्य भूखे व्यक्ति जैसा व्यवहार किया, मानो वे शिवानन्द सेन के प्रबन्ध पर ही पूरी तरह आश्रित हों।

शिवानन्द सेन का एक भांजा श्रीकान्त था। उसने नित्यानन्द प्रभु के शाप के विरोध में उनका साथ छोड़ दिया और वह सीधे चैतन्य महाप्रभु के पास जगन्नाथ पुरी जा पहुँचा, जहाँ महाप्रभु ने उसे शान्त किया। उस समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुरीदास को अपने पैर का अँगूठा चूसने को दिया, क्योंकि उस समय वे नन्हें शिशु थे। महाप्रभु के आदेश से ही वह तुरन्त संस्कृत छन्दों की रचना करने लगा। शिवानन्द के परिवार के साथ इस गलतफहमी के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने निजी सेवक गोविन्द को आदेश दिया कि उनका सारा शेष (प्रसाद) ले जाकर शिवानन्द को दे। इसका वर्णन अन्त्य लीला (अध्याय 12, श्लोक 53) में हुआ है।

शिवानन्देर उपशाखा, ताँर परिकर ।

पुत्र-भृत्यादि करि' चैतन्य-किङ्कर ॥61॥

शिवानन्देर-शिवानन्द सेन की; उपशाखा-उपशाखा; ताँर उनके; परिकर–साथी; पुत्र-पुत्र; भृत्य-नौकर; आदि-आदि; करि'-इकठे लेकर; चैतन्य-किङ्कर-चैतन्य महाप्रभु के दास।

अनुवाद

शिवानन्द सेन के पुत्र, नौकर तथा परिवार के सदस्य एक उपशाखा हैं। ये सभी श्री चैतन्य महाप्रभु के निष्ठावान सेवक थे।

चैतन्य-दास, रामदास, आर कर्णपूर ।

तिन पुत्र शिवानन्देर प्रभुर भक्त-शूर ॥62॥

चैतन्य-दास-चैतन्य दास; रामदास–राम दास; आर-और; कर्णपूर-कर्णपूर; तिन पुत्र-तीन पुत्र; शिवानन्देर-शिवानन्द सेन के; प्रभुर–महाप्रभु के; भक्त-शूर-शूरवीर भक्त।

अनुवाद

शिवानन्द सेन के तीनों पुत्र-चैतन्य दास, राम दास तथा कर्णपूर-श्री चैतन्य महाप्रभु के शूरवीर भक्त थे।

तात्पर्य

शिवानन्द सेन के ज्येष्ठ पुत्र चैतन्य दास ने कृष्णकर्णामृत पर एक भाष्य लिखा, जिसका अनुवाद बाद में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने किया और अपनी पत्रिका सज्जन-तोषणी में छापा। विद्वानों का मत है कि चैतन्य दास संस्कृत में लिखित ग्रंथ चैतन्य-चरित के लेखक हैं, जो चैतन्य-चरितामृत के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसके लेखक कवि कर्णपूर नहीं थे, जैसाकि सामान्यतया माना जाता है। यही मत श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का है। श्री राम दास शिवानन्द सेन के दूसरे पुत्र थे। गौरगणोद्देश दीपिका (145) में कहा गया है कि भगवान् कृष्ण के दो प्रसिद्ध शुक जिनका नाम कृष्णलीला में दक्ष तथा विचक्षण मिलता है, वे ही कवि कर्णपूर के बड़े भाई चैतन्य दास तथा राम दास बने। तीसरे पुत्र कर्णपूर परमानन्द दास या पुरी दास के नाम से भी जाने जाते थे, जिनकी दीक्षा श्री अद्वैत प्रभु के शिष्य श्रीनाथ पण्डित द्वारा हुई। कर्णपूर ने कई पुस्तकें लिखी हैं, जो वैष्णव साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं-यथा आनन्द-वृन्दावन-चम्पू, अलङ्कार-कौस्तुभ, गौरगणोद्देश-दीपिका तथा महान् काव्य चैतन्य-चन्द्रोदय-नाटक। उनका जन्म शकाब्द 1448 (1526 ई.) में हुआ। वे 1488 से 1498 तक अर्थात् लगातार दस वर्षों तक ग्रंथ लिखते रहे।

श्री-वल्लभसेन, आर सेन श्रीकान्त ।

शिवानन्द-सम्बन्धे प्रभुर भक्त एकान्त ॥ 63 ॥

श्री-वल्लभ-सेन–श्री वल्लभ सेन; आर-और; सेन श्रीकान्त-श्रीकान्त सेन; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; सम्बन्धे-सम्बन्ध में प्रभुर–महाप्रभु के; भक्त-भक्त; एकान्त-एकनिष्ठ।

अनुवाद

श्रीवल्लभ सेन तथा श्रीकान्त सेन भी शिवानन्द सेन की उपशाखाएँ थे, क्योंकि ये न केवल उनके भांजे थे, अपितु श्री चैतन्य महाप्रभु के अनन्य भक्त भी थे।

तात्पर्य

जब पुरी जाते समय नित्यानन्द प्रभु ने शिवानन्द सेन को डाँटा था, तो शिवानन्द के ये दोनों भांजे विरोध में उनका साथ छोड़कर श्री चैतन्य महाप्रभु को मिलने जगन्नाथ पुरी चले गये थे। महाप्रभु इन बालकों के मनोभाव ताड़ गये, अतएव उन्होंने अपने निजी सेवक गोविन्द से कहा कि शिवानन्द की टोली के आने तक उन्हें प्रसाद देते रहना। रथयात्रा संकीर्तन उत्सव के समय ये दोनों भाई मुकुन्द की टोली के सदस्य थे। गौरगणोद्देश-दीपिका (174) में कहा गया है कि कात्यायनी नामक गोपी ही श्रीकान्त सेन के रूप में प्रकट हुई।

प्रभु-प्रिय गोविन्दानन्द महाभागवत ।

प्रभुर कीर्तनीया आदि श्री गोविन्द दत्त ॥ 64॥

प्रभु-प्रिय–महाप्रभु के सर्वाधिक प्रिय; गोविन्दानन्द-गोविन्दानन्द; महा-भागवत-महान् भक्त; प्रभुर-भगवान् के; कीर्तनीया-कीर्तन करने वाले; आदि-मूल रूप से; श्री-गोविन्द दत्त-श्री गोविन्द दत्त।

अनुवाद

वृक्ष की पच्चीसवीं और छब्बीसवीं शाखाएँ, गोविन्दानन्द तथा गोविन्द दत्त, श्री चैतन्य महाप्रभु के संग कीर्तन किया करते थे। गोविन्द दत्त चैतन्य महाप्रभु की टोली के प्रधान गायक थे।

तात्पर्य

गोविन्द दत्त का जन्म खड़दह के निकट सुखचर गाँव में हुआ था।

श्री-विजय-दास-नाम प्रभुर आखरिया ।

प्रभुरे अनेक पुँथि दियाछे लिखिया ॥65॥

श्री-विजय-दास-श्री विजय दास; नाम-नाम; प्रभुर–महाप्रभु का; आखरिया-मुख्य गायक; प्रभुरे–महाप्रभु को; अनेक-अनेक; पुँथि-ग्रन्थ; दियाछे-दिये; लिखिया-लिखकर।

अनुवाद

सत्ताइसवीं शाखा, श्री विजय दास, महाप्रभु के अन्य प्रमुख गायक थे, जिन्होंने महाप्रभु को अनेक हस्तलिखित पुस्तकें भेंट कीं।

तात्पर्य

पहले न तो छापेखाने होते थे, न छपी पुस्तकें थीं। सारी पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं। मूल्यवान पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ मन्दिरों या प्रसिद्ध स्थानों में रखी जाती थीं, और जिस किसी को पुस्तक में रुचि होती, वह हाथ से उसकी प्रति तैयार करता था। विजय दास पेशेवर लिपिक थे, जिन्होंने अनेक पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपियाँ बनाई और उन्हें चैतन्य महाप्रभु को भेंट किया।

‘रत्नबाहु’ बलि’ प्रभु थुइल ताँर नाम ।

अकिञ्चन प्रभुर प्रिय कृष्णदास-नाम ॥66॥

रत्नबाहु-रत्नबाहु उपाधि; बलि’–उसे पुकारकर; प्रभु–महाप्रभु; थुइल-रखा; ताँर–उनका; नाम-नाम; अकिञ्चन-शुद्ध, अकिंचन; प्रभुर–महाप्रभु के; प्रिय–प्रिय; कृष्णदास-कृष्णदास; नाम-नाम।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने विजयदास का नाम रत्नबाहु रख दिया, क्योंकि उन्होंने महाप्रभु के लिए अनेक पाण्डुलिपियों की हस्तलिपियाँ उतारी थीं। अठ्ठाइसवीं शाखा कृष्णदास थे, जो महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे। उनका नाम अकिंचन कृष्णदास था।

तात्पर्य

अकिंचन का अर्थ होता है, जिसके पास इस संसार में कुछ भी नहीं होता।”

खोला-वेचा श्रीधर प्रभुर प्रिय-दास ।

याँहा-सने प्रभु करे नित्य परिहास ॥ 67॥

खोला-वेचा-वह व्यक्ति जो केले के वृक्षों की छाल बेचता है; श्रीधर-श्रीधर प्रभुः प्रभुर–महाप्रभु के; प्रिय-दास–प्रिय सेवक; याँह-सने-जिनके साथ; प्रभु–महाप्रभु; करे-करते; नित्य-प्रतिदिन; परिहास-परिहास।

अनुवाद

उन्तीसवीं शाखा श्रीधर थे, जो केले की छाल के व्यापारी थे। वे महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय सेवक थे। कई बार महाप्रभु ने उनके साथ परिहास किया था।

तात्पर्य

श्रीधर निर्धन ब्राह्मण थे, जो केले की छाल के दोने बेचकर अपनी जीविका चलाते थे। सम्भवतः उनके पास केले का एक बगीचा था, जिससे वे केले के वृक्षों से पत्ते, छिलका तथा गूदा एकत्र करके रोज बाजार में बेच दिया करते थे। वे अपनी आमदनी का 50 प्रतिशत गंगाजी की पूजा करने में और शेष पचास प्रतिशत अपनी जीविका चलाने में खर्च करते थे। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने काजी की आज्ञा का उल्लंघन करके अवज्ञा आन्दोलन चलाया, तो श्रीधर प्रसन्नता से नाचने लगे थे। महाप्रभु इनके जलपात्र से पानी पिया करते थे। श्रीधर ने शचीदेवी को श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने के पूर्व पकाने के लिए कद्दू दिया था। वे प्रतिवर्ष महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी जाया करते थे। कवि कर्णपूर के अनुसार श्रीधर वृन्दावन के एक गोप थे, जिसका नाम कुसुमासव था। गौरगणोद्देश-दीपिका (133) में कहा गया है :

खोलावेचातया ख्यातः पण्डितः श्रीधरो द्विजः ।

आसीद् व्रजे हास्यकरो यो नाम्ना कुसुमासवः ॥

"कृष्ण-लीला में कुसुमासव नामक ग्वालबाल ही बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु की लीला के समय नवद्वीप में खोलावेचा श्रीधर बना।"

प्रभु याँर नित्य लय थोड़-मोचा-फल ।

याँर फुटा-लौहपात्रे प्रभु पिला जल ॥ 68॥

प्रभु–महाप्रभु; याँर-जिनके; नित्य-प्रतिदिन; लय-लेते; थोड़-केले के वृक्ष का गूदा; मोचा–केले के वृक्ष के फूल; फल–केले के वृक्ष के फल; याँर–जिनके; फुटा-टूटे हुए; लौह-पात्रे-लोहे के पात्र में; प्रभु–महाप्रभु; पिला–पी लिया; जल-जल।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु रोज मजाक में श्रीधर से फल, फूल तथा गूदा छीन लिया करते थे और उनके टूटे हुए लोहे के पात्र से जल पीते थे।

प्रभुर अतिप्रिय दास भगवान्पण्डित ।

याँर देहे कृष्ण पूर्वे हैला अधिष्ठित ॥69॥

प्रभुर–महाप्रभु के; अतिप्रिय–अतिप्रिय; दास-दास; भगवान् पण्डित-भगवान् पण्डित; याँर-जिनके; देहे शरीर में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; पूर्वे-पहले; हैला–हुए; अधिष्ठित-स्थापित।

अनुवाद

तीसवीं शाखा भगवान् पण्डित थे। वे महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय सेवक थे, किन्तु पूर्वजन्म में भी वे भगवान् कृष्ण के महान् भक्त थे और भगवान् को सदैव अपने हृदय में रखते थे।

जगदीश पण्डित, आर हिरण्य महाशय ।

यारे कृपा कैल बाल्ये प्रभु दयामय ॥ 70 ॥

जगदीश पण्डित-जगदीश पण्डित; आर-और; हिरण्य-हिरण्य; महाशय-महाशय; यारे-जिनको; कृपा-कृपा; कैल-दिखाई; बाल्ये-बाल्यावस्था में; प्रभु-महाप्रभु; दयामय–दयालु।

अनुवाद

इकतीसवीं शाखा जगदीश पण्डित थे और बत्तीसवीं शाखा हिरण्य महाशय थे, जिन पर महाप्रभु ने अपने बाल्यकाल में अहैतुकी कृपा प्रदर्शित की थी।

तात्पर्य

पूर्व काल में जगदीश पण्डित कृष्णलीला में एक महान् नर्तक थे और चन्द्रहास कहलाते थे। हिरण्य पण्डित के बारे में यह कहा जाता है कि एक रात जब नित्यानन्द प्रभु मूल्यवान रत्नों से सज्जित होकर उनके घर में ठहरे थे, तो एक बड़ा चोर रात-भर इन रत्नों को चुराने का प्रयास करता रहा, किन्तु असफल रहा। बाद में नित्यानन्द प्रभु के पास आकर उसने आत्म-समर्पण कर दिया।

एइ दुइ-घरे प्रभु एकादशी दिने ।

विष्णुर नैवेद्य मागि' खाइल आपने ॥ 71 ॥

एइ दुइ-घरे-इन दो घरों में प्रभु–महाप्रभु; एकादशी दिने-एकादशी के दिन; विष्णुर-भगवान् विष्णु का; नैवेद्य-भोग; मागि'-माँगकर; खाइल-खाया; आपने-स्वयं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने एकादशी के दिन इन दोनों के घरों से भोजन की भिक्षा माँगी और स्वयं इसे खाया।

तात्पर्य

एकादशी के दिन उपवास रखने का विधान विशेष रूप से भक्तों के लिए है, किन्तु भगवान् को भोग लगाने वाले भोजन (नैवेद्य) के सम्बन्ध में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने विष्णु-तत्त्व के रूप में भावावेश में भगवान् विष्णु का नैवेद्य ग्रहण किया।

प्रभुर पड़या दुइ, पुरुषोत्तम, सञ्जय ।

व्याकरणे दुइ शिष्य दुइ महाशय ॥72॥

प्रभुर पड़या दुइ-महाप्रभु के दो शिष्य; पुरुषोत्तम पुरुषोत्तम; सञ्जय-संजय; व्याकरणे-व्याकरण पढ़ने में; दुइ शिष्य-दोनों शिष्य; दुइ महाशय-महाशय।

अनुवाद

तैंतीसवीं तथा चौतीसवीं शाखाएँ पुरुषोत्तम तथा संजय नामक चैतन्य महाप्रभु के दो शिष्य थे, जो व्याकरण में सिद्धहस्त थे। वे महापुरुष थे।

तात्पर्य

ये दोनों विद्यार्थी नवद्वीप के निवासी थे और संकीर्तन आन्दोलन में महाप्रभु के प्रथम पार्षद थे। चैतन्य-भागवत के अनुसार पुरुषोत्तम संजय, मुकुन्द संजय के पुत्र थे। किन्तु श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि पुरुषोत्तम तथा संजय एक नहीं, अपितु अलग-अलग दो व्यक्ति थे।

वनमाली पण्डित शाखा विख्यात जगते ।

सोणार मुषल हल देखिल प्रभुर हाते ॥73॥

वनमाली पण्डित–वनमाली पण्डित; शाखा-अगली शाखा; विख्यात–प्रसिद्ध; जगते–जगत् में; सोणार–सोने से बने हुए; मुषल-गदा; हल–हल; देखिल-देखा; प्रभुर–महाप्रभु के; हाते-हाथ में।

अनुवाद

वृक्ष की पैंतीसवीं शाखा वनमाली पण्डित थे, जो इस जगत् में अत्यन्त विख्यात थे। उन्होंने महाप्रभु के हाथ में सोने की गदा (मूसल) तथा हल देखा।

तात्पर्य

वनमाली पण्डित ने महाप्रभु को बलराम के भावावेश में देखा। इसका विशद वर्णन चैतन्य-भागवत, अन्त्य खण्ड के नवें अध्याय में मिलता है।

श्री-चैतन्येर अति प्रिय बुद्धिमन्त खान्।

आजन्म आज्ञाकारी तेंहो सेवक-प्रधान ॥74॥

श्री-चैतन्येर–श्री चैतन्य महाप्रभु के; अति प्रिय–अति प्रिय; बुद्धिमन्त खान्-बुद्धिमन्त खान; आजन्म-जन्म से ही; आज्ञाकारी-आज्ञाकारी; तेंहो-वे; सेवक-सेवक; प्रधान-प्रधान।

अनुवाद

छत्तीसवीं शाखा बुद्धिमन्त खान थे, जो श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे। वे महाप्रभु की आज्ञा का पालन करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते थे, अतएव वे महाप्रभु के प्रधान सेवक माने जाते थे।

तात्पर्य

श्री बुद्धिमन्त खान नवद्वीप के ही एक निवासी थे। ये अत्यन्त धनी थे और इन्होंने हीचैतन्य महाप्रभु का विवाह विष्णुप्रिया से कराने की व्यवस्था की थी, जो स्थानीय जमींदार के पुरोहित सनातन मिश्र की पुत्री थीं। उन्होंने विवाह का सारा खर्च अपनी ओर से किया था। जब महाप्रभु वायुव्याधि से ग्रस्त हो गये, तब बुद्धिमन्त खान ने उनके इलाज और दवाइयों में हुआ सारा खर्च स्वयं वहन किया था। वे कीर्तन आन्दोलन में महाप्रभु के नित्य पार्षद थे। जब महाप्रभु ने चन्द्रशेखर आचार्य के घर में देवी लक्ष्मी की भूमिका सम्पन्न की थी, तब इन्हीं ने महाप्रभु के लिए सारे गहनों की व्यवस्था की थी। जब महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में रह रहे थे, तब ये उन्हें मिलने भी गये थे।

गरुड़ पण्डित लय श्रीनाम-मङ्गल।

नाम-बले विष याँरे ना करिल बल ॥ 75 ॥

गरुड़ पण्डित–गरुड़ पण्डित; लय-लेते हैं; श्री-नाम-मङ्गल-पवित्र हरे कृष्ण महामन्त्र; नाम-बले–महामन्त्र के जप के बल पर; विष-विष; याँरे–जिनको; ना-नहीं; करिल-प्रभाव किया; बल-बल।

अनुवाद

वृक्ष की सैंतीसवीं शाखा, गरुड़ पण्डित, सदैव भगवान् का नाम-कीर्तन करने में व्यस्त रहते थे। इस कीर्तन के बल पर उन्हें विष का प्रभाव छू तक नहीं पाता था।

तात्पर्य

एक बार गरुड़ पण्डित को एक विषैले सर्प ने डस लिया, किन्तु उनके द्वारा हरे कृष्ण महामन्त्र कीर्तन करने से उन पर साँप के विष का कोई प्रभाव हुआ ही नहीं।

गोपीनाथ सिंह—एक चैतन्येर दास ।

अक्रूर बलि' प्रभु याँरे कैला परिहास ॥76॥

गोपीनाथ सिंह-गोपीनाथ सिंह; एक–एक; चैतन्येर दास-चैतन्य महाप्रभु के दास; अक्रूर बलि'–अक्रूर जैसे प्रसिद्ध; प्रभु–महाप्रभु; याँरे–जिनको; कैल–किया; परिहास-परिहास।

अनुवाद

वृक्ष की अड़तीसवीं शाखा, गोपीनाथ सिंह, श्री चैतन्य महाप्रभु के निष्ठावान दास थे। महाप्रभु मजाक में उन्हें अक्रूर कहकर पुकारते थे।

तात्पर्य

वे सचमुच अक्रूर थे, जैसाकि गौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक 117) में कहा गया है।

भागवती देवानन्द वक्रेश्वर-कृपाते ।

भागवतेर भक्ति-अर्थ पाइल प्रभु हैते ॥77॥

भागवती देवानन्द-श्रीमद्भागवत का पाठ करने वाले देवानन्द; वक्रेश्वर-कृपाते-वक्रेश्वर की दया से; भागवतेर- श्रीमद्भागवतम् का; भक्ति-अर्थ-भक्ति का अर्थ; पाइल-पाया; प्रभु हैते–महाप्रभु से।

अनुवाद

देवानन्द पण्डित श्रीमद्भागवत के पेशेवर वाचक थे, किन्तु वक्रेश्वर पण्डित तथा महाप्रभु की कृपा से वे भागवत की भक्तिमयी व्याख्या समझ पाये।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत (मध्य खण्ड, अध्याय 21) में कहा गया है कि देवानन्द पण्डित उसी गाँव के रहने वाले थे, जिसमें सार्वभौम भट्टाचार्य के पिता विशारद रहते थे। देवानन्द पण्डित श्रीमद्भागवत के पेशेवर वाचक थे, किन्तु चैतन्य महाप्रभु को उनकी यह व्याख्या पसन्द न थी। महाप्रभु ने वर्तमान नवद्वीप नगर में, जो पहले कुलिया कहलाता था, उन पर ऐसी कृपा प्रदर्शित की कि उन्होंने श्रीमद्भागवत की मायावादी व्याख्या छोड़कर भक्ति परक व्याख्या करनी सीख ली। पहले जब देवानन्द मायावादी व्याख्या करते थे, तब एक बार उनकी सभा में श्रीवास ठाकुर उपस्थित थे और जब वे रोने लगे, तो देवानन्द के शिष्यों ने उन्हें बाहर भगा दिया। कुछ दिन बाद श्री चैतन्य महाप्रभु उधर से गुजरे, तो उन्होंने देवानन्द से मिलने पर श्रीमद्भागवत की मायावादी व्याख्या के लिए उसे बुरी तरह फटकारा। उस समय देवानन्द को तनिक भी विश्वास नहीं होता था कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण के अवतार हैं, किन्तु कुछ काल बाद एक रात वक्रेश्वर पण्डित उनके घर मेहमान थे, तो जब उन्होंने कृष्ण-विज्ञान बतलाया, तब देवानन्द चैतन्य महाप्रभु के स्वरूप के विषय में आश्वस्त हो गये। इस तरह श्रीमद्भागवत की व्याख्या वैष्णव-ज्ञान के अनुसार करने के लिए उन्हें प्रेरित किया गया। गौरगणोद्देश-दीपिका (106) में बतलाया गया है कि पूर्वजन्म में वे भागुरी मुनि थे, जो नन्द महाराज के घर में वैदिक साहित्य सुनाने वाले सभा-पण्डित थे।

खण्डवासी मुकुन्द-दास, श्री-रघुनन्दन ।

नरहरि-दास, चिरञ्जीव, सुलोचन ॥ 78 ॥

एइ सब महाशाखा–चैतन्य-कृपाधाम ।

प्रेम-फल-फुल करे याहाँ ताहाँ दान ॥79॥

खण्ड-वासी मुकुन्द-दास-श्रीखण्ड के निवासी मुकुन्द दास; श्री-रघुनन्दन–श्री रघुनन्दन; नरहरि-दास-नरहरि दास; चिरञ्जीव-चिरंजीव; सुलोचन–सुलोचन; एइ सब-वे सब; महा-शाखा-महाशाखाएँ; चैतन्य-कृपा-धाम--कृपाधाम श्री चैतन्य महाप्रभु के; प्रेम-भगवत्प्रेम; फल-फल; फुल-फूल; करे-करते; याहाँ-कहीं भी; ताहाँ-हर जगह; दान-दान, वितरण।

अनुवाद

श्रीखण्डवासी मुकुन्द तथा उनके पुत्र श्री रघुनन्दन उस वृक्ष की उन्तालीसवीं शाखा थे, नरहरि चालीसवीं, चिरंजीव एकतालीसवीं और सुलोचन बयालीसवीं शाखा थे। ये सभी श्री चैतन्य महाप्रभु-रूपी कृपाधाम-वृक्ष की बड़ी-बड़ी शाखाएँ थे। इन्होंने भगवत्प्रेम रूपी फलों, फूलों को सर्वत्र वितरित किया।

तात्पर्य

श्री मुकुन्द दास नारायण दास के पुत्र तथा नरहरि सरकार के बड़े भाई थे। इनके दूसरे भाई का नाम माधव दास था और पुत्र का नाम रघुनन्दन दास था। आज भी रघुनन्दन दास के वंशज कटवा से चार मील पश्चिम में श्रीखण्ड नामक गाँव में रह रहे हैं, जहाँ पहले रघुनन्दन दास रहा करते थे। रघुनन्दन दास का एक पुत्र था, जिसका नाम कानाइ था और जिसके दो पुत्र हुए-पहला मदन राय, जो नरहरि ठाकुर का शिष्य था और दूसरा वंशीवदन। अनुमान है कि इस वंशावली में कम से कम 400 व्यक्ति हुए होंगे। इन सबके नामों का रिकार्ड श्रीखण्ड ग्राम में है। गौरगणोद्देश-दीपिका (175) में बतलाया गया है कि वृन्दादेवी नामक गोपी ही मुकुन्द दास बनी। ये श्रीखण्ड गाँव में रहते थे और श्री चैतन्य महाप्रभु को अति प्रिय थे। उनकी अद्भुत भक्ति तथा कृष्ण- प्रेम का वर्णन चैतन्य-

चरितामृत, मध्यलीला के पन्द्रहवें अध्याय में मिलता है। भक्ति रत्नाकर की आठवीं लहर में बतलाया गया है कि रघुनन्दन श्री चैतन्य महाप्रभु के विग्रह की सेवा किया करते थे।

नरहरि दास सरकार अत्यन्त प्रसिद्ध भक्त थे। चैतन्य-मंगल के सुविख्यात लेखक लोचनदास ठाकुर इन्हीं के शिष्य थे। चैतन्य-मंगल में कहा गया है कि श्री गदाधर दास तथा नरहरि सरकार श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे, किन्तु इसका कोई विशेष उल्लेख नहीं है कि वे श्रीखण्ड गाँव के निवासी थे।

चिरंजीव तथा सुलोचन दोनों ही श्रीखण्ड के निवासी थे, जहाँ उनके वंशज आज भी रह रहे हैं। चिरंजीव के दो पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र कविराज श्रीनिवास आचार्य के शिष्य तथा नरोत्तमदास ठाकुर के घनिष्ठ पार्षद थे। कनिष्ठ पुत्र गोविन्द दास कविराज एक प्रसिद्ध वैष्णव कवि थे। चिरंजीव की पत्नी का नाम सुनन्दा था और दामोदर सेन कविराज उनके ससुर थे। चिरंजीव पहले गंगा नदी के तट पर स्थित कुमारनगर गाँव में रहा करते थे। गौरगणोद्देश दीपिका (207) के अनुसार पूर्वजन्म में वे वृन्दावन की चन्द्रिका थे।

कुलीनग्राम-वासी सत्यराज, रामानन्द ।

यदुनाथ, पुरुषोत्तम, शङ्कर, विद्यानन्द ॥80॥

कुलीन-ग्राम-वासी-कुलीन ग्राम के निवासी; सत्यराज-सत्यराज; रामानन्द-रामानन्द; यदुनाथ-यदुनाथ; पुरुषोत्तम पुरुषोत्तम; शङ्कर–शंकर; विद्यानन्द–विद्यानन्द।

अनुवाद

सत्यराज, रामानन्द, यदुनाथ, पुरुषोत्तम, शंकर, तथा विद्यानन्द ये सभी बीसवीं शाखा से सम्बन्धित थे। वे कुलीन ग्राम के निवासी थे।

वाणीनाथ वसु आदि यत ग्रामी जन।

सबेइ चैतन्य-भृत्य,—चैतन्य-प्राणधन ॥81॥

वाणीनाथ वसु-वाणीनाथ वसु; आदि-आदि; यत-सब; ग्रामी–गाँव के; जन-निवासी; सबेइ-वे सब; चैतन्य-भृत्य-चैतन्य महाप्रभु के सेवक; चैतन्य-प्राण-धन-भगवान् चैतन्य महाप्रभु जो उनके जीवन और प्राण थे।

अनुवाद

वाणीनाथ वसु की अगुवाई में कुलीन ग्राम के सारे निवासी चैतन्य महाप्रभु के सेवक थे और चैतन्य महाप्रभु ही उनके एकमात्र प्राण तथा धन थे।

प्रभु कहे, कुलीनग्रामेर ये हय कुकुर।

सेइ मोर प्रिय, अन्य जन रहु दूर ॥82॥

प्रभु–महाप्रभु; कहे-कहते हैं; कुलीन-ग्रामेर-कुलीन ग्राम के; ये-जो कोई; हय-होता है; कुकुर–एक कुत्ता भी; सेइ-वह; मोर-मेरा; प्रिय–प्रिय; अन्य-अन्य; जन-व्यक्ति; रहु-उन्हें रहने दो; दूर-दूर।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "औरों की बात जाने दें, कुलीन ग्राम का कुत्ता भी मेरा प्रिय मित्र है।"

कुलीनग्रामीर भाग्य कहने ना याय।

शूकर चराय डोम, सेह कृष्ण गाय ॥ 83 ॥

कुलीन-ग्रामीर-कुलीन ग्राम के निवासी; भाग्य-भाग्य; कहने-कहने के लिए; ना–नहीं; याय–सम्भव है; शूकर-सुअर; चराय-चराते समय; डोम-झाड़ू देने वाला; सेह-वे भी; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; गाय-गाते हैं।

अनुवाद

"कुलीन ग्राम के सौभाग्य के विषय में कोई कुछ वर्णन नहीं कर सकता। वह इतना दिव्य है कि झाड़ू देने वाले भी सुअर चराते समय हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते हैं।"

अनुपम-वल्लभ, श्री-रूप, सनातन।

एइ तिन शाखा वृक्षेर पश्चिमे सर्वोत्तम ॥ 84॥

अनुपम-वल्लभ-अनुपम अथवा वल्लभ; श्री-रूप-श्री रूप; सनातन-श्री सनातन; एइये; तिन-तीन; शाखा-शाखाएँ; वृक्षेर-वृक्ष की; पश्चिमे-पश्चिम की ओर; सर्वोत्तम-सर्वोत्तम।

अनुवाद

वृक्ष के पश्चिम की ओर की तैंतालीसवीं, चवालीसवीं तथा पैंतालीसवीं शाखाएँ श्री सनातन, श्री रूप तथा अनुपम थे। ये सबमें श्रेष्ठ थे।

तात्पर्य

श्री अनुपम, जीव गोस्वामी के पिता तथा श्री सनातन गोस्वामी और श्री रूप गोस्वामी के छोटे भाई थे। उनका पहले का नाम वल्लभ था, किन्तु चैतन्य महाप्रभु से भेंट होने के बाद महाप्रभु ने उनका नाम अनुपम रख दिया। ये तीनों भाई मुसलमान सरकार में काम कर रहे थे, अतएव उन्हें मल्लिक की उपाधि दी गई थी। हमारा अपना परिवार कलकत्ता के महात्मा गांधी मार्ग के मल्लिकों से सम्बन्धित है और हम उनके राधा-गोविन्द मन्दिर में प्रायः दर्शन करने जाते थे। उनका सम्बन्ध उसी परिवार से है, जिससे हमारा है। हमारा गोत्र गौतम है, जो गौतम मुनि की गुरु-शिष्य परम्परा से है और हमारा कुलनाम दे है। लेकिन चूँकि उन्होंने मुस्लिम सरकार में जमींदारों का पद ग्रहण कर रखा था, इसलिए वे मल्लिक कहलाये। इसी तरह रूप, सनातन तथा वल्लभ को भी मल्लिक पदवी मिली थी। मल्लिक का अर्थ है, "स्वामी या मालिक" जिस प्रकार अंग्रेजी सरकार धनी एवं सम्मानित व्यक्तियों को 'लार्ड' की उपाधि देती है, उसी तरह मुसलमानों ने मल्लिक की उपाधि उन धनी, सम्मानित परिवारों को दी, जिनका सरकार से घनिष्ठ सम्बन्ध था। यह पदवी न केवल मुसलमानों में पाई जाती है, अपितु हिन्दु कुलीन वर्ग में भी पाई जाती है। यह पदवी किसी एक परिवार तक ही सीमित नहीं है। यह विभिन्न परिवारों तथा जातियों को प्रदान की जाती है। इसे पाने की योग्यताएँ हैं धन तथा मान-सम्मान।

सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी भरद्वाज गोत्र के थे, जिससे ज्ञात होता है कि उनका परिवार भरद्वाज मुनि के वंश अथवा गुरु-शिष्य परम्परा से सम्बन्धित है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्य होने के नाते हम सरस्वती गोस्वामी परिवार अथवा गुरु-शिष्य परम्परा से सम्बन्धित हैं, अतएव हम लोग सारस्वत कहलाते हैं। अतएव गुरु को सारस्वत-देव कहकर नमस्कार किया जाता है (नमस्ते सारस्वते देवे) जिनका उद्देश्य श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करना (गौर

वाणिप्रचारिणे) तथा निर्विशेषवादियों एवं शून्यवादियों से शास्त्रार्थ करना है (निर्विशेष-शून्यवादी पाश्चात्य देश तारिणे)। यह सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी तथा अनुपम गोस्वामी का भी धर्म था।

सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी तथा वल्लभ गोस्वामी का वंशवृक्ष बारहवीं शताब्दी शकाब्द (शक सवंत) से प्रारम्भ होता है, जब कर्णाट प्रान्त के एक अत्यन्त धनवान तथा ऐश्वर्यवान ब्राह्मण परिवार में सर्वज्ञ नामक एक भद्र व्यक्ति उत्पन्न हुए। उनके दो पुत्र हुए-अनिरुद्ध रूपेश्वर तथा हरिहर। इन दोनों को राज्य से वंचित कर दिया गया था, जिससे इन्हें ऊबड़खाबड़ पहाड़ी क्षेत्रों में रहना पड़ा। रूपेश्वर का पुत्र पद्मनाभ हुआ, जो बंगाल के नैहाटी नामक स्थान को चला गया, जो गंगा नदी के किनारे स्थित है। उसके पाँच पुत्र हुए, जिनमें से सबसे छोटे पुत्र मुकुन्द का कुमारदेव नामक एक अत्यन्त शिष्ट पुत्र हुआ। उसी से रूप, सनातन तथा वल्लभ तीनों उत्पन्न हुए। कुमारदेव पूर्वी बंगाल (आज के समय में बाँग्लादेश में) बाक्लाचन्द्रद्वीप की सरहद पर फतेयाबाद में रहते थे। आज का प्रेमबाग गाँव जो बाँग्लादेश के जैस्सोर जिले में रामशर के निकट था, कई लोगों द्वारा कुमारदेव का घर कहा जाता है। उनके कई पुत्र हुए, जिनमें से तीन पुत्र वैष्णव थे। बाद में श्री वल्लभ तथा उनके बड़े भाई रूप एवं सनातन चन्द्रद्वीप से रामकेलि नामक गाँव चले आये, जो बंगाल के मालदा जिले में है। श्रील जीव गोस्वामी का जन्म इसी गाँव में हुआ और वल्लभ उनके पिता थे। तीनों भाई मुस्लिम सरकार में नौकरी करते थे, इसलिए इन्हें मल्लिक की पदवी मिली। जब श्री चैतन्य महाप्रभु रामकेलि गाँव गये, तो वहाँ वे वल्लभ से मिले थे। बाद में श्री रूप गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने के बाद सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया, और जब वे महाप्रभु से मिलने वृन्दावन गये, तब वल्लभ उनके साथ थे। इलाहाबाद में रूप गोस्वामी तथा वल्लभ की श्री चैतन्य महाप्रभु से जो भेंट हुई, उसका वर्णन मध्यलीला के अध्याय उन्नीस में हुआ है।

वास्तव में सनातन गोस्वामी के कथन से पता चलता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार ही श्री रूप गोस्वामी तथा वल्लभ वृन्दावन गये थे। सर्वप्रथम वे मथुरा गये, जहाँ उनकी भेंट सुबुद्धि राय नामक एक भद्र पुरुष से हुई, जो जलाऊ लकड़ी बेचकर जीवन यापन करते थे। वे रूप गोस्वामी तथा अनुपम से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने इन्हें वृन्दावन के बारह वन दिखलाये। इस तरह वे वृन्दावन में एक मास तक रहे और तब पुनः सनातन गोस्वामी को ढूंढने निकले। वे गंगा के प्रवाह मार्ग का अनुसरण करते हुए इलाहाबाद या प्रयाग-तीर्थ पहुँचे, किन्तु सनातन गोस्वामी वहाँ दूसरे रास्ते से आये थे, अतएव वे वहाँ उनसे नहीं मिल सके। जब सनातन गोस्वामी मथुरा पहुँचे, तो उन्हें सुबुद्धि राय ने रूप गोस्वामी तथा अनुपम की मुलाकात की खबर दी। जब रूप गोस्वामी तथा अनुपम बनारस में महाप्रभु से मिले, तो उनके मुख से उन्होंने सनातन गोस्वामी की यात्रा के विषय में सुना। अतएव वे बंगाल लौट गये, उन्होंने वहाँ अपना काम-धाम सँभाला और श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश से वे उनसे भेंट करने जगन्नाथ पुरी गये।

1436 शकाब्द (1514 ई.) में सबसे छोटे भाई अनुपम का निधन हो गया और वे भगवधाम चले गये। वे दिव्य आकाश में उसी धाम को गये, जहाँ श्री रामचन्द्र रहते हैं। श्री रूप गोस्वामी ने इस घटना की जानकारी महाप्रभु को जगन्नाथ पुरी में दी। वल्लभ श्री रामचन्द्र के महान् भक्त थे; अतएव वे श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार राधा-गोविन्द की पूजा नहीं कर पाते थे। फिर भी उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को भगवान् रामचन्द्र का अवतार मान लिया था। भक्तिरत्नाकर में इस कथन का उल्लेख मिलता है कि, "वल्लभ को अनुपम नाम श्री गौरसुन्दर द्वारा दिया गया, किन्तु वे सदैव भगवान् रामचन्द्र की सेवा में मग्न रहते थे। वे श्री रामचन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानते थे, किन्तु वे यह जानते थे कि चैतन्य गोसांई वही भगवान् रामचन्द्र हैं।"

गौरगणोद्देश-दीपिका (180) में श्री रूप गोस्वामी को श्री रूप मञ्जरी नामक गोपी बतलाया गया है। भक्तिरत्नाकर में श्रील रूप गोस्वामी द्वारा लिखित ग्रंथों की सूची दी गई है। उनके समस्त ग्रंथों में निम्नलिखित 16 ग्रंथ वैष्णवों में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। (1) हंसदूत, (2) उद्धवसन्देश, (3) कृष्ण-जन्म-तिथि-विधि, (4-5) राधा-कृष्ण-गणोद्देश दीपिका, बृहत् तथा लघु, (6) स्तवमाला, (7) विदग्ध माधव, (8) ललित माधव, (9) दानकेलि कौमुदी, (10) भक्तिरसामृतसिन्धु, (यह रूप गोस्वामी का सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है), (11) उज्वल नीलमणि, (12) आख्यात चन्द्रिका, (13) मथुरा-महिमा, (14) पद्यावली, (15) नाटक-चन्द्रिका तथा (16) लघु भागवतामृत। श्रील रूप गोस्वामी ने सारे पारिवारिक सम्बन्ध तोड़कर संन्यास ले लिया था और अपने धन का 50% ब्राह्मणों तथा वैष्णवों को तथा 25% अपने कुटुम्बियों को, तथा बाकी 25% को अपनी आकस्मिक आवश्यकताओं के लिए रख छोड़ा। वे जगन्नाथ पुरी में हरिदास ठाकुर से मिले, जहाँ उनकी भेंट श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके अन्य संगियों से भी हुई। श्री चैतन्य महाप्रभु रूप गोस्वामी की (हस्तलिपि) लिखावट की प्रशंसा किया करते थे। वे महाप्रभु की इच्छानुसार पद्य रचना कर सकते थे और उन्होंने उन्हीं के आदेशानुसार ललित-माधव तथा विदग्ध-माधव नामक दो पुस्तकें लिखीं। भगवान् चैतन्य की इच्छा थी कि सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी-ये दोनों भाई वैष्णव धर्म के समर्थन में अनेक पुस्तकें प्रकाशित करें। जब सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले, तो महाप्रभु ने उन्हें वृन्दावन जाने का उपदेश दिया।

गौरगणोद्देश दीपिका (181) में श्री सनातन गोस्वामी का वर्णन हुआ है। पूर्वजन्म में ये रति मंजरी या लवंग मंजरी नाम से जाने जाते थे। भक्ति रत्नाकर में कहा गया है कि इनके गुरु विद्यावाचस्पति कभी-कभी रामकेलि गाँव आकर रुकते थे और सनातन गोस्वामी ने उन्हीं से सारे वैदिक साहित्य का अध्ययन किया था। वे अपने गुरु के इतने आज्ञाकारी थे कि उसका वर्णन ही

नहीं हो सकता। वैदिक पद्धति के अनुसार यदि किसी की भेंट किसी मुसलमान से हो जाए, तो उसे तुरन्त प्रायश्चित्त के लिए कुछ अनुष्ठान करने चाहिएँ। सनातन गोस्वामी तो सदा ही मुसलमान राजाओं के साथ-साथ रहे। वे वैदिक आदेशों की अधिक परवाह न करते हुए मुसलमान बादशाहों के घर मिलने जाते रहते थे और इस तरह अपने आपको मुसलमान में परिवर्तित हुए मान चुके थे। अतएव वे अत्यन्त दीन और नम्र थे। महाप्रभु के समक्ष उपस्थित होते समय उन्होंने कहा, "मैं सदैव निम्न वर्ग के लोगों के साथ रहता हूँ, अतएव मेरा आचरण अत्यन्त गर्हित है।" वास्तव में वे सम्मानित ब्राह्मण परिवार के थे, किन्तु वे अपने आचरण को नीच मानने के कारण कभी ब्राह्मणों के बीच में नहीं जाना चाहते थे, अपितु वे सदैव नीची जाति के लोगों के साथ रहते थे। उन्होंने हरिभक्ति-विलास तथा श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध का वैष्णव-तोषणी नामक भाष्य लिखा। 1476 शकाब्द (1554 ई.) में उन्होंने श्रीमद्भागवत पर बृहद् वैष्णव-तोषणी नामक भाष्य समाप्त किया। 1504 शकाब्द (1582 ई.) में उन्होंने लघु-तोषणी समाप्त किया।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने चार प्रमुख अनुयायियों के माध्यम से अपने सिद्धान्तों की शिक्षा दी। इनमें से रामानन्द राय अद्वितीय हैं, क्योंकि उनके माध्यम से महाप्रभु ने अपने भक्त को कामवासना को पूरी तरह जीतने की शिक्षा दी। कामवासना के कारण मनुष्य ज्योंही किसी सुन्दर स्त्री को देखता है, वह उसकी सुन्दरता के वश में हो जाता है। श्री रामानन्द राय ने काम के गर्व को दूर किया। निस्सन्देह, जगन्नाथ-वल्लभ नाटक का अभ्यास करते समय उन्होंने सुन्दर तरुणियों के नृत्य का निर्देशन किया, किन्तु फिर भी वे कभी उनके युवा सौन्दर्य से प्रभावित नहीं हुए। श्री रामानन्द राय स्वयं ही इन तरुणियों को अपने हाथ से नहलाते और उनका स्पर्श करते, किन्तु तब भी वे शान्त तथा कामवासना-रहित बने रहते, जिस तरह कि उन्नत भक्त को होना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रमाणित किया कि केवल रामानन्द राय के लिए ही ऐसा कर पाना सम्भव था। इसी तरह दामोदर

पण्डित अपनी निरपेक्ष आलोचना के लिए विख्यात थे। अपनी आलोचना में वे महाप्रभु को भी नहीं छोड़ते थे। इनका भी कोई अनुकरण नहीं कर सकता। हरिदास ठाकुर अपनी सहनशीलता के लिए अद्वितीय थे, क्योंकि यद्यपि उन्हें बाइस बाजारों में बेंतों से पीटा गया था, फिर भी वे सहिष्णु बने रहे। इसी प्रकार श्री सनातन गोस्वामी एक सम्माननीय ब्राह्मण कुल के होते हुए भी अपनी दीनता तथा विनयशीलता में अद्वितीय थे।

मध्यलीला के उन्नीसवें अध्याय में सनातन गोस्वामी ने सरकारी नौकरी से मुक्ति पाने के लिए जो युक्ति अपनाई उसका वर्णन मिलता है। उन्होंने नवाब (मुसलमान शासक) के पास बीमारी की सूचना भेजी, किन्तु दरअसल वे ब्राह्मणों के साथ अपने घर पर श्रीमद्भागवत का अध्ययन कर रहे थे। नवाब को एक राजवैद्य से यह सूचना मिल गई, अतएव वह तुरन्त इस रहस्य का पर्दाफाश करने सनातन गोस्वामी के यहाँ गया। नवाब ने सनातन से प्रार्थना की कि वे उसके साथ उड़ीसा यात्रा पर चलें, किन्तु जब गोस्वामी ने मना कर दिया, तो नवाब ने आदेश दिया कि उन्हें तुरन्त जेल में डाल दिया जाए। जब रूप गोस्वामी ने घर छोड़ा, उस समय उन्होंने सनातन गोस्वामी को एक पत्र लिखकर सूचित किया कि वे अपना कुछ धन किसी स्थानीय पंसारी के यहाँ छोड़े जा रहे हैं। सनातन गोस्वामी ने इस धन का उपयोग जेलर को घूस देने और कैद से छूटने में किया। फिर वे महाप्रभु से मिलने के लिए बनारस के लिए चल पड़े और अपने साथ केवल एक नौकर ले गये, जिसका नाम ईशान था। रास्ते में वे एक सराय में रुके और जब सराय के मालिक को पता चला कि ईशान के पास कुछ स्वर्ण मुद्राएँ हैं, तो उसने उन मुद्राओं को लेने के लिए सनातन गोस्वामी तथा ईशान दोनों को मार डालने की योजना बनाई। बाद में सनातन गोस्वामी ने देखा कि सराय का मालिक उन्हें न जानते हुए भी उनकी सुख-सुविधाओं का विशेष ध्यान रख रहा था। अतएव वे इस नतीजे पर पहुँचे कि ईशान चोरी छिपे कुछ धन रखे हुए है, जिसका पता सराय के मालिक को लग चुका है और

इसीलिए उसने उन्हें मारने की योजना बनाई है। पूछे जाने पर जब ईशान ने स्वीकार कर लिया कि उसके पास वास्तव में कुछ धन है, तो सनातन गोस्वामी ने तुरन्त ही उससे वह धन लेकर सराय वाले को दे दिया और उससे प्रार्थना की कि वह उन्हें जंगल के पार जाने में सहायता करे। इस तरह उस क्षेत्र के चोरों के मुखिया, उस सराय वाले की सहायता से वे हाजीपुर पहाड़ को लाँघ पाये, जो आजकल हजारीबाग कहलाता है। तब उनकी भेंट अपने साले श्रीकान्त से हुई, जिसने उन्हें अपने साथ रुकने के लिए कहा। सनातन गोस्वामी ने मना कर दिया, किन्तु विदा होने के पूर्व श्रीकान्त ने उन्हें एक मूल्यवान कम्बल दिया।

सनातन गोस्वामी किसी तरह वाराणसी पहुँचे और वहाँ चन्द्रशेखर के मकान में महाप्रभु से मिले। महाप्रभु की आज्ञा से सनातन गोस्वामी की दाढ़ी और सिर के बाल कटवा दिये गये और उनकी वेशभूषा बदलकर बाबाजी जैसी कर दी गई। उन्होंने तपन मिश्र के पुराने वस्त्र पहने और एक महाराष्ट्री ब्राह्मण के घर प्रसाद ग्रहण किया। फिर महाप्रभु से चर्चाओं के समय महाप्रभु ने उन्हें भक्ति के विषय में सारी बातें बतलाईं। उन्होंने सनातन गोस्वामी को भक्ति विषयक पुस्तकें लिखने, वैष्णव कार्यकलापों से सम्बन्धित एक निर्देशिका लिखने तथा वृन्दावन के प्राचीन विस्मृत तीर्थस्थानों का पुनरुद्धार करने का उपदेश दिया। इन सारे कार्यों को पूरा करने के लिए महाप्रभु ने उन्हें आशीर्वाद दिया और आत्माराम श्लोक की 61 प्रकार से व्याख्या भी की।

सनातन गोस्वामी मुख्य मार्ग से वृन्दावन गये और जब वे मथुरा पहुँचे, तो उनकी भेंट सुबुद्धि राय से हुई। तत्पश्चात् वे झारिखण्ड अर्थात् मध्यप्रदेश के जंगल से होकर जगन्नाथ पुरी लौट आये। वहाँ उन्होंने जगन्नाथ रथ के पहिए के नीचे गिरकर शरीर त्याग देने का निश्चय किया, किन्तु महाप्रभु ने उन्हें बचा लिया। उन्हें हरिदास ठाकुर से मिलने के बाद अनुपम का अवसान होने का पता चला। बाद में सनातन गोस्वामी ने हरिदास ठाकुर की महिमा का वर्णन किया। सनातन गोस्वामी जगन्नाथ

मन्दिर के प्रति शिष्टाचार का पालन करते हुए समुद्र तट से होकर महाप्रभु का दर्शन करने गये, यद्यपि धूप के कारण गर्मी बहुत थी। उन्होंने जगदानन्द पण्डित से प्रार्थना की कि उन्हें वृन्दावन वापस जाने की अनुमति दी जाए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी के चरित्र की प्रशंसा की और उनके शरीर को आध्यात्मिक मानकर उनका आलिंगन किया। महाप्रभु ने आदेश दिया कि सनातन गोस्वामी एक वर्ष तक जगन्नाथ पुरी में रहें। उसके बाद जब वे वृन्दावन लौटे, तो पुनः रूप गोस्वामी से मिले और दोनों भाई श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों को पूरा करने के लिए वृन्दावन में रहे।

वह स्थान जहाँ श्री रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी पहले रहते थे, अब तीर्थस्थल बन गया है। यह गुप्त वृन्दावन के नाम से जाना जाता है और अंग्रेज-बाजार से लगभग 8 मील दक्षिण में स्थित है। आज भी निम्नलिखित स्थानों के दर्शन किये जाते हैं—(1) श्री मदन मोहन-विग्रह का मन्दिर (2) केलिकदम्ब वृक्ष, जिसके नीचे रात में श्री चैतन्य महाप्रभु सनातन गोस्वामी से मिले तथा (3) रूपसागर-एक बड़ा तालाब जिसका पुनरुद्धार रूप गोस्वामी के द्वारा किया गया था। मन्दिर की मरम्मत तथा तालाब के पुनर्निर्माण के लिए 1924 में रामकेलि-संस्कार समिति की स्थापना की गई थी।

ताँर मध्ये रूप-सनातन—बड़ शाखा ।

अनुपम, जीव, राजेन्द्रादि उपशाखा ॥85॥

ताँर-उसमें; मध्ये-के मध्य में; रूप-सनातन-रूप सनातन; बड़ शाखा-बड़ी शाखा; अनुपम-अनुपम; जीव-जीव; राजेन्द्र-आदि-और राजेन्द्र आदि; उपशाखा-उनकी उपशाखाएँ।

अनुवाद

इन शाखाओं में रूप तथा सनातन प्रमुख थे। अनुपम, जीव गोस्वामी तथा राजेन्द्र आदि उनकी उपशाखाएँ थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (195) में कहा गया है कि श्रील जीव गोस्वामी पहले विलास मंजरी गोपी थे। श्रील जीव गोस्वामी को बचपन से ही श्रीमद्भागवत से बहुत लगाव था। बाद में वे संस्कृत का अध्ययन करने के लिए नवद्वीप आये और श्री नित्यानन्द प्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए उन्होंने पूरे नवद्वीप धाम की परिक्रमा की। नवद्वीप धाम दर्शन कर लेने के बाद वे मधुसूदन वाचस्पति से संस्कृत पढ़ने बनारस गये और बनारस में अध्ययन समाप्त करने के बाद वे वृन्दावन गये, जहाँ उन्होंने अपने चाचाओं श्रील रूप तथा सनातन की शरण ग्रहण की। इसका वर्णन भक्ति-रत्नाकर में हुआ है। जहाँ तक हमें पता है, श्रील जीव गोस्वामी ने कम-से-कम 25 पुस्तकें लिखी तथा सम्पादित की हैं। ये सभी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और इनकी सूची इस प्रकार है- (1) हरिनामामृत व्याकरण, (2) सूत्र मालिका, (3) धातुसंग्रह, (4) कृष्णार्चा दीपिका, (5) गोपाल विरुदावली, (6) रसामृत-शेष, (7) श्रीमाधव महोत्सव, (8) श्री संकल्प कल्पवृक्ष, (9) भावार्थ सूचक चम्पू, (10) गोपाल तापनी टीका, (11) ब्रह्म-संहिता की टीका, (12) भक्तिरसामृतसिंधु की टीका, (13) उज्वल नीलमणि की टीका, (14) योगसार स्तव की टीका, (15) अग्निपुराण में वर्णित गायत्री मन्त्र की टीका, (16) पद्मपुराण से लिया गया भगवान् के चरणकमलों का वर्णन, (17) श्रीमती राधारानी के चरणकमलों का वर्णन, (18) गोपाल चम्पू (दो भागों में) तथा (19-25) सात सन्दर्भ–क्रम-, तत्त्व-, भगवत-, परमात्मा-, कृष्ण-, भक्ति- तथा प्रीति-सन्दर्भ । वृन्दावन में श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के तिरोधान के बाद श्रील जीव गोस्वामी बंगाल, उड़ीसा तथा शेष जगत् के सभी वैष्णवों के आचार्य बने और वे ही भक्ति के मामलों में उनका मार्गदर्शन करते रहे। उन्होंने वृन्दावन

में राधा-दामोदर मन्दिर की स्थापना की। हमें सेवानिवृत्ति के पश्चात् यहीं 1962 से 1965 तक रहने का अवसर मिला, तब हमने संयुक्त राज्य अमरीका आने का निश्चय किया। जब श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ चैतन्य-चरितामृत लिखा, तब जीव गोस्वामी जीवित थे। बाद में श्रील जीव गोस्वामी ने श्रीनिवास आचार्य, नरोत्तमदास ठाकुर तथा दु:खी कृष्णदास को बंगाल में कृष्णभावनामृत प्रचार करने के लिए प्रोत्साहित किया। जीव गोस्वामी को बताया गया कि वृन्दावन से जितने हस्तलिखित ग्रंथ एकत्र करके प्रचार-कार्य हेतु बंगाल भेजे गये थे, उन्हें बंगाल में विष्णुपुर के निकट लूट लिया गया, किन्तु बाद में यह सूचना आई कि वे फिर से प्राप्त कर लिए गये हैं। श्री जीव गोस्वामी ने श्रीनिवास आचार्य के शिष्य रामचन्द्र सेन तथा उनके छोटे भाई गोविन्द को कविराज की उपाधि प्रदान की। जब जीव गोस्वामी जीवित थे, तब श्री नित्यानन्द प्रभु की ह्लादिनी शक्ति श्रीमती जाह्नवी देवी कुछ भक्तों के साथ वृन्दावन गईं। जीव गोस्वामी बंगाल के गौड़ीय वैष्णवों के प्रति अत्यधिक कृपालु थे। जो कोई भी वृन्दावन जाता, उसे वे आवास तथा प्रसाद प्रदान करते थे। उनके शिष्य कृष्णदास अधिकारी ने अपनी डायरी में गोस्वामियों की सारी पुस्तकों की सूची बनाई थी।

सहजिया लोग श्रील जीव गोस्वामी पर तीन आरोप लगाते हैं, जो भक्ति के अनुकूल नहीं हैं। पहला आरोप उस भौतिकतावादी ने लगाया जो अपने आपको संस्कृत का पण्डित मानता था और अपनी ख्याति पर गर्व करता था। वह श्री रूप तथा सनातन के पास शास्त्रार्थ करने के बहाने पहुंचा था। श्री रूप तथा सनातन गोस्वामी अपना समय आँवाना नहीं चाहते थे, अतएव उन्होंने लिखित बयान दे दिया कि वे शास्त्रार्थ में उससे हार गये। यह प्रमाण-पत्र लेकर वह पण्डित जीव गोस्वामी के पास इसी तरह का पराजय-पत्र लेने के लिए पहुँचा, किन्तु वे इस तरह का प्रमाण-पत्र देने के लिए राजी नहीं हुए। उल्टे, उन्होंने शास्त्रार्थ किया और उसे पराजित कर दिया। यद्यपि श्रील

जीव गोस्वामी की दृष्टि से यह ठीक ही था कि वे एक बेईमान पण्डित द्वारा श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी की पराजय का विज्ञापन किये जाने को रोकना चाहते थे, किन्तु सहजिया वर्ग वाले अपनी अशिक्षा के कारण इस घटना का उल्लेख यह कहकर करते हैं कि श्रील जीव गोस्वामी अपने दीनता के सिद्धान्त से विचलित हुए। किन्तु वे यह नहीं जानते कि दैन्य भाव उचित होता है, जब किसी के निजी सम्मान को धक्का लगता हो। किन्तु जब भगवान् विष्णु या आचार्यों की निन्दा की जाए तो मनुष्य को दीन न बने रहकर विरोध प्रकट करना चाहिए। उसे श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रस्तुत दृष्टान्त का पालन करना चाहिए। महाप्रभु अपने शिक्षाष्टक (3) में कहते हैं :

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

मनुष्य को अपने आपको मार्ग में पड़े तृण से भी तुच्छ मानकर शान्त भाव से भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए। उसे वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु होना चाहिए, उसे झूठी प्रतिष्ठा के समस्त भावों से रहित होना चाहिए और दूसरों को सभी प्रकार का सम्मान देने के लिए तत्पर रहना चाहिए। ऐसी मनः स्थिति में मनुष्य भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन निरन्तर कर सकता है।" इतने पर भी जब महाप्रभु ने सुना कि जगाइ तथा माधाइ ने नित्यानन्द प्रभु को चोट पहुँचाई है, तो वे तुरन्त ही उस स्थान पर अग्नि की तरह क्रुद्ध होकर गये और उन्होंने उन्हें मार डालना चाहा। इस तरह महाप्रभु ने अपने ही आचरण से दृष्टान्त प्रस्तुत करके अपने श्लोक की व्याख्या की है। मनुष्य को चाहिए कि अपने अपमान को तो सहे, किन्तु जब गुरुजनों की, यथा अन्य वैष्णवों की, निन्दा की जाए तो उस समय दीन या विनीत बने रहना उचित नहीं है; उसे ऐसी निन्दा का प्रतिकार करने के लिए उचित कदम उठाने चाहिए। यह गुरु तथा वैष्णवों के सेवक का कर्तव्य है। जो गुरु तथा वैष्णव के नित्य दासत्व के सिद्धान्त को समझता है, वह श्रील जीव गोस्वामी द्वारा अपने गुरुओं-

श्रील रूप तथा श्रील सनातन गोस्वामी-पर तथाकथित पण्डित की विजय के सम्बन्ध में किये गये कार्य को सराहेगा।

श्रील जीव गोस्वामी को बदनाम करने के लिए जो दूसरी कथा गढ़ी गई, वह यह है कि जब श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्रीचैतन्य-चरितामृत लिखकर श्रील जीव गोस्वामी को हस्तलिखित रूप में दिखलाया, तो उन्होंने यह सोचकर उसे कुएँ में फेंक दिया कि इससे उनके पांडित्य को धक्का लगेगा। इससे श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी को गहरा आघात लगा और उनकी तुरन्त मृत्यु हो गई। सौभाग्यवश मुकुन्द नामक एक व्यक्ति के पास श्रीचैतन्य- चरितामृत की एक हस्तलिखित प्रति पड़ी थी, जिससे उसे बाद में प्रकाशित किया जा सका। यह कहानी भी गुरु तथा वैष्णव की निन्दा का एक अन्य जघन्य उदाहरण है। ऐसी कहानी को कभी-भी प्रामाणिक नहीं मानना चाहिए।

एक अन्य आरोप यह है कि श्रील जीव गोस्वामी व्रजधाम के पारकीय रस के सिद्धान्तों से सहमत नहीं थे, अतएव उन्होंने स्वकीय रस का समर्थन किया, जिसमें राधा तथा कृष्ण को शाश्वत विवाहित दिखाया जाता है। वास्तव में, जब जीव गोस्वामी जीवित थे, तब उनके कुछ अनुयायियों को गोपियों का परकीय रस पसन्द नहीं आया। इसीलिए उनके आध्यात्मिक लाभ के लिए श्रील जीव गोस्वामी ने स्वकीय रस का समर्थन किया, क्योंकि वे जानते थे कि अन्यथा सहजिया लोग परकीय रस का दुरुपयोग कर सकते हैं, जैसाकि इस समय वे कर रहे हैं। दुर्भाग्यवश वृन्दावन तथा नवद्वीप में सहजियों के बीच यह फैशन बन चुका है कि परकीय रस में तथाकथित भक्ति सम्पन्न करने के लिए वे अविवाहित सम्भोग-संगी की तलाश करते हैं। दूरदृष्टि होने के कारण श्रील जीव गोस्वामी ने स्वकीय रस का समर्थन किया और बाद में सारे वैष्णव आचार्यों ने इसको मान्यता दे दी। श्रील जीव गोस्वामी दिव्य परकीय रस के विरुद्ध कभी-भी नहीं थे, न ही किसी अन्य वैष्णव ने

असहमति व्यक्त की है। श्रील जीव गोस्वामी ने अपने पूर्ववर्ती गुरुओं और वैष्णवों-श्री रूप और सनातन गोस्वामियों का दृढ़तापूर्वक अनुसरण किया और श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने उन्हें अपने शिक्षा-गुरु के रूप में स्वीकार किया।

मालीर इच्छाय शाखा बहुत बाड़िल ।

बाड़िया पश्चिम देश सब आच्छादिल ॥86॥

मालीर इच्छाय-माली की इच्छा से; शाखा-शाखाएँ; बहुत-बहुत; बाड़िल-फैल गईं; बाड़िया-इस प्रकार फैलकर; पश्चिम–पश्चिमी; देश-देश; सब-सब; आच्छादिल-ढ़क गये।

अनुवाद

महान् माली की इच्छा से, श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी की शाखाएँ कई गुना बढ़कर समूचे पश्चिमी देशों में फैल गईं और उन्होंने सारे प्रदेश को आच्छादित कर दिया।

आ-सिन्धुनदी-तीर आर हिमालय ।

वृन्दावन-मथुरादि यत तीर्थ हय ॥87॥

आ-सिन्धु-नदी–सिन्धु नदी की सीमा तक; तीर-सीमा; आर-और; हिमालय-हिमालय पर्वत; वृन्दावन-वृन्दावन; मथुरा-मथुरा; आदि-आदि; यत-सब; तीर्थ-तीर्थ स्थान; हय-वहाँ हैं।

अनुवाद

ये दो शाखाएँ सिन्धु नदी तथा हिमालय पर्वत की घाटियों की सीमाओं तक बढ़कर सारे भारत में फैल गई, जिसमें वृन्दावन, मथुरा तथा हरिद्वार जैसे सारे तीर्थस्थल सम्मिलित हैं।

दुई शाखार प्रेम-फले सकल भासिल ।

प्रेम-फलास्वादे लोक उन्मत्त हइल ॥88॥

दुइ शाखार-दो शाखाओं के; प्रेम-फले--भगवान् के प्रेम के फल रूप से; सकल-सभी; भासिल-आप्लावित हो गये; प्रेम-फल-भगवत्प्रेम का फल; आस्वादे-चखने से; लोक-सभी लोग; उन्मत्त-उन्मत्त; हइल हो गये।

अनुवाद

इन दोनों शाखाओं में जो भगवत्प्रेम रूपी फल लगे, वे बड़ी संख्या में वितरित किये गये। इन फलों को चखकर हर व्यक्ति उनके लिए उन्मत्त हो उठा।

पश्चिमेर लोक सब मूढ़ अनाचार ।

ताहाँ प्रचारिल दोंहे भक्ति-सदाचार ॥89॥

पश्चिमेर-पश्चिम की ओर; लोक-सामान्य लोग; सब-सब; मूढ़-अल्प बुद्धिवाले; अनाचार-जो अच्छे आचरण (व्यवहार) वाले नहीं हैं; ताहाँ-वहाँ; प्रचारिल-प्रचार किया; दोंहे-श्रील रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी; भक्ति-भक्ति; सद्-आचार-सदाचार।

अनुवाद

भारत की पश्चिमी भाग के लोग न तो बुद्धिमान थे न शिष्ट, किन्तु श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के प्रभाव से वे भक्ति तथा सदाचार में प्रशिक्षित हो सके।

तात्पर्य

ऐसा नहीं है कि पश्चिम भारत में ही लोग मुसलमानों की संगति से कलुषित थे, अपितु यह तथ्य है कि ज्यों-ज्यों हम पश्चिम की ओर बढ़ते हैं, त्यों-त्यों लोग वैदिक संस्कृति से पतित मिलते हैं। 5000 वर्ष पूर्व तक जब यह सम्पूर्ण ग्रह, महाराज परीक्षित के अधीन था, तब सर्वत्र वैदिक संस्कृति प्रचलित थी। किन्तु धीरे-धीरे लोग अवैदिक संस्कृति से प्रभावित होते गये और उन्हें इसका ज्ञान ही न रहा कि भक्ति के सम्बन्ध में किस तरह आचरण किया जाता है। श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी ने बड़ी कृपा करके पश्चिमी भारत में भक्ति-सम्प्रदाय का प्रचार किया और उन्हीं के चरणचिह्नों पर चलते हुए चैतन्य-सम्प्रदाय के प्रचारक पाश्चात्य जगत् में संकीर्तन आन्दोलन का प्रसार कर रहे हैं और वैष्णव-सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं। इस तरह वे पहले से म्लेच्छों तथा यवनों की संस्कृति के अभ्यस्त लोगों को सुधार रहे हैं और शुद्ध कर रहे हैं। पाश्चात्य देशों में हमारे सारे भक्त अवैध सम्बन्ध, नशाखोरी, मांसाहार तथा जुआ खेलने की अपनी पुरानी आदतें छोड़ देते हैं। 500 वर्ष पूर्व–कम से कम पूर्वी भारत में-ये कुरीतियाँ अज्ञात थीं, किन्तु दुर्भाग्यवश इस समय सारा भारत इन अवैदिक सिद्धान्तों का शिकार बना हुआ है, जिसमें कभी-कभी सरकारी समर्थन भी मिलता रहता है।

शास्त्र-दृष्ट्ये कैल लुप्त-तीर्थेर उद्धार ।

वृन्दावने कैल श्रीमूर्ति-सेवार प्रचार ॥90॥

शास्त्र-दृष्ट्ये प्रामाणिक शास्त्र के आदेश के अनुसार; कैल-किया; लुप्त-लुप्त; तीर्थेर-तीर्थस्थान; उद्धार-खुदाई; वृन्दावने-वृन्दावन में; कैल-किया; श्री-मूर्ति-अर्चाविग्रह; सेवार–पूजा का प्रचार-प्रचार।

अनुवाद

प्रामाणिक शास्त्रों के निर्देशों के अनुसार दोनों गोस्वामियों ने लुप्त तीर्थस्थलों का पुनरुद्धार किया और वृन्दावन में अर्चाविग्रहों की पूजा का सूत्रपात किया।

तात्पर्य

आज जहाँ हम श्री राधाकुण्ड देखते हैं, वहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु के समय एक खेत था। वहाँ एक छोटी-सी तलैया थी, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्नान किया और यह इंगित किया कि पहले इस स्थान पर राधाकुण्ड था। उनके निर्देशानुसार श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी ने राधाकुण्ड का जीर्णोद्धार कराया। यह इस बात के ज्वलन्त उदाहरणों में से एक है कि किस तरह गोस्वामियों ने लुप्त तीर्थस्थलों की खुदाई कराई। इसी तरह गोस्वामियों के ही प्रयासों से वृन्दावन के सारे महत्त्वपूर्ण मन्दिरों की स्थापना की गई। पहले वृन्दावन में सात महत्त्वपूर्ण गौड़ीय वैष्णव मन्दिर थे, जिनके नाम हैं-मदनमोहन मन्दिर, गोविन्द मन्दिर, गोपीनाथ मन्दिर, श्री राधारमण मन्दिर, राधा-श्यामसुन्दर मन्दिर, राधा-दामोदर मन्दिर तथा गोकुलानन्द मन्दिर।

महाप्रभुर प्रिय भृत्य रघुनाथ-दास ।

सर्व त्यजि' कैल प्रभुर पद-तले वास ॥91॥

महाप्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; प्रिय–प्रिय; भृत्य-सेवक; रघुनाथ-दास-रघुनाथ गोस्वामी; सर्व त्यजिसब कुछ त्याग करके; कैल-किया; प्रभुर–महाप्रभु के पद-तले-चरणकमलों के आश्रय के अधीन; वास–निवास।

अनुवाद

छियालिसवीं शाखा श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी थे, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय सेवक थे। उन्होंने महाप्रभु के पूर्ण शरणागत होने और उनके चरणों में निवास करने के लिए अपनी सारी भौतिक संपत्ति का परित्याग कर दिया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं : "श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी सम्भवतः 1416 शकाब्द (1494 ई.) में एक कायस्थ परिवार में जन्मे थे। वे तत्कालीन जमींदार हिरण्य मजुमदार के छोटे भाई गोवर्धन मजुमदार के पुत्र थे। जिस गाँव में उनका जन्म हुआ था, वह श्रीकृष्णपुर के नाम से प्रसिद्ध है। कलकत्ता तथा बर्दवान के बीच रेलवे लाइन पर त्रिशाबघा स्टेशन है, जो आजकल आदि-सप्तग्राम के नाम से प्रसिद्ध है और जहाँ से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर श्रीकृष्णपुर गाँव है। वहीं पर श्री रघुनाथ दास गोस्वामी का पैतृक घर स्थित था। वहाँ पर अब भी श्री श्रीराधा-गोविन्द का मन्दिर है। मन्दिर के सामने विशाल प्रांगण है, किन्तु कोई बड़ा सभाभवन नहीं है, जहाँ भक्तगण एकत्र हो सकें। किन्तु हाल ही में श्री हरिचरण घोष नामक कलकत्ता के एक संभ्रान्त धनाढ्य, जो शिमला क्वार्टर में रहते थे, उसने इस मन्दिर की मरम्मत करा दी है। मन्दिर का पूरा प्रांगण चार-दीवारी से घिरा है और मन्दिर के बगल में एक छोटे-से कमरे में एक चबूतरा है, जिसमें रघुनाथ दास गोस्वामी अर्चाविग्रह की पूजा किया करते थे। मन्दिर के निकट लुप्तप्राय सरस्वती नदी है।"

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के सारे पूर्वज वैष्णव थे और बहुत धनी भी थे। घर पर उनके गुरु यदुनन्दन आचार्य थे। यद्यपि रघुनाथ दास गृहस्थ थे, किन्तु उनमें अपनी जायदाद तथा पत्नी के प्रति तनिक भी लगाव न था। उनमें गृहत्याग की इस प्रवृत्ति को देखकर उनके पिता तथा चाचा ने विशेष अंगरक्षक नियुक्त कर रखे थे, जो उन पर निगरानी रख सकें, तो भी वे भाग निकले और श्री

चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने जगन्नाथ पुरी जा पहुँचे। यह घटना 1439 शकाब्द (1517 ई.) की है। रघुनाथ दास गोस्वामी ने तीन पुस्तकें लिखीं-स्तवमाला (या स्तवावली), दानचरित तथा मुक्ताचरित। वे दीर्घकाल तक जीवित रहे। वे अधिकांश समय राधाकुण्ड में रहे। आज भी राधाकुण्ड के पास वह स्थान है, जहाँ वे भक्ति करते थे। उन्होंने भोजन करना लगभग पूरी तरह छोड़ रखा था, इसलिए वे अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। उनकी एकमात्र चिन्ता भगवान् के पवित्र नाम के जप करने की थी। धीरे-धीरे उन्होंने सोना कम कर दिया और अन्त में तो वे लगभग सोते ही नहीं थे। कहा जाता है कि उनकी आँखे सदैव अश्रुपूरित रहती थीं। जब श्रीनिवास आचार्य उनसे मिलने गये, तो उन्होंने उनका आलिंगन करके आशीर्वाद दिया। श्रीनिवास आचार्य ने आशीर्वाद माँगा कि वे बंगाल में प्रचार-कार्य कर सके, जिसे श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी ने स्वीकार कर लिया। गौरगणोद्देश-दीपिका (186) में कहा गया है कि पहले श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी रसमंजरी नामक गोपी थे। कभी-कभी यह कहा जाता है कि वे रतिमंजरी थे।

प्रभु समर्पिल ताँरे स्वरूपेर हाते ।

प्रभुर गुप्त-सेवा कैल स्वरूपेर साथे ॥92॥

प्रभु-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; समर्पिल-समर्पित किया; ताँरे–उनको; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर; हाते-हाथ में; प्रभुर–महाप्रभु की; गुप्त-सेवा-गुप्त सेवा; कैल-की; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर के साथ-साथ।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास गोस्वामी जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु के पास पहुँचे, तो महाप्रभु ने उन्हें अपने सचिव स्वरूप दामोदर के हाथों सौंप दिया। इस तरह वे दोनों मिलकर महाप्रभु की गुह्य सेवा करने लगे।

तात्पर्य

यह गुह्य सेवा महाप्रभु की निजी देखरेख थी। स्वरूप दामोदर उनके सचिव के रूप में उनके नहाने, खाने, आराम करने तथा मालिश का काम सम्भालते थे और रघुनाथ दास गोस्वामी उनकी सहायता करते थे। वस्तुतः रघुनाथ दास गोस्वामी महाप्रभु के सहायक-सचिव का कार्य करते थे।

षोड़श वत्सर कैल अन्तरङ्ग-सेवन ।

स्वरूपेर अन्तर्धाने आइला वृन्दावन ॥93॥

षोड़श-सोलह; वत्सर-वर्ष; कैल-की; अन्तरङ्ग–गुप्त; सेवन–सेवा; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर के; अन्तर्धाने-अन्तर्धान; आइला-आये; वृन्दावन-वृन्दावन को।

अनुवाद

उन्होंने जगन्नाथ पुरी में रहकर सोलह वर्षों तक महाप्रभु की गुह्य सेवा की और महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर दोनों के तिरोधान के बाद वे जगन्नाथ पुरी छोड़कर वृन्दावन चले गये।

वृन्दावने दुइ भाइर चरण देखियो ।

गोवर्धने त्यजिब देह भृगुपात करिया ॥94॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; दुइ भाइर–दोनों भाई (रूप और सनातन) के; चरण-चरण; देखिया-देखकर; गोवर्धने-गोवर्धन पर्वत पर; त्यजिब–छोड़ देंगे; देह-यह शरीर; भृगुपात-कूदकर; करिया-करके।

अनुवाद

श्री रघुनाथ दास गोस्वामी की इच्छा हुई कि वे वृन्दावन जाकर रूप तथा सनातन के चरणकमलों का दर्शन करें और फिर गोवर्धन पर्वत से कूदकर अपना प्राण त्याग दें।

तात्पर्य

गोवर्धन पर्वत की चोटी से कूदना आत्मोत्सर्ग की एक विधि है। विशेषतया सन्त पुरुष ऐसा करते हैं। चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के अन्तर्धान होने के बाद श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी को इन दोनों महापुरुषों का वियोग सताने लगा, अतएव उन्होंने वृन्दावन के गोवर्धन पर्वत से कूदकर आत्मोत्सर्ग करने का निश्चय किया। तथापि ऐसा करने के पूर्व वे श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के चरणकमलों का दर्शन कर लेना चाहते थे।

एइ त निश्चय करि' आइल वृन्दावने ।

आसि' रूप-सनातनेर वन्दिल चरणे ॥ 95॥

एइ त'–इस प्रकार; निश्चय करि'–निश्चय करके; आइल-आये; वृन्दावने-वृन्दावन को; आसि'-वहाँ आकर; रूप-सनातनेर-श्रील रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी को; वन्दिल-प्रणाम किया; चरणे-चरणकमलों पर।

अनुवाद

इस प्रकार श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी वृन्दावन आये और श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से मिले तथा उन्हें प्रणाम किया।

तबे दुइ भाइ ताँरे मरिते ना दिल ।

निज तृतीय भाइ करि' निकटे राखिल ॥ 96 ॥

तबे-उस समय; दुई भाइ-दोनों भाई (श्रील रूप और सनातन); ताँरे–उनको; मरिते-मरने; ना दिल-नहीं आज्ञा दी; निज-अपना; तृतीय-तीसरा; भाइ–भाई; करि'–स्वीकार करके; निकटे–निकट; राखिल-रख लिया।

अनुवाद

किन्तु इन दोनों भाइयों ने उन्हें मरने की अनुमति नहीं दी। इन्होंने उन्हें अपने तीसरे भाई के रूप में स्वीकार करके अपने साथ रख लिया।

महाप्रभुर लीला यत बाहिर-अन्तर ।

दुइ भाइ ताँर मुखे शुने निरन्तर ॥ 97॥

महाप्रभुर–चैतन्य महाप्रभु की; लीला-लीलाएँ; यत–सब; बाहिर-बाहरी; अन्तर–अन्दर की; दुइ भाइ–दोनों भाई; ताँर-उसका; मुखे-मुख में; शुने-सुनते; निरन्तर–सदा।

अनुवाद

चूँकि रघुनाथ दास गोस्वामी स्वरूप दामोदर के सहायक थे, अतएव वे महाप्रभु की लीलाओं के बाहरी तथा भीतरी तथ्यों से बहुत कुछ परिचित थे। इस तरह रूप तथा सनातन दोनों भाई उनसे इनके विषय में सुना करते थे।

अन्न-जल त्याग कैल अन्य-कथन ।

पल दुइ-तिन माठा करेन भक्षण ॥98॥

अन्न-जल-अन्न और जल; त्याग-त्याग; कैल-किया; अन्य-कथन-दूसरी वस्तुओं की बात; पल दुइ-तिन-कुछ बूंदें; माठा-मट्ठा; करेन-करते; भक्षण-ग्रहण।

अनुवाद

रघुनाथ दास गोस्वामी ने धीरे-धीरे अन्न खाना त्याग दिया और वे मड़े की कुछ बूंदे पीने लगे।

सहस्र दण्डवत्करे, लय लक्ष नाम ।

दुइ सहस्र वैष्णवेरे नित्य परणाम ॥99॥

सहस्र-सहस्र; दण्डवत्-दण्डवत् प्रणाम; करे-करते; लय-लेते; लक्ष–एक लाख; नाम-पावन नाम; दुइ-दो; सहस्र-हजार; वैष्णवेरे-भक्तों को; नित्य-प्रतिदिन परणाम-प्रणाम।

अनुवाद

वे नित्यप्रति भगवान् को हजार बार नमस्कार करते, भगवान् के एक लाख नाम जपते और दो हजार वैष्णवों को प्रणाम करते।

रात्रि-दिने राधा-कृष्णेर मानस सेवन।

प्रहरेक महाप्रभुर चरित्र-कथन ॥100॥

रात्रि-दिने–दिन रात; राधा-कृष्णेर-राधा और कृष्ण की; मानस-मानसिक; सेवन–सेवा; प्रहरेक-लगभग तीन घण्टे; महाप्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; चरित्र-चरित्र; कथन-चर्चा करना।

अनुवाद

वे अपने मन में दिन-रात राधा-कृष्ण की सेवा करते और तीन घण्टे प्रतिदिन श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र के विषय में चर्चा करते।

तात्पर्य

हमें श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के चरणचिह्नों का अनुसरण करके उनसे भजन अर्थात् भगवान् की पूजा के विषय में अनेक बातें सीखनी चाहिए। सारे गोस्वामी ऐसे दिव्य कार्यकलापों में लगे रहते थे, जैसाकि श्रीनिवास आचार्य ने गोस्वामियों के विषय में लिखी गई अपनी कविता में कहा है। (कृष्णोत्कीर्तनगाननर्तनपरौ प्रेमामृताम्भोनिधी)। श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी, श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के चरणचिह्नों पर चलकर मनुष्य को दृढ़तापूर्वक भक्ति करनी चाहिए, विशेषकर भगवान् के पवित्र नाम का जप-कीर्तन करके।

तिन सन्ध्या राधा-कुण्डे अपतित स्नान।

व्रज-वासी वैष्णवे करे आलिङ्गन मान॥ 101॥

तिन सन्ध्या-तीन बार, अर्थात् प्रातः, सायंकाल और दोपहर; राधा-कुण्डे-राधाकुण्ड सरोवर पर; अपतित-बिना अवरोध लगातार; स्नान-स्नान; व्रज-वासी-व्रजभूमि के निवासी; वैष्णवे-सभी भक्त; करे-करते; आलिङ्गन-आलिंगन; मान-और सम्मान देकर।

अनुवाद

श्री रघुनाथ दास गोस्वामी नित्य राधाकुण्ड में तीन बार स्नान करते थे। ज्योंही उन्हें वृन्दावन में रहने वाला कोई वैष्णव मिलता, वे उसका आलिंगन करते और उसका आदर करते थे।

सार्ध सप्त-प्रहर करे भक्तिर साधने ।

चारि दण्ड निद्रा, सेह नहे कोन-दिने ॥102॥

सार्थ-डेढ़ घण्टा; सप्त-प्रहर–सात प्रहर (22 घण्टे); करे-करते; भक्तिर-सेवा; साधने-साधना में; चारि दण्ड-लगभग दो घण्टे; निद्रा-निद्रा; सेह-वह भी; नहे-नहीं; कोन-दिने-किन्ही दिनों।

अनुवाद

वे दिन के साढ़े बाइस घण्टे से अधिक भक्ति में बिताते और मुश्किल से दो घंटे से कम सोते। किसी-किसी दिन तो यह भी सम्भव नहीं हो पाता था।

ताँहार साधन-रीति शुनिते चमत्कार ।

सेइ रूप-रघुनाथ प्रभु ये आमार ॥ 103 ॥

ताँहार-उनकी; साधन-रीति-सेवा की प्रक्रिया; शुनिते-सुनने के लिए; चमत्कार-चमत्कारिक, आश्चर्यजनक; सेइ-वे; रूप-श्री रूप गोस्वामी; रघुनाथ-रघुनाथ दास गोस्वामी; प्रभु-स्वामी; ये-वह; आमार-मेरे।

अनुवाद

जब मैं उनके द्वारा सम्पन्न भक्ति के विषय में सुनता हूँ, तो आश्चर्यचकित रह जाता हूँ। मैं श्रील रूप गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामी को अपने मार्गदर्शक स्वीकार करता हूँ।

तात्पर्य

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने रघुनाथ दास गोस्वामी को अपना विशिष्ट मार्गदर्शक माना है। इसीलिए हर अध्याय के अन्त में वे कहते हैं-श्रीरूपरघुनाथपदे याँर आश चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ।रघुनाथ शब्द के उपयोग से कभी-कभी लोग भ्रमवश यह समझ बैठते हैं कि वे रघुनाथ भट्ट गोस्वामी को नमस्कार करना चाहते थे, क्योंकि कोई-कोई रघुनाथ भट्ट गोस्वामी को उनका दीक्षा-गुरु मानते हैं। किन्तु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी इस कथन का समर्थन नहीं करते और वे रघुनाथ भट्ट गोस्वामी को श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी के गुरु स्वीकार नहीं करते।

इँहा-सबार यैछे हैल प्रभुर मिलन ।

आगे विस्तारिया ताहा करिब वर्णन ॥ 104॥

इँहा-उनका; सबार-सब; मैछे-जैसे; हैल-हुआ; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मिलन-मिलन; आगे-बाद में; विस्तारिया–विस्तार करके; ताहा-वह; करिब–मैं करूँगा; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

मैं इसका आगे विस्तृत वर्णन करूँगा कि ये सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु से किस तरह मिले।

श्री-गोपाल भट्ट एक शाखा सर्वोत्तम ।

रूप-सनातन-सङ्गे याँर प्रेम-आलापन ॥105॥

श्री-गोपाल भट्ट–श्री गोपाल भट्ट; एक-एक; शाखा-शाखा; सर्व-उत्तम-सर्वोत्तम; रूप-रूप; सनातन-सनातन; सङ्गे–के संग; याँर–जिनका; प्रेम-भगवत्प्रेम; आलापन-चर्चा।

अनुवाद

श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी उस वृक्ष की सैंतालीसवीं महान् एवं श्रेष्ठ शाखा थे। वे रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के साथ सदैव भगवत्प्रेम विषयक वार्ता में व्यस्त रहते थे।

तात्पर्य

श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी श्रीरंगम के निवासी वेंकट भट्ट के पुत्र थे। गोपाल भट्ट पहले रामानुज सम्प्रदाय की गुरु-शिष्य परम्परा से सम्बन्धित थे, किन्तु बाद में गौड़ीय सम्प्रदाय के अंग बन गये। 1433 शकाब्द (1511 ई.) में जब श्री चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत के भ्रमण पर थे, तब वे वेंकट भट्ट के घर पर चातुर्मास्य-काल में चार महीने ठहरे थे; तभी उन्होंने जी-भरकर महाप्रभु की सेवा की थी। उसी समय गोपाल भट्ट को भी महाप्रभु की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ था। बाद में गोपाल भट्ट गोस्वामी को उनके चाचा, महान् संन्यासी प्रबोधानन्द सरस्वती ने दीक्षा दी। गोपाल भट्ट गोस्वामी के माता-पिता अत्यन्त भाग्यशाली थे कि उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में सारा जीवन लगा दिया। उन्होंने गोपाल भट्ट गोस्वामी को वृन्दावन जाने की अनुमति दे दी और महाप्रभु

का चिन्तन करते-करते उन्होंने अपने प्राण त्यागे। जब भगवान् चैतन्य से बाद में बताया गया कि गोपाल भट्ट गोस्वामी वृन्दावन गये हैं और वहाँ श्री रूप तथा सनातन गोस्वामी से मिले हैं, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने श्रील रूप तथा सनातन गोस्वामी को सलाह दी कि वे गोपाल भट्ट गोस्वामी को अपने छोटे भाई की तरह रखें और उनकी देखभाल करें। श्री सनातन गोस्वामी ने गोपाल भट्ट गोस्वामी के प्रति अपने अगाध स्नेह के कारण हरिभक्ति विलास नामक वैष्णव स्मृति लिखकर उनके नाम से प्रकाशित की। गोपाल भट्ट गोस्वामी ने श्री रूप तथा सनातन गोस्वामी के आदेशानुसार वृन्दावन के सात प्रमुख अर्चाविग्रहों में से राधा-रमण विग्रह की स्थापना की। राधा-रमण मन्दिर के सेवाइत (पुरोहित) गौड़ीय सम्प्रदाय के हैं।

जब कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने चैतन्य-चरितामृत लिखने के पूर्व सारे वैष्णवों की अनुमति प्राप्त की, तो गोपाल भट्ट गोस्वामी ने भी उन्हें आशीर्वाद दिया, किन्तु यह अनुरोध किया कि उनके नाम का पुस्तक में उल्लेख न किया जाए। इसीलिए कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने बहुत सतर्कतापूर्वक चैतन्य-चरितामृत में एकाध स्थानों पर ही गोपाल भट्ट गोस्वामी का नामोल्लेख किया है। श्रील जीव गोस्वामी ने अपने तत्त्व सन्दर्भ के प्रारम्भ में लिखा है, "दक्षिण भारत के एक भक्त ने, जो ब्राह्मण कुल में जन्मे थे और रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के घनिष्ठ मित्र थे, उन्होंने एक पुस्तक लिखी है, किन्तु वह काल-क्रमानुसार संकलित नहीं है। अतएव मैं एक क्षुद्र "जीव" उस पुस्तक की घटनाओं को क्रमबद्ध करने का प्रयत्न कर रहा हूँ, जिसके लिए मध्वाचार्य, श्रीधर स्वामी, रामानुजाचार्य तथा गुरु-शिष्य परम्परा के अन्य वरिष्ठ वैष्णवों के निर्देश की सहायता ले रहा हूँ।" भागवत्-सन्दर्भ के प्रारम्भ में भी श्रील जीव गोस्वामी ने ऐसी ही बात कही है। श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी ने सत-क्रियासार-दीपिका पुस्तक लिखी, हरिभक्ति-विलास का सम्पादन किया, षट् सन्दर्भ ग्रंथ की भूमिका लिखी तथा कृष्ण-कर्णामृत पर भाष्य लिखा। उन्होंने वृन्दावन में राधा-रमण

अर्चाविग्रह की स्थापना की। गौरगणोद्देश-दीपिका (184) में उल्लेख है कि कृष्ण-लीला में उनका पहले का नाम अनंगमंजरी था। कभी-कभी उन्हें गुणमंजरी का अवतार भी बतलाया जाता है। श्रीनिवास आचार्य तथा गोपीनाथ पुजारी उनके दो शिष्य थे।

शङ्करारण्य–आचार्य-वृक्षेर एक शाखा ।

मुकुन्द, काशीनाथ, रुद्र–उपशाखा लेखा ॥ 106॥

शङ्करारण्य–शंकरारण्य; आचार्य-वृक्षेर-आचार्यों के वृक्ष की; एक-एक; शाखा-शाखा; मुकुन्द-मुकुन्द; काशीनाथ-काशीनाथ; रुद्र–रुद्र; उपशाखा लेखा-उपशाखा मानी जाती है।

अनुवाद

आचार्य शंकरारण्य मूल वृक्ष की अड़तालीसवीं शाखा माने गये हैं। उनसे मुकुन्द, काशीनाथ तथा रुद्र नामक उपशाखाएँ फूटीं।

तात्पर्य

कहा जाता है कि श्रील विश्वरूप का संन्यास-नाम शंकरारण्य था। ये विश्वम्भर (श्री चैतन्य महाप्रभु का मूल नाम) के बड़े भाई थे। शंकरारण्य का देहान्त 1432 शकाब्द (1510 ई.) में शोलापुर में हुआ, जहाँ पण्डरपुर नामक एक तीर्थस्थान है। इसका उल्लेख मध्यलीला (अध्याय 9, श्लोक 299-300) में हुआ है।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं : “श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुकुन्द (या मुकुन्द संजय) के घर में एक प्राथमिक पाठशाला खोली थी और मुकुन्द का पुत्र पुरुषोत्तम उनका विद्यार्थी बन गया। काशीनाथ ने उनके पिछले आश्रम में महाप्रभु का जब विवाह कराया,

तब उनका नाम विश्वम्भर था। काशीनाथ ने राज दरबार के पण्डित सनातन को प्रेरित किया कि वे अपनी पुत्री का हाथ विश्वम्भर को दें। गौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक 50) में बतलाया गया है कि काशीनाथ कुलक नामक ब्राह्मण के अवतार थे, जिन्हें सत्राजित ने कृष्ण तथा सत्यभामा का विवाह कराने के लिए भेजा था। श्लोक 135 में उल्लेख है कि रुद्र या श्री रुद्रराम पण्डित पूर्वजन्म में कृष्ण के मित्र वरूथप थे। श्री रुद्रराम पण्डित ने वल्लभपुर में राधावल्लभ अर्चाविग्रहों के लिए एक बड़ा मन्दिर बनवाया। यह स्थान माहेश से एक मील उत्तर में है। उनके भाई यदुनन्दन बन्दोपाध्याय के वंशज चक्रवर्ती ठाकुर कहलाते हैं और वे इस मन्दिर के सेवाइत अर्थात् मन्दिर की देखभाल करने वाले हैं। पहले रथयात्रा के समय जगन्नाथ अर्चाविग्रह माहेश से राधावल्लभ मन्दिर में आते थे, किन्तु 1262 बंगाब्द (1855 ई.) में दोनों मन्दिरों के पुजारियों में अनबन के कारण जगन्नाथ अर्चाविग्रह का आना बन्द हो गया।"

श्रीनाथ पण्डित–प्रभुर कृपार भाजन।

याँर कृष्ण-सेवा देखि' वश त्रि-भुवन ॥107॥

श्रीनाथ पण्डित-श्रीनाथ पण्डित; प्रभुर–महाप्रभु की; कृपार-कृपा के; भाजन-पात्र; याँर-जिनकी; कृष्ण-सेवा-कृष्ण सेवा; देखि'–देखकर; वश–वश में हो गये; त्रि-भुवन–तीनों भुवन।

अनुवाद

उञ्चासवीं शाखा, श्रीनाथ पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त कृपापात्र थे। तीनों लोक के सारे निवासी यह देखकर चकित थे कि वे भगवान् कृष्ण की किस तरह सेवा करते हैं।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं : "कुमारहट्ट या कामरहट्ट से लगभग डेढ़ मील दूर एवं कलकत्ता से कुछ मील की दूरी पर कांचड़ापाड़ा नामक एक कस्बा है, जहाँ श्री शिवानन्द सेन का घर था। वहीं उन्होंने श्री गौरगोपाल का एक मन्दिर बनवाया था। वहीं पर श्री राधा-कृष्ण की मूर्तियों से सजा एक अन्य मन्दिर श्रीनाथ पण्डित ने बनवाया था। उस मन्दिर का अर्चाविग्रह श्रीकृष्णराय कहलाता है। 1708 शकाब्द (1786 ई.) में कृष्णराय मन्दिर, जिसे कलकत्ता स्थित पाथुरिया घाट के एक प्रमुख जमींदार निमाइ मल्लिक ने बनवाया था, बहुत विशाल है। मन्दिर के सामने विशाल प्रांगण है और आगंतुकों के लिए रिहायशी कमरे हैं, तथा प्रसाद बनाने की सुन्दर व्यवस्था है। समूचा प्रांगण बहुत ऊँची चाहारदीवारी से घिरा है। यह मन्दिर माहेश मन्दिर जितना ऊँचा है। एक पत्थर पर श्रीनाथ, उनके पिता तथा पितामह के नाम और मन्दिर निर्माण की तिथि अंकित है। श्रीनाथ पण्डित अद्वैत प्रभु के शिष्यों में से एक थे और शिवानन्द सेन के तीसरे पुत्र परमानन्द कविकर्णपूर के गुरु थे। ऐसा कहा जाता है कि कविकर्णपूर के समय में ही कृष्णराय अर्चाविग्रह स्थापित हुए थे। जनश्रुति के अनुसार नित्यानन्द प्रभु के पुत्र, वीरभद्र प्रभु, एक बहुत बड़ा पत्थर मुर्शिदाबाद से लाये, जिसे तराशकर तीन विग्रह बनाये गये-वल्लभपुर के राधावल्लभ, खड़दह के श्यामसुन्दर तथा कांचड़ापाड़ा के श्रीकृष्णराय के विग्रह। शिवानन्द सेन का घर एक जीर्ण मन्दिर के पास गंगा-तट पर स्थित था। कहा जाता है कि कलकत्ता के उसी निमाइ मल्लिक ने बनारस जाते समय इसी कृष्ण राय के भग्न मन्दिर को देखा, तो बाद में उसने वर्तमान मन्दिर का निर्माण कराया।"

जगन्नाथ आचार्य प्रभुर प्रिय दास ।

प्रभुर आज्ञाते तेंहो कैल गङ्गा-वास ॥108॥

जगन्नाथ आचार्य-जगन्नाथ अचार्य; प्रभुर–महाप्रभु के; प्रिय दास–प्रिय दास; प्रभुर आज्ञाते–महाप्रभु की आज्ञा से; तेंहो-वे; कैल–मान गये; गङ्गा-वास-गंगा तट पर रहने के लिए।

अनुवाद

चैतन्य-वृक्ष की पचासवीं शाखा, जगन्नाथ आचार्य, महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय दास थे और महाप्रभु की आज्ञा से उन्होंने गंगा नदी के तट पर रहने का निश्चय किया।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (111) में जगन्नाथ आचार्य को पूर्वजन्म में निधुवन के दुर्वासा बतलाया गया है।

कृष्णदास वैद्य, आर पण्डित-शेखर ।

कविचन्द्र, आर कीर्तनीया षष्ठीवर ॥ 109॥

कृष्णदास वैद्य–कृष्णदास वैद्य; आर-और; पण्डित-शेखर-पण्डित शेखर; कविचन्द्र-कविचन्द्र; आर-और; कीर्तनीया-कीर्तन करनेवाला; षष्ठीवर-शष्ठीवर।

अनुवाद

चैतन्य-वृक्ष की इक्कावनवीं शाखा कृष्णदास वैद्य, बावनवीं शाखा पण्डित शेखर, तिरपनवीं शाखा कविचन्द्र थे, और चौवनवीं शाखा षष्ठीवर हुए, जो बहुत बड़े संकीर्तनिया थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (171) में उल्लेख है कि श्रीनाथ मिश्र चित्रांगी नामक गोपी थे और कविचन्द्र मनोहरा गोपी थे।

श्रीनाथ मिश्र, शुभानन्द, श्रीराम, ईशान।

श्रीनिधि, श्रीगोपीकान्त, मिश्र भगवान् ॥110॥

श्रीनाथ मिश्र-श्रीनाथ मिश्र; शुभानन्द-शुभानन्द; श्रीराम-श्रीराम; ईशान-ईशान; श्रीनिधि-श्रीनिधि; श्री-गोपीकान्त-श्री गोपीकान्त; मिश्र भगवान्–मिश्र भगवान्।

अनुवाद

श्रीनाथ मिश्र पचपनवीं शाखा थे, शुभानन्द छप्पनवीं, श्रीराम सत्तावनवीं, ईशान अट्ठावनवीं, श्रीनिधि उनसठवीं, श्री गोपीकान्त साठवीं तथा मिश्र भगवान इकसठवीं शाखा थे।

तात्पर्य

पूर्वजन्म में मालती के रूप में वृन्दावन में रहने वाले शुभानन्द एक कीर्तनिया थे, जो जगन्नाथ-उत्सव के समय रथयात्रा के समक्ष नाचा करते थे। कहा जाता है कि रथयात्रा के रथ के समक्ष जब महाप्रभु नाचते थे, तो उनके मुँह से जो झाग निकलता था उसे वे पीते थे। ईशान श्रीमती शचीदेवी का निजी सेवक था। उस पर उनकी अत्यधिक कृपा थी। वह श्री चैतन्य महाप्रभु को भी अत्यन्त प्रिय था।

सुबुद्धि मिश्र, हृदयानन्द, कमल-नयन।

महेश पण्डित, श्रीकर, श्री-मधुसूदन ॥ 111॥

सुबुद्धि मिश्र-सुबुद्धि मिश्र; हृदयानन्द–हृदयानन्द; कमल-नयन-कमलनयन; महेश पण्डित-महेश पण्डित; श्रीकर-श्रीकर; श्री-मधुसूदन-श्री मधुसूदन।

अनुवाद

सुबुद्धि मिश्र बासठवीं शाखा थे, हृदयानन्द तिरसठवीं, कमलनयन चौसठवीं, महेश पण्डित पैंसठवीं, श्रीकर छियासठवीं तथा श्री मधुसूदन सतसठवीं शाखा थे।

तात्पर्य

अपने अनुभाष्य में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर लिखते हैं : "सुबद्धि मिश्र पूर्वजन्म में वृन्दावन की गुणचूड़ा थे। उन्होंने बेलगान नामक गाँव में, जो श्रीखण्ड से लगभग 3 मील दूर है, एक मन्दिर में गौरनित्यानन्द के विग्रह स्थापित किये। आजकल गोविन्दचन्द्र गोस्वामी उनके वंशज हैं।"

पुरुषोत्तम, श्री-गालीम, जगन्नाथ-दास ।

श्री चन्द्रशेखर वैद्य, द्विज हरिदास ॥112॥

पुरुषोत्तम पुरुषोत्तम; श्री-गालीम-श्री गालीम; जगन्नाथ-दास-जगन्नाथ दास; श्री-चन्द्रशेखर वैद्य-श्री चन्द्रशेखर वैद्य; द्विज हरिदास-द्विज हरिदास।

अनुवाद

मूल वृक्ष की अड़सठवीं शाखा श्री पुरुषोत्तम थे, श्रीगालीम उनहत्तरवीं, जगन्नाथ दास सत्तरवीं, श्री चन्दरशेखर वैद्य इकहत्तरवीं और द्विज हरिदास बहत्तरवीं शाखा थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "इसमें कुछ सन्देह प्रकट किया जाता है कि द्विज हरिदास अष्टोत्तरशतनाम के रचियता थे या नहीं। उनके दो पुत्र थे जिनके नाम श्रीदाम तथा गोकुलानन्द थे। वे श्री श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। उनका गाँव कांचनगड़िया पश्चिम बंगाल में मुर्शिदाबाद जिले के आजीमगंज से पाँचवे स्टेशन बाजारसाउ से पाँच मील की दूरी के अन्दर है।"

रामदास, कविचन्द्र, श्री-गोपालदास ।

भागवताचार्य, ठाकुर सारङ्गदास ॥113॥

रामदास–रामदास; कविचन्द्र-कविचन्द्र; श्री गोपाल-दास-श्री गोपाल दास; भागवताचार्य–भागवत आचार्य; ठाकुर सारङ्ग-दास–ठाकुर सारंग दास।

अनुवाद

मूल वृक्ष की तिहत्तरवीं शाखा राम दास थे, चौद्दत्तरवीं शाखा कविचन्द्र, पचहत्तरवीं शाखा श्री गोपाल दास, छिहत्तरवीं शाखा भागवताचार्य और सतहत्तरवीं शाखा ठाकुर सारंग दास थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "गौरगणोद्देश-दीपिका (203) में बतलाया गया है, 'भागवताचार्य ने कृष्णप्रेमतरंगिणी नामक पुस्तक लिखी और वे चैतन्य महाप्रभु के सर्वाधिक प्रिय भक्त थे।' जब श्री चैतन्य महाप्रभु वराह नगर गये, जो अब कलकत्ता का एक उपनगर है, तब वे एक परम भाग्यवान ब्राह्मण के यहाँ ठहरे, जो भागवत साहित्य के प्रकाण्ड

विद्वान थे। ज्योंही इस ब्राह्मण ने महाप्रभु को देखा, वे श्रीमद्भागवत बाँचने लगे। जब महाप्रभु ने उसकी भक्तियोग विषयक व्याख्या सुनी, तो वे आनन्दातिरेक भाव से एकदम अचेत हो गये। बाद में महाप्रभु ने कहा, 'मैंने श्रीमद्भागवत की ऐसी सुन्दर व्याख्या कभी नहीं सुनी, अतएव मैं आपको भागवताचार्य नाम प्रदान करता हूँ। आपका एकमात्र कार्य होगा। श्रीमद्भागवत बाँचना। यही मेरा आदेश है।' उनका असली नाम रघुनाथ था। उनका मठ गंगानदी के तट पर कलकत्ता से साढ़े तीन मील दूरी पर वराह नगर में अब भी विद्यमान है और इसका प्रबन्ध दिवंगत श्री रामदास बाबाजी से दीक्षा-प्राप्त शिष्य करते हैं। किन्तु आजकल अच्छी व्यवस्था नहीं है, जैसी बाबाजी महाराज के समय थी।

"ठाकुर सारंग दास का अन्य नाम साङ्ग ठाकुर था। कभी-कभी उन्हें साङ्गपाणि या साङ्गधर कहा जाता था। वे नवद्वीप के निकटस्थ मोदद्मद्वीप के निवासी थे और गंगानदी के तट पर एकान्त स्थान में भगवान् की पूजा करते थे। उन्होंने किसी को शिष्य नहीं बनाया, किन्तु भगवान् सदैव ऐसा करने के लिए उन्हें अन्दर से प्रेरित करते रहते थे। अतएव एक दिन प्रात:काल उन्होंने निश्चय किया, 'जो भी पहले मुझे दिखेगा, उसे मैं शिष्य बना लूँगा।' जब वे गंगास्नान करने गये, तो उन्होंने एक मृतक बहता हुआ देखा, जिसे उन्होंने अपने पाँव से छू दिया। इससे वह तुरन्त जीवित हो उठा और उन्होंने उसे अपना शिष्य बना लिया। यही शिष्य बाद में ठाकुर मुरारि के नाम से प्रसिद्ध हुए और इनका नाम सदा श्री सारंग के साथ-साथ लिया जाता है। आज भी शर नामक गाँव में उनके परम्परागत शिष्य रह रहे हैं। कहा जाता है कि मामगाछि का मन्दिर सारंग ठाकुर द्वारा शुरू किया गया। अभी ज्यादा दिन नहीं हुए जब वहाँ एक बकुल वृक्ष के सामने एक नया मन्दिर निर्मित हुआ और अब गौड़ीय मठ के सदस्य इसका प्रबन्ध देखते हैं। कहा जाता है कि मन्दिर की प्रबन्ध-व्यवस्था पहले से कहीं अच्छी है। गौरगणोद्देश-दीपिका (172) में कहा गया है कि सारंग ठाकुर पूर्वजन्म में

नान्दीमुखी नामक गोपी थे। कुछ भक्त कहते हैं कि वे पहले प्रह्लाद महाराज थे, किन्तु श्री कविकर्णपूर कहते हैं कि उनके पिता शिवानन्द सेन को यह मत मान्य नहीं है।"

जगन्नाथ तीर्थ, विप्र श्री-जानकीनाथ ।

गोपाल आचार्य, आर विप्र वाणीनाथ ॥114॥

जगन्नाथ तीर्थ-जगन्नाथ तीर्थ; विप्र-श्री-जानकीनाथ-श्री जानकीनाथ नामक ब्राह्मण; गोपाल आचार्य–गोपाल आचार्य; आर-और; विप्र वाणीनाथ-वाणीनाथ नामक ब्राह्मण।

अनुवाद

मूल वृक्ष की अठहत्तरवीं शाखा जगन्नाथ तीर्थ थे, उन्यासीवीं शाखा जानकीनाथ ब्राह्मण, अस्सीवीं शाखा गोपाल आचार्य तथा इक्यासीवीं शाखा वाणीनाथ ब्राह्मण थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में कहते हैं, "जगन्नाथ ठाकुर भगवान् चैतन्य के नौ प्रमुख संन्यासी पार्षदों में से एक थे। वाणीनाथ विप्र चाँपाहाटि गाँव के निवासी थे, जो बर्दवान जिले में नवद्वीप शहर के निकट, पूर्वस्थली थाना तथा समुद्रगड़ डाकखाने के अन्तर्गत है। यहाँ पर जो मन्दिर था, वह अत्यन्त उपेक्षित था, किन्तु 1328 बंगाब्द (1921 ई.) में (श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के शिष्य) श्री परमानन्द ब्रह्मचारी ने इसका पुनरुद्धार कराया, पुनः इसकी पूजा-सेवा को व्यवस्थित किया और इसे श्री मायापुर के श्री चैतन्य मठ के प्रबन्ध के अन्तर्गत कर दिया। इस मन्दिर में अब श्री गौर गदाधर के अर्चाविग्रह की पूजा शास्त्रीय विधि से की जाती है। चाँपाहाटि समुद्रगढ़ तथा पूर्वी रेलवे के नवद्वीप स्टेशन से दो मील की दूरी पर है।"

गोविन्द, माधव, वासुदेव—तिन भाइ।

याँ-सबार कीर्तने नाचे चैतन्य-निताई ॥115॥

गोविन्द-गोविन्द; माधव-माधव; वासुदेव-वासुदेव; तिन भाइ–तीन भाई; याँ-सबार–जिनके; कीर्तने-संकीर्तन करने में; नाचे-नृत्य करते हैं; चैतन्य-निताइ-चैतन्य महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

गोविन्द, माधव तथा वासुदेव नामक तीनों भाई वृक्ष की बयासीवीं, तिरासीवी और चौरासीवीं शाखाएँ थे। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु इनके कीर्तन में नृत्य करते थे।

तात्पर्य

गोविन्द, माधव तथा वासुदेव घोष—ये तीनों भाई कायस्थ परिवार के थे। गोविन्द ने अपने गाँव अग्रद्वीप में गोपीनाथ मन्दिर स्थापित किया। माधव घोष कीर्तन करने में पटु थे। इस संसार में उनके जोड़ का कोई न था। ये वृन्दावन के गायक के रूप में विख्यात थे और श्री नित्यानन्द प्रभु को अत्यन्त प्रिय थे। कहा जाता है कि जब तीनों भाई संकीर्तन करते थे, तो श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु भावविभोर होकर तुरन्त नाचने लगते थे। गौरगणोद्देश दीपिका (188) के अनुसार, तीनों भाई पूर्वजन्म में कलावती, रसोल्लासा तथा गुणतुङ्गा नामक गोपियाँ थे, जो श्री विशाखा गोपी द्वारा रचित गीतों को गाती थीं। ये तीनों भाई उन सात मंडलियों में से एक थे, जिन्होंने जगन्नाथ पुरी में रथयात्रा उत्सव में महाप्रभु के सम्मिलित होने पर संकीर्तन किया था। उनकी मंडली के मुख्य नर्तक वक्रेश्वर पण्डित थे। इसका स्पष्ट वर्णन मध्यलीला (अध्याय 13, श्लोक 42-43) में मिलता है।

रामदास अभिराम—सख्य-प्रेमराशि।

षोलसाङ्गेर काष्ठ तुलि' ये करिल वाँशी ॥116॥

रामदास अभिराम-रामदास अभिराम; सख्य-प्रेम-सख्य भाव में प्रेम; राशि-बहुत अधिक मात्रा; षोलस-अङ्गेर-सोलह गांठों की; कष्ठ-लकड़ी; तुलि'–उठाकर; ये-जो कोई; करिल-बनाई; वाँशी-वंशी।

अनुवाद

रामदास अभिराम सदैव सख्य भाव में मग्न रहते थे। उन्होंने 16 गाँठ वाले बाँस की बाँसुरी बनाई थी।

तात्पर्य

अभिराम खानाकुल-कृष्ण-नगर के निवासी थे।

प्रभुर आज्ञाय नित्यानन्द गौड़े चलिला।

ताँर सङ्गे तिन-जन प्रभु-आज्ञाय आइला ॥117॥

प्रभुर आज्ञाय-चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा से; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभुः गौड़े-बंगाल को; चलिला-वापस गये; ताँर सङ्गे–उनके संग; तिन जन-तीन भक्त; प्रभु-आज्ञाय-महाप्रभु की आज्ञा से; आइला-गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा से जब नित्यानन्द प्रभु प्रचार हेतु बंगाल वापस गये, तब उनके साथ-साथ तीन भक्त भी गये।

रामदास, माधव, आर वासुदेव घोष।

प्रभु-सङ्गे रहे गोविन्द पाइया सन्तोष ॥118॥

रामदास–रामदास; माधव-माधव; आर-और; वासुदेव घोष-वासुदेव घोष; प्रभु-सड़े-चैतन्य महाप्रभु के संग; रहे-रहे; गोविन्द-गोविन्द; पाइया-पाकर; सन्तोष-अत्यन्त सन्तोष।

अनुवाद

ये तीनों भक्त थे रामदास, माधव घोष तथा वासुदेव घोष। किन्तु गोविन्द घोष श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ जगन्नाथ पुरी में रह गये। इस तरह उन्हें परम सन्तोष हुआ।

भागवताचार्य, चिरञ्जीव श्री-रघुनन्दन।

माधवाचार्य, कमलाकान्त, श्री-ग्रदुनन्दन ॥ 119॥

भागवताचार्य–भागवत आचार्य; चिरञ्जीव-चिरंजीव; श्री-रघुनन्दन–श्री रघुनन्दन; माधवाचार्य-माधवाचार्य; कमलाकान्त-कमलाकान्त; श्री-यदुनन्दन-श्री यदुनन्दन।

अनुवाद

भागवताचार्य, चिरंजीव, श्री रघुनन्दन, माधवाचार्य, कमलाकान्त तथा श्री यदुनन्दन-ये सभी चैतन्य-वृक्ष की शाखाओं में से थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "श्री माधवाचार्य, नित्यानन्द प्रभु की पुत्री गंगादेवी के पति थे। उन्होंने नित्यानन्द प्रभु की शाखा, पुरुषोत्तम से दीक्षा ग्रहण की। कहा जाता है कि नित्यानन्द प्रभु ने अपनी पुत्री को माधवाचार्य के साथ विवाह के समय पांजिनगर नामक गाँव दहेज में दिया था। माधवाचार्य का मन्दिर पूर्वी रेलवे के जीराट नामक रेलवे स्टेशन के पास स्थित है। गौरगणोद्देश-दीपिका (169) के अनुसार श्री माधवाचार्य पूर्वजन्म में माधवी नामक गोपी थे। कमलाकान्त श्री अद्वैत प्रभु की शाखा से सम्बन्धित थे। उनका पूरा नाम कमलाकान्त विश्वास था।

महा-कृपा-पात्र प्रभुर जगाइ, माधाइ ।

'पतित-पावन' नामेर साक्षी दुइ भाइ ॥ 120॥

महा-कृपा-पात्र-महान् कृपा के पात्र; प्रभुर–महाप्रभु के; जगाइ माधाइ-जगाइ और माधाइ दो भाई, पतित-पावन-पतितों के उद्धारक; नामेर-इन नाम के; साक्षी-साक्षी; दुइ भाइ-ये दोनों भाई।

अनुवाद

वृक्ष की नवासीवीं तथा नब्बेवीं शाखाएँ, जगाइ तथा माधाइ, श्री चैतन्य महाप्रभु के सर्वाधिक कृपापात्र थे। ये दोनों भाई इसके साक्षी थे, जिन्होंने यह प्रमाणित किया कि महाप्रभु का पतितपावन, "पतितों के उद्धारकर्ता" नाम सार्थक है।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (115) में कहा गया है कि जगाइ तथा माधाइ दोनों भाई पूर्वजन्म में जय तथा विजय नामक द्वारपाल थे, जो बाद में हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु बने। जगाइ तथा माधाइ

दोनों का जन्म प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल में हुआ था, किन्तु उन्होंने चोर-उचक्कों का पेशा अपना रखा था, जिससे वे सभी तरह के अवांछित कार्यों में, विशेषतया परस्त्री-गमन, नशा तथा जुआ खेलने में व्यस्त रहने लगे थे। बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु की कृपा से उन्हें दीक्षित किया गया, जिससे उन्हें हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने का अवसर प्राप्त हो सका। कीर्तन करने के फलस्वरूप दोनों भाई चैतन्य महाप्रभु के उन्नत भक्त बने। माधाइ के वंशज अब भी विद्यमान हैं, और वे प्रतिष्ठित ब्राह्मण हैं। इन दोनों भाइयों की समाधियाँ घोषहाट स्थान या माधाइतला गाँव में हैं, जो कटवा से एक मील दक्षिण में स्थित है। कहा जाता है कि 250 वर्ष पूर्व इस स्थान पर श्री गोपीचरण दास बाबाजी ने निताई गौर का मन्दिर स्थापित किया।

गौड़-देश-भक्तेर कैल सङ्क्षेप कथन ।

अनन्त चैतन्य-भक्त ना याय गणन ॥121॥

गौड़-देश-बंगाल में; भक्तेर-भक्तों का; कैल-मैंने वर्णन किया है; सङ्क्षेप-संक्षेप में; कथन-वर्णन; अनन्त-असीम; चैतन्य-भक्त-भगवान् चैतन्य के भक्त; ना-नहीं; याय हो सकता है; गणन-गिना जाना।

अनुवाद

मैंने महाप्रभु के बंगाल के भक्तों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। वास्तव में उनके भक्तों की संख्या अनगिनत है।

नीलाचले एइ सब भक्त प्रभु-सङ्गे ।

दुइ स्थाने प्रभु-सेवा कैल नाना-रङ्गे ॥122॥

नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; एइ-ये; सब-सब; भक्त-भक्त; प्रभु-सड़े-भगवान् चैतन्य के संग; दुई स्थाने-दो स्थानों में; प्रभु-सेवा-महाप्रभु की सेवा; कैल-की; नाना-रङ्गे–नाना प्रकार से।

अनुवाद

मैंने इन सारे भक्तों का विशेष रूप से वर्णन इसीलिए किया है, क्योंकि वे महाप्रभु के साथ-साथ बंगाल तथा उड़ीसा में रहे और उन्होंने अनेक प्रकार से उनकी सेवाएँ कीं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के अधिकांश भक्त बंगाल तथा उड़ीसा में रहते थे। अतएव वे गौड़ीय तथा उड़िया कहलाते हैं। किन्तु इस समय चैतन्य महाप्रभु की कृपा से उनके सम्प्रदाय का प्रचार सारे विश्व में फैल रहा है और सम्भावना यही है कि महाप्रभु के आन्दोलन के भावी इतिहास में यूरोप, अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अमरीका, एशिया तथा पूरे विश्व के लोग महाप्रभु के भक्तों के रूप में विख्यात हो जाएँ। अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ ने मायापुर, नवद्वीप में पहले ही एक विशाल मन्दिर बनवाया है, जिसे विश्वभर के लोग देखने आते हैं, जिसकी भविष्यवाणी महाप्रभु ने की थी और जिसके विषय में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का पहले से अनुमान था।

केवल नीलाचले प्रभुर ये ये भक्त-गण ।

सङ्क्षेपे करिये किछु से सब कथन ॥123॥

केवल–केवल; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; प्रभुर–महाप्रभु के; ये ये-ये सब; भक्त-गण-भक्त; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; करिये-मैं करता हूँ; किछु-कुछ; से सब-वे सब; कथन-वर्णन।

अनुवाद

अब मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के जगन्नाथ पुरी के कुछ भक्तों का संक्षेप में वर्णन करूँगा।

नीलाचले प्रभु-सङ्गे ग्रत भक्त-गण ।

सबार अध्यक्ष प्रभुर मर्म दुइ-जन ॥ 124॥

परमानन्द-पुरी, आर स्वरूप-दामोदर ।

गदाधर, जगदानन्द, शङ्कर, वक्रेश्वर ॥ 125॥

दामोदर पण्डित, ठाकुर हरिदास ।

रघुनाथ वैद्य, आर रघुनाथ-दास ॥126 ॥

नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; प्रभु-सङ्गे–चैतन्य महाप्रभु के साथ; यत-सब; भक्त-गण-भक्त; सबार–उन सबके; अध्यक्ष–अध्यक्ष; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; मर्म-हृदय और प्राण; दुइ जन-दो व्यक्ति; परमानन्द-पुरी-परमानन्द पुरी; आर-और; स्वरूप-दामोदर-स्वरूप दामोदर; गदाधर-गदाधर; जगदानन्द-जगदानन्द; शङ्कर-शंकर; वक्रेश्वर–वक्रेश्वर; दामोदर पण्डित-दामोदर पण्डित; ठाकुर हरिदास-ठाकुर हरिदास; रघुनाथ वैद्य-रघुनाथ वैद्य; आर-और; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास।

अनुवाद

महाप्रभु के साथ-साथ जो भक्तगण जगन्नाथ पुरी में रहे, उनमें से दो-परमानन्द पुरी तथा स्वरूप दामोदर-महाप्रभु के हृदय और प्राण समान थे। अन्य भक्तों में गदाधर, जगदानन्द, शंकर, वक्रेश्वर, दामोदर पण्डित, ठाकुर हरिदास, रघुनाथ वैद्य तथा रघुनाथ दास उल्लेखनीय हैं।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत (अन्त्यखण्ड, अध्याय 5) में कहा गया है कि जब महाप्रभु पाणिहाटि में रुके थे, तो रघुनाथ वैद्य उनसे भेंट करने आये थे। वे एक महान् भक्त थे और समस्त सद्गुणों से युक्त थे। चैतन्य भागवत के अनुसार वे पूर्वजन्म में बलराम की पत्नी रेवती थे। वे जिस किसी पर दृष्टिपात करते, उसे तुरन्त कृष्णभावना प्राप्त हो जाती। वे जगन्नाथ पुरी में समुद्र के किनारे रहते थे। उन्होंने स्थाननिरूपण नामक ग्रंथ की रचना की थी।

इत्यादिक पूर्व-सङ्गी बड़ भक्त-गण ।

नीलाचले रहि' करे प्रभुर सेवन ॥ 127॥

इति-आदिक-ये सब तथा अन्य; पूर्व-सङ्गी–पहले के साथी; बड़-बहुत; भक्त-गण-महान् भक्त; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; रहि-रहकर; करे-की; प्रभुर–महाप्रभु की; सेवन-सेवा।

अनुवाद

ये सारे भक्त प्रारम्भ से ही महाप्रभु के पार्षद थे और जब चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में रहने लगे, तो वे निष्ठापूर्वक उनकी सेवा करने के लिए वहीं रह गये।

आर यत भक्त-गण गौड़-देश-वासी ।

प्रत्यब्दे प्रभुरे देखे नीलाचले आसि' ॥128॥

आर-अन्य; यत-सब; भक्त-गण-भक्त; गौड़-देश-वासी-बंगाल के निवासी; प्रति-अब्दे–प्रति वर्ष; प्रभुरे–महाप्रभु; देखे-देखने; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; आसि'-वहाँ आकर।

अनुवाद

बंगाल में रहने वाले सारे भक्त महाप्रभु का दर्शन करने प्रति वर्ष जगन्नाथ पुरी आया करते थे।

नीलाचले प्रभु-सह प्रथम मिलन।

सेइ भक्त-गणेर एबे करिये गणन ॥129॥

नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; प्रभु-सह-महाप्रभु के साथ; प्रथम-पहले; मिलन-मिलन; सेइ-वह; भक्त-गणेर-भक्तों का; एबे–अब; करिये-मैं करता हूँ; गणन-गणना।

अनुवाद

अब मैं बंगाल के उन भक्तों के नाम गिनाऊँगा, जो सबसे पहले महाप्रभु से मिलने जगन्नाथ पुरी आये।

बड़-शाखा एक,—सार्वभौम भट्टाचार्य।

ताँर भग्नी-पति श्री-गोपीनाथाचार्य ॥130॥

बड़-शाखा एक बड़ी शाखाओं में से एक; सार्वभौम भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; ताँर भग्नी-पतिउसकी बहन का पति; श्री-गोपीनाथाचार्य-श्री गोपीनाथ आचार्य।

अनुवाद

महाप्रभु-रूपी वृक्ष की सबसे बड़ी शाखाओं में से एक थे सार्वभौम भट्टाचार्य और उनके बहनोई श्री गोपीनाथाचार्य।

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य का मूल नाम वासुदेव भट्टाचार्य था। उनका जन्मस्थान विद्यानगर है, जो नवद्वीप रेलवे स्टेशन से या चाँपाहाटी स्टेशन से ढाई मील दूर है। उनके पिता विख्यात व्यक्ति थे जिनका नाम महेश्वर विशारद था। कहा जाता है कि सार्वभौम भट्टाचार्य अपने समय में भारत के सबसे बड़े तर्कशास्त्री थे। वे बिहार-स्थित मिथिला में प्रोफेसर पक्षधर मिश्र के शिष्य बने, जो बहुत बड़े आचार्य थे और अपने किसी भी विद्यार्थी को अपनी तर्कशास्त्र की व्याख्याएँ लिखने नहीं देते थे। किन्तु सार्वभौम भट्टाचार्य इतने प्रतिभाशाली थे कि उन्होंने उन व्याख्याओं को कंठस्थ कर लिया और नवद्वीप लौटने पर उन्होंने तर्क का अध्ययन करने के लिए एक पाठशाला स्थापित की। इस तरह उन्होंने मिथिला के महत्त्व को घटा दिया। आज भी भारत के विभिन्न भागों से तर्कशास्त्र का अध्ययन करने के लिए विद्यार्थी नवद्वीप आते हैं। कुछ प्रामाणिक विद्वानों का मत है कि सुप्रसिद्ध तर्कशास्त्री रघुनाथ शिरोमणि भी सार्वभौम भट्टाचार्य के ही शिष्य थे। एक तरह से सारे तर्कशास्त्र के विद्यार्थियों के अग्रणी सार्वभौम भट्टाचार्य ही थे। वे स्वयं गृहस्थ होते हुए भी अनेक संन्यासियों को तर्कशास्त्र पढ़ाते थे।

उन्होंने जगन्नाथ पुरी में वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करने के लिए एक पाठशाला खोली, क्योंकि वे दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान थे। जब सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले, तो उन्होंने महाप्रभु को सलाह दी कि वे उनसे वेदान्त-दर्शन सीखें, किन्तु बाद में वेदान्त का असली अर्थ समझने के लिए वे महाप्रभु के शिष्य बन गये। सार्वभौम भट्टाचार्य इतने भाग्यशाली थे कि वे महाप्रभु के षड्भुज रूप का दर्शन पा सके। आज भी जगन्नाथ मन्दिर के एक कोने में षड्भुज-विग्रह स्थित है। मन्दिर के इस भाग में नित्य संकीर्तन होता है। महाप्रभु से सार्वभौम भट्टाचार्य की भेंट का स्पष्ट वर्णन मध्यलीला के छठे अध्याय में मिलता है। सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्य-शतक अथवा सुश्लोक शतक नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें एक सौ श्लोक हैं। वैराग्यविद्यानिजभक्तियोग

और कालान् नष्टं भक्तियोगं निजं यः से प्रारम्भ होने वाले दो अन्य श्लोक गौड़ीय वैष्णवों में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। गौरगणोद्देश दीपिका (119) में बतलाया गया है कि सार्वभौम भट्टाचार्य देवलोक के पण्डित बृहस्पति के अवतार थे।

गोपीनाथ आचार्य कुलीन ब्राह्मण परिवार के थे और ये भी नवद्वीप के निवासी तथा महाप्रभु के नित्य पार्षद थे। ये सार्वभौम भट्टाचार्य के बहनोई थे। गौरगणोद्देश-दीपिका (178) में वर्णन है कि ये पहले रत्नावली नामक गोपी थे। अन्य मत के अनुसार ये ब्रह्मा के अवतार थे।

काशी-मिश्र, प्रद्युम्न-मिश्र, राय भवानन्द ।

याँहार मिलने प्रभु पाइला आनन्द ॥ 131॥

काशी-मिश्र-काशी मिश्र; प्रद्युम्न-मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; राय भवानन्द-भवानन्द राय; याँहार–जिनके; मिलने-मिलने में; प्रभु–महाप्रभु; पाइला–पाया; आनन्द–आनन्द।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी के भक्तों की सूची में (जो परमानन्द पुरी, स्वरूप दामोदर, सार्वभौम भट्टाचार्य तथा गोपीनाथ आचार्य से प्रारम्भ होती है) काशी मिश्र, प्रद्युम्न मिश्र, तथा भवानन्द राय के नाम पाँचवें, छठे तथा सातवें स्थान पर थे। भगवान् चैतन्य को इनसे मिलकर अति आनन्द होता था।

तात्पर्य

जगन्नाथपुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु काशी मिश्र के घर पर रहते थे, जो राजपुरोहित थे। बाद में इस घर के उत्तराधिकारी हुए वक्रेश्वर पण्डित और फिर उनके शिष्य गोपाल गुरु गोस्वामी हुए, जिन्होंने वहाँ राधाकान्त-विग्रह की स्थापना की। गौरगणोद्देश-दीपिका (193) के अनुसार काशी

मिश्र पूर्वजन्म में मथुरा की कुब्जा थे। प्रद्युम्न मिश्र उड़ीसा के निवासी तथा चैतन्य महाप्रभु के महान् भक्त थे। प्रद्युम्न मिश्र ब्राह्मण-कुल में जन्मे थे और रामानन्द राय ब्राह्मणेतर कुल में; फिर भी चैतन्य महाप्रभु ने प्रद्युम्न मिश्र को सलाह दी कि वे रामानन्द राय से उपदेश लें। इस घटना का वर्णन अन्त्यलीला के पाँचवें अध्याय में मिलता है।

भवानन्द राय श्रीरामानन्द राय के पिता थे। वे आलालनाथ (ब्रह्मगिरि) के निवासी थे, जो जगन्नाथ पुरी से लगभग 12 मील पश्चिम में है। वे जाति से उड़ीसा की करण जाति के थे, जिसके सदस्यों को कभी कायस्थ और कभी शूद्रों के रूप में जाना जाता था, किन्तु वे जगन्नाथ पुरी के राजा प्रतापरुद्र के अधीन मद्रास के प्रशासक थे।

आलिङ्गन करि' ताँरे बलिल वचन।

तुमि पाण्डु, पञ्च-पाण्डवतोमार नन्दन॥ 132॥

आलिङ्गन करि'-आलिंगन करके; ताँरे–उसके; बलिल–कहा; वचन–ये वचन; तुमि-तुम; पाण्डु–पाण्डु में; पञ्च–पाँच; पाण्डव-पाण्डव; तोमार तुम्हारे; नन्दन-पुत्र।

अनुवाद

महाप्रभु ने भवानन्द राय का आलिंगन करते हुए बतलाया, "तुम पहले पाण्डु रूप में और तुम्हारे पाँचों पुत्र पाँचों पाण्डवों के रूप में प्रकट हुए थे।"

रामानन्द राय, पट्टनायक गोपीनाथ।

कलानिधि, सुधानिधि, नायक वाणीनाथ॥133॥

रामानन्द राय-रामानन्द राय; पट्टनायक गोपीनाथ-पट्टनायक गोपीनाथ; कलानिधि-कलानिधि; सुधानिधि–सुधानिधि; नायक वाणीनाथ–नायक वाणीनाथ।

अनुवाद

भवानन्द राय के पाँच पुत्र थे-रामानन्द राय, पट्टनायक गोपीनाथ, कलानिधि, सुधानिधि और नायक वाणीनाथ।

एइ पञ्च पुत्र तोमार मोर प्रियपात्र ।

रामानन्द सह मोर देह-भेद मात्र ॥134॥

एइ-ये; पञ्च–पाँच; पुत्र-पुत्र; तोमार-तुम्हारे; मोर-मेरे; प्रिय-पात्र-अत्यन्त प्रिय; रामानन्द सह-रामानन्द राय के साथ; मोर-मेरा; देह-भेद-शारीरिक भेद; मात्र-मात्र।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भवानन्द राय से कहा, "तुम्हारे पाँचों पुत्र मेरे प्रिय भक्त हैं। रामानन्द राय और हम दोनों एक हैं, भले ही हमारे शरीर अलग हैं।"

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (120-24) में बतलाया गया है कि रामनन्द राय पूर्वजन्म में अर्जुन थे। वे ललिता गोपी के भी अवतार माने जाते हैं और कुछ लोग इन्हें विशाखा देवी के अवतार मानते हैं। वे चैतन्य महाप्रभु के परम अन्तरंग भक्त थे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा था, "यद्यपि मैं संन्यासी हूँ, किन्तु जब मैं किसी स्त्री को देखता हूँ, तो कभी-कभी मेरा मन विचलित हो जाता है। किन्तु रामानन्द मुझ से भी बढ़कर है, क्योंकि वह स्त्री का स्पर्श करने पर भी विचलित नहीं होता।" इस

प्रकार से केवल रामानन्द स्त्री का स्पर्श कर सकते थे; अन्य किसी को उनकी नकल नहीं करनी चाहिए। दुर्भाग्यवश कुछ ऐसे धूर्त हैं, जो रामानन्द राय के कार्यों की नकल करते हैं। उनके बारे में आगे कुछ न कहना ही उत्तम होगा।

श्री चैतन्य महाप्रभु की अन्त्यलीलाओं में रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर दोनों ही महाप्रभु की कृष्ण-विरह की भावना को शान्त करने के लिए श्रीमद्भागवत तथा अन्य ग्रन्थों से श्लोक सुनाते थे। जब चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत गये, तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने उन्हें सलाह दी थी कि वे रामानन्द राय से अवश्य मिलें, क्योंकि उन्हें कृष्ण तथा गोपियों के युगल प्रेम की सर्वाधिक जानकारी थी। दक्षिण भारत की यात्रा के दौरान भगवान् चैतन्य गोदावरी नदी के तट पर रामानन्द राय से मिले, जहाँ लम्बी वार्ता के दौरान महाप्रभु ने शिष्य के रूप में रामानन्द राय से उपदेश ग्रहण किया। अन्त में महाप्रभु ने कहा, "हे प्रिय रामानन्द राय, तुम और मैं दोनों ही पागल हैं, अतएव हम दोनों समान भावभूमि पर मिल सके।" महाप्रभु ने रामानन्द राय को सलाह दी कि वे अपनी सरकारी नौकरी त्यागकर जगन्नाथ पुरी आकर उनके साथ रहें। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु ने महाराज प्रतापरुद्र से भेंट करने से मना कर दिया क्योंकि वे राजा थे, किन्तु रामानन्द राय ने वैष्णव विधि द्वारा महाप्रभु तथा राजा की भेंट कराई। इसका वर्णन मध्यलीला (अध्याय 12 श्लोक 41-57) में मिलता है। श्री रामानन्द राय महाप्रभु द्वारा रथयात्रा के बाद की जलक्रीड़ा लीला के समय उपस्थित थे।

श्री रामानन्द राय तथा श्री सनातन गोस्वामी के त्याग को श्री चैतन्य महाप्रभु बराबर मानते थे, क्योंकि यद्यपि श्री रामानन्द राय सरकारी नौकरी में लगे गृहस्थ थे और श्री सनातन गोस्वामी सारे भौतिक कार्यों से विरक्त होकर संन्यासी थे, किन्तु दोनों ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सेवक थे और वे अपने सारे कार्यों के केन्द्र में कृष्ण को रखते थे। श्री रामानन्द राय उन साढ़े तीन पुरुषों में से थे जिनसे महाप्रभु कृष्णभावनामृत के अत्यन्त रहस्यमय विषयों पर बातें करते थे। चैतन्य महाप्रभु ने

प्रद्युम्न मिश्र को सलाह दी थी कि यदि कृष्ण-विज्ञान सीखना है, तो श्री रामानन्द राय से सीखें। जिस तरह कृष्ण-लीला में सुबल सदैव राधारानी के साथ आचार-व्यवहार में श्रीकृष्ण की सहायता करते थे, उसी तरह रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु की सहायता, कृष्ण के विरह-भाव का अनुभव करते समय करते थे। श्री रामानन्द राय जगन्नाथ-वल्लभ नाटक के रचयिता थे।

प्रतापरुद्र राजा, आर ओढ़ कृष्णानन्द ।

परमानन्द महापात्र, ओढ़ शिवानन्द ॥ 135 ॥

भगवानाचार्य, ब्रह्मानन्दाख्य भारती ।

श्री-शिखि माहिति, आर मुरारि माहिति ॥ 136॥

प्रतापरुद्र राजा-उड़ीसा के राजा प्रतापरुद्र; आर-तथा; ओढ़ कृष्णानन्द–उड़िया भक्त कृष्णानन्द; परमानन्द महापात्र-परमानन्द महापात्र; ओढ़ शिवानन्द–उड़िया के शिवानन्द; भगवान् आचार्य-भगवान् आचार्य; ब्रह्मानन्द-आख्य भारती–ब्रह्मानन्द भारती नामक शिष्य; श्री-शिखि माहिति-श्री शिखि माहिति; आर-तथा; मुरारि माहिति–मुरारि माहिति।

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में रह रहे थे, तब उड़ीसा के राजा प्रतापरुद्र, उड़िया-भक्त कृष्णानन्द तथा शिवानन्द, परमानन्द महापात्र, भगवान् आचार्य, ब्रह्मानन्द भारती, श्री शिखि माहिति तथा मुरारि माहिति निरन्तर उनका साथ देते थे।

तात्पर्य

प्रतापरुद्र महाराज गंगा राजघराने के थे, जिनकी राजधानी कटक में थी। वे उड़ीसा के सम्राट थे और चैतन्य महाप्रभु के महान् भक्त थे। वे रामानन्द राय तथा सार्वभौम भट्टाचार्य के कहने पर महाप्रभु की निजी सेवा में लग सके। गौरगणोद्देश-दीपिका (118) में कहा गया है कि हजारों वर्ष पूर्व जिन राजा इन्द्रद्युम्न ने जगन्नाथ मन्दिर की स्थापना की थी, उन्होंने ही श्री चैतन्य महाप्रभु के काल में महाराज प्रतापरुद्र के रूप में अपने ही परिवार में पुनः जन्म लिया। महाराज प्रतापरुद्र राजा इन्द्र के समान ही शक्तिशाली थे। चैतन्य-चन्द्रोदय नाटक इन्हीं के निर्देशन में लिखा गया था।

चैतन्य-भागवत (अन्त्य खण्ड, अध्याय 5) में परमानन्द महापात्र का वर्णन इस प्रकार किया गया है : "परमानन्द महापात्र उन भक्तों में से थे, जिनका जन्म उड़ीसा में हुआ था और जिन्होंने महाप्रभु को अपना सर्वस्व माना। वे माधुर्य भाव में सदैव चैतन्य महाप्रभु का चिन्तन करते रहे।" एक प्रकाण्ड विद्वान भगवान् आचार्य थे, जो पहले हालिसहर में रहते थे, किन्तु बाद में अपना सर्वस्व त्यागकर महाप्रभु के साथ जगन्नाथ पुरी में रहने लगे थे। महाप्रभु के साथ उनका गोपबालकों जैसा सख्य-सम्बन्ध था। वे स्वरूप गोसांई के प्रति मैत्री भाव रखते थे, किन्तु महाप्रभु के चरणकमलों में पूरी तरह समर्पित थे। वे कभी-कभी महाप्रभु को अपने घर आमंत्रित करते रहते थे।

भगवान् आचार्य अत्यन्त उदार एवं सरल थे। उनके पिता शतानन्द खान पूरी तरह से भौतिकतावादी थे और उनका छोटा भाई गोपाल भट्टाचार्य कट्टर मायावादी दार्शनिक था, जिसने गहन अध्ययन कर रखा था। जब उनका छोटा भाई गोपाल भट्टाचार्य जगन्नाथ पुरी आया तो वे उससे मायावादी दर्शन के विषय में सुनना चाह रहे थे, किन्तु स्वरूप दामोदर ने उन्हें ऐसा करने से मना कर दिया और बात वहीं समाप्त हो गई। एक बार भगवान् आचार्य का एक बंगाली मित्र एक ऐसा नाटक सुनाना चाहता था, जो उसने भक्ति के नियमों के विरुद्ध लिखा था, उसे भगवान् आचार्य चैतन्य महाप्रभु को सुनवाना चाहते थे, किन्तु महाप्रभु के सचिव श्री स्वरूप दामोदर ने ऐसा करने

की अनुमति नहीं दी। बाद में जब स्वरूप दामोदर ने उस नाटक के अनेक दोषों एवं भक्ति के निष्कर्ष से उसकी असंगतियों की ओर ध्यान दिलाया, तो लेखक ने अपने दोषों का अनुभव करते हुए कृपा-याचना की और वह स्वरूप दामोदर की शरण में आ गया। इसका वर्णन अन्त्यलीला (अध्याय 5, श्लोक 91-158) में हुआ है।

गौरगणोद्देश-दीपिका (189) में कहा गया है कि शिखि माहिति पूर्वजन्म में श्रीमती राधारानी की सहायिका थे, जिसका नाम रागलेखा था। उनकी बहन माधवी भी कलाकेलि नामक राधारानी की सहायिका थी। शिखि माहिति, माधवी तथा उनका भाई मुरारि माहिति श्री चैतन्य महाप्रभु के अनन्य भक्त थे, जिन्हें वे एक क्षण के लिए भी नहीं भूलते नहीं थे। उड़िया भाषा में चैतन्य-चरित-महाकाव्य नामक ग्रंथ है, जिसमें शिखि माहिति विषयक अनेक कथाएँ हैं। एक कथा उनके एक भावमय स्वप्न देखने के सम्बन्ध में है। शिखि माहिति सदैव मन से महाप्रभु की सेवा में रत रहते थे। एक रात जब वे ऐसी सेवा कर रहे थे, तब वे सो गये और वे सो रहे थे, तभी उनके भाई तथा बहन उन्हें जगाने आये। उस समय वे पूर्ण भावावेश में थे, क्योंकि वे यह अद्भुत स्वप्न देख रहे थे कि चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर दर्शन करने के लिए गये हैं और वे वहाँ जगन्नाथ के शरीर में प्रवेश करके पुनः उससे निकलकर जगन्नाथ विग्रह का दर्शन कर रहे हैं। अतएव ज्योंही वे जगे, तो उन्होंने भाई-बहन दोनों का आलिंगन करते हुए कहा, "मेरे प्रिय भाई तथा बहन! मैंने एक अद्भुत सपना देखा है, जिसे मैं तुम लोगों को अभी बताऊँगा। माता शची के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलाप सचमुच अत्यन्त अद्भुत हैं। मैंने देखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर गये, तो वे जगन्नाथ के शरीर में प्रवेश कर रहे थे और उनमें से पुनः बाहर आ रहे थे। अब भी मैं वही सपना देख रहा हूँ! क्या आप के विचार में मैं पागल हो गया हूँ? मैं अब भी वही स्वप्न देख रहा हूँ। और सबसे विचित्र बात तो यह है कि मैं ज्योंही महाप्रभु के निकट आया, उन्होंने अपनी लम्बी भुजाओं में भरकर मेरा

आलिंगन किया।" जब शिखि माहिति इस तरह अपने भाई-बहन से बातें कर रहे थे, तब उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई और उनके नेत्रों में अश्रु भर आये। फलत: दोनों भाई तथा बहन जगन्नाथ मन्दिर गये और वहाँ उन्होंने जगमोहन कीर्तन हाल में भगवान् श्री चैतन्य को देखा। महाप्रभु श्री जगन्नाथ-विग्रह के सौन्दर्य को उसी तरह देख रहे थे, जैसाकि शिखि माहिती ने स्वप्न में देखा था। महाप्रभु इतने वदान्य थे कि उन्होंने यह कहते हुए शिखि माहिति का आलिंगन किया, "तुम तो मुरारि के बड़े भाई हो।" इस तरह आलिंगित होने पर शिखि माहिति को दिव्य आनन्द का अनुभव हुआ। इस तरह वे, उनका भाई तथा उनकी बहन सदैव महाप्रभु की सेवा में लगे रहने लगे। शिखि माहिति के छोटे भाई मुरारि माहिति का वर्णन मध्यलीला (अध्याय 10, श्लोक 44) में मिलता है।

माधवी-देवी–शिखि-माहितिर भगिनी ।

श्री-राधार दासी-मध्ये याँर नाम गणि ॥ 137॥

माधवी-देवी-माधवीदेवी; शिखि-माहितिर–शिखि माहिति की; भगिनी-बहन; श्री-राधार–श्रीमती राधारानी की; दासी-मध्ये-दासियों के मध्य; याँर-जिनका; नाम-नाम; गणि-गिना जाता है।

अनुवाद

माधवीदेवी प्रमुख भक्तों में सत्रहवीं थीं और शिखि माहिति की छोटी बहन थीं। उन्हें पूर्व जन्म में श्रीमती राधारानी की दासी के रूप में माना जाता है।

तात्पर्य

चैतन्य-चरितामृत अन्त्यलीला (अध्याय 2, श्लोक 104-106) में माधवीदेवी का वर्णन हुआ है। श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें श्रीमती राधारानी की एक दासी मानते थे। इस संसार में श्री चैतन्य

महाप्रभु के साढ़े तीन विश्वासपात्र भक्त थे। तीन थे स्वरूप गोसांई, श्री रामानन्द राय तथा शिखि माहिति और शिखि माहिति की बहन माधवी देवी स्त्री होने के नाते आधी मानी जाती थीं। इस तरह महाप्रभु के साढ़े तीन विश्वासपात्र भक्त माने जाते हैं।

ईश्वर-पुरीर शिष्य–ब्रह्मचारी काशीश्वर ।

श्री गोविन्द नाम ताँर प्रिय अनुचर ॥ 138॥

ईश्वर-पुरीर शिष्य-ईश्वर पुरी के शिष्य; ब्रह्मचारी काशीश्वर–ब्रह्माचारी काशीश्वर; श्री-गोविन्द-श्री गोविन्द; नाम-नाम; ताँर-उनका; प्रिय-अत्यन्त प्रिय; अनुचर-अनुयायी।

अनुवाद

ब्रह्मचारी काशीश्वर ईश्वर पुरी के शिष्य थे और उनके ही प्रिय शिष्यों में से दूसरे श्री गोविन्द थे।

तात्पर्य

गोविन्द श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी सेवक थे। गौरगणोद्देश-दीपिका (137) में कहा गया है कि पूर्वजन्म में वृन्दावन के शृंगार तथा भंगुर नामक सेवक श्री चैतन्य महाप्रभु की लीला में काशीश्वर तथा गोविन्द बने। गोविन्द बड़े-बड़े संकट आने पर भी महाप्रभु की सेवा में लगे रहते थे।

ताँर सिद्धि-काले दोंहे ताँर आज्ञा पात्रा ।

नीलाचले प्रभु-स्थाने मिलिल आसिया ॥ 139॥

ताँर सिद्धि-काले-ईश्वरपुरी के तिरोधान के समय; दोंहे-दोनों; ताँर-उनकी; आज्ञा-आज्ञा; पाञा-पाकर; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में प्रभु-स्थाने-चैतन्य महाप्रभु के पास; मिलिल-मिले; आसिया-वहाँ आकर।

अनुवाद

नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) के प्रमुख भक्तों की सूची में काशीश्वर अठारहवें तथा गोविन्द उन्नीसवें थे। ईश्वर पुरी के तिरोधान के समय दी गई आज्ञा के अनुसार वे दोनों श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी आये थे।

गुरुर सम्बन्धे मान्य कैल दुँहाकारे ।

ताँर आज्ञा मानि' सेवा दिलेन दोंहारे ॥140॥

गुरुर सम्बन्धे-उनके आध्यात्मिक गुरु के सम्बन्ध में; मान्य-सम्मानित किया; कैल-किया; दुँहाकारे-उन दोनों को; ताँर आज्ञा-उनकी आज्ञा; मानि'–मानकर; सेवा–सेवा; दिलेन-उन्हें दी; दोंहारे–उन दोनों को।

अनुवाद

काशीश्वर तथा गोविन्द दोनों श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरुभाई थे। अतएव ज्योंही वे दोनों वहाँ पहुँचे, तो महाप्रभु ने उनका यथोचित सत्कार किया। चूँकि ईश्वर पुरी ने उन्हें आदेश दिया था कि वे चैतन्य महाप्रभु की निजी सेवा करें, अतएव महाप्रभु ने उनकी सेवा स्वीकार कर ली।

अङ्ग-सेवा गोविन्देरे दिलेन ईश्वर ।

जगन्नाथ देखिते चलेन आगे काशीश्वर ॥ 141॥

अङ्ग-सेवा-शरीर की सेवा; गोविन्देरे–गोविन्द को; दिलेन-उन्होंने दी; ईश्वर–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; जगन्नाथ-जगन्नाथ अर्चाविग्रह; देखिते-देखने जाते समय; चलेन-चलते; आगे-आगे आगे; काशीश्वर–काशीश्वर।

अनुवाद

गोविन्द श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर की देखभाल करते और जब महाप्रभु मन्दिर में जगन्नाथजी का दर्शन करने जाते, तो काशीश्वर महाप्रभु के आगे-आगे चलते थे।

अपरश याय गोसाञि मनुष्य-गहने ।

मनुष्य ठेलि' पथ करे काशी बलवाने ॥142॥

अपरश-बिना किसके छुए; याय-जाते; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु; मनुष्य-गहने-भीड़ में; मनुष्य थेलि'–भीड़ को धकेलते हुए; पथ करेमार्ग साफ करते; काशी-काशीश्वर; बलवाने-बहुत बलशाली।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर जाते, तो काशीश्वर अत्यन्त बलिष्ठ होने के कारण अपने हाथों से भीड़ को एक ओर करते, जिससे महाप्रभु किसी को स्पर्श किये बिना जा सकें।

रामाइ-नन्दाइ–दोहे प्रभुर किङ्कर ।

गोविन्देर सङ्गे सेवा करे निरन्तर ॥143॥

रामाइ-नन्दाइ-रामाई और नन्दाई; दोहे-दोनों; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; किङ्कर-सेवक; गोविन्देर–गोविन्द के साथ; सङ्गे-उसके संग; सेवा–सेवा; करे-की; निरन्तर-चौबीस घण्टे प्रतिदिन।

अनुवाद

रामाइ तथा नन्दाइ जगन्नाथ पुरी के महत्त्वपूर्ण भक्तों में बीसवें तथा इक्कीसवें थे। महाप्रभु की सेवा करने में गोविन्द की वे चौबीसों घण्टे सहायता करते थे।

बाइश घड़ा जल दिने भरेन रामाई।

गोविन्द-आज्ञाय सेवा करेन नन्दाइ ॥144॥

बाइश–बाईस; घड़ा-बड़े घड़े; जल-जल; दिन-प्रतिदिन; भरेन-भरते; रामाइ-रामाई; गोविन्द-आज्ञाय-गोविन्द की आज्ञा से; सेवा–सेवा; करेन-करते; नन्दाइ-नन्दाई।

अनुवाद

रामाइ प्रतिदिन बाईस बड़े जल पात्रों में पानी भरते थे और नन्दाइ स्वयं गोविन्द की सहायता करते थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (139) में बतलाया गया है कि पूर्वकाल में भगवान् कृष्ण को दूध तथा जल पहुँचाने वाले दो नौकर महाप्रभु की लीलाओं में रामाइ तथा नन्दाइ बने।

कृष्णदास नाम शुद्ध कुलीन ब्राह्मण।

यारे सड़े लैया कैला दक्षिण गमन ॥145॥

कृष्णदास-कृष्णदास; नाम-नामक; शुद्ध-शुद्ध; कुलीन–कुलीन; ब्राह्मण-ब्राह्मण; यारे-जिसको; सङ्गे-साथ; लैया–लेकर; कैला–किया; दक्षिण-दक्षिण भारत; गमन-यात्रा।

अनुवाद

बाईसवें भक्त कृष्णदास एक विशुद्ध तथा प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। जब महाप्रभु दक्षिण भारत की यात्रा कर रहे थे, तो उन्होंने कृष्णदास को अपने साथ ले लिया था।

तात्पर्य

कृष्णदास का वर्णन मध्यलीला के सातवें तथा नवें अध्यायों में हुआ है। वह महाप्रभु का जलपात्र उठाने के लिए उनके साथ गया। मालाबार राज्य में भट्टथारि सम्प्रदाय के सदस्यों ने स्त्री-लोभ देकर कृष्णदास को वशीभूत करना चाहा था, तब महाप्रभु ने उन्हें पथभ्रष्ट होने से बचा लिया था। किन्तु जब महाप्रभु जगन्नाथ पुरी लौट आये, तो उन्होंने आज्ञा दी कि कृष्णदास उनसे अलग रहे; क्योंकि महाप्रभु कभी-भी ऐसे व्यक्ति की संगति को अनुकूल नहीं पाते थे, जो स्त्री द्वारा आकृष्ट हो जाए। इस तरह कृष्णदास को महाप्रभु की व्यक्तिगत संगति से अलग होना पड़ा।

बलभद्र भट्टाचार्य–भक्ति अधिकारी ।

मथुरा-गमने प्रभुर येंहो ब्रह्मचारी ॥ 146 ॥

बलभद्र भट्टाचार्य बलभद्र भट्टाचार्य; भक्ति अधिकारी-प्रमाणित भक्त; मथुरा-गमने-मथुरा की यात्रा करते समय; प्रभुर-महाप्रभु का; येंहो-जो; ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारी की भूमिका निभाई।

अनुवाद

बलभद्र भट्टाचार्य तेईसवें प्रमुख पार्षद थे, जो प्रामाणिक भक्त थे और जिन्होंने महाप्रभु की मथुरा की यात्रा के समय उनके ब्रह्मचारी का कार्य किया था।

तात्पर्य

बलभद्र भट्टाचार्य ने ब्रह्मचारी का कार्य किया अर्थात् वे एक संन्यासी के निजी सहायक बने। संन्यासी भोजन नहीं पकाता। सामान्यतया एक संन्यासी किसी गृहस्थ के घर प्रसाद ग्रहण करता है और इस सम्बन्ध में ब्रह्मचारी उसकी सहायता करता है। संन्यासी गुरु माना जाता है और ब्रह्मचारी उसका शिष्य। जब महाप्रभु मथुरा तथा वृन्दावन की यात्रा पर थे, तब बलभद्र भट्टाचार्य उनके लिए ब्रह्मचारी का कार्य करते थे।

बड़ हरिदास, आर छोट हरिदास ।

दुइ कीर्तनीया रहे महाप्रभुर पाश ॥147॥

बड़ हरिदास-बड़ा हरिदास; आर-और; छोट हरिदास–छोटा हरिदास; दुइ कीर्तनीया-दोनों अच्छे गायक थे; रहे-रहे; महा-प्रभुर-- भगवान् चैतन्य महाप्रभु; पाश-के साथ।

अनुवाद

नीलाचल में चौबीसवें और पचीसवें भक्त, बड़ हरिदास तथा छोट हरिदास, अच्छे गायक थे, जो सदैव महाप्रभु के साथ रहते थे।

तात्पर्य

जैसाकि अन्त्यलीला अध्याय 2 में बतलाया गया है, छोटा हरिदास को बाद में महाप्रभु की टोली से निकाल दिया गया था।

रामभद्राचार्य, आर ओढ़ सिंहेश्वर।

तपन आचार्य, आर रघु, नीलाम्बर॥ 148॥

रामभद्राचार्य–रामभद्र आचार्य; आर-और; ओढ़-उड़ीसा का निवासी; सिंहेश्वर-सिंहेश्वर; तपन आचार्य–तपन आचार्य; आर रघु-और दूसरा रघुनाथ; नीलाम्बर-नीलाम्बर।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में चैतन्य महाप्रभु के साथ रहने वाले भक्तों में रामभद्राचार्य छब्बीसवें, उड़िया सिंहेश्वर सत्ताइसवें, तपन आचार्य अट्ठाइसवें, रघुनाथ भट्टाचार्य उन्तीसवें तथा नीलाम्बर तीसवें भक्त थे।

सिङ्गाभट्ट, कामाभट्ट, दन्तुर शिवानन्द।

गौड़े पूर्व भृत्य प्रभुर प्रिय कमलानन्द॥ 149॥

सिङ्गाभट्ट–सिंहभट्ट; कामाभट्ट-कामाभट्ट; दन्तुर शिवानन्द-दन्तुर शिवानन्द; गौड़े-बंगाल में; पूर्व–पहले समय में; भृत्य-सेवक; प्रभुर–महाप्रभु का; प्रिय-अत्यन्त प्रिय; कमलानन्द-कमलानन्द।

अनुवाद

सिंगाभट्ट, कामाभट्ट, शिवानन्द तथा कमलानन्द क्रमशः इकतीसवें बत्तीसवें, तैंतीसवें और चौंतीसवें भक्त थे। ये सभी पहले बंगाल में महाप्रभु की सेवा करते थे, किन्तु बाद में बंगाल छोड़कर महाप्रभु के साथ रहने जगन्नाथ पुरी चले गये।

अच्युतानन्द—अद्वैत-आचार्य-तनय ।

नीलाचले रहे प्रभुर चरण आश्रय ॥150॥

अच्युतानन्द-अच्युतनन्द; अद्वैत-आचार्य-तनय-अद्वैत आचार्य के पुत्र; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; रहे-रहते; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; चरण-चरणकमल; आश्रय-आश्रय लेकर।

अनुवाद

पैंतीसवें भक्त अच्युतानन्द थे, जो अद्वैत आचार्य के पुत्र थे। वे भी जगन्नाथ पुरी में महाप्रभु के चरणकमलों की शरण में रहे।

तात्पर्य

आदिलीला (अध्याय 12, श्लोक 13) में अच्युतानन्द के विषय में उल्लेख है।

निर्लोम गङ्गादास, आर विष्णुदास ।

एइ सबेर प्रभु-सङ्गे नीलाचले वास ॥ 151॥

निर्लोम गङ्गादास–निर्लोम गंगादास; आर-और; विष्णुदास-विष्णुदास; एइ सबेर-वे सब; प्रभु-सङ्गे–चैतन्य महाप्रभु के साथ; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; वास-निवास।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु के सेवकों के रूप में रहने वाले भक्तों में निर्लोम गंगादास तथा विष्णुदास छत्तीसवें तथा सैंतीसवें भक्त थे।

वाराणसी-मध्ये प्रभुर भक्त तिन जन ।

चन्द्रशेखर वैद्य, आर मिश्र तपन ॥ 152॥

रघुनाथ भट्टाचार्य–मिश्रर नन्दन ।

प्रभु यबे काशी आइला देखि’ वृन्दावन ॥153॥

चन्द्रशेखर-गृहे कैल दुइ मास वास ।

तपन-मिश्रेर घरे भिक्षा दुइ मास ॥154॥

वाराणसी-मध्ये-वाराणसी में; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-भक्त; तिन जन-तीन व्यक्ति; चन्द्रशेखर वैद्य-चन्द्रशेखर नामक क्लर्क; आर-और; मिश्र तपन-तपन मिश्र; रघुनाथ भट्टाचार्य-रघुनाथ भट्टाचार्य; मिशेर नन्दन–तपन मिश्र का पुत्र; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यबे-जब; काशी-वाराणसी; आइला–आये; देखि’–देखकर; वृन्दावन-वृन्दावन नामक पावन स्थान; चन्द्रशेखर गृहे-चन्द्रशेखर वैद्य के घर में; कैल-किया; दुइ मास-दो मास के लिए; वास–निवास; तपन-मिश्रेर–तपन मिश्र के; घरे-घर में; भिक्षा-प्रलाद स्वीकार किया; दुइ मास-दो मास के लिए।

अनुवाद

वाराणसी के प्रमुख भक्तों में वैद्य चन्द्रशेखर, तपन मिश्र तथा तपन मिश्र के पुत्र रघुनाथ भट्टाचार्य थे। जब भगवान् चैतन्य वृन्दावन से होकर वाराणसी आये, तब वे दो मास तक चन्द्रशेखर वैद्य के घर रहे और तपन मिश्र के घर प्रसाद ग्रहण करते रहे।

तात्पर्य

जब श्री चैतन्य महाप्रभु बंगाल में थे, तब तपन मिश्र आध्यात्मिक उन्नति के विषय में चर्चा करने उनके पास आये थे। तब महाप्रभु ने उन पर कृपा करके उन्हें हरिनाम दीक्षा दी थी। उसके बाद

महाप्रभु की आज्ञा से तपन मिश्र वाराणसी में रहे और जब महाप्रभु वाराणसी आये, तब वे तपन मिश्र के घर रुके।

रघुनाथ बाल्ये कैल प्रभुर सेवन।

उच्छिष्ट-मार्जन आर पाद-संवाहन ॥ 155 ॥

रघुनाथ–तपन मिश्र के पुत्र रघुनाथ; बाल्ये-बाल्यावस्था में; कैल-की; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु की; सेवन–सेवा करके; उच्छिष्ट-मार्जन–बर्तन मांजकर; आर-और; पाद-संवाहन-चरण दबाकर।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु तपन मिश्र के घर ठहरे हुए थे, तब रघुनाथ भट्ट, जो उस समय बालक थे, झूठे बर्तन माँजते थे और उनके पाँव दबाते थे।

बड़ हैले नीलाचले गेला प्रभुर स्थाने।

अष्ट-मास रहिल भिक्षा देन कोन दिने ॥156॥

बड़ हैले–जब वे युवक हो गये; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; गेला-गये; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; स्थाने–स्थान पर; अष्ट-मास-आठ मास; रहिल-रहे; भिक्षा-प्रसाद; देन–दिया; कोन दिने-कुछ दिन।

अनुवाद

जब रघुनाथ बड़े हो गये, तब वे श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करने जगन्नाथ पुरी गये और वहाँ आठ मास तक रहे। कभी-कभी वे महाप्रभु को प्रसाद अर्पण करते थे।

प्रभुर आज्ञा पाञा वृन्दावनेरे आइला।

आसिया श्री-रूप-गोसाञिर निकटे रहिला॥ 157॥

प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा-आज्ञा; पाञा-पाकर; वृन्दावनेरे-वृन्दावन में; आइला–वे आये; आसिया-वहाँ आकर; श्री-रूप-गोसाञिर-श्रील रूप गोस्वामी के; निकटे-उनके आश्रय में; रहिला-रहे।

अनुवाद

बाद में महाप्रभु की आज्ञा से रघुनाथ वृन्दावन चले गये और वहाँ श्रील रूप गोस्वामी की शरण में रहे।

ताँर स्थाने रूप-गोसाञि शुनेन भागवत।

प्रभुर कृपाय तेंहो कृष्ण-प्रेमे मत्त॥158॥

ताँर स्थाने-उसके स्थान पर; रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी; शुनेन–सुनी; भागवत-श्रीमद्भागवत की कथा; प्रभुर कृपाय-चैतन्य महाप्रभु की कृपा से; तेंहो-वे; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम में; मत्त-सदा उन्मत्त।

अनुवाद

जब वे श्रील रूप गोस्वामी के साथ ठहरे थे, तो उनका एक ही काम था-श्रीमद्भागवत बाँचकर उन्हें सुनाना। इसके फलस्वरूप उन्हें कृष्ण-प्रेम की पूर्णता प्राप्त हुई, जिसके कारण वे सदैव उन्मत्त रहा करते थे।

तात्पर्य

रघुनाथ भट्टाचार्य अथवा रघुनाथ भट्ट गोस्वामी तपन मिश्र के पुत्र थे और छ: गोस्वामियों में से एक थे। उनका जन्म लगभग 1425 शकाब्द (1503 ई.) में हुआ था। वे श्रीमद्भागवत बाँचने में पटु थे और अन्त्यलीला के अध्याय 13 में बतलाया गया है कि वे भोजन बनाने में भी पटु थे-वे जो भी पकाते थे, वह अमृततुल्य होता था। श्री चैतन्य महाप्रभु उनके पकाये भोजन को खाकर अत्यन्त प्रसन्न होते थे, और रघुनाथ भट्ट महाप्रभु का शेष बचा प्रसाद खाया करते थे। रघुनाथ भट्टाचार्य आठ मास तक जगन्नाथ पुरी में रहे, जिसके बाद भगवान् चैतन्य ने उन्हें वृन्दावन जाकर श्रील रूप गोस्वामी के साथ रहने का आदेश दिया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ भट्टाचार्य से विवाह न करने अपितु ब्रह्मचारी रहने और सदैव श्रीमद्भागवत का पाठ करने के लिए भी कहा। इस तरह वे वृन्दावन चले गये, जहाँ वे श्रील रूप गोस्वामी को श्रीमद्भागवत सुनाया करते थे। वे श्रीमद्भागवत सुनाने में इतने दक्ष थे कि हर श्लोक को तीन मधुर स्वरों में सुनाते थे। जब रघुनाथ भट्ट गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ थे, तब महाप्रभु ने उन्हें जगन्नाथ-विग्रह को अर्पित पान तथा चौदह बालिश्त लम्बी तुलसी की माला देकर आशीर्वाद दिया था। रघुनाथ भट्ट गोस्वामी का आदेश पाकर उनके एक शिष्य ने गोविन्द मन्दिर का निर्माण कराया। रघुनाथ भट्ट गोस्वामी ने गोविन्द-विग्रह के लिए सारे आभूषण दिये। वे कभी भी इधर-उधर की फालतू या सांसारिक बातें नहीं करते थे, अपितु चौबीसों घण्टे कृष्ण के विषय में श्रवण करते रहते थे। वे किसी वैष्णव की निन्दा सुनने की परवाह नहीं करते थे। यहाँ तक कि जब आलोचना करने के लिए अवसर होता, तब भी वे यही कहते कि चूँकि वैष्णवजन भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं, अतएव उनकी त्रुटियों की परवाह नहीं करनी चाहिए। बाद में रघुनाथ भट्ट गोस्वामी राधाकुण्ड के निकट एक छोटी कुटी में रहने लगे। गौरगणोद्देश-दीपिका (185) में कहा गया है कि रघुनाथ भट्ट गोस्वामी पूर्वजन्म में रागमंजरी नामक गोपी थे।

एइ-मत सङ्ख्यातीत चैतन्य-भक्त-गण ।

दिंमात्र लिखि, सम्यक्ना याय कथन ॥159॥

एइ-मत-इस प्रकार; सङ्ख्या -अतीत-अनगिनत; चैतन्य-भक्त-गण-प्रभु चैतन्य के भक्त; दिं-मात्र—मात्र एक भाग (मात्र कुछ); लिखि-मैं लिखता हूँ; सम्यक्-पूर्ण; ना–नहीं सकता; याय–सम्भव होना; कथन-व्याख्या करना।

अनुवाद

इस तरह मैं महाप्रभु के असंख्य भक्तों के एक अंश की ही सूची दे रहा हूँ। सबका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

एकैक-शाखाते लागे कोटि कोटि डाल ।

तार शिष्य-उपशिष्य, तार उपड़ाल ॥ 160॥

एक-एक-प्रत्येक में; शाखाते-शाखा; लागे-उगना; कोटि कोटि-करोड़ों; डाल-शाखाएँ; तार–उनके; शिष्य-शिष्य; उपशिष्य-उपशिष्य; तार-उनकी; उपड़ाल-उपशाखाएँ।

अनुवाद

वृक्ष की प्रत्येक शाखा से शिष्यों तथा प्रशिष्यों की करोड़ों उपशाखाएँ निकली हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा थी कि उनका सम्प्रदाय सारे विश्व में फैले। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा में अनेकानेक शिष्य-शाखाओं की नितान्त आवश्यकता है। उनके

सम्प्रदाय को केवल कुछ गाँवों में, या बंगाल या भारत में ही नहीं, अपितु सारे विश्व में फैलाना है। यह बड़े खेद की बात है कि उदासीन तथाकथित भक्त अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के सदस्यों की आलोचना करते हैं कि वे संन्यास ग्रहण करके विश्वभर में चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रसार कर रहे हैं। हम किसी की आलोचना करना नहीं चाहते, किन्तु क्योंकि वे इस आन्दोलन की त्रुटियाँ निकालते हैं, इसीलिए हमें सत्य बात कहनी पड़ती है। श्री चैतन्य महाप्रभु चाहते थे कि उनके भक्त सारे विश्व में हों, और श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर तथा श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने भी इसकी पुष्टि की है। उनकी इच्छा की पूर्ति के लिए ही इस्कॉन आन्दोलन सारे विश्व में फैल रहा है। श्री चैतन्य महाप्रभु के असली भक्तों को कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचार-कार्य की निन्दा करने के बदले इसके प्रसार में गर्व का अनुभव करना चाहिए।

सकल भरिया आछे प्रेम-फुल-फले ।

भासाइल त्रि-जगत्कृष्ण-प्रेम-जले ॥ 161॥

सकल-सब; भरिया–भर गई; आछे-वहाँ है; प्रेम-भगवत्-प्रेम; फुल-फूल; फले-फल; भासाइल-आप्लावित किया; त्रि-जगत्-सारे संसार को; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम के; जले-जल से।

अनुवाद

वृक्ष की प्रत्येक शाखा तथा उपशाखा अनेक फलों और फूलों से परिपूर्ण है। वे कृष्ण-प्रेम के जल से विश्व को आप्लावित करती हैं।

एक एक शाखार शक्ति अनन्त महिमा ।

‘सहस्र वदने’ यार दिते नारे सीमा ॥ 162॥

एक एक–प्रत्येक; शाखार–शाखा की; शक्ति-शक्ति; अनन्त-अनन्त; महिमा-महिमा; सहस्र वदने-सहस्र मुखों में; यार–जिसकी; दिते-देना; नारे-असम्भव है; सीमा-सीमा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की प्रत्येक शाखा की अनन्त आध्यात्मिक शक्ति और अनन्त महिमा है। यदि किसी के हजार मुख भी हों, तो भी उनके कार्यकलापों की सीमाओं का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं होगा।

सङ्क्षेपे कहिल महाप्रभुर भक्तगण।

समग्र बलिते नारे 'सहस्र-वदन' ॥ 163॥

सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिल-वर्णन किया; महाप्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गण-भक्त; समग्र-सब; बलिते-कहना; नारे–सम्भव नहीं; सहस्र-वदन- भगवान् शेष जिनके हजारों मुख हैं।

अनुवाद

मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के विभिन्न स्थानों के भक्तों का संक्षिप्त वर्णन किया है। हजार मुखों वाले शेष भगवान् भी उन सबकी सूची नहीं बना सकते।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 164॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ- श्री रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों पर; यार-जिनकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक पुस्तक; कहे वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए और सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा रखते हुए मैं, कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के दसवें अध्याय के अन्तर्गत चैतन्य-वृक्ष के मुख्य स्कंध की शाखाओं-उपशाखाओं का भक्तिवेदान्त-तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय ग्यारह

भगवान् नित्यानन्द के विस्तार

जिस प्रकार दसवें अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु की शाखाओं तथा उपशाखाओं का वर्णन किया गया है, उसी तरह इस ग्यारहवें अध्याय में श्री नित्यानन्द प्रभु की शाखाओं तथा उपशाखाओं की सूची दी जा रही है।

नित्यानन्द-पदाम्भोज-भृङ्गान्प्रेम-मधून्मदान् ।

नत्वाखिलान्तेषु मुख्या लिख्यन्ते कतिचिन्मया ॥1॥

नित्यानन्द-श्री नित्यानन्द प्रभु के; पद-अम्भोज-चरणकमल; भृङ्गान्–भ्रमर; प्रेम-भगवत्प्रेम के; मधु-शहद से; उन्मदान्-उन्मत्त; नत्वा प्रणाम करने के बाद; अखिलान्-उन सबको; तेषु-उनमें से; मुख्याः –प्रमुख; लिख्यन्ते-वर्णन किया जा रहा है; कतिचित्-उनमें से कुछ; मया-मुझसे।

अनुवाद

मैं श्री नित्यानन्द प्रभु के उन समस्त भक्तों को नमस्कार करता हूँ, जो उनके चरणकमलों के मधु को संचय करने वाले भौरों के समान हैं। नमस्कार करने के बाद उनमें से जो जो अत्यधिक प्रमुख हैं, उनका वर्णन करने का प्रयास करूँगा।

जय जय महाप्रभु श्री कृष्ण-चैतन्य ।

ताँहार चरणाश्रित येइ, सेइ धन्य ॥2॥

जय जय-जय जय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु को; श्री-कृष्ण-चैतन्य–श्रीकृष्ण चैतन्य के नाम से प्रख्यात; ताँहार चरण-आश्रित-वे सभी जिन्होंने उनके चरणकमलों में शरण ली है; येइ-कोई भी; सेइ-वह है; धन्य-धन्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! जिस किसी ने उनके चरणों की शरण ले ली है, वह धन्य है।

जय जय श्री-अद्वैत, जय नित्यानन्द ।

जय जय महाप्रभुर सर्व-भक्त-वृन्द ॥ 3 ॥

जय जय-जय हो; श्री-अद्वैत-श्री अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; नित्यानन्द-श्री नित्यानन्द प्रभु की; जय जय-जय हो; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; सर्व-सभी; भक्त-वृन्द-भक्तों की।

अनुवाद

श्री अद्वैत प्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

तस्य श्री कृष्ण-चैतन्य-सत्प्रेमामर-शाखिनः ।

ऊर्ध्व-स्कन्धावधूतेन्दोः शाखा-रूपान्गणान्नुमः ॥4॥

तस्य-उनका; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु; सत्-प्रेम-भगवान् के शाश्वत प्रेम का; अमर-अविनाशी; शाखिनः–वृक्ष का; ऊर्ध्व-अति ऊँची; स्कन्ध–शाखा; अवधूत-इन्दोः-श्री नित्यानन्द के; शाखा-रूपान्–विविध शाखाओं के रूप में; गणान्-भक्तों को; नुमः-मैं आदर देता हूँ।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के भगवत्प्रेम रूपी अमर वृक्ष की सबसे ऊपरी शाखा हैं। मैं उस सबसे ऊपरी शाखा की समस्त उपशाखाओं को सादर नमस्कार करता हूँ।

श्री-नित्यानन्द-वृक्षेर स्कन्ध गुरुतर ।

ताहाते जन्मिल शाखा-प्रशाखा विस्तर ॥5॥

श्री-नित्यानन्द-वृक्षेर-श्री नित्यानन्द रूपी वृक्ष की; स्कन्ध–मुख्य शाखा; गुरुतर-अत्यन्त भारी; ताहाते-उस शाखा से; जन्मिल-उगी; शाखा–शाखाएँ; प्रशाखा-उपशाखाएँ; विस्तर विस्तार।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य-वृक्ष की सर्वाधिक भारी शाखा हैं। उस शाखा से अनेक शाखाएँ तथा उपशाखाएँ निकलती हैं।

मालाकारेर इच्छा जले बाड़े शाखा-गण ।

प्रेम-फुल-फले भरि' छाइल भुवन ॥ 6॥

माला-कारेर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; इच्छा-जले-उनकी इच्छा रूपी जल से; बाड़े-बढ़ती हैं; शाखा-गण-शाखाएँ; प्रेम-भगवत्प्रेम; फुल-फले-फूल एवं फलों सहित; भरि'-भरकर; छाइल-ढक लिया; भुवन-सारे संसार को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के इच्छा-जल से सिंचित होकर ये सारी शाखाएँ तथा उपशाखाएँ असीम रूप से बढ़ गई हैं, और अपने फलों और फूलों से उन्होंने समस्त विश्व को आच्छादित कर लिया है।

असङ्ख्य अनन्त गण के करु गणन।

आपना शोधिते कहि मुख्य मुख्य जन ॥7॥

असङ्ख्य –अनगिनत; अनन्त-अनन्त; गण-भक्त; के-कौन; करु–सकता है; गणन-गिनना; आपना-स्वयं; शोधिते-शुद्धि के लिए; कहि-मैं कहता हूँ; मुख्य मुख्य-केवल प्रमुख; जन-व्यक्ति।

अनुवाद

भक्तों की ये शाखाएँ तथा उपशाखाएँ अगणनीय तथा असीम हैं। इनकी गिनती कौन कर सकता है? मैं अपनी निजी शुद्धि के लिए उनमें से जो सर्वाधिक प्रमुख हैं, उन्हीं की गिनती करने का प्रयास करूँगा।

तात्पर्य

मनुष्य को भौतिक नाम, यश या लाभ के लिए दिव्य विषय पर पुस्तकें या लेख नहीं लिखने चाहिए। दिव्य साहित्य का लेखन किसी वरिष्ठ अधिकारी (गुरुजन) के निर्देश के अन्तर्गत करना

चाहिए, क्योंकि यह भौतिक प्रयोजनों के लिए नहीं होता। यदि वह किसी गुरुजन के निर्देश में लिखने का प्रयास करता है, तो वह शुद्ध बन जाता है। समस्त कृष्णभावनामय कार्यों को निजी शुद्धि (आपना शोधिते) के लिए करना चाहिए, न कि भौतिक लाभ के लिए।

श्री-वीरभद्र गोसाञिस्कन्ध-महाशाखा ।

ताँर उपशाखा व्रत, असङ्ख्य तार लेखा ॥8॥

श्री-वीरभद्र गोसाञि-श्री वीरभद्र गोसांई; स्कन्ध-तने की; महाशाखा-सबसे बड़ी शाखा; ताँर-उसकी; उपशाखा-उपशाखाएँ; यत-सब; असङ्ख्य-अनगिनत; तार-उसका; लेखा-वर्णन।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के बाद सबसे बड़ी शाखा वीरभद्र गोसांई हैं, जिनकी भी अनेक शाखाएँ तथा उपशाखाएँ हैं। उन सबका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में लिखा है, वीरभद्र गोसांई श्रील नित्यानन्द प्रभु के पुत्र और जाह्नवी देवी के शिष्य थे। उनकी असली माता वसुधा थीं। गौरगणोद्देश-दीपिका (67) में उन्हें क्षीरोदकशायी विष्णु के अवतार बतलाया गया है। इस तरह वीरभद्र गोसांई श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु से अभिन्न हैं। हुगली जिले में झामटपुर गाँव में वीरभद्र गोसांझ के शिष्य यदुनाथाचार्य की दो पुत्रियाँ थीं—एक असली पुत्री जिसका नाम श्रीमती था और दूसरी पोष्य पुत्री जिसका नाम नारायणी था। इन दोनों की शादियाँ हुई थीं, जिसका उल्लेख भक्ति रत्नाकर (के तेरहवें तरंग) में हुआ है। वीरभद्र गोसांई के तीन शिष्य थे, जो उनके पुत्रों के तौर पर विख्यात हैं-गोपीनाथ

वल्लभ, रामकृष्ण तथा रामचन्द्र। सबसे छोटा शिष्य रामचन्द्र शाण्डिल्य गोत्र का था और उसका कुलनाम वटव्याल था। उसने अपने परिवार को खड़दह में बसाया और इसके सदस्य खड़दह के गोस्वामी कहलाते हैं। सबसे बड़ा शिष्य गोपीजन वल्लभ बर्दवान जिले के मानकर रेलवे स्टेशन के निकट लता नामक गाँव का निवासी था। द्वितीय शिष्य रामकृष्ण मालदह के निकट गयेशपुर गाँव में रहता था।" श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि चूँकि ये तीनों शिष्य भिन्न-भिन्न गोत्रों के थे और उनके कुलनाम तथा निवासस्थान भी भिन्न थे; अतएव उन्हें वीरभद्र गोसांई के असली पुत्र नहीं माना जा सकता। रामचन्द्र के चार पुत्र थे, जिनमें राधामाधव सबसे बड़ा था और उसके तृतीय पुत्र का नाम यादवेन्द्र था। यादवेन्द्र का पुत्र नन्दकिशोर, उसका पुत्र निधिकृष्ण, उसका पुत्र चैतन्यचाण्ड, उसका पुत्र कृष्णमोहन, उसका पुत्र जगनमोहन, उसका पुत्र व्रजनाथ और उसका भी पुत्र श्यामलाल गोस्वामी था। यह वीरभ्रद गोसांई के वंशजों की वंशावली है, जिसका उल्लेख भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने किया है।

ईश्वर हइया कहाय महा-भागवत ।

वेद-धर्मातीत हञा वेद-धर्मे रत ॥9॥

ईश्वर–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; हइया-होकर; कहाय-अपने आपको कहलाते हैं; महा-भागवत-महान् भक्त; वेद-धर्म-वैदिक धर्म के सिद्धान्त; अतीत–परे; हञा-होकर; वेद-धर्मे-वैदिक प्रणाली में; रत–लगे रहे।

अनुवाद

यद्यपि वीरभद्र गोसांइ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् थे, किन्तु उन्होंने अपने आपको महान् भक्त के रूप में प्रस्तुत किया। यद्यपि भगवान् सारे वैदिक आदेशों से परे होते हैं, किन्तु वे वैदिक अनुष्ठानों का दृढ़तापूर्वक पालन करते थे।

अन्तरे ईश्वर-चेष्टा, बाहिरे निर्दम्भ ।

चैतन्य-भक्ति-मण्डपे तेंहो मूल-स्तम्भ ॥10॥

अन्तरे-अपने अन्दर; ईश्वर-चेष्टा- भगवान् के कार्यकलाप; बाहिरे-बाहर से; निर्दम्भ-अहंकार रहित; चैतन्य-भक्ति-मण्डपे-चैतन्य महाप्रभु के भक्तिमय कक्ष में; तेंहोवे हैं; मूल-स्तम्भ-मुख्य स्तम्भ।

अनुवाद

वे श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा निर्मित भक्ति रूपी भवन के मुख्य स्तम्भ हैं। वे अपने अंत:करण से जानते थे कि वे भगवान् विष्णु के रूप में कार्य करते थे, किन्तु बाहर से वे गर्वरहित थे।

अद्यापि याँहार कृपा-महिमा हइते ।

चैतन्य-नित्यानन्द गाय सकल जगते ॥11॥

अद्यापि-आज तक; याँहार–जिनकी; कृपा-कृपा; महिमा-महिमा; हइते-से; चैतन्य-नित्यानन्द-श्री चैतन्य नित्यानन्द; गाय-गाते हैं; सकल-सब; जगते–विश्व में।

अनुवाद

श्री वीरभद्र गोसांई की महिमामयी कृपा से अब सारे विश्व के लोगों को चैतन्य तथा नित्यानन्द के नामों का कीर्तन करने का अवसर प्राप्त हुआ।

सेइ वीरभद्र-गोसाञि लइनु शरण।

याँहार प्रसादे हय अभीष्ट-पूरण ॥12॥

सेइ–उन; वीरभद्र-गोसाञि-श्री वीरभद्र गोसांई की; लइनु-मैं लेता हूँ; शरण-शरण; याँहार–जिनकी; प्रसादे कृपा से; हय-ऐसा होता है; अभीष्ट-पूरण-इच्छा-पूर्ति।

अनुवाद

अतएव मैं वीरभद्र गोसांई के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ, जिससे श्रीचैतन्य-चरितामृत लिखने की मेरी बड़ी अभिलाषा का सही ढंग से मार्गदर्शन हो सके।

श्री रामदास आर, गदाधर दास।

चैतन्य-गोसाञि भक्त रहे ताँर पाश ॥13॥

श्री रामदास-श्री रामदास; आर-और; गदाधर दास-गदाधर दास; चैतन्य गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-भक्त; रहे-रहते थे; ताँर पाश-उनके साथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के दो भक्त श्री रामदास तथा गदाधर दास सदैव श्री वीरभद्र गोसांई के साथ रहते थे।

तात्पर्य

श्री रामदास, जिनका नाम बाद में अभिराम ठाकुर पड़ा, श्री नित्यानन्द प्रभु के बारह गोपालों अथवा ग्वाल सखाओं में से एक थे। गौरगणोद्देश-दीपिका (126) में कहा गया है कि श्री रामदास

पहले श्रीदामा थे। भक्तिरत्नाकर (चतुर्थ लहर) में श्रील अभिराम ठाकुर का विवरण मिलता है। श्री नित्यानन्द प्रभु की आज्ञा से अभिराम ठाकुर महान् आचार्य तथा चैतन्य भक्ति सम्प्रदाय के प्रचारक बने। वे अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति थे और अभक्त लोग उनसे अत्यन्त भयभीत रहते थे। श्री नित्यानन्द प्रभु से शक्ति पाकर वे सदैव भावदशा में रहते थे और समस्त पतितात्माओं पर अत्यन्त कृपालु थे। कहा जाता है कि यदि वे शालिग्राम शिला के अतिरिक्त किसी अन्य पत्थर को नमस्कार कर देते, तो वह तुरन्त टूट जाता था।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "हावड़ा से हुगली जिले के आम्टा गाँव जाने वाली छोटी रेलवे लाइन पर चाँपाडाँगा रेलवे स्टेशन से 10 मील दक्षिण-पश्चिम में खानाकूल-कृष्णनगर गाँव है, जहाँ अभिराम ठाकुर का मन्दिर स्थित है। वर्षा के दिनों में जब यहाँ जल भर जाता है, तो एक दूसरी रेलवे लाइन से जाना पड़ता है, जिसे अब दक्षिण-पूर्व रेलवे कहते हैं। इस लाइन पर कोलाघाट नामक एक रेलवे स्टेशन है, जिससे राणीचक तक एक स्टीमर से जाना होता है। खानाकूल इस स्थान से साढ़े सात मील उत्तर में है। जहाँ अभिराम ठाकुर पूजा करते थे, वह मन्दिर कृष्णनगर में है, जो खाना (द्वारकेश्वर नदी) के कूल (किनारा) पर है। इसीलिए यह स्थान खानाकूल कृष्णनगर के नाम से विख्यात है। इस मन्दिर के बाहर एक बकुल वृक्ष है। यह स्थान सिद्धबकुलकुंज कहलाता है। कहा जाता है कि जब अभिराम ठाकुर यहाँ आये थे, तब वे इस वृक्ष के नीचे बैठे थे। प्रतिवर्ष खानाकूल कृष्णनगर में चैत्र (मार्च-अपैल) मास की कृष्णसप्तमी को (कृष्णपक्ष की सातवीं तिथि को) एक भारी मेला लगता है, जिसमें हजारों लोग एकत्र होते हैं। जहाँ अभिराम ठाकुर पूजा किया करते थे, उस मन्दिर का इतिहास पुराना है। इस मन्दिर के अर्चाविग्रह गोपीनाथ कहलाते हैं। इस मन्दिर के निकट अनेक सेवाइत परिवार रह रहे हैं। कहा जाता है कि अभिराम ठाकुर के पास एक कोड़ा था। वे जिसे भी इससे छू लेते, वह तुरन्त उन्नत कृष्ण-भक्त बन

जाता था। उनके अनेक शिष्यों में श्रीमान् श्रीनिवास आचार्य सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं प्रिय थे, किन्तु यह सन्देहास्पद है कि वे उनके दीक्षा-प्राप्त शिष्य थे।"

नित्यानन्दे आज्ञा दिल यबे गौड़े याइते ।

महाप्रभु एइ दुइ दिला ताँर साथे ॥14॥

अतएव दुइ-गणे दुँहार गणन ।

माधव-वासुदेव घोषेरओ एइ विवरण ॥15॥

नित्यानन्दे-भगवान् नित्यानन्द को; आज्ञा-आज्ञा; दिल–दी; यबे-जब; गौड़े-बंगाल को; माइते-जाने के लिए; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; एइ दुइ-ये दोनों; दिला-दिया; ताँर साथे उनके साथ; अतएव–अतएव; दुइ-गणे-दोनों दलों में; दुँहार-उनमें से दो; गणन-गिने जाते हैं; माधव-माधव; वासुदेव-वासुदेव; घोषेरओ-घोष उपनाम के; एइ–यह; विवरण-वर्णन।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु को बंगाल जाकर प्रचार करने का आदेश दिया गया, तब इन दोनों भक्तों (श्री रामदास तथा गदाधर दास) को उनके साथ जाने का आदेश मिला था। इसलिए कभी इन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु के और कभी नित्यानन्द प्रभु के भक्तों के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार माधव घोष तथा वासुदेव घोष भी भक्तों के दोनों समूहों से साथ- साथ सम्बन्धित थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "बर्दवान जिले में अग्रद्वीप रेलवे स्टेशन तथा पाटुलि के निकट दाँइहाट नामक स्थान में अब भी श्री गोपीनाथजी का

विग्रह स्थित है। यह विग्रह गोविन्द घोष को अपना पिता मानते थे। आज भी यह विग्रह गोविन्द घोष की बरसी के अवसर पर श्राद्ध उत्सव मनाते हैं। इस विग्रह के मन्दिर की व्यवस्था कृष्णनगर के राजवंश परिवार द्वारा की जाती है, जिसके सदस्य राजा कृष्णचन्द्र के वंशज हैं। प्रतिवर्ष वैशाख मास में बारदोल उत्सव के अवसर पर इस गोपीनाथ-विग्रह को कृष्णनगर ले जाया जाता है। यह अनुष्ठान अन्य ग्यारह विग्रहों के साथ सम्पन्न किया जाता है और फिर श्री गोपीनाथजी के विग्रह को पुनः अग्रद्वीप के मन्दिर में लाया जाता है।"

रामदास—मुख्य-शाखा, सख्य-प्रेम-राशि ।

षोलसाङ्गेर काष्ठ येइ तुलि' कैल वंशी ॥16॥

राम-दास–राम दास; मुख्य-शाखा मुख्य शाखा; सख्य-प्रेम-राशि-सख्य-प्रेम से परिपूर्ण; घोलस-अङ्गेर-सोलह गांठ वाली; काष्ठ-लकड़ी; येइ-वह; तुलि'–उठाकर; कैलबनाई; वांशी–बांसुरी।

अनुवाद

शाखाओं में एक मुख्य शाखा, राम दास भगवान् के सख्य प्रेम से परिपूर्ण थे। उन्होंने सोलह गाँठों वाली लकड़ी की एक बाँसुरी बनाई थी।

गदाधर दास गोपीभावे पूर्णानन्द ।

याँर घरे दानकेलि कैल नित्यानन्द ॥17॥

गदाधर दास-गदाधर दास; गोपी-भावे-गोपियों के भाव में; पूर्ण-आनन्द–दिव्य आनन्द से परिपूर्ण; याँर घरे–जिनके घर में; दान-केलि-दान केली लीला का आयोजन; कैल–किया; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

श्रील गदाधर दास सदैव गोपी-भाव में मग्न रहते थे। इनके घर में भगवान् नित्यानन्द ने दानकेलि नाटक का अभिनय किया था।

श्री-माधव घोष—मुख्य कीर्तनीया-गणे।

नित्यानन्द-प्रभु नृत्य करे याँर गाने ॥18॥

श्री-माधव घोष-श्री माधवघोष; मुख्य–मुख्य; कीर्तनीया-गणे-संकीर्तन करने वालों में; नित्यानन्द-प्रभु-नित्यानन्द प्रभु; नृत्य-नृत्य; करे-करते हैं; याँर–जिनके; गाने-गान में।

अनुवाद

श्री माधव घोष मुख्य कीर्तनिया थे। जब वे गाते थे, तब नित्यानन्द प्रभु नृत्य करते थे।

वासुदेव गीते करे प्रभुर वर्णने।

काष्ठ-पाषाण द्रवे याहार श्रवणे ॥19॥

वासुदेव-वासुदेव; गीते-गाते समय; करे-करते; प्रभुर–नित्यानन्द प्रभु तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के; वर्णने-वर्णन में; काष्ठ-लकड़ी; पाषाण-पत्थर; द्रवे–पिघल गये; याहार–जिनके; श्रवणे-सुनने से।

अनुवाद

जब वासुदेव घोष कीर्तन करते हुए चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु का वर्णन करते, तो उसे सुनकर तो लकड़ी तथा पत्थर भी पिघल जाते।

मुरारि-चैतन्य-दासेर अलौकिक लीला ।

व्याघ्र-गाले चड़ मारे, सर्प-सने खेला ॥20॥

मुरारि-मुरारी; चैतन्य-दासेर–चैतन्य महाप्रभु के दास की; अलौकिक-असाधारण; लीला-लीलाएँ; व्याघ्र-बाघ; गाले-गाल पर; चड़ मारे थप्पड़ मारते; सर्प–सांप; सने–सहित; खेला-खेलते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के महान् भक्त मुरारि अनेक अलौकिक कार्य करते रहते थे। कभी वे भावातिरेक में बाघ के मुंह पर चपत लगाते थे और कभी विषैले सर्प से खेलते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "मुरारि चैतन्य दास का जन्म सर-वृन्दावन-पुर गाँव में हुआ था, जो बर्दवान रेलवे लाइन पर स्थित गलशी स्टेशन से लगभग 2 मील की दूरी पर है। जब मुरारि चैतन्य दास नवद्वीप आये, तो वे मोदद्रुम या मामगाछि गाँव में आकर बसे। उस समय वे शाङ्ग या सारंग मुरारि चैतन्य दास नाम से प्रसिद्ध हो गये। उनके वंशज आज भी सरेर पाट में रह रहे हैं। चैतन्य भागवत (अन्त्यखण्ड, अध्याय 5) में निम्नलिखित वृत्तान्त मिलता है, मुरारि चैतन्य दास का कोई भौतिक शारीरिक रूप न था, क्योंकि वे पूरी तरह आध्यात्मिक थे। अतएव वे कभी जंगल में बाघों का पीछा करते और उनके साथ कुत्ते-बिल्लियों जैसा व्यवहार करते। वे बाघ के गाल पर चाँटा मारते और अपनी गोद में विषैला साँप ले लेते। उन्हें अपने बाह्य

शरीर का डर नहीं था, क्योंकि इसके बारे में वे पूर्णतया विस्मृत अवस्था में रहते थे। वे हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने या भगवान् चैतन्य तथा नित्यानन्द के विषय में बातें करने में सारा दिन बिता सकते थे। कभी-कभी वे दो-तीन दिनों तक पानी में डूबे रहते थे, किन्तु फिर भी उन्हें कोई शारीरिक असुविधा नहीं होती थी। इसी तरह वे पत्थर या काठ जैसा आचरण करते, किन्तु वे सदैव अपनी शक्ति का उपयोग हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने में करते। कोई भी व्यक्ति उनके विशिष्ट गुणों का वर्णन नहीं कर सकता, किन्तु कहा जाता है कि मुरारि चैतन्य दास जहाँ-जहाँ जाते और जो भी वहाँ उपस्थित होता, वह उनके प्रभाव मात्र से कृष्णभावनामृतमय हो उठता।"

नित्यानन्देर गण यत—सब व्रज-सखा ।

शृङ्ग-वेत्र-गोपवेश, शिरे शिखि-पाखा ॥21॥

नित्यानन्देर-नित्यानन्द प्रभु के; गण-अनुयायी; यत–सब; सब-सब; व्रज-सखा-वृन्दावन के निवासी; शृङ्ग-सींग, श्रृंग; वेत्र–बांस की छड़ी; गोप-वेश-गोप के वेश में; शिरे–सिर पर; शिखि-पाखा–मोर पंख।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के सारे पार्षद पहले व्रजभूमि के ग्वालबाल थे। उनके हाथों में श्रृंग तथा छड़ी, उनकी ग्वालों की वेशभूषा तथा उनके सिरों पर मोर पंख उनके प्रतीक थे।

तात्पर्य

नित्यानन्द के अनुयायियों की सूची में जाह्नवा माता का भी नाम है। उनका वर्णन गौरगणोद्देश-दीपिका (66) में वृन्दावन की अनंगमंजरी के रूप में मिलता है। जाह्नवा माता के सारे भक्तों की गिनती श्री नित्यानन्द प्रभु के भक्तों की सूची में की जाती है।

रघुनाथ वैद्य उपाध्याय महाशय ।

याँहार दर्शने कृष्ण-प्रेम-भक्ति हय ॥22॥

रघुनाथ वैद्य-रघुनाथ वैद्य; उपाध्याय महाशय-उपाध्याय की उपाधि के साथ एक महान् व्यक्ति; याँहार–जिनके; दर्शने-दर्शन से; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; भक्ति-भक्ति; हय-जाग उठे।

अनुवाद

रघुनाथ वैद्य का एक अन्य नाम उपाध्याय भी था। वे इतने बड़े भक्त थे कि उनके दर्शन-मात्र से मनुष्य का सुप्त भगवत्प्रेम जाग्रत हो उठता था।

सुन्दरानन्द–नित्यानन्देर शाखा, भृत्य मर्म ।

याँर सङ्गे नित्यानन्द करे व्रज-नर्म ॥ 23 ॥

सुन्दानन्द–सुन्दरानन्द; नित्यानन्देर शाखा-नित्यानन्द प्रभु की एक शाखा; भृत्य मर्म–एक अंतरंग सेवक; याँर सङ्गे–जिनके साथ; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; करे-करते हैं; व्रज-नर्म-वृन्दावन के कार्यकलाप।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु की अन्य शाखा, सुन्दरानन्द उनके घनिष्ठ दास थे। उनके संग में नित्यानन्द प्रभु को व्रजभूमि के जीवन की अनुभूति होती थी।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "चैतन्य-भागवत (अन्त्यखण्ड, अध्याय 5) में बतलाया गया है कि सुन्दरानन्द भगवत्प्रेम के सागर तथा श्री नित्यानन्द प्रभु के मुख्य पार्षद थे। गौरगणोद्देश-दीपिका (127) में उन्हें कृष्णलीला के सुदामा बतलाया गया है। इस प्रकार जब बलराम नित्यानन्द प्रभु के रूप में अवतरित हुए, तो उनके साथ के बारह गोपों में सुन्दरानन्द भी एक थे। जिस पवित्र स्थान में सुन्दरानन्द रहते थे, वह कलकत्ता से बर्दवान जाने वाली पूर्वी रेलवे के माजदिया स्टेशन से लगभग 14 मील पूर्व स्थित महेशपुर गाँव था। यह स्थान जेशोर जिले में है, जो अब बाँग्लादेश में है। इस गाँव के ध्वंसावशेषों में एकमात्र सुन्दरानन्द का ही पुराना रिहायशी घर अभी भी स्थित है। इस गाँव के सिरे पर एक बाउल (नकली वैष्णव) रहता है और गाँव के सारे मन्दिर तथा घर नवनिर्मित प्रतीत होते हैं। महेशपुर में श्री राधावल्लभ तथा श्री श्रीराधारमण के अर्चाविग्रह हैं। मन्दिर के निकट वेत्रवती नामक एक छोटी-सी नदी है।

"सुन्दरानन्द प्रभु नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे—उन्होंने जीवन भर विवाह नहीं किया। अतएव उनके शिष्यों के अतिरिक्त प्रत्यक्ष रूप से उनका और कोई वंशज नहीं था, किन्तु उनके परिवार के वंशज अब भी बीरभूम जिले के मंगलडीहि गाँव में रह रहे हैं। उसी गाँव में बलराम का एक मन्दिर है, जहाँ अर्चाविग्रह की नियमित पूजा की जाती है। महेशपुर का मूल विग्रह राधावल्लभ बरहामपुर के सैदाबाद गोस्वामियों द्वारा ले जाया गया और जब से वहाँ वर्तमान विग्रहों की स्थापना हुई, तब से उसकी पूजा की देख-रेख महेशपुर का एक जमींदार परिवार करता है। माघ मास (जनवरी-फरवरी)

की पूर्णिमा के दिन सुन्दरानन्द का तिरोधान उत्सव मनाया जाता है और इस उत्सव को मनाने के लिए आसपास के लोग एकत्र होते हैं।"

कमलाकर पिप्पलाइ—अलौकिक रीत।

अलौकिक प्रेम ताँर भुवने विदित ॥24॥

कमलाकर पिप्पलाइ–कमलाकर पिप्लाई; अलौकिक-असाधारण; रीत–व्यवहार; अलौकिक-असाधारण; प्रेम-भगवत्प्रेम; ताँर-उनका; भुवने-संसार में; विदित-प्रसिद्ध।

अनुवाद

कहा जाता है कि कमलाकर पिप्पलाइ तीसरे गोपाल थे। उनका व्यवहार तथा उनका भगवत्प्रेम अलौकिक था। अतः वे विश्वविदित हैं।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "गौरगणोद्देश-दीपिका (128) में कमलाकर पिप्पलाइ को तीसरा गोपाल कहा गया है। इनका पहले का नाम महाबल था। कमलाकर पिप्पलाइ ने ही श्रीरामपुर के महेश गाँव में जगन्नाथ-विग्रह की स्थापना की थी। यह माहेश गाँव श्रीरामपुर रेलवे स्टेशन से ढाई मील की दूरी पर है। कमलाकर पिप्पलाइ का वंश-वृक्ष इस प्रकार है-उनके पुत्र का नाम चतुर्भुज था, जिसके दो पुत्र थे–नारायण तथा जगन्नाथ। नारायण को एक पुत्र हुआ जगदानन्द, जिसके पुत्र का नाम राजीवलोचन था। राजीवलोचन के समय में जगन्नाथ-विग्रह की पूजा करने के लिए धन की कमी हुई और कहा जाता है कि ढाका के नवाब शाह सुजा ने 1060 बंगाब्द (1653 ई.) में 1185 बीघे (लगभग 395 एकड़) जमीन दान की। यह

जमीन जगन्नाथ के अधिकार में होने से गाँव का नाम जगन्नाथपुर पड़ा। कहा जाता है कि जब कमलाकर पिप्पलाइ ने घर छोड़ दिया, तो उनके छोटे भाई निधिपति पिप्पलाइ ने उनकी खोज की और कुछ समय के बाद उन्हें माहेश गाँव में ढूंढ निकाला। निधिपति ने भरसक प्रयत्न किया कि उसका बड़ा भाई गाँव लौट चले, किन्तु वैसा हो नहीं पाया। फलस्वरूप निधिपति पिप्पलाई अपना सारा परिवार लेकर माहेश गाँव में रहने चले आये। आज भी इस परिवार के लोग माहेश गाँव के पड़ोस में रह रहे हैं। उनका कुलनाम अधिकारी है और वे ब्राह्मण परिवार के हैं।

“माहेश गाँव में जगन्नाथ मन्दिर का इतिहास इस प्रकार है। ध्रुवानन्द नामक एक भक्त एक बार जगन्नाथ पुरी में जगन्नाथ, बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करने गया। वह जगन्नाथजी को अपने हाथ का पकाया भोजन अर्पित करना चाहता था। उसकी ऐसी इच्छा होने के कारण एक रात को उसे स्वप्न में जगन्नाथजी दिखे, जिन्होंने उससे गंगा नदी के तट पर माहेश नामक स्थान में जाकर एक मन्दिर में उनकी पूजा शुरू करने के लिए कहा। इस तरह ध्रुवानन्द माहेश गाँव गया, जहाँ उसने गंगा में जगन्नाथ, बलराम तथा सुभद्रा इन तीन अर्चाविग्रहों को तैरते देखा। वह इन्हें उठाकर ले आया और इन्हें एक छोटीसी झोपड़ी में स्थापित करके जगन्नाथजी की मुदित मन से पूजा करने लगा। जब वह बूढ़ा हो गया, तो वह उत्सुक था कि इसका भार किसी विश्वसनीय व्यक्ति को सौंप दे और स्वप्न में जगन्नाथजी ने अनुमति दे दी कि अगले दिन जो भी व्यक्ति मिले उसे यह भार सौंप दे। अगली सुबह उसकी भेट कमलाकर पिप्पलाइ से हुई, जो पहले बंगाल के सुन्दरवन इलाके के खालिजुलि गाँव के निवासी थे, शुद्ध वैष्णव थे तथा भगवान् जगन्नाथ के महान् भक्त थे। इस तरह उन्होंने तुरन्त ही उसे यह भार सौंप दिया और कमलाकर पिप्पलाइ जगन्नाथजी के पुजारी बन गये। तब से उसके परिवार के लोग अधिकारी कहे जाते हैं, अर्थात् ‘जिसे भगवान् की पूजा करने का

अधिकार प्राप्त है। ये अधिकारी सम्मानित ब्राह्मण परिवार के हैं। पाँच प्रकार के कुलीन ब्राह्मण पिप्पलाइ कहलाते हैं।"

सूर्यदास सरखेल, ताँर भाइ कृष्णदास।

नित्यानन्दे दृढ़ विश्वास, प्रेमेर निवास ॥25॥

सूर्यदास सरखेल-सूर्यदास सरखेल; ताँर भाइ–उसका भाई; कृष्णदास-कृष्णदास; नित्यानन्दे–नित्यानन्द प्रभु में; दृढ़ विश्वास-दृढ़ विश्वास; प्रेमेर निवास–भगवत्-प्रेम के आगार।

अनुवाद

सूर्यदास सरखेल तथा उनके छोटे भाई कृष्णदास सरखेल को नित्यानन्द प्रभु में दृढ़ विश्वास था। वे दोनों भगवत्प्रेम के आगार थे।

तात्पर्य

भक्तिरत्नाकर (बारहवीं लहर) में कहा गया है कि नवद्वीप से कुछ मील की दूरी पर शालिग्राम नामक एक स्थान है, जहाँ पर सूर्यदास सरखेल का आवास था। उस समय वे मुस्लिम-सरकार में सचिव के पद पर थे और उन्होंने काफी धन एकत्र कर लिया था। सूर्यदास के चार भाई थे और सबके सब शुद्ध वैष्णव थे। इनकी दो पुत्रियाँ थीं-वसुधा तथा जाह्नवा।

गौरीदास पण्डित याँर प्रेमोद्दण्ड-भक्ति।

कृष्ण-प्रेमा दिते, निते, धरे महाशक्ति ॥ 26॥

गौरीदास पण्डित-गौरीदास पण्डित; याँर-जिनका; प्रेम-उद्दण्ड-भक्ति-भगवत्प्रेम तथा भक्ति में बहुत उन्नत; कृष्ण-प्रेमा-कृष्ण-प्रेम; दिते-देने के लिए; निते-और लेने के लिए; धरे–अधिकृत; महाशक्ति-महान् शक्ति।

अनुवाद

भगवत्प्रेम में सर्वोच्च भक्ति के प्रतीक गौरीदास पण्डित में ऐसा प्रेम प्राप्त करने और उसे प्रदान करने की महान् शक्ति थी।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "कहा जाता है कि गौरीदास पण्डित को हरिहोड़ के पुत्र राजा कृष्णदास का राज्याश्रय प्राप्त था। गौरीदास पण्डित शालिग्राम गाँव में रहते थे, जो मुड़ागाछा रेलवे स्टेशन से कुछ दूरी पर है। बाद में वे अम्बिका कालना गाँव में आकर रहने लगे। गौरगणोद्देश-दीपिका (128) में कहा गया है कि वे पहले वृन्दावन में कृष्ण तथा बलराम के ग्वालमित्रों में से सुबल नामक गोप थे। गौरीदास पण्डित सूर्यदास सरखेल के छोटे भाई थे। वे अपने बड़े भाई की अनुमति से गंगा नदी के तट पर अम्बिका कालना नामक नगर में जा बसे। गौरीदास पण्डित के कुछ वंशजों के नाम इस प्रकार हैं-(1) श्री नृसिंह चैतन्य, (2) कृष्णदास, (3) विष्णुदास, (4) बड़ बलरामदास, (5) गोविन्द, (6) रघुनाथ, (7) बड़ गंगादास, (8) औलिया गंगाराम, (9) यादवाचार्य, (10) हृदयचैतन्य, (11) चाँद हालदार, (12) महेश पण्डित, (13) मुकुट राय, (14) भातुया गंगाराम, (15) औलिया चैतन्य, (16) कालिया कृष्णदास, (17) पातुया गोपाल, (18) बड़ जगन्नाथ, (19) नित्यानन्द, (20) भावि, (21) जगदीश, (22) राइया कृष्णदास तथा (221/,) अन्नपूर्णा। गौरीदास पण्डित के सबसे बड़े पुत्र बड़ा बलराम और सबसे छोटे पुत्र रघुनाथ

कहलाते थे। रघुनाथ के पुत्र थे महेश पण्डित तथा गोविन्द । गौरीदास पण्डित की पुत्री का नाम था अन्नपूर्णा।

"अम्बिका कालना गाँव शान्तिपुर के सामने गंगा के उस पार पूर्वी रेलवे पर कालनाकोर्ट रेलवे स्टेशन से 2 मील पूर्व में है। अम्बिका कालना गाँव में बर्दवान के जमींदार द्वारा बनवाया गया एक मन्दिर है, जिसके सामने एक बड़ा-सा इमली का पेड़ है। कहा जाता है कि गौरीदास पण्डित तथा श्री चैतन्य महाप्रभु इसी वृक्ष के नीचे मिले थे। जिस स्थान पर यह मन्दिर है, वह अम्बिका कहलाता है और चूँकि यह कालना क्षेत्र में है, अतएव यह गाँव अम्बिका- कालना कहलाता है। कहा जाता है कि इस मन्दिर में अब भी श्री चैतन्य महाप्रभु की हस्तलिखित भगवद्गीता की प्रति है।"

नित्यानन्दे समर्पिल जाति-कुल-पाँति ।

श्री-चैतन्य-नित्यानन्दे करि प्राणपति ॥27॥

नित्यानन्दे-नित्यानन्द प्रभु को; समर्पिल-उन्होंने भेंट किया; जाति-जाति-भेद; कुल-वंश; पाँति-बन्धुत्व; श्री-चैतन्य-भगवान् चैतन्य; नित्यानन्दे-नित्यानन्द प्रभु में; करि—बनाकर; प्राण-पति-अपने जीवन के स्वामी।

अनुवाद

भगवान् श्री चैतन्य तथा भगवान् नित्यानन्द को अपने जीवन के स्वामी बनाकर गौरीदास पण्डित ने भगवान् नित्यानन्द की सेवा के लिए सब कुछ अर्पित कर दिया, यहाँ तक कि अपने परिवार की सदस्यता भी।

नित्यानन्द प्रभुर प्रिय–पण्डित पुरन्दर ।

प्रेमार्णव-मध्ये फिरे यैछन मन्दर ॥28॥

नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभुः प्रभुर-भगवान् के; प्रिय-अत्यन्त प्रिय; पण्डित पुरन्दर-पण्डित पुरन्दर; प्रेम-अर्णव-मध्ये-भगवत्-प्रेम के सागर में; फिरे-चलते; यैछन-ठीक उस तरह; मन्दर-मन्दर पर्वत।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु के तेरहवें मुख्य भक्त पण्डित पुरन्दर थे। वे भगवत्प्रेम के सागर में इस तरह चलते थे मानो मन्दर पर्वत हों।

तात्पर्य

पुरन्दर पण्डित खड़दह में श्री नित्यानन्द प्रभु से मिले थे। जब नित्यानन्द इस गाँव में गये, तो वहाँ उन्होंने अलौकिक नृत्य किया, जिस पर पुरन्दर पण्डित मोहित हो गये। वे उस समय पेड़ के ऊपर चढ़े थे और नित्यानन्द का नृत्य देखकर अपने आपको अंगद कहते हुए ऊपर से जमीन पर कूद पड़े। अंगद भगवान् रामचन्द्र की लीलाओं के समय हनुमान के खेमे के एक भक्त थे।

परमेश्वर-दास–नित्यानन्दैक-शरण ।

कृष्ण-भक्ति पाय, तौंरे ये करे स्मरण ॥ 29॥

परमेश्वर-दास-परमेश्वर दास; नित्यानन्द-एक-शरण-नित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों के पूर्ण शरणागत; कृष्ण-भक्ति पाय-कृष्ण-प्रेम पाता है; तौंरे-उनका; ये-जो कोई; करे-करता है; स्मरण-स्मरण।

अनुवाद

परमेश्वर दास, जो कृष्णलीला के पाँचवे गोपाल कहे जाते हैं, वे नित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों में पूरी तरह से समर्पित थे। जो कोई उनके इस नाम परमेश्वर दास को स्मरण करेगा, उसे सरलता से कृष्ण-प्रेम प्राप्त हो जायेगा।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, चैतन्य-भागवत में कहा गया है कि परमेश्वर दास, जिन्हें कभी-कभी परमेश्वरी दास भी कहा जाता था, नित्यानन्द प्रभु के सर्वस्व थे। परमेश्वर दास का शरीर नित्यानन्द प्रभु की लीलाओं का स्थल था। परमेश्वर दास कुछ काल तक खड़दह गाँव में रहे और वे सदैव गोपाल (ग्वालबाल) के भाव से अभिभूत रहते थे। पूर्वजन्म में वे कृष्ण तथा बलराम के मित्र अर्जुन थे। बारह गोपालों में से वे पाँचवे थे। वे खेतरी में सम्पन्न उत्सव में श्रीमती जाह्नवा देवी के साथ गये थे। भक्तिरलाकर में कहा गया है कि श्रीमती जाह्नवा माता के आदेश से उन्होंने हुगली जिले के आटपुर स्थान पर राधा-गोपीनाथ मन्दिर की स्थापना की। आटपुर स्टेशन छोटी लाइन (नेरो गेज) पर हावड़ा तथा आमता के बीच स्थित है। आटपुर में एक दूसरा मन्दिर है, जिसे मित्र परिवार ने स्थापित किया था और वह राधा-गोविन्द मन्दिर कहलाता है। मन्दिर के सामने दो बकुल तथा एक कदम्ब वृक्ष के बीच परमेश्वर ठाकुर की समाधि है और उसके ऊपर वेदी का पत्थर है, जिस पर तुलसी का पौधा है। कहा जाता है कि कदम्ब के वृक्ष पर वर्ष में केवल एक फूल लगता है, जिसे अर्चाविग्रह पर चढ़ाया जाता है।

“यह भी कहा जाता है कि परमेश्वरी ठाकुर वैद्य परिवार के थे। उनके भाई का एक वंशज इस समय मन्दिर का पुजारी है। उनके परिवार के कुछ लोग अब भी हुगली जिले में चण्डीतला डाकघर

के पास रह रहे हैं। परमेश्वरी ठाकुर के वंशजों ने ब्राह्मण परिवारों से कई शिष्य बनाये, किन्तु धीरे-धीरे ये वंशज वैद्य का पेशा करने लगे, तो ब्राह्मण परिवारों के लोगों ने शिष्य बनना बन्द कर दिया। परमेश्वरी के वंशजों के कुल-नाम अधिकारी तथा गुप्त हैं। दुर्भाग्यवश उनके परिवार के वंशज अर्चाविग्रह की प्रत्यक्ष पूजा नहीं करते, किन्तु इस कार्य के लिए उन्होंने वेतन-भोगी ब्राह्मण लगा रखे हैं। इस मन्दिर में सिंहासन पर बलदेव तथा श्री श्री राधा-गोपीनाथ एकसाथ हैं। माना जाता है कि बलदेव- विग्रह की स्थापना बाद में की गई, क्योंकि रस की दृष्टि से बलदेव, कृष्ण तथा राधा एक ही सिंहासन पर नहीं रह सकते। वैशाख मास (अप्रैल-मई) की पूर्णिमा के दिन इस मन्दिर में परमेश्वरी ठाकुर का तिरोधान-उत्सव मनाया जाता है।"

जगदीश पण्डित हय जगत्पावन ।

कृष्ण-प्रेमामृत वर्षे, येन वर्षा घन ॥ 30॥

जगदीश पण्डित-जगदीश पण्डित; हय-हैं; जगत्-पावन-संसार के उद्धारक; कृष्ण-प्रेम-अमृत वर्षे–वे सदा भक्ति की वर्षा बरसाते हैं; येन-भाँति; वर्षा-वर्षा; घन-जोर की।

अनुवाद

नित्यानन्द के अनुयायियों की पन्द्रहवीं शाखा, जगदीश पण्डित सम्पूर्ण जगत् के उद्धारक थे। उनसे कृष्ण-प्रेम भक्ति की बौछार ऐसी बहती थी, मानों बरसात की झड़ी लगी हो।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, चैतन्य-भागवत (आदिखण्ड, अध्याय 6) तथा चैतन्य-चरितामृत (आदिलीला, अध्याय 14) में जगदीश पण्डित

विषयक विवरण प्राप्त है। वे नदिया जिले में चाकदह रेलवे स्टेशन के निकट यशदा गाँव के थे। उनके पिता कमलाक्ष, भट्ट नारायण के पुत्र थे। उनके माता-पिता दोनों ही भगवान् विष्णु के महान् भक्त थे। उनकी मृत्यु के बाद जगदीश अपनी पत्नी दु:खिनी तथा भाई महेश के साथ अपनी जन्मभूमि छोड़कर जगन्नाथ मिश्र तथा अन्य वैष्णवों की संगति में रहने के लिए श्री मायापुर आ गये। चैतन्य महाप्रभु ने जगदीश को जगन्नाथ पुरी जाकर हरिनाम संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार करने का आदेश दिया। जगन्नाथ पुरी से लौटने के बाद उन्होंने जगन्नाथ भगवान् के आदेश से यशदा ग्राम में जगन्नाथ के अर्चाविग्रहों की स्थापना की। कहा जाता है कि जगदीश पण्डित जगन्नाथ के भारी अर्चाविग्रह को एक लाठी में बाँधकर यशदा ग्राम तक लाये। आज भी मन्दिर के पुजारी उस लाठी को दिखलाते हैं, जिसका उपयोग जगदीश पण्डित द्वारा जगन्नाथ के विग्रह को लाने के लिए किया गया था।

नित्यानन्द-प्रियभृत्य पण्डित धनञ्जय ।

अत्यन्त विरक्त, सदा कृष्ण-प्रेममयं ॥ 31॥

नित्यानन्द-प्रिय-भृत्य-नित्यानन्द प्रभु के एक अन्य प्रिय सेवक; पण्डित धनञ्जय-पण्डित धनंजय; अत्यन्त-अत्यन्त; विरक्त-विरक्त; सदा-सदा; कृष्ण-प्रेम-मय-कृष्ण-प्रेम में लीन।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के सोलहवें प्रिय सेवक धनंजय पण्डित थे। वे अत्यधिक विरक्त थे और सदैव कृष्ण-प्रेम में निमग्न रहते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "पण्डित धनंजय कटवा में शीतल नामक गाँव के निवासी थे। वे बारह गोपालों में से एक थे। गौरगणोद्देश-दीपिका (127) के अनुसार उनका पहले का नाम वसुदाम था। शीतल ग्राम बर्दवान जिले में मंगलकोट थाने तथा कैचर डाकखाने के निकट स्थित है। कैचर एक रेलवे स्टेशन है, जो बर्दवान से कटवा जाने वाली छोटी रेलवे लाइन पर कटवा स्टेशन से लगभग 9 मील दूर है। शीतल ग्राम पहुँचने के लिए इस स्टेशन से लगभग एक मील उत्तर पूर्व जाना पड़ता है। यहाँ का मन्दिर कच्ची दीवालों से बना और फूस से ढका हुआ था। कुछ वर्ष पूर्व बाजारवन काबाशी के मल्लिक जमीदारों ने मन्दिर के लिए एक बड़ा-सा घर बनवा दिया था, किन्तु विगत 65 वर्षों से मन्दिर टूटा हुआ है और परित्यक्त है। आज भी पुराने मन्दिर की नींव दिखती है। मन्दिर के पास एक तुलसी स्तम्भ है और प्रतिवर्ष कार्तिक (अक्टूबर-नवम्बर) मास में धनंजय पण्डित का तिरोधान-दिवस मनाया जाता है। कहा जाता है कि कुछ काल तक धनंजय पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन-दल में सम्मिलित रहे। फिर वे वृन्दावन चले गये। वृन्दावन जाने के पूर्व वे कुछ समय तक मेमारी रेलवे स्टेशन से 6 मील दक्षिण साँचड़ापाँचड़ा नामक गाँव में रहे। इसीलिए कभी-कभी यह गाँव धनंजयेर-पाट भी कहलाता है। कुछ समय बाद वे पूजा का भार अपने शिष्य को सौंपकर वृन्दावन वापस चले गये। वहाँ से शीतलग्राम वापस आने पर उन्होंने मन्दिर में गौरसुन्दर का विग्रह स्थापित किया। आज भी इस गाँव में पण्डित धनञ्जय के वंशज रह रहे हैं और मन्दिर-पूजा का कार्य देखते हैं।"

महेश पण्डित–व्रजेर उदार गोपाल।

ढक्का-वाद्ये नृत्य करे प्रेमे मातोयाल॥ 32॥

महेश पण्डित-महेश पण्डित; व्रजेर वृन्दावन के; उदार-उदार; गोपाल–गोपाल; ढक्का-वाद्ये-नगाड़ा बजाने के साथ; नृत्य करे-नृत्य किया करते थे; प्रेमे-प्रेम में; मातोयाल-जैसे पागल हो।

अनुवाद

महेश पण्डित बारह गोपालों में सातवें गोपाल थे। ये अत्यन्त उदार थे। ये ढक्का (नगाड़ा) बजने पर कृष्ण-प्रेम में उन्मत्त होकर नाचा करते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "महेश पण्डित का गाँव पालपाड़ा नदिया जिले में चाकदह रेलवे स्टेशन से लगभग एक मील दक्षिण जंगल के भीतर स्थित है। पास ही गंगा नदी बहती है। कहा जाता है कि पहले महेश पण्डित जिराट के पूर्व में मसिपुर या यशीपुर नामक गाँव में रहते थे और जब मसिपुर गंगा नदी के पट में डूब गया, तो वहाँ के विग्रहों को पालपाड़ा गाँव लाया गया, जो बेलेडाँगा, बेरिग्राम, सुखसागर, चान्दुड़े तथा मनसापोता नामक गाँवों के बीच बसा है। (कुल 14 गाँव हैं और पूरा पड़ोस पाँचनगर परगना कहलाता है)। कहा जाता है कि महेश पण्डित पाणिहाटी में नित्यानन्द प्रभु द्वारा सम्पन्न समारोह में सम्मिलित हुए थे। इस समारोह में नरोत्तम दास ठाकुर भी सम्मिलित हुए थे और महेश पण्डित ने इस अवसर पर उन्हें देखा था। महेश पण्डित के मन्दिर में गौर नित्यानन्द, श्री गोपीनाथ, श्री मदनमोहन, राधा-गोविन्द के विग्रहों के साथ-साथ शालग्राम शिला भी है।"

नवद्वीपे पुरुषोत्तम पण्डित महाशय ।

नित्यानन्द-नामे याँर महोन्माद हय ॥ 33 ॥

नवद्वीपे पुरुषोत्तम-नवद्वीप के पुरुषोत्तम; पण्डित महाशय-अत्यन्त विद्वान; नित्यानन्द-नामे-नित्यानन्द प्रभु के नाम से; याँर–जिनका; महा-उन्माद-अत्यन्त आनन्द; हय-हो जाता है।

अनुवाद

नवद्वीप निवासी पुरुषोत्तम पण्डित आठवें गोपाल थे। वे नित्यानन्द महाप्रभु का पवित्र नाम सुनते ही उन्मत्त से हो उठते थे।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत में बतलाया गया है कि पुरुषोत्तम पण्डित का जन्म नवद्वीप में हुआ था और वे नित्यानन्द प्रभु के महान् भक्त थे। बारह गोपालों के रूप में उनका पहले का नाम स्तोककृष्ण था।

बलराम दास-कृष्ण-प्रेम-रसास्वादी ।

नित्यानन्द-नामे हय परम उन्मादी ॥ 34॥

बलराम-दास-बलराम दास; कृष्ण-प्रेम-रस-कृष्ण-प्रेम में सदा लीन रहने का अमृत; आस्वादी-पूरी तरह चखकर; नित्यानन्द-नामे-श्री नित्यानन्द प्रभु के नाम में; हय–हो जाते; परम-परम; उन्मादी-उन्मत्त।

अनुवाद

बलराम दास कृष्ण-प्रेम रूपी अमृत का सदैव आस्वादन करते थे। वे श्री नित्यानन्द प्रभु का नाम सुनते ही अत्यधिक उन्मत्त हो जाते थे।

महा-भागवत यदुनाथ कविचन्द्र ।

याँहार हृदये नृत्य करे नित्यानन्द ॥ 35॥

महा-भागवत–महान् भक्त; यदुनाथ कविचन्द्र-यदुनाथ कविचन्द्र; याँहार–जिनके; हृदये-हृदय में; नृत्य-नृत्य; करे-करते हैं; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

यदुनाथ कविचन्द्र महान् भक्त थे। उनके हृदय में श्री नित्यानन्द प्रभु सतत नृत्य करते थे।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत (मध्यखण्ड, अध्याय 1) में कहा गया है कि रत्नगर्भ नामक एक महाशय श्री चैतन्य महप्रभु के पिता के मित्र थे। दोनों एक ही गाँव के निवासी थे। रत्नगर्भ आचार्य के तीन पुत्र थे—कृष्णानन्द, जीव तथा यदुनाथ कविचन्द्र।

राढ़े याँर जन्म कृष्णदास द्विजवर ।

श्री-नित्यानन्देर तेंहो परम किङ्कर ॥ 36॥

राढ़े–पश्चिमी बंगाल में; याँर–जिनका; जन्म-जन्म; कृष्णदास-कृष्णदास; द्विज-वर–सर्वोत्तम ब्राह्मण; श्री-नित्यानन्देर-श्री नित्यानन्द प्रभु के; तेंहो-वे; परम-परम; किङ्कर-सेवक।

अनुवाद

बंगाल में श्री नित्यानन्द के इक्कीसवें भक्त कृष्णदास ब्राह्मण थे, जो नित्यानन्द प्रभु के उच्च श्रेणी के सेवक थे।

तात्पर्य

इस श्लोक में राढ़े शब्द राढ़ देश के सन्दर्भ में आया है, जो बंगाल के उस भाग का सूचक है जहाँ गंगा नदी नहीं बहती।

काला-कृष्णदास बड़ वैष्णव-प्रधान।

नित्यानन्द-चन्द्र विनु नहि जाने आन ॥ 37॥

काला-कृष्णदास-काला कृष्णदास; बड़-बड़ा; वैष्णव-प्रधान-उच्च कोटि के वैष्णव; नित्यानन्द-चन्द्र-भगवान् नित्यानन्द चन्द्र; विनु–बिना; नाहि जाने–नहीं जानते थे; आन-और कुछ।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के बाइसवें भक्त काला कृष्णदास थे, जो नवें गोपाल थे। वे प्रथम श्रेणी के वैष्णव थे और नित्यानन्द प्रभु के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानते थे।

तात्पर्य

गौर-गणोद्देश्य दीपिका (132) में कहा गया है कि काला कृष्णदास, जो कालिया कृष्णदास के नाम से भी जाने जाते थे, पहले लवंग नामक गोपाल थे। वे बारह गोपालों में से एक थे। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, कालिया कृष्णदास का निवास स्थान आकाइहाट नामक गाँव में था, जो बर्दवान जिले में कटवा डाकघर तथा थाना के अन्तर्गत स्थित है। यह नवद्वीप जाने वाली सड़क पर स्थित है। आकाइहाट पहुँचने के लिए ब्याण्डेल जंक्शन से कटवा रेलवे स्टेशन पर उतरकर लगभग दो मील चलना पड़ता है। अथवा दाँइहाट स्टेशन पर उतरकर एक मील चलना होता है। आकाइहाट बहुत छोटा-सा गाँव है। चैत्र मास में वारुणी के दिन काला कृष्णदास का तिरोधान-दिवस मनाया जाता है।"

श्री-सदाशिव कविराज–बड़ महाशय।

श्री-पुरुषोत्तम-दास–ताँहार तनय ॥ 38॥

श्री-सदाशिव कविराज-श्री सदाशिव कविराज; बड़-बड़े; महाशय-आदरणीय पुरुष; श्री-पुरुषोत्तम-दास-श्री पुरुषोत्तम दास; ताँहार तनय-उनके बेटे।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु के तेइसवें और चौबीसवें भक्त सदाशिव कविराज तथा उनके पुत्र पुरुषोत्तमदास थे, जो दसवें गोपाल थे।

आजन्म निमग्न नित्यानन्देर चरणे।

निरन्तर बाल्य-लीला करे कृष्ण-सने ॥ 39॥

आजन्म-जन्म से; निमग्न–निमग्न; नित्यानन्देर-नित्यानन्द प्रभु के; चरणे-चरणकमलों में; निरन्तर–सदा; बाल्य-लीला-बाल्य लीला; करे-करते; कृष्ण-सने-कृष्ण के साथ।

अनुवाद

जन्म से ही पुरुषोत्तम दास नित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों की सेवा में निमग्न रहते थे और सदैव कृष्ण के साथ बच्चों जैसे खेल में लगे रहते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, सदाशिव कविराज तथा नागर पुरुषोत्तम पिता-पुत्र थे, जिन्हें चैतन्य भागवत में महाभाग्यवान कहा गया है। वे वैद्य जाति के

थे। गौरगणोद्देश-दीपिका (156) के अनुसार कृष्ण की सर्वाधिक प्रिय गोपी चन्द्रावली ने बाद में सदाशिव कविराज के रूप में जन्म लिया। श्लोक 194 तथा 200 में यह कहा गया है कि सदाशिव कविराज के पिता कंसारि सेन पहले कृष्णलीला की रत्नावली नामक गोपी थे। सदाशिव कविराज के परिवार के सारे लोग चैतन्य महाप्रभु के महान् भक्त थे। पुरुषोत्तमदास ठाकुर कभी-कभी सुखसागर में रहा करते थे, जो चाकदह तथा शिमुरालि स्टेशनों के निकट है। पुरुषोत्तमदास ठाकुर ने जितने विग्रहों की स्थापना की थी, वे सभी पहले बेलेडाँगा ग्राम में थे; किन्तु मन्दिर के ध्वस्त हो जाने पर वे विग्रह सुखसागर लाये गये। जब मन्दिर गंगा नदी के पट में चला गया, तो उन विग्रहों को जाह्नवा माता के विग्रह समेत साहेबडाँगा बेडिग्राम लाया गया। चूँकि वह स्थान भी विनष्ट हो चुका है, अतएव सारे विग्रह चाँदुडेग्राम में स्थित हैं, जो पालपाड़ा से एक मील ऊपर की ओर स्थित है।"

ताँर पुत्र—महाशय श्री-कानु ठाकुर।

याँर देहे रहे कृष्ण-प्रेमामृत-पूर ॥ 40 ॥

ताँर पुत्र–उनके पुत्र; महाशय–एक आदरणीय पुरुष; श्री-कानु ठाकुर-श्री कानु ठाकुर; याँर–जिसके; देहे-शरीर में; रहे-रहता; कृष्ण-प्रेम-अमृत-पूर-कृष्ण भक्ति का अमृत।

अनुवाद

अत्यन्त सम्माननीय व्यक्ति श्री कानु ठाकुर पुरुषोत्तम दास ठाकुर के पुत्र थे। वे इतने बड़े भक्त थे कि भगवान् कृष्ण सदैव उनके शरीर में वास करते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "कानु ठाकुर के मुख्यालय पहुँचने के लिए झिकरगाछा घाट स्टेशन से नाव द्वारा कपोताक्ष नदी जाना होता है। अन्यथा झिकरगाछा घाट स्टेशन से दो ढाई मील सीधे जाने पर बोधखाना देखा जा सकता है, जहाँ कानु ठाकुर का मुख्यालय है। सदाशिव के पुत्र पुरुषोत्तम ठाकुर, एवं पुरूषोत्तम के पुत्र कानु ठाकुर थे। कानु ठाकुर के वंशज उन्हें नागर पुरुषोत्तम के नाम से जानते हैं। वे कृष्णलीला के समय दाम नामक ग्वालबाल थे। कहा जाता है कि कानु ठाकुर का जन्म होते ही उनकी माता जाह्नवा का देहान्त हो गया। अभी वे बारह दिन के थे, तभी श्री नित्यानन्द प्रभु उन्हें खड़दह-स्थित अपने घर ले गये। यह निश्चित हो चुका है कि कानु ठाकुर बंगाब्द 942 (1535 ई.) के आसपास बंगाल में उत्पन्न हुए थे। कहा जाता है कि उनका जन्म रथयात्रा के दिन हुआ था। वे जन्म से ही भगवान् कृष्ण के बड़े भक्त थे, इसलिए श्री नित्यानन्द प्रभु ने उनका नाम शिशु कृष्णदास रखा। जब वे पाँच साल के थे, तो वे जाह्नवा माता के साथ वृन्दावन गये। कानु ठाकुर के भावमय लक्षणों को देखकर ही गोस्वामियों ने उनका नाम कानाइ ठाकुर रख दिया। "कानु ठाकुर के परिवार में राधा-कृष्ण विग्रह हैं, जिनका नाम प्राणवल्लभ है। कहा जाता है कि उनके परिवार में इस विग्रह की पूजा चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के बहुत पहले से होती आ रही थी। जब बंगाल पर महाराष्ट्रियों का आक्रमण हुआ, तो कानु ठाकुर का परिवार तितर-बितर हो गया, किन्तु आक्रमण के बाद उस परिवार के एक व्यक्ति हरिकृष्ण गोस्वामी अपने असली घर बोधखाना लौट आये और फिर से प्राणवल्लभ विग्रह की स्थापना की। आज भी उस परिवार के वंशज प्राणवल्लभ विग्रह की पूजा करते हैं। कानु ठाकुर खेतरि उत्सव के समय उपस्थित थे, जिसमें जाह्नवा देवी तथा वीरभद्र गोस्वामी भी गये थे। कानु ठाकुर के परिवार के एक व्यक्ति माधवाचार्य ने श्री नित्यानन्द प्रभु की पुत्री गंगादेवी से विवाह कर लिया। पुरुषोत्तम ठाकुर तथा कानु ठाकुर दोनों ही के अनेक ब्राह्मण शिष्य थे। कानु ठाकुर के बहुत

से शिष्यों के वंशज मिदनापुर जिले में शिलावती नदी के किनारे स्थित गड़बेटा नामक गाँव में रहते हैं।"

महा-भागवत-श्रेष्ठ दत्त उद्धारण।

सर्व-भावे सेवे नित्यानन्देर चरण ॥41॥

महा-भागवत–महान् भक्त; श्रेष्ठ-श्रेष्ठ; दत्त-दत्त; उद्धारण-उद्धारण; सर्व-भावे-सभी प्रकार से; सेवे-पूजा करते; नित्यानन्देर-नित्यानन्द प्रभु के; चरण-चरणकमलों की।

अनुवाद

बारह गोपालों में से ग्यारहवें गोपाल उद्धारण दत्त ठाकुर श्री नित्यानन्द प्रभु के उन्नत भक्त थे। वे नित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों की सभी प्रकार से सेवा करते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "गौरगणोद्देश-दीपिका (129) के अनुसार उद्धारण दत्त ठाकुर पहले वृन्दावन के सुबाहु नामक ग्वालबाल थे। इनको पहले श्री उद्धारण दत्त कहते थे। ये सप्तग्राम के रहने वाले थे, जो हुगली जिले में त्रिशबिघा स्टेशन के निकट सरस्वती नदी के तट पर स्थित है। उद्धारण ठाकुर के समय में सप्तग्राम एक बहुत बड़ा नगर था, जिसके अन्तर्गत वासुदेवपुर, बाँशबेड़िया, कृष्णपुर, नित्यानन्दपुर, शिवपुर, शंखनगर तथा सप्तग्राम आते थे।"

कलकत्ता का विकास ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत प्रभावशाली व्यापारिक जाति, विशेषतया सुवर्ण-वणिक जाति द्वारा किया गया, जो सप्तग्राम से पूरे कलकत्ता में अपना व्यापार जमाने तथा घर

बनाने आई थी। वे कलकत्ता के सप्तग्रामी व्यापारी जन कहलाते थे और उनमें से अधिकांश लोग मल्लिक तथा सिल परिवारों के थे। श्रील उद्धारण ठाकुर की ही तरह आधे से ज्यादा कलकत्ता इसी जाति से सम्बन्धित था। हमारा पैतृक परिवार भी इसी जिले और जाति से था। कलकत्ता के मल्लिक दो परिवारों में विभाजित हैं–सिल परिवार तथा दे परिवार। दे परिवार के सारे मल्लिक मूलतः एक ही परिवार तथा गोत्र के हैं। हम भी पहले दे परिवार शाखा से सम्बन्धित थे, जिसके सदस्यों को मुसलमान शासकों से मल्लिक की पदवी प्राप्त हुई थी।

चैतन्य-भागवत (अन्त्य-खण्ड, अध्याय 5) में कहा गया है कि उद्धारण दत्त एक महान् एवं उदार वैष्णव थे। वे नित्यानन्द प्रभु की पूजा करने का अधिकार लेकर उत्पन्न हुए थे। यह भी कहा गया है कि नित्यानन्द प्रभु खड़दह में कुछ काल तक रहने के बाद सप्तग्राम गये और वहाँ पर उद्धारण दत्त के मकान में ठहरे। उद्धारण दत्त का सम्बन्ध जिस स्वर्ण-वणिक जाति से था, वह वास्तव में वैष्णव जाति थी। इसके सदस्य साहुकार तथा स्वर्ण के व्यापारी थे। बहुत काल पूर्व बल्लाल सेन तथा सुवर्णवणिक जाति में बहुत बड़े साहुकार गौरी सेन के कारण अनबन हो गई। बल्लाल सेन गौरी सेन से उधार लेकर मनमाना खर्च करते थे। इसलिए गौरी सेन ने धन देना बन्द कर दिया। बल्लाल सेन ने इसका बदला स्वर्णवणिकों को जाति से बहिष्कृत कराने का षड्यन्त्र बनाकर लिया। तब से वे उच्च जाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों से बहिष्कृत कर दिये गये। किन्तु श्रील नित्यानन्द प्रभु की कृपा से स्वर्ण-वणिक जाति फिर से ऊपर उठ गई। चैतन्य भागवत में कहा गया है- यतेक वणिक कुल उद्धारण होते पवित्र हइल द्विधा नाहिक इहाते—इसमें सन्देह नहीं कि सुर्वणवणिक समाज के सारे सदस्य श्री नित्यानन्द प्रभु द्वारा फिर से पवित्र बना दिये गये।

सप्तग्राम में अब भी श्री चैतन्य महाप्रभु का षड्भुजी विग्रह है, जिसकी पूजा उद्धारण दत्त ठाकुर स्वयं करते थे। श्री चैतन्य महाप्रभु के दाएँ नित्यानन्द प्रभु का और बाएँ गदाधर प्रभु का विग्रह

है। इसके अतिरिक्त राधा-गोविन्द मूर्ति तथा शालग्राम शिला भी हैं और सिंहासन के नीचे श्री उद्धारण दत्त ठाकुर की छवि है। अब मन्दिर के सामने एक बड़ा-सा हाल है और इसके सामने माधवीलता का पौधा लगा है। यह मन्दिर अत्यन्त छायादार, शीतल तथा अच्छी जगह पर स्थित है। सन् 1967 में जब हम अमरीका से लौटे, तब इस मन्दिर की कार्यकारिणी समिति के सदस्यों ने यहाँ आने के लिए हमें बुलाया और इस तरह हमें अपने कुछ अमरीकी शिष्यों सहित इस मन्दिर को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। पहले अपने बाल्यकाल में हमने अपने माता-पिता के साथ इस मन्दिर के दर्शन किये थे, क्योंकि सुवर्ण-वणिक जाति के सारे लोग उद्धारण दत्त ठाकुर के इस मन्दिर में विशेष रुचि दिखलाते हैं।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "1283 बंगाब्द (1876 ई.) में निताई दास नामक एक बाबाजी ने इस मन्दिर के लिए 12 बीघे (लगभग चार एकड़) भूमि दान में प्राप्त की। बाद में इस मन्दिर की व्यवस्था गड़बड़ा गई, किन्तु बंगाब्द 1306 (1899 ई.) में हुगली के उपन्यायाधीश सुप्रसिद्ध बलराम मल्लिक तथा धनी सुवर्ण-वणिक जाति के अनेक सदस्यों के सहयोग से मन्दिर का प्रबन्ध काफी सुधर गया। अभी पचास वर्ष भी नहीं हुए, उद्धारण दत्त ठाकुर के परिवार के एक सदस्य जगमोहन दत्त ने मन्दिर में उद्धारण दत्त ठाकुर का काष्ठ का विग्रह स्थापित किया था, किन्तु अब वह मूर्ति वहाँ नहीं है। इस समय उद्धारण दत्त ठाकुर की छवि की पूजा की जाती है। कहा जाता है कि उद्धारण दत्त ठाकुर का काष्ठ-विग्रह श्री मदनमोहन दत्त उठा ले गये और अब श्रीनाथ दत्त द्वारा उसकी पूजा शालग्राम शिला के साथ-साथ की जाती है।

"उद्धारण दत्त ठाकुर नैहाटी में जो कटवा से डेढ़ मील उत्तर में है, एक बड़े जमींदार की जायदाद के प्रबन्धक (दीवान) थे। इस शाही परिवार के ध्वंसावशेष अब भी दैहाट स्टेशन के निकट देखे जा सकते हैं। चूँकि उद्धारण दत्त ठाकुर जायदाद के प्रबन्धक थे, अतएव इसे उद्धारणपुर भी

कहते हैं। उद्धारण दत्त ठाकुर ने निताई–गौर विग्रहों की स्थापना की थी, जिन्हें बाद में जमींदार के घर ले जाया गया, जो वनओयारीबाड़ कहलाता है। श्रील उद्धारण दत्त ठाकुर आजीवन गृहस्थ बने रहे। उनके पिता का नाम श्रीकर दत्त था, माता का नाम भद्रावती था और पुत्र का नाम श्रीनिवास दत्त था।"

आचार्य वैष्णवानन्द भक्ति-अधिकारी ।

पूर्वे नाम छिल याँर रघुनाथ पुरी' ॥42॥

आचार्य–आचार्य, गुरु; वैष्णवानन्द-वैष्णवानन्द; भक्ति-भक्ति; अधिकारी-सुपात्र; पूर्वे-पहले; नाम-नाम; छिल–था; याँर–जिनका; रघुनाथ पुरी-रघुनाथ पुरी।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के सत्ताइसवें प्रमुख भक्त आचार्य वैष्णवानन्द थे, जो भक्तिमयी सेवा में एक महान् अधिकारी थे। वे पहले रघुनाथ पुरी नाम से प्रसिद्ध थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (97) में बतलाया गया है कि पहले रघुनाथ पुरी अष्ट-सिद्धियों में अत्यन्त शक्तिशाली थे। वे इन सिद्धियों में से ही एक अवतार थे।

विष्णुदास, नन्दन, गङ्गादास–तिन भाइ ।

पूर्वे याँर घरे छिला ठाकुर निताई ॥43॥

विष्णुदास-विष्णुदास; नन्दन-नन्दन; गङ्गादास-गंगादास; तिन भाइ–तीन भाई; पूर्वे-पहले; याँर–जिनके; घरे–घर में; छिला-रुके; ठाकुर निताइ–नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के एक अन्य महत्त्वपूर्ण भक्त विष्णुदास थे, जिनके दो भाई थे-नन्दन तथा गंगादास। कभी-कभी नित्यानन्द प्रभु इनके घर में ठहरते थे।

तात्पर्य

विष्णुदास, नन्दन तथा गंगादास-ये तीनों भाई नवद्वीप के निवासी थे और भट्टाचार्य ब्राह्मण-कुल के थे। विष्णुदास तथा गंगादास कुछ काल तक जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ ठहरे थे। चैतन्य-भागवत में लिखा है कि पहले नित्यानन्द प्रभु उनके घर में रुका करते थे।

नित्यानन्द-भृत्य–परमानन्द उपाध्याय ।

श्री-जीव पण्डित नित्यानन्द-गुण गाय ॥44॥

नित्यानन्द-भृत्य-नित्यानन्द प्रभु के सेवक; परमानन्द उपाध्याय-परमानन्द उपाध्याय; श्री-जीव पण्डित-श्री जीव पण्डित; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; गुण-गुण; गाय-महिमा गाई।

अनुवाद

परमानन्द उपाध्याय नित्यानन्द प्रभु के महान् सेवक थे और श्री जीव पण्डित नित्यानन्द प्रभु के गुणों का बखान करते थे।

तात्पर्य

श्री परमानन्द उपाध्याय महान् भक्त थे। उनका नामोल्लेख चैतन्य-भागवत में हुआ है। वहीं यह भी उल्लेख है कि श्री जीव पण्डित रत्नगर्भ आचार्य के पुत्र तथा नित्यानन्द प्रभु के पिता हाड़ाइ ओझा के बचपन के मित्र थे। गौरगणोद्देश-दीपिका (169) में कहा गया है कि जीव पण्डित पूर्वजन्म में इन्दिरा नाम की गोपी थे।

परमानन्द गुप्त—कृष्ण-भक्त महामती ।

पूर्वे याँर घरे नित्यानन्देर वसति ॥ 45 ॥

परमानन्द गुप्त-परमानन्द गुप्त; कृष्ण-भक्त-भगवान् कृष्ण के एक महान् भक्त; महा-मति-आध्यात्मिक चेतना में उन्नत; पूर्वे--पहले; याँर-जिनके; घरे-घर में; नित्यानन्देर-नित्यानन्द प्रभु का; वसति–निवास।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के इकतीसवें भक्त श्री परमानन्द गुप्त थे, जो कृष्ण-भक्त थे और आध्यात्मिक चेतना में अग्रणी थे। नित्यानन्द प्रभु पहले उनके घर कुछ काल तक रह चुके थे।

तात्पर्य

परमानन्द गुप्त ने कृष्ण स्तवावली नामक भगवान् कृष्ण की स्तुति की रचना की है। गौरगणोद्देश-दीपिका (194 तथा 199) में इन्हें पूर्वजन्म की मंजुमेधा नामक गोपी बतलाया गया है।

नारायण, कृष्णदास आर मनोहर ।

देवानन्द–चारि भाइ निताइ-किङ्कर ॥46॥

नारायण-नारायण; कृष्णदास-कृष्णदास; आर-और; मनोहर-मनोहर; देवानन्द–देवानन्द; चारि भाइ-चारों भाई; निताइ-किङ्कर-नित्यानन्द प्रभु के सेवक।

अनुवाद

नारायण, कृष्णदास, मनोहर तथा देवानन्द-ये चारों भाई सदैव नित्यानन्द प्रभु की सेवा में लगे रहने वाले बत्तीसवें, तैंतीसवें, चौंतीसवें और पैंतीसवें प्रभुख भक्त थे।

होड़ कृष्णदास–नित्यानन्द-प्रभु-प्राण।

नित्यानन्द-पद विनु नाहि जाने आन ॥47॥

होड़ कृष्णदास-होड़ कृष्णदास; नित्यानन्द-प्रभु-नित्यानन्द प्रभु के; प्राण-जीवन तथा प्राण; नित्यानन्द-पद-नित्यानन्द प्रभु के चरणकमल; विनु–बिना; नाहि-नहीं; जाने-जानते; आन-और कुछ।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द के छत्तीसवें भक्त होड़ कृष्णदास थे, जिनके लिए नित्यानन्द प्रभु जीवन और प्राण थे। वे सदैव श्री नित्यानन्द के चरणकमलों पर समर्पित रहते थे और उनके अतिरिक्त वे अन्य किसी को नहीं जानते थे।

तात्पर्य

कृष्णदास होड़ बड़गाछि के निवासी थे, जो अब बाँग्लादेश में है।

नकड़ि, मुकुन्द, सूर्य, माधव, श्रीधर।

रामानन्द वसु, जगन्नाथ, महीधर ॥48॥

नकड़ि-नकड़ी; मुकुन्द-मुकुन्द; सूर्य-सूर्य; माधव-माधव; श्रीधर-श्रीधर; रामानन्द वसु-रामानन्द वसु; जगन्नाथ–जगन्नाथ; महीधर–महीधर।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के भक्तों में नकड़ि सैंतीसवें, मुकुन्द अड़तीसवें, सूर्य उन्तालीसवें, माधव चालीसवें, श्रीधर इकतालीसवें, रामानन्द बयालीसवें, जगन्नाथ तैंतालीसवें तथा महीधर चवालीसवें क्रम पर थे।

तात्पर्य

श्रीधर बारहवें गोपाल थे।

श्रीमन्त, गोकुल-दास हरिहरानन्द।

शिवाइ, नन्दाइ, अवधूत परमानन्द ॥49॥

श्री-मन्त–श्रीमन्त; गोकुल-दास–गोकुलदास; हरिहरानन्द–हरीहरानन्द; शिवाइ-शिवाई; नन्दाइ–नन्दाई; अवधूत परमानन्द-अवधूत परमानन्द।

अनुवाद

श्रीमन्त पैंतालीसवें, गोकुलदास छियालीसवें, हरिहरानन्द सैंतालीसवें, शिवाई अड़तालीसवें, नन्दाइ उनचासवें तथा परमानन्द पचासवें भक्त थे।

वसन्त, नवनी होड़, गोपाल, सनातन।

विष्णाइ हाजरा, कृष्णानन्द, सुलोचन ॥50॥

वसन्त–वसन्त; नवनी होड़-नवनी होड़; गोपाल–गोपाल; सनातन-सनातन; विष्णाइ हाजरा-विष्णाइ हाजरा; कृष्णानन्द-कृष्णचन्द्र; सुलोचन-सुलोचन।

अनुवाद

वसन्त इक्यावनवे, नवनी होड़ बावनवे, गोपाल तिरपनवें, सनातन चौवनवे, विष्णाइ पचपनवें, कृष्णानन्द छप्पनवें एवं सुलोचन सत्तावनवें भक्त थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "नवनी होड़ बड़गाछि के राजा के पुत्र होड़ कृष्णदास ही प्रतीत होते हैं। उनके पिता का नाम हरि होड़ था। लाल गोलाघाट रेलवे लाइन से होकर बड़गाछि जाया जा सकता है। पहले गंगा नदी बड़गाछि से होकर बहती थी, लेकिन अब उसने कालशिर खाल नहर का रूप धारण कर लिया है। मुड़ागाछा स्टेशन के पास शालिग्राम नामक एक गाँव है, जहाँ राजा कृष्णदास ने श्री नित्यानन्द प्रभु के विवाह की व्यवस्था की थी। ऐसा वर्णन भक्तिरत्नाकर की बारहवीं तरंग में मिलता है। कभी-कभी कहा जाता है कि नवनी होड़ राजा कृष्णदास के पुत्र थे। उनके वंशज आज भी बहिरगाछि के निकट रुकुणपुर गाँव में रहते हैं। वे दक्षिण राढ़ीय कायस्थ जाति के हैं, किन्तु उन्हें ब्राह्मण बना दिया गया है और वे अब भी सभी जातियों को दीक्षा देते हैं।"

कंसारि सेन, रामसेन, रामचन्द्र कविराज।

गोविन्द, श्रीरङ्ग, मुकुन्द, तिन कविराज ॥51॥

कंसारि सेन–कंसारी सेन; रामसेन–रामसेन; रामचन्द्र कविराज–रामचन्द्र कविराज; गोविन्द–गोविन्द; श्रीरङ्ग-श्रीरंग; मुकुन्द-मुकुन्द; तिन कविराज–तीनों कविराज हैं।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द के अठ्ठावनवें महान् भक्त कंसारि सेन, उनसठवें रामसेन, साठवें रामचन्द्र कविराज तथा इकसठवें, बासठवें एवं तिरसठवें भक्त गोविन्द, श्रीरंग तथा मुकुन्द सभी वैद्य थे।

तात्पर्य

श्री रामचन्द्र कविराज खण्डवासी चिरंजीव तथा सुनन्द के पुत्र थे और श्रीनिवास आचार्य के शिष्य तथा नरोत्तमदास ठाकुर के घनिष्ठ मित्र थे, जिन्होंने कई बार उनकी संगति के लिए प्रार्थना की थी। उनका सबसे छोटा भाई गोविन्द कविराज था। श्रील जीव गोस्वामी ने श्री रामचन्द्र कविराज की कृष्ण-भक्ति की अत्यधिक प्रशंसा की और उन्हें कविराज की उपाधि दी। श्री रामचन्द्र कविराज गृहस्थी के कार्यों से सदा विरत रहते थे और श्रीनिवास आचार्य तथा नरोत्तमदास ठाकुर के प्रचार-कार्य में काफी सहायता करते थे। पहले वे श्रीखंड में रहते थे, किन्तु बाद में गंगा के तट पर कुमारनगर में रहने लगे।

गोविन्द कविराज रामचन्द्र कविराज के भाई तथा श्रीखंड निवासी चिरंजीव के सबसे छोटे पुत्र थे। यद्यपि वे प्रारम्भ में शाक्त अर्थात् दुर्गा देवी की पूजा करने वाले थे, किन्तु बाद में श्रीनिवास आचार्य प्रभु ने उन्हें दीक्षा दी। गोविन्द कविराज भी पहले श्रीखंड में और बाद में कुमारनगर में रहे, किन्तु बाद में वे पद्मा नदी के दक्षिणी तट पर स्थित तेलिया बुधरि नामक गाँव चले गये। गोविन्द कविराज की लिखी दो पुस्तकें हैं-संगीतमाधव तथा गीतामृत। वे महान् वैष्णव कवि थे, इसलिए

श्रील जीव गोस्वामी ने उन्हें कविराज की उपाधि प्रदान की। इनका उल्लेख भक्तिरत्नाकर की नवम तरंग में है।

गौरगणोद्देश-दीपिका (194 तथा 200) के अनुसार कंसारि सेन पूर्वजन्म में व्रज की रत्नावली गोपी थे।

पीताम्बर, माधवाचार्य, दास दामोदर।

शङ्कर, मुकुन्द, ज्ञान-दास, मनोहर ॥52॥

पीताम्बर-पीताम्बर; माधवाचार्य-माधवाचार्य; दास दामोदर-दामोदर दास; शङ्कर–शंकर; मुकुन्द-मुकुन्द; ज्ञान-दास–ज्ञानदास; मनोहर-मनोहर।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के भक्तों में पीताम्बर चौसठवें, माधवाचार्य पैंसठवें, दामोदर दास छियासठवें, शंकर सतसठवें, मुकुन्द अड़सठवें, ज्ञानदास उनहत्तरवें तथा मनोहर सत्तरवें भक्त थे।

नर्तक गोपाल, रामभद्र, गौराङ्ग-दास।

नृसिंह-चैतन्य, मीनकेतन रामदास ॥53॥

नर्तक गोपाल-नर्तक गोपाल; रामभद्र-रामभद्र; गौराङ्ग-दास–गौरांगदास; नृसिंह-चैतन्य-नृसिंह चैतन्य; मीनकेतन रामदास-मीनकेतन रामदास।

अनुवाद

नर्तक गोपाल इकहत्तरवें, रामभद्र बहत्तरवें, गौरांग दास तिहत्तरवें, नृसिंह चैतन्य चौद्दत्तरवें तथा मीनकेतन रामदास पचहत्तरवें भक्त थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (68) में मीनकेतन रामदास संकर्षण के अवतार थे।

वृन्दावन-दास–नारायणीर नन्दन।

'चैतन्य-मङ्गल' येंहो करिल रचन ॥54॥

वृन्दावन-दास-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर; नारायणीर नन्दन–नारायणी के पुत्र; चैतन्य-मङ्गल- चैतन्य मंगल नामक ग्रंथ; येंहो–जिन्होंने; करिल-की; रचन-रचना।

अनुवाद

श्रीमती नारायणी के पुत्र वृन्दावन दास ठाकुर ने श्री चैतन्य मंगल (जो बाद में श्री चैतन्य भागवत नाम से प्रसिद्ध हुआ) की रचना की।

भागवते कृष्ण-लीला वर्णिला वेदव्यास।

चैतन्य-लीलाते व्यास–वृन्दावन दास ॥55॥

भागवते-श्रीमद्भागवत में; कृष्ण-लीला- भगवान् कृष्ण की लीलाएँ; वर्णिला-वर्णन किया; वेद-व्यास-द्वैपायन व्यास देव; चैतन्य-लीलाते-चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं में; व्यास–व्यासदेव; वृन्दावन दास-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर।

अनुवाद

श्रील वेदव्यास ने श्रीमद्भागवत में कृष्ण-लीलाओं का वर्णन किया और श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के व्यास हुए वृन्दावन दास।

तात्पर्य

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर वेदव्यास के अवतार थे और कृष्ण-लीला के कुसुमापीड़ नामक स्नेही गोपाल भी थे। दूसरे शब्दों में, श्री चैतन्य-भागवत के लेखक श्रील वृन्दावन दास ठाकुर, जो श्रीवास ठाकुर की भांजी नारायणी के पुत्र थे, वेदव्यास तथा गोपाल कुसुमापीड़ के संयुक्त अवतार थे। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्री चैतन्य-भागवत के अपने भाष्य में वृन्दावन दास ठाकुर का विस्तृत जीवन-परिचय दिया है।

सर्वशाखा-श्रेष्ठ वीरभद्र गोसाञि ।

ताँर उपशाखा यत, तार अन्त नाइ ॥56॥

सर्व-शाखा-श्रेष्ठ-सभी शाखाओं में सर्वोत्तम; वीरभद्र गोसाञि-वीरभद्र गोसांई; ताँर उपशाखा-उनकी उपशाखाएँ; यत-सब; तार-उनमें से; अन्त-सीमा; नाइ–नहीं है।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु की समस्त शाखाओं में वीरभद्र गोसांई सर्वोपरि थे। उनकी उपशाखाएँ अनन्त थीं।

अनन्त नित्यानन्द-गण–के करु गणन ।

आत्म-पवित्रता-हेतु लिखिलाँ कत जन ॥57॥

अनन्त-असीम; नित्यानन्द-गण-श्री नित्यानन्द प्रभु के अनुयायी; के करु-कौन कर सकते हैं; गणन-गिनना; आत्म-पवित्रता-आत्मशुद्धि के; हेतु-कारण से; लिखिलाँ–मैंने लिखा है; कत जन-उनमें से कुछ।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु के असंख्य अनुयायियों की कोई गिनती नहीं कर सकता। मैंने तो केवल आत्म शुद्धि के लिए उनमें से कुछ का ही उल्लेख किया है।

एइ सर्व-शाखा पूर्ण पक्व प्रेम-फले ।

यारे देखे, तारे दिया भासाइल सकले ॥58 ॥

एइ–ये; सर्व-शाखा-सभी शाखाएँ; पूर्ण–पूर्ण; पक्व प्रेम-फले-भगवत्प्रेम के पके फल सहित; यारे देखे-वे जिनको भी देखते हैं; तारे दिया-उसको वितरण किया; भासाइल-आप्लावित हो गये; सकले–उनमें से सभी।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु के भक्तों की ये सारी शाखाएँ कृष्ण-प्रेम के पके फलों से परिपूर्ण थीं और उनसे जो भी मिला, उन सबको ये फल बाँट दिये और उन्हें कृष्ण-प्रेम से आप्लावित कर दिया।

अनर्गल प्रेम सबार, चेष्टा अनर्गल ।

प्रेम दिते, कृष्ण दिते धरे महाबल ॥ 59॥

अनर्गल-अवरोध रहित; प्रेम-कृष्ण-प्रेम; सबार-उनमें से प्रत्येक की; चेष्टा-चेष्टा; अनर्गल–बिना अवरोध के; प्रेम दिते-कृष्ण-प्रेम देने के लिए; कृष्ण दिते-कृष्ण देने के लिए; धरे–वे रखते हैं; महाबल-बहुत शक्ति।

अनुवाद

इन सारे भक्तों में अबाध, अनन्त कृष्ण-प्रेम प्रदान करने की असीम शक्ति थी। वे अपनी शक्ति से किसी को भी कृष्ण तथा कृष्ण-प्रेम प्रदान कर सकते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने गाया है-कृष्ण से तोमार, कृष्ण दिते पार, तोमार शकति आछे।इस गीत में भक्तिविनोद ठाकुर बतलाते हैं कि शुद्ध वैष्णव कृष्ण तथा कृष्ण-प्रेम का स्वामी होता है। वह जिस किसी को भी चाहे, उनको इसे प्रदान कर सकता है। अतएव कृष्ण तथा कृष्ण-प्रेम प्राप्त करने के लिए मनुष्य को शुद्ध भक्तों की कृपा खोजनी चाहिए। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर भी कहते हैं, "गुरु की कृपा से कृष्ण की कृपा प्राप्त होती है। गुरु की कृपा के बिना कोई उन्नति नहीं कर सकता (यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्याप्रसादान् न गतिः कुतोपि)।" वैष्णव या प्रामाणिक गुरु की कृपा से मनुष्य कृष्ण-प्रेम तथा कृष्ण दोनों को प्राप्त कर सकता है।

सङ्क्षेपे कहिलाँ एइ नित्यानन्द-गण ।

याँहार अवधि ना पाय 'सहस्र-वदन' ॥60॥

सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिलाँ-वर्णन किया है; एइ-ये; नित्यानन्द-गण-नित्यानन्द प्रभु के भक्तों; याँहार–जिनकी; अवधि–सीमा; ना-नहीं; पाय-पाता; सहस्र-वदन-हजारों मुखवाले शेषनाग, जिन पर भगवान् विष्णु लेटे हैं।

अनुवाद

मैंने श्री नित्यानन्द प्रभु के अनुयायियों और भक्तों में से कुछ का ही संक्षेप में वर्णन किया है। एक हजार मुखों वाले शेषनाग भी इन सभी असंख्य भक्तों का वर्णन नहीं कर सकते।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 61॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ–श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; यार–जिसकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक पुस्तक; कहे-वर्णन करता है; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के उद्देश्य की पूर्ति की प्रबल इच्छा से मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के ग्यारहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त-तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें नित्यानन्द के अंशों का वर्णन है।

अध्याय बारह

अद्वैत आचार्य तथा गदाधर पण्डित के विस्तार

भक्तिविनोद ठाकुर ने अमृत-प्रवाह-भाष्य में आदिलीला के बारहवें अध्याय का सार दिया है। इस अध्याय में अद्वैत आचार्य के अनुयायियों का वर्णन हुआ है, जिनमें से अद्वैत आचार्य के पुत्र

अच्युतानन्द के अनुयायियों को शुद्ध अनुयायी माना जाता है, क्योंकि उन्हें अद्वैत आचार्य द्वारा दिये गये दर्शन का नवनीत प्राप्त हुआ था। अद्वैत आचार्य के अन्य तथाकथित वंशजों तथा अनुयायियों को मान्यता प्राप्त नहीं है। इस अध्याय में अद्वैत आचार्य के पुत्र गोपाल मिश्र तथा उनके सेवक कमलाकान्त विश्वास की भी कथा दी हुई है। गोपाल अपने बाल्यकाल में जगन्नाथ पुरी में गुण्डिचा मन्दिर बुहारते समय मूर्च्छित हो गया था और इस तरह उसे चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त हुई थी। कमलाकान्त विश्वास की कथा इस रूप में आती है कि उसने प्रतापरुद्र महाराज से अद्वैत आचार्य का ऋण चुकाने के लिए तीन सौ रुपये उधार लिए थे और जब चैतन्य महाप्रभु को इसका पता चला, तो उन्होंने उसे खूब फटकारा। तब अद्वैत आचार्य के प्रार्थना करने पर कमलाकान्त विश्वास शुद्ध हुआ था। अद्वैत आचार्य के वंशजों का वर्णन करने के बाद इस अध्याय के अन्त में गदाधर पण्डित गोस्वामी के अनुयायियों का भी विवरण दिया गया है।

अद्वैताङ्घ्यब्ज-भृङ्गस्तान्सारासार-भृतोऽखिलान्।

हित्वासारान्सार-भृतो नौमि चैतन्य-जीवनान्॥ 1॥

अद्वैत-अघ्रि-अद्वैत आचार्य के चरणकमल; अब्ज–कमल पुष्प; भृङ्गान्–भ्रमर; तान्-वे सब; सार-असार-असली तथा बनावटी; भृतः-स्वीकार करके; अखिलान्-उन सबको; हित्वा-त्यागकर; असारान्-जो असली नहीं हैं; सार-भृतः-जो असली हैं; नौमि–मेरा नमस्कार हो; चैतन्य-जीवनान्-जिनके जीवन और प्राण भगवान् चैतन्य महाप्रभु

अनुवाद

श्री अद्वैत प्रभु के अनुयायी दो प्रकार के थे। कुछ तो असली थे और कुछ नकली। मैं नकली अनुयायियों का बहिष्कार करते हुए श्री अद्वैत आचार्य के असली अनुयायियों को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनके जीवन और प्राण श्री चैतन्य महाप्रभु थे।

जय जय महाप्रभु श्री-कृष्ण-चैतन्य ।

जय जय नित्यानन्द जयाद्वैत धन्य ॥2॥

जय जय-जय हो; महाप्रभु–महाप्रभु; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य; जय जय-जय हो; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु की; जय अद्वैत-अद्वैत प्रभु की जय हो; धन्य-जो अत्यन्त महिमा युक्त हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! नित्यानन्द प्रभु की जय हो और जय हो श्री अद्वैत प्रभु की! ये सभी धन्य हैं।

श्री-चैतन्यामर-तरोद्वितीय-स्कन्ध-रूपिणः ।

श्रीमदद्वैत-चन्द्रस्य शाखा-रूपान्गणान्नुमः ॥ 3 ॥

श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; अमर-अमर; तरोः–वृक्ष के; द्वितीय-दूसरी; स्कन्ध-बड़ी शाखा; रूपिणः-रूप में; श्रीमत् पूर्णतः महिमान्वित; अद्वैत-चन्द्रस्य-भगवान् अद्वैतचन्द्र की; शाखा-रूपान्–शाखाओं के रूप में; गणान्–सभी अनुयायियों को; नुमः-मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य रूपी नित्य वृक्ष की द्वितीय शाखा सर्वयशस्वी अद्वैत प्रभु को तथा उनकी उपशाखा रूपी उनके अनुयायियों को सादर नमस्कार करता हूँ।

वृक्षेर द्वितीय स्कन्ध–आचार्य-गोसाञि ।

ताँर यत शाखा हइल, तार लेखा नाञि ॥4॥

वृक्षेर–वृक्ष की; द्वितीय स्कन्ध-दूसरी बड़ी शाखा; आचार्य-गोसाञि-श्री अद्वैत आचार्य गोस्वामी; ताँर-उनकी; यत–सभी; शाखा–शाखाएँ; हइल-हो गईं; तार-उनका; लेखा-वर्णन; नाञि-नहीं है।

अनुवाद

श्री अद्वैत प्रभु उस वृक्ष की द्वितीय बड़ी शाखा थे। उस वृक्ष की अनेक उपशाखाएँ हैं, किन्तु उन सभी का उल्लेख कर सकना असम्भव है।

चैतन्य-मालीर कृपा-जलेर सेचने ।

सेइ जले पुष्ट स्कन्ध बाड़े दिने दिने ॥5॥

चैतन्य-मालीर-चैतन्य नामक माली का; कृपा-जलेर-उनकी दया रूपी जल से; सेचने–छिड़कने से; सेइ जले-उसी जल से; पुष्ट-पुष्ट हुईं (बढ़ीं); स्कन्ध-शाखाएँ; बाड़े-बढ़ गई; दिने दिने प्रतिदिन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु माली भी थे और ज्यों-ज्यों वे अपने कृपा-रूपी जल से इस वृक्ष को सींचते, त्यों-त्यों नित्यप्रति उसकी सारी शाखाएँ तथा उपशाखाएँ बढ़ती जातीं।

सेइ स्कन्धे व्रत प्रेम-फल उपजिल ।

सेइ कृष्ण-प्रेम-फले जगत्भरिल ॥ 6॥

सेइ स्कन्धे-उस शाखा पर; यत-सब; प्रेम-फल-भगवत्प्रेम के फल; उपजिल-उगे; सेइ-वे; कृष्ण-प्रेम-फले-कृष्ण-प्रेम के फल; जगत्-सारे जगत् में; भरिल-फैल गये।

अनुवाद

इस चैतन्य-रूपी वृक्ष की शाखाओं में जो भगवत्प्रेम रूपी फल लगे, वे इतने अधिक थे कि सारा संसार ही कृष्ण-प्रेम से आप्लावित हो उठा।

सेइ जल स्कन्धे करे शाखाते सञ्चार ।

फले-फुले बाड़े,—शाखा हइल विस्तार ॥7॥

सेइ जल-वह जल; स्कन्धे-शाखाओं पर; करे-करता है: शाखाते-उपशाखाओं पर; सञ्चार-संचार (उगना); फले-फुले-फलों तथा फूलों पर; बाड़े-बढ़ाता है; शाखा-शाखाओं को; हइल हो गया; विस्तार–चारों ओर फैलाव।

अनुवाद

ज्यों-ज्यों तना तथा शाखाएँ सींची गईं, त्यों-त्यों शाखाएँ तथा उपशाखाएँ बहुतायत से बढ़ती गईं और यह वृक्ष फलों तथा फूलों से लद गया।

प्रथमे त’ एक-मत आचार्येर गण।

पाछे दुइ-मत हैल दैवेर कारण ॥8॥

प्रथमे-प्रारम्भ में; त’-तो; एक-मत-एक मत; आचार-अद्वैत आचार्य का; गण-अनुयायी; पाछे-बाद में; दुइ-मत-दो मत; हैल–हो गये; दैवेर-संयोग से; कारण-कारण।

अनुवाद

प्रारम्भ में अद्वैत आचार्य के सारे अनुयायी एक ही मत को मानते थे, किन्तु बाद में वे संयोग से दो भिन्न-भिन्न मतों का अनुसरण करने लगे।

तात्पर्य

दैवेर कारण शब्द इंगित करते हैं कि भाग्य से या ईश्वर की इच्छा से अद्वैत आचार्य के अनुयायी दो पक्षों में विभक्त हो गये। एक ही आचार्य के शिष्यों के बीच ऐसा विरोध गौड़ीय मठ के सदस्यों में भी पाया जाता है। प्रारम्भ में ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तरशत श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद की उपस्थिति में सारे शिष्यों में एकमत था, किन्तु उनके तिरोभाव के तुरन्त बाद उनमें मतभेद शुरू हो गया। एक पक्ष तो भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के आदेशों का पूरा पालन करता रहा, किन्तु दूसरे पक्ष ने अपनी इच्छापूर्ति के लिए अपना निजी मत गढ़ लिया। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने प्रयाण के समय अपने सारे शिष्यों से एक परिचालक समिति (गवर्निंग बॉडी) बनाकर मिलकर प्रचार-कार्य करने की अपील की थी। उन्होंने किसी एक विशेष व्यक्ति को अगला आचार्य बनने का आदेश नहीं दिया था। किन्तु उनके शरीर छोड़ते ही उनके प्रमुख सचिवों ने बिना अधिकार के आचार्य पद हथियाने की योजना बना डाली और इस बात को लेकर वे दो दलों में इस पर बँट गये कि अगला आचार्य कौन होगा। फलतः दोनों

ही दल असार अर्थात् व्यर्थ थे, क्योंकि अपने गुरु के आदेश का उल्लंघन करने के कारण उनके पास कोई अधिकार नहीं था। यद्यपि गुरु का आदेश था कि परिचालक समिति बनाई जाए और गौड़ीय मठ का प्रचार-कार्य सम्पन्न किया जाए, फिर भी दोनों अवैध पक्षों में मुकदमा चल पड़ा, जो 40 वर्षों बाद भी बिना किसी फैसले के चल रहा है।

इसीलिए हम किसी पक्ष से सम्बन्धित नहीं हैं। लेकिन चूँकि दोनों दलों ने गौड़ीय मठ संस्थान की भौतिक सम्पत्ति बाँटने में व्यस्त रहने के कारण प्रचार-कार्य बन्द कर दिया था, इसलिए हमने समस्त पूर्ववर्ती आचार्यों के संरक्षण में चैतन्य सम्प्रदाय का विश्वभर में प्रचार करने के भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर तथा भक्तिविनोद ठाकुर के व्रत को अपनाया और हम देख रहे हैं कि हमारा अकिंचन प्रयास सफल रहा है। हमने उन सिद्धान्तों का पालन किया है, जिन्हें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने भगवद्गीता के श्लोक व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन की व्याख्या में दिया है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के इस आदेश के अनुसार यह शिष्य का कर्तव्य है कि वह अपने गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन करे। आध्यात्मिक जीवन में प्रगति की सफलता का रहस्य शिष्य द्वारा गुरु के आदेशों में दृढ़ विश्वास रखना है। वेदों द्वारा इसकी पुष्टि हुई है :

यस्यदेवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

“जो व्यक्ति गुरु तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वचनों पर अटूट श्रद्धा रखता है, उसे वैदिक ज्ञान में सफलता का रहस्य प्राप्त होता है।” कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार इसी सिद्धान्त के अनुसार किया जा रहा है। इसीलिए विरोधी असुरों के अनेक व्यवधानों के बावजूद हमारा प्रचार-कार्य सफलतापूर्वक चल रहा है, क्योंकि हमें अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से सकारात्मक सहायता मिल रही

है। हर काम का मूल्यांकन उसके फल से करना चाहिए। स्वघोषित आचार्य दल के सदस्य, जिन्होंने गौड़ीय मठ की सम्पत्ति हथियाई थी, सन्तुष्ट तो हैं, किन्तु वे प्रचार-कार्य में कोई प्रगति नहीं कर सके। अतएव उनके कार्यों के परिणाम के अनुसार उन्हें असार या व्यर्थ कहा जायेगा, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) की सफलता गुरु तथा गौरांग की अनुगामिनी होने से दिन-प्रतिदिन सारे संसार में बढ़ती जा रही है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर चाहते थे कि अधिक से अधिक पुस्तकें छापी जाएँ और विश्वभर में वितरित की जाएँ। हमने इस कार्य को करने का यथाशक्ति प्रयास किया है और हमें आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है।

केह त' आचार्य आज्ञाय, केह त' स्वतन्त्र ।

स्व-मत कल्पना करे दैव-परतन्त्र ॥9॥

केह त'-कुछ; आचार्य-गुरु; आज्ञाय-उनकी आज्ञा से; केह त'-कुछ; स्वतन्त्र-स्वतंत्र रूप से; स्व-मत-अपने मत की; कल्पना करे-कल्पना करते हैं; दैव-परतन्त्र-माया के प्रभाव में।

अनुवाद

कुछ शिष्यों ने आचार्य के आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन किया और कुछ अन्य दैवीमाया के वशीभूत होकर अपना स्वतंत्र मत गढ़ने के कारण भटक गये।

तात्पर्य

यह श्लोक भटकाव की शुरुआत का वर्णन करता है। जब शिष्यगण गुरु के आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन नहीं करते, तो तुरन्त दो मत हो जाते हैं। किन्तु गुरु के मत से भिन्न कोई भी मत व्यर्थ (असार) होता है। आध्यात्मिक उन्नति में भौतिकतावादी आधार पर गढ़े गये विचारों को

प्रविष्ट नहीं करने दिया जा सकता। यही भटकाव है। भौतिक विचारों में आध्यात्मिक उन्नति समंजित करने के लिए कोई स्थान नहीं है।

आचार्गेर मत येइ, सेइ मत सार।

ताँर आज्ञा लङ्घि' चले, सेइ त' असार ॥10॥

आचार-गुरु (अद्वैत प्रभु) के; मत-मत; येइ-जो है; सेइ-वह; मत-मत; सार-असली सिद्धान्त; ताँर–उनकी; आज्ञा-आज्ञा; लङ्घि'-लांघकर; चले-चलता है; सेइ-वह; त'-तो; असार–व्यर्थ।

अनुवाद

आध्यात्मिक जीवन में गुरु का आदेश ही जीवन्त सिद्धान्त है। जो कोई गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करता है, वह तुरन्त व्यर्थ (असार) हो जाता है।

तात्पर्य

यह श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी का मत है। जो व्यक्ति गुरु के आदेशों का कठोरता से पालन करते हैं, वे भगवान् की इच्छा को पूरा करने में उपयोगी होते हैं, किन्तु जो गुरु के आदेशों से भटक जाते हैं, वे असार हैं।

असारेर नामे इहाँ नाहि प्रयोजन।

भेद जानिबारे करि एकत्र गणन ॥11॥

असारेर–व्यर्थ लोगों का; नामे-उनके नाम; इहाँ-इस सम्बन्ध में; नाहि-नहीं; प्रयोजन-उपयोग; भेद-भेद; जानिबारे–जानने के लिए; करि–मैं करता हूँ; एकत्र-एक सूची में; गणन-गणना।

अनुवाद

जो असार हैं, उनका नाम लेना व्यर्थ है। मैंने उनका उल्लेख केवल उपयोगी भक्तों से अन्तर दिखलाने के लिए किया है।

धान्य-राशि मापे यैछे पात्ना सहिते ।

पश्चाते पात्ना उड़ाञा संस्कार करिते ॥ 12 ॥

धान्य-राशि-धान के ढेर; मापे–मापता है; यैछे-जैसे; पाना–व्यर्थ भुसा; सहिते-सहित; पश्चाते-बाद में; पाना–व्यर्थ भूसा; उड़ाना-पंखा करना; संस्कार-शुद्धि; करिते-करना।

अनुवाद

पहले धान पुआल के साथ मिला रहता है और धान को पुआल से अलग करने के लिए उसे हवा देनी पड़ती है।

तात्पर्य

कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा दिया गया यह उदाहरण अत्यन्त सटीक है। गौड़ीय मठ के सदस्यों पर ऐसी ही विधि लागू होती है। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के शिष्य तो अनेक हैं, किन्तु यह निर्णय करने के लिए कि वास्तव में कौन उनका शिष्य है और उन्हें उपयोगी तथा असार में विभाजित करने के लिए, ऐसे शिष्यों द्वारा गुरु की इच्छा पूरी करने वाले कार्यकलापों को जानना होगा। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने भारत के बाहर श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय को फैलाने का भरसक प्रयत्न किया। जब वे जीवित थे, तब वे श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए शिष्यों को भारत से बाहर के देशों में भेजने के लिए प्रोत्साहन देते थे। किन्तु इन शिष्यों को

सफलता नहीं मिली, क्योंकि वे लोग विदेशों में अपने सम्प्रदाय का प्रचार करने के प्रति वास्तव में गम्भीर नहीं थे। वे तो विदेशों में जाने का श्रेय मात्र लूटना चाहते थे और भारत में उसी बल पर अपने आपको विदेश से लौटे प्रचारकों के रूप में विज्ञापित करना चाहते थे। अनेक संन्यासियों ने प्रचार की इस दिखावटी विधि विगत 80 वर्षों से भी अधिक समय से अपना रखी है। किन्तु इनमें से कोई भी कृष्णभावनामृत के असली सम्प्रदाय का प्रचार सारे विश्व में नहीं कर पाया। वे भारत लौटकर यह झूठा विज्ञापन करते रहे कि उन्होंने सारे विदेशियों को वेदान्त या कृष्णभावनामृत के विचारों वाला बना दिया है। इसके बाद वे भारत में चन्दा एकत्र करके विलासी जीवन बिताने में मग्न हो गये। जिस प्रकार व्यर्थ पुआल से धान अलग करने के लिए हवा देनी पड़ती है, उसी तरह कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा संस्तुत विधि स्वीकार करके यह बड़ी आसानी से जाना जा सकता है कि कौन असली विश्व-प्रचारक है। और कौन व्यर्थ है।

अच्युतानन्द-बड़ शाखा, आचार्य-नन्दन ।

आजन्म सेविला तेंहो चैतन्य-चरण ॥13॥

अच्युतानन्द-अच्युतानन्द; बड़ शाखा-एक बड़ी शाखा; आचार्य-नन्दन-अद्वैत आचार्य के पुत्र; आजन्म-जीवन के आरम्भ से ही; सेविला-सेवा की; तेंहो-उन्होंने; चैतन्य-चरण-चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य की एक विशाल शाखा थे उनके पुत्र अच्युतानन्द। वे अपने जीवन के प्रारम्भ से ही चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की सेवा में संलग्न रहे।

चैतन्य गोसाञि गुरु—केशव भारती ।

एइ पितार वाक्य शुनि' दुःख पाइल अति ॥14॥

चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु; गोसाञि-गुरु; गुरु-उनके गुरु; केशव भारती–केशव भारती; एइ–ये; पितार-अपने पिता के; वाक्य-शब्द; शुनि'–सुनकर; दुःख-दु:ख; पाइल-पाया; अति-अत्यन्त।

अनुवाद

जब अच्युतानन्द ने अपने पिता से यह सुना कि केशव भारती चैतन्य महाप्रभु के गुरु थे, तो वे अत्यधिक अप्रसन्न हुए।

जगद्गुरुते तुमि कर ऐछे उपदेश।

तोमार एइ उपदेशे नष्ट हइल देश ॥15॥

जगत्-गुरुते-जगद् गुरु पर; तुमि-आप; कर-करते हैं; ऐछे-ऐसा; उपदेश-उपदेश; तोमार-आपके; एइ उपदेशे इस उपदेश से; नष्ट-नष्ट; हइल-हो जायेगा; देश-देश।

अनुवाद

उन्होंने अपने पिता से कहा, "आपका यह उपदेश कि केशव भारती श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु हैं, सारे देश को बर्बाद कर देगा।"

चौद्द भुवनेर गुरु–चैतन्य-गोसाञि।

ताँर गुरु–अन्य, एइ कोन शास्त्रे नाइ ॥16॥

चौद्द-चौदह; भुवनेर-भुवनों के; गुरु-गुरु; चैतन्य गोसाञि-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर गुरु-उनके आध्यात्मिक गुरु; अन्य कोई दूसरा; एइ–यह; कोन-कोई; शास्त्रे-शास्त्रों में; नाइ–कोई उल्लेख नहीं है।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु तो चौदहों लोकों के गुरु हैं, किन्तु आप बतलाते हैं कि उनका गुरु कोई अन्य है। इसकी पुष्टि किसी मान्य शास्त्र द्वारा नहीं होती।"

पञ्चम वर्षेर बालक कहे सिद्धान्तेर सार।

शुनिया पाइला आचार्य सन्तोष अपार ॥17॥

पञ्चम–पाँच; वर्षेर-वर्ष; बालक-बालक; कहे-कहता है; सिद्धान्तेर-सिद्धान्त रूप में; सार-सार; शुनिया-सुनकर; पाइला–पाया; आचार्य-अद्वैल आचार्य; सन्तोष-सन्तोष; अपार-बहुत।

अनुवाद

जब अद्वैत आचार्य ने अपने पाँच वर्ष के पुत्र अच्युतानन्द से यह वाक्य सुना, तो उन्हें परम सन्तोष हुआ, क्योंकि यह सिद्धान्त का सार था।

तात्पर्य

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने तेरहवें से सत्रहवें श्लोक की टीका करते हुए अद्वैत आचार्य की वंशावली का विस्तृत वर्णन किया है। चैतन्य-भागवत के अन्त्य खण्ड के पहले अध्याय में बतलाया गया है कि अच्युतानन्द अद्वैत आचार्य प्रभु के ज्येष्ठ पुत्र थे। अद्वैत-चरित नामक एक संस्कृत ग्रंथ में कहा गया है, "अद्वैत आचार्य प्रभु के तीन पुत्र हुए और वे भगवान् चैतन्य के भक्त

थे। इनके नाम थे अच्युत, कृष्ण मिश्र तथा गोपाल दास। ये तीनों उनकी पत्नी सीतादेवी की कोख से जन्मे थे। अद्वैत आचार्य के तीन पुत्र और थे, जिनके नाम थे बलराम, स्वरूप तथा जगदीश। इस तरह उनके कुल छः पुत्र थे।" इन छहों में से तीन चैतन्य महाप्रभु के कट्टर अनुयायी थे और इनमें से अच्युतानन्द ज्येष्ठ थे।

अद्वैत प्रभु का विवाह 15 वीं शकाब्द के प्रारम्भ (15 वीं शताब्दी ई. के अन्तिम भाग में) में हुआ था। जब चैतन्य महाप्रभु 1433-1434 शकाब्द (1511-12 ई.) में जगन्नाथ पुरी से वृन्दावन जा रहे थे, तो वे रामकेलि गाँव जाना चाहते थे। तब अच्युतानन्द केवल पाँच वर्ष के थे। चैतन्य भागवत (अन्त्य खण्ड, चतुर्थ अध्याय) के अनुसार अच्युतानन्द उस समय केवल पाँच वर्ष के थे और नग्न खड़े थे (पञ्चवर्ष वयस मधुर दिगम्बर)। इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि अच्युतानन्द का जन्म 1428 शकाब्द (1506 ई.) में हुआ होगा। अच्युतानन्द के जन्म के पूर्व अद्वैत प्रभु की पत्नी सीतादेवी चैतन्य महाप्रभु को उनके जन्म के समय देखने गई थीं। अतएव असम्भव नहीं है कि 1407 से 1428 शकाब्द (1486-1507 ई.) के बीच के 21 वर्षों में अद्वैत प्रभु से उन्हें तीन पुत्रों की प्राप्ति हुई हो। सीताद्वैत चरित नामक एक अप्रामाणिक बाँग्ला पुस्तक में, जो 1792 शकाब्द (1870 ई.) में नित्यानन्ददायिनी नामक अप्रामाणिक अखबार में छपी थी, यह बतलाया गया है कि अच्युतानन्द श्री चैतन्य महाप्रभु के सहपाठी थे। चैतन्य-भागवत के अनुसार यह कथन तनिक भी विश्वसनीय नहीं है। संन्यास ग्रहण करने के बाद चैतन्य महाप्रभु 1431 शकाब्द (1509 ई.) में शान्तिपुर स्थित अद्वैत प्रभु के घर पधारे थे। उस समय अच्युतानन्द की आयु केवल तीन वर्ष की थी, ऐसा कथन चैतन्य-भागवत के अन्त्य खण्ड के प्रथम अध्याय में मिलता है। चैतन्य भागवत में यह भी कहा गया है कि अद्वैत प्रभु का नग्न बालक तुरन्त आकर चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़ा। महाप्रभु ने तुरन्त ही उसे गोद में उठा लिया, यद्यपि वह बालक उतना साफ सुथरा नहीं

था और उसके पूरे शरीर में धूल लगी थी। चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "प्रिय अच्युत, अद्वैत आचार्य मेरे पिता हैं, अतएव हम दोनों भाई हुए।"

नवद्वीप में अपने निवास स्थान पर अपना आध्यात्मिक स्वरूप प्रकट करने के पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीवास ठाकुर के भाई श्री राम पण्डित से कहा था कि वे शान्तिपुर जाकर अद्वैत आचार्य को ले आये। उस समय अच्युतानन्द अपने पिता के साथ आये। कहा जाता है-अद्वैतेर तनय 'अच्युतानन्द' नाम / परम बालक, सेहो कान्दे अविराम। अच्युतानन्द भी दिव्य आनन्द में क्रन्दन करने में सम्मिलित हुए। यही नहीं, जब चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य को भक्तियोग के विरोधी निर्विशेष दृष्टिकोण से श्रीमद्भागवत की व्याख्या करने के लिए फटकारा था, तब अच्युतानन्द भी उपस्थित थे। अतएव ये सारी घटनाएँ श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास-ग्रहण करने के दो-तीन वर्ष पूर्व घटी होंगी। चैतन्य-भागवत के अन्त्य खण्ड के पहले अध्याय में कहा गया है कि अद्वैत आचार्य के पुत्र अच्युतानन्द ने महाप्रभु को नमस्कार किया। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि अच्युतानन्द अपने जीवन के प्रारम्भ से ही चैतन्य महाप्रभु के महान् भक्त थे।

इसकी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है कि अच्युतानन्द का कभी विवाह हुआ, किन्तु उन्हें अद्वैत आचार्य वंश की सबसे बड़ी शाखा कहा गया है। शाखानिर्णयामृत नामक पुस्तक से ज्ञात होता है कि अच्युतानन्द गदाधर पण्डित के शिष्य थे और उन्होंने जगन्नाथ पुरी में चैतन्य महाप्रभु की शरण ग्रहण की तथा वे भक्ति में लग गये। चैतन्य-चरितामृत (आदिलीला, अध्याय दस) में बतलाया गया है कि अद्वैत आचार्य के पुत्र अच्युतानन्द चैतन्य महाप्रभु की शरण में जगन्नाथ पुरी में रहते थे। गदाधर पण्डित भी अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में चैतन्य महाप्रभु के साथ रहते थे। इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि अच्युतानन्द पण्डित गदाधर के शिष्य थे। रथयात्रा के समय रथ के समक्ष श्री चैतन्य महाप्रभु के नृत्य का जो विवरण मिलता है, उसमें अच्युतानन्द के

नाम का भी कई बार उल्लेख हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि शान्तिपुर से आई अद्वैत आचार्य की मंडली में अच्युतानन्द नाच रहे थे और बाकी लोग गा रहे। थे। उस समय वे केवल छः वर्ष के बालक थे। श्री कविकर्णपूर द्वारा रचित गौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक 87) में बतलाया गया है कि अच्युतानन्द गदाधर पण्डित के शिष्य थे और चैतन्य महाप्रभु के प्रिय एवं महान् भक्त थे। कुछेक के मतानुसार वे शिवजी के पुत्र कार्तिकेय के अवतार थे। अन्य लोगों के मतानुसार वे पूर्वजन्म में अच्युता नामक गोपी थे। गौरगणोद्देश-दीपिका (88) में इन दोनों मतों का समर्थन हुआ है। एक अन्य पुस्तक नरोत्तम-विलास में, जिसे श्री नरहरि दास ने संकलित किया है, खेतरि-उत्सव के समय अच्युतानन्द की उपस्थिति का उल्लेख मिलता है। श्री नरहरि दास के अनुसार अच्युतानन्द अपने जीवन के अन्तिम समय अपने शान्तिपुर वाले घर में रहते थे, किन्तु चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में वे गदाधर पण्डित के साथ जगन्नाथ पुरी में रहते थे।

अद्वैत आचार्य के छः पुत्रों में से तीन-अच्युतानन्द, कृष्ण मिश्र तथा गोपाल दास आज्ञापूर्वक चैतन्य महाप्रभु की सेवा करते रहे। चूँकि अच्युतानन्द ने विवाह नहीं किया, इसलिए उनकी कोई सन्तान नहीं थी। अद्वैत आचार्य के द्वितीय पुत्र कृष्ण मिश्र के दो पुत्र थे-रघुनाथ चक्रवर्ती तथा दोलगोविन्द। रघुनाथ के वंशज आज भी शान्तिपुर के पड़ोस में मदनगोपाल पाड़, गणकर, मृजापुर तथा कुमारखालि में रहते हैं। दोलगोविन्द के तीन पुत्र हुए-चाँद, कन्दर्प तथा गोपीनाथ। कन्दर्प के वंशज मल्दाह में जिकाबाड़ी गाँव में रहते हैं। गोपीनाथ के भी तीन पुत्र हुए-श्रीवल्लभ, प्राणवल्लभ तथा केशव। श्रीवल्लभ के वंशज मशियाडारा (महिषडेरा), दामुकदिया तथा चण्डीपुर नामक गाँवों में रहते हैं। श्रीवल्लभ के वंश का वंश-वृक्ष प्राप्त है, जो उनके ज्येष्ठ पुत्र गंगानारायण से शुरू होता है। श्रीवल्लभ के सबसे छोटे पुत्र रामगोपाल के वंशज अभी भी दामुकदिया, चण्डीपुर, शोलमारी आदि गाँवों में रह रहे हैं। प्राणवल्लभ तथा केशव के वंशज उथली में रहते हैं। प्राणवल्लभ का पुत्र

रत्नेश्वर था, जिसका पुत्र कृष्णराम हुआ और इसके सबसे छोटे पुत्र का नाम लक्ष्मीनारायण था। इसका पुत्र नवकिशोर हुआ और नवकिशोर का दूसरा पुत्र राममोहन हुआ, जिसका ज्येष्ठ पुत्र जगबन्धु था, जिसके तीसरे पुत्र वीरचन्द्र ने संन्यास ग्रहण करके कटवा में चैतन्य महाप्रभु का विग्रह स्थापित किया। राममोहन के ये दो पुत्र बड़ प्रभु तथा छोट प्रभु कहलाते थे। इन्होंने नवद्वीप धाम की परिक्रमा का उद्घाटन किया। कृष्ण मिश्र की परम्परा में अद्वैत प्रभु के पूरे वंश-वृक्ष के लिए वैष्णव-मञ्जूषा नामक ग्रंथ देखना चाहिए।

कृष्ण-मिश्र-नाम आर आचार्य-तनय।

चैतन्य-गोसाञि बैसे याँहार हृदय ॥18॥

कृष्ण-मिश्र-कृष्ण मिश्र; नाम-नाम का; आर-और; आचार्य-तनय-अद्वैत आचार्य के पुत्र; चैतन्य गोसाञि-चैतन्य महाप्रभु; बैसे-बैठते हैं; याँहार–जिनके; हृदय-हृदय में।

अनुवाद

कृष्ण मिश्र अद्वैत आचार्य के पुत्र थे। उनके हृदय में श्री चैतन्य महाप्रभु सदैव विराजमान रहते थे।

श्री-गोपाल-नामे आर आचार्गेर सुत।

ताँहार चरित्र, शुन, अत्यन्त अद्भुत ॥19॥

श्री-गोपाल-श्री गोपाल; नामे-नाम से; आर-अन्य; आचार-अद्वैत आचार्य का; सुत–पुत्र; ताँहार-उनका; चरित्र-चरित्र; शुन-सुनो; अत्यन्त–अत्यन्त; अद्भुत-अद्भुत।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य प्रभु के अन्य पुत्र थे श्री गोपाल। अब उनकी विशेषताओं के बारे में सुनिये, क्योंकि वे सभी अत्यन्त अद्भुत हैं।

तात्पर्य

जैसा ऊपर बताया गया है, श्री गोपाल अद्वैत आचार्य के तीन भक्त पुत्रों में से एक थे। चैतन्य-चरितामृत (मध्यलीला, अध्याय 12, श्लोक 143-149) में उनके जीवन तथा चरित्र का और वर्णन हुआ है।

गुण्डिचा-मन्दिरे महाप्रभुर सम्मुखे ।

कीर्तने नर्तन करे बड़ प्रेम-सुखे ॥20॥

गुण्डिचा-मन्दिरे-जगन्नाथ पुरी में गुन्डिचा मन्दिर में; महाप्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; सम्मुखे-सामने; कीर्तने-संकीर्तन में; नर्तन-नृत्य; करे-करते; बड़-बहुत; प्रेम-सुखे-दिव्य आनन्द में।

अनुवाद

जब भगवान् चैतन्य अपने हाथ से जगन्नाथ पुरी में गुण्डिचा मन्दिर की सफाई करते थे, तब गोपाल बड़े प्रेम और मुदित भाव से महाप्रभु के समक्ष नाचता था।

तात्पर्य

गुण्डिचा मन्दिर जगन्नाथ पुरी में स्थित है और प्रतिवर्ष जगन्नाथ, बलभद्र तथा सुभद्रा के विग्रह जगन्नाथ मन्दिर से निकलकर यहाँ आठ दिनों तक रुकते हैं। जब चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में रह रहे थे, तब वे प्रतिवर्ष अपने प्रमुख भक्तों के साथ इस मन्दिर की सफाई करते थे। चैतन्य-चरितामृत के गुण्डिचामार्जन अध्याय में इसका स्पष्ट वर्णन हुआ है।

नाना-भावोद्गम देहे अद्भुत नर्तन।

दुइ गोसाञि 'हरि' बले, आनन्दित मन ॥21॥

नाना-विविध; भाव-उद्गम-भाव चिह्न; देहे-शरीर में; अद्भुत-अद्भुत; नर्तन-नृत्य; दुइ गोसाञि-दोनों गोसांई (चैतन्य महाप्रभु तथा अद्वैत प्रभु); हरि बले-हरे कृष्ण बोले; आनन्दित-आनन्दित हो गया; मन–मन।

अनुवाद

जिस समय चैतन्य महाप्रभु तथा अद्वैत प्रभु हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करते तथा नाचते थे, तब उनके शरीरों में विविध भावातिरेक के लक्षण प्रकट होने लगते और उनके मन अत्यन्त प्रमुदित होते थे।

नाचिते नाचिते गोपाल हइल मूर्च्छित।

भूमेते पड़िल, देहे नाहिक संवित ॥22॥

नाचिते-नाचते; नाचिते-नाचते; गोपाल-अद्वैत प्रभु का पुत्र गोपाल; हइल–हो गये; मूर्च्छित-मूर्च्छित; भूमेते-भूमि पर; पड़िल-गिर गया; देहे-शरीर में; नाहिक-नहीं थी; संवित-चेतना।

अनुवाद

जब वे सब नाच रहे थे, तब गोपाल नाचते-नाचते मूर्च्छित हो गया और भूमि पर गिरकर अचेत हो गया।

दुःखित हइला आचार्य पुत्र कोले लञा।

रक्षा करे नृसिंहेर मन्त्र पड़िया ॥23॥

दुःखित-दुखित; हइला–हो गये; आचार्य-अद्वैत प्रभु; पुत्र-अपने पुत्र; कोले-गोद में; लञा-लेकर; रक्षा रक्षा; करे-करते हैं; नृसिंहेर-भगवान् नृसिंह; मन्त्र-मंत्र; पड़िया-पढ़कर।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य प्रभु अत्यन्त दुःखी हुए। वे अपने पुत्र को अपनी गोद में उठाकर उसकी रक्षा के लिए नृसिंह-मन्त्र का उच्चारण करने लगे।

नाना मन्त्र पड़ेन आचार्य, ना हय चेतन ।

आचार्सेर दुःखे वैष्णव करेन क्रन्दन ॥ 24॥

नाना-नाना; मन्त्र-मन्त्र; पड़ेन-पढ़ते हैं; आचार्य-अद्वैत आचार्य; ना-नहीं; हय-हुई; चेतन-चेतना; आचार-अद्वैत आचार्य के; दुःखे-दुःख में; वैष्णव-सभी वैष्णव; करेन-करते हैं; क्रन्दन-रोना, क्रन्दन।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने विविध मन्त्रों का उच्चारण किया, किन्तु गोपाल को होश नहीं आया। अतएव वहाँ पर उपस्थित सारे वैष्णव उनकी व्यथा से शोकातुर होकर रोने लगे।

तबे महाप्रभु, ताँर हृदे हस्त धरि' ।

'उठह, गोपाल,' कैल बल 'हरि' 'हरि' ॥25॥

तबे-उस समय; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु; ताँर-उनके; हृदे-हृदय पर; हस्त-हाथ; धरि'-रखकर; उठह-उठो; गोपाल–मेरे प्रिय गोपाल; कैल–कहा; बल-बोलो; हरि हरि-हरि हरि।

अनुवाद

तब चैतन्य महाप्रभु ने गोपाल की छाती पर अपना हाथ रखा और उससे कहा, "प्रिय गोपाल! उठो और भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करो!"

उठिल गोपाल प्रभुर स्पर्श-ध्वनि शुनि' ।

आनन्दित हञा सबे करे हरि-ध्वनि ॥ 26॥

उठिल-उठ पड़ा; गोपाल–गोपाल; प्रभुर–महाप्रभु का; स्पर्श-स्पर्श; ध्वनि-ध्वनि; शुनि'–सुनकर; आनन्दित–प्रसन्न होकर; हञा-होकर; सबे-सबने; करे-किया; हरि-ध्वनि-हरे कृष्ण महामंत्र का संकीर्तन।

अनुवाद

जब गोपाल ने महाप्रभु की आवाज सुनी और उनके स्पर्श का अनुभव किया, तो वह तुरन्त उठ पड़ा और सारे वैष्णव खुशी में हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने लगे।

आचार आर पुत्र–श्री-बलराम ॥

आर पुत्र–'स्वरूप'-शाखा, जगदीश' नाम ॥27॥

आचार-श्रील अद्वैत आचार्य का; आर-एक अन्य; पुत्र-पुत्र; श्री-बलराम-श्री बलराम; आर पुत्र-और एक पुत्र; स्वरूप-स्वरूप; शाखा शाखा; जगदीश नाम-जगदीश नाम का।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य के अन्य पुत्र श्री बलराम, स्वरूप तथा जगदीश थे।

तात्पर्य

अद्वैत-चरित नामक संस्कृत ग्रन्थ में लिखा है कि बलराम, स्वरूप तथा जगदीश अद्वैत आचार्य के चौथे, पाँचवें तथा छठे पुत्र थे। इस तरह उनके छः पुत्र थे। ये तीनों स्मार्त या मायावादी थे, अतएव वैष्णव समाज द्वारा परित्यक्त थे। कभी-कभी मायावादी वैष्णव अर्थात् विष्णु-भक्त होने का ढोंग करते हैं, किन्तु वास्तव में वे विष्णु को पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर नहीं मानते, क्योंकि वे शिव, दुर्गा, सूर्यदेव तथा गणेश को परमेश्वर तुल्य समझते हैं। ये लोग सामान्यतया पञ्चोपासक स्मार्त कहलाते हैं, अतएव इनकी गणना वैष्णवों में नहीं की जानी चाहिए।

बलराम की तीन पत्नियाँ तथा नौ पुत्र थे। पहली पत्नी से उत्पन्न उनके सबसे छोटे पुत्र का नाम मधुसूदन गोस्वामी था। उन्होंने भट्टाचार्य उपाधि ग्रहण की और स्मार्त-पंथ या मायावादी दर्शन स्वीकार किया। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर लिखते हैं कि गोस्वामी भट्टाचार्य के पुत्र श्री राधारमण गोस्वामी भट्टाचार्य ने गोस्वामी की पदवी अस्वीकार कर दी, क्योंकि यह सामान्यतया संन्यासियों की सूचक पदवी है। जो व्यक्ति अब भी गृहस्थाश्रम में हो, उसे गोस्वामी पदवी का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने जाति से गोस्वामी लोगों को मान्यता नहीं दी है, क्योंकि वे उन छः गोस्वामियों की पंक्ति में नहीं थे, जो चैतन्य महाप्रभु के प्रत्यक्ष शिष्य थे। इन छ: गोस्वामियों के नाम थे-श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, श्रील भट्ट रघुनाथ गोस्वामी, श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी, श्री जीव गोस्वामी तथा श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने कहा है कि गृहस्थ आश्रम तो इन्द्रियतृप्ति के लिए एक प्रकार

की छूट है। अतएव गृहस्थ को चाहिए कि वह झूठे ही गोस्वामी पदवी ग्रहण न करे। इस्कॉन आन्दोलन ने कभी-भी गोस्वामी की पदवी किसी गृहस्थ को प्रदान नहीं की है। यद्यपि इस्कॉन में दीक्षित सारे संन्यासी तरुण हैं, किन्तु हमने उन्हें स्वामी एवं गोस्वामी पदवियाँ इसलिए प्रदान की हैं, क्योंकि श्री चैतन्य सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर उल्लेख करते हैं कि गृहस्थ जाति-गोस्वामी न केवल गोस्वामी उपाधि का अनादर करते हैं, अपितु स्मार्त रघुनन्दन के सिद्धान्तों पर चलते हुए श्राद्धकर्म के समय वे अद्वैत आचार्य का तिनके का पुतला जलाकर मूर्खता का प्रदर्शन करते हैं और इस तरह राक्षसी कर्म करते हैं तथा वैष्णवों के मार्गदर्शक हरिभक्ति-विलास का अनादर करते हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि कभी-कभी ये स्मार्त जाति-गोस्वामी वैष्णव दर्शन पर पुस्तकें लिखते हैं या मूल शास्त्रों की टीकाएँ लिखते हैं, किन्तु शुद्ध भक्तों को चाहिए कि इनको पढ़ने से अपने आपको सावधानीपूर्वक बचायें।

‘कमलाकान्त विश्वास'-नाम आचार्य-किङ्कर।

आचार्य-व्यवहार सब–ताँहार गोचर ॥28॥

कमलाकान्त विश्वास–कमलाकान्त विश्वास; नाम-नाम का; आचार्य-किङ्कर-अद्वैत आचार्य का सेवक; आचार्य-व्यवहार-अद्वैत आचार्य के व्यवहार; सब-सब; ताँहार-उनके; गोचर-ज्ञान में।

अनुवाद

आचार्य अद्वैत का अत्यन्त विश्वासपात्र नौकर कमलाकान्त विश्वास अद्वैत आचार्य के सारे आचारों-व्यवहारों को जानता था।

तात्पर्य

आदिलीला (10.149) में उल्लिखित कमलानन्द तथा मध्यलीला (10.94) में उल्लिखित कमलाकान्त एक ही व्यक्ति हैं। कमलाकान्त चैतन्य महाप्रभु का अत्यन्त विश्वस्त सेवक था; वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न था और अद्वैत आचार्य के निजी सचिव के रूप में कार्य करता था। जब परमानन्द पुरी नवद्वीप से जगन्नाथ पुरी गये, तब वे अपने साथ कमलाकान्त विश्वास को लेते गये और वे दोनों चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी गये। मध्यलीला (10.94) में उल्लेख है कि चैतन्य महाप्रभु का एक ब्राह्मण-भक्त कमलाकान्त परमानन्द पुरी के साथ जगन्नाथ पुरी गया।

नीलाचले तेंहो एक पत्रिका लिखिया ।

प्रतापरुद्रेर पाश दिल पाठाइया ॥29॥

नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; तेंहो–कमलाकान्त; एक-एक; पत्रिका-पत्र; लिखिया-लिखकर; प्रतापरुद्रेर–प्रतापरुद्र महाराज; पाश–उनको सम्बोधित करके; दिल पाठाइया-भेजा।

अनुवाद

जब कमलाकान्त विश्वास जगन्नाथ पुरी में था, तो उसने किसी के हाथों एक चिट्ठी महाराज प्रतापरुद्र के पास भेजी।

सेइ पत्रीर कथा आचार्य नाहि जाने ।

कोन पाके सेइ पत्री आइल प्रभु-स्थाने ॥30॥

सेइ पत्रीर-उस पत्र की; कथा-सूचना; आचार्य श्री अद्वैत आचार्य; नाहि-नहीं; जाने-जानते थे; कोन-किसी प्रकार; पाके-किसी साधन से; सेइ-वह; पत्री-पत्रिका; आइल-आ गई; प्रभु-स्थाने–चैतन्य महाप्रभु के हाथ में।

अनुवाद

किसी को इस चिट्ठी के विषय में पता नहीं था, किन्तु यह चिट्ठी किसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के हाथ लग गई।

से पत्रीते लेखा आछे—एइ त' लिखन।

ईश्वरत्वे आचार्येरे करियाछे स्थापन॥ 31॥

से-उस; पत्रीते-चिट्ठी में; लेखा आछे—लिखा है; एइ त'–यह; लिखन-लिखा; ईश्वरत्वे-परम भगवान् की जगह में; आचार्येरे-अद्वैत आचार्य को; करियाछे-स्थापित किया; स्थापन-स्थिति।

अनुवाद

इस चिट्ठी में यह प्रमाणित किया गया था कि अद्वैत आचार्य भगवान् के अवतार हैं।

किन्तु ताँर दैवे किछु हइयाछे ऋण।

ऋण शोधिबारे चाहि तङ्का शत-तिन॥ 32॥

किन्तु किन्तु; ताँर–उनका; दैवे-यथा समय; किछु-कुछ; हइयाछे-था; ऋण-ऋण; ऋण-ऋण; शोधिबारे–चुकाने के लिए; चाहि-मैं चाहता हूँ; तङ्का-रुपये; शत-तिन-लगभग तीन सौ।

अनुवाद

किन्तु साथ ही यह भी उल्लेख था कि अद्वैत आचार्य के ऊपर हाल ही में तीन सौ रुपये का ऋण चढ़ गया है, कमलाकान्त विश्वास जिसको चुकाना चाहता है।

पत्र पड़िया प्रभुर मने हैल दुःख।

बाहिरे हासिया किछु बले चन्द्र-मुख ॥ 33 ॥

पत्र-पत्रिका; पड़िया-पढ़कर; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु के; मने-मन में; हैल-हो गया; दुःख–दुःख; बाहिरे-बाहर से; हासिया–मुस्कुराकर; किछु-कुछ; बले-कहते हैं; चन्द्र-मुख-चन्द्रमुख।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु यह चिट्ठी पढ़कर अत्यन्त दुःखी हुए, यद्यपि ऊपर से उनका मुख अब भी चन्द्रमा के समान चमक रहा था। इस प्रकार हँसते हुए महाप्रभु ने यह कहा।

आचार स्थापियाछे करिया ईश्वर।

इथे दोष नाहि, आचार्य दैवत ईश्वर ॥ 34॥

आचार्येरे-अद्वैत आचार्य को; स्थापियाछे-उन्होंने स्थापित किया; करिया-उल्लेख करके; ईश्वर–भगवान् के रूप में; इथे-इसमें; दोष-दोष; नाहि-नहीं है; आचार्य-अद्वैत आचार्य; दैवत ईश्वर–वे वास्तव में भगवान् हैं।

अनुवाद

“उसने अद्वैत आचार्य को भगवान् के अवतार के रूप में स्थापित कर दिया है। इसमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि वे सचमुच साक्षात् भगवान् हैं।”

ईश्वरेर दैन्य करि' करियाछे भिक्षा।

अतएव दण्ड करि' कराइब शिक्षा ॥35॥

ईश्वरेर–भगवान् की; दैन्य-निर्धनता; करि'–स्थापित करके; करियाछे–किया है; भिक्षा–भिक्षा; अतएव-अतएव; दण्ड–दण्ड; करि'-उसे देकर; कराइब-दूँगा; शिक्षा-उपदेश।

अनुवाद

"किन्तु उसने भगवान् के अवतार को निर्धनता-ग्रस्त भिक्षुक बना दिया है, अतएव मैं उसकी इस भूल को सुधारने के लिए उसे पाठ पढ़ाऊँगा।"

तात्पर्य

किसी व्यक्ति को ईश्वर या नारायण का अवतार कहना और साथ ही साथ उसे गरीबी से त्रस्त बतलाना विरोधात्मक है और यह सबसे बड़ा अपराध भी है। मायावादी दार्शनिक यह प्रचार करने में लगे हुए हैं कि हर व्यक्ति ईश्वर है। और वे वैदिक संस्कृति को विनष्ट कर रहे हैं। ये गरीब मनुष्य को दरिद्रनारायण कहकर वर्णन करते हैं। चैतन्य महाप्रभु को कभी-भी ऐसे मूर्ख और अप्रामाणिक विचार स्वीकार नहीं थे। उन्होंने दृढ़तापूर्वक आगाह किया है-मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश-"जो कोई मायावादी दर्शन का अनुगमन करता है, समझ लो उसका विनाश हो चुका।" ऐसे मूर्ख को दण्डित करके सुधारे जाने की आवश्यकता है।

यद्यपि यह कहना विरोधमूलक है कि भगवान् या उनका अवतार दरिद्र है, किन्तु शास्त्रों में हम पाते हैं कि जब भगवान् वामन के रूप में अवतरित हुए, तब उन्होंने महाराज बलि से कुछ भूमि माँगी। किन्तु हर कोई यह जानता है कि वामनदेव जरा भी दरिद्र न थे। महाराज बलि से कुछ भिक्षा

माँगना तो उन पर कृपा करने की एक युक्ति थी। जब महाराज बलि ने सचमुच भूमि दे दी, तो वामनदेव ने अपने सर्वशक्तिमान पद का प्रदर्शन तीनों लोकों को अपने तीन चरणों से नापकर किया। हमें चाहिए कि ऐसे तथाकथित दरिद्रनारायणों को अवतार न मानें, क्योंकि ये ईश्वर के असली अवतारों के ऐश्वर्य को प्रदर्शित करने में पूर्णतया अक्षम रहते हैं।

गोविन्देरे आज्ञा दिल,–"इँहा आजि हैते।

बाउलिया विश्वासे एथा ना दिबे आसिते" ॥ 36॥

गोविन्देरे-गोविन्द को; आज्ञा दिल-आज्ञा दी; इँहा-इस स्थान में; आजि-आज; हैते-से; बाउलिया-मायावादी; विश्वासे-कमलाकान्त विश्वास को; एथा-यहाँ; ना-न; दिबे-अनुमति दो; आसिते-आने की।

अनुवाद

महाप्रभु ने गोविन्द को आज्ञा दी, "आज से उस बाउलिया कमलाकान्त विश्वास को यहाँ मत आने देना।"

तात्पर्य

बाउलिया या बाउल उन तेरह अवैध सम्प्रदायों में से एक है, जो अपने आपको चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी बतलाते हैं। महाप्रभु ने अपने निजी सहायक गोविन्द को आज्ञा दी कि कमलकान्त विश्वास को उनके सामने न आने दिया जाए, क्योंकि वह बाउलिया बन गया है। इस तरह भले ही बाउल सम्प्रदाय, आउल सम्प्रदाय तथा सहजिया सम्प्रदाय के साथ-साथ स्मार्त, जात-

गोसांई, अतिवाड़ी, चूड़ाधारी तथा गौरांग-नागरी लोग अपने आपको चैतन्य महाप्रभु की परम्परा में बतलाते हैं, किन्तु महाप्रभु ने उन सबका वास्तव में बहिष्कार किया था।

दण्ड शुनि' 'विश्वास' हइल परम दुःखित।

शुनिया प्रभुर दण्ड आचार्य हर्षित॥ 37॥

दण्ड–दण्ड; शुनि'–सुनकर; विश्वास-कमलाकान्त विश्वास; हइल-हो गया; परम-अत्यन्त; दुःखित-दुःखी; शुनिया-सुनकर; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; दण्ड–दण्ड; आचार्य-श्री अद्वैत आचार्य प्रभु; हर्षित-अत्यन्त प्रसन्न हुए।

अनुवाद

जब कमलाकान्त विश्वास ने श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दिये गये इस दण्ड के बारे में सुना, तो वह बहुत दुःखी हुआ, किन्तु जब अद्वैत प्रभु ने इसके बारे में सुना, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

तात्पर्य

भगवद्गीता (9.29) में भगवान् कहते हैं- समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः–"न मैं किसी से द्वेष करता हूँ, न किसी का पक्षपात करता हूँ। मैं सबके प्रति समभाव रखता हूँ।" चूँकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सबके लिए सम हैं, अतएव न तो उनका कोई शत्रु है, न कोई मित्र। चूँकि प्रत्येक जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का अंश या पुत्र है, अतएव वे किसी का पक्षपात करके न तो उसे शत्रु मान सकते हैं न मित्र। अतएव जब महाप्रभु ने कमलाकान्त विश्वास को दण्ड दिया कि वह उनके पास न आये, तो यह दण्ड उसके लिए अत्यन्त कठोर था, किन्तु अद्वैत आचार्य इस दण्ड का आन्तरिक आशय समझकर प्रसन्न थे; क्योंकि वे समझ गये थे कि महाप्रभु ने वास्तव में कमलाकान्त

विश्वास पर कृपा की है। इसीलिए वे तनिक भी दुःखी नहीं हुए थे। भक्तों को चाहिए कि अपने स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सारे व्यवहारों से सदैव प्रसन्न रहें। भक्त भले ही विपत्ति आये या संपत्ति प्राप्त करे, किन्तु उसे भगवान् के इन उपहारों को स्वीकार करना चाहिए और सभी परिस्थितियों में हँसी-खुशी भगवान् की सेवा में लगे रहना चाहिए।

विश्वासेरे कहे,—तुमि बड़ भाग्यवान् ।

तोमारे करिल दण्ड प्रभु भगवान् ॥ 38॥

विश्वासेरे–कमलाकान्त विश्वास को; कहे-कहा; तुमि-तुम; बड़-अत्यन्त; भाग्यवान्–भाग्यवान्; तोमारे तुम्हें; करिल-किया; दण्ड–दण्ड; प्रभु–महाप्रभु ने; भगवान्-भगवान् ने।

अनुवाद

कमलाकान्त विश्वास को अप्रसन्न देखकर अद्वैत आचार्य प्रभु ने उससे कहा, "तुम परम भाग्यशाली हो कि भगवान् चैतन्य महाप्रभु द्वारा दण्डित हुए हो।"

तात्पर्य

यह श्री अद्वैत आचार्य का प्रामाणिक निर्णय है। उन्होंने स्पष्ट सलाह दी है कि जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आज्ञा से किसी पर विपत्तियाँ आये, तो उसे दुःखी नहीं होना चाहिए। भक्त को भगवान् द्वारा प्रदान की गई सम्पत्ति को ग्रहण करके प्रसन्न होना चाहिए, भले ही यह उसके हिसाब से अनुकूल या प्रतिकूल ही क्यों न लगे।

पूर्वे महाप्रभु मोरे करेन सम्मान ।

दुःख पाइ' मने आमि कैलुँ अनुमान ॥ 39॥

पूर्वे-पहले; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु; मोरे-मुझे; करेन-करते थे; सम्मान-सम्मान; दुःख–दु:ख; पाइ'–पाकर; मने-मन में; आमि-मैंने; कैलुँ-की; अनुमान-योजना।

अनुवाद

"पहले तो चैतन्य महाप्रभु अपने वरिष्ठ की तरह मेरा आदर करते थे, किन्तु मुझे ऐसा आदर पसन्द न था। अतएव मेरा मन दुखित होने के कारण मैंने एक योजना बनाई थी।"

मुक्ति–श्रेष्ठ करि' कैनु वाशिष्ठ व्याख्यान।

क्रुद्ध हवा प्रभु मोरे कैल अपमान ॥40॥

मुक्ति-मुक्ति; श्रेष्ठ-श्रेष्ठ; करि'–स्वीकार करके; कैनु-मैंने किया; वाशिष्ठ-योग वाशिष्ठ नामक पुस्तक; व्याख्यान-व्याख्यान; क्रुद्ध-क्रुद्ध; हा-होकर; प्रभु–महाप्रभु; मोरे-मेरा; कैल-किया; अपमान-अपमान।

अनुवाद

"मैंने मुक्ति को जीवन का चरम लक्ष्य मानने वाले ग्रंथ योगवाशिष्ठ की व्याख्या की, इसीलिए महाप्रभु मुझ पर क्रुद्ध हुए और उन्होंने मेरे प्रति दिखावटी असम्मान प्रदर्शित किया।"

तात्पर्य

योगवाशिष्ठ नामक ग्रंथ को मायावादी अत्यधिक महत्त्व देते हैं, क्योंकि यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विषयक निर्विशेष भ्रान्तियों से भरा है। इसमें वैष्णवता का लेश मात्र भी स्पर्श नहीं है। असल में सारे वैष्णवों को ऐसी पुस्तक से बचना चाहिए, किन्तु अद्वैत आचार्य प्रभु चाहते थे कि महाप्रभु

उन्हें दण्ड दें, इसलिए वे योगवाशिष्ठ के निर्विशेषवादी कथनों का समर्थन करने लगे। इसलिए भगवान् चैतन्य महाप्रभु उन पर क्रुद्ध हो गये और एक तरह से महाप्रभु ने उनका अपमान किया।

दण्ड पाना हैल मोर परम आनन्द ।

ये दण्ड पाइल भाग्यवान्श्री-मुकुन्द ॥41॥

दण्ड पाञा-दण्ड पाकर; हैल-हो गया; मोर-मेरा; परम-परम; आनन्द-आनन्द; ये दण्ड–दण्ड; पाइल-पाकर; भाग्यवान्-भाग्यशाली; श्री-मुकुन्द-श्री मुकुन्द।

अनुवाद

"चैतन्य महाप्रभु से प्रताड़ित होकर मैं परम प्रसन्न हुआ कि मुझे भी श्री मुकुन्द जैसा दण्ड प्राप्त हुआ है।"

तात्पर्य

श्री मुकुन्द चैतन्य महाप्रभु के अच्छे मित्र एवं संगी थे और वे ऐसे अनेक स्थानों में जाते रहते थे, जहाँ के लोग वैष्णव-सम्प्रदाय के विरुद्ध थे। जब श्री चैतन्य महाप्रभु को इसका पता चला, तो उन्होंने मुकुन्द को दण्ड दिया और उन्हें अपना मुँह दिखाने से मना कर दिया। यद्यपि चैतन्य महाप्रभु फूल के समान कोमल थे, किन्तु वे वज्र के समान कठोर भी थे और हर व्यक्ति मुकुन्द को श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष भेजने में भय खाता था। इसलिए मुकुन्द ने अत्यधिक दुःखी होने के कारण अपने मित्रों से पूछा कि क्या कभी उसे महाप्रभु का दर्शन करने दिया जायेगा या नहीं। जब भक्तगण यह प्रश्न लेकर महाप्रभु के पास पहुँचे तो उन्होंने उत्तर दिया, "मुकुन्द लाखों वर्षों बाद मेरा दर्शन करने की अनुमति पा सकेगा।" जब लोगों ने यह जानकारी मुकुन्द को दी, तो वह हर्ष से नाचने

लगा और जब महाप्रभु ने सुना कि लाखों वर्षों बाद दर्शन पाने के लिए वह धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर रहा है, तो उन्होंने उसे तुरन्त वापस आने को कहा। चैतन्य-भागवत मध्यखण्ड दसवें अध्याय में मुकुन्द के दण्ड से सम्बन्धित एक कथन है।

ये दण्ड पाइल श्री-शची भाग्यवती ।

से दण्ड प्रसाद अन्य लोक पाबे कति ॥ 42 ॥

ये दण्ड–दण्ड; पाइल-पाया; श्री-शची भाग्यवती-परम भाग्यवती माता शचीदेवी; से दण्ड–वही दण्ड; प्रसाद-कृपा; अन्य-अन्य; लोक-व्यक्ति; पाबे–पा सकते हैं; कति–कैसे।

अनुवाद

"ऐसा ही दण्ड माता शचीदेवी को मिला था। भला ऐसा दण्ड पाने में उनसे अधिक और कौन भाग्यवान हो सकेगा?"

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत मध्यखण्ड, अध्याय बाईस में उल्लेख है कि माता शचीदेवी को इसी प्रकार का दण्ड मिला था। माता शचीदेवी ने अपनी स्त्री-प्रकृति दिखलाते हुए आरोप लगाया था कि अद्वैत प्रभु ने उनके पुत्र को संन्यासी बनने के लिए उकसाया है। चैतन्य महाप्रभु ने इस आरोप को अपराध मानते हुए शचीदेवी से कहा कि वे अपना अपराध मिटाने के लिए अद्वैत प्रभु के चरणकमलों का स्पर्श करें।

एत कहि' आचार्य तारे करिया आश्वास ।

आनन्दित हइया आइल महाप्रभु-पाश ॥43॥

एत कहि'-इस प्रकार कहकर; आचार्य-श्री अद्वैत आचार्य प्रभु; ताँरे-कमलाकान्त विश्वास को; करिया-करके; आश्वास-आश्वासन; आनन्दित–प्रसन्न; हइया-होकर; आइल-गये; महाप्रभु-पाश-चैतन्य महाप्रभु के पास।

अनुवाद

इस प्रकार से कमलाकान्त को आश्वासन देने के बाद श्री अद्वैत आचार्य प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने गये।

प्रभुके कहेन—तोमार ना बुझि ए लीला।

आमा हैते प्रसाद-पात्र करिला कमला ॥44॥

प्रभुके–महाप्रभु को; कहेन–कहते हैं; तोमार-आपकी; ना-नहीं; बुझि-मैं समझता हूँ; ए—ये; लीला-लीलाएँ; आमा–मुझसे; हैते-अधिक; प्रसाद-पात्र-कृपा पात्र; करिला-आपने किया; कमला–कमलाकान्त विश्वास को।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने भगवान् चैतन्य से कहा, "आपकी दिव्य लीलाएँ मेरी समझ में नहीं आ सकतीं। आप मुझ पर जितनी कृपा करते हैं, उससे अधिक कृपा आपने कमलाकान्त पर की है।"

आमारेह कभु येइ ना हय प्रसाद।

तोमार चरणे आमि कि कैनु अपराध ॥45॥

आमारेह-मुझ पर भी; कभु-कभी भी; येइ-वह; ना-कभी नहीं; हय–होती है; प्रसाद-कृपा; तोमार चरणे-आपके चरणकमलों पर; आमि-मैं; कि-क्या; कैनु-किया है; अपराध-अपराध।

अनुवाद

"आपने कमलाकान्त पर जो कृपा की है, वह इतनी महान् है कि आपने मुझ पर कभी भी ऐसी कृपा नहीं की। भला मैंने आपके चरणकमलों पर कौन-सा ऐसा अपराध किया है कि आपने ऐसी कृपा मुझ पर नहीं दिखलाई?"

तात्पर्य

यहाँ पर अद्वैत आचार्य को पहले जो दण्ड दिया गया है, उसका सन्दर्भ है। जब अद्वैत आचार्य प्रभु योगवाशिष्ठ पढ़ रहे थे, तब चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें पीटा था, किन्तु उन्होंने कभी यह नहीं कहा था कि आप मेरे पास कभी मत आना। किन्तु कमलाकान्त को यह आदेश मिला था कि वह कभी उनके पास न आये। इसलिए श्री अद्वैत आचार्य प्रभु चैतन्य महाप्रभु को यह बतलाना चाह रहे थे कि उन्होंने कमलाकान्त विश्वास पर अधिक कृपा की है, क्योंकि उसे अपने पास आने से मना कर दिया है, जबकि उनके साथ उन्होंने वैसा नहीं किया। इसलिए कमलाकान्त के प्रति प्रदर्शित कृपा अद्वैत आचार्य पर की गई कृपा से बढ़कर थी।

एत शुनि' महाप्रभु हासिते लागिला।

बोलाइया कमलाकान्ते प्रसन्न हइला॥ 46॥

एत शुनि'-यह सुनकर; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु; हासिते-हंसने; लागिला-लगे; बोलाइया–बुलाना; कमलाकान्ते-कमलाकान्त को प्रसन्न–प्रसन्न, सन्तुष्ट; हइला-होकर।

अनुवाद

यह सुनकर चैतन्य महाप्रभु हर्षित होकर हँसने लगे और तुरन्त ही उन्होंने कमलाकान्त विश्वास को बुलाया।

आचार्य कहे, इहाके केने दिले दरशन ।

दुइ प्रकारेते करे मोरे विड़म्बन ॥47॥

आचार्य कहे-श्री अद्वैत आचार्य ने कहा; इहाके-उसको; केने-क्यों; दिले-आपने दिया; दरशन-दर्शन; दुइ-दो; प्रकारेते-प्रकार से; करे-करते हैं; मोरे मुझको; विड़म्बन-धोखेबाजी।

अनुवाद

तब अद्वैत आचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से कहा, "आपने इस व्यक्ति को फिर से क्यों बुलाया और इसे अपने दर्शन की क्यों अनुमति दी है? इसने तो मुझे दो प्रकार से धोखा दिया है।"

शुनिया प्रभुर मन प्रसन्न हइल ।

दुँहार अन्तर-कथा दुँहे से जानिल ॥48॥

शुनिया-यह सुनकर; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; मन–मन; प्रसन्न-सन्तुष्ट; हइल-हो गया; दुँहार-उन दोनों की; अन्तर-कथा-गुप्त बातें; दुँहे वे दोनों; से-वह; जानिल-समझ सके।

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु ने यह सुना, तो उनका मन प्रसन्न हो गया। केवल वे ही एक दूसरे के मन की बातें समझ सकते थे।

प्रभु कहे—बाउलिया, ऐछे काहे कर।

आचार्येर लज्जा-धर्म-हानि से आचर ॥49॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; बाउलिया-वह जो यह नहीं जानता कि सही क्या है; ऐछे—उस तरह; काहे-क्यों; कर-करते हो; आचार-श्री अद्वैत आचार्य का; लज्जा-गोपनीयता; धर्म-धर्म; हानि–हानि; से-वह; आचर-तुम कार्य करते हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कमलाकान्त को समझाया, "तुम तो बाउलिया हो, जिसको वस्तुओं की सही स्थिति के बारे में ज्ञान नहीं होता है। तुम इस तरह क्यों करते हो? तुम अद्वैत आचार्य की गोपनीयता को क्यों भंग करते हो तथा उनके धार्मिक सिद्धान्तों को क्षति पहुँचाते हो?"

तात्पर्य

कमलाकान्त विश्वास ने अज्ञानवश जगन्नाथ पुरी के राजा महाराज प्रतापरुद्र से अद्वैत आचार्य के तीन सौ रुपयों का ऋण समाप्त करने की याचना की थी, किन्तु साथ ही यह भी स्थापित किया था कि अद्वैत आचार्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अवतार हैं। यह विरोधात्मक है। भगवान् के अवतार इस भौतिक जगत् के किसी भी व्यक्ति के ऋणी नहीं हो सकते। चैतन्य महाप्रभु इस प्रकार के विरोधाभास से कभी भी प्रसन्न नहीं होते, जिसे पारिभाषिक रूप से रसाभास अथवा एक रस के ऊपर दूसरे रस का अतिक्रमण कहते हैं। यह उसी प्रकार का विरोधाभास है, जिस प्रकार कि नारायण का दरिद्र होना (दरिद्रनारायण)।

प्रतिग्रह कभु ना करिबे राज-धन।

विषयीर अन्न खाइले दुष्ट हय मन ॥50॥

प्रतिग्रह-भिक्षा स्वीकार करना; कभु–किसी समय भी; ना-नहीं; करिबे-करना चाहिए; राज-धन-राजा द्वारा दान; विषयीर-भौतिक लोगों का; अन्न-अन्न, भोजन; खाइले–खाने से; दुष्ट-बिगड़ जाना; हय हो जाता है; मन–मन।

अनुवाद

मेरे गुरु अद्वैत आचार्य को धनी पुरुषों या राजाओं से दान कभी भी स्वीकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि यदि कोई गुरु ऐसे भौतिकतावादियों का धन या अन्न स्वीकार करता है, तो उसका मन दूषित हो जाता है।

तात्पर्य

भौतिकतावादी व्यक्तियों से धन या भोज्य पदार्थ स्वीकार करना अत्यन्त खतरनाक होता है, क्योंकि ऐसा करने से दान लेने वाले का मन दूषित हो जाता है। वैदिक प्रथा के अनुसार दान संन्यासियों तथा ब्राह्मणों को देना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से पाप से मुक्ति होती है। इसीलिए पुराने जमाने में ब्राह्मण ऐसे किसी व्यक्ति से दान नहीं लेते थे, जो अत्यन्त पवित्र न हो। चैतन्य महाप्रभु ने सभी आध्यात्मिक गुरुओं के लिए यह आदेश दिया है। ऐसे भौतिकतावादी व्यक्ति जो अवैध सम्बन्ध, नशा, जुआ तथा मांसाहार जैसे पापमय कार्य त्यागना नहीं चाहते, कभी-कभी हमारे शिष्य बनना चाहते हैं, किन्तु वैष्णव उन पेशेवर गुरुओं की तरह नहीं होते जो अवैध शिष्यों की अवस्था पर ध्यान दिये बिना ही शिष्य स्वीकार करते हैं। शिष्य बनने से पहले विधि-विधानों का पालन करने का संकल्प लेना चाहिए। तब ही एक वैष्णव आचार्य किसी को अपना शिष्य स्वीकार

करता है। वस्तुतः वैष्णवों को ऐसे व्यक्तियों से दान या अन्न तक ग्रहण नहीं करना चाहिए, जो वैष्णव-नियमों का पालन नहीं करते।

मन दुष्ट हइले नहे कृष्णेर स्मरण ।

कृष्ण-स्मृति विनु हय निष्फल जीवन ॥51॥

मन-मन; दुष्ट-दूषित होना; हइले-होने पर; नहे–सम्भव नहीं है; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; स्मरण-स्मरण; कृष्ण-स्मृति-कृष्ण के स्मरण; विनु–बिना; हय–होता है; निष्फल-निष्फल; जीवन-जीवन।

अनुवाद

जब मनुष्य का मन दूषित हो जाता है, तो कृष्ण का स्मरण करना अत्यन्त कठिन हो जाता है और जब कृष्ण के स्मरण में बाधा आती है, तो जीवन निष्फल हो जाता है।

तात्पर्य

भक्त को सदैव सतर्क रहना चाहिए कि मन निर्मल रहे, जिससे वह सदैव भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण कर सके। शास्त्रों का कथन है- स्मर्तव्यः सततं विष्णुः-भक्त होने पर मनुष्य को सदैव भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिए। श्रील शुकदेव गोस्वामी ने भी महाराज परीक्षित को यही उपदेश दिया था-स्मर्तव्यो नित्यशः। श्रीमद्भागवत (2.1.5) में शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को सलाह दी :

तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवान् ईश्वरो हरिः ।

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यथेच्छताभयम् ॥

“हे राजा भरत के वंशज, जो व्यक्ति सारे कष्टों से छूटना चाहता है, उसे चाहिए कि भगवान् का श्रवण करे, उनकी महिमा का गान करे और उनका स्मरण भी करे, क्योंकि वे परमात्मा हैं, नियन्ता हैं और सारे कष्टों से बचाने वाले हैं।” यह वैष्णव के सारे कार्यों का सारांश है और यही उपदेश यहाँ भी दोहराया गया है। (कृष्णस्मृति विनु हय निष्फल जीवन)। श्रील रूप गोस्वामी ने अपने भक्तिरसामृतसिन्धु में कहा है-अव्यर्थ कालत्वम्-वैष्णव को अपने बहुमूल्य जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं आँवाने देने के लिए अत्यन्त सतर्क रहना चाहिए। यह वैष्णव का लक्षण है। किन्तु इन्द्रियतृप्ति में ही रुचि रखने वाले धनी या विषयी भौतिकतावादी व्यक्ति की संगति से मनुष्य का मन दूषित हो जाता है और कृष्ण के सतत स्मरण में बाधा पहुँचती है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने सलाह दी है-असत्सङ्गत्याग-एइ वैष्णव-आचार-वैष्णव को ऐसा आचरण करना चाहिए कि कभी भी अभक्तों या भौतिकतावादियों की संगति न हो। (श्रीचैतन्य-चरितामृत, मध्य 22.87) ऐसी संगति से बचने का उपाय यह है कि अपने मन में निरन्तर कृष्ण का स्मरण किया जाए।

लोक-लज्जा हय, धर्म-कीर्ति हय हानि ।

ऐछे कर्म ना करिह कभु इहा जानि’ ॥52॥

लोक-लज्जा–अलोकप्रिय; हय-हो जाता है; धर्म-धर्म; कीर्ति-यश; हय-हो जाती है; हानि-हानि; ऐछे-ऐसे; कर्म-कर्म; ना-नहीं; करिह-करना; कभु-कभी नहीं; इहा-यह; जानि’–जानो।

अनुवाद

इस तरह मनुष्य जनसाधारण की दृष्टि में अलोकप्रिय हो जाता है, क्योंकि इससे उसकी धार्मिकता तथा यश को हानि पहुँचती है। एक वैष्णव को, विशेषकर जो गुरु का कार्य करता हो, कोई ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए। उसे इस तथ्य के प्रति सदैव जागरूक रहना चाहिए।”

एइ शिक्षा सबाकारे, सबे मने कैल ।

आचार्य-गोसाञि मने आनन्द पाइल ॥53॥

एइ-यह; शिक्षा-शिक्षा; सबाकारे-सबके लिए; सबे-सभी उपस्थित भक्त; मने-मन में; कैल-इसे लिया; आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य; मने-मन में; आनन्द-आनन्द; पाइल-पाया।

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु ने कमलाकान्त को यह शिक्षा दी, तो वहाँ पर उपस्थित सारे लोगों ने यही माना कि यह हर एक के लिए है। इस प्रकार अद्वैत आचार्य अत्यधिक प्रसन्न हुए।

आचार्येर अभिप्राय प्रभु-मात्र बुझे ।

प्रभुर गम्भीर वाक्य आचार्य समुझे ॥54॥

आचार्येर–अद्वैत आचार्य का; अभिप्राय-अभिप्राय; प्रभु-मात्र मात्र चैतन्य महाप्रभुः बुझे-समझ सकते हैं। प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; गम्भीर-गम्भीर; वाक्य-उपदेश; आचार्य-अद्वैत आचार्य; समुझे समझ सकते हैं।

अनुवाद

केवल चैतन्य महाप्रभु ही अद्वैत आचार्य के मनोभाव समझ सके और अद्वैत आचार्य महाप्रभु के गम्भीर उपदेश को समझ सके।

एइ त' प्रस्तावे आछे बहुत विचार ।

ग्रन्थ-बाहुल्य-भये नारि लिखिबार ॥55॥

एइ त’-इस; प्रस्तावे-कथन में; आछे हैं; बहुत-बहुत; विचार-विचार; ग्रन्थ-पुस्तक के; बाहुल्य–विस्तार के; भये-डर से; नारि-मैं नहीं; लिखिबार—लिखता।

अनुवाद

इस कथन में अनेक गुह्य विचार हैं। मैं उन सबको नहीं लिख रहा, क्योंकि इससे पुस्तक के व्यर्थ ही बढ़ जाने का भय है।

श्री-यदुनन्दनाचार्य–अद्वैतेर शाखा ।

ताँर शाखा-उपशाखार नाहि हय लेखा ॥56॥

श्री-यदुनन्दन-आचार्य-श्री यदुनन्दन आचार्य; अद्वैतेर-अद्वैत आचार्य की; शाखा-शाखा; ताँर-उनकी; शाखा शाखाएँ; उपशाखार–उपशाखाएँ; नाहि-नहीं; हय है; लेखा-वर्णन।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य की पाँचवीं शाखा श्री यदुनन्दन आचार्य थे, जिनसे इतनी शाखाएँ तथा उपशाखाएँ निकलीं कि उन सबको लिपिबद्ध करना असम्भव है।

तात्पर्य

रघुनाथ दास गोस्वामी के प्राधिकृत दीक्षा-गुरु यदुनन्दन आचार्य थे। दूसरे शब्दों में, जब रघुनाथ दास गोस्वामी गृहस्थ थे, तब यदुनन्दन आचार्य ने उन्हें घर ही में दीक्षा दी थी। बाद में रघुनाथ दास गोस्वामी ने जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण ग्रहण की।

वासुदेव दत्तेर तेंहो कृपार भाजन ।

सर्व-भावे आश्रियाछे चैतन्य-चरण ॥57॥

वासुदेव दत्तेर-वासुदेव दत्त का; तेंहो-वे थे; कृपार-कृपा के; भाजन-पात्र; सर्व-भावे-सभी प्रकार से; आश्रियाछे-शरण ली; चैतन्य-चरण-चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की।

अनुवाद

श्री यदुनन्दन आचार्य वासुदेव दत्त के शिष्य थे और उन्हें गुरु की पूरीकृपा प्राप्त थी। अतएव उन्होंने सभी प्रकार से श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों को परम आश्रय के रूप में स्वीकार किया।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका के 140वें श्लोक में बतलाया गया है कि वासुदेव दत्त पहले वृन्दावन के गायक मधुव्रत थे।

भागवताचार्य, आर विष्णुदासाचार्य।

चक्रपाणि आचार्य, आर अनन्त आचार्य ॥58॥

भागवत-आचार्य–भागवत आचार्य; आर-और; विष्णुदास-आचार्य-विष्णुदास आचार्य; चक्रपाणि आचार्य-चक्रपाणी आचार्य; आर-और; अनन्त आचार्य-अनन्त आचार्य।

अनुवाद

भागवत आचार्य, विष्णुदास आचार्य, चक्रपाणि आचार्य तथा अनन्त अद्वैत आचार्य की क्रमशः छठी, सातवीं, आठवीं तथा नवीं शाखाएँ थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद अपने अनुभाष्य में कहते हैं कि भागवत आचार्य पहले अद्वैत आचार्य के अनुयायी थे, किन्तु बाद में वे गदाधर पण्डित के अनुयायियों में गिने जाने लगे। यदुनन्दन दास द्वारा लिखित शाखानिर्णयामृत के छठे श्लोक में कहा गया है कि भागवत आचार्य ने प्रेमतरंगिणी नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की। गौरगणोद्देश-दीपिका के श्लोक 195 के अनुसार भागवत आचार्य पहले वृन्दावन में श्वेतमंजरी के रूप में रहते थे। विष्णुदास आचार्य खेतरि-महोत्सव के समय उपस्थित थे। वे अच्युतानन्द के साथ वहाँ गये थे, ऐसा भक्ति रत्नाकर के दशम तरंग में बतलाया गया है। अनन्त आचार्य आठ प्रमुख गोपियों में से एक थे। उनका पहले का नाम सुदेवी था। यद्यपि वे अद्वैत आचार्य के अनुयायियों में से थे, किन्तु बाद में वे गदाधर गोस्वामी के एक प्रमुख भक्त बन गये।

नन्दिनी, आर कामदेव, चैतन्य-दास ।

दुर्लभ विश्वास, आर वनमालि-दास ॥59॥

नन्दिनी-नन्दिनी; आर-और; कामदेव-कामदेव; चैतन्य-दास-चैतन्य दास; दुर्लभ विश्वास दुर्लभ विश्वास; आर-और; वनमालि-दास–वनमाली दास।

अनुवाद

नन्दिनी, कामदेव, चैतन्य दास, दुर्लभ विश्वास तथा वनमाली दास श्री अद्वैत आचार्य की क्रमशः दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं, तेरहवीं तथा चौदहवीं शाखाएँ थे।

जगन्नाथ कर, आर कर भवनाथ ।

हृदयानन्द सेन, आर दास भोलानाथ ॥60॥

जगन्नाथ कर–जगन्नाथ कर; आर-और; कर भवनाथ-भवनाथ कर; हृदयानन्द सेन–हृदयानन्द सेन; आर-और; दास भोलानाथ- भोलानाथ दास।

अनुवाद

इसी तरह जगन्नाथ कर, भवनाथ कर, हृदयानन्द सेन तथा भोलानाथ दास अद्वैत आचार्य की क्रमशः पंद्रहवीं, सोलहवीं, सत्रहवीं तथा अठारहवीं शाखाएँ थे।

यादव-दास, विजय-दास, दास जनार्दन ।

अनन्त-दास, कानु-पण्डित, दास नारायण ॥ 61॥

यादव-दास–यादव दास; विजय-दास–विजय दास; दास जनार्दन-जनार्दन दास; अनन्त-दास-अनन्त दास; कानु-पण्डित–कानु पण्डित; दास नारायण-नारायण दास।

अनुवाद

यादव दास, विजय दास, जनार्दन दास, अनन्त दास, कानु पण्डित तथा नारायण दास क्रमशः उन्नीसवीं, बीसवीं, इक्कीसवीं, बाइसवीं, तेइसवीं और चौबीसवीं शाखाएँ थे।

श्रीवत्स पण्डित, ब्रह्मचारी हरिदास ।

पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी, आर कृष्णदास ॥62॥

श्रीवत्स पण्डित-श्रीवत्स पण्डित; ब्रह्मचारी हरिदास-हरिदास ब्रह्मचारी; पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी–पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी; आर-और; कृष्णदास-कृष्णदास।

अनुवाद

श्रीवत्स पण्डित, हरिदास ब्रह्मचारी, पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी तथा कृष्णदास अद्वैत आचार्य की क्रमशः पच्चीसवीं, छब्बीसवीं, सत्ताइसवीं तथा अठ्ठाइसवीं शाखाएँ थे।

पुरुषोत्तम पण्डित, आर रघुनाथ।

वनमाली कविचन्द्र, आर वैद्यनाथ॥ 63॥

पुरुषोत्तम पण्डित–पुरुषोत्तम पण्डित; आर रघुनाथ-और रघुनाथ; वनमाली कविचन्द्र–वनमाली कविचन्द्र; आर-और; वैद्यनाथ–वैद्यनाथ।

अनुवाद

उसके आगे क्रमशः पुरुषोत्तम पण्डित, रघुनाथ, वनमाली कविचन्द्र तथा वैद्यनाथ अद्वैत आचार्य की उन्तीसवीं, तीसवीं, इकतीसवीं और बत्तीसवीं शाखाएँ थे।

लोकनाथ पण्डित, आर मुरारि पण्डित।

श्री-हरिचरण, आर माधव पण्डित॥ 64॥

लोकनाथ पण्डित–लोकनाथ पण्डित; आर-और; मुरारि पण्डित-मुरारी पण्डित; श्री-हरिचरण-श्री हरिचरण; आर-और; माधव पण्डित-माधव पण्डित।

अनुवाद

लोकनाथ पण्डित, मुरारी पण्डित, श्री हरिचरण तथा माधव पण्डित अद्वैत आचार्य की क्रमशः तैंतीसवीं चौंतीसवीं, पैंतीसवीं और छत्तीसवीं शाखाएँ थे।

विजय पण्डित, आर पण्डित श्रीराम।

असङ्ख्य अद्वैत-शाखा कत लइब नाम ॥65॥

विजय-पण्डित-विजय पण्डित; आर-और; पण्डित श्रीराम-श्रीराम पण्डित; असङ्ख्य-असंख्य; अद्वैत-शाखा-अद्वैत आचार्य की शाखाएँ; कत-कितनी; लइब-मैं गिनूँ; नाम-उनके नाम।

अनुवाद

विजय पण्डित तथा श्रीराम पण्डित अद्वैत आचार्य की दो महत्त्वपूर्ण शाखाएँ थे। शाखाएँ तो असंख्य हैं, लेकिन मैं उन सबका नाम गिना पाने में असमर्थ हूँ।

तात्पर्य

चूँकि श्रीवास पण्डित नारद मुनि के अवतार थे, अतएव उनके छोटे भाई श्रीराम पण्डित को नारद मुनि के घनिष्ठतम मित्र पर्वत मुनि का अवतार माना जाता है।

मालि-दत्त जल अद्वैत-स्कन्ध योगाय ।

सेइ जले जीये शाखा,— फुल-फल पाय ॥66॥

मालि-दत्त-माली द्वारा दिया हुआ; जल-जल; अद्वैत-स्कन्ध-अद्वैत आचार्य नामक शाखा; योगाय-देती है; सेइ–उस; जले-जल; जीये-जीता है; शाखा शाखाएँ; फुल-फल-फल और फूल; पाय-बढ़ती हैं।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य की शाखा को मूल माली श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदत्त जल प्राप्त हुआ। इस तरह उपशाखाओं का प्रतिपालन हुआ और उनमें प्रचुर फल-फूल लगे।

तात्पर्य

अद्वैत आचार्य की वे शाखाएँ, जो श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदत्त जल से फली-फूलीं, उन्हें ही प्रामाणिक आचार्य मानना चाहिए। जैसाकि इसके पूर्व बतलाया जा चुका है, अद्वैत आचार्य के प्रतिनिधि बाद में दो समूहों में बँट गये-आचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा की प्रामाणिक शाखाएँ तथा अद्वैत आचार्य की बनावटी शाखाएँ। जिन्होंने चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तों का पालन किया वे तो फली-फूलीं, किन्तु अन्य शाखाएँ सूख गईं, जिनका वर्णन अगले श्लोक में हुआ है।

इहार मध्ये माली पाछे कोन शाखा-गण ।

ना माने चैतन्य-माली दुर्दैव कारण ॥ 67॥

इहार-उनका; मध्ये-के मध्य; माली–माली; पाछे-बाद में; कोन-कुछ; शाखा-गण–शाखाएँ; ना-नहीं; माने–स्वीकार करतीं; चैतन्य-माली–चैतन्य महाप्रभु माली; दुर्दैव-दुर्भाग्य; कारण-कारण।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु के तिरोधान के बाद दुर्भाग्यवश कुछ शाखाएँ महाप्रभु द्वारा दिखाए गये मार्ग से भटक गईं।

सृजाइल, जीयाइल, ताँरे ना मानिल ।

कृतघ्न हइला, ताँरे स्कन्ध क्रुद्ध हइल ॥ 68॥

सृजाइल-फलीभूत हुआ; जीयाइल-पोषण किया; ताँरे-उनको; ना-नहीं; मानिल-स्वीकार किया; कृतघ्न-कृतघ्न; हइला-इस प्रकार हो गईं; ताँरे-उनको; स्कन्ध–तना; क्रुद्ध-क्रुद्ध; हइल हो गया।

अनुवाद

कुछ शाखाओं ने उस मूल तने को स्वीकार नहीं किया, जो सम्पूर्ण वृक्ष का जीवनदाता तथा पालनकर्ता था। इस प्रकार जब वे कृतघ्न बन गईं, तो मूल तना उन पर क्रुद्ध हो गया।

क्रुद्ध हञा स्कन्ध तारे जल ना सञ्चारे।

जलाभावे कृश शाखा शुकाइया मरे॥ 69॥

क्रुद्ध हञा-क्रुद्ध होकर; स्कन्ध-तना; तारे-उनको; जल-जल; ना-नहीं; सञ्चारे-छिड़का; जल-अभावे-जल के अभाव में; कृश-पतली; शाखा-शाखा; शुकाइया-सूखकर; मरे–मर गई।

अनुवाद

इस प्रकार चैतन्य महाप्रभु ने उन पर अपनी कृपा-रूपी जल नहीं छिड़का और धीरे-धीरे वे मुरझाकर मर गईं।

चैतन्य-रहित देह—शुष्ककाष्ठ-सम।

जीवितेइ मृत सेइ, मैले दण्डे यम॥ 70॥

चैतन्य-रहित-चेतना के बिना; देह-शरीर; शुष्क-काष्ठ-सम-ठीक सूखी लकड़ी के समान; जीवितेइ-जीते हुए भी; मृत-मृत; सेइ-वह; मैले–मृत्यु के बाद; दण्डे-दण्ड देते हैं; यम-यमराज।

अनुवाद

कृष्णभावनाविहीन पुरुष शुष्क काठ या मृत शरीर से बढ़कर कुछ नहीं है। वह जीवित होकर भी मृत माना जाता है और मरने के बाद उसे यमराज दण्डित करते हैं।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध, तृतीय अध्याय, उनतीसवें श्लोक के अनुसार मृत्यु के अधीक्षक यमराज अपने सहायकों को बतलाते हैं कि वे किस तरह के लोगों को पकड़कर उनके पास लायें। वे कहते हैं, "ऐसा व्यक्ति जिसकी जिह्वा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के गुणों और पवित्र नाम का कभी वर्णन नहीं करती, जिसका हृदय कृष्ण तथा उनके चरणकमलों का स्मरण करके पुलकित नहीं होता, तथा जिसका सिर कभी भगवान् को नमस्कार करने के लिए नहीं झुकता, उसे दण्ड के लिए मेरे पास अवश्य लाना चाहिए।" दूसरे शब्दों में, अभक्तों को दण्ड के लिए यमराज के पास ले जाये जाते हैं और तब भौतिक प्रकृति उन्हें तरह-तरह के शरीर प्रदान करती है। मृत्यु के बाद, अर्थात् देहान्तर होने पर अभक्तों को न्याय के लिए यमराज के पास ले जाया जाता है। यमराज के निर्णय से पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार प्रकृति उन्हें शरीर प्रदान करती है। यह देहान्तर की विधि है अर्थात् आत्मा का एक शरीर से दूसरे में स्थानान्तरण है। तथापि कृष्णभावनामय भक्तगण यमराज के निर्णय के पात्र नहीं होते। भक्तों के लिए मार्ग खुला रहता है, जिसकी पुष्टि भगवद्गीता में की गई है। शरीर त्यागने के बाद (त्यक्त्वादेहम्) भक्त को दूसरा भौतिक शरीर धारण नहीं करना पड़ता, क्योंकि वह आध्यात्मिक शरीर पाकर भगवद्धाम वापस जाता है। यमराज का दण्ड तो उनके निमित्त है, जो कृष्णभावनाभावित नहीं हैं।

केवल ए गण-प्रति नहे एइ दण्ड ।

चैतन्य-विमुख येइ सेइ त' पाषण्ड ॥ 71॥

केवल–केवल; ए-यह; गण-समूह; प्रति–उनको; नहे-नहीं है; एइ–यह; दण्ड–दण्ड; चैतन्य-विमुख–श्री चैतन्य महाप्रभु के विमुख; येइ-कोई भी; सेइ-वह; त'–किन्तु; पाषण्ड–नास्तिक।

अनुवाद

न केवल अद्वैत आचार्य के दिग्भ्रमित वंशज, अपितु जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय के विरुद्ध है, उसे नास्तिक मानना चाहिए और वह यमराज के दण्ड का पात्र है।

कि पण्डित, कि तपस्वी, किबा गृही, यति ।

चैतन्य-विमुख येइ, तार एइ गति ॥72॥

कि पण्डित-क्या कोई विद्वान पण्डित; कि तपस्वी–क्या कोई महान् साधु; किबा-अथवा; गृही–गृहस्थी; यति-या संन्यासी; चैतन्य-विमुख-श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय के विरुद्ध; येइ-कोई भी; तार-उसका; एइ-यह; गति–गन्तव्य।

अनुवाद

चाहे कोई पण्डित हो, महान् तपस्वी हो अथवा सफल गृहस्थ हो या प्रसिद्ध संन्यासी ही क्यों न हो, किन्तु यदि वह चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय के विरुद्ध है, तो उसे यमराज द्वारा दिये जाने वाला कष्ट भोगना ही होगा।

ये ये लैल श्री-अच्युतानन्देर मत ।

सेइ आचार गण–महा-भागवत ॥73॥

ये ये-जो कोई; लैल–स्वीकार किया; श्री-अच्युतानन्देर-श्री अच्युतानन्द का; मत-मार्ग; सेइ-वे; आचार्येर गण-अद्वैत आचार्य के वंशज; महा-भागवत–सभी महान् भक्त हैं।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य के जिन वंशजों ने श्री अच्युतानन्द के मार्ग को अपनाया, वे सबके सब महान् भक्त हुए।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिविनाद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में एक संक्षिप्त टिप्पणी दी है, जो इस प्रकार है, "श्री अद्वैत आचार्य भक्तिकल्पतरु के प्रधान तनों में से एक हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु-रूपी माली ने भक्ति के वृक्ष की जड़ों में जल सींचा और इस प्रकार इसके तने तथा शाखाओं का परिपोषण किया। फिर भी जीव ने माया रूपी सबसे दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था के वशीभूत होकर कुछ शाखाओं में माली द्वारा डाले गये जल को स्वीकार न करने के कारण तने को ही महान् भक्तिकल्पतरु का कारण मान लिया। दूसरे शब्दों में अद्वैत आचार्य की शाखाएँ या वंशज जिन्होंने अद्वैत आचार्य को ही भक्तिलता का आदि कारण माना तथा जिन्होंने इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों की अवमानना की या उनका उल्लंघन किया, वे सींचे गये जल के प्रभाव से वंचित रह गये और सूखकर नष्ट हो गये। यही नहीं, यह भी जान लेना चाहिए कि न केवल अद्वैत आचार्य के दिग्भ्रमित वंशज, अपितु जो कोई भी चैतन्य महाप्रभु से सम्बन्ध नहीं रखता, वह चाहे स्वतन्त्र रूप से महान् संन्यासी, विद्वान या तपस्वी ही क्यों न हो, वृक्ष की मृत शाखा के तुल्य है।"

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा दिया गया यह विश्लेषण श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी के कथनों के अनुरूप है। यह वर्तमान तथाकथित हिन्दू धर्म की स्थिति का चित्रण प्रस्तुत करता है, जो प्रधानतः मायावादी दर्शन से संचालित होने के कारण विभिन्न कपोलकल्पित विचारधाराओं की खिचड़ी बन चुका है। मायावादी लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन से अत्यधिक डरते हैं और आरोप लगाते हैं कि यह हिन्दू धर्म को बिगाड़ रहा है, क्योंकि यह विश्व के सभी भागों के लोगों को तथा सभी धार्मिक सम्प्रदायों के लोगों को स्वीकार करता है और उन्हें वैज्ञानिक रीति से दैव-वर्णाश्रम-

धर्म में लगाता है। किन्तु जैसाकि हम अनेक बार बतला चुके हैं, हमें वैदिक साहित्य में "हिन्दू" जैसा कोई शब्द प्राप्त नहीं होता। यह शब्द सम्भवतया अफगानिस्तान से आया जो मुख्यतया मुस्लिम देश है, और सबसे पहले हिन्दूकुश दर्रे के लिए प्रयुक्त हुआ, जो आज भी भारत तथा विभिन्न मुस्लिम देशों के बीच व्यापारिक मार्ग का अंग बना हुआ है।

धर्म की वास्तविक वैदिक प्रणाली वर्णाश्रम धर्म कहलाती है, जिसकी पुष्टि विष्णु पुराण (3.8.9) में इस प्रकार हुई है :

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।

विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत् तत्तोषकारणम्॥

वैदिक साहित्य वर्णाश्रम धर्म के सिद्धान्तों का पालन करने का सुझाव देता है। वर्णाश्रम धर्म की विधि को अपनाने से मनुष्य जीवन सफल बनेगा, क्योंकि यह उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से जोड़ेगा, जो मानव जीवन के लक्ष्य हैं। अतः कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारी मानवता के निमित्त है। यद्यपि मानव समाज में विभिन्न विभाग या उपविभाग हैं, किन्तु सारे मनुष्य एक ही योनि से सम्बन्धित हैं। इसलिए हम मानते हैं कि उन सबमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु से जुड़ने की अपनी वैधानिक स्थिति को समझने का सामर्थ्य है। श्री चैतन्य महाप्रभु पुष्टि करते हैं- जीवेर 'स्वरूप' हय-कृष्णेर नित्यदास–"हर जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सनातन अंश है, नित्य दास है।" मानव रूप धारण करने वाला हर जीव अपनी स्थिति की महत्ता को समझ सकता है और इस तरह वह कृष्ण-भक्त होने का पात्र है। अतएव हम यह मानकर चलते हैं। कि सारी मानवता को कृष्णभावनामृत की शिक्षा मिलनी चाहिए। निस्सन्देह, संसार के सभी भागों में और हर देश में जहाँ भी हम संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार करते हैं, वहाँ हम देखते हैं कि लोग बिना हिचक हरे कृष्ण महामन्त्र को सरलता

से स्वीकार कर लेते हैं। इस कीर्तन का प्रभाव यह दिखता है कि हरे कृष्ण आन्दोलन के सारे सदस्य, चाहे उनकी पृष्ठभूमि कैसी ही क्यों न रही हो, पापमय जीवन के चारों सिद्धान्तों का परित्याग कर देते हैं और भक्ति के उच्च पद को प्राप्त करते हैं।

अपने आपको पण्डित, संन्यासी, गृहस्थ तथा स्वामी बतलाने वाले हिन्दू धर्म के तथाकथित अनुयायी वैदिक धर्म की असार शुष्क शाखाएँ हैं। वे नपुंसक हैं; वे मावन समाज के लाभार्थ वैदिक संस्कृति को फैलाने में कुछ भी नहीं कर सकते। वैदिक संस्कृति का सार तो श्री चैतन्य महाप्रभु का सन्देश है। उनका आदेश है :

यारे देख, तारे कह 'कृष्ण' उपदेश।

आमार आज्ञाय गुरु हञा तार एइ देश॥

(चैतन्य चरितामृत, मध्य 7.128)

जो भी व्यक्ति मिले उसे सहज भाव से कृष्णकथा के सिद्धान्तों का उपदेश देना चाहिए, जो भगवद्गीता यथारूप तथा श्रीमद्भागवत में वर्णित हैं। जो व्यक्ति कृष्णकथा या श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय में रुचि नहीं रखता, वह शुष्क असार निर्जीव काठ के तुल्य है। इस्कॉन शाखा प्रत्यक्षतः श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा सिंचित होने के कारण निस्सन्देह, सफल बन रही है, जबकि तथाकथित हिन्दू-धर्म की असम्बद्ध शाखाएँ, जो इस्कॉन से द्वेष रखती हैं, सूखकर मृत हो रही हैं।

सेइ सेइ,—आचार्येर कृपार भाजन।

अनायासे पाइल सेइ चैतन्य-चरण॥ 74॥

सेइ सेइ-जो कोई; आचार-अद्वैत आचार्य की; कृपार-कृपा का; भाजन-पात्र; अनायासे–सहज में; पाइल-पाया; सेइ-वह; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य की कृपा से जिन भक्तों ने चैतन्य महाप्रभु के मार्ग का दृढ़ता से पालन किया, उन्हें चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का आश्रय सहज ही प्राप्त हो गया।

अच्युतेर येइ मत, सेइ मत सार।

आर यत मत सब हैल छारखार ॥ 75 ॥

अच्युतेर-अच्युतानन्द का; येइ-जो; मत-मार्ग; सेइ-वह; मत-मार्ग; सार-सार; आर-अन्य; यत-सभी; मत-नहीं; सब-सब; हैल-हो गया; छारखार–टूट फूट गया।

अनुवाद

अतएव यह निष्कर्ष यह निकलता है कि अच्युतानन्द का मार्ग ही आध्यात्मिक जीवन का सार है। जिन लोगों ने इस मार्ग का पालन नहीं किया, वे मात्र तितर-बितर होकर रह गये।

सेइ आचार्य-गणे मोर कोटि नमस्कार ।

अच्युतानन्द-प्राय, चैतन्य—जीवन याँहार ॥76 ॥

सेइ-वे; आचार्य-गणे-गुरुओं के; मोर-मेरा; कोटि-कोटि, करोड़ों; नमस्कार-नमस्कार; अच्युतानन्द-प्राय-लगभग अच्युतानन्द जैसे; चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु; जीवन-जीवन; याँहार–जिनका।

अनुवाद

अतः मैं अच्युतानन्द के उन असली अनुगामियों को कोटि-कोटि नमस्कार करता हूँ, जिनके जीवनाधार श्री चैतन्य महाप्रभु थे।

एइ त कहिलाँ आचार्य-गोसाञिर गण ।

तिन स्कन्ध-शाखार कैल सङ्क्षेप गणन ॥77॥

एइ त'-इस प्रकार; कहिलाँ–मैंने कहा है; आचार्य-अद्वैत आचार्य; गोसाञिर-गुरु के; गण-वंशज; तिन–तीन; स्कन्ध-तने की; शाखार–शाखाओं की; कैल-की गई; सङ्क्षे प-संक्षेप में; गणन-गणना।

अनुवाद

इस तरह मैंने संक्षेप में श्री अद्वैत आचार्य के वंशजों की तीन शाखाओं (अच्युतानन्द, कृष्ण मिश्र तथा गोपाल) का वर्णन किया है।

शाखा-उपशाखा, तार नाहिक गणन ।

किछु-मात्र कहि' करि दिग्दरशन ॥78 ॥

शाखा-उपशाखा-शाखाएँ तथा उपशाखाएँ; तार–उनकी; नाहिक-नहीं है; गणन-गणना; किछु-मात्र-उनके बारे में कुछ; कहि'–कहना; करि-मैं केवल दे रहा हूँ; दिग्-दरशन-उसकी झलक मात्र।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य की असंख्य शाखाएँ तथा उपशाखाएँ हैं। उन सबकी पूर्णरूपेण गणना कर पाना अत्यन्त कठिन है। मैंने तो पूरे तने तथा इसकी शाखाओं-उपशाखाओं की याँकी मात्र प्रस्तुत की है।

श्री-गदाधर पण्डित शाखाते महोत्तम ।

ताँर उपशाखा किछ करि ये गणन ॥79॥

श्री-गदाधर पण्डित-श्री गदाधर पण्डित; शाखाते-शाखा के; महोत्तम-बहुत बड़े; ताँर-उनकी; उपशाखा–शाखाएँ तथा उपशाखाएँ, किछु-कुछ; करि–मुझे करने दो; ये-वह; गणन-गणना।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य की शाखाओं तथा उपशाखाओं का वर्णन करने के बाद मैं अब श्री गदाधर पण्डित के कुछ वंशजों का वर्णन करने का प्रयास करूँगा, क्योंकि यह प्रधान शाखाओं में से एक है।

शाखा-श्रेष्ठ धुवानन्द, श्रीधर ब्रह्मचारी ।

भागवताचार्य, हरिदास ब्रह्मचारी ॥80॥

शाखा-श्रेष्ठ–प्रमुख शाखा; धुवानन्द-ध्रुवानन्द; श्रीधर ब्रह्मचारी–श्रीधर ब्रह्मचारी; भागवताचार्य-भागवत आचार्य; हरिदास ब्रह्मचारी-हरिदास ब्रह्मचारी।

अनुवाद

श्री गदाधर पण्डित की मुख्य शाखाएँ थीं (1) श्री धुवानन्द, (2) श्रीधर ब्रह्मचारी, (3) हरिदास ब्रह्मचारी तथा (4) रघुनाथ भागवताचार्य।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका के श्लोक 152 में ध्रुवानन्द ब्रह्मचारी को पूर्व जन्म की ललिता कहा गया है और श्लोक 194 तथा 199 में श्रीधर ब्रह्मचारी को चन्द्रलतिका गोपी कहा गया है।

अनन्त आचार्य, कविदत्त, मिश्र-नयन ।

गङ्गामन्त्री मामु ठाकुर, कण्ठाभरण ॥81॥

अनन्त आचार्य-अनन्त आचार्य; कवि-दत्त-कवि दत्त; मिश्र-नयन–नयन मिश्र; गङ्गामन्त्री–गंगा मंत्री; मामु ठाकुर-मामु ठाकुर; कण्ठाभरण-कण्ठाभरण।

अनुवाद

पाँचवीं शाखा थे अनन्त आचार्य, छठी कविदत्त, सातवीं नयन मिश्र, आठवीं गंगामन्त्री, नवीं मामु ठाकुर तथा दसवीं शाखा कण्ठाभरण थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में कविदत्त को कलकण्ठी गोपी के रूप में (श्लोक 197 तथा 207), नयन मिश्र को नित्यमंजरी गोपी (श्लोक 196 तथा 207) और गंगामंत्री को चन्द्रिका गोपी के रूप में (श्लोक 196 तथा 205) बतलाया गया है। मामु ठाकुर का असली नाम जगन्नाथ चक्रवर्ती था। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के पितामह श्री नीलाम्बर चक्रवर्ती के भांजे थे। बंगाल के मामा का रिश्ता पूर्वी बंगाल तथा उड़ीसा में मामु हो जाता है। इस तरह जगन्नाथ चक्रवर्ती मामु या मामा ठाकुर

कहलाते थे। मामु ठाकुर का निवासस्थान फरीदपुर जिले के मगड़ोबा गाँव में था। श्री गदाधर पण्डित के तिरोभाव के बाद मामु ठाकुर जगन्नाथ पुरी के टोटा गोपीनाथ मन्दिर के महन्त बन गये। कुछ वैष्णवों के मतानुसार मामु ठाकुर पहले श्री रूपमंजरी के नाम से विख्यात थे। मामु ठाकुर के अनुगामियों में रघुनाथ गोस्वामी, रामचन्द्र, राधावल्लभ, कृष्णजीवन, श्यामसुन्दर, शान्तामणि, हरिनाथ, नवीनचन्द्र, मतिलाल, दयामयी तथा कुंजविहारी मुख्य हैं। कण्ठाभरण का मूल नाम श्री अनन्त चट्टराज था और वह कृष्णलीला में गोपाली नामक गोपी थे।

भूगर्भ गोसाञि, आर भागवत-दास ।

येइ दुइ आसि' कैल वृन्दावने वास ॥82॥

भूगर्भ गोसाञि-भूगर्भ गोसांई; आर-और; भागवत-दास–भागवत दास; येइ दुइ-वे दोनों; आसि'-आकर; कैल-किया; वृन्दावने वास-वृन्दावन में रहे।

अनुवाद

गदाधर गोस्वामी की ग्यारहवीं शाखा में भूगर्भ गोसांइ हुए और बारहवीं में भागवतदास। ये दोनों वृन्दावन चले गये और जीवनभर वहीं रहे।

तात्पर्य

भूगर्भ गोसांइ पहले प्रेममंजरी नाम से जाने जाते थे। वे लोकनाथ गोस्वामी के घनिष्ठ मित्र थे, जिन्होंने वृन्दावन के सात महत्त्वपूर्ण मन्दिरों में से गोकुलानन्द नामक मन्दिर बनवाया। ये सातों मन्दिर हैं-गोविन्द, गोपीनाथ, मदनमोहन, राधारमण, श्यामसुन्दर, राधादामोदर तथा गोकुलानन्द मन्दिर। ये गौड़ीय वैष्णवों के प्रामाणिक संस्थान हैं।

वाणीनाथ ब्रह्मचारी—बड़ महाशय ।

वल्लभ-चैतन्य-दास—कृष्ण-प्रेममय ॥83॥

वाणीनाथ ब्रह्मचारी-वाणीनाथ ब्रह्मचारी; बड़े महाशय-महान् पुरुष; वल्लभ-चैतन्य-दास-वल्लभ चैतन्य दास; कृष्ण-प्रेम-मय-कृष्ण-प्रेम से सदा पूर्ण।

अनुवाद

तेरहवीं शाखा थे वाणीनाथ ब्रह्मचारी और चौदहवीं वल्लभ चैतन्य दास। ये दोनों महापुरुष सदैव कृष्ण-प्रेम से पूरित रहते थे।

तात्पर्य

आदिलीला (10.114) में श्री वाणीनाथ ब्रह्मचारी का वर्णन आया है। वल्लभ चैतन्य के शिष्य नलिनीमोहन गोस्वामी ने नवद्वीप में मदनगोपाल का एक मन्दिर स्थापित किया।

श्रीनाथ चक्रवर्ती, आर उद्धव दास ।

जितामित्र, काष्ठकाटा-जगन्नाथ-दास ॥84॥

श्रीनाथ चक्रवर्ती- श्रीनाथ चक्रवर्ती; आर-और; उद्धव दास-उद्धव दास; जितामित्र-जितामित्र; काष्ठकाटा जगन्नाथ-दास-काष्ठकाटा जगन्नाथ दास।

अनुवाद

श्रीनाथ चक्रवर्ती पंद्रहवीं, उद्धव सोलहवीं, जितामित्र सत्रहवीं तथा जगन्नाथ दास अठारहवीं शाखाएँ थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने ग्रन्थ अनुभाष्य में लिखते हैं, शाखानिर्णय (श्लोक 13) में श्रीनाथ चक्रवर्ती को सर्व सद्गुणों की खान तथा भगवान् कृष्ण की सेवा में पटु बतलाया गया है। इसी प्रकार श्लोक 35 में उल्लेख है कि उद्धव दास सबको भगवत्प्रेम वितरित करने में अत्यन्त निपुण थे। गौरगणोद्देश-दीपिका (202) में जितामित्र को श्याममंजरी गोपी कहा गया है। जितामित्र ने कृष्ण-मायुर्य नामक एक पुस्तक लिखी। जगन्नाथ दास ढाका के निकट विक्रमपुर के निवासी थे। उनका जन्मस्थान काष्ठकाटा या काठाडिया नामक गाँव था। अब उनके वंशज आड़ियल, कामारपाड़ा तथा पाइकपाड़ा गाँवों में रहते हैं। उन्होंने यशोमाधव मन्दिर की स्थापना की। इस मन्दिर के पुजारी आड़ियल गाँव के गोस्वामी हैं। चौंसठ सखियों में से वे चित्रादेवी गोपी की सहायिका तिलकिनी थे। उनके वंशजों की सूची इस प्रकार है-रामनृसिंह, रामगोपाल, रामचन्द्र, सनातन, मुक्ताराम, गोपीनाथ, गोलोक, हरिमोहन शिरोमणि, राखालराज, माधव तथा लक्ष्मीकान्त। शाखानिर्णय के अनुसार जगन्नाथ दास ने त्रिपुर जिले (अथवा प्रदेश) में हरे कृष्ण आन्दोलन का प्रचार किया।

श्री-हरि आचार्य, सादि-पुरिया गोपाल ।

कृष्णदास ब्रह्मचारी, पुष्प-गोपाल ॥85॥

श्री-हरि आचार्य श्री हरि आचार्य; सादि-पुरिया गोपाल–सादि पूरिया गोपाल; कृष्णदास ब्रह्मचारी–कृष्णदास ब्रह्मचारी; पुष्प-गोपाल–पुष्प गोपाल।

अनुवाद

श्री हरि आचार्य उन्नीसवीं, सादिपुरिया गोपाल बीसवीं, कृष्णदास ब्रह्मचारी इक्कीसवीं तथा पुष्पगोपाल बाइसवीं शाखाएँ थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका के श्लोक 196 तथा 207 में उल्लेख हुआ है कि हरि आचार्य पहले कालाक्षी नामक गोपी थे। सादिपुरिया गोपाल पूर्वी बंगाल (सम्प्रति बाँग्लादेश) के विक्रमपुर में हरे कृष्ण आन्दोलन के प्रचारक के रूप में विख्यात हैं। कृष्णदास ब्रह्मचारी पूर्वजन्म में अष्टसखियों में से इन्दुलेखा नाम की सखी थे। वे वृन्दावन में रहते थे। राधा-दामोदर मन्दिर के भीतर एक समाधि है, जो कृष्णदास की समाधि के नाम से विख्यात है। कुछ लोग इसे कृष्णदास ब्रह्मचारी की समाधि बतलाते हैं, तो कुछ लोग कृष्णदास कविराज गोस्वामी की। हम दोनों को ही नमस्कार करते हैं, क्योंकि वे दोनों इस युग के पतितात्माओं को भगवत्प्रेम वितरण करने में दक्ष थे। शाखा-निर्णय में उल्लेख है कि पुष्पगोपाल पहले स्वर्णग्रामक नाम से विख्यात थे।

श्रीहर्ष, रघु-मिश्र, पण्डित लक्ष्मीनाथ ।

बङ्गवाटी-चैतन्य-दास, श्री-रघुनाथ ॥86॥

श्रीहर्ष-श्री हर्ष; रघु-मिश्र-रघु मिश्र; पण्डित लक्ष्मीनाथ–लक्ष्मीनाथ पण्डित; बङ्गवाटी-चैतन्य-दास-बंगवाटी चैतन्य दास; श्री-रघुनाथ-श्री रघुनाथ।

अनुवाद

श्रीहर्ष तेईसवीं शाखा थे, रघु मिश्र चौबीसवीं, लक्ष्मीनाथ पण्डित पच्चीसवीं, बंगवाटी चैतन्य दास छब्बीसवीं तथा रघुनाथ सत्ताइसवीं शाखाएँ थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक 195 तथा 201) में रघुमिश्र को कर्पूरमंजरी कहा गया है। इसी प्रकार लक्ष्मीनाथ पण्डित को रसोन्मादा तथा बंगवाटी चैतन्य दास को काली बतलाया गया है। शाखा-निर्णय का कथन है कि बंगवाटी चैतन्य दास के नेत्र सदैव अश्रुपूरित रहते थे। उनके वंशजों की भी एक शाखा थी। उनके नाम थे मथुरा प्रसाद, रुक्मिणी कान्त, जीवन कृष्ण, युगल किशोर, रत्नकृष्ण, राधामाधव, उषामणि, वैकुण्ठनाथ तथा लालमोहन या लालमोहन साहा शांखा-निधि। लालमोहन ढाका शहर के एक बड़े व्यापारी थे। गौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक 194 तथा 200) में उल्लेख है कि रघुनाथ पूर्वजन्म में वरांगदा थे।

अमोघ पण्डित, हस्ति-गोपाल, चैतन्य-वल्लभ ।

यदु गाङ्गुलि आर मङ्गल वैष्णव ॥ 87॥

अमोघ पण्डित-अमोघ पण्डित; हस्ति-गोपाल–हस्ति गोपाल; चैतन्य-वल्लभ-चैतन्य वल्लभ; यदु गाङ्गलि-यदु गांगुलि; आर-और; मङ्गल वैष्णव-मंगल वैष्णव।

अनुवाद

अट्ठाइसवीं शाखा अमोघ पण्डित थे, उन्तीसवीं हस्तिगोपाल, तीसवीं चैतन्य वल्लभ, इकतीसवीं यदु गांगुली तथा मंगल वैष्णव बत्तीसवीं शाखा थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, “श्री मंगल वैष्णव मुर्शिदाबाद जिले के टिटकणा गाँव के निवासी थे। उनके पूर्वज शाक्त थे और वे किरीटेश्वरी देवी की

पूजा करते थे। कहा जाता है कि मंगल वैष्णव पहले बाल-ब्रह्मचारी थे, किन्तु घर छोड़ने के बाद उन्होंने अपने शिष्य प्राणनाथ अधिकारी की पुत्री से मयनाडाल ग्राम में विवाह कर लिया। इस परिवार के वंशज कान्दड़ा के ठाकुर कहलाते हैं। कान्दड़ा कटवा के निकट बर्दवान जिले में एक गाँव है। यहाँ पर मंगल वैष्णव के छुटपुट वंशजों के छत्तीस परिवार अभी तक रहते हैं। मंगल ठाकुर के प्रसिद्ध शिष्य हैं प्राणनाथ अधिकारी, कांदड़ा गाँव के पुरुषोत्तम चक्रवर्ती तथा नृसिंह प्रसाद मित्र, जिनके परिवार वाले विख्यात मृदंगवादक हैं। सुधाकृष्ण मित्र तथा निकुंजविहारी मित्र दोनों ही विशेष रूप से विख्यात मृदंगवादक हैं। पुरुषोत्तम चक्रवर्ती के परिवार में कुंजविहारी चक्रवर्ती तथा राधावल्लभ चक्रवर्ती जैसे विख्यात व्यक्ति हुए हैं, जो अभी बीरभूमि जिले में रहते हैं। वे चैतन्य मंगल के गीतों को पेशेवार ढंग से गाते हैं। कहा जाता है कि जब मंगल ठाकुर बंगाल से जगन्नाथ पुरी तक सड़क बनवा रहे थे, तो एक झील की खुदाई करते समय राधावल्लभ की मूर्ति मिली। उस समय वे कान्दड़ा नामक स्थान में राणीपुर गाँव में रह रहे थे। मंगल ठाकुर जिस शालिग्राम शिला की स्वयं पूजा करते थे, वह आज भी कांदड़ा गाँव में विद्यमान है। वहाँ पर वृन्दावन चन्द्र की पूजा के लिए एक मन्दिर बनवा दिया गया है। मंगल ठाकुर के तीन पुत्र थे-राधिकाप्रसाद, गोपीरमण तथा श्यामकिशोर। इन तीनों पुत्रों के वंशज अभी भी जीवित हैं।"

चक्रवर्ती शिवानन्द सदा व्रजवासी ।

महाशाखा-मध्ये तेंहो सुदृढ़ विश्वासी ॥88॥

चक्रवर्ती शिवानन्द-शिवानन्द चक्रवर्ती; सदा-सदा; व्रज-वासी-वृन्दावन के निवासी; महा-शाखा-मध्ये-महान् शाखाओं के मध्य; तेंहो-वे हैं; सुदृढ़ विश्वासी-सुदृढ़ विश्वास रखनेवाले।

अनुवाद

शिवानन्द चक्रवर्ती लैंतीसवीं शाखा थे। वे दृढ़ विश्वास के साथ सदा वृन्दावन में रहे और गदाधर पण्डित की एक महत्त्वपूर्ण शाखा माने जाते हैं।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (183) के अनुसार शिवानन्द चक्रवर्ती पहले लवंग मंजरी थे। यदुनन्दन दास द्वारा लिखित शाखा-निर्णय में गदाधर पण्डित की अन्य शाखाओं के भी नाम गिनाये गये हैं, जो इस प्रकार हैं-(1) माधव आचार्य, (2) गोपालदास, (3) हृदयानन्द, (4) वल्लभ भट्ट (वल्लभ सम्प्रदाय या पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय अत्यन्त प्रसिद्ध है), (5) मधु पण्डित (ये प्रसिद्ध भक्त खड़दह के निकट साईंबोना गाँव में रहते थे, जो खड़दह स्टेशन से पूर्व दिशा की ओर लगभग दो मील दूर है। इन्होंने वृन्दावन में गोपीनाथजी का मन्दिर बनवाया), (6) अच्युतानन्द, (7) चन्द्रशेखर, (8) वक्रेश्वर पण्डित, (9) दामोदर, (10) भगवान् आचार्य, (11) अनन्त आचार्यवर्य, (12) कृष्णदास, (13) परमानन्द भट्टाचार्य, (14) भवानन्द गोस्वामी, (15) चैतन्य दास, (16) लोकनाथ भट्ट (ये यशोहर या जेस्सोर जिले के तालखड़ि गाँव में रहते थे और इन्होंने राधाविनोद का मन्दिर बनवाया। ये नरोत्तमदास ठाकुर के गुरु तथा भूगर्भ गोस्वामी के पक्के मित्र थे), (17) गोविन्द आचार्य, (18) अक्रूर ठाकुर, (19) संकेत आचार्य, (20) प्रतापादित्य, (21) कमलाकान्त आचार्य, (22) यादव आचार्य, (23) नारायण पड़िहारी (जगन्नाथ पुरी को निवासी)।

एइ त’ सङ्क्षेपे कहिलाँ पण्डितेर गण।

ऐछे आर शाखा-उपशाखार गणन ॥89॥

एइ त'-इस प्रकार; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिलाँ-मैंने वर्णन किया है; पण्डितेर गण-श्री गदाधर पण्डित की शाखाएँ; ऐछे—इसी प्रकार; आर-अन्य; शाखा-उपशाखार गणन–शाखाओं और उपशाखाओं का वर्णन।

अनुवाद

इस तरह मैंने गदाधर पण्डित की शाखाओं तथा उपशाखाओं का संक्षेप में वर्णन किया है। तब भी ऐसी अनेक शाखाएँ हैं, जिनका उल्लेख मैंने यहाँ नहीं किया।

पण्डितेर गण सब,—भागवत धन्य ।

प्राण-वल्लभ-सबार श्री-कृष्ण-चैतन्य ॥90॥

पण्डितेर-गदाधर पण्डित के; गण-अनुयायी; सब-सभी; भागवत धन्य-महान् भक्त; प्राण-वल्लभ-हृदय और प्राण, प्राणवल्लभ; सबार-उन सबके; श्री कृष्ण-चैतन्य श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

गदाधर पण्डित के सारे अनुयायी महान् भक्त माने जाते हैं, क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु इन सबके प्राणप्रिय थे।

एइ तिन स्कन्धेर कैलुँ शाखार गणन।

याँ-सबा-स्मरणे भव-बन्ध-विमोचन ॥91॥

एइ तिन-इन तीनों के; स्कन्धेर–तने; कैलुँ-वर्णन किया; शाखार गणन–शाखाओं की गणना; याँ-सबा-इन सबका; स्मरणे-स्मरण करने से; भव-बन्ध-भौतिक संसार के बन्धन से; विमोचन–छुटकारा।

अनुवाद

मैंने जिन तीन तनों (नित्यानन्द, अद्वैत तथा गदाधर) की शाखाओं तथा उपशाखाओं का वर्णन किया है, उनके नामों का स्मरण करने मात्र से ही मनुष्य भवबन्धन से छूट जाता है।

याँ-सबा-स्मरणे पाइ चैतन्य-चरण ।

याँ-सबा-स्मरणे हय वाञ्छित पूरण ॥92॥

याँ-सबा-इन सबका; स्मरणे-स्मरण करने से; पाइ-मैं पाता हूँ; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; याँ-सबा-इन सबका; स्मरणे-स्मरण करने से; हय-हो जाता है; वाञ्छित पूरण-सभी इच्छाओं की पूर्ति।

अनुवाद

इन सारे वैष्णवों के नामों का स्मरण करने मात्र से ही मनुष्य श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों तक पहुँच सकता है। निस्सन्देह, उनके पवित्र नामों के स्मरण मात्र से सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं।

अतएव ताँ-सबार वन्दिये चरण ।

चैतन्य-मालीर कहि लीला-अनुक्रम ॥93 ॥

अतएव–अतएव; ताँ-सबार-उन सबको; वन्दिये-मैं नमस्कार करता हूँ; चरण-चरणकमलों में; चैतन्य-मालीर-चैतन्य महाप्रभु नामक माली की; कहि-मैं कहता हूँ; लीला-अनुक्रम-क्रमबद्ध लीलाएँ।

अनुवाद

अतएव उन सबके चरणकमलों को सादर नमस्कार करते हुए अब मैं माली-रूप श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का क्रमवार वर्णन करूँगा।

गौर-लीलामृत-सिन्धु अपार अगाध ।

के करिते पारे ताहाँ अवगाह-साध ॥ 94॥

गौर-लीलामृत-सिन्धु-चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का सागर; अपार-अपार; अगाध-अगाध; के-कौन; करिते-करने में; पारे-सक्षम है; ताहाँ–उस सागर में; अवगाह-गोता लगाना; साध-करना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का समुद्र अपार तथा अगाध है। भला ऐसे विशाल समुद्र को मापने का साहस कौन कर सकता है?

ताहार माधुर्य-गन्धे लुब्ध हय मन ।

अतएव तटे रहि' चाकि एक कण ॥ 95॥

ताहार–उनके; माधुर्य-माधुर्य रस; गन्धे-सुगन्ध से; लुब्ध-आकर्षित; हय-हो जाता है; मन–मन; अतएव–अतएव; तटे-तट पर; रहि'–खड़े होकर; चाकि-मैं चखता; हूँ; एक-एक; कण-कण।

अनुवाद

उस विशाल समुद्र में डुबकी लगाना सम्भव नहीं है, किन्तु उसकी माधुर्य गन्ध मेरे मन को आकृष्ट करती है। अतएव मैं उस समुद्र के तट पर केवल एक बूंद चखने के लिए खड़ा हूँ।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 96 ॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथदास गोस्वामी; पदे-उनके चरणकमलों पर; यार–जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक पुस्तक; कहे वर्णन करता है; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के बारहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त–तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें अद्वैत आचार्य तथा गदाधर पण्डित के अंशों का वर्णन है ।

अध्याय तेरह

श्री चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव

श्रीचैतन्य-चरितामृत के इस तेरहवें अध्याय में चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का वर्णन हुआ है। सम्पूर्ण आदिलीला में चैतन्य महाप्रभु के गृहस्थ जीवन का वर्णन है और इसी प्रकार अन्त्यलीला में उनके संन्यासी जीवन का वर्णन है। महाप्रभु की अन्त्यलीला के अन्तर्गत उनके संन्यासी जीवन के प्रथम छः वर्ष मध्यलीला कहलाते हैं। इस अवधि में श्री चैतन्य महाप्रभु ने दक्षिण भारत का भ्रमण किया, वे वृन्दावन गये, वृन्दावन से लौटे और उन्होंने संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार किया।

श्रीहट्ट जिले के निवासी उपेन्द्र मिश्र एक विद्वान ब्राह्मण थे। वे जगन्नाथ मिश्र के पिता थे। जगन्नाथ मिश्र नीलाम्बर चक्रवर्ती के निर्देशन में अध्ययन करने के लिए नवद्वीप आये। तत्पश्चात् नीलाम्बर चक्रवर्ती की बेटी शचीदेवी के साथ विवाह करने के बाद जगन्नाथ मिश्र वहीं टिक गये। श्री शचीदेवी की आठ सन्तानें हुईं, जो सभी बेटियाँ थीं और जन्म के तुरन्त बाद ही एक-एक करके सभी मर गईं। नवें गर्भ से उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम विश्वरूप रखा गया। तत्पश्चात् 1407 शक सम्वत (1486 ई.) में फाल्गुन की पूर्णमासी को संध्या समय सिंह-लग्न राशि में श्री चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव श्री शचीदेवी और जगन्नाथ मिश्र के पुत्र के रूप में हुआ। उनके जन्म की खबर सुनकर पण्डितजन तथा ब्राह्मणजन उपहार ले-लेकर नवजात शिशु को देखने आये। नीलाम्बर चक्रवर्ती स्वयं एक महान् ज्योतिषाचार्य थे, अतएव तुरन्त ही उन्होंने जन्मकुण्डली तैयार की और फलित ज्योतिष गणना द्वारा देखा कि यह शिशु एक महापुरुष है। इस अध्याय में इस महापुरुष के लक्षणों का वर्णन हुआ है।

स प्रसीदतु चैतन्य-देवो यस्य प्रसादतः ।

तल्लीला-वर्णने योग्यः सद्यः स्यादधमोऽप्ययम् ॥1॥

सः–वे; प्रसीदतु-अपना आशीर्वाद प्रदान करें; चैतन्य-देवः-श्री चैतन्य महाप्रभुः यस्य–जिनकी; प्रसादतः-कृपा से; तत्-लीला-उनकी लीलाएँ; वर्णने-वर्णन में; योग्यः-योग्य; सद्यः–तत्काल; स्यात्-सम्भव होती हैं; अधमः-पतित; अपि-भी; अयम्-मैं हूँ।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा की कामना करता हूँ, जिनकी कृपा से एक अधम भी उनकी लीलाओं का वर्णन कर सकता है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु या भगवान् श्रीकृष्ण का वर्णन करने के लिए जिस दैवी शक्ति की आवश्यकता होती है, वह भगवान् की कृपा एवं अनुकंपा है। बिना इस कृपा के कोई भी व्यक्ति दिव्य साहित्य की रचना नहीं कर सकता। किन्तु भगवान् की कृपा के बल पर साहित्य लिखने में एक अयोग्य व्यक्ति भी अद्भुत दिव्य विषयों का वर्णन कर सकता है। कृष्णशक्ति विना नहे तार प्रवर्तन (चैतन्य-चरितामृत, अन्त्य 7.11) भगवान् की कृपा प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति भगवान् के नाम, यश, गुण, रूप, परिकर आदि का प्रचार नहीं कर सकता। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन करना लेखक पर विशेष कृपावृष्टि का सूचक है, यद्यपि वे अपने आपको अत्यन्त अधम मानते थे। किन्तु हमें उन्हें अधम नहीं मान लेना चाहिए, क्योंकि वे ऐसा कह रहे हैं। बल्कि, जो भी ऐसे दिव्य साहित्य की रचना करने में समर्थ है, वह हमारा पूज्य गुरु है।

जय जय श्री कृष्ण-चैतन्य गौरचन्द्र ।

जयाद्वैतचन्द्र जय जय नित्यानन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; गौर-चन्द्र-भगवान् गौरचन्द्र; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय हो; जय जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो!

जय जय गदाधर जय श्रीनिवास ।

जय मुकुन्द वासुदेव जय हरिदास ॥ 3॥

जय जय गदाधर-गदाधर प्रभु की जय हो; जय श्रीनिवास-श्रीवास ठाकुर की जय हो; जय मुकुन्द-मुकुन्द की जय हो; वासुदेव-वासुदेव की जय हो; जय हरिदास-हरिदास ठाकुर की जय हो।

अनुवाद

गदाधर प्रभु की जय हो! श्रीवास ठाकुर की जय हो! मुकुन्द प्रभु तथा वासुदेव प्रभु की जय हो! हरिदास ठाकुर की जय हो!

जय दामोदर-स्वरूप जय मुरारि गुप्त ।

एइ सब चन्द्रोदये तमः कैल लुप्त ॥4॥

जय-जय हो; दामोदर-स्वरूप-स्वरूप दामोदर; जय-जय हो; मुरारि गुप्त-मुरारी गुप्त; एइ सब-इन सबकी; चन्द्र-उदये-उगे चन्द्रों की; तमः-अन्धकार; कैल-किया; लुप्त-लुप्त।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर तथा मुरारि गुप्त की जय हो! इन सारे दैदीप्यमान चन्द्रमाओं ने मिलकर इस भौतिक जगत् के अंधकार को दूर भगाया है।

जय श्री-चैतन्यचन्द्रेर भक्त चन्द्र-गण ।

सबार प्रेम ज्योत्स्नाय उज्वल त्रिभुवन ॥5॥

जय-जय हो; श्री-चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु की; चन्द्रेर-जो चन्द्र की भाँति चमकते हैं; भक्त-भक्त; चन्द्र-गण-अन्य चन्द्र; सबार-उन सबके; प्रेम-ज्योत्स्नाय-भगवत्-प्रेम के पूर्ण प्रकाश से; उज्वल-उज्वल; त्रि-भुवन–तीनों भुवन।

अनुवाद

उन सारे चन्द्रमाओं की जय हो, जो चैतन्य महाप्रभु नामक प्रधान चन्द्रमा के भक्त हैं। उनका उज्वल चन्द्रप्रकाश समूचे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है।

तात्पर्य

इस श्लोक में चन्द्रगण बहुवचन सूचक है। इससे सूचित होता है कि चन्द्रमा अनेक हैं। भगवद्गीता (10.21) में भगवान् कहते हैं- नक्षत्राणां अहं शशी–"मैं नक्षत्रों में चन्द्रमा हूँ।" सारे नक्षत्र (तारे) चन्द्रमा के समान हैं। पाश्चात्य ज्योतिर्विद नक्षत्रों को सूर्य समान मानते हैं, किन्तु वैदिक ज्योतिर्विद वैदिक शास्त्रों का अनुगमन करने के फलस्वरूप इन्हें चन्द्रमा के समान मानते हैं। सूर्य में

बड़े जोर से चमकने की शक्ति होती है और चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करने के कारण उज्ज्वल प्रतीत होता है। चैतन्य-चरितामृत में कृष्ण को सूर्य की भाँति बतलाया गया है। परम शक्तिमान तो भगवान् श्रीकृष्ण या श्री चैतन्य महाप्रभु हैं और उनके भक्तगण भी उज्वल तथा प्रकाशमय हैं, क्योंकि वे सर्वोपरि सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करते हैं। चैतन्य-चरितामृत का कथन है (मध्य 22.31) :

कृष्ण-सूर्य-सम, माया हय अन्धकार ।

याहाँ कृष्ण, ताहाँ नाहि मायार अधिकार ॥

"कृष्ण सूर्य के समान तेजस्वी हैं। सूर्य के उदय होते ही अंधकार या अज्ञान के रह पाने का प्रश्न ही नहीं उठता।" इसी प्रकार इस श्लोक में भी यह वर्णन हुआ है कि कृष्ण-रूपी सूर्य-प्रकाश के परावर्तन से प्रकाशित इन चन्द्रमाओं के प्रकाश से या चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की कृपा से यह सारा जगत्, कलियुग के अंधकार के बावजूद प्रकाशित हो उठेगा। केवल चैतन्य महाप्रभु के भक्त ही कलियुग के अन्धकार को, इस युग की जनता के अज्ञान को दूर कर सकते हैं। और कोई ऐसा नहीं कर सकता। अतएव हमारी यही कामना है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सारे भक्त सर्वोपरि सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करते हुए सारे जगत् के अंधकार को दूर करें।

एइ त' कहिल ग्रन्थारम्भे मुख-बन्ध ।

एबे कहि चैतन्य-लीला-क्रम-अनुबन्ध ॥ 6 ॥

एइ त'-इस प्रकार; कहिल-मैंने कहा है; ग्रन्थ-आरम्भे-ग्रन्थ के आरम्भ में; मुख-बन्ध-आमुख; एबे-अब; कहि-मैं कहता हूँ; चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु की; लीला-क्रम-क्रम बद्ध लीलाएँ; अनुबन्ध-जैसे वे आपस में जुड़ी हैं।

अनुवाद

इस प्रकार मैंने चैतन्य-चरितामृत की भूमिका कही है। अब मैं चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का काल-क्रम से वर्णन करूँगा।

प्रथमे त' सूत्र-रूपे करिये गणन ।

पाछे ताहा विस्तारि करिब विवरण ॥ 7॥

प्रथमे-आरम्भ में; त'–फिर भी; सूत्र-रूपे-सूत्र के रूप में; करिये-करता हूँ, गणन-गणना; पाछे–तत्पश्चात्; ताहा-वह; विस्तारि-वर्णन करना; करिब–मैं करूँगा; विवरण-विस्तार।

अनुवाद

सर्वप्रथम मैं महाप्रभु की लीलाओं को सूत्र-रूप में कहता हूँ। तब मैं उनका वर्णन विस्तार से करूँगा।

श्री-कृष्ण-चैतन्य नवद्वीपे अवतरि ।

आट-चल्लिश वत्सर प्रकट विहरि ॥8॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; नवद्वीपे-नवद्वीप में; अवतरि–अवतरित होकर; आट-चल्लिश-अड़तालीस; वत्सर-वर्ष; प्रकट-प्रकट; विहरि-आनन्द लेते हुए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु नवद्वीप में अवतरित होकर अड़तालीस वर्षों तक प्रकट रहे और उन्होंने अपनी लीलाओं का आनन्द लिया।

चौद्द-शत सात शके जन्मेर प्रमाण ।

चौद्द-शत पञ्चान्ने हइल अन्तर्धान ॥9॥

चौद्द-शत-सत-चौदह सौ सात; शके-शक सम्वत में; जन्मेर-जन्म के प्रमाण-प्रमाण; चौद्द-शत पञ्चान्ने–चौदह सौ पचपन में; हइल-हो गये; अन्तर्धान–अन्तर्धान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु शक सम्वत 1407 (1486 ई.) में प्रकट हुए और 1455 (1534 ई.) में इस जगत् से अन्तर्धान हो गये।

चब्बिश वत्सर प्रभु कैल गृह-वास ।

निरन्तर कैल कृष्ण-कीर्तन-विलास ॥10॥

चब्बिश-चौबीस; वत्सर-वर्ष; प्रभु-महाप्रभु; कैल-किया; गृह-वास-घर में रहे; निरन्तर–सदा; कैल-किया; कृष्ण-कीर्तन-हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन; विलास-लीलाएँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु चौबीस वर्षों तक गृहस्थाश्रम में रहे और सदा हरे कृष्ण आन्दोलन की लीलाओं में व्यस्त रहे।

चब्बिश वत्सर-शेषे करिया सन्न्यास ।

आर चब्बिश वत्सर कैल नीलाचले वास ॥11॥

चब्बिश-चौबीस; वत्सर-वर्ष; शेषे–के अन्त में; करिया–स्वीकार करके; सन्न्यास-संन्यास; आर-अन्य; चब्बिश-चौबीस; वत्सर-वर्ष; कैल–किया; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; वास–निवास।

अनुवाद

चौबीस वर्ष बाद उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया और अगले चौबीस वर्षों तक वे जगन्नाथ पुरी में रहे।

तार मध्ये छय वत्सर—गमनागमन।

कभु दक्षिण, कभु गौड़, कभु वृन्दावन ॥12॥

तार मध्ये-उसमें से; छय वत्सर-छः वर्ष; गमन-आगमन-यात्रा करना; कभु-कभी-कभी; दक्षिण-दक्षिण भारत में; कभु-कभी-कभी; गौड़-बंगाल में; कभु-कभी-कभी; वृन्दावन-वृन्दावन में।

अनुवाद

इन अन्तिम चौबीस वर्षों में से छः वर्षों तक वे लगातार भारत का भ्रमण करते रहे-कभी दक्षिण भारत में, कभी बंगाल में तो कभी वृन्दावन में।

अष्टादश वत्सर रहिला नीलाचले।

कृष्ण-प्रेम-नामामृते भासा'ल सकले ॥13॥

अष्टादश-अठारह; वत्सर-वर्ष; रहिला-रहे; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; नाम-अमृते-हरे कृष्ण मंत्र के अमृत में; भासा'ल–डुबो दिया; सकले-प्रत्येक को।

अनुवाद

शेष अठारह वर्षों तक वे निरन्तर जगन्नाथ पुरी में ही रहे। वहाँ उन्होंने अमृततुल्य हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते हुए हर एक को कृष्ण-प्रेम की बाढ़ से सराबोर कर दिया।

गार्हस्थ्ये प्रभुर लीला—'आदि'-लीलाख्यान।

'मध्य'-'अन्त्य'-लीला—शेष-लीलार दुइ नाम ॥14॥

गार्हस्थ्ये-गृहस्थ जीवन में प्रभुर–महाप्रभु की; लीला-लीलाएँ; आदि-आदि; लीला-लीलाएँ; आख्यान-उनका नाम है; मध्य-मध्य; अन्त्य-अन्त्य; लीला-लीलाएँ; शेष-लीलार–लीलाओं का अन्तिम भाग; दुइ-दो; नाम-नाम।

अनुवाद

उनके गृहस्थ-जीवन की लीलाएँ आदिलीला अर्थात् मूल लीलाएँ कहलाती हैं और उनकी बाद की लीलाएँ मध्यलीला तथा अन्त्यलीला कहलाती हैं।

आदि-लीला-मध्ये प्रभुर यतेक चरित।

सूत्र-रूपे मुरारि गुप्त करिला ग्रथित ॥ 15 ॥

आदि-लीला-आदि-लीला; मध्ये–के दौरान; प्रभुर–महाप्रभु का; यतेक–जो कुछ; चरित–कार्यकलाप; सूत्र-रूपे-संक्षेप में; मुरारि गुप्त-मुरारि गुप्त; करिला–किए हैं; ग्रथित-लिखें हैं।

अनुवाद

आदिलीला के अन्तर्गत श्री चैतन्य महाप्रभु ने जितनी लीलाएँ कीं, उन्हें मुरारि गुप्त ने संक्षेप में अंकित किया है।

प्रभुर ये शेष-लीला स्वरूप-दामोदर।

सूत्र करि' ग्रन्थिलेन ग्रन्थेर भितर॥ 16॥

प्रभुर–महाप्रभु की; ये-जो कुछ; शेष-लीला-अन्त की लीलाएँ; स्वरूप-दामोदर-स्वरूप दामोदर; सूत्र करि'-संक्षेप में; ग्रन्थिलेन-लिखा; ग्रन्थेर-पुस्तक; भितर-में।

अनुवाद

उनकी बाद की (शेष) लीलाएँ (मध्यलीला तथा अन्त्यलीला) उनके सचिव स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने संक्षेप में लिपिबद्ध कीं और इस प्रकार वे पुस्तक के रूप में रखी हुई हैं।

एइ दुइ जनेर सूत्र देखिया शुनिया।

वर्णना करेन वैष्णव क्रम ये करिया॥17॥

एइ–इनके; दुइ-दो; जनेर-व्यक्तियों की; सूत्र-टिप्पणी; देखिया-देखकर; शुनिया-और सुनकर; वर्णना–वर्णन; करेन-करता है; वैष्णव-भक्त; क्रम-क्रमानुसार; ये-जो; करिया-करके।

अनुवाद

इन दो महापुरुषों द्वारा अंकित टिप्पणियों को देखकर तथा सुनकर कोई भी वैष्णव अर्थात् भगवद्भक्त इन लीलाओं को क्रमवार जान सकता है।

बाल्य, पौगण्ड, कैशोर, यौवन,—चारि भेद।

अतएव आदि-खण्डे लीला चारि भेद॥18॥

बाल्य-बाल्यावस्था; पौगण्ड-किशोरावस्था से पूर्व; कैशोर–किशोरावस्था; यौवन-यौवनावस्था; चारि–चार; भेद-भेद; अतएव–अतएव; आदि-खण्डे-आदि भाग में; लीला-लीलाओं के; चारि–चार; भेद-भेद।

अनुवाद

उनकी आदिलीला में चार विभाग हैं-बाल्य, पौगण्ड, कैशोर तथा यौवन।

सर्व-सद्गुण-पूर्णाम् तां वन्दे फाल्गुन-पूर्णिमाम् ।

यस्यां श्री-कृष्ण-चैतन्योऽवतीर्णः कृष्ण-नामभिः ॥19॥

सर्व-सभी; सत्-शुभ; गुण-गुण; पूर्णाम् पूर्ण; ताम्-वह; वन्दे मैं प्रणाम करता हूँ; फाल्गुन-फाल्गुन मास की; पूर्णिमाम्-पूर्णिमा की सन्ध्या; ग्रस्याम्-जिसमें; श्री-कृष्ण-चैतन्यः-श्री चैतन्य महाप्रभु; अवतीर्णः-अवतरित हुए; कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; नामभिः-पावन नाम के कीर्तन सहित।

अनुवाद

मैं फाल्गुन महीने की पूर्णिमा की संध्या को सादर नमस्कार करता हूँ, जो शुभ-लक्षणों से पूर्ण शुभ घड़ी है, जब श्री चैतन्य महाप्रभु हरे कृष्ण नाम के संकीर्तन के साथ अवतीर्ण हुए।

फाल्गुन-पूर्णिमा-सन्ध्याय प्रभुर जन्मोदय ।

सेइ-काले दैव-योगे चन्द्र-ग्रहण हय ॥20॥

फाल्गुन-पूर्णिमा-फाल्गुन मास की पूर्णिमा; सन्ध्याय-की संध्या समय; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; जन्म-उदय-जन्म के समय; सेइ-काले-उस क्षण; दैव-योगे-दैव-योग से, अचानक; चन्द्रग्रहण-चन्द्र ग्रहण; हय होता है।

अनुवाद

फाल्गुन पूर्णिमा की संध्या के समय जब महाप्रभु ने जन्म लिया, संयोगवश उस समय चन्द्रग्रहण भी लगा था।

'हरि' 'हरि' बले लोक हरषित हञा ।

जन्मिला चैतन्य-प्रभु 'नाम' जन्माइया ॥21॥

हरि हरि-भगवान् के पावन नामों; बले-बोले; लोक-लोग; हरषित–हर्षितः हञा–होकर; जन्मिला-जन्म लिया; चैतन्य-प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; नाम-पावन नाम; जन्माइया-प्रकट करके।

अनुवाद

हर्ष से हर व्यक्ति भगवान् के पवित्र नाम "हरि! हरि!" का उच्चारण कर रहा था और अपने प्रकट होने के पूर्व महाप्रभु पवित्र नाम को प्रकट कर चुके थे।

जन्म-बाल्य-पौगण्ड-कैशोर-युवा-काले ।

हरि-नाम लओयाइला प्रभु नाना छले ॥22॥

जन्म-जन्म-समय; बाल्य-बाल्यावस्था; पौगण्ड-पौगण्ड अवस्था; कैशोर-किशोरावस्था; नुवा-काले-युवावस्था; हरि-नाम-भगवान् का पावन नाम; लओयाइला-लिवाया; प्रभु–महाप्रभु; नाना-नाना प्रकार; छले-विभिन्न बहानों से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने जन्म के समय, बाल्य, पौगण्ड, कैशोर तथा युवावस्था में भिन्न-भिन्न बहानों से लोगों को हरि-नाम (हरे कृष्ण महामन्त्र) का कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया।

बाल्य-भाव छले प्रभु करेन क्रन्दन।

‘कृष्ण’ ‘हरि’ नाम शुनि’ रहये रोदन॥ 23॥

बाल्य-भाव छले-जैसे अपने बाल्य-भाव में; प्रभु–महाप्रभु; करेन-करते हैं; क्रन्दन–क्रन्दन, रोना; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; हरि-भगवान् हरि; नाम-नाम; शुनि’-सुनकर; रहये-रुक जाता; रोदन-रोना।

अनुवाद

अपने बाल्यकाल में जब महाप्रभु रो रहे होते थे, तब कृष्ण तथा हरि के पवित्र नामों को सुनकर वे तुरन्त रोना बन्द कर देते थे।

अतएव ‘हरि’ ‘हरि’ बले नारीगण।

देखिते आइसे येबा सर्व बन्धु जन॥24॥

अतएव–अतएव; हरि हरि-भगवान् का पावन नाम हरि हरि; बले-कीर्तन करतीं; नारी-गण-सभी महिलाएँ; देखिते-देखने के लिए; आइसे-वे आतीं; येबा-जो कोई; सर्व-सभी; बन्धु-जन-मित्र-गण।

अनुवाद

जितनी सारी स्नेहशीला स्त्रियाँ बालक को देखने आती थीं, वे बालक के रोते हीं "हरि! हरि!" नाम का उच्चारण करती थीं।

'गौरहरि' बलि' तारे हासे सर्व नारी ।

अतएव हैल ताँर नाम 'गौरहरि ॥25॥

गौरहरि–गौरहरि; बलि'-इस प्रकार सम्बोधित करके; तारे–महाप्रभु को; हासे-हँसती हैं; सर्व नारी–सभी महिलाएँ; अतएव–अतएव; हैल–हो गया; ताँर-उनका; नाम-नाम; गौरहरि-गौरहरि।

अनुवाद

जब स्त्रियाँ यह कौतुक देखती थीं, तो वे आनन्दित होकर हँसने लगती थीं और वे महाप्रभु को 'गौरहरि' कहकर पुकारने लगीं। तभी से उनका अन्य नाम 'गौरहरि' पड़ गया।

बाल्य वयस–यावत् हाते खड़ि दिल ।

पौगण्ड वयस—यावत्विवाह ना कैल ॥ 26 ॥

बाल्य वयस–बाल्यावस्था; यावत्-जब तक नहीं; हाते-उनके हाथ में; खड़ि-खड़िया; दिल–दी गई; पौगण्ड वयस-पौगण्डावस्था; यावत्-जब तक नहीं; विवाह-विवाह; ना-नहीं; कैल–किया।

अनुवाद

उनका बाल्यकाल उनकी शिक्षा का शुभारम्भ होने (हाते खड़ि) के समय तक रहा, और बाल्यकाल समाप्ति से लेकर उनके विवाहित होने तक की उम्र पौगण्ड कहलाती है।

विवाह करिले हैल नवीन यौवन ।

सर्वत्र लओयाइल प्रभु नाम-सङ्कीर्तन ॥ 27॥

विवाह करिले-विवाह करने के बाद; हैल-आरम्भ हुआ; नवीन–नया; यौवन-यौवन; सर्वत्र सर्वत्र; लओयाइल-दिलवाया; प्रभु–महाप्रभु; नाम-सङ्कीर्तन-संकीर्तन अभियान।

अनुवाद

उनके विवाह के बाद उनका यौवन प्रारम्भ हुआ, और अपनी युवावस्था में उन्होंने हर एक को सर्वत्र हरे कृष्ण महामन्त्र कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया।

पौगण्ड-वयसे पड़ेन, पड़ान शिष्यगणे ।

सर्वत्र करेन कृष्ण-नामेर व्याख्याने ॥ 28॥

पौगण्ड-वयसे-पौगण्डा-अवस्था में पड़ेन-अध्ययन, शिक्षा; पड़ान-पढ़ाते हैं; शिष्य-गणे-शिष्यों को; सर्वत्र सर्वत्र; करेन-करते हैं; कृष्ण-नामेर- भगवान् कृष्ण के पावन नाम का; व्याख्याने व्याख्यान।

अनुवाद

पौगण्ड अवस्था में वे गम्भीर विद्यार्थी बन गये और शिष्यों को पढ़ाते भी थे। इस तरह वे सर्वत्र कृष्णनाम की व्याख्या करते थे।

सूत्र-वृत्ति-पाँजि-टीका कृष्णेते तात्पर्य ।

शिष्येर प्रतीत हय,—प्रभाव आश्चर्य ॥29॥

सूत्र-सूत्र; वृत्ति-व्याख्या; पाँजि-उपयोग, कार्यान्वित; टीका-टीका; कृष्णेते-कृष्ण को; तात्पर्य–तात्पर्य; शिष्येर-शिष्य को; प्रतीत-प्रतीति; हय-हो जाती है; प्रभाव-प्रभाव; आश्चर्य-आश्चर्य।

अनुवाद

व्याकरण का पाठ पढ़ाते समय तथा व्याख्या करके बताते समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिष्यों को भगवान् कृष्ण की महिमा के विषय में शिक्षा दी। चूँकि उनकी सारी व्याख्याएँ कृष्ण में समाप्त होती थीं, अतएव शिष्यगण उन्हें आसानी से समझ सकते थे। इस तरह उनका प्रभाव आश्चर्यजनक था।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी ने दो भागों में व्याकरण को संकलित किया है, जिनके नाम हैं- लघुहरिनामामृत-व्याकरण तथा बृहद्धरिनामामृत-व्याकरण। यदि कोई इन दोनों व्याकरण ग्रंथों को पढ़ लेता है, तो वह संस्कृत भाषा के व्याकरण-नियमों को जानने के साथ-साथ यह भी सीख लेता है कि कृष्ण का महान् भक्त कैसे बना जाए।

चैतन्य-भागवत, मध्य-खण्ड के प्रथम अध्याय में उस विधि का उल्लेख हुआ है, जिससे श्री चैतन्य महाप्रभु व्याकरण पढ़ाते थे। वे व्याकरण के सूत्रों को उसी तरह शाश्वत बतलाते थे, जिस

प्रकार कृष्ण का पवित्र नाम है। जैसाकि भगवद्गीता (15.15) में कहा गया है- वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। सारे वेदों का सार कृष्ण को समझ लेना है। अतएव यदि कोई ऐसी बात बताता है, जो कृष्ण नहीं है, तो वह व्यर्थ ही श्रम करता है और उसके जीवन का उद्देश्य पूरा नहीं होता। यदि कोई केवल शिक्षक या प्राचार्य बन जाता है, किन्तु कृष्ण को नहीं समझता, तो यह समझना चाहिए कि वह अधम व्यक्ति है, जैसाकि भगवद्गीता (7.15) में कहा गया है (नराधमा माययापहृतज्ञानाः)। यदि कोई मनुष्य समस्त प्रामाणिक शास्त्रों का सार जाने बिना शिक्षक बन जाता है, तो उसका अध्यापन गधे के रेंकने की तरह कोलाहलकारी होता है।

यारे देखे, तारे कहे,—कह कृष्ण-नाम ।

कृष्ण-नामे भासाइल नवद्वीप-ग्राम ॥ 30॥

यारे-जिस किसी को; देखे-वे देखते; तारे-उसको; कहे-वे कहते; कह–बोलो; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पवित्र नाम; कृष्ण-नामे-भगवान् कृष्ण के पावन नाम में; भासाइल-डुबो दिया; नवद्वीप-नवद्वीप; ग्राम-ग्राम।

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु विद्यार्थी थे, तब उन्हें जो कोई मिलता था उसको वे हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए कहते थे। इस तरह उन्होंने पूरे नवद्वीप ग्राम को हरे कृष्ण कीर्तन से आप्लावित कर दिया।

तात्पर्य

वर्तमान नवद्वीप धाम सम्पूर्ण नवद्वीप का अंश मात्र है। नवद्वीप का अर्थ है "नौ द्वीपों का समूह।" ये नवों द्वीप जो कुल मिलाकर लगभग 32 वर्गमील भूमि में हैं, गंगा की विभिन्न धाराओं द्वारा घिरे हैं। नवद्वीप क्षेत्र के इन नवों द्वीपों में भक्ति का अनुशीलन करने के लिए विभिन्न स्थान हैं। श्रीमद्भागवत (7.5.23) में बतलाया गया है कि भक्ति नवविध होती है, अर्थात् नौ प्रकार के भक्ति-कार्य होते हैं-

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

नौ प्रकार की भक्ति के अनुशीलन के लिए नवद्वीप क्षेत्र में विभिन्न द्वीप हैं। वे इस प्रकार हैं- (1) अन्तद्वप, (2) सीमन्तद्वीप, (3) गोद्रुमद्वीप, (4) मध्यद्वीप, (5) कोलद्वीप, (6) ऋतुद्वीप, (7) जह्नुद्वीप, (8) मोदद्रुमद्वीप तथा (9) रुद्रद्वीप। नक्शे के अनुसार हमारा इस्कॉन नवद्वीप-केन्द्र रुद्रद्वीप में स्थित है। रुद्रद्वीप के नीचे अन्तद्रुप में मायापुर है। वहीं चैतन्य महाप्रभु के पिता श्री जगन्नाथ मिश्र रहा करते थे। युवक चैतन्य महाप्रभु इन सारे द्वीपों में अपनी संकीर्तन-मंडली का नेतृत्व करते थे। इस तरह उन्होंने सारे क्षेत्र को कृष्ण-प्रेम की लहरों से आप्लावित किया।

किशोर वयसे आरम्भिला सङ्कीर्तन ।

रात्र-दिने प्रेमे नृत्य, सङ्गे भक्त-गण ॥ 31॥

किशोर वयसे—उनकी युवावस्था आरम्भ होने से थोड़ा पहले; आरम्भिला–आरम्भ किया; सङ्कीर्तन-संकीर्तन अभियान; रात्र-दिने–दिन-रात; प्रेमे-आनन्द में; नृत्य-नृत्य; सङ्गे–के संग; भक्त-गण-भक्त।

अनुवाद

युवावस्था के कुछ पहले उन्होंने संकीर्तन आन्दोलन प्रारम्भ किया। वे अपने भक्तों के साथ भावविभोर होकर दिन-रात नृत्य किया करते थे।

नगरे नगरे भ्रमे कीर्तन करिया ।

भासाइल त्रिभुवन प्रेम-भक्ति दिया ॥32॥

नगरे नगरे–नगर के विभिन्न भागों में; भ्रमे-घूमते; कीर्तन-कीर्तन; करिया-करते हुए; भासाइल-डुबो दिया; त्रिभुवन–तीनों जगतों के प्रेम-भक्ति-भगवत् प्रेम; दिया-वितरण करते हुए।

अनुवाद

ज्यों-ज्यों महाप्रभु कीर्तन करते हुए सर्वत्र भ्रमण करने लगे, त्यों-त्यों संकीर्तन आन्दोलन नगर के एक छोर से दूसरे छोर तक बढ़ता गया। इस तरह उन्होंने सारे विश्व को भगवत्प्रेम वितरण करके आप्लावित कर दिया।

तात्पर्य

कोई प्रश्न कर सकता है कि कृष्ण-प्रेम से तीनों जगत् किस प्रकार आप्लावित हो गये, क्योंकि चैतन्य महाप्रभु तो केवल नवद्वीप क्षेत्र में ही कीर्तन कर रहे थे। इसका उत्तर यह है कि श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं। सर्वप्रथम भगवान् द्वारा सक्रिय बनाये जाने पर अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती है। इसी प्रकार 500 वर्ष पूर्व चैतन्य महाप्रभु की इच्छा हुई कि संकीर्तन आन्दोलन विश्वभर में फैले, तो इस आन्दोलन को गति मिली और आज उसी गति की निरन्तरता में कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे विश्व में फैल रहा है और इसी तरह यह धीरे-धीरे अखिल ब्रह्माण्ड में फैल जायेगा।

कृष्णभावनामृत आन्दोलन के इस प्रकार फैलने से हर व्यक्ति कृष्ण-प्रेम के सागर में निमग्न हो जायेगा।

चब्बिश वत्सर ऐछे नवद्वीप-ग्रामे ।

लओयाइला सर्व-लोके कृष्ण-प्रेम-नामे ॥33॥

चब्बिश–चौबीस; वत्सर-वर्ष; ऐछे—इस प्रकार; नवद्वीप-नवद्वीप; ग्रामे-ग्राम में; लओयाइला–प्रेरित किया; सर्व-लोके–प्रत्येक पुरुष; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; नामे-पावन नाम में।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु नवद्वीप क्षेत्र में चौबीस वर्षों तक रहे और उन्होंने हर व्यक्ति को हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने तथा इस तरह कृष्ण-प्रेम में निमग्न होने के लिए प्रेरित किया।

चब्बिश वत्सर छिला करिया सन्न्यास ।

भक्त-गण लञा कैला नीलाचले वास ॥ 34॥

चब्बिश-चौबीस; वत्सर-वर्ष; छिला-रहे; करिया-स्वीकार करके; सन्न्यास-संन्यास; भक्त-गण-भक्तगण; लञा-अपने साथ लेते हुए; कैला–किया; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; वास–निवास।

अनुवाद

शेष चौबीस वर्षों तक श्री चैतन्य महाप्रभु संन्यास लेकर अपने भक्तों के साथ जगन्नाथ पुरी में निवास करते रहे।

तार मध्ये नीलाचले छय वत्सर ।

नृत्य, गीत, प्रेमभक्ति-दान निरन्तर ॥ 35 ॥

तार मध्ये-इन चौबीस वर्षों में से; नीलाचले–जब वे जगन्नाथ पुरी में रह रहे थे; छय वत्सर-लगातार छः वर्ष; नृत्य-नृत्य; गीत-गायन; प्रेम-भक्ति-प्रेम भक्ति; दान–वितरण; निरन्तर निरन्तर।

अनुवाद

नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) के इन चौबीस वर्षों में से छः वर्षों तक उन्होंने सदैव कीर्तन और नृत्य द्वारा भगवत्प्रेम का वितरण किया।

सेतुबन्ध, आर गौड़-व्यापि वृन्दावन ।

प्रेम-नाम प्रचारिया करिला भ्रमण ॥ 36॥

सेतुबन्ध-सेतु बन्ध; आर-और; गौड़-बंगाल; व्यापि-व्यापी; वृन्दावन-वृन्दावन को; प्रेम-नाम-कृष्ण-प्रेम तथा कृष्ण का पावन नाम; प्रचारिया-प्रचार करते हुए; करिला–किया; भ्रमण-भ्रमण।

अनुवाद

इन छः वर्षों में कुमारी अन्तरीप से लेकर बंगाल होते हुए वृन्दावन तक कीर्तन करते, नाचते और कृष्ण-प्रेम का वितरण करते हुए उन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया।

एइ 'मध्य-लीला' नाम–लीला-मुख्यधाम ।

शेष अष्टादश वर्ष–'अन्त्य-लीला' नाम ॥ 37॥

एइ-ये; मध्य-लीला नाम-मध्य लीलाएँ नामक; लीला-लीलाएँ; मुख्य-धाम-मुख्य धाम; शेष-अन्तिम; अष्टादश-अठारह; वर्ष–वर्ष; अन्त्य-लीला-अन्त्य लीलाएँ; नाम-नामक।

अनुवाद

संन्यास ग्रहण करने के बाद चैतन्य महाप्रभु के भ्रमण के समय के कार्यकलाप ही उनकी मुख्य लीलाएँ हैं। शेष अठारह वर्षों के उनके कार्यकलाप अन्त्यलीला कहलाते हैं।

तार मध्ये छय वत्सर भक्तगण-सङ्गे ।

प्रेम-भक्ति लओयाइल नृत्य-गीत-रङ्गे ॥ 38॥

तार मध्ये-उसमें से; छय वत्सर-छः वर्ष; भक्त-गण-सङ्गे-भक्तों के साथ; प्रेम-भक्ति-प्रेम भक्ति; लओयाइल-प्रेरित की; नृत्य-नृत्य; गीत-कीर्तन; रङ्गे–दिव्य आनन्द में।

अनुवाद

इन अठारह वर्षों में से वे छः वर्षों तक लगातार जगन्नाथ पुरी में रहे और नियमित रूप से कीर्तन किया और सारे भक्तों को कीर्तन तथा नृत्य द्वारा कृष्ण-प्रेम के लिए प्रेरित किया।

द्वादश वत्सर शेष रहिला नीलाचले ।

प्रेमावस्था शिखाइला आस्वादन-च्छले ॥ 39॥

द्वादश-बारह; वत्सर-वर्ष; शेष-शेष; रहिला-रहे; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; प्रेम-अवस्था-आनन्द की स्थिति में; शिखाइला-हर एक को शिक्षा दी; आस्वादन-छले-स्वयं आस्वादन करने के बहाने।

अनुवाद

शेष बारह वर्ष वे जगन्नाथ पुरी में रहे और कृष्ण-प्रेम की दिव्य अनुभूति का आस्वादन करते हुए उन्होंने हर एक को इसके आस्वादन की विधि की शिक्षा प्रदान की।

तात्पर्य

कोई व्यक्ति जो कृष्णभावनामृत में प्रगति कर चुका है, उसे सदैव कृष्ण का विरह सताता रहता है, क्योंकि विरह की ऐसी अनुभूति कृष्ण-मिलन की अनुभूति से बढ़कर है। श्री चैतन्य महाप्रभु इस जगत् में अपने जीवन-काल के अन्तिम बारह वर्षों में जगन्नाथ-पुरी में रहकर संसार के लोगों को यह सिखाते रहे कि किस तरह मनुष्य विरह-अनुभूति के साथ अपने सुप्त कृष्ण-प्रेम को विकसित कर सकता है। विरह अथवा कृष्ण-मिलन की ऐसी अनुभूतियाँ भगवत्प्रेम की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। जब मनुष्य गम्भीरतापूर्वक भक्ति में लग जाता है, तब ये अनुभूतियाँ समयानुसार विकसित होती हैं। इसकी सर्वोच्च अवस्था प्रेम-भक्ति कहलाती है, किन्तु यह अवस्था साधन भक्ति करने पर ही प्राप्त होती है। अतएव मनुष्य को साधन-भक्ति के विधि-विधानों का पालन किये बिना कृत्रिम ढंग से प्रेम-भक्ति-अवस्था प्राप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। प्रेम-भक्ति तो आस्वाद लेने की अवस्था है, जबकि साधन-भक्ति, भक्ति कार्यों को सुधारने की अवस्था है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने आचरण द्वारा लोगों को इस प्रेम-भक्ति सम्प्रदाय की विशद शिक्षा दी। इसीलिए कहा जाता है- आपनि आचरि 'भक्ति शिखाइमु सबारे। श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं और उन्होंने कृष्ण-भक्त के रूप में सारे जगत् को यह शिक्षा दी कि किस तरह भक्ति सम्पन्न करके समय आने पर भगवद्धाम वापस जाया जा सकता है।

रात्रि-दिवसे कृष्ण-विरह-स्फुरण ।

उन्मादेर चेष्टा करे प्रलाप-वचन ॥40॥

रात्रि-दिवसे–रात-दिन; कृष्ण-विरह-कृष्ण-विरह के भाव; स्फुरण-जागृत; उन्मादेर-उन्मत्त पुरुष के; चेष्टा–कार्यकलाप; करे-करते हैं; प्रलाप–असंगत वार्तालाप; वचन-शब्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को दिन-रात कृष्ण का विरह सताता रहता था। वे इस विरह के लक्षणों को प्रकट करते हुए करुण पुकार करते, और पागल की तरह प्रलाप करते थे।

श्री-राधार प्रलाप यैछे उद्धव-दर्शने ।

सेइमत उन्माद-प्रलाप करे रात्रि-दिने ॥41॥

श्री-राधार–श्रीमती राधारानी का; प्रलाप–वार्तालाप; यैछे-जैसा उन्होंने किया; उद्धव-दर्शने-उद्धव को मिलने पर; सेइ-मत-ठीक उसी प्रकार; उन्माद-उन्माद; प्रलाप-असंगत वार्तालाप करना; करे-करती है; रात्रि-दिने-रात-दिन।

अनुवाद

जिस प्रकार उद्धव से भेंट होने पर श्रीमती राधारानी असम्बद्ध बातें करती थीं, उसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीमती राधारानी के भाव में रात-दिन वैसा ही आस्वादन करते थे।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में हमें चाहिए कि वृन्दावन में उद्धव से भेंट करने के बाद श्रीमती राधारानी के स्वयं से बातें करने का ध्यान करें। श्री चैतन्य महाप्रभु भी वैसा ही, भावमयी काल्पनिक बातों का दृश्य उपस्थित करते थे। भौंरे को उलाहना देते हुए कृष्ण की उपेक्षा के सूचक द्वेष तथा उन्माद से पूर्ण राधारानी एक बावरी जैसी बातें करती थीं। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में श्री चैतन्य महाप्रभु में

ऐसे भाव के सारे लक्षण प्रकट होते थे। इस प्रसंग में आदिलीला के चौथे अध्याय के श्लोक 107-108 देखने चाहिए।

विद्यापति, जयदेव, चण्डीदासेर गीत ।

आस्वादेन रामानन्द-स्वरूप-सहित ॥42॥

विद्यापति विद्यापति नामक लेखक; जयदेव जयदेव; चण्डीदासेर-चण्डीदास; गीत–उनके गीत; आस्वादेन–आस्वादन; रामानन्द-रामानन्द; स्वरूप-स्वरूप; सहित-सहित।

अनुवाद

महाप्रभु विद्यापति, जयदेव तथा चण्डीदास की कृतियाँ पढ़ा करते थे और रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी जैसे अपने अन्तरंग पार्षदों के साथ उनके गीतों का रसास्वादन करते थे।

तात्पर्य

विद्यापति राधा-कृष्ण की लीलाओं के विषय में गीतों के प्रख्यात रचनाकार थे। वे मिथिला के निवासी थे और ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। ऐसा अनुमान है कि उन्होंने अपने गीतों की रचना राजा शिवसिंह तथा रानी लछिमादेवी के शासन काल में शक सम्वत चौदहवीं शती में की होगी-अर्थात् चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव से लगभग एक सौ वर्ष पूर्व। विद्यापति की बारहवीं पीढ़ी के वंशज अब भी जीवित हैं। विद्यापति के गीतों में कृष्ण के गहन विरह को व्यक्त करने वाली कृष्ण की लीलाएँ हैं और श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के विरह-भाव के समय इन सारे गीतों का रसास्वादन करते थे। जयदेव का जन्म ग्यारहवीं या बारहवीं शती शक सम्वत में बंगाल के राजा महाराज

लक्ष्मणसेन के राज्यकाल में हुआ थे। उनके पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम वामादेवी था। वे कई वर्षों तक नवद्वीप में रहे, जो उस समय बंगाल की राजधानी था। बीरभूम जिले का केन्दुबिल्व नामक गाँव उनकी जन्मभूमि था। किन्तु कुछ विद्वानों के मतानुसार उनका जन्म उड़ीसा में हुआ था और कुछ लोगों के अनुसार दक्षिण भारत में। उन्होंने अपना अन्तिम समय जगन्नाथपुरी में बिताया। गीतगोविन्द उनकी एक सुप्रसिद्ध कृति है, जो कृष्ण के दिव्य विरह-रस से ओतप्रोत है। जैसाकि श्रीमद्भागवत में उल्लेख मिलता है, गोपियों को रासनृत्य के पूर्व कृष्ण के विरह की अनुभूति हुई थी और गीतगोविन्द में ऐसी ही अनुभूतियाँ अभिव्यक्त हुई हैं। गीतगोविन्द पर अनेक वैष्णवों ने भाष्य लिखे हैं।

चण्डीदास का जन्म नान्नुर गाँव में हुआ था और वह भी बंगाल के बीरभूम जिले में है। ये ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे और बतलाया जाता है कि इनका भी जन्म चौदहवीं शती शकाब्द के प्रारम्भ में हुआ था। ऐसा मत व्यक्त किया जाता है कि चण्डीदास तथा विद्यापति घनिष्ठ मित्र थे, क्योंकि दोनों ने ही विरह की दिव्य अनुभूतियों का विशद वर्णन किया है। चण्डीदास तथा विद्यापति द्वारा व्यक्त भावों का वास्तविक प्रदर्शन श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा हुआ। उन्होंने श्रीमती राधारानी की भूमिका में उन सारी अनुभूतियों का आस्वादन किया और इस कार्य में उनके पार्षद थे श्री रामानन्द राय तथा श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी। चैतन्य महाप्रभु के राधारानी के रूप में अनुभव की जाने वाली लीलाओं में इन घनिष्ठ संगियों ने उनकी काफी सहायता की।

इस सम्बन्ध में श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि विद्यापति, चण्डीदास तथा जयदेव की कृतियों से चैतन्य महाप्रभु ने विरह की जिन अनुभूतियों का आस्वादन किया, वे रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर जैसे उच्चतम परमहंसों को ही विशेष रूप से शोभा देती हैं, क्योंकि वे आध्यात्मिक चेतना में बहुत उन्नत थे। सामान्य व्यक्तियों को चैतन्य महाप्रभु के

कार्यकलापों की नकल करके ऐसी कथाओं की चर्चा नहीं करनी चाहिए। सांसारिक काव्य के आलोचकों तथा भगवद्-चेतनाविहीन साहित्यिक व्यक्तियों को ऐसा उच्च दिव्य साहित्य पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। जो लोग इन्द्रियतृप्ति के पीछे दौड़ते रहते हैं, उन्हें रागानुगा भक्ति का अनुकरण नहीं करना चाहिए। चण्डीदास, विद्यापति तथा जयदेव के गीतों में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य कार्याकलापों का वर्णन किया गया है। इन गीतों के संसारी समालोचक सामान्य लोगों को लम्पट बनाने में ही मदद करते हैं, और इससे संसार में सामाजिक अपकीर्ति तथा नास्तिकता का ही जन्म होता है। मनुष्य को राधा तथा कृष्ण की लीलाओं को एक संसारी युवक तथा युवती का प्रेमालाप समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। युवकों तथा युवतियों के संसारी कामुक कार्य अत्यन्त गर्हित होते हैं। अतएव देहात्म-बुद्धि वालों तथा इन्द्रियतृप्ति के इच्छुकों को श्री राधा तथा कृष्ण की दिव्य लीलाओं की चर्चा में नहीं पड़ना चाहिए।

कृष्णेर वियोगे यत प्रेम-चेष्टित ।

आस्वादिया पूर्ण कैल आपन वाञ्छित ॥43॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; वियोगे-वियोग में; यत-बहुत; प्रेम-प्रेमाचरण; चेष्टित–कार्यकलाप; आस्वादिया-उनका आस्वादन करके; पूर्ण–पूर्ण की; कैल-कीं; आपन-अपनी; वाञ्छित-इच्छाएँ।

अनुवाद

कृष्ण के वियोग में श्री चैतन्य महाप्रभु इन सारे भावाविष्ट कार्यकलापों का आस्वादन करते थे और इस तरह वे स्वयं की इच्छाओं की पूर्ति करते थे।

तात्पर्य

चैतन्य-चरितामृत के प्रारम्भ में यह कहा गया है कि कृष्ण के दर्शन से राधारानी ने जिन भावों का अनुभव किया था, उनके आस्वादन हेतु चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव हुआ था। स्वयं कृष्ण अपने प्रति राधारानी के भावों को नहीं समझ सके, अतएव उन्होंने राधारानी की भूमिका निभाने की इच्छा प्रकट की, जिससे वे उन भावनाओं का आस्वादन कर सकें। चैतन्य महाप्रभु राधारानी की अनुभूतियों से युक्त कृष्ण हैं। दूसरे शब्दों में, वे राधा और कृष्ण के संयोगरूप हैं। इसीलिए यह कहा जाता है- श्रीकृष्णचैतन्य राधा-कृष्ण नहे अन्य। अकेले श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा करने से राधा तथा कृष्ण के सम्मिलित प्रेम-व्यापार का आस्वादन किया जा सकता है। अतएव मनुष्य को राधा-कृष्ण को समझने का सीधा प्रयास करने के बदले श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों के माध्यम से ऐसा करना चाहिए। इसीलिए श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं- रूपरघुनाथपदे हइबे आकुति, कबे हाम बुझब से युगलपिरीति–"कब मैं श्री रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्य भक्तों के प्रति सेवा-भाव विकसित कर सकेंगा और इस तरह श्री राधा तथा कृष्ण की लीलाओं को समझने का पात्र बन सकुँगा?"

अनन्त चैतन्य-लीला क्षुद्र जीव हञा ।

के वर्णिते पारे, ताहा विस्तार करिया ॥44॥

अनन्त-अनन्त; चैतन्य-लीला-चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; क्षुद्र–छोटा; जीव-जीव; हञा-होते हुए; के-कौन; वर्णिते-वर्णन करना; पारे-सकना; ताहा-वह; विस्तार विस्तार से; करिया-ऐसा करके।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अनन्त हैं। भला एक क्षुद्र जीव उन दिव्य लीलाओं को कितना विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकता है?

सुत्र करि' गणे यदि आपने अनन्त ।

सहस्र-वदने तेंहो नाहि पाय अन्त ॥45॥

सूत्र-संक्षेप में; करि'-करके; गणे-गिनना; यदि-यदि; आपने–स्वयं; अनन्त-शेषनाग; सहस्र-वदने-हजारों मुखों से; तेंहो-वे भी; नाहि-नहीं; पाय-पायेंगे; अन्त-सीमा।

अनुवाद

यदि साक्षात् शेषनाग अनन्त को चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ सूत्रबद्ध करनी पड़े, तो वे अपने हजारों मुखों से भी उनकी सीमा पा सकने में समर्थ नहीं हो सकते।

दामोदर-स्वरूप, आर गुप्त मुरारि ।

मुख्य-मुख्य-लीला सूत्रे लिखियाछे विचारि' ॥ 46॥

दामोदर-स्वरूप-स्वरूप दामोदर; आर-और; गुप्त मुरारि मुरारि गुप्त; मुख्य- मुख्य–मुख्य; लीला-लीलाएँ; सूत्रे-संक्षेप में; लिखियाछे-लिखी हैं; विचारि'-विचार करके।

अनुवाद

श्री स्वरूप दामोदर तथा मुरारि गुप्त जैसे भक्तों ने पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद चैतन्य महाप्रभु की प्रमुख लीलाओं को सूत्रबद्ध किया है।

सेइ, अनुसारे लिखि लीला-सूत्रगण ।

विस्तारि' वर्णिआछेन ताहा दास-वृन्दावन ॥47॥

सेइ-वह; अनुसारे-उनके अनुसार; लिखि-मैं लिखता हूँ; लीला-लीलाएँ; सूत्र-गण–टिप्पिणियाँ; विस्तारि'–विस्तार करके; वर्णियाछेन-वर्णन किया है; ताहा-वह; दास-वृन्दावन-वृन्दावनदास ठाकुर।

अनुवाद

श्री स्वरूप दामोदर तथा मुरारि गुप्त ने जो संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखी थीं, वे ही इस पुस्तक के आधारस्वरूप हैं। उन्हीं टिप्पणियों का अनुसरण करते हुए मैं महाप्रभु की सारी लीलाएँ लिख रहा हूँ। इन टिप्पणियों का विशद् वर्णन वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा हुआ है।

चैतन्य-लीलार व्यास,—दास वृन्दावन।

मधुर करिया लीला करिला रचन ॥48॥

चैतन्य-लीलार–चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के; व्यास–प्रामाणिक लेखक व्यासदेव; दास वृन्दावन-वृन्दावनदास ठाकुर; मधुर-मधुर; करिया–इन्हें करके; लीला-लीलाएँ, करिला–किया; रचन-संकलन, रचना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के प्रामाणिक लेखक श्रील वृन्दावन दास ठाकुर श्रील व्यासदेव के ही समान हैं। उन्होंने इन लीलाओं का वर्णन इस प्रकार किया है कि वे अधिक मधुर बन गई हैं।

ग्रन्थ-विस्तार-भये छाड़िला ने ये स्थान।

सेइ सेइ स्थाने किछु करिब व्याख्यान ॥49॥

ग्रन्थ-ग्रंथ के; विस्तार-विस्तार के; भये-डर से; छाड़िला–छोड़ दिया; ये ये स्थान-जो विभिन्न स्थान; सेइ सेइ स्थाने-उन्हीं जगहों पर; किछु-कुछ; करिब–मैं कराँगा; व्याख्यान-व्याख्यान।

अनुवाद

इस भय से कि उनका ग्रंथ कहीं बहुत बृहदाकार न हो जाए, उन्होंने कुछ स्थानों का विस्तृत वर्णन छोड़ दिया है। मैं उन्हीं-उन्हीं स्थानों को यथाशक्ति पूरित करने का प्रयास करूँगा।

प्रभुर लीलामृत तेंहो कैल आस्वादन।

ताँर भुक्त-शेष किछु करिये चर्वण ॥50॥

प्रभुर–महाप्रभु की; लीलामृत-लीलाओं का अमृत; तेंहो-वे (वृन्दावनदास ठाकुर); कैल–किया; आस्वादन–आस्वादन; ताँर–उनका; भुक्त-भोजन का; शेष-बचा हुआ; किछु-कुछ; करिये मैं करता हूँ; चर्वण-चबाना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की दिव्य लीलाओं का वास्तविक आस्वादन तो श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने किया है। मैं तो उन्हीं के छोड़े हुए भोजन को चबाने का प्रयास-मात्र कर रहा हूँ।

आदि-लीला-सूत्र लिखि, शुन, भक्त-गण।

सङ्क्षेपे लिखिये सम्यक् ना याय लिखन ॥51॥

आदि-लीला-आदि लीला; सूत्र लिखि-रूपरेखा लिखता हूँ; शुन-सुनो; भक्त-गण-आप सब भक्तगण; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; लिखिये-मैं लिखता हूँ; सम्यक् पूर्णरूपेण; ना-नहीं; याय–सम्भव; लिखन-लिखना।

अनुवाद

हे भगवान् चैतन्य के भक्तों, अब मैं आदिलीला के सूत्रों को संक्षेप में लिख रहा हूँ, क्योंकि इन लीलाओं का पूर्ण रूप से वर्णन करना सम्भव नहीं है।

कोन वाञ्छा पूरण लागि' व्रजेन्द्र कुमार।

अवतीर्ण हैते मने करिला विचार ॥52॥

कोन-कुछ; वाञ्छा-इच्छा; पूरण–पूर्ण; लागि'–के लिए; व्रजेन्द्र कुमार-भगवान् कृष्ण; अवतीर्ण हैते–अवतार लेने के लिए; मने-मन में; करिला-किया; विचार-विचार।

अनुवाद

अपने मन की एक विशेष इच्छा पूरी करने के लिए व्रजेन्द्रकुमार भगवान् कृष्ण ने भलीभाँति विचार करने के बाद इस लोक में अवतरित होने का निश्चय किया।

आगे अवतारिला ये ये गुरु-परिवार।

सङ्क्षेपे कहिये, कहा ना याय विस्तार ॥53॥

आगे-सर्वप्रथम; अवतारिला–अवतार लेने की अनुमति दी; ये ये उन सबको; गुरु-परिवार-गुरुओं के परिवार; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिये-मैं कहता हूँ; कहा-वर्णन करने के लिए; ना-नहीं; याय–सम्भव; विस्तार विस्तार से।

अनुवाद

अतएव भगवान् कृष्ण ने सबसे पहले अपने वरिष्ठ जनों के परिवार को पृथ्वी पर अवतरित होने दिया। मैं उनका संक्षेप में ही वर्णन करूँगा, क्योंकि उनका पूर्णतया वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

श्री-शची-जगन्नाथ, श्री-माधव-पुरी।

केशव भारती, आर श्री-ईश्वर पुरी ॥54॥

अद्वैत आचार्य, आर पण्डित श्रीवास।

आचार्यरत्न, विद्यानिधि, ठाकुर हरिदास ॥55॥

श्री-शची-जगन्नाथ–श्रीमती शचीदेवी तथा जगन्नाथ मिश्र; श्री-माधव पुरी-श्री माधवेन्द्र पुरी; केशव भारती–केशव भारती; आर-और; श्री-ईश्वर पुरी–श्री ईश्वरपुरी; अद्वैत आचार्य-अद्वैत आचार्य; आर-और; पण्डित श्रीवास-श्रीवास पण्डित; आचार्य-रन-आचार्यरत्न; विद्यानिधि–विद्यानिधि; ठाकुर हरिदास ठाकुर हरिदास।

अनुवाद

भगवान् श्रीकृष्ण ने चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट होने के पूर्व इन भक्तों को अपने से पहले प्रकट होने का आग्रह किया-श्री शचीदेवी, जगन्नाथ मिश्र, माधवेन्द्र पुरी, केशव भारती, ईश्वर पुरी, अद्वैत आचार्य, श्रीवास पण्डित, आचार्यरत्न, विद्यानिधि तथा ठाकुर हरिदास।

श्रीहट्ट-निवासी श्री-उपेन्द्र मिश्र-नाम ।

वैष्णव, पण्डित, धनी, सद्गुण-प्रधान ॥56॥

श्री-हट्ट-निवासी–श्रीहट्ट के निवासी; श्री-उपेन्द्र मिश्र-नाम-श्री उपेन्द्र मिश्र नामक; वैष्णव-भगवान् विष्णु के भक्त; पण्डित–विद्वान; धनी–धनवान; सत्-गुण-प्रधान-सर्व सद्गुणों से युक्त।

अनुवाद

श्रीहट्ट जिले के एक निवासी थे जिनका नाम श्री उपेन्द्र मिश्र था। वे भगवान् विष्णु के महान् भक्त, विद्वान पण्डित, धनी तथा सारे सद्गुणों की खान थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक 35) में उपेन्द्र मिश्र को पर्जन्य नामक गोपाल कहा गया है। पूर्वकाल में जो व्यक्ति कृष्ण के पितामह थे, वे ही श्रीहट्ट में उपेन्द्र मिश्र के नाम से प्रकट हुए और उनके सात पुत्र हुए। वे श्रीहट्ट जिले के ढाका-दक्षिण-ग्राम के निवासी थे। अब भी उस भूभाग में ऐसे अनेक निवासी हैं, जो अपने आपको श्री चैतन्य महाप्रभु के मिश्र परिवार से सम्बन्धित बतलाते हैं।

सप्त मिश्र ताँर पुत्र—सप्त ऋषीश्वर ।

कंसारि, परमानन्द, पद्मनाभ, सर्वेश्वर ॥57॥

जगन्नाथ, जनार्दन, त्रैलोक्यनाथ ।

नदीयाते गङ्गा-वास कैल जगन्नाथ ॥58॥

सप्त मिश्र-सात मिश्र; ताँर-उसके; पुत्र-पुत्र; सप्त-सात; ऋषि-महान् सन्त पुरुष; ईश्वर–सर्वाधिक प्रभावशाली; कंसारि-कंसारी; परमानन्द-परमानन्द; पद्मनाभ-पद्मनाभ; सर्वेश्वर–सर्वेश्वर; जगन्नाथ–जगन्नाथ; जनार्दन-जनार्दन; त्रैलोक्यनाथ-त्रैलोक्यनाथ; नदीयाते-नवद्वीप में; गङ्गा-वास–गंगा तट पर वास; कैल—किया; जगन्नाथ–उपेन्द्र मिश्र के पाँचवे पुत्र ने।

अनुवाद

उपेन्द्र मिश्र के सात पुत्र थे और वे सभी परम सन्त तथा अत्यन्त प्रभावशाली थे। इनके नाम थे-(1) कंसारि, (2) परमानन्द, (3) पद्मनाभ, (4) सर्वेश्वर, (5) जगन्नाथ, (6) जनार्दन तथा (7) त्रैलोक्यनाथ। पाँचवें पुत्र जगन्नाथ मिश्र ने गंगा नदी के तट पर नदिया नामक स्थान में रहने का निश्चय किया।

जगन्नाथ मिश्रवर—पदवी 'पुरन्दर' ।

नन्द-वसुदेव-रूप सद्गुण-सागर ॥59॥

जगन्नाथ मिश्र-वर-जगन्नाथ मिश्र जो सातों में प्रधान थे; पदवी-पदवी; पुरन्दर-वसुदेव का एक अन्य नाम; नन्द–नन्द, कृष्ण के पिता; वसुदेव-कृष्ण के पिता वसुदेव; रूप-की भाँति; सत्-गुण-सद्गुण; सागर-सागर।

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र को 'पुरन्दर' उपाधि मिली थी। वे नन्द महाराज तथा वसुदेव की ही भाँति समस्त सद्गुणों के सागर थे।

ताँर पत्नी 'शची'-नाम, पतिव्रता सती।

याँर पिता 'नीलाम्बर' नाम चक्रवर्ती॥ 60॥

ताँर पत्नी-उनकी पत्नी; शची–शची; नाम-नामक; पति-व्रता-पतिव्रता; सती-सती; याँर–जिनके; पिता–पिता; नीलाम्बर-नीलाम्बर; नाम-नामक; चक्रवर्ती-चक्रवर्ती उपाधि सहित।

अनुवाद

उनकी पत्नी श्रीमती शचीदेवी सती स्त्री थीं और अत्यन्त पतिव्रता थीं। शचीदेवी के पिता का नाम नीलाम्बर था तथा उनका कुलनाम चक्रवर्ती था।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने ग्रन्थ अनुभाष्य में लिखते हैं, "गौरगणोद्देश-दीपिका (104) में उल्लेख है कि नीलाम्बर चक्रवर्ती पूर्वजन्म में गर्गमुनि थे। नीलाम्बर चक्रवर्ती के कुछ वंशज आज भी बाँग्लादेश के फरीदपुर जिले में मगड़ोबा नामक गाँव में रहते हैं। उनका भांजा जगन्नाथ चक्रवर्ती मामु ठाकुर नाम से भी जाना जाता था और वह पण्डित गोस्वामी का शिष्य बनकर जगन्नाथ पुरी में टोटा गोपीनाथ मन्दिर के पुजारी के रूप में रहता था। नीलाम्बर चक्रवर्ती बेलपुकुरिया के निकट नवद्वीप में रहते थे। यह बात प्रेमविलास ग्रंथ में उल्लिखित है। चूँकि वे काजी के मकान के निकट रहते थे, इसीलिए उस काजी को भी चैतन्य महाप्रभु का मामा माना जाता था। वह काजी निलाम्बर चक्रवर्ती को काका या चाचा कहता था। कोई व्यक्ति काजी के मकान को

वामनपुकुर से पृथक् नहीं कर सकता, क्योंकि आज भी काजी की कब्र वहाँ विद्यमान है। पहले यह स्थान बेलपुकुरिया कहलाता था और अब वामनपुकुर कहलाता है। पुरातत्त्व के साक्ष्यों से ऐसा निश्चित हो चुका है।"

राढ़देशे जन्मिला ठाकुर नित्यानन्द ।

गङ्गादास पण्डित, गुप्त मुरारि, मुकुन्द ॥ 61॥

राढ़-देशे-वह स्थान जहाँ गंगा नहीं बहती; जन्मिला-जन्म लिया; ठाकुर नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; गङ्गादास पण्डित–गंगादास पण्डित; गुप्त मुरारि-मुरारि गुप्त; मुकुन्द-मुकुन्द।

अनुवाद

राढ़देश बंगाल का वह भाग है जहाँ गंगा दिखाई नहीं पड़ती। उसी राढ़देश में नित्यानन्द प्रभु, गंगादास पण्डित, मुरारि गुप्त तथा मुकुन्द ने जन्म लिया।

तात्पर्य

यहाँ पर राढ़देशे से बीरभूम जिले के एकचक्र नामक गाँव का निर्देश होता है, जो बर्दवान के आगे है। बर्दवान रेलवे स्टेशन के बाद एक दूसरी शाखा लाइन है, जो पूर्वी रेलवे में लूप लाइन कहलाती है। उसी में मल्लारपुर नाम का एक रेलवे स्टेशन है। इस स्टेशन से आठ मील पूर्व की ओर एकचक्र गाँव अब भी स्थित है। यह गाँव उत्तर से दक्षिण तक लगभग आठ मील के क्षेत्रफल में फैला हुआ है। वीरचन्द्रपुर तथा वीरभद्रपुर नामक अन्य गाँव इसी गाँव के क्षेत्र में बसे हैं। वीरभद्र गोस्वामी के पवित्र नाम के सम्मान में ये स्थान वीरचन्द्रपुर तथा वीरभद्रपुर के नाम से विख्यात है।

बाँग्ला वर्ष 1331(1924 ई.) में एकचक्र ग्राम के मन्दिर पर बिजली गिर गई, अतएव यह मन्दिर अब भग्न अवस्था में है। इसके पहले इस स्थान पर ऐसी कोई दुर्घटना नहीं हुई थी। इस मन्दिर के भीतर श्री नित्यानन्द प्रभु द्वारा स्थापित श्रीकृष्ण के विग्रह हैं। इन विग्रह का नाम बंकिम राय या बाँका राय है।

बंकिम राय के दाहिनी ओर जाह्नवा की और बाईं ओर श्रीमती राधारानी के विग्रह हैं। इस मन्दिर के पुजारी बतलाते हैं कि नित्यानन्द प्रभु बाँका राय के शरीर के भीतर प्रविष्ट हो गये और इसीलिए जाह्नवा माता की मूर्ति बाद में बाँका राय के दाईं ओर रख दी गई। इसके बाद उस मन्दिर में अनेक मूर्तियाँ स्थापित की गई। इस मन्दिर के भीतर एक अन्य सिंहासन पर मुरलीधर तथा राधा-माधव के विग्रह हैं। एक अन्य सिंहासन पर मनोमोहन, वृन्दावनचन्द्र तथा गौर निताई के विग्रह हैं, किन्तु नित्यानन्द प्रभु ने बाँकी राय के विग्रह की ही स्थापना मूल रूप से की थी।

मन्दिर के पूर्व में एक घाट है, जो यमुना कही जाने वाली एक नदी के तट पर स्थित कदम्ब खण्डी के नाम से विख्यात है। कहा जाता है कि बाँका राय का विग्रह जल में तैर रहा था, जिसे नित्यानन्द प्रभु ने उठाकर इस मन्दिर में स्थापित किया था। फिर वीरचन्द्रपुर गाँव में भड्डापुर नामक स्थान में, जो लगभग आधा मील पश्चिम में है, एक नीम के पेड़ के नीचे श्रीमती राधारानी का विग्रह पाया गया। इसीलिए बंकिम राय की राधारानी भड्डापुरेर ठाकुराणी अर्थात् भड्डापुर की मालकिन कहलाती हैं। एक अन्य सिंहासन पर बाँका राय की दाईं ओर योगमाया का विग्रह है।

इस समय यह मन्दिर तथा मन्दिर की दीर्घा ऊँचे स्तंभपीठ पर स्थित है। और मन्दिर के सामने एक कंक्रीट का बना कीर्तन भवन है। कहा जाता है कि मन्दिर के उत्तर में शिवजी की मूर्ति थी, जिसका नाम भाण्डीश्वर था और जिसकी पूजा नित्यानन्द के पिता हाड़ाई पण्डित करते थे। किन्तु अब भाण्डीश्वर की मूर्ति वहाँ नहीं है और उसके स्थान पर जगन्नाथ स्वामी का विग्रह स्थापित किया

गया है। वास्तविकता तो यह है कि नित्यानन्द प्रभु ने कोई भी मन्दिर नहीं बनवाया। यह मन्दिर वीरभद्र प्रभु के समय में बनाया गया था। बाँग्ला वर्ष 1298 (1891 ई.) में यह मन्दिर जीर्ण अवस्था में था, अतएव शिवानन्द स्वामी नामक एक ब्रह्मचारी ने इसका जीर्णोद्धार कराया।

इस मन्दिर में सत्रह सेर (लगभग 34 पौण्ड) चावल तथा पर्याप्त मात्रा में शाक से बना भोजन अर्चाविग्रह को अर्पित करने की व्यवस्था है। इस समय जो मन्दिर के पुजारी हैं, वे गोपीजन वल्लभानन्द के परिवार के हैं, जो नित्यानन्द प्रभु की एक शाखा है। इस मन्दिर के नाम पर यह भूमि है और इस भूमि की आमदनी से इस मन्दिर का खर्च चलता है। पुजारी गोस्वामियों के तीन दल हैं, जो बारी-बारी से मन्दिर-व्यवस्था अपने हाथ में लेते हैं। इस मन्दिर से कुछ ही पग आगे विश्रामतला नामक स्थान है, जहाँ पर यह कहा जाता है कि नित्यानन्द प्रभु बचपन में खेल के समय अपने मित्रों के साथ वृन्दावन की लीलाएँ तथा रासलीला रचाया करते थे।

मन्दिर के निकट आमलीतला (इमलीतला) नामक स्थान है, जिसका यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि वहाँ पर एक विशाल इमली का वृक्ष है। नेड़ादि सम्प्रदाय के अनुसार वीरभद्र प्रभु ने 1200 नेड़ाओं (बौद्ध मिक्षुओं) की सहायता से एक महान् सरोवर खुदवाया जिसका नाम श्वेतगंगा है। मन्दिर के बाहर गोस्वामियों की समाधियाँ हैं और एक छोटी-सी नदी है, जिसका नाम मौड़ेश्वर है, जिसे यमुना का जल कहा जाता है। इस छोटी-सी नदी से आधे मील की दूरी पर श्री नित्यानन्द प्रभु का जन्मस्थान है। ऐसा लगता है कि मन्दिर के सामने एक विशाल कीर्तन भवन था, किन्तु बाद में वह खण्डहर हो गया और अब यह बरगद के पेड़ से ढक गया है। बाद में एक मन्दिर बनवा दिया गया, जिसके भीतर गौर नित्यानन्द के विग्रह विद्यमान हैं। यह मन्दिर स्वर्गीय प्रसन्नकुमार कारफर्मा द्वारा बनवाया गया था। उनकी स्मृति में एक पत्थर बाँग्ला वर्ष 1323 (1916 ई.) बैसाख (अप्रैल-मई) में लगवाया गया था।

जिस स्थान में नित्यानन्द प्रभु प्रकट हुए वह गर्भवास कहलाता है। वहाँ के मन्दिर में पूजा जारी रखने के लिए मन्दिर के साथ लगी 43 बीघा जमीन (चौदह एकड़) आंबटित की गई है। इसमें से दिनाजपुर के महाराज के द्वारा दी गई भूमि बीस बीघे (लगभग 6.5 एकड़) है। कहा जाता है कि गर्भवास नामक स्थान के निकट हाड़ाइ पण्डित एक प्राथमिक पाठशाला चलाते थे। इस स्थान के पुरोहितों की वंशावली इस प्रकार है-(1) श्री राघवचन्द्र, (2) जगदानन्द दास, (3) कृष्णदास, (4) नित्यानन्द दास, (5) रामदास, (6) व्रजमोहन दास, (7) कानाइ दास, (8) गौरदास, (9) शिवानन्द दास तथा (10) हरिदास। कृष्णदास वृन्दावन के चिड़ियाकुंज से सम्बन्धित थे। उनका तिरोधान कृष्ण जन्माष्टमी के दिन हुआ था। चिड़ियाकुंज अब वृन्दावन में श्रृंगारघाट के गोस्वामियों के प्रबन्ध में है। वे कृष्णदास से सम्बन्धित होने के कारण नित्यानन्द परिवार से भी सम्बन्धित बताये जाते हैं।

गर्भवास के निकट बकुलताल नामक एक स्थान है, जहाँ श्री नित्यानन्द प्रभु तथा उनके मित्र झालझपेटा खेल खेला करते थे। यहाँ पर बकुल का एक अद्भुत पेड़ है, क्योंकि उसकी सारी शाखाएँ और उपशाखाएँ सर्प के फनों जैसी दिखती हैं। ऐसी मान्यता है कि श्री नित्यानन्द प्रभु की इच्छा से साक्षात् अनन्त देव इस प्रकार प्रकट हुए थे। यह वृक्ष अत्यन्त पुराना है। कहा जाता है कि पहले इसमें दो तने थे, किन्तु नित्यानन्द प्रभु के संगियों को एक तने की शाखाओं से दूसरे तने की शाखाओं पर कूदने में असुविधा होती थी, इसलिए नित्यानन्द प्रभु ने कृपा करके दोनों तनों को मिलाकर एक कर दिया था।

पास ही हांटुगाड़ा नामक एक स्थान है। कहा जाता है कि नित्यानन्द प्रभु यहाँ पर सारे तीर्थों को ले आये थे। इसीलिए आसपास के लोग गंगा नदी में स्नान करने के बजाय इस स्थान पर आते हैं। इसका नाम हांटुगाड़ा इसलिए पड़ा, क्योंकि यहाँ पर श्रील नित्यानन्द प्रभु दधि-चिड़ा उत्सव मनाते थे, जिसमें वे दही तथा चिउड़ा प्रसाद-रूप में बाँटते थे और घुटने के बल झुककर प्रसाद लेते

थे। इस स्थान का पवित्र सरोवर वर्ष-भर जल से भरा रहता है। गोपाष्टमी के अवसर पर यहाँ एक विशाल मेला लगता है और नित्यानन्द प्रभु के जन्मदिन पर भी एक बड़ा मेला लगता है। गौरगणोद्देश-दीपिका (58-63) में बतलाया गया है कि हलायुध, बलदेव, विश्वरूप तथा संकर्षण नित्यानन्द अवधूत के रूप में प्रकट हुए।

असङ्ख्य भक्तेर कराइला अवतार।

शेषे अवतीर्ण हैला व्रजेन्द्र कुमार॥ 62॥

असङ्ख्य-असंख्य; भक्तेर-भक्तों का; कराइला-कराया; अवतार–अवतार; शेषे–अन्त में; अवतीर्ण-अवतरित; हैला-हो गये; व्रजेन्द्र कुमार-नन्द महाराज के पुत्र, भगवान् कृष्ण।

अनुवाद

व्रजेन्द्र कुमार भगवान् कृष्ण ने सर्वप्रथम असंख्य भक्तों को प्रकट होने दिया और अन्त में वे स्वयं प्रकट हुए।

प्रभुर आविर्भाव-पूर्वे व्रत वैष्णव-गण।

अद्वैत-आचार स्थाने करेन गमन॥ 63॥

प्रभुर–महाप्रभु के; आविर्भाव-आविर्भाव; पूर्वे-पहले; यत-सब; वैष्णव-गण-भक्त; अद्वैत-आचार-अद्वैत आचार्य के; स्थाने–स्थान; करेन-करना; गमन-जाना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रकट होने के पूर्व नवद्वीप के सारे भक्त अद्वैत आचार्य के घर में जुटा करते थे।

गीता-भागवत कहे आचार्य-गोसाञि ॥

ज्ञान-कर्म निन्दि' करे भक्तिर बड़ाइ ॥ 64॥

गीता-श्रीमद् भगवद्गीता; भागवत–श्रीमद्भागवत; कहे-व्याख्यान करते; आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य; ज्ञान–दार्शनिक ज्ञान का मार्ग; कर्म-सकाम कर्म; निन्दि'-निन्दा करके; करे–स्थापित करके; भक्तिर-भक्ति की; बड़ाइ-श्रेष्ठता।

अनुवाद

वैष्णवों की इन सभाओं में अद्वैत आचार्य भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत सुनाया करते थे, जिसमें वे दार्शनिक चिन्तन तथा सकाम कर्म की निन्दा करते और भक्ति की सर्वश्रेष्ठता स्थापित करते थे।

सर्व-शास्त्रे कहे कृष्ण-भक्तिर व्याख्यान ।

ज्ञान, योग, तपो-धर्म नाहि माने आन ॥65॥

सर्व-शास्त्रे-सभी प्रामाणिक शास्त्रों में; कहे-कहते हैं; कृष्ण-भक्तिर-भगवान् कृष्ण की भक्ति की; व्याख्यान-व्याख्या; ज्ञान–दार्शनिक ज्ञान; योग-योग; तपस्-तपस्या; धर्म-धार्मिक सिद्धान्त; नाहि-नहीं; माने–स्वीकार करते; आन–अन्य।

अनुवाद

वैदिक संस्कृति के सारे प्रामाणिक शास्त्र भगवान् कृष्ण की भक्ति की व्याख्या से भरे पड़े हैं। इसलिए भगवान् कृष्ण के भक्त दार्शनिक तर्क, योग, व्यर्थ तपस्या एवं तथाकथित धार्मिक अनुष्ठानों को मान्यता प्रदान नहीं करते। वे भक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी विधि को नहीं स्वीकार करते।

तात्पर्य

हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी सिद्धान्त का अनुसरण करता है। आत्म-साक्षात्कार के लिए हम कृष्ण-चेतना अर्थात् भक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी विधि को मान्यता प्रदान नहीं करते। कभी-कभी ज्ञान, योग, तप या धर्म मानने वाले लोग हमारी आलोचना करते हैं, किन्तु सौभाग्यवश हम उनके साथ किसी प्रकार का समझौता करने के लिए तैयार नहीं हैं। हम मात्र भक्ति के धरातल पर खड़े होकर उन्हीं सिद्धान्तों का सारे संसार में प्रचार करते हैं।

ताँर सङ्गे आनन्द करे वैष्णवेर गण।

कृष्ण-कथा, कृष्ण-पूजा, नाम-सङ्कीर्तन॥ 66॥

ताँर सङ्गे–उन (अद्वैत आचार्य) के संग; आनन्द-आनन्द; करे-करते; वैष्णवेर-भक्तों का; गण–दल, समूह; कृष्ण-कथा-कृष्ण कथाएँ; कृष्ण-पूजा-कृष्ण की पूजा; नाम-सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण महामंत्र का संकीर्तन।

अनुवाद

सारे वैष्णव अद्वैत आचार्य के घर में सदैव कृष्ण के विषय में बातें करने, कृष्ण की पूजा करने तथा हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने में आनन्द का अनुभव करते थे।

तात्पर्य

कृष्णभावनामृत आन्दोलन इन सिद्धान्तों पर ही चल रहा है। हमारे पास कृष्ण के विष्य में चर्चा करने, कृष्ण की पूजा करने तथा हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने के अतिरिक्त अन्य कोई काम नहीं रहता।

किन्तु सर्व-लोक देखि' कृष्ण-बहिर्मुख ।

विषये निमग्न लोक देखि' पाय दुःख ॥ 67॥

किन्तु-किन्तु; सर्व-लोक-सभी लोग; देखि'–देखकर; कृष्ण-बहिर्मुख-कृष्णभावनामृत के बिना; विषये-भौतिक आनन्द; निमग्न–निमग्न; लोक-सभी लोग; देखि'–देखकर; पाय दुःख–दुःखी होते।

अनुवाद

किन्तु श्री अद्वैत आचार्य को पीड़ा होती, जब वे देखते कि सारे लोग कृष्णभावनामृत से रहित हैं और मात्र भौतिक इन्द्रियभोग में डूबे हुए हैं।

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण का एक सच्चा भक्त सारे जगत् की पतित अवस्था को देखकर पीड़ित होता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहा करते थे, "इस संसार में किसी चीज की कमी नहीं है। यदि कमी है, तो केवल कृष्णभावनामृत की।" यही दृष्टिकोण समस्त शुद्ध भक्तों का होता है। मावन-समाज में कृष्णभावनामृत की इसी कमी के कारण अज्ञान तथा इन्द्रियतृप्ति में डूबे लोग भीषण कष्ट भोग रहे हैं। दर्शक के रूप में एक भक्त जगत् की ऐसी अवस्था देखकर अत्यन्त खिन्न होता है।

लोकेर निस्तार-हेतु करेन चिन्तन ।

केमते ए सब लोकेर हुइबे तारण ॥ 68॥

लोकेर-सभी लोगों के निस्तार-हेतु–छुटकारे के लिए; करेन-करते; चिन्तन-चिन्तन; केमते-कैसे; ए-ये; सब-सब; लोकेर-सामान्य लोगों का; हइबे-होगा; तारण-मुक्ति, छुटकारा।

अनुवाद

संसार की ऐसी दशा देखकर वे गम्भीरतापूर्वक सोचने लगे कि माया के पाश से किस प्रकार इन लोगों का उद्धार किया जा सकता है।

कृष्ण अवतरि' करेन भक्तिर विस्तार ।

तबे त' सकल लोकेर हइबे निस्तार ॥ 69 ॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतरि'–अवतरित होकर; करेन-करते हैं; भक्तिर-भक्ति का; विस्तार–विस्तार; तबे-तब; त'–निश्चित रूप से; सकल-सभी; लोकेर-लोगों की; हइबे-होगी; निस्तार–मुक्ति।

अनुवाद

श्रील अद्वैत आचार्य प्रभु ने सोचा, "यदि भक्ति सम्प्रदाय का वितरण करने के लिए स्वयं कृष्ण अवतरित हों, तभी सारे लोगों का उद्धार होना सम्भव है।"

तात्पर्य

जिस प्रकार दोषी व्यक्ति को मुख्य कार्यकारी, राष्ट्रपति या राजा की विशेष कृपा द्वारा ही मुक्ति मिल सकती है, उसी प्रकार इस कलियुग के दोषी लोगों का उद्धार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् या

उनके द्वारा इस प्रयोजन के लिए विशेष रूप से शक्तिप्रदत्त व्यक्ति के द्वारा ही किया जा सकता है। श्रील अद्वैत आचार्य प्रभु ने कामना की कि स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् इस युग के पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए अवतीर्ण हों।

कृष्ण अवतारिते आचार्य प्रतिज्ञा करिया।

कृष्ण-पूजा करे तुलसी-गङ्गाजल दिया ॥70॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतारिते-का अवतार करवाने के लिए; आचार्य-अद्वैत आचार्य; प्रतिज्ञा–प्रतिज्ञा; करिया-करके; कृष्ण-पूजा–भगवान् कृष्ण की पूजा; करे-करते; तुलसी–तुलसी दल; गङ्गा-जल दिया-गंगाजल के साथ।

अनुवाद

इस उद्देश्य से अद्वैत आचार्य प्रभु ने भगवान् को अवतरित कराने की प्रतिज्ञा करते हुए तुलसीदल तथा गंगाजल से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की पूजा करनी शुरू कर दी।

तात्पर्य

तुलसीदल तथा गंगाजल के साथ, यदि सम्भव हो तो, थोड़ा-सा चन्दन भगवान् की पूजा की साज-सामग्री के लिए पर्याप्त होता है। भगवद्गीता (9.26) में भगवान् कहते हैं :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः ॥

“यदि कोई मुझे प्रेम तथा भक्ति के साथ एक पत्ती, एक फूल, फल या जल अर्पित करता है, तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।” इस सिद्धान्त का पालन करते हुए अद्वैत प्रभु ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तुलसीदल तथा गंगाजल से प्रसन्न किया।

कृष्णेर आह्वान करे सघन हुङ्कार ।

हुङ्कारे आकृष्ट हैला व्रजेन्द्रकुमार ॥71॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; आह्वान-आह्वान; करे-करते; सघन-अत्यन्त गम्भीरता से; हुङ्कार-ऊँची आवाज में; हुङ्कारे-ऊँची ध्वनी से; आकृष्ट-आकर्षित; हैला-हो गये; व्रजेन्द्र कुमार-व्रजेन्द्र के पुत्र, भगवान् कृष्ण।

अनुवाद

उन्होंने जोर जोर से हुंकार करके भगवान् कृष्ण को प्रकट होने के लिए आमन्त्रित किया, और उनकी बार-बार की हुंकार से कृष्ण अवतरित होने के लिए आकृष्ट हुए।

जगन्नाथमिश्र-पत्नी शचीर उदरे ।

अष्ट कन्या क्रमे हैल, जन्मि’ जन्मि’ मरे ॥72॥

जगन्नाथ मिश्र-जगन्नाथ मिश्र; पत्नी-उनकी पत्नी; शचीर-शचीमाता की; उदरे-कोख में; अष्ट-आठ; कन्या-पुत्रियाँ; क्रमे एक के बाद एक; हैल-प्रकट हुईं; जन्मि’-जन्म लेने के बाद; जन्मि-जन्म लेने के पश्चात्; मरे-सबकी मृत्यु हो गई।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु के जन्म के पूर्व जगन्नाथ मिश्र की पत्नी शचीमाता की कोख से एक-एक करके आठ पुत्रियाँ जन्म ले चुकी थीं। किन्तु उन सबकी जन्म लेने के तुरन्त बाद मृत्यु हो गई।

अपत्य-विरहे मिश्रेर दुःखी हैल मन ।

पुत्र लागि' आराधिल विष्णुर चरण ॥73॥

अपत्य-बच्चों के; विरहे-विरह में; मिश्रेर–जगन्नाथ मिश्र का; दुःखी-दुःखी; हैल-हो गया; मन–मन; पुत्र-पुत्र; लागि'-के लिए; आराधिल-पूजा की; विष्णुर-भगवान् विष्णु के; चरण-चरणकमलों की।

अनुवाद

एक-एक करके सारी सन्तानों की मृत्यु से जगन्नाथ मिश्र अत्यन्त दुःखी थे। अतएव उन्होंने पुत्र-प्राप्ति की कामना से भगवान् विष्णु के चरणकमलों की पूजा की।

तबे पुत्र जनमिला 'विश्वरूप' नाम ।

महा-गुणवान् तेह—'बलदेव'-धाम ॥74॥

तबे-तत्पश्चात्; पुत्र-पुत्र; जनमिला-जन्मा; विश्वरूप-विश्वरूप; नाम-नामक; महा-गुणवान्-महा-गुणवान; तेह-वे; बलदेव-भगवान् बलदेव के; धाम-अवतार।

अनुवाद

इसके बाद जगन्नाथ मिश्र को विश्वरूप नामक पुत्र की प्राप्ति हुई, जो अत्यन्त शक्तिमान तथा गुणवान थे, क्योंकि वे बलदेव के अवतार थे।

तात्पर्य

विश्वरूप गौरहरि श्री चैतन्य महाप्रभु के बड़े भाई थे। जब विश्वरूप के विवाह की तैयारी हो गई, तो उन्होंने संन्यास ले लिया और घर छोड़कर चले गये। उनका संन्यास का नाम शंकरारण्य था। 1431 शकाब्द (1509 ई.) में शोलापुर जिले के पाण्डरपुर में उनका तिरोधान हो गया। संकर्षण का अवतार होने के कारण वे इस भौतिक जगत् की सृष्टि के कार्य तथा कारण दोनों ही हैं। वे श्री चैतन्य महाप्रभु से अभिन्न हैं, जिस तरह अंश तथा अंशी एक दूसरे से भिन्न नहीं होते। वे संकर्षण के अवतार के रूप में चतुर्यूह में से एक हैं। गौरचन्द्रोदय में कहा गया है कि विश्वरूप तिरोधान के बाद श्री नित्यानन्द प्रभु के भीतर समा गये।

बलदेव-प्रकाश-परम-व्योमे 'सङ्कर्षण'।

तेह—विश्वेर उपादान-निमित्त-कारण ॥ 75 ॥

बलदेव-प्रकाश-बलदेव का प्राकट्य; परम-व्योमे-आध्यात्मिक आकाश में; सङ्कर्षण-संकर्षण; तेंह-वे; विश्वेर-जगत्; उपादान-उपादान; निमित्त-कारण-तत्कालिक कारण।

अनुवाद

आध्यात्मिक जगत् में बलदेव के अंश संकर्षण कहलाते हैं, जो इस भौतिक जगत् के उपादान तथा प्रत्यक्ष कारण हैं।

ताँहा बइ विश्वे किछु नाहि देखि आर।

अतएव 'विश्वरूप' नाम ये ताँहार ॥76 ॥

ताँहा बइ-उनके सिवा; विश्वे-इस विश्व में; किछु-कुछ; नाहि-नहीं; देखि-मैं देखता हूँ; आर-और; अतएव-अतएव; विश्वरूप-विश्व रूप; नाम-नाम; ये-वह; ताँहार-उनका।

अनुवाद

विराट्-रूप को महासंकर्षण का विश्वरूप अवतार कहते हैं। इस तरह इस विराट् जगत् में हमें उनके अतिरिक्त कुछ भी और देखने को नहीं मिलता।

नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे ।

ओतं प्रोतमिदं यस्मिन्तन्तुष्वङ्ग यथा पटः ॥ 77॥

न-नहीं; एतत्-यह; चित्रम्-विचित्र; भगवति-भगवान् में; हि-निश्चित रूप से; अनन्ते-अनन्त में; जगत्-ईश्वरे-जगदीश्वर; ओतम्-लम्बाई से; प्रोतम्-चौड़ाई से; इदम्-यह ब्रह्माण्ड; यस्मिन्-जिनमें; तन्तुषु-धागों में, तन्तुओं में; अङ्ग-हे राजन्; यथा-यथा; पटः-वस्त्र।

अनुवाद

“जिस प्रकार वस्त्र में धागा लम्बाई तथा चौड़ाई दोनों ओर फैला रहता है, उसी तरह इस ब्रह्माण्ड के भीतर की प्रत्येक वस्तु में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान हैं। यह उनके लिए आश्चर्यजनक नहीं है।”

तात्पर्य

यह श्रीमद्भागवत (10.15.35) का श्लोक है।

अतएव प्रभु ताँरे बले, ‘बड़ भाइ’ ।

कृष्ण, बलराम दुई–चैतन्य, निताई ॥78 ॥

अतएव–अतएव, प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–विश्वरूप को; बले-कहते हैं; बड़ भाइ-बड़ा भाई; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; बलराम-और बलदेव; दुइ-दोनों; चैतन्य भगवान् चैतन्य महाप्रभु; निताई-और नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

महासंकर्षण प्रकट ब्रह्माण्ड के उपादान तथा निमित्त कारण हैं, अतएव वे ब्रह्माण्ड की हर वस्तु में विद्यमान हैं। अतएव चैतन्य महाप्रभु उन्हें अपना बड़ा भाई कहते थे। आध्यात्मिक जगत् में दोनों भाई कृष्ण तथा बलराम कहलाते हैं, किन्तु अब वे ही चैतन्य तथा निताई हैं। अतएव निष्कर्ष यह है कि नित्यानन्द प्रभु आदि संकर्षण, बलदेव हैं।

पुत्र पाञा दम्पति हैला आनन्दित मन ।

विशेषे सेवन करे गोविन्द-चरण ॥79॥

पुत्र-पुत्र; पाञा-पाकर; दम्पति–दम्पत्ति, पति-पत्नी; हैला-हो गये; आनन्दित-आनन्दित; मन–मन; विशेषे—विशेषतया; सेवन–सेवा; करे-करते हैं; गोविन्द-चरण-भगवान् गोविन्द के चरणकमलों की।

अनुवाद

विश्वरूप को पुत्र रूप में पाकर दम्पति (जगन्नाथ मिश्र तथा शचीमाता) मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न थे। इसी प्रसन्नता के कारण वे गोविन्द के चरणकमलों की सेवा विशेषरूप से करने लगे।

तात्पर्य

भारत में एक सामान्य कहावत है, "दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करै न कोय।" भगवद्गीता (7.16) में भी इसी की पुष्टि हुई है :

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

आर्को जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

"भूतकाल में पुण्यकर्म करने वाले चार प्रकार के लोग–आर्त, अर्थार्थी, ज्ञानी तथा जिज्ञासु-भक्ति की ओर उन्मुख होते हैं।" जगन्नाथ मिश्र तथा शचीमाता दोनों ही पति-पत्नी दुःखी थे, क्योंकि उनकी आठ पुत्रियाँ मर चुकी थीं। अतएव जब उन्हें पुत्र के रूप में विश्वरूप प्राप्त हुआ, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्हें पता था कि भगवान् की कृपा से उन्हें ऐसा सुख तथा ऐश्वर्य मिला है। अतएव वे भगवान् को भुलाने के बजाय गोविन्द के चरणकमलों की अधिकाधिक सेवा करने लगे। सामान्य व्यक्ति ऐश्वर्यवान् होने पर ईश्वर को भुला देता है, किन्तु भगवत्कृपा से भक्त जितना-जितना ऐश्वर्यवान् होता जाता है, वह उतना ही भगवान् की सेवा में अनुरक्त होता जाता है।

चौद्द-शत छय शके शेष माघ मासे ।

जगन्नाथ-शचीर देहे कृष्णेर प्रवेशे ॥80॥

चौद्द-शत-चौदह सौ; छय-छः; शके-शक सम्मत में; शेष-अन्तिम; माघ-माघ; मासे–मास में; जगन्नाथ–जगन्नाथ मिश्र के; शचीर-और शचादेवी के; देहे-शरीरों में; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; प्रवेशे-प्रवेश।

अनुवाद

शक सम्वत 1406 के माघ मास (1485 ई. का जनवरी मास) में भगवान् कृष्ण जगन्नाथ मिश्र तथा शचीदेवी दोनों ही के शरीर में प्रविष्ट हुए।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म फाल्गुन मास में शक सम्वत 1407 (1486 ई.) में हुआ। किन्तु हम देखते हैं कि अपने माता-पिता के शरीर में उनका प्रवेश माघ मास शक सम्वत 1406 में ही हो चुका था। इस तरह वे अपने जन्म से पूरे 13 मास पूर्व माता-पिता के शरीर में प्रविष्ट हुए थे। सामान्यतया एक बालक अपनी माता के गर्भ में दस चन्द्र-मास तक रहता है, किन्तु हम देखते हैं कि महाप्रभु अपनी माता के गर्भ में तेरह मास तक रहे।

मिश्र कहे शची-स्थाने,—देखि आन रीत ।

ज्योतिर्मय देह, गेह लक्ष्मी-अधिष्ठित ॥81॥

मिश्र कहे-जगन्नाथ मिश्र कहने लगे; शची-स्थाने-शची देवी माता की उपस्थिति में; देखि-मैं देखता हूँ; आन-असाधारण; रीत-रीति, व्यवहार; ज्योतिर्-मय-ज्योतिमय; देह-शरीर; गेह-घर; लक्ष्मी–लक्ष्मी देवी; अधिष्ठित-स्थित।

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने शचीमाता से कहा, "मैं आश्चर्य देख रहा हूँ! तुम्हारा शरीर ज्योति से युक्त है और ऐसा लगता है कि साक्षात् लक्ष्मी देवी मेरे घर पधारी हैं।

याहाँ ताहाँ सर्व-लोक करये सम्मान ।

घरे पाठाइया देय धन, वस्त्र, धान ॥82॥

याहाँ-जहाँ कही भी; ताहाँ-कहीं भी; सर्व-लोक-सभी लोग; करये-करते हैं; सम्मान-सम्मान; घरे–घर पर; पाठाइया-भेज कर; देय-देते हैं; धन-धन; वस्त्र-वस्त्र; धान-धान।

अनुवाद

“मैं जहाँ कहीं जाता हूँ, लोग मेरा सम्मान करते हैं। वे मेरे कहे बिना ही स्वेच्छा से मुझे धन, वस्त्र तथा धान देते हैं।”

तात्पर्य

ब्राह्मण किसी का दास नहीं बनता। अन्य किसी की सेवा करना शूद्रों का कार्य है। ब्राह्मण सदैव स्वतन्त्र होता है, क्योंकि वह समाज का शिक्षक, गुरु और उपदेशक होता है। समाज के सारे लोग उसे सारी आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करते हैं। भगवद्गीता में कहा गया है कि भगवान् ने समाज के चार विभाग किए हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। समाज इस वैज्ञानिक विभाजन के बिना सुचारु रूप से नहीं चल सकता। ब्राह्मण को चाहिए कि समाज के सारे लोगों को अच्छी सलाह दे, क्षत्रिय को प्रशासन, कानून तथा समाज व्यवस्था देखनी चाहिए, वैश्यों को अन्न उत्पन्न करना और समाज के लिए आवश्यक वस्तुओं का व्यापार करना चाहिए, जबकि शूद्रों को समाज के उच्च वर्गों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) की सेवा करनी चाहिए।

जगन्नाथ मिश्र ब्राह्मण थे, अतएव लोग उन्हें सारी आवश्यक वस्तुएँ–धन, वस्त्र, अन्न आदि भेजा करते थे। जब चैतन्य महाप्रभु शचीमाता के गर्भ में थे, तो जगन्नाथ मिश्र को ये आवश्यक वस्तुएँ बिना माँगे ही मिल जाती थीं। उनके परिवार में भगवान् की उपस्थिति के कारण प्रत्येक व्यक्ति ब्राह्मण के रूप में उनका आदर करता था। दूसरे शब्दों में, यदि ब्राह्मण या वैष्णव भगवान् का नित्य-

दास बना रहे और भगवान् की इच्छाएँ पूरी करता चले, तो उसके भरण- पोषण या उसके परिवार की आवश्यकताओं में किसी प्रकार के अभाव की आशंका नहीं रहती।

शची कहे,—मुञि देखों आकाश-उपरे।

दिव्य-मूर्ति लोक सब येन स्तुति करे ॥83॥

शची कहे-माता शचीदेवी ने उत्तर दिया; मुञि-मैं; देखों-देखती हूँ; आकाश-उपरे-आकाश में; दिव्य-मूर्ति-दिव्य मूर्तियाँ; लोक-लोग; सब-सब; येन-जैसे; स्तुति-स्तुति; करे–कर रहे हों।

अनुवाद

शचीमाता ने अपने पति से कहा, "मुझे बाह्य आकाश में अत्यन्त विचित्र तेजोमय पुरुष प्रकट होते दिख रहे हैं, मानों वे स्तुति कर रहे हों।"

तात्पर्य

पृथ्वी पर हर कोई जगन्नाथ मिश्र का आदर करता था और उन्हें सारी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त होती रहती थीं। इसी तरह शचीमाता ने बाहर आकाश में अनेक देवताओं को अपनी स्तुति करते देखा, क्योंकि उनके गर्भ में श्री चैतन्य महाप्रभु उपस्थित थे।

जगन्नाथ मिश्र कहे,—स्वप्न ग्ने देखिल।

ज्योतिर्मय-धाम मोर हृदये पशिल ॥84॥

जगन्नाथ मिश्र कहे-जगन्नाथ मिश्र ने उत्तर दिया; स्वप्न-सपना; ये-यह; देखिल-मैंने देखा है; ज्योतिर्-मय-चमकदार; धाम-धाम; मोर-मेरे; हृदये हृदय में; पशिल-प्रवेश किया।

अनुवाद

तब जगन्नाथ मिश्र ने कहा, "मैंने सपने में भगवान् के तेजोमय धाम को अपने हृदय में प्रवेश होते देखा है।"

आमार हृदय हैते गेला तोमार हृदये ।

हेन बुझि, जन्मिबेन कोन महाशये ॥85॥

आमार हृदय हैते–मेरे हृदय से; गेला–स्थानांतरित हो गया; तोमार हृदये-तुम्हारे हृदय में; हेन–इस प्रकार; बुझि–मैं समझता हूँ; जन्मिबेन-जन्म लेगा; कोन-कोई; महाशये-बहुत महान् व्यक्ति।

अनुवाद

"फिर यह मेरे हृदय से निकलकर तुम्हारे हृदय में प्रविष्ट हुआ। इसलिए मुझे लगता है कि शीघ्र ही किसी महापुरुष का जन्म होगा।"

एत बलि' बँह रहे हरषित हञा ।

शालग्राम सेवा करे विशेष करिया ॥86॥

एत बलि'-इस वार्तालाप के बाद; पँहे-वे दोनों; रहे-रहे; हरषित–प्रसन्न; हञा-होकर; शालग्राम-शालग्राम-नारायण शिला; सेवा–सेवा; करे-की; विशेष-विशेष ध्यान; करिया-देकर।

अनुवाद

इस वार्तालाप के बाद पति-पत्नी दोनों परम हर्षित थे और दोनों ने मिलकर घर की शालग्राम-शिला की सेवा की।

तात्पर्य

विशेषकर हर ब्राह्मण के घर में सारे परिवार द्वारा पूजा करने के लिए शालग्राम-शिला होनी चाहिए यह प्रथा अब भी चालू है। जो लोग ब्राह्मण जाति के हैं और ब्राह्मण-कुल में जन्मे हैं, उन्हें शालग्राम-शिला की पूजा करनी चाहिए। दुर्भाग्यवश, कलियुग की प्रगति के साथ तथाकथित ब्राह्मणों को ब्राह्मण परिवारों में जन्म लेने का तो बड़ा गर्व रहता है, किन्तु वे शालग्राम-शिला की पूजा नहीं करते । वास्तव में यह प्रथा पुरातन काल से चली आ रही है कि ब्राह्मण-परिवार में जन्म लेने वाले मनुष्य को हर हालत में शालग्राम-शिला को पूजना चाहिए। हमारे कृष्णभावनामृत-समाज के कुछ सदस्य शालग्राम-शिला की पूजा का प्रचलन करने के लिए अत्यधिक उत्सुक हैं, किन्तु हम जान-बूझकर इससे दूर रह रहे हैं, क्योंकि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अधिकांश सदस्य ब्राह्मण-कुलों में उत्पन्न नहीं हैं। कुछ समय बाद जब हम यह देख लेंगे कि वे सब वास्तव में ब्राह्मण आचरण को दृढ़तापूर्वक प्राप्त कर चुके हैं, तब शालग्राम शिला की पूजा शुरू कर दी जायेगी।

इस युग में शालग्राम-शिला का पूजन उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि भगवन्नाम का कीर्तन। यह शास्त्र का आदेश है : हरेनम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलं, कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा। श्रील जीव गोस्वामी का मत है कि अपराधरहित होकर भगवन्नाम का कीर्तन करने से मनुष्य पूर्ण बनता है। फिर भी मन को शुद्ध करने के लिए मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा भी आवश्यक है। अतएव जब मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना उन्नत होती है या वह आध्यात्मिक पद पर ठीक से स्थित होता है, तब वह शालग्राम-शिला की पूजा कर सकता है।

जगन्नाथ मिश्र के हृदय से शचीमाता के हृदय में भगवान् के स्थानान्तरण की व्याख्या श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इस प्रकार की है, "यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि जगन्नाथ मिश्र तथा शचीमाता नित्यसिद्ध अर्थात् भगवान् के शुद्ध नित्य पार्षद थे। उनके हृदय सदैव निष्कलुष

रहते थे, अतएव वे कभी-भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को भूले नहीं। इस जगत् में सामान्य व्यक्ति का हृदय कलुषित रहता है, अतएव दिव्य पद प्राप्त करने के लिए उसे सर्वप्रथम अपना हृदय शुद्ध करना चाहिए। किन्तु जगन्नाथ मिश्र तथा शचीमाता सामान्य पुरुष तथा स्त्री न थे, जिनके हृदय कलुषित रहे हों। जब हृदय शुद्ध होता है, तो वह वसुदेव पद को प्राप्त कहा जाता है। वसुदेव से वासुदेव या कृष्ण उत्पन्न हो सकते हैं, जो दिव्य पद पर स्थित रहते हैं।"

यह जान लेना चाहिए कि शचीमाता सामान्य स्त्रियों की तरह इन्द्रिय-भोग द्वारा गर्भवती नहीं हुई थीं। शचीमाता के गर्भधारण को सामान्य स्त्री जैसा मानना अपराध होगा। पूर्ण आध्यात्मिक चेतना प्राप्त होने पर एवं भगवान् की भक्तिमयी सेवा में पूर्णतया रत होने पर ही शचीमाता द्वारा गर्भधारण की बात समझ में आ सकेगी।

श्रीमद्भागवत (10.2.16) में कहा गया है :

भगवान् अपि विश्वात्मा भक्तानाम् अभयङ्करः ।

अविवेशांश भागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥

यह कृष्ण-जन्म विषयक कथन है। भगवान् कृष्ण का अवतार पहले वसुदेव के मन में प्रविष्ट हुआ और तब देवकी के मन में स्थानान्तरित किया गया। श्रील श्रीधर स्वामी इस सन्दर्भ में निम्नलिखित टिप्पणी देते हैं- 'मन आविवेश' मनसि आविर्बभूव, जीवानाम् इव न धातु-सम्बन्ध इत्यर्थः। सामान्य मनुष्य के जन्म के लिए जिस तरह वीर्यस्खलन होना चाहिए, उसका प्रश्न ही नहीं उठता। श्रील रूप गोस्वामी की भी इस सन्दर्भ में टीका है कि भगवान् कृष्ण सर्वप्रथम आनकदुन्दुभि अर्थात् वसुदेव के मन में प्रविष्ट हुए और तब देवकी के मन में स्थानान्तरित हुए। इस प्रकार देवकी देवी के मन में आध्यात्मिक आनन्द क्रमशः बढ़ा, जिस प्रकार चन्द्रमा प्रत्येक रात्रि में बढ़ता हुआ

पूर्ण चन्द्रमा बन जाता है। अपने प्राकट्य के समय भगवान् कृष्ण देवकी के मन से निकले और कंस के कारागार में देवकी की शय्या की बगल में प्रकट हो गये। उस समय योगमाया के वश में होने से देवकी ने सोचा कि उन्हें पुत्र उत्पन्न हुआ है। इस सन्दर्भ में तो स्वर्ग के निवासी देवता भी भ्रमित थे। जैसाकि कहा गया है, मुह्यन्ति यत् सूरयः (भागवत 1.1.1)। वे देवकी की स्तुति करने यह सोचकर आये थे कि भगवान् उनके गर्भ में हैं। देवतागण स्वर्गलोक से मथुरा आये थे। यह सूचित करता है कि मथुरा अब भी उच्चतर ग्रह मण्डलों की राजधानी स्वर्गलोक की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण है।

यशोदामाता के सनातन पुत्र के रूप में भगवान् कृष्ण वृन्दावन में सदा विद्यमान रहते हैं। भगवान् कृष्ण की लीलाएँ इस भौतिक जगत् में एवं आध्यात्मिक जगत् में निरन्तर चलती रहती हैं। इन लीलाओं में भगवान् सदैव अपने आपको माता यशोदा और पिता नन्द महाराज के सनातन पुत्र मानते हैं। श्रीमद्भागवत (10.6.43) में कहा गया है, "जब उदार तथा विशाल-हृदय वाले नन्द महाराज अपने भ्रमण से वापस आये, तो उन्होंने तुरन्त ही अपने पुत्र कृष्ण को अपनी गोद में उठा लिया और उनका सिर सूंघकर दिव्य आनन्द की प्रतीति की।" इसी प्रकार अन्यत्र (10.9.21 में) कहा गया है, "ये भगवान् गोप सुन्दरी के पुत्र के रूप में भक्तों के लिए सहज उपलब्ध तथा ज्ञेय हैं, किन्तु देहात्म-बुद्धि वाले लोग चाहे तपस्या में कितने भी आगे क्यों न हों या वे कितने भी बड़े दार्शनिक क्यों न हों, उन्हें समझने में असमर्थ हैं।"

इसके बाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण का प्रमाण दिया है, जो देवताओं द्वारा देवकी की कोख में स्थित भगवान् कृष्ण की स्तुतियों का उल्लेख करते हुए कृष्ण-जन्म का सारांश इस प्रकार देते हैं, "जिस प्रकार उदित होने वाला चन्द्रमा पूर्व में प्रकाश बिखेरता है, उसी तरह दिव्य पद पर सदा स्थित रहने वाली देवकी ने शूरसेन के पुत्र वसुदेव द्वारा

कृष्ण-मन्त्र में दीक्षित होने पर कृष्ण को अपने हृदय में धारण करके रखे।" श्रीमद्भागवत (10.2.18) के इस कथन से यह समझ में आता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् आनकदुन्दुभि या वसुदेव के हृदय से स्थानान्तरित होकर देवकी के हृदय में प्रकट हुए। श्रील बलदेव विद्याभूषण के अनुसार "देवकी के हृदय" से देवकी का गर्भ ही निहितार्थ है, क्योंकि श्रीमद्भागवत (10.2.41) में देवतागण कहते हैं-दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमान्–"हे। माता देवकी! भगवान् पहले से आपके गर्भ के भीतर हैं। अतएव वसुदेव के हृदय से देवकी के हृदय में भगवान् के स्थानान्तरित होने का अर्थ यह है कि वे देवकी के गर्भ में स्थानान्तरित हुए।

इसी तरह चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के प्रसंग में चैतन्य-चरितामृत के ये शब्द-विशेषे सेवन करे गोविन्द-चरण–"वे विशेष रूप से गोविन्द के चरणकमलों की पूजा करने लगे," इसके सूचक हैं कि जिस प्रकार भगवान् कृष्ण वसुदेव के हृदय से निकलकर देवकी के हृदय में चले गये, उसी प्रकार चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मिश्र के हृदय से शचीदेवी के हृदय में स्थानान्तरित हो गये। श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का यही रहस्य है, अतः मनुष्य को भगवान् चैतन्य के आविर्भाव को सामान्य पुरुष या जीव के जन्म जैसा नहीं मानना चाहिए। यह विषय समझने में थोड़ा गूढ़ है, किन्तु भगवद्भक्तों को कृष्णदास कविराज गोस्वामी का कथन समझने में तनिक भी कठिनाई नहीं होगी।

हैते हैते हैल गर्भ त्रयोदश मास।

तथापि भूमिष्ठ नहे,—मिश्रर हैल त्रास॥ 87॥

हैते हैते–इस प्रकार होकर; हैल-ऐसा हुआ; गर्भ-गर्भ; त्रयोदश-तेरहवें; मास-मास; तथापि तथापि; भूमिष्ठ-जन्म; नहे-कोई चिह्न नहीं था; मिश्रेर–जगन्नाथ मिश्र के; हैल–हो गया; त्रास-आशंका, भय।

अनुवाद

इस तरह गर्भ तेरहवें मास में आ पहुँचा, किन्तु शिशु के प्रसव का कोई संकेत न था। फलतः जगन्नाथ मिश्र को बड़ी चिन्ता होने लगी।

नीलाम्बर चक्रवर्ती कहिल गणिया ।

एइ मासे पुत्र हबे शुभ-क्षण पाञा ॥88॥

नीलाम्बर चक्रवर्ती–नीलाम्बर चक्रवर्ती ने; कहिल–कहा; गणिया-ज्योतिष-गणना से; एइ मासे-इस मास में; पुत्र-पुत्र; हबे-जन्म लेगा; शुभ-क्षण-शुभ घड़ी; पाञा-पाकर।

अनुवाद

तब नीलाम्बर चक्रवर्ती (चैतन्य महाप्रभु के नाना) ने नक्षत्रों की गणना करके बतलाया कि शुभ क्षण का लाभ उठाकर इसी मास में बालक का जन्म होगा।

चौद्द-शत सात-शके मास ये फाल्गुन ।

पौर्णमासीर सन्ध्या-काले हैले शुभ-क्षण ॥89॥

चौद्द-शत सात-शके-शक सम्वत के 1407 (1486 ई.) में; मास-मास; ये-जो; फाल्गुन-फाल्गुन; पौर्णमासीर–पूर्णमासी के दिन; सन्ध्या-काले-संध्या काल में; हैले-थी; शुभ-क्षण–शुभ घड़ी।

अनुवाद

इस प्रकार शक सम्वत 1407 (1486 ई.) के फाल्गुन मास (फरवरी-मार्च) में पूर्णमासी की सन्ध्या के समय वांछित शुभ मुहूर्त आ गया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में श्री चैतन्य महाप्रभु की जन्म-कुण्डली दी है, जो इस प्रकार है :

शक 1407/10/22/28/45*

दिनम्

7 11 8

15 54 38

40 37 40

13 6 23

*शक के अन्तर्गत दिये गये अंक श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य का समय सूचित करते हैं। शक सम्वत के एक हजार चार सौ सात वर्ष बीत चुके हैं : यह 1408 की साल थी। इस वर्ष के दस मास

बीत चुके थे : यह ग्यारहवाँ मास (फाल्गुन) था। फाल्गुन के बाइस दिन बीते थे : यह 23वाँ दिन था। सूर्योदय के बाद अट्ठाइस घटी (11 घण्टे, 12 मिनट) तथा 45 पल (18 मिनट) बीत चुके थे : यह सूर्यास्त के तुरन्त बाद का समय था। अन्य अंक महाप्रभु के जन्म के समय के बारे में ज्योतिष सम्बन्धी अधिक जानकारी देते हैं।

भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा दी गई जन्म-कुंडली की व्याख्या के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्म के समय नक्षत्रों की स्थिति इस प्रकार थी-शुक्र मेष राशि पर और अश्विनी नक्षत्र में था; केतु सिंह राशि पर तथा उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र पर था, चन्द्र पूर्व फाल्गुनी पर था, शनि ज्येष्ठा नक्षत्र और वृश्चिक राशि पर, बृहस्पति पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र और धनु राशि पर, मंगल श्रवणा नक्षत्र और मकर राशि पर, रवि कुम्भ राशि और पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र पर, राहु पूर्वाभाद्रपदा पर और बुध उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र और पर मीन राशि पर था। सिंहलग्न का दिन था।

सिंह-राशि, सिंह-लग्न, उच्च ग्रह-गण ।

षड्-वर्ग, अष्ट-वर्ग, सर्व सुलक्षण ॥90॥

सिंह-सिंह; राशि–राशि; सिंह-सिंह; लग्न-जन्म-लग्न; उच्च-उच्च; ग्रह-गण-ग्रह गण; षट्-वर्ग-छः वर्ग; अष्ट-वर्ग-आठ वर्ग; सर्व-सभी; सु-लक्षण-शुभ लक्षण।

अनुवाद

(ज्योतिर्वेद अर्थात् वैदिक ज्योतिष के अनुसार मुहूर्त का वर्णन निम्न प्रकार है), शुभ जन्म चन्द्र सिंह राशि पर था, सिंह उच्च स्थान पर था। ग्रहगण उच्च स्थान पर शक्तिशाली स्थिति में थे। षड्वर्ग एवं अष्ट-वर्ग शुभ प्रभाव को प्रदर्शित कर रहे थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, जो पहले एक महान् ज्योतिषी थे, इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार करते हैं : षड्वर्ग क्षेत्र के विभागों को क्षेत्र, होरा, प्रेक्वाण, नवांश, द्वादशांश तथा त्रिंशांश कहते हैं। ज्योतिर्वेद के अनुसार जब ग्रहों और षड्वर्ग के इन विभागों के स्वामियों के सम्बन्ध की गणना की जाती है, तब जन्म की शुभ घड़ी की गणना हो सकती है। बृहज्जातक तथा अन्य ग्रंथों में नक्षत्रों तथा ग्रहों की गतियाँ जानने के निर्देश दिये हुए हैं। जो अष्टवर्ग क्षेत्र की गणना की प्रक्रिया को समझता है, वह शुभ तथा अशुभ घटनाओं की भविष्यवाणी कर सकता है। यह विज्ञान विशेष रूप से होराशास्त्रविदों को ज्ञात है। होराशास्त्र के परिगणनों से श्री चैतन्य महाप्रभु के नाना नीलम्बर चक्रवर्ती ने वह शुभ घड़ी निश्चत की, जिसमें महाप्रभु को प्रकट होना था।

अ-कलङ्क गौरचन्द्र दिला दरशन ।

स-कलङ्क चन्द्रे आर को प्रयोजन ॥91॥

अ-कलङ्क–निष्कलंक ; गौरचन्द्र–चैतन्य महाप्रभु महाप्रभु रूपी चन्द्र; दिला–दिया; दरशन-दर्शन; स-कलङ्ककलंक युक्त; चन्द्रे-चन्द्र के लिए; आर-भी; कोन्–क्या; प्रयोजन-प्रयोजन।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु रूपी निष्कलंक चन्द्रमा दिख गया, तो फिर कलंकयुक्त चन्द्रमा की आवश्यकता कहाँ रही?

एत जानि' राहु कैल चन्द्रेर ग्रहण।

'कृष्ण' 'कृष्ण' 'हरि' नामे भासे त्रिभुवन ॥92॥

एत जानि'-यह सब जानकर; राहु-राहु ग्रह; कैल-किया; चन्द्रेर–चन्द्र का; ग्रहण-ग्रहण; कृष्ण कृष्ण-कृष्ण का पावन नाम; हरि-हरि का पावन नाम; नामे-नाम; भासे-डूब गये; त्रि-भुवन–तीनों लोक।

अनुवाद

यह सोचकर काले ग्रह राहु ने पूर्णचन्द्रमा को ढक लिया और तुरन्त ही तीनों जगत् "कृष्ण! कृष्ण! हरि!" की ध्वनि से गुंजायमान हो उठे।

तात्पर्य

ज्योतिर्वेद के अनुसार पूर्णचन्द्रमा के समक्ष राहु के आ जाने से चन्द्र ग्रहण लगता है। जब चन्द्र या सूर्य ग्रहण लगता है, तो भारत में यह प्रथा है कि वैदिक शास्त्रों के सभी अनुयायी गंगा में या समुद्र में स्नान करते हैं। जब तक ग्रहण लगा रहता है, वैदिक धर्म के दृढ़ अनुयायी जल में खड़े रहकर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते रहते हैं। चैतन्य महाप्रभु के जन्म के समय ऐसा ही चन्द्र ग्रहण लगा था, अतएव स्वाभाविक था कि सभी लोग जल के भीतर खड़े होकर हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का कीर्तन कर रहे थे।

जय जय ध्वनि हैल सकल भुवन।

चमत्कार हैया लोक भावे मने मन ॥93॥

जय जय-जय जय; ध्वनि-ध्वनि; हैल-होने लगी; सकल-सब; भुवन-लोकों में; चमत्कार-विचित्र; हैया–होकर; लोक-सभी लोग; भावे-भाव; मने मन-मन ही मन में।

अनुवाद

इस तरह सारे लोग चन्द्र-ग्रहण के समय हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर रहे थे और उनके मन आश्चर्यचकित थे।

जगत् भरिया लोक बले–'हरि' 'हरि' ।

सेइ-क्षणे गौरकृष्ण भूमे अवतरि ॥94॥

जगत्-सारा संसार; भरिया–भर गया; लोक-लोग; बले-कहने लगे; हरि हरि-भगवान् का पावन नाम "हरि हरि"; सेइ-क्षणे-उसी क्षण; गौरकृष्ण-गौरहरि के रूप में भगवान् कृष्ण; भूमे-पृथ्वी पर; अवतरि–अवतरित हुए।

अनुवाद

जब सारा जगत् इस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन कर रहा था, तब गौरहरि के रूप में स्वयं कृष्ण पृथ्वी पर अवतरित हुए।

प्रसन्न हइल सब जगतेर मन ।

'हरि' बलि' हिन्दुके हास्य करये यवन ॥ 95॥

प्रसन्न–प्रसन्न; हइल-हो गये; सब-सब; जगतेर-सारे जगत् के; मन–मन; हरि-भगवान् का पावन नाम हरि; बलि'-कहकर; हिन्दुके-हिन्दुओं को; हास्य-मजाक में; करये-ऐसा करते हैं; यवन-मुस्लिम।

अनुवाद

सारा जगत् प्रसन्न था। जहाँ हिन्दू लोग भगवान् के नाम का कीर्तन कर रहे थे, वहीं अहिन्दू, विशेषतया मुसलमान, उनके शब्दों की हँसी-हँसी में नकल कर रहे थे।

तात्पर्य

यद्यपि मुसलमानों अथवा अहिन्दुओं की भगवान् के पवित्र नाम में या हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में कोई रुचि नहीं होती, किन्तु जब नवद्वीप के हिन्दू चन्द्र ग्रहण के अवसर पर कीर्तन कर रहे थे, तब मुसलमान उनकी नकल उतार रहे थे। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के समय हिन्दू तथा मुसलमान दोनों मिलकर भगवान् के नाम का कीर्तन कर रहे थे।

'हरि' बलि' नारीगण देइ हुलाहुलि ।

स्वर्गे वाद्य-नृत्य करे देव कुतूहली ॥96॥

हरि बलि'–हरि बोलकर; नारी-गण-सभी महिलाएँ; देइ-कीर्तन करके; हुलाहुलि–हुलाहुली की ध्वनि; स्वर्गे–स्वर्ग में; वाद्य-नृत्य-संगीत एवं नृत्य; करे-करते हैं; देव-देवता गण; कुतूहली-उत्सुक।

अनुवाद

जब सारी स्त्रियाँ पृथ्वी पर हरि-नाम का उच्चारण कर रही थीं, तो उस समय स्वर्गलोक में नृत्य और गान चल रहा था, क्योंकि देवतागण अत्यन्त उत्सुक थे।

प्रसन्न हैल दश दिक, प्रसन्न नदीजल।

स्थावर-जङ्गम हैल आनन्दे विह्वल ॥ 97॥

प्रसन्न–प्रसन्न; हैल–हो गये; दश–दस; दिक्-दिशाएँ, प्रसन्न-सन्तुष्ट; नदी-जल-नदियों का जल; स्थावर-स्थावर; जङ्गम-जंगम; हैल–हो गये; आनन्दे-आनन्द में; विह्वल-विह्वल।

अनुवाद

इस प्रकार के वातावरण में दशों दिशाएँ प्रमुदित हो उठीं और नदियों की तरंगे भी उसी तरह उमड़ने लगीं। साथ ही सारे चर तथा अचर प्राणी दिव्य आनन्द से अभिभूत हो उठे।

नदीया-उदयगिरि, पूर्णचन्द्र गौरहरि,

कृपा करि' हइल उदय।

पाप-तमः हैल नाश, त्रि-जगतेर उल्लास,

जगभरि' हरि-ध्वनि हय ॥98॥

नदीया-नदीया नामक स्थान; उदयगिरि–प्रकट होने का स्थान है; पूर्ण-चन्द्र–पूर्ण चन्द्र; गौरहरि-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; कृपा-कृपा से; करि'-ऐसा करके; हइल-हो गये; उदय-उदय; पाप-पापमय; तमः-अन्धकार; हैल-हो गये; नाश-नष्ट; त्रि-जगतेर–तीनों लोकों का; उल्लास-प्रसन्नता; जग-भरि'-सारे विश्व को भरकर; हरि-ध्वनि-हरि की दिव्य ध्वनि; हय-गूंज उठी।

अनुवाद

इस तरह अपनी अहैतुकी कृपा से पूर्णचन्द्र रूपी गौरहरि नदिया जिले में उदित हुए। नदिया की उपमा उस उदयगिरि से दी गई है, जहाँ सूर्य सर्वप्रथम दिखता है। आकाश में उनके उदय होने से पापमय जीवन का अंधकार विनष्ट हो गया और तीनों लोक हर्षित हो उठे तथा भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने लगे।

सेइ-काले निजालय, उठिया अद्वैत राय,

नृत्य करे आनन्दित-मने ।

हरिदासे लञा सङ्गे, हुङ्कार-कीर्तन-रङ्गे

केने नाचे, केह नाहि जाने ॥99॥

सेइ-काले-उस समय; निज-आलय-अपने घर में; उठिया-उठकर; अद्वैत-अद्वैत आचार्य; राय-धनी पुरुष; नृत्य-नृत्य; करे-करते हैं; आनन्दित-आनन्दित; मने-मन से; हरिदासे-ठाकुर हरिदास; लञा-लेकर; सड़े-उनके साथ; हुङ्कार-जोर से, ऊँची ध्वनि से; कीर्तन-संकीर्तन; रङ्गे–करके; केने-क्यों; नाचे-नाचते हैं; केह नाहि-कोई नहीं; जाने-जानता है।

अनुवाद

उस समय श्री अद्वैत आचार्य प्रभु अपने शान्तिपुर के घर में प्रसन्न मुद्रा में नाच रहे थे। वे हरिदास ठाकुर को अपने साथ लेकर नाच रहे थे और ऊँचे स्वर में हरे कृष्ण का कीर्तन कर रहे थे। किन्तु वे क्यों नाच रहे थे, यह कोई नहीं समझ सका।

तात्पर्य

ऐसा समझा जाता है कि उस समय अद्वैत प्रभु अपने शान्तिपुर के पैतृक मकान में थे। हरिदास ठाकुर प्रायः उनसे भेंट करते रहते थे। संयोगवश वे भी उस समय वहाँ थे और श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्म होने पर दोनों ही तुरन्त नाचने लगे थे, किन्तु शान्तिपुर का कोई भी निवासी यह नहीं जान सका कि ये दोनों साधु पुरुष क्यों नाच रहे हैं।

देखि' उपराग हासि', शीघ्र गङ्गा-घाटे आसि'

आनन्दे करिल गङ्गा-स्नान ।

पाञा उपराग-छले, आपनार मनो-बले,

ब्राह्मणेरे दिल नाना दान ॥ 100॥

देखि'–देखकर; उपराग-ग्रहण; हासि'-हँसकर; शीघ्र-शीघ्र; गङ्ग-घाटे-गंगा के घाट पर; आसि-आकर; आनन्दे-आनन्द में; करिल–किया; गङ्गा-स्नान-गंगा स्नान; पाञा-का लाभ उठाकर; उपराग-छले-चन्द्र ग्रहण के बहाने; आपनार-अपने निजी; मनः-बले–मनोबल पर; ब्राह्मणेरे-ब्राह्मणों को; दिल-दिया; नाना-नाना प्रकार के; दान-दान।

अनुवाद

चन्द्र-ग्रहण को देखते तथा हँसते हुए अद्वैत आचार्य तथा हरिदास ठाकुर दोनों तुरन्त गंगा के तट पर गये और परम हर्ष के साथ उन्होंने गंगास्नान किया। चन्द्र-ग्रहण के अवसर का लाभ उठाते हुए अद्वैत आचार्य ने अपनी मानसिक शक्ति के द्वारा ब्राह्मणों को तरह-तरह के दान दिये।

तात्पर्य

हिन्दुओं में चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण के समय गरीबों को यथाशक्ति दान देने की प्रथा है। अतएव अद्वैत आचार्य ने इस ग्रहण का लाभ उठाते हुए ब्राह्मणों को तरह-तरह के दान दिये। श्रीमद्भागवत (10.3.11) में एक वाक्य है कि जब कृष्ण ने जन्म लिया, तो वसुदेव ने उस क्षण का लाभ उठाते हुए तुरन्त ब्राह्मणों में दस हजार गौवें वितरित कर दीं। हिन्दुओं में प्रथा है कि यदि घर में शिशु जन्म लेता है, विशेषकर पुत्र, तो माता-पिता हर्ष के मारे बहुत दान देते हैं। अद्वैत आचार्य वास्तव में दान देना चाहते थे, क्योंकि चन्द्र ग्रहण के समय चैतन्य महाप्रभु का जन्म हुआ था। किन्तु लोग यह नहीं समझ पाये कि अद्वैत आचार्य दान में इतनी तरह की वस्तुएँ क्यों दे रहे हैं। उन्होंने ऐसा इसलिए नहीं किया था कि चन्द्र ग्रहण लगा था, अपितु इसलिए कि महाप्रभु उस घड़ी जन्म ले रहे थे। उन्होंने ठीक वैसे ही दान बाँटा, जिस प्रकार कृष्ण के आविर्भाव के समय वसुदेव ने किया था।

जगतानन्दमय, देखि' मने स-विस्मय,

ठारेठोरे कहे हरिदास ।

तोमार ऐछन रङ्ग, मोर मन परसन्न,

देखि—किछु कार्ये आछे भास ॥101॥

जगत्-सारा जगत्; आनन्द-मय-आनन्दमय; देखि'–देखकर; मने-मन में; स-विस्मय–विस्मित होकर; ठारेठोरे-प्रत्यक्ष और परोक्ष संकेतों से; कहे-कहते हैं; हरिदास-हरिदास ठाकुर; तोमार-आपका; ऐछन-उस प्रकार का; रङ्ग-कार्य; मोर–मेरा; मन–मन; परसन्न-अत्यन्त प्रसन्न; देखि-मैं समझ सकता हूँ; किछु-कुछ; कार्ये कार्य में; आछे-है; भास—संकेत।

अनुवाद

जब हरिदास ने देखा कि सारा संसार हर्षित है, तो उन्होंने विस्मित मन से अद्वैत आचार्य से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से कह ही दिया, "आपका नाचना और दान वितरित करना मुझे बहुत हर्षित कर रहा है। मैं समझ सकता हूँ कि इन क्रियाओं के पीछे अवश्य ही कोई विशेष प्रयोजन है।"

आचार्यरत्न, श्रीवास, हैल मने सुखोल्लास

याइ' स्नान कैल गङ्गा-जले।

आनन्दे विह्वल मन, करे हरि-सङ्कीर्तन

नाना दान कैल मनो-बले ॥102॥

आचार्यरन-आचार्यरत्न; श्रीवास-श्रीवास; हैल–हो गये; मने-मन में; सुख-उल्लास-सुखी; याइ'–जाकर; स्नान-स्नान; कैल-किया; गङ्गा-जले-गंगाजल में; आनन्दे-आनन्द में; विह्वल-विह्वल; मन–मन; करे-करते हैं; हरि-सङ्कीर्तन-हरि संकीर्तन; नाना-नाना; दान-दान; कैल–किये; मनः-बले–मनोबल से।

अनुवाद

आचार्यरत्न (चन्द्रशेखर) तथा श्रीवास ठाकुर उल्लास से अभिभूत हो गये और वे तुरन्त गंगा नदी के तट पर गये और गंगाजल में स्नान करने लगे। उनके मन आनन्द से पूर्ण थे। उन्होंने हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन किया और मनोबल द्वारा दान दिया।

एइ मत भक्त-तति, याँर येइ देशे स्थिति,

ताहाँ ताहाँ पाञा मनो-बले।

नाचे, करे सङ्कीर्तन, आनन्दे विह्वल मन,

दान करे ग्रहणेर छले ॥ 103 ॥

एइ मत-इस प्रकार; भक्त-तति-वहाँ के सभी भक्त; याँर–जिनका; येइ–किसी भी; देशे-देश में; स्थिति–निवास करते थे; ताहाँ ताहाँ-वहाँ वहाँ; पाञा-लाभ उठाकर; मनः-बले-मन के बल पर; नाचे-नाचते हैं; करे सङ्कीर्तन-संकीर्तन करते हैं; आनन्दे-आनन्द में; विह्वल-विह्वल होकर; मन–मन; दान-दान में; करे-देते हैं; ग्रहणेर-ग्रहण के; छले-बहाने से।

अनुवाद

इस तरह से सारे भक्त, जो जहाँ भी, जिस नगर तथा जिस देश में थे, सबके सब चन्द्रग्रहण के बहाने नाचने लगे, संकीर्तन करने लगे और मनोबल द्वारा दान देने लगे। उन सबके मन प्रसन्नता के मारे विह्वल थे।

ब्राह्मण-सज्जन-नारी, नाना-द्रव्ये थाली भरि'

आइला सबे यौतुक लइया ।

येन काँचा-सोणा-द्युति, देखि' बालकेर मूर्ति,

आशीर्वाद करे सुख पाञा ॥ 104॥

ब्राह्मण-आदरणीय ब्राह्मण; सत्-जन-भले लोग; नारी-महिलाएँ; नाना-नाना प्रकार के; द्रव्ये-उपहारों से; थाली–थालियाँ; भरि'-भरकर; आइला-आये; सबे-सब; यौतुक-उपहार, भेटें; लइया-लेकर; येन–की तरह; काँचा-कच्चा; सोणा-सुवर्ण; द्युति-चमकता हुआ; देखि-देखकर; बालकेर-बालक का; मूर्ति-रूप; आशीर्वाद–आशीर्वाद; करे–दिये; सुख–सुख; पाञा-पाना।

अनुवाद

सभी कोटियों के सम्मानीय ब्राह्मण जन तथा स्त्रियाँ विविध उपहारों से भरी थालियाँ भेंट करने आईं। सोने की तरह चमचमाते स्वरूप वाले नवजात शिशु को देखकर उन सबने अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करते हुए आशीर्वाद दिये।

सावित्री, गौरी, सरस्वती, शची, रम्भा, अरुन्धती

आर यत देव-नारीगण ।

नाना-द्रव्ये पात्र भरि', ब्राह्मणीर वेश धरि',

आसि' सबे करे दरशन ॥ 105॥

सावित्रीब्रह्मा की पत्नी सावित्री; गौरी–शिवजी की पत्नी गौरी; सरस्वती-भगवान् नृसिंहदेव की पत्नी सरस्वती; शची–राजा इन्द्र की पत्नी शची; रम्भा–स्वर्ग की एक नर्तकी; अरुन्धती–वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती; आर-और; यत-सब; देव-देव; नारी-गण-नारियाँ; नाना–विभिन्न; द्रव्ये-उपहारों के साथ; पात्र भरि'-टोकरियां भरकर; ब्राह्मणीर-ब्राह्मणों की पत्नियों के रूप में; वेश धरि'–वेष धारण करके; आसि'-वहाँ आकर; सबे-सभी; करे-करती हैं; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

समस्त दैवी स्त्रियाँ जिनमें ब्रह्माजी, शिवजी, भगवान् नृसिंहदेव, राजा इन्द्र तथा ऋषि वशिष्ठ की पत्नियाँ एवं स्वर्ग की अप्सरा रम्भा भी सम्मिलित थीं, ब्राह्मणियों का वेश धारण करके नाना प्रकार के उपहार लेकर वहाँ पर आईं।

तात्पर्य

जब चैतन्य महाप्रभु का जन्म हुआ, तो पासपड़ोस की स्त्रियाँ उन्हें देखने आयीं, जिनमें अधिकांश ब्राह्मणों की पत्नियाँ थीं। ब्राह्मण पत्नियों के वेश में ही ब्रह्माजी, शिवजी आदि की पत्नियाँ भी नवजात शिशु को देखने आईं। सामान्य लोगों ने उन्हें पड़ोस के आदरणीय ब्राह्मणों की पत्नियों के रूप में देखा; लेकिन वास्तव में वे उस वेश में देवलोक की स्त्रियाँ थीं।

अन्तरीक्षे देव-गण, गन्धर्व, सिद्ध, चारण,

स्तुति-नृत्य करे वाद्य-गीत ।

नर्तक, वादक, भाट, नवद्वीपे यार नाट,

सबे आसि' नाचे पाञा प्रीत ॥ 106 ॥

अन्तरीक्षे–अन्तरिक्ष में; देव-गण-देवगण; गन्धर्व-गन्धर्वलोक के निवासी; सिद्ध-सिद्धलोक के निवासी; चारण-स्वर्गलोक के पेशेवर गायक; स्तुति-स्तुति; नृत्य-नृत्य; करे-करते हैं; वाद्य-संगीत; गीत-गीत; नर्तक-नर्तक; वादक–पेशेवर वादक; भाट-पेशेवर भाट; नवद्वीपे–नवद्वीप नगर में; यार–जिनका; नाट-नाट; सबे–वे सभी; आसि-आकर; नाचे-नाचने लगे; पाञा-पाकर; प्रीत–सुख, प्रसन्न होकर।

अनुवाद

बाह्य अन्तरिक्ष में सारे देवता, जिनमें गन्धर्वलोक, सिद्धलोक तथा चारणलोक के निवासी सम्मिलित थे, स्तुति करने लगे और गीत गाकर तथा ढोल बजाकर नाचने लगे। इसी प्रकार नवद्वीप नगरी में सारे पेशेवर नर्तक, गायक तथा भाटगण एकत्र होकर अत्यन्त प्रसन्नता के मारे नाचने लगे।

तात्पर्य

जिस प्रकार स्वर्गलोक में पेशेवर गायक, नर्तक और भाट हैं, उसी तरह भारत में अब भी पेशेवर नर्तक, भाट तथा गायक हैं, जो सभी गृहस्थों के उत्सवों के समय, विशेषतया जन्मोत्सव और विवाहों में एकत्र होते हैं। ये पेशेवर लोग हिन्दुओं के घरों से ऐसे अवसरों पर दान लेकर अपनी जीविका चलाते हैं। ऐसे अवसरों का लाभ, दान लेने के लिए, हिंजड़े भी उठाते हैं। यही उनकी जीविका के साधन हैं। ऐसे लोग न तो नौकरी करते हैं, न खेती करते हैं, न व्यापार। ये शान्तिपूर्वक अपना उदर-पोषण करने के लिए पास पड़ोस के मित्रों से दान लेते हैं। भाट ब्राह्मणों का एक वर्ग है, जो ऐसे उत्सवों में वैदिक शास्त्रों की उक्तियों के साथ गीत बनाकर आशीर्वाद देने जाते हैं।

केबा आसे केबा याय, केबा नाचे केबा गाय,

सम्भालिते नारे कार बोल ।

खण्डिलेक दुःख-शोक, प्रमोद-पूरित लोक,

मिश्र हैला आनन्दे विह्वल ॥107॥

केबा-कौन; आसे-आ रहा है; केबा-कौन; याय-जा रहा है; केबा-कौन; नाचे-नाच रहा है; केबा-कौन; गाय-गा रहा है; सम्भालिते-समझना; नारे-नहीं सकते; कार-दूसरे लोग; बोल-भाषा; खण्डिलेक-नष्ट हो गई; दुःख-दु:ख; शोक-शोक; प्रमोद-हर्ष; पूरित-भरे हुए; लोक-सभी लोग; मिश्र-जगन्नाथ मिश्र; हैला-हो गये; आनन्दे-आनन्द मग्न; विह्वल-विह्वल।

अनुवाद

कोई यह समझ नहीं पा रहा था कि कौन आ रहा है, कौन जा रहा है, कौन नाच रहा है और कौन गा रहा है। कोई एक दूसरे की भाषा तक नहीं समझ पा रहा था। किन्तु हुआ यह कि सारा दुःख

और शोक तुरन्त दूर हो गया और सारे लोग प्रसन्न हो उठे। इस तरह जगन्नाथ मिश्र भी आनन्द से अभिभूत हो गये।

आचार्यरत्न, श्रीवास, जगन्नाथ मिश्र-पाश,

आसि' ताँरे करे सावधान।

कराइल जातकर्म, ये आछिल विधि-धर्म,

तबे मिश्र करे नाना दान ॥108॥

आचार्यरत्न–चन्द्रशेखर आचार्य; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; जगन्नाथ मिश्र पाश-जगन्नाथ मिश्र के घर पर; आसि'-आकर; ताँरे–उनको; करे-करते हैं; सावधान-सावधान; कराइल–किया; जात-कर्म-जन्म के समय का शुभ संस्कार; ये-जो कुछ; आछिल–था; विधि-धर्म-धर्म की विधि-उपचार; तबेउस समय; मिश्र-जगन्नाथ मिश्र; करे-करते हैं; नाना-नाना प्रकार के; दान-दान।

अनुवाद

चन्द्रशेखर आचार्य तथा श्रीवास ठाकुर दोनों ने ही जगन्नाथ मिश्र के पास आकर तरह-तरह से उनका ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने धार्मिक नियमों के अनुसार जन्मकाल के सारे अनुष्ठान सम्पन्न कराये। जगन्नाथ मिश्र ने भी तरह-तरह के दान दिये।

यौतुक पाइल यत, घरे वा आछिल कत,

सब धन विप्रे दिल दान।

यत नर्तक, गायन, भाट, अकिञ्चन जन,

धन दिया कैल सबार मान ॥109॥

यौतुक-उपहार, भेटें; पाइल-पाईं; यत–जितनी भी; घरे-घर में; वा-अथवा; आछिल-थी; कत-जो कुछ; सब धन–सारा धन; विप्रे–ब्राह्मणों को; दिल–दे दिया; दान-दान में; यत-सब; नर्तक-नर्तक; गायन-गायक; भाट–भाट; अकिञ्चन जन-निर्धन लोग; धन दिया-उनको धन दिया; कैल-किया; सबार–प्रत्येक का; मान-सम्मान।

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने भेंटों या उपहारों के रूप में जो धन पाया और जो कुछ उसके घर में था, उसे उन्होंने ब्राह्मणों, पेशेवर गायकों, नाचने वालों, भाटों तथा गरीबों में बाँट दिया। उन्होंने दान में धन देकर उन सबका सम्मान किया।

श्रीवासेर ब्राह्मणी, नाम ताँर 'मालिनी',

आचार्यरत्नेर पत्नी-सङ्गे ।

सिन्दूर, हरिद्रा, तैल, खइ, कला, नारिकेल,

दिया पूजे नारीगण रङ्गे ॥ 110॥

श्रीवासेर ब्राह्मणी-श्रीवास ठाकुर की पत्नी; नाम-नाम; ताँर–उनका; मालिनी-मालिनी; आचार्यरत्नेर–चन्द्रशेखर (आचार्यरत्न) की; पत्नी-पत्नी; सङ्गे–के संग; सिन्दूर-सिंदूर; हरिद्रा-हल्दी; तैल-तेल; खइ-भुने चावल; कला केला; नारिकेल-नारियल; दिया–दिया; पूजे–पूजा की; नारी-गण-महिलाएँ; रङ्गे–प्रसन्न मुद्रा में।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर की पत्नी मालिनी के साथ में चन्द्रशेखर (आचार्यरत्न) की पत्नी तथा अन्य स्त्रियाँ परम प्रसन्नता से बालक की पूजा करने के लिए सिन्दूर, हल्दी, तेल, खइ (भुने चावल), केले तथा नारियल जैसी सामग्री लेकर आई।

तात्पर्य

ऐसे शुभ अवसरों पर सिंदूर, खइ (भुने चावल), केला, नारियल तथा तेल के साथ मिलाई हुई हल्दी-ये सब शुभ उपहार के रूप में माने जाते हैं। जिस तरह खील होती है, उसी तरह खइ भी चावल से बनता है। इसे केले के साथ अत्यन्त शुभ भेंट माना जाता है। हल्दी को तेल तथा सिंदुर के साथ मिलाने से भी शुभ लेप तैयार हो जाता है, जिसे नवजात शिशु या दूल्हे के सारे शरीर में लगाया जाता है। पारिवारिक कार्यों के लिए ये सारे शुभ कर्म हैं। हम देखते हैं कि 500 वर्ष पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्म के समय ये सारे उत्सव दृढ़तापूर्वक मनाये जाते थे। किन्तु वर्तमान समय में ये अनुष्ठान विरले ही सम्पन्न किये जाते हैं। सामान्यतया गर्भवती माता को अस्पताल भेज दिया जाता है और ज्योंही शिशु जन्म ले लेता है, तो उसे प्रतिरोधी द्रव से नहलाया जाता है और यहीं सारी क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं।

অদ্বৈত-আচার্য-ভার্পা, জগৎপূজিতা আর্যা,

নাম তাঁর ‘সীতা ঠাকুরাণী’ ।

আচার আজ্ঞা পাঞা, গেল উপহার লঞা,

দেখিতে বালক-শিরোমণি ॥111॥

अद्वैत-आचार्य-भार्या–अद्वैत आचार्य की पत्नी; जगत्-पूजिता-सारे जगत् में पूज्या; आर्या–आर्या, अत्यन्त उन्नत सुशील महिला; नाम-नाम; ताँर–उनका; सीता ठाकुराणी-मां सीता; आचार्येर आज्ञा पाञा-अद्वैत आचार्य की आज्ञा पाकर; गेल-गईं; उपहार-उपहार; लञा-लेकर; देखिते-देखने के लिए; बालक-शिशु; शिरोमणि-सर्वश्रेष्ठ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्म के एक दिन बाद अद्वैत आचार्य की पत्नी सीतादेवी, जो जगत-भर के लिए पूज्य हैं, अपने पति से आज्ञा लेकर और अपने साथ तरह-तरह की भेंटें और उपहार लेकर उस सर्वश्रेष्ठ बालक को देखने गईं।

तात्पर्य

ऐसा प्रतीत होता है कि अद्वैत आचार्य के दो भिन्न मकान थे-एक शान्तिपुर में और दूसरा नवद्वीप में। जब श्री चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव हुआ, तब अद्वैत आचार्य अपने नवद्वीप वाले मकान में नहीं रह रहे थे, अपितु शान्तिपुर वाले मकान में थे। अतएव जैसाकि पहले (श्लोक 33 में) कहा जा चुका है, सीतादेवी अद्वैत आचार्य के पुराने पैतृक मकान (निजालय) से नवजात शिशु चैतन्य महाप्रभु को भेंट देने के लिए नवद्वीप आईं।

सुवर्णेर कड़ि-ब-उलि, रजतमुद्रा-पाशुलि,

सुवर्णेर अङ्गद, कङ्कण।

दु-बाहुते दिव्य शङ्ख, रजतेर मलबङ्क,

स्वर्ण-मुद्रार नाना हारगण ॥112॥

सुवर्णेर-सुवर्ण से निर्मित; कड़ि-ब-उल-हाथ पर पहने जाने वाली चूड़ियाँ; रजत-मुद्रा-सोने के सिक्के; पाशुलि–पाँव पर पहने जाने वाला एक प्रकार का आभूषण; सुवर्णेर-सुवर्ण निर्मित; अङ्गद-एक प्रकार का आभूषण; कङ्कण-कंगन; दु-बाहुते-दोनों बाजुओं में; दिव्य-दिव्य; शङ्ख-शंख; रजतेर-सुवर्ण निर्मित; मलबङ्क-पाँव के कड़े; स्वर्ण-मुद्रार–सुवर्ण मुद्रित; नाना-नाना; हार-गण-हार।

अनुवाद

वे अपने साथ अनेक प्रकार के सोने के आभूषण लाई थीं, जिनमें हाथ के कंगन, बाजूबन्द, हार तथा पाँव की पायल थी।

व्याघ्र-नख हेम-जड़ि, कटि-पट्टसूत्र-डोरी

हस्त-पदेर यत आभरण।

चित्र-वर्ण पट्ट-साड़ी, बुनि फोतो पट्टपाड़ी,

स्वर्ण-रौप्य-मुद्रा बहु-धन॥ 113॥

व्याघ्र-नख-शेर के नाखून; हेम-जड़ि-सोने में जड़े; कटि-पट्टसूत्र-डोरी–कमर के लिए रेशमी डोरी; हस्त-पदेर-हाथों तथा पाँवों के; यत-सभी प्रकार के; आभरण-आभूषण; चित्र-वर्ण-भाँति भाँति के रंगों के छपे; पट्ट-साड़ी-रेशमी साड़ियाँ; बुनि-बुनी हुई; फोतो-बच्चों के छोटे जैकेट; पट्ट-पाड़ी-रेशमी कढ़ाई के साथ; स्वर्ण-सुवर्ण; रौप्य-चांदी; मुद्रा-सिक्के; बहु-धन-बहुत धन।

अनुवाद

उसमें सोने में जड़े बघनखे, रेशमी कमरबन्ध, हाथों तथा पाँवों के आभूषण, सुन्दर छपी रेशमी साड़ियाँ तथा रेशम की ही बनी बच्चे की पोषाक भी थे। साथ ही सोने तथा चाँदी के सिक्कों समेत अन्य द्रव्य भी बालक को न्यौछावर किये गये।

तात्पर्य

अद्वैत आचार्य की पत्नी सीतादेवी ठाकुराणी द्वारा प्रदत्त भेंटों से लगता है कि उस समय अद्वैत आचार्य बहुत सम्पन्न व्यक्ति थे। समाज में यद्यपि ब्राह्मण धनी नहीं होते, किन्तु अद्वैत आचार्य शान्तिपुर के ब्राह्मणों के अगुआ होने के कारण पर्याप्त सम्पन्न थे। अतएव उन्होंने बालक चैतन्य को अनेक आभूषण भेंट में दिये। किन्तु कमलाकान्त विश्वास ने जगन्नाथपुरी के राजा-महाराज प्रतापरुद्र से अद्वैत आचार्य का ऋण चुकाने के लिए जो तीन सौ रुपये माँगे थे, उससे सूचित होता है कि इतना सम्पन्न होते हुए भी ऐसे व्यक्ति के लिए जो अनेक मूल्यवान आभूषण तथा साड़ियाँ आदि भेंट में दे सकता था, तीन सौ रुपये का ऋण चुका पाना कठिन था। अतएव उस समय रुपये का मूल्य आज के मूल्य से हजारों गुना अधिक था। आज न तो किसी को तीन सौ रूपये का ऋण अदा करना खलता है, न ही सामान्य व्यक्ति इतना धन जुटा पाता है कि अपने मित्र के पुत्र को इतने मूल्यवान आभूषण भेंट में दे सके। सम्भवतया उस समय के तीन सौ रुपये का मूल्य आज के तीस हजार रुपयों के बराबर रहा होगा।

दुर्वा, धान्य, गोरोचन, हरिद्रा, कुङ्कम, चन्दन,

मङ्गल-द्रव्य पात्र भरिया।

वस्त्र-गुप्त दोला चड़ि' सङ्गे लजा दासी चेड़ी,

वस्त्रालङ्कार पेटारि भरिया ॥ 114॥

दुर्वा-ताजी घास; धान्य-धान; गोरोचन-गाय के मस्तक के लिए पीला पट्टा; हरिद्रा-हल्दी का; कुङ्कम-कुंकुम; चन्दन–चन्दन; मङ्गल-द्रव्य-शुभ वस्तुएँ; पात्र भरिया–तश्तरी भरकर; वस्त्र-गुप्त-वस्त्र से ढका; दोला-पालकी; चड़ि-चढ़कर; सङ्गे–के साथ; लजा-लेकर; दासी–दासी; चेड़ी-महिला दासियाँ; वस्त्र-अलङ्कार-आभूषण एवं वस्त्र; पेटारि–टोकरी; भरिया-भरकर।

अनुवाद

सीता ठाकुराणी पर्दे से ढकी पालकी में चढ़कर और दासियों को साथ लेकर जगन्नाथ मिश्र के घर आईं। वे अपने साथ अनेक मंगल द्रव्य-यथा दूर्वा, धान, गोरोचन, हल्दी, कुंकुम एवं चन्दन लाई थीं। ये सारी भेंटें एक बड़ी पिटारी में भरी हुई थीं।

तात्पर्य

इस श्लोक में वस्त्रगुप्त दोला शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। कलकत्ता में पचास-साठ वर्ष पूर्व भी सभी आदरणीय महिलाएँ चार व्यक्तियों द्वारा उठाई जाई जाने वाली पालकी में चढ़कर निकटवर्ती स्थान को जाया करती थीं। यह पालकी सूती कपड़े से ढकी होती थी, जिससे रास्ते में जाते समय आदरणीय महिलाएँ दिखाई न पड़े। उच्च कुल की महिलाओं को सामान्य लोग देख नहीं सकते थे। यह प्रथा दूरस्थ स्थानों में अब भी प्रचलित है। असूर्यपश्या संस्कृत शब्द ऐसी आदरणीय महिला को सूचित करता है, जिसे सूर्य भी नहीं देख सकता। पूर्वी संस्कृति में यह प्रथा अत्यधिक प्रचलित थी और हिन्दू तथा मुस्लिम महिलाएँ इसका कठोरता से पालन करती थीं। हमें अपने बचपन का वास्तविक अनुभव है कि हमारी माता अपने पड़ोस में निमन्त्रण पर भी पैदल नहीं जाती थीं; वे या तो गाड़ी पर चढ़कर या चार व्यक्तियों द्वारा ले जाने वाली पालकी पर चढ़कर जाती

थीं। यही प्रथा आज से 500 वर्ष पूर्व भी दृढ़ता से लागू थी और अद्वैत आचार्य की पत्नी ने आदरणीय महिला होने के कारण उस सामाजिक परिवेश के नियमों का पालन किया।

भक्ष्य, भोज्य, उपहार, सङ्गे लइल बहु भार,

शची-गृहे हैल उपनीत।

देखिया बालक-ठाम, साक्षात्गोकुल-कान,

वर्ण-मात्र देखि विपरीत ॥ 115॥

भक्ष्य-भोजन; भोज्य-तला हुआ भोजन; उपहार–उपहार; सड़े-उसके साथ; लइल–लिए; बहु भार-बहुत से पैकेट; शची-गृहे-माता शची के घर में; हैल-था; उपनीत-ले जाये गये; देखिया-देखकर; बालक-ठाम–शिशु के लक्षण; साक्षात्-साक्षात्; गोकुल-कान-गोकुल के भगवान् कृष्ण; वर्ण-मात्र-मात्र वर्ण; देखि-देखा; विपरीत–विपरीत।

अनुवाद

जब सीता ठाकुराणी अपने साथ अनेक खाने की वस्तुएँ, वस्त्र तथा अन्य उपहार लेकर शचीदेवी के घर आईं, तो वे नवजात शिशु को देखकर चकित हुईं, क्योंकि उन्हें लगा कि यह शिशु साक्षात् गोकुल के कृष्ण हैं, केवल रंग का अन्तर है।

तात्पर्य

पेटारी एक बड़ी डलिया है, जिसे एक बाँस के दोनों छोरों पर लटकाकर कंधे के ऊपर रखकर उठा लिया जाता है। जो व्यक्ति इस पेटारी को ले जाता है, वह भारी कहलाता है। सामान तथा बंडल

ले जाने की यह प्रथा आज भी भारत तथा अन्य पूर्वी देशों में चालू है। हमने अब भी जकार्ता, इण्डोनेशिया में इसका प्रचलन देखा है।

सर्व अङ्ग–सुनिर्माण, सुवर्ण-प्रतिमा-भान,

सर्व अङ्ग–सुलक्षणमय।

बालकेर दिव्य ज्योति, देखि' पाइल बहु प्रीति,

वात्सल्येते द्रविल हृदय॥ 116॥

सर्व अङ्ग–शरीर के विभिन्न अंग; सुनिर्माण–सुनिर्मित; सुवर्ण-सुवर्ण; प्रतिमा-रूप; भान-की भाँति; सर्व-सब; अङ्ग-शरीर के अंग; सुलक्षण-मय-शुभ चिह्नों से युक्त; बालकेर-शिशु की; दिव्य-दिव्य; ज्योति-ज्योति; देखि'–देखकर; पाइल-पाया; बहु-बहुत; प्रीति–सन्तोष; वात्सल्येते–वात्सल्य से; द्रविल-द्रवित होकर; हृदय-उनका हृदय।

अनुवाद

बालक के दिव्य शारीरिक तेज, शुभ लक्षणों से युक्त सुगठित अंगों तथा स्वर्ण जैसे स्वरूप को देखकर सीता ठाकुराणी अत्यधिक प्रसन्न थीं और अपने मातृस्नेह के कारण उन्हें लग रहा था मानो उनका हृदय द्रवित हो उठा है।

दुर्वा, धान्य, दिल शीर्षे, कैल बहु आशीषे,

चिरजीवी हओ दुइ भाइ।

डाकिनी-शाङ्खिनी हैते, शङ्का उपजिल चिते,

डरे नाम थुइल ‘निमाइ’ ॥117॥

दुर्वा-ताजी घास; धान्य-धान; दिल-दिया; शीर्षे–सिर पर; कैल-किया; बहु-बहुत; आशीषे-आशीर्वाद; चिर-जीवी–दीर्घायु; हओ-होओ; दुइ भाइ–दोनों भाई; डाकिनी-शाङ्घिनीभूत और चुडैल; हैते-से; शङ्का-शंका; उपजिल-उत्पन्न हुई; चिते-हृदय में; डरे-भय से; नाम-नाम; थुइल-रखा; निमाइ-चैतन्य महाप्रभु का जन्म का नाम निमाइ, जो नीम वृक्ष पर आधारित है।

अनुवाद

उन्होंने नवजात शिशु के सिर पर दूर्वादल तथा धान्य रखकर यह आशीष दिया “दीर्घायु हो।” किन्तु भूत-प्रेत तथा डायनों से भयभीत होने के कारण उन्होंने बालक का नाम निमाइ रख दिया।

तात्पर्य

डाकिनी तथा शाँखिनी शिवजी तथा उनकी पत्नी की दो संगिनियाँ हैं और इनके भूत-प्रेत योनि में जन्म होने के कारण ये अत्यन्त अशुभ मानी जाती हैं। ऐसा माना जाता है कि ये अशुभ प्राणी नीम के वृक्ष के निकट नहीं जा सकते। कम से कम औषधि की दृष्टि से यह स्वीकार किया गया है कि नीम की लकड़ी अत्यन्त प्रतिरोधी (ऐंटीसेप्टिक) है और पुराने जमाने में अपने घर के सामने नीम का पेड़ लगाने का प्रचलन था। भारत में बड़ी-बड़ी सड़कों के किनारे, विशेषतया उत्तरप्रदेश में, नीम के सैंकड़ों और हजारों वृक्ष मिलते हैं। नीम की लकड़ी इतनी ऐंटीसेप्टिक होती है कि आयुर्वेद में यह कुष्ठरोग को अच्छा करने के काम में लाई जाती है। आयुर्वेद विशारदों ने नीमवृक्ष के सत्त्व को निकाला है, जिसे मार्गोसिक अम्ल कहते हैं। नीम अनेक कार्यों में प्रयुक्त होती है, विशेषतया नीम के दातून से दाँत साफ किये जाते हैं। भारत के गाँवों में लोग नीम की टहनी इस

कार्य के लिए प्रयुक्त करते हैं। नीम वृक्ष के ऐंटीसेप्टिक गुणों एवं नीम वृक्ष के नीचे चैतन्य महाप्रभु का जन्म होने के कारण सीता ठाकुराणी ने उनका नाम निमाइ रखा। बाद में अपनी युवावस्था में वे निमाइ पण्डित के नाम से विख्यात हुए और आसपास के गाँवों में इसी नाम से जाने जाते थे, यद्यपि उनका असली नाम विश्वम्भर था।

पुत्रमाता-स्नानदिने, दिल वस्त्र विभुषणे,

पुत्र-सह मिशेरे सम्मानि' ।

शची-मिश्रेर पूजा लञा, मनेते हरिष हञा,

घरे आइला सीता ठाकुराणी ॥118॥

पुत्र-माता-माता और पुत्र का; स्नान-दिने-स्नान दिवस पर; दिल-दिया; वस्त्र-वस्त्र; विभूषणे-आभूषण; पुत्र-सह-शिशु के साथ; मिश्रेरे-जगन्नाथ मिश्र को; सम्मानि'–बधाई देकर; शची-शचीदेवी; मिश्रेर–जगन्नाथ मिश्र; पूजा–सम्मान; लञा-लेकर; मनेते-मन में; हरिष–प्रसन्न होकर; हञा-होकर; घरे–घर; आइला-लौटी; सीता ठाकुराणी-अद्वैत आचार्य की पत्नी माता सीता।

अनुवाद

जिस दिन माता तथा बालक ने स्नान किया और प्रसूति-घर को छोड़ा, उस दिन सीता ठाकुराणी ने उन्हें सभी तरह के गहने और वस्त्र दिये और जगन्नाथ मिश्र को भी सम्मानित किया। तत्पश्चात् सीता ठाकुराणी भी माता शचीदेवी और जगन्नाथ मिश्र द्वारा समादरित होकर अपने मन में अत्यधिक प्रसन्न हुईं और फिर अपने घर लौट आईं।

तात्पर्य

बालक के जन्म के पाँचवें दिन तथा नवें दिन भी माता को गंगा में या किसी अन्य तीर्थस्थान में स्नान कराया जाता है। यह निष्क्रामण अर्थात् प्रसूति गृह से बाहर आने का संस्कार है। आजकल अस्पताल ही प्रसूति गृह होती है, किन्तु पुराने जमाने में हर सम्मानित घर में प्रसूति के लिए एक कमरा सुरक्षित रखा जाता था, जहाँ बालक जन्म लेते थे और बालक के जन्म के नवें दिन बालक तथा माता को प्रसूति-गृह से निकालकर साधारण कमरों में ले जाया जाता था। इसे निष्क्रामण संस्कार कहते हैं। दस शुद्धिकरण संस्कारों में निष्क्रामण संस्कार भी एक है। पहले, विशेष रूप से बंगाल में, उच्च कुलों में बालक के जन्म के बाद चार महीने तक सूतक का पालन किया जाता था। चार महीने बाद माता को सूर्योदय का दर्शन करने दिया जाता था। बाद में उच्च वर्गों में (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जातियों में) यह अवधि घटाकर इक्कीस दिन कर दी गई और शूद्रों के लिए यह एक माह रखी गई। कर्ताभजा तथा सतीमा जातियों में माता तथा बच्चे का, सूतक-अवधि के तुरन्त बाद, शुद्धीकरण किया जाता था, जिसमें संकीर्तन में मिठाई के छोटे-छोटे टुकड़े (हरिनुट) फेंके जाते थे। सीता ठाकुराणी ने शचीमाता तथा बालक एवं जगन्नाथ मिश्र को सम्मानित किया। इसी प्रकार जब सीता ठाकुराणी घर लौटने लगीं, तो शचीमाता तथा जगन्नाथ मिश्र ने भी उनका सम्मान किया। बंगाल के सम्मानित परिवारों में ऐसी प्रथा थी।

ऐछे शची-जगन्नाथ, पुत्र पाञा लक्ष्मीनाथ,

पूर्ण हइल सकल वाञ्छित ।

धन-धान्ये भरे घर, लोकमान्य कलेवर,

दिने दिने हय आनन्दित ॥ 119॥

ऐछे-इस प्रकार; शची-जगन्नाथ-माता शचीदेवी तथा जगन्नाथ मिश्र; पुत्र-पुत्र; पाञा-पाकर; लक्ष्मी-नाथ–लक्ष्मी देवी के पति; पूर्ण–पूर्ण हो गई; हइल-हो गई; सकल-सब; वाञ्छित-इच्छाएँ; धन-धान्ये-धन-धान्य से; भरे घर-घर भर गया; लोक-मान्य कलेवर–सभी लोगों को प्यारा लगने वाला देह; दिने दिने-दिन-प्रतिदिन; हय–हुए; आनन्दित-आनन्दित।

अनुवाद

इस प्रकार लक्ष्मीपति को पुत्र रूप में पाकर माता शचीदेवी तथा जगन्नाथ मिश्र की सारी मनोकामनाएँ पूरी हो गईं। उनका घर सदैव धन-धान्य से भरा रहने लगा। वे ज्यों-ज्यों श्री चैतन्य के प्यारे शरीर को देखते, दिन-प्रतिदिन उनका आनन्द बढ़ता जाता था।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। अतएव हर व्यक्ति उन्हें सम्मान देता था। यहाँ तक कि स्वर्ग के निवासी भी सामान्य व्यक्तियों का वेश धारण करके महाप्रभु को नमस्कार करने आते थे। उनके पिता-माता जगन्नाथ मिश्र तथा शचीदेवी अपने दिव्य पुत्र का आदर देखकर मन ही मन पुलकित होते रहते थे।

मिश्र—वैष्णव, शान्त, अलम्पट, शुद्ध, दान्त,

धन-भोगे नाहि अभिमान।

पुत्रेर प्रभावे यत, धन आसि' मिले, तत,

विष्णु-प्रीते द्विजे देन दान ॥120॥

मिश्र-जगन्नाथ मिश्र; वैष्णव-वैष्णव, महान् भक्त; शान्त-शान्त; अलम्पट-सत्यनिष्ठ ; शुद्ध-शुद्ध; दान्त–नियंत्रित; धन-भोगे-भौतिक सुख-भोग के विषय में; नाहि-नहीं; अभिमान-इच्छा; पुत्रेर उनके पुत्र के प्रभावे-प्रभाव से; यत-सब; धन-धन; आसि-आता; मिले-वे पाते; तत-उतना अधिक; विष्णु-प्रीते-भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए; द्विजे-ब्राह्मणों को; देन-देते; दान-दान।

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र एक आदर्श वैष्णव थे। वे शान्त, इन्द्रियतृप्ति में संयमित, शुद्ध तथा संयमी थे। अतएव उनमें भौतिक ऐश्वर्य भोगने की कोई इच्छा नहीं थी। जो भी धन उनके दिव्य पुत्र के प्रभाव से आया, उसे उन्होंने विष्णु की तुष्टि के लिए ब्राह्मणों को दान में दे दिया।

लग्न गणि' हर्षमति, नीलाम्बर चक्रवर्ती,

गुप्ते किछु कहिल मिश्रेरे।

महापुरुषेर चिह्न, लग्ने अङ्गे भिन्न भिन्न, ।

देखि,—एइ तारिबे संसारे ॥121॥

लग्न गणि'-जन्म-समय की ज्योतिष-गणना से; हर्ष-मति-अत्यन्त प्रसन्न; नीलाम्बर चक्रवर्ती-नीलाम्बर चक्रवर्ती; गुप्ते-गुप्त रूप से; किछु-कुछ; कहिल-कहा; मिश्रेरे-जगन्नाथ मिश्र को; महा-पुरुषेर चिह्न-महापुरुष के सारे लक्षण; लग्ने-जन्म लग्न में; अङ्गे–शरीर पर; भिन्न भिन्न-भिन्न भिन्न; देखि-मैं देखता हूँ; एइ–यह शिशु; तारिबे-तार देगा; संसारे–तीनों भुवनों को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जन्मघड़ी की गणना करके नीलाम्बर चक्रवर्ती ने जगन्नाथ मिश्र से एकान्त में कहा कि उन्होंने बालक के शरीर तथा जन्मघड़ी दोनों में ही महान् व्यक्ति के विभिन्न लक्षण देखे हैं। इस प्रकार वे समझ गये कि यह बालक भविष्य में तीनों लोकों का उद्धार करेगा।

ऐछे प्रभु शची-घरे, कृपाय कैल अवतारे,

येइ इहा करये श्रवण।

गौर-प्रभु दयामय, ताँरे हयेन सदय,

सेइ पाय ताँहार चरण ॥122॥

ऐछे-इस प्रकार; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; शची-घरे–शचीदेवी के घर में; कृपाय-अपनी अहैतुकी कृपा से; कैल–किया; अवतारे-अवतार; येइ-जो कोई; इहा-यह; करये-करता है; श्रवण-सुनना; गौर-प्रभु-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; दया-मय-अत्यन्त कृपालु; ताँरे–उस पर; हयेन-हो जाते हैं; स-दय–दयालु; सेइ-वह व्यक्ति; पाय-पाता है; ताँहार-उनके; चरण-चरणकमल।

अनुवाद

इस तरह चैतन्य महाप्रभु अपनी अहैतुकी कृपावश शचीदेवी के घर में अवतरित हुए। चैतन्य महाप्रभु उस किसी भी व्यक्ति पर अत्यन्त कृपालु होते हैं, जो उनके जन्म के इस वृत्तान्त को सुनता है। ऐसा मनुष्य महाप्रभु के चरणकमलों को प्राप्त करता है।

पाइया मानुष जन्म, ये ना शुने गौर-गुण,

हेन जन्म तार व्यर्थ हैल।

पाइया अमृतधुनी, पिये विष-गर्त-पानि,

जन्मिया से केने नाहि मैल ॥123॥

पाइया मानुष जन्म-जिस किसी के मानव-जन्म पाया है; ये-जो; ना-नहीं; शुने-सुनता; गौर-गुण-भगवान् चैतन्य महाप्रभु के गुण; हेन जन्म-ऐसा जन्म; तार-उसका; व्यर्थ हैल-व्यर्थ हो जाता है; पाइया-अवसर पाकर; अमृतधुनी-अमृत-नदी; पिये-पीता है; विष-गर्त-पानि–भौतिक सुख के विषैले गड्ढे का पानी; जन्मिया-मानव जन्म लेकर; से-वह; केने-क्यों; नाहि-नहीं; मैल-मरा।

अनुवाद

जो व्यक्ति मनुष्य का शरीर पाकर भी श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय को ग्रहण नहीं करता, वह अपने सुअवसर को खो देता है। अमृतधुनी भक्तिरूपी अमृत की प्रवाहमान नदी है। यदि मनुष्य शरीर पाकर कोई ऐसी नदी का जल पीने के बदले भौतिक सुख रूपी विषैले गड्ढे का जल पीता है, तो अच्छा यही होता कि वह जीवित रहने के बजाय बहुत पहले ही मर गया होता।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वती ने चैतन्य-चन्द्रामृत नामक ग्रंथ (37, 36, 34) में निम्नलिखित श्लोकों की रचना की है :

अचैतन्यमिदं विश्व यदि चैतन्यमीश्वरम् ।

न विदुः सर्वशास्त्रज्ञा ह्यपि भ्राम्यन्ति ते जनाः ॥

"यह भौतिक संसार कृष्णभावनामृतविहीन है। श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् कृष्णभावनामृत हैं। अतएव यदि कोई विद्वान या विज्ञानी श्री चैतन्य महाप्रभु को नहीं समझता, तो समझिये कि वह इस जगत् में व्यर्थ भटक रहा है।"

प्रसारितमहाप्रेमपियूषरससागरे ।

चैतन्यचन्द्र प्रकटे यो दीनो दीन एव सः ॥

"जो व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय के उफनते भक्तिरूपी अमृत का लाभ नहीं उठाता, वह निश्चित रूप से सर्वाधिक दरिद्र है।"

अवतीर्णे गौरचन्द्रे विस्तीर्णे प्रेमसागरे ।

सुप्रकाशित-रत्नौघे यो दीनो दीन एव सः ॥

"श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतरण अमृत के विस्तीर्ण सागर के समान है। जो व्यक्ति इस सागर के भीतर से बहुमूल्य रत्न नहीं बीनता, वह निश्चय ही दरिद्रों में अति दरिद्र है।"

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत (2.3.19, 20, 23) में कहा गया है :

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ।

न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये

न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।

जिह्वासती दादुरिकेव सूत

न चोपगायत्युरुगायगाथा: ॥

जीवञ्छवो भागवताङ्किणं

न जातु मर्योऽभिलभेत यस्तु ।

श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः

श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥

“जिस व्यक्ति का कृष्णभावना से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह तथाकथित मानव-समाज में कितना ही महान् पुरुष क्यों न हो, वस्तुतः वह एक बड़े पशु से अधिक कुछ नहीं है। ऐसे बड़े-बड़े पशुओं की प्रशंसा सामान्यतया कुत्ते, सुअर, ऊँट तथा गधे जैसे अन्य पशु करते हैं। जो व्यक्ति अपने कानों से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में श्रवण नहीं करता, उसके कान के छेद किसी खेत में बने बिल के समान मानने चाहिए। यद्यपि ऐसे पुरुष की जीभ होती है, किन्तु यह उस मेढ़क की जीभ के समान होती है, जो व्यर्थ ही टर्र-टर्र की आवाज करके मृत्युरूपी सर्प को आमन्त्रित करती है। इसी तरह जो व्यक्ति न तो महान् भक्तों के चरणकमलों की धूलि से लाभ उठाता है, न ही भगवान् के चरणकमलों पर चढ़ी तुलसी की पत्तियों को सँघता है, उसे जीवित होते हुए भी मृतक समझ लेना चाहिए।”

इसी तरह श्रीमद्भागवत में अन्यत्र (10.1.4) कहा गया है :

निवृत्ततरुपगीयमानाद्

भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।

क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्

पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥

“जीव या आत्मा के हत्यारे को छोड़कर ऐसा कौन है, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की महिमा का श्रवण नहीं करना चाहेगा? ऐसी महिमा का आनन्द इस भौतिक जगत् के कल्मष से मुक्त पुरुषों द्वारा ही भोगा जाता है।”

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में अन्यत्र (3.23.56) कहा गया है-न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः–“यद्यपि मनुष्य जीवित प्रतीत होता है, किन्तु यदि वह महान् भक्तों के चरणकमलों की सेवा नहीं करता, तो उसे मृतक ही समझना चाहिए।”

श्री-चैतन्य-नित्यानन्द, आचार्य अद्वैतचन्द्र,

स्वरूप-रूप-रघुनाथदास ।

इँहा-सबार श्री-चरण, शिरे वन्दि निज-धन,

जन्म-लीला गाइल कृष्णदास ॥124॥

श्री-चैतन्य-नित्यानन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु; आचार्य अद्वैतचन्द्र-आचार्य श्री अद्वैतचन्द्र; स्वरूप-रूप-रघुनाथदास-स्वरूप दामोदर, रूप गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामी; इँहा-सबार-उन सबके; श्री-चरण-चरणकमल; शिरे–सिर पर; वन्दि-सम्मान देकर; निज-धन–निजी सम्पत्ति; जन्म-लीला-जन्म की लीला; गाइल-गाया; कृष्णदास-कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

मैंने, कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने, श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु, आचार्य अद्वैतचन्द्र, स्वरूप दामोदर, रूप गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामी के चरणकमलों को अपनी सम्पत्ति समझकर अपने सिर पर धारण करके श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का वर्णन किया है।

तात्पर्य

कृष्णदास कविराज गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत प्रभु, स्वरूप दामोदर, रूप गोस्वामी, रघुनाथ दास तथा उनके अनुगामियों को मानते हैं। जो भी कविराज गोस्वामी के चरणचिह्नों का अनुसरण करता है, वह भी उपर्युक्त प्रभुओं के चरणकमलों को अपनी निजी सम्पत्ति मानता है। भौतिकतावादी व्यक्ति के लिए भौतिक सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य केवल माया हैं। वस्तुतः वे सम्पत्ति नहीं बल्कि बन्धन हैं, क्योंकि भौतिक जगत् के भोग द्वारा बद्धजीव वर्तमान भोग के लिए ऋणी होकर अधिकाधिक उलझता जाता है। दुर्भाग्यवश बद्धजीव उस सम्पत्ति को, जिसके लिए वह ऋणी है, उसे वह अपनी मानता है और ऐसी सम्पत्ति को अर्जित करने में व्यस्त रहता है। किन्तु एक भक्त ऐसी सम्पत्ति को असली न मानकर भौतिक जगत् का बन्धन मानता है। यदि किसी भक्त पर भगवान् कृष्ण अत्यधिक प्रसन्न हो जाते हैं, तो वे उसकी सारी भौतिक सम्पत्ति छीन लेते हैं, जैसाकि श्रीमद्भागवत (10.88.8) में भगवान् कृष्ण कहते हैं- यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः-भक्त पर विशेष कृपा दिखलाने के लिए मैं उसकी सारी भौतिक सम्पत्ति छीन लेता हूँ।" इसी प्रकार नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं :

धन मोर नित्यानन्द,

राधाकृष्णश्रीचरण

सेइ मोर प्राणधन।

“मेरा असली धन तो नित्यानन्द प्रभु तथा श्री राधा और कृष्ण के चरणकमल हैं।” वे और आगे कहते हैं, “हे प्रभु, मुझे यह ऐश्वर्य प्रदान करें। मैं तो आपके चरणकमलों को ही अपनी सम्पत्ति के रूप में चाहता हूँ, और कुछ भी नहीं चाहता।” श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने कई स्थानों पर कहा है कि उनकी असली सम्पत्ति तो राधा तथा कृष्ण के चरणकमल हैं। दुर्भाग्यवश हम लोग नकली सम्पत्ति में रुचि दिखलाते हैं और अपनी असली सम्पत्ति की ओर ध्यान नहीं देते (अधने यतन करिधन तेयागिनु)।

कभी-कभी स्मार्त लोग रघुनाथ दास गोस्वामी को शूद्र मानते हैं। किन्तु कृष्णदास कविराज गोस्वामी यहाँ विशेष रूप से उल्लेख करते हैं-स्वरूपरूपरघुनाथदास। अतएव जो व्यक्ति रघुनाथ दास के चरणकमलों को जाति प्रथा के समस्त विभागों से परे मानता है, वह असली आध्यात्मिक आनन्द पाता है।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के तेरहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त–तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतरण का वर्णन हुआ है।

अध्याय चौदह

श्री चैतन्य महाप्रभु की बाल-लीलाएँ

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इस अध्याय का सारांश अपने ग्रंथ अमृत-प्रवाह-भाष्य में इस प्रकार दिया है : "चैतन्य-चरितामृत के इस चौदहवें अध्याय में इस दृश्य का वर्णन है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने किस तरह घुटने के बल सरकने, रोने, मिट्टी खाने, अपनी माता को बुद्धि देने, ब्राह्मण अतिथि पर कृपा करने, दो चोरों के कंधों पर चढ़कर उन्हें भ्रमित करके अपने ही घर पहुँचाने और बीमारी का बहाना करके एकादशी के दिन हिरण्य तथा जगदीश के घर प्रसाद ग्रहण करने की बाल-लीलाओं का आनन्द उठाया। इसी अध्याय में इसका भी वर्णन है कि वे किस तरह शरारतें करते थे, माता के बेहोश हो जाने पर किस तरह अपने सिर पर उठाकर उनके लिए नारियल लाये, किस तरह गंगा के तट पर हमउम्र लड़कियों के साथ उन्होंने परिहास किया, किस तरह लक्ष्मीदेवी से पूजा सामग्री स्वीकार की, किस तरह कूड़े के ढेर पर बैठकर अपनी माता को दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया और फिर किस तरह माता के कहने पर वहाँ से चले गये, और किस तरह वे अपने पिता के साथ लाड़-भरा व्यवहार करते थे।"

कथञ्चन स्मृते यस्मिन्दुष्करं सुकरं भवेत् ।

विस्मृते विपरीतं स्यात् श्री-चैतन्यं नमामि तम् ॥1॥

कथञ्चन-किसी भी प्रकार; स्मृते स्मरण करके; यस्मिन्-जिनको; दुष्करम्-दुष्कर बातें अथवा कार्य; सुकरम्-सुगम; भवेत् हो जाते हैं; विस्मृते-उनको भूलने से; विपरीतम्-विपरीत; स्यात्-हो जाते हैं; श्री-चैतन्यम्-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को; नमामि-मैं सादर प्रणाम करता हूँ; तम्-उनको।

अनुवाद

यदि कोई चैतन्य महाप्रभु का किसी भी प्रकार से स्मरण करता है, तो उसका कठिन कार्य सरल हो जाता है। किन्तु यदि उनका स्मरण नहीं किया जाता, तो सरल कार्य भी बड़ा कठिन बन जाता है। ऐसे चैतन्य महाप्रभु को मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य

श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती अपने ग्रन्थ चैतन्य-चन्द्रामृत में कहते हैं, "महाप्रभु की रंचमात्र भी कृपा होने से मनुष्य इतना महान् बन जाता है कि उसे ऐसे मोक्ष की भी परवाह नहीं रह जाती, जिसे अनेक विद्वान तथा ज्ञानी खोजते रहते हैं। इसी तरह भगवान् चैतन्य का एक भक्त स्वर्गलोक में निवास करने को मायाजाल मानता है। वह योगशक्ति की सिद्धि को पार कर जाता है, क्योंकि उसके लिए इन्द्रियाँ विषदन्तरहित सर्प जैसी होती हैं।" सर्प अपने विषैले दाँतों के कारण अत्यन्त भयावना तथा घातक जीव होता है, किन्तु यदि ये दाँत तोड़ दिये जाते हैं, तो भय का कोई कारण नहीं रहता। योग के नियम इन्द्रियों को वश में करने के लिए हैं, किन्तु जो व्यक्ति भगवान् की सेवा में लगा रहता है, उसके लिए इन्द्रियाँ विषैले साँपों के समान भयानक नहीं रह जातीं। ये ही श्री चैतन्य महाप्रभु के उपहार हैं।

हरिभक्तिविलास से पुष्टि होती है कि यदि श्री चैतन्य महाप्रभु का स्मरण किया जाए, तो कठिन कार्य सरल हो जाता है और उन्हें भुलाने पर आसान काम भी दुष्कर बन जाते हैं। हम वास्तव में देखते हैं कि जनता की दृष्टि में जो बहुत बड़े विज्ञानी हैं, वे भी इस सरल बात को नहीं समझ सकते कि जीवन की उत्पत्ति जीवन से होती है, क्योंकि उन्हें चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त नहीं है। वे इस गलत धारणा का बचाव करते हैं कि जीवन की उत्पत्ति पदार्थ से होती है, यद्यपि वे इसे सिद्ध नहीं कर पाते। इसीलिए इसी झूठे वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आगे बढ़ रही आधुनिक सभ्यता तथाकथित विज्ञानियों के लिए अनेक समस्याओं को जन्म दे रही है।

चैतन्य-चरितामृत के रचयिता महाप्रभु की बाल लीलाओं का वर्णन करने के लिए उनकी शरण में जाते हैं, क्योंकि ऐसा दिव्य साहित्य मानसिक चिन्तन द्वारा नहीं लिखा जा सकता। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में लिखने वाले को भगवान् की विशेष कृपा चाहिए। केवल शैक्षिक योग्यताओं से ऐसा साहित्य नहीं लिखा जा सकता।

जय जय श्री-चैतन्य, जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैतचन्द्र, जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द– नित्यानन्द प्रभु की; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय हो; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द– भगवान् के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु, श्री अद्वैत प्रभु तथा चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

प्रभुर कहिल एइ जन्मलीला-सूत्र ।

यशोदा-नन्दन यैछे हैल शची-पुत्र ॥ 3॥

प्रभुर–महाप्रभु की; कहिल-मैंने कही हैं; एइ-इस प्रकार; जन्म-लीला-जन्म की लीलाएँ; सूत्र-सार रूप में; यशोदा-नन्दन-यशोदा माता के पुत्र की; यैछे-जिस प्रकार; हैल-हो गए; शची-पुत्र-माता शची के पुत्र।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव को संक्षेप में सूत्रबद्ध किया है, जो शचीमाता के पुत्र के रूप में उसी तरह प्रकट हुए जिस तरह माता यशोदा के पुत्र रूप में श्रीकृष्ण प्रकट हुए थे।

तात्पर्य

श्रील नरोत्तम दास ठाकुर इस कथन की पुष्टि करते हैं कि यशोदा के पुत्र भगवान् कृष्ण अब पुनः शचीमाता के पुत्र बनकर चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए हैं। (व्रजेन्द्रनन्दन येइ, शचीसुत हैल सेइ) शचीपुत्र और कोई नहीं बल्कि माता यशोदा तथा नन्द महाराज के पुत्र हैं और नित्यानन्द प्रभु वही बलराम हैं (बलराम हइल निताइ)।

सङ्क्षेपे कहिल जन्मलीला-अनुक्रम ।

एबे कहि बाल्यलीला-सूत्रेर गणन ॥4॥

सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिल-मैंने कही हैं; जन्म-लीला-जन्म की लीलाएँ; अनुक्रम-अनुक्रम से; एबे-अब; कहि-मैं कदूँगा; बाल्य-लीला-बाल लीलाएँ; सूत्रेर-रूप रेखा; गणन-गिनती।

अनुवाद

मैं उनके जन्म की लीलाओं का क्रमबद्ध वर्णन पहले ही कर चुका हूँ। अब मैं उनकी बाल्यकाल की लीलाओं को संक्षेप में बताऊँगा।

वन्दे चैतन्य-कृष्णस्य बाल्य-लीलां मनो-हराम् ।

लौकिकीमपि तामीश-चेष्टया वलितान्तराम् ॥5॥

वन्दे-मैं पूजा करता हूँ; चैतन्य-कृष्णस्य-चैतन्य महाप्रभु की, जो स्वयं कृष्ण हैं; बाल्य-लीला-बाल्य लीलाएँ; मनः-हराम्-जो इतनी मनोहर हैं; लौकिकीम्-साधारण लगने वाली; अपि यद्यपि; ताम्-उनको; भगवत्-चेष्टया-ईश्वर के प्राकट्य से; वलित-अन्तराम्-बिल्कुल उचित यद्यपि वे इससे भिन्न प्रकट होती हैं।

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु की बाल-लीलाओं को सादर नमस्कार करता हूँ, जो स्वयं भगवान् कृष्ण हैं। यद्यपि ऐसी लीलाएँ सामान्य बालक के कार्यकलाप के समान लगती हैं, किन्तु उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की विविध लीलाओं के रूप में समझा जाना चाहिए।

तात्पर्य

भगवद्गीता (9.11) में इस कथन की पुष्टि इस प्रकार हुई है :

अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम् ।

परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

"जब मैं मनुष्य रूप में अवतरित होता हूँ, तब मूर्ख लोग मेरा उपहास करते हैं। वे मेरे दिव्य स्वभाव को तथा मेरे परम ईश्वरत्व को नहीं जानते।" पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् इस लोक में अथवा इस ब्रह्माण्ड के भीतर अपनी लीलाएँ सम्पन्न करने के लिए सामान्य मनुष्य या बालक के रूप में प्रकट होते हैं। फिर भी वे भगवान् के रूप में अपनी श्रेष्ठता बनाये रखते हैं। भगवान् कृष्ण मानव बालक के रूप में प्रकट हुए, किन्तु उनके बाल्यकाल में भी उनके असाधारण कार्यकलाप–यथा पूतना राक्षसी को मारना या गोवर्धन पर्वत को उठाना-सामान्य बालक के कार्य नहीं हैं। इसी प्रकार भगवान् चैतन्य की लीलाएँ, जिनका वर्णन आगे किया जायेगा, एक छोटे बालक के कार्यकलापों जैसी लगती हैं, किन्तु वे ऐसी असाधारण लीलाएँ हैं, जो सामान्य बालक की शक्ति के बाहर हैं।

बाल्य-लीलाय आगे प्रभुर उत्तान शयन।

पिता-माताय देखाइल चिह्न चरण ॥ 6 ॥

बाल्य-लीलाय-बाल्य लीलाओं में; आगे-सर्वप्रथम; प्रभुर–महाप्रभु की; उत्तान-करवट लेना; शयन-लेटे हुए; पिता-माताय–माता पिता को; देखाइल दिखाया; चिह्न-चिह्न; चरण-चरणकमल के।

अनुवाद

अपनी पहली बाल-लीलाओं में महाप्रभु अपने बिस्तर पर लेटे लेटे ऊपर से नीचे की ओर पलट गये और इस तरह उन्होंने अपने माता-पिता को अपने चरणकमलों के चिह्न दिखलाये।

तात्पर्य

ऊपर मुख किए हुए बिस्तर पर लेटने को या पीठ के बल लेटने के लिए भी उत्तान शब्द का प्रयोग किया जाता है। कुछ पुस्तकों में उत्थान पाठ मिलता है, जिसका अर्थ है "उठ खड़ा होना।" महाप्रभु अपनी बाल-लीलाओं में दीवाल पकड़कर खड़े होने का प्रयत्न करते थे, लेकिन जिस तरह सामान्य बालक गिर पड़ता है, उसी तरह महाप्रभु भी गिर पड़े और पुनः अपने बिस्तर पर जा लेटे।

गृहे दुइ जन देखि लघुपद-चिह्न ।

ताहे शोभे ध्वज, वज्र, शङ्ख, चक्र, मीन ॥7॥

गृहे–घर पर; दुइ जन-माता और पिता दोनों ने; देखि-देखकर; लघु-पद-चिह्न-चरणकमल के चिह्न, जो उस समय बहुत छोटे थे; ताहे-उनमें; शोभे–जो सुन्दर रूप से; ध्वज-ध्वज; वज्र-वज्र; शङ्ख-शंख, चक्र-चक्र; मीन-मछली।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने चलने का प्रयास किया, तो उनके पाँव की छोटी छोटी छाप में भगवान् विष्णु के विशिष्ट चिह्न-ध्वज, वज्र, शंख, चक्र तथा मछली-दिखलाई पड़े।

देखिया दोंहार चित्ते जन्मिल विस्मय ।

कार पद-चिह्न घरे, ना पाय निश्चय ॥8॥

देखिया-ये सभी चिह्न देखकर; दोंहार-माता-पिता के, शची माता और जगन्नाथ मिश्र के; चित्ते-उनके हृदय में; जन्मिल-था; विस्मय-आश्चर्य; कार–जिनके; पद-चिह्न-पद चिह्न; घरे–घर पर; ना-नहीं; पाय-पाना; निश्चय-निश्चय।

अनुवाद

इन सारी छाप को देखकर न तो उनके पिता, न ही माता समझ पाये कि पाँवों की ये छाप किसकी हैं। इस प्रकार विस्मित होकर वे यह निश्चय नहीं कर पाये कि उनके घर में ये चिह्न कैसे आये।

मिश्र कहे,—बालगोपाल आछे शिला-सङ्गे।

तेंहो मूर्ति हञा घरे खेले, जानि, रङ्गे ॥9॥

मिश्र कहे-जगन्नाथ मिश्र ने कहा; बाल-गोपाल–भगवान् कृष्ण शिशु रूप में; आछे-हैं; शिला-सड़े-शालग्राम शिला के साथ; तेंहो-वे; मूर्ति हञा-अपना दिव्य रूप लेकर; घरे–कमरे में; खेले-खेलते हैं; जानि-मैं समझता हूँ; रङ्गे–उत्साह में।

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने कहा, "निश्चय ही बाल कृष्ण शालग्राम-शिला के साथ हैं। वे अपना बालरूप धारण करके कमरे के भीतर खेल रहे हैं।"

तात्पर्य

जब भगवान् का स्वरूप काठ, पत्थर या अन्य पदार्थ से बना होता है, तो यह समझना चाहिए कि यहाँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उपस्थित हैं। हम तर्क से भी समझ सकते हैं कि सारे भौतिक तत्त्व भगवान् की शक्ति के विस्तार हैं। चूँकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति उनके साकार रूप से अभिन्न होती है, अतएव भगवान् सदैव अपनी शक्ति में विद्यमान रहते हैं और वे भक्त की प्रबल इच्छा के फलस्वरूप अपने आपको प्रकट करते हैं। चूँकि भगवान् सर्वशक्तिमान हैं, अतएव यह तर्कसंगत ही है कि वे अपनी शक्ति से अपने आपको प्रकट कर सकते हैं। अर्चाविग्रह की पूजा या

शालग्राम-शिला की पूजा मूर्ति-पूजा नहीं है। शुद्ध भक्त के घर में भगवान् का अर्चाविग्रह भगवान् के मूल दिव्य स्वरूप की तरह कार्य कर सकता है।

सेइ क्षणे जागि' निमाई करये क्रन्दन ।

अङ्के लञा शची तारे पियाइल स्तन ॥10॥

सेइ क्षणे-तत्क्षण; जागि'-जागकर; निमाइ–निमाइ नामक भगवान्; करये-करते हैं; क्रन्दन-रोना; अङ्के–गोद में; लञा-लेकर; शची–माता शची; तारे–उनको; पियाइल-पिलाया; स्तन–स्तनपान।

अनुवाद

जब माता शची तथा जगन्नाथ मिश्र बातें कर रहे थे, तब बालक निमाइ जग गया और रोने लगा। माता शची ने उसे गोद में उठा लिया और अपने स्तन से दूध पिलाने लगीं।

स्तन पियाइते पुत्रेर चरण देखिल ।

सेइ चिह्न पाये देखि' मिश्रे बोलाइल ॥11॥

स्तन-उनको स्तन; पियाइते-पान करवाते हुए; पुत्रेर–अपने पुत्र के; चरण-चरणकमल; देखिल-देखे; सेइ-वहीं; चिह्न-चिह्न; पाये तलवे पर; देखि'–देखकर; मिश्रे–जगन्नाथ मिश्र; बोलाइल–बुलाया।

अनुवाद

जब माता शची बालक को स्तनपान करवा रही थीं, तब उन्होंने अपने पुत्र के चरणकमल में वे सारे चिह्न देखें, जो उन्हें कमरे के फर्श पर दिखे थे। तब उन्होंने जगन्नाथ मिश्र को बुलाया।

देखिया मिश्रेर हइल आनन्दित मति ।

गुप्ते बोलाइल नीलाम्बर चक्रवर्ती ॥12॥

देखिया-देखकर; मिश्रेर–जगन्नाथ मिश्र का; हइल-हो गया; आनन्दित-आनन्दित; मति–बुद्धि; गुप्ते-गुप्त रूप से; बोलाइल-बुलाया; नीलाम्बर चक्रवर्ती–नीलाम्बर चक्रवर्ती।

अनुवाद

जब जगन्नाथ मिश्र ने अपने पुत्र के तलवे पर ये अद्भुत चिह्न देखे, तो वे अत्यन्त पुलकित हुए और चुपके से उन्होंने नीलाम्बर चक्रवर्ती को बुलावा भेजा।

चिह्न देखि' चक्रवर्ती बलेन हासिया ।

लग्न गणि' पूर्वे आमि राखियाछि लिखिया ॥ 13॥

चिह्न देखि'–चिह्न देखकर; चक्रवर्ती-नीलाम्बर चक्रवर्ती; बलेन-कहने लगे; हासिया–मुस्कुराकर; लग्न गणि'–जन्म लग्न की ज्योतिष गणना से; पूर्वे-पहले; आमि-मैं; राखियाछि-रखा है; लिखिया-ये सब बातें लिखकर।

अनुवाद

जब नीलाम्बर चक्रवर्ती ने ये चिह्न देखे, तो हँसते हुए उन्होंने कहा, "मैंने पहले ही नक्षत्र-गणना से इसे निश्चित कर लिया था और लिख भी लिया था।"

बत्रिश लक्षण–महापुरुष-भूषण ।

एइ शिशु अङ्गे देखि से सब लक्षण ॥14॥

बत्रिश-बत्तीस; लक्षण-लक्षण; महा-पुरुष–महापुरुष; भूषण-आभूषण; एइ शिशु-यह शिशु; अङ्गे–शरीर पर; देखि-मैं देखता हूँ; से उन्हें; सब-सब; लक्षण-लक्षणों को।

अनुवाद

“बत्तीस लक्षणों से महापुरुष का बोध होता है और मैं इस बालक के शरीर में इन सारे लक्षणों को देख रहा हूँ।”

पञ्च-दीर्घः पञ्च-सूक्ष्मः सप्त-रक्तः षड्-उन्नतः ।

त्रि-ह्रस्व-पृथु-गम्भीरो द्वात्रिंशल्लक्षणो महान् ॥15॥

पञ्च-दीर्घः–पाँच दीर्घ; पञ्च-सूक्ष्मः–पाँच सूक्ष्म; सप्त-रक्तः-सात लाल; षट्-उन्नतः-छः उन्नत; त्रि-ह्रस्व-तीन छोटे; पृथु-तीन चौड़े; गम्भीरः-तीन गम्भीर; द्वा-त्रिंशत्-इस प्रकार बत्तीस; लक्षणः-लक्षण; महान्–महापुरुष के।

अनुवाद

“महापुरुष के शरीर में 32 लक्षण होते हैं-उसके शरीर के पाँच अंग बड़े, पाँच सूक्ष्म, सात लाल रंग के, छह उठे हुए, तीन छोटे, तीन चौड़े तथा तीन गहरे (गम्भीर) होते हैं।'

तात्पर्य

पाँच बड़े अंग हैं—नाक, बाँहें, ठुड्डी, आँखें तथा घुटने। पाँच सूक्ष्म अंग हैं-चमड़ी, अंगुली के छाप, दाँत, शरीर के रोएँ तथा सिर के बाल। सात लाल रंग वाले अंग हैं-आँखे, तलवे, हथेलियाँ, तालू, नाखून तथा ऊपर और नीचे के होंठ। छह उठे हुए अंग हैं-वक्षस्थल, कंधे, नाखून, नाक, कमर तथा मुँह। तीन छोटे अंग हैं-गर्दन, जाँघ तथा शिश्न (लिंग)। तीन चौड़े अंग हैं-कमर, ललाट तथा वक्षस्थल और तीन गहरे अंग हैं-नाभि, वाणी तथा प्राण। ये कुल बत्तीस लक्षण महापुरुष के हैं। यह उद्धरण सामुद्रिक से है।

नारायणेर चिह्न-मुक्त श्री-हस्त चरण ।

एइ शिशु सर्व लोके करिबे तारण ॥ 16 ॥

नारायणेर-भगवान् नारायण के; चिह्न-मुक्त-चिह्नों से युक्त; श्री-हस्त चरण-हथेली और तला; एइ–यह; शिशु-शिशु; सर्व लोके–तीनों लोकों का; करिबे-करेगा; तारण-उद्धार।

अनुवाद

इस बालक की हथेलियों तथा तलवों में भगवान् नारायण के सारे लक्षण (चिह्न) हैं। यह तीनों लोकों का उद्धार करने में समर्थ होगा।

एइ त' करिबे वैष्णव-धर्मेर प्रचार ।

इहा हैते हबे दुइ कुलेर निस्तार ॥ 17॥

एइ त'-यह शिशु; करिबे-करेगा; वैष्णव-वैष्णव धर्म या भक्ति; धर्मेर–धर्म का; प्रचार–प्रचार; इहा हैते–इससे; हबे-होगा; दुइ-दो; कुलेर-कुलों का; निस्तार-उद्धार।

अनुवाद

“यह बालक वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार करेगा और अपने मातृ तथा पितृ दोनों कुलों का उद्धार करेगा।”

तात्पर्य

केवल साक्षात् नारायण या उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि के बिना वैष्णव सम्प्रदाय या भक्ति का प्रचार अन्य कोई नहीं कर सकता। जब कोई वैष्णव जन्म लेता है, तो वह एकसाथ अपने माता तथा पिता दोनों के कुलों का उद्धार करता है।

महोत्सव कर, सब बोलाह ब्राह्मण ।

आजि दिन भाल,—करिब नाम-करण ॥18॥

महोत्सव–महोत्सव; कर-मनाना; सब-सब; बोलाह-आमंत्रित करो; ब्राह्मण-ब्राह्मण; आजि-आज; दिन-दिन; भाल-शुभ; करिब–मैं करूँगा; नाम-करण-नामकरण संस्कार।

अनुवाद

मैं नामकरण संस्कार करना चाहता हूँ। हम उत्सव मनायें और ब्राह्मणों को बुलायें, क्योंकि आज का दिन अत्यन्त शुभ है।

तात्पर्य

यह वैदिक नियम है कि नारायण तथा ब्राह्मणों के सम्बन्ध में उत्सव मनाया जाए। बच्चे का नामकरण संस्कार दशविध संस्कारों में से एक है। ऐसे उत्सव के दिन नारायण की पूजा करनी चाहिए और विशेषत: ब्राह्मणों को प्रसाद बाँटना चाहिए।

जिस दिन नीलाम्बर चक्रवर्ती, शचीमाता तथा जगन्नाथ मिश्र ने महाप्रभु के चरणकमलों में अंकित चिह्नों को पहचाना था, तभी वे समझ गये थे कि बालक निमाइ कोई सामान्य बालक नहीं है, अपितु नारायण का अवतार है। अतएव उसी दिन उन्होंने निश्चय किया कि आज का यह दिन शुभ होगा, अतएव नामकरण-संस्कार सम्पन्न होना चाहिए। इस सम्बन्ध में हम यह देख सकते हैं कि किस प्रकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अवतार को उनके शारीरिक चिह्नों, उनके कार्यकलापों तथा शास्त्रों की भविष्यवाणी के अनुसार सुनिश्चित किया जाता है। किसी व्यक्ति को प्रमाणों के आधार पर ईश्वर का अवतार माना जा सकता है, किन्तु धूर्ती तथा मूर्खा के मतों से या मनमाने तरीके से नहीं। श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के बाद बंगाल में अनेक नकली अवतार होते रहे हैं, किन्तु कोई भी निष्पक्ष भक्त या विद्वान यह समझ सकता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण के अवतार के रूप में जनमत से नहीं, अपितु शास्त्रों तथा विद्वानों के प्रमाण के अनुसार स्वीकार किया गया। जिन्होंने चैतन्य महाप्रभु को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार किया, वे सामान्य व्यक्ति न थे। प्रारम्भ में उनकी पहचान नीलाम्बर चक्रवर्ती जैसे प्रकाण्ड विद्वानों द्वारा की गई और बाद में उनके कार्यकलापों की पुष्टि छ: गोस्वामियों द्वारा–विशेषतया श्रील जीव गोस्वामी तथा श्रील रूप गोस्वामी द्वारा और शास्त्रों के प्रमाण के आधार पर अनेक विद्वानों द्वारा की गई थी। ईश्वर का अवतार जीवन के प्रारम्भ से ही वैसा होता है। ऐसा नहीं है कि कोई ध्यान करने से एकाएक ईश्वर का अवतार बन जाता हो। ऐसे झूठे अवतार मूर्खा तथा धूर्तों के लिए होते हैं, समझदार पुरुषों के लिए नहीं।

सर्व-लोकेर करिबे इहँ धारण, पोषण ।

‘विश्वम्भर’ नाम इहार,—एइ त कारण ॥19॥

सर्व-लोकेर-सब लोगों का; करिबे-करेगा; इहँ–यह शिशु; धारण-संरक्षण; पोषण-पोषण; विश्वम्भर-विश्वम्भर; नाम-नाम; इहार-इसका; एइ-यह; त’–निश्चित रूप से; कारण-कारण।

अनुवाद

"यह बालक भविष्य में सारे जगत् की रक्षा और पालन करेगा। इसलिए इसे विश्वम्भर नाम से पुकारा जायेगा।"

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत से भी पुष्टि होती है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने जन्म से ही सारे जगत् को शान्तिमय बनाया, जिस प्रकार भूतकाल में नारायण ने अपने वराह अवतार से इस पृथ्वी की रक्षा की थी। इस कलियुग में जगत् की रक्षा करने और पालन करने के ही कारण चैतन्य महाप्रभु विश्वम्भर कहलाते हैं, जिसका अर्थ ही है, "जो सारे विश्व का भरण (पालन) करे।" 500 वर्ष पूर्व जब श्री चैतन्य महाप्रभु विद्यमान थे, तब उन्होंने जो आन्दोलन चलाया था, वही फिर से सारे विश्व में प्रचारित किया जा रहा है और हमें इसके व्यावहारिक परिणाम देखने को मिल रहे हैं। इस हरे कृष्ण आन्दोलन से लोगों की रक्षा और पालन किया जा रहा है। हजारों अनुयायी, विशेष करके पाश्चात्य नवयुवक इस हरे कृष्ण आन्दोलन में सम्मिलित हो रहे हैं और वे कितना सुरक्षित तथा सुखी अनुभव कर रहे हैं, इसे उनके द्वारा लिखे गये हजारों पत्रों में व्यक्त कृतज्ञता से जाना जा सकता है। विश्वम्भर नाम अथर्ववेद संहिता (3.3.16.5) में भी आया है : विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा।

शुनि' शची-मिश्रेर मने आनन्द बाड़िल।

ब्राह्मण-ब्राह्मणी आनि महोत्सव कैल ॥20॥

शुनि'-यह सुनकर; शची–माता शची; मिश्रर-और जगन्नाथ मिश्र के; मने-मन में; आनन्द-आनन्द; बाड़िल-बढ़ गया; ब्राह्मण-ब्राह्मण; ब्राह्मण-ब्राह्मणा का पालया; आनि'–उनको आमन्त्रित करके; महोत्सव–महोत्सव; कैल-मनाया।

अनुवाद

नीलाम्बर चक्रवर्ती की भविष्यवाणी सुनकर शचीमाता तथा जगन्नाथ मिश्र ने बड़े ही आनन्द के साथ सारे ब्राह्मणों और उनकी पत्नियों को आमन्त्रित करके नामकरण उत्सव सम्पन्न किया।

तात्पर्य

सभी प्रकार के उत्सवों-यथा जन्मदिन, विवाह, नामकरण, शिक्षारम्भ आदि उत्सवों को मनाना वैदिक पद्धति है, जिसमें विशेष रूप से ब्राह्मणों को आमन्त्रित किया जाता है। प्रत्येक उत्सव में सर्वप्रथम ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है और जब ब्राह्मण प्रसन्न हो जाते हैं, तो वे वैदिक मंत्रों का या हरे कृष्ण महामन्त्र का उच्चारण करके आशीर्वाद देते हैं।

तबे कत दिने प्रभुर जानु-चङ्क्रमण।

नाना चमत्कार तथा कराइल दर्शन ॥ 21॥

तबे-तत्पश्चात्; कत-कुछ; दिने–दिन; प्रभुर–महाप्रभु का; जानु-घुटने; चङ्क्रमण-रेंगना; नाना-विभिन्न; चमत्कार-आश्चर्यजनक; तथा-तथा; कराइल-कराया; दर्शन-दर्शन।

अनुवाद

कुछ दिनों के बाद महाप्रभु अपने घुटनों पर सरकने लगे और वे तरह-तरह के चमत्कार दिखलाने लगे।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत में वर्णन मिलता है कि एक दिन जब चैतन्य महाप्रभु घुटनों के बल सरक रहे थे और उनकी करधनी मधुर स्वर में बज रही थी, तब एक साँप निकलकर आँगन में आ गया। बालक ने उत्सुकतावश उसे पकड़ लिया, तो साँप ने उन्हें तुरन्त कुण्डली में लपेट लिया। तब शिशु के रूप में महाप्रभु सर्प के ऊपर लेटे रहे और कुछ समय बाद वह सर्प उन्हें छोड़कर चला गया।

क्रन्दनेर छले बलाइल हरि-नाम ।

नारी सब 'हरि' बले,—हासे गौर-धाम ॥ 22 ॥

क्रन्दनेर-रोने के; छले-बहाने से; बलाइल-बुलवाया; हरि-नाम-भगवान् का पावन नाम; नारी-महिलाएँ; सब-सब; 'हरि' बले-भगवान् का पावन नाम; हासे-हँसते हैं; गौर-धाम-शिशु के रूप में श्री चैतन्य।

अनुवाद

महाप्रभु रोने के बहाने सारी स्त्रियों को हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए बाध्य कर देते और जब वे कीर्तन करतीं तो महाप्रभु मुस्काते रहते।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत में यह लीला इस प्रकार वर्णित है-"सुन्दर नेत्रों वाले महाप्रभु रोने लगते, किन्तु हरे कृष्ण महामन्त्र सुनने पर वे तुरन्त चुप हो जाते। जब स्त्रियों को पता चल गया कि हरे कृष्ण

कीर्तन करने पर बालक रोना बन्द कर देता है, तो वे उसके रोने पर तुरन्त ही हरे कृष्ण कीर्तन करने का संकेत समझ जातीं। इस तरह यह एक नियमित कार्य बन गया। महाप्रभु रोते और स्त्रियाँ ताली दे-देकर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने लगतीं। इस प्रकार पड़ोस की सारी स्त्रियाँ शचीमाता के घर में अखण्ड संकीर्तन के लिए एकत्र होतीं। जब तक स्त्रियाँ हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करतीं, तब तक महाप्रभु रोते न थे, अपितु बड़े ही मुदित मन से उन पर मुस्काते रहते।"

तबे कत दिने कैल पद-चङ्क्रमण ।

शिशु-गणे मिलि' कैल विविध खेलन ॥23॥

तबे-तत्पश्चात्; कत दिने कुछ दिनों में; कैल-किया; पद-पैरों पर; चङ्क्रमण-चलना फिरना; शिशु-गणे-सभी शिशु; मिलि'–इकठे मिलकर; कैल–किया; विविध-विविध; खेलन-खेल, क्रीडाएँ।

अनुवाद

कुछ दिनों के बाद महाप्रभु पाँवों से चलने लगे। वे अन्य बालकों के साथ मिलने-जुलने लगे और तरह-तरह के खेल दिखाने लगे।

एकदिन शची खइ-सन्देश आनिया ।

बाटा भरि' दिया बैल,—खाओ त' बसिया ॥24॥

एक-दिन-एक दिन; शची–माता शची; खइ–खइ चावल; सन्देश-सन्देश मिठाई; आनिया-लाकर; बाटा-टिफिन डिब्बा; भरि'- भरकर; दिया–दिया; बैल-कहा; खाओ-खाओ; त'-अब; बसिया–बैठकर।

अनुवाद

एक दिन जब महाप्रभु अन्य छोटे बालकों के साथ खेल रहे थे, तब शचीमाता खइ तथा मिष्टान से भरा थाल ले आईं और उन्होंने बालक से कहा, "बैठकर खा लो।"

एत बलि' गेला शची गृहे कर्म करिते।

लुकाञा लागिला शिशु मृत्तिका खाइते ॥ 25॥

एत बलि'-यह कहकर; गेला-लौट गईं; शची–माता शची; गृहे-घर में; कर्म-काम; करिते-करने हेतु; लुकाञा–छुपाकर; लागिला-आरम्भ किया; शिशु-शिशु; मृत्तिका–मिट्टी; खाइते-खाना।

अनुवाद

किन्तु जब शचीमाता वापस जाकर गृहकार्यों में लग गईं, तो बालक अपनी माता से छिपकर मिट्टी खाने लगा।

देखि' शची धाञा आइला करि' 'हाय, हाय'।

माटि काड़ि' लञा कहे 'माटि केने खाय' ॥ 26 ॥

देखि'-यह देखकर; शची–माता शची; धाञा-तेजी से; आइला-लौट आईं; करि'-ऊँची आवाज में बोलती हुई; हाय, हाय-"यह क्या है! यह क्या है!"; माटि-मिट्टी; काड़ि'–छीनकर; लञा–लेकर; कहे-उन्होंने कहा; 'माटि केने खाय' यह बालक मिट्टी क्यों खा रहा है?

अनुवाद

यह देखकर शचीमाता हड़बड़ी में "यह क्या है! यह क्या है।" चिल्लाती हुई लौट आईं। उन्होंने महाप्रभु के हाथों से मिट्टी छीन ली और पूछा "इसे क्यों खा रहे हो?"

कान्दिया बलेन शिशु,—केने कर रोष।

तुमि माटि खाइते दिले, मोर किबा दोष ॥ 27॥

कान्दिया-रोते हुए; बलेन-कहता है; शिशु-शिशु; केनेक्यों; कर-तुम होती हो; रोष-क्रुद्ध; तुमि-तुम; माटि-मिट्टी; खाइते-खाने के लिए; दिले–दी; मोर-मुझे; किबा-क्या है; दोष-दोष।

अनुवाद

रोते हुए बालक ने अपनी माता से पूछा, "आप नाराज क्यों होती हैं? आपने मिट्टी ही तो खाने के लिए मुझे दी है। इसमें मेरा क्या दोष है?

खइ-सन्देश-अन्न यतेक–माटिर विकार।

एहो माटि, सेह माटि, कि भेद-विचार ॥28॥

खइ-खइ चावल; सन्देश-सन्देश मिठाई; अन्न-खाद्य पदार्थ; यतेक-सब; माटिर-मिट्टी के; विकार-विकार; एहो–यह भी है; माटि-मिट्टी; सेह-वह; माटि-मिट्टी; कि-क्या; भेद-अन्तर का; विचार-विचार।

अनुवाद

"खइ, सन्देश (मिठाई) तथा अन्य सारे खाद्य पदार्थ मिट्टी के ही रूपान्तर (विकार) हैं। यह भी मिट्टी है और वह भी मिट्टी है। कृपया इस पर विचार करें। इनमें अन्तर ही क्या है?"

माटि–देह, माटि–भक्ष्य, देखह विचारि'।

अविचारे देह दोष, कि बलिते पारि ॥29॥

अनुवाद

माटि-मिट्टी; देह-यह शरीर; माटि-मिट्टी; भक्ष्य-खाद्य पदार्थ; देखह-जरा देखने का प्रयास करो; विचारि'—विचार करके; अविचारे विचार किए बिना; देह-तुम देती हो; दोष-मुझे दोष; कि-क्या; बलिते-कह; पारि-मैं सकता हूँ।

अनुवाद

"यह शरीर मिट्टी का विकार है और खाने की वस्तुएँ (भक्ष्य) भी मिट्टी के विकार हैं। कृपया इस पर विचार करें। आप बिना विचार के मुझे दोष दे रही हैं। मैं क्या कह सकता हूँ?"

तात्पर्य

यह मायावाद दर्शन की व्याख्या है, जिसमें सारी वस्तुओं को एक-सा माना जाता है। आध्यात्मिक जीवन में खाना, सोना, मैथुन तथा अपनी रक्षा करना जैसी शरीर की आवश्यकताएँ अनावश्यक होती हैं। जब मनुष्य आध्यात्मिक धरातल पर पहुँच जाता है, तब शारीरिक आवश्यकताएँ नहीं रह जातीं और शारीरिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित कार्यों में आध्यात्मिक विचार की आवश्यकता नहीं रह जाती। दूसरे शब्दों में, जितने ही अधिक हम खाने, सोने, मैथुन तथा अपनी रक्षा करने में लगते हैं, उतने ही अधिक हम भौतिक कार्यकलापों में लिप्त होते हैं। दुर्भाग्यवश मायावादी दार्शनिक भक्ति-कार्यों को शारीरिक कार्य मानते हैं। वे भगवद्गीता (14.26) की निम्नलिखित सरल व्याख्या को नहीं समझ पाते :

मां च योऽव्यभिचारेण भक्ति-योगेन सेवते ।

स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

“जो निस्वार्थ भाव से भक्तिमय सेवा में लगता है और भगवान् की तुष्टि के लिए ऐसी सेवा करता है, वह तुरन्त ही आध्यात्मिक पद को प्राप्त होता है और उसके सारे कार्य आध्यात्मिक होते हैं।” ब्रह्मभूयाय ब्रह्म (आध्यात्मिक) कार्यों का सूचक है। यद्यपि मायावादी दार्शनिक ब्रह्मतेज में समा जाने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहते हैं, किन्तु वे कोई ब्रह्म-कार्य नहीं करते। वे कुछ हद तक ब्रह्म-कार्यों की संस्तुति करते हैं, जिससे उनका अभिप्राय वेदान्त और सांख्य दर्शनों का अध्ययन ही रहता है, किन्तु उनकी व्याख्याएँ शुष्क मनोकल्पना ही होती हैं। विविध प्रकार के आध्यात्मिक कार्यों के अभाव में एकमात्र वेदान्त या सांख्य-दर्शन का अध्ययन करके बहुत दिनों तक वे उस पद पर बने नहीं रह सकते।

जीवन नाना प्रकार के आनन्द के लिए है। जीव स्वभाव से ही आनन्द भोगने का इच्छुक होता है, जैसाकि वेदान्त-सूत्र (1.1.12) में कहा गया है : आनन्दमयोऽभ्यासात्। भक्तिमय सेवा में सभी कार्य विविधता एवं आनन्द से पूर्ण होते हैं। जैसाकि भगवद्गीता (9.2) में कहा गया है-सारे भक्ति कार्यों को करना आसान है (सुसुखं कर्तुम्) और वे शाश्वत तथा आध्यात्मिक हैं। (अव्ययम्) । चूँकि मायावादी दार्शनिक इसे नहीं समझ पाते, अतएव वे भक्त के सारे कार्यों को (श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पादसेवनम्) भौतिक एवं माया मानते हैं। वे इस ब्रह्माण्ड में कृष्ण के आविर्भाव एवं उनके कार्यकलापों को भी माया मानते हैं। चूँकि वे हर वस्तु को माया मानते हैं, इसलिए वे मायावादी कहलाते हैं।

वास्तव में आध्यात्मिक गुरु के निर्देशानुसार भगवान् की तुष्टि के लिए किया गया कोई भी कार्य आध्यात्मिक होता है। किन्तु ऐसे व्यक्ति के लिए जो गुरु के आदेश की अवज्ञा करे और मनमाना कार्य करते हुए अपने कार्यों को आध्यात्मिक माने, यही माया है। मनुष्य को गुरु की कृपा के माध्यम से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा प्राप्त करनी चाहिए। अतएव मनुष्य को सर्वप्रथम गुरु

को प्रसन्न करना चाहिए और यदि वे प्रसन्न हो जाते हैं, तो यह समझना चाहिए कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भी प्रसन्न हो गये हैं। किन्तु यदि गुरु हमारे कार्यों से अप्रसन्न होते हैं, तो वे आध्यात्मिक नहीं हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इसी की पुष्टि करते हैं-यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्याप्रसादान् न गतिः कुतोऽपि ।ऐसे कार्यों को जिनसे गुरु प्रसन्न होते हैं, आध्यात्मिक मानना चाहिए और उन्हीं से भगवान् को प्रसन्न हुआ मानना चाहिए।

चैतन्य महाप्रभु ने परम गुरु के रूप में अपनी माता को मायावाद दर्शन का उपदेश दिया। शरीर मिट्टी है और खाद्यान्न भी मिट्टी है-इस कथन से उनका अभिप्राय यही था कि हर वस्तु माया है। यही मायावाद दर्शन है। मायावादियों का दर्शन दोषपूर्ण है, क्योंकि इनकी मान्यता है कि वे जो कुछ भी मूर्खतापूर्ण बात कहते हैं, उसके अतिरिक्त हर वस्तु माया है। हर वस्तु को माया समझकर मायावादी दार्शनिक भक्ति का अवसर खो देता है और इसीलिए उसका जीवन विनष्ट हो जाता है। इसलिए चैतन्य महाप्रभु ने सलाह दी है- मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश (चैतन्य चरितामृत, मध्य 6.169)। जो मायावादी दर्शन को स्वीकार करता है, उसकी उन्नति सदा के लिए रुक जाती है।

अन्तरे विस्मित शची बलिल ताहारे ।

माटि खाइते ज्ञान-योग के शिखाल तोरे ॥ 30॥

अन्तरे-मन में; विस्मित–विस्मित होकर; शची-माता शची; बलिल-उत्तर दिया; ताहारे–उनको; माटि-मिट्टी; खाइते-खाना; ज्ञान-योग-ज्ञान योग; के-कौन; शिखाल–सिखाया; तोरे तुम्हें ।

अनुवाद

शचीमाता आश्चर्यचकित थीं कि यह बालक मायावाद दर्शन बोल रहा है, अतएव वे बोलीं, "तुम्हें यह दार्शनिक तर्कवितर्क किसने सिखलाया है, जो मिट्टी खाने को सही ठहराता है?"

तात्पर्य

माता तथा पुत्र के बीच के दार्शनिक वार्तालाप में जब पुत्र ने कहा कि सारी वस्तुएँ एक-सी हैं, जैसाकि निर्विशेषवादी कहते हैं, तब माता ने उत्तर दिया, "यदि सभी वस्तुएँ एक हैं, तो सारे लोग मिट्टी से उत्पन्न अन्न खाने के बदले मिट्टी ही क्यों नहीं खाते हैं?"

माटिर विकार अन्न खाइले देह-पुष्टि हय।

माटि खाइले रोग हय, देह व्राय क्षय ॥ 31॥

माटिर-मिट्टी का; विकार-रूपान्तर; अन्न–अन्न; खाइले–खाने से; देह-शरीर की; पुष्टि-पुष्टि; हय–हो जाती है; माटि-मिट्टी; खाइले–खाने से; रोग-रोग; हय-हो जाता है; देह-शरीर; याय-हो जाता है; क्षय-नष्ट।

अनुवाद

दार्शनिक बालक के मायावादी विचार का उत्तर देते हुए माता शची ने कहा, "प्रिय पुत्र, यदि हम अन्न में रूपान्तरित मिट्टी खाते हैं, तो हमारे शरीर का पोषण होता है और वह हृष्ट-पुष्ट बनता है, किन्तु यदि हम कोरी मिट्टी खाते हैं, तो शरीर हृष्ट-पुष्ट होने के बजाय रुग्ण होकर नष्ट हो जाता

माटिर विकार घटे पानि भरि' आनि।

माटि-पिण्डे धरि यबे, शोषि' याय पानि" ॥ 32॥

माटिर-मिट्टी का; विकार-रूपान्तर; घटे-घड़े में; पानि-पानी; भरि'- भरकर; आनि–मैं ला सकती हूँ; माटि-मिट्टी का; पिण्डे-ढेला; धरि-मैं पकड़े हूँ; यबे-जब; शोषि'-सोख; याय-जाता है; पानि–पानी।

अनुवाद

"मिट्टी के ही रूपान्तर एक घड़े में मैं आसानी से पानी ला सकती हूँ, किन्तु यदि मैं मिट्टी के ढेले पर पानी डालें, तो ढेला जल को सोख लेगा और मेरा परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा।"

तात्पर्य

एक स्त्री होते हुए भी शचीमाता ने जिस सरल दर्शन का प्रतिपादन किया, वह उन मायावादी दार्शनिकों को परास्त कर सकता है, जो एक होने के विषय में चिन्तन करते हैं। मायावाद दर्शन का दोष यही है कि यह उस विविधता को स्वीकार नहीं करता, जो व्यावहारिक कार्यों के लिए उपयोगी है। शचीमाता ने उदाहरण दिया कि यद्यपि मिट्टी का ढेला तथा मिट्टी का घड़ा मूलत: एक हैं, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से घड़ा उपयोगी है, जबकि मिट्टी का ढेला व्यर्थ है। कभी-कभी वैज्ञानिक तर्क करते हैं कि पदार्थ तथा आत्मा एक हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं है। वस्तुतः उच्च विचार की दृष्टि से पदार्थ तथा आत्मा में अन्तर नहीं है, किन्तु हमें यह व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिए कि पदार्थ निम्न अवस्था में होने से हमारे आध्यात्मिक आनन्दमय जीवन के लिए व्यर्थ है, जबकि अध्यात्म तत्त्व सूक्ष्म अवस्था में होने के कारण आनन्द से परिपूर्ण है। इस सम्बन्ध में भागवत में एक दृष्टान्त दिया गया है कि मिट्टी तथा अग्नि व्यावहारिक रूप से एक से हैं। पृथ्वी से वृक्ष उगते हैं और इन वृक्षों के काष्ठ से अग्नि तथा धुआँ उत्पन्न होते हैं। फिर भी ऊष्मा के लिए हम अग्नि का प्रयोग करते हैं न कि

पृथ्वी, धुएँ या काष्ठ का। इसलिए जीवन के लक्ष्य की चरम उपलब्धि के लिए हमें आत्मा की अग्नि चाहिए, पदार्थ का जड़ काष्ठ या मिट्टी नहीं।

आत्म लुकाइते प्रभु बलिला ताँहारे।

आगे केन इहा, माता, ना शिखाले मोरे ॥ 33॥

आत्म-स्वयं; लुकाइते-छुपाना; प्रभु-महाप्रभु; बलिला–उत्तर दिया; ताँहारे-शची माता को; आगे-आरम्भ में; केन–क्यों; इहा-यह; माता–प्रिय माता; ना शिखाले-आपने नहीं सिखाया; मोरे–मुझे।

अनुवाद

महाप्रभु ने अपनी माता से कहा, "आपने पहले ही मुझे यह व्यावहारिक दर्शन क्यों नहीं सिखलाया? आपने आत्म-साक्षात्कार की यह विधि मुझसे क्यों छिपा रखी?"

तात्पर्य

यदि किसी को जीवन के प्रारम्भ से द्वैत वैष्णव-दर्शन की शिक्षा दी जाए, तो उसे एकेश्वरवादी दर्शन अधिक परेशान नहीं करेगा। वास्तव में, हर वस्तु परम उद्गम से उद्भूत है (जन्माद्यस्य यतः)। मूल शक्ति अनेक प्रकार से प्रदर्शित होती है, जिस प्रकार सूर्य-प्रकाश, जो सूर्य से उद्भूत होकर प्रकाश तथा ऊष्मा के रूप में प्रदर्शित होता है। कोई यह नहीं कह सकता कि प्रकाश ऊष्मा है और ऊष्मा प्रकाश। फिर भी एक को दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। अतएव चैतन्य महाप्रभु का दर्शन अचिन्त्य-भेदाभेद है। यद्यपि प्रकाश तथा ऊष्मा के भौतिक प्रदर्शन में सम्बन्ध है, फिर भी वे भिन्न

हैं। इसी प्रकार सारा जगत् भगवान् की शक्ति की अभिव्यक्ति है, फिर भी यह शक्ति अनेक रूपों में प्रकट होती है।

एबे से जानिलाँ, आर माटि ना खाइब ।

क्षुधा लागे यबे, तबे तोमार स्तन पिब ॥ 34॥

एबे-अब; से-वह; जानिलाँ-मैं समझ गया हूँ; आर-और अधिक; माटि-मिट्टी; ना-नहीं; खाइब-मैं खाऊँगा; क्षुधा-भूख; लागे-लगती है; यबे-जब; तबे-उस समय; तोमार-आपका; स्तन-स्तन; पिब-मैं पिऊँगा।

अनुवाद

"अब मैं समझा इस दर्शन को। अब मैं मिट्टी नहीं खाऊँगा। जब भी मुझे भूख लगेगी, मैं आपके स्तनों से दुग्ध का पान करूँगा।"

एत बलि' जननीर कोलेते चड़िया ।

स्तन पान करे प्रभु ईषत् हासिया ॥ 35॥

एत बलि'-यह रहकर; जननीर-माता की; कोलेते-गोद में; चड़िया-चढ़कर; स्तन पान-स्तन पान; करे-करते हैं; प्रभु–महाप्रभु; ईषत्-थोड़ा सा; हासिया-मुस्कुराकर।

अनुवाद

यह कहकर महाप्रभु धीरे से हँसते हुए अपनी माता की गोद में चढ़ गये और उनका स्तनपान करने लगे।

एइमते नाना-छले ऐश्वर्य देखाय।

बाल्य-भाव प्रकटिया पश्चात् लुकाय॥ 36॥

एइमते-इस प्रकार; नाना-छले–विविध बहानों से; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; देखाय–दिखाते हैं; बाल्य-भाव-शिशु का भाव; प्रकटिया-प्रकट करके; पश्चात् बाद; लुकाय-अपने आपको छुपा लेते हैं।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु अपने बचपन में विविध बहानों से अपना अधिक से अधिक ऐश्वर्य प्रदर्शित करते और इन ऐश्वर्यों को दिखला चुकने के बाद वे स्वयं को छिपा लेते।

अतिथि-विप्रेर अन्न खाइल तिन-बार।

पाछे गुप्ते सेइ विप्रे करिल निस्तार॥ 37॥

अतिथि–अतिथि; विप्रेर-ब्राह्मण का; अन्न-अन्न; खाइल-खाया; तिन-बार-तीन बार; पाछे-बाद में; गुप्ते-गुप्त रूप से; सेइ-उस; विप्रे–ब्राह्मण का; करिल-किया; निस्तार-उद्धार।

अनुवाद

एक बार महाप्रभु एक ब्राह्मण अतिथि के भोजन को तीन बार खा गये और बाद में उन्होंने गुप्त रूप से उस ब्राह्मण का भवबन्धन से उद्धार कर दिया।

तात्पर्य

इस ब्राह्मण के उद्धार की कथा इस प्रकार है। एक बार एक ब्राह्मण जो देशाटन के लिए निकला था, एक तीर्थ की यात्रा करके दूसरे तीर्थ होता हुआ नवद्वीप पहुँचा और वहाँ जगन्नाथ मिश्र

के घर में अतिथि बना। जगन्नाथ मिश्र ने उसे भोजन बनाने के लिए सारी सामग्री दे दी और उस ब्राह्मण ने भोजन तैयार किया। किन्तु जब यह ब्राह्मण ध्यानमग्न होकर भगवान् विष्णु को भोजन अर्पित कर रहा था, तब बालक निमाइ वहाँ आकर उसे खाने लगा। फलतः ब्राह्मण ने सोचा कि यह भोग व्यर्थ हो गया है। अतएव जगन्नाथ मिश्र के कहने पर उसने दुबारा भोजन पकाया, किन्तु जब वह ध्यान कर रहा था, तो बालक फिर वहाँ आया और भोजन खाने लगा और भोग को इस प्रकार उसने पुनः नष्ट कर दिया। जगन्नाथ मिश्र के अनुनय-विनय करने पर उस ब्राह्मण ने तीसरी बार भोजन पकाया, किन्तु इस बार भी महाप्रभु ने आकर भोजन को जूठा कर दिया, यद्यपि इस बालक को एक कमरे में बन्द कर दिया गया था और सभी लोग सो रहे थे, क्योंकि काफी रात हो चुकी थी। अतएव ब्राह्मण ने यह सोचा कि भगवान् विष्णु आज मेरे भोजन को स्वीकार नहीं करना चाहते हैं और मुझे उपवास ही करना पड़ेगा। फलतः वह क्षुब्ध होकर चिल्लाने लगा, "हाय ! हाय! क्या हो गया! क्या हो गया !" जब चैतन्य महाप्रभु ने ब्राह्मण को उस क्षुब्ध अवस्था में देखा तो वे उससे बोले, "पूर्वजन्म में मैं माता यशोदा का पुत्र था। उस समय भी तुम नन्द महाराज के घर अतिथि रूप में आये थे और मैंने तुम्हें इसी तरह तंग किया था। मैं तुम्हारी भक्ति से अतीव प्रसन्न हूँ, इसलिए मैं तुम्हारे हाथों से बनाया हुआ भोजन खा रहा हूँ।" यह समझकर कि महाप्रभु उस पर कृपा कर रहे हैं, ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुआ और वह कृष्ण-प्रेम से गद्गद् हो उठा। वह भगवान् का आभारी था और उसने अपने आपको परम भाग्यशाली माना। तब महाप्रभु ने कहा कि वह इस घटना के बारे में किसी को न बताये। यह घटना चैतन्य-भागवत आदिखण्ड के तीसरे अध्याय में विस्तार से वर्णित है।

चोरे लञा गेल प्रभुके बाहिरे पाइयो ।

तार स्कन्धे चड़ि' आइला तारे भुलाइया ॥38॥

चोरे-दो चोर; लञा–लेकर; गेल-गये; प्रभुके–महाप्रभु को; बाहिरे-बाहर; पाइया-पाकर; तार-उनके; स्कन्धे-कन्धों पर; चड़ि-चढ़कर; आइला-वापस आये; तारे–उनको; भुलाइया-भ्रमित करके।

अनुवाद

बचपन में महाप्रभु को दो चोर उठाकर उनके घर के बाहर ले गये। किन्तु महाप्रभु उन चोरों के कंधे पर चढ़ गये और जब वे सोच रहे थे कि हम इस बालक के आभूषण आराम से उतार लेंगे, तो महाप्रभु ने उन्हें भ्रमित कर दिया, जिससे वे चोर अपने घर जाने के बदले जगन्नाथ मिश्र के घर वापस जा पहुँचे।

तात्पर्य

बचपन में महाप्रभु सोने के आभूषणों से लदे रहते थे। एक बार जब वे घर के बाहर खेल रहे थे, तब दो चोर उनकी गली से होकर निकले। वे गहने लूटने की ताक में थे, अतः उन्होंने महाप्रभु को कुछ मिठाई देकर फुसला लिया और अपने कन्धों पर चढ़ा लिया। चोरों ने सोचा था कि वे बालक को जंगल ले जाकर मार डालेंगे और गहने निकाल लेंगे। किन्तु महाप्रभु ने चोरों के ऊपर अपनी ऐसी माया फैलायी, जिससे वे जंगल की ओर जाने के बदले महाप्रभु के ही दरवाजे पर वापस जा पहुँचे। जब वे उनके घर के सामने आ गये, तो वे डर गये, क्योंकि जगन्नाथ मिश्र तथा पड़ोस के सभी लोग बच्चे की तलाश में थे। अतएव चोरों ने वहाँ रुकने में खतरा समझा। वे उन्हें वहीं छोड़कर चलते बने। तब बालक को घर के अन्दर लाया गया और शचीमाता को दिया गया, क्योंकि वे अत्यन्त चिन्तित थीं। तब जाकर वे सन्तुष्ट हुईं। यह घटना का चैतन्य-भागवत के आदि खण्ड के तृतीय अध्याय में विस्तार से वर्णन किया गया है।

व्याधि-छले जगदीश-हिरण्य-सदने ।

विष्णु-नैवेद्य खाइल एकादशी-दिने ॥ 39॥

व्याधि-छले–बीमार होने के बहाने; जगदीश-हिरण्य-जगदीश और हिरण्य नाम के; सदने-के घर; विष्णु-नैवेद्य-भगवान् विष्णु को अर्पित भोजन; खाइल-खाया; एकादशी-एकादशी; दिने-के दिन।

अनुवाद

महाप्रभु ने बीमार होने के बहाने एकादशी के दिन हिरण्य तथा जगदीश के घर से कुछ भोजन माँगा।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत, आदिखण्ड के छठे अध्याय में एकादशी के दिन जगदीश तथा हिरण्य के घर विष्णु प्रसाद ग्रहण करने का पूरा विवरण दिया हुआ है। एकादशी के दिन भगवान् विष्णु को नियमित भोग चढ़ाया जाता है, क्योंकि उस दिन भक्त तो उपवास रखते हैं, लेकिन विष्णु भगवान् नहीं। एक बार एकादशी के दिन जगदीश तथा हिरण्य पण्डित के घर भगवान् विष्णु के लिए विशेष प्रसाद तैयार करने का आयोजन था। चैतन्य महाप्रभु ने अपने पिता से कहा "मैं बीमार हूँ। आप वहाँ जाकर विष्णुप्रसाद लें आयें।" जगदीश तथा हिरण्य का मकान जगन्नाथ मिश्र के मकान से लगभग दो मील की दूरी पर था। अतएव जब चैतन्य महाप्रभु के अनुनय-विनय पर जगन्नाथ मिश्र प्रसाद लेने गये, तो जगदीश तथा हिरण्य थोड़ा विस्मित हुए। भला उस बालक को कैसे पता चला कि विष्णु के लिए विशेष प्रसाद बन रहा है? वे तुरन्त समझ गये कि निमाइ बालक में दैवी योगशक्ति है, अन्यथा वह कैसे जान पाता कि विशेष प्रसाद बन रहा है? अतएव उन्होंने तुरन्त ही बालक के पिता

जगन्नाथ मिश्र के हाथों चैतन्य महाप्रभु के लिए प्रसाद भेज दिया। निमाइ बीमार थे, किन्तु विष्णु-प्रसाद खाते ही वे स्वस्थ हो गये और उन्होंने वह प्रसाद अपने संगियों में बाँट दिया।

शिशु सब लये पाड़ा-पड़सीर घरे ।

चुरि करि' द्रव्य खाय मारे बालकेरे ॥40॥

शिशु-शिशु; सब-सब; लये उनके साथ लेकर; पाड़ा-पड़सीरपड़ोसी; घरे-घरों में; चुरि करि'-चोरी करते; द्रव्य–खाद्य सामग्री; खाय-खाते; मारे-लड़ते; बालकेरे-अन्य बालकों के साथ।

अनुवाद

जैसाकि बच्चों में होता है, महाप्रभु ने खेलना सीखा और वे अपने मित्रों के साथ पड़ोसी मित्रों के घरों में जाते, उनकी खाने की वस्तुएँ चुराते और खाते। कभी-कभी बच्चे परस्पर लड़ते-झगड़ते।

शिशु सब शची-स्थाने कैल निवेदन ।

शुनि' शची पुत्रे किछु दिला ओलाहन ॥41॥

शिशु सब-सब बालक; शची-स्थाने-माता शची की उपस्थिति में; कैल–किया; निवेदन-निवेदन; शुनि'–उसे सुनकर; शची–माता शची; पुत्रे-अपने पुत्र की; किछु-कुछ; दिला–दिया; ओलाहन-उलाहना।

अनुवाद

सारे बच्चों ने शचीमाता से शिकायत की कि महाप्रभु उनसे लड़ते हैं और पड़ोसियों के घरों से चीजें चुराते हैं। फलस्वरूप कभी-कभी माता अपने पुत्र को दण्ड देती अथवा डाँटती रहती थीं।

"केने चुरि कर, केने मारह शिशुरे।

केने पर-घरे याह, किबा नाहि घरे" ॥42॥

केने चुरि कर-तुम चोरी क्यों करते हो; केने मारह शिशुरे–अन्य शिशुओं को क्यों मारते हो; केने-क्यों; पर-घरे–दूसरों के घरों में; याह-तुम जाते हो; किबा-क्या; नाहि-नहीं है; घरे-तुम्हारे अपने घर में।

अनुवाद

शचीमाता ने कहा-"तुम दूसरों की चीजें क्यों चुराते हो? तुम दूसरे लड़कों को क्यों मारते हो? तुम दूसरों के घर के भीतर क्यों जाते हो? आखिर तुम्हारे घर में कौन-सी चीज नहीं है?"

तात्पर्य

वेदान्त-सूत्र के अनुसार (जन्माद्यस्य यतः) सृष्टि, पालन तथा संहार तीनों ही परम पूर्ण में स्थित हैं। अतएव इस भौतिक जगत् में हम जो कुछ भी देखते हैं, वह पहले से आध्यात्मिक जगत् में रहता है। श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। तो फिर वे क्यों चुराने तथा झगड़ने लगे? वे ऐसा न चोर के रूप में और न शत्रु के रूप में करते हैं बल्कि प्रेमावस्था में मित्र के रूप में करते हैं। वे बालक रूप में चोरी करते हैं, इसलिए नहीं कि उन्हें कोई कमी है, अपितु अपने बाल-स्वभाव के कारण। इस भौतिक जगत् में भी कभी-कभी छोटे बच्चे पड़ोस के घर में जाकर चोरी करते हैं और कभी-कभी लड़ते-भिड़ते हैं, किन्तु किसी शत्रुता या दुर्भावना से नहीं। कृष्ण भी

अन्य बालकों की तरह अपने बचपन में ये सारे कार्य करते थे। यदि आध्यात्मिक जगत् में चुराने की प्रवृत्ति और लड़ने की प्रवृत्ति न होती, तो ये इस भौतिक जगत् में भी न पाई जाती। भौतिक जगत् तथा आध्यात्मिक जगत् में इतना ही अन्तर है कि आध्यात्मिक जगत् में मैत्री और प्रेमवश चोरी की जाती है, जबकि इस भौतिक जगत् में लड़ाई तथा चोरी शत्रुता और द्वेष के आधार पर की जाती है। इसीलिए हमें समझना चाहिए कि ये सारे कार्य आध्यात्मिक जगत् में होते हैं, किन्तु उनमें कोई दोष नहीं होता, जबकि भौतिक जगत् में ये सारे कार्य दुःखों से भरे होते हैं।

शुनि' क्रुद्ध हञा प्रभु घर-भितर याञा ।

घरे यत भाण्ड छिल, फेलिल भाङ्गिया ॥43॥

शुनि'–सुनकर; क्रुद्ध-क्रुद्ध; हञा–होकर; प्रभु–महाप्रभु; घर-भितर–कमरे में; याञा-जाकर; घरे–कमरे में; यत-सब; भाण्ड-बर्तन; छिल-वहाँ थे; फेलिल-उनको फेंक दिया; भाङ्गिया-तोड़कर।

अनुवाद

इस प्रकार माता की डाँट खाकर महाप्रभु क्रोधित होकर कमरे के भीतर चले जाते और वहाँ पर सारे बर्तन तोड़-फोड़ देते।

तबे शची कोले करि' कराइल सन्तोष ।

लजित हइला प्रभु जानि' निज-दोष ॥44॥

तबे-उस समय; शची-माता शचीदेवी; कोले–गोद में; करि'-लेकर; कराइल-किया; सन्तोष-सन्तुष्ट; लज्जित–लज्जित; हइला–हो गये; प्रभु–महाप्रभु; जानि'-जानकर; निज-अपना; दोष-दोष।

अनुवाद

तब शचीमाता अपने पुत्र को गोद में लेकर चुप करातीं और महाप्रभु अपनी गलतियाँ स्वीकार करते और काफी लज्जित होते।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत आदिखण्ड, अध्याय तीन में महाप्रभु के बाल्यकाल के दोषों का सुन्दर वर्णन है, जिसमें यह कहा गया है कि बचपन में महाप्रभु पड़ोसी दोस्तों के घरों से खाने की चीजें चुराया करते थे। कुछ घरों से वे दूध चुराते और पी जाते। कुछ घरों से भात चुराते और खा जाते। कभी-कभी पकाने के बर्तन तोड़ डालते। यदि कुछ खाने को न मिलता और घर में छोटे बच्चे मिलते तो उन्हें तंग करते और रुलाते। कभी-कभी कोई पड़ोसी आकर शचीमाता से शिकायत करता, "मेरा बच्चा बहुत छोटा है, किन्तु आपका लड़का मेरे बच्चे के कानों में पानी भरकर उसे रुला देता है।"

कभु मृदु-हस्ते कैल माताके ताड़न ।

माताके मूर्च्छिता देखि' करये क्रन्दन ॥45॥

कभु-कभी-कभी; मृदु-हस्ते-अपने कोमल हाथ से; कैल–किया; माताके-अपना माता; ताड़न–झिड़कना; माताके-अपनी माता को; मूर्च्छिता-मूर्छित; देखि'–देखकर; करये-करते; क्रन्दन-रोने लगते।

अनुवाद

एक बार बालक चैतन्य ने अपनी माता को अपने कोमल हाथ से मारा, तो उनकी माता दिखावे के लिए मूर्च्छित हो गईं। यह देखकर चैतन्य महाप्रभु रोने लगे।

नारीगण कहे,–"नारिकेल देह आनि' ।

तबे सुस्थ हइबेन तोमार जननी” ॥ 46॥

नारी-गण-सभी महिलाएँ; कहे-कहती हैं; नारिकेल–नारियल; देह-दो; आनि’-कहीं से लाकर; तबे-तब; सुस्थ हइबेन–स्वस्थ हो जायेगी; तोमार-तुम्हारी; जननी-माता।

अनुवाद

पड़ोस की स्त्रियों ने उनसे कहा, “बेटा, जाकर कहीं से एक नारियल ले आओ। तब तुम्हारी माता स्वस्थ होंगी।”

बाहिरे याजा आनिलेन दुइ नारिकेल ।

देखिया अपूर्व हैल विस्मित सकल ॥47॥

बाहिरे-बाहर; याजा-जाकर; आनिलेन-वे तत्काल ले आये; दुई–दो; नारिकेल-नारियल; देखिया-देखकर; अपूर्व-यह आश्चर्य; हैल-हो गये; विस्मित–चकित; सकल-सभी।

अनुवाद

वे घर से बाहर गये और तुरन्त ही दो नारियल ले आये। सारी स्त्रियाँ ऐसा अद्भुत कार्य देखकर विस्मित हो गईं।

कभु शिशु-सङ्गे स्नान करिल गङ्गाते ।

कन्यागण आइला ताहाँ देवता पूजिते ॥48॥

कभु-कभी-कभी; शिशु-सङ्गे–अन्य बालकों के साथ; स्नान-स्नान; करिल-करते; गङ्गाते-गंगा में; कन्या-गण-लड़कियाँ; आइला-वहाँ आ गईं; ताहाँ–गंगा तट पर; देवता-देवता; पूजिते-पूजा करने के लिए।

अनुवाद

कभी-कभी महाप्रभु अन्य बालकों के साथ गंगा नदी में स्नान करने जाते और पास की लड़कियाँ भी वहीं पर देवताओं की पूजा करने आतीं।

तात्पर्य

वैदिक प्रथा के अनुसार दस-बारह वर्ष की कन्याएँ गंगा नदी के तट पर जाकर स्नान करतीं और भविष्य में अच्छा वर पाने के लिए शिवजी की पूजा करती थीं। वे शिव जैसे पति की कामना करतीं, क्योंकि शिवजी अत्यन्त शान्त होने के साथ ही अत्यधिक शक्तिशाली भी हैं। इसीलिए पहले हिन्दू परिवारों की छोटी-छोटी लड़कियाँ शिवजी की पूजा वैशाख मास (अप्रैल-मई) में विशेष रूप से करती थीं। गंगा में स्नान करना हर एक के लिए, न केवल बड़ों के लिए अपितु छोटों के लिए भी अत्यधिक प्रसन्नता की बात होती है।

गङ्गा-स्नान करि' पूजा करिते लागिला।

कन्यागण-मध्ये प्रभु आसिया बसिला ॥49॥

गङ्गा-स्नान-गंगास्नान; करि'-करके; पूजा-पूजा; करिते-करना; लागिला-आरम्भ किया; कन्या-गण-लड़कियों; मध्ये-के बीच में; प्रभु–महाप्रभु; आसिया-आकर; बसिला-बैठ गये।

अनुवाद

जब कन्याएँ गंगास्नान करके विभिन्न देवताओं की पूजा करने लगतीं, तो बालक महाप्रभु वहाँ आते और उनके बीच में बैठ जाते।

कन्यारे कहे,—आमा पूज, आमि दिब वर।

गङ्गा-दुर्गा—दासी मोर, महेश—किङ्कर ॥50॥

कन्यारे कहे-कन्याओं को सम्बोधित करके महाप्रभु कहते; आमा पूज–"मेरी पूजा करो"; आमि-मैं; दिब-दूँगा; वर–उत्तम पति; गङ्गा-गंगा; दुर्गा दुर्गा देवी; दासी-दासियाँ; मोर-मेरे; महेश–शिवजी; किङ्करदास।

अनुवाद

महाप्रभु कन्याओं को सम्बोधित करके कहते, "मेरी पूजा करो, तो मैं तुम्हें सुन्दर पति या सुन्दर वरदान दूँगा। गंगा तथा देवी दुर्गा मेरी दासियाँ हैं और अन्य देवताओं की बात तो दूर रही, शिवजी तक मेरे दास हैं।"

तात्पर्य

अन्य धर्म के लोगों में, यथा ईसाइयों तथा मुसलमानों में ऐसी गलत धारणा है कि हिन्दू धर्म में अनेक ईश्वर हैं। वास्तव में यह हकीकत नहीं है। ईश्वर एक हैं, लेकिन ऐसे अन्य अनेक शक्तिमान जीव हैं, जो प्रशासन के विभिन्न विभागों का कार्यभार संभालते हैं। वे देवता कहलाते हैं। सारे देवता पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेशों का पालन करने वाले दास हैं। चैतन्य महाप्रभु ने इस तथ्य को अपने बाल्यकाल में प्रकट किया। कभी-कभी लोग अज्ञानवश किसी विशेष वर की प्राप्ति के लिए देवताओं की पूजा करते हैं, किन्तु यदि कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का भक्त और उपासक बन जाए,

तो उसे वर की प्राप्ति के लिए देवताओं के पास जाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि भगवान् की कृपा से उसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। भगवद्गीता (7.20, 28) में ऐसी देव-पूजा की भत्र्सना की गई है :

कामैस्तैस्तैर्हतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।

तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥

"जिनकी बुद्धि हर ली गई है और जो कामवासनाओं के कारण पागल हो चुके हैं, वे देवताओं की पूजा करते हैं और अपने-अपने स्वभावों के अनुसार पूजा के विशेष विधानों का पालन करते हैं। (भगवद्गीता 7.20) :

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

"किन्तु जो लोग सारे पापकर्मों तथा द्वन्द्व से मुक्त हैं, वे दृढ़ता के साथ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा में लग जाते हैं।" (भगवद्गीता 7.28) केवल मूर्ख ही अपने विविध प्रयोजनों के लिए देवताओं की पूजा करते हैं। किन्तु जो अत्यन्त बुद्धिमान हैं, वे केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की ही पूजा करते हैं।

कभी-कभी हम पर, कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों पर आरोप लगाया जाता है कि हम देवताओं की पूजा का समर्थन नहीं करते। किन्तु जब चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् कृष्ण ने इसकी भर्त्सना की है, तो हम इसका समर्थन कैसे कर सकते हैं? भला हम अन्य लोगों को मूर्ख तथा हतज्ञान (बुद्धि हीन) कैसे होने दे सकते हैं ? हमारा प्रचार तो इतना ही है कि बुद्धिमान लोग पदार्थ

तथा आत्मा के अन्तर को समझें और उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझें, जो परिपूर्ण आध्यात्मिक अस्तित्व हैं। यही हमारा जीवन-कार्य है। भला हम इस भौतिक जगत् के भौतिक शरीरों में विद्यमान तथाकथित देवताओं की पूजा करने के लिए लोगों को दिग्भ्रमित कैसे कर सकते हैं ? हमारे द्वारा सैकड़ों देवताओं की पूजा की अनुमति न देने की स्थिति की पुष्टि चैतन्य महाप्रभु द्वारा उनके बाल्यकाल में ही की गई थी। इस सम्बन्ध में श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने गाया है :

अन्य देवाश्रय नाइ

तोमारे कहिनु भाइ

एइ भक्ति परम-कारण

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दृढ़ एकनिष्ठ और शुद्ध भक्त बनने (अनन्यभाक्) के लिए अपने चित्त को देवताओं की पूजा में लगाकर विचलित नहीं करना चाहिए। ऐसा नियन्त्रण शुद्ध भक्ति का लक्षण है।"

आपनि चन्दन परि' परेन फुल-माला।

नैवेद्य काड़िया खा'न—सन्देश, चाल, कला ॥51॥

आपनि-स्वयं; चन्दन–चन्दन; परि–शरीर पर लगाकर; परेन-पहन लेते; फुल-माला-पुष्प मालाएँ, नैवेद्य-भोग सामग्री; काड़िया-छीनकर; खान-खाने लग जाते; सन्देश-सन्देश; चाल-चावल; कला-केला।

अनुवाद

महाप्रभु कन्याओं की अनुमति के बिना ही चन्दन निकाल लेते और अपने शरीर में लगा लेते, उनकी फूल-मालाओं को अपने गले में पहन लेते और मिठाइयाँ, चावल तथा केलों की भेंट को छीनकर स्वयं खा जाते।

तात्पर्य

अर्चन-विधि के अनुसार जब घर के बाहर अर्चाविग्रहों को कुछ अर्पित किया जाता है, तो सामान्यतया पका भोजन नहीं, अपितु कच्चा चावल, केला तथा मिठाइयाँ चढ़ाई जाती हैं। महाप्रभु अहैतुकी कृपावश भेंट की सारी वस्तुएँ लड़कियों से छीनकर स्वयं खा जाते और उनको देवताओं की पूजा न करने और अपनी पूजा करने के लिए डाँटते। श्री चैतन्य महाप्रभु की यह पूजा श्रीमद्भागवत द्वारा संस्तुत की गई है (11.5.32) :

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र पार्षदम् ।

यज्ञैः सङ्कीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥

“मनुष्य को पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की पूजा करनी चाहिए, जो कलियुग में पंचतत्त्व रूप में अपने पार्षदों के साथ प्रकट होते हैं ये हैं स्वयं महाप्रभु तथा उनके पार्षद नित्यानन्द प्रभु, श्री अद्वैत प्रभु, श्री गदाधर प्रभु तथा श्रीवास ठाकुर। इस युग में बुद्धिमान लोग पंचतत्त्व की पूजा हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करके और यदि सम्भव हुआ तो प्रसाद वितरण से करते हैं।” हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन पूजा की इस प्रामाणिक विधि को पाश्चात्य जगत् में चला रहा है। इसके सदस्य चैतन्य महाप्रभु के अर्चाविग्रह लेकर गाँव-गाँव तथा नगर-नगर घूमते हैं और लोगों को बतलाते हैं कि किस तरह हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करके, प्रसाद चढ़ाकर और लोगों में उसका वितरण करके महाप्रभु की पूजा करनी चाहिए।

क्रोधे कन्यागण कहे शुन,-हे निमामि ।

ग्राम-सम्बन्धे हओ तुमि आमा सबार भाइ ॥52॥

क्रोधे-क्रोध में; कन्या-गण-सभी कन्याएँ; कहे-कहतीं; शुन-सुनो; हे-उसे; निमाजि-निमाइ; ग्राम-ग्राम; सम्बन्धे-सम्बन्ध में; हओ-हो; तुमि-तुम; आमा-हम; सबार-सबके; भाइ–भाई।

अनुवाद

महाप्रभु के इस व्यवहार से सारी कन्याएँ अत्यन्त क्रुद्ध हो गईं। उन्होंने कहा, "अरे निमाइ, तुम गाँव के रिश्ते से हमारे भाई जैसे हो।"

आमा सबाकार पक्षे इहा करिते ना युयाय ।

ना लह देवता सज्ज, ना कर अन्याय ॥53॥

आमा सबाकार–हम सबकी; पक्षे–ओर से; इहा-यह; करिते-करने के लिए; ना-नहीं; युयाय-योग्य है; ना-नहीं; लह-लेना; देवता-देवता; सज्ज-पूजा की सामग्री; ना-नहीं; कर-करो; अन्याय-शरारत।

अनुवाद

"अतएव ऐसा करना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम हमारी देव-पूजन की सामग्री मत लो। तुम इस तरह उपद्रव न मचाओ।"

प्रभु कहे,—"तोमा सबाके दिल एइ वर ।

तोमा सबार भर्ता हबे परम सुन्दर" ॥54॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने उत्तर दिया; तोमा-तुम; सबाके-सबको; दिल-मैं देता हूँ; एइ–यह; वर-वरदान; तोमा सबार-तुम सबके; भर्ता-पति; हबे-होंगे; परम-बहुत; सुन्दर-सुन्दर।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "मेरी प्रिय बहनों, मैं तुम्हें वर देता हूँ कि तुम सबको अत्यन्त सुन्दर पति मिलेंगे।"

पण्डित, विदग्ध, युवा, धन-धान्यवान् ।

सात सात पुत्र हबे-चिरायु, मतिमान् ॥55॥

पण्डित–विद्वान; विदग्ध-दक्ष एवं हास्य-प्रेमी; गुवायुवा; धन-धान्यवान्-धन-धान्य से युक्त; सात सात-सात सात; पुत्र-पुत्र; हबे-तुम्हारे होंगे; चिरायु-लम्बी आयु वाले; मतिमान्–और बुद्धिमान।

अनुवाद

"वे विद्वान, चतुर तथा तरुण होंगे और धन-धान्य से परिपूर्ण होंगे। इतना ही नहीं, बल्कि तुम सबके सात-सात बेटे होंगे, जो लम्बी आयु वाले तथा अत्यन्त बुद्धिमान होंगे।"

तात्पर्य

सामान्यतया हर तरुणी चाहती है कि उसे सुन्दर पति मिले, जो विद्वान, चतुर, तरुण तथा धनी हो। वैदिक संस्कृति के अनुसार धनी वह है, जिसके पास प्रचुर अन्न का भण्डार तथा पशुओं का समूह हो। धान्येन धनवान् गवया धनवान्—जिसके पास अन्न, गाएँ तथा बैल होते हैं, वही धनी है। तरुणी यह भी चाहती है कि उसके बहुत से बच्चे हों, विशेषतया पुत्र हों जो बुद्धिमान तथा दीर्घजीवी हों। किन्तु समाज के पतन के कारण अब तो ऐसा प्रचार हो रहा है। कि एक या दो बच्चे

काफी हैं और शेष को निरोध-उपायों से मार दिया जाए। किन्तु तरुणी की सहज इच्छा यही होती है कि उसके एक से अधिक ही नहीं, अपितु कम-से-कम आधे दर्जन बच्चे हों।

चैतन्य महाप्रभु पूजा की जो सामग्री अपने लिए छीन लेते थे, उसके बदले में वे उन कन्याओं की इच्छाओं को पूरा करने के लिए वर देना चाहते थे। चैतन्य महाप्रभु की पूजा करके मनुष्य सुखी बन सकता है और अच्छा पति, धन, अन्न तथा अनेक सन्ताने पाकर भौतिक लाभ प्राप्त कर सकता है। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु ने कम उम्र में ही संन्यास ले लिया था, किन्तु उनके भक्तों के लिए भी संन्यास लेकर उनका अनुसरण करना आवश्यक नहीं है। मनुष्य गृहस्थ बन सकता है, किन्तु उसे चैतन्य महाप्रभु का भक्त अवश्य बनना चाहिए। तभी वह सुखी होगा और उसे अच्छा घर, अच्छी सन्तान, अच्छी पत्नी, अच्छी सम्पत्ति तथा सारी मनोवांछित वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं। इसीलिए शास्त्रों का उपदेश है- यज्ञैः सङ्कीर्तन प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः (भागवत 11.5.32)। अतएव प्रत्येक बुद्धिमान गृहस्थ को घर-घर में संकीर्तन आन्दोलन शुरू करना चाहिए और इस जीवन में शान्तिपूर्वक रहकर अगले जीवन में भगवद्धाम जाना चाहिए।

वर शुनि' कन्या-गणेर अन्तरे सन्तोष ।

बाहिरे भर्त्सन करे करि' मिथ्या रोष ॥56॥

वर शुनि'–वरदान सुनकर; कन्या-गणेर-कन्याएँ; अन्तरे-मन ही मन; सन्तोष-अत्यन्त सन्तुष्ट; बाहिरे-बाहर से; भर्त्सन–झिड़कती हुई; करे-वे करती हैं; करि'-करके; मिथ्या-झूठा; रोष-क्रोध।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दिया गया यह वर सुनकर सारी कन्याएँ मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न थीं, किन्तु ऊपर से, जैसाकि कन्याओं के लिए स्वाभाविक है, क्रुद्ध होने का बहाना बनाकर उन्हें डाँटने लगीं।

तात्पर्य

ऐसा दोहरा व्यवहार लड़कियों में स्वाभाविक है। जब वे अन्त:करण से प्रसन्न होती हैं, तब वे बाहर से असन्तोष व्यक्त करती हैं। स्त्रियों का ऐसा व्यवहार उन लड़कों को बहुत भाता है, जो उनसे मैत्री करना चाहते हैं।

कोन कन्या पलाइल नैवेद्य लइया ।

तारे डाकि' कहे प्रभु सक्रोध हइया ॥57॥

कोन कन्या-कुछ कन्याएँ; पलाइल-भाग गईं; नैवेद्य-नैवेद्य की थाली; लइया-लेकर; तारे-उनको; डाकि' बुलाते हुए; कहे-कहते; प्रभु–महाप्रभु; सक्रोध-क्रुद्ध; हइया-होकर।

अनुवाद

जब कुछ कन्याएँ नैवेद्य लेकर भाग गईं, तो महाप्रभु ने क्रुद्ध होकर उन्हें बुलाया और इस तरह कहा।

यदि नैवेद्य ना देह हइया कृपणी ।

बुड़ा भर्ता हवे, आर चारि चारि सतिनी ॥58॥

यदि-यदि; नैवेद्य-नैवेद्य, ना-न; देह-मुझे दिया; हइया-होकर; कृपणी-कंजूस; बुड़ा-बूढ़ा; भर्ता-पति; हबे मिलेगा; आर-और; चारि-चार; चारि-चार; सतिनी-सौतनें।

अनुवाद

"यदि तुम कंजूसी करोगी और मुझे भेंट नहीं चढ़ाओगी, तो तुम में से हर एक को बूढ़ा पति और कम से कम चार चार सौतनें मिलेंगी।"

तात्पर्य

भारत में उन दिनों और यहाँ तक कि 50 वर्ष पूर्व तक बहुविवाह के लिए स्वतन्त्रता थी। कोई भी व्यक्ति, विशेषतया उच्च जाति के ब्राह्मण, वैश्य तथा विशेषकर क्षत्रिय एक से अधिक पत्नियाँ रख सकते थे। महाभारत काल में या भारत के प्राचीन इतिहास में हमें देखने को मिलता है कि क्षत्रिय राजाओं के कई विवाह होते थे। वैदिक सभ्यता के अनुसार इस पर कोई प्रतिबन्ध न था और पचास वर्ष की उम्र का व्यक्ति भी विवाह कर सकता था। किन्तु ऐसे व्यक्ति से विवाहित होना, जिसकी कई पत्नियाँ हों, कभी भी अच्छा नहीं माना जाता था, क्योंकि इससे पति का प्यार कई पत्नियों में बँट जाता है। चैतन्य महाप्रभु इन कन्याओं को, कम से कम चार पत्नियों वाले पति से ब्याह होने का शाप देने का दिखावा करके इसीलिए दण्डित कर रहे थे, क्योंकि वे उन्हें नैवेद्य नहीं देना चाहती थीं। सामाजिक ढाँचे में पुरुष को एक से अधिक ब्याह करने की छूट दिये जाने का समर्थन इस प्रकार से किया जा सकता है। सामान्यतया हर समाज में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक होती है। अतएव यदि समाज का यह सिद्धान्त रहे कि सारी कन्याएँ विवाहित हों, तो जब तक बहुपत्नीत्व की अनुमति न मिले, ऐसा सम्भव नहीं होगा। यदि सारी कन्याओं का विवाह नहीं होता, तो व्यभिचार की अधिक आशंका बनी रहती है और व्यभिचार वाला समाज कभी शुद्ध या

शान्त नहीं रह सकता। हमने अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अवैध यौन-जीवन पर प्रतिबन्ध लगा रखा है। व्यावहारिक कठिनाई यह है कि हर कन्या के लिए पति हूँढ पाना कठिन है। अतएव हम बहुपत्नीत्व के पक्ष में हैं, बशर्ते कि पति एक से अधिक पत्नियों का भरण-पोषण कर सकने में समर्थ हो।

इहा शुनि' ता-सबार मने हइल भय ।

कोन किछु जाने, किबा देवाविष्ट हय ॥59॥

इहा शुनि'-यह सुनकर; ता-सबार-सभी कन्याओं के; मने-मनों में; हइल-हो गया; भय-भय; कोन किछु-कुछ असामान्य; जाने-वे जानते हैं; किबा-क्या; देव-आविष्ट-देवताओं से शक्ति प्रदत्त; हय–वे हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य का यह कल्पित शाप सुनकर कन्याओं ने सोचा कि हो सकता है यह कुछ असाधारण बातें जानता हो या इसे देवताओं से शक्ति प्राप्त हो, अतः वे भयभीत हो गई थीं कि उसका शाप कहीं सच न हो जाए।

आनिया नैवेद्य तारा सम्मुखे धरिल ।

खाइया नैवेद्य तारे इष्ट-वर दिल ॥60 ॥

आनिया–लाकर; नैवेद्य-नैवेद्य; तारा–वे सब; सम्मुखे-सामने; धरिल-रख दिया; खाइया-खाया; नैवेद्य-नैवेद्य; तारे–उनको; इष्ट-वर-अभीष्ट वरदान; दिल-दिया।

अनुवाद

तब कन्याएँ महाप्रभु के समक्ष अपनी अपनी भेटें ले आईं और महाप्रभु ने उन्हें खाकर कन्याओं को मनोवांछित आशीर्वाद दिया।

एइ मत चापल्य सब लोकेरे देखाय ।

दुःख कारो मने नहे, सबे सुख पाय ॥ 61॥

एइ मत-इस प्रकार; चापल्य-चपल व्यवहार; सब लोकेरे-सामान्य लोगों को; देखाय–दिखाते हैं; दुःख-दु:ख; कारो-कष्ट; मने-मन में; नहे-ऐसी कोई बात नहीं है; सबे-प्रत्येक; सुख-सुख; पाय-पाता है।

अनुवाद

जब लोगों को कन्याओं के प्रति महाप्रभु की इस चातुरी का पता लगा, तो उनमें किसी तरह की गलतफहमी नहीं हुई। बल्कि उन्हें इन व्यवहारों से आनन्द प्राप्त हुआ।

एक-दिन वल्लभाचार्य-कन्या 'लक्ष्मी' नाम ।

देवता पूजिते आइल करि गङ्गा-स्नान ॥62॥

एक-दिन-एक दिन; वल्लभाचार्य-कन्या-वल्लभाचार्य की पुत्री; लक्ष्मी-लक्ष्मी; नाम-नामक; देवता-देवता; पूजिते-पूजा करने के लिए; आइल-आई; करि-लेकर; गङ्गा-स्नान-गंगा स्नान।

अनुवाद

एक दिन वल्लभाचार्य की पुत्री, जिसका नाम लक्ष्मी था, गंगा किनारे नदी में स्नान करने और देवताओं को पूजने आई।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (45) के अनुसार लक्ष्मी पूर्वजन्म में भगवान् रामचन्द्र की पत्नी जानकी और द्वारका में भगवान् कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी थी। वही लक्ष्मी के रूप में चैतन्य महाप्रभु की पत्नी बनने के लिए अवतरित हुई।

ताँरे देखि' प्रभुर हइल साभिलाष मन।

लक्ष्मी चित्ते प्रीत पाइल प्रभुर दर्शन॥ 63॥

ताँरे देखि'–उसे देखकर; प्रभुर–महाप्रभु का; हइल-था; स-उसकी; अभिलाष-आसक्ति; मन–मन; लक्ष्मी-लक्ष्मी भी; चित्ते-हृदय में; प्रीत–सन्तोष; पाइल-पाया; प्रभुर–महाप्रभु का; दर्शन-दर्शन।

अनुवाद

लक्ष्मीदेवी को देखकर महाप्रभु उनके प्रति अनुरक्त हो गये और महाप्रभु को देखकर लक्ष्मी को अपने मन में परम सन्तोष की अनुभूति हुई।

साहजिक प्रीति दुँहार करिल उदय।

बाल्य-भावाच्छन्न तभु हइल निश्चय॥ 64॥

साहजिक–सहज; प्रीति–प्रेम; दुँहार-दोनों; करिल-किया; उदय-प्रकट; बाल्य-बाल्यावस्था; भाव-आच्छन्न-भाव से आच्छदन; तभु–फिर भी; हइल-ऐसा हो गया; निश्चय-निश्चय।

अनुवाद

उन में परस्पर सहज प्रेम जाग्रत हुआ और बाल्यकाल की भावनाओं से प्रच्छन्न होने पर भी यह प्रकट हो गया कि वे दोनों एक दूसरे पर स्वाभाविक रूप से अनुरक्त हैं।

तात्पर्य

चैतन्य महाप्रभु तथा लक्ष्मीदेवी सनातन पति-पत्नी हैं। अतएव जब दोनों ने एक दूसरे को देखा, तो उनमें सुप्त प्रेम का जाग्रत होना स्वाभाविक था। उनके मिलन से उनकी स्वाभाविक भावनाएँ तुरन्त जाग उठीं।

दुँहा देखि' दुँहार चित्ते हइल उल्लास ।

देव-पूजा छले कैल हे परकाश ॥ 65 ॥

दुँहा-वे दोनों; देखि'–देखकर; दुँहार-दोनों के; चित्ते-मन में; हइल-था; उल्लास-हर्ष; देव-पूजा-देवताओं की पूजा करके; छले–इस बहाने से; कैल-था; दुँहे-वे दोनों; परकाश-प्रकट।

अनुवाद

उन दोनों ने एक दूसरे को निहारने के नैसर्गिक आनन्द का आस्वादन किया और देव-पूजा के बहाने दोनों ने अपनी भावनाएँ प्रकट कीं।

प्रभु कहे, 'आमा' पूज, आमि महेश्वर ।

आमारे पूजिले पाबे अभीप्सित वर' ॥ 66 ॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; आमा' पूज-मेरी पूजा करो; आमि-मैं हूँ; महेश्वर-परम भगवान्; आमारे-मुझे; पूजिले–यदि तुम पूजा करोगी; पाबे-तुम पाओगी; अभीप्सित-अभीष्ट; वर-वरदान।

अनुवाद

महाप्रभु ने लक्ष्मी से कहा, "मेरी पूजा करो, क्योंकि मैं परमेश्वर हूँ। यदि तुम मेरी पूजा करोगी, तो निश्चय ही तुम्हें मनोवांछित वर प्राप्त होगा।"

तात्पर्य

यही सिद्धान्त स्वयं भगवान् कृष्ण घोषित करते हैं :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।

"सारे धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्त कर दूँगा। तुम डरो मत।" (भगवद्गीता 18.66) लोग इसे समझते नहीं। वे अनेक देवताओं, मनुष्यों, यहाँ तक कि कुत्तों-बिल्लियों की प्रशंसा करते रहते हैं, या उन्हें पूजते हैं, किन्तु जब उनसे भगवान् की पूजा करने को कहा जाता है, तो वे मना कर देते हैं। यही माया है। वास्तव में, यदि कोई भगवान् की पूजा करता है, तो उसे अन्य किसी की पूजा करने की आवश्यकता नहीं रहती। उदाहरणार्थ, गाँव के सीमित क्षेत्र में विभिन्न कुओं का उपयोग विभिन्न कार्यों के लिए किया जा सकता है, किन्तु जब कोई नदी के पास जाता है, तब नदी में तरंगों के रूप में निरन्तर बहने के कारण इसका पानी सारे कार्यों में प्रयुक्त किया जा सकता है। जहाँ नदी होती है, वहाँ पीने का पानी उसी से लिया जा सकता है, उसी से कपड़े धोये

जा सकते हैं, नहाया जा सकता है इत्यादि, क्योंकि यह पानी सभी कामों में प्रयुक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की पूजा करता है, तो उसके सारे लक्ष्य पूरे हो जायेंगे। कामैस्तैस्तैर्हतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्य देवता:-केवल वही लोग अपनी इच्छापूर्ति के लिए विविध देवताओं को पूजते हैं, जिनकी बुद्धि मारी गई है (भगवद्गीता 7.20)।

लक्ष्मी ताँर अङ्गे दिल पुष्प-चन्दन ।

मल्लिकार माला दिया करिल वन्दन ॥ 67॥

लक्ष्मी–लक्ष्मी देवी; ताँर-उनके; अङ्गे–शरीर पर; दिल-दिया; पुष्प-पुष्प; चन्दन–चन्दन; मल्लिकार-मल्लिका के पुष्प; माला-माला; दिया-देकर; करिल-की; वन्दन-वन्दना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का आदेश सुनकर लक्ष्मी ने तुरन्त उनकी पूजा की-उनके शरीर पर चन्दन तथा फूल चढ़ाये, उन्हें मल्लिका फूलों की माला पहनाई और उनकी स्तुति की।

प्रभु ताँर पूजा पाञा हासिते लागिला ।

श्लोक पड़ि' ताँर भाव अङ्गीकार कैला ॥ 68॥

प्रभु–महाप्रभु; ताँर-उसकी; पूजा-पूजा; पाञा-पाकर; हासिते-हँसने; लागिला-लगे; श्लोक पड़ि'–एक श्लोक पढ़कर; ताँर-उसका; भाव-भाव; अङ्गीकार कैला–स्वीकार किया।

अनुवाद

लक्ष्मी द्वारा इस प्रकार पूजे जाने पर महाप्रभु मुस्काने लगे। उन्होंने श्रीमद्भागवत का एक श्लोक कहा और लक्ष्मी द्वारा व्यक्त मनोभाव को स्वीकार कर लिया।

तात्पर्य

इस प्रसंग में जिस श्लोक को उद्धृत किया गया है, वह श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के बाइसवें अध्याय का पच्चीसवाँ श्लोक है। यद्यपि गोपियाँ दुर्गादेवी या कात्यायनी की पूजा करती थीं, किन्तु उनकी आन्तरिक इच्छा भगवान् कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने की थी। परमात्मा होने के कारण कृष्ण गोपियों की उत्कट इच्छा को जान गये, अतएव उन्होंने वस्त्रहरण-लीला का रसास्वादन किया। गोपियाँ किनारे पर अपने अपने वस्त्र छोड़कर पूर्णतया नग्न होकर यमुना में स्नान करने गईं। कृष्ण ने अवसर पाकर उनके वस्त्र चुरा लिये और उन्हें लेकर पेड़ पर चढ़ गये, वे उनके पति की तरह बनकर गोपिकाओं को नग्न देख सकें। गोपियाँ चाहती थीं कि कृष्ण उनके पति हों और चूँकि कोई भी स्त्री अपने पति के ही आगे नग्न हो सकती है, अतएव कृष्ण ने उनकी इच्छा पूरी करने के लिए वस्त्रहरण-लीला करके गोपियों की याचना को स्वीकार किया। जब गोपियों को उनके वस्त्र मिल गये, तो कृष्ण ने यह श्लोक पढ़ा था।

सङ्कल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् ।

मयानुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥ 69॥

सङ्कल्पः-इच्छा; विदितः-जान ली गई; साध्व्यः–उन सब पवित्र महिलाओं की; भवतीनाम्-तुम सबका; मत्-अर्चनम्-मेरी पूजा के लिए; मया-मुझसे; अनुमोदितः-स्वीकार; सः-वह; असौ-वह इच्छा अथवा संकल्प; सत्यः-सफल; भवितुम्-होने हेतु; अर्हति-योग्य है।

अनुवाद

"हे प्रिय गोपियों, मैं तुम्हारा पति बनने तथा इस प्रकार से मेरी पूजा करने की तुम लोगों की इच्छा को स्वीकार करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम लोगों की इच्छा पूरी हो, क्योंकि यह पूरी होने योग्य है।"

तात्पर्य

कृष्ण की संगिनी गोपियाँ लगभग कृष्ण के ही समान आयु की थीं। उन्होंने मन में चाहा था कि कृष्ण उनके पति बनें, किन्तु स्त्री-सुलभ लज्जा के कारण वे अपनी इच्छा व्यक्त नहीं कर सकती थीं। अतएव उनके वस्त्रहरण के बाद कृष्ण ने उन्हें बतलाया, "मैं तुरन्त ही तुम लोगों की कामना को समझ गया और मैंने उसे मान भी लिया। चूँकि मैंने तुम लोगों के वस्त्र चुरा लिए हैं और तुम लोग मेरे सामने बिल्कुल नग्न रूप में उपस्थित हो, इसका अर्थ यही होता है कि मैंने तुम सबको पत्नी-रूप में स्वीकार कर लिया है। कभी-कभी भगवान् का या गोपियों का अभिप्राय न जानने के कारण मति-भ्रष्ट लोग अपने दृष्टिकोण से व्यर्थ ही आलोचना करते हैं, किन्तु वस्त्रहरण के असली आशय को इस श्लोक में भगवान् ने बतलाया है।

एइ-मत लीला करि' दुँहे गेला घरे ।

गम्भीर चैतन्य-लीला के बुझिते पारे ॥ 70 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; लीला-लीलाएँ; करि'-करके; दुँहे-वे दोनों; गेला–लौट गये; घरे–घर; गम्भीर–बहुत गम्भीर भाव में; चैतन्य-लीला-चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; के-कौन; बुझिते-समझने में; पारे-सक्षम।

अनुवाद

इस तरह परस्पर अपने-अपने भावों को व्यक्त करने के बाद भगवान् चैतन्य तथा लक्ष्मी दोनों अपने-अपने घर लौट गये। भला चैतन्य महाप्रभु की गम्भीर लीलाओं को कौन समझ सकता है?

चैतन्य-चापल्य देखि' प्रेमे सर्व जन ।

शची-जगन्नाथे देखि' देन ओलाहन ॥ 71 ॥

चैतन्य-भगवान् चैतन्य; चापल्य-शरारतीपन; देखि'–देखकर; प्रेमे-प्रेम के कारण; सर्व जन-सभी लोग; शची-शचीमाता के सम्मुख; जगन्नाथे-और जगन्नाथ मिश्र; देखि'–उनको देखकर; देन–दिया; ओलाहन-उलाहना।

अनुवाद

पास पड़ोस के लोगों ने जब चैतन्य महाप्रभु के नटखट स्वभाव को देखा, तो उन्होंने प्रेमवश शचीमाता तथा जगन्नाथ मिश्र से शिकायत की।

एकदिन शची-देवी पुत्रेरे भर्तिसया ।

धरिबारे गेला, पुत्र गेला पलाइया ॥72॥

एक-दिन-एक दिन; शची-देवी-माता शचीदेवी; पुत्रेरे-पुत्र को; भर्तिसया–डाँटने के लिए; धरिबारे उनको पकड़ने के लिए; गेला–गईं; पुत्र-पुत्र; गेला-गये; पलाइया-भागकर।

अनुवाद

एक दिन शचीमाता अपने पुत्र को डाँटने के उद्देश्य से उसे पकड़ने गईं, किन्तु वे उस स्थान से भाग निकले।

उच्छिष्ट-गर्ते त्यक्त-हाण्डीर उपर।

बसियाछेन सुखे प्रभु देव-विश्वम्भर ॥73॥

उच्छिष्ट-गर्ते-गड्ढे में जहाँ बचा हुआ भोजन फेंका हुआ था; त्यक्त-फेंके हुए; हाण्डीर–बर्तन; उपर-ऊपर; बसियाछेन–बैठ गये; सुखे-बड़े आराम से; प्रभु–महाप्रभु; देव–परम भगवान्; विश्वम्भर-ब्रह्माण्ड के पालनहार।

अनुवाद

यद्यपि चैतन्य महाप्रभु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के पालनकर्ता हैं, किन्तु एक बार वे उस गड्ढे में भोजन पकाने के बाद फेंके गये पात्रों के ऊपर जाकर बैठ गये, जहाँ जूठन फेंका जाता है।

तात्पर्य

पहले ब्राह्मणों द्वारा घर पर प्रतिदिन भगवान् विष्णु की पूजा करने और नये पात्रों में भोजन पकाने की प्रथा थी। यह प्रथा आज भी जगन्नाथ पुरी में प्रचलित है। वहाँ मिट्टी की ताजी नई हाँड़ी में भोजन पकाया जाता है और पकाने के बाद इन हाँड़ियों को फेंक दिया जाता है। सामान्यतया घरों के पास एक बड़ा गड्डा होता था, जहाँ ऐसी हाँड़ियाँ फेंकी जाती थी। श्री चैतन्य महाप्रभु ऐसी ही हाँड़ी के ऊपर मजे से बैठ गये, क्योंकि वे अपनी माता को शिक्षा देना चाह रहे थे।

शची आसि' कहे,—केने अशुचि छुडिला।

गङ्गा-स्नान कर याइ'–अपवित्र हइला ॥74॥

शची आसि'-माता शची ने वहाँ आकर; कहे–कहा; केने-क्यों; अशुचि-अस्प; छुडिला-तुमने छुआ है; गङ्गा-स्नान-गंगा स्नान; कर-करो; याइ'-वहाँ जाकर; अपवित्र हइला-तुम अपवित्र हो गये हो।

अनुवाद

जब शचीमाता ने अपने बेटे को फेंकी हुई हाँड़ियों के ऊपर बैठे देखा, तो उन्होंने यह कहकर आपत्ति प्रकट की, "तुमने इन अशुद्ध बर्तनों को क्यों छुआ? अब तुम अशुद्ध हो गये हो। जाओ और गंगा में स्नान करो।"

इहा शुनि' माताके कहिल ब्रह्म-ज्ञान ।

विस्मिता हइया माता कराइल स्नान ॥ 75॥

इहा शुनि'-यह सुनकर; माताके-अपनी माता को; कहिल-बताया; ब्रह्म-ज्ञान-ब्रह्म ज्ञान; विस्मिता-हैरान; हइया-होकर; माता-माता; कराइल-करवाया; स्नान-स्नान।

अनुवाद

यह सुनकर चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता को ब्रह्म-ज्ञान की शिक्षा दी। यद्यपि वे इससे विस्मित तो हुईं, किन्तु फिर भी उन्होंने महाप्रभु को स्नान करने के लिए बाध्य किया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में महाप्रभु द्वारा अपनी माता से कहे गये ब्रह्म-ज्ञान की व्याख्या इस प्रकार की है, "महाप्रभु ने कहा, 'हे माता, यह शुद्ध है और वह अशुद्ध है-यह तो आधारहीन सांसारिक भावना है। आपने इन बर्तनों में भगवान् विष्णु के लिए भोजन

पकाया है और वही भोजन उन्हें समर्पित किया है। तो फिर ये बर्तन अशुद्ध क्यों हुए? विष्णु से सम्बन्धित हर वस्तु को विष्णु की शक्ति का अंश माना जाना चाहिए। विष्णु परमात्मा हैं, शाश्वत हैं और अकलुषित हैं। तो फिर इन बर्तनों को किस तरह शुद्ध या अशुद्ध माना जा सकता है?" ब्रह्म-ज्ञान विषयक यह बातें सुनकर उनकी माता अत्यन्त चकित हुईं और उन्हें स्नान करने के लिए बाध्य किया।

कभु पुत्र-सङ्गे शची करिला शयन।

देखे, दिव्यलोक आसि' भरिल भवन॥ 76॥

कभु-कभी-कभी; पुत्र-सङ्गे-पुत्र को लेकर; शची–माता शची; करिला शयन-विश्राम करती; देखे-देखती; दिव्य-लोक-दिव्य लोगों को; आसि'-वहाँ आकर; भरिल-भरा हुआ; भवन–सारा घर।

अनुवाद

कभी-कभी शचीमाता अपने पुत्र को लेकर बिस्तर पर लेटतीं और वे देखतीं कि स्वर्गलोक के निवासी वहाँ आये हुए हैं, जिनसे सारा घर भर गया है।

शची बले,—याह, पुत्र, बोलाह बापेरे।

मातृ-आज्ञा पाइया प्रभु चलिला बाहिरे॥ 77॥

शची बले-माता शची ने कहा; याह-जाओ; पुत्र-मेरे प्रिय पुत्र; बोलाह-बुलाओ; बापेरे-अपने पिता को; मातृ-आज्ञा-अपनी माता की आज्ञा; पाइया-पाकर; प्रभु-महाप्रभु; चलिला–चले गये; बाहिरे-बाहर।

अनुवाद

एक बार शचीमाता ने महाप्रभु से कहा, "जाकर अपने पिता को बुला लाओ।" माता का आदेश पाकर वे उन्हें बुलाने बाहर गये।

चलिते चरणे नूपुर बाजे झन्झन् ।

शुनि' चमकित हैल पिता-मातार मन ॥78॥

चलिते-जाते समय; चरणे-चरणकमलों पर; नूपुर-नूपुर; बाजे-बजने लगी; झन्झन्-झन झन; शुनि'–सुनकर; चमकित-आश्चर्यचकित हो गया; हैल–हो गया; पिता-अपने पिता का; मातार–और माता का; मन–मन।

अनुवाद

जब बालक बाहर जा रहा था, तो उसके चरणकमलों से नुपुर की ध्वनि आ रही थी। यह सुनकर पिता तथा माता दोनों ही आश्चर्यचकित हो गये।

मिश्र कहे,—एइ बड़ अद्भुत काहिनी ।

शिशुर शून्य-पदे केने नूपुरेर ध्वनि ॥79॥

मिश्र कहे जगन्नाथ मिश्र ने कहा; एइ बड़-यह है बहुत; अद्भुत-अद्भुत; काहिनी–घटना; शिशुर–शिशु की; शून्य-पदे-नंगे पैरो से; केने-किस प्रकार; नूपुरेर-नूपुर; ध्वनि-ध्वनि।

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने कहा, "यह बड़ी अद्भुत घटना है। मेरे पुत्र के नंगे पाँवों से नूपुरों की ध्वनि कैसे आ रही है?"

शची कहे,—आर एक अद्भुत देखिल।

दिव्य दिव्य लोक आसि' अङ्गन भरिल ॥80॥

शची कहे-माता शची ने कहा; आर-अन्य; एक-एक; अद्भुत-अद्भुत; देखिल-मैंने देखा; दिव्य-दिव्य; दिव्य-दिव्य; लोक-लोग; आसि'-वहाँ आ रहे; अङ्गन--आंगन; भरिल-भर गया।

अनुवाद

माता शची ने कहा, "मैंने भी एक और आश्चर्य देखा है। स्वर्गलोक से लोग उतरे चले आ रहे थे और पूरे आँगन में भीड़ लगी थी।"

किबा कोलाहल करे, बुझिते ना पारि।

काहाके वा स्तुति करे—अनुमान करि ॥81॥

किबा-क्या; कोलाहल-कोलाहल; करे-वे करते हैं; बुझिते-समझने के लिए; ना-नहीं; पारि-मैं समर्थ हुँ; काहाके-किसको; वा-अथवा; स्तुति-स्तुति; करे-वे करते हैं; अनुमान–अनुमान; करि-मैं करती हूँ।

अनुवाद

उन्होंने जोर-जोर से कुछ शब्द किया जिसे मैं नहीं समझ पाई। मेरा अनुमान है कि वे किसी की स्तुति कर रहे थे।"

मिश्र बले,—किछु हउक्, चिन्ता किछु नाइ।

विश्वम्भरेर कुशल हउक्,–एइ मात्र चाइ ॥82॥

मिश्र बले-जगन्नाथ मिश्र ने उत्तर दिया; किछ हउक्-जो कुछ भी हो; चिन्ता किछु नाइ–चिन्ता मत करो; विश्वम्भरेर–विश्वम्भर की; कुशल-कुशलता; हउक्--होने दो; एइ–यह; मात्र मात्र; चाइ-मैं चाहता हूँ।

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने उत्तर दिया, "इसकी परवाह मत करो। चिन्ता की कोई बात नहीं है। विश्वम्भर सदैव कुशल रहे। यही मेरी कामना है।"

एक-दिन मिश्र पुत्रेर चापल्य देखिया।

धर्म-शिक्षा दिल बहु भर्त्सना करिया ॥83॥

एक-दिन-एक दिन; मिश्र-जगन्नाथ मिश्र; पुत्रेर-अपने पुत्र का; चापल्य-चपल व्यवहार; देखिया-देखकर; धर्म-शिक्षा-धार्मिक शिक्षा; दिल-दी; बहु-बहुत; भर्सना-डाँट; करिया-कर।

अनुवाद

एक अन्य अवसर पर जगन्नाथ मिश्र ने अपने बेटे की चपलता देखकर उसे खूब फटकारा और फिर नैतिकता की शिक्षा दी।

रात्रे स्वप्न देखे,—एक आसि' ब्राह्मण।

मिश्रेरे कहये किछु स-रोष वचन ॥84॥

रात्रे-रात को; स्वप्न देखे-उन्होंने स्वप्न देखा; एक-एक; आसि'-आते हुए; ब्राह्मण-ब्राह्मण को; मिशेरे–जगन्नाथ मिश्र के पास; कहये-बोला; किछु-कुछ; स-रोष-क्रोध से; वचन–शब्द।

अनुवाद

उसी रात को जगन्नाथ मिश्र ने सपना देखा कि एक ब्राह्मण आकर क्रोध में उनसे ये वचन कह रहा है :

"मिश्र, तुमि पुत्रेर तत्त्व किछुइ ना जान।

भर्त्सन-ताड़न कर,—पुत्र करि' मान" ॥85॥

मिश्र-मेरे प्यारे जगन्नाथ मिश्र; तुमि-तुम; पुत्रेर-अपने पुत्र का; तत्त्व-सत्य; किछुइ-कुछ; ना-नहीं; जान-जानते; भर्त्सन–झिड़कना; ताड़न-ताड़ना; कर-तुम करते हो; पुत्र-पुत्र; करि'-उसको; मान-तुम मानते हो।

अनुवाद

"हे प्रिय मिश्र, तुम अपने पुत्र के बारे में कुछ भी नहीं जानते। तुम उसे अपना पुत्र समझकर फटकारते और प्रताड़ित करते हो।"

मिश्र कहे,—देव, सिद्ध, मुनि केने नय।

ये से बड़ हउक् मात्र आमार तनय ॥86॥

मिश्र कहे जगन्नाथ मिश्र ने उत्तर दिया; देव-देव; सिद्ध-सिद्ध योगी; मुनि-महान् सन्त पुरुष; केने नय-ऐसा हो सकता है या नहीं भी; ये से-जो कुछ; बड़-बड़ा; हउक्-वह हो; मात्र मात्र; आमार-मेरा; तनय-पुत्र।

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने उत्तर दिया, "यह बालक देवता, योगी या सन्त पुरुष है, तो हुआ करे। मुझे इसकी परवाह नहीं कि वह क्या है, क्योंकि मैं उसे अपना पुत्र ही मानता हूँ।

पुत्रेर लालन-शिक्षा—पितार स्व-धर्म ।

आमि ना शिखाले कैछे जनिबे धर्म-मर्म ॥87॥

पुत्रेर-पुत्र का; लालन-पालन पोषण; शिक्षा-शिक्षा; पितार-पिता का; स्व-धर्म-कर्तव्य; आमि-यदि मैं; ना-नहीं; शिखाले-शिक्षा दें; कैछे-कैसे; जनिबे–वह जानेगा; धर्म-मर्म-धर्म का मर्म।

अनुवाद

"यह पिता का कर्तव्य है कि वह अपने पुत्र को धर्म तथा नैतिकता की शिक्षा दे। यदि मैं इसे यह शिक्षा नहीं दूँगा तो यह जानेगा कैसे?"

विप्र कहे,—पुत्र यदि दैव-सिद्ध हय ।

स्वतः-सिद्ध-ज्ञान, तबे शिक्षा व्यर्थ हय ॥88॥

विप्र कहे-ब्राह्मण ने उत्तर दिया; पुत्र-पुत्र; यदि-यदि; दैव-दिव्य; सिद्ध-सिद्ध; हय-हो; स्वतः-सिद्ध-ज्ञान-स्व-प्रकाशित पूर्ण ज्ञान; तबे-तब; शिक्षा-शिक्षाः व्यर्थ-व्यर्थ; हय-हो जाती है।

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "यदि तुम्हारा पुत्र स्वयं तेजोमय पूर्ण ज्ञान से युक्त दिव्य योगी है, तो तुम्हारी शिक्षा का क्या लाभ है?"

तात्पर्य

जगन्नाथ मिश्र ने जिस ब्राह्मण को सपने में देखा था, उसने यह बतलाया कि तुम्हारा पुत्र सामान्य मनुष्य नहीं है। यदि वह दिव्य पुरुष है, तो उसमें स्वयं तेजोमय ज्ञान होना चाहिए और तब उसे शिक्षा देने की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

मिश्र कहे,— "पुत्र केने नहे नारायण।

तथापि पितार धर्म—पत्रेर शिक्षण" ॥89॥

अनुवाद

उसी रात को जगन्नाथ मिश्र ने सपना देखा कि एक ब्राह्मण आकर क्रोध में उनसे ये वचन कह रहा है।

मिश्र, तुमि पुत्रेर तत्त्व किछुइ ना जान।

भर्त्सन-ताड़न कर,—पुत्र करि' मान ॥85॥

मिश्र-मेरे प्यारे जगन्नाथ मिश्र; तुमि-तुम; पुत्रे-अपने पुत्र का; तत्त्व-सत्य; किछुइ-कुछ; ना-नहीं; जान-जानते; भर्त्सन–झिड़कना; ताड़न-ताड़ना; कर-तुम करते हो; पुत्र-पुत्र; करि'-उसको; मान-तुम मानते हो।

अनुवाद

"हे प्रिय मिश्र, तुम अपने पुत्र के बारे में कुछ भी नहीं जानते। तुम उसे अपना पुत्र समझकर फटकारते और प्रताड़ित करते हो।"

मिश्र कहे,—देव, सिद्ध, मुनि केने नय ।

ये से बड़ हउक् मात्र आमार तनय ॥86॥

मिश्र कहे-जगन्नाथ मिश्र ने उत्तर दिया; देव-देव; सिद्ध-सिद्ध योगी; मुनि-महान् सन्त पुरुष; केने नय-ऐसा हो सकता है या नहीं भी; ये से जो कुछ; बड़-बड़ा; हउक्-वह हो; मात्र मात्र; आमार-मेरा; तनय-पुत्र।

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने उत्तर दिया, "यह बालक देवता, योगी या सन्त पुरुष है, तो हुआ करे। मुझे इसकी परवाह नहीं कि वह क्या है, क्योंकि मैं उसे अपना पुत्र ही मानता हूँ।"

पुत्रेर लालन-शिक्षा–पितार स्व-धर्म ।

आमि ना शिखाले कैछे जनिबे धर्म-मर्म ॥87॥

पुत्रेर-पुत्र का; लालन-पालन पोषण; शिक्षा-शिक्षा; पितार-पिता का; स्व-धर्म-कर्तव्य; आमि-यदि मैं; ना-नहीं; शिखाले–शिक्षा दें; कैछे-कैसे; जनिबे–वह जानेगा; धर्म-मर्म-धर्म का मर्म।

अनुवाद

यह पिता का कर्तव्य है कि वह अपने पुत्र को धर्म तथा नैतिकता की शिक्षा दे। यदि मैं इसे यह शिक्षा नहीं दूँगा तो यह जानेगा कैसे?"

विप्र कहे,—पुत्र यदि दैव-सिद्ध हय।

स्वतः-सिद्ध-ज्ञान, तबे शिक्षा व्यर्थ हय ॥88॥

विप्र कहे-ब्राह्मण ने उत्तर दिया; पुत्र-पुत्र; यदि-यदि; दैव-दिव्य; सिद्ध-सिद्ध; हय-हो; स्वतः-सिद्ध-ज्ञान-स्व-प्रकाशित पूर्ण ज्ञान; तबे-तब; शिक्षा-शिक्षा; व्यर्थ-व्यर्थ; हय-हो जाती है।

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "यदि तुम्हारा पुत्र स्वयं तेजोमय पूर्ण ज्ञान से युक्त दिव्य योगी है, तो तुम्हारी शिक्षा का क्या लाभ है?"

तात्पर्य

जगन्नाथ मिश्र ने जिस ब्राह्मण को सपने में देखा था, उसने यह बतलाया कि तुम्हारा पुत्र सामान्य मनुष्य नहीं है। यदि वह दिव्य पुरुष है, तो उसमें स्वयं तेजोमय ज्ञान होना चाहिए और तब उसे शिक्षा देने की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

मिश्र कहे,–"पुत्र केने नहे नारायण।

तथापि पितार धर्मपुत्रेर शिक्षण" ॥89॥

मिश्र कहे-जगन्नाथ मिश्र ने उत्तर दिया; पुत्र-मेरा पुत्र; केने–हो सकता है; नहे-क्यों नहीं; नारायण-नारायण; तथापि तथापि; पितार-पिता का; धर्म-कर्तव्य; पुत्रेर-पुत्र का; शिक्षण-शिक्षण।

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने कहा, "चाहे मेरा पुत्र सामान्य पुरुष न होकर नारायण ही क्यों न हो, तो भी पिता का कर्तव्य है कि अपने पुत्र को शिक्षा दे।"

एइ-मते दुँहे करेन धर्मेर विचार।

विशुद्ध-वात्सल्य मिशेर, नाहि जाने आर ॥90॥

एइ-मते-उस प्रकार; दुँहे-वे दोनों; करेन-करते हैं; धर्मेर-धर्म का; विचार-विचार; विशुद्ध-विशुद्ध; वात्सल्य-वात्सल्य; मिश्रेर–जगन्नाथ मिश्र का; नाहि-नहीं; जाने-वे जानते थे; आर-और कुछ।

अनुवाद

इस तरह स्वप्न में जगन्नाथ मिश्र तथा ब्राह्मण में धर्म विषयक विचार-विमर्श होता रहा। फिर भी जगन्नाथ मिश्र शुद्ध वात्सल्य रस में निमग्न रहे और वे दूसरा कुछ जानना नहीं चाहते थे।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (10.8.45) में कहा गया है, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की पूजा समस्त वेदों और उपनिषदों में उत्कृष्ट स्तोत्रों के द्वारा और सात्त्विक विधि से सांख्य योग के माध्यम से महापुरूषों द्वारा की जाती है। उन भगवान् कृष्ण को माता यशोदा तथा नन्द महाराज ने अपना नन्हा-सा बेटा माना।" इसी प्रकार जगन्नाथ मिश्र चैतन्य महाप्रभु को अपना प्रिय नन्हा बेटा मान रहे थे, यद्यपि उनकी पूजा विद्वान ब्राह्मणों तथा सन्त पुरुषों द्वारा बड़े ही आदर के साथ की जाती है।

एत शुनि' द्विज गेला हञा आनन्दित।

मिश्र जागिया हइला परम विस्मित ॥91॥

एत शुनि'-इतना सुनने के बाद; द्विज-ब्राह्मण; गेला–लौट गया; हञा-होकर; आनन्दित-अत्यन्त प्रसन्न; मिश्र-जगन्नाथ मिश्र; जागिया-जागकर; हइला-हो गये; परम-परम; विस्मित-विस्मित।

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र से बातें करने के बाद अत्यन्त प्रसन्न होकर वह ब्राह्मण चला गया और जब जगन्नाथ मिश्र अपने स्वप्न से जगे, तो वे अत्यधिक विस्मित थे।

बन्धु-बान्धव-स्थाने स्वप्न कहिल।

शुनिया सकल लोक विस्मित हइल ॥ 92 ॥

बन्धु-बान्धव-बन्धुबान्धव की; स्थाने-उपस्थिति में; स्वप्न-स्वप्न; कहिल-कहा; शुनिया-सुनने के बाद; सकल-सब; लोक-लोग; विस्मित–चकित; हइल-हो गये।

अनुवाद

उन्होंने अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से अपना स्वप्न कह सुनाया और वे सब इसे सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए।

एइ मत शिशु-लीला करे गौरचन्द्र।

दिने दिने पिता-मातार बाड़ाय आनन्द ॥ 93 ॥

एइ-इस; मत--प्रकार; शिशु-लीला-बाल्य लीलाएँ; करे-करते हैं; गौरचन्द्र- श्री गौर हरि; दिने दिने–दिनो-दिन; पिता-मातार-अपने माता पिता का; बाड़ाय–वे बढ़ाते हैं; आनन्द-आनन्द।

अनुवाद

इस तरह गौरहरि ने अपनी बाल-लीलाएँ सम्पन्न कीं और दिन-प्रतिदिन वे अपने माता-पिता के आनन्द को बढ़ाते रहे।

कत दिने मिश्र पुत्रेर हाते खड़ि दिल।

अल्प दिने द्वादश-फला अक्षर शिखिल ॥ 94॥

कत दिने कुछ दिनों के बाद; मिश्र-जगन्नाथ मिश्र; पुत्रे-अपने पुत्र के; हाते-हाथ में; खड़ि-चाक; दिल–दे दिया; अल्प-बहुत थोड़े; दिने–दिन; द्वादश-फला-द्वादश अक्षर (बारह खड़ी); अक्षर-अक्षर; शिखिल–सीखा।

अनुवाद

कुछ दिनों के बाद जगन्नाथ मिश्र ने अपने पुत्र का हातेखड़ी संस्कार सम्पन्न करके उसकी प्रारम्भिक शिक्षा का शुभारम्भ कर दिया। महाप्रभु ने कुछ ही दिनों में सारे अक्षर और संयुक्त अक्षर सीख लिए।

तात्पर्य

बारह फला अक्षरों का संयोग होता है, जिसमें रेफ, मूर्धन्य, ण, दन्तव्य, न, म, य, र, ल, व, ऋ, ॠ, लृ तथा ॡ आते हैं। हातेखड़ी प्रारम्भिक शिक्षा की शुरूआत होती है। चार या पाँच वर्ष की आयु में किसी शुभ दिन विद्यारम्भ होता है, जिस दिन भगवान् विष्णु की पूजा के बाद शिक्षक

बालक को एक खड़िया पेंसिल देता है। फिर हाथ पकड़कर फर्श पर बड़े-बड़े अक्षरों (अ, आ, इ, इत्यादि) को लिखना बताता है। जब बालक कुछ लिखने लगता है, तो उसे स्लेट दी जाती है। फिर बालक दो अक्षरों का संयोग सीखता है, जिसे फला कहते हैं, जिसे प्रारम्भिक शिक्षा का अन्त समझा जाता है।

बाल्यलीला-सूत्र एइ कैल अनुक्रम ।

इहा विस्तारियाछेन दास-वृन्दावन ॥ 95 ॥

बाल्य-लीला-सूत्र-बाल्य लीला की रूपरेखा; एइ–यह; कैल-किया; अनुक्रम-अनुक्रम में; इहा-यह; विस्तारियाछेन–विस्तार से व्याख्या की है; दास-वृन्दावन-वृन्दावनदास ठाकुर।

अनुवाद

यह श्री चैतन्य महाप्रभु की बाल-लीलाओं की रूपरेखा है, जिसे यहाँ क्रमबद्ध करके प्रस्तुत किया गया है। वृन्दावन दास ठाकुर ने पहले ही अपनी पुस्तक चैतन्य-भागवत में इन लीलाओं का विस्तार से वर्णन किया है।

अतएव एइ-लीला सङ्क्षेपे सूत्र कैल ।

पुनरुक्ति-भये विस्तारिया ना कहिल ॥96॥

अतएव–अतएव; एइ-लीला-ये लीलाएँ; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; सूत्र-रूपरेखा; कैल-की; पुनर्-उक्ति–दोहराने ; भये-के डर से; विस्तारिया–विस्तृत व्याख्या; ना-नहीं; कहिल–कहता हूँ।

अनुवाद

इसलिए मैंने केवल संक्षिप्त सारांश दिया है। पुनरुक्ति के भय से मैंने इस विषय को विस्तार से नहीं दिया।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥97॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्री रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों पर; यार-जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत ग्रन्थ; कहे-कहता हूँ; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की स्तुति करते हुए और सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उन्हीं के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के चौदहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त-तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें चैतन्य महाप्रभु की बाल-लीलाओं का वर्णन हुआ है ।

अध्याय पंद्रह

महाप्रभु की पौगण्ड-लीलाएँ

पन्द्रहवें अध्याय का सारांश इस प्रकार है। महाप्रभु ने गंगादास पण्डित के यहाँ व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की और वे व्याकरण की टीका लिखने में अत्यन्त दक्ष बन गये। उन्होंने अपनी माता को बिना अन्न खाए एकादशी का व्रत रखने को कहा। उन्होंने एक कहानी सुनाई कि संन्यास लेने के बाद विश्वरूप ने स्वप्न में उन्हें भी संन्यास ग्रहण करने के लिए कहा, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया अतः उन्हें घर वापस भेज दिया गया। जगन्नाथ मिश्र के देहान्त के बाद उन्होंने वल्लभाचार्य की पुत्री लक्ष्मी से विवाह कर लिया। ये सभी घटनाएँ इस अध्याय में संक्षिप्त रूप से वर्णित हैं।

कु-मनाः सु-मनस्त्वं हि याति यस्य पदाब्जयोः ।

सु-मनोऽर्पण-मात्रेण तं चैतन्य-प्रभुं भजे ॥1॥

कु-मनाः–भौतिक इन्द्रिय सुख के कार्यकलापों में रूचि रखने वाला; सु-मनस्त्वम्-भौतिक इच्छाओं से रहित भक्त की स्थिति; हि निश्चित रूप से; याति-पाता है; यस्य-जिसके; पद-अब्जयोः-

चरणकमलों पर; सु-मनः-एक पुष्प; अर्पण-अर्पण; मात्रेण-मात्र ऐसा करने से; तम्-उनको; चैतन्य-प्रभुम्-चैतन्य महाप्रभु; भजे-मैं पूजा करता हूँ।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ, क्योंकि उनके चरणकमलों पर फूल चढ़ाने मात्र से ही बड़े से बड़ा भौतिकतावादी भी भक्त बन जाता है।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैतचन्द्र, जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय जय; श्री-चैतन्य-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; जय-जय हो; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द प्रभु; जय-अद्वैतचन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय हो; जय गौर-भक्त-वृन्द-चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो!

पौगण्ड-लीलार सूत्र करिये गणन ।

पौगण्ड-वयसे प्रभुर मुख्य अध्ययन ॥ 3 ॥

पौगण्ड-पौगण्ड अवस्था, पाँच से दस साल के बीच की अवस्था; लीलार–लीलाओं की; सूत्र-रूपरेखा; करिये-मैं करता हूँ; गणन-गिनती; पौगण्ड-वयसे-पौगण्ड अवस्था में; प्रभुर–महाप्रभु के; मुख्य–मुख्य; अध्ययन–अध्ययन।

अनुवाद

अब मैं चैतन्य महाप्रभु की पाँच वर्ष की आयु से लेकर दस वर्ष की आयु तक की लीलाओं का संक्षिप्त वर्णन करने जा रहा हूँ। इस अवधि में उन्होंने मुख्य रूप से अध्ययन का कार्य किया।

पौगण्ड-लीला चैतन्य-कृष्णस्याति-सुविस्तृता ।

विद्यारम्भ-मुखा पाणि-ग्रहणान्ता मनो-हरा ॥4॥

पौगण्ड-लीला-पौगण्ड अवस्था की लीलाएँ, चैतन्य-कृष्णस्य-चैतन्य महाप्रभु की, जो स्वयं कृष्ण हैं; अति-सुविस्तृता-अत्यन्त विस्तृत; विद्या-आरम्भ-शिक्षा का आरम्भ; मुखा–मुख्य कार्य; पाणि-ग्रहण-विवाह; अन्ता-अन्त में; मनः-हरा-अत्यन्त सुन्दर।

अनुवाद

पौगण्ड अवस्था के अन्तर्गत महाप्रभु की लीलाएँ अत्यन्त व्यापक रहीं। उनका मुख्य कार्य उनकी शिक्षा ही रहा और उसके बाद उनका अन्यन्त सुन्दर ढंग से विवाह हुआ।

गङ्गादास पण्डित-स्थाने पड़ेन व्याकरण ।

श्रवण-मात्रे कण्ठे कैल सूत्र-वृत्ति-गण ॥5॥

गङ्गादास-गंगादास; पण्डित-स्थाने-शिक्षक के स्थान पर; पड़ेन-अध्ययन करते; व्याकरण-व्याकरण; श्रवण-मात्रे-श्रवण मात्र से; कण्ठे-गले और हृदय में; कैल-किया; सूत्र-वृत्ति-गण-सूत्रों तथा उनकी परिभाषाएँ।

अनुवाद

जब महाप्रभु श्री गंगादास पण्डित के यहाँ व्याकरण पढ़ रहे थे, तो वे व्याकरण के सारे नियम एवं परिभाषाएँ एक बार सुनकर ही तुरन्त कण्ठस्थ कर लेते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का कहना है कि विष्णु तथा सुदर्शन नामक दो शिक्षकों से महाप्रभु पढ़ते थे। बाद में जब वे कुछ बड़े हुए, तब गंगादास पण्डित के संरक्षण में रहे, जिन्होंने उन्हें उच्चतर स्तर के व्याकरण की शिक्षा दी। संस्कृत भाषा का ठीक से अध्ययन करने वालों को सर्वप्रथम व्याकरण पढ़नी पड़ती है। कहा जाता है कि संस्कृत-व्याकरण को ही पूरा करने में कम-से-कम 12 वर्ष लगते हैं, किन्तु एक बार व्याकरण के नियम अच्छी तरह सीख जाने पर संस्कृत में लिखित अन्य सभी शास्त्रों या विषयों को समझना अत्यन्त आसान हो जाता है, क्योंकि संस्कृत में व्याकरण ही शिक्षा का प्रवेश-द्वार है।

अल्प-काले हैला पञ्जी-टीकाते प्रवीण।

चिर-कालेर पड़ुया जिने हइया नवीन ॥6॥

अल्प-काले-बहुत थोड़े समय में; हैला-हो गये; पञ्जी-टीकाते-व्याकरण की पंजी टीका नामक टीका में; प्रवीण-बहुत दक्ष; चिर-कालेर-अन्य सभी बड़ों में; पड़ुया-विद्यार्थी; जिने-विजय पाते; हइया-होकर; नवीन-उनसे कनिष्ठ।

अनुवाद

वे शीघ्र ही पञ्जी-टीका की व्याख्या करने में दक्ष हो गये, जिससे नये होने पर भी समस्त विद्यार्थियों में वे सबसे आगे हो गये।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का कहना है कि पञ्जी-टीका नामक व्याकरण पर एक भाष्य था, बाद में जिसकी विशद व्याख्या श्री चैतन्य महाप्रभु ने की।

अध्ययन-लीला प्रभुर दास-वृन्दावन ।

'चैतन्य-मङ्गले' कैल विस्तारि वर्णन ॥7॥

अध्ययन-लीला-अध्ययन लीलाएँ; प्रभुर–महाप्रभु की; दास-वृन्दावन-वृन्दावन दास ठाकुर; चैतन्य-मङ्गले-अपनी पुस्तक चैतन्य मंगल में; कैल–किया है; विस्तारि-विस्तार से; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने अपनी पुस्तक चैतन्य-मंगल (बाद में इसका नाम चैतन्य-भागवत पड़ा) में महाप्रभु की अध्ययन-लीला का बड़े विस्तार से वर्णन किया है।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत आदि खण्ड के अध्याय 4, 6, 7, 8, 9 तथा 10 भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की अध्ययन-लीला के लिए सुलभ्य सन्दर्भ का काम करते हैं।

एक दिन मातार पदे करिया प्रणाम ।

प्रभु कहे,—माता, मोरे देह एक दान ॥8॥

एक दिन-एक दिन; मातार–माता के; पदे-चरणों पर; करिया-करके; प्रणाम-प्रणाम; प्रभु–महाप्रभु; कहे-ने कहा; माता–प्रिय माता; मोरे-मुझे; देह-दो; एक-एक; दान-उपहार।

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता के चरणकमलों पर गिरकर उनसे प्रार्थना की कि वे उन्हें एक वस्तु का दान दें।

माता बले,—ताइ दिब, या तुमि मागिबे ।

प्रभु कहे,—एकादशीते अन्न ना खाइबे ॥9॥

माता बले-उनकी माता बोली; ताइ दिब-मैं तुम्हें वह दूंगी; या–जो कुछ; तुमि-तुम; मागिले-माँगोगे; प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; एकादशीते-एकादशी के दिन; अन्न-अन्न; ना–न; खाइबे-खाओ।

अनुवाद

उनकी माता ने कहा "मेरे प्रिय पुत्र, जो तुम माँगोगे वही मैं दूंगी।" तब महाप्रभु बोले, "प्रिय माता, कृपया आप एकादशी के दिन अन्न न खायें।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने बाल्यकाल से ही एकादशी के दिन उपवास रखने की प्रथा अपना ली। श्रील जीव गोस्वामी कृत भक्ति-सन्दर्भ में स्कन्द-पुराण से एक उद्धरण आया है, जिसमें यह बतलाया गया है कि जो एकादशी के दिन अन्न खाता है, वह अपने माता, पिता, भाई तथा गुरु का हत्यारा बनता है और वैकुण्ठ-लोक प्राप्त होने पर भी वह नीचे गिर जाता है। एकादशी के दिन हर वस्तु, जिसमें अन्न तथा दाल सम्मिलित हैं, विष्णु के लिए बनाई जाती है, किन्तु वैष्णवों के लिए आदेश है कि वे एकादशी के दिन विष्णु प्रसाद भी न लें। कहा जाता है कि वैष्णव भगवान् विष्णु को अर्पित किये बिना कोई खाद्य ग्रहण नहीं करते, किन्तु एकादशी के दिन वैष्णवों को विष्णु को अर्पित महाप्रसाद तक छूना वर्जित है, यद्यपि ऐसा प्रसाद दूसरे दिन ग्रहण करने के लिए रखा जा सकता है। एकादशी के दिन कोई भी अन्न ग्रहण करना मना है, भले ही वह भगवान् विष्णु को अर्पित क्यों न किया गया हो।

शची कहे,—ना खाइब, भाल-इ कहिला ।

सेइ हैते एकादशी करिते लागिला ॥10॥

शची कहे-माता शची ने कहा; ना खाइब-मैं नहीं खाऊँगी; भाल-इ कहिला-तुमने बहुत सुन्दर बात कही है; सेइ हैते–उस दिन के; एकादशी-एकादशी के दिन; करिते लागिला-उपवास करने लगी।

अनुवाद

माता शची ने कहा, "तुमने बहुत अच्छा कहा। मैं एकादशी के दिन अन्न नहीं खाऊँगी।" उस दिन से वे एकादशी के दिन उपवास रखने लगीं।

तात्पर्य

स्मार्त ब्राह्मण इस पक्ष के हैं कि विधवा को तो एकादशी व्रत रखना चाहिए, किन्तु सधवा को नहीं। ऐसा लगता है कि चैतन्य महाप्रभु के अनुरोध के पूर्व शचीमाता एकादशी व्रत नहीं रखती थीं, क्योंकि वे सधवा थीं। किन्तु चैतन्य महाप्रभु ने ऐसी प्रथा का सूत्रपात किया कि विधवा न होने पर भी स्त्री को एकादशी व्रत रखना चाहिए और उस दिन कोई अन्न नहीं छूना चाहिए, भले ही वह विष्णु को अर्पित प्रसाद ही क्यों न हो।

तबे मिश्र विश्वरूपेर देखिया यौवन ।

कन्या चाहि' विवाह दिते करिलेन मन ॥11॥

तबे-तत्पश्चात्; मिश्र-जगन्नाथ मिश्र; विश्वरूपेर-बड़े पुत्र विश्वरूप का; देखिया-देखकर; यौवन-यौवन; कन्या चाहि'–एक कन्या ढूंढनी चाही; विवाह-विवाह; दिते-करने के लिए; करिलेन-बनाया; मन-अपना मन।

अनुवाद

तत्पश्चात् विश्वरूप को युवक हुआ देखकर जगन्नाथ मिश्र ने कोई कन्या ढूँढकर उसका विवाह कर देना चाहा।

विश्वरूप शुनि' घर छाड़ि पलाइला ।

सन्न्यास करिया तीर्थ करिबारे गेला ॥12॥

विश्वरूप-विश्वरूप; शुनि'-यह सुनकर; घर–घर; छाड़ि-त्यागकर; पलाइला-चले गये; सन्न्यास-संन्यास; करिया-स्वीकार करके; तीर्थ-तीर्थ स्थान; करिबारे-यात्रा करने के लिए; गेला-चले गये।

अनुवाद

यह सुनकर विश्वरूप ने तुरन्त गृहत्याग कर दिया और वे संन्यास लेकर एक तीर्थस्थान से दूसरे तीर्थस्थान की यात्रा करने निकल गये।

शुनि, शची-मिश्रेर दुःखी हैल मन।

तबे प्रभु माता-पितार कैल आश्वासन॥ 13॥

शुनि'-यह सुनकर; शची-माता शची; मिश्रेर-और जगन्नाथ मिश्र के; दुःखी-अत्यन्त दुःखी; हैल–हो गये; मन-मन; तबे-उस समय; प्रभु-भगवान् चैतन्य महाप्रभुः माता-पितार-माता पिता को; कैल–किया; आश्वासन-आश्वासन।

अनुवाद

जब शचीमाता तथा जगन्नाथ मिश्र ने अपने ज्येष्ठ पुत्र विश्वरूप के चले जाने का समाचार सुना, तो वे अत्यन्त दुःखी हुए, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें ढाढ़स बंधाने का प्रयास किया।

भाल हैल,—विश्वरूप सन्न्यास करिल।

पितृ-कुल, मातृ-कुल, दुइ उद्धारिल॥14॥

भाल हैल-यह बहुत अच्छा है; विश्वरूप-विश्वरूप; सन्न्यास-संन्यास; करिल-स्वीकार किया है; पितृ-कुल-पिता का वंश; मातृ-कुल-माता का वंश; दुइ–उन दोनों; उद्धारिल-उद्धार हुआ है।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "हे माता तथा पिता! यह अच्छा ही हुआ कि विश्वरूप ने संन्यास ग्रहण कर लिया है, क्योंकि इस तरह उसने अपने पितृ-कुल तथा अपने मातृ-कुल दोनों का ही उद्धार कर दिया है।"

तात्पर्य

कभी-कभी ऐसा कहा जाता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस कलियुग में संन्यास ग्रहण करने के लिए अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान की, क्योंकि शास्त्र में कहा गया है :

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम् ।

देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥

"इस कलियुग में पाँच प्रकार के कर्म वर्जित हैं : अश्वमेध-यज्ञ या गोमेध-यज्ञ जिनमें घोड़े या गाय की बलि दी जाती है, संन्यास ग्रहण करना, पूर्वजों को माँस की बलि देना और अपने भाई की पत्नी से बच्चे उत्पन्न करना।" (ब्रह्मवैवर्त पुराण, कृष्ण-जन्म खण्ड 185.180) ।

ऐसा होते हुए भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं संन्यास लिया और अपने ज्येष्ठ भाई विश्वरूप के संन्यास ग्रहण करने का समर्थन किया। यहाँ पर स्पष्ट कहा गया है- भाल हैल–विश्वरूप संन्यास करिल पितृकुल-मातृ कुल–दुइ उद्धारिल। अतएव क्या ऐसा सोचा जा सकता है कि चैतन्य महाप्रभु ने परस्पर-विरोधी वक्तव्य दिये हैं? नहीं, उन्होंने ऐसा नहीं किया। ऐसी संस्तुति की जाती है कि भगवान् की सेवा करने के लिए जीवन समर्पित करने हेतु संन्यास ग्रहण करना चाहिए और हर व्यक्ति को ऐसा संन्यास लेना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य अपने मातृ कुल तथा पितृ कुल दोनों की सर्वश्रेष्ठ सेवा करता है। किन्तु मनुष्य को मायावाद-पंथ का संन्यास नहीं स्वीकार करना चाहिए, जिसका व्यावहारिक दृष्टि में कोई भी अर्थ नहीं निकलता। हम अनेक मायावादी संन्यासियों को

मात्र सड़कों पर घूमते हुए और अपने आपको ब्रह्म या नारायण बताते हुए देखते हैं। वे सारा समय भीख माँगने में बिताते हैं, ताकि अपना भूखा पेट भर सकें। मायावादी संन्यासी इतने पतित हो चुके हैं कि उनका एक वर्ग कूकर-सूकर के समान सब कुछ खा जाता है। ऐसे ही गिरे हुए संन्यास की इस युग में मनाही है। वास्तव में, श्रील शंकराचार्य ने संन्यास ग्रहण करने के जो नियम बनाये थे, वे बहुत कठोर थे, किन्तु बाद में तथाकथित मायावादी संन्यासी अपने छद्म दर्शन के कारण पतित हो गये, क्योंकि इस दर्शन के अनुसार संन्यास ग्रहण करने से मनुष्य नारायण बन जाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस प्रकार के संन्यास का बहिष्कार किया। किन्तु संन्यास ग्रहण करना वर्णाश्रम धर्म का अंग है। भला इसका बहिष्कार कैसे किया जा सकता है?

आमि त' करिब तोमा' दुँहार सेवन ।

शुनिया सन्तुष्ट हैल पिता-मातार मन ॥ 15॥

आमि त'-मैं; करिब–करूँगा; तोमा-आपके लिए; दुँहार-दोनों; सेवन–सेवा; शुनिया-सुनकर; सन्तुष्ट-सन्तुष्ट; हैल-हो गये; पिता-मातार मन-माता पिता के मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने माता-पिता को आश्वासन दिया, "मैं आप दोनों की सेवा करूँगा।" इस तरह उनके माता-पिता के मन को सन्तोष हो गया।

एक-दिन नैवेद्य-ताम्बूल खाइया ।

भूमिते पड़िला प्रभु अचेतन हञा ॥16॥

एक-दिन-एक दिन; नैवेद्य-नैवेद्य; ताम्बूल-पान सुपारी; खाइया-खाकर; भूमिते-भूमि पर; पड़िला–गिर गये; प्रभु-प्रभु; अचेतन–अचेत; हञा–होकर।

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने अर्चाविग्रह पर चढ़ी पान-सुपारी खा ली, जिससे उन्हें नशा चढ़ गया और वे अचेत होकर जमीन पर गिर पड़े।

तात्पर्य

पान-सुपारी नशीली (मादक) होती है, इसलिए इसे खाने की मनाही है। पान-सुपारी खाने के बाद मूर्च्छित होने की महाप्रभु की लीला हमारे लिए उपदेश है कि हमें सुपारी नहीं खाना चाहिए, भले ही वह विष्णु को अर्पित ही क्यों न हो, वैसे ही जैसे एकादशी के दिन अन्न नहीं खाया जाता है। वस्तुतः चैतन्य महाप्रभु की मूर्छा का विशेष प्रयोजन यही था। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के कारण वे इच्छानुसार कुछ भी कर सकते हैं और कुछ भी खा सकते हैं, किन्तु हमें उनकी लीलाओं का अनुकरण नहीं करना चाहिए।

आस्ते-व्यस्ते पिता-माता मुखे दिल पानि ।

सुस्थ हञा कहे प्रभु अपूर्व काहिनी ॥17॥

आस्ते-व्यस्ते–हड़बड़ी में; पिता-माता-माता पिता; मुखे–मुख पर; दिल-दिया; पानि–पानी; सुस्थ हञा-होश में आकर; कहे-कहते हैं; प्रभु–महाप्रभु; अपूर्व-कुछ आश्चर्यजनक; काहिनी–बात।

अनुवाद

जब उनके माता-पिता ने हड़बड़ी में उनके मुँह पर पानी छिड़का, तो उन्हें होश आया और उन्होंने ऐसी आश्चर्यजनक बात सुनाई, जो उन्होंने पहले कभी नहीं सुनी थी।

एथा हैते विश्वरूप मोरे लञा गेला ।

सन्न्यास करह तुमि, आमारे कहिला ॥18॥

एथा–यहाँ; हैते-से; विश्वरूप-विश्वरूप; मोरे-मुझे; लञा-अपने साथ ले; गेला-गये; सन्न्यास-संन्यास; करह-स्वीकार करो; तुमि-तुम भी; अमारे-मुझे; कहिला-उन्होंने कहा।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "विश्वरूप मुझे यहाँ से कहीं दूर ले गये और मुझसे बोले कि मैं भी संन्यास ग्रहण कर लें।

आमि कहि,—आमार अनाथ पिता-माता ।

आमि बालक, सन्यासेर किबा जानि कथा ॥19॥

आमि कहि-मैंने कहा; आमार-मेरे; अनाथ-अनाथ; पिता-माता-माता पिता; आमि-मैं हूँ; बालक-मात्र एक शिशु; सन्यासेर-संन्यास का; किबा-क्या; जानि-जानँ; कथा-अर्थ।

अनुवाद

"मैंने विश्वरूप से कहा, 'मेरे माता-पिता असहाय हैं और मैं भी अभी बच्चा ही हूँ। मैं संन्यास के बारे में क्या जानूँ?"

गृहस्थ हइया करिब पिता-मातार सेवन ।

इहाते-इ तुष्ट हबेन लक्ष्मी-नारायण ॥20॥

गृहस्थ-गृहस्थ; हइया–होकर; करिब–मैं करूँगा; पिता-मातार–माता पिता की; सेवन–सेवा; इहाते-इ-इसमें; तुष्ट-सन्तुष्ट; हबेन-होंगे; लक्ष्मी-नारायण-लक्ष्मी-नारायण।

अनुवाद

“बाद में मैं गृहस्थ बनूंगा और इस तरह माता-पिता की सेवा करूँगा, क्योंकि इससे भगवान् नारायण तथा उनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी अत्यधिक तुष्ट होंगी।”

तबे विश्वरूप इहाँ पाठाइल मोरे ।

माताके कहिओ कोटि कोटि नमस्कारे ॥21॥

तबे-तब; विश्वरूप-विश्वरूप; इहाँ–यहाँ; पाठाइल–भेजा; मोरे-मुझे; माताके कहिओ-मेरी माता को बोलो; कोटि कोटि-हजारों; नमस्कारे-प्रणाम।

अनुवाद

“तभी विश्वरूप ने मुझे घर लौटा दिया और कहा, 'माता शची देवी से मेरा कोटि-कोटि नमस्कार कहना।”

एइ मत नाना लीला करे गौरहरि ।

कि कारणे लीला,—इहा बुझिते ना पारि ॥22॥

एइ मत-इस प्रकार; नाना-विविध; लीला-लीलाएँ; करे-करते हैं; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु; कि कारणे-क्या कारण है; लीला-लीलाएँ; इहा-यह; बुझिते-समझने के लिए; ना-नहीं; पारि-मैं सक्षम हूँ।

अनुवाद

इस प्रकार चैतन्य महाप्रभु ने अनेक लीलाएँ कीं, किन्तु उन्होंने ऐसा क्यों किया मैं समझ नहीं सकता।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके भक्त इस इस जगत् में आने पर अपने प्रयोजन को पूरे करते हैं। अतएव कभी-कभी वे इस तरह कार्य करते हैं, जिसे समझ पाना अत्यन्त मुश्किल होता है। इसीलिए कहा गया है-वैष्णवेर क्रिया-मुद्रा विज्ञेह ना बुझय-भले ही कोई कितना विद्वान और बुद्धिमान क्यों न हो, वह वैष्णव के कार्यों को नहीं समझ सकता। वैष्णव अपने प्रयोजन की पूर्ति के लिए जो भी उपयुक्त होता है, स्वीकार कर लेता है। किन्तु मूर्ख लोग ऐसे उच्च वैष्णवों के प्रयोजन को न समझ पाने के कारण उनकी आलोचना करते हैं। यह वर्जित है। यह कोई नहीं जान सकता कि एक वैष्णव अपने प्रयोजन की पूर्ति के लिए क्या करता है, अतएव ऐसे वैष्णव की आलोचना करना एक अपराध है, जिसे साधु-निन्दा कहते है।

कत दिन रहि' मिश्र गेला पर-लोक ।

माता-पुत्र दुँहार बाड़िल हृदि शोक ॥23॥

कत दिन-कुछ दिन; रहिरहने पर; मिश्र-जगन्नाथ मिश्र; गेला-गुजर गये; पर- लोक-दिव्य जगत् को; माता-माता; पुत्र-पुत्र; दुँहार–उन दोनों के; बाड़िल-बढ़ गया; हृदि–हृदय में; शोक-शोक।

अनुवाद

कुछ दिनों के बाद जगन्नाथ मिश्र इस संसार से दिव्य लोक को चले गये। इससे माता तथा पुत्र दोनों ही हृदय से अत्यन्त शोकाकुल हो गये।

बन्धु-बान्धव असि' बँहा प्रबोधिल ।

पितृ-क्रिया विधि-मते ईश्वर करिल ॥24॥

बन्धु-बन्धु; बान्धव-बान्धव; आसि'-वहाँ आये; दुँहा-दोनों; प्रबोधिल-सान्तवना दी; पितृ-क्रिया-पितृ क्रिया; विधि-मते-वैदिक प्रणाली के अनुसार; ईश्वर-ईश्वर; करिल-की।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु तथा उनकी माता को धीरज बँधाने के लिए मित्रजन तथा सम्बन्धी लोग वहाँ आये। चैतन्य महाप्रभु, यद्यपि साक्षात् भगवान् थे, तथापि उन्होंने वैदिक विधि से अपने मृत पिता का संस्कार सम्पन्न किया।

कत दिने प्रभु चित्ते करिला चिन्तन ।

गृहस्थ हइलाम, एबे चाहि गृह-धर्म ॥ 25 ॥

कत दिने कुछ दिन के बाद; प्रभु–महाप्रभु; चित्ते-अपने मन में; करिला–किया; चिन्तन–विचार; गृहस्थ हइलाम–मैं गृहस्थ जीवन में हूँ; एबे-अब; चाहि-मैं चाहता हूँ; गृह-धर्म-गृहस्थ जीवन के कार्यकलाप।

अनुवाद

कुछ दिनों के बाद महाप्रभु ने सोचा, "मैंने संन्यास नहीं लिया और चूँकि मैं घर पर रहता हूँ, अतएव यह मेरा कर्तव्य है कि गृहस्थ की तरह कर्म करूँ।

गृहिणी विना गृह-धर्म ना हय शोभन ।

एत चिन्ति' विवाह करते हैल मन ॥26॥

गृहिणी–गृहिणी; विना-बिना; गृह-धर्म-गृह धर्म; ना-नहीं; हय–देता; शोभन-शोभा; एत चिन्ति'-यह सोचकर; विवाह-विवाह; करिते-करने के लिए; हैल-हो गया; मन-मन।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने विचार किया, "पत्नी बिना गृहस्थ जीवन का कोई अर्थ नहीं है।" इस तरह उन्होंने विवाह करने का निश्चय किया।

न गृहं गृहमित्याहुगृहिणी गृहमुच्यते ।

तया हि सहितः सर्वान्पुरुषार्थान्समश्नुते ॥27॥

न–नहीं; गृहम्-घर; गृहम्-घर; इति–इस प्रकार; आहुः–कहा; गृहिणी गृहिणी; गृहम्-घर; उच्यते-कहा जाता है; तया-उसके; हि-निश्चित रूप से; सहितः-साथ; सर्वान्–सब; पुरुष-अर्थान् मानव जीवन के उद्देश्य; समश्नुते-पूरे होते हैं।

अनुवाद

"घर-मात्र घर नहीं होता। यह तो पत्नी है, जो घर को सार्थक बनाती है। यदि कोई अपनी पत्नी के साथ घर में रहता है, तो वे दोनों मिलकर मनुष्य जीवन के समस्त हितों (पुरुषार्थों) को पूरा कर सकते हैं।"

दैवे एक दिन प्रभु पड़िया आसिते ।

वल्लभाचार्येर कन्या देखे गङ्गा-पथे ॥28॥

दैवे-दैव योग से; एक दिन-एक दिन; प्रभु–महाप्रभुः पड़िया-अध्ययन के बाद; आसिते-लौटते समय; वल्लभाचार-वल्लभाचार्य की; कन्या-पुत्री; देखे-देखी; गङ्गा-पथे–गंगा जाती हुई।

अनुवाद

एक दिन जब महाप्रभु पाठशाला से वापस आ रहे थे, तब अचानक उन्होंने वल्लभाचार्य की पुत्री देखी, जो गंगाजी की ओर जा रही थी।

पूर्व-सिद्ध भाव दुँहार उदय करिल ।

दैवे वनमाली घटक शची-स्थाने आइल ॥29॥

पूर्व-सिद्ध-जैसे पहले ही तय हो चुका था; भाव-भाव; दुँहार-दोनों के; उदय-जागृत; करिल हो गये; दैवे-दैव योग से; वनमाली-वनमाली; घटक-विवाह निर्माता; शची-स्थाने-शचीमाता के स्थान पर; आइल-आया।

अनुवाद

महाप्रभु तथा लक्ष्मीदेवी के मिलने पर उनके सम्बन्ध जागृत हुए, जो पहले से तय हो चुके थे और संयोग से विवाह तय कराने वाला (घटक) वनमाली शचीमाता से मिलने आ गया।

तात्पर्य

वनमाली घटक नवद्वीप का रहने वाला ब्राह्मण था। उसने लक्ष्मीदेवी का विवाह महाप्रभु से तय कराया। पूर्वजन्म में वह विश्वामित्र था, जिसने भगवान् श्री रामचन्द्र का विवाह तय कराया था और बाद में इसी ब्राह्मण ने रुक्मिणी के साथ भगवान् कृष्ण का विवाह करवाया था। वही ब्राह्मण चैतन्य-लीला में महाप्रभु का विवाह पक्का करने वाला बना।

शचीर इङ्गिते सम्बन्ध करिल घटन ।

लक्ष्मीके विवाह कैल शचीर नन्दन ॥ 30॥

शचीर इङ्गिते–माता शची के संकेत से; सम्बन्ध–रिश्ता; करिल–बन गया; घटन- सम्भव; लक्ष्मीके-लक्ष्मी देवी के साथ; विवाह-विवाह; कैल–हो गया; शचीर नन्दन-माता शची के पुत्र का।

अनुवाद

शचीदेवी का संकेत पाकर, वनमाली घटक ने विवाह पक्का करा दिया और इस प्रकार निर्धारित समय पर महाप्रभु ने लक्ष्मीदेवी के साथ विवाह कर लिया।

विस्तारिया वर्णिला ताहा वृन्दावन-दास ।

एइ त' पौगण्ड-लीलार सूत्र-प्रकाश ॥ 31॥

विस्तारिया–विस्तृत करके; वर्णिला–वर्णन किया है; ताहा-वह; वृन्दावन-दास-ठाकुर वृन्दावन दास; एइ त'-यह है; पौगण्ड-लीलार–पौगाण्ड लीला का; सूत्र-प्रकाश-संक्षेप में वर्णन।

अनुवाद

वृन्दावन दास ठाकुर ने महाप्रभु की इन समस्त पौगण्ड-लीलाओं का विस्तार से वर्णन किया है। मैंने तो उन्हीं लीलाओं का केवल संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया है।

पौगण्ड वयसे लीला बहुत प्रकार ।

वृन्दावन-दास इहा करियाछेन विस्तार ॥ 32॥

पौगण्ड वयसे-पौगण्ड अवस्था में; लीला-लीलाएँ; बहुत प्रकार-बहुत प्रकार की; वृन्दावन-दास-वृन्दावन दास ठाकुर; इहा-यह; करियाछेन–की है; विस्तार–विस्तृत व्याख्या।

अनुवाद

महाप्रभु ने अपनी पौगण्ड अवस्था में नाना प्रकार की लीलाएँ की हैं और श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने इन सबका विस्तार से वर्णन किया है।

अतएव दिंमात्र इहाँ देखाइल ।

'चैतन्य मङ्गले' सर्व-लोके ख्यात हैल ॥ 33 ॥

अतएव–अतएव; दिं-मात्र-संकेत के लिए; इहाँ–यहाँ; देखाइल-मैंने दिखाया है; चैतन्य-मङ्गले-चैतन्य मंगल नाम की पुस्तक में; सर्व-लोके–विश्वभर में; ख्यात–प्रसिद्ध; हैल हो गया।

अनुवाद

मैंने तो इन लीलाओं का संकेत-मात्र किया है, क्योंकि वृन्दावन दास ठाकुर ने अपनी पुस्तक चैतन्य-मंगल (अब चैतन्य-भागवत) में इन सबका विस्तार से वर्णन किया है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 34॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; यार–जिनके; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक पुस्तक; कहे वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए और सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उन्हीं के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के पन्द्रहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें महाप्रभु की पौगण्ड-लीलाओं का वर्णन हुआ है ।

अध्याय सोलह

महाप्रभु की बाल्य तथा कैशोर लीलाएँ

इस अध्याय में चैतन्य महाप्रभु की तरुणावस्था प्राप्त करने के पूर्व के कार्यकलापों का अर्थात् कैशोर-लीला का पूरी तरह से वर्णन है। इसी काल में उन्होंने गहन अध्ययन किया और प्रकाण्ड पण्डितों पर विजय पाई। कैशोर-लीला के दौरान उन्होंने जलकेलि भी की। वे आर्थिक सहायता प्राप्त करने, ज्ञान के अनुशीलन के लिए तथा संकीर्तन आन्दोलन का सूत्रपात करने के लिए पूर्वी बंगाल गये, जहाँ उनकी भेंट तपन मिश्र से हुई, जिनको उन्होंने आध्यात्मिक उन्नति के बारे में उपदेश दिया और वाराणसी जाने की आज्ञा दी। जब श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्वी बंगाल की यात्रा पर थे, तब उनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी को सर्प ने अथवा विरहरूपी सर्प ने डंस दिया और वह दिवंगत हो गईं। जब महाप्रभु घर लौटकर आये, तो उन्होंने देखा कि लक्ष्मीदेवी की मृत्यु के कारण उनकी माता अत्यन्त शोकाकुल थीं। अतएव उनके अनुरोध पर महाप्रभु ने बाद में विष्णुप्रिया देवी के साथ विवाह कर लिया। इस अध्याय में सुप्रसिद्ध पण्डित केशव काश्मीरी के साथ महाप्रभु का शास्त्रार्थ तथा गंगा माता की महिमा सम्बन्धी उनके स्तोत्र की महाप्रभु द्वारा आलोचना का भी वर्णन हुआ है। इस स्तोत्र में महाप्रभु ने पाँच प्रकार के साहित्यिक अलंकार तथा पाँच प्रकार के साहित्यिक दोष निकालकर उस पण्डित को पराजित किया। बाद में, देश भर में विजयी की ख्याती वाला काश्मीरी पण्डित देवी सरस्वती की शरण में आया और उनके आदेश से दूसरे दिन महाप्रभु से उसने भेंट की तथा उनकी शरण ग्रहण की।

कृपा-सुधा-सरिद् यस्य विश्वमाप्लावयन्त्यपि ।

नीच-गैव सदा भाति तं चैतन्य-प्रभुं भजे ॥1॥

कृपा-सुधा-कृपा सुधा की; सरित्न दी; यस्य–जिनकी; विश्वम्-सारा ब्रह्माण्ड; आप्लावयन्ती–आप्लावित करते हुए; अपि-यद्यपि; नीच-गा एव–निर्धन एवं पतितों के प्रति अधिक दयालु; सदा-सदा; भाति-प्रकट होते हैं; तम्-उन; चैतन्य-प्रभुम्–श्री चैतन्य महाप्रभु की; भजे-मैं पूजा करता हूँ।

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा करता हूँ, जिनकी अमृतमयी कृपा एक महान् नदी की तरह अखिल ब्रह्माण्ड को आप्लावित करती हुई प्रवाहित होती है। जिस प्रकार नदी नीचे की ओर बहती है, उसी तरह चैतन्य महाप्रभु पतितों के लिए विशेष रूप से सुलभ हैं।

तात्पर्य

नरोत्तमदास ठाकुर ने गाया है- श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु दया कर मोरे। वे महाप्रभु से कृपा की प्रार्थना करते हैं, क्योंकि वे कृपावतार हैं, जिनका आविर्भाव विशेषतया पतितों के उद्धार के लिए ही हुआ है। जो जितना अधिक पतित होता है, वह महाप्रभु की कृपा का उतना ही बड़ा दावेदार होता है। किन्तु उसे अत्यन्त निष्ठावान् तथा गम्भीर होना चाहिए। यदि कोई कलियुग के सारे दुर्गुणों से कलुषित होने पर भी श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण में जाता है, तो महाप्रभु उसका निश्चित रूप से उद्धार करेंगे। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण जगाइ तथा माधाइ हैं। इस कलियुग में लगभग हर व्यक्ति जगाइ तथा माधाइ जैसा है, लेकिन महाप्रभु ने जिस संकीर्तन आन्दोलन रूपी महान् नदी का प्रचार किया था, वह आज भी समग्र संसार को आप्लावित करती हुई बह रही है। इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय

कृष्णभावानामृत संघ सारे पतितात्माओं को कल्मष रहित करने का सफलतापूर्वक प्रयास कर रहा है।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैतचन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय अद्वैतचन्द्र-अद्वैतचन्द्र की जय हो; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द–महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो तथा महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

जीयाकैशोर-चैतन्यो मूर्ति-मत्या गृहाश्रमात् ।

लक्ष्म्यार्चितोऽथ वाग्देव्या दिशां जय-जय-च्छलात् ॥ 3॥

जीयात्-दीर्घायु हों; कैशोर-कैशोरावस्था में स्थित; चैतन्यः- भगवान् चैतन्य महाप्रभु; मूर्ति-मत्या-ऐसा शरीर स्वीकार करके; गृह-आश्रमात्-गृहस्थ जीवन से; लक्ष्म्या-लक्ष्मी से; अर्चितः-पूजित; अथ-तब; वाक्-देव्या-ज्ञान की देवी से; दिशाम्-सभी दिशाओं के; जयि–विजयी; जय-छलात्-विजय पाने के बहाने।

अनुवाद

कैशोर अवस्था को प्राप्त श्री चैतन्य महाप्रभु दीर्घजीवी हों! लक्ष्मीदेवी तथा सरस्वती दोनों उनकी पूजा करती थीं। सरस्वती ने विश्वविजयी पण्डित पर उनकी विजय के लिए उनकी पूजा की, तो लक्ष्मीदेवी ने घर में उनकी पूजा की। चूँकि वे दोनों देवियों के पति या स्वामी हैं, अतएव मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

एइ त' कैशोर-लीलार सूत्र-अनुबन्ध ।

शिष्य-गण पड़ाइते करिला आरम्भ ॥4॥

एइ त'-इस प्रकार; कैशोर-कैशोरावस्था (ग्यारह से पंद्रह वर्ष के बीच); लीलार-लीलाओं की; सूत्र-अनुबन्ध-क्रमबद्ध सार; शिष्य-गण-शिष्य; पड़ाइते-पढ़ाना; करिला–किया; आरम्भ-आरम्भ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ग्यारह वर्ष की आयु में विद्यार्थियों को पढ़ाने लगे थे। यहीं से उनकी किशोरावस्था प्रारम्भ होती है।

शत शत शिष्य सङ्गे सदा अध्यापन ।

व्याख्या शुनि सर्व-लोकेर चमकित मन ॥5॥

शत शत-बहुत अधिक; शिष्य-शिष्य; सड़े-उनके संग; सदा-सदा; अध्यापन-अध्यापन; व्याख्या-व्याख्या; शुनि–सुनकर; सर्व-लोकेर सभी लोगों का; चमकित-चकित; मन–मन।

अनुवाद

जब महाप्रभु शिक्षक बने, तो अनेकानेक विद्यार्थी उनके पास आने लगे और हर विद्यार्थी उनकी व्याख्या की शैली सुनकर आश्चर्यचकित रह जाता।

सर्व-शास्त्रे सर्व पण्डित पाय पराजय ।

विनय-भङ्गीते कारो दुःख नाहि हय ॥ 6 ॥

सर्व-शास्त्रे-सभी शास्त्रों में; सर्व-सब; पण्डित–विद्वान; पाय-हो जाते; पराजय-पराजय; विनय-विनय; भङ्गीते व्यवहार से; कारो-किसी को भी; दुःख-दु:ख; नाहि-नहीं; हय होता।

अनुवाद

महाप्रभु ने शास्त्रार्थ में सभी प्रकार के पण्डितों को हराया; तथापि कोई भी पण्डित महाप्रभु की विनयशीलता के कारण दुःखी नहीं हुआ।

विविध औद्धत्य करे शिष्य-गण-सङ्गे ।

जाह्नविते जल-केलि करे नाना रङ्गे ॥7॥

विविध-विविध; औद्धत्य-औद्धत्य; करे-करते; शिष्य-गण-शिष्यों के; सङ्गे-साथ; जाह्नवीते-गंगा जल में; जल-केलि-जल क्रीड़ा; करे-करते; नाना-विविध; रङ्गे-आमोद-प्रमोद।

अनुवाद

जब महाप्रभु शिक्षक थे, तब वे गंगा के जल में अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते थे।

कत दिने कैल प्रभु बङ्गेते गमन ।

याहाँ याय, ताहाँ लओयाय नाम-सङ्कीर्तन ॥8॥

कत दिने कुछ दिनों के बाद; कैल-की; प्रभु–महाप्रभु; बङ्गेते-पूर्वी बंगाल में; गमन-यात्रा; याहाँ याय-जहाँ कहीं वे जाते; ताहाँ-वहाँ; लओयाय-प्रेरणा देते; नाम-सङ्कीर्तन-नाम संकीर्तन अभियान।

अनुवाद

कुछ दिनों के बाद महाप्रभु पूर्व बंगाल गये और वे जहाँ-जहाँ गये, उन्होंने वहाँ-वहाँ संकीर्तन आन्दोलन का सूत्रपात किया।

तात्पर्य

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु तथा गुरु-शिष्य परम्परा के उनके भक्तगण सभी कोटियों के पण्डितों, वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों को तर्क में परास्त कर सकते हैं और इस तरह भगवान् की श्रेष्ठता स्थापित कर सकते हैं, किन्तु प्रचारक के रूप में उनका मुख्य कार्य सर्वत्र संकीर्तन का शुभारम्भ करना है। प्रचारक का कार्य मात्र पण्डितों और दार्शनिकों को पराजित करना नहीं है। प्रचारकों को चाहिए कि वे साथ-साथ संकीर्तन आन्दोलन का सूत्रपात करें, क्योंकि चैतन्य-सम्प्रदाय का यही प्रयोजन है।

विद्यार प्रभाव देखि चमत्कार चिते ।

शत शत पड़ूया आसि लागिला पड़िते ॥9॥

विद्यार-उनके ज्ञान का प्रभाव-प्रभाव; देखि-देखकर; चमत्कार–चमत्कार; चिते-हृदय में; शत शत-कई सौ; पड़या-शिष्य; आसि-वहाँ आये; लागिल-लगे; पड़िते-पढ़ने।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु की बौद्धिक शक्ति के प्रभाव से चकित होकर सैकड़ों विद्यार्थी उनके निर्देशन में अध्ययन करने के लिए आने लगे।

सेइ देशे विप्र, नाम—मिश्र तपन ।

निश्चय करिते नारे साध्य-साधन ॥10॥

सेइ देशे-पूर्वी बंगाल के उस प्रदेश में; विप्र-एक ब्राह्मण; नाम-नामक; मिश्र तपन-तपन मिश्र; निश्चय करिते-निश्चय करने के लिए; नारे–नहीं सका; साध्य-उद्देश्य; साधन–साधना।

अनुवाद

पूर्वी बंगाल में तपन मिश्र नामक एक ब्राह्मण था, जो निश्चय नहीं कर पा रहा था कि जीवन का उद्देश्य क्या है और उसे किस तरह प्राप्त किया जाए।

तात्पर्य

पहले जीवन का लक्ष्य निश्चित करना चाहिए और फिर उसे प्राप्त करने के उपाय के बारे में विचार करना चाहिए। कृष्णभावनामृत आन्दोलन हर एक को बतलाता है कि जीवन का यह उद्देश्य कृष्ण को समझना है और उस जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कृष्णभावना का अभ्यास प्रामाणिक शास्त्रों तथा वेदों के सन्दर्भ में गोस्वामियों द्वारा बताई गई विधि के अनुसार करना चाहिए।

बहु-शास्त्रे बहु-वाक्ये चित्ते भ्रम हय ।

साध्य-साधन श्रेष्ठ ना हय निश्चय ॥11॥

बहु-शास्त्रे-बहुत पुस्तकों अथवा शास्त्रों से; बहु-वाक्ये बहुत से लोगों के बहुत से मत; चित्ते-हृदय में; भ्रम-भ्रम, आशंका; हय–होता है; साध्य-साधन-साध्य एवं साधना; श्रेष्ठ-श्रेष्ठता के बारे में; ना-नहीं; हय होता है; निश्चय–निश्चय।

अनुवाद

यदि कोई किताबी कीड़ा बनकर अनेक ग्रंथ तथा शास्त्रों को पढ़ता रहता है और अनेकानेक लोगों की टीकाएँ एवं उपदेश सुनता है, तो उसके मन में सन्देह उत्पन्न हो जायेगा। इस तरह मनुष्य जीवन का वास्तविक लक्ष्य निश्चित नहीं कर पाता।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (7.13.8) में कहा गया है-ग्रन्थान् नैवाभ्यसेद् बहून्न व्याख्याम् उपयुञ्जित– "न तो अधिक पुस्तकें पढ़नी चाहिए, न ही अनेक पुस्तकों को उच्चारण करने का पेशा अपनाना चाहिए, विशेषतया यदि व्यक्ति भक्त हो।" मनुष्य को विद्वान बनकर संसारी ख्याति तथा आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त करने का मोह त्याग देना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अनेक पुस्तकें पढ़ने में अपना ध्यान बँटाता है, तो वह अपना मन भक्ति में स्थिर नहीं कर सकता, न ही वह अनेक शास्त्रों को समझ सकता है, क्योंकि वे गूढ़ कथनों और अर्थों से परिपूर्ण होते हैं। इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का मत है कि जो लोग विविध विषयों का साहित्य, विशेषतया सकाम कर्म तथा दार्शनिक चिन्तन से सम्बन्धित साहित्य पढ़ते हैं, वे ध्यान बँट जाने के कारण अनन्य भक्ति से वंचित रह जाते हैं।

मनुष्य में सकाम कर्म, धार्मिक अनुष्ठान तथा दार्शनिक चिन्तन के प्रति सामान्य प्रवृत्ति पाई जाती है। अनन्त काल से मोहग्रस्त जीव जीवन के असली लक्ष्य को नहीं समझ सकता और इस

तरह उसके जीवन में किये गये कार्य व्यर्थ जाते हैं। अबोध व्यक्ति इस प्रकार भटककर अनन्य कृष्ण-भक्ति से वंचित रह जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों का जीवन्त उदाहरण तपन मिश्र है। वह विद्वान व्यक्ति था, किन्तु वह जीवन के लक्ष्य को निश्चित नहीं कर पाया था। अतएव उसे अवसर दिया गया कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु सनातन गोस्वामी को उपदेश दे रहे हों, तब वह उनकी वाणी को सुने। तपन मिश्र को दिया गया श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश उन व्यक्तियों के लिए विशेषतया महत्त्वपूर्ण है, जो इधर-उधर घूमते रहते हैं और पुस्तकें एकत्र करते हैं, किन्तु किसी को पढ़ते नहीं। इस तरह वे जीवन के लक्ष्य के विषय में उलझन में पड़े रहते हैं।

स्वप्ने एक विप्र कहे,—शुनह तपन ।

निमाजि-पण्डित पाशे करह गमन ॥12॥

स्वप्ने–स्वप्न में; एक-एक; विप्र-ब्राह्मण; कहे-ने कहा; शुनह-जरा सुनो; तपन–तपन मिश्र; निमात्रि-पण्डित–निमाइ पण्डित; पाशे-के पास; करह गमन-जाओ।

अनुवाद

इस प्रकार से मोहग्रस्त तपन मिश्र को स्वप्न में एक ब्राह्मण ने निर्देश दिया कि तुम निमाइ पण्डित (चैतन्य महाप्रभु) के पास जाओ।

तेंहो तोमार साध्य-साधन करिबे निश्चय ।

साक्षातीश्वर तेंहो,–नाहिक संशय ॥13॥

तेंहो-वे; तोमार-तुम्हारा; साध्य-जीवन का लक्ष्य; साधन-साधना; करिबे-करेंगे; निश्चय-निश्चय; साक्षात् साक्षात्; ईश्वर-ईश्वर; तेंहो-वे हैं; नाहिक-नहीं है; संशय-सन्देह।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने कहा, "चूँकि वे साक्षात् ईश्वर हैं, अतएव वे निस्सन्देह तुम्हारा सही दिशा-निर्देशन कर सकते हैं।"

स्वप्न देखि' मिश्र आसि' प्रभुर चरणे ।

स्वप्नेर वृत्तान्त सब कैल निवेदने ॥14॥

स्वप्न देखि'–स्वप्न देखने के बाद; मिश्र-तपन मिश्र; आसि'-आकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे-चरणकमलों के आश्रय में; स्वप्नेर-स्वप्न का; वृत्तान्त–विवरण; सब-सब; कैल-किया; निवेदने–उनसे निवेदन।

अनुवाद

स्वप्न देखने के बाद तपन मिश्र महाप्रभु के चरणों की शरण में आये और उन्होंने महाप्रभु से स्वप्न का विस्तार से वर्णन किया।

प्रभु तुष्ट हञा साध्य-साधन कहिल ।

नाम-सङ्कीर्तन कर,—उपदेश कैल ॥15॥

प्रभु–महाप्रभु; तुष्ट-सन्तुष्ट; हञा-होकर; साध्य-साधन-साध्य तथा साधना; कहिल-वर्णन किया; नाम-सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण का नाम-संकीर्तन; कर-करो; उपदेश कैल-उपदेश दिया।

अनुवाद

महाप्रभु ने सन्तुष्ट होकर उसे जीवन-लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने की विधि के बारे में उपदेश दिया। उन्होंने उपदेश दिया कि सफलता की कुंजी भगवान् के पवित्र नाम (हरे कृष्ण महामन्त्र) का कीर्तन करना है।

तात्पर्य

कृष्णभावनामृत आन्दोलन चैतन्य महाप्रभु के इस उपदेश पर आधारित है। कि मनुष्य को नियमित रूप से तथा विधि-विधानों के अनुसार हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करना चाहिए। हम अपने पाश्चात्य अनुयायियों को प्रतिदिन कम-से-कम सोलह माला जप करने के लिए कहते हैं, किन्तु कभी-कभी हम देखते हैं कि वे इतना भी जप नहीं कर पाते, क्योंकि वे अनेक गम्भीर पुस्तकें तथा पूजा की विधियाँ लाते रहते हैं, जो उनके ध्यान को कई तरह से बँटा देती हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु का सम्प्रदाय हरे कृष्ण मन्त्र के जप-कीर्तन पर आधारित है। भगवान् चैतन्य ने तपन मिश्र से कहा कि पहले वह अपना मन हरे कृष्ण के कीर्तन पर एकाग्र करे। हमें अर्थात् कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को चैतन्य महाप्रभु के इस उपदेश का दृढ़ता से पालन करना चाहिए।

ताँर इच्छा,—प्रभु-सङ्गे नवद्वीपे वसि ।

प्रभु आज्ञा दिल,—तुमि याओ वाराणसी ॥16॥

ताँर इच्छा-उसकी इच्छा; प्रभु-सङ्गे–महाप्रभु के साथ; नवद्वीपे–नवद्वीप में; वसि-रहने की थी; प्रभु आज्ञा दिल-किन्तु महाप्रभु ने सलाह दी; तुमि-तुम; याओ-जाओ; वाराणसी-बनारस।

अनुवाद

तपन मिश्र की इच्छा थी कि वह महाप्रभु के साथ नवद्वीप में रहे, किन्तु महाप्रभु ने उसे वाराणसी (बनारस) जाने के लिए कहा।

ताहाँ आमा-सङ्गे तोमार हबे दरशन ।

आज्ञा पाञा मिश्र कैल काशीते गमन ॥17॥

ताहाँ-वहाँ; आमा-सङ्गे–मेरे साथ; तोमार-तुम्हारा; हबे-होगा; दरशन-मिलाप; आज्ञा पाञा-यह आज्ञा पाकर; मिश्र–तपन मिश्र; कैल–किया; काशीते-बनारस को; गमन प्रस्थान।

अनुवाद

महाप्रभु ने तपन मिश्र को आश्वस्त किया कि वे पुनः वाराणसी में मिलेंगे। यह आज्ञा पाकर तपन मिश्र वहाँ चले गये।

प्रभुर अतर्क्स-लीला बुझिते ना पारि ।

स्व-सङ्ग छाड़ाबा केने पाठाय काशीपुरी ॥18॥

प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु की; अतर्क्स-लीला-अचिन्त्य लीलाएँ; बुझिते-समझने के लिए; ना-नहीं; पारि–सम्भव; स्व-सङ्ग–अपनी संगति; छाड़ाञा–छोड़कर; केने-क्यों; पाठाय-भेजते हैं; काशी-पुरी-बनारस को।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की अचिन्त्य लीलाओं को नहीं समझ सकता, क्योंकि तपन मिश्र महाप्रभु के साथ नवद्वीप में रहना चाहते थे, किन्तु महाप्रभु ने उन्हें वाराणसी जाने का आदेश दिया।

तात्पर्य

तपन मिश्र जब महाप्रभु से मिले थे, तब चैतन्य महाप्रभु गृहस्थ जीवन बिता रहे थे और ऐसा कोई संकेत न था कि भविष्य में वे संन्यास ग्रहण करे लेंगे। किन्तु तपन मिश्र को वाराणसी जाने के लिए कहने से यह सूचित होता है कि वे भविष्य में संन्यास लेंगे और जब वे सनातन गोस्वामी को शिक्षा दे रहे होंगे, तब तपन मिश्र भी जीवन के लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने के बारे में शिक्षा पाने के अवसर का लाभ ले सकेंगे।

एइ मत बङ्गेर लोकेर कैला महा हित ।

'नाम' दिया भक्त कैल, पड़ाञा पण्डित ॥19॥

एइ मत-इस प्रकार; बङ्गेर-पूर्व बंगाल के; लोकेर-लोगों का; कैला-उपकार दिया; महा-महान्; हित-लाभ; नाम-भगवान् का पावन नाम; दिया-उनको दिया; भक्त-भक्त; कैल-बनाया; पड़ाञा-उनको पढ़ाकर; पण्डित–विद्वान।

अनुवाद

इस प्रकार से श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूर्वी बंगाल के लोगों को हरि-नाम अर्थात् हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन में दीक्षित करके तथा उन्हें शिक्षा देकर विद्वान बनाकर उन पर बड़ा उपकार किया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए कृष्णभावनामृत आन्दोलन हरे कृष्ण महामन्त्र का वितरण कर रहा है और पूरे विश्व में लोगों को जप-कीर्तन करने के लिए प्रेरित कर रहा है। लोगों को हम ऐसे दिव्य साहित्य का विपुल भण्डार दे रहे हैं, जो विश्व की सभी प्रमुख

भाषाओं में अनुवादित है और भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से खूब बिकता है। इसके साथ ही लोग बड़े आनन्द से हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर रहे हैं। यही चैतन्य-सम्प्रदाय की प्रचार-विधि है। चूँकि महाप्रभु की इच्छा थी कि यह सम्प्रदाय सारे विश्व में फैले, अतएव अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ विनम्र ढंग से कार्य कर रहा है, जिससे श्री चैतन्य महाप्रभु का यह स्वप्न सारे विश्व में, विशेषतया पाश्चात्य देशों में, पूरा हो सके।

एइ मत बङ्गे प्रभु करे नाना लीला ।

एथा नवद्वीपे लक्ष्मी विरहे दुःखी हैला ॥20॥

एइ मत-इस प्रकार; बङ्गे–पूर्वी बंगाल में; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करे-करते हैं; नाना–विभिन्न; लीला-लीलाएँ; एथा-यहाँ; नवद्वीपे-नवद्वीप में; लक्ष्मी-निमाइ पण्डित की पत्नी लक्ष्मी; विरहे-विरह में; दुःखी-दुःखी; हैला-हो गई।

अनुवाद

महाप्रभु पूर्वी बंगाल में नाना प्रकार के प्रचार-कार्य में लगे हुए थे, अतएव उनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी अपने पति के विरह में घर पर अत्यधिक दुःखी थीं।

प्रभुर विरह-सर्प लक्ष्मीरे दंशिल ।

विरह-सर्प-विषे ताँर परलोक हैल ॥21॥

प्रभुर–महाप्रभु का; विरह-सर्प-विरह रूपी सर्प; लक्ष्मीरे-लक्ष्मीदेवी को; दंशिल-डस लिया; विरह-सर्प-विरह सर्प के; विषे-विष से; ताँर–उनका; पर-लोक-परलोक; हैल-ऐसा हुआ।

अनुवाद

विरहरूपी सर्प ने लक्ष्मीदेवी को डस लिया और इसके विष के कारण उनका देहान्त हो गया। इस तरह वे परलोक सिधार गईं-वे भगवधाम वापस चली गईं।

तात्पर्य

भगवद्गीता (8.6) में कहा गया है- यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्-जो जीवन-भर जैसा सोचता है, उसी के अनुसार मृत्यु के समय उसके विचारों का निर्णय होता है और इस तरह मृत्यु के समय उसे उपयुक्त शरीर प्राप्त होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार वैकुण्ठ-लोक से आई लक्ष्मीदेवी, महाप्रभु के विरह में उन्हीं के विचारों में मग्न रहने के कारण मृत्यु के बाद वैकुण्ठ-लोक चली गईं।

अन्तरे जानिला प्रभु, याते अन्तर्यामी ।

देशेरे आइला प्रभु शची-दुःख जानि' ॥22॥

अन्तरे-अपने भीतर; जानिला-जानते थे; प्रभु–महाप्रभु; याते-क्योंकि अन्तर्यामी–वे अन्तर्यामी हैं; देशेरे देश में; आइला–लौट आये; प्रभु–महाप्रभु; शची-माता शचीदेवी का; दुःख-दु:ख; जानि'-जानकर।

अनुवाद

लक्ष्मीदेवी के तिरोधान को महाप्रभु जान गये थे, क्योंकि वे स्वयं परमात्मा हैं। इस तरह वे अपनी माता शचीदेवी को सान्त्वना देने घर लौट आये, जो अपनी पुत्रवधू के देहावसान के कारण अत्यन्त दुःखी थीं।

घरे आइला प्रभु बहु लञा धन-जन ।

तत्त्व-ज्ञाने कैला शचीर दुःख विमोचन ॥ 23 ॥

घरे–घर; आइला-लौट आये; प्रभु–महाप्रभु; बहु-बहुत; लञा-लेकर; धन-धन; जन-अनुयायी; तत्त्व-ज्ञाने-दिव्य ज्ञान से; कैला-किया; शचीर-शचीमाता का; दुःख–दुःख; विमोचन-निवारण।

अनुवाद

जब महाप्रभु प्रचुर धन तथा अनेक अनुयायियों के साथ घर लौटे, तो उन्होंने शचीदेवी को शोक से छुटकारा दिलाने के लिए उन्हें दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया।

तात्पर्य

भगवद्गीता (2.13) में कहा गया है :

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

"जिस प्रकार शरीरधारी आत्मा इस शरीर में निरन्तर बचपन से युवावस्था और फिर वृद्धावस्था को प्राप्त होता है, उसी तरह मृत्यु के समय आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। स्वरूपसिद्ध आत्मा ऐसे परिवर्तन से मोहग्रस्त नहीं होता।" भगवद्गीता या अन्य वैदिक साहित्य के ऐसे श्लोक किसी की मृत्यु के अवसर पर मूल्यवान उपदेश देते हैं। भगवद्गीता अथवा श्रीमद्भागवत के ऐसे उपदेशों की चर्चा करने से गम्भीर व्यक्ति समझ सकता है कि आत्मा कभी-भी मरता नहीं, बल्कि वह एक शरीर से दूसरे में चला जाता है। यह आत्मा का देहान्तरण कहलाता है। आत्मा इस भौतिक जगत् में आता है और पिता, माता, बहन, भाई, पत्नी, सन्तान के साथ शारीरिक सम्बन्धों को जन्म देता है, किन्तु

ये सारे सम्बन्ध शरीर के होते हैं, आत्मा के नहीं। अतएव भगवद्गीता में जैसा कहा गया है-धीरस्तत्र न मुह्यति–जो धीर-गम्भीर है, वह इस भौतिक जगत् में ऐसी घटनाओं से विचलित नहीं होता। ऐसे उपदेश तत्त्व-कथा अर्थात् असली सत्य कहलाते हैं।

शिष्य-गण लञा पुनः विद्यार विलास ।

विद्या-बले सबा जिनि' औद्धत्य प्रकाश ॥24॥

शिष्य-गण-शिष्यगण; लञा–लेकर; पुनः–पुनः; विद्यार-शिक्षा की; विलास-लीला; विद्या-बले-शिक्षा के बल से; सब–प्रत्येक; जिनि'–विजय पाकर; औद्धत्य-गर्व का; प्रकाश-प्राकट्य।

अनुवाद

पूर्वी बंगाल से लौट आने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने फिर से लोगों को पढ़ाना शुरू कर दिया। अपनी शिक्षा के बल पर उन्होंने हर एक पर विजय प्राप्त की और इस तरह वे अधिक गर्व का अनुभव करने लगे।

तबे विष्णुप्रिया-ठाकुराणीर परिणय ।

तबे त' करिल प्रभु दिग्विजयी जय ॥ 25॥

तबे-इसके बाद; विष्णुप्रिया-विष्णुप्रिया; ठाकुराणीर-लक्ष्मी देवी का; परिणय-विवाह; तबे त'-इसके बाद; करिल–किया; प्रभु–महाप्रभुः दिग्-विजयी-दिग् विजयी; जय-जीता।

अनुवाद

बाद में चैतन्य महाप्रभु ने लक्ष्मी देवी विष्णुप्रिया से विवाह किया और उसके बाद उन्होंने केशव काश्मीरी नामक दिग्विजयी विद्वान को पराजित किया।

तात्पर्य

जिस प्रकार वर्तमान समय में खेल के अनेक विजेता होते हैं, उसी तरह पुराने जमाने में भारत में अनेक विद्वान पण्डित होते थे, जो विद्या के विजेता होते थे। ऐसा ही एक व्यक्ति केशव काश्मीरी था, जो काश्मीर राज्य से आया था। वह सारे भारत में घूम चुका था और अन्त में वह नवद्वीप के पण्डितों को चुनौती देने वहाँ आया। दुर्भाग्यवश वह नवद्वीप के पण्डितों को नहीं जीत पाया, क्योंकि वहाँ पर वह एक बाल-पण्डित चैतन्य महाप्रभु द्वारा पराजित हो गया। बाद में वह समझ सका कि चैतन्य महाप्रभु स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। इस तरह वह उनके शरणागत हो गया और बाद में निम्बार्क सम्प्रदाय में शुद्ध वैष्णव बन गया। उसने निम्बार्क सम्प्रदाय के वेदान्त-भाष्य पर कौस्तुभ-प्रभा नामक एक टीका लिखी, जिसे पारिजात-भाष्य कहा जाता है।

भक्ति-रत्नाकर में केशव काश्मीरी का उल्लेख है तथा निम्बार्क सम्प्रदाय की गुरु-शिष्य परम्परा में उनके पूर्ववर्ती भक्तों की सूची इस प्रकार दी हुई हैं-(1) श्रीनिवास आचार्य, (2) विश्व आचार्य, (3) पुरुषोत्तम, (4) विलास, (5) स्वरूप, (6) माधव, (7) बलभद्र, (8) पद्म, (9) श्याम, (10) गोपाल, (11) कृपा, (12) देव आचार्य, (13) सुन्दर भट्ट, (14) पद्मनाभ, (15) उपेन्द्र, (16) रामचन्द्र, (17) वामन, (18) कृष्ण, (19) पद्माकर, (20) श्रवण, (21) भूरि, (22) माधव, (23) श्याम, (24) गोपाल, (25) बलभद्र, (26) गोपीनाथ, (27) केशव, (28) गोकुल तथा (29) केशव काश्मीरी। भक्ति रत्नाकर में कहा गया है। कि केशव काश्मीरी सरस्वती देवी का प्रिय भक्त था। उन्हीं की कृपा से वह नामी पण्डित बना और देश के चारों कोनों के विद्वानों में सबसे महान् था। इसीलिए उसे दिग्विजयी की उपाधि मिली थी जिसका अर्थ था, "वह जिसने सारी दिशाओं के लोगों पर

विजय प्राप्त कर ली है।" वह काश्मीर के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार का था। बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश से उसने दिग्विजय करना छोड़ दिया और महान् भक्त बन गया। वह वैदिक संस्कृति के वैष्णव संप्रदायों में से निम्बार्क सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गया।

वृन्दावन-दास इहा करियाछेन विस्तार।

स्फुट नाहि करे दोष-गुणेर विचार॥ 26॥

वृन्दावन-दास-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर; इहा-यह; करियाछेन–किया है; विस्तार विस्तृत वर्णन; स्फुट-स्पष्ट; नहि-नहीं; करे-करता है; दोष-गुणेर-दोष तथा गुणों का; विचार-विश्लेषण।

अनुवाद

वृन्दावन दास ठाकुर पहले ही इसका विस्तार से वर्णन कर चुके हैं। जो स्पष्ट है, उसके गुण-दोषों की छानबीन करने की आवश्यकता नहीं है।

सेइ अंश कहि, ताँरे करि' नमस्कार।

या' शुनि' दिग्विजयी कैल आपना धिक्कार॥27॥

सेइ-वह; अंश-अंश; कहि-मैं वर्णन करता हूँ; ताँरे-श्री वृन्दावन दास ठाकुर को; करि'-करके; नमस्कार-नमस्कार; या'-जिसको; शुनि-सुनकर; दिग्-विजयी-दिग्विजयी पण्डित; कैल–किया; आपना-अपना; धिक्-कार-धिक्कार।

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर को नमस्कार करके मैं महाप्रभु द्वारा की गई व्याख्या के उस अंश का वर्णन करूँगा, जिसे सुनकर दिग्विजयी ने स्वयं को धिक्कारा।

ज्योत्स्नावती रात्रि, प्रभु शिष्य-गण सङ्गे ।

वसियाछेन गङ्गातीरे विद्यार प्रसङ्गे ॥28॥

ज्योत्स्नावती–पूर्ण मासी; रात्रि-की रात; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; शिष्य-गण-शिष्यगण; सङ्गे–के संग; वसियाछेन-बैठे थे; गङ्गा-तीरे-गंगा के तट पर; विद्यार-शैक्षणिक; प्रसङ्गे-चर्चा में।

अनुवाद

एक बार पूर्णमासी की रात को महाप्रभु अपने अनेक शिष्यों के साथ गंगाजी के किनारे बैठकर साहित्यिक चर्चा कर रहे थे।

हेन-काले दिग्विजयी ताहाञिआइला ।

गङ्गारे वन्दन करि' प्रभुरे मिलिला ॥ 29॥

हेन-कालेइस समय; दिग्-विजयी–केशव काश्मीरी; ताहाञि–वहाँ; आइला-पहुँचा; गङ्गारे-माता गंगा को; वन्दन-वन्दना; करि'–करके; प्रभुरे–महाप्रभु से; मिलिला-मिला।

अनुवाद

संयोगवश पण्डित केशव काश्मीरी भी वहाँ आया। उसने माता गंगा की स्तुति की और फिर वह चैतन्य महाप्रभु से मिला।

वसाइला तारे प्रभु आदर करिया ।

दिग्विजयी कहे मने अवज्ञा करिया ॥ 30॥

वसाइला–बैठाया; तारे-उसे; प्रभु–महाप्रभु; आदर-आदर; करिया-करके; दिग्-विजयी–केशव काश्मीरी; कहे-कहता है; मने-मन में; अवज्ञा-अवज्ञा; करिया-करके।

अनुवाद

महाप्रभु ने उसका सम्मानपूर्वक स्वागत किया, किन्तु केशव काश्मीरी अत्यन्त अभिमानी था, अतएव उसने महाप्रभु के साथ उपेक्षापूर्वक बातें कीं।

व्याकरण पड़ाह, निमात्रि पण्डित तोमार नाम ।

बाल्य-शास्त्रे लोके तोमार कहे गुण-ग्राम ॥ 31॥

व्याकरण-व्याकरण; पड़ाह-आप पढ़ाते हैं; निमात्रि पण्डित-निमाइ पण्डित; तोमार-आपका; नाम-नाम; बाल्य-शास्त्रे-बालकों को पढ़ने के योग्य व्याकरण; लोके-सामान्य लोग; तोमार-आपका; कहे-घोषित करते हैं; गुण-ग्राम-गुणी और योग्य।

अनुवाद

उसने कहा "मैं समझता हूँ कि आप व्याकरण के शिक्षक हैं और आपका नाम निमाइ पण्डित है। लोग आपके बाल-व्याकरण पढ़ाने की बहुत प्रशंसा करते हैं।"

तात्पर्य

पहले के जमाने में संस्कृत पाठशालाओं में सर्वप्रथम अच्छी तरह से व्याकरण पढ़ाया जाता था और यह प्रथा आज भी चल रही है। विद्यार्थी को प्रारम्भिक बारह वर्ष तक व्याकरण का

सावधानीपूर्वक अध्ययन करना पड़ता था, क्योंकि संस्कृत भाषा के व्याकरण में दक्ष होने से उसके लिए समस्त शास्त्रों के द्वार खुल जाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु विद्यार्थियों को व्याकरण पढ़ाने के लिए विख्यात थे, इसीलिए केशव काश्मीरी ने पहले उन्हें व्याकरण के शिक्षक के रूप में सम्बोधित किया। उसे अपने साहित्यिक जीवन के प्रति अत्यधिक गर्व था। वह व्याकरण की प्रारम्भिक शिक्षा से बहुत ऊपर था, इसलिए निमाइ पण्डित को अपने साथ किसी भी प्रकार से तुलना योग्य नहीं समझ रहा था।

व्याकरण-मध्ये, जानि, पड़ाह कलाप।

शुनिहुँ फाङ्किते तोमार शिष्येर संलाप ॥ 32॥

व्याकरण-मध्ये व्याकरण के मध्य; जानि–मैं समझता हूँ; पड़ाह-आप पढ़ाते हैं; कलाप-कलाप व्याकरण; शुनिलैं-मैंने सुना है; फाङ्किते–शब्द जाल में; तोमार-आपके; शिष्येर–शिष्यों का; संलाप–विशेष ज्ञान।

अनुवाद

"मैं समझता हूँ कि आप कलाप व्याकरण पढ़ाते हैं। मैंने सुना है कि आपके विद्यार्थी इस व्याकरण के शब्द-जाल में अत्यन्त पटु हैं।"

तात्पर्य

संस्कृत भाषा में व्याकरण की कई शैलियाँ हैं, जिनमें से पाणिनि तथा कलाप और कौमुदी व्याकरणों की पद्धति सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। व्याकरण की अनेक शाखाएँ होती थीं और व्याकरण के विद्यार्थी यह सब बारह वर्षों में सीखते थे। निमाइ पण्डित नाम से विख्यात चैतन्य महाप्रभु अपने

विद्यार्थियों को व्याकरण पढ़ाते थे, जो जटिल व्याकरण के शब्दजाल के प्रयोग में विशेष दक्ष बन जाते थे। व्याकरण का अध्ययन करने वाला कोई भी दक्ष व्यक्ति (वैयाकरण) शब्दों की व्युत्पत्ति बदलकर शास्त्रों की कई प्रकार से व्याख्या करता है। कभी-कभी एक व्याकरण का छात्र व्याकरण-नियमों की जादूगरी से पूरे वाक्य का अर्थ ही बदल सकता है। केशव काश्मीरी ने अप्रत्यक्ष रूप से व्यंग्य किया कि यद्यपि चैतन्य महाप्रभु व्याकरण के अच्छे शिक्षक हैं, किन्तु शब्दों की व्युत्पत्ति के साथ ऐसी जादूगरी करना बहुत बड़े पाण्डित्य का सूचक नहीं होता। यह श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए चुनौती थी। चूँकि केशव काश्मीरी और निमाइ पण्डित में शास्त्रार्थ पूर्वनिर्धारित था, अतएव केशव काश्मीरी ने पहले से ही महाप्रभु को झूठी धौंस दिखाना शुरू कर दिया। तब महाप्रभु ने इस प्रकार उत्तर दिया।

प्रभु कहे, व्याकरण पड़ाइ–अभिमान करि ।

शिष्येते ना बुझे, आमि बुझाइते नारि ॥ 33 ॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; व्याकरण पड़ाइ–हां, मैं व्याकरण पढ़ाता हूँ; अभिमान करि-मुझे ऐसा करना ही था; शिष्येते-अपने शिष्यों के बीच; ना-नहीं; बुझे-समझता हूँ; आमि-मैं भी; बुझाइते-उनको समझाने के लिए; नारि नहीं सक्षम हूँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "हाँ, मैं व्याकरण का शिक्षक माना जाता हूँ, किन्तु तथ्य यह है कि न तो मैं अपने विद्यार्थियों को अपने व्याकरण-ज्ञान से प्रभावित कर पाता हूँ, न ही वे मेरी बात ठीक से समझ पाते हैं।"

तात्पर्य

चूँकि केशव काश्मीरी कुछ गर्वित था, अतएव महाप्रभु ने अपने आपको उससे नीचा प्रस्तुत करके उसके कृत्रिम गर्व को बढ़ा दिया। इसलिए महाप्रभु ने उसकी प्रशंसा इस प्रकार की।

काहाँ तुमि सर्व-शास्त्रे कवित्वे प्रवीण ।

काहाँ आमि सबे शिशु-पड़या नवीन ॥ 34॥

काहाँ–कहाँ ; तुमि-आप; सर्व-शास्त्रे-सभी शास्त्रों में; कवित्वे-साहित्यिक क्षेत्र में; प्रवीण-अत्यन्त अनुभवी; काहाँ–कहाँ; आमि-मैं; सबे–मात्र; शिशु-बच्चा; पड़ूया–विद्यार्थी; नवीन–नया।

अनुवाद

हे महाशय, कहाँ आप सभी शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित और कविता रचने में अत्यन्त अनुभवी और कहाँ मैं एक बालक, नया विद्यार्थी मात्र!

तोमार कवित्व किछु शुनिते हय मन ।

कृपा करि’ कर यदि गङ्गार वर्णन ॥ 35॥

तोमार-आपकी; कवित्व-कविता-रचना; किछु-कुछ; शुनिते-सुनने के लिए; हय-है; मन–मन; कृपा-कृपा; करि’-करके; कर-आप करो; यदि-यदि; गङ्गार-माता गंगा का; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

“अतएव मेरी इच्छा आपके मुख से आपकी कविता-रचना का कौशल सुनने की है। यदि आप कृपा करके माता गंगा के यश का वर्णन करें, तो हम सब सुनें।”

शुनिया ब्राह्मण गर्वे वर्णिते लागिला ।

घटी एके शत श्लोक गङ्गार वर्णिला ॥ 36॥

शुनिया-यह सुनकर; ब्राह्मण-पण्डित, केशव काश्मीरी; गर्वे–गर्व में; वर्णिते-वर्णन करने; लागिला-लगा; घटी–घण्टे में; एके-एक; शत-सौ; श्लोक-श्लोक; गङ्गार-गंगा के विषय में; वर्णिला-वर्णन किये।

अनुवाद

जब उस ब्राह्मण केशव काश्मीरी ने यह सुना, तो वह और भी गर्वित हुआ और घंटे-भर के ही भीतर उसने गंगामाता का वर्णन करते हुए एक सौ श्लोक रच डाले।

शुनिया करिल प्रभु बहुत सत्कार।

तोमा सम पृथिवीते कवि नाहि आर ॥ 37॥

शुनिया-यह सुनकर; करिल-की; प्रभु–महाप्रभु ने; बहुत-बहुत अधिक; सत्कार–प्रशंसा; तोमा-आप; सम-जैसा; पृथिवीते–विश्व में; कवि-कवि; नाहि-नहीं है; आर-और दूसरा।

अनुवाद

महाप्रभु ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा, "महाशय, सारे संसार में आपके समान दूसरा कवि नहीं है।

तोमार कविता श्लोक बुझिते कार शक्ति।

तुमि भाल जान अर्थ किंवा सरस्वती ॥ 38 ॥

तोमार-आपकी; कविता-कविता; श्लोक-श्लोक; बुझिते-समझना; कार-किसकी; शक्ति-शक्ति; तुमि-आप; भाल–अच्छा; जान-जानते हैं; अर्थ-अर्थ; किंवा–अथवा; सरस्वती-सरस्वती देवी।

अनुवाद

"आपकी कविता इतनी कठिन है कि उसे आप तथा विद्या की देवी माता सरस्वती के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं समझ सकता।"

तात्पर्य

महाप्रभु ने केशव काश्मीरी को व्यंग्य में अप्रत्यक्ष रूप से यह कहकर उसकी कविता का महत्त्व कम कर दिया कि, "आपकी कविता इतनी सुन्दर है कि आप तथा आपकी आराध्य देवी सरस्वती ही इसे समझ सकते हैं।" केशव काश्मीरी माता सरस्वती का प्रिय भक्त था। किन्तु चैतन्य महाप्रभु देवी सरस्वती के भी स्वामी होने के कारण उनके भक्तों के बारे में व्यंग्य वचन कहने का अधिकार रखते हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि केशव काश्मीरी को गर्व था कि उसे देवी सरस्वती की कृपा प्राप्त है, किन्तु वह यह नहीं जानता था कि वे देवी सरस्वती तो स्वयं चैतन्य महाप्रभु के नियन्त्रण में हैं, क्योंकि महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

एक श्लोकेर अर्थ यदि कर निज-मुखे ।

शुनि' सब लोक तबे पाइब बड़-सुखे ॥ 39॥

एक-एक; श्लोकेर-श्लोक का; अर्थ-अर्थ; यदि-यदि; कर-आप करें; निज-मुखे-अपने मुख से; शुनि'–सुनकर; सब-सब; लोक-लोग; तबे-तब; पाइब-हमें मिलेगा; बड़-सुखे-बड़ा सुख।

अनुवाद

“किन्तु यदि आप एक श्लोक का अर्थ व्याख्या करके कहें, तो हम सब स्वयं आपके मुख से सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो सकते हैं।”

तबे दिग्विजयी व्याख्यार श्लोक पुछिल।

शत श्लोकेर एक श्लोक प्रभु त’ पड़िल ॥ 40॥

तबे-तत्पश्चात्; दिग-विजयी–केशव काश्मीरी; व्याख्यार-व्याख्यान के लिए; श्लोक-एक श्लोक; पुछिल–पूछा; शत-एक सौ; श्लोकेर-श्लोकों में से; एक-एक; श्लोक-श्लोक; प्रभु–महाप्रभु; त’-तब; पड़िल-पढ़ा।

अनुवाद

दिग्विजयी केशव काश्मीरी ने पूछा कि आप किस श्लोक की व्याख्या चाहते हैं। तब महाप्रभु ने केशव काश्मीरी द्वारा रचे एक सौ श्लोकों में से एक श्लोक सुनाया।

महत्त्वं गङ्गायाः सततमिदमाभाति नितरां

प्रदेषा श्री-विष्णोश्चरण-कमलोत्पत्ति-सुभगा।

द्वितीय-श्री-लक्ष्मीरिव सुर-नरैरर्च्य-चरणा

भवानी-भर्तुर्या शिरसि विभवत्यद्भुत-गुणा ॥41॥

महत्त्वम्-महत्त्व; गङ्गायाः-माता गंगा का; सततम्-सदा; इदम्-यह; आभाति-चमकता है; नितराम्-तुलना के बिना; यत्-क्योंकि; एषा-वह; श्री-विष्णोः–भगवान् विष्णु के; चरण-चरण;

कमल-कमल; उत्पत्ति-उत्पत्ति; सुभगा-सौभाग्यवती; द्वितीय-द्वितीय; श्री–सुन्दर; लक्ष्मीः -लक्ष्मी देवी; इव-की भाँति; सुर-नरैः-देवताओं तथा मनुष्यों से; अर्ध्य-पूज्य; चरणा-चरण; भवानी दुर्गा देवी के; भर्तुः-पति के; या-वह; शिरसि–सिर पर; विभवति–शोभा देती है; अद्भुत-अद्भुत; गुणा-गुण।

अनुवाद

"माता गंगा की महानता सदैव चमकती रहने वाली है। वे सर्वाधिक भाग्यशालिनी हैं, क्योंकि वे भगवान् विष्णु के चरणकमलों से निकलती हैं। वे द्वितीय लक्ष्मी हैं, इसीलिए देवता तथा मनुष्य सदा उनकी पूजा करते हैं। वे सारे अद्भुत गुणों से समन्वित होकर शिवजी के मस्तक पर सुशोभित होती हैं।"

'एइ श्लोकेर अर्थ कर'—प्रभु यदि बैल ।

विस्मित हञा दिग्विजयी प्रभुरे पुछिल ॥42॥

एइ–यह; श्लोकेर–श्लोक का; अर्थ-अर्थ; कर-कृपया करो; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; यदि-जब; बैल-कहा; विस्मित-चकित; हञा–होकर; दिग्-विजयी-दिग्विजयी; प्रभुरे–महाप्रभु को पुछिल–पूछा।

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक का अर्थ बतलाने के लिए कहा, तो दिग्विजयी ने आश्चर्यचकित होकर उनसे पूछा।

झञ्झावात-प्राय आमि श्लोक पड़िल ।

तार मध्ये श्लोक तुमि कैछे कण्ठे कैल ॥43॥

झञ्झा-वात-तूफान की तेज आंधी; प्राय-की भाँति; आमि-मैं; श्लोक-श्लोक; पड़िल-पढ़े; तार–उनमें से; मध्ये मध्य में; श्लोक-एक श्लोक; तुमि-आपने; कैछे-कैसे; कण्ठे–कण्ठस्थ; कैल–कर लिया।

अनुवाद

"मैंने तो सारे श्लोक आँधी की गति से सुनाये हैं। तुमने उन श्लोकों में से इस एक श्लोक को किस तरह ठीक से कण्ठस्थ कर लिया?"

प्रभु कहे, देवेर वरे तुमि–'कवि-वर' ।

ऐछे देवेर वरे केहो हय' श्रुतिधर' ॥44॥

प्रभु–महाप्रभु ने; कहे-उत्तर दिया; देवेर-दैवी शक्ति के; वरे-वरदान से; तुमि-आप; कवि-वर–सर्वाधिक उन्नत कवि; ऐछे-इसी प्रकार; देवेर-भगवान् के; वरे-वरदान से; केहो–कोई; हय हो जाता है; श्रुति-धर-जो तत्क्षण स्मरण कर लेता है।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "जिस तरह भगवान् की कृपा से कोई कोई महाकवि बनता है, उसी तरह उन्हीं की कृपा से कोई-कोई महान् श्रुतिधर भी बन सकता है, जो किसी चीज को तुरन्त स्मरण रख ले।"

तात्पर्य

यहाँ श्रुतिधर शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। श्रुति का अर्थ है "सुनना" तथा धर का अर्थ है "धारण करने वाला।" कलियुग के प्रारम्भ होने के पूर्व विशेषकर बुद्धिमान ब्राह्मणों में प्रायः हर कोई

श्रुतिधर होता था। ज्योंही कोई विद्यार्थी अपने गुरु से कोई वैदिक स्तोत्र सुनता, तो वह हमेशा-हमेशा के लिए उसे स्मरण कर लेता था। किसी पुस्तक की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इसलिए उन दिनों लिखित पुस्तकें नहीं होती थीं। गुरु वैदिक स्तोत्र पढ़ता और उनकी व्याख्या विद्यार्थियों को बताता था, और वे उन्हें सदा के लिए, बिना पुस्तक देखे कण्ठस्थ कर लेते थे।

श्रुतिधर बनना विद्यार्थी की बहुत बड़ी उपलब्धि है। भगवद्गीता (10.41) में भगवान् कहते हैं :

यद् यद् विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।

तद् तद् एवावगच्छत्वं मम तेजोऽशंसम्भवम् ॥

"जान लो कि सारी सुन्दर, महिमान्वित तथा शक्तिशाली सृष्टियाँ मेरे तेज के केवल एक स्फुलिंग मात्र से उत्पन्न होती हैं।"

जब हम कोई असामान्य वस्तु देखते हैं तो हमें समझना चाहिए कि ऐसी असाधारण वस्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा का फल है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने दिग्विजयी केशव काश्मीरी से कहा कि जिस तरह उसे माता सरस्वती का प्रिय भक्त होने का गर्व है, उसी तरह कोई अन्य भी, जैसे चैतन्य महाप्रभु स्वयं, भगवान् का प्रिय पात्र होकर श्रुतिधर बन सकता है और इस तरह से वह कोई बात सुनकर उसे तुरन्त कण्ठस्थ कर सकता है।

श्लोकेर अर्थ कैल विप्र पाइया सन्तोष ।

प्रभु कहे—कह श्लोकेर किबा गुण-दोष ॥45॥

श्लोकेर-श्लोक की; अर्थ-व्याख्या; कैल-की; विप्र-ब्राह्मण; पाइया-पाकर; सन्तोष–सन्तोष; प्रभु–महाप्रभु ने; कहे-कहा; कह-कृपया बोलो; श्लोकेर-श्लोक के; किबा-क्या हैं; गुण-गुण; दोष-दोष।

अनुवाद

वह ब्राह्मण (केशव काश्मीरी) महाप्रभु के कथन से सन्तुष्ट हुआ और उसने उद्धृत श्लोक का अर्थ बतलाया। तब महाप्रभु ने कहा, "कृपया इस श्लोक के कुछ विशेष गुणों और दोषों की भी व्याख्या कर दें।"

तात्पर्य

यद्यपि ब्राह्मण ने सौ श्लोकों को आँधी की तरह तेजी से सुनाया था, किन्तु महाप्रभु ने उनमें से एक श्लोक को चुनकर न केवल उसे कण्ठस्थ कर लिया, अपितु उसके गुण-दोषों का भी विश्लेषण किया। उन्होंने श्लोक को केवल सुना ही नहीं, अपितु तुरन्त ही उसका आलोचनात्मक अध्ययन भी किया।

विप्र कहे श्लोके नाहि दोषेर आभास ।

उपमालङ्कार गुण, किछु अनुप्रास ॥46॥

विप्र कहे-ब्राह्मण ने उत्तर दिया; श्लोके-उस श्लोक में; नाहि-नहीं है; दोषेर-दोष; आभास-जरा सा भी; उपमा-अलङ्कार–उपमा अलंकार; गुण-गुण; किछु-कुछ भी; अनुप्रास-अनुप्रास।

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "इस श्लोक में नाम-मात्र भी दोष नहीं है। प्रत्युत यह उपमा तथा अनुप्रास की उत्कृष्ट विशेषताओं से युक्त है।"

तात्पर्य

चैतन्य महाप्रभु द्वारा उधृत श्लोक की अन्तिम पंक्ति में भवानी, भर्तुर, विभवति तथा अद्भुत शब्दों में भ अक्षर की पुनरावृत्ति हुई है। ऐसी आवृति अनुप्रास कहलाती है। लक्ष्मीरिव तथा विष्णोश्चरणकमलोत्पत्ति में उपमा-अलंकार आया है, जो आलंकारिक सौन्दर्य को प्रकाशित करता है। गंगा जल है एवं लक्ष्मी सौभाग्य की देवी है। किन्तु जल तथा व्यक्ति वास्तव में एक से नहीं होते, अतएव यह तुलना आलंकारिक है।

प्रभु कहेन,—कहि, यदि न करह रोष ।

कह तोमार एइ श्लोके किबा आछे दोष ॥47॥

प्रभु कहेन–महाप्रभु ने उत्तर दिया; कहि-मैं कहता हूँ; यदि-यदि; ना-नहीं; करह-आप होते हो; रोष-क्रुद्ध; कह–कृपया मुझे बताओ; तोमार-आप; एइ श्लोके-इस श्लोक में; किब-क्या; आछे-हैं; दोष-दोष।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "हे महाशय, यदि आप रूष्ट न हों, तो मैं कुछ कहूँ क्या आप इस श्लोक के दोषों की व्याख्या कर सकेंगे?"

प्रतिभार काव्य तोमार देवता सन्तोषे ।

भाल-मते विचारिले जानि गुण-दोषे ॥48॥

प्रतिभार–प्रतिभा का; काव्य-कवित्व; तोमार-आपका; देवता-देवता; सन्तोषे-सन्तोष करते हैं; भाल-मते-सूक्ष्म रूप से; विचारिले-विश्लेषण करने पर; जानि-मैं पाता हूँ; गुण-दोषे-दोष एवं गुण भी।

अनुवाद

"इस में सन्देह नहीं कि आपकी कविता प्रतिभा से युक्त है और निश्चय ही, इसने परमेश्वर को सन्तुष्ट कर लिया है। फिर भी यदि हम इसकी समीक्षात्मक रूप से विवेचना करें, तो इसमें गुण और दोष दोनों मिल जायेंगे।"

ताते भाल करि' श्लोक करह विचार।

कवि कहे,—ये कहिले सेइ वेद-सार ॥49॥

ताते-अतः; भाल-बहुत ध्यान से; करि'-करके; श्लोक-श्लोक; करह-करो; विचार–निर्णय; कवि कहे-कवि ने कहा; ये कहिले-आपने जो कहा है; सेइ-वह है; वेद-सार-बिल्कुल ठीक।

अनुवाद

महाप्रभु ने अन्त में कहा, "अतएव अब हम इस श्लोक की भलीभाँति विवेचना कर लें।" तब उस कवि ने उत्तर दिया, "हाँ, तुमने जो श्लोक पढ़ा है, वह पूरी तरह सही है।

व्याकरणिया तुमि नाहि पड़ अलङ्कार।

तुमि कि जानिबे एइ कवित्वेर सार ॥50॥

व्याकरणिया-व्याकरण के विद्यार्थी; तुमि-आप हो; नाहि-नहीं; पड़-पढ़ा; अलङ्कार–अलंकार; तुमि-आप; कि–क्या; जानिबे-जानोगे; एइ-इस; कवित्वेर-काव्य गुण का; सार-सार।

अनुवाद

"आप तो व्याकरण के सामान्य विद्यार्थी हो। काव्य-शास्त्र के अलंकारों के बारे में आप क्या जानो? आप इस कविता की समालोचना नहीं कर सकते, क्योंकि आपको इसका कोई ज्ञान नहीं है।"

तात्पर्य

केशव काश्मीरी ने पहले तो चैतन्य महाप्रभु को यह कहकर याँसा देना चाहा कि वे साहित्य के उन्नत विद्यार्थी नहीं हैं, अतएव वे अनुप्रासों तथा अलंकारों से युक्त श्लोक की समीक्षा नहीं कर सकते। इस तर्क में कुछ तथ्य था। जब तक कोई वैद्य न हो, तब तक वह दूसरे वैद्य की आलोचना नहीं कर सकता। इसी तरह वकील हुए बिना किसी दूसरे वकील की आलोचना नहीं की जा सकती। इसीलिए केशव काश्मीरी ने पहले महाप्रभु की स्थिति की अवमानना की। चूँकि महाप्रभु उस पण्डित के लिए मात्र व्याकरण के विद्यार्थी थे, तो फिर वे उस-जैसे महाकवि की आलोचना कैसे कर सकते थे? इसीलिए महाप्रभु ने कवि की आलोचना भिन्न ढंग से की। उन्होंने कहा कि यद्यपि वे साहित्य में पारंगत नहीं हैं, किन्तु उन्होंने दूसरों से सुना है कि ऐसी कविता की समालोचना किस तरह करनी चाहिए और चूँकि वे श्रुतिधर हैं, इसलिए वे समालोचना की ऐसी विधि को समझ सकते हैं।

प्रभु कहेन–अतएव पुछिये तोमारे।

विचारिया गुण-दोष बुझाह आमारे ॥51॥

प्रभु कहेन–महाप्रभु ने कहा; अतएव–अतएव; पुछिये-मैं पूछ रहा हूँ; तोमारे-आप से; विचारिया–पूर्णतया समीक्षा करके; गुण-गुण; दोष-दोष; बुझाह-समझाओ; आमारे-मुझे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने विनीत भाव से कहा, "चूँकि मैं आपके स्तर का नहीं हूँ, इसीलिए मैंने आपसे अनुरोध किया है कि आप अपनी कविता के गुण-दोषों की व्याख्या करके मुझे सिखाएँ।"

नाहि पड़ि अलङ्कार, करियाछि श्रवण।

ताते एइ श्लोके देखि बहु दोष-गुण ॥52॥

नाहि पड़ि-मैंने नहीं पढ़ा; अलङ्कार–अलंकार; करियाछि-मैंने किया है; श्रवण-श्रवण; ताते-उससे; एइ श्लोके-इस श्लोक में; देखि-मैं देखता हूँ; बहु-बहुत; दोष-दोष; गुण-गुण।

अनुवाद

निश्चय ही मैंने अलंकार-शास्त्र नहीं पढ़ा। किन्तु मैंने बड़े लोगों से इस सम्बन्ध में सुना है, अतएव मैं इस श्लोक की समीक्षा कर सकता हूँ और इसमें अनेक दोष और अनेक विशेषताएँ ढूँढ सकता हूँ।"

तात्पर्य

करियाछि श्रवण ("मैंने सुना है")—यह कथन इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि प्रत्यक्ष अध्ययन करने या अनुभव करने की अपेक्षा सुनना अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि कोई सुनने में पटु हो और उपयुक्त व्यक्ति से सुने, तो उसका ज्ञान तुरन्त ही पूर्ण हो जाता है। यह विधि श्रौतपन्था अर्थात् 'प्रामाणिक सत्ता से सुनकर ज्ञान प्राप्त करना' कहलाती है। सारा वैदिक ज्ञान इसी सिद्धान्त पर टिका

है कि प्रामाणिक गुरु के पास जाकर वेदों के प्रामाणिक कथन सुने जाएँ। पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए उच्च कोटि का साहित्यिक व्यक्ति होना आवश्यक नहीं है। हाँ, पूर्ण व्यक्ति से पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनुष्य को सुनने में दक्ष होना चाहिए। यह अवरोह-पन्था या विधि कहलाती है।

कवि कहे,—कह देखि, कोन् गुण-दोष ।

प्रभु कहेन, कहि, शुन, ना करिह रोष ॥53॥

कवि कहे-कवि ने कहा; कह देखि-आप कहो "मैं देखता हूँ"; कोन्-क्या; गुण-गुण; दोष-दोष; प्रभु कहेन–महाप्रभु ने उत्तर दिया; कहि-मुझे कहने दो; शुन-कृपया सुनो; ना-नहीं; करिह-होओ; रोष-क्रुद्ध।

अनुवाद

कवि ने कहा, "जरा देखें तो, आपने कौन-कौन से गुण और दोष ढूँढे हैं।" महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं कह रहा हूँ। कृपया आप रुष्ट हुए बिना सुनें।"

पञ्च दोष एइ श्लोके पञ्च अलङ्कार ।

क्रमे आमि कहि, शुन, करह विचार ॥54॥

पञ्च–पाँच; दोष-दोष; एइ श्लोके-इस श्लोक में; पञ्च–पाँच; अलङ्कार-अलंकार; क्रमे-एक के बाद दूसरा; आमि-मैं; कहि-कहता हूँ; शुन-कृपया सुनें; करह-दें; विचार–निर्णय।

अनुवाद

हे महोदय, इस श्लोक में पाँच दोष हैं और पाँच अलंकार हैं। मैं क्रम से उन्हें कदूँगा। कृपया सुनें और फिर अपना निर्णय दें।

तात्पर्य

महत्त्वं गङ्गायाः से प्रारम्भ होने वाले श्लोक में पाँच अलंकार हैं तथा पाँच काव्य-दोष के उदाहरण हैं। अविमृष्ट विधेयांश दोष के दो उदाहरण हैं और विरुद्धमति, पुनरुक्ति तथा भग्न-क्रम के एक एक उदाहरण हैं।

विमृष्ट का अर्थ है "स्वच्छ" तथा विधेयांश का अर्थ है "विधेय।" रचना का सामान्य नियम है कि पहले उद्देश्य आये और फिर विधेय। उदाहरणार्थ संस्कृत व्याकरण के अनुसार, यदि कोई कहे कि, "यह पुरुष विद्वान है" तो उसकी रचना ठीक है। किन्तु यदि कोई कहे कि, "विद्वान यह पुरुष है तो यह रचना क्रमबद्ध नहीं है। ऐसा दोष अविमृष्ट विधेयांश दोष अर्थात् अशुद्ध रचना कहलाता है। श्लोक का उद्देश्य है गंगा की महिमा, अतएव इदम् ("यह") शब्द को गंगा की स्तुति के पहले आना चाहिए था न कि बाद में। जो बात ज्ञात है उसे अज्ञात से पहले आना चाहिए, जिससे इसका अर्थ गलत न समझा जाए।

अविमृष्ट विधेयांश दोष का दूसरा उदाहरण द्वितीय श्रीलक्ष्मीरिव शब्दों में मिलता है। इस रचना में द्वितीय शब्द विधेय अर्थात् अज्ञात है। अतएव द्वितीय श्रीलक्ष्मीरिव समास बनाने में द्वितीय जो अज्ञात है, उसे पहले रखना दोषपूर्ण है। द्वितीय-श्रीलक्ष्मीरिव का उद्देश्य गंगा की तुलना लक्ष्मी से करना था, किन्तु इस दोष के कारण सामासिक शब्द भ्रामक बन गया है।

तृतीय दोष विरूद्धमति है, जो भवानीभर्तुः में पाया जाता है। भवानी भव अर्थात् शिवजी की पत्नी का द्योतक है। चूँकि भवानी का अर्थ ही है शिव-पत्नी, अतएव उसके साथ भर्ता (पति)

शब्द जोड़कर समास बनाना-जिसका अर्थ है, "शिवजी की पत्नी का पति–नियमविरुद्ध है, क्योंकि इससे ऐसा लगता है कि शिव-पत्नी का कोई अन्य पति भी था। चौथा दोष पुनरुक्ति का है, जो विभवति क्रिया में है, जहाँ रचना समाप्त हो जानी चाहिए, किन्तु उसके भी आगे व्यर्थ का विशेषण अद्भुतगुणा लगा हुआ है। पाँचवा दोष भग्नक्रम है। इस श्लोक की प्रथम, तृतीय तथा चतुर्थ पंक्तियों में अनुप्रास है, जो त, र, भ शब्दों के कारण है, किन्तु द्वितीय पंक्ति में ऐसा अनुप्रास न होने के कारण क्रम का भंग हो गया है।

'अविमृष्ट-विधेयांश—दुइ ठाजि चिह्न ।

'विरुद्ध-मति', 'भग्न-क्रम', 'पुनरात्त', दोष तिन ॥55॥

अविमृष्ट-विधेयांश-अस्पष्ट रचना; दुइ ठाजि-दो स्थानों में; चिह्न-चिह्न; विरुद्ध-मति–विरोधाभास युक्त रचना; भग्न-क्रम-भग्न क्रम; पुनर्-आत्त-पुनरुक्ति; दोष-दोष; तिन-तीन।

अनुवाद

"इस श्लोक में अविमृष्टविधेयांश दोष दो बार आया है और विरुद्धमति, भग्नक्रम तथा पुनरात्त दोष एक-एक बार आये हैं।"

'गङ्गार महत्त्व'–श्लोके मूल विधेय' ।

इदं शब्दे 'अनुवाद'–पाछे अविधेय ॥56॥

गङ्गार महत्त्व-माता गंगा की महिमा; श्लोके–श्लोक में; मूल–प्रमुख; विधेय-अज्ञात; इदम् शब्दे-इदम् ("यह") शब्द से; अनुवाद-ज्ञात; पाछे-अन्त में; अविधेय-अनुचित।

अनुवाद

“इस श्लोक का मुख्य अज्ञात विषय (विधेय) गंगा का महत्त्व (महत्त्वं गंगायाः) है और ज्ञात विषय (उद्देश्य) इदम् शब्द से सूचित होता है, जो अज्ञात के बाद रखा हुआ है।”

‘विधेय’ आगे कहि’ पाछे कहिले ‘अनुवाद’ ।

एइ लागि’ श्लोकेर अर्थ करियाछे बाध ॥57॥

विधेय–विधेय, जो ज्ञात न हो; आगे-पहले; कहि’–कहने के बाद; पाछे-बाद में; कहिले–अगर कोई कहता है; अनुवाद-अनुवाद, ज्ञात बात; एइ लागि’-इस कारण; श्लोकेर-श्लोक का; अर्थ-अर्थ; करियाछे–किया गया है; बाध-आपत्तिजनक।

अनुवाद

“चूँकि आपने ज्ञात विषय को (उद्देश्य या अनुवाद को) अन्त में रखा है और जो अज्ञात है (विधेय) उसे प्रारम्भ में रखा है, अतएव यह रचना दोषपूर्ण है और शब्दों का अर्थ सन्देहजनक हो गया है।”

अनुवादमनुक्त्वैव न विधेयमुदीरयेत् ।

न ह्यलब्धास्पदं किञ्चित्कुत्रचित्प्रतितिष्ठति ॥58॥

अनुवादम्-अनुवाद, ज्ञात बातें; अनुक्त्वा-बिना बताए; एव–निश्चित रूप से; न-नहीं; विधेयम्-विधेय अज्ञात विषय; उदीरयेत्-कोई वर्णन करे; न-नहीं; हि-निश्चय ही; अलब्ध-आस्पदम्-उचित स्थान पाये बिना; किञ्चित्-कुछ; कुत्रचित्-कहीं भी; प्रतितिष्ठति का स्थान होता है।

अनुवाद

“सर्वप्रथम ज्ञात का उल्लेख किये बिना अज्ञात को स्थान नहीं देना चाहिए, क्योंकि जिसकी ठोस आधारभूमि नहीं होती, उसे कहीं भी स्थापित नहीं किया जा सकता।”

तात्पर्य

यह श्लोक एकादशी-तत्त्व से है।

‘द्वितीय श्री-लक्ष्मी’—इहाँ ‘द्वितीयत्व’ विधेय।

समासे गौण हैल, शब्दार्थ गेल क्षय ॥59॥

द्वितीय श्री-लक्ष्मी-द्वितीय श्री लक्ष्मी शब्द; इहाँ–यह; द्वितीयत्व-दूसरा होने का गुण; विधेय–विधेय, वह अज्ञात जिसकी व्याख्या करनी है; समासे-समास में; गौण-गौण; हैल-हो गया; शब्द-अर्थ-शब्द का अपेक्षित अर्थ; गेल-हो गया; क्षय-लुप्त।

अनुवाद

“द्वितीय श्रीलक्ष्मी' शब्द में द्वितीय लक्ष्मी होने का गुण अज्ञात है। इस समास के बनाने से अर्थ गौण हो गया और अभीष्ट मूल अर्थ खो गया।”

‘द्वितीय’ शब्द–विधेय ताहा पड़िल समासे।

‘लक्ष्मीर समता’ अर्थ करिल विनाशे ॥ 60॥

द्वितीय शब्द-‘द्वितीय’ शब्द (दूसरा); विधेय-विधेय, अज्ञात; ताहा-वह; पड़िल-जोड़ा गया है; समासे-समास में; लक्ष्मीर-लक्ष्मी के साथ; समता-समानता; अर्थ-अर्थ; करिल हो गया; विनाशे-गुम।

अनुवाद

चूँकि 'द्वितीय' शब्द विधेय (अज्ञात) है, अतएव इस समास में लक्ष्मी की समता का जो अभीष्ट अर्थ था, वह नष्ट हो गया है।

'अविमृष्ट-विधेयांश'–एइ दोषेर नाम ।

आर एक दोष आछे, शुन सावधान ॥ 61॥

अविमृष्ट-विधेयांश-अविमृष्ट विधेयांश; एइ–यह; दोषेर-दोष का; नाम-नाम; आर-अन्य; एक-एक; दोष-दोष; आछे-है; शुन-सुनें; सावधान–सावधान होकर।

अनुवाद

न केवल अविमृष्ट विधेयांश का दोष ही है, अपितु एक अन्य दोष भी है, जिसे मैं आपको इंगित करने जा रहा हूँ। कृपया ध्यानपूर्वक सुनें।

'भवानी-भर्तृ'-शब्द दिले पाइया सन्तोष ।

'विरुद्ध-मति-कृत्' नाम एइ महा दोष ॥62॥

भवानी-भर्तृ शब्द- भवानी भर्तृ शब्द (भवानी का पति); दिले-आपने रखा है; पाइया-पाकर; सन्तोष-सन्तोष; विरुद्ध-मति-कृत्-विरोधाभास; नाम-नामक; एइ-यह; महा-महान्; दोष-दोष।

अनुवाद

"यहाँ पर एक अन्य महान् दोष है। आपने अपने पूर्ण सन्तोष के लिए 'भवानीभर्तृ' शब्द रखा है, किन्तु इसमें विरुद्धमतिकृत् नामक (विरोधाभास का) दोष है।

भवानी-शब्दे कहे महादेवेर गृहिणी ।

ताँर भर्ता कहिले द्वितीय भर्ता जानि ॥ 63॥

भवानी शब्दे- भवानी शब्द से; कहे-अर्थ है; महादेवेर-महादेव की; गृहिणी-पत्नी; ताँर–उनका; भर्ता-पति; कहिले–यदि हम कहें; द्वितीय-द्वितीय; भर्ता-पति; जानि–हम समझते हैं।

अनुवाद

“भवानी’ का शब्दार्थ है ‘शिवजी की पत्नी।’ किन्तु जब हम उनके पति का उल्लेख करते हैं, तो इससे यह निष्कर्ष भी निकल सकता है कि उनका कोई दूसरा पति भी है।

‘शिव-पत्नीर भर्ता’ इहा शुनिते विरुद्ध ।

‘विरुद्ध-मति-कृत्’ शब्द शास्त्रे नहे शुद्ध ॥ 64॥

शिव-पत्नीर-शिवजी की पत्नी का; भर्ता-पति; इह-यह; शुनिते-सुनना; विरुद्ध विरुद्ध; विरुद्ध-मति-कृत्-जिससे विरोधाभास उत्पन्न होता है; शब्द-ऐसा शब्द; शास्त्रे-शास्त्रों में; नहे-नहीं है; शुद्ध-शुद्ध।

अनुवाद

“यह सुनना विरोधाभासी लगता है कि शिवजी की पत्नी का एक दूसरा पति है। साहित्य में ऐसे शब्दों के प्रयोग से विरुद्धमतिकृत् नामक दोष उत्पन्न होता है।”

‘ब्राह्मण-पत्नीर भर्तार हस्ते देह दान’ ।

शब्द शुनितेइ हय द्वितीय-भर्ता ज्ञान ॥65॥

ब्राह्मण-पत्नीर-ब्राह्मण की पत्नी के; भर्तार–पति के; हस्ते–हाथ में; देह-दो; दान-दान; शब्द-ये शब्द; शुनितेइ-सुनकर; हय-है; द्वितीय-भर्ता-द्वितीय पति; ज्ञान-ज्ञान।

अनुवाद

"यदि कोई कहे कि 'यह दान ब्राह्मण की पत्नी के पति के हाथ में दे दो,' तो इन विपरीतार्थी शब्दों को सुनते ही हम तुरन्त समझते हैं कि ब्राह्मण-पत्नी को कोई दूसरा पति भी है।"

'विभवति' क्रियाय वाक्य—साङ्ग, पुनः विशेषण।

'अद्भुत-गुणा'—एइ पुनरात्त दूषण ॥66॥

विभवति क्रियाय-विभवति' (फलती फूलती है) क्रियापद से; वाक्य-वाक्य; साङ्ग–पूर्ण; पुनः पुनः; विशेषण अद्भुत-गुण-विशेषण "अद्भुत गुण" (विचित्र गुण); एइ–यह; पुनर्-आत्त-उस शब्द की पुनरावृत्ति; दूषण-दोष।

अनुवाद

विभवति (फलती फूलती है) शब्द द्वारा कहा गया कथन पूर्ण है। किन्तु इसके विशेषण के रूप में अद्भुतगुणारखने से पुनरुक्ति नामक दोष उत्पन्न होता है।

तिन पादे अनुप्रास देखि अनुपम।

एक पादे नाहि, एइ दोष 'भग्न-क्रम' ॥ 67॥

तिन पादे-तीन पंक्तियों में; अनुप्रास-अनुप्रास; देखि-मैं देखता हूँ; अनुपम असाधारण; एक पादे-एक पंक्ति में; नाहि नहीं है; एइ दोष-यह दोष; भग्न-क्रम-विसंगति।

अनुवाद

इस श्लोक की तीन पंक्तियों में अद्वितीय अनुप्रास पाया जाता है, किन्तु एक पंक्ति में अनुप्रास बिल्कुल नहीं है। यह भग्नक्रम नामक दोष हैं।

यद्यपि एइ श्लोके आछे पञ्च अलङ्कार।

एइ पञ्च-दोषे श्लोक कैल छारखार॥ 68॥

यद्यपि-यद्यपि; एइ श्लोके-इस श्लोक में; आछे-हैं; पञ्च–पाँच; अलङ्कार-अलंकार; एइ पञ्च-दोषे इन पाँच दोषों से; श्लोक-श्लोक; कैल–हो गया है; छारखार-खराब, दूषित।

अनुवाद

"यद्यपि इस श्लोक में पाँच अलंकार हैं, किन्तु इन पाँच दोषों के कारण पूरा श्लोक नष्ट-भ्रष्ट हो गया है।"

दश अलङ्कारे यदि एक श्लोक हय।

एक दोषे सब अलङ्कार हय क्षय॥ 69॥

दश अलङ्कारे-दस अलंकार; यदि यदि; एक-एक; श्लोक-श्लोक में; हय-हैं; एक दोषे–एक दोष से; सब-सब; अलङ्कार–अलंकार; हय क्षय-व्यर्थ हो जाते हैं।

अनुवाद

"यदि किसी श्लोक में दस अलंकार हों, किन्तु एक भी दोष रहने पर पूरा श्लोक व्यर्थ हो जाता है।"

सुन्दर शरीर यैछे भूषणे भूषित।

एक श्वेत-कुष्ठे यैछे करये विगीत ॥ 70 ॥

सुन्दर-सुन्दर; शरीर–शरीर; यैछे-जैसे; भूषणे-आभूषणों से; भूषित–सजाया हो; एक-एक; श्वेत-कुष्ठे-कुष्ट रोग का एक श्वेत दाग; यैछे-जैसे; करये-हो जाता है; विगीत-दोषी।

अनुवाद

किसी का सुन्दर शरीर रत्नों से क्यों न अलंकृत हो, किन्तु यदि श्वेत कुष्ठ का एक भी दाग दिखे तो सारा शरीर घृणित हो जाता है।

तात्पर्य

काव्य-अलंकार के विद्वान भरत मुनि ने इस सम्बन्ध में अपना मत निम्न प्रकार से दिया है।

रसालङ्कार-वत् काव्यं दोष-मुक् चेद् विभूषितम्।

स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम् ॥71॥

रस-रस से; अलङ्कार-वत्-अलंकारों से; काव्यम्-काव्य; दोष-युक्-दोषयुक्त; चेत्-यदि; विभूषितम्-बहत अच्छी प्रकार से सुसज्जित; स्यात्-यह ऐसा हो जाता है; वपुः-शरीर; सुन्दरम्-सुन्दर; अपि-यद्यपि; श्वित्रेण कुष्ट रोग के एक श्वेत दाग से; एकेन–एक; दुर्भगम्-दुर्भागी।

अनुवाद

“जिस प्रकार गहनों से सुसज्जित शरीर श्वेत कुष्ठ के एक दाग से भी अशुभ हो जाता है, उसी तरह पूरी कविता अनुप्रास, उपमा तथा रूपक से युक्त होने पर भी केवल एक दोष से व्यर्थ हो जाती है।”

पञ्च अलङ्कारेर एबे शुनह विचार।

दुइ शब्दालङ्कार, तिन अर्थ-अलङ्कार ॥72॥

पञ्च–पाँच; अलङ्कार–साहित्यिक अलंकारों का; एबे-अब; शुनह-जरा सुनो; विचार-वर्णन; दुइ-दो; शब्द-अलङ्कार–शब्द अलंकार; तिन-तीन; अर्थ-अलङ्कार-अर्थ अलंकार।

अनुवाद

“अब पाँच साहित्यिक अलंकारों का विवरण सुनें। दो शब्दालंकार हैं और तीन अर्थालंकार हैं।”

शब्दालङ्कार–तिन-पादे आछे अनुप्रास।

‘श्री-लक्ष्मी’ शब्दे ‘पुनरुक्तवदाभास’ ॥73॥

शब्द-अलङ्कार–शब्द अलंकार; तिन-पादे-तीन पंक्तियों में; आछे-है; अनुप्रास- अनुप्रास; श्री-लक्ष्मी-शब्दे-श्रीलक्ष्मी शब्दों में; पुनर्-उक्त-वत्-उसी शब्द की पुनरावृत्ति का; आभास–आभास।

अनुवाद

श्लोक की तीन पंक्तियों में अनुप्रास नामक शब्दालंकार है।'श्री' तथा 'लक्ष्मी' शब्दों के समास में पुनरुक्तवदाभास शब्दालंकार है।

प्रथम-चरणे पञ्च 'त'-कारेर पाँति।

तृतीय-चरणे हय पञ्च 'रेफ'-स्थिति ॥74॥

प्रथम-चरणे-प्रथम पंक्ति में; पञ्च–पाँच; त-करेर–'त' अक्षर का; पाँति-बहुत सुन्दर रचना; तृतीय-चरणे-तीसरी पंक्ति में; हय-है; पञ्च–पाँच; रेफ-'र' अक्षर की; स्थिति-रचना।

अनुवाद

"श्लोक के प्रथम चरण में 'त' पाँच बार आया है और तीसरे चरण में 'र' पाँच बार आया है।"

चतुर्थ-चरणे चारि 'भ'-कार-प्रकाश।

अतएव शब्दालङ्कार अनुप्रास ॥75॥

चतुर्थ-चरणे-चौथी पंक्ति में; चारि-चार; भ-कार-'भ' अक्षर के; प्रकाश-प्राकट्य; अतएव–अतएव; शब्द-अलङ्कार–शब्द अलंकार; अनुप्रास-अनुप्रास।

अनुवाद

"चौथे चरण में 'भ' अक्षर चार बार आया है। इस तरह श्लोक में अनुप्रास नामक मधुर शब्दालंकार है।"

'श्री'-शब्दे, 'लक्ष्मी'-शब्दे–एक वस्तु उक्त।

पुनरुक्त-प्राय भासे, नहे पुनरुक्त ॥76॥

श्री-शब्दे-'श्री' शब्द से; लक्ष्मी-शब्दे–'लक्ष्मी' शब्द से; एक वस्तु–एक वस्तु; उक्त-इंगित होती है; पुनर्-उक्त-प्राय-लगभग पुनरुक्ति; भासे-प्रकट होती है; नहे-किन्तु वास्तव में है नहीं; पुनर्-उक्त-पुनरुक्ति।

अनुवाद

यद्यपि 'श्री' तथा 'लक्ष्मी' शब्दों का अर्थ एक ही है, अतएव पुनरुक्ति प्रतीत होती है, किन्तु पुनरुक्ति है नहीं।

'श्री-युक्त लक्ष्मी' अर्थे अर्थेर विभेद।

पुनरुक्तवदाभास, शब्दालङ्कार-भेद ॥77॥

श्री-युक्त लक्ष्मी-ऐश्वर्ययुक्त लक्ष्मी; अर्थे–अर्थ में; अर्थेर–अर्थ का; विभेद अन्तर, भेद; पुनर्-उक्त-वद्-आभास–पुनरुक्तवत् का आभास; शब्द-अलङ्कार-शब्दालंकार; भेद-भेद।

अनुवाद

"लक्ष्मी को श्री (ऐश्वर्य) युक्त कहने से पुनरुक्ति के साथ अर्थ में अन्तर आता है। यह द्वितीय शब्दालंकार पुनरुक्तवदाभास है।"

'लक्ष्मीरिव' अर्थालङ्कार–उपमा-प्रकाश।

आर अर्थालङ्कार आछे, नाम-'विरोधाभास' ॥78॥

लक्ष्मीर् इव-"लक्ष्मीर् इव" शब्द; अर्थ-अलङ्कार-अर्थ अलंकार; उपमा-उपमा; प्रकाश-प्राकट्य; आर-भी; अर्थ-अलङ्कार–अर्थ अलंकार; आछे-है; नाम-नामक; विरोध-आभास–विरोधाभास।

अनुवाद

"लक्ष्मीरिव (लक्ष्मी के समान) में उपमा नामक अर्थालंकार है। एक अन्य अर्थालंकार विरोधाभास भी है।"

'गङ्गाते कमल जन्मे'—सबार सुबोध ।

'कमले गङ्गार जन्म'–अत्यन्त विरोध ॥79॥

गङ्गाते-गंगा नदी में; कमल-कमल; जन्मे-उगता है; सबार–प्रत्येक की; सुबोध-समझ; कमले-कमल पुष्प में; गङ्गार-गंगा का; जन्म-जन्म; अत्यन्त–अत्यन्त; विरोध-विरोध।

अनुवाद

"यह सबको ज्ञात है कि कमल के फूल गंगाजल में खिलते हैं। किन्तु यह कहना कि गंगा का जन्म कमल-फूल से होता है, यह अत्यन्त विरोधाभासी प्रतीत होता है।"

'इहाँ विष्णु-पाद-पो गङ्गार उत्पत्ति' ।

विरोधालङ्कार इहा महा-चमत्कृति ॥80॥

इहाँ–इस सम्बन्ध में; विष्णु-पाद-पद्म-भगवान् विष्णु के चरणकमलों में; गङ्गार-गंगा माता की; उत्पत्ति-उत्पत्ति, जन्म; विरोध–विरोध; अलङ्कार–अलंकार; इह-यह; महा-महान्; चमत्कृति-चमत्कार।

अनुवाद

"गंगा माता की उत्पत्ति भगवान् के चरणकमलों से होती है। यद्यपि यह कथन कि कमल के फूल से जल आता है विरोधमूलक है, किन्तु भगवान् विष्णु के प्रसंग में यह महान् चमत्कार है।"

ईश्वर-अचिन्त्य-शक्त्ये गङ्गार प्रकाश।

इहाते विरोध नाहि, विरोध-आभास ॥81॥

ईश्वर-अचिन्त्य-शक्त्ये-भगवान् की अचिन्त्य शक्ति से; गङ्गार-गंगा का; प्रकाश-जन्म; इहाते-इस में; विरोध नाहि-विरोध नहीं; विरोध-आभास–विरोधाभास प्रकट होता है।

अनुवाद

"गंगा की उत्पत्ति में भगवान् की अचिन्त्य शक्ति के कारण तनिक भी विरोध नहीं है, यद्यपि यह विरोधाभास जैसा प्रतीत होता है।"

तात्पर्य

सारे वैष्णव दर्शन की केन्द्रीय बात भगवान् विष्णु की अचिन्त्य शक्ति को स्वीकार करना है। भौतिक दृष्टि से जो कभी-कभी विरोधमूलक प्रतीत होता है, वही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सम्बन्ध में समझने योग्य लगता है, क्योंकि वे अपनी अचिन्त्य शक्तियों द्वारा विरोधी कार्य कर सकते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक उलझन में हैं। वे इसकी भी व्याख्या नहीं कर सकते कि रासायनिक पदार्थों

की इतनी बड़ी मात्रा से वायुमण्डल कैसे बना। वैज्ञानिक कहते हैं कि जल हाइड्रोजन तथा आक्सीजन का मेल है; किन्तु जब यह पूछा जाता है कि हाइड्रोजन और आक्सीजन की इतनी बड़ी मात्रा कहाँ से आई और किस तरह उनके मिलने से बड़े बड़े सागर बने, तो वे उत्तर नहीं दे पाते, क्योंकि वे नास्तिक हैं, जो यह स्वीकार नहीं करते कि प्रत्येक वस्तु जीवन से आती है। उनका मत यह है कि जीवन की उत्पत्ति पदार्थ से होती है।

इतने सारे रासायनिक पदार्थ कहाँ से आते हैं ? इसका उत्तर यह है कि ये पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्ति से उत्पन्न होते हैं। सारे जीव भगवान् के अंश हैं और उनके शरीर से अनेक रासायनिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, नींबू का वृक्ष एक जीव है, जो अनेक नींबू उत्पन्न करता है और हर नींबू के भीतर काफी सिट्रिक अम्ल होता है। इसलिए, यदि एक क्षुद्र जीव भी, जो परमेश्वर का अंश मात्र है, इतनी अधिक मात्रा में रासायनिक पदार्थ उत्पन्न कर सकता है, तो फिर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर में न जाने कितनी शक्ति होगी!

वैज्ञानिक पूरी तरह यह नहीं बतला सकते कि संसार के सारे रासायनिक पदार्थ कहाँ तैयार किये जाते हैं, किन्तु भगवान् की अचिन्त्य शक्ति को स्वीकार करने पर इसे पूरी तरह समझाया जा सकता है। इस तर्क को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है। जहाँ भगवान् के अंशरूप जीवों में इतनी शक्ति है, तो स्वयं भगवान् में न जाने कितनी शक्ति होती होगी। जैसाकि वेदों में कहा गया है- नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्-"वे नित्यों में नित्य हैं और सारे जीवों में प्रमुख व्यक्ति हैं। (कठ उपनिषद 2.2.13)।

दुर्भाग्यवश, नास्तिकतावादी विज्ञान यह स्वीकार नहीं करेगा कि पदार्थ जीवन से उत्पन्न होता है। वैज्ञानिक उनके इस सर्वाधिक तर्कहीन तथा मूर्खतापूर्ण सिद्धान्त पर बल देते हैं कि जीवन की उत्पत्ति पदार्थ से होती है, भले ही यह बिल्कुल असम्भव हो। वे अपनी प्रयोगशालाओं में सिद्ध

नहीं कर सकते कि पदार्थ जीवन उत्पन्न कर सकता है, किन्तु ऐसे उदाहरण हजारों हैं, जो यह दिखाते हैं कि पदार्थ जीवन से आता है। अतएव कृष्णदास कविराज गोस्वामी श्रीचैतन्य-चरितामृत में कहते हैं कि एक बार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्ति को स्वीकार करने पर बड़ा से बड़ा दार्शनिक या वैज्ञानिक भी भगवान् की शक्ति का विरोध करने वाला दावा प्रस्तुत नहीं कर सकता। अगले श्लोक में यही व्यक्त हुआ है।

अम्बुजमम्बुनि जातं क्वचिदपि न जातमम्बुजादम्बु ।

मुर-भिदि तद्विपरीतं पादाम्भोजान्महा-नदी जाता ॥82॥

अम्बुजम्-कमल पुष्प; अम्बुनि-जल में; जातम्-उगता है; क्वचित्-किसी समय भी; अपि निश्चित रूप से; न-नहीं; जातम्-उगता; अम्बुजात्-कमल पुष्प से; अम्बु-जल; मुर-भिदि-मुर असुर के हन्ता कृष्ण में; तत्-विपरीतम्-ठीक उसके विपरीत; पाद-अम्भोजात्-उनके चरणों के कमल पुष्प से; महा-नदी-महान् नदी; जाता–निकली है।

अनुवाद

“हर कोई जानता है कि कमल के फूल जल में खिलते हैं, किन्तु कमल में जल कभी नहीं उगता। फिर भी ये सारे विरोधाभास कृष्ण में अद्भुत रूप से सम्भव हैं। गंगा जैसी महान् नदी भगवान् के चरणकमलों से निकली है।

गङ्गार महत्त्व साध्य, साधन ताहार ।

विष्णु-पादोत्पत्ति—‘अनुमान’ अलङ्कार ॥83॥

गङ्गार-गंगा का; महत्त्व-ऐश्वर्य; साध्य-साध्य, विषय वस्तु; साधन-साधन; ताहार-उसका; विष्णु-पाद-उत्पत्ति-विष्णु भगवान् के चरणकमलों से उसका उद्गम; अनुमान–'अनुमान' कहलाता है; अलङ्कार–अलंकार।

अनुवाद

"गंगा नदी की असली महिमा यह है कि वह भगवान् विष्णु के चरणकमलों से उत्पन्न हुई हैं। ऐसी परिकल्पना अनुमान नामक अलंकार है।"

स्थूल एइ पञ्च दोष, पञ्च अलङ्कार।

सूक्ष्म विचारिये यदि आछये अपार ॥84॥

स्थूल-स्थूल; एइ-ये; पञ्च–पाँच; दोष-दोष; पञ्च-पाँच; अलङ्कार-अलंकार; सूक्ष्म-सूक्ष्म; विचारिये-हम विचार करते हैं; यदि-यदि; आछये हैं; अपार-असीम।

अनुवाद

"मैंने पाँच स्थूल दोषों तथा पाँच साहित्यिक अलंकारों पर ही विचार किया है, किन्तु यदि हम सूक्ष्म विचार करें, तो पायेंगे कि दोषों की गणना कर पाना सम्भव नहीं है।"

प्रतिभा, कवित्व तोमार देवता-प्रसादे।

अविचार काव्ये अवश्य पड़े दोष-बाधे ॥85॥

प्रतिभा–प्रतिभा; कवित्व-कवित्व; तोमार-आपकी; देवता-देवता की; प्रसादे-दया से; अविचार-बिना अच्छे निर्णय के; काव्ये–कविता में; अवश्य–अवश्य; पड़े-है; दोष-दोष; बाधे-अवरोध।

अनुवाद

"आपको कवि-कल्पना तथा प्रतिभा अपने आराध्य देव की कृपा से प्राप्त हुई है। किन्तु यदि काव्य की ठीक से समीक्षा नहीं की जाती है, तो वह निश्चय ही आलोचित होता है।"

विचारि' कवित्व कैले हय सुनिर्मल।

सालङ्कार हैले अर्थ करे झलमल ॥86॥

विचारि'–उचित विचार करके; कवित्व-काव्यमय व्यवस्था; कैले–यदि की जाए; हय-यह हो जाता है; सुनिर्मल-बहुत निर्मल; स-अलङ्कार–अलंकारों के साथ; हैले-यदि यह हो; अर्थ-अर्थ; करे-करता है; झलमल-चमकता है।

अनुवाद

"यदि विचारपूर्वक कवित्व का प्रयोग किया जाए, तो वह अत्यन्त निर्मल होता है और रूपकों तथा उपमाओं से वह चमकने लगता है।"

शुनिया प्रभुर व्याख्या दिग्विजयी विस्मित।

मुखे ना निःसरे वाक्य, प्रतिभा स्तम्भित ॥ 87॥

शुनिया-सुनकर; प्रभुर–महाप्रभु की; व्याख्या-व्याख्या; दिग्-विजयी-दिग् विजयी; विस्मित–चकित हो गया; मुखे-मुख में; ना-नहीं; निःसरे-निकला; वाक्य-शब्द; प्रतिभा–प्रतिभा; स्तम्भित–जड़ बन गई।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु की व्याख्या सुनकर दिग्विजयी कवि हतप्रभ हो गया, उसकी सारी चतुराई जड़ बन गई और उसके मुख से शब्द ही निकल नहीं पाए।

कहिते चाहये किछु, ना आइसे उत्तर ।

तबे विचारये मने हइया फाँफर ॥88॥

कहिते-बोलना; चाहये-चाहता है; किछु-कुछ; ना-नहीं; आइसे-आता है; उत्तर-कोई उत्तर; तबे-उसके बाद; विचारये-विचार करता है; मने-मन में; हइया-होकर; फाँफर-विक्षिप्त।

अनुवाद

वह कुछ कहना चाहता था, किन्तु उसके मुँह से कोई उत्तर नहीं निकलता था। तब वह अपने मन में इस उलझन पर विचार करने लगा।

पड़ुया बालक कैल मोर बुद्धि लोप ।

जानि–सरस्वती मोरे करियाछेन कोप ॥89॥

पड़ुया–विद्यार्थी; बालक-बालक; कैल–किया; मोर-मेरा; बुद्धि-बुद्धि; लोप-लुप्त; जानि–मैं समझ सकता हूँ; सरस्वती-सरस्वती माता; मोरे-मेरे साथ; करियाछेन-हो गयी होंगी; कोप-क्रुद्ध।

अनुवाद

"इस छोटे से बालक ने मेरी बुद्धि को अवरुद्ध कर दिया है। अतएव मेरी समझ में आता है कि माता सरस्वती मुझ से रूठ गई हैं।"

तात्पर्य

भगवद्गीता में स्पष्ट कहा गया है कि सारी बुद्धि प्रत्येक के हृदय में स्थित परमात्मा रूप भगवान् से आती है। परमात्मा ने पण्डित को यह समझने की बुद्धि दी, क्योंकि उसे अपनी विद्या का गर्व था और वह भगवान् को भी पराजित करना चाहता था, इसलिए भगवान् की इच्छा से तथा माता सरस्वती के माध्यम से वह पराजित हो गया। अतएव किसी को अपने पद का अधिक गर्व नहीं होना चाहिए। कोई कितना ही बड़ा विद्वान क्यों न हो, किन्तु यदि वह भगवान् के चरणों पर अपराध करता है, तो वह अपनी विद्या के बावजूद ठीक से बोल नहीं सकेगा। हम सभी प्रकार से नियंत्रित हैं। अतएव हमारा एकमात्र कर्तव्य यह है कि सदैव भगवान् के चरणकमलों की शरण लें और झूठा गर्व न करें। माता सरस्वती ने दिग्विजयी पण्डित पर कृपा करने के लिए ऐसी स्थिति उत्पन्न की, जिससे वह भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण में जा सके।

ये व्याख्या करिल, से मनुष्येर नहे शक्ति ।

निमाजि-मुखे रहि' बले आपने सरस्वती ॥90॥

ये व्याख्या-जो व्याख्या; करिल-उसने की है; से-वह; मनुष्येर–किसी मानव की; नहे-नहीं है; शक्ति-शक्ति; निमाजि-मुखे-इस बालक निमाइ के मुख में; रहि'-रहकर, बाकी; बले-बोलती है; आपने-अपने आप, स्वयं; सरस्वती माता सरस्वती।

अनुवाद

“इस लड़के ने जो अद्भुत व्याख्या की है, वह किसी भी मनुष्य के लिए सम्भव नहीं हो सकती थी। अतएव माता सरस्वती ही उसके मुख से स्वयं बोली होंगी।”

एत भावि’ कहे—शुन, निमात्रि पण्डित।

तव व्याख्या शुनि’ आमि हइलाँ विस्मित॥ 91॥

एत भावि-ऐसा सोचकर; कहे-पण्डित कहता है; शुन-सुनो; निमात्रि पण्डित-ओ निमाइ पण्डित; तव-आपकी; व्याख्या-व्याख्याएँ; शुनि’–सुनकर; आमि-मैं; हइलाँ-हो गया हूँ; विस्मित–चकित।

अनुवाद

यह सोचकर पण्डित ने कहा, “हे निमाइ पण्डित, मेरी बात सुनो। आपकी व्याख्या सुनकर मैं तो आश्चर्यचकित हो गया हूँ।”

अलङ्कार नाहि पड़, नाहि शास्त्राभ्यास।

केमने ए सब अर्थ करिले प्रकाश॥92॥

अलङ्कार-अलंकार; नाहि पद-आपने कभी नहीं पढ़ा; नाहि-नही है; शास्त्र-अभ्यास-शास्त्रों की चर्चा में लम्बा अभ्यास; केमने-किस प्रकार; ए सब-ये सब; अर्थ-अर्थ; करिले-आपने किए हैं; प्रकाश-प्रकट।

अनुवाद

"मैं चकित हूँ।आप साहित्य-शास्त्र के विद्यार्थी नहीं हैं और आपको शास्त्र पढ़ने का दीर्घकालीन अनुभव भी नहीं है। तो फिर आप ये सारी आलोचनात्मक बातों की व्याख्या कैसे कर सके?"

इहा शुनि' महाप्रभु अति बड़ रङ्गी।

ताँहार हृदय जानि' कहे करि' भङ्गी ॥ 93 ॥

इहा शुनि'-यह सुनकर; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु; अति-बहुत; बड़-अधिक; रङ्गी-हँसी में; ताँहार-उसका; हृदय-हृदय; जानि'–जानकर; कहे-कहा; करि'-करके; भङ्गी-संकेत।

अनुवाद

यह सुनकर तथा पण्डित के मन की बात जानकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने हँसी में उत्तर दिया।

शास्त्रेर विचार भाल-मन्द नाहि जानि।

सरस्वती ये बलाय, सेइ बलि वाणी ॥94॥

शास्त्रेर विचार-शास्त्र की चर्चा; भाल-मन्द-अच्छा बुरा; नाहि जानि-नहीं जानता हूँ; सरस्वती माता सरस्वती; ये बलाय-जो कुछ वह कहती है; सेइ-वे; बलि-मैं कहता हूँ; वाणी-शब्द।

अनुवाद

"हे महोदय, मैं यह नहीं जानता कि अच्छी रचना क्या है और बुरी क्या है। किन्तु मैंने जो कुछ भी कहा है, उसे माता सरस्वती द्वारा कहा गया समझा जाना चाहिए।"

इहा शुनि' दिग्विजयी करिल निश्चय।

शिशु-द्वारे देवी मोरे कैल पराजय ॥ 95॥

इहा शुनि'-यह सुनकर; दिग्-विजयी-दिग् विजयी; करिल–किया; निश्चय-निर्णय; शिशु-द्वारे-इस बालक द्वारा; देवी-माता सरस्वती; मोरे-मुझे; कैल–किया है; पराजय-पराजय।

अनुवाद

जब पण्डित ने चैतन्य महाप्रभु से यह निर्णय सुना, तो वह दुःखी हुआ और आश्चर्य करने लगा कि माता सरस्वती ने उसे छोटे बालक के माध्यम से क्यों हराना चाहा।

आजि ताँरे निवेदिब, करि' जप-ध्यान।

शिशु-द्वारे कैल मोरे एत अपमान ॥ 96 ॥

आजि-आज; ताँरे–उनको; निवेदिब-मैं प्रार्थना करूँगा; करि'-करके; जप-जप; ध्यान-ध्यान; शिशु-द्वारे-बालक द्वारा; कैल–किया है; मोरे-मुझे; एत-इतना अधिक; अपमान-अपमान।

अनुवाद

उस दिग्विजयी ने सोचा, "मैं सरस्वती देवी की स्तुति करूँगा, उनका ध्यान करूँगा तथा उनसे यह पूछुंगा कि आपने इस बालक के माध्यम से मेरा ऐसा घोर अपमान क्यों कराया।"

वस्तुतः सरस्वती अशुद्ध श्लोक कराइल।

विचार-समय ताँर बुद्धि आच्छादिल ॥97॥

वस्तुतः–वास्तव में; सरस्वती माता सरस्वती ने; अशुद्ध-अशुद्ध; श्लोक-श्लोक; कराइल-रचना करवाई; विचार-समय–समीक्षा के समय; ताँर-उसकी; बुद्धि-बुद्धि; आच्छादिल-ढक दी।

अनुवाद

वास्तव में सरस्वती ने ही उस दिग्विजयी को अशुद्ध ढंग से अपना श्लोक रचने के लिए प्रेरित किया था। यही नहीं, जब श्लोक की व्याख्या हुई तो उन्होंने उसकी बुद्धि पर परदा डाल दिया, जिससे महाप्रभु की बुद्धि जीत गई।

तबे शिष्य-गण सब हासिते लागिल ।

ता'-सबा निषेधि' प्रभु कविरे कहिल ॥98॥

तबे-उस समय; शिष्य-गण-शिष्य गण; सब-सब; हासिते-हँसने; लागिल-लगे; ता'-सबा-उन सबको; निषेधि'–मना करने के लिए; प्रभु–महाप्रभुः कविरे–कवि से; कहिल–बोले।

अनुवाद

जब वह दिग्विजयी कवि इस तरह परास्त हो गया, तो वहाँ पर बैठे हुए महाप्रभु के सारे शिष्य जोर-जोर से हँसने लगे। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें ऐसा करने से मना किया और कवि को इस तरह से सम्बोधित किया।

तुमि बड़ पण्डित, महाकवि-शिरोमणि ।

याँर मुखे बाहिराय ऐछे कव्य-वाणी ॥ 99॥

तुमि-आप; बड़ पण्डित-बड़े विद्वान पण्डित; महा-कवि-सभी महान् कवियों में से; शिरोमणि-सर्वोच्च; याँर–जिनके; मुखे—मुख से; बाहिराय–निकलती है; ऐछे-ऐसी; काव्य-वाणी-काव्य वाणी।

अनुवाद

आप बहुत बड़े पण्डित तथा सभी महाकवियों में शिरोमणि हैं, अन्यथा इतना अच्छा काव्य आपके मुख से कैसे निकलता?

तोमार कवित्व येन गङ्गा-जल-धार।

तोमा-सम कवि कोथा नाहि देखि आर ॥100॥

तोमार-आपकी; कवित्व-कवित्व की प्रतिभा; येन-जैसे; गङ्गा-जल-धार-गंगा जल की धारा; तोमा-सम-आपके जैसा; कवि-कवि; कोथा-कहीं भी; नाहि-नहीं; देखि-मैं देखता हूँ; आर-दूसरा कोई।

अनुवाद

"आपका काव्य-चातुर्य निरन्तर प्रवाहित होने वाले गंगा जल की तरह है। मुझे संसार में ऐसा कोई नहीं दिखता, जो आपकी बराबरी कर सके।"

भवभूति, जयदेव, आर कालिदास।

ताँ-सबार कवित्वे आछे दोषेर प्रकाश ॥101॥

भवभूति-भवभूति; जयदेव-जयदेव; आर-और; कालिदास-कालिदास; ताँ-सबार-उन सबकी; कवित्वे-कवित्व शक्ति में; आछे-है; दोषेर-दोष; प्रकाश-प्रकट।

अनुवाद

"भवभूति, जयदेव तथा कालिदास जैसे महाकवियों के काव्य में भी अनेक दोष हैं।"

दोष-गुण-विचार–एइ अल्प करि' मानि ।

कवित्व-करणे शक्ति, ताँहा से वाखानि ॥102॥

दोष-गुण-विचार–किसी की कविता को अच्छा-बुरा कहना; एइ–यह; अल्प-अल्प; करि'-करके; मानि–मैं समझता हूँ; कवित्व-कवित्व की प्रतिभा; करणे-करने में; शक्ति-शक्ति; ताँहा-वह; से हम; वाखानि-वर्णन करते हैं।

अनुवाद

ऐसे दोषों को नगण्य मानना चाहिए। केवल इतना ही देखना चाहिए कि ऐसे कवियों ने किस तरह अपनी कवित्व-शक्ति का प्रदर्शन किया है।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (1.5.11) में कहा गया है :

तद्वाग्विसग जनताघविप्लवो

यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।

नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥

भगवान् की महिमा का वर्णन करने में अनुभवहीन व्यक्ति अनेक दोषों से युक्त काव्य रच सकता है, किन्तु उसमें भगवान् का महिमागान होने से महापुरुष उसे पढ़ते, सुनते हैं और उसका कीर्तन करते हैं।' छोटी-मोटी साहित्यिक त्रुटियों के होते हुए भी विषय की महत्ता के आधार पर

काव्य को पढ़ना चाहिए। वैष्णव दर्शन के अनुसार कोई भी साहित्य, जो भगवान् की महिमा का गायन करता हो, चाहे वह ठीक से लिखा गया हो अथवा नहीं, सर्वोत्तम होता है। इसमें अन्य किसी प्रकार के विचार की आवश्यकता नहीं है। भवभूति या श्रीकण्ठ की काव्य रचनाओं में मालती-माधव, उत्तर-चरित, वीर-चरित तथा अन्य अनेक संस्कृत नाटक सम्मिलित हैं। यह महाकवि नीलकण्ठ नामक ब्राह्मण के पुत्ररूप में भोजराज के काल में उत्पन्न हुआ था। कालिदास महाराज विक्रमादित्य के समय फूले–फले और राज-कवि बने। उन्होंने लगभग 30-40 संस्कृत नाटक लिखे, जिनमें कुमारसम्भव, अभिज्ञान-शकुन्तला तथा मेघदूत प्रसिद्ध हैं। उनका नाटक रघुवंश विशेष प्रसिद्ध है। जयदेव का विवरण हम आदिलीला के अन्तर्गत तेरहवें अध्याय में दे चुके हैं।

शैशव-चापल्य किछु ना लबे आमार।

शिष्येर समान मुञि ना हँ तोमार ॥ 103 ॥

शैशव-बचपना; चापल्य-धृष्टता; किछु-कुछ; ना-न; लबे–कृपया लो; आमार-मेरे; शिष्येर-शिष्यों का; समान-समान; मुञि-मैं; न-नहीं; हँ-हूँ; तोमार-आपका।

अनुवाद

“मैं आपका शिष्य भी होने योग्य नहीं हूँ। अतएव मैंने जो भी बालसुलभ धृष्टता की है, उसे बुरा नहीं माने।”

आजि वासा’ याह, कालि मिलिब आबार।

शुनिब तोमार मुखे शास्त्रेर विचार ॥104॥

आजि-आज; वासा'–विश्राम स्थल; याह-लौट जाओ; कालि-कल; मिलिब-हम मिलेंगे; आबार फिर; शुनिब-मैं सुनँगा; तोमार मुखे-आपके मुख से; शास्त्रेर-शास्त्रों पर विचार-चर्चा।

अनुवाद

"कृपया घर जायें। कल हम फिर से मिलेंगे, ताकि मैं आपके मुख से शास्त्र-सम्बन्धी चर्चाएँ सुन सकें।"

एइ-मते निज घरे गेला दुइ जन ।

कवि रात्रे कैल सरस्वती-आराधन ॥105॥

एइ-मते-इस प्रकार; निज घरे-अपने अपने घरों को; गेला-लौट गये; दुइ जन-वे दोनों; कवि-कवि; रात्रे-रात को; कैल-की; सरस्वती माता सरस्वती की; आराधन-पूजा।

अनुवाद

इस तरह कवि और चैतन्य महाप्रभु दोनों जन अपने-अपने घर चले गये और कवि ने रात में माता सरस्वती का आराधन किया।

सरस्वती स्वप्ने ताँरे उपदेश कैल ।

साक्षातीश्वर करि' प्रभुके जानिल ॥106॥

सरस्वती-माता सरस्वती ने; स्वप्ने–स्वप्न में; ताँरे–उसको; उपदेश-उपदेश; कैल–दिया; साक्षात्-साक्षात्; ईश्वर–ईश्वर; करि'–स्वीकार करके; प्रभुके–महाप्रभु को; जानिल-वह समझ गया।

अनुवाद

सरस्वती देवी ने स्वप्न में उसे महाप्रभु के पद की जानकारी दी और दिग्विजयी कवि यह समझ गया कि चैतन्य महाप्रभु साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

प्राते आसि' प्रभु-पदे लइल शरण ।

प्रभु कृपा कैल, ताँर खण्डिल बन्धन ॥॥107॥

प्राते-प्रातः काल; आसि'-वापस लौटकर; प्रभु-पदे-महाप्रभु के चरणकमलों की; लइल-ली; शरण-शरण; प्रभु–महाप्रभु; कृपा-कृपा; कैल-दिखाई; ताँर-उसके; खण्डिल-काट दिये; बन्धन–सभी बन्धन।

अनुवाद

दूसरे दिन वह कवि भगवान् चैतन्य के पास आया और उनके चरणकमलों में शरणागत हो गया। महाप्रभु ने उस पर कृपा की और उसके भौतिक आसक्ति के सारे बन्धन काट दिये।

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण ने भगवद्गीता यथारूप में उपदेश दिया है कि, "सभी परिस्थितियों में मेरी शरण में आओ।" महाप्रभु ने भी उसी विधि का समर्थन किया। दिग्विजयी ने महाप्रभु की शरण ग्रहण की और महाप्रभु ने उस पर कृपा की। जिस व्यक्ति पर भगवान् की कृपा हो जाती है, वह भौतिक बन्धन से छूट जाता है, जैसाकि भगवद्गीता (4.9) में कहा गया है : त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।

भाग्यवन्त दिग्विजयी सफल-जीवन ।

विद्या-बले पाइल महाप्रभुर चरण ॥108॥

भाग्यवन्त-बहुत भाग्यवान्; दिग्-विजयी-दिग्विजयी; सफल-सफल; जीवन-जीवन; विद्या-बले-विद्या के बल से; पाइल-पाये; महा-प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण-चरणकमल।

अनुवाद

वह दिग्विजयी कवि निश्चित रूप से परम भाग्यशाली था। उसका जीवन उसकी विशद विद्या और पाण्डित्यपूर्ण अध्ययन कौशल के कारण सफल हुआ और इस तरह उसे चैतन्य महाप्रभु की शरण प्राप्त हुई।

तात्पर्य

श्री नरोत्तम दास ठाकुर ने गाया है कि चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में शरण प्राप्त करने की सर्वोत्तम योग्यता है सर्वाधिक पतित होना, क्योंकि भगवान् विशेष रूप से पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए ही अवतरित हुए थे। इस युग में पण्डित तो बहुत थोड़े हैं। प्रायः सभी लोग पतित मांसाहारी, शराबी, जुआरी या व्यभिचारी हैं। ऐसे व्यक्ति कभी-भी विद्वान नहीं माने जाते, भले ही वे ऐसा दिखावा करते हों। चूँकि ये तथाकथित विद्वान सतही तौर पर देखते हैं कि चैतन्य महाप्रभु पतितात्माओं का साथ देते हैं, अतएव वे सोचते हैं कि महाप्रभु केवल निम्न वर्गों के लोगों के लिए हैं और उन्हें महाप्रभु की आवश्यकता नहीं है। अतएव ऐसे विद्वान कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सम्मिलित नहीं होते। इसलिए झूठे ज्ञान से गर्वित रहना कृष्णभावनामृत आन्दोलन में आने के लिए अयोग्यता ही है। किन्तु यह ऐसा विशेष उदाहरण है, जिसमें महान् पण्डित होते हुए भी दिग्विजयी कवि पर महाप्रभु ने कृपा की, क्योंकि उसने विनीत भाव से आत्मसमर्पण किया।

ए-सब लीला वर्णियाछेन वृन्दावन-दास ।

ये किछु विशेष इहाँ करिल प्रकाश ॥ 109॥

ए-सब-ये सब; लीला-लीलाएँ; वणियाछेन-वर्णन की हैं; वृन्दावन-दास-वृन्दावन दास ठाकुर ने; ये किछु–जो कुछ; विशेष-विशेष; इहाँ इस सम्बन्ध में; करिल-मैंने किया है; प्रकाश-प्रस्तुत।

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने इन सारी घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया है। मैंने तो उन विशिष्ट घटनाओं को ही प्रस्तुत किया है, जिनका वर्णन उन्होंने नहीं किया।

चैतन्य-गोसाञिर लीला—अमृतेर धार।

सर्वेन्द्रिय तृप्त हय श्रवणे याहार ॥110॥

चैतन्य गोसाञिर लीला-चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; अमृतेर धार-अमृत की धारा; सर्व-इन्द्रिय-सर्व इन्द्रिय; तृप्त-तृप्त; हय होती हैं; श्रवणे-सुनने से; याहार–उनको।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के अमृतकण हर किसी सुनने वाले की इन्द्रियों को तृप्त करने वाले हैं।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥111॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों पर; यार—जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करता हुआ तथा उनकी कृपा की कामना करता हुआ, मैं कृष्णदास उन्हीं के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के सोलहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त-तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें महाप्रभु की बाल्य तथा कैशोर-लीलाओं का वर्णन है।

अध्याय सत्रह

चैतन्य महाप्रभु की युवावस्था की लीलाएँ

इस सत्रहवें अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में दिया है। इसमें श्री चैतन्य महाप्रभु की सोलह वर्ष की आयु से लेकर संन्यास लेने तक की अवधि की लीलाओं का वर्णन है। श्रील वृन्दावन दास ठाकुर चैतन्य-भागवत में पहले ही इनका विशद वर्णन कर चुके हैं; अतएव कृष्णदास कविराज गोस्वामी इन लीलाओं का केवल संक्षिप्त वर्णन करते हैं। किन्तु वृन्दावन दास ठाकुर ने जिन लीलाओं का विस्तार से वर्णन नहीं किया है, उनमें से कुछ लीलाओं का विशद वर्णन इस अध्याय में हुआ है।

हमें इस अध्याय में आम-वितरण उत्सव तथा चाँद काजी के साथ महाप्रभु की बातचीत का वर्णन मिलेगा। अन्त में यह दिखलाया गया है कि माता यशोदा के पुत्र भगवान् कृष्ण ने माता शची के पुत्र शचीनन्दन के रूप में प्रेमाभक्ति के चार दिव्य रसों का आस्वादन किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने प्रति श्रीमती राधारानी के प्रेमानन्द को समझने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु का रूप धारण किया। श्रीमती राधारानी के भाव को सर्वोत्कृष्ट भक्तिभाव समझा जाता है। स्वयं कृष्ण ने

चैतन्य महाप्रभु के रूप में श्रीमती राधारानी की आनन्दमयी दशा का आस्वादन करने के लिए उनका पद ग्रहण किया। कोई दूसरा ऐसा नहीं कर सकता था।

जब श्रीकृष्ण ने चतुर्भुजी नारायण का रूप धारण किया, तो गोपियों ने उनका आदर तो किया, लेकिन उन्होंने उनके प्रति विशेष रुचि नहीं दिखाई। गोपियों के प्रेमानन्द में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य सारे आराध्य रूप अस्वीकृत होते हैं। सारी गोपियों में श्रीमती राधारानी में सर्वाधिक प्रेम है। जब कृष्ण ने नारायण रूप में राधारानी को देखा, तो वे नारायण रूप में नहीं रह सके और उन्होंने पुनः कृष्ण-रूप धारण कर लिया।

व्रजभूमि में जो नन्द महाराज हैं, वही नवद्वीप में श्री चैतन्य महाप्रभु के पिता जगन्नाथ मिश्र हैं। इसी प्रकार व्रजभूमि की महारानी माता यशोदा ही श्री चैतन्य की लीलाओं में शचीमाता हैं। अतएव शचीनन्दन यशोदानन्दन ही हैं। श्री नित्यानन्द प्रभु में दास्य, वात्सल्य तथा सख्य ये तीन भाव मिलते हैं। श्री अद्वैत प्रभु में सख्य तथा दास्य दोनों भाव मिलते हैं। महाप्रभु के अन्य सारे पार्षद अपने मूल प्रेम में श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में लगे रहते हैं।

वही परम सत्य, जो श्यामसुन्दर, कृष्ण के रूप में आनन्द लेते हैं, जो अपनी बाँसुरी बजाते हैं और गोपियों के साथ नृत्य करते हैं, कभी-कभी ब्राह्मण परिवार में प्रकट होकर संन्यास ग्रहण करके श्री चैतन्य महाप्रभु की भूमिका निभाते हैं। यह विरोधाभास जान पड़ता है कि वही कृष्ण गोपी-भाव स्वीकार करते हैं। निस्सन्देह यह सामान्य लोगों की समझ के बाहर की बात है। किन्तु यदि हम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्ति को स्वीकार कर लें, तो हम हर बात समझ सकते हैं। इस सम्बन्ध में संसारी तर्कों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अचिन्त्य शक्ति के सम्बन्ध में संसारी तर्क अर्थहीन होते हैं।

इस अध्याय के अन्त में श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी श्रील व्यासदेव की ही तरह आदिलीला की लीलाओं का पृथक् विश्लेषण करते हैं।

वन्दे स्वैराद्भुतेहं तं चैतन्यं यत्प्रसादतः ।

यवनाः सुमनायन्ते कृष्ण-नाम-प्रजल्पकाः ॥1॥

वन्दे–मैं नमस्कार करता हूँ; स्वैर–पूर्णतया स्वतंत्र; अद्भुत और असाधारण; ईहम्-जिनके कार्यकलाप; तम्-उनको; चैतन्यम्-श्री चैतन्य महाप्रभु; यत्-जिनकी; प्रसादतः-कृपा से; यवनाः-यवन भी; सुमनायन्ते-सज्जन बन जाते हैं; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; प्रजल्पकाः-संकीर्तन करके।

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनकी कृपा से अशुद्ध यवन भी भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने से पूरी तरह सुसंस्कृत बन जाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु की शक्ति ही ऐसी है।

तात्पर्य

ब्राह्मणों तथा उन्नत वैष्णवों अथवा गोस्वामियों के बीच सदा से भ्रान्त धारणा बनी हुई है, क्योंकि जात ब्राह्मण या स्मार्त ब्राह्मण इस मत के हैं कि मनुष्य अपना शरीर बदले बिना ब्राह्मण नहीं बन सकता। किन्तु जैसाकि हम कई बार कह चुके हैं, भगवान् की अचिन्त्य शक्ति से सब कुछ सम्भव है, जिसका वर्णन कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने किया है। चैतन्य महाप्रभु कृष्ण की तरह पूर्ण स्वतन्त्र हैं। अतएव उनके कार्यों में कोई बाधा नहीं पहुँचा सकता। यदि वे चाहें तो अपनी कृपा

से अवैदिक सिद्धान्तों के अशुद्ध अनुयायी एक यवन को भी सुसंस्कृत व्यक्ति बना सकते हैं। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रसार-कार्य में ऐसा सचमुच हो भी रहा है। वर्तमान कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों का न तो भारत में जन्म हुआ, न ही वैदिक संस्कृति से उनका कोई सम्बन्ध था। किन्तु चार-पाँच वर्षों की संक्षिप्त अवधि में वे केवल हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने से वे ऐसे अद्भुत भक्त बन गये हैं कि भारत में वे जहाँ कहीं भी जाते हैं, सुसंस्कृत वैष्णव के रूप में उनका स्वागत होता है।

यद्यपि मूर्ख लोग इसे नहीं समझ पाते, किन्तु यह चैतन्य महाप्रभु की विशेष शक्ति है। वास्तव में, कृष्णभावनाभावित व्यक्ति का शरीर कई तरह से बदलता है। यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमरीका में जब हमारे भक्त सड़कों में कीर्तन करते हैं, तो अमरीकी स्त्रियाँ तथा पुरुष पूछते हैं कि वे वास्तव में अमरीकी हैं क्या, क्योंकि किसी को आशा नहीं थी कि इतनी जल्दी अमरीकी लोग ऐसे अच्छे भक्त बन जायेंगे। यहाँ तक कि ईसाई पादरी भी आश्चर्यचकित रह जाते हैं कि यहूदी तथा ईसाई परिवारों के ये लड़के इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सम्मिलित हुए हैं। इससे जुड़ने के पूर्व ये लड़के कभी भी धर्म के किसी सिद्धान्त को नहीं मानते थे, किन्तु अब वे भगवान् के निष्ठावान भक्त बन गये हैं। लोग सर्वत्र यही आश्चर्य प्रकट करते हैं और हमें अपने शिष्यों के दिव्य व्यवहार पर बड़ा गर्व होता है। किन्तु ऐसे चमत्कार श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से ही सम्भव हैं। वे सामान्य अथवा सांसारिक चमत्कार नहीं हैं।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैतचन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ 2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय हो; जय गौर-भक्त-वृन्द-चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो!

कैशोर-लीलार सूत्र करिल गणन।

यौवन-लीलार सूत्र करि अनुक्रम ॥ 3 ॥

कैशोर-लीलार-कैशोरावस्था की लीलाओं की; सूत्र-रूपरेखा; करिल-मैंने की है; गणन-गणना; यौवन-लीलार–यौवनावस्था की लीलाओं की; सूत्र–रूपरेखा; करि-मैं गिनता हूँ; अनुक्रम-क्रमानुसार।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की कैशोर-लीला का सारांश दे चुका हूँ। अब मैं उनकी यौवन-लीलाओं को क्रमानुसार वर्णन करूँगा।

विद्या-सौन्दर्य-सद्वेश-सम्भोग-नृत्य-कीर्तनैः।

प्रेम-नाम-प्रदानैश्च गौरो दीव्यति यौवने ॥4॥

विद्या–विद्या; सौन्दर्य-सुन्दरता; सत्-वेश-सुन्दर पोशाक; सम्भोग-आनन्द भोग; नृत्य-नृत्य; कीर्तनैः-कीर्तन को; प्रेम-नाम-भगवान् का पावन नाम जो भक्त बनने की प्रेरणा देता है; प्रदानैः–वितरण करके; च-और; गौरः- भगवान् श्री गौरसुन्दर; दीव्यति-चमके; यौवने-अपने यौवन में।

अनुवाद

अपनी विद्वत्ता, सौन्दर्य और सुन्दर वेश का प्रदर्शन करके चैतन्य महाप्रभु ने नृत्य किया, संकीर्तन किया तथा सुप्त कृष्ण-प्रेम को जगाने के लिए भगवान् के पवित्र नाम का वितरण किया। इस तरह श्री गौरसुन्दर अपनी यौवन-लीलाओं में काफी चमके।

यौवन-प्रवेशे अङ्गेर अङ्ग विभूषण।

दिव्य वस्त्र, दिव्य वेश, माल्य-चन्दन ॥5॥

यौवन-प्रवेशे-अपनी युवावस्था में प्रवेश करने पर; अङ्गेर-शरीर के; अङ्ग–अंग; विभूषण-आभूषण; दिव्य-दिव्य; वस्त्र-वस्त्र; दिव्य-दिव्य; वेश-वेश; माल्य–माला; चन्दन–चन्दन (से लेपित)।

अनुवाद

जैसे चैतन्य महाप्रभु युवावस्था में प्रविष्ट हुए, वे सुन्दर आभूषण और सुन्दर वस्त्र धारण करते, फूलों की माला पहनते और चन्दन-लेप करते।

विद्यार औद्धत्ये काहों ना करे गणन।

सकल पण्डित जिनि' करे अध्यापन ॥6॥

विद्यार औद्धत्ये-विद्या में गर्व के कारण; काहों-किसी की भी; ना-नहीं; करे-करते; गणन–परवाह; सकल-सब; पण्डित–विद्वान; जिनि'–जीतकर; करे-करते हैं; अध्यापन-अध्यापन।

अनुवाद

अपनी शिक्षा से गर्वित एवं अन्य किसी की परवाह न करने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने अध्ययन-काल में समस्त कोटि के पण्डितों को परास्त कर दिया।

वायु-व्याधि-च्छले कैल प्रेम परकाश ।

भक्त-गण लञा कैल विविध विलास ॥7॥

वायु-व्याधि–शरीर में वायु विकार से उत्पन्न रोग; छले–के बहाने; कैल–किया; प्रेम-भगवत् प्रेम; परकाश-प्रकट; भक्त-गण-भक्त गण; लञा-साथ लेकर; कैल-की; विविध-विविध; विलास-लीलाएँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने युवावस्था में शारीरिक वायु विकार के बहाने कृष्ण के प्रति अपना भावमय प्रेम प्रदर्शित किया। इस तरह अपने अन्तरंग संगियों के साथ मिलकर उन्होंने विविध लीलाओं का आस्वादन किया।

तात्पर्य

आयुर्वेदिक उपचार के अनुसार सारी शारीरिक प्रणाली तीन तत्त्वों-वात, पित्त तथा कफ द्वारा संचालित होती है। शरीर के भीतर के द्रव्य अन्य द्रव्यों यथा रक्त, मूत्र तथा मल में परिवर्तित होते हैं, किन्तु यदि शरीर-क्रिया (उपापचय) में कोई गड़बड़ी आ जाती है, तो ये द्रव्य शरीर के भीतर

की वायु के प्रभाव से कफ में बदल जाते हैं। आयुर्वेद-प्रणाली के अनुसार जब पित्त तथा कफ शरीर के भीतर वायु-संचार को बाधा पहुँचाते हैं, तो 59 प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते हैं। इनमें से उन्माद भी एक है।

श्री चैतन्य महाप्रभु शारीरिक वायु विकार के बहाने उन्मत्त जैसा व्यवहार करते थे। इस तरह वे अपनी पाठशाला में क्रिया-व्याकरण की व्याख्या कृष्ण- भक्ति के माध्यम से करने लगे। व्याकरण की पूरी व्याख्या कृष्ण से सम्बन्धित करके महाप्रभु अपने शिष्यों को सांसारिक शिक्षा से दूर रखने लगे, क्योंकि कृष्ण-भक्त बनकर शिक्षा के सर्वोच्च स्तर को प्राप्त करना बेहतर है। इसी आधार पर श्री जीव गोस्वामी ने बाद में हरिनामामृत व्याकरण का संकलन किया। सामान्यतया लोग ऐसी व्याख्या को उन्माद (सनक) मानते हैं। अतएव उन्माद की अवस्था में महाप्रभु का उद्देश्य एकमात्र कृष्ण-भक्ति की व्याख्या करना होता था, क्योंकि वे हर वस्तु को कृष्ण-भक्ति से जोड़ना चाहते थे। महाप्रभु की इन लीलाओं का विस्तृत विवरण चैतन्य भागवत, मध्य-खण्ड, अध्याय एक में मिलता है।

तबेत करिला प्रभु गयाते गमन ।

ईश्वर-पुरीर सङ्गे तथाइ मिलन ॥8॥

तबेत-तत्पश्चात्; करिला-की; प्रभु-भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने; गयाते-गया की; गमन-यात्रा; ईश्वर-पुरीर सङ्गे-श्रील ईश्वर पुरी के साथ; तथाई-वहाँ; मिलन-मिलन।

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु गया चले गये। वहाँ उनकी भेंट श्रील ईश्वर पुरी से हुई।

तात्पर्य

महाप्रभु अपने पूर्वजों का श्राद्ध करने गया गये। यह अनुष्ठान पिण्डदान कहलाता है। वैदिक समाज में, किसी सम्बन्धी की, विशेषतया पिता या माता की मृत्यु के बाद गया जाना होता है और वहाँ भगवान् विष्णु के चरणकमलों पर श्राद्ध अर्पण करना होता है। अतएव नित्यप्रति लाखों लोग गया जाते हैं और श्राद्ध करते हैं। इसी नियम के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु भी अपने दिवंगत पिता का पिण्डदान करने गये। सौभाग्यवश वहीं उनकी भेंट ईश्वर पुरी से हुई।

दीक्षा-अनन्तरे हैल, प्रेमेर प्रकाश ।

देशे आगमन पुनः प्रेमेर विलास ॥9॥

दीक्षा-दीक्षा; अनन्तरे-बाद में तुरन्त; हैल-हो गया; प्रेमेर-भगवत् प्रेम का; प्रकाश-प्रकाश; देशे-अपने गाँव; आगमन-लौटकर; पुनःपुनः; प्रेमेर-भगवत्प्रेम; विलास-भोग।

अनुवाद

गया में श्री चैतन्य महाप्रभु ने ईश्वर पुरी से दीक्षा ग्रहण की और उसी के तुरन्त बाद उनमें भगवत्प्रेम के चिह्न दिखाई दिये। घर लौटने पर भी उनमें ऐसे लक्षण प्रकट हुए।

तात्पर्य

जब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने अनेक शिष्यों के साथ गया गये, तो रास्ते में वे बीमार पड़ गये। उन्हें इतना तेज बुखार चढ़ा कि उन्होंने अपने शिष्यों से ब्राह्मणों का चरणामृत मँगाया, जिसे पीने के बाद वे अच्छे हो गये। अतएव सबको ब्राह्मण का आदर करना चाहिए, जैसाकि श्री चैतन्य

महाप्रभु ने प्रदर्शित किया। न तो महाप्रभु ने, न ही उनके अनुयायियों ने ब्राह्मणों के प्रति किसी प्रकार का अनादर व्यक्त किया।

चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों को चाहिए कि ब्राह्मणों को उचित सम्मान प्रदान करने के लिए तत्पर रहे। किन्तु चैतन्य-सम्प्रदाय के प्रचारक ऐसे व्यक्ति का विरोध करते हैं, जो वांछित योग्यता के बिना अपने आपको ब्राह्मण के रूप में प्रस्तुत करता है। चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी ब्राह्मण-कुल में जन्मे हर एक व्यक्ति को सहसा ब्राह्मण नहीं मानते। अतएव हमें चाहिए कि हम अविवेकी बनकर ब्राह्मणों के चरणामृत को पीकर उन्हें आदर देने के लिए महाप्रभु का अनुकरण न करें। कलियुग के कल्मष के कारण धीरे-धीरे ब्राह्मण-परिवार पतित हो गये हैं। अतएव वे लोगों की भावनाओं का लाभ उठाकर उन्हें दिग्भ्रमित करते हैं।

शचीके प्रेम-दान, तबे अद्वैत-मिलन ।

अद्वैत पाइल विश्वरूप-दरशन ॥10॥

शचीके–माता शचीदेवी को; प्रेम-दान-प्रेम दान; तबे-तत्पश्चात्; अद्वैत-अद्वैत आचार्य के साथ; मिलन-मिलन; अद्वैत-अद्वैत आचार्य; पाइल-पाया; विश्व-रूप-भगवान् के विश्व रूप का; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु ने अपनी माता शचीदेवी द्वारा अद्वैत आचार्य के चरणकमलों पर किये गये अपराध को क्षमा करके, उन्हें कृष्ण-प्रेम प्रदान किया। इस तरह अद्वैत आचार्य से भेंट हुई और उन्हें बाद में भगवान् के विश्वरूप का दर्शन मिला।

तात्पर्य

एक दिन चैतन्य महाप्रभु श्रीवास प्रभु के घर में विष्णु-सिंहासन पर बैठे थे। तभी अपने भाव में आकर उन्होंने कहा, "मेरी माता ने अद्वैत आचार्य के चरणकमलों पर अपराध किया है। अतएव वे जब तक उन वैष्णव के चरणकमलों पर इस अपराध का प्रायश्चित्त नहीं करतीं, तब तक उन्हें कृष्ण-प्रेम प्राप्त नहीं हो सकेगा।" यह सुनकर सारे भक्तगण अद्वैत आचार्य को वहाँ लाने गये। जब अद्वैत आचार्य महाप्रभु के पास आ रहे थे, तो रास्ते-भर वे माता शचीदेवी के गुणों का बखान करते जा रहे थे और पहुँचने पर वे भावावेश में आकर भूमि पर गिर पड़े। तभी महाप्रभु के निर्देशानुसार शचीमाता ने इस स्थिति का लाभ उठाकर अद्वैत आचार्य के चरणकमलों का स्पर्श किया। श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी माता के इस कृत्य से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा, "अब मेरी माता के अद्वैत आचार्य के चरणकमलों के प्रति किया गया अपराध शोधित हो गया है और अब उन्हें बिना किसी कठिनाई के कृष्ण-प्रेम प्राप्त हो सकेगा।" इस उदाहरण से महाप्रभु ने सबको शिक्षा दी कि भले ही कोई कृष्णभावनामृत में कितना ही उन्नत क्यों न हो, किन्तु यदि वह किसी वैष्णव के चरणकमलों पर अपराध करता है, तो उसको उन्नति फलीभूत नहीं होगी। अतएव हमें वैष्णव अपराध से बचने के प्रति अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए। श्रीचैतन्य-चरितामृत (मध्य, 19.156) में ऐसे अपराध का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

यदि वैष्णव-अपराध उठे हाती माता ।

उपाड़े वा छिण्डे तार शुखि' याय पाता ॥

जिस तरह मदमत्त हाथी बगीचे के सारे पौधे तहस-नहस कर डालता है, उसी तरह वैष्णव के चरणकमलों पर किया गया एक भी अपराध जीवन-भर की संचित भक्ति को विनष्ट कर सकता है।

इस घटना के बाद एक दिन अद्वैत आचार्य प्रभु ने चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे कृपा करके अपना वह विश्वरूप दिखलायें, जिसे उन्होंने अर्जुन को दिखलाया था। महाप्रभु ने यह प्रस्ताव मान लिया और अद्वैत आचार्य अत्यन्त भाग्यशाली थे कि उन्होंने भगवान् का विश्वरूप देखा।

प्रभुर अभिषेक तबे करिल श्रीवास।

खाटे वसि' प्रभु कैला ऐश्वर्य प्रकाश ॥11॥

प्रभुर–महाप्रभु की; अभिषेक-पूजा; तबे-तत्पश्चात्; करिल-की; श्रीवास-श्रीवास; खाटे–खाट पर; वसि'–बैठकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला–किया; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; प्रकाश-प्रकट।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्रीवास ठाकुर ने चैतन्य महाप्रभु का अभिषेक किया। महाप्रभु ने खाट के ऊपर बैठे-बैठे दिव्य ऐश्वर्य प्रकाशित किया।

तात्पर्य

अभिषेक अर्चाविग्रह की स्थापना का विशेष पर्व है। इस समारोह में अर्चाविग्रह को दूध तथा जल से नहलाया जाता है, फिर पूजा की जाती है और तब वस्त्र बदले जाते हैं। यह अभिषेक उत्सव श्रीवास के घर में विशेष रूप से मनाया गया था। उस समय सारे भक्तों ने यथा शक्ति सभी प्रकार की सामग्रियों से महाप्रभु की पूजा की और उन्होंने हर एक भक्त को मनवांछित वर दिये।

तबे नित्यानन्द-स्वरूपेर आगमन ।

प्रभुके मिलिया पाइल षड्-भुज-दर्शन ॥12॥

तबे-तत्पश्चात्; नित्यानन्द-स्वरूपेर-प्रभु नित्यानन्द का; आगमन-आविर्भाव; प्रभुके–भगवान् चैतन्य महाप्रभु से; मिलिया–मिले; पाइल-पाया; षट्-भुज-दर्शन-षट्-भुजा धारी श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर के घर पर इस उत्सव के बाद नित्यानन्द प्रभु का वहाँ आगमन हुआ और जब वे चैतन्य महाप्रभु से मिले, तो उन्हें महाप्रभु के षड्-भुज रूप के दर्शन करने का अवसर मिला।

तात्पर्य

षड्भुज रूप अर्थात् छः भुजाओं वाले गौरसुन्दर तीन अवतारों के प्रतीक हैं। दो हाथों में धनुष-बाण द्वारा श्री रामचन्द्र का रूप, किसी ग्वाले की तरह पकड़े दंड तथा बाँसुरी द्वारा श्रीकृष्ण का स्वरूप और संन्यास-दण्ड तथा कमण्डलु द्वारा चैतन्य महाप्रभु का रूप प्रकट होता है।

श्रील नित्यानन्द प्रभु बीरभूम जिले के एकचक्रा ग्राम में जन्मे थे। इनकी माता पद्मावती तथा पिता हाड़ाइ पण्डित थे। ये बचपन में बलराम की तरह खेलते थे। जब वे बड़े हो रहे थे, तो एक संन्यासी हाड़ाइ पण्डित के घर आया और भिक्षास्वरूप पण्डित के पुत्र को ब्रह्मचारी (सहायक) के कार्य के लिए माँगा। हाड़ाइ पण्डित तुरन्त राजी हो गये और उन्होंने अपना पुत्र उसे दे दिया, यद्यपि यह पुत्र-वियोग इतना अधिक दहलाने वाला था कि इस वियोग के बाद हाड़ाइ ने अपने प्राण त्याग दिये। नित्यानन्द प्रभु ने इस संन्यासी के साथ अनेक तीर्थयात्राएँ कीं। कहा जाता है कि वे कई दिनों

तक उसके साथ मथुरा में रहे। उसी समय उन्होंने नवद्वीप में चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के विषय में सुना। इसलिए वे महाप्रभु का दर्शन करने बंगाल आये। जब नित्यानन्द प्रभु नवद्वीप आये, तो नन्दन आचार्य के घर में अतिथि बने। यह समझकर कि नित्यानन्द प्रभु आये हैं, चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों को इनके पास भेजा। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु की भेंट हुई।

प्रथमे षड्-भुज ताँरे देखाइल ईश्वर ।

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-शाङ्ग-वेणु-धर ॥13॥

प्रथमे-सर्वप्रथम; षट्-भुज-षट् भुजा धारी; ताँरे–उनको; देखाइल-दिखाया; ईश्वर–महाप्रभु; शङ्ख-शंख, चक्र-चक्र, गदागदा; पद्म-कमल पुष्प; शाङ्ग–धनुष; वेणु-बांसुरी; धर–लिए हुए।

अनुवाद

एक दिन चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को शंख, चक्र, गदा, कमल, धनुष तथा वंशी धारण किया हुआ अपना षड्भुज रूप दिखलाया।

तबे चतुर्भुज हैला, तिन अङ्ग वक्र ।

दुइ हस्ते वेणु बाजाय, दुये शङ्ख-चक्र ॥14॥

तबे-तत्पश्चात्; चतुः-भुज-चतुर्भुजा धारी; हैला–हो गये; तिन–तीन; अङ्ग–शरीर; वक्र-वक्र; दुइ हस्ते-दो हाथों में; वेणु बाजाय-बांसुरी बजाते हुए; दुये-दो (हाथों) में; शङ्ख-चक्र-शंख तथा चक्र।

अनुवाद

तत्पश्चात् त्रिभंगी होकर उन्होंने अपना चतुर्भुज रूप दिखलाया। वे अपने दो हाथों से मुरली बजा रहे थे और अन्य दो हाथों में शंख तथा चक्र धारण किये थे।

तबे त' द्वि-भुज केवल वंशी-वदन ।

श्याम-अङ्ग पीत-वस्त्र व्रजेन्द्र-नन्दन ॥15॥

तबे-तत्पश्चात्; त'–निश्चित रूप से; द्वि-भुज-द्वि भुजा धारी; केवल–केवल; वंशी-बांसुरी; वदन-मुख पर; श्याम–श्याम; अङ्ग–अंग; पीत-वस्त्र-पीत वस्त्र; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र।

अनुवाद

अन्त में महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण का द्विभुज रूप दिखलाया, जिसमें वे मात्र वंशी बजा रहे थे और अपने श्याम वर्ण शरीर पर पीत-वस्त्र धारण किये थे।

तात्पर्य

चैतन्य-मंगल में इसका विस्तार से वर्णन मिलता है।

तबे नित्यानन्द-गोसाञि व्यास-पूजन ।

नित्यानन्दावेशे कैल मुषल धारण ॥16॥

तबे-तत्पश्चात्; नित्यानन्द-नित्यानन्द; गोसाञि-प्रभु की; व्यास-पूजन-व्यासदेव या गुरु की पूजा करना; नित्यानन्द-आवेशे–नित्यानन्द बनने के आवेश में; कैल-किया; मुषल धारण-हल जैसा मूषल नामक अस्त्र उठाकर।

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु ने भगवान् श्री गौरसुन्दर की व्यास-पूजा अर्थात् गुरु-पूजा करने का प्रबन्ध किया। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु के भाव में आकर मूषल धारण कर लिया।

तात्पर्य

महाप्रभु के आदेश से नित्यानन्द प्रभु ने पूर्णिमा की रात में व्यास-पूजा की तैयारी की। उन्होंने व्यास-पूजा अर्थात् गुरु-पूजा की तैयारी व्यासदेव के माध्यम से की। चूँकि व्यासदेव वैदिक धर्म का अनुसरण करने वालों के मूल गुरु हैं, इसलिए गुरु की पूजा व्यास-पूजा कहलाती है। नित्यानन्द प्रभु ने व्यास-पूजा की तैयारी की थी और संकीर्तन चल रहा था, किन्तु जब उन्होंने चैतन्य महाप्रभु के गले में माला पहनानी चाही, तो उन्होंने चैतन्य महाप्रभु में अपने आप को देखा। चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु की आध्यात्मिक स्थिति में, अर्थात् कृष्ण और बलराम में कोई अन्तर नहीं है। वे सभी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के ही विभिन्न प्राकट्य हैं। इस विशिष्ट समारोह में श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्त यह समझ गये कि चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु में कोई अन्तर नहीं है।

तबे शची देखिल, राम-कृष्णदुइ भाइ ।

तबे निस्तारिल प्रभु जगाइ-माधाइ ॥17॥

तबे-तत्पश्चात्; शची-माता शचीदेवी; देखिल-देखा; राम-कृष्ण-भगवान् कृष्ण और भगवान् बलराम; दुइ भाइ-दोनों भाई; तबे-तत्पश्चात्; निस्तारिल-उद्धार किया; प्रभु–महाप्रभु ने; जगाइ-माधाइ–जगाइ और माधाइ दोनों भाई।

अनुवाद

तत्पश्चात् शचीदेवी ने कृष्ण तथा बलराम दोनों भाइयों को चैतन्य तथा नित्यानन्द के स्वरूपों में देखा। तब महाप्रभु ने जगाइ तथा माधाइ नामक दो भाइयों का उद्धार किया।

तात्पर्य

एक रात शचीदेवी ने सपना देखा कि उनके घर के कृष्ण तथा बलराम के अर्चाविग्रह चैतन्य तथा नित्यानन्द का रूप धारण करके नैवेद्य खाने के लिए बच्चों की तरह परस्पर झगड़ रहे हैं। अगले दिन शचीमाता ने चैतन्य महाप्रभु की इच्छा से नित्यानन्द को प्रसाद लेने के लिए अपने घर बुलाया। विश्वम्भर (चैतन्य महाप्रभु) तथा नित्यानन्द साथ-साथ खा रहे थे, तभी शचीदेवी को अनुभव हुआ कि ये दोनों और कोई नहीं बल्कि कृष्ण-बलराम हैं। यह देखकर वे मूर्च्छित हो गईं।

जगाइ तथा माधाइ नवद्वीप में एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में जन्मे दो भाई थे, जो बाद में सभी तरह के पापकर्मों में लिप्त हो गये थे। चैतन्य महाप्रभु के आदेश से नित्यानन्द प्रभु तथा हरिदास ठाकुर दोनों ही कृष्णभावनामृत-सम्प्रदाय का घर-घर जाकर प्रचार करते थे। ऐसे प्रचार-कार्य के दौरान उनकी भेंट इन दोनों भाइयों-जगाइ और माधाइ से हुई। ये दोनों भाई शराब पीकर उन्मत्त दशा में थे और उन्हें देखकर उनका पीछा करने लगे। अगले दिन माधाइ ने नित्यानन्द प्रभु के सिर पर एक मिट्टी के घड़े का टुकड़ा फेंककर मारा, जिससे उनके सिर से रक्त निकलने लगा। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसके बारे में सुना, तो वे दोनों भाइयों को दण्डित करने के उद्देश्य से तुरन्त वहाँ पहुँचे, किन्तु जब दयानिधि भगवान् गौराङ्ग ने जगाइ को अपने किये पर पश्चात्ताप प्रकट करते देखा, तो महाप्रभु ने तुरन्त ही उसे गले लगा लिया। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का साक्षात् दर्शन पाकर और उन्हें गले लगाकर दोनों भाई तुरन्त निर्मल हो गये। इस प्रकार महाप्रभु ने उन्हें हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में दीक्षित किया गया और उनका उद्धार कर दिया गया।

तबे सप्त-प्रहर छिला प्रभु भावावेशे ।

यथा तथा भक्त-गण देखिल विशेषे ॥18॥

तबे-तत्पश्चात्; सप्त-प्रहर-इक्कीस घण्टे; छिला-रहे; प्रभु–महाप्रभु; भाव-आवेशे-भावावेश में; यथा-कहीं भी; तथा-सर्वत्र; भक्त-गण-भक्त गण; देखिल-देखा; विशेषे-विशेष तौर पर।

अनुवाद

इस घटना के बाद महाप्रभु इक्कीस घण्टों तक भावातिरेक की स्थिति में रहे और सारे भक्तों ने उनकी विशेष लीलाएँ देखीं।

तात्पर्य

अर्चाविग्रह के कक्ष में सिंहासन के पीछे अर्चाविग्रह के लिए एक शय्या अवश्य होनी चाहिए (यह प्रथा हमारे सभी केन्द्रों में शुरू होनी चाहिए। शय्या चाहे बड़ी हो या छोटी, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता; यह इतने आकार की होनी चाहिए कि विग्रह-कक्ष में आसानी से रखी जा सके; किन्तु कम से कम छोटी शय्या होनी आवश्यक है।) एक दिन श्रीवास ठाकुर के घर में भगवान् चैतन्य महाप्रभु विष्णु की शय्या पर बैठ गये और सारे भक्तों ने पुरुष-सूक्त के वैदिक मन्त्रों से उनकी पूजा की-सहस्त्र शिर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । अर्चाविग्रहों की स्थापना के समय भी इस वेद-स्तुति को शुरू करने की भी आवश्यकता है। अर्चाविग्रह को स्नान कराते समय सारे पुरोहितों तथा भक्तों को इस पुरुष सूक्त का उच्चारण करना चाहिए और पूजा के लिए अर्चाविग्रह पर फूल, फल, अगरबत्ती, आरती सामग्री, नैवेद्य, वस्त्र तथा आभूषण अर्पित करने चाहिए। सभी भक्तों ने चैतन्य महाप्रभु की इस तरह पूजा की और महाप्रभु सात प्रहर अर्थात् इक्कीस घण्टे तक भावावेश में रहे। उन्होंने भक्तों को यह दिखाने के लिए इस अवसर का लाभ उठाया कि वे आदि पूर्ण पुरुषोत्तम

भगवान् कृष्ण हैं, जो सभी अवतारों के उद्गम हैं, जैसाकि भगवद्गीता (10.8) में पुष्टि की गई है : अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सारे विभिन्न रूप या विष्णुतत्त्व भगवान् कृष्ण के शरीर से ही निकलते हैं। चैतन्य महाप्रभु ने भक्तों की सारी निजी इच्छाओं को खोलकर रखा और इस तरह वे सभी आश्वस्त हो सके कि महाप्रभु ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

कुछ भक्त महाप्रभु के इस भाव-प्रदर्शन को सात प्रहरिया भाव और अन्य इसे महाभावप्रकाश या महाप्रकाश नाम से पुकारते हैं। चैतन्य-भागवत के मध्य खण्ड के नवें अध्याय में इस सात प्रहरिया भाव का वर्णन है, जिसमें इसका भी उल्लेख है कि उन्होंने दु:खी नामक एक दासी को सुखी नाम दिया। उन्होंने खोलावेचा श्रीधर को बुलवाया और उसे अपना महाप्रकाश दिखलाया। फिर उन्होंने मुरारि गुप्त को बुलाकर अपना रामचन्द्र भगवान् का रूप दिखलाया। उन्होंने हरिदास ठाकुर को अपना आशीर्वाद दिया, अद्वैत प्रभु से भगवद्गीता यथारूप का पाठ करने (गीतार सत्यपाठ) के लिए कहा तथा मुकुन्द पर विशिष्ट कृपा दिखलाई।

वराह-आवेश हैला मुरारि-भवने ।

ताँर स्कन्धे चड़ि' प्रभु नाचिला अङ्गने ॥19॥

वराह-आवेश-वराहदेव के आवेश में; हैला-आ गये; मुरारि-भवने-मुरारि गुप्त के घर में; ताँर स्कन्धे-मुरारि गुप्त के कन्धों पर; चड़ि-चढ़कर; प्रभु–महाप्रभुः नाचिला–नाचे; अङ्गने-आंगन में।

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु को वराह-अवतार का भावावेश हुआ, तो वे मुरारि गुप्त के कंधों पर चढ़ गये। फिर मुरारि गुप्त के आँगन में दोनों नाचने लगे।

तात्पर्य

एक दिन चैतन्य महाप्रभु चिल्लाने लगे–"शूकर ! शूकर !" इस तरह भगवान् के शूकर अवतार का आवाहन करते हुए उन्होंने शूकर अवतार का रूप धारण कर लिया और मुरारि गुप्त के कंधों पर चढ़ गये। वे एक छोटा-सा गाडु, टोटी वाला छोटा जल-पात्र लिए थे और उन्होंने प्रतीक रूप में पृथ्वी को समुद्र के भीतर से पकड़कर ऊपर निकाल लिया, क्योंकि यही भगवान् वराह की लीला है।

तबे शुक्लाम्बरेर कैल तण्डुल-भक्षण ।

'हरेर्नाम' श्लोकेर कैल अर्थ विवरण ॥20॥

तबे-तत्पश्चात्; शुक्लाम्बरेर–शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी; कैल-किया; तण्डुल-कच्चा चावल; भक्षण-खाना; हरेर् नाम श्लोकेर-हरेर् नाम श्लोक का; कैल-किया; अर्थ-अर्थ; विवरण-विवरण।

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु ने शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी द्वारा दिया हुआ कच्चा चावल खाया और बृहन्नारदीय पुराण में उल्लिखित हरेर्नाम श्लोक का विस्तार से भावार्थ बतलाया।

तात्पर्य

शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी गंगा के तट पर नवद्वीप में रहते थे। जब श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में नाच रहे थे, तब वे झोली में चावल लेकर उनके निकट गये। महाप्रभु अपने भक्त से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने तुरन्त झोली छीन ली और कच्चे चावल खाने लगे। किसी ने उन्हें मना नहीं किया और वे पूरा चावल खा गये।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामेव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥21॥

हरेः नाम-भगवान् का पावन नाम; हरेः नाम-भगवान् का पावन नाम; हरेः नाम-भगवान् का पावन नाम; एव-निश्चित रूप से; केवलम्-केवल; कलौ-इस कलियुग में; न अस्ति–नहीं है; एव–निश्चित रूप से; न अस्ति–नहीं है; एव–निश्चय ही; न अस्ति-नहीं है; एव–निश्चय ही; गतिः-गति; अन्यथा-अन्य कोई।

अनुवाद

"इस कलियुग में आत्म-साक्षात्कार के लिए भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन, भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन, भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है, अन्य कोई उपाय नहीं है, अन्य कोई उपाय नहीं है।"

कलि-काले नाम-रूपे कृष्ण-अवतार ।

नाम हैते हय सर्व-जगनिस्तार ॥22॥

कलि-काले-इस कलियुग में; नाम-रूपे-पावन नाम के रूप में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतार–अवतार; नाम-पावन नाम; हैते-से; हय-हो जाता है; सर्व-सर्व; जगत्-जगत् का; निस्तार-उद्धार।

अनुवाद

इस कलियुग में भगवान् के पवित्र नाम अर्थात् हरे कृष्ण महामन्त्र भगवान् कृष्ण का अवतार है। केवल पवित्र नाम के कीर्तन से मनुष्य भगवान् की प्रत्यक्ष संगति कर सकता है। जो कोई भी ऐसा करता है, उसका निश्चित रूप से उद्धार हो जाता है।

दाढर्य लागि' 'हरेर्नाम'-उक्ति तिन-वार।

जड़ लोक बुझाइते पुनः 'एव'-कार ॥ 23 ॥

दाढर्य लागि'–बल डालने के लिए; हरेर् नाम-भगवान् हरि का पावन नाम; उक्ति-उक्ति; तिन-वार-तीन बार; जड़ लोक-सामान्य लोग; बुझाइते-उनको समझाने के लिए; पुनः–पुनः; एव-कार-"एव" शब्द।

अनुवाद

इस श्लोक में बल देने के लिये एव(निश्चय ही) शब्द को तीन बार दोहराया गया है और इसमें हरेर्नाम (भगवान् का पवित्र नाम) भी तीन बार दोहराया गया है, जिससे सामान्य लोग इसे समझ सकें।

तात्पर्य

किसी सामान्य व्यक्ति को जोर देकर किसी बात को समझाने के लिए उसे तीन बार दोहराया जाता है। उदाहरण के लिए ऐसा कहा जाए, "आप इसे करें ! आप इसे करें ! आप इसे करें !" इस तरह बृहन्नारदीय-पुराण नाम-कीर्तन पर बारम्बार बल देता है, जिससे लोग इसे गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करें और माया के बन्धन से अपने आपको मुक्त करा सकें। हमारा यह व्यावहारिक अनुभव है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन में लाखों लोग वस्तुतः हरे कृष्ण महामन्त्र का नियमित रूप से, निर्दिष्ट

सिद्धान्तों के अनुसार कीर्तन करके आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त कर रहे हैं। अतएव हम अपने सारे अनुयायियों से अनुरोध करते हैं कि वे इस हरेर्नाम महामन्त्र का प्रतिदिन अपराध रहित तथा नियम सहित सोलह माला का जप करें। इस प्रकार से उनकी सफलता निश्चित है।

‘केवल’-शब्दे पुनरपि निश्चय-करण ।

ज्ञान-योग-तप-कर्म-आदि निवारण ॥ 24॥

‘केवल’-शब्दे–'केवल’ शब्द से; पुनरपि पुनः; निश्चय-करण-अन्तिम निर्णय; ज्ञान-ज्ञान का अनुशीलन; योग–योगाभ्यास; तप-तपस्या; कर्म-सकाम कर्म; आदि-आदि; निवारण-निषेध।

अनुवाद

‘केवल’ शब्द का प्रयोग ज्ञान, योग, तप तथा सकाम कर्म जैसी अन्य विधियों का निषेध करने वाला है।

तात्पर्य

हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन केवल हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन पर बल देता है, जबकि अन्य लोग, जिन्हें इस कलियुग में सफलता के रहस्य का ज्ञान नहीं है, वे ज्ञान के अनुशीलन, योग के अभ्यास या व्यर्थ की तपस्या अथवा सकाम कर्म करने में व्यर्थ ही लगे रहते हैं। वे केवल अपने समय का अपव्यय करते हैं और अपने अनुगामियों को पथभ्रष्ट बनाते हैं। जब हम श्रोताओं को यह बात स्पष्ट रूप से बतलाते हैं, तो विरोधी पक्ष वाले हम पर क्रुद्ध होते हैं। किन्तु शास्त्रों के आदेशानुसार हम इन तथाकथित ज्ञानियों, योगियों, कर्मियों तथा तपस्वियों से समझौता नहीं कर सकते। जब वे कहते हैं कि वे भी हमारी तरह ही अच्छे हैं, तो हमें कहना चाहिए कि केवल हम अच्छे हैं और वे

अच्छे नहीं हैं। यह हमारी हठधर्मिता नहीं है, यह शास्त्रों का आदेश है। हमें शास्त्रों के आदेशों से हटना नहीं चाहिए। इसकी पुष्टि चैतन्य-चरितामृत के अगले श्लोक में की गई है।

अन्यथा ये माने, तार नाहिक निस्तार ।

नाहि, नाहि, नाहिए तिन 'एव'-कार ॥25॥

अन्यथा-अन्यथा; ग्रेजो कोई; माने स्वीकार करे; तार-उसका; नाहिक-नहीं है; निस्तार-उद्धार; नाहि नाहि नाहि-और कुछ नहीं, और कुछ नहीं, और कुछ नहीं; ए-इसमें; तिन-तीन; एव-कार-बल देने हेतु।

अनुवाद

यह श्लोक स्पष्ट बतलाता है कि जो कोई अन्य मार्ग स्वीकार करता है, उसका कभी उद्धार नहीं हो सकता। इसीलिए तीन बार 'अन्य कुछ नहीं, अन्य कुछ नहीं, अन्य कुछ नहीं,' कहा गया है, जो आत्म-साक्षात्कार की असली विधि पर बल देता है।

तृण हैते नीच हा सदा लबे नाम ।

आपनि निरभिमानी, अन्ये दिबे मान ॥26॥

तृण-तिनके; हैते–की अपेक्षा; नीच-नीच; हजा–होकर; सदा-सदा; लबे-जपो; नाम-पावन नाम; आपनि-अपनी; निरभिमानी–अभिमान रहित; अन्ये-अन्यों को; दिबे तुम्हें देना चाहिए; मान–पूरा आदर।

अनुवाद

निरन्तर पवित्र नाम का कीर्तन करने के लिए मनुष्य को रास्ते में उगी घास से भी विनीत होना चाहिए और निजी सम्मान की कामना से रहित होना चाहिए, किन्तु अन्यों को पूरा आदर देना चाहिए।

तरु-सम सहिष्णुता वैष्णव करिबे ।

भर्त्सन-ताड़ने काके किछु ना बलिबे ॥ 27॥

तरु-सम-वृक्ष के समान; सहिष्णुता–सहनशील; वैष्णव-वैष्णव; करिबे-अभ्यास करना चाहिए; भर्त्सन-डांट-डपट करना; ताड़ने-ताड़न के लिए; काके-किसी को; किछु—कुछ; ना-न; बलिबे-कहेगा।

अनुवाद

"भगवन्नाम-कीर्तन में संलग्न व्यक्ति में वृक्ष जैसी सहनशीलता होनी चाहिए। डाँटे-फटकारे जाने पर भी बदले की भावना से उसे किसी से कुछ नहीं कहना चाहिए।"

काटिलेह तरु येन किछु ना बोलय ।

शुकाइया मरे, तबु जल ना मागय ॥ 28॥

काटिलेह-काटा जाने पर भी; तरु-वृक्ष; येन-जैसे; किछु-कुछ; ना-नहीं; बोलय-कहता है; शुकाइया-सूख जाना; मरे–मर जाता है; तबु-फिर भी; जल-जल; ना-नहीं; मागय–माँगता।

अनुवाद

यदि कोई वृक्ष को काटता भी है, तो भी वह प्रतिरोध नहीं करता, न ही वह सूखने और मरने पर किसी से जल की याचना करता है।

तात्पर्य

सहनशीलता का ऐसा अभ्यास (तरोरिव सहिष्णुना) बहुत कठिन है, किन्तु हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने से मनुष्य में स्वतः सहिष्णुता का गुण विकसित हो जाता है। हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन से आध्यात्मिक चेतना में उन्नत व्यक्ति को इसको विकसित करने के लिए अलग से अभ्यास नहीं करना पड़ता, क्योंकि हरे कृष्ण मन्त्र का नियमित रूप से कीर्तन करने से भक्त में ये गुण स्वतः आ जाते हैं।

एइ-मत वैष्णव कारे किछु ना मागिब ।

अयाचित-वृत्ति, किंवा शाक-फल खाइब ॥29॥

एइ-मत-इस प्रकार; वैष्णव-भक्त; कारे-किसी से; किछु-कुछ; ना-नहीं; मागिब-माँगेगा; अयाचित-वृत्ति-कुछ न माँगने की वृत्ति; किंवा–अथवा; शाक-शाक सब्जी; फल-फल; खाइब-खाएगा।

अनुवाद

इस प्रकार वैष्णव को किसी से कुछ भी नहीं माँगना चाहिए। यदि कोई बिना माँगे ही कुछ देता है, तो उसे स्वीकार करना चाहिए, किन्तु यदि कुछ न मिले, तो वैष्णव को शाक तथा फल जो भी मिल सकें, उन्हें खाकर सन्तुष्ट होना चाहिए।

सदा नाम लइब, यथा-लाभेते सन्तोष ।

एइत आचार करे भक्ति-धर्म-पोष ॥ 30॥

सदा-सदा; नाम-पावन नाम; लइब-जपना चाहिए; यथा-यथा; लाभेते-लाभ होता है; सन्तोष-सन्तोष; एइत—यह; आचार-आचरण; करे-करता है; भक्ति-धर्म-भक्ति का; पोष-पोषण।

अनुवाद

"मनुष्य को सदा नाम-कीर्तन करने के सिद्धान्त का दृढ़ता से पालन करना चाहिए और उसे जो कुछ आसानी से मिल जाए, उसी से सन्तुष्ट होना चाहिए। ऐसे भक्तिमय आचरण से उसकी भक्ति सुदृढ़ बनी रहती है।"

तृणादपि सु-नीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मान-देन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥ 31॥

तृणात् अपि-तृण से भी; सु-नीचेन-नीच होना; तरोः–वृक्ष; इव-की भाँति; सहिष्णुना-सहिष्णु; अमानिना-झूठे गर्व से रहित होकर; मान-देन-दूसरों को सम्मान देना; कीर्तनीयः-कीर्तन करना चाहिए; सदा-सदा; हरिः-प्रभु के पावन नाम का।

अनुवाद

"जो अपने आपको घास से भी अधिक तुच्छ मानता है, जो वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु है और जो किसी से निजी सम्मान की अपेक्षा नहीं रखता, फिर भी दूसरों को सम्मान देने के लिए सदा तत्पर रहता है, वह सरलता से सदा भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन कर सकता है।"

तात्पर्य

यहाँ घास का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है, क्योंकि सभी लोग उसे रौंदते हैं, तब भी बेचारी घास प्रतिरोध नहीं करती। यह उदाहरण संकेत करता है कि गुरु या नेता को अपने पद का गर्व नहीं होना चाहिए। उसे सामान्य व्यक्ति से भी अधिक विनीत होना चाहिए और उसे हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करते हुए चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करते रहना चाहिए।

ऊर्ध्व-बाहु करि' कहों, शुन, सर्व-लोक ।

नाम-सूत्रे गाँथि' पर कण्ठे एइ श्लोक ॥ 32 ॥

ऊर्ध्व-बाह-हाथ ऊँचे उठाकर; करि'-ऐसा करके; कहों-मैं घोषणा करता हूँ; शुन–कृपया सुनो; सर्व-लोक-सभी लोग; नाम-पावन नाम; सूत्रे-धागे में; गाँथि-पिरोकर; पर-पहनो; कण्ठे–कण्ठ पर; एइ–इस; श्लोक-श्लोक को।

अनुवाद

मैं अपने हाथ ऊपर उठाकर घोषित कर रहा हूँ, "कृपया हर कोई मुझे सुनें! इस श्लोक को पवित्र नाम के धागे में पिरोकर निरन्तर स्मरण करने के लिए अपने गले में पहन लें।"

तात्पर्य

हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते हुए प्रारम्भ में कई तरह के अपराध हो सकते हैं, जिन्हें नामाभास तथा नाम-अपराध कहते हैं। इस अवस्था में हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने से कृष्ण का शुद्ध प्रेम प्राप्त करने की सम्भावना नहीं रहती। अतएव मनुष्य को हरे कृष्ण मन्त्र का जप तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुनाश्लोक के सिद्धान्तों के अनुसार करना चाहिए। यह ध्यान में रखें कि जप में ऊपरी तथा निचले होठों एवं जीभ को कार्य करना पड़ता है। इन तीनों को हरे कृष्ण महामन्त्र का

कीर्तन करने में अवश्य संलग्न रहना चाहिए। हरे कृष्ण शब्दों का उच्चारण बहुत स्पष्ट होना चाहिए और सुनाई पड़ना चाहिए। कभी-कभी लोग होठ तथा जीभ से फुसफुसाकर अस्पष्ट उच्चारण करते हैं। जप अत्यन्त सरल है, लेकिन इसका अभ्यास गम्भीरतापूर्वक करना चाहिए। अतएव चैतन्य-चरितामृत के रचयिता कृष्णदास कविराज गोस्वामी हर एक को सलाह देते हैं कि इस श्लोक को हमेशा गले में बाँधकर रख लेना चाहिए।

प्रभु-आज्ञाय कर एइ श्लोक आचरण ।

अवश्य पाइबे तबे श्री-कृष्ण-चरण ॥ 33 ॥

प्रभु–महाप्रभु की आज्ञाय-आज्ञा से; कर-करो; एइ श्लोक-इस श्लोक का; आचरण-अभ्यास; अवश्य-अवश्य; पाइबे–वह पाएगा; तबे-तत्पश्चात्; श्री-कृष्ण-चरण-भगवान् कृष्ण के चरणकमल।

अनुवाद

इस श्लोक में श्री चैतन्य महाप्रभु ने जो सिद्धान्त बतलाये हैं, उनका दृढ़ता से पालन करना चाहिए। यदि कोई चैतन्य महाप्रभु तथा गोस्वामियों के चरणचिह्नों का अनुसरण करता रहे, तो उसे जीवन का चरम लक्ष्य अर्थात् श्रीकृष्ण के चरणकमल अवश्य प्राप्त होंगे।

तबे प्रभु श्रीवासेर गृहे निरन्तर ।

रात्रे सङ्कीर्तन कैल एक संवत्सर ॥ 34॥

तबे-तत्पश्चात्; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु ने; श्रीवासेर-श्रीवास ठाकुर के; गृहे-घर में; निरन्तर–सदा; रात्रे-रात को; सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण महामंत्र का संकीर्तन; कैल–किया; एक संवत्सर-पूरा एक वर्ष।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु पूरे एक वर्ष तक हर रात्रि को श्रीवास ठाकुर के घर पर हरे कृष्ण मंत्र का सामूहिक कीर्तन नियमित रूप से चलाते रहे।

कपाट दिया कीर्तन करे परम आवेशे ।

पाषण्डी हासिते आइसे, ना पाय प्रवेशे ॥ 35॥

कपाट-द्वार; दिया-बन्द करके; कीर्तन-कीर्तन; करे-किया; परम-परम; आवेशे-आनन्द की दशा में; पाषण्डी–पाखंडी; हासिते-हँसने के लिए; आइसे-आना; ना-न; पाय-पाए; प्रवेशे-प्रवेश।

अनुवाद

यह भावपूर्ण कीर्तन दरवाजे बन्द करके किया जाता था, जिससे हँसी उड़ाने की दृष्टि से आने वाले अविश्वासी लोग प्रवेश न कर सकें।

तात्पर्य

हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन कोई भी कर सकता है, किन्तु कभी-कभी अविश्वासी लोग कीर्तन में व्यवधान उत्पन्न करने आते हैं। यहाँ यह संकेत दिया गया है कि ऐसी अवस्था में मन्दिर के द्वार बन्द कर लिए जाएँ। केवल प्रामाणिक कीर्तन करने वालों को प्रविष्ट होने दिया जाए, अन्यों को नहीं। किन्तु जब बड़े पैमाने पर हरे कृष्ण महामन्त्र का सामूहिक कीर्तन होता है, तो हम अपना मन्दिर हर किसी को सम्मिलित होने के लिए खुला रखते हैं और चैतन्य महाप्रभु की कृपा से इसके परिणाम अच्छे निकले हैं।

कीर्तन शुनि’ बाहिरे तारा ज्वलि’ पुड़ि’ मरे ।

श्रीवासेरे दुःख दिते नाना युक्ति करे ॥ 36॥

कीर्तन शुनि'-कीर्तन सुनने के बाद; बाहिरे-बाहर; तारा-अविश्वासी, नास्तिक; ज्वलि-जल गये; पुड़ि'–राख; मरे–मरना; श्रीवासेरे–श्रीवास ठाकुर को; दुःख-दुःख; दिते-देने के लिए; नाना-नाना; मुक्ति-युक्तियाँ; करे-करना।

अनुवाद

इस तरह अविश्वासी लोग मानो जलकर राख हो गये और ईर्ष्या से मर गये। बदला लेने के लिए उन्होंने श्रीवास ठाकुर को अनेक प्रकार से कष्ट पहुँचाने की योजना बनाई।

एक-दिन विप्र, नाम–गोपाल चापाल' ।

पाषण्डि-प्रधान सेइ दुर्मुख, वाचाल ॥ 37॥

भवानी-पूजार सब सामग्री लञा ।

रात्रे श्रीवासेर द्वारे स्थान लेपाञा ॥ 38॥

एक-दिन-एक दिन; विप्र-एक ब्राह्मण; नाम-नामक; गोपाल चापाल-गोपाल चापाल; पाषण्डि-प्रधान-नास्तिकों का प्रमुख; सेइ-वह; दुर्मुख-कटु शब्द वादी; वाचाल-वाचाल; भवानी-पूजार-भवानी माता की पूजा के लिए; सब-सब; सामग्री-सामान; लञा–लेकर; रात्रे-रात को; श्रीवासेर-श्रीवास ठाकुर के; द्वारे द्वार पर; स्थान-स्थान; लेपाञा–लेप करना।

अनुवाद

एक दिन जब रात में श्रीवास ठाकुर के घर के भीतर कीर्तन चल रहा था, तब गोपाल चापाल नामक एक ब्राह्मण, जो नास्तिकों (पाषण्डियों) का अगुवा था और बहुत बातूनी तथा बोलने में अक्खड़ था, श्रीवास ठाकुर के द्वार के बाहर दुर्गादेवी की पूजन-सामग्री रख आया।

तात्पर्य

यह ब्राह्मण गोपाल चापाल यह सिद्ध करके श्रीवास ठाकुर को बदनाम करना चाहता था कि वे वास्तव में शाक्त हैं अर्थात् भवानी, दुर्गा देवी के पूजक हैं, किन्तु ऊपर-ऊपर से वैष्णव बनते हैं। बंगाल में देवी काली तथा भगवान् कृष्ण के भक्तों में सदा-सदा से स्पर्धा चलती आई है। सामान्यतया बंगाली, विशेषकर जो मांसाहारी तथा शराबी हैं, वे देवी दुर्गा, काली, शीतला तथा चण्डी की पूजा करने में आसक्त रहते हैं। ऐसे भक्तगण जो शाक्त या शक्ति-तत्त्व के पूजक कहलाते हैं, सदैव वैष्णवों से ईर्ष्या करते हैं। चूँकि श्रीवास ठाकुर नवद्वीप के विख्यात और सम्मानित वैष्णव थे, अतएव गोपाल चापाल उन्हें शाक्त सिद्ध करके उनकी प्रतिष्ठा को घटाना चाहता था। इसीलिए उसने श्रीवास ठाकुर के दरवाजे पर शिव-पत्नी, भवानी की पूजा करने की सामग्री-लाल फूल, केले का पत्ता, सुरा का घड़ा तथा लाल चन्दन का लेप रख दिया। प्रात:काल जब श्रीवास ठाकुर ने अपने दरवाजे पर यह पूजा सामग्री देखी, तो उन्होंने आसपास के भद्र लोगों को बुलाया और दिखलाया कि आज रात मैं भवानी की पूजा कर रहा था। इन लोगों ने खेद प्रकट किया और भंगी को बुलाकर उस स्थान पर पानी छिड़काकर तथा गोबर से लिपाकर उसे शुद्ध कराया। चैतन्य भागवत में गोपाल चापाल सम्बन्धी इस घटना का उल्लेख नहीं है।

कलार पात उपरे थुइल ओड़-फुल।

हरिद्रा, सिन्दूर आर रक्त-चन्दन, तण्डुल॥ 39॥

कलार पात–केले का पत्ता; उपरे ऊपर; थुइल-रखा हुआ; ओड़-फुल-एक विशेष प्रकार का फूल; हरिद्रा-हल्दी; सिन्दूर-सिंदूर; आर-और; रक्त-चन्दन-लाल चन्दन का लेप; तण्डुल-चावल।

अनुवाद

उसने केले के पत्ते के ऊपर पूजा की सामग्री रखी थी, जिसमें ओड़-फूल, हल्दी, सिन्दूर, लाल-चन्दन का लेप तथा चावल थे।

मद्य-भाण्ड-पाशे धरि' निज-घरे गेल ।

प्रातःकाले श्रीवास ताहा त' देखिल ॥40॥

मद्य-भाण्ड-मदिरा का पात्र; पाशे-निकट; धरि'-रखकर; निज-घरे-अपने घर को; गेल-गया; प्रातः काले-प्रातः काल; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; ताहा–वे सब वस्तुएँ; त'–निश्चित रूप से; देखिल-देखीं।

अनुवाद

इस सामग्री के पास उसने एक शराब का घड़ा रख दिया था। प्रातःकाल जब श्रीवास ठाकुर ने अपना दरवाजा खोला, तो उन्हें यह सारी सामग्री दिखाई दी।

बड़ बड़ लोक सब आनिल बोलाइया ।

सबारे कहे श्रीवास हासिया हासिया ॥41॥

बड़ बड़-पूजनीय; लोक-लोग; सब-सब; आनिल-उनको लाये; बोलाइया-बुलवाकर; सबारे प्रत्येक को; कहे-कहते हैं; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; हासिया हासिया-हँसते हँसते।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर ने पड़ोस के सारे प्रतिष्ठित लोगों को बुलाया और हँसते-हँसते उनसे इस प्रकार कहा।

नित्य रात्रे करि आमि भवानी-पूजन।

आमार महिमा देख, ब्राह्मण-सज्जन ॥42॥

नित्य रात्रे-हर रात को; करि-मैं करता हूँ; आमि-मैं; भवानी-पूजन-शिव की पत्नी भवानी की पूजा; आमार-मेरी; महिमा-महिमा; देख-आप देखते हैं; ब्राह्मण-सत्-जन-सभी पूज्य ब्राह्मण।

अनुवाद

"हे महाशयों, मैं हर रात देवी भवानी की पूजा करता हूँ। चूँकि पूजा की सारी सामग्री यहाँ उपस्थित है, अतएव समस्त आदरणीय ब्राह्मणों तथा उच्च जाति के सदस्यों, आप मेरी स्थिति को समझ सकते हैं।"

तात्पर्य

वैदिक पद्धति के अनुसार चार जातियाँ हैं-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र और इनके भी नीचे होते हैं पञ्चम (अर्थात् पाँचवी श्रेणी के लोग), जो शूद्रों से भी निम्न होते हैं। उच्च जाति वाले– ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य भी ब्राह्मण सज्जन कहलाते थे। ब्राह्मण विशेषकर सज्जन कहलाते थे, क्योंकि ये सारे समाज का मार्गदर्शन करते थे। यदि गाँव में कोई झगड़ा होता, तो लोग निपटारे के लिए इन्हीं सम्मानित ब्राह्मणों के पास जाते थे। अब इस तरह के ब्राह्मण तथा सज्जन खोज पाना कठिन है। अतः हर गाँव तथा हर नगर इतना बिगड़ चुका है कि शान्ति तथा सुख का नामोनिशान

भी नहीं रहा। पूर्ण सुसंस्कृत सभ्यता के पुनर्जागरण के लिए सारे विश्व में समाज के वैज्ञानिक विभाजन अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र को लागू करना चाहिए। जब तक कुछ लोगों को ब्राह्मण बनने का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता, तब तक मानव-समाज में शान्ति नहीं आ सकती।

तबे सब शिष्ट-लोक करे हाहाकार ।

ऐछे कर्म हेथा कैल को दुराचार ॥43॥

तबे-तत्पश्चात्; सब-सब; शिष्ट-लोक-शिष्ट लोग; करे–बोल पड़े; हाहा-कार-ओह!; ऐछे-ऐसे; कर्म–कार्यकलाप; हेथा-यहाँ; कैल–किया; कोन्-कौन; दुराचार-दुराचारी।

अनुवाद

तब वहाँ एकत्र सारे सज्जन हाहाकार करके बोले, "यह क्या? यह क्या? किसने यह बदमाशी की है? वह पापी कौन है?"

हाड़िके आनिया सब दूर कराइल ।

जल-गोमय दिया सेइ स्थान लेपाइल ॥44॥

हाड़िके-झाड़ूवाला; आनिया–बुलाकर; सब-सब; दूर कराइल-दूर फेंकवाया; जल-जल; गोमय-गोबर; दिया–मिलाकर; सेइ-वह; स्थान-स्थान; लेपाइल-लिपवाया।

अनुवाद

उन्होंने एक झाड़ लगाने वाले (हाड़ी) को बुलाया, जिसने सारी पूजा-सामग्री दूर फेंकी और उस स्थान को जल तथा गोबर से लीपकर शुद्ध किया।

तात्पर्य

वैदिक समाज में जो व्यक्ति मल साफ करने तथा सड़कों पर झाड़ देने जैसा सार्वजनिक स्वच्छता का कार्य करता है, हाड़ी कहलाता है। कभी-कभी वे अछूत होते हैं, विशेषतया जब वे अपने धंधे में लगे होते हैं, किन्तु इन्हें भी भक्त बनने का अधिकार है। श्रीभगवद्गीता (9.32) में इसकी पुष्टि हुई है, भगवान् कहते हैं :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

"हे पृथापुत्र, जो मेरी शरण में आते हैं-भले ही वे निम्न जन्म के–स्त्रियाँ, वैश्य (वणिक) तथा शूद्र (श्रमिक) क्यों न हों, वे परम गन्तव्य को प्राप्त कर सकते हैं।"

भारत में अनेक अछूत निम्न जातियाँ हैं, किन्तु वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार जीवन के आध्यात्मिक स्तर पर इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन को स्वीकार करने के लिए हर व्यक्ति का स्वागत किया जाता है और इस प्रकार कष्टों से छुटकारा दिलाया जाता है। भौतिक स्तर पर इस तरह की समानता या बन्धुत्व असम्भव है।

जब चैतन्य महाप्रभु तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना कहते हैं, तो वे इंगित करते हैं कि मनुष्य को देहात्म-बोध से ऊपर उठना चाहिए। जब मनुष्य अच्छी तरह समझ लेता है कि वह भौतिक शरीर नहीं, अपितु आत्मा है, तब वह निम्न जाति के लोगों से भी अधिक विनीत हो जाता है, क्योंकि आध्यात्मिक दृष्टि से वह उन्नत हो जाता है। ऐसी विनयशीलता जिसमें मनुष्य अपने आपको घास से भी निम्न मानता है, सुनीचत्व कहलाती है और वृक्ष से भी अधिक सहनशील बनना सहिष्णुत्व कहलाता है। भक्ति को प्राप्त करके देहात्म-बोध की परवाह न करना अमानित्व

अर्थात् भौतिक सम्मान के प्रति उदासीन होना कहलाता है। इस तरह से स्थित भक्त मानद कहलाता है, क्योंकि वह नि:संकोच भाव से अन्यों को सम्मान देने के लिए उद्यत रहता है।

यद्यपि महात्मा गांधी ने अछूतों को शुद्ध करने का हरिजन आन्दोलन चलाया, किन्तु वे असफल रहे, क्योंकि उन्होंने सोचा कि प्रत्येक व्यक्ति किसी प्रकार की भौतिक व्यवस्था द्वारा हरिजन अर्थात् भगवान् का पार्षद बन सकता है। ऐसा सम्भव नहीं है। जब तक मनुष्य यह पूर्णतया अनुभव नहीं करता कि वह शरीर नहीं, अपितु आत्मा है, तब तक उसके लिए हरि-जन बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। जो लोग चैतन्य महाप्रभु तथा उनकी गुरु-शिष्य परम्परा के पदचिह्नों पर नहीं चलते, वे पदार्थ तथा आत्मा में भेद नहीं कर सकते, अतएव उनके सारे विचार समस्याओं का मिश्रण मात्र बन जाते हैं। वे वस्तुत: मायादेवी के जाल में फँसे रहते हैं।

तिन दिन रहि' सेइ गोपाल-चापाल ।

सर्वाङ्गे हइल कुष्ठ, वहे रक्त-धार ॥ 45 ॥

तिन दिन-तीन दिन; रहि'-इस प्रकार रहने पर; सेइ-वह; गोपाल-चापाल–गोपाल चापाल; सर्व-अङ्गे–सारे शरीर पर; हइल–दिखने लगा; कुष्ठ-कुष्ट रोग; वहे-निकलने लगी; रक्त-धार-खून की धारा।

अनुवाद

तीन दिनों के बाद गोपाल चापाल को कोढ़ हो गया और उसके सारे शरीर में घाव होकर उसमें से रक्त निकलने लगा।

सर्वाङ्ग बेड़िल कीटे, काटे निरन्तर ।

असह्य वेदना, दुःखे ज्वलये अन्तर ॥ 46॥

सर्व-अङ्ग-सारे शरीर पर; बेड़िल-ढक गया; कीटे-कीड़ों से; काटे-काटते हुए; निरन्तर निरन्तर; असह्य-असहनीय; वेदना-दर्द; दुःखे-दुःख में; ज्वलये-जलता है; अन्तर-बिना रुके।

अनुवाद

उसके सारे शरीर में कीड़े पड़ गये और वे उसे निरन्तर काटने लगे। गोपाल चापाल को असह्य पीड़ा होने लगी। उसका सारा शरीर कष्ट से जलने लगा।

गङ्गा-घाटे वृक्ष-तले रहे त' वसिया ।

एक दिन बले किछु प्रभुके देखिया ॥47॥

गङ्गा-घाटे-गंगा के तट पर; वृक्ष-तले-एक वृक्ष के नीचे; रहे-रहता; त'–निश्चय ही; वसिया–बैठा; एक दिन-एक दिन; बले-कहता है; किछु-कुछ; प्रभुके–महाप्रभु को; देखिया-देखकर।

अनुवाद

चूँकि कोढ़ छूत का रोग है, इसलिए गोपाल चापाल गाँव छोड़कर गंगा नदी के किनारे एक वृक्ष के नीचे जा बैठा। एक दिन उसने चैतन्य महाप्रभु को उधर से जाते देखा, तो उनसे वह इस तरह बोला।

ग्राम-सम्बन्धे आमि तोमार मातुल ।

भागिना, मुइ कुष्ठ-व्याधिते हजाछि व्याकुल ॥48॥

ग्राम-सम्बन्धे-गाँव के सम्बन्ध में; आमि-मैं (हूँ); तोमार-आपका; मातुल-मामा; भागिना-भतीजे; मुइ-मैं; कुष्ठ-व्याधिते-कुष्ठ रोग से; हाछि—हो गया हूँ, व्याकुल-बहुत दुःखी।

अनुवाद

"हे भांजे, मैं गाँव के नाते आपका मामा लगता हूँ। देखो न इस कुष्ठरोग के आक्रमण ने मुझे किस तरह पीड़ित कर रखा है।"

लोक सब उद्धारिते तोमार अवतार।

मुञि बड़ दुखी, मोरे करह उद्धार ॥49॥

लोक-लोग; सब-सब; उद्धारिते-उद्धार करने हेतु; तोमार-आपका; अवतार-अवतार; मुञि-मैं (हूँ); बड़-बड़ा; दुखी-दु:खी; मोरे-मुझे; करह-कृपया करो; उद्धार-उद्धार।

अनुवाद

"आप ईश्वर के अवतार हैं और अनेक पतितात्माओं का उद्धार कर रहे हैं। मैं भी अत्यन्त दुःखी पतितात्मा हूँ। कृपा करके मेरा भी उद्धार कीजिये।"

तात्पर्य

ऐसा लगता है कि गोपाल चापाल पापी, बातूनी तथा अपमान करने वाला होने पर भी उसमें सरलता का गुण था। अतएव वह चैतन्य महाप्रभु को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का अवतार मानता था, जो सभी पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए आये थे, अतएव उसने अपने उद्धार की याचना की। किन्तु वह यह नहीं जानता था कि उद्धार का अर्थ शारीरिक व्याधियों को दूर होना ही नहीं है, यद्यपि जब मनुष्य भौतिक बन्धन से छूट जाता है, तो उसकी शारीरिक व्याधियाँ स्वत: समाप्त हो जाती हैं।

गोपाल चापाल केवल यह चाहता था कि उसका कोढ़ दूर हो जाए, किन्तु श्री चैतन्य उसे व्याधि का असली कारण बताना चाहते थे, यद्यपि उन्होंने उसकी याचना स्वीकार कर ली थी।

एत शुनि' महाप्रभुर हुइल क्रुद्ध मन ।

क्रोधावेशे बले तारे तर्जन-वचन ॥50॥

एत-इस प्रकार; शुनि'–सुनकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; हइल-था; क्रुद्ध-क्रुद्ध; मन–मन; क्रोध-आवेशे-क्रोध के कारण; बले-कहे; तारे-उसको; तर्जन-दण्डनीय, ताड़ना; वचन–शब्द।

अनुवाद

यह सुनकर चैतन्य महाप्रभु अत्यधिक क्रोधित प्रतीत हुए और उसी क्रोधावेश में उन्होंने उसे कुछ प्रताड़ना-भरे शब्द कहे।

आरे पापि, भक्त-द्वेषि, तोरे न उद्धारिमु ।

कोटि-जन्म एइ मते कीड़ाय खाओयाइमु ॥51॥

आरे-अरे; पापि–पापी; भक्त-द्वेषि-भक्तों के द्वेषी; तोरे-तुम्हें, तुम्हारा; ना उद्धारिमु-मैं उद्धार नहीं करूँगा; कोटि-जन्म-दस लाख जन्मों तक; एइ मते-इस प्रकार; कीड़ाय-कीटाणुओं से; खाओयाइमु-मैं तुम्हें कटवाऊँगा।

अनुवाद

"अरे पापी, शुद्ध भक्तों से द्वेष करने वाले, मैं तुम्हारा उद्धार नहीं करूँगा! मैं चादूँगा कि तुम इसी तरह करोड़ों वर्षों तक इन कीड़ों से काटे जाते रहो।"

तात्पर्य

यहाँ ध्यान देने की बात है कि इस भौतिक संसार में हमारे सारे दुःख, विशेष करके रोग से, हमारे विगत पापकर्मों के कारण होते हैं और इन सब पाप कर्मों में से भक्त के प्रति विद्वेष से किये गये पापकर्म अत्यन्त कठोर माने जाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु चाहते थे कि गोपाल चापाल अपने कष्ट का कारण समझे। ऐसा कोई भी व्यक्ति जो भगवान् के नाम के प्रसार में लगे भक्त को तंग करता है, वह गोपाल चापाल की तरह दण्ड पाता है। यह श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश है। जैसाकि हम आगे देखेंगे, जो व्यक्ति शुद्ध भक्त का अनादर करता है, वह चैतन्य महाप्रभु को तब तक प्रसन्न नहीं कर सकता, जब तक वह अपने अपराध के लिए सच्चे हृदय से पश्चात्ताप नहीं करता।

श्रीवासे कराइलि तुइ भवानी-पूजन ।

कोटि जन्म हबे तोर रौरवे पतन ॥52॥

श्रीवासे-श्रीवास ठाकुर को; कराइलि–करवाई है; तुइ-तुम; भवानी-पूजन-भवानी देवी की पूजा; कोटि जन्म-एक करोड़ जन्मों के लिए; हबे-होगा; तोर-तुम्हारा; रौरवे-नरक में; पतन-पतन।

अनुवाद

"तुमने कुछ ऐसा किया जिससे लगे कि श्रीवास ठाकुर देवी भवानी की पूजा करते हैं। केवल इसी अपराध के लिए तुम्हें करोड़ों जन्मों तक नारकीय जीवन बिताना पड़ेगा।"

तात्पर्य

ऐसे अनेक तान्त्रिक लोग हैं, जो मांस खाने तथा मदिरा पीने के लिए श्मशान में देवी भवानी की पूजा करते हैं। ऐसे मूर्ख भवानी-पूजा को भगवान् कृष्ण की भक्तिमय पूजा के समकक्ष मानते हैं। किन्तु यहाँ पर चैतन्य महाप्रभु ने तथाकथित स्वामियों तथा योगियों द्वारा ऐसे जघन्य तान्त्रिक कार्यों की भर्त्सना की है। वे घोषित करते हैं कि शराब पीने और माँस खाने के लिए की गई ऐसी भवानी-पूजा से मनुष्य तुरन्त नरक में जा गिरता है। चूँकि पूजा विधि ही स्वत: नारकीय होती है, अतएव इसका फल भी नारकीय से अधिक कुछ नहीं हो सकता।

अनेक पाखंडी यह कहते हैं कि चाहे जिस मार्ग को स्वीकार किया जाए, अन्ततोगत्वा भक्त ब्रह्म तक पहुँच ही जाता है। फिर भी इस श्लोक से हम देख सकते हैं कि ऐसे व्यक्ति किस तरह ब्रह्म तक पहुँचते हैं। ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है, किन्तु विभिन्न पदार्थों में ब्रह्म को मानने से भिन्न फल मिलते हैं। भगवद्गीता (4.11) में भगवान् कहते हैं- ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्-"जो जिस रूप में मेरी शरण में आता है, उसी के अनुसार मैं उसे पुरस्कृत करता हूँ।" मायावादियों को निस्सन्देह, कुछ हद तक ब्रह्म की अनुभूति होती है, किन्तु सुरा, सुन्दरी तथा मांस सेवन द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार वैसा नहीं है, जिसे भक्तगण कीर्तन, नृत्य तथा प्रसाद ग्रहण करके प्राप्त करते हैं। मायावादी दार्शनिक अल्प ज्ञानी होने के कारण सभी प्रकार के ब्रह्म-साक्षात्कार को एक मानते हैं, उनके भेदों पर विचार नहीं करते। किन्तु कृष्ण सर्वव्यापी होकर भी अपनी अचिन्त्य शक्ति से, सर्वत्र नहीं रहते। इस तरह तान्त्रिक सम्प्रदाय का ब्रह्म-साक्षात्कार शुद्ध भक्तों के साक्षात्कार के समान नहीं है। जब तक कोई ब्रह्म-साक्षात्कार का सर्वोच्च पद अर्थात् कृष्णभावनामृत को प्राप्त न कर ले, तब तक वह दण्डनीय है। कृष्णभावनाभावित भक्तों को छोड़कर सारे लोग कुछ अंश तक पाखंडी या असुर हैं, अतएव वे भगवान् द्वारा दण्ड दिये जाने योग्य हैं, जैसाकि आगे कहा गया है।

पाषण्डी संहारिते मोर एइ अवतार।

पाषण्डी संहारि’ भक्ति करिमु प्रचार ॥53॥

पाषण्डी–पाखण्डी, नास्तिक; संहारिते-मारने के लिए; मोर-मेरा; एइ–इस; अवतार–अवतार; पाषण्डी–नास्तिक; संहारि’-मारने के बाद; भक्ति-भक्ति; करिमु-मैं करूँगा; प्रचार–प्रचार।

अनुवाद

“पाषंडियों (असुरों) को मारने के लिए और उन्हें मारने के बाद भक्ति-सम्प्रदाय का प्रचार करने हेतु मैं इस अवतार में प्रकट हुआ हूँ।”

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रयोजन वही है, जो भगवान् कृष्ण का है, जैसाकि भगवद्गीता (4.7-8) में बतलाया गया है :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

“हे भरतवंशी, जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का उत्थान होता है, तब-तब मैं अवतरित होता हूँ। धार्मिक लोगों का उद्धार करने तथा दुष्टों का संहार करने एवं धर्म के नियमों की पुनःस्थापना करने के लिए मैं युग-युग में अवतरित होता रहता हूँ।”

जैसाकि यहाँ बतलाया गया है, ईश्वर के अवतार का मुख्य उद्देश्य नास्तिकों को मारना और भक्तों का पालन करना है। वे उन अनेक धूर्ती की तरह यह नहीं कहते कि नास्तिक और भक्त समान धरातल पर हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु या भगवान् कृष्ण, जो वास्तविक भगवान् है, ऐसे विचार का समर्थन नहीं करते।

नास्तिक दंडनीय हैं, जबकि भक्त सुरक्षा पाने के पात्र हैं। इस सिद्धान्त को बनाये रखना ही सभी अवतारों का उद्देश्य होता है। अतएव अवतार की पहचान उनके कार्यों से की जानी चाहिए, न कि जनमत या कपोल कल्पनाओं से। श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्तों को संरक्षण प्रदान किया और अपने प्रचार-कार्य के दौरान अनेक असुरों का वध किया। उन्होंने विशेष रूप से उल्लेख किया है। कि मायावादी दार्शनिक सबसे बड़े असुर हैं। इसीलिए उन्होंने सबको चेतावनी दी है कि वे मायावादी दर्शन न सुनें। मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश-शास्त्रों की मायावादी व्याख्या सुनने से मनुष्य का सर्वनाश होता है। (चैतन्य चरितामृत, मध्य 6.169)।

एत बलि' गेला प्रभु करिते गङ्गा-स्नान ।

सेइ पापी दुःख भोगे, ना याय पराण ॥54॥

एत बलि'-यह कहकर; गेला–चले गये; प्रभु–महाप्रभु; करिते-करने के लिए; गङ्गा-स्नान-गंगा स्नान; सेइ-वह; पापी-पापी; दुःख-दुःख भोगे-भोगता है; ना-नहीं; याय-छूटते; पराण-प्राण।

अनुवाद

यह कहकर महाप्रभु गंगास्नान करने चले गये और उस पापी के प्राण नहीं निकले, अपितु वह कष्ट भोगता रहा।

तात्पर्य

ऐसा लगता है कि वैष्णव का अपराधी कष्ट भोगता रहता है, उसके प्राण नहीं छूटते। हमने सचमुच एक महान् वैष्णव अपराधी को कष्ट भोगते और घिसटते देखा है, फिर भी उसके प्राण नहीं निकलते थे।

सन्न्यास करिया यबे प्रभु नीलाचले गेला ।

तथा हैते यबे कुलिया ग्रामे आइला ॥55॥

तबे सेइ पापी प्रभुर लइल शरण ।

हित उपदेश कैल हइया करुण ॥56॥

सन्न्यास करिया-संन्यास लेकर; यबे-जब; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी को; गेला–चले गये; तथा हैते-वहाँ से; यबे-जब; कुलिया-कुलिया नामक; ग्रामे-गाँव में; आइला-आये; तबे-उस समय; सेइ-उस; पापी-पापी व्यक्ति ने; प्रभुर–महाप्रभु की; लइल-ली; शरण-शरण; हित-हितकर; उपदेश-उपदेश; कैल–दिया; हइया–होकर; करुण-कृपालु।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु संन्यास लेने के बाद जगन्नाथ पुरी गये और फिर लौटकर कुलिया गाँव आये, तब उस पापी ने महाप्रभु के चरणकमलों की शरण ग्रहण की। तब महाप्रभु ने कृपा करके उसके लाभ के लिए उसे उपदेश दिया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में कुलिया गाँव के सम्बन्ध में निम्नलिखित टिप्पणी दी है। पहले का कुलिया गाँव आज के नवद्वीप शहर के रूप में विकसित हुआ है। भक्तिरत्नाकर, चैतन्य-चरित- महाकाव्य, चैतन्य-चन्द्रोदय नाटक तथा चैतन्य-भागवत जैसे प्रामाणिक ग्रंथों में कुलिया गाँव को गंगा नदी के पश्चिम की ओर बतलाया गया है। अब भी कोलद्वीप नामक क्षेत्र के अन्तर्गत कुलियार-गंज तथा कुलियार-दह नामक स्थान हैं, जो वर्तमान नवद्वीप नगर महापालिका के सीमाक्षेत्र में हैं। चैतन्य महाप्रभु के समय कुलिया तथा पहाड़पुर नाम के दो गाँव थे, जो गंगा के पश्चिम की ओर थे और दोनों ही बाहिरद्वीप के सीमाक्षेत्र के अन्तर्गत थे। उस समय गंगा का पूर्व तटवर्ती स्थान नवद्वीप कहलाता था, जो अब अन्तद्वप कहलाता है। श्री मायापुर में वह स्थान अब भी द्वीपेर माठ कहलाता है। कांचड़ापाड़ा के निकट कुलिया नामक एक दूसरा स्थान है, किन्तु यह कुलिया यहाँ पर उल्लिखित स्थान नहीं है। इसे अपराध भंजनेर पाट अर्थात् वह स्थान जहाँ अपराध माफ किया गया था, नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह घटना गंगा के पश्चिम में उपर्युक्त कुलिया में हुई थी। व्यापारिक कारणों से कई ईष्र्यालु व्यक्ति असली स्थान की खुदाई का विरोध करते हैं और कभी-कभी वे अप्रामाणिक स्थानों को प्रामाणिक घोषित करते रहे हैं।

श्रीवास पण्डितेर स्थाने आछे अपराध ।

तथा याह, तेंहो यदि करेन प्रसाद ॥57॥

तबे तोर हबे एइ पाप-विमोचन ।

यदि पुनः ऐछे नाहि कर आचरण ॥58॥

श्रीवास पण्डितेर–श्रीवास ठाकुर के; स्थाने-चरणकमलों में; आछे-है; अपराध-अपराध; तथा-वहाँ; याह-जाओ; तेंहो-वे; यदि-यदि; करेन-करते हैं; प्रसाद-आशीर्वाद; तबे-तब; तोर-

तुम्हारा; हबे-होगा; एङ–यह; पाप-विमोचन-पाप से मुक्ति; यदि यदि; पुनः पुनः; ऐछे-ऐसा; नाहि कर नहीं करोगे; आचरण-आचरण, व्यवहार।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "तुमने श्रीवास ठाकुर के चरणकमलों पर अपराध किया है। अतएव सबसे पहले तुम वहाँ जाओ और उनसे कृपा की याचना करो। तब यदि वे तुम्हें आशीर्वाद देते हैं और तुम फिर से ऐसे पाप नहीं करते, तो तुम इन पापफलों से मुक्त कर दिये जाओगे।"

तबे विप्र लइल आसि श्रीवास शरण ।

ताँहार कृपाय हैल पाप-विमोचन ॥ 59॥

तबे-तत्पश्चात्; विप्र-ब्राह्मण (गोपाल चापाल); लइल-आश्रय लिया, शरण ली; आसि-आकर; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; शरण-उनके चरणकमलों की शरण; ताँहार कृपाय-उनकी कृपा से; हैल-हो गया; पाप-विमोचन-पाप से मुक्ति।

अनुवाद

तब वह ब्राह्मण गोपाल चापाल श्रीवास ठाकुर के पास गया और उसने उनके चरणकमलों की शरण ली और श्रीवास ठाकुर की कृपा से वह सारे पापों के फल से मुक्त हो गया।

आर एक विप्र आइल कीर्तन देखिते ।

द्वारे कपाट,—ना पाइल भितरे याइते ॥60॥

आर-अन्य; एक-एक; विप्र-ब्राह्मण; आइल-आया; कीर्तन-हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन; देखिते-देखने के लिए; द्वारे द्वार पर; कपाट–द्वार बन्द था; ना पाइल-नहीं पाया; भितरे–अन्दर; याइते-जाना।

अनुवाद

एक दूसरा ब्राह्मण कीर्तन देखने आया, किन्तु दरवाजा बन्द था, अतएव वह भीतर नहीं जा पाया।

फिरि' गेल विप्र घरे मने दुःख पाञा।

आर दिन प्रभुके कहे गङ्गाय लाग पाञा॥ 61॥

फिरि' गेल-लौट गया; विप्र-ब्राह्मण; घरे-अपने घर को; मने-अपने मन में; दुःख–दुःख; पाञा-पाकर; आर दिन-अगले दिन; प्रभुके–महाप्रभु को; कहे-कहता है; गङ्गाय-गंगा के तट पर; लाग–स्पर्श; पाञा-पाकर।

अनुवाद

वह दुःखी मन से घर लौट गया, किन्तु दूसरे दिन गंगा के तट पर वह महाप्रभु से मिला तो उनसे बोला।

शापिब तोमारे मुञि, पाञाछि मनो-दुःख।

पैता छिण्डिया शापे प्रचण्ड दुर्मुख॥ 62॥

शपिब-मैं शाप देंगा; तोमारे-तुम्हें; मुञि-मैं; पाञाछि-मुझे हुआ है; मनः-दुःख-अत्यधिक मानसिक दुःख; पैता–जनेऊ, यज्ञोपवीत; छिण्डिया-तोड़कर; शापे-शाप देकर; प्रचण्ड-बड़े जोर से; दुर्मुख-बुरा बोलने वाला दुर्मुख।

अनुवाद

वह ब्राह्मण कटुभाषी था और दूसरों को शाप देने में पटु था। उसने अपना जनेऊ तोड़ डाला और घोषित किया, "अब मैं तुम्हें शाप दूँगा, क्योंकि तुम्हारे व्यवहार से मुझे घोर कष्ट हुआ है।"

संसार-सुख तोमार हउक विनाश ।

शाप शुनि' प्रभुर चित्ते हइल उल्लास ॥ 63 ॥

संसार-सुख-भौतिक सुख; तोमार-तुम्हारा; हउक-ऐसा हो जाये; विनाश-नष्ट; शाप शुनि'–अभिशाप सुनकर; प्रभुर–महाप्रभु के; चित्ते–मन में; हइल-थी; उल्लास-प्रसन्नता।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने महाप्रभु को शाप दिया, "तुम सारे भौतिक सुखों से वंचित हो जाओगे!" जब महाप्रभु ने इसे सुना, तो उन्हें मन ही मन अधिक हर्ष हुआ।

प्रभुर शाप-वार्ता येइ शुने श्रद्धावान् ।

ब्रह्म-शाप हैते तार हय परित्राण ॥ 64॥

प्रभुर–महाप्रभु को; शाप-वार्ता–शाप की घटना; येइ-जो कोई; शुने-सुनता है; श्रद्धावान्–श्रद्धावान; ब्रह्म-शाप-ब्राह्मण का शाप देना; हैते-से; तार-उसका; हय-हो जाता है; परित्राण-उद्धार।

अनुवाद

जो कोई भी श्रद्धावान व्यक्ति उस ब्राह्मण द्वारा महाप्रभु के शाप देने की बात को सुनता है, वह समस्त ब्रह्मशापों से छूट जाता है।

तात्पर्य

मनुष्य को यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि दिव्य होने के कारण भगवान् पर कोई शाप या वरदान लागू नहीं होता। केवल सामान्य व्यक्ति ही शाप तथा यमराज के दण्ड से प्रभावित होते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के कारण चैतन्य महाप्रभु शाप तथा वरदान से परे हैं। जब कोई इस तथ्य को श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक समझ लेता है, तो वह सारे ब्रह्मशापों या किसी दूसरे द्वारा दिये गये शापों से मुक्त हो जाता है। चैतन्य-भागवत में इस घटना का उल्लेख नहीं मिलता।

मुकुन्द-दत्तेरे कैल दण्ड-परसाद ।

खण्डिल ताहार चित्तेर सब अवसाद ॥65॥

मुकुन्द-दत्तेरे-मुकुन्द दन्त को; कैल–किया; दण्ड–दण्ड; परसाद-वरदान; खण्डिल-नष्ट किया; ताहार-उसके; चित्तेर-मन का; सब-सब; अवसाद-तनाव।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुकुन्द दत्त को प्रसाद-रूप में दण्ड दिया और इस तरह उसके सारे मानसिक अवसाद को दूर कर दिया।

तात्पर्य

एक बार मुकुन्द दत्त को श्री चैतन्य महाप्रभु के निकट आने से मना कर दिया गया था, क्योंकि वह मायावादी निर्विशेषवादियों से मिलता-जुलता रहता था। जब महाप्रभु ने अपना महाप्रकाश प्रकट किया, तब उन्होंने सारे भक्तों को एक एक करके बुलाया और उन्हें आशीर्वाद दिया। किन्तु मुकुन्द दत्त दरवाजे पर ही खड़ा रहा। भक्तों ने महाप्रभु को बतलाया कि मुकुन्द दत्त बाहर खड़ा प्रतीक्षा कर रहा है, किन्तु महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं मुकुन्द दत्त से शीघ्र प्रसन्न होने वाला नहीं, क्योंकि वह भक्तों के बीच भक्ति की बात करता है, किन्तु उसके बाद वह मायावाद-दर्शन से भरा योगवाशिष्ट रामायण सुनने मायावादियों के पास जाता है। इस कारण मैं उससे बहुत नाराज हूँ।" बाहर खड़ा मुकुन्द महाप्रभु को इस तरह कहते हुए सुनकर अत्यन्त प्रसन्न था कि महाप्रभु कभी-न-कभी उस पर प्रसन्न होंगे, भले ही वे इस समय प्रसन्न न हों। किन्तु जब महाप्रभु समझ गये कि मुकुन्द दत्त मायावादियों की संगति सदा के लिए छोड़ने वाला है, तो वे प्रसन्न हो गये और उन्होंने तुरन्त ही उसे बुलाया। इस तरह महाप्रभु ने मायावादी संगति से उसका उद्धार किया और शुद्ध भक्तों की संगति प्रदान की।

आचार्य-गोसाञिरे प्रभु करे गुरु-भक्ति ।

ताहाते आचार्य बड़ हय दुःख-मति ॥66॥

आचार्य-गोसाञिरे-अद्वैत आचार्य को; प्रभु–महाप्रभु; करे-करते; गुरु-भक्ति-गुरु की भाँति सम्मान देना; ताहाते-इस प्रकार; आचार्य-अद्वैत आचार्य; बड़-बहुत; हय-होते; दुःख-मति–दुःखी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अद्वैत आचार्य को अपने गुरु के रूप में सम्मान देते थे, किन्तु अद्वैत आचार्य उनके ऐसे व्यवहार से अत्यधिक दुःखी थे।

भङ्गी करि' ज्ञान-मार्ग करिल व्याख्यान ।

क्रोधावेशे प्रभु तारे कैल अवज्ञान ॥ 67॥

भी करि'-हास्य में करना; ज्ञान-मार्ग-ज्ञान मार्ग; करिल-किया; व्याख्यान-व्याख्यान; क्रोध-आवेशे-क्रोधावेश में; प्रभु–महाप्रभु; तारे-उनका; कैल–किया; अवज्ञान-अपमान।

अनुवाद

अतः विनोदपूर्वक वे ज्ञान-मार्ग की व्याख्या करने लगे और महाप्रभु ने क्रोध में आकर ऊपरी तौर पर उनका अनादर किया।

तबे आचार्य-गोसाञि आनन्द हइल ।

लजित हइया प्रभु प्रसाद करिल ॥ 68॥

तबे-उस समय; आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य का; आनन्द–आनन्द; हइल-जाग पड़ा; लज्जित-लज्जित; हइया–होकर; प्रभु–महाप्रभु; प्रसाद-आशीर्वाद; करिल-दिया।

अनुवाद

तब अद्वैत आचार्य अत्यधिक हर्षित हुए। महाप्रभु यह समझ गये और कुछ-कुछ लज्जित हुए, किन्तु उन्होंने अद्वैत आचार्य को इच्छित वर दिया।

तात्पर्य

अद्वैत आचार्य ईश्वर पुरी के गुरु माधवेन्द्र पुरी के शिष्य थे। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु ईश्वर पुरी अद्वैत आचार्य के गुरु-भाई थे। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु अद्वैत प्रभु को गुरु मानते

थे, किन्तु अद्वैत आचार्य को भगवान् चैतन्य का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता था, क्योंकि वे चाहते थे कि उनके साथ सनातन सेवक जैसा व्यवहार किया जाए। वे महाप्रभु के गुरु नहीं, अपितु नित्य दास बनने की मनोभिलाषा रखते थे। इसीलिए उन्होंने महाप्रभु का विरोध करने की योजना बनाई। वे कुछ अभागे मायावादियों के बीच ज्ञान का उपदेश देने लगे। जब महाप्रभु ने इसके बारे में सुना, तो वे स्वयं तुरन्त वहाँ गये और अत्यन्त क्रोध में आकर अद्वैत प्रभु पर प्रहार करने लगे। उस समय अद्वैत आचार्य अत्यन्त प्रसन्न होकर यह कहकर नाचने लगे, "जरा देखो न, मेरी कामना कैसे पूरी हुई! श्री चैतन्य महाप्रभु इतने दिनों से मेरा आदर करते रहे, किन्तु अब वे मेरी उपेक्षा करने लगे हैं। यह मेरा पुरस्कार है। मेरे प्रति उनका स्नेह इतना है कि वे मुझे मायावादियों के हाथ से बचाना चाहते थे।" यह सुनकर चैतन्य महाप्रभु लज्जित हो गये, किन्तु वे अद्वैत आचार्य से अत्यन्त प्रसन्न थे।

मुरारि-गुप्त-मुखे शुनि' राम-गुण-ग्राम ।

ललाटे लिखिल ताँर 'रामदास' नाम ॥ 69॥

मुरारि-गुप्त-मुरारी गुप्त के; मुखे-मुख से; शुनि'–सुनकर; राम-भगवान् रामचन्द्र का; गुण-ग्राम-गुणगान; ललाटे-माथे पर; लिखिल-लिख दिया; तौर-मुरारी गुप्त के; राम-दास–भगवान् रामचन्द्र का नित्य दास; नाम-नाम्।

अनुवाद

मुरारि गुप्त भगवान् रामचन्द्र के महान् भक्त थे। जब महाप्रभु ने उनके मुँह से भगवान् रामचन्द्र की महिमा सुनी, तो उन्होंने तुरन्त उनके मस्तक पर 'रामदास' (भगवान् रामचन्द्र का नित्य दास) लिख दिया।

श्रीधरेर लौह-पात्रे कैल जल-पान।

समस्त भक्तेरे दिल इष्ट वर-दान ॥ 70 ॥

श्रीधरेर–श्रीधर के; लौह-पात्रे-लोहे के पात्र से; कैल–किया; जल-पान-जलपान; समस्त-सब; भक्तेरे-भक्तों को; दिल-दिया; इष्ट-अभीष्ट; वर-दान-वरदान।

अनुवाद

एक बार चैतन्य महाप्रभु कीर्तन के बाद श्रीधर के घर गये और वहाँ उन्होंने उनके एक टूटे-फूटे लोहे के बर्तन में पानी पिया। तत्पश्चात् उन्होंने सारे भक्तों को इच्छित वर दिये।

तात्पर्य

जब चाँद काजी नामक मैजिस्ट्रेट के विरोध में सामूहिक नगर-संकीर्तन हुआ, तो काजी भक्त बन गया। तब श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी संकीर्तन टोली समेत श्रीधर के घर आये। काजी भी उनके साथ-साथ था। सारे भक्त वहाँ कुछ समय तक रुके और सबने श्रीधर के लोहे के टूटे लोटे से पानी पिया। महाप्रभु ने भी जल ग्रहण किया, क्योंकि यह लोटा एक भक्त का था। तब चाँद काजी अपने घर चला गया। जहाँ उन लोगों ने विश्राम किया था, वह स्थान मायापुर से उत्तर-पूर्व दिशा में है और कीर्तन-विश्राम-स्थान कहलाता है।

हरिदास ठाकुरेरे करिल प्रसाद।

आचार्य-स्थाने मातार खण्डाइल अपराध ॥ 71॥

हरिदास ठाकुरेरे-हरिदास ठाकुर को; करिल–किया; प्रसाद-आशीर्वाद; आचार्य-स्थाने-अद्वैत आचार्य के घर पर; मातार-शची माता का; खण्डाइल-दूर किया; अपराध-अपराध।

अनुवाद

इस घटना के बाद महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर को आशीर्वाद दिया और अद्वैत आचार्य के घर पर अपनी माता के अपराध का खंडन किया।

तात्पर्य

महाप्रकाश दिवस पर चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर का आलिंगन किया और उन्हें बतलाया कि वे प्रह्लाद महाराज के अवतार हैं। जब विश्वरूप ने संन्यास लिया, तब शचीमाता ने सोचा कि उन्होंने अद्वैत आचार्य के कहने पर ऐसा किया। अतएव वे उन पर आरोप लगाती थीं, जो अद्वैत प्रभु के चरणकमलों पर अपराध था। बाद में चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता को उनके चरणों की धूल सिर पर धारण करने के लिए प्रेरित किया। इस तरह उनका वैष्णव अपराध निर्मूल हो गया।

भक्त-गणे प्रभु नाम-महिमा कहिल ।

शुनिया पड़ूया ताहाँ अर्थ-वाद कैल ॥72॥

भक्त-गणे-भक्तों को प्रभु–महाप्रभु; नाम-महिमा-पावन नाम की महिमा कहिल–बताई; शुनिया–सुनकर; पड़या–विद्यार्थी; ताहाँ-वहाँ; अर्थ-वाद–मनगढंत व्याख्या; कैल-की।

अनुवाद

एक बार महाप्रभु ने भक्तों से नाम की महिमा बताई, किन्तु कुछ सामान्य विद्यार्थियों ने सुनकर उसकी मनगढंत व्याख्या की।

नामे स्तुति-वाद शुनि' प्रभुर हैल दुःख ।

सबारे निषेधिल,—इहार ना देखिह मुख ॥73॥

नामे-भगवान् के पावन नाम में; स्तुति-वाद-अतिशयोक्ति; शुनि'–सुनकर; प्रभुर-महाप्रभु का; हैल–हो गया; दुःख-दुःख; सबारे-हर एक को; निषेधिल–चेतावनी दी; इहार-उसका; ना-न; देखिह–देखनी की; मुख–मुख की।

अनुवाद

जब किसी विद्यार्थी ने पवित्र नाम की महिमा की अतिशयोक्तियुक्त प्रार्थना के रूप में व्याख्या दी, तो चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त दुःखी हो उठे और उन्होंने तुरन्त सबको भविष्य में उस विद्यार्थी का मुँह भी न देखने के लिए चेतावनी दी।

तात्पर्य

एक बार जब श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् के पवित्र नाम, हरे कृष्ण महामन्त्र की दिव्य शक्ति की महिमा के विषय में बता रहे थे, तब एक अभागे विद्यार्थी ने कहा कि शास्त्रों में पवित्र नाम की ऐसी महिमा अतिशयोक्ति के रूप में है, ताकि लोग इसे स्वीकार करने के लिए प्रेरित हो जाएँ। इस तरह उस विद्यार्थी ने नाम की महिमा का अर्थ लगाया। यह अर्थवाद कहलाता है और यह भगवन्नाम के चरणकमलों पर किये जाने वाले दस अपराधों में से एक है। यद्यपि अपराध अनेक हैं, किन्तु पवित्र नाम के चरणकमलों पर किया गया नाम-अपराध, अत्यन्त खतरनाक है। इसीलिए महाप्रभु ने हर एक को आगाह किया कि कोई इस अपराधी का मुँह भी न देखे। उन्होंने तुरन्त ही गंगा में अपने कपड़ों समेत स्नान किया, जिससे लोग जान सकें कि नाम-अपराध से बचना चाहिए। पवित्र नाम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अभिन्न है। स्वयं भगवान् और उनके पवित्र नाम में कोई अन्तर नहीं है। यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की निरपेक्ष स्थिति है। अतः जो भगवान् तथा उनके नाम में अन्तर करता

है, वह पाषण्डी अर्थात् नास्तिक असुर कहलाता है। नाम की महिमा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की महिमा है। हमें चाहिए कि भगवान् तथा उनके नाम में अन्तर कभी न करें, अथवा नाम-महिमा को अतिशयोक्ति न कहें।

सगणे सचेले गिया कैल गङ्गा-स्नान ।

भक्तिर महिमा ताहाँ करिल व्याख्यान ॥74॥

स-गणे-उनके अनुयायियों सहित; स-चेले-वस्त्र उतारे बिना; गिया-जाकर; कैल–किया; गङ्गा-स्नान-गंगा में स्नान किया; भक्तिर-भक्ति की; महिमा-महिमाएँ; ताहाँ-वहाँ; करिल-कीं; व्याख्यान-व्याख्या।

अनुवाद

महाप्रभु ने बिना कपड़े उतारे अपने संगियों समेत गंगा नदी में स्नान किया। वहाँ उन्होंने भक्ति की महिमा की व्याख्या की।

ज्ञान-कर्म-योग-धर्मे नहे कृष्ण वश ।

कृष्ण-वश-हेतु एक—प्रेम-भक्ति-रस ॥75॥

ज्ञान-ज्ञान; कर्म-सकाम कर्म; योग–इन्द्रिय नियंत्रण की प्रक्रिया; धर्मे–कार्यकलापों में, ऐसे पेशे में; नहे-नहीं है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; वश–प्रसन्न; कृष्ण-भगवान् कृष्ण की; वश–प्रसन्नता के लिए; हेतु-कारण; एक-एक; प्रेम-प्रेम; भक्ति-भक्ति; रस-ऐसा रस।

अनुवाद

ज्ञान, कर्म या इन्द्रियों को वश में करने के लिए योग के मार्ग का अनुसरण करके भगवान् कृष्ण को प्रसन्न नहीं किया जा सकता। भगवान् कृष्ण की प्रसन्नता का एकमात्र कारण उनकी शुद्ध प्रेमाभक्ति है।

न साधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म उद्धव ।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ 76 ॥

न–कभी नहीं; साधयति–सन्तुष्ट करता है; माम्-मुझे; ग्रोगः-योगाभ्यास; न-न ही; साख्यम्-परम सत्य का विश्लेषणात्मक ज्ञान; धर्मः-ऐसा धर्म, ऐसा कार्य; उद्धव-मेरे प्यारे उद्धव; न-नहीं; स्वाध्यायः-वेदाध्ययन; तपः-तपस्या; त्यागः-त्याग अथवा दान, संन्यास को अपनाना; यथा-जितना; भक्तिः-भक्ति; मम-मेरे लिए; ऊर्जिता-विकसित।

अनुवाद

"[पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ने कहा :]'हे उद्धव, न तो अष्टांग योग द्वारा, न ही निर्विशेष अद्वैतवाद द्वारा, न परम सत्य विषयक वैश्लेषिक अध्ययन (सांख्य) द्वारा, न वेदों के अध्ययन द्वारा, न तपस्या, न दान द्वारा, न संन्यास द्वारा मुझे उतना प्रसन्न किया जा सकता है, जितना कि मेरी अनन्य भक्ति विकसित करके किया जा सकता है।"

तात्पर्य

कर्मी, ज्ञानी, योगी, तपस्वी तथा कृष्णभावनामृत विहीन वैदिक साहित्य के छात्र व्यर्थ ही परिश्रम करते हैं और अन्त में कोई लाभ प्राप्त नहीं करते, क्योंकि उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का कोई स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। न ही भक्ति द्वारा उन तक पहुँचने में उनकी श्रद्धा होती है, यद्यपि ऐसी

भक्ति करने पर हर जगह बारम्बार बल दिया जाता है, जैसाकि श्रीमद्भागवत के इस श्लोक (11.14.20) से स्पष्ट है। भगवद्गीता (18.55) में भी कहा गया है-भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः–"मनुष्य परमेश्वर को उनके यथार्थ रूप में केवल भक्ति द्वारा समझ सकता है। यदि सचमुच ही भगवान् को जानना है, तो मनुष्य को भक्ति-मार्ग अपनाना चाहिए और ज्ञान, सकाम कर्म, योग या तपस्या में व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना चाहिए। भगवद्गीता (12.5) में ही अन्यत्र भगवान् इसकी पुष्टि करते हैं- क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम्–"जिनका मन अव्यक्त, निर्विशेष ब्रह्म में आसक्त है, उनके लिए प्रगति कष्टसाध्य है। जो लोग भगवान् के निर्विशेष पहलू में आसक्त रहते हैं, उन्हें अत्यधिक कष्ट उठाना पड़ता है, फिर भी वे परम सत्य को नहीं समझ सकते। श्रीमद्भागवत (1.2.11) में बतलाया गया है- ब्रह्मति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते। जब तक ब्रह्म तथा परमात्मा के मूल उद्गम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को न समझ जाएँ, तब तक मनुष्य परम सत्य के विषय में अंधकार में ही रहता है।

मुरारिके कहे तुमि कृष्ण वश कैला ।

शुनिया मुरारि श्लोक कहिते लागिला ॥77॥

मुरारिके–मुरारि को; कहे–कहा; तुमि-तुमने; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; वश–सन्तुष्ट; कैल-किया; शुनिया-सुनकर; मुरारि-मुरारि; श्लोक-श्लोक; कहिते-कहने; लागिल-लगे।

अनुवाद

तब चैतन्य महाप्रभु ने मुरारि गुप्त की प्रशंसा यह कहते हुए की, "तुमने भगवान् कृष्ण को प्रसन्न कर लिया है।" यह सुनकर मुरारि गुप्त ने श्रीमद्भागवत का एक श्लोक सुनाया।

क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्री-निकेतनः ।

ब्रह्म-बन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥78 ॥

क्व–जहाँ; अहम्-मैं (हूँ); दरिद्रः-दरिद्र; पापीयान्–पापी; क्व–जबकि; कृष्णः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण; श्री-निकेतनः-लक्ष्मी देवी के आश्रय; ब्रह्म-बन्धुः-ब्राह्मण के गुणों से हीन जात ब्राह्मण; इति–इस प्रकार; स्म-निश्चित रूप से; अहम्-मैं (हूँ); बाहुभ्याम्-भुजाओं से; परिरम्भितः-आलिंगित।

अनुवाद

"चूँकि मैं गरीब, पापी ब्रह्मबन्धु मात्र हूँ, अर्थात् ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होकर भी ब्राह्मण-योग्यता से रहित हूँ और आप, हे भगवान् कृष्ण, लक्ष्मीदेवी के आश्रय हैं, इसलिए मेरे लिए यह आश्चर्यजनक ही है कि आपने अपनी भुजाओं से मेरा आलिंगन किया है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.81.16) का है, जिसे विप्र सुदामा ने भगवान् श्रीकृष्ण की उपस्थिति में कहा था। श्रीमद्भागवत का यह श्लोक तथा इसके पहले वाला श्लोक स्पष्ट बतलाते हैं कि यद्यपि कृष्ण इतने महान् हैं कि उन्हें तुष्ट कर पाना हर एक के लिए सम्भव नहीं है, किन्तु अनेक प्रकार से अयोग्य व्यक्ति द्वारा तुष्ट हो जाने के रूप में वे अपनी महानता प्रकट करते हैं। सुदामा ब्राह्मण-कुल में जन्मे थे और परम विद्वान तथा कृष्ण के सहपाठी मित्र थे, फिर भी वे अपने आपको ब्राह्मण कहलाने के अयोग्य समझते थे। वे अपने आपको ब्रह्मबन्धु कहते हैं जिसका अर्थ है "ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होने पर भी ब्राह्मण-गुणों से रहित ।" किन्तु ब्राह्मणों का अत्यधिक आदर करने के कारण कृष्ण ने सुदामा विप्र का आलिंगन किया, यद्यपि वे ब्रह्मबन्धु थे, न कि योग्य ब्राह्मण। मुरारि गुप्त तो ब्रह्मबन्धु भी नहीं कहे जा सकते थे, क्योंकि वे वैद्य-कुल में उत्पन्न हुए थे, अतएव

सामाजिक व्यवस्था के अनुसार वे शूद्र माने जाते थे। किन्तु कृष्ण ने मुरारी गुप्त पर विशेष कृपा की, क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुसार वे भगवान् के एक महान् भक्त थे। इस विषय पर श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने एक विस्तृत विवेचना की है, जिसका तात्पर्य यह है कि इस भौतिक जगत् में कोई कितना ही योग्य क्यों न हो, वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को तुष्ट नहीं कर सकता, किन्तु भगवद्भक्ति विकसित होने पर हर वस्तु सफल बन जाती है।

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के सदस्य तो अपने आपको ब्रह्मबन्धु भी नहीं कहला सकते। अतएव हमारे पास कृष्ण को तुष्ट करने का एकमात्र साधन यही है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों का अनुसरण किया जाए, जिनका कहना है कि :

यारे देख, तारे कह कृष्ण'-उपदेश।

आमार आज्ञाय गुरु हञा तार 'एइ देश॥

"आप जिससे भी मिलें उसे कृष्ण की शिक्षाओं का उपदेश दें। इस तरह मेरे आदेश से गुरु बनकर इस देश के लोगों का उद्धार करें।" (चैतन्य चरितामृत, मध्य 7.128) हम श्री चैतन्य महाप्रभु के ही आदेशों का अनुसरण करने का प्रयास करते हुए विश्वभर के लोगों को भगवद्गीता यथारूप के विषय में बतलाते हैं। इसी तरह हम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को तुष्ट करने के योग्य बन सकेंगे।

एक-दिन प्रभु सब भक्त-गण लञा।

सङ्कीर्तन करि' वैसे श्रम-युक्त हञा॥79॥

एक-दिन-एक दिन; प्रभु–महाप्रभु; सब-सब; भक्त-गण-भक्तों को; लञा-साथ लेकर; सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण मंत्र का संकीर्तन; करि'-करके; वैसे-बैठ गये; श्रम-युक्त-थककर; हञा-होकर।

अनुवाद

एक दिन महाप्रभु ने अपने सभी भक्तों के साथ मिलकर संकीर्तन किया और जब सभी लोग थक गये, तो वे बैठ गये।

एक आम्र-बीज प्रभु अङ्गने रोपिल ।

तत्क्षणे जन्मिल वृक्ष बाड़िते लागिल ॥80॥

एक-एक; आम्र-बीज-आम का बीज; प्रभु–महाप्रभु ने; अङ्गने-आंगन में; रोपिल-बोया; तत्-क्षणे-तत्क्षण; जन्मिल-फलीभूत हो गया; वृक्ष-एक वृक्ष; बाड़िते-उगना; लागिल-आरम्भ हो गया।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने आँगन में एक आम की गुठली बोई और तुरन्त ही वह गुठली वृक्ष का रूप धारण करके बढ़ने लगी।

देखिते देखिते वृक्ष हइल फलित ।

पाकिल अनेक फल, सबेइ विस्मित ॥81॥

देखिते देखते-देखते देखते; वृक्ष-वृक्ष; हइल हो गया; फलित-फलों से पूरी तरह भर गया; पाकिल-पके; अनेक-अनेक; फल-फल; सबेइ-उनमें से प्रत्येक; विस्मित-आश्चर्यचकित।

अनुवाद

लोगों के देखते-देखते वह वृक्ष बढ़ गया और उसमें फल लग गये और वे फल पकने भी लगे। इस तरह सारे लोग आश्चर्यचकित रह गये।

शत दुइ फल प्रभु शीघ्र पाड़ाइल ।

प्रक्षालन करि' कृष्णे भोग लागाइल ॥82॥

शत-एक सौ; दुइ-दो; फल-फल; प्रभु–महाप्रभु ने; शीघ्र-शीघ्र; पाड़ाइल-तुड़वाए; प्रक्षालन-धोने के लिए; करि'-करके; कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; भोग-भोग; लागाइल-लगाए।

अनुवाद

महाप्रभु ने तुरन्त ही उसमें से लगभग दो सौ फल तोड़े और धोने के बाद उनका कृष्ण को भोग लगाया।

रक्त-पीत-वर्ण,–नाहि अष्ठि-वल्कल ।

एक जनेर पेट भरे खाइले एक फल ॥83॥

रक्त-पीत-वर्ण-लाल और पीले रंग के; नाहि-कोई नहीं था; अष्ठि-बीज; वल्कल-या छिलका; एक-एक; जनेर–व्यक्ति का; पेट-पेट; भरे-भर जाए; खाइले-यदि वह खाए; एक-एक; फल-फल।

अनुवाद

ये फल लाल तथा पीले थे, उनमें न तो गुठली थी, न छिलका और एक ही फल खाने से मनुष्य का पेट भर सकता था।

तात्पर्य

भारत में वही आम अच्छा माना जाता है, जो लाल तथा पीले रंग का हो, जिसकी गुठली काफी छोटी हो, छिलका अत्यन्त पतला हो और इतना स्वादिष्ट हो कि एक ही फल खाने से मनुष्य सन्तुष्ट हो जाए। आम को फलों का राजा माना जाता है।

देखिया सन्तुष्ट हैला शचीर नन्दन ।

सबाके खाओयाल आगे करिया भक्षण ॥84॥

देखिया-यह देखकर; सन्तुष्ट-सन्तुष्ट; हैला-हो गये; शचीर-माता शची के; नन्दन-पुत्र; सबाके–प्रत्येक को; खाओयाल-खिलाया; आगे-आरम्भ में; करिया-करके; भक्षण-स्वयं खाकर।

अनुवाद

आमों का गुण देखकर महाप्रभु अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और पहले स्वयं खाने के बाद अन्य सभी भक्तों को खिलाए।

अष्ठि-वल्कल नाहि,—अमृत-रसमय ।

एक फल खाइले रसे उदर पूरय ॥85॥

अष्ठि-बीज; वल्कल–छिलका; नाहि-नहीं है; अमृत-अमृत; रस-मय-रसीला; एक-एक; फल-फल; खाइले–यदि कोई खाए; रसे–रस के साथ; उदर-पेट; पूरय-भर जाए।

अनुवाद

फलों में गुठली या छिलका नहीं था। वे सभी अमृत के समान मीठे रस से भरे थे और इतने मीठे थे कि एक ही फल खाने से मनुष्य पूरी तरह सन्तुष्ट हो जाए।

एइ-मत प्रतिदिन फले बार मास ।

वैष्णव खायेन फल,—प्रभुर उल्लास ॥86॥

एइ-मत-इस प्रकार; प्रति-दिन-प्रति दिन; फले-फल उगते थे; बार-बारह; मास-मास; वैष्णव-वैष्णव जन; खायेन-खाते; फल-फल; प्रभुर–महाप्रभु को; उल्लास-सन्तोष।

अनुवाद

इस तरह बारहों महीने प्रतिदिन उस वृक्ष में फल लगते रहे और वैष्णवजन उन्हें खाते रहे, जिससे महाप्रभु को परम सन्तोष मिलता था।

एइ सब लीला करे शचीर नन्दन ।

अन्य लोक नाहि जाने विना भक्त-गण ॥87॥

एइ सब-ये सब; लीला-लीलाएँ; करे-कीं; शचीर-माता शची के; नन्दन-पुत्र ने; अन्य लोक-अन्य लोग; नाहि-नहीं; जाने-जानते हैं; विना-बिना; भक्त-गण-भक्त गण।

अनुवाद

ये हैं शची-पुत्र की गुह्य लीलाएँ। भक्तों के अतिरिक्त इस घटना को अन्य कोई नहीं जानता।

तात्पर्य

अभक्तगण इस घटना पर विश्वास नहीं करेंगे, किन्तु जिस स्थान पर यह वृक्ष उगा था, वह आज भी मायापुर में है। यह स्थान आम्रघट्ट या आमघाटा कहलाता है।

एइ मत बार-मास कीर्तन-अवसाने ।

आम्र-महोत्सव प्रभु करे दिने दिने ॥88॥

एइ मत-इस प्रकार; बार-मास-बारह मास; कीर्तन-हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन; अवसाने–के अन्त में; आम्र-महा-उत्सव-आम खाने का उत्सव; प्रभु–महाप्रभु ने; करे-किया; दिने दिने-प्रतिदिन।

अनुवाद

इस प्रकार महाप्रभु प्रतिदिन संकीर्तन करते और बारहों मास संकीर्तन के बाद प्रतिदिन आम खाने का उत्सव मनाया जाता था।

तात्पर्य

नियमानुसार चैतन्य महाप्रभु कीर्तन के बाद प्रसाद बाँटा करते थे। इसी तरह कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को भी कीर्तन करने के बाद श्रोताओं को कुछ-न-कुछ प्रसाद बाँटना चाहिए।

कीर्तन करिते प्रभु आइल मेघ-गण ।

आपन-इच्छाय कैल मेघ निवारण ॥ 89॥

कीर्तन-संकीर्तन; करिते-करके; प्रभु–महाप्रभु; आइल-थे; मेघ-गण-मेघ समूह; आपन-इच्छाय-स्वेच्छा से; कैल-किया; मेघ-मेघों का; निवारण-रोकना।

अनुवाद

एक बार जब महाप्रभु कीर्तन कर रहे थे, तो आकाश में बादल छा गये; महाप्रभु ने अपनी इच्छा से तुरन्त ही उन्हें बरसने से रोक दिया।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि एक बार महाप्रभु एक गाँव से कुछ दूरी पर संकीर्तन कर रहे थे कि अचानक आकाश में बादल आ गये। महाप्रभु की परम इच्छा से उन बादलों को इधर उधर बिखर जाने को कहा गया और उन्होंने ऐसा ही किया। इस घटना के कारण वह स्थान अभी भी मेघेर चर कहलाता है। चूँकि गंगा नदी का मार्ग बदल जाने से अब बेलपुखुरिया नामक गाँव ही मेघेर चर कहलाता है, यद्यपि पहले वह तारणवास नामक एक भिन्न स्थान में था। श्रील लोचन दास ठाकुर द्वारा लिखित चैतन्य-मंगल के मध्य खण्ड में भी बतलाया गया है कि एक बार शाम के समय आकाश में बादल छा गये और जोर से गर्जने लगे, तो सारे वैष्णव अत्यन्त भयभीत हो गये। किन्तु महाप्रभु ने अपनी करतालें उठाईं और आकाश की ओर देखकर स्वयं हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन प्रारम्भ कर दिया, मानो उच्च लोक के देवताओं को निर्देश दे रहे हों। इस तरह जितने बादल घिरे थे, वे बँट गये, आकाश स्वच्छ हो गया और चन्द्रमा निकल आने पर महाप्रभु अपने हर्षित तथा सन्तुष्ट भक्तों के साथ सुखपूर्वक नाचने लगे।

एक-दिन प्रभु श्रीवासेरे आज्ञा दिल ।

‘बृहत्सहस्र-नाम' पड़, शुनिते मन हैल ॥90॥

एक-दिन-एक दिन; प्रभु–महाप्रभु ने; श्रीवासेरे-श्रीवास ठाकुर को; आज्ञा-आज्ञा; दिल–दी; बृहत् बृहत; सहस्र-नाम-एक हजार नाम; पड़-पढ़ो; शुनिते-सुनने के लिए; मन–मन; हैल-है।

अनुवाद

एक दिन महाप्रभु ने श्रीवास ठाकुर से बृहत् सहस्रनाम (विष्णु सहस्रनाम) पढ़ने के लिए कहा, क्योंकि महाप्रभु को उस समय उन्हें सुनने की इच्छा हुई।

पड़िते आइला स्तवे नृसिंहेर नाम।

शुनिया आविष्ट हैला प्रभु गौरधाम ॥91॥

पड़िते-पढ़ते समय; आइला–आया; स्तवे-प्रार्थना में; नृसिंहेर-भगवान् नृसिंह का; नाम-पावन नाम; शुनिया-सुनकर; आविष्ट–मग्न; हैला-हो गये; प्रभु-भगवान्; गौर-धाम-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

जब वे विष्णु सहस्रनाम पढ़ रहे थे, तो भगवान् नृसिंह का पवित्र नाम आया। नृसिंह नाम सुनते ही महाप्रभु भाव में पूरी तरह निमग्न हो गये।

तात्पर्य

चैतन्य-मंगल के मध्य खण्ड में यह घटना इस प्रकार से वर्णित है : श्रीवास पण्डित अपने पिता का श्राद्ध कर्म सम्पन्न कर रहे थे और प्रथानुसार वे विष्णु सहस्रनाम सुन रहे थे। उसी समय गौरहरि (भगवान् चैतन्य) वहाँ आये और वे भी प्रसन्न-मन से विष्णु सहस्रनाम सुनने लगे। जब उन्होंने भगवान् नृसिंह का पवित्र नाम सुना, तो वे भावाविष्ट हो गये और नृसिंह प्रभु की ही तरह क्रुद्ध हो उठे। उनकी आँखें लाल हो गईं, उनके रोम खड़े हो गये, उनके शरीर के सारे अंग काँपने लगे और उन्होंने मेघ जैसी गर्जना की। अचानक उन्होंने गदा उठा ली। सारे लोग यह सोचकर

भयभीत हो उठे कि न जाने हमने अब कौन-सा अपराध किया है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने विचारों को सँभाल लिया और पुनः अपने स्थान पर बैठ गये।

नृसिंह-आवेशे प्रभु हाते गदा लञा ।

पाषण्डी मारिते याय नगरे धाइया ॥92॥

नृसिंह-आवेशे-भगवान् नृसिंह के आवेश में प्रभु-महाप्रभु; हाते-अपने हाथ में; गदा-गदा; लञा–लेकर; पाषण्डी–नास्तिक; मारिते-मारने के लिए; याय-गये; नगरे–नगर में; धाइया-दौड़कर।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु भगवान् नृसिंह देव के आवेश में सारे नास्तिकों का वध करने के लिए उद्यत होकर हाथ में गदा लेकर नगर की सड़कों में दौड़ने लगे।

नृसींह-आवेश देखि' महा-तेजोमय ।

पथ छाड़ि' भागे लोक पाञा बड़ भय ॥ 93॥

नृसिंह-आवेश-भगवान् नृसिंह के मनोभाव में; देखि'–देखकर; महा-तेजो-मय-बहुत डरावनी मुद्रा; पथ छाड़ि'–पथ छोड़कर भागे-भागते हैं; लोक-सभी लोग; पाञा-पाकर; बड़-बहुत अधिक; भय-डरकर।

अनुवाद

लोग उन्हें नृसिंह भगवान् के आवेश में अत्यन्त भयानक रूप में देखकर एवं उनके क्रोध से भयभीत होकर सड़कों से दौड़कर इधर-उधर भाग गये।

लोक-भय देखि’ प्रभुर बाह्य हइल ।

श्रीवास-गृहेते गिया गदा फेलाइल ॥14॥

लोक-भय-डरे हुए लोगों को; देखि’–देखकर; प्रभुर–महाप्रभु की; बाह्य-बाह्य चेतना; हइल-प्रकट हुई; श्रीवास-गृहेते-श्रीवास पण्डित के घर में; गिया-वहाँ जाकर; गदागदा; फेलाइल-फेंक दी।

अनुवाद

लोगों को इस तरह भयभीत देखकर महाप्रभु को बाह्य चेतना आई, अतएव वे श्रीवास ठाकुर के घर लौट आये और गदा फेंक दी।

श्रीवासे कहेन प्रभु करिया विषाद ।

लोक भय पाय,—मोर हय अपराध ॥ 95॥

श्रीवासे-श्रीवास ठाकुर को; कहेन–कहा; प्रभु–महाप्रभु; करिया–होकर; विषाद-शोकग्रस्त; लोक-लोग; भय पाय-डर गये; मोर-मेरा; हय-है; अपराध-अपराध।

अनुवाद

महाप्रभु खिन्न हुए और उन्होंने श्रीवास ठाकुर से कहा, “जब मैंने भगवान् नृसिंह देव का आवेश धारण किया, तो लोग बहुत भयभीत हो उठे, अतएव मैं रुक गया, क्योंकि लोगों में भय उत्पन्न करना अपराध है।”

श्रीवास बलेन,—ये तोमार नाम लय ।

तार कोटि अपराध सब हय क्षय ॥96॥

श्रीवास बलेन-श्रीवास पण्डित ने कहा; ये-जो कोई; तोमर-आपका; नाम-पावन नाम; लय-लेता है; तार-उसके; कोटि-एक करोड़; अपराध-अपराध; सब-सब; हय–हो जाते हैं; क्षय–समाप्त।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर ने उत्तर दिया, "जो व्यक्ति आपका पवित्र नाम लेता है, उसके एक करोड़ अपराध भी तुरन्त क्षय हो जाते हैं।"

अपराध नाहि, कैले लोकेर निस्तार।

ये तोमा' देखिल, तार छुटिल संसार ॥97॥

अपराध-अपराध; नाहि-नहीं; कैले–किया; लोकेर-लोगों का निस्तार-उद्धार; ये–जिस किसी ने; तोमा'–आपको; देखिल-देखा; तार-उसका; छुटिल-छूट गया; संसार-भौतिक बन्धन।

अनुवाद

"नृसिंह रूप प्रकट करके आपने कोई अपराध नहीं किया। बल्कि जिस किसी व्यक्ति ने आपको उस आवेश में देखा, वह तुरन्त ही भौतिक अस्तित्व से मुक्त हो गया।"

एत बलि' श्रीवास करिल सेवन।

तुष्ट हञा प्रभु आइला आपन-भवन ॥98॥

एत बलि'-यह कहकर; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर ने; करिल-की; सेवन-पूजा; तुष्ट-सन्तुष्ट; हञा–होकर; प्रभु–महाप्रभु; आइला–लौट आये; आपन-भवन-अपने घर में।

अनुवाद

यह कहकर श्रीवास ठाकुर ने महाप्रभु की पूजा की, जिससे वे परम तुष्ट हुए और अपने घर चले गये।

आर दिन शिव-भक्त शिव-गुण गाय।

प्रभुर अङ्गने नाचे, डमरु बाजाय ॥99॥

आर दिन-किसी और दिन; शिव-भक्त-शिवजी का एक भक्त; शिव-गुण-शिवजी के गुण; गाय-गाता है; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; अङ्गने-आंगन में; नाचे-नृत्य करता है; डमरु-डमरू; बाजाया-बजाता है।

अनुवाद

दूसरे किसी दिन शिवजी का कोई महान् भक्त महाप्रभु के घर आया और वह शिवजी के गुणों का वर्णन कर-करके आँगन में नाचने और अपना डमरू बजाने लगा।

महेश-आवेश हैला शचीर नन्दन।

तार स्कन्धे चड़ि नृत्य कैल बहु-क्षण ॥100॥

महेश-आवेश-शिवजी की मनोवृत्ति में, हैला-आ गये; शचीर-माता शची के; नन्दन-पुत्र; तार स्कन्धे-उसके कन्धे पर; चड़ि-चढ़कर; नृत्य-नाच; कैल–किया; बहु-क्षण-लम्बे समय तक।

अनुवाद

तब चैतन्य महाप्रभु शिवजी के भावावेश में उस व्यक्ति के कंधे पर चढ़ गये और इस तरह लम्बे समय तक दोनों साथ-साथ नाचते रहे।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने शिवजी का भावावेश धारण किया, क्योंकि वे शिव भी हैं। अचिन्त्य-भेदाभेद तत्त्व दर्शन के अनुसार शिवजी भगवान् विष्णु से भिन्न नहीं हैं, फिर भी शिवजी भगवान् विष्णु नहीं हैं, जिस प्रकार दही दूध ही है, तो भी दूध नहीं है। दही पीने से दूध का लाभ नहीं मिल सकता। इसी तरह शिवजी की पूजा करके मोक्ष नहीं प्राप्त किया जा सकता। यदि मोक्ष की इच्छा हो, तो भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (9.4) में हुई है—मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः–हर वस्तु भगवान् पर टिकी है, क्योंकि हर वस्तु उनकी शक्ति है, फिर भी वे सर्वत्र नहीं रहते। महाप्रभु द्वारा शिवजी का आवेश ग्रहण करना असाधारण नहीं है, किन्तु किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि शिवजी की पूजा करने से वह चैतन्य महाप्रभु की पूजा करता है। यह भारी भूल होगी।

आर दिन एक भिक्षुक आइला मागिते ।

प्रभुर नृत्य देखि नृत्य लागिल करिते ॥101॥

आर-अन्य; दिन-दिन; एक-एक; भिक्षुक–भिक्षु; आइला–आया; मागिते-माँगने के लिए; प्रभुर–महाप्रभु का; नृत्य-नृत्य; देखि-देखकर; नृत्य-नृत्य; लागिल-करने लगा; करिते-करना।

अनुवाद

दूसरे किसी दिन एक भिक्षुक महाप्रभु के घर भिक्षा माँगने आया। किन्तु जब उसने महाप्रभु को नाचते देखा, तो वह भी नाचने लगा।

प्रभु-सङ्गे नृत्य करे परम उल्लासे ।

प्रभु तारे प्रेम दिल, प्रेम-रसे भासे ॥102॥

प्रभु-सङ्गे–महाप्रभु के साथ; नृत्य करे-नृत्य कर रहा था; परम-परम; उल्लासे-हर्ष में; प्रभु–महाप्रभु ने; तारे-उसे; प्रेम-भगवत्प्रेम; दिल-दिया; प्रेम-रसे–भगवत्प्रेम के रस में; भासे-तैरने लगा।

अनुवाद

वह महाप्रभु के साथ नाचने लगा, क्योंकि उसे कृष्ण-प्रेम की कृपा प्राप्त हुई थी। इस प्रकार वह भगवत्प्रेम के रस में बहने लगा।

आर दिने ज्योतिष सर्वज्ञ एक आइल ।

ताहारे सम्मान करि' प्रभु प्रश्न कैल ॥ 103 ॥

आर दिने-किसी और दिन; ज्योतिष-एक ज्योतिषी भी; सर्वज्ञ-सब कुछ जानने वाला; एक-एक; आइल-वहाँ आया; ताहारे-उसको; सम्मान करि'–सम्मान करके; प्रभु–महाप्रभु ने प्रश्न-प्रश्न; कैल–पूछा।

अनुवाद

दूसरे किसी दिन एक ज्योतिषी आया, जो भूत, वर्तमान और भविष्य-सभी जानने वाला माना जाता था। अतएव महाप्रभु ने उसका सम्मान किया और उससे यह प्रश्न पूछा।

तात्पर्य

ब्राह्मण सामान्यतया ज्योतिषी, आयुर्वेदिक वैद्य, शिक्षक और पुरोहित बनते थे। यद्यपि ये अत्यन्त विद्वान एवं सम्मानीय ब्राह्मण होते थे, किन्तु वे द्वार-द्वार जाकर अपने ज्ञान का वितरण करते

रहते थे। ब्राह्मण सर्वप्रथम गृहस्थ के द्वार जाकर उसे बताता था कि अमुक-अमुक तिथि को अमुक पर्व है और उस तिथि विशेष के दिन क्या क्या कार्य करने हैं। किन्तु यदि परिवार में कोई व्यक्ति बीमार होता, तो गृहस्थ उस ब्राह्मण को वैद्य के रूप में मानकर उसकी सलाह लेते थे और वह ब्राह्मण कुछ निर्देश तथा कुछ औषधियाँ बतलाता था। चूँकि ब्राह्मण ज्योतिष विद्या में भी पटु होते थे, अतएव कभी-कभी लोग अपने भूत, वर्तमान और भविष्य के बारे में जिज्ञासा करते थे।

यद्यपि वह ब्राह्मण महाप्रभु के घर पर भिक्षुक रूप में आया था, किन्तु महाप्रभु ने उसका सम्मान किया, क्योंकि वह योग्य ब्राह्मण था, जो ज्योतिष-विद्या भी पूर्णतया जानता था। यद्यपि ब्राह्मण भिक्षुक की तरह द्वार-द्वार जाया करते थे, किन्तु उनका स्वागत सम्मानीय अतिथि की तरह किया जाता था। पाँच सौ वर्ष पूर्व, चैतन्य महाप्रभु के समय हिन्दू समाज में यह प्रथा थी। यह प्रथा सौ वर्ष पूर्व भी प्रचलित थी। पचास-साठ वर्ष पूर्व भी, जब हम बच्चे थे, तब भी यह प्रथा चालू थी कि ऐसे ब्राह्मण विनम्र भिक्षुओं की तरह गृहस्थों के यहाँ आते और गृहस्थ लोग ऐसे ब्राह्मणों की कृपा से बड़ा लाभ उठाते थे। सबसे बड़ा लाभ तो यह था कि गृहस्थों को डाक्टरों (वैद्यों) पर प्रचुर धन व्यय नहीं करना पड़ता था, क्योंकि ऐसे ब्राह्मण भूत, वर्तमान तथा भविष्य तो बतलाते ही थे, साथ ही कुछ निर्देश तथा दवाएँ देकर सामान्यतया सभी प्रकार के रोग भी ठीक कर देते थे। इस तरह कोई भी व्यक्ति उच्च कोटि के वैद्य, ज्योतिषी तथा पुरोहित के लाभ से वंचित नहीं रहता था। इस्कॉन के प्रमुख सदस्यों को हमारे डल्लास स्कूल की ओर ध्यान देना चाहिए, जहाँ बच्चों को पक्का ब्राह्मण बनने के लिए संस्कृत तथा अंग्रेजी पढ़ाई जाती है। यदि उन्हें वास्तव में पक्के ब्राह्मण का प्रशिक्षण दिया जाए, तो वे समाज को चोर-उचक्कों से बचा सकते हैं। निस्सन्देह, योग्य ब्राह्मणों के संरक्षण में लोग सुखपूर्वक रह सकते हैं। इसीलिए भगवद्गीता (4.13) में समाज-विभाजन पर विशेष बल दिया गया है (चातुर्वर्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः) । दुर्भाग्यवश कुछ लोग ब्राह्मण कुल में

जन्म लेने मात्र से ब्राह्मण होने का दावा करना चाहते हैं, जबकि उनमें कोई योग्यता नहीं रहती। इसीलिए सारा समाज अव्यवस्थित है।

के आछिलुँ आमि पूर्व जन्मे कह गणि' ।

गणिते लागिला सर्वज्ञ प्रभु-वाक्य शुनि' ॥ 104॥

के आछिलुँ आमि-मैं कौन था; पूर्व जन्मे–मेरे पिछले जन्म में; कह-कृपया कहो; गणि'-अपनी ज्योतिष गणना से; गणिते-हिसाब लगाकर; लागिला-आरम्भ किया; सर्वज्ञ-भूत, वर्तमान और भविष्य जानने वाला; प्रभु-वाक्य-चैतन्य महाप्रभु के शब्द; शुनि'–सुनकर।

अनुवाद

महाप्रभु ने पूछा, "कृपया मुझे अपनी ज्योतिष-गणना से बतायें कि मैं पिछले जन्म में कौन था?" महाप्रभु की यह बात सुनकर ज्योतिषी तुरन्त गणना करने लगा।

तात्पर्य

ज्योतिष से भूत, वर्तमान और भविष्य को जाना जा सकता है। आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिर्विदों को न भूत का ज्ञान है न भविष्य का, न ही वे वर्तमान के विषय में ठीक से कुछ कह सकते हैं। किन्तु यहाँ हम पाते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु का आदेश पाते ही ज्योतिषी तुरन्त गणना करने लगा। यह दिखावा न था। वह ज्योतिष द्वारा सचमुच ही किसी के विगत जीवन के बारे में निश्चित रूप से बतला सकता था। भृगुसंहिता नामक बृहद्-भाष्य में ऐसी पद्धति दी हुई है, जिससे कोई भी अपने भूत और भविष्य के बारे में तुरन्त ही सूचना प्राप्त कर सकता है। घर-घर भिखारियों के समान घूमने वाले ब्राह्मणों को ऐसे अपार ज्ञान पर पूर्ण अधिकार होता था। इस तरह समाज के

गरीब से गरीब व्यक्ति को भी उच्चतम ज्ञान सहज ही उपलब्ध रहता था। गरीब से गरीब व्यक्ति अपने भूत, वर्तमान और भविष्य के विषय में किसी ज्योतिषी से पूछताछ कर सकता था, जिसके लिए उसे न तो कोई व्यापारिक समझौता करना होता था, न बड़ा भुगतान करना पड़ता था। ब्राह्मण बिना पारिश्रमिक के ही अपने ज्ञान का पूरा लाभ उसे देता था और गरीब व्यक्ति बदले में एक मुट्ठी चावल या जो भी कुछ उसके पास होता था, देकर ब्राह्मण को तुष्ट करता था। एक परिपूर्ण मानव-समाज में किसी भी विज्ञान का संपूर्ण ज्ञान, चाहे वह चिकित्सा विज्ञान हो, ज्योतिष हो या अन्य विज्ञान, गरीब से गरीब व्यक्ति के लिए उपलब्ध रहता है, जिसके लिए भुगतान करने की कोई चिन्ता नहीं रहती। किन्तु वर्तमान समय में किसी को भी न्याय, औषधि-उपचार, ज्योतिष-सहायता या धर्म-सम्बन्धी परामर्श धन के बिना नहीं मिल सकता और चूँकि लोग सामान्यतया गरीब होते हैं, अतएव वे इन महान् विज्ञानों के लाभ से वंचित रह जाते हैं।

गणि' ध्याने देखे सर्वज्ञ,—महा-ज्योतिर्मय ।

अनन्त वैकुण्ठ-ब्रह्माण्ड—सबार आश्रय ॥105॥

गणि'–गणना करके; ध्याने-ध्यान से; देखे-देखता है; सर्वज्ञ-सर्वज्ञ; महा-ज्योतिर्-मय-महा ज्योतिर्मय शरीर; अनन्त-अनन्त; वैकुण्ठ-वैकुण्ठ; ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्ड; सबार-उन सबका; आश्रय-आश्रय।

अनुवाद

उस सर्वज्ञ ज्योतिषी ने गणना और ध्यान के माध्यम से महाप्रभु के अत्यन्त ओजस्वी शरीर को देखा, जो अनन्त वैकुण्ठ-लोकों का आश्रय स्थल है।

तात्पर्य

यहाँ पर हमें वैकुण्ठ-लोक या आध्यात्मिक जगत् की कुछ जानकारी प्राप्त होती है। वैकुण्ठ का अर्थ है "चिन्तारहित।" भौतिक जगत् में हर व्यक्ति चिन्ता से भरा रहता है, किन्तु चिन्तारहित अन्य जगत् का वर्णन भगवद्गीता (8.20) में मिलता है :

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात् सनातनः ।

यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥

"एक दूसरी अव्यक्त प्रकृति भी है, जो शाश्वत है और इस व्यक्त तथा अव्यक्त पदार्थ से परे है। यह सर्वोच्च है और कभी विनष्ट नहीं होती। जब इस संसार की सारी वस्तुएँ विनष्ट हो जाती हैं, तो यह अंश जैसे का तैसा बना रहता है।"

जिस प्रकार भौतिक जगत् के अन्तर्गत अनेक ग्रह हैं, उसी तरह आध्यात्मिक जगत् में भी लाखों ग्रह हैं, जो वैकुण्ठ-लोक कहलाते हैं। ये सारे वैकुण्ठ-लोक या उच्चतर ग्रह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के तेज पर आश्रित हैं। जैसाकि ब्रह्म-संहिता में कहा गया है (यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि) भगवान् के शरीर से निस्सृत ब्रह्म-तेज आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों ही जगतों में असंख्य लोकों की सृष्टि करता है। इस तरह ये लोक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा सृजित हैं। ज्योतिषी ने चैतन्य महाप्रभु को इन्हीं भगवान् के रूप में देखा। इसीसे हम अनुमान लगा सकते हैं कि वह कितना बड़ा विद्वान था, फिर भी वह मानवता के सर्वोच्च उपकार हेतु द्वार-द्वार घूम रहा था, मानो कोई भिखारी हो।

परम-तत्त्व, पर-ब्रह्म, परम-ईश्वर ।

देखि' प्रभुर मूर्ति सर्वज्ञ हइल फाँफर ॥ 106॥

परम-तत्त्व-परम सत्य; पर-ब्रह्म-परम ब्रह्म; परम-ईश्वर-परमेश्वर; देखि'–देखकर; प्रभुर–महाप्रभु का; मूर्ति-रूप; सर्वज्ञ-सर्वज्ञ ज्योतिषी; हइल-हो गया; फाँफर-भ्रमित।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को उसी परम सत्य परम ब्रह्म, भगवान् के रूप में देखकर वह ज्योतिषी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया।

तात्पर्य

यहाँ यह स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि परम सत्य, परम ब्रह्म ही परमेश्वर हैं। अतएव सारी वस्तुओं का स्रोत एक पुरुष है। भगवद्गीता (10.8) में पुष्टि हुई है कि-मत्तः सर्वं प्रवर्ततेसारी वस्तुएँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से प्रारम्भ होती हैं, परमेश्वर परम पुरुष हैं। अतएव जो भी विद्यमान है, चाहे वह पदार्थ हो या आत्मा, वह परम पुरुष या परम जीवन से उद्भूत है। आधुनिक विज्ञानियों का यह सिद्धान्त कि जीवन पदार्थ से उत्पन्न होता है, बकवास है। पदार्थ तथा जीवन दोनों ही जीवन से प्रारम्भ होते हैं। दुर्भाग्यवश वैज्ञानिक इस वैज्ञानिक तथ्य को नहीं जानते। वे अपने तथाकथित ज्ञान के अन्धकार में भटक रहे हैं।

बलिते ना पारे किछु, मौन हइल ।

प्रभु पुनः प्रश्न कैल, कहिते लागिल ॥107॥

बलिते-कहना; ना पारे-असमर्थ; किछु-कुछ; मौन–मौन; हइल-हो गया; प्रभु–महाप्रभुः पुनः पुनः; प्रश्न–प्रश्न; कैल–पूछा; कहिते-बोलने; लागिल-लगा।

अनुवाद

वह ज्योतिषी आश्चर्यचकित होकर मौन रह गया। वह कुछ बोल नहीं सका। किन्तु जब महाप्रभु ने फिर वही प्रश्न पूछा, तो उसने इस प्रकार उत्तर दिया।

पूर्व जन्मे छिला तुमि जगताश्रय ।

परिपूर्ण भगवान् सर्वैश्वर्यमय ॥108॥

पूर्व जन्मे–पुर्व जन्म में; छिला–थे; तुमि-आप; जगत्-जगत्; आश्रय-आश्रय; परिपूर्ण–पूर्ण शक्तियों से युक्त; भगवान्-भगवान्, ईश्वर; सर्व-ऐश्वर्य-मय-सर्व ऐश्वर्यों से युक्त।

अनुवाद

हे प्रभु! पिछले जन्म में आप समस्त सृष्टि के आश्रय, सब ऐश्वर्यों से पूर्ण भगवान् थे।

पूर्वे यैछे छिला तुमि एबेह से-रूप ।

दुर्विज्ञेय नित्यानन्द तोमार स्वरूप ॥ 109॥

पूर्वे-भूतकाल में; यैछे-जैसे; छिला-थे ; तुमि-आप; एबेह-अब भी; से-रूप-वही वस्तु; दुर्विज्ञेय-अचिन्त्य; नित्यानन्द-सनातन आनन्द; तोमार-आपका; स्वरूप-स्वरूप।

अनुवाद

“आप अब भी वही भगवान् हैं, जो अपने पूर्वजन्म में थे। आपका स्वरूप अचिन्त्य एवं सनातन आनन्दमय है।”

तात्पर्य

ज्योतिष-विज्ञान की सहायता से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की स्थिति भी निश्चित की जा सकती है। हर वस्तु को उसके लक्षणों से पहचाना जाता है। भगवान् को शास्त्रों में दिये गये लक्षणों से पहचाना जाता है। ऐसा नहीं है कि शास्त्रों के प्रमाण के बिना ही हर कोई ईश्वर बन सकता है।

प्रभु हासि' कैला,—तुमि किछु ना जानिला।

पूर्वे आमि आछिलाँ जातिते गोयाला ॥110॥

प्रभु–महाप्रभु ने; हासि'–मुस्कुराकर, कैला-कहा; तुमि-तुम; किछु-कुछ भी; ना–नहीं; जानिला–जानते हो; पूर्वे- भूतकाल में; आमि-मैं; आछिलाँ–था; जातिते-जाति से; गोयाला-ग्वाला।

अनुवाद

जब ज्योतिषी महाप्रभु के विषय में बड़ी बातें कर रहा था, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसे रोका और हँसते हुए कहा, "हे महोदय, मुझे लगता है कि आप ठीक से नहीं जानते कि मैं कौन था, क्योंकि मैं जानता हूँ कि पिछले जन्म में मैं ग्वालबाल था।

गोप-गृहे जन्म छिल, गाभीर राखाल।

सेइ पुण्ये हैलाँ एबे ब्राह्मण-छाओयाल ॥111॥

गोप-गृहे-एक ग्वाले के घर में; जन्म-जन्म; छिल-लिया था; गाभीर-गौओं का; राखाल-रखवाला; सेइ पुण्ये-उन्हीं पवित्र गतिविधियों के कारण; हैलाँ-हो गया; एबे-अब; ब्राह्मण-ब्राह्मण का; छाओयाल–पुत्र।

अनुवाद

"मैं अपने पिछले जन्म में ग्वालों के परिवार में उत्पन्न हुआ था और मैंने गायों तथा बछड़ों को संरक्षण प्रदान किया था। ऐसे पुण्यकर्मों के ही कारण अब मैं ब्राह्मण-पुत्र के रूप में आया हूँ।"

तात्पर्य

सर्वश्रेष्ठ सत्ता श्री चैतन्य महाप्रभु के शब्दों से स्पष्ट पता चलता है कि गायों को पालने और उनकी रक्षा करने से ही मनुष्य पुण्यात्मा बनता है। दुर्भाग्यवश लोग इतने धूर्त हो चुके हैं कि वे अधिकारियों के शब्दों की भी परवाह नहीं करते। सामान्यतया लोग ग्वालों को समाज के निम्न सदस्य मानते हैं, किन्तु यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु पुष्टि करते हैं कि वे इतने पुण्यात्मा होते हैं कि अगले जन्म में वे ब्राह्मण बनेंगे। जाति-प्रणाली का विशिष्ट प्रयोजन होता है। यदि इस वैज्ञानिक पद्धति का पालन किया जाए, तो मानव-समाज को सर्वाधिक लाभ होगा। महाप्रभु के इस आदेश को ध्यान में रखते हुए मनुष्यों को चाहिए कि गायों तथा बछड़ों की सेवा करें और बदले में प्रचुर दूध प्राप्त करें। गायों तथा बछड़ों की सेवा करने में कोई हानि नहीं है, किन्तु वर्तमान मानव-समाज इतना गिर चुका है कि लोग गायों तथा बछड़ों की सेवा करना तो दूर रहा, उनका वध करते हैं। भला ऐसे पापकर्म करते हुए वे मानव-समाज में शान्ति और समृद्धि की आशा कैसे कर सकते हैं? यह असम्भव है।

सर्वज्ञ कहे आमि ताहा ध्याने देखिलाँ।

ताहाते ऐश्वर्य देखि' फाँफर हइलाँ ॥112॥

सर्व-ज्ञ-सर्वज्ञ ज्योतिषी; कहे-कहता है; आमि-मैं; ताहा-वह जो; ध्याने-ध्यान में; देखिलाँ–देखा; ताहाते-वहाँ; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; देखि'–देखने से; फाँफर-भ्रमित; हइलाँ–हो गया।

अनुवाद

ज्योतिषी ने कहा, "मैंने ध्यान में जो कुछ देखा वह ऐश्वर्यमय था, इसीलिए मैं भ्रमित हो गया।"

तात्पर्य

ऐसा प्रतीत होता है कि वह ज्योतिषी न केवल भूत, वर्तमान एवं भविष्य का ज्ञाता था, अपितु अच्छा ध्यानी भी था। अतएव वह एक महान् भक्त था और चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण-रूप में देख सकता था। किन्तु वह असमंजस में था कि क्या कृष्ण तथा श्री चैतन्य महाप्रभु वास्तव में एक ही पुरुष थे।

सेइ-रूपे एइ-रूपे देखि एकाकार।

कभु भेद देखि, एइ मायाय तोमार ॥113॥

सेइ-रूपे-उसी रूप में; एइ-रूपे-इस रूप में; देखि–मैं देखता हूँ; एक-आकार-एक रूप; कभु-कभी-कभी; भेद-भेद; देखि-मैं देखता हूँ; एइ–यह; मायाय तोमार-आपकी माया।

अनुवाद

"मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आपका यह स्वरूप तथा ध्यान में देखा गया स्वरूप एक ही हैं। यदि मुझे भेद कोई दिखता है, तो यह आपकी माया का काम है।"

तात्पर्य

श्रीकृष्णचैतन्य राधाकृष्ण नहे अन्य–पूर्ण भक्त की दृष्टि में श्री चैतन्य महाप्रभु राधा तथा कृष्ण के सम्मिलित रूप हैं। जो व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण से भिन्न मानते हैं, वे माया के वशीभूत होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ज्योतिषी पहले से उच्च कोटि का भक्त था और जब वह

श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष आया, तो वह पूर्णतया स्वरूपसिद्ध बन गया और यह देख सका कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण तथा श्री चैतन्य महाप्रभु एक ही परम पुरुष हैं।

ये हओ, से हओ तुमि, तोमाके नमस्कार।

प्रभु तारे प्रेम दिया कैल पुरस्कार ॥114॥

ये हओ-आप जो कुछ हैं; से हओ तुमि-आप जो कुछ हो सकते हैं; तोमाके-आपको; नमस्कार–मेरा नमस्कार; प्रभु–महाप्रभु; तारे-उसको; प्रेम-भगवत्प्रेम; दिया-दिया; कैल–किया; पुरस्कार–सम्मान।

अनुवाद

वह सर्वज्ञ ज्योतिषी इस नतीजे पर पहुँचा, "आप जो भी और जो कुछ भी हैं, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।" तब महाप्रभु ने अपनी अहैतुकी कृपा से उसे भगवत्प्रेम प्रदान किया और उसकी सेवा का उसे फल मिल गया।

तात्पर्य

सर्वज्ञ ज्योतिषी से महाप्रभु की इस भेंट का वर्णन चैतन्य-भागवत में नहीं मिलता, किन्तु इस कारण हम यह भी नहीं कह सकते कि यह भेंट हुई ही नहीं थी। बजाय इसके, हमें कृष्णदास कविराज गोस्वामी के इस कथन को स्वीकार कर लेना चाहिए कि जो कुछ चैतन्य-भागवत में नहीं मिलता, उसका विशेष वर्णन उन्होंने चैतन्य-चरितामृत में किया है।

एक दिन प्रभु विष्णु-मण्डपे वसिया।

'मधु आन', 'मधु आन' बलेन डाकिया ॥ 115॥

एक दिन-एक दिन; प्रभु–महाप्रभु; विष्णु-मण्डपे-एक विष्णु मन्दिर के बरामदे में; वसिया–बैठे हुए; मधु आन-मधु (शहद) लाओ; मधु आन-मधु (शहद) लाओ; बलेन-कहते हैं; डाकिया-उच्च स्वर में।

अनुवाद

एक दिन महाप्रभु विष्णु-मन्दिर की बारादरी में बैठकर जोर-जोर से पुकारने लगे, "थोड़ा शहद लाओ! थोड़ा शहद लाओ!"

नित्यानन्द-गोसाञि प्रभुर आवेश जानिल ।

गङ्गा-जल-पात्र आनि' सम्मुखे धरिल ॥ 116॥

नित्यानन्द-गोसाञि-नित्यानन्द प्रभुः प्रभुर–महाप्रभु की; आवेश-भावदशा; जानिल-समझ सके; गङ्गा-जल-गंगा जल; पात्र–पात्र; आनि'–लाकर; सम्मुखे-सामने; धरिल-रख दिया।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु गोसांई श्री चैतन्य महाप्रभु के भावावेश को समझ गये, अतएव उन्होंने संकेत के रूप में एक बर्तन में गंगाजल लाकर उनके सम्मुख रख दिया।

जल पान करिया नाचे हञा विह्वल ।

यमुनाकर्षण-लीला देखये सकल ॥ 117॥

जल-जल; पान करिया-पीने के बाद; नाचे-नृत्य करते हैं; हञा–होकर; विह्वल-भावाविष्ट; यमुना-आकर्षण-यमुना नदी का आकर्षण; लीला-लीलाएँ; देखये-देखता है; सकल-प्रत्येक व्यक्ति।

अनुवाद

उस जल को पने के बाद भगवान् चैतन्य इतने भावाविष्ट हो गये कि वे नाचने लगे। इस प्रकार सबने यमुना-आकर्षण-लीला देखी।

तात्पर्य

यमुनाकर्षण-लीला यमुना को आकृष्ट करने की लीला है। एक दिन श्री बलदेव की इच्छा हुई कि यमुना नदी उनके सामने उपस्थित हो जाए, किन्तु जब यमुना नदी ने आने से मना कर दिया, तो उन्होंने नहर खोदने की इच्छा से अपना हल उठाया, ताकि यमुना वहाँ आने को बाध्य हो जाए। चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु बलदेव के आदिरूप हैं, अतएव भावावेश में उन्होंने शहद लाने के लिए कहा। इस प्रकार वहाँ खड़े सारे भक्तों ने यमुनाकर्षण-लीला का साक्षात्कार किया। इस लीला में बलदेव के साथ उनकी सखियाँ भी थीं। वे शहद का पेय अर्थात् वारुणी पीकर यमुना में कूदकर सखियों के साथ तैरना चाहते थे। श्रीमद्भागवत (10.65.25-30, 33) में बलताया गया है कि भगवान् बलदेव ने यमुना को निकट आने के लिए कहा, किन्तु जब यमुना ने आज्ञा नहीं मानी, तो वे नाराज हो उठे और उन्होंने अपने हल से उसे अपने पास खींचकर लाना चाहा। किन्तु यमुना भगवान् बलराम के क्रोध से भयभीत हो उठी और अपनी त्रुटि स्वीकार करते हुए तुरन्त उनकी शरण में चली आई। तब उसे क्षमादान मिल गया। यमुनाकर्षण-लीला का यही सारांश है। जयदेव गोस्वामी ने दश अवतारों की स्तुति में भी इस घटना का वर्णन किया है :

वहसि वपुषि विषदे वसनं जलदाभं ।

हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ।

केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे ॥

मद-मत्त-गति बलदेव-अनुकार।

आचार्य शेखर ताँरे देखे रामाकार॥ 118॥

मद-मत्त-वारुणी मदिरा पीने से उन्मत्त होकर; गति-गति; बलदेव-भगवान् बलदेव; अनुकार-अनुकरण करके; आचार्य-अद्वैत आचार्य ने; शेखर–प्रमुख; ताँरे-उनको; देखे-देखा; राम-आकार–बलराम के रूप में।

अनुवाद

जब महाप्रभु बलदेव के भावावेश में मधु पीकर उन्मत्त होकर घूम रहे थे, तो आचार्यों में प्रमुख(आचार्य शेखर) अद्वैत आचार्य ने उन्हें बलराम के रूप में देखा।

वनमाली आचार्य देखे सोणार लाङ्गल।

सबे मिलि' नृत्य करे आवेशे विह्वल॥ 119॥

वनमाली आचार्य-वनमाली आचार्य ने; देखे-देखा; सोणार-सुवर्ण निर्मित; लाङ्गल-हल; सबे-सब; मिलि'–मिलकर; नृत्य-नृत्य; करे–किया; आवेशे-आवेश में आकर; विह्वल-विह्वल होकर।

अनुवाद

वनमाली आचार्य ने बलराम के हाथ में सोने का हल देखा और सारे भक्त एकत्र होकर आवेश में आकर नाचने लगे।

एइ-मत नृत्य हइल चारि प्रहर।

सन्ध्याय गङ्गा-स्नान करि' सबे गेला घर॥ 120॥

एइ-मत-इस प्रकार; नृत्य-नृत्य; हइल–किया गया; चारि–चार; प्रहर–प्रहर (तीन घंटे का समय); सन्ध्याय-सायंकाल में; गङ्गा-स्नान-गंगा में स्नान; करि'–करके; सबे-सब; गेला–लौट गये; घर-घर।

अनुवाद

इस प्रकार वे बारह घंटों तक नाचते रहे और संध्या-समय गंगा में स्नान करने के बाद अपने अपने घर चले गये।

नगरिया लोके प्रभु यबे आज्ञा दिला।

घरे घरे सङ्कीर्तन करिते लागिला॥ 121॥

नगरिया–नागरिक; लोके–सभी लोग; प्रभु–महाप्रभु के; यबे–जब; आज्ञा-आज्ञा; दिला-दी; घरे घरे–प्रत्येक घर में; सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण मंत्र का संकीर्तन; करिते-करना; लागिला–आरम्भ किया।

अनुवाद

महाप्रभु ने नवद्वीप के सारे नागरिकों को हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने का आदेश दिया और वे घर-घर में नियमित रूप से संकीर्तन करने लगे।

'हरये नमः, कृष्ण यादवाय नमः।

गोपाल गोविन्द राम श्री-मधुसूदन’ ॥ 122॥

हरये नमः-भगवान् हरि को मैं सादर नमस्कार करता हूँ; कृष्ण-हे कृष्ण; यादवाय-यदुवंश के वंशज को; नमः-नमस्कार; गोपाल-गोपाल; गोविन्द-गोविन्द; राम-राम; श्री-मधुसूदन-श्री मधुसूदन।

अनुवाद

[सारे भक्त हरे कृष्ण महामन्त्र के साथ यह लोकप्रिय गीत भी गाने लगे] “हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः / गोपाल गोविन्द राम श्री मधुसूदन।”

मृदङ्ग-करताल सङ्कीर्तन-महाध्वनि ।

‘हरि’ ‘हरि–ध्वनि विना अन्य नाहि शुनि ॥ 123॥

मृदङ्ग-मृदंग; करताल-करताल; सङ्कीर्तन-भगवान् के पावन नाम का कीर्तन; महा-ध्वनि-महान् ध्वनि; हरि-भगवान्; हरि-प्रभु; ध्वनि-ध्वनि; विना-बिना; अन्य-अन्य; नाहि-नहीं; शुनि-सुन सकता।

अनुवाद

जब इस तरह संकीर्तन आन्दोलन आरम्भ हो गया, तो नवद्वीप में ‘हरि!’ ‘हरि!’ शब्दों की ध्वनि एवं मृदंग तथा करताल बजने की ध्वनि के अतिरिक्त कोई अन्य ध्वनि किसी को सुनाई नहीं पड़ती थी।

तात्पर्य

अब अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ का एक विश्वकेन्द्र नवद्वीप, मायापुर में है। इस केन्द्र के मैनेजरों को चाहिए कि वे यह देखें कि यहाँ हरे कृष्ण महामन्त्र के साथ-साथ हरये नमः कृष्ण यादवाय नम: का कीर्तन चौबीसों घण्टे होता रहे, क्योंकि यह श्री चैतन्य का एक प्रिय भजन था। किन्तु ऐसे संकीर्तन के पूर्व पंचतत्त्वों- श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द, श्रीअद्वैत, गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द का कीर्तन अवश्य हो। हमें पहले से ही इन दो मन्त्रों श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द तथा हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का कीर्तन करने की आदत है। अब इन दोनों मन्त्रों के बाद विशेष रूप से मायापुर में अन्य दो पंक्तियाँ भी जोड़ लेनी चाहिए-हरये नमः, कृष्ण यादवाय नमः / गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन। इन छह पंक्तियों का कीर्तन इतने सुचारु रूप से चलना चाहिए कि सुनने वाले को भगवन्नाम के कीर्तन के अतिरिक्त वहाँ अन्य कोई ध्वनि न सुनाई पड़े। इससे यह केन्द्र आध्यात्मिक दृष्टि से परिपूर्ण बन सकेगा।

शुनिया ये क्रुद्ध हैल सकल यवन ।

काजी-पाशे आसि' सबे कैल निवेदन ॥ 124॥

शुनिया-सुनने से; ये-वह; क्रुद्ध-क्रुद्ध; हैल-हो गये; सकल-सब; यवन-मुस्लिम; काजी-पाशे-काजी की कचहरी में; आसि-आकर; सबे-सब ने; कैल-किया; निवेदन–निवेदन।

अनुवाद

हरे कृष्ण मन्त्र की गुंजायमान ध्वनि सुनकर स्थानीय मुसलमानों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर काजी के पास शिकायत की।

तात्पर्य

फौजदार या शहर-कोतवाल काजी कहलाता था। जमींदार या मण्डलेरा भूमि का लगान वसूल करते थे। किन्तु कानून तथा व्यवस्था बनाये रखने और अपराधियों को दण्डित करने का दायित्व काजियों पर था। काजी तथा जमींदार-दोनों ही बंगाल के गवर्नर के अधीन थे, जो उन दिनों 'सूबा बांगला' के नाम से जाना जाता था। नदिया, इस्लामपुर तथा बागोयान जिले हरिहोड़ जमींदार या उसके वंशज कृष्णदास होड़ के अधीन थे। कहा जाता है कि चाँद काजी नवाब हुसैन शाह का गुरु था। एक मत के अनुसार उसका नाम मौलाना सिराजुद्दीन था और दूसरे मत के अनुसार उसका नाम हबिबर रहमान था। चाँद काजी के वंशज आज भी मायापुर के निकट रहते हैं। आज भी लोग चाँद काजी की मजार को देखने जाते हैं, जो एक चम्पक वृक्ष के नीचे बनी है और चाँद काजी की समाधि के नाम से विख्यात है।

क्रोधे सन्ध्या-काले काजी एक घरे आइल ।

मृदङ्ग भाङ्गिया लोके कहिते लागिल ॥ 125॥

क्रोधे-क्रोध में; सन्ध्या-काले-संध्या समय; काजी–चाँद काजी; एक घरे–एक घर में; आइल-आया; मृदङ्ग-मृदंग; भाङ्गिया-तोड़कर; लोके-लोगों को; कहिते-कहने; लागिल-लगा।

अनुवाद

क्रोध से भरा चाँद काजी एक दिन संध्या-समय एक घर में आया और जब उसने देखा कि कीर्तन चल रहा है, तो उसने मृदंग तोड़ डाला और फिर इस प्रकार बोला।

एत-काल केह नाहि कैल हिन्दुयानि ।

एबे ये उद्यम चालाओ कार बल जानि' ॥126 ॥

एत-काल-इतनी देर तक; केह-कोई; नाहि-नहीं; कैल-किया; हिन्दुयानि-हिन्दुओं के नियामक सिद्धान्त; एबे-अब; ये-वह; उद्यम-उद्यम, प्रयास; चालाओ-आप प्रचार करते हैं; कार– जिसकी; बल-शक्ति; जानि'-मैं जानना चाहता हूँ।

अनुवाद

"आज तक तुम सबने हिन्दू धर्म के नियम-सिद्धान्तों का पालन नहीं किया, किन्तु अब बड़े उत्साह से करने लगे हो। क्या मैं जान सकता हूँ कि किसके बल पर ऐसा कर रहे हो?

तात्पर्य

ऐसा प्रतीत होता है कि बंगाल में बक्तियार खिलजी के आक्रमण के समय से लेकर चाँद काजी के समय तक हिन्दू अर्थात् वैदिक परम्परा के अनुयायी बहुत दबे हुए थे। जिस तरह आज के पाकिस्तान में हिन्दू हैं, उसी तरह कोई आजादी से हिन्दू-धर्म के नियमों का पालन नहीं कर सकता था। चाँद काजी ने हिन्दू समाज की इसी दशा का सन्दर्भ लिया है। पहले हिन्दू अपनी हिन्दू-परम्पराओं को खुलकर नहीं मनाया करते थे, किन्तु अब वे मुक्त भाव से हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर रहे थे। अतएव वे लोग किसी और के बलबूते पर ही ऐसा करने का दुस्साहस कर रहे थे।

वास्तव में तथ्य यही था। यद्यपि तथाकथित हिन्दू समाज के सदस्य सामाजिक रीति-रिवाजों का पालन करते चले आ रहे थे, किन्तु वे अपने धार्मिक नियमों का दृढ़ता से पालन करना भूल चुके थे। किन्तु अब श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में वे उनके आदेशानुसार नियामक सिद्धान्तों का पालन करने लगे थे। आज भी वही आदेश है, कहीं भी और कोई भी व्यक्ति विश्व के किसी भी कोने में उसे सम्पन्न कर सकता है। यह आदेश है प्रतिदिन हरे कृष्ण महामन्त्र की कम से कम सोलह मालाओं का जप करके तथा विश्वभर में कृष्णभावनामृत सम्प्रदाय का प्रचार तथा नियमों का पालन

करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु के निर्देशन में गुरु बनना। यदि हम श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश पर अटल रहें, तो निस्सन्देह, हमें आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होगी और हम बिना किसी बाधा के हरे कृष्ण आन्दोलन के इस सम्प्रदाय का प्रचार मुक्त होकर कर सकेंगे।

केह कीर्तन ना करिह सकल नगरे ।

आजि आमि क्षमा करि' याइतेछों घरे ॥ 127॥

केह-कोई भी; कीर्तन-हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन; ना-नहीं; करिह-करो; सकल नगरे–सारे नगर में; आजि-आज; आमि-मैं; क्षमा करि'–क्षमा करके; याइतेछों-लौट जा रहा हूँ; घरे–घर को।

अनुवाद

"कोई भी व्यक्ति नगर की सड़कों में संकीर्तन नहीं करेगा। हाँ, आज मैं इस अपराध को क्षमा करके घर वापस जा रहा हूँ।"

तात्पर्य

विश्व के बड़े बड़े नगरों की सड़कों में संकीर्तन बन्द करने के ऐसे आदेश हरे कृष्ण आन्दोलन के सदस्यों को दिये गये हैं। विश्वभर में हमारे सैंकड़ों केन्द्र हैं और आस्ट्रेलिया में तो हमें विशेष रूप से दण्डित किया गया। पाश्चात्य जगत् के अधिकांश शहरों में हमें अनेक बार पुलिस द्वारा बन्दी बनाया गया, किन्तु फिर भी हम न्यूयार्क, लन्दन, शिकागो, सिडनी, मेलबोर्न, पेरिस तथा हैम्बर्ग जैसे महत्त्वपूर्ण शहरों की सड़कों में संकीर्तन करके श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश का पालन कर रहे हैं। हमें स्मरण रखना चाहिए कि ऐसी घटनाएँ पाँच सौ वर्ष पहले भी घट चुकी हैं और वे आज भी चल रही हैं। ये इसकी सूचक हैं कि हमारा संकीर्तन आन्दोलन आधिकारिक है, क्योंकि यदि संकीर्तन

छोटा-मोटा भौतिक कार्य होता, तो असुरगण इसका विरोध न करते। उस समय के असुरों ने श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा चालू किये गये संकीर्तन आन्दोलन को रोकने का प्रयास किया था। ऐसे ही असुरों द्वारा विश्वभर में चलाये जाने वाले हमारे संकीर्तन आन्दोलन को रोकने का प्रयास हो रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि हमारा संकीर्तन आन्दोलन अब भी शुद्ध एवं प्रामाणिक है, क्योंकि यह श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों पर चल रहा है।

आर यदि कीर्तन करिते लाग पाइमु ।

सर्वस्व दण्डिया तार जाति ये लइमु ॥ 128॥

आर-पुनः; यदि यदि; कीर्तन-हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन; करिते-करने; लाग-लगे; पाइमु-मैं लूँगा; सर्व-स्व-सर्वस्व; दण्डिया-ताड़ना करके; तार-उसका; जाति-जाति; ये-वह; लइमु मैं लूँगा।

अनुवाद

"यदि अगली बार मैंने किसी को ऐसा संकीर्तन करते देखा, तो दण्डस्वरूप न केवल उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर लूँगा, अपितु उसे मुसलमान भी बना दूँगा।"

तात्पर्य

उन दिनों किसी हिन्दू को मुसलमान बना देना आसान काम था। यदि कोई मुसलमान किसी हिन्दू के ऊपर मात्र पानी छिड़क देता, तो यह मान लिया जाता था कि वह हिन्दू मुसलमान हो गया है। अंग्रेजों के सत्ता छोड़ने के समय बाँग्लादेश में पिछले हिन्दू-मुस्लिम दंगों के दौरान अनेक हिन्दुओं के मुँह में गाय का माँस ढूंसकर उन्हें मुसलमान बना लिया गया। श्री चैतन्य महाप्रभु के समय हिन्दू समाज इतना कट्टर था कि यदि कोई हिन्दू मुसलमान बना लिया जाता, तो उसका फिर से सुधार

नहीं हो सकता था। इस तरह भारत में मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ती गई। कोई भी मुसलमान बाहर से नहीं आया था। सामाजिक प्रथाओं ने, किसी न किसी प्रकार, हिन्दुओं को मुसलमान बनने पर बाध्य किया और उनके पुनः हिन्दू समाज में लौट आने का कोई अवसर न छोड़ा। सम्राट औरंगजेब ने भी एक कर लगाया, जो हिन्दुओं को मात्र हिन्दू होने के कारण देना पड़ता था। इसलिए निम्न श्रेणी के सभी गरीब हिन्दू कर से बचने के लिए स्वेच्छा से मुसलमान हो गये। इस प्रकार भारत में मुसलमान जनसंख्या बढ़ती गई। चाँद काजी ने धमकी दी कि वह हिन्दुओं को उनके शरीर पर मात्र पानी छिड़ककर मुसलमान बना देगा।

एत बलि' काजी गेल,—नगरिया लोक।

प्रभु-स्थाने निवेदिल पाञा बड़ शोक ॥ 129॥

एत बलि'–इतना कहकर; काजी-काजी; गेल-लौट गया; नगरिया लोक-सामान्य नागरिकों ने प्रभु-स्थाने-महाप्रभु के सम्मुख; निवेदिल–निवेदन किया; पाञा-पाकर; बड़-बहुत; शोक-आघात।

अनुवाद

यह कहकर काजी घर चला गया, किन्तु हरे कृष्ण कीर्तन करने से वर्जित किये जाने के फलस्वरूप दुःखी भक्तों ने श्री चैतन्य महाप्रभु को अपना दुःखड़ा कह सुनाया।

प्रभु आज्ञा दिल–याह करह कीर्तन।

मुञि संहारिमु आजि सकल यवन ॥130॥

प्रभु–महाप्रभु ने; आज्ञा दिल-आज्ञा दी; याह-जाओ; करह-और करो; कीर्तन-संकीर्तन; मुञि-मैं; संहारिमु-मारूंगा; आजि-आज; सकल-सभी; यवन–मुस्लिमों को।

अनुवाद

महाप्रभु चैतन्य ने आज्ञा दी, "जाओ, संकीर्तन करो। मैं आज सारे मुसलमानों को मार डालूँगा!"

तात्पर्य

गांधी को भारत में अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सूत्रपात करने वाला माना जाता है। किन्तु उनसे भी 500 वर्ष पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु ने चाँद काजी के आदेश के विरुद्ध अपना अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया था। किसी आन्दोलन में बाधा पहुँचाने वाले विरोधी को रोकने के लिए हिंसा पर उतर आना आवश्यक नहीं होता, क्योंकि विवेक तथा तर्क द्वारा आसुरी व्यवहार को समाप्त किया जा सकता है। चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए जब भी बाधाएँ आयें, तो हरे कृष्ण आन्दोलन को तर्क एवं विवेक द्वारा विरोधी को परास्त करना चाहिए, ताकि उनके आसुरी आचरण को रोका जा सके। यदि हम बात-बात में हिंसा पर उतारू हो जायेंगे, तो हम लोगों के लिए अपना काम चलाना कठिन हो जायेगा। अतएव हमें चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए, जिन्होंने चाँद काजी के आदेश का उल्लंघन किया, किन्तु तर्क एवं विवेक से उसे शान्त कर दिया।

घरे गिया सब लोक करये कीर्तन ।

काजीर भये स्वच्छन्द नहे, चमकित मन ॥ 131॥

घरे गिया-घर लौटकर; सब-सब; लोक-नागरिक; करये-किया; कीर्तन-संकीर्तन; काजीर-काजी के; भये-डर से; स्वच्छन्द-स्वच्छन्द होकर; नहे-नहीं; चमकित-सदा चिन्तातुर; मन–मन।

अनुवाद

सारे नागरिक घर लौटकर संकीर्तन करने लगे, किन्तु काजी के आदेश के कारण वे चिन्तामुक्त न थे; वे सदैव चिन्ता से घिरे रहते थे।

ता-सभार अन्तरे भय प्रभु मने जानि ।

कहिते लागिला लोके शीघ्र डाकि' आनि' ॥132॥

ता-सभार–उन सबके; अन्तरे-मन में; भय-भय; प्रभु–महाप्रभु; मने-मन में; जानि-समझकर; कहिते-कहने; लागिला-लगे; लोके-लोगों से; शीघ्र-शीघ्र; डाकि'–बुलाकर; आनि'–उनको लाकर।

अनुवाद

लोगों के मन में घर कर गई चिन्ता को समझते हुए महाप्रभु ने उन सबको बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा।

नगरे नगरे आजि करिमु कीर्तन ।

सन्ध्या-काले कर सभे नगर-मण्डन ॥ 133॥

नगरे–नगर से; नगरे–नगर तक; आजि-आज; करिमु-मैं करूँगा; कीर्तन-हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन; सन्ध्या -काले-संध्या समय; कर-करो; सभे-सब; नगर-नगर की; मण्डन-सजावट।

अनुवाद

"मैं प्रत्येक नगर-नगर में जाकर सन्ध्या-समय संकीर्तन करूँगा। अतएव तुम लोग संध्या-समय नगर को सजाओ।"

तात्पर्य

उस समय नवद्वीप नौ छोटे-छोटे नगर का बना हुआ था, अतएव नगरे नगरे शब्द महत्त्वपूर्ण है। श्री चैतन्य महाप्रभु इन सारे निकटवर्ती नगरों में कीर्तन करना चाह रहे थे। उन्होंने इस उत्सव के लिए नगर के सजाये जाने का आदेश दिया।

सन्ध्याते देउटि सबै ज्वाल घरे घरे ।

देख, कोन काजी आसि' मोरे माना करे ॥ 134॥

सन्ध्याते-संध्या में; देउटि–मशाल ; सबे-प्रत्येक व्यक्ति ने; ज्वाल-जलाए; घरे घरे–प्रत्येक घर में; देख–जरा देखते हैं; कोन-किस प्रकार; काजी–काजी; आसि'-आकर; मोरे-मुझे; माना करे–रुकने की आज्ञा देता है।

अनुवाद

"संध्या-समय घर-घर में मशाल जलाओ। मैं हर एक की रक्षा करूँगा। मैं देखेंगा कि कौन सा काजी आकर हमारे कीर्तन को रोकता है।"

एत कहि' सन्ध्या-काले चाले गौरराय ।

कीर्तनेर कैल प्रभु तिन सम्प्रदाय ॥135॥

एत कहि'-यह कहकर; सन्ध्या-काले-संध्या समय; चले-बाहर गये; गौर-राय-गौर सुन्दर; कीर्तनेर-कीर्तन करने के लिए; कैल-किया; प्रभु–महाप्रभु ने; तिन-तीन; सम्प्रदाय-समुह।

अनुवाद

संध्या-समय भगवान् गौरसुन्दर बाहर गये और कीर्तन करने के लिए उन्होंने तीन मंडलियाँ बना लीं।

तात्पर्य

जुलूस में कीर्तन करने की यही पद्धति होती है। श्री चैतन्य महाप्रभु के समय में एक मंडली में 21 व्यक्ति होते थे-चार मृदंग बजाते थे, एक कीर्तन गाता था और अन्य सोलह व्यक्ति करताल बजाकर प्रमुख कीर्तनिये के पीछे गाते थे। यदि अनेक लोग संकीर्तन आन्दोलन में सम्मिलित हो जाएँ, तो वे महाप्रभु का अनुसरण कर सकते हैं और समय तथा व्यक्तियों की संख्या के अनुसार विभिन्न मंडलियाँ बना सकते हैं।

आगे सम्प्रदाये नृत्य करे हरिदास ।

मध्ये नाचे आचार्य-गोसाञि परम उल्लास ॥136 ॥

आगे-आगे; सम्प्रदाये-समूह में, दल में; नृत्य-नृत्य; करे-करते हैं; हरिदास-ठाकुर हरिदास; मध्ये-मध्य में; नाचे-नृत्य करते हैं; आचार्य-गोसाञि-श्री अद्वैत आचार्य; परम-परम; उल्लास–प्रसन्न होकर।

अनुवाद

मंडली के आगे-आगे ठाकुर हरिदास नाच रहे थे और मंडली के बीच में परम हर्ष के साथ अद्वैत आचार्य नाच रहे थे।

पाछे सम्प्रदाये नृत्य करे गौरचन्द्र ।

ताँर सङ्गे नाचि’ बुले प्रभु नित्यानन्द ॥137॥

पाछे-पीछे वाली; सम्प्रदाये-मंडली में; नृत्य-नृत्य; करे-करते हैं; गौरचन्द्र-भगवान् गौरांग; ताँर–उनके; सङ्गे-संग; नाचि'-नृत्य करके; बुले-चलते हैं; प्रभु-प्रभुः नित्यानन्द–नित्यानन्द।

अनुवाद

भगवान् गौरसुन्दर पीछे वाली मंडली में नाच रहे थे और श्री नित्यानन्द प्रभु नाचते हुए चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ चल रहे थे।

वृन्दावन-दास इहा 'चैतन्य-मङ्गले' ।

विस्तारि' वर्णियाछेन, प्रभु-कृपा-बले ॥138॥

वृन्दावन-दास-वृन्दावन दास ठाकुर; इहा-यह; चैतन्य-मङ्गले–चैतन्य मंगल नामक अपनी पुस्तक में; विस्तारि'–विस्तार से; वर्णियाछेन-वर्णन किया है; प्रभु–महाप्रभु की; कृपा-बले-कृपा बल से।

अनुवाद

महाप्रभु की कृपा से श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने इस घटना का विस्तृत वर्णन चैतन्य-मंगल(अब चैतन्य भागवत) में किया है।

एइ मत कीर्तन करि' नगरे भ्रमिला ।

भ्रमिते भ्रमिते सभे काजी-द्वारे गेला ॥ 139॥

एइ मत-इस प्रकार; कीर्तन-संकीर्तन; करि'-करके; नगरे–नगर में; भ्रमिला-प्रदक्षिणा की; भ्रमिते भ्रमिते-प्रदक्षिणा करते करते; सभे–वे सब; काजी-द्वारे-काजी के द्वार पर; गेला–पहुँचे।

अनुवाद

इस तरह कीर्तन करते हुए नगर के हर गली-कूचे की परिक्रमा करते हुए अन्त में वे काजी के दरवाजे पर पहुँचे।

तर्ज-गर्ज करे लोक, करे कोलाहल ।

गौरचन्द्र-बले लोक प्रश्रय-पागल ॥ 140॥

तर्ज-गर्ज–क्रोध में फुसफुसाते हुए; करे-करते हैं; लोक-लोग; करे-करते हैं; कोलाहल-कोलाहल, शोर; गौरचन्द्र-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; बले-शक्ति से; लोक-लोग; प्रश्रय-पागल-ऐसा करने से पागल हो गये।

अनुवाद

क्रोध से फुसफुसाते और गर्जना करते हुए सारे लोग महाप्रभु के संरक्षण में ऐसा करते हुए पागल हो उठे।

तात्पर्य

काजी ने आदेश जारी किया था कि भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन न किया जाए। किन्तु जब यह बात चैतन्य महाप्रभु को बताई गई, तो उन्होंने काजी के आदेश का विनम्र उल्लंघन करने की आज्ञा दी। चैतन्य महाप्रभु तथा उनके सारे भक्त क्रुद्ध होते हुए भी स्वाभाविक रूप से उत्साहपूर्वक जोर-जोर से गरज रहे थे।

कीर्तनेर ध्वनिते काजी लुकाइल घरे ।

तर्जन गर्जन शुनि’ ना हय बाहिरे ॥141॥

कीर्तनेर-संकीर्तन अभियान की; ध्वनिते-ध्वनि से; काजी-चाँद काजी ने; लुकाइल-अपने आप को छुपा लिया; घरे–घर में; तर्जन-फुसफुसाहट करते हुए; गर्जन-आपत्ति उठाते हुए; शुनि’–सुनकर; ना-नहीं; हय-बाहर आना; बाहिरे-बाहर।

अनुवाद

हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन की ऊँची गर्जना से काजी निश्चय ही अत्यधिक डर गया और वह अपने कमरे में छिप गया। लोगों को इस प्रकार विरोध करते और अत्यन्त क्रोध में बुदबुदाते सुनकर काजी अपने घर से बाहर नहीं आ सका।

तात्पर्य

कीर्तन न करने का काजी का आदेश तभी तक लागू रह सका, जब तक लोगों के द्वारा अवज्ञा नहीं हुई। श्री चैतन्य महाप्रभु की अगुआई में कीर्तन करने वालों की संख्या बढ़ती गई, जिन्होंने काजी के आदेश का उल्लंघन कर दिया। हजारों लोगों ने मिलकर मंडलियाँ बनाईं और वे हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने लगीं तथा विरोध में घोर शोर मचाने लगीं। इससे काजी अत्यन्त भयभीत हो उठा, जैसाकि ऐसी परिस्थिति में होना स्वाभाविक है।

वर्तमान समय में भी सारे विश्व के लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सम्मिलित होकर विश्व की ईश्वरविहीन अधोगति को प्राप्त उन सरकारों का विरोध कर सकते हैं, जो सभी प्रकार के पापमय कार्यकलापों पर आधारित हैं। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि कलियुग में चोर, उचक्के तथा शिक्षा-संस्कृति से विहीन लोग सरकारी पदों पर अधिकार जमाकर जनता का शोषण करते हैं। कलियुग का यही लक्षण है, जो पहले ही प्रकट हो चुका है। लोगों को जान-माल की सुरक्षा की

आशंका बनी रहेगी, फिर भी तथाकथित सरकारें चलती रहेंगी और इनके मन्त्री समाज के लिए कोई भलाई न करने पर भी बड़ी-बड़ी तनख्वाहें पाते रहेंगे। ऐसी अवस्था का एकमात्र प्रतिकार है।

कृष्णभावनामृत के ध्वज तले संकीर्तन आन्दोलन को बढ़ावा देना और सारे विश्व की सरकारों के पापमय कार्यों का विरोध करना। कृष्णभावनामृत आन्दोलन कोई भावुक धार्मिक आन्दोलन नहीं है। यह मानव-समाज की समस्त विसंगतियों को सुधारने का आन्दोलन है। यदि लोग गम्भीरतापूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार अपना यह कर्तव्य ठीक तरह निभायें, तो निरर्थक सरकारों के अधीन जो अस्त-व्यस्तता तथा निराशा फैली हुई है, वह दूर हो और विश्व में शान्ति और समृद्धि फैले। मानव-समाज में सदा से चोर-उचक्के रहे हैं और जैसे ही सरकार निर्बल हो जाए तथा अपने कर्तव्य पूरा नहीं कर पाए, तो ये चोर-उचक्के अपने काम में उतारू हो जाते हैं। इस तरह सारा समाज नरक बन जाता है, जिसमें भद्र व्यक्तियों का रहना कठिन हो जाता है। अतएव अविलम्ब अच्छी सरकार की आवश्यकता है-ऐसी सरकार जो कृष्णभावनाभावित लोगों की हो। कृष्णभावनाभावित हुए। बिना लोग अच्छे नहीं बन सकते। श्री चैतन्य महाप्रभु ने जिस कृष्णभावनामृत आन्दोलन को हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन से आरम्भ किया था, वह अब भी सक्षम है। अतएव लोगों को चाहिए कि वे इसे गम्भीरता से और वैज्ञानिक रूप से समझें और विश्वभर में इसका प्रसार करें।

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा चालू किये गये संकीर्तन आन्दोलन का वर्णन चैतन्य-भागवत मध्य-खण्ड के तेईसवें अध्याय में किया गया है। यह 241वें श्लोक से प्रारम्भ होता है "हे प्रभु, आपके चरणकमलों में मेरा मन स्थिर हो।" श्री चैतन्य महाप्रभु के कीर्तन को उनके सारे भक्त दुहराते थे। इस तरह वे पूरी मंडली को गंगा के तटवर्ती मार्ग पर लेकर आगे-आगे चले। जब वे अपने घाट पर पहुँचे, तो और अधिक नाचने लगे। फिर वे माधाइ-घाट गये। इस तरह विश्वम्भर नाम से विख्यात श्री चैतन्य

महाप्रभु गंगा नदी के समूचे तट पर नाचे। फिर वे बारकोणा घाट, नागरिया घाट, और तब गंगानगर होते हुए सिमुलिया पहुँचे, जो नगर के सिरे पर था। ये सारे स्थान मायापुर के चारों ओर हैं। सिमुलिया पहुँचकर महाप्रभु काजी के घर की ओर चले और इस तरह वे चाँद काजी के द्वार पर जा पहुँचे।

उद्धत लोक भाङ्गे काजीर घर-पुष्पवन ।

विस्तारि' वणिला इहा दास-वृन्दावन ॥142॥

उद्धत-उत्तेजित; लोक-लोग; भाड़े-तोड़ने लगे; काजीर-काजी का; घर-घर; पुष्प-वन-पुष्प बगीचा; विस्तारि'–विस्तार से; वर्णिला-वर्णन किया; इहा-यह; दास-वृन्दावन-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने।

अनुवाद

स्वाभाविक रूप से लोग बहुत उत्तेजित हो गये थे और वे काजी के घर को तथा फूलों के बगीचे को तोड़-फोड़कर उसके किये का बदला लेने लगे। श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने इस घटना का विस्तार से वर्णन किया है।

तबे महाप्रभु तार द्वारेते वसिला ।

भव्य-लोक पाठाइया काजीरे बोलाइला ॥143॥

तबे-तत्पश्चात्; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तार द्वारेते-काजी के द्वार पर; वसिला-बैठ गये; भव्य-लोक-आदरणीय लोग; पाठाइया-भेजकर; काजीरे-काजी को; बोलाइला–बुलवाया।

अनुवाद

तत्पश्चात् जब महाप्रभु काजी के घर पहुँच गये, तो वे दरवाजे पर बैठ गये और काजी को बुलाने कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भेजा।

दूर हइते आइला काजी माथा नोयाइयो।

काजीरे वसाइला प्रभु सम्मान करिया ॥144॥

दूर हइते-दूर से; आइला-आया; काजी-काजी; माथा-सिर; नोयाइया-झुकाकर; काजीरे काजी को; वसाइला–आसन दिया; प्रभु–महाप्रभु ने; सम्मान-सम्मान; करिया-करके।

अनुवाद

जब काजी अपना सिर झुकाये आया, तो महाप्रभु ने उसका सम्मान किया और उसे बैठने के लिए आसन दिया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के सविनय अवज्ञा आन्दोलन से जुड़े कुछ लोग आक्रोश में थे, क्योंकि वे अपने मन को वश में नहीं रख पा रहे थे। किन्तु महाप्रभु पूरी तरह शान्त, गम्भीर एवं अक्षुब्ध थे। अतएव जब काजी उनसे मिलने आया, तो महाप्रभु ने उसका समुचित सत्कार किया और उसे बैठने को आसन दिया, क्योंकि वह एक सम्मानित सरकारी अधिकारी था। इस तरह महाप्रभु ने अपने आचरण से हमें शिक्षा दी। हमें अपने कृष्णभावनामृत के संकीर्तन आन्दोलन को आगे बढ़ाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है, किन्तु हमें चाहिए कि सदा श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करें और देश तथा काल के अनुसार आवश्यक कार्यवाही करें।

प्रभु बलेन,—आमि तोमार आइलाम अभ्यागते।

आमि देखि लुकाइला,—ए-धर्म केमत ॥145 ॥

प्रभु बलेन-महाप्रभु ने कहा; आमि-मैं; तोमार-आपके पास; आइलाम-आया हूँ; अभ्यागत-अतिथि; आमि–मुझे; देखि'–देखकर; लुकाइला-आप छुप गये; ए-धर्म केमत-यह किस प्रकार का शिष्टाचार है।

अनुवाद

महाप्रभु ने मैत्रीपूर्वक कहा, "हे महोदय, मैं आपके घर अतिथि के रूप में आया हूँ, किन्तु आप हैं कि मुझे देखकर अपने कमरे में छिप गये। यह कैसा शिष्टाचार है?"

काजी कहे—तुमि आइस क्रुद्ध हुइया ।

तोमा शान्त कराइते रहिनु लुकाइया ॥ 146 ॥

काजी कहे-काजी ने उत्तर दिया; तुमि-आप; आइस-आये हैं; क्रुद्ध-क्रुद्ध; हइया-होकर; तोमा-आपको; शान्त-शान्त; कराइते-करने के लिए; रहिनु-मैं रहा; लुकाइया-छुपकर।

अनुवाद

काजी ने कहा, "आप मेरे घर अत्यन्त क्रोधित होकर आये हैं। आपको शान्त करने के लिए मैं तुरन्त आपके सामने नहीं आ पाया, वरन् अपने आपको छुपा लिया।"

एबे तुमि शान्ता हैले, आसि, मिलिलाँ ।

भाग्य मोर,—तोमा हेन अतिथि पाइलाँ ॥ 147॥

एबे-अब; तुमि-आप; शान्त-शान्त; हैले–हो गये हैं; आसि'–आकर; मिलिलाँ-मैं मिलने आया हूँ; भाग्य मोर-यह मेरा परम सौभाग्य है; तोमा-आपके; हेन-जैसे; अतिथि–अतिथि; पाइलाँ-मैंने स्वागत किया है।

अनुवाद

चूँकि अब आप शान्त हो चुके हैं, इसलिए मैं आपके पास आया हूँ। यह मेरा अहोभाग्य है कि मैं आप जैसे महान् अतिथि का स्वागत कर रहा हूँ।

ग्राम-सम्बन्धे 'चक्रवर्ती' हय मोर चाचा।

देह-सम्बन्धे हैते हय ग्राम-सम्बन्ध साँचा ॥ 148॥

ग्राम-सम्बन्धे-हमारे पड़ोस सम्बन्ध में; चक्रवर्ती–आपके दादा नीलाम्बर चक्रवर्ती; हय-हैं; मोर-मेरे; चाचा-चाचा; देह-सम्बन्धे-दैहिक सम्बन्ध में; हैते–अपेक्षाकृत; हय–होता है; ग्राम-सम्बन्ध-पड़ोसी का सम्बन्ध; साँचा-अधिक शक्तिशाली।

अनुवाद

"गाँव के नाते नीलाम्बर चक्रवर्ती ठाकुर मेरे चाचा लगते थे। ऐसा नाता शारीरिक सम्बन्ध से अधिक सुदृढ़ होता है।"

तात्पर्य

भारत में यहाँ तक कि दूर दराज के गाँवों में हिन्दू तथा मुसलमान जातियाँ परस्पर मेल-जोल से अच्छा सम्बन्ध रखकर शान्तिपूर्वक रहती थीं। कम उम्र वाले लोग गाँव के बुजुर्गों को चाचा या काका कहते थे और समान आयु वाले लोग एक-दूसरे को दादा अर्थात् भइया कहते थे। उनका

सम्बन्ध अत्यन्त मैत्रीपूर्ण था। यहाँ तक कि मुसलमान घरों में हिन्दुओं को आमन्त्रित किया जाता था और हिन्दू घरों में मुसलमानों को। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही एक दूसरे के घरों में उत्सवों के अवसर पर जाते थे। पचास-साठ वर्ष पूर्व तक हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच सदा मैत्री सम्बन्ध पाया जाता था और किसी तरह के उपद्रव नहीं होते थे। हमें तो भारत के इतिहास में मुस्लिम शासन-काल में भी हिन्दू-मुसलमानों में दंगे होते नहीं मिलते। मुसलमानों तथा हिन्दुओं के बीच दंगों की उपज कलुषित राजनीतिज्ञों, विशेषतया विदेशी शासकों की देन है और धीरे-धीरे स्थिति इतनी बिगड़ गई कि भारत का विभाजन हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान में हो गया। सौभाग्यवश, हिन्दुओं तथा मुसलमानों को ही नहीं, अपितु सारी जातियों और राष्ट्रों को एक करने का एकमात्र उपाय भगवत्प्रेम के सशक्त मूल आधार पर हरे कृष्ण आन्दोलन द्वारा अब भी किया जा सकता

नीलाम्बर चक्रवर्ती हय तोमार नाना ।

से-सम्बन्धे हओ तुमि आमार भागिना ॥ 149॥

नीलाम्बर चक्रवर्ती-नीलाम्बर चक्रवर्ती; हय-हैं; तोमार-आपके; नाना-नाना; से-सम्बन्धे-ऐसे सम्बन्ध से; हओ-होते हैं; तुमि-आप; आमार-मेरे; भागिना-भांजे।

अनुवाद

नीलाम्बर चक्रवर्ती तुम्हारे नाना हैं, अतएव तुम इस नाते मेरे भांजे हुए।

भागिनार क्रोध मामा अवश्य सहय ।

मातुलेर अपराध भागिना ना लय ॥150॥

भागिनार-भांजे का; क्रोध-क्रोध; मामा-मामा; अवश्य–निश्चित रूप से; सहय-सहन करता है; मातुलेर-मामा का; अपराध-अपराध; भागिना-भांजा; ना-नहीं; लय-स्वीकार करता।

अनुवाद

"जब भांजा अधिक नाराज होता है, तब मामा सहता है और जब मामा कोई अपराध करता है, तो भांजा उस पर ध्यान नहीं देता।"

एइ मत दुँहार कथा हय ठारे-ठोंरे।

भितरेर अर्थ केह बुझिते ना पारे ॥151॥

एइ मत-इस प्रकार; दुँहार-दोनों का; कथा-वार्तालाप; हय-हुआ; ठारे-ठोंरे-अलग अलग भाव में; भितरेर-भीतर का; अर्थ-अर्थ; केह-कोई भी; बुझिते-समझ; ना पारे–नहीं सकता।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु तथा काजी एक दूसरे से संकेतों से बातें करते रहे, किन्तु कोई बाहरी व्यक्ति उनकी वार्ता के आन्तरिक अर्थ को नहीं समझ सकता था।

प्रभु कहे,—प्रश्न लागि' आइलाम तोमार स्थाने।

काजी कहे,—आज्ञा कर, ये तोमार मने ॥ 152॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; प्रश्न लागि'-मात्र आप से पूछने के लिए; आइलाम-मैं आया हूँ; तोमार स्थाने-आप के घर पर; काजी कहे-काजी ने उत्तर दिया; आज्ञा कर-मात्र आज्ञा करो; ये-जो कुछ; तोमार मने-आपके मन में है।

अनुवाद

(महाप्रभु ने कहा, "हे मामा, मैं आपके घर आपसे कुछ प्रश्न पूछने आया हूँ।" काजी ने उत्तर दिया, "आपका स्वागत है। अपने मन की बात मुझे बतलाओ।"

प्रभु कहे,—गो-दुग्ध खाओ, गाभी तोमार माता ।

वृष अन्न उपजाय, ताते तेंहो पिता ॥ 153 ॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; गो-दुग्ध खाओ-आप गाय का दूध पीते हो; गाभी-गाय (है); तोमार-आपकी; माता-माता; वृष-बैल; अन्न–अन्न; उपजय-उत्पन्न करता है; ताते-अतः; तेंहो--वह; पिता-आपका पिता है।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "आप गाय का दूध पीते हैं, अतएव गाय आपकी माता हुई। और बैल आपके भरण के लिए अन्न उपजाता है, इसलिए वह आपका पिता हुआ।"

पिता-माता मारि' खाओ—एबा को धर्म ।

को बले कर तुमि ए-मत विकर्म ॥154॥

पिता-माता-पिता-माता को; मारि'-मारकर; खाओ-आप खाते हो; एबा-यह; कोन्–कैसा; धर्म-धर्म; कोन् बले-किस बल पर; कर-करते हो; तुमि-आप; ए-मत-ऐसे; विकर्म–पाप कर्म।

अनुवाद

"चूँकि गाय तथा बैल आपके माता-पिता हैं, तो फिर आप उन्हें मारकर कैसे खा सकते हैं? यह कैसा धर्म है? आप किस बल पर ऐसे पापकर्म करने का दुस्साहस करते हैं?"

तात्पर्य

हर व्यक्ति समझ सकता है कि हम गायों का दूध पीते हैं और कृषि-उपज लेने के लिए बैलों की सहायता लेते हैं। चूँकि हमारा असली पिता हमें अन्न देता है और माता जीवित रहने के लिए दूध देती है, इसलिए गाय तथा बैल हमारे माता-पिता माने जाते हैं। वैदिक सभ्यता के अनुसार माताएँ सात होती हैं, जिनमें से गाय एक है। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुस्लिम काजी को चुनौती दी, "यह कौन-सा धर्म है, जिससे कि आप अपने माता-पिता को मारकर खाते हो?" किसी भी सभ्य मानव समाज में कोई भी व्यक्ति अपने खाने के लिए अपने माता-पिता को मारने का दुस्साहस नहीं करेगा। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुस्लिम धर्म को मातृहन्ता तथा पितृहन्ता घोषित किया। ईसाई धर्म में भी मुख्य आदेश है "तुम हत्या मत करो।" तो भी ईसाई इस नियम का उल्लंघन करते हैं। वे हत्या करने और कसाई-घर खोलने में बड़े दक्ष हैं। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन का पहला नियम यह है कि किसी को किसी तरह का मांस न खाने दिया जाए, चाहे वह गाय का मांस हो या बकरे का मांस। किन्तु हम गोमांस का विशेष निषेध करते हैं, क्योंकि शास्त्रों के अनुसार गाय हमारी माता है। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुसलमानों द्वारा गोवध का प्रतिवाद किया।

काजी कहे,—तोमार यैछे वेद-पुराण ।

तैछे आमार शास्त्र—केताब 'कोराण' ॥155॥

काजी कहे-काजी ने उत्तर दिया; तोमार-आपका; यैछे-जैसे है; वेद-पुराण-वेद और पुराण; तैछे-इसी प्रकार; आमार हमारा; शास्त्र-शास्त्र; केताब-पवित्र पुस्तक; कोराण-कुरान।

अनुवाद

काजी ने उत्तर दिया, जिस तरह आपके शास्त्र हैं, जिन्हें वेद तथा पुराण कहते हैं, उसी तरह हमारा भी पवित्र शास्त्र है, जो कुरान कहलाता है।

तात्पर्य

चाँद काजी शास्त्रों के आधार पर श्री चैतन्य महाप्रभु से बातें करने को राजी हुए। वैदिक शास्त्रों के अनुसार यदि कोई अपनी बात की पुष्टि वेदों के प्रमाणों से करता है, तो उसका तर्क सही होता है। इसी प्रकार जब मुसलमान कुरान से उद्धरण देते हैं, तो उनके तर्क प्रामाणिक होते हैं। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुसलमानों द्वारा गाय तथा बैल के वध का प्रश्न उठाया, तो चाँद काजी को अपने शास्त्र का ध्यान आया।

सेइ शास्त्रे कहे,—प्रवृत्ति-निवृत्ति-मार्ग-भेद ।

निवृत्ति-मार्गे जीव-मात्र-वधेर निषेध ॥ 156 ॥

सेइ शास्त्रे-उस शास्त्र (कुराण) में; कहे-कहा गया है; प्रवृत्ति-आसक्ति का; निवृत्ति-अनासक्ति का; मार्ग–मार्ग पर; भेद-भेद; निवृत्ति-निवृत्ति, अनासक्ति; मार्गे-के मार्ग पर; जीव-मात्र–किसी जीव की; वधेर–हत्या; निषेध–मना है।

अनुवाद

कुरान के अनुसार उन्नति के दो मार्ग हैं-भोग की प्रवृत्ति को प्रबल करना तथा भोग की प्रवृत्ति को कम करना। आसक्ति कम करने के मार्ग (निवृत्ति मार्ग) में पशुओं की हत्या निषिद्ध है।

प्रवृत्ति-मार्गे गो-वध करिते विधि हय ।

शास्त्र-आज्ञाय वध कैले नाहि पाप-भय ॥ 157॥

प्रवृत्ति-मार्गे-आसक्ति मार्ग पर; गो-वध-गो वध; करिते-करना; विधि-नियम; हय-हैं; शास्त्र-आज्ञाय-शास्त्र की आज्ञानुसार; वध-वध; कैले–यदि कोई करता है; नाहि-नहीं है; पाप-भय-पाप कर्म का भय।

अनुवाद

"भौतिक कार्यकलापों के मार्ग में गोवध का नियम है। यदि शास्त्र के निर्देशानुसार ऐसा वध किया जाए, तो इसमें पाप नहीं लगता।"

तात्पर्य

शास्त्र शब्द शस् धातु से निकला है। शस् धातु नियन्त्रण करने या आदेश देने से सम्बन्धित है। सेना या हथियारों के बल पर सरकार द्वारा शासन चलाना शस्त्र कहलाता है। अतएव जब भी हथियारों से या आदेशों से शासन किया जाता है, तब शस् धातु ही मूल सिद्धान्त होती है। शस्त्र (हथियारों के द्वारा शासन) तथा शास्त्र (शास्त्र के आदेशों के द्वारा शासन) में से शास्त्र श्रेष्ठ है। हमारे वैदिक शास्त्र सामान्य विधि-ग्रंथ नहीं हैं; वे यथार्थ रूप से मुक्त पुरुषों द्वारा इन्द्रियों की अपूर्णता से अप्रभावित रहते हुए कहे गये वचन हैं।

शास्त्र को सर्वथा सही होना चाहिए ऐसा नहीं कि कभी वह सही हो और कभी गलत हो। वैदिक शास्त्रों में गाय को माता कहा गया है। अतएव वह सदा-सर्वदा ही माता है। ऐसा नहीं है कि वैदिक काल में तो वह माता थी और इस युग में वह माता नहीं रही, जैसा कुछ धूर्त कहते हैं। यदि शास्त्र प्रमाण है, तो गाय सदैव माता है-वह वैदिक युग में माता थी और इस युग में भी माता है।

कोई यदि शास्त्रों के आदेशानुसार कर्म करे, तो वह पापकर्म के फलों से मुक्त हो जाता है। उदाहरणार्थ, मांसाहार, मद्यपान तथा यौन-जीवन के भोग की प्रबल इच्छाएँ बद्धजीवों में स्वाभाविक हैं। ऐसे भोग का मार्ग प्रवृत्ति मार्ग कहलाता है। शास्त्र कहता है- प्रवृत्तिरेषां भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला-मनुष्य को त्रुटिपूर्ण बद्ध जीवन की प्रवृत्तियों में नहीं बह जाना चाहिए, अपितु उसे शास्त्रों के नियमानुसार चलना चाहिए। बच्चे की प्रबल इच्छा दिन-भर खेलते रहने की होती है, किन्तु शास्त्रों का आदेश है कि माता-पिता को चाहिए कि उसे पढ़ाने का प्रबन्ध करें। शास्त्र मानव समाज के कार्यों का मार्गदर्शन करने के लिए हैं। किन्तु लोग त्रुटि एवं अपूर्णता से रहित शास्त्रों के नियमों की परवाह नहीं करते, अतएव वे तथाकथित शिक्षकों तथा ऐसे नेताओं द्वारा कुमार्ग पर ले जाये जाते हैं, जो बद्ध जीवन के अभावों से भरे हैं।

तोमार वेदेते आछे गो-वधेर वाणी ।

अतएव गो-वध करे बड़ बड़ मुनि ॥ 158॥

तोमार वेदेते-आपके वैदिक साहित्य में; आछे-है; गो-वधेर–गोवध के लिए; वाणी-आज्ञा; अतएव–अतः; गो-वध-गोवध; करे-करते हैं; बड़ बड़-बड़े बड़े; मुनि-सन्त मुनि।

अनुवाद

उस काजी ने एक विद्वान के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "आपके वैदिक शास्त्रों में गोवध का आदेश मिलता है। इसी आदेश के बल पर बड़े-बड़े मुनि गोवध वाले (गोमेध) यज्ञ करते थे।"

प्रभु कहे,—वेदे कहे गो-वध निषेध ।

अतएव हिन्दु-मात्र ना करे गो-वध ॥ 159॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; वेदे-वेदों में; कहे–कहा गया है; गो-वध-गोवध की; निषेध-मनाही; अतएव–अतः; हिन्दु-हिन्दु; मात्रमात्र; ना-नहीं; करे-करता; गो-वध-गोवध।

अनुवाद

काजी के कथन का प्रतिवाद करते हुए महाप्रभु ने तुरन्त कहा, "वेदों का स्पष्ट आदेश है कि गोवध न किया जाए। अतएव कोई भी हिन्दू गोवध करने से बचता है।"

तात्पर्य

वैदिक शास्त्रों में मांस खाने वालों को कुछ छूटें दी गई हैं। कहा जाता है। कि यदि कोई मांस खाना चाहे, तो उसे बकरे को देवी काली के समक्ष मारकर उसका मांस खाना चाहिए। मांस खाने वालों को दुकान या कसाई-घर से मांस खरीदने की अनुमति नहीं है। मांस खाने वालों को जीभ के स्वाद के लिए नियमित कसाई-घर चलाने की अनुमति नहीं है। जहाँ तक गोवध का प्रश्न है, यह पूरी तरह वर्जित है। चूँकि गाय को माता माना जाता है, तो फिर वेद गोवध की अनुमति कैसे दे सकते हैं ? श्री चैतन्य महाप्रभु ने इंगित किया कि काजी का कथन दोषपूर्ण है। भगवद्गीता (18.44) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि गायों की रक्षा की जानी चाहिए : कृषि गोरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्–"वैश्यों के कर्तव्य हैं कृषिजात द्रव्य उत्पन्न करना, व्यापार करना तथा गायों की रक्षा करना।" अतएव यह कहना गलत है कि वैदिक शास्त्र गोवध करने की अनुमति देते हैं।

जियाइते पारे यदि, तबे मारे प्राणी ।

वेद-पुराणे आछे हेन आज्ञा-वाणी ॥ 160 ॥

जियाइते-पुनः जीवित करने में; पारे-सक्षम है; यदि यदि; तबे-तब; मारे-मार सकता है; प्राणी-प्राणी; वेद-पुराणे-वेदों एवं पुराणों में; आछे हैं; हेन-ऐसे; आज्ञा-वाणी-आदेश और आज्ञाएँ।

अनुवाद

वेदों तथा पुराणों में स्पष्ट कहा गया है कि यदि कोई किसी जीव को पुनर्जीवित कर सकता है, तो वह प्रयोग के निमित्त उसे मार सकता है।

अतएव जरद्गव मारे मुनि-गण।

वेद-मन्त्रे सिद्ध करे ताहार जीवन॥ 161॥

अतएव-अतएव; जरद्-गव-वृद्ध गौएँ; मारे-मारते थे; मुनि-गण-मुनि गण; वेद-मन्त्रे-वैदिक मंत्रों की शक्ति से; सिद्ध–पुनः जीवित; करे-करते थे; ताहार–उनको; जीवन-जीवन।

अनुवाद

इसलिए महान् मुनिगण कभी-कभी वृद्ध गायों को मारते थे और सिद्धि के लिए वे वैदिक स्तोत्रों का उच्चारण करके उन्हें जीवित कर लेते थे।

जरगव हञा युवा हय आर-वार।

ताते तार वध नहे, हय उपकार॥ 162॥

जरद्-गव–वृद्ध एवं अशक्त गौओं का; हञा-होना; युवा–युवा; हय-होना; आर-वार–पुनः; ताते-उस प्रकार; तार–उनका; वध-वध; नहे-नहीं था; हय–होता है; उपकार-उपकार, लाभ।

अनुवाद

ऐसी वृद्ध तथा अशक्त गायों का वध एवं उनको फिर से युवा बनाना वास्तव में वध करना नहीं, अपितु बड़े ही लाभ का कर्म था।

कलि-काले तैछे शक्ति नाहिक ब्राह्मणे ।

अतएव गो-वध केह ना करे एखने ॥ 163 ॥

कलि-काले-कलियुग में; तैछे-ऐसी; शक्ति-शक्ति; नाहिक-कहीं नहीं है; ब्राह्मणे-ब्राह्मणों में; अतएव–अतएव; गो-वध-गोवध; केह-कोई भी; ना-नहीं; करे-करता; एखने-वर्तमान समय में।

अनुवाद

"पूर्वकाल में ब्राह्मणों में इतना सामर्थ्य होता था कि वे वैदिक स्तोत्रों द्वारा ऐसे प्रयोग करते थे, किन्तु अब कलियुग के कारण ब्राह्मण उतने समर्थ नहीं रहे। अतएव गायों तथा बैलों को फिर से युवा बनाने के लिए उनका वध करना वर्जित है।"

अश्वमेधं गवालम्भं सन्यासं पल-पैतृकम् ।

देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥ 164॥

अश्व-मेधम्-घोड़े के वध का, अश्वमेध यज्ञ; गव-आलम्भम्-गौओं का वध; सन्न्यासम्-संन्यास; पल-पैतृकम्-पितरों को मांस चढ़ाना; देवरेण-पति के भाई अर्थात् देवर द्वारा; सुत-उत्पत्तिम्-औलाद प्राप्त करना; कलौ–कलियुग में; पञ्च–पाँच; विवर्जयेत्–निषिद्ध हैं।

अनुवाद

“इस कलियुग में पाँच कर्म वर्जित हैं-अश्वमेध यज्ञ करना, गोमेध यज्ञ करना, संन्यास ग्रहण करना, पूर्वजों को मांस का पिण्डदान देना तथा अपने भाई की पत्नी से पुत्र उत्पन्न करना।

तात्पर्य

यह उद्धरण ब्रह्मवैवर्त पुराण (कृष्णजन्म खण्ड 185.180) से है।

तोमरा जीयाइते नार,—वध-मात्र सार।

नरक हइते तोमार नाहिक निस्तार॥ 165॥

तोमरा-आप मुस्लिम; जीयाइते-पुनर्जीवित करना; नार–नहीं सकते; वध-मात्र-मात्र वध; सार-सार; नरक हइते-नरक से; तोमार-तुम्हारा; नाहिक-नहीं है; निस्तार-मुक्ति, छुटकारा।

अनुवाद

“चूँकि आप मुसलमान लोग मरी गायों को जीवित नहीं कर सकते, अतएव आप उनके वध के लिए उत्तरदायी हो। इसलिए आप नरक जा रहे हो और आपके मोक्ष के लिए कोई मार्ग नहीं है।”

गो-अङ्गे यत लोम, तत सहस्र वत्सर।

गो-वधी रौरव-मध्ये पचे निरन्तर॥ 166॥

गो-अङ्गे–गाय के शरीर पर; यत–जितने; लोम-बाल; तत-उतने ही; सहस्र-सहस्र; वत्सर-वर्ष; गो-वधी-गाय के वध करने वाले को; रौरव-मध्ये-नारकीय जीवन में; पचे-सड़ता है; निरन्तर–निरन्तर।

अनुवाद

“गोवध करने वालों को उतने हजार वर्षों तक नरक में सड़ना पड़ता है, जितने रोएँ उस गाय के शरीर में होते हैं।”

तोमा-सबार शास्त्र-कर्ता–सेह भ्रान्त हैल ।

ना जानि’ शास्त्रेर मर्म ऐछे आज्ञा दिल ॥ 167॥

तोमा-सबार-आप सबका; शास्त्र-कर्ता–शास्त्र के रचयिता; सेह-वे भी; भ्रान्त-भ्रान्त; हैल–हो गये; ना जानि’-यह जाने बिना; शास्त्रेर मर्म–शास्त्रों का रहस्य; ऐछे-ऐसी; आज्ञा-आज्ञा; दिल-दी।

अनुवाद

“आपके शास्त्रों में अनेक त्रुटियाँ और भ्रान्तियाँ हैं। इनके रचयिताओं ने ज्ञान का सार न जानने के कारण, ऐसे आदेश दिये, जो विवेक एवं तर्क के विरुद्ध थे।”

शुनि’ स्तब्ध हैल काजी, नाहि स्फुरे वाणी ।

विचारिया कहे काजी पराभव मानि’ ॥ 168॥

शुनि’–सुनकर; स्तब्ध-जड़; हैल–हो गया; काजी–काजी; नाहि-नहीं; स्फुरे-बोलता; वाणी–वाणी; विचारिया-विचार करके; कहे-कहा; काजी-काजी ने; पराभव–पराजय; मानि’–मानकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के इन कथनों को सुनकर काजी तर्कहीन हो गया और आगे एक भी शब्द न बोल सका। इस तरह पूर्ण विचार करके काजी ने हार स्वीकार कर ली और इस प्रकार कहा।

तात्पर्य

प्रत्यक्ष प्रचार-कार्य के दौरान हमें ऐसे अनेक ईसाई मिलते हैं, जो बाइबल के कथनों की चर्चा करते हैं। जब हम उनसे प्रश्न करते हैं कि ईश्वर असीम हैं या सीमित, तो वे कहते हैं कि ईश्वर असीम हैं। किन्तु जब हम उनसे पूछते हैं कि असीम ईश्वर को एक ही पुत्र क्यों, अनन्त क्यों नहीं, तो वे उत्तर नहीं दे पाते। इसी प्रकार वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पुराने टेस्टामेंट, नये टेस्टामेंट तथा कुरान के अनेक प्रश्नों के उत्तर बदल गये हैं। किन्तु मनुष्य की इच्छा से शास्त्र नहीं बदल सकता। सारे शास्त्र मनुष्य-स्वभाव के चार दोषों से रहित होते हैं। शास्त्रों के कथन सर्वदा ही सत्य होते हैं।

तुमि ये कहिले, पण्डित, सेइ सत्य हय ।

आधुनिक आमार शास्त्र, विचार-सह नये ॥ 169॥

तुमि-आपने; ये-जो कुछ; कहिले–कहा है: पण्डित-हे निमाइ पण्डित; सेइ-वह; सत्य-सत्य; हय–बिल्कुल है; आधुनिक–आधुनिक समय में; आमार-हमारा; शास्त्र-शास्त्र; विचार–तर्क; सह–के साथ; नय-नहीं है।

अनुवाद

हे निमाइ पण्डित, आपने जो कुछ कहा है, वह पूरी तरह सत्य है। हमारे शास्त्र हाल ही में विकसित हुए हैं और निश्चित रूप से वे तर्कसंगत तथा विचारपूर्ण नहीं हैं।

तात्पर्य

यवनों अर्थात् मांसाहारियों के शास्त्र शाश्वत नहीं हैं। उनकी रचना हाल ही में हुई है और कभी-कभी वे एक दूसरे से विरोधाभासी होते हैं। यवनों के तीन शास्त्र हैं—पुराना टेस्टामेंट, नया

टेस्टामेंट तथा कुरान। उनकी रचना का इतिहास ज्ञात है, वे वैदिक ज्ञान के समान सनातन नहीं हैं। अतएव उनके अपने तर्क होते हुए भी वे प्रामाणिक तथा दिव्य नहीं है। इसीलिए विज्ञान तथा दर्शन में उन्नत आधुनिक लोग इन शास्त्रों को नहीं मानते।

कभी-कभी ईसाई प्रचारक हमसे पूछते हैं, "हमारे अनुयायी हमारे शास्त्रों की उपेक्षा करके आपके शास्त्रों को क्यों स्वीकार कर रहे हैं?" किन्तु जब हम उनसे पूछते हैं, "आपकी बाइबल कहती है, 'हत्या मत करो।' किन्तु फिर भी आप लोग प्रतिदिन अनेक पशुओं का वध क्यों करते हो?" वे निरुत्तर हो जाते हैं; उनमें से कुछ अपूर्ण उत्तर देते हैं कि पशुओं में आत्मा नहीं होता। किन्तु हम उनसे पूछते हैं, "आप कैसे जानते हो कि पशुओं में आत्मा नहीं होता? पशु तथा बालक समान स्वभाव वाले होते हैं। तो क्या इसका अर्थ यह होता है कि मानव-समाज के इन बालकों में भी आत्मा नहीं है?" वैदिक शास्त्रों के अनुसार शरीर का स्वामी आत्मा शरीर के भीतर है। भगवद्गीता (2.13) में कहा गया है :

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

"जिस प्रकार देहधारी आत्मा इस शरीर में बचपन से युवावस्था और फिर वृद्धावस्था को प्राप्त होता है, उसी तरह मृत्यु के समय आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। स्वरूप सिद्ध व्यक्ति ऐसे परिवर्तन से विचलित नहीं होता।"

चूँकि आत्मा शरीर के भीतर है, अतएव शरीर अनेक रूपों से होकर गुजरता रहता है। हर जीव के भीतर आत्मा होता है, चाहे वह पशु हो, वृक्ष हो, पक्षी हो या मनुष्य और यह आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में देहान्तर करता रहता है। जब यवनों के शास्त्र-पुराना टेस्टामेंट, नया टेस्टामेंट

तथा कुरान जिज्ञासु अनुयायियों के प्रश्नों का सही उत्तर नहीं दे पाते, तो विज्ञान तथा दर्शन में उन्नत लोगों की ऐसे शास्त्रों से श्रद्धा जाती रहती है। काजी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से बातें करते समय इस बात को स्वीकार किया। काजी अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति था। उसे अपनी स्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान था, जैसाकि अगले श्लोक से स्पष्ट है।

कल्पित आमार शास्त्र,—आमि सब जानि ।

जाति-अनुरोधे तबु सेइ शास्त्र मानि ॥ 170॥

कल्पित-कल्पित; आमार-हमारा; शास्त्र-शास्त्र; आमि-मैं; सब-सब; जानि-जानता हूँ; जाति-जाति से; अनुरोधे–वशीभूत होकर; तबु–फिर भी; सेइ-वह; शास्त्र-शास्त्र; मानि–मैं स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

"मुझे पता है कि हमारे शास्त्र कल्पना तथा भ्रान्तियों से भरे हैं, तथापि अपर्याप्त आधार होने पर भी एक मुसलमान होने के नाते अपने समुदाय के निमित्त, मैं उन्हें स्वीकार करता हूँ।"

सहजे यवन-शास्त्रे अदृढ़ विचार ।

हासि' ताहे महाप्रभु पुछेन आर-बार ॥ 171॥

सहजे–सहज भाव से; यवन-शास्त्रे-मंसाहारियों के शास्त्रों में; अदृढ़-अदृढ़; विचार-निर्णय; हासि'-हँसकर; ताहे—उससे; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु ने; पुछेन-पूछा; आर-बार–पुनः।

अनुवाद

काजी ने अन्त में कहा, "मांसाहारी यवनों के शास्त्रों के तर्क सुदृढ़ नहीं हैं।" यह कथन सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने हँसते हुए उससे इस प्रकार पूछा।

आर एक प्रश्न करि, शुन, तुमि मामा ।

यथार्थ कहिबे, छले ना वञ्छिबे आमा' ॥ 172॥

आर एक-एक और; प्रश्न-प्रश्न; करि-कर रहा हूँ; शुन-सुनो; तुमि-आप; मामा-मामा; यथा-अर्थ-जैसे यह सत्य है; कहिबे-आपको कहना चाहिए; छले-चालबाजी से; न वञ्छिबे-आप धोखा नहीं दे सकते; आमा'–मुझे।

अनुवाद

"हे मामा, मैं आपसे दूसरा प्रश्न करना चाहता हूँ। कृपया आप सच सच बतलायें। आप मुझे छलने का प्रयास न करें।"

तोमार नगरे हय सदा सङ्कीर्तन ।

वाद्य-गीत-कोलाहल, सङ्गीत, नर्तन ॥ 173॥

तोमार नगरे-आपके नगर में; हय होता है; सदा-सदा; सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन; वाद्य-वाद्य की ध्वनि; गीत-गीत; कोलाहल-उच्च शोर; सङ्गीत-संगीत; नर्तन-और नृत्य।

अनुवाद

आपके नगर में सदैव पवित्र नाम का कीर्तन होता रहता है। सदैव संगीत की ध्वनि, गान और नृत्य चलता रहता है।

तुमि काजी—हिन्दु-धर्म-विरोधे अधिकारी।

एबे ये ना कर माना बुझिते ना पारि॥ 174॥

तुमि-आप; काजी-काजी; हिन्दु-धर्म–हिन्दू धर्म; विरोधे–के विरोध में; अधिकारी-अधिकार है; एबे-अब; ये-वह; ना कर माना-आप मना नहीं करते; बुझिते-समझने में; ना पारि-मैं असमर्थ हूँ।

अनुवाद

"मुसलमान मैजिस्ट्रेट (काजी) होने के नाते आप हिन्दू उत्सवों को मनाने का विरोध कर सकते हैं, किन्तु अब आप उन्हें नहीं रोकते। मैं इसका कारण नहीं समझ सकता।"

काजी बले—सभे तोमाय बले 'गौरहरि'।

सेइ नामे आमि तोमाय सम्बोधन करि॥ 175॥

काजी बले-काजी ने कहा; सभे-सब; तोमाय-आपको; बले-पुकारते हैं; गौरहरि-गौरहरि के नाम से; सेइ नामे-उस नाम से; आमि-मैं; तोमाय-आपको; सम्बोधन-सम्बोधन; करि-करना चाहता हूँ।

अनुवाद

काजी ने कहा, "सभी लोग आपको गौरहरि कहते हैं। कृपया अब मुझे भी आप इसी नाम से पुकारने दें।

शुन, गौरहरि, एइ प्रश्नेर कारण।

निभृत हओ यदि, तबे करि निवेदन॥ 176॥

शुन-कृपया सुनें; गौरहरि-हे गौरहरि; एइ प्रश्नेर-इस प्रश्न का; कारण-कारण; निभृत-एकान्त; हओ-स्थान में आप आओ; यदि-यदि; तबे-तब; करि-मैं करूँगा; निवेदन-निवेदन।

अनुवाद

"हे गौरहरि, कृपया सुनिये! यदि आप एकान्त स्थान में आयें, तो मैं कारण समझा दूँगा।"

प्रभु बले,—ए लोक आमार अन्तरङ्ग हय।

स्फुट करि' कह तुमि, ना करिह भय॥ 177॥

प्रभु बले–महाप्रभु ने कहा; ए लोक-ये सब लोग; आमार-मेरे; अन्तरङ्ग-विश्वसनीय साथी; हय-हैं; स्फुट करि'–स्पष्ट करके; कह-कहो; तुमि-आप; ना-नहीं; करिह भय-डरो।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "ये सारे लोग मेरे अन्तरंग साथी हैं। आप निःसंकोच भाव से कहें। इनसे डरने की कोई बात नहीं है।"

काजी कहे,—यबे आमि हिन्दुर घरे गिया।

कीर्तन करितुं माना मृदङ्ग भाङ्गिया॥ 178॥

सेइ रात्रे एक सिंह महा-भयङ्कर।

नर-देह, सिंह-मुख, गर्जये विस्तर॥ 179॥

काजी कहे-काजी ने कहा; यबे-जब; आमि-मैंने; हिन्दुर-हिन्दू के; घरे–घर में; गिया-जाकर; कीर्तन-कीर्तन; करिलँ–किया; माना-मना; मृदङ्ग-मृदंग; भाङ्गिया-तोड़कर; सेइ रात्रे-उस रात;

एक-एक; सिंह-शेर; महा-भयँकर-महा भयानक; नर-देह-मनुष्य जैसे शरीर वाला; सिंह-मुख-सिंह के मुख वाला; गर्जये-गरज रहा था; विस्तर–बहुत जोर से।

अनुवाद

काजी ने कहा, "जब मैं हिन्दू के घर गया और वहाँ मैंने मृदंग तोड़ा और संकीर्तन करने की मनाही कर दी, तो उसी रात मैंने सपने में एक भयानक गर्जन करता हुआ सिंह देखा, जिसका शरीर तो मनुष्य जैसा था, किन्तु उसका मुख सिंह जैसा था।"

शयने आमार उपर लाफ दिया चड़ि' ।

अट्ट अट्ट हासे, करे दन्त-कड़मड़ि ॥180॥

शयने-सुप्त अवस्था में; आमार-मेरे; उपर-ऊपर; लाफ दिया-झपटकर; चड़ि'-चढ़कर; अट्ट अट्ट-जोर से; हासे-हँसता है; करे-करता है; दन्त-दाँत; कड़मड़ि-कटकटाते हुए।

अनुवाद

"जब मैं सो रहा था, तब वह सिंह मेरी छाती पर कूद पड़ा; वह अट्टहास कर रहा था और अपने दाँत कटकटा रहा था।"

मोर बुके नख दिया घोर-स्वरे बले ।

फाड़िमु तोमार बुक मृदङ्ग बदले ॥181॥

मोर-मेरी; बुके-छाती पर; नख-नाखून; दिया-रखकर; घोर-गर्जकर; स्वरे-आवाज में; बले-कहता है; फाड़िमु-मैं फाड़ दूँगा; तोमार-तुम्हारी; बुक–छाती; मृदङ्ग-मृदंग; बदले के बदले में।

अनुवाद

“सिंह ने मेरी छाती पर अपने नाखून गढ़ाते हुए भयानक स्वर में कहा, ‘चूँकि तुमने मृदंग तोड़ा है, इसलिए मैं तुम्हारी छाती को अभी फाड़ देने जा रहा हूँ।”

मोर कीर्तन माना करिस्, करिमु तोर क्षय।

आड्घि मुदि’ काँपि आमि पाञा बड़ भय ॥182॥

मोर-मेरा; कीर्तन-कीर्तन; माना करिस्-तुम मना करते हो; करिमु-मैं करूँगा; तोर–तुम्हारा; क्षय-नाश; आड्घि–आँखें; मुदि’–बन्द करके; काँपि-मैं काँप रहा था; आमि-मैं; पाञा-पाकर; बड़-बहुत; भय–डर।

अनुवाद

“तुमने मेरे संकीर्तन पर प्रतिबन्ध लगाया है, अतएव मैं तुम्हारा विनाश कर दूँगा!” उससे डरकर मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं और काँपने लगा।

भीत देखि’ सिंह बले हइया सदय।

तोरे शिक्षा दिते कैलु तोर पराजय ॥183॥

भीत देखि’–मुझे भयभीत देखकर; सिंह-सिंह; बले-कहा; हइया-होकर; सदय-दयालु; तोरे-तुम्हें; शिक्षा-सबक; दिते-देने के लिए; कैलु–मैंने किया है; तोर-तुम्हें; पराजय-पराजित।

अनुवाद

मुझे इस तरह डरा हुआ देखकर सिंह बोला, 'तुम्हें सबक सिखाने के लिए ही मैंने तुम्हें पराजित किया है, किन्तु अब मुझे तुम पर कृपालु होना चाहिए।

से दिन बहुत नाहि कैलि उत्पात ।

तेजि क्षमा करि' ना करिनु प्राणाघात ॥184॥

से दिन-उस दिन; बहुत-बहुत; नाहि-नहीं; कैलि–तुमने किया; उत्पात-उत्पात; तेजि-अतः; क्षमा करि'–क्षमा करके; ना करिनु-मैंने नहीं किया; प्राण-आघात-तुम्हारा जीवन समाप्त।

अनुवाद

उस दिन तुमने कोई बड़ा उत्पात नहीं मचाया, इसलिए मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया है और तुम्हारे प्राण नहीं लिये।

ऐछे यदि पुनः कर, तबे ना सहिमु ।

सवंशे तोमारे मारि यवन नाशिमु ॥ 185॥

ऐछे-इसी प्रकार; यदि यदि; पुनःपुनः; कर-तुम करते हो; तबे-तब; ना सहिमु-मैं सहन नहीं करूँगा; स-वंशे-तुम्हारे परिवार सहित; तोमारे-तुम्हें; मारि-मार दूँगा; यवन-मांसाहारी; नाशिमु-मैं नष्ट कर दूँगा।

अनुवाद

"किन्तु यदि तुम फिर से ऐसा कार्य करोगे, तो मैं सहन नहीं करूँगा। तब मैं तुम्हें, तुम्हारे सारे परिवार को और सारे मांसाहारी यवनों को मार डालूँगा।"

एत कहि’ सिंह गेल, आमार हैल भय ।

एइ देख, नख-चिह्न अमोर हृदय ॥ 186 ॥

एत-इस प्रकार; कहि’–कहकर; सिंह-सिंह; गेल-लौट गया; आमार-मेरा; हैल-था; भय-भय; एइ देख-जरा इसे देखो; नख-चिह्न-नाखून के चिह्न; अमोर हृदय–मेरे हृदय पर।

अनुवाद

“यह कहकर सिंह चला गया, किन्तु मैं उससे बहुत ही भयभीत था। देखिये न मेरे हृदय पर बने उसके नाखूनों के चिह्नों को!”

एत बलि’ काजी निज-बुक देखाइल ।

शुनि’ देखि’ सर्व-लोक आश्चर्य मानिल ॥ 187॥

एत बलि’-यह कहकर; काजी–काजी ने; निज-बुक-अपनी छाती; देखाइल-दिखाई; शुनि’–सुनकर; देखि’–देखकर; सर्व-लोक-सभी लोगों ने; आश्चर्य-अद्भुत घटना को; मानिल-स्वीकार किया।

अनुवाद

इस वर्णन के बाद काजी ने अपनी छाती दिखाई। उसकी बातें सुनकर तथा चिह्नों को देखकर सारे लोग इस विस्मयकारी घटना को मान गये।

काजी कहे,—इहा आमि कारे ना कहिल ।

सेइ दिन आमार एक पियादा आइल ॥ 188॥

काजी कहे-काजी ने कहा; इहा-यह; आमि-मैं; कारे-दूसरों को; ना कहिल-नहीं बताया; सेइ दिन-उस दिन; आमार-मेरा; एक-एक; पियादा-सेवक; आइल-मुझे मिलने आया।

अनुवाद

काजी ने कहा, "मैंने इस घटना की बात किसी से नहीं की, किन्तु उसी दिन मेरा एक अर्दली (सेवक) मुझसे मिलने आया।"

आसि' कहे,—गेलु मुनि कीर्तन निषेधिते ।

अग्नि उल्का मोर मुखे लागे आचम्बिते ॥ 189॥

आसि'–मेरे पास आकर; कहे-उसने कहा; गेलँ–गया; मुञि-मैं; कीर्तन-कीर्तन; निषेधिते-बन्द करने के लिए; अग्नि उल्का-आग की लपटें; मोर–मेरे; मुखे-मुख पर; लागे-स्पर्श करने लगी; आचम्बिते-अचानक।

अनुवाद

मेरे पास आकर उस अर्दली ने कहा, 'जब मैं संकीर्तन रोकने गया, तो सहसा मेरे मुँह पर आग की लपटें टकरा गईं।

पुड़िल सकल दाड़ि, मुखे हैल व्रण ।

येइ पेयादा याय, तार एइ विवरण ॥ 190॥

पुड़िल-जल गई; सकल-सब; दाड़ि-दाढ़ी; मुखे-मुख पर; हैल-हो गये; व्रण-छाले; येइ-कोई; पेयादा-सेवक; याय-जाता है; तार-उसका; एइ–यही; विवरण-वर्णन था।

अनुवाद

“मेरी दाढ़ी जल गई और मेरे गालों पर फफोले पड़ गये। जो भी अर्दली वहाँ गया, उसने वैसा ही विवरण दिया।”

ताहा देखि’ रहिनु मुञि महा-भय पाञा ।

कीर्तन ना वर्जिह, घरे रहों त’ वसिया ॥ 191॥

ताहा देखि’–उसे देखकर; रहिनु-रहा; मुञि-मैं; महा-भय-अत्यन्त भय; पाञा-पाकर; कीर्तन-कीर्तन; ना-नहीं; वर्जिह-बन्द करना; घरे–घर पर; रहों-रहा; त’-निश्चित रूप से; वसिया-बैठना।

अनुवाद

यह देखकर मैं अत्यधिक डर गया। मैंने उनसे संकीर्तन को न रोककर घर पर बैठने के लिए कहा।

तबे त’ नगरे हइबे स्वच्छन्दे कीर्तन ।

शुनि’ सब म्लेच्छ आसि’ कैल निवेदन ॥192॥

तबे त’–तत्पश्चात्; नगरे–नगर में; हइबे-होगा; स्वच्छन्दे-बिना अवरोध के; कीर्तन-कीर्तन; शुनि’,-यह सुनकर; सब-सब; म्लेच्छ–मासांहारी; आसि-आकर; कैल–दिया; निवेदन निवेदन पत्र।

अनुवाद

तब सारे मांसाहारी यवनों ने यह सुनकर कि नगर में स्वच्छन्द संकीर्तन होगा, आकर निवेदन किया।

नगरे हिन्दुर धर्म बाड़िल अपार।

'हरि' 'हरि' ध्वनि बइ नाहि शुनि आर ॥ 193 ॥

नगरे–नगर में; हिन्दुर-हिन्दुओं का; धर्म-धर्म; बाड़िल-बढ़ गया है; अपार-असीम; हरि हरि-भगवान् का नाम हरि हरि; ध्वनि-ध्वनि; बइ–के सिवाय; नाहि-नहीं; शुनि-हम सुनते हैं; आर-और कुछ।

अनुवाद

"हिन्दू धर्म असीम रूप से बढ़ गया है, क्योंकि सदैव "हरि! हरि!" की ध्वनि होती है। हमें इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं सुनाई पड़ता।"

आर म्लेच्छ कहे,—हिन्दु कृष्ण कृष्ण' बलि'।

हासे, कान्दे, नाचे, गाय, गड़ि याय धूलि ॥194॥

आर-अन्य; म्लेच्छ-मांसाहारी; कहे-कहा; हिन्दु-हिन्दू; कृष्ण कृष्ण बलि'–कृष्ण, कृष्ण' कहकर; हासे-हँसते हैं; कान्दे-रोते हैं; नाचे नृत्य करते हैं; गाय-गाते हैं; गड़ि याय धूलि–धरती पर लोटते हैं।

अनुवाद

एक यवन ने कहा, 'हिन्दू "कृष्ण, कृष्ण" कहते हैं और वे हँसते हैं, रोते हैं, नाचते हैं, कीर्तन करते हैं और जमीन पर गिरकर धूलि में लोटते हैं।

'हरि' 'हरि' करि' हिन्दु करे कोलाहल।

पातसाह शुनिले तोमार करिबेक फल ॥ 195॥

हरि हरि करि'-"हरि, हरि" कहकर; हिन्दु-हिन्दू; करे-करते हैं; कोलाहल-शोर; पातसाह-राजा; शुनिले–यदि सुने; तोमार-तुम्हारा; करिबेक–करेगा; फल-दण्ड।

अनुवाद

हिन्दू लोग "हरि, हरि" का उच्चारण करके कोलाहल मचाते हैं। यदि राजा (पातसाह) इसे सुन ले, तो निश्चय ही आपको दण्ड देगा।

तात्पर्य

पातसाह राजा का सूचक है। उस समय (1498-1521 ई.) नवाब हुसैन शाह, जिसका पूरा नाम आलाउद्दीन सैयद हुसैन सा था, वह बंगाल का एकछत्र राजा था। पहले वह हाबसी वंश के क्रूर नवाब मुजफ्फर खान का नौकर था। किन्तु उसने किसी तरह अपने स्वामी की हत्या की और स्वयं राजा बन गया। बंगाल के सिंहासन (जो मनसद कहलाता है) पर आरूढ़ होने के बाद उसने अपने आपको सैयद हुसैन आलाउद्दीन सेरिफ मुक्का घोषित किया। रियाज उस्सलातिन नामक पुस्तक का लेखक गोलाम हुसैन कहता है कि नवाब हुसैन शाह मुक्का सेरिफ परिवार का था। अपने परिवार की कीर्ति बनाये रखने के लिए उसने अपना नाम सेरिफ मुक्का रखा। किन्तु सामान्यतया यह नवाब हुसैन शाह के ही नाम से विख्यात है। उसकी मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र नसरत्सा

बंगाल का राजा बना (1521-1533 ई.)। यह राजा भी अत्यन्त क्रूर था और इसने वैष्णवों पर अनेक अत्याचार किये। उसके पापकर्मों के फलस्वरूप ही उसके एक नौकर ने, जो खोजा वर्ग से था, उसकी उस समय हत्या कर दी, जब वह मस्जिद में नमाज अदा कर रहा था।

तबे सेइ यवनेरे आमि त' पुछिल।

हिन्दु 'हरि' बले, तार स्वभाव जानिल ॥196॥

तबे-तब; सेइ-वह; यवनेरे-मांसाहारियों से; आमि-मैं; त'–निश्चित रूप से; पुछिल-पुछा; हिन्दु-हिन्दू; हरि बले-'हरि' कहते हैं; तर-उसका; स्वभाव-स्वभाव; जानिल-मैं जानता हूँ।

अनुवाद

तब मैंने इन यवनों से पूछा, 'मैं जानता हूँ कि ये हिन्दू स्वभाव से "हरि, हरि" का उच्चारण करते हैं।

तुमित यवन हञा केने अनुक्षण।

हिन्दुर देवतार नाम लह कि कारण ॥197॥

तुमित–किन्तु तुम; यवन-मांसाहारी; हञा–होकर; केने-क्यों; अनुक्षण-सदा; हिन्दुर-हिन्दुओं के देवतार-देवता का; नाम-नाम; लह-तुम लेते हो; कि-क्या; कारण-कारण।

अनुवाद

"हिन्दू लोग हरि का नाम इसलिए लेते हैं, क्योंकि वह उनके ईश्वर का नाम है। किन्तु तुम लोग मांसभक्षी मुसलमान हो। फिर तुम लोग हिन्दुओं के ईश्वर का नाम क्यों लेते हो?"

म्लेच्छ कहे,—हिन्दुरे आमि करि परिहास ।

केह केह—कृष्णदास, केह—रामदास ॥198॥

म्लेच्छ-मांसाहारी; कहे-कहता है; हिन्दुरे–हिन्दू को; आमि-मैं; करि-करता हूँ; परिहास-मजाक; केह केह-उनमें से कुछ; कृष्णदास-कृष्णदास; केह-उनमें से कुछ; रामदास-रामदास।

अनुवाद

उस म्लेच्छ ने उत्तर दिया, 'कभी-कभी मैं हिन्दुओं से मजाक करता हूँ। उनमें से कुछ कृष्णदास कहलाते हैं और कुछ रामदास।

केह—हरिदास, सदा बले 'हरि' 'हरि' ।

जानि कार घरे धन करिबेक चुरि ॥199॥

केह-उनमें से कुछ; हरिदास-हरिदास; सदा-सदा; बले-कहता है; हरि हरि-भगवान् का नाम "हरि, हरि"; जानि–मैं समझता हूँ; कार–किसी के; घरे–घर पर; धन-धन; करिबेक–करेगा; चुरि-चोरी।

अनुवाद

"उनमें से कुछ हरिदास कहलाते हैं। वे सदैव "हरि, हरि" का उच्चारण करते हैं। इस तरह मैंने सोचा कि ये किसी के घर से धन चुरायेंगे।"

तात्पर्य

"हरि, हरि" का अन्य अर्थ है "मैं चोरी कर रहा हूँ," "मैं चोरी कर रहा हूँ।"

सेइ हैते जिह्वा मोर बले ‘हरि’ ‘हरि’ ।

इच्छा नाहि, तबु बले,—कि उपाय करि ॥200॥

सेइ हैते-उस समय से; जिह्वा-जिह्वा; मोर-मेरी; बले-कहती है; हरि हरि-हरि, हरि’का उच्चारण; इच्छा-इच्छा; नाहि-नहीं; तबु-फिर भी; बले-कहती है; कि-क्या; उपाय-उपाय; करि-मैं करूँ।

अनुवाद

“तभी से मेरी जीभ भी निरन्तर “हरि, हरि” ध्वनि का उच्चारण करती है। यद्यपि मेरी इच्छा नहीं होती कि इसे कहूँ, किन्तु तो भी मेरी जीभ वही कहे जाती है। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ।”

तात्पर्य

कभी-कभी आसुरी अविश्वासी लोग पवित्र नाम की शक्ति को न जानने के कारण वैष्णवों द्वारा हरे कृष्ण महामन्त्र का उच्चारण करने पर उनका मजाक उड़ाते हैं। ऐसा मजाक भी उन लोगों के लिए लाभप्रद होता है। श्रीमद्भागवत (6.2.14) में बताया गया है कि मजाक में, सामान्य वार्ता में अथवा कुछ बाहरी बातें बतलाते हुए या उपेक्षा में भी हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन, जो नामाभास कहलाता है—यह कीर्तन भी लगभग दिव्य स्तर पर ही होता है। यह नामाभास अवस्था नाम-अपराध अवस्था से बेहतर है। नामाभास से भगवान् विष्णु की सर्वोपरि स्मृति जाग्रत होती है। जब कोई भगवान् विष्णु का स्मरण करता है, तो वह भौतिक भोग से मुक्त हो जाता है। इस तरह वह धीरे-धीरे भगवान् की दिव्य भक्ति की ओर अग्रसर होता है और दिव्य स्थिति में रहकर भगवान् के नामकीर्तन करने के लिए योग्य बन जाता है।

आर म्लेच्छ कहे, शुन–आमि त' एइ-मते ।

हिन्दुके परिहास कैनु से दिन हइते ॥ 201॥

जिह्वा कृष्ण-नाम करे, ना माने वर्जन ।

ना जानि, कि मन्त्रौषधि जाने हिन्दु-गण ॥202॥

आर-अन्य; म्लेच्छ–मांसाहारी ने; कहे-कहा; शुन-कृपया सुनो; आमि-मैं; त'–निश्चित रूप से; एइ-मते-इस प्रकार; हिन्दुके-हिन्दू को; परिहास-परिहास; कैनु-किया; से-उस; दिन–दिन; हइते-से; जिह्वा-जिह्वा; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; करे-करती है; ना-नहीं; माने–स्वीकार; वर्जन-रोकना, त्यागना; ना-नहीं; जानि–मैं जानता हूँ; कि-क्या; मन्त्र-औषधि-मन्त्र तथा औषधि; जाने-जानते हैं; हिन्दु-गण-हिन्दू लोग।

अनुवाद

"दूसरे यवन ने कहा, 'कृपया, मेरी सुनें। जिस दिन से मैंने कुछ हिन्दुओं के साथ इस तरह मजाक किया है, तब से मेरी जीभ हरे कृष्ण का मन्त्र जपने लगी है और उसे त्यागती नहीं। मैं नहीं जानता कि ये हिन्दू कौन-सा मन्त्र और कौन-सी जड़ी-बूटी जानते हैं?'

एत शुनि' ता'-संभारे घरे पाठाइल ।

हेन-काले पाषण्डी हिन्दु पाँच-सात आइल ॥ 203॥

एत शुनि'-यह सब सुनकर; ता'-संभारे-उन सबको; घरे-वापस घर; पाठाइल-भेजा; हेन-काले-इस समय; पाषण्डी–नास्तिक; हिन्दु-हिन्दू; पाँच-सात-पाँच अथवा सात; आइल-आये।

अनुवाद

“यह सब सुनने के बाद मैंने सारे म्लेच्छों को अपने-अपने घरों को भेज दिया। तब पाँच-सात नास्तिक हिन्दू मेरे पास आये।”

तात्पर्य

पाषण्डी शब्द सकाम कर्मों में व्यस्त अविश्वासियों तथा अनेक देवताओं की मूर्ति-पूजा में व्यस्त लोगों को इंगित करता है। पाषण्डी लोग एक भगवान् अर्थात् भगवान् विष्णु में विश्वास नहीं करते। वे सोचते हैं कि सारे देवताओं में विष्णु जैसी ही शक्ति होती है। तन्त्रशास्त्र में पाषण्डी की परिभाषा इस प्रकार दी हुई है :

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः ।

समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम् ॥

पाषण्डी वह है, जो ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे बड़े बड़े देवताओं को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण के तुल्य मानता है।” (हरिभक्ति-विलास 1.17) भगवान् असमौर्ध्व हैं। दूसरे शब्दों में, न तो कोई उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर। किन्तु पाखण्डी इसे नहीं मानते। वे किसी भी देवता की पूजा अपनी मर्जी से यह सोचकर करते हैं कि वे सभी भगवान् हैं। पाषण्डी लोग श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के हरे कृष्ण आन्दोलन के विरुद्ध थे। और अब हम व्यावहारिक रूप से देख रहे हैं कि वे सारे विश्व में कृष्णभावनामृत फैलाने के हमारे विनम्र प्रयासों को भी पसन्द नहीं करते। उल्टे ये पाषण्डी कहते हैं कि हम हिन्दू धर्म को बिगाड़ रहे हैं, क्योंकि सारे विश्व के लोग भगवान् कृष्ण को भगवद्गीता यथारूप के कथनानुसार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। पाषण्डी हमारे इस आन्दोलन की भर्त्सना करते हैं और कभी-कभी दोषारोपण करते हैं कि विदेशों के वैष्णव

प्रामाणिक नहीं हैं। यहाँ तक कि तथाकथित वैष्णव या वैष्णव सम्प्रदाय के बनावटी अनुयायी भी पश्चिमी देशों में वैष्णव बनाने से सम्बन्धित हमारे कार्यों से सहमत नहीं हैं। ऐसे पाषण्डी श्री चैतन्य महाप्रभु के समय में भी उपस्थित थे और वे आज भी पाये जाते हैं। किन्तु इन पाषण्डियों के सारे कार्यकलापों के बावजूद भी महाप्रभु की वाणी खरी उतरेगी–पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम / सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम-प्रत्येक नगर तथा गाँव में मेरे नाम का कीर्तन सुनाई पड़ेगा।" कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रसार को कोई भी रोक नहीं सकता, क्योंकि इसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् चैतन्य महाप्रभु का आशीर्वाद प्राप्त है।

आसि' कहे,—हिन्दुर धर्म भाङ्गिल निमाइ।

ये कीर्तन प्रवर्ताइल, कभु शुनि नाइ ॥204॥

आसि'-वहाँ आकर; कहे-उन्होंने कहा; हिन्दुर–हिन्दूओं का; धर्म-धर्म; भाङ्गिल-तोड़ दिया है; निमाइ–निमाइ पण्डित; ग्रे–कि; कीर्तन-कीर्तन; प्रवर्ताइल-प्रचार किया है; कभु–किसी समय; शुनि-हमने सुना; नाइ–नहीं।

अनुवाद

"मेरे पास आकर कुछ हिन्दुओं ने शिकायत की, निमाइ पण्डित ने तो हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को तोड़ दिया है। उसने संकीर्तन प्रणाली चलाई है, जिसे हमने किसी भी शास्त्र में नहीं सुना।"

मङ्गलचण्डी विषहरि करि' जागरण।

ता'ते वाद्य, नृत्य, गीत,—योग्य आचरण ॥ 205॥

मङ्गल-चण्डी–मंगलचण्डी की पूजा के लिए धर्माचरण का; विषहरि विषहरि की पूजा के लिए धर्माचरण; करि'-पालन करना; जागरण-रात का जागरण; ता'ते-उस कर्मकाण्ड में; वाद्य-वाद्य; नृत्य-नृत्य; गीत-गान; योग्य–योग्य; आचरण-आचरण।

अनुवाद

"जब हम मंगलचण्डी तथा विषहरि की पूजा के लिए रात्रि-जागरण करके धार्मिक उत्सव मनाते हैं, तब बाजा बजाना, नाचना तथा कीर्तन करना निस्सन्देह उचित प्रथा है।"

पूर्वे भाल छिल एइ निमाइ पण्डित।

गया हैते आसिया चालाय विपरीत॥ 206॥

पूर्वे-इसके पहले; भाल-बहुत अच्छा; छिल–था; एइ-यह; निमाइ पण्डित-निमाइ पण्डित; गया-गया तीर्थस्थान; हैते-से; आसिया-आकर; चालाय-करता है; विपरीत–बिलकुल उल्टा।

अनुवाद

"निमाइ पण्डित पहले तो बहुत अच्छा लड़का था, किन्तु जब से वह गया से होकर लौटा है, वह अलग आचरण करने लगा है।"

उच्च करि' गाय गीत, देय करतालि।

मृदङ्ग-करताल-शब्दे कर्णे लागे तालि॥ 207॥

उच्च-उच्च; करि'-करके; गाय-गाता है; गीत-गीत; देय-अभ्यास करता है; करतालि-ताली बजाना; मृदङ्ग-मृदंग; करताल-करताल; शब्दे-आवाज से; कर्णे-कान में; लागे-है; तालि–बन्द करता है।

अनुवाद

"अब वह सभी प्रकार के गाने जोर से गाता है, तालियाँ बजाता है, मृदंग और करताल बजाता है तथा इतनी ऊँची आवाज में शोर करता है कि हमारे कान बहरे हो जाते हैं।"

ना जानि,—कि खाजा मत्त हञा नाचे, गाय।

हासे, कान्दे, पड़े, उठे, गड़ागड़ि याय ॥208॥

ना जानि-हम नहीं जानते; कि-क्या; खाजा खाकर; मत्त-पागल; हञा–होकर; नाचे-वह नाचता है; गाय-गाता है; हासे-हँसता है; कान्दे-चिल्लाता है; पड़े-गिरता है; उठे-उठता है; गड़ागड़ि याय-धरती पर लोटने लगता है।

अनुवाद

हमें समझ में नहीं आता कि वह क्या खाता है, जिससे उन्मत्त होकर वह नाचता है, गाता है, कभी हँसता है, रोता है, गिरता है, कूदता है और भूमि पर लोटने लगता है।

नगरियाके पागल कैल सदा सङ्कीर्तन।

रात्रे निद्रा नाहि याइ, करि जागरण ॥ 209॥

नगरियाके-सारे नागरिक; पागल-उन्मन्त; कैल-उसने बना दिये हैं; सदा-सदा; सङ्कीर्तन-संकीर्तन; रात्रे-रात को; निद्रा-निद्रा; नाहि याइ–हमें नहीं मिलती; करि-करते हैं; जागरण-जागरण।

अनुवाद

"उसने संकीर्तन करके सारे लोगों को एक तरह से पागल बना दिया है। रात में हम सो नहीं पाते, हम सदा जागते रहते हैं।"

'निमाजि' नाम छाड़ि' एबे बोलाय 'गौरहरि' ।

हिन्दुर धर्म नष्ट कैल पाषण्ड सञ्चारि' ॥ 210॥

निमाजि-निमाइ; नाम-नाम; छाड़ि'–छोड़कर; एबे-अब; बोलाय-कहलाता है; गौरहरि-गौरहरि; हिन्दुर–हिन्दुओं का; धर्म-धर्म; नष्ट कैल-खराब किया; पाषण्ड-अधर्म; सञ्चारि–फैलाकर।

अनुवाद

"अब उसने अपना निमाइ नाम छोड़कर 'गौरहरि' नाम शुरु किया है। उसने हिन्दू धर्म के धार्मिक सिद्धान्तों को नष्ट कर दिया है और अविश्वासियों के अधर्म का सूत्रपात किया है।"

कृष्णेर कीर्तन करे नीच बाड़ बाड़ ।

एइ पापे नवद्वीप हइबे उजाड़ ॥ 211॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; कीर्तन-कीर्तन; करे-करता है; नीच–निम्न जाति; बाड़ बाड़-बार बार; एइ पापे-इस पाप से; नवद्वीप-नवद्वीप का सारा नगर; हइबे-हो जायेगा; उजाड़-निर्जन।

अनुवाद

“अब नीच जाति के लोग भी बारम्बार हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर रहे हैं। इस पापकर्म के कारण सारा नवद्वीप नगर वीरान हो जायेगा।”

हिन्दु-शास्त्रे ‘ईश्वर’ नाम–महा-मन्त्र जानि ।

सर्व-लोक शुनिले मन्त्रेर वीर्य हय हानि ॥212॥

हिन्दु-शास्त्रे-हिन्दू शास्त्रों में; ईश्वर–ईश्वर; नाम-पवित्र नाम; महा-मन्त्र-महामंत्र; जानि-हम जानते हैं; सर्व-लोक-सब लोग; शुनिले यदि वे सुनें; मन्त्रेर-मंत्र की; वीर्य-शक्ति; हय हो जाती है; हानि–समाप्त।

अनुवाद

“हिन्दू शास्त्र के अनुसार ईश्वर का नाम सबसे शक्तिशाली मन्त्र है। यदि हर कोई नाम-संकीर्तन सुनता है, तो मन्त्र की शक्ति जाती रहेगी।”

तात्पर्य

भगवान् के पवित्र नाम के जप में होने वाले अपराधों की सूची में कहा गया है- धर्मव्रतत्यागहुतादिसर्वशुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः-भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन को किसी शुभ धार्मिक अनुष्ठान जैसा मानना अपराध है। भौतिकतावादी दृष्टिकोण से किसी धार्मिक अनुष्ठान को मनाने से सारे संसार के भौतिक लाभ के लिए शुभ वातावरण बनता है। इसलिए भौतिकतावादी लोग सुख से तथा बिना व्यवधान के जीवनयापन करने के लिए धार्मिक नियमों का निर्माण करते हैं, जिससे वे भौतिक कार्यकलापों को सम्पन्न कर सकें। चूँकि वे ईश्वर में विश्वास नहीं करते, अतएव उन्होंने मान रखा है कि ईश्वर निराकार हैं और ईश्वर को मानने के लिये उनके किसी भी रूप की

कल्पना की जा सकती है। इसलिए वे देवताओं के विभिन्न रूपों को भगवान् के विविध रूप मानकर उनका आदर करते हैं। वे बह्वीश्वरवादी कहलाते हैं, क्योंकि वे हजारों-हजारों देवताओं के अनुयायी होते हैं। वे अनेक देवताओं के नामों के कीर्तन को शुभ कर्म मानते हैं। अनेक बड़े-बड़े तथाकथित स्वामियों ने पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें कहा गया है कि व्यक्ति चाहे तो कोई भी नाम-दुर्गा, काली, शिव, कृष्ण, राम आदि का जप सकता है, क्योंकि समाज के कल्याणमय वातावरण के निर्माण के लिए कोई भी नाम ठीक है। इस प्रकार वे पाषण्डी कहलाते हैं-अविश्वासी या श्रद्धाविहीन असुर।

ऐसे पाषण्डी भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन के वास्तविक महत्त्व को नहीं जानते। ब्राह्मण-कुल में जन्म लेने के कारण व्यर्थ ही गर्वित होने तथा सामाजिक व्यवस्था में उच्च पद होने के कारण वे अन्य जातियों-क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों को निम्न जातियाँ मानते हैं। उनके अनुसार केवल ब्राह्मण ही कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण कर सकते हैं, क्योंकि यदि पवित्र नाम का अन्य कोई उच्चारण करता है, तो मंत्र की शक्ति घट जाती है। वे भगवान् कृष्ण के नाम की शक्ति से अनजान होते हैं। बृहन्नारदीय पुराण में कहा गया है :

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेनमेव केवलम्

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

“इस कलियुग में आध्यात्मिक प्रगति के लिए भगवान् के पवित्र नाम के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है, और कोई विकल्प नहीं है, और कोई विकल्प नहीं है।” पाषण्डी लोग यह मानने को तैयार नहीं होते कि कृष्ण के पवित्र नाम की शक्ति इतनी महान् है कि इसके कीर्तन मात्र से मनुष्य का उद्धार हो सकता है, यद्यपि श्रीमद्भागवत (12.3.51) में इसकी पुष्टि हुई है-कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत । विश्व के किसी भी भाग का कोई भी व्यक्ति, जो कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करता

है, मृत्यु के बाद मुक्त होकर भगवधाम जा सकता है। धूर्त पाषण्डी लोग सोचते हैं कि यदि ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य कोई नाम-कीर्तन करता है, तो पवित्र नाम की शक्ति जाती रहेगी। उनके अनुसार पतितात्माओं का उद्धार करने के बदले पवित्र नाम की शक्ति कम हो जाती है। अनेक देवताओं में विश्वास करने के कारण और कृष्ण-नाम के कीर्तन को अन्य मन्त्रों के समान मानने के कारण ये पाषण्डी लोग शास्त्र के वचनों पर विश्वास नहीं करते (हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्)। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने शिक्षाष्टक में पुष्टि की है-कीर्तनीयः सदा हरिः-मनुष्य को चौबीसों घण्टे भगवन् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए। किन्तु पाषण्डी लोग इतने गिरे हुए हैं और उन्हें ब्राह्मण जाति का होने का इतना मिथ्या गर्व रहता है कि वे यह सोचते हैं कि पवित्र नाम पतितात्माओं का उद्धार नहीं कर सकता, बल्कि निम्न कुल के लोगों द्वारा लगातार कीर्तन किये जाने से हरिनाम की शक्ति कम हो जाती है।

श्लोक 211 में कृष्णेर कीर्तन करे नीच बाड़ बाड़ शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। और इंगित करते हैं कि कोई भी व्यक्ति कीर्तन आन्दोलन में सम्मिलित हो सकता है। जैसाकि श्रीमद्भागवत (2.4.18) में उल्लेख मिलता है- किरात हूणान्ध्र पुलिन्द पुल्कषा आभीरशुम्भा यवनाः खसादयः।यह चण्डालों के नामों की सूची है। पाषण्डियों का कहना है कि यदि इन निम्न जाति वालों को कीर्तन करने दिया जाता है, तो उनका प्रभाव बढ़ जाता है। वे नहीं चाहते कि दूसरों में भी आध्यात्मिक गुणों का विकास हो, क्योंकि आध्यात्मिक कार्यों में वे एकाधिकार बनाए हुए हैं और इससे उच्च ब्राह्मण-कुलों में जन्म लेने का उनका झूठा गर्व घटेगा। किन्तु तथाकथित हिन्दुओं तथा ब्राह्मण जाति के सदस्यों के विरोध के बावजूद हम सारे विश्व में कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रचार, शास्त्रों के आदेशानुसार तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा के अनुसार कर रहे हैं। अतः हमें विश्वास है कि इस तरह हम अनेक पतितात्माओं का उद्धार कर रहे हैं और उन्हें भगवधाम वापस जाने के पात्र बना रहे हैं।

ग्रामेर ठाकुर तुमि, सब तोमार जन।

निमाइ बोलाइया तारे करह वर्जन ॥ 213॥

ग्रामेर-इस नगर का; ठाकुर-बादशाह, शासक; तुमि-आप; सब-सब; तोमार-आपके; जन-लोग; निमाइ–निमाइ पण्डित; बोलाइया–बुलाकर; तारे-उसको; करह-करो; वर्जन-नगर छोड़ने का दण्ड दो।

अनुवाद

"मान्यवर, आप इस नगर के शासक हैं। चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, सभी आपके सरंक्षण में हैं। अतएव आप कृपया निमाइ पण्डित को बुलायें और उससे नगर छोड़ने के लिए कहें।"

तात्पर्य

ठाकुर शब्द के दो अर्थ हैं। एक अर्थ है ईश्वर या ईश्वरतुल्य पुरुष तथा दूसरा अर्थ है क्षत्रिय। यहाँ पर पाषण्डी ब्राह्मण काजी को नगर का शासक मानकर ठाकुर शब्द से सम्बोधित करते हैं। विभिन्न जातियों के सदस्यों को सम्बोधित करने के लिए भिन्न-भिन्न नाम हैं। यथा ब्राह्मणों को महाराज, क्षत्रियों को ठाकुर, वैश्यों को शेठ अथवा महाजन और शूद्रों को चौधरी कहा जाता है। उत्तर भारत में आज भी यह शिष्टाचार चल रहा है, जहाँ क्षत्रियों को ठाकुर साहब कहा जाता है। इन पाषण्डियों ने जाकर मैजिस्ट्रेट या काजी से यहाँ तक निवेदन किया कि हरिनाम सङ्कीर्तन का सूत्रपात करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु को नगर से निकाल दिया जाए। सौभाग्यवश हमारा हरे कृष्ण आन्दोलन यूरोप तथा अमरीका जैसे सभ्य देशों में अत्यन्त लोकप्रिय बन चुका है। सामान्यतया हमारे विरुद्ध कोई यह शिकायत नहीं करता कि इन्हें नगर से बाहर निकाल दिया जाए। यद्यपि मेलबोर्न, आस्ट्रेलिया में ऐसा प्रयास वास्तव में हुआ था, किन्तु वह असफल रहा। अतएव

हम इस हरे कृष्ण आन्दोलन को न्यूयार्क, लन्दन, पेरिस, टोकियो, सिडनी, मेलबोर्न, आकलेंड जैसे बड़े शहरों में चालू कर रहे हैं और महाप्रभु की कृपा से सारा काम सुचारु रूप से चल रहा है। लोग हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए प्रसन्न हैं और इसका परिणाम अत्यधिक सन्तोषजनक है।

तबे आमि प्रीति-वाक्य कहिल सबारे ।

सबे घरे याह, आमि निषेधिब तारे ॥ 214॥

तबे-तत्पश्चात्; आमि-मैंने; प्रीति-वाक्य-मधुर वचन; कहिल-कहे; सबारे-उन सबको; सबे-आप सब; घरे–घर लौटकर; याह-जाओ; आमि-मैं; निषेधिब-रोक देंगा; तारे-उसको (निमाइ पण्डित को)।

अनुवाद

"उनकी शिकायतें सुनने के बाद मैंने मीठी वाणी में उनसे कहा, 'आप लोग घर जाएँ। मैं अवश्य ही निमाइ पण्डित को इस हरे कृष्ण आन्दोलन को चालू रखने से मना कर दूँगा।"

हिन्दुर ईश्वर बड़ येइ नारायण ।

सेइ तुमि हओ, हेन लय मोर मन ॥215॥

हिन्दुर-हिन्दुओं का; ईश्वर-ईश्वर; बड़-सर्वोच्च; येइ-जो; नारायण भगवान् नारायण; सेइ-वे; तुमि-आप; हओ-हो; हेन-ऐसा; लय-समझता है; मोर-मेरा; मन–मन।

अनुवाद

"मैं जानता हूँ कि नारायण हिन्दुओं के परमेश्वर हैं और मेरी समझ में आप वही नारायण हैं। मैं अपने अन्तःकरण में ऐसा अनुभव करता हूँ।"

एत शुनि' महाप्रभु हासिया हासिया।

कहिते लागिला किछु काजिरे छुडिया ॥216॥

एत-यह; शुनि'–सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हासिया हासिया-हँसकर; कहिते-कहने; लागिला—लगे; किछु-कुछ; काजिरे-काजी को; छुडिया स्पर्श करके।

अनुवाद

काजी को इस प्रकार सुन्दर वचन बोलते हुए सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसका स्पर्श किया और हँसते हुए इस प्रकार बोले।

तोमार मुखे कृष्ण-नाम,—ए बड़ विचित्र।

पाप-क्षय गेल, हैला परम पवित्र ॥ 217॥

तोमार मुखे—तुम्हारे मुख में; कृष्ण-नाम-कृष्ण नाम का कीर्तन; ए-यह; बड़-बहुत; विचित्र-विचित्र; पाप-क्षय-पाप-कर्म का निवारण; गेल-वास्तविकता है; हैला-हो गये हैं; परम-परम; पवित्र शुद्ध, पवित्र।

अनुवाद

"आपके मुख से कृष्ण के पवित्र नाम के उच्चारण ने आश्चर्य कर दिखाया है। इसने आपके सारे पापकर्मों के फलों को निर्मूल कर दिया है। अब आप नितान्त शुद्ध बन गये हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के मुखारविन्द से संकीर्तन आन्दोलन की शक्ति की पुष्टि यह बतलाती है कि लोग किस प्रकार केवल कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन से शुद्ध हो सकते हैं। काजी मुसलमान मांसाहारी या म्लेच्छ था, लेकिन उसने अनेक बार कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण किया, अतएव उसके सारे पापकर्मों के फल दूर हो गये और वह सारे भौतिक कल्मष से शुद्ध हो गया। हमारी समझ में नहीं आता कि आज के पाषण्डी लोग क्यों इसका विरोध करते हैं कि सारे विश्व में कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचार से तथा सभी वर्गों के लोगों को वैष्णवता के चरम स्तर तक ले जाने से हिन्दू धर्म का ह्रास हो रहा है। किन्तु ये धूर्त इस कदर हमारा विरोध करते हैं कि उनमें से कुछ यूरोपीय तथा अमरीकी वैष्णवों को विष्णु-मन्दिरों में प्रवेश करने की अनुमति तक नहीं देते। धर्म को भौतिक लाभ के निमित्त मानकर ये तथाकथित हिन्दू अनेक देवताओं की पूजा करके दूषित बन चुके हैं। अगले श्लोक में महाप्रभु काजी की शुद्धि की पुष्टि करते हैं।

‘हरि’ ‘कृष्ण’ ‘नारायण’—लैले तिन नाम ।

बड़ भाग्यवान्तुमि, बड़ पुण्यवान् ॥ 218॥

हरि कृष्ण नारायण भगवान् हरि, कृष्ण और नारायण के पावन नाम; लैले–आपने लिये हैं; तिन–तीन; नाम-पावन नाम; बड़-बहुत; भाग्यवान्–भाग्यशाली; तुमि-आप हो; बड़-बहुत; पुण्यवान्–पुण्यशाली।

अनुवाद

“चूँकि आपने हरि, कृष्ण तथा नारायण-भगवान् के इन तीन पवित्र नामों का उच्चारण किया है, अतएव आप निस्सन्देह, परम भाग्यशाली और पुण्यात्मा हैं।”

तात्पर्य

यहाँ पर परम भगवान्, श्री चैतन्य महाप्रभु पुष्टि करते हैं कि जो भी अपराधरहित होकर "हरि," "कृष्ण" तथा "नारायण" के पवित्र नामों का उच्चारण करता है, वह निश्चय ही परम भाग्यशाली होता है, चाहे वह भारतीय हो या अभारतीय, हिन्दू हो या अहिन्दू और वह तुरन्त अत्यन्त पुण्यात्मा बन जाता है। अतएव हम उन पाषण्डियों के कथनों की परवाह नहीं करते, जो हमारे आन्दोलन द्वारा अन्य शहरों या देशों के सदस्यों को वैष्णव बनाने का विरोध करते हैं। हमें अपने कार्य को शान्तिपूर्ण ढंग से चलाने के लिए महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुगमन करना चाहिए अथवा आवश्यकता पड़े तो ऐसे विरोधियों को मुँह-तोड़ जवाब देना चाहिए।

एत शुनि' काजीर दुइ चक्षे पड़े पानि।

प्रभुर चरण छुङि' बले प्रिय-वाणी॥ 219॥

एत-यह; शुनि'–सुनकर; काजीर-काजी की; दुइ-दोनों; चक्षे–आँखों में; पड़े-बहने लगे; पानि-अश्रु; प्रभुर–महाप्रभु के; चरण-चरणकमल; छुङि'–छूकर; बले-कहता है; प्रिय-वाणी-मधुर वाणी।

अनुवाद

यह सुनकर काजी की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने तुरन्त ही महाप्रभु के चरणकमलों का स्पर्श किया और मीठी वाणी में इस प्रकार कहा।

तोमार प्रसादे मोर घुचिल कुमति।

एइ कृपा कर,—येन तोमाते रहु भक्ति॥ 220॥

तोमार प्रसादे-आपकी कृपा से; मोर–मेरे; घुचिल–नष्ट हो गये हैं; कुमति–बुरे विचार; एइ–यह; कृपा-कृपा; कर-कृपया मुझ पर करो; येन–ताकि; तोमाते-आप में; रह-रह सके; भक्ति-भक्ति।

अनुवाद

"केवल आपकी कृपा से ही मेरे बुरे विचार दूर हो सके हैं। अब मुझ पर कृपा करें, जिससे मेरी भक्ति आप पर स्थिर रहे।"

प्रभु कहे,—एक दान मागिये तोमाय ।

सङ्कीर्तन वाद यैछे नहे नदीयाय ॥221॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; एक-एक; दान-दान; मागिये-मैं माँगता हूँ; तोमाय-आपसे; सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण मंत्र का संकीर्तन; वाद–विरोध; यैछे-जैसा हो सके; नहे-नहीं; नदीयाय-नदिया जिले में।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "मैं आपसे एक दान माँगता हूँ। आप वचन दें कि कम-से-कम नदिया जिले में यह संकीर्तन आन्दोलन रोका नहीं जायेगा।"

काजी कहे,—मोर वंशे यत उपजिबे ।

ताहाके 'तालाक' दिब,—कीर्तन ना बाधिबे ॥222॥

काजी कहे-काजी ने कहा; मोर-मेरे; वंशे-वंश में; यत-सभी (वंशज); उपजिबे-जो जन्म लेंगे; ताहाके-उनको; तालाक-गम्भीर चेतावनी; दिब-मैं दूँगा; कीर्तन-संकीर्तन आन्दोलन का; ना–कभी नहीं; बाधिबे-विरोध करेंगे।

अनुवाद

काजी ने कहा, "भविष्य में मेरे वंश में जितने भी लोग उत्पन्न होंगे, उन्हें मैं यह कड़ी चेतावनी देता हूँ कि कोई भी संकीर्तन आन्दोलन को न रोके।"

तात्पर्य

काजी के इस गम्भीर आदेश से आज भी काजी परिवार के वंशज किसी भी दशा में संकीर्तन आन्दोलन का विरोध नहीं करते। यहाँ तक कि पड़ोस में हिन्दू-मुस्लिम दंगों के दौरान भी काजी के वंशजों ने अपने पूर्वजों द्वारा दिये गये आश्वासनों को ईमानदारी से बनाए रखा।

शुनि' प्रभु 'हरि' बलि' उठिला आपनि ।

उठिल वैष्णव सब करि' हरि-ध्वनि ॥ 223 ॥

शुनि'–सुनकर; प्रभु–महाप्रभु; हरि-भगवान् का पावन नाम हरि; बलि' बोलकर; उठिला-उठे; आपनि–स्वयं; उठिल-उठे; वैष्णव-अन्य भक्त; सब-सब; करि'-करके; हरि-ध्वनि-पावन नाम "हरि, हरि" की ध्वनि।

अनुवाद

यह सुनकर महाप्रभु "हरि! हरि!" कहते हुए उठ खड़े हुए। उनके पीछे पीछे अन्य सारे वैष्णव भी पवित्र नाम की ध्वनि करते हुए खड़े हो गये।

कीर्तन करिते प्रभु करिला गमन ।

सङ्गे चलि' आइसे काजी उल्लसित मन ॥224॥

कीर्तन-कीर्तन; करिते-करते हुए; प्रभु–महाप्रभु ने; करिला-किया; गमन-प्रस्थान; सङ्गे–उनका साथ देते हुए; चलि'–चलकर; आइसे-जाता है; काजी-काजी; उल्लसित–प्रसन्न होकर; मन-मन में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कीर्तन करने चले गये और काजी भी प्रसन्न मन से उनके साथ गया।

काजीरे विदाय दिल शचीर नन्दन ।

नाचिते नाचिते आइला आपन भवन ॥ 225॥

काजीरे-काजी को; विदाय–विदाई; दिल-दी; शचीर-माता शची के; नन्दन-पुत्र ने; नाचिते नाचिते-नाचते नाचते; आइला–लौट आये; आपन-अपने; भवन–घर।

अनुवाद

महाप्रभु ने काजी से घर लौट जाने के लिए कहा। उसके बाद शचीमाता के पुत्र महाप्रभु नाचते-नाचते अपने घर आये।

एइ मते काजीरे प्रभु करिला प्रसाद ।

इहा येइ शुने तार खण्डे अपराध ॥ 226॥

एइ मते-इस प्रकार; काजीरे-काजी पर; प्रभु–महाप्रभु ने; करिला-की; प्रसाद-कृपा; इहा-यह; येइ-जो कोई; शुने-सुनता हैं; तार-उसके; खण्डे-दूर हो जाते हैं; अपराध-अपराध।

अनुवाद

यह घटना काजी तथा उस पर भगवान् की कृपा से सम्बन्धित है। जो भी इसे सुनता है, वह सारे अपराधों से छूट जाता है।

एक दिन श्रीवासेर मन्दिरे गोसाञि ।

नित्यानन्द-सङ्गे नृत्य करे दुइ भाइ ॥ 227॥

एक दिन-एक दिन; श्रीवासेर-श्रीवास ठाकुर के; मन्दिरे-घर में: गोसाञि-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; सङ्गे–के साथ; नृत्य-नृत्य; करे-कर रहे थे; दुइ-दोनों; भाइ–भाइयों ने।

अनुवाद

एक दिन नित्यानन्द प्रभु तथा श्री चैतन्य महाप्रभु दोनों भाई श्रीवास ठाकुर के पवित्र घर में नृत्य कर रहे थे।

श्रीवास-पुत्रेर ताहाँ हैल परलोक ।

तबु श्रीवासेर चित्ते ना जन्मिल शोक ॥ 228॥

श्रीवास-श्रीवास ठाकुर के; पुत्रेर-पुत्र का; ताहाँ-वहाँ; हैल–हो गया; परलोक-देहान्त; तबु–फिर भी; श्रीवासेर-श्रीवास ठाकुर के; चित्ते–मन में; ना-नहीं; जन्मिल-उत्पन्न हुआ; शोक-शोक।

अनुवाद

उस समय एक विपत्ति आ पड़ी–श्रीवास ठाकुर के पुत्र का देहान्त हो गया। फिर भी श्रीवास ठाकुर रंच-भर भी दुःखी नहीं हुए।

मृत-पुत्र-मुखे कैल ज्ञानेर कथन ।

आपने दुइ भाइ हैला श्रीवास-नन्दन ॥ 229॥

मृत-पुत्र-मृत पुत्र के; मुखे-मुख से; कैल-की; ज्ञानेर-ज्ञान की; कथन-बातचीत; आपने-व्यक्तिगत रूप से; दुइ-दोनों; भाइ–भाई; हैला–हो गये; श्रीवास-नन्दन–श्रीवास ठाकुर के पुत्र।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मृत पुत्र से ज्ञान की बातें कहलवाई और तब दोनों भाई स्वयं श्रीवास ठाकुर के पुत्र बन गये।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है। एक रात को जब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के साथ श्रीवास ठाकुर के घर नृत्य कर रहे थे, तब श्रीवास ठाकुर के एक पुत्र का, जो पहले से बीमार था, देहान्त हो गया। किन्तु श्रीवास ठाकुर इतने धैर्यवान थे कि उन्होंने शोक प्रकट करने के लिए किसी को रोने नहीं दिया, क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि उनके घर में चल रहे कीर्तन में किसी प्रकार का व्यवधान पड़े। इस तरह विलाप न किये जाने के कारण कीर्तन चलता रहा। किन्तु जब कीर्तन समाप्त हुआ, तो चैतन्य महाप्रभु इस घटना को भांप गये, अतएव उन्होंने कहा कि, "इस घर में अवश्य ही कोई विपत्ति आई है।" जब

उन्हें श्रीवास ठाकुर के पुत्र के निधन की सूचना दी गई, तो उन्होंने इस प्रकार शोक व्यक्त किया, "मुझे यह सूचना पहले क्यों नहीं दी गई ?" वे उस स्थान में गये जहाँ मृत पुत्र लेटा था और उससे पूछा, "हे बालक, तुम श्रीवास ठाकुर का घर छोड़कर क्यों जा रहे हो?" उस मृत पुत्र ने तुरन्त उत्तर दिया, "मैं इस घर में तब तक रहा, जब तक मेरा यहाँ रहना निर्धारित था। अब समय पूरा हो गया है, अतएव मैं आपके निर्देश के अनुसार अन्यत्र जा रहा हूँ। मैं आपका सनातन सेवक, आश्रित जीव हूँ। मुझे आपकी इच्छानुसार ही कर्म करना है। आपकी इच्छा के परे न तो मैं कुछ कर सकता हूँ, न ही मुझ में ऐसी शक्ति है।" मृत पुत्र के इन वचनों को सुनकर श्रीवास के सारे परिवार वालों को दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। फलतः शोक करने का कोई कारण न था। यह दिव्य ज्ञान भगवद्गीता (2.13) में वर्णित है- तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति। मरने पर मनुष्य दूसरा शरीर धारण करता है, अतएव धीर पुरुष शोक नहीं करते। मृत पुत्र तथा महाप्रभु के मध्य इस वार्ता के बाद दाह-संस्कार सम्पन्न किया गया और महाप्रभु ने श्रीवास ठाकुर को आश्वस्त किया, "आपने अपना एक पुत्र खोया है, किन्तु नित्यानन्द प्रभु तथा मैं आपके नित्य पुत्र हैं। हम आपका साथ कभी नहीं छोड़ेंगे।" यह कृष्ण के साथ दिव्य सम्बन्ध का एक उदाहरण है। कृष्ण के साथ हमारा सम्बन्ध उनके नित्य दास, मित्र, पिता, पुत्र या प्रेमी के रूप में होता है। जब यही सम्बन्ध विकृत रूप में इस भौतिक जगत् में प्रतिबिम्बित होते हैं, तो हम अन्यों के साथ पुत्र, पिता, मित्र, प्रेमी, स्वामी या दास रूप में सम्बन्धित होते हैं। किन्तु ये सारे सम्बन्ध निश्चित अवधि में समाप्त हो जाने वाले होते हैं। किन्तु यदि हम, चैतन्य महाप्रभु की कृपा से, कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को जाग्रत कर लें, तो हमारा शाश्वत सम्बन्ध कभी नहीं टूटेगा और हमें शोक न करना पड़ेगा।

तबे त' करिला सब भक्ते वर दान ।

उच्छिष्ट दिया नारायणीर करिल सम्मान ॥ 230॥

तबे-तत्पश्चात्; त'–निश्चित रूप से; करिला–किया; सब भक्ते-सभी भक्तों को; वर-आशीर्वाद; दान-दान; उच्छिष्ट–शेष बचा भोजन; दिया-देकर; नारायणीर-नारायणी का; करिल किया; सम्मान-सम्मान।

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु ने अपने सभी भक्तों को वरदान दिया। उन्होंने नारायणी के प्रति विशेष सम्मान प्रकट करते हुए उसे अपना शेष बचा प्रसाद दिया।

तात्पर्य

नारायणी श्रीवास ठाकुर की भांजी थी और बाद में यही श्रील वृन्दावन दास ठाकुर की माता बनी। इस सन्दर्भ में सहजिया लोग एक द्वेषपूर्ण कथा का उद्धरण देते हैं कि नारायणी श्री चैतन्य महाप्रभु का जूठन खाकर गर्भिणी हुई और वृन्दावन दास ठाकुर का जन्म हुआ। भले ही ये धूर्त सहजिये इस तरह के झूठे वक्तव्य प्रस्तुत करते रहें, किन्तु उन पर किसी को विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे वैष्णवों के प्रति शत्रुतावश ऐसा करते हैं।

श्रीवासेर वस्त्र सिंये दरजी यवन।

प्रभु तारे निज-रूप कराइल दर्शन ॥231॥

श्रीवासेर-श्रीवास ठाकुर के; वस्त्र-वस्त्र; सिंये-सीना; दरजी-दरजी; यवन-मांसाहारी; प्रभु–महाप्रभु; तारे-उसको; निज-रूप-अपने निजी रूप का; कराइल-करवाया; दर्शन-दर्शन।

अनुवाद

एक दर्जी था जो मांसभक्षी था, किन्तु वह श्रीवास ठाकुर के कपड़े सिला करता था। महाप्रभु ने उस पर कृपा करके उसे अपना स्वरूप दिखलाया।

'देखिनु' 'देखिनु' बलि' हइल पागल।

प्रेमे नृत्य करे, हैल वैष्णव आगल ॥ 232॥

देखिनु-मैंने देखा है; देखिनु-मैंने देखा है; बलि' कहते हुए; हइल-हो गया; पागल-उन्मत्त; प्रेमे-प्रेम के आवेश में; नृत्य-नृत्य; करे-करता है; हैल-हो गया; वैष्णव-भक्त; आगल-प्रथम श्रेणी का।

अनुवाद

मैंने देख लिया है! मैंने देख लिया है!" कहते हुए तथा भावविभोर होकर पागल की तरह नाचते हुए वह दर्जी उच्च कोटि का वैष्णव बन गया।

तात्पर्य

श्रीवास ठाकुर के मकान के पास एक मुसलमान दर्जी रहता था, जो परिवार के वस्त्र सिला करता था। एक दिन वह श्री चैतन्य महाप्रभु के नृत्य से अत्यधिक प्रसन्न हुआ। वास्तव में वह मन्त्रमुग्ध हो गया था। महाप्रभु उसके मनोभाव जान गये, अतएव उन्होंने उसे अपना कृष्ण का आदि रूप दिखलाया। तब वह दर्जी यह कह कहकर नाचने लगा, "मैंने देख लिया है। मैंने देख लिया है !" वह भावविभोर हो गया और महाप्रभु के साथ नाचने लगा। इस तरह वह श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों में एक अग्रणी वैष्णव बन गया।

आवेशेते श्रीवासे प्रभु वंशी त' मागिल।

श्रीवास कहे,—वंशी तोमार गोपी हरि' निल ॥ 233॥

आवेशेते-आवेश में; श्रीवासे-श्रीवास से; प्रभु-महाप्रभु; वंशी-बांसुरी; त'–निश्चित रूप से; मागिल-माँगी; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर ने; कहे-उत्तर दिया; वंशी-बांसुरी; तोमार-आपकी; गोपी-गोपियाँ; हरि-चुराकर; निल-ले गई।

अनुवाद

भाव में महाप्रभु ने श्रीवास ठाकुर से अपनी वंशी माँगी, किन्तु श्रीवास ठाकुर ने उत्तर दिया, "आपकी वंशी तो गोपियों ने चुरा ली है।"

शुनि' प्रभु 'बल' 'बल' बलेन आवेशे।

श्रीवास वर्णेन वृन्दावन-लीला-रसे ॥234॥

शुनि'–सुनकर; प्रभु–महाप्रभु; बल बल-बोलते रहो, बोलते रहो; बलेन-उन्होंने कहा; आवेशे-आवेश में; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; वर्णेन-वर्णन करते हैं; वृन्दावन-वृन्दावन की; लीला-रसे-लीलाओं का दिव्य रस।

अनुवाद

यह उत्तर सुनकर महाप्रभु ने आवेश में कहा, "बोलते चलो! बोलते चलो!" इस प्रकार श्रीवास ने श्री वृन्दावन की लीलाओं के दिव्य रस का वर्णन किया।

प्रथमेते वृन्दावन-माधुर्य वर्णिल।

शुनिया प्रभुर चित्ते आनन्द बाड़िल ॥ 235॥

प्रथमेते-आरम्भ में; वृन्दावन-माधुर्य-वृन्दावन की मधुर लीलाएँ; वर्णिल-वर्णन की; शुनिया-सुनकर; प्रभुर–महाप्रभु के; चित्ते-हृदय में; आनन्द–आनन्द; बाड़िल-बढ़ गया।

अनुवाद

सबसे पहले श्रीवास ठाकुर ने वृन्दावन-लीलाओं की दिव्य मधुरता का वर्णन किया, जिन्हें सुनकर महाप्रभु के चित्त में हर्ष अत्यन्त बढ़ने लगा।

तबे 'बल' 'बल' प्रभु बले वार-वार।

पुनः पुनः कहे श्रीवास करिया विस्तार॥ 236॥

तबे-तत्पश्चात्; बल बल-बोलते रहो, बोलते रहो; प्रभु–महाप्रभु; बले-कहने लगे; वार-वार-बारम्बार; पुनः पुनः–बारम्बार; कहे-कहते हैं; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; करिया-करके; विस्तार विस्तार।

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु ने उनसे बारम्बार कहा, "बोलते चलो! बोलते चलो!" इस तरह श्रीवास ने वृन्दावन की लीलाओं का वर्णन विस्तार से बारम्बार किया।

वंशी-वाद्ये गोपी-गणेर वने आकर्षण।

ताँ-सबार सङ्गे यैछे वन-विहरण॥ 237॥

वंशी-वाद्ये-बांसुरी की ध्वनि सुनकर; गोपी-गणेर-सभी गोपियों का; वने-वन में; आकर्षण-आकर्षण; ताँ-सबार–उन सबके; सङ्गे-साथ; यैछे-किस प्रकार; वन-वन में; विहरण–विहार।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर ने विस्तार से बतलाया कि किस तरह गोपियाँ कृष्ण की वंशी की धुन से वृन्दावन के जंगलों की ओर आकृष्ट हुई थीं और किस तरह वे जंगल में उनके साथ साथ विहार करती थीं।

ताहि मध्ये छय-ऋतु लीलार वर्णन।

मधु-पान, रासोत्सव, जल-केलि कथन ॥ 238 ॥

ताहि मध्ये-उस दौरान; छय-ऋतु-छः ऋतुएँ; लीलार-लीलाओं का; वर्णन-वर्णन; मधु-पान-शहद का पान; रास-उत्सव-रासलीला का नृत्य; जल-केलि-यमुना में तैरना; कथन-वर्णन।

अनुवाद

श्रीवास पण्डित ने छह ऋतुओं में की गई सारी लीलाओं का वर्णन किया। उन्होंने मधु-पान करने, रास नृत्य रचाने, यमुना में तैरने तथा अन्य ऐसी घटनाओं का वर्णन किया।

'बल' 'बल' बले प्रभु शुनिते उल्लास।

श्रीवास कहेन तबे रास रसेर विलास ॥ 239॥

बल बल-बोलते रहो, बोलते रहो; बले-कहा; प्रभु–महाप्रभु; शुनिते-सुनकर; उल्लास-बहुत प्रसन्न होकर; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; कहेन–कहते हैं; तबे-तब; रास-रास नृत्य; रसेर-दिव्य रस से युक्त; विलास-लीलाएँ।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने अत्यन्त हर्षित होकर सुनते हुए कहा, “कहते चलो! कहते चलो!” तब श्रीवास ठाकुर ने रासलीला का वर्णन किया, जो दिव्य रस से भरपूर है।

कहिते, शुनिते ऐछे प्रातःकाल हैल ।

प्रभु श्रीवासेरे तोषि’ आलिङ्गन कैल ॥ 240॥

कहिते-कहकर; शुनिते-सुनकर; ऐछे-उस प्रकार; प्रातः-काल-सुबह; हैल-हो गई; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीवासेरे–श्रीवास ठाकुर को; तोषि’–सन्तुष्ट करके; आलिङ्गन-आलिंगन; कैल-किया।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु को कहते-कहते और श्रीवास ठाकुर को सुनाते-सुनाते प्रात:काल हो गया, तो महाप्रभु ने श्रीवास ठाकुर का आलिंगन करके उन्हें तुष्ट किया।

तबे आचार घरे कैल कृष्ण-लीला ।

रुक्मिणी-स्वरूप प्रभु आपने हइला ॥ 241॥

तबे-तत्पश्चात्; आचार-श्री चन्द्रशेखर आचार्य; घरे घर में; कैल–किया; कृष्ण-लीला-भगवान् कृष्ण की लीलाएँ; रुक्मिणी-रुक्मिणी का; स्वरूप-स्वरूप; प्रभु-महाप्रभु; आपने–स्वयं; हइला–बने।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चन्द्रशेखर आचार्य के घर में कृष्ण की लीलाओं का नाटकीय अभिनय हुआ। स्वयं महाप्रभु ने कृष्ण की मुख्य पटरानी रुक्मिणी का अभिनय किया।

कभु दुर्गा, लक्ष्मी हय, कभु वा चिच्छक्ति ।

खाटे वसि' भक्त-गणे दिला प्रेम-भक्ति ॥ 242॥

कभु-कभी-कभी; दुर्गा–दुर्गा देवी की भूमिका; लक्ष्मी-लक्ष्मी देवी; हय-बनते; कभु-कभी-कभी; वा-अथवा; चित्-शक्ति-आध्यात्मिक शक्ति; खाटे-खाट पर; वसि'–बैठकर; भक्त-गणे-भक्तों को; दिला–दिया; प्रेम-भक्ति-प्रेमाभक्ति।

अनुवाद

महाप्रभु कभी देवी दुर्गा का अभिनय करते, कभी लक्ष्मी, या मुख्य शक्ति योगमाया का। पलंग पर बैठकर उन्होंने सारे उपस्थित भक्तों को भगवत्प्रेम प्रदान किया।

एक-दिन महाप्रभुर नृत्य-अवसाने ।

एक ब्राह्मणी आसि' धरिल चरणे ॥ 243॥

एक-दिन-एक दिन; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; नृत्य-अवसाने-नृत्य के अन्त में; एक-एक; ब्राह्मणी-ब्राह्मणी ने; आसि-आकर; धरिल-पकड़ लिए; चरणे-उनके चरणकमल।

अनुवाद

एक दिन जब महाप्रभु ने अपना नृत्य समाप्त किया, तभी एक स्त्री, किसी ब्राह्मण की पत्नी, वहाँ आई और उसने महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिए।

चरणेर धूलि सेइ लय वार वार।

देखिया प्रभुर दुःख हइल अपार॥ 244॥

चरणेर-उनके चरणकमल की; धूलि-रज, धूलि; सेइ-वह महिला; लय-लेती है; वार वार–बारम्बार; देखिया-यह देखकर; प्रभुर–महाप्रभु को; दुःख-दु:ख; हइल-हो गया; अपार-असीम।

अनुवाद

ज्योंही वह स्त्री बारम्बार उनके चरणों की धूल लेने लगी, महाप्रभु को अपार दुःख हुआ।

तात्पर्य

किसी महापुरुष के चरणकमलों को पकड़ना उस व्यक्ति के लिए निश्चित ही अच्छा होता है, जो धूल लेता है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के दुःख का यह उदाहरण संकेत है कि वैष्णव को चाहिए कि किसी को अपने चरणों की धूल न लेने दे।

जो व्यक्ति किसी महापुरुष के चरणकमलों की धूल लेता है, वह अपने पाप उस महापुरुष को दे देता है। जब तक वह व्यक्ति जिसकी धूली ली गई हो, वह अत्यन्त बलशाली न हो, तो धूल लेने वाले व्यक्ति के पापों को उसे सहना पड़ता है। अतएव सामान्यतया ऐसा नहीं होने देना चाहिए। कभी-कभी बड़ी-बड़ी सभाओं में लोग हमारे चरण छूकर वही लाभ लेना चाहते हैं। इसी कारण से हमें कभी-कभी कोई रोग सहना पड़ता है। जहाँ तक सम्भव हो, किसी बाहरी व्यक्ति को अपने पाँव की धूल नहीं लेने देना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने उदाहरण से इसे दिखलाया है, जैसाकि अगले श्लोक में बतलाया गया है।

सेइ-क्षणे धाबा प्रभु गङ्गाते पड़िल।

नित्यानन्द-हरिदास धरि’ उठाइल ॥ 245॥

सेइ-क्षणे-तत्क्षण; धाना-दौड़कर; प्रभु-महाप्रभु; गङ्गाते-गंगा जल में; पड़िल-डुबकी लगाई; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; धरि’–उनको पकड़कर; उठाइल-उनको उठाया।

अनुवाद

वे तुरन्त ही दौड़े-दौड़े गंगा नदी में गये और उस स्त्री के पापफलों को दूर करने के लिए नदी में कूद पड़े। नित्यानन्द प्रभु तथा हरिदास ठाकुर ने उन्हें पकड़कर नदी से निकाला।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं ईश्वर हैं, किन्तु वे एक उपदेशक की भूमिका निभा रहे थे। प्रत्येक उपदेशक (प्रचारक) को यह जान लेना चाहिए कि भले ही वैष्णव के पाँव छूना तथा धूल धारण करना उस व्यक्ति के लिए शुभ है, जो धूल ग्रहण करता है, किन्तु वह उस व्यक्ति के लिए शुभ नहीं होता जो धूल लेने देता है। जहाँ तक सम्भव हो इस प्रथा से बचना चाहिए। केवल दीक्षित शिष्यों को इसका लाभ उठाने की अनुमति दी जानी चाहिए, अन्यों को नहीं। जो पापकर्मों से ग्रस्त हैं, उनसे सामान्यतया बचना चाहिए।

विजय आचार घरे से रात्रे रहिला ।

प्रातः-काले भक्त सबे घरे लञा गेला ॥ 246 ॥

विजय-विजय नामक; आचार-आचार्य के; घरे–घर पर; से-उस; रात्रे-रात को; रहिला-रहे; प्रातःकाले-प्रातः काल; भक्त-भक्त; सबे-सभी; घर-घर; लञा-लेकर; गेला-गये।

अनुवाद

उस रात महाप्रभु विजय आचार्य के घर पर रुके। प्रातःकाल महाप्रभु अपने भक्तों को साथ लेकर घर लौट आये।

एक-दिन गोपी-भावे गृहेते वसिया ।

‘गोपी’ ‘गोपी’ नाम लय विषण्ण हञा ॥ 247॥

एक-दिन-एक दिन; गोपी-भावे-गोपियों के भाव में; गृहेते–घर पर; वसिया-बैठे बैठे; गोपी गोपी-गोपी गोपी; नाम-नाम; लय-जप रहे थे; विषण्ण-उदास; हञा-होकर।

अनुवाद

एक दिन महाप्रभु गोपियों के भाव में अपने घर बैठे हुए थे। वे विरह से अत्यन्त खिन्न होकर “गोपी! गोपी!” पुकार रहे थे।

एक पड़या आइल प्रभुके देखिते ।

‘गोपी’ ‘गोपी’ नाम शुनि’ लागिल बलिते ॥ 248॥

एक पड़या-एक विद्यार्थी; आइल-वहाँ आया; प्रभुके–महाप्रभु को; देखिते-मिलने; गोपी गोपी-गोपी गोपी; नाम-नाम; शुनि’–सुनकर; लागिल-लगा; बलिते-कहने।

अनुवाद

महाप्रभु का दर्शन करने आया हुआ एक विद्यार्थी चकित था कि वे “गोपी! गोपी!” पुकार रहे हैं। अतएव वह इस प्रकार बोला।

कृष्ण-नाम ना लओ केने, कृष्ण-नाम-धन्य।

'गोपी' 'गोपी' बलिले वा किबा हय पुण्य ॥ 249॥

कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; ना-नहीं; लओ-आप लेते हो; केने-क्यों; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; धन्य-धन्य; गोपी गोपी-गोपी गोपी नाम; बलिले–कहने पर; वा–अथवा; किबा-क्या; हय-है; पुण्य-पुण्य।

अनुवाद

"आप भगवान् कृष्ण के यशस्वी एवं पवित्र नाम का उच्चारण करने के बदले 'गोपी, गोपी' क्यों पुकार रहे हैं? आप ऐसा करने से कौन-सा पुण्य प्राप्त करेंगे?"

तात्पर्य

कहा गया है-वैष्णवेर क्रिया मुद्रा विज्ञेह ना बुझय–शुद्ध भक्त के कार्यों को कोई नहीं समझ सकता। वह विद्यार्थी या नया भक्त सम्भवतया यह नहीं समझ पाया कि श्री चैतन्य महाप्रभु गोपियों का नाम क्यों ले रहे हैं, न ही उसे 'गोपी' 'गोपी' पुकारने की शक्ति के विषय में प्रश्न करना चाहिए था। नये विद्यार्थी को कृष्ण के पवित्र नाम के उच्चारण की निष्ठा पर पूरा-पूरा विश्वास था, किन्तु ऐसी मनोवृत्ति भी अपराधयुक्त है। धर्मव्रतत्यागहुतादिसर्वशुभक्रिया साम्यमपि प्रमादः-पुण्यफल प्राप्त करने के बदले में कृष्ण-नाम का उच्चारण करना अपराध है। यह उस विद्यार्थी को पता नहीं था। इसीलिए उसने अबोध भाव से पूछा, "गोपी का नाम जपने में कौन-सा पुण्य है?" वह जानता न था कि पुण्य या पाप का प्रश्न ही नहीं उठता। कृष्ण या गोपी के पवित्र नाम का कीर्तन प्रेम-व्यापार के दिव्य स्तर पर होता है। चूँकि वह ऐसे दिव्य कार्यों को समझने में समर्थ नहीं था, इसीलिए उसका प्रश्न केवल धृष्टता थी। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु उस पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और इस प्रकार बोले।

शुनि’ प्रभु क्रोधे कैल कृष्णे दोषोद्गार।

ठेङ्गा लञा उठिला प्रभु पड़या मारिबार॥ 250॥

शुनि’–सुनकर; प्रभु–महाप्रभु; क्रोधे-क्रोध में; कैल–किया; कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; दोष-उद्गार-बहुत से दोष लगाए; ठेङ्गा–छड़ी; लञा–लेकर; उठिला-उठे; प्रभु–महाप्रभु; पड़ूया–विद्यार्थी को; मारिबारमारने के लिए।

अनुवाद

मूर्ख विद्यार्थी की बात सुनकर महाप्रभु बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने अनेक प्रकार से भगवान् कृष्ण को फटकार लगाई। फिर वे लाठी उठाकर उस विद्यार्थी को मारने उठे।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में उल्लेख है कि जब उद्धव गोपियों के लिए विशेषतया राधारानी के लिए कृष्ण का सन्देश लेकर आये, तो सभी गोपियों ने, विशेषकर श्रीमती राधारानी ने कृष्ण की अनेक प्रकार से भर्त्सना की। किन्तु ऐसी भर्सनाएँ उस प्रगाढ़ प्रेम-प्रवृत्ति को दर्शाती हैं, जिन्हें सामान्य व्यक्ति नहीं समझ सकते। जब उस मूर्ख विद्यार्थी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रश्न पूछा, तो भगवान् चैतन्य ने इसी तरह कृष्ण को भी प्रेमाधिक्य के कारण फटकारा। जब श्री चैतन्य महाप्रभु गोपियों के आवेश में थे और उस विद्यार्थी ने श्रीकृष्ण के पक्ष का समर्थन किया, तो महाप्रभु अत्यधिक क्रुद्ध हुए। उनके क्रोध को देखकर वह मूर्ख, सामान्य नास्तिक स्मार्त ब्राह्मण विद्यार्थी महाप्रभु को ठीक से समझ नहीं पाया। अतएव वह तथा उसकी टोली के विद्यार्थी उलटकर महाप्रभु पर प्रहार करने वाले थे। इस घटना के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास लेने का निश्चय किया, जिससे लोग उन्हें सामान्य गृहस्थ

समझकर उनके प्रति अपराध न करें, क्योंकि आज भी भारत में आम तौर पर संन्यासी का आदर किया जाता है।

भये पलाय पड़या, प्रभु पाछे पाछे धाय ।

आस्ते व्यस्ते भक्त-गण प्रभुरे रहाय ॥ 251॥

भये-भय के कारण; पलाय-भाग गया; पड़या–विद्यार्थी प्रभु–महाप्रभुः पाछे पाछे-पीछे पीछे; धाय-दौड़े; आस्ते व्यस्ते-किसी न किसी प्रकार; भक्त-गण-सभी भक्तों ने प्रभुरे–महाप्रभु को; रहाय-रोका।

अनुवाद

वह विद्यार्थी डर के मारे भागा, तो महाप्रभु उसके पीछे दौड़ने लगे। किन्तु भक्तों ने किसी तरह उन्हें रोका।

प्रभुरे शान्त करि' आनिल निज घरे ।

पडुया पलाया गेल पडुया-सभारे ॥ 252॥

प्रभुरे–महाप्रभु को; शान्त करि'–शान्त करके; आनिल-लाये; निज-उनके; घरे-घर में; पडुया–विद्यार्थी; पलाया–भागकर; गेल-गया; पडुया–विद्यार्थियों के; सभारे-दल में।

अनुवाद

भक्तों ने महाप्रभु को शान्त किया और उन्हें घर ले आये। वह विद्यार्थी भागकर अन्य विद्यार्थियों की टोली में गया।

पड़या सहस्र याहाँ पड़े एक-ठाजि ।

प्रभुर वृत्तान्त द्विज कहे ताहाँ याइ ॥ 253॥

पड़या–विद्यार्थी; सहस्र-एक हजार; याहाँ–जहाँ; पड़े-पढ़ते हैं; एक-थाजि-एक स्थान पर; प्रभुर–महाप्रभु की; वृत्तान्त-घटना; द्विज ब्राह्मण; कहे-सुनाई; ताहाँ-वहाँ; याइ-जाकर।

अनुवाद

वह ब्राह्मण विद्यार्थी भागकर वहाँ गया, जहाँ एक हजार विद्यार्थी एकसाथ पढ़ रहे थे। वहाँ उसने उनसे इस घटना का वर्णन किया।

तात्पर्य

इस श्लोक में द्विज शब्द आया है, जो इसका सूचक है कि वह विद्यार्थी ब्राह्मण था। वास्तव में उन दिनों केवल ब्राह्मण जाति के सदस्य ही वैदिक साहित्य के विद्यार्थी होते थे। विद्याध्ययन विशेषतया ब्राह्मणों के लिए था। पहले क्षत्रियों, वैश्यों या शूद्रों के लिए विद्याध्ययन का प्रश्न ही नहीं था। क्षत्रिय युद्ध-कला सीखते थे और वैश्य अपने पिता या अन्य व्यापारी से व्यापार सीखते थे। उन्हें वेद पढ़ने से कोई मतलब न था। किन्तु आजकल सभी लोग पाठशाला जाते हैं और सबको एक ही तरह की शिक्षा दी जाती है, यद्यपि वे यह नहीं जानते कि परिणाम क्या होगा। किन्तु परिणाम अत्यन्त असन्तोषजनक होता है, जैसाकि हमने विशेष रूप से पाश्चात्य देशों में देखा है। संयुक्त राज्य में बड़े-बड़े शिक्षा संस्थान हैं, जहाँ हर एक को शिक्षा प्राप्त करने की छूट है, किन्तु परिणाम यह है कि अधिकांश विद्यार्थी हिप्पी जैसे बन रहे हैं।

उच्च शिक्षा हर एक के लिए नहीं है। ऐसे चुने हुए लोगों को ही उच्च शिक्षा ग्रहण करने की अनुमति दी जानी चाहिए, जो ब्राह्मण संस्कृति में प्रशिक्षित हों। शैक्षिक संस्थानों का उद्देश्य टेक्नालाजी की शिक्षा देना नहीं होना चाहिए, क्योंकि टेक्नालाजी में शिक्षित लोगों को शिक्षित नहीं कहा जा सकता। मशीनों के बारे में जानने वाला (टेक्नालाजीस्ट) तो शूद्र है, केवल वेदों का अध्ययन करने वाला ही विद्वान (पण्डित) कहा जा सकता है। ब्राह्मण का कर्तव्य यह है कि वह वैदिक साहित्य का पण्डित बने और अन्य ब्राह्मणों को वैदिक ज्ञान की शिक्षा दे। हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अपने विद्यार्थियों को योग्य ब्राह्मण तथा वैष्णव बनने के लिए ही शिक्षा देते हैं। डल्लास स्थित हमारे स्कूल में विद्यार्थी अंग्रेजी तथा संस्कृत सीखते हैं और इन्हीं दो भाषाओं के द्वारा वे हमारी सारी पुस्तकें यथा श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता यथारूप तथा भक्तिरसामृतसिन्धु पढ़ रहे हैं। हर विद्यार्थी को मशीनों का ज्ञान देना भूल है। ऐसे विद्यार्थियों का एक समूह होना चाहिए जो ब्राह्मण बनें। वैदिक साहित्य का अध्ययन करने वाले ब्राह्मणों के बिना, मानव-समाज में पूर्णतया अराजकता मची रहेगी।

शुनि' क्रोध कैल सब पड़याार गण ।

सबे मेलि' करे तबे प्रभुर निन्दन ॥ 254॥

शुनि'–सुनकर; क्रोध-क्रुद्ध; कैल–हो गये; सब-सब; पड़याार-विद्यार्थियों का; गण-दल, समूह; सबे-सबने; मेलि'–इकड़े होकर; करे-की; तबे-तब; प्रभुर-महाप्रभु की; निन्दन-निन्दा।

अनुवाद

यह घटना सुनकर सारे विद्यार्थी अत्यधिक क्रुद्ध हो गये और एकजुट होकर महाप्रभु की आलोचना करने लगे।

सब देश भ्रष्ट कैल एकला निमामि ।

ब्राह्मण मारिते चाहे, धर्म-भय नाइ ॥ 255॥

सब-सब; देश-देश; भ्रष्ट-भ्रष्ट; कैल–कर दिया; एकला-अकेले; निमाजि-निमाइ पण्डित; ब्राह्मण-जाति से ब्राह्मण; मारिते-मारना; चाहे वह चाहता है; धर्म-धार्मिक सिद्धान्त का; भय-भय; नाइ–नहीं है।

अनुवाद

उन्होंने आरोप लगाया, "अकेले निमाइ पण्डित ने ही सारा देश भ्रष्ट कर दिया है। वह कुलीन ब्राह्मण को आघात पहुँचाना चाहता है। उसे धार्मिक सिद्धान्तों से कोई भय नहीं रहा।"

तात्पर्य

उन दिनों भी जात-ब्राह्मणों को बड़ा अभिमान था। वे शिक्षक या गुरु द्वारा दिये गये दण्ड को भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते थे।

पुनः यदि ऐछे करे मारिब ताहरे ।

कोन् वा मानुष हय, कि करिते पारे ॥ 256 ॥

पुनः-पुनः; यदि-यदि; ऐछे-इस प्रकार; करे-वह करता है; मारिब–हम मारेंगे; ताहरे-उसको; कोन्-कौन; वा–अथवा; मानुष-मनुष्य; हय-है; कि-क्या; करिते-कर; पारे-वह सकता है।

अनुवाद

“यदि वह फिर से ऐसा निर्मम कार्य करता है, तो हम अवश्य ही बदला लेंगे और उसे मारेंगे। वह कौन सा ऐसा महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है कि हमें ऐसा करने से रोक सकता है?”

प्रभुर निन्दाय सबार बुद्धि हैल नाश ।

सुपठित विद्या कारओ ना हय प्रकाश ॥257॥

प्रभुर–महाप्रभु की; निन्दाय-निन्दा करके; सबार-सबकी; बुद्धि-बुद्धि; हैल-हो गई; नाश-नष्ट; सु-पठित-अच्छी प्रकार से पढ़े हुए; विद्या–विद्या; कारओ-प्रत्येक का; ना-नहीं; हय-होता; प्रकाश-प्रकट।

अनुवाद

जब सारे विद्यार्थियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु की निन्दा करते हुए ऐसा निश्चय किया, तब उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। यद्यपि वे सभी विद्वान थे, किन्तु इस अपराध के कारण उनमें ज्ञान का सार प्रकट नहीं हो रहा था।

तात्पर्य

भगवद्गीता में कहा गया है-माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रितः-जब कोई व्यक्ति नास्तिक मनोवृत्ति अपनाकर भगवान् का शत्रु बन जाता है, तो भले ही वह विद्वान क्यों न हो, उसमें ज्ञान का सार प्रकट नहीं होता। दूसरे शब्दों में, उसके ज्ञान को भगवान् की भ्रामक शक्ति माया हर लेती है। इस के सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्वेताश्वतर उपनिषद् (6.23) के निम्नलिखित मन्त्र का प्रमाण दिया है :

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।

तस्यैते कथिता ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु में दृढ़ निष्ठा रखता है और इसी तरह बिना किसी निम्न स्वार्थ के गुरु को समर्पित रहता है, उसे वैदिक ज्ञान का सार प्राप्त होता है। ऐसे भक्त के हृदय में वैदिक ज्ञान का वास्तविक सार प्रकट होता है। यह सार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरणागति ही है (वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः)। जो पूरी तरह गुरु तथा परमेश्वर का शरणागत हो जाता है, उसे ही वैदिक ज्ञान का सार प्राप्त होता है। और किसी को नहीं। श्री प्रह्लाद महाराज ने श्रीमद्भागवत (7.5.24) में इसी सिद्धान्त पर बल दिया है :

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।

क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधितमुत्तमम् ॥

"जो व्यक्ति भगवान् की सेवा में इन नौ सिद्धान्तों (श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि) को लगाता है, उसे ही महान् विद्वान पण्डित समझना चाहिए। उसने वैदिक साहित्य को अच्छी तरह आत्मसात कर लिया है, क्योंकि वैदिक साहित्य के अध्ययन का लक्ष्य भगवान् श्रीकृष्ण की सर्वश्रेष्ठता को समझना है।" श्रीधर स्वामी अपनी टीका में पुष्टि करते हैं कि सर्वप्रथम गुरु की शरण में जाना चाहिए, तभी भक्ति की क्रिया विकसित होगी। यह सही नहीं है कि केवल वही जो परिश्रम से अध्ययन करता है, वह भक्त बन सकता है। किन्तु यदि गुरु तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पर किसी की पूर्ण श्रद्धा है, तो चाहे वह बिल्कुल अनपढ़ क्यों न हो, वह वेदों का असली ज्ञान प्राप्त करके आध्यात्मिक जीवन को प्राप्त करता है। महाराज खट्वांग के उदाहरण से इसकी पुष्टि होती है। जो शरणागत हो जाता है, उसे वेदों का अच्छा ज्ञाता मान लिया जाता है। जो शरणागति की इस वैदिक विधि को अपनाता है, वह भक्ति सीख लेता है और निश्चित रूप से सफल होता है। किन्तु जो बहुत अभिमानी होता है, वह न

तो गुरु की शरण में जाने में समर्थ होता है, न ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की। इस तरह वह किसी वैदिक साहित्य के सार को नहीं समझ सकता। श्रीमद्भागवत (11.11.18) की घोषणा है :

शब्द-ब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि ।

श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥

"यदि कोई वैदिक साहित्य में निपुण है, किन्तु भगवान् विष्णु का भक्त नहीं है, तो उसका श्रम उसी प्रकार व्यर्थ है, जिस प्रकार बिना दूध की गाय को पालना।"

जो व्यक्ति शरणागति विधि का अनुगमन नहीं करता, किन्तु केवल शैक्षिक जीवन में रुचि रखता है, वह कोई उन्नति नहीं कर सकता। उसका लाभ केवल व्यर्थ का श्रम मात्र है। यदि कोई वेदों के अध्ययन में पटु है, किन्तु गुरु अथवा भगवान् विष्णु की शरण में नहीं जाता, तो उसका ज्ञान-अनुशीलन समय तथा श्रम का अपव्यय मात्र है।

तथापि दाम्भिक पड़ुया नम्र नाहि हय ।

याहाँ ताहाँ प्रभुर निन्दा हासि' से करय ॥ 258॥

तथापि-तथापि; दाम्भिक-अभिमानी; पड़ुया–विद्यार्थी; नम्र-विनीत; नाहि-नहीं; हय–हुए; याहाँ-कहीं भी; ताहाँ-हर जगह; प्रभुर–महाप्रभु की; निन्दा-निन्दा; हासि-हँसकर; से-वे; करय-करते हैं।

अनुवाद

किन्तु दम्भी विद्यार्थी विनीत नहीं हुए। उल्टे वे इस घटना की चर्चा कहीं भी और सर्वत्र करते रहे। वे हँसी-हँसी में महाप्रभु की आलोचना करते रहे।

सर्व-ज्ञ गोसाञि जानि' सबार दुर्गति।

घरे वसि' चिन्ते ता'-सबार अव्याहति ॥ 259॥

सर्व-ज्ञ-सब कुछ जानने वाले; गोसाञि-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; जानि'–जानकर; सबार-उन सबको; दुर्गति–दुर्गति, दुर्व्यवहार; घरे–घर पर; वसि'–बैठकर; चिन्ते-विचार करते हैं; ता'-उन; सबार-सबका; अव्याहत-बचाव का तरीका।

अनुवाद

सर्वज्ञ होने के नाते श्री चैतन्य महाप्रभु इन विद्यार्थियों की दुर्गति समझ गये। फलतः वे घर पर ही बैठकर उनको उबारने पर विचार करने लगे।

यत अध्यापक, आर ताँर शिष्य-गण।

धर्मी, कर्मी, तपो-निष्ठ, निन्दक, दुर्जन ॥ 260॥

यत-सब; अध्यापक-अध्यापक; आर-और; ताँर–उनके; शिष्य-गण-शिष्यगण; धर्मी-धार्मिक अनुष्ठानों के अनुयायी; कर्मी-सकाम कर्मी; तपः-निष्ठ-तपस्या करने वाले; निन्दक-निन्दा करने वाला; दुर्जन-दुर्जन।

अनुवाद

महाप्रभु ने सोचा, "सारे तथाकथित अध्यापक तथा विज्ञानी एवं उनके विद्यार्थी धर्म के नियमों, सकाम कर्मों तथा तपस्या का पालन करते हैं, फिर भी वे साथ-साथ निन्दक एवं धूर्त होते हैं।

तात्पर्य

यहाँ पर उन भौतिकतावादियों का चित्रण हुआ है, जिन्हें भक्ति का कोई ज्ञान नहीं है। वे कितने ही धार्मिक, नियमानुसार कर्म करने वाले तथा तपस्या करने वाले क्यों न हों, किन्तु यदि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की निन्दा करते हैं, तो वे धूर्त ही हैं। इसकी पुष्टि हरिभक्तिसुधोदय (3.11) में हुई है।

भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः शास्त्र जपस्तपः ।

अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम् ॥

भगवद्भक्ति के ज्ञान के बिना देशभक्ति, सकाम कर्म, राजनीतिक या सामाजिक कर्म, विज्ञान या दर्शन सारे के सारे मात्र किसी मृत शरीर को सुशोभित करने वाले कीमती वस्त्रों के समान हैं। ऐसे सिद्धान्तों के चिपके रहने वालों का एकमात्र अपराध यही है कि वे भक्त नहीं हैं; वे सदैव भगवान् तथा उनके भक्तों की निन्दा करते हैं।

एइ सब मोर निन्दा-अपराध हैते ।

आमि ना लओयाइले भक्ति, ना पारे लइते ॥ 261॥

एइ सब-वे सब; मोर–मेरी; निन्दा-निन्दा; अपराध-अपराध, हैते-से; आमि-मैं; ना-नहीं; लओयाइले–यदि नहीं करवाता; भक्ति-भक्ति; ना-नहीं; पारे-सकता; लइते-लेना।

अनुवाद

“यदि मैं इन्हें भक्ति के लिए प्रेरित न करूँ, तो निन्दा अपराध करने के कारण इनमें से कोई भी भक्ति ग्रहण न कर सकेगा।”

निस्तारिते आइलाम आमि, हैल विपरीत।

ए-सब दुर्जनेर कैछे हइबेक हित ॥ 262॥

निस्तारिते-उद्धार करने के लिए; आइलाम-आया हूँ; आमि-मैं; हैल-हो गया है; विपरीत–विपरीत; ए-सब-ये सब; दुर्जनेर-दुर्जनों का; कैछे-कैसे; हइबेक-होगा; हित-लाभ।

अनुवाद

मैं समस्त पतितों का उद्धार करने आया हूँ, किन्तु अभी तो इसके ठीक विपरीत घटना घटी। इन धूर्तों का किस तरह उद्धार हो सकता है? ये किस तरह लाभान्वित हो सकते हैं?

आमाके प्रणति करे, हय पाप-क्षय।

तबे से इहारे भक्ति लओयाइले लय ॥ 263 ॥

आमाके–मुझे; प्रणति–प्रणाम; करे-वे करते हैं; हय-हो जाता है; पाप-क्षय-पापफल नष्ट; तबे-तब; से-वे; इहारे–उनको; भक्ति-भक्ति; लओयाइले–यदि प्रेरित करूँ; लय-लेंगे।

अनुवाद

“यदि ये धूर्त मुझे नमस्कार करें, तो इनके सारे पापों के फल विनष्ट हो जाएँ। फिर यदि मैं इन्हें प्रेरित करूँ, तो ये भक्ति करने लगेंगे।”

मोरे निन्दा करे ये, ना करे नमस्कार।

ए-सब जीवेरे अवश्य करिब उद्धार ॥264॥

मोरे-मेरी; निन्दा करे-निन्दा करते हैं; ये-जो कोई; ना-नहीं; करे-करते; नमस्कार-नमस्कार; ए-सब-ये सब; जीवेरे-जीवों का; अवश्य-अवश्य; करिब–मैं करूँगा; उद्धार-उद्धार।

अनुवाद

"मुझे इन सभी पतितों का अवश्य ही उद्धार करना चाहिए, जो मेरी निन्दा करते हैं और मुझे नमस्कार नहीं करते।"

अतएव अवश्य आमि सन्न्यास करिब ।

सन्यासि-बुद्ध्ये मोरे प्रणत हुइब ॥ 265॥

अतएव–अतएव; अवश्य-अवश्य; आमि-मैं; सन्न्यास-संन्यास; करिब–स्वीकार करूँगा; सन्यासि-बुद्ध्ये-मुझे संन्यासी जानकर; मोरे-मुझे; प्रणत-प्रणाम; हइब–वे करेंगे।

अनुवाद

"मैं संन्यास आश्रम स्वीकार करूँगा, क्योंकि इस प्रकार लोग मुझे संन्यासी जानकर नमस्कार करेंगे।"

तात्पर्य

सामाजिक व्यवस्था के वर्णाश्रम संस्थान के सदस्यों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) में ब्राह्मण को अग्रणी माना जाता है, क्योंकि वह अन्य समस्त वर्गों का शिक्षक और गुरु होता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) में से संन्यास आश्रम अत्यन्त उच्च है। अतएव संन्यासी समस्त वर्गों और आश्रमों का गुरु होता है और यह अपेक्षा की जाती है कि ब्राह्मण भी संन्यासी को नमस्कार करेगा। किन्तु दुर्भाग्यवश जात-ब्राह्मण वैष्णव संन्यासी

को नमस्कार नहीं करते। वे इतने अभिमानी होते हैं कि भारतीय संन्यासियों तक को नमस्कार नहीं करते, यूरोपीय तथा अमरीकी संन्यासियों की तो बात दूर रही। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु आशा करते थे कि जो जाति से ब्राह्मण हैं, वे भी संन्यासी को नमस्कार करेंगे, क्योंकि 500 वर्ष पूर्व परिचित अथवा अपरिचित किसी भी संन्यासी को तुरन्त नमस्कार करने की सामाजिक प्रथा थी।

कृष्णभावनामृत आन्दोलन के संन्यासी प्रामाणिक हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सारे अनुयायियों की नियमपूर्वक दीक्षा हुई है। जैसाकि सनातनगोस्वामी ने हरिभक्ति-विलास में आदेश दिया है-तथा दीक्षा विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्-दीक्षा-विधि से कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण बन सकता है। अतः हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन के विद्यार्थी प्रारम्भ में भक्तों के साथ रहने के लिए राजी होते हैं और धीरे-धीरे वे अवैध सम्बन्ध, जुआ, मांसाहार तथा नशा-इन चार वर्जित कार्यों को त्याग देते हैं, और आध्यात्मिक जीवन के कार्यों में आगे बढ़ते हैं। जब कोई अनुयायी इन निषेधों का नियमित रूप से पालन करने लगता है, तो उसे प्रथम दीक्षा (हरिनाम) दी जाती है और वह हररोज कम से कम सोलह माला का जप करता है। फिर छः मास या एक साल बाद उसकी दुबारा दीक्षा होती है और नियमित यज्ञ तथा अनुष्ठान के साथ उसे जनेऊ पहनाया जाता है। कुछ समय बाद जब वह और प्रगति कर लेता है और इस भौतिक जगत् का परित्याग करने के लिए राजी हो जाता है, तबउसे संन्यास दिलाया जाता है। उस समय उसे स्वामी या गोस्वामी की पदवी दी जाती है, जिसका अर्थ यह है कि वह "इन्द्रियों का स्वामी है। भारत में दुर्भाग्यवश भ्रष्ट तथाकथित ब्राह्मण न तो उनका सम्मान करते हैं, न ही उन्हें प्रामाणिक संन्यासी के रूप में स्वीकार करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु को आशा थी कि तथाकथित ब्राह्मण ऐसे वैष्णव संन्यासियों का सम्मान करेंगे। जो हो, वे चाहे उनका सम्मान करें या नहीं, उन्हें प्रामाणिक संन्यासी मानें या नहीं, शास्त्रों में ऐसे अवज्ञाकारी तथाकथित ब्राह्मणों के लिए दण्ड-विधान है। शास्त्रों का आदेश है :

देवता प्रतिमां दृष्ट्वा यतिं चैव त्रिदण्डिनम् ।

नमस्कारं न कुर्याद् यः प्रायश्चित्तीयते नरः ॥

“जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को या मन्दिर में उनके अर्चाविग्रह को या त्रिदण्डी संन्यासी को नमस्कार नहीं करता, उसे प्रायश्चित्त करना आवश्यक है।” यदि कोई ऐसे संन्यासी को नमस्कार नहीं करता, तो प्रायश्चित्त स्वरूप उसे एक दिन का उपवास करना निर्दिष्ट है।

प्रणतिते ह’बे इहार अपराध क्षय ।

निर्मल हृदये भक्ति कराइब उदय ॥266 ॥

प्रणतिते-प्रणाम करने से; ह’बे-होगा; इहार–इन अपराधियों के; अपराध-अपराध; क्षय-नष्ट; निर्मल-निर्मल; हृदये हृदय में; भक्ति-भक्ति; कराइब-मैं कराऊँगा; उदय-जाग्रत ।

अनुवाद

नमस्कार करने से उनके सारे पाप कर्मों के फल दूर हो जायेंगे। फिर मेरी कृपा से उनके शुद्ध हृदयों में भक्ति जाग्रत होगी।

तात्पर्य

वैदिक आदेशों के अनुसार केवल ब्राह्मण को संन्यास दिया जा सकता है। शंकर सम्प्रदाय (एकदण्ड संन्यास सम्प्रदाय) केवल जो जाति से ब्राह्मण है, उनको संन्यास प्रदान करता है, किन्तु वैष्णव-विधि में हरि-भक्ति-विलास की नियमित दीक्षा-विधि के अनुसार उसे भी ब्राह्मण बनाया जा सकता है, जो ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न न हुआ हो (तथा दीक्षा विधानेन द्विजत्वम् जायते नृणाम्) । विश्व के किसी भी भाग से किसी भी व्यक्ति को दीक्षा की निर्दिष्ट प्रक्रिया से ब्राह्मण बनाया जा

सकता है और जब वह नशा, अवैध सम्बन्ध, मांसाहार तथा जुए से विरत रहकर ब्राह्मण-आचरण करता है, तो उसे संन्यास प्रदान किया जा सकता है। विश्वभर में प्रचार करने वाले कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सारे संन्यासी नियमित ब्राह्मण संन्यासी हैं। अतएव तथाकथित ब्राह्मण जाति में उत्पन्न लोगों को उनको नमस्कार करने में आपत्ति नहीं करनी चाहिए। महाप्रभु ने जिस प्रकार के नमस्कार की संस्तुति की है, उस तरह से नमस्कार करने से उनके अपराध कम होंगे और स्वत: उनमें स्वाभाविक भक्ति-भाव का उदय होगा। जैसाकि कहा गया है-नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम साध्य कभु नय-कृष्ण-प्रेम शुद्ध हृदय में ही उदय हो सकता है। हम जितना अधिक संन्यासियों को विशेषकर वैष्णव संन्यासियों को-नमस्कार करेंगे, उतने ही हमारे अपराध कम होंगे और हमारे हृदय शुद्ध बनेंगे। केवल शुद्ध हृदय में कृष्ण-प्रेम का उदय हो सकता है। यही श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय कृष्णभावनामृत आन्दोलन की विधि है।

ए-सब पाषण्डीर तबे हइबे निस्तार।

आर कोन उपाय नाहि, एइ युक्ति सार॥ 267॥

ए-सब-ये सब; पाषण्डीर-असुरों का; तबे-तब; हइबे-होगा; निस्तार-उद्धार; आर-अन्य विकल्प; कोन–कुछ; उपाय-उपाय; नाहिं-नहीं है; एइ–इस; युक्ति-युक्ति का; सार–सार।

अनुवाद

“इस संसार के सारे श्रद्धाविहीन धूर्ता (पाखण्डियों) का उद्धार इसी विधि से हो सकता है। दूसरा कोई विकल्प नहीं है। तर्क का सार यही है।”

एइ दृढ़ युक्ति करि’ प्रभु आछे घरे।

केशव भारती आइला नदीया-नगरे ॥ 268॥

एइ–यह; दृढ़-दृढ़; युक्ति–विचार; करि'-करके; प्रभु–महाप्रभु; आछे–थे; घरे–घर में; केशव भारती–केशव भारती; आइला–आये; नदीया-नगरे–नदिया नगर में।

अनुवाद

इस दृढ़ निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद महाप्रभु घर पर ही रहे। इसी समय केशव भारती नदिया नगरी में पधारे।

प्रभु ताँरे नमस्करि' कैल निमन्त्रण ।

भिक्षा कराइया ताँरे कैल निवेदन ॥ 269॥

प्रभु–महाप्रभु; ताँरे–उन्हें; नमस्करि' नमस्कार करने के बाद; कैल–किया; निमन्त्रण-निमंत्रण; भिक्षा–भिक्षा; कराइया-देकर; ताँरे–उनको; कैल–किया; निवेदन-अपना निवेदन।

अनुवाद

महाप्रभु ने उनको सादर नमस्कार किया और उन्हें अपने घर पर आमंत्रित किया। उन्हें अच्छी तरह से भोजन कराने के बाद महाप्रभु ने उनसे निवेदन किया।

तात्पर्य

वैदिक समाज की प्रथा के अनुसार जब कोई अपरिचित संन्यासी किसी गाँव या नगर में आता है, तब कोई न कोई व्यक्ति उसे अपने घर प्रसाद लेने के लिए आमन्त्रित करता है। सामान्यतया संन्यासी ब्राह्मण के घर में प्रसाद ग्रहण करते हैं, क्योंकि ब्राह्मण नारायण शिला अथवा शालग्राम

शिला की पूजा करता है, अतएव वहाँ पर ऐसा प्रसाद मिलता है, जिसे संन्यासी ग्रहण कर सके। केशव भारती ने श्री चैतन्य महाप्रभु का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया। अतएव महाप्रभु को सुअवसर प्राप्त हुआ कि उनसे संन्यास लेने की अपनी इच्छा बतला सकें।

तुमि त' ईश्वर बट,—साक्षात्नारायण ।

कृपा करि' कर मोर संसार मोचन ॥ 270॥

तुमि-आप; त'–अवश्य; ईश्वर–भगवान्; बट-हो; साक्षात्-साक्षात्; नारायण-परम भगवान् नारायण; कृपा करि'–कृपा करके; कर-करो; मोर-मेरे; संसार–भौतिक जीवन का; मोचन-उद्धार।

अनुवाद

"हे महाशय, आप साक्षात् नारायण हैं। अतएव मुझ पर कृपा करें। कृपया मेरा इस भवबन्धन से उद्धार करें।"

भारती कहेन, तुमि ईश्वर, अन्तर्यामी ।

ये कराह, से करिब,—स्वतन्त्र नहि आमि ॥ 271॥

भारती कहेन-केशव भारती ने उत्तर दिया; तुमि-आप; ईश्वर-ईश्वर; अन्तर्यामी-अन्तर्यामी; ये-जो कुछ; कराह-आप करवाते हो; से-वह; करिब–मैं करूँगा; स्वतन्त्र-स्वतंत्र; नहि-नहीं; आमि-मैं।

अनुवाद

केशव भारती ने महाप्रभु को उत्तर दिया, "आप परम ईश्वर, परमात्मा हैं। मैं वहीं करूँगा जो आप मुझसे करायेंगे। मैं आपसे स्वतन्त्र नहीं हूँ।"

एत बलि' भारती गोसाञि काटोयाते गेला।

महाप्रभु ताहा याइ' सन्न्यास करिला ॥ 272 ॥

एत बलि'-यह कहकर; भारती–केशव भारती; गोसाञि-गुरु; काटोयाते-कटवा ग्राम; गेला–चले गये; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु ने; तहा-वहाँ; याइ-जाकर; सन्न्यास-संन्यास; करिला-स्वीकार किया।

अनुवाद

यह कहकर गुरु केशव भारती अपने गाँव कटवा वापस चले गये। श्री चैतन्य महाप्रभु ने वहाँ जाकर संन्यास ग्रहण कर लिया।

तात्पर्य

चौबीस वर्ष की आयु पूरी होने पर और शुक्ल पक्ष समाप्त होने पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने नवद्वीप छोड़ा और निदयार घाट नामक स्थान पर गंगा नदी पार की। तब वे कण्टक नगर या काटोया (कटवा) पहुँचे, जहाँ उन्होंने शांकर विधि से एकदण्ड-संन्यास स्वीकार किया। चूँकि केशव भारती शंकर सम्प्रदाय के थे, अतएव वे चैतन्य महाप्रभु को वैष्णव संन्यास नहीं प्रदान कर सके, जिसके सदस्य त्रिदण्ड धारण करते हैं।

महाप्रभु के संन्यास समारोह के विभिन्न कार्यों में चन्द्रशेखर आचार्य ने उनकी सहायता की। श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश से पूरे दिन कीर्तन चला और दिन डूबते ही महाप्रभु ने अपने बाल कटवा डाले। अगले दिन वे नियमित एकदण्डी-संन्यासी बन गये। उस दिन से उनका नाम श्रीकृष्ण चैतन्य पड़ गया। इसके पूर्व वे निमाइ पण्डित नाम से विख्यात थे। संन्यास ग्रहण करके श्री चैतन्य

महाप्रभु ने सारे राढ़ देश की यात्रा की। यह वह प्रदेश है जहाँ गंगा नदी नहीं बहती। केशव भारती कुछ दूर तक उनके साथ गये।

सङ्गे नित्यानन्द, चन्द्रशेखर आचार्य।

मुकुन्द-दत्त,—एइ तिन कैल सर्व कार्य ॥ 273 ॥

सङ्गे–उनके साथ; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; चन्द्रशेखर आचार्य-चन्द्रशेखर आचार्य; मुकुन्द-दत्त-मुकुन्द दत्त; एइ तिन-ये तीन; कैल–किया; सर्व-सब; कार्य-आवश्यक कार्यकलाप।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण किया, तब सारे आवश्यक कार्य सम्पन्न करने के लिए उनके साथ तीन व्यक्ति थे—नित्यानन्द प्रभु, चन्द्रशेखर आचार्य तथा मुकुन्द दत्त।

एइ आदि-लीलार कैल सूत्र गणन।

विस्तारि वर्णिला इहा दास वृन्दावन ॥ 274॥

एइ-यह; आदि-लीलार-आदि लीला का (चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का प्रथम भाग); कैल–किया; सूत्र-रूपरेखा; गणन-गिनती; विस्तारि-विस्तार से; वर्णला-वर्णन किया; इहा-यह; दास वृन्दावन-वृन्दावन दास ठाकुर।

अनुवाद

इस तरह मैंने आदिलीला की घटनाओं का संक्षेप में वर्णन किया है। श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने इनका विस्तृत वर्णन (चैतन्य-भागवत में) किया है।

यशोदा-नन्दन हैला शचीर नन्दन ।

चतुर्विध भक्त-भाव करे आस्वादन ॥ 275 ॥

यशोदा-नन्दन-माता यशोदा के पुत्र; हैला हो गये; शचीर-माता शची के; नन्दन-पुत्र; चतुः-विध–चार प्रकार के; भक्त-भाव-भक्ति भाव; करे-करते हैं; आस्वादन-आस्वादन।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जो माता यशोदा के पुत्र रूप में प्रकट हुए थे, वे ही अब माता शची के पुत्र रूप में प्रकट हुए हैं और चार प्रकार के भक्ति भावों का आस्वादन कर रहे हैं।

तात्पर्य

भगवान् के प्रति चार प्रकार के भक्ति भाव हैं-दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। शान्त रस में भक्ति की तटस्थ अवस्था है, क्योंकि इसमें कोई क्रिया नहीं होती। किन्तु शान्त रस से भी बढ़कर दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस हैं, जो उच्चतर से उच्चतर स्तर तक भक्ति के क्रमिक विकास को प्रदर्शित करते हैं।

स्व-माधुर्य राधा-प्रेम-रस आस्वादिते ।

राधा-भाव अङ्गी करियाछे भाल-मते ॥ 276 ॥

स्व-माधुर्घ–निज माधुर्य प्रेम; राधा-प्रेम-रस-राधारानी और कृष्ण का प्रेम व्यापार; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; राधा-भाव-श्रीमती राधारानी का मनोभाव; अङ्गी करियाछे-उन्होंने स्वीकार किया; भाल-मते-बहुत अच्छी तरह से।

अनुवाद

कृष्ण के प्रति श्रीमती राधारानी के प्रेम के रस का आस्वादन करने तथा कृष्णरूप आनन्द के आगार को समझने के लिए ही स्वयं कृष्ण ने श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में राधारानी के भाव को अंगीकार किया।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं, "श्री गौरसुन्दर श्रीमती राधारानी के भाव के साथ स्वयं साक्षात् कृष्ण हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कभी भी गोपीभाव नहीं त्यागा। वे सदैव कृष्ण के अधीनस्थ होने के भाव में रहे और उन्होंने कभी भी किसी सामान्य स्त्री के साथ माधुर्य रस का अनुकरण करते हुए भोक्ता की भूमिका स्वीकार नहीं की, जैसाकि सामान्यतया सहजिये करते हैं। उन्होंने कभी भी अपने आपको लम्पट की स्थिति में नहीं रखा। सहजिया सम्प्रदाय के सदस्य जैसे कामुक भौतिकतावादी स्त्रियों के पीछे, यहाँ तक कि परस्त्रियों के पीछे दीवाने रहते हैं। किन्तु जब वे अपनी वासनामयी क्रियाओं को श्री चैतन्य महाप्रभु पर थोपने लगते हैं, तो वे स्वरूप दामोदर तथा श्रील वृन्दावन दास ठाकुर के प्रति अपराधी बनते हैं। श्री चैतन्य भागवत आदि खण्ड के अध्याय 15 में कहा गया है :

सबे परस्त्रीर प्रति नाहि परिहास ।

स्त्री देखि दूरे प्रभु हयेन एकपाश ॥

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कभी भी परस्त्री से परिहास तक नहीं किया। ज्योंही वे किसी स्त्री को आते देखते, वे तुरन्त इतना स्थान छोड़ देते कि बिना बात किये वह आसानी से चली जाए। वे स्त्री-संगति के विषय में अत्यन्त कठोर थे। किन्तु सहजिये अपने आपको श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुगामी

बताते हैं, यद्यपि वे स्त्रियों के साथ कामवासना में निमग्न रहते हैं। अपनी युवावस्था में चैतन्य महाप्रभु सबके साथ अत्यन्त विनोदी थे, किन्तु उन्होंने कभी किसी स्त्री के साथ परिहास नहीं किया। न ही अपने इस अवतार में उन्होंने किसी स्त्री के बारे में बातें भी कीं। गौरांगनागरी दल को श्री चैतन्य महाप्रभु या वृन्दावन दास ठाकुर की स्वीकृति प्राप्त नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु की सभी प्रकार से स्तुति तो करनी चाहिए, किन्तु उन्हें गौरांगनागर के रूप में पूजने से सभी तरह से बचना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी आचरण से तथा श्री वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा रचित श्लोकों से गौरांगनागरियों की कामवासनाओं का पूरी तरह निराकरण होता है।"

गोपी-भाव याते प्रभु धरियाछे एकान्त ।

व्रजेन्द्र-नन्दने माने आपनार कान्त ॥ 277॥

गोपी-भाव-गोपियों का भाव; माते-जिसमें; प्रभु–महाप्रभु ने; धरियाछे–स्वीकार किया; एकान्त-पूरी तरह; व्रजेन्द्र-नन्दने–भगवान् कृष्ण; माने-वे मानते हैं; आपनार-अपना; कान्त-प्रेमी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन गोपियों का भाव स्वीकार किया, जो व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण को अपने प्रियतम के रूप में मानती हैं।

गोपिका-भावेर एइ सुदृढ़ निश्चय ।

व्रजेन्द्र-नन्दन विना अन्यत्र ना हय ॥ 278 ॥

गोपिका-भावेर-गोपियों के आनन्द भाव का; एइ–यह; सुदृढ़-सुदृढ़; निश्चय-निश्चय; व्रजेन्द्र-नन्दन-भगवान् श्रीकृष्ण; विना-बिना; अन्यत्र-और कोई भी, कहीं और; ना-नहीं; हय–सम्भव नहीं है।

अनुवाद

यह सुदृढ़ निष्कर्ष निकलता है कि गोपिकाओं का भाव केवल कृष्ण के ही साथ सम्भव है, किसी अन्य के साथ नहीं।

श्यामसुन्दर, शिखिपिच्छ-गुञ्जा-विभूषण।

गोप-वेश, त्रि-भङ्गिम, मुरली-वदन ॥ 279॥

श्यामसुन्दर–भगवान् कृष्ण जिसका वर्ण श्याम है; शिखि-पिच्छ-सिर पर मोरपंख के साथ; गुञ्जा–गुंजा (छोटे बेर या सीपियों) की माला; विभूषण-विभूषण; गोप-वेश-गोप वेश में; त्रि-भङ्गिम-तीन स्थानों पर मुड़ा हुआ; मुरली-वदन-अपने मुख पर बांसुरी लगाये हुए।

अनुवाद

उनका रंग श्यामल है, सिर पर मोरपंख है, गुन्जा माला है और ग्वालों जैसी वेशभूषा है। उनका शरीर तीन स्थानों से मुड़ा है और वे होंठो पर बांसुरी रखे हुए हैं।

इहा छाड़ि' कृष्ण यदि हय अन्याकार।

गोपिकार भाव नाहि याय निकट ताहार ॥280॥

इहा-यह; छाड़ि'–छोड़कर; कृष्ण-कृष्ण; यदि-यदि; हय-धारण करते हैं; अन्य-आकार-अन्य रूप; गोपिकार-गोपियों का; भाव-भावावेश; नाहि-नहीं; याय-जाग्रत होता; निकट-निकट; ताहार-वह (रूप)।

अनुवाद

यदि भगवान् कृष्ण अपने इस आदि रूप को छोड़कर कोई अन्य विष्णु-रूप धारण करते हैं, तो उनके निकट जाने पर भी गोपियों में भाव जाग्रत नहीं होता।

गोपीनां पशुपेन्द्र-नन्दन-जुषो भावस्य कस्तां कृती

विज्ञातुं क्षमते दुरूह-पदवी-सञ्चारिणः प्रक्रियाम् ।

आविष्कुर्वति वैष्णवीमपि तनुं तस्मिन्भुजैजिष्णुभिर्

यासां हन्त चतुर्भिरद्भुत-रुचिं रागोदयः कुञ्चति ॥ 281॥

गोपीनाम्-गोपियों का; पशुप-इन्द्र-नन्दन-जुषः-व्रजराज महाराज नन्द के पुत्र की सेवा का; भावस्य-भावावेश; कः-क्या; ताम्-वह; कृती–विद्वान पुरुष; विज्ञातुम्-समझने के लिए; क्षमते-सक्षम है; दुरूह-समझना अत्यन्त कठिन; पदवी-पदवी; सञ्चारिणः-जो उकसाता है; प्रक्रियाम्-कार्यकलाप; आविष्कुर्वति-वह प्रकट करता है; वैष्णवीम् विष्णु का; अपि-अवश्य; तनुम्–शरीर; तस्मिन्-उसमें; भुजैः-भुजाओं सहित; जिष्णुभिः-अत्यन्त सुन्दर; यासाम्-जिनका (गोपियों का); हन्त–हाय; चतुर्भिः-चार; अद्भुत-अद्भुत; रुचिम्-सुन्दर; राग-उदयः-प्रेम भावनाओं का संचार; कुञ्चति-कुंठित होती है।

अनुवाद

“एक बार भगवान् श्रीकृष्ण ने खेल-खेल में चार विजयी हाथों वाले तथा अत्यन्त सुन्दर स्वरूप वाले नारायण का रूप प्रकट किया। किन्तु इस उत्कृष्ट रूप को देखकर गोपियों की ऊर्मिपूर्ण भावनाएँ संकुचित हो गईं। अतएव विद्वान व्यक्ति भी उन गोपियों के भावों को नहीं समझ सकते, जो नन्द महाराज के पुत्र भगवान् कृष्ण के मूल स्वरूप पर केन्द्रित हैं। कृष्ण के परम रस में गोपियों के अद्भुत भाव आध्यात्मिक जीवन में सबसे बड़ा रहस्य हैं।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रील रूप गोस्वामी-कृत ललित माधव (6.54) से लिया गया है।

वसन्त-काले रास-लीला करे गोवर्धने ।

अन्तर्धान कैला सङ्केत करि’ राधा-सने ॥ 282॥

वसन्त-काले–वसन्त ऋतु में; रास-लीला-रासलीला; करे-करते हैं; गोवर्धने-गोवर्धन पर्वत के निकट; अन्तर्धान–अन्तर्धान; कैला-हो गये; सङ्केत–दिखाने; करि’-करके; राधा-सने-राधा के संग।

अनुवाद

वसन्त ऋतु में जब रासनृत्य चल रहा था, तो कृष्ण सहसा घटनास्थल से यह दिखाने के लिए अन्तर्धान हो गये कि वे श्रीमती राधारानी के साथ एकान्त वास चाहते हैं।

निभृत-निकुञ्जे वसि’ देखे राधार बाट ।

अन्वेषिते आइला ताहाँ गोपिकार ठाट ॥283 ॥

निभृत-अकेले; निकुञ्ज–झाड़ी में; वसि'–बैठकर; देखे-देखते हुए; राधार-श्रीमती राधारानी की; बाट-गुजरना, निकट से जाना; अन्वेषिते-खोजते हुए; आइला-आई; ताहाँ-वहाँ; गोपिकार-गोपियों का; ठाट-सैन्य दल।

अनुवाद

कृष्ण एकान्त कुंज में बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे कि श्रीमती राधारानी उधर से गुजरें। किन्तु तभी गोपियाँ वहाँ आ पहुँची, जैसे कि कोई खोजी सैन्य दल हो।

दूर हैते कृष्णे देखि' बले गोपी-गण।

"एइ देख कुञ्जर भितर व्रजेन्द्र-नन्दन" ॥284॥

दूर हैते-दूर से; कृष्णे-कृष्ण को; देखि'–देखकर; बले-कहा; गोपी-गण-सभी गोपियों ने; एइ देख-देखो; कुबेर-कुंज के; भितर-भीतर; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र।

अनुवाद

दूर से कृष्ण को देखकर गोपियों ने कहा, "जरा देखो न! ये रहे कुंज के भीतर नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण।"

गोपी-गण देखि' कृष्णेर हइल साध्वस।

लुकाइते नारिल, भये हैला विवश ॥285॥

गोपी-गण-सभी गोपियाँ; देखि'–देखकर; कृष्णेर-कृष्ण का; हइल-वहाँ थे; साध्वस–कुछ संवेदनात्मक भाव; लुकाइते छुपने के लिए; नारिल-अक्षम थे; भये-डर के मारे; हैला-हो गये; विबश-गतिहीन।

अनुवाद

ज्योंही कृष्ण ने सारी गोपियों को देखा, वे भावविह्वल हो उठे। इस तरह वे अपने आपको छिपा नहीं सके और भयवश वे हतप्रभ हो गये।

चतुर्भुज मूर्ति धरि' आछेन वसिया ।

कृष्ण देखि' गोपी कहे निकटे आसिया ॥ 286॥

चतुर्भुज-चतुर्भुज; मूर्ति-रूप; धरि'–धारण करके; आछेन-थे; वसिया-बैठे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; देखि'–देखकर; गोपी-गोपियाँ; कहे-कहती हैं; निकटे-पास; आसिया-आकर।

अनुवाद

कृष्ण अपना चतुर्भुज नारायण रूप धारण करके वहाँ बैठ गये। जब सारी गोपियाँ आईं, तो उन्हें देखकर वे इस प्रकार बोलीं।

'इहों कृष्ण नहे, इहों नारायण मूर्ति' ।

एत बलि' ताँरे सभे करे नति-स्तुति ॥ 287॥

इहों-ये; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; नहे-नहीं हैं; इहों-ये हैं; नारायण भगवान् नारायण; मूर्ति-रूप; एत बलि'-यह कहकर; ताँरे-उनको; सभे–सभी गोपियाँ; करे-करती हैं; नति-स्तुति-नमस्कार तथा प्रार्थना।

अनुवाद

"ये कृष्ण नहीं, भगवान् नारायण हैं।" यह कहकर उन्होंने नमस्कार किया और उनकी सादर स्तुति इस प्रकार की।

"नमो नारायण, देव करह प्रसाद।

कृष्ण-सङ्ग देह' मोर घुचाह विषाद" ॥288॥

नमः नारायण-नारायण को नमस्कार; देव-देव, भगवान्; करह-कृपया दो; प्रसाद-अपनी कृपा, कृष्ण-सङ्ग-कृष्ण की संगति; देह'–देकर; मोर–हमारा; घुचाह-कम करो; विषाद-शोक।

अनुवाद

"हे भगवान् नारायण, हम आपको सादर नमस्कार करती हैं। आप हम पर कृपालु हों। कृपया आप हमें कृष्ण की संगति प्रदान करें और इस प्रकार हमारे शोक को दूर करें।"

तात्पर्य

गोपियाँ नारायण के चतुर्भुज रूप को देखकर भी आनन्दित नहीं हुईं। तथापि उन्होंने भगवान् को नमस्कार किया और उनसे कृष्ण का साथ प्राप्त करने का वर माँगा। ऐसा है गोपियों का भाव।

एत बलि नमस्करि' गेला गोपी-गण।

हेन-काले राधा आसि' दिला दरशन ॥289॥

एत बलि-यह कहकर; नमस्करि'-नमस्कार करके; गेला–चली गईं; गोपी-गण-सभी गोपियाँ; हेन-काले-उसी समय; राधा-श्रीमती राधारानी; आसि'-वहाँ आकर; दिला–दिया; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

ऐसा कहने के बाद तथा नमस्कार करके सारी गोपियाँ इधर-उधर चली गईं। तब श्रीमती राधारानी आईं और भगवान् कृष्ण के समक्ष प्रकट हुईं।

राधा देखि' कृष्ण ताँरे हास्य करिते ।

सेइ चतुर्भुज मूर्ति चाहेन राखिते ॥ 290॥

राधा-श्रीमती राधारानी; देखि'–देखकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ताँरे–उनसे; हास्य-परिहास; करिते-करने के लिए; सेइ-वही; चतुर्-भुज-चतुर्भुज; मूर्ति-रूप; चाहेन–चाहते थे; राखिते-रखना।

अनुवाद

जब भगवान् कृष्ण ने राधारानी को देखा, तो उन्होंने उनके साथ परिहास करने के लिए अपना चतुर्भुज रूप बनाये रखना चाहा।

लुकाइला दुइ भुज राधार अग्रेते ।

बहु यत्न कैला कृष्ण, नारिल राखिते ॥ 291॥

लुकाइला–उन्होंने छुपा लीं; दुइ-दो; भुज-भुजाएँ; राधार–श्रीमती राधारानी के; अग्रेते-सामने; बहु-बहुत; यत्न-प्रयास; कैला–किया; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; नारिल-अक्षम थे; राखिते-रखने के।

अनुवाद

किन्तु श्रीमती राधारानी के सम्मुख श्रीकृष्ण को अपनी दो अतिरिक्त भुजाएँ छिपानी पड़ी। कृष्ण ने उनके सामने अपनी चारों भुजाएँ रखने का पूरा प्रयत्न किया, किन्तु वे ऐसा कर पाने में पूरी तरह विफल रहे।

राधार विशुद्ध-भावेर अचिन्त्य प्रभाव ।

ये कृष्णेरे कराइला द्वि-भुज-स्वभाव ॥ 292॥

राधार–श्रीमती राधारानी के; विशुद्ध-विशुद्ध; भावेर-भावावेश का; अचिन्त्य-अकल्पनीय; प्रभाव-प्रभाव; ये-जो; कृष्णेरे-भगवान् कृष्ण को; कराइला-विवश किया; द्वि-भुज-द्विभुज; स्वभाव-मूलरूप।

अनुवाद

राधारानी के शुद्ध भाव का प्रभाव अचिन्त्य रूप से इतना महान् है कि उसने कृष्ण को अपना आदि द्विभुज रूप धारण करने के लिए बाध्य कर दिया।

रासारम्भ-विधौ निलीय वसता कुल्ले मृगाक्षी-गणैर्

दृष्टं गोपयितुं स्वमुद्धर-धिया या सुष्ठ सन्दर्शिता ।

राधायाः प्रणयस्य हन्त महिमा यस्य श्रिया रक्षितुं

सा शक्या प्रभविष्णुनापि हरिणा नासीच्चतुर्बाहुता ॥ 293 ॥

रास-आरम्भ-विधौ–रास नृत्य आरम्भ करने के लिए; निलीय-छुपकर; वसता-बैठकर; कुञ्ज–कुंज में; मृग-अक्षी-गणैः-गोपियों से जिनके नयन हिरनी जैसे थे; दृष्टम्-देखे जा रहे; गोपयितुम्-छुपाने के लिए; स्वम्-स्वयं; उद्धर-धिया–तीक्ष्ण बुद्धि से; या-जो; सुष्ठ-पूर्ण रूपेण; सन्दर्शिता-दिखाया; राधायाः- श्रीमती राधारानी का; प्रणयस्य-प्रेम का; हन्त-जरा देखो; महिमा-महिमा; यस्य–जिसकी; श्रिया-ऐश्वर्य; रक्षितुम् उसकी रक्षा करने के लिए; सा-वह; शक्या-शक्य; प्रभविष्णुना-कृष्ण से; अपि-भी; हरिणा–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् द्वारा; न-नहीं; आसीत्-था; चतुः-बाहुता-चतुर्भुज रूप।

अनुवाद

"रासनृत्य प्रारम्भ होने के पूर्व भगवान् कृष्ण ने परिहासवश अपने आप को कुंज में छिपा लिया। जब मृगली के समान नेत्रों वाली गोपियाँ आयीं, तो अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा कृष्ण ने अपने आपको छिपाने के लिए अपना सुन्दर चतुर्भुज रूप प्रकट किया। किन्तु जब श्रीमती राधारानी वहाँ आईं, तो वे उनके सामने अपना वह चतुर्भुज रूप नहीं रख पाये। यह श्रीमती राधा के प्रेम की अद्भुत महिमा है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रील रूप गोस्वामी-कृत उज्वल नीलमणि का है।

सेइ व्रजेश्वर–इहँ जगन्नाथ पिता ।

सेइ व्रजेश्वरी–इहँ शचीदेवी माता ॥ 294॥

सेइ-वह; व्रजेश्वर-व्रजराज; इहँ-अब; जगन्नाथ-जगन्नाथ मिश्र; पिता-भगवान् चैतन्य महाप्रभु के पिता; सेइ-वह; व्रजेश्वरी-व्रजरानी; इहँ-अब; शचीदेवी-शचीदेवी; माता-श्री चैतन्य महाप्रभु की माता।

अनुवाद

व्रजभूमि के राजा नन्द अब श्री चैतन्य महाप्रभु के पिता जगन्नाथ मिश्र हैं और व्रजभूमि की महारानी माता यशोदा चैतन्य महाप्रभु की माता शचीदेवी हैं।

सेइ नन्द-सुत—इहँ चैतन्य-गोसाञि ।

सेइ बलदेव—इहँ नित्यानन्द भाइ ॥ 295॥

सेइ नन्द-सुत-वही नन्द महाराज के पुत्र; इहँ-अब; चैतन्य-गोसाञि-चैतन्य महाप्रभु; सेइ बलदेव-वही बलदेव; इहँ-अब; नित्यानन्द भाइ–नित्यानन्द प्रभु, चैतन्य महाप्रभु के भाई।

अनुवाद

जो पहले नन्द महाराज के पुत्र थे, वे अब श्री चैतन्य महाप्रभु हैं और जो पहले कृष्ण के भाई बलदेव थे, वे अब नित्यानन्द प्रभु, श्री चैतन्य महाप्रभु के भाई हैं।

वात्सल्य, दास्य, सख्य–तिन भावमय ।

सेइ नित्यानन्द—कृष्ण-चैतन्य-सहाय ॥296॥

वात्सल्य-वात्सल्य; दास्य-दास्य; सख्य-सख्य; तिन-तीन; भाव-मय-भावनात्मक आवेश; सेइ-वही; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; कृष्ण-चैतन्य-भगवान् चैतन्य महाप्रभु के; सहाय–सहायक।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु को सदैव वात्सल्य, दास्य तथा सख्य भाव का अनुभव होता है। वे श्री चैतन्य महाप्रभु की सदा उसी तरह से सहायता करते हैं।

प्रेम-भक्ति दिया तेंहो भासा' ल जगते ।

ताँर चरित्र लोके ना पारे बुझिते ॥ 297॥

प्रेम-भक्ति-प्रेमभक्ति; दिया–देकर; तेंहो-भगवान् नित्यानन्द प्रभु; भासा'ल-आप्लावित कर दिया; जगते–जगत् को; ताँर-उनका; चरित्र-चरित्र; लोके-लोग; ना-नहीं; पारे-समर्थ हैं; बुझिते-समझने में।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने दिव्य प्रेमाभक्ति का वितरण करके सारे जगत् को आप्लावित कर दिया। उनके चरित्र तथा उनके कार्यों को कोई नहीं समझ सकता।

अद्वैत-आचार्य-गोसाञि भक्त-अवतार ।

कृष्ण अवतारिया कैला भक्तिर प्रचार ॥ 298॥

अद्वैत-आचार्य श्री अद्वैत प्रभु; गोसाञि-आध्यात्मिक गुरु; भक्त-अवतार-भक्त के अवतार; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतारिया–अवतरित होकर; कैला–किया; भक्तिर-भक्ति का प्रचार-प्रचार।

अनुवाद

श्रील अद्वैत आचार्य प्रभु एक भक्त के अवतार-रूप में प्रकट हुए। वे कृष्ण की श्रेणी में हैं, किन्तु वे इस धरा पर भक्ति का प्रचार करने के लिए अवतरित हुए।

सख्य, दास्य, दुइ भाव सहज ताँहार ।

कभु प्रभु करेन ताँरे गुरु-व्यवहार ॥ 299॥

सख्य-सख्य; दास्य-दास्य; दुइ-दोनों; भाव-भाव; सहज-सहज; ताँहार-उनके; कभु-कभी-कभी; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; करेन-करते हैं; ताँरे–उनको; गुरु-आध्यात्मिक गुरु का; व्यवहार–व्यवहार।

अनुवाद

उनके सहज भाव सदा सख्य तथा दास्य भाव के स्तर पर होते थे, किन्तु महाप्रभु कभी-कभी उनके साथ अपने आध्यात्मिक गुरु जैसा व्यवहार करते थे।

श्रीवासादि यत महाप्रभुर भक्त-गण ।

निज निज भावे करेन चैतन्य-सेवन ॥ 300॥

श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर आदि; यत-सब; महाप्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गण-भक्तगण; निज निज-अपने अपने; भावे-भाव; करेन-करते हैं; चैतन्य-सेवन–भगवान् चैतन्य महाप्रभु की सेवा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तगण जिनमें श्रीवास ठाकुर प्रमुख हैं, अपनी अपनी भावपूर्ण मनोदशा से महाप्रभु की सेवा करते हैं।

पण्डित-गोसाञि आदि याँर येइ रस ।

सेइ सेइ रसे प्रभु हन ताँर वश ॥ 301॥

पण्डित-गोसाञि-गदाधर पण्डित; आदि-आदि; याँर–जिनका; येइ-जो कुछ; रस-रस; सेइ सेइ–उसी उसी; रसे–रस से; प्रभु–महाप्रभु; हन-हैं; ताँर-उनके; वश-वश में।

अनुवाद

महाप्रभु के सारे निजी पार्षद यथा गदाधर पण्डित, स्वरूप दामोदर, रामानन्द राय तथा रूप गोस्वामी आदि छहों गोस्वामी अपने-अपने दिव्य रसों में स्थित हैं। इस तरह महाप्रभु विभिन्न दिव्य रसों के वशीभूत हो जाते हैं।

तात्पर्य

श्लोक 296 से 301 में श्री नित्यानन्द तथा श्री अद्वैत प्रभु तथा अन्यों के भक्तिभाव का पूर्ण वर्णन हुआ है। ऐसी व्यक्तिगत भक्ति का वर्णन गौरगणोद्देश-दीपिका में श्लोक 11-16 में हुआ है, जिसमें कहा गया है कि यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु भक्त-रूप में प्रकट हुए, किन्तु वे नन्द महाराज के पुत्र ही थे। इसी तरह यद्यपि श्री नित्यानन्द प्रभु चैतन्य महाप्रभु के सहायक के रूप में प्रकट हुए, किन्तु वे हलधर बलदेव के अतिरिक्त अन्य कोई न थे। अद्वैत आचार्य आध्यात्मिक जगत् में सदाशिव के अवतार हैं। श्रीवास ठाकुर आदि जितने भक्तगण हैं, वे महाप्रभु की तटस्था शक्ति हैं, जबकि गदाधर पण्डित तथा अन्य भक्त उनकी अन्तरंगा शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु, अद्वैत प्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु विष्णुतत्त्व श्रेणी में आते हैं। चूँकि श्री चैतन्य करुणा के सागर हैं, अतएव वे महाप्रभु कहे जाते हैं, जबकि नित्यानन्द तथा अद्वैत को, जो महाप्रभु के दो सहायक महापुरुष हैं, वे प्रभु कहे जाते हैं। इस तरह दो प्रभु और एक महाप्रभु हैं। गदाधर गोस्वामी आदर्श ब्राह्मण-गुरु के प्रतिनिधि स्वरूप हैं और श्रीवास ठाकुर आदर्श ब्राह्मण-भक्त हैं। ये पाँचों पंचतत्त्व कहे जाते हैं।

तिहँ श्याम,—वंशी-मुख, गोप-विलासी।

इहँ गौर—कभु द्विज, कभु त' सन्यासी॥ 302॥

तिहँ-कृष्ण लीला में; श्याम-श्याम रंग; वंशी-मुख-मुख में बांसुरी; गोप-विलासी-ग्वाले के रूप में आनन्दमग्न; इहँ-अब; गौर–गौर रंग; कभु-कभी-कभी; द्विज–ब्राह्मण; कभु-कभी-कभी; त'–अवश्य; सन्यासी-संन्यासी।

अनुवाद

कृष्ण-लीला में भगवान् का वर्ण साँवला है। वे वंशी बजाते हुए ग्वालबाल की तरह आनन्दमग्न रहते हैं। अब वही व्यक्ति गौरवर्ण धारण करके कभी ब्राह्मण के रूप में लीला करते हैं और कभी संन्यासी के रूप में।

अतएव आपने प्रभु गोपी-भाव धरि'।

व्रजेन्द्र-नन्दने कहे 'प्राण-नाथ' करि'॥ 303॥

अतएव–अतएव; आपने–स्वयं; प्रभु-भगवान्, गोपी-भाव-गोपियों का भावावेश; धरि'–धारण करके; व्रजेन्द्र-नन्दने-नन्द महाराज के पुत्र; कहे-सम्बोधन करते हैं; प्राण-नाथ-मेरे जीवन के स्वामी (पति); करि-मानकर।

अनुवाद

इसीलिए स्वयं भगवान् गोपी भाव धारण करके अब नन्द महाराज के पुत्र को "हे मेरे प्राणनाथ! हे मेरे प्रिय पति!" कहकर सम्बोधित करते हैं।

सेइ कृष्ण, सेइ गोपी,—परम विरोध ।

अचिन्त्य चरित्र प्रभुर अति सुदुर्बोध ॥ 304॥

सेइ कृष्ण-वही कृष्ण; सेइ गोपी-वही गोपी; परम विरोध-अत्यन्त विरोधी; अचिन्त्य-अकल्पनीय; चरित्र-चरित्र; प्रभुर-भगवान् का; अति-अत्यन्त; सुदुर्बोध-समझने में कठिन।

अनुवाद

वे कृष्ण हैं, फिर भी उन्होंने गोपी-भाव धारण किया है। ऐसा क्यों है? यही तो भगवान् का अचिन्त्य चरित्र है, जिसे समझ पाना अत्यन्त कठिन है।

तात्पर्य

कृष्ण द्वारा गोपियों की भूमिका स्वीकार किया जाना किसी भी सांसारिक गणना की दृष्टि से निश्चित ही विरोधाभास है, किन्तु महाप्रभु अपने अचिन्त्य चरित्र के कारण गोपियों की तरह कर्म कर सकते हैं और साक्षात् कृष्ण होते हुए भी कृष्ण-विरह का अनुभव करते हैं। ऐसा विरोधाभास केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में ही सम्भव हो सकता है, क्योंकि उनकी शक्ति अचिन्त्य है, जो

असम्भव को भी सम्भव बनाती है (अघट-घटन पटीयसि)। ऐसे विरोधाभासों को तब तक समझ पाना कठिन है, जब तक कोई भक्त गोस्वामियों के निर्देशन में वैष्णव-दर्शन का दृढ़ता से पालन न करे। इसीलिए कृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रत्येक अध्याय की समाप्ति इस श्लोक से करते हैं :

श्रीरूपरघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥

"श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए मैं, कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।"

श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का गीत है :

रूपरघुनाथ-पदे हइबे आकुति ।

कबे हाम बुझब से युगल-पीरिति ॥

राधा तथा कृष्ण का माधुर्य प्रेम, जो युगल-पीरिति कहलाता है, उसे संसारी विद्वान, कलाकार या कवि समझ नहीं सकते। यह केवल उन भक्तों की समझ में आता है, जो छः गोस्वामियों के चरणचिह्नों का दृढता से अनुसरण करते हैं। कभी-कभी तथाकथित कलाकार तथा कवि राधा-कृष्ण के प्रेम-व्यापार को समझने का प्रयास करते हैं और इस विषय पर कविता तथा चित्रों की सस्ती पुस्तकें छापते हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश वे राधा-कृष्ण के दिव्य प्रेम-व्यापार को तनिक भी नहीं समझ पाते। वे ऐसे विषय में अपनी टांग फँसाते हैं, जिसमें वे प्रवेश करने के योग्य भी नहीं हैं।

इथे तर्क करि' केह ना कर संशय ।

कृष्णेर अचिन्त्य-शक्ति एइ मत हय ॥ 305॥

इथे-इस विषय में; तर्क करि'–तर्क करके; केह-कोई; ना-नहीं; कर-करता; संशय-सन्देह; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; अचिन्त्य-शक्ति-अकल्पनीय शक्ति; एइ-यह; मत–निर्णय; हय है।

अनुवाद

संसारी तर्कों के द्वारा महाप्रभु के चरित्र के विरोधाभासों को नहीं समझा जा सकता। फलस्वरूप किसी को इस सम्बन्ध में कोई संशय नहीं करना चाहिए। मनुष्य को केवल कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति को समझने का प्रयास करना चाहिए, अन्यथा वह यह नहीं समझ सकेगा कि ऐसे विरोध किस तरह सम्भव होते हैं।

अचिन्त्य, अद्भुत कृष्ण-चैतन्य-विहार ।

चित्र भाव, चित्र गुण, चित्र व्यवहार ॥ 306 ॥

अचिन्त्य-अचिन्त्य; अद्भुत-अद्भुत; कृष्ण-चैतन्य-भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य की; विहार-लीलाएँ; चित्र-विचित्र; भाव-भाव; चित्र-विचित्र; गुणगुण; चित्र-अद्भुत; व्यवहार–व्यवहार।

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अचिन्त्य तथा अद्भुत हैं। उनका भाव अद्भुत है, उनके गुण अद्भुत हैं और उनका व्यवहार अद्भुत है।

तर्के इहा नाहि माने येइ दुराचार ।

कुम्भीपाके पचे, तार नाहिक निस्तार ॥ 307॥

तर्के–तर्क द्वारा; इहा-यह; नाहि-नहीं; माने-मानता; येइ-जो कोई; दुराचार-दुराचार; कुम्भी-पाके-नरक के उबलते तेल में; पचे-उबलता है; तार-उसका; नाहिक-नहीं है; निस्तार-उद्धार।

अनुवाद

यदि कोई व्यर्थ ही इन संसारी तर्कों में उलझा रहता है और इसे स्वीकार नहीं करता, वह कुम्भीपाक नरक में तेल में उबलता रहता है। उसका उद्धार नहीं होता।

तात्पर्य

कुम्भीपाक एक प्रकार का नरक है, जिसका वर्णन श्रीमद्भागवत (5.26.13) में मिलता है। उसमें कहा गया है कि जो व्यक्ति जीवधारी पक्षियों तथा जंगली जानवरों को अग्नि में पकाकर जीभ का स्वाद पूरा करता है, उसे मृत्यु के बाद यमराज के समक्ष लाया जाता है और कुम्भीपाक नरक का दण्ड दिया जाता है। वहाँ उसे कुम्भीपाक नामक उबलते तेल में डाल दिया जाता है, जिससे किसी को छुटकारा नहीं है। कुम्भीपाक उन व्यक्तियों के लिए है, जो व्यर्थ ही ईर्ष्यालु हैं। जो लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों से ईर्ष्या करते हैं, उन्हें इसी नरक का दण्ड मिलता है।

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत् ।

प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥ 308॥

अचिन्त्याः-अचिन्त्य; खलु-अवश्य; ये-वे; भावाः-भाव; न-नहीं; तान्-उनको; तर्केण-तर्क से; योजयेत् कोई समझ सके; प्रकृतिभ्यः–भौतिक प्रकृति को; परम्-परम, दिव्य; यत्-वह जो; च-और; तत्व ह; अचिन्त्यस्य-अचिन्त्य का; लक्षणम् लक्षण।

अनुवाद

“भौतिक प्रकृति से परे कोई भी दिव्य बात अचिन्त्य कहलाती है, जबकि सारे तर्क संसारी होते हैं। चूँकि संसारी तर्क दिव्य विषयों को स्पर्श भी नहीं कर पाते, अतएव मनुष्य को संसारी तर्कों से दिव्य विषयों को समझने का प्रयास नहीं करना चाहिए।”

तात्पर्य

यह श्लोक महाभारत (भीष्मपर्व 5.22) से लिया गया है और श्रील रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृत सिन्धु (2.5.93) में भी आया है।

अद्भुत चैतन्य-लीलाय याहार विश्वास ।

सेइ जन याय चैतन्येर पद पाश ॥ 309॥

अद्भुत-अद्भुत; चैतन्य-लीलाय-चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं में; याहार–जिस किसी का भी; विश्वास–विश्वास; सेइ-वह; जन-व्यक्ति; याय-उन्नति करता है; चैतन्येर–श्री चैतन्य महाप्रभु के; पद-चरणकमल; पाश-निकट।

अनुवाद

जिस व्यक्ति की चैतन्य महाप्रभु की अद्भुत लीलाओं में दृढ़ निष्ठा है, वही उनके चरणकमलों तक पहुँच पाता है।

प्रसङ्गे कहिल एइ सिद्धान्तेर सार ।

इहा येइ शुने, शुद्ध-भक्ति हय तार ॥ 310॥

प्रसङ्गे–चर्चा के दौरान; कहिल–कहा गया; एइ–इस; सिद्धान्तेर-सिद्धान्त का; सार-सार; इहा-यह; येइ-जो कोई; शुने-सुनता है; शुद्ध-भक्ति-शुद्ध भक्ति; हय-होती है; तार-उसकी।

अनुवाद

इस आख्यान में मैंने भक्ति के सार को बतलाया है। जो कोई भी इसे सुनता है, उसमें भगवान् की शुद्ध भक्ति विकसित होती है।

लिखित ग्रन्थेर यदि करि अनुवाद ।

तबे से ग्रन्थेर अर्थ पाइये आस्वाद ॥ 311॥

लिखित–लिखित; ग्रन्थेर-शास्त्र का; यदि-यदि; करि-मैं करता हूँ; अनुवाद-अनुवाद, पुनरावृत्ति; तबे-तब; से ग्रन्थेर-उस शास्त्र का; अर्थ–अर्थ; पाइये-मैं जान सकता हूँ; आस्वाद-आस्वादन।

अनुवाद

यदि मैं पहले से लिखी बातों की पुनरावृत्ति करूँ, तो इस शास्त्र के प्रयोजन का आस्वादन कर सकें।

देखि ग्रन्थे भागवते व्यासेर आचार ।

कथा कहि' अनुवाद करे वार वार ॥ 312॥

देखि-मैं देखता हूँ; ग्रन्थे-शास्त्र में; भागवते- श्रीमद्भागवत में; व्यासेर-श्रील व्यासदेव का; आचार-व्यवहार; कथा-कथा; कहि-वर्णन करके अनुवाद-पुनरावृत्ति; करे-वे करते हैं; वार वार– बारम्बार।

अनुवाद

हम श्रीमद्भागवत शास्त्र में इसके रचयिता श्री व्यासदेव के आचरण को देख सकते हैं। वे कथा कहकर उसको बारम्बार दोहराते हैं।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के अन्त में बारहवें स्कन्ध के बारहवें अध्याय में ऐसे 43 श्लोक हैं, जिनमें श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास श्रीमद्भागवत के समग्र विषय का पुनरावलोकन करते हैं। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी श्रीचैतन्य-चरितामृत की आदिलीला के सत्रहों अध्यायों का पुनरावलोकन करके श्रील वेदव्यास के चरणचिह्नों का अनुसरण करना चाहते हैं।

ताते आदि-लीलार करि परिच्छेद गणन ।

प्रथम परिच्छेदे कैलै 'मङ्गलाचरण' ॥ 313॥

ताते-अतएव; आदि-लीलार-आदि लीला (प्रथम स्कन्ध) का; करि-मैं करता हूँ; परिच्छेद-अध्याय; गणन-गणना; प्रथम परिच्छेदे-पहले अध्याय में; कैलें-मैंने किया है; मङ्गल-आचरण-मंगलाचरण।

अनुवाद

अतएव मैं आदिलीला के अध्यायों की गणना करूँगा। पहले अध्याय के अन्तर्गत मैं गुरु को नमस्कार करता हूँ, क्योंकि यह शुभ लेखन का प्रारम्भ है।

द्वितीय परिच्छेदे 'चैतन्य-तत्त्व-निरूपण' ।

स्वयं भगवान् येइ व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ 314॥

द्वितीय परिच्छेदे-दूसरे अध्याय में; चैतन्य-तत्त्व-निरूपण-श्री चैतन्य महाप्रभु के तत्त्व का वर्णन; स्वयम्-स्वयं; भगवान्-भगवान्; येइ-जो; व्रजेन्द्र-नन्दन–नन्द महाराज के पुत्र।

अनुवाद

दूसरे अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु के तत्त्व की व्याख्या की गई है। वे महाराज नन्द के पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं।

तेंहो त' चैतन्य-कृष्ण—शचीर नन्दन ।

तृतीय परिच्छेदे जन्मेर 'सामान्य कारण ॥ 315॥

तेंहो-वे; त'–अवश्य; चैतन्य-कृष्ण-श्री चैतन्य नाम के साथ कृष्ण; शचीर नन्दन–शची माता के पुत्र; तृतीय परिच्छेदे-तीसरे अध्याय में; जन्मेर-उनके जन्म के; सामान्य-सामान्य; कारण-कारण।

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु, जो स्वयं कृष्ण हैं, अब माता शची के पुत्र-रूप में प्रकट हुए हैं। तृतीय अध्याय में उनके प्राकट्य के सामान्य कारण का वर्णन है।

तहिं मध्ये प्रेम-दान–'विशेष' कारण ।

युग-धर्म-कृष्ण-नाम-प्रेम-प्रचारण ॥ 316 ॥

तहिं मध्ये-उस अध्याय में; प्रेम-दान-भगवत्प्रेम का वितरण; विशेष-विशेष; कारण-कारण; युग-धर्म-युगधर्म; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; प्रेम-भगवत् प्रेम; प्रचारण–प्रचार करना।

अनुवाद

आठवें अध्याय में श्री चैतन्य की लीलाओं का वर्णन किये जाने का कारण दिया गया है। इसमें कृष्ण-नाम की महानता का भी वर्णन हुआ है।

नवमेते 'भक्ति-कल्प-वृक्षेर वर्णन' ।

श्री-चैतन्य-माली कैला वृक्ष आरोपण ॥ 322॥

नवमेते-नवें अध्याय में; भक्ति-कल्प-वृक्षेर-भक्ति कल्पवृक्ष का; वर्णन-वर्णन; श्री-चैतन्य-माली–श्री चैतन्य महाप्रभु ने माली के रूप में; कैला–किया; वृक्ष-वृक्ष; आरोपण-आरोपण।

अनुवाद

नवें अध्याय में भक्तिरूपी कल्पवृक्ष का वर्णन है। श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं माली हैं, जिन्होंने इसका आरोपण किया।

दशमेते मूल-स्कन्धेर 'शाखादि-गणन'।

सर्व-शाखा-गणेर यैछे फल-वितरण ॥ 323 ॥

दशमेते-दसवें अध्याय में; मूल-स्कन्धेर–मूल तना; शाखा-आदि-शाखाएँ आदि; गणन-गणना; सर्व-शाखा-गणेर-सभी शाखाओं का; यैछे-उस प्रकार; फल-वितरण-फलों का वितरण।

अनुवाद

दसवें अध्याय में मुख्य तने की शाखाओं-उपशाखाओं एवं उनके फलों के वितरण का वर्णन हुआ है।

एकादशे 'नित्यानन्द-शाखा-विवरण'।

द्वादशे 'अद्वैत-स्कन्ध शाखार वर्णन' ॥ 324॥

एकादशे-ग्यारहवें अध्याय में; नित्यानन्द-शाखा-श्री नित्यानन्द प्रभु की शाखाओं का; विवरण–विवरण; द्वादशे-बारहवें अध्याय में; अद्वैत-स्कन्ध-अद्वैत प्रभु नामक तना; शाखार–शाखा का; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

ग्याहरवें स्कन्ध में श्री नित्यानन्द प्रभु की शाखा (वंश) का वर्णन है। बारहवें अध्याय में श्री अद्वैत प्रभु नामक शाखा का वर्णन है।

त्रयोदशे महाप्रभुर 'जन्म-विवरण'।

कृष्ण-नाम-सह यैछे प्रभुर जनम ॥ 325॥

त्रयोदशे-तेरहवें अध्याय में; महाप्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का; जन्म-जन्म; विवरण–विवरण; कृष्ण-नाम-सह-भगवान् कृष्ण के पावन नाम के साथ; यैछे-जिस प्रकार; प्रभुर–महाप्रभु का; जनम-जन्म।

अनुवाद

तेरहवें अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्म का वर्णन है, जो कृष्ण-नाम कीर्तन चलते समय हुआ।

चतुर्दशे ‘बाल्य-लीला’र किछु विवरण।

पञ्चदशे ‘पौगण्ड-लीला’र सङ्क्षेपे कथन॥ 326॥

चतुर्दशे-चौदहवें अध्याय में; बाल्य-लीला'र–महाप्रभु की बाल्य लीलाओं का; किछु-कुछ; विवरण–विवरण; पञ्चदशे-पंद्रहवें अध्याय में; पौगण्ड-लीलार–पौगण्ड अवस्था की लीलाओं का; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कथन-वर्णन।

अनुवाद

चौदहवें अध्याय में महाप्रभु की कुछ बाल-लीलाओं का वर्णन है। पंद्रहवें अध्याय में महाप्रभु की पौगण्ड-लीलाओं का संक्षिप्त वर्णन हुआ

षोड़श परिच्छेदे ‘कैशोर-लीला’ र उद्देश।

सप्तदशे ‘यौवन-लीला’ कहिलुँ विशेष॥ 327॥

षोड़श-सोलहवें अध्याय में; परिच्छेदे-अध्याय में; कैशोर-लीलार–किशोर अवस्था की लीलाओं का; उद्देश-उद्देश्य; सप्तदशे-सत्रहवें अध्याय में; यौवन-लीला-यौवन अवस्था की लीलाओं का; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; विशेष-विशेष।

अनुवाद

सोलहवें अध्याय में, मैंने कैशोर अवस्था (युवावस्था के पूर्व) की लीलाओं का संकेत किया है। सत्रहवें अध्याय में विशेषतया उनकी युवावस्था की लीलाओं का वर्णन हुआ है।

एइ सप्तदश प्रकार आदि-लीलार प्रबन्ध ।

द्वादश प्रबन्ध ताते ग्रन्थ-मुखबन्ध ॥ 328॥

एइ सप्तदश-ये सत्रह; प्रकार-प्रकार; आदि-लीलार-आदिलीला (प्रथम स्कन्ध) के; प्रबन्ध-प्रबन्ध (विषय वस्तु); द्वादश-बारह; प्रबन्ध-प्रबन्ध (विषय वस्तु); ताते-उनमें; ग्रन्थ-ग्रंथ के; मुख-बन्ध–मुख्य आमुख।

अनुवाद

इस तरह प्रथम स्कन्ध में सत्रह प्रकार के विषय हैं, जो आदिलीला के नाम से विख्यात हैं। इनमें से बारह इस ग्रंथ के आमुख के रूप में हैं।

पञ्च-प्रबन्धे पञ्च-रसेर चरित ।

सङ्क्षेपे कहिलुँ अति,—ना कैलुँ विस्तृत ॥ 329॥

पञ्च-प्रबन्थे–पाँच अध्यायों में: पञ्च-रसेर–पाँच दिव्य रसों का चरित-चरित्रः सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया; अति-अत्यन्त; ना कैलुँ-मैंने नहीं किया; विस्तृत-विस्तार।

अनुवाद

मैंने आमुख के अध्यायों के पश्चात् पाँच अध्यायों में पाँच दिव्य रसों का वर्णन किया है। मैंने विस्तृत वर्णन की अपेक्षा इनका संक्षिप्त वर्णन किया है।

वृन्दावन-दास इहा ‘चैतन्य-मङ्गले’ ।

विस्तारि’ वणिला नित्यानन्द-आज्ञा-बले ॥ 330॥

वृन्दावन-दास–ठाकुर वृन्दावन दास; इहा-यह; चैतन्य-मङ्गले–उनके चैतन्य मंगल (चैतन्य भागवत) ग्रन्थ में; विस्तारि’–विस्तार करके; वर्णिला-वर्णन किया है; नित्यानन्द-श्री नित्यानन्द प्रभु की; आज्ञा-आज्ञा के; बले-बल पर।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु के आदेश तथा बल पर श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने अपने ग्रंथ चैतन्य-मंगल में उन विषयों का विस्तार से वर्णन किया है, जिनका वर्णन मैंने नहीं किया।

श्री-कृष्ण-चैतन्य-लीला—अद्भुत, अनन्त ।

ब्रह्मा-शिव-शेष याँर नाहि पाय अन्त ॥ 331॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; अद्भुत-अद्भुत; अनन्त-अनन्त; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; शिव-शिवजी; शेष-भगवान् शेष नाग; याँर–जिनका; नाहि-नहीं; पाय-पा सकते; अन्त–अन्त।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अद्भुत एवं अनन्त हैं। ब्रह्माजी, शिवजी तथा शेषनाग जैसे भी उनका पार नहीं पा सकते।

ये येइ अंश कहे, शुने सेइ धन्य ।

अचिरे मिलिबे तारे श्री-कृष्ण-चैतन्य ॥ 332॥

ये येइ अंश-इसका कोई भी भाग; कहे जो कोई वर्णन करता है; शुने-जो कोई सुनता है; सेइ-वह व्यक्ति; धन्य-धन्य; अचिरे–बहुत जल्दी; मिलिबे-मिलेंगे; तारे-उनको; श्री कृष्ण-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

कोई भी व्यक्ति, जो इस विस्तृत विषय के किसी भी अंश को कहता या सुनता है, उसे बहुत जल्दी ही श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की अहैतुकी कृपा प्राप्त हो जायेगी।

श्री-कृष्ण-चैतन्य, अद्वैत, नित्यानन्द।

श्रीवास-गदाधरादि यत भक्त-वृन्द ॥ 333॥

श्री कृष्ण-चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; अद्वैत-अद्वैत आचार्य प्रभु; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; गदाधर-आदि-गदाधर आदि; यत-सभी; भक्त-वृन्द-भक्त गण।

अनुवाद

[यहाँ लेखक पुनः पंचतत्त्व का वर्णन करते हैं।] श्रीकृष्ण चैतन्य, प्रभु नित्यानन्द, श्री अद्वैत, गदाधर, श्रीवास तथा महाप्रभु के सारे भक्तों!

यत यत भक्त-गण वैसे वृन्दावने।

नम्र हञा शिरे धरों सबार चरणे ॥ 334॥

यत यत–जितने ; भक्त-गण-भक्त; वैसे—निवास करते हैं; वृन्दावने-वृन्दावन में; नम्र हञा–विनम्र होकर; शिरे-अपने सिर पर; धरों-मैं रखता हूँ; सबार-सबके; चरणे-चरणकमल।

अनुवाद

मैं वृन्दावन के समस्त निवासियों को सादर नमस्कार करता हूँ। मैं विनीत भाव से उनके चरणकमलों को अपने शीश पर रखना चाहता हूँ।

श्री-स्वरूप-श्री-रूप-श्री-सनातन।

श्री-रघुनाथ-दास, आर श्री-जीव-चरण॥ 335॥

शिरे धरि वन्दों, नित्य करों ताँर आश।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥ 336॥

श्री-स्वरूप-श्री स्वरूप दामोदर; श्री-रूप-श्री रूप गोस्वामी; श्री-सनातन-श्री सनातन गोस्वामी; श्री-रघुनाथ-दास-श्री रघुनाथ दास गोस्वामी; आर-और; श्री-जीव-चरण-श्री जीव गोस्वामी के चरणकमल; शिरे–सिर पर; धरि-रखकर; वन्दों-मैं पूजा करता हूँ; नित्य-सदा; करों-मैं करता हूँ; ताँर-उनको; आश–सेवा करने की आशा करता हूँ; चैतन्य-चरितामृत- श्रीचैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

मैं गोस्वामियों के चरणकमलों को अपने सिर पर रखना चाहता हूँ। उनके नाम हैं श्री स्वरूप दामोदर, श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, श्री रघुनाथ दास गोस्वामी तथा श्री जीव गोस्वामी।

उनके चरणकमलों को अपने सिर पर रखकर और सदा उनकी सेवा करने की आशा से मैं श्रीकृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्रीचैतन्य चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के सत्रहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त–तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें महाप्रभु की यौवन-लीलाओं का वर्णन हुआ है।

परिशिष्ट

श्रीचैतन्य चरितामृत भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवन एवं उपदेशों पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ है, जो कि एक दार्शनिक, सन्त, आध्यात्मिक गुरु एवं योगी की भूमिका निभा रहे दिव्य अवतार थे। उन्होंने भारत में सोलहवीं शताब्दि में महान् सामाजिक एवं धार्मिक सुधार के आन्दोलन का प्रवर्तन किया था। उनकी शिक्षाएँ सर्वोच्च दार्शनिक एवं आध्यात्मिक सत्य का समावेश करती हैं। और इनसे आज तक असंख्य दार्शनिक एवं धार्मिक व्यक्ति प्रभावित हुए हैं।

मूल बंगाली पाठ का यह भाषांतर उसके तात्पर्यो के साथ श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद (ऊपर का चित्र देखें) का कार्य है, जो कि विश्व की प्राचीन संस्कृति एवं विचारधारा के गुरु हैं और सुप्रसिद्ध भगवद्गीता यथारूप के लेखक हैं। श्रीचैतन्य चरितामृत का यह भाषांतर वर्तमान समय के मनुष्यों के बौद्धिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के लिए एक अति महत्त्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करता है।

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत

श्रीचैतन्य-चरितामृत

मध्य लीला, प्रथम खण्ड

अध्याय 1-6

मूल बंगला श्लोक, श्लोक का हिन्दी लिप्यन्तरण,

शब्दार्थ, अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य सहित

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

विषय-सूची

भूमिका

अध्याय एक

श्री चैतन्य महाप्रभु की परवर्ती लीलाएँ

अध्याय दो

श्री चैतन्य महाप्रभु के भावोन्माद की अभिव्यक्ति

अध्याय तीन

श्री चैतन्य महाप्रभु का अद्वैत आचार्य के घर रुकना

अध्याय चार

श्री माधवेन्द्र पुरी की भक्ति

अध्याय पाँच

साक्षीगोपाल की लीलाएँ

अध्याय छह

सार्वभौम भट्टाचार्य की मुक्ति

परिशिष्ट

लेखक परिचय

विशेष शब्दावली

श्लोकानुक्रमणिका

उधृत श्लोकों की अनुक्रमणिका

बांग्ला वर्णमाला

बांग्ला उच्चारण सम्बन्धी निर्देश

भूमिका

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा उपदेशों का मुख्य ग्रन्थ है। श्री चैतन्य महाप्रभु उस महान् सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, जो भारत में 500 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जिसने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरी धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधाराओं को न केवल भारत में अपितु समग्र विश्व में प्रभावित किया है। उन श्रीकृष्ण चैतन्य के प्रभाव को प्रसारित करने में कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भतिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के प्रयासों का मुख्य योगदान रहा है, जो इस ग्रन्थ के अनुवादक तथा भाष्यकार होने के साथ-साथ अन्तराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) के संस्थापक-आचार्य भी हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु को अतीव ऐतिहासिक महत्व का पुरुष माना जाता है। किन्तु ऐतिहासिक विश्लेषण की हमारी पारम्परिक विधि, जो व्यक्ति को उनके समय की उपज के रूप में देखती है, यहाँ पर विफल हो जाती है, क्योंकि श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसे पुरुष हैं, जो ऐतिहासिक व्यवस्था के सीमित क्षेत्र से परे हैं।

जिस समय पश्चिम में मानव भौतिक ब्रह्माण्ड की संरचना का अध्ययन करने तथा नवीन सागरों और महाद्वीपों की खोज में समुद्री यात्राएँ करने में अपनी अनुसन्धानात्मक शक्ति लगा रहा था, तभी पूर्व में श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसी क्रान्ति का प्रवर्तन एवं कुशल नेतृत्व कर रहे थे, जो मनुष्य के आध्यात्मिक स्वभाव के सर्वोच्च विज्ञान सम्मत ज्ञान की दिशा में निर्दिष्ट था।

श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवनचरित के मुख्य ऐतिहासिक स्रोत मुरारि गुप्त तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा लिखे गये कड़चा (दैनन्दिनियाँ) हैं। मुरारि गुप्त एक वैद्य तथा श्रीकृष्ण चैतन्य के अन्तरंग पार्षद थे, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास ग्रहण करने तक के प्रारम्भिक चौबीस वर्षों के विषय में विस्तृत टिप्पणियाँ लिखीं। श्री चैतन्य महाप्रभु के अड़तालीस वर्षों के जीवन की शेष घटनाएँ श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्य अन्तरंग पार्षद स्वरूप दामोदर गोस्वामी के कड़चा में अंकित हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृत के तीन खण्ड हैं, जिन्हें लीला कहा जाता है। ये हैंआदि लीला, मध्य लीला तथा अन्त्य लीला/मुरारि गुप्त का कडुचा ही आदि लीला का आधार है और स्वरूप दामोदर का कड़चा मध्य तथा अन्त्य लीलाओं के लिए विस्तृत विवरण प्रदान करता है।

आदिलीला के सत्रह अध्यायों में से प्रथम बारह अध्याय सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रस्तावना स्वरूप हैं। वैदिक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा कृष्णदास कविराज यह स्थापित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु कलियुग (जो पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जो भौतिकता, दम्भ तथा कलह का प्रतीक है) के लिए कृष्ण के अवतार हैं। लेखक यह भी प्रमाणित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण से अभिन्न हैं और अधम युग के पतितात्माओं को महामन्त्र के संकीर्तन का प्रचार करके शुद्ध भगवत्प्रेम उदारतापूर्ण वितरित करने के लिए अवतरित होते हैं। यह संकीर्तन महामन्त्र का बृहद् सार्वजनिक कीर्तन है। इसके उपरान्त कृष्णदास कविराज ने इस ग्रन्थ के बारहवें अध्याय में इस जगत् में श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का गुह्य प्रयोजन, उनके सह-अवतारों तथा प्रमुख भक्तों का वर्णन किया है और उनकी शिक्षाओं को सार रूप में प्रस्तुत की हैं। आदि लीला के शेष अध्यायों (13 से 17 तक) में लेखक ने चैतन्य महाप्रभु के दिव्य जन्म तथा संन्यास ग्रहण करने तक के जीवन का संक्षिप्त विवरण दिया है। इसमें उनके बचपन के चमत्कारों, अध्ययन, विवाह तथा प्रारम्भिक दार्शनिक शास्त्रार्थों के साथ-साथ उनके व्यापक संकीर्तन-आन्दोलन के संगठन तथा मुस्लिम सरकार द्वारा दमन के विरुद्ध उनके कानून अवज्ञा आन्दोलन का वर्णन है।

तीनों लीलाओं में सबसे लम्बी मध्यलीला की विषय वस्तु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा एक संन्यासी, शिक्षक, दार्शनिक तथा गुरु एवं योगी के रूप में सारे भारत की विस्तृत एवं घटनापूर्ण यात्राओं का विशद् वर्णन है। छह वर्षों की इस अवधि में श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्रमुख शिष्यों को शिक्षाएँ देते हैं। वे अपने समकालीन सुविख्यात दार्शनिकों तथा धर्मज्ञों से, जिनमें शंकराचार्य के अनुयायी, बौद्ध तथा मुसलमान सम्मिलित हैं, शास्त्रार्थ करते हैं और उन्हें तथा उनके शिष्य तथा अनुयायी वर्गों को अपने दल में सम्मिलित करते हैं। इस खण्ड में उड़ीसा में होने वाले विशाल जगन्नाथ रथयात्रा उत्सव के अवसर पर चैतन्य महाप्रभु की चमत्कार-पूर्ण लीलाओं का विस्तृत विवरण सम्मिलित है।

अन्त्यलीला में श्री चैतन्य की प्रकट उपस्थिति के अन्तिम अठारह वर्षों का विवरण है, जिसे उन्होंने जगन्नाथ पुरी के सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर के निकट लगभग एकान्त में बिताये। इन अन्तिम वर्षों में श्रीकृष्ण चैतन्य भावसमाधि में गहरे उतरते गये, जो समस्त पूर्वी अथवा पाश्चात्य धार्मिक तथा साहित्यिक इतिहास में अद्वितीय है। उनके नित्य संगी स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा दिये गये प्रत्यक्षदर्शी विवरण, जिनसे श्री चैतन्य की शाश्वत तथा नित्य वर्धमान धार्मिक परमानन्द की अवस्था प्रकट होती है, आधुनिक मनोविज्ञानियों तथा प्रत्यक्षवादियों के धार्मिक अनुभवों की अनुसन्धानात्मक तथा विवरणात्मक क्षमताओं को स्पष्ट रूप से चुनौती देने वाले हैं।

इस महान् ग्रन्थ के रचयिता कृष्णदास कविराज गोस्वामी का जन्म 1507 ई. में हुआ था। वे चैतन्य महाप्रभु के विश्वस्त अनुयायी रघुनाथ दास गोस्वामी के शिष्य थे। रघुनाथ दास विख्यात वैरागी सन्त थे, जिन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा बतलाई गई चैतन्य महाप्रभु की समस्त लीलाओं को सुना था और स्मरण कर रखा था। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के निधन के बाद रघुनाथ दास ने अपने इन आराध्यों की विरह वेदना सहन न कर सकने के कारण गोवर्धन पर्वत से कूदकर आत्म-हत्या करने के उद्देश्य से वृन्दावन की यात्रा की। किन्तु वृन्दावन में उनकी भेंट चैतन्य महाप्रभु के दो सर्वाधिक अन्तरंग शिष्यों-रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से हुई, जिन्होंने उनसे आत्महत्या की योजना का परित्याग करने तथा चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम जीवन की प्रेरक घटनाओं को प्रकट करने के लिए प्रेरित किया। उस समय कृष्णदास कविराज गोस्वामी भी वृन्दावन में रह रहे थे, जिन्हें रघुनाथ दास गोस्वामी ने श्री चैतन्य के दिव्य जीवन का पूर्ण विवरण प्रदान किया।

उस समय तक श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवन पर अनेक समसामयिक विद्वान तथा भक्तों द्वारा कई जीवन-चरित विषयक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। इनमें मुरारि गुप्त कृत श्रीचैतन्य–चरित, लोचन दास ठाकुर कृत चैतन्य–मंगल तथा वृन्दावन दास कृत चैतन्य-भागवत सम्मिलित हैं, जिनमें से चैतन्य भागवत के लेखक वृन्दावन दास ठाकुर को उस

समय श्री चैतन्य के जीवन के विशेषज्ञ माने जाते थे। जब वृन्दावन दास इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना कर रहे थे, तब उन्होंने इस भय से श्री चैतन्य के जीवन की अनेक घटनाओं को, विशेषतया परवर्ती घटनाओं को सम्मिलित नहीं किया कि इससे ग्रन्थ का आकार बढ़ जायेगा। इस अन्तिम लीलाओं को सुनने के इच्छुक वृन्दावन के भक्तों ने कृष्णदास कविराज गोस्वामी से, जिन्हें वे महान् सन्त और विद्वान के रूप में सम्मान देते थे, यह अनुरोध किया कि इन घटनाओं का विस्तार से वर्णन करने वाले ग्रन्थ की रचना करें। इस अनुरोध पर तथा वृन्दावन के मदन मोहन अर्चाविग्रह की अनुमति तथा आशीर्वाद से उन्होंने श्रीचैतन्य चरितामृत की रचना प्रारम्भ की, जिसे चैतन्य महाप्रभु के गहन दर्शन तथा शिक्षाओं के सम्यक्र प्रस्तुतीकरण, एवं जीवन-चरित विषयक श्रेष्ठता के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा गूढ़ शिक्षा के सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में आज सारे विश्व में मान्यता दी जा रही है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने वृद्धावस्था में इस ग्रंथ पर कार्य प्रारम्भ किया, जब उनका स्वास्थ्य गिर चुका था। जैसाकि उन्होंने स्वयं लिखा है, "अब मैं अति वृद्ध एवं अक्षमता से विक्षुब्ध हूँ। लिखते समय मेरे हाथ काँपते हैं, मुझे ठीक से किसी बात का स्मरण नहीं हो पाता, न ही मैं ठीक से देख या सुन सकता हूँ फिर भी मैं लिखता हूँ जो कि अपने आप में एक महान् आश्चर्य है।" तो भी उन्होंने इस अक्षम अवस्था में मध्यकालीन भारत के इस महान्तम साहित्यिक मणि को पूरा किया, जो साहित्यिक इतिहास के आश्चर्यों में एक है।

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, इसका औग्रेजी अनुवाद कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा सम्पन्न किया गया, जो समग्र विश्व में भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा के सर्वाधिक विख्यात शिक्षक हैं। श्रील प्रभुपाद का भाष्य दो बँगला भाष्यों पर आधारित है-एक तो उनके गुरु, महान् वैदिक विद्वान, उपदेशक और संत श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, जिन्होंने भविष्यवाणी की थी कि, "एक समय ऐसा आयेगा, जब श्रीचैतन्य चरितामृत पढ़ने के लिए विश्वभर के लोग बँगला सीखेंगे" और दूसरा भाष्य श्रील भतिसिद्धान्त के पिता भक्तिविनोद ठाकुर का जिन्होंने आधुनिक युग में श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के प्रचार में अग्रदूत का काम किया।

श्रील प्रभुपाद स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा में आते हैं और वे पहले विद्वान हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य के अनुयायियों के प्रमुख ग्रन्थों का आँग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। उनकी बँगला तथा संस्कृत में विद्वता और श्रीकृष्ण चैतन्य के उपदेशों से उनका अन्तरंग परिचय ऐसा उपयुक्त मेल है, जो उन्हें इस महत्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ को अंग्रेजी भाषी संसार के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए सर्वाधिक योग्य बनाता है। वे जिस सहजता तथा स्पष्टता

से से पूर्णतया अपरिचित पाठक को भी इन गहन तथा स्मरणीय ग्रन्थ को समझने तथा उसकी प्रशंसा करने के लिए समर्थ बनाता है।

तात्पर्य समेत सम्पूर्ण मूल पाठ को नौ सचित्र खण्डों में भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो समकालीन मनुष्य के बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रमुख महत्वपूर्ण योगदान का प्रतिनिधित्व करता है।

श्रील प्रभुपाद के द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत का हिन्दी अनुवाद उनके शताब्दी उत्सव के अवसर पर प्रकाशित किया जा रहा है, जो भारत के भक्तों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

-प्रकाशक

अध्याय एक

श्री चैतन्य महाप्रभु की परवर्ती लीलाएँ

इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु की मध्यकाल तथा अन्तिम छह वर्षों में सम्पन्न की गई समस्त लीलाओं का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इन सबका वर्णन संक्षेप में किया गया है। इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु के उस भावावेश का भी वर्णन है, जो उन्होंने य: कौमार-हरः से प्रारम्भ होने वाले श्लोक को सुनाने पर प्रकट किया था। इस भावावेश की व्याख्या श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित श्लोक प्रियः सोऽयं कृष्ण: में हुई है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक की रचना करने के लिए श्रील रूप गोस्वामी को विशेष आशीर्वाद दिया। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में श्रील

रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी तथा श्रील जीव गोस्वामी द्वारा रचित अनेक ग्रन्थों का वर्णन भी मिलता है। इसी के साथ रामकेलि नामक गाँव में श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु की भेंट का वर्णन हुआ है।

यस्य प्रसादादज्ञोऽपि सद्यः सर्व-ज्ञतां व्रजेत् ।

स श्री-चैतन्य-देवो में भगवान्सम्प्रसीदतु ॥ 1॥

यस्य–जिसकी; प्रसादात्-कृपा से; अज्ञः अपि-एक अज्ञानी भी; सद्यः–तत्क्षण; सर्व-ज्ञताम्-समस्त ज्ञान; व्रजेत् प्राप्त कर सकता है; सः-वे; श्री-चैतन्य-देवः-श्री चैतन्य महाप्रभु; मे-मुझ पर; भगवान्-भगवान्; सम्प्रसीदतु-वे अपनी अहैतुकी कृपा करें।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के आशीर्वाद मात्र से एक अज्ञानी व्यक्ति भी तुरन्त समस्त ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अतएव मैं महाप्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझ पर अपनी अहैतुकी कृपा करें।

वन्दे श्री-कृष्ण-चैतन्य-नित्यानन्दौ सहोदितौ ।

गौड़ोदये पुष्पवन्तौ चित्रौ शन्दौ तमो-नुदौ ॥2॥

वन्दे-मैं सादर नमस्कार करता हूँ; श्रीकृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य को नित्यानन्दौ-और नित्यानन्द प्रभु को; सह-उदितौ–एक साथ उदित हुए; गौड़-उदये-गौड़ के पूर्व क्षितिज पर; पुष्पवन्तौ-सूर्य और चन्द्र इकट्ठे; चित्रौ-अद्भुत; शम्-दौ-आशीर्वाद देते हुए; तमः-नुदौ-अन्धकार मिटाते हुए।

अनुवाद

मैं श्रीकृष्ण चैतन्य और नित्यानन्द प्रभु को सादर प्रणाम करता हूँ, जो सूर्य और चन्द्रमा के समान हैं। वे गौड़ देश के क्षितिज पर अज्ञान के अन्धकार को दूर करने के लिए और इस प्रकार सबको अद्भुत आशीर्वाद देने के लिए एक साथ उदित हुए हैं।

जयतां सुरतौ पोङ्गोर्मम मन्द-मतेर्गती ।

मत्सर्वस्व-पदाम्भोजौ राधा-मदन-मोहनौ ॥ 3 ॥

जयताम्-जय हो; सु-रतौ-परम दयालु अथवा माधुर्य प्रेम में रत; पङ्गोः–उसका लंगड़ा हो; मम–मेरा; मन्द-मतेः--मन्दमति, मूर्ख; गती-आश्रय; मत्-मेरा; सर्व-स्व-सर्वस्व; पद-अम्भोजौ-जिनके चरणकमल; राधा-मदन-मोहनौ-राधारानी और मद मोहन।

अनुवाद

परम कृपालु राधा तथा मदनमोहन की जय हो! यद्यपि मैं लंगड़ा और मूर्ख हैं, फिर भी वे मेरे मार्गदर्शक हैं और उनके चरणकमल मेरे लिए सर्वस्व हैं।

दीव्यद्वन्दारण्य-कल्प-द्रुमाधः-

श्रीमद्रत्नागार-सिंहासन-स्थौ ।

श्रीमद्राधा-श्रील-गोविन्द-देवौ

प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि ॥4॥

दीव्यत्-चमकते हुए; वृन्दा-अरण्य-वृन्दावन के वन में; कल्पद्रुम-कल्पवृक्ष; अधः-नीचे; श्रीमत्-अत्यन्त सुन्दर; रन-आगार-रत्न-जड़ित मन्दिर में; सिंह-आसन-स्थौ–सिहांसन पर विराजमान; श्रीमत्-अत्यन्त सुन्दर; राधा-श्रीमती राधारानी; श्रील-गोविन्द-देवौ-और श्री गोविन्द देव; प्रेष्ठ-आलीभिः–सर्वाधिक अन्तरंग पाषर्दो द्वारा; सेव्यमानौ-सेवित; स्मरामि-मैं स्मरण करता हूँ।

अनुवाद

वृन्दावन में कल्पवृक्ष के नीचे, रत्नों के मन्दिर के भीतर श्री श्री राधा-गोविन्द एक देदीप्यमान सिंहासन पर विराजमान हैं और उनके सर्वाधिक अन्तरंग पार्षद उनकी सेवा में लगे हुए हैं। मैं उन्हें मेरे विनम्र प्रणाम करता रता हूँ।

श्रीमान्नास-रसारम्भी वंशी-वट-तट-स्थितः ।

कर्षन्वेणु-स्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः ॥5॥

श्रीमान्– सर्वोच्च सुन्दर रूप; रास–रास नृत्य का; रस-आरम्भी–रस के आरम्भ करने वाले; वंशी-वट-वंशीवट, अत्यन्त विख्यात स्थान; तट-यमुना के तट पर; स्थितः-स्थित; कर्षन्-आकर्षक; वेणु-स्वनैः-बांसुरी की ध्वनि से; गोपीः-सारी गोपियाँ; गोपी-नाथः-सारी गोपियों के स्वामी; श्रिये-प्रेम का ऐश्वर्य; अस्तु-हो; नः-हम पर।

अनुवाद

अपने वंशी-वादन से समस्त गोपियों को आकृष्ट करने वाले एवं वंशीवट में यमुना नदी के तट पर अत्यन्त मधुर रासनृत्य को आरम्भ करने वाले गोपीनाथजी हम सब पर दयालु हों।

जय जय गौरचन्द्र जय कृपा-सिन्धु ।

जय जय शची-सुत जय दीन-बन्धु ॥ 6 ॥

जय जय-जय हो; गौरचन्द्र-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; कृपा-सिन्धु-कृपा सिंधु की; जय जय-आप की जय हो; शची-सुत-शची माता के पुत्र; जय-आप की जय हो; दीन-बन्धु-पतितों के मित्र, दीनबन्धु।

अनुवाद

दया के सिन्धु श्री गौरहरि की जय हो! हे शचीदेवी के पुत्र! आपकी जय हो, क्योंकि आप समस्त पतितात्माओं के एकमात्र मित्र हैं।

जय जय नित्यानन्द जयाद्वैत-चन्द्र ।

जय श्रीवासादि जय गौर-भक्त-वृन्द ॥7॥

जय जय-जय हो; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु की; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत प्रभु की जय हो; जय-जय हो; श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर आदि भक्तों की; जय गौर-भक्त-वृन्द–भगवान् गौरसुन्दर के भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु की जय हो! श्रीवास ठाकुर आदि श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की जय हो!

पूर्वे कहिलुँ आदि-लीलार सूत्र-गण ।

याहा विस्तारियाछेन दास-वृन्दावन ॥8॥

पूर्वे-पहले; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; आदि-लीलार–आदि लीला की; सूत्र-गण-रूपरेखा; याहा–जो; विस्तारियाछेन–विस्तार से व्याख्यायित की गई है; दास-वृन्दावन-वृन्दावन दास ठाकुर।

अनुवाद

इसके पहले मैंने आदिलीला (प्रारम्भिक लीलाएँ) का संक्षेप में वर्णन किया है, जिसका विस्तृत वर्णन वृन्दावन दास ठाकुर पहले ही कर चुके हैं।

अतएव तार आमि सूत्र-मात्र कैलुँ।

ये किछु विशेष, सूत्र-मध्येइ कहिलुँ ॥9॥

अतएव-इसलिये; तार-उसकी; आमि-मैंने; सूत्र-मात्र–रूपरेखा मात्र; कैलुँ-दी है; ये किछु–जो कुछ भी; विशेष—विशेष; सूत्र-मध्येइ कहिलुँ–रूपरेखा में पहले वर्णन किया है।

अनुवाद

इसीलिए मैंने उन घटनाओं को केवल संक्षेप में दिया है और जो कुछ विशेष कहने योग्य था, वह भी उसी के साथ वर्णित है।

एबे कहि शेष-लीलार मुख्य सूत्र-गण ।

प्रभुर अशेष लीला ना याय वर्णन ॥10॥

एबे-अब; कहि-मैं वर्णन करता हूँ; शेष-लीलार-अन्तिम के लीलाओं का; मुख्य–मुख्य; सूत्र-गण-रूपरेखाएं; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु की; अशेष-असीम; लीला-लीलाएँ; ना याय वर्णन-उनका वर्णन करना सम्भव नहीं है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की अनन्त लीलाओं का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है, किन्तु अब मैं मुख्य घटनाएँ बताना चाहता हूँ और अन्त में घटित होने वाली लीलाओं का सार प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

तार मध्ये येइ भाग दास-वृन्दावन ।

‘चैतन्य-मङ्गले विस्तारि’ करिला वर्णन ॥11॥

सेइ भागेर इहाँ सूत्र-मात्र लिखिब ।

ताहाँ ये विशेष किछु, इहाँ विस्तारिब ॥ 12 ॥

तार मध्ये-उनमें; येइ-कौन सा; भाग-भाग; दास-वृन्दावन-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर, चैतन्य-मङ्गले- चैतन्य मंगल नामक उनके पुस्तक में; विस्तारि’–विस्तार से; करिला वर्णन-वर्णन किया है; सेइ भागेर-उस भाग की; इहाँ–यहाँ इस पुस्तक में; सूत्र-मात्र-रूपरेखा मात्र; लिखिब-मैं लिखेंगा; ताहाँ-वहाँ; ये-जो कुछ; विशेष-विशेष विवरण किछु-कुछ; इहाँ विस्तारिब–मैं विस्तार से वर्णन करूँगा।

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने अपनी पुस्तक चैतन्य मंगल में जिन लीलाओं का विस्तार से वर्णन किया है, उसे मैं केवल संक्षेप में कहूँगा किन्तु जो घटनाएँ विशिष्ट हैं, उनका मैं बाद में विस्तार करूँगा।

चैतन्य-लीलार व्यास–दास वृन्दावन ।

ताँर आज्ञाय करों ताँर उच्छिष्ट चर्वण ॥13॥

चैतन्य-लीलार व्यास–भगवान् चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के संकलनकर्ता, व्यासदेव; दास वृन्दावन-वृन्दावन दास ठाकुर; ताँर–उनकी; आज्ञाय-आज्ञा से; करों-मैं करता हूँ; ताँर–उनके; उच्छिष्ट–उच्छिष्ट भोजन का; चर्वण-चबाना।

अनुवाद

वास्तव में श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के प्रामाणिक संकलनकर्ता तो श्रील वृन्दावन दास हैं, जो व्यासदेव के अवतार हैं। उनकी आज्ञा से ही मैं उनके द्वारा छोड़े गये उच्छिष्ट को पुनः चबाने का प्रयास कर रहा हूँ।

भक्ति करि’ शिरे धरि ताँहार चरण ।

शेष-लीलार सूत्र-गण करिये वर्णन ॥14॥

भक्ति करि'–अत्यन्त भक्ति सहित; शिरे-मेरे सिर पर; धरि-मैं रखता हूँ; ताँहार-उनके; चरण-चरणकमल; शेष-लीलार-अन्तिम लीलाओं की; सूत्र-गण-रूपरेखा का; करिये-मैं करता हूँ; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

अब मैं अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनके चरणकमलों को अपने मस्तक पर धारण करके महाप्रभु की अन्तिम लीलाओं (शेषलीला) का संक्षिप्त वर्णन करूँगा।

चब्बिश वत्सर प्रभुर गृहे अवस्थान ।

ताहाँ ये करिला लीला-आदिलीला' नाम ॥ 15 ॥

चब्बिश वत्सर–चौबीस वर्षों तक; प्रभुर-प्रभु के; गृहे–घर पर; अवस्थान–निवास करके; ताहाँ-वहाँ; ये-जो कुछ भी; करिला-उन्होंने की; लीला-लीलाएँ; आदि-लीला नाम-आदिलीला कहलाती हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु चौबीस वर्षों तक घर पर रहे और इस काल में उन्होंने जो भी लीलाएँ कीं, वे आदिलीला के नाम से जानी जाती हैं।

चब्बिश वत्सर शेषे येइ माघ-मास ।

तार शुक्ल-पक्षे प्रभु करिला सन्न्यास ॥16॥

चब्बिश वत्सर-उन चौबीस वर्षों के; शेषे–अन्त में; येइ-जो; माघ-मास–माघ मास (जनवरी-फरवरी); तार-उस मास के शुक्ल-पक्षे–शुक्ल पक्ष में; प्रभु–महाप्रभु; करिला-स्वीकार किया; सन्न्यास-संन्यास आश्रम।

अनुवाद

चौबीस वर्ष पूरे होने पर माघ मास के शुक्लपक्ष में महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण किया।

सन्न्यास करिया चब्बिश वत्सर अवस्थान ।

ताहाँ येइ लीला, तार 'शेष-लीला' नाम ॥17॥

सन्न्यास करिया-संन्यास लेने के पश्चात्; चब्बिश वत्सर–चौबीस वर्ष; अवस्थान-इस भौतिक संसार में रहकर; ताहाँ–उस भाग में; येइ लीला-जो भी लीलाएँ (की गई); तार–उन लीलाओं का; शेष-लीला-अन्तिम लीलाएँ; नाम-कहलाती हैं।

अनुवाद

संन्यास ग्रहण करने के बाद चैतन्य महाप्रभु अगले चौबीस वर्षों तक इस भौतिक जगत् में रहे। इस काल में उन्होंने जो भी लीलाएँ कीं, वे शेषलीला कहलाती हैं अर्थात् ऐसी लीलाएँ जो अन्त में घटित हुईं।

शेष-लीलार 'मध्य' 'अन्त्य',—दुइ नाम हय ।

लीला-भेदे वैष्णव सब नाम-भेद कय ॥18॥

शेष-लीलार–शेष लीला का अथवा अन्तिम लीलाओं का; मध्य–मध्य; अन्त्य-अन्त्य; दुइ-दोनों; नाम-नाम; हय-हैं; लीला-भेदे-लीलाओं के भेद से; वैष्णव-भगवान् के भक्त; सब-सब; नाम-भेद-नाम भेद; कय–कहते हैं।

अनुवाद

अन्तिम चौबीस वर्षों में सम्पन्न होने वाली लीलाएँ मध्य तथा अन्त्य-इन दो नामों से जानी जाती हैं। इन्हीं विभागों के अनुसार सारे भक्त महाप्रभु की लीलाओं का उल्लेख करते हैं।

तार मध्ये छय वत्सर—गमनागमन ।

नीलाचल-गौड़-सेतुबन्ध-वृन्दावन ॥19॥

तार मध्ये—उस अवधि में; छय वत्सर-छ: वर्ष के लिए; गमन-आगमन–आना जाना; नीलाचल-जगन्नाथ पुरी से; गौड़-बंगाल को; सेतुबन्ध-और कुमारी अन्तरीप से; वृन्दावन-वृन्दावन धाम को।

अनुवाद

अन्तिम चौबीस वर्षों में से छह वर्षों तक श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथ पुरी से लेकर बंगाल और कुमारी अन्तरीप से लेकर वृन्दावन तक सारे भारतवर्ष में भ्रमण किया।

ताहाँ येइ लीला, तार 'मध्य-लीला' नाम ।

तार पाछे लीला—'अन्त्य-लीला' अभिधान ॥20॥

ताहाँ–उन स्थानों में; येइ लीला-सारी लीलाएँ; तार–उनकी; मध्य-लीला-मध्य लीला; नाम-नामक; तार पाछे लीला-उस अवधि के बाद की लीलाएँ; अन्त्य-लीला-अन्त्य लीला; अभिधान-कहलाती हैं।

अनुवाद

इन स्थानों में महाप्रभु ने जितनी लीलाएँ कीं, वे मध्य-लीला कहलाती हैं और उसके बाद की जितनी लीलाएँ हैं, वे अन्त्य-लीला कहलाती हैं।

'आदि-लीला', 'मध्य-लीला', 'अन्त्य-लीला' आर ।

एबे 'मध्य-लीलार' किछु करिये विस्तार ॥21॥

आदि-लीला मध्य-लीला अन्त्य-लीला आर-अत: तीन लीलाएँ है : आदि लीला, मध्य लीला और अन्त्य लीला; एबे-अब; मध्य-लीलार-मध्य लीला का; किछु-कुछ; करिये-मैं करूँगा; विस्तार विस्तार।

अनुवाद

इसीलिए महाप्रभु की लीलाओं को तीन कालों में विभाजित किया जाता है-आदि-लीला, मध्य-लीला तथा अन्त्य-लीला। अब मैं मध्य-लीला का विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा।

अष्टादश-वर्ष केवल नीलाचले स्थिति ।

आपनि आचरि' जीवे शिखाइला भक्ति ॥22॥

अष्टादश-वर्ष–अठारह वर्ष तक; केवल–केवल; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; स्थिति-रहकर; आपनि–स्वयं; आचरि'-व्यवहार करके; जीवे-जीवों को; शिखाइला–सिखाई; भक्ति-भक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अठारह वर्षों तक लगातार जगन्नाथ पुरी में रहे और उन्होंने अपने खुद के आचरण से सारे जीवों को भक्तियोग का उपदेश दिया।

तार मध्ये छय वत्सर भक्त-गण-सङ्गे ।

प्रेम-भक्ति प्रवर्ताइला नृत्य-गीत-रङ्गे ॥ 23॥

तार मध्ये-उस अवधि में; छय वत्सर-छ: वर्ष तक; भक्त-गण-सङ्गे-भक्तों के संग; प्रेम-भक्ति-प्रेमभक्ति; प्रवर्ताइला–शुरू की; नृत्य-गीत-रङ्गे–कीर्तन और नृत्य सम्बन्धी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथ पुरी में इन अठारह वर्षों में से छह वर्ष अपने अनेक भक्तों के साथ बिताये। उन्होंने कीर्तन तथा नृत्य द्वारा भगवान् की प्रेमाभक्ति का प्रवर्तन किया।

नित्यानन्द-गोसाञिरे पाठाइल गौड़-देशे ।

तेंहो गौड़-देश भासाइल प्रेम-रसे ॥24॥

नित्यानन्द-गोसाञिरे–नित्यानन्द गोस्वामी; पाठाइल–भेजे; गौड़-देशे-बंगाल को; तेंहो उन्होंने; गौड़-देश-गौड़ देश अथवा बंगाल नामक क्षेत्र में; भासाइल-आप्लावित किया; प्रेम-से-कृष्ण-प्रेम के रस से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को जगन्नाथ पुरी से बंगाल भेजे, जो गौड़ देश के नाम से प्रसिद्ध है। श्री नित्यानन्द प्रभु ने भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति से इस देश को आप्लावित कर दिया।

सहजेइ नित्यानन्द—कृष्ण-प्रेमोद्दाम ।

प्रभु-आज्ञाय कैल याहाँ ताहाँ प्रेम-दान ॥25॥

सहजेइ-स्वभाव से; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु; कृष्ण-प्रेम-उद्दाम-भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेममयी सेवा के लिये अत्यन्त उत्साहित; प्रभु-आज्ञाय-प्रभु की आज्ञा से; कैल-किया; याहाँ ताहाँ-जहाँ-तहाँ; प्रेम-दान-उस प्रेम का वितरण।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु स्वभाव से भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति करने के लिए अत्यधिक उत्साहित रहते हैं। अतएव जब श्री चैतन्य महाप्र का आदेश हुआ, तो उन्होंने इस प्रेमाभक्ति का सर्वत्र वितरण किया।

ताँहार चरणे मोर कोटि नमस्कार ।

चैतन्येर भक्ति येहो लओयाइल संसार ॥26॥

ताँहार चरणे-उनके चरणकमलों को; मोर-मेरा; कोटि-कोटि; नमस्कार–प्रणाम चैतन्येर–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की भक्ति-भक्ति; येहो—जिन्होंने; लओयाइल-करवाया; संसार-सारा जगत्।

अनुवाद

मैं उन श्री नित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों में असंख्य प्रणाम करत हूँ, जो इतने दयालु हैं कि उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु की भक्ति को सां विश्व में प्रचारित किया।

चैतन्य गोसाञि याँरे बले 'बड़ भाइ'।

तेंहो कहे, मोर प्रभु–चैतन्य-गोसाञि ॥27॥

चैतन्य-गोसाञि-चैतन्य महाप्रभु; याँरे-जिनको; बले-कहते हैं; बड़ भाइ–बड़ा भाई; तेंहो-वे; कहे-कहते हैं; मोर प्रभु-मेरे प्रभु; चैतन्य-गोसाञि-परम स्वामी, चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु श्री नित्यानन्द प्रभु को अपना बड़ा भाई कहकर पुकारते थे, जबकि नित्यानन्द प्रभु चैतन्य महाप्रभु को अपने स्वामी कहा करते थे।

यद्यपि आपनि हये प्रभु बलराम।

तथापि चैतन्येर करे दास-अभिमान ॥28॥

यद्यपि यद्यपि; आपनि–स्वयं; हये-हैं; प्रभु-प्रभु; बलराम-बलराम; तथापि-तथापि; चैतन्येर–श्री चैतन्य महाप्रभु का; करे-स्वीकार करते हैं; दास-अभिमान-नित्य दास का भाव।

अनुवाद

यद्यपि नित्यानन्द प्रभु स्वयं बलराम हैं, तथापि वे अपने आपको सदैव श्री चैतन्य महाप्रभु के नित्य दास मानते हैं।

'चैतन्य' सेव, चैतन्य' गाओ, लओ चैतन्य'-नाम।

'चैतन्ये' ये भक्ति करे, सेइ मोर प्राण ॥29॥

चैतन्य सेव-चैतन्य महाप्रभु की सेवा करो; चैतन्य गाओ-चैतन्य महाप्रभु का कीर्तन करो; लओ-सदा लो; चैतन्य-नाम-चैतन्य महाप्रभु का नाम; चैतन्ये-श्री चैतन्य महाप्रभु की; ये-जो कोई; भक्ति-भक्ति; करे-करता है; सेइ-वही व्यक्ति; मोर-मेरा; प्राण-प्राण और आत्मा।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु हर एक से श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा करने, उनकी महिमा का कीर्तन करने तथा उनका नाम उच्चारण करने का आग्रह करते थे। वे उस व्यक्ति को अपने प्राणों के तुल्य समझते थे, जो श्री चैतन्य महाप्रभु की भक्तिमय सेवा करता था।

एइ मत लोके चैतन्य-भक्ति लओयाइल ।

दीन-हीन, निन्दक, सबारे निस्तारिल ॥ 30॥

एइ मत-इस प्रकार; लोके-सामान्य जन; चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु की; भक्ति-भक्ति; लओयाइल-उन्होंने स्वीकार करवाई; दीन-हीन-दीन पतित आत्मा; निन्दक-निन्दक; सबारे-सब का ; निस्तारिल-उन्होंने उद्धार किया।

अनुवाद

इस प्रकार श्रील नित्यानन्द प्रभु ने बिना भेदभाव के हर एक को श्री चैतन्य-सम्प्रदाय में सम्मिलित किया। ऐसा करने से पतितात्माओं तथा निन्दकों का भी उद्धार हो गया।

तबे प्रभु व्रजे पाठाइल रूप-सनातन ।

प्रभु-आज्ञाय दुइ भाइ आइला वृन्दावन ॥ 31॥

तबे-तत्पश्चात्; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; व्रजे-वृन्दावन धाम को; पाठाइल–भेजे; रूप-सनातन-दोनों भाई रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी को; प्रभु-आज्ञाय-श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा से; दुइ भाइ–दोनों भाई; आइला–आये; वृन्दावन-वृन्दावन धाम।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी दोनों भाईयों को व्रज भेजे। उनके आदेश से वे श्री वृन्दावन धाम गये।

भक्ति प्रचारिया सर्व-तीर्थ प्रकाशिल ।

मदन-गोपाल-गोविन्देर सेवा प्रचारिल ॥ 32॥

भक्ति प्रचारिया-भक्ति का प्रचार करते हुए; सर्व-तीर्थ-सभी तीर्थ-स्थान; प्रकाशिल–खोजे; मदन-गोपाल-श्री राधा-मदनमोहन की; गोविन्देर-श्री राधा-गोविन्दजी की; सेवा–सेवा का प्रचारिल-आरम्भ की।

अनुवाद

वृन्दावन जाकर इन दोनों भाइयों ने भक्ति का प्रचार किया और अनेक तीर्थस्थानों की खोज की। उन्होंने विशेष रूप से मदनमोहन तथा गोविन्दजी की सेवा का शुभारम्भ किया।

नाना शास्त्र आनि' कैला भक्ति-ग्रन्थ सार ।

मूढ़ अधम-जनेरे तेंहो करिला निस्तार ॥ 33 ॥

नाना शास्त्र विभिन्न शास्त्र; आनि'–इकट्ठा करके; कैला-संकलित किए; भक्ति-ग्रन्थ-भक्ति पर ग्रन्थों का; सार-सार; मूढ़-मूढ़; अधम-जनेरे-पतित आत्माओं का; तेंहो –उन्होंने; करिला निस्तार-उद्धार किया।

अनुवाद

रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी दोनों ने वृन्दावन में अनेक शास्त्र एकत्र किये और भक्ति विषयक अनेक शास्त्रों का संकलन करके इनका सार प्रस्तुत किया। इस प्रकार उन्होंने सारे धूर्ती तथा पतितों का उद्धार किया।

तात्पर्य

श्रील श्रीनिवास आचार्य का एक भजन है :

नानाशास्त्रविचारणैकनिपुणौ सद्धर्मसंस्थापकौ

लोकानां हितकारिणौ त्रिभुवने मान्यौ शरण्याकरौ ।

राधाकृष्णपदारविन्दभजनानन्देन मत्तालिको

वन्दे रूपसनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव गोपालकौ ॥

श्रील रूप और श्रील सनातन गोस्वामी के निर्देशन में छ: गोस्वामियों ने विभिन्न वैदिक ग्रंथों का अध्ययन किया और उनका सार, भगवद्-भक्ति, एकत्रित की। इसका अर्थ यह है कि सभी गोस्वामियों ने वैदिक ग्रंथों की का सहायता से भक्ति विषयक अनेक शास्त्रों की रचना की। भक्ति कोई भावुकतापूर्ण कार्य नहीं है। वैदिक ज्ञान का सार भक्ति है, जिसकी पुष्टि भगवद्गीता (15.15) में की गई है-वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। समस्त वैदिक साहित्य लक्ष्य कृष्ण को समझना है और भक्ति के माध्यम से कृष्ण को किस प्रद समझे जाय, इसकी व्याख्या श्रील रूप तथा सनातन गोस्वामी ने समस्त वैदि साहित्य के साक्ष्य के आधार पर की है। उन्होंने इसे इतनी सरलता से प्रस्तुत किया है कि गोस्वामियों के मार्गदर्शन में भक्ति के माध्यम से धूर्त या निपट मूर्ख भी तर सकता है।

प्रभु आज्ञाय कैल सब शास्त्रेर विचार ।

व्रजेर निगूढ़ भक्ति करिल प्रचार ॥ 34॥

प्रभु आज्ञाय-श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा से; कैल-उन्होंने किया; सब शास्त्रे-सभी शास्त्रों का; विचार-विश्लेषणात्मक अध्ययन; व्रजेर-श्री वृन्दावन धाम का; निगूढ़-अत्यन्त गूढ, रहस्यपूर्ण; भक्ति-भक्ति; करिल–किया; प्रचार–प्रचार।

अनुवाद

इन गोस्वामियों ने समस्त गुह्य वैदिक साहित्य के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर भक्ति का प्रचार किया। यह सब श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश की पूर्ति के निमित्त था। इस तरह कोई भी वृन्दावन की सर्वाधिक गुह्य भक्ति को समझ सकता है।

तात्पर्य

इससे यह सिद्ध होता है कि प्रामाणिक भक्ति वैदिक साहित्य के निष्कर्षों पर आधारित होती है। यह प्राकृत-सहजिया लोगों द्वारा प्रदर्शित भावुकता पर आधारित नहीं होती। प्राकृत-सहजिया लोग वैदिक साहित्य का सहारा नहीं लेते। ये लम्पट, स्त्रियों की खोज में रहने वाले तथा गांजा पीने वाले होते हैं। कभी-कभी ये नाटक करके, आँखों में

आँसू भरकर भगवान् के लिए विलाप करते हैं। अवश्य ही, इन आँसुओं से शास्त्रों के सारे निष्कर्ष धुल जाते हैं। ये प्राकृत-सहजिए इतना भी अनुभव नहीं करते कि वे श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों की अवहेलना कर रहें हैं, जिन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि वृन्दावन तथा वृन्दावन-लीलाओं को समझने के लिए मनुष्य को शास्त्रों (वैदिक साहित्य) का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। श्रीमद्भागवत (1.2.12) का कथन है— भक्त्या श्रुत-गृहीतया–अर्थात् भक्ति वैदिक ज्ञान से अर्जित की जा सकती है। तच्छ्रद्दधानाः मुनयः । जो भक्त वास्तव में गम्भीर हैं, वे वैदिक साहित्य के श्रवण द्वारा भक्ति प्राप्त करते हैं (भक्त्या श्रुत-गृहीतया)। ऐसा नहीं है कि भावुकता से कोई नई चीज बनाकर, सहजिया बन लिया जाये और मनगढंत भक्ति का प्रचार किया जाये। किन्तु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ऐसे सहजियों को नितान्त नास्तिक मायावादियों से बेहतर मानते थे। मायावादियों को पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर का तनिक भी ज्ञान नहीं होता। इसलिए सहजियों की स्थिति मायावादी संन्यासियों से काफी बेहतर होती है। यद्यपि इन सहजियों को अधिक वैदिक ज्ञान नहीं होता, फिर भी वे भगवान् कृष्ण को परमेश्वर के रूप में स्वीकार करते हैं। दुर्भाग्यवश वे दूसरों को प्रामाणिक भक्ति से पथभ्रष्ट करते हैं।

हरि-भक्ति-विलास, आर भागवतामृत ।

दशम-टिप्पनी, आर दशम-चरित ॥ 35॥

हरि-भक्ति-विलास-हरिभक्ति-विलास नामक शास्त्र; आर-और; भागवतामृत-बृहद् भागवतामृत नामक ग्रंथ; दशम-टिप्पनी–श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्द पर टीका; आर-और; दशम-चरित-श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध पर कविता (काव्य) ।

अनुवाद

श्रील सनातन गोस्वामी द्वारा रचित कुछ पुस्तकें इस प्रकार हैं- हरिभक्ति-विलास, बृहद् भागवतामृत, दशम-टिप्पणी तथा दशम-चरित।

तात्पर्य

भक्तिरलाकर नामक पुस्तक की प्रथम लहर में कहा गया है कि सनातन गोस्वामी ने गहन अध्ययन द्वारा श्रीमद्भागवत को हृदयंगम किया और इसकी व्याख्या अपनी टीका वैष्णव-तोषणी में की। श्री सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी ने प्रत्यक्ष श्री चैतन्य महाप्रभु से जितना भी ज्ञान प्राप्त किया था, उसे अपनी दक्ष सेवा द्वारा उन्होंने सारे

विश्व में प्रसारित कर दिया। सनातन गोस्वामी ने अपनी इस वैष्णव-तोषणी टीका को श्रील जीव गोस्वामी को सौंप दिया कि वे इसका सम्पादन कर दें, फलतः श्रील जीव गोस्वामी ने लघुतोषणी नाम से उसे सम्पादित कर दिया। सनातन गोस्वामी ने 1476 शक (1554 ई.) में लेखन-कार्य समाप्त किया और श्रील जीव गोस्वामी ने लघुतोषणी को शकाब्द 1504 (1582 ई.) में पूरा किया।

श्री सनातन गोस्वामी द्वारा रचित हरिभक्ति-विलास की सामग्री श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी द्वारा संकलित की गई और यह वैष्णव-स्मृति के नाम से विख्यात है। इसमें बीस अध्याय हैं, जिन्हें विलास कहा गया है। प्रथम विलास में इसका वर्णन है कि किस तरह गुरु तथा शिष्य के बीच सम्बन्ध स्थापित होता है और मन्त्रों की व्याख्या की गई है। द्वितीय विलास में दीक्षा की प्रक्रिया का और तृतीय विलास में वैष्णव आचरण के नियमों का वर्णन किया गया है, जिसमें स्वच्छता, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का निरन्तर स्मरण तथा दीक्षा-गुरु द्वारा दिये गये मन्त्रों के जाप पर विशेष बल दिया गया है। चतुर्थ विलास में संस्कार (शुद्धिकरण के हेतु), तिलक (शरीर के बारह अंगो पर बारह तिलक लगाना), मुद्रा (देह पर चिह्न), माला (मनकों पर जप) तथा गुरु-पूजा का उल्लेख है। पंचम विलास में ध्यान के लिए स्थान का चुनाव, प्राणायाम-विधियों, ध्यान तथा शालग्राम-शिला के ध्यान और पूजन का वर्णन हुआ है, जो कि विष्णु की प्रतिनिधि है। छठे विलास में भगवान् के दिव्य रूप का आवाहन करने और उनका अभिषेक करने की प्रामाणिक विधि दी गई है। सप्तम विलास में भगवान् विष्णु की पूजा के लिए फूल एकत्र करने के विषय में उपदेश हैं। अष्टम विलास में अर्चाविग्रह का वर्णन तथा अगरबत्ती, दीप दिखाना, भोग लगाना, नृत्य, गायन, ढोल बजाने, अर्चाविग्रह को माल्यार्पण, स्तुति और प्रणाम करने तथा अपराधों को दूर करने का वर्णन हुआ है। नवें विलास में तुलसी दल चुनने, वैष्णव अनुष्ठानों के अनुसार पितरों का तर्पण करने और भोजन अर्पित करने का वर्णन है। दसवें विलास में भगवद्भक्तों (वैष्णवों या सन्त पुरुषों) का वर्णन है। ग्यारहवें विलास में अर्चाविग्रह-पूजन एवं भगवान् के पवित्र नाम की महिमा का विस्तृत वर्णन है। इसमें अर्चाविग्रह के नाम का जप किस तरह किया जाय और नाम-जप में होने वाले अपराधों तथा उनसे बचने के उपायों का वर्णन हुआ है। भक्ति की महिमा तथा शरणागति का भी वर्णन हुआ है। बारहवें विलास में एकादशी का वर्णन है। तेरहवें विलास में उसवास तथा महाद्वादशी उत्सव मनाने का वर्णन मिलता है। चौदहवें विलास में प्रत्येक मास में करने के कर्तव्य दिये हुए हैं। पन्द्रहवें विलास में निर्जला एकादशी व्रत रखने की विधि वर्णित है। साथ ही शरीर में विष्णु-चिह्न अंकित करने, वर्षा ऋतु में चातुर्मास्य व्रत रखने तथा जन्माष्टमी, पाश्चैकादशी, श्रवणाद्वादशी, रामनवमी तथा विजयादशमी विषयक विवेचनाएँ हैं। सोलहवें विलास में कार्तिक मास (अक्टूबर-नवम्बर) या दामोदर

मास या ऊर्ज मास, जब अर्चा-कक्ष में या मन्दिर के ऊपर दीपक जलाये जाते हैं, में किये जाने वाले कार्यों का वर्णन हुआ है। गोवर्धन पूजा तथा रथयात्रा के भी विवरण मिलते हैं। सत्रहवें विलास में अर्चाविग्रह पूजन की तैयारियाँ, महामंत्र का कीर्तन तथा जप-विधि का उल्लेख है। अठारहवें विलास में श्री विष्णु के विविध रूपों का वर्णन है। उन्नीसवें विलास में अर्चाविग्रह की प्रतिष्ठा तथा स्थापना के पूर्व अर्चाविग्रह को स्नान कराने के अनुष्ठानों का वर्णन मिलता है। बीसवें विलास में मन्दिरों के निर्माण का वर्णन है, जिसमें महान् भक्तों द्वारा बनवाये गये मन्दिरों का उल्लेख है। हरिभक्ति-विलास ग्रंथ का विस्तृत वर्णन श्री कविराज गोस्वामी द्वारा मध्यलीला (24.329-345) में हुआ है। इन श्लोकों में दिये गये विवरण वस्तुत: गोपाल भट्ट गोस्वामी द्वारा संकलित अंशों के विवरणों पर आधारित हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार गोपाल भट्ट गोस्वामी ने भक्ति के जो विधि-विधान संकलित किये हैं, वे पूर्णत: हमारे वैष्णव सिद्धान्तों के अनुसार नहीं हैं। वास्तव में गोपाल भट्ट गोस्वामी ने वैष्णव-विधानों के विस्तृत वर्णनों को हरिभक्ति-विलास से संक्षिप्त रूप में संकलित किया था। किन्तु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी का मत है। कि हरिभक्ति-विलास का कठोरता से अनुसरण करने का अर्थ यह है कि वैष्णव-विधियों का पूरी तरह से पालन किया जाये। उनका दावा है कि गोपाल भट्ट गोस्वामी ने मूल हरिभक्ति-विलास से जो अंश संकलित किये थे, वे स्मार्त समाज द्वारा प्रभावित है, जिसका जात ब्राह्मण अनुसरण करते हैं। अतएव गोपाल भट्ट गोस्वामी की पुस्तक से वैष्णव निर्देशों को ढूंढ पाना अत्यन्त कठिन है। इसलिए अच्छा यही होगा कि हरिभक्ति विलास पर स्वयं सनातन गोस्वामी द्वारा की गई दिग्दर्शिनी टीका को ही पढ़ा जाये। कुछ लोगों का कहना है कि इसी टीका का संकलन गोपीनाथ पूजा अधिकारी द्वारा किया गया, जो श्री राधा-रमणजी की सेवा कर रहे थे और जो गोपाल भट्ट गोस्वामी के शिष्यों में से एक थे।

बृहद्-भागवतामृत दो भागों में मिलता है और इसमें भक्ति सम्पन्न करने का वर्णन हुआ है। प्रथम भाग में भक्ति का विश्लेषणात्मक अध्ययन हुआ है, जिसमें पृथ्वी समेत विभिन्न ग्रहों, स्वर्गीय ग्रहों, ब्रह्मलोक तथा वैकुण्ठ लोक का भी वर्णन मिलता है। इसमें भक्तों का भी वर्णन हुआ है, जिसमें अंतरंग, अति अंतरंग तथा पूर्ण भक्त सम्मिलित हैं। गोलोक-माहात्म्य-निरूपण नाम से जाने वाले द्वितीय भाग में आध्यात्मिक लोक की महिमाओं के साथ साथ भौतिक जगत् से वैराग्य प्राप्त करने की विधि का भी वर्णन मिलता है। इसमें वास्तविक ज्ञान, भक्ति, आध्यात्मिक जगत्, भगवत्-प्रेम, जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति तथा जगत् के आनन्द का भी वर्णन हुआ है। इस तरह प्रत्येक भाग में सात अध्याय हैं और कुल मिलाकर चौदह अध्याय हैं।

दशम टिप्पणी श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की टीका है। इसका दूसरा नाम बृहद् वैष्णव-तोषणी-टीका भी है। भक्तिरत्नाकर में बतलाया गया है कि दशम टिप्पणी 1476 शकाब्द (1554 ई.) में पूरी हुई थी।

एइ सब ग्रन्थ कैल गोसाञि सनातन।

रूप-गोसाञि कैल यत, के करु गणन॥ 36॥

एइ सब-ये सब; ग्रन्थ-शास्त्र (ग्रन्थ); कैल-रचे; गोसाञि सनातन-सनातन

रेमुणा का गोपीनाथजी मंदिर, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु माधवेन्द्र पुरी की कथा वर्णन करने के बाद मूर्छित होकर गिरे थे।

क्षीरचोर गोपीनाथ विग्रह, जिन्होंने अपने भक्त माधवेन्द्र पुरी के लिए खीर का एक पात्र चुराया था।

जगन्नाथ पुरी का भव्य मंदिर जहाँ पर भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने अपनी अनेक लीलाएँ प्रदर्शित की थी।

श्री चैतन्य चरितामृत के लेखक कृष्णदास कविराज घोषणा करते हैं, “परम दयालु राधा और मदन मोहन की जयजयकार हो! मैं पंगु और मंदमति हैं, फिर भी ये दोनो मेरे नियंत्रक हैं और उनके चरणकमल मेरे सर्वस्व हैं।"

कृष्णदास कविराज प्रार्थना करते हैं, “अपने मुरली के गीतों से सभी गोपियों को आकर्षित करने वाले गोपीनाथजी हम पर कृपालु हों।"

षड् गोस्वामियों ने विभिन्न वैदिक ग्रंथों का अध्ययन किया और साररूप में भगवान् की भक्ति ग्रहण की।

श्री चैतन्य महाप्रभु श्लोक पढ़ कर भावविभोर थे तभी रूप गोस्वामी आए और दण्डवत् भूमि पर गिर पड़े।

जब नृसिंह देव ब्रह्मचारी ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जाएँगे तो वे अतीव प्रसन्न हुए और मन ही मन वहाँ के मार्ग को सजाने लगे।

जब फेंके गए तण्डुल के दो-तीन खण्ड अद्वैत आचार्य के शरीर से छू गए तो वे उसी उन खण्डों को चिपकाये नाचने लगे।

माधवेन्द्र पुरी ने दिन भर उपवास रखा। दिन के अन्त में एक गोप बालक दूध लेकर उनके पास आया।

गोपीनाथ अर्चाविग्रह ने स्वप्न में पुजारी को बतलाया कि मेरे पीछे खीर का बर्तन है, उसे ले जाकर बाजार में बैठे उस माधवेन्द्र पुरी संन्यासी को दे दो। जब वह पुजारी आया तो देखा कि सचमुच खीर का बर्तन वहाँ रखा है।

जब गाँव के लोगों ने सुना कि गोपाल चल कर वहाँ आये हैं तो वे आश्चर्यचकित रह गये। तब वृद्ध ब्राह्मण वहाँ आया और गोपाल के समक्ष दण्ड की तरह भूमि पर गिर पड़ा।

महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा प्रतिपादित वेदान्त-दर्शन का सात दिनों तक लगातार श्रवण किया।

ब्रह्माजी घोषणा करते हैं, “नंद महाराज और व्रजभूमी के अन्य सभी निवासी कितने अत्यन्त भाग्यवान हैं, क्योंकि परम सत्य, दिव्य आनंद के स्रोत, शाश्वत परम ब्रह्म उनके मित्र बने हैं।'

जब सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु में भगवान् कृष्ण का स्वरूप देखा तो वे तुरन्त उन्हें दण्डवत् प्रणाम करने के लिए गिर पड़े।

गोस्वामी; रूप-गोसाञि-रूप गोस्वामी; कैल-लिखे; ग्रत-सब; के-कौन; करु गणन-गिन सकता है।

अनुवाद

मैंने सनातन गोस्वामी द्वारा रचित चार ग्रंथों के नाम पहले ही दे दिये हैं। इसी तरह श्रील रूप गोस्वामी ने भी अनेक ग्रंथों की रचना की है, जिनकी गिनती नहीं की जा सकती।

प्रधान प्रधान किछु करिये गणन ।

लक्ष ग्रन्थे कैल व्रज-विलास वर्णन ॥ 37॥

प्रधान प्रधान-अत्यन्त महत्त्वपूर्ण; किछु-कुछ; करिये—मैं करता हूँ; गणन-गणना; लक्ष-लाख; ग्रन्थे–श्लोकों में; कैल-किया; व्रज-विलास-वृन्दावन में भगवान् की लीलाओं का; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

अतएव मैं श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित मुख्य-मुख्य ग्रंथों के ही नाम गिनाऊँगा। उन्होंने एक लाख श्लोकों में वृन्दावन की लीलाओं का वर्णन किया है।

रसामृत-सिन्धु, आर विदग्ध-माधव ।

उज्ज्वल-नीलमणि, आर ललित-माधव ॥ 38 ॥

रसामृत-सिन्धु-भक्तिरसामृतसिन्धु; आर-और; विदग्ध-माधव–विदग्ध-माधव; उज्ज्वल-नीलमणि-उज्जवल नीलमणि; आर-और; ललित-माधव-ललित माधव।

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी द्वारा रचित ग्रंथों में भक्तिरसामृतसिन्धु, विदग्ध माधव, उज्ज्वल-नीलमणि तथा ललित-माधव सम्मिलित हैं।

दान-केलि-कौमुदी, आर बहु स्तवावली ।

अष्टादश लीला-च्छन्द, आर पद्यावली ॥ 39॥

गोविन्द-विरुदावली, ताहार लक्षण ।

मथुरा-माहात्म्य, आर नाटक-वर्णन ॥40॥

दान-केलि-कौमुदी–दान केलि कौमुदी; आर-और; बहु स्तवावली–बहु-स्तवावली (बहुत स्तुतियाँ); अष्टादश-अठारह; लीला-च्छन्द-क्रमबद्ध लीलाएँ; आर-और पद्यावली-पद्यावली; गोविन्द-विरुदावली–गोविन्द विरुदावली; ताहार लक्षण–पुस्तक के लक्षण; मथुरा-माहात्म्य-मथुरा की महिमाएँ; आर नाटक-वर्णन-और नाटक वर्णन (नाटक चन्द्रिका)।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने दानकेलि-कौमुदी, स्तवावली, लीलाच्छन्द, पद्यावली, गोविन्द विरुदावली, मथुरा-माहात्म्य तथा नाटक-वर्णन नामक पुस्तकों की भी रचना की।

लघु-भागवतामृतादि के करु गणन ।

सर्वत्र करिल व्रज-विलास वर्णन ॥41॥

लघु-भागवतामृत-आदि-दूसरी सूची जिसमें लघु भागवतामृत सम्मिलित है; के-कौन; करु गणन-गिन सकता है; सर्वत्र सर्वत्र; करिल-किया; व्रज-विलास-वृन्दावन की लीलाएँ; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

भला श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित शेष पुस्तकों (जिनमें लघु भागवतामृत मुख्य है) की गिनती कौन कर सकता है? उन्होंने उन सब ग्रंथों में वृन्दावन की लीलाओं का वर्णन किया है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने इन पुस्तकों का विवरण दिया है। भक्तिरसामृत-सिन्धु कृष्ण-भक्ति विकसित करने और उस दिव्य विधि का पालन करने से सम्बन्धित महान् ग्रंथ है। इसकी रचना 1463 शकाब्द (1541 ई.) में पूर्ण हुई। इस ग्रंथ में चार खण्ड हैं-पूर्व विभाग, दक्षिण विभाग, पश्चिम विभाग तथा उत्तर विभाग। पूर्व विभाग में भक्ति के स्थायी विकास का वर्णन है। इसमें भक्ति के सामान्य नियम, भक्ति सम्पन्न करने, भक्ति में आह्लाद तथा अन्ततः भगवत्प्रेम की प्राप्ति का वर्णन हुआ है। इस प्रकार भक्ति के अमृत-सिन्धु के इस विभाग में चार लहरें हैं।

दक्षिण विभाग में भक्ति से प्राप्त भक्ति-रस का सामान्य वर्णन हुआ है। इसमें विभिन्न स्थितियों जैसे विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी तथा स्थायी भाव का वर्णन मिलता है, जो सब भक्ति के उच्च स्तर पर स्थित हैं। इस तरह दक्षिण विभाग में 5 लहरें हैं। पश्चिम विभाग में भक्ति से प्राप्त होने वाले मुख्य दिव्य रसों का विवरण प्राप्त होता है। इनको मुख्य भक्ति-रस निरूपण अर्थात् भक्ति द्वारा प्राप्त होने वाले मुख्य रस अथवा भाव कहते हैं। इस विभाग में शान्त रस, दास्य रस में विकास, सख्य रस में उत्तरोतर विकास, वात्सल्य रस में अधिक विकास एवं अन्त में कृष्ण और उनके भक्तों के मध्य माधुर्य रस का वर्णन मिलता है। इस प्रकार इस विभाग में भी 5 लहरें हैं।

उत्तर विभाग में भक्ति के गौण रसों-हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक तथा बीभत्स रस--का वर्णन है। इसमें विभिन्न रसों का मिश्रण और अतिक्रमण भी है। इस प्रकार इस विभाग में कुल 9 लहरें हैं। यह भक्तिरसामृत सिन्धु की संक्षिप्त रूपरेखा है।

विदग्ध माधव वृन्दावन में कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित एक नाटक है। श्रील रूप गोस्वामी ने इसको 1454 शकाब्द (1532 ई.) में पूर्ण किया। इस नाटक का प्रथम खण्ड वेणुनाद-विलास, दूसरा खण्ड मन्मथ-लेख, तीसरा खण्ड राधा-सङ्ग, चौथा खण्ड वेणु हरण, पाँचवा खण्ड राधा-प्रसादन, छठा खंड शरद् विहार और सातवाँ तथा अन्तिम खण्ड गौरी-विहार कहलाता है।

उज्ज्वल नीलमणि नामक पुस्तक में प्रेमालाप का दिव्य विवरण मिलता है, जिसमें रूपक, समानताएँ तथा उच्च भक्ति-भाव सम्मिलित हैं। भक्तिरसामृत-सिन्धु में जिस माधुर्य रस का संक्षिप्त वर्णन मिलता है, उज्ज्वल नीलमणि में उसीका विस्तार रूप में वर्णन मिलता है। इस पुस्तक में प्रेमियों, उनके सहायकों तथा कृष्ण के प्रियजनों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन हुआ है। इसमें श्रीमती राधारानी, अन्य प्रेमिकाओं अन्य यूथेश्वरियों, सन्देश वाहकों, नित्य सखियों तथा कृष्ण के अन्य अत्यन्त प्रियजनों का भी वर्णन हुआ है। इस पुस्तक में इसका भी वर्णन मिलता है कि कृष्ण-प्रेम किस प्रकार जागृत होता (उद्दीपन) है। इसमें भाव-दशा, भक्ति-दशा, स्थायी भाव, व्यभिचारी भाव, स्थिर भाव, तरह

तरह के वस्त्र, विरह भाव, पूर्वराग, आकर्षण में क्रोध, प्रेमालाप के प्रकार, प्रियतम से विछोह, प्रियतम से मिलन (संभोग), प्रेमी-प्रेमिका के मध्य प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष भोग का वर्णन मिलता है। इन सबका विस्तार से वर्णन हुआ है।

इसी प्रकार ललित माधव में कृष्ण की द्वारका की लीलाओं का वर्णन मिलता है। इन लीलाओं को नाटक का रूप दिया गया है और इस ग्रंथ की रचना 1459 शकाब्द में पूर्ण हुई। इसके प्रथम भाग में संध्याकालीन लीलाओं का वर्णन है, द्वितीय भाग में शंखचूड़ का वध, तृतीय में उन्मत्त श्रीमती राधारानी का वर्णन, चतुर्थ में राधारानी का कृष्ण की ओर जाने, पाँचवे में चन्द्रावली की उपलब्धि, छठे में ललिता की प्राप्ति, सातवें में नववृन्दावन में भेंट, आठवें में नववृन्दावन में भोग, नवें में चित्र-दर्शन तथा दसवें अंक में पूर्ण मन:तुष्टि का वर्णन है। इस तरह पूरा नाटक दस भागों में विभाजित है।

लघु-भागवतामृत दो भागों में विभक्त है। पहला–कृष्णामृत तथा दूसरा-भक्तिरसामृत कहलाता है। प्रथम भाग में वैदिक प्रमाण की महत्ता पर बल दिया गया है। इसके बाद श्रीकृष्ण रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के मूल रूप का वर्णन तथा उनकी लीलाओं एवं स्वांश और विभिन्नांश में उनके विस्तारों का वर्णन है। अवतारों को विभिन्न भावों के अनुसार उन्हें आवेश तथा तद्-एकात्म कहा जाता है। प्रथम अवतार को तीन पुरुषावतारों में महाविष्णु, गर्भादकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु में विभाजित किया जाता है। तत्पश्चात् प्रकृति के गुणों के अनुसार तीन अवतार (गुणावतार) होते हैं—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर (शिव) । भगवान् की सेवा में जितनी साज-सामग्री काम आती है, वह दिव्य अर्थात् इस भौतिक जगत् के तीनों गुणों से परे होती है। इसमें पच्चीस लीलावतारों के वर्णन भी दिये गये हैं, जो इस प्रकार हैं-चतु:सन (कुमारगण), नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण ऋषि, कपिल, दत्तात्रेय, हयग्रीव, हंस, पृश्निगर्भ, ऋषभ, पृथु, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, दाशरथि, कृष्णद्वैपायन, बलराम, वासुदेव, बुद्ध तथा कल्कि। मनु के भी चौदह अवतार हैं-यज्ञ, विभु, सत्यसेन, हरि, वैकुण्ठ, अजित, वामन, सार्वभौम, ऋषभ, विष्वक्सेन, धर्मसेतु, सुधामा, योगेश्वर तथा बृहद्भानु। चारों युगों के भी चार अवतार (युगावतार) हैं और उनके रंगों-श्वेत, लाल, श्याम तथा काला (कभी-कभी पीला-जैसे चैतन्य महाप्रभु का) का भी वर्णन हुआ है। विभिन्न प्रकार के कल्पों एवं कल्पों में अवतारों का भी वर्णन हुआ है। विभिन्न अवतारों की विभिन्न परिस्थितियों से आवेश, प्राभव, वैभव तथा पर नामक श्रेणियाँ बनती हैं। विशिष्ट लीलाओं के अनुसार नामों को आध्यात्मिक शक्ति प्रदान की जाती है। शक्तिमान तथा शक्ति का अन्तर और परमेश्वर के अचिन्त्य कार्यकलापों का भी वर्णन हुआ है।

श्रीकृष्ण आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और उनसे बड़ा कोई नहीं है। वे सारे अवतारों के स्रोत हैं। लघु भागवतामृत में भगवान् के अंशावतारों, निर्विशेष ब्रह्मज्योति (जो वास्तव में श्रीकृष्ण का शारीरिक तेज है), दो हाथ वाले सामान्य मनुष्य के रूप में श्रीकृष्ण की लीलाओं की अद्वितीयता आदि के वर्णन मिलते हैं। भगवान् के द्विभुज रूप की बराबरी नहीं की जा सकती। वैकुण्ठ जगत् में शरीर के स्वामी (देही) तथा देह में कोई अन्तर नहीं होता। भौतिक जगत् में देह के मालिक देही को आत्मा कहते हैं और शरीर भौतिक प्राकट्य कहलाता है। किन्तु वैकुण्ठ लोक में ऐसा कोई अन्तर नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण अजन्मा हैं और अवतार के रूप में उनका आविर्भाव अनादि है। कृष्ण की लीलाएँ दो तरह की हैं—प्रकट तथा अप्रकट। उदाहरणार्थ, जब कृष्ण भौतिक जगत् में जन्म लेते हैं, तो उनकी लीलाएँ प्रकट कहलाती हैं, किन्तु जब वे अन्तर्धान हो जाते हैं, तो यह नहीं समझना चाहिए कि उनका अन्त हो गया, क्योंकि अप्रकट रूप में उनकी लीलाएँ चलती रहती हैं। भगवान् की प्रकट लीलाओं में भक्तों तथा कृष्ण के द्वारा तरह-तरह के रसों का आस्वादन किया जाता है। वस्तुतः मथुरा, वृन्दावन तथा द्वारका में उनकी लीलाएँ शाश्वत हैं और किसी ब्रह्माण्ड के कोई न कोई भाग में निरन्तर चलती रहती हैं।

ताँर भ्रातुष्पुत्र नाम–श्री-जीव-गोसाञि।

यत भक्ति-ग्रन्थ कैल, तार अन्त नाइ ॥42॥

ताँर–उनका; भ्रातुः-पुत्र-भतीजा; नाम-नामक; श्री-जीव-गोसाञि-श्री जीव गोस्वामी प्रभुपाद; यत-सब; भक्ति-ग्रन्थ-भक्ति ग्रन्थ; कैल-संकलित किये; तार-उनका; अन्त–अन्त; नाइ–नहीं है।

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी के भतीजे श्रील जीव गोस्वामी ने भक्ति सम्बन्धी इतनी पुस्तकें लिखी हैं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती।

श्री-भागवत-सन्दर्भ-नाम ग्रन्थ-विस्तार।

भक्ति-सिद्धान्तेर ताते देखाइयाछेन पार ॥43॥

श्री-भागवत-सन्दर्भ-नाम-श्री भागवत सन्दर्भ नामक; ग्रन्थ-ग्रन्थ; विस्तार-विस्तार से; भक्ति-सिद्धान्तेर– भक्ति के सिद्धान्तों का; ताते—उस ग्रन्थ में; देखाइयाछेन-उन्होंने दिखाइ है; पार-सीमा।

अनुवाद

श्रील जीव गोस्वामी ने श्री भागवत-सन्दर्भ में भक्ति की चरम पराकाष्ठा का विस्तार से वर्णन किया है।

तात्पर्य

भागवत-सन्दर्भ का दूसरा नाम षट् सन्दर्भ भी है। इसके प्रथम खंड को तत्त्व-सन्दर्भ कहते हैं, जिसमें यह सिद्ध किया गया है कि श्रीमद्भागवत सर्वाधिक प्रामाणिक साक्ष्य है, जो परम सत्य का सीधा निर्देश करता है। इसका द्वितीय सन्दर्भ भगवत्-सन्दर्भ कहलाता है, जो निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा के भेद को बतलाता है। इसमें आध्यात्मिक जगत् तथा अन्य दोनों भौतिक गुणों से रहित सत्त्वगुण की प्रधानता का वर्णन है अर्थात् इसमें शुद्ध सत्त्व नामक दिव्य अवस्था का सजीव वर्णन मिलता है। भौतिक जगत् में सत्त्वगुण, अन्य दोनों गुणों अर्थात् रजो तथा तमो गुणों द्वारा कलुषित हो सकता है, किन्तु शुद्ध सत्त्व में स्थित होने पर इस प्रकार से कलुषित होने की सम्भावना नहीं रहती। यह शुद्ध सत्त्व का आध्यात्मिक स्तर है। इसमें भगवान् की शक्ति तथा जीव का भी वर्णन हुआ है और भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों एवं उनकी विविधता का भी वर्णन हुआ है। ये शक्तियाँ अन्तरंगा, बहिरंगा, निजी, तटस्था आदि कोटियों में बँटी हुई होती हैं। इसमें अर्चाविग्रह पूजा की नित्यता, अर्चाविग्रह की सर्वशक्तिमत्ता, उनकी सर्वव्यापकता, उनकी सर्वाश्रयता (सब को आश्रय देना), उनकी सूक्ष्म तथा स्थूल शक्तियाँ, उनका साकार स्वरूप, उनके रूप, गुण तथा लीलाओं की अभिव्यक्ति, उनकी दिव्य स्थिति तथा उनका पूर्ण रूप-इन सबकी व्याख्याएँ भी हैं। यह भी बतलाया गया है कि परम पूर्ण से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु में समान शक्ति होती है और वैकुण्ठ लोक, वैकुण्ठ लोक के पार्षद तथा वैकुण्ठ लोक में भगवान् की तीनों शक्तियाँ—ये सभी दिव्य हैं। इसके अतिरिक्त निर्विशेष ब्रह्म तथा भगवान् में अन्तर, भगवान् की पूर्णता, समस्त वैदिक ज्ञान का लक्ष्य, भगवान् की व्यक्तिगत शक्तियाँ तथा वैदिक ज्ञान के आदि प्रणेता के रूप में भगवान् के विषय में भी विचार-विमर्श हुआ है।

तीसरा सन्दर्भ परमात्म-सन्दर्भ कहलाता है। इसमें परमात्मा का वर्णन हुआ है तथा इसकी विवेचना मिलती है कि परमात्मा किस प्रकार करोड़ों जीवों में विद्यमान रहते हैं। इसमें गुणावतारों में अन्तर, जीव, माया, भौतिक जगत्, देहान्तरण का सिद्धान्त, मायाशक्ति, इस जगत् तथा परमात्मा की साम्यता तथा इस भौतिक जगत् के विषय में सच्चाई की व्याख्याएँ भी हैं। इस सम्बन्ध में श्रीधर स्वामी की टीकाएँ दी गई हैं। यहाँ बतलाया गया है कि यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भौतिक गुणों से रहित हैं, फिर भी वे सारे भौतिक कार्यकलापों का निरीक्षण करते हैं। इसकी भी व्याख्या है

कि किस प्रकार लीलावतार भक्तों की इच्छाओं का प्रत्युत्तर देते हैं और किस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में छह ऐश्वर्य पाये जाते हैं।

चौथा सन्दर्भ कृष्ण-सन्दर्भ कहलाता है। इसमें कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सिद्ध किये गये हैं। इसमें कृष्ण की लीलाओं एवं गुणों, पुरुषावतारों पर उनकी अध्यक्षता इत्यादि की व्याख्या की गई है। श्रीधर स्वामी के अभिमतों की भी पुष्टि की गई है। समस्त शास्त्रों में कृष्ण की श्रेष्ठता पर बल दिया गया है। बलदेव, संकर्षण तथा कृष्ण के अन्य विस्तार महासंकर्षण से उद्भूत हैं। सारे अवतार तथा अंश एकसाथ द्विभुज कृष्ण के शरीर में विद्यमान रहते हैं। गोलोक, वृन्दावन (भगवान् का सनातन धाम) तथा इनके स्वरूप, यादवगण तथा ग्वाले (दोनों कृष्ण के शाश्वत संगी हैं), प्रकट तथा अप्रकट लीलाओं में समता, गोकुल में श्रीकृष्ण का प्राकट्य, अन्तरंगा शक्ति के विस्तार रूप द्वारका की रानियाँ तथा उनसे उत्तम अद्वितीय गोपियों के भी विवरण मिलते हैं। गोपियों के नामों की सूची भी दी गई है और इनमें श्रीमती राधारानी की सर्वोच्च स्थिति की व्याख्या भी हुई है।

पाँचवा सन्दर्भ भक्ति-सन्दर्भ कहलाता है, जिसमें भक्ति के प्रत्यक्ष सम्पन्न करने एवं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से उनके समन्वयन की विधि का वर्णन हुआ है। इसमें सभी शास्त्रों के ज्ञान, वैदिक वर्णाश्रम धर्म की स्थापना, सकाम कर्म से भक्ति की श्रेष्ठता, इत्यादि की व्याख्या दी गई है। भक्ति के बिना ब्राह्मण को भी निन्दनीय बतलाया गया है। कर्म-त्याग की प्रक्रिया (कर्मफल को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को अर्पण करना), ध्यानयोग तथा ज्ञानयोग के विषय में व्याख्याएँ हैं और इन्हें कठिन श्रम मात्र बतलाया गया है। इसमें देवताओं की पूजा को निरुत्साहित किया गया है और वैष्णव की पूजा को श्रेष्ठ बताया गया है। अभक्तों को कोई सम्मान नहीं दिया गया है। इसमें इसकी भी चर्चा की गई है कि मनुष्य इस जीवन में भी किस तरह मुक्त (जीवन्मुक्त) हो सकता है, किस तरह शिवजी भक्त हैं और कैसे भक्त तथा उसकी भक्तिमय सेवा का अस्तित्व सनातन रूप से रहता है। यह भी कहा गया है कि भक्ति के माध्यम से समस्त प्रकार की सफलता प्राप्त की जा सकती है, क्योंकि भक्ति भौतिक गुणों से परे है। इसकी भी व्याख्या हुई है कि किस प्रकार भक्ति के माध्यम से आत्मा प्रकट (अनुभूत) होता है। आत्मा के आनन्द के साथ ही इसका भी वर्णन है कि भक्ति चाहे त्रुटिपूर्ण ही क्यों न सम्पन्न की जाये, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों को प्रदान करने वाली है। निष्काम भक्ति की बहुत प्रशंसा की गई है और यह बतलाया गया है कि किस प्रकार प्रत्येक भक्त अन्य भक्तों की संगति से निष्काम भक्ति के पद को प्राप्त कर सकता है। इसमें इन विषयों की भी चर्चा है : महाभागवत तथा सामान्य भक्त में अन्तर, दार्शनिक चिन्तन के लक्षण, अहंग्रहोपासना (आत्म-पूजा) के लक्षण, भक्ति के लक्षण, काल्पनिक सिद्धि के लक्षण,

विधि-विधानों का स्वीकार, गुरु की सेवा, महाभागवत तथा उनकी सेवा, वैष्णवों की सेवा, श्रवण, कीर्तन, स्मरण तथा पाद-सेवन के नियम, सेवा-अपराध, अपराध के फल, प्रार्थना, भगवान् के नित्य दास बनना, भगवान् से मैत्री स्थापित करना और उनके सुख के लिए सर्वस्व अर्पित करना, इत्यादि। रागानुगा भक्ति (भगवान् के प्रति स्वयंस्फूर्त प्रेम), कृष्ण-भक्त होने का विशेष प्रयोजन तथा पूर्णता की अन्य अवस्थाओं का तुलनात्मक विवरण भी दिया गया है।

छठा सन्दर्भ प्रीति-सन्दर्भ कहलाता है, जिसमें भगवत्प्रेम का वर्णन है। यहाँ बतलाया गया है कि भगवत्प्रेम के माध्यम से मनुष्य पूर्ण रूप से मुक्त हो जाता है और जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त करता है। इसमें सगुणवादी तथा निर्विशेषवादी मुक्त अवस्थाओं में अन्तर बतलाया गया है और भव-बन्धन से मुक्ति एवं जीवन्मुक्ति की व्याख्या की गई है। सभी प्रकार की मुक्तियों में से भगवान् की प्रेमाभक्ति में मुक्ति को सर्वोच्च बतलाया गया है और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साक्षात्कार को जीवन की सर्वोच्च सिद्धि पूर्णता के रूप में स्थापित किया गया है। क्रमिक विधि से मिलने वाली मुक्ति एवं तत्क्षण मुक्ति में अन्तर बतलाया गया है। जीवनकाल में ब्रह्म का साक्षात्कार तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से मिलन दोनों ही को मुक्ति कहा गया है, किन्तु परम पुरुष भगवान् से आन्तरिक तथा बाह्य रूप से मिलन को सर्वोत्कृष्ट बतलाया गया है, जो ब्रह्मतेज के दिव्य साक्षात्कार से बढ़कर है। इसमें सालोक्य, सामीप्य तथा सारूप्य मुक्तियों की तुलना की गई है। सामीप्य मुक्ति सालोक्य से बेहतर है। भक्ति को अधिक सुविधाओं से युक्त मुक्ति माना गया है और इसे प्राप्त करने की विधि की व्याख्या की गई है। भक्ति स्तर को प्राप्त करने पर होने वाली दिव्य स्थिति, जो भगवत् प्रेम के समान है, उसकी भी व्याख्या की गई है। दिव्य प्रेम के तटस्थ लक्षण तथा इसे जागृत करने की विधि, तथाकथित प्रेम एवं भगवत्-प्रेम के स्तर पर होने वाले दिव्य प्रेम में अन्तर, गोपियों के साथ प्रेमालाप के समय आस्वाद्य विभिन्न रस जो संसारी प्रेमालाप से भिन्न हैं और शुद्ध कृष्ण-प्रेम का प्रतिनिधित्व करते हैं, इन सबकी व्याख्या दी गई है। ज्ञानमिश्रित भक्ति, गोपियों के प्रेम की सर्वोत्कृष्टता, ऐश्वर्य भाव से युक्त भक्ति तथा प्रेमाभक्ति में अन्तर, गोकुल के निवासियों की उच्च स्थिति, कृष्ण के सखाओं की क्रमशः उच्च स्थिति, कृष्ण के साथ गोप-गोपियों का वात्सल्य-प्रेम तथा अन्ततः गोपियों एवं श्रीमती राधारानी के प्रेम की सर्वोत्कृष्टता के विषय में भी व्याख्याएँ हुई हैं। इसकी भी व्याख्या की गई है कि जब कोई अनुकरण करता है, तो आध्यात्मिक भाव किस प्रकार उपस्थित रहते हैं और ऐसे रस संसारी प्रेम के साधारण रसों से कितने अधिक श्रेष्ठ होते हैं। विभिन्न भावों, भावोद्दीपन (भावों का जागृत होना), दिव्य गुण, धीरोदात्त आदि भेद, माधुर्य प्रेम का परम आकर्षण, अनुभाव, स्थायी संचारी भाव, पाँच प्रत्यक्ष तथा सात अप्रत्यक्ष प्रेमाभक्ति के रसों के भी वर्णन दिये गये हैं। अन्त में विभिन्न रसों के एक दूसरे से अतिक्रमण की

भी व्याख्या दी गई है। एवं शान्त, दास्य, शरणागति, वात्सल्य-प्रेम, प्रत्यक्ष माधुर्य-प्रेम, दिव्य भोग तथा विरह में आनन्द, पूर्वराग तथा श्रीमती राधारानी की महिमा के विषय में वर्णन मिलते हैं।

गोपाल-चम्पू-नामे ग्रन्थ-महाशूर ।

नित्य-लीला स्थापन याहे व्रज-रस-पूर ॥44॥

गोपाल-चम्पू-गोपाल चम्पू; नामे-नामक; ग्रन्थ-ग्रन्थ; महा-शूर-अत्यन्त प्रभावशाली; नित्य-लीला-नित्य लीलाएँ; स्थापन-स्थापन; याहे-जिसमें; व्रज-रस-वृन्दावन का दिव्य रस; पूर–पूर्ण।

अनुवाद

गोपाल-चम्पू सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं प्रभावशाली दिव्य ग्रंथ है। इस ग्रंथ में भगवान् की सनातन लीलाओं की स्थापना की गई है और वृन्दावन में भोगे जाने वाले दिव्य रसों का वर्णन विस्तारपूर्वक हुआ है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में गोपाल-चम्पू के विषय में निम्नलिखित जानकारी दी है। गोपाल-चम्पू दो भागों में विभक्त है। पहला भाग पूर्वी लहरी कहलाता है और दूसरा भाग उत्तरी लहरी कहलाता है। पहले भाग में 33 और दूसरे भाग में 37 पूरण या परिच्छेद हैं। पहले भाग की रचना 1510 शकाब्द (1588 ई.) में हुई। इसमें निम्नलिखित विषयों की विवेचना की गई है-(1) वृन्दावन तथा गोलोक; (2) पूतना राक्षसी का वध, माता यशोदा के निर्देशानुसार गोपियों का घर लौटना, कृष्ण तथा बलराम को स्नान कराना, स्निग्ध-कण्ठ तथा मधु कण्ठ; (3) यशोदा मैया का स्वप्न; (4) जन्माष्टमी उत्सव; (5) नंद महाराज की वसुदेव से भेंट तथा पूतना-वध; (6) प्रात:काल बिस्तर से उठने की लीलाएँ, शकट असुर का उद्धार तथा नामकरण संस्कार; (7) तृणावर्त असुर का वध, कृष्ण द्वारा मिट्टी खाना, कृष्ण की बालसुलभ नटखट लीलाएँ तथा चोर के रूप में कृष्ण; (8) दधिमन्थन, कृष्ण द्वारा माता यशोदा का स्तनपान, दही की मटकी तोड़ना, रस्सी से कृष्ण का बाँधा जाना, दो भाइयों (यमलार्जुन) का उद्धार और माता यशोदा का शोक करना; (9) वृन्दावन प्रवेश; (10) वत्सासुर, बकासुर तथा व्योमासुर का वध; (11) अघासुर का वध तथा ब्रह्मा का विमोहन; (12) जंगल में गौवों का चारण; (13) गायों की रखवाली तथा कालिय नाग को दण्ड; (14) गर्दभासुर का वध तथा कृष्ण की प्रशंसा; (15) गोपियों का पूर्वाकर्षण; (16) प्रलम्बासुर का वध तथा दावाग्नि पान; (17) गोपियों का कृष्ण के पास जाने का प्रयास; (18) गोवर्धन पर्वत धारण करना; (19) कृष्ण का

दुग्ध-अभिषेक; (20) वरुण लोक से नन्द महाराज का लौट आना और गोपियों द्वारा गोलोक वृन्दावन का दर्शन; (21) कात्यायनी व्रत का अनुष्ठान तथा दुर्गादेवी की उपासना; (22) याज्ञिक ब्राह्मणों की पत्नियों से भोजन माँगना; (23) कृष्ण तथा गोपियों की भेंट; (24) गोपियों के साथ कृष्ण द्वारा आनन्द-भोग, राधा तथा कृष्ण का घटनास्थल से अंतर्धान होना और गोपियों द्वारा उनकी खोज; (25) कृष्ण का फिर से प्रकट होना; (26) गोपियों का संकल्प; (27) यमुना-जल में क्रीड़ाएँ; (28) सर्प के चंगुल से नन्द महाराज को बचाना; (29) एकान्त स्थलों में विविध लीलाएँ; (30) शंखचूड़ का वध तथा होरी, (31) अरिष्टासुर का वध; (32) केशी असुर का वध; (33) श्री नारद मुनि का प्रकट होना और जिस वर्ष पुस्तक समाप्त हुई उसका वर्णन। द्वितीय भाग उत्तर चम्पू कहलाता है और उसमें निम्नलिखित विषयों की विवेचना की गई है—(1) व्रजभूमि के प्रति अनुराग; (2) अक्रूर के क्रूर कर्म; (3) कृष्ण का मथुरा-गमन; (4) मथुरा नगरी का वर्णन; (5) कंस का वध; (6) कृष्ण तथा बलराम से नन्द महाराज का विछोह; (7) कृष्ण तथा बलराम के बिना नन्द महाराज का वृन्दावन में प्रवेश; (8) कृष्ण तथा बलराम द्वारा विद्याध्ययन; (9) कृष्ण तथा बलराम के गुरु-पुत्र का लौट जाना; (10) उद्धव की वृन्दावन यात्रा; (11) भ्रमर दूत से राधारानी का वार्तालाप; (12) वृन्दावन से उद्धव का लौट आना; (13) जरासन्ध का बाँधा जाना; (14) यवन जरासन्ध का वध; (15) बलराम का विवाह; (16) रुक्मिणी का विवाह; (17) सात विवाह; (18) नरकासुर का वध, स्वर्ग से पारिजात पुष्प लाना और 16,000 रानियों के साथ कृष्ण का विवाह; (19) बाणासुर पर विजय; (20) बलराम का व्रज लौटना; (21) पौण्ड्रक (नकली विष्णु) का वध; (22) द्विविद का वध तथा हस्तिनापुर की चिन्ता; (23) कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान; (24) कुरुक्षेत्र में वृन्दावनवासियों तथा द्वारका-वासियों में भेट; (25) कृष्ण का उद्धव से परामर्श; (26) राजा का उद्धार; (27) राजसूय यज्ञ की सम्पन्नता; (28) शाल्व का वध; (29) कृष्ण का वृन्दावन लौटने पर विचार; (30) कृष्ण का फिर से वृन्दावन जाना; (31) श्रीमती राधारानी तथा अन्यों के रोके जाने का समाधान; (32) सब कुछ पूर्ण; (33) राधा तथा माधव का निवासस्थान; (34) श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण का श्रृंगार; (35) श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण का विवाह; (36) श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण का मिलन तथा (37) गोलोक प्रवेश।

एइ मत नाना ग्रन्थ करिया प्रकाश।

गोष्ठी सहिते कैला वृन्दावने वास ॥ 45 ॥

एइ मत-इस प्रकार; नाना-नाना प्रकार के; ग्रन्थ-ग्रन्थ; करिया-बनाकर; प्रकाश-छपाकर; गोष्ठी-परिवार के सदस्य; सहिते-के साथ; कैला–किया; वृन्दावने-वृन्दावन में; वास–निवास।

अनुवाद

इस प्रकार श्रील रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी तथा उनके भतीजे श्रील जीव गोस्वामी तथा लगभग उनका सारा परिवार वृन्दावन में रहा और उन्होंने भक्ति पर महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित कीं।

प्रथम वत्सरे अद्वैतादि भक्त-गण ।

प्रभुरे देखिते कैल, नीलाद्रि गमन ॥46॥

प्रथम-प्रथम; वत्सरे-वर्ष में; अद्वैत-आदि-अद्वैत आचार्य आदि; भक्त-गण-सारे भक्त; प्रभुरे–महाप्रभु; देखिते-देखने के लिए; कैल-किया; नीलाद्रि–जगन्नाथ पुरी को; गमन-गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण कर लेने के एक वर्ष बाद, श्री अद्वैत प्रभु के नेतृत्व में सारे भक्त उनका दर्शन करने के लिए जगन्नाथ पुरी गये।

रथ-यात्रा देखि ताहाँ रहिला चारि-मास ।

प्रभु-सङ्गे नृत्य-गीत परम उल्लास ॥47॥

रथ-यात्रा-रथयात्रा; देखि-देखकर; ताहाँ-वहाँ; रहिला-रहे; चारि-मास-चार मास; प्रभु-सङ्गे–महाप्रभु के संग; नृत्य-गीत-नाचते और कीर्तन करते हुए; परम-परम उल्लास-हर्ष।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में रथयात्रा महोत्सव में सम्मिलित होने के बाद सारे भक्त चार मास तक वहीं रहे और चैतन्य महाप्रभु के साथ कीर्तन (कीर्तन तथा नृत्य) का परम आनन्द लूटते रहे।

विदाय समय प्रभु कहिला सबारे ।

प्रत्यब्द आसिबे सबे गुण्डिचा देखिबारे ॥48॥

विदाय–विदाई; समय-समय पर; प्रभु–महाप्रभु ने; कहिला–कहा; सबारे-प्रत्येक को; प्रत्यब्द–प्रति वर्ष; आसिबे-आपको आना चाहिए; सबे-सब; गुण्डिचा-गुण्डिचा; देखिबारे-देखने के लिए।

अनुवाद

विदाई के समय महाप्रभु ने सभी भक्तों से निवेदन किया, "कृपा करके प्रतिवर्ष भगवान् जगन्नाथ की गुण्डिचा मन्दिर तक की यात्रा (जो रथयात्रा महोत्सव के नाम से विख्यात है) देखने के लिए अवश्य आयें।

तात्पर्य

सुन्दराचल में गुण्डिचा नामक एक मन्दिर है। भगवान जगन्नाथ, बलदेव तथा सुभद्रा को तीन रथों में पुरी स्थित मन्दिर से सुन्दराचल स्थित गुण्डिचा मन्दिर तक खींचकर ले जाये जाते हैं। उड़ीसा में इस रथयात्रा उत्सव को जगन्नाथ की गुण्डिचा यात्रा के नाम से जाना जाता है। जहाँ अन्य लोग इसे रथयात्रा उत्सव कहकर पुकारते हैं, वहीं उड़ीसावासी इसे गुण्डिचा यात्रा कहते हैं।

प्रभु-आज्ञाय भक्तगण प्रत्यब्द आसिया ।

गुण्डिचा देखिया ग्रान प्रभुरे मिलिया ॥49॥

प्रभु-आज्ञाय-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा के कारण; भक्त-गण-सभी भक्त; प्रत्यब्द-प्रति वर्ष; आसिया-वहाँ आकर; गुण्डिचा–गुण्डिचा-यात्रा का उत्सव; देखिया-देखकर; या'न–लौटना; प्रभुरे–महाप्रभु; मिलिया-मिलकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश का पालन करते हुए सारे भक्त प्रतिवर्ष उन्हें मिलने आते थे। वे जगन्नाथ पुरी में गुण्डिचा-उत्सव देखते और चार मास के बाद अपने घर लौट जाया करते थे।

विंशति वत्सर ऐछे कैला गतागति ।

अन्योन्ये दुँहार दुँहा विना नाहि स्थिति ॥50॥

विंशति-बीस; वत्सर-वर्ष; ऐछे—इस प्रकार; कैला–किया; गत-आगति–जाना-आना; अन्योन्ये-आपस में; बँहार–चैतन्य महाप्रभु और भक्तों का; बँहा-दोनों; विना-बिना; नाहि-नहीं; स्थिति-शान्ति ।

अनुवाद

लगातार बीस वर्षों तक इस प्रकार भेट होती रही और स्थिति इतनी तीव्र हो गई कि महाप्रभु तथा भक्तगण एक-दूसरे से मिले बिना सुख से नहीं रह पाते थे।

शेष आर येइ रहे द्वादश वत्सर ।

कृष्णेर विरह-लीला प्रभुर अन्तर ॥51॥

शेष-अन्त में; आर—शेष; येइ-जो कुछ; रहे-रहता है; द्वादश वत्सर-बारह वर्ष; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; विरह-लीला-विरह लीलाएँ; प्रभुर–महाप्रभु के अन्तर-भीतर।

अनुवाद

महाप्रभु ने अन्तिम बारह वर्ष अपने हृदय के भीतर केवल कृष्ण की विरह-लीला का आस्वादन करने में बिताये।

तात्पर्य

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण के विरह में गोपियों की दशा का आनन्द लिया। जब कृष्ण गोपियों को छोड़कर मथुरा चले गये, तो गोपियाँ अपना शेष जीवन उनके विरह की तीव्र अनुभूति में रोती रहीं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस विरहानुभूति के रस का स्वयं प्रदर्शन करके इसका अनुमोदन किया।

निरन्तर रात्रि-दिन विरह उन्मादे ।

हासे, कान्दे, नाचे, गाय परम विषादे ॥52॥

निरन्तर–निरन्तर; रात्रि-दिन-दिन-रात; विरह-विरह के; उन्मादे-पागलपन में; हासे-हँसते; कान्दे-रोते; नाचे--नाचते; गाय-गाते; परम-परम; विषादे-शोक में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इस विरह-भाव में रात-दिन उन्मत्त प्रतीत होते थे। कभी वे हँसते और कभी विलाप करते; कभी नाचते और कभी अत्यन्त शोक में कीर्तन करते थे।

ये काले करेन जगन्नाथ दरशन ।

मने भावे, कुरुक्षेत्रे पाञाछि मिलन ॥53॥

ये काले—उस समय; करेन-करते; जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ; दरशन-दर्शन; मने-मन में; भावे-सोचते; कुरु-क्षेत्रे-कुरुक्षेत्र के मैदान में; पाञाछि-मैंने पा लिया है; मिलन-मिलन।

अनुवाद

ऐसे अवसरों पर श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथजी के मन्दिर जाया करते। उस समय उनकी मनोदशा ठीक ठीक उन गोपियों जैसी होती, जिन्होंने दीर्घ विछोह के बाद कुरुक्षेत्र में कृष्ण के दर्शन किये थे। कृष्ण अपने भाई तथा बहन के साथ कुरुक्षेत्र आये हुए थे।

तात्पर्य

जब कृष्ण कुरुक्षेत्र में यज्ञ सम्पन्न कर रहे थे, तो उन्होंने वृन्दावन के समस्त निवासियों को उन्हें मिलने के लिए बुलाया था। चैतन्य महाप्रभु का हृदय कृष्ण के विरह से सदैव पूरित रहता था, किन्तु ज्योंही उन्हें जगन्नाथ मन्दिर जाने का अवसर प्राप्त होता, त्योंही वे उन गोपियों के भाव में पूर्णरूपेण निमग्न हो जाते, जो कुरुक्षेत्र में कृष्ण का दर्शन करने आई थीं।

रथ-यात्राय आगे यबे करेन नर्तन ।

ताहाँ एइ पद मात्र करये गायन ॥54॥

रथ-यात्राय रथयात्रा उत्सव में; आगे-आगे; यबे-जब; करेन-करते; नर्तन-नृत्य; ताहाँ-वहाँ; एइ–यह; पद-पद; मात्र-मात्र; करये-करता है; गायन-गायन।

अनुवाद

रथयात्रा के समय जब चैतन्य महाप्रभु रथ के आगे नृत्य करते थे, तो वे सदैव निम्नलिखित दो पंक्तियाँ गाते थे।

सेइत पराण-नाथ पाइनु ।

याहा लागी' मदन-दहने झुरि गेनु ॥55॥

सेइत-वही; पराण-नाथ-मेरे प्राणनाथ; पाइनु-मैंने पा लिये हैं; याहा–जिन; लागि'–के लिए; मदन-दहने-कामाग्नि में; झुरि–जलता हुआ; गेनु-मैं हो गया हूँ।

अनुवाद

"मैंने अपने प्राणों के उन स्वामी को पा लिया है, जिनके लिए मैं कामाग्नि में जल रहा था।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (10.29.15) में कहा गया है :

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।

नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥

काम का अर्थ है काम-वासना, भय का अर्थ है डर तथा क्रोध का अर्थ है गुस्सा। यदि कोई किसी तरह भी कृष्ण के निकट पहुँच जाता है, तो उसका जीवन सफल हो जाता है। गोपियाँ कृष्ण के पास काम के वशीभूत होकर पहुँची थीं। कृष्ण अत्यन्त सुन्दर किशोर थे और वे उनसे मिलना तथा उनके सामीप्य का सुख प्राप्त करना चाहती थीं। किन्तु यह काम-वासना भौतिक जगत् के काम से भिन्न है। यह संसारी काम-वासना जैसी तो लगती है, किन्तु वास्तव में कृष्ण के प्रति आकर्षण का यह सर्वोच्च रूप है। चैतन्य महाप्रभु संन्यासी थे; उन्होंने अपना घर-बार एवं सर्वस्व त्याग दिया था। उन्हें नि:सन्देह कोई भी संसारी विषय-वासना आकर्षित नहीं कर सकती थी। अतएव जब वे मदन-दहने (काम की अग्नि में) शब्द का प्रयोग करते थे, तो उनका तात्पर्य यह होता था कि वे शुद्ध कृष्ण-प्रेम जनित वियोग की अग्नि में जल रहे थे। जब भी वे जगन्नाथ का दर्शन करते, चाहे मन्दिर में या रथयात्रा के समय, वे यही सोचा करते, "अब मुझे अपने प्राणनाथ मिल गये हैं।"

एइ धुया-गाने नाचेन द्वितीय प्रहर ।

कृष्ण लञा व्रजे याइ–ए-भाव अन्तर ॥56॥

एइ धुया-गाने-इस गीत को दोहराकर; नाचेन-वे नाचते; द्वितीय प्रहर-दोपहर को; कृष्ण लञा-कृष्ण को लेकर; व्रजे याइ-मैं वृन्दावन जाऊँ; ए-भाव-यह भाव; अन्तर-भीतर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इस गीत (सेहत पराणनाथ) को दिन के दूसरे पहर में विशेष रूप से गाते और सोचा करते, "मैं कृष्ण को लेकर वृन्दावन लौट जाऊँ।" यह भाव सदैव उनके हृदय में उठता रहता था।

तात्पर्य

श्रीमती राधारानी के भाव में सदैव मग्न रहने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु को उसी तरह का कृष्ण-वियोग अनुभव होता, जैसा श्रीमती राधारानी को कृष्ण के वृन्दावन छोड़कर मथुरा चले जाने पर हुआ था। यह भाव विरह में भगवत्-प्रेम प्राप्त करने में अत्यन्त सहायक होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने हर एक को सिखलाया है कि मनुष्य को भगवान् का दर्शन पाने के लिए अत्यन्त उतावला नहीं होना चाहिए, प्रत्युत भावावेश में उनसे विरह का अनुभव करना चाहिए। उनका साक्षात्कार करने की इच्छा की अपेक्षा उनसे विरह की अनुभूति करना श्रेयस्कर है। जब वृन्दावन की गोपियाँ तथा गोकुल के निवासी सूर्य-ग्रहण के अवसर पर कृष्ण से कुरुक्षेत्र में मिले, तो वे कृष्ण को अपने साथ वृन्दावन लौटाकर ले जाना चाह रहे थे। जब श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु, जगन्नाथ को मन्दिर में या रथयात्रा में देखा करते थे, तो उनको वही अनुभूति होती थी। वृन्दावन की गोपियों को द्वारका का ऐश्वर्य अच्छा नहीं लगता था। वे कृष्ण को वृन्दावन गाँव में ले जाकर कुंजों में उनके संग का आनन्द प्राप्त करना चाहती थीं। इसी इच्छा का श्री चैतन्य महाप्रभु भी अनुभव करते थे; अतएव जब भगवान जगन्नाथ गुण्डिचा की यात्रा करते, तब वे रथ के समक्ष भावविभोर होकर नृत्य करते थे।

एइ भावे नृत्य-मध्ये पड़े एक श्लोक ।

सेइ श्लोकेर अर्थ केह नाहि बुझे लोक ॥57॥

एइ भावे-इस भाव में; नृत्य-मध्ये-नृत्य करते हुए; पड़े-पढ़ते; एक-एक; श्लोक-श्लोक; सेइ श्लोकेर—उस श्लोक का; अर्थ-अर्थ; केह-कोई; नाहि-नहीं; बुझे-समझता; लोक-व्यक्ति।

अनुवाद

उस भावावेश में श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् जगन्नाथ के समक्ष नृत्य करते समय एक श्लोक गाया करते थे, जिसका अर्थ लगभग कोई भी नहीं समझ पाता था।

यः कौमार-हरः स एव हि वरस्ता एव चैत्र-क्षपास्

ते चोन्मीलित-मालती-सुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बानिलाः ।

सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरत-व्यापार-लीला-विधौ

रेवा-रोधसि वेतसी-तरु-तले चेतः समुत्कण्ठते ॥58॥

यः-वही व्यक्ति जो; कौमार-हरः-मेरी युवावस्था के दौरान मेरे हृदय को चुराने वाला; सः-वह; एव हि-अवश्य; वरः-प्रेमी; ताः-ये; एव-ही; चैत्र-क्षपाः-चैत्र मास की चाँदनी रातें; ते–वे; च-और; उन्मीलित–पूरी तरह खिला हुआ; मालती-मालती पुष्प; सुरभयः-सुगन्धि; प्रौढ़ाः–पूर्ण, युक्त; कदम्ब-कदम्ब पुष्प की सुगन्ध से युक्त; अनिलाः-पवन; सा-वह; च-भी; एव–अवश्य; अस्मि-मैं हूँ; तथा अपि-फिर भी; तत्र-वहाँ; सुरत-व्यापार–अन्तरंग व्यवहार में; लीला-लीलाओं के; विधौ-विधि से; रेवा-रेवा नामक नदी के; रोधसि-के किनारे; वेतसी–वेतसी नामक; तरु-तले वृक्ष के नीचे; चेतः-मेरा मन; समुत्कण्ठते-जाने को अत्यन्त उत्सुक है।

अनुवाद

जिस व्यक्ति ने मेरी युवावस्था में मेरा हृदय चुरा लिया था, वही अब पुनः मेरा स्वामी है। ये चैत्र-मास की वही चाँदनी रातें हैं, वही मालती फूलों की सुगन्ध है और वही मधुर वायु कदम्ब वन से आ रही है। अपने घनिष्ठ सम्बन्ध में मैं भी वही प्रेमिका हूँ, किन्तु फिर भी मेरा मन यहाँ सुखी नहीं है। मैं रेवा नदी के तट पर वेतसी वृक्ष के नीचे उसी स्थान पर फिर से जाने के लिए लालायित हूँ। यही मेरी इच्छा है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी विरचित पद्यावली (386) में आया है।

एइ श्लोकेर अर्थ जाने एकले स्वरूप ।

दैवे से वत्सर ताहाँ गियाछेन रूप ॥59॥

एइ–इस; श्लोकेर-श्लोक का; अर्थ–अर्थ; जाने-जानते हैं; एकले-अकेले; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; दैवे-संयोगवश; से वत्सर-उस वर्ष; ताहाँ-वहाँ; गियाछेन-गये; रूप-श्रील रूप गोस्वामी।

अनुवाद

यह श्लोक एक सामान्य भौतिक युवक तथा युवती की लालसा के समान लगता है, किन्तु इसका वास्तविक गहन अर्थ एकमात्र स्वरूप दामोदर को ज्ञात था। संयोगवश रूप गोस्वामी भी एक वर्ष वहाँ उपस्थित थे।

प्रभु-मुखे श्लोक शुनि' श्री-रूप-गोसाञि ।

सेइ श्लोकेर अर्थ-श्लोक करिला तथाइ ॥ 60॥

प्रभु-मुखे- श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से; श्लोक-श्लोक; शुनि'–सुनकर; श्री-रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी; सेइ-उसी; श्लोकेर-पहले श्लोक का; अर्थ-अर्थ करके; श्लोक-दूसरा श्लोक; करिला-रचा; तथाइ–तत्क्षण।

अनुवाद

यद्यपि इस श्लोक का अर्थ केवल स्वरूप दामोदर को ज्ञात था, किन्तु रूप गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से इसे सुनकर तुरन्त एक अन्य श्लोक की रचना कर डाली, जिसमें मूल श्लोक का अर्थ दिया गया था।

श्लोक करि' एक ताल-पत्रेते लिखिया ।

आपन वासार चाले राखिल गुञ्जिया ॥61॥

श्लोक करि'–श्लोक रचकर; एक-एक; ताल-पत्रेते-ताल पत्र पर; लिखिया-लिखकर; आपन-अपने; वासार-निवासस्थान की; चाले–छत पर; राखिल-रख दिया; गुञ्जिया-धकेलकर।

अनुवाद

इस श्लोक की रचना करके रूप गोस्वामी ने इसे एक ताड़ के पत्ते पर लिख दिया और जिस कुटिया में वे रह रहे थे उसकी छत पर रख दिया।

श्लोक राखि' गेला समुद्र-स्नान करिते ।

हेन-काले आइला प्रभु ताँहारे मिलिते ॥62॥

श्लोक राखि'–श्लोक को इस प्रकार रखकर; गेला-गये; समुद्र-स्नान-समुद्र स्नान; करिते-करने के लिए; हेन-काले—इस दौरान; आइला-आये; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँहारे—उन्हें; मिलिते-मिलने के लिए।

अनुवाद

इस श्लोक की रचना करके इसे अपने घर की छत पर रखने के बाद श्रील रूप गोस्वामी समुद्र में स्नान करने चले गये। इसी बीच श्री चैतन्य महाप्रभु उनसे मिलने उनकी कुटिया में आये।

हरिदास ठाकुर आर रूप-सनातन ।

जगन्नाथ-मन्दिरे ना या'न तिन जन ॥ 63॥

हरिदास ठाकुर-श्रील हरिदास ठाकुर; आर-और; रूप-सनातन-श्रील रूप गोस्वामी और श्रील सनातन गोस्वामी; जगन्नाथ-मन्दिरे-- भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर में; ना-नहीं; या'न-जाते; तिन जन-तीन व्यक्ति।

अनुवाद

विरोध की स्थिति से बचने के लिए श्रील हरिदास ठाकुर, श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी-ये तीनों महान् भक्त जगन्नाथ मन्दिर में प्रवेश नहीं करते थे।

तात्पर्य

आज भी जगन्नाथ मन्दिर में यह प्रथा है कि जो लोग हिन्दू धर्म नामक वैदिक संस्कृति का दृढ़ता से पालन नहीं करते, उन्हें मन्दिर में प्रवेश करने नहीं दिया जाता। श्रील हरिदास ठाकुर, श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी इन तीनों का पहले मुसलमानों से घनिष्ठ सम्बन्ध था। हरिदास ठाकुर तो मुसलमान परिवार में ही जन्मे थे और श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी हिन्दू समाज में अपना सामाजिक स्थान त्यागने के पश्चात् मुसलमान सरकार में मन्त्री नियुक्त हुए थे। यहाँ तक कि उन्होंने अपने नाम भी बदलकर दबिर खास तथा साकर मल्लिक रख लिए थे। इस तरह वे ब्राह्मण समाज से तथाकथित रूप से बहिष्कृत माने जाते थे। फलस्वरूप वे विनयवश जगन्नाथ-मन्दिर में प्रवेश नहीं करते थे, यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में भगवान् जगन्नाथ नित्य ही उनसे स्वयं भेंट करने आते थे। इसी प्रकार कभी-कभी कृष्णभावनामृत संघ के सदस्यों को भी भारत के कुछ मन्दिरों में प्रविष्ट होने नहीं दिया जाता। जब तक हम हरे कृष्ण मन्त्र का जप करते रहते हैं, हमें ऐसी बातों से खिन्न नहीं होना चाहिए। जो भक्त कृष्ण-नाम का

जप करते हैं, उनके साथ स्वयं कृष्ण रहते हैं। अतएव किसी मन्दिर में यदि प्रवेश न मिले, तो इसके लिए दुःखी नहीं होना चाहिए। ऐसे अन्धविश्वासी निषेधों का श्री चैतन्य महाप्रभु ने कभी भी अनुमोदन नहीं किया। जिन्हें जगन्नाथ-मन्दिर में प्रवेश के लिए अयोग्य माना जाता था, उनके पास श्री चैतन्य महाप्रभु रोजाना मिलने जाते थे। इससे पता चलता है कि उन्हें ऐसे निषेध मान्य नहीं थे। फिर भी ये महान व्यक्ति मन्दिर में किसी प्रकार की अनावश्यक खलबली से बचने के लिए जगन्नाथ- मन्दिर में प्रवेश नहीं करते थे।

महाप्रभु जगन्नाथेर उपल-भोग देखिया ।

निज-गृहे या'न एइ तिनेरे मिलिया ॥64॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ का; उपल-भोग-पत्थर पर भोग अर्पण; देखिया–देखकर; निज-गृहे--अपने घर; या'न-जाते; एइ–इन; तिनेरे-तीनों को; मिलिया–मिलने के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु नित्यप्रति जगन्नाथ मन्दिर में उपलभोग उत्सव देखते थे और उसके बाद वे अपने निवासस्थान लौटते समय इन तीनों महापुरुषों से भेंट किया करते थे।

तात्पर्य

उपलभोग एक विशेष प्रकार का भोग है, जो गरुड़-स्तम्भ के पीछे एक पत्थर के ऊपर चढ़ाया जाता है। यह पत्थर उपल कहलाता है। सारा भोग जगन्नाथ के सिंहासन के नीचे मन्दिर-कक्ष के भीतर अर्पण किया जाता है। किन्तु यह भोग जनता के सामने पत्थर पर अर्पण किया जाता है, इसीलिए यह उपलभोग कहलाता है।

एइ तिन मध्ये यबे थाके येइ जन ।

तॉरे आसि' आपने मिले,—प्रभुर नियम ॥65॥

एइ तिन मध्ये इन तीनों में; यबे-जब; थाके-रह जाता है; येइ जन-वही व्यक्ति जो; तॉरे–उनको; आसि—आकर; आपने मिले-स्वयं मिलते; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; नियम-नियम।

अनुवाद

यदि इन तीनों में से कोई एक उपस्थित नहीं होता था, तो वे शेष जनों से मिलते थे। यह उनका दैनिक नियम था।

दैवे आसि' प्रभु यबे ऊर्ध्वेते चाहिला ।

चाले गोंजा ताल-पत्रे सेइ श्लोक पाइञा ॥66॥

दैवे-अचानक; आसि'-वहाँ आकर; प्रभु-प्रभु; यबे-जब; ऊर्ध्वेते-छत पर; चाहिला–उन्होंने देखा; चाले–छत पर; गोंजा-रखा हुआ; ताल-पत्रे-ताल पत्र पर; नेइ-वह; श्लोक-श्लोक; पाइञा–पाया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु श्रील रूप गोस्वामी के आवास में गये, तो संयोगवश उन्होंने छत पर रखा ताड़-पत्र देख लिया और उन्होंने उनके द्वारा रचित उस श्लोक को पढ़ा।

श्लोक पड़ि' आछे प्रभु आविष्ट हइया ।

रूप-गोसाञि आसि' पड़े दण्डवत् हञा ॥ 67॥

श्लोक पड़ि'–श्लोक पढ़कर; आछे—आ गये; प्रभु–महाप्रभुः आविष्ट-भावावेश में; हइया-होकर; रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी; आसि'–आकर; पड़े-गिर पड़े; दण्डवत्-दण्डवत्; हञा–होकर।

अनुवाद

इस श्लोक को पढ़कर श्री चैतन्य महाप्रभु को भावावेश हो आया। जब वे इस दशा में थे, तो श्रील रूप गोस्वामी आ गये और वे तुरन्त ही भूमि पर दण्डवत् गिर पड़े।

तात्पर्य

दण्ड शब्द का अर्थ है डंडा। डंडा सीधा गिरता है। उसी प्रकार जब किसी गुरुजन को कोई साष्टांग प्रणाम करता है, तो वह दण्डवत् कहलाता है। कभी-कभी हम दण्डवत् शब्द का प्रयोग करते हैं, किन्तु भूमि पर गिरते नहीं। कुछ भी हो, दण्डवत् का अर्थ है, किसी गुरुजन के समक्ष डंडे की भाँति गिरना।

उठि' महाप्रभु ताँरे चापड़ मारिया ।

कहिते लागिला किछु कोलेते करिया ॥ 68 ॥

उठि'–उठकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे-रूप गोस्वामी को; चापड़ मारिया-थप्पड़ मारकर (चपत लगाकर); कहिते-कहने; लागिला-लगे; किछु-कुछ; कोलेते-गोद में; करिया–लेकर।

अनुवाद

जब श्रील रूप गोस्वामी डंडे के समान गिर पड़े, तो श्री चैतन्य महाप्रभु उठे और उन्हें एक चपत लगाई। फिर उन्हें अपनी गोद में लेकर उनसे इस प्रकार कहा :

मोर श्लोकेर अभिप्राय ना जाने कोन जने ।

मोर मनेर कथा तुमि जानिले केमने? ॥69॥

मोर-मेरे; श्लोकेर-श्लोक का; अभिप्राय-अभिप्राय; ना-नहीं; जाने-जानता है; कोन-कोई; जने–व्यक्ति; मोर–मेरे; मनेर-मन का; कथा-भाव; तुमि-तुम; जानिले-समझ गये; केमने-कैसे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मेरे श्लोक का तात्पर्य कोई नहीं जानता। तुम मेरे मन के भाव को कैसे समझ गये?"

एत बलि' तरि बह प्रसाद करिया ।

स्वरूप-गोसाञिरे श्लोक देखाइल लञा ॥ 70 ॥

एत बलि'—यह कहकर; तारे-रूप गोस्वामी को; बहु-बहुत; प्रसाद-कृपा; करिया-की; स्वरूप-गोसाञिरे-स्वरूप गोस्वामी को; श्लोक-श्लोक; देखाइल-दिखाया; लञा-लेकर।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी को अनेक आशीर्वाद दिये और उस श्लोक को ले जाकर बाद में स्वरूप गोस्वामी को दिखलाया।

स्वरूपे पुछेन प्रभु हइया विस्मिते ।

मोर मनेर कथा रूप जानिल केमते ॥79॥

स्वरूपे-स्वरूप गोस्वामी को; पुछेन-पूछा; प्रभु–महाप्रभु ने; हइया-होकर; विस्मिते-विस्मित होकर; मोर–मेरे; मनेर-मन का; कथा- भाव; रूप-रूप गोस्वामी; जानिल-समझ गये; केमते-कैसे।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर को अत्यन्त आश्चर्य के साथ वह श्लोक दिखाते हुए चैतन्य महाप्रभु ने उनसे पूछा कि रूप गोस्वामी किस तरह उनके मन के भाव को समझ सके।

तात्पर्य

हमें भी इसी प्रकार का आशीर्वाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी से तब प्राप्त करने का सुअवसर मिला, जब हमने उनकी वर्षगाँठ पर एक लेख भेंट किया था। वे इस लेख से इतने प्रसन्न थे कि वे अपने कुछ विश्वस्त भक्तों को बुलाकर वे उन्हें यह लेख दिखलाया करते थे। आखिर हमने श्रील प्रभुपाद के मनोभावों को किस तरह समझ लिया?

स्वरूप कहे,—याते जानिल तोमार मन ।

ताते जानि, हय तोमार कृपार भाजन ॥72॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया; याते-चूँकि; जानिल-वे जानते थे; तोमार-आपके; मन-मन का भाव; ताते-अतः; जानि-मैं समझ सकता हूँ; हय–वे हैं; तोमार-आपकी; कृपार-कृपा के; भाजन-पात्र।

अनुवाद

श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "यदि रूप गोस्वामी आपके मन तथा भावों को जान सकते हैं, तो अवश्य ही उन्हें आपका विशेष आशीर्वाद प्राप्त हुआ होगा।"

प्रभु कहे,—तारे आमि सन्तुष्ट हञा ।

आलिङ्गन कैलु सर्व-शक्ति सञ्चारिया ॥73॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; तारे—उसको; आमि-मैं; सन्तुष्ट हञा–अत्यन्त सन्तुष्ट होकर; आलिङ्गन कैलु-आलिंगन किया; सर्व-शक्ति-सब शक्तियाँ; सञ्चारिया–प्रदान की।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "मैं रूप गोस्वामी से इतना प्रसन्न था कि मैंने उसका आलिंगन कर लिया और उसे भक्ति की विधि का प्रचार करने के लिए सारी आवश्यक शक्तियाँ प्रदान कर दीं।

योग्य पात्र हय गूढ़-रस-विवेचने ।

तुमिओ कहिओ तारे गूढ़-रसाख्याने ॥74॥

योग्य-योग्य; पात्र–पात्र; हय-है; गुढ़-गूढ, रहस्यमय; रस-रस; विवेचने-विवेचन करने में; तुमिओ-तुम भी; कहिओ-कहो; तारे—उसको; गूढ़-गूढ, रहस्यपूर्ण; रस-रस; आख्याने-वर्णन करके।

अनुवाद

"मैं श्रील रूप गोस्वामी को भक्ति के गुह्य रस को समझने के लिए सर्वथा योग्य समझता हूँ और संस्तुति करता हूँ कि तुम उसे भक्ति के विषय में और आगे बतलाओ।"

ए-सब कहिब आगे विस्तार करिञा ।

संक्षेपे उद्देश कैल प्रस्ताव पाइञा ॥75 ॥

ए-सब-ये सब; कहिब-मैं कहूँगा; आगे-बाद में; विस्तार-विस्तार; करिञा-करके; संक्षेपे-संक्षेप में; उद्देश-वर्णन; कैल-किया; प्रस्ताव-अवसर; पाइञा–पाकर।

अनुवाद

मैं इन सब घटनाओं के बारे में बाद में विस्तार से बतलाऊँगा। यहाँ पर मैंने केवल संक्षिप्त वर्णन किया है।

प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्र-मिलितस्

तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गम-सुखम् ।

तथाप्यन्तः-खेलन्मधुर-मुरली-पञ्चम-जुषे

मनो मे कालिन्दी-पुलिन-विपिनाय स्पृहयति ॥76 ॥

प्रियः-अत्यन्त प्रिय; सः-वे; अयम्-यह; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; सहचरि–हे। प्रिय सखी; कुरुक्षेत्र-मिलितः-जो कुरुक्षेत्र के मैदान में मिले हैं; तथा—भी; अहम्-मैं; सा-वही; राधा-राधारानी; तत्व ह; इदम्-यह; उभयोः–हम दोनों; सङ्गम-सुखम्-मिलने का सुख; तथा अपि-तथापि; अन्तः–अन्दर; खेलन्-वादन; मधुर-मधुर; मुरली-मुरली का; पञ्चम–पंचम सुर; जुषे–जो प्रसन्न करता है; मनः-मन; मे–मेरा; कालिन्दी-यमुना नदी के पुलिन–तट पर; विपिनाय–वृक्ष; स्पृहयति–चाहती है।

अनुवाद

[यह श्रीमती राधारानी द्वारा कहा गया श्लोक है।]"हे प्रिय सखी, अब मैं इस कुरुक्षेत्र में अपने अत्यन्त पुराने और प्रिय मित्र कृष्ण से मिली हूँ। मैं वही राधारानी हूँ और अब हम मिल रहे हैं। यह अत्यन्त सुखद है, किन्तु अब भी मेरा मन यमुना-तट पर वहाँ के वन के वृक्षों के नीचे बैठने के लिए लालायित है। मैं वृन्दावन के वन के भीतर पंचम स्वर में गूंजने वाली उनकी मधुर मुरली की ध्वनि सुनने की इच्छुक हूँ।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत पद्यावली (387) में भी आया है।

एइ श्लोकेर संक्षेपार्थ शुन, भक्त-गण ।

जगन्नाथ देखि' यैछे प्रभुर भावन ॥ 77॥

एइ-यह; श्लोकेर-श्लोक का; संक्षेप-अर्थ-संक्षिप्त अर्थ; शुन-सुनो; भक्त-गण-हे भक्तगण; जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ; देखि'–दर्शन करके; यैछे-जैसे; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु की; भावन-भावना।

अनुवाद

अब हे भक्तों, इस श्लोक की संक्षिप्त व्याख्या सुनो। श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ के विग्रह का दर्शन करते हुए इस प्रकार सोचते थे।

श्री-राधिका कुरुक्षेत्रे कृष्णेर दरशन ।

यद्यपि पायेन, तबु भावेन ऐछन ॥ 78॥

श्री-राधिका–श्रीमती राधारानी; कुरुक्षेत्रे-कुरुक्षेत्र के मैदान में; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; दरशनदर्शन; यद्यपि यद्यपि; पायेन-वे करती हैं; तबु-फिर भी; भावेन-सोचती हैं; ऐछन-इस प्रकार।

अनुवाद

वे उन श्रीमती राधारानी के विषय में सोच रहे थे, जो कृष्ण से कुरुक्षेत्र में मिली थीं। यद्यपि वे कृष्ण से वहाँ मिल चुकी थीं, किन्तु फिर भी वे उनके विषय में इस प्रकार सोच रही थीं।

राज-वेश, हाती, घोड़ा, मनुष्य गहन ।

काहाँ गोप-वेश, काहाँ निर्जन वृन्दावन ॥79॥

राज-वेश-राजसी वेशभूषा; हाती—हाथी, घोड़ा-घोड़े; मनुष्य-मनुष्य; गहन-भीड़; काहाँ–कहाँ; गोप-वेश-ग्वाले की पोशाक (वेशभूषा); काहाँ–कहाँ; निर्जन-निर्जन; वृन्दावन-वृन्दावन।

अनुवाद

वे कृष्ण को वृन्दावन के शान्त वातावरण में गोपवेश धारण किये हुए सोच रही थीं। किन्तु कुरुक्षेत्र में तो वे राजसी वेश में थे और उनके साथ हाथी, घोड़े तथा लोगों का समूह था। इस प्रकार वहाँ का वातावरण उनके मिलन के लिए अनुकूल नहीं था।

सेइ भाव, सेइ कृष्ण, सेइ वृन्दावन ।

यबे पाई, तबे हय वाञ्छित पूरण ॥80॥

सेइ भाव-वही परिस्थिति; सेइ कृष्ण-वे कृष्ण; सेइ वृन्दावन-वही वृन्दावन; यबे पाइ–यदि मैं पा जाऊँ; तबे-तब; हय-है; वाञ्छित-वांछित वस्तु; पूरण–पूर्ण।

अनुवाद

इस प्रकार कृष्ण से मिलकर और वृन्दावन के वातावरण के विषय में सोचकर राधारानी ने मन ही मन चाहा कि वे मुझे पुनः वृन्दावन ले जाकर उस शान्त वातावरण में मेरी इच्छा पूरी करें।

आहुश्च ते नलिन-नाभ पदारविन्दं

योगेश्वरैर्हदि विचिन्त्यमगाध-बोधैः ।

संसार-कूप-पतितोत्तरणावलम्बं

गेहं जुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥ 81॥

आहुः-गोपियों ने कहा; च-और; ते-आपके; नलिन-नाभ-हे प्रभु! जिनकी नाभि एक कमल-पुष्प के समान है; पद-अरविन्दम्-चरणकमल; योग-ईश्वरैः-महान् योगियों से; हृदि-हृदय में; विचिन्त्यम्-ध्यान करने के योग्य; अगाध-बोधैः-जो सर्वोच्च विद्वान दार्शनिक थे; संसार-कूप-भौतिक संसार का अन्धा कुआँ; पतित-पतितों का; उत्तरण-उद्धारकों का; अवलम्बम्-एकमात्र आश्रय; गेहम् पारिवारिक व्यवहार; जुषाम्-जो लगे हुए हैं, उनके; अपि यद्यपि; मनसि–मनों में; उदियात्-जागृत हो; सदा-सदा; नः-हमारे।

अनुवाद

गोपियाँ इस प्रकार बोलीं : "हे कमल-पुष्प जैसी नाभि वाले प्रभु! आपके चरणकमल इस भौतिक अस्तित्वरूपी गहरे कुएँ में गिरे हुए व्यक्तियों के लिए एकमात्र आश्रय हैं। आपके चरणों की पूजा एवं ध्यान बड़े-बड़े योगियों और विद्वान दार्शनिकों द्वारा किया जाता है। हमारी मनोकामना है कि ये चरणकमल हमारे हृदयों के भीतर भी उदित हों, यद्यपि हम घर के कार्यकलापों में लगी हुई साधारण स्त्रियाँ हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.82.48) से लिया गया है।

तोमार चरण मोर व्रज-पुर-घरे ।

उदय करये यदि, तबे वाञ्छा पूरे ॥82॥

तोमार-आपके; चरण-चरणकमल; मोर–मेरे; व्रज-पुर-घरे-वृन्दावन के घर में; उदय-जागृत करना; करये—-मैं करती हूँ; यदि यदि; तबे-तब; वाञ्छा -इच्छाएँ; पूरे-पूरी हों।

अनुवाद

गोपियों ने सोचा, "हे प्रभु! यदि आपके चरणकमलों का हमारे वृन्दावन स्थित घरों में फिर पदार्पण हो, तो हमारी मनोकामनाएँ पूरी हो जायेंगी।" ।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपनी कृति अनुभाष्य में टीका की है, "गोपियाँ निष्काम भाव से पूर्णत: भगवान् की सेवा में लगी हुई हैं। वे न तो कृष्ण के ऐश्वर्य से तथा न ही कृष्ण को भगवान् समझ करके उनसे आकर्षित हैं।" गोपियाँ स्वाभाविक रूप से कृष्ण से प्रेम करने के लिए उन्मुख थीं, क्योंकि वे वृन्दावन गाँव के एक आकर्षक युवक थे। ग्रामीण बालिकाएँ होने के कारण गोपियाँ कुरुक्षेत्र से अत्यधिक आकृष्ट नहीं हुईं, जहाँ कृष्ण हाथी-घोड़े तथा राजसी ठाठ से युक्त उपस्थित थे। वास्तव में उन्होंने कृष्ण की इस वातावरण में अधिक सराहना नहीं की। कृष्ण गोपियों के ऐश्वर्य या उनके व्यक्तिगत सौन्दर्य से नहीं, अपितु उनकी शुद्ध भक्ति से आकृष्ट थे। इसी तरह गोपियाँ राजकुमार कृष्ण से नहीं, अपितु गोप-कुमार कृष्ण के प्रति आकृष्ट थीं। भगवान् कृष्ण अचिन्त्य रूप से शक्तिमान हैं। उन्हें समझने के लिए बड़े-बड़े योगी तथा सन्त-महात्मा सारे भौतिक कार्यों को त्यागकर उनका ध्यान करते हैं। इसी तरह भौतिक भोग में लिप्त रहने वाले, भौतिक ऐश्वर्य की वृद्धि चाहने वाले, परिवार का भरण-पोषण करने वाले या इस संसार से मुक्ति चाहने वाले लोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण में जाते हैं। किन्तु ऐसे कार्यों तथा इच्छाओं से गोपियाँ पूर्णतया अनजान हैं। वे इस प्रकार के शुभ कार्य करने में तनिक भी दक्ष नहीं हैं। पहले से आध्यात्मिक रूप से प्रबुद्ध होने के कारण वे दूर स्थित वृन्दावन गाँव में भगवान् की सेवा करने में अपनी विशुद्ध इन्द्रियों को लगाती हैं। वे गोपियाँ न तो शुष्क ज्ञान में, न कला, संगीत या अन्य सांसारिक विषयों में कोई रुचि रखती हैं। वे भौतिक भोग तथा वैराग्य के ज्ञान से सर्वथा अनजान हैं। इनकी एकमात्र अभिलाषा यह है कि कृष्ण वापस आकर इनके साथ दिव्य लीलाएँ करके आनन्द लें। इनकी इतनी ही इच्छा है कि कृष्ण वृन्दावन में ही रहे, जिससे वे उनकी प्रसन्नता के लिए उनकी सेवा कर सकें। इसमें लेशमात्र भी निजी इन्द्रियतृप्ति का भाव नहीं है।

भागवतेर श्लोक-गूढार्थ विशद करिञा ।

रूप-गोसाञि श्लोक कैल लोक बुझाइञा ॥83॥

भागवतेर-श्रीमद्भागवत का; श्लोक-श्लोक; गूढ़-अर्थ-गूढ़ अर्थ; विशद-विस्तृत वर्णन; करिञा-करके; रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी; श्लोक-श्लोक; कैल-रचा; लोक-सामान्य लोग; बुझाइञा–समझाने हेतु॥

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने साधारण जनों को समझाने के लिए श्रीमद्भागवत के श्लोक के गुह्य अर्थ को एक श्लोक में बतलाया है।

या ते लीला-रस-परिमलोद्गारि-वन्यापरीता

धन्या क्षौणी विलसति वृता माथुरी माधुरीभिः ।

तत्रास्माभिश्चटुल-पशुपी-भाव-मुग्धान्तराभिः

संवीतस्त्वं कलय वदनोल्लासि-वेणुर्विहारम् ॥84॥

या-वह; ते-आपके; लीला-रस-लीलाओं से प्राप्त रस में; परिमल-सुगन्ध; उद्गारि–फैलाकर; वन्य-आपरीता–वनों से भरे; धन्या-धन्य; क्षौणी-धरती; विलसति-भोगता है; वृता-घिरे हुए; माथुरी-मथुरा प्रदेश; माधुरीभिः-सौन्दर्य से; तत्र-वहाँ; अस्माभिः-हमारे द्वारा; चटुल–टिमटिमाते हुए; पशुपी-भाव-गोपियों की तरह प्रसन्न भाव से; मुग्ध-अन्तराभिः-मुग्ध हृदयों वालों से; संवीतः-घिरे हुए; त्वम्-आप; कलय-कृपा करो; वदन–मुख पर; उल्लासि-थिरकती हुई; वेणुः-बांसुरी से; विहारम्-क्रीड़ा युक्त लीलाएँ।

अनुवाद

गोपियों ने आगे कहा-"हे कृष्ण! आपके लीला-रसों की सुगन्धि मथुरा जनपद की माधुरी से घिरे हुए वृन्दावन की धन्य भूमि के वनों में व्याप्त है। इस अद्भुत भूमि के अनुकूल वातावरण में अपने अधरों पर थिरकने वाली बाँसुरी से तथा हम गोपियों के मध्य, जिनके हृदय अकथनीय आह्लादपूर्ण भावों से सदैव मोहित रहते हैं, आप अपनी लीलाओं का आनन्द लूट सकते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी रचित ललित माधव (10.38) से लिया गया है।

एइ-मत महाप्रभु देखि' जगन्नाथे ।

सुभद्रा-सहित देखे, वंशी नाहि हाते ॥85॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; देखि'–देखकर; जगन्नाथे-भगवान जगन्नाथ; सुभद्रा-सुभद्रा; सहित–सहित; देखे–वे देखते हैं; वंशी-वंशी; नाहि-नहीं; हाते-हाथ में।

अनुवाद

इस तरह जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथ का दर्शन किया, तो उन्होंने देखा कि वे अपनी बहन सुभद्रा के साथ थे और उनके हाथ में वंशी नहीं थी।

त्रिभङ्ग सुन्दर व्रजे व्रजेन्द्र-नन्दन ।

काहाँ पाब, एइ वाञ्छा बाड़े अनुक्षण ॥86॥

त्रिभङ्ग–त्रिभंग, तीन स्थानों पर मुड़े; सुन्दर-सुन्दर; व्रजे-वृन्दावन में; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र; काहाँ–कहाँ; पाब-पाऊँगा; एइ–यह; वाञ्छा-इच्छा; बाड़े-बढ़ती है; अनुक्षण-लगातार।

अनुवाद

गोपियों के हर्षोन्माद भाव में मग्न श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् जगन्नाथ को अपने आदि स्वरूप, वृन्दावन में त्रिभंगी शरीर के कारण अत्यन्त सुन्दर लगने वाले नन्दनन्दन कृष्ण-रूप में देखना चाहते थे। इस रूप का दर्शन करने की उनकी इच्छा निरन्तर बढ़ती जा रही थी।

राधिका-उन्माद यैछे उद्धव-दर्शने ।

उद्घूर्णा-प्रलाप तैछे प्रभुर रात्रि-दिने ॥ 87॥

राधिका-उन्माद- श्रीमती राधारानी का उन्माद; यैछे-जैसा; उद्धव-दर्शने-उद्धव को देखने से; उद्घूर्णा-प्रलाप-उन्माद में असंगत बातचीत; तैछे-इसी प्रकार; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु का; रात्रि-दिने–दिन-रात।

अनुवाद

जिस प्रकार श्रीमती राधारानी ने उद्धव की उपस्थिति में एक भौंरे से असंगत रूप में प्रलाप किया था, उसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में उन्मत्त की तरह रात-दिन असंगत बातें करते थे।

तात्पर्य

यह उन्माद साधारण पागलपन नहीं है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु विक्षिप्त की भाँती असंगत बातें करते थे, तब वे दिव्य प्रेम के भावोन्माद में रहते थे। ऐसी सर्वोच्च भावदशा में मोहने वाले की उपस्थिति में मोहित होने की अनुभूति होती है। जब मोहने वाला तथा मोहित विलग होते हैं, तब मोहन अर्थात् भ्रम उत्पन्न होता है। जब कोई वियोग के कारण इस प्रकार भ्रमित हो जाता है, तो वह स्तब्ध हो जाता है और उस समय उसके शरीर में दिव्य भावावेश के सारे लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इन लक्षणों के प्रकट होने पर भक्त अचिन्त्य रूप से उन्मत्त दिखाई देता है। इसे आध्यात्मिक उन्माद कहते हैं। इस अवस्था में काल्पनिक वार्तालाप होता है और उन्मत्त व्यक्ति की-सी अनुभूति होने लगती है। श्रीमती राधारानी की उन्माद दशा का वर्णन करते हुए उद्धव ने कृष्ण से कहा, "हे कृष्ण, आपके वियोग की अत्यन्त उत्कटता के कारण श्रीमती राधारानी कभी जंगल के कुंज में शयन करती हैं, कभी श्याम वर्ण के बादलों को कोसती हैं और कभी जंगल के गहन अंधकार में इधर-उधर विचरण करती हैं। इस तरह वे तो पगली सी बन गई हैं।"

द्वादश वत्सर शेष ऐछे गोङाइल ।

एइ मत शेष-लीला त्रि-विधाने कैल ॥88॥

द्वादश-बारह; वत्सर-वर्ष; शेष-अन्तिम; ऐछे-उस प्रकार; गोङाइल-बिताए; एइ मत-इस प्रकार; शेष-लीला-अन्तिम लीलाएँ, त्रि-विधाने–तीन प्रकार से; कैल-की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम बारह वर्ष इसी दिव्य उन्माद में बीते। इस तरह उन्होंने अपनी अन्त्य लीलाएँ तीन प्रकार से सम्पन्न कीं।

सन्न्यास करि' चब्बिश वत्सर कैला ये ये कर्म ।

अनन्त, अपार—तार के जानिबे मर्म ॥89॥

सन्न्यास करि'-संन्यास लेने के बाद; चब्बिश वत्सर–चौबीस वर्ष; कैला-की; से ये-जो जो; कर्म-लीलाएँ; अनन्त-अनन्त; अपार-अपार; तार–उनका; के-कौन; जानिबे-जानेगा; मर्म-भेद, रहस्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण करने के बाद चौबीस वर्षों तक जो-जो लीलाएँ कीं, वे असंख्य तथा अपार थीं। ऐसी लीलाओं का मर्म भला कौन समझ सकता है?

उद्देश करिते करि दिग्दरशन ।

मुख्य मुख्य लीलार करि सूत्र गणन ॥ 90 ॥

उद्देश-संकेत; करिते-करने हेतु; करि-मैं करता हूँ; दिग्दरशन-दिग्दर्शन, सामान्य अवलोक; मुख्य मुख्य–मुख्य; लीलार–लीलाओं का; करि-मैं करता हूँ; सूत्र-रूपरेखा; गणन-गणना।

अनुवाद

उन लीलाओं का संकेत करने के उद्देश्य से मैं मुख्य-मुख्य लीलाओं को सूत्र रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

प्रथम सूत्र प्रभुर सन्न्यास-करण ।

सन्न्यास करि' चलिला प्रभु श्री-वृन्दावन ॥91॥

प्रथम-प्रथम; सूत्र–रूपरेखा; प्रभुर–महाप्रभु का; सन्न्यास-करण-संन्यास लेना; सन्न्यास करि'-संन्यास लेने के बाद; चलिला-गये; प्रभु–महाप्रभु; श्री-वृन्दावन-वृन्दावन की ओर।

अनुवाद

पहला सूत्र यह है : संन्यास ग्रहण करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन की ओर चल पड़े।

तात्पर्य

ये कथन श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने के स्पष्ट तथा प्रामाणिक वर्णन हैं। उनके द्वारा संन्यास ग्रहण किये जाने की तुलना मायावादियों द्वारा संन्यास ग्रहण करने से कदापि नहीं की जा सकती। संन्यास ग्रहण करने

के बाद चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जाना चाहते थे। वे उन मायावादी सन्न्यासियों से सर्वथा भिन्न थे, जो ब्रह्म में समा जाने के लिए उत्सुक रहते हैं। वैष्णव के लिए संन्यास ग्रहण करने का अर्थ है, सारे भौतिक कार्यकलापों से छुटकारा पाना और भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में पूरी तरह लग जाना। इसकी पुष्टि श्रील रूप गोस्वामी द्वारा (भक्तिरसामृतसिन्धु 1.2.255 में) की गई है- अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जत:/ निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते । वैष्णव के लिए संन्यास आश्रम का अर्थ है, भौतिक वस्तुओं से पूर्णतया विरक्ति और भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में निरन्तर लगे रहना। किन्तु मायावादी संन्यासी यह नहीं जानते कि प्रत्येक वस्तु को भगवान् की सेवा में किस प्रकार लगाई जाये। उन्हें भक्ति की शिक्षा नहीं मिली रहती, इसलिए वे भौतिक वस्तुओं को अस्पृश्य मानते हैं। ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या-मायावादी सोचते हैं कि यह जगत् मिथ्या है, किन्तु वैष्णव संन्यासी इस प्रकार नहीं सोचते। वे तो कहते हैं, "जगत् मिथ्या क्यों होना चाहिए? यह वास्तविक है। और यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा के निमित्त है।" वैष्णव संन्यासी के लिए वैराग्य का अर्थ है, अपने खुद के इन्द्रिय-भोग के लिए कोई वस्तु स्वीकार न करना। भक्ति का अर्थ है प्रत्येक वस्तु का उपयोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की तुष्टि के लिए करना।

प्रेमेते विह्वल बाह्य नाहिक स्मरण ।

राढ़-देशे तिन दिन करिला भ्रमण ॥ 92 ॥

प्रेमेते-कृष्ण के प्रेमावेश में; विह्वल-विह्वल; बाह्य-बाहर से; नाहिक-नहीं; स्मरण-स्मरण; राढ़-देशे–राढ़ प्रदेश में; तिन दिन-तीन दिन; करिला-की; भ्रमण-यात्रा।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन की ओर जा रहे थे, तो वे कृष्ण-प्रेम में विह्वल हो गये और उनकी बाहरी जगत् की सारी सुध-बुध जाती रही। इस तरह उन्होंने तीन दिनों तक उस राढ़देश में भ्रमण किया, जो ऐसा प्रदेश है, जिसमें गंगा नदी नहीं बहती।

नित्यानन्द प्रभु महाप्रभु भुलाइया ।

गङ्गा-तीरे लञा आइला 'यमुना' बलिया ॥ 93॥

नित्यानन्द प्रभु–नित्यानन्द प्रभु; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भुलाइया-भ्रमित किया; गङ्गा-तीरे-गंगा के तट पर; लञा-ले जाकर; आइला–लाये; यमुना-यमुना नदी; बलिया-सूचित करके।

अनुवाद

सर्वप्रथम नित्यानन्द प्रभु ने श्री चैतन्य महाप्रभु को गंगा के किनारे-किनारे ले जाते समय यह कहकर भ्रमित कर दिया कि यह यमुना नदी है।

शान्तिपुरे आचार्येर गृहे आगमन ।

प्रथम भिक्षा कैल ताहाँ, रात्रे सङ्कीर्तन ॥ 94॥

शान्तिपुरेशान्तिपुर नगर में; आचार्येर-अद्वैत आचार्य के; गृहे-घर; आगमन-आकर; प्रथम-पहले; भिक्षा-भिक्षा ग्रहण; कैल-की; ताहाँ-वहाँ; रात्रे-रात को; सङ्कीर्तन-संकीर्तन।

अनुवाद

तीन दिन बाद श्री चैतन्य महाप्रभु शान्तिपुर में अद्वैत आचार्य के घर आये और वहाँ उन्होंने भिक्षा ग्रहण की। यह उनके द्वारा प्रथम भिक्षा-ग्रहण था। उस रात उन्होंने वहाँ सामूहिक कीर्तन किया।

तात्पर्य

ऐसा लगता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु दिव्य भावावेश में तीन दिनों तक भोजन करना ही भूल गये थे। तत्पश्चात् नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें यह कहकर बहका दिया कि यह गंगा नहीं यमुना नदी है। महाप्रभु वृन्दावन जाने के भावोन्माद में थे, अतएव वे यमुना को देखकर परम प्रसन्न हुए, यद्यपि वास्तव में यह गंगा नदी थी। इस तरह तीन दिन बाद महाप्रभु को शान्तिपुर में अद्वैत प्रभु के घर लाया गया, जहाँ उन्होंने भोजन ग्रहण किया। वहाँ रहने के दौरान महाप्रभु अपनी माता शचीदेवी से मिले और समस्त भक्तों के साथ मिलकर प्रत्येक रात को सामूहिक कीर्तन करते रहे।

माता भक्त-गणेर ताहाँ करिल मिलन ।

सर्व समाधान करि' कैल नीलाद्रि-गमन ॥ 95॥

माता-माता; भक्त-गणेर-भक्तों के; ताहाँ–उस स्थान में; करिल-किया; मिलन-मिले; सर्व-सब; समाधान-समाधान; करि'-करके; कैल–किया; नीलाद्रि-गमन-जगन्नाथ पुरी को गमन।

अनुवाद

अद्वैत प्रभु के घर में वे अपनी माता से तथा मायापुर के सारे भक्तों से मिले। वहाँ पर सबका समाधान करने के बाद वे जगन्नाथ पुरी चले गये।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु भलीभाँती जानते थे कि उनके द्वारा संन्यास ग्रहण किया जाना उनकी माता के लिए वज्रपात समान था। अतएव उन्होंने मायापुर से अपनी माता तथा भक्तों को बुलवाया और श्री अद्वैत आचार्य के माध्यम से वे संन्यास ग्रहण करने के बाद अन्तिम बार उन सबसे मिले। उनकी माता उनका मुंडित मस्तक देखकर अत्यधिक दुःखी हुईं। उनके सिर पर अब सुन्दर बाल नहीं थे। सारे भक्तों ने शचीमाता को सान्त्वना दी और श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता से उनके लिए भोजन पकाने के लिए कहा, क्योंकि तीन दिन से भोजन ग्रहण न करने के कारण वे अत्यधिक भूखे थे। उनकी माता तुरन्त राजी हो गईं और सब कुछ भूलकर श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए तब तक भोजन बनाती रहीं, जब तक वे श्री अद्वैत प्रभु के घर रहीं। कुछ दिनों के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता से जगन्नाथ पुरी जाने की अनुमति मांगी। संन्यास ग्रहण करने के बाद अपनी माता के कहने पर उन्होंने जगन्नाथ पुरी को अपना मुख्य स्थान बनाया था। इस तरह सब कुछ सुलझ गया और श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी माता की अनुमति से जगन्नाथ पुरी के लिए चल पड़े।

पथे नाना लीला-रस, देव-दरशन ।

माधव-पुरीर कथा, गोपाल-स्थापन ॥ 96 ॥

पथे—मार्ग में; नाना-नाना; लीला-रस-दिव्य लीलाएँ; देव-दरशन-मन्दिरों में दर्शन; माधव-पुरीर-माधवेन्द्र पुरी की; कथा-घटनाएँ; गोपाल–गोपाल की; स्थापन-स्थापना।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी के मार्ग में श्री चैतन्य महाप्रभु ने अन्य अनेक लीलाएँ कीं। उन्होंने विविध मन्दिरों की मुलाकात ली और गोपाल की स्थापना एवं माधवेन्द्र पुरी की कथा सुनी।

तात्पर्य

ये माधव पुरी माधवेन्द्र पुरी हैं। अन्य माधव पुरी माध्वाचार्य हैं, जो गदाधर पण्डित की परम्परा में एक भक्त के गुरु थे और जिन्होंने श्री मंगल-भाष्य नामक एक ग्रंथ की रचना की थी। माध्वाचार्य इस श्लोक में उल्लिखित माधवेन्द्र पुरी से भिन्न हैं।

क्षीर-चुरि-कथा, साक्षि-गोपाल-विवरण ।

नित्यानन्द कैल प्रभुर दण्ड-भञ्जन ॥ 97॥

क्षीर-चुरि-कथा-खीर चुराने की कथा; साक्षि-गोपाल-विवरण-साक्षीगोपाल का वर्णन; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; कैल-किया; प्रभुर–महाप्रभु का; दण्ड-भञ्जन-संन्यास दण्ड तोड़ा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु से क्षीर-चुरी गोपीनाथ एवं साक्षीगोपाल की कथाएँ सुनीं। इसके बाद नित्यानन्द प्रभु ने श्री चैतन्य महाप्रभु का संन्यास-दण्ड तोड़ दिया।

तात्पर्य

यह क्षीर-चुरी गोपीनाथ रेमुणा नामक स्थान में उत्तर-पूर्व रेलवे लाइन, जो पहले बंगाल-मायापुर रेल लाइन कहलाती थी, उप पर स्थित बालासोर स्टेशन से लगभग 4 मील दूरी पर है। यह स्टेशन सुप्रसिद्ध खड़गपुर जंकशन से कुछ ही मील की दूरी पर स्थित है। कुछ समय हुआ इस मन्दिर का भार मेदिनीपुर जिले की सीमा पर स्थित गोपीवल्लभपुर के श्यामसुन्दर अधिकारी को सौंपा गया था। श्यामसुन्दर अधिकारी श्यामानन्द गोस्वामी के मुख्य शिष्य रसिकानन्द मुरारी के वंशज थे।

जगन्नाथ पुरी स्टेशन से कुछ ही मील पहले साक्षीगोपाल नामक एक छोटा-सा स्टेशन है। इस स्टेशन के पास सत्यवादी नामक एक गाँव है, जहाँ साक्षीगोपाल का मन्दिर स्थित है।

क्रुद्ध हञा एका गेला जगन्नाथ देखिते ।

देखिया मूच्छित हञा पड़िला भूमिते ॥98॥

क्रुद्ध-क्रुद्ध; हञा–होकर; एका-अकेले; गेला-गये; जगन्नाथ-भगवान जगन्नाथ; देखिते–के दर्शन हेतु; देखिया-जगन्नाथ के दर्शन के बाद; मूच्छित-मूर्छित; हञा-होकर; पड़िला–गिर पड़े; भूमिते-भूमि पर।

अनुवाद

इसके बाद जब नित्यानन्द प्रभु ने उनका संन्यास-दण्ड तोड़ डाला, तो श्री चैतन्य महाप्रभु बाह्य रूप से अत्यधिक क्रुद्ध हुए और वे उनका साथ छोड़कर अकेले ही जगन्नाथ मन्दिर की यात्रा के लिए चल पड़े। जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ-मन्दिर के भीतर प्रविष्ट हुए और उन्होंने भगवान् जगन्नाथ का दर्शन किया, तो वे तुरन्त अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े।

सार्वभौम लञा गेला आपन-भवन ।

तृतीय प्रहरे प्रभुर हइल चेतन ॥19॥

सार्वभौम–सार्वभौम भट्टाचार्य; लञा–लेकर; गेला–गये; आपन-भवन-अपने घर में; तृतीय प्रहरे-दोपहर के बाद; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु को; हइल-आई; चेतन-चेतना।

अनुवाद

जब मन्दिर में श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् जगन्नाथ के दर्शन करने के बाद अचेत होकर गिर पड़े, तो सार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें अपने घर ले गये। महाप्रभु दोपहर के बाद तक अचेत रहे। तब अन्त में उन्हें चेतना आई।

नित्यानन्द, जगदानन्द, दामोदर, मुकुन्द ।

पाछे आसि' मिलि' सबे पाइल आनन्द ॥ 100 ॥

नित्यानन्द–नित्यानन्द; जगदानन्द-जगदानन्द; दामोदर दामोदर; मुकुन्द मुकुन्द; पाछे आसि'–आकर; मिलि'–मिले; सबे-सब; पाइल-पाया; आनन्द–आनन्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु नित्यानन्द का साथ छोड़कर अकेले जगन्नाथ मन्दिर गये थे, किन्तु बाद में नित्यानन्द, जगदानन्द, दामोदर तथा मुकुन्द उन्हें मिलने के लिए आये और उन्हें देखकर वे सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए।

तबे सार्वभौमे प्रभु प्रसाद करिल ।

आपन-ईश्वर-मूर्ति ताँरे देखाइल ॥101॥

तबे-उस समय; सार्वभौमे-सार्वभौम भट्टाचार्य को प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रसाद करिल-कृपा की; आपन-अपनी; ईश्वर-मूर्ति-भगवान् का मूल रूप; ताँरे—उनको; देखाइल-दिखाया।

अनुवाद

इस घटना के बाद भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य को अपना आदि-भगवान् रूप दिखलाकर उन पर कृपा की।

तबे त' करिला प्रभु दक्षिण गमन ।

कूर्म-क्षेत्रे कैल वासुदेव विमोचन ॥ 102॥

तबे त'–तत्पश्चात्; करिला–किया; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; दक्षिण–दक्षिण भारत को; गमन-गमन; कूर्म-क्षेत्रे-कुर्मक्षेत्र नामक तीर्थस्थान पर; कैल–किया; वासुदेव-वासुदेव; विमोचन-उद्धार।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य पर कृपादृष्टि करने के बाद महाप्रभु दक्षिण भारत के लिए चल पड़े। जब वे कूर्मक्षेत्र आये, तो वहाँ उन्होंने वासुदेव नामक व्यक्ति का उद्धार किया।

जियड़-नृसिंहे कैल नृसिंह-स्तवन ।

पथे-पथे ग्रामे-ग्रामे नाम-प्रवर्तन ॥ 103 ॥

जियड़-नृसिंहे–जियड़ नृसिंह नामक तीर्थस्थान; कैल–किया; नृसिंह-नृसिंह की; स्तवन-स्तुति; पथे-पथे—मार्ग में; ग्रामे-ग्रामे–प्रत्येक गाँव में; नाम-प्रवर्तन-भगवान् के पावन नाम का प्रचार।

अनुवाद

कूर्मक्षेत्र की यात्रा करने के बाद महाप्रभु दक्षिण भारत में जियड़ नृसिंह के मन्दिर गये और वहाँ भगवान् नृसिंह देव की स्तुति की। रास्ते में उन्होंने प्रत्येक गाँव में हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन का शुभारम्भ किया।

गोदावरी-तीर-वने वृन्दावन-भ्रम ।

रामानन्द राय सह ताहाञि मिलन ॥ 104॥

गोदावरी-तीर-गोदावरी नदी के तट पर; वने-वन में; वृन्दावन-भ्रम-वृन्दावन के भ्रम में; रामानन्द राय-रामानन्द राय; सह-साथ; ताहाञि-वहाँ; मिलन-मिले।

अनुवाद

एक बार महाप्रभु ने गोदावरी नदी के तट पर स्थित एक वन को वृन्दावन समझ लिया। वहाँ उनकी भेंट रामानन्द राय से हुई।

त्रिमल्ल-त्रिपदी-स्थान कैल दरशन ।

सर्वत्र करिल कृष्ण-नाम प्रचारण ॥105॥

त्रिमल्ल-त्रिमल्ल अर्थात् तिरूमल नामक स्थान; त्रिपदी–तथा त्रिपदी या तिरुपति; स्थान-स्थान; कैल-किया; दरशन-दर्शन; सर्वत्र-सर्वत्र; करिल–किया; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण के पावन नाम का प्रचारण–प्रचार।

अनुवाद

उन्होंने तिरुमल तथा तिरुपति नामक स्थानों की यात्रा की और वहाँ उन्होंने भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन का सर्वत्र प्रचार किया।

तात्पर्य

यह पवित्र स्थान दक्षिण भारत में तांजोर (चित्तूर) जिले में स्थित है। तिरुपति का मन्दिर व्यंकटाचल की घाटी में स्थित है और उसमें भगवान् रामचन्द्र का श्रीविग्रह है। व्यंकटाचल पर्वत की चोटी पर बालाजी का सुप्रसिद्ध मन्दिर है।

तबे त' पाषण्डि-गणे करिल दलन ।

अहोवल-नृसिंहादि कैल दरशन ॥106 ॥

तबे त'-तत्पश्चात्; पाषण्डि-गणे-नास्तिकों का; करिल–किया; दलन-दलन; अहोवल-नृसिंह-आदि-नृसिंह देव नामक अहोवल मन्दिर; कैल–किया; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

तिरुमल तथा तिरुपति मन्दिर के दर्शन के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु को कुछ नास्तिकों का दमन करना पड़ा। इसके बाद उन्होंने अहोवल-नृसिंह मन्दिर में दर्शन किया।

तात्पर्य

अहोवल मन्दिर दक्षिणात्य में कर्णल जिले के अन्तर्गत सार्बल तहसील में स्थित है। पूरे जिले में इस प्रसिद्ध मन्दिर की लोगों द्वारा प्रशंसा की जाती है। इसके अतिरिक्त आठ मन्दिर और हैं और ये सब मिलाकर नव-नृसिंह नन्दिर कहलाते हैं। इन मन्दिरों की बनावट और कलात्मक नक्काशी अत्यन्त अद्भुत है। किन्तु स्थानीय गजट कर्णल मैन्युल से पता चलता है कि यह काम अधूरा है।

श्री-रङ्ग-क्षेत्र आइला कावेरीर तीर ।

श्री-रङ्ग देखिया प्रेमे हइला अस्थिर ॥ 107॥

श्री-रङ्ग-क्षेत्र-वह स्थान जहाँ रंगनाथ मन्दिर स्थित है; आइला–आये; कावेरीर-कावेरी नदी के; तीर-तट; श्री-रङ्ग देखिया-श्रीरंग मन्दिर देखने के बाद; प्रेमे-भगवत्-प्रेम में; हइला–हो गये; अस्थिर–अस्थिर, विह्वल।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कावेरी के तट पर स्थित श्रीरंग क्षेत्र में आये, तो उन्होंने श्री रंगनाथ मन्दिर में दर्शन किये और वहाँ पर वे भगवत्प्रेम के आनन्द में विह्वल हो गये।

त्रिमल्ल भट्टेर घरे कैल प्रभु वास ।

ताहाञि रहिला प्रभु वर्षा चारि मास ॥108॥

त्रिमल्ल भट्टेर–त्रिमल्ल भट्ट के; घरे–घर पर; कैल–किया; प्रभु–महाप्रभु ने; वास-निवास; ताहाञि-वहाँ; रहिला-रहे; प्रभु–महाप्रभु; वर्षा-वर्षाऋतु के; चारि-चार; मास-महीने।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु वर्षा ऋतु के चार महीने त्रिमल्ल भट्ट के घर में रहे।

श्री-वैष्णव त्रिमल्ल-भट्ट–परम पण्डित।

गोसाञिर पाण्डित्य-प्रेमे हइला विस्मित ॥ 109॥

श्री-वैष्णव त्रिमल्ल-भट्ट–श्री वैष्णव त्रिमल भट्ट; परम-परम; पण्डित–विद्वान; गोसाञिर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; पाण्डित्य–विद्वत्ता; प्रेमे–तथा भगवत्-प्रेम; हइला-था; विस्मित–विस्मित।

अनुवाद

श्री त्रिमल्ल भट्ट श्री-वैष्णव संप्रदाय का सदस्य होने के साथ ही प्रकाण्ड विद्वान भी थे; अतएव जब उन्होंने परम विद्वान एवं महान् भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु को देखे, तो वे अत्यन्त विस्मित हुए।

चातुर्मास्य ताँहा प्रभु श्री-वैष्णवेर सने।

गोङाइल नृत्य-गीत-कृष्ण-सङ्कीर्तने ॥ 110॥

चातुर्मास्य-चातुर्मास्य (वर्षा ऋतु के); ताँहा-वहाँ; प्रभु–महाप्रभु; श्री-वैष्णवेर सने-श्री-वैष्णवों के साथ; गोङाइल -बिताए; नृत्य-नाचते हुए; गीत-गाते हुए; कृष्ण-सङ्कीर्तने– भगवान् कृष्ण के पावन नाम का संकीर्तन करते हुए।

अनुवाद

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री-वैष्णवों के साथ नृत्य, गान तथा कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करते हुए चातुर्मास व्यतीत किये।

चातुर्मास्य-अन्ते पुनः दक्षिण गमन।

परमानन्द-पुरी सह ताहाञि मिलन ॥111॥

चातुर्मास्य-अन्ते–चार्तुमास्य के अन्त में; पुनः पुनः; दक्षिण गमन–दक्षिण भारत गये; परमानन्द-पुरी-परमानन्द पुरी; सह–के साथ; ताहाञि-वहाँ; मिलन–मिले।

अनुवाद

चातुर्मास के समाप्त होने पर श्री चैतन्य महाप्रभु सारे दक्षिण भारत में भ्रमण करते रहे। तभी उनकी भेंट परमानन्द पुरी से हुई।

तबे भट्टथारि हैते कृष्ण-दासेर उद्धार ।

राम-जपी विप्र-मुखे कृष्ण-नाम प्रचार ॥ 112॥

तबे-इसके बाद; भट्ट-थारि-एक भट्टथारी; हैते–से; कृष्ण-दासेर-कृष्णदास का; उद्धार-उद्धार; राम-जपी-भगवान् राम का नाम जपने वाले; विप्र-मुखे-ब्राह्मणों को; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का नाम; प्रचार–प्रचार किया।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने भट्टथारि के चंगुल से अपने सेवक कृष्णदास को बचाया। इसके बाद उन्होंने शिक्षा दी कि भगवान् कृष्ण के नाम का कीर्तन उन ब्राह्मणों को भी करना चाहिए, जो भगवान् राम के नाम का कीर्तन करने के अभ्यस्त हैं।

तात्पर्य

मालाबार जिले के ब्राह्मणों के एक समुदाय को नम्बुद्रि-ब्राह्मण कहा जाता है, जिनके पुरोहित भट्टथारि होते हैं। इन भट्टथारियों को अनेक तान्त्रिक कलाएँ आती हैं—यथा किसी मनुष्य को मारना, उसे वश में करना, उसे विनष्ट करना, इत्यादि। वे लोग इन काले जादुओं में अत्यन्त पटु होते हैं। ऐसे ही एक भट्टथारि ने श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी सेवक कृष्णदास को भ्रमित कर दिया, जब वह महाप्रभु के साथ दक्षिण भारत की यात्रा पर था। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस कृष्णदास को किसी तरह से भट्टथारि के चंगुल से छुड़ाया। श्री चैतन्य महाप्रभु पतितपावन के नाम से सुविख्यात हैं और उन्होंने अपने सेवक कृष्णदास का उद्धार करके इसे चरितार्थ किया। बंगाल में कभी-कभी भट्टथारि शब्द को बिगाड़कर भट्टमारि कहा जाता है।

श्री-रङ्ग-पुरी सह ताहाञि मिलन ।

रामदास विप्रेर कैल दुःख-विमोचन ॥ 113॥

श्री-रङ्ग-पुरी–श्रीरंग पुरी; सह–के साथ; ताहाञि-वहाँ; मिलन–मिलन; रामदास-रामदास नामक; विप्रेर-ब्राह्मण का; कैल-किया; दुःख-विमोचन-दु:ख निवारण।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु श्री रंग पुरी से मिले और उन्होंने रामदास नामक एक ब्राह्मण के सारे दुःखों को दूर किया।

तत्त्व-वादी सह कैल तत्त्वेर विचार ।

आपनाके हीन-बुद्धि हैल ताँ-सबार ॥ 114॥

तत्त्व-वादी-मध्वाचार्य सम्प्रदाय का एक अंग; सह–के साथ; कैल-किया; तत्त्वेर-परम सत्य का; विचार-विचार विमर्श; आपनाके–आपस में; हीन-बुद्धि-हीन बुद्धि समझकर; हैल–था; ताँसबार—सभी विरोधी दलों का।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तत्त्ववादी सम्प्रदाय से भी विचार-विमर्श किया और उन तत्त्ववादियों ने अपने आपको निम्न वैष्णव अनुभव किया।

तात्पर्य

तत्त्ववादी सम्प्रदाय मध्वाचार्य के वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं, किन्तु उनका आचरण मध्वाचार्य के यथार्थ वैष्णव सिद्धान्त से भिन्न है। वहाँ उत्तरराढ़ी नामक एक मठ है, जिसके एक मठाधीश का नाम रघुवर्यतीर्थ मध्वाचार्य है।

अनन्त, पुरुषोत्तम, श्री जनार्दन ।

पद्मनाभ, वासुदेव कैल दरशन ॥ 115॥

अनन्त-अनन्तदेव; पुरुषोत्तम–पुरुषोत्तम; श्री-जनार्दन–श्री जनार्दन; पद्म-नाभ-पद्मनाभ; वासुदेव-वासुदेव; कैल–किया; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने अनन्तदेव, पुरुषोत्तम, श्री जनार्दन, पद्मनाभ तथा वासुदेव के विष्णु-मन्दिरों में दर्शन किया।

तात्पर्य

अनन्त पद्मनाभ विष्णु का मन्दिर त्रिवेन्द्रम (तिरुवनन्थपुरम) जिले में स्थित है। उस भूभाग में यह मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। श्री जनार्दन नामक एक अन्य विष्णु मन्दिर त्रिवेन्द्रम जिले के उत्तर में लगभग 26 मील की दूरी पर वकला नामक रेलवे स्टेशन के पास स्थित है।

तबे प्रभु कैल सप्त-ताल विमोचन ।

सेतु-बन्धे स्नान, रामेश्वर दरशन ॥ 116 ॥

तबे-तत्पश्चात्; प्रभु–महाप्रभु; कैल–किया; सप्त-ताल-विमोचन-सात ताल वृक्षों का उद्धार; सेतु-बन्धे-कुमारी अन्तरीप पर; स्नान-स्नान करके; रामेश्वर–रामेश्वर मन्दिर; दशन-दर्शन।

अनुवाद

इसके बाद भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने विख्यात सप्ततात वृक्षों का उद्धार किया, सेतुबन्ध रामेश्वर में स्नान किया और शिवजी अर्थात् रामेश्वर के मन्दिर में दर्शन किया।

तात्पर्य

कहा जाता है कि सप्ततात वृक्ष अत्यन्त प्राचीन भारी-भरकम ताड़ के वृक्ष थे। एक बार बालि तथा उसके भाई सुग्रीव के बीच लड़ाई हुई और भगवान् रामचन्द्र ने सुग्रीव का पक्ष लेकर इन्हीं विख्यात वृक्षों में से एक के पीछे छुपकर बालि का वध किया था। जब श्री चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत की यात्रा पर थे, तो उन्होंने इन वृक्षों का आलिंगन किया। इससे इन वृक्षों का उद्धार हो गया और वे सीधे वैकुण्ठ चले गये।

ताहाञि करिल कूर्म-पुराण श्रवण ।

माया-सीता निलेक रावण, ताहाते लिखन ॥117॥

ताहाञि-वहाँ; करिल-किया; कूर्म-पुराण-कूर्म पुराण का; श्रवण-श्रवण; माया-सीता-माया सीता; निलेक–चुराई गई; रावण-रावण द्वारा; ताहाते-उस पुस्तक में; लिखन-लिखा है।

अनुवाद

रामेश्वर में श्री चैतन्य महाप्रभु को कूर्म पुराणपढ़ने का अवसर मिला, जिससे उन्हें यह पता चला कि रावण ने जिस सीता का अपहरण किया था वह वास्तविक सीता न थीं, अपितु उनकी छाया-मात्र थीं।

तात्पर्य

कूर्म पुराण का कथन है कि इस छाया-सीता के सतीत्व की अग्नि परीक्षा की गई। माया-सीता ने जब अग्नि में प्रवेश किया, तो वास्तविक सीता अग्नि से प्रकट हो गई।

शुनिया प्रभुर आनन्दित हैल मन ।

रामदास विप्रेर कथा हइल स्मरण ॥118॥

शुनिया-यह सुनकर; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; आनन्दित-आनन्दित; हैल-हो गया; मन–मन; रामदास रामदास का; विप्रेर–ब्राह्मण के साथ; कथा-वार्तालाप का; हइल–हुआ; स्मरण-स्मरण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु माया-सीता के विषय में पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें रामदास विप्र से अपनी भेंट का स्मरण हो आया, जो अत्यन्त दुःखी था कि रावण ने सीता माता का अपहरण किया था।

सेइ पुरातन पत्र आग्रह करि' निल ।

रामदासे देखाइया दुःख खण्डाइल ॥ 119॥

सेइ-वह; पुरातन-पुराना; पत्र-पृष्ठ; आग्रह-उत्साहपूर्वक; करि'-करके; निल-लिया; रामदासे–ब्राह्मण रामदास को; देखाइया–दिखाकर; दुःख–दुःख; खण्डाइल-दूर किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कूर्म पुराण की उस अत्यन्त प्राचीन पुस्तक से यह पन्ना उत्सुकता के कारण फाड़ लिया और बाद में इसे रामदास विप्र को दिखलाया, जिसे देखकर उसका दुःख दूर हुआ।

ब्रह्म-संहिता, कर्णामृत, दुइ पुँथि पाञा ।

दुइ पुस्तक लञा आइला उत्तम जानिञा ॥ 120॥

ब्रह्म-संहिता- ब्रह्म-संहिता नामक ग्रन्थ ; कर्णामृत-कृष्णकर्णामृत नामक ग्रन्थ; दुइ-दोनों; पूँथि–शास्त्र; पाञा-पाकर; दुइ-दोनों; पुस्तक-पुस्तकें; लञा-लेकर; आइला–लौट आये; उत्तम–उत्तम; जानिञा–जानकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को दो ग्रन्थ और भी मिले-ब्रह्म-संहिता तथा कृष्णकर्णामृत । इन ग्रन्थों को श्रेष्ठ मानते हुए वे उन्हें अपने भक्तों को भेंट करने के लिए ले आये।

तात्पर्य

प्राचीनकाल में छापेखाने नहीं होते थे, अतएव सारे महत्त्वपूर्ण शास्त्रों को हाथ से लिखा जाता था, जिन्हें बड़े-बड़े मन्दिरों में रखा जाता था। श्री चैतन्य महाप्रभु को ब्रह्म-संहिता तथा कृष्णकर्णामृत की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं। वे इन्हें अत्यन्त प्रामाणिक समझकर अपने साथ लेते आये, जिससे उन्हें वे अपने भक्तों को भेंट कर सकें। निस्सन्देह, उन्होंने मठाधीश की अनुमति ले ली थी। अब ब्रह्म-संहिता तथा कृष्णकर्णामृत दोनों ही की छपी हुई प्रतियाँ श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीकाओं के साथ उपलब्ध हैं।

पुनरपि नीलाचले गमन करिल ।

भक्त-गणे मेलिया स्नान-यात्रा देखिल ॥121॥

पुनरपि दोबारा; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; गमन-लौटकर; करिल-की; भक्त-गणे-सभी भक्तों की; मेलिया-मिले; स्नान-यात्रा-भगवान जगन्नाथ का स्नानोत्सव; देखिल-देखा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इन पुस्तकों को लेकर जगन्नाथ पुरी लौट आये। उस समय जगन्नाथजी का स्नान-उत्सव मनाया जा रहा था, जिसे उन्होंने देखा।

अनवसरे जगन्नाथेर ना पाञा दरशन ।

विरहे आलालनाथ करिला गमन ॥ 122॥

अनवसरे–अनुपस्थिति के दौरान जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ का; ना-नहीं; पाञा-पाकर; दरशन-दर्शन; विरहे-विरह में; आलालनाथ-आलालनाथ नामक स्थान को; करिला—किया; गमन-गमन।

अनुवाद

जब जगन्नाथजी मन्दिर में नहीं थे, तब श्री चैतन्य महाप्रभु उनका दर्शन नहीं कर सके। फलतः उनके विरह में वे जगन्नाथ पुरी छोड़कर आलालनाथ नामक स्थान पर चले गये।

तात्पर्य

आलालनाथ ब्रह्मगिरि के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह स्थान भी समुद्र तट पर है और जगन्नाथ पुरी से लगभग 14 मील की दूरी पर है। वहाँ पर जगन्नाथ मन्दिर है। इस समय वहाँ एक थाना और एक डाकघर है, क्योंकि अनेक लोग इस मन्दिर में दर्शन के लिए आते हैं।

जब श्री जगन्नाथजी के दर्शन मन्दिर में नहीं होते, तो इसे अनवसर कहते हैं। स्नान-यात्रा के बाद भगवान जगन्नाथ बीमार हो जाते हैं। अतएव उन्हें अन्त:पुर में ले जाया जाता है, जहाँ कोई उन्हें मिल नहीं सकता। वास्तव में इस बीच जगन्नाथ के श्रीविग्रह में सुधार द्वारा नवीनता लाई जाती है। इसे नवयौवन कहते हैं। रथयात्रा उत्सव में भगवान जगन्नाथ एक बार फिर जनता के समक्ष आते हैं। इस तरह स्नान यात्रा के बाद पन्द्रह दिनों तक भगवान् जगन्नाथ के दर्शन नहीं होते।

भक्त-सने दिन कत ताहाञि रहिला ।

गौड़ेर भक्त आइसे, समाचार पाइला ॥ 123॥

भक्त-सने-भक्तों के साथ; दिन कत-कुछ दिन; ताहाञि-वहाँ आलालनाथ में; रहिला-रहे; गौड़ेर-बंगाल के; भक्त-भक्त; आइसे-आते हैं; समाचार-समाचार; पाइला–उन्हें मिले।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कुछ दिनों तक आलालनाथ रहे। तभी उन्हें यह समाचार मिला कि बंगाल से सारे भक्तगण जगन्नाथ पुरी आ रहे हैं।

नित्यानन्द-सार्वभौम आग्रह करिञा ।

नीलाचले आइला महाप्रभुके लइञा ॥ 124॥

नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; आग्रह करिञा-बहुत विनती करके; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; आइला–लौट आये; महाप्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु; लइञा–लेकर।

अनुवाद

जब बंगाल के भक्तगण जगन्नाथ पुरी आ गये, तो नित्यानन्द प्रभु तथा सार्वभौम भट्टाचार्य काफी प्रयास से श्री चैतन्य महाप्रभु को जगन्नाथ पुरी वापस ले आये।

विरहे विह्वल प्रभु ना जाने रात्रि-दिने ।

हेन-काले आइला गौड़ेर भक्त-गणे ॥ 125॥

विरहे-विरह में; विह्वल-विह्वल; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; ना-नहीं; जाने-जानते हैं; रात्रि-दिने रात-दिन; हेन-काले—इस समय; आइला–पहुँचे; गौड़ेर-बंगाल के; भक्त-गणे-सभी भक्तगण।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु अन्ततः आलालनाथ छोड़कर जगन्नाथ पुरी लौटे, तो वे जगन्नाथ के विरह में रात-दिन भावविभोर रहने लगे। उनके शोक की कोई सीमा न थी। इस समय बंगाल के विभिन्न भागों के और विशेष रूप से नवद्वीप के सारे भक्त जगन्नाथ पुरी पहुँचे।

सबे मिलि 'युक्ति करि' कीर्तन आरम्भिल ।

कीर्तन-आवेशे प्रभुर मन स्थिर हैल ॥126 ॥

सबै मिलि'–सभी ने मिलकर; युक्ति करि'-विचार के पश्चात्; कीर्तन-पवित्र नाम का सामूहिक कीर्तन; आरम्भिल-आरम्भ किया; कीर्तन-आवेशे-कीर्तन के आवेश में; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; मन–मन; स्थिर स्थिर, शान्त; हैल-हो गया।

अनुवाद

परस्पर विचार-विमर्श के बाद सभी भक्तों ने सामूहिक कीर्तन प्रारम्भ किया। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु का मन कीर्तन के आह्लाद से शान्त हुआ।

तात्पर्य

सारी परिस्थितियों में परम पूर्ण होने के कारण जगन्नाथजी का व्यक्तित्व, रूप, चित्र और कीर्तन सब कुछ अभिन्न हैं। अतएव जब चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन सुना, तो वे शान्त हो गये। इसके पहले वे जगन्नाथ के विरह के कारण अत्यन्त खिन्नता का अनुभव कर रहे थे। निष्कर्ष यह है कि जब भी शुद्ध भक्तों द्वारा कीर्तन किया जाता है, तो भगवान् वहाँ तुरन्त उपस्थित हो जाते हैं। भगवान् के पवित्र नामों का कीर्तन करने से हमें साक्षात् भगवान् का सान्निध्य प्राप्त होता है।

पूर्वे यबे प्रभु रामानन्देरे मिलिला ।

नीलाचले आसिबारे ताँरे आज्ञा दिला ॥127॥

पूर्वे—इसके पूर्व; यबेजब; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; रामानन्देरे-श्री रामानन्द राय; मिलिला–मिले; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी; आसिबारे-आने की; ताँरे-उन्हें; आज्ञा दिला–आज्ञा दी।

अनुवाद

इसके पूर्व जब श्री चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत का भ्रमण कर रहे थे, तब गोदावरी नदी के तट पर उनकी भेंट रामानन्द राय से हुई थी। उस समय यह तय हुआ था कि रामानन्द राय अपने राज्यपाल के पद से त्यागपत्र दे देंगे और जगन्नाथ पुरी आयेंगे और श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रहेंगे।

राज-आज्ञा लञा तेंहो आइला कत दिने ।

रात्रि-दिने कृष्ण-कथा रामानन्द-सने ॥ 128॥

राज-आज्ञा-राजा प्रतापरूद्र की आज्ञा; लञा–लेकर; तेंहो—रामानन्द राय; आइला-वापस आये; कत दिने कुछ दिनों में; रात्रि-दिने-रात-दिन; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण की कथा और उनकी लीलाएँ; रामानन्द-सने-रामानन्द राय की संगति में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश पर श्री रामानन्द राय ने राजा से छुट्टी माँगी और जगन्नाथ पुरी आ गये। उनके वहाँ आने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके साथ दिन-रात कृष्ण तथा उनकी लीलाओं के विषय में बातें करते हुए प्रचुर आनन्द प्राप्त किया।

काशी-मिश्रे कृपा, प्रद्युम्न मिश्रादि-मिलन ।

परमानन्द-पुरी-गोविन्द-काशीश्वरागमन ॥129॥

काशी-मिश्रे कृपा-काशी मिश्र पर उनकी कृपा; प्रद्युम्न मिश्र-आदि-मिलन-प्रद्युम्न मिश्र आदि के साथ मिलन; परमानन्द-पुरी-परमानन्द पुरी; गोविन्द-गोविन्द; काशीश्वर-काशीश्वर; आगमन-आगमन।

अनुवाद

रामानन्द राय के आने के बाद, श्री चैतन्य महाप्रभु ने काशी मिश्र पर कृपा की और प्रद्युम्न मिश्र तथा अन्य भक्तों से भेंट की। उस समय तीन और भक्त परमानन्द पुरी, गोविन्द तथा काशीश्वर श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने जगन्नाथ पुरी आये।

दामोदर-स्वरूप-मिलने परम आनन्द ।

शिखि-माहिति-मिलन, राय भवानन्द ॥130॥

दामोदर-स्वरूप-स्वरूप दामोदर; मिलने-मिलने पर; परम-परम; आनन्द-शिखि-माहिति–शिखि माहिति; मिलन-मिलन; राय भवानन्द-रामानन्द राय के पिता भवानन्द।

अनुवाद

पन्ततः स्वरूप दामोदर गोस्वामी से भेंट होने पर चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। इसके बाद शिखि माहिति तथा रामानन्द राय के पिता भवानन्द राय से उनकी भेंट हुई।

गौड़ हइते सर्व वैष्णवेर आगमन ।

कुलीन-ग्राम-वासि-सङ्गे प्रथम मिलन ॥ 131॥

गौड़ हइते-बंगाल से; सर्व-सारे; वैष्णवेर-वैष्णवों का; आगमन-आगमन; कुलीन-ग्राम-वासि-कुलीन ग्राम के निवासी; सङ्गे-उनके साथ; प्रथम-पहली बार; मिलन-मिलन।

अनुवाद

बंगाल के सारे भक्त क्रमशः जगन्नाथ पुरी पहुँचने लगे। उस समय कुलीन ग्राम के निवासी भी श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने पहली बार आये।

नरहरि दास आदि यत खण्ड-वासी ।

शिवानन्द-सेन-सङ्गे मिलिला सबे आसि' ॥132॥

नरहरि दास-नरहरि दास; आदि-आदि; यत–जितने; खण्ड-वासी–खण्ड नामक स्थान के रहने वाले; शिवानन्द-सेन–शिवानन्द सेन; सङ्गे–के साथ; मिलिला–वे मिले; सबे-सब; आसि'-वहाँ आकर।

अनुवाद

अन्ततोगत्वा नरहरि दास तथा खण्ड के सारे निवासी शिवानन्द सेन सहित आये और श्री चैतन्य महाप्रभु उन सबसे मिले।

स्नान-यात्रा देखि' प्रभु सङ्गे भक्त-गण ।

सबा लञा कैला प्रभु गुण्डिचा मार्जन ॥ 133॥

स्नान-यात्रा-स्नानोत्सव; देखि'–देखकर; प्रभु–चैतन्य महाप्रभुः सङ्गे–उनके साथ; भक्त-गण-भक्तगण; सबा–सब; लञा-लेकर; कैला–किया; प्रभु-चैतन्य महाप्रभुः गुण्डिचा मार्जन-गुण्डीचा मन्दिर का मार्जन और सफाई।

अनुवाद

भगवान जगन्नाथ की स्नान यात्रा के दर्शन के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने अनेक भक्तों की सहायता से श्री गुण्डिचा मन्दिर को धोया और सफाई की।

सबा-सङ्गे रथ-यात्रा कैल दरशन ।

रथ-अग्रे नृत्य करि' उद्याने गमन ॥ 134॥

सबा-सङ्गे-उन सबके साथ; रथ-यात्रा–रथयात्रा; कैल—की; दरशन-दर्शन करके; रथ-अग्रे–रथ के आगे; नृत्य-नृत्य; करि'-करके; उद्याने उद्यान में; गमन-गमन।

अनुवाद

इसके बाद समस्त भक्तों सहित श्री चैतन्य महाप्रभु ने रथयात्रा का दर्शन किया। चैतन्य महाप्रभु ने रथ के आगे स्वयं नृत्य किया और नृत्य के बाद एक बगीचे में गये।

प्रतापरुद्रेरे कृपा कैल सेइ स्थाने ।

गौड़ीया-भक्ते आज्ञा दिल विदायेर दिने ॥135॥

प्रतापरुद्रे-राजा प्रतापरुद्र को; कृपा-कृपा; कैलकी; सेइ स्थाने-उसी उद्यान में; गौड़ीया-भक्ते-बंगाल के सभी भक्तों को; आज्ञा-आज्ञा; दिल-दी; विदायेर–विदा होने की; दिने–दिन को।

अनुवाद

उस बगीचे में श्री चैतन्य महाप्रभु ने राजा प्रतापरुद्र पर कृपा की। इसके बाद जब बंगाल के भक्तगण अपने घरों को लौटने वाले थे, तो हाप्रभु ने लगभग सबों को अलग-अलग आदेश दिये।

प्रत्यब्द आसिबे रथ-यात्रा-दरशने ।

एइ छले चाहे भक्त-गणेर मिलने ॥136 ॥

प्रति-अब्द-प्रति वर्ष; आसिबे-तुम सब को आना चाहिए; रथ-यात्रा–रथयात्रा; दरशने-के दर्शन के लिए; एइ छले-इस प्रयोजन के अन्तर्गत; चाहे-चाहते हैं; भक्त-गणेर–सभी भक्तों का; मिलने-मिलन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु बंगाल के सारे भक्तों से प्रतिवर्ष मिलते रहना चाहते थे। अतएव महाप्रभु ने उन्हें आज्ञा दी कि वे प्रतिवर्ष रथयात्रा का दर्शन करने आया करें।

सार्वभौम-घरे प्रभुर भिक्षा-परिपाटी ।

षाठीर माता कहे, य़ाते राण्डी हउक् षाठी ॥137॥

सार्वभौम-घरे–सार्वभौम भट्टाचार्य के घर में प्रभुर–महाप्रभु का; भिक्षा–भोजन; परिपाटी-तृप्ति करके; षाठीर माता-सार्वभौम भट्टाचार्य की पुत्री पाठी की माता; कहे-कहती है; याते-जिससे; राण्डी–विधवा; हउक्-हो जाये; षाठी-पुत्री पाठी।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के घर भोजन करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु आमन्त्रित किये गये। जब महाप्रभु सुस्वादु भोजन कर रहे थे, तो सार्वभौम भट्टाचार्य के जामाता (उनकी पुत्री पाठी के पति) ने उनकी आलोचना की। इसके कारण पाठी की माता ने उसे शाप दे दिया कि षाठी विधवा हो जाये। दूसरे शब्दों में, उसने अपने जामाता को मर जाने का शाप दे डाला।

वर्षान्तरे अद्वैतादि भक्तेर आगमन ।

प्रभुरे देखिते सबे करिला गमन ॥138॥ ।

वर्ष-अन्तरे-वर्ष के अन्त में; अद्वैत-आदि-अद्वैत आचार्य आदि; भक्तेर-सभी भक्तों का; आगमन–जगन्नाथ पुरी आकर; प्रभुरे–महाप्रभु; देखिते-देखने हेतु; सबे–वे सब; करिला किया; गमन–जगन्नाथ पुरी को गमन।

अनुवाद

साल के अन्त में बंगाल के सारे भक्त अद्वैत आचार्य के साथ पुनः श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने आये। निस्सन्देह, जगन्नाथ पुरी जाने के लिए भक्तों की भारी भीड़ उमड़ रही थी।

आनन्दे सबारे निया देन वास-स्थान ।

शिवानन्द सेन करे सबार पालन ॥ 139॥

आनन्दे-परम आनन्द में; सबारे—सभी भक्तों को निया-लेकर; देन–दिया; वास-स्थान-निवास हेतु स्थान; शिवानन्द सेन–शिवानन्द सेन; करे-करते हैं; सबार-सबका; पालन-पालन-पोषण।

अनुवाद

जब बंगाल के सारे भक्त आ गये, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबको रहने का स्थान दिया और शिवानन्द सेन को उनकी देखरेख का भार सौंप दिया।

शिवानन्देर सङ्गे आइला कुक्कुर भाग्यवान् ।

प्रभुर चरण देखि' कैल अन्तर्धान ॥ 140॥

शिवानन्देर सङ्गे–शिवानन्द सेन के साथ; आइला–आया; कुक्कुर-एक कुत्ता; भाग्यवान्– भाग्यशाली; प्रभुर–महाप्रभु के; चरण-चरणकमल; देखि'–दर्शन कर; कैल-किया; अन्तर्धान–अन्तर्धान।

अनुवाद

शिवानन्द सेन तथा भक्तों के साथ एक कुत्ता आया था, जो इतना भाग्यवान निकला कि श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का दर्शन करने के बाद वह मुक्त हो गया और भगवद्धाम वापस चला गया।

पथे सार्वभौम सह सबार मिलन ।

सार्वभौम भट्टाचार्येर काशीते गमन ॥ 141॥

पथे-मार्ग में; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; सह–के साथ; सबार-सबका; मिलन–मिलन; सार्वभौम भट्टाचार्येर–सार्वभौम भट्टाचार्य नामक भक्त का; काशीते-काशी को; गमन-गमन।

अनुवाद

वाराणसी जा रहे सार्वभौम भट्टाचार्य से मार्ग में सभी लोग मिले।

प्रभुरे मिलिला सर्व वैष्णव आसिया ।

जल-क्रीड़ा कैल प्रभु सबारे लइया ॥ 142 ॥

प्रभुरे–चैतन्य महाप्रभु; मिलिला-मिले; सर्व-सभी; वैष्णव-भक्त; आसिया-जगन्नाथ पुरी आकर; जल-क्रीड़ा-जल क्रीड़ा; कैल-की; प्रभु–महाप्रभु; सबारे—सभी भक्तों को; लइया-लेकर।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी आकर सारे वैष्णव श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले। बाद में सभी भक्तों को साथ लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने जलक्रीड़ा की।

सबा लञा कैल गुण्डिचा-गृह-सम्मार्जन ।

रथ-यात्रा-दरशने प्रभुर नर्तन ॥ 143॥

सबा लञा-उन सबको लेकर; कैल-किया; गुण्डिचा-गृह-सम्मार्जन-गुण्डीचा-मन्दिर का मार्जन; रथ-यात्रा–रथयात्रा; दरशने दर्शन करते समय; प्रभुर–महाप्रभु का; नर्तन-नृत्य।

अनुवाद

सबसे पहले महाप्रभु ने गुण्डिचा-मन्दिर को बारीकी से धोया। उसके बाद सब भक्तों ने रथयात्रा उत्सव एवं रथ के आगे महाप्रभु के नृत्य का दर्शन किया।

उपवने कैल प्रभु विविध विलास ।

प्रभुर अभिषेक कैल विप्र कृष्णदास ॥144॥

उपवने-सड़क पर स्थित उद्यान में; कैल-की; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु ने; विविध-विविध; विलास-लीलाएँ; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु का; अभिषेक-अभिषेक; कैल-किया; विप्र-ब्राह्मण; कृष्ण-दास-कृष्णदास नामक।

अनुवाद

जगन्नाथ मन्दिर से गुण्डिचा के रास्ते में पड़ने वाले बगीचे में श्री चैतन्य महाप्रभु ने विविध लीलाएँ कीं। कृष्णदास नामक एक ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु का अभिषेक किया।

गुण्डिचाते नृत्य-अन्ते कैल जल-केलि ।

हेरा-पञ्चमीते देखिल लक्ष्मी-देवीर केली ॥ 145 ॥

गुण्डिचाते-गुण्डीचा मन्दिर के पास; नृत्य-अन्ते-नृत्य के बाद; कैल-किया; जल-केलि-जल-क्रीड़ा; हेरा-पञ्चमीते-हेरा-पंचमी के दिन; देखिल-देखा; लक्ष्मी-देवीर-लक्ष्मी देवी के; केली–कार्यकलाप।

अनुवाद

गुण्डिचा-मन्दिर में नृत्य करने के बाद महाप्रभु ने भक्तों के साथ जलक्रीड़ा की और हेरापंचमी के दिन उन सबने लक्ष्मीदेवी के कार्यकलापों का दर्शन किया।

कृष्ण-जन्म-यात्राते प्रभु गोप-वेश हैला ।

दधि-भार वहि' तबे लगुड़ फिराइला ॥ 146 ॥

कृष्ण-जन्म-यात्राते-भगवान् कृष्ण के जन्मदिन पर; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; गोप-वेश-गोप-वेश में; हैला-थे; दधि-भार–दही का मटका; वहि'–उठाकर; तबे—उस समय; लगुड़-एक छड़ी; फिराइला-फिराई, घुमाई।

अनुवाद

कृष्ण के जन्मदिवस, जन्माष्टमी को, श्री चैतन्य महाप्रभु ने ग्वालबाल का वेश बनाकर दही के मटकों से युक्त एक बहँगी धारण की तथा एक नाठी को घुमाइ।

गौड़ेर भक्त-गणे तबे करिल विदाय ।

सङ्गेर भक्त लञा करे कीर्तन सदाय ॥ 147॥

गौड़ेर-गौड़ देश (बंगाल) के; भक्त-गणे-भक्तों को; तबे-तब; करिल-दी; विदाय–विदाई; सङ्गेर—नित्य पार्षदों के साथ; भक्त-भक्त; लञा-लेकर; करे-करते; कीर्तन-कीर्तन; सदाय-सदा।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने गौड़देश (बंगाल) से आये सारे भक्तों को विदा किया। महाप्रभु सदा साथ रहने वाले अपने अन्तरंग भक्तों के साथ सदैव कीर्तन करते रहे।

वृन्दावन याइते कैल गौड़ेरे गमन ।

प्रतापरुद्र कैल पथे विविध सेवन ॥148॥

वृन्दावन याइते-वृन्दावन जाने के लिए; कैल-किया; गौड़े-बंगाल को; गमन-गमन; प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र; कैल–किया; पथे-पथ में; विविध-विविध; सेवन-सेवाएँ।

अनुवाद

वृन्दावन जाने के लिए, महाप्रभु पहले गौड़देश (बंगाल) गये। रास्ते में राजा प्रतापरुद्र ने महाप्रभु को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार से सेवाएँ कीं।

पुरी-गोसाञि-सङ्गे वस्त्र-प्रदान-प्रसङ्ग ।

रामानन्द राय आइला भद्रक पर्यन्त ॥149॥

पुरी-गोसाञि-सङ्गे–पुरी गोस्वामी के साथ; वस्त्र-प्रदान-प्रसङ्ग-वस्त्र प्रदान प्रसंग; रामानन्द राय-रामानन्द राय; आइला–आये; भद्रक-भद्रक नामक स्थान; पर्यन्त–तक।

अनुवाद

बंगाल होकर वृन्दावन जाते समय एक घटना घटी, जिसमें पुरी गोसांई का वस्त्र उनसे बदल गया। श्री रामानन्द राय महाप्रभु के साथ-साथ भद्रक नगर तक गये।

आसि' विद्या-वाचस्पतिर गृहेते रहिला ।

प्रभुरे देखिते लोक-सङ्घट्ट हइला ॥ 150॥

आसि-बंगाल आकर; विद्या-वाचस्पतिर–विद्या वाचस्पति; गृहेते-घर पर; रहिला-रहे; प्रभुरे–चैतन्य महाप्रभु को; देखिते-देखने के लिए; लोक-सङ्गट्ट–लोगों की भीड़; हइला-वहाँ थी।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जाते हुए विद्यानगर (बंगाल) पहुँचे, तो वे सार्वभौम भट्टाचार्य के भाई विद्या वाचस्पति के घर पर रुके। जब महाप्रभु सहसा उनके घर पहुँचे, तो वहाँ लोगों की भारी भीड़ जमा हो गई।

पञ्च-दिन देखे लोक नाहिक विश्राम ।

लोक-भये रात्रे प्रभु आइला कुलिया-ग्राम ॥ 151॥

पञ्च-दिन-लगातार पाँच दिन तक; देखे-देखने; लोक-लोग; नाहिक-नहीं; विश्राम–विश्राम; लोक-भये-लोगों के डर से; रात्रे-रात को; प्रभु–महाप्रभु; आइला-गये; कुलिया-ग्राम-कुलिया ग्राम को।

अनुवाद

लोग लगातार पाँच दिनों तक महाप्रभु का दर्शन करने आते रहे और उन्हें कोई विश्राम नहीं मिल रहा था। अतएव भीड़ के भय से महाप्रभु ने रात्रि में ही प्रस्थान कर दिया और वे कुलिया नामक ग्राम (आज का नवद्वीप) में चले गये।

तात्पर्य

यदि चैतन्य-भागवत में दिये गये कथनों के साथ-साथ लोचनदास ठाकुर के विवरण पर विचार किया जाय, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आज का नवद्वीप पहले कुलियाग्राम कहलाता था। कुलियाग्राम में श्री चैतन्य महाप्रभु ने देवानन्द पंडित पर कृपा की तथा गोपाल चापल एवं अन्य कई लोगों का उद्धार किया, जिन्होंने पहले महाप्रभु के चरणकमलों के प्रति अपराध किये थे। उन दिनों विद्यानगर से कुलियाग्राम जाने के लिए गंगा नदी की एक शाखा को पार करना होता था। ये सारे पुराने स्थान आज भी विद्यमान हैं। चिनाडांगा पहले कुलियाग्राम में स्थित था, जो आजकल कोलेरगंज के नाम से प्रसिद्ध है।

कुलिया-ग्रामेते प्रभुर शुनिया आगमन ।

कोटि कोटि लोक आसि' कैल दरशन ॥ 152 ॥

कुलिया-ग्रामेते-कुलियाग्राम में; प्रभुर–महाप्रभु का; शुनिया-सुनकर; आगमन-आगमन; कोटि कोटि-लाखों; लोक-लोगों ने; आसि'-आकर; कैल–लिए; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

कुलियाग्राम में महाप्रभु का आगमन सुनकर हजारों-लाखों लोग उनका दर्शन करने आये।

कुलिया-ग्रामे कैल देवानन्देरे प्रसाद ।

गोपाल-विप्रेरे क्षमाइल श्रीवासापराध ॥ 153 ॥

कुलिया-ग्रामे-कुलियाग्राम में; कैल–दिखाया; देवानन्देरे प्रसाद देवानन्द पण्डित पर दया; गोपाल-विप्रेरे-गोपाल चापल ब्राह्मण को; क्षमाइल-क्षमा किया; श्रीवास-अपराध–श्रीवास ठाकुर के चरणकमलों पर अपराध के लिए।

अनुवाद

इस समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने जो विशेष कार्य किये, उनमें देवानन्द पंडित पर कृपा करना तथा गोपाल चापल नामक ब्राह्मण, जिसने श्रीवास ठाकुर के चरणकमलों के प्रति अपराध किया था, उसको क्षमा प्रदान करना मुख्य हैं।

पाषण्डी निन्दक आसि' पड़िला चरणे ।

अपराध क्षमि' तारे दिल कृष्ण-प्रेमे ॥ 154॥

पाषण्डी–नास्तिक; निन्दक-निन्दक; आसि'-वहाँ आकर; पड़िला–गिर पड़े; चरणे-महाप्रभु के चरणकमलों पर; अपराध क्षमि'-उनके अपराधों को क्षमा करने के बाद; तारे–उनको; दिल-दिया; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम।

अनुवाद

अनेक नास्तिक तथा निन्दक भी आये और महाप्रभु के चरणकमलों में गिर पड़े। महाप्रभु ने उन्हें क्षमा की और उनको कृष्ण-प्रेम प्रदान किया।

वृन्दावन याबेन प्रभु शुनि' नृसिंहानन्द ।

पथ साजाइल मने पाइया आनन्द ॥ 155 ॥

वृन्दावन-वृन्दावन को; याबेन-जायेंगे; प्रभु–महाप्रभु; शुनि'–सुनकर; नृसिंहानन्द-नृसिंहानन्द; पथ–मार्ग; साजाइल-सजाया; मने-मन में; पाइया-पाकर; आनन्द–आनन्द।

अनुवाद

जब श्री नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जायेंगे, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और मन ही मन उस मार्ग को सजाने लगे।

कुलिया नगर हैते पथ रत्ने बान्धाइल ।

निवृन्त पुष्प-शय्या उपरे पातिल ॥ 156 ॥

कुलिया नगर-कुलिया नगर; हैते-से; पथ–मार्ग; रत्ने–रत्नों से; बान्धाइल-बनाया; निवृन्त-डंठल रहित; पुष्प-शय्या-पुष्प शय्या; उपरे-ऊपर; पातिल-बिछाई।

अनुवाद

सर्वप्रथम नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने कुलिया नगरी से शुरु होने वाली एक चौड़ी सड़क का चिन्तन किया। उन्होंने पुनः इस सड़क को रत्नों से सजाया और उसके ऊपर डंठल रहित फूलों की एक सेज बिछायी।

पथे दुइ दिके पुष्प-बकुलेर श्रेणी ।

मध्ये मध्ये दुइ-पाशे दिव्य पुष्करिणी ॥ 157॥

पथे-मार्ग पर; दुइ दिके दोनों ओर; पुष्प-बकुलेर–बकुल पुष्पों के वृक्षों की; श्रेणी-कतारें; मध्ये मध्ये-बीच में; दुइ-पाशे-दोनों ओर; दिव्य-दिव्य; पुष्करिणी-सरोवर।

अनुवाद

उन्होंने मन-ही-मन सड़क के दोनों किनारों को बकुल पुष्प के वृक्षों से सजाया और बीच-बीच में दोनों ओर दिव्य सरोवर निर्मित किये।

रत्न-बाँधा घाट, ताहे प्रफुल्ल कमल ।

नाना पक्षि-कोलाहल, सुधा-सम जल ॥ 158॥

रत्न-बाँधा-रत्नों के बने; घाट–स्नान घाट; ताहे-वहाँ; प्रफुल्ल–पूरे खिले हुए; कमल-कमल के फूल; नाना-विविध; पक्षि-पक्षियों का; कोलाहल-कोलाहर, शोर; सुधा–अमृत; सम-समान; जल-जल।

अनुवाद

इन सरोवरों में स्नान करने के घाट रत्नों से बने थे, जिनमें कमल के फूल खिले थे। तरह-तरह के पक्षी चहक रहे थे और सरोवरों का जल अमृत के समान था।

शीतल समीर वहे नाना गन्ध लञा ।

'कानाइर नाटशाला' पर्यन्त लइल बान्धिञा ॥ 159॥

शीतल-अत्यन्त शीतल; समीर-पवन; वहे-बहने लगी; नाना-विविध; गन्ध-सुगन्ध; लञा–लेकर; कानाइर नाटशाला–कानाइ नाटशाला; पर्यन्त–जहाँ तक; लइल-लेकर; बान्धिाञा -सड़क का बनाना।

अनुवाद

पूरी सड़क में नाना प्रकार की शीतल हवा बह रही थी, जो विविध फूलों की सुगन्ध से लदी थी। वे इस सड़क को कानाइ नाटशाला तक बनाते हुए ले गये।

तात्पर्य

कानाइ नाटशाला कलकत्ता से लगभग 200 मील दूरी पर पूर्वी रेलवे की लूप-लाइन में है। रेलवे स्टेशन का नाम तालझाड़ि है, जहाँ उतरकर लगभग दो मील चलने पर कानाइ नाटशाला आ जाता है।

आगे मन नाहि चले, ना पारे बान्धिते ।

पथ-बान्धा ना याय, नृसिंह हैला विस्मिते ॥160॥

आगे-इसके आगे; मन–मन; नाहि-नहीं; चले-जाता; ना-नहीं; पारे—सकते; शन्धिते-सड़क बनाने में; पथ-बान्धा-सड़क बनाना; ना याय–सम्भव नहीं; नृसिंह-सिंहानन्द ब्रह्मचारी; हैला-हो गये; विस्मिते-चकित।

अनुवाद

नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी अपने मन में कानाइ नाटशाला के आगे सड़क नहीं बना पाये। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि पूरी सड़क क्यों नहीं बन पा रही है, अतः वे चकित थे।

निश्चय करिया कहि, शुन, भक्त-गण ।

एबार ना याबेन प्रभु श्री-वृन्दावन ॥ 161॥

निश्चय-निश्चय; करिया-करके; कहि-मैं कहता हूँ; शुन-कृपया सुनो; भक्त-गण-मेरे प्रिय भक्तों; एबार-इस बार; ना-नहीं; याबेन-जायेंगे; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; श्री-वृन्दावन-वृन्दावन को।

अनुवाद

उसके बाद उन्होंने विश्वासपूर्वक भक्तों से बतलाया कि इस बार श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन नहीं जायेंगे।

तात्पर्य

श्री नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी श्री चैतन्य महाप्रभु के बहुत बड़े भक्त थे, अतएवं जब उन्होंने सुना कि महाप्रभु कुलिया से वृन्दावन जा रहे हैं, तो भौतिक धन न होते हुए भी वे अपने मन के भीतर उनके लिए एक आकर्षक मार्ग बनाने लगे, जिससे होकर महाप्रभु जा सकें। इस मार्ग का कुछ विवरण ऊपर दिया हुआ है। किन्तु वे अपने मन के भीतर भी कानाइ नाटशाला से आगे मार्ग न बना सके। अतएव उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि इस बार श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन नहीं जायेंगे।

शुद्ध भक्त के लिए भौतिक दृष्टि से मार्ग बनाना या मन के भीतर मार्ग बनाना एक समान है। इसका कारण यह है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जनार्दन भावग्राही हैं अर्थात् वे भाव को ग्रहण करते हैं। उनके लिए चाहे मार्ग वास्तविक रत्नों से बनाया जाय या मानसिक रत्नों से दोनों एक समान हैं। मन सूक्ष्म होते हुए भी आखिर पदार्थ है, अतएव कोई भी मार्ग, चाहे वह स्थूल पदार्थ का हो या सूक्ष्म पदार्थ का, यदि भगवान् की सेवा के लिए है, तो भगवान् उसे समान रूप से स्वीकार करते हैं। भगवान् तो भक्त के भाव को ग्रहण करते हैं। और यह देखते हैं कि वह सेवा के लिए कितना तत्पर है। भक्त को छूट रहती है कि वह चाहे स्थूल पदार्थ से या सूक्ष्म पदार्थ से भगवान् की सेवा करे। महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि यह सेवा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सम्बन्धित हो। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (9.26) में हुई है :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

“यदि कोई मुझे प्रेम तथा भक्तिपूर्वक एक पत्ती, एक फूल, फल या जल अर्पित करता है, तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।” असली वस्तु भक्ति है। शुद्ध भक्ति में भौतिक प्रकृति के गुणों का कल्मष नहीं रहता। अहैतुक्यप्रतिहता–अहैतुकी भक्ति को किसी भी भौतिक अवस्था द्वारा रोका नहीं जा सकता। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की

सेवा करने के लिए धनवान होना आवश्यक नहीं है। गरीब से गरीब व्यक्ति भी शुद्ध भक्ति से युक्त होने पर उसी तरह से भगवान् की सेवा कर सकता है। यदि कोई निम्न अभिलाषा नहीं है, तो भक्ति को किसी भी भौतिक स्थिति से रोकी नहीं जा सकती।

'कानाञिर नाटशाला' हैते आसिब फिरिञा ।

जानिबे पश्चात्, कहिलु निश्चय करिञा ॥ 162॥

कानाञिर नाटशाला–कानाई नाटशाला नामक स्थान; हैते-से; आसिब-आयेंगे; फिरिञा-लौटकर; जानिबे-आप जानेंगे; पश्चात्-बाद में; कहिलु-मैं कहता हूँ; निश्चय-निश्चय; करिञा-करके।

अनुवाद

नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने कहा, "महाप्रभु कानाइ नाटशाला तक जायेंगे और पुनः लौट आयेंगे। इसे तुम बाद में जानोगे, किन्तु मैं अभी बड़े ही विश्वास के साथ कह रहा हूँ।"

गोसाञि कुलिया हैते चलिला वृन्दावन ।

सङ्गे सहस्त्रेक लोक यत भक्त-गण ॥ 163 ॥

गोसाञि-चैतन्य महाप्रभु; कुलिया हैते–कुलिया से; चलिला–चल पड़े; वृन्दावन-वृन्दावन की ओर; सङ्गे–उनके साथ; सहस्त्रेक-हजारों; लोक-लोग; यत-सब; भक्त-गण-भक्तगण।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कुलिया से वृन्दावन की ओर चलने लगे, तो हजारों लोग उनके साथ थे और ये सारे भक्त थे।

याहाँ याय प्रभु, ताहाँ कोटि-संख्य लोक ।

देखिते आइसे, देखि' खण्डे दुःख-शोक ॥ 164॥

याहाँ-जहाँ कहीं; याय-जाते; प्रभु-महाप्रभु; ताहाँ-वहाँ वहाँ; कोटि-संख्य लोक-असंख्य लोग; देखिते आइसे-उनके दर्शन के लिए आते; देखि'–देखने के पश्चात्; खण्डे–दूर; दुःख–दुःख; शोक-शोक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जहाँ-जहाँ गये, वहीं असंख्य लोगों की भीड़ उनका दर्शन करने आई। दर्शन करने पर उनका सारा दुःख और शोक दूर हो गया।

याहाँ याहाँ प्रभुर चरण पड़ये चलिते ।

से मृत्तिका लय लोक, गर्त हय पथे ॥ 165 ॥

याहाँ याहाँ -जहाँ कहीं; प्रभुर–महाप्रभु के; चरण-चरणकमल; पड़ये-पड़े; चलिते-चलते समय; से—वह; मृत्तिका-मिट्टी; लय-ले लेते; लोक-लोग; गर्त-हो जाते; पथे-मार्ग पर।

अनुवाद

जहाँ-जहाँ महाप्रभु के चरणकमल भूमि पर पड़ते थे, लोग तुरन्त आकर वहाँ की धूल ले लेते थे। उन लोगों ने इतनी धूल एकत्रित की कि अनेक गड्ढे बन गये।

ऐछे चलि, आइला प्रभु 'रामकेलि' ग्राम ।

गौड़ेर निकट ग्राम अति अनुपाम ॥ 166 ॥

ऐछे-इस प्रकार; चलि-चलकर; आइला–आये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; रामकेली ग्राम–रामकेलि ग्राम; गौड़ेर-बंगाल; निकट-निकट; ग्राम-ग्राम; अति-अत्यन्त; अनुपाम–अनुपम।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु रामकेलि नामक गाँव में आये। यह गाँव बंगाल की सीमा पर स्थित है और अत्यन्त मनोहर है।

तात्पर्य

रामकेली ग्राम बंगाल की सीमा पर गंगा नदी के तट पर स्थित है। श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी इसी गाँव के रहने वाले थे।

ताहाँ नृत्य करे प्रभु प्रेमे अचेतन ।

कोटि कोटि लोक आइसे देखते चरण ॥167॥

ताहाँ-वहाँ; नृत्य-नृत्य; करे-किया; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रेमे-भगवत्-प्रेम में; अचेतन-अचेतन होकर; कोटि कोटि-असंख्य; लोक-लोग; आइसे–आये; देखिते-देखने केलिए; चरण-उनके चरणकमल।

अनुवाद

रामकेलि ग्राम में संकीर्तन करते समय महाप्रभु नृत्य करते और कभी-कभी भगवत्-प्रेमवश अपनी चेतना खो देते थे। रामकेलि ग्राम में असंख्य लोग उनके चरणकमलों का दर्शन करने के लिए आये।

गौड़ेश्वर यवन-राजा प्रभाव शुनिञा ।

कहिते लागिल किछु विस्मित हञा ॥ 168॥

गौड़-ईश्वर-बंगाल का राजा; यवन-राजा-मुस्लिम राजा; प्रभाव-प्रभाव; शुनिञा-सुनकर; कहिते-कहने; लागिल-लगा; किछु-कुछ; विस्मित–विस्मिते; हञा-होकर।

अनुवाद

जब बंगाल के मुसलमान राजा ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से असंख्य लोग आकृष्ट हो रहे हैं, तो वह अत्यन्त विस्मित हुआ और इस प्रकार कहने लगा।

तात्पर्य

उस समय बंगाल का मुसलमान राजा नवाब हुसैन शाह बादशाह था।

विना दाने एत लोक याँर पाछे हय ।

सेइ त' गोसाञा, इहा जानिह निश्चय ॥ 169॥

विना-बिना; दाने-दान; एत-इतने अधिक; लोक-लोग; याँर-जिनके; पाछे-पीछे; हय-हैं; सेइ त'वह (निश्चित रूप से); गोसाञा-पैगम्बर, दूत; इहा-यह; जानिह-जानो; निश्चय-निश्चित रूप से।

अनुवाद

“बिना कुछ दान दिये ही जिस व्यक्ति का इतने लोग अनुसरण कर रहे हों, वह निश्चय ही ईश्वर का दूत होगा। मैं निश्चित रूप से ऐसा समझता हूँ।”

काजी, यवन इहार ना करिह हिंसन ।

आपन-इच्छाय बुलुन, याहाँ उँहार मन ॥ 170 ॥

काजी-काजी; प्रवन–मुस्लिम; इहार-उनके; ना-नहीं; करिह-करते; हिंसन-द्वेष; आपन-इच्छाय-उनकी अपनी इच्छा से; बुलुन-उन्हें जाने दो; याहाँ–जहाँ कहीं भी; उँहार-उनका; मन–मन।

अनुवाद

उस मुसलमान राजा ने अपने काजी (मैजिस्ट्रेट) को आदेश दिया, “इस हिन्दू ईश्वर के दूत को ईष्यवश तंग मत करना। यह जहाँ भी जो कुछ चाहे उसे करने दिया जाये।”

तात्पर्य

एक मुसलमान राजा तक श्री चैतन्य महाप्रभु को ईश्वर के दूत के दिव्य पद पर स्थित जान गया था, अतएव उसने स्थानीय काजी को आदेश दिया कि वह उन्हें तंग न करे, अपितु उन्हें इच्छानुसार कार्य करने दिया जाये।

केशव-छत्रीरे राजा वार्ता पुछिल ।

प्रभुर महिमा छत्री उड़ाइया दिल ॥ 171॥

केशव-छत्रीरे-केशव छत्री नामक व्यक्ति से; राजा-राजा; वार्ता-समाचार; पुछिल–पूछा; प्रभुर–महाप्रभु का; महिमा-महिमा; छत्री-केशव छत्री; उड़ाइया-कोई महत्त्व नहीं; दिल-दिया।

अनुवाद

जब मुसलमान राजा ने अपने सहायक केशव छत्री से श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव के बारे में जानना चाहा, तो उसने महाप्रभु के बारे में सब कुछ जानते हुए भी बात टालने के लिए चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों को कोई महत्त्व नहीं दिया।

तात्पर्य

जब केशव छत्री से श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में पूछा गया, तो वह कूटनीतिज्ञ की भाँति बात करने लगा। यद्यपि वह उनके विषय में सब कुछ जानता था, किन्तु उसे भय था कि कहीं मुसलमान राजा महाप्रभु का शत्रु न बन जाये। अतः उसने महाप्रभु के कार्यों को कोई प्रधानता नहीं दी, जिससे मुस्लिम राजा उन्हें एक सामान्य व्यक्ति समझकर किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाये।

भिखारी सन्न्यासी करे तीर्थ पर्यटन ।

ताँरे देखिबारे आइसे दुइ चारि जन ॥ 172॥

भिखारि–भिखारी; सन्न्यासी-संन्यासी; करे-करते हैं; तीर्थ-तीर्थ स्थानों की; पर्यटन-यात्रा; ताँरे–उनको; देखिबारे-देखने के लिए; आइसे-आते हैं; दुइ चारि जन-मात्र कुछ लोग ही।

अनुवाद

केशव छत्री ने मुसलमान राजा को बतलाया कि चैतन्य महाप्रभु एक संन्यासी हैं, जो विभिन्न तीर्थस्थलों की यात्रा कर रहे हैं, अतएव कुछेक लोग ही उन्हें देखने आते हैं।

यवने तोमार ठाञि करये लागानि ।

ताँर हिंसाय लाभ नाहि, हय आर हानि ॥ 173॥

यवने-आपका मुस्लिम सेवक; तोमार-आपका; ठाञि–स्थान; करये-करता है; लागानि-षड्यंत्र; ताँर–उनका; हिंसाय-द्वेष करने के लिए; लाभ नाहि-कोई लाभ नहीं है; हय-है; आर—मात्र; हानि-हानि।

अनुवाद

केशव छत्री ने कहा, "आपका मुसलमान सेवक ईष्यवश उनके विरुद्ध षड्यंत्र कर रहा है। मेरे विचार से उनमें अधिक रुचि लेना आपके लिए लाभप्रद नहीं होगा, प्रत्युत इससे नुकसान ही हो सकता है।"

राजारे प्रबोधि' केशव ब्राह्मण पाठाञा ।

चलिबार तरे प्रभुरे पाठाइल कहिञा ॥ 174॥

राजारे-राजा को; प्रबोधि'–शान्त करने के बाद; केशव-केशव छत्री; ब्राह्मण-एक ब्राह्मण; पाठाञा-वहाँ भेजकर; चलिबार तरे-चले जाने के लिए; प्रभुर–महाप्रभु को; पाठाइल–भेजा; कहिञा -कहने के लिए।

अनुवाद

इस प्रकार राजा को समझा-बुझाकर केशव छत्री ने श्री चैतन्य महाप्रभु के पास इस प्रार्थना के साथ एक ब्राह्मण दूत भेजा कि वे शीघ्र ही वहाँ से चले जायें।

दबिर खासेरे राजा पुछिल निभृते ।

गोसाञिर महिमा तेंहो लागिल कहते ॥ 175॥

दबिर खासेरे-दबीर खास (श्री रूप गोस्वामी का उस समय का नाम); राजा-राजा; पुछिल–पूछा; निभृते-एकान्त में; गोसाञिर–चैतन्य महाप्रभु की महिमा-महिमाएँ, तेंहो-वे; लागिल-लगे; कहिते-कहने।

अनुवाद

राजा ने एकान्त में दबिर खास (श्रील रूप गोस्वामी) से पूछताछ की, तो वे महाप्रभु की महिमाओं का वर्णन करने लगे।

ये तोमारे राज्य दिल, ये तोमार गोसाञा ।

तोमार देशे तोमार भाग्ये जन्मिला आसिञा ॥ 176 ॥

ये-वे जिन्होंने; तोमारे-आपको; राज्य-राज्य; दिल-दिया; ग्रे-वे जो; तोमार-आपका; गोसाञा-पैगम्बर (अवतार); तोमार देशे-आपके देश में; तोमार भाग्ये-आपके सौभाग्य से; जन्मिला-जन्म लिया; आसिञा-आये हैं।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने कहा, "जिस पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने आपको यह राज्य दिया है और जिन्हें आप ईश्वर के दूत के रूप में स्वीकार करते हैं, उन्होंने आपके सौभाग्य से आपके देश में जन्म लिया है।

तोमार मङ्गल वाञ्छे, कार्य-सिद्धि हय ।

इहार आशीर्वादे तोमार सर्वत्र-इ जय ॥ 177॥

तोमार-आपका; मङ्गल-सौभाग्य; वाञ्छे-वे चाहते हैं; कार्य-कार्य की; सिद्धि-सिद्धि; हय-हो; इहार-उनके; आशीर्वादे-आशीर्वाद से; तोमार-आपकी; सर्वत्र-इ-प्रत्येक स्थान पर; जय-विजय, सफलता।

अनुवाद

"यह ईश्वर के दूत सदैव आपके मंगल के आकांक्षी हैं। उन्हीं की कृपा से आपके सारे कार्य सफल होते हैं। उनके आशीर्वाद से आपकी सर्वत्र विजय होगी।

मोरे केन पुछ, तुमि पुछ आपन-मन ।

तुमि नराधिप हओ विष्णु-अंश सम ॥ 178॥

मोरे-मुझे; केन–क्यों; पुछ-आप पूछते हैं; तुमि-आप; पुछ–पूछो; आपन-मन-अपने मन से; तुमि-आप; नर-अधिप-लोगों का राजा; हओ-आप हैं; विष्णु-अंश सम-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु के प्रतिनिधि।

अनुवाद

"आप मुझसे क्यों पूछ रहे हैं? आप अपने मन से क्यों नहीं पूछते? आप जनता के राजा होने के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रतिनिधि हैं। अतएव आप इसे मुझसे अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं।"

तोमार चित्ते चैतन्येरे कैछे हय ज्ञान ।

तोमार चित्ते येइ लय, सेइ त' प्रमाण ॥ 179॥

तोमार चित्ते-आपके मन में; चैतन्येरे–चैतन्य महाप्रभु के; कैछे-कैसे; हय-है; ज्ञान –ज्ञान; तोमार–आपका; चित्ते–मन; येइ-जो कुछ; लय-लेता है; सेइ त' प्रमाण-वही प्रमाण है।

अनुवाद

इस प्रकार श्रील रूप गोस्वामी ने राजा को बतलाया कि उसका मन श्री चैतन्य महाप्रभु को जानने का एक साधन है। उन्होंने राजा को विश्वास दिलाया कि उसके मन में जो भी आये उसे ही प्रमाण मानें।

राजा कहे, शुन, मोर मने येइ लय ।

साक्षातीश्वर इहँ नाहिक संशय ॥ 180 ॥

राजा कहे-राजा ने उत्तर दिया; शुन-सुनो; मोर-मेरा; मने-मन; येइ-जो; लय-होता है; साक्षात्-साक्षात्; ईश्वर–ईश्वर; इहँ-वे; नाहिक-नहीं है; संशय–शंका।

अनुवाद

राजा ने उत्तर दिया, "मैं श्री चैतन्य महाप्रभु को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मानता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

एत कहि' राजा गेला निज अभ्यन्तरे ।

तबे दबिर खास आइला आपनार घरे ॥ 181॥

एत कहि'—यह कहकर; राजा-राजा; गेला-गया; निज-अपने; अभ्यन्तरे-अपने निजी घर में; तबे-उस समय; दबिर खास-श्रील रूप गोस्वामी; आइला–लौट आये; आपनार-अपने निजी; घरे–निवासस्थान को।

अनुवाद

रूप गोस्वामी के साथ इस बातचीत के बाद राजा अपने अन्तःपुर में चला गया। तब रूप गोस्वामी (जो उस समय दबिर खास कहलाते थे) भी अपने घर लौट गये।

तात्पर्य

एक राजा निश्चित रूप से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का प्रतिनिधि होता है। भगवद्गीता में कहा गया है-सर्वलोकमहेश्वरम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सभी ग्रहों के मालिक हैं। प्रत्येक ग्रह में कोई न कोई शासक या राजा होना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को भगवान् विष्णु का प्रतिनिधि माना जाता है। उसे भगवान् की ओर से सभी लोगों के हितों को ध्यान में रखना चाहिए। इसलिए परमात्मा रूप में भगवान् विष्णु राजा को बुद्धि प्रदान करते हैं, जिससे वह सरकारी कामकाज सम्पन्न कर सके। अतएव श्रील रूप गोस्वामी ने राजा से पूछा कि उसके मन में श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति कैसा भाव है और यह संकेत किया कि राजा जो भी उनके विषय में सोच रहा था, वह ठीक था।

घरे आसि' दुइ भाइ युकति करिञा ।

प्रभु देखिबारे चले वेश लुकाञा ॥182॥

घरे आसि'–घर लौटकर; दुइ भाइ–दोनों भाई; युकति–विचार विमर्श; करिञा-करके; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; देखिबारे–मिलने के लिए; चले-चलते हैं; वेश-वेश; लुकाञा–छुपाकर।

अनुवाद

अपने घर लौट आने के बाद दबिर खास तथा उनके भाई ने पर्याप्त विचार विमर्श के बाद महाप्रभु से वेष बदलकर मिलने का निर्णय किया।

अर्ध-रात्रे दुइ भाइ आइला प्रभु-स्थाने ।

प्रथमे मिलिला नित्यानन्द-हरिदास सने ॥183॥

अर्ध-रात्रे-आधी रात को; दुइ भाइ-दोनों भाई; आइला–आये; प्रभु-स्थाने-चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; प्रथमे-पहले; मिलिला–मिले; नित्यानन्द-हरिदास-नत्यानन्द प्रभु और हरिदास ठाकुर; सने-के साथ।

अनुवाद

इस प्रकार दबिर खास तथा साकर मल्लिक दोनों भाई आधी रात को वेश बदलकर श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने गये। सर्वप्रथम वे नेत्यानन्द प्रभु तथा हरिदास ठाकुर से मिले।

ताँरा दुइ-जन जानाइला प्रभुर गोचरे ।

रूप, साकर-मल्लिक आइला तोमा' देखिबारे ॥ 184॥

ताँरा–वे; दुइ-जन-दोनों व्यक्ति; जानाइला–सूचना दी; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु गोचरे–उपस्थिति में; रूप-रूप गोस्वामी; साकर-मल्लिक-और सनातन गोस्वामी; ला-आये हैं; तोमा'-आपके; देखिबारे-दर्शन के लिए।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु तथा हरिदास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु को पाया कि दो भक्त-श्री रूप तथा सनातन-उनका दर्शन करने के आये हैं।

तात्पर्य

साकर मल्लिक नाम था सनातन गोस्वामी का और दबिर खास नाम था रूप गोस्वामी का। वे मुसलमान राजा की नौकरी में इसी नाम से जाने जाते थे, अतएव ये मुस्लिम नाम थे। सरकारी अधिकारी होने के कारण इन दोनों भाइयों ने विभिन्न मुसलमानी रीति-रिवाज अपना लिये थे।

दुइ गुच्छ तृण दुँहे दशने धरिञा ।

गले वस्त्र बान्धि' पड़े दण्डवत् हञा ॥ 185॥

दुइ-दो; गुच्छ-गुच्छे; तृण-तिनके के; दुँहे-उन दोनों ने; दशने-दांतों में; धरिञा-पकड़कर; गले-गले पर; वस्त्र-वस्त्र; बान्धि'–बाँधकर; पड़े-गिर पड़े; दण्डवत्-दण्ड की भाँति; हञा-होकर।

अनुवाद

दोनों भाई अत्यन्त दीनतावश अपने दाँतों में तिनके दबाकर और अपने गले में कपड़ा बाँधकर महाप्रभु के सामने दण्ड के समान गिर पड़े।

दैन्य रोदन करे, आनन्दे विह्वल ।

प्रभु कहे,—उठ, उठ, हइल मङ्गल ॥ 186 ॥

दैन्य-विनम्रता; रोदन-रोना; करे–किया; आनन्दे-आनन्द में; विह्वल-विह्वल; प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; उठ उठ-उठो, उठो; हइल मङ्गल-आपका मंगल हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर दोनों भाई आनन्द से अभिभूत हो गये और दीनतावश रोने लगे। महाप्रभु ने उनसे उठने के लिए कहा और उनके मंगल की कामना की।

उठि' दुइ भाइ तबे दन्ते तृण धरि' ।

दैन्य करि' स्तुति करे करयोड़ करि ॥187॥

उठि'-उठकर; दुइ-दोनों; भाइ–भाई; तबे-तब; दन्ते-दांतों में; तृण-तृण; धरि'-दबाकर; दैन्य करि'–विनम्रतापूर्वक; स्तुति करे-स्तुति की; कर-योड़-हाथ जोड़कर; करि'-करके।

अनुवाद

दोनों भाई उठ खड़े हुए और पुनः अपने दाँतों में तिनका दबाकर उन्होंने हाथ जोड़कर विनीत भाव से प्रार्थना की।

जय जय श्री कृष्ण-चैतन्य दयामय ।

पतित-पावन जय, जय महाशय ॥188॥

जय जय-जय जय; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; दयामय–सर्वाधिक दयालु; पतित-पावन-पतितपावन; जय-जय; जय-जय; महाशय-महाशय।

अनुवाद

"पतितात्माओं का उद्धार करने वाले परम दयालु श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की जय हो! परम भगवान् की जय हो!

नीच-जाति, नीच-सङ्गी, करि नीच काज ।

तोमार अग्रेते प्रभु कहिते वासि लाज ॥ 189॥

नीच जाति-नीच जाति; नीच-सङ्गी-पतितात्माओं की संगति में; करि–हम करते हैं; नीच-नीच; काज-कर्म; तोमार-आपके; अग्रेते-सामने; प्रभु-हे प्रभु; कहिते-कहते हुए; वासि-हम अनुभव करते हैं; लाज-लज्जा।

अनुवाद

"हे प्रभु, हम नीच जाति के हैं और हमारे संगी तथा हमारी नौकरी भी निम्न कोटि की है। अतएव हम आपके समक्ष अपना परिचय नहीं दे सकते। हमें यहाँ आपके समक्ष खड़े होने में अत्यधिक लज्जा का अनुभव हो रहा है।

तात्पर्य

यद्यपि रूप तथा सनातन (उस समय दबिर खास तथा साकर मल्लिक) दोनों भाइयों ने अपने आपको निम्न कुल से संबधित बतलाया, किन्तु वे मूल कर्णाट के अति-सम्माननीय ब्राह्मण परिवार के थे। इस तरह वे वास्तव में

ब्राह्मण जाति के थे। दुर्भाग्यवश मुसलमान सरकार की नौकरी में होने के कारण उनके रीति-रिवाज तथा व्यवहार मुसलमानों जैसे थे। इसीलिए उन्होंने अपने आपको नीच जाति का कहा। जाति का अर्थ है जन्म। शास्त्रों के अनुसार जन्म तीन प्रकार के होते हैं—पहला माता के गर्भ से, दूसरा शुद्धीकरण संस्कार द्वारा तथा तीसरा गुरु-दीक्षा से। घृणित काम करने या नीच लोगों की संगति करने से मनुष्य नीच बनता है। रूप तथा सनातन, दबिर खास तथा साकर मल्लिक के रूप में, मुसलमानों का संग करते थे, जो स्वाभाविक रूप से ब्राह्मण संस्कृति तथा गो-रक्षा के विरोधी थे। श्रीमद्भागवत के सातवें स्कंध में

कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य का कोई न कोई वर्ग होता है। वह शास्त्रों में उल्लिखित विशेष लक्षणों द्वारा पहचाना जाता है। वह अपने लक्षणों से ही किसी जाति विशेष का माना जाता है। दबिर खास तथा साकर मल्लिक दोनों ही ब्राह्मण जाति के थे, किन्तु चूँकि वे मुसलमानों के यहाँ नौकर थे, अतएव उनकी मूल प्रवृत्तियाँ बिगड़कर मुसलमानों जैसी बन गईं थीं। चूँकि उनमें ब्राह्मण-संस्कृति के कोई लक्षण लगभग नहीं थे, इसीलिए वे अपने आपको नीच जाति का कहते थे। भक्तिरत्नाकर में स्पष्ट कहा गया है कि चूँकि साकर मल्लिक तथा दबिर खास नीच जाति के लोगों के साथ रहते थे, इसीलिए उन्होंने अपना परिचय नीच जाति से सम्बन्धित कहकर दिया। किन्तु वास्तव में उनका जन्म सम्माननीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था।

मत्तुल्यो नास्ति पापात्मा नापराधी च कश्चन ।

परिहारेऽपि लज्जा मे किं ब्रुवे पुरुषोत्तम ॥190॥

मत्-मेरे; तुल्यः-समान; न अस्ति–नहीं है; पाप-आत्मा-पापी; न अपराधीन-न ही अपराधी; च-भी; कश्चन-कोई भी; परिहारे–माफी माँगने में; अपि-भी; लज्जा-लज्जित; मे-मुझे; किम्-क्या; ब्रुवे-मैं कहूँ; पुरुष-उत्तम-हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवन्।

अनुवाद

“हे प्रभु, हम आपको बतला देना चाहते हैं कि न तो हम से बड़ा कोई पपि है, य ही हमारे समान कोई अपराधी है। यदि हम अपने पापकर्म बताना भी चाहे, तो हमें तुरन्त लज्जा आ जाती है। उन्हें छोड़ने की बात तो दूर रही।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.154) का है।

पतित-पावन हेतु तोमार अवतार ।

आमा-बइ जगते, पतित नाहि आर ॥191॥

पतित-पावन पति के उद्धार; हेतु-हेतु; तोमार-आपका; अवतार–अवतार; आमा-बइ-हमारी अपेक्षा; जगते—इस जगत् में; पतित-पतित; नाहि-नहीं है; आर-और अधिक।

अनुवाद

दोनों भाइयों ने निवेदन किया, "हे प्रभु, आप पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए अवतरित हुए हैं। आप ऐसा समझिये कि इस संसार में हम जैसा पतित कोई नहीं है।

जगाइ-माधाइ दुइ करिले उद्धार ।

ताहाँ उद्धारिते श्रम नहिल तोमार ॥ 192॥

जगाइ-माधाइ-जगाई तथा माधाई दोनों भाई; दुइ-दो; करिले-आपने किया; उद्धार-उद्धार; ताहाँ-वहाँ; उद्धारिते-उद्धार करने हेतु; श्रम-परिश्रम; नहिल नहीं था; तोमार-आपका।

अनुवाद

"आपने जगाइ तथा माधाइ दोनों भाइयों का उद्धार किया, किन्तु उनका उद्धार करने में आपको अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा।

ब्राह्मण-जाति तारा, नवद्वीपे घर ।

नीच-सेवा नाहि करे, नहे नीचेर कूर्पर ॥ 193 ॥

ब्राह्मण-जाति ब्राह्मण कुल में जन्मे; तारा-वे; नवद्वीपे–पवित्र नवद्वीप धाम में; घर-उनके घर; नीच-सेवा-नीचों की सेवा; नाहि-नहीं; करे-करते ; नहे-नहीं; नीचेर-नीचों का; कूर्पर-साधन॥

अनुवाद

“जगाइ तथा माधाइ दोनों भाई ब्राह्मण जाति के थे और उनका निवास-स्थान नवद्वीप की पुण्यभूमि में था। उन्होंने न तो कभी नीच पुरुषों की सेवा की थी, न ही वे नीच कार्यों के साधन बने।

सबे एक दोष तार, हय पापाचार।

पाप-राशि दहे नामाभासेइ तोमार ॥ 194॥

सबे-कुल मिलाकर; एक मात्र एक; दोष-दोष; तार–उनका; हय–वे हैं; पाप-आचार्येर-पापाचारी; पाप-राशि-पाप राशि; दहेजल जाती है; नाम-आभासेइ-पवित्र नाम जप के हल्के आभास से; तोमार-आपके।

अनुवाद

“जगाइ तथा माधाइ में केवल एक दोष था—वे पापकर्मों में लिप्त रहते थे। किन्तु पापकर्मों का भण्डार आपके पवित्र नाम के कीर्तन के आभास मात्र से ही जलकर भस्म हो सकता है।

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी ने अपने आपको जगाइ तथा माधाई नामक उन दो भाइयों से भी अधम बताया, जिनका उद्धार श्री चैतन्य महाप्रभु ने किया था। जब रूप तथा सनातन गोस्वामी ने अपनी तुलना जगाइ तथा माधाइ से की, तो उन्होंने अपने आपको उनसे नीच पाया, क्योंकि इन दोनों शराबी भाइयों का उद्धार करने में महाप्रभु को तनिक भी श्रम नहीं करना पड़ा। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि पापकर्मों में लिप्त रहने पर भी अन्य कई प्रकार से उनका जीवन उज्ज्वल था। वे नवद्वीप के ब्राह्मण थे तथा ऐसे ब्राह्मण स्वभाव से पुण्यवान होते थे। यद्यपि वे बुरी संगति के कारण कुछ पापकर्मों में लिप्त रहते थे, किन्तु ये अवांछित बातें भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने मात्र से ही नष्ट हो सकती थीं। जगाइ तथा माधाई के लिए दूसरी बात यह थी कि ब्राह्मण परिवार के सदस्य होने के नाते उन्होंने किसी की नौकरी स्वीकार नहीं की थी। शास्त्र द्वारा वर्जित है कि कोई ब्राह्मण किसी दूसरे की नौकरी करे। भाव यह है कि किसी को स्वामी बनाने पर मनुष्य को कुत्ते का कार्य स्वीकार करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, कुत्ता बिना स्वामी के उन्नति नहीं कर सकता और स्वामी को प्रसन्न करने के लिए कुत्ता अनेक लोगों के प्रति अपराध करता है। कुत्ता अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए निर्दोष लोगों पर भुंकता है। इसी प्रकार जब कोई नौकर बनता है, तो उसे अपने मालिक के आदेशानुसार नीच कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। अतएव जब दबिर खास तथा साकर मल्लिक ने अपनी स्थिति की तुलना जगाई तथा माधाई से की, तो उन्हें लगा कि जगाइ तथा माधाई दोनों की स्थिति

उनसे बहुत अच्छी है। जगाई तथा माधाइ ने कभी किसी नीच व्यक्ति की नौकरी स्वीकार नहीं की थी, न ही उसके आदेश पर कोई नीच कार्य करने पर विवश हुए थे। वे निन्दा के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम का उच्चारण करते थे। किन्तु उनका नामोच्चारण करने के कारण वे तुरन्त ही पापकर्मों के फलों से मुक्त हो गये। इस तरह बाद में उनका उद्धार हुआ।

तोमार नाम लञा तोमार करिल निन्दन ।

सेइ नाम हइल तार मुक्तिर कारण ॥195॥

तोमार-आपका; नाम-पावन नाम; लञा-लेना; तोमार-आपकी; करिल-की; निन्दन–निन्दा; सेइ-वह; नाम-पावन नाम; हइल-हो गया; तार–उनकी; मुक्तिर-मुक्ति का; कारण-कारण।

अनुवाद

“जगाइ तथा माधाइ ने आपकी निन्दा के रूप में आपके पवित्र नाम का उच्चारण किया। सौभाग्यवश वही पवित्र नाम उनकी मुक्ति का कारण बना।

जगाइ-माधाइ हैते कोटी कोटी गुण ।

अधम पतित पापी आमि दुइ जन ॥ 196॥

जगाइ-माधाइ–जगाइ और माधाइ; हैते–की अपेक्षा; कोटी कोटी-लाखों करोड़ों; गुण-गुना; अधम-अधम, नीच; पतित-पतित; पापी-पापी; आमि-हम; दुइ-दोनों; जन-व्यक्ति।

अनुवाद

“हम दोनों जगाइ तथा माधाइ से करोड़ों गुना अधम हैं। हम उनसे अधिक नीच, पतित तथा पापी हैं।

म्लेच्छ-जाति, म्लेच्छ-सेवी, करि म्लेच्छ-कर्म ।

गो-ब्राह्मण-द्रोहि-सङ्गे आमार सङ्गम ॥197॥

म्लेच्छ-जाति-म्लेच्छ (मांसाहारी) जाति; म्लेच्छ-सेवी-म्लेच्छों के सेवक; करि-हम करते हैं; म्लेच्छ-कर्म-म्लेच्छ कर्म; गो-गौओं; ब्राह्मण-ब्राह्मण; द्रोहि-द्रोही, वैरी; सङ्गे-के साथ; आमार–हमारी; सङ्गम-संगति।

अनुवाद

"वास्तव में हम म्लेच्छ (मांसाहारी) जाति के हैं, क्योंकि हम म्लेच्छों के नौकर हैं। निस्सन्देह, हमारे कार्य बिल्कुल म्लेच्छों की ही तरह हैं। चूँकि हम सदैव ऐसे लोगों की संगति करते हैं, अतएव हम गौवों तथा ब्राह्मणों के प्रति शत्रुभाव रखने वाले हैं।"

तात्पर्य

मांसाहारी दो प्रकार के होते हैं-वे जो मांसाहारी परिवार में जन्म लेते हैं। तथा वे जो मांसाहारियों की संगति में रहने लगते हैं। हमें श्रील रूप तथा सनातन गोस्वामियों (पहले दबिर खास तथा साकर मल्लिक) से यह शिक्षा मिलती है कि किस प्रकार मांसाहारियों की संगति करने मात्र से कोई मांसाहारी बन जाता है। इस समय भारत में महत्त्वपूर्ण पदों पर अनेक तथाकथित ब्राह्मण आसीन हैं, किन्तु फिर भी राज्य की ओर से गो-वध के लिए कसाई-घर चलते हैं और वैदिक सभ्यता के विरुद्ध प्रचार किया जाता है। वैदिक सभ्यता का पहला सिद्धान्त यह है कि मांसाहार तथा नशे से दूर रहना। किन्तु इस समय भारत में नशा तथा मांसाहार को प्रोत्साहित किया जा रहा है और इस प्रकार राष्ट्र की अध्यक्षता करनेवाले तथाकथित विद्वान ब्राह्मण श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी द्वारा यहाँ दिये गये मापदण्ड के अनुसार पतित हो गये हैं। ये तथाकथित ब्राह्मण अच्छा वेतन पाने के लिए इन कसाई-घरों को स्वीकृति दे देते हैं और ऐसे जघन्य कार्यों का प्रतिरोध नहीं करते। इस तरह वैदिक सभ्यता के सिद्धान्तों की अवमानना एवं गो-वध का समर्थन करने के कारण वे तुरन्त म्लेच्छों तथा यवनों के पद को प्राप्त हो जाते हैं। म्लेच्छ मांसाहार करने वाला है और वैदिक संस्कृति से भ्रष्ट व्यक्ति को यवन कहते हैं। दुर्भाग्यवश ऐसे म्लेच्छ तथा यवन प्रशासन चलाते हैं। तब भला राज्य में सुख-शान्ति कैसे रह सकती है? राजा या राष्ट्रपति को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का प्रतिनिधि होना चाहिए। जब महाराज युधिष्ठिर ने भारतवर्ष (जो पहले सारे जल-थल समेत सम्पूर्ण पृथ्वी ग्रह था) का शासन सँभाला, तब उन्होंने भीष्मदेव तथा भगवान् कृष्ण जैसे महापुरुषों का आशीर्वाद प्राप्त किया था। इस तरह वे धार्मिक नियमों के अनुसार समूचे संसार पर शासन करते रहे। किन्तु इस समय राज्य के अध्यक्ष धार्मिक नियमों की परवाह नहीं करते। यदि अधार्मिक लोग किसी बात पर, चाहे वह शास्त्रों के नियमों के विरुद्ध क्यों न हो, मतदान करते हैं, तो बिल पारित हो जाते हैं। ऐसे जघन्य कार्यों से सहमत -होकर राष्ट्रपति तथा राज्य के अध्यक्ष पाप के भागी बनते हैं। सनातन तथा रूप गोस्वामी ने अपने आपको ऐसे ही कार्यों के लिए दोषी माना, इसलिए ब्राह्मण-कुल में जन्म होने पर भी उन्होंने अपनी गिनती म्लेच्छों में की।

मोर कर्म, मोर हाते-गलाय बान्धिया।

कु-विषय-विष्ठा-गर्ते दियाछे फेलाइया ॥198॥

मोर–हमारे; कर्म-कर्म; मोर-हमारे; हाते-हाथ पर; गलाय-गर्दन पर; बान्धिया-बँधे; कु-विषय-इन्द्रियतृप्ति की घृणित वस्तुएँ; विष्ठा-विष्ठा; गर्ते-खाई में; दियाछे फेलाड्या-फेंक दिए गये हैं।

अनुवाद

साकर मल्लिक तथा दबिर खास, दोनों भाइयों ने विनीत भाव से निवेदन किया कि अपने जघन्य कार्यों के फलस्वरूप उन्हें हाथ तथा गले से बाँधकर भौतिक इन्द्रिय-भोग रूपी घृणित मल जैसे पदार्थों के गड्ढे में गिरा दिये गये हैं।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने कु-विषय-गर्त की व्याख्या इस प्रकार की है : "इन्द्रियों के कार्यों के फलस्वरूप हम अनेक इन्द्रियतृप्ति के कार्य करते हैं और इस तरह भौतिक प्रकृति के नियमों से बँध जाते हैं। यह बन्धन विषय कहलाता है। जब इन्द्रियतृप्ति के कार्य धर्मानुसार सम्पन्न होते हैं, तो वे सुविषय कहलाते हैं। सु शब्द का अर्थ है 'अच्छा' तथा विषय का अर्थ है 'इन्द्रिय-विषय।' जब इन्द्रियतृप्ति के कार्य पापमय अवस्थाओं में सम्पन्न किये जाते हैं, तो वे कुविषय कहलाते हैं। चाहे कुविषय हो या सुविषय, दोनों ही भौतिक कार्य हैं। इसीलिए उनकी तुलना विष्ठा या मल से की गई है। दूसरे शब्दों में, ऐसे कार्यों से बचना चाहिए। सुविषय तथा कुविषय से मुक्त होने के लिए मनुष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेममयी सेवा में लग जाना चाहिए। भक्ति के कार्य भौतिक गुणों के कल्मष से मुक्त होते हैं। अतएव सुविषय तथा कुविषय के फलों से मुक्त होने के लिए मनुष्य को कृष्णभावनामृत ग्रहण करना चाहिए। इस तरह मनुष्य अपने आपको कल्मष से बचा सकता है।" इसी संदर्भ में श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का भजन है :

कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, केवल विषेर भाण्ड

अमृत बलिया येब खाय।

नाना योनि सदा फिरे, कदर्य भक्षण करे

तार जन्म अधःपाते याय ॥

सुविषय तथा कुविषय दोनों ही कर्म-काण्ड के अन्तर्गत आते हैं। एक अन्य काण्ड (कार्य करने की भूमिका) भी है-ज्ञान-काण्ड अर्थात् भव-बन्धन से उद्धार पाने के विचार से सुविषय तथा कुविषय के प्रभावों के बारे में दार्शनिक चिन्तन। ज्ञान-काण्ड के स्तर पर मनुष्य कुविषय तथा सुविषय की वस्तुओं का परित्याग कर सकता है। किन्तु यह जीवन की पूर्णता नहीं है। पूर्णता तो ज्ञान-काण्ड तथा कर्म-काण्ड दोनों से परे है। यह भक्ति के स्तर पर होती है। यदि हम कृष्णभावनामृत में भक्ति को ग्रहण नहीं करते, तो हमें इसी भौतिक संसार के भीतर रहना पड़ेगा और ज्ञान-काण्ड तथा कर्म-काण्ड के प्रभावों के कारण जन्म-मृत्यु के चक्र को सहना पड़ेगा। इसीलिए नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं :

नाना योनि सदा फिरे, कदर्य भक्षण करे

तार जन्म अध:पाते याय ।

"मनुष्य नाना योनियों में भ्रमण करता है और सभी तरह की वर्जित वस्तुओं का भक्षण करता है। इस प्रकार वह अपने आस्तित्व को बिगाड़ देता है।" भौतिक जीवन में कुविषय और सुविषय में लिप्त मनुष्य की वही स्थिति होती है, जैसी मल के कीड़े की। मल मल ही है, चाहे वह गीला हो या सूखा। इसी प्रकार भौतिक कर्म, पवित्र या अपवित्र हो सकते हैं, किन्तु भौतिक होने के कारण वे मल के तुल्य हैं। कीड़े अपने आप मल से बाहर नहीं निकल सकते। इसी प्रकार इस भौतिक संसार में बुरी तरह आसक्त लोग भौतिकतावाद से निकलकर सहसा कृष्णभावनाभावित नहीं हो सकते। उनमें आसक्ति तो रहती ही है। जैसा प्रह्लाद महाराज श्रीमद्भागवत (7.5.30) में बतलाते हैं :

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा

मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ।

अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्र

पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥

"जिन लोगों ने इस भौतिक जगत् में रहकर इन्द्रियतृप्ति भोगने का निश्चय कर लिया है, वे कृष्णभावनाभावित नहीं हो सकते। भौतिक कर्म में लिप्त रहने के कारण वे न तो अपने गुरुजनों के उपदेशों से, न ही अपने निजी प्रयासों से या बड़े-

बड़े सम्मेलनों में प्रस्ताव पारित करने से मुक्ति प्राप्त कर पाते हैं। अपनी असंयमित इन्द्रियों के कारण इच्छित या अनिच्छित योनि में जन्म-मृत्यु के चक्र की पुनरावृत्ति के लिए वे संसार के अंधतम प्रदेश में क्रमशः गिरते रहते हैं।"

आमा उद्धारिते बली नाहि त्रि-भुवने ।

पतित-पावन तुमि—सबे तोमा विने ॥ 199॥

आमा-हमारा; उद्धारिते-उद्धार करने के लिए; बली–शक्तिशाली; नाहि-नहीं; त्रि-भुवने–तीनों भुवनों में; पतित-पावन-पतित पावन; तुमि-आप; सबे-केवल; तोमा-आप; विने-अतिरिक्त।

अनुवाद

"तीनों लोकों में हमारा उद्धार करने में कोई भी समर्थ नहीं है। आप पतितात्माओं के एकमात्र उद्धारक हैं, अतएव आपके अतिरिक्त हमारा कोई दूसरा नहीं है।

आमा उद्धारिया यदि देखाओ निज-बल ।।

'पतित-पावन' नाम तबे से सफल ॥ 200॥

आमा-हमारा; उद्धारिया-उद्धार कर; यदि यदि; देखाओ-आप दिखाएँ; निज-बल-अपना बल; पतित-पावन-पतितपावन; नाम—यह नाम; तब-तब से वह; सफल-सफल।

अनुवाद

"यदि आप अपने दिव्य बल से हमारा उद्धार कर दें, तो निश्चय ही आप 'पतितपावन' के रूप में जाने जायेंगे।

सत्य एक बात कहों, शुन, दयामय ।

मो-विनु दयार पात्र जगते ना हय ॥ 201॥

सत्य–सत्य; एक-एक; बात-बात; कहों-हम कहते हैं; शुन–कृपया सुनो; दया-मय-हे दयालु भगवान्; मो-विनु—हमारे सिवा; दयार—दया का; पात्र–पात्र; जगते–जगत् में; ना-नहीं; हय है।

अनुवाद

“हम बिल्कुल सत्य कह रहे हैं। हे दयामय! कृपया इसे सुन लीजिये। तीनों लोकों में हमारे अतिरिक्त कोई दूसरा दया का पात्र नहीं है।

मोरे दया करि’ कर स्व-दया सफल ।

अखिल ब्रह्माण्ड देखुक तोमार दया-बल । 202॥

मोरे-हम पर; दया-दया; करि’–करके; कर-करिये; स्व-दया--अपनी दया को; सफल–सफल; अखिल–सारे; ब्रह्माण्ड–ब्रह्माण्ड; देखुक-देखने दीजिये; तोमार-आपकी; दया-बल-दया की शक्ति।

अनुवाद

“हम सर्वाधिक पतित हैं, अतएव हम पर दया करने पर आपकी दया सर्वाधिक सफल होगी। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आपकी दया की शक्ति देखने दीजिये!

न मृषा परमार्थमेव मे

शृणु विज्ञापनमेकमग्रतः ।

यदि मे न दयिष्यसे तदा

दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः ॥ 203 ॥

न–नहीं; मृषा-झूठ; परम-अर्थम्-अर्थपूर्ण; एव-निश्चित रूप से; मे–मेरी; शृणु-कृपया सुनिये; विज्ञापनम्-अनुरोध; एक-एक; अग्रतः-पहले; यदि-यदि; मे-मुझ पर; न दयिष्यसे—दया नहीं दिखाई; तदा-तो; दयनीयः-दया का पात्र; तव-आपका; नाथ-हे भगवन्; दुर्लभः–खोजना दुर्लभ।

अनुवाद

“हे प्रभु, हमें आपके समक्ष एक बात कहने दें। यह रंचमात्र भी मिथ्या नहीं है अपितु सार्थक है। यह इस प्रकार है–यदि आप हम पर दयालु नहीं होंगे, तो आपकी कृपा के लिए हमसे अधिक योग्य पात्र ढूंढ पाना अत्यधिक कठिन होगा।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्री यामुनाचार्य कृत स्तोत्र-रत्न (47) से है।

आपने अयोग्य देखि' मने पाँ क्षोभ ।

तथापि तोमार गुणे उपजय लोभ ॥ 204॥

आपने-हम स्वयं; अयोग्य–सर्वाधिक अयोग्य; देखि'–देखकर; मने-मन में; पाँ–पाते हैं; क्षोभ–क्षोभ; तथापि तथापि; तोमार-आपके; गुणे-दिव्य गुणों में; उपजय-है; लोभ-आकर्षण।

अनुवाद

"आपकी कृपा के लिए उपयुक्त पात्र न होने से हम अत्यधिक क्षुब्ध हैं। फिर भी हमने आपके दिव्य गुणों के विषय में सुन रखा है, अतएव हम आपके प्रति अत्यधिक आकृष्ट हैं।

वामन यैछे चाँद धरिते चाहे करे ।

तैछे एइ वाञ्छा मोर उठये अन्तरे ॥205॥

वामन-वामन; यैछे-जैसे; चाँद-चाँद; धरिते-पकड़ना; चाहे-इच्छा; करे-करता है; तैछे—उसी प्रकार; एई–यह; वाञ्छा-इच्छा; मोर-मेरी; उठये-जगती है; अन्तरे–मन में।

अनुवाद

"निस्सन्देह, हम उस वामन के तुल्य हैं, जो चाँद को पकड़ना चाहता है। यद्यपि हम सर्वथा अयोग्य हैं, किन्तु हमारे मनों में आपकी कृपा प्राप्त करने की इच्छा उठ रही है।

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरः

प्रशान्त-निःशेष-मनो-रथान्तरः ।

कदाहमैकान्तिक-नित्य-किङ्करः

प्रहर्षयिष्यामि सनाथ-जीवितम् ॥ 206॥

भवन्तम्-आप; एव–निश्चित रूप से; अनुचरन्–सेवा करने से; निरन्तरः-निरन्तर; प्रशान्त-शान्त, सन्तुष्ट; नि:शेष—सब; मनः-रथ–मनोरथ, इच्छाएँ; अन्तरः-अन्य; कदा-कब; अहम्-मैं; ऐकान्तिक–अकेले; नित्य-नित्य; किङ्करः-सेवक; प्रहर्षयिष्यामि-मैं प्रसन्न होऊँगा; स-नाथ–सनाथ; जीवितम्-जीवन पाकर।

अनुवाद

"आपकी निरन्तर सेवा करने से मनुष्य सारी भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और पूर्ण शान्ति प्राप्त करता है। वह समय कब आयेगा जब मैं आपका नित्य दास बनूंगा और ऐसा योग्य स्वामी पाकर सदैव प्रसन्नता का अनुभव करूँगा?"

तात्पर्य

सनातन गोस्वामी को शिक्षा देते समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह घोषणा की है कि प्रत्येक जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सनातन दास है। यही समस्त जीवों की स्वाभाविक स्थिति है। जिस प्रकार एक कुत्ता या नौकर दक्ष मालिक पाकर या एक बालक सक्षम पिता पाकर पूर्ण सन्तुष्ट रहता है, उसी तरह जीव भगवान् की सेवा में पूर्णतया निरत रहकर सन्तुष्ट रहता है। इससे वह जान लेता है कि उसका सक्षम स्वामी उसे सभी प्रकार के संकटों से उबार लेगा। जब तक जीव को भगवान् का निश्चित संरक्षण प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक वह चिन्तित रहता है। यह चिन्ता का जीवन ही भौतिक जीवन कहलाता है। पूर्ण तुष्ट एवं चिन्तामुक्त होने के लिए मनुष्य को भगवान् की निरन्तर सेवा करने की स्थिति पर आना होगा। यह श्लोक भी श्री यामुनाचार्य कृत स्तोत्र-रत्न (43) से है।

शुनि' महाप्रभु कहे,—शुन, दबिर-खास ।

तुमि दुइ भाइ—मोर पुरातन दास ॥ 207॥

शुनि'—यह सुनकर; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु; कहे-कहते हैं; शुन-कृपया सुनो; दबिर खास-दबिर खास; तुमि-तुम; दुइ भाइ–दोनों भाई; मोर-मेरे; पुरातन-पुराने; दास-सेवक।

अनुवाद

दबिर खास तथा साकर मल्लिक की प्रार्थना सुनने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे दबिर खास, तुम दोनों भाई मेरे पुराने सेवक हो।

आजि हैते दुँहार नाम 'रूप' 'सनातन'।

दैन्य छाड़, तोमार दैन्ये फाटे मोर मन ॥ 208॥

आजि हैते-आज से; दुँहार-तुम दोनों के नाम-नाम; रूप-श्री रूप; सनातन-श्री सनातन; दैन्य छाड़-अपनी दीनता छोड़ दो; तोमार-तुम्हारी; दैन्ये दीनता; फाटे-फाड़ रही है; मोर-मेरा; मन-हृदय।

अनुवाद

"हे साकर मल्लिक, आज से तुम्हारे नाम श्रील रूप तथा श्रील सनातन होंगे। अब अपनी दीनता को त्यागो, क्योंकि तुम्हारी दीनता देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा है।

तात्पर्य

वास्तव में यह श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दबिर खास तथा साकर मल्लिक की दीक्षा है। वे भगवान् के पास अत्यन्त दीन बनकर आये और महाप्रभु ने उन्हें नित्य दासों की तरह स्वीकार कर लिया। उन्होंने उनके नाम भी बदल दिये। इससे यह समझना चाहिए कि दीक्षा के बाद शिष्य को अपना नाम बदलना आवश्यक होता है।

शङ्खचक्राघूर्ध्वपुण्ड्रधारणाद्यात्मलक्षणम्।

तन्नामकरणं चैव वैष्णवत्वमिहोच्यते ॥

"दीक्षा के बाद शिष्य का नाम बदल दिया जाना चाहिए, जिससे यह सूचित हो कि वह भगवान् विष्णु का दास है। शिष्य को तुरन्त ही अपने शरीर पर, विशेषतया मस्तक पर तिलक (ऊर्ध्वपुण्ड्र) भी लगाना चाहिए। ये दिव्य चिह्न शुद्ध वैष्णव के लक्षण हैं।" यह श्लोक पद्मपुराण के उत्तर खण्ड से है। सहजिया सम्प्रदाय का सदस्य अपना नाम नहीं बदलता, अतएव उसे गौड़ीय वैष्णव के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि कोई व्यक्ति दीक्षा के बाद अपना नाम नहीं बदलता, तो समझना चाहिए कि वह अपनी देहात्मबुद्धि में ही बना रहेगा।

दैन्य-पत्री लिखि' मोरे पाठाले बार बार।

सेइ पत्री-द्वारा जानि तोमार व्यवहार ॥209॥

दैन्य-पत्री-दैन्य पूर्ण पत्र; लिखि'–लिखकर; मोरे-मुझे; पाठाले-तुमने भेजा; बार बार-बारम्बार; सेइ-उन; पन्नी-द्वारा-पत्रों के द्वारा; जानि–मैं समझ सकता हूँ; तोमार-तुम्हारा; व्यवहार–व्यवहार।

अनुवाद

"तुमने मेरे पास अपनी दीनता जताने वाले अनेक पत्र लिखे, जिनसे तुम्हारी दीनता परिलक्षित होती है। मैं उन पत्रों से तुम्हारे व्यवहार को समझ सकता हूँ।

तोमार हृदय आमि जानि पत्री-द्वारे ।

तोमा शिखाइते श्लोक पाठाइल तोमारे ॥ 210॥

तोमार-तुम्हारे; हृदय-हृदय; आमि--मैं; जानि-समझता हूँ; पत्री-द्वारे-उन पत्रों के द्वारा; तोमा-तुम्हें; शिखाइते-सिखाने के लिए; श्लोक-एक श्लोक; पाठाइल-मैंने भेजा; तोमारे-तुमको।

अनुवाद

"मैं तुम्हारे पत्रों से ही तुम्हारे हृदय को जान गया था। इसलिए तुम्हें शिक्षा देने के लिए मैंने तुम्हारे पास एक श्लोक लिख भेजा था, जो इस प्रकार है।

पर-व्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृह-कर्मसु ।

तदेवास्वादयत्यन्तर्नव-सङ्ग-रसायनम् ॥ 211॥

पर-व्यसनिनी–पर पुरुष से आसक्त; नारी–एक स्त्री; व्यग्रा अपि-व्यग्र होने पर भी; गृह-कर्मसु–घर के कामों में; तत् एव–मात्र वह; आस्वादयति–चखती है; अन्तः-अपने अन्दर; नव-सङ्ग-नई संगति का; रस-अयनम्-रस।

अनुवाद

"यदि कोई स्त्री अपने पति को छोड़कर किसी अन्य पुरुष में आसक्त रहती है, तो वह अपने घरेलू कामों में अत्यधिक व्यस्त दिखेगी, किन्तु अपने अन्तर में वह अपने प्रेमी के सान्निध्य की अनुभूति का सदैव आस्वादन करती रहती है।'

गौड़-निकट आसिते नाहि मोर प्रयोजन ।

तोमा-दुँहा देखिते मोर इहाँ आगमन ॥212॥

गौड़-निकट-बंगाल को; आसिते-आने के लिए; नाहि-नहीं था; मोर-मेरा; प्रयोजन-प्रयोजन; तोमा-तुम; दुँहा - दोनों को देखते-देखने के लिए; मोर–मेरा; इहाँ-यहाँ; आगमन-आगमन।

अनुवाद

"वास्तव में बंगाल आने में मेरा कोई प्रयोजन नहीं था, किन्तु मैं तुम दोनों भाइयों को मिलने के लिए ही आया हूँ।

एइ मोर मनेर कथा केह नाहि जाने ।

सबे बले, केने आइला रामकेलि-ग्रामे ॥ 213॥

एइ-यह; मोर-मेरे; मनेर-मन की; कथा-इच्छा; केह-कोई भी; नाहि-नहीं: जाने-जानता है; सबे–प्रत्येक व्यक्ति; बले-कहता है; केने-क्यों; आइला-आप आये; रामकेलि-ग्रामे-इस रामकेलि गाँव में।

अनुवाद

"हर कोई पूछ रहा है कि मैं इस रामकेलि गाँव में क्यों आया हूँ। कोई भी मेरे प्रयोजन को नहीं जानता।

भाल हैल, दुइ भाइ आइला मोर स्थाने ।

घरे याह, भय किछु ना करिह मने ॥ 214॥

भाल हैल-बहुत अच्छा हुआ; दुइ भाइ-तुम दोनों भाई; आइला–आये; मोर-मेरे; स्थाने स्थान पर; घरे–घर; याह-जाओ; भय–भय; किछु—कुछ भी; ना–नहीं; करिह-करो; मने-मन में।

अनुवाद

"यह अच्छा हुआ कि तुम दोनों भाई मुझे मिलने आये। अब तुम घर जा सकते हो। अब किसी बात का डर न रखो।

जन्मे जन्मे तुमि दुइ–किङ्कर आमार ।

अचिराते कृष्ण तोमाय करिबे उद्धार ॥ 215 ॥

जन्मे जन्मे-जन्म-जन्मान्तर; तुमि-तुम; दुइ-दोनों; किङ्कर–सेवक; आमार-मेरे; अचिराते-अति शीघ्र; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तोमाय-तुम दोनों का; करिबे-करेंगे; उद्धार-उद्धार।

अनुवाद

"तुम दोनों जन्म-जन्मांतर मेरे सनातन दास रहे हो। मुझे विश्वास है कि कृष्ण शीघ्र ही तुम्हारा उद्धार करेंगे।"

एत बलि दुँहार शिरे धरिल दुइ हाते ।

दुइ भाइ प्रभु-पद निल निज माथे ॥ 216॥

एत बलि-यह कहकर; दुँहार शिरे—उन दोनों के सिर पर; धरिल-रखे; दुइ-दोनों; हाते-हाथ; दुइ भाइ–दोनों भाई; प्रभु-पद-महाप्रभु के चरणकमल; निल-ले लिए; निज माथे-अपने मस्तक पर।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने उन दोनों के सिरों पर अपने दोनों हाथ रख दिये और उन दोनों ने तुरन्त ही अपने-अपने मस्तक पर महाप्रभु के चरणकमलों को रख लिया।

दोंहा आलिङ्गिया प्रभु बलिल भक्त-गणे ।

सबे कृपा करि' उद्धारह दुइ जने ॥ 217॥

दोंहा–उन दोनों को; आलिङ्गिया-आलिंगन करके; प्रभु–महाप्रभु; बलिल–बोले; भक्त-गणे–भक्तों को; सबे-आप सब; कृपा-कृपा; करि'-करके; उद्धारह-उद्धार करो; दुइ-दोनों; जने–व्यक्तियों का।

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु ने उन दोनों को अपने आलिंगन में ले लिया और वहाँ पर उपस्थित सारे भक्तों से अनुरोध किया कि वे उन पर दयालु हों और उनका उद्धार करें।

दुइ जने प्रभुर कृपा देखि' भक्त-गणे ।

‘हरि’ ‘हरि’ बले सबै आनन्दित-मने ॥ 218॥

दुइ जने दोनों व्यक्तियों पर प्रभुर–महाप्रभु की; कृपा-कृपा; देखि’–देखकर; भक्त-गणे—सभी भक्त; हरि हरि- भगवान् का पावन नाम " हरि हरि’; बले-बोलने लगे; सबे—सभी; आनन्दित-आनन्दित होकर; मने-मन में।

अनुवाद

जब समस्त भक्तों ने दोनों भाइयों पर महाप्रभु की कृपा देखी, तो वे अत्यन्त पुलकित हुए और “हरि! हरि!” कहकर भगवन्नाम का कीर्तन करने लगे।

तात्पर्य

श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं-छाड़िया वैष्णव सेवा निस्तार पेयेछे केबा–वैष्णव की सेवा किये बिना किसी का उद्धार सम्भव नहीं है। गुरु शिष्य का उद्धार करने के लिए उसे दीक्षा देता है और यदि शिष्य गुरु की आज्ञा का पालन करता है तथा अन्य वैष्णवों के प्रति अपराध नहीं करता, तो उसका मार्ग निष्कंटक हो जाता है। फलस्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु ने वहाँ पर उपस्थित सारे वैष्णवों से आग्रह किया कि वे रूप तथा सनातन दोनों भाइयों पर कृपा करें, जिन्हें महाप्रभु ने उसी समय दीक्षा दी थी। जब कोई वैष्णव देखता है कि दूसरे वैष्णव को भगवान् की कृपा प्राप्त हो रही है, तो वह अत्यधिक प्रसन्न होता है। वैष्णव ईर्ष्या नहीं करते। यदि भगवान् किसी वैष्णव को संसार-भर में भगवन्नाम वितरित करने की शक्ति प्रदान करते हैं, तो अन्य वैष्णव, यदि वे सच्चे वैष्णव हैं, अत्यधिक हर्षित होते हैं। जो व्यक्ति किसी वैष्णव की सफलता पर ईर्ष्या करता है, वह निश्चित रूप से वैष्णव नहीं है, अपितु सामान्य संसारी व्यक्ति है। ईर्ष्या और द्वेष संसारी लोगों में पाये जाते हैं, वैष्णवों में नहीं। भला कोई वैष्णव दूसरे वैष्णव से, जो भगवन्नाम को प्रसारित करने में सफल हुआ हो, ईर्ष्या क्यों करेगा? एक सच्चा वैष्णव उस दूसरे वैष्णव को स्वीकार करके अत्यन्त प्रसन्न रहता है, जो भगवान् की कृपा प्रदान करता है। वैष्णव-वेश में संसारी व्यक्ति का सम्मान नहीं करना चाहिए, अपितु उसकी उपेक्षा करनी चाहिए। ऐसा शास्त्रों का आदेश है। उपेक्षा का अर्थ है "परवाह न करना।” ईर्ष्यालु व्यक्ति की उपेक्षा करनी चाहिए। प्रचारक का कर्तव्य है कि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से प्रेम करे, वैष्णवों से मैत्री स्थापित करे, अबोध पर कृपा करे और जो ईर्ष्यालु या द्वेषी हैं, उनकी उपेक्षा या बहिष्कार करे। इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन में वैष्णवों के वेश में कई ईर्ष्यालु व्यक्ति हैं और इनकी पूरी तरह उपेक्षा की जानी चाहिए। ऐसे ईर्ष्यालु व्यक्ति की सेवा

करने की आवश्यकता नहीं है, जो वैष्णव का वेश बनाये हो। जब नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं- छाड़िया वैष्णव सेवा निस्तार पेयेछे केबा–तो वे सच्चे वैष्णव की ओर इंगित करते हैं, वैष्णव वेशधारी ईर्ष्यालु व्यक्ति की ओर नहीं।

नित्यानन्द, हरिदास, श्रीवास, गदाधर ।

मुकुन्द, जगदानन्द, मुरारि, वक्रेश्वर ॥ 219॥

नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; हरिदास-हरिदास ठाकुर; श्रीवास–श्रीवास ठाकुर; गदाधर-गदाधर पण्डित; मुकुन्द-मुकुन्द; जगदानन्द-जगदानन्द; मुरारि-मुरारि; वक्रेश्वर–वक्रेश्वर।

अनुवाद

महाप्रभु के सभी वैष्णव पार्षद वहाँ उपस्थित थे, जिनमें नित्यानन्द प्रभु, हरिदास ठाकुर, श्रीवास ठाकुर, गदाधर पण्डित, मुकुन्द, जगदानन्द पण्डित, मुरारि तथा वक्रेश्वर सम्मिलित थे।

सबार चरणे धरि, पड़े दुइ भाइ ।

सबे बले,—धन्य तुमि, पाइले गोसाञि ॥ 220॥

सबार-उन सबके; चरणे-चरणकमल; धरि छूकर; पड़े गिर पड़े; दुइ भाइ-दोनों भाई; सबे बले-सभी वैष्णव कहने लगे; धन्य तुमि-आप धन्य हो; पाइले गोसाञि-आपने चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का आश्रय पाया है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार रूप तथा सनातन दोनों भाइयों ने तुरन्त ही इन वैष्णवों के चरणकमलों का स्पर्श किया। वे सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने दोनों भाइयों को महाप्रभु की कृपा प्राप्त होने पर बधाई दी।

तात्पर्य

यह व्यवहार सच्चे वैष्णवों का सूचक है। जब उन्होंने देखा कि रूप तथा सनातन को भगवान् की कृपा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, तो वे सब इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने दोनों भाइयों को बधाई दी। वैष्णव के वेश में ईर्ष्यालु व्यक्ति अन्य वैष्णव को प्रभु की कृपा प्राप्त करने में सफल होने पर तनिक भी प्रसन्न नहीं होता। दुर्भाग्यवश इस

कलियुग में वैष्णव-वेश में ऐसे संसारी व्यक्तियों की कमी नहीं है और श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने ऐसे व्यक्तियों को कलि का शिष्य कहा है। वे इन्हें कलि-चेला कहते हैं। वे सूचित करते हैं। कि एक झूठा वैष्णव होता है, जो अपनी नाक पर तिलक लगाता है और गले में कण्ठी पहनता है। ऐसा झूठा वैष्णव धन तथा स्त्रियों की संगति करता है। और सफल वैष्णवों से ईर्ष्या करता है। उसका एकमात्र धंधा होता है वैष्णव-वेश में धन कमाना। इसलिए भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि ऐसा छद्म वैष्णव बिल्कुल वैष्णव नहीं होता, अपितु कलि-चेला होता है। कलि का शिष्य (कलि-चेला) किसी उच्च न्यायालय के निर्णय से आचार्य नहीं बन सकता। किसी वैष्णव आचार्य को चुनने के लिए भौतिक व्यक्तियों के मत का कोई महत्त्व नहीं होता। वैष्णव आचार्य स्वयं तेजस्वी होता है, उसे किसी उच्च न्यायालय के निर्णय की आवश्यकता नहीं पड़ती। बनावटी आचार्य भले ही उच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा किसी वैष्णव को परास्त करने का प्रयत्न करे, किन्तु भक्तिविनोद ठाकुर का कहना है कि वह मात्र कलि-चेला है।

इहाँ हैते

काज-और

करता है; गौड़

उन्होंने

आपका अ

काम नहीं

तथापि

सबा-पाश आज्ञा मागि' चलन-समय ।

प्रभु-पदे कहे किछु करिया विनय ॥ 221॥

सबा-वे सब; पाश-से; आज्ञा-आज्ञा; मागि'-लेकर; चलन-समय-चलते समय; प्रभु-पदे-महाप्रभु के चरणकमलों में; कहे-कहा; किछु-कुछ; करिया-करके; विनय-विनय।

अनुवाद

वहाँ पर उपस्थित सारे वैष्णवों से आज्ञा लेकर दोनों भाइयों ने विदा लेते समय महाप्रभु के चरणकमलों पर कुछ निवेदन किया।

इहाँ हैते चल, प्रभु, इहाँ नाहि काज ।

यद्यपि तोमारे भक्ति करे गौड़-राज ॥222॥

इहाँ हैते–इस स्थान से; चल–कृपया चलो; प्रभु–प्रिय प्रभु; इहाँ–इस स्थान में; नाहि काज-और कोई काम नहीं है; यद्यपि यद्यपि; तोमारे-आपका; भक्ति-आदर; करे-करता है; गौड़-राज-बंगाल का राजा।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "हे प्रभु, यद्यपि बंगाल का राजा नवाब हुसैन शाह आपका अत्यन्त सम्मान करता है, किन्तु अब आपका यहाँ कोई अन्य काम नहीं है। अतएव कृपया आप इस स्थान से प्रस्थान करें।

तथापि यवन जाति, ना करि प्रतीति ।

तीर्थ-यात्राय एत संघट्ट भाल नहे रीति ॥ 223 ॥

तथापि-तथापि; वन जाति-मुस्लिम जात; ना-नहीं; करि–करता; प्रतीति-विश्वास; तीर्थ यात्राय–तीर्थयात्रा पर जाने पर; एत-इतनी; संघट्ट-भीड़, लोगों का समूह; भाल–अच्छा; नहे-नहीं; रीति-रीति।

अनुवाद

"यद्यपि राजा आपके प्रति आदर-भाव रखता है, तो भी वह यवन जाति का है और उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। हमारे विचार से वृन्दावन की तीर्थयात्रा के लिए अपने साथ इतनी बड़ी भीड़ ले जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

यार सङ्गे चले एइ लोक लक्ष-कोटि ।

वृन्दावन-यात्रार ए नहे परिपाटी ॥224॥

यार–जिसके; सङ्गे–संग में; चले-पीछे चलते हैं; एइ-ये; लोक-लोग; लक्ष-कोटि-लाखों-करोड़ों; वृन्दावन-यात्रा-वृन्दावन यात्रा की; ए-यह; नहे-नहीं; परिपाटी-रीति।

अनुवाद

हे प्रभु, आप अपने साथ लाखों लोगों को लेकर वृन्दावन जा रहे हैं, किन्तु तीर्थयात्रा करने की यह उपयुक्त विधि नहीं है।"

तात्पर्य

कभी-कभी व्यापारिक दृष्टि से बहुत से लोगों की टोली विभिन्न तीर्थस्थलों को ले जाई जाती है और उनसे धन एकत्र किया जाता है। यह बहुत ही लाभप्रद व्यापार हैं, किन्तु रूप तथा सनातन गोस्वामियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में यह मत व्यक्त किया कि भीड़ के साथ तीर्थयात्रा ठीक नहीं होती। वास्तव में जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन गये, तो वे अकेले ही थे और अपने भक्तों के अनुरोध पर ही उन्होंने एक सेवक स्वीकार किया था। वे कभी-भी व्यापारिक उद्देश्य से भीड़ लेकर वृन्दावन नहीं गये।

यद्यपि वस्तुतः प्रभुर किछु नाहि भय ।

तथापि लौकिक-लीला, लोक-चेष्टा-मय ॥225॥

यद्यपि-यद्यपि; वस्तुतः–वास्तव में; प्रभुर–महाप्रभु को; किछु–कोई; नाहि-नहीं है; भय-भय; तथापि तथापि; लौकिक-लीला-लौकिक लीलाएँ; लोक-चेष्टा-मय-लोकप्रिय व्यवहार से युक्त।

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् थे और तनिक भी भयभीत नहीं थे, तथापि उन्होंने अपने नये भक्तों को शिक्षा देने के लिए एक मनुष्य की भाँति आचरण किया।

एत बलि' चरण वन्दि' गेला दुइ-जन ।

प्रभुर सेइ ग्राम हैते चलिते हैल मन ॥226॥

एत बलि'—यह कहकर; चरण वन्दि'-चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में शीश झुकाकर; गेला–लौट गये; दुइ-जन-दोनों भाई; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; सेइ-उस; ग्राम-ग्राम; हैते–से; चलिते-जाने को; हैल–हो गया; मन–मन।।

अनुवाद

यह कहकर दोनों भाइयों ने महाप्रभु के चरणकमलों की वन्दना की और अपने घर लौट आये। तत्पश्चात् महाप्रभु ने उस गाँव को छोड़ने का विचार किया।

प्राते चलि' आइला प्रभु 'कानाइर नाटशाला' ।

देखिल सकल ताहाँ कृष्ण-चरित्र-लीला ॥ 227॥

प्राते-प्रातः काल; चलि'–चलकर; आइला–आये; प्रभु–महाप्रभु; कानाइर नाटशाला–कानाई नाटशाला स्थान पर; देखिल-देखा; सकल-सब; ताहाँ-वहाँ; कृष्ण-चरित्र-लीला-कृष्ण लीलाएँ।

अनुवाद

प्रातःकाल महाप्रभु वहाँ से चल पड़े और कानाइ नाटशाला नामक स्थान गये। वहाँ उन्होंने भगवान् कृष्ण की अनेक लीलाएँ देखीं।

तात्पर्य

उन दिनों बंगाल में कई स्थान कानाइ नाटशाला नाम से विख्यात थे, जहाँ कृष्ण-लीलाओं के चित्र रखे रहते थे। लोग वहाँ जाकर उन्हें देखते थे। इसे कृष्ण-चरित्र-लीला कहा जाता है। बंगाल में आज भी अनेक स्थान हैं, जिन्हें हरिसभा कहते हैं और जिससे सूचित होता है कि इस स्थान पर वहाँ के लोग एकत्र होकर हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करते हैं और भगवान् कृष्ण की लीलाओं पर विचार-विमर्श करते हैं। कानाइ शब्द का अर्थ है " भगवान् कृष्ण का" और नाटशाला का अर्थ है लीलाओं का प्रदर्शन स्थल । सम्भवतः वे स्थान जो आजकल हरिसभा नाम से जाने जाने हैं, पहले कानाइ नाटशाला के नाम से जाने जाते हों।

सेड़ रात्रे प्रभु ताहाँ चिन्ते मने मन ।

सङ्गे संघट्ट भाल नहे, कैल सनातन ॥ 228॥

सेइ रात्रे-उसी रात; प्रभु–महाप्रभु; ताहाँ-वहाँ; चिन्ते-सोचते हैं; मने-अपने मन में; मन–मन; सङ्गे उनके साथ; संघट्ट लोगों की भीड़; भाल नहे-अच्छा नहीं; कैल सनातन-सनातन ने ऐसा कहा है।

अनुवाद

उस रात महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी के इस प्रस्ताव पर विचार किया कि उन्हें इतने लोगों को साथ लेकर वृन्दावन नहीं जाना चाहिए।

मथुरा याइब आमि एत लोक सङ्गे ।

किछु सुख ना पाइब, हबे रस-भङ्गे ॥ 229॥

मथुरा-मथुरा नामक पवित्र स्थान; याइब–जाऊँगा; आमि—-मैं; एत-इतने; लोक-लोगों; सङ्गे-के साथ; किछु–कोई; सुख-सुख; ना-नहीं; पाइब-पाऊँगा; हबे-वहाँ होगा; रस-भङ्गे–वातावरण में अशान्ति।

अनुवाद

महाप्रभु ने सोचा, "यदि मैं इतनी बड़ी भीड़ के साथ मथुरा जाऊँगा, तो बहुत अच्छा नहीं होगा; क्योंकि इससे वातावरण अशान्त हो जायेगा।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु इसकी पुष्टि करते हैं कि बहुत सारे लोगों के साथ वृन्दावन जैसे पवित्र स्थान की यात्रा करने से केवल अशान्ति होगी। इस तरह ऐसे पवित्र स्थानों में जाने से उन्हें इच्छित सुख प्राप्त नहीं हो सकेगा।

एकाकी याइब, किम्वा सङ्गे एक जन ।

तबे से शोभये वृन्दावनेरे गमन ॥230॥

एकाकी–अकेले; याइब-मैं जाऊँगा; किम्वा-अथवा; सङ्गे–के साथ; एक-एक; जन–व्यक्ति; तबे-तभी; से—वह; शोभये-अच्छा लगेगा; वृन्दावनेरे-वृन्दावन को; गमन-जाना।

अनुवाद

महाप्रभु इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वे अकेले ही या अधिक से अधिक एक व्यक्ति के साथ वृन्दावन जायेंगे। इस तरह से वृन्दावन जाना अत्यन्त सुखद होगा।

एत चिन्ति प्रातः काले गङ्गा-स्नान करि' ।

'नीलाचले याब' बलि' चलिला गौरहरि ॥231॥

एत चिन्ति-यह विचारकर; प्रातः काले–प्रात:काल; गङ्गा-स्नान-गंगा स्नान; करि’—करके; नीलाचले याब-मैं नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) जाऊंगा; बलि’–कहकर; चलिला–चल पड़े; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

इस प्रकार सोचकर महाप्रभु ने प्रात:काल गंगा नदी में स्नान किया और यह कहकर चल पड़े कि, “मैं नीलाचल जाऊँगा।”

एइ मत चलि’ चलि’ आइला शान्तिपुरे ।

दिन पाँच-सात रहिला आचार्येर घरे ॥ 232॥

एइ मत-इस प्रकार; चलि’ चलि’–चलते चलते; आइला–आ गये; शान्तिपुरे-शान्तिपुर; दिन पाँच-सात-पाँच सात दिन; रहिला-रहे; आचार्येर घरे-अद्वैत आचार्य के घर में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु चलते-चलते शान्तिपुर पहुँचे और अद्वैत आचार्य के घर में पाँच-सात दिन रहे।

शची-देवी आनि’ ताँरे कैल नमस्कार ।

सात दिन ताँर ठाञि भिक्षा-व्यवहार ॥233॥

शची-देवी-माता शचीदेवी; आनि’–उन्हें बुलाकर; ताँरे-चैतन्य महाप्रभु कौ; कैल–किया; नमस्कार-नमस्कार; सात दिन-सात दिन; ताँर ठाञि-शचीदेवी से; भिक्षा-व्यवहार–भोजन स्वीकार किया।

अनुवाद

इस अवसर का लाभ उठाकर श्री अद्वैत आचार्य प्रभु ने माता शचीदेवी को बुला लिया और वे उनके घर में महाप्रभु का भोजन बनाने के लिए सात दिन तक रहीं।

ताँर आज्ञा लञा पुनः करिला गमने ।

विनय करिया विदाय दिल भक्त-गणे ॥ 234॥

ताँर आज्ञा लञा-माता शचीदेवी की आज्ञा पाकर; पुनः–पुनः; करिला-किया; गमने-गमन; विनय करिया–विनयपूर्वक निवेदन करके; विदाय–विदाई; दिल-दी; भक्त-गणे-सभी भक्तों को।

अनुवाद

अपनी माता से आज्ञा लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी के लिए चल पड़े। जब भक्तगण उनके साथ चलने लगे, तो महाप्रभु ने उनसे विनती की कि वे वहीं रहें और तब उन्होंने सबसे विदा ली।

जना दुई सङ्गे आमि याब नीलाचले ।

आमारे मिलिबा आसि' रथ-यात्रा-काले ॥235 ॥

जना–लोगों के; दुइ-दो; स–साथ; आमि-मैं; याब-जाऊँगा; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी को; आमारे-मुझे; मिलिबा–मिलोगे; आसि'-वहाँ आकर; रथ-यात्रा-कालै–रथयात्रा के समय।

बलभद्र भट्टाचार्य, आर पण्डित दामोदर ।

दुइ-जन-सङ्गे प्रभु आइला नीलाचल ॥ 236 ॥

बलभद्र भट्टाचार्य–बलभद्र भट्टाचार्य; आर-और; पण्डित दामोदर-दामोदर पण्डित; दुइ-जन-दो व्यक्ति; सङ्गे–के साथ; प्रभु–महाप्रभु; आइला–लौट गये; नीलाचल-जगन्नाथ पुरी को।

अनुवाद

दो भक्त जो श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ जगन्नाथ पुरी (नीलाचल) जा रहे थे, वे थे बलभद्र भट्टाचार्य तथा दामोदर पण्डित।

दिन कत ताहाँ रहि' चलिला वृन्दावन ।

लुकाञा चलिला रात्रे, ना जाने कोन जन ॥237॥

दिन कत-कुछ दिन; ताहाँ-जगन्नाथ पुरी में; रहि-रहकर; चलिला–चल पडे; वृन्दावन-वृन्दावन को; लुकाञा-चुपके से; चलिला रवाना हो गये; रात्रे-रात को; ना जाने नहीं जानते थे; कोन–कुछ; जन–लोग।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में कुछ दिन रहकर महाप्रभु रात में चुपके से वृन्दावन के लिए चल पड़े। उन्होंने यह कार्य किसी की जानकारी में आये बिना किया।

बलभद्र भट्टाचार्य रहे मात्र सङ्गे ।

झारिखण्ड-पथे काशी आइला महा-रङ्गे ॥ 238॥

बलभद्र भट्टाचार्य–बलभद्र भट्टाचार्य; रहे-रहे; मात्र-केवल; सङ्गे-उनके साथ; झारि-खण्ड-पथे-झारखण्ड (मध्य प्रदेश) के रास्ते; काशी-काशी (बनारस) में; आइला–पहुँचे; महा-रङ्गे–अत्यन्त हर्ष सहित।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी से वृन्दावन के लिए चले, तब उनके साथ केवल बलभद्र भट्टाचार्य थे। इस तरह वे मार्ग में झारखण्ड होते हुए बड़ी प्रसन्नतापूर्वक बनारस (वाराणसी) पहुँचे।

दिन चार काशीते रहि' गेला वृन्दावन ।

मथुरा देखियो देखे द्वादश कानन ॥ 239॥

दिन चार-केवल चार दिन; काशीते-बनारस में ; रहि'-रहकर; गेला–चल पडे; वृन्दावन-वृन्दावन तीर्थस्थान के लिए; मथुरा-मथुरा तीर्थस्थान; देखिया-देखने के बाद; देखे-देखे; द्वादश-बारह; कानन–वन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु बनारस में केवल चार दिन रहे और फिर वृन्दावन के लिए चल पड़े। मथुरा नगरी देखने के बाद उन्होंने बारह वन देखे।

तात्पर्य

आज भी जो लोग वृन्दावन जाते हैं, वे सामान्यतया उन बारह स्थानों को देखते हैं, जो द्वादश वन कहलाते हैं। वे मथुरा से चलते हैं जहाँ काम्यवन है। वहाँ से वे तालवन, तमालवन, मधुवन, कुसुमवन, भाण्डीरवन, बिल्ववन, भद्रवन, खदिरवन, लोहवन, कुमुदवन तथा गोकुल महावन जाते हैं।

लीला-स्थल देखि' प्रेमे हइला अस्थिर ।

बलभद्र कैल ताँरे मथुरार बाहिर ॥240॥

लीला-स्थल–भगवान् कृष्ण की लीलाओं के सभी पावन स्थल; देखि'-देखकर; प्रेमे-अत्यन्त प्रेमावेश में; हइला-हो गये; अस्थिर-अस्थिर, विह्वल; बलभद्र-बलभद्र ने; कैल-सहायता की; ताँरे-श्री चैतन्य महाप्रभु की; मथुरार-मथुरा नगर के; बाहिर-बाहर।

अनुवाद

श्रीकृष्ण की बारहों लीलास्थलियाँ देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश के कारण अत्यधिक विह्वल हो उठे। उन्हें बलभद्र भट्टाचार्य किसी तरह मथुरा से बाहर ले गये।

गङ्गा-तीर-पथे लञा प्रयागे आइला ।

श्री-रूप आसि' प्रभुके तथाइ मिलिला ॥ 241॥

गङ्गा-तीर-पथे—गंगा-तट का पथ; लञा-लेकर; प्रयागे-इलाहाबाद में; आइला-आये; श्री-रूप-श्री रूप गोस्वामी; आसि'-वहाँ आकर; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को; तथाइ-वहाँ; मिलिला–मिले।

अनुवाद

मथुरा छोड़ने के बाद महाप्रभु गंगा नदी के किनारे-किनारे चलने लगे और अन्त में प्रयाग (इलाहबाद) नामक पवित्र स्थान पर आ पहुँचे। यहीं पर श्रील रूप गोस्वामी आकर महाप्रभु से मिले।

दण्डवत्करि' रूप भूमिते पड़िला ।

परम आनन्दे प्रभु आलिङ्गन दिला ॥ 242॥

दण्डवत् करि'–दण्डवत् प्रणाम करके; रूप-श्रील रूप गोस्वामी; भूमिते- भूमि पर; पड़िला–गिर गये; परम-परम; आनन्दे-आनन्द में; प्रभु–महाप्रभु ने; आलिङ्गन-आलिंगन; दिला–किया।

अनुवाद

प्रयाग में रूप गोस्वामी ने आकर महाप्रभु को दण्डवत् प्रणाम किया और महाप्रभु ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उनका आलिंगन किया।

श्री-रूपे शिक्षा कराइ' पाठाइला वृन्दावन ।

आपने करिला वाराणसी आगमन ॥243॥

श्री-रूपे शिक्षा कराइ'–श्रील रूप गोस्वामी को शिक्षा देकर; पाठाइला–भेजे; वृन्दावन-वृन्दावन की ओर; आपने–स्वयं; करिला–किया; वाराणसी-बनारस को; आगमन-आगमन।

अनुवाद

प्रयाग में दशाश्वमेध घाट पर श्रील रूप गोस्वामी को शिक्षा देने के बाद चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें वृन्दावन जाने का आदेश दिया। तत्पश्चात् महाप्रभु वाराणसी लौट आये।

काशीते प्रभुके आसि' मिलिला सनातन ।

दुइ मास रहि' ताँरे कराइला शिक्षण ॥ 244॥

काशीते-वाराणसी में प्रभुके–महाप्रभु; आसि'–पहुँचकर; मिलिला–मिले; सनातन-सनातन गोस्वामी; दुइ-दो; मास-मास; रहि-रहकर; ताँरे–उनको; कराइला–किया; शिक्षण-उपदेश।

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु वाराणसी आये, तो वहाँ उनसे सनातन गोस्वामी मिले। महाप्रभु वहाँ दो मास तक रहे और सनातन गोस्वामी को पूरी तरह से शिक्षा दी।

मथुरा पाठाइला ताँरे दिया भक्ति-बल ।

सन्न्यासीरे कृपा करि' गेला नीलाचल ॥ 245 ॥

मथुरा-मथुरा को; पाठाइला–भेजे; ताँरे–उनको; दिया–देकर; भक्ति-बल-भक्ति की शक्ति; सन्न्यासीरे—मायावादी संन्यासियों पर; कृपा-कृपा; करि'–करके; गेला–लौट गये; नीलाचल-जगन्नाथ पुरी को।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी को पूरी तरह शिक्षित करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें भक्ति की शक्ति देकर मथुरा भेज दिये। बनारस में उन्होंने मायावादी संन्यासियों पर भी कृपा की। तत्पश्चात् वे नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) लौट गये।

छय वत्सर ऐछे प्रभु करिला विलास ।

कभु इति-उति, कभु क्षेत्र-वास ॥ 246 ॥

छय वत्सर-छः वर्ष; ऐछे—इस प्रकार; प्रभु–महाप्रभु; करिला-की; विलास-लीलाएँ; कभु-कभी-कभी; इति-उति-इधर-उधर; कभु-कभी; क्षेत्र-वास–जगन्नाथ पुरी में रहकर।

अनुवाद

महाप्रभु छः वर्षों तक सारे भारत में भ्रमण करते रहे। वे अपनी दिव्य लीलाएँ सम्पन्न करते हुए कभी इधर तो कभी उधर रहते और कभी वे जगन्नाथ पुरी में रहते।

आनन्दे भक्त-सङ्गे सदा कीर्तन-विलास ।

जगन्नाथ-दरशन, प्रेमेर विलास ॥ 247॥

आनन्दे-अत्यन्त प्रसन्न होकर; भक्त-सङ्गे-भक्तों के साथ; सदा-सदा; कीर्तन-कीर्तन; विलास-आनन्द; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ; दरशन-दर्शन करके; प्रेमेर-प्रेमरूपी; विलास-लीलाएँ।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में रहते हुए महाप्रभु संकीर्तन करने और भाव-विभोर होकर जगन्नाथ मन्दिर का दर्शन करने में अपना समय प्रसन्नतापूर्वक बिताते रहे।

मध्य-लीलार कैलुँ एइ सूत्र-विवरण ।

अन्त्य-लीलार सूत्र एबे शुन, भक्त-गण ॥248 ॥

मध्य-लीलार–मध्यलीला के, उनकी लीलाओं का मध्य भाग; कैलुँ–मैंने किया है; एइ-यह; सूत्र-सारांश; विवरण–विवरण; अन्त्य-लीलार-अन्तिम लीलाओं का, अन्त्यलीला नामक; सूत्र-सारांश; एबे–अब; शुन-सुनो; भक्त-गण-हे भक्तों।

अनुवाद

इस प्रकार मैंने महाप्रभु की मध्यलीला का सारांश दिया है। हे भक्तों, कृपया अब महाप्रभु की अन्तिम लीला का सारांश सुनो, जो अन्त्यलीला कहलाती है।

वृन्दावन हैते यदि नीलाचले आइला ।

आठार वर्ष ताहाँ वास, काहाँ नाहि गेला ॥ 249॥

वृन्दावन हैते–वृन्दावन से; यदि-यद्यपि; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; आइला-लौट आये; आठार-अठराह; वर्ष–वर्ष; ताहाँ-वहाँ, जगन्नाथ पुरी में; वास–निवास; कहाँ-कहीं भी; नाहि-नहीं; गेला–गये।

अनुवाद

जब महाप्रभु वृन्दावन से लौटकर जगन्नाथ पुरी आ गये, तो वे वहीं पर रहे और अठारह वर्षों तक कहीं नहीं गये।

प्रतिवर्ष आइसेन ताहाँ गौड़ेर भक्त-गण ।

चारि मास रहे प्रभुर सङ्गे सम्मिलन ॥ 250॥

प्रतिवर्ष–प्रतिवर्ष; आइसेन–मिलने आते; ताहाँ-वहाँ; गौड़ेर-बंगाल के; भक्त-गण-सारे भक्त; चारि–चार; मास-मास; रहे-रहे; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु; सङ्गे–के संग; सम्मिलन–मिलकर।

अनुवाद

इन अठारह वर्षों में बंगाल के सारे भक्त प्रतिवर्ष उनसे जगन्नाथ पुरी में आकर मिलते रहे। वे वहाँ लगातार चार महीने रहते और महाप्रभु के संग का आनन्द लूटते।

निरन्तर नृत्य-गीत कीर्तन-विलास ।

आचण्डाले प्रेम-भक्ति करिला प्रकाश ॥251॥

निरन्तर–निरन्तर; नृत्य-गीत-नाचते गाते; कीर्तन-संकीर्तन का; विलास-आनन्द; आ-चण्डाले–प्रत्येक को, नीचतम को भी; प्रेम-भक्ति-प्रेमभक्ति; करिला-की; प्रकाश-प्रकट।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु निरन्तर कीर्तन और नृत्य करते। इस तरह उन्होंने संकीर्तन-लीला के आनन्द का आस्वादन किया। वे सब पर, यहाँ तक कि नीच से नीच व्यक्ति (चाण्डाल) पर भी, अपनी अहैतुकी कृपा अर्थात् शुद्ध भगवत्प्रेम प्रकट करते।

पण्डित-गोसाञि कैल नीलाचले वास ।

वक्रेश्वर, दामोदर, शङ्कर, हरिदास ॥252॥

पण्डित-गोसाञि-गदाधर पण्डित; कैल-किया; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; वास–निवास; वक्रेश्वर–वक्रेश्वर; दामोदर-दामोदर पण्डित; शङ्कर-शंकर; हरिदास-हरिदास ठाकुर।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में चैतन्य महाप्रभु के साथ रहने वालों में पण्डित गोसांई तथा अन्य भक्त यथा वक्रेश्वर, दामोदर, शंकर तथा हरिदास ठाकुर थे।

जगदानन्द, भगवान्, गोविन्द, काशीश्वर ।

परमानन्द-पुरी, आर स्वरूप-दामोदर ॥ 253 ॥

जगदानन्द-जगदानन्द; भगवान्-भगवान; गोविन्द-गोविन्द; काशीश्वर–काशीश्वर; परमानन्द-पुरी-परमानन्द पुरी; आर स्वरूप-दामोदर-और स्वरूप दामोदर, उनके सचिव।

अनुवाद

महाप्रभु के साथ जो अन्य भक्त रह रहे थे, उनके नाम थे-जगदानन्द, भगवान, गोविन्द, काशीश्वर, परमानन्द पुरी तथा स्वरूप दामोदर।

त्र-वासी रामानन्द राय प्रभृति।

प्रभु-सङ्गे एइ सब कैल नित्य-स्थिति॥ 254॥

क्षेत्र-वासी-जगन्नाथ पुरी के निवासी; रामानन्द राय-रामानन्द राय; प्रभृति–तथा अन्य; प्रभु-सङ्गे–महाप्रभु के संग; एइ सब–वे सब; कैल–किया; नित्य-स्थिति–स्थायी निवास।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय तथा जगन्नाथ पुरी के निवासी अन्य भक्तगण भी महाप्रभु के साथ स्थायी रूप से रहते थे।

अद्वैत, नित्यानन्द, मुकुन्द, श्रीवास।

विद्यानिधि, वासुदेव, मुरारि,—यत दास॥ 255॥

प्रतिवर्षे आइसे सङ्गे रहे चारि-मास।

ताँ-सबा लञा प्रभुर विविध विलास॥ 256॥

अद्वैत-अद्वैत; नित्यानन्द-नित्यानन्द; मुकुन्द-मुकुन्द; श्रीवास-श्रीवास; विद्यानिधि–विद्यानिधि; वासुदेव-वासुदेव; मुरारि—मुरारि; यत दास–महाप्रभु के सभी सेवक; प्रतिवर्षे प्रतिवर्ष; आइसे-वहाँ जाते; सङ्गे–संग में; रहे-रहते; चारि-मास-चार मास; ताँ-सबा-उन सबको; लञा–लेकर; प्रभुर–महाप्रभु की; विविध-विविध; विलास-लीलाएँ।

अनुवाद

अन्य भक्त जिनमें अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द प्रभु, मुकुन्द, श्रीवास, विद्यानिधि, वासुदेव तथा मुरारि प्रमुख हैं, जगन्नाथ पुरी आया करते थे और लगातार चार मास तक महाप्रभु के साथ रहा करते थे। महाप्रभु इन सबके साथ विविध लीलाओं का आनन्द लेते थे।

हरिदासेर सिद्धि-प्राप्ति,—अद्भुत से सब।

आपनि महाप्रभु याँर कैल महोत्सव॥ 257॥

हरिदासेर-ठाकुर हरिदास का; सिद्धि-प्राप्ति-तिरोभाव पर; अद्भुत-अद्भुत; से-वे; सब–सभी घटनाएँ; आपनि-स्वयं; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; याँर–जिनका; कैल–किया; महा-उत्सव–महोत्सव।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में हरिदास ठाकुर ने देह त्याग किया। यह घटना अत्यन्त अद्भुत थी, क्योंकि स्वयं महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर के तिरोभाव के उपलक्ष्य में उत्सव मनाया।

तबे रूप-गोसाञि पुनरागमन ।

ताँहार हृदये कैल प्रभु शक्ति-सञ्चारण ॥ 258॥

तबे-तत्पश्चात्; रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी का; पुनः-आगमन-वहाँ पुनरागमन; ताँहार-उनके; हृदये-हृदय में; कैल–किया; प्रभु–महाप्रभु ने; शक्ति-सञ्चारण-दिव्य शक्ति का संचारण।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी जगन्नाथ पुरी में महाप्रभु से पुनः मिले। महाप्रभु ने उनके हृदय में समस्त दिव्य शक्ति संचारित कर दी।

तबे छोट हरिदासे प्रभु कैल दण्ड ।

दामोदर-पण्डित कैल प्रभुके वाक्य-दण्ड ॥259॥

तबे-तत्पश्चात्; छोट हरिदासे-छोटा हरिदास को प्रभु–महाप्रभु ने; कैल-दी; दण्ड-सजा; दामोदर-पण्डित-दामोदर पण्डित; कैल–किया; प्रभुके–महाप्रभु को; वाक्य-दण्ड-चेतावनी के रूप में सजा।

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु ने छोटे हरिदास को दण्ड दिया और दामोदर पण्डित ने महाप्रभु को कुछ चेतावनी दी।

तात्पर्य

वास्तव में दामोदर पण्डित महाप्रभु के नित्य दास थे। वे महाप्रभु को कभी भी दण्ड नहीं दे सकते थे, न ही उनकी ऐसी इच्छा थी, किन्तु उन्होंने महाप्रभु को कुछ चेतावनी अवश्य दी जिससे अन्य लोग उनकी निन्दा न कर सकें। हाँ, उन्हें यह जान लेना चाहिए था कि महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र हैं। उन्हें आगाह करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। अतएव दामोदर पण्डित की इस कार्यवाही को उन्नत भक्तगण अधिक उचित नहीं मानते।

तबे सनातन-गोसाञि पुनरागमन ।

ज्यैष्ठ-मासे प्रभु ताँरे कैल परीक्षण ॥ 260॥

तबे-तब; सनातन-गोसाञि–सनातन गोस्वामी का पुनः-आगमन–पुनरागमन; ज्यैष्ठ-मासे-ज्येष्ठ (मई-जून) मास में; प्रभु-प्रभु; ताँरे-उनका; कैल–किया; परीक्षण-परीक्षा।

अनुवाद

इसके बाद सनातन गोस्वामी पुनः चैतन्य महाप्रभु से मिले और महाप्रभु ने ज्येष्ठ मास की झुलसाने वाली गर्मी में उनकी परीक्षा ली।

तुष्ट हञा प्रभु ताँरे पाठाइला वृन्दावन ।

अद्वैतेर हस्ते प्रभुर अद्भुत भोजन ॥261॥

तुष्ट हञा–अत्यन्त प्रसन्न होकर; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको; पाठाइला-वापस भेजे; वृन्दावन-वृन्दावन को; अद्वैतेर-अद्वैत आचार्य के; हस्ते हाथों से; प्रभुर-महाप्रभु का; अद्भुत-अद्भुत; भोजन-भोजन॥

अनुवाद

प्रसन्न होकर महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को पुनः वृन्दावन भेज दिये। इसके बाद महाप्रभु ने श्री अद्वैत आचार्य के हाथों से अद्भुत भोजन किया।

नित्यानन्द-सङ्गे युक्ति करिया निभृते ।

ताँरे पाठाइला गौड़े प्रेम प्रचारिते ॥ 262॥

नित्यानन्द-सङ्गे–नित्यानन्द प्रभु के साथ; मुक्ति-चर्चा; करिया-करके; निभृते-गुप्त रूप से; ताँरे–उनको; पाठाइला–भेजा; गौड़े-बंगाल; प्रेम-भगवत्-प्रेम का; प्रचारिते-प्रचार करने के लिए।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी को वृन्दावन पुनः भेजने के बाद महाप्रभु ने श्री नित्यानन्द प्रभु से एकान्त में परामर्श किया। तत्पश्चात् उन्होंने भगवत्-प्रेम का प्रचार करने के लिए उन्हें बंगाल भेज दिये।

तबे त' वल्लभ भट्ट प्रभुरे मिलिला ।

कृष्ण-नामेर अर्थ प्रभु ताँहारे कहिला ॥ 263 ॥

तबे त'–तत्पश्चात्; वल्लभ भट्ट-वल्लभ भट्ट; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु; मिलिला-मिले; कृष्ण-नामेर-कृष्ण के पावन नाम का अर्थ-अर्थ; प्रभु–महाप्रभु; ताँहारे–उनको; कहिला-समझाया।

अनुवाद

इसके तुरन्त बाद वल्लभ भट्ट महाप्रभु से जगन्नाथ पुरी में मिले और महाप्रभु ने उन्हें पवित्र कृष्ण-नाम का अर्थ बतलाया।

तात्पर्य

वल्लभ भट्ट पश्चिम भारत में वल्लभाचार्य-सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध वैष्णव संप्रदाय के प्रमुख हैं। चैतन्य-चरितामृत की अन्त्यलीला के सातवें अध्याय में और मध्यलीला के उन्नीसवें अध्याय में वल्लभ आचार्य के विषय में लम्बी कथा दी हुई है। श्री चैतन्य महाप्रभु प्रयाग के उस पार आड़ाइल ग्राम नामक स्थान में वल्लभ आचार्य के घर गये थे। बाद में वल्लभ भट्ट श्रीमद्भागवत पर लिखी गई अपनी टीका की व्याख्या करने चैतन्य महाप्रभु के पास जगन्नाथ पुरी गये। उन्हें अपनी कृतियों पर बड़ा गर्व था, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें समझाया कि वैष्णव को विनीत होना चाहिए और अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए। महाप्रभु ने उनसे कहा कि उनका स्वयं को श्रीधर स्वामी से श्रेष्ठ समझना एक वैष्णव के लिए कदापि शोभनीय नहीं है।

प्रद्युम्न मिश्रेरे प्रभु रामानन्द-स्थाने ।

कृष्ण-कथा शुनाइल कहि' ताँर गुणे ॥ 264॥

प्रद्युम्न मिश्रेरे-प्रद्युम्न मिश्र; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; रामानन्द-स्थाने-रामानन्द राय के घर पर; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण की कथाएँ; शुनाइल–सुनवाई; कहि'–कहकर; ताँर-रामानन्द राय का; गुणे-दिव्य गुण।।

अनुवाद

रामानन्द राय के दिव्य गुणों की व्याख्या कर महाप्रभु ने प्रद्युम्न मिश्र को रामानन्द राय के घर भेजा और प्रद्युम्न मिश्र ने उनसे कृष्ण-कथा सुनी।

गोपीनाथ पट्टनायक—रामानन्द-भ्राता ।

राजा मारितेछिल, प्रभु हैल त्राता ॥ 265॥

गोपीनाथ पट्टनायक–गोपीनाथ पट्टनायक; रामानन्द-भ्राता-श्री रामानन्द राम के भाई; राजा-राजा; मारितेछिल-मृत्यु-दण्ड के आदेश से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हैल-बने; त्राता–उद्धारक।

अनुवाद

इसके बाद चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय के छोटे भाई गोपीनाथ पट्टनायक को राजा द्वारा दिये जाने वाले मृत्यु-दण्ड से बचाया।

रामचन्द्र-पुरी-भये भिक्षा घाटाइला ।

वैष्णवेर दुःख देखि' अर्धक राखिला ॥ 266 ॥

रामचन्द्र-पुरी-भये-रामचन्द्र पुरी के भय से; भिक्षा–भोजन का भाग; घाटाइला- घटाया; वैष्णवेर-सभी वैष्णवों का; दुःख-दुःख; देखि'-समझकर; अर्धेक–आधा भाग; राखिला-रखा।

अनुवाद

रामचन्द्र पुरी ने महाप्रभु के भोजन की आलोचना की, अतएव उन्होंने अपना भोजन न्यूनतम कर दिया। किन्तु जब सारे वैष्णव इससे अत्यन्त दुःखी हुए, तो महाप्रभु ने उसे बढ़ाकर पहले का आधा कर दिया।

ब्रह्माण्ड-भितरे हय चौद्द भुवन ।

चौद्द-भुवने वैसे यत जीव-गण ॥ 267॥

ब्रह्माण्ड-भितरे–ब्रह्माण्ड के भीतर; हय-हैं; चौद्द भुवन–चौदह ग्रह मण्डल; चौद्द-भुवने–उन चौदह ग्रह मण्डलों में; वैसे-रहते हैं; यत-बहुत से; जीव-गण-जीव।

अनुवाद

इस ब्रह्माण्ड के भीतर चौदह भुवन (ग्रह मण्डल) हैं और सारे जीव इन ग्रह मण्डलों में रहते हैं।

मनुष्येर वेश धरि' यात्रिकेर छले ।

प्रभुर दर्शन करे आसि' नीलाचले ॥ 268॥

मनुष्येर–मनुष्य; वेश धरि'–वेशधारी; ग्रात्रिकेर छले-जैसे यात्री हों; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करे-दर्शन करते; आसि-आकर; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में।

अनुवाद

वे सभी तीर्थयात्रियों का वेश धारण करके श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी आया करते थे।

एक-दिन श्रीवासादि यत भक्त-गण ।

महाप्रभुर गुण गाञा करेन कीर्तन ॥ 269 ॥

एक-दिन-एक दिन; श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर आदि; यत-सब; भक्त-गण-भक्तगण; महाप्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; गुण-गुण; गाञा-वर्णन करते हुए; करेन-कर रहे थे; कीर्तन-कीर्तन।

अनुवाद

एक दिन श्रीवास ठाकुर इत्यादि सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य गुणों का कीर्तन कर रहे थे।

शुनि' भक्त-गणे कहे स-क्रोध वचने ।

कृष्ण-नाम-गुण छाड़ि, कि कर कीर्तने ॥ 270 ॥

शुनि'—यह सुनकर; भक्त-गणे-सभी भक्तों को; कहे–महाप्रभु ने कहा; स-क्रोध वचने-क्रुद्ध होकर बोले; कृष्ण-नाम-गुण छाड़ि-भगवान् कृष्ण के दिव्य नाम गुणों को त्यागकर; कि कर कीर्तने-आप किस प्रकार का कीर्तन कर रहे हैं।

अनुवाद

अपने दिव्य गुणों का कीर्तन श्री चैतन्य महाप्रभु को अच्छा नहीं लगा। अतएव उन्होंने उन सबको डाँटा मानो वे नाराज हों। उन्होंने पूछा, "यह कैसा कीर्तन है? क्या तुम लोग भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन छोड़ रहे हो?"

औद्धत्य करते हैल सबाकार मन ।

स्वतन्त्र हइया सबे नाशा 'बे भुवन ॥ 271॥

औद्धत्य-धृष्टता; करिते-करना; हैल–हो गया; सबाकार-तुम सबका; मन–मन; स्वतन्त्र-स्वतंत्र; हइया–होकर; सबे-तुम सब; नाशा'बे-खराब कर दोगे; भुवन—सारे जगत् को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कहते हुए सबको प्रताड़ित किया कि तुम लोग स्वतन्त्र बनकर अपनी धृष्टता मत दिखलाओ और इस तरह सारे संसार का विनाश मत करो।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने सारे अनुयायियों को स्वतन्त्र या धृष्ट न बनने की चेतावनी दी। दुर्भाग्यवश, श्री चैतन्य महाप्रभु के अंतर्धान होने के बाद अनेक अपसम्प्रदायों (तथाकथित अनुयायियों) ने ऐसी अनेक विधियाँ खोज निकालीं, जो आचार्यों द्वारा अनुमोदित नहीं थीं। भक्तिविनोद ठाकुर ने उनके नाम इस प्रकार बतलाये हैं-आउल, बाउल, कर्ताभजा, नेड़ा, दरवेश, सानि सहजिया, सखीभेकी, स्मार्त, जात-गोसांई, अतिवाड़ी, चूड़ाधारी तथा गौरांग नागरी।

आउल, बाउल तथा अन्य सम्प्रदायों ने आचार्यों के पदचिह्नों पर न चलकर चैतन्य महाप्रभु के दर्शन को समझने की अपनी खुद की मनगढंत विधियाँ खोज निकालीं। यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं इंगित करते हैं कि ऐसे प्रयासों से उनके सम्प्रदाय का भाव नष्ट हो जायेगा।

दश-दिके कोटी कोटी लोक हेन काले ।

जय कृष्ण-चैतन्य' बलि' करे कोलाहले ॥ 272 ॥

दश-दिके-दस दिशाओं में; कोटी कोटी-लाखों पुरुष; लोक-लोग; हेन काले- इस समय; जय कृष्ण-चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु की जय; बलि'–उच्च स्वर में बोल; करे- रहे हैं; कोलाहले–कोलाहल।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु बाह्य रूप से नाराज दिख रहे थे और अपने भक्तों को प्रताड़ित कर रहे थे, तब बाहर से हजारों भक्तों ने उच्च स्वर में पुकारा, "श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो!"

जय जय महाप्रभु—व्रजेन्द्र कुमार ।

जगत्तारिते प्रभु, तोमार अवतार ॥ 273॥

जय जय महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु की जय; व्रजेन्द्र कुमार-मूलतः महाराज नन्द के पुत्र भगवान् कृष्ण; जगत्-सारा जगत्; तारिते-उद्धार करने हेतु; प्रभु–महाप्रभु; तोमार-आपके; अवतार–अवतार।

अनुवाद

सारे भक्त उच्च स्वरों में कीर्तन करने लगे, "महाराज नन्द के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! आप सारे जगत् का उद्धार करने के लिए प्रकट हुए हैं।

बहु-दूर हैते आइनु हञा बड़ आर्त ।

दरशन दिया प्रभु करह कृतार्थ ॥ 274॥

बहु-दूर-बहुत दूर; हैते-से; आइनु-हम आये हैं; हञा–होकर; बड़-अत्यन्त; आर्त–दु:खी; दरशन-दर्शन; दिया–देकर; प्रभु हे प्रभु; करह–कृपया दिखाओ (करो); कृत-अर्थ-कृतार्थ ।

अनुवाद

"हे प्रभु, हम बहुत दु:खी हैं। हम बहुत दूर से चलकर आपका दर्शन करने आये हैं। कृपया दयालु होकर आपकी कृपा का प्रदर्शन करें।"

शुनिया लोकेर दैन्य द्रविला हृदय ।

बाहिरे आसि' दरशन दिला दयामय ॥ 275 ॥

शुनिया–सुनकर; लोकेर-लोगों की; दैन्य-दीन प्रार्थना; द्रविला-द्रवित हो गया; हृदय-हृदय; बाहिरे–बाहिर; आसि—आकर; दरशन-दर्शन; दिला–दिया; दयामय-दयालु।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने लोगों की विनीत याचना सुनी, तो उनका हृदय द्रवित हो उठा। अत्यन्त दयालु होने के कारण वे तुरन्त बाहर निकल आये और उन सबको दर्शन दिया।

बाहु तुलि' बले प्रभु बल' 'हरि' 'हरि' ।

उठिल–श्री-हरि-ध्वनि चतुर्दिक्भरि' ॥ 276 ॥

बाहु तुलि'–बाँहें उठाकर; बले–कहा; प्रभु–महाप्रभु; बल'–बोलो; हरि हरि-भगवान् का पावन नाम हरि; उठिल-गूंज उठी; श्री-हरि-ध्वनि-हरि शब्द की प्रतिध्वनि; चतुः-दिक्-चारों दिशाओं को; भरि'-भरकर।

अनुवाद

अपनी दोनों बाँहें उठाकर महाप्रभु ने सबसे भगवान् हरि के पवित्र नाम का उच्च स्वर में कीर्तन करने को कहा। तुरन्त ही वहाँ हलचल मच गई और "हरि!" ध्वनि से समस्त दिशाएँ गुंजायमान हो उठीं।

प्रभु देखि' प्रेमे लोक आनन्दित मन ।

प्रभुके ईश्वर बलि' करये स्तवन ॥ 277॥

प्रभु देखि'–महाप्रभु को देखकर; प्रेमे-प्रेमावेश में; लोक-सभी लोग; आनन्दित-आनन्दित; मन–मन; प्रभुके–महाप्रभु; ईश्वर–ईश्वर के रूप में; बलि'–स्वीकार करके; करये-की; स्तवन-स्तुति।

अनुवाद

महाप्रभु का दर्शन करके सभी लोग प्रेमवश आनन्दित हो उठे। सबने महाप्रभु को भगवान् के रूप में स्वीकार किये और उनकी स्तुति की।

स्तव शुनि' प्रभुके कहेन श्रीनिवास ।

घरे गुप्त हओ, केने बाहिरे प्रकाश ॥ 278॥

स्तव-स्तुति; शुनि'–सुनकर; प्रभुके-प्रभु को; कहेन–कहने लगे; श्रीनिवास-श्रीवास ठाकुर; घरे–घर पर; गुप्त-गुप्त; हओ-आप हैं; केने-क्यों; बाहिरे-बाहिर; प्रकाश-प्रकट।

अनुवाद

जब लोग इस प्रकार से महाप्रभु की स्तुति कर रहे थे, तब श्रीनिवास आचार्य ने महाप्रभु से व्यंग्यपूर्वक कहा, "आप तो घर में गुप्त रहना चाहते थे। किन्तु आपने अपने आपको बाहर क्यों प्रकट कर दिया?"

के शिखाल एइ लोके, कहे कोन्बात ।

इहा-सबार मुख ढाक दिया निज हात ॥ 279॥

के-कौन; शिखाल–सिखाया; एइये; लोके–इन लोगों को; कहे-वे कहते हैं; कोन्-क्या; बात-बातें; इहा-उनके; सबार-सबके; मुख-मुख; ढाक-ढक दो; दिया-से; निज-अपने; हात–हाथ।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर ने आगे कहा, "इन लोगों को किसने सिखाया है? ये सब क्या कह रहे हैं? अब आप इनके मुँह अपने हाथ से बन्द कर सकते हैं।

सूर्य यैछे उदय करि' चाहे लुकाइते ।

बुझिते ना पारि तैछे तोमार चरिते ॥ 280 ॥

सूर्य-सूर्य; यैछे–की भाँति; उदय-उदय; करि'-होकर; चाहे-चाहते हैं; लुकाइते छुपना; बुझिते-समझ; ना-नहीं; पारि-सक्षम; तैछे—इस प्रकार; तोमार-आपके; चरिते-चरित्र में।

अनुवाद

"यह तो उसी प्रकार है जैसे मानो सूर्य उदय होने के बाद अपने आपको छिपाना चाहे। हम आपके चरित्र (व्यवहार) के ऐसे गुणों को समझ नहीं पाते।"

प्रभु कहेन,–श्रीनिवास, छाड़ विड़म्बना ।

सबे मेलि' कर मोर कतेक लाञ्चना ॥ 281॥

प्रभु-प्रभु; कहेन–कहते हैं; श्रीनिवास-प्रिय श्रीनिवास (श्रीवास ठाकुर); छाड़-छोड़ दो; विड़म्बना ये सब मजाक; सबे-तुम सब; मेलि'–मिलकर; कर-करते थे; मोर-मुझे; कतेक-इतना अधिक; लाञ्चना-शर्मिन्दा।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "हे श्रीनिवास, यह परिहास बन्द करो। तुम सब लोग इस प्रकार से मुझे शर्मिन्दा करने के लिए आपस में मिल गये हो।"

एत बलि' लोके करि' शुभ-दृष्टि दान ।

अभ्यन्तरे गेला, लोकेर पूर्ण हैल काम ॥282॥

एत बलि'—इस प्रकार कहकर; लोके-लोगों पर; करि'–करके; शुभ-दृष्टि-शुभ दृष्टि; दान-दान; अभ्यन्तरे–कमरे के भीतर; गेला–गये; लोकेर-सभी लोगों की; पूर्ण-पूर्ण हो गई; हैल–थी; काम-इच्छा।

अनुवाद

इस प्रकार कहकर लोगों पर कृपापूर्वक अपनी शुभ दृष्टि डालकर महाप्रभु अपने कमरे में चले गये। इस तरह सभी लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण हुई।

रघुनाथ-दास नित्यानन्द-पाशे गेला ।

चिड़ा-दधि-महोत्सव ताहाङि करिला ॥ 283 ॥

रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; पाशे–निकट; गेला–गये; चिड़ा-चिउड़ा; दधि-दही; महोत्सव–महोत्सव; ताहाडि-वहाँ; करिला-मनाया।

अनुवाद

इसके बाद रघुनाथ दास श्री नित्यानन्द प्रभु के पास पहुँचे और उनके आदेशानुसार उत्सव का आयोजन किया और चिउड़ा तथा दही से युक्त प्रसाद का वितरण किया।

तात्पर्य

बंगाल में एक विशेष व्यंजन होता है, जिसमें चिउड़ा को दही तथा कभी-कभी सन्देश और आम के साथ मिला देते हैं। इस अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन को अर्चाविग्रह को भोग लगाया जाता है और फिर जन-समूह में वितरित किया जाता है। रघुनाथ दास गोस्वामी उस समय गृहस्थ थे। वे जाकर नित्यानन्द प्रभु से मिले और उनके आदेशानुसार उन्होंने दही-चिउड़ा प्रसाद का महोत्सव सम्पन्न किया।

ताँर आज्ञा लञा गेला प्रभुर चरणे ।

प्रभु ताँरे समर्पिला स्वरूपेर स्थाने ॥ 284॥

ताँर–उनकी; आज्ञा-आज्ञा; लञा-लेकर; गेला–गये; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; चरणे-चरणकमल; प्रभु–महाप्रभु; ताँरे–उन्हें; समर्पिला–सौंप दिया; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर के; स्थाने-पास।

अनुवाद

बाद में श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी ने अपना घर छोड़ दिया और जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण ली। उस समय महाप्रभु ने उन्हें स्वीकार किया और आध्यात्मिक उन्नति के लिए स्वरूप-दामोदर के संरक्षण में सौंप दिया।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी विलाप कुसुमांजलि (5) में लिखते हैं :

यो मां दुस्तरगेहनिर्जलमहाकूपाद् अपारक्लमात्

सद्यः सान्द्र-दयाम्बुधिः प्रकृतितः स्वैरीकृपारज्जुभिः ।

उद्धृत्यात्मसरोजनिन्दिचरणप्रान्तं प्रपद्य स्वयं

श्रीदामोदरसाच्चकार तमहं चैतन्यचन्द्रं भजे ॥

“मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने अपनी अपार करुणा से मुझे उस गृहस्थ जीवन से बचा लिया, जो जलरहित अंधे कुएँ के तुल्य है और मुझे स्वरूप दामोदर गोस्वामी के संरक्षण रूपी दिव्य आनन्द के सागर में स्थान दिया।”

ब्रह्मानन्द-भारतीर घुचाइल चर्माम्बर ।

एइ मत लीला कैल छय वत्सर ॥285॥

ब्रह्मानन्द-भारतीर-ब्रह्मानन्द भारती के; घुचाइल–बन्द करवाया; चर्म-अम्बर-चर्म के वस्त्र; एइ मत-इस प्रकार; लीला-लीलाएँ; कैल-कीं; छय वत्सर-छ: वर्ष।

अनुवाद

बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु ने ब्रह्मानन्द भारती का मृगचर्म पहनने की आदत को बन्द करवाया। इस प्रकार महाप्रभु छः वर्षों तक निरन्तर अपनी लीलाएँ करते हुए अनेक प्रकार के दिव्य आनन्द का अनुभव करते रहे।

एइ त’ कहिल मध्य-लीलार सूत्र-गण ।

शेष द्वादश वत्सरेर शुन विवरण ॥ 286॥

एइ त’-इस प्रकार; कहिल–वर्णन किया; मध्य-लीलार-मध्य लीलाओं का; सूत्र-गण-रूपरेखा; शेष—शेष; द्वादश-बारह; वत्सरेर वर्षों का; शुन-सुनो; विवरण-विवरण।

अनुवाद

इस तरह मैंने मध्यलीला का सारांश कह दिया है। अब कृपा करके महाप्रभु द्वारा अन्तिम बारह वर्षों में सम्पन्न की गई लीलाओं को सुनें।

तात्पर्य

इस प्रकार श्रील कविराज गोस्वामी ठीक ठीक श्री व्यासदेव के चरणचिह्नों पर चलते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत की लीलाओं का सारांश प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने प्रत्येक स्कंध के अन्त में ऐसा ही विवरण दिया है। आदिलीला में

उन्होंने महाप्रभु के बाल्यकाल की पाँच अवस्थाओं की लीलाओं की रूपरेखा दी है और उसका विस्तार श्रील वृन्दावन दास ठाकुर के लिए छोड़ दिया है। अब इस अध्याय में उन लीलाओं का सारांश दिया गया है, जो महाप्रभु के जीवन के अन्तिम काल में सम्पन्न हुईं। ये मध्यलीला तथा अन्त्यलीला में वर्णित हैं। शेष लीलाएँ मध्यलीला के द्वितीय अध्याय में सूत्र-रूप में वर्णित हैं। इस तरह लेखक ने क्रमशः मध्यलीला तथा अन्त्यलीला दोनों का वर्णन कर दिया है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 287॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; यार–जिनकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत ग्रंथ; कहे-वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए एवं सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत की मध्यलीला के प्रथम अध्याय का, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु की परवर्ती लीलाओं का संक्षेप में वर्णन है, भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय दो

श्री चैतन्य महाप्रभु के भावोन्माद की अभिव्यक्ति

इस अध्याय में लेखक ने महाप्रभु के जीवन के अन्तिम बारह वर्षों में सम्पन्न की गई लीलाओं का वर्णन किया है। इस तरह इसमें अन्त्यलीला की भी कुछ लीलाएँ वर्णित हुई हैं। ग्रन्थकार ने ऐसा क्यों किया यह समझ पाना सामान्य व्यक्ति के लिए अत्यन्त कठिन है। ग्रन्थकार आशा करते हैं कि महाप्रभु की लीलाएँ पढ़ने से मनुष्य को क्रमशः कृष्ण के प्रति सुप्त प्रेम जाग्रत करने में सहायता मिलेगी। वास्तव में यह चैतन्य-चरितामृत ग्रन्थकार ने अपनी वृद्धावस्था में लिखा था। इस आशंका से कि वे कहीं ग्रन्थ को पूरा न कर सकें, उन्होंने अन्त्यलीला का सारांश इस द्वितीय अध्याय में वर्णित किया है। श्रील कविराज गोस्वामी ने भक्ति के मामले में श्रील स्वरूप दामोदर के मत को प्रामाणिक माना है। इसके अतिरिक्त स्वरूप दामोदर द्वारा लिखित टिप्पिणियों से भी, जिन्हें रघुनाथ दास गोस्वामी ने कण्ठस्थ कर लिया था, चैतन्य-चरितामृत के लेखन में सहायता मिली। स्वरूप दामोदर गोस्वामी के तिरोधान के बाद रघुनाथ दास गोस्वामी वृन्दावन गये। उस समय ग्रंथकार श्रील कविराज गोस्वामी रघुनाथ दास गोस्वामी से मिले, जिनकी कृपा से उन्हें भी सारी लीलाएँ कण्ठस्थ हो गईं। इस तरह से ग्रंथकार इस दिव्य ग्रंथ श्रीचैतन्य-चरितामृत को पूरा कर सके।

विच्छेदेऽस्मिन्प्रभोरन्त्य-लीला-सूत्रानुवर्णने ।

गौरस्य कृष्ण-विच्छेद-प्रलापाद्यनुवर्यते ॥1॥

विच्छेदे-अध्याय में; अस्मिन्-इस; प्रभोः–महाप्रभु के; अन्त्य-लीला-अन्त्य लीला; सूत्र-रूपरेखा के; अनुवर्णने-वर्णन में; गौरस्य-श्री चैतन्य महाप्रभु के; कृष्ण-विच्छेद-कृष्ण विरह का; प्रलाप–प्रलाप; आदि-अन्य विषय; अनुवर्यते-वर्णन किये गये हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के अन्तिम विभाग को सारांश रूप में प्रस्तुत करते हुए इस अध्याय में मैं भगवान् के दिव्य भाव का वर्णन करूँगा, जो कृष्ण से उनके विरह के कारण उन्माद जैसा प्रतीत होता है।

तात्पर्य

इस द्वितीय अध्याय में भगवान् चैतन्य द्वारा संन्यास ग्रहण करने के बाद की लीलाओं का वर्णन हुआ है। इसमें श्री चैतन्य महाप्रभु को विशेष रूप से गौर के नाम से सम्बोधित किये गये हैं, जिसका अर्थ है गोरे वर्ण का व्यक्ति। कृष्ण सामान्यतया अपने श्याम रंग के कारण प्रसिद्ध हैं, किन्तु जब वे गोपियों के विचार में मग्न होते हैं, तो कृष्ण भी गोरे हो जाते हैं, क्योंकि सारी गोपियाँ गौर वर्ण की हैं। चैतन्य महाप्रभु विशेष रूप से उसी तरह कृष्ण का विरह अनुभव करते थे, जिस प्रकार प्रेमीका अपने प्रेमी से बिछुड़कर निराश हो जाती है। वे सब भाव, जो श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उनकी अन्तिम बारह वर्षों की लीलाओं में व्यक्त हुए, उनका संक्षिप्त वर्णन मध्यलीला के इस द्वितीय अध्याय में किया गया है।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैतचन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो जय नित्यानन्द–भगवान् नित्यानन्द की जय हो जय अद्वैतचन्द्र-अद्वैत प्रभु की जय हो; जय गौर-भक्त-वृन्द-भगवान् के सभी भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैतचन्द्र की जय हो और महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

शेष ये रहिल प्रभुर द्वादश वत्सर ।

कृष्णेर वियोग-स्फूर्ति हय निरन्तर ॥3॥

शेष-अन्त में; ये-वे; रहिल—रहे; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; द्वादश वत्सर-रह वर्ष; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; वियोग-वियोग के; स्फूर्ति-प्रकट; हय-है; परन्तर–निरन्तर।

अनुवाद

अन्तिम बारह वर्षों में श्री चैतन्य महाप्रभु ने अविरत कृष्ण के विरह भाव के सारे लक्षण प्रकट किये।

श्री-राधिकार चेष्टा येन उद्धव-दर्शने ।

एइ-मत दशा प्रभुर हय रात्रि-दिने ॥4॥

श्री-राधिकार–श्रीमती राधारानी की; चेष्टा गतिविधियाँ; येन–की तरह; उद्धव-दर्शने-वृन्दावन में उद्धव से मिलने में; एइ-मत-इस प्रकार; दशा-दशा; प्रभुर–महाप्रभु की; हय है; रात्रि-दिने-दिन-रात।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की मानसिक दशा दिन-रात वैसी ही रहती थी, जैसी कि राधारानी की थी, जब उद्धव गोपियों से मिलने वृन्दावन आये थे।

निरन्तर हय प्रभुर विरह-उन्माद ।

भ्रम-मय चेष्टा सदा, प्रलाप-मय वाद ॥5॥

निरन्तर–निरन्तर; हय-है; प्रभुर–महाप्रभु के; विरह-विरह के; उन्माद-उन्माद; भ्रम-मय–विस्मृति; चेष्टा-चेष्टाएँ, गतिविधियाँ; सदा-सदा; प्रलाप-मय-प्रलापपूर्ण; वाद-बातें।

अनुवाद

महाप्रभु लगातार विरहजनित उन्माद के भाव में रहते थे। उनके सारे कार्यकलाप विस्मृति तथा उनकी बातचीत सदैव प्रलाप पर आधारित रहती थी।

रोम-कूपे रक्तोद्गम, दन्त सब हाले ।

क्षणे अङ्ग क्षीण हय, क्षणे अङ्ग फुले ॥6॥

रोम-कूपे–शरीर के छेद (रोंगटे); रक्त-उद्गम-रक्त का बहना; दन्त–दाँत; सब-सब; हाले–ढीले हो जाते; क्षणे-एक क्षण में; अङ्ग–सारा शरीर; क्षीण-दुबला, क्षीण; हय–हो जाता; क्षणे-दूसरे क्षण; अङ्ग–शरीर; फुले-फूल जाता।

अनुवाद

उनके शरीर के समस्त रोमछिद्रों से रक्त बहता था और उनके सारे दाँत हिलने लगते थे। किसी क्षण उनका सारा शरीर दुबला हो जाता और दूसरे ही क्षण मोटा हो जाता।

गम्भीरा-भितरे रात्रे नाहि निद्रा-लव ।

भित्ते मुख-शिर घषे, क्षत हय सब ॥7॥

गम्भीरा-भितरे–अन्दर के कमरे के भीतर; रात्रे-रात को; नाहि-नहीं; निद्रा-लव-तनिक भी नींद; भित्ते-दीवार पर; मुख-मुख; शिर-सिर; घषे-घिसना, रगड़ना; क्षत-क्षति, चोट; हय-हैं; सब-सब।

अनुवाद

दालान के आगे का छोटा कमरा गम्भीरा कहलाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु उसी कमरे में रहते थे, किन्तु वे एक क्षण-भर भी सोते नहीं थे। वे रात-भर अपना मुँह और सिर दीवार पर रगड़ते रहते थे और उनके सारे मुखमण्डल में घाव हो गये थे।

तिन द्वारे कपाट, प्रभु यायेन बाहिरे ।

कभु सिंह-द्वारे पड़े, कभु सिन्धु-नीरे ॥8॥

तिन द्वारे–तीन द्वार; कपाट–पूर्णतया बन्द, प्रभु–महाप्रभु; यायेन-जाते; बाहिरे-बाहर; कभु-कभी; सिंह-द्वारे-जगन्नाथ मन्दिर के सिंहद्वार नामक द्वार पर; पड़े-सीधा गिरते; कभु-कभी; सिन्धु-नीरे-समुद्र जल में।

अनुवाद

यद्यपि घर के तीनों दरवाजे सदैव बन्द रहते थे, किन्तु फिर भी महाप्रभु बाहर चले जाते थे। कभी वे जगन्नाथ मन्दिर के सिंहद्वार पर पाये जाते थे और कभी वे समुद्र में गिर पड़ते थे।

चटक पर्वत देखि’ ‘गोवर्धन’ भ्रमे ।

धाञा चले आर्तनाद करिया क्रन्दने ॥9॥

चटक पर्वत–रेत के टीले; देखि’–देखकर; गोवर्धन-वृन्दावन का गोवर्धन पर्वत; भ्रमे-भ्रम में; धाञा-दौड़ते हुए; चले-जाते; आर्त-नाद-आर्तनाद; करिया-करके; क्रन्दने-रोना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु बालू के टीलों को गोवर्धन पर्वत समझकर तेजी से दौड़ते। दौड़ते समय महाप्रभु उच्च स्वर में विलाप तथा क्रन्दन करते।

तात्पर्य

समुद्र की हवाओं से कभी-कभी बालू के टीले बन जाते हैं। ऐसे टीले चटक पर्वत कहलाते हैं। इन टीलों को देखकर, बालू के ढेर मात्र समझने के स्थान पर महाप्रभु को गोवर्धन पर्वत का भ्रम होता था। अतएव कभी-कभी वे इन टीलों की ओर तेजी से दौड़ते और उच्चस्वर से क्रन्दन करते, जिससे राधारानी जैसे मनोभाव व्यक्त होते। इस तरह चैतन्य महाप्रभु कृष्ण तथा उनकी लीलाओं के विचार में मग्न रहते थे। उनकी इस मनोदशा के कारण वृन्दावन तथा गोवर्धन पर्वत का वातावरण बन जाता और इस तरह वे विरह तथा मिलन के दिव्य आनन्द का आस्वादन करते।

उपवनोद्यान देखि’ वृन्दावन-ज्ञान ।

ताहाँ याइ’ नाचे, गाय, क्षणे मूर्च्छा या’न ॥10॥

उपवन-उद्यान-छोटे उद्यान; देखि-देखकर; वृन्दावन-ज्ञान-वृन्दावन के वनों का भान होता; ताहाँ-वहाँ; याइ'–जाकर; नाचे-नाचते; गाय-गाते; क्षण-क्षण में; मूर्च्छा-मूर्छा; या’न-आ जाती।

अनुवाद

कभी-कभी श्री चैतन्य महाप्रभु को नगर के छोटे छोटे उद्यानों से वृन्दावन का भ्रम हो जाता। कभी वे वहाँ जाते, नाचते और कीर्तन करते और कभी-कभी आध्यात्मिक भावावेश में अचेत हो जाते।

काहाँ नाहि शुनि येइ भावेर विकार ।

सेइ भाव हय प्रभुर शरीरे प्रचार ॥11॥

काहाँ-कहीं भी; नाहिं—नहीं; शुनि-हमने सुना; येइ-ऐसा; भावेर-भावावेश का; विकार-विकार; सेइ-वह; भाव-भावावेश; हय-है; प्रभुर–महाप्रभु के; शरीरे शरीर में; प्रचार-प्रकट।

अनुवाद

दिव्य भावों के कारण महाप्रभु के शरीर में जो अद्वितीय विकार प्रकट होते, वे उनके अतिरिक्त किसी अन्य के शरीर में सम्भव नहीं है।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु जैसे उच्च कोटि के ग्रंथ में शरीर के जिन भावमय-विकारों का वर्णन हुआ है, वे इस भौतिक जगत् में सामान्यतः नहीं देखे जाते। किन्तु ये लक्षण श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में पूर्णतया विद्यमान थे। ये लक्षण महाभाव के सूचक हैं। कभी-कभी सहजिया लोग कृत्रिम रूप से इन लक्षणों की नकल उतारते हैं, किन्तु अनुभवी भक्त उनको तुरन्त तिरस्कृत कर देते हैं। यहाँ इस ग्रंथ का प्रणेता यह स्वीकार करते हैं कि ये लक्षण एक श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर के अतिरिक्त अन्य कहीं भी नहीं पाये जा सकते।

हस्त-पदेर सन्धि सब वितस्ति-प्रमाणे ।

सन्धि छाड़ि' भिन्न हये, चर्म रहे स्थाने ॥12॥

हस्त-पदेर-हाथों और पैरों के; सन्धि–जोड़; सब-सब; वितस्ति-लगभग आठ इंच; प्रमाणे-लम्बाई में; सन्धि–जोड; छाड़ि'-अलग हो जाना; भिन्न-अलग; हये-हो जाते; चर्म-चमड़ी; रहे-रहती; स्थाने-अपनी जगह पर।

अनुवाद

कभी-कभी उनके हाथों तथा पैरों के जोड़ आठ इंच (एक बित्ता) तक अलग हो जाते थे और ऊपर से केवल चमड़ी से जुड़े रहते थे।

हस्त, पद, शिर सब शरीर-भितरे ।

प्रविष्ट हय—कूर्म-रूप देखिये प्रभुरे ॥13॥

हस्त-हाथ; पद-पाँव; शिर-सिर; सब-सब; शरीर-शरीर; भितरे-भीतर; प्रविष्ट–प्रविष्ट; हय–हो जाते; कूर्म-रूप-कछुए की तरह, देखिये-दिखते; प्रभुरे-महाप्रभु।

अनुवाद

कभी-कभी श्री चैतन्य महाप्रभु के हाथ, पैर तथा सिर उनके शरीर के भीतर उसी तरह समा जाते, जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को भीतर समेट लेता है।

एइ मत अद्भुत-भाव शरीरे प्रकाश ।

मनेते शून्यता, वाक्ये हा-हा-हुताश ॥14॥

एइ मत-इस प्रकार; अद्भुत-अद्भुत; भाव-भावावेश; शरीरे शरीर में; प्रकाश-प्रकट; मनेते-मन में; शून्यता-शून्यता, रिक्तता; वाक्ये-बोलने में; हा-हा-मायूसी; हुताश–हताशा।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु अद्भुत भावपूर्ण लक्षण (भाव) प्रकट करते थे। उनका मन शून्य प्रतीत होता और उनके शब्दों में निराशा तथा हताशा प्रकट होती।

काहाँ मोर प्राण-नाथ मुरली-वदन ।

काहाँ करों काहाँ पाँ व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ 15 ॥

काहाँ–कहाँ; मोर–मेरे; प्राण-नाथ-प्राणनाथ; मुरली-वदन-मुरली बजाने वाले; काहाँ–क्या; करों-मैं करें; काहाँ–कहाँ; पाँ-मैं पाऊँ; व्रजेन्द्र-नन्दन–महाराज नन्द का पुत्र।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने मन के भाव इस प्रकार प्रकट करते, "मुरलीवादन करने वाले मेरे प्राणनाथ कहाँ हैं? अब मैं क्या करूँ? मैं महाराज नन्द के बेटे को ढूंढने कहाँ जाऊँ?

काहारे कहिब, केबा जाने मोर दुःख ।

व्रजेन्द्र-नन्दन विनु फाटे मोर बुक ॥16॥

काहारे-किस को; कहिब-मैं कहूँ; केबा-कौन; जाने-जानता है; मोर-मेरा; दुःख–दुःख; व्रजेन्द्र-नन्दन–कृष्ण, नन्द महाराज का पुत्र; विनु–बिना; फाटे-फट जाता है; मोर–मेरा; बुक हृदय।

अनुवाद

"मैं किससे कहूँ? मेरे दुःख को कौन समझ सकेगा? नन्द महाराज के पुत्र के बिना मेरा हृदय फटा जा रहा है।"

एइ-मत विलाप करे विह्वल अन्तर।

रायेर नाटक-श्लोक पड़े निरन्तर ॥17॥

एइ-मत-इस प्रकार; विलाप–विलाप; करे-करते; विह्वल-विह्वल होकर; अन्तर–अन्दर से; रायेर–श्री रामानन्द राय के; नाटक-नाटक; श्लोक-श्लोक; पड़े-पढ़ते; निरन्तर–निरन्तर।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के विरह में सदैव अपनी विह्वलता प्रकट करते और विलाप करते। ऐसे अवसरों पर वे रामानन्द राय के नाटक, जगन्नाथ-वल्लभ-नाटक से श्लोक का उच्चारण करते।

प्रेम-च्छेद-रुजोऽवगच्छति हरिर्नायं न च प्रेम वा

स्थानास्थानमवैति नापि मदनो जानाति नो दुर्बलाः।

अन्यो वेद न चान्य-दुःखमखिलं नो जीवनं वाश्रवं

द्वि-त्राण्येव दिनानि यौवनमिदं हा-हा विधे का गतिः ॥18॥

प्रेम-छेद-रुजः-प्रेम-सम्बन्ध टूटने पर दुःख; अवगच्छति–जानता है; हरिः-हरि, परम भगवान्; न—नहीं; अयम्-यह; न च-नहीं; प्रेम-प्रेम; वा-नहीं; स्थान-उचित स्थान; अस्थानम्-अनुचित स्थान; अवैति–जानता है; न-न; अपि-ही; मदनः–कामदेव; जानाति–जानता है; नः-हमारी; दुर्बलाः-दुर्बल; अन्यः-कोई दूसरा; वेद-जानता है; न–न; च-ही; अन्य-दुःखम्-दूसरों की कठिनाइयों को; अखिलम्-सभी; नः-हमारे; जीवनम्-जीवन; वा–अथवा; आश्रवम्-मात्र दुःखों से

पूर्ण; द्वि–दो; त्राणि-तीन; एव-ही; दिनानि–दिन; ग्रौवनम्-यौवन; इदम्-यह; हा-हा-हाय; विधे-हे विधाता; का–क्या; गतिः-हमारी गति।

अनुवाद

[श्रीमती राधारानी विलाप किया करती थीं :]"हमारा कृष्ण इस पर कोई ध्यान नहीं देता कि हमने प्रेम-सम्बन्ध में न जाने कितनी चोटें सही हैं। वास्तव में प्रेम में हमारा दुरुपयोग किया गया है, क्योंकि प्रेम यह नहीं जानता कि कहाँ प्रहार किया जाय और कहाँ नहीं। यहाँ तक कि कामदेव भी हमारी असहाय अवस्था से परिचित नहीं है। मैं किसी से क्या कहूँ? कोई दूसरे की कठिनाइयों को नहीं समझ सकता। हमारा जीवन वास्तव में हमारे वश में नहीं रहा, क्योंकि यौवन तो दो-तीन दिन रहेगा और शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा। ऐसी अवस्था में हे विधाता, हमारी गति क्या होगी?

तात्पर्य

यह श्लोक श्री रामानन्द राय कृत जगन्नाथ-वल्लभ नाटक (3.9) से है।

उपजिल प्रेमाङ्कुर, भाङ्गिल ये दुःख-पूर,

कृष्ण ताहा नाहि करे पान।

बाहिरे नागर-राज, भितरे शठेर काज,

पर-नारी वधे सावधान ॥19॥

उपजिल–बढ़ गया; प्रेम-अङ्कुरभगवत् प्रेम का अंकुर; भाङ्गिल-टूट गया; ये-वहाँ; दुःख-पूर-दुःख पूर्ण; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ताहा-वह; नाहि-नहीं; करे-करते; पान-पान; बाहिरे-बाहर से; नागर-राज–सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति; भितरे–अन्दर से; शठेर-धोखेबाज का; काज–कार्य; पर-नारी–पर नारियाँ; वधे–मारते हैं; सावधान-अत्यन्त सावधान।

अनुवाद

[कृष्ण के विरह में दुःखी श्रीमती राधारानी ने इस प्रकार कहा :] "ओह! मैं अपने दुःख के बारे में क्या कहूँ? कृष्ण से मिलने के बाद ही मेरे प्रेम का अंकुर फूटा, किन्तु उनसे विलग होने पर मुझे इतना बड़ा धक्का लगा कि वह व्याधि की तरह जाने का नाम नहीं ले रहा। इस व्याधि के एकमात्र वैद्य स्वयं कृष्ण हैं,

किन्तु वे भक्ति के इस अंकुरित पौधे की कोई चिन्ता नहीं कर रहे। मैं कृष्ण के व्यवहार के बारे में क्या कहूँ? बाहर से वे एक आकर्षण तरुण प्रेमी हैं, किन्तु भीतर से महा ठग हैं और दूसरों की पत्नियों को मारने में अत्यन्त निपुण हैं।"

सखि हे, ना बुझिये विधिर विधान

सुख लागि' कैलुँ प्रीत, हैल दुःख विपरीत, ।

एबे याय, ना रहे पराण ॥20॥

सखि हे-(मेरी प्रिय) सखी; ना बुझिये मैं नहीं समझ सकती; विधि-विधाता का; विधान–विधान; सुख लागि'-सुख के लिए; कैलुँ-मैंने किया; प्रीत–प्रेम; हैल–यह हो गया; दुःख–दुःख; विपरीत–विपरीत; एबे–अब; याय-जा रहा है; ना–नहीं; रहे-रहता; पराण-जीवन।

अनुवाद

[कृष्ण से प्रेम करने के परिणामों के विषय में श्रीमती राधारानी ने आगे कहा :] "हे सखी, मैं विधाता के विधान को नहीं समझ पा रही। मैंने तो सुख के लिए कृष्ण से प्रेम किया था, किन्तु परिणाम बिल्कुल विपरीत निकला। अब मैं दुःख के सागर में डूब रही हूँ। हो सकता है कि मैं अब मरने वाली हैं, क्योंकि मेरी जीवनी-शक्ति चुक गई है। ऐसी है मेरी मानसिक दशा।

कुटिल प्रेमा अगेयान, नाहि जाने स्थानास्थान,

भाल-मन्द नारे विचारिते ।

क्रूर शठेर गुण-डोरे, हाते-गले बान्धि' मोरे,

राखियाछे, नारि' उकाशिते ॥21॥

कुटिल-कुटिल; प्रेमा-कृष्ण प्रेम; अगेयान–अज्ञानी; नाहि-नहीं; जाने-जानती; स्थान-अस्थान-उचित अथवा अनुचित स्थान; भाल-मन्द-अच्छा अथवा बुरा; नारे-असमर्थ; विचारिते-विचार करना; क्रूर-बहुत क्रूर; शठेर-धोखेबाज; गुण-डोरे-सद्गुणों की डोरी से; हाते—हाथों पर; गले-गले में; बान्धि'–बाँधकर; मोरे-मुझे; राखियाछे-रखा है; नारि'-अक्षम होने के कारण; उकाशिते-राहत पाने के।

अनुवाद

"प्रेम-व्यापार प्रकृति से कुटिल होते हैं। उनमें पर्याप्त ज्ञान से प्रवेश नहीं किया जाता, न ही वे इसका विचार करते हैं कि कोई स्थान उपयुक्त है या नहीं। न ही वे परिणामों की चिन्ता करते हैं। क्रूर कृष्ण ने अपने सद्गुणों की डोरी से मेरा गला तथा मेरे हाथ बाँध दिये हैं और अब मैं सुख पाने में असमर्थ हूँ।

ये मदन तनु-हीन, पर-द्रोहे परवीण,

पाँच बाण सन्धे अनुक्षण ।

अबलार शरीरे, विन्धि' कैल जरजरे,

दुःख देय, ना लय जीवन ॥22॥

ये मदन-वह कामदेव; तनु-हीन–शरीर से विहीन; पर-द्रोहे-दूसरों को कठिनाई में डालने में; परवीण-बहुत प्रवीण; पाँच–पाँच; बाण-बाण; सन्धे-साधता है; अनुक्षण-निरन्तर; अबलार–अबला नारी के; शरीरे-शरीर में; विन्धि'–भेदकर ; कैल–किया; जरजरे-लगभग अक्षम; दुःख देय-दुःख देता है; ना-नहीं; लय-लेता; जीवन-जीवन।

अनुवाद

"मेरे प्रेम सम्बन्ध में मदन नाम का एक व्यक्ति है। उसके गुण इस प्रकार हैं-उसका कोई स्थूल शरीर नहीं है, किन्तु वह अन्यों को पीड़ा देने में बहुत ही प्रवीण है। उसके पास पाँच बाण हैं, जिन्हें वह अपने धनुष पर चढ़ाकर निर्दोष स्त्रियों के शरीर में सन्धान करता है। इस प्रकार ये स्त्रियाँ जर्जर हो जाती हैं। अच्छा तो यह होता कि वह बिना हिचक के मेरे प्राण ले लेता, किन्तु वह ऐसा नहीं करता। वह मुझे केवल पीड़ा देता है।

अन्येर ये दुःख मने, अन्ये ताहा नाहि जाने,

सत्य एइ शास्त्रेर विचारे ।

अन्य जन काहाँ लिखि, ना जानये प्राण-सखी,

याते कहे धैर्य धरिबारे ॥23॥

अन्येर-दूसरों का; ये—वह; दुःख-दुःख, मने-मन में; अन्ये—अन्य; ताहा-वह; नाहि-नहीं; जाने-जानता; सत्य-सत्य; एइ–यह; शास्त्रेर–शास्त्र के; विचारे विचार में; अन्य जन-अन्य व्यक्ति; काहाँ-क्या; लिखि-मैं लिखें; ना जानये-नहीं जानता; प्राण-सखी—मेरी प्राण सखियों; याते-जिससे; कहे-कहते हैं; धैर्य धरिबारे-धैर्य रखो।

अनुवाद

"शास्त्रों में कहा गया है कि एक मनुष्य दूसरे के मन के दुःख को नहीं जान सकता। अतएव मैं ललिता तथा अपनी अन्य प्रिय सखियों के बारे में क्या कह सकती हूँ? न ही वे मेरे अन्तर के दुःख को समझ सकती हैं। वे बारम्बार यही कहकर मुझे सान्त्वना देती हैं 'हे सखी, धैर्य धरो।'

'कृष्ण—कृपा-पारावार, कभु करिबेन अङ्गीकार'

सखि, तोर ए व्यर्थ वचन ।

जीवेर जीवन चञ्चल, येन पद्म-पत्रेर जल,

तत दिन जीवे कोन्जन ॥24॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कृपा-पारावार-कृपा सिंधु; कभु-कभी; करिबेन–करेंगे; अङ्गीकार-स्वीकार; सखि–मेरी प्रिय सखी; तोर-तुम्हारा; ए-यह; व्यर्थ-व्यर्थ; वचन-वचन; जीवेर-जीव के; जीवन-जीवन; चञ्चल-चंचल; येन–की तरह; पद्म-पत्रेर–कमल पत्र के; जल-जल; तत-इतने अधिक; दिन–दिन; जीवे-जीये; कोन्-कौन; जन-व्यक्ति।

अनुवाद

"मैं कहती हूँ, 'हे सखियों, तुम मुझे यह कहकर धैर्य धरने को कहती हो कि कृष्ण कृपासिन्धु हैं और एक न एक दिन मुझे स्वीकार कर लेंगे। किन्तु मैं बतला हूँ कि मुझे इससे सान्त्वना नहीं मिल सकेगी। जीव का जीवन क्षणभंगुर है। यह कमल की पंखुड़ी पर टिके जल के समान है। कृष्ण-कृपा की आशा में भला इतने दिन कौन जीवित रहेगा?

शत वत्सर पर्यन्त, जीवेर जीवन अन्त,

एइ वाक्य कह ना विचारि' ।

नारीर यौवन-धन, यारे कृष्ण करे मन,

से यौवन-दिन दुइ-चारि ॥25॥

शत वत्सर पर्यन्त–एक सौ वर्ष तक; जीवेर-जीव के; जीवन-जीवन के; अन्त-अन्त; एइ वाक्य-यह शब्द; कह-तुम कहते हो; ना–बिना; विचार-विचारकर; नारीर-नारी का; यौवन-धन-यौवन धन; यारे-जिसमें; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करे-करते हैं; मन–रुचि; से यौवन-वह यौवन; दिन–दिन; दुइ-चारि-दो चार।

अनुवाद

" मनुष्य सौ वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहता। तुम्हें यह भी विचार करना होगा कि स्त्री का यौवन, जो कृष्ण का एकमात्र आकर्षण है, कुछ ही दिनों तक रहता है।

अग्नि यैछे निज-धाम, देखाइया अभिराम,

पतङ्गीरे आकर्षिया मारे।

कृष्ण ऐछे निज-गुण, देखाइया हरे मन,

पाछे दुःख-समुद्रेते डारे ॥26॥

अग्नि-अग्नि; यैछे-जैसे; निज-धाम-अपने घर; देखाइया–दिखाकर; अभिराम-आकर्षक; पतङ्गीरे-पतंगे; आकर्षिया-आकर्षित होकर; मारे--मारती है; कृष्ण-भगवान् श्रीकृष्ण; ऐछे—इस प्रकार; निज-गुण-उनके दिव्य गुण; देखाइया-दिखाकर; हरे मन-हमारे मन को आकर्षित करते हैं; पाछे-अन्त में; दुःख-समुद्रेते-दुःख के सागर में; डारे-डुबो देते हैं।

अनुवाद

"यदि तुम यह कहती हो कि कृष्ण दिव्य गुणों के सागर हैं, अतएव कभी न कभी दयालु होंगे, तो मुझे इतना ही कहना है कि वे उस अग्नि के समान हैं, जो अपनी चकाचौंध से पतंगों को आकृष्ट करती है और उन्हें मार डालती है। कृष्ण के गुण ऐसे हैं। वे अपने दिव्य गुण दिखलाकर वे हमारे मनों को आकृष्ट करते हैं और बाद में हमसे विलग होकर हमें दुःख के सागर में डुबा देते हैं।"

एतेक विलाप करि', विषादे श्री-गौरहरि,

उघाड़िया दुःखेर कपाट।

भावेर तरङ्ग-बले, नाना-रूपे मन चले,

आर एक श्लोक कैल पाठ॥ 27॥

एतेक-इस तरह; विलाप–विलाप; करि'—करके; विषादे शोक में; श्री-गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु; उघाड़िया-खोलकर; दुःखेर-दुःख का; कपाट-द्वार; भावेर-भावावेश का; तरङ्ग-बले-तरंगों के बल पर; नाना-रूपे-नाना रूप में; मन-उनका मन; चले-घूमता है; आर एक-एक और; श्लोक-श्लोक का; कैल–किया; पाठ-पाठ।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु विषाद के महासागर में विलाप करते और अपने दुःख के द्वारों को खोल देते थे। भाव की तरंगों के वशीभूत होकर उनका मन दिव्य रसों में विचरण करता और इस तरह वे एक अन्य श्लोक का उच्चारण करते (जो निम्न है)।

श्री-कृष्ण-रूपादि-निषेवणं विना

व्यर्थानि मेऽहान्यखिलेन्द्रियाण्यलम्।

पाषाण-शुष्केन्धन-भारकाण्यहो

बिभर्मि वा तानि कथं हत-त्रपः॥ 28॥

श्री-कृष्ण-रूप-आदि-भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य रूप और लीलाओं की; निषेवणम्-सेवा; विना-बिना; व्यर्थानि-व्यर्थ; मे-मेरे; अहानि–दिन; अखिल–सभी; इन्द्रियाणि-इन्द्रियाँ; अलम्-सम्पूर्ण; पाषाण-पत्थर; शुष्क-शुष्क; इन्धन-लकड़ी; भारकाणि-भार; अहो-खेद है; बिभर्मि–मैं वहन करती हूँ; वा-अथवा; तानि-वे सब; कथम्-कैसे; हत-त्रपः–बिना लज्जा के।

अनुवाद

"हे सखियों, यदि मैं श्रीकृष्ण के दिव्य रूप, गुणों तथा लीलाओं की सेवा नहीं करती, तो मेरे सारे दिन तथा मेरी सारी इन्द्रियाँ पूर्णतया व्यर्थ हो जायेंगे। अभी मैं पत्थर तथा सूखी लकड़ी जैसी अपनी इन्द्रियों का भार व्यर्थ ही ढो रही हूँ। मैं नहीं जानती कि निर्लज्ज बनकर कब तक मैं यह भार ढोती रहूँगी।'

वंशी-गानामृत-धाम, लावण्यामृत-जन्म-स्थान,

ये ना देखे से चाँद वदन ।

से नयने किबा काज, पडुक तार मुण्डे वाज,

से नयन रहे कि कारण ॥29॥

वंशी-गान-अमृत-धाम–बांसुरी के गीतों से प्रकट अमृत धाम; लावण्य-अमृत-जन्म-स्थान-सौन्दर्य सुधा का जन्म स्थान; ये-जो कोई; ना—नहीं; देखे-देखता; से-वह; चाँद-चन्द्र जैसा; वदन-मुख; से-वे; नयने-नेत्र; किबा काज-क्या लाभ; पडुक—होने दो; तार-उसके; मुण्डे–सिर पर; वाज-वज्र; से-वे; नयन–नयन; रहे-रखते हैं; कि-क्या; कारण-कारण।

अनुवाद

"उस मनुष्य की आँखों का क्या लाभ, जो कृष्ण के उस चन्द्र जैसे मुख को नहीं देखता, जो सारी सुन्दरता का जन्मस्थान है और उनकी वंशी के अमृततुल्य गीतों का आगार है? अरे! उस मनुष्य के सिर पर वज्रपात हो जाये! उसने ऐसी आँखें क्यों रखी हैं?

तात्पर्य

कृष्ण का चन्द्रमा जैसा मुख अमृततुल्य गीतों का आगार है और उनकी वंशी का आवास है। यह समस्त शारीरिक सुन्दरता का भी मूल कारण है। गोपियों का विचार है कि यदि उनकी आँखें कृष्ण के ऐसे सुन्दर मुखड़े को नहीं देखतीं, तो इससे अच्छा यही होगा कि उन पर वज्रपात हो जाय। गोपियों के लिए कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी का दर्शन करना अरुचिकर एवं घृणास्पद है। गोपियाँ कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को देखकर कभी भी प्रसन्न नहीं होतीं। उनकी आँखों के लिए एकमात्र सान्त्वना कृष्ण का चन्द्रमा जैसा सुन्दर मुख है; जो समस्त इन्द्रियों के लिए आराध्य है। जब वे कृष्ण के सुन्दर मुख को नहीं देख सकतीं, तब उन्हें सब कुछ शून्य दिखता है और उनकी इच्छा

होती है कि उन पर वज्रपात हो जाये। कृष्ण के सौन्दर्य से विलग होने पर उन्हें अपनी आँखों को बनाये रखने का कोई औचित्य नहीं दिखता।

सखि हे, शुन, मोर हत विधि-बल

मोर वपु-चित्त-मन, सकल इन्द्रिय-गण, ।

कृष्ण विनु सकल विफल ॥ 30॥

सखि हे हे मेरी प्रिय सखी; शुन-कृपया सुनो; मोर-मेरा; हत–खोया हुआ; विधि-बल–भाग्य का बल; मोर-मेरा; वपु–शरीर; चित्त-चेतना; मन–मन; सकल-सभी; इन्द्रिय-गण-इन्द्रियाँ; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; विनु–बिना; सकल-सब कुछ; विफल-विफल।

अनुवाद

"हे सखियों, कृपया मेरी बात सुनो। विधाता द्वारा प्रदत्त मेरी सारी शक्ति जाती रही है। कृष्ण के बिना मेरा शरीर, मेरी चेतना, मन तथा उसी के साथ मेरी सारी इन्द्रियाँ व्यर्थ हैं।

कृष्णेर मधुर वाणी, अमृतेर तरङ्गिणी,

तार प्रवेश नाहि ये श्रवणे ।

काणाकड़ि-छिद्र सम, जानिह से श्रवण,

तार जन्म हैल अकारणे ॥ 31॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; मधुर-मधुर; वाणी–वाणी; अमृतेर-अमृत की; तरङ्गिणी-लहरें; तार-उनका; प्रवेश-प्रवेश; नाहि-नहीं है; ये-जो; श्रवणे-सुनने में; काणाकड़ि-टूटा हुआ शंख; छिद्र–छिद्र; सम-की तरह; जानिह–समझो; से-वह; श्रवण-कान; तार-उसका; जन्म-जन्म; हैल–हो गया; अकारणे-व्यर्थ।

अनुवाद

"कृष्ण की कथाएँ अमृत की तरंगों के समान हैं। यदि ऐसा अमृत किसी के कानों में प्रविष्ट नहीं करता, तो वे कान टूटे शंख के छिद्र के समान हैं। ऐसे कान को बनाने का प्रयोजन व्यर्थ है।

तात्पर्य

इस के सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर श्रीमद्भागवत (2.3.17-24) से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं :

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ ।

तस्यर्ये यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया ॥

तरवः किं न जीवन्ति भस्राः किं न श्वसन्त्युत ।

न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामे पशवोऽपरे ॥

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ।

न यत्कर्ण पथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये

न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।

जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत

न चोपगायत्युरुगाय गाथाः ॥

भारः परं पट्टकिरीटजुष्ट-

मप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ।

शावौ करौ नो कुरुते सपर्यां

हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥

बर्हायिते ते नयने नराणां

लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ।

पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ

क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥

जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं

न जातु मर्योऽभिलभेत यस्तु ।

श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः

श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥

तदश्मसारं हृदयं बतेदं

यदृह्यमाणैर्हरिनाम धेयैः ।

न विक्रियेताथ यदा विकारो

नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥

"सूर्य उदय तथा अस्त होने के साथ हर एक की आयु को हरता है, सिवाय उसके जो सर्वमंगलकारी भगवान् की कथाओं की चर्चा में समय का उपयोग करता है। क्या वृक्ष जीवित नहीं रहते? क्या लुहार की धौंकनी श्वास नहीं लेती ? क्या हमारे चारों ओर पशु भोजन तथा वीर्यस्खलन नहीं करते? जो लोग कुत्तों, सुअरों, ऊँटों तथा गधों की तरह हैं, वे उन लोगों की प्रशंसा करते हैं, जो समस्त पापों के उद्धारक भगवान् कृष्ण की दिव्य लीलाओं का कभी भी श्रवण नहीं करते। जिसने भगवान् के पराक्रम तथा उनकी अद्भुत लीलाओं के विषय में नहीं सुना और जिसने भगवान् विषयक सुन्दर गीतों को न तो गाया न कीर्तन किया, उसके कान मानो साँपों के रन्ध्रों के समान और जीभ मानो मेंढक की जीभ के समान है। भले ही कोई शीश पर रेशमी पगड़ी क्यों न पहने हो, यदि वह मुक्तिदाता भगवान् के समक्ष झुकता नहीं, तो उसे केवल भारी बोझ ही समझना चाहिए। हाथ भले ही चमकीले कंगनों से सुशोभित क्यों न हों, यदि वे भगवान् हरि की सेवा नहीं करते, तो उन्हें मृतक पुरुष के हाथ के समान समझना चाहिए। जो आँखें भगवान् विष्णु के स्वरूप (उनके रूप, नाम, गुण आदि) को नहीं देखतीं, वे मोरपंख में बनी आँखों के समान हैं। जो पाँव तीर्थ स्थानों को नहीं जाते (जहाँ भगवान् का स्मरण किया जाता है), वे वृक्षों के तनों के समान हैं। जिस व्यक्ति ने कभी भी भगवान् के शुद्ध भक्त की चरण-धूलि अपने सिर पर धारण नहीं की, समझो कि वह शव है। जिस व्यक्ति ने भगवान् के चरणकमलों पर अर्पित तुलसी दल की सुगन्ध का अनुभव नहीं किया, वह श्वास लेते हुए भी मृतक तुल्य है। भावावेश के समय आँखें

अश्रु से पूरित हो जाती हैं और रोमांच हो उठता है। वह हृदय अवश्य ही लोहे का बना हुआ है, जिसमें भगवान् के नाम का मनोयोग के साथ जप करने पर भी परिवर्तन न हो और भावावेश न हो।"

कृष्णेर अधरामृत, कृष्ण-गुण-चरित,

सुधा-सार-स्वाद-विनिन्दन ।

तार स्वाद ये ना जाने, जन्मिया ना मैल केने,

से रसना भेक जिह्वा सम ॥ 32॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; अधर-अमृत-अधरों का अमृत; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; गुण-गुण; चरित–कार्यकलाप; सुधा-सार–सुधा का सार; स्वाद–स्वाद; विनिन्दन-बढ़कर है; तार–उनका; स्वाद–स्वाद; ग्रेजो कोई; ना जाने–नहीं जानता; जन्मिया-जन्म लेकर; ना मैल-नहीं मरा; केने-क्यों; से-वह; रसना-जिह्वा; भेक-मेंढक की; जिह्वा-जिह्वा; सम-समान।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण के होठों का अमृत तथा उनके दिव्य गुण और चरित्र, सभी अमृत के सार के स्वाद को तुच्छ बनाने वाले हैं, और ऐसे अमृत का आस्वादन करने में कोई दोष नहीं है। जो इसका आस्वादन नहीं करता, उसे जन्म लेते ही मर जाना चाहिए और उसकी जीभ मेंढक की जीभ के समान समझी जानी चाहिए।

मृग-मद नीलोत्पल, मिलने ये परिमल,

येइ हरे तार गर्व-मान ।

हेन कृष्ण-अङ्ग-गन्ध, यार नाहि से सम्बन्ध,

सेइ नासा भस्त्रार समान ॥ 33॥

मृग-मद-कस्तूरी की सुगन्ध; नील-उत्पल-नील कमल; मिलने-मिलने में; ये-जो; परिमल-सुगन्ध; येइ-नहीं; हरे-हर लेती है; तार-उनके; गर्व–गर्व; मान-तथा मान सम्मान; हेन-ऐसी; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; अङ्ग–शरीर की; गन्ध–

सुगन्ध; यार-जिसकी; नाहि-नहीं; से-वह; सम्बन्ध–सम्बन्ध; सेइ-ऐसी; नासा–नासिका; भस्वार-धोंकनी; समान–समान।

अनुवाद

"कृष्ण के शरीर की सुगन्ध कस्तूरी की सुगन्ध के साथ मिली नीले कमल के फूल की सुगन्ध के समान है। जिसने कृष्ण की इस सुगन्ध को नहीं हूँघा, उसके नथुने लोहार की धौंकनी के तुल्य हैं। वस्तुतः ऐसी सुगन्ध कृष्ण के शरीर की सुगन्ध के आगे फीकी पड़ जाती है।

कृष्ण-कर-पद-तल, कोटि-चन्द्र-सुशीतल,

तार स्पर्श येन स्पर्श-मणि ।

तार स्पर्श नाहि यार, से याउक्छारखार,

सेइ वपु लौह-सम जानि ॥ 34॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण की; कर–हथेलियाँ; पद-तल-उनके पाँव के तलवे; कोटि-चन्द्र-लाखों चन्द्रमाओं के प्रकाश के समान; सु-शीतल-शीतल और सुखप्रद; तार-उनके; स्पर्श-स्पर्श; येन-नहीं; स्पर्श-मणि-पारस पत्थर; तार–उनके; स्पर्श-स्पर्श; नाहि-नहीं; यार–जिसका; से—वह व्यक्ति; याउक्-उसे जाने दो; छारखार–नष्ट होना; सेइ वपु वह शरीर; लौह-सम-लोहे के समान; जानि–मैं जानता हूँ।

अनुवाद

"कृष्ण के हाथ तथा पैर के तलवे इतने शीतल और सुहावने हैं कि उनकी उपमा करोड़ों चन्द्रमाओं के प्रकाश से ही दी जा सकती है। जिसने ऐसे हाथों तथा पैरों को स्पर्श किया है, उसने सचमुच पारस पत्थर के प्रभाव का अनुभव किया है। यदि किसी ने उनका स्पर्श नहीं किया, तो उसका जीवन व्यर्थ है और उसका शरीर लोहे के समान है।"

करि' एत विलपन, प्रभु शची-नन्दन,

उघाड़िया हृदयेर शोक ।

दैन्य-निर्वेद-विषादे, हृदयेर अवसादे,

पुनरपि पड़े एक श्लोक ॥ 35॥

करि'-करते हुए ; एत-ऐसा; विलपन–विलाप करते हुए; प्रभु–महाप्रभु; शची-नन्दन–शची माता के पुत्र; उघाड़िया-खोलकर; हृदयेर–हृदय का; शोक-शोक; दैन्य-दीनता; निर्वेद–निराशा; विषादे-शोक में; हृदयेर–हृदय के; अवसादे-दुख; पुनरपि-बार बार; पड़े-पढ़ते; एक-एक; श्लोक-श्लोक।

अनुवाद

इस प्रकार विलाप करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने हृदय के भीतर शोक के कपाट खोल दिये। उन्होंने हताश, दीन एवं उदास होकर अवसाद भरे हृदय से बार-बार एक श्लोक पढ़ा।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु में दैन्य शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी गई है, जब दुःख, भय तथा अपराध-भाव मिलते हैं, तो मनुष्य अपने आपको धिक्कारता है। धिक्कारने का यह भाव दीनता है। दीनता की स्थिति में व्यक्ति अपने आपको शरीर से निष्क्रिय अनुभव करता है, वह क्षमायाचना करता है और उसकी चेतना विचलित हो जाती है। उसका मन भी अशान्त हो जाता है और अन्य अनेक लक्षण दिखाई देते हैं।" निर्वेद शब्द की व्याख्या भी भक्तिरसामृत-सिन्धु में मिलती है-"मनुष्य अपना कर्तव्य पूरा न कर सकने के कारण दुःख तथा विच्छेद एवं उसी के साथ-साथ ईर्ष्या तथा पश्चात्ताप का अनुभव करता है। इस तरह से जो निराशा उत्पन्न होती है, वह निर्वेद कहलाती है। एक बार इस निराशा से ग्रस्त होने पर विचार, अश्रु, शारीरिक कान्ति का ह्रास, दैन्य तथा भारी उच्छवास उत्पन्न होते हैं।" विषाद की व्याख्या भी भक्तिरसामृत-सिन्धु में हुई है—"जब व्यक्ति जीवन का वांछित लक्ष्य प्राप्त करने में असफल हो जाता है। और वह अपने समस्त अपराधों के लिए पश्चात्ताप करता है, तो खेद की यह दशा विषाद कहलाती है।" अवसाद के लक्षण भी बतलाये गये हैं, "मनुष्य अपनी मूल स्थिति पुनः प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है और पूछता रहता है कि इसे किस तरह प्राप्त किया जाये। गम्भीर विचार, दीर्घ श्वास, रोना तथा विलाप के साथ ही शरीर का रंग बदलना और जीभ का सूखना ये लक्षण भी इस अवस्था में दृष्टिगत होते हैं।"

भक्तिरसामृत-सिन्धु में इस प्रकार के 33 घातक लक्षणों का उल्लेख हुआ है। ये शब्दों से, भौहों से तथा आँखों से व्यक्त होते हैं। ये लक्षण व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। यदि ये बने रहते हैं, तो कभी-कभी सञ्चारी भाव कहलाते हैं।

यदा यातो दैवान्मधु-रिपुरसौ लोचन-पथं

तदास्माकं चेतो मदन-हतकेनाहृतमभूत् ।

पुनर्यस्मिन्नेष क्षणमपि दृशोरेति पदवीं

विधास्यामस्तस्मिन्नखिल-घटिका रत्न-खचिताः ॥ 36॥

यदा–जब; यातः-प्रवेश करना; दैवात्-अचानक; मधु-रिपुः–मधु दैत्य के शत्रु; असौ-वे; लोचन-पथम्-नेत्रों के मार्ग में; तदा—उस समय; अस्माकम्-हमारी; चेतः-चेतना; मदन-हतकेन-दुष्ट कामदेव से; आहृतम्-चुराई गई; अभूत्-हो गई है; पुनः-फिर; ग्रस्मिन्-जब; एषः-कृष्ण; क्षणम् अपि-एक क्षण के लिए भी; दृशोः-दो नेत्रों का; एति-जाते हैं; पदवीम्-पथ; विधास्यामः-हम बनायेंगे; तस्मिन्-उस समय; अखिल–सब; घटिकाः-समय के संकेत; रत्न-खचिताः-रल-जड़ित।

अनुवाद

"यदि दैववश कृष्ण का दिव्य रूप मेरी दृष्टि के सामने आये, तो कष्टों से व्यथित मेरा हृदय, मूर्तिमन्त आनन्द रूप कामदेव द्वारा चुरा लिया जाएगा। चूँकि मैं कृष्ण के सुन्दर रूप को जी-भरकर नहीं देख सकी, अतएव जिस क्षण मैं इस रूप को पुनः देखेंगी, तो उस क्षण को मैं अनेक रत्नों से अलंकृत करूँगी।'

तात्पर्य

यह श्लोक रामानन्दराय-कृत जगन्नाथ-वल्लभ नाटक (3.11) से लिया गया है। यह श्रीमती राधारानी द्वारा कहा गया है।

ये काले वा स्वपने, देखिनु वंशी-वदने,

सेइ काले आइला दुइ वैरि ।

'आनन्द' आर 'मदन', हरि' निल मोर मन,

देखिते ना पाइनु नेत्र भरि' ॥ 37॥

ये काले—उस समय; वा स्वपने-अथवा स्वप्न में; देखिनु–मैंने देखा; वंशी-वदने-भगवान् कृष्ण का बांसुरी बजाता चेहरा; सेइ काले—उस समय; आइला–प्रकट हुए; दुइ-दो; वैरि-शत्रु; आनन्द–आनन्द; आर-और; मदन-कामदेव; हरि'-चुराकर; निल-ले लिया; मोर-मेरा; मन–मन; देखिते-देखने के लिए; ना-नहीं; पाइनु-मैं सक्षम थी; नेत्र-नेत्र; भरि'-भरकर।

अनुवाद

"जब भी, यहाँ तक कि स्वप्न में भी, मुझे कृष्ण के मुख तथा उनकी वंशी के दर्शन का अवसर मिलता था, तो मेरे सामने दो शत्रु प्रकट हो जाते थे-आनन्द तथा कामदेव। चूँकि ये मेरे चित्त को हर लेते थे, अतएव मैं नेत्र-भरकर कृष्ण के मुख को न देख सकी।

पुनः यदि कोन क्षण, कराय कृष्ण दरशन

तबे सेइ घटी-क्षण-पल ।

दिया माल्य-चन्दन, नाना रन-आभरण,

अलङ्कृत करिमु सकल ॥ 38॥

पुनःपुनः; यदि-यदि; कोन-कोई; क्षण-क्षण; कराय-सहायता करता है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; दरशन-दर्शन करने में; तबे-तब; सेइ-वे; घटी-क्षण-पल-घड़ियाँ, क्षण और घंटे; दिया-भेंट करना; माल्य-चन्दन-माला और चन्दन लेप; नाना-नाना प्रकार के; रत्न-रत्न; आभरण-आभूषण; अलङ्कृत-सजाना; करिमु-मैं करूँगी; सकल-सब।

अनुवाद

"यदि दैववश ऐसा क्षण आये कि मैं पुनः कृष्ण को देख पाऊँ तो मैं उन क्षणों, घड़ियों तथा घंटों की फूल की मालाओं तथा चन्दन-लेप से पूजा करूँगी और उन्हें सभी प्रकार के रत्नों तथा आभूषणों से सजाऊँगी।"

क्षणे बाह्य हैल मन, आगे देखे दुइ जन,

ताँरे पुछे,—आमि ना चैतन्य? ।

स्वप्न-प्राय कि देखिनु, किबा आमि प्रलापिनु,

तोमरा किछु शुनियाछ दैन्य? ॥ 39॥

क्षणे-एक क्षण में; बाह्य-बाहरी; हैल–हुआ; मन–मन; आगे-आगे; देखे-देखा; दुइ जन-दो व्यक्ति; तौंरे–उनको; पुछे-पूछते हैं; आमि-मैं; ना-नहीं; चैतन्य-चेतन; स्वप्न-प्राय-लगभग स्वप्नावस्था में; कि-क्या; देखिनु-मैंने देखा है; किंबा-क्या; आमि–मैं; अलापिनु–पागलपन में बोली हूँ; तोमरा-तुमको; किछु—कुछ; शुनियाछ-सुना है; दैन्य-दीनता।

अनुवाद

क्षण-भर में श्री चैतन्य महाप्रभु को बाह्य चेतना आ गई और उन्होंने अपने समक्ष दो व्यक्तियों को देखा। महाप्रभु ने उनसे पूछा, "क्या मैं सचेत हूँ? मैं कौन से स्वपन देख रहा था? मैं कैसा प्रलाप कर रहा था? क्या आपने दैन्य के कुछ वचन सुने ?"

तात्पर्य

जब श्री चैतन्य महाप्रभु इस तरह भावावेश में बोल रहे थे, तो उन्होंने अपने सामने दो व्यक्तियों को देखा। एक थे उनके सचिव स्वरूप दामोदर तथा दूसरे थे राय रामानन्द। बाह्य चेतना आने पर उन्होंने उन दोनों को उपस्थित देखा और यद्यपि महाप्रभु अभी भी श्रीमती राधारानी के भाव में बातें कर रहे थे, किन्तु वे तुरन्त ही पूछने लगे कि क्या वे वही श्री चैतन्य महाप्रभु हैं।

शुन मोर प्राणेर बान्धव

नाहि कृष्ण-प्रेम-धन, दरिद्र मोर जीवन, ॥

देहेन्द्रिय वृथा मोर सब ॥ 40॥

शुन-कृपया सुनो; मोर-मेरे; प्राणेर-जीवन के; बान्धव-मित्र; नाहि-कोई नहीं हैं; कृष्ण-प्रेम-धन-कृष्ण-प्रेम की सम्पत्ति; दरिद्र–दरिद्र, निर्धन; मोर-मेरा; जीवन-जीवन; देह-इन्द्रिय-मेरे शरीर के सारे अंग तथा इन्द्रियाँ; वृथा-वृथा, व्यर्थ; मोर-मेरा; सब-सब।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "हे मित्रों, तुम लोग मेरे प्राण हो, अतएव मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि मेरे पास कृष्ण-प्रेमरूपी धन नहीं है। इसलिए मेरा जीवन दरिद्र है। मेरे अंग तथा इन्द्रियाँ व्यर्थ हैं।

पुनः कहे,—हाय हाय, शुन, स्वरूप-रामराय,

एइ मोर हृदय-निश्चय ।

शुनि करह विचार, हय, नय—कह सार,

एत बलि' श्लोक उच्चारय ॥41॥

पुनः-पुनः; कहे-कहते; हाय हाय-हाय, हाय; शुन-कृपया सुनो; स्वरूप-रामराय-मेरे प्रिय स्वरूप दामोदर और रामानन्द राय; एइ–यह; मोर-मेरा; हृदय-निश्चय-मेरे हृदय का निश्चय; शुनि–सुनकर; करह-जरा करो; विचार-विचार; हय, नय-ठीक या गलत; कह सार–मुझे सार बताओ; एत बलि'—यह कहकर; श्लोक-एक दूसरा श्लोक; उच्चारय-बोलते।

अनुवाद

निराशाभरे शब्दों में उन्होंने पुनः स्वरूप दामोदर तथा राय रामानन्द को सम्बोधित किया, "हाय! मेरे मित्रों, अब तुम मेरे हृदय के निश्चय को जान सकते हो और यह जान लेने के बाद तुम यह निर्णय करो कि मैं सही या नहीं। तुम इस बारे में ठीक से कह सकते हो।" इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने दूसरे श्लोक का उच्चारण किया।

क-इ-अवरहि-अं पेम्मं ण हि होइ माणुसे लोए ।

ज-इ होइ कस्स विरहे होन्तम्मि को जीअ-इ ॥42॥

क-इ-अवरहि-अम्-धोखा देने की किसी प्रवृत्ति के बिना, भौतिकता के चार सिद्धान्त धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष से सम्बन्धित किसी अभिलाषा से रहित; पेम्मम्-भगवत् प्रेम; ण-कभी नहीं; हि निश्चित रूप से; होइ–होता है; माणुसे–मानव समाज में; लोए-इस संसार में; ज-इ-यदि; होइ–हो; कस्स-किसके; विरहे-विरह में; होन्तम्मि-है; को-कौन; जीअ-इ-रहता है।

अनुवाद

“छलरहित भगवत्प्रेम इस भौतिक जगत् में सम्भव नहीं है। यदि ऐसा प्रेम है, तो उसमें विरह नहीं हो सकता, क्योंकि विरह में कोई कैसे जीवित रह सकता है?’

तात्पर्य

यह श्लोक प्राकृत भाषा में है। इसका सही संस्कृत रूपान्तर होगा-कैतवरहितं प्रेमा न हि भवति मानुषे लोके/ यदि भवति कस्य विरहो विरहे सत्यपि को जीवति।

अकैतव कृष्ण-प्रेम, येन जाम्बूनद-हेम,

सेइ प्रेमा नृलोके ना हय।

यदि हय तार योग, ना हय तबे वियोग,

वियोग हैले केह ना जीयय ॥43॥

अकैतव कृष्ण-प्रेम-कृष्ण के सच्चे प्रेम; येन–की तरह; जाम्बू-नद-हेम-जाम्बू नदी का स्वर्ण; सेइ प्रेमा—वह ईश्वर प्रेम; नृ-लोके–भौतिक जगत् में; ना हय–सम्भव नहीं; यदि-यदि; हय-है; तार–इसके साथ; योग-सम्बन्ध; ना-नहीं; हय-है; तबे-तब; वियोग-विरह; वियोग-विरह; हैले–यदि है; केह-कोई; ना जीयय-नहीं जी सकता।

अनुवाद

“कृष्ण का शुद्ध प्रेम जाम्बू नदी से मिलने वाले सोने की तरह है, जो मानव समाज में नहीं पाया जाता। यदि यह होता तो इसमें वियोग नहीं होता। वियोग होने से कोई जीवित नहीं रह सकता।”

एत कहि’ शची-सुत, श्लोक पड़े अद्भुत,

शुने दुँहे एक-मन हञा।

आपन-हृदय-काज, कहिते वासिये लाज,

तबु कहि लाज-बीज खाञा ॥44॥

एत कहि’-यह कहकर; शची-सुत-श्रीमती शचीमाता के पुत्र; श्लोक-श्लोक; पड़े-पढ़ा; अद्भुत-अद्भुत; शुने-सुनते हैं; दुँहे-दोनों व्यक्ति; एक-मन हञा-एकाग्र चित्त से; आपन-हृदय-काज-अपने हृदय की गतिविधियाँ; कहिते-

कहते हुए; वासिये-मैं अनुभव करता हूँ; लाज-लज्जा; तबु–फिर भी; कहि-मैं कहता हूँ; लाज-बीज-लज्जा का बीज; खाञा-समाप्त करके।

अनुवाद

इस प्रकार कहते हुए श्रीमती शचीमाता के पुत्र ने एक दूसरा अद्भुत श्लोक सुनाया, जिसे रामानन्द राय एवं स्वरूप दामोदर ने एकाग्र चित्त से सुना। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं अपने मन के कार्य बताने में लज्जा का अनुभव कर रहा हूँ। फिर भी मैं सारी औपचारिकताओं को छोड़कर अपने मन की बात कहूँगा। सुनो।"

न प्रेम-गन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ

क्रन्दामि सौभाग्य-भरं प्रकाशितुम् ।

वंशी-विलास्यानन-लोकनं विना

बिभर्मि यत्प्राण-पतङ्गकान्वृथा ॥ 45 ॥

न–कभी नहीं; प्रेम-गन्धः-ईश्वर प्रेम की गंध; अस्ति–है; दरा अपि-जरा भी; मे-मेरा; हरौ–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् में; क्रन्दामि-मैं रोता हूँ; सौभाग्य-भरम्-मेरे भाग्य की सीमा; प्रकाशितुम्-प्रदर्शित करने के लिए; वंशी-विलासि-महान् वंशी वादक के; आनन–मुख पर; लोकनम्-देखे; विना-बिना; बिभर्मि–मैं उठाता हूँ; यत्-क्योंकि; प्राण-पतङ्गकान्–मेरा पतंगों जैसा जीवन; वृथा-व्यर्थ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "हे मित्रों, मेरे हृदय में रंचमात्र भी भगवत्-प्रेम नहीं है। जब तुम लोग मुझे विरह में रोते देखते हो, तो मैं अपने परम सौभाग्य का मात्र झूठा प्रदर्शन कर रहा होता हूँ। निस्सन्देह, मुरली बजाते हुए कृष्ण के सुन्दर मुखमण्डल का दर्शन किये बिना मैं एक कीट की तरह व्यर्थ जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।'

दूरे शुद्ध-प्रेम-गन्ध, कपट प्रेमेर बन्ध,

सेह मोर नाहि कृष्ण-पाय ।

तबे ये करि क्रन्दन, स्व-सौभाग्य प्रख्यापन,

करि, इहा जानिह निश्चय ॥ 46॥

दूरे-दूर; शुद्ध-प्रेम-गन्ध-शुद्ध प्रेमाभक्ति की गंध; कपट-झूठा; प्रेमेर-ईश्वर प्रेम; बन्ध-बन्धन; सेह-वह; मोर-मेरा; नाहि-नहीं है; कृष्ण-पाय-कृष्ण के चरणकमलों में; तबे-किन्तु; ये-वह; करि-मैं करता हूँ; क्रन्दन-रोना; स्व-सौभाग्य–मेरा सौभाग्य; प्रख्यापन–प्रदर्शन; करि-मैं करता हूँ; इहा-यह; जानिह–जानो; निश्चय–निश्चित रूप से।

अनुवाद

"वास्तव में मुझे कृष्ण से बिल्कुल भी प्रेम नहीं है। मैं जो भी करता हूँ, वह सब कपटपूर्ण भगवत्प्रेम का दिखावा है। जब मैं रोता हूँ, तो मात्र अपने सौभाग्य का मिथ्या प्रदर्शन करता हूँ। इसे निश्चत रूप से जानो।

याते वंशी-ध्वनि-सुख, ना देखि' से चाँद मुख,

यद्यपि नाहिक 'आलम्बन' ।

निज-देहे करि प्रीति, केवल कामेर रीति,

प्राण-कीटेर करिये धारण ॥47॥

याते-जिसमें; वंशी-ध्वनि-सुख-वंशीवादन की ध्वनि सुनने का सुख; ना देखि'–नहीं देखा; से-वह; चाँद मुख-चन्द्रमुख; यद्यपि यद्यपि; नाहिक-नहीं है; आलम्बन प्रेमी-प्रेमिका का मिलन; निज-अपने; देहे-शरीर में; करि-मैं करता हूँ; प्रीति–प्रेम; केवल–केवल; कामेर-कामवासना की; रीति-रीति; प्राण-जीवन की; कीटेर-मक्खी की; करिये-करता हूँ; धारण-धारण।

अनुवाद

"यद्यपि मैं वंशी बजाते हुए कृष्ण का चन्द्रमुख नहीं देख पाता, न ही मेरी उनसे भेंट होने की कोई सम्भावना है, तब भी मैं अपने शरीर की देखभाल करता हूँ। यही कामवासना की रीति है। इस प्रकार मैं अपने कीट सदृश जीवन को धारण किए रहता हूँ।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का कहना है कि प्रिय परमेश्वर ही परम आश्रय हैं। भगवान् ही परम विषय हैं और भक्त आश्रय हैं। विषय तथा आश्रय का मिलन आलम्बन कहलाता है। आश्रय सुनता है और विषय वंशी बजाता है। जब आश्रय कृष्ण के मुख-चन्द्र को नहीं देख सकता और न उसमें उन्हें देखने की उत्सुकता रहती है, तो यह आलम्बन-विहीन होने का संकेत है। बाह्य रूप से ऐसी कल्पना करने से मनुष्य की कामवासनाओं की तुष्टि मात्र होती है और इस तरह वह निरुद्देश्य जीवित रहता है।

कृष्ण-प्रेमा सुनिर्मल, येन शुद्ध-गङ्गा-जल,

सेइ प्रेमा—अमृतेर सिन्धु ।

निर्मल से अनुरागे, ना लुकाय अन्य दागे,

शुक्ल-वस्त्रे यैछे मसी-बिन्दु ॥48॥

कृष्ण-प्रेमा-कृष्ण-प्रेम; सु-निर्मल–पूर्णतया निर्मल; येन-की तरह; शुद्ध-गङ्गा-जल-गंगा के पावन जल; सेइ प्रेमा-वही प्रेम; अमृतेर सिन्धु-अमृत सिंधु; निर्मल-निर्मल; से-वह; अनुरागे-आकर्षण; ना लुकाय-छुपता नहीं; अन्य-अन्य; दागे-दाग; शुक्ल-वस्त्रे-सफेद वस्त्र पर; यैछे-जैसे; मसी-बिन्दु–स्याही का बिन्दु।

अनुवाद

“कृष्ण-प्रेम गंगाजल के समान अत्यन्त शुद्ध है। ऐसा प्रेम अमृत का समुद्र है। कृष्ण के प्रति ऐसा शुद्ध अनुराग किसी दाग को नहीं छिपाता, जो सफेद वस्त्र पर स्याही के दाग के समान दिखता है।

तात्पर्य

कृष्ण का शुद्ध प्रेम बहुत बड़े सफेद वस्त्र की भाँति है। अनुराग का अभाव इस सफेद वस्त्र पर काले दाग की तरह है। जिस प्रकार काला धब्बा दूर से दिखता है, उसी तरह शुद्ध भगवत्प्रेम के स्तर पर इस प्रेम का अभाव सुस्पष्ट दिखता है।

शुद्ध-प्रेम-सुख-सिन्धु, पाइ तार एक बिन्दु,

सेइ बिन्दु जगत्डुबाय ।

कहिबार योग्य नय, तथापि बाउले कय,

कहिले वा केला पातियाय ॥49॥

शुद्ध-प्रेम-शुद्ध प्रेम; सुख-सिन्धु–सुख सागर; पाइ–पाकर; तार-उसकी; एक-एक; बिन्दु-बूंद; सेइ बिन्दु-वही बूंद; जगत्-जगत्; डुबाय-डुबो देता है; कहिबार-कहने के; योग्य नय-योग्य नहीं है; तथापि-तथापि; बाउले–एक पागल; कय-बोलता है; कहिले बोलने पर भी; वा–अथवा; केबा पातियाय-कौन विश्वास करता है।

अनुवाद

"शुद्ध कृष्ण-प्रेम सुख के सागर जैसा है। यदि किसी को उसकी एक बूंद भी मिल जाये, तो उस बूंद में सारा संसार डूब सकता है। यद्यपि ऐसे भगवत्प्रेम को व्यक्त करना उचित नहीं है, तथापि एक उन्मत्त व्यक्ति उसे कह देगा। किन्तु उसके कहने पर भी उस पर कोई विश्वास नहीं करता।"

एइ मत दिने दिने, स्वरूप-रामानन्द-सने,

निज-भाव करेन विदित ।

बाह्ये विष-ज्वाला हय, भितरे आनन्द-मय,

कृष्ण-प्रेमार अद्भुत चरित ॥50॥

एइ मत-इस प्रकार; दिने दिने प्रति दिन; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; रामानन्द-रामानन्द राय; सने–के साथ; निज-अपने; भाव-भाव; करेन-करते; विदित-प्रकट; बाह्ये-बाहर से; विष-ज्वाला हय–विषैली वस्तुओं से दुःख; भितरे-भीतर से; आनन्द-मय-दिव्य आनन्द; कृष्ण-प्रेमार-कृष्ण-प्रेम का; अद्भुत-अद्भुत; चरित-लक्षण।

अनुवाद

इस प्रकार चैतन्य महाप्रभु नित्य प्रति इन भावों का आनन्द लेते और इन भावों को स्वरूप तथा रामानन्द के सामने प्रकट करते। ऊपर से तो यह दारुण कष्ट प्रतीत होता था, मानों महाप्रभु किसी विषैले प्रभाव से पीड़ित हों, किन्तु हृदय में वे आनन्द का अनुभव करते थे। कृष्ण के दिव्य प्रेम का यही गुण है।

एइ प्रेमा-आस्वादन, तप्त-इक्षु-चर्वण,

मुख ज्वले, ना याय त्यजन ।

सेइ प्रेमा याँर मने, तार विक्रम सेइ जाने,

विषामृते एकत्र मिलन ॥51॥

एइ-यह; प्रेमा-कृष्ण-प्रेम; आस्वादन-आस्वादन; तप्त-गर्म; इक्षु-चर्वण-गन्ना चूसना; मुख ज्वले–मुख जलता है; ना याय त्यजन–तथापि छोड़ा न जाये; सेइ-वह; प्रेमा-भगवत् प्रेम; याँर मने किसी के मन में; तार-उसकी; विक्रम-शक्ति; से जाने-वही जानता है; विष-अमृते–विष और अमृत; एकत्र-एक साथ; मिलन-मिलन।

अनुवाद

जो ऐसे भगवत्-प्रेम का आस्वादन करता है, वह इसकी तुलना गर्म गन्ने (ईख) से करता है। गर्म गन्ने को यदि कोई चबाता है, तो उसका मुख जलता है, फिर भी वह उसे छोड़ नहीं सकता। इसी प्रकार किसी में यदि लेश-मात्र भी भगवत्प्रेम हो, तो वह इसके सशक्त प्रभाव का अनुभव कर सकता है। इसकी तुलना अमृत और विष के मिश्रण से ही की जा सकती है।

पीड़ाभिर्नव-काल-कूट-कटुता-गर्वस्य निर्वासनो

निस्यन्देन मुदां सुधा-मधुरिमाहङ्कार-सङ्कोचनः ।

प्रेमा सुन्दरि नन्द-नन्दन-परो जागर्ति यस्यान्तरे

ज्ञायन्ते स्फुटमस्य वक्र-मधुरास्तेनैव विक्रान्तयः ॥52॥

पीड़ाभिः–दुःखों से; नव–नया; काल-कूट-विष का; कटुता–कड़वाहट; गर्वस्य-गर्व की; निर्वासनः–निर्वासन; निस्यन्देन–बहाने से; मुदाम्-प्रसन्नता; सुधा-अमृत की; मधुरिमा-मधुरता की; अहङ्कार-अहंकार; सङ्कोचनः-कम करने से; प्रेमा-प्रेम; सुन्दरि-सुन्दर मित्र; नन्द-नन्दन-परः-नन्द महाराज के पुत्र पर स्थिर; जागर्ति-विकसित होता है; यस्य–जिसके; अन्तरे-हृदय में; ज्ञायन्ते-दिखती है; स्फुटम्-स्पष्ट; अस्य-उसका; वक्र—कपटी; मधुराः-और मधुर; तेन-उससे; एव-अकेले; विक्रान्तयः-प्रभाव।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे सुन्दरियों, यदि कोई भगवत्प्रेम अर्थात् नन्द महाराज के पुत्र, कृष्ण के प्रति प्रेम जाग्रत कर लेता है, तो उसके हृदय में इस प्रेम के कड़वे तथा मीठे सभी प्रभाव प्रकट होंगे। ऐसा भगवत्प्रेम दो प्रकार से कार्य करता है। भगवत्प्रेम का विषैला प्रभाव सर्प के ताजे तथा तीव्र विष को भी पराजित करनेवाला है। तथापि उसी के साथ ऐसा दिव्य आनन्द भी मिलता है, जो अमृत के अहंकार को चूर करके उसके मान को घटाता है। दूसरे शब्दों में, कृष्ण-प्रेम इतना शक्तिशाली है कि वह सर्प के विषैले प्रभाव के साथ-साथ सिर पर गिरने वाले अमृत से प्राप्त सुख को भी परास्त करने वाला होता है। इसका अनुभव दो रूपों में किया जाता है—एक साथ विषैला तथा अमृततुल्य।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी-कृत विदग्ध माधव (2.18) में पौर्णमासी के द्वारा नान्दीमुखी से कहा गया है।

ये काले देखे जगन्नाथ-श्रीराम-सुभद्रा-साथ,

तबे जाने–आइलाम कुरुक्षेत्र ।

सफल हैल जीवन, देखिलुँ पद्म-लोचन,

जुड़ाइल तनु-मन-नेत्र ॥53॥

ये काले-जिस समय; देखे-वे देखते हैं; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ; श्री-राम-बलराम; सुभद्रा-सुभद्रा; साथ-के साथ; तबे—उस समय; जाने-जानते हैं; आइलाम-मैं आ गया हूँ; कुरुक्षेत्र-कुरुक्षेत्र के तीर्थ स्थान पर; स-फल-सफल; हैल–हो गया; जीवन-जीवन; देखिलुँ–मैंने देखा है; पद्म-लोचन–कमलनयन; जुड़ाइल-शान्त; तनु-शरीर; मन–मन; नेत्र–नेत्र।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथजी को श्री बलराम तथा सुभद्रा के साथ देखते, तो वे तुरन्त सोचने लगते कि वे कुरुक्षेत्र पहुँच गये हैं, जहाँ वे सब आये थे। वे अपने जीवन को कृतार्थ समझते, क्योंकि उन्होंने उन कमलनयन के दर्शन किये हैं, जो अपने दर्शन से तन, मन तथा नेत्रों को शान्त करने वाले हैं।

गरुड़ेर सन्निधाने, रहि' करे दरशने,

से आनन्देर कि कहिब ब'ले ।

गरुड़-स्तम्भेर तले, आछे एक निम्न खाले,

से खाल भरिल अश्रु-जले ॥54॥

गरुड़ेर–गरुड़; सन्निधाने–निकट; रहि-रहकर; करे-करते; दरशने-दर्शन; से भानन्देर-उस आनन्द का; कि-क्या; कहिब-कहूँ; ब'ले-बलपूर्वक; गरुड़-गरुड़ की मूर्ति; स्तम्भेर-स्तम्भ के; तले-नीचे; आछे-है; एक-एक; निम्न-नीची; खाले- नाली; से खाल—वह नाली; भरिल-भर जाती; अश्रु-जले–अश्रु जल से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु गरुड़-स्तम्भ के पास खड़े रहकर भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करते थे। भला उस प्रेम के बल के विषय में क्या कहा जा सकता है? उस गरुड़-स्तम्भ के नीचे भूमि पर एक गहरी नाली थी, जो उनके अश्रु-जल से भर जाती थी।

तात्पर्य

जगन्नाथ मन्दिर के सामने एक स्तम्भ पर गरुड़ की प्रतिमा है। यह गरुड़-स्तम्भ कहलाता है। उसी स्तम्भ के नीचे एक नाली है, जो महाप्रभु के अश्रुओं से भर गयी थी।

ताहाँ हैते घरे आसि', माटीर उपरे वसि',

नखे करे पृथिवी लिखन ।

हा-हा काहाँ वृन्दावन, काहाँ गोपेन्द्र-नन्दन,

काहाँ सेइ वंशी-वदन ॥55॥

ताहाँ हैते-वहाँ से; घरे आसि'–घर लौटकर; माटीर-धरती: उपरे ऊपर: वसि'-बैठकर; नखे-नाखूनों से; करे-करते; पृथिवी-धरती की सतह पर; लिखन-कुरेदना; हा-हा-हाय; काहाँ–कहाँ है; वृन्दावन-वृन्दावन; काहाँ–कहाँ; गोप–इन्द्र-नन्दन-गोपों के राजा का पुत्र; काहाँ–कहाँ; सेइ-वह; वंशी-वदन-वंशी वादक।

अनुवाद

जगन्नाथ-मन्दिर से घर लौटकर श्री चैतन्य महाप्रभु भूमि पर बैठते और अपने नाखूनों से उसे कुरेदते। ऐसे अवसर पर वे अत्यन्त दुःखी होकर प्रलाप करते, "हाय, वृन्दावन कहाँ है? गोपेन्द्रनन्दन कृष्ण कहाँ हैं? वह वंशी बजाने वाला कहाँ है?"

काहाँ से त्रि-भङ्ग-ठाम, काहाँ सेइ वेणु-गान,

काहाँ सेइ यमुना-पुलिन।

काहाँ से रास-विलास, काहाँ नृत्य-गीत-हास,

काहाँ प्रभु मदन मोहन ॥56॥

काहाँ–कहाँ; से-वे; त्रि-भङ्ग-ठाम–तीन जगहों से टेढ़े शरीर वाला; काहाँ–कहाँ; सेइ-वह; वेणु-गान-बांसुरी का मधुर गीत; काहाँ–कहाँ; सेइ-वह; यमुना-पुलिन-यमुना नदी का तट; काहाँ–कहाँ; से—वह; रास-विलास-रास नृत्य; काहाँ–कहाँ, नृत्य-गीत-हास-नृत्य, संगीत तथा हास्य; काहाँ–कहाँ; प्रभु-मेरे प्रभु; मदनमोहन-कामदेव को मोहने वाले।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु यह कहकर विलाप किया करते, "त्रिभंगी कृष्ण कहाँ हैं? कहाँ है उनकी बाँसुरी का मधुर गान? कहाँ है यमुना का तट? कहाँ है रास-नृत्य? कहाँ है वह नृत्य, गीत और हँसी? कहाँ है मेरे नाथ मदनमोहन, जो कामदेव को मोहत करने वाले हैं?"

उठिल नाना भावावेग, मने हैल उद्वेग,

क्षण-मात्र नारे गोङाइते।

प्रबल विरहानले, धैर्य हैल टलमले,

नाना श्लोक लागिला पड़िते ॥57॥

उठिल-उठे; नाना-नाना; भाव-आवेग-भावावेश; मने-मन में; हैल–था; द्वेग–चिन्ता; क्षण-मात्र–क्षण मात्र भी; नारे-अक्षम; गोङाइते-बिताना; प्रबल-प्रबल; विरह-अनले विरह अग्नि में; धैर्य-धैर्य; हैल–हो गया; टलमले विचलित; नाना-नाना; श्लोक-श्लोक; लागिला-आरम्भ किया; पड़िते-पढ़ना।

अनुवाद

इस प्रकार विविध भावावेग उत्पन्न होते और चैतन्य महाप्रभु का मन उद्विग्न हो उठता। वे एक क्षण भी निश्चिन्त नहीं रह पाते। इस तरह विरह की प्रबल भावनाओं के कारण उनका धैर्य छूटने लगता और वे विभिन्न श्लोकों का उच्चारण करने लगते।

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि

हरे त्वदालोकनमन्तरेण ।

अनाथ-बन्धो करुणैक-सिन्धो

हा हन्त हा हन्त कथं नयामि ॥58॥

अमूनि-वे सब; अधन्यानि-अशुभ; दिन-अन्तराणि-अन्य दिन; हरे-हे मेरे प्रभुः त्वत्-आपका; आलोकनम्-देखकर; अन्तरेण–बिना; अनाथ-बन्धो-हे अनाथ बन्धु; करुणा-एक-सिन्धो-हे कृपा के एकमात्र सागर; हा हन्त–हाय; हा हन्त–हाय; कथम्-कैसे; नयामि-व्यतीत करूँगा।

अनुवाद

“हे प्रभु, हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, हे अनाथों के मित्र! आप एकमात्र कृपा के सागर हैं। चूँकि मैं आपसे मिल नहीं पाया, इसलिए मेरे अशुभ दिन तथा रातें असह्य हो गये हैं। मैं समझ नहीं पा रहा कि मैं अपना समय किस तरह व्यतीत करूँ?’

तात्पर्य

यह श्लोक बिल्वमंगल ठाकुर-कृत कृष्णकर्णामृत (41) से लिया गया है।

तोमार दर्शन-विने, अधन्य ए रात्रि-दिने,

एइ काल ना याय काटन ।

तुमि अनाथेर बन्धु, अपार करुणा-सिन्धु,

कृपा करि' देह दरशन ॥59॥

तोमार-आपके; दर्शन-दर्शन; विने–बिना; अधन्य-अशुभ; ए-यह; रात्रि-दिने-रात दिन; एइ काल—इस समय; ना याय नहीं आता; काटन–कट; तुमि-आप; अनाथेर बन्धु-अनाथों के बन्धु; अपार-असीम; करुणा-सिन्धु-करुणा सागर; कृपा करि'–कृपा करके; देह-दो; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

"आपके दर्शन के अभाव में ये अशुभ दिन तथा रातें कट नहीं रही हैं। समझ में नहीं आता कि यह समय कैसे काटा जाये। किन्तु आप अनाथों के मित्र और करुणा के सागर हैं। कृपा करके अपना दर्शन दें, क्योंकि मैं बहुत संदिग्ध अवस्था में हूँ।"

उठिल भाव-चापल, मन हइल चञ्चल,

भावेर गति बुझन ना याय ।

अदर्शने पोड़े मन, केमने पाब दरशन,

कृष्ण-ठाञि पुछेन उपाय ॥60 ॥

उठिल-उठा; भाव-चापल-भावावेश का अस्थिर भाव; मन–मन; हइल-हो गया; चञ्चल-चंचल; भावेर-भावावेश की; गति-गति; बुझन-समझना; ना द्याय-असम्भव; अदर्शने-देखे बिना; पोड़े-जलता है; मन-मन; केमने-कैसे; पाब-मैं पाऊँगा; दरशन-दर्शन; कृष्ण-ठाञि-कृष्ण से; पुछेन–पूछना; उपाय-साधन।

अनुवाद

इस प्रकार महाप्रभु भावावेश के कारण अस्थिर हो गये और उनका मन उत्तेजित हो गया। कोई यह समझ नहीं पा रहा था कि यह भाव किधर ले जायेगा। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से न मिल पाने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु का मन जलने लगा। वे भगवान् कृष्ण से उन तक पहुँचने का उपाय पूछने लगे।

त्वच्छैशवं त्रि-भुवनाद्भुतमित्यवेहि

मच्चापलं च तव वा मम वाधिगम्यम् ।

तत्किं करोमि विरलं मुरली-विलासि

मुग्धं मुखाम्बुजमुदीक्षितुमीक्षणाभ्याम् ॥61॥

त्वत्-आपकी; शैशवम् शिशु अवस्था; त्रिभुवन–तीनों भुवनों में; अद्भुतम्-अद्भुत; इति–इस प्रकार; अवेहि जानते हैं; मत्-चापलम्-मेरी चंचलता; च-और; तव-आपका; वा–अथवा; मम–मेरा; वा–अथवा; अधिगम्यम्-जानने योग्य; तत्व ह; किम्-क्या; करोमि--मैं करूँ; विरलम्-अकेले में; मुरली-विलासि-हे मुरली वादक; मुग्धम्-आकर्षक; मुख-अम्बुजम्मु ख कमल; उदीक्षितुम्-अच्छी प्रकार से देखना; ईक्षणाभ्याम् नेत्रों से।

अनुवाद

"हे कृष्ण, हे वंशीवादक, आपके बाल्यकाल की माधुरी तीनों लोकों में अद्भुत है। आप मेरी चपलता को जानते हैं और मैं आपकी। इसके विषय में अन्य कोई नहीं जानता। मैं आपके सुन्दर आकर्षक मुखमण्डल को एकान्त में देखना चाहता हूँ, किन्तु यह कैसे सम्भव होगा?'

तात्पर्य

यह श्लोक बिल्वमंगल ठाकुर कृत कृष्णकर्णामृत (32) से उद्धृत है।

तोमार माधुरी-बल, ताते मोर चापल,

एइ दुइ, तुमि आमि जानि ।

काहाँ करों काहाँ याँ, काहाँ गेले तोमा पाँ,

ताहा मोरे कह त' आपनि ॥62॥

तोमार—आपका; माधुरी-बल-मधुरता की शक्ति; ताते-उसमें; मोर-मेरी; चापल-अस्थिरता; एइ-ये; दुई–दो; तुमि-आप; आमि-मैं; जानि-जानते हैं; काहाँ-कहाँ; करों-मैं करूँ; काहाँ–कहाँ; याँ–मैं जाऊँ; काहाँ–कहाँ; गेले-जाने से; तोमा-आपको; पाँ-मैं पा सकता हूँ; ताहा-वह; मोरे-मुझे; कह-कृपया कहो; त' आपनि-आप।

अनुवाद

"हे प्रिय कृष्ण! आपके सुन्दर रूप की शक्ति को केवल मैं या आप ही जानते हैं और मेरी अस्थिरता (चपलता) का कारण भी वही है। अब मेरी स्थिति ऐसी है कि समझ में नहीं आता क्या करूँ और कहाँ जाऊँ। मैं आपको कहाँ पा सकता हूँ। मैं तो आपसे ही मार्गदर्शन के लिए कह रहा हूँ।"

नाना-भावेर प्राबल्य, हैल सन्धि-शाबल्य,

भावे-भावे हैल महा-रण ।

औत्सुक्य, चापल्य, दैन्य, रोषामर्ष आदि सैन्य,

प्रेमोन्माद—सबार कारण ॥ 63 ॥

नाना-नाना; भावेर-भावों का; प्राबल्य–बल; हैल–हुआ; सन्धि–मिलन; शाबल्य–विरोध; भावे-भावे-भावों के मध्य; हैल-हुआ; महा-रण-महान् युद्ध; औत्सुक्य-उत्सुकता; चापल्य-अस्थिरता; दैन्य-दीनता; रोष-अमर्ष-क्रोध एवं अधीरता; आदि ये सारे; सैन्य-सैनिक; प्रेम-उन्माद-प्रेम का पागलपन; सबार-सबका; कारण-कारण।

अनुवाद

विभिन्न प्रकार के भावों के कारण मन में विरोधी दशाएँ उत्पन्न होती, जिससे विभिन्न प्रकार के भावों में डटकर युद्ध होता था। चिन्ता, चपलता, दीनता, क्रोध तथा अधीरता सैनिकों की भाँति युद्ध करते और इसका कारण था भगवत्-प्रेम का उन्माद।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु में बतलाया गया है कि जब विभिन्न कारणों से एक-से भावों का मिलन होता है, तो उन्हें स्वरूप-सन्धिकहा जाता है। जब विरोधी तत्त्व मिलते हैं, तो चाहे वे एक कारण से या विभिन्न कारणों से क्यों न उदय हों, उनका संगम भिन्न-रूप-सन्धि कहलाता है। विभिन्न भावों-यथा भय और सुख, शोक तथा सुख-का एकसाथ मिलना सन्धि कहलाता है। गर्व, उदासी, धैर्य तथा उत्सुकता, दैन्य, स्मृति, संशय, अपमान जनित अधीरता, भय, निराशा आदि भाव-लक्षणों को शाबल्य कहते हैं। इन भावों के मिलने से उत्पन्न घर्षण ही शाबल्य है। इसी प्रकार जब किसी वस्तु को देखने की इच्छा बलवती होती है या जब वांछित वस्तु को देखने में विलम्ब सहा नहीं जा सकता, तो

यह असमर्थता औत्सुक्य या उत्सुकता कहलाती है। यदि किसी में ऐसी उत्सुकता रहती है, तो उसका मुँह सूख जाता है और वह बेचैन हो उठता है। व्यक्ति पूर्ण रूप से चिन्तित हो जाता है और उसमें कठिनाई से साँस लेने तथा अधीरता के लक्षण दिखाई देते हैं। इसी प्रकार प्रबल अनुरक्ति के कारण उत्पन्न हृदय का हल्कापन तथा मन की प्रबल उत्तेजना चापल्य कहलाता है। असमंजसता, शब्दों का दुरुपयोग तथा चिन्तारहित हठीले कार्यकलाप देखे जाते हैं। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति विपक्षी पर अत्यधिक क्रुद्ध होता है, तब अपराधपूर्ण तथा कुत्सित भाषा का प्रयोग होता है। तब वह क्रोध रोष कहलाता है। जब कोई अपमानित किये जाने या डाँट खाने से अधीर हो जाता है, तो मन की इस दशा को अमर्ष कहते हैं। ऐसी मनोदशा में शरीर में पसीना आ जाता है, सिरदर्द होने लगता है, शरीर का रंग उतर जाता है (विवर्णता), व्यक्ति को चिन्ता होती है तथा वह कोई उपाय ढूंढ निकालने के लिए प्रेरित होता है। आक्रोश, घृणा तथा प्रताड़ना ये प्रत्यक्ष लक्षण हैं।

मत्त-गज भाव-गण, प्रभुर देह—इक्षु-वन,

गज-युद्धे वनेर दलन ।

प्रभुर हैल दिव्योन्माद, तनु-मनेर अवसाद,

भावावेशे करे सम्बोधन ॥ 64॥

मत्त-गज-मत्त हाथी; भाव-गण-भाव के लक्षण; प्रभुर–महाप्रभु के; देह-शरीर; इक्षु-वन–गन्ने का खेत; गज-युद्धे हाथियों की लड़ाई; वनेर-जंगल में; दलन–रौंदना; प्रभुर-महाप्रभु का; हैल–था; दिव्य-उन्माद-दिव्य उन्माद; तनु-मनेर-मन एवं शरीर का; अवसाद शोक; भाव-आवेशे-भावावेश में; करे-करते; सम्बोधन–सम्बोधन।

अनुवाद

महाप्रभु का शरीर उस गन्ने के खेत के समान था, जिसमें भांवरूपी उन्मत्त हाथी प्रवेश कर गये हों। इन हाथियों में युद्ध होने से ईख का सारा खेत नष्ट हो गया। इस तरह महाप्रभु के शरीर में दिव्य उन्माद का उदय हुआ और उन्हें मन तथा शरीर में निराशा का अनुभव होने लगा। ऐसी भाव-दशा में वे इस प्रकार बोलने लगे।

हे देव हे दयित हे भुवनैक-बन्धो

हे कृष्ण हे चपल हे करुणैक-सिन्धो ।

हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम

हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे ॥65॥

हे देव-हे देव; हे दयित-हे प्रियतम; हे भुवन-एक-बन्धो-हे जगत् के एकमात्र मित्र; हे कृष्ण-हे भगवान् कृष्ण; हे चपल–हे चंचल; हे करुणा-एक-सिन्धो-हे कृपा के एकमात्र सागर; हे नाथ हे मेरे प्रभु; हे रमण-हे मेरे भोक्ता; हे नयन-अभिराम-हे मेरे नेत्रों को सर्वाधिक सुन्दर लगनेवाले; हा हा-हाय; कदा-कब; नुनिश्चित रूप से; भविता असि-आप होंगे; पदम्-निवासस्थान; दृशोः मे-मेरी दृष्टि के।

अनुवाद

"हे प्रभु! हे प्रियतम! हे ब्रह्माण्ड के एकमात्र सखा! हे कृष्ण, हे चपल, हे करुणासिन्धु! हे स्वामी, हे मेरे भोक्ता, हे मेरे नयनाभिराम! हाय, आप मुझे अब पुनः कब दर्शन देंगे?"

तात्पर्य

यह कृष्णकर्णामृत का 40वाँ श्लोक है।

उन्मादेर लक्षण, कराय कृष्ण-स्फुरण,

भावावेशे उठे प्रणय मान ।

सोल्लुण्ठ-वचन-रीति, मान, गर्व, व्याज-स्तुति,

कभु निन्दा, कभु वा सम्मान ॥66॥

उन्मादेर लक्षण-उन्माद के लक्षण; कराय-करवाते हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; स्फुरण-स्फूर्ति; भाव-आवेशे-भावावेश में; उठे-उठता है; प्रणय-प्रेम; मान-तिरस्कार; सोल्लुण्ठ-वचन-मधुर शब्दों द्वारा तिरस्कार; रीति-रीति; मान-मान; गर्व–अभिमान; व्याज-स्तुति-अप्रत्यक्ष स्तुति; कभुकभी-कभी; निन्दा-निन्दा; कभु-कभी-कभी; वा–अथवा; सम्मान-सम्मान।

अनुवाद

उन्माद के लक्षणों से कृष्ण के स्मरण को प्रोत्साहन मिलता था। भावावेश में प्रेम (प्रणय), मान, मीठे वचनों द्वारा तिरस्कार, गर्व, आदर तथा अप्रत्यक्ष स्तुति जाग्रत होते थे। इस प्रकार कभी कृष्ण की निन्दा होती और कभी उनका सम्मान होता।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु में उन्माद शब्द की व्याख्या विरह जनित अत्यधिक हर्ष, दुर्भाग्य तथा हृदय की मोहग्रस्तता के रूप में की गई है। उन्माद के लक्षण हैं—उन्मत्त की तरह हँसना, नृत्य करना, गाना, व्यर्थ के कार्य करना, प्रलाप करना, दौड़ना, चिल्लाना तथा कभी-कभी विरोधी व्यवहार करना। प्रणय की व्याख्या इस प्रकार की गई है-जब प्रत्यक्ष सम्मान मिलने की सम्भावना हो, किन्तु इसे टाला जाता है, तो वह प्रेम प्रणय कहलाता है। श्रील रूप गोस्वामी ने अपने उज्ज्वल-नीलमणि में मान शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है-जब प्रेमी हार्दिक प्रेम-भरे शब्दों के आदान-प्रदान से अद्भुत मिठास का अनुभव करता है, किन्तु चालाकी द्वारा अपनी भावनाओं को छिपाना चाहता है, तो मान का अनुभव होता है।

तुमि देव क्रीड़ा-रत, भुवनेर नारी यत,

ताहे कर अभीष्ट क्रीड़न ।

तुमि मोर दयित, मोते वैसे तोमार चित,

मोर भाग्ये कैले आगमन ॥ 67॥

तुमि-आप; देव–परम भगवान्; क्रीड़ा-रत-अपनी लीलाओं में रत; भुवनेर-सभी ब्राम्हाण्डों की; नारी–नारियाँ; ग्रत–सभी; ताहे-उन लीलाओं में; कर-आप करते हैं; अभीष्ट-इच्छानुसार; क्रीड़न-क्रीड़ा; तुमि-आप; मोर–मेरा; दयित-कृपालु; मोते-मुझ पर; वैसे-लगाओ; तोमार-आपका; चित-मन; मोर-मेरे; भाग्ये-सौभाग्य से: कैले–आपने किया है; आगमन-आगमन।

अनुवाद

राधारानी के मनोभाव में श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण को इस प्रकार सम्बोधित किया : "हे प्रभु, आप अपनी लीलाओं में रत हैं और आप अपनी इच्छानुसार ब्रह्माण्ड की सारी स्त्रियों का उपभोग करते हैं। आप मुझ पर अत्यन्त कृपालु हैं। आप अपना ध्यान मेरी ओर दें, क्योंकि भाग्यवश आप मेरे समक्ष प्रकट हुए हैं।

भुवनेर नारी-गण, सबा' कर आकर्षण,

ताहाँ कर सब समाधान ।

तुमि कृष्ण—चित्त-हर, ऐछे कोन पामर,

तोमारे वा केबा करे मान ॥ 68॥

भुवनेर-सभी ब्रह्माण्डों की; नारी-गण-नारियाँ; सबा'-सब; कर-आप करते हैं; आकर्षण-आकर्षण; ताहाँ-वहाँ; कर-आपने किया; सब-सब; समाधान-समाधान; तुमि-आप; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; चित्त-हर-चित्त हरते हो; ऐछे-उस प्रकार; कोन-कोई; पामर-विलासी; तोमारे-आप; वा–अथवा; केबा-कौन; करे-करता है; मान-सम्मान।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप ब्रह्माण्ड की सारी स्त्रियों को आकृष्ट करते हैं और जब वे आती हैं, तब आप उन सबका समाधान करते हैं। आप भगवान् कृष्ण हैं और सबके चित्त को हरने वाले हैं, किन्तु अन्ततः आप हैं लंपट (विलासी) ही। भला आपका सम्मान कौन करेगा?

तोमार चपल-मति, एकत्र ना हय स्थिति,

ता' ते तोमार नाहि किछु दोष ।

तुमि त' करुणा-सिन्धु, आमार पराण-बन्धु,

तोमाय नाहि मोर कभु रोष ॥69॥

तोमार-आपका; चपल-मति–चपल मन; एकत्र-एक स्थान पर; ना—कभी नहीं; हय-है; स्थिति–स्थित; ताते-उसमें; तोमार-आपका; नाहि-नहीं है; किछु-कोई; दोष-दोष; तुमि-आप; त'–निश्चय ही; करुणा-सिन्धु–कृपा सिंधु; आमार-मेरा; पराण-बन्धु-प्राण बन्धु; तोमाय-आपके प्रति; नाहि-नहीं है; मोर-मेरा; कभु–किसी समय; रोष-क्रोध।

अनुवाद

"हे प्रिय कृष्ण, आपका मन सदैव चंचल रहता है। आप एक स्थान पर नहीं रह सकते, किन्तु इसमें आपका दोष नहीं है। आप तो करुणा के सागर हैं, मेरे प्राण-प्रिय हैं। अतएव आपसे रुष्ट होने का कोई कारण नहीं है।

तुमि नाथ—व्रज-प्राण, व्रजेर कर परित्राण,

बहु कार्ये नाहि अवकाश ।

तुमि आमार रमण, सुख दिते आगमन,

ए तोमार वैदग्ध्य-विलास ॥ 70 ॥

तुमि-आप; नाथ नाथ, स्वामी; व्रज-प्राण-व्रजभूमि (वृन्दावन) के प्राण; व्रजेर-व्रज का; कर-करो; परित्राण-उद्धार; बहु-बहुत; कार्ये–गतिविधियों में; नाहि-नहीं है; अवकाश-अवकाश; तुमि-आप; आमार-मेरे; रमण-भोक्ता; सुख-सुख; दिते-देने के लिए; आगमन-आगमन; ए—यह; तोमार-आपका; वैदग्ध्य-विलास-दक्ष कार्यकलाप।

अनुवाद

"हे नाथ, आप वृन्दावन के स्वामी तथा उसके प्राण हैं। कृपा करके वृन्दावन के उद्धार का उपाय कीजिये। हमें अपने अनेक कामों से तनिक भी अवकाश नहीं है। वास्तव में आप मेरे भोक्ता हैं। आप मुझे सुख प्रदान करने के लिए ही प्रकट हुए हैं और यह आपकी दक्ष लीलाओं में से एक है।

तात्पर्य

वैदग्ध्य शब्द का अर्थ है अत्यन्त दक्ष, विद्वान, विनोदी, चतुर, सुन्दर तथा व्यंग्य-पटु व्यक्ति।

मोर वाक्य निन्दा मानि, कृष्ण छाड़ि' गेला जानि,

शुन, मोर ए स्तुति-वचन ।

नयनेर अभिराम, तुमि मोर धन-प्राण,

हा-हा पुनः देह दरशन ॥ 71 ॥

मोर-मेरे; वाक्य-वचन; निन्दा-निन्दा; मानि-मानकर ; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; छाड़ि-त्यागकर; गेला–चले गये; जानि–मैं जानता हूँ; शुन-सुनो; मोर-मेरा; ए-यह; स्तुति-वचन-प्रशंसा युक्त वचन; नयनेर–आँखों का; अभिराम–सन्तोष; तुमि-आप हो; मोर-मेरे ; धन-प्राण-जीवन और प्राण; हा-हा-हाय; पुनः पुनः; देह-मुझे दो; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

"मेरे वचनों को निन्दा मानकर भगवान् कृष्ण मुझे छोड़कर चले गये हैं। मैं जानता हूँ कि वे चले गये हैं, किन्तु मेरी स्तुति सुन लीजिये : 'आप मेरे नेत्रों की तुष्टि हो। आप ही मेरे धन और जीवन हो। हाय! कृपया एक बार फिर मुझे अपना दर्शन दीजिये।"

स्तम्भ, कम्प, प्रस्वेद, वैवर्ण्य, अश्रु, स्वर-भेद,

देह हैल पुलके व्यापित।

हासे, कान्दे, नाचे, गाय, उठि' इति उति धाय,

क्षणे भूमे पड़िया मूर्च्छित ॥72॥

स्तम्भ-जड़ हो जाना; कम्प–कांपना; प्रस्वेद-पसीना आना; वैवर्ण्य-शारीरिक रंग का फीका पड़ जाना; अश्रु-अश्रु; स्वर-भेद-गला रूंध जाना; देह-शरीर; हैल–था; पुलके-हर्षित; व्यापित-आच्छादित; हासे-हँसते; कान्दे-रोते; नाचे-नाचते; गाय-गाते; उठि'–उठकर; इति उति-इधर-उधर; धाय-दौड़ते; क्षणे–कभी-कभी; भूमे-पृथ्वी पर; पड़िया–गिर जाते; मूर्च्छित- मूर्च्छित।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में विविध विकार प्रकट होते थे—स्तम्भितत होना, कांपना, पसीना आना, रंग फीका पड़ना, रोना और गला रूँधना। इस प्रकार उनका सारा शरीर दिव्य आनन्द से व्याप्त रहता था। फलस्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु कभी हँसते, कभी रोते, कभी नाचते तो कभी गाते थे। कभी वे उठकर इधर-उधर दौड़ते और कभी भूमि पर गिर जाते और अचेत हो जाते।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु में शरीर में होने वाले आठ प्रकार के दिव्य विकारों (सात्त्विक भावों) का वर्णन हुआ है। स्तम्भ मन की दिव्य तल्लीनता का सूचक है। इस दशा में शान्त मन प्राण-वायु पर स्थित होता है और शरीर में विविध प्रकार के विकार प्रकट होते हैं। ये लक्षण उच्च कोटि के भक्त के शरीर मे प्रकट होते हैं। जब जीवन निश्चेष्टप्राय हो जाता है, तो उसे "स्तम्भित" कहते हैं। इस दशा में हर्ष, भय, आश्चर्य, विषाद तथा क्रोध के भाव प्रकट होते हैं। इस दशा में वाक्-शक्ति जाती रहती है और हाथ-पैर की गति रुक जाती है। अन्यथा स्तम्भ तो मानसिक अवस्था है। प्रारम्भ में शरीर में अन्य अनेक लक्षण देखे जाते हैं। पहले वे अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, किन्तु धीरे-धीरे वे स्पष्ट होने लगते हैं। जब कोई बोल नहीं सकता, तो स्वाभाविक है कि उसकी कर्मेन्द्रियाँ जड़ हो जाती हैं और ज्ञानेन्द्रियाँ निष्क्रिय बन जाती हैं। भक्तिरसामृत-सिन्धु में कम्प को विशेष प्रकार के भय, क्रोध तथा हर्ष से उत्पन्न बतलाया गया है। इसे वेपथु कहते हैं। जब हर्ष, भय तथा क्रोध के मिलने से शरीर में पसीना आने लगता है, तो इसे स्वेद कहते हैं। शरीर के रंग में परिवर्तन होने को वैवयं कहा जाता है। यह विषाद, क्रोध तथा भय के मिलने से उत्पन्न होता है। जब इन भावों की अनुभूति होती है, तो मुख का रंग पीला पड़ जाता है और शरीर पतला तथा दुर्बल पड़ जाता है। भक्तिरसामृत-सिन्धु में अश्रु को हर्ष, क्रोध तथा विषाद का मेल कहा गया है, जिससे बिना प्रयास के ही आँखों से आँसू बहने लगते हैं। जब हर्ष के कारण अश्रु आते हैं, तो वे ठण्डे होते हैं, किन्तु क्रोध के कारण आये अश्रु गर्म होते हैं। दोनों ही दशाओं में आँखें चंचल रहती हैं, पुतलियाँ लाल हो जाती हैं और उनमें खुजली होती है। ये सारे अश्रु के लक्षण हैं। जब विषाद, आश्चर्य, क्रोध, हर्ष तथा भय का मेल होता है, तब गला रूंध जाता है। यह अवरोध गद्गद कहलाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु गद्गद रुद्धया गिरा की ओर संकेत करते हैं। भक्तिरसामृत-सिन्धु में पुलक को हर्ष, उत्साह तथा भय कहा गया है। इनके मिश्रण से शरीर के रोम खड़े हो जाते हैं और यह शारीरिक दशा पुलक कहलाती है।

मूर्च्छाय हैल साक्षात्कार, उठि' करे हुहुङ्कार,

कहे—एइ आइला महाशय ।

कृष्णेर माधुरी-गुणे, नाना भ्रम हय मने,

श्लोक पड़ि' करये निश्चय ॥73॥

मूर्च्छाय-मूर्च्छा में; हैल–हुई; साक्षात्कार-भेंट; उठि'–उठकर; करे-करते; हु-हुँ-कार-हुँकार करना; कहे-कहते; एइ-इस प्रकार; आइला–वे आये हैं; महा-आशय-महापुरुष; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; माधुरी-मधुरता; गुणे-गुणों से; नाना-नाना; भ्रम-भ्रम; हय हैं; मने-मन में; श्लोक-श्लोक; पड़ि-पढ़कर; करये-करते; निश्चय–निश्चय।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु अचेत थे, तब उनकी भेंट पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से हुई। फलस्वरूप वे तुरन्त उठकर जोर से हुंकार करने लगे और उन्होंने ऊँचे स्वर में घोषित किया, "महापुरुष कृष्ण अब उपस्थित हैं।" इस प्रकार कृष्ण के मधुर गुणों के कारण चैतन्य महाप्रभु को मन में तरह-तरह के भ्रम होते थे। वे निम्नलिखित श्लोक को पढ़कर भगवान् कृष्ण की उपस्थिति सुनिश्चित करते थे।

मारः स्वयं नु मधुर-द्युति-मण्डलं नु

माधुर्यमेव नु मनो-नयनामृतं नु ।

वेणी-मृजो नु मम जीवित-वल्लभो नु

कृष्णोऽयमभ्युदयते मम लोचनाय ॥74॥

मारः-कामदेव; स्वयम्-स्वयं; नु-क्या; मधुर-मधुर; द्युति-प्रकाश की; मण्डलम्-मण्डल; नु–क्या; माधुर्यम्-माधुर्य; एव-भी; नु-अवश्य; मनः-नयन- अमृतम्-मन तथा नेत्रों के लिए अमृत; नु-क्या; वेणी-मृजः-बालों का ढीला होना; नु- क्या; मम–मेरे; जीवित-वल्लभः–जीवन और आत्मा के सुख; नु–क्या; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; अयम्-यह; अभ्युदयते-प्रकट होते हैं; मम–मेरे; लोचनाय नेत्रों के लिए।

अनुवाद

राधारानी के भाव में श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोपियों को सम्बोधित किया, "हे सखियों, कदम्ब पुष्प के समान तेजस्वी, साक्षात् माधुर्य, मेरी आँखों तथा मन के अमृत, गोपियों के बालों को शिथिल करने वाले, दिव्य आनन्द के परम स्रोत और मेरे जीवन-प्राण रूपी मूर्तिमान कामदेव कृष्ण कहाँ हैं? क्या वे मेरे नेत्रों के समक्ष दोबारा प्रकट हुए हैं?"

तात्पर्य

यह कृष्णकर्णामृत का एक अन्य श्लोक (68) है।

किबा एइ साक्षात्काम, द्युति-बिम्ब मूर्तिमान्,

कि माधुर्य स्वयं मूर्तिमन्त ।

किबा मनो-नेत्रोत्सव, किबा प्राण-वल्लभ,

सत्य कृष्ण आइला नेत्रानन्द ॥75 ॥

किबा-क्या; एडु–यह; साक्षात्-साक्षात्; काम-कामदेव; द्युति-बिम्ब-तेज का प्रतिबिम्ब; मूर्तिमान्–मूर्तिमान; कि-क्या; माधुर्य–मधुरता; स्वयम्-स्वयं; मूर्तिमन्त-मूर्तिमान; किबा-क्या; मनः-नेत्र-उत्सव-मन तथा नेत्रों के लिए उत्सव; किबा-क्या; प्राण-वल्लभ-प्राण प्रिय; सत्य-सत्य; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; आइला–आये हैं; नेत्र-आनन्द–मेरे नेत्रों के आनन्द।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु इस प्रकार कहने लगे, "क्या कदम्ब वृक्ष के तेज एवं प्रतिबिम्ब के साथ साक्षात् कामदेव उपस्थित है? क्या ये वही व्यक्ति हैं, जो साक्षात् माधुर्य हैं, जो मेरी आँखों तथा मन के आनन्द हैं, जो मेरे जीवन और प्राण हैं? क्या सचमुच कृष्ण मेरी आँखों के सामने आ गये हैं?"

गुरु—नाना भाव-गण, शिष्य—प्रभुर तनु-मन,

नाना रीते सतत नाचाय ।

निर्वेद, विषाद, दैन्य, चापल्य, हर्ष, धैर्य, मन्यु,

एइ नृत्ये प्रभुर काल याय ॥ 76 ॥

गुरु-गुरु; नाना-नाना; भाव-गण-भाव; शिष्य-शिष्य; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; ननु-मन-तन और मन; नाना-नाना; रीते-प्रकार से; सतत–संदा; नाचाय-नचाता; निर्वेद-उदासी; विषाद-दु:ख; दैन्य-नम्रता; चापल्य-अधीरता; हर्ष-हर्ष; धैर्य-धैर्य; मन्यु-क्रोध; एइ–यह; नृत्ये-नृत्य में; प्रभुर–महाप्रभु का; काल-समय; याय–व्यतीत होता।

अनुवाद

जिस प्रकार गुरु शिष्य को डांटता है और उसे भक्ति की कला सिखलाता है, उसी प्रकार निर्वेद (उदासी), विषाद, दीनता, चंचलता, हर्ष, धैर्य और क्रोध आदि भाव महाप्रभु के शरीर तथा मन को शिक्षा देते थे। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु अपना समय बिताते थे।

चण्डीदास, विद्यापति, रायेर नाटक-गीति,

कर्णामृत, श्री-गीत-गोविन्द ।

स्वरूप-रामानन्द-सने, महाप्रभु रात्रि-दिने,

गाय, शुने परम आनन्द ॥77॥

चण्डीदास-कवि चण्डीदास; विद्यापति–कवि विद्यापति; रायेर–कवि रामानन्द राय का; नाटक–जगन्नाथ-वल्लभ नाटक; गीति-गीत; कर्णामृत-बिल्वमंगल ठाकुर का कृष्ण कर्णामृत; श्री-गीत-गोविन्द-जयदेव गोस्वामी का गीत-गोविन्द; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; रामानन्द-सने–राय रामानन्द के साथ; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु; रात्रि-दिने–दिन और रात; गाय-गाते; शुने-सुनते; परम आनन्द–परम आनन्द के साथ।

अनुवाद

वे अपना समय पुस्तकें पढ़ने तथा चण्डीदास और विद्यापति द्वारा रचित गीत गाने और जगन्नाथ वल्लभ नाटक, कृष्णकर्णामृत तथा गीतगोविन्द के उद्धरण सुनने में बिताते थे। इस तरह स्वरूप दामोदर तथा राय रामानन्द के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु परम आनन्द के साथ कीर्तन एवं श्रवण करके दिन तथा रात व्यतीत करते थे।

पुरीर वात्सल्य मुख्य, रामानन्देर शुद्ध-सख्य,

गोविन्दाद्येर शुद्ध-दास्य-रस ।

गदाधर, जगदानन्द, स्वरूपेर मुख्य रसानन्द,

एइ चारि भावे प्रभु वश ॥78 ॥

पुरीर-परमानन्द पुरी का; वात्सल्य-वात्सल्य; मुख्य-प्रमुख; रामानन्देर-राय रामानन्द की; शुद्ध-सख्य-शुद्ध मित्रता; गोविन्द-आद्येर–गोविन्द तथा अन्यों का; शुद्ध-दास्य-रस-शुद्ध दास्य रस; गदाधर-गदाधर पण्डित; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर का; मुख्य–मुख्य; रस-आनन्द–माधुर्य-प्रेम के आनन्द का आस्वादन; एइये; चारि–चार; भावे-भाव; प्रभु-प्रभु; वश-वश में रहते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने पार्षदों में परमानन्द पुरी से वात्सल्य, रामानन्द राय से सख्य, गोविन्द तथा अन्यों से शुद्ध दास्य और गदाधर, जगदानन्द तथा स्वरूप दामोदर से माधुर्य रस का आनन्द प्राप्त होता था। श्री चैतन्य महाप्रभु इन चारों रसों का आस्वादन करते और इस तरह अपने भक्तों के वश में रहते हुए जगन्नाथ पुरी में रहे।

तात्पर्य

कहा जाता है कि परमानन्द पुरी वृन्दावन में उद्धव हैं। उनका श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ वात्सल्य प्रेम था। इसका कारण यह था कि परमानन्द पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु के गुरुभाई थे। इसी प्रकार रामानन्द राय, जिन्हें कुछ अर्जुन का अवतार मानते हैं, तो कुछ विशाखा देवी का, महाप्रभु के साथ शुद्ध सख्य रस का आस्वादन करते थे। गोविन्द तथा अन्य भक्त शुद्ध दास्य रस का आस्वादन करते थे। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने अन्तरंग पार्षदों यथा गदाधर पंडित, जगदानन्द पण्डित तथा स्वरूप दामोदर की उपस्थिति में कृष्ण के साथ श्रीमती राधारानी के माधुर्य रस का आनन्द लेते थे। इन चारों दिव्य रसों में निमग्न रहकर श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता का अनुभव करते थे।

लीलाशुक—मर्त्य-जन, ताँर हय भावोद्गम,

ईश्वरे से—कि इहा विस्मय ।

ताहे मुख्य-रसाश्रय, हइयाछेन महाशय,

ताते हय सर्व-भावोदय ॥79॥

लीला-शुक–बिल्वमंगल ठाकुर; मर्त्य-जन-मर्त्य लोक का व्यक्ति; ताँर–उनका; हय-है; भाव-उद्गम-विभिन्न भावों का प्राकट्य; ईश्वरे-ईश्वर में; से-वह; कि-क्या; इहा-यहाँ; विस्मय-आश्चर्य; ताहे-उसमें; मुख्य-रस-प्रधान रस (माधुर्य रस); आश्रय-धाम; ह-इयाछेन-हो गया है; महा-आशय-महान् व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु; ताते-अत:; हय-है; सर्व-भाव-उदय-सर्व भावों का प्राकट्य।

अनुवाद

लीलाशुक (बिल्वमंगल ठाकुर) एक सामान्य मनुष्य थे; फिर भी उनके शरीर में अनेक भाव उत्पन्न होते थे। तो फिर यदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर में ये लक्षण प्रकट हों, तो कौन-सा आश्चर्य है? श्री चैतन्य महाप्रभु माधुर्य भाव में सर्वोच्च स्थिति पर थे, अतएव उनके शरीर में समस्त भाव स्वाभाविक रूप से प्रकट होते थे।

तात्पर्य

लीलाशुक बिल्वमंगल ठाकुर गोस्वामी हैं। वे दक्षिण भारत के ब्राह्मण थे और उनका पहले का नाम शिल्हण मिश्र था। जब वे गृहस्थ थे, तो चिन्तामणि नामक एक वेश्या पर आसक्त हो गये। किन्तु अन्त में उसीसे उपदेश ग्रहण करके उन्होंने वैराग्य ले लिया। उन्होंने एक पुस्तक शान्तिशतक लिखी और बाद में वे भगवान् कृष्ण तथा वैष्णवों की कृपा से महान् भक्त बने। तब वे बिल्वमंगल ठाकुर गोस्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए। उस उन्नत अवस्था में उन्होंने कृष्णकर्णामृत नामक एक पुस्तक लिखी, जो वैष्णवों में अत्यधिक विख्यात है। चूँकि वे अनेक भावमय लक्षण प्रदर्शित करते थे, अतएव लोग उन्हें लीलाशुक कहकर पुकारते थे।

पूर्वे व्रज-विलासे, येइ तिन अभिलाषे,

यत्नेह आस्वाद ना हैल।

श्री-राधार भाव-सार, आपने करि' अङ्गीकार,

सेइ तिन वस्तु आस्वादिल ॥80॥

पूर्वे-पूर्व में; व्रज-विलासे-वृन्दावन की लीलाओं में; येइ तिन-ये तीन; अभिलाषे-इच्छाओं में; ग्रनेह-अत्यन्त प्रयत्न से; आस्वाद–आस्वादन; ना हैल-नहीं था; श्री-राधार–श्रीमती राधारानी का; भाव-सार-भाव का सार; आपने–स्वयं; करि'-करके; अङ्गीकार–स्वीकार; सेइ-वे; तिन वस्तु-तीन विषय; आस्वादिल-आस्वादन किया।

अनुवाद

वृन्दावन की अपनी पूर्ववर्ती लीलाओं में भगवान् कृष्ण तीन विभिन्न प्रकार के भावों का आस्वादन करना चाहते थे, किन्तु अत्यधिक प्रयत्नों के बाद भी वे वैसा नहीं कर पाये। ऐसे भावों पर श्रीमती राधारानी का एकाधिकार है। अतएव उनका आस्वादन करने के लिए ही श्रीकृष्ण ने श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में श्रीमती राधारानी का स्थान अंगीकार किया।

आपने करि' आस्वादने, शिखाइल भक्त-गणे,

प्रेम-चिन्तामणिर प्रभु धनी ।

नाहि जाने स्थानास्थान, यारे तारे कैल दान,

महाप्रभु—दाता-शिरोमणि ॥81॥

आपने-स्वयं; करि'-करके; आस्वादने-आस्वादन; शिखाइल-उन्होंने सिखाया; भक्त-गणे-अपने प्रत्यक्ष शिष्यों को प्रेम-चिन्तामणिर-भगवत् प्रेम की चिन्तामणि; प्रभु-महाप्रभु; धनी–धनवान; नाहि-नहीं; जाने-जानते; स्थान-अस्थान-उचित अथवा अनुचित स्थान; यारे-जिस किसी को भी; तारे-उसको; कैल-किया; दान-दान; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; दाता-शिरोमणि-सर्वाधिक उदार व्यक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं भगवत्प्रेम रस का आस्वादन करके अपने शिष्यों को इस विधि की शिक्षा दी। वे भगवत्-प्रेम रूपी चिन्तामणि (पारस पत्थर) से संपन्न सर्वाधिक धनवान व्यक्ति हैं। वे पात्र-कुपात्र का विचार किये बिना हर एक को यह धन प्रदान करते हैं। इस प्रकार वे अत्यन्त उदार हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की पूँजी है भगवत्प्रेम रूपी चिन्तामणि, अतएव वे दिव्य कोष के स्वामी हैं। असीम मात्रा में सोना बनाने के बाद भी चिन्तामणि जैसे का तैसा बना रहता है। इसी प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु भगवत्प्रेम का असीम वितरण करने पर भी इस दिव्य सम्पत्ति के सर्वोपरि स्वामी बने रहे। उनके भक्तों ने भी उनसे सीखकर सारे विश्व में मुक्त हस्त से इसका वितरण किया। यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन श्री चैतन्य महाप्रभु एवं उनके अन्तरंग भक्तों के चरणचिह्नों पर चलते हुए सारे विश्व में भगवान् के पवित्र नामों के संकीर्तन द्वारा भगवत्-प्रेम का वितरण करने का प्रयास कर रहा है–हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।

एइ गुप्त भाव-सिन्धु, ब्रह्मा ना पाय एक बिन्दु,

हेन धन विलाइल संसारे ।

ऐछे दयालु अवतार, ऐछे दाता नाहि आर,

गुण केह नारे वर्णिबारे ॥82॥

एइ–यह; गुप्त-गुप्त; भाव-सिन्धु-भाव का समुद्र; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; ना-नहीं; पाय-पाते; एक-एक; बिन्दु-बूंद; हेन-ऐसा; धन-धन; विलाइल-वितरित किया; संसारे-सारे संसार में; ऐछे-ऐसे; दयालु–दयालु; अवतार–अवतार; ऐछे-ऐसे; दाता-दानी; नाहि-नहीं हैं; आर-और कोई; गुण–यह गुण; केह-कोई भी; नारे-नहीं; वर्णिबारे-वर्णन कर सकता।

अनुवाद

ब्रह्माजी समेत कोई भी इस गुप्त भाव-सिन्धु की एक बूंद का भी पार नहीं पा सकता या आस्वादन नहीं कर सकता। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी अहैतुकी कृपा से इस भगवत्प्रेम को सारे विश्व में बाँट दिया है। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु से बढ़कर उदार अन्य कोई अवतार नहीं हो सकता। उनसे बड़ा दाता कोई नहीं है। भला उनके दिव्य गुणों का वर्णन कौन कर सकता है?

कहिबार कथा नहे, कहिले केह ना बुझये,

ऐछे चित्र चैतन्येर रङ्ग ।

सेइ से बुझिते पारे, चैतन्येर कृपा याँरे,

हय ताँर दासानुदास-सङ्ग ॥83॥

कहिबार कथा नहे–कहने योग्य विषय नहीं; कहिले–यदि कहा जाये; केह-कोई; ना बुझये-नहीं समझता; ऐछे-इस प्रकार का; चित्र-अद्भुत; चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु की; रङ्ग-लीलाएँ, सेइ से-जो कोई; बुझिते-समझने में; पारे-सक्षम है; चैतन्येर–श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा-कृपा; याँरे-जिस पर; हय-हो जाती है; ताँर–उनके; दास-अनुदास-सङ्ग-दास के दास की संगति।

अनुवाद

ऐसी कथाएँ सार्वजनिक रूप से कहने के लिए नहीं हैं, क्योंकि ऐसा करने पर भी कोई उन्हें समझ नहीं पायेगा। श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ इतनी अद्भुत हैं। जो उन्हें समझ सकता है, उस पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने निजी दास के दास की संगति प्रदान करके अवश्य कृपा की है।

तात्पर्य

सामान्य व्यक्ति श्रीमती राधारानी के दिव्य भावों को नहीं समझ सकता। अयोग्य होने पर भी जो उन भावों को समझने का प्रयास करने वाले लोग विकृत होकर सहजिया, बाउल तथा अन्य सम्प्रदायों में परिवर्तित हो जाते हैं। इस तरह उनकी शिक्षाएँ विकृत होती हैं। यहाँ तक कि शैक्षिक क्षेत्र के विद्वान पण्डित भी श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके शुद्ध भक्तों द्वारा प्रदर्शित भाव एवं दिव्य आनन्द को नहीं समझ सकते। श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को समझने के लिए मनुष्य में योग्यता होनी चाहिए।

चैतन्य-लीला-रत्न-सार, स्वरूपेर भाण्डार,

तेंहो थुइला रघुनाथेर कण्ठे ।

ताहाँ किछु ये शुनिलुँ, ताहा इहाँ विस्तारिलुँ,

भक्त-गणे दिलुँ एइ भेटे ॥84॥

चैतन्य-लीला-चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; रत्न-सार–सर्वोत्कृष्ट रत्न; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर के; भाण्डार–भण्डार; तेंहो उन्होंने; थुइला-रखा; रघुनाथेर कण्ठे-रघुनाथ दास गोस्वामी के गले में; ताहाँ-वहाँ; किछ ये-जो कुछ थोड़ा सा; शुनिलुँ-मैंने सुना है; ताहा–केवल वह; इहाँ–इस ग्रन्थ में; विस्तारिलुँ-मैंने वर्णन किया है; भक्त-गणे-शुद्ध भक्तों को; दिलुँ–मैंने दी; एइ–यह; भेटे-भेंट।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ सर्वश्रेष्ठ रत्न हैं। वे स्वरूप दामोदर गोस्वामी के भंडार में रखे हुए थे। स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने रघुनाथ दास गोस्वामी को उनके बारे में बतलाया और रघुनाथ दास गोस्वामी ने ये लीलाएँ मेरे सामने दोहरायी। मैंने जो कुछ थोड़ा-बहुत रघुनाथ दास गोस्वामी से सुना, उसी को इस पुस्तक में, सभी भक्तों को भेंट स्वरूप, वर्णित किया है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की सारी लीलाएँ उनके निजी सचिव स्वरूप दामोदर द्वारा लिपिबद्ध की जाती थीं और रघुनाथ दास गोस्वामी के समक्ष दोहरायी जाती थीं, जिन्हें वे स्मरण कर लिया करते थे। कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने जो कुछ सुना, उसे ही श्रीचैतन्य-चरितामृत में लिपिबद्ध कर दिया गया है। श्री चैतन्य महाप्रभु से स्वरूप दामोदर, उनसे रघुनाथ दास गोस्वामी, उनसे कविराज गोस्वामी तक चली आ रही इस पद्धति को परम्परा कहते हैं। कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने इस जानकारी को अपनी कृति चैतन्य-चरितामृत में वितरित की है। दूसरे शब्दों में, श्री चैतन्य-चरितामृत श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रारम्भ होने वाली गुरू परम्परा के उपदेश का सार है।

यदि केह हेन कय, ग्रन्थ कैल श्लोक-मय,

इतर जने नारिबे बुझिते ।

प्रभुर येइ आचरण, सेइ करि वर्णन,

सर्व-चित्त नारि आराधिते ॥85॥

यदि-यदि; केह-कोई; हेन-इस प्रकार; कय–कहता है; ग्रन्थ-यह ग्रन्थ; कैल-बनाया गया है; श्लोक-मय-विविध संस्कृत श्लोकों से; इतर–साधारण; जने-लोग; नारिबे बुझिते-नहीं समझ सकेंगे; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; येइ-जो कुछ; आचरण-कार्यकलाप; सेइ-वह; करि-मैं करता हूँ; वर्णन-वर्णन; सर्व-चित्त-सभी हृदयों को; नारि-मैं सक्षम नहीं हूँ; आराधिते–सन्तुष्ट करने में।

अनुवाद

यदि कोई यह कहता है कि श्रीचैतन्य-चरितामृत संस्कृत श्लोकों से भरी होने के कारण साधारण व्यक्तियों की समझ के बाहर है, तो मैं इसका उत्तर यही दूँगा कि मैंने इसमें श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का ही वर्णन किया है और मेरे लिए हर एक को सन्तुष्ट करना सम्भव नहीं है।

तात्पर्य

श्रील कविराज गोस्वामी तथा उनके अनुयायियों को जनता का मनोरंजन करने की आवश्यकता नहीं है। उनका एकमात्र कार्य पूर्ववर्ती आचार्यों को सन्तुष्ट करना और भगवान् की लीलाओं का वर्णन करना है। जो समझ सकता है, वही इस महान् दिव्य ग्रंथ का आस्वादन कर सकता है। यह ग्रंथ पंडितों तथा ज्ञानियों जैसे साधारण लोगों के लिए नहीं है। सामान्यतया श्री चैतन्य-चरितामृत में लिपिबद्ध की गई श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का अध्ययन विश्वविद्यालयों तथा विद्वानों की गोष्ठियों में साहित्यिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किया जाता है, किन्तु वास्तव में यह ग्रंथ शोधकर्ताओं या साहित्यिक विद्वानों के लिए नहीं है। यह केवल उन भक्तों के निमित्त है, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर दिया है।

नाहि काहाँ सविरोध, नाहि काहाँ अनुरोध,

सहज वस्तु करि विवरण ।

यदि हय रागोद्देश, ताहाँ हये आवेश,

सहज वस्तु ना याय लिखन ॥ 86 ॥

नाहि-नहीं है; काहाँ-कहीं भी; स-विरोध–विरोधी तत्त्व; नाहि-नहीं है; काहाँ-कहीं भी; अनुरोध किसी के मत का स्वीकार; सहज-सरल; वस्तु-वस्तु; करि-मैं करता हूँ; विवरण-वर्णन; यदि-यदि; हय-है; राग-उद्देश-किसी का आकर्षण अथवा रुकावट; ताहाँ-वहाँ; हये-होना; आवेश-उलझना; सहज-सहज; वस्तु-वस्तु; ना याय–सम्भव नहीं; लिखन-लिखना।

अनुवाद

इस चैतन्य-चरितामृत में न तो कोई विरोधात्मक निर्णय है, न ही किसी अन्य के मत को स्वीकृति दी गई है। मैंने यह पुस्तक उस सहज विषयवस्तु का वर्णन करने के लिए लिखी है, जिसे मैंने अपने गुरुजनों से

सुना है। यदि मैं किसी की रुचि तथा अरुचि से प्रभावित होता, तो सम्भवत: मैं इस सरल सत्य को न लिख पाता।

तात्पर्य

मनुष्यों के लिए सबसे सरल बात है पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुगमन करना। अपनी भौतिक इन्द्रियों के द्वारा कोई निर्णय कर पाना सरल काम नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुसार पूर्ववर्ती आचार्यों के प्रति समर्पण के कारण जो अनुभूति जाग्रत होती है, वही भक्ति का मार्ग है। किन्तु ग्रंथकार का कहना है कि वे राग-द्वेष से प्रभावित लोगों के मतों पर विचार नहीं कर सकते, क्योंकि तब निष्पक्ष भाव से लेखन-कार्य नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, ग्रन्थकार का कहना है कि उन्होंने चैतन्य-चरितामृत में अपने खुद के विचार प्रकट नहीं किये हैं। उन्होंने अपने गुरुजनों से जो सीखा है उसे ही सहज भाव में लिपिबद्ध किया है। यदि वे किसी की पसन्द-नापसन्द के फेर में पड़ते, तो इतने सरल ढंग से ऐसे उत्कृष्ट विषय पर ग्रंथ नहीं लिख सकते थे। वास्तविक तथ्य को शुद्ध भक्त ही समझ पाते हैं। जब इन तथ्यों को लिपिबद्ध किया जाता है, तो वे भक्तों के अनुकूल हो जाते हैं, किन्तु अभक्त लोग उन्हें नहीं समझ पाते। साक्षात्कार का विषय ऐसा ही होता है। दुनियावी पाण्डित्य तथा इससे उत्पन्न राग और विराग सहज भगवत्-प्रेम को जाग्रत नहीं कर सकता। दुनियावी विद्वान ऐसे प्रेम का वर्णन नहीं कर सकते।

येबा नाहि बुझे केह, शुनिते शुनिते सेह,

कि अद्भुत चैतन्य-चरित ।

कृष्णे उपजिबे प्रीति, जानिबे रसेर रीति,

शुनिलेइ बड़ हय हित ॥87॥

येबा-जो कोई; नाहि-नहीं; बुझे-समझता; केह-कोई; शुनिते शुनिते-सुन सुनकर; सेह-वह; कि–क्या; अद्भुत-अद्भुत; चैतन्य-चरित-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; कृष्णे-कृष्ण में; उपजिबे विकसित होगा; प्रीति–प्रेम; जानिबे–वह समझ जायेगा; रसेर-दिव्य रस की; रीति-रीति; शुनिलेइ–मात्र सुनने से; बड़-बड़ा; हय-है; हित-लाभ।

अनुवाद

यदि प्रारम्भ में किसी की समझ में नहीं आता, किन्तु वह बार-बार इसे सुनता रहता है, तो उसमें महाप्रभु की लीलाओं के अद्भुत प्रभाव से कृष्ण-प्रेम उत्पन्न हो जायेगा। धीरे-धीरे वह कृष्ण तथा गोपियों एवं वृन्दावन के अन्य पार्षदों की माधुर्य लीलाओं को समझने लगेगा। पूरा लाभ उठाने के लिए हर एक को परामर्श दिया जाता है कि वह बार-बार श्रवण करता रहे।

भागवत–श्लोक-मय, टीका तार संस्कृत हय,

तबु कैछे बुझे त्रि-भुवन ।

इहाँ श्लोक दुइ चारि, तार व्याख्या भाषा करि,

केने ना बुझिबे सर्व-जन ॥88॥

भागवत-श्रीमद्भागवत्; श्लोक-मय-संस्कृत श्लोकों से पूर्ण; टीका-टीकाएँ, तार-उसकी; संस्कृत-संस्कृत भाषा; हय-हैं; तबु–तथापि, कैछे-कैसे; बुझे-समझता है; त्रि-भुवन–सारा संसार; इहाँ–इसमें; श्लोक-श्लोक; दुइ चारि-दो बार, कुछ ही; तार-उनकी; व्याख्या-व्याख्या; भाषा-सरल भाषा में; करि-मैं करता हूँ; केने-क्यों: ना-नहीं; बुझिबे-समझेंगे; सर्व-जन-सभी लोग।

अनुवाद

जो आलोचक यह कहते हैं कि श्री चैतन्य-चरितामृत संस्कृत श्लोकों से भरा है, उसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि श्रीमद्भागवत भी संस्कृत श्लोकों से भरा है और उसके भाष्य भी। तथापि श्रीमद्भागवत को हर कोई समझ लेता है-वे उन्नत भक्तगण भी, जो संस्कृत भाष्य पढ़ते हैं। तो फिर लोग चैतन्य-चरितामृत को क्यों नहीं समझ पायेंगे? इसमें कुछ ही संस्कृत श्लोक हैं और उनकी व्याख्या बांग्ला भाषा में दी हुई है। तो फिर इसे समझने में क्या कठिनाई है?

शेष-लीलार सूत्र-गण, कैलुँ किछु विवरण,

इहाँ विस्तारिते चित्त हय ।

थाके यदि आयु:-शेष, विस्तारिब लीला-शेष,

यदि महाप्रभुर कृपा हय ॥89॥

शेष-लीलार-अन्तिम लीलाओं की; सूत्र-गण-रूपरेखा का; कैलुँ-मैंने किया है; किछु-कुछ; विवरण-वर्णन; इहाँ–यहाँ; विस्तारिते-और विस्तार करने हेतु; चित्त हय–इच्छा है; थाके-रहती है; यदि-यदि; आयुः-शेष-जीवन का अन्त; विस्तारिब-मैं वर्णन करूँगा; लीला-लीलाएँ; शेष-अन्त में; यदि-यदि; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-कृपा; हय-हो।

अनुवाद

मैंने पहले ही श्री चैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाओं से सम्बन्धित सारे तथ्यों को सूत्र रूप में दे दिया है। मेरी इच्छा है कि मैं इनका विस्तृत वर्णन करूँ। यदि मैं अधिक काल तक जीवित रहा और श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त करने का सौभाग्य मिला, तो मैं पुनः इनका विस्तार से वर्णन करने का प्रयास करूँगा।

आमि वृद्ध जरातुर, लिखिते काँपये कर,

मने किछु स्मरण ना हय ।

ना देखिये नयने, ना शुनिये श्रवणे,

तबु लिखि'–ए बड़ विस्मय ॥90॥

आमि-मैं; वृद्ध–वृद्ध; जरा-आतुर-बुढ़ापे से परेशान; लिखिते-लिखते समय; काँपये-काँपता है; कर—हाथ; मने-मन में; किछु—कुछ; स्मरण-स्मरण; ना हय-नहीं रहता; ना देखिये-मैं देख नहीं सकता; नयने-आँखों से; ना शुनिये-मैं सुन नहीं सकता; श्रवणे-कानों से; तबु–तथापि; लिखि'–लिख रहा हूँ; ए-यह; बड़ विस्मय-बड़ा आश्चर्य है।

अनुवाद

मैं अब अत्यन्त वृद्ध हो गया हूँ और अपनी अक्षमता से विचलित हूँ। लिखते समय मेरे हाथ काँपते हैं। न तो मुझे कुछ स्मरण रहता है, न मैं ठीक से देख या सुन सकता हूँ। फिर भी मैं लिखता हूँ; यह बहुत बड़ा आश्चर्य है।

एइ अन्त्य-लीला-सार, सूत्र-मध्ये विस्तार,

करि' किछु करिलुँ वर्णन ।

इहा-मध्ये मरि यबे, वर्णिते ना पारि तबे,

एइ लीला भक्त-गण-धन ॥91॥

एइ अन्त्य-लीला-सार-अन्त्य लीला का सार; सूत्र-मध्ये-रूपरेखा के रूप में; विस्तार–विस्तार; करि'–करके; किछु-कुछ; करिलुँ वर्णन-वर्णन किया है; इहा-मध्ये—इसी बीच; मरि-मैं मर जाता हूँ; सबे-जब; वर्णिते-वर्णन करने में; ना पारि-असमर्थ; तबे-तब; एइ लीला—ये लीलाएँ, भक्त-गण-धन-भक्तों की निधि।

अनुवाद

इस अध्याय में मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाओं के सार का कुछ वर्णन किया है। यदि इसी बीच मैं मर जाऊँ और विस्तार से उनका वर्णन न कर पाऊँ, तो भक्तों को कम-से-कम यह दिव्य कोष तो मिल ही जायेगा।

सङ्क्षेपे एइ सूत्र कैल, येइ इहाँ ना लिखिल,

आगे ताहा करिब विस्तार।

यदि तत दिन जिये, महाप्रभुर कृपा हये,

इच्छा भरि' करिब विचार ॥92॥

सङ्क्षेपे-संक्षेप में; एइ सूत्र-ये रूपरेखाएँ; कैल-मैंने बताई हैं; येइ-जो कुछ; इहाँ-इसमें; ना लिखिल-मैं न लिख सका; आगे-भविष्य में; ताहा–वह; करिब–मैं करूँगा; विस्तार विस्तार; यदि यदि; तत-इतने अधिक; दिन-दिन; जिये-मैं जीता हूँ; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-कृपा; हये-है; इच्छा भरि'-मन भरके; करिब–मैं करूँगा; विचार-विचार।

अनुवाद

मैंने इस अध्याय में संक्षेप में अन्त्य-लीला का वर्णन किया है। जो कुछ बच रहा है, उसका विस्तार से वर्णन भविष्य में करूँगा। यदि श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से मैं इतने दिनों तक जीवित रहा कि मैं अपनी इच्छाएँ पूरी कर पाऊँ, तो इन लीलाओं पर पूरी तरह विचार करूँगा।

छोट बड़े भक्त-गण, वन्दों सबार श्री-चरण,

सबे मोरे करह सन्तोष ।

स्वरूप-गोसाञिर मत, रूप-रघुनाथ जाने व्रत,

ताइ लिखि' नाहि मोर दोष ॥93॥

छोट-छोटे; बड़े-बड़े; भक्त-गण-भक्तों की; वन्दों-मैं वन्दना करता हूँ; सबार-उन सब; श्री-चरण-चरणकमल; सबे-आप सब; मोरे-मुझे; करह-कृपया करो; सन्तोष–सन्तोष; स्वरूप-गोसाञिर मत-स्वरूप दामोदर गोस्वामी का मत; रूप-रघुनाथ–रूप तथा रघुनाथ; जाने-जानते हैं; व्रत-सब; ताइवह; लिखि'–लिख रहा हूँ; नाहि-नहीं है; मोर-मेरा; दोष-दोष।

अनुवाद

मैं यहाँ छोटे-बड़े सभी भक्तों के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ। मेरी उनसे प्रार्थना है कि मुझ से सन्तुष्ट हों। मैं निर्दोष हूँ, क्योंकि मैंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रूप और रघुनाथ दास गोस्वामियों से जैसा समझा है, वैसा ही लिख दिया है। मैंने उसमें अपनी ओर से न तो कुछ जोड़ा है, न कम किया है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार भक्त तीन तरह के होते हैं—भजनविज्ञ (भक्ति में दक्ष), भजनशील (भक्ति में रत) तथा कृष्णनामे-दीक्षित कृष्णनामकारी (कीर्तन में रत दीक्षित भक्त)। श्री चैतन्य-चरितामृत के लेखक इन सारे भक्तों के कृपाकांक्षी हैं और उनसे प्रसन्न होने के लिए निवेदन करते हैं। वे कहते हैं, "नये भक्त मुझसे इसलिए रुष्ट न हों कि मैंने कोई त्रुटि की है, क्योंकि ये भक्त तर्क करने में अत्यन्त दक्ष होते हैं। यद्यपि इनमें उन्नत भक्ति का अधिक ज्ञान नहीं होता, फिर भी वे अपने आपको उन्नत मानते हैं, क्योंकि वे कुछ स्मार्त ब्राह्मणों का अनुकरण करते हैं। मैं अत्यन्त विनम्र होकर उनसे क्षमा याचना करता हूँ। किन्तु मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि इसमें मैं अपने मन से कुछ जोड़ना या घटाना नहीं चाहता। मैंने परम्परा से जो सुना है उसीको लिखा है, क्योंकि मैं स्वरूप दामोदर, रघुनाथ दास गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी जैसे पूर्ववर्ती आचार्यों के चरणकमलों में समर्पित हूँ। मैंने वही लिखा है, जो मैंने उनसे सीखा है।"

श्री-चैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैतादि भक्त-वृन्द,

शिरे धरि सबार चरण।

स्वरूप, रूप, सनातन, रघुनाथेर श्री-चरण,

धूलि करों मस्तके भूषण ॥ 94॥

श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; अद्वैत-आदि भक्त-वृन्द–अद्वैत आचार्य और अन्य सभी भक्त; शिरे-अपने सिर पर; धरि-रखकर; सबार-सबके; चरण-चरणकमल; स्वरूप-श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी; रूप-श्रील रूप गोस्वामी; सनातन-श्रील सनातन गोस्वामी; रघुनाथेर-श्रील रघुनाथ गोस्वामी; श्री-चरण-चरणकमल; धूलि-धूलि; करों-मैं करता हूँ, मस्तके-अपने सिर पर; भूषण-तिलक।

अनुवाद

परम्परा पद्धति के अनुसार मैं श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत प्रभु तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त पार्षदों यथा स्वरूप दामोदर, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी और रघुनाथ दास गोस्वामी के चरणकमलों की धूलि लेना चाहता हूँ। मैं उनके चरणकमलों की धूलि अपने मस्तक पर धारण करना चाहता हूँ। इस प्रकार मैं उनकी कृपा का आशीर्वाद चाहता हूँ।

पाञा याँर आज्ञा-धन, व्रजेर वैष्णव-गण,

वन्दों ताँर मुख्य हरिदास।

चैतन्य-विलास-सिन्धु-कल्लोलेर एक बिन्दु,

तार कणा कहे कृष्णदास ॥95॥

पाञा-पकर; याँर-जिनकी; आज्ञा-धन-आज्ञा; व्रजेर-वृन्दावन के; वैष्णव-गण-सभी वैष्णव; वन्दों-मैं पूजा करता हूँ; ताँर–उनमें; मुख्य–मुख्य; हरिदास-हरीदास; चैतन्य-विलास-सिन्धु–चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के सागर; कल्लोलेर एक बिन्दु-एक लहर की एक बूंद; तार-उसकी; कणा-एक कण मात्र; कहे वर्णन करता है; कृष्णदास-कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

उपर्युक्त महापुरुषों एवं वृन्दावन के वैष्णवों, विशेषकर गोविन्दजी के पुजारी हरिदास की आज्ञा से मैंने (कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने) श्री चैतन्य महाप्रभु के लीला-सिन्धु की एक लहर के एक बिन्दु के एक कण का वर्णन करने का प्रयास किया है।

इस तरह श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के "श्री चैतन्य महाप्रभु के भावोन्माद की अभिव्यक्ति' शीर्षक द्वितीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय तीन

श्री चैतन्य महाप्रभु का अद्वैत आचार्य के घर रुकना

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपनी पुस्तक अमृत-प्रवाह-भाष्य में तृतीय अध्याय का निम्नलिखित सारांश दिया है। कटवा में संन्यास ग्रहण कर लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु लगातार तीन दिनों तक राढ़देश में यात्रा करते रहे और नित्यानन्द प्रभु की युक्ति से अन्ततः वे शान्तिपुर की पश्चिमी दिशा में आये। उन्हें गंगा नदी को ही यमुना नदी होने का विश्वास दिलाया गया। जब वे इस पवित्र नदी की पूजा कर रहे थे, तब अद्वैत प्रभु नाव में वहाँ आये। अद्वैत प्रभु ने उनसे प्रार्थना की कि वे गंगा में स्नान करें और फिर उन्हें वे अपने घर ले गये। वहाँ नवद्वीप के सारे भक्त शचीमाता के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने आये। यह घर शान्तिपुर में था। माता शचीदेवी श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के लिए भोजन बनाती थी। उस समय अद्वैत प्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के बीच कई बार हास-परिहास चला। फिर संध्या-समय अद्वैत प्रभु के घर में विशाल सामूहिक कीर्तन हुआ और माता शचीदेवी ने चैतन्य महाप्रभु को विदा होने की अनुमति प्रदान की। उन्होंने अनुरोध किया कि वे अपना मुख्य आवास जगन्नाथ पुरी, नीलाचल को बनायें। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता की बात मान ली और नित्यानन्द प्रभु, मुकुन्द, जगदानन्द तथा दामोदर के साथ शान्तिपुर से विदा हो गये। शचीमाता से विदा लेकर वे सभी छत्रभोग के रास्ते से जगन्नाथ पुरी की ओर चल पड़े।

न्यासं विधायोत्प्रणयोऽथ गौरो

वृन्दावनं गन्तु-मना भ्रमाद् यः ।

राढ़े भ्रमन्शान्ति-पुरीमयित्वा

ललास भक्तैरिह तं नतोऽस्मि ॥1॥

न्यासम्-संन्यास आश्रम के विधि-विधान; विधाय–स्वीकार करने के बाद; उत्प्रणयः–गहन कृष्ण-प्रेम का जागरण; अथ-इस प्रकार; गौरः-श्री चैतन्य महाप्रभु; वृन्दावनम्-वृन्दावन को; गन्तु-मनाः-जाने का विचार करके; भ्रमात्-भ्रम से; यः-जो; राढ़े-राढ़ नामक स्थान पर; भ्रमन्–भ्रमण करते हुए; शान्ति-पुरीम् शान्तिपुर की ओर; अयित्वा-जाकर; ललास-आनन्द उठाया; भक्तैः– भक्तों के संग; इह-यहाँ; तम्-उनको; नतः अस्मि-मैं सादर प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

संन्यास ग्रहण करने के बाद चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के प्रति उत्कट प्रेमवश वृन्दावन जाना चाहते थे, किन्तु लौकिक रूप से भ्रमवश वे राढ़देश में घूमते रहे। बाद में वे शान्तिपुर पहुँचे और वहाँ भक्तों के साथ आनन्दपूर्वक रहे। मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैतचन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय जय; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-श्री अद्वैत गोसांई की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत प्रभु की जय हो! श्रीवास आदि श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

चब्बिश वत्सर-शेष येइ माघ-मास ।

तार शुक्ल पक्षे प्रभु करिला सन्न्यास ॥ 3 ॥

चब्बिश-चौबीसवें; वत्सर-वर्ष के; शेष-अन्त में; येइ-उस; माघ-मास-माघ मास (जनवरी-फरवरी); तार-उसका; शुक्ल-पक्षे–शुक्ल पक्ष में प्रभु–महाप्रभु; करिला-स्वीकार किया; सन्न्यास-संन्यास आश्रम।

अनुवाद

चौबीसवें वर्ष के अन्त में माघ मास के शुक्लपक्ष में श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास आश्रम स्वीकार किया।

सन्न्यास करि' प्रेमावेशे चलिला वृन्दावन ।

राढ़-देशे तिन दिन करिला भ्रमण ॥4॥

सन्न्यास करि'-संन्यास लेने के बाद; प्रेम-आवेशे-कृष्ण के प्रगाढ़ प्रेम में; चालिला-चल पड़े; वृन्दावन-वृन्दावन धाम की ओर; राढ़-देशे–राढ़ प्रदेश में; तिन दिन-लगातार तीन दिन; करिला–किया; भ्रमण-भ्रमण।

अनुवाद

संन्यास ग्रहण करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के प्रगाढ़ प्रेमवश वृन्दावन के लिए चल पड़े। किन्तु भूल से वे लगातार तीन दिनों तक समाधि में राढ़ देश नामक भूखण्ड में भ्रमण करते रहे।

तात्पर्य

राढ़देश शब्द राष्ट्र अर्थात् राज्य से आता है। राष्ट्र शब्द बिगड़कर राढ़ बना है। बंगाल का जो भाग गंगा के पश्चिम में है, वह राढ़देश कहलाता है। इसका अन्य नाम पौण्ड्र देश या पेण्डो देश है। पौण्ड्र शब्द के बिगड़ने पर पेंडो बनता है। ऐसा लगता है कि राष्ट्र-देश की राजधानी बंगाल के इसी भाग में स्थित थी।

एइ श्लोक पड़ि' प्रभु भावेर आवेशे ।

भ्रमिते पवित्र कैल सब राढ़-देशे ॥5॥

एइ श्लोक-यह श्लोक; पड़ि'–पढ़कर; प्रभु–प्रभु; भावेर-भाव के; आवेशे-आवेश में; भ्रमिते-भ्रमण करके; पवित्र-पवित्र; कैल-किया; सब राढ़-देशे–राढ़ प्रदेश को।

अनुवाद

राढ़देश नामक भूभाग में भ्रमण करते समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने भावावेश में निम्नलिखित श्लोक सुनाया।

एतां स आस्थाय परात्म-निष्ठाम्

अध्यासितां पूर्वतमैर्महद्भिः ।

अहं तरिष्यामि दुरन्त-पारं

तमो मुकुन्दाघ्रि-निषेवयैव ॥ 6॥

एताम्-यह; सः-ऐसा; आस्थाय-पूर्णतया स्थिर होकर; पर-आत्म-निष्ठाम्-परम भगवान् कृष्ण की भक्ति; अध्यासिताम्-पूजा की; पूर्व-तमैः–पूर्ववर्ती; महद्भिः-आचार्य; अहम्-मैं; तरिष्यामि-पार करूँगा; दुरन्त-पारम्-अत्यन्त कठिन; तमः-अज्ञान के अंधकार का सागर; मुकुन्द-अघ्रि—मुकुन्द के चरणकमलों की; निषेवया-पूजा से; एव-निश्चित रूप से।

अनुवाद

"[जैसाकि अवन्ती देश के एक ब्राह्मण ने कहा :]'भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की सेवा में दृढ़तापूर्वक स्थिर होकर मैं अज्ञान के दुर्लंघ्य सागर को पार कर जाऊँगा। इसकी पुष्टि उन पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा की गई है, जो परमात्मा, पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की दृढ़ भक्ति में स्थिर थे।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.23.57) से है। इस श्लोक के सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि भक्ति में जिन 64 वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उनमें संन्यास के चिह्नों को स्वीकार करना एक नियम है। संन्यास स्वीकार करने पर मनुष्य का मुख्य कार्य मुकुन्द, कृष्ण की सेवा में अपना जीवन पूर्णरूपेण अर्पित करना होता है। यदि व्यक्ति अपने मन एवं शरीर को भगवान् की सेवा में पूर्णरूप से समर्पित नहीं करता, तो वह वास्तव में संन्यासी नहीं है। केवल वस्त्र बदलने से कोई संन्यासी नहीं हो जाता। भगवद्गीता (6.1) में भी कहा गया है-अनाश्रितः कर्मफलं कार्य कर्म करोति यः/ से संन्यासी च योगी च–जो कृष्ण की तुष्टि के लिए एकचित्त होकर कार्य करता है, वह संन्यासी है। वस्त्र संन्यास नहीं है, अपितु कृष्ण के प्रति सेवा प्रवृत्ति ही संन्यास है।

परात्मनिष्ठा का अर्थ है भगवान् कृष्ण का भक्त बनना। परात्मा का अर्थ परम पुरुष कृष्ण है। ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः। जो कृष्ण के चरणकमलों की सेवा में पूर्णतया समर्पित हैं, वे ही वास्तव में संन्यासी हैं। भक्त तो मात्र औपचारिकतावश पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुसरण करते हुए संन्यास- वस्त्र ग्रहण करता है। वह त्रिदंड भी धारण करता है। बाद में विष्णुस्वामी ने यह विचार व्यक्त किया कि त्रिदण्ड-वेश धारण करना परात्मनिष्ठा है। अतएव निष्ठावान भक्त इन तीन दण्डों के अतिरिक्त एक चौथे दण्ड, जीव-दण्ड को भी सम्मिलित करते हैं। वैष्णव संन्यासी त्रिदण्डी सन्न्यासी कहलाता है। किन्तु मायावादी संन्यासी त्रिदण्ड का उद्देश्य न समझ पाने के कारण केवल एक दण्ड धारण करता है। बाद में शिवस्वामी सम्प्रदाय के अनेक लोग आत्मनिष्ठा अर्थात् भगवद्-भक्ति त्यागकर शंकराचार्य के मार्ग का अनुसरण करने लगे। शिवस्वामी सम्प्रदाय वाले संन्यास के 108 नामों के स्थान पर शंकराचार्य सम्प्रदाय के दस नाम स्वीकार करते हैं। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस समय प्रचलित संन्यास (एक दण्ड) ग्रहण किया था, फिर भी उन्होंने श्रीमद्भागवत के उस श्लोक का उच्चारण किया, जो अवन्तीपुर के ब्राह्मण द्वारा त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण करने के सम्बन्ध में था। उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से यह घोषित किया कि उस एकदण्ड के भीतर चतुर्दण्ड एकदण्ड के रूप में विद्यमान हैं। परात्मनिष्ठा (कृष्ण-भक्ति) के बिना श्री चैतन्य महाप्रभु को एकदण्ड संन्यास स्वीकार्य नहीं है। इसके अतिरिक्त, सही विधान के अनुसार त्रिदण्ड के साथ जीव-दण्ड को सम्मिलित करना चाहिए। ये चारों दण्ड एकसाथ बँधकर भगवान् की शुद्ध भक्ति के प्रतीक बन जाते हैं। चूँकि मायावादी एकदण्डी संन्यासी कृष्ण की सेवा को समर्पित नहीं होते, अत: वे ब्रह्मज्योति में समा जाने का प्रयास करते हैं, जो भौतिक और आध्यात्मिक अस्तित्व के बीच की अवस्था है। वे इस निर्विशेष स्थिति को मुक्ति मानते हैं। मायावादी संन्यासी श्री चैतन्य महाप्रभु को एकदण्डी संन्यासी ही मानते हैं, क्योंकि उन्हें यह पता नहीं है कि वे त्रिदण्डी संन्यासी थे। यह मायावादियों के विवर्त अर्थात् मोह के कारण है। श्रीमद्भागवत में एकदण्डी संन्यासी जैसी कोई वस्तु नहीं है। हाँ, त्रिदण्डी संन्यासी को संन्यास आश्रम का प्रतीक माना गया है। श्रीमद्भागवत के इस श्लोक का उच्चारण करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत द्वारा संस्तुत संन्यास आश्रम ही स्वीकार किया था। भगवान् की बहिरंगा शक्ति से चमत्कृत रहने वाले मायावादी संन्यासी श्री चैतन्य महाप्रभु के मन की बात कभी नहीं समझ पायेंगे।

आज तक श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्त उनके पदचिह्नों पर चलते हुए संन्यास ग्रहण करते हैं, जनेऊ धारण करते हैं और चोटी रखते हैं। किन्तु मायावादी सम्प्रदाय के एकदण्डी संन्यासी न तो जनेऊ धारण करते हैं, न ही चोटी रखते हैं। इसलिए वे त्रिदण्ड संन्यास का तात्पर्य नहीं समझ सकते। फलस्वरूप वे मुकुन्द की सेवा के लिए अपना

जीवन अर्पित करने की ओर उन्मुख नहीं होते। भौतिक संसार से घृणा होने के कारण वे ब्रह्म में समा जाने के बारे में ही सोचते रहते हैं। जो आचार्य दैव वर्णाश्रम का अनुमोदन करते हैं। (चातुर्वर्ण्यम् जिसका उल्लेख भगवद्गीता में हुआ है), वे आसुर वर्णाश्रम की विचारधारा को नहीं मानते, जिसके अनुसार जन्म से ही वर्ण निर्धारित होता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु के सबसे अन्तरंग भक्त श्री गदाधर पण्डित ने त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया और श्री माधव उपाध्याय को अपने त्रिदण्डी संन्यासी-शिष्य के रूप में भी स्वीकार किया। कहते हैं कि इन्हीं माधवाचार्य से पश्चिम भारत में वल्लभाचार्य सम्प्रदाय का प्रचार हुआ। श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी, जो गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में स्मृत्याचार्य के नाम से विख्यात हैं, उन्होंने बाद में त्रिदण्डी-पाद प्रबोधानन्द सरस्वती से त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। यद्यपि गौड़ीय वैष्णव साहित्य में त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण करने का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु श्रील रूप गोस्वामी-कृत उपदेशामृत के प्रथम श्लोक में संस्तुति की गई है कि मनुष्य को छह वेगों को वश में करके त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण करना चाहिए :

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं

जिह्वावेगम् उदरोपस्थवेगम् ।

एतान्वेगान्यो विषहेत धीरः

सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात् ॥

"जो व्यक्ति वाणी, मन, क्रोध, उदर, जिह्वा तथा जननेन्द्रियों के आवेगों को नियन्त्रित कर सकता है, वह गोस्वामी कहलाता है और वह विश्व-भर में शिष्य बना सकता है।" श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों ने कभी भी मायावाद संन्यास स्वीकार नहीं किया; और इसके लिए उन पर कोई दोषारोपण नहीं किया जा सकता। श्री चैतन्य महाप्रभु ने त्रिदण्डी संन्यासी श्रीधर स्वामी को माना है, किन्तु मायावादी संन्यासी श्रीधर स्वामी को न समझ सकने के कारण यह सोचते हैं कि वे मायावाद के एकदण्ड संन्यास सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं था।

प्रभु कहे—साधु एइ भिक्षुर वचन ।

मुकुन्द सेवन-व्रत कैल निर्धारण ॥7॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; साधु-साधु; एइ-यह; भिक्षुर–भिक्षु के; वचन-वचन; मुकुन्द-भगवान् कृष्ण; सेवन-व्रत-सेवा का व्रत; कैल-किया; निर्धारण-संकेत।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक के तात्पर्य का अनुमोदन भिक्षुक भक्त द्वारा भगवान् मुकुन्द की सेवा में लगने के संकल्प के कारण किया। उन्होंने इस श्लोक को अपनी सहमति दे दी, जिससे सूचित होता है कि यह श्लोक अत्युत्तम है।

परात्म-निष्ठा-मात्र वेष-धारण ।

मुकुन्द-सेवाय हय संसार-तारण ॥8॥

पर-आत्म-निष्ठा-मात्र-कृष्ण सेवा के संकल्प के लिए; वेष-धारण-वेशभूषा बदलना; मुकुन्द-सेवाय-मुकुन्द की सेवा करने से; हय-है; संसार-तारण-इस भौतिक बन्धन से मुक्ति।

अनुवाद

संन्यास स्वीकार करने का वास्तविक प्रयोजन मुकुन्द की सेवा में अपने आप को समर्पित करना है। मुकुन्द की सेवा करने से मनुष्य अवश्य ही भव-बन्धन से मुक्त हो सकता है।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास स्वीकार किया और अवन्तीपुर भिक्षु द्वारा मुकुन्द की सेवा करने के संकल्प की संस्तुति की। उन्होंने ब्राह्मण के वचन को उसके द्वारा मुकुन्द की सेवा करने के संकल्प के कारण स्वीकार किया। संन्यासी का वेश भौतिक शिष्टाचार के लिए सहायक होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु को ऐसा शिष्टाचार पसन्द नहीं था, किन्तु वे इसके सार रूप में मुकुन्द की सेवा चाहते थे। प्रत्येक दशा में ऐसा संकल्प परात्मनिष्ठा है और इसी की आवश्यकता है। निष्कर्ष यह है कि संन्यास आश्रम वेश पर नहीं, अपितु मुकुन्द की सेवा करने के संकल्प पर निर्भर करता है।

सेइ वेष कैल, एबे वृन्दावन गिया ।

कृष्ण-निषेवण करि निभृते वसिया ॥9॥

सेइ-वह; वेष–वेश; कैल–स्वीकार किया; एबे-अब; वृन्दावन-वृन्दावन धाम को; गिया-जाने का; कृष्ण-निषेवण-कृष्ण सेवा; करि-मैं करूँगा; निभृते-एकान्त स्थान में; वसिया–बैठकर।

अनुवाद

संन्यास स्वीकार करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन जाने और वहाँ एकान्त में पूर्ण मनोयोग से केवल मुकुन्द की सेवा में लग जाने का निश्चय किया।

एत बलि' चले प्रभु, प्रेमोन्मादेर चिह्न ।

दिक्विदिक्ज्ञान नाहि, किबा रात्रि-दिन ॥10॥

एत बलि'-यह कहकर; चले प्रभु–महाप्रभु चल पड़े; प्रेम-उन्मादेर चिह्न प्रेम भाव के चिह्न; दिक्-विदिक्-ज्ञान-सही-गलत दिशा का ज्ञान; नाहि-नहीं; किबा-क्या; रात्रि-दिन-रात दिन।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन के रास्ते में थे, तब उनमें प्रेमोन्माद के सारे लक्षण प्रकट होने लगे। उन्हें इसका ज्ञान नहीं रहा कि वे किस दिशा में जा रहे हैं अथवा यह दिन है या रात।

नित्यानन्द, आचार्यरत्न, मुकुन्द, तिन जन ।

प्रभु-पाछे-पाछे तिने करेन गमन ॥11॥

नित्यानन्द-श्री नित्यानन्द प्रभु; आचार्यरल–चन्द्रशेखर; मुकुन्द-और मुकुन्द; तिन जन-तीन व्यक्ति; प्रभु-पाछे-पाछे–चैतन्य महाप्रभु के पीछे पीछे; तिने–वे तीनों; करेन गमन-जाते हैं।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन की ओर जा रहे थे, तब नित्यानन्द प्रभु, चन्द्रशेखर तथा मुकुन्द प्रभु उनके पीछे-पीछे चल रहे थे।

येइ येइ प्रभु देखे, सेइ सेइ लोक ।

प्रेमावेशे 'हरि' बले, खण्डे दु:ख-शोक ॥ 12॥

येइ येइ-जो कोई; प्रभु–महाप्रभु को; देखे-देखता; सेइ सेइ लोक-वे लोग; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; हरि बले–"हरि" बोलते; खण्डे नष्ट हो जाते; दुःख-शोक-सभी प्रकार के भौतिक दुःख और शोक।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु राढ़देश से होकर जा रहे थे, तो जो भी उन्हें देखता वह भावावेश में "हरि!" "हरि!" कह उठता। ज्योंही वे महाप्रभु के साथ कीर्तन करते, त्योंही उनके सारे सांसारिक दुःख विनष्ट हो जाते।

गोप-बालक सब प्रभुके देखियो ।

'हरि' 'हरि' बलि' डाके उच्च करिया ॥ 13 ॥

गोप-बालक सब-सभी गोपबालक; प्रभुके देखिया-महाप्रभु को देखकर; हरि हरि बलि'-'हरि हरि" ध्वनि करते हुए; डाके-पुकारते; उच्च करिया-ऊँची आवाज में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को जाते देखकर सारे ग्वालबाल उनके साथ चलने लगे और उच्च-स्वर से "हरि!" "हरि!" पुकारने लगे।

शुनि' ता-सबार निकट गेला गौरहरि ।

'बल' 'बल' बले सबार शिरे हस्त धरि' ॥14॥

शुनि'–सुनकर; ता-सबार-उन सबके; निकट-निकट; गेला-गये; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु; बल बल-बोलते रहो, बोलते रहो; बले-उन्होंने कहा; सबार-उन सबके; शिरे हस्त धरि'-अपना हाथ उनके सिरों पर रखकर।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सभी ग्वालबालों को "हरि!" "हरि!" उच्चारण करते सुना, तो वे अत्यधिक प्रसन्न हुए। वे उनके पास गये, उनके सिर पर हाथ रखा और उनसे बोले, "इसी तरह कीर्तन करते रहो।"

ता'-सबार स्तुति करे,—तोमरा भाग्यवान् ।

कृतार्थ करिले मोरे शुनाञा हरि-नाम ॥15॥

ता'-सबार-उन सबकी; स्तुति करे–भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने व्यवहार की प्रशंसा की; तोमरा-आप; भाग्यवान्–भाग्यवान; कृत-अर्थ-सफल; करिले-तुमने किया है; मोरे-मुझे; शुनाञा-सुनाकर; हरि-नाम-भगवान् हरि का पावन नाम।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबको यह कहते हुए आशीर्वाद दिया कि वे सभी भाग्यवान हैं। उन्होंने इस तरह उनकी प्रशंसा की और चूँकि उन लोगों ने पवित्र हरिनाम कीर्तन किया था, इसलिए महाप्रभु ने अपने आपको कृतार्थ समझा।

गुप्ते ता-सबाके आनि' ठाकुर नित्यानन्द ।

शिखाइला सबाकारे करिया प्रबन्ध ॥16॥

गुप्ते–गुप्त रूप से; ता-सबाके–उन सभी ग्वालबालों को; आनि'–उनको लेकर; ठाकुर नित्यानन्द–नित्यानन्द ठाकुर; शिखाइला–सिखाया; सबाकारे उन सबको; करिया प्रबन्ध–एक उचित कथा द्वारा।

अनुवाद

सारे बालकों को एकान्त में बुलाकर और एक तर्कपूर्ण कहानी बतलाते हुए नित्यानन्द प्रभु ने उन सबको इस प्रकार सूचना दी।

वृन्दावन-पथ प्रभु पुछेन तोमारे ।

गङ्गा-तीर-पथ तबे देखाइह ताँरे ॥ 17॥

वृन्दावन-पथ-वृन्दावन के पथ पर; प्रभु महाप्रभु; पुछेन–पूछे; तोमारे-तुम से; गङ्गा-तीर-पथ-गंगा तट का मार्ग; तबे-उस समय; देखाइह-कृपया दिखाओ; ताँरे-उनको।

अनुवाद

"यदि श्री चैतन्य महाप्रभु तुम लोगों से वृन्दावन का रास्ता पूछे, तो उन्हें गंगा नदी के किनारे का रास्ता दिखला देना।"

तबे प्रभु पुछिलेन,—'शुन, शिशु-गण ।

कह देखि, कोन्पथे याब वृन्दावन' ॥ 18॥

शिशु सब गङ्गा-तीर-पथ देखाइल ।

सेइ पथे आवेशे प्रभु गमन करिल ॥19॥

तबे-तत्पश्चात्; प्रभु–महाप्रभु ने पुछिलेन-पूछा; शुन-सुनो; शिशु-गण-हे बालकों; कह देखि-कृपया मुझे बताओ; कोन् पथे-किस मार्ग पर; याब-मैं जाऊं; वृन्दावन-वृन्दावन जाने के लिए; शिशु-लड़के; सब-सब; गङ्गा-तीर-पथ-गंगा तट के पथ पर; देखाइल-दिखाया; सेइ-वह; पथे-मार्ग पर; आवेशे-आवेश में; प्रभु-महाप्रभु; गमन करिल-चल पड़े।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने ग्वालबालों से वृन्दावन का रास्ता पूछा, तो उन बालकों ने गंगा के किनारे वाला रास्ता बतला दिया और महाप्रभु भावावेश में उसी रास्ते चल पड़े।

आचार्यरत्नेरे कहे नित्यानन्द-गोसाञि ।

शीघ्र याह तुमि अद्वैत-आचार्येर ठाञि ॥20॥

आचार्यरत्नेरे-चन्द्रशेखर आचार्य को; कहे-कहा; नित्यानन्द-गोसाञि-नित्यानन्द प्रभु ने; शीघ्र-शीघ्र; याह-जाओ; तुमि-तुम; अद्वैत-आचार्येर ठाञि-अद्वैत आचार्य के घर।

अनुवाद

ज्योंही महाप्रभु गंगा के किनारे-किनारे चल पड़े, त्योंही श्री नित्यानन्द प्रभु ने आचार्यरत्न (चन्द्रशेखर आचार्य) को तुरन्त अद्वैत आचार्य के घर जाने के लिए कहा।

प्रभु लये याब आमि ताँहार मन्दिरे ।

सावधाने रहेन येन नौका लञा तीरे ॥21॥

प्रभु लये-महाप्रभु को लेकर; याब-जाऊँगा; आमि–मैं; ताँहार-उनके; मन्दिरे-घर; सावधाने-बहुत सावधानी से; रहेन–वे रहें; येन-वहाँ; नौका-नौका; लञा-लेकर; तीरे-तट पर।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द गोस्वामी ने उनसे कहा, "मैं श्री चैतन्य महाप्रभु को शान्तिपुर में गंगा के तट पर ले जाऊँगा। आप अद्वैत आचार्य से कहें कि वे सावधान होकर एक नाव लेकर किनारे पर रहें।"

तबे नवद्वीपे तुमि करिह गमन ।

शची-सह लञा आइस सब भक्त-गण ॥22॥

तबे-तत्पश्चात्; नवद्वीपे-नवद्वीप की ओर; तुमि-आप; करिह–करो; गमन-गमन; शची-सह-माता शची; लञा–साथ लेकर; आइस-लौट आना; सब भक्त-गण-सभी भक्तगण।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने आगे कहा, "उसके बाद मैं अद्वैत आचार्य के घर जाऊँगा और आप नवद्वीप जाकर माता शची तथा अन्य सभी भक्तों को लेकर लौट आना।"

ताँरे पाठाइया नित्यानन्द महाशय ।

महाप्रभुर आगे आसि' दिल परिचय ॥23॥

ताँरे–उसको; पाठाइया–भेजकर; नित्यानन्द-प्रभु नित्यानन्द; महा-आशय-महाशय; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के आगे-आगे; आसि'-आकर; दिल-दिया; परिचय–परिचय।

अनुवाद

आचार्यरत्न को अद्वैत आचार्य के घर भेजकर श्री नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने आये और अपने आने की सूचना दी।

प्रभु कहे,—श्रीपाद, तोमार कोथाके गमन ।

श्रीपाद कहे, तोमार सङ्गे याब वृन्दावन ॥24॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने पूछा; श्रीपाद-महाशय; तोमार-आप; कोथाके–कहाँ; गमन–जा रहे हैं; श्रीपाद कहे-नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया; तोमार-आपके; सङ्गे–साथ; याब-मैं जाऊँगा; वृन्दावन-वृन्दावन की ओर।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में थे और उन्होंने पूछा कि नित्यानन्द प्रभु कहाँ जा रहे थे?" नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया कि वे महाप्रभु के साथ वृन्दावन जा रहे थे।

प्रभु कहे,—कत दूरे आछे वृन्दावन ।

तेंहो कहेन,—कर एइ यमुना दरशन ॥25॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; कत दूरे-कितनी दूर ; आछे-है; वृन्दावन-वृन्दावन धाम; तेंहो कहेन-उन्होंने उत्तर दिया; कर-करो; एइ–यह; यमुना-यमुना नदी का; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु से पूछा कि अब वृन्दावन कितनी दूर है, तो नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया "देखिये! यह रही यमुना नदी।"

एत बलि' आनिल ताँरे गङ्गा-सन्निधाने ।

आवेशे प्रभुर हैल गङ्गारे यमुना-ज्ञाने ॥ 26 ॥

एत बलि'-यह कहकर; आनिल-वे लाये; ताँरे–उनको; गङ्गा-सन्निधाने-गंगा के निकट; आवेशे-भावावेश में; प्रभुर–महाप्रभु का; हैल–था; गङ्गारे-गंगा नदी का; यमुना-ज्ञाने-यमुना नदी मान लेना।

अनुवाद

यह कहकर नित्यानन्द प्रभु उन्हें गंगा नदी के पास ले गये और श्री चैतन्य महाप्रभु ने भावावेश के कारण गंगा नदी को ही यमुना नदी के रूप में स्वीकार कर लिया।

अहो भाग्य, यमुनारे पाइलुँ दरशन ।

एत बलि' यमुनार करेन स्तवन ॥27॥

अहो भाग्य-अहो भाग्य!; यमुनारे-यमुना नदी का; पाइलुँ-मैंने पा लिया है; दरशन-दर्शन; एत बलि'—यह कहकर; यमुनार-यमुना नदी की; करेन-करने लगे; स्तवन-स्तुति।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "ओह, कितना सौभाग्य है! आज मुझे यमुना नदी के दर्शन हुए हैं। इस तरह गंगा को ही यमुना नदी मानकर उन्होंने उसकी स्तुति करनी प्रारम्भ की।"

चिदानन्द-भानोः सदा नन्द-सूनोः

पर-प्रेम-पात्री द्रव-ब्रह्म-गात्री ।

अघानां लवित्री जगत्क्षेम-धात्री

पवित्री-क्रियान्नो वपुर्मित्र-पुत्री ॥28॥

चित्-आनन्द-भानोः-आध्यात्मिक शक्ति व आनन्द की साक्षात् मूर्ति; सदा-सदा; नन्द-सूनोः–महाराज नन्द के पुत्र का; पर-प्रेम-पात्री–सर्वोपरि प्रेम प्रदान करने वाली; द्रव-ब्रह्म-गात्री-वैकुण्ठ लोक के जल से निर्मित; अघानाम्-सभी पापों तथा अपराधों का; लवित्री–नाश करने वाली; जगत्-क्षेम-धात्री-जगत् कल्याण के कर्ता; पवित्री-क्रियात्-कृपया पवित्र करो; नः-हमारा; वपुः–शरीर; मित्र-पुत्री–सूर्यदेव की पुत्री।

अनुवाद

"हे यमुना नदी, तुम वह आनन्दमय दिव्य जल हो, जो नन्द महाराज के पुत्र को प्रेम प्रदान करता है। तुम वैकुण्ठ लोक के जल के ही समान हो, क्योंकि तुम हमारे पूरे जीवन में किये गये सारे अपराधों एवं पापफलों को नष्ट करने वाली हो। तुम संसार के लिए सभी मंगल वस्तुओं की जननी हो। हे सूर्यदेव की पुत्री, कृपया तुम अपने पुण्यकर्मों से हम सबको शुद्ध कर दो।"

तात्पर्य

यह श्लोक कवि कर्णपूर-कृत चैतन्य चन्द्रोदय नाटक (5.13) में अंकित है।

एत बलि' नमस्करि' कैल गङ्गा-स्नान ।

एक कौपीन, नाहि द्वितीय परिधान ॥29॥

एत बलि'-यह कहकर; नमस्करि'-नमस्कार करके; कैल–किया; गङ्गा-स्नान-गंगा स्नान; एक कौपीन–मात्र एक कौपीन; नाहि-नहीं था; द्वितीय-और कोई; परिधान-वस्त्र।

अनुवाद

इस मन्त्र का उच्चारण करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने नमस्कार करके गंगा नदी में स्नान किया। उस समय उनके पास एक ही कौपीन था, कोई दूसरा वस्त्र नहीं था।

हेन काले आचार्य-गोसाञि नौकाते चड़िञा ।

आइल नूतन कौपीन-बहिर्वास लञा ॥ 30॥

हेन काले-उस समय; आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य प्रभु; नौकाते चड़िञा-नौका पर; आइल-वहाँ पहुँचे; नूतन-नई; कौपीन-कौपीन; बहिः-वास–बाह्य वस्त्र; लञा-लाकर।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ दूसरे वस्त्र के बिना खड़े थे, तब अद्वैत आचार्य अपने साथ नया कौपीन तथा बाह्य वस्त्र लेकर नाव से वहाँ आये।

आगे आचार्य आसि' रहिला नमस्कार करि' ।

आचार्य देखि' बले प्रभु मने संशय करि' ॥ 31॥

आगे-आगे, सामने; आचार्य-अद्वैत आचार्य; आसि'–आकर; रहिला-खड़े हो गये; नमस्कार करि'-नमस्कार करके; आचार्य देखि'-अद्वैत आचार्य को देखकर; बले-कहने लगे; प्रभु–महाप्रभु; मने-अपने मन में; संशय करि'-संशय सहित।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य आकर महाप्रभु के समक्ष प्रस्तुत हुए और उन्हें नमस्कार किया। उन्हें देखकर महाप्रभु को सारी परिस्थिति के विषय में सन्देह होने लगा।

तुमि त' आचार्य-गोसाञि, एथा केने आइला।

आमि वृन्दावने, तुमि के-मते जानिला॥ 32॥

तुमि-आप हैं; त'–निश्चित रूप से; आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य; एथा-यहाँ; केने-कैसे; आइला-आप आये हैं; आमि-मैं; वृन्दावने-वृन्दावन में; तुमि-आप; के-मते-कैसे; जानिला-जान गये।

अनुवाद

भावावेश में ही महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य से पूछा, "आप यहाँ क्यों आये? आपको कैसे पता चला कि मैं वृन्दावन में हूँ?"

आचार्य कहे—तुमि याहाँ, सेइ वृन्दावन।

मोर भाग्ये गङ्गा-तीरे तोमार आगमन॥ 33॥

आचार्य कहे-आचार्य ने उत्तर दिया; तुमि याहाँ–जहाँ कहीं आप हैं; सेइ-वही; वृन्दावन-वृन्दावन; मोर भाग्ये-मेरे महाभाग्य से; गङ्गा-तीरे-गंगा के तीर पर; तोमार आगमन-आपका आगमन।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से यह कहकर सारी स्थिति स्पष्ट कर दी, "आप जहाँ हैं, वहीं वृन्दावन है। यह तो मेरा परम सौभाग्य है कि आप गंगा नदी के तट पर आये हैं।"

प्रभु कहे,—नित्यानन्द आमारे वञ्चिला।

गङ्गाके आनिया मोरे यमुना कहिला॥ 34॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु ने; आमारे-मुझे; वञ्चिला-धोखा दिया है; गङ्गाके-गंगा तट; आनिया लाकर; मोरे-मुझे; यमुना-यमुना नदी; कहिला–बताई।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "नित्यानन्द ने मुझे धोखा दिया है। वह मुझे गंगा के तट पर ले आये और मुझसे यह बतलाया है कि यह यमुना है।"

आचार्य कहे, मिथ्या नहे श्रीपाद-वचन।

यमुनाते स्नान तुमि करिला एखन॥ 35॥

आचार्य कहे-श्री अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया; मिथ्या नहे-यह झूठ नहीं है; श्रीपाद-वचन-श्री नित्यानन्द प्रभु का कथन; यमुनाते-यमुना नदी में; स्नान-स्नान; तुमि-आपने; करिला–किया; एखन-अभी।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द पर धोखा देने का आरोप लगाया, तो श्रील अद्वैत आचार्य ने कहा, "नित्यानन्द प्रभु ने आपसे जो कुछ कहा है, वह झूठ नहीं है। आपने सचमुच अभी यमुना नदी में स्नान किया है।"

गङ्गाय यमुना वहे हञा एक-धार।

पश्चिमे यमुना वहे, पूर्वे गङ्गा-धार॥ 36॥

गङ्गाय-गंगा नदी के साथ; यमुना-यमुना नदी; वहे-बहती है; हञा-होकर; एक-धार–एक साथ; पश्चिमे–पश्चिम की ओर; यमुना-यमुना नदी; वहे-बहती है; पूर्वे-पूर्व की ओर; गङ्गा-धार-गंगा की धार।

अनुवाद

फिर अद्वैत आचार्य ने समझाया कि उस स्थान पर गंगा तथा यमुना दोनों साथ-साथ बहती हैं। पश्चिम की ओर यमुना है और पूर्व की ओर गंगा है।

तात्पर्य

गंगा तथा यमुना दोनों इलाहाबाद (प्रयाग) में संगम करती हैं। यमुना पश्चिम से बहकर आती है और गंगा पूर्व से और फिर दोनों मिल जाती हैं। चूँकि चैतन्य महाप्रभु ने पश्चिम की ओर स्नान किया था, अतएव उन्होंने वास्तव में यमुना नदी में स्नान किया था।

पश्चिम-धारे यमुना वहे, ताहाँ कैले स्नान।

आर्द्र कौपीन छाड़ि' शुष्क कर परिधान॥ 37॥

पश्चिम-धारे–पश्चिमी धारा में; यमुना-यमुना नदी; वहे-बहती है; ताहाँ-वहाँ; कैले–आपने किया; स्नान-स्नान; आर्द्र-गीला; कौपीन-कौपीन; छाड़ि'–छोड़कर; शुष्क-शुष्क; कर-करो; परिधान-पहन।

अनुवाद

फिर अद्वैत आचार्य ने प्रार्थना की कि यमुना नदी में स्नान करने के कारण चैतन्य महाप्रभु का कौपीन गीला हो गया है, अतएव उन्हें अपना कौपीन बदलकर सूखा वस्त्र पहन लेना चाहिए।

प्रेमावेशे तिन दिन आछ उपवास ।

आजि मोर घरे भिक्षा, चल मोर वास ॥ 38 ॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; तिन दिन-तीन दिन; आछ-आप हैं; उपवास-उपवास पर; आजि-आज; मोर-मेरे; घरे–घर पर; भिक्षा–भिक्षा; चल–कृपया आओ; मोर वास-मेरे निवासस्थान पर।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "कृष्ण-प्रेम के भावावेश में आप तीन दिन से अनवरत उपवास करते आ रहे हैं, अतएव मैं आपको अपने घर पर भिक्षा ग्रहण करने के लिये आमन्त्रित करता हूँ। आप मेरे साथ मेरे घर चलें।"

एक-मुष्टि अन्न मुञि करियाछों पाक ।

शुखारुखा व्यञ्जन कैलुँ, सूप आर शाक ॥ 39॥

एक-मुष्टि-एक मुट्ठी; अन्न-भात; मुञि-मैंने; करियाछों-बनाया है; पाक-पकाकर; शुखा-रुखा-सूखा रुखा; व्यञ्जन-व्यंजन; कैलुँ–मैंने बनाया है; सूप-सब्जियों की तरी; आर-और; शाक-साग।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने आगे कहा, "मैंने अपने घर में मुट्ठी-भर चावल पकाया है। तरकारियाँ भी अत्यन्त सादी हैं। कोई भी विलासप्रिय व्यंजन नहीं है-केवल थोड़ा सूप है और कुछ शाक है।"

एत बलि' नौकाय चड़ाञा निल निज-घर ।

पाद-प्रक्षालन कैल आनन्द-अन्तर ॥40॥

एत बलि'-यह कहकर; नौकाय चड़ाञा-नौका पर बैठाकर, निल-ले गये; निज-घर-अपने घर; पाद-प्रक्षालन-चरणकमल धोकर; कैल-किया; आनन्द-अन्तर-अपने अन्दर आनन्द।

अनुवाद

यह कहकर श्री अद्वैत आचार्य उन्हें नाव में बैठाकर अपने घर ले आये। वहाँ पर अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु के चरण प्रक्षालन किये और इस तरह भीतर-भीतर परम आनन्दित हुए।

प्रथमे पाक करियाछेन आचार्याणी ।

विष्णु-समर्पण कैल आचार्य आपनि ॥41॥

प्रथमे-पहले; पाक–पकाया; करियाछेन–किया; आचार्याणी-अद्वैत आचार्य की पत्नी ने; विष्णु-समर्पण-भगवान् विष्णु को अर्पित करके; कैल–किया; आचार्य-अद्वैत आचार्य; आपनि–स्वयं।

अनुवाद

सर्वप्रथम अद्वैत आचार्य की पत्नी ने सारे पकवान बनाये। तत्पश्चात् स्वयं श्रील अद्वैत आचार्य ने हर वस्तु भगवान् विष्णु को अर्पित की।

तात्पर्य

यह आदर्श गृहस्थ जीवन है। पति तथा पत्नी एकसाथ रहते हैं और पति भगवान् विष्णु की पूजा के लिए सामग्री एकत्र करने हेतु कठिन श्रम करता है। पत्नी घर पर भगवान् विष्णु के लिए तरह-तरह के पकवान बनाती है और पति उन्हें अर्चाविग्रह को अर्पित करता है। इसके बाद आरती की जाती है और परिजनों तथा अतिथियों को प्रसाद दिया जाता है। वैदिक नियमों के अनुसार गृहस्थ के घर में कोई-न-कोई अतिथि सदैव रहना चाहिए। अपने बचपन में मैंने देखा है कि मेरे पिता के घर प्रतिदिन कम-से-कम चार अतिथि आया करते थे, यद्यपि उन दिनों मेरे पिता की आय अधिक नहीं थी। फिर भी प्रतिदिन कम-से-कम चार अतिथियों को प्रसाद देने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। वैदिक नियमों के अनुसार गृहस्थ को चाहिए कि दोपहर का भोजन करने के पूर्व घर से बाहर निकलकर पुकारे कि कोई बिना खाये तो नहीं है। इस तरह वह लोगों को प्रसाद के लिए बुलाता है। यदि कोई आ जाता है, तो वह उसे प्रसाद देता है

और यदि अधिक न बचा हो, तो उसे अपने हिस्से में से अतिथि को देना चाहिए। यदि बुलाने पर कोई नहीं आता, तो गृहस्थ अपना भोजन ग्रहण कर सकता है। इस तरह गृहस्थ का जीवन भी एक तरह की तपस्या है। इसी कारण गृहस्थ का जीवन गृहस्थ-आश्रम कहलाता है। अपनी पत्नी और बच्चों के साथ कृष्णभावनामृत में सुखपूर्वक रहते हुए भी भक्त किसी भी मन्दिर में पालन किये जाने वाले नियमों को भी निभाता है। कृष्णभावनामृत के बिना वह घर गृहमेधी का घर कहलाता है। कृष्णभावनामृत से युक्त गृहस्थ वास्तविक गृहस्थ होते हैं अर्थात् वे अपने परिवार तथा अपनी सन्तान के साथ आश्रम में रहते हैं। श्री अद्वैत प्रभु आदर्श गृहस्थ थे और उनका घर आदर्श गृहस्थ आश्रम था।

तिन ठाञि भोग बाड़ाइल सम करि' ।

कृष्णेर भोग बाड़ाइल धातु-पात्रोपरि ॥ 42 ॥

तिन ठाञि-तीन स्थानों में; भोग-भोग (भोजन); बाड़ाइल-बाँटकर; सम-एक जैसा भाग; करि'-करके; कृष्णेर भोग-कृष्ण का भोग; बाड़ाइल-रखा गया; धातु-पात्र उपरि-धातु की थाली पर।

अनुवाद

सारे पकाये गये भोग के तीन बराबर भाग किये गये। एक भाग भगवान् कृष्ण को अर्पित करने के लिए धातु की थाली पर परोसा गया।

तात्पर्य

बाड़ाइल का अर्थ है "बढ़ा हुआ" जो इस श्लोक में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह शब्द बंगाल में गृहस्थों में प्रचलित अत्यन्त शिष्ट शब्द है। जब प्रस्तुत भोजन में से एक अंश निकाल लिया जाता है, तो वह वास्तव में घट जाता है। किन्तु बंगाल में इसे बाढ़ाइल अर्थात् "बढ़ा हुआ" कहने का प्रचलन है। यदि कृष्ण के लिए भोजन प्रस्तुत किया जाता है और फिर उसे कृष्ण तथा वैष्णवों को अर्पित किया जाता है, तो मात्रा बढ़ जाती है, कभी घटती नहीं।

बत्तिशा-आठिया-कलार आङ्गटिया पाते ।

दुइ ठाञि भोग बाड़ाइल भाल मते ॥43॥

बत्तिशा-आठिया-बत्तीस गुच्छों वाले; कलार–केले के पेड़ के; आङ्गटिया–साबुत; पाते-पत्तों पर; दुइ ठाञि-दो जगह; भोग-भोग; बाड़ाइल-रखा गया; भाल मते-सुन्दर ढंग से।

अनुवाद

तीन भागों में से एक भाग धातु की थाली पर रखा गया था और शेष दो भाग केले के पत्तों पर। ये पत्तियाँ बीच से विभाजित नहीं थीं और ऐसे केले के वृक्ष से ली गई थी, जिसमें कम-से-कम बत्तीस केले के गुच्छे लगे थे। इन दोनों पत्तों में निम्नलिखित व्यंजन सुन्दर ढंग से भरकर रखे गये थे।

मध्ये पीत-घृत-सिक्त शाल्यन्नेर स्तूप ।

चारि-दिके व्यञ्जन-डोङ्गा, आर मुद्ग-सूप ॥44॥

मध्ये-मध्य में; पीत-पीले रंग के; घृत-सिक्त-घी से सना; शालि-अन्नेर-भलीभाँति पके भात का; स्तूप-एक ढेर; चारि-दिके–भाते के ढेर के चारों ओर; व्यञ्जन-डोङ्गा-सब्जियों के पात्र; आर-और; मुद्ग-सूप-कुटी मूँग की दाल।

अनुवाद

प्रवीणता से पके चावल का ढेर अत्यन्त सुन्दर दाने वाला था और बीच में गाय के दूध से बनाया गया पीले रंग का घी था। चावल के ढेर के चारों ओर केले के पेड़ों की छाल से बने पात्र थे, जिनमें तरह तरह की तरकारियाँ तथा मूँग की दाल थी।

सार्द्रक, वास्तुक-शाक विविध प्रकार ।

पटोल, कुष्माण्ड-बड़ि, मानकचु आर ॥45॥

साईक-अदरक की सब्जियों के पात्र; वास्तुक-शाक-पालक; विविध-नाना; प्रकार-प्रकार; पटोल–एक प्रकार की सब्जी; कुष्माण्ड–सीताफल; बड़ि-कुटी दाल सहित; मानकचु-कचू सब्जी के वृक्ष की जड़; आर-और।

अनुवाद

पकी तरकारियों में पटोला, सीताफल, मानकचु था तथा अदरक के टुकड़ों और विभिन्न प्रकार की पालक से बना सलाद था।

चइ-मरिच-सुख्त दिया सब फल-मूले ।

अमृत-निन्दक पञ्च-विध तिक्त-झाले ॥ 46॥

चइ-मरिच-काली मिर्च और चई मसाला; सुख्ख-कड़वी सब्जियाँ; दिया–परोसा; सब-सब; फल-मूले-नाना प्रकार के फल-मूल; अमृत-निन्दक-अमृत को मात करने वाले; पञ्च-विध–पाँच प्रकार के; तिक्त-कड़वे; झाले–और तीखे।

अनुवाद

सभी प्रकार की तरकारियों के साथ सुख्त, करेला मिला था, जो अमृत के स्वाद को मात करने वाला था। कड़वे तथा चरपरे सुख्त पाँच प्रकार के थे।

कोमल निम्ब-पत्र सह भाजा वार्ताकी ।

पटोल-फुल-बड़ि-भाजा, कुष्माण्ड-मानचाकि ॥47॥

कोमल-कोमल; निम्ब-पत्र-नीम के पत्ते; सह–के साथ; भाजा-तले हुए; वार्ताकी-बैंगन; पटोल–पटोल फल सहित; फुल-बड़ि-फूल बड़ी (दाल से बनी); भाजा-तली हुई; कुष्माण्ड–सीताफल; मानचाकि-मानचाकी नामक खाद्य।

अनुवाद

विविध तरकारियों में नीम की ताजा मुलायम पत्तियों को बैंगन के साथ तला गया था। पटोल फल को फुलबड़ी (दाल से बनाया गया एक व्यंजन जिसे पहले मसला जाता है और फिर सुखाया जाता है) के साथ तला गया था। कुष्माण्ड-मानचाकि नामक व्यंजन भी था।

तात्पर्य

पाकशास्त्र के सम्पादकों से प्रार्थना है कि वे श्रील कविराज गोस्वामी द्वारा वर्णन किये गये इन सारे व्यंजनों को अपनी पुस्तक में सम्मिलित कर लें।

नारिकेल-शस्य, छाना, शर्करा मधुर ।

मोचा-घण्ट, दुग्ध-कुष्माण्ड, सकल प्रचुर ॥48॥

नारिकेल-शस्य-नारियल का गूदा; छाना-दही; शर्करा-शक्कर; मधुर–अत्यन्त मधुर; मोचा-घण्ट–केले के फूलों से बना रसमिसा पकवान; दुग्ध-कुष्माण्ड–दुग्ध कुश्मांड (ताजे उगे कद्दू के टुकड़ों को काटकर, दूध में उबालकर बनाया गया पकवान); सकल-सब; प्रचुर–पर्याप्त मात्रा में।

अनुवाद

नारियल के गूदे, दही तथा मिश्री से बना व्यंजन अत्यन्त मीठा था। दूध में पकाये गये सीताफल और केले के फूलों की सब्जी प्रचुर मात्रा में थी।

मधुराम्ल-बड़ा, अम्लादि पाँच-छय ।

सकल व्यञ्जन कैल लोके यत हय ॥49॥

मधुर-अम्ल-बड़ा-मीठी और खट्टी टिक्कियाँ; अम्ल-आदि-खट्टे पदार्थ; पाँच-छय–पाँच या छः; सकल व्यञ्जन-सभी व्यंजन; कैल-बनाए; लोके-लोगों के लिए; यत हय–जितने थे उनके लिए।

अनुवाद

मीठी तथा खट्टी चटनी में तैयार की गई छोटी टिक्कियाँ और पाँच-छः तरह के खट्टे व्यंजन थे। सारी तरकारियाँ इतनी बनाई गई थीं कि वहाँ पर उपस्थित सारे लोग प्रसाद-रूप में ग्रहण कर सकें।

मुद्ग-बड़ा, कला-बड़ा, माष-बड़ा, मिष्ट ।

क्षीर-पुली, नारिकेल, यत पिठा इष्ट ॥50॥

मुद्ग-बड़ा-मूंग के नर्म बड़े; कला-बड़ा-तले हुए केले से बने नर्म बड़े; माष-बड़ा-उड़द की दाल से बनाए गये नर्म बड़े; मिष्ट-नाना प्रकार की मिठाइयाँ; क्षीर-पुली-क्षीर पुली; नारिकेल-नारियल से बना पकवान; यत-सभी प्रकार के बडे; पिठा-टिक्की; इष्ट-स्वादिष्ट।

अनुवाद

मूँग की दाल के नर्म बड़े, पके केले से बने नर्म बड़े, उड़द की दाल से बने नर्म बड़े, तरह तरह की मिठाइयाँ, क्षीरपुली (चावल के बड़े खीर के साथ), नारियल से बना व्यंजन तथा सभी प्रकार के बड़े थे।

बत्तिशा-आठिया कलार डोङ्गा बड़ बड़।

चले हाले नाहि,—डोङ्गा अति बड़ दड़ ॥51॥

बत्तिशा-आठिया–केलों के बत्तीस गुच्छे; कलार–केले के वृक्ष के; डोङ्गा-डोंगे (पत्तों से बने पात्र); बड़े बड़े-बड़े बड़े; चले हाले नाहि-जो हिलने डुलने वाले न थे; डोङ्गा–डोंगे (पात्र); अति-बहुत; बड़-बड़े; दड़-मजबूत।

अनुवाद

सारी तरकारियाँ केले के ऐसे वृक्षों के पत्तों से बने दोनों में परोसी गई थीं, जिनमें कम-से-कम केले के बत्तीस गुच्छे लगे थे। ये दोने काफी मजबूत और बड़े थे और इधर-उधर हिलने-डुलने वाले नहीं थे, न ही तिरछे होने वाले थे।

पञ्चाश पञ्चाश डोङ्गा व्यञ्जने पूरिञा ।

तिन भोगेर आशे पाशे राखिल धरिञा ॥52॥

पञ्चाश पञ्चाश-पचास-पचास; डोङ्गा–डोंगे; व्यञ्जने–व्यंजनों से; पूरिञा-भरकर; तिन-तीन; भोगेर खाने के स्थानों के; आशे पाशे-आसपास; राखिल-रखे; धरिञा-स्थिर करके।

अनुवाद

भोजन करने के तीनों स्थानों के चारों ओर तरह तरह की तरकारियों से भरे एक सौ दोने थे।

सघृत-पायस नव-मृत्कुण्डिका भरिञा ।

तिन पात्रे घनावर्त-दुग्ध राखेत धरिञा ॥53॥

स-घृत-पायस-मीठे चावल घी से मिले; नव-मृत्-कुण्डिका-नये माटी के बर्तन; भरिञा–भरकर; तिन पात्रे–तीन पात्रों में; घन-आवर्त-दुग्ध-अच्छी तरह गाढ़ा उबला दूध; राखेत–रखे थे; धरिञा-स्थिर करके।

अनुवाद

सभी तरकारियों के चारों ओर घी से मिश्रित खीर रखी थी। इसे नये मिट्टी के बर्तनों में रखा गया था। अच्छी तरह से गाड़े उबले दूध से भरे मिट्टी के बर्तन तीनों स्थानों पर रखे गये थे।

दुग्ध-चिड़ा-कला आर दुग्ध-लक्लकी ।

यतेक करिल' ताहा कहिते ना शकि ॥54॥

दुग्ध-चिड़ा-दूध से बनाया चिवड़ा; कला-केले के साथ मिलाया हुआ; आर-और; दुग्ध-लक्लकी-दूध में उबाला हुआ लौ नामक एक प्रकार का सीताफल; यतेक-वह सब; करिल'–तैयार किया गया; ताहा-वह; कहिते-वर्णन करने के लिए; ना-नहीं; शकि-सक्षम हूँ।

अनुवाद

अन्य व्यंजनों के अतिरिक्त दूध में बना तथा केले से मिला चिवड़ा तथा दूध में पकाया सफेद सीताफल था। वहाँ पर उपस्थित सभी व्यंजनों का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

दुइ पाशे धरिल सब मृत्कुण्डिका भरि' ।

चाँपाकला-दधि-सन्देश कहिते ना पारि ॥55॥

दुई पाशे-दोनों ओर; धरिल-रखे; सब-सब; मृत्-कुण्डिका-मिट्टी के पात्र; भरि'-भरकर; चाँपा-कला-चाँपाकला नामक एक प्रकार का केला; दधि-सन्देश-दही और सन्देश से मिला हुआ; कहिते-कहने के लिए; ना-नहीं; पारि-मैं सक्षम हूँ।

अनुवाद

दो स्थानों पर दही, सन्देश (दही से बनी एक मिठाई) तथा केले से बना एक अन्य व्यंजन मिट्टी के पात्रों में भरकर रखा हुआ था। मैं उन सबका वर्णन कर पाने में असमर्थ हूँ।

अन्न-व्यञ्जन-उपरि दिल तुलसी-मञ्जरी ।

तिन जल-पात्रे सुवासित जल भरि' ॥56 ॥

अन्न-व्यञ्जन-उपरि-उबले चावल और सब्जियों के ऊपर; दिल-रखा; तुलसी-मञ्जरी-तुलसी की मंजरी; तिन–तीन; जल-पात्रे-जल पात्र; सु-वासित-सुगन्धित; जल-जल; भरि'-भरकर।

अनुवाद

पके चावल एवं सारी तरकारियों के ढेर के ऊपर तुलसी की मंजरियाँ थीं। सुगन्धित गुलाब-जल से भरे पात्र भी रखे गये थे।

तिन शुभ्र-पीठ, तार उपरि वसन ।

एइ-रूपे साक्षात्कृष्णे कराइल भोजन ॥57॥

तिन-तीन; शुभ्र-पीठ-सफेद आसन; तार-उनके; उपरि-ऊपर; वसन-नर्म कपड़ा; एइ-रूपे-इस प्रकार; साक्षात्-साक्षात्; कृष्ण-कृष्ण को; कराइल करवाया; भोजन-भोजन।

अनुवाद

तीनों आसनों पर मुलायम कपड़े बिछे थे। इस तरह भगवान् कृष्ण को सारी भोज्य सामग्री अर्पित की गई और उन्होंने इसे बड़े ही मन से ग्रहण किया।

आरतिर काले दुइ प्रभु बोलाइल ।

प्रभु-सङ्गे सबे आसि' आरति देखिल ॥58 ॥

आरतिर काले-आरती के समय; दुइ प्रभु-दोनों भगवान् नित्यानन्द प्रभु और श्री चैतन्य महाप्रभु; बोलाइल-उन्होंने बुलाया; प्रभु-सङ्गे-प्रभुओं के संग; सबे-अन्य सभी लोगों ने; आसि'-वहाँ आकर; आरति-आरती; देखिल-देखी।

अनुवाद

भोग अर्पित करने के बाद भोग-आरती सम्पन्न करने की प्रथा है। अद्वैत प्रभु ने दोनों भाइयों-चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु को आरती देखने के लिए बुलाया। दोनों प्रभु तथा वहाँ उपस्थित सारे लोग आरती समारोह देखने गये।

आरति करिया कृष्णे करा'ल शयन ।

आचार्य आसि' प्रभुरे तबे कैला निवेदन ॥59॥

आरति करिया-आरती समाप्त करने के बाद; कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; करा'ल-करवाया; शयन-शयन; आचार्य-अद्वैत आचार्य; आसि-आकर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; तबे-तब; कैला–किया; निवेदन-निवेदन।

अनुवाद

मन्दिर में अर्चाविग्रहों की आरती हो चुकने के बाद कृष्ण को शयन कराया गया। तब अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु से कुछ निवेदन करने के लिए आगे आये।

गृहेर भितरे प्रभु करुन गमन ।

दुइ भाइ आइला तबे करिते भोजन ॥60॥

गृहेर भितरे–घर के भीतर; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; करुन–कृपया करो; गमन-प्रवेश; दुइ भाइ–दोनों भाई, चैतन्य महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु; आइला–आये; तबे-तब; करिते भोजन-प्रसाद ग्रहण करने के लिए।

अनुवाद

श्री अद्वैत प्रभु ने कहा, "हे प्रभु, कृपया इस कमरे में चलें।" तब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु दोनों भाई प्रसाद ग्रहण करने के लिए आगे आये।

मुकुन्द, हरिदास,— दुइ प्रभु बोलाइल ।

योड़-हाते दुइ-जन कहिते लागिल ॥ 61॥

मुकुन्द मुकुन्द; हरिदास–हरिदास; दुइ प्रभु-दोनों प्रभुओं ने; बोलाइल–बुलाया; झोड़-हाते-हाथ जोड़कर; दुइ-जन-दोनों व्यक्ति; कहिते लागिल-कहने लगे।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु प्रसाद लेने गये, तो उन्होंने मुकुन्द तथा हरिदास को अपने साथ चलने के लिए बुलाया। किन्तु मुकुन्द तथा हरिदास दोनों ने हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा।

मुकुन्द कहे—मोर किछु कृत्य नाहि सरे ।

पाछे मुञि प्रसाद पामु, तुमि याह घरे ॥ 62 ॥

मुकुन्द कहे-मुकुन्द ने कहा; मोर–मुझे; किछु-कुछ; कृत्य-करना है; नाहि सरे-जो अभी समाप्त नहीं हुआ है; पाछे-बाद में; मुञि-मैं; प्रसाद–प्रसाद; पामुलूँगा; तुमि याह घरे-आप दोनों कृपया कमरे के भीतर जाएँ।

अनुवाद

बुलाये जाने पर मुकुन्द ने निवेदन किया, "हे प्रभु, मुझे कुछ काम करना शेष है। मैं बाद में प्रसाद ग्रहण करूँगा, अतएव आप दोनों प्रभु अब कमरे के भीतर जाएँ।"

हरिदास कहे—मुञि पापिष्ठ अधम ।

बाहिरे एक मुष्टि पाछे करिमु भोजन ॥ 63 ॥

हरिदास कहे-हरिदास ने कहा; मुञि-मैं; पापिष्ठ-पापी; अधम-अधम, नीच; बाहिरे-बाहर; एक-एक; मुष्टि–मुट्ठी भर; पाछे-बाद में; करिमु-मैं करूँगा; भोजन-भोजन।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, "मैं अत्यन्त पापी और अधम हूँ। मैं बाहर ही प्रतीक्षा करते हुए बाद में एक मुट्ठी प्रसाद खाऊँगा।"

तात्पर्य

यद्यपि हिन्दू तथा मुसलमान अत्यन्त सौहार्दपूर्ण ढंग से हिल-मिलकर रहते थे, फिर भी उनमें कुछ अन्तर थे। मुसलमानों को यवन अथवा निम्न कुल में उत्पन्न माना जाता था और जब भी उन्हें आमन्त्रित किया जाता था, तो उन्हें घर के बाहर दरवाजे पर ही भोजन परोसा जाता था। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु ने स्वयं हरिदास ठाकुर को अपने साथ प्रसाद ग्रहण करने के लिए बुलाया, किन्तु उन्होंने अत्यन्त विनीत भाव से कहा, "मैं घर के बाहर ही प्रसाद ले लूँगा।" यद्यपि हरिदास ठाकुर उन्नत वैष्णव थे, जिन्हें अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द प्रभु तथा श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वीकार किया था, फिर भी सामाजिक शान्ति भंग न हो इसलिए अपने आपको मुसलमान मानते हुए वे हिन्दू समाज की सीमा के बाहर ही रहे। इसीलिए उन्होंने घर के बाहर प्रसाद ग्रहण करने की बात की। यद्यपि वे उच्च पद पर थे और अन्य महान् वैष्णवों के समान थे, फिर भी वे अपने आपको पापिष्ठ और अधम मानते थे। भले ही आध्यात्मिक दृष्टि से कोई वैष्णव कितना ही उन्नत क्यों न हो, ऊपर से वह अत्यन्त दीन एवं विनीत बना रहता है।

दुइ प्रभु लञा आचार्य गेला भितर घरे।

प्रसाद देखिया प्रभुर आनन्द अन्तरे ॥ 64॥

दुइ प्रभु-दोनों प्रभु (चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु); लञा–के साथ; आचार्य-अद्वैत आचार्य; गेला-गये; भितर-भीतर; घरे–घर के; प्रसाद–प्रसाद; देखिया-देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आनन्द अन्तरे-अन्दर से बहुत आनन्दित थे।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य अपने साथ नित्यानन्द प्रभु तथा चैतन्य महाप्रभु को कमरे के भीतर ले गये, जहाँ दोनों प्रभुओं ने प्रसाद की व्यवस्था देखी। विशेषकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यधिक प्रसन्न हुए।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु इसलिए प्रसन्न हुए, क्योंकि उन्होंने देखा कि कृष्ण के लिए नाना प्रकार के व्यंजन किस सुन्दर रीति से प्रस्तुत किये गये हैं। वास्तव में सभी प्रकार का प्रसाद कृष्ण के लिए प्रस्तुत किया जाता है, लोगों के लिए नहीं, किन्तु भक्तगण इस प्रसाद को बड़े ही आनन्द के साथ ग्रहण करते हैं।

ऐछे अन्न ये कृष्णके कराय भोजन।

जन्मे जन्मे शिरे धरों ताँहार चरण ॥65॥

ऐछे-इस प्रकार; अन्न–अन्न, भोज्य पदार्थ; ये-जो कोई; कृष्णके–कृष्ण को; कराय-करवाये; भोजन- भोजन; जन्मे जन्मे–जन्म जन्म; शिरे-अपने सिर पर; धरों-मैं रखता हूँ; ताँहार-उसके; चरण-चरणकमल।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण को अर्पित किये जाने वाले भोजन के पकाने की सारी विधियों का अनुमोदन किया। वे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने कहा, "मैं हृदय से कहता हूँ कि जो कोई कृष्ण को इतना अच्छा भोजन अर्पित कर सकता है, उसके चरणकमलों को मैं जन्म-जन्मांतर अपने मस्तक पर धारण करने को प्रस्तुत हूँ।"

प्रभु जाने तिन भोग–कृष्णेर नैवेद्य ।

आचार्सेर मनः-कथा नहे प्रभुर वेद्य ॥ 66 ॥

प्रभु जाने-प्रभु जानते हैं; तिन भोग-तीन श्रेणी के भोग; कृष्णेर नैवेद्य-भगवान् कृष्ण को भेट; आचार्येर-अद्वैत आचार्य के; मनः-कथा-मन की भावनाएँ; नहे-नहीं; प्रभुर–महाप्रभु को; वेद्य-ज्ञात।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कमरे में प्रविष्ट हुए, तो उन्होंने भोजन के तीन भाग देखे और यह समझा कि ये तीनों कृष्ण के लिए हैं। किन्तु वे अद्वैत आचार्य के मनोभावों को नहीं समझ पाये।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार इनमें से एक भाग जो धातु की थाली में परोसा गया था, वह कृष्ण के लिए था और अन्य दो भाग केले के बड़े बड़े पत्तों पर परोसे गये थे। धातु की थाली का भोग अद्वैत आचार्य ने अपने हाथों से कृष्ण को अर्पित किया। शेष दो भाग जो केले के पत्तों पर थे, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु द्वारा ग्रहण किये जाने थे। यही अद्वैत आचार्य का आशय था, किन्तु उन्होंने यह बात श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाई नहीं। अतएव जब महाप्रभु ने तीन स्थानों पर भोजन परोसा देखा, तो उन्होंने सोचा कि ये तीनों कृष्ण के लिए हैं।

प्रभु बले—वैस तिने करिये भोजन ।

आचार्य कहे—आमि करिब परिवेशन ॥ 67॥

प्रभु बले–चैतन्य महाप्रभु ने कहा; वैस–बैठ जाओ; तिने–तीन स्थानों पर; करिये-करें; भोजन-भोजन; आचार्य कहे-अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया; आमि करिब परिवेशन-मैं वितरण करूँगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "चलो, इन तीनों स्थानों में बैठकर हम प्रसाद ग्रहण करें। किन्तु अद्वैत आचार्य ने कहा, "मैं प्रसाद का वितरण करूँगा।"

कोन् स्थाने वसिब, आर आन दुइ पात ।

अल्प करि' आनि' ताहे देह व्यञ्जन भात ॥ 68 ॥

कोन् स्थाने वसिब-हम कहाँ बैठे; आर-अन्य; आनलाओ; दुइ पात-दो पत्र; अल्प करि'-थोड़ी मात्रा करके; आनि'–लाकर; ताहे-उस पर; देह-दो; व्यञ्जन-व्यंजन, सब्जियाँ; भात-भात।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सोचा कि तीनों थालियाँ वितरण करने के लिए हैं, अतएव उन्होंने यह कहते हुए और दो केले के पत्ते माँगे, "हमें थोड़ी तरकारी तथा चावल दें।"

आचार्य कहे—वैस दोहे पिंड़ि‍र उपरे ।

एत बलि' हाते धरि' वसाइल दुँहारे ॥ 69॥

आचार्य कहे-अद्वैत आचार्य ने कहा; वैस–बैठ जाइए; दोहे-आप दोनों; पिंड़ि‍र उपरे–लकड़ी के तख्तों पर; एत बलि'-यह कहकर; हाते धरि'–उनके हाथ पकड़कर; वसाइल दुँहारे दोनों प्रभुओं को बैठाया।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "कृपया इन आसनों पर बैठे।" उन्होंने उन दोनों के हाथ पकड़कर उन्हें बैठाया।

प्रभु कहे—सन्न्यासीर भक्ष्य नहे उपकरण ।

इहा खाइले कैछे हय इन्द्रिय वारण ॥ 70 ॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; सन्न्यासीर-संन्यासी से; भक्ष्य–खाना जाना; नहे-यह नहीं है; उपकरण–विभिन्न पकवान; इहा-यह; खाइले–यदि खाये जाएँ; कैछे-कैसे; हय-होगा; इन्द्रिय-इन्द्रिय; वारण-नियंत्रण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "संन्यासी के लिए इतनी तरह के व्यंजन ग्रहण करना उचित नहीं है। यदि वह ऐसा करता है, तो फिर वह अपनी इन्द्रियों को किस तरह वश में रख सकता है?"

तात्पर्य

उपकरण शब्द चावल के साथ खाये जाने वाले दाल, तरकारी तथा नाना प्रकार के भोज्य पदार्थों को सूचित करने वाला है। किन्तु संन्यासी के लिए ऐसे स्वादिष्ट व्यंजन खाना उचित नहीं है। यदि वह ऐसा करता है, तो वह अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकता। चैतन्य महाप्रभु संन्यासियों को स्वादिष्ट व्यंजन खाने के लिए प्रोत्साहन नहीं देते थे, क्योंकि सारा वैष्णव सम्प्रदाय वैराग्य-विद्या अर्थात् यथासम्भव वैराग्य-भाव का अनुशीलन करने वाला है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ दास गोस्वामी को भी परामर्श दिया था कि वे न तो अत्यन्त स्वादिष्ट व्यंजन खायें, न अच्छे वस्त्र पहनें, न भौतिक विषयों की चर्चा करें। संन्यासियों के लिए ये बातें वर्जित हैं। भक्त कभी भी ऐसी वस्तु ग्रहण नहीं करता, जो पहले कृष्ण को अर्पित न हुई हो। कृष्ण को जो भी अच्छे व्यंजन अर्पित किये जाते हैं, वे गृहस्थों को दे दिये जाते हैं। वैसे कृष्ण को अनेक उत्तम वस्तुएँ अर्पित की जाती हैं—जैसे हार, पलंग के बिछौने, उत्कृष्ट आभूषण, उत्तम भोजन, यहाँ तक कि अच्छी तरह से तैयार किये पान-सुपारी, किन्तु विनीत वैष्णव अपने शरीर को भौतिक तथा घृणित मानकर ऐसी वस्तुएँ स्वयं ग्रहण नहीं करता। वह सोचता है कि ऐसी वस्तुएँ ग्रहण करने से वह भगवान् के चरणकमलों के प्रति अपराध करेगा। जो सहजिया हैं, वे यह नहीं समझ सकेंगे कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य से दो अलग से केले के पत्ते लाने के लिए और एक में अपने लिए थोड़ा-सा प्रसाद देने के लिए कहा था, तो इसमें उनका क्या उद्देश्य था।

आचार्य कहे—छाड़ तुमि आपनार चुरि।

आमि सब जानि तोमार सन्यासेर भारि-भूरि॥ 71॥

आचार्य कहे-अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया; छाड़-छोड़ दीजिये; तुमि-आप; आपनार-अपना; चुरि छल; आमि-मैं; सब-सब; जानि-जानता हूँ; तोमार-आपके; सन्यासेर-संन्यास ग्रहण करने का; भारि-भूरि-गुप्त अर्थ।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पहले से परोसे हुए उस भोजन को ग्रहण नहीं किया, तो अद्वैत आचार्य ने कहा "कृपया अपना छल त्यागिये। मैं जानता हूँ कि आप कौन हैं और मैं आपके द्वारा संन्यास लेने के रहस्य को भी जानता हूँ।"

भोजन करह, छाड़ वचन-चातुरी।

प्रभु कहे—एत अन्न खाइते ना पारि॥72॥

भोजन करह-कृपया यह प्रसाद ग्रहण कीजिये; छाड़-छोड़ दीजिये; वचन-चातुरी-शब्द चातुरी; प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; एत-इतना; अन्न-भोजन; खाइते-खाने के लिए; ना पारि-मैं सक्षम नहीं हैं।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे वाक्-चातुरी त्यागकर भोजन करें। इस पर महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं सचमुच इतना भोजन नहीं खा सकता।"

आचार्य बले—अकपटे करह आहार।

यदि खाइते ना पार पाते रहिबेक आर ॥73॥

आचार्य बले-अद्वैत आचार्य ने कहा; अकपटे-बहाने के बिना; करह-कृपया करें; आहार–भोजन; यदि-यदि; खाइते-खाने में; ना पार-आप सक्षम नहीं हैं; पाते-पत्र पर; रहिबेक आर-जो बचे, उसे रहने दें।

अनुवाद

तब अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु से अनुरोध किया कि वे बहाना छोड़कर प्रसाद ग्रहण करें। यदि वे पूरा नहीं खा सकते, तो शेष भाग थाली पर पड़ा रहने दें।

प्रभु बले—एत अन्न नारिब खाइते।

सन्न्यासीर धर्म नहे उच्छिष्ट राखिते ॥74॥

प्रभु बले–महाप्रभु ने कहा; एत-इतना; अन्न–अन्न, भोजन; नारिब–मैं नहीं (खा) सकेंगा; खाइते-खा; सन्न्यासीर-संन्यासी; धर्म नहेका धर्म नहीं; उच्छिष्ट-जूठन; राखिते-बाकी छोड़ना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं इतना भोजन नहीं खा सकेंगा और यह संन्यासी का धर्म नहीं है कि वह जूठन छोड़े।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (11.18.19) के अनुसार :

बहिर्जलाशयम् गत्वा ततोपस्पृश्य वाग्यतः ।

विभज्य पावितं शेषं भुञ्जीताशेषं आहृतम् ॥

"संन्यासी को गृहस्थ के घर से जो भी खाद्य पदार्थ मिले, वह उसे लेकर किसी झील या नदी के किनारे जाये और विष्णु, ब्रह्मा तथा सूर्य को (तीन भाग) अर्पित करके पूरा प्रसाद ग्रहण करे, उसका तनिक भी भाग दूसरों के खाने के लिए न छोड़े।"

आचार्य बले—नीलाचले खाओ चौयान्न-बार ।

एक-बारे अन्न खाओ शत शत भार ॥75॥

आचार्य बले-अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; खाओ-आप खाते हो; चौयान्न-बार-चौवन बार; एक-बारे–एक बार; अन्न-भोजन; खाओ-आप खाओ; शत शत भार-सैंकड़ों पात्र भरकर।

अनुवाद

इस सन्दर्भ में श्री अद्वैत आचार्य ने चैतन्य महाप्रभु द्वारा जगन्नाथ पुरी में भोजन करने का उदाहरण दिया। भगवान जगन्नाथ और श्री चैतन्य महाप्रभु अभिन्न हैं। अद्वैत आचार्य ने बतलाया कि जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिदिन चौवन बार खाते हैं और हर बार वे भोग के सैकड़ों पात्र ग्रहण करते हैं।

तिन जनार भक्ष्य-पिण्ड—तोमार एक ग्रास ।

तार लेखाय एई अन्न नहे पञ्च-ग्रास ॥ 76 ॥

तिन जनार–तीन व्यक्तियों का; भक्ष्य-पिण्ड-भक्ष्य पदार्थ; तोमार-आपका; एक ग्रास–एक ग्रास; तार—उसको; लेखाय–अनुपात में; एइ अन्न-यह भोजन; नहे-नहीं है; पञ्च-ग्रास-पाँच ग्रास।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने कहा, "तीन जन जितना खाते हैं वह आपके एक ग्रास के बराबर भी नहीं है। इस गणना के अनुसार ये खाद्य पदार्थ आपके पाँच ग्रास भी नहीं होंगे।"

मोर भाग्ये, मोर घरे, तोमार आगमन ।

छाड़ह चातुरी, प्रभु, करह भोजन ॥77॥

मोर भाग्ये-मेरे भाग्य से; मोर घरे-मेरे घर पर; तोमार-आपका; आगमन-आगमन; छाड़ह–कृपया छोड़ दो; चातुरी-यह वाक् चातुरी; प्रभु–मेरे प्रभु; करह-बस करो; भोजन-भोजन।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने आगे कहा, "यह मेरा परम सौभाग्य है कि आप मेरे घर पधारे हैं। कृपया बातें मत बनाइये। बातें छोड़कर भोजन करना प्रारम्भ कीजिये।"

एत बलि' जल दिल दुइ गोसाञि हाते ।

हासिया लागला दुँहे भोजन करते ॥78॥

एत बलि'-यह कहकर; जल दिल-जल दिया; दुइ गोसाञि-चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के; हाते-हाथों में; हासिया-हँसते हुए; लागिला–लगे; दुँहे-वे दोनों; भोजन करिते-भोजन करने।

अनुवाद

यह कहकर अद्वैत आचार्य ने दोनों प्रभुओं को हाथ धोने के लिए जल दिया। तत्पश्चात् दोनों प्रभु बैठ गये और हँसते हुए प्रसाद ग्रहण करने लगे।

नित्यानन्द कहे—कैलुँ तिन उपवास ।

आजि पारणा करिते छिल बड़ आश ॥79॥

नित्यानन्द कहे-नित्यानन्द प्रभु ने कहा; कैलुँ-मैंने किये हैं; तिन-तीन; उपवास-उपवास (के दिन); आजि-; पारणा-उपवास तोड़कर; करिते-करने की; छिल–थी; बड़-बहुत; आश–आशा।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "मैं लगातार तीन दिनों से उपवास करता रहा हूँ। मुझे आशा थी कि आज मेरा उपवास टूटेगा।"

आजि उपवास हैल आचार्य-निमन्त्रणे ।

अर्ध-पेट ना भरिबे एइ ग्रासेक अन्ने ॥ 80॥

आजि-आज भी; उपवास-उपवास; हैल-हो गया; आचार्य-निमन्त्रणे-अद्वैत आचार्य के निमन्त्रण से; अर्ध-पेट-आधे पेट; ना-नहीं; भरिबे-भरेगा; एइ–यह; ग्रासेक अन्ने–भोजन के एक ग्रास।

अनुवाद

जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु सोच रहे थे कि भोजन की मात्रा अत्यधिक है, वहीं नित्यानन्द प्रभु ने सोचा कि वह तो एक ग्रास भी नहीं है। वे तीन दिन से उपवास कर रहे थे और उन्हें पूरी आशा थी कि आज वे अपना उपवास भंग करेंगे। उन्होंने कहा, "यद्यपि अद्वैत आचार्य ने मुझे आज खाने के लिए बुलाया है, किन्तु आज भी मेरा उपवास है। इतने थोड़े भोजन से तो मेरा आधा पेट भी नहीं भरेगा।"

आचार्य कहे—तुमि हओ तैर्थिक सन्न्यासी ।

कभु फल-मूल खाओ, कभु उपवासी ॥81॥

आचार्य कहे-अद्वैत आचार्य ने नित्यानन्द प्रभु को उत्तर दिया; तुमि-आप; हओ-हो; तैर्थिक सन्न्यासी–तीर्थ-भ्रमण करने वाले संन्यासी; कभु-कभी-कभी; फल-मूल-फल मूल; खाओ-खाते हो; कभु उपवासी-कभी-कभी उपवास करते हो।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया, "आप तो तीर्थों की यात्रा करने वाले संन्यासी ठहरे। कभी आप फल खाते हैं, तो कभी कन्दमूल और कभी केवल उपवास करते हैं।

दरिद्र-ब्राह्मण-घरे ये पाइला मुष्ट्येक अन्न ।

इहाते सन्तुष्ट हओ, छाड़ लोभ-मन ॥82॥

दरिद्र-ब्राह्मण-निर्धन ब्राह्मण; घरे–घर में; ग्रेजो कुछ; पाइला–मिला है; मुष्टि-एक-एक मुट्ठी; अन्न–अन्न; इहाते—इसमें; सन्तुष्ट हओ-सन्तुष्ट हो जाओ; छाड़-छोड़ दो; लोभ-मन-लोभ भावना।

अनुवाद

"मैं तो दरिद्र ब्राह्मण हूँ और आप मेरे घर पधारे हैं। आपको जो थोड़ा-बहुत भोजन मिला है, इतने से सन्तुष्ट हों और अपनी लोभी मनोवृत्ति को छोड़ दें।"

नित्यानन्द बले—यबे कैले निमन्त्रण ।

तत दिते चाह, यत करिये भोजन ॥83॥

नित्यानन्द बले-प्रभु नित्यानन्द ने कहा; यबे-कब; कैले–आपने किया है; निमन्त्रण-निमन्त्रण; तत–इतना; दिते चाह-आपको देना चाहिए; यत-इतना; करिये भोजन-मैं खा सकें।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया, "मैं जो भी होऊँ, आपने मुझे बुलाया है, अतएव आपको चाहिए कि मैं जितना खाना चाहूँ उतना दो।"

शुनि' नित्यानन्देर कथा ठाकुर अद्वैत ।

कहेन ताँहारे किछु पाइया पिरीत ॥ 84॥

शुनि'–सुनकर; नित्यानन्देर-नित्यानन्द प्रभु का; कथा-कथन; ठाकुर-ठाकुर; अद्वैत-अद्वैत आचार्य ने; कहेन–कहा; ताँहारे-नित्यानन्द प्रभु को; किछु-कुछ; पाइया-अवसर पाकर; पिरीत–प्रसन्न करने वाले शब्द।

अनुवाद

ठाकुर अद्वैत आचार्य को नित्यानन्द की विनोद-पूर्ण बातें सुनने के बाद अवसर मिला कि वे परिहास करें, अतः वे इस प्रकार बोले।

भ्रष्ट अवधूत तुमि, उदर भरिते ।

सन्न्यास लइयाछ, बुझि, ब्राह्मण दण्डिते ॥85॥

भ्रष्ट अवधूत-भ्रष्ट परमहंस; तुमि-आप; उदर भरिते-अपना पेट भरने हेतु; सन्न्यास लइयाछ-आपने संन्यास लिया है; बुझि-मैं समझता हूँ; ब्राह्मण दण्डिते-ब्राह्मण को कष्ट देने के लिए।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "आप भ्रष्ट परमहंस हो और आपने मात्र पेट भरने के लिए संन्यास ग्रहण किया है। मैं समझ गया हूँ कि आपका पेशा है ब्राह्मणों को कष्ट पहुँचाना।"

तात्पर्य

एक स्मार्त ब्राह्मण तथा एक वैष्णव गोस्वामी में सदैव मतभेद रहता है। यहाँ तक कि फलित ज्योतिष तथा नक्षत्र गणनाओं तक में स्मार्त मत तथा वैष्णव गोस्वामी मत पाये जाते हैं। नित्यानन्द प्रभु को भ्रष्ट अवधूत (भ्रष्ट परमहंस) कहकर एक तरह से अद्वैत आचार्य प्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को परमहंस के रूप में स्वीकार किया। दूसरे शब्दों में, नित्यानन्द प्रभु को स्मार्त ब्राह्मणों के नियमों से कोई सरोकार न था। इस तरह उनकी भर्त्सना करने के बहाने अद्वैत आचार्य वास्तव में उनकी प्रशंसा कर रहे थे। अवधूत अर्थात् परमहंस अवस्था सर्वोच्च अवस्था है। इस अवस्था में कोई इन्द्रियतृप्ति के स्तर पर विषयी प्रतीत हो सकता है, किन्तु वास्तव में उसे विषयों से कोई प्रयोजन नहीं होता। इस अवस्था में वह कभी संन्यासी का वेश तथा लक्षण धारण करता है। और कभी नहीं भी। कभी-कभी वह गृहस्थ की तरह वस्त्र धारण करता है। किन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि यह अद्वैत आचार्य और नित्यानन्द प्रभु के बीच परिहास चल रहा था। इन्हें अपमान नहीं समझना चाहिए।

खड़दह में कभी-कभी लोग नित्यानन्द प्रभु को शाक्त सम्प्रदाय से सम्बन्धित मान बैठते थे, जिनका दर्शन है अन्तः शाक्तः बहिः शैवः सभायां वैष्णवो मतः। शाक्त सम्प्रदाय के अनुसार कौलावधूत कहलाने वाला व्यक्ति बाहर से शिवजी का महान् भक्त प्रतीत होता है, किन्तु सोचता है भौतिक दृष्टि से। जब ऐसा व्यक्ति वैष्णवों की सभा में होता है, तो वह वैष्णव प्रतीत होता है। वास्तव में नित्यानन्द प्रभु इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित नहीं थे। वे सदैव वैदिक संन्यासी के एक ब्रह्मचारी सेवक थे। वास्तव में वे परमहंस थे। कभी- कभी उन्हें लक्ष्मीपति तीर्थ के शिष्य माने जाते हैं। ऐसा मान लेने पर वे मध्व-सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। वे बंगाल के तान्त्रिक सम्प्रदाय से सम्बन्धित नहीं थे।

तुमि खेते पार दश-विश मानेर अन्न ।

आमि ताहा काँहा पाब दरिद्र ब्राह्मण ॥86॥

तुमि-आप; खेते-खा; पार-सकते हो; दश-विश-दस बीस; मानेर-मन; अन्न-भात; आमि-मैं; ताहा–वह; काँहा-कहाँ; पाब-पाऊँगा; दरिद्र–दरिद्र; ब्राह्मण-ब्राह्मण।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु पर लांछन लगाते हुए अद्वैत आचार्य ने कहा, "आप तो दस-बीस मन चावल खा सकते हो। मैं तो ठहरा निर्धन ब्राह्मण। भला मैं इतना चावल कैसे ला सकता हूँ?

तात्पर्य

एक मन लगभग चार किलोग्राम के बराबर होता है।

ये पाञाछ मुष्ट्येक अन्न, ताहा खाञा उठ ।

पागलामि ना करिह, ना छड़ाइओ झुठ ॥87॥

ये पाञाछ–आपको जो कुछ मिला है; मुष्टि-एक-एक मुट्ठी; अन्न–अन्न (भात); ताहा-वह; खाञा-खाओ; उठ–कृपया उठो; पागलामि-पागलपन; ना-नहीं; करिह-करो; ना-नहीं; छड़ाइओ-बिखेरो; झुठ-बचा हुआ भोजन।

अनुवाद

"जो कुछ आपको दिया है, भले ही वह मुट्ठी-भर चावल क्यों न हो, कृपया उसे खाओ और उठ जाओ। अपना पागलपन मत दिखलाओ और जूठन इधर-उधर मत बिखराओ।"

एइ मत हास्य-रसे करेन भोजन ।

अर्ध-अर्ध खाञा प्रभु छाड़ेन व्यञ्जन ॥88 ॥

एइ मत-इस प्रकार; हास्य-रसे-हास्य में; करेन-करते हैं; भोजन-भोजन; अर्ध-अर्ध-आधा आधा; खाञा खाने के बाद; प्रभु–महाप्रभु; छाड़ेन–छोड़ दिया; व्यञ्जन-सभी व्यंजन।

अनुवाद

इस तरह नित्यानन्द प्रभु तथा चैतन्य महाप्रभु ने भोजन ग्रहण किया और अद्वैत आचार्य से परिहास किया। श्री चैतन्य महाप्रभु को जितनी तरकारियाँ परोसी गयी थीं, उन्होंने उनमें से हर एक को आधा-आधा खाकर छोड़ दिया।

सेइ व्यञ्जन आचार्य पुनः करेन पूरण ।

एइ मत पुनः पुनः परिवेशे व्यञ्जन ॥89॥

सेइ व्यञ्जन-वही आधे खाये व्यंजन; आचार्य-अद्वैत आचार्य; पुनःपुनः; करेन-करते हैं; पूरण–पूरा; एइ मत-इस तरह; पुनः पुनः–बार बार; परिवेशे-बाँटते; व्यञ्जन-व्यंजन।

अनुवाद

जब पात्र की आधी तरकारी समाप्त हो जाती, तो अद्वैत आचार्य फिर से उसे पूरा भर देते। इस तरह ज्योंही महाप्रभु आधा व्यंजन समाप्त करते कि अद्वैत आचार्य पुनः पुनः उसे पूरा भर देते।

दोना व्यञ्जने भरि' करेन प्रार्थन ।

प्रभु बलेन—आर कत करिब भोजन ॥90॥

दोना-दोना (पात्र); व्यञ्जने-व्यंजनों से; भरि'–भरकर; करेन-करते; प्रार्थन-प्रार्थना; प्रभु बलेन-चैतन्य महाप्रभु कहते हैं; आर-और ; कत-कितना; करिब–मैं कर सकता हूँ; भोजन-भोजन।

अनुवाद

दोने को तरकारी से भरकर अद्वैत आचार्य ने उनसे प्रार्थना की कि वे और खायें। किन्तु चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं और कितना खा सकता हूँ?"

आचार्य कहे—ये दियाछि, ताहा ना छाड़िबा ।

एखन ये दिये, तार अर्धक खाइबा ॥91॥

आचार्य कहे-अद्वैत आचार्य ने कहा; ये दियाछि-मैंने जो कुछ दिया है; ताहा ना छाड़िबा-उसे मत छोड़िये; एखन-अब; ये-जो कुछ; दिये-मैं दे रहा हूँ; तार अर्धेक-उसका आधा; खाइबा-आप खाओगे।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "कृपा करके मेरे द्वारा परोसे हुए अन्न को न छोड़े। अब मैं जो भी दे रहा हूँ, उसका आप आधा खाकर छोड़ सकते हैं।"

नाना यत्न-दैन्ये प्रभुरे कराइल भोजन ।

आचार्येर इच्छा प्रभु करिल पूरण ॥92 ॥

नाना यत्न-दैन्ये-इस प्रकार नाना प्रयासों से और नम्रता से; प्रभुरे–चैतन्य महाप्रभु को; कराइल-करवाया; भोजन-भोजन; आचार्येर इच्छा-अद्वैत आचार्य की इच्छा; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु ने; करिल-की; पूरण–पूरी।

अनुवाद

इस तरह विविध प्रकार से अनुनय-विनय करके अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु एवं नित्यानन्द प्रभु को भोजन कराया। इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य की सारी इच्छाएँ पूरी कीं।

नित्यानन्द कहे–आमार पेट ना भरिल ।

लञा याह, तोर अन्न किछु ना खाइल ॥ 93॥

नित्यानन्द कहे-नित्यानन्द प्रभु ने कहा; आमार-मेरा; पेट-पेट; ना-नहीं; भरिल–भरा; लञा–लेकर; याह-जाओ; तोर-आपका; अन्न-भोजन; किछु ना खाइल-मैने कुछ नहीं खाया है।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने पुनः परिहास में कहा, "मेरा पेट अब भी भरा नहीं है। अपना भोजन ले जाइये। मैंने इसमें से कुछ भी नहीं खाया है।"

एत बलि' एक-ग्रास भात हाते लञा ।

उझालि' फेलिल आगे येन क्रुद्ध हञा ॥ 94॥

एत बलि'-यह कहकर; एक-ग्रास–एक ग्रास भर; भात-भात; हाते-हाथ में; लञा–लेकर; उझालि'–छोड़कर; फेलिल–फेंक दिया; आगे-सामने; येन-जैसे, मानो; क्रुद्ध हञा क्रुद्ध होकर।

अनुवाद

यह कहकर नित्यानन्द प्रभु ने एक मुट्ठी चावल लिया और उसे फर्श पर उनके आगे फेंक दिया, मानों वे क्रुद्ध हों।

भात दुइ-चारि लागे आचार्येर अङ्गे ।

भात अड़े लञा आचार्य नाचे बहु-रङ्गे ॥ 95॥

भात दुइ-चारि–फेंके भात के दो चार दाने; लागे-स्पर्श कर गये; आचार्येर अङ्गे-अद्वैत आचार्य के शरीर को; भात-भात; अङ्गे-उनके शरीर पर; लञा–के साथ; आचार्य नाचे-आचार्य नाचने लगे; बहु-रङ्गे–कई प्रकार से।

अनुवाद

जब इस फेंके हुए चावलों के दो-चार दाने अद्वैत आचार्य के शरीर से लगे, तो वे उसी तरह चावल लगे शरीर से तरह-तरह से नाचने लगे।

अवधूतेर झुठा लागिल मोर अङ्गे ।

परम पवित्र मोरे कैल एइ ढङ्गे ॥ 96॥

अवधूतेर झुठा-अवधूत के झूठे भोजन से; लागिल-स्पर्श किया; मोर-मेरे; अङ्गे-शरीर पर; परम पवित्र-परम पवित्र; मोरे-मुझे; कैल–किया; एइ–यह; ढङ्गे–व्यवहार।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु द्वारा फेंके गये चावलों का अद्वैत आचार्य के शरीर से स्पर्श हुआ, तो आचार्य ने परमहंस नित्यानन्द द्वारा फेंके गये उस उच्छिष्ट के स्पर्श से अपने आपको परम पवित्र बना समझा। अतः वे नाचने लगे।

तात्पर्य

अवधूत शब्द ऐसे व्यक्ति का सूचक है, जो समस्त विधि-विधानों से परे है। कभी-कभी नित्यानन्द प्रभु संन्यासियों के सारे विधि-विधानों का पालन न करते हुए उन्मत्त अवधूत का आचरण प्रदर्शित करते थे। उन्होंने अपने उच्छिष्ट भोजन को भूमि पर फेंक दिया था, जिसका कुछ भाग अद्वैत आचार्य के शरीर से छू गया था। अद्वैत आचार्य ने इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया, क्योंकि उन्होंने अपने आपको स्मार्त ब्राह्मण के रूप में प्रस्तुत किया। नित्यानन्द प्रभु द्वारा फेंके गये उच्छिष्ट के स्पर्श से अद्वैत आचार्य ने अनुभव किया मानों उनके समस्त स्मार्त कलुष धुल गये हों। शुद्ध वैष्णव का उच्छिष्ट महामहाप्रसाद कहलाता है। यह पूर्णतया आध्यात्मिक होता है और विष्णु-तुल्य माना जाता है। ऐसा उच्छिष्ट सामान्य नहीं होता। गुरु को परमहंस समझना चाहिए। गुरु वर्णाश्रम-व्यवस्था के दायरे में नहीं आता। गुरु तथा उसके ही तुल्य परमहंसों या शुद्ध वैष्णवों का उच्छिष्ट पवित्र करने वाला होता है। जब कोई सामान्य व्यक्ति

ऐसे प्रसाद का स्पर्श करता है, तो उसका मन शुद्ध हो जाता है और वह शुद्ध ब्राह्मण के पद तक ऊपर उठ जाता है। अद्वैत आचार्य का व्यवहार तथा उनके कथन उन सामान्य लोगों के समझने के लिए हैं, जो आध्यात्मिक शक्ति से अवगत नहीं होते और प्रामाणिक गुरु तथा शुद्ध वैष्णवों के उच्छिष्ट की शक्ति को नहीं जानते।

तोरे निमन्त्रण करि' पाइनु तार फल ।

तोर जाति-कुल नाहि, सहजे पागल ॥ 97॥

तोरे-आपको; निमन्त्रण-निमंत्रण; करि'–देकर; पाइनु–मुझे बदले में मिला है; तार-उसका; फल-फल; तोर-आपकी; जाति-कुल नाहि-जाति कुल और परिवार को कुछ पता नहीं; सहजे–स्वभाव से; पागल-पागल हो।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने हँसी-हँसी में कहा, "हे प्रिय नित्यानन्द, मैंने आपको आमन्त्रित किया और उसका फल भी मुझे मिल चुका है। आपकी कोई जाति या कुल निश्चित नहीं है। आप स्वभाव से पागल हो।"

तात्पर्य

सहजे पागल शब्द यह सूचित करते हैं कि नित्यानन्द प्रभु दिव्य परमहंस अवस्था में स्थित थे। चूँकि वे सदैव राधा-कृष्ण तथा उनकी सेवा का स्मरण किया करते थे, अतएव यह दिव्य पागलपन था। श्री अद्वैत आचार्य इसी तथ्य की ओर संकेत कर रहे थे।

आपनार सम मोरे करिबार तरे ।

झुठा दिले, विप्र बलि' भय ना करिले ॥98॥

आपनार सम-अपने समान; मोरे-मुझे; करिबार तरे-बनाने के लिए; झुठा-जूठा भोजन; दिले-आपने दिया है; विप्र बलि'–ब्राह्मण समझकर; भय–भय; ना करिले-आपने नहीं किया।

अनुवाद

"आपने मुझे भी अपने समान पागल बनाने के लिए ही मेरे ऊपर उच्छिष्ट फेंका है। आपको इसका भी डर नहीं हुआ कि मैं एक ब्राह्मण हूँ।"

तात्पर्य

आपनार सम शब्द इस बात के सूचक हैं कि अद्वैत आचार्य अपने आपको स्मार्त ब्राह्मण मानते थे और नित्यानन्द प्रभु को शुद्ध वैष्णव के दिव्य पद पर अवस्थित मानते थे। नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें अपना उच्छिष्ट इसीलिए दिया जिससे वे उन्हीं के समान अवस्था को प्राप्त हों और शुद्ध वैष्णव या परमहंस बन सकें। अद्वैत आचार्य का कथन इसका सूचक है कि परमहंस वैष्णव दिव्य पद पर आसीन होता है। शुद्ध वैष्णव पर स्मार्त ब्राह्मणों के विधि-विधान लागू नहीं होते। इसीलिए अद्वैत आचार्य ने कहा- आपनार सम मोरे करिबार तरे-मुझे आपके अपने स्तर पर उन्नत करने के लिए।" शुद्ध वैष्णव या परमहंस उच्छिष्ट (महा-प्रसाद) को आध्यात्मिक मानता है। वह उसे भौतिक या इन्द्रियतृप्ति करने वाला नहीं मानता। वह महाप्रसाद को सामान्य दाल-भात नहीं, अपितु आध्यात्मिक वस्तु मानता है। शुद्ध वैष्णव के उच्छिष्ट की बात और ही है, यहाँ तक कि यदि इसे चण्डाल भी जूठा कर दे, तो भी इसके दूषित होने का प्रश्न नहीं उठता। वास्तव में ही, इसकी आध्यात्मिक महत्ता बनी रहती है। अतः ऐसे महाप्रसाद को खाने या छूने से ब्राह्मण पतित नहीं होता; उच्छिष्ट को छू लेने से दूषित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। निस्सन्देह, ऐसा महाप्रसाद खाने से मनुष्य सारे भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाता है। ऐसा शास्त्रों का मत है।

नित्यानन्द बले,—एइ कृष्णेर प्रसाद ।

इहाके 'झुठा' कहिले, तुमि कैले अपराध ॥ 99 ॥

नित्यानन्द बले-प्रभु नित्यानन्द ने कहा; एइ–यह; कृष्णेर प्रसाद-भगवान् कृष्ण का महाप्रसाद; इहाके-इसे; झुठा-जूठा भोजन; कहिले–यदि आप कहते हो; तुमि-आपने; कैले–किया है; अपराध-अपराध।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया, "यह भगवान् कृष्ण का उच्छिष्ट है। यदि आप इसे सामान्य जूठन समझते है, तो आपने अपराध किया है।"

तात्पर्य

बृहद् विष्णु पुराण में बतलाया गया है कि जो महाप्रसाद को सामान्य दाल-भात मानता है, वह महान् अपराध करता है। सामान्य खाद्य वस्तुएँ स्पृश्य तथा अस्पृश्य होती हैं, किन्तु प्रसाद के साथ ऐसा द्वैतभाव नहीं होता। प्रसाद दिव्य होता है। उसमें उसी तरह कोई विकार या कलुष नहीं होता, जिस तरह विष्णु के शरीर में कोई विकार या कलुष

नहीं होता। इस तरह कोई, चाहे वह ब्राह्मण ही क्यों न हो, यदि द्वैतभाव रखता है, तो निश्चित रूप से उसे कोढ़ हो जायेगा और वह अपने सारे परिवार वालों के द्वारा त्यक्त हो जायेगा। ऐसा अपराधी नरक जायेगा और वहाँ से कभी नहीं लौटेगा। यह बृहद् विष्णु पुराण का आदेश है।

शतेक सन्न्यासी यदि कराह भोजन ।

तबे एइ अपराध हइबे खण्डन ॥ 100 ॥

शतेक सन्न्यासी–एक सौ संन्यासी; यदि यदि; कराह-आप करवाते हो; भोजन-भोजन; तबे-तब; एई–यह; अपराध-अपराध; हइबे-होगा; खण्डन–खण्डन।

अनुवाद

श्रील नित्यानन्द प्रभु ने आगे कहा, "यदि आप एक सौ संन्यासियों को अपने घर बुलाकर उन्हें भरपेट भोजन कराएंगे, तो आपका अपराध खण्डित हो सकेगा।"

आचार्य कहे—ना करिब सन्न्यासि-निमन्त्रण ।

सन्न्यासी नाशिल मोर सब स्मृति-धर्म ॥101॥

आचार्य कहे-अद्वैत आचार्य ने कहा; ना करिब–मैं कभी नहीं करूँगा; सन्न्यासि-निमन्त्रण-संन्यासियों को निमंत्रण; सन्न्यासी-संन्यासी; नाशिल-नष्ट कर दिया है; मोर-मेरा; सब-सब; स्मृति-धर्म-स्मृति शास्त्र के विधि विधान।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया, "अब मैं कभी किसी संन्यासी को नहीं बुलाऊँगा, क्योंकि एक संन्यासी ने ही मेरे सारे ब्राह्मण स्मृति-नियमों को कलुषित कर दिया है।"

एत बलि' दुइ जने कराइल आचमन ।

उत्तम शय्याते लइया कराइल शयन ॥102॥

एत बलि'-यह कहकर; दुइ जने-दोनों को; कराइल आचमन-उनके हाथ और मुख धुलाए; उत्तम–उत्तम; शय्याते-बिस्तर पर; लइया-लेकर; कराइल-करवाया; शयन-शयन।

अनुवाद

इसके बाद अद्वैत आचार्य ने दोनों प्रभुओं के हाथ और मुँह धुलवाये। फिर उन्हें उत्तम शय्या पर ले जाकर विश्राम कराने के लिए लिटा दिया।

लवङ्ग एलाची-बीज—उत्तम रस-वास ।

तुलसी-मञ्जरी सह दिल मुख-वास ॥103॥

लवङ्ग-लौंग; एलाची–इलायची; बीज-बीज; उत्तम–उत्तम; रस-वास–रसीले मसाले; तुलसी-मञ्जरी-तुलसी मंजरी; सह–के साथ; दिल-दिया; मुख-वास–मुखवास (सुगंध)।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने दोनों जनों को लौंग तथा इलायची के साथ तुलसी-मंजरी का सेवन करवाया। इस तरह उनके मुखों में सुगन्ध आने लगी।

सुगन्धि चन्दने लिप्त कैल कलेवर ।

सुगन्धि पुष्प-माला आनि' दिल हृदय-उपर ॥104॥

सु-गन्धि–सुगन्धित; चन्दने-चन्दन का लेप; लिप्त-लगाया; कैल-किये; कलेवर–शरीर; सु-गन्धि–सुंगधित; पुष्प-माला-पुष्पमालाएँ; आनि'–लाकर; दिल-दीं; हृदय-उपर-वक्ष स्थल पर।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने दोनों प्रभुओं के शरीरों पर चन्दन का लेप किया और फिर उनके वक्षस्थलों पर अत्यन्त सुगन्धित फूलों की मालाएँ पहनाईं।

आचार्य करिते चाहे पाद-संवाहन ।

सङ्कुचित हञा प्रभु बलेन वचन ॥ 105॥

आचार्य-श्री अद्वैत आचार्य; करिते-करने के लिए; चाहे-चाहते थे; पाद-संवाहन-पाँव दबाना; सङ्कचित-संकुचित; हञा–होकर; प्रभु–महाप्रभु; बलेन-कहने लगे; वचन-वचन।

अनुवाद

जब महाप्रभु शय्या पर लेट गये, तो अद्वैत आचार्य उनके पाँव दबाना चाहते थे, किन्तु महाप्रभु को संकोच हो रहा था, अतएव वे अद्वैत आचार्य से इस प्रकार बोले।

बहुत नाचाइले तुमि, छाड़ नाचान।

मुकुन्द-हरिदास लइया करह भोजन॥ 106॥

बहुत-बहुत, कई तरह; नाचाइले–मुझे नचाया है; तुमि-आपने; छाड़-छोड़ दो; नाचान-नचाना; मुकुन्द-मुकुन्द; हरिदास-हरिदास; लइया–के साथ; करहे-करो; भोजन-भोजन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "अद्वैत आचार्य, आपने मुझे बहुत नाच नचाया। अब आप ऐसा करना छोड़ दीजिये। मुकुन्द और हरिदास के साथ जाकर भोजन करें।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु यहाँ पर अद्वैत आचार्य को यह बतला रहे हैं कि संन्यासी के लिए न तो अच्छी शय्या पर लेटना शोभा देता है, न लौंग इलायची खाना और न ही पूरे शरीर पर चन्दन-लेप करना। उसे सुगन्धित फूल-मालाएँ स्वीकार करना और शुद्ध वैष्णव से पाँव दबवाना भी शोभा नहीं देता। चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आपने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पहले ही मुझे नाच नचा दिया है। कृपा करके अब रुक जाइये। अब जाकर मुकुन्द तथा हरिदास के साथ भोजन कीजिये।"

तबे त' आचार्य सङ्गे लञा दुइ जने।

करिल इच्छाय भोजन, ये आछिल मने॥ 107॥

तबे त'–तत्पश्चात्; आचार्य-अद्वैत आचार्य; सङ्गे–के साथ; लञा–लेकर; दुइ जने-दोनों व्यक्ति, मुकुन्द तथा हरिदास; करिल–किया; इच्छाय-इच्छानुसार; भोजन-भोजन; ये आछिल मने-मन में जो कुछ था।

अनुवाद

तत्पश्चात् अद्वैत आचार्य ने मुकुन्द तथा हरिदास के साथ प्रसाद ग्रहण किया और उन तीनों ने भरपेट इच्छानुसार भोजन किया।

शान्तिपुरेर लोक शुनि' प्रभुर आगमन ।

देखिते आइला लोक प्रभुर चरण ॥ 108॥

शान्तिपुरेर लोक-शान्तिपुर के सभी लोग; शुनि'–सुनकर; प्रभुर आगमन-श्री चैतन्य महाप्रभु का आगमन; देखिते आइला-देखने आये; लोक-सभी लोग; प्रभुर चरण–प्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

जब शान्तिपुर के लोगों ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ ठहरे हैं, तो वे तुरन्त ही उनके चरणकमलों का दर्शन करने आये।

'हरि' 'हरि' बले लोक आनन्दित हञा ।

चमत्कार पाइल प्रभुर सौन्दर्य देखिञा ॥ 109॥

हरि हरि-हरि हरि, भगवान् का पावन नाम; बले-कहने लगे; लोक-सभी लोग; आनन्दित-आनन्दित होकर; हञा–होकर; चमत्कार–चमत्कार; पाइल–हो गये; प्रभुर-महाप्रभु का; सौन्दर्य-सौन्दर्य; देखिञा–देखकर।

अनुवाद

सारे लोग अत्यन्त हर्षित होकर उच्च स्वर से भगवान् के पवित्र नाम- "हरि! हरि!" का उच्चारण करने लगे। वस्तुतः वे महाप्रभु का सौन्दर्य देखकर वे पूर्णतया आश्चर्यचकित हो गये।

गौर-देह-कान्ति सूर्य जिनिया उज्ज्वल ।

अरुण-वस्त्र-कान्ति ताहे करे झल-मल ॥ 110॥

गौर–गौर वर्ण के; देह-शरीर के; कान्ति–चमक; सूर्य-सूर्य; जिनिया-जीतने वाली; उज्ज्वल-उज्ज्वल; अरुण-लाल; वस्त्र-कान्ति–वस्त्रों की सुन्दरता; ताहे-उसमें; करे-कर रहे थे; झल-मल-झलमल।

अनुवाद

उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त गौर वर्ण शरीर तथा उनकी उज्ज्वल कान्ति को देखा, जो सूर्य के तेज को भी परास्त करने वाली थी। इससे भी बढ़कर उनके केसरिया वस्त्रों का सौन्दर्य था, जो उनके शरीर पर झलमल कर रहे थे।

आइसे याय लोक हर्षे, नाहि समाधान ।

लोकेर सङ्घट्टे दिन हैल अवसान ॥ 111॥

आइसे-आते; याय-जाते ; लोक-सभी लोग; हर्षे–हर्ष में; नाहि-नहीं है; समाधान-समाधान; लोकेर-लोगों की; सङ्गट्टे-भीड़ में; दिन–दिन; हैल–हो गया; अवसान-अन्त।

अनुवाद

लोग बड़े ही हर्ष के साथ आते और जाते थे। इसकी कोई गिनती न थी कि सूर्यास्त तक वहाँ कितने लोग एकत्र हुए थे।

सन्ध्याते आचार्य आरम्भिल सङ्कीर्तन ।

आचार्य नाचेन, प्रभु करेन दर्शन ॥112॥

सन्ध्याते-संध्या में; आचार्य-अद्वैत आचार्य; आरम्भिल-आरम्भ किया; सङ्कीर्तन-संकीर्तन; आचार्य-अद्वैत आचार्य; नाचेन-नाचने लगे; प्रभु–महाप्रभु; करेन-करते; दर्शन-दर्शन।

अनुवाद

शाम होते ही अद्वैत आचार्य ने सामूहिक कीर्तन प्रारम्भ किया। वे स्वयं भी नृत्य करने लगे और महाप्रभु उनका नृत्य देखने लगे।

नित्यानन्द गोसाञि बुले आचार्य धरिञा ।

हरिदास पाछे नाचे हरषित हञा ॥ 113॥

नित्यानन्द गोसाञि-नित्यानन्द प्रभु; बुले-नाचने लगे; आचार्य धरिञा-श्री अद्वैत आचार्य के पीछे पीछे; हरिदास-हरिदास ठाकुर; पाछे-पीछे; नाचे-नाचने लगे; हरषित हञा–हर्षित होकर।

अनुवाद

जब अद्वैत आचार्य नाचने लगे, तो नित्यानन्द प्रभु उनके पीछे पीछे नाचने लगे। हरिदास ठाकुर भी अत्यन्त हर्षित होकर उनके पीछे नाचने लगे।

कि कहिब रे सखि आजुक आनन्द ओर।

चिर-दिने माधव मन्दिरे मोर ॥ 114॥

कि-क्या; कहिब-मैं कहूँ; रे-हे; सखि–मेरी प्यारी सखियों; आजक-आज; आनन्द–आनन्द; ओर-सीमा; चिर-दिने-कई दिनों के बाद; माधव-भगवान् कृष्ण; मन्दिरे–मन्दिर में; मोर-मेरे।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "हे सखियों! मैं क्या कहूँ? आज मुझे सर्वोच्च दिव्य आनन्द प्राप्त हुआ है। अनेकानेक दिनों के बाद भगवान् कृष्ण मेरे घर पधारे हैं।"

तात्पर्य

यह विद्यापति द्वारा विरचित गीत है। कभी-कभी माधव शब्द से भूल से माधवेन्द्र पुरी अर्थ निकाला जाता है। अद्वैत आचार्य माधवेन्द्र पुरी के शिष्य थे, इसीलिए कुछ लोग 'माधव' शब्द का प्रयोग होने से यह अनुमान लगाते हैं कि यह माधवेन्द्र पुरी के लिए आया है। किन्तु यह तथ्य नहीं है। यह गीत मथुरा में कृष्ण की अनुपस्थिति के समय राधारानी से कृष्ण के विरह की स्मृति में रचा गया था। जब श्रीकृष्ण लौट आये, तो यह गीत श्रीमती राधारानी के द्वारा गाया गया था। यह मथुरा-विरह के नाम से विख्यात है।

एइ पद गाओयाइया हर्षे करेन नर्तन।

स्वेद-कम्प-पुलकाश्रु-हुङ्कार-गर्जन ॥ 115॥

एइ पद-यह श्लोक; गाओयाइया-गंवाया; हर्षे–खुशी में; करेन-किया; नर्तन-नृत्य; स्वेद-पसीना; कम्प-कंपन; पुलक-पुलकित होना; अश्रु-खुशी के आँसू; हुङ्कार-हुंकार; गर्जन-गर्जन लेना।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य संकीर्तन टोली का नेतृत्व कर रहे थे और उन्होंने इस श्लोक को बड़े हर्ष से गाया। उनके शरीर में भावमय स्वेद, कँपकँपी, रोमांच, अश्रु तथा कभी-कभी गर्जन और हुंकार का प्राकट्य हो रहा था।

फिरि' फिरि' कभु प्रभुर धरेन चरण ।

चरणे धरिया प्रभुरे बलेन वचन ॥ 116 ॥

फिरि' फिरि'-घूम-घूमकर; कभु-कभी-कभी; प्रभुर–महाप्रभु के; धरेन-पकड़ते; चरण-चरणकमल; चरणे धरिया–चरणकमल पकड़कर; प्रभुरे–महाप्रभु को; बलेन-कहते; वचन–शब्द।

अनुवाद

नाचते हुए अद्वैत आचार्य चक्राकार घूमने लगते और श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लेते। फिर वे उनसे इस प्रकार बोलते।

अनेक दिन तुमि मोरे बेड़ाइले भाण्डिया ।

घरेते पाञाछि, एबे राखिब बान्धिया ॥117॥

अनेक दिन–अनेक दिन; तुमि-आप; मोरे मुझसे; बेड़ाइले-दूर रहे; भाण्डिया-बहकाकर; घरेते-मेरे घर पर; पाञाछि-मुझे मिले हैं; एबे-अब; राखिब-मैं रखूँगा; बान्धिया–बाँध के।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य कहने लगे, "आप बहुत दिनों तक बहकाकर मुझसे बचते रहे। अब आप मेरे घर आये हैं और मैं आपको बाँधकर रखूँगा।"

एत बलि' आचार्य आनन्दे करेन नर्तन ।

प्रहरेक-रात्रि आचार्य कैल सङ्कीर्तन ॥ 118॥

एत बलि'-यह कहकर; आचार्य-अद्वैत आचार्य; आनन्दे-आनन्द में; करेन-करते; नर्तन-नृत्य; प्रहरेक-लगभग तीन घण्टे; रात्रि-रात को; आचार्य श्री अद्वैत आचार्य; कैल सङ्कीर्तन-संकीर्तन किया।

अनुवाद

इस तरह कहते हुए उस रात को अद्वैत आचार्य ने बड़े ही आनन्द के साथ तीन घंटे तक संकीर्तन किया और सारे समय नाचते रहे।

प्रेमेर उत्कण्ठा,—प्रभुर नाहि कृष्ण-सङ्ग ।

विरहे बाड़िल प्रेम-ज्वालार तरङ्ग ॥ 119॥

प्रेमेर उत्कण्ठा-प्रेम का आवेश; प्रभुर–महाप्रभु का; नाहि-नहीं; कृष्ण-सङ्ग-भगवान् कृष्ण के साथ मिलन; विरहे-विरह में; बाड़िल-बढ़ गया; प्रेम-ज्वालार–प्रेम की ज्वालाएँ; तरङ्ग-तरंगें।

अनुवाद

जब अद्वैत आचार्य इस प्रकार नृत्य कर रहे थे, तब चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण के भावोल्लासमय प्रेम की अनुभूति हुई और उनके विरह के कारण प्रेम की लहरें और ज्वालाएँ तीव्रतर हो उठीं।

व्याकुल हञा प्रभु भूमिते पड़िला ।

गोसाञि देखिया आचार्य नृत्य सम्बरिला ॥120॥

व्याकुल हञा-व्याकुल होकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भूमिते-भूमि पर; पड़िला–गिर गये; गोसाञि-प्रभु; देखिया-देखकर; आचार्य-अद्वैत आचार्य; नृत्य-नृत्य; सम्बरिला-रोक दिया।

अनुवाद

भावोल्लास से व्याकुल होकर श्री चैतन्य महाप्रभु सहसा भूमि पर गिर पड़े। यह देखकर अद्वैत आचार्य ने नृत्य करना बन्द कर दिया।

प्रभुर अन्तर मुकुन्द जाने भाल-मते ।

भावेर सदृश पद लागला गाइते ॥ 121॥

प्रभुर–महाप्रभु का; अन्तर–हृदय; मुकुन्द-मुकुन्द; जाने-जानते थे; भाल-मते-अच्छी तरह; भावेर-भाव के अनुसार; सदृश-उचित; पद-श्लोक; लागिला गाइते-गाने लगे।

अनुवाद

जब मुकुन्द ने श्री चैतन्य महाप्रभु के भावोल्लास को देखा, तो वे महाप्रभु की मनोदशा को समझते हुए उनके भाव को पुष्ट करने वाले अनेक पद गाने लगे।

आचार्य उठाइल प्रभुके करिते नर्तन ।

पद शुनि' प्रभुर अङ्ग ना याय धारण ॥ 122 ॥

आचार्य–अद्वैत आचार्य; उठाइल-उठाये; प्रभुके-प्रभु को; करिते-करने के लिए; नर्तन-नृत्य; पद शुनि'–श्लोक सुनकर; प्रभुर–महाप्रभु का; अङ्ग-तन; ना-नहीं; याय–सम्भव; धारण-पकड़ना।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु को उठाया जिससे वे नृत्य कर सकें, किन्तु मुकुन्द द्वारा गाये जाने वाले पदों को सुनकर महाप्रभु को उनके शारीरिक लक्षणों के कारण पकड़े नहीं रखे जा सके।

अश्रु, कम्प, पुलक, स्वेद, गद्गद वचन ।

क्षणे उठे, क्षणे पड़े, क्षणेक रोदन ॥ 123 ॥

अश्रु-अश्रु; कम्प–कम्पन; पुलक-रोम हर्ष होना; स्वेद-पसीना; गद्गद-गद्गद् होना; वचन–शब्द; क्षणे-कभी-कभी; उठे-उठते; क्षणे-कभी-कभी; पड़े-नीचे गिरते; क्षणेक-कभी-कभी; रोदन-रोदन करते।

अनुवाद

उनके नेत्रों से अश्रु गिरने लगे और उनका सारा शरीर काँपने लगा। उन्हें रोमांच हो आया, उनका शरीर स्वेदमय हो गया और उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई। कभी वे उठ खड़े होते और कभी गिर पड़ते, तो कभी रोदन करने लगते।

हा हा प्राण-प्रिय-सखि, कि ना हैल मोरे ।

कानु-प्रेम-विषे मोर तनु-मन जरे ॥124॥

हा हा-हा, हा; प्राण-प्रिय-सखि-प्राण प्रिय सखि; कि ना हैल मोरे-मुझे क्या नहीं हुआ; कानु-प्रेम-विषे–कृष्ण-प्रेम का विष; मोर–मेरे; तनु-शरीर; मन–मन; जरे-कष्ट देता है।

अनुवाद

मुकुन्द गाने लगे, "हे प्राण प्रिय सखि! मेरे साथ क्या-क्या नहीं बीता! कृष्ण के प्रेमरूपी विष के प्रभाव से मेरा शरीर तथा मन दोनों अत्यन्त पीड़ित हैं।

तात्पर्य

जब मुकुन्द ने देखा कि चैतन्य महाप्रभु को भावोल्लासमयी पीड़ा हो रही है और उनके शरीर में कृष्ण के विरह के कारण भाव के लक्षण प्रकट हो रहे हैं, तो वे कृष्ण-मिलन के गीत गाने लगे। अद्वैत आचार्य ने भी नृत्य बन्द कर दिया।

रात्रि-दिने पोड़े मन सोयास्ति ना पाँ ।

याहाँ गेले कानु पाँ, ताहाँ उड़ि' याँ ॥ 125 ॥

रात्रि-दिने–दिन रात; पोड़े-जलता है; मन–मन; सोयास्ति-विश्राम; ना-नहीं; पाँ–पाता हूँ; याहाँ-कहीं; गेले–यदि जाने से ; कानु पाँ-मैं कृष्ण को पा सकता हूँ; ताहाँ-वहाँ; उड़ि'–उड़कर; याँ–मैं जाता हूँ।

अनुवाद

"मेरी भावना इस प्रकार है : मेरा मन दिन-रात जलता है और मुझे तनिक भी आराम नहीं मिलता। यदि कोई ऐसा स्थान हो, जहाँ मैं श्रीकृष्ण से मिलने जा सकें, तो मैं तुरन्त वहाँ उड़कर चली जाऊँ।"

एइ पद गाय मुकुन्द मधुर सुस्वरे ।

शुनिया प्रभुर चित्त अन्तरे विदरे ॥ 126॥

एइ पद-यह श्लोक; गाय-गाया; मुकुन्द-मुकुन्द; मधुर–मधुर; सु-स्वरे–स्वर में; शुनिया-सुनकर; प्रभुर–महाप्रभु का; चित्त-मन; अन्तरे-भीतर; विदरे–टूट गया।

अनुवाद

मुकुन्द ने इस पद को अत्यन्त मधुर स्वर में गाया, किन्तु ज्योंही श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह पद सुना, उनका हृदय विदीर्ण हो गया।

निर्वेद, विषाद, हर्ष, चापल्य, गर्व, दैन्य ।

प्रभुर सहित युद्ध करे भाव-सैन्य ॥ 127॥

निर्वेद–निराशा; विषाद-खिन्नता; हर्ष-हर्ष; चापल्य-अस्थिरता; गर्व–गर्व; दैन्य-दीनता; प्रभुर–महाप्रभु; सहित सहित; युद्ध-युद्ध; करे-करते ; भाव-भाव; सैन्य-सैनिक।

अनुवाद

दिव्य भावों के सारे लक्षण यथा निराशा, खिन्नता, हर्ष, चपलता, गर्व तथा दीनता महाप्रभु के हृदय में सैनिकों की तरह लड़ने लगे।

तात्पर्य

हर्ष का वर्णन भक्तिरसामृत-सिन्धु में हुआ है। हर्ष का अनुभव तब होता है, जब किसी को जीवन का लक्ष्य प्राप्त हो जाता है, फलस्वरूप वह अत्यन्त प्रसन्न होता है। हर्ष होने पर शरीर काँपता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं, पसीना छूटता है, अश्रु आते हैं और भावावेग तथा उन्माद का विस्फोट होता है। मुँह फूल जाता है और व्यक्ति जड़ता तथा भ्रम का अनुभव करता है। जब मनुष्य को इच्छित लक्ष्य प्राप्त हो जाता है और वह अपने आपको भाग्यशाली समझता है, तो उसके शरीर की कान्ति बढ़ जाती है। जब व्यक्ति अपने गुण एवं महानता के भावों के कारण किसी की परवाह नहीं करता, तो यह गर्व कहलाता है। इस स्थिति में मनुष्य स्तुति करता है और किसी के प्रश्नों का उत्तर नहीं देता। अपने शरीर को देखना, अपनी इच्छाओं को छिपाना तथा अन्यों के वचनों की परवाह न करना 'गर्व' भाव के लक्षण हैं।

जर-जर हैल प्रभु भावेर प्रहारे ।

भूमिते पड़िल, श्वास नाहिक शरीरे ॥128॥

जर-जर–जर्जर; हैल–हो गये; प्रभु–महाप्रभु; भावेर-भाव के; प्रहारे-आक्रमण, प्रहार; भूमिते-भूमि पर; पड़िल-गिर गये; श्वास-श्वास; नाहिक–नहीं था; शरीरे-शरीर में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का सारा शरीर विविध भाव-लक्षणों के प्रहार से जर्जर होने लगा। फलस्वरूप वे तुरन्त ही भूमि पर गिर गये और उनकी साँस रुक-सी गई।

देखिया चिन्तित हैला यत भक्त-गण ।

आचम्बिते उठे प्रभु करिया गर्जन ॥129॥

देखिया-देखकर; चिन्तित–चिन्तित; हैला-हो गये; यत–सभी; भक्त-गण-भक्तगण; आचम्बिते-अचानक; उठे-उठ गये; प्रभु–महाप्रभु; करिया-करके; गर्जन-गर्जना।

अनुवाद

महाप्रभु की यह दशा देखकर सारे भक्त अत्यन्त चिन्तित हो उठे। तभी महाप्रभु सहसा उठ खड़े हुए और गर्जना करने लगे।

'बल्' 'बल्' बले, नाचे, आनन्दे विह्वल ।

बुझन ना याय भाव-तरङ्ग प्रबल ॥ 130॥

बल् बल्बोलो, बोलो; बले–महाप्रभु ने कहा; नाचे-नृत्य करते हैं; आनन्दे-आनन्द में; विह्वल-विह्वल होकर; बुझन-समझना; ना याय-नहीं सम्भव; भाव-तरङ्ग-भाव तरंगों के आवेश को; प्रबल-प्रबल।

अनुवाद

महाप्रभु ने उठकर कहा, "बोलते रहो! बोलते रहो!" इस तरह वे आनन्द-विभोर होकर नाचने लगे। कोई भी उनके इस भाव की प्रबल तरंगों को जान नहीं सका।

नित्यानन्द सङ्गे बुले प्रभुके धरिञा ।

आचार्य, हरिदास बुले पाछे त' नाचिञा ॥ 131॥

नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; सङ्गे–के साथ; बुले-चलने लगे; प्रभुके–महाप्रभु को; धरिञा-पकड़कर; आचार्य-अद्वैत आचार्य; हरिदास–ठाकुर हरिदास; बुले-चलने लगे; पाछे-पीछे; त-अवश्य; नाचिञा–नृत्य करते हुए।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ चलने लगे, जिससे वे गिरे नहीं और अद्वैत आचार्य तथा हरिदास ठाकुर नाचते हुए उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

एइ मत प्रहरेक नाचे प्रभु रङ्गे ।

कभु हर्ष, कभु विषाद, भावेर तरङ्गे ॥132॥

एइ मत-इस प्रकार; प्रहरेक-लगभग तीन घण्टों तक; नाचे-नृत्य किया; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; रङ्गे-भावावेश में; कभु-कभी-कभी; हर्ष-हर्ष; कभु-कभी-कभी; विषाद-उदासीनता; भावेर-भावावेश की; तरङ्गे–तरंगों में।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु कम-से-कम तीन घंटे नृत्य करते रहे। कभी-कभी उनमें हर्ष, विषाद तथा अन्य भावों की अनेक तरंगे दृष्टिगोचर होती थीं।

तिन दिन उपवासे करिया भोजन ।

उद्दण्ड-नृत्येते प्रभुर हैल परिश्रम ॥133 ॥

तिन दिन-तीन दिन; उपवासे-उपवास में; करिया-करके; भोजन-भोजन; उद्दण्ड-जोर से कूदना; नृत्येते-नृत्य में; प्रभुर–महाप्रभु को; हैल-हो गई; परिश्रम-थकावट।

अनुवाद

महाप्रभु तीन दिनों से उपवास कर रहे थे और उसके बाद उन्होंने पर्याप्त भोजन किया था। अतएव जब वे नाचे और ऊँचा कूदे, तो उन्हें थोड़ी थकान हो आई।

तबु त' ना जाने श्रम प्रेमाविष्ट हञा ।

नित्यानन्द महाप्रभुके राखिल धरिञा ॥ 134॥

तबु–तथापि; त'–निश्चित रूप से; ना जाने-अनुभव नहीं कर रहे थे; श्रम–श्रम, थकान; प्रेम-आविष्ट-प्रेम में डूबकर; हञा–होकर; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; महाप्रभुके–चैतन्य महाप्रभु को; राखिल-रोक दिया; धरिञा-पकड़कर।

अनुवाद

किन्तु भगवत् प्रेम में पूर्णतः मग्न होने के कारण महाप्रभु थकान का अनुभव नहीं कर रहे थे। फिर भी नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें पकड़ लिया और उन्हें नाचने से रोका।

आचार्य-गोसाञि तबे राखिल कीर्तन ।

नाना सेवा करि' प्रभुके कराइल शयन ॥ 135॥

आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य; तबे-तब; राखिल-रोक दिया; कीर्तन-कीर्तन; नाना-नाना प्रकार की; सेवा–सेवाएँ; करि' करके; प्रभुके–महाप्रभु को; कराइल-करवाया; शयन–विश्राम।

अनुवाद

यद्यपि महाप्रभु थके हुए थे, किन्तु नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें पकड़कर शान्त किया। उस समय अद्वैत आचार्य ने कीर्तन समाप्त कर दिया और तरह-तरह की सेवाएँ करके महाप्रभु को विश्राम हेतु शयन करवाया।

एइ-मत दश-दिन भोजन-कीर्तन ।

एक-रूपे करि' करे प्रभुर सेवन ॥ 136॥

एइ-मत-इस प्रकार; दश-दिन-लगातार दस दिन; भोजन-कीर्तन-भोजन करना और कीर्तन करना; एक-रूपे-बिना परिवर्तन के; करि'–करके; करे-की; प्रभुर-महाप्रभु की; सेवन–सेवा।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने इस प्रकार लगातार दस दिनों तक शाम के समय भोज और कीर्तन का आयोजन किया। वे बिना किसी परिवर्तन के महाप्रभु की इस तरह सेवा करते रहे।

प्रभाते आचार्यरत्न दोलाय चड़ाञा ।

भक्त-गण-सङ्गे आइला शचीमाता लञा ॥137॥

प्रभाते-प्रातः काल; आचार्यरत्न–चन्द्रशेखर; दोलाय-पालकी में; चड़ाञा-बैठाकर; भक्त-गण-सङ्गे–भक्तों सहित; आइला–आया; शची-माता-माता शची को; लञा-लेकर।

अनुवाद

प्रातःकाल चन्द्रशेखर शचीमाता को उनके घर से पालकी में बैठाकर अनेक भक्तों समेत ले आये।

नदीया-नगरेर लोक—स्त्री-बालक-वृद्ध ।

सब लोक आइला, हैल सङ्घट्ट समृद्ध ॥ 138॥

नदीया-नदिया नामक; नगरेर–नगर के; लोक-लोग; स्त्री-महिलाएँ; बालक-बालक; वृद्ध–वृद्ध; सब लोक-सब लोग; आइला–आये; हैल-हो गई; सङ्घट्ट-भीड़; समृद्ध-विशाल।

अनुवाद

इस प्रकार नदिया नगर के सारे लोग–जिसमें स्त्रियाँ, बालक तथा वृद्ध सम्मिलित थे-वहाँ आये। इस तरह वहाँ विशाल भीड़ एकत्र हो गई।

प्रातः-कृत्य करि' करे नाम-सङ्कीर्तन ।

शचीमाता लञा आइला अद्वैत-भवन ॥139॥

प्रातः-कृत्य-प्रातः काल के दैनिक कार्यों से; करि'-निवृत्त होकर; करे-कर रहे थे; नाम-सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण मंत्र का संकीर्तन; शची-माता-माता शची; लञा–के साथ; आइला–आये; अद्वैत-भवन-अद्वैत आचार्य के घर पर।

अनुवाद

प्रातःकाल शौच आदि दैनिक कृत्यों से निवृत्त होने के बाद जब महाप्रभु हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर रहे थे, तभी शचीमाता के साथ लोग अद्वैत आचार्य के घर पहुँचे।

शची-आगे पड़िला प्रभु दण्डवत् हञा ।

कान्दिते लागिला शची कोले उठाइञा ॥ 140॥

शची-आगे-माता शची के सामने; पड़िला–गिर गये; प्रभु–महाप्रभु; दण्ड-वत्-दण्डवत्; हजा–होकर; कान्दिते-रोने; लागिला-लगी; शची–माता शची; कोले–गोद में; उठाइञा–लेकर।

अनुवाद

ज्योंही शचीमाता वहाँ पहुँचीं, तो चैतन्य महाप्रभु उनके चरणों में दण्ड के समान गिर पड़े। शचीमाता महाप्रभु को गोद में लेकर रोने लगीं।

दोंहार दर्शने दुँहे हइला विह्वल ।

केश ना देखिया शची हइला विकल ॥ 141॥

दोंहार दर्शने–एक दूसरे को देखकर; दुँहे-वे दोनों; हइला–हो गये; विह्वल-विह्वल; केश–बाल; ना-न; देखिया-देखकर; शची–माता शची; हइला–हो गईं; विकल-व्याकुल।

अनुवाद

एक-दूसरे को देखकर दोनों विह्वल हो उठे। महाप्रभु के शिर को केशविहीन देखकर शचीमाता अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठीं।

अङ्ग मुछे, मुख चुम्बे, करे निरीक्षण ।

देखिते ना पाय, —अश्रु भरिल नयन ॥142॥

अङ्ग-शरीर; मुछे-थपकती हैं; मुख-मुख; चुम्बे-चूमती हैं; करे-करती हैं; निरीक्षण-देखती हैं; देखिते-देखने के लिए; ना पाय-सक्षम नहीं; अश्रु-अश्रु; भरिल-भरे; नयन–नयन।

अनुवाद

स्नेहवश वे महाप्रभु के शरीर पर हाथ फेरने लगीं। कभी वे मुख चूमतीं और ध्यान से उन्हें देखने का प्रयत्न करतीं, किन्तु अश्रुपूरित नेत्र होने के कारण वे देख न सकीं।

कान्दिया कहेन शची, बाछारे निमाञि ।

विश्वरूप-सम ना करिह निठुराइ ॥ 143॥

कान्दिया-रोते हुए; कहेन–कहा; शची-माता शची; बाछारे-मेरे प्रिय पुत्र; निमाञि-हे निमाइ; विश्वरूप-विश्वरूप; सम-की तरह; ना करिह-न करो; निठुराइ-अत्याचार।

अनुवाद

यह समझकर कि चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण कर लिया है, शचीमाता ने रोते हुए महाप्रभु से कहा, "मेरे दुलारे निमाइ! तुम अपने बड़े भाई विश्वरूप की तरह निष्ठुर न बनो।"

सन्न्यासी हइया पुनः ना दिल दरशन ।

तुमि तैछे कैले मोर हइबे मरण ॥144॥

सन्न्यासी-संन्यासी; हइया–होकर; पुनः–पुनः; ना-न; दिल-दिया; दरशन-दर्शन; तुमि-तुम; तैछे-उस प्रकार; कैले–यदि करते हो; मोर-मेरी; हइबे-हो जायेगी; मरण-मृत्यु।

अनुवाद

शचीमाता ने कहा, "विश्वरूप ने संन्यास लेने के बाद फिर मुझे कभी दर्शन नहीं दिया। यदि तुम उसी की तरह करोगे, तो तुम समझ लो कि निश्चित रूप से मेरी मृत्यु हो जायेगी।"

कान्दिया बलेन प्रभु—शुन, मोर आइ ।

तोमार शरीर एइ, मोर किछु नाइ ॥ 145 ॥

कान्दिया-रोते हुए; बलेन-कहा; प्रभु–महाप्रभु; शुन-सुन; मोर-मेरी; आइ-माता; तोमार-आपका; शरीर-शरीर; एइ–यह; मोर-मेरा; किछु-कुछ; नाइ–नहीं है।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "हे माता! कृपया सुनिये। यह शरीर आपका है। मेरा अपना कुछ भी नहीं है।"

तोमार पालित देह, जन्म तोमा हैते ।

कोटि जन्मे तोमार ऋण ना पारि शोधिते ॥146॥

तोमार-आपका; पालित–पाला पोसा; देह-शरीर; जन्म-जन्म; तोमा-आप; हैते–से; कोटि-लाखों; जन्मे–जन्मों में; तोमार-आपका; ऋण-ऋण; ना-नहीं; पारि-सक्षम हूँ; शोधिते-चुकाने में।

अनुवाद

यह शरीर आपके द्वारा पाला-पोसा गया है और यह आपसे ही उत्पन्न है। मैं करोड़ों जन्मों में भी यह ऋण नहीं चुका सकता।

जानि' वा ना जानि' कैल यद्यपि सन्न्यास ।

तथापि तोमारे कभु नहिब उदास ॥147॥

जानि'–जानकर; वा–अथवा; ना-न; जानि'–जानकर; कैल-स्वीकार किया; यद्यपि यद्यपि; सन्न्यास-संन्यास; तथापि-तथापि; तोमारे-आपसे; कभु-कभी भी; नहिब-नहीं होऊँगा; उदास-उदासीन, विरक्त।

अनुवाद

"जाने या अनजाने मैंने यह संन्यास स्वीकार किया है। फिर भी मैं आपसे कभी विमुख नहीं होऊँगा।"

तुमि याहाँ कह, आमि ताहाडि-रहिब ।

तुमि येइ आज्ञा कर, सेइ त' करिब ॥ 148॥

तुमि-आप; याहाँ-जहाँ कहीं भी; कह-कहो; आमि-मैं; ताहाडि-वहाँ; रहिब-रहूँगा; तुमि-आप; येइ-जो कुछ; आज्ञा-आज्ञा; कर-करोगी; सेइ-वह; त'-निश्चित रूप से; करिब–मैं करूँगा।

अनुवाद

"हे माता, आप मुझे जहाँ भी रहने के लिए कहेंगी, मैं वहीं रहूँगा और आप जो भी आज्ञा देंगी, उसका मैं पालन करूँगा।"

एत बलि' पुनः पुनः करे नमस्कार ।

तुष्ट हञा आइ कोले करे बार बार ॥ 149॥

एत बलि'-यह कहकर; पुनः पुनः-बार बार; करे–किया; नमस्कार-नमस्कार; तुष्ट हञा–प्रसन्न होकर; आइ-माता शची; कोले–गोद में; करे-लेती हैं; बार बार-बारम्बार।

अनुवाद

यह कहकर महाप्रभु ने अपनी माता को बारम्बार प्रणाम किया। शचीमाता ने भी उनसे प्रसन्न होकर उन्हें बारम्बार अपनी गोद में लिया।

तबे आइ लञा आचार्य गेला अभ्यन्तर ।

भक्त-गण मिलिते प्रभु हइला सत्वर ॥ 150 ॥

तबे-तत्पश्चात्; आइ-माता को; लञा-लेकर; आचार्य–अद्वैत आचार्य; गेला-प्रविष्ट हुए; अभ्यन्तर–घर के भीतर; भक्त-गण-सभी भक्तगण को; मिलिते-मिलने के लिए; प्रभु–महाप्रभु; हइला-हो गये; सत्वर-शीघ्र।

अनुवाद

तत्पश्चात् अद्वैत आचार्य शचीमाता को घर के भीतर ले गये। महाप्रभु तुरन्त ही सारे भक्तों से मिलने के लिए तैयार हो गये।

एके एके मिलिल प्रभु सब भक्त-गण ।

सबार मुख देखि' करे दृढ़ आलिङ्गन ॥151॥

एके एके-एक एक करके; मिलिल-मिले; प्रभु–महाप्रभु; सब-सब; भक्त-गण-भक्तों को; सबार–प्रत्येक का; मुख–मुख; देखि'–देखकर; करे–किया; दृढ़-जोर से; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

महाप्रभु एक-एक करके सारे भक्तों से मिले और हर एक के मुख को देखकर उन्होंने उसका दृढ़तापूर्वक आलिंगन किया।

केश ना देखिया भक्त यद्यपि पाय दुःख ।

सौन्दर्य देखिते तबु पाय महा-सुख ॥ 152॥

केश–बाल; ना देखिया-न देखकर; भक्त-भक्तों ने; यद्यपि यद्यपि; पाय-पाया; दुःख-दुःख; सौन्दर्य-सुन्दरता; देखिते-देखकर; तबु तथापि; पाय-पाया; महा-सुख-अत्यन्त सुख।

अनुवाद

यद्यपि भक्तगण महाप्रभु के बालों को न देखकर दु:खी थे, फिर भी उनके सौन्दर्य को देखकर परम सुख प्राप्त कर रहे थे।

श्रीवास, रामाइ, विद्यानिधि, गदाधर ।

गङ्गादास, वक्रेश्वर, मुरारि, शुक्लाम्बर ॥ 153॥

बुद्धिमन्त खाँ, नन्दन, श्रीधर, विजय ।

वासुदेव, दामोदर, मुकुन्द, सञ्जय ॥154॥

कत नाम लइब यत नवद्वीप-वासी ।

सबारे मिलिला प्रभु कृपा-दृष्ट्ये हासि' ॥155॥

श्रीवास-श्रीवास; रामाइ-रामाई; विद्यानिधि–विद्यानिधि; गदाधर-गदाधर; गङ्गादास-गंगादास; वक्रेश्वर–वक्रेश्वर; मुरारि-मुरारि; शुक्लाम्बर–शुक्लाम्बर; बुद्धिमन्त खाँ–बुद्धिमन्त खां; नन्दन-नन्दन; श्रीधर-श्रीधर; विजय-विजय; वासुदेव-वासुदेव; दामोदर-दामोदर; मुकुन्द-मुकुन्द; सञ्जय-संजय; कत नाम-कितने नाम; लइब-मैं लूँ; यत–सभी; नवद्वीप-वासी-नवद्वीप के निवासी; सबारे-सब से; मिलिला–मिले; प्रभु–महाप्रभु; कृपा-दृष्ट्ये-कृपा दृष्टि से; हासि'–मुस्कुराकर।

अनुवाद

श्रीवास, रामाइ, विद्यानिधि, गदाधर, गंगादास, वक्रेश्वर, मुरारि, शुक्लाम्बर, बुद्धिमन्त खां, नन्दन, श्रीधर, विजय, वासुदेव, दामोदर, मुकुन्द, संजय तथा अन्य जितने भी नाम मैं गिना सकें-सभी नवद्वीप के निवासी वहाँ आये और महाप्रभु सब पर कृपा दृष्टि डालते हुए तथा मुस्कुराते हुए उनसे मिले।

आनन्दे नाचये सबे बलि' 'हरि' 'हरि' ।

आचार्य-मन्दिर हैल श्री-वैकुण्ठ-पुरी ॥156 ॥

आनन्दे-आनन्द में; नाचये-नाचते हैं; सबे-सब; बलि'–कहकर; हरि हरि-भगवान् का पवित्र नाम "हरि हरि"; आचार्य-मन्दिर-अद्वैत आचार्य का घर; हैल-हो गया; श्री-वैकुण्ठ-पुरी-आध्यात्मिक वैकुण्ठ धाम।

अनुवाद

हर कोई पवित्र हरिनाम का कीर्तन करते हुए नाच रहा था। इस तरह अद्वैत आचार्य का निवासस्थान श्री वैकुण्ठपुरी में बदल गया था।

यत लोक आइल महाप्रभुके देखिते ।

नाना-ग्राम हैते, आर नवद्वीप हैते ॥ 157॥

यत लोक-सभी लोग; आइल-आये; महाप्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को; देखिते-देखने के लिए; नाना-ग्राम हैते-नाना गाँवों से; आर-और; नवद्वीप हैते–नवद्वीप से।

अनुवाद

नवद्वीप के अतिरिक्त आसपास के अन्य विभिन्न गाँवों के भी लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन हेतु आये।

सबाकारे वासा दिल—भक्ष्य, अन्न-पान ।

बहु-दिन आचार्य-गोसाञि कैल समाधान ॥ 158॥

सबाकारे-उन सबको; वासा दिल–निवासस्थान दिये; भक्ष्य-भोजन सामग्री; अन्न-पान-भोजन और पेय; बहु-दिन-बहुत दिनों तक; आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य ने; कैल-किया; समाधान-प्रबन्ध।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु का दर्शन करने के लिए निकट के गाँवों से आये हर व्यक्ति को, विशेषतया नवद्वीप के निवासियों को कई दिनों तक रहने के लिए स्थान और सभी प्रकार की खाद्य सामग्री प्रदान की। उन्होंने हर बात का अच्छी तरह प्रबन्ध किया।

आचार्य-गोसाञिर भाण्डार—अक्षय, अव्यय ।

यत द्रव्य व्यय करे तत द्रव्य हय ॥ 159॥

आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य का; भाण्डार–गोदाम; अक्षय-अक्षय, न समाप्त होने वाला; अव्यय-नष्ट न होनेवाला; व्रत-सब; द्रव्य-द्रव्य, सामग्री; व्यय-खर्च; करे-करते; तत-उतनी अधिक; द्रव्य-सामग्री; हय-भर जाती।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य का भण्डार अक्षय तथा अटूट था। वे जितनी भी सामग्री का उपयोग करते, उतनी ही सामग्री फिर से प्रकट हो आती।

सेइ दिन हैते शची करेन रन्धन ।

भक्त-गण लञा प्रभु करेन भोजन ॥160॥

सेइ दिन हैते–उस दिन से; शची–माता शची; करेन-करतीं; रन्धन-पकाना; भक्त-गण-सभी भक्त; लञा–के साथ; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; करेन-करते; भोजन-भोजन।

अनुवाद

जिस दिन से शचीमाता अद्वैत आचार्य के घर आईं, वे ही भोजन पकाती थीं और श्री चैतन्य महाप्रभु सारे भक्तों के साथ भोजन करते थे।

दिने आचार्येर प्रीति—प्रभुर दर्शन ।

रात्रे लोक देखे प्रभुर नर्तन-कीर्तन ॥ 161॥

दिने–दिन के समय; आचार्येर प्रीति-अद्वैत आचार्य का प्रेम-व्यवहार; प्रभुर दर्शन-चैतन्य महाप्रभु के दर्शन; रात्रे-रात को; लोक-सभी लोग; देखे-देखते; प्रभुर–महाप्रभु का; नर्तन-कीर्तन-नर्तन और कीर्तन।

अनुवाद

दिन में जितने सारे लोग वहाँ आते थे, वे श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करते थे और अद्वैत आचार्य के प्रेमपूर्ण व्यवहार को देखते थे। रात्रि में उन्हें महाप्रभु का नृत्य देखने और उनका कीर्तन सुनने का अवसर प्राप्त होता था।

कीर्तन करिते प्रभुर सर्व-भावोदय ।

स्तम्भ, कम्प, पुलकाश्रु, गद्गद, प्रलय ॥ 162॥

कीर्तन करिते-कीर्तन करते समय; प्रभुर–महाप्रभु में; सर्व-सभी; भाव-उदय-भाव लक्षणों का प्रकट होना; स्तम्भ-स्तम्भित होना; कम्प-कंपन; पुलक-रोमांच; अश्रु-अश्रु; गद्गद-आवाज का लड़खड़ाना; प्रलय-प्रलय।

अनुवाद

कीर्तन करते समय महाप्रभु में सभी प्रकार के दिव्य लक्षण प्रकट हो जाते थे। वे स्तम्भित एवं कम्पित लगते, उन्हें रोमांच हो जाता और उनकी वाणी अवरुद्ध हो जाती। आंसुओं के साथ प्रलय प्रकट हो जाती।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु में प्रलय को सुख और दुःख का ऐसा मेल बताया गया है, जो सभी इन्द्रियों के जड़ हो जाने पर प्रकट होता है। ऐसी दशा में भक्त भूमि पर गिर पड़ता है और शरीर में अन्य लक्षण उत्पन्न होते हैं। ये लक्षण ऊपर वर्णित हैं और जब शरीर में इनकी प्रधानता हो जाती है, तो प्रलय अवस्था प्रकट होती है।

क्षणे क्षणे पड़े प्रभु आछाड़ खाञा ।

देखि' शचीमाता कहे रोदन करिया ॥ 163 ॥

क्षणे क्षणे-बार बार; पड़े-गिरते; प्रभु–महाप्रभु; आछाड़ खाञा-पछाड़ खाकर; देखि'–देखकर; शची-माता-शची माता; कहे-कहतीं; रोदन करिया-रोकर।

अनुवाद

महाप्रभु रह-रहकर पछाड़ खाकर भूमि पर गिर पड़ते थे। यह देखकर उनकी माता शची रोने लगतीं।

चूर्ण हैल, हेन वासों निमाञि-कलेवर ।

हा-हा करि' विष्णु-पाशे मागे एइ वर ॥ 164॥

चूर्ण-चूर-चूर होना; हैल–हो गया है; हेन–अतः; वासों-मैं सोचती हूँ; निमाञि-कलेवर–निमाइ का शरीर; हा-हा करि-जोर से हाहाकार कर; विष्णु-पाशे-भगवान् विष्णु से; मागे-मांगतीं; एइ–यह; वर-आशीर्वाद।

अनुवाद

श्रीमती शचीमाता ने सोचा कि इस तरह भूमि पर गिरने से निमाइ का शरीर चूर-चूर हो रहा होगा, अतएव वे चित्कार कर उठीं, "हाय" और फिर भगवान् विष्णु से वर माँगने लगीं।

बाल्यकाल हैते तोमार ये कैलुँ सेवन ।

तार एइ फल मोरे देह नारायण ॥ 165 ॥

बाल्यकाल हैते–बचपन से; तोमार-आपकी; ये-जो कुछ; कैलुँ-मैंने की है; सेवन–सेवा; तार-उसका; एइ फल-यह फल; मोरे-मुझे; देह-कृपया दो; नारायण-हे नारायण।

अनुवाद

"हे प्रभु, मैंने अपने बचपन से लेकर आज तक आपकी जो भी सेवा की है, उसके बदले में कृपा करके मुझे यह वर दें।"

ये काले निमाञि पड़े धरणी-उपरे ।

व्यथा येन नाहि लागे निमाञि-शरीरे ॥ 166 ॥

ये काले-जब कभी; निमाञि-मेरा पुत्र निमाइ; पड़े-गिरे; धरणी-उपरे–धरती पर; व्यथा-दर्द; येन-जैसे; नाहि-नहीं; लागे-लगे; निमाञि-शरीरे-मेरे पुत्र निमाइ के शरीर को।

अनुवाद

"जब-जब निमाइ धरती पर गिरे, तब-तब उसे पीड़ा का अनुभव न हो।"

एइ-मत शचीदेवी वात्सल्ये विह्वल ।

हर्ष-भय-दैन्य-भावे हइल विकल ॥ 167॥

एइ-मत-इस प्रकार; शची-देवी-माता शची; वात्सल्ये-वात्सल्य प्रेम में; विह्वल-विह्वल; हर्ष-हर्ष; भय-भय; दैन्य-भावे-और विनय में; हइल-हो गईं; विकल-व्याकुल।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति वात्सल्य-प्रेम से अभिभूत होने पर शचीमाता हर्ष, भय तथा दीनता से विह्वल और साथ ही शारीरिक भाव-लक्षणों से युक्त हो गईं।

तात्पर्य

ये श्लोक बतलाते हैं कि नीलाम्बर चक्रवर्ती के परिवार में जन्मी शचीमाता अपने विवाह के पहले से ही भगवान् विष्णु की पूजा करती थीं। जैसाकि भगवद्गीता (6.41) में कहा गया है :

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥

"पुण्यात्माओं के लोकों में अनेकानेक वर्षों तक भोग करने के बाद भ्रष्ट योगी या तो पुण्यात्माओं के परिवार में या धनी परिवार में जन्म लेता है।" शचीमाता नित्यसिद्ध जीव हैं तथा माता यशोदा की अवतार हैं। वे नीलाम्बर चकवर्ती के घर में जन्मीं और निरन्तर भगवान् विष्णु की सेवा में लगी रहीं। बाद में उन्हें भगवान् विष्णु-रूप चैतन्य महाप्रभु पुत्ररूप में प्राप्त हुए और वे उनके प्राकट्य दिवस से ही उनकी सेवा करती रहीं। नित्यसिद्ध पार्षदों की ऐसी स्थिती होती है। इसलिए नरोत्तमदास ठाकुर ने गाया है, गौराङ्गर सङ्गिगणे नित्यसिद्ध करि माने। हर भक्त को यह जान लेना चाहिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे पार्षद-उनके परिजन, मित्र आदि सभी नित्यसिद्ध थे। नित्यसिद्ध व्यक्ति भगवान् की सेवा को कभी नहीं भूलता। वह सदैव, यहाँ तक कि अपने बाल्यकाल से, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा में लगा रहता है।

श्रीवासादि यत प्रभुर विप्र भक्त-गण ।

प्रभुके भिक्षा दिते हैल सबाकार मन ॥ 168॥

श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर आदि भक्त; यत-सभी; प्रभुर–महाप्रभु के; विप्र-विशेषतया ब्राह्मण; भक्त-गण-भक्तगण; प्रभुके–महाप्रभु को; भिक्षा–भोजन, दोपहर का खाना; दिते-देने के लिए; हैल–था; सबाकार–उन सबका; मन–मन।

अनुवाद

चूँकि अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को भिक्षा तथा भोजन देते थे, अतएव श्रीवास ठाकुर आदि अन्य भक्त भी उन्हें भिक्षा देने और भोजन के लिए आमन्त्रित करना चाह रहे थे।

तात्पर्य

यह समस्त गृहस्थों का धर्म है कि यदि कोई संन्यासी उनके पड़ोस में या गाँव में हो, तो वे उसे अपने घर आमन्त्रित करें। भारत में आज भी यह प्रथा चालू है। यदि कोई संन्यासी किसी गाँव में आता है, तो सारे गृहस्थ बारी-बारी से उसे आमन्त्रित करते हैं। जब तक वह संन्यासी गाँव में रहता है, वह गाँव वालों को आध्यात्मिक ज्ञान देता है। दूसरे शब्दों में, संन्यासी को दूर-दूर तक यात्रा करते हुए भी रहने या खाने की समस्या नहीं सताती । यद्यपि अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रसाद की पूर्ति कर रहे थे, फिर भी नवद्वीप तथा शान्तिपुर के अन्य भक्त भी उन्हें प्रसाद देने के लिए इच्छुक थे।

शुनि' शची सबाकारे करिल मिनति ।

निमाञि दरशन आर मुञि पाब कति ॥ 169॥

शुनि'-यह सुनकर; शची–माता शची ने; सबाकारे उन सबको; करिल–किया; मिनति–निवेदन; निमाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु (निमाइ) का; दरशन-दर्शन; आर-और; मुञि-मैं; पाब-पाऊँगी; कति–और कितनी बार।

अनुवाद

महाप्रभु के अन्य भक्तों द्वारा ऐसे प्रस्तावों को सुनकर शचीमाता ने भक्तों से कहा, "अब मुझे निमाइ के दर्शन पाने के कितने अवसर हाथ लगेंगे?"

तोमा-सबा-सने हबे अन्यत्र मिलन ।

मुञि अभागिनीर मात्र एइ दरशन ॥ 170॥

तोमा-सबा-सने-आप सबके साथ; हबे-होगा; अन्यत्र-अन्य स्थान पर; मिलन-मिलन; मुञि-मैं; अभागिनीर–मुझ अभागिन का; मात्र मात्र; एइ-यह; दरशन-दर्शन, मिलन।

अनुवाद

शचीमाता ने निवेदन किया, "जहाँ तक आप लोगों की बात है, आप निमाइ अर्थात् श्री चैतन्य महाप्रभु से अन्यत्र भी अनेक बार मिल सकते हो, किन्तु मेरे लिए उससे दोबारा मिलने की क्या सम्भावना है? मुझे तो घर पर रहना होगा। संन्यासी कभी अपने घर वापस नहीं आता।"

यावताचार्य-गृहे निमाञि अवस्थान।

मुञि भिक्षा दिमु, सबाकारे मागों दान॥ 171॥

यावत्-जब तक; आचार्य-गृहे-अद्वैत आचार्य के घर में; निमाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु का; अवस्थान–निवास; मुञि-मैं; भिक्षा दिमु-भोजन दें; सबाकारे-सबसे; मागों-मैं प्रार्थना करती हूँ; दान-इस दान के लिए।

अनुवाद

शचीमाता ने सभी भक्तों से यह दान माँगा, "जब तक श्री चैतन्य महाप्रभु अद्वैत आचार्य के घर में रहें, केवल वे ही उन्हें भोजन प्रदान करेंगी।

शुनि' भक्तगण कहे करि' नमस्कार।

मातार ये इच्छा सेइ सम्मत सबार॥ 172॥

शुनि'-यह सुनकर; भक्त-गण-सभी भक्त; कहे-कहने लगे; करि'–करके; नमस्कार-नमस्कार; मातार–माता शचीदेवी की; ये इच्छा-जैसी इच्छा; सेइ-वह; सम्मत–स्वीकार है; सबार-सभी भक्तों को।

अनुवाद

शचीमाता का यह निवेदन सुनकर सारे भक्तों ने उन्हें नमस्कार करते हुए कहा, "हम सभी लोग शचीमाता की इच्छा से सहमत हैं।"

मातार व्यग्रता देखि' प्रभुर व्यग्र मन।

भक्त-गण एकत्र करि' बलिला वचन॥ 173॥

मातार–माता की; व्यग्रता-उत्सुकता; देखि'–देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; व्यग्र–व्याकुल; मन–मन; भक्त-गण-सभी भक्तों को; एकत्र करि'-इकट्ठे करके; बलिला–कहे; वचन-वचन।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता की महान् उत्सुकता देखी, तो वे कुछ विचलित हुए। अतएव उन्होंने वहाँ उपस्थित सारे भक्तों को एकत्र किया और उनसे बोले।

तोमा-सबार आज्ञा विना चलिलाम वृन्दावन।

याइते नारिल, विघ्न कैल निवर्तन ॥ 174॥

तोमा-सबार-आप सबकी; आज्ञा–आज्ञा; विना-बिना; चलिलाम–मैं चला गया; वृन्दावन-वृन्दावन को; याइते नारिल-नहीं जा सका; विघ्न-कुछ विघ्न; कैल-हो गया; निवर्तन-लौट आया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबको बतलाया, "मैं आप लोगों की आज्ञा लिये बिना वृन्दावन जाना चाह रहा था। किन्तु कुछ बाधा उत्पन्न हुई और मुझे लौटना पड़ा।"

यद्यपि सहसा आमि करियाछि सन्न्यास।

तथापि तोमा-सबा हैते नहिब उदास ॥ 175॥

यद्यपि-यद्यपि; सहसा–अचानक; आमि-मैंने; करियाछि सन्न्यास-संन्यास ले लिया; तथापि तथापि; तोमा-सबा-आप सब; हैते-से; नहिब-मैं कभी नहीं होऊँगा; उदास-उदासीन।

अनुवाद

"हे मित्रों, यद्यपि मैंने अचानक ही यह संन्यास ग्रहण कर लिया है, किन्तु मैं जानता हूँ कि तब भी मैं आप लोगों से कभी उदासीन नहीं होऊँगा।"

तोमा-सब ना छाड़िब, यावतामि जीब'।

मातारे तावतामि छाड़िते नारिब ॥ 176 ॥

तोमा-सब-आप सबको; ना-नहीं; छाड़िब-मैं छोड़ूँगा; यावत्-जब तक; आमि-मैं; जीब-जीवित रहूँगा; मातारे–माता; तावत्-तब तक; आमि-मैं; छाड़िते-छोड़; नारिब–नहीं सकूंगा।

अनुवाद

मेरे प्रिय मित्रों, जब तक मैं जीवित रहूँगा, आप लोगों को कभी नहीं छोड़ूँगा। न ही मैं अपनी माता को छोड़ पाऊँगा।

सन्न्यासीर धर्म नहे—सन्न्यास करिञा ।

निज जन्म-स्थाने रहे कुटुम्ब लञा ॥ 177॥

सन्न्यासीर-संन्यासी का; धर्म-धर्म; नहे-यह नहीं है; सन्न्यास-संन्यास; करिञा-लेकर; निज-अपने; जन्म-स्थाने जन्म स्थान पर; रहे-रहे; कुटुम्ब-परिवार; लञा-के साथ।

अनुवाद

संन्यास स्वीकार करने के बाद संन्यासी का यह धर्म नहीं होता कि वह अपने जन्मस्थान में रहे और अपने कुटुम्बियों से घिरा रहे।

केह येन एइ बलि' ना करे निन्दन ।

सेइ मुक्ति कह, याते रहे दुइ धर्म ॥ 178॥

केह-कोई भी; येन-ऐसा; एइ–यह; बलि'–कथन; ना करे–नहीं करे; निन्दन-निन्दा करे; सेइ-वह; युक्ति-विचार; कह–मुझे बताओ; याते-जिससे; रहे-रहे; दुइ-दोनों; धर्म-धर्म (कर्तव्य)।

अनुवाद

"अतएव कुछ ऐसा प्रबन्ध करो, जिससे मैं आप लोगों को न छोड़ें और लोग मुझ पर संन्यास लेने के बाद सम्बन्धियों के साथ रहने का लांछन भी न लगा सकें।"

शुनिया प्रभुर एइ मधुर वचन ।

शची-पाश आचार्यादि करिल गमन ॥ 179॥

शुनिया-यह सुनकर; प्रभुर–महाप्रभु के; एइ–यह; मधुर-मधुर; वचन-वचन; शची-पाश–माता शची के सामने; आचार्य-आदि-अद्वैत आचार्य तथा अन्य भक्त; करिल-किया; गमन-गमन।

अनुवाद

महाप्रभु के वचन सुनकर अद्वैत आचार्य आदि सारे भक्त शचीमाता के पास गये।

प्रभुर निवेदन ताँरे सकल कहिल ।

शुनि' शची जगन्माता कहते लागिल ॥ 180॥

प्रभुर–महाप्रभु का; निवेदन-निवेदन; ताँरे–उनको; सकल-सब; कहिल-बताया; शुनि'-यह सुनकर; शची–माता शची; जगत्-माता-जगत् माता; कहिते-कहने; लागिल-लगीं।

अनुवाद

जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के वचन कहे, तो अखिल विश्व की माता शची कहने लगीं।

तेंहो यदि इहाँ रहे, तबे मोर सुख ।

ताँ'र निन्दा हय यदि, सेह मोर दुःख ॥ 181॥

तेंहो-चैतन्य महाप्रभु; यदि यदि; इहाँ–यहाँ; रहे-रहते हैं; तबे-तब; मोर-मुझे; सुख-सुख; ताँर निन्दा-उनकी निन्दा; हय-होगी; यदि-यदि; सेह-वह भी; मोर-मेरा; दुःख-दु:ख।

अनुवाद

शचीमाता ने कहा, "यह मेरे लिए परम सुख की बात होगी यदि निमाइ (श्री चैतन्य महाप्रभु) यहाँ रहता है। किन्तु यदि कोई उसकी निन्दा करे तो यह मेरे लिए अत्यन्त दुःख की बात होगी।"

तात्पर्य

एक माता के लिए यह अत्यन्त सुख की बात होती है, यदि उसका बेटा कृष्ण की खोज में गृहत्याग किये बिना उसके साथ रहे। साथ ही, यदि बेटा कृष्ण की खोज न करके घर पर ही रहता है, तो अनुभवी सन्त पुरुष उसकी निन्दा करते हैं। ऐसी निन्दा माता के लिए अतीव दु:खद होती है। यदि अच्छी माता वास्तव में चाहती है कि उसका बेटा आध्यात्मिक उन्नति करे, तो श्रेयस्कर यही होगा कि वह उसे कृष्ण की खोज करने की अनुमति प्रदान कर दे। माता स्वाभाविक रूप से अपने बेटे का कल्याण चाहती है। यदि माता अपने बेटे को कृष्ण की खोज करने की अनुमति नहीं देती, तो वह मा कहलाती है, जिसका अर्थ होता है माया ।शचीमाता अपने बेटे को संन्यासी बनने तथा कृष्ण की खोज करने की अनुमति देकर विश्व-भर की माताओं को शिक्षा दे रही हैं। वे इंगित करती हैं कि सारे बेटों को कृष्ण का शुद्ध भक्त बनना चाहिए और उन्हें अपनी वात्सल्यमयी माता के संरक्षण में घर पर ही नहीं रहना चाहिए। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (5.5.18) से होती है :

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्

पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।

दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्

न मोचयेद्यः समुपेत-मृत्युम् ॥

“यदि व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को आसन्न मृत्यु के मार्ग से बचने में सहायक नहीं बन सकता, तो उसे न तो गुरु बनना चाहिए, न परिजन, न पिता, न माता, न पूजनीय अर्चाविग्रह, न पति।” प्रत्येक जीव कर्म-फल के अधीन होकर इस ब्रह्माण्ड में घूमता रहता है और एक शरीर से दूसरे में तथा एक लोक से दूसरे लोक में देहान्तरण करता है। इसलिए पूरी वैदिक विधि भ्रमणशील जीवों को माया–जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि के बन्धन से बचाने के निमित्त है। इसका अर्थ है जन्म-मृत्यु के चक्र को रोकना। यह चक्र तभी रुक सकता है जब कोई कृष्ण की पूजा करता है। जैसाकि भगवान् ने भगवद्गीता (4.9) में कहा है :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

“जो मेरे जन्म और कर्म की दिव्य प्रकृति को जानता है, हे अर्जुन, वह अपना शरीर त्यागने के बाद इस भौतिक जगत् में फिर से जन्म नहीं लेता, अपितु मेरे सनातन धाम को प्राप्त करता है।”

जन्म-मृत्यु का चक्र रोकने के लिए कृष्ण को यथारूप जानना आवश्यक है। कृष्ण को जान लेने मात्र से ही इस भौतिक जगत् में पुनर्जन्म को रोका जा सकता है। कृष्णभावनाभावित होकर कर्म करने से भगवान् के धाम लौटकर जाया जा सकता है। माता, पिता, गुरु, पति या अन्य परिजनों के लिए जीवन की चरम सिद्धि यही है कि वे अन्यों को भगवधाम वापस जाने में सहायक हों। परिजनों के लाभ के लिए यह सर्वोत्कृष्ट कल्याण-कार्य है। इसीलिए शचीमाता ने, निमाइ पंडित अर्थात् श्री चैतन्य महाप्रभु की माता होते हुए भी, इन सारे तथ्यों पर विचार करके अपने बेटे को कृष्ण की खोज में बाहर जाने की अनुमति देने का निश्चय किया। उसी के साथ ही, उन्होंने ऐसी व्यवस्था भी कर दी कि उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे कार्यकलापों के समाचार मिलते रहें।

ताते एइ युक्ति भाल, मोर मने लय ।

नीलाचले रहे यदि, दुइ कार्य हय ॥ 182॥

ताते–अतः; एड–यह; युक्ति-विचार; भाल–अच्छा है; मोर-मेरा; मने-मन; लय-मानता है; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; रहे-वह रहे; यदि-यदि; दुइ-दोनो; कार्य-उद्देश्य; हय–पूर्ण हो जाते हैं।

अनुवाद

शचीमाता ने कहा, "यह अच्छा विचार है। मेरे विचार से यदि निमाइ जगन्नाथ पुरी में रहे, तो वह हममें से किसी को छोड़ेगा भी नहीं और उसी के साथ-साथ वह संन्यासी के रूप में अलग भी रह सकता है। इस तरह दोनों उद्देश्य पूरे हो जायेंगे।"

नीलाचले नवद्वीपे येन दुइ घर ।

लोक-गतागति-वार्ता पाब निरन्तर ॥183॥

नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; नवद्वीपे-और नवद्वीप में; येन-जैसे; दुड़-दो; घर-कमरे; लोक-लोग; गतागति-आते जाते हैं; वार्ता–समाचार; पाब-मुझे मिलेंगे; निरन्तर निरन्तर।

अनुवाद

"चूँकि जगन्नाथ पुरी और नवद्वीप का निकट सम्बन्ध है-मानों एक ही घर के दो कमरे हों-इसलिए नवद्वीप के लोग सामान्यतः जगन्नाथ पुरी जाते रहते हैं और जगन्नाथ पुरी के लोग नवद्वीप आते रहते हैं। इस आने-जाने से चैतन्य महाप्रभु के समाचार मिलने में सुविधा होगी। इस तरह मुझे उसके समाचार मिलते रहेंगे।"

तुमि सब करिते पार गमनागमन ।

गङ्गा-स्नाने कभु हबे ताँर आगमन ॥184॥

तुमि-तुम; सब-सब; करिते-कर; पार-सकते हो; गमन-आगमन–आना जाना; गङ्गा-स्नाने-गंगा स्नान के लिए; कभु-कभी-कभी; हबे-यह सम्भव होगा; ताँर-उसका; आगमन–यहाँ आना।

अनुवाद

“तुम सारे भक्त आ-जा सकोगे और कभी-कभी वह भी गंगा-स्नान करने के लिए आ सकता है।”

आपनार दुःख-सुख ताहाँ नाहि गणि ।

ताँर येइ सुख, ताहा निज-सुख मानि ॥185॥

आपनार-मेरा अपना; दुःख-सुख-दुःख-सुख; ताहाँ-वहाँ; नाहि-नहीं; गणि-मैं मानती; ताँर-उनका; येइ-जो कुछ; सुख-सुख; ताहा-वह; निज-मेरा अपना; सुख-सुख; मानि–मैं मानती हूँ।

अनुवाद

“मुझे अपने सुख या दुःख की चिन्ता नहीं है, चिन्ता केवल उसके सुख की है। मैं उसके सुख को ही अपना सुख मानती हूँ।”

शुनि’ भक्त-गण ताँरे करिल स्तवन ।

वेद-आज्ञा यैछे, माता, तोमार वचन ॥186॥

शुनि’-यह सुनकर; भक्त-गण-सभी भक्त; ताँरे–उनकी; करिल-की; स्तवन-स्तुति; वेद-आज्ञा-वेदों का आदेश; यैछे-जैसे; माता-मेरी प्रिय माता; तोमार वचन-आपका वचन।

अनुवाद

शचीमाता के वचन सुनकर सारे भक्तों ने उनकी स्तुति की और उन्हें विश्वास दिलाया कि उनका आदेश वेदों के आदेश के समान है, जिसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता।

भक्त-गण प्रभु-आगे आसिया कहिल ।

शुनिया प्रभुर मने आनन्द हइल ॥ 187॥

भक्त-गण-भक्तगण; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; आगे-सामने; आसिया-आकर; कहिल–सूचना दी; शुनिया–सुनकर; प्रभुर–महाप्रभु के; मने-मन में; आनन्द–आनन्द; हइल-हुआ।

अनुवाद

सारे भक्तों ने चैतन्य महाप्रभु को शचीमाता के निर्णय की सूचना दी। यह सुनकर महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए।

नवद्वीप-वासी आदि यत भक्त-गण ।

सबारे सम्मान करि बलिला वचन ॥188॥

नवद्वीप-वासी-नवद्वीप के सभी निवासी; आदि-विशेषतः; यत-सभी; भक्त-गण-भक्तगण; सबारे उन सबको; सम्मान-सम्मान; करि'-करके; बलिला–कहे; वचन-ये वचन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नवद्वीप तथा अन्य नगरों से आये सभी भक्तों का सम्मान किया और उनसे इस प्रकार कहा:

तुमि-सब लोक—मोर परम बान्धव ।

एइ भिक्षा मागों,—मोरे देह तुमि सब ॥189॥

तुमि-सब लोक-तुम सब लोग; मोर-मेरे; परम बान्धव–परम प्रिय मित्र; एइ भिक्षा मागों-मैं एक भिक्षा माँगता हूँ; मोरे-मुझे; देह-कृपया दो; तुमि-आप; सब-सब।

अनुवाद

"मेरे प्रिय मित्रों, आप सभी मेरे घनिष्ठ मित्र हो। अब मैं आप सबसे एक भिक्षा माँगता हूँ। कृपा करके मुझे यह भिक्षा दें।"

घरे याञा कर सदा कृष्ण-सङ्कीर्तन ।

कृष्ण-नाम, कृष्ण-कथा, कृष्ण आराधन ॥190॥

घरे याञा-घर लौटकर; कर-कृपया करो; सदा-सदा; कृष्ण-सङ्कीर्तन-कृष्ण के पावन नाम का संकीर्तन; कृष्ण-नाम-भगवान् का पावन नाम; कृष्ण-कथा-कृष्ण-लीलाओं की चर्चा; कृष्ण-भगवान् कृष्ण की; आराधन-पूजा, आराधना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबसे प्रार्थना की कि वे घर लौट जाएँ और वहाँ सामूहिक नाम-कीर्तन प्रारम्भ कर दें। उन्होंने यह भी प्रार्थना की कि वे कृष्ण की पूजा करें, उनके पवित्र नाम का कीर्तन करें तथा उनकी पवित्र लीलाओं की चर्चा करें।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यन्त प्रामाणिक रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय अर्थात् हरे कृष्ण आन्दोलन की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। ऐसा नहीं है कि हर कोई श्री चैतन्य महाप्रभु की तरह संन्यास ग्रहण करे। जैसाकि महाप्रभु ने आदेश दिया है, प्रत्येक व्यक्ति घर पर कृष्णभावनामृत का पालन कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति कृष्ण-नाम का अर्थात् हरे कृष्ण महामन्त्र का सामूहिक कीर्तन कर सकता है। वह भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत की विषयवस्तु की चर्चा भी कर सकता है और घर पर राधा-कृष्ण या गौर निताई अथवा दोनों के अर्चाविग्रह स्थापित करके उनकी सावधानीपूर्वक पूजा कर सकता है। इसके लिए हमें विश्व-भर में पृथक्-पृथक् केन्द्रों की स्थापना करने की आवश्यकता नहीं है। जिसे भी कृष्णभावनामृत आन्दोलन में रुचि है, वह वरिष्ठ भक्तों के निर्देशन में अपने घर में ही अर्चाविग्रह स्थापित कर सकता है, उसकी नियमित पूजा कर सकता है, महामन्त्र का कीर्तन कर सकता है और भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत की चर्चा कर सकता है। हम वास्तव में अपनी कक्षाओं में यही शिक्षा देते हैं कि यह सब कैसे किया जाये। यदि किसी को ऐसा लगता है कि वह मन्दिर में अभी रहने को तैयार नहीं अथवा मन्दिर के विधि-विधानों का दृढ़तापूर्वक पालन नहीं कर सकता–विशेषतया ऐसे गृहस्थ जो पत्नी तथा बच्चों के साथ रहते हैं-वे घर पर ही अर्चाविग्रह स्थापित करके, सुबह-शाम अर्चाविग्रह की पूजा करके, हरे कृष्ण का कीर्तन करके तथा भगवद्गीता और श्रीमद्भागवत की चर्चा करके एक केन्द्र आरम्भ कर सकते हैं। इसे हर कोई घर पर सरलता से कर सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने वहाँ उपस्थित सारे भक्तों से ऐसा करने के लिए प्रार्थना की।

आज्ञा देह नीलाचले करिये गमन ।

मध्ये मध्ये आसि' तोमाय दिब दरशन ॥ 191॥

आज्ञा देह-आज्ञा दो; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; करिये-मैं कहूँ; गमन-गमन; मध्ये मध्ये-कभी-कभी बीच में; आसि'–यहाँ आकर; तोमाय-आप सबको; दिब-मैं दूँगा; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

भक्तों को इस प्रकार उपदेश देने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथ पुरी जाने की अनुमति चाही। उन्होंने आश्वासन दिया कि वे बीच बीच में वहाँ आते रहेंगे और उनसे बार-बार मिलते रहेंगे।

एत बलि' सबाकारे ईषत् हासिञा ।

विदाय करिल प्रभु सम्मान करिञा ॥ 192॥

एत बलि'-यह कहकर; सबाकारे-सभी भक्तों को; ईषत् हासिञा-हल्का सा मुस्कुराकर; विदाय करिल-विदा दी; प्रभु–महाप्रभु; सम्मान करिज्ञा–सम्मानपूर्वक।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने सभी भक्तों का सम्मान करते हुए और सौम्यता से मुस्कुराते हुए सबको विदा किया।

सबा विदाय दिया प्रभु चलिते कैल मन ।

हरिदास कान्दि' कहे करुण वचन ॥ 193॥

सबा विदाय दिया-सबको घर लौटने को कहकर; प्रभु–महाप्रभु ने; चलिते-जाने का; कैल–निर्णय लिया; मन–मन; हरिदास कान्दि'-हरिदास ठाकुर क्रन्दन करने लगे; कहे–कहने लगे; करुण-करुण; वचन-वचन।

अनुवाद

सभी भक्तों से घर लौट जाने की विनती करने के बाद महाप्रभु ने जगन्नाथ पुरी जाने का निश्चय किया। उस समय हरिदास ठाकुर क्रन्दन करते हुए करुण वचन बोले।

नीलाचले याबे तुमि, मोर कोन्गति ।

नीलाचले याइते मोर नाहिक शकति ॥ 194॥

नीलाचले याबे तुमि-आप जगन्नाथ पुरी चले जाएँगे; मोर–मेरी; कोन्–क्या; गति-गति; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी; याइते-जाने की; मोर-मेरी; नाहिक-नहीं है; शकति-शक्ति।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, "यह तो ठीक है कि आप नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) जा रहे हैं, किन्तु मेरी क्या गति होगी? मैं तो नीलाचल जाने में असमर्थ हूँ।"

तात्पर्य

यद्यपि श्रील हरिदास ठाकुर का जन्म मुसलमान परिवार में हुआ था, किन्तु वे शुद्ध दीक्षित ब्राह्मण के रूप में स्वीकार किये जाते थे। इसलिए वे जगन्नाथ पुरी के मन्दिर में प्रवेश करने के पूर्ण अधिकारी थे, किन्तु कुछ ऐसे नियम थे जिनके अनुसार वर्णाश्रम धर्म–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र–के लोग ही मन्दिर में प्रवेश कर सकते थे। हरिदास ठाकुर विनम्रतावश इन नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने कहा कि उनमें मन्दिर में प्रवेश करने की शक्ति नहीं है। उन्होंने प्रार्थना की कि यदि महाप्रभु मन्दिर के भीतर रहेंगे, तो हरिदास के लिए महाप्रभु के दर्शन का कोई उपाय नहीं रहेगा। बाद में, जब हरिदास ठाकुर जगन्नाथ पुरी गये, तो वे मन्दिर से बाहर समुद्र तट पर सिद्धबकुल नामक स्थान पर रहे। वहाँ अब एक मठ बना दिया गया है, जो सिद्धबकुल मठ के नाम से विख्यात है। जो लोग जगन्नाथ पुरी जाते हैं, वे सिद्धबकुल तथा समुद्रतट पर हरिदास ठाकुर की समाधि के दर्शन के लिए जाते हैं।

मुञि अधम तोमार ना पाब दरशन ।

केमते धरिब एइ पापिष्ठ जीवन ॥ 195॥

मुञि-मैं; अधम-अधम; तोमार-आपका; ना-नहीं; पाब-पाऊँगा; दरशन-दर्शन; केमते-कैसे; धरिब-रखूंगा; एइ–यह; पापिष्ठ-पापी; जीवन-जीवन।

अनुवाद

"अत्यन्त नीच व्यक्ति होने के कारण मैं आपके दर्शन नहीं पा सकेंगा। मैं अपने पापमय जीवन को किस तरह धारण किये रहूँगा?"

प्रभु कहे,—कर तुमि दैन्य सम्वरण ।

तोमार दैन्येते मोर व्याकुल हय मन ॥196॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने उत्तर दिया; कर-करो; तुमि-आप; दैन्य-दीनता पर; सम्वरण-नियंत्रण; तोमार-आपकी; दैन्येते-दीनता से, विनय से; मोर-मेरा; व्याकुल-व्याकुल; हय होता है; मन–मन।

अनुवाद

महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर से कहा, "कृपया आप अपनी दीनता को नियंत्रित कीजिये। आपकी दीनता देखकर मेरा मन अत्यधिक व्याकुल हो रहा है।"

तोमा लागि' जगन्नाथे करिब निवेदन ।

तोमा-लञा याब आमि श्री-पुरुषोत्तम ॥ 197॥

तोमा लागि'-आपके लिए; जगन्नाथे-भगवान जगन्नाथ को; करिब–मैं करूँगा; निवेदन-निवेदन; तोमा-लञा-आपको लेकर; याब-जाऊँगा; आमि-मैं; श्री-पुरुषोत्तम-जगन्नाथ पुरी को।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर को आश्वस्त किया कि वे भगवान् जगन्नाथ के समक्ष निवेदन करेंगे और निश्चय ही उन्हें जगन्नाथ पुरी ले चलेंगे।"

तबे त' आचार्य कहे विनय करिञा ।

दिन दुइ-चारि रह कृपा त' करिञा ॥198॥

तबे-तत्पश्चात्; त'–निश्चित रूप से; आचार्य कहे-अद्वैत आचार्य ने कहा; विनय करिञा–विनयपूर्वक; दिन दुइ-चारि-दो चार दिन और; रह–कृपया रहो; कृपा-कृपा; त'–निश्चित रूप से; करिञा-करके।

अनुवाद

इसके बाद अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से अनुनय-विनय की कि वे दो-चार दिन और रहने की कृपा करें।

आचार्येर वाक्य प्रभु ना करे लङ्घन ।

रहिला अद्वैत-गृहे, ना कैल गमन ॥ 199॥

आचार्येर वाक्य-अद्वैत आचार्य का कथन; प्रभु–महाप्रभु; ना करे लङ्घन-उल्लंघन नहीं करते; रहिला-रह गये; अद्वैत-गृहे-अद्वैत आचार्य के घर पर; ना कैल गमन-और शीघ्र नहीं गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कभी भी अद्वैत आचार्य की प्रार्थना का उल्लंघन नहीं करते थे; अतएव वे उनके घर पर रुके रहे और उन्होंने जगन्नाथ पुरी के लिए तुरन्त प्रस्थान नहीं किया।

आनन्दित हैल आचार्य, शची, भक्त, सब ।

प्रति-दिन करे आचार्य महा-महोत्सव ॥200॥

आनन्दित हैल-प्रसन्न हो गये; आचार्य-अद्वैत आचार्य; शची–माता शचीदेवी; भक्त-भक्त; सब-सब; प्रति-दिन-प्रतिदिन; करे-करते; आचार्य-अद्वैत आचार्य; महा-महा-उत्सव–महान् उत्सव।

अनुवाद

महाप्रभु के निर्णय से अद्वैत आचार्य, शचीमाता तथा सारे भक्त अत्यन्त प्रसन्न हुए। अद्वैत आचार्य प्रतिदिन महान् उत्सवों का आयोजन करते रहे।

दिने कृष्ण-कथा-रस भक्त-गण-सङ्गे ।

रात्रे महा-महोत्सव सङ्कीर्तन-रङ्गे ॥ 201॥

दिने दिन के समय; कृष्ण-कथा-रस-कृष्ण सम्बन्धी चर्चा; भक्त-गण-सङ्गे-भक्तों के साथ; रात्रे-रात को; महा-महा-उत्सव–महान् उत्सव; सङ्कीर्तन-रङ्गे-संकीर्तन के रूप में।

अनुवाद

दिन के समय सारे भक्त कृष्ण-कथाओं की चर्चा करते और रात में अद्वैत आचार्य के घर सामूहिक कीर्तन महोत्सव मनाया जाता।

आनन्दित हञा शची करेन रन्धन ।

सुखे भोजन करे प्रभु लञा भक्त-गण ॥ 202॥

आनन्दित हञा–प्रसन्न होकर; शची–माता शची; करेन-करतीं; रन्धन-पकाना; सुखे-प्रसन्नतापूर्वक; भोजन-भोजन; करे-करते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा-संगति में; भक्त-गण-सभी भक्तों की।

अनुवाद

माता शची बड़े आनन्द से भोजन पकातीं और भक्तों सहित श्री चैतन्य महाप्रभु बड़े ही आनन्द के साथ प्रसाद ग्रहण करते।

आचार्येर श्रद्धा-भक्ति-गृह-सम्पद-धने ।

सकल सफल हैल प्रभुर आराधने ॥ 203॥

आचार्येर-श्री अद्वैत आचार्य की; श्रद्धा-श्रद्धा भक्ति-भक्ति; गृह–घर; सम्पद-ऐश्वर्य; धने-धन, सम्पत्ति; सकल-सब; सफल-सफल; हैल–हो गया; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु की; आराधने–पूजा में।

अनुवाद

इस तरह अद्वैत आचार्य के सारे ऐश्वर्य-उनकी श्रद्धा, भक्ति, घर, धन और अन्य सब कुछ-श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में भलीभाँति उपयोग किये गये।

तात्पर्य

अद्वैत आचार्य ने चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों का स्वागत करने और अपने घर में नित्य उत्सव मनाने में समस्त गृहस्थ-भक्तों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया है। यदि किसी के पास समुचित साधन और धन हो, तो उसे चाहिए कि विश्व-भर में प्रचार करने वाले चैतन्य महाप्रभु के भक्तों को समय-समय पर आमन्त्रित करे और अपने घर पर उत्सव का आयोजन करे, जिसमें वह प्रसाद वितरण करे, दिन के समय कृष्ण-कथा हो तथा शाम के समय कम-से-कम तीन घंटे तक सामूहिक कीर्तन चले। यह विधि सभी कृष्णभावनामृत आन्दोलन केन्द्रों में अपनाई जाये। इस तरह से नित्य ही सङ्कीर्तन यज्ञ सम्पन्न होता रहेगा। श्रीमद्भागवत (11.5.32) में इस युग के लिए हररोज संकीर्तन यज्ञ करने का आदेश दिया गया है (यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः)। चैतन्य महाप्रभु तथा उनके चारों पार्षदों-पंचतत्त्व की प्रसाद वितरण और संकीर्तन द्वारा पूजा करनी चाहिए। वास्तव में, इस कलियुग के लिए इसी यज्ञ की सब से

अधिक संस्तुति की गई है। इस युग में अन्य यज्ञों को सम्पन्न कर पाना सम्भव नहीं है, किन्तु इस यज्ञ को कहीं भी बिना किसी कठिनाई के सम्पन्न किया जा सकता है।

शचीर आनन्द बाड़े देखि' पुत्र-मुख ।

भोजन कराञा पूर्ण कैल निज-सुख ॥ 204॥

शचीर-शची माता का; आनन्द बाड़े-आनन्द बढ़ता; देखि'–देखकर; पुत्र-मुख-अपने पुत्र का मुख; भोजन कराञा–भोजन कराना; पूर्ण–पूर्ण; कैल–किया; निज-सुख-अपना सुख।

अनुवाद

शचीमाता का आनन्द निरन्तर अपने पुत्र का मुख देखकर तथा भोजन कराकर बढ़ता रहा तथा अतन्तः पूर्णता को प्राप्त हुआ।

एइ-मत अद्वैत-गृहे भक्त-गण मिले ।

वञ्चिला कतक-दिन महा-कुतूहले ॥ 205॥

एड-मते-इस प्रकार; अद्वैत-गृहे-अद्वैत आचार्य के घर पर; भक्त-गण-सभी भक्त; मिले-एकत्रित हुए; वञ्चिला–व्यतीत किये; कतक-दिन-कुछ दिन; महा-कुतूहले-महान् उत्सव वातावरण में।

अनुवाद

इस तरह सारे भक्त अद्वैत आचार्य के घर पर मिले और उन्होंने महोत्सवमय वातावरण में एक साथ कुछ दिन बिताये।

आर दिन प्रभु कहे सब भक्त-गणे ।

निज-निज-गृहे सबे करह गमने ॥ 206॥

आर दिन-अगले दिन; प्रभु–महाप्रभु ने; कहे-कहा; सब-सब; भक्त-गणे-भक्तों को; निज-निज-गृहे-अपने अपने घर को; सबे-सब; करह-करो; गमने-गमन।

अनुवाद

अगले दिन चैतन्य महाप्रभु ने सभी भक्तों से अपने-अपने घर लौट जाने की विनती की।

घरे गिया कर सबे कृष्ण-सङ्कीर्तन ।

पुनरपि आमा-सङ्गे हइबे मिलन ॥ 207॥

घरे गिया-घर लौटकर; कर-करो; सबे-सभी; कृष्ण-सङ्कीर्तन–महामन्त्र का संकीर्तन; पुनरपि बार बार; आमा-सङ्गे–मेरे साथ; हइबे-होगा; मिलन–मिलन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबसे अपने-अपने घरों में भगवन्नाम का सामूहिक संकीर्तन करने के लिए भी कहा और उन्होंने विश्वास दिलाया कि वे उनसे दोबारा अवश्य मिल सकेंगे।

कभु वा तोमरा करिबे नीलाद्रि गमन ।

कभु वा आसिब आमि करिते गङ्गा-स्नान ॥208॥

कभु-कभी-कभी; वा-या; तोमरा-तुम; करिबे करोगे; नीलाद्रि–जगन्नाथ पुरी; गमन-गमन; कभु-कभी-कभी; वा–अथवा; आसिब-आऊँगा; आमि-मैं; करिते-करने के लिए; गङ्गा-स्नान-गंगा स्नान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे कहा, "कभी तुम लोग जगन्नाथ पुरी आओगे और कभी मैं गंगा-स्नान करने आऊँगा।"

नित्यानन्द-गोसाञि, पण्डित जगदानन्द ।

दामोदर पण्डित, आर दत्त मुकुन्द ॥209॥

एइ चारि-जन आचार्य दिल प्रभु सने ।

जननी प्रबोध करि' वन्दिल चरणे ॥ 210॥

नित्यानन्द-गोसाञि-नित्यानन्द प्रभु; पण्डित जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; दामोदर पण्डित–दामोदर पण्डित; आर दत्त मुकुन्द-और मुकुन्द दत्त; एड चारि-जन-ये चार व्यक्ति; आचार्य-आचार्य अद्वैत; दिल-दिया; प्रभु सने-श्री

चैतन्य महाप्रभु के साथ; जननी-माता शची; प्रबोध करि'–सान्त्वना देकर; वन्दिल चरणे-उनके चरणकमलों की वन्दना की।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु के साथ जाने के लिए चार जनों को भेजा। इनके नाम थे—नित्यानन्द गोसांई, जगदानन्द पण्डित, दामोदर पंडित तथा मुकुन्द दत्त। अपनी माता को सान्त्वना देने के बाद महाप्रभु ने उनके चरणकमलों में प्रार्थना की।

ताँरे प्रदक्षिण करि' करिल गमन ।

एथा आचार्येर घरे उठिल क्रन्दन ॥211॥

ताँरे–माता शची; प्रदक्षिण करि'–प्रदक्षिणा करके; करिल-किया; गमन-गमन; एथा-वहाँ; आचार्येर-श्री अद्वैत आचार्य के; घरे–घर में; उठिल-उठा; क्रन्दन-रोना।

अनुवाद

सभी प्रबंध होने के बाद चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता की प्रदक्षिणा की और तत्पश्चात् वे जगन्नाथ पुरी के लिए चल पड़े। इधर अद्वैत आचार्य के घर में उच्च स्वर से रोदन प्रारम्भ हो गया।

निरपेक्ष हञा प्रभु शीघ्र चलिला ।

कान्दिते कान्दिते आचार्य पश्चात्चलिला ॥212॥

निरपेक्ष-निरपेक्ष; हञा-होकर; प्रभु–महाप्रभु; शीघ्र-शीघ्र; चलिला–गये; कान्दिते कान्दिते-रोते हुए; आचार्य–अद्वैत आचार्य; पश्चात्-पीछे; चलिला–गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अप्रभावित थे। वे तेजी से चल दिये और अद्वैत आचार्य रोते हुए उनके पीछे चल रहे थे।

तात्पर्य

जैसाकि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने व्याख्या की है, निरपेक्ष शब्द का अर्थ है किसी भौतिक वस्तु से प्रभावित न होना तथा भगवान् की सेवा में दृढ़ रहना। जगन्नाथ पुरी के लिए प्रस्थान करते समय अद्वैत आचार्य के घर में हो रहे उच्च क्रन्दन की श्री चैतन्य महाप्रभु ने चिन्ता नहीं की। संसारी नैतिकतावादी भले ही श्री चैतन्य महाप्रभु की यह कहकर आलोचना करें कि वे निष्ठुर थे, किन्तु महाप्रभु को ऐसी आलोचना की कोई परवाह नहीं थी। इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन के जगद्गुरु के रूप में उन्होंने यह दिखलाया कि कृष्णभावना में लगे हुए गम्भीर व्यक्ति को सांसारिक स्नेह से प्रभावित नहीं होना चाहिए। भगवान् की सेवा में लगना और भौतिक लक्ष्यों के प्रति उदासीन रहना ही श्रेष्ठ मार्ग है। बाह्य रूप से हर व्यक्ति भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्त होता है, किन्तु यदि वह ऐसी वस्तुओं में लिप्त हो जाता है, तो वह कृष्णभावनामृत में प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए यदि भौतिक नैतिकता भगवान् की सेवा में विरोध उत्पन्न करती है, तो कृष्णभावनामृत में जुड़े लोग ऐसी तथाकथित नैतिकता की चिन्ता नहीं करते। चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं अपने उदाहरण से दिखलाया है कि उदासीन हुए बिना कृष्णभावना को ठीक से सम्पन्न नहीं की जा सकती।

कत दूर गिया प्रभु करि' योड़ हात ।

आचार्ये प्रबोधि' कहे किछु मिष्ट बात ॥213॥

कत दूर गिया-कुछ दूर जाकर; प्रभु–महाप्रभु ने; करि'-की; योड़ हात–हाथ जोड़कर; आचार्ये–अद्वैत आचार्य, प्रबोधि'–शान्त करके; कहे-कहे; किछु-कुछ; मिष्ट बात-मधुर शब्द।

अनुवाद

जब अद्वैत आचार्य चैतन्य महाप्रभु के पीछे-पीछे कुछ दूर तक गये, तो महाप्रभु ने हाथ जोड़कर उनसे याचना की। वे निम्नलिखित मधुर शब्द बोले।

जननी प्रबोधि' कर भक्त समाधान ।

तुमि व्यग्र हैले कारो ना रहिबे प्राण ॥ 214॥

जननी प्रबोधि'-माता को शान्त करते हुए; कर-करो; भक्त-भक्तों का समाधान-समाधान; तुमि-आप; व्यग्र हैले–यदि व्याकुल हो गये; कारो-किसी का; ना रहिबे-नहीं रहेगा; प्राण-जीवन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "कृपया सारे भक्तों को तथा मेरी माता को सान्त्वना दीजिये। यदि आप ही व्यग्र हो जायेंगे, तो फिर कोई जीवित नहीं रह सकेगा।"

एत बलि' प्रभु ताँरे करि' आलिङ्गन ।

निवृत्ति करिया कैल स्वच्छन्द गमन ॥215॥

एत बलि'-यह कहकर; प्रभु–महाप्रभु ने; ताँरे-उनका; करि'-करके; आलिङ्गन-आलिंगन; निवृत्ति-रोका; करिया-करके; कैल-किया; स्वच्छन्द–निश्चित होकर; गमन-गमन, जगन्नाथ पुरी की ओर।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य का आलिंगन किया और उन्हें और आगे चलने से मना किया। फिर निश्चित होकर वे जगन्नाथ पुरी के लिए चल पड़े।

गङ्गा-तीरे-तीरे प्रभु चारि-जन-साथे ।

नीलाद्रि चलिला प्रभु छत्रभोग-पथे ॥ 216॥

गङ्गा-तीरे-तीरे-गंगा के किनारे किनारे; प्रभु–महाप्रभु; चारि-जन-साथे-अन्य चार व्यक्तियों सहित; नीलाद्रि–जगन्नाथ पुरी को; चलिला–प्रस्थान किया; प्रभु–महाप्रभु; छत्रभोग-पथे-छत्रभोग के मार्ग से।

अनुवाद

महाप्रभु चारों व्यक्तियों के साथ गंगा नदी के किनारे-किनारे छत्रभोग के मार्ग से नीलाद्रि अर्थात् जगन्नाथ पुरी की ओर चलने लगे।

तात्पर्य

चौबीस परगना जनपद में पूर्वी रेलवे के दक्षिणी खण्ड में मयाहाट नामक रेलवे स्टेशन है। यदि इस स्टेशन से लगभग 14 मील दक्षिण पूर्व की ओर चलें, तो जयनगर नामक स्थान मिलता है। इस स्थान से लगभग 6 मील दक्षिण में छत्रभोग नामक गाँव है। कभी-कभी इसे खाड़ि भी कहते हैं। इस गाँव में वैजुर्कानाथ नामक शिवजी का अर्चाविग्रह

है। प्रतिवर्ष यहाँ पर चैत्र मास (अर्थात् मार्च-अप्रैल मास) में एक उत्सव मनाया जाता है। यह उत्सव नन्दा-मेला के नाम से प्रसिद्ध है। अब वहाँ गंगा नदी नहीं बहतीं। इसी रेलवे लाइन पर एक अन्य स्टेशन है, जिसका नाम है बारुइपुर। इस स्टेशन के पास ही आटिसारा नामक एक दूसरा स्थान है। पहले यह गाँव भी गंगा-तट पर स्थित था। इस गाँव से पाणिहाटी जाया जा सकता है, जहाँ से कलकत्ता के उत्तर में स्थित वराह नगर जाया जा सकता है। उन दिनों गंगा नदी, जो आज भी आदि गंगा कहलाती हैं, कलकत्ता के दक्षिण की ओर कालीघाट से होकर बहती थीं। बारुइपुर से गंगा नदी की शाखाएँ मथुरापुर थाने के निकट डायमंड हार्बर से होकर बहती थीं। यह ध्यान देने की बात है कि श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी आते हुए इन सारे स्थानों से होकर गुजरे थे।

'चैतन्य-मङ्गले' प्रभुर नीलाद्रि-गमन ।

विस्तारि वर्णियाछेन दास-वृन्दावन ॥217॥

चैतन्य-मङ्गले–चैतन्य मंगल नामक ग्रन्थ में; प्रभुर–महाप्रभु का; नीलाद्रि-गमन-जगन्नाथ पुरी को जाना; विस्तारि-विस्तार से; वर्णियाछेन-वर्णन किया है; दास-वृन्दावन-वृन्दावन दास ठाकुर ने।

अनुवाद

वृन्दावन दास ठाकुर ने अपनी पुस्तक चैतन्य-मंगल (चैतन्य भागवत) में जगन्नाथ पुरी तक महाप्रभु के गमन का विस्तार से वर्णन किया है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि बंगाल से होकर जाते हुए चैतन्य महाप्रभु आटिसारा ग्राम, वराह-ग्राम तथा छत्रभोग से होकर गये। फिर वे उड़ीसा प्रान्त में पहुँचे, जहाँ वे प्रयाग-घाट, सुवर्णरेखा नदी, रेमुणा, याजपुर, जहाँ उन्होंने दशाश्वमेध घाट पर वैतरणी नदी में स्नान किया, कटक, जहाँ 'महानदी' नामक नदी बहती है, फिर भुवनेश्वर (जहाँ बिन्दु सरोवर नामक एक महान् सरोवर है), कमलपुर तथा आठारनाला से होकर गये। इस तरह इन सारे तथा अन्य स्थानों से होते हुए महाप्रभु जगन्नाथ पुरी पहुँचे।

अद्वैत-गृहे प्रभुर विलास शुने येइ जन ।

अचिरे मिलये ताँरे कृष्ण-प्रेम-धन ॥ 218॥

अद्वैत-गृहे-अद्वैत आचार्य के घर पर; प्रभुर–महाप्रभु की; विलास-लीलाएँ; शुने-सुनता है; येइ-जो; जन-व्यक्ति; अचिरे–अति शीघ्र; मिलये-मिलता है; ताँरे–उसको; कृष्ण-प्रेम-धन-कृष्ण-प्रेम रूपी धन।

अनुवाद

जो व्यक्ति अद्वैत आचार्य के घर में सम्पन्न महाप्रभु के कार्यकलापों को सुनता है, उसे निश्चय ही तुरन्त कृष्ण-प्रेम रूपी धन प्राप्त होता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥219॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; यार–जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए और सदा उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं, कृष्णदास, उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत की मध्यलीला के तृतीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें चैतन्य महाप्रभु के अद्वैत आचार्य के घर में ठहरने, उनके संन्यास ग्रहण करने, अद्वैत आचार्य के घर पर नित्य उत्सव मनाने, भगवान् के पवित्र नाम का सामूहिक कीर्तन करने और सभी भक्तों के साथ प्रसाद ग्रहण करने का वर्णन है।

अध्याय चार

श्री माधवेन्द्र पुरी की भक्ति

श्रील भक्तिवेदान्त ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में चौथे अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। छत्रभोग के मार्ग से गुजरते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु वृद्धमन्त्रेश्वर पहुँचे, जो उड़ीसा की सीमा पर है। रास्ते-भर कीर्तन करते हुए और विभिन्न ग्रामों में भिक्षा माँगते हुए उन्होंने दिव्य आनन्द का अनुभव किया। इस प्रकार वे रेमुणा नामक सुप्रसिद्ध

गाँव पहुँचे, जहाँ गोपीनाथ का अर्चाविग्रह है। वहाँ पर उन्होंने अपने गुरु ईश्वर पुरी के मुख से सुनी हुई माधवेन्द्र पुरी की कथा सुनाई। यह कथा इस प्रकार है।

गोवर्धन में रहते हुए एक रात को माधवेन्द्र पुरी ने सपना देखा कि गोपाल का अर्चाविग्रह जंगल में है। अतः अगले दिन उस अर्चाविग्रह को जंगल से खोद निकालने के लिए उन्होंने अपने पड़ोस के साथियों को उनके साथ चलने के लिए निमन्त्रित किया। फिर उन्होंने श्री गोपालजी के अर्चाविग्रह को बड़ी धूमधाम से गोवर्धन पर्वत की चोटी पर स्थापित किया। गोपाल की पूजा की गई और अन्नकूट उत्सव मनाया गया। इस उत्सव का सर्वत्र पता लग गया और निकटवर्ती गाँवों के अनेक लोग उसमें सम्मिलित होने आये। एक रात गोपाल-विग्रह फिर माधवेन्द्र पुरी के सपने में आये और उनसे जगन्नाथ पुरी जाकर कुछ चन्दन का लेप लाने और अर्चाविग्रह को लेप करने के लिए कहा। यह आदेश पाकर माधवेन्द्र पुरी तुरन्त उड़ीसा के लिए चल पड़े। बंगाल होकर यात्रा करते हुए वे रेमुणा गाँव पहुँचे और वहाँ पर उन्हें गोपीनाथजी के अर्चाविग्रह को भोग लगा हुआ एक पात्र क्षीर प्राप्त हुआ। यह क्षीर पात्र गोपीनाथ ने चुराया था और उन्होंने इसे माधवेन्द्र पुरी को दिया था। तभी से गोपीनाथ-विग्रह क्षीर-चोरा गोपीनाथ कहलाते हैं। जगन्नाथ पुरी पहुँचने पर माधवेन्द्र पुरी को राजा से अनुमति प्राप्त हो गई कि वे अपने साथ एक मांड चन्दन तथा 20 तोले कपूर ले जा सकते हैं। वे दो व्यक्तियों की सहायता से यह साम्रगी रेमुणा लाये। उन्होंने फिर से स्वपन में देखा कि गोवर्धन पर्वत स्थित गोपालजी की इच्छा है कि इस चन्दन को कपूर के साथ मिलाकर लेप तैयार किया जाये और उसे गोपीनाथजी के विग्रह पर लगाया जाय। यह समझकर कि इससे गोवर्धन स्थित गोपालजी सन्तुष्ट होंगे, माधवेन्द्र पुरी ने उस आदेश का पालन किया और फिर जगन्नाथ पुरी लौट आये।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु तथा अन्य भक्तों को यह कथा सुनाई और माधवेन्द्र पुरी की शुद्ध भक्ति की प्रशंसा की। जब वे माधवेन्द्र पुरी द्वारा रचित कुछ श्लोक सुना रहे थे, तो वे भावमग्न हो गये। किन्तु जब उन्होंने देखा कि वहाँ अनेक लोग एकत्र हुए हैं, तो उन्होंने अपने आपको सँभाला और थोड़ा-सा खीर प्रसाद ग्रहण किया। इस तरह रात वहाँ बिताकर अगले दिन वे फिर से जगन्नाथ पुरी के लिए चल पड़े।

यस्मै दातुं चोरयन्क्षीर-भाण्डं

गोपीनाथः क्षीर-चोराभिधोऽभूत्।

श्री-गोपालः प्रादुरासीद्वशः सन्

यत्प्रेम्णा तं माधवेन्द्रं नतोऽस्मि ॥1॥

यस्मै–जिनको; दातुम् देने के लिए; चोरयन्-चोरी करके; क्षीर-भाण्डम्-खीर का पात्र; गोपीनाथः–गोपीनाथ; क्षीर-चोरा-खीर चोर; अभिधः–प्रसिद्ध; अभूत्-हो गये; श्री गोपालः–श्री गोपाल विग्रह; प्रादुरासीत्-प्रकट हुए; वशः–वशीभूत; सन्-होकर; यत्-प्रेम्णा-उनके प्रेम से; तम्-उनको; माधवेन्द्रम्-श्रील माधवेन्द्र पुरी जो मध्व सम्प्रदाय में थे; नतः अस्मि-मैं सादर प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

मैं उन माधवेन्द्र पुरी को सादर नमस्कार करता हूँ, जिन्हें श्री गोपीनाथ ने खीर का एक पात्र चुराकर दिया और तत्पश्चात् स्वयं क्षीर-चोरा कहलाये। माधवेन्द्र पुरी के प्रेम से प्रसन्न होकर गोवर्धन-स्थित श्री गोपाल-विग्रह ने जनसमूह को दर्शन दिया।

तात्पर्य

भक्तिविनोद ठाकुर की टिप्पणी है कि इस गोपाल-विग्रह की प्रतिष्ठा सर्वप्रथम कृष्ण के प्रपौत्र वज्र ने की थी। माधवेन्द्र पुरी ने गोपाल विग्रह को फिर से ढूंढ़ निकाला और उन्हें गोवर्धन पर्वत की चोटी पर स्थापित किया। यही गोपाल-विग्रह आज भी नाथद्वारा में विद्यमान है और वल्लभाचार्य के वशंजों की देखरेख में है। इस विग्रह की पूजा बड़े ठाठबाट से की जाती है। और वहाँ जाने वाला कोई भी व्यक्ति अल्प मूल्य देकर विभिन्न प्रकार का प्रसाद खरीद सकता है।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैतचन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय गौरचन्द्र-श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो; जय नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु की जय हो; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत प्रभु की जय हो; जय गौर-भक्त-वृन्द–महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत प्रभु की जय हो! तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो।

नीलाद्रि-गमन, जगन्नाथ-दरशन ।

सार्वभौम भट्टाचार्य-प्रभुर मिलन ॥ 3॥

ए सब लीला प्रभुर दास वृन्दावन ।

विस्तारि' करियाछेन उत्तम वर्णन ॥4॥

नीलाद्रि-गमन–जगन्नाथ पुरी जाते हुए; जगन्नाथ-दरशन-भगवान जगन्नाथ के मन्दिर के दर्शन करते हुए; सार्वभौम भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ; प्रभुर–महाप्रभु का; मिलन–मिलन; ए सब-ये सब; लीला-लीलाएँ, प्रभुर–महाप्रभु की; दास वृन्दावन-वृन्दावन दास ठाकुर; विस्तारि'–विस्तारपूर्वक; करियाछेन–किया है; उत्तम-बहुत सुन्दर; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

महाप्रभु जगन्नाथ पुरी गये और भगवान जगन्नाथ के मन्दिर के दर्शन किये। वे सार्वभौम भट्टाचार्य से भी मिले। इन सब लीलाओं का अत्यन्त विस्तृत वर्णन वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा अपने ग्रन्थ चैतन्य-भागवत में किया गया है।

सहजे विचित्र मधुर चैतन्य-विहार ।

वृन्दावन-दास-मुखे अमृतेर धार ॥5॥

सहजे–सहज रूप से; विचित्र-विचित्र; मधुर मधुर; चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु की; विहार-लीलाएँ, वृन्दावन-दास-वृन्दावनदास ठाकुर के; मुखे-मुख से; अमृतेर-अमृत की; धार-धारा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की सभी लीलाएँ स्वभावतः अत्यन्त अद्भुत और मधुर हैं और जब उनका वर्णन वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा किया जाता है, तब वे अमृत की धारा के समान बन जाती हैं।

अतएव ताहा वर्णिले हय पुनरुक्ति ।

दम्भ करि' वर्णि यदि तैछे नाहि शक्ति ॥ 6॥

अतएव–अतएव; ताहा–ऐसी लीलाएँ; वर्णिले-वर्णन करने पर; हय-है; पुनरुक्ति–पुनरावृत्ति ; दम्भ करि'-अभिमान करके; वर्णि-मैं वर्णन करता हूँ; यदि-यदि; तैछे-ऐसी; नाहि-नहीं है; शक्ति–शक्ति।

अनुवाद

इसलिए मेरा सविनय निवेदन है कि चूँकि इन लीलाओं का सुन्दर वर्णन वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा पहले ही हो चुका है, अतएव उन लीलाओं की पुनरावृत्ति दंभ की परिचायक होगी, अतएव ऐसा करना अच्छा नहीं होगा। मुझमें ऐसी शक्ति नहीं है।

चैतन्य-मङ्गले याहा करिल वर्णन ।

सूत्र-रूपे सेइ लीला करिये सूचन ॥7॥

चैतन्य-मङ्गले- चैतन्य मंगल नामक ग्रन्थ में; याहा–जो कुछ; करिल वर्णन-वर्णन किया है; सूत्र-रूपे–रूपरेखा के रूप में; सेइ लीला-वही लीलाएँ; करिये सूचन–मैं प्रस्तुत करूँगा।

अनुवाद

अतएव चैतन्य मंगल (अब चैतन्य भागवत नाम से विख्यात) में वृन्दावन दास ठाकुर जिन लीलाओं का पहले से विस्तृत वर्णन कर चुके हैं, उन्हें मैं सूत्र-रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

ताँर सूत्रे आछे, तेंह ना कैल वर्णन ।

यथा-कथञ्चित्करि' से लीला कथन ॥8॥

ताँर–उनकी; सूत्रे-संक्षेप में; आछे हैं; तेंह-उन्होंने; ना कैल वर्णन-वर्णन नहीं किया; यथा-कथञ्चित्-उनमें से कुछ; करि'-करता हूँ; से-उन; लीला-लीलाओं का; कथन-वर्णन।

अनुवाद

उन्होंने कुछ लीलाओं का विस्तृत वर्णन नहीं किया है, प्रत्युत सार-मात्र दिया है, अतएव मैं इस पुस्तक में उनका वर्णन करने का प्रयास करूँगा।

अतएव ताँर पाये करि नमस्कार ।

ताँर पाय अपराध ना हउक् आमार ॥9॥

अतएव–अतएव; ताँर पाये-उनके चरणकमलों में; करि-मैं करता हूँ; नमस्कार-नमस्कार; ताँर पाय-श्रील वृन्दावनदास ठाकुर के चरणकमलों में; अपराध-अपराध; ना-न; हउक्-हो; आमार-मेरा।

अनुवाद

अतएव मैं वृन्दावन दास ठाकुर के चरणकमलों में अपना सादर नमस्कार अर्पित करता हूँ। मुझे आशा है कि मेरे इस कार्य से उनके चरणकमलों के प्रति अपराध नहीं होगा।

एइ-मत महाप्रभु चलिला नीलाचले ।

चारि भक्त सङ्गे कृष्ण-कीर्तन-कुतूहले ॥10॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु; चलिला–चल पड़े; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी की ओर; चारि भक्त-चार भक्तों; सङ्गे–के साथ; कृष्ण-कीर्तन-कृष्ण के पावन नाम का कीर्तन करते हुए; कुतूहले–अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने चार भक्तों सहित जगन्नाथ पुरी की ओर चल पड़े और वे बड़े उत्साह से भगवान् के पवित्र नाम—हरे कृष्ण मंत्र—का कीर्तन कर रहे थे।

भिक्षा लागि' एक-दिन एक ग्राम गिया ।

आपने बहुत अन्न आनिल मागिया ॥11॥

भिक्षा लागि'–प्रसाद के लिए; एक-दिन-एक दिन में; एक ग्राम–एक गाँव में; गिया-जाकर; आपने स्वयं; बहुत-बहुत; अन्न–अन्न (चावल तथा अन्य खाद्य पदार्थ); आनिल-लाये; मागिया-माँगकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिदिन स्वयं एक गाँव में जाते और प्रसाद तैयार करने के लिए चावल तथा अन्य अनाज पर्याप्त मात्रा में माँग लाते।

पथे बड़ बड़ दानी विघ्न नाहि करे ।

ता' सबारे कृपा करि' आइला रेमुणारे ॥12॥

पथे-मार्ग में; बड़ बड़-बड़े बड़े; दानी–कर वसूल करने वाले; विघ्न-विघ्न; नाहि-नहीं; करे–किया; ता' सबारे उन सब पर; कृपा करि'-कृपा करके; आइला-पहुँचे; रेमुणारे–रेमुणा गाँव।

अनुवाद

रास्ते में अनेक नदियाँ पड़ीं और हर नदी पर कर एकत्र करने वाला व्यक्ति था। किन्तु उसने महाप्रभु को रोका नहीं। महाप्रभु ने भी उन सब पर कृपा की। अन्त में वे रेमुणा गाँव पहुँचे।

तात्पर्य

बालेश्वर नामक रेलवे स्टेशन से पाँच मील पश्चिम की ओर रेमुणा नामक गाँव है। इस गाँव में आज भी क्षीर-चोरा गोपीनाथ का मन्दिर है और इस मन्दिर के भीतर आज भी श्यामानन्द गोस्वामी के प्रमुख शिष्य रसिकानन्द प्रभु की समाधि है।

रेमुणाते गोपीनाथ परम-मोहन ।

भक्ति करि' कैल प्रभु ताँर दरशन ॥13॥

रेमुणाते-उस रेमुणा गाँव में; गोपीनाथ-गोपीनाथ का विग्रह; परम-मोहन-परम आकर्षक; भक्ति करि'- भक्ति सहित; कैल–किया; प्रभु–महाप्रभु ने; ताँर–उनका; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

रेमुणा के मन्दिर में गोपीनाथ का विग्रह अत्यन्त आकर्षक था। चैतन्य महाप्रभु ने इस मन्दिर में दर्शन किये और अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार किया।

ताँर पाद-पद्म निकट प्रणाम करिते ।

ताँर पुष्प-चूड़ा पड़िल प्रभुर माथाते ॥ 14॥

ताँर पाद-पद्म–गोपीनाथ के चरणकमल; निकट–निकट; प्रणाम-प्रणाम; करिते-करते समय; ताँर–उनका; पुष्प-चूड़ा-फूलों का मुकुट; पड़िल–गिर पड़ा; प्रभुर–महाप्रभु के; माथाते-मस्तक पर।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु गोपीनाथ विग्रह के चरणकमलों में प्रणाम कर रहे थे, तो गोपीनाथ के सिर का पुष्प-मुकुट महाप्रभु के मस्तक पर गिर गया।

चूड़ा पाञा महाप्रभुर आनन्दित मन ।

बहु नृत्य-गीत कैल लञा भक्त-गण ॥ 15 ॥

चूड़ा पाञा–प्राप्त करके; महाप्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; आनन्दित–प्रसन्न होकर; मन–मन; बहु-कई प्रकार के; नृत्य-गीत-नृत्य गीत; कैल–करने लगे; लञा-के साथ; भक्त-गण-भक्तों।

अनुवाद

जब अर्चाविग्रह का पुष्प-मुकुट उनके मस्तक पर आ गिरा, तो श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने भक्तों के साथ विभिन्न प्रकार से कीर्तन तथा नर्तन किया।

प्रभुर प्रभाव देखि' प्रेम-रूप-गुण ।

विस्मित हइला गोपीनाथेर दास-गण ॥16॥

प्रभुर–महाप्रभु का प्रभाव-प्रभाव; देखि'–देखकर; प्रेम-रूप-उनका सौन्दर्य; गुण-और उनके गुण; विस्मित हइला–चकित हो गये; गोपीनाथेर-गोपीनाथ अर्चाविग्रह के; दास-गण-दास।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रगाढ़ प्रेम, उनके अत्युत्तम सौन्दर्य तथा उनके दिव्य गुणों को देखकर अर्चाविग्रह के सभी सेवक आश्चर्यचकित रह गये।

नाना-रूपे प्रीत्ये कैल प्रभुर सेवन ।

सेइ रात्रि ताहाँ प्रभु करिला वञ्चन ॥17॥

नाना-रूपे-नाना प्रकार से; प्रीत्ये-प्रेम से; कैल-की; प्रभुर–महाप्रभु की; सेवन-सेवा; सेइ रात्रि-उस रात; ताहाँ-वहाँ; प्रभु–चैतन्य महाप्रभु; करिला-की; वञ्चन-रहे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति प्रेमवश उन सेवकों ने नाना प्रकार से महाप्रभु की सेवा की और उस रात महाप्रभु गोपीनाथ के मन्दिर में रुक गये।

महाप्रसाद-क्षीर-लोभे रहिला प्रभु तथा ।

पूर्वे ईश्वर-पुरी ताँरे कहियाछेन कथा ॥18॥

महा-प्रसाद–महाप्रसाद; क्षीर-खीर; लोभे-उत्सुकता में; रहिला-रहे; प्रभु-महाप्रभु; तथा-वहाँ; पूर्वे-उससे पहले; ईश्वर-पुरी-उनके गुरु ईश्वर पुरी; ताँरे–उनको; कहियाछेन–बताई थी; कथा-कथा।

अनुवाद

महाप्रभु वहाँ इसीलिए रुके थे, क्योंकि वे गोपीनाथ-विग्रह का खीर-प्रसाद पाने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। उन्होंने अपने गुरु ईश्वर पुरी से यहाँ घटित एक कथा सुन रखी थी।

'क्षीर-चोरा गोपीनाथ' प्रसिद्ध ताँर नाम ।

भक्त-गणे कहे प्रभु सेइ त' आख्यान ॥19॥

क्षीर-चोरा गोपीनाथ-खीर चोर गोपीनाथ; प्रसिद्ध-अत्यन्त प्रसिद्ध; ताँर नाम-उनका नाम; भक्त-गणे-सभी भक्तों को; कहे-बताइ; महाप्रभु प्रभु ने; सेइ त' आख्यान-वह कथा।

अनुवाद

यह विग्रह दूर-दूर तक क्षीरचोरा-गोपीनाथ के नाम से विख्यात था और चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों को वह कथा सुनाई कि यह विग्रह इतना प्रसिद्ध कैसे हुआ।

पूर्वे माधव-पुरीर लागि' क्षीर कैल चुरि ।

अतएव नाम हैल 'क्षीर-चोरा हरि' ॥20॥

पूर्वे-पूर्व काल में; माधव-पुरीर लागि'–श्रील माधवेन्द्र पुरी के लिए; क्षीर-खीर की; कैल-की; चुरि-चोरी; अतएव–अतएव; नाम-नाम; हैल-पड़ गया; क्षीर-चोरा हरि-खीर-चोर हरी।

अनुवाद

पूर्वकाल में इस विग्रह ने माधवेन्द्र पुरी के लिए क्षीर का पात्र चुराया था, अतएव वे क्षीर चुराने वाले भगवान् के नाम से प्रसिद्ध हुए।

पूर्वे श्री-माधव-पुरी आइला वृन्दावन ।

भ्रमिते भ्रमिते गेला गिरि गोवर्धन ॥21॥

पूर्वे-पहले; श्री-माधव-पुरी-श्रील माधवेन्द्रपुरी; आइला–आये; वृन्दावन-वृन्दावन में; भ्रमिते भ्रमिते-घूमते फिरते; गेला-गये; गिरि गोवर्धन-गोवर्धन पर्वत ।

अनुवाद

एक बार श्री माधवेन्द्र पुरी वृन्दावन गये और वहाँ घूमते-घूमते वे गोवर्धन पर्वत पहुँचे।

प्रेमे मत्त, —नाहि ताँर रात्रि-दिन-ज्ञान ।

क्षणे उठे, क्षणे पड़े, नाहि स्थानास्थान ॥22॥

प्रेमे मत्त-कृष्ण के प्रेमभाव में उन्मत्त; नाहि-नहीं था; ताँर-उनको; रात्रि-दिन-ज्ञान-दिन-रात का ज्ञान; क्षण-कभी; उठे-उठते; क्षणे पड़े-कभी गिरते ; नाहि-कोई होश नहीं था; स्थान-अस्थान-उचित-अनुचित स्थान का।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी भगवत्प्रेम में उन्मत्त रहते थे और उन्हें इसका ज्ञान भी नहीं रहता था कि दिन है या रात। कभी वे उठ बैठते और कभी भूमि पर गिर पड़ते। उन्हें उचित अथवा अनुचित स्थान में भेद नहीं रहता था।

शैल परिक्रमा करि' गोविन्द-कुण्डे आसि' ।

स्नान करि, वृक्ष-तले आछे सन्ध्याय वसि' ॥23॥

शैल–पर्वत की; परिक्रमा-परिक्रमा; करि’-करके; गोविन्द-कुण्डे-गोविन्द कुण्ड के तट पर; आसि’-आकर; स्नान करि-स्नान करके; वृक्ष-तले–एक वृक्ष के नीचे; आछे-है; सन्ध्याय-साँयकाल; वसि’–विश्राम करने।

अनुवाद

गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा करने के बाद श्री माधवेन्द्र पुरी गोविन्द कुण्ड गये और वहाँ स्नान किया। फिर संध्या विश्राम के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गये।

गोपाल-बालक एक दुग्ध-भाण्ड लञा ।

आसि’ आगे धरि’ किछु बलिल हासिया ॥24॥

गोपाल-बालक-ग्वालबाल ; एक-एक; दुग्ध-भाण्ड लञा-दूध का एक पात्र लेकर; आसि’–आकर; आगे धरि’-सामने रखकर; किछु-कुछ; बलिल–बोला; हासिया-हँसते हुए।

अनुवाद

जब वे वृक्ष के नीचे बैठे थे, तभी एक अज्ञात ग्वालबाल दूध का पात्र लेकर आया और माधवेन्द्र पुरी के सामने पात्र रखकर हँसते हुए उनसे इस प्रकार बोला।

पुरी, एइ दुग्ध लञा कर तुमि पान ।

मागि’ केने नाहि खाओ, किबा कर ध्यान ॥ 25 ॥

पुरीहे माधवेन्द्र पुरी; एड दुग्ध लञा-यह दूध लेकर; कर तुमि पान-आप इसे पी लो; मागि’-माँगकर; केने-क्यों; नाहि-नहीं; खाओ-आप खाते; किबा-क्या; कर-करो; ध्यान-ध्यान।

अनुवाद

“हे माधवेन्द्र पुरी, कृपया मेरे द्वारा लाया हुआ दूध पीजिये। आप खाने के लिए कुछ भोजन क्यों नहीं माँग लाते ? आप किस तरह का ध्यान कर रहे हैं?”

बालकेर सौन्दर्ये परीर हडल सन्तोष ।

ताहार मधुर-वाक्ये गेल भोक-शोष ॥ 26 ॥

बालकेर-बालक के; सौन्दर्ये-सौन्दर्य में; पुरीर-श्रील माधवेन्द्र पुरी का; हइल-हो गया; सन्तोष-अत्यन्त सन्तोष; ताहार-उसके; मधुर-वाक्ये-मधुर शब्दों से; गेल-भूल गये; भोक-शोष-सारी भूख और प्यास।

अनुवाद

उस बालक के सौन्दर्य को देखकर माधवेन्द्र पुरी अत्यधिक सन्तुष्ट हुए। उसके मीठे वचन सुनकर वे अपनी सारी भूख तथा प्यास भूल गये।

पुरी कहे,—के तुमि, काहाँ तोमार वास ।

के-मते जानिले, आमि करि उपवास ॥ 27॥

पुरी कहे-माधवेन्द्र पुरी ने बालक से पूछा; के तुमि-तुम कौन हो; काहाँ तोमार वास-तुम कहाँ रहते हो; के-मते-कैसे; जानिले-तुम्हें पता लगा; आमि करि उपवास-मैं उपवास पर हूँ।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने कहा, "तुम कौन हो? तुम कहाँ रहते हो? तुम कैसे जान पाये कि मैं उपवास कर रहा हूँ?"

बालक कहे,—गोप आमि, एइ ग्रामे वसि ।

आमार ग्रामेते केह ना रहे उपवासी ॥28॥

बालक कहे-बालक ने कहा; गोप आमि-मैं एक ग्वाला हूँ; एइ ग्रामे वसि—इसी गाँव में रहता हूँ; आमार ग्रामेते-मेरे गाँव में; केह-कोई भी; ना-नहीं; रहे-रहता; उपवासी–भोजन के बिना।

अनुवाद

बालक ने उत्तर दिया, "महाशय, मैं ग्वालबाल हूँ और इसी गाँव में रहता हूँ। मेरे गाँव में कोई भूखा नहीं रहता।"

केह अन्न मागि' खाय, केह दुग्धाहार ।

अयाचक-जने आमि दिये त' आहार ॥29॥

केह-कोई; अन्न–अन्न; मागि'-माँगकर; खाय-खाता है; केह-कोई; दुग्ध-आहार-दूध पीता है; अयाचक-जने-जो नहीं माँगता; आमि–मैं; दिये-देता हूँ; त'-निश्चित रूप से; आहार-भोजन।

अनुवाद

"इस गाँव में कोई भी व्यक्ति दूसरे से माँगकर भोजन कर सकता है। कुछ लोग केवल दूध पीकर रहते हैं। किन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी से भोजन नहीं माँगता, तो मैं उसको खाने की सारी वस्तुएँ देता हूँ।"

जल निते स्त्री-गण तोमारे देखि' गेल ।

स्त्री-सब दुग्ध दिया आमारे पाठाइल ॥ 30॥

जल निते-पानी लाने के लिए; स्त्री-गण-महिलाएँ; तोमारे-आपको; देखि' गेल-देखकर गई; स्त्री-सब-सभी महिलाओं ने; दुग्ध-दूध; दिया-देकर; आमारे-मुझे; पाठाइल–भेजा है।

अनुवाद

"पानी लेने आई हुई स्त्रियों ने आपको यहाँ देखा, तो उन्होंने यह दूध देकर मुझे आपके पास भेजा है।"

गो-दोहन करिते चाहि, शीघ्र आमि याब ।

आर-बार आसि आमि एइ भाण्ड लइब ॥ 31॥

गो-दोहन करिते चाहि-मैं गौओं का दूध दोहना चाहता हूँ; शीघ्र-शीघ्र; आमि याब–मुझे जाना है; आर-बार पुनः; आसि-लौटकर; आमि-मैं; एइ–यह; भाण्ड-पात्र; लइब-वापस ले जाऊँगा।

अनुवाद

बालक ने आगे कहा, "मुझे शीघ्र ही गाएँ दुहने जाना है, किन्तु मैं लौटकर यह दूध का पात्र आपसे ले जाऊँगा।"

एत बलि' गेला बालक ना देखिये आर ।

माधव-पुरीर चित्ते हइल चमत्कार ॥ 32॥

एत बलि'-यह कहकर; गेला–गया; बालक-बालक; ना-नहीं; देखिये-देखा जा सका; आर-और फिर; माधव-पुरीर-श्रील माधवेन्द्र पुरी के; चित्ते–मन में; हइल-हुआ; चमत्कार–चमत्कार।

अनुवाद

यह कहकर वह बालक वहाँ से चला गया। वह बालक अचानक अन्तर्धान हो गया, तो माधवेन्द्र पुरी का मन आश्चर्यचकित हो गया।

दुग्ध पान करि' भाण्ड धुञा राखिल ।

बाट देखे, से बालक पुनः ना आइल ॥ 33॥

दुग्ध-दूध; पान करि'–पीकर; भाण्ड-पात्र; धुञा-धोकर; राखिल-एक ओर रख दिया; बाट देखे-बाट देखने लगे; से बालक-वह बालक; पुनः–पुनः; ना आइल-लौटकर नहीं आया।

अनुवाद

दूध पीने के बाद श्री माधवेन्द्र पुरी ने पात्र को धोया और एक तरफ रख दिया। फिर वे उस बालक की राह देखते रहे, किन्तु वह बालक नहीं लौटा।

वसि' नाम लय पुरी, निद्रा नाहि हय ।

शेष-रात्रे तन्द्रा हैल,—बाह्य-वृत्ति-लय ॥ 34॥

वसि'-वहाँ बैठकर; नाम लय-हरे कृष्ण महामंत्र का जप करने लगे; पुरी-माधवेन्द्र पुरी; निद्रा-निद्रा; नाहि हय-नहीं आई; शेष-रात्रे-शेष रातभर; तन्द्रा-झपकी; हैल-आ गई; बाह्य-वृत्ति-बाहरी गतिविधियाँ; लय-बन्द हो गईं।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी सो नहीं सके। वे बैठे रहे और हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करते रहे। रात्रि समाप्त होने पर उन्हें थोड़ी झपकी आ गई और उनके सारे बाह्य कार्य रुक गये।

स्वप्ने देखे, सेइ बालक सम्मुखे आसिञा ।

एक कुञ्जे लञा गेल हातेते धरिञा ॥ 35॥

स्वप्ने–स्वप्न में; देखे-उन्होंने देखा; सेइ बालक-वही बालक; सम्मुखे-सामने; आसिञा-आकर; एक कुञ्जे–एक कुंज में; लञाउनको लेकर; गेल-गया; हातेते धरिञा-उन्हें हाथ से पकड़कर।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने स्वप्न में उसी बालक को देखा। वह बालक उनके सामने आया और उनका हाथ पकड़कर उन्हें जंगल में एक कुंज तक ले गया।

कुञ्ज देखाञा कहे,—आमि एइ कुञ्जे रइ ।

शीत-वृष्टि-वाताग्निते महा-दुःख पाइ ॥ 36॥

कुञ्ज देखाञा-उसे कुंज (झाड़ी) दिखाते समय; कहे-कहने लगा; आमि-मैं; एइ–इस; कुञ्ज–कुंज में; रइरहता हूँ; शीत-वृष्टि-कड़ाके की सर्दी में और बरसती वर्षा में; वात-तीव्र हवा में; अग्निते-और झुलसती गर्मी में; महा-दुःख पाइ–मैं अत्यन्त पीड़ा का अनुभव कर रहा हूँ।

अनुवाद

बालक ने माधवेन्द्र पुरी को वह कुंज दिखाया और कहा, "मैं इसी कुंज में रहता हूँ, अतएव मुझे कड़ाके की ठण्ड, बरसती वर्षा, वायु तथा झुलसती गर्मी के कारण अत्यन्त कष्ट हो रहा है।

ग्रामेर लोक आनि' आमा काढ़' कुञ्ज हैते ।

पर्वत-उपरि लञा राख भाल-मते ॥ 37॥

ग्रामेर-गाँव के; लोक-लोग; आनि'–लाकर; आमा–मुझे; काढ़'–बाहर निकालो; कुञ्ज हैते–इस झाड़ी से; पर्वत-उपरि–पर्वत की चोटी पर; लञा-ले जाकर; राख-मुझे रखो; भाल-मते-अच्छी तरह।

अनुवाद

"कृपा करके गाँव के लोगों को लाकर मुझे इस झाड़ी से निकालिये और उनसे कहकर मुझे पर्वत की चोटी पर भली प्रकार स्थापित कर दीजिये।"

एक मठ करि' ताहाँ करह स्थापन ।

बहु शीतल जले कर श्री-अङ्ग मार्जन ॥ 38॥

एक-एक; मठ–मन्दिर; करि'-बनाकर; ताहाँ-वहाँ; करह-करो; स्थापन-स्थापना; बहु-बहुत; शीतल-ठण्डे; जले-जल में; कर-करो; श्री-अङ्ग–मेरे दिव्य शरीर का; मार्जन-स्नान।

अनुवाद

बालक ने आगे कहा, "कृपया उस पर्वत की चोटी पर एक मन्दिर बनवाइये और मुझे उस मन्दिर में स्थापित कर दीजिये। इसके बाद मुझे पर्याप्त शीतल जल से स्नान कराईये, जिससे मेरा शरीर स्वच्छ हो जाये।"

बहु-दिन तोमार पथ करि निरीक्षण ।

कबे आसि' माधव आमा करिबे सेवन ॥ 39॥

बहु-दिन-बहुत दिन; तोमार-तुम्हारा; पथ–मार्ग; करि-मैं करता हूँ; निरीक्षण-निरीक्षण; कब-कब; आसि'-आकर; माधव-श्रील माधवेन्द्रपुरी; आमा–मेरी; करिबे-वह करेगा; सेवन–सेवा।

अनुवाद

मैं बहुत दिनों से तुम्हारी बाट देखता रहा हूँ और सोचता रहा हूँ कि, 'कब माधवेन्द्र पुरी यहाँ आकर मेरी सेवा करेगा?'

तोमार प्रेम-वशे करि' सेवा अङ्गीकार ।

दर्शन दिया निस्तारिब सकल संसार ॥40॥

तोमार-तुम्हारे; प्रेम-वशेप्रेम के वश में आकर; करि'-कर रहा हूँ; सेवा–सेवा; अङ्गीकार–स्वीकार; दर्शन दिया-दर्शन देकर; निस्तारिब–मैं उद्धार करूँगा; सकल-सारे; संसार–भौतिक संसार का।

अनुवाद

"मैंने तुम्हारे प्रेमभाव के कारण ही तुम्हारी सेवा स्वीकार की है। इस प्रकार मैं प्रकट होऊँगा और मेरा दर्शन करने से सारे पतित लोगों का उद्धार हो जायेगा।"

‘श्री-गोपाल’ नाम मोर,—गोवर्धन-धारी ।

वज्रेर स्थापित, आमि इहाँ अधिकारी ॥41॥

श्री-गोपाल नाम-श्री गोपाल नाम; मोर-मेरा; गोवर्धन-धारी–गोवर्धन धारी; वज्रर-कृष्ण के प्रपौत्र वज्र से; स्थापित-स्थापित किया गया; आमि-मैं; इहाँ–यहाँ; अधिकारी-अधिकारी।

अनुवाद

मेरा नाम गोपाल है। मैं गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाला हूँ। मेरी स्थापना वज्र द्वारा की गई थी और मैं यहाँ का अधिकारी हूँ।

शैल-उपरि हैते आमा कुञ्जे लुकाञा ।

म्लेच्छ-भये सेवक मोर गेल पलाञा ॥42॥

शैल-उपरि–पर्वत की चोटी; हैते–से; आमा–मुझे; कुञ्जे झाड़ियों में, लुकाञा-छुपाकर; म्लेच्छ-भये-मुस्लिमों के भय से; सेवक-सेवक; मोर-मेरा; गेल-गया; पलाञा–भाग।

अनुवाद

“जब मुसलमानों का आक्रमण हुआ, तो मेरी सेवा करने वाले पुजारी ने मुझे जंगल कि इस कुंज में छिपा दिया। फिर वह आक्रमण के भय से भाग खड़ा हुआ।”

सेइ हैते रहि आमि एइ कुञ्ज-स्थाने ।

भाल हैल आइला आमा काढ़ सावधाने ॥43॥

सेइ हैते-उस समय से; रहि रहता हूँ; आमि-मैं; एइ–इस; कुञ्ज-स्थाने–कुंज में; भाल हैल–अच्छा हुआ; आइला–कि तुम आये हो; आमा–मुझे; काढ़-बाहर निकालो; सावधाने सावधानी से।

अनुवाद

“पुजारी के जाने के बाद से मैं इसी कुंज में रह रहा हूँ। यह अच्छा हुआ कि तुम आ गये। अब सावधानी से मुझे बाहर निकाल लो।”

एत बलि' से-बालक अन्तर्धान कैल।

जागिया माधव-पुरी विचार करिल ॥44॥

एत बलि'-यह कहकर; से-बालक-वही बालक; अन्तर्धान कैल–अन्तर्धान हो गया; जागिया-जागने पर; माधव-पुरी-माधवेन्द्र पुरी ने; विचार-विचार; करिल-किया।

अनुवाद

यह कहकर बालक अन्तर्धान हो गया। तब माधवेन्द्र पुरी जाग गये और अपने स्वप्न के बारे में विचार करने लगे।

श्रीकृष्णके देखिनु मुञि नारिनु चिनिते।

एत बलि' प्रेमावेशे पड़िला भूमिते ॥ 45 ॥

श्रीकृष्णके देखिनु–भगवान् कृष्ण को प्रत्यक्ष देखे; मुञि-मैंने; नारिनु-असमर्थ था; चिनिते-पहचानने में; एत बलि'-यह कहकर; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; पड़िला-गिर गये; भूमिते-धरती पर।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी पश्चात्ताप करने लगे, "मैंने साक्षात् भगवान् कृष्ण को देखे, किन्तु मैं उन्हें पहचान न सका!" यह कहकर वे प्रेमावेश में भूमि पर गिर पड़े।

क्षणेक रोदन करि, मन कैल धीर।

आज्ञा-पालन लागि' हइला सुस्थिर ॥ 46॥

क्षणेक-कुछ समय के लिए; रोदन करि-रोकर; मन–मन; कैल-किया; धीर-शान्त, धीर; आज्ञा-आज्ञा; पालन-पालन करने; लागि'–के लिए; हइला–हो गये; सु-स्थिर–शान्त।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी कुछ समय तक रोते रहे, किन्तु उसके बाद उन्होंने गोपाल की आज्ञा का पालन करने पर अपना चित्त स्थिर किया। इस तरह वे शान्त हुए।

प्रातः-स्नान करि' पुरी ग्राम-मध्ये गेला।

सब लोक एकत्र करि' कहते लागिला ॥47॥

प्रातः-स्नान-प्रातः स्नान; करि'-करके; पूरी-माधवेन्द्र पुरी; ग्राम-मध्ये-गाँव के मध्य; गेला-गये; सब लोक-सब लोगों को एकत्र करि'–एकत्र करके; कहते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

प्रात:काल स्नान करने के बाद माधवेन्द्र पुरी गाँव में गये और सारे लोगों को एकत्र किया। फिर वे इस प्रकार कहने लगे।

ग्रामेर ईश्वर तोमार—गोवर्धन-धारी।

कुञ्जे आछे, चल, ताँरे बाहिर ये करि ॥48॥

ग्रामेर-गाँव के; ईश्वर स्वामी; तोमार तुम्हारे; गोवर्धन-धारी–गोवर्धन धारी; कुञ्जे आछे–जंगल की झाड़ियों में पड़े हैं; चल-चलो; ताँरे–उन्हें; बाहिर ये करि–बाहर निकालें।

अनुवाद

"इस गाँव के स्वामी, गोवर्धनधारी, कुंज में पड़े हुए हैं। आइये, चलकर उन्हें उस स्थान से बाहर निकाल लें।"

अत्यन्त निविड़ कुञ्ज, —नारि प्रवेशिते।

कुठारि कोदालि लह द्वार करिते ॥49॥

अत्यन्त–अत्यन्त; निविड़-घनी; कुञ्ज–झाड़ियाँ; नारि-हम समर्थ नहीं हैं; प्रवेशिते-प्रवेश करने में; कुठारि-कुल्हाड़ियाँ, कोदालि-कुदाल; लह-ले लो; द्वार करिते-रास्ता बनाने के लिए।

अनुवाद

"झाड़ियाँ इतनी घनी हैं कि हम जंगल में प्रवेश नहीं कर पायेंगे। अतएव रास्ता बनाने के लिए कुल्हाड़े तथा कुदाल ले लो।"

शुनि' लोक ताँर सङ्गे चलिला हरिषे ।

कुञ्ज काटि' द्वार करि' करिला प्रवेशे ॥50॥

शुनि'–सुनकर; लोक-लोग; ताँर–उन; सङ्गे–के साथ; चलिला–चल पड़े; हरिषे-अत्यन्त प्रसन्नता से; कुञ्ज काटि–झाड़ियों को काटकर; द्वार–मार्ग; करि'-बनाकर; करिला प्रवेशे-प्रवेश कर गये।

अनुवाद

यह सुनकर सारे लोग अत्यन्त हर्षित हो माधवेन्द्र पुरी के साथ चल पड़े। उनके निर्देशानुसार उन्होंने झाड़ियाँ काटकर रास्ता बनाया और जंगल में प्रवेश किया।

ठाकुर देखिल माटी-तृणे आच्छादित ।

देखि' सब लोक हैल आनन्दे विस्मित ॥51॥

ठाकुर-अर्चाविग्रह; देखिल-उन्होंने देखा; माटी–मिट्टी से; तृणे-और घास से; आच्छादित ढका हुआ; देखि'–देखकर; सब लोक-सभी लोग; हैल-हो गये; आनन्दे-आनन्द से; विस्मित–चकित।

अनुवाद

जब उन्होंने अर्चाविग्रह को धूल तथा घास से ढका देखा, तो सब आश्चर्य तथा हर्ष से भर गये।

आवरण दूर करि' करिल विदिते ।

महा-भारी ठाकुर—केह नारे चालाइते ॥52॥

आवरण-आवरण; दूर करि'–हटाकर; करिल विदिते-घोषणा की; महा-भारी-बहुत भारी; ठाकुर-अर्चाविग्रह; केह-कोई भी; नारे-समर्थ नहीं; चालाइते–हिलाने में।

अनुवाद

जब अर्चाविग्रह के शरीर को साफ कर दिया गया, तो उनमें से कुछ लोगों ने कहा, "यह विग्रह बहुत भारी है। इसे अकेला एक व्यक्ति हिला नहीं सकता।"

महा-महा-बलिष्ठ लोक एकत्र करिञा ।

पर्वत-उपरि गेल पुरी ठाकुर लञा ॥53॥

महा-महा-बलिष्ठ-बहुत बलवान; लोक-व्यक्ति; एकत्र करिञा-एकत्र करके; पर्वत-उपरि–पर्वत की चोटी पर; गेल-गये; पुरी-माधवेन्द्र पुरी; ठाकुर लञा-अर्चाविग्रह को लेकर।

अनुवाद

चूँकि विग्रह बहुत भारी था, अतएव कुछ बलवान लोग उसे पर्वत की चोटी पर ले जाने के लिए एकत्र हुए। माधवेन्द्र पुरी भी वहाँ गये।

पाथरेर सिंहासने ठाकुर वसाइल ।

बड़ एक पाथर पृष्ठे अवलम्ब दिल ॥54॥

पाथरेर–पत्थर के; सिंह-आसने-सिंहासन पर; ठाकुर-अर्चाविग्रह; वसाइल-स्थापित किया; बड़-बड़े; एक-एक; पाथर–पत्थर; पृष्ठे-पीछे; अवलम्ब-सहारा; दिल-दिया।

अनुवाद

एक बड़े पत्थर को सिंहासन बनाया गया और उस पर अर्चाविग्रह को प्रतिष्ठित कर दिया गया। एक दूसरा बड़ा पत्थर विग्रह के सहारे के लिए पीछे लगा दिया गया।

ग्रामेर ब्राह्मण सब नव घट लञा ।

गोविन्द-कुण्डेर जल आनिल छानिञा ॥55॥

ग्रामेर–गाँव के; ब्राह्मण-ब्राह्मण पुजारी; सब-सब; नव-नौ; घट-जल पात्र; लञा–लाकर; गोविन्द-कुण्डेर–गोविन्द कुण्ड नामक सरोवर का; जल-जल; आनिल-लाये; छानिञा–छानने के लिए।

अनुवाद

गाँव के सारे ब्राह्मण पुरोहित जल के नौ घड़े लेकर एकत्र हुए और गोविन्द-कुण्ड से पानी लाया गया तथा उसे छाना गया।

नव शत-घट जल कैल उपनीत ।

नाना वाद्य-भेरी बाजे, स्त्री-गण गाय गीत ॥56॥

नव-नौ; शत-घट-सौ जलपात्र; जल-जल; कैल–किया; उपनीत-लाये; नाना-नाना; वाद्य-वाद्य ध्वनियाँ; भेरी–बिगुल; बाजे-बजते; स्त्री-गण-सारी महिलाएँ, गाय-गाने लगी; गीत–कई प्रकार के गीत।

अनुवाद

अर्चाविग्रह की प्रतिष्ठा करते समय गोविन्द-कुण्ड से 900 घड़े जल लाया गया। बिगुल तथा ढोल बजने लगे और स्त्रियाँ गीत गाने लगीं।

केह गाय, केह नाचे, महोत्सव हैल ।

दधि, दुग्ध, घृत आइल ग्रामे यत छिल ॥57॥

केह गाय-कुछ गाते; केह नाचे-कुछ नाचते; महोत्सव हैल–महोत्सव हो गया; दधि-दही; दुग्ध-दूध; घृत-घी; आइल-लाया गया; ग्रामे-गाँव में; यत–जितना; छिल–था।

अनुवाद

प्रतिष्ठा-उत्सव के समय कुछ लोग गा रहे थे तो कुछ नाच रहे थे। गाँव का सारा दूध, दही तथा घी उत्सव के लिए लाया गया।

भोग-सामग्री आइल सन्देशादि यत ।

नाना उपहार, ताहा कहिते पारि कत ॥58 ॥

भोग-सामग्री-भोजन की सामग्री; आइल-लाई गई; सन्देश-आदि-सन्देश आदि मिठाइयाँ; व्रत-सभी प्रकार की; नाना-नाना; उपहार–उपहार; ताहा–उन्हें; कहिते-वर्णन करने में; पारि-समर्थ हूँ; कत-कितना।

अनुवाद

वहाँ पर नाना प्रकार के व्यंजन तथा मिठाइयाँ और अन्य उपहार लाये गये। मैं उन सबका वर्णन कर पाने में असमर्थ हूँ।

तुलसी आदि, पुष्प, वस्त्र आइल अनेक ।

आपने माधव-पुरी कैल अभिषेक ॥59॥

तुलसी–तुलसी दल; आदि-और अन्य; पुष्प-फूल, पुष्प; वस्त्र-वस्त्र; आइल-आ गये; अनेक-अनेक; आपने-स्वयं; माधवपुरी–श्री माधवेन्द्रपुरी ने; कैल–किया; अभिषेक-स्थापना महोत्सव के आरम्भ में स्नान (अभिषेक)।

अनुवाद

गाँव वाले प्रचुर मात्रा में तुलसीदल, फूल तथा विविध प्रकार के वस्त्र ले आये। तब श्री माधवेन्द्र पुरी ने स्वयं अभिषेक (स्नान कराने का उत्सव) प्रारम्भ किया।

तात्पर्य

हरि-भक्ति-विलास (छठा विलास, श्लोक 30) में बतलाया गया है कि अर्चाविग्रह को दही तथा दूध-मिश्रित जल से स्नान कराना चाहिए और साथ ही शंख, घंटियाँ तथा अन्य वाद्य बजाकर "ॐ भगवते वासुदेवाय नम:"मन्त्र का तथा ब्रह्म-संहिता के श्लोक चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष लक्षावृतेषु सुरभिरभिपालयन्तम् से शुरू होने वाले श्लोकों का उच्चारण करना चाहिए।

अमङ्गला दूर करि' कराइल स्नान ।

बह तैल दिया कैल श्री-अङ्ग चिक्कण ॥ 60॥

अमङ्गला-सारा अमंगल; दूर करि'-दूर करके; कराइल करवाया; स्नान-स्नान; बहु-बहुत; तैल-तेल; दिया–लगाया; कैल-किया; श्री-अङ्ग–शरीर; चिक्कण-चिकना।

अनुवाद

जब मंत्रोच्चारण से सारा अमंगल दूर हो गया, तब अर्चाविग्रह का अभिषेक प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम विग्रह पर प्रचुर तेल मला गया, जिससे उनका शरीर चिकना हो उठा।

पञ्च-गव्य, पञ्चामृते स्नान कराञा ।

महा-स्नान कराइल शत घट दिञा ॥ 61॥

पञ्च-गव्य-गाय से प्राप्त पाँच पदार्थ, पंचगव्य; पञ्च-अमृते-पंचामृत; स्नान-स्नान; कराञा-कराकर; महा-स्नान-घी और जल से महास्नान; कराइल-करवाया; शत-एक सौ; घट–जल के घड़ों; दिञा–से।

अनुवाद

प्रथम स्नान के बाद पंचगव्य से तथा फिर पंचामृत से स्नान कराया गया। फिर एक सौ घड़ों में लाये गये घी तथा जल से महास्नान कराया गया।

तात्पर्य

पंचगव्य दूध, दही, घी, गोमूत्र तथा गोबर से बनता है। ये सारे पदार्थ गाय से प्राप्त होते हैं, अतएव हम कल्पना कर सकते हैं कि गाय कितनी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसके मूत्र तथा गोबर की विग्रह को स्नान कराने के लिए जरूरत पड़ती है। पंचामृत में पाँच प्रकार के अमृत-दही, दूध, घी, शहद तथा चीनी मिले रहते हैं। इस के भी अधिकांश अवयव गाय से प्राप्त होते हैं। इन्हें सुस्वादु बनाने के लिए चीनी तथा शहद मिलाया जाता है।

पुनः तैल दिया कैल श्री-अङ्ग चिक्कण।

शङ्ख-गन्धोदके कैल स्नान समाधान ॥ 62 ॥

पुनःपुनः; तैल दिया–तेल से; कैल–किया; श्री-अङ्ग–अर्चाविग्रह का शरीर; चिक्कण-चिकना; शङ्ख-गन्ध-उदके–पुष्पों और चन्दन लेप से सुगन्धित और शंख में रखे जल से; कैल–किया; स्नान-स्नान; समाधान–सम्पन्न।

अनुवाद

महास्नान के बाद पुनः विग्रह को सुगन्धित तेल से मलकर उनके शरीर को चिकना किया गया। तत्पश्चात् एक शंख में सुगन्धित जल भरकर अन्तिम अभिषेक सम्पन्न किया गया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इसकी टीका करते हुए हरिभक्ति-विलास से उद्धरण दिया है। जौ का आटा, गेहूँ का आटा, सिन्दूर, उड़द की पिसी दाल तथा आवाटा (पिसे चावल तथा केले का चूर्ण) को गाय की पूँछ के बाल से बने ब्रश (तूली) से विग्रह के शरीर पर लेपा जाता है। इससे अच्छी चमक आ जाती है। विग्रह के शरीर पर

मला जाने वाला तेल सुगंधित होना चाहिए। महास्नान सम्पन्न कराने के लिए विग्रह के ऊपर कम-से-कम 2 1/2 मान (लगभग 24 गैलन) जल उड़ेलना चाहिए।

श्री-अङ्ग मार्जन करि' वस्त्र पराइल ।

चन्दन, तुलसी, पुष्प-माला अङ्गे दिल ॥ 63 ॥

श्री-अङ्ग–अर्चाविग्रह का दिव्य शरीर; मार्जन करि'–स्वच्छ करके, धोकर; वस्त्र-वस्त्र; पराइल-पहनाए गये; चन्दन–चन्दन का लेप; तुलसी–तुलसी दल; पुष्पमाला-पुष्पमालाएँ; अङ्गे–शरीर पर; दिल–पहनाई गई।

अनुवाद

विग्रह का शरीर स्वच्छ करने के बाद उन्हें सुन्दर नये वस्त्र पहनाये गये। फिर विग्रह पर चन्दन, तुलसी-माला तथा अन्य सुगन्धित फूलों की मालाएँ पहनाई गईं।

धूप, दीप, करि' नाना भोग लागाइल ।

दधि-दुग्ध-सन्देशादि यत किछु आइल ॥64॥

धूप-धूप; दीप-दीप; करि–जलाकर; नाना-नाना; भोग-भोग; लागाइल-लगाए गये; दधि-दही; दुग्ध-दूध; सन्देश-सन्देश मिठाइयाँ; आदि-आदि; यत-इतनी; किछु-कुछ; आइल-प्राप्त हुई।

अनुवाद

अभिषेक सम्पन्न हो जाने के बाद अर्चाविग्रह को धूप तथा दीप अर्पित किये गये और विभिन्न प्रकार का भोग अर्पित किया गया। भोग में दही, दूध तथा अनेक मिठाइयाँ सम्मिलित थीं।

सुवासित जल नव-पात्रे समर्पिल ।

आचमन दिया से ताम्बूल निवेदिल ॥65॥

सुवासित जल-सुगन्धित जल; नव-पात्रे-नये पात्रों में; समर्पिल-समर्पित किये गये; आचमन दिया-आचमन (पाँव और मुख धोने के लिए जल) भेंट करते समय; से-उसमें; ताम्बूल-पान और मसाले; निवेदिल-भेंट किये गये।

अनुवाद

सर्वप्रथम अर्चाविग्रह को तरह-तरह का भोग अर्पित किया गया, फिर नये पात्रों में सुवासित पीने का जल और तब आचमन के लिए जल दिया गया। अन्त में मसालेदार पान का भोग लगाया गया।

आरात्रिक करि' कैल बहुत स्तवन ।

दण्डवत्करि' कैल आत्म-समर्पण ॥ 66 ॥

आरात्रिक–आरती करना; करि'–पूर्ण करके; कैल-की; बहुत-बहुत प्रकार की; स्तवन-स्तुतियाँ; दण्डवत् दण्डवत् प्रणाम; करि'-करके; कैल–किया; आत्म-समर्पण-आत्म-समर्पण।

अनुवाद

तांबूल तथा पान देने के बाद भोग आरती सम्पन्न की गई। अन्त में हर एक ने विविध प्रार्थनाएँ कीं तथा विग्रह को पूर्ण आत्मसमर्पण के भाव में दण्डवत् प्रणाम किया।

ग्रामेर यतेक तण्डुल, दालि गोधूम-चूर्ण ।

सकल आनिया दिल पर्वत हैल पूर्ण ॥ 67॥

ग्रामेर-गाँव के; यतेक-सभी; तण्डुल-चावल, दाल-दाल; गोधूम-चूर्ण-गेहूँ का आटा; सकल-सभी; आनिया–लाकर; दिल-भेंट किया; पर्वत–पर्वत की चोटी पर; हैल–हो गई; पूर्ण-भर गई।

अनुवाद

ज्योंही गाँववालों को पता चला कि अर्चाविग्रह की प्रतिष्ठा होने जा रही है, वे अपने यहाँ से सारा चावल, दाल तथा गेहूँ का आटा ले आये। यह सामग्री इतनी मात्रा में थी कि पर्वत की चोटी उससे पूरी तरह भर गई।

कुम्भकार घरे छिल ये मृद्भाजन ।

सब आनाइल प्राते, चड़िल रन्धन ॥ 68 ॥

कुम्भकार-गाँव के कुम्हारों के; घरे–घरों में; छिल-थे; ये-जो कुछ; मृद्-भाजन-मिट्टी के बर्तन; सब-सब; आनाइल-लाये गये; प्राते-प्रात:काल; चड़िल-आरम्भ किया; रन्धन–पकाना।

अनुवाद

जब गाँव वाले चावल, दाल तथा आटा ले आये, तो गाँव के कुम्हार भोजन पकाने के सभी प्रकार के बर्तन ले आये और प्रातःकाल से भोजन पकाना प्रारम्भ हुआ।

दश-विप्र अन्न रान्धि' करे एक स्तूप ।

जना-पाँच रान्धे व्यञ्जनादि नाना सूप ॥ 69॥

दश-विप्र-दस ब्राह्मण; अन्न-अन्न; रान्थि'–पकाकर; करे-करते हैं; एक स्तूप एक ढेर में; जना-पाँच-पाँच ब्राह्मण; राधे-पकाते हैं; व्यञ्जन-आदि-व्यंजन आदि, सब्जियाँ; नाना-नाना प्रकार के; सूप-रसदार।

अनुवाद

दस ब्राह्मणों ने अन्न पकाया और पाँच ब्राह्मणों ने सूखी तथा रसदार सब्जियाँ पकाईं।

वन्य शाक-फल-मूले विविध व्यञ्जन ।

केह बड़ा-बड़ि-कड़ि करे विप्र-गण ॥ 70 ॥

वन्य शाक-जंगली पालक; फल-फल; मुले-जड़ों से; विविध-विविध; व्यञ्जन-व्यंजन; केह-किसी ने; बड़ा-बड़ि-बड़ा बड़ी; कड़ि-दाल के गूदे से; करे-बनाई; विप्र-गण-सभी ब्राह्मणों ने।

अनुवाद

सारी तरकारियाँ जंगल से एकत्र किये गये शाक, जड़ों तथा फलों से बनाई गईं। किसी ने दाल पीसकर बड़े तथा बड़ियाँ बनाईं। इस तरह ब्राह्मणों ने सभी तरह के व्यंजन बनाए।

जना पाँच-सात रुटि करे राशि-राशि ।

अन्न-व्यञ्जन सब रहे घृते भासि ॥71॥

जना पाँच-सात-पाँच सात लोगों ने; रुटि-चपातियाँ; करे-बनाईं; राशि-राशि-बड़ी संख्या में; अन्न-व्यञ्जन–अन्न और व्यंजन (तरकारियाँ); सब-सब; रहे-रहे; घृते-घी में; भासि'-तैरती हुई।

अनुवाद

पाँच-सात व्यक्तियों ने बहुत सी रोटियाँ बनाईं और उन्हें पर्याप्त घी से चुपड़ दिया। सारी सब्जियाँ, दाल तथा भात भी घी से सिक्त थे।

नव-वस्त्र पाति' ताहे पलाशेर पात ।

रान्धि' रान्धि' तार उपर राशि कैल भात ॥72॥

नव-वस्त्र-नये वस्त्र; पाति'–फैलाकर; ताहे-उन पर; पलाशेर पात-पलाश के पत्ते; रान्धि' रान्धि'–पका पकाकर; तार उपर-उनके ऊपर; राशि-ढेर लगाया गया; कैल–किया; भात-भात।

अनुवाद

पके चावलों का पलाश के पत्तों में ढेर लगा दिया गया। ये पत्ते भूमि पर बिछे नये वस्त्र के ऊपर फैले थे।

तार पाशे रुटि-राशिर पर्वत हइल ।

सूप-आदि-व्यञ्जन-भाण्ड चौदिके धरिल ॥73॥

तार पाशे-भात के ढेर के पास चारों ओर; रुटि–चपातियों के; राशिर-ढेर के; पर्वत–एक अन्य छोटा टीला; हइल-बनाई गई; सूप-आदि-सभी रसदार तरकारियों की; व्यञ्जन-और सभी अन्य सब्जियों के भाण्ड–बर्तन; चौदिके–चारों ओर; धरिल-रखे गये।

अनुवाद

पके चावल के ढेर के पास ही रोटियों का ढेर था और सारी तरकारियों तथा रसदार व्यंजनों को विभिन्न पात्रों में भरकर उनके चारों ओर रख दिया गया था।

तार पाशे दधि, दुग्ध, माठा, शिखरिणी ।

पायस, मथनी, सर पाशे धरि आनि' ॥ 74॥

तार पाशे–तरकारियों के पास; दधि-दही; दुग्ध-दूध; माठा-मट्ठा; शिखरिणी-शिखरिणी, दही से बना एक मीठा व्यंजन; पायस-मीठे चावल; मथनी-मक्खन; सर-दही के ऊपर की मलाई; पाशे–एक ओर; धरि-रखकर; आनि'–लाकर।

अनुवाद

तरकारियों के पास दही, दूध, मट्ठा, शिखरिणी, खीर, मक्खन तथा दही की मलाई भरे पात्र रख दिये गये।

तात्पर्य

इस प्रकार का उत्सव अन्नकूट कहलाता है, जिसमें प्रसाद वितरण हेतु पकाये चावल का ढेर एक छोटी टीले के रूप में लगा दिया जाता है।

हेन-मते अन्न-कूट करिल साजन ।

पुरी-गोसाञि गोपालेरे कैल समर्पण ॥75॥

हेन-मते-इस प्रकार; अन्नकूट-अन्नकूट उत्सव; करिल–किया; साजन–मनाया गया; पुरी-गोसाञि-माधवेन्द्र पुरी ने; गोपालेरे-गोपाल अर्चाविग्रह को; कैल–किया; समर्पण-समर्पण।

अनुवाद

इस प्रकार अन्नकूट उत्सव मनाया गया और श्री माधवेन्द्र पुरी गोस्वामी ने स्वयं गोपाल को हर वस्तु का भोग लगाया।

अनेक घट भरि' दिल सुवासित जल ।

बहु-दिनेर क्षुधाय गोपाल खाइल सकल ॥76 ॥

अनेक घट–अनेक जल के घड़े; भरि'-भरकर; दिल-दिया; सुवासित-सुगन्धित; जल-जल; बहु-दिनेर-बहुत दिनों की; क्षुधाय-भूख के कारण; गोपाल–गोपाल ने; खाइल–खाया; सकल-सब कुछ।

अनुवाद

पीने के लिए अनेक घड़ों में सुगंधित जल भरा गया और भगवान् श्री गोपाल ने, जो इतने दिनों से भूखे थे, अर्पित की गई प्रत्येक वस्तु खाई।

यद्यपि गोपाल सब अन्न-व्यञ्जन खाइल ।

ताँर हस्त-स्पर्शे पुनः तेमनि हइल ॥ 77॥

यद्यपि यद्यपि; गोपाल–गोपाल ने; सब-सब; अन्न-व्यञ्जन–अन्न और व्यंजन; खाइल–खा लिये; ताँर–उनके; हस्त-हाथ के; स्पर्शे-स्पर्श से; पुनःपुनः; तेमनि-पहले की भाँति; हइल-हो गया।

अनुवाद

यद्यपि श्री गोपाल ने भोग लगाई गई सारी सामग्री खा ली थी, फिर भी उनके दिव्य हाथ के स्पर्श से हर वस्तु पूर्ववत् बनी रही।

तात्पर्य

नास्तिक लोग समझ नहीं पायेंगे कि किस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने अर्चाविग्रह रूप में प्रकट होकर भक्तों द्वारा अर्पित सारा भोजन खा सकते हैं। भगवद्गीता (9.26) में कृष्ण कहते हैं :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

"यदि कोई प्रेम तथा भक्तिपूर्वक मुझे एक पत्ती, एक फूल, फल या जल भी अर्पित करता है, तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।" चूँकि भगवान् पूर्ण हैं, अतएव वे अपने भक्तों द्वारा भोग लगाई गई हर वस्तु को खाते हैं। फिर भी उनके दिव्य हाथ के स्पर्श से सारा भोजन पूर्ववत् बना रहता है। केवल गुण में अन्तर आता है। भोग लगाने के पूर्व भोजन कुछ और होता है और भोग लगने के बाद उसमें दिव्य गुण आ जाता है। चूँकि भगवान् पूर्ण हैं, इसलिए खाने के बाद भी वे वैसे के वैसे रहते हैं। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते (ईशोपनिषद्) । कृष्ण को भोग लगाया गया भोजन गुण में कृष्ण जैसा ही होता है। जिस प्रकार कृष्ण अव्यय अर्थात् नष्ट न होने वाले हैं, उसी तरह उनके द्वारा खाया गया भोजन उनसे अभिन्न है और वह पूर्ववत् बना रहता है।

इसके अतिरिक्त कृष्ण अपनी किसी भी दिव्य इन्द्रिय से भोजन कर सकते हैं। वे भोजन को देखकर या उसका स्पर्श करके भी खा सकते हैं। यह सोचना भी गलत है कि कृष्ण के लिए भोजन करना आवश्यक है। वे साधारण मनुष्य की तरह भूखे नहीं होते, तो भी वे अपने आपको इस रूप में प्रस्तुत करते हैं मानो भूखे हों; अतएव वे किसी भी प्रकार का भोजन खा सकते हैं, चाहे मात्रा कितनी ही क्यों न हो। कृष्ण द्वारा भोजन करने में जो दर्शन निहित है उसे दिव्य इन्द्रियों द्वारा ही समझा जा सकता है। जब हमारी इन्द्रियाँ भगवान् की भक्ति निरन्तर करते-करते शुद्ध हो जाती हैं, तभी हम कृष्ण के कार्यकलाप, नाम, रूप, गुण, लीलाएँ तथा पार्षदों को समझ सकते हैं।

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः ।

सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः ॥

"कृष्ण को कोई भी अपनी कुन्द भौतिक इन्द्रियों के द्वारा नहीं समझ सकता। किन्तु वे भक्तों की दिव्य प्रेमाभक्ति से प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट होते हैं।" (भक्तिरसामृतसिन्धु 1.2.234) भक्तगण अनुभूति से कृष्ण का साक्षात्कार करते हैं। एक संसारी विद्वान के लिए भक्ति-हीन रहकर कृष्ण तथा उनकी लीलाओं को शोध-कार्य के द्वारा समझ पाना सम्भव नहीं है।

इहा अनुभव कैल माधव गोसाञि ।

ताँर ठाञि गोपालेर लुकान किछु नाइ ॥78॥

इहा-यह; अनुभव कैल–अनुभव किया; माधव गोसाञि-माधवेन्द्र पुरी गोस्वामी; ताँर ठाञि-अपने सम्मुख; गोपालेर-भगवान् गोपाल का; लुकान-रहस्य, भेद; किछु-कुछ भी; नाइ–नहीं है।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने दिव्य अनुभव से जान लिया कि किस तरह गोपाल द्वारा सब कुछ खा लिया गया और फिर भी भोजन ज्यों का त्यों बना रहा। भगवान् के भक्तों से कुछ छिपा नहीं रहता।

एक-दिनेर उद्योगे ऐछे महोत्सव कैल ।

गोपाल प्रभावे हय, अन्ये ना जानिल ॥79॥

एक-दिनेर उद्योगे-एक दिन के प्रयास से; ऐछे-ऐसा; महोत्सव–महोत्सव; कैल-मनाया गया; गोपाल–गोपाल की; प्रभावे-शक्ति से; हय–सम्भव है; अन्ये-अन्य लोग; ना–नहीं; जानिल-जानते।

अनुवाद

यह अद्भुत महोत्सव तथा श्री गोपालजी की प्रतिष्ठा, दोनों की व्यवस्था एक ही दिन में हो गई थी। निस्सन्देह, यह सब गोपाल की शक्ति से ही सम्भव हो सका। इसे भक्तों के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं समझ सकता।

तात्पर्य

कुछ ही समय में (5 साल के भीतर) कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे विश्व में फैल गया है और संसारी लोग यह देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हैं। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से हम जानते हैं कि कृष्ण की कृपा से सब कुछ सम्भव है। तो फिर कृष्ण को पाँच वर्ष क्यों लगे? वे तो पाँच ही दिनों में अपने नाम तथा यश को सारे विश्व में जंगल की आग की तरह फैला सकते हैं। जिन लोगों की कृष्ण के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति है, वे समझ सकते हैं कि यह सब श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से कितने अद्भुत ढंग से घटित होते हैं। हम तो निमित्त मात्र हैं। कुरुक्षेत्र भीषण युद्ध में अर्जुन मात्र अठारह दिनों के भीतर ही विजयी हुआ, क्योंकि उस पर कृष्ण की कृपा थी।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम॥

“जहाँ भी योगेश्वर कृष्ण हैं और जहाँ भी सर्वोपरि धनुर्धर अर्जुन है, वहीं ऐश्वर्य, विजय, अद्वितीय शक्ति तथा नैतिकता रहती है। यह मेरा मत है।”(भगवद्गीता 18.78)

यदि हमारे कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के प्रचारक कृष्ण के निष्ठावान भक्त बनें, तो कृष्ण सदैव उनके साथ होंगे, क्योंकि वे अपने सभी भक्तों पर अत्यन्त दयालु तथा उनके अनुकूल रहते हैं। जिस तरह कृष्ण तथा अर्जुन कुरुक्षेत्र युद्ध में विजयी हुए थे, उसी तरह यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन भी निश्चित रूप से विजयी होगा, यदि हम भगवान् के निष्ठावान भक्त बने रहेंगे और पूर्ववर्ती आचार्यों (छ: गोस्वामियों तथा अन्य भगवद्भक्तों) की शिक्षा के अनुसार सेवा करेंगे। जैसाकि नरोत्तम दास ठाकुर ने कहा है : ताँदेर चरण सेवि भक्त-सने वास, जनमे-जनमे हय एइ अभिलाष। कृष्णभावनामृत के भक्तों की यही आकांक्षा होनी चाहिए कि वे सदैव भक्तों की संगति में रहें। भक्त-सने वास-वे

कृष्णभावनामृत संघ या आन्दोलन से बाहर नहीं जा सकते। कृष्णभावनामृत संघ में हमें चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करके तथा उनके नाम और यश को विश्व-भर में प्रसारित करके अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की सेवा करनी चाहिए। यदि हम इस संघ में रहते हुए इसका गम्भीरतापूर्वक प्रयास करें, तो यह अवश्य सफल होगा। भौतिक दृष्टि से यह अनुमान लगाना आवश्यक नहीं है कि ऐसा किस प्रकार होगा। किन्तु बिना किसी आशंका के, इसे तो कृष्ण-कृपा से होना ही है।

आचमन दिया दिल विड़क-सञ्चय।

आरति करिल लोके, करे जय जय ॥80॥

आचमन-आचमन का जल; दिया–अर्पण; दिल-किया; विड़क-सञ्चय-पान सुपारी; आरति करिल-आरती की; लोके-सारे लोगों ने; करे-की; जय जय-जय जयकार।

अनुवाद

श्री माधवेन्द्र पुरी ने गोपाल को आचमन के लिए जल दिया और चबाने के लिए पान दिये। उसके बाद जब आरती की गई, तो सारे लोगों ने गोपाल की जय जयकार की।

शय्या कराइल, नूतन खाट आनाञा।

नव वस्त्र आनि तार उपरे पातिया ॥81॥

शय्या-शय्या; कराइल-बनाई; नूतन-नई; खाट-खाट; आनाञा–लाकर; नव वस्त्र-नये वस्त्र; आनि'–लाकर; तार-खाट; उपरे–के ऊपर; पातिया–बिछाकर।

अनुवाद

भगवान् के विश्राम का प्रबन्ध करने के उद्देश्य से श्रील माधवेन्द्र पुरी एक नई चारपाई ले आये और उसके ऊपर एक नई चादर बिछाकर शय्या प्रस्तुत कर दी गयी।

तृण-टाटि दिया चारि-दिक् आवरिल।

उपरेते एक टाटि दिया आच्छादिल ॥82॥

तृण-टाटि-तृण की चटाई; दिया–के साथ; चारि-दिक्-चारों ओर; आवरिल-ढक दिया; उपरेते-ऊपर से; एक-एक; टाटि-वैसी ही तृण की चटाई; दिया–के साथ; आच्छादिल-ढक दिया।

अनुवाद

चारपाई को चारों ओर से चटाई से ढककर एक अस्थायी मन्दिर बना दिया गया। इस तरह एक शय्या थी और उसे ढकने के लिए चटाईयाँ थीं।

पुरी-गोसाञि आज्ञा दिल सकल ब्राह्मणे ।

आ-बाल-वृद्ध ग्रामेर लोक कराह भोजने ॥ 83 ॥

पुरी-गोसाञि-माधवेन्द्रपुरी ने; आज्ञा–आज्ञा; दिल–दी; सकल ब्राह्मणे-सभी ब्राह्मणों को; आ-बाल-वृद्ध–बच्चों से लेकर सभी वृद्धों को; ग्रामेर–गाँव के; लोक-लोगों को; कराह कराओ; भोजने–भोजन।

अनुवाद

भगवान् को शयन कराने के उपरान्त माधवेन्द्र पुरी ने प्रसाद बनाने वाले सारे ब्राह्मणों को एकत्र किया और उनसे कहा, "अब बच्चे से लेकर वृद्ध तक हर एक को भरपेट भोजन कराइये।"

सबे वसि' क्रमे क्रमे भोजन करिल ।

ब्राह्मण-ब्राह्मणी-गणे आगे खाओयाइल ॥84॥

सबे-सबने: वसि'–बैठकर: क्रमे क्रमे-बारी बारी: भोजन करिल-भोजन किया; ब्राह्मण-ब्राह्मणी-गणे-ब्राह्मणों और उनकी पत्नियाँ; आगे-पहले; खाओयाइल-खिलाया गया।

अनुवाद

वहाँ पर एकत्र सारे लोग प्रसाद ग्रहण करने के लिए बैठ गये और एक-एक करके सबने प्रसाद ग्रहण किया। सबसे पहले सभी ब्राह्मणों तथा उनकी पत्नियों को भोजन कराया गया।

तात्पर्य

वर्णाश्रम प्रथा के अनुसार ब्राह्मणों का सदैव सबसे पहले सम्मान किया जाता है। अतएव उत्सव में सर्वप्रथम ब्राह्मणों तथा उनकी पत्नियों को प्रसाद दिया गया और उसके बाद अन्यों (क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों) को। यह प्रथा सदैव से रही है और आज भी भारत में चल रही है, यद्यपि स्मार्त ब्राह्मण अब योग्य नहीं हैं। वर्णाश्रम विधि-विधानों के कारण यह प्रथा अभी तक चल रही है।

अन्य ग्रामेर लोक यत देखिते आइल ।

गोपाल देखिया सब प्रसाद खाइल ॥85 ॥

अन्य-अन्य; ग्रामेर-गाँवों के; लोक-लोग; यत-सब; देखिते-देखने के लिए; आइल-आये; गोपाल–भगवान् गोपाल; देखिया-देखकर; सब-सब; प्रसाद–प्रसाद; खाइल-खाया।

अनुवाद

गोवर्धन गाँव के लोगों ने ही नहीं अपितु अन्य गाँवों से आये हुए लोगों ने भी प्रसाद ग्रहण किया। उन्होंने गोपाल विग्रह का दर्शन भी किया और उन्हें प्रसाद भी मिला।

देखिया पुरीर प्रभाव लोके चमत्कार ।

पूर्व अन्नकूट येन हैल साक्षात्कार ॥86॥

देखिया-देखकर; पुरीर-माधवेन्द्र पुरी का प्रभाव-प्रभाव; लोके–सभी लोग; चमत्कार–चकित हो गये; पूर्व–पहले; अन्न-कूट-कृष्ण के समय अन्नकूट उत्सव; येन-जैसे ; हैल–हो गया; साक्षात्कार–साक्षात्कार।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी का प्रभाव देखकर वहाँ एकत्र सारे लोग आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने देखा कि कृष्ण के समय जो अन्नकूट उत्सव मनाया गया था, वही अब श्री माधवेन्द्र पुरी की कृपा से पुनः मनाया जा रहा था।

तात्पर्य

पुर्वकाल में, द्वापर युग के अन्त में, वृन्दावन के ग्वालों ने इन्द्रराज की पूजा का प्रबन्ध किया, किन्तु कृष्ण के कहने पर उन्होंने उसका परित्याग कर दिया। उसके बदले उन्होंने गायों, ब्राह्मणों तथा गोवर्धन पर्वत की पूजा का उत्सव सम्पन्न किया। उस समय कृष्ण ने अपना विस्तार करते हुए कहा था, "मैं गोवर्धन पर्वत हूँ।" इस तरह उन्होंने गोवर्धन पर्वत को अर्पित सारे भोजन तथा साज-सामान को स्वीकार किया। श्रीमद्भागवत (10.24.26, 31-33) में कहा गया है :

पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः ।

संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥

कालात्मना भगवता शक्रदर्प जिघांसता ।

प्रोक्तंनिशम्य नन्दाद्याः साध्वगृह्णन्त तद्वचः ॥

तथा च व्यदधुः सर्वं यथाह मधुसूदनः ।

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्रव्येण गिरिद्विजान् ॥

उपहृत्य बलीन् सर्वान् आदृता यवसं गवाम् ।

गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥

"यज्ञ के लिए एकत्र किये गये अन्न तथा घी से सभी तरह के उत्तम व्यंजन तैयार करो। चावल, दाल, हलवा, पकौड़ा, पूरी तथा दूध के सभी प्रकार के पकवान यथा खीर, रसगुल्ला, सन्देश तथा लड्डु बनाओ।"

"इसलिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ने इन्द्र को दण्ड देने के उद्देश्य से ग्वालों को परामर्श दिया कि वे इन्द्र-यज्ञ बन्द कर दें और गोवर्धन पूजा प्रारम्भ करें, क्योंकि इन्द्र स्वर्गलोक का सर्वोच्च नियन्ता होने के कारण अत्यधिक गर्वित हो उठा था। नन्द महाराज समेत सारे ईमानदार तथा सरल ग्वालों ने कृष्ण का प्रस्ताव मान लिया और भगवान् कृष्ण ने जो भी कहा उसे उन सबने विस्तारपूर्वक सम्पन्न किया। उन्होंने गोवर्धन की पूजा तथा प्रदक्षिणा की। कृष्ण के आदेशानुसार नन्द महाराज तथा ग्वालों ने विद्वान ब्राह्मणों को बुलाये और वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ तथा प्रसाद अर्पित करके गोवर्धन पर्वत की पूजा प्रारम्भ की। वृन्दावन के निवासियों ने एकत्र होकर अपनी गौओं का श्रृंगार किया और उन्हें खाने के लिए घास दी। फिर गायों को आगे रखकर वे गोवर्धन पर्वत की प्रदक्षिणा करने लगे।"

सकल ब्राह्मणे पुरी वैष्णव करिल ।

सेइ सेइ सेवा-मध्ये सबा नियोजिल ॥ 87॥

सकल ब्राह्मणे-सारे उपस्थित ब्राह्मण; पुरी-माधवेन्द्र पुरी गोस्वामी; वैष्णव करिल-वैष्णव के पद पर उन्नत किए गये; सेइ सेइ–विभिन्न श्रेणियों के अन्तर्गत; सेवा-मध्ये-सेवा करने में; सबा-सब; नियोजिल-लगा दिए गये।

अनुवाद

इस अवसर पर उपस्थित सारे ब्राह्मणों को श्रील माधवेन्द्र पुरी ने वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षा दी और उन्हें विभिन्न सेवा-कार्यों में लगा दिया।

तात्पर्य

शास्त्रों का कथन है— षट्कर्मनिपुणो विप्रो मन्त्र-तन्त्र-विशारदः। योग्य ब्राह्मण अपने कर्तव्य-कर्मों में पटु होना चाहिए। ब्राह्मण के निमित्त छह कार्य होते हैं। पठन अर्थात् ब्राह्मण को वैदिक शास्त्रों में पारंगत होना चाहिए। उसे अन्यों को वैदिक साहित्य पढ़ाने में भी समर्थ होना चाहिए। यह पाठन है। उसे विभिन्न विग्रहों की पूजा करने तथा वैदिक अनुष्ठान करने (यजन) में भी पटु होना चाहिए। इसी यजन के कारण, ब्राह्मण समाज का अग्रणी होने के कारण क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों के लिए सभी वैदिक अनुष्ठान सम्पन्न करता है। औरों को उत्सव सम्पन्न कराने में सहायता करना याजन कहलाता है। दान तथा प्रतिग्रह अन्य दो कर्म हैं। ब्राह्मण अपने यजमानों से (क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों से) सभी प्रकार का दान स्वीकार करता है (प्रतिग्रह)। किन्तु वह सारे धन को अपने पास नहीं रखता। वह आवश्यकता-भर के लिए रखकर शेष भाग दूसरों को दान में दे देता है (दान)।

ऐसे योग्य ब्राह्मण को अर्चाविग्रह की पूजा करने के लिए वैष्णव होना आवश्यक है। अतएव वैष्णव की स्थिति ब्राह्मण से श्रेष्ठ होती है। माधवेन्द्र पुरी द्वारा प्रस्तुत दृष्टान्त से इसकी पुष्टि होती है कि कोई ब्राह्मण कितना ही दक्ष क्यों न हो, जब तक वह वैष्णव मन्त्र में दीक्षित नहीं होता, तब तक वह पुजारी या विष्णु-विग्रह का सेवक नहीं बन सकता। गोपाल के विग्रह की स्थापना करने के बाद माधवेन्द्र पुरी ने सारे ब्राह्मणों को वैष्णव धर्म में दीक्षित कर दिया। इसके बाद उन्होंने ब्राह्मणों के लिए अर्चाविग्रह सम्बन्धी विविध सेवा-कार्य नियत कर दिये। किसी भी अर्चाविग्रह की सेवा के लिए सुबह चार बजे से लेकर रात्रि के दस बजे तक (मंगल आरती से शयन आरती तक) कम-से-कम पाँच-छह ब्राह्मण होने चाहिए। मन्दिर में छह बार आरती की जाती है और अर्चाविग्रह को कई बार भोग लगाया जाता है और

प्रसाद बाँटा जाता है। पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निर्धारित विधि-विधानों के अनुसार अर्चाविग्रह की पूजा विधि यही है। हमारा सम्प्रदाय माधवेन्द्र पुरी की परम्परा में आता है, जिनका सम्बन्ध मध्व सम्प्रदाय से है। हम श्री चैतन्य महाप्रभु की परम्परा में हैं, जिन्हें श्री माधवेन्द्र पुरी के शिष्य श्री ईश्वर पुरी ने दीक्षा दी थी। इसलिए हमारा सम्प्रदाय मध्व-गौड़ीय सम्प्रदाय कहलाता है। अतः हमें श्री माधवेन्द्र पुरी के चरणचिह्नों का अनुसरण बहुत सावधानी से करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उन्होंने किस तरह गोवर्धन पर्वत की चोटी पर गोपाल-विग्रह स्थापित किया, किस तरह उन्होंने केवल एक ही दिन में अन्नकूट-उत्सव की तैयारी की और उसे सम्पन्न किया, इत्यादि। अमरीका तथा यूरोप के धनी देशों में हम अर्चाविग्रहों की जो स्थापना करें, उसे श्री माधवेन्द्र पुरी के उदाहरण के ही अनुसार करना चाहिए। विग्रह के सारे सेवकों को सर्वथा योग्य ब्राह्मण होना चाहिए और विशेषतया उन्हें यथासम्भव अधिक से अधिक मात्रा में प्रसाद चढ़ाने और उसे भगवान् का दर्शन करने आये भक्तों में बाँटने की वैष्णव-प्रथा का पालन करना चाहिए।

पुनः दिन-शेषे प्रभुर कराइल उत्थान।

किछु भोग लागाइल कराइल जल-पान ॥88॥

पुनःपुनः; दिन-शेषे–दिन के अन्त में प्रभुर-प्रभु का; कराइल-करवाया; उत्थान- जगाया; किछु-कुछ; भोग-भोग; लागाइल-लगाया; कराइल-करवाया; जल-जल; पान-पान।

अनुवाद

विश्राम के बाद विग्रह को संध्या-समय जगाना चाहिए और तुरन्त ही उन्हें कुछ भोजन तथा जल का भोग लगाना चाहिए।

तात्पर्य

इस भोग को वैकालि–भोग अर्थात् संध्याकाल में लगाये जाना वाला भोग कहते हैं।

गोपाल प्रकट हैल, —देशे शब्द हैल।

आश-पाश ग्रामेर लोक देखिते आइल ॥89॥

गोपाल–भगवान् गोपाल; प्रकट हैल-प्रकट हुए हैं; देशे-सारे देश में; शब्द हैल-समाचार फैल गया; आश-पाश-आसपास; ग्रामेर-गाँवों के लोक-लोग; देखिते आइल-देखने के लिए आये।

अनुवाद

जब देश-भर में यह प्रचार हो गया कि भगवान् गोपाल गोवर्धन पर्वत के ऊपर प्रकट हो चुके हैं, तो आसपास के सभी गाँव वाले विग्रह का दर्शन करने आये।

एकेक दिन एकेक ग्रामे लइल मागिञा ।

अन्न-कूट करे सबे हरषित हञा ॥ 90॥

एकेक दिन-प्रतिदिन; एकेक ग्रामे–एक एक गाँव ने; लइल-अनुमति ली; मागिञा-माँगकर; अन्न-कूट करे–अन्नकूट उत्सव करने की; सबे-सबने; हरषित-प्रसन्न; हञा–होकर।

अनुवाद

हर एक गाँव वालों ने एक-एक करके माधवेन्द्र पुरी से प्रार्थना की कि अन्नकूट उत्सव मनाने के लिए उन्हें एक दिन नियत कर दिया जाये। इस तरह कुछ समय तक दिन-प्रतिदिन अन्नकूट उत्सव मनाया जाता रहा।

रात्रि-काले ठाकुरेरे कराइया शयन ।

पुरी-गोसाञि कैल किछु गव्य भोजन ॥ 91॥

रात्रि-काले-रात के समय; ठाकुरेरे-अर्चाविग्रह के; कराइया-करवाया; शयन-विश्राम के लिए; पुरी-गोसाञि-माधवेन्द्र पुरी ने; कैल-किया; किछ-कुछ; गव्य–दूध का पदार्थ; भोजन-भोजन के लिए।

अनुवाद

श्री माधवेन्द्र पुरी ने दिन-भर कुछ नहीं खाया, किन्तु रात में विग्रह को शयन कराने के बाद उन्होंने दूध से बना प्रसाद खाया।

प्रातःकाले पुनः तैछे करिल सेवन ।

अन्न लञा एक-ग्रामेर आइल लोक-गण ॥ 92 ॥

प्रातः-काले–प्रातः काल; पुनः–पुनः; तैछे-पहले की तरह; करिल-की; सेवन-सेवा; अन्न लञा–अन्न लेकर; एक-ग्रामेर-एक गाँव के; आइल-आये; लोक-गण-लोग।

अनुवाद

पुनः अगली सुबह अर्चाविग्रह की सेवा प्रारम्भ हुई और एक गाँव के लोग विविध प्रकार के खाद्य-द्रव्य लेकर आ गये।

अन्न, घृत, दधि, दुग्ध,—ग्रामे यत छिल ।

गोपालेर आगे लोक आनिया धरिल ॥93॥

अन्न–अन्न; घृत-घी; दधि-दही; दुग्ध-दूध; ग्रामे गाँव में; यत–जितना; छिल-वहाँ था; गोपालेर आगे-गोपाल अर्चाविग्रह के सामने; लोक-सभी लोगों ने; आनिया-लाकर; धरिल-रख दिया।

अनुवाद

गाँव के सारे निवासी गाँव-भर का सारा अन्न, घी, दही तथा दूध गोपाल-अर्चाविग्रह को भोग लगाने के लिए लाये।

तात्पर्य

वास्तव में अन्न, घृत, दधि तथा दुग्ध-ये ही सारे भोजन के आधार हैं। शाक तथा फल तो गौण हैं। अन्न, तरकारियों, घी, दुग्ध तथा दही से सैंकड़ो-हजारों प्रकार के व्यंजन बनाये जा सकते हैं। अन्नकूट उत्सव में गोपाल को अर्पित किये गये भोजन में यही पाँचों सामग्रियाँ थीं। केवल आसुरिक प्रवृत्ति के लोग ही अन्य प्रकार के भोजन के प्रति आकृष्ट होते हैं, जिनका यहाँ हम उल्लेख भी नहीं करेंगे। हमें यह समझना होगा कि पौष्टिक भोजन प्रस्तुत करने के लिए हमें केवल अन्न, घी, दही और दूध की ही आवश्यकता होती है। अर्चाविग्रह को हम इनके अतिरिक्त और कुछ अर्पित नहीं कर सकते। वैष्णव आदर्श व्यक्ति होने के नाते अर्चाविग्रह को अर्पित भोजन के अतिरिक्त अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं करता। लोग प्रायः राष्ट्रीय खाद्य-नीति से क्षुब्ध रहते हैं, किन्तु वैदिक शास्त्रों से हमें पता चलता है कि यदि पर्याप्त मात्रा में गायें तथा अन्न हों, तो सारी खाद्य-समस्या का समाधान हो सकता है। इसीलिए भगवद्गीता में संस्तुति की गई

है कि वैश्य लोग अन्न उत्पन्न करें और गौवों को सुरक्षा प्रदान करें। गौवें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पशू हैं, क्योंकि वे दूध जैसा चमत्कारी भोजन प्रदान करती हैं, जिससे घी तथा दही बनाया जा सकता है।

मानव सभ्यता की पूर्णता कृष्णभावनामृत पर आश्रित है, जिसमें अर्चाविग्रह की पूजा की संस्तुति की जाती है। शाक, अन्न, दूध, घी तथा दही से बने व्यंजन अर्चाविग्रह को अर्पित किये जाते हैं और बाद में वितरित किये जाते हैं। हम यहाँ पूर्व तथा पश्चिम का अन्तर देख सकते हैं। जो लोग गोपाल-विग्रह का दर्शन करने आये थे, वे सभी अपने साथ विग्रह को अर्पित करने हेतु तरह- तरह के खाद्य पदार्थ लाये थे। जितना भी अन्न उपलब्ध था, वे अपने साथ लेते आये थे और वे अर्चाविग्रह के समक्ष न केवल स्वयं प्रसाद ग्रहण करने के लिए खड़े थे, अपितु उसे अन्यों में वितरित भी करना चाहते थे। कृष्णभावनामृत आन्दोलन भोजन बनाने, फिर उसे अर्चाविग्रह को अर्पित करने और फिर सामान्य लोगों में वितरित करने की प्रथा का जोरदार अनुमोदन करता है। इस कार्य को सारे विश्व में आरम्भ करना चाहिए, क्योंकि इससे लोगों के पापमय भोजन खाने का अभ्यास बदलेगा और उनके आसुरी आचरण में सुधार होगा। आसुरी सभ्यता से विश्व में कभी भी शान्ति नहीं आ सकती। चूँकि भोजन करना मानव-समाज की सर्वप्रथम आवश्यकता है, अतएव जो लोग भोजन बनाने और उसे वितरित करने के कार्य में लगे हैं, उन्हें माधवेन्द्र पुरी से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और अन्नकूट उत्सव मनाना चाहिए। जब लोग केवल अर्चाविग्रह को अर्पित किया प्रसाद ग्रहण करने लगेंगे, तो सारे असुर वैष्णव बन जायेंगे। जब लोग कृष्णभावनाभावित होंगे, तो स्वाभाविक है कि सरकार भी वैसी ही बनेगी। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति सदैव अत्यन्त उदार एवं हर एक का शुभचिन्तक होता है। जब ऐसे लोग सरकार सँभालेंगे, तो लोग निश्चित रूप से निष्पाप होंगे। तब उत्पात मचाने वाले असुर नहीं रहेंगे। केवल तभी समाज में शान्तिमय वातावरण बना रह सकता है।

पूर्व-दिन-प्राय विप्र करिल रन्धन ।

तैछे अन्न-कूट गोपाल करिल भोजन ॥ 94॥

पूर्व-दिन-प्राय–पिछले दिन की तरह; विप्र-सभी ब्राह्मणों ने; करिल-किया; रन्धन-पकाना; तैछे-उसी तरह; अन्न-कूट-अन्न के ढेर; गोपाल–गोपाल अर्चाविग्रह; करिल किया; भोजन-भोजन।

अनुवाद

दूसरे दिन पहले की तरह अन्नकूट उत्सव मनाया गया। सारे ब्राह्मणों ने भोजन पकाया और गोपाल ने उसे ग्रहण किया।

व्रज-वासी लोकेर कृष्णे सहज पिरीति ।

गोपालेर सहज-प्रीति व्रज-वासि-प्रति ॥ 95॥

व्रज-वासी-वृन्दावन (व्रजभूमि) के निवासी; लोकेर लोगों का; कृष्णे-भगवान् कृष्ण के प्रति; सहज-स्वाभाविक; पिरीति–प्रेम; गोपालेर-भगवान् गोपाल का; सहज-सहज; प्रीति–प्रेम; व्रज-वासि-प्रति-व्रजभूमि के निवासियों की ओर।

अनुवाद

कृष्णभावनामृत सम्पन्न करने के लिए आदर्श स्थान व्रजभूमि या वृन्दावन है, जहाँ लोग स्वभावतः कृष्ण से प्रेम करते हैं और कृष्ण भी उनसे प्रेम करते हैं।

तात्पर्य

भगवद्गीता (4.11) में कहा गया है- ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् । भगवान् कृष्ण तथा उनके भक्तों के बीच आदान-प्रदान होता है। भक्त जितनी निष्ठा से कृष्ण से प्रेम करते हैं, कृष्ण भी उसी अनुपात से प्रतिदान करते हैं—यहाँ तक कि उच्च कोटि का भक्त कृष्ण से आमने-सामने बातें कर सकता है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (10.10) में कृष्ण द्वारा हुई है :

तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

"जो लोग निरन्तर मेरी भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी सेवा करते हैं, उन्हें मैं बुद्धि प्रदान करता हूँ जिससे वे मेरे पास आ सकते हैं। मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य कृष्ण को समझना और भगवद्धाम लौट जाना है। अतएव जो व्यक्ति प्रेम तथा भक्ति के साथ कृष्ण की सेवा में निष्ठापूर्वक लगा रहता है, वह कृष्ण से बातें कर सकता है और आदेश प्राप्त कर सकता है, जिससे वह शीघ्रता से भगवधाम लौट सके। आज अनेक विद्वान धर्म-विज्ञान का अनुमोदन करते हैं और भगवान् के विषय में उन्हें कुछ अनुमान भी है, किन्तु भगवान् के व्यवहारिक अनुभव के बिना का धर्म धर्म नहीं रहता।

श्रीमद्भागवत में इसे एक प्रकार की ठगी कहा गया है। धर्म का अर्थ है पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के आदेशों का पालन करना। यदि कोई भगवान् से बातें करने और उनसे शिक्षा ग्रहण करने के योग्य नहीं है, तो भला वह धर्म के सिद्धान्तों को कैसे समझ सकता है? इस तरह कृष्णभावनामृत के बिना धर्म या धार्मिक अनुभव की बातें करना समय का अपव्यय मात्र है।

महा-प्रसाद खाइल आसिया सर्व लोक ।

गोपाल देखिया सबार खण्डे दुःख-शोक ॥ 96 ॥

महा-प्रसाद–महाप्रसाद, कृष्ण को समर्पित आध्यात्मिक भोजन; खाइल-खाया; आसिया-आकर; सब-सब; लोक-लोगों ने; गोपाल-श्री गोपाल का अर्चाविग्रह; देखिया-देखकर; सबार–उन सबका; खण्डे नष्ट हो गया; दुःख-शोक-सारा दुःख और शोक।

अनुवाद

विभिन्न गाँवों से अनेक लोग गोपाल-विग्रह का दर्शन करने आये और उन सबने पेट भरकर महाप्रसाद ग्रहण किया। जब उन लोगों ने गोपाल के सर्वोत्कृष्ट रूप को देखा, तो उनका सारा शोक तथा दुःख नष्ट हो गया।

आश-पाश व्रज-भूमेर यत ग्राम सब ।

एक एक दिन सबे करे महोत्सव ॥ 97॥

आश-पाश–आसपास; व्रज-भूमेर-व्रजभूमि के; व्रत-सभी; ग्राम–गाँव; सब-सब; एक एक-एक एक; दिन-दिन; सबे-सब; करे-करते; महा-उत्सव–महोत्सव।

अनुवाद

व्रजभूमि (वृन्दावन) के आसपास के सारे गाँव के लोग गोपाल के प्राकट्य की जानकारी मिलने पर इनका दर्शन करने आये। उन सबने दिन प्रतिदिन अन्नकूट उत्सव मनाया।

गोपाल-प्रकट शुनि' नाना देश हैते ।

नाना द्रव्य लञा लोक लागिल आसिते ॥98॥

गोपाल–गोपाल के अर्चाविग्रह का; प्रकट–प्राकट्य; शुनि'–सुनकर; नाना-नाना; देश-देश; हैते–से; नाना-नाना; द्रव्य-पदार्थ; लञा–लाकर; लोक-लोग; लागिल-लगे; आसिते-आने।

अनुवाद

इस तरह न केवल पड़ोसी गाँव अपितु अन्य प्रान्त भी गोपाल के प्रादुर्भाव के विषय में जान गये। फलतः सभी जगहों से लोग नाना प्रकार के उपहार लेकर आये।

मथुरार लोक सब बड़े बड़े धनी ।

भक्ति करि' नाना द्रव्य भेट देय आनि' ॥99॥

मथुरार-मथुरा नगर के; लोक-लोग; सब-सब; बड़ बड़-बड़े बड़े; धनी–धनी; भक्ति करि'- भक्ति से; नाना द्रव्य-नाना प्रकार के पदार्थ; भेट–उपहार; देय-दिये; आनि'–लाकर।

अनुवाद

मथुरा के बड़े-बड़े धनी लोग भी नाना प्रकार के उपहार लेकर आये और उन्होंने भक्तिपूर्वक उन्हें अर्चाविग्रह को अर्पित किया।

स्वर्ण, रौप्य, वस्त्र, गन्ध, भक्ष्य-उपहार ।

असङ्ख्य आइसे, नित्य बाड़िल भाण्डार ॥100॥

स्वर्ण-स्वर्ण; रौप्य-चांदी; वस्त्र-वस्त्र; गन्ध–सुगन्धियाँ; भक्ष्य-उपहार–खाद्य उपहार; असङ्ख्य-असंख्य; आइसे–आये; नित्य-प्रतिदिन; बाड़िल-बढ़ गये; भाण्डार–भण्डार, गोदाम।

अनुवाद

इस तरह सोना, चाँदी, वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य तथा खाद्य पदार्थों के असंख्य उपहार आये और गोपाल का भण्डार प्रतिदिन बढ़ता गया।

एक महा-धनी क्षत्रिय कराइल मन्दिर ।

केह पाक-भाण्डार कैल, केह त' प्राचीर ॥101॥

एक-एक; महा-धनी-अत्यन्त धनी पुरुष; क्षत्रिय-क्षत्रिय; कराइल-बनाया; मन्दिर-मन्दिर; केह-कोई; पाक-भाण्डार-खाना पकाने हेतु मिट्टी के पात्र; कैल-बनाये; केह-किसी ने; त'–निश्चित रूप से; प्राचीर-दीवारें।

अनुवाद

धनी क्षत्रिय राज पुरुष ने मन्दिर बनवा दिया, किसी ने भोजन पकाने के बर्तन दे दिये और किसी ने चार दीवारियाँ बनवा दीं।

एक एक व्रज-वासी एक एक गाभी दिल ।

सहस्र सहस्र गाभी गोपालेर हैल ॥102॥

एक एक–प्रत्येक; व्रज-वासी-वृन्दावन के निवासी; एक एक-एक; गाभी-गाय; दिल–दी; सहस्र सहस्र-हजारों; गाभी–गौएँ; गोपालेर-गोपाल की; हैल-हो गईं।

अनुवाद

व्रजभूमि में रहने वाले हर परिवार ने एक एक गाय दी। इस तरह हजारों गाएँ गोपाल की सम्पत्ति बन गईं।

तात्पर्य

अर्चाविग्रह की प्रतिष्ठा करने, मन्दिर बनवाने तथा मन्दिर की सम्पत्ति बढ़ाने का यही उपाय है। हर व्यक्ति को चाहिए कि मन्दिर के निर्माण कार्य के लिए उत्साहपूर्वक धन दे और प्रसाद वितरण के लिए अन्न भी दे। भक्तों को चाहिए कि वे भक्ति के सन्देश का प्रचार करें और इस तरह लोगों को अर्चाविग्रह की व्यवहारिक सेवा में लगायें। धनी व्यक्ति भी इस कार्य में भाग लेने के लिए आकृष्ट हो सकते हैं। इस तरह सारे लोग आध्यात्मिक रूप से प्रवृत्त होंगे और सारा समाज कृष्णभावनामृत को ग्रहण कर सकेगा। भौतिक इन्द्रियों को तुष्ट करने की इच्छा स्वयमेव घटेगी और इन्द्रियाँ इतनी शुद्ध हो जायेंगी कि वे भक्ति की ओर उन्मुख होंगी। हृषीकेण हृषीकेश सेवनम् भक्तिरुच्यते। भगवान् हृषीकेश की सेवा करने से इन्द्रियाँ धीरे-धीरे शुद्ध हो जाती हैं। शुद्ध इन्द्रियों को भगवान् हृषीकेश की सेवा में लगाना ही भक्ति है। जब भक्ति के प्रति सुप्त भावना जाग्रत होती है, तब मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को यथारूप में समझ सकता

है। भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत:। (भगवद्गीता 18.55) कृष्णभावनामृत जाग्रत करने के लिए मनुष्यों को अवसर देने की यही विधि है। इस तरह से लोग सभी तरह से अपने जीवन को पूर्ण बना सकते हैं।

गौड़ हइते आइला दुइ वैरागी ब्राह्मण ।

पुरी-गोसाञि राखिल तारे करिया यतन ॥ 103 ॥

गौड़ हइते-बंगाल से; आइला–आये; दुइ-दो; वैरागी-संन्यासी; ब्राह्मणब्राह्मण पुरी-गोसाञि-माधवेन्द्र पुरी; राखिल-रखे; तारे–उनको; करिया-करके; यतन-पूरा प्रयास।

अनुवाद

अन्त में बंगाल से दो संन्यासी ब्राह्मण वहाँ आये। माधवेन्द्र पुरी को वे बहुत अच्छे लगे और उन्हें वृन्दावन में रखकर सभी सुविधाएँ प्रदान कीं।

सेइ दुइ शिष्य करि' सेवा समर्पिल ।

राज-सेवा हय,—पुरीर आनन्द बाड़िल ॥ 104॥

सेइ दुई–उन दोनों व्यक्तियों; शिष्य करि'-शिष्य बनाकर; सेवा–सेवा; समर्पिल-समर्पित की; राज-सेवा-सुन्दर ढंग से सेवा; हय है; पुरीर-माधवेन्द्र पुरी की; आनन्द-आनन्द; बाड़िल-बढ़ाई।

अनुवाद

तब माधवेन्द्र पुरी ने उन दोनों को दीक्षा दी और भगवान् की दैनिक सेवा का कार्यभार सौंप दिया। यह सेवा लगातार होती रही और अर्चाविग्रह की पूजा अत्यन्त सुन्दर ढंग से होने लगी थी। इससे माधवेन्द्र पुरी अति आनन्दित हुए।

तात्पर्य

छः गोस्वामियों तथा उनके अनुयायियों ने कई मन्दिरों की स्थापना की-यथा गोविन्द-मन्दिर, गोपीनाथ, मदनमोहन, राधादामोदर, श्यामसुन्दर,राधारमण तथा गोकुलानन्द। इन गोस्वामियों के शिष्यों को इन मन्दिरों की सेवापूजा (अर्चाविग्रह-पूजा) का भार सौंपा गया। ऐसा नहीं था कि ये शिष्य मूल गोस्वामियों के पारिवारिक सदस्य थे।

सभी गोस्वामी संन्यासी थे और विशेषकर, जीव गोस्वामी तो आजीवन ब्रह्मचारी थे। आजकल अर्चाविग्रह की सेवा में लगे होने के कारण सेवक-जन गोस्वामी की पदवी ग्रहण करते हैं। इन सेवकों में से जिन्होंने अपने पद को उत्तराधिकार के रूप में पाया था, वे मन्दिरों के मालिक बन गये हैं और उनमें से कुछ अर्चाविग्रहों की सम्पत्ति को इस तरह बेच रहे हैं, मानो वह उनकी निजी सम्पत्ति हो। किन्तु ये मन्दिर मूलत: इन सेवकों के नहीं थे।

एइ-मत वत्सर दुइ करिल सेवन।

एक-दिन पुरी-गोसाञि देखिल स्वपन॥ 105॥

एइ-मत-इस प्रकार; वत्सर-वर्ष; दुइ-दो; करिल–सम्पन्न की गई; सेवन–पूजा; एक-दिन-एक दिन; पुरी-गोसाञिश्री माधवेन्द्र पुरी ने; देखिल–देखा; स्वपन-एक स्वप्न।

अनुवाद

इस प्रकार दो वर्षों तक मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा अत्यन्त ऐश्वर्य के साथ चलती रही। तब एक दिन माधवेन्द्र पुरी ने एक सपना देखा।

गोपाल कहे, पुरी आमार ताप नाहि याय।

मलयज-चन्दन लेप', तबे से जुड़ाय॥ 106॥

गोपाल–गोपाल अर्चाविग्रह; कहे-ने कहा; पुरी-मेरे प्रिय माधवेन्द्र पुरी; आमार-मेरा; ताप-शरीर का तापमान; नाहि-नहीं; याय-जाता; मलयज-चन्दन-मलय पर्वत पर उत्पन्न चन्दन की लकड़ी का; लेप'–शरीर पर लेप करो; तबे-तब; से-वह; जुड़ाय-ठण्डा होगा।

अनुवाद

सपने में माधवेन्द्र पुरी ने देखा कि गोपाल कह रहे हैं, "मेरे शरीर का ताप अभी भी कम नहीं हुआ है। तुम मलय-प्रदेश से चन्दन लाओ और मुझे शीतल बनाने के लिए मेरे शरीर पर इसका लेप करो।

तात्पर्य

गोपाल-विग्रह अनेक वर्षों तक जंगल में दबे पड़े रहे और अब यद्यपि उन्हें प्रतिष्ठित करके उनका हजारों घड़े पानी से अभिषेक किया गया था, फिर भी उन्हें गर्मी लग रही थी। इसीलिए उन्होंने माधवेन्द्र पुरी से मलय प्रान्त से चन्दन लाने के लिए कहा। मलय में उत्पन्न चन्दन अत्यन्त विख्यात है। यह प्रान्त पश्चिमी घाट में है और नीलगिरि पहाड़ियाँ कभी-कभी मलय पर्वत कहलाती हैं। मलय-ज शब्द मलय प्रान्त में उत्पन्न चन्दन का सूचक है। कभी-कभी वर्तमान मलेशिया देश को भी मलय कहते हैं। पहले इस देश में भी चन्दन उत्पन्न होता था। किन्तु अब उनको रबड़ के वृक्ष उगाना अधिक लाभप्रद लगता है। यद्यपि किसी समय मलेशिया में वैदिक संस्कृति प्रचलित थी, किन्तु अब वहाँ के सारे निवासी मुसलमान हैं। अब मलेशिया, जावा तथा इण्डोनेशिया में वैदिक संस्कृति लुप्त हो चुकी है।

मलयज आन, याञा नीलाचल हैते ।

अन्ये हैते नहे, तुमि चलह त्वरिते ॥ 107॥

मलय-ज-चन्दन की लकड़ी; आन-लाओ; याञा-आकर; नीलाचल हैते-जगन्नाथ पुरी से; अन्ये-अन्य; हैते–से; नहे-नहीं; तुमि-तुम; चलह-जाओ; त्वरिते-शीघ्र।

अनुवाद

“तुम जगन्नाथ पुरी से चन्दन लाओ। कृपया तुरन्त जाओ। चूँकि यह काम कोई और नहीं कर सकता, इसलिए तुम ही करो।”

स्वप्न देखि’ पुरी-गोसाञि हैल प्रेमावेश ।

प्रभु-आज्ञा पालिबारे गेला पूर्व-देश ॥ 108॥

स्वप्न देखि’–स्वप्न देखने के बाद; पुरी-गोसाञि-श्री माधवेन्द्र पुरी का; हैल-था; प्रेम-आवेश-भगवत् प्रेम के कारण भावावेश; प्रभु-आज्ञा–प्रभु की आज्ञा; पालिबारे-पालन करने हेतु; गेला–प्रस्थान किया; पूर्व-देश-पूर्वी देश को (बंगाल)।

अनुवाद

इस स्वप्न को देखकर माधवेन्द्र पुरी गोस्वामी भगवत्प्रेम के भाव के कारण अत्यन्त प्रसन्न हुए और भगवान् के आदेश का पालन करने के उद्देश्य से वे बंगाल जाने के लिए पूर्व की ओर चल पड़े।

सेवार निर्बन्ध—लोक करिल स्थापन।

आज्ञा मागि' गौड़-देशे करिल गमन॥ 109॥

सेवार निर्बन्ध–प्रभु की नित्य सेवा की व्यवस्था; लोक-लोग; करिल-की; स्थापन–स्थापना; आज्ञा मागि'-आज्ञा माँगकर; गौड़-देशे-बंगाल की ओर; करिल-किया; गमन–प्रस्थान।

अनुवाद

चलने के पूर्व माधवेन्द्र पुरी ने नियमित सेवा-पूजा के लिए सारी व्यवस्था कर दी और उन्होंने विभिन्न लोगों को विविध कार्यों में लगा दिया। फिर गोपाल की आज्ञा लेकर करके वे बंगाल के लिए चल पड़े।

शान्तिपुर आइला अद्वैताचार्येर घरे।

पुरीर प्रेम देखि' आचार्य आनन्द अन्तरे॥ 110॥

शान्तिपुर–शान्तिपुर में; आइला–आये; अद्वैत-आचार्येर-श्री अद्वैत आचार्य के; घरे–घर पर; पुरीर प्रेम-माधवेन्द्र पुरी का प्रेम; देखि-देखकर; आचार्य-अद्वैत आचार्य; आनन्द–आनन्द; अन्तरे-अपने भीतर।

अनुवाद

जब माधवेन्द्र पुरी शान्तिपुर में अद्वैत आचार्य के घर पहुँचे, तो माधवेन्द्र पुरी में ऊर्मिपूर्ण भगवत्प्रेम को देखकर आचार्य अत्यन्त हर्षित हुए।

ताँर ठाञि मन्त्र लैल ऋतन करिञा।

चलिला दक्षिणे पुरी ताँरे दीक्षा दिला॥ 111॥

ताँर ठाञिउनसे; मन्त्र-मन्त्र, दीक्षा; लैल–स्वीकार की; यतन-प्रयत्न; करिञा-करके; चलिला–चल पड़े; दक्षिणे-दक्षिण की ओर; पुरी-माधवेन्द्र पुरी; ताँरे–उनको (अद्वैत आचार्य को); दीक्षा-दीक्षा; दिना-देकर।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने माधवेन्द्र पुरी से दीक्षा देने की प्रार्थना की। उन्हें दीक्षा देने के बाद माधवेन्द्र पुरी दक्षिण भारत के लिए चल पड़े।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि अद्वैत आचार्य ने मध्व-सम्प्रदाय की परम्परा के संन्यासी माधवेन्द्र पुरी से दीक्षा ली। श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुसार :

किबा विप्र किबा न्यासी शूद्र केने नय ।

येइ कृष्ण-तत्त्व-वेत्ता सेइ 'गुरु' हय ॥

"कोई चाहे ब्राह्मण हो, संन्यासी हो, शूद्र हो या अन्य कुछ, किन्तु यदि वह कृष्ण-तत्त्व में दक्ष है, तो वह गुरु बन सकता है।" (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 8.128) इस कथन की पुष्टि माधवेन्द्र पुरी द्वारा की गई है। पञ्चरात्र के अनुसार केवल गृहस्थ ब्राह्मण दीक्षा दे सकता है, अन्य कोई नहीं। जब कोई व्यक्ति दीक्षित हो जाता है, तो यह माना जाता है कि वह ब्राह्मण बन गया। उपयुक्त ब्राह्मण द्वारा दीक्षा प्राप्त किये बिना अन्य किसी को ब्राह्मण नहीं बनाया जा सकता। दूसरे शब्दों में, जब तक कोई स्वयं ब्राह्मण नहीं होता, तब तक वह किसी दूसरे को ब्राह्मण नहीं बना सकता। वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाला गृहस्थ ब्राह्मण अपने सच्चे श्रम से भगवान् विष्णु की पूजा की विविध सामग्री प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः लोग इन गृहस्थ ब्राह्मणों से दीक्षित होने की याचना करते हैं, जिससे वे वर्णाश्रम धर्म में सफल हो सकें या भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो सकें। अतएव गृहस्थ-आश्रम में रहने वाले गुरु को शुद्ध वैष्णव होना चाहिए। संन्यास आश्रम के गुरु को अर्चना करने के लिए बहुत कम अवसर मिल पाता है, किन्तु यदि कोई दिव्य संन्यासी को गुरु स्वीकार करता है, तो अर्चना की उपेक्षा नहीं की जाती। इस सिद्धान्त की स्थापना के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपना मत किबा विप्र किबा न्यासी श्लोक में दिया है। इससे सूचित होता है कि महाप्रभु को समाज की कमजोरी पता थी कि वे ऐसा मानते हैं कि केवल गृहस्थ ब्राह्मण ही गुरु हो सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इंगित किया कि गुरु गृहस्थ, संन्यासी या शूद्र हो सकता है। गुरु को शास्त्रों के सार में पारंगत होना चाहिए, उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ज्ञान होना चाहिए। केवल तभी कोई गुरु बन सकता है। दीक्षा का वास्तविक अर्थ है शिष्य को दिव्य ज्ञान प्रदान करना, जिससे वह सारे भौतिक कल्मष से मुक्त हो सके।

रेमुणाते कैल गोपीनाथ दरशन ।

ताँर रूप देखिला हैल विह्वल-मन ॥ 112॥

रेमुणाते-रेमुणा गाँव में; कैल-किया; गोपीनाथ-गोपीनाथ का अर्चाविग्रह; दरशन-दर्शन; ताँर–उनका; रूप-रूप; देखिञा-देखकर; हैल–हो गया; विह्वल-व्याकुल; मन–मन।

अनुवाद

दक्षिण भारत जाते समय माधवेन्द्र पुरी रेमुणा गये, जहाँ गोपीनाथ स्थित हैं। विग्रह की सुन्दरता देखकर माधवेन्द्र पुरी भावविभोर हो गये।

नृत्य-गीत करि' जग-मोहने वसिला ।

'क्या क्या भोग लागे?' ब्राह्मणे पुछिला ॥113॥

नृत्य-गीत करि'-नृत्य तथा गान करने के बाद; जग-मोहने–मन्दिर के बरामदे में; वसिला-वे बैठ गये; क्या क्या-क्या क्या; भोग-भोग; लागे–वे भेंट करते हैं; ब्राह्मणे-ब्राह्मण पुजारी से; पुछिला–पूछा।

अनुवाद

मन्दिर के बरामदे में, जहाँ से लोग सामान्यतया अर्चाविग्रह का दर्शन करते थे, माधवेन्द्र पुरी ने कीर्तन और नृत्य किया। फिर वे वहाँ बैठ गये और उन्होंने एक ब्राह्मण से पूछा कि अर्चाविग्रह को किस किस वस्तु का भोग लगाया जाता है?

सेवार सौष्ठव देखि' आनन्दित मने ।

उत्तम भोग लागे—एथा बुझि अनुमाने ॥ 114॥

सेवार–पूजा का; सौष्ठव-सौन्दर्य; देखि'–देखकर; आनन्दित-आनन्दित; मने-मन में; उत्तम भोग–उत्तम भोग; लागे–वे अर्पित करते हैं; एथा-इस प्रवार; बुझि-मैं समझता हूँ; अनुमाने-अनुमान से।

अनुवाद

प्रबन्ध की उत्कृष्टता से माधवेन्द्र पुरी ने अनुमान लगाया कि वहाँ अवश्य उत्तम भोजन ही अर्पित किया जाता होगा।

यैछे इहा भोग लागे, सकल-इ पुछिब ।

तैछे भियाने भोग गोपाले लागाइब ॥ 115॥

यैछे-जैसे; इहा-यहाँ; भोग-भोग; लागे–वे लगाते हैं; सकल-इ-सब; पुछिब-मैं पूछुँगा; तैछे-उसी तरह; भियाने–रसोई घर में; भोग-भोग की; गोपाले-श्री गोपाल को; लागाइब-मैं व्यवस्था करूँगा।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने सोचा, "मैं पुजारी से पूछैगा कि गोपीनाथ को किस प्रकार का भोजन अर्पित किया जाता है, जिससे हम भी अपने रसोई-घर में उनकी व्यवस्था करके वैसा ही भोजन श्री गोपाल को अर्पित कर सकें।"

एइ लागि' पुछिलेन ब्राह्मणेर स्थाने ।

ब्राह्मण कहिल सब भोग-विवरणे ॥ 116॥

एइ लागि'-इसलिए; पुछिलेन-उन्होंने पूछा; ब्राह्मणेर स्थाने–ब्राह्मण से; ब्राह्मण-पुजारी ने; कहिल–सूचित किया; सब-सब; भोग-भोग का; विवरणे-विवरण।

अनुवाद

जब ब्राह्मण पुजारी से इस विषय में पूछा गया, तब उसने विस्तारपूर्वक बतलाया कि गोपीनाथ के अर्चाविग्रह को कौन-कौन से भोग अर्पित किये जाते हैं।

सन्ध्याय भोग लागे क्षीर—'अमृत-केलि' नाम ।

द्वादश मृत्पात्रे भरि' अमृत-समान ॥ 117॥

सन्ध्याय-सांयकाल; भोग-भोग; लागे–वे अर्पित करते हैं; क्षीर-खीर; अमृत-केलि-नाम-अमृत केलि नामक; द्वादश-बारह; मृत्-पात्रे-मिट्टी के बर्तन; भरि'-भरकर; अमृत-समान-अमृत समान।

अनुवाद

ब्राह्मण पुजारी ने कहा, "संध्या-समय अर्चाविग्रह को मिट्टी के बारह पात्रों में खीर का भोग लगाया जाता है। चूँकि इसका स्वाद अमृत जैसा होता है, अतएव यह अमृत-केलि कहलाता है।

'गोपीनाथेर क्षीर' बलि' प्रसिद्ध नाम यार ।

पृथिवीते ऐछे भोग काहाँ नाहि आर ॥118॥

गोपीनाथेर क्षीर-गोपीनाथ को समर्पित खीर; बलि'–की तरह; प्रसिद्ध–प्रसिद्ध; नाम-नाम; यार-जिसका; पृथिवीते-सारे संसार में; ऐछे-ऐसा; भोग–भोग; काहाँ-कहीं भी; नाहि-नहीं; आर-और कहीं।

अनुवाद

"यह खीर सारे जगत् में गोपीनाथ-क्षीर के नाम से विख्यात है। ऐसी खीर दुनिया में अन्यत्र कहीं भी अर्पित नहीं की जाती है।"

हेन-काले सेइ भोग ठाकुरे लागिल ।

शुनि' पुरी-गोसाञि किछु मने विचारिल ॥119॥

हेन-काले-इस समय; सेइ भोग-वही अद्भुत भोग; ठाकुरे–अर्चाविग्रह के सामने; लागिल-रखा गया था; शुनि'-यह सुनकर; पुरी-गोसाञि-माधवेन्द्र पुरी; किछु-कुछ; मने-मन में; विचारिल-विचार करने लगे।

अनुवाद

जब माधवेन्द्र पुरी ब्राह्मण पुजारी से बातें कर रहे थे, तब खीर का भोग अर्चाविग्रह के समक्ष लगाया गया था। यह सुनकर माधवेन्द्र पुरी ने इस प्रकार विचार किया।

अयाचित क्षीर प्रसाद अल्प यदि पाइ ।

स्वाद जानि' तैछे क्षीर गोपाले लागाइ ॥ 120॥

अयाचित-बिना माँगे; क्षीर-खीर; प्रसाद–प्रसाद; अल्प-थोड़ी सी; यदि-यदि; पाइ–मुझे मिल जाये; स्वाद–स्वाद; जानि'–जानकर; तैछे-ऐसी ही; क्षीर-खीर; गोपाले-अपने गोपाल को; लागाइ-मैं भोग लगा सकता हूँ।

अनुवाद

“यदि मुझे बिना माँगे थोड़ी-सी खीर मिल जाय, तो मैं उसे चख लूँ और ऐसी ही खीर अपने भगवान् गोपाल के लिए तैयार करूँ।”

एइ इच्छाय लज्जा पाञा विष्णु-स्मरण कैल ।

हेन-काले भोग सरि’ आरति बाजिल ॥ 121॥

एइ इच्छाय-इस इच्छा से; लज्जा–लज्जा; पाञा-पाकर; विष्णु-स्मरण-भगवान् विष्णु का स्मरण; कैल–किया; हेन-काले-उस समय; भोग-भोग; सरि’-समाप्त हुआ; आरति-आरती, बाजिल–आरम्भ हुई।

अनुवाद

जब माधवेन्द्र पुरी को खीर चखने की इच्छा हुई तो उन्हें बहुत लज्जा आ गई, अतएव वे तुरन्त ही भगवान् विष्णु का चिन्तन करने लगे। जब वे इस प्रकार भगवान् विष्णु का चिन्तन कर रहे थे, तब भोग का अर्पण समाप्त हो गया और आरती शुरू हो गई।

आरति देखिया पुरी कैल नमस्कार ।

बाहिरे आइला, कारे किछु ना कहिल आर ॥122॥

आरति देखिया-आरती देखकर; पुरी-माधवेन्द्र पुरी ने; कैल–किया; नमस्कार-नमस्कार; बाहिरे आइला–वे बाहर चले गये; कारे-किसी से; किछु-कुछ; ना-नहीं; कहिल–कहा; आर-और।

अनुवाद

आरती समाप्त होने के बाद माधवेन्द्र पुरी ने अर्चाविग्रह को नमस्कार किया और फिर मन्दिर से बाहर चले गये। उन्होंने किसी से और कुछ भी नहीं कहा।

अयाचित-वृत्ति पुरी—विरक्त, उदास ।

अयाचित पाइले खा’न, नहे उपवास ॥123 ॥

अयाचित-वृत्ति-भिक्षा माँगने की प्रवृत्ति से दूर; पुरी-माधवेन्द्र पुरी; विरक्त-अनासक्त; उदास-उदासीन; अयाचित-भिक्षा माँगे बिना; पाइले–अगर मिले; खान-उसे वे खाते; नहे-यदि नहीं; उपवास-तो भूखे ही रहते।

अनुवाद

श्री माधवेन्द्र पुरी भिक्षा माँगने से बचते थे। वे पूर्णतया विरक्त और भौतिक वस्तुओं के प्रति उदासीन थे। बिना मांगे यदि कोई खाने के लिए कुछ दे देता तो खा लेते, अन्यथा वे उपवास करते थे।

तात्पर्य

यह परमहंस अवस्था अर्थात् संन्यासी की सर्वोच्च अवस्था है। संन्यासी द्वार द्वार भिक्षा माँगकर भोजन एकत्र कर सकता है, किन्तु परमहंस, जिसने अयाचित वृत्ति या आजगर-वृत्ति धारण की है, वह किसी से भोजन नहीं माँगता। यदि कोई स्वेच्छा से उसे भोजन देता है, तो वह ग्रहण करता है। अयाचित वृत्ति का अर्थ है भिक्षा न माँगना और आजगर-वृत्ति उस व्यक्ति को सूचित करती है, जो अजगर के समान है और भोजन प्राप्त करने के लिए कोई प्रयास नहीं करता, अपितु भोजन को स्वत: अपने मुख तक आने की प्रतीक्षा करता है। दूसरे शब्दों में, परमहंस बिना खाये या सोये एकमात्र भगवान् की सेवा में लगा रहता है। छ: गोस्वामियों के विषय में कहा गया था-निद्राहार-विहारकादिविजितौ । परमहंस अवस्था में मनुष्य नींद, भोजन तथा इन्द्रियतृप्ति की इच्छा पर विजय प्राप्त कर लेता है। वह सदैव अत्यन्त दैन्य भाव से दिन-रात भगवान् की सेवा में लगा रहने वाला साधु होता है। माधवेन्द्र पुरी ने यह परमहंस अवस्था प्राप्त कर ली थी।

प्रेमामृते तृप्त, क्षुधा-तृष्णा नाहि बाधे ।

क्षीर-इच्छा हैल, ताहे माने अपराधे ॥ 124॥

प्रेम-अमृते तृप्त-केवल भगवान् की प्रेम-भक्ति में प्रसन्न रहकर; क्षुधा-तृष्णा-भूख प्यास; नाहि-नहीं; बाधे-सताती; क्षीर-खीर; इच्छा-इच्छा; हैल-हुई; ताहे-तो उस कारण; माने-माना; अपराधे-अपराध।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी जैसा परमहंस सदैव भगवान् की प्रेमाभक्ति से सन्तुष्ट रहता है। भौतिक भूख-प्यास उनके कार्यकलापों में बाधक नहीं बन सकते। जब उन्हें अर्चाविग्रह को अर्पित थोड़ी खीर खाने की इच्छा हुई, तो उन्होंने सोचा कि उनसे अपराध हुआ है, क्योंकि वे अर्चाविग्रह को भोग लगाई जा रही वस्तु को खाना चाह रहे थे।

तात्पर्य

यह उचित होगा कि जब अर्चाविग्रह को अर्पण करने वाली भोग-सामग्री रसोईघर से अर्चाविग्रह के कमरे में ले जायी जा रही हो, तो उसे ढक दिया जाये। इस तरह दूसरे लोग इसे देख नहीं सकते। जो भक्ति के उच्च नियमों का पालन करने के अभ्यस्त नहीं हैं, उन्हें यह भोजन खाने की इच्छा हो सकती है, जो कि अपराध है। अतएव किसी को इसे देखने तक का अवसर नहीं देना चाहिए। किन्तु अर्चाविग्रह के समक्ष उसे अवश्य खोल देना चाहिए। अर्चाविग्रह के समक्ष खुले भोजन को देखकर माधवेन्द्र पुरी के मन में उसे थोड़ा चखने की इच्छा हुई, जिससे वे अपने गोपाल के लिए ऐसी ही खीर बना सकें। किन्तु माधवेन्द्र पुरी नियम के इतने पक्के थे कि उन्होंने इसे अपराध समझा। अतएव किसी से कुछ कहे बिना वे मन्दिर से बाहर चले गये । इसीलिए परमहंस को विजित-षड्गुण कहा जाता है। उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर्य तथा क्षुधा-तृष्णा-इन छह भौतिक गुणों को जीत लेना चाहिए।

ग्रामेर शून्य-हाटे वसि' करेन कीर्तन ।

एथा पूजारी कराइल ठाकुरे शयन ॥ 125 ॥

ग्रामेर–गाँव के; शून्य-हाटे-खाली बाजार में; वसि'–बैठकर; करेन-करने लगे; कीर्तन-कीर्तन; एथा–मन्दिर में; पूजारी-पुजारी; कराइल–किया; ठाकुरे–अर्चाविग्रह; शयन–शयन करा दिया।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी मन्दिर से बाहर चले गये और गाँव के खाली बाजार में बैठ गये। वे वहाँ बैठकर कीर्तन करने लगे। इसी बीच मन्दिर के पुजारी ने अर्चाविग्रह को शयन करा दिया।

तात्पर्य

यद्यपि माधवेन्द्र पुरी की रुचि खाने तथा सोने में नहीं थी, किन्तु महामन्त्र का कीर्तन करने में उनकी रुचि इतनी तीव्र थी, मानो वे परमहंस नहीं, अपितु नये भक्त हों। इसका अर्थ यह हुआ कि परमहंस अवस्था में भी कीर्तन करना नहीं छोड़ा जा सकता। हरिदास ठाकुर तथा अन्य गोस्वामी एक निश्चित संख्या की माला जप करते थे। अतएव जपमाला पर जप करना सबके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, भले ही वह परमहंस क्यों न हो। यह कीर्तन मन्दिर के भीतर या बाहर कहीं भी हो सकता है। माधवेन्द्र पुरी तो निर्जन बाजार में ही बैठकर कीर्तन करने लगे। जैसाकि श्रीनिवास आचार्य ने छः गोस्वामियों की स्तुति में कहा है- नाम-गान-नतिभिः। एक परमहंस भक्त कीर्तन करने में तथा भगवत्सेवा

करने में सदैव लगा रहता है। भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना तथा उनकी सेवा में लगे रहना समान है। जैसाकि श्रीमद्भागवत (7.5.23) में कहा गया है, भक्ति की नौ विधियाँ हैं- श्रवणं, कीर्तनं, विष्णो-स्मरणम्, पादसेवनम्, अर्चनम्, वन्दनम्, दास्यम्, सख्यम् तथा आत्म-निवेदनम् । यद्यपि प्रत्येक विधि भिन्न प्रतीत होती है, किन्तु आध्यात्मिक धरातल पर स्थित हो जाने पर ये एकसमान दिखती हैं। उदाहरणार्थ, श्रवण करना कीर्तन के ही समान है और स्मरण करना कीर्तन या श्रवण के ही तुल्य है। इसी प्रकार अर्चाविग्रह की अर्चना में लगना कीर्तन, श्रवण या स्मरण के ही तुल्य है। भक्त से अपेक्षा की जाती है कि वह भक्ति की सभी नौ विधियों को स्वीकार करे, किन्तु यदि इनमें से एक ही विधि का अच्छे ढंग से पालन किया जाये, तो उसे तब भी सर्वोच्च स्थिति (परमहंस) प्राप्त हो सकती है और वह भगवान् के धाम को लौट सकता है।

निज कृत्य करि' पूजारी करिल शयन ।

स्वपने ठाकुर आसि' बलिला वचन ॥ 126॥

निज कृत्य-अपना कार्य; करि'-समाप्त करके; पूजारी–मन्दिर का ब्राह्मण पुजारी; करिल लिया; शयन–विश्राम; स्वपने-स्वप्न में; ठाकुर-अर्चाविग्रह ने; आसि'-वहाँ आकर; बलिला–कहे; वचन-वचन।

अनुवाद

पुजारी अपना दैनिक कार्य समाप्त करके आराम करने लगा। सपने में उसने देखा कि गोपीनाथ अर्चाविग्रह आकर उससे बातें कर रहे हैं। अर्चाविग्रह इस प्रकार बोले।

उठह, पूजारी, कर द्वार विमोचन ।

क्षीर एक राखियाछि सन्न्यासि-कारण ॥127॥

उठह-कृपया उठो; पूजारी–हे पुजारी; कर-जरा करो; द्वार-द्वार; विमोचन खोलो; क्षीर-खीर; एक-एक बर्तन; राखियाछि-मैंने रखा है; सन्न्यासि-संन्यासी माधवेन्द्र पुरी के लिए; कारण–के लिए।

अनुवाद

"हे पूजारी, कृपया उठो और मन्दिर का द्वार खोलो। मैंने खीर का एक पात्र संन्यासी माधवेन्द्र पुरी के लिए रख लिया है।

धड़ार अञ्चले ढाका एक क्षीर हय।

तोमरा ना जानिला ताहा आमार मायाय ॥ 128॥

धडार-कपड़े के पर्दे के; अञ्चले–के पास; ढाका-ढककर; एक-एक; क्षीर-खीर का बर्तन; हय-है; तोमरा-तुम; ना-नहीं; जानिला-जानते थे; ताहा-वह; आमार-मेरी; मायाय-माया से।

अनुवाद

"यह खीर का पात्र मेरे कपड़े के पर्दे के पीछे है। तुम मेरी माया के कारण उस पात्र को नहीं देख पाये।"

माधव-पुरी सन्न्यासी आछे हाटेते वसिञा।

ताहाके त' एइ क्षीर शीघ्र देह लञा ॥ 129॥

माधव-पुरी-माधवेन्द्र पुरी नामक; सन्न्यासी-संन्यासी; आछे-है; हाटेते बाजार में; वसिञा-बैठा; ताहाके-उसे; त'-निश्चित रूप से; एइ–यह; क्षीर-खीर; शीघ्र-शीघ्र; देह-दो; लञा-ले जाकर।

अनुवाद

"माधवेन्द्र पुरी नामक एक संन्यासी निर्जन बाजार में बैठा है। तुम खीर के इस पात्र को मेरे पीछे से उठा लो और जाकर उसे दे दो।"

स्वप्न देखि' पूजारी उठि' करिला विचार।

स्नान करि' कपाट खुलि, मुक्त कैल द्वार ॥ 130॥

स्वप्न देखि'–स्वप्न देखने के बाद; पुजारी-पुजारी; उठि'–उठकर; करिला-किया; विचार-विचार; स्नान करि'-अर्चाविग्रह कक्ष में जाने के पहले स्नान करके; कपाट–द्वार; खुलि–खोलकर; मुक्त–खोला; कैल–किया; द्वार-द्वार।

अनुवाद

स्वप्न पूरा होने पर पुजारी तुरन्त शय्या से उठ खड़ा हुआ और उसने अर्चाविग्रह के कक्ष में प्रवेश करने के पूर्व स्नान करना उचित समझा। फिर उसने मन्दिर का द्वार खोला।

धड़ार आँचल-तले पाइल सेइ क्षीर।

स्थान लेपि' क्षीर लञा हइल बाहिर॥ 131॥

धड़ार–पर्दे के; आँचल-तले-आँचल के नीचे; पाइल-उसने पाया; सेइ-वह; क्षीर-खीर का पात्र; स्थान लेपि'-उस स्थान को साफ करके; क्षीर-खीर; लञा–लेकर; हइल-वह गया; बाहिर–मन्दिर से बाहर।

अनुवाद

अर्चाविग्रह के निर्देशानुसार पुजारी ने खीर का पात्र कपड़े के पर्दे के पीछे पाया। उसने वह पात्र हटाया और उस स्थान को साफ किया जहाँ वह रखा था। इसके बाद वह मन्दिर से बाहर चला गया।

द्वार दिया ग्रामे गेला सेइ क्षीर लञा।

हाटे हाटे बुले माधव-पुरीके चाहिञा॥ 132॥

द्वार दिया-द्वार बन्द करके; ग्रामे गाँव में; गेला-गया; सेइ-वह; क्षीर-खीर का पात्र; लञा-लेकर; हाटे हाटे-हर दुकान पर; बुले-गया; माधव-पुरीके–माधवेन्द्र पुरी को; चाहिञा–आवाज देते हुए।

अनुवाद

वह मन्दिर का द्वार बन्द करके खीर का पात्र लेकर गाँव में चला गया। उसने माधवेन्द्र पुरी की खोज में प्रत्येक हाट में जाकर पुकारा।

क्षीर लह एइ, यार नाम 'माधव-पुरी'।

तोमा लागि' गोपीनाथ क्षीर कैल चुरि॥ 133॥

क्षीर लह-खीर का पात्र ले लो; एइ–यह; यार–जिसका; नाम-नाम; माधव-पुरी-माधवेन्द्र पुरी; तोमा लागि'-केवल आपके लिए; गोपीनाथ–भगवान् गोपीनाथ के अर्चाविग्रह; क्षीर-खीर का पात्र; कैल–किया; चुरि-चोरी।

अनुवाद

वह पुजारी खीर का पात्र उठाकर पुकारने लगा, "जिसका नाम माधवेन्द्र पुरी हो वह आकर यह पात्र ले जाये! गोपीनाथ ने तुम्हारे लिए इस खीर के पात्र की चोरी की है!"

तात्पर्य

यहाँ पर परम सत्य तथा सापेक्ष सत्य का अन्तर बतलाया गया है। भगवान् गोपीनाथ ने यहाँ स्पष्ट रूप से घोषित किया गया है कि वे चोर हैं। उन्होंने खीर-पात्र चुराया था, किन्तु उन्होंने इस बात को छिपाया नहीं, क्योंकि उनके द्वारा चोरी की यह लीला परम दिव्य आनन्द का स्रोत होती है। भौतिक जगत् में चोरी करना अपराध है, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में भगवान् द्वारा चोरी करना दिव्य आनन्द का स्रोत होता है। संसारी धूर्त, जिन्हें भगवान् की दिव्य प्रकृति का ज्ञान नहीं है, कभी-कभी कृष्ण को अनैतिक कहते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि ऊपर से अनैतिक दिखने वाले उनके कार्य, जिन्हें गुप्त नहीं रखा जाता, भक्तों को असीम आनन्द प्रदान करने वाले होते हैं। ये धूर्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य लीलाओं को न जानने के कारण उनके चरित्र पर लांछन लगाते हैं और तुरन्त ही दुष्टों (धूर्त, नराधम, असुर और जिनका ज्ञान माया द्वारा हर लिया गया है) की श्रेणी में आ जाते हैं। भगवद्गीता (7.15) में कृष्ण बतलाते हैं :

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

“जो निपट मूर्ख हैं, मनुष्यों में अधम हैं, जिनका ज्ञान माया द्वारा हर लिया गया है तथा जो आसुरिक प्रवृत्ति के हैं, वे दुष्ट मेरी शरण में नहीं आते।”

संसारी धूर्त नहीं समझ सकते कि कृष्ण जो भी करते हैं वह दिव्य होने के कारण सर्वदा शुभ होता है। भगवान् के इस गुण की व्याख्या श्रीमद्भागवत (10.33.29) में हुई है। कोई किसी सर्वोपरि शक्तिशाली व्यक्ति के कुछ कार्यों को भौतिक गणना के अनुसार अनैतिक मान सकता है, किन्तु यह हकीकत नहीं है। उदाहरणार्थ, सूर्य पृथ्वी की सतह से जल सोखता है, किन्तु वह केवल समुद्र का ही जल नहीं सोखता; वह गंदे नालों का भी जल सोखता है, जिसमें मूत्र तथा अन्य अशुद्ध पदार्थ पड़े रहते हैं। किन्तु ऐसा जल सोखने से सूर्य अशुद्ध नहीं हो जाता। प्रत्युत सूर्य गंदे स्थान को शुद्ध बनाता है। यदि कोई भक्त किसी अनैतिक या अनुचित कार्य के लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पास जाता है, तब भी वह शुद्ध बन जाता है; इससे भगवान् दूषित नहीं होते। श्रीमद्भागवत (10.29.15) में कहा गया है कि यदि कोई काम, क्रोध या भयवश भी (कामं क्रोधं भयम्) भगवान् की शरण ग्रहण करता है, तो वह शुद्ध हो जाता है। गोपियाँ युवावस्था में थीं। वे कृष्ण के पास पहुँची, क्योंकि कृष्ण सुन्दर तरुण किशोर थे। बाह्य दृष्टि से वे काम के वशीभूत होकर भगवान् के पास पहुँची और भगवान् ने उनके साथ अर्धरात्रि में नृत्य किया। संसारी दृष्टि से ये कार्य अनैतिक लग सकते

हैं, क्योंकि कोई विवाहिता या अविवाहिता तरुणी अपना घर छोड़कर किसी तरुण किशोर से मिलने और उसके साथ नृत्य करने नहीं जा सकती। यद्यपि सांसारिक दृष्टि से यह अनैतिक है, किन्तु गोपियों के इन कृत्यों को भक्ति का सर्वोच्च रूप माना जाता है, क्योंकि वे अर्धरात्रि में कामवश जिनके पास पहुँचीं, वे भगवान् कृष्ण थे।

किन्तु अभक्त लोग इसे नहीं समझ सकते। मनुष्य को चाहिए कि कृष्ण को तत्त्व से (यथार्थ रूप में) समझे। उसे अपने सामान्य ज्ञान का उपयोग करना चाहिए और विचार करना चाहिए कि यदि केवल कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण करने से मनुष्य शुद्ध हो सकता है, तो फिर स्वयं कृष्ण किस तरह अनैतिक हो सकते हैं? दुर्भाग्यवश, संसारी मूर्खा को शैक्षिक नेता मान लिया जाता है और उन्हें सामान्य जनता को अधार्मिक सिद्धान्त पढ़ाने हेतु उच्च पद दे दिये जाते हैं। इसकी व्याख्या श्रीमद्भागवत (7.5.31) में हुई है : अन्धा यथान्धैरुपनीयमानाः। अंधे लोग दूसरे अन्धे लोगों को मार्गदर्शन देने का प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे धूर्तो के अधकचरे ज्ञान के कारण सामान्य लोगों को गोपियों के साथ कृष्ण-लीलाओं की चर्चा नहीं करनी चाहिए। अभक्त को तो भगवान् द्वारा अपने भक्त के लिए खीर चुराने की भी विवेचना नहीं करनी चाहिए। यह आगाह किया जाता है कि इन बातों के विषय में कोई सोचे तक नहीं। यद्यपि कृष्ण सभी शुद्धों में सर्वाधिक शुद्ध हैं, किन्तु संसारी लोग कृष्ण की लीलाओं को अनैतिक मानकर स्वयं दूषित हो जाते हैं। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाओं की चर्चा कभी भी सार्वजनिक रूप से नहीं करते थे। वे इनकी चर्चा केवल अपने तीन अन्तरंग पार्षदों के साथ करते थे। उन्होंने कभी भी रासलीला की चर्चा जनता के समक्ष नहीं की, जैसाकि पेशेवर कथा-वाचक करते हैं, भले ही वे कृष्ण या श्रोता की प्रकृति को न समझते हों। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु पवित्र नाम के संकीर्तन को बड़े स्तर पर घंटों करने के लिए प्रोत्साहित करते थे।

क्षीर लञा सुखे तुमि करह भक्षणे ।

तोमा-सम भाग्यतान् नाहि त्रिभुवने ॥134॥

क्षीर लञा-खीर का पात्र लेकर; सुखे-प्रसन्न होकर; तुमि-आप; करह-करो; भक्षणे-खाना; तोमा-सम-आपकी तरह; भाग्यवान्–भाग्यवान; नाहि-कोई नहीं है; त्रि-भुवने–तीनों भुवनों में।

अनुवाद

पुजारी ने आगे कहा, "क्या माधवेन्द्र पुरी नामक संन्यासी आकर यह खीर-पात्र लेंगे और अत्यन्त सुखपूर्वक प्रसाद ग्रहण करेंगे? आप तो तीनों लोकों में परम भाग्यशाली व्यक्ति हो!"

तात्पर्य

यहाँ पर कृष्ण के अनैतिक कार्य द्वारा व्यक्तिगत आशीर्वाद प्राप्त करने का दृष्टान्त दिया गया है। अपने भक्त के लिए गोपीनाथ द्वारा चोरी किये जाने से भक्त तीनों लोकों में सर्वाधिक भाग्यशाली व्यक्ति बनता है। इस तरह भगवान् के अपराध-कार्यों से भी भक्त अत्यन्त भाग्यशाली व्यक्ति बन जाता है। एक संसारी धूर्त कृष्ण की लीलाओं को भला कैसे समझ सकता है और यह निर्णय कर सकता है कि कृष्ण नैतिक हैं या अनैतिक? चूँकि कृष्ण परम सत्य हैं, अतएव उनके लिए नैतिक या अनैतिक जैसे कोई अन्तर नहीं होते है। वे जो भी करते हैं, वही मंगलमय होता है।''ईश्वर मंगलमय है' का यही वास्तविक अर्थ है। वे सभी परिस्थितियों में मंगलमय बने रहते हैं, क्योंकि वे दिव्य हैं। तथा इस भौतिक जगत् के कार्यक्षेत्र से परे हैं। अतएव कृष्ण को केवल वही लोग समझ सकते हैं, जो पहले से आध्यात्मिक जगत् में रह रहे हैं। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (14.26) से होती है :

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।

स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

"जो पूरी तरह भक्ति में लगा रहता है, जिसका किसी भी परिस्थिति में पतन नहीं होता, वह तुरन्त ही भौतिक प्रकृति के गुणों को पार कर जाता है और ब्रह्म-पद को प्राप्त करता है।"

जो भगवान् की अनन्य भक्ति में लगा हुआ है, वह पहले से आध्यात्मिक जगत् में स्थित है (ब्रह्मभूयाय कल्पते)। कृष्ण के साथ उसके कार्य तथा आचरण प्रत्येक दशा में दिव्य होते हैं, अतएव संसारी नीतिविदों की समझ के परे हैं। अतः उचित यही है कि इन कार्यकलापों की संसारी लोगों से चर्चा न की जाये। अच्छा तो यही है कि उन्हें हरे कृष्ण महामन्त्र दिया जाये, जिससे वे धीरे-धीरे शुद्ध होकर कृष्ण के दिव्य कार्यकलापों को समझने लगे।

एत शुनि' पुरी-गोसाञि परिचय दिल ।

क्षीर दिया पूजारी ताँरे दण्डवत् हैल ॥ 135॥

एत शुनि'-यह सुनकर; पुरी-गोसाञि-माधवेन्द्र पुरी; परिचय–परिचय; दिल-दिया; क्षीर दिया-खीर का पात्र देकर; पूजारी–पुजारी; ताँरे–उनको; दण्डवत् हैल-दण्डवत् प्रणाम किया।

अनुवाद

यह निमन्त्रण सुनकर माधवेन्द्र पुरी सामने आये और उन्होंने अपना परिचय दिया। तब पुजारी ने उन्हें वह खीर-पात्र दिया और दण्डवत् प्रणाम किया।

तात्पर्य

ब्राह्मण किसी को दण्डवत् प्रणाम नहीं करता, क्योंकि ब्राह्मण सर्वोच्च वर्ण का समझा जाता है। किन्तु ब्राह्मण जब किसी भक्त को देखता है, तो वह दण्डवत् करता है। इस ब्राह्मण पुजारी ने माधवेन्द्र पुरी से यह नहीं पूछा कि वे ब्राह्मण हैं या नहीं, किन्तु जब उसने देखा कि माधवेन्द्र पुरी इतने महान् भक्त हैं कि जिनके लिए कृष्ण तक चोरी कर सकते हैं, तो वह तुरन्त उनकी उत्कृष्ट स्थिति को समझ गया। जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय/ येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता सेइ 'गुरु' हय। (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 8.128) यदि ब्राह्मण पुजारी सामान्य ब्राह्मण होता, तो गोपीनाथ उससे स्वप्न में बात न करते । चूँकि अर्चाविग्रह ने माधवेन्द्र पुरी तथा ब्राह्मण पुजारी दोनों ही से स्वप्न में बातें की थीं, अतएव वे दोनों समान स्तर पर थे। किन्तु माधवेन्द्र पुरी वरिष्ठ संन्यासी वैष्णव तथा परमहंस थे, इसलिए पुजारी ने तुरन्त ही उनके चरणों पर गिरकर उन्हें नमस्कार किया।

क्षीरेर वृत्तान्त ताँरे कहिल पूजारी ।

शुनि' प्रेमाविष्ट हैल श्री-माधव-पुरी ॥ 136 ॥

क्षीरेर वृत्तान्त-खीर के पात्र के कारण जो सब घटनाएँ हुईं; ताँरे-माधवेन्द्र पुरी को; कहिल–कहा; पूजारी-पुजारी; शुनि'–सुनकर; प्रेम-आविष्ट-भगवत् प्रेम से आवेशित; हैल–हो गये; श्री-माधव-पुरी-श्रील माधवेन्द्र पुरी।

अनुवाद

जब माधवेन्द्र पुरी को खीर-पात्र की कथा विस्तार से बतलाई गई, तो वे कृष्ण-प्रेम के आनन्द में मग्न हो गये।

प्रेम देखि' सेवक कहे हइया विस्मित ।

कृष्ण ने इँहार वश, —हय यथोचित ॥ 137॥

प्रेम देखि'–माधवेन्द्र पुरी की प्रेम दशा देखकर; सेवक-पुजारी ने; कहे-कहा; हइया-होकर; विस्मित–चकित; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ये-इस प्रकार; इँहार-उनके प्रति; वश–कृतज्ञ; हय-हैं; यथोचित यथोचित।

अनुवाद

श्रील माधवेन्द्र पुरी में प्रेम-भाव के लक्षण देखकर पुजारी आश्चर्यचकित हो गया। उसकी समझ में आ गया कि कृष्ण उनके प्रति इतने कृतज्ञ क्यों हो गये थे और उसने देखा कि कृष्ण का यह कार्य उपयुक्त था।

तात्पर्य

एक भक्त कृष्ण को पूरी तरह अपने वश में कर सकता है। यह बात श्रीमद्भागवत (10.14.3) में समझायी गई है- अजितजितोऽप्यसितैस् त्रिलोक्याम् । कृष्ण को कोई जीत नहीं सकता, किन्तु एक भक्त अपनी भक्ति से उन्हें जीत सकता है। जैसाकि ब्रह्म-संहिता (5.33) में कहा गया है- वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ । मात्र वैदिक साहित्य पढ़कर कृष्ण को नहीं समझे जा सकते। यद्यपि सारा वैदिक साहित्य कृष्ण को समझने के लिए है, किन्तु कृष्ण से प्रेम किये बिना कृष्ण को नहीं समझे जा सकते। अतएव वैदिक साहित्य के अध्ययन (स्वाध्याय) के साथ साथ अर्चाविग्रह की पूजा भी करनी चाहिए। इन दोनों को करने से भक्त की भक्ति विषयक दिव्य जानकारी बढ़ेगी। श्रवणादि शुद्धचित्ते करये उदय (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 22.107) । हर एक के हृदय में भगवत्प्रेम सुप्त रहता है और यदि कोई भक्ति की प्रामाणिक विधि का पालन मात्र करे, तो वह प्रेम जाग्रत हो उठता है। किन्तु मूर्ख संसारी लोग, जो केवल कृष्ण के विषय में पढ़ते हैं, वे भूलवश यह सोचते हैं कि कृष्ण अनैतिक हैं या अपराधी हैं।

एत बलि' नमस्करि' करिला गमन ।

आवेशे करिला पुरी से क्षीर भक्षण ॥ 138॥

एत बलि'-यह कहकर; नमस्करि'-नमस्कार करके; करिला गमन-लौट गया; आवेशे-भावावेश में; करिला-की; पुरी-माधवेन्द्र पुरी; से-वह; क्षीर-खीर; भक्षण-ग्रहण।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी को नमस्कार करके वह पुजारी मन्दिर लौट गया। तब भावावेश में माधवेन्द्र पुरी ने कृष्ण द्वारा प्रदत्त खीर ग्रहण की।

पात्र प्रक्षालन करि' खण्ड खण्ड कैल ।

बहिर्वासे बान्धि' सेइ ठिकारि राखिल ॥ 139॥

पात्र–पात्र; प्रक्षालन करि'-धोकर; खण्ड खण्ड-टुकड़े करके; कैल-किया; बहिर्-वासे-बाहर के कपड़े में; बान्धि'–बाँधकर; सेइ–उन; ठिकारि–पात्र के टुकड़े; राखिल-रख लिए।

अनुवाद

इसके बाद माधवेन्द्र पुरी ने उस पात्र को धोया और तोड़कर उसे खण्ड-खण्ड कर दिया। फिर उन्होंने उन खण्डों को बाह्य वस्त्र में बाँधकर ठीक से रख लिया।

प्रति-दिन एक-खानि करेन भक्षण ।

खाइले प्रेमावेश हय,—अद्भुत कथन ॥140॥

प्रति-दिन-प्रति दिन; एक-खानि-एक टुकड़ा; करेन-करते; भक्षण-ग्रहण; खाइले–खाकर; प्रेम-आवेश-प्रेमावेश में; हय-है; अद्भुत-आश्चर्यजनक; कथन-कहानी।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी प्रतिदिन उस मिट्टी के पात्र का एक खण्ड खाते और खाते ही वे भावावेश में आ जाते। ये सब अद्भुत कथाएँ हैं।

'ठाकुर मोरे क्षीर दिल—लोक सब शनि' ।

दिने लोक-भिड़ हबे मोर प्रतिष्ठा जानि' ॥141॥

ठाकुर–भगवान् ने; मोरे-मुझे; क्षीर-खीर; दिल–दी है; लोक-लोग; सब-सब; शुनि'–सुनकर; दिने–दिन के समय; लोक-लोग; भिड़-भीड़; हबे-होगी; मोर-मेरा; प्रतिष्ठा–सम्मान; जानि'–जानकर।

अनुवाद

उस पात्र को खण्ड-खण्ड करके अपने वस्त्र में बाँध लेने के बाद माधवेन्द्र पुरी सोचने लगे, "भगवान् ने मुझे खीर का पात्र दिया है और कल प्रात:काल जब लोग इसके बारे में सुनेंगे, तो बहुत बड़ी भीड़ लग जायेगी।"

सेइ भये रात्रि-शेषे चलिला श्री-पुरी ।

सेइ-खाने गोपीनाथे दण्डवत्करि' ॥ 142॥

सेइ भये-इस बात से डरकर; रात्रि-शेषे–रात्री के अन्त में; चलिला–चल पड़े; श्री पुरी-माधवेन्द्र पुरी; सेइ-खाने-उस स्थल पर; गोपीनाथे- भगवान् गोपीनाथ को; दण्डवत् दण्डवत् प्रणाम; करि'-करके।

अनुवाद

यह सोचकर श्री माधवेन्द्र पुरी ने उसी स्थान पर गोपीनाथजी को दंडवत् प्रणाम किया और प्रातः होने के पूर्व ही रेमुणा से चले गये।

चलि' चलि' आइला पुरी श्री-नीलाचल ।

जगन्नाथ देखि' हैला प्रेमेते विह्वल ॥ 143 ॥

चलि' चलि'–चलते चलते; आइला–वे पहुँचे; पुरी-जगन्नाथ पुरी; श्री-नीलाचल-नीलाचल नाम से प्रसिद्ध; जगन्नाथ देखि'–भगवान जगन्नाथ के दर्शन करके; हैला-हो गये; प्रेमेते प्रेम में; विह्वल-विह्वल।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी चलते चलते जगन्नाथ पुरी पहुँचे, जो नीलाचल के नाम से भी विख्यात है। वहाँ उन्होंने भगवान जगन्नाथजी के दर्शन किये और प्रेमानन्दवश विह्वल हो गये।

प्रेमावेशे उठे, पड़े, हासे, नाचे, गाय ।

जगन्नाथ-दरशने महा-सुख पाय ॥ 144॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; उठे-कभी उठते; पड़े-कभी गिर जाते; हासे-कभी हँसते; नाचे–कभी नाचते; गाय-कभी गाते; जगन्नाथ दरशने–मन्दिर में भगवान जगन्नाथ के दर्शन करके; महा-सुख-दिव्य सुख; पाय-उन्होंने अनुभव किया।

अनुवाद

श्रील माधवेन्द्र पुरी भगवत्प्रेम से भावाभिभूत होकर कभी उठ खड़े होते और कभी भूमि पर गिर पड़ते। कभी वे हँसते, नाचते और गाते। इस प्रकार जगन्नाथ-विग्रह के दर्शन करके उन्होंने दिव्य आनन्द का अनुभव किया।

'माधव-पुरी श्रीपाद आइल',—लोके हैल ख्याति ।

सब लोक आसि' ताँरे करे बहु भक्ति ॥145 ॥

माधव-पुरी-श्री माधवेन्द्र पुरी; श्रीपाद-संन्यासी; आइल-आये हैं; लोके-लोगों में; हैल-हो गई; ख्याति–ख्याति, प्रसिद्धि; सब लोक-सब लोग; आसि'-आते; ताँरे-उनके पास; करे-करते; बहु-बहुत; भक्ति-भक्ति, आदर।

अनुवाद

जब माधवेन्द्र पुरी जगन्नाथ पुरी आये, तो लोग उनकी दिव्य ख्याति से परिचित थे। अतएव लोगों की भीड़ आने लगी और भक्तिवश उनका तरह-तरह से सम्मान करने लगी।

प्रतिष्ठार स्वभाव एइ जगते विदित ।

ये ना वाञ्छे, तार हय विधाता-निर्मित ॥ 146 ॥

प्रतिष्ठार–प्रसिद्धि का; स्वभाव-स्वभाव; एइ–यह; जगते–जगत् में; विदित-विदित; से-जो व्यक्ति; ना वाञ्छे–नहीं चाहता; तार-उसका; हय–यह है; विधाता-निर्मित-विधाता द्वारा उत्पन्न होती है।

अनुवाद

मनुष्य भले ही न चाहता हो, फिर भी विधाता द्वारा नियत प्रतिष्ठा उसे मिल ही जाती है। निस्सन्देह, भक्त की दिव्य प्रतिष्ठा समग्र विश्व में फैल जाती है।

प्रतिष्ठार भये पुरी गेला पलाञा ।

कृष्ण-प्रेमे प्रतिष्ठा चले सङ्गे गड़ाञा ॥ 147॥

प्रतिष्ठार भये-प्रतिष्ठा के भय से; पुरी-माधवेन्द्र पुरी; गेला–चले गये; पलाञा-छोड़कर; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम में; प्रतिष्ठा–प्रतिष्ठा; चले-चलती है; सङ्गे-साथ साथ; गड़ाञा-पीछा करती हुई।

अनुवाद

अपनी प्रतिष्ठा के भय से माधवेन्द्र पुरी रेमुणा छोड़कर चले गये। किन्तु भगवत्प्रेम द्वारा प्रदत्त प्रतिष्ठा इतनी उत्कृष्ट है कि वह भक्त के साथ-साथ जाती है, मानो उसका पीछा कर रही हो।

तात्पर्य

भौतिक जगत् के प्रायः सारे बद्धजीव ईर्ष्यालु होते हैं। ईर्ष्यालु व्यक्ति सामान्यतः उसका विरोध करते हैं, जिसे स्वयमेव कुछ प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है। ईर्ष्यालु लोगों के लिए ऐसा करना स्वाभाविक है। फलस्वरूप जब कोई भक्त लौकिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने योग्य बन जाता है, तो अनेक लोग उससे ईर्ष्या करने लगते हैं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। जब कोई व्यक्ति विनयवश यश की कामना नहीं करता, तो सामान्यतः लोग उसे विनीत समझकर सभी प्रकार का यश देने लगते हैं। वस्तुतः वैष्णव यश या प्रतिष्ठा की लालसा नहीं करता। वैष्णव-श्रेष्ठ माधवेन्द्र पुरी की प्रतिष्ठा पहले से ही थी, किन्तु वे अपने आपको जनसमुदाय की दृष्टि से दूर रखना चाहते थे। वे महान् भगवद्भक्त के रूप में अपने परिचय को छिपा रखना चाहते थे, किन्तु जब लोगों ने उन्हें भगवत्प्रेम में भाव-विह्वल देखा, तो स्वाभाविक है कि वे उनका सम्मान करने लगे। वस्तुतः माधवेन्द्र पुरी को उच्च कोटि की प्रतिष्ठा मिलनी ही चाहिए, क्योंकि वे भगवान् के अत्यन्त अंतरंग भक्त थे। कभी-कभी सहजिया लोग अपने आपको प्रतिष्ठा की कामना से रहित प्रस्तुत करके विनीत व्यक्ति के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसे लोगों को वास्तव में सुप्रसिद्ध वैष्णवों का पद प्राप्त नहीं हो सकता।

यद्यपि उद्वेग हैल पलाइते मन ।

ठाकुरेर चन्दन-साधन हुइल बन्धन ॥ 148॥

यद्यपि–यद्यपि; उद्वेग–चिन्ता; हैल-था; पलाइते-चले जाने का; मन–मन; ठाकुरेर–भगवान् के; चन्दन–चन्दन की लकड़ी की; साधन–इकट्ठा करने का; हइल-था; बन्धन–बन्धन।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी जगन्नाथ पुरी छोड़ना चाह रहे थे, क्योंकि लोग उनका महान् भक्त के रूप में आदर कर रहे थे, किन्तु इससे गोपाल-विग्रह के लिए चन्दन की लकड़ी एकत्र करने में बाधा उत्पन्न होने का भय था।

जगन्नाथेर सेवक यत, यतेक महान्त ।

सबाके कहिल पुरी गोपाल-वृत्तान्त ॥149॥

जगन्नाथेर सेवक-भगवान जगन्नाथ के सेवक; यत–सभी; यतेक महान्त–सभी सम्मानित भक्त; सबाके–प्रत्येक को; कहिल–कहा; पुरी-माधवेन्द्र पुरी ने; गोपाल-वृत्तान्त–गोपाल का वृत्तान्त।

अनुवाद

श्री माधवेन्द्र पुरी ने वहाँ पर जगन्नाथजी के सभी सेवकों तथा महान् भक्तों से श्री गोपाल के प्राकट्य की कथा बतलाई।

गोपाल चन्दन मागे,—शुनि' भक्त-गण ।

आनन्दे चन्दन लागि' करिल यतन ॥ 150॥

गोपाल-वृन्दावन में भगवान् गोपाल; चन्दन-चन्दन; मागे-माँगते हैं; शुनि'–सुनकर; भक्त-गण-सभी भक्त; आनन्दे-आनन्द में; चन्दन लागि'-चन्दन के लिए; करिल-करने लगे; यतन-प्रयत्न।

अनुवाद

जब जगन्नाथ पुरी के सारे भक्तों ने सुना कि गोपाल-विग्रह चन्दन चाहते हैं, तो सभी हर्षित होकर चन्दन एकत्र करने का प्रयास करने लगे।

राज-पात्र-सने यार यार परिचय ।

तारे मागि' कर्पूर-चन्दन करिला सञ्चय ॥ 151 ॥

राज-पात्र-राज अधिकारियों; सने–के साथ; यार यार-जो कोई; परिचय–परिचित था; तारे मागि'–उनसे माँगकर; कर्पूर-चन्दन-कपूर और चन्दन; करिला-किया; सञ्चय-संचय, इकट्ठा।

अनुवाद

जो लोग राज अधिकारियों से परिचित थे, वे उनसे मिले और कपूर तथा चन्दन माँग-माँगकर एकत्र किया।

तात्पर्य

ऐसा लगता है कि जगन्नाथ-विग्रह के लिए मलयज चन्दन तथा कपूर का प्रयोग होता था। कपूर का प्रयोग उनकी आरती में और चन्दन का उपयोग उनके शरीर पर लेप करने में होता था। ये दोनों वस्तुएँ सरकारी नियन्त्रण में थीं; इसीलिए भक्तों को सरकारी अफसरों से मिलना पड़ा। उन्हें सारी बातें बताकर चन्दन तथा कपूर को जगन्नाथ पुरी से बाहर ले जाने की अनुमति प्राप्त की गई।

एक विप्र, एक सेवक, चन्दन वहिते ।

पुरी-गोसाञि सङ्गे दिल सम्बल-सहिते ॥ 152॥

एक विप्र-एक ब्राह्मण; एक सेवक-एक सेवक; चन्दन–चन्दन; वहिते-उठाने के लिए; पुरी-गोसाञि-माधवेन्द्र पुरी; सङ्गे–के साथ; दिल–दे दिया; सम्बल-सहिते-आवश्यक व्यय राशि के साथ।

अनुवाद

इस चन्दन को ले जाने के लिए माधवेन्द्र पुरी को एक ब्राह्मण तथा एक सेवक दिया गया। उन्हें आवश्यक मार्ग-व्यय भी दिया गया।

घाटी-दानी छाड़ाइते राज-पात्र द्वारे ।

राज-लेखा करि' दिल पुरी-गोसाञि करे ॥ 153॥

घाटी-दानी–कर वसूलकर्ताओं से; छाड़ाइते छूटने के लिए; राज-पात्र–सरकारी अनुमति के कागजात; द्वारे-द्वारों पर; राज-लेखा-सरकारी अनुमति; करि'-दिखाकर; दिल-दिया; पुरी-गोसाञि-माधवेन्द्र पुरी के; करे-हाथ में।

अनुवाद

रास्ते के चुंगी वसूलने वालों से बचने के लिए माधवेन्द्र पुरी को सरकारी अफसरों से छूट के आवश्यक कागजात दिलाए गये। ये कागजात उनके हाथ में दिये गये।

चलिल माधव-पुरी चन्दन लञा ।

कत-दिने रेणाते उत्तरिल गिया ॥ 154॥

चलिल-चल पड़े; माधव-पुरी-श्रील माधवेन्द्र पुरी; चन्दन लञा-चन्दन लेकर; कत-दिने-कुछ दिनों के बाद; रेमुणाते-रेमुणा के उसी मन्दिर में; उत्तरिल-पहुँचे; गिया-जाकर।

अनुवाद

इस तरह माधवेन्द्र पुरी चन्दन सहित वृन्दावन के लिए चल पड़े और कुछ दिनों के बाद वे पुनः रेमुणा गाँव तथा वहाँ के गोपीनाथ मन्दिर में पहुँचे।

गोपीनाथ-चरणे कैल बहु नमस्कार ।

प्रेमावेशे नृत्य-गीत करिला अपार ॥155॥

गोपीनाथ-चरणे-भगवान् गोपीनाथ के चरणकमलों पर; कैल-किया; बहु-बहुत; नमस्कार-नमस्कार; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; नृत्य-गीत-नृत्य तथा कीर्तन; करिला-किया; अपार-असीम।

अनुवाद

जब माधवेन्द्र पुरी गोपीनाथ के मन्दिर पहुँचे, तो उन्होंने भगवान् के चरणकमलों पर अनेक बार नमस्कार किया। वे प्रेमभाव में सतत नृत्य और गान करने लगे।

पुरी देखि' सेवक सब सम्मान करिल ।

क्षीर-प्रसाद दिया ताँरे भिक्षा कराइल ॥ 156॥

पुरी देखि'–माधवेन्द्रपुरी को देखकर; सेवक-पुजारी (सेवक); सब सम्मान-आदर सहित; करिल-भेंट किया; क्षीर-प्रसाद-खीर प्रसाद; दिया–देकर; ताँरे-उन्हें; भिक्षा कराइल-खिलाया।

अनुवाद

जब गोपीनाथ के पुजारी ने माधवेन्द्र पुरी को फिर से आये देखे, तो उसने उन्हें सादर नमस्कार किया और उन्हें खीर प्रसाद खिलाया।

सेइ रात्रे देवालये करिल शयन ।

शेष-रात्रि हैले पुरी देखिल स्वपन ॥ 157॥

सेइ रात्रे-उसी रात; देव-आलये–मन्दिर में; करिल–किया; शयन-शयन; शेष-रात्रि–रात्रि के अन्त में; हैले–होने पर; पुरी-माधवेन्द्र पुरी; देखिल-देखा; स्वपन-एक स्वप्न।

अनुवाद

उस रात माधवेन्द्र पुरी ने मन्दिर में विश्राम किया, किन्तु रात्रि के अन्त में उन्हें दोबारा स्वप्न दिखलाई पड़ा।

गोपाल आसिया कहे,—शुन हे माधव ।

कर्पूर-चन्दन आमि पाइलाम सब ॥ 158॥

गोपाल–गोपाल के अर्चाविग्रह; आसिया-आकर; कहे-कहने लगे; शुन-सुनो; हे–हे; माधव-माधवेन्द्र पुरी; कर्पूर-चन्दन–कपूर और चन्दन; आमि–मैंने; पाइलाम-पा लिया है; सब-सब।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने सपने में देखा कि गोपाल उनके सामने आकर कह रहे हैं, "हे माधवेन्द्र पुरी, मुझे पहले ही सारा चन्दन तथा कपूर प्राप्त हो चुका है।

कर्पूर-सहित घषि' ए-सब चन्दन ।

गोपीनाथेर अङ्गे नित्य करह लेपन ॥ 159॥

कर्पूर-सहित-कपूर सहित; घषि'–घिसकर; ए-सब-यह सब; चन्दन–चन्दन; गोपीनाथेर-श्री गोपीनाथ के; अङ्गे–शरीर पर; नित्य-प्रतिदिन; करह–करो; लेपन-लेप।

अनुवाद

"तुम सारे चन्दन को कपूर के साथ घिसकर तब तक गोपीनाथ के विग्रह पर इसका प्रतिदिन लेप करते रहो, जब तक यह समाप्त न हो जाये।"

गोपीनाथ आमार से एक-इ अङ्ग हय ।

इँहाके चन्दन दिले हबे मोर ताप-क्षय ॥ 160॥

गोपीनाथ–भगवान् गोपीनाथ; आमार-मेरे; से-वे; एक-इ-एक; अङ्ग–शरीर; हय-हैं; इँहाके–उनको; चन्दन दिले-यह चन्दन देकर; हबे-होगा; मोर–मेरे; ताप-क्षय-ताप की कमी।

अनुवाद

"मेरे शरीर तथा गोपीनाथ के शरीर में कोई अन्तर नहीं है। वे अभिन्न हैं। अतएव यदि तुम गोपीनाथ के शरीर पर चन्दन-लेप करते हो, तो वह मेरे शरीर पर लेप के समान ही है। इस प्रकार मेरे शरीर का ताप कम हो जायेगा।"

तात्पर्य

गोपाल वृन्दावन में स्थित थे, जो रेमुणा से बहुत दूर है। उन दिनों मुसलमानों द्वारा शासित प्रान्तों से होकर जाना होता था, जो कभी-कभी यात्रियों के आने-जाने में व्यवधान डालते थे। अपने भक्त के कष्ट को ध्यान में रखते हुए भक्तों के सर्वोच्च हितैषी भगवान् गोपाल ने माधवेन्द्र पुरी को आदेश दिया कि चन्दन का लेप गोपीनाथ के शरीर में कर दें, जो गोपाल के शरीर से अभिन्न है। इस तरह भगवान् ने माधवेन्द्र पुरी को कष्ट तथा असुविधा से बचा लिया।

द्विधा ना भाविह, ना करिह किछु मने ।

विश्वास करि' चन्दन देह आमार वचने ॥ 161॥

द्विधा ना भाविह–सन्देह मन करो; ना करिह-न करो; किछु-कुछ भी; मने-मन में; विश्वास करि'-विश्वास करके; चन्दन–चन्दन; देह-दो; आमार वचने-मेरी आज्ञा से।

अनुवाद

"मेरे आदेशानुसार कार्य करने में तुम तनिक भी सन्देह मत करो। मुझ पर विश्वास रखकर जो आवश्यक हो वह करो।"

एत बलि' गोपाल गेल, गोसाञि जागिला ।

गोपीनाथेर सेवक-गणे डाकिया आनिला ॥162॥

एत बलि'-यह कहकर; गोपाल-गोपाल के अर्चाविग्रह; गेल-अन्तर्धान हो गये; गोसाञि जागिला-माधवेन्द्र पुरी जाग गये; गोपीनाथेर-भगवान् गोपीनाथ के; सेवक-गणे-सेवकों को; डाकिया–बुलाकर; आनिला–उनको लाये।

अनुवाद

इतना आदेश देकर गोपाल अन्तर्धान हो गये और श्रील माधवेन्द्र पुरी जाग गये। उन्होंने तुरन्त गोपीनाथ के सभी सेवकों को बुलाया और वे वहाँ उपस्थित हो गये।

प्रभुर आज्ञा हैल,—एइ कर्पूर-चन्दन ।

गोपीनाथेर अङ्गे नित्य करह लेपन ॥ 163 ॥

प्रभुर आज्ञा हैल–भगवान् की आज्ञा हुई है; एड-यह; कर्पूर-कपूर; चन्दन-और चन्दन; गोपीनाथेर अङ्गे–गोपीनाथ के शरीर पर; नित्य-प्रतिदिन; करह-करो; लेपन-लेप।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने कहा, "गोपीनाथ के विग्रह पर इस कपूर तथा चन्दन का लेप करो, जिसे मैं वृन्दावन स्थित गोपाल के लिए लाया हूँ। इसे नियमित रूप से प्रतिदिन करो।

इँहाके चन्दन दिले, गोपाल हइबे शीतल ।

स्वतन्त्र ईश्वर–ताँर आज्ञा से प्रबल ॥ 164॥

इँहाके–गोपीनाथ को; चन्दन दिले-जब चन्दन लगाया जायेगा; गोपाल-वृन्दावन में भगवान् गोपाल; हडबे-होंगे; शीतल-शीतल; स्वतन्त्र ईश्वर-परम स्वतन्त्र ईश्वर; ताँर-उनकी; आज्ञा-आज्ञा; से-इतनी; प्रबल-प्रबल।

अनुवाद

"यदि गोपीनाथ के शरीर पर चन्दन का लेप किया जाये, तो गोपाल शीतल हो जायेंगे। आखिर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पूर्णतया स्वतन्त्र हैं; उनका आदेश सर्व-शक्तिमान है।"

ग्रीष्म-काले गोपीनाथ परिबे चन्दन ।

शुनि' आनन्दित हैल सेवकेर मन ॥ 165॥

ग्रीष्म-काले-ग्रीषम काल में; गोपीनाथ-भगवान् गोपीनाथ; परिबे-लगवायेंगे; चन्दन–चन्दन; शुनि'–सुनकर; आनन्दित-आनन्दित; हैल–हो गये; सेवकेर-सेवकों के; मन–मन्।

अनुवाद

गोपीनाथ के सेवक यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए कि गर्मियों में यह सारा चन्दन गोपीनाथ के शरीर पर लेप करने के लिए प्रयोग होगा।

पुरी कहे,—एइ दुइ घषिबे चन्दन ।

आर जना-दुइ देह, दिब ये वेतन ॥ 166 ॥

पुरी कहे-माधवेन्द्र पुरी ने कहा; एइ दुइ–ये दो सहायक; घषिबे-घिसेंगे; चन्दन-चन्दन; आर-और दूसरे; जना-दुइ-दो व्यक्ति; देह-लगायेंगे; दिब–मैं दूँगा; ये-वह; वेतन-वेतन।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने कहा, "ये दो सेवक नियमित रूप से चन्दन घिसेंगे और तुम सहायता के लिए अन्य दो व्यक्ति और ले लो। उनका वेतन मैं दूँगा।"

एइ मत चन्दन देय प्रत्यह घषिया ।

पराय सेवक सब आनन्द करिया ॥ 167॥

एइ मत-इस प्रकार; चन्दन–चन्दन; देय-लगाया; प्रत्यह–प्रतिदिन; घषिया-घिसकर; पराय-लगाया; सेवक-सेवक; सब–सभी; आनन्द-आनन्द; करिया-अनुभव करके।

अनुवाद

इस तरह प्रतिदिन गोपीनाथजी को चन्दन घिसकर लेप किया जाता रहा। इससे गोपीनाथ के सेवक अत्यन्त प्रसन्न थे।

प्रत्यह चन्दन पराय, यावत् हैल अन्त ।

तथाय रहिल पुरी तावत्पर्यन्त ॥ 168॥

प्रत्यह–प्रतिदिन; चन्दन–चन्दन का लेप; पराय-शरीर पर लगाया; यावत्-जब तक नहीं; हैल–था; अन्त–अन्त; तथाय-वहाँ; रहिल-रहे; पुरी-माधवेन्द्र पुरी; तावत्-उस समय; पर्यन्त तक।

अनुवाद

इस प्रकार पूरा चन्दन समाप्त होने तक गोपीनाथ के विग्रह पर चन्दन का लेप होता रहा और माधवेन्द्र पुरी तब तक वहीं रहे।

ग्रीष्म-काल-अन्ते पुनः नीलाचले गेला।

नीलाचले चातुर्मास्य आनन्दे रहिला॥ 169॥

ग्रीष्म-काल-ग्रीष्म काल के; अन्ते-अन्त में; पुनः–पुनः; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी; गेला–गये; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; चातुर्मास्य-चतुर्मास; आनन्दे-आनन्द में; रहिला-रहे।

अनुवाद

गर्मी के अन्त में माधवेन्द्र पुरी जगन्नाथ पुरी लौट आये, जहाँ उन्होंने बड़े ही आनन्द से चातुर्मास्य बिताया।

तात्पर्य

चातुर्मास्य काल आषाढ़ मास (जून-जुलाई) के शुक्लपक्ष की शयना एकादशी से प्रारम्भ होता है। यह काल कार्तिक मास (अक्टूबर-नवम्बर) के शुक्लपक्ष की एकादशी को समाप्त होता है, जिसे उत्थान-एकादशी कहते हैं। यह चार मास का काल चातुर्मास्य कहलाता है। कुछ वैष्णव इसे आषाढ़ पूर्णिमा से लेकर कार्तिक पूर्णिमा तक मनाते हैं। यह भी चार मास का समय होता है। यह काल चन्द्रमासों की गणना से चातुर्मास्य कहलाता है, किन्तु अन्य लोग सौर मास के अनुसार श्रावण से कार्तिक तक भी चार्तुमास्य मनाते हैं। यह सम्पूर्ण काल, चाहे चन्द्र हो या सौर, वर्षा ऋतु में ही आता है। सभी वर्ग के लोगों को चातुर्मास्य मनाना चाहिए, चाहे वह गृहस्थ हो या संन्यासी। इसे मनाना सारे आश्रमों के लिए अनिवार्य है। इन चार महीनों में किये गये व्रत के पीछे मुख्य प्रयोजन इन्द्रियतृप्ति की मात्रा को कम करना होता है। यह अधिक कठिन काम नहीं है। श्रावण के महीने में हरा साग नहीं खाना चाहिए। भाद्र में दही नहीं खाना चाहिए तथा आश्विन मास में दूध नहीं पीना चाहिए। कार्तिक मास में मछली या अन्य आमिष आहार नहीं करना

चाहिए। आमिष भोजन का अर्थ है मछली तथा मांस। इसी तरह मसूर तथा उड़द की दालें भी आमिषाहार मानी जाती हैं, क्योंकि इनमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है और अधिक प्रोटीन वाले आहार को आमिषाहार माना जाता है। कुल मिलाकर, चातुर्मास्य के चार महीनों में मनुष्य को उन सब भोजन का परित्याग करने का अभ्यास करना चाहिए, जो इन्द्रियभोग के निमित्त होता है।

श्री-मुखे माधव-पुरीर अमृत-चरित ।

भक्त-गणे शुनाञा प्रभु करे आस्वादित ॥ 170॥

श्री-मुखे- श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से; माधव-पुरीर-माधवेन्द्र पुरी का; अमृत-चरित-अमृत चरित्र; भक्त-गणे- भक्तों को; शुनाञा-सुनाकर; प्रभु–महाप्रभु; करे-करते हैं; आस्वादित-आस्वादन।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं माधवेन्द्र पुरी के अमृतमय गुणों की प्रसंशा की और जब वे यह सब भक्तों को सुना रहे थे, तो उन्होंने स्वयं भी इसका आस्वादन किया।

प्रभु कहे,—नित्यानन्द, करह विचार ।

पुरी-सम भाग्यवान् जगते नाहि आर ॥ 171॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; करह विचार–जरा विचार करो; पुरी-सम-माधवेन्द्र पुरी की तरह; भाग्यवान्– भाग्यवान्; जगते-जगत् में; नाहि-नहीं है; आर-और कोई।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द से यह निर्णय करने के लिए कहा कि क्या इस जगत् में माधवेन्द्र पुरी के समान और कोई भाग्यशाली है!

दुग्ध-दान-छले कृष्ण याँरे देखा दिल ।

तिन-बारे स्वप्ने आसि' याँरे आज्ञा कैल ॥ 172॥

दुग्ध-दान-छले–दूध देने के बहाने; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; याँरे–जिनको; देखा दिल-दर्शन दिया; तिन-बारे-तीन बार; स्वप्ने–स्वप्न में; आसि-आकर; याँरे–जिनको; आज्ञा–आज्ञा; कैल-दी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "माधवेन्द्र पुरी इतने भाग्यशाली थे कि साक्षात् भगवान् कृष्ण उनके समक्ष दूध देने के बहाने प्रकट हुए। भगवान् ने माधवेन्द्र पुरी को स्वप्न में तीन बार आदेश दिया।"

याँर प्रेमे वश हञा प्रकट हइला ।

सेवा अङ्गीकार करि' जगत् तारिला ॥ 173 ॥

याँर–जिसके; प्रेमे-भगवत्प्रेम के; वश–वशीभूत; हञा–होकर; प्रकट-प्रकट; हइला–हुए; सेवा–सेवा; अङ्गीकार–स्वीकार; करि'-करके; जगत-सारा संसार; तारिला-उद्धार किया।

अनुवाद

"माधवेन्द्र पुरी के प्रेम के वशीभूत होकर स्वयं भगवान् कृष्ण गोपाल विग्रह के रूप में प्रकट हुए और उनकी सेवा स्वीकार करके भगवान् ने सारे जगत् का उद्धार किया।"

याँर लागि' गोपीनाथ क्षीर कैल चुरि ।

अतएव नाम हैल 'क्षीर-चोरा' करि' ॥ 174॥

याँर–जिनके; लागि'-कारण; गोपीनाथ–भगवान् गोपीनाथ; क्षीर-खीर; कैल-की; चुरि-चोरी; अतएव–अतएव; नाम-नाम; हैल-हुआ; क्षीर-चोरा-खीर चोरा; करि'-करके।

अनुवाद

"माधवेन्द्र पुरी के ही कारण भगवान् गोपीनाथ ने खीर-पात्र चुराया। इस तरह वे क्षीर-चोरा' के नाम से प्रसिद्ध हुए।"

कर्पूर-चन्दन याँर अङ्गे चड़ाइल ।

आनन्दे पुरी-गोसाञि प्रेम उथलिल ॥ 175 ॥

कर्पूर-चन्दन-कपूर तथा चन्दन; याँर अड़े-जिनके शरीर पर; चड़ाइल-लगाया गया; आनन्दे-आनन्दपूर्वक; पुरी-गोसाञि-माधवेन्द्र पुरी का प्रेम-भगवत्प्रेम; उथलिल–भर गया।

अनुवाद

"माधवेन्द्र पुरी ने गोपीनाथ के श्रीविग्रह पर चन्दन का लेप किया और इस प्रकार वे भगवत्प्रेम से विह्वल हो गये।"

म्लेच्छ-देशे कर्पूर-चन्दन आनिते जञ्जाल ।

पुरी दुःख पाबे इहा जानिया गोपाल ॥ 176 ॥

म्लेच्छ-देशे–म्लेच्छों द्वारा शासित देशों से; कर्पूर-चन्दन-कपूर और चन्दन; आनिते-लाते हुए; जञ्जाल-असुविधा, पुरी-माधवेन्द्र पुरी; दुःख-दुःख; पाबे मिलेगा; इहा-यह; जानिया-जानकर; गोपाल–गोपाल।

अनुवाद

"मुसलमानों द्वारा शासित भारतीय प्रान्तों में चन्दन तथा कपूर लेकर यात्रा करना अत्यन्त असुविधाजनक था। इसके कारण माधवेन्द्र पुरी कष्ट में पड़ सकते थे। यह गोपाल-विग्रह को ज्ञात हो गया।"

महा-दया-मय प्रभु—भकत-वत्सल ।

चन्दन परि' भक्त-श्रम करिल सफल ॥ 177॥

महा-अत्यन्त; दया-मय-दयालु; प्रभु-प्रभु; भकत-वत्सल–भक्त वत्सल; चन्दन परि–चन्दन लगवाकर; भक्त-श्रम- भक्तों का परिश्रम; करिल–किया; सफल–सफल।

अनुवाद

"भगवान् अत्यधिक दयालु हैं और अपने भक्तों से अनुरक्त रहते हैं; अतएव जब गोपीनाथ को चन्दन का लेप लगाया गया, तो माधवेन्द्र पुरी का श्रम सार्थक हो गया।"

पुरीर प्रेम-पराकाष्ठा करह विचार ।

अलौकिक प्रेम चित्ते लागे चमत्कार ॥ 178 ॥

पुरीर-माधवेन्द्र पुरी का प्रेम-परा-काष्ठा-प्रबल भगवत्प्रेम का मापदण्ड; करह-जरा करो; विचार-विचार; अलौकिक-असामान्य; प्रेम-ईश्वर प्रेम; चित्ते–मन में; लागेलगता है; चमत्कार–चमत्कार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को माधवेन्द्र पुरी के उत्कट प्रेम के आदर्श पर अपना निर्णय देने के लिए कहा। चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "उनके सारे प्रेम-व्यवहार असाधारण हैं। निस्सन्देह, उनके कार्यकलापों को सुनकर हर कोई आश्चर्यचकित रह जाता है।"

तात्पर्य

जब जीव को कृष्ण-विरह का अनुभव होता है, तो समझा जाता है कि उसने जीवन की परम सफलता प्राप्त कर ली है। जब मनुष्य भौतिक वस्तुओं के प्रति उदासीन बन जाता है, तो वह भौतिक वस्तुओं के प्रति आकर्णण के केवल एक अन्य पक्ष का अनुभव कर रहा होता है। किन्तु कृष्ण विरह का अनुभव करना तथा भगवान् के उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनकी सेवा में लगे रहना कृष्ण-प्रेम का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। श्री चैतन्य महाप्रभु श्रील माधवेन्द्र पुरी द्वारा प्रदर्शित उत्कट कृष्ण-प्रेम को इंगित करना चाह रहे थे। बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों ने माधवेन्द्र पुरी के ही पदचिह्नों का अनुसरण किया और अपनी चिन्ता न करते हुए भगवान् की सेवा की।

परम विरक्त, मौनी, सर्वत्र उदासीन ।

ग्राम्य-वार्ता-भये द्वितीय-सङ्ग-हीन ॥ 179॥

परम विरक्त-अत्यन्त अनासक्त; मौनी-मौन; सर्वत्र-हर जगह; उदासीन–उदासीन; ग्राम्य-वार्ता–लौकिक विषयों के; भये-भय से; द्वितीय-दूसरी; सङ्ग-संगति; हीन-के बिना।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने आगे बतलाया, "श्री माधवेन्द्र पुरी अकेले रहा करते थे। वे पूर्ण विरक्त थे और सदैव मौन रहते थे। वे किसी भी भौतिक वस्तु में रुचि नहीं रखते थे और संसारी बातें करने के भय से अकेले रहते थे।"

हेन-जन गोपालेर आज्ञामृत पात्रा ।

सहस्र क्रोश आसि' बुले चन्दन मागिञा ॥180॥

हेन-जन-ऐसा व्यक्ति; गोपालेर-गोपाल अर्चाविग्रह की; आज्ञा-अमृत-अमृत समान; पाञा-पाकर; सहस्र-एक हजार; क्रोश-कोस; आसि-आकर; बुले-चले; चन्दन–चन्दन; मागिञा-माँगने।

अनुवाद

"गोपालजी का दिव्य आदेश पाकर इस महापुरुष ने माँगकर चन्दन एकत्र करने हेतु हजारों मील की यात्रा की।"

भोके रहे, तबु अन्न मागिञा ना खाय ।

हेन-जन चन्दन-भार वहि' लञा याय ॥ 181॥

भोके–भूखे; रहे-रहते; तबु–तथापि; अन्न-भोजन; मागिञा-माँगकर; ना-नहीं; खाय-खाते; हेन-जन-ऐसे व्यक्ति; चन्दन-भार–चन्दन का बोझ; वहि'-उठाकर; लञा–लेकर; याय-जाते हैं।

अनुवाद

"माधवेन्द्र पुरी ने भूखे रहने पर भी किसी से खाने के लिए भोजन नहीं माँगा। इस विरक्त पुरुष ने श्री गोपाल के निमित्त चन्दन का भार वहन किया।"

'मणेक चन्दन, तोला-विशेक कर्पूर ।

गोपाले पराइब'—एइ आनन्द प्रचुर ॥182॥

मणेक चन्दन–एक मन चन्दन; तोला-तोले; विशेक-बीस; कर्पूर-कपूर; गोपाले–गोपाल पर; पराइब–मैं लगाऊँगा; एइ–यह; आनन्द–आनन्द; प्रचुर–पर्याप्त।

अनुवाद

"अपनी निजी सुख-सुविधा की चिन्ता न करके माधवेन्द्र पुरी एक मन चन्दन (लगभग 82 पौंड) तथा बीस तोला (लगभग 8 औंस) कपूर गोपाल के विग्रह को लेप करने के लिए उठा लाये। यही दिव्य आनन्द उनके लिए पर्याप्त था।"

उत्कलेर दानी राखे चन्दन देखिञा।

ताहाँ एड़ाइल राज-पत्र देखाञा॥ 183 ॥

उत्कलेर-उड़ीसा का; दानी-कर अधिकारी; राखे-रख लिया; चन्दन–चन्दन; देखिञा-देखकर; ताहाँ-वहाँ; एड़ाइल-बच गये; राज-पत्र-सरकारी पत्र; देखाञा-दिखाकर।

अनुवाद

"चूँकि उड़ीसा प्रान्त से बाहर चन्दन ले जाने पर प्रतिबन्ध था, अतएव चुंगी अधिकारी ने पूरा चन्दन अपने पास रख लिया, किन्तु माधवेन्द्र पुरी ने उसे सरकार द्वारा दिया गया विमोचन-प्रपत्र दिखलाया, जिससे वे कठिनाइयों से बच गये।"

म्लेच्छ-देश दूर पथ, जगाति अपार।

के-मते चन्दन निब—नाहि ए विचार ॥184॥

म्लेच्छ-देश-मुस्लिम शासित देश; दूर पथ-लम्बी यात्रा; जगाति–पहरेदार; अपार-असीम; के-मते-कैसे; चन्दन–चन्दन; निब-मैं ले जाऊँगा; नाहि-नहीं; ए-यह; विचार-विचार।

अनुवाद

"माधवेन्द्र पुरी वृन्दावन की लम्बी यात्रा के दौरान मुस्लिमों के द्वारा शासित एवं अनगिनत पहरेदारों से भरे हुए प्रान्तों से गुजरते हुए तनिक भी चिन्तित नहीं हुए।"

सङ्गे एक वट नाहि घाटी-दान दिते।

तथापि उत्साह बड़ चन्दन लञा याइते ॥ 185॥

सङ्गे-उसके साथ; एक-एक; वट-पैसा; नाहि-नहीं था; घाटी-दान-कर; दिते-देने को; तथापि तथापि; उत्साह-उत्साह; बड़-बड़ा; चन्दन–चन्दन; लञा-लेकर; याइते-जाने के लिए।

अनुवाद

“यद्यपि माधवेन्द्र पुरी के पास एक छदाम भी नहीं था, किन्तु वे चुंगी अफसरों के पास से निकलने के लिए तनिक भी भयभीत नहीं थे। उनका एकमात्र आनन्द गोपाल के लिए वृन्दावन तक चन्दन का बोझ उठाकर ले चलने में था।”

प्रगाढ़-प्रेमेर एइ स्वभाव-आचार ।

निज-दुःख-विघ्नादिर ना करे विचार ॥186 ॥

प्रगाढ़-प्रगाढ़; प्रेमेर-भगवत् प्रेम का; एइ–यह; स्वभाव-स्वाभाविक; आचार-व्यवहार; निज-अपना; दुःख-दु:ख; विघ्न-विघ्न; आदिर-आदि; ना-नहीं; करे-करता है; विचार-विचार।

अनुवाद

“उत्कट भगवत्प्रेम का यही स्वाभाविक परिणाम होता है। भक्त निजी असुविधाओं या विघ्नों पर विचार नहीं करता। वह सभी परिस्थितियों में भगवान् की सेवा करना चाहता है।”

तात्पर्य

जिन लोगों में कृष्ण के लिए उत्कट प्रेम का विकास कर लिया है, उनके लिए यह स्वाभाविक है कि वे अपनी निजी असुविधाओं तथा विघ्नों की चिन्ता नहीं करते। ऐसे भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् या उनके प्रतिनिधि-रूपी गुरु का आदेश पालन करने के लिए कृतसंकल्प होते हैं। प्रत्येक परिस्थिति में, यहाँ तक कि घोर संकट आ जाने पर भी वे दृढ संकल्प के साथ अविचलित भाव से आगे बढ़ते हैं। इससे निश्चित रूप से सेवक का उत्कट प्रेम सिद्ध होता है। जैसाकि श्रीमद्भागवत (10.14.8) में कहा गया है- तत् तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः–जो मनुष्य भवबन्धन से वास्तव में मुक्त होना चाहते हैं, जिन्होंने उत्कट कृष्ण-प्रेम विकसित कर लिया है, वे भगवधाम लौट जाने के लिए सुपात्र हैं। कृष्ण का उत्कट प्रेमी कितने भी असुविधा, अभाव, बाधा या दुःख की चिंता नहीं करता। कहा जाता है कि जब किसी को किसी उन्नत वैष्णव में दु:ख या शोक दिखे, तो वह वास्तव में दु:ख या शोक नहीं अपितु दिव्य आनन्द होता है। शिक्षाष्टक (8) में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी उपदेश दिया है- आश्लिष्य वा पादरतां पिनटु मां। कृष्ण का उत्कट प्रेमी कभी भी अपनी सेवा से विचलित नहीं होता, भले ही उसके समक्ष कितनी ही कठिनाइयाँ तथा व्यवधान क्यों न आयें।

एइ तार गाढ़ प्रेमा लोके देखाइते ।

गोपाल ताँरे आज्ञा दिल चन्दन आनिते ॥ 187॥

एइ–यह; तार-माधवेन्द्र पुरी का; गाढ़-प्रगाढ़; प्रेमा–भगवत् प्रेम; लोके-लोगों को; देखाइते-दिखाने के लिए; गोपाल–भगवान् गोपाल; ताँरे–उनको; आज्ञा-आज्ञा; दिल-दी; चन्दन–चन्दन; आनिते–लाने के लिए।

अनुवाद

"श्री गोपाल यह दिखलाना चाहते थे कि माधवेन्द्र पुरी कृष्ण से कितना प्रगाढ़ प्रेम करते थे; अतएव उन्होंने नीलाचल से चन्दन तथा कपूर लाने के लिए उनसे कहा।"

बहु परिश्रमे चन्दन रेमुणा आनिल ।

आनन्द बाड़िल मने, दुःख ना गणिल ॥188॥

बहु-बहुत; परिश्रमे–परिश्रम से; चन्दन–चन्दन; रेमुणा–रेमुणा (गोपीनाथ का गाँव); आनिल-लाये; आनन्द–आनन्द; बाड़िल-बढ़ गया; मने-मन में; दुःख-दु:ख; ना-नहीं; गणिल-गिना।

अनुवाद

"अत्यन्त कष्ट उठाकर तथा अत्यधिक परिश्रम करके माधवेन्द्र पुरी चन्दन को रेमुणा ले आये। फिर भी वे अत्यन्त प्रसन्न थे; उन्होंने कठिनाइयों की तनिक भी चिन्ता नहीं की।"

परीक्षा करिते गोपाल कैल आज्ञा दान ।

परीक्षा करिया शेषे हैल दयावान् ॥ 189॥

परीक्षा-परीक्षा; करिते-करने के लिए; गोपाल–भगवान् गोपाल; कैल-दी; आज्ञा-आज्ञा; दान-देना; परीक्षा-परीक्षा; करिया-करके; शेषे–अन्त में, हैल-हो गये; दयावान् दयालु।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गोपाल ने माधवेन्द्र पुरी के उत्कट प्रेम की परीक्षा करने के लिए उन्हें नीलाचल से चन्दन लाने का आदेश दिया और जब माधवेन्द्र पुरी इस परीक्षा में खरे उतरे, तो भगवान् उन पर अत्यन्त कृपालु हुए।"

एइ भक्ति, भक्त-प्रिय-कृष्ण-व्यवहार।

बुझितेओ आमा-सबार नाहि अधिकार ॥190॥

एइ भक्ति-इस प्रकार की भक्ति; भक्त-भक्त की; प्रिय-और सर्वप्रिय; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; व्यवहार–व्यवहार; बुझितेओ-समझने के लिए; आमा-सबार–हम सबका; नाहि-नहीं है; अधिकार अधिकार।

अनुवाद

"भक्त तथा भक्त के प्रिय श्रीकृष्ण के मध्य प्रेमाभक्ति के ऐसे व्यवहार का प्रदर्शन दिव्य है। साधारण व्यक्ति के लिए इसे समझ पाना सम्भव नहीं है। सामान्य व्यक्तियों में इतनी क्षमता ही नहीं होती।"

एत बलि' पड़े प्रभु ताँर कृत श्लोक।

येइ श्लोक-चन्द्रे जगत्कर्याछे आलोक ॥ 191॥

एत बलि'-यह कहकर; पड़े-पढ़ा; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; ताँर-माधवेन्द्र पुरी; कृत-कृत, रचित; श्लोक-श्लोक; येइ-वह; श्लोक-चन्द्रे-चन्द्रमा जैसा श्लोक; जगत्-जगत् में; कर्याछे–किया है; आलोक-प्रकाश।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने माधवेन्द्र पुरी का प्रसिद्ध श्लोक पढ़ा। यह श्लोक चन्द्रमा के समान है। इसने सारे जगत् को प्रकाशमान किया है।

घषिते घषिते यैछे मलयज-सार।

गन्ध बाड़े, तैछे एइ श्लोकेर विचार ॥192॥

घषिते घषिते-रगड़ते रगड़ते; यैछे-जैसे; मलयज-सार–चन्दन की लकड़ी; गन्ध-सुगन्ध; बाड़े-बढ़ जाती है; तैछे-उसी प्रकार; एड-यह; श्लोकेर-श्लोक का; विचार-विचार।

अनुवाद

जिस प्रकार निरन्तर घिसने से मलय चन्दन की सुगन्ध बढ़ती है, उसी तरह इस श्लोक पर मनन करने से इसकी महत्ता समझ में आती है।

रत्न-गण-मध्ये यैछे कौस्तुभ-मणि ।

रस-काव्य-मध्ये तैछे एइ श्लोक गणि ॥ 193॥

रत्न-गण-मूल्यवान रत्न; मध्ये-मध्य में; यैछे-जैसे; कौस्तुभ-मणि-कौस्तुभ मणि; रस-काव्य-भक्तिरस की कविता; मध्ये मध्य में; तै–उसी प्रकार; एइ–यह; श्लोक-श्लोक; गणि-मैं गिनता हूँ।

अनुवाद

जिस प्रकार रत्नों में कौस्तुभ-मणि को अत्यन्त मूल्यवान माना जाता है, उसी तरह भक्ति के रस से सम्बन्धित काव्य में इस श्लोक को सर्वोत्तम माना जाता है।

एइ श्लोक कहियाछेन राधा-ठाकुराणी ।

ताँर कृपाय स्फुरियाछे माधवेन्द्र-वाणी ॥ 194॥

एइ–यह; श्लोक-श्लोक; कहियाछेन–कहा गया है; राधा-ठाकुराणी-श्रीमती राधारानी; ताँर-उनकी; कृपाय-कृपा से; स्फुरियाछे-प्रकट हुआ है; माधवेन्द्र माधवेन्द्र पुरी की; वाणी–वाणी।

अनुवाद

वास्तव में इस श्लोक को श्रीमती राधारानी ने स्वयं कहा था और उनकी कृपा से ही यह माधवेन्द्र पुरी के शब्दों में प्रकट हुआ।

किबा गौरचन्द्र इहा करे आस्वादन ।

इहा आस्वादिते आर नाहि चौठ-जन ॥ 195॥

किबा–कितना उत्तम; गौरचन्द्र-श्री चैतन्य महाप्रभु; इहा-यह; करे-करते हैं; आस्वादन-आस्वादन; इहा-यह श्लोक; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; आर-अन्य; नाहि-नहीं है; चौठ-जन-चौथा व्यक्ति।

अनुवाद

केवल श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक के काव्यत्व का आस्वादन किया है। इसे समझ पाने में कोई चौथा व्यक्ति समर्थ नहीं है।

तात्पर्य

इसका अर्थ यह हुआ कि इस श्लोक के तात्पर्य को केवल श्रीमती राधारानी, माधवेन्द्र पुरी तथा चैतन्य महाप्रभु ही समझने में समर्थ हैं।

शेष-काले एइ श्लोक पठिते पठिते ।

सिद्धि-प्राप्ति हैल पुरीर श्लोकेर सहिते ॥196॥

शेष-काले–अन्त में; एइ श्लोक-यह श्लोक; पठिते पठिते-बार बार पढ़कर; सिद्धि-प्राप्ति-सिद्धी की प्राप्ति; हैल-हुई; पुरीर-माधवेन्द्र पुरी को; श्लोकेर यह श्लोक; सहिते-के साथ।

अनुवाद

पृथ्वी पर जीवन के अन्तिम काल में माधवेन्द्र पुरी इस श्लोक को बारम्बार पढ़ते रहते थे। इस प्रकार इस श्लोक का उच्चारण करते-करते उन्होंने जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त किया।

अयि दीन-दयार्द्र नाथ हे

मथुरा-नाथ कदावलोक्यसे ।

हृदयं त्वदलोक-कातरं

दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम् ॥ 197॥

अयि-हे मेरे प्रभु; दीन-दीनों पर; दया-आई-दयालु; नाथ-हे नाथ; हे-हे; मथुरा-नाथ-मथुरा नाथ; कदा-कब; अवलोक्यसे-मैं आपको देबूंगी; हृदयम्-मेरा हृदय; त्वत्-आपको; अलोक-देखे बिना; कातरम्-अत्यन्त दु:खी; दयित-हे प्रियतम; भ्राम्यति–अत्यन्त विचलित हो जाता है; किम्-क्या; करोमि–करूँ; अहम्-मैं।

अनुवाद

"हे नाथ! हे परम कृपालु स्वामी! हे मथुरापति! मुझे फिर आपके दर्शन कब होंगे? आपका दर्शन न कर पाने के कारण मेरा विक्षुब्ध हृदय अस्थिर हो चुका है। हे प्रिय, अब मैं क्या करूँ?"

तात्पर्य

केवल वेदान्त-दर्शन पर आश्रित शुद्ध भक्त चार सम्प्रदायों में विभक्त हैं। इन चारों सम्प्रदायों में श्री मध्वाचार्य सम्प्रदाय को माधवेन्द्र पुरी ने स्वीकार किया था। इस प्रकार उन्होंने परम्परानुसार संन्यास ग्रहण किया। मध्वाचार्य से लेकर माधवेन्द्र पुरी के गुरु आचार्य लक्ष्मीपति तक माधुर्य भक्ति की अनुभूति नहीं थी। श्री माधवेन्द्र पुरी ने ही मध्वाचार्य सम्प्रदाय में सर्वप्रथम माधुर्य रस की भावना का सूत्रपात किया। मध्वाचार्य सम्प्रदाय का यह निर्णय श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा तब प्रकट किया गया, जब वे दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए उन तत्त्ववादियों से मिले थे, जो मध्वाचार्य सम्प्रदाय के माने जाते थे।

जब श्रीकृष्ण ने वृन्दावन छोड़कर मथुरा का राज्य स्वीकार कर लिया, तब श्रीमती राधारानी ने विरह-भाव के आवेश में दिखाया कि विरह में कृष्ण से किस तरह प्रेम किया जा सकता है। इस तरह इस श्लोक में विरह भाव में (विप्रलम्भ भाव में) भक्ति प्रधान है। गौड़ीय-मध्व-सम्प्रदाय में विरह भाव में पूजा को सर्वोच्च भक्ति मानी जाती है। इस धारणा के अनुसार भक्त अपने आपको अत्यन्त दीन तथा भगवान् द्वारा उपेक्षित मानता है। अतएव वह भगवान् को दीनदयार्द्र नाथ कहकर पुकारता है, जैसाकि माधवेन्द्र पुरी ने किया। ऐसी भावना ऊर्मिपूर्ण भक्ति का सर्वोच्च रूप है। चूँकि कृष्ण मथुरा चले गये थे, अतएव श्रीमती राधारानी अत्यधिक व्यथित थीं और उन्होंने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये : "हे प्रभु, आपके विरह के कारण मेरा मन अत्यधिक क्षुब्ध हो गया है। अब आप ही बतायें कि मैं क्या करूँ? मैं अत्यन्त दीन हूँ और आप अत्यन्त दयालु हैं, अतएव आप मुझ पर कृपा करें और मुझे बतलायें कि मैं आपका दर्शन कब कर सकेंगी।" श्री चैतन्य महाप्रभु सदैव श्रीमती राधारानी के उन ऊर्मिपूर्ण भावों को व्यक्त करते थे, जिन्हें राधारानी ने वृन्दावन में उद्धव को देखकर प्रकट किये थे। माधवेन्द्र पुरी द्वारा अनुभव किये जाने वाले ऐसे ही भाव इस श्लोक में व्यक्त हुए हैं। इसलिए गौड़ीय-मध्व-सम्प्रदाय के वैष्णवों के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने प्राकट्य के समय जिन भावों का अनुभव किया, वे माधवेन्द्र पुरी से श्रील ईश्वर पुरी के माध्यम से उन तक आये। गौड़ीय-मध्व-सम्प्रदाय परम्परा के सारे भक्त भक्ति के इन सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं।

एइ श्लोक पड़िते प्रभु हइला मूर्च्छिते ।

प्रेमेते विवश हञा पड़िल भूमिते ॥ 198॥

एइ श्लोक-यह श्लोक; पड़िते-पढ़कर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हइला–हो गये; मूर्च्छिते–मूर्छित; प्रेमेते-प्रेमावेश में; विवश–विवश होकर; हञा–होकर; पड़िल-गिर गये; भूमिते–धरती पर।

अनुवाद

यह श्लोक पढ़ते ही श्री चैतन्य महाप्रभु अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े। वे विह्वल थे, अतएव अपने वश में नहीं थे।

आस्ते-व्यस्ते कोले करि' निल नित्यानन्द ।

क्रन्दन करिया तबे उठे गौरचन्द्र ॥ 199॥

आस्ते-व्यस्ते-अति शीघ्रता में; कोले–गोद में; करि'-करके; निल–लिया; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; क्रन्दन-रोना; करिया-करते हुए; तबे-उस समय; उठे-उठे; गौरचन्द्र-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में भूमि पर गिर पड़े, तो नित्यानन्द प्रभु ने तुरन्त उन्हें अपनी गोद में उठा लिया। तब श्री चैतन्य महाप्रभु क्रंदन करते हुए फिर से उठ बैठे।

प्रेमोन्माद हैल, उठि' इति-उति धाय ।

हुङ्कार करये, हासे, कान्दे, नाचे, गाय ॥ 200॥

प्रेम-उन्माद-प्रेम का उन्माद; हैल-था; उठि'–उठकर; इति-उति धाय-इधर उधर दौड़ने लगे; हुङ्कार-हुँकार भरते हुए; करये-करने लगे; हासे-हँसना; कान्दे-रोना; नाचे-नाचना; गाय-और गाना।

अनुवाद

प्रेमोन्माद प्रकट करते हुए महाप्रभु हुंकार करते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे। कभी वे हँसते, कभी रोते, कभी नाचते और कभी गाते थे।

'अयि दीन, 'अयि दीन' बले बार-बार ।

कण्ठे ना निःसरे वाणी, नेत्रे अश्रु-धार ॥201॥

अयि दीन-हे मेरे स्वामी! हे दीनों के स्वामी; अयि दीन-हे दीनों के स्वामी; बले-कहते; बार-बार-बार बार; कण्ठे-गले में; ना-नहीं; निःसरे-निकलती; वाणी-आवाज: नेत्रे-आँखों में; अश्रु-धार-अश्रु धारा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु पूरा श्लोक नहीं सुना पाये। उन्होंने बारम्बार इतना ही कहा, "अयि दीन! अयि दीन!" इस तरह वे बोल नहीं सके और उनकी आँखों से अश्रु की धारा बहने लगी।

कम्प, स्वेद, पुलकाश्रु, स्तम्भ, वैवर्ण्य ।

निर्वेद, विषाद, जाड्य, गर्व, हर्ष, दैन्य ॥ 202॥

कम्प-कंपन; स्वेद-पसीना; पुलक-अश्रु-खुशी के आँसू; स्तम्भ-सदमा; वैवर्ण्य-रंग फीका पड़ना; निर्वेद–निराशा; विषाद-उदासी; जाड्य -स्मृति हानि; गर्व-गर्व; हर्ष–प्रसन्नता; दैन्य-विनय, नम्रता।

अनुवाद

कँपकँपी, पसीना, हर्ष के अश्रु, स्तम्भ, शरीर का रंग फीका पड़ना, निराशा, खिन्नता, स्मृति-ह्रास, गर्व, हर्ष तथा दीनता-ये सारे लक्षण श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में दिख रहे थे।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु में जाड्य को स्मृति-ह्रास कहा गया है, जो प्रियतम के विरह जनित कठोर आघात से उत्पन्न होता है। इस मनोदशा में हानि-लाभ, सुनने तथा देखने एवं अन्य सभी बातों से कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। यह मोह की प्रारम्भिक अवस्था को सूचित करता है।

एइ श्लोके उघाड़िला प्रेमेर कपाट ।

गोपीनाथ-सेवक देखे प्रभुर प्रेम-नाट ॥ 203॥

एइ श्लोके–यह श्लोक; उघाड़िला-खोल दिया; प्रेमेर-माधुर्य प्रेम का; कपाट-द्वार; गोपीनाथ-सेवक-गोपीनाथ अर्चाविग्रह के सेवक; देखे-देखते हैं; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; प्रेम-नाट–प्रेमावेश में नृत्य।

अनुवाद

इस श्लोक ने प्रेमभाव के द्वार खोल दिये और गोपीनाथ के सारे सेवकों ने महाप्रभु को भावावेश में नृत्य करते देखा।

लोकेर सङ्घट्ट देखि' प्रभुर बाह्य हैल ।

ठाकुरेर भोग सरि' आरति बाजिल ॥ 204॥

लोकेर-लोगों की; सङ्घट्ट-भीड़; देखि'–देखकर; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु की; बाह्य-बाह्य चेतना; हैल-प्रकट हो गई; ठाकुरेर–अर्चाविग्रह की; भोग-भोग; सरि'-समाप्त करके; आरति-आरती करके; बाजिल–गूंज उठी।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु के चारों ओर अनेक लोगों की भीड़ लग गई, तो वे बाह्य चेतना में आये। उसी बीच अर्चाविग्रह को भोग का समर्पण समाप्त हुआ और सुमधुर ध्वनि के साथ आरती सम्पन्न हुई।

ठाकुरे शयन कराञा पूजारी हैल बाहिर ।

प्रभुर आगे आनि' दिल प्रसाद बार क्षीर ॥ 205॥

ठाकुरे-अर्चाविग्रह; शयन-शयन; कराञा-कराने के बाद; पूजारी-पुजारी; हैल-था; बाहिर–मन्दिर से बाहर; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; आगे-सामने; आनि'–लाकर; दिल-दिया; प्रसाद–प्रसाद; बार-बारह; क्षीर-खीर के पात्र।

अनुवाद

अर्चाविग्रहों को शयन कराने के बाद पुजारी मन्दिर के बाहर आ गया और उसने खीर के सारे बारहों पात्र श्री चैतन्य महाप्रभु को दे दिये।

क्षीर देखि' महाप्रभुर आनन्द बाड़िल ।

भक्त-गणे खाओयाइते पञ्च क्षीर लैल ॥ 206॥

क्षीर-खीर; देखि'–देखकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आनन्द–आनन्द; बाड़िल-बढ़ गया; भक्त-गणे-भक्त; खाओयाइते-उनको खिलाने के लिए; पञ्च–पाँच पात्र; क्षीर-खीर; लैल–स्वीकार की।

अनुवाद

जब गोपीनाथ महाप्रसाद के सारे खीर-पात्र श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष रखे गये, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। भक्तों को खिलाने के लिए उन्होंने पाँच पात्र स्वीकार किये।

सात क्षीर पूजारीके बाहुड़िया दिल ।

पञ्च-क्षीर पञ्च-जने वाँटिया खाइल ॥ 207॥

सात क्षीर-खीर के सात पात्र; पूजारीके-पुजारी की ओर; बाहड़िया-धकेलकर; दिल–दे दिए; पञ्च-क्षीर-खीर के पाँच पात्र; पञ्च-जने–पाँच लोगों को; वाँटिया-बाँटकर; खाइल-खाये।

अनुवाद

शेष सात पात्र आगे बढ़ाकर पुजारी को दे दिये गये। फिर महाप्रभु द्वारा लिये गये पाँच पात्रों की खीर पाँच भक्तों में बाँटी गई और उन सबने प्रसाद ग्रहण किया।

गोपीनाथ-रूपे यदि करियाछेन भोजन ।

भक्ति देखाइते कैल प्रसाद भक्षण ॥ 208॥

गोपीनाथ-रूपे-गोपीनाथ के अर्चाविग्रह रूप में; यदि-यद्यपि; करियाछेन-किया; भोजन-भोजन; भक्ति-भक्ति; देखाइते-दिखाने के लिए; कैल–किया; प्रसाद भक्षण-प्रसाद खाना।

अनुवाद

गोपीनाथ विग्रह से अभिन्न श्री चैतन्य महाप्रभु पहले ही खीर-पात्रों का आस्वादन कर चुके थे। फिर भी भक्ति प्रकट करने के लिए उन्होंने भक्त के रूप में पुनः खीर खाई।

नाम-सङ्कीर्तने सेइ रात्रि गोडाइला ।

मङ्गल-आरति देखि' प्रभाते चलिला ॥ 209॥

नाम-सङ्कीर्तने–नाम संकीर्तन; सेइ-वह; रात्रि-रात; गोवाइला–गुजारी; मङ्गल-आरति-मंगल आरती; देखि'–देखने के बाद; प्रभाते-प्रात:काल; चलिला–चल पड़े।

अनुवाद

वह रात्रि महाप्रभु ने उस मन्दिर में संकीर्तन करने में व्यतीत की। प्रात:काल मंगल-आरती देखकर वे वहाँ से चल पड़े।

गोपाल-गोपीनाथ-पुरी-गोसाञिर गुण ।

भक्त-सङ्गे श्री-मुखे प्रभु कैला आस्वादन ॥ 210॥

गोपाल–गोपाल अर्चाविग्रह का; गोपीनाथ-गोपीनाथ अर्चाविग्रह का पुरी-गोसाञिर-माधवेन्द्र पुरी के; गुण-गुण; भक्त-सङ्गे-भक्तों के साथ; श्री-मुखे-अपने मुख से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला–किया; आस्वादन–आस्वादन।

अनुवाद

इस तरह स्वयं चैतन्य महाप्रभु ने गोपालजी, गोपीनाथ तथा श्री माधवेन्द्र पुरी के दिव्य गुणों का आस्वादन अपने श्री मुख से किया।

एइ त' आख्याने कहिला दोंहार महिमा ।

प्रभुर भक्त-वात्सल्य, आर भक्त-प्रेम-सीमा ॥ 211॥

एइ त'–इस प्रकार; आख्याने-वर्णन में; कहिला–बताया; दोंहार-दोनों की; महिमा-महिमाएँ; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; भक्त-वात्सल्य-भक्तों के लिए प्रेम; आर-और; भक्त-प्रेम-सीमा–भक्त के प्रेम की उच्चतम सीमा।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु की अपने भक्तों के प्रति वात्सल्य की दिव्य महिमा तथा भगवत्प्रेम के भाव की पराकाष्ठा-दोनों का वर्णन किया है।

श्रद्धा-युक्त हञा इहा शुने येइ जन ।

श्री-कृष्ण-चरणे सेइ पाय प्रेम-धन ॥ 212॥

श्रद्धा-युक्त-श्रद्धा युक्त; हञा–होकर; इहा-यह; शुने-सुनता है; येइ-वह; जन-व्यक्ति; श्री-कृष्ण-चरणे-भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में; सेइ-वह; पाय-पाता है; प्रेम-धन-भगवत् प्रेम की निधि।

अनुवाद

जो कोई श्रद्धा तथा भक्ति से इस कथा को सुनता है, उसे श्रीकृष्ण के चरणकमलों के प्रति भगवत्प्रेम का धन प्राप्त होता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥213॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; यार–जिसकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रंथ; कहे-कहता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए और उनकी कृपा की कामना करते हुए, मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत की मध्यलीला के चतुर्थ अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें श्री माधवेन्द्र पुरी की भक्ति का वर्णन है।

अध्याय पाँच

साक्षीगोपाल की लीलाएँ

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपनी पुस्तक अमृत-प्रवाह-भाष्य में पाँचवे अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। याजपुर होते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु कटक नगर पहुँचे, जहाँ वे साक्षीगोपाल का मन्दिर देखने गये। वहाँ पर उन्होंने श्री नित्यानन्द प्रभु के मुख से साक्षीगोपाल की कथा सुनी।

एक बार विद्यानगर नामक स्थान में दो ब्राह्मण रहते थे, जिनमें से एक वृद्ध था और दूसरा नवयुवक। दोनों ब्राह्मण अनेक तीर्थस्थलों की यात्रा करते हुए अन्त में वृन्दावन पहुँचे। वृद्ध ब्राह्मण उस तरुण ब्राह्मण की सेवा से अत्यन्त प्रसन्न था; अतएव वह अपनी सबसे छोटी पुत्री का विवाह उसके साथ करना चाहता था। वृद्ध ब्राह्मण ने वृन्दावन के गोपाल-विग्रह के समक्ष तरुण ब्राह्मण को विवाह का वचन दिया। इस तरह गोपाल-विग्रह साक्षी रूप हुए। जब दोनों ब्राह्मण विद्यानगर लौटे, तो तरुण ब्राह्मण ने इस विवाह की बात उठाई, किन्तु वृद्ध ब्राह्मण ने अपने मित्रों तथा पत्नी के प्रभाव में आकर कहा कि उसे अपना वचन याद नहीं है। फलतः तरुण ब्राह्मण वृन्दावन लौट आया और उसने पूरी कहानी गोपालजी से कह सुनाई। इस तरह गोपालजी उस युवक की भक्ति से वशीभूत होकर उसके साथ दक्षिण भारत गये। गोपालजी तरुण ब्राह्मण के पीछे-पीछे जा रहे थे और वह तरुण ब्राह्मण उनके सुंघरुओं की रुनझुन-ध्वनि सुनता जा रहा था। जब विद्यानगर के सारे प्रतिष्ठित व्यक्ति एकत्र हो गये, तो गोपालजी ने वृद्ध ब्राह्मण के वचन की पुष्टि की। इस तरह विवाह सम्पन्न हो गया। बाद में उस देश के राजा ने गोपाल जी के लिए एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण करवाया।

इसके बाद कटक के राजा ने उड़ीसा के राजा पुरुषोत्तम देव का अपमान किया, क्योंकि उसने अपनी पुत्री का विवाह उससे करने से मना कर दिया और उसे भगवान जगन्नाथ का झाड़ू लगाने वाला कहा। फलतः राजा पुरुषोत्तम ने भगवान जगन्नाथ की सहायता से कटक के राजा से लड़ाई की और उसे हरा दिया। इस तरह उसने राजा की पुत्री तथा

कटक का राज्य दोनों का भार संभाला। उस समय गोपालजी को राजा पुरुषोत्तम देव की भक्ति के वशीभूत होने के कारण कटक नगर ले आये गये।

यह कथा सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवत्प्रेम के भावावेश में गोपाल-मन्दिर में दर्शन किये। कटक से चलकर वे भुवनेश्वर गये और वहाँ शिवजी का मन्दिर देखा। धीरे-धीरे वे कमलपुर पहुँचे और भार्गी नदी के तट पर वे शिवजी के मन्दिर आये, जहाँ उन्होंने अपना संन्यास-दण्ड नित्यानन्द प्रभु को दे दिया। किन्तु नित्यानन्द प्रभु ने उस दण्ड के तीन खण्ड करके उसे आठारनाला नामक स्थान में भार्गी नदी में फेंक दिया। अपना दण्ड पुनः प्राप्त न होने से कृद्ध होकर श्री चैतन्य महाप्रभु नित्यानन्द प्रभु का साथ छोड़कर अकेले ही जगन्नाथ मन्दिर का दर्शन करने चले गये।

पद्भ्यां चलन् यः प्रतिमा-स्वरूपो

ब्रह्मण्य-देवो हि शताह-गम्यम् ।

देशं ययौ विप्र-कृतेऽद्भुतेहं

तं साक्षि-गोपालमहं नतोऽस्मि ॥1॥

पद्भ्याम्-दो पाँवों से; चलन्-चलकर; यः-जो; प्रतिमा-अर्चाविग्रह के; स्वरूपः-स्वरूप में; ब्रह्मण्य-देवः–ब्राह्मण संस्कृति के परम ईश्वर; हि–अवश्य; शत-आह–एक सौ दिनों में; गम्यम्-यात्रा करने के लिए; देश-देश; ययौ-गये; विप्र-कृते-एक ब्राह्मण के लाभ हेतु; अद्भुत-अद्भुत; ईहम्-गतिविधि; तम्-उनको; साक्षि-गोपालम्-साक्षीगोपाल, साक्षी के तौर पर प्रसिद्ध; अहम्-मैं; नतः अस्मि–सादर प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् (ब्रह्मण्य-देव) को सादर नमस्कार करता हूँ, जो एक ब्राह्मण पर उपकार करने के लिए साक्षीगोपाल के रूप में प्रकट हुए। उन्होंने 100 दिनों तक देश की पैदल यात्रा की। इस तरह उनकी लीलाएँ अद्भुत हैं।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैतचन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ 2॥

जय-जय हो; जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; जय-जय हो; नित्यानन्द-श्री नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द–चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत प्रभु की जय हो और श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

चलिते चलते आइला याजपुर-ग्राम ।

वराह-ठाकुर देखि' करिला प्रणाम ॥3॥

चलिते चलते-चलते चलते; आइला–पहुँचे; याजपुर-ग्राम-याजपुर ग्राम; वराह-ठाकुर-वराहदेव का मन्दिर; देखि-देखकर; करिला-किया; प्रणाम-प्रणाम।

अनुवाद

चलते चलते श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी टोली सहित वैतरणी नदी के तट पर स्थित याजपुर गाँव आये। वहाँ उन्होंने वराहदेव का मन्दिर देखा और उन्हें नमस्कार किया।

नृत्य-गीत कैल प्रेमे बहत स्तवन ।

याजपुरे से रात्रि करिला यापन ॥4॥

नृत्य-गीत-नृत्य और गान; कैल–किया; प्रेमे-भगवत् प्रेम में; बहुत-विविध; स्तवन-स्तुतियाँ; याजपुरे–याजपुर गाँव में; से रात्रि-वह रात; करिला–किया; यापन-गुजारी।

अनुवाद

वराह देव के मन्दिर में श्री चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तन तथा नृत्य किया और प्रार्थनाएँ की। वह रात्रि उन्होंने मन्दिर में ही बिताई।

कटके आइला साक्षि-गोपाल देखिते ।

गोपाल-सौन्दर्य देखि' हैला आनन्दिते ॥5॥

कटके-कटक नगर में; आइला–पहुँचे; साक्षि-गोपाल–साक्षीगोपाल; देखिते-देखने के लिए; गोपाल–गोपाल के अर्चाविग्रह का; सौन्दर्य-सौन्दर्य; देखि'–देखकर; हैला–हो गये; आनन्दिते-अत्यन्त आनन्दित, प्रसन्न।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु कटक नामक नगर में साक्षीगोपाल का मन्दिर देखने गये। गोपाल विग्रह के सौन्दर्य को देखकर वे अत्यन्त प्रफुल्लित हुए।

प्रेमावेशे नृत्य-गीत कैल कत-क्षण ।

आविष्ट हञा कैल गोपाल स्तवन ॥ 6 ॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; नृत्य-गीत-नृत्य और गान; कैल–किया; कत-क्षण-कुछ समय के लिए; आविष्ट हञा–अभिभूत होकर; कैल-की; गोपाल स्तवन-गोपाल की स्तुतियाँ।

अनुवाद

वहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु कुछ समय तक कीर्तन तथा नृत्य करते रहे और भावाभिभूत होकर उन्होंने गोपाल की अनेक प्रकार से स्तुति की।

सेइ रात्रि ताहाँ रहि' भक्त-गण-सङ्गे ।

गोपालेर पूर्व-कथा शुने बहु रङ्गे ॥7॥

सेइ रात्रि-उसी रात; ताहाँ-वहाँ; रहि-रहकर; भक्त-गण-सङ्गे–अन्य भक्तों के साथ; गोपालेर-भगवान् गोपाल की; पूर्व-कथा-पूर्व कथा; शुने-सुनी; बहु-बहुत; रङ्गे–हर्षपूर्वक।

अनुवाद

उस रात श्री चैतन्य महाप्रभु गोपाल के मन्दिर में रहे और सभी भक्तों सहित उन्होंने साक्षीगोपाल की कथा अत्यन्त उत्साहपूर्वक सुनी।

नित्यानन्द-गोसाञि यबे तीर्थ भ्रमिला ।

साक्षि-गोपाल देखिबारे कटक आइला ॥8॥

नित्यानन्द-गोसाञि-नित्यानन्द प्रभु; यबे-जब; तीर्थ भ्रमिला–तीर्थस्थानों पर गये; साक्षि-गोपाल–साक्षीगोपाल; देखिबारे-देखने के लिए; कटक–कटक नगर में; आइला-आये।

अनुवाद

इसके पूर्व जब नित्यानन्द प्रभु ने विभिन्न तीर्थस्थलों का दर्शन करने के लिए पूरे भारत का भ्रमण किया था, तो वे कटक स्थित साक्षीगोपाल का दर्शन करने भी आये थे।

साक्षि-गोपालेर कथा शुनि, लोक-मुखे ।

सेइ कथा कहेन, प्रभु शुने महा-सुखे ॥9॥

साक्षि-गोपालेर-साक्षीगोपाल की; कथा-कथा; शुनि-सुनकर; लोक-मुखे-लोगों के मुख से; सेइ कथा-वह कथा; कहेन–नित्यानन्द प्रभु कहते हैं; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; शुने-सुनते हैं; महा-सुखे-अत्यन्त प्रसन्न होकर।

अनुवाद

उस समय नित्यानन्द प्रभु ने साक्षीगोपाल की कथा उस नगर के लोगों से सुनी थी। अब उन्होंने वही कथा फिर सुनाई और चैतन्य महाप्रभु ने उस कथा को अत्यन्त सुखपूर्वक सुना।

तात्पर्य

साक्षीगोपाल मन्दिर भुवनेश्वर-खुर्दा रोड रेलवे जंक्शन तथा जगन्नाथ पुरी स्टेशन के बीच स्थित है। अर्चाविग्रह अब कटक में नहीं हैं, किन्तु जब नित्यानन्द प्रभु वहाँ गये थे तब वे वहाँ थे। कटक उड़ीसा में महानदी के किनारे स्थित है। जब साक्षीगोपाल को दक्षिण भारत के विद्यानगर से लाये गये थे, तो वे कुछ समय तक कटक में रहे थे। इसके बाद कुछ काल तक वे जगन्नाथ मन्दिर में रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि जगन्नाथ मन्दिर में जगन्नाथ तथा साक्षीगोपाल के बीच प्रेम-कलह अर्थात् कुछ प्रेमपूर्ण मतभेद हुआ। इस प्रेम-कलह को सुलझाने के लिए उड़ीसा के राजा ने जगन्नाथ पुरी से ग्यारह मील की दूरी पर एक गाँव बसाया। यह गाँव सत्यवादी कहलाया और यहीं पर गोपाल को प्रतिष्ठित कर दिये गये। इसके बाद नया मन्दिर बनवाया गया। अब तो साक्षीगोपाल स्टेशन भी है और लोग साक्षीगोपाल का दर्शन करने के लिए सत्यवादी जाते हैं।

पूर्वे विद्यानगरेर दुइ त’ ब्राह्मण ।

तीर्थ करिबारे दुँहे करिला गमन ॥10॥

पूर्वे-पूर्व समय में; विद्यानगरेर–विद्यानगर नाम के नगर में; दुइ-दो; त'-निश्चित रूप से; ब्राह्मण-ब्राह्मण; तीर्थ करिबारे-तीर्थ करने के लिए; दुँहे-वे दोनों; करिला-करने लगे; गमन-यात्रा।

अनुवाद

प्राचीनकाल में दक्षिण भारत में विद्यानगर में दो ब्राह्मण थे, जिन्होंने विभिन्न तीर्थस्थानों के दर्शनार्थ लम्बी यात्रा की।

गया, वाराणसी, प्रयाग—सकल करिया ।

मथुराते आइला दुँहे आनन्दित हञा ॥11॥

गया-गया नामक तीर्थस्थान; वाराणसी-बनारस अथवा काशी; प्रयाग-इलाहाबाद सकल-सभी; करिया–यात्रा की; मथुराते-मथुरा; आइला–वे पहुँचे; दुँहे दोनों; आनन्दित-प्रसन्न होकर; हञा–होकर।

अनुवाद

सर्वप्रथम वे गया गये, फिर काशी और तब प्रयाग। अन्त में वे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मथुरा आये।

वन-यात्राय वन देखि' देखे गोवर्धन ।

द्वादश-वन देखि' शेषे गेला वृन्दावन ॥ 12 ॥

वन-यात्राय–विविध वनों में यात्रा करने से; वन देखि'–वन देखते हुए; देखे-वे देखते हैं; गोवर्धन-गोवर्धन पर्वत; द्वादश-वन देखि'-वृन्दावन के बारह वन देखकर; शेषे–अन्त में; गेला–पहुँचे; वृन्दावन-वृन्दावन।

अनुवाद

मथुरा पहुँचकर उन्होंने वृन्दावन के विभिन्न वनों का दर्शन करना प्रारम्भ किया। तब वे गोवर्धन पर्वत आये। उन्होंने सारे बारहों वनों के दर्शन किये और अन्त में वृन्दावन नगरी पहुँचे।

तात्पर्य

यमुना नदी के पूर्व की ओर स्थित पाँच वनों के नाम हैं-भद्र, बिल्व, लोह, भाण्डीर तथा महावन। यमुना के पश्चिम की ओर स्थित सात वनों के नाम हैं-मधु, ताल, कुमुद, बहुला, काम्य, खदिर तथा वृन्दावन। इन सारे वनों के दर्शन के बाद वे दोनों यात्री पंचक्रोशी वृन्दावन पहुँचे। बारह वनों में से वृन्दावन नामक वन वृन्दावन नगरी से लेकर नन्द ग्राम तथा बरसाना तक 32 मील दूरी तक फैला है और इसी में पंचक्रोशी वृन्दावन स्थित है।

वृन्दावने गोविन्द-स्थाने महा-देवालय ।

से मन्दिरे गोपालेर महा-सेवा हय ॥13॥

वृन्दावने-पंचक्रोशी वृन्दावन में; गोविन्द-स्थाने-वर्तमान गोविन्द मन्दिर के स्थल पर; महा-देव-आलय-एक विशाल मन्दिर; से मन्दिरे-उस मन्दिर में; गोपालेर-गोपाल के अर्चाविग्रह की; महा-सेवा-भव्य सेवा; हय है।

अनुवाद

पंचक्रोशी वृन्दावन ग्राम में, जहाँ अब गोविन्द मन्दिर स्थित है, पहले एक विशाल मन्दिर था जहाँ गोपाल की भव्य सेवा की जाती थी।

केशी-तीर्थ, कालीय-ह्रदादिके कैल स्नान ।

श्री-गोपाल देखि' ताहाँ करिला विश्राम ॥14॥

केशी-तीर्थ-यमुना तट पर केशी घाट नामक स्नान करने के स्थान पर; कालीय-ह्रद-यमुना तट पर कालिय घाट; आदिके-ऐसे विविध घाटों पर; कैल–किया; स्नान-स्नान; श्री गोपाल देखि'–गोपाल मन्दिर जाकर; ताहाँ-वहाँ; करिला–लिया; विश्राम–विश्राम।

अनुवाद

यमुना नदी के किनारे स्थित विभिन्न घाटों में, यथा केशीघाट तथा कालिय घाट में, स्नान करने के बाद वे दोनों यात्री गोपाल-मन्दिर में दर्शन करने गये। इसके बाद उन्होंने उस मन्दिर में विश्राम किया।

गोपाल-सौन्दर्य दुँहार मन निल हरि' ।

सुख पाञा रहे ताहाँ दिन दुइ-चारि ॥15॥

गोपाल-सौन्दर्य-गोपाल अर्चाविग्रह के सौन्दर्य ने; दुँहार-दोनों के; मन-मन; निल-लिए; हरि-हर; सुख पाञा-यह दिव्य सुख अनुभव करके; रहे-रहे; ताहाँ-वहाँ उस मन्दिर में; दिन-दिन; दुइ-चारि-दो चार।

अनुवाद

गोपाल-विग्रह के सौन्दर्य ने उनके मनों को हर लिया और परम सुख का अनुभव करते हुए वे दोनों दो-चार दिन वहाँ रुके रहे।

दुइ-विप्र-मध्ये एक विप्र—वृद्ध-प्राय ।

आर विप्र—युवा, ताँर करेन सहाय ॥ 16 ॥

दुइ-विप्र-मध्ये-दो ब्राह्मणों के बीच; एक विप्र-एक ब्राह्मण; वृद्ध-प्राय–वृद्ध प्राय; आर विप्र-दूसरा ब्राह्मण; युवा–युवा; ताँर–वृद्ध ब्राह्मण की; करेन-करता है; सहाय–सहायता।

अनुवाद

दोनों ब्राह्मणों में एक वृद्ध था और दूसरा तरुण। यह तरुण व्यक्ति वृद्ध ब्राह्मण की सहायता कर रहा था।

छोट-विप्र करे सदा ताँहार सेवन ।

ताँहार सेवाय विप्रेर तुष्ट हैल मन ॥17॥

छोट-विप्र-छोटा ब्राह्मण; करे-करता है; सदा-सदा; ताँहार–वृद्ध ब्राह्मण की; सेवन–सेवा; ताँहार-उसकी; सेवाय-सेवा से; विप्रेर–वृद्ध ब्राह्मण का; तुष्ट-सन्तुष्ट; हैल-हो गया; मन–मन।

अनुवाद

निस्सन्देह तरुण ब्राह्मण वृद्ध की सतत सेवा करता था और वह वृद्ध ब्राह्मण उसकी सेवा से सन्तुष्ट होने के कारण उससे प्रसन्न था।

विप्र बले—तुमि मोर बहु सेवा कैला ।

सहाय हञा मोरे तीर्थ कराइला ॥18॥

विप्र बले–वृद्ध ब्राह्मण कहता है; तुमि-तुमने; मोर-मेरी; बहु-बहुत; सेवा-सेवा; कैला-की है; सहाय–सहायक; हञा-बनकर; मोरे-मुझे; तीर्थ-तीर्थ; कराइला–करवाया है।

अनुवाद

बूढ़े व्यक्ति ने उस तरुण से कहा, "तुमने तरह-तरह से मेरी सेवा की है और इन सारे तीर्थस्थानों की यात्रा करने में मेरी सहायता की है।"

पुत्रेओ पितार ऐछे ना करे सेवन ।

तोमार प्रसादे आमि ना पाइलाम श्रम ॥ 19॥

पुत्रेओ-मेरा अपना पुत्र भी; पितार-पिता की; ऐछे-इस प्रकार; ना-नहीं; करे-करता है; सेवन–सेवा; तोमार-तुम्हारी; प्रसादे-कृपा से; आमि-मैंने; ना-नहीं; पाइलाम–पाई; श्रम-थकावट।

अनुवाद

"मेरा पुत्र भी ऐसी सेवा नहीं करता। तुम्हारी दया से मुझे यात्रा में कोई थकान नहीं हुई।"

कृतघ्नता हय तोमाय ना कैले सम्मान ।

अतएव तोमाय आमि दिब कन्या-दान ॥20॥

कृतघ्नता–कृतघ्नता; हय-यह है; तोमाय तुम्हारी ओर; ना-नहीं; कैले–यदि क; सम्मान-सम्मान; अतएव–अतएव; तोमाय-तुम्हें; आमि-मैं; दिब-दूँगा; कन्या-दान-अपनी पुत्री कन्यादान में।

अनुवाद

"यदि मैं तुम्हारा आदर न करूँ, तो मैं कृतघ्न माना जाऊँगा। अतएव मैं वचन देता हूँ कि मैं तुम्हें अपनी कन्या दान में दूँगा।"

छोट-विप्र कहे, "शुन, विप्र-महाशय ।

असम्भव कह केने, येइ नाहि हय" ॥21॥

छोट-विप्र-युवा ब्राह्मण; कहे-उत्तर देता है; शुन-सुनो; विप्र-महाशय-विप्र महाशय; असम्भव-असम्भव; कह-आप कहते हैं; केने-क्यों; येइ-जो; नाहि-नहीं; हय होता है।

अनुवाद

तरुण ब्राह्मण ने कहा, "हे भद्र ब्राह्मण, कृपया मेरी बात सुनें। आप कुछ असम्भव बात कर रहे हैं। ऐसा कभी होता नहीं।"

महा-कुलीन तुमि—विद्या-धनादि-प्रवीण।

आमि अकुलीन, आर धन-विद्या-हीन ॥22॥

महा-कुलीन–अत्यन्त कुलीन; तुमि-आप; विद्या–विद्या; धन-आदि-धन आदि; प्रवीण–धनवान; आमि–मैं; अकुलीन–कुलीन नहीं; आर-और; धन-विद्या-हीन–धन तथा विद्या से रहित।

अनुवाद

"आप उच्च कुल के व्यक्ति हैं, सुशिक्षित हैं और अत्यन्त धनी हैं। और मैं न तो उच्च कुल का हूँ, न ही मेरे पास उत्तम शिक्षा है, न ही धन है।"

तात्पर्य

पुर्य्यकर्मों के कारण मनुष्य चार प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त हो सकता है-उसका जन्म उच्च कुल में हो सकता है, वह सुशिक्षित हो सकता है, वह अत्यन्त सुन्दर हो सकता है या धनवान हो सकता है। ये हैं पूर्वजन्म में सम्पन्न पुण्यकर्मों के लक्षण। आज भी भारत में उच्च कुल वाले कभी साधारण कुल में विवाह नहीं करते। भले ही जाति वही हो, किन्तु अपनी कुलीनता बनाये रखने के लिए ऐसे विवाह नहीं किये जाते। कोई निर्धन व्यक्ति किसी धनी व्यक्ति की कन्या से विवाह करने का साहस नहीं करता। इसीलिए जब वृद्ध ब्राह्मण ने तरुण ब्राह्मण को अपनी कन्या देने का प्रस्ताव रखा, तो तरुण ब्राह्मण को विश्वास नहीं हुआ कि ऐसा विवाह सम्भव होगा। इसीलिए उसने वृद्ध ब्राह्मण से कहा कि आप ऐसी असम्भव बात का प्रस्ताव क्यों कर रहे हैं। ऐसा नहीं सुना जाता कि कोई कुलीन व्यक्ति अपनी कन्या किसी अशिक्षित तथा निर्धन व्यक्ति को दान में दे।

कन्या-दान-पात्र आमि ना हई तोमार।

कृष्ण-प्रीत्ये करि तोमार सेवा-व्यवहार ॥ 23॥

कन्या-दान-पात्र–किसी लड़की के लिए योग्य वर; आमि-मैं; ना-नहीं; हइ-हूँ; तोमार-आपकी; कृष्ण-प्रीत्ये—मात्र कृष्ण की तुष्टि के लिए; करि–करता हूँ; तोमार-आपकी; सेवा–सेवा का; व्यवहार-व्यवहार।

अनुवाद

"हे महोदय, मैं आपकी कन्या के उपयुक्त वर नहीं हूँ। मैं तो केवल कृष्ण की तुष्टि के लिए आपकी सेवा कर रहा हूँ।"

तात्पर्य

दोनों ब्राह्मण शुद्ध वैष्णव थे। तरुण ब्राह्मण वृद्ध की विशेष देखरेख केवल कृष्ण की प्रसन्नता के लिए कर रहा था। श्रीमद्भागवत (11.19.21) में भगवान् कृष्ण कहते हैं- मद्भक्तपूजाभ्यधिका–"मेरे भक्त की सेवा करना श्रेयस्कर है।" अतएव चैतन्य महाप्रभु के गौड़ीय-वैष्णव दर्शन के अनुसार भगवान् के दास का दास होना श्रेयस्कर है। मनुष्य को सीधे कृष्ण की सेवा करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। एक शुद्ध वैष्णव कृष्ण के दास की सेवा करता है और अपने आपको कृष्ण के दास का दास समझता है। इससे कृष्ण प्रसन्न होते हैं। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं-छाड़िया वैष्णवसेवा निस्तार पेयेछे केबा। मुक्त वैष्णव की सेवा किये बिना प्रत्यक्ष रीति से कृष्ण की सेवा करके मुक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। अतः कृष्ण के दास की सेवा करनी ही होगी।

"ब्राह्मण-सेवाय कृष्णेर प्रीति बड़ हय ।

ताँहार सन्तोषे भक्ति-सम्पद्बाड़य" ॥24॥

ब्राह्मण-सेवाय-ब्राह्मण की सेवा करने से; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; प्रीति–प्रेम, तुष्टि; बड़-बहुत; हय–होती है; ताँहार सन्तोषे–भगवान् को प्रसन्न करने से; भक्ति-भक्ति का; सम्पद्-ऐश्वर्य; बाड़य-बढ़ता है।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण ब्राह्मणों की सेवा करने से अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और जब भगवान् प्रसन्न होते हैं, तो भक्ति संपदा बढ़ती है।"

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि तरुण ब्राह्मण ने वृद्ध ब्राह्मण की सेवा कृष्ण को प्रसन्न करने के उद्देश्य से की। यह कोई सामान्य सांसारिक व्यवहार नहीं था। वैष्णव की सेवा किये जाने से कृष्ण प्रसन्न होते हैं। चूँकि तरुण ब्राह्मण ने वृद्ध ब्राह्मण की सेवा की, इसलिए भगवान् गोपाल ने दोनों भक्तों का मान बनाये रखने के लिए विवाह-समझौते का साक्षी बनना मंजूर किया। यदि यह दो वैष्णवों के बीच की बात न होती, तो श्री चैतन्य महाप्रभु कभी भी वैवाहिक सम्बन्धों की बात सुनना पसन्द न करते । वैवाहिक प्रबन्ध तथा उत्सव शास्त्रों के कर्मकाण्ड विभाग से सम्बन्धित है। किन्तु वैष्णव किसी प्रकार के कर्मकाण्ड में रुचि नहीं लेते। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं- कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड केवल विषेर भाण्ड। वैष्णव के लिए वेदों के कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड प्रकरण अनावश्यक हैं। अक सच्चा वैष्णव इन प्रकारणों को विष-पात्र (विषेर भाण्ड) मानता है। कभी-कभी हम अपने शिष्यों के विवाह उत्सव में भाग लेते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि कर्मकाण्ड के कार्यों में हमारी रुचि है। कभी-कभी वैष्णव दर्शन को न समझने के कारण कोई बाहर का व्यक्ति ऐसे कार्य की आलोचना कर बैठता है। वह कहता है कि संन्यासी को एक तरुण तथा तरुणी के विवाह में भाग नहीं लेना चाहिए। किन्तु यह कर्मकाण्ड का कार्य नहीं है, क्योंकि हमारा उद्देश्य कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करना है। हम सामान्य जनता को कृष्णभावनामृत ग्रहण करने की सारी सुविधाएँ प्रदान करते हैं और भगवान् की सेवा में भक्तों के चित्त को एकाग्र करने के लिए कभी-कभी विवाह की अनुमति दी जाती है। हमने अनुभव किया है कि ऐसे विवाहित दम्पति आन्दोलन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सेवा करते हैं। अतएव यदि संन्यासी किसी विवाह उत्सव में सम्मिलित हो, तो इसका गलत अर्थ नहीं लगाना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु को उस तरुण ब्राह्मण तथा उस वृद्ध ब्राह्मण की कन्या के विवाह के विषय में सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

बड़-विप्र कहे,—“तुमि ना कर संशय ।

तोमाके कन्या दिब आमि, करिल निश्चय” ॥25॥

बड़-विप्र-वृद्ध ब्राह्मण; कहे-उत्तर देता है; तुमि-तुम; ना-नहीं; कर-करो; संशय-संशय; तोमाके–तुम्हें; कन्या-कन्या; दिब-दूँगा; आमि-मैंने; करिल-कर लिया है; निश्चय-निश्चय।

अनुवाद

उस वृद्ध ब्राह्मण ने कहा, "बेटे, तुम मुझ पर सन्देह मत करो। मैं तुम्हें कन्यादान दूँगा। मैंने पहले ही यह निश्चय कर लिया है।"

छोट-विप्र बले,—"तोमार स्त्री-पुत्र सब ।

बहु ज्ञाति-गोष्ठी तोमार बहुत बान्धव" ॥26॥

छोट-विप्र-युवा ब्राह्मण; बले-कहता है; तोमार-आपके; स्त्री-पुत्र-पत्नी और पुत्र; सब-सब; बहु-बहुत से; ज्ञाति-वंशज; गोष्ठी–समूह; तोमार-आपके; बहुत-बहुत से; बान्धव-मित्र।

अनुवाद

तरुण ब्राह्मण बोला, "आपके पत्नी तथा पुत्र हैं तथा आपके अनेक परिजन तथा मित्र हैं।"

ता'-सबार सम्मति विना नहे कन्या-दान ।

रुक्मिणीर पिता भीष्मक ताहाते प्रमाण ॥27॥

ता'-सबार-उन सबकी; सम्मति-अनुमति; विना-बिना; नहे-नहीं; कन्या-दान-कन्यादान; रुक्मिणीर-रानी रुक्मिणी; पिता–पिता; भीष्मक-भीष्मक; ताहाते-उसका; प्रमाण-प्रमाण॥

अनुवाद

"अपने सारे मित्रों तथा परिजनों की सम्मति के बिना आप अपनी कन्या का दान मुझे नहीं दे सकते। कृपया महारानी रुक्मिणी तथा उनके पिता भीष्मक की कथा पर विचार करें।"

भीष्मकेर इच्छा,—कृष्णे कन्या समर्पिते ।

पुत्रेर विरोधे कन्या नारिल अर्पिते ॥28॥

भीष्मकेर-राजा भीष्मक की; इच्छा-इच्छा; कृष्णे-कृष्ण से; कन्या-कन्या; समर्पिते-समर्पण करने; पुत्रेर-उसके पुत्र के विरोधे–विरोध से; कन्या-कन्या; नारिल-सक्षम न था; अर्पिते-देना।

अनुवाद

“राजा भीष्मक अपनी कन्या रुक्मिणी का दान कृष्ण को करना चाहते थे, किन्तु उनके बड़े पुत्र रुक्मी ने विरोध किया। अतएव वे अपना निर्णय पूरा नहीं कर सके।”

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (10.52.25) में कहा गया है :

बन्धूनाम् इच्छताम् दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ।

ततो निवार्य कृष्ण-द्विड रुक्मी चैद्यम् अमन्यत् ॥

विदर्भराज भीष्मक अपनी पुत्री रुक्मिणी को कृष्ण को देना चाहते थे, किन्तु उनके पाँच पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र रुक्मी ने इसका विरोध किया। अतएव उन्होंने अपना निर्णय बदल दिया और रुक्मिणी को चेदि-नरेश शिशुपाल को देने का निश्चय किया, जो कृष्ण का चचेरा भाई था। किन्तु रुक्मिणी ने एक चाल सोची-उसने पत्र भेजकर कृष्ण से विनती की कि वे उसका हरण करें। अतएव अपनी महान् भक्त रुक्मिणी को प्रसन्न करने के लिए कृष्ण ने उसका हरण किया। इससे कृष्ण तथा विरोधी दल के बीच, जिसका अगुआ रुक्मिणी का भाई रुक्मी था, विकट युद्ध हुआ। रुक्मी पराजित हुआ और कृष्ण को कटु वचन कहने के कारण वह मारा जाने वाला ही था कि रुक्मिणी के अनुनय-विनय पर उसे छोड़ दिया गया। किन्तु कृष्ण ने अपनी तलवार से रुक्मी के सिर के बाल छील दिये। यह बलराम को अच्छा नहीं लगा, इसलिए रुक्मिणी को खुश करने के लिए उन्होंने कृष्ण को फटकारा।

बड़-विप्र कहे,—“कन्या मोर निज-धन ।

निज-धन दिते निषेधिबे कोन् जन” ॥29॥

बड़-विप्र कहे-वृद्ध ब्राह्मण कहता है; कन्या-कन्या; मोर-मेरी; निज-धन–निजी सम्पत्ति; निज-धन-अपनी सम्पत्ति; दिते-देना; निषेधिबे–विरोध करेगा; को-कौन; जन-व्यक्ति।

अनुवाद

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा, “मेरी पुत्री मेरी निजी सम्पत्ति है। यदि मैं किसी को अपनी सम्पत्ति देना चाहूँ, तो किसमें शक्ति है कि मुझे रोक सके?”

तोमाके कन्या दिब, सबाके करि’ तिरस्कार ।

संशय ना कर तुमि, करह स्वीकार” ॥ 30॥

तोमाके-तुम्हें; कन्या-कन्या; दिब-दूँगा; सबाके–अन्य सभी; करि’–करके; तिरस्कार–परवाह न करके; संशय-संशय; ना-न; कर-करो; तुमि-तुम; करह-करो; स्वीकार–स्वीकार।

अनुवाद

“प्रिय बालक, मैं तुम्हें अपनी कन्या दान करूँगा और मैं अन्यों की चिन्ता नहीं करूँगा। तुम इसमें मुझ पर सन्देह मत करो। तुम मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लो।”

छोट-विप्र कहे,—“यदि कन्या दिते मन ।

गोपालेर आगे कह ए सत्य-वचन” ॥ 31॥

छोट-विप्र कहे-युवा ब्राह्मण उत्तर देता है; यदि-यदि; कन्या-कन्या; दिते-दान करने के लिए; मन–मन है; गोपालेर-गोपाल विग्रह के; आगे-समक्ष; कह-कहो; ए-ये; सत्य-वचन-सत्य वचन।

अनुवाद

तरुण ब्राह्मण ने उत्तर दिया, “यदि आपने अपनी तरुण कन्या मुझे देने का निश्चय कर लिया है, तो गोपाल-विग्रह के सामने चलकर ऐसा कहें।”

गोपालेर आगे विप्र कहिते लागिल ।

‘तुमि जान, निज-कन्या इहारे आमि दिल’ ॥ 32॥

गोपालेर आगे-गोपाल विग्रह के समक्ष; विप्र-वृद्ध ब्राह्मण, कहिते-कहने; लागिल-लगा; तुमि जान-हे प्रभु, कृपया जान लें; निज-कन्या-मेरी अपनी कन्या; इहारे-इस युवक को; आमि–मैंने; दिल–दान में दे दी है।

अनुवाद

उस वृद्ध ब्राह्मण ने गोपाल के समक्ष आकर कहा, “हे प्रभु, आप साक्षी हैं कि मैंने अपनी कन्या इस लड़के को दे दी है।”

तात्पर्य

भारतवर्ष में अब भी मौखिक रूप से कन्यादान दिये जाने के लिए वचन देने का प्रचलन है। यह वाग्दत्त कहलाता है। इसका अर्थ यह है कि कन्या के पिता, भाई या अभिभावक ने यह वचन दिया है कि इस कन्या का अमुक व्यक्ति के साथ विवाह होगा। फलस्वरूप उस कन्या का विवाह किसी अन्य के साथ नहीं किया जा सकता। वह अपने पिता या अभिभावक के सत्यवचन से किसी के लिए सुरक्षित हो जाती है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहाँ कन्या की बाल्यावस्था में उसके माता-पिता दूसरे व्यक्ति के पुत्र के साथ अपनी कन्या का विवाह करने का वचन देते हैं। दोनों पक्ष वाले कन्या तथा वर के बड़े हो जाने तक प्रतीक्षा करते हैं और तब विवाह सम्पन्न होता है। भारत में प्रचलित इसी पुरानी प्रथा का पालन करते हुए वृद्ध ब्राह्मण ने उस तरुण ब्राह्मण को अपनी कन्या देने का वचन दिया और उसने यह वचन गोपाल-विग्रह के समक्ष दिया। भारत में यह प्रथा है कि विग्रह के सामने दिये गये किसी भी वचन का पालन किया जाता है। ऐसे वचन को रद्द नहीं किया जा सकता। भारत के गाँवों में, जब भी दो पक्षों में कोई झगड़ा होता है, तो उसके निपटारे के लिए वे मन्दिर जाते हैं। विग्रह के समक्ष जो कुछ भी कहा जाता है, उसे सत्य माना जाता है, क्योंकि विग्रह के समक्ष किसी में झूठ बोलने का दुस्साहस नहीं होता। इसी सिद्धान्त का पालन कुरुक्षेत्र युद्ध में किया गया। इसीलिए भगवद्गीता के प्रारम्भ में धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे कहा गया है।

भगवान् में श्रद्धा न होने के कारण ही मानव समाज पशु जीवन के निम्नतम स्तर पर गिरता जा रहा है। सामान्य जनता में भगवत् चेतना जाग्रत करने के लिए यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन अत्यावश्यक है। यदि लोग वास्तव में कृष्णभावनाभावित हो जाएँ तो सारे झगड़े अदालत में गये बिना ही निपट जाएँ, जैसाकि इन दो ब्राह्मणों के साथ हुआ, जिनका मतभेद साक्षीगोपाल ने दूर किया।

छोट-विप्र बले,—"ठाकुर, तुमि मोर साक्षी ।

तोमा साक्षी बोलाइमु, यदि अन्यथा देखि" ॥ 33॥

छोट-विप्र बले–युवा ब्राह्मण ने उत्तर दिया; ठाकुर-मेरे प्रिय भगवान् गोपाल; तुमि-आप; मोर-मेरे; साक्षी–साक्षी; तोमा-आपको; साक्षी–साक्षी के रूप में; बोलाइमु-बुलाऊँगा; यदि-यदि; अन्यथा इसके विपरीत; देखि–होता देखूँगा।

अनुवाद

तब तरुण ब्राह्मण ने विग्रह को सम्बोधित करते हुए कहा, "हे प्रभु, आप मेरे साक्षी हैं। यदि बाद में जरूरत पड़ी, तो मैं आपको साक्षी के रूप में बुलाऊँगा।"

एत बलि' दुइ-जने चलिला देशेरे ।

गुरु-बुद्ध्ये छोट-विप्र बहु सेवा करे ॥ 34॥

एत बलि'-यह कहकर; दुइ-जने-दोनों ब्राह्मण; चलिला-चले गये; देशेरे-अपने देश की ओर; गुरु-बुद्ध्ये–वृद्ध ब्राह्मण को गुरु मानकर; छोट-विप्र-युवा ब्राह्मण; बहु-बहुत; सेवा–सेवा; करे-करता है।

अनुवाद

इस वार्तालाप के बाद दोनों ब्राह्मण घर के लिए चल पड़े। पहले की ही तरह तरुण ब्राह्मण उस वृद्ध ब्राह्मण के साथ चला, मानो वृद्ध ब्राह्मण उसका गुरु हो और वह उसकी तरह-तरह से सेवा करता रहा।

देशे आसि' दुइ-जने गेला निज-घरे ।

कत दिने बड़-विप्र चिन्तित अन्तरे ॥ 35॥

देशे आसि'-अपने देश में लौटने पर; दुड़-जने-वे दोनों; गेला-गये; निज-घरे-अपने अपने घर को; कत दिने कुछ दिनों के बाद; बड़-विप्र-वृद्ध ब्राह्मण; चिन्तित-अत्यन्त चिन्तित; अन्तरे-भीतर से।

अनुवाद

विद्यानगर लौटकर दोनों ब्राह्मण अपने-अपने घर चले गये। कुछ समय बाद वृद्ध ब्राह्मण को चिन्ता सताने लगी।

तीर्थे विप्रे वाक्य दिलुँ,—केमते सत्य हय ।

स्त्री, पुत्र, ज्ञाति, बन्धु जानिबे निश्चय ॥ 36॥

तीर्थे–तीर्थ पर; विप्रे–ब्राह्मण को; वाक्य-प्रतिज्ञा; दिलुँ-की है; केमते-कैसे; सत्य-सत्य; हय-हो; स्त्री-पत्नी; पुत्र-पुत्र; ज्ञाति-सम्बन्धी; बन्धु-मित्र; जानिबे-जानेंगे; निश्चय–निश्चित रूप से।

अनुवाद

वह सोचने लगा, "मैंने तीर्थस्थान में एक ब्राह्मण को वचन दिया है। और मेरे वचन का अवश्य पालन होना चाहिए। अब मुझे अपनी स्त्री, पुत्रों, अन्य सम्बन्धियों तथा मित्रों को यह बात बता देनी चाहिए।"

एक-दिन निज-लोक एकत्र करिल ।

ता-सबार आगे सब वृत्तान्त कहिल ॥ 37॥

एक-दिन-एक दिन; निज-लोक-अपने सभी सम्बन्धियों को; एकत्र-एक जगह; करिल-इकट्ठा करके; ता-सबार-उन सबके; आगे-समक्ष; सब-सब; वृत्तान्त–वृत्तान्त; कहिल-कहा।

अनुवाद

फलतः उस वृद्ध ब्राह्मण ने एक दिन अपने सारे सम्बन्धियों तथा मित्रों की सभा बुलाई और उसने उन सबको गोपाल के समक्ष हुई पूरी घटना बताई।

शुनि' सब गोष्ठी तार करे हाहा-कार ।

'ऐछे बात् मुखे तुमि ना आनिबे आर' ॥ 38॥

शुनि'–सुनकर; सब-सब; गोष्ठी सम्बन्धी और मित्र; तार–वृद्ध ब्राह्मण को; करे-करते; हाहा-कार-निराशा से हाहाकार; ऐछे-ऐसा; बात् प्रस्ताव; मुखे-मुख में; तुमि-तुम्हें; ना-नहीं; आनिबे-लाना चाहिए; आर–दोबारा, पुनः।

अनुवाद

जब परिवार वालों ने वृद्ध ब्राह्मण का वृत्तान्त सुना, तो वे निराशा प्रकट करते हुए हाहाकार करने लगे। उन सबने यही अनुरोध किया कि वह फिर ऐसा प्रस्ताव न रखे।

नीचे कन्या दिले कुल याइबेक नाश ।

'शुनिञा सकल लोक करिबे उपहास' ॥ 39॥

नीचे-निम्न कुल में; कन्या-कन्या; दिले–यदि देते हो; कुल-कुल की मर्यादा; याइबेक-नष्ट हो जायेगी; नाश-नाश; शुनिञा-सुनकर; सकल-सभी; लोक-मित्र; करिबे-करेंगे; उपहास-उपहास।

अनुवाद

सबने एक स्वर से कहा, "यदि तुम अपनी कन्या निम्न परिवार में देते हो, तो तुम्हारी कुलीनता जाती रहेगी। जब लोग इसे सुनेंगे, तो वे तुम्हारा उपहास करेंगे।"

विप्र बले,—"तीर्थ-वाक्य केमने करि आन ।

ये हउक्, से हउक, आमि दिब कन्या-दान" ॥40॥

विप्र बले-ब्राह्मण बोलता है; तीर्थ-वाक्य-तीर्थस्थान पर दिया वचन; केमने-कैसे; करि–करें; आन–अन्यथा; ये हउक्-जो भी हो; से हउक-होने दो; आमि-मैं; दिब-दूँगा; कन्या-दान-कन्या दान।

अनुवाद

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा, "तीर्थयात्रा के समय पवित्र स्थान में दिया गया वचन मैं कैसे मिटा सकता हूँ? चाहे जो भी हो, मुझे उसे ही कन्यादान करना चाहिए।"

ज्ञाति लोक कहे,—'मोरा तोमाके छाड़िब' ।

स्त्री-पुत्र कहे,—'विष खाइया मरिब' ॥41॥

ज्ञाति लोक-सम्बन्धी जन; कहे-कहा; मोरा-हम सब; तोमाके–तुम्हें; छाड़िब-त्याग देंगे; स्त्री-पत्नी; पुत्र-पुत्र; कहे-कहा; विष-विष; खाइया-पीकर; मरिब-हम मर जायेंगे।

अनुवाद

सम्बन्धियों ने एकजुट होकर कहा, "यदि तुम अपनी कन्या उस लड़के को दोगे, तो हम तुमसे अपने सारे सम्बन्ध तोड़ देंगे।" उसकी स्त्री तथा पुत्रों ने घोषित किया, "यदि ऐसा होता है, तो हम सभी विष खाकर मर जायेंगे।"

विप्र बले,—"साक्षी बोलाञा करिबेक न्याय ।

जिति' कन्या लबे, मोर व्यर्थ धर्म हय" ॥42॥

विप्र बले-ब्राह्मण कहता है; साक्षी–एक साक्षी; बोलाञा–बुलाकर; करिबेक-होगा; न्याय-न्याय; जिति–जीतकर; कन्या-कन्या; लबे–वह ले लेगा; मोर-मेरा; व्यर्थ-व्यर्थ; धर्म-धर्म; हय-होगा।

अनुवाद

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा, "यदि मैं अपनी कन्या उस तरुण ब्राह्मण को नहीं देता, तो वह श्री गोपालजी को साक्षी के रूप में बुलायेगा। इस तरह वह मेरी कन्या को बलपूर्वक ले जायेगा और उस दशा में मेरा धर्म नष्ट हो जायेगा।"

पुत्र बले,—"प्रतिमा साक्षी, सेह दूर देशे ।

के तोमार साक्षी दिबे, चिन्ता कर किसे" ॥43॥

पुत्र बले-उसका पुत्र कहता है; प्रतिमा-अर्चाविग्रह; साक्षी–साक्षी; सेह-वह भी; दूर-दूर; देशे-देश में; के-कौन; तोमार तुम्हारी; साक्षी–साक्षी; दिबे-देगा; चिन्ता-चिन्ता; कर-तुम करते हो; किसे-क्यों।

अनुवाद

उसके पुत्र ने उत्तर दिया, "भले ही विग्रह साक्षी हों किन्तु वे दूर देश में हैं। भला वे आपके विरुद्ध साक्षी देने किस तरह आ सकते हैं? आप इसके विषय में इतने चिन्तित क्यों हैं?"

नाहि कहि—ना कहिओ ए मिथ्या-वचन ।

सबे कहिबे—'मोर किछु नाहिक स्मरण' ॥44॥

नाहि कहि-मैंने नहीं कहा; ना कहिओ-न कहो; ए-यह; मिथ्या-वचन-झूठी बात; सबे–केवल; कहिबे-तुम कहना; मोर-मुझे; किछु-कुछ; नाहिक-नहीं; स्मरण-याद है।

अनुवाद

"आपको एकदम यह नहीं कहना है कि आपने ऐसी बात नहीं कही थी। ऐसी झूठी बात कहने की आवश्यकता नहीं है। आप केवल इतना ही कहिये कि आपको स्मरण नहीं है कि आपने क्या कहा था।"

तुमि यदि कह,—'आमि किछुड़ ना जानि' ।

तबे आमि न्याय करि' ब्राह्मणेरे जिनि ॥45॥

तुमि-आप; यदि-यदि; कह–कहते हैं; आमि किछुइ ना जानि–मुझे कुछ नहीं याद है; तबे-तब; आमि-मैं; न्याय करि'तर्क करके; ब्राह्मणेरे युवा ब्राह्मण; जिनि-जीत जाऊँगा॥

अनुवाद

"यदि आप केवल इतना ही कहें, "मुझे स्मरण नहीं है, तो बाकी मैं निपट लूँगा। मैं तर्क द्वारा उस तरुण ब्राह्मण को हरा दूँगा।"

तात्पर्य

वृद्ध ब्राह्मण का पुत्र नास्तिक था और रघुनाथ-स्मृति का अनुयायी था। वह रुपये-पैसे के मामले में दक्ष था, किन्तु था पहले दर्जे का मूर्ख। फलतः वह विग्रह की दिव्यता पर विश्वास नहीं करता था, न ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में उसे कोई श्रद्धा थी। फलतः एक निपट मूर्तिपूजक की तरह वह भगवान् के रूप को पत्थर या लकड़ी का बना हुआ समझ रहा था। इस तरह उसने अपने पिता को आश्वस्त किया कि साक्षी मात्र पत्थर का विग्रह था, जो बोलने में असमर्थ था। इसके अतिरिक्त उसने अपने पिता को यह भी विश्वास दिलाया कि विग्रह दूर देश में है, फलतः वह साक्षी देने नहीं आ सकता। संक्षेप में वह कह रहा था, "चिन्ता न करें। आपको सफेद झूठ नहीं बोलना है, अपितु कूटनीतिज्ञ की भाँति कहना है, जैसाकि युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य से कहा था-अश्वत्थामा हत इति गजः। इस सिद्धान्त का पालन करते हुए आप केवल इतना ही कहें कि मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है और यह तरुण ब्राह्मण जो कुछ कह रहा है, मैं इससे पूर्णतः अनजान हूँ। यदि आप इस प्रकार बोलें तो फिर मैं जानता हूँ कि किस तरह तर्क करके शब्दाडम्बर से उसे हराया जाये। इस तरह आप उसे कन्यादान करने से बच सकेंगे और हमारी कुलीनता बनी रहेगी। आपको चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

एत शुनि' विप्रेर चिन्तित हैल मन ।

एकान्त-भावे चिन्ते विप्र गोपाल-चरण ॥46॥

एत शुनि'–यह सुनकर; विप्रेर–वृद्ध ब्राह्मण; चिन्तित–चिन्तित; हैल-हो गया; मन-मन; एकान्त-भावे-एकान्त भाव में; चिन्ते-सोचता है; विप्र-ब्राह्मण; गोपाल-चरण-श्री गोपालजी के चरणकमल के।

अनुवाद

जब वृद्ध ब्राह्मण ने यह सुना, तो उसका मन क्षुब्ध हो उठा। असहाय अवस्था में उसने अपना ध्यान गोपाल के चरणकमलों पर एकाग्र किया।

‘मोर धर्म रक्षा पाय, ना मरे निज-जन ।

दुइ रक्षा कर, गोपाल, लैनु शरण’ ॥47॥

मोर-मेरा; धर्म-धर्म; रक्षा पाय-रहे; ना-नहीं; मरे–मरें; निज-जन-मेरे अपने सम्बन्धी; दुइ-दोनों; रक्षा कर-कृपया रक्षा करो; गोपाल–मेरे भगवान् गोपाल; लैनु-मैंने ले ली है; शरण-आपके चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

वृद्ध ब्राह्मण ने विनती की, “हे प्रभु गोपाल! मैंने आप के चरणकमलों की शरण ली है, अतएव मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि मेरे धर्म की रक्षा करें और साथ ही मेरे आत्मीय जनों को मरने से बचायें।”

एइ-मत विप्र चित्ते चिन्तिते लागिल ।

आर दिन लघु-विप्र ताँर घरे आइल ॥48॥

एइ-मत-इस प्रकार; विप्र-वृद्ध ब्राह्मण; चित्ते–मन में; चिन्तिते-चिन्ता करने; लागिल-लगा; आर दिन-अगले दिन; लघु-विप्र-युवा ब्राह्मण; ताँर-उसके; घरे–घर; आइल-आ गया।

अनुवाद

अगले दिन जब वह ब्राह्मण इस बारे में गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहा था, तभी वह तरुण ब्राह्मण उसके घर आया।

आसिञा परम-भक्त्ये नमस्कार करि’ ।

विनय करिञा कहे कर दुइ युड़ि’ ॥49॥

आसिञा-आकर; परम-भक्त्ये-अत्यन्त समर्पणपूर्वक; नमस्कार करि’-नमस्कार करके; विनय करिञा–विनयपूर्वक; कहे-कहता है; कर-हाथ; दुइ-दोनों; युड़ि’-जोड़कर।

अनुवाद

तरुण ब्राह्मण ने उसके पास आकर सादर प्रणाम किया। फिर अत्यन्त विनीत भाव से हाथ जोड़कर वह इस प्रकार बोला।

‘तुमि मोरे कन्या दिते कर्याछ अङ्गीकार।

एबे किछु नाहि कह, कि तोमार विचार’ ॥50॥

तुमि-आपने; मोरे-मुझे; कन्या-अपनी पुत्री; दिते-दान देने के लिए; कर्याछ-की है; अङ्गीकार–प्रतिज्ञा; एबे-अब; किछु-कुछ; नाहि-नहीं; कह–आप कहते हो; कि-क्या; तोमार-आपका; विचार–निर्णय।

अनुवाद

“आपने मुझे अपनी कन्या दान करने का वचन दिया है। किन्तु अब आप कुछ नहीं बोल रहे हैं। आपने क्या निर्णय लिया है?”

एत शुनि’ सेइ विप्र रहे मौन धरि’।

ताँर पुत्र मारिते आइल हाते ठेङ्गा करि’ ॥51॥

एत शुनि’-यह सुनकर; सेइ विप्र-वृद्ध ब्राह्मण; रहे-रहता है; मौन धरि’-चुप रहता है; ताँर-उसका; पुत्र-पुत्र; मारिते-मारने के लिए; आइल-बाहर आ गया; हाते-हाथ में; ठेङ्गा-डंडा; करि’–लेकर।

अनुवाद

तरुण ब्राह्मण द्वारा ऐसा कहे जाने पर वृद्ध ब्राह्मण मौन रहा। इस अवसर का लाभ उठाकर वृद्ध ब्राह्मण का पुत्र उस तरुण ब्राह्मण को मारने के लिए लाठी लेकर तुरन्त बाहर निकल आया।

‘आरे अधम! मोर भग्नी चाह विवाहिते।

वामन हञा चाँद येन चाह त’ धरिते’ ॥52॥

आरे अधम–अरे नीच; मोर-मेरी; भग्नी-बहन से; चाह-तुम चाहते हो; विवाहिते-विवाह करना; वामन–बौना; हञा-होकर; चाँद-चाँद; येन-जैसे; चाह-तुम चाहते हो; त’–निश्चित रूप से; धरिते-पकड़ना।

अनुवाद

पुत्र ने कहा, "अरे नीच! तू मेरी बहन के साथ इस प्रकार विवाह करना चाहता है, जैसे कोई बौना व्यक्ति चाँद को पकड़ना चाहता हो!"

ठेञा देखि' सेइ विप्र पलाञा गेल ।

आर दिन ग्रामेर लोक एकत्र करिल ॥53॥

ठेञा देखि'-हाथ में छड़ी देखकर; सेइ विप्र-युवा ब्राह्मण; पलाञा गेलभाग गया; आर दिन–अगले दिन; ग्रामेर लोक-गाँव के निवासी; एकत्र करिल-इकट्ठे कर लाया।

अनुवाद

उसके हाथ में लाठी देखकर बेचारा तरुण ब्राह्मण भाग गया। किन्तु अगले दिन उसने गाँव के सारे लोगों को एकत्र किया।

सब लोक बड़-विप्रे डाकिया आनिल ।

तबे सेइ लघु-विप्र कहिते लागिल ॥54॥

सब लोक-गाँव के सभी निवासी; बड़-विप्रे-वृद्ध ब्राह्मण; डाकिया–बुलाकर; आनिल-लाये; तबे-तब; सेइ लघु-विप्र-वह युवा ब्राह्मण; कहिते लागिल-कहने लगा।

अनुवाद

तब गाँव के सभी लोगों ने वृद्ध ब्राह्मण को सभा-स्थल पर बुलाया। तत्पश्चात् तरुण ब्राह्मण ने उनके समक्ष कहना शुरू किया।

'इँह मोरे कन्या दिते कर्याछे अङ्गीकार ।

एबे ये ना देन, पुछ इँहार व्यवहार' ॥55॥

इँह-इस भद्र पुरुष ने; मोरे-मुझे; कन्या-अपनी पुत्री; दिते-दान करने के लिए; कर्याछे–दिया है; अङ्गीकार-वचन; एबे-अब; ये-वास्तव में; ना-नहीं; देन-देता है; पुछ-कृपया पूछिए; इँहार-इसका; व्यवहार–व्यवहार।

अनुवाद

"इन महाशय ने अपनी कन्या मुझे देने का वचन दिया था, किन्तु अब ये अपना वचन नहीं निभा रहे हैं। कृपया इनसे इनके इस व्यवहार के विषय में पूछे।"

तबे सेइ विप्रेरे पुछिल सर्व-जन ।

'कन्या केने ना देह, यदि दियाछ वचन' ॥56॥

तबे-तब; सेइ-उस; विप्रेरे–ब्राह्मण ने; पुछिल–पूछा; सर्व-जन-सब लोगों से; कन्या-कन्या; केने-क्यों; ना देह-तुम दान नहीं देते हो; यदि-यदि; दियाछ–दिया है; वचन-वचन।

अनुवाद

वहाँ पर एकत्रित सभी लोगों ने वृद्ध ब्राह्मण से पूछा, "यदि पहले आप कन्यादान का वचन दे चुके हैं तो अपना वादा पूरा क्यों नहीं कर रहे हैं? आपने वचन दे रखा है।"

विप्र कहे,—'शुन, लोक, मोर निवेदन ।

कबे कि बलियाछि, मोर नाहिक स्मरण' ॥57॥

विप्र कहे-वृद्ध ब्राह्मण ने उत्तर दिया; शुन-कृपया सुनो; लोक-सभी लोग; मोर-मेरा; निवेदन–निवेदन; कब-कब; कि-क्या; बलियाछि-मैंने कहा है; मोर-मेरा; नाहिक-नहीं है; स्मरण-स्मरण।

अनुवाद

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा, "हे मित्रों, कृपया मेरा निवेदन सुनें। मुझे ठीक से स्मरण नहीं है कि मैंने ऐसा कोई वचन दिया था।"

एत शुनि' ताँर पुत्र वाक्य-च्छल पाञा ।

प्रगल्भ हइया कहे सम्मुखे आसिञा ॥58॥

एत शुनि'-यह सुनकर; ताँर पुत्र-उसका पुत्र; वाक्य-च्छल-शब्द जाल; पाञा-अवसर पाकर; प्रगल्भ-धृष्टतापूर्वक; हइया–होकर; कहे-कहता है; सम्मुखे-सामने; आसिञा-आकर।

अनुवाद

जब वृद्ध ब्राह्मण के पुत्र ने यह सुना, तो उसे शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने का अवसर मिल गया। वह सभा के समक्ष अत्यन्त धृष्टतापूर्वक खड़ा हो गया और इस प्रकार बोला।

'तीर्थ-यात्राय पितार सङ्गे छिल बहु धन ।

धन देखि एइ दुष्टेर लैते हैल मन' ॥59॥

तीर्थ-यात्राय-जब तीर्थ स्थानों पर जा रहे थे; पितार–मेरा पिता; सङ्गे–के साथ; छिल–था; बहु-बहुत; धन-धन; धन-धन; देखि-देखकर; एइ–यह; दुष्टेर-दुष्ट; लैते-लेना; हैल-था; मन-इरादा।

अनुवाद

"जगह-जगह की तीर्थयात्रा करते समय मेरे पिता अपने साथ प्रचुर धन ले गये थे। इस धूर्त ने उस धन को ले लेने की ठान ली।"

आर केह सङ्गे नाहि, एइ सङ्गे एकल ।

धुतुरा खाओयाञा बापे करिल पागल ॥ 60॥

आर-और कोई; केह-अन्य; सङ्गे–के साथ; नाहि-नहीं था; एइ–यह ब्राह्मण; सङ्गे–के साथ; एकल-अकेला; धुतुरा-एक नशा; खाओयाञा-खिलाकर; बापे मेरे पिता को; करिल–किया; पागल-पागल।

अनुवाद

"मेरे पिता के साथ इसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था। इस धूर्त ने मेरे पिता को धतूरा खिलाकर पागल बना दिया।"

सब धन लञा कहे—'चोरे लइल धन' ।

'कन्या दिते चाहियाछे'—उठाइल वचन ॥ 61॥

सब-सब; धन-धन; लञा-लेकर; कहे-कहता है; चोरे–एक चोर ने; लइल-लिया; धन-सारा धन; कन्या-कन्या; दिते-दान देने के लिए; चाहियाछे-वचन दिया है; उठाइल-उठाया है; वचन-वचन।

अनुवाद

"इस धूर्त ने मेरे पिता का सारा धन लेकर यह कह दिया कि उसे कोई चोर ले गया। अब वह यह दावा कर रहा है कि मेरे पिता ने उसे अपनी कन्या दान करने का वचन दिया है।"

तोमरा सकल लोक करह विचारे ।

'मोर पितार कन्या दिते योग्य कि इहारे' ॥62॥

तोमरा-आप; सकल-सब; लोक-लोग; करह-करो; विचारे-विचार; मोर-मेरे; पितार-पिता की; कन्या-पुत्री; दिते-दान देना; योग्य-योग्य; कि-क्या है; इहारे-उसको।

अनुवाद

"यहाँ पर एकत्र आप सभी लोग सजन हैं। कृपया यह विचार करें क्या इस दरिद्र ब्राह्मण को मेरे पिता का कन्यादान उचित होगा?"

एत शुनि' लोकेर मने हइल संशय ।

'सम्भवे,—धन-लोभे लोक छाड़े धर्म-भय' ॥ 63 ॥

एत शुनि'-यह सब सुनकर; लोकेर-सभी लोगों के मने-मन में; हइल-हो गया; संशय-संशय; सम्भवे-सम्भव; धन-लोभे-धन के लोभ से; लोक-कोई पुरुष; छाड़े-छोड़ देता है; धर्म-भय-धर्म का भय।

अनुवाद

ये सब तर्क सुनकर वहाँ पर एकत्र सारे लोग कुछ कुछ शंकित हो गये। उन्होंने सोचा कि यह सम्भव है कि धन के लोभ से कोई अपना धर्म छोड़ दे।

तबे छोट-विप्र कहे, "शुन, महाजन ।

न्याय जिनिबारे कहे असत्य-वचन" ॥ 64॥

तबे-उस समय; छोट-विप्र-युवा ब्राह्मण; कहे-कहता है; शुन-कृपया सुनो; महा-जन-सभी भद्र पुरुषों; न्याय–तर्क में; जिनिबारे-जीतने के लिए; कहे-वह कहता है; असत्य-वचन-असत्य वचन।

अनुवाद

उस समय तरुण ब्राह्मण ने कहा, "हे सज्जनों, कृपया मेरी बात सुनें। तर्क में जीतने के लिए ही यह व्यक्ति झूठ बोल रहा है।"

एइ विप्र मोर सेवाय तुष्ट यबे हैला ।

'तोरे आमि कन्या दिब' आपने कहिला ॥65॥

एइ विप्र-यह ब्राह्मण; मोर-मेरी; सेवाय-सेवा से; तुष्ट-पूर्णतया तुष्ट; यबे-जब; हैला-हो गया; तोरे-तुम्हें; आमि-मैं; कन्या-पुत्री; दिब-हूँगा; आपने-अपनी इच्छा से; कहिला–कहा, प्रण किया।

अनुवाद

मेरी सेवा से अत्यधिक सन्तुष्ट होकर इस ब्राह्मण ने स्वेच्छा से मुझसे कहा कि, 'मैं तुम्हें अपनी कन्या दान करने का वचन देता हूँ।'

तबे मुञि निषेधिनु,—शुन, द्विज-वर ।

तोमार कन्यार योग्य नहि मुञि वर ॥ 66 ॥

तबे-उस समय; मुञि-मैंने; निषेधिनु-मना किया; शुन-सुनो; द्विज-वर-हे श्रेष्ठ ब्राह्मण; तोमार-तुम्हारी; कन्यार-पुत्री के लिए; योग्य-योग्य; नहि-नहीं; मुत्रि-मैं; वर-वर।

अनुवाद

उस समय मैंने इनसे यह कहते हुए ऐसा करने से मना किया, "हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ, मैं आपकी पुत्री के लिए योग्य वर नहीं हैं।"

काहाँ तुमि पण्डित, धनी, परम कुलीन ।

काहाँ मुञि दरिद्र, मूर्ख, नीच, कुल-हीन ॥ 67॥

काहाँ–कहाँ; तुमि-तुम; पण्डित–विद्वान पण्डित; धनी–धनवान; परम-प्रथम श्रेणी का; कुलीन–कुलीन; काहाँ–कहाँ, मुञि-मैं; दरिद्र-निर्धन; मूर्ख-अनपढ़; नीच-नीच, पतित; कुल-हीन–कुलीनताहीन।

अनुवाद

"कहाँ आप पंडित, धनी और उच्च कुली के व्यक्ति! कहाँ मैं एक गरीब, अशिक्षित तथा कुलहीन व्यक्ति।"

तबु एइ विप्र मोरे कहे बार बार ।

तोरे कन्या दिलुँ, तुमि करह स्वीकार ॥ 68॥

तबु–फिर भी; एइ–यह; विप्र-ब्राह्मण; मोरे-मुझे; कहे-कहता है; बार बार-बार बार; तोरे-तुम्हें; कन्या-अपनी पुत्री; दिलुँ–मैंने दान में दी है; तुमि-तुम; करह-करो; स्वीकार–स्वीकार।

अनुवाद

"फिर भी इस ब्राह्मण ने हठ किया। इन्होंने बारम्बार मुझसे यह कहते हुए प्रस्ताव स्वीकार करने को कहा, 'मैंने तुम्हें अपनी कन्या दे दी। तुम उसे स्वीकार करो।"

तबे आमि कहिलाँ—शुन, महा-मति ।

तोमार स्त्री-पुत्र-ज्ञातिर ना हबे सम्मति ॥ 69॥

तबे-उस समय; आमि–मैंने; कहिलाँ–कहा; शुन–कृपया सुनो; महा-मति–हे बुद्धिमान ब्राह्मण; तोमार-आपके; स्त्री-पुत्र-पत्नी तथा पुत्र; ज्ञातिर–सम्बन्धी; ना हवे सम्मति सहमत नहीं होंगे।

अनुवाद

"तब मैंने कहा, 'कृपया मेरी बात सुनिये। आप विद्वान ब्राह्मण हैं। आपकी पत्नी, आपके मित्र तथा सम्बन्धी इस प्रस्ताव से कभी भी सहमत नहीं होंगे।"

कन्या दिते नारिबे, हबे असत्य-वचन ।

पुनरपि कहे विप्र करिया यतन ॥ 70 ॥

कन्या-पुत्री; दिते-देने में; नारिबे-सक्षम नहीं; हबे-होंगे; असत्य-वचन-झूठी बात; पुनरपि-फिर; कहे-वह कहता है; विप्र-ब्राह्मण; करिया यतन-जोर देकर।

अनुवाद

"मान्यवर, आप अपना वचन निभा नहीं पायेंगे। अतः आपका वचन भंग होगा।" फिर भी ये ब्राह्मण अपने वचन पर बारम्बार बल देते रहे।

कन्या तोरे दिलुँ, द्विधा ना करिह चिते ।

आत्म-कन्या दिब, केबा पारे निषेधिते ॥71॥

कन्या-पुत्री; तोरे-तुम्हें; दिलुँ-मैंने दी है; द्विधा-संशय; ना-न; करिह-करो; चिते-अपने मन में; आत्म-कन्या-मेरी अपनी पुत्री; दिब-मैं तुम्हें दूँगा; केबा-कौन; पारे-कर सकता है; निषेधिते–मना।

अनुवाद

"मैंने तुम्हें कन्यादान दिया है। संकोच मत करो। वह मेरी पुत्री है और मैं उसे तुम्हें दूँगा। भला मुझे कौन मना कर सकता है?"

तबे आमि कहिलाँ दृढ़ करि' मन ।

गोपालेर आगे कह ए-सत्य वचन ॥72॥

तबे-उस समय; आमि-मैंने; कहिलाँ–कहा; दृढ़ करि' मन-मन को दृढ़ करके; गोपालेर आगे-गोपाल अर्चाविग्रह के समक्ष; कह-कहो; ए-सत्य वचन-यह सच्ची बात।

अनुवाद

"उस समय मैंने अपना मन दृढ़ किया और ब्राह्मण से विनती की कि वे गोपाल-विग्रह के समक्ष वचन दें।"

तबे इँहो गोपालेर आगेते कहिल ।

तुमि जान, एइ विप्रे कन्या आमि दिल ॥73॥

तबे-तब; इँहो–यह महाशय; गोपालेर-गोपाल अर्चाविग्रह के; आगेते-सामने; कहिल–कहा; तुमि जान-मेरे प्रभु, कृपया जान लो; एइ विप्रे-इस युवा ब्राह्मण को; कन्या-अपनी पुत्री; आमि-मैंने; दिल–दी है।

अनुवाद

"तब इस महाशय ने गोपाल-विग्रह के समक्ष कहा, 'हे प्रभु, आप साक्षी हैं। मैंने अपनी कन्या इस ब्राह्मण को दान दे दी है।"

तबे आमि गोपालेरे साक्षी करिञा ।

कहिलाँ ताँर पदे मिनति करिञा ॥74॥

तबे-तब: आमि-मैंने; गोपालेरे-गोपाल के विग्रह को; साक्षी–साक्षी; करिञा-करके; कहिलाँ–कहा; ताँर पदे-उनके चरणकमलों पर; मिनति–विनय; करिञा-करके।

अनुवाद

"तब मैंने गोपाल-विग्रह को अपना साक्षी बनाकर उनके चरणकमलों में इस प्रकार निवेदन किया।"

यदि एइ विप्र मोरे ना दिबे कन्यादान ।

साक्षी बोलाइमु तोमाय, हइओ सावधान ॥75॥

यदि-यदि; एइ-यह; विप्र-ब्राह्मण; मोरे-मुझे; ना-नहीं; दिबे-देगा; कन्या-दान-कन्यादान; साक्षी बोलाइमु-मैं साक्षी के रूप में बुलाऊँगा; तोमाय-आपको; हुइओ सावधान-कृपया सावधान हो जाइये।

अनुवाद

"यदि बाद में ये ब्राह्मण अपनी कन्या मुझे देने में संकोच करेंगे, तो मैं आपको साक्षी के रूप में बुलाऊँगा। कृपया इसे सावधान होकर सुनें।"

एइ वाक्ये साक्षी मोर आछे महाजन ।

याँर वाक्य सत्य करि माने त्रिभुवन ॥76 ॥

एइ वाक्ये-इस कथन में; साक्षी–साक्षी; मोर-मेरे; आछे-हैं; महाजन–एक महान् व्यक्ति; याँर–जिनके; वाक्य-शब्द; सत्य-सत्य; करि–मान करके; माने स्वीकार करता है; त्रिभुवन–तीनों भुवन।

अनुवाद

“इस तरह इस घटना में मैंने एक महापुरुष का आवाहन किया है। मैंने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को मेरा साक्षी बनने को कहा है। भगवान् के वचनों को तीनों लोक सत्य मानते हैं।”

तात्पर्य

यद्यपि युवा ब्राह्मण ने अपने आपको कुलनताहीन तथा अशिक्षित साधारण व्यक्ति बतलाया, किन्तु फिर भी उसमें एक अच्छा गुण था-वह यह कि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को सर्वोच्च अधिकारी समझता था, वह भगवान् कृष्ण के शब्दों को बिना संकोच के स्वीकार करता था और उसे भगवान् पर दृढ़ विश्वास था। महाभागवत प्रह्लाद महाराज के अनुसार ऐसे दृढ़ तथा श्रद्धालु भगवद्भक्त को परम विद्वान मानना चाहिए-तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् (श्रीमद्-भागवत 7.5.24)। जिस शुद्ध भक्त को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शब्दों में दृढ़ आस्था है, उसे ही संसार का सबसे बड़ा विद्वान, सर्वोच्च कुलीन तथा सर्वाधिक धनी मानना चाहिए। ऐसे भक्त में सारे सद्-गुण स्वतः पाये जाते हैं। हम लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचार कार्य में भगवान् के दासानुदास के रूप में भगवान् कृष्ण तथा उनकी परम्परा के शब्दों में पूर्ण विश्वास रखते हैं। इस तरह हम कृष्ण के निर्देशों का सारे विश्व में प्रचार करते हैं। यद्यपि हम न तो धनी हैं, न ही अधिक विद्वान और न कुलीन हैं, फिर भी इस आन्दोलन का स्वागत हो रहा है और यह सारे विश्व में बड़ी ही सुगमतापूर्वक प्रचार हो रहा है। यद्यपि हम अत्यन्त निर्धन हैं और हमारे पास आय का कोई व्यवसायिक साधन नहीं है, फिर भी जब भी हमें धन की आवश्यकता होती है, कृष्ण प्रदान करते हैं। जब हमें व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, तो कृष्ण प्रदान करते हैं। इसीलिए भगवद्गीता (6.22) में कहा गया है-यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः। वास्तव में यदि हमें भगवान् कृष्ण की कृपा प्राप्त हो जाये, तो फिर हमें और कुछ भी नहीं चाहिए। हमें निश्चय ही उन वस्तुओं की आवश्यकता नहीं रह जाती, जिन्हें संसारी व्यक्ति भौतिक सम्पत्ति मानते हैं।

तबे बड़-विप्र कहे, “एइ सत्य कथा ।

गोपाल यदि साक्षी देन, आपने आसि’ एथा ॥77॥

तबे कन्या दिब आमि, जानिह निश्चय” ।

ताँर पुत्र कहे,—‘एइ भाल बात हय’ ॥78॥

तबे-उस समय; बड़-विप्र-वृद्ध ब्राह्मण; कहे-कहता है; एड सत्य कथा-यह सत्य है; गोपाल–गोपाल अर्चाविग्रह; यदि-यदि; साक्षी–साक्षी; देन-देती है; आपने-स्वयं; आसि’-आकर; एथा-यहाँ; तबे-तब; कन्या-पुत्री;

दिब-दान में अवश्य देंगा; आमि-मैं; जानिह–आप सब जान लें; निश्चय-निश्चित रूप से; ताँर-उसका; पुत्र-पुत्र; कहे-कहता है; एइ–यह; भाल–अच्छी; बात-बात; हय है।

अनुवाद

इस अवसर का लाभ उठाते हुए वृद्ध ब्राह्मण ने तुरन्त पुष्टि की कि यह वास्तव में सच है। उसने कहा, "यदि स्वयं गोपाल साक्षी के रूप मेंयहाँ तक चलकर आयें, तो मैं इस तरुण ब्राह्मण को अपनी कन्या दान दे दूँगा।" उस वृद्ध ब्राह्मण के पुत्र ने तुरन्त ही यह कहकर पुष्टि की, "हाँ, यह बहुत ही उत्तम प्रस्ताव है।"

तात्पर्य

सारे जीवों के हृदय में परमात्मा रूप में स्थित भगवान् कृष्ण जन-जन की इच्छा, याचना तथा प्रार्थना को जानने वाले हैं। भले ही ये सारी बातें परस्पर विरोधी लगें, किन्तु भगवान् ऐसी स्थिति बनाते हैं कि जिसमें हर कोई प्रसन्न रहे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है वृद्ध ब्राह्मण तथा तरुण ब्राह्मण के बीच हुआ विवाह का समझौता। निस्सन्देह वृद्ध ब्राह्मण उस तरुण ब्राह्मण को अपनी कन्या देना चाहता था, किन्तु उसका पुत्र तथा उसके सम्बन्धी इसमें बाधक बन रहे थे। वृद्ध ब्राह्मण ने विचार किया कि इस स्थिति से किस तरह उबरकर उसी तरुण ब्राह्मण को कन्यादान किया जाये। किन्तु उसका पुत्र नास्तिक तथा अत्यन्त चालाक व्यक्ति था और वह किसी प्रकार इस विवाह को रोकना चाहता था। पिता तथा पुत्र परस्पर विरोधी ढंग से सोच रहे थे, फिर भी कृष्ण ने ऐसी स्थिति ला दी कि दोनों इस पर सहमत हो गये कि यदि गोपाल-विग्रह आकर साक्षी दें, तो तरुण ब्राह्मण को कन्या दे दी जायेगी।

बड़-विप्रेर मने,—'कृष्ण बड़ दयावान्।

अवश्य मोर वाक्य तेंहो करिबे प्रमाण' ॥79॥

बड़-विप्रेर मने-वृद्ध ब्राह्मण के मन में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; बड़-अत्यन्त; दयावान् दयावान; अवश्य–अवश्य; मोर-मेरा; वाक्य-कथन; तेंहो-वे; करिबे-करेंगे; प्रमाण–सत्य।

अनुवाद

उस वृद्ध ब्राह्मण ने सोचा, "चूँकि भगवान् कृष्ण अत्यन्त दयालु हैं, वे निश्चय ही मेरे कथन को प्रमाणित करने हेतु आयेंगे।"

पुत्रेर मने,—‘प्रतिमा ना आसिबे साक्षी दिते’ ।

एइ बुद्ध्ये दुइ-जन हइला सम्मते ॥80॥

पुत्रेर मने-पुत्र के मन में; प्रतिमा–मूर्ति; ना-नहीं; आसिबे-आयेगी; साक्षी दिते-साक्षी देने; एइ–इस; बुद्ध्ये-विचार में; दुइ-जन-पिता और पुत्र दोनों; हइला सम्मते-सहमत थे।

अनुवाद

नास्तिक पुत्र ने सोचा, “गोपाल के लिए यह सम्भव नहीं कि वे आकर साक्षी दें।” ऐसा सोचकर पिता तथा पुत्र दोनों सहमत हो गये।

छोट-विप्र बले,—‘पत्र करह लिखन ।

पुनः येन नाहि चले ए-सब वचन’ ॥81॥

छोट-विप्र-युवा ब्राह्मण; बले-कहता है; पत्र-पत्र; करह-करो; लिखन-लिखना; पुनःपुनः; येन–ताकि; नाहि-नहीं; चले-बदले; ए-सब-ये सब; वचन-कथन।

अनुवाद

तरुण विप्र ने अवसर पाकर कहा, “कृपया यह बात एक कागज पर स्पष्ट रूप से लिख दें, जिससे फिर आप अपने वचनों को बदल न सकें।”

तबे सब लोक मेलि’ पत्र त’ लिखिल ।

दुँहार सम्मति लञा मध्यस्थ राखिल ॥82 ॥

तबे-तब; सब लोक-सब लोग; मेलि’–इकठे हुए; पत्र-पत्ते पर; त’–सचमुच; लिखिल-लिख लिया; दुँहार–उन दोनों का; सम्मति-करारनामा (अनुबन्ध); लञा-लेकर; मध्य-स्थ–मध्यस्थ; राखिल हो गये।

अनुवाद

वहाँ पर एकत्र सारे लोगों ने यह बात कागज पर स्पष्ट रूप से अंकित करा दी और उन दोनों के हस्ताक्षर लेकर वे मध्यस्थ बन गये।

तबे छोट-विप्र कहे,—शुन, सर्व-जन।

एइ विप्र—सत्य-वाक्य, धर्म-परायण ॥83॥

तबे-उस समय; छोट-विप्र-युवा ब्राह्मण; कहे-कहता है; शुन-कृपया सुनो; सर्व-जन-हे सभी उपस्थित भद्र पुरुषों; एइ विप्र-ये वृद्ध ब्राह्मण; सत्य-वाक्य-सदा सत्यवादी; धर्म-परायण-धर्म परायण हैं।

अनुवाद

तब तरुण ब्राह्मण ने कहा, "यहाँ पर एकत्र सारे लोग कृपया मेरी बात सुनेंगे? यह वृद्ध ब्राह्मण निस्सन्देह सत्यवादी हैं और धर्म का पालन करने वाले हैं।"

स्व-वाक्य छाड़िते इँहार नाहि कभु मन।

स्वजन-मृत्यु-भये कहे असत्य-वचन ॥84॥

स्व-वाक्य-अपना प्रण; छाड़िते-छोड़ना; इँहार-इस ब्राह्मण; नाहि-नहीं; कभु-किसी समय; मन–मन; स्व-जन-अपने सम्बन्धियों की; मृत्यु-भये-आत्महत्या के भय से; कहे-कहते हैं; असत्य-वचन-असत्य वचन।

अनुवाद

"वे अपना वचन भंग करना नहीं चाहते थे, किन्तु इस भय से कि उसके सम्बन्धी आत्महत्या न कर लें, सत्य के पथ से विचलित हो गये।"

इँहार पुण्ये कृष्णे आनि' साक्षी बोलाइब।

तबे एइ विप्रेर सत्य-प्रतिज्ञा राखिब ॥85॥

इँहार पुण्ये-इसकी पवित्रता से; कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; आनि'–लाकर; साक्षी–साक्षी; बोलाइब-मैं बुलाऊँगा; तबे-तब; एइ विप्रेर–इस ब्राह्मण का; सत्य-सत्य; प्रतिज्ञा–प्रण; राखिब-मैं रखूंगा (सत्य प्रमाणित करूँगा)।

अनुवाद

"मैं इस ब्राह्मण के पुण्य के बल पर भगवान् को साक्षी के रूप में बुलाऊँगा और इसके सत्य वचन की रक्षा करूँगा।"

एत शुनि' नास्तिक लोक उपहास करे।

केह बले, ईश्वर—दयालु, आसितेह पारे ॥86॥

एत शुनि'-यह सुनकर; नास्तिक-नास्तिक; लोक-लोग; उपहास-उपहास; करे-करते हैं; केह बले-कोई कहता है; ईश्वर-ईश्वर; दयालु–दयालु; आसितेह पारे-वे आ सकते हैं।

अनुवाद

उस तरुण विप्र के ऐसे दृढ़ वचन सुनकर उस सभा में उपस्थित कुछ। नास्तिक उसका उपहास करने लगे। किन्तु किसी एक ने कहा, "अन्ततः ईश्वर दयालु हैं और चाहें तो आ सकते हैं।"

तबे सेइ छोट-विप्र गेला वृन्दावन।

दण्डवत्करि' कहे सब विवरण ॥ 87॥

तबे-इसके बाद; सेइ-वह; छोट-विप्र-युवा ब्राह्मण; गेला–चला गया; वृन्दावन-वृन्दावन को; दण्डवत् करि'–दण्डवत् प्रणाम करने के बाद; कहे-कहता है; सब–सारा; विवरण–विवरण।

अनुवाद

सभा समाप्त होने पर वह तरुण ब्राह्मण वृन्दावन के लिए चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर सर्वप्रथम उसने विग्रह को सादर दंडवत् प्रणाम किया और फिर विस्तार से सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

"ब्रह्मण्य-देव तुमि बड़ दया-मय।

दुइ विप्रेर धर्म राख हञा सदय" ॥88॥

ब्रह्मण्य-देव-हे ब्रह्मण्य देव; तुमि-आप; बड़-बड़े; दया-मय-दयालु; दुइ-दोनों; विप्रेर-ब्राह्मणों के; धर्म-धर्म की; राख-रक्षा करो; हञा-होकर; स-दय-दयामय।

अनुवाद

उसने कहा, "हे प्रभु, आप ब्राह्मण संस्कृति के रक्षक हैं और आप अत्यन्त दयावान भी हैं। अतएव आप हम दोनों ब्राह्मणों के धर्म की रक्षा करके अपनी परम दया प्रदर्शित करें।"

कन्या पाब,—मोर मने इहा नाहि सुख ।

ब्राह्मणेर प्रतिज्ञा याय—एइ बड़ दुःख ॥89॥

कन्या पाब–मुझे कन्या मिल जायेगी; मोर–मेरे; मने-मन में; इहा-यह; नाहि-नहीं है; सुख–सुख, प्रसन्नता; ब्राह्मणेर-शुद्ध ब्राह्मण की प्रतिज्ञा–प्रतिज्ञा; याय-नष्ट हो जायेगी; एइ–यह; बड़-बड़े; दुःख-दुःख की बात है।

अनुवाद

"हे प्रभु, मैं उसकी कन्या को पत्नी रूप में पाकर सुखी बनने की बात नहीं सोच रहा। मैं तो यह सोच रहा हूँ कि उस ब्राह्मण ने अपना वचन तोड़ा है-यही बात मुझे अत्यधिक पीड़ा पहुँचा रही है।"

तात्पर्य

उस तरुण ब्राह्मण का लक्ष्य विवाह द्वारा वृद्ध ब्राह्मण की कन्या प्राप्त करके भौतिक सुख-भोग और इन्द्रियतृप्ति प्राप्त करना नहीं था। वह तरुण ब्राह्मण इस कारण भगवान् को साक्षी बनाने के उद्देश्य से वृन्दावन नहीं गया था। उसकी एकमात्र चिन्ता यही थी कि उस वृद्ध ब्राह्मण ने किसी बात के लिए वचन दिया था और यदि इस घटना में गोपाल साक्षी नहीं बनते, तो उस वृद्ध ब्राह्मण को आध्यात्मिक कलंक लगेगा। इसीलिए वह तरुण ब्राह्मण विग्रह का संरक्षण और सहायता चाह रहा था। इस तरह वह ब्राह्मण शुद्ध वैष्णव था और उसमें इन्द्रियतृप्ति की कोई इच्छा नहीं थी। वह तो केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उस वैष्णव भगवद्भक्त वृद्ध ब्राह्मण की सेवा करना चाहता था।

एत जानि' तुमि साक्षी देह, दया-मय ।

जानि' साक्षी नाहि देय, तार पाप हय ॥90॥

एत जानि'-यह जानकर; तुमि-आप; साक्षी–साक्षी; देह-कृपया दें; दया-मय-हे महा दयालु; जानि'–जानकर; साक्षी–साक्षी; नाहि देय नहीं देता है; तार-उसके लिए; पाप-पाप; हय-है।

अनुवाद

उस तरुण ब्राह्मण ने आगे कहा, "हे प्रभु, आप अत्यन्त कृपालु तथा सर्वज्ञ हैं। अतएव कृपया इस मामले में साक्षी बनें। जो व्यक्ति सही बातें जानते हुए भी साक्षी नहीं बनता, वह पापकर्म का भागी होता है।"

तात्पर्य

भक्त तथा भगवान् के आपसी व्यवहार अत्यन्त सरल होते हैं। तरुण ब्राह्मण ने भगवान् से कहा, "आप हर बात को जानने वाले हैं, किन्तु यदि आप साक्षी नहीं बनेंगे, तो आप को पाप लगेगा।" किन्तु ऐसे पापकर्मों में भगवान् के लिप्त होने की कोई सम्भावना नहीं है। यद्यपि शुद्ध भक्त भगवान् के विषय में सब कुछ जानता है, किन्तु वह उनसे उसी तरह बातें कर सकता है जैसे किसी सामान्य मनुष्य से बातें की जाती हैं। यद्यपि भगवान् तथा उनके भक्त का परस्पर व्यवहार अत्यन्त स्पष्ट तथा सरल होता है, तथापि उसमें औपचारिकता रहती है। भगवान् तथा भक्त के बीच सम्बन्ध होने के कारण ये सारी बातें सम्भव होती हैं।

कृष्ण कहे,—विप्र, तुमि याह स्व-भवने ।

सभा करि' मोरे तुमि करिह स्मरणे ॥91॥

कृष्ण कहे-भगवान् कृष्ण कहते हैं; विप्र-मेरे प्रिय ब्राह्मण; तुमि-तुम; याह-लौट जाओ; स्व-भवने-अपने घर को; सभा करि'-सभी लोगों की सभा बुलाकर; मोरे-मुझे; तुमि-तुम; करिह-बस करो; स्मरणे-याद।

अनुवाद

कृष्ण ने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण, तुम अपने घर लौट जाओ और वहाँ सारे लोगों को बुलाकर एक सभा करो। उस सभा में तुम मेरा स्मरण मात्र करना।"

आविर्भाव हञा आमि ताहाँ साक्षी दिब ।

तबे दुइ विप्रेर सत्य प्रतिज्ञा राखिब ॥92॥

आविर्भाव-प्रकट; हञा–होकर; आमि-मैं; ताहाँ-वहाँ; साक्षी–साक्षी; दिब-दूँगा; तब-तब; दुइ-दोनों; विप्रेर–ब्राह्मणों की; सत्य-सत्य; प्रतिज्ञा–प्रतिज्ञा; राखिब-रखूँगा।

अनुवाद

"मैं वहाँ निश्चित रूप से प्रकट होऊँगा और उस समय मैं दिए हुए वचन का साक्षी बनकर तुम दोनों के सम्मान की रक्षा करूँगा।"

विप्र बले, "यदि हओ चतुर्भुज-मूर्ति ।

तबु तोमार वाक्ये कारु ना हबे प्रतीति" ॥ 93 ॥

विप्र बले–युवा ब्राह्मण कहता है; यदि-यदि; हओ-आप हो जाते हो; चतुः-भुज-चतुर्भुज-धारी; मूर्ति-मूर्ति; तब-तब; तोमार-आपके; वाक्ये-शब्द में; कारु–किसी का; ना-नहीं; हबे-होगा; प्रतीति–विश्वास।

अनुवाद

तरुण ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, भले ही आप चतुर्भुज विष्णु-रूप में क्यों न प्रकट हों, तब भी उन लोगों में से कोई भी आपके वाक्यों पर विश्वास नहीं करेगा।"

एइ मूर्ति गिया दि एड श्री-वदने ।

साक्षी देह यदि—तबे सर्व-लोक शुने ॥94॥

एइ–यह; मूर्ति-मूर्ति; गिया-जाकर; यदि-यदि; एइ-यह; श्री-वदने-अपने सुन्दर मुख से; साक्षी–साक्षी; देह-देते हो; यदि-यदि; तबे-तब; सर्व-लोक-सभी लोग; शुने-सुनेंगे।

अनुवाद

"किन्तु यदि आप इसी गोपाल-रूप में वहाँ चलें और अपने श्रीमुख से कहें, तभी आपकी साक्षी सभी लोगों द्वारा सुनी जायेगी।"

कृष्ण कहे,—"प्रतिमा चले, कोथाह ना शुनि" ।

विप्र बले,—"प्रतिमा हञा कह केने वाणी" ॥ 95॥

कृष्ण कहे-भगवान् कृष्ण कहते हैं; प्रतिमा चले–मूर्ति चलती है; कोथाह-कहीं भी; ना शुनि–मैंने नहीं सुना है; विप्र बले-ब्राह्मण उत्तर देता है; प्रतिमा हञा-अपने मूर्तिरूप में; कह केने वाणी-आप बोल कैसे रहे हैं।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण ने कहा, "मैंने आज तक किसी विग्रह को एक स्थान से दूसरे स्थान तक चलकर जाते नहीं सुना।" ब्राह्मण ने कहा, "यह सत्य है, किन्तु यह कैसे सम्भव हो रहा है कि आप विग्रह होकर भी मुझसे बातें कर रहे हैं।"

प्रतिमा नह तुमि—"साक्षात्व्रजेन्द्र-नन्दन ।

विप्र लागि' कर तुमि अकार्य-करण" ॥96 ॥

प्रतिमा मूर्ति; नह–नहीं हैं; तुमि-आप; साक्षात् साक्षात्; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र; विप्र लागि'-ब्राह्मण के लिए; कर तुमि-आप कर सकते हैं; अकार्य-करण-कोई भी कार्य जो आपने पहले न किया हो।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप मूर्ति नहीं हैं, आप तो साक्षात् महाराज नन्द के पुत्र हैं। आप उस वृद्ध ब्राह्मण के लिए आप ऐसा कुछ कर सकते हैं, जो आपने अभी तक न किया हो।"

हासिञा गोपाल कहे,—"शुनह, ब्राह्मण ।

तोमार पाछे पाछे आमि करिब गमन" ॥97॥

हासिञा-हँसकर; गोपाल–भगवान् गोपाल; कहे-कहते हैं; शुनह-जरा सुनो; ब्राह्मण-हे मेरे प्रिय ब्राह्मण; तोमार-तुम्हारे; पाछे पाछे-पीछे पीछे; आमि-मैं; करिब-करूँगा; गमन-गमन (चलूँगा)।

अनुवाद

श्री गोपाल ने मुस्कराते हुए कहा, "हे प्रिय ब्राह्मण, मेरी बात सुनो। मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगा और इस तरह तुम्हारे साथ चलूँगा।"

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण तथा इस ब्राह्मण के बीच हुई बातचीच इसका प्रमाण है कि भगवान् की अर्चा-मूर्ति भौतिक नहीं है, क्योंकि भगवद्गीता के अनुसार जिन तत्त्वों से मूर्ति बनी है, वे भगवान् से पृथक् होकर भी भगवान् की शक्ति के अंश हैं। चूँकि सारे तत्त्व भगवान् की शक्ति हैं और चूँकि शक्ति तथा शक्तिमान में कोई अन्तर नहीं होता, अतएव भगवान्

किसी भी तत्त्व के द्वारा प्रकट हो सकते हैं। जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश द्वारा प्रकट होकर सर्वत्र प्रकाश तथा ऊष्मा वितरित कर सकता है, उसी प्रकार कृष्ण अपनी अचिन्त्य शक्ति के द्वारा किसी भी भौतिक तत्त्व से–चाहे वह पत्थर हो या काष्ठ, पेंट, सोना, चांदी, रत्न, अपने आदि रूप में प्रकट हो सकते हैं, क्योंकि सारे भौतिक तत्त्व उनकी शक्ति हैं। शास्त्र चेतावनी देते हैं-अ विष्णौ शिला-धी:...नारकी स:-मन्दिर में स्थापित अर्चाविग्रह को कभी भी पत्थर, काष्ठ या अन्य कोई भौतिक तत्त्व नहीं मानना चाहिए। वह तरुण ब्राह्मण भक्ति में उन्नत होने के कारण जानता था कि यद्यपि गोपाल-विग्रह पत्थर के लगते हैं, किन्तु वास्तव में वे पत्थर नहीं हैं। वे नन्द महाराज के पुत्र, साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन हैं। फलस्वरूप, अर्चाविग्रह कृष्ण के आदिरूप की ही तरह कार्य कर सकता है।

भगवान् कृष्ण उस तरुण ब्राह्मण के अर्चाविग्रह के विषय में ज्ञान की परीक्षा करने के निमित्त बातें कर रहे थे। दूसरे शब्दों में, जिन लोगों ने कृष्ण-विज्ञान-कृष्ण के नाम, रूप, गुण आदि को समझ लिया है, वे विग्रह से बातें भी कर सकते हैं। किन्तु सामान्य व्यक्ति के लिए अर्चाविग्रह पत्थर, काष्ठ या किसी अन्य पदार्थ से बना प्रतीत होगा। इसका उच्चतर अर्थ यह हुआ कि सारे भौतिक तत्त्व अन्ततोगत्वा सर्वोपरि दिव्य पुरुष से उद्भूत होते हैं, अतएव वास्तव में कुछ भी भौतिक नहीं है। सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञ होने के कारण कृष्ण अपने भक्तों से बिना किसी कठिनाई के किसी भी तरह व्यवहार कर सकते हैं। भगवत्कृपा से भक्त भगवान् के व्यवहार से भलीभाँति परिचित होता है। वह निश्चय ही, भगवान् से आमने-सामने बातें कर सकता है।

उलटिया आमा तुमि ना करिह दरशने ।

आमाके देखिले, आमि रहिब सेइ स्थाने ॥98॥

उलटिया-मुड़कर; आमा–मुझे; तुमि-तुम; ना-नहीं; करिह-करना; दरशने-दर्शन; आमाके–मुझे; देखिले–यदि तुम देखोगे; आमि-मैं; रहिब-रुक जाऊँगा; सेइ स्थाने-उसी स्थान पर।

अनुवाद

भगवान् ने कहा, "तुम मुझे मुड़कर देखने का प्रयत्न मत करना। अन्यथा तुम ज्योंहीं मेरी ओर देखोगे, मैं उसी स्थान पर स्थिर हो जाऊँगा।"

नूपुरेर ध्वनि-मात्र आमार शुनिबा ।

सेइ शब्दे आमार गमन प्रतीति करिबा ॥99॥

नूपुरेर-नूपुरों की; ध्वनि-मात्र–ध्वनि मात्र; आमार-मेरी; शुनिबा–सुनोगे; सेइ शब्दे-उस ध्वनि को सुनने से; आमार-मेरा; गमन-चलना; प्रतीति-समझ; करिबा-लोगे।

अनुवाद

"तुम मेरे नुपुर की ध्वनि से जानोगे कि मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चल रहा है।"

एक-सेर अन्न रान्धि' करिह समर्पण ।

ताहा खाञा तोमार सङ्गे करिब गमन ॥ 100॥

एक-सेर-एक किलो; अन्न-चावल; रान्धि'–पकाकर; करिह–करो; समर्पण-समर्पण; ताहा-वह; खाना-खाऊँगा; तोमार-तुम्हारे; सङ्गे-साथ; करिब–मैं करूँगा; गमन-गमन।

अनुवाद

"प्रतिदिन एक किलो चावल पकाकर मुझे अर्पित करना। मैं उसी चावल को खाऊँगा और तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगा।"

आर दिन आज्ञा मागि' चलिला ब्राह्मण ।

तार पाछे पाछे गोपाल करिला गमन ॥101॥

आर दिन-अगले दिन; आज्ञा-आज्ञा; मागि'–माँगकर; चलिला–चल पड़ा; ब्राह्मण-युवा ब्राह्मण; तार-उसके; पाछे-पीछे; पाछे-पीछे; गोपाल–भगवान् गोपाल; करिला–आरम्भ किया; गमन–चलना।

अनुवाद

अगले दिन ब्राह्मण ने गोपाल से आज्ञा माँगी और वह अपने देश के लिए चल पड़ा। गोपाल भी उसके पीछे-पीछे चल पड़े।

नूपुरेर ध्वनि शुनि' आनन्दित मन ।

उत्तमान्न पाक करि' कराय भोजन ॥ 102॥

नूपुरेर नुपूर की; ध्वनि-ध्वनि; शुनि'–सुनकर; आनन्दित-आनन्दित; मन–मन; उत्तम-अन्न-उत्तम भात; पाक-पकाकर; करि'-करके; कराय-करवाया; भोजन-भोजन।

अनुवाद

जब गोपाल उस तरुण ब्राह्मण के पीछे चल रहे थे, तो उनके नुपुरों की रूनझुन ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। वह ब्राह्मण अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसने उत्तम चावल गोपाल के भोग के लिए पकाया।

एइ-मते चलि' विप्र निज-देशे आइला ।

ग्रामेर निकट आसि' मनेते चिन्तिला ॥ 103 ॥

एइ-मते-इस प्रकार; चलि'–चलकर; विप्र-ब्राह्मण; निज-अपने; देशे-देश को; आइला–लौट गया; ग्रामेर-गाँव के निकट-निकट; आसि-आकर; मनेते-अपने मन में; चिन्तिला-सोचने लगा।

अनुवाद

इस प्रकार यह तरुण ब्राह्मण चलता रहा, जब तक कि वह अपने देश में नहीं पहुँच गया। जब वह अपने गाँव के निकट पहुँचा, तो वह इस प्रकार सोचने लगा।

'एबे मुञि ग्रामे आइनु, याइमु भवन ।

लोकेरे कहिब गिया साक्षीर आगमन ॥104॥

एबे-अब; मुञि-मैं; ग्रामे गाँव में; आइनु-आ गया हूँ; याइमु मैं जाऊँगा; भवन-अपने घर; लोकेरे-लोगों को; कहिब-कहूँगा; गिया-वहाँ जाकर; साक्षीर-साक्षी के; आगमन–आने के बारे में।

अनुवाद

"अब मैं अपने गाँव पहुँच चुका हूँ और अपने घर जाकर सभी लोगों को बतलाऊँगा कि साक्षी आ गया है।"

साक्षाते ना देखिले मने प्रतीति ना हय ।

इहाँ यदि रहेन, तबु नाहि किछु भय ॥ 105॥

साक्षाते-साक्षात्; ना-न; देखिले–यदि देखेंगे; मने-मन में; प्रतीति–विश्वास; ना-नहीं; हय होगा; इहाँ–यहाँ; यदि-यदि; रहेन-भगवान् रहें; तबु-फिर भी; नाहि नहीं होगा; किछु-कोई; भय-भय।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने सोचा कि यदि गाँव वाले गोपाल-विग्रह का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं करेंगे, तो उन्हें विश्वास नहीं होगा कि गोपाल आ गये हैं। उसने सोचा, "किन्तु यदि गोपाल यहीं पर ही रह जाएँ, तो भी डर की कोई बात नहीं है।"

एत भावि' सेइ विप्र फिरिया चाहिल ।

हासिबा गोपाल-देव तथाय रहिल ॥106॥

एत भावि'–इस प्रकार सोचकर; सेइ-उस; विप्र-ब्राह्मण ने; फिरिया-पीछे मुड़कर; चाहिल-देखा; हासिञा-मुस्कुराकर; गोपाल-देव-भगवान् गोपाल देव, परम भगवान्; तथाय-वहाँ; रहिल–खड़े थे।

अनुवाद

यह सोचकर वह देखने के लिए पीछे मुड़ा और उसने देखा कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गोपाल मुसकाते हुए वहाँ खड़े थे।

ब्राह्मणेरे कहे,—"तुमि याह निज-घर ।

एथाय रहिब आमि, ना याब अतःपर" ॥107॥

ब्राह्मणेरे कहे-उन्होंने ब्राह्मण से कहा; तुमि-तुम; याह-जाओ; निज-घर-अपने घर; एथाय-यहाँ इस स्थान पर; रहिब-रहूँगा; आमि-मैं; ना-नहीं; याब-जाऊँगा; अतःपर-इससे आगे।

अनुवाद

भगवान् ने ब्राह्मण से कहा, "अब तुम घर जा सकते हो। मैं यहीं रुकुँगा और कहीं नहीं जाऊँगा।"

तबे सेइ विप्र याइ नगरे कहिल ।

शुनिञा सकल लोक चमत्कार हैल ॥ 108॥

तबे-तब; सेइ-वह; विप्र-ब्राह्मण; याइ–गया; नगरे–नगर को; कहिल-और कहा; शुनिञा-सुनकर; सकल-सभी; लोक-लोग; चमत्कार–चकित; हैल–हो गये।

अनुवाद

तब उस ब्राह्मण ने अपने गाँव जाकर सबको गोपाल के आगमन की जानकारी दी। यह सुनकर सारे लोग आश्चर्यचकित हो उठे।

आइल सकल लोक साक्षी देखिबारे ।

गोपाल देखिञा लोक दण्डवत् करे ॥109॥

आइल-आये; सकल-सभी; लोक-लोग; साक्षी–साक्षी; देखिबारे-देखने के लिए; गोपाल–भगवान् गोपाल को; देखिना-देखकर; लोक-सभी लोग; दण्डवत्-दण्डवत् प्रणाम; करे-करने लगे।

अनुवाद

गाँव के सारे वासी साक्षीगोपाल को देखने गये और जब उन्होंने सचमुच भगवान् को खड़े देखे, तो सबने उन्हें सादर दंडवत् प्रणाम किया।

गोपाल-सौन्दर्य देखि' लोके आनन्दित ।

प्रतिमा चलिञा आइला,—शुनिञा विस्मित ॥110॥

गोपाल–भगवान् गोपाल के; सौन्दर्य-सौन्दर्य को; देखि'–देखकर; लोके–प्रत्येक व्यक्ति; आनन्दित-आनन्दित हो गया; प्रतिमा-मूर्ति; चलिञा-चलकर; आइला–आई है; शुनिञा-यह सुनकर; विस्मित–चकित।

अनुवाद

लोग गोपाल की सुन्दरता देखकर अत्यधिक प्रसन्न थे और जब उन लोगों ने यह सुना कि वे सचमुच चलकर आये हैं, तो उन सबके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

तबे सेइ बड़-विप्र आनन्दित हञा ।

गोपालेर आगे पड़े दण्डवत् हञा ॥111॥

तबे-इसके बाद; सेइ-वह; बड़-विप्र-वृद्ध ब्राह्मण; आनन्दित-आनन्दित; हञा-होकर; गोपालेर-भगवान् गोपाल के; आगे-समक्ष; पड़े-गिर पड़ा; दण्डवत् दण्डवत्; हञा-होकर।

अनुवाद

तब वह वृद्ध ब्राह्मण भी परम आनन्दित होकर गोपाल के सम्मुख आया और तुरन्त ही दण्ड के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सकल लोकेर आगे गोपाल साक्षी दिल ।

बड़-विप्र छोट-विप्रे कन्या-दान कैल ॥ 112॥

सकल-सभी; लोकेर-लोगों की; आगे-उपस्थिति में; गोपाल–भगवान् गोपाल ने; साक्षी–साक्षी; दिल–दी; बड़-विप्र-वृद्ध ब्राह्मण ने; छोट-विप्रे–युवा ब्राह्मण को; कन्या-दान-कन्यादान; कैल–किया।

अनुवाद

इस तरह गाँव-भर के निवासियों के समक्ष गोपाल इसके साक्षी बने कि उस वृद्ध ब्राह्मण ने तरुण ब्राह्मण को अपनी कन्या दान में दी थी।

तबे सेइ दुइ विप्रे कहिल ईश्वर ।

"तुमि-दुइ—जन्मे-जन्मे आमार किङ्कर" ॥ 113॥

तबे-तब; सेइ-वे; दुइ-दोनों; विप्रे–ब्राह्मणों को; कहिल–कहा; ईश्वर–भगवान्; तुमि-दुइ-तुम दोनों; जन्मे-जन्म-जन्म-जन्मांतर; आमार-मेरे; किङ्करदास।

अनुवाद

विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद भगवान् ने उन दोनों ब्राह्मणों को बतलाया, "तुम दोनों ब्राह्मण जन्म-जन्मांतर से मेरे सनातन दास हो।"

तात्पर्य

विद्यानगर के इन दो ब्राह्मणों की तरह ही ऐसे अनेक भक्त हैं, जो भगवान् के सनातन दास हैं। वे नित्य-सिद्ध कहलाते हैं। यद्यपि ये नित्य-सिद्ध भौतिक जगत् में प्रकट होते हैं और सामान्य व्यक्ति प्रतीत होते हैं, किन्तु वे किसी भी परिस्थिति में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को भूलते नहीं। नित्य-सिद्ध का यही लक्षण है।

जीव दो प्रकार के होते हैं-नित्य-सिद्ध तथा नित्य-बद्ध। नित्य-सिद्ध भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को कभी नहीं भूलता, जबकि नित्य-बद्ध सृष्टि के पूर्व से भी सदैव बद्ध रहता है। वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपने। सम्बन्ध को सदा भूलता रहता है। यहाँ पर भगवान् उन दोनों ब्राह्मणों को बतलाते हैं कि वे जन्म-जन्मांतर से उनके नित्य-दास हैं। जन्म-जन्मांतर भौतिक जगत् की ओर संकेत करता है, क्योंकि आध्यात्मिक जगत् में जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि नहीं होते। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेश से नित्य-सिद्ध इस भौतिक जगत् में सामान्य व्यक्ति की तरह रहता है, किन्तु नित्य-सिद्ध का एकमात्र कार्य होता है भगवान् की महिमा का प्रचार करना। यह घटना दो सामान्य व्यक्तियों के बीच के वैवाहिक सम्बन्ध की सामान्य कहानी प्रतीत होती है। किन्तु कृष्ण ने इन दोनों ब्राह्मणों को अपने सनातन सेवकों के रूप में स्वीकार किया। दोनों ब्राह्मणों ने इस समझौते के लिए भौतिक लोगों की तरह अनेक कष्ट उठाये, फिर भी वे भगवान् के सनातन सेवकों की तरह कर्म कर रहे थे। इस भौतिक जगत् में सारे नित्य-सिद्ध भले ही सामान्य व्यक्तियों की तरह श्रम करते प्रतीत हों, किन्तु वे यह कभी नहीं भूलते कि वे भगवान् के नित्य दास हैं।

दूसरी बात : वृद्ध ब्राह्मण कुलीन था और विद्वान तथा सम्पन्न था। तरुण ब्राह्मण साधारण परिवार का था और अशिक्षित था। किन्तु भगवान् की सेवा में लगे नित्य-सिद्ध के लिए इन भौतिक योग्यताओं का कोई महत्त्व नहीं होता। हमें यह तथ्य मानना ही पड़ेगा कि नित्य-सिद्ध सामान्य मनुष्यों से, जो नित्य-बद्ध कहलाते हैं, सर्वथा भिन्न होते हैं। इस कथन की पुष्टि श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने की है :

गोराङ्गेर सङ्गि-गणे, नित्यसिद्ध करि’ माने

से याय व्रजेन्द्रसुत पाश।

श्रीगौड़-मण्डल-भूमि, येबा जाने चिन्तामणि

तार हय व्रजभूमे वास।

जो व्यक्ति भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के पार्षदों को नित्यसिद्ध के रूप में स्वीकार करता है, वह निश्चित रूप से वैकुण्ठ लोक जाकर भगवान् का पार्षद बनता है। हमें यह भी जानना चाहिए कि बंगाल के वे स्थान जहाँ-जहाँ चैतन्य

महाप्रभु रहे–अर्थात् गौड़-मण्डल-भूमि-वे व्रजभूमि या वृन्दावन के समान है। वृन्दावन तथा गौड़-मण्डल-भूमि अथवा श्रीधाम मायापुर के निवासियों में किसी तरह का अन्तर नहीं है।

दुँहार सत्ये तुष्ट हइलाँ, दुँहे माग' वर" ।

दुइ-विप्र वर मागे आनन्द-अन्तर ॥ 114॥

दुँहार सत्ये दोनों की सच्चाई; तुष्ट हइलाँ-मैं सन्तुष्ट हो गया हूँ; मुँह-तुम दोनों; माग'-माँगो; वर-कुछ वरदान; दुइ-विप्र-दोनों ब्राह्मण; वर-एक वर; मागे-माँगते हैं; आनन्द–आनन्दित होकर; अन्तर–मन में।

अनुवाद

भगवान् ने कहा, "मैं तुम दोनों की सच्चाई से अतीव प्रसन्न हुआ हूँ। अब तुम वर माँग सकते हो।" इस तरह दोनों ब्राह्मणों ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वर माँगा।

"यदि वर दिवे, तबे रह एइ स्थाने ।

किङ्करेरे दया तव सर्व-लोके जाने" ॥ 115॥

यदि-यदि; वर-वर; दिबे-आप देंगे; तबे-तब; रह-रहो; एइ स्थाने-इसी स्थान पर; किङ्करे-अपने दासों पर; दया–कृपा; तव-आपकी; सर्व-लोके-सब लोग; जाने-जान लें।

अनुवाद

उन ब्राह्मणों ने कहा, "कृपा करके आप यहीं रहें, जिससे सारे संसार के लोग जान सकें कि आप अपने सेवकों पर कितने कृपालु हैं।"

गोपाल रहिला, दुँहे करेन सेवन ।

देखिते आइला सब देशेर लोक-जन ॥ 116 ॥

गोपाल–भगवान् गोपाल; रहिला-रह गये; बँहे-वे दोनों; करेन-करते हैं; सेवन-सेवा; देखिते-देखने के लिए; आइला–आये; सब-सब; देशेर-देशों के; लोक-जन-लोग।

अनुवाद

भगवान् गोपाल वहीं रहने लगे और दोनों ब्राह्मण उनकी सेवा में लग गये। यह घटना सुनकर विभिन्न देशों से अनेक लोग गोपाल का दर्शन करने के लिए आने लगे।

से देशेर राजा आइल आश्चर्य शुनिञा ।

परम सन्तोष पाइल गोपाले देखिञा ॥117॥

से देशेर-उस देश का; राजा-राजा; आइल-आया; आश्चर्य-आश्चर्य; शुनिञा-सुनकर; परम-परम; सन्तोष–सन्तोष; पाइल-पाया; गोपाले–गोपाल को; देखिञा-देखकर।

अनुवाद

अन्त में उस देश के राजा ने यह आश्चर्यजनक कथा सुनी, तो वह भी गोपाल का दर्शन करने के लिए आया और अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ।

मन्दिर करिया राजा सेवा चालाइल ।

'साक्षि-गोपाल' बलि' ताँर नाम ख्याति हैल ॥118॥

मन्दिर-एक मन्दिर; करिया बनवाकर; राजा-राजा; सेवा–सेवा; चालाइल-नियमपूर्वक करने लगा; साक्षि-गोपाल–साक्षीगोपाल के नाम से; बलि'–जानकर; ताँर-उनका; नाम-नाम; ख्याति–प्रसिद्ध; हैल–हो गया।

अनुवाद

उस राजा ने एक सुन्दर मन्दिर बनवा दिया और नियमित सेवा प्रारम्भ करवाई। गोपाल साक्षीगोपाल के नाम से अत्यन्त विख्यात हो गये।

एइ मत विद्यानगरे साक्षि-गोपाल ।

सेवा अङ्गीकार करि' आछेन चिर-काल ॥ 119॥

एइ मत-इस प्रकार; विद्यानगरे–विद्यानगर नगर में; साक्षि-गोपाल–साक्षीगोपाल; सेवा–सेवा; अङ्गीकार-स्वीकार; करि'–करके; आर्छन-रहते हैं; चिर-काल-चिरकाल।

अनुवाद

इस प्रकार साक्षीगोपाल ने विद्यानगर में रहकर दीर्घकाल तक सेवा स्वीकार की।

तात्पर्य

विद्यानगर दक्षिण भारत में त्रैलङ्ग देश में गोदावरी नदी के तट पर स्थित है। जिस स्थान पर गोदावरी नदी बंगाल की खाड़ी में गिरती है, वह कोटदेश कहलाता है। उड़ीसा साम्राज्य अत्यन्त शक्तिशाली था और कोटदेश उड़ीसा की राजधानी था। तब यह विद्यानगर कहलाता था। पहले यह नगर गोदावरी नदी के दक्षिणी तट पर बसा था। उस समय राजा पुरुषोत्तम देव उड़ीसा में राज्य करते थे। वर्तमान विद्यानगर शहर नदी के दक्षिण-पूर्व में है और राजमहेन्द्री से केवल 20-25 मील दूर है। महाराज प्रतापरुद्र के काल में वहाँ के गवर्नर श्री रामानन्दराय थे। विजयनगर तथा विद्यानगर एक नहीं हैं।

उत्कलेर राजा पुरुषोत्तम-देव नाम ।

सेइ देश जिनि' निल करिया सङ्ग्राम ॥120॥

उत्कलेर-उड़ीसा के; राजा-राजा; पुरुषोत्तमदेव–पुरुषोत्तम देव; नाम-नामक; सेइ देश-यह देश; जिनि'–जीतकर; निल–लिया; करिया-करके; सङ्ग्राम-युद्ध।

अनुवाद

बाद में युद्ध हुआ जिसमें उड़ीसा के राजा पुरुषोत्तम देव ने इस देश को जीत लिया।

सेइ राजा जिनि' निल ताँर सिंहासन ।

'माणिक्य-सिंहासन' नाम अनेक रतन ॥ 121॥

सेइ राजा-उस राजा (महाराज पुरुषोत्तम देव) ने; जिनि'–जीतकर; निल-ले लिया; ताँर-अपना; सिंह-आसन-सिंहासन; माणिक्य-सिंहासन-माणिक्य सिंहासन नामक; नाम-नामक; अनेक-अनेक; रतन–रत्नों से सजाया।

अनुवाद

उस राजा ने विद्यानगर के राजा को हरा दिया और उसके माणिक्य सिंहासन' नामक सिंहासन को अपने अधिकार में कर लिया, जिसमें अनेक रत्न जड़े हुए थे।

पुरुषोत्तम-देव सेइ बड़ भक्त आर्य ।

गोपाल-चरणे मागे,—'चल मोर राज्य' ॥122॥

पुरुषोत्तम-देव-राजा पुरुषोत्तम देव; सेइ-वह; बड़-बहुत बड़ा; भक्त-भक्त; आर्य–आर्य; गोपाल-चरणे-गोपाल के चरणकमलों पर; मागे-माँगता है; चल–कृपया आओ; मोर-मेरे; राज्य-राज्य में।

अनुवाद

उस राजा का नाम पुरुषोत्तम देव था। वह महान् भक्त था और आर्य सभ्यता में अग्रसर था। उसने गोपाल के चरणकमलों पर याचना की, "कृपा करके मेरे राज्य में चलें।"

ताँर भक्ति-वशे गोपाल ताँरे आज्ञा दिल ।

गोपाल लइया सेइ कटके आइल ॥123 ॥

ताँर-उसकी; भक्ति-वशे–भक्ति के वश होकर; गोपाल–भगवान् गोपाल; ताँरे-उनको; आज्ञा दिल-आज्ञा दी; गोपाल–गोपाल अर्चाविग्रह; लइया-लेकर; सेइ-वह राजा; कटके–कटक नगर को; आइल-वापस ले गया।

अनुवाद

जब राजा ने गोपाल से अपने राज्य में चलने के लिए प्रार्थना की, तो गोपाल ने उसकी भक्ति के वश में होकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस तरह गोपाल-विग्रह को वह राजा अपने साथ लेकर कटक लौट गया।

जगन्नाथे आनि' दिल माणिक्य-सिंहासन ।

कटके गोपाल-सेवा करिल स्थापन ॥ 124॥

जगन्नाथे-भगवान जगन्नाथ को; आनि'–लाकर; दिल–भेंट किया; माणिक्य-सिंहासन-माणिक्य सिंहासन; कटके-कटक में; गोपाल-सेवा-गोपाल अर्चाविग्रह की सेवा; करिल स्थापन–स्थापना की।

अनुवाद

माणिक्य सिंहासन को जीतकर राजा पुरुषोत्तम देव उसे जगन्नाथ पुरी ले आया और उसने उसे जगन्नाथ भगवान् को समर्पित कर दिया। इस बीच उसने कटक में गोपाल की नियमित पूजा भी स्थापित की।

ताँहार महिषी आइला गोपाल-दर्शने ।

भक्ति करि' बहु अलङ्कार कैल समर्पणे ॥ 125॥

ताँहार महिषी-उसकी रानी; आइला–आई; गोपाल-दर्शने–गोपाल के दर्शन करने; भक्ति करि'-अत्यन्त भक्तिपूर्वक; बहु-विविध; अलङ्कार-आभूषण; कैल–किये; समर्पणे-भेंट।

अनुवाद

जब गोपाल-विग्रह की स्थापना कटक में हो गई, तो पुरुषोत्तम देव की रानी उनका दर्शन करने गई और उसने अत्यन्त भक्ति के साथ अनेक प्रकार के आभूषण भेंट किये।

ताँहार नासाते बहु-मूल्य मुक्ता हय ।

ताहा दिते इच्छा हैल, मनेते चिन्तय ॥126॥

ताँहार नासाते-रानी की नाक में; बहु-मूल्य-अत्यन्त मूल्यवान; मुक्ता-मोती; हय-था; ताहा-वह; दिते-देने के लिए; इच्छा-इच्छा; हैल-थी; मनेते-मन में; चिन्तय-सोचती है।

अनुवाद

रानी ने अपनी नाक में अति मूल्यवान मोती पहन रखा था, जिसे वह गोपाल को भेंट करना चाह रही थी। तब वह इस प्रकार सोचने लगी।

ठाकुरेर नासाते यदि छिद्र थाकित ।

तबे एइ दासी मुक्ता नासाय पराइत ॥127॥

ठाकुरेर नासाते-अर्चाविग्रह के नाक में; यदि-यदि; छिद्र–छिद्र; थाकित-होता; तबे-तब; एइ–यह; दासी–दासी; मुक्ता-मोती; नासाय-नाक में; पराइत–पहना सकती।

अनुवाद

“यदि विग्रह की नाक में छेद होता, तो मैं अपना मोती उन्हें पहना सकती थी।”

एत चिन्ति’ नमस्करि’ गेला स्व-भवने ।

रात्रि-शेषे गोपाल ताँरे कहेन स्वपने ॥ 128॥

एत चिन्ति’-ऐसा सोचकर; नमस्करि’-नमस्कार; गेला–गई; स्व-भवने-राजा के महल को; रात्रि-शेषे-रात के अन्त में; गोपाल–गोपाल अर्चाविग्रह; ताँरे–उसको; कहेन–कहते हैं; स्वपने-स्वप्न में।

अनुवाद

यह विचार करके रानी ने गोपाल को नमस्कार किया और वह अपने महल लौट आई। उस रात उसने सपना देखा कि गोपाल प्रकट हुए हैं। और उससे कह रहे हैं।

बाल्य-काले माता मोर नासा छिद्र करि’ ।

मुक्ता पराजाछिल बहु यत्न करि’ ॥129॥

बाल्य-काले-मेरी बाल्यावस्था में; माता-माता ने; मोर–मेरी; नासा–नाक; छिद्र करि’–छिद्र करके; मुक्ता-एक मोती; पराजाछिल-इसमें डाल दिया; बहु-बहुत; यत्न-प्रयास; करि’–करके।

अनुवाद

“बचपन में मेरी माता ने मेरी नाक में छेद करके उसमें बड़े यत्न से एक मोती पहनाया था।”

सेइ छिद्र अद्यापिह आछये नासाते ।

सेइ मुक्ता पराह, याहा चाहियाछ दिते ॥130॥

सेइ छिद्र-वही छिद्र; अद्यापिह-अभी भी; आछये-है; नासाते-नाक में; सेइ-वह; मुक्ता-मोती; पराह-डाल दो; याहा–जो; चाहियाछ-तुम चाहती हो; दिते-मुझे देना।

अनुवाद

“वह छेद अब भी है। चाहो तो तुम इस छेद का प्रयोग उस मोती को पहनाने के लिए कर सकती हो जिसे तुम मुझे देना चाहती थी।”

स्वप्ने देखि’ सेइ राणी राजाके कहिल ।

राजा-सह मुक्ता लञा मन्दिरे आइल ॥ 131॥

स्वप्ने देखि’–स्वप्न देखकर; सेइ राणी-रानी ने; राजाके-राजा को; कहिल-कहा; राजा-सह-राजा के साथ; मुक्ता-मोती; लञा–लेकर; मन्दिरे–मन्दिर में; आइल-वे गये।

अनुवाद

यह सपना देखने के बाद रानी ने अपने राजा पति से इसकी चर्चा की। तब राजा तथा रानी दोनों ही वह मोती लेकर मन्दिर में गये।

पराइल मुक्ता नासाय छिद्र देखिञा ।

महा-महोत्सव कैल आनन्दित हञा ॥ 132॥

पराइल-डाल दिया; मुक्ता-मोती; नासाय-नाक में; छिद्र–छिद्र; देखिञा-देखकर; महा-महोत्सव–महा महोत्सव; कैल-मनाया; आनन्दित-आनन्दित; हञा-होकर।

अनुवाद

विग्रह की नाक में छेद देखकर उन्होंने वह मोती वहाँ पहना दिया और अत्यधिक प्रसन्न होकर उन्होंने विशाल उत्सव का आयोजन किया।

सेइ हैते गोपालेर कटकेते स्थिति ।

एइ लागि ‘साक्षि-गोपाल’ नाम हैल ख्याति ॥133॥

सेइ हैते–उस समय से; गोपालेर–गोपाल; कटकेते-कटक नगर में; स्थिति-स्थित; एइ लागि–इस कारण; साक्षि-गोपाल–साक्षीगोपाल; नाम-नामक; हैल–हो गये; ख्याति–प्रसिद्ध।

अनुवाद

तभी से गोपाल कटक नगर में विराजमान हैं और तभी से वे साक्षीगोपाल नाम से विख्यात हैं।

नित्यानन्द-मुखे शुनि' गोपाल-चरित ।

तुष्ट हैला महाप्रभु स्वभक्त-सहित ॥ 134॥

नित्यानन्द-मुखे–नित्यानन्द प्रभु के मुख से; शुनि'–सुनकर; गोपाल-चरित-गोपाल की कथा; तुष्ट हैला-आनन्दित हो गये; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; स्व-भक्त-सहित-अपने भक्तों सहित।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोपाल की लीलाओं को सुना। इससे वे तथा उनके भक्त अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

गोपालेर आगे यबे प्रभुर हय स्थिति ।

भक्त-गणे देखे—येन दुँहे एक-मूर्ति ॥135॥

गोपालेर आगे-गोपाल के समक्ष; यबे-जब; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु; हय-हैं; स्थिति–स्थित; भक्त-गणे-सभी भक्तगण; देखे-देखते हैं; येन-जैसे; दुँहे-वे दोनों; एक-मूर्ति–एक विग्रह।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु गोपाल-विग्रह के समक्ष बैठे हुए थे, तो सारे भक्तों ने उन्हें तथा विग्रह को एकरूप देखा।

दुँहे—एक वर्ण, दुँहे—प्रकाण्ड-शरीर ।

दुँहे—रक्ताम्बर, दुँहार स्वभाव—गम्भीर ॥ 136॥

दुँहे वे दोनों; एक वर्ण–एक वर्ण; दुँहे-वे दोनों; प्रकाण्ड-शरीर-विशाल शरीर वाले; दुँहे-वे दोनों; रक्त-अम्बर–लाल कपड़े; दुँहार-दोनों के; स्वभाव-स्वभाव; गम्भीर-गम्भीर।

अनुवाद

दोनों एक ही वर्ण के तथा एक जैसे विराट शरीर वाले थे। दोनों ने केसरिया वस्त्र पहन रखा था और दोनों ही गम्भीर थे।

महा-तेजो-मय दुँहे कमल-नयन ।

दुँहे हार भावावेश, दुँहे—चन्द्र-वदन ॥137॥

महा-तेजः-मय-महा तेजस्वी; दुँहे-वे दोनों; कमल-नयन–कमलनयन; दुँहार-दोनों के; भाव-आवेश-भावावेश; दुँहे-वे दोनों; चन्द्र-वदन–चन्द्र जैसे मुख वाले।

अनुवाद

भक्तों ने देखा कि चैतन्य महाप्रभु तथा गोपाल दोनों ही दीप्तिमान तेज से युक्त थे और दोनों के नेत्र कमल जैसे थे। दोनों ही भाव में मग्न थे और उनके मुखमण्डल पूर्णचन्द्रमा सदृश थे।

दुँहा देखि' नित्यानन्द-प्रभु महा-रङ्गे ।

ठाराठारि करि' हासे भक्त-गण-सङ्गे ॥ 138॥ ।

दुँहा देखि'–दोनों को देखकर; नित्यानन्द-प्रभु–नित्यानन्द प्रभु; महा-रङ्गे–अत्यन्त प्रसन्नता में; ठाराठारि-संकेत; करि'-करके; हासे-हँसते हैं; भक्त-गण-सङ्गे–अन्य भक्तों के साथ।

अनुवाद

जब श्री नित्यानन्द ने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा गोपाल-विग्रह दोनों को इस तरह देखा, तो वे भक्तों से परिहास करने लगे जो सबके सब मुस्कुरा रहे थे।

एइ-मत महा-रङ्गे से रात्रि वञ्चिया ।

प्रभाते चलिला मङ्गल-आरति देखिञा ॥ 139॥

एइ-मत-इस प्रकार; महा-रङ्गे–अत्यन्त हर्ष में; से-वह; रात्रि-रात; वञ्चिया-व्यतीत करके; प्रभाते-प्रातः काल; चलिला–चल पड़े; मङ्गल-आरति-मंगल आरती; देखिञा–देखने।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने मन्दिर में वह रात बड़े ही आनन्द से बिताई। प्रात:कालीन मंगल आरती देखने के बाद उन्होंने अपनी यात्रा आरम्भ की।

भुवनेश्वर-पथे यैछे कैल दरशन ।

विस्तारि' वर्णियाछेन दास-वृन्दावन ॥140॥

भुवनेश्वर-पथे-भुवनेश्वर जाते समय; यैछे-जैसे; कैल-उन्होंने किया; दरशन-दर्शन; विस्तारि'–विस्तार से; वर्णियाछेन-वर्णन किया है; दास-वृन्दावन-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने।

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने (अपनी पुस्तक चैतन्य भागवत में) श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा भुवनेश्वर जाते समय देखे गये स्थानों का विस्तार से वर्णन किया है।

तात्पर्य

श्रील वृन्दावनदास ठाकुर ने अपने ग्रंथ चैतन्य-भागवत के अन्त्य खण्ड में श्री चैतन्य महाप्रभु की कटक यात्रा का बहुत ही सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। उस यात्रा में महाप्रभु बालिहस्ता या बालकाटीचटि नामक स्थान गये। तब वे भुवनेश्वर गये, जहाँ शिवमन्दिर स्थापित है। भुवनेश्वर का मन्दिर बालकाटीचटि से लगभग पाँच-छ: मील की दूरी पर है। स्कन्द पुराण में शिवमन्दिर का उल्लेख भगवान् के उपवन एवं एक आमवृक्ष विषयक कथा में हुआ है। काशिराज नामक एक राजा भगवान् कृष्ण से युद्ध करना चाह रहा था, अतएव उनसे लड़ने की शक्ति प्राप्त करने के लिए उसने शिवजी की शरण ली। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर शिवजी ने कृष्ण से युद्ध करने में उसकी सहायता की। शिव का नाम आशुतोष है, जिसका अर्थ यह है कि जब कोई उनकी पूजा करता है, तो वे बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं, चाहे भक्त किसी भी उद्देश्य से पूजा करे और भक्त जो भी वर माँगता है, वे उसे देते हैं। अतएव लोग शिवजी की पूजा करने के अतीव इच्छुक रहते हैं। इस प्रकार शिवजी ने काशिराज की सहायता की, किन्तु युद्ध में न केवल वह पराजित हुआ अपितु मारा भी गया। इस तरह पाशुपत अस्त्र व्यर्थ हुआ और कृष्ण ने काशी नगरी में आग लगा दी। बाद में शिवजी को अपनी भूल का आभास हुआ कि उन्होंने काशिराज की सहायता क्यों की, अतएव उन्होंने कृष्ण से क्षमा माँगी। उन्हें वरदान स्वरूप कृष्ण से एकाम्र-कानन नामक स्थान प्राप्त हुआ। बाद में केशरी वंश के राजाओं ने यहाँ अपनी राजधानी स्थापित की और कई सौ वर्षों तक उन्होंने उड़ीसा राज्य में शासन किया।

कमलपुरे आसि भार्गीनदी-स्नान कैल।

नित्यानन्द-हाते प्रभु दण्ड धरिल ॥141॥

कमल-पुरे–कमलपुर नामक स्थान को; आसि-आकर; भार्गी-नदी–भार्गी नदी नामक छोटी नदी में स्नान कैल-स्नान किया; नित्यानन्द-हाते-नित्यानन्द प्रभु के हाथों में; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; दण्ड–संन्यास का दण्ड; धरिल–छोड़ दिया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कमलपुर पहुँचे, तो उन्होंने भार्गीनदी में स्नान किया। स्नानार्थ जाते समय वे अपना संन्यास-दंड नित्यानन्द प्रभु को देते गये।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत (अन्त्य खण्ड, अध्याय 2) में यह कहा गया है कि श्री भुवनेश्वर पहुँचकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने गुप्तकाशी नामक शिव मन्दिर का दर्शन किया। शिवजी ने समस्त तीर्थों का जल लाकर तथा यहाँ बिन्दु सरोवर उत्पन्न करके इस तीर्थस्थान की स्थापना की थी। श्री चैतन्य महाप्रभु ने शिवजी के प्रति सम्मान के कारण इस सरोवर में स्नान किया। लोग अब भी आध्यात्मिक दृष्टि से इस सरोवर में स्नान करने जाते हैं। वास्तव में यहाँ पर स्नान करने से भौतिक दृष्टि से भी मनुष्य स्वस्थ हो जाता है। इस सरोवर में स्नान करने और इसका जल पीने से पेट के सभी रोग दूर हो जाते हैं। नियमित स्नान से कुपच अवश्यमेव अच्छा हो जाता है। भार्गीनदी को चैतन्य महाप्रभु के इस में स्नान करने के बाद से, दण्डभांगा नदी भी कहते हैं। यह जगन्नाथ पुरी से 6 मील उत्तर में स्थित है। नाम में परिवर्तन का कारण अगले श्लोकों में मिलेगा।

कपोतेश्वर देखिते गेला भक्त-गण सङ्गे।

एथा नित्यानन्द-प्रभु कैल दण्ड-भङ्गे ॥ 142॥

तिन खण्ड करि' दण्ड दिल भासाञा।

भक्त-सङ्गे आइला प्रभु महेश देखिञा ॥ 143 ॥

कपोतेश्वर-कपोतेश्वर नामक शिव मन्दिर; देखिते-देखने के लिए; गेला–गये; भक्त-गण सङ्गे-भक्तों के साथ; एथा-यहाँ; नित्यानन्द-प्रभु-नित्यानन्द प्रभु ने; कैल–किया; दण्ड–संन्यास के दण्ड को; भङ्गे-तोड़कर; तिन खण्ड–तीन टुकड़े; करि'-करके; दण्ड-दण्ड; दिल-फेंक दिया; भासाञा-बहाकर; भक्त-सङ्गे-भक्तों के साथ; आइला–लौट आये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; महेश देखिञा–शिव मन्दिर देखकर।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कपोतेश्वर नामक शिव-मन्दिर में गये, तब नित्यानन्द प्रभु ने अपने पास रखे उनके संन्यास-दण्ड के तीन खण्ड करके भार्गी नदी में फेंक दिया। बाद में यह नदी दण्ड-भांगा-नदी कहलाने लगी।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास-दण्ड का रहस्य बतलाया है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक मायावादी संन्यासी से संन्यास लिया था। सामान्यतया मायावादी संन्यासी एक दण्ड धारण करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर श्रील नित्यानन्द प्रभु ने उस दण्ड को तीन खण्डों में तोड़ डाला और दण्ड-भाँगा-नदी में फेंक दिया। संन्यास आश्रम में चार विभाग होते हैं-कुटीचक, बहूदक, हंस तथा परमहंस। संन्यासी केवल कुटीचक तथा बहूदक अवस्थाओं में ही दण्ड धारण कर सकता है। किन्तु जब वह भ्रमण करते तथा भक्ति का प्रचार करते हुए हंस या परमहंस अवस्था को प्राप्त करता है, तो उसे संन्यास-दण्ड का परित्याग कर देना चाहिए।

श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् भगवान् कृष्ण हैं। इसीलिए कहा गया है-श्रीकृष्णचैतन्य, राधा-कृष्ण नहे अन्य : "श्रीमती राधारानी तथा श्रीकृष्ण-ये दो व्यक्तित्व श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतार में मिश्रित हैं।" इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु को महापुरुष मानते हुए भगवान् नित्यानन्द ने उनकी परमहंस अवस्था की प्रतीक्षा करना उचित नहीं समझा। उन्होंने तर्क दिया कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वयमेव परमहंस अवस्था को प्राप्त हैं, अतएव उन्हें संन्यास-दण्ड धारण करने की आवश्यकता नहीं है। इसीलिए उन्होंने उस दण्ड के तीन खण्ड करके उसे नदी में फेंक दिया।

जगन्नाथेर देउल देखि' आविष्ट हैला ।

दण्डवत्करि प्रेमे नाचिते लागिला ॥144॥

जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ का; देउल-मन्दिर; देखि'–देखकर; आविष्ट-भावावेश में; हैला-हो गये; दण्डवत् करि–दण्डवत् प्रणाम करके; प्रेमे-भगवत् प्रेम के आवेश में; नाचिते-नाचने; लागिला-लगे।

अनुवाद

दूर से ही जगन्नाथ के मन्दिर को देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु तुरन्त भावाविष्ट हो गये। मन्दिर को दंडवत् प्रणाम करने के बाद वे प्रेमावेश में नृत्य करने लगे।

तात्पर्य

देउल शब्द पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के मन्दिर का सूचक है। जगन्नाथ पुरी का वर्तमान मन्दिर राजा अनंगभीम ने बनवाया था। इतिहासकारों का कहना है कि यह मन्दिर कम-से-कम 2,000 वर्ष पूर्व बना होगा। श्री चैतन्य महाप्रभु के काल में मूल मन्दिर के चारों ओर छोटे भवन नहीं बने थे। न ही तब मन्दिर के सामने का ऊँचा चबूतरा ही बना था।

भक्त-गण आविष्ट हञा, सबे नाचे गाय ।

प्रेमावेशे प्रभु-सङ्गे राज-मार्गे याय ॥145॥

भक्त-गण-भक्त गण; आविष्ट-भावावेश में; हञा–आकर; सबे-सभी; नाचे-नाचते हैं; गाय-गाते हैं; प्रेम-आवेशे-भगवत् प्रेम में आकर; प्रभु-सङ्गे–चैतन्य महाप्रभु के संग; राज-मार्गे–राजमार्ग पर; याय-जाते हुए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ साथ सारे भक्त भी भावाविष्ट हो गये और इस तरह भगवत्प्रेम में मग्न होकर वे मुख्य मार्ग पर जाते हुए नाचने तथा गाने लगे।

हासे, कान्दे, नाचे प्रभु हुङ्कार गर्जन ।

तिन-क्रोश पथ हैल—सहस्र योजन ॥ 146 ॥

हासे-हँसते; कान्दे-रोते; नाचे-नाचते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हुङ्कार-भावावेश में कांपते; गर्जन-गर्जन करते; तिन-क्रोश-छः मील; पथ–मार्ग; हैल-हो गया; सहस्र योजन-हजारों मील।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु हँसते, रोदन करते, नाचते तथा भाव में आकर हुँकार कर रहे थे। यद्यपि मन्दिर केवल छह मील दूरी पर था, किन्तु उन्हें यह दूरी हजारों मील लगी।

तात्पर्य

जब श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में होते, तो उन्हें एक एक क्षण 12 वर्ष के समान लगता। दूर से ही जगन्नाथ मन्दिर को देखकर वे इतने भावाविष्ट हो गये कि उन्हें छह मील का मार्ग हजारों मील लम्बा लगा।

चलिते चलते प्रभु आइला 'आठारनाला'।

ताहाँ आसि' प्रभु किछु बाह्य प्रकाशिला ॥ 147॥

चलिते चलते इस प्रकार चलते चलते; प्रभु–महाप्रभु; आइला–पहुँचे; आठारनाला-अठारनाला स्थान पर; ताहाँ-वहाँ; आसि-आकर; प्रभु–महाप्रभु ने; किछु-कुछ; बाह्य-बाहरी चेतना; प्रकाशिला–व्यक्त की।

अनुवाद

इस तरह चलते-चलते महाप्रभु आठारनाला नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ आकर उन्होंने श्री नित्यानन्द प्रभु से बातें करते हुए अपनी बाह्य चेतना व्यक्त की।

तात्पर्य

जगन्नाथ पुरी के प्रवेश द्वार पर आठारनाला नामक एक पुल है, जिसमें अठारह महराबें हैं। (आठार का अर्थ है अठारह।)

नित्यानन्दे कहे प्रभु,—देह मोर दण्ड।

नित्यानन्द बले,—दण्ड हैल तिन खण्ड ॥ 148 ॥

नित्यानन्दे-श्री नित्यानन्द प्रभु को; कहे-पूछा; प्रभु–चैतन्य महाप्रभु; देह-दो; मोर-मेरा; दण्ड–संन्यास दण्ड; नित्यानन्द बले-नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया; दण्ड-आपके संन्यास दण्ड के; हैल–हो गये; तिन खण्ड–तीन भाग।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु को बाह्य चेतना आई, तो उन्होंने श्री नित्यानन्द प्रभु से कहा, "मेरा दण्ड लौटा दो।" तब नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया, "उसके तो तीन खण्ड हो गये हैं।"

प्रेमावेशे पडिला तुमि, तोमारे धरिनु ।

तोमा-सह सेइ दण्ड-उपरे पड़िनु ॥149॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; पड़िला–गिर गये; तुमि-आप; तोमारे-आपको; धरिनु-मैंने पकड़ लिया; तोमा-सह-आपके साथ; सेइ-उस; दण्ड-उपरे-दण्ड के ऊपर; पड़िनु-मैं गिर गया।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "जब आप भावावेश में गिरे, तो मैंने आपको पकड़ा, किन्तु हम दोनों ही उस दण्ड पर गिर पड़े।"

दुइ-जनार भरे दण्ड खण्ड खण्ड हैल ।

सेइ खण्ड काँहा पड़िल, किछु ना जानिल ॥ 150॥

दुइ-जनार-दोनों के; भरे–बोझ (वजन) से; दण्ड–दण्ड; खण्ड खण्ड-टुकड़े टुकड़े; हैल–हो गये; सेइ-वे; खण्ड-टुकड़े; काँहा पड़िल-कहाँ गिरे; किछु-कुछ; ना जानिल-पता नहीं है।

अनुवाद

"इस तरह वह दण्ड हम लोगों के भार से टूट गया। मैं नहीं जानता कि उसके टुकड़े कहाँ गये।"

मोर अपराधे तोमार दण्ड हइल खण्ड ।

ये उचित हय, मोर कर तार दण्ड ॥ 151॥

मोर-मेरे; अपराधे-अपराध से; तोमार-आपका; दण्ड–संन्यास दण्ड; हइल-हो गया; खण्ड-टुकड़े डुकड़े; ये-जो कुछ; उचित-उचित; हय-हो; मोर-मुझे; कर-दो; तार-उसके लिए; दण्ड–दण्ड।

अनुवाद

"आपका दण्ड निश्चित रूप से मेरे अपराध के कारण टूटा है। अब आप जो उचित समझे, मुझे दण्ड दें।"

शुनि' किछु महाप्रभु दुःख प्रकाशिला।

ईषत् क्रोध करि' किछु कहिते लागिला॥ 152॥

शुनि'-यह सुनकर; किछु-कुछ; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु; दुःख–दुःख; प्रकाशिला–व्यक्त किया; ईषत्-थोड़ा; क्रोध-क्रोध; करि'-दिखाकर; किछु-कुछ; कहिते-बोलने; लागिला–लगे।

अनुवाद

जिस तरह से उनका दण्ड टूटा था, उसकी कहानी सुनकर महाप्रभु ने थोड़ा दुःख प्रकट किया और कुछ क्रोध में आकर वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य

श्री नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण किये जाने को व्यर्थ समझते थे। इसीलिए उन्होंने महाप्रभु के द्वारा दण्ड धारण करने की असुविधा समाप्त कर दी। श्री चैतन्य महाप्रभु इसीलिए क्रुद्ध हुए, क्योंकि वे अन्य संन्यासियों को शिक्षा देना चाहते थे कि परमहंस पद प्राप्त करने से पूर्व दण्ड का परित्याग नहीं करना चाहिए। यह देखकर कि ऐसे कार्य से विधानों में ढील आ सकती है, महाप्रभु स्वयं दण्ड धारण किये रहना चाहते थे। किन्तु नित्यानन्द प्रभु ने उसे तोड़ डाला। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु कुछ क्रुद्ध हुए। भगवद्गीता (3.21) में कहा गया है- यद् यद् आचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन:-जैसा श्रेष्ठ लोग करते हैं, उसी का अनुकरण अन्य लोग करते हैं। परमहंसों का अनुकरण करने का प्रयत्न करने वाले अनुभवहीन प्राकृत भक्तों की रक्षा करने के उद्देश्य श्री चैतन्य महाप्रभु वैदिक नियमों का दृढ़ता से पालन करना चाह रहे थे।

नीलाचले आनि' मोर सबे हित कैला।

सबे दण्ड-धन छिल, ताहा ना राखिला॥153॥

नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; आनि'–लाकर; मोर-मेरा; सबे-आप सबने; हित-लाभ (हित); कैला–किया; सबे–केवल; दण्ड-धन-एक दण्ड; छिल–था; ताहा-वह भी; ना-नहीं; राखिला-आपने रखा।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आप लोगों ने मुझे नीलाचल लाकर मुझ पर उपकार किया है। किन्तु वह दण्ड मेरा एकमात्र धन था, जिसे आप लोग संभालकर नहीं रख पाये।"

तुमि-सब आगे याह ईश्वर देखिते ।

किबा आमि आगे याइ, ना याब सहिते ॥ 154॥

तुमि-सब-तुम सब; आगे-आगे; याह-जाओ; ईश्वर देखिते-जगन्नाथ को देखने; किबा–अथवा; आमि-मैं; आगे-आगे; याइ-जाता हूँ; ना-नहीं; याब-मैं जाऊँगा; सहिते-आपके साथ।

अनुवाद

"अतएव आप सारे लोग या तो मुझसे पहले या मेरे बाद भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने जाओ। मैं आप लोगों के साथ नहीं जाऊँगा।"

मुकुन्द दत्त कहे,—प्रभु, तुमि याह आगे ।

आमि-सब पाछे याब, ना याब तोमार सङ्गे ॥ 155॥

मुकुन्द दत्त कहे-मुकुंद दत्त नामक भक्त ने कहा, प्रभु-मेरे प्रभु; तुमि-आप; याह-जाओ; आगे-आगे; आमि-सब-हम सब; पाछे-पीछे; याब-आयेंगे; ना-नहीं; याब-जायेंगे; तोमार सङ्गे-आपके साथ।

अनुवाद

मुकुन्द दत्त ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "हे प्रभु, आप आगे-आगे चलें और अन्यों को पीछे-पीछे चलने की अनुमति दें। हम आपके साथ-साथ नहीं जायेंगे।"

एत शुनि' प्रभु आगे चलिला शीघ्र-गति ।

बुझिते ना पारे केह दुइ प्रभुर मति ॥ 156 ॥

एत शुनि'-यह सुनकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आगे-दूसरे भक्तों के आगे; चलिला–चलने लगे; शीघ्र-गति-तेजी से; बुझिते—यह समझने में; ना-नहीं; पारे-सक्षम; केह-कोई भी; दुइ-दो; प्रभुर–प्रभुओं का; मति–आशय।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु अन्य सभी भक्तों के आगे-आगे शीघ्रता से चलने लगे। कोई भी दोनों प्रभुओं-चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु-के वास्तविक उद्देश्य को नहीं समझ सका।

इँहो केने दण्ड भाङ्गे, तेंहो केने भाङ्गाय ।

भाङ्गाञा क्रोधे तेंहो इँहाके दोषाय ॥ 157॥

इँहो–नित्यानन्द प्रभु ने; केने-क्यों; दण्ड-दण्ड; भाड़े-तोड़ा; तेंहो- श्री चैतन्य महाप्रभु ने; केने-क्यों; भाङ्गाय-तोड़ने दिया; भाङ्गाञा-तोड़ने देने के बाद; क्रोधे-क्रोध में; तेंहो- श्री चैतन्य महाप्रभु ने; इँहाके-श्री नित्यानन्द प्रभु को; दोषाय-दोष दिया।

अनुवाद

भक्तगण यह नहीं समझ पाये कि नित्यानन्द प्रभु ने दण्ड क्यों तोड़ा, महाप्रभु ने उन्हें ऐसा क्यों करने दिया और ऐसा करने देने के बाद अब महाप्रभु क्रुद्ध क्यों हो गये।

दण्ड-भङ्ग-लीला एइ—परम गम्भीर ।

सेइ बुझे, दुँहार पदे याँर भक्ति धीर ॥ 158॥

दण्ड-भङ्ग-लीला-दण्ड तोड़ने की लीला; एड-यह; परम-परम; गम्भीर-गम्भीर; सेइ बुझे वही समझ सकता है; दुँहार-दोनों के; पदे-चरणकमलों पर; याँर–जिसकी; भक्ति-भक्ति; धीर–स्थिर।

अनुवाद

दण्डभंग लीला अत्यन्त गम्भीर है। इसे वही समझ सकता है, जिसकी दोनों प्रभुओं के चरणकमलों पर दृढ़ भक्ति हो।

तात्पर्य

जो व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु को वास्तव में समझता है, वही उनके स्वरूप तथा दण्डभंग लीला को समझ सकता है। सारे पूर्ववर्ती आचार्यों ने भगवान् की सेवा में पूर्णतया समर्पित होने के लिए प्रेरित

होकर भौतिक जीवन की आसक्ति त्यागकर दण्ड धारण किया, जो मनसा-वाचा-कर्मणा भगवान् की सेवा में व्यस्तता का सूचक है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास आश्रम के विधानों को स्वीकार किया था। यह बिल्कुल स्पष्ट है। किन्तु परमहंस अवस्था में दण्ड धारण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती और श्री चैतन्य महाप्रभु निश्चित रूप से परमहंस थे। किन्तु यह दिखलाने के लिए कि हर एक को जीवन के अन्तिम काल में भगवान् की सेवा में पूर्णरूपेण लगने के लिए संन्यास ग्रहण करना चाहिए, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके पार्षद जैसे परमहंस भी सदैव विधानों का पालन करते हैं। यही उनका हेतु था। महाप्रभु के नित्य सेवक नित्यानन्द प्रभु का विश्वास था कि श्री चैतन्य महाप्रभु को दण्ड धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, इसीलिए संसार को यह बताने के लिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त विधानों के ऊपर हैं, उन्होंने दण्ड के तीन खण्ड कर डाले। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने दण्ड-भंग-लीला का इस प्रकार वर्णन किया है।

ब्रह्मण्य-देव-गोपालेर महिमा एइ धन्य ।

नित्यानन्द–वक्ता यार, श्रोता–श्री-चैतन्य ॥ 159॥

ब्रह्मण्य-देव-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जो ब्राह्मणों पर दयालु हैं; गोपालेर-गोपाल की; महिमा-महिमाएँ; एइये; धन्य-धन्य; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; वक्ता-वक्ता; यार-जिसके; श्रोता-श्रोता; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

ब्राह्मणों पर कृपालु रहने वाले भगवान् गोपाल की महिमा अपार है। साक्षीगोपाल की यह कथा नित्यानन्द प्रभु द्वारा सुनाई गई और इसके श्रोता थे श्री चैतन्य महाप्रभु।

तात्पर्य

साक्षीगोपाल की कथा में चार शिक्षाओं पर विचार करना चाहिए। प्रथम-श्री गोपाल का अर्चाविग्रह सच्चिदानन्द स्वरूप है। दूसरा-अर्चाविग्रह भौतिक विधि-विधानों से परे हैं तथा वे दिव्य विधानों की स्थापना करते हैं। तीसरा-ब्राह्मण होने पर दिव्य पद मिल सकता है, किन्तु ब्राह्मण बनकर विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करना होगा। चौथा-ब्रह्मण्य-देव साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण का सूचक है, जिनकी पूजा इस प्रकार की जाती है- नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च/ जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः। इससे सूचित होता है कि जो भक्त कृष्ण के संरक्षण में रहता है, वह स्वतः ब्राह्मण-पद पर स्थित होता है और ऐसा ब्राह्मण कभी मोहग्रस्त नहीं होता। यह सत्य है।

श्रद्धा-युक्त हञा इहा शुने येइ जन ।

अचिरे मिलये तारे गोपाल-चरण ॥ 160॥

श्रद्धा-मुक्त-श्रद्धा युक्त; हञा–होकर; इहा-यह कथा सुने-सुनता है; येइ-जो; जन-व्यक्ति; अचिरे–अति शीघ्र; मिलये-पाता है; तारे-वह; गोपाल-चरण-भगवान् गोपाल के चरणकमल।

अनुवाद

जो व्यक्ति श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक गोपाल के इस आख्यान को सुनता है, उसे शीघ्र ही गोपाल के चरणकमल प्राप्त होते हैं।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 161॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ–श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों में; यार–जिसकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत; कहे वर्णन करना; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा उनकी कृपा की सदैव कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के पंचम अध्याय का, जिसमें साक्षीगोपाल के कार्यकलापों का वर्णन है, भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय छह

सार्वभौम भट्टाचार्य की मुक्ति

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में छठे अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर में प्रविष्ट हुए, तो वे तुरन्त मूर्छित हो गये। तब सार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें अपने घर ले आये। इस बीच सार्वभौम भट्टाचार्य के बहनोई गोपीनाथ आचार्य मुकुन्द दत्त से मिले और उन्होंने उनसे श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने तथा जगन्नाथ पुरी की यात्रा करने की चर्चा की। महाप्रभु के मूर्छित होने तथा सार्वभौम भट्टाचार्य के घर ले जाये जाने का समाचार सुनकर लोग महाप्रभु का दर्शन करने के लिए वहाँ उमड़ने लगे। इसके बाद श्रील नित्यानन्द प्रभु तथा अन्य भक्त जगन्नाथ मन्दिर गये और जब वे लोग सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पहुँचे, तब महाप्रभु को बाह्य चेतना लौट आई। सार्वभौम भट्टाचार्य ने हर एक का स्वागत किया और प्रेमपूर्वक महाप्रसाद का वितरण किया। फिर भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु से परिचित हुए और उनके रहने का प्रबन्ध उन्होंने

अपनी मौसी के यहाँ कर दिया। उनके बहनोई गोपीनाथ आचार्य ने यह सिद्ध किया कि महाप्रभु साक्षात् कृष्ण हैं, किन्तु सार्वभौम तथा उनके अनेक शिष्य इसका स्वीकार कर सके। फिर भी गोपीनाथ आचार्य ने सार्वभौम को विश्वास दिलाया कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा बिना उन्हें कोई नहीं समझ सकता। उन्होंने शास्त्रों के उद्धरण देकर सिद्ध किया कि श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् कृष्ण हैं। इतने पर भी सार्वभौम ने उनके कथनों को गम्भीरतापूर्वक नहीं लिये। ये सारे तर्क सुनकर चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों से कहा कि सार्वभौम मेरे गुरु हैं। और वे स्नेहवश जो कुछ भी कह रहे हैं वह सबके लाभ के लिए है।

जब सार्वभौम श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले, तो उन्होंने कहा कि वे उन्हें वेदान्त दर्शन सुनाना चाहते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह प्रस्ताव मान लिया और सार्वभौम उन्हें लगातार सात दिनों तक वेदान्त दर्शन की व्याख्या सुनाते रहे, किन्तु महाप्रभु मौन बने रहे। उनको मौन देखकर भट्टाचार्य ने पूछा कि क्या वे वेदान्त दर्शन समझ रहे हैं या नहीं? इस पर महाप्रभु ने उत्तर दिया, "हे महाशय, मैं वेदान्त-दर्शन को तो स्पष्ट रूप से समझ सकता हूँ, किन्तु मैं आपकी व्याख्याएँ नहीं समझ पा रहा। इस पर भट्टाचार्य तथा महाप्रभु के बीच उपनिषदों और वेदान्त सूत्र के प्रमाणों को लेकर शास्त्रार्थ हुआ। भट्टाचार्य निर्विशेषवादी थे, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने सिद्ध किया कि परम सत्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। उन्होंने सिद्ध किया कि निर्विशेष परम सत्य के विषय में मायावादी दार्शनिकों की जो धारणाएँ हैं, वे गलत हैं।

परम सत्य न तो निर्विशेष हैं न शक्ति से रहित हैं। मायावादी दार्शनिकों की सबसे बड़ी भूल यह है कि वे परम सत्य को निर्विशेष तथा शक्तिविहीन मानते हैं। समस्त वेदों में परम सत्य की असीम शक्तियों को स्वीकार किया गया है। यह भी स्वीकार किया गया है कि परम सत्य को अपना दिव्य, आनन्दमय तथा शाश्वत स्वरूप है। वेदों के अनुसार भगवान् तथा जीव दोनों गुणों में समान हैं, किन्तु इन गुणों की मात्रा भिन्न-भिन्न है। परम सत्य का वास्तविक दर्शन बतलाता है कि भगवान् तथा उनकी सृष्टि अचिन्त्य रूप से एक हैं एवं साथ ही साथ भिन्न भी हैं। निष्कर्ष यह है कि मायावादी दार्शनिक वास्तव में नास्तिक हैं। इस विषय को लेकर दोनों में पर्याप्त चर्चा हुई, किन्तु समस्त प्रयत्नों के बाद भी अन्त में भट्टाचार्य हार गये।

तब सार्वभौम भट्टाचार्य के अनुरोध पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत के आत्माराम श्लोक की 18 प्रकार से व्याख्या की। जब भट्टाचार्य का होश ठिकाने आया, तो महाप्रभु ने अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट किया। इस पर

भट्टाचार्य ने महाप्रभु की प्रशंसा में 100 श्लोक सुनाये और उन्हें नमस्कार किया। इसके बाद गोपीनाथ आचार्य तथा अन्य लोग महाप्रभु की अद्भुत शक्ति देखकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुए।

इस घटना के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु के पास एक दिन प्रात:काल जगन्नाथजी से कुछ प्रसाद आया, जिसे उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य को दिया। सार्वभौम ने यह महाप्रसाद बिना किसी औपचारिकता के तुरन्त ग्रहण कर लिया। एक अन्य दिन जब सार्वभौम ने श्री चैतन्य महाप्रभु से पूजा तथा ध्यान करने की सर्वोत्तम विधि पूछी, तो महाप्रभु ने उन्हें हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने का उपदेश दिया। किसी अन्य दिन सार्वभौम ने तत्तेऽनुकम्पाम् श्लोक को इसलिए बदलना चाहा, क्योंकि उन्हें इसका मुक्तिपद शब्द उचित नहीं लगा। उसके स्थान पर वे भक्तिपद करना चाह रहे थे। किन्तु महाप्रभु ने मना किया कि श्रीमद्भागवत के इस श्लोक को न बदला जाय, क्योंकि मुक्तिपद पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के चरणकमलों का द्योतक है। शुद्ध भक्त बन जाने के बाद सार्वभौम ने कहा, "चूँकि अर्थ अस्पष्ट है, अतएव अब भी मुझे भक्तिपद अधिक पसन्द है।" इस पर श्री चैतन्य महाप्रभु तथा जगन्नाथ पुरी के अन्य निवासी अत्यधिक प्रसन्न हुए। इस तरह सार्वभौम भट्टाचार्य शुद्ध वैष्णव बन गये और वहाँ के अन्य विद्वानों ने भी उनका अनुसरण किया।

नौमि तं गौरचन्द्रं यः कुतर्क-कर्कशाशयम् ।

सार्वभौमं सर्व-भूमा भक्ति-भूमानमाचरत् ॥1॥

नौमि-मैं सादर नमस्कार करता हूँ; तम्-उनको; गौरचन्द्रम्-जो भगवान् गौरचन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हैं; यः-जिन्होंने; कु-तर्क-कुतर्क; कर्कश-आशयम्-जिसका हृदय कठोर था; सार्वभौमम्-सार्वभौम भट्टाचार्य को; सर्व-भूमा–प्रत्येक के स्वामी; भक्ति-भूमानम्-महान् भक्त; आचरत्-परिवर्तित कर दिया।

अनुवाद

मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गौरचन्द्र को सादर नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने सारे कुतर्कों के आगार, कठोर हृदय वाले सार्वभौम भट्टाचार्य को महान् भक्त में बदल दिया।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैतचन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ 2 ॥

जय जय गौरचन्द्र-भगवान् गौरहरि (चैतन्य महाप्रभु) की जय हो; जय नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की जय हो; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय हो; जय गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो!

आवेशे चलिला प्रभु जगन्नाथ-मन्दिरे।

जगन्नाथ देखि' प्रेमे हइला अस्थिरे ॥ 3॥

आवेशे-आवेश में; चलिला–चले गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जगन्नाथ-मन्दिरे-जगन्नाथ मन्दिर को; जगन्नाथ देखि'–जगन्नाथ का विग्रह देखकर; प्रेमे-प्रेमावेश में; हइला–हो गये; अस्थिरे-व्याकुल।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में आठारनाला से जगन्नाथ मन्दिर गये। वहाँ जगन्नाथ भगवान् का दर्शन करके वे भगवत्प्रेमवश अत्यन्त व्याकुल हो उठे।

जगन्नाथ आलिङ्गिते चलिला धाञा।

मन्दिरे पड़िला प्रेमे आविष्ट हञा ॥4॥

जगन्नाथ भगवान् जगन्नाथ का; आलिङ्गिते-आलिंगन करने के लिए; चलिला-चले; धाञा-बड़ी तेजी से; मन्दिरे–मन्दिर में; पड़िला–गिर गये; प्रेम-प्रेमावेश में; आविष्ट-विह्वल; हञा–होकर।

अनुवाद

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु तेजी से भगवान जगन्नाथ का आलिंगन करने गये, किन्तु मन्दिर में प्रवेश करने के बाद वे भगवत्प्रेम में इतने विभोर हो गये कि वे भूमि पर मूर्छित होकर गिर पड़े।

दैवे सार्वभौम ताँहाके करे दरशन।

पड़िछा मारिते तेंहो कैल निवारण ॥5॥

दैवे-दैव वश; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; ताँहाके-उनके; करे-करते हैं; दरशन-दर्शन; पड़िछा–मन्दिर का चौकीदार; मारिते-मारना; तेंहो-वह; कैल-किया; निवारण-रोका।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु गिर पड़े, तब दैववश सार्वभौम भट्टाचार्य ने उन्हें देख लिया। जब सुरक्षाकर्मी ने महाप्रभु को मारने की धमकी दी, तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने तुरन्त उसे मना कर दिया।

प्रभुर सौन्दर्य आर प्रेमेर विकार ।

देखि' सार्वभौम हैला विस्मित अपार ॥ 6 ॥

प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; सौन्दर्य-सौन्दर्य; आर-और; प्रेमेर विकार-प्रेम के विकार; देखि'–देखकर; सार्वभौम–सार्वभौम भट्टाचार्य; हैला-हो गये; विस्मित–चकित; अपार-अत्यन्त।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की सुन्दरता तथा भगवत्प्रेम के कारण उनके शरीर में उत्पन्न दिव्य विकारों को देखकर सार्वभौम भट्टाचार्य को अत्यधिक आश्चर्य हुआ।

बहु-क्षणे चैतन्य नहे, भोगेर काल हैल ।

सार्वभौम मने तबे उपाय चिन्तिल ॥7॥

बहु-क्षणे-काफी समय तक; चैतन्य-चेतना; नहे-नहीं रही; भोगेर-भोग लगाने का; काल-समय; हैल–हो गया; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; मने-मन में; तबे-उस समय; उपाय-उपाय; चिन्तिल-सोचने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अधिक समय तक अचेतन पड़े रहे। तभी भगवान् जगन्नाथ को भोग लगाने का समय हो गया और भट्टाचार्य कुछ उपाय सोचने लगे।

शिष्य पड़िछा-द्वारा प्रभु निल वहाञा ।

घरे आनि' पवित्र स्थाने राखिल शोयाञा ॥8॥

शिष्य-शिष्यगण; पड़िछा-और चौकीदार; द्वारा द्वारा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; निल-लेकर; वहाञा-उठाकर; घरे–घर पर; आनि'–लाकर; पवित्र-पवित्र; स्थाने-स्थान पर; राखिल-रखा; शोयाञा-लिटाकर।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य सुरक्षाकर्मी तथा कुछ शिष्यों की सहायता से श्री चैतन्य महाप्रभु को अचेत अवस्था में ही अपने घर ले आये और उन्हें एक अत्यन्त पवित्र स्थान में लिटा दिया।

तात्पर्य

उस समय सार्वभौम भट्टाचार्य जगन्नाथ मन्दिर की दक्षिण दिशा में रहते थे। उनका घर समुद्र-तट पर था, जो मार्कण्डेय सरस्तट कहलाता था। आजकल इसका प्रयोग गंगामाता के मठ के रूप में हो रहा है।

श्वास-प्रश्वास नाहि उदर-स्पन्दन ।

देखिया चिन्तित हैल भट्टाचार्येर मन ॥9॥

श्वास-प्रश्वास-श्वास लेना; नाहि-नहीं था; उदर-पेट में; स्पन्दन–हिलना डुलना; देखिया-देखकर; चिन्तित–चिन्तायुक्त; हैल–हो गया; भट्टाचार्येर–सार्वभौम भट्टाचार्य का; मन–मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर की परीक्षा करने पर सार्वभौम ने देखा कि न तो उनका उदर गति कर रहा है न ही वे श्वास ले रहे हैं। उनकी यह दशा देखकर भट्टाचार्य अत्यन्त चिन्तित हो उठे।

सूक्ष्म तुला आनि' नासा-अग्रेते धरिल ।

ईषत चलये तुला देखि' धैर्य हैल ॥10॥

सूक्ष्म-सूक्ष्म; तुला-कपास; आनि'–लाकर; नासा–नासिका के; अग्रेते-आगे; धरिल-रखी; ईषत्-थोड़ी सी; चलये-हिलती है; तुला-कपास; देखि'–देखकर; धैर्य-धैर्य; हैल-आया।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने बारीक रुई का फोहा लिया और उसे महाप्रभु के नासिका के सामने रखा। जब उन्होंने देखा कि रुई कुछ-कुछ हिल रही है, तो उन्हें कुछ आशा बँधी।

वसि' भट्टाचार्य मने करेन विचार।

एइ कृष्ण-महाप्रेमेर सात्त्विक विकार ॥11॥

वसि'–बैठकर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; मने-अपने मन में; करेन-करते हैं; विचार-विचार; एइ–यह; कृष्ण-महा-प्रेमेर-कृष्ण के लिए प्रेम का; सात्त्विक-सात्त्विक; विकार-विकार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के पास बैठकर उन्होंने सोचा, "यह दिव्य ऊर्मिपूर्ण परिवर्तन (सात्त्विक विकार) कृष्ण-प्रेम के कारण हुआ है।"

'सूद्दीप्त सात्त्विक' एइ नाम ये 'प्रलय'।

नित्य-सिद्ध भक्ते से 'सूद्दीप्त भाव' हय ॥12॥

सु-उद्दीप्त सात्त्विक-सुद्दीप्त सात्त्विक; एइ–यह; नाम-नाम वाला; ये-जो; प्रलय-प्रलय; नित्य-सिद्ध–नित्य रूप से परिपूर्ण सिद्ध; भक्ते-भक्त में; से-वह; सु-उद्दीप्त भाव-सूद्दीप्त भावावेश; हय-प्रकट होता है।

अनुवाद

सूद्दीप्त सात्त्विक के लक्षण देखकर सार्वभौम भट्टाचार्य को समझते देर न लगी कि चैतन्य महाप्रभु के शरीर में दिव्य भावावेश (सूद्दीप्त भाव) हुआ है। ऐसा लक्षण केवल नित्यसिद्ध भक्तों के शरीरों में ही दिखा करता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने सूद्दीप्त सात्त्विक की विवेचना इस प्रकार की है : "भक्तिरसामृत सिन्धु में उन्नत भक्तों के शरीर में प्रकट होने वाले आठ प्रकार के दिव्य विकारों का उल्लेख हुआ है। कभी-कभी भक्तगण इनके प्रकट होने को रोक देते हैं, जिसकी दो अवस्थाएँ होती हैं-धूमायिता तथा ज्वलिता। धूमायिता (धूमिल) अवस्था वह

है, जिसमें एक या दो विकारों के सूक्ष्म मात्रा में होने के कारण उन्हें छिपाया जा सकता है। जब दो या तीन से अधिक दिव्य विकार उपस्थित हों, तो भी उन्हें छिपा सकना सम्भव है, किन्तु बड़ी कठिनाई से। इसे ज्वलिता (ज्वलित) अवस्था कहा जाता है। जब चार या पाँच विकार एकसाथ उपस्थित हों, तो उसे दीप्त (प्रदीप्त) अवस्था कहते हैं। पाँच, छ: या सभी आठों विकारों के एकसाथ उपस्थित होने पर उद्दीप्त (प्रज्वलित) अवस्था प्राप्त होती है। जब आठों विकार हजार गुना बढ़कर एकसाथ प्रकट हों, तो भक्त सूद्दीप्त (अत्यन्त प्रज्वलित) अवस्था में होता है। नित्यसिद्ध भक्त का अर्थ है भगवान् के शाश्वत मुक्त पार्षद। ऐसे भक्त भगवान् की संगति का आनन्द चार सम्बन्धों में दास्य, साख्य, वात्सल्य या माधुर्य के रूप में लूटते हैं।"

'अधिरूढ़ भाव' याँर, ताँर ए विकार।

मनुष्येर देहे देखि,—बड़ चमत्कार॥ 13॥

अधिरूढ़ भाव-अधिरूढ नामक भावावेश; याँर–जिसका; ताँर–उनका; ए-यह; विकार-विकार; मनुष्येर–मनुष्य की; देहे-देह में; देखि-मैं देखता हूँ; बड़ चमत्कार-अत्यन्त आश्चर्यजनक।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने विचार किया, "श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में अधिरूढ भाव के असाधारण दिव्य लक्षण प्रकट हो रहे हैं। यह बड़ा आश्चर्यजनक है! भला मनुष्य के शरीर में ये किस तरह सम्भव हैं?"

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि में अधिरूढ भाव या अधिरूढ महाभाव की व्याख्या दी है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर रूप गोस्वामी का यह उद्धरण देते हैं, "आश्रय (भक्त) की प्रेमानुभूति विषय (भगवान्) के प्रति इतनी भावपूर्ण हो उठती है कि प्रेमी का साहचर्य भोगने के बाद भी भक्त को यह आनन्द अपर्याप्त लगता है। ऐसी अवस्था में प्रेमी अपने प्रेम के पात्र को विभिन्न तरीकों से देखता है। भाव का ऐसा विकास अनुराग कहलाता है। जब अनुराग पराकाष्ठा को प्राप्त करके शरीर में दृष्टिगोचर होने लगता है, तो यह भाव कहलाता है। जब शारीरिक लक्षण इतने स्पष्ट नहीं होते, तब भी यह भावदशा अनुराग ही कहलाती है, भाव नहीं। भावोल्लास प्रगाढ़ अवस्था में महाभाव कहलाता है। महाभाव के लक्षण गोपियों जैसी नित्य पार्षदों के शरीरों में ही दृष्टिगोचर होते हैं।"

एत चिन्ति' भट्टाचार्य आछेन वसिया।

नित्यानन्दादि सिंह-द्वारे मिलिल आसिया ॥14॥

एत चिन्ति'-ऐसा सोचकर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; आछेन-थे; वसिया-बैठे; नित्यानन्द-आदि-नित्यानन्द प्रभु आदि सभी भक्त; सिंह-द्वारे-जगन्नाथ मन्दिर के प्रवेश द्वार पर; मिलिल-मिले; आसिया-आकर।

अनुवाद

जब भट्टाचार्य अपने घर में इस प्रकार विचार कर रहे थे, तब नित्यानन्द प्रभु समेत चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्त मन्दिर के सिंह-द्वार (प्रवेश-द्वार) के निकट पहुँचे।

ताँहा शुने लोके कहे अन्योन्ये बात् ।

एक सन्न्यासी आसि' देखि' जगन्नाथ ॥15॥

ताँहा-उस स्थान पर; शुने-उन्होंने सुना; लोके-सामान्य जनता को; कहे-बातें करते; अन्योन्ये-आपस में; बात्-बातें; एक-एक; सन्न्यासी-संन्यासी; आसि'-वहाँ आकर; देखि'–देखकर; जगन्नाथ-भगवान जगन्नाथ के अर्चाविग्रह को।

अनुवाद

वहाँ पर इन भक्तों ने लोगों को एक संन्यासी के बारे में बातें करते सुना, जो जगन्नाथ पुरी आया था और जिसने जगन्नाथ विग्रह के दर्शन किये थे।

मूर्च्छित हैल, चेतन ना हय शरीरे ।

सार्वभौम लञा गेला आपनार घरे ॥16॥

मूर्च्छित–मूर्छित; हैल–हो गया; चेतन-चेतना; ना-नहीं; हय है; शरीरे-उसके शरीर में; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; लञा-उसको लेकर; गेला–चले गये; आपनार-अपने; घरे-घर को।

अनुवाद

लोग कह रहे थे कि वह संन्यासी जगन्नाथ के विग्रह का दर्शन करने पर मूर्छित हो गया। चूँकि उसको होश नहीं आया, इसलिए सार्वभौम भट्टाचार्य उसे अपने घर ले गये।

शुनि' सबै जानिला एइ महाप्रभुर कार्य ।

हेन-काले आइला ताहाँ गोपीनाथाचार्य ॥17॥

शुनि'-यह सुनकर; सबे-सभी भक्त; जानिला–समझ गये; एइ–यह; महाप्रभुर-चैतन्य महाप्रभु का; कार्य-कार्य; हेन-काले-उस समय; आइला–आये; ताहाँ-वहाँ गोपीनाथ-आचार्य–गोपीनाथ आचार्य।

अनुवाद

यह सुनकर भक्तगण समझ गये कि वे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के बारे में बातें कर रहे हैं। तभी श्री गोपीनाथ आचार्य वहाँ आये।

नदीया-निवासी, विशारदेर जामाता ।

महाप्रभुर भक्त तेंहो प्रभु-तत्त्व-ज्ञाता ॥18॥

नदीया-निवासी-नदिया के निवासी; विशारदेर-विशारद का; जामाता-दामाद; महाप्रभुर भक्त-चैतन्य महाप्रभु के भक्त; तेंहो-वे; प्रभु-तत्त्व-ज्ञाता-चैतन्य महाप्रभु की वास्तविक पहचान को जानने वाले।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य नदिया के निवासी, विशारद के दामाद तथा चैतन्य महाप्रभु के भक्त थे। वे महाप्रभु की वास्तविक पहचान को जानते थे।

तात्पर्य

महेश्वर विशारद नीलाम्बर चक्रवर्ती के सहपाठी थे। वे नदिया जिले के विद्यानगर ग्राम के रहने वाले थे और उनके दो पुत्र थे-मधुसूदन वाचस्पति तथा वासुदेव सार्वभौम। उनके दामाद गोपीनाथ आचार्य थे।

मुकुन्द-सहित पूर्वे आछे परिचय ।

मुकुन्द देखिया ताँर हइल विस्मय ॥19॥

मुकुन्द-सहित-मुकुन्द दत्त के साथ; पूर्वे-पहले; आछे–था; परिचय–परिचय; मुकुन्द मुकुन्द दत्त; देखिया-देखकर; ताँर–उनको (गोपीनाथ आचार्य को); हइल-था; विस्मय-आश्चर्य।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य पहले से मुकुन्द दत्त को जानते थे; अतएव जब उन्होंने मुकुन्द दत्त को जगन्नाथ पुरी में देखा, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

मुकुन्द ताँहारे देखि' कैल नमस्कार ।

तेंहो आलिङ्गिया पुछे प्रभुर समाचार ॥20॥

मुकुन्द-मुकुन्द दत्त; ताँहारे–उनको; देखि'–देखकर; कैल–किया; नमस्कार-नमस्कार; तेंहो-वे; आलिङ्गिया-आलिंगन करके; पुछे-पूछते हैं; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; समाचार समाचार।

अनुवाद

जब मुकुन्द दत्त गोपीनाथ आचार्य से मिलें, तो उन्होंने उन्हें नमस्कार किया। उनका आलिंगन करने के बाद गोपीनाथ आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में पूछा।

मुकुन्द कहे,—प्रभुर इहाँ हैल आगमने ।

आमि-सब आसियाछि महाप्रभुर सने ॥ 21॥

मुकुन्द कहे-मुकुन्द ने कहा; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; इहाँ–यहाँ; हैल–हुआ है; आगमने-आगमन; आमि-सब-हम सब; आसियाछि-आ गये हैं; महाप्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; सने-साथ।

अनुवाद

मुकुन्द दत्त ने उत्तर दिया, "महाप्रभु तो पहले ही यहाँ आ चुके हैं। हम उन्हीं के साथ आये हैं।"

नित्यानन्द-गोसाञिके आचार्य कैल नमस्कार ।

सबे मेलि' पुछे प्रभुर वार्ता बार बार ॥22॥

नित्यानन्द-गोसाञिके–नित्यानन्द प्रभु को; आचार्य गोपीनाथ आचार्य; कैल नमस्कार-नमस्कार किया; सबे मेलि'–उन सबको मिलकर; पुछे-पूछते हैं; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु का; वार्ता–समाचार; बार बार-बार बार।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने श्री नित्यानन्द प्रभु को देखते ही उन्हें प्रणाम किया। इस तरह सभी भक्तों से मिलकर उन्होंने बारम्बार श्री चैतन्य महाप्रभु का समाचार पूछा।

मुकुन्द कहे,—'महाप्रभु सन्न्यास करिया ।

नीलाचले आइला सङ्गे आमा-सबा लञा' ॥23॥

मुकुन्द कहे-मुकुन्द दत्त ने कहा; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; सन्न्यास करिया-संन्यास लेने के बाद; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी को; आइला–आये हैं; सङ्गे-अपने साथ; आमा-सबा-हम सबको; लञा–लेकर।

अनुवाद

मुकुन्द दत्त ने आगे कहा, "संन्यास लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी आये हैं और हम सबको अपने साथ लाये हैं।"

आमा-सबा छाड़ि' आगे गेला दरशने ।

आमि-सब पाछे आइलाँ ताँर अन्वेषणे ॥24॥

आमा-सबा-हम सबको; छाडि'–छोड़कर; आगे-आगे; गेला-गये; दरशने-भगवान जगन्नाथ के दर्शन करने हेतु; आमि-सब-हम सब; पाछे-पीछे; आइलाँ-आये; ताँर–उनकी; अन्वेषणे-तलाश में।

अनुवाद

"महाप्रभु हमारा साथ छोड़कर आगे-आगे भगवान जगन्नाथ का दर्शन करने चले आये। हम सब अभी आये हैं और अब उन्हीं की खोज में हैं।"

अन्योन्ये लोकेर मुखे ये कथा शुनिल ।

सार्वभौम-गृहे प्रभु,—अनुमान कैल ॥25॥

अन्योन्ये-आपस में; लोकेर-सामान्य लोगों के; मुखे-मुख से; ये-वह जो; कथा–बातचीत; शुनिल-सुनी थी; सार्वभौम-गृहे सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर; प्रभु-महाप्रभु; अनुमान–अनुमान; कैल-लगाया।

अनुवाद

“सब लोगों की बातों से हमने अनुमान लगाया है कि महाप्रभु अब सार्वभौम भट्टाचार्य के घर में हैं।”

ईश्वर-दर्शने प्रभु प्रेमे अचेतन ।

सार्वभौम लञा गेला आपन-भवन ॥ 26 ॥

ईश्वर-दर्शने–भगवान् जगन्नाथ के दर्शन से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रेमे-भगवत्प्रेम के भावावेश में; अचेतन-अचेतन; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; लञा गेला–ले गये हैं; आपन-भवन-अपने घर पर।

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करके भावविभोर हो गये और अचेत हो गये और सार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें उसी अवस्था में अपने घर ले गये हैं।”

तोमार मिलने यबे आमार हैल मन ।

दैवे सेइ क्षणे पाइलुँ तोमार दरशन ॥27॥

तोमार-आपसे; मिलने-मिलने के लिए; यबे-जब; आमार-मेरा; हैल-था; मन-मन; दैवे-अचानक; सेइ क्षणे-उसी क्षण; पाइलुँ-मिला; तोमार-आपका; दरशन-मिलन।

अनुवाद

“जब मैं आपसे मिलने की सोच रहा था, अकस्मात् हमारी भेंट संयोग से हो गई।”

चल, सबे याइ सार्वभौमेर भवन ।

प्रभु देखि’ पाछे करिब ईश्वर दर्शन’ ॥28॥

चल-आओ चलें; सबे-सब; झाइ–हम जायेंगे; सार्वभौमेर भवन–सार्वभौम के घर में; प्रभु देखि’–चैतन्य महाप्रभु को मिलने के बाद; पाछे-बाद में; करिब–करेंगे; ईश्वर दर्शन-भगवान जगन्नाथ के दर्शन।

अनुवाद

“चलिये, पहले सार्वभौम भट्टाचार्य के घर चलकर श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करें। बाद में हम भगवान जगन्नाथ का दर्शन करने आयेंगे।”

एत शुनि' गोपीनाथ सबारे लञा ।

सार्वभौम-घरे गेला हरषित हञा ॥29॥

एत शुनि'-यह सुनकर; गोपीनाथ-गोपीनाथ आचार्य; सबारे-उन सबको; लञा-अपने साथ लेकर; सार्वभौम-घरे–सार्वभौम भट्टाचार्य के घर के; गेला–गये; हरषित हञा-अत्यन्त प्रसन्न होकर।

अनुवाद

यह सुनकर हर्षित मन से गोपीनाथ आचार्य तुरन्त सभी भक्तों को साथ लेकर सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पहुँचे।

सार्वभौम-स्थाने गिया प्रभुके देखिल ।

प्रभु देखि' आचार्येर दुःख-हर्ष हैल ॥ 30॥

सार्वभौम-स्थाने-सार्वभौम भट्टाचार्य के घर; गिया-जाकर; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु; देखिल–सबने देखा; प्रभु देखि'–महाप्रभु को देखकर; आचार्येर-श्री गोपीनाथ आचार्य को; दुःख–दुःख; हर्ष-हर्ष; हैल-हुआ।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के घर जाकर सबने देखा कि महाप्रभु अचेतावस्था में हैं। उन्हें इस अवस्था में देखकर गोपीनाथ आचार्य अत्यन्त दुःखी हुए, किन्तु साथ ही प्रसन्न थे कि उन्हें महाप्रभु का दर्शन मिल रहा है।

सार्वभौमे जानाञा सबा निल अभ्यन्तरे ।

नित्यानन्द-गोसाञिरे तेंहो कैल नमस्कारे ॥ 31॥

सार्वभौमे-सार्वभौम भट्टाचार्य; जानाञा-सूचित करके और आज्ञा लेकर; सबा-सभी भक्त; निल-लिया; अभ्यन्तरे–घर के भीतर; नित्यानन्द-गोसाञिरे-नित्यानन्द प्रभु को; तेंहो–सार्वभौम भट्टाचार्य; कैल-किया; नमस्कारे-नमस्कार।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने सभी भक्तों को घर के भीतर आने दिया और नित्यानन्द प्रभु को देखकर भट्टाचार्य ने उन्हें प्रणाम किया।

सबा सहित यथा-योग्य करिल मिलन ।

प्रभु देखि' सबार हैल हरषित मन ॥ 32॥

सबा सहित–उन सबके साथ; यथायोग्य–यथा योग्य; करिल–किया; मिलन-मिलन; प्रभु देखि'–महाप्रभु को देखकर; सबार-सबके; हैल–हो गये; हरषित–हर्षित; मन–मन्।

अनुवाद

सार्वभौम सभी भक्तों से मिले और उनका समुचित स्वागत किया। वे सभी श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर प्रसन्न थे।

सार्वभौम पाठाइल सबा दर्शन करिते ।

'चन्दनेश्वर' निज-पुत्र दिल सबार साथे ॥ 33 ॥

सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; पाठाइल-उनको भेजा; सबा-सबको; दर्शन करिते-भगवान जगन्नाथ के दर्शन के लिए; चन्दन-ईश्वर–चन्दनेश्वर नामक; निज-पुत्र-अपने पुत्र; दिल-दिया; सबार साथे-उन सबके साथ।

अनुवाद

तब भट्टाचार्य ने उन सबको जगन्नाथजी का दर्शन करने के लिए वापस भेज दिया और मार्गदर्शक के रूप में अपने पुत्र चन्दनेश्वर को उनके साथ भेजा।

जगन्नाथ देखि' सबार हुइल आनन्द ।

भावेते आविष्ट हैला प्रभु नित्यानन्द ॥ 34॥

जगन्नाथ देखि'–भगवान जगन्नाथ को देखकर; सबार–प्रत्येक को; हइल-हुआ; आनन्द-आनन्द; भावेते-भावावेश में; आविष्ट-भावविभोर; हैला-हो गये; प्रभु नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

तत्पश्चात् जगन्नाथजी के विग्रह को देखकर सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। नित्यानन्द प्रभु विशेष रूप से भावविभोर हो गये।

सबे मेलि' धरि ताँरे सुस्थिर करिल ।

ईश्वर-सेवक माला-प्रसाद आनि' दिल ॥ 35 ॥

सबे मेलि'-सबने मिलकर; धर-पकड़ लिया; ताँरे-उनको; सु-स्थिर-स्थिर; करिल–किया; ईश्वर-सेवक-अर्चाविग्रह का पुजारी; माला-माला; प्रसाद–प्रसाद; आनि-लाकर; दिल-दिया।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु लगभग अचेत हो गये, तो सारे भक्तों ने उन्हें पकड़कर सुस्थिर किया। उस समय जगन्नाथजी का पुजारी विग्रह पर अर्पित एक माला ले आया और नित्यानन्द प्रभु को समर्पित की।

प्रसाद पाञा सबे हैला आनन्दित मने ।

पुनरपि आइला सबे महाप्रभुर स्थाने ॥ 36॥

प्रसाद पाञा-माला रूप प्रसाद पाकर; सबे–वे सभी; हैला-हो गये; आनन्दित मने-मन में प्रसन्न; पुनरपि-फिर; आइला-वापस आये; सबे-सब; महाप्रभुर स्थाने-महाप्रभु के स्थान पर।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ द्वारा पहनी हुई इस माला को प्राप्त करके सारे लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। बाद में वे सभी उस स्थान पर लौट आये जहाँ महाप्रभु रुके थे।

उच्च करि' करे सबे नाम-सङ्कीर्तन ।

तृतीय प्रहरे हैल प्रभुर चेतन ॥ 37॥

उच्च-ऊँची आवाज में; करि'-करके; करे-आरम्भ किया; सबे-सबने; नाम-सङ्कीर्तन–हरे कृष्ण महामंत्र का नाम संकीर्तन; तृतीय प्रहरे-दोपहर के बाद, हैल-आ गई; प्रभुर–महाप्रभु को; चेतन-चेतना।

अनुवाद

तत्पश्चात् सारे भक्त उच्च स्वर में हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने लगे। महाप्रभु दोपहर से थोड़ा समय पहले सचेत हो गये।

हुङ्कार करिया उठे 'हरि' 'हरि' बलि'।

आनन्दे सार्वभौम ताँर लैल पद-धूलि ॥ 38॥

हुङ्कार करिया-ऊँची आवाज करते हुए; उठे-उठे; हरि हरि बलि'–हरि हरि बोलते हुए; आनन्दे-आनन्द में; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; ताँर–उनका; लैल-ले ली; पद-धूलि-चरण धूलि।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उठकर बैठ गये और हुंकार भरते हुए "हरि!" हरि!" का उच्चारण करने लगे। सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु को सचेत देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने महाप्रभु के चरण-धूलि ग्रहण की।

सार्वभौम कहे,—शीघ्र करह मध्याह्न।

मुञि भिक्षा दिमु आजि महाप्रसादान्न ॥ 39॥

सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; कहे-ने कहा; शीघ्र-शीघ्र; करह-करो; मध्य-अह्न दोपहर के कार्य; मुञि-मैं; भिक्षा–भिक्षा; दिमु-हूँगा; आजि-आज; महा-प्रसाद-अन्न-भगवान जगन्नाथ का उच्चिष्ठ।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने सबसे कहा, "कृपया तुरन्त ही दोपहर का स्नान कर लें। आज मैं आप लोगों को महा-प्रसाद अर्थात् भगवान् जगन्नाथ को अर्पित भोग का उच्चिष्ठ दूँगा।"

समुद्र-स्नान करि' महाप्रभु शीघ्र आइला।

चरण पाखालि' प्रभु आसने वसिला ॥40॥

समुद्र-स्नान-समुद्र स्नान; करि'–करके; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; शीघ्र-शीघ्र; आइला-लौट आये; चरण-चरण; पाखालि'-धोकर; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; आसने-आसन पर; वसिला-बैठ गये।

अनुवाद

समुद्र स्नान करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तजन तुरन्त ही लौट आये। तत्पश्चात् महाप्रभु ने अपने पाँव धोये और भोजन करने के लिए एक आसन पर बैठ गये।

बहुत प्रसाद सार्वभौम आनाइल ।

तबे महाप्रभु सुखे भोजन करिल ॥41॥

बहुत प्रसाद–भगवान् जगन्नाथ को अर्पित विविध प्रकार के भोजन; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; आनाइल-मंगवाया; तबे-उस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सुखे-आनन्द सहित; भोजन- भोजन; करिल-ग्रहण किया।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने जगन्नाथ मन्दिर से विविध प्रकार का महाप्रसाद लाये जाने की व्यवस्था की। तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने परम सुखपूर्वक दोपहर का भोजन ग्रहण किया।

सुवर्ण-थालीर अन्न उत्तम व्यञ्जन ।

भक्त-गण-सङ्गे प्रभु करेन भोजन ॥42॥

सुवर्ण-थालीर-स्वर्ण की थालियों में; अन्न-भात; उत्तम–उत्तम; व्यञ्जन-तरकारियाँ; भक्त-गण-भक्तगण; सङ्गे–के साथ; प्रभु-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; करेन-लेते हैं; भोजन-भोजन।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु को सोने की थाली में विशेष चावल तथा सर्वोत्तम तरकारियाँ परोसी गईं। इस तरह महाप्रभु ने अपने भक्तों के साथ भोजन किया।

सार्वभौम परिवेशन करेन आपने ।

प्रभु कहे,—मोरे देह लाफ्रा-व्यञ्जने ॥43॥

सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; परिवेशन–वितरण; करेन-करते हैं; आपने-स्वयं; प्रभु कहे-चैतन्य महाप्रभु ने कहा; मोरे-मुझे; देह-दो; लाफ्रा-व्यञ्जने-उबली हुई तरकारियाँ।

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य स्वयं ही प्रसाद का वितरण कर रहे थे, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे अनुरोध किया, "कृपया मुझे केवल उबली तरकारियाँ दें।"

तात्पर्य

लाफ्रा व्यंजन अनेक प्रकार की तरकारियों को उबालकर बनाया जाता है। और तब उसमें जीरा, काली मिर्च तथा सरसों के बीज जैसे मसालों का छोंक लगाया जाता है।

पीठा-पाना देह तुमि इँहा-सबाकारे ।

तबे भट्टाचार्य कहे युड़ि' दुइ करे ॥44॥

पीठा-पाना-पीठा पाना (दूध से बना एक व्यंजन); देह-दो; तुमि-आप; इँहा-सबाकारे-इन सब भक्तों को; तबे-उस समय; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; कहे-कहा; युड़ि'–जोड़कर; दुइ करे दोनों हाथ।

अनुवाद

"आप सारे भक्तों को पीठा (केक) तथा कड़े हुए दूध से बने द्रव्य (रबड़ी) दे सकते हैं। यह सुनकर भट्टाचार्य दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले।"

जगन्नाथ कैछे करियाछेन भोजन ।

आजि सब महाप्रसाद कर आस्वादन ॥ 45 ॥

जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ; कैछे-जैसे; करियाछेन–स्वीकार किया है; भोजन-भोजन; आजि-आज; सब-आप सब; महा-प्रसाद-भगवान् को अर्पित भोग का उच्चिष्ठ; कर-करो; आस्वादन-आस्वादन।

अनुवाद

"आज आप सब दोपहर के भोजन का उसी प्रकार आस्वादन करें, जिस प्रकार भगवान जगन्नाथ ने इसे स्वीकार किया है।"

एत बलि' पीठा-पाना सब खाओयाइला ।

भिक्षा कराना आचमन कराइला ॥ 46॥

एत बलि'-इतना कहकर; पीठा-पाना-पीठा पाना (दूध से निर्मित कई प्रकार के खाद्य पदार्थ); सब-सबको; खाओयाइला-खिलाया; भिक्षा कराञा–प्रसाद अर्पित करने के बाद; आचमन कराइला–हाथ, मुँह और पैर धुलाकर।

अनुवाद

यह कहकर उन्होंने सबको विविध प्रकार का पीठा तथा पाना (दूध से निर्मित व्यंजन) खिलाया। बाद में उन्हें हाथ, मुँह तथा पाँव धोने के लिए जल दिया।

आज्ञा मागि' गेला गोपीनाथ आचार्युके लञा ।

प्रभुर निकट आइला भोजन करिञा ॥47॥

आज्ञा मागि'-आज्ञा लेकर; गेला–गये; गोपीनाथ आचार्युके लञा–गोपीनाथ आचार्य को लेकर; प्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; निकट-निकट; आइला–गये; भोजन करिञा–भोजन करने के बाद।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों से आज्ञा लेकर सार्वभौम भट्टाचार्य गोपीनाथ आचार्य सहित भोजन करने गये। भोजन करने के बाद वे महाप्रभु के पास लौट आये।

'नमो नारायणाय' बलि' नमस्कार कैल ।

'कृष्णे मतिरस्तु' बलि' गोसाञि कहिल ॥48॥

नमः नारायणाय-मैं नारायण को सादर प्रणाम करता हूँ; बलि'–कहकर; नमस्कार कैल–चैतन्य महाप्रभु को प्रणाम किया; कृष्णे-भगवान् कृष्ण की ओर; मतिः अस्तु-आप आकर्षित होओ; बलि'-कहकर; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभुः कहिल–बोले।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने नमो नारायणाय (मैं नारायण को नमस्कार करता हूँ) कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर में कृष्ण मतिरस्तु कहा (आपका ध्यान कृष्ण में हो)।

तात्पर्य

संन्यासियों में यह शिष्टाचार है कि एक-दूसरे से ॐ नमो नारायणाय (" मैं नारायण को प्रणाम करता हूँ।") कहकर सम्मान प्रदर्शित करते हैं। यह शिष्टाचार विशेषतया मायावादी संन्यासियों में प्रयुक्त होता है। स्मृतियों के अनुसार संन्यासी को किसी से कोई आशा नहीं करनी चाहिए, न ही उसे अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समान मानना चाहिए। वैष्णव संन्यासी कभी भी अपने आपको भगवान् से एकाकार नहीं मानते। वे तो सदा अपने आपको कृष्ण का नित्य दास मानते हैं और चाहते हैं कि संसार का हर व्यक्ति कृष्णभावनाभावित बने। इसीलिए वैष्णव संन्यासी सदैव हर एक को यह आशीर्वाद देता है, कृष्णे मतिरस्तु ("आप कृष्णभावनाभावित बनें")।

शुनि' सार्वभौम मने विचार करिल ।

वैष्णव-सन्न्यासी इँहो, वचने जानिल ॥49॥

शुनि'-यह सुनकर; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; मने-मन में; विचार करिल-विचार किया; वैष्णव-सन्न्यासी-एक वैष्णव संन्यासी; इँहो–यह व्यक्ति; वचने-वाणी से; जानिल-समझ गये।

अनुवाद

ये वचन सुनकर सार्वभौम समझ गये कि श्री चैतन्य महाप्रभु एक वैष्णव संन्यासी हैं।

गोपीनाथ आचार्येरे कहे सार्वभौम ।

गोसाञि जानिते चाहि काहाँ पूर्वाश्रम ॥50॥

गोपीनाथ आचार्येरे-गोपीनाथ आचार्य को; कहे-कहा; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; गोसाञि–चैतन्य महाप्रभु को; जानिते-जानने के लिए; चाहि-मैं चाहता हूँ; काहाँ–क्या; पूर्व-आश्रम–पिछली स्थिति।

अनुवाद

तब सार्वभौम ने गोपीनाथ आचार्य से कहा, "मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के पूर्व आश्रम (स्थिति) को जानना चाहता हूँ।"

तात्पर्य

पूर्वाश्रम शब्द किसी के जीवन की पूर्व अवस्था का द्योतक है। कभी कोई व्यक्ति गृहस्थाश्रम के बाद संन्यास आश्रम स्वीकार करता है, तो कभी विद्यार्थी जीवन (ब्रह्मचारी) से ही। सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के गृहस्थ के रूप में जीवन की पूर्व अवस्था को जानना चाहते थे।

गोपीनाथाचार्य कहे,—नवद्वीपे घर ।

'जगन्नाथ'—नाम, पदवी—'मिश्र पुरन्दर' ॥51॥

गोपीनाथ-आचार्य कहे गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया; नवद्वीपे–नवद्वीप में; घर-निवास; जगन्नाथ-जगन्नाथ; नाम-नामक; पदवी-उपनाम; मिश्र पुरन्दर–मिश्र पुरन्दर।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "नवद्वीप में जगन्नाथ नामक एक निवासी थे, जिनका उपनाम मिश्र पुरन्दर था।"

'विश्वम्भर'—नाम इँहार, ताँर इँहो पुत्र ।

नीलाम्बर चक्रवर्तीर हयेन दौहित्र ॥52॥

विश्वम्भर-विश्वम्भर; नाम-नाम; इँहार–इनका; ताँर-जगन्नाथ मिश्र का; इँहो-वे; पुत्र-पुत्र; नीलाम्बर चक्रवर्तीर-नीलाम्बर चक्रवर्ती के; हयेन-हैं; दौहित्र-पौत्र (लड़की का पुत्र)।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हीं जगन्नाथ मिश्र के पुत्र हैं और इनका पहले का नाम विश्वम्भर मिश्र था। ये नीलाम्बर चक्रवर्ती के नाती भी लगते हैं।"

सार्वभौम कहे,—नीलाम्बर चक्रवर्ती ।

विशारदेर समाध्यायी,—एइ ताँर ख्याति ॥53॥

सार्वभौम कहे--सार्वभौम ने कहा; नीलाम्बर चक्रवर्ती–नीलाम्बर चक्रवर्ती नामक व्यक्ति; विशारदेर-महेश्वर विशारद (सार्वभौम के पिता) के; समाध्यायी-सहपाठी; एइ-यह; ताँर-उनकी; ख्याति-पहचान।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "नीलाम्बर चक्रवर्ती तो मेरे पिता महेश्वर विशारद के सहपाठी थे। मैं उन्हें इसी रूप में जानता था।"

'मिश्र पुरन्दर' ताँर मान्य, हेन जानि ।

पितार सम्बन्धे दोंहाके पूज्य करि' मानि ॥54॥

मिश्र पुरन्दर–जगन्नाथ मिश्र पुरन्दर; ताँर-उनके द्वारा; मान्य-पूजनीय; हेन–इस प्रकार; जानि–मैं जानता हूँ; पितार सम्बन्धे-मेरे पिता के सम्बन्ध से; दोंहाके–वे दोनों (नीलाम्बर चक्रवर्ती और जगन्नाथ मिश्र); पूज्य-पूज्य; करि'-सोचकर; मानि–मैं स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

"मेरे पिता जगन्नाथ मिश्र पुरन्दर का आदर करते थे। इस तरह मेरे पिता के साथ सम्बन्ध होने के कारण मैं जगन्नाथ मिश्र तथा नीलाम्बर चक्रवर्ती दोनों का आदर करता हूँ।"

नदीया-सम्बन्धे सार्वभौम रूष्ट हैला ।

प्रीत हञा गोसाञिरे कहिते लागिला ॥ 55 ॥

नदीया-सम्बन्धे-नदीया से सम्बन्धित; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; हृष्ट-प्रसन्न; हैला-हो गये; प्रीत हञा-इस प्रकार प्रसन्न होकर; गोसाञिरे-चैतन्य महाप्रभु को; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

यह सुनकर कि श्री चैतन्य महाप्रभु नदीया जिले के हैं, सार्वभौम भट्टाचार्य अत्यन्त प्रसन्न हुए और महाप्रभु से वे इस प्रकार बोले।

'सहजेइ पूज्य तुमि, आरे त' सन्न्यास।

अतएव हङतोमार आमि निज-दास' ॥56॥

सहजेइ-स्वाभाविक रूप से; पूज्य-पूज्य; तुमि-आप; आरे-इसके अलावा; त'–निश्चित रूप से; सन्न्यास-संन्यास; अतएव–अतएव; हङ–हूँ; तोमार-आपका; आमि-मैं; निज-दास–निजी दास।

अनुवाद

"आप स्वाभाविक रूप से मेरे पूज्य हैं। इसके अतिरिक्त आप संन्यासी हैं, अतएव मैं आपका निजी दास बनना चाहता हूँ।"

तात्पर्य

गृहस्थों को चाहिए कि संन्यासी की सदैव पूजा करें और उसे सभी प्रकार का आदर प्रदान करें। यद्यपि सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु से आयु में बड़े थे, किन्तु उन्होंने उनका सम्मान संन्यासी के रूप में तथा सर्वोच्च आध्यात्मिक भाव को प्राप्त व्यक्ति के रूप में किया। इस तरह उन्होंने महाप्रभु को निश्चित रूप से अपने स्वामी के रूप में स्वीकार किया।

शुनि' महाप्रभु कैल श्री विष्णु स्मरण।

भट्टाचार्ये कहे किछु विनय वचन ॥57॥

शुनि'-यह सुनकर; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु; कैल–किया; श्री विष्णु स्मरण-भगवान् विष्णु का स्मरण; भट्टाचार्ये-सार्वभौम भट्टाचार्य को; कहे-कहा; किछु-कुछ; विनय वचन–विनम्र शब्द।

अनुवाद

भट्टाचार्य से यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त भगवान् विष्णु का स्मरण किया और अत्यन्त विनीत भाव से उनसे इस प्रकार बोले।

तुमि जगद्गुरु–सर्वलोक-हित-कर्ता।

वेदान्त पड़ाओ, सन्न्यासीर उपकर्ता ॥58॥

तुमि जगत्-गुरु-आप जगद्गुरु हो; सर्व-लोक-सभी लोगों के हित-कर्ता-हितैषी; वेदान्त पड़ाओ-वेदान्त दर्शन पढ़ाते हो; सन्न्यासीर-संन्यासियों का; उपकर्ता-उपकार करने वाले।

अनुवाद

"चूँकि आप वेदान्त दर्शन के अध्यापक हैं, अतएव आप विश्व के समस्त लोगों के गुरु तथा उनके शुभचिन्तक भी हैं। आप सभी संन्यासियों का हित भी करने वाले हैं।"

तात्पर्य

चूँकि मायावादी संन्यासी अपने शिष्यों को वेदान्त दर्शन की शिक्षा देते हैं, अतएव प्रथानुसार वे जगद्गुरु कहलाते हैं। इससे सूचित होता है कि वे सारे लोगों के हितैषी हैं। यद्यपि सार्वभौम भट्टाचार्य संन्यासी नहीं थे, किन्तु गृहस्थ होने के कारण वे अपने घर में सभी संन्यासियों को आमंत्रित करते थे और उन्हें प्रसाद देते थे। इस तरह वे समस्त लोगों के शुभचिन्तक तथा समस्त संन्यासियों के मित्र माने जाते थे।

आमि बालक-सन्न्यासी—भाल-मन्द नाहि जानि ।

तोमार आश्रय निलुँ, गुरु करि' मानि ॥59॥

आमि-मैं; बालक-सन्न्यासी–युवा संन्यासी; भान्द-मन्द-अच्छा बुरा; नाहि-नहीं; जानि–जानता हूँ; तोमार-आपका; आश्रय-आश्रय; निलुँ–लिया है; गुरु-गुरु; करि'-मानकर; मानि–मैं स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

"मैं तो अभी तरुण संन्यासी हूँ और मुझे अच्छे-बुरे का कोई ज्ञान नहीं है। अतएव मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ और आपको अपना गुरु मानता हूँ।"

तोमार सङ्ग लागि' मोर इहाँ आगमन ।

सर्व प्रकारे करिबे आमाय पालन ॥ 60॥

तोमार-आपकी; सङ्ग-संगति; लागि'–के लिए; मोर-मेरा; इहाँ–यहाँ; आगमन-आना; सर्व-प्रकारे-सभी प्रकार से; करिबे-आप करोगे; आमाय-मेरा; पालन-पालन पोषण।

अनुवाद

"मैं यहाँ आपका संग करने आया हूँ और अब मैं आपकी शरण ग्रहण कर रहा हूँ। क्या आप कृपया सभी प्रकार से मेरा पालन करेंगे?"

आजि ये हैल आमार बड़-इ विपत्ति ।

ताहा हैते कैले तुमि आमार अव्याहति ॥ 61॥

आजि-आज; ये-वह जो; हैल-हुआ; आमार-मेरा; बड़-इ-अत्यन्त बड़ा; विपत्ति-विपत्ति; ताहा-वह संकट; हैते–से; कैले–किया; तुमि-आपने; आमार-मेरा; अव्याहति–छुटकारा, बचाव।

अनुवाद

"आज जो घटना घटी है, वह मेरे लिए महान् विपत्ति थी; किन्तु आपने मुझे उससे उबार लिया है।"

भट्टाचार्य कहे,—एकले तुमि ना याइह दर्शने ।

आमार सङ्गे याबे, किम्वा आमार लोक-सने ॥ 62॥

भट्टाचार्य कहे-भट्टाचार्य ने कहा; एकले-अकेले; तुमि-आप; ना-नहीं; याइह-जाओ; दर्शने-अर्चाविग्रह के दर्शन के लिए; आमार सङ्गे-मेरे साथ; याबे-आपको जाना चाहिए; किम्वा-अथवा; आमार लोक-सने-मेरे लोगों के साथ।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "आप जगन्नाथ मन्दिर में विग्रह-दर्शन करने अकेले न जाएँ। अच्छा होगा कि आप या तो मेरे साथ या मेरे लोगों के साथ जाएँ।"

प्रभु कहे,—'मन्दिर भितरे ना याइब ।

गरुड़ेर पाशे रहि' दर्शन करिब' ॥63 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; मन्दिर-मन्दिर; भितरे-के अन्दर; ना-नहीं; याइब–जाऊँगा; गरुड़ेर–गरुड़ स्तम्भ नामक स्तम्भ; पाशे–के पास; रहि'–ठहरकर; दर्शन-दर्शन; करिब–कहँगा।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "मैं अब कभी भी मन्दिर के भीतर नहीं जाऊँगा। मैं सदैव गरुड़-स्तम्भ के पास से भगवान् का दर्शन किया करूँगा।"

गोपीनाथाचार्यके कहे सार्वभौम ।

'तुमि गोसाञिरे लञा कराइह दरशन' ॥64॥

गोपीनाथ-आचार्यके-गोपीनाथ आचार्य को; कहे-कहा; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; तुमि-तुम; गोसाञिरे-चैतन्य महाप्रभु; लञा–लेकर; कराइह-उन्हें करवाना; दरशन-भगवान जगन्नाथ के दर्शन।

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने गोपीनाथ आचार्य से कहा, "गोस्वामीजी को ले जाओ और उन्हें जगन्नाथजी का दर्शन कराओ।"

आमार मातृ-स्वसा-गृह—निर्जन स्थान ।

'ताहाँ वासा देह, कर सर्व समाधान' ॥ 65॥

आमार-मेरी; मातृ-स्वसा–मौसी; गृह-घर; निर्जन स्थान–निर्जन स्थान; ताहाँ वहाँ; वासा-एक कमरा; देह-दो; कर-करो; सर्व-सभी; समाधान-व्यवस्था।

अनुवाद

"मेरी मौसी का घर अत्यन्त निर्जन स्थान में है। वहीं इनके रहने व सारी व्यवस्था कर देना।"

गोपीनाथ प्रभु लञा ताहाँ वासा दिल ।

जल, जल-पात्रादिक सर्व समाधान कैल ॥ 66 ॥

गोपीनाथ-गोपीनाथ आचार्य; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; लञा-लेकर; ताहाँ-वह वासा–कमरा; दिल-दिया; जल-जल; जल-पात्र-आदिक-जलपात्र तथा अन्य पा सर्व-सभी; समाधान-प्रबन्ध; कैल–किये।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को उस घर तक ले गये हैं उन्हें पानी, पानी के पात्र, नाँद आदि दिखला दिया। इस प्रकार उन्होंने स प्रकार की व्यवस्था कर दी।

आर दिन गोपीनाथ प्रभु स्थाने गिया ।

शय्योत्थान दरशन कराइल लञा ॥ 67॥

आर दिन-अगले दिन; गोपीनाथ-गोपीनाथ आचार्य, प्रभु-चैतन्य महाप्रभु? स्थाने–निवासस्थान; गिया-जाकर; शय्या-उत्थान-भगवान् जगन्नाथ का शय्या से उठ (जगना); दरशन-देखना; कराइल-करवाया; लञा-उनको ले जाकर।

अनुवाद

अगले दिन गोपीनाथ आचार्य चैतन्य महाप्रभु को जगन्नाथ भगवान् का शय्योत्थान (भोर के समय उठाना) दिखाने ले गये।

मुकुन्द-दत्त लञा आइला सार्वभौम स्थाने ।

सार्वभौम किछु तारे बलिला वचने ॥ 68॥

मुकुन्द-दत्त-मुकुन्द दत्त; लञा–लेकर; आइला-गये; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; स्थाने–घर; सार्वभौम–सार्वभौम भट्टाचार्य; किछु-कुछ; तारे-मुकुन्द दत्त को; बलिला–कहा; वचने-वचन।

अनुवाद

इसके बाद गोपीनाथ आचार्य मुकुन्द दत्त को अपने साथ लेकर सार्वभौम भट्टाचार्य के घर गये। वहाँ पहुँचने पर सार्वभौम ने मुकुन्द दत्त से इस प्रकार कहा।

‘प्रकृति-विनीत, सन्न्यासी देखिते सुन्दर ।

आमार बहु-प्रीति बाड़े इँहार उपर’ ॥ 69॥

प्रकृति-विनीत–स्वभाव के अत्यन्त नम्र एवं विनीत; सन्न्यासी–संन्यासी; देखिते-देखने में; सुन्दर–बहुत सुन्दर; आमार-मेरा; बहु-प्रीति–अत्यन्त प्रेम; बाड़े-बढ़ता है; इँहार-उन; उपर-पर।

अनुवाद

“यह संन्यासी अत्यन्त नम्र एवं विनीत स्वभाव का है और देखने में अत्यन्त सुन्दर है। फलतः इसके प्रति मेरा स्नेह बढ़ता जा रहा है।”

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त विनीत व्यक्ति मानते थे, क्योंकि संन्यासी होते हुए भी उन्होंने अपना ब्रह्मचारी नाम नहीं छोड़ा था। महाप्रभु ने भारती सम्प्रदाय के श्रील केशव भारती से संन्यास ग्रहण किया था, जिसमें ब्रह्मचारियों (संन्यासियों के सेवकों) को “चैतन्य” कहा जाता है। संन्यास लेने के बाद भी महाप्रभु ने “चैतन्य” नाम का त्याग नहीं किया। चैतन्य का अर्थ है संन्यासी का विनीत दास। सार्वभौम भट्टाचार्य को यह बात बहुत प्रशंसनीय लगी।

कोन्सम्प्रदाये सन्न्यास कर्याछेन ग्रहण।

किबा नाम इँहार, शुनिते हय मन’ ॥ 70 ॥

कोन् सम्प्रदाये-किस सम्प्रदाय में; सन्न्यास-संन्यास; कर्याछेन–लिया है; ग्रहण-स्वीकार; किबा-क्या; नाम-नाम; इँहार-उनका; शुनिते-सुनने में; हय-है; मन–मेरा मन।

अनुवाद

“इन्होंने किस सम्प्रदाय से संन्यास ग्रहण किया है और इनका नाम क्या है?”

गोपीनाथ कहे,—नाम श्रीकृष्ण-चैतन्य।

गुरु इँहार केशव-भारती महा-धन्य ॥ 71॥

गोपीनाथ कहे गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया; नाम-उनका नाम; श्रीकृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य; गुरु-संन्यास गुरु; इँहार-उनका; केशव-भारती–केशव भारती नामक; महा-धन्य-महा-भाग्यवान।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, “महाप्रभु का नाम श्रीकृष्ण चैतन्य है और उन्हें संन्यास देने वाले गुरु महाभाग्यवान केशव भारती हैं।”

सार्वभौम कहे,—'इँहार नाम सर्वोत्तम ।

भारती-सम्प्रदाय इँहो—हयेन मध्यम' ॥72॥

सार्वभौम कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; इँहार-उनका; नाम-नाम; सर्व-उत्तम-सर्वोत्तम; भारती-सम्प्रदाय-भारती सम्प्रदाय; इँहो-वे; हयेन-हो गये; मध्यम-मध्यम।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "श्रीकृष्ण नाम अत्युत्तम है, किन्तु ये भारती सम्प्रदाय के हैं, अतएव ये द्वितीय श्रेणी के संन्यासी हैं।"

गोपीनाथ कहे,—इँहार नाहि बाह्यापेक्षा ।

अतएव बड़ सम्प्रदायेर नाहिक अपेक्षा ॥73॥

गोपीनाथ कहे-गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया; इँहार–महाप्रभु को; नाहि-नहीं है; बाह्य-अपेक्षा किसी बाहरी औपचारिकता पर निर्भरता; अतएव–अतएव; बड़े-बड़े; सम्प्रदायेर–सम्प्रदाय की; नाहिक-नहीं है; अपेक्षा–आवश्यकता।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु किसी बाहरी औपचारिकता पर निर्भर नहीं हैं। उन्हें किसी श्रेष्ठ सम्प्रदाय से संन्यास ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भारती सम्प्रदाय से संन्यास ग्रहण किया था, जो शंकराचार्य की परम्परा से सम्बन्धित है। शंकराचार्य ने अपने संन्यासी शिष्यों के लिए नामों का प्रचलन किया, जिनकी संख्या दस है। इनमें से तीर्थ, आश्रम तथा सरस्वती सर्वप्रमुख माने जाते हैं। शृंगेरी मठ में सरस्वती प्रथम, भारती द्वितीय और पुरी तृतीय श्रेणी की उपाधियाँ मानी जाती हैं। जिस संन्यासी ने तत्त्वमसि सूत्र को ठीक से समझ लिया है और जो गंगा, यमुना तथा सरस्वती के संगम में स्नान करता है, वह तीर्थ कहलाता है। जो व्यक्ति संन्यास लेने को आतुर है, सांसारिक कार्यों से विरक्त रहता है और जिसे भौतिक सुख की किसी प्रकार की इच्छा नहीं रहती और जो इस प्रकार जन्म-मरण के चक्र से बच गया है, वह

आश्रम कहलाता है। जो संन्यासी सुन्दर एकान्त वन में निवास करता है और सारी भौतिक इच्छाओं से मुक्त है, वह वन कहलाता है। जो संन्यासी सदैव जंगल में रहता है और स्वर्ग में नन्दनकानन में रहने की इच्छा से भौतिक जगत् के सारे सम्बन्धों को त्याग देता है, वह अरण्य कहलाता है। जो व्यक्ति भगवद्गीता का अध्ययन करते हुए पर्वत पर रहता है और जिसकी बुद्धि स्थिर रहती है, वह गिरि कहलाता है। जो व्यक्ति हिंस्र पशुओं की चिन्ता न करते हुए सर्वोच्च दार्शनिक चिन्तन प्राप्त करने के उद्देश्य से (यह समझते हुए कि भौतिक संसार का सार निरर्थक है) बड़े-बड़े पर्वतों में रहता है, वह पर्वत कहलाता है। जिस संन्यासी ने परम सत्य-रूपी सागर में गोते लगाकर ज्ञानरूपी कुछ अमूल्य रत्न एकत्र कर लिये हैं और संन्यासी के विधि-विधान से कभी पथभ्रष्ट नहीं होता, वह सागर कहलाता है। जो व्यक्ति शास्त्रीय संगीत-कला में दक्ष होकर उसका अनुशीलन करता है और जो भौतिक आसक्ति से पूर्णतया दूर रहता है, वह सरस्वती कहलाता है। सरस्वती संगीत तथा विद्या की देवी हैं और वे एक हाथ में वीणा धारण किये रहती हैं। जो संन्यासी आध्यात्मिक उत्थान के लिए संगीत में लगा रहता है, वह सरस्वती कहलाता है। पूर्ण शिक्षित एवं सभी प्रकार के अज्ञान से मुक्त तथा दु:ख में भी दु:खी न रहने वाला व्यक्ति भारती कहलाता है। जो परम ज्ञान में दक्ष होता है और परम सत्य के पद पर स्थित रहकर परम सत्य की व्याख्या में लगा रहता है, वह पुरी कहलाता है।

इन सारे संन्यासियों की सहायता के लिए ब्रह्मचारी रहते हैं, जिनका वर्णन इस प्रकार है : जो अपने असली स्वरूप को पहचानता है और अपने विशिष्ट कार्य में दृढ़ रहता है, जो आध्यात्मिक ज्ञान में सदैव सुखी रहता है, वह स्वरूप ब्रह्मचारी कहलाता है। ब्रह्मज्योति का ज्ञाता तथा नित्य योगाभ्यास करने वाला प्रकाश ब्रह्मचारी कहलाता है। जो परम ज्ञान प्राप्त करके सदैव परम सत्य, ज्ञान, असीम तथा ब्रह्मज्योति का सदैव ध्यान करता है और सदैव अपने आपको दिव्य आनन्द में रखता है, वह आनन्द-ब्रह्मचारी कहलाता है। जो पदार्थ तथा आत्मा का भेद जानता है, जो भौतिक विकारों से व्याकुल नहीं होता तथा जो असीम, अव्यय, कल्याणप्रद ब्रह्मज्योति का ध्यान करता है, वह प्रथम कोटि का विद्वान ब्रह्मचारी होता है, वह चैतन्य कहलाता है।

जब सार्वभौम भट्टाचार्य गोपीनाथ आचार्य से श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास सम्प्रदाय के बारे में जिज्ञासा कर रहे थे, तो उन्हें उनका प्रथम नाम श्रीकृष्ण तो अच्छा लगा, किन्तु चैतन्य उपनाम अच्छा नहीं लगा, क्योंकि यह भारती सम्प्रदाय के ब्रह्मचारी का नाम है। इसीलिए उन्होंने सुझाव दिया कि महाप्रभु को सरस्वती सम्प्रदाय में उन्नति कर देनी चाहिए। किन्तु गोपीनाथ आचार्य ने इंगित किया कि महाप्रभु किसी बाह्य औपचारिकता पर निर्भर नहीं हैं। गोपीनाथ आचार्य को पूर्ण विश्वास था कि श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं, अतएव वे किसी बाह्य औपचारिकता या विधान से

स्वतन्त्र हैं। यदि कोई शुद्ध भक्ति करना चाहता है, तो उसे भारती या सरस्वती जैसी उपाधियों से युक्त श्रेष्ठता की आवश्यकता नहीं रहती।

भट्टाचार्य कहे,—'इँहार प्रौढ़ यौवन।

केमते सन्न्यास-धर्म हइबे रक्षण' ॥74॥

भट्टाचार्य कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; इँहार-उनका; प्रौढ़-पूर्ण; यौवन-यौवन; केमते-कैसे; सन्न्यास-धर्म-संन्यास धर्म; हइबे-होगा; रक्षण-संरक्षण।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने पूछा, "श्री चैतन्य महाप्रभु तो अपनी पूर्ण यौवनावस्था में हैं। वे संन्यास के नियमों का किस तरह पालन कर पायेंगे?"

निरन्तर इँहाके वेदान्त शुनाइब।

वैराग्य-अद्वैत-मार्गे प्रवेश कराइब ॥ 75॥

निरन्तर–निरन्तर; इँहाके–उनको; वेदान्त–वेदान्त दर्शन; शुनाइब-मैं सुनाऊँगा; वैराग्य-वैराग्य का; अद्वैत-अद्वैत के; मार्गे–पथ पर; प्रवेश-प्रवेश; कराइब-मैं उनसे करवाऊँगा।

अनुवाद

"मैं इन्हें निरन्तर वेदान्त दर्शन सुनाऊँगा, जिससे वे अपने वैराग्य में स्थिर रहें और इस तरह अद्वैत मार्ग में प्रवेश कर सकें।"

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य के अनुसार वेदान्त दर्शन के अनुशीलन से संन्यासियों को इन्द्रियतृप्ति से विरक्त रहने में सहायता मिलती है। इस तरह संन्यासी अपने कोपीन की मर्यादा-रक्षा कर सकता है। मनुष्य को इन्द्रिय-निग्रह के साथ मन-निग्रह का अभ्यास करना चाहिए और वाणी, मन, क्रोध, जीभ, उदर तथा उपस्थ–इन छह वेगों का दमन करना होता है। तभी वह भगवद्भक्ति को समझ सकता है और आदर्श संन्यासी बन सकता है। इसके लिए ज्ञान का अनुशीलन

तथा वैराग्य आवश्यक है। भौतिक इन्द्रियतृप्ति में लिप्त रहकर संन्यास आश्रम की रक्षा नहीं की जा सकती। सार्वभौम भट्टाचार्य ने सुझाया कि वैराग्य की शिक्षा से श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रौढ़ तरुणावस्था की इच्छाओं के प्रभाव से बचाये जा सकते हैं।

कहेन यदि, पुनरपि योग-पट्ट दिया।

संस्कार करिये उत्तम-सम्प्रदाये आनिया ॥ 76 ॥

कहेन–कहें; यदि-यदि; पुनरपि-फिर; योग-पट्ट दिया-उनको योगी के वस्त्र (केसरी वस्त्र) देकर; संस्कार-संस्कार की प्रक्रिया; करिये-मैं करूँगा; उत्तम–उत्तम; सम्प्रदाये-सम्प्रदाय में; आनिया–लाकर।

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने सुझाया, "यदि श्री चैतन्य महाप्रभु चाहें, तो मैं उन्हें गेरुआ वस्त्र प्रदान करके एवं उनका पुनः संस्कार कराकर उच्च कोटि के सम्प्रदाय में ले आऊँगा।"

तात्पर्य

भट्टाचार्य को अच्छा नहीं लगा कि महाप्रभु भारती या पुरी सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहें, अतएव वे उन्हें सरस्वती सम्प्रदाय में प्रतिष्ठित करना चाह रहे थे। वस्तुतः वे श्री चैतन्य महाप्रभु की स्थिति से परिचित नहीं थे। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में चैतन्य महाप्रभु किसी उच्च या निम्न सम्प्रदाय पर आश्रित नहीं थे। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तो सभी परिस्थितियों में सर्वोच्च पद पर ही बने रहते हैं।

शुनि' गोपीनाथ-मुकुन्द दुँहे दुःखी हैला।

गोपीनाथाचार्य किछु कहिते लागिला ॥77॥

शुनि'–सुनकर; गोपीनाथ-मुकुन्द-गोपीनाथ आचार्य एवं मुकुन्द दत्त; दुँहे-दोनों; दुःखी-दुःखी; हैला-हो गये; गोपीनाथ-आचार्य-गोपीनाथ आचार्य; किछु-कुछ; कहिते-कहने; लागिला-लगे।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य तथा मुकुन्द दत्त यह सुनकर बहुत दुःखी हुए। अतः गोपीनाथ आचार्य ने सार्वभौम भट्टाचार्य को इस प्रकार सम्बोधित किया।

'भट्टाचार्य' तुमि इँहार ना जान महिमा ।

भगवत्ता-लक्षणेर इँहातेइ सीमा ॥78॥

भट्टाचार्य–मेरे प्रिय भट्टाचार्य; तुमि-आप; इँहार-भगवान् चैतन्य महाप्रभु की; ना-नहीं; जान-जानते; महिमा-महिमा; भगवत्ता पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने की; लक्षणेर-लक्षणों की; इँहातेइ–उनमें ; सीमा सर्वोच्च मात्रा।

अनुवाद

"हे भट्टाचार्य, आप श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमा को नहीं जानते। इनमें भगवत्ता के समस्त लक्षण अपनी चरम सीमा को प्राप्त हैं।"

तात्पर्य

चूँकि भट्टाचार्य निर्विशेषवादी थे, अतएव उन्हें निर्विशेष तेज के परे परम सत्य का कोई ज्ञान नहीं था। किन्तु गोपीनाथ आचार्य ने उन्हें बतलाया कि श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। परम सत्य को जानने वाले इसकी तीन अवस्थाओं से परिचित होते हैं, जिनकी व्याख्या श्रीमद्भागवत (1.2.11) में की गई है :

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

"जिन्हें अद्वैत परम सत्य का ज्ञान है, वे स्पष्ट रूप से जानते हैं कि ब्रह्म क्या है, परमात्मा क्या हैं और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् क्या हैं।" पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण होते हैं- षड् ऐश्वर्यपूर्ण । गोपीनाथ आचार्य ने दृढ़तापूर्वक बतलाया कि श्री चैतन्य महाप्रभु में ये छहों ऐश्वर्य पूर्णरूपेण विद्यमान हैं।

ताहाते विख्यात इँहो परम-ईश्वर ।

अज्ञ-स्थाने किछु नहे विज्ञेर गोचर ॥ 79 ॥

ताहाते-अतः; विख्यात–प्रसिद्ध; इँहो-चैतन्य महाप्रभुः परम-ईश्वर-परम ईश्वर; अज्ञ-स्थाने–अज्ञानी व्यक्ति के समक्ष; किछु-कुछ; नहे-नहीं; विज्ञेर विद्वान व्यक्ति का; गोचर-ज्ञान।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने आगे कहा, "श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में विख्यात हैं। इस विषय से अनजान व्यक्ति तत्त्ववेताओं के निर्णय को अत्यन्त कठिनाई से समझ पाते हैं।"

शिष्य-गण कहे,—'ईश्वर कह कोन्प्रमाणे' ।

आचार्य कहे,—'विज्ञ-मत ईश्वर-लक्षणे' ॥80॥

शिष्य-गण कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य के शिष्यों ने कहा; ईश्वर कह-आप कहते हैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्रमाणे-किस प्रमाण से; आचार्य कहे-गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया; विज्ञ-मत-अधिकारियों के कथन; ईश्वर-लक्षणे–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् को समझने में।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के शिष्यों ने प्रतिकार करते हुए पूछा, "आप किस साक्ष्य के आधार पर यह निर्णय कर रहे हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु परमेश्वर हैं?" गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "इसका प्रमाण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जानने वाले प्रामाणिक आचार्यों के कथन हैं।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के समय से भारत में ऐसे अनेक छद्म अवतार थे, जिनमें प्रामाणिक लक्षण नहीं पाये जाते । पाँच सौ वर्ष पूर्व सार्वभौम भट्टाचार्य के विद्वान शिष्यों ने जब गोपीनाथ आचार्य से साक्ष्य देने के लिए कहा था, तो वे बिल्कुल ठीक कह रहे थे। यदि कोई व्यक्ति अपने आपको या किसी अन्य को ईश्वर या ईश्वर का अवतार बतलाता है, तो उसे अपने इस दावे को सिद्ध करने के लिए शास्त्र से साक्ष्य देने चाहिए। अतएव भट्टाचार्य के शिष्यों का अनुरोध उचित है। दुर्भाग्यवश आज के समय में किसी को भी शास्त्रों का सन्दर्भ दिये बिना ईश्वर के अवतार के रूप में प्रस्तुत करना प्रचलित है। किन्तु बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि किसी व्यक्ति को ईश्वर का अवतार मानने के पहले उससे साक्ष्य माँगे। जब सार्वभौम भट्टाचार्य के शिष्यों ने गोपीनाथ आचार्य को चुनौती दी, तो गोपीनाथ ने तुरन्त

उचित उत्तर दिया, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझने के लिए हमें महापुरुषों के वचन सुनने चाहिए।" ब्रह्मा, नारद, व्यासदेव, असित तथा अर्जुन जैसे महापुरुषों के कथनों से ही कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसी तरह उन्हीं महापुरुषों के कथनों से ही श्री चैतन्य महाप्रभु भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसकी व्याख्या आगे की जायेगी।

शिष्य कहे,—'ईश्वर-तत्त्व साधि अनुमाने' ।

आचार्य कहे,—'अनुमाने नहे ईश्वर-ज्ञाने' ॥81॥

शिष्य कहे-शिष्यों ने कहा; ईश्वर-तत्त्व-परम सत्य का ज्ञान; साधि–निकालते हैं, उधृत करते हैं; अनुमाने-अनुमान के विवरण से; आचार्य कहे-गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया; अनुमाने-अनुमान से; नहे-नहीं होता है; ईश्वर-ज्ञाने-परमेश्वर का सच्चा ज्ञान।

अनुवाद

भट्टाचार्य के शिष्यों ने कहा, "हम तार्किक अनुमान के द्वारा परम सत्य का ज्ञान प्राप्त करते हैं।" गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में वास्तविक ज्ञान इस प्रकार के अनुमान तथा तर्क से प्राप्त नहीं किया जा सकता।"

तात्पर्य

विशेषतया मायावादी दार्शनिक परम सत्य के विषय में अनुमान लगाते हैं। वे तर्क करते हैं कि हम इस भौतिक जगत् की हर वस्तु को सृजित (उत्पन्न) हुई अनुभव करते हैं। यदि हम किसी भी वस्तु का इतिहास खोजें, तो उसका एक स्रष्टा मिलेगा। अतएव इस विराट जगत् का कोई स्रष्टा होना चाहिए। ऐसे तर्क से वे इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इस विराट जगत् की सृष्टि किसी महान् शक्ति द्वारा की गई है। मायावादी ईस महान् शक्ति को एक व्यक्ति के रूप में स्वीकार नहीं करते। उनके दिमाग में यह बात नहीं समाती कि यह विराट जगत् एक व्यक्ति की सृष्टि हो सकता है। इस शंका का कारण यह है कि जब वे किसी व्यक्ति के विषय में सोचते हैं, तो वे भौतिक जगत् के ही भीतर के सीमित शक्ति वाले किसी व्यक्ति को सोचते हैं। कभी-कभी मायावादी दार्शनिक भगवान् कृष्ण या भगवान् राम को भगवान् के रूप में स्वीकार करते हैं, किन्तु वे भगवान् को ऐसे व्यक्ति मानते हैं जिनका शरीर भौतिक है। मायावादी यह समझ ही नहीं पाते कि भगवान् कृष्ण का शरीर आध्यात्मिक है। वे कृष्ण को ऐक महापुरुष–एक मनुष्य मानते हैं, जिनके भीतर परम

निर्विशेष शक्ति ब्रह्म है। इसलिए अन्ततः वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि निर्विशेष ब्रह्म ही सर्वोच्च है, साकार कृष्ण नहीं। मायावादी दर्शन का यही आधार है। किन्तु शास्त्रों से हमें ज्ञात होता है कि ब्रह्मज्योति तो कृष्ण के शरीर की ही किरणें हैं :

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि

कोटिष्वशेषवसुधादि विभूतिभिन्नम् ।

तद् ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की सेवा करता हूँ, जिनके दिव्य शरीर का तेज ब्रह्मज्योति कहलाता है। वह ब्रह्मज्योति, जो असीम, अगाध तथा सर्वव्यापी है, अनन्त ग्रहों की सृष्टि का कारण है, जिनमें तरह-तरह की जलवायु है तथा जो जीवन की विशिष्ट दशाओं से युक्त है।" (ब्रह्म-संहिता 5.40)

मायावादी दार्शनिक वैदिक साहित्य का अध्ययन करते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि परम सत्य के साक्षात्कार की अन्तिम अवस्था पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। वे इस तथ्य को तो स्वीकार करते हैं कि इस विराट जगत् का कोई स्रष्टा है, किन्तु वह अनुमान है। मायावादियों का तर्क वैसा ही है, जैसाकि किसी पहाड़ी के ऊपर धुआँ देखकर आग लगने का अनुमान लगाना। जब किसी ऊँची पहाड़ी के ऊपर जंगल में आग लगती है, तो सबसे पहले धुंआ ही दिखता है। यह सभी जानते हैं कि धुंआ तभी उत्पन्न होता है, जब अग्नि रहती है। जिस प्रकार धुएँ से अग्नि का अनुमान लगाया जा सकता है, उसी तरह मायावादी दार्शनिक इस विराट जगत् को देखकर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इसका कोई स्रष्टा होना चाहिए।

सार्वभौम भट्टाचार्य के शिष्य श्री चैतन्य महाप्रभु को ही इस जगत् के वास्तविक स्रष्टा मानने के लिए प्रमाण चाहते थे। केवल तभी वे उन्हें सृष्टि के आदि कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार कर सकेंगे। गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को अनुमान से नहीं समझे जा सकते । जैसे भगवान् कृष्ण भगवद्गीता (7.25) में कहते हैं :

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥

"मैं मूर्खा तथा बुद्धिहीनों को कभी नहीं दिखता। उनके लिए तो मैं अपनी नित्य सृजनात्मक शक्ति (योगमाया) से आवृत रहता हूँ, अतएव भ्रमित जगत् मुझ अजन्मा तथा अव्यय को नहीं जान पाता।" पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को अधिकार है कि वे अभक्तों के समक्ष प्रकट न हों। उन्हें केवल प्रामाणिक भक्त ही समझ सकते हैं। भगवान् कृष्ण भगवद्गीता में अन्यत्र (18.55) कहते हैं- भक्त्या मामभिजानाति–"मुझे केवल भक्ति द्वारा जाना जा सकता है।" भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय (4.3) में भगवान् कृष्ण कहते हैं-भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ यहाँ भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि वे उसे भगवद्गीता का रहस्य बतला रहे हैं, क्योंकि वह उनका भक्त है। अर्जुन न तो संन्यासी था, न वेदान्ती, न ही ब्राह्मण। किन्तु वह कृष्ण-भक्त था। निष्कर्ष यह है कि हमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को भक्तों से समझना होगा। श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं कहते हैं-गुरुकृष्णप्रसादे पाय भक्तिलताबीज। (चैतन्य चरितामृत, मध्य 19.151)

यह दिखाने के लिए और साक्ष्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं कि भक्त या कृष्ण की कृपा के बिना मनुष्य यह नहीं समझ सकता कि कृष्ण क्या हैं और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् क्या हैं। इसकी पुष्टि अगले श्लोक में हुई है।

अनुमान प्रमाण नहे ईश्वर-तत्त्व-ज्ञाने ।

कृपा विना ईश्वरेरे केह नाहि जाने ॥82 ॥

अनुमान प्रमाण–अनुमान से प्रमाण; नहे-नहीं; ईश्वर-तत्त्व-ज्ञाने-परम सत्य अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझने के लिए; कृपा विना-कृपा के बिना; ईश्वरेरे-परम भगवान् को; केह-कोई भी; नाहि-नहीं; जाने-जानता।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने आगे कहा, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को केवल उनकी कृपा द्वारा ही जाने जा सकते हैं, अनुमान द्वारा नहीं।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को किसी भौतिक तर्क के द्वारा नहीं समझे जा सकते। मूर्ख लोग जादू का खेल देखकर मुग्ध हो जाते हैं और योगशक्ति से सम्पन्न कुछेक अद्भुत कार्य देखकर ही वे जादूगर को भगवान् या अवतार मान बैठते

हैं। किन्तु यह साक्षात्कार की विधि नहीं है। न ही मनुष्य को ईश्वर के अवतार या भगवान् के विषय में अनुमान लगाना चाहिए। मनुष्य को प्रामाणिक व्यक्ति से या स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सीखना होता है, जैसाकि कृष्ण की कृपा से अर्जुन ने किया। स्वयं कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में अपनी शक्तियों के विषय में संकेत भी करते हैं। केवल शास्त्रों तथा महाजनों द्वारा प्रस्तुत प्रमाण के आधार पर ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझने चाहिए। भक्ति द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझने के लिए भगवत्कृपा प्राप्त होनी आवश्यक है।

ईश्वरेर कृपा-लेश हय त' याहारे ।

सेइ त' ईश्वर-तत्त्व जानिबारे पारे ॥83 ॥

ईश्वरेर–परम भगवान् की; कृपा-लेश-लेशमात्र कृपा; हय–होती है; त'–निश्चित रूप से; याहारे-जिस पर; सेइ त'वह अवश्य; ईश्वर-तत्त्व–परम सत्य; जानिबारे जानने में; पारे-सक्षम है।

अनुवाद

आचार्य ने आगे कहा, "यदि किसी को भक्ति द्वारा भगवान् की लेशमात्र भी कृपा प्राप्त होती है, तो वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तत्त्व से समझ सकता है।"

अथापि ते देव पदाम्बुज-द्वय-

प्रसाद-लेशानुगृहीत एव हि ।

जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो

न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥84॥

अथ-इसलिए; अपि-निस्सन्देह; ते-आपका; देव-मेरे स्वामी; पद-अम्बुज-द्वय–दोनों चरणकमलों की; प्रसाद-कृपा का; लेश–थोड़ा सा भाग भी; अनुगृहीतः-प्राप्त होता है; एव–अवश्य; हि–निस्सन्देह; जानाति–मनुष्य जानता है; तत्त्वम्-सत्य को; भगवत्-भगवान् के; महिम्नः-महिमा का; न कभी नहीं; च-और; अन्यः-अन्य; एकः-एक; अपि-यद्यपि; चिरम्-चिरकाल तक; विचिन्वन्–चिन्तन द्वारा।

अनुवाद

“हे प्रभु, यदि आप के चरणकमलों की रंचमात्र भी कृपा किसी पर हो जाये, तो वह आपकी महानता को समझ सकता है। किन्तु जो लोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझने के लिए तर्कवितर्क करते हैं, वे अनेक वर्षों तक वेदों का अध्ययन करते रहने पर भी आपको जानने में अक्षम रहते हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.14.29) का है। ब्रह्म-संहिता (5.33) का कथन है-वेदेषु दुर्लभम् अदुर्लभम् आत्मभक्तौ । यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ज्ञान के चरम लक्ष्य हैं (वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः), किन्तु जो शुद्ध भक्त नहीं है और भगवान् की सेवा में नहीं लगा हुआ है, वह उन्हें समझ नहीं सकता। अत: ब्रह्माजी इसकी पुष्टि करते हैं- वेदेषु दुर्लभम्–“मात्र स्वाध्याय द्वारा भगवान् को समझ पाना अत्यन्त कठिन है।” अदुर्लभम् आत्मभक्तौ-“किन्तु भक्तों के लिए भगवान् को समझना अत्यन्त आसान है।” भगवान् अजित कहलाते हैं अर्थात् वे जीते नहीं जा सकते। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को कोई जीत नहीं सकता, किन्तु वे अपने भक्तों द्वारा पराजित किये जाने के लिए प्रस्तुत रहते हैं। यही उनका स्वभाव है। जैसाकि पद्म पुराण में कहा गया है :

अतः श्रीकृष्णनामादि

न भवेद् ग्राह्यम् इन्द्रियैः ।

सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ

स्वयमेव स्फुरत्यदः ॥

भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् अपने भक्तों के समक्ष प्रकट होते हैं। उन्हें समझने की यही विधि है।

गोपीनाथ आचार्य द्वारा उद्धृत किया गया श्रीमद्भागवतम् का यह श्लोक ब्रह्माजी ने भगवान् कृष्ण से पराजित होने पर कहा था। ब्रह्माजी ने कृष्ण की शक्ति की परीक्षा करने के लिए सारे बछड़ों तथा ग्वालबालों को चुरा लिया था। ब्रह्माजी ने यह स्वीकार किया कि इस ब्रह्माण्ड में उनकी अपनी असाधारण शक्ति कृष्ण की असीम शक्ति के समक्ष पूर्णतया तुच्छ है। यदि कृष्ण को समझने में ब्रह्माजी तक भूल कर सकते हैं, तो साधारण व्यक्तियों के विषय में क्या कहा जाये, जिन्हें कृष्ण के विषय में गलत भ्रान्तियाँ हैं या अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए वे किसी को कृष्ण का तथाकथित अवतार कहकर स्थापित करते हैं।

यद्यपि जगद्गुरु तुमि—शास्त्र ज्ञानवान् ।

पृथिवीते नाहि पण्डित तोमार समान ॥85॥

ईश्वरेर कृपा-लेश नाहिक तोमाते ।

अतएव ईश्वर-तत्त्व ना पार जानिते ॥86॥

यद्यपि यद्यपि; जगत्-गुरु-जगद् गुरु; तुमि-आप; शास्त्र-ज्ञानवान्-वैदिक ज्ञान में निपुण; पृथिवीते-इस पृथ्वी पर; नाहि-नहीं है; पण्डित-पण्डित, विद्वान; तोमार-आपके; समान–समान; ईश्वरेर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की; कृपा-कृपा; लेश–तनिक; नाहिक-नहीं है; तोमाते-आप पर; अतएव–अतएव; ईश्वर-तत्त्व–परम सत्य (भगवत्-तत्त्व); ना पार-सक्षम नहीं; जानिते-जानना।

अनुवाद

तब गोपीनाथ आचार्य ने सार्वभौम भट्टाचार्य को सम्बोधित किया, "आप महान् पंडित हैं और अनेक शिष्यों के गुरु हैं। निस्सन्देह, आपकेसमान इस पृथ्वी पर अन्य कोई विद्वान नहीं है। फिर भी आप भगवान् की रंचमात्र कृपा से भी वंचित हैं, अतएव आप उन्हें अपने घर में पाकर भी नहीं समझ सकते।"

तोमार नाहिक दोष, शास्त्रे एइ कहे।

पाण्डित्याद्ये ईश्वर-तत्त्व-ज्ञान कभु नहे ॥87॥

तोमार-आपका; नाहिक-नहीं है; दोष-दोष; शास्त्रे-शास्त्र; एइ–यह; कहे-बताते हैं; पाण्डित्य-आद्ये-केवल पाण्डित्य से; ईश्वर-तत्त्व-ज्ञान–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ज्ञान; कभु-कभी; नहे-नहीं होता।

अनुवाद

"यह आपका दोष नहीं है; यह तो शास्त्रों का निर्णय है। आप केवल पाण्डित्य से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नहीं समझ सकते।"

तात्पर्य

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण श्लोक है। बड़े-बड़े पंडित तक कृष्ण को नहीं समझ सकते, फिर भी वे भगवद्गीता पर टीका करने का दुस्साहस करते हैं। भगवद्गीता पढ़ने का अर्थ है कृष्ण को समझना, फिर भी हम देखते हैं कि अनेक पण्डित कृष्ण को समझने का प्रयास करने में भारी भूल करते हैं। वैदिक साहित्य में गोपीनाथ आचार्य के कथन की कई जगह पुष्टि हुई है। कठ उपनिषद् (1.2.23) में कहा गया है :

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो

न मेधया न बहुना श्रुतेन ।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-

स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू स्वाम् ॥

कठ उपनिषद् (1.2.9) में यह भी कहा गया है :

नैषा तर्केण मतिरापनेया

प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।

यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि

त्वाहं नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥

वास्तव में, भगवान् अर्थात् परमात्मा केवल व्याख्या, तर्क तथा पाण्डित्य से प्राप्त नहीं किये जा सकते। कोई उन्हें केवल अपने मस्तिष्क के बल से नहीं समझ सकता। यहाँ तक कि सारे वैदिक साहित्य के अध्ययन के द्वारा भी भगवान् नहीं समझे जा सकते। किन्तु यदि भगवान् प्रसन्न होकर रंच-भर भी कृपा कर दें, तो मनुष्य उन्हें समझ सकता है। किन्तु उनकी कृपा के पात्र हैं। कौन? केवल भक्तगण । केवल वे ही समझ सकते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् क्या हैं। जब भगवान् निष्ठावान भक्त की सेवा से प्रसन्न हो जाते हैं, तब वे स्वयं उसके समक्ष प्रकट होते हैं। स्वयमेव स्फुरत्यदः। न तो वेदों के कथन से भगवान् को समझने का प्रयास करना चाहिए, न ही तर्क द्वारा इन कथनों की व्यर्थ में निन्दा करनी चाहिए।

सार्वभौम कहे,—आचार्य, कह सावधाने ।

तोमाते ईश्वर-कृपा इथे कि प्रमाणे ॥88॥

सार्वभौम कहे-सर्वाभौम भट्टाचार्य ने कहा; आचार्य–प्रिय गोपीनाथ आचार्य; कह-कृपया बोलो; सावधाने-अत्यन्त सावधानीपूर्वक; तोमाते-आपको; ईश्वर-कृपा-भगवत् कृपा; इथे-इस विषय में; कि प्रमाणे-किस प्रमाण से।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "हे गोपीनाथ आचार्य, कृपया आप सावधानी से कहें। आपके पास इसका क्या प्रमाण है कि आपको भगवत्कृपा प्राप्त हो चुकी है?"

आचार्य कहे,—"वस्तु-विषये हय वस्तु-ज्ञान ।

वस्तु-तत्त्व-ज्ञान हय कृपाते प्रमाण" ॥89॥

आचार्य कहे-गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया; वस्तु-विषये-परम पूर्ण के बारे; हय-है; वस्तु-ज्ञान-परम का ज्ञान; वस्तु-तत्त्व-परम सत्य का; ज्ञान-ज्ञान; हय-है; कृपाते–कृपा का प्रमाण-प्रमाण।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "सर्वाधिक कल्याणकारी परम सत्य का ज्ञान ही परमेश्वर की कृपा का प्रमाण है।"

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य ने अपने बहनोई श्री गोपीनाथ आचार्य से पूछा, "भले ही भगवान् ने मुझ पर कृपा न की हो, किन्तु इसका क्या प्रमाण है कि उन्होंने तुम पर कृपा की है? कृपया इस बारे में हमें बताएँ।" इस प्रश्न के उत्तर में गोपीनाथ आचार्य ने कहा कि परम कल्याणकारी परम सत्य तथा उनकी विभिन्न शक्तियाँ अभिन्न हैं। अतएव उनकी विभिन्न शक्तियों की अभिव्यक्ति से परम सत्य को समझे जा सकते हैं। परम सत्य में एक ही जगह सारी शक्तियाँ रहती हैं। विभिन्न गुणों से युक्त होकर परम सत्य आदि वस्तु हैं- परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।

इस तरह वेदों का कथन है कि परम सत्य विभिन्न शक्तियों से युक्त हैं। जब कोई परम सत्य की शक्तियों के गुणों को समझता है, तो वह परम सत्य से अवगत हो जाता है। भौतिक स्तर पर भी कोई व्यक्ति किसी वस्तु को उसके लक्षणों की अभिव्यक्ति से जान सकता है। उदाहरणार्थ, जब ऊष्मा होती है, तो यह समझा जाता है कि यह अग्नि के

कारण है। अग्नि की ऊष्मा का अनुभव प्रत्यक्ष किया जाता है। भले ही अग्नि न दिखे, किन्तु ऊष्मा के अनुभव से अग्नि को खोजा जा सकता है। इसी तरह यदि परम सत्य के गुणों का किसी को अनुभव हो सके, तो यह समझना चाहिए कि उसने भगवत्कृपा से परम सत्य के तथ्य को समझ लिया है।

भगवद्गीता (7.25) में कहा गया है- नाहं प्रकाशः सर्वस्य। यह तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अधिकार में है कि वे हर एक को दर्शन न दें। सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः–"जब भगवान् भक्त की सेवा से पूरी तरह से सन्तुष्ट हो जाते हैं, तब वे भक्त के समक्ष प्रकट होते हैं। अतएव भगवान् की कृपा बिना उन्हें समझे नहीं जा सकते। परम सत्य को चिन्तन द्वारा नहीं समझे जा सकते—यही भगवद्गीता का निर्णय है।

इँहार शरीरे सब ईश्वर-लक्षण ।

महा-प्रेमावेश तुमि पाञाछ दर्शन ॥90 ॥

इँहार-उनके; शरीरे शरीर में; सब-सब; ईश्वर-लक्षण–परमेश्वर के लक्षण; महा-प्रेम-आवेश-दिव्य प्रेम में लीनता; तुमि-आपने; पाञाछ–पाया है; दर्शन-देखा है।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने आगे कहा, "जब श्री चैतन्य महाप्रभु भावाविष्ट थे, तो उनके शरीर में आपने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के लक्षण देखे हैं।"

तबु त' ईश्वर-ज्ञान ना हय तोमार ।

ईश्वरेर माया एइ—बलि व्यवहार ॥91॥

तबु त'–फिर भी; ईश्वर-ज्ञान-परमेश्वर ज्ञान; ना-नहीं; हय-हुआ; तोमार-आपको; ईश्वरेर–भगवान् की; माया-माया; एइ–इसे; बलि-कही जाती है; व्यवहार-सामान्य भाषा में।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के लक्षणों को प्रत्यक्ष देखने के बाद भी आप उन्हें नहीं समझ सके। इसे ही सामान्यतया माया (भ्रम) कहा जाता है।

तात्पर्य

गोपीनाथ आचार्य यह इंगित करते हैं कि सार्वभौम भट्टाचार्य तो पहले ही श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में भाव के अद्भुत लक्षण देख चुके थे।

प्रेम-भाव के ये अद्भुत लक्षण परम पुरुष को सूचित करने वाले थे, किन्तु भट्टाचार्य इन सारे लक्षणों को देखने के बाद भी भगवान् की दिव्य प्रकृति को नहीं समझ पाये। वे भगवान् की लीलाओं को भौतिक मान रहे थे। ऐसा निश्चित रूप से माया के कारण था।

देखिले ना देखे तारे बहिर्मुख जन" ।

शुनि' हासि' सार्वभौम बलिल वचन ॥92॥

देखिले–देखने के बाद भी; ना-नहीं; देखे-देखता है; तारे–परम पुरुष; बहिः-मुख जन–बहिरंगा शक्ति से प्रभावित व्यक्ति; शुनि'-यह सुनकर; हासि'–मुस्कुराकर; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; बलिल–कहा; वचन-वचन।

अनुवाद

"बहिरंगा शक्ति से प्रभावित व्यक्ति बहिर्मुखजन अर्थात् संसारी व्यक्ति कहलाता है, क्योंकि देखने के बाद भी वह वास्तविक वस्तु को नहीं समझ पाता।" गोपीनाथ आचार्य के वचन सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य मुसकाये और इस प्रकार कहने लगे।

तात्पर्य

जब तक मनुष्य का हृदय स्वच्छ नहीं होता, तब तक वह अपने हृदय में भक्ति की दिव्य प्रकृति को जाग्रत नहीं कर सकता। जैसाकि भगवान् कृष्ण ने भगवद्गीता (7.28) में पुष्टि की है :

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

"जिन लोगों ने पूर्वजन्म में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये हैं, जिनके सारे पाप नष्ट हो चुके हैं, वे मोह के द्वन्द्व से मुक्त हो जाते हैं और दृढ़तापूर्वक मेरी सेवा में लग जाते हैं।"

जब कोई वास्तव में शुद्ध भक्ति में लगा हो, तो यह समझा जाता है कि उसे अपने सारे पापकर्मों के फलों से मुक्ति मिल चुकी है। दूसरे शब्दों में यह समझना चाहिए कि भक्तगण पाप से पहले ही मुक्त हो चुके होते हैं। पापी व्यक्ति, दुष्कृती कभी भक्तिमय सेवा में नहीं लगता, न ही केवल पाण्डित्यपूर्ण तर्कवितर्क से कोई भक्ति में लग सकता है। शुद्ध भक्ति करने के लिए मनुष्य को भगवत्कृपा की प्रतीक्षा करनी होती है।

इष्ट-गोष्ठी विचार करि, ना करिह रोष ।

शास्त्र-दृष्ट्ये कहि, किछु ना लइह दोष ॥ 93 ॥

इष्ट-गोष्ठी-मित्रों में वार्तालाप; विचार-विचार; करि–हम करते हैं; ना-नहीं; करिह-करो; रोष-क्रोध; शास्त्र-दृष्ट्ये-शास्त्रों की दृष्टि में; कहि-हम कहते हैं; किछु-कुछ भी; ना-न; लइह-लो; दोष-दोष, बुरा।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "हम तो मित्रों के बीच चर्चा कर रहे हैं और शास्त्रों में वर्णित बातों पर विचार कर रहे हैं। आप क्रुद्ध न हों। मैं तो केवल शास्त्रों के आधार पर ही बोल रहा हूँ। आप इसे अपराध न मानें।"

महा-भागवत हय चैतन्य गोसाञि ।

एइ कलि-काले विष्णुर अवतार नाइ ॥ 94॥

महा-भागवत–एक महान् भक्त; हय-है; चैतन्य गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु; एइ–इस; कलि-काले-कलियुग में; विष्णुर-भगवान् विष्णु का अवतार–अवतार; नाइ–नहीं है।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु अवश्य ही महान् एवं असाधारण भक्त हैं, किन्तु हम उन्हें भगवान् विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि शास्त्रों के अनुसार इस कलियुग में कोई अवतार नहीं होने वाला है।"

अतएव 'त्रि-युग' करि' कहि विष्णु-नाम ।

कलि-युगे अवतार नाहि,—शास्त्र-ज्ञान ॥ 95॥

अतएव–अतएव; त्रि-युग–तीनों युगों में प्रकट होने वाले भगवान्; करि'–करके; कहि-हम कहते हैं; विष्णु-नाम-भगवान् विष्णु का पावन नाम; कलि-युगे–कलियुग में; अवतार–अवतार; नाहि-नहीं होता; शास्त्र-ज्ञान-शास्त्रों का आदेश।

अनुवाद

"भगवान् विष्णु का एक नाम त्रियुग है, क्योंकि कलियुग में उनका अवतार नहीं होता है। यह प्रामाणिक शास्त्रों का निर्णय है।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु त्रियुग कहलाते हैं, जिसका अर्थ यह है कि वे तीन युगों में प्रकट होते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह है कि कलियुग में भगवान् प्रत्यक्ष रूप से नहीं, अपितु छद्म रूप में प्रकट होते हैं। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (7.9.38) में हुई है :

इत्थं नृतिर्यग्ऋषिदेवझषावतारै-

र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान्।

धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं

छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम्॥

"हे प्रभु, आप मनुष्यों, पशुओं, देवताओं, ऋषियों, जलचरों इत्यादि के परिवारों में विविध अवतारों में विश्व के सारे शत्रुओं का वध करते हैं। इस तरह आप दिव्य ज्ञान से लोकों को प्रकाशित करते हैं। हे महापुरुष, कलियुग में आप कभी-कभी प्रच्छन्न अवतार के रूप में प्रकट होते हैं। इसीलिए आप त्रियुग कहलाते हैं।"

श्रील श्रीधर स्वामी ने भी पुष्टि की है कि कलियुग में भगवान् विष्णु प्रकट तो होते हैं, किन्तु तब वे अन्य युगों की तरह कार्य नहीं करते। भगवान् विष्णु दो उद्देश्यों से अवतरित होते हैं- परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्- अर्थात् वे अपने भक्तों के साथ लीलाएँ करने और असुरों का संहार करने आते हैं। ये उद्देश्य सत्य, त्रेता तथा द्वापर युगों में दिखाई पड़ते हैं, किन्तु कलियुग में भगवान् वेश बदलकर प्रकट होते हैं। वे प्रत्यक्ष रूप से असुरों को मारकर

श्रद्धालुओं को संरक्षण प्रदान नहीं करते। चूँकि कलियुग में भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता, जबकि अन्य तीन युगों में वे प्रत्यक्ष जाने जाते हैं, अतएव उनका नाम त्रियुग है।

शुनिया आचार्य कहे दुःखी हञा मने ।

शास्त्र-ज्ञ करिञा तुमि कर अभिमाने ॥ 96 ॥

शुनिया-यह सुनकर; आचार्य-गोपीनाथ आचार्य; कहे-कहा; दुःखी-दुःखी, अप्रसन्न; हञा–होकर; मने-मन में; शास्त्र-ज्ञ-वैदिक शास्त्रों में दक्ष; करिञा-समझकर; तुमि-आप; कर-करते हो; अभिमाने-अभिमान।

अनुवाद

यह सुनकर गोपीनाथ आचार्य अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंने भट्टाचार्य से कहा, "आप स्वयं को समस्त वैदिक शास्त्रों का ज्ञाता (शास्त्रज्ञ) मानते हैं।"

भागवत-भारत दुइ शास्त्रेर प्रधान ।

सेइ दुइ-ग्रन्थ-वाक्ये नाहि अवधान ॥ 97॥

भागवत-श्रीमद्भागवतम्; भारत-महाभारत; दुइ-दोनों; शास्त्रेर–सभी वैदिक शास्त्रों में ; प्रधान-अत्यन्त प्रमुख; सेइ-वे; दुइ-ग्रन्थ-दोनों ग्रन्थों के; वाक्ये-कथनों में; नाहि-नहीं है; अवधान-ध्यान, रुचि।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत तथा महाभारत दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वैदिक शास्त्र हैं, किन्तु आपने इनके कथनों पर कोई ध्यान नहीं दिया।"

सेइ दुइ कहे कलिते साक्षातवतार ।

तुमि कह,—कलिते नाहि विष्णुर प्रचार ॥98॥

सेइ-वे; दुई–दोनों; कहे-कहते हैं; कलिते-इस कलियुग में; साक्षात्-साक्षात्; अवतार–अवतार; तुमि-आप; कह–कहते हो; कलिते-इस कलियुग में; नाहि-नहीं है; विष्णुर-भगवान् विष्णु का प्रचार–प्रचार, प्राकट्य।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत तथा महाभारत में कहा गया है कि स्वयं भगवान् अवतरित होते हैं, किन्तु आप कह रहे हैं कि इस युग में भगवान् विष्णु का प्राकट्य या अवतार ही नहीं होता।"

कलि-युगे लीलावतार ना करे भगवान् ।

अतएव 'त्रि-युग' करि' कहि तार नाम ॥ 99॥

कलि-युगे-इस कलियुग में; लीला-अवतार–लीला अवतार; ना-नहीं; करे-होता; भगवान्–परम भगवान् का; अतएव–अतएव; त्रि-युग–त्रियुग; करि'–स्वीकार करके; कहि-मैं कहता हूँ; तार नाम-उनका पावन नाम।

अनुवाद

"इस कलियुग में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का कोई लीलावतार नहीं होता, इसीलिए वे त्रियुग कहलाते हैं और यह उनके पवित्र नामों में से एक है।"

तात्पर्य

लीलावतार का अर्थ है भगवान् का अवतार जो बिना किसी विशेष प्रयास के नाना प्रकार की लीलाएँ करता है। वे एक के बाद एक लीलाएँ करते हैं। और वे सब दिव्य आनन्द से पूर्ण होती हैं तथा ये लीलाएँ परम पुरुष द्वारा पूर्णतया नियन्त्रित होती हैं। इन लीलाओं में परम पुरुष सर्वथा स्वतन्त्र होते हैं। सनातन गोस्वामी को शिक्षा देते समय (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 20.296-298) श्री चैतन्य महाप्रभु ने इंगित किया कि लीलावतारों की संख्या की गिनती नहीं की जा सकती :

लीलावतार कृष्णेर न याय गणन् ।

प्रधान करिया कहि दिग्दरशन ॥

महाप्रभु ने सनातन से कहा, "फिर भी मैं प्रमुख लीलावतारों की व्याख्या करूँगा।"

मत्स्य, कूर्म, रघुनाथ, नृसिंह, वामन ।

वराहादि-लेखा याँर ना याय गणन ॥

इस तरह उन्होंने भगवान् के अवतारों की गणना की गई, जिनमें मत्स्य, कूर्म, भगवान् रामचन्द्र, नृसिंहदेव, वामनदेव तथा वराह सम्मिलित हैं। इस प्रकार असंख्य लीलावतार हैं और ये सभी अद्भुत लीलाओं का प्रदर्शन करते हैं। उदाहरणार्थ, वराह अवतार ने गर्भोदक सागर के गर्त से पूरे पृथ्वी ग्रह को बाहर निकाला। कूर्म अवतार समुद्र-मंथन के समय प्रधान आधार बने और भगवान् नृसिंह देव आधे पुरुष तथा आधे सिंह के रूप में प्रकट हुए। लीलावतारों के ये कुछ अद्भुत तथा असाधारण गुण हैं।

श्रील रूप गोस्वामी ने अपने लघु भागवतामृत नामक ग्रंथ में निम्नलिखित पच्चीस लीलावतारों के नाम गिनाये हैं। ये हैं-चतुःसन, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हयशीर्ष (हयग्रीव), हंस, पृश्निगर्भ, ऋषभ, पृथु, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, राघवेन्द्र, व्यास, बलराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि।

श्री चैतन्य महाप्रभु का उल्लेख लीलावतार के रूप में नहीं हुआ है, क्योंकि वे प्रच्छन्न अवतार (छन्न अवतार) हैं। इस कलियुग में लीलावतार नहीं हैं, अपितु श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में भगवान् का अवतार प्रकट है। श्रीमद्भागवत में इसकी व्याख्या हुई है।

प्रतियुगे करेन कृष्ण युग-अवतार ।

तर्क-निष्ठ हृदय तोमार नाहिक विचार ॥100 ॥

प्रति-युगे-प्रत्येक युग में; करेन-लेते हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मूंग-अवतार-युग अवतार; तर्क-निष्ठ–तर्क के कारण निष्ठुर; हृदय-हृदय; तोमार-आपके; नाहिक-नहीं है; विचार-विचार।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने आगे कहा, "निश्चित रूप से प्रत्येक युग में एक अवतार होता है, जो युग-अवतार कहलाता है। किन्तु आपका हृदय तर्क के कारण इतना कठोर हो चुका है कि आप इन तथ्यों पर विचार नहीं कर सकते।

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनु-युगं तनूः ।

शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ 101॥

आसन्-थे; वर्णाः–रंग; त्रयः–तीन; हि-निस्सन्देह; अस्य-उनके; गृह्णतः-स्वीकार करना; अनु-मुग-युग के अनुसार; तनूः–शरीर; शुक्लः-सफेद, श्वेत; रक्तः-लाल; तथा—तथा; पीतः-पीत; इदानीम्-इस समय; कृष्णताम्-काला; गतः-स्वीकार किया है।

अनुवाद

"भूतकाल में युग के अनुसार आपके पुत्र के तीन विभिन्न रंगों वाले शरीर थे। ये रंग थे श्वेत, लाल तथा पीत। इस (द्वापर) युग में उन्होंने कृष्ण (श्याम) शरीर धारण किया है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.8.13) का है, जिसे गर्गमुनि ने कृष्ण का नामकरण संस्कार सम्पन्न करते हुए कहा था। उन्होंने कहा कि अन्य युगों में भगवान् के अवतार श्वेत, लाल तथा पीत रंग के थे। यह पीत रंग श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाने वाला है, क्योंकि उनके शरीर का वर्ण पीत था। इससे पुष्टि होती है कि पिछले कलियुगों में भी भगवान् ने अवतार लिया था, जिसमें उनका रंग पीत था। यह समझा जाता है कि भगवान् विभिन्न युगों (सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि) में विभिन्न रंगों में अवतरित होते हैं। पीत रंग तथा अन्य गुणों को धारण करके भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए। यह सारे वैदिक महाभागवतों का निर्णय है।

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ।

नाना-तन्त्र-विधानेन कलावपि तथा शृणु ॥102॥

इति–इस प्रकार; द्वापरे द्वापर युग में; उरु-ईश-हे राजन्; स्तुवन्ति-स्तुति करते हैं; जगत्-ईश्वरम्-जगद् ईश्वर की; नाना-नाना; तन्त्र-पूरक वैदिक साहित्य; विधानेन-विधि-विधानों से; कलौकलियुग में; अपि निश्चित रूप से; तथा—तथा; शृणु–सुनो।

अनुवाद

"कलियुग में तथा द्वापर युग में भी लोग विभिन्न मन्त्रों से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति करते हैं और पूरक वैदिक ग्रंथों के नियमों का पालन करते हैं। अब आप कृपया मुझसे इसके विषय में सुनें।

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.5.31) से है।

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र-पार्षदम् ।

यज्ञैः सङ्कीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥103 ॥

कृष्ण-वर्णम्-'कृष्' तथा 'ण' दो अक्षरों का जप, त्विषा–कान्ति से; अकृष्णम्-काला नहीं; स-अङ्ग-स्वांश विस्तार के साथ; उप-अङ्ग-भक्त; अस्त्र-हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन रूपी अस्त्र; पार्षदम्-और गदाधर, स्वरूप दामोदर जैसे पार्षद; यज्ञैः–यज्ञ से; सङ्कीर्तन–हरे कृष्ण मंत्र का सामूहिक कीर्तन; प्रायैः-मुख्यतया; ग्रजन्ति-पूजा करते हैं; हि-निस्सन्देह; सु-मेधसः–जो बुद्धिमान हैं।

अनुवाद

"इस कलियुग में बुद्धिमान लोग हरे कृष्ण महामन्त्र का सामूहिक कीर्तन करते हैं और उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा करते हैं, जो इस युग में सदैव कृष्ण की महिमा का वर्णन करने के लिए प्रकट होते हैं। ये अवतार पीत वर्ण के होते हैं और सदैव अपने पूर्ण विस्तारों (यथा नित्यानन्द प्रभु) तथा स्वांशों (यथा गदाधर) के अतिरिक्त भक्तों तथा पार्षदों (यथा स्वरूप दामोदर) को साथ रखते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.5.32) का है, जिसकी व्याख्या श्रील जीव गोस्वामी अपनी कृति क्रम-सन्दर्भ में करते हैं, जिसको श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने आदिलीला, तृतीय अध्याय, श्लोक 52 की व्याख्या करते हुए उधृत किया है।

सुवर्ण-वर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।

सन्न्यास-कृच्छमः शान्तो निष्ठा-शान्ति-परायणः ॥ 104॥

सुवर्ण-वर्णः-सोने जैसे रंगवाले; हेम-अङ्गः-पिघले सोने की भाँति शरीर वाले; वर-अङ्गः-बहुत सुन्दर शरीर वाले; चन्दन-अङ्गदी–चन्दन से लिपे; सन्न्यास-कृत्-संन्यास स्वीकृत किये हुए; शमः-आत्म-संयमी; शान्तः–शान्त; निष्ठा-निष्ठावान; शान्ति-हरे कृष्ण महामंत्र के प्रचार द्वारा शान्ति लाने वाले; परायणः-सदा भक्ति के आवेश में स्थित।

अनुवाद

"(गौरसुन्दर अवतार में) भगवान् का रंग सुनहरा है। उनका अत्यन्त सुगठित शरीर पिघले सोने जैसा है। उनके सारे शरीर पर चन्दन का लेप है। वे चतुर्थ आश्रम (संन्यास) ग्रहण करेंगे और अत्यन्त आत्म-संयमी होंगे। वे मायावादी संन्यासियों से इस कारण भिन्न होंगे कि वे भक्ति में स्थिर होंगे और संकीर्तन आन्दोलन का विस्तार करेंगे।"

तात्पर्य

गोपीनाथ आचार्य ने यह श्लोक महाभारत के विष्णु सहस्रनामस्तोत्र से उद्धृत किया।

तोमार आगे एत कथार नाहि प्रयोजन ।

ऊषर-भूमिते येन बीजेर रोपण ॥105॥

तोमार आगे-आपके आगे; एत-इतने; कथार–शब्दों की; नाहि-नहीं है; प्रयोजन-आवश्यकता; ऊषर-भूमिते-बंजर भूमि पर; येन-जैसे; बीजेर-बीज का; रोपण-बोना।

अनुवाद

तब गोपीनाथ आचार्य ने कहा, "शास्त्रों से और अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आप शुष्क चिन्तक हैं। बंजर भूमि में बीज डालने से कोई लाभ नहीं होता।"

तोमार उपरे ताँर कृपा यबे हबे ।

ए-सब सिद्धान्त तबे तुमिह कहिबे ॥106॥

तोमार उपरे-आप पर; ताँर-भगवान् की; कृपा-कृपा; यबे-जब; हबे-होगी; ए-सब-ये सब; सिद्धान्त सिद्धान्त; तबे-उस समय; तुमिह-आप भी; कहिबे-कहोगे।

अनुवाद

"जब आप पर भगवान् प्रसन्न होंगे, तब आप भी इन सारे सिद्धान्तों को समझ सकेंगे और फिर शास्त्रों से उद्धरण देंगे।"

तोमार ये शिष्य कहे कुतर्क, नाना-वाद ।

इहार कि दोष—एइ मायार प्रसाद ॥107॥

तोमार-आपके; ये-जो; शिष्य-शिष्य; कहे-करते हैं; कु-तर्क-कुतर्क; नाना-वाद-दर्शन का विवाद; इहार-उनका; कि-क्या; दोष-दोष; एइ–यह; मायार-माया का; प्रसाद-वरदान।

अनुवाद

"आपके शिष्यों के झूठे तर्क तथा दार्शनिक शब्दाडम्बर उनके दोष नहीं हैं। उन्हें केवल मायावाद दर्शन का प्रसाद प्राप्त हुआ है।"

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै

विवाद-संवाद-भवो भवति ।

कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्म-मोहं

तस्मै नमोऽनन्त-गुणाय भूम्ने ॥108॥

यत्-जिनकी; शक्तयः-शक्तियाँ; वदताम्-तर्क; वादिनाम्-वाद-विवाद करने वालों का; वै-निस्सन्देह; विवाद–विरोध की; संवाद सहमति; भुवः–विषय; भवन्ति-होते हैं; कुर्वन्ति-करते हैं; च-और; एषाम्-उनका; मुहुः-सदा; आत्म-मोहम्-आत्म मोह; तस्मै–उनको; नमः-नमस्कार; अनन्त-अनन्त; गुणाय गुणों वाले; भूम्ने–परम भगवान् को।

अनुवाद

"मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ, जो असीम गुणों से सम्पन्न हैं और जिनकी विभिन्न शक्तियाँ वाद-विवाद करने वालों के बीच सहमति तथा विरोध लाने वाली हैं। इस तरह वाद-विवाद करने वाले दोनों पक्षों के आत्म-साक्षात्कार को माया पुनः पुनः आवृत करती रहती है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (6.4.31) का है।

युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा ग्रथा ।

मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥109॥

युक्तम्-उचित; च-भी; सन्ति–हैं; सर्वत्र–सर्वत्र; भाषन्ते-बोलते हैं; ब्राह्मणाः-विद्वान; ग्रथा-जितना; मायाम्-माया; मदीयाम्-मेरा; उद्गृह्य-स्वीकार करके वदताम्-अनुमान करनेवालों का; किम्-क्या; नु–निश्चय ही; दुर्घटम्-असम्भव।

अनुवाद

"प्रायः सभी क्षेत्रों में विद्वान ब्राह्मण के वचन मान्य होते हैं। जो मेरी बहिरंगा माया की शरण में आता है और उसके वशीभूत होकर बोलता है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक (11.22.4) में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् बतलाते हैं कि उनकी माया असम्भव को भी सम्भव बना सकती है-ऐसी है। माया की शक्ति। दार्शनिक चिन्तकों ने अनेक बार वास्तविक सत्य को आवृत करते हुए मिथ्या सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है। प्राचीनकाल में कपिल, गौतम, जैमिनि, कणाद तथा अन्य ब्राह्मणों ने व्यर्थ के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और आजकल तथाकथित वैज्ञानिक सृष्टि-विषयक अनेक मिथ्या सिद्धान्त प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनका समर्थन वे तथाकथित तर्कों द्वारा करते हैं। यह सब परम भगवान् की माया के प्रभाव के कारण है। अत: कभी-कभी माया सही प्रतीत होती है, क्योंकि यह परम सत्य से उद्भूत है। माया के मोहित करने वाले प्रभाव से बचने के लिए मनुष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वचनों को यथारूप में स्वीकार करना चाहिए। केवल तभी मनुष्य माया के प्रभाव से बच सकता है।

तबे भट्टाचार्य कहे, याह गोसाञिर स्थाने ।

आमार नामे गण-सहित कर निमन्त्रणे ॥ 110॥

तबे-तत्पश्चात्; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; कहे-कहते हैं; याह-कृपया जाओ; गोसाञिर स्थने-चैतन्य महाप्रभु के स्थान को; आमार नामे-मेरी ओर से; गण-सहित-उनको साथियों सहित; कर-दो; निमन्त्रणे-निमन्त्रण।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य से यह सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "पहले आप उस स्थान को जाएँ, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु ठहरे हैं और उन्हें उनके साथियों समेत मेरी ओर से आमंत्रित करके यहाँ बुलाएँ।"

प्रसाद आनि' तौरे कराह आगे भिक्षा ।

पश्चात् आसि' आमारे कराइह शिक्षा ॥111॥

प्रसाद आनि'–जगन्नाथ का प्रसाद लाकर; तौरे–उनको; कराह-कराओ; आगे-पहले; भिक्षा–प्रसाद; पश्चात् बाद में; आसि'–यहाँ आकर; आमारे-मुझे; कराइह-दो; शिक्षा-शिक्षा।

अनुवाद

"जगन्नाथजी का प्रसाद लीजिये और सर्वप्रथम इसे चैतन्य महाप्रभु तथा उनके साथियों को दीजिये। उसके बाद यहाँ लौटकर आइए और तब मुझे भलीभाँति शिक्षा दीजिये।"

आचार्य—भगिनी-पति, श्यालक—भट्टाचार्य ।

निन्दा-स्तुति-हास्ये शिक्षा करा'न आचार्य ॥ 112॥

आचार्य-गोपीनाथ आचार्य; भगिनी-पति-बहन का पति; श्यालक-पत्नी का भाई; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; निन्दा-कभी निन्दा करके; स्तुति-कभी प्रशंसा करके; हास्ये-कभी हँसकर; शिक्षा-शिक्षा; करा'न–करवाते हैं; आचार्य-गोपीनाथ आचार्य।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य सार्वभौम भट्टाचार्य के बहनोई थे; अतएव उनका सम्बन्ध अत्यन्त मधुर तथा घनिष्ठ था। ऐसी स्थिति में, गोपीनाथ आचार्य ने उन्हें कभी उनकी निन्दा करके, कुछ उनकी प्रशंसा करके और कुछ परिहास करके सिखलाया। कुछ समय से ऐसा ही चल रहा था।

आचार्येर सिद्धान्ते मुकुन्देर हैल सन्तोष ।

भट्टाचार्येर वाक्य मने हैल दुःख-रोष ॥113॥

आचार्येर–गोपीनाथ आचार्य के सिद्धान्ते-सिद्धान्तों से; मुकुन्देर-मुकुन्द दत्त का; हैल-था; सन्तोष-संतोष; भट्टाचार्येर–सार्वभौम भट्टाचार्य के; वाक्ये-शब्दों से; मने-मन में; हैल–था; दुःख-दुःख; रोष-और क्रोध।

अनुवाद

श्री मुकुन्द दत्त गोपीनाथ आचार्य के निष्कर्षात्मक वचनों को सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए; किन्तु सार्वभौम भट्टाचार्य के कथनों को सुनकर वे अत्यन्त दुःखी तथा रुष्ट हुए।

गोसाञि स्थाने आचार्य कैल आगमन ।

भट्टाचार्येर नामे ताँरे कैल निमन्त्रण ॥114॥

गोसाञि स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान को; आचार्य-गोपीनाथ आचार्य; कैल–किया; आगमन-आगमन; भट्टाचार्येर नामे-सार्वभौम भट्टाचार्य की ओर से; ताँरे-उनको; कैल-किया; निमन्त्रण-निमंत्रण।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के आदेशानुसार गोपीनाथ आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गये और उन्हें भट्टाचार्य की ओर से आमन्त्रित किया।

मुकुन्द-सहित कहे भट्टाचार्येर कथा ।

भट्टाचार्येर निन्दा करे, मने पाञा व्यथा ॥ 115॥

मुकुन्द-सहित-मुकुन्द के साथ; कहे-कहते हैं; भट्टाचार्येर कथा-सार्वभौम भट्टाचार्य के सभी वचन; भट्टाचार्येर सार्वभौम भट्टाचार्य की; निन्दा-निन्दा; करे-करते हैं; मने-मन में; पाञा-पाकर; व्यथा-कुछ दुःख।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने भट्टाचार्य के कथनों की चर्चा की गई। गोपीनाथ आचार्य तथा मुकुन्द दत्त दोनों ने ही भट्टाचार्य के कथनों को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि उनसे उनको मानसिक दुःख पहुँचता था।

शुनि महाप्रभु कहे ऐछे मत् कह ।

आमा प्रति भट्टाचार्येर हय अनुग्रह ॥116॥

शुनि–उनको सुनकर; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु; कहे-कहते हैं; ऐछे-ऐसा; मत् कह–मत कहो; आमा प्रतिमेरे प्रति; भट्टाचार्येर सार्वभौम भट्टाचार्य की; हय-है; अनुग्रह-दया।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आप इस तरह न बोलें। सार्वभौम भट्टाचार्य मेरे प्रति अत्यन्त वत्सल एवं कृपालु हैं।

आमार सन्न्यास-धर्म चाहेन राखिते ।

वात्सल्ये करुणा करेन, कि दोष इहाते ॥117॥

आमार-मेरा; सन्न्यास-धर्म-संन्यास धर्म; चाहेन-वे चाहते हैं; राखिते-रखना; वात्सल्ये-वात्सल्य प्रेम के कारण; करुणा-दया; करेन-करते हैं; कि-क्या; दोष-दोष; इहाते-इस सम्बन्ध में।

अनुवाद

"वे मेरे प्रति वात्सल्य के कारण मेरी रक्षा करना चाहते हैं और यह चाहते हैं कि मैं संन्यासी के नियमों का पालन करूँ। इसमें कौन-सा दोष है?"

आर दिन महाप्रभु भट्टाचार्य-सने ।

आनन्दे करिला जगन्नाथ दरशने ॥ 118॥

आर दिन-अगले दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भट्टाचार्य-सने-सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ; आनन्दे-आनन्द में; करिला–किये; जगन्नाथ–भगवान जगन्नाथ के; दरशने-दर्शन।

अनुवाद

अगले दिन प्रात:काल श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ जगन्नाथजी के मन्दिर दर्शन करने गये। दोनों ही अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में थे।

भट्टाचार्य-सङ्गे ताँर मन्दिरे आइला ।

प्रभुरे आसन दिया आपने वसिला ॥ 119॥

भट्टाचार्य-सङ्गे–सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ; ताँर–उनके (भगवान जगन्नाथ के); मन्दिरे–मन्दिर में; आइला–आये; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; आसन-आसन; दिया-देकर; आपने–स्वयं; वसिला-बैठे।

अनुवाद

जब वे मन्दिर में पहुँचे, तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु को आसन दिया और संन्यासी के आदरार्थ स्वयं भूमि पर बैठ गये।

वेदान्त पड़ाइते तबे आरम्भ करिला।

स्नेह-भक्ति करि' किछु प्रभुरे कहिला ॥ 120 ॥

वेदान्त–वेदान्त दर्शन; पड़ाइते-पढ़ाने के लिए; तबे-तब; आरम्भ-आरम्भ; करिला–किया; स्नेह-स्नेह, प्यार; भक्ति-और भक्ति; करि'-दिखाकर; किछु-कुछ; प्रभुरे–महाप्रभु को; कहिला–कहा।

अनुवाद

तब उन्होंने चैतन्य महाप्रभु को वेदान्त-दर्शन पढ़ाना शुरू किया और स्नेह तथा भक्ति के कारण महाप्रभु से वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य

श्रील व्यासदेव द्वारा विरचित वेदान्त या ब्रह्मसूत्र ऐसा ग्रंथ है, जिसका अध्ययन सभी सम्प्रदायों के उन्नत आध्यात्मिक विद्यार्थी, विशेषतया संन्यासी करते हैं। वैदिक ज्ञान विषयक अन्तिम निष्कर्षों की स्थापना करने के लिए संन्यासियों को वेदान्त-सूत्र का अध्ययन करना आवश्यक है। हाँ, यहाँ जिस वेदान्त का उल्लेख हुआ है, वह शंकराचार्य की टीका है, जिसे शारीरक भाष्य कहते हैं। सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को वैष्णव संन्यासी से मायावादी संन्यासी में बदलना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने शंकराचार्य कृत शारीरक भाष्य के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु को वेदान्त-सूत्र की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया था। शंकर-सम्प्रदाय के सारे संन्यासी इसी शारीरक भाष्य सहित वेदान्त-सूत्र को गम्भीरता से पढ़ने का आनन्द लेते हैं। कहा गया है-वेदान्त वाक्येषु सदा रमन्तः–"मनुष्य को चाहिए कि वेदान्त-सूत्र के अध्ययन में आनन्द ले।"

वेदान्त-श्रवण,—एइ सन्न्यासीर धर्म।

निरन्तर कर तुमि वेदान्त श्रवण ॥ 121॥

वेदान्त-श्रवण-वेदान्त-दर्शन का श्रवण; एइ–यह; सन्न्यासीर-संन्यासी का; धर्म-धर्म; निरन्तर–निरन्तर; कर-करो; तुमि-आप; वेदान्त–वेदान्त दर्शन का; श्रवण-श्रवण।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "वेदान्त दर्शन सुनना ही संन्यासी का मुख्य कर्तव्य है। अतएव आपको चाहिए कि बिना हिचक के वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करें और किसी श्रेष्ठ व्यक्ति से इसका निरन्तर श्रवण करें।"

प्रभु कहे,—'मोरे तुमि कर अनुग्रह ।

सेइ से कर्तव्य, तुमि येइ मोरे कह' ॥122॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने उत्तर दिया; मोरे-मुझ पर; तुमि-आप; कर-दिखाओ; अनुग्रह-दया; सेइ से वह ; कर्तव्य-कर्तव्य; तुमि-आप; येइ-जो कुछ; मोरे-मुझे; कह-कहो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "आप मुझ पर अत्यन्त कृपालु हैं। अतएव आपके आदेश का पालन करना मेरा कर्तव्य है।"

सात दिन पर्यन्त ऐछे करेन श्रवणे ।

भाल-मन्द नाहि कहे, वसि' मात्र शुने ॥ 123 ॥

सात दिन-सात दिन; पर्यन्त–तक; ऐछे—इस प्रकार; करेन-करते हैं; श्रवणे-श्रवण; भाल-ठीक; मन्द-गलत; नाहि-नहीं; कहे-कहते हैं; वसि'–बैठकर; मात्र-मात्र; शुने-सुनते हैं।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा प्रतिपादित वेदान्त-दर्शन का सात दिनों तक लगातार श्रवण किया। किन्तु चैतन्य महाप्रभु न तो कुछ बोले, न ही इसका संकेत दिया कि यह सही है या गलत। वे केवल बैठे बैठे भट्टाचार्य की बातें सुनते रहे।

अष्टम-दिवसे ताँरे पुछे सार्वभौम ।

सात दिन कर तुमि वेदान्त श्रवण ॥124॥

अष्टम-दिवसे-आठवें दिन; ताँरे–उनको; पुछे-पूछते हैं; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; सात दिन–सात दिन; कर–किया; तुमि-आपने; वेदान्त–वेदान्त दर्शन; श्रवण-श्रवण।

अनुवाद

आठवें दिन सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से कहा, "आप लगातार सात दिनों से मुझसे वेदान्त दर्शन सुन रहे हैं।"

भाल-मन्द नाहि कह, रह मौन धरि' ।

बुझ, कि ना बुझ,—इहा बुझिते ना पारि ॥ 125॥

भाल-मन्द-अच्छा बुरा; नाहि कह नहीं कहते; रह-रहो; मौन-मौन; धरि'-होकर; बुझ-समझते हो; कि-अथवा; ना-नहीं; बुझ-समझते; इहा-यह; बुझिते-समझने के लिए; ना-नहीं; पारि सकता हूँ।

अनुवाद

"आप मौन धारण किये हुए सुनते रहे हैं। चूँकि आप यह नहीं कह रहे हैं कि यह सही है या गलत, अतएव मैं यह नहीं समझ पा रहा कि आप वेदान्त-दर्शन को वास्तव में समझ पा रहे हैं या नहीं।"

प्रभु कहे—"मूर्ख आमि, नाहि अध्ययन ।

तोमार आज्ञाते मात्र करिये श्रवण" ॥ 126॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; मूर्ख आमि-मैं मूर्ख हूँ; नाहि-नहीं है; अध्ययन-अध्ययन; तोमार-आपकी; आज्ञाते-आज्ञा से; मात्र केवल; करिये-मैं करता हूँ; श्रवण-श्रवण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर में कहा, "मैं मूर्ख हूँ, फलतः मैं वेदान्त-सूत्र का अध्ययन नहीं करता। आपने आदेश दिया है, अतएव मैं आपसे इसे सुनने का प्रयत्न कर रहा हूँ।"

सन्न्यासीर धर्म लागि' श्रवण मात्र करि ।

तुमि येइ अर्थ कर, बुझिते ना पारि ॥127॥

सन्न्यासीर-संन्यासी का; धर्म-धर्म; लागि'–के लिए; श्रवण-श्रवण; मात्र-केवल; करि-मैं करता हूँ; तुमि-आप; येइ-जो कुछ; अर्थ-अर्थ; कर-करते हो; बुझिते-समझने; ना-नहीं; पारि-सक्षम हूँ।

अनुवाद

"मैं तो संन्यासी धर्म के पालन के लिए ही सुनता हूँ। दुर्भाग्यवश आप जो अर्थ कह रहे हैं, उसका मैं लेशमात्र भी अर्थ नहीं समझ पा रहा हूँ।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने आपको इस तरह प्रस्तुत कर रहे थे मानो वे केवल नाम के संन्यासी हों अर्थात् पहले दर्जे के मूर्ख हों। भारत में मायावादी संन्यासी अपने आपको जगद्गुरु घोषित करने के काफी अभ्यस्त हैं, यद्यपि उन्हें बाह्य जगत् की कोई जानकारी नहीं होती और उनका अनुभव किसी छोटे नगर या गाँव या भारत देश तक सीमित होता है। न ही ऐसे संन्यासियों को पर्याप्त शिक्षा मिली होती है। दुर्भाग्यवश, इस समय भारत में तथा अन्यत्र भी ऐसे अनेक मूर्ख संन्यासी हैं, जो वैदिक साहित्य का भावार्थ जाने बिना मात्र उसका अध्ययन करते रहते हैं। जब श्री चैतन्य महाप्रभु नवद्वीप के मुस्लिम शासक चान्दकाजी से शास्त्रार्थ कर रहे थे, तो उन्होंने वैदिक साहित्य से एक श्लोक सुनाया जिसका अर्थ था कि इस कलियुग में संन्यास-आश्रम वर्जित है। केवल वे ही संन्यास ग्रहण कर सकते हैं, जो गम्भीर हैं और वैदिक नियमों का पालन एवं वैदिक साहित्य का अध्ययन करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यासी द्वारा वेदान्त-सूत्र या ब्रह्मसूत्र के अध्ययन का अनुमोदन तो किया, किन्तु उन्होंने शंकराचार्य के शारीरक भाष्य का अनुमोदन नहीं किया। अन्यत्र, उन्होंने यहाँ तक कहा है- मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश–"यदि कोई व्यक्ति शंकराचार्य के शारीरक भाष्य को सुनता है, तो उसका सर्वनाश हो जाता है।" अतएव एक अध्यात्मवादी को, संन्यासी को नियमपूर्वक वेदान्त-सूत्र का तो अध्ययन करना चाहिए, किन्तु उसे शारीरक भाष्य नहीं पढ़ना चाहिए। यह श्री चैतन्य महाप्रभु का निष्कर्ष है। वेदान्त-सूत्र का वास्तविक भाष्य तो श्रीमद्भागवतम् है। अर्थोऽयं ब्रह्म सूत्राणाम्-श्रीमद्भागवतम् ही स्वयं श्रील व्यासदेव द्वारा विरचित वेदान्त-सूत्र का मूल भाष्य है।

भट्टाचार्य कहे,—ना बुझि', हेन ज्ञान यार ।

बुझिबार लागि' सेह पुछे पुनर्बार ॥ 128॥

भट्टाचार्य कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; ना बुझि'–नहीं समझते हो; हेन–यह; ज्ञान-ज्ञान; यार–किसी का; बुझिबार लागि'–समझने के लिए; सेह-वह भी; पुछे-पूछता है; पुनः-बार–दोबारा।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "मैं मानता हूँ कि आप नहीं समझ रहे, किन्तु जिसकी समझ में नहीं आता, वह भी तो विषय-वस्तु के विषय में जिज्ञासा करता है।"

तुमि शुनि' शुनि' रह मौन मात्र धरि' ।

हृदये कि आछे तोमार, बुझिते ना पारि ॥129॥

तुमि-आप; शुनि'–सुनकर; शुनि'–सुनकर; रह-रहते हो; मौन-मौन; मात्र-मात्र; धरि'-रखकर; हृदये-दिल में; कि-क्या; आछे-है; तोमार-आपके; बुझिते-समझने के; ना-नहीं; पारि-योग्य हूँ।

अनुवाद

"आप लगातार सुनते जा रहे हैं, किन्तु मौन धारण किये हुए हैं। मेरी समझ में नहीं आ रहा कि वास्तव में आपके मन में है क्या?"

प्रभु कहे,—"सूत्रेर अर्थ बुझिये निर्मल ।

तोमार व्याख्या शुनि' मन हय त' विकल" ॥130॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने उत्तर दिया; सूत्रेर अर्थ–सूत्रों के अर्थ; बुझिये-मैं समझ सकता हूँ; निर्मल-स्पष्टतया; तोमार-आपकी; व्याख्या व्याख्या; शुनि'–सुनकर; मन–मन; हय-हो जाता है; त'–निस्सन्देह; विकल-विचलित।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने यह कहते हुए अपने मन की बात प्रकट की, "मैं प्रत्येक सूत्र का अर्थ बहुत अच्छी तरह समझ सकता हूँ, किन्तु आपकी व्याख्या ने मेरे मन को विचलित कर दिया है।"

तात्पर्य

वेदान्त-सूत्र के श्लोकों का वास्तविक अर्थ तो सूर्य-प्रकाश के समान स्पष्ट है। किन्तु मायावादी दार्शनिक सूर्यप्रकाश को शंकराचार्य तथा उनके अनुयायियों द्वारा कल्पित व्याख्याओं के बादलों से आच्छादित करने का प्रयास करते हैं।

सूत्रेर अर्थ भाष्य कहे प्रकाशिया।

तुमि, भाष्य कह—सूत्रेर अर्थ आच्छादिया॥ 131॥

सूत्रेर अर्थ–सूत्रों के अर्थ; भाष्य-भाष्य; कहे-कहते हैं; प्रकाशिया-स्पष्ट करके; तुमि-आप; भाष्य कह-आलोचना करते हो; सूत्रेर-सूत्रों की; अर्थ-अर्थ; आच्छादिया–अस्पष्ट करके।

अनुवाद

"वेदान्त-सूत्र के श्लोकों का स्पष्ट तात्पर्य उन्हीं में निहित है, किन्तु आपने जितने अन्य तात्पर्य प्रस्तुत किये हैं, उन्होंने सूत्र के अर्थ को बादल की तरह ढक लिया है।"

तात्पर्य

इस श्लोक की व्याख्या के लिए कृपया आदिलीला (अध्याय 7, श्लोक 106-146) देखें।

सूत्रेर मुख्य अर्थ ना करह व्याख्यान।

कल्पनार्थे तुमि ताहा कर आच्छादन॥ 132॥

सूत्रेर-सूत्रों के मुख्य–मुख्य; अर्थ–अर्थ; ना-नहीं; करह-आप करते हो; व्याख्यान-व्याख्या; कल्पना-अर्थे–काल्पनिक अर्थों के कारण; तुमि-आप; ताहा-उनको; कर-करते हो; आच्छादन–अस्पष्ट।

अनुवाद

"आप ब्रह्मसूत्र का मुख्य अर्थ नहीं बतला रहे। ऐसा लगता है कि आपका कार्य वास्तविक अर्थ को छिपाना है।"

तात्पर्य

यह सारे मायावादियों या नास्तिकों की विशेषता है, जो वैदिक साहित्य का अर्थ अपनी कल्पना से करते हैं। ऐसे मूर्ख लोगों का वास्तविक प्रयोजन सारे वैदिक साहित्य पर निर्विशेषवादी निष्कर्ष आरोपित करना रहता है। ये मायावादी नास्तिक भगवद्गीता की भी व्याख्या करते हैं। भगवद्गीता के प्रत्येक श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। प्रत्येक श्लोक में व्यासदेव कहते हैं- श्री भगवान् उवाच–अर्थात् "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने कहा, "अथवा" श्री भगवान् ने कहा।" यह स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् परम पुरुष हैं, किन्तु मायावादी नास्तिक तब भी यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि परम सत्य निराकार है। वे अपने झूठे काल्पनिक अर्थ प्रस्तुत करने के लिए इतने वाक्जाल तथा व्याकरण पर आधारित व्याख्या का सहारा लेते हैं कि अन्ततोगत्वा वे हास्यास्पद लगने लगते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा कि किसी को भी वैदिक साहित्य की मायावादी व्याख्या नहीं सुननी चाहिए।

उपनिषद्शब्दे येइ मुख्य अर्थ हय ।

सेइ अर्थ मुख्य,—व्यास-सूत्रे सब कय ॥ 133॥

उपनिषद्-वेदों के; शब्दे-शब्दों से; येइ-जो कुछ; मुख्य–मुख्य; अर्थ-अर्थ; हय-है; सेइ-वह; अर्थ-अर्थ; मुख्य–मुख्य; व्यास-सूत्रे-वेदान्त-सूत्र में; सब-सब; कय–वर्णन है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "वेदान्त-सूत्र समस्त उपनिषदों का सार है; इसलिए उपनिषदों में जो भी मुख्य अर्थ है, वह सब वेदान्त-सूत्र या व्यास-सूत्र में भी अंकित है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने अपने अनुभाष्य में उपनिषद् शब्द की व्याख्या की है। इसके लिए देखें आदिलीला, अध्याय 2, श्लोक 5 तथा आदिलीला, अध्याय 7, श्लोक 106 तथा 108 ।

मुख्यार्थ छाड़िया कर गौणार्थ कल्पना ।

'अभिधा'-वृत्ति छाड़ि' कर शब्देर लक्षणा ॥ 134॥

मुख्य-अर्थ-मुख्य अर्थ; छाड़िया–छोड़कर; कर-आप करते हो; गौण-अर्थ-अस्पष्ट (गौण) अर्थ; कल्पना कल्पना करके; अभिधा-वृत्ति-वह अर्थ जो तत्काल समझा जाये; छाड़ि'–छोड़कर; कर-आप करते हो; शब्देर-शब्दों के; लक्षणा–मनोकल्पित अर्थ।

अनुवाद

"प्रत्येक सूत्र के मुख्य (प्रधान) अर्थ को बिना किसी अनुमान के स्वीकार कर लेना चाहिए। किन्तु आप तो मुख्य अर्थ को त्यागकर अपने मनोकल्पित अर्थ को लेकर आगे बढ़ते हैं।"

प्रमाणेर मध्ये श्रुति प्रमाण—प्रधान ।

श्रुति ये मुख्यार्थ कहे, सेइ से प्रमाण ॥ 135॥

प्रमाणेर-प्रमाणों के; मध्ये-मध्य में; श्रुति-श्रुति, वैदिक पक्ष; प्रमाण-प्रमाण; प्रधान मुख्य; श्रुति-श्रुति, वैदिक पक्ष; ग्रेजो कुछ; मुख्य-अर्थ-मुख्य अर्थ; कहे-कहता है; सेइ से-वही; प्रमाण-प्रमाण।

अनुवाद

"यद्यपि अन्य प्रमाण भी हैं, किन्तु वैदिक प्रमाण को सर्वोपरि मानना चाहिए। वेदों में वर्णित सिद्धान्तों का मुख्य अर्थ सर्वोत्तम प्रमाण है।"

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में जिन ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए वे हैं-श्रील जीव गोस्वामी कृत तत्त्व-सन्दर्भ (10-11), उस पर श्रील बलदेव विद्याभूषण का भाष्य तथा ब्रह्मसूत्र के-शास्त्र योनित्वात् (1.1.3) तकप्रतिष्ठानात् (2.1.11) तथा श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् (2.1.27) श्लोकों की श्री रामानुजाचार्य, श्री मध्वाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य तथा श्रील बलदेव विद्याभूषण द्वारा की गई टीकाएँ। श्रील जीव गोस्वामी ने अपनी सर्व-संवादिनी नामक पुस्तक में दस प्रकार के प्रमाणों का वर्णन किया है—प्रत्यक्ष अनुभव, वैदिक प्रमाण, ऐतिहासिक सन्दर्भ, संकल्पना आदि। यद्यपि इन सबको सामान्यतया प्रमाण माना जाता है, किन्तु संकल्पना प्रस्तुत करने वाले, वैदिक प्रमाण पढ़ने वाले व्यक्ति तथा अनुभव द्वारा निष्कर्ष पर पहुँचने वाले व्यक्ति में निश्चित रूप से चार दोष पाये जाते है। यथा—वह गलती करता है, भ्रमित होता है, धोखा देता है। और उसकी इन्द्रियाँ अपूर्ण होती हैं। यद्यपि प्रमाण सही हो सकता है, किन्तु व्यक्ति अपने भौतिक

दोषों के कारण भ्रमित हो सकता है। प्रत्यक्ष प्रस्तुति को छोड़कर बाकी में यह सम्भावना बनी रहती है कि अनुमान सही न हो। इसीलिए निष्कर्ष यह है कि प्रत्यक्ष प्रस्तुति को ही प्रमाण माना जा सकता है। अनुमान को प्रमाण नहीं माना जा सकता, वह तो मात्र प्रमाण को निश्चित करने का साधन है।

भगवद्गीता के प्रारम्भ में ही कहा गया है :

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।

मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥

भगवद्गीता के कथन अपने आप में प्रमाण कि कुरुक्षेत्र नामक तीर्थस्थान में युद्ध के लिए कौरव तथा पाण्डव एकत्र हुए। एकत्र होने के बाद उन्होंने क्या किया? यही धृतराष्ट्र का संजय से प्रश्न था। यद्यपि ये कथन अत्यन्त स्पष्ट हैं, किन्तु नास्तिक लोग धर्मक्षेत्र तथा कुरुक्षेत्र शब्दों का भिन्न अर्थ निकालने की चेष्टा करते हैं। इसीलिए श्रील जीव गोस्वामी ने किसी प्रकार की व्याख्या पर आश्रित न रहने की चेतावनी दी है। श्लोकों की व्याख्या किये बिना ही उन्हें यथा रूप स्वीकार करना अधिक श्रेयस्कर है।

जीवेर अस्थि-विष्ठा दुइ—शङ्ख-गोमय ।

श्रुति-वाक्ये सेइ दुइ महा-पवित्र हय ॥ 136 ॥

जीवेर-जीव की; अस्थि-अस्थि; विष्ठा–मल; दुइ–दोनों; शङ्ख-शंख; गो-मय-गाय का गोबर; श्रुति-वाक्ये-वैदिक शब्दों में; सेइ-वह; दुइ-दोनों; महा-अत्यन्त; पवित्र-पवित्र; हय-हैं।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "शंख तथा गोबर किन्हीं जीवों की अस्थियाँ और विष्ठा मात्र हैं, किन्तु श्रुतिवाक्य है कि ये दोनों अत्यन्त पवित्र हैं।

तात्पर्य

वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार अस्थियाँ तथा विष्ठा सामान्यतया अत्यन्त अशुद्ध माने जाते हैं। यदि कोई इन्हें छू भी ले, तो उसे तुरन्त स्नान करना चाहिए। यही वैदिक आदेश है। फिर भी वेदों का यह भी कथन है कि पशु की अस्थि होने पर भी शंख तथा पशु की विष्ठा होने पर भी गोबर अत्यन्त पवित्र हैं। यद्यपि ऐसे कथन परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, फिर भी हम श्रुतिवाक्य मानकर शंख तथा गोबर को शुद्ध तथा पवित्र होने के रूप में स्वीकार करते हैं।

स्वतः-प्रमाण वेद सत्य येइ कय ।

'लक्षणा' करिले स्वतः-प्रामाण्य-हानि हय ॥137॥

स्वतः-प्रमाण–स्वतः प्रमाण; वेद-वैदिक साहित्य; सत्य-सत्य; येइ-जो कुछ; कय–कहते हैं; लक्षणा–मनोकल्पना; करिले–करके; स्वतः-प्रामाण्य–स्वतः प्रमाण की; हानि–हानि; हय-हो जाती है।

अनुवाद

"वैदिक कथन स्वतः प्रमाण होते हैं। वेदों में वर्णित प्रत्येक कथन को स्वीकार करना चाहिए। यदि हम अपनी खुद की मनोकल्पना से उसकी व्याख्या करते हैं, तो वैदिक प्रमाण की सत्ता तुरन्त नष्ट हो जाती

तात्पर्य

प्रधान प्रमाण चार प्रकार के हैं—प्रत्यक्ष अनुभव, परि-कल्पना (अनुमान), ऐतिहासिक सन्दर्भ तथा वेद। इनमें से वैदिक प्रमाण सर्वोपरि है। यदि हम श्रुतिवाक्य (वैदिक वाणी) की अनुमानित व्याख्या करना चाहते हैं, तो हम अपनी सुविधा अनुसार मनोकल्पित व्याख्या करेंगे। सर्वप्रथम ऐसी व्याख्या को प्रस्ताव या अनुमान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह वास्तविक रूप में सत्य नहीं होती और उसका स्वत: प्रमाण होना नष्ट हो जाता है।

श्रील मध्वाचार्य ने दृष्यते तु (वेदान्त-सूत्र 2.1.6) सूत्र की टीका करते हुए भविष्य पुराण का निम्नलिखित उद्धरण दिया है :

ऋग्यजु:सामाथर्वाश्च भारतं पञ्चरात्रकम् ।

मूलरामायणं चैव वेद इत्येव शब्दिताः ॥

पुराणानि च यानीह वैष्णवानि विदो विदुः ।

स्वतः प्रामाण्यमेतेषां नात्र किञ्चिद् विचार्यते ॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, महाभारत, पंचरात्र तथा मूल रामायण वैदिक ग्रंथ माने जाते हैं। पुराण (यथा ब्रह्मवैवर्त पुराण, नारदीय पुराण, विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण) विशेषत: वैष्णवों के निमित्त हैं और वे भी वैदिक ग्रंथ हैं। अतएव पुराणों, महाभारत तथा रामायण में जो भी कहा गया है, वह स्वतः प्रमाण है। इनका अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं है। चूँकि भगवद्गीता महाभारत का अंश है, अतएव भगवद्गीता के सारे कथन स्वतः प्रमाण हैं। फलतः इनके विषय में अनुमान लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है। अनुमान लगाने से वैदिक साहित्य की समस्त प्रामाणिकता नष्ट हो जाती है।

व्यास-सूत्रेर अर्थ—यैछे सूर्येर किरण ।

स्व-कल्पित भाष्य-मेघे करे आच्छादन ॥ 138॥

व्यास-सूत्रेर–व्यासदेव द्वारा रचित वेदान्त सूत्र के; अर्थ-अर्थ; यैछे-जैसे; सूर्येर-सूर्य की किरण-चमकती किरणे; स्व-कल्पित-स्वकल्पित; भाष्य-भाष्य की; मेघे-बादल से; करे-करता है; आच्छादन–आच्छादित।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "श्रील व्यासदेव द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र सूर्य के समान तेजस्वी है। इसके अर्थ का अनुमान लगाने की चेष्टा सूर्य के इस प्रकाश को केवल बादल से आच्छादित करने के समान है।

वेद-पुराणे कहे ब्रह्म-निरूपण ।

सेइ ब्रह्म—बृहद्वस्तु, ईश्वर-लक्षण ॥139॥

वेद-पुराणे-वेदों तथा पुराणों में; कहे-यह वर्णित है; ब्रह्म-निरूपण-परम की व्याख्या; सेइ ब्रह्म-वही ब्रह्म (परम); बृहत्-वस्तु-परम; ईश्वर-लक्षण-परम भगवान का लक्षण।

अनुवाद

"सारे वेदों तथा वैदिक सिद्धान्तों का अनुगमन करने वाले अन्य साहित्य का निश्चित मत है कि परब्रह्म ही परम सत्य है, सबसे महान है और भगवान् का एक पहलू है।"

तात्पर्य

श्रीकृष्ण सब में सर्वोच्च हैं। भगवद्गीता (15.15) में भगवान् कृष्ण कहते हैं- वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः–"सारे वेदों के द्वारा जानने योग्य मैं ही हूँ। श्रीमद्भागवत (1.2.11) में कहा गया है कि परम सत्य ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्, इन तीन अवस्थाओं में समझे जाते हैं। (ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते) इस प्रकार परम सत्य, ब्रह्म को समझने में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अन्तिम शब्द हैं।

सर्वैश्वर्य-परिपूर्ण स्वयं भगवान् ।

ताँरे निराकार करि' करह व्याख्यान ॥ 140॥

सर्व-ऐश्वर्य-परिपूर्ण-सर्व ऐश्वर्यों से पूर्ण; स्वयम्-स्वयं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; ताँरे–उनको; निराकार-निराकार; करि'-करके; करह-आप करते हो; व्याख्यान-व्याख्या।

अनुवाद

"वास्तव में परम सत्य एक पुरुष है, पूर्ण पुरुष भगवान् है और सभी ऐश्वर्यों से पूर्णतया युक्त है। आप उनकी व्याख्या निराकार तथा निर्विशेष के रूप में कर रहे हैं।"

तात्पर्य

ब्रह्म का अर्थ है बृहत्त्व अर्थात् सबसे महान्। सबसे महान् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। उनमें सारी शक्तियाँ तथा सारे ऐश्वर्य पूर्णरूपेण विद्यमान हैं। अतएव परम सत्य, जो सबसे महान् है, वही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् है। कोई चाहे "ब्रह्म" कहे या "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्"–बात एक ही है, क्योंकि ये अभिन्न हैं। भगवद्गीता में अर्जुन ने कृष्ण को परं ब्रह्म परं धाम के रूप में स्वीकार किये हैं। यद्यपि कभी-कभी जीवों को अथवा भौतिक प्रकृति को ब्रह्म कहा जाता है, किन्तु फिर भी परब्रह्म, जो सभी ब्रह्मों में श्रेष्ठ हैं, पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। वे सभी ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं, अत: उनके पास सारी सम्पत्ति, सारा बल, सारा यश, सारा ज्ञान, सारा सौन्दर्य तथा सारा वैराग्य रहता है। वे शाश्वत रूप से पुरुष हैं और वे शाश्वत रूप से सर्वोपरि हैं। यदि कोई निराकार कहकर उनकी व्याख्या करता है, तो वह ब्रह्म के वास्तविक अर्थ को आच्छादित करता है।

'निर्विशेष' ताँरे कहे येइ श्रुति-गण ।

‘प्राकृत’ निषेधि करे ‘अप्राकृत’ स्थापन ॥ 141॥

निर्विशेष-निर्विशेष; ताँरे-उनको; कहे-कहते हैं; येइ-जो कुछ; श्रुति-गण-वेद; प्राकृत-सांसारिक, प्राकृत; निषेधि-निषेध करके; करे-करते हैं; अप्राकृत-दिव्य; स्थापन–पुष्टि।

अनुवाद

“वेदों में जहाँ कहीं भी निराकार का वर्णन हुआ है, वहाँ वेदों का उद्देश्य यह स्थापित करना है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सम्बन्धित हर वस्तु दिव्य है और भौतिक गुणों से सर्वथा स्वतन्त्र है।”

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में अनेक निर्विशेष कथन मिलते हैं। जैसाकि श्वेताश्वतर उपनिषद (3.19) में कहा गया है :

अपाणिपादो जवनो गृहीता

पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।

स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता

तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥

यद्यपि भगवान् बिना हाथों और पैरों के बतलाये गये हैं, फिर भी वे यज्ञों की सारी आहुतियाँ स्वीकार करते हैं। यद्यपि उनकी आँखें नहीं हैं, फिर भी वे सब कुछ देखते हैं। यद्यपि उनके कान नहीं हैं, किन्तु वे सब कुछ सुनते हैं। जब यह कहा जाता है कि भगवान् के हाथ, पैर नहीं है, तो हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि वे निराकार या निर्विशेष हैं। प्रत्युत उनके हाथ या पाँव हमारी तरह भौतिक नहीं हैं। उनकी आँखें नहीं हैं, फिर भी वे सब कुछ देखते हैं। इसका अर्थ यह है कि उनकी आँखें हमारी तरह भौतिक और सीमित नहीं हैं। प्रत्युत उनके पास ऐसी आँखें हैं, जिनसे वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य को, ब्रह्माण्ड के कोने-कोने में और सारे जीवों के हृदय के कोने-कोने में झाँक सकते हैं। इस तरह वेदों के निर्विशेष कथनों का आशय भगवान् में भौतिक गुणों का निषेध करना है। उनका उद्देश्य भगवान् को निर्विशेष रूप में स्थापित करना नहीं है।)

या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं

सा साभिधत्ते स-विशेषमेव ।

विचार-योगे सति हन्त तासां

प्रायो बलीयः स-विशेषमेव ॥ 142॥

या या–जो जो; श्रुतिः–वैदिक स्तोत्र; जल्पति-वर्णन करते हैं; निर्विशेषम्-निर्विशेष सत्य; सा-वह; सा-वह; अभिधत्ते-सीधा वर्णन करते हैं; स-विशेषम्-व्यक्तित्व; एव–एव; विचार-योगे-बुद्धि द्वारा स्वीकृत किये जाने पर; सति–होकर; हन्त-खेद है; तासाम्-सभी वैदिक मंत्रों का प्रायः–प्रायः; बलीयः-अधिक शक्तिशाली; स-विशेषम् व्यक्तिगत रूप से; एव–अवश्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "परम सत्य को निराकार वर्णित करने वाले मंत्र अन्त में यही सिद्ध करते हैं कि परम सत्य एक पुरुष है। भगवान् निराकार तथा साकार इन दो रूपों में समझे जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को इन दोनों रूपों में मानता है, तो वह सचमुच परम सत्य को समझ सकता है। वह जानता है कि साकार ज्ञान सशक्त है, क्योंकि हम देखते हैं कि हर वस्तु विविधता से पूर्ण है। कोई व्यक्ति ऐसी वस्तु नहीं देख सकता जो विविधता से पूर्ण न हो।"

तात्पर्य

यह कवि कर्णपूर रचित चैतन्य चन्द्रोदय नाटक (6.67) से उद्धरण है।

ब्रह्म हैते जन्मे विश्व, ब्रह्मते जीवय ।

सेइ ब्रह्मे पुनरपि हुये याय लय ॥143 ॥

ब्रह्म हैते–परम ब्रह्म से; जन्मे–उत्पन्न होता है; विश्व-सारा विश्व; ब्रह्मते-परम सत्य में; जीवय–विद्यमान रहता है; सेइ-उसी; ब्रह्म-परम सत्य में, पुनरपि-फिर; हये-होकर; याय-जाता है; लय-प्रलय को।

अनुवाद

इस विराट जगत् की प्रत्येक वस्तु परम सत्य से उत्पन्न होती है, उसी में रहती है और प्रलय के बाद पुनः परम सत्य में प्रवेश करती है।

तात्पर्य

तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है- यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते-"सारा भौतिक जगत् परम ब्रह्म से उत्पन्न होता है।" ब्रह्मसूत्र का भी प्रारम्भ इस श्लोक (भागवतम् 1.1.2) से होता है- जन्माद्यस्य यतः–"परम सत्य वे हैं, जिनसे प्रत्येक वस्तु उद्भूत होती है। ये परम सत्य कृष्ण हैं। भगवद्गीता (10.8) में कृष्ण कहते हैं- अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते–" मैं समस्त आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों का उद्गम हूँ। मुझ से ही हर वस्तु उत्पन्न होती है। अतएव कृष्ण ही आदि परम सत्य हैं, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। भगवद्गीता में ही (9.4) कृष्ण फिर कहते हैं- मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना-यह सारा जगत् मेरे अव्यक्त रूप से मेरे द्वारा व्याप्त है। और जैसाकि ब्रह्म-संहिता (5.37) में पुष्टि हुई है-गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतः–"यद्यपि भगवान् सदैव अपने धाम गोलोक वृन्दावन में निवास करते हैं, फिर भी वे सर्वव्यापक हैं।" उनका सर्वव्यापक पहलू निराकार माना जाता है, क्योंकि सर्वव्यापकता में भगवान् का साकार रूप दिखाई नहीं देता। वास्तव में हर वस्तु उनके शारीरिक तेज की किरणों पर आश्रित है। ब्रह्म-संहिता (5.40) में भी आया है :

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि

कोटिष्वशेषवसुधादिविभूति भिन्नम् ।

भगवान् के शारीरिक तेज की किरणों के कारण लाखों लोकों की सृष्टि होती है, जिस प्रकार सूर्य से ग्रहों की उत्पत्ति होती है।

'अपादान,' 'करण,' 'अधिकरण'-कारक तिन ।

भगवानेर सविशेषे एइ तिन चिह्न ॥144॥ ।

अपादान–अपादान; करण–करण; अधिकरण--अधिकरण; कारक-कारक; तिन-तीन; भगवानेर-पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान के; स-विशेष-व्यक्तित्व में; एइ-ये; तिन–तीन; चिह्न–लक्षण।

अनुवाद

“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साकार स्वरूप की तीन श्रेणियाँ हैं- अपादान, करण तथा अधिकरण।”

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपने अमृत-प्रवाह- भाष्य में कहते हैं कि उपनिषदों के आदेशानुसार सारा ब्रह्माण्ड, ब्रह्म अर्थात् परम सत्य से उत्पन्न है। (“परम सत्य वे हैं, जिनसे सब कुछ उद्भूत हुआ है”)। इस सृष्टि का पालन परम ब्रह्म की शक्ति द्वारा होता है और प्रलय के बाद यह परम ब्रह्म में समा जाती है। इससे हम यह समझ सकते हैं कि परम सत्य की तीन श्रेणियाँ हैं- अपादान, करण तथा अधिकरण। इन तीन कारकों के अनुसार परम सत्य निश्चित रूप से साकार है। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ऐतरेय उपनिषद (1.1.1) से उद्धरण देते हैं :

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन् नान्यत् किञ्चनमिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥ इसी प्रकार श्वेताश्वतर उपनिषद् (4.9) में कहा गया है :

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि

भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति ।

यस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्

तस्मिथान्यो मायया सन्निरुद्धः ॥

और तैत्तिरीय उपनिषद् (3.1) में भी :

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म । जब वारुणी भृगु ने परम सत्य के विषय में अपने पिता वरुण से प्रश्न किया, तो वरुण ने यह उत्तर दिया था। इस मन्त्र में यतः शब्द, जो परम सत्य का सूचक है और जिनसे यह विश्व उत्पन्न हुआ है, अपादान कारक में है। जिस ब्रह्म द्वारा इस विश्व का पालन होता है, वह करण कारक (येन) है और वह ब्रह्म जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि विलीन होती है, वह अधिकरण कारक (यत् अथवा यस्मिन्) है। श्रीमद्भागवतम् (1.5.20) में कहा गया है :

इदं हि विश्व भगवान् इवेतरो ।

यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवाः ॥

"सम्पूर्ण जगत् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विराट रूप में समाहित है। प्रत्येक वस्तु उनसे उत्पन्न होती है, उनकी शक्ति पर स्थित रहती है और प्रलय के बाद उन्हीं के व्यक्तित्व में फिर से समा जाती है।"

भगवान् बहु हैते यबे कैल मन ।

प्राकृत-शक्तिते तबे कैल विलोकन ॥ 145॥

से काले नाहि जन्मे 'प्राकृत' मनोनयन ।

अतएव 'अप्राकृत' ब्रह्मेर नेत्र-मन ॥146॥

भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; बहु–अनेक; हैते-होना; यबे-जब; कैल-किया; मन–उनका मन; प्राकृत-भौतिक; शक्तिते-शक्ति पर; तबे-उस समय; कैल-किया; विलोकन-देखा; से काले-उस समय; नाहि-नहीं; जन्मे-सृष्टि में; प्राकृत-भौतिक; मनः-नयन-मन तथा नयन; अतएव–अतएव; अप्राकृत-दिव्य; ब्रह्मेर-परम सत्य के; नेत्र-मन-नयन और मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने अनेक होने की इच्छा की, तब उन्होंने भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात किया। सृष्टि के पूर्व भौतिक नेत्रों या मन का आस्तित्व नहीं था, अतएव परम सत्य के मन तथा नेत्रों की दिव्य प्रकृति की पुष्टि होती है।"

तात्पर्य

छान्दोग्य उपनिषद् (6.2.3) में कहा गया है- तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय। इस श्लोक से इसकी पुष्टि होती है कि जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अनेक बनना चाहते हैं, तो भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात् मात्र से ही सृष्टि प्रकट हो जाती है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि इस जगत् की सृष्टि के पूर्व भगवान् ने भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात् किया। सृष्टि के पूर्व न तो भौतिक मन था, न भौतिक नेत्र; अतएव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने जिस मन से सृष्टि करनी चाही वह दिव्य है और जिन आँखों से उन्होंने भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात् किया, वे भी दिव्य हैं। इस प्रकार भगवान् का मन, नेत्र तथा अन्य इन्द्रियाँ दिव्य हैं।

ब्रह्म-शब्दे कहे पूर्ण स्वयं भगवान् ।

स्वयं भगवान्कृष्ण,—शास्त्रेर प्रमाण ॥147॥

ब्रह्म-शब्दे–ब्रह्म शब्द से; कहे-संकेत होता है; पूर्ण–पूर्ण; स्वयम्-स्वयं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; स्वयम्-स्वयं; भगवान्पू र्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; शास्त्रेर प्रमाण–सभी वैदिक साहित्यों का निष्कर्ष।

अनुवाद

"ब्रह्म' शब्द पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को सूचित करता है, जो स्वयं श्रीकृष्ण हैं। यही समस्त वैदिक साहित्य का निर्णय है।"

तात्पर्य

इसकी पुष्टि भगवद्गीता में भी (15.15) हुई है, जहाँ भगवान् कहते हैं- वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। समस्त वैदिक साहित्य का चरम ध्येय कृष्ण हैं। हर कोई उन्हें ही खोज रहा है। इसकी भी पुष्टि भगवद्गीता (7.19) में हुई है :

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

"जो वास्तव में ज्ञानवान है, वह अनेकानेक जन्म-जन्मांतरों के बाद मुझे ही समस्त कारणों का कारण जानकर मेरी शरण में आता है। ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।"

जब कोई व्यक्ति वैदिक साहित्य का अध्ययन करके वास्तव में ज्ञानवान बन जाता है, तब वह वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करता है। इसकी भी पुष्टि श्रीमद्भागवत (1.2.7-8) में हुई है :

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।

जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहेतुकम् ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

वासुदेव को जानना ही वास्तविक ज्ञान है। वासुदेव अर्थात् कृष्ण की भक्तिमय सेवा में लगकर मनुष्य पूर्ण ज्ञान तथा वैदिक जानकारी प्राप्त करता है। इस तरह वह भौतिक जगत् से विरक्त हो जाता है। यही मानव जीवन की पूर्णता है।

यदि यह पूर्णता प्राप्त नहीं हो पाती, तो मनुष्य चाहे जो भी धार्मिक अनुष्ठान करे तथा उत्सव मनाये, यह सब समय का अपव्यय मात्र है (श्रम एव हि केवलम्)।

विश्व के सृजन के पूर्व पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पूर्णतया दिव्य मन तथा नेत्र थे। वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। कोई व्यक्ति यह सोच सकता है। कि उपनिषदों में कृष्ण का सीधा उल्लेख नहीं है, किन्तु वास्तविकता यह है कि वैदिक मन्त्रों को भौतिक इन्द्रियों से नहीं समझा जा सकता। जैसाकि पद्म-पुराण का कथन है-अतः श्रीकृष्ण नामादि न भवेद् ग्राह्यम् इन्द्रियैः-भौतिक इन्द्रियों द्वारा व्यक्ति श्रीकृष्ण के गुणों, रूप और लीलाओं को पूरी तरह नहीं समझ सकता। इसलिए पुराण वैदिक ज्ञान की व्याख्या करने और उसके पूरक बनने के निमित्त हैं। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने जनसामान्य के लिए (स्त्री-शूद्र-द्विज-बन्धूनाम्) वैदिक मन्त्र सुलभ बनाने के लिए पुराणों की रचना की। क्योंकि स्त्रियाँ, शूद्र तथा द्विज-बन्धु (द्विजों के अयोग्य पुत्र) वैदिक श्लोकों को प्रत्यक्ष रूप में नहीं समझ सकते, अतः श्रील व्यासदेव ने महाभारत की रचना की। वास्तव में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वेदेषु दुर्लभम् (वेदों में अप्राप्य) हैं, किन्तु जब वेदों को ठीक से आत्मसात् कर लिया जाता है अथवा भक्तों से वैदिक ज्ञान प्राप्त किया जाता है, तो मनुष्य यह समझ सकता है कि सारे वैदिक ज्ञान के लक्ष्य श्रीकृष्ण हैं।

ब्रह्मसूत्र (1.1.3) से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है- शास्त्र योनित्वात्। इस सूत्र की टीका करते हुए श्री मध्वाचार्य कहते हैं-"ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, महाभारत, पंचरात्र तथा मूल वाल्मीकि रामायण-ये सभी वैदिक साहित्य हैं। जो भी साहित्य इन वैदिक साहित्यों के निष्कर्षों के अनुरूप होता है, वह भी वैदिक साहित्य माना जाता है। जो साहित्य वैदिक साहित्य के अनुरूप नहीं है, वह भ्रामक है।" अतएव वैदिक साहित्य का अध्ययन करते समय हमें महान् आचार्यों द्वारा दिखाये गये मार्ग का अनुसरण करना चाहिए- महाजनो येन गतः स पन्थाः। यदि मनुष्य महान् आचार्यों के मार्ग का अनुगमन नहीं करता है, तो वह वेदों के वास्तविक तात्पर्य को नहीं समझा जा सकता।

वेदेर निगूढ़ अर्थ बुझन ना हय ।

पुराण-वाक्ये सेइ अर्थ करय निश्चय ॥148॥

वेदेर-वैदिक साहित्य का; निगूढ़-गूढ़; अर्थ-अर्थ; बुझन–समझ; ना-नहीं; हय-है; पुराण-वाक्ये-पुराणों के कथन से; सेइ-वह; अर्थ-अर्थ; करय-हो जाता है; निश्चय–स्पष्ट।

अनुवाद

"साधारण लोग आसानी से वेदों के गूढ़ अर्थ को नहीं समझ पाते, इसलिए उसकी पूर्ति पुराणों के वाक्यों द्वारा की जाती है।"

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्द-गोप-व्रजौकसाम् ।

यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ 149॥

अहो–कितना महान्; भाग्यम्-भाग्य; अहो–कितना महान्; भाग्यम्-भाग्य; नन्द-महाराज नन्द का; गोप–अन्य गोपों का; व्रज-ओकसाम्-व्रजभूमि के निवासियों का; यत्-जिनके; मित्रम्-मित्र; परम-आनन्दम्-परम आनन्द; पूर्णम्-पूर्ण; ब्रह्म-परम सत्य; सनातनम्-सनातन।

अनुवाद

"नन्द महाराज, गोप तथा व्रजभूमि के सारे निवासी कितने भाग्यशाली हैं। उनके भाग्य की कोई सीमा नहीं है, क्योंकि दिव्य आनन्द के स्रोत सनातन परम ब्रह्म, परम सत्य उनके मित्र बन चुके हैं।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (10.14.32) का यह श्लोक ब्रह्माजी द्वारा बोला गया है।

'अपाणि-पाद'-श्रुति वर्जे 'प्राकृत' पाणि-चरण ।

पुनः कहे, शीघ्र चले, करे सर्व ग्रहण ॥ 150॥

अपाणि-पाद-श्रुति-अपाणि-पाद, से शुरु होनेवाला श्रुति मंत्र; वर्जे–त्यागता है; प्राकृत-भौतिक; पाणि-चरण-हाथ पाँव; पुनः–पुनः; कहे-कहता है; शीघ्र चले-बहुत तेज चलते हैं; करे-करते हैं; सर्व-प्रत्येक वस्तु; ग्रहण-स्वीकार।

अनुवाद

"अपाणि-पाद-वैदिक मन्त्र भौतिक हाथों तथा पाँवों का निषेध करता है, फिर भी यह बतलाता है कि भगवान् अत्यन्त तेज चलते हैं और अर्पित की जाने वाली हर वस्तु को ग्रहण करते हैं।"

अतएव श्रुति कहे, ब्रह्म—सविशेष ।

'मुख्य' छाड़ि' 'लक्षणा'ते माने निर्विशेष ॥151॥

अतएव–अतएव; श्रुति-वैदिक मन्त्र; कहे-कहते हैं; ब्रह्म-परम सत्य; स-विशेष-साकार; मुख्य-सीधे अर्थ; छाड़ि'–छोड़कर; लक्षणा'ते-अर्थ लगाने से; माने-स्वीकार करते हैं; निर्विशेष-निर्विशेष।

अनुवाद

"ये सभी मन्त्र इसकी पुष्टि करते हैं कि परम सत्य साकार है, किन्तु मायावादी मुख्य अर्थ को त्यागकर परम सत्य का निराकार या निर्विशेष के रूप में अर्थ लगाते हैं।"

तात्पर्य

जैसा ऊपर कहा गया है, श्वेताश्वतर उपनिषद् (3.19) के अनुसार :

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता

पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।

स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता

तमाहुरग्यं पुरुषं महान्तम् ॥

इस वैदिक मन्त्र स्पष्ट रूप से कहता है-पुरुषं महान्तम्। पुरुष शब्द का अर्थ है "व्यक्ति।" इस पुरुष के कृष्ण होने की पुष्टि भगवद्गीता (10.12) में अर्जुन द्वारा की गई है, जब वह कृष्ण को पुरुषं शाश्वतम् ("आप आदि पुरुष हैं") कहकर सम्बोधित करता है। अतः श्वेताश्वतर उपनिषद् के इस श्लोक में वर्णित पुरुषं महान्तम् श्रीकृष्ण हैं। उनेक हाथ-पाँव भौतिक नहीं हैं, अपितु पूर्णतया दिव्य हैं। किन्तु जब वे प्रकट होते हैं, तो मूर्ख लोग उन्हें सामान्य व्यक्ति मान बैठते हैं (अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम्)। जिसे वैदिक ज्ञान नहीं है, जिसने प्रामाणिक गुरु से वेदों का अध्ययन नहीं किया है, वह कृष्ण को नहीं जान पाता। अतएव वह मूढ है। ऐसे मूर्ख लोग कृष्ण को सामान्य व्यक्ति मान बैठते हैं (परं भावमजानन्तः)। वे वास्तविक रूप में जान ही नहीं पाते कि कृष्ण क्या हैं। मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। केवल वेदों का गहन अध्ययन करने से कृष्ण को नहीं समझे जा सकते। मनुष्य को किसी भक्त (यत्पादम्) की कृपा प्राप्त करनी आवश्यक है। भक्त की कृपा हुए बिना मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नहीं समझ सकता। भगवद्गीता (10.14) में अर्जुन भी इसकी पुष्टि करता है, "हे प्रभु, आपको समझ पाना अत्यन्त कठिन है।" अल्पज्ञानी व्यक्ति भगवद्-भक्त की कृपा बिना भगवान् को नहीं समझ सकते। इसीलिए भगवद्गीता (4.34) में एक अन्य आदेश है :

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

मनुष्य को प्रामाणिक गुरु के पास जाकर उसकी शरण लेनी चाहिए। तभी वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को एक व्यक्ति के रूप में समझ सकता है।

षड्-ऐश्वर्य-पूर्णानन्द-विग्रह याँहार ।

हेन-भगवाने तुमि कह निराकार ? ॥ 152॥

षट्-ऐश्वर्य-पूर्ण–छह ऐश्वर्यों से पूर्ण; आनन्द–आनन्दमय; विग्रह-विग्रह; याँहार-जिनका; हेन-भगवाने–उन भगवान् को; तुमि-आप; कह–कहते हो; निराकार-निराकार।

अनुवाद

"जिन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दिव्य स्वरूप छह दिव्य ऐश्वर्यों से युक्त है, क्या आप उन्हें निराकार कह रहे हैं?"

तात्पर्य

यदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् निराकार हैं, तो फिर ऐसा किस प्रकार कहा जाता है कि वे अत्यन्त तीव्र गति से चलते हैं तथा अर्पित की गई वस्तुओं को ग्रहण करते हैं? मायावादी दार्शनिक वैदिक मन्त्रों के मुख्य अर्थ को त्यागकर उनका अर्थ लगाते हैं और परम सत्य को निराकार बतलाने की चेष्टा करते हैं। वस्तुत: भगवान् सनातन, साकार तथा ऐश्वर्यों से युक्त हैं। मायावादी दार्शनिक परम सत्य की व्याख्या शक्तिरहित कहकर करते हैं। किन्तु श्वेताश्वतर उपनिषद् (6.8) में स्पष्ट कहा गया है- परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते–"परम सत्य की विविध शक्तियाँ हैं।"

स्वाभाविक तिन शक्ति येइ ब्रह्मे हय ।

'नि:शक्तिक' करि' ताँरे करह निश्चय? ॥ 153 ॥

स्वाभाविक-स्वाभाविक; तिन-तीन; शक्ति-शक्तियाँ; येइ-जो; ब्रह्म-परम सत्य में; हय-हैं; नि:शक्तिक-शक्ति रहित; करि'-करके; ताँरे–उनको; करह-आप करते हो; निश्चय-प्रमाण।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की तीन मूल शक्तियाँ होती हैं। तो क्या आप यह सिद्ध करना चाहते हैं कि उनकी शक्तियाँ नहीं होतीं?"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् की विभिन्न शक्तियाँ बतलाने के लिए विष्णु पुराण के चार श्लोक (6.7.61-63 तथा 1.12.69) उद्धृत कर रहे हैं।

विष्णु-शक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्र-ज्ञाख्या तथा परा ।

अविद्या-कर्म-संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥ 154॥

विष्णु-शक्तिः–भगवान् विष्णु की अन्तरंगा शक्ति; परा-आध्यात्मिक; प्रोक्ता-कही गई है; क्षेत्र-ज्ञ-क्षेत्रज्ञ (जीव); आख्या-जानी जाती है; तथा–तथा; परा-आध्यात्मिक अविद्या-अज्ञान; कर्म-और सकाम कर्म; संज्ञा–जानी जाती है; अन्या-अन्य, दूसरी; तृतीया-तीसरी; शक्तिः-शक्ति; इष्यते-मानी जाती है।

अनुवाद

"जैसाकि शास्त्रों में कहा गया है, भगवान् विष्णु की अन्तरंगा शक्ति आध्यात्मिक है। एक अन्य आध्यात्मिक शक्ति है, जो क्षेत्रज्ञ या जीव कहलाती है। तीसरी शक्ति अविद्या कहलाती है, जो जीव को ईश्वरविहीन (निरीश्वर) बनाती है और उसे सकाम कर्म से पूरित करती है।"

तात्पर्य

भगवद्गीता में क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के विषय में कृष्ण की वार्ता में यह स्पष्ट कहा गया है कि जीव क्षेत्रज्ञ है, जो अपने कर्म के क्षेत्र को जानता है। भौतिक जगत् में जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अपना सम्बन्ध भूले हुए हैं। यह विस्मृति अविद्या कहलाती है। भौतिक जगत् की यह अविद्या शक्ति सकाम कर्म के लिए प्रोत्साहित करती है। यद्यपि यह अविद्या शक्ति (भौतिक शक्ति) भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति है, किन्तु यह जीवों को विस्मृति की अवस्था में रखने के निमित्त है। यह जीवों में भगवान् के प्रति विद्रोह की भावना के कारण है। इस प्रकार जीव वैधानिक रूप से

आध्यात्मिक होते हुए भी अविद्या शक्ति के प्रभाव में आ जाते हैं। यह किस प्रकार होता है, उसका वर्णन अगले श्लोक में किया गया है।

यया क्षेत्र-ज्ञ-शक्तिः सा वेष्टिता नृप सर्व-गा ।

संसार-तापानखिलानवाप्नोत्यत्र सन्ततान् ॥ 155॥

यया-जिससे; क्षेत्र-ज्ञ-शक्तिः -क्षेत्रज्ञ शक्ति अर्थात् जीव; सा-वह शक्ति; वेष्टिता-ढकी है; नृप-हे राजन्; सर्व-गा-आध्यात्मिक अथवा भौतिक जगत् में कहीं भी जाने में सक्षम; संसार-तापान्–बारम्बार जन्म मरण के कारण सांसारिक कष्ट; अखिलान्–सभी प्रकार के; अवाप्नोति-प्राप्त करता है; अत्र-इस भौतिक जगत् में; सन्ततान् विविध सकाम कर्मों के फलस्वरूप मिलने वाले सुख-दुःख।

अनुवाद

"हे राजन्, क्षेत्रज्ञ शक्ति जीव है। यद्यपि उसे भौतिक में अथवा तो आध्यात्मिक जगत् में रहने की सुविधा प्राप्त है, किन्तु वह अविद्या शक्ति के वशीभूत होकर भौतिक जगत् के तीन प्रकार के कष्टों को भोगता है, क्योंकि यह शक्ति उसकी स्वाभाविक वैधानिक स्थिति को आच्छादित कर लेती है।"

तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः क्षेत्र-ज्ञ-संज्ञिता ।

सर्व-भूतेषु भू-पाल तारतम्येन वर्तते ॥ 156 ॥

तया-उससे; तिरोहितत्वात्-प्रभाव से मुक्त हो जाने के कारण; च तथा; शक्तिः- शक्ति; क्षेत्र-ज्ञ-क्षेत्रज्ञ; संज्ञिता-नाम से जानी जाने वाली; सर्व-भूतेषु-विविध शरीरों में; भू-पाल–हे राजन्; तारतम्येन–विविध मात्रा में; वर्तते-वर्तमान है।

अनुवाद

"अविद्या के प्रभाव में आच्छादित होकर यह जीव भौतिक अवस्था में विभिन्न रूपों में विद्यमान रहता है। हे राजन्, इस तरह वह कम या अधिक मात्रा में भौतिक शक्ति के प्रभाव के अनुपात में मुक्त रहता है।"

तात्पर्य

भौतिक शक्ति जीव पर विभिन्न मात्राओं में प्रभाव दिखलाती है। यह प्रभाव जीव द्वारा भौतिक प्रकृति के तीन गुणों का सान्निध्य प्राप्त करने पर निर्भर करता है। कुल 84,00,000 योनियाँ हैं, जिनमें से कुछ निम्न हैं, कुछ उच्च और कुछ मध्यम हैं। शरीरों का वर्गीकरण भौतिक शक्ति के आच्छादन की मात्रा के अनुसार किया जाता है। निम्न श्रेणियों में—यथा जलचर, वृक्ष, पौधे, कीड़े, पक्षी आदि में आध्यात्मिक चेतना का प्रायः अभाव रहता है। मध्य श्रेणी में-जिसमें मनुष्य आता है, आध्यात्मिक चेतना अपेक्षतया अधिक जाग्रत रहती है। उच्च श्रेणी में, आध्यात्मिक चेतना पूर्णतः जाग्रत होती है। तब जीव अपनी वास्तविक स्थिति को समझता है और कृष्णभावना विकसित करके भौतिक शक्ति के प्रभाव से बचने की चेष्टा करता है।

ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित्त्वय्येका सर्व-संश्रये ।

ह्लाद-ताप-करी मिश्रा त्वयि नो गुण-वर्जिते ॥ 157॥

ह्लादिनी–ह्लादिनी शक्ति; सन्धिनी-शाश्वत शक्ति; सम्वित्-ज्ञान शक्ति; त्वयि-आप में; एका-एक आध्यात्मिक (चित्) शक्ति; सर्व-संश्रये-सबका आश्रय; ह्लाद-आनन्द; ताप-करी-दुःख उपजाने वाला; मिश्रा-मिश्रित; त्वयि-आप में; न उ-नहीं; गुण-वर्जिते-सभी भौतिक गुणों से रहित।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सच्चिदानन्द विग्रह हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उनमें मूलतः तीन शक्तियाँ हैं—ह्लादिनी (आनन्द), सन्धिनी (शाश्वतता) तथा सम्वित् (ज्ञान-शक्ति)। सभी मिलकर चित् शक्ति कहलाती हैं और भगवान् में ये पूर्णरूपेण पाई जाती हैं। भगवान् के अंशरूप जीवों के लिए भौतिक जगत् में ह्लादिनी शक्ति कभी अरुचिकर होती है और कभी मिश्रित होती है। किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ ऐसा नहीं है, क्योंकि वे भौतिक शक्ति या उसके गुणों से प्रभावित नहीं होते।"

सच्चिदानन्द-मय हय ईश्वर-स्वरूप ।

तिन अंशे चिच्छक्ति हय तिन रूप ॥ 158॥

सत्-चित्-आनन्द-मय-शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द युक्त; हय हैं; ईश्वर-परमेश्वर का; स्वरूप-दिव्य रूप; तिन अंशे–तीन भागों में; चित्-शक्ति-चित् शक्ति; हय होती है; तिन-तीन; रूप-रूप।

अनुवाद

"अपने आदि रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द से परिपूर्ण हैं। इन तीनों अंशों (सत्, चित्, आनन्द) में आध्यात्मिक शक्ति तीन विभिन्न रूप ग्रहण करती है।"

तात्पर्य

समस्त वैदिक साहित्य के निर्णय के अनुसार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, जीव तथा माया (भौतिक जगत्) ज्ञान के विषय हैं। हर व्यक्ति को इनके परस्पर सम्बन्ध को समझने का प्रयास करना चाहिए। सर्वप्रथम उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्वभाव जानने की चेष्टा करनी चाहिए। शास्त्रों से हमें पता चलता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सच्चिदानन्द रूप हैं, अर्थात् शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द से युक्त हैं। जैसाकि श्लोक 154 में कहा गया है (विष्णु शक्तिः पराप्रोक्ता) पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् समस्त शक्तियों के आगार हैं और उनकी ये सारी शक्तियाँ आध्यात्मिक हैं।

आनन्दांशे 'ह्लादिनी,' सदंशे 'सन्धिनी'।

चिदंशे 'सम्वित्', यारे ज्ञान करि मानि ॥ 159॥

आनन्द-अंशे-आनन्द भाग में; ह्लादिनी–ह्लादिनी शक्ति; सत्-अंशे-सत्-भाग में (शाश्वत रूप में); सन्धिनी–सन्धिनी शक्ति; चित्-अंशे--चित् (ज्ञान) अंश में; सम्वित्-सम्वित् शक्ति; ग्रारे-जिसे; ज्ञान-ज्ञान रूप में; करि मानि–हम स्वीकार करते हैं।

अनुवाद

"आध्यात्मिक शक्ति के तीन अंश ह्लादिनी (आनन्द अंश), सन्धिनी (सत् अंश) तथा सम्वित् (चित् या ज्ञान अंश) कहलाते हैं। हम इन तीनों के ज्ञान को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पूर्ण ज्ञान के रूप में स्वीकार करते हैं।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनुष्य को उनकी सम्वित् शक्ति की शरण लेनी आवश्यक है।

अन्तरङ्गा—चिच्छक्ति, तटस्था—जीव-शक्ति।

बहिरङ्गा—माया,—तिने करे प्रेम-भक्ति ॥160॥

अन्तरङ्गा–अन्तरंगा शक्ति; चित्-शक्ति-आध्यात्मिक शक्ति; तटस्था-तटस्था शक्ति; जीव-शक्ति-जीव; बहिरङ्गा–बहिरंगा शक्ति; माया-माया; तिने-ये तीनों; करे-करती हैं; प्रेम-भक्ति-प्रेमाभक्ति।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति भी तीन अवस्थाओं में प्रकट होती है-अन्तरंगा, तटस्था तथा बहिरंगा। ये सभी उनकी प्रेमाभक्ति में लगी रहती हैं।"

तात्पर्य

भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति तीन अवस्थाओं में प्रकट होती है-अन्तरंगा अर्थात् आध्यात्मिक, तटस्था अर्थात् जीव तथा बहिरंगा अर्थात् मायाशक्ति। हमें यह समझना चाहिए कि इन तीनों अवस्थाओं में सत् (शाश्वतता), चित् (ज्ञान) तथा आनन्द की मूल आध्यात्मिक शक्तियाँ अछूती रहती हैं। जब आध्यात्मिक आनन्द तथा ज्ञान की शक्तियाँ एकसाथ बद्धजीवों को प्रदान की जाती हैं, तब वे बहिरंगा शक्ति, माया के पाश से छूट सकते हैं, जो जीव के आध्यात्मिक स्वभाव को आच्छादित किये रहती है। मुक्त होकर जीव कृष्णभावना को प्राप्त होता है और प्रेम तथा स्नेह के साथ भक्ति में लग जाता है।

षड्-विध ऐश्वर्य—प्रभुर चिच्छक्ति-विलास ।

हेन शक्ति नाहि मान,—परम साहस ॥161॥

षट्-विध–छह प्रकार के; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; प्रभुर-भगवान् के; चित्-शक्ति-विलास-चित् शक्ति विलास, आध्यात्मिक शक्ति का विलास; हेन शक्ति-ऐसी उत्कृष्ट शक्तियाँ; नाहि-नहीं; मान-आप मानते हो; परम साहस-परम साहस।

अनुवाद

"भगवान् अपनी आध्यात्मिक शक्ति में छह प्रकार के ऐश्वर्यों का भोग करते हैं। आप इस आध्यात्मिक शक्ति को स्वीकार नहीं करते। यह आपकी भारी धृष्टता के कारण है।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् छह ऐश्वर्यों से युक्त हैं। ये सारी शक्तियाँ दिव्य धरातल पर हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को निराकार और शक्तिरहित समझना वैदिक सिद्धान्तों के सर्वथा विरुद्ध है।

'मायाधीश' 'माया-वश'—ईश्वरे-जीवे भेद।

हेन-जीवे ईश्वर-सह कह त' अभेद ॥ 162॥

माया-अधीश-शक्ति के स्वामी; माया-वश-माया के प्रभाव में; ईश्वरे-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में; जीवे-जीवों में; भेद-भेद, अन्तर; हेन-जीवे-ऐसे जीव; ईश्वर-सह-ईश्वर सहित; कह-आप कहते हैं; त'–अवश्य; अभेद-एक समान।

अनुवाद

"भगवान् शक्तियों के अधीश्वर हैं और जीव उनका दास है। भगवान् तथा जीव में यही अन्तर है। किन्तु आप यह कह रहे हैं कि भगवान् तथा जीव एक ही हैं।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वभाव से सभी शक्तियों के स्वामी हैं। जीव सूक्ष्म होने के कारण स्वभाव से ही सदैव भगवान् की शक्तियों के वश में रहते हैं। मुण्डक उपनिषद् (3.1.1-2) के अनुसार :

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया

समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-

नश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो-

ऽनीषया शोचति मुह्यमानः।

जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश-

मस्य महिमानमेति वीत-शोकः ॥

मुण्डक उपनिषद् भगवान् तथा जीव में पूर्ण रूप से अन्तर करती है। जीव कर्मों का फल भोगता है, जबकि भगवान् ऐसे कर्म के साक्षी मात्र होते हैं और फल प्रदान करते हैं। जीव अपनी इच्छानुसार परमात्मा के निर्देशन में एक देह से दूसरी में और एक ग्रह से दूसरे में भ्रमण करता रहता है। किन्तु जब भगवत्कृपा से जीव सचेत होता है, तब उसे भक्ति प्राप्त होती है। इस तरह वह माया के पाश से बच जाता है। ऐसे अवसर पर वह अपने शाश्वत मित्र, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के देख सकता है और सारे शोक तथा लालसा से मुक्त हो सकता है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (18.54) में की गई है, जहाँ भगवान् कहते हैं, ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति–"इस प्रकार दिव्य पद पर स्थित मनुष्य को तुरन्त परम ब्रह्म की अनुभूति होती है और वह पूर्णरूपेण प्रसन्न हो जाता है। वह न कभी शोक करता है न किसी वस्तु की इच्छा करता है।" इस तरह यह निश्चित रूप से सिद्ध होता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् समस्त शक्तियों के स्वामी हैं और जीव सदैव इन शक्तियों के अधीन होते हैं। यही मायाधीश तथा मायावश में अन्तर है।

गीता-शास्त्रे जीव-रूप 'शक्ति' करि' माने ।

हेन जीवे 'भेद' कर ईश्वरेर सने ॥163॥

गीता-शास्त्रे- भगवद्गीता में; जीव-रूप-जीव का स्वरूप; शक्ति-शक्ति; करि'-करके; माने–स्वीकार करता है; हेन-ऐसा; जीव-जीव; भेद-भेद; कर-आप करते हो; ईश्वरेर-ईश्वर; सने-के साथ।

अनुवाद

"भगवद्गीता में जीव को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की तटस्था शक्ति बतलाया गया है। फिर भी आप कहते हो कि जीव भगवान् से पूर्णतया भिन्न है।"

तात्पर्य

ब्रह्मसूत्र बतलाता है कि शक्तिशक्तिमतोरभेदः सिद्धान्त के अनुसार जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से एक साथ भिन्न है और अभिन्न भी है। गुणात्मक रूप में जीव तथा भगवान् एक हैं, किन्तु परिमाण में वे भिन्न हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन (अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्व) के अनुसार जीव तथा परम भगवान् को एकसाथ अभिन्न तथा भिन्न माना जाता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहङ्कार इतीयं में भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ 164॥

भूमिः-भूमि; आपः–जल; अनलः–अग्नि; वायुः–वायु; खम्-आकाश; मनः-मन; बुद्धिः-बुद्धि; एव–निश्चित रूप से; च-और; अहङ्कारः-मिथ्या अहंकार; इति-इस प्रकार; इयम्-यह; मे मेरी; भिन्न-भिन्न; प्रकृतिः-प्रकृति; अष्टधा-आठ प्रकार की।

अनुवाद

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार-ये मेरी आठ पृथक् शक्तियाँ हैं।"

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीव-भूतां महा-बाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ 165 ॥

अपरा-निम्न कोटी की; इयम्-यह; इतः-इससे; तु–किन्तु; अन्याम्-अन्य; प्रकृतिम्-प्रकृति; विद्धि-जानो; मे–मेरी; पराम्-दिव्य; जीव-भूताम्-जीव के रूप में विद्यमान; महा-बाहो-हे महाबाहो; ग्रया–जिससे; इदम् यह; धार्यते टिका है; जगत्-भौतिक जगत्।

अनुवाद

"इन भौतिक निकृष्ट शक्तियों के अतिरिक्त मेरी एक अन्य शक्ति है, जो कि आध्यात्मिक शक्ति है और हे महाबाहु, यह जीव है। सारा भौतिक जगत् जीवों के द्वारा धारण किया जाता है।"

तात्पर्य

श्लोक 164 तथा 165 भगवद्गीता (7.4-5) से लिए गये हैं।

ईश्वरेर श्री-विग्रह सच्चिदानन्दाकार ।

से-विग्रहे कह सत्त्व-गुणेर विकार ॥ 166 ॥

ईश्वरेर ईश्वर का; श्री-विग्रह-श्री विग्रह; सत्-चित्-आनन्द-आकार–सत् चित् आनन्द रूपी; से-विग्रहे-भगवान् के उस रूप के बारे; कह–आप कहते हैं; सत्त्व-गुणेर-भौतिक सत्त्व गुण; विकार-विकार।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दिव्य स्वरूप शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द से परिपूर्ण है, किन्तु आप इसे भौतिक सत्त्वगुण की उपज बतला रहे हैं।"

श्री-विग्रह ये ना माने, सेइ त' पाषण्डी ।

अदृश्य अस्पृश्य, सेइ हय यम-दण्डी ॥ 167॥

श्री-विग्रह-भगवान् का रूप; ये-जो कोई; ना-नहीं; माने-मानता; सेइ-वह; त'_निस्सन्देह: पाषण्डी–नास्तिक; अदृश्य-देखने योग्य नहीं; अस्पृश्य-अछूत; सेइ-वह; हय है; यम-दण्डी–यम द्वारा दण्डणीय।

अनुवाद

"जो व्यक्ति भगवान् के दिव्य रूप को स्वीकार नहीं करता, वह निश्चय ही पाषण्डी है। ऐसे व्यक्ति को न तो देखना चाहिए, न ही उसका स्पर्श करना चाहिए। निस्सन्देह, वह यमराज द्वारा दण्डनीय है।"

तात्पर्य

वैदिक शिक्षाओं के अनुसार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का एक सनातन दिव्य रूप है, जो सदैव आनन्द तथा ज्ञान से युक्त है। निर्विशेषवादियों के अनुसार "भौतिक" का अर्थ है, हमारी भौतिक इन्द्रियों द्वारा अनुभव होने वाला रूप और "आध्यात्मिक" का अर्थ है, रूप-रहित। किन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि इस भौतिक प्रकृति के परे भी एक प्रकृति है, जो आध्यात्मिक है। जिस प्रकार इस भौतिक जगत् में भौतिक रूप मिलते हैं, उसी तरह आध्यात्मिक जगत् में आध्यात्मिक रूप होते हैं। इसकी पुष्टि समस्त वैदिक साहित्य द्वारा की जाती है। दिव्य जगत् के आध्यात्मिक रूपों का निराकार होने की नकारात्मक धारणा से कोई सरोकार नहीं है। निष्कर्ष यह है कि जो व्यक्ति भगवान् के दिव्य रूप की पूजा करने के लिए तैयार नहीं होता, वह पाखण्डी है।

वास्तव में इस समय सारे धर्म भगवान् के दिव्य रूप की जानकारी के अभाव के कारण उनके दिव्य साकार रूप की पूजा को हतोत्साहित करते हैं। उच्च श्रेणी के भौतिकतावादी (मायावादी) भगवान् के पाँच विशिष्ट रूपों की कल्पना करते हैं, किन्तु जब वे इन काल्पनिक रूपों की पूजा की तुलना भक्ति से करने की चेष्टा करते हैं, तो वे तुरन्त अपराधी बन जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (7.15) में यह कहकर इसकी पुष्टि की है न मां दुष्कृतिनो मूढाः

प्रपद्यन्ते नराधमाः। पाखण्डवश वास्तविक ज्ञान से रहित होने के कारण मायावादी दार्शनिक न तो भगवान् के भक्तों द्वारा देखे जाने, न ही स्पर्श करने के योग्य रहते हैं, क्योंकि ये दार्शनिक पापियों के कर्मों के फल निर्धारित करने वाले देवता, यमराज द्वारा दण्डनीय हैं। ये मायावादी पाखण्डी अपने अभक्तिपूर्ण कार्यों के फलस्वरूप इस ब्रह्माण्ड में विभिन्न योनियों में घूमते रहते हैं। ऐसे जीव यमराज द्वारा दण्डनीय हैं। केवल सदैव भगवान् की भक्ति में लगे रहने वाले भक्तगण यमराज के कार्यक्षेत्र से परे हैं।

वेद ना मानिया बौद्ध हय त' नास्तिक।

वेदाश्रय नास्तिक्य-वाद बौद्धके अधिक ॥ 168॥

वेद-वैदिक साहित्य; ना-नहीं; मानिया-स्वीकार करके; बौद्ध–बौद्धजन; हय-हैं; त'–निस्सन्देह; नास्तिक-नास्तिक; वेद-आश्रय-वैदिक संस्कृति का आश्रय लेते हुए; नास्तिक्य-वाद-नास्तिकता; बौद्धके–बौद्ध से भी; अधिक-अधिक।

अनुवाद

"चूँकि बौद्धगण वेदों की सत्ता को नहीं मानते, अतएव वे नास्तिक माने जाते हैं। किन्तु जो लोग वैदिक शास्त्रों की शरण लेकर भी मायावादी दर्शन के अनुसार नास्तिकता का प्रचार करते हैं, वे बौद्धों से भी अधिक नास्तिक हैं।"

तात्पर्य

यद्यपि बौद्धगण वैष्णव-दर्शन के सीधे विरोधी हैं, किन्तु यह बात साफ है कि शंकराचार्य के अनुयायी अधिक खतरनाक होते हैं, क्योंकि वे वेदों के प्रमाण को मानते हुए भी वैदिक आदेश के विरुद्ध कार्य करते हैं। वेदाश्रय नास्तिक्यवाद का अर्थ है, "वैदिक संस्कृति के आश्रय के अन्तर्गत नास्तिकवाद' और यह मायावादियों के अद्वैत दर्शन का सूचक है। भगवान् बुद्ध ने वैदिक साहित्य के प्रमाण का त्याग किया, अतएव उन्होंने वेदों में वर्णित अनुष्ठानों तथा यज्ञों का निषेध किया। उनका निर्वाण-दर्शन समस्त भौतिक कार्यकलापों को बन्द करने का सूचक है। भगवान् बुद्ध ने भौतिक जगत् के परे दिव्य रूपों तथा आध्यात्मिक कार्यों को मान्यता नहीं दी। उन्होंने इस भौतिक जगत् के परे एकमात्र शून्यवाद का वर्णन किया। मायावादी दार्शनिक वैदिक प्रमाण मानने का दिखावा तो करते हैं, किन्तु वैदिक अनुष्ठानों से कतराते हैं। वे दिव्य पद की कपोल कल्पना करके अपने आपको नारायण या ईश्वर कहलवाते हैं। किन्तु

ईश्वर का पद उनकी कल्पना से सर्वथा भिन्न है। ऐसे मायावादी दार्शनिक अपने आपको कर्मकाण्ड (सकाम कर्म तथा उनके फल) के प्रभाव से ऊपर समझते हैं। उनके लिए आध्यात्मिक जगत् और बौद्ध शून्यवाद एक हैं। निर्विशेषवाद तथा शून्यवाद में बहुत ही थोड़ा अन्तर है। शून्यवाद को तो सीधे समझा जा सकता है, किन्तु मायावादियों द्वारा बतलाया गया निर्विशेषवाद आसानी से समझ में नहीं आता। मायावादी दार्शनिक आध्यात्मिकता को स्वीकार करते हैं, किन्तु वे आध्यात्मिक जगत् तथा आध्यात्मिक जीवों के विषय में कुछ नहीं जानते। श्रीमद्भागवतम् (10.2.32) के अनुसार :

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन

स्त्वय्यस्तभावाद् अविशुद्ध बुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ।।

मायावादियों की बुद्धि शुद्ध नहीं होती; इसलिए वे आत्म-साक्षात्कार हेतु तपस्या करने के बावजूद भी निर्विशेष ब्रह्मज्योति में बने नहीं रह सकते। फलतः उनका इस भौतिक जगत् में पुनः पतन हो जाता है।

आध्यात्मिक जीवन के बारे में मायावादियों की धारणा इस भौतिक अस्तित्व के निषेध जैसी है। मायावादियों का मानना है कि आध्यात्मिक जीवन में कुछ भी सकारात्मक नहीं है। फलतः वे परम भगवान्, सच्चिदानन्द विग्रह की भक्ति या पूजा को समझ नहीं पाते। अर्चाविग्रह की भक्तिमयी पूजा को मायावादी दार्शनिक प्रतिबिम्बवाद मानते हैं, अर्थात् ऐसे रूप की पूजा, जो मिथ्या भौतिक रूप का प्रतिबिम्ब है। इस तरह मायावादी दार्शनिकों को भगवान् का दिव्य रूप अज्ञात रहता है, जो शाश्वत रूप से आनन्दमय तथा ज्ञान से पूर्ण होता है। यद्यपि श्रीमद्भागवतम् में "भगवान्" शब्द का स्पष्ट वर्णन है, किन्तु वे इसे समझ नहीं सकते। ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते–"परम सत्य को ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् कहा जाता है (भागवत 1.2.11)। मायावादी केवल ब्रह्म को, या अधिक से अधिक परमात्मा को समझने की चेष्टा करते हैं; किन्तु वे भगवान् को नहीं समझ पाते। इसीलिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण कहते हैं- माययापहृत ज्ञानाः। मायावादी दार्शनिकों के स्वभाव के कारण ही उनसे वास्तविक ज्ञान हर लिया जाता है। चूँकि उन्हें भगवान् की कृपा प्राप्त नहीं होती, अतः वे उनके दिव्य रूप द्वारा सदैव मोहग्रस्त रहेंगे। निर्विशेष दर्शन ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञाता–ज्ञान की इन तीन अवस्थाओं को विनष्ट करता है। जब भी कोई ज्ञान की बात कहता है, तो उसी के साथ उसे

जानने वाला (ज्ञाता) होना चाहिए और साथ ही ज्ञान और ज्ञान का लक्ष्य (ज्ञेय) होना चाहिए। मायावादी दर्शन इन तीनों को मिला देता है, इसलिए मायावादी यह नहीं समझ पाते कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आध्यात्मिक शक्तियाँ किस तरह कार्य करती हैं। अल्पज्ञान के कारण वे आध्यात्मिक जगत् में ज्ञान, ज्ञाता तथा ज्ञेय के अन्तर को नहीं समझ पाते। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु मायावादी दार्शनिकों को बौद्धों से अधिक खतरनाक मानते हैं।

जीवेर निस्तार लागि' सूत्र कैल व्यास ।

मायावादि-भाष्य शुनिले हय सर्वनाश ॥169॥

जीवेर-जीवों के निस्तार-उद्धार; लागि' के लिए; सूत्र-वेदान्त-सूत्र; कैल-किया; व्यास-श्रील व्यासदेव ने; मायावादि-निर्विशेषवादियों का; भाष्य-भाष्य; शुनिले-सुनने पर; हय होता है; सर्वनाश-सर्वनाश।

अनुवाद

"श्रील व्यासदेव ने बद्धजीवों के उद्धार हेतु वेदान्त-दर्शन प्रस्तुत किया, किन्तु यदि कोई व्यक्ति शंकराचार्य का भाष्य सुनता है, तो उसका सर्वनाश हो जाता है।"

तात्पर्य

वस्तुतः वेदान्त-सूत्र में भगवान् की भक्ति का वर्णन हुआ है, किन्तु मायावादी दार्शनिकों ने अर्थात् शंकराचार्य के अनुयायियों ने शारीरक भाष्य नाम से टीका प्रस्तुत की है, जिसमें भगवान् के दिव्य रूप को नकारा गया है। मायावादी दार्शनिक सोचते हैं कि जीव परमात्मा अर्थात् ब्रह्म से अभिन्न है। वेदान्त-सूत्र पर लिखी गई उनकी टीकाएँ भक्ति के सिद्धान्त से पूर्णतया विरोधी हैं। इसलिए चैतन्य महाप्रभु हमें सचेत करते हैं कि हम इन टीकाओं से बचें। यदि कोई शंकरवादी शारीरक भाष्य सुनता है, तो निस्सन्देह वह वास्तविक ज्ञान से वंचित हो जायेगा।

महत्त्वाकांक्षी मायावादी दार्शनिक भगवान् के अस्तित्व में समा जाना चाहते हैं, जिसे सायुज्य मुक्ति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु ऐसी मुक्ति का अर्थ है अपने व्यक्तिगत अस्तित्व का निषेध करना। दूसरे शब्दों में, यह एक प्रकार की आध्यात्मिक आत्महत्या है। यह भक्तियोग के दर्शन के सर्वथा विपरीत है। भक्तियोग तो प्रत्येक बद्धजीव को अमरत्व प्रदान करता है। मायावादी दर्शन का पालन करने वाला व्यक्ति इस भौतिक शरीर को त्यागने के बाद अमर बनने के सुअवसर से वंचित हो जाता है। अमरत्व व्यक्तिगत जीव के लिए प्राप्त होने वाला सर्वोच्च पूर्णता का पद है।

‘परिणाम-वाद’—व्यास-सूत्रेर सम्मत।

अचिन्त्य-शक्ति ईश्वर जगद् रूपे परिणत॥ 170॥

परिणाम-वाद-रूपांतर का सिद्धान्त; व्यास-सूत्रेर–वेदान्त सूत्र का; सम्मत-आशय; अचिन्त्य-शक्ति-अचिन्त्य शक्ति; ईश्वर-ईश्वर; जगत्-रूपे–जगत् के रूप में; परिणत-परिवर्तित।

अनुवाद

“वेदान्त-सूत्र का लक्ष्य यह स्थापित करना है कि विराट जगत् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्ति के रूपान्तर से उत्पन्न हुआ है।”

तात्पर्य

परिणामवाद की अधिक व्याख्या के लिए आदिलीला (7.121-133) देखें।

मणि यैछे अविकृते प्रसबे हेम-भार।

जगद् रूप हय ईश्वर, तबु अविकार॥ 171॥

मणि-पारस पत्थर; यैछे-जैसे; अविकृते–बिना किसी विकार के प्रसबे-उत्पन्न करता है; हेम-भार–सोने के ढेर; जगत्-रूप-जगत् के रूप में; हय हो जाते हैं; ईश्वर-ईश्वर; तबु–फिर भी; अविकार-बिना विकार के रहते हैं।

अनुवाद

“पारस-पत्थर लोहे का स्पर्श करके ढेरों सोना उत्पन्न करता है, किन्तु स्वयं अपरिवर्तित बना रहता है। इसी तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्ति द्वारा अपने आपको विराट जगत् के रूप में प्रकट करते हैं, किन्तु उनका सनातन दिव्य स्वरूप अपरिवर्तित रहता है।”

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के भाष्य के अनुसार वेदान्त-सूत्र के जन्माद्यस्य श्लोक का उद्देश्य यह स्थापित करना है कि विराट जगत् की अभिव्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्तियों के रूपान्तर के कारण है। भगवान् असंख्य शाश्वत शक्तियों के स्वामी हैं और ये शक्तियाँ असीम हैं। ये शक्तियाँ कभी प्रकट होती हैं और कभी

नहीं होतीं। किन्तु प्रत्येक दशा में सारी शक्तियाँ उन्हीं के अधीन रहती हैं, इसीलिए वे आदि शक्तिमान हैं अर्थात् समस्त शक्तियों के स्रोत हैं। बद्धावस्था में साधारण बुद्धि यह सोच ही नहीं पाती कि इतनी अचिन्त्य शक्तियाँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में कैसे स्थित रहती हैं और वे किस प्रकार असंख्य रूपों में भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के स्वामी बने रहते हैं। किस तरह वे व्यक्त तथा अव्यक्त शक्तियों के स्वामी हैं और किस तरह विरोधी शक्तियाँ उनमें वास कर सकती हैं। जब तक जीव इस भौतिक जगत् में मोहावस्था में रहता है, वह भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों के कार्यकलापों को नहीं समझ सकता। इस तरह भगवान् की शक्तियाँ वास्तविक होते हुए भी साधारण मस्तिष्क की समझ से परे रहती हैं।

जब नास्तिक दार्शनिक या मायावादी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों को न समझ पाने के कारण निर्विशेष शून्य की कल्पना करते हैं, तब उनकी यह कल्पना भौतिकतावादी चिन्तन का एक प्रतिरूप ही होती है। इस भौतिक जगत् में कुछ भी अचिन्त्य नहीं है। बहुत बुद्धिमान दार्शनिक तथा वैज्ञानिक भौतिक शक्ति को तो वश में कर सकते हैं, किन्तु आध्यात्मिक शक्ति को न समझ पाने के कारण वे केवल निष्क्रियता अवस्था की-यथा निर्विशेष ब्रह्म की ही कल्पना कर सकते हैं। यह तो भौतिक जीवन का केवल नकारात्मक पक्ष है। ऐसे अपूर्ण ज्ञान से मायावादी दार्शनिक इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विराट जगत् सर्वोपरि का रूपान्तर है। अतः वे सर्वोपरि के मोहग्रस्त होने (विवर्तवाद सिद्धान्त) को स्वीकार करने के लिए बाध्य होते हैं। किन्तु यदि हम भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों को स्वीकार करें, तो यह समझ सकेंगे कि किस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भौतिक प्रकृति के तीन गुणों से दूषित हुए बिना या उनका स्पर्श किये बिना इस भौतिक जगत् में प्रकट हो सकते हैं।

शास्त्रों से विदित होता है कि पारस-पत्थर नामक एक मणि होता है, जो लोहे को सोने में बदल सकता है। यह मणि लोहे को अनेक बार सोने में बदलने पर भी अपनी मूल स्थिति में रहती है। यदि ऐसी भौतिक मणि प्रचुर सोना उत्पन्न करने पर भी अपनी अचिन्त्य शक्ति बनाये रख सकती है, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् निश्चय ही विराट जगत् की सृष्टि करने के बाद भी अपना मूल सच्चिदानन्द स्वरूप बनाये रख सकते हैं। जैसाकि भगवद्गीता (9.10) में पुष्टि हुई है, वे अपनी विभिन्न शक्तियों के द्वारा ही कार्य करते हैं। मयाध्यक्षेण प्रकृति: —कृष्ण भौतिक शक्ति को संचालित करते हैं और वह शक्ति इस भौतिक जगत् में कार्य करती है। इसकी पुष्टि ब्रह्म-संहिता (5.44) में भी हुई :

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका

छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा।

इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा

गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥

दुर्गा शक्ति (भौतिक शक्ति) पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के निर्देशन में कार्य करती है और वह ब्रह्माण्ड की सृष्टि, उसके भरण तथा संहार का कार्य करती है। कृष्ण पृष्ठभूमि से निर्देशन करते हैं। निष्कर्ष यह है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी शक्ति का निर्देशन करते हुए भी, जिससे विविध विराट जगत् इतनी कुशलता से कार्य करता है, यथारूप रहते हैं।

व्यास–भ्रान्त बलि' सेइ सूत्रे दोष दिया ।

'विवर्त-वाद' स्थापियाछे कल्पना करिया ॥ 172॥

व्यास-श्रील व्यासदेव; भ्रान्त-गलत; बलि'–कहकर; सेइ-वह; सूत्रे-वेदान्त-सूत्र में; दोष-दोष; दिया-देकर; विवर्त-वाद-माया का सिद्धान्त; स्थापियाछे–स्थापित किया है; कल्पना-कल्पना; करिया-करके।

अनुवाद

"शंकराचार्य के सिद्धान्त के अनुसार परम सत्य रूपान्तरित होता है। इस सिद्धान्त के बल पर मायावादी दार्शनिक श्रील वेदव्यास में दोष दिखलाकर उन्हें नीचा दिखाते हैं। इस तरह वे वेदान्त-सूत्र में त्रुटि निकालते हैं और विवर्तवाद की स्थापना करने हेतु वे इस विषय में अपना अर्थ लगाते हैं।"

तात्पर्य

ब्रह्मसूत्र का पहला श्लोक है-अथातो ब्रह्मजिज्ञासा- अब हमें परम सत्य के विषय में जिज्ञासा करनी चाहिए।" दूसरे ही श्लोक में इसका उत्तर है—जन्माद्यस्य यतः— "परम सत्य ही सबके मूल स्रोत हैं।" इस श्लोक—जन्माद्यस्य यतः का यह अर्थ नहीं है कि आदि पुरुष रूपान्तरित हो गये हैं; प्रत्युत यह स्पष्ट इंगित करता है कि वे अपनी अचिन्त्य शक्ति द्वारा इस विराट् जगत् को उत्पन्न करते हैं। भगवद्गीता (10.8) में इसकी व्याख्या स्पष्ट रूप से की गई है, जहाँ कृष्ण कहते हैं—मत्तः सर्वं प्रवर्तते—"मुझ से ही सब उद्भूत होता है।" तैत्तिरीय उपनिषद् (3.1.1) से भी इसकी पुष्टि होती है—यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।" परम सत्य वे हैं, जिनसे प्रत्येक वस्तु उद्भूत होती है। इसी प्रकार मुण्डक उपनिषद् (1.1.7) में कहा गया है—यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च—"भगवान् इस भौतिक जगत् का उसी प्रकार सृजन तथा संहार करते है, जिस प्रकार एक मकड़ी जाल बुनती है और बाद में उसे अपने में समेट लेती है।" ये सारे सूत्र

भगवान् की शक्ति के रूपान्तर के सूचक हैं। ऐसा नहीं है कि स्वयं भगवान् में प्रत्यक्ष रूपान्तर होता है, जो परिणामवाद कहलाता है। किन्तु श्रील व्यासदेव को आलोचना से बचाने के लिए शंकराचार्य ने छद्म भद्रपुरुष बनकर विवर्तवाद प्रस्तुत किया। शंकराचार्य ने परिणामवाद का यह अर्थ गढ़ा और शब्दजाल के द्वारा परिणामवाद को विवर्तवाद के रूप में स्थापित करने का भरसक प्रयत्न किया।

जीवेर देहे आत्म-बुद्धि—सेइ मिथ्या हय ।

जगत् ये मिथ्या नहे, नश्वर-मात्र हय ॥173॥

जीवेर-जीवों के देहे-शरीर में; आत्म-बुद्धि-आत्म बुद्धि; सेइ-वह; मिथ्या-मिथ्या; हय-है; जगत्-जगत्; ग्रे-वह; मिथ्या-मिथ्या; नहे-नहीं; नश्वर-मात्र-मात्र अस्थायी; हय-है।

अनुवाद

"विवर्तवाद तभी प्रभावी होता है, जब जीव अपनी पहचान शरीर के रूप में करे। किन्तु जहाँ तक विराट जगत् का सम्बन्ध है, इसे मिथ्या नहीं कहा जा सकता। हाँ, यह नश्वर अवश्य है।"

तात्पर्य

जीव कृष्ण का सनातन सेवक है। भगवान् का अंश होने के कारण वह स्वाभाविक रूप से शुद्ध है, किन्तु भौतिक शक्ति के सम्पर्क में आकर वह अपनी पहचान स्थूल या सूक्ष्म भौतिक शरीर के रूप में करता है। ऐसी पहचान निश्चय ही मिथ्या है और विवर्तवाद का आधार बनती है। जीव नित्य है, उस पर काल का प्रभाव नहीं हो सकता, किन्तु उसके स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों पर काल का प्रभाव होता है। विराट जगत् कभी भी मिथ्या नहीं है, किन्तु काल के प्रभाव के कारण यह परिवर्तनशील है। इस जगत् को अपनी इन्द्रियतृप्ति का साधन स्वीकार करना निश्चित रूप से मोह (भ्रम) है। यह भौतिक जगत् भगवान् की भौतिक शक्ति की अभिव्यक्ति है। भगवद्गीता (7.4) में कृष्ण ने इसकी व्याख्या की है :

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और मिथ्या अहंकार—ये सभी आठ मेरी भिन्न भौतिक शक्तियाँ हैं।"

भौतिक जगत् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अपरा (निकृष्ट) शक्ति है, किन्तु यह कहना सही नहीं है कि परम भगवान् इस भौतिक जगत् में रूपान्तरित हो गये हैं। मायावादी दार्शनिकों ने, वास्तविक ज्ञान से रहित होने के कारण विवर्तवाद एवं परिणामवाद के सिद्धान्त को वाक्जाल से अस्तव्यस्त कर दिया है। विवर्तवाद उस व्यक्ति पर प्रभावी होता है, जो अपनी पहचान शरीर के रूप में करता है। जीव परम भगवान् की उच्चतर शक्ति है, भौतिक जगत् उनकी निकृष्ट शक्ति है, किन्तु दोनों प्रकृति (शक्ति) ही हैं। यद्यपि सारी शक्तियाँ भगवान् से अभिन्न होते हुए भी भिन्न हैं, अतः भगवान् अपनी विभिन्न शक्तियों के रूपान्तरित होने पर भी कभी भी अपना व्यक्तिगत साकार स्वरूप नहीं त्यागते।

'प्रणव' ये महा-वाक्य—ईश्वरेर मूर्ति ।

प्रणव हैते सर्व-वेद, जगत् उत्पत्ति ॥ 174॥

प्रणव-ॐकार; से-वह जो; महा-वाक्य-दिव्य शब्द; ईश्वरेर–भगवान् का; मूर्ति-रूप; प्रणव-ॐकार; हैते–से; सर्व-वेद-सारा वैदिक साहित्य; जगत्-भौतिक जगत् की उत्पत्ति-उत्पत्ति।

अनुवाद

"ॐकार की दिव्य ध्वनि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का शब्द-रूप है। सारा वैदिक ज्ञान तथा यह विराट जगत् भगवान् के इस शब्द-रूप से उत्पन्न हुए हैं।"

तात्पर्य

ॐकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का शब्द-स्वरूप है। उनके पवित्र नाम का यह रूप दिव्य ध्वनि के रूप में (महावाक्य) स्वीकार किया जाता है, जिसके कारण यह नश्वर जगत् उत्पन्न हुआ है। यदि मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शब्द-प्रतिनिधि (ॐकार) की शरण ग्रहण करता है, तो वह अपनी वैधानिक स्थिति का साक्षात्कार कर सकता है और बद्ध जीवन में रहते हुए भी भक्ति में लग सकता है।

'तत्त्वमसि'—जीव-हेतु प्रादेशिक वाक्य ।

प्रणव ना मानि' तारे कहे महा-वाक्य ॥ 175॥

तत् त्वम् असि-तुम वही हो; जीव-हेतु-बद्धजीव के प्रकाश हेतु; प्रादेशिक सहायक; वाक्य-शब्द; प्रणव-ॐकार अवतार; ना-नहीं; मानि'–मानकर; तारे-वह; कहे-कहता है; महा-वाक्य-दिव्य वाणी।

अनुवाद

"तत्त्वमसि"("तुम वही हो") गौण ध्वनि (प्रादेशिक वाक्य) जीव की जानकारी के लिए है, किन्तु मुख्य ध्वनि ॐकार है। शंकराचार्य ने ॐकार को महत्त्व न देकर तत्त्वमसि ध्वनि पर बल दिया है।"

तात्पर्य

भगवान् के पवित्र नाम के दिव्य ध्वनि-अवतार प्रणव को वैदिक साहित्य के मुख्य सिद्धान्त के रूप में न स्वीकार करने वाला व्यक्ति तत्त्वमसि को मूल ध्वनि मानता है। शंकराचार्य ने शब्दाडम्बर द्वारा जीव तथा प्रकट जगत् के साथ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का भ्रामक सम्बन्ध उत्पन्न करने का प्रयास किया। तत्त्वमसि जीव के लिए चेतावनी है कि वह शरीर को आत्मा मानने की भूल न करे। अतएव तत्त्वमसि विशेष रूप से बद्ध आत्मा के लिए है। ॐकार या हरे कृष्ण मन्त्र का जप मुक्त आत्मा के लिए है। श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है-अयि मुक्तकुलैरुपास्यमानम्। (नामाष्टक 1) भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन मुक्त आत्मा करते हैं। इसी प्रकार परीक्षित महाराज कहते हैं- निवृत्ततरुपगीयमानात् (भागवत 10.1.4) भगवान के पवित्र नाम का कीर्तन वे ही कर सकते हैं, जो भौतिक इच्छाओं की पूर्ति पूर्णतया कर चुके हैं या जो दिव्य पद को प्राप्त हैं और भौतिक इच्छा से रहित हैं। भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन वही कर सकता है, जो भौतिक कल्मष से पूर्णतया मुक्त है। (अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम्)। शंकराचार्य ने गौण ध्वनि (तत्त्वमसि) को सबसे महत्त्वपूर्ण वैदिक मन्त्र मान करके मुख्य वैदिक मन्त्र (ॐकार) के महत्त्व को घटाया है।

एइ-मते कल्पित भाष्ये शत दोष दिल ।

भट्टाचार्य पूर्व-पक्ष अपार करिल ॥ 176 ॥

एइ-मते-इस प्रकार; कल्पित-मनगढंत; भाष्ये-भाष्य में; शत-सैकड़ों; दोष-दोष; दिल-दिखाये; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; पूर्व-पक्ष-विरोधी तत्त्व (पक्ष); अपार-असीम; करिल प्रस्तुत किये।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने शंकराचार्य के शारीरक भाष्य को काल्पनिक कहकर आलोचना की और उसमें सैकड़ों दोष दिखलाये, किन्तु सार्वभौम भट्टाचार्य ने शंकराचार्य का पक्ष लेते हुए अनेक तर्क प्रस्तुत किये।

वितण्डा, छल, निग्रहादि अनेक उठाइल।

सब खण्डि' प्रभु निज-मत से स्थापिल ॥ 177॥

वितण्डा–प्रतिवाद; छल-कल्पित व्याख्या (दर्शन); निग्रह-आदि-विरोधी दल को दबाना; अनेक-अनेक; उठाइल-उठाए; सब-सब; खण्डि'–खण्डन करके; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-मत-अपना मत; से-वह; स्थापिल-स्थापित किया।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने छद्म तर्क समेत विविध प्रकार के मिथ्या तर्क प्रस्तुत किये और अपने प्रतिपक्षी को हराने के लिए अनेक प्रकार से प्रयास किये। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन सारे तर्कों को खण्डित किये और अपना मत स्थापित किया।

तात्पर्य

वितण्डा शब्द का अर्थ यह है कि शास्त्रार्थ करने वाला व्यक्ति अपनी बात को सिद्ध करने के बदले दूसरे व्यक्ति के तर्कों को काटने का प्रयास करता है। जब कोई व्यक्ति मुख्य बात पर ध्यान न देकर गलत अर्थ लगाकर ध्यान बटाना चाहता है, तो वह छल करता है। निग्रह शब्द का अर्थ भी विपक्षी के तर्कों का खण्डन करने का प्रयास है।

भगवान्–'सम्बन्ध', भक्ति–'अभिधेय' हय।

प्रेमा–'प्रयोजन', वेदे तिन-वस्तु कय ॥ 178॥

भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; सम्बन्ध–सम्बन्ध; भक्ति-भक्ति; अभिधेय-भक्तिमय सेवा; हय-है; प्रेमा–भगवत्प्रेम; प्रयोजन-जीवन का चरम लक्ष्य; वेद-वेद; तिन-वस्तु-तीन विषय; कय–वर्णन करते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "सभी सम्बन्धों के केन्द्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, उनकी भक्ति करना (अभिधेय) मनुष्य का वास्तविक कर्म है और भगवत्प्रेम की प्राप्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य (प्रयोजन) है। वैदिक साहित्य में इन तीनों विषयों का वर्णन हुआ है।"

तात्पर्य

भगवद्गीता (15.15) से इस कथन की पुष्टि होती है-वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। वेदों का अध्ययन करने का वास्तविक प्रयोजन यह जानना है कि भगवद्भक्त किस तरह बना जाये। स्वयं भगवान् का उपदेश है- मन्मना भव भद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु (भगवद्गीता 9.34) । अतएव वेदों का अध्ययन करने के बाद मनुष्य को भगवान् के विषय में सदैव चिन्तन करते हुए (मन्मना), उनका भक्त बनकर, उनकी पूजा करके और उन्हें सदैव नमस्कार करते हुए भक्ति करनी चाहिए। इसे विष्णु-आराधना कहते हैं और यह सभी मनुष्यों का सर्वोपरि कर्तव्य है। वर्णाश्रम धर्म प्रणाली समाज को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभक्त करती है। वर्णाश्रम धर्म में इसका उचित प्रकार से पालन किया जाता है। वैदिक सभ्यता की यही पूर्ण योजना है। किन्तु इस युग में इस प्रणाली की स्थापना कर पाना अत्यन्त कठिन है, इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु परामर्श देते हैं कि हम वर्णाश्रम धर्म की वैदिक प्रणाली की चिन्ता न करें। प्रत्युत हमें सीधे हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन और शुद्ध भक्तों से परम पुरुष भगवान् के विषय में श्रवण करना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसी विधि की संस्तुति की है और वेदों का अध्ययन करने का यही प्रयोजन है।

आर ये ये-किछु कहे, सकल-इ कल्पना ।

स्वतः-प्रमाण वेद-वाक्ये कल्पेन लक्षणा ॥ 179॥

आर-इसके अलावा; ये ये-जो कुछ; किछु-कुछ; कहे-कहता है; सकल-इ-सब; कल्पना कल्पना; स्वतः-प्रमाण–स्वतः प्रमाण; वेद-वाक्ये वेद की दृष्टि से; कल्पेन-वह कल्पना करता है; लक्षणा–मनोकल्पना।

अनुवाद

“यदि कोई व्यक्ति भिन्न तरीके से वैदिक साहित्य की विवेचना करने की चेष्टा करता है, तो वह मात्र कल्पना है। स्वतः प्रमाणरूप वेद वाक्य के विषय में अनुमान लगाने को कोरी कल्पना ही समझना चाहिए।”

तात्पर्य

जब बद्धजीव शुद्ध हो जाता है, तब वह भक्त कहलाता है। भक्त का एकमात्र सम्बन्ध पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ रहता है और उसका एकमात्र धर्म भगवान् को तुष्ट करने के लिए भक्ति करना है। यह सेवा भगवान् के प्रतिनिधि

गुरु के माध्यम से की जाती है- यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। उचित रीति से भक्ति करने पर भक्त को जीवन की सर्वोच्च सिद्धि 'भगवत्प्रेम' प्राप्त होती है- स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे। वेदों को समझने का चरम उद्देश्य भगवान् की भक्तिमय सेवा करने के पद तक ऊपर उठना है। किन्तु मायावादी दार्शनिक निर्विशेष ब्रह्म को सम्बन्ध का केन्द्रबिन्दु मानते हैं और जीव का कर्म (अभिधेय) ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान की प्राप्ति मानते हैं। वे ज्ञान का परिणाम भौतिक कर्म से विरक्ति मानते हैं तथा मुक्ति अथवा परम में समा जाने को जीवन का चरम लक्ष्य (प्रयोजन) मानते हैं। किन्तु यह सब बद्धजीव की कल्पना मात्र है। इससे मात्र भौतिक कार्यों का निषेध होता है। मनुष्य को सदा स्मरण रखना चाहिए कि सारा वैदिक साहित्य स्वतः प्रमाणित है। वैदिक श्लोकों का अर्थ लगाने की किसी को अनुमति नहीं है। यदि कोई ऐसा करता है, तो इसे उसकी कल्पना माना जायेगा, जिसका कोई महत्त्व नहीं है।

आचार्येर दोष नाहि, ईश्वर-आज्ञा हैल ।

अतएव कल्पना करि' नास्तिक-शास्त्र कैल ॥ 180॥

आचार्येर–शंकराचार्य का; दोष-दोष; नाहि-नहीं; ईश्वर-आज्ञा–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आज्ञा; हैल–थी; अतएव–अतएव; कल्पना-कल्पना; करि'–करके; नास्तिक-नास्तिक; शास्त्र-शास्त्र; कैल-तैयार किया।

अनुवाद

"वास्तव में इसमें शंकराचार्य का कोई दोष नहीं है। उन्होंने केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेश का पालन किया है। उन्हें किसी न किसी प्रकार के अनुमान की कल्पना करनी थी, अतएव उन्होंने ऐसा वैदिक साहित्य प्रस्तुत किया, जो पूर्णतया नास्तिक है।"

स्वागमैः कल्पितैस्त्वं च जनान्मद्विमुखान्कुरु ।

मां च गोपय येन स्यात्सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा ॥181॥

स्व-आगमैः-अपनी खुद की व्याख्या द्वारा; कल्पितैः–कल्पित; त्वम्-आप; च-तथा; जनान्–सामान्य जनता; मत्-विमुखान्–मुझसे विमुख और सकाम कर्म और मनगढंत ज्ञान में आसक्त; कुरु-करो; माम्-मुझे, भगवान्; च-और; गोपय–छुपा लो; येन-जिसको; स्यात्-हो जाए; सृष्टिः–भौतिक प्रगति; एषा–यह; उत्तर-उत्तरा–अधिकाधिक।

अनुवाद

[शिवजी को सम्बोधित करते हुए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने कहा :] "आप साधारण लोगों को वेदों की अपनी कल्पित व्याख्या द्वारा मुझसे विमुख कर दीजिए। आप मुझे इस प्रकार ढक दीजिए कि लोगों में ऐसा प्रचार हो कि वे भौतिक सभ्यता में प्रगति करने में अधिक रुचि लेने लगें, ताकि आध्यात्मिक ज्ञान से रहित जनसंख्या में वृद्धि हो।"

तात्पर्य

यह उद्धरण पद्मपुराण (उत्तर खण्ड 62.31) से लिया गया है।

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते ।

मयैव विहितं देवि कलौ ब्राह्मण-मूर्तिना ॥ 182॥

मायावादम्-मायावाद दर्शन; असत्-शास्त्रम्-झूठे शास्त्र; प्रच्छन्नम्-ढका हुआ; बौद्धम्-बौद्धवाद; उच्यते-कहा जाता है; मया-मेरे द्वारा; एव–मात्र; विहितम्-सिखाना; देवि-हे भौतिक जगत् की देवी; कलौ–कलियुग में; ब्राह्मण-मूर्तिना-ब्राह्मण के रूप में।

अनुवाद

"[शिवजी ने भौतिक जगत् की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा को बतलाया :] 'कलियुग में मैं एक ब्राह्मण का रूप धारण करके मिथ्या शास्त्रों के माध्यम से वेदों की व्याख्या नास्तिक ढंग से करूँगा, जो बौद्ध दर्शन जैसी होगी।"

तात्पर्य

इस श्लोक में ब्राह्मणमूर्तिना शब्द मायावाद दर्शन के संस्थापक शंकराचार्य को इंगित करता है, जिनका जन्म दक्षिण भारत के मालाबार जिले में हुआ था। मायावाद दर्शन के अनुसार भगवान्, जीव तथा जगत् माया शक्ति के ही विकार हैं। इस नास्तिकवाद के समर्थन में मायावादी मिथ्या शास्त्रों का उद्धरण देते हैं, जिससे लोग दिव्य ज्ञान से वंचित हो जाते हैं और सकाम कर्म तथा मानसिक तर्कवितर्क में लिप्त होते हैं।

यह श्लोक पद्म-पुराण (उत्तर खण्ड 25.7) से उधृत किया गया है।

शुनि' भट्टाचार्य हैल परम विस्मित ।

मुखे ना निःसरे वाणी, हइला स्तम्भित ॥183॥

शुनि'-यह सुनकर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; हैल–हो गये; परम-अत्यन्त; विस्मित–चकित; मुखे-मुख में; ना-नहीं; निःसरे–निकलती; वाणी–वाणी; हड़ला-हो गये; स्तम्भित–जड़।

अनुवाद

यह सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये। वे स्तम्भित रह गये और कुछ भी न बोल सके।

प्रभु कहे,—भट्टाचार्य, ना कर विस्मय ।

भगवाने भक्ति—परम-पुरुषार्थ हय ॥ 184 ॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; भट्टाचार्य–प्रिय भट्टाचार्य; नान; कर-करो; विस्मय-विस्मय; भगवाने–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की; भक्ति-भक्ति; परम-परम; पुरुष-अर्थ-मानव हित; हय-है।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे कहा, "आप विस्मित न हों। वास्तव में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्ति मानव-कर्म की सर्वोच्च सिद्धि है।"

'आत्माराम' पर्यन्त करे ईश्वर भजन ।

ऐछे अचिन्त्य भगवानेर गुण-गण ॥ 185॥

आत्म-आराम-आत्म तुष्ट; पर्यन्त–तक; करे-करते हैं; ईश्वर भजन-ईश्वर की भक्ति; ऐछे-ऐसे; अचिन्त्य-अचिन्त्य; भगवानेर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; गुण-गण-दिव्य गुण।

अनुवाद

"भगवान् के दिव्य गुण ऐसे हैं कि आत्मतुष्ट (आत्माराम) सन्त भी भगवान् की भक्ति करते हैं। उनके गुण अचिन्त्य आध्यात्मिक शक्ति से पूर्ण हैं।"

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।

कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत-गुणो हरिः ॥ 186॥

आत्म-आरामा:-जो लोग भगवान् की दिव्य सेवा में स्थित होने में आनन्द का अनुभव करते हैं; च-भी; मुनयः-महान् साधु पुरुष जिन्होंने भौतिक इच्छाएँ तथा सकाम कर्म इत्यदि पूर्णरूपेण त्याग दिये हैं; निर्ग्रन्थाः-किसी भौतिक इच्छा में रुचि के बिना; अपि-निश्चित रूप से; उरुक्रमे–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण में जिनकी लीलाएँ अद्भुत हैं; कुर्वन्ति- करते हैं; अहैतुकीम्-अहैतुकी अथवा भौतिक इच्छा के बिना; भक्तिम्-भक्ति; इत्थम्-भूत-इतनी अद्भुत कि आत्म तुष्ट लोगों का भी ध्यान आकर्षित हो जाता है; गुणः-दिव्य गुणों से युक्त; हरिः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"जो आत्मतुष्ट (आत्माराम) हैं और बाह्य भौतिक इच्छाओं से विरक्त हैं, वे भी भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेममयी सेवा के प्रति आकृष्ट होते हैं, क्योंकि कृष्ण के गुण दिव्य हैं और उनके कार्यकलाप अद्भुत हैं। भगवान् हरि इसीलिए कृष्ण कहलाते हैं, क्योंकि वे दिव्य आकर्षक लक्षणों से युक्त हैं।"

तात्पर्य

यह सुप्रसिद्ध आत्माराम श्लोक है (भागवत 1.7.10)

शुनि' भट्टाचार्य कहे,—'शुन, महाशय ।

एइ श्लोकेर अर्थ शुनिते वाञ्छा हय' ॥ 187॥

शुनि'-यह सुनकर; भट्टाचार्य कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; शुन-कृपया सुनो; महा-आशय-हे महाशय; एइ श्लोकेर-इस श्लोक का; अर्थ-अर्थ; शुनिते-सुनने की; वाञ्छा-इच्छा; हय है।

अनुवाद

आत्माराम श्लोक सुनने के बाद सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से आग्रह किया, "हे महोदय, कृपया इस श्लोक की व्याख्या कीजिये। मैं इस पर आपकी व्याख्या सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।"

प्रभु कहे,—'तुमि कि अर्थ कर, ताहा आगे शुनि' ।

पाछे आमि करिब अर्थ, येबा किछु जानि' ॥ 188॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; तुमि-आप; कि-क्या; अर्थ-अर्थ; कर-करते हो; ताहा-वह; आगे-सर्वप्रथम; शुनि'–सुनकर; पाछे-बाद में; आमि-मैं; करिब–करूँगा; अर्थ-अर्थ; येबा-जो; किछु-कुछ; जानि–मैं जानता हूँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "पहले मुझे अपनी व्याख्या सुनायें। तब मैं जो थोड़ा-बहुत जानता हूँ, बताने की चेष्टा करूँगा।"

शुनि' भट्टाचार्य श्लोक करिल व्याख्यान।

तर्क-शास्त्र-मत उठाय विविध विधान ॥189॥

शुनि'-यह सुनकर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; श्लोक-श्लोक का; करिल-किया; व्याख्यान व्याख्यान; तर्क-शास्त्र-तर्क शास्त्र; मत के अनुसार; उठाय–निकालते हैं; विविध-विविध; विधान–प्रस्ताव।

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने आत्माराम श्लोक की व्याख्या करनी शुरू की और तर्कशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार उन्होंने अनेक प्रस्तावनाएँ प्रस्तुत कीं।

नव-विध अर्थ कैल शास्त्र-मत लञा।

शुनि' प्रभु कहे किछु ईषत् हासिया ॥190॥

नव-विध–नौ प्रकार के; अर्थ-अर्थ; कैल-किये; शास्त्र-मत–अधिकृत शास्त्रों के सिद्धान्त; लञा–लेकर; शुनि'–उसे सुनकर; प्रभु-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; कहे-कहने लगे; किछु कुछ; ईषत्-थोड़ा; हासिया–मुस्कुराकर।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने शास्त्रों के आधार पर आत्माराम श्लोक की व्याख्या नौ विविध प्रकारों से की। उनकी व्याख्या सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु मन्दहास करते हुए बोले।

तात्पर्य

नैमिषारण्य की एक सभा में शौनक ऋषि आदि महान् ऋषियों द्वारा आत्माराम श्लोक की व्याख्या की गई थी। इस सभा की अध्यक्षता करने वाले श्रील सूत गोस्वामी से इन ऋषियों ने प्रश्न किया कि परमहंस स्थिति में अवस्थित ऐसे श्रील शुकदेव गोस्वामी कृष्ण के गुणानुवाद के प्रति क्यों आकृष्ट हुए? दूसरे शब्दों में, वे यह जानना चाह रहे थे कि श्रील शुकदेव गोस्वामी श्रीमद्भागवत के अध्ययन में क्यों लगे थे।

'भट्टाचार्य', जानि—तुमि साक्षात्बृहस्पति ।

शास्त्र-व्याख्या करिते ऐछे कारो नाहि शक्ति ॥ 191॥

भट्टाचार्य–प्रिय भट्टाचार्य; जानि–मैं जानता हूँ; तुमि-आप; साक्षात्-साक्षात्; बृहस्पति-देवताओं के विद्वान पुरोहित बृहस्पति; शास्त्र-व्याख्या-शास्त्रों की व्याख्या; करिते-करने; ऐछे-ऐसे; कारो-किसी अन्य की; नाहि-नहीं है; शक्ति-शक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे भट्टाचार्य, आप तो साक्षात् स्वर्गलोक के पुरोहित, बृहस्पति के समान हैं। निस्सन्देह इस जगत् में शास्त्रों की ऐसी व्याख्या करने की शक्ति अन्य किसी में नहीं है।"

किन्तु तुमि अर्थ कैले पाण्डित्य-प्रतिभाय ।

इहा वइ श्लोकेर आछे आरो अभिप्राय ॥ 192 ॥

किन्तु–किन्तु; तुमि-आपने; अर्थ-अर्थ; कैले-बताये हैं; पाण्डित्य-पाण्डित्य; प्रतिभाय-प्रतिभा से; इहा वइ–इसके अतिरिक्त; श्लोकेर–श्लोक का; आछे-है; आरो-अन्य; अभिप्राय-भावार्थ।

अनुवाद

"हे प्रिय भट्टाचार्य, आपने अवश्य ही इस श्लोक की व्याख्या अपने विस्तृत पाण्डित्य के बल पर की है, किन्तु आप जान लीजिये कि इस पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या के अतिरिक्त भी इस श्लोक का अन्य तात्पर्य है।"

भट्टाचार्येर प्रार्थनाते प्रभु व्याख्या कैल ।

ताँर नव अर्थ-मध्ये एक ना छुडिल ॥ 193॥

भट्टाचार्येर सार्वभौम भट्टाचार्य की प्रार्थनाते-प्रार्थना पर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; व्याख्या-व्याख्या; कैल-की; ताँर-उनकी; नव अर्थ-नौ विभिन्न प्रकार की व्याख्या; मध्ये-में से; एक-एक को भी; ना-नहीं; छुडिल-छुआ।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के अनुरोध पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने भट्टाचार्य के नवों अर्थों को छुये बिना श्लोक की व्याख्या प्रारम्भ की।

आत्मारामाश्च-श्लोके 'एकादश' पद हय ।

पृथक् पृथक् कैल पदेर अर्थ निश्चय ॥ 194॥

आत्मारामाश् च-आत्माराम नामक; श्लोके–श्लोक में; एकादश-ग्यारह; पद-पद, शब्द; हय-हैं; पृथक्-पृथक्-अलग अलग; कैल–किया; पदेर-शब्दों का; अर्थ-अर्थ; निश्चय–निश्चित तौर पर।

अनुवाद

आत्माराम श्लोक में ग्यारह शब्द हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक-एक करके इनकी व्याख्या की।

तात्पर्य

आत्माराम श्लोक के शब्द हैं-आत्मारामाः, च, मुनयः, निर्ग्रन्थाः, अपि, उरुक्रमे, कुर्वन्ति, अहैतुकीम्, भक्तिम्, इत्थम्-भूतगुणः तथा हरिः।

तत्तत्पद-प्राधान्ये 'आत्माराम' मिलाञा ।

अष्टादश अर्थ कैल अभिप्राय लञा ॥195॥

तत्-तत्-पद-वे सभी शब्द; प्राधान्ये मुख्यतः; आत्माराम-आत्माराम शब्द; मिलाञा–मिलाकर; अष्टादश-अठारह; अर्थ-अर्थ; कैल–किये; अभिप्राय अभिप्राय; लञा-लेकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रत्येक शब्द को लेकर उसके साथ "आत्माराम" शब्द को जोड़ा। इस तरह उन्होंने "आत्माराम" शब्द की व्याख्या अठारह भिन्न प्रकार से की।

भगवान्, ताँर शक्ति, ताँर गुण-गण ।

अचिन्त्य प्रभाव तिनेर ना याय कथन ॥ 196॥

भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; ताँर शक्ति–उनकी शक्तियाँ; ताँर गुण-गण-उनके दिव्य गुण; अचिन्त्य-अचिन्त्य; प्रभाव-प्रभाव; तिनेर–तीनों का; ना-नहीं; याय-सम्भव; कथन-व्याख्या करना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, उनकी विभिन्न शक्तियाँ तथा उनके दिव्य गुण-ये सभी अचिन्त्य शक्ति से युक्त हैं। उनकी पूर्ण व्याख्या कर पाना सम्भव नहीं है।"

अन्य यत साध्य-साधन करि' आच्छादन ।

एइ तिने हरे सिद्ध-साधकेर मन ॥ 197॥

अन्य-अन्य; यत–सभी; साध्य-साधन-लक्ष्य और दिव्य साधना; करि'-करके; आच्छादन-ढकना; एइ तिने–ये तीन; हरेले जाते हैं; सिद्ध–सफल; साधकेर-साधना के; मन-मन को।

अनुवाद

"ये तीनों आध्यात्मिक कार्यों में संलग्न सिद्ध जिज्ञासु को आकृष्ट कर लेते हैं तथा अन्य सभी प्रकार के आध्यात्मिक साधनों को आच्छादित कर लेते हैं।"

तात्पर्य

भक्तियोग के अतिरिक्त अन्य आध्यात्मिक कार्यों की तीन श्रेणियाँ हैं- ज्ञान सम्प्रदाय (पण्डितों) द्वारा संचालित चिन्तन-कार्य, सामान्य जनता द्वारा वैदिक विधानों के अनुसार संचालित सकाम कर्म तथा भक्तिमय सेवा में न लगे हुए अध्यात्मवादियों के कार्य। इन श्रेणियों की भी कई-कई शाखाएँ हैं, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्तियों तथा दिव्य गुणों के कारण कर्म, ज्ञान, योग इत्यादि में लगे जिज्ञासु का मन आकृष्ट कर लेते हैं। परम भगवान् का व्यक्तित्व, उनकी शक्तियाँ तथा उनके दिव्य गुण अचिन्त्य शक्तियों से पूर्ण हैं। गम्भीर जिज्ञासुओं के लिए ये अत्यन्त आकर्षक हैं। फलस्वरूप भगवान् को कृष्ण अर्थात् सर्वाकर्षक कहते हैं।

सनकादि-शुकदेव ताहाते प्रमाण ।

एइ-मत नाना अर्थ करेन व्याख्यान ॥198॥

सनक-आदि-सनक आदि चार ऋषि; शुकदेव-तथा शुकदेव गोस्वामी; ताहाते-इसका प्रमाण-प्रमाण; एइ-मत-इस प्रकार; नाना-विविध; अर्थ-अर्थ; करेन-करते हैं; व्याख्यान व्याख्या।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने शुकदेव गोस्वामी तथा सनक, सनत्कुमार, सनातन और सनन्दन नामक चार ऋषियों का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए इस श्लोक की व्याख्या की। इस तरह महाप्रभु ने विविध अर्थ तथा व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं।

तात्पर्य

कृष्ण के सर्वाकर्षक होने की पुष्टि चारों ऋषियों तथा शुकदेव गोस्वामी के कार्यों से होती है। ये सभी मुक्त पुरुष (आत्माराम) होने पर भी भगवान् के गुणों एवं लीलाओं के प्रति आकृष्ट हुए थे। इसीलिए कहा गया है-मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 24.112)–"मुक्त पुरुष भी भगवान् कृष्ण की लीलाओं के प्रति आकृष्ट होते हैं और उनकी भक्तिमय सेवा में संलग्न होते हैं। शुकदेव गोस्वामी तथा चतु:सन नाम से विख्यात चारों कुमार अपने जीवन के प्रारम्भ से ही मुक्त थे तथा ब्रह्मपद को प्राप्त थे। फिर भी वे भगवान् कृष्ण के गुणों के प्रति आकृष्ट हुए थे और उनकी सेवा में लग गये थे। चारों कुमार भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर अर्पित फूलों की सुगन्ध से आकर्षित होकर उनके भक्त बने । शुकदेव गोस्वामी ने अपने पिता व्यासदेव की कृपा से श्रीमद्भागवत सुनी, जिससे वे कृष्ण के प्रति आकृष्ट हुए और महान् भक्त बने। निष्कर्ष यह है कि भगवान् की सेवा द्वारा प्राप्त आनन्द, निर्विशेष ब्रह्म की अनुभूति से मिलने वाले ब्रह्मानन्द से अवश्य ही श्रेष्ठ है।

शुनि' भट्टाचार्येर मने हैल चमत्कार ।

प्रभुके कृष्ण जानि' करे आपना धिक्कार ॥ 199॥

शुनि'-यह सुनकर; भट्टाचार्येर–सार्वभौम भट्टाचार्य के; मने-मन में; हैल–हो उठा; चमत्कार–चमत्कार; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को; कृष्ण भगवान् कृष्ण; जानि'-जानकर; करे-करते हैं; आपना–स्वयं; धिक्कार–धिक्कार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से आत्माराम श्लोक की व्याख्या सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य चकित रह गये। तब वे समझ गये कि श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् कृष्ण हैं और उन्होंने स्वयं को निम्नलिखित शब्दों से धिक्कारा।

'इँहो त' साक्षात्कृष्ण,—मुञि ना जानिया ।

महा-अपराध कैनु गर्वित हइया' ॥200॥

इँहो-श्री चैतन्य महाप्रभु; त'-निस्सन्देह; साक्षात्-साक्षात्; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मुञि-मैंने; ना-नहीं; जानिया-जानकर; महा-अपराध-महान् अपराध; कैनु–किया; गर्वित-गर्वित; हइया-होकर।

अनुवाद

"चैतन्य महाप्रभु निश्चय ही साक्षात् भगवान् कृष्ण हैं। उन्हें न समझ पाने के कारण और अपने पाण्डित्य पर अत्यन्त गर्वित होने के कारण मैंने अनेक अपराध किये हैं।"

आत्म-निन्दा करि' लैल प्रभुर शरण ।

कृपा करिबारे तबे प्रभुर हैल मन ॥201॥

आत्म-निन्दा-आत्म निन्दा; करि'-करके; लैल-ली; प्रभुर-प्रभु की; शरण-शरण; कृपा-कृपा; करिबारे-करने के लिए; तबे-तब; प्रभुर–महाप्रभु का; हैल–हुआ; मन–मन।

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य ने अपने आपको अपराधी कहकर धिक्कारा और महाप्रभु की शरण ग्रहण की, तो महाप्रभु का उन पर कृपा करने का मन हुआ।

निज-रूप प्रभु तारे कराइल दर्शन ।

चतुर्भुज-रूप प्रभु हइला तखन ॥ 202॥

निज-रूप-निजी रूप; प्रभु-प्रभु; ताँरे–उनको; कराइल–किया; दर्शन-दर्शन; चतुर्भु ज-चतुर्भुज; रूप-रूप; प्रभु–महाप्रभु; हइला–हो गये; तखन-उस समय।

अनुवाद

उन पर कृपा करने हेतु श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने विष्णु रूप का दर्शन कराया। उन्होंने तुरन्त चतुर्भुज रूप धारण कर लिया।

देखाइल ताँरे आगे चतुर्भुज-रूप ।

पाछे श्याम-वंशी-मुख स्वकीय स्वरूप ॥203॥

देखाइल-दिखाया; ताँरे–उनको; आगे-सर्वप्रथम; चतुर्भु ज-रूप-चतुर्भुज रूप; पाछे-बाद में; श्याम–श्याम; वंशी-मुख-वंशीधारी मुख; स्वकीय-अपना; स्वरूप-स्वरूप।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सर्वप्रथम अपना चतुर्भुज रूप दिखलाया और फिर वे उनके समक्ष कृष्ण के अपने मूल रूप में श्याम वर्ण तथा अधरों पर वंशी धारण किये प्रकट हुए।

देखि' सार्वभौम दण्डवत्करि' पड़ि' ।

पुनः उठि' स्तुति करे दुइ कर युड़ि' ॥ 204॥

देखि'–वह देखकर; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; दण्डवत्-दण्डवत् प्रणाम; करि'–करके; पड़ि'-गिरकर; पुनः पुनः; उठि'–खड़े होकर; स्तुति-स्तुति; करे-करते हैं; दुइ-दोनों; कर-हाथ; युड़ि'–जोड़कर।

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु में भगवान् कृष्ण का स्वरूप देखा, तो वे तुरन्त उन्हें दण्डवत् प्रणाम करने के लिए गिर पड़े। फिर वे खड़े हुए और दोनों हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

प्रभुर कृपाय ताँर स्फुरिल सब तत्त्व ।

नाम-प्रेम-दान-आदि वर्णेन महत्त्व ॥ 205॥

प्रभुर–महाप्रभु की; कृपाय-कृपा से; ताँर–उनको; स्फुरिल-प्रकट हो गया; सब-सब; तत्त्व-तत्त्व; नाम-पावन नाम; प्रेम-दान-भगवत्प्रेम का दान; आदि-आदि; वर्णेन-वर्णन करते हैं; महत्त्व-महत्त्व।

अनुवाद

महाप्रभु की कृपा से सार्वभौम भट्टाचार्य को सभी तत्त्व स्फुरित हो गये और वे भगवन्नाम का कीर्तन तथा भगवत्प्रेम का सर्वत्र वितरण करने के महत्त्व को समझ सके।

शत श्लोक कैल एक दण्ड ना याइते ।

बृहस्पति तैछे श्लोक ना पारे करिते ॥ 206 ॥

शत-एक सौ; श्लोक-श्लोक; कैल-रचे; एक-एक; दण्ड-24 मिनट की अवधि; ना-नहीं; याइते-गुजरना; बृहस्पति-स्वर्ग लोकों के पुरोहित बृहस्पति; तैछे-ऐसे; श्लोक-श्लोक; ना-नहीं; पारे-सक्षम; करिते-रचने में।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने अल्प समय में सौ श्लोक रच दिये। निस्सन्देह स्वर्गलोक के पुरोहित बृहस्पति भी इतनी शीघ्रता से श्लोकों की रचना नहीं कर सकते थे।

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा रचित सौ सुन्दर श्लोकों वाली पुस्तक का नाम सुश्लोक-शतक है।

शुनि' सुखे प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन ।

भट्टाचार्य प्रेमावेशे हैल अचेतन ॥207॥

शुनि'–सुनकर; सुखे-सुख में; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–सार्वभौम भट्टाचार्य; कैल–किया; आलिङ्गन-आलिंगन; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य, प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में आकर; हैल–हो गये; अचेतन-अचेत।

अनुवाद

एक सौ श्लोक सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्य का आलिंगन किया और भगवत्प्रेम से अभिभूत होने के कारण सार्वभौम भट्टाचार्य तुरन्त अचेत हो गये।

अश्रु, स्तम्भ, पुलक, स्वेद, कम्प थरहरि ।

नाचे, गाय, कान्दे, पड़े प्रभु-पद धरि' ॥ 208॥

अश्रु-अश्रु; स्तम्भ-जड़ावस्था; पुलक-पुलक होना; स्वेद-पसीना; कम्प-कम्पन; थरहरि हिलना डुलना; नाचे-नाचते; गाय-गाते; कान्दे-रोते; पड़े-नीचे गिरते; प्रभु-पद-महाप्रभु के चरणकमल; धरि-पकड़कर।

अनुवाद

भगवत्प्रेम के भावावेश के कारण भट्टाचार्य की आँखों से आँसू झर रहे थे और उनका शरीर स्तम्भित था। वे पुलकित हो गये और उनको पसीना आ गया, वे काँपने और थरथराने लगे। वे कभी नाचते, कभी गाते, कभी रोते और कभी महाप्रभु के चरणकमलों का स्पर्श करने के लिए नीचे गिर पड़ते।

देखि' गोपीनाथाचार्य हरषित-मन ।

भट्टाचार्येर नृत्य देखि' हासे प्रभुर गण ॥209॥

देखि'–यह देखकर; गोपीनाथ-आचार्य–गोपीनाथ आचार्य; हरषित-मन–प्रसन्न चित्त; भट्टाचायेर–सार्वभौम भट्टाचार्य; नृत्य-नृत्य; देखि'–देखकर; हासे-हँसते; प्रभुर गण–चैतन्य महाप्रभु के पार्षद।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य को इस भावावेश में देखकर गोपीनाथ आचार्य अत्यधिक हर्षित हुए। श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी पार्षद भट्टाचार्य को इस तरह नाचते देखकर हँस पड़े।

गोपीनाथाचार्य कहे महाप्रभुर प्रति ।

'सेइ भट्टाचार्येर प्रभु कैले एइ गति' ॥ 210॥

गोपीनाथ-आचार्य–गोपीनाथ आचार्य; कहे-कहा; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रति-को; सेइ भट्टाचार्येर–भट्टाचार्य पर; प्रभु-मेरे प्रभु; कैले–आपने बनाई है; एइ गति-ऐसी स्थिति।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से कहा, "हे प्रभु, आपने सार्वभौम भट्टाचार्य की यह गति बना दी है।"

प्रभु कहे,—'तुमि भक्त, तोमार सङ्ग हैते ।

जगन्नाथ इँहारे कृपा कैल भाल-मते' ॥ 211॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; तुमि भक्त-आप भक्त हो; तोमार सङ्ग हैते-आपके संग के कारण; जगन्नाथ–भगवान जगन्नाथ ने; इँहारे-उन पर; कृपा-कृपा; कैल–दिखाई; भाल-मते-बहुत अच्छी तरह।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "आप भक्त हैं। आपकी संगति के कारण ही जगन्नाथ भगवान् ने इन पर यह कृपा की है।"

तबे भट्टाचार्ये प्रभु सुस्थिर करिल ।

स्थिर हञा भट्टाचार्य बहु स्तुति कैल ॥ 212॥

तबे-तब; भट्टाचार्ये-सार्वभौम भट्टाचार्य को प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; सु-स्थिर-शान्त; करिल किया; स्थिर हजा–शान्त होकर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य ने; बहु-बहुत; स्तुति-प्रार्थनाएँ; कैल-कीं।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने भट्टाचार्य को शान्त किया। शान्त होने पर उन्होंने महाप्रभु की अनेक प्रकार से स्तुतियाँ कीं।

'जगत् निस्तारिले तुमि,—सेह अल्प-कार्य ।

आमा उद्धारिले तुमि,—ए शक्ति आश्चर्य ॥ 213॥

जगत्-सारा संसार; निस्तारिले उद्धार किया है; तुमि-आपने; सेह-वह; अल्प-कार्य-थोड़ा सा कार्य; आमा-मेरा; उद्धारिले-उद्धार किया है; तुमि-आपने; ए-यह; शक्ति-शक्ति; आश्चर्य-आश्चर्यजनक।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "हे प्रभु, आपने सारे जगत् का उद्धार किया है, किन्तु यह कोई बड़ा काम नहीं है। किन्तु आपने मेरा भी उद्धार कर दिया, जो निश्चित रूप से अद्भुत शक्ति का काम है।"

तर्क-शास्त्रे जड़ आमि, यैछे लौह-पिण्ड ।

आमा द्रवाइले तुमि, प्रताप प्रचण्ड' ॥ 214॥

तर्क-शास्त्रे–तर्क शास्त्र के कारण; जड़-जड़ मस्तिष्क; आमि-मैं; यैछे–की तरह; लौह-पिण्ड-लोहे की छड; आमा–मुझे; द्रवाइले–पिघला दिया; तुमि-आपने; प्रताप-शक्ति; प्रचण्ड–बहुत बड़ी।

अनुवाद

"तर्कशास्त्र सम्बन्धी अनेक पुस्तकें पढ़ने के कारण मेरी जड़ बुद्धि लोहे की छड़ के समान बन गई थी। फिर भी आपने मुझे द्रवित कर दिया, अतएव आपका प्रभाव अत्यन्त प्रचण्ड है।"

स्तुति शुनि' महाप्रभु निज वासा आइला ।

भट्टाचार्य आचार्य-द्वारे भिक्षा कराइला ॥ 215॥

स्तुति शुनि'–स्तुति (प्रार्थना) सुनने के बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-अपने; वासा–निवास स्थान को; आइला–लौट आये; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; आचार्य-द्वारे-गोपीनाथ आचार्य के द्वारा; भिक्षा-दोपहर का भोजन; कराइला–करवाया।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा की गई स्तुति सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निवासस्थान पर लौट आये और भट्टाचार्य ने गोपीनाथ आचार्य के माध्यम से उन्हें वहीं पर भोजन करवाया।

आर दिन प्रभु गेला जगन्नाथ-दरशने ।

दर्शन करिला जगन्नाथ-शय्योत्थाने ॥ 216 ॥

आर दिन–अगले दिन; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; गेला–गये; जगन्नाथ-दरशने-जगन्नाथ मन्दिर में दर्शन करने के लिए; दर्शन करिला-दर्शन किया; जगन्नाथ-शय्या-उत्थाने-जगन्नाथ के प्रातः काल शय्या से उठने का।

अनुवाद

अगले दिन प्रात:काल श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथजी का दर्शन करने मन्दिर गये और उन्होंने भगवान् के शय्या से उठने के दर्शन किये।

पूजारी आनिया माला-प्रसादान्न दिला ।

प्रसादान्न-माला पाञा प्रभु हर्ष हैला ॥ 217॥

पूजारी-पुजारी; आनिया–लाकर; माला-मालाएँ; प्रसाद-अन्न–अन्न का प्रसाद; दिला–दिया; प्रसाद-अन्न–अन्न प्रसाद; माला-और मालाएँ; पाञा-पाकर; प्रभु–चैतन्य महाप्रभु; हर्ष-हर्षित; हैला-हो गये।

अनुवाद

पुजारी ने उन्हें जगन्नाथजी को अर्पित फूल-मालाएँ तथा प्रसाद लाकर दिये। इससे महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए।

सेइ प्रसादान्न-माला अञ्चले बान्धिया ।

भट्टाचार्येर घरे आइला त्वरायुक्त हञा ॥ 218॥

सेइ प्रसाद-अन्न-वह प्रसाद; माला-और मालाएँ; अञ्चले-अपने वस्त्र के सिरे में (कोने में); बान्धिया–बाँधकर; भट्टाचार्येर सार्वभौम भट्टाचार्य के; घरे–घर को; आइला–चले गये; त्वरा-युक्त शीघ्रता से; हञा–होकर।

अनुवाद

इस प्रसाद तथा माला को सावधानी से कपड़े में बाँधकर श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य के घर की ओर तेजी से बढ़े।

अरुणोदय-काले हैल प्रभुर आगमन ।

सेइ-काले भट्टाचार्येर हैल जागरण ॥ 219॥

अरुण-उदय-सूर्योदय से पूर्व; काले-उस समय; हैल-वहाँ हुआ; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; आगमन-आगमन; सेइ-काले-उस समय; भट्टाचार्येर–सार्वभौम भट्टाचार्य का; हैल-हुआ; जागरण-शय्या से जागरण।

अनुवाद

वे सूर्योदय होने से थोड़ा पहले भट्टाचार्य के घर पधारे। ठीक उसी समय भट्टाचार्य सोकर जगे थे।

'कृष्ण' 'कृष्ण' स्फुट कहि' भट्टाचार्य जागिला ।

कृष्ण-नाम शुनि' प्रभुर आनन्द बाड़िला ॥220॥

कृष्ण कृष्ण-कृष्ण का नाम जपते हुए; स्फुट-स्पष्टतया; कहि'–कहकर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; जागिला–शय्या से उठे; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; शुनि'–सुनकर; प्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु का; आनन्द–आनन्द; बाड़िला-बढ़ गया।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने उठते ही स्पष्ट रूप से "कृष्ण, कृष्ण" का उच्चारण किया। श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें कृष्ण-नाम का उच्चारण करते सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए।

बाहिरे प्रभुर तेंहो पाइल दरशन ।

आस्ते-व्यस्ते आसि' कैल चरण वन्दन ॥ 221॥

बाहिरे–घर के बाहर; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; तेंहो-उन्होंने; पाइल-पाये; दरशन-दर्शन; आस्ते-व्यस्ते–अति शीघ्रता में; आसि'-वहाँ आकर; कैल–किया; चरण वन्दन–चरणकमलों पर वन्दना।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने महाप्रभु को बाहर खड़े देखा, तो आतुरता से वे उनके पास गये और उनके चरणकमलों की वन्दना की।

वसिते आसन दिया दुँहेत वसिला ।

प्रसादान्न खुलि' प्रभु ताँर हाते दिला ॥ 222॥

वसिते-बैठने के लिए; आसन-आसन; दिया–दिया; हेत–वे दोनों; वसिला-बैठ गये; प्रसाद-अन्न–अन्न का प्रसाद; खुलि'–खोलकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर-उनके; हाते-हाथ में; दिला-रख दिया।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने महाप्रभु को बैठने के लिए आसन दिया और फिर दोनों ने आसन ग्रहण किया। तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रसाद खोला और उसे भट्टाचार्य के हाथों पर रख दिया।

प्रसादान्न पाञा भट्टाचार्येर आनन्द हैल ।

स्नान, सन्ध्या, दन्त-धावन यद्यपि ना कैल ॥ 223॥

प्रसाद-अन्न–अन्न का प्रसाद; पाञा-पाकर; भट्टाचार्येर–सार्वभौम भट्टाचार्य को; आनन्द–आनन्द; हैल-हुआ; स्नान-स्नान; सन्ध्या–प्रातः कालीन नियमित कार्य; दन्त-धावन–दाँत धोना; यद्यपि यद्यपि; ना-नहीं; कैल–समाप्त किया।

अनुवाद

उस समय भट्टाचार्य ने न तो मुँह धोया था, न स्नान किया था, न ही प्रातःकालीन नित्य कर्म किया था। फिर भी वे जगन्नाथजी का प्रसाद पाकर अत्यन्त आनन्दित थे।

चैतन्य-प्रसादे मनेर सब जाड्य गेल ।

एइ श्लोक पड़ि' अन्न भक्षण करिल ॥ 224॥

चैतन्य-प्रसादे-श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से; मनेर-मन की; सब-सब; जाड्य-जड़ता; गेल-चली गई; एइ श्लोक-ये श्लोक; पड़ि'–पढ़कर; अन्न–प्रसाद; भक्षण-ग्रहण; करिल–किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से सार्वभौम भट्टाचार्य के मन की सारी जड़ता दूर हो गई थी। उन्होंने निम्नलिखित दो श्लोक पढ़कर उस प्रसाद को ग्रहण किया।

शुष्कं पर्युषितं वापि नीतं वा दूर-देशतः ।

प्राप्ति-मात्रेण भोक्तव्यं नात्र काल-विचारणा ॥ 225॥

शुष्कम्-शुष्क; पर्युषितम्-बासी; वा–अथवा; अपि-यद्यपि; नीतम्-लाया; वा-अथवा; दूर-देशतः-दूर देश के; प्राप्ति-मात्रेण–प्राप्त करते ही; भोक्तव्यम्-खाने के लिए; न-नहीं; अत्र–इसमें; काल-विचारणा–समय व स्थान का विचार।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "भगवान् का महाप्रसाद पाते ही उसे तुरन्त ग्रहण कर लेना चाहिए, भले ही वह सूखा, बासी या दूर देश से लाया हुआ क्यों न हो। इसमें देश व काल का विचार नहीं करना चाहिए।"

न देश-नियमस्तत्र न काल-नियमस्तथा ।

प्राप्तमन्नं द्रुतं शिष्टैर्भोक्तव्यं हरिरब्रवीत् ॥ 226॥

न–नहीं; देश-देश का; नियमः-नियम; तत्र-उसमें; न-नहीं; काल-समय का; नियमः-नियम; तथा–तथा; प्राप्तम्-प्राप्त किया; अन्नम्-प्रसादम्; द्रुतम्-तुरन्त; शिष्टैः–भद्रपुरुषों द्वारा; भोक्तव्यम्-खाया जाने योग्य; हरिः–भगवान् ने; अब्रवीत्-कहा

अनुवाद

"शिष्ट लोगों को चाहिए कि ज्योंही भगवान् कृष्ण का प्रसाद प्राप्त हो, त्योंही उसे ग्रहण कर लिया जाये; इसमें किसी प्रकार का संकोच नहीं करना चाहिए। इसके लिए देश तथा काल के विषय में कोई नियम नहीं है। यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का आदेश है।"

तात्पर्य

ये दोनों श्लोक पद्मपुराण के हैं।

देखि' आनन्दित हैल महाप्रभुर मन ।

प्रेमाविष्ट हञा प्रभु कैला आलिङ्गन ॥ 227॥

देखि'–यह देखकर; आनन्दित-आनन्दित; हैल-होकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मन-मन; प्रेम-आविष्ट-भगवत्प्रेम में मग्न; हञा-होकर; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; कैला–किया; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

यह देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे भगवत्प्रेम में भावाविष्ट हो गये और उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य का आलिंगन किया।

दुइ-जने धरि' दुँहे करेन नर्तन ।

प्रभु-भृत्य दुँहा स्पर्शे, दोंहार फुले मन ॥ 228॥

दुइ-जने–वे दोनों; धरि'-आलिंगन करके; दुँहे-दोनों; करेन-करते हैं; नर्तन-नृत्य; प्रभु-भृत्य-स्वामी तथा सेवक; दुँहा-दोनों; स्पर्शे-एक दूसरे को छूकर; दोंहार-दोनों के; फुले-प्रफुल्लित हुए; मन–मन।

अनुवाद

प्रभु तथा दास ने एक-दूसरे का आलिंगन किया और दोनों नाचने लगे। वे एक-दूसरे के स्पर्श मात्र से भावाविष्ट हो गये।

स्वेद-कम्प-अश्रु दुँहे आनन्दे भासिला ।

प्रेमाविष्ट हञा प्रभु कहिते लागिला ॥229॥

स्वेद-पसीना; कम्प–कम्पन; अश्रु-अश्रु; दुँहे दोनों; आनन्दे-दिव्य आनन्द में; भासिला—बहने लगे; प्रेम-आविष्ट–भगवत्-प्रेम में लीन होकर; हञा–होकर; प्रभु-महाप्रभु; कहिते-कहने; लागिला-लगे।

अनुवाद

जब वे नाचने लगे और आलिंगन करने लगे, तो उनके शरीरों में आध्यात्मिक लक्षण प्रकट होने लगे। उनको पसीना आ गया, वे काँपने तथा रोने लगे और महाप्रभु भावावेश में बोलने लगे।

"आजि मुञि अनायासे जिनिनु त्रिभुवन ।

आजि मुञि करिनु वैकुण्ठ आरोहण" ॥ 230॥

आजि-आज; मुञि-मैंने; अनायासे-बड़ी आसानी से; जिनिनु–विजय पाई; त्रि-भुवन–तीनों भुवनों पर; आजि-आज; मुञि-मैं; करिनु–किया; वैकुण्ठ–वैकुण्ठ; आरोहण-आरोहन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आज मैंने बड़ी आसानी से तीनों लोकों को जीत लिया है। आज मुझे वैकुण्ठ लोक प्राप्त हो गया है।"

तात्पर्य

यहाँ पर मानव-जीवन की सिद्धि का लक्ष्य संक्षेप में वर्णित किया गया है। मनुष्य को भौतिक ब्रह्माण्ड के सारे ग्रहों को पार करके, ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर आध्यात्मिक जगत् अर्थात् वैकुण्ठ लोक पहुँचना है। ये वैकुण्ठ लोक विविधता से पूर्ण आध्यात्मिक ग्रह-मण्डल हैं, जो भगवान् के निविर्शेष शारीरिक तेज- ब्रह्मज्योति–में स्थित हैं। मनुष्य इस भौतिक जगत् के भीतर स्वर्गलोक–चन्द्र या सूर्य-लोक या शुक्र ग्रह पर जाने की कामना कर सकता है, किन्तु यदि वह कृष्णभावना में आध्यात्मिक रूप से उन्नत है, तो वह इस भौतिक ब्रह्माण्ड के भीतर, यहाँ तक कि उच्च लोकों में भी रहना नहीं चाहता। प्रत्युत वह ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर वैकुण्ठ लोक जाना श्रेयस्कर समझता है। तब वह वहाँ स्थित किसी एक वैकुण्ठ ग्रह में रह सकता है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के निर्देशन में भक्तगण सर्वोच्च वैकुण्ठ ग्रह, गोलोक वृन्दावन पहुँचना चाहते हैं, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके शाश्वत पार्षदों का निवास है।

आजि मोर पूर्ण हैल सर्व अभिलाष ।

सार्वभौमेर हैल महा-प्रसादे विश्वास ॥ 231॥

आजि-आज; मोर-मेरी; पूर्ण–पूरी; हैल-हो गई; सर्व-सब; अभिलाष-इच्छाएँ; सार्वभौमेर-सार्वभौम भट्टाचार्य की; हैल-हो गई; महा-प्रसादे-भगवान् के उच्चिष्ट, महाप्रसाद में; विश्वास–विश्वास।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "मेरी समझ में आज मेरी सारी इच्छाएँ पूरी हो गईं, क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि सार्वभौम भट्टाचार्य को जगन्नाथजी के महाप्रसाद में श्रद्धा उत्पन्न हो गई है।"

आजि तुमि निष्कपटे हैला कृष्णाश्रय ।

कृष्ण आजि निष्कपटे तोमा हैल सदय ॥ 232॥

आजि-आज; तुमि-आप; निष्कपटे–बिना आशंका के निस्सन्देह, हैला-हो गये हैं; कृष्ण-आश्रय-भगवान् कृष्ण पर आश्रित; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; आजि-आज; निष्कपटे–बिना किसी सन्देह के; तोमा-आपके प्रति; हैल हो गये हैं; स-दय-बहुत दयालु।

अनुवाद

"निस्सन्देह, आज आपने निष्कपट होकर कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण की है और कृष्ण भी निष्कपट होकर आपके प्रति अत्यन्त दयालु हो गये हैं।"

आजि से खण्डिल तोमार देहादि-बन्धन ।

आजि तुमि छिन्न कैले मायार बन्धन ॥ 233॥

आजि-आज; से-वह; खण्डिल-टूट गया; तोमार-आपका; देह-आदि-बन्धन-देहात्म बुद्धि के कारण भौतिक बन्धन; आजि-आज; तुमि-आप; छिन्न-टुकड़े टुकड़े हो गया; कैले–किया; मायार-माया का; बन्धन–बन्धन।

अनुवाद

"हे प्रिय भट्टाचार्य, आज आप देहात्म-बुद्धि के भौतिक बन्धन से मुक्त हो गये। आपने माया के बन्धन को खण्ड-खण्ड कर दिया है।"

आजि कृष्ण-प्राप्ति-योग्य हैल तोमार मन ।

वेद-धर्म लङ्घि' कैले प्रसाद भक्षण ॥ 234॥

आजि-आज; कृष्ण-प्राप्ति-कृष्ण के चरणकमलों की प्राप्ति के लिए; योग्य-योग्य; हैल-हो गया है; तोमार-आपका; मन–मन; वेद-चार वेदों का; धर्म-धर्म; लङ्खि'–लांघकर; कैले–आपने किया है; प्रसाद-कृष्णप्रसाद; भक्षण-ग्रहण।।

अनुवाद

"आज आपका मन कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने के योग्य हुआ है, क्योंकि आपने वैदिक नियमों का उल्लंघन करके भगवत्-प्रसाद ग्रहण किया है।"

येषां स एष भगवान्दययेदनन्तः

सर्वात्मनाश्रित-पदो यदि निर्व्यलीकम् ।

ते दुस्तरामतितरन्ति च देव-मायां

नैषां ममाहमिति धीः श्व-शृगाल-भक्ष्ये ॥ 235॥

येषाम् पूर्णरूपेण शरणागत आत्माओं को; सः-वे; एषः–यह; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; दययेत् दया दिखाएँ; अनन्तः–अनन्त; सर्व-आत्मना–पूर्णतया, बिना किसी रूकावट के; आश्रित-पदः-भगवान् के आश्रितों पर; यदि-यदि; निर्व्यलीकम्-छल रहित ; ते-ऐसे व्यक्ति; दुस्तराम्-दुस्तर, कठिन; अतितरन्ति–पार करते हैं; च-और; देव-मायाम्- भ्रामक भौतिक शक्ति; न-नहीं; एषाम्-यह; मम अहम्-"मेरा" एवं "मैं"; इति-ऐसी; धीः-बुद्धि; श्व-शृगाल-भक्ष्ये-कुत्तों और गीदड़ों द्वारा खाये जाने योग्य शरीर में।

अनुवाद

"जब मनुष्य निष्कपट भाव से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, तो असीम दयालु भगवान् उस पर अपनी अहैतुकी कृपा दिखलाते हैं। इस तरह वह अज्ञान के दुर्लंघ्य सागर को पार कर सकता है। जिसकी बुद्धि देहात्म-बोध में लगी रहती है और जो यह सोचता है कि, "मैं यह शरीर हूँ" वह कुत्तों तथा सियारों का उपयुक्त भोजन है। परम भगवान् ऐसे व्यक्ति पर कभी कृपा नहीं करते।"

तात्पर्य

भगवान् कभी भी ऐसे लोगों पर कृपा नहीं करते, जो देहात्म-बुद्धि-परायण हैं। जैसे कृष्ण भगवद्गीता (18.66) में स्पष्ट रूप से कहते हैं :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

"सभी प्रकार के धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्त कर दूँगा। डरो मत।"

श्री चैतन्य महाप्रभु ने जो श्लोक (श्रीमद्भागवत 2.7.42) से उधृत किया है, उसमें श्रीकृष्ण के कथन की व्याख्या की गई है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को देहात्म-बुद्धि से उबारने के लिये अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान की। भगवान् ने भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय के प्रारम्भ में ही (2.13) अर्जुन को कृपा प्रदान की, जहाँ उन्होंने कहा- देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। इस शरीर में एक स्वामी होता है और व्यक्ति को शरीर में आत्मबुद्धि नहीं करना चाहिए। यह पहला उपदेश है, जो किसी भी भक्त को आत्मसात् करना चाहिए। यदि वह देहात्म बुद्धि में है, तो वह अपने वास्तविक स्वरूप को समझ पाने और भगवान् की प्रेमाभक्ति करने में असमर्थ रहता है। दिव्य पद प्राप्त किये बिना न तो भगवान् की अहैतुकी कृपा की आशा की जा सकती है, न ही अज्ञान के विशाल सागर को पार किया जा सकता है। भगवान् कृष्ण ने इसकी पुष्टि भगवद्गीता (7.14) में इस प्रकार की है-मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते । कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण किये बिना माया के पाश से मुक्त होने की आशा व्यर्थ है। श्रीमद्भागवत (10.2.32) के अनुसार माया के बन्धन से अपने आपको मुक्त समझने वाले मायावादी संन्यासी विमुक्तमानिन: कहलाते हैं। वास्तव में वे मुक्त नहीं होते, अपितु वे अपने आपको मुक्त समझते हैं और ऐसा मानते हैं कि वे स्वयं नारायण बन गये हैं। यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें यह ज्ञान हो चुका है कि वे भौतिक शरीर नहीं, बल्कि आत्मा हैं, फिर भी वे आत्मा के कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं, जो परमात्मा की सेवा करना है। इसलिए उनकी बुद्धि अशुद्ध रहती है। जब तक मनुष्य की बुद्धि निर्मल नहीं हो जाती, तब तक वह उसका उपयोग भक्ति को समझने में नहीं कर सकता। भक्ति का शुभारम्भ तो तब होता है जब मन, बुद्धि तथा अहंकार पूर्णतया शुद्ध हो जाते हैं। मायावादी संन्यासी अपनी बुद्धि, मन तथा अहंकार को शुद्ध नहीं बनाते, फलस्वरूप वे न तो भगवान् की भक्ति में लग सकते हैं, न ही भगवान् की अहैतुकी कृपा की आशा कर सकते हैं। यद्यपि वे कठिन तपस्या करके अत्यन्त उच्च पद को प्राप्त होते हैं, फिर भी वे इसी भौतिक जगत् में भटकते रहते हैं और उन्हें भगवान् के चरणकमलों का आशीर्वाद नहीं मिल पाता। कभी-कभी वे ब्रह्मज्योति तक उन्नत्ति करते हैं, किन्तु उनके मन शुद्ध न होने के कारण उन्हें भौतिक जगत् में लौटना पड़ता है।

कर्मी पूर्णतया देहात्म-बुद्धि के वशीभूत होते हैं। ज्ञानियों को किताबी ज्ञान तो रहता है कि वे शरीर नहीं हैं, किन्तु निर्विशेषवाद पर अत्यधिक बल देने के कारण उन्हें भी भगवान् के चरणकमलों के विषय में कोई ज्ञान नहीं होता । फलतः कर्मी तथा ज्ञानी दोनों ही भगवान् की कृपा प्राप्त करने और भक्त बनने के लिए अयोग्य होते हैं। इसलिए नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं- ज्ञानकाण्ड कर्मकाण्ड, केवल विषेर भाण्ड-जिन लोगों ने कर्मकाण्ड (सकाम कर्म) तथा ज्ञानकाण्ड (भगवविज्ञान के विषय में तर्कवितर्क) की विधि अपनाई है, समझना चाहिए कि उन्होंने विषैले बर्तन में

भोजन किया है। वे जन्म-जन्मांतर भौतिक जगत् में रहने के लिए अभिशप्त हैं, जब तक कि वे कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं करते। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (7.19) से होती है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।

"जो व्यक्ति वास्तव में ज्ञानवान है, वह अनेक जन्मों के बाद मुझे समस्त कारणों का कारण समझकर मेरी शरण में आता है। ऐसा महात्मा दुर्लभ है।"

एत कहि' महाप्रभु आइला निज-स्थाने ।

सेइ हैते भट्टाचार्येर खण्डिल अभिमाने ॥ 236 ॥

एत कहि' इस प्रकार कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला-लौट गये; निज-स्थाने-अपने निवास स्थान को; सेइ हैते–उस समय से; भट्टाचार्येर–सार्वभौम भट्टाचार्य का; खण्डिल-टूट गया; अभिमाने-झूठा अभिमान।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य से ऐसा कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निवास स्थान लौट आये। उस दिन से भट्टाचार्य मुक्त हो गये, क्योंकि उनका मिथ्या अभिमान टूट चुका था।

चैतन्य-चरण विने नाहि जाने आन ।

भक्ति विनु शास्त्रेर आर ना करे व्याख्यान ॥ 237॥

चैतन्य-चरण-चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; विने–बिना; नाहि-नहीं; जाने-जानते हैं; आन–अन्य; भक्ति-भक्ति; विनु–बिज; शास्त्रेर–शास्त्र की; आर—अन्य; ना-नहीं; करे-करते हैं; व्याख्यान-व्याख्या।

अनुवाद

उस दिन से सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के अतिरिक्त और कुछ नहीं जाना। उस दिन से वे केवल भक्तियोग के अनुसार शास्त्रों की व्याख्या करने लगे।

गोपीनाथाचार्य ताँर वैष्णवता देखियो ।

‘हरि’ ‘हरि’ बलि’ नाचे हाते तालि दिया ॥ 238॥

गोपीनाथ-आचार्य–गोपीनाथ आचार्य, सार्वभौम भट्टाचार्य के साले; ताँर–सार्वभौम भट्टाचार्य की; वैष्णवता-वैष्णवत्व में दृढ़ श्रद्धा; देखिया-देखकर; हरि हरि-भगवान् का पावन नाम ‘हरि हरि’; बलि’–कहकर; नाचे-नृत्य करते; हाते तालि दिया-अपने दोनों हाथों से ताली बजाकर।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य को वैष्णव सम्प्रदाय में दृढ़ता के साथ अवस्थित हुए देखकर उनके बहनोई गोपीनाथ आचार्य नाचने, ताली बजाने और हरि! हरि” का उच्चारण करने लगे।

आर दिन भट्टाचार्य आइला दर्शने ।

जगन्नाथ ना देखि’ आइला प्रभु-स्थाने ॥ 239॥

आर दिन-अगले दिन; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; आइला–आये; दर्शने-भगवान जगन्नाथ का दर्शन करने; जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ; ना देखि’–बिना देखे; आइला-आ गये; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर।

अनुवाद

अगले दिन भट्टाचार्य जगन्नाथ मन्दिर गये, किन्तु मन्दिर पहुँचने के पहले वे चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने गये।

दण्डवत्करि’ कैल बहु-विध स्तुति ।

दैन्य करि’ कहे निज पूर्व-दुर्मति ॥ 240॥

दण्डवत् करि’–दण्डवत् प्रणाम करने के बाद; कैल-उन्होंने की; बहु-विध-कई प्रकार की स्तुति-स्तुतियाँ, दैन्य करि’–अत्यन्त विनम्रता में; कहे-वर्णन किया; निज-अपनी; पूर्व-दुर्मति–पहले की बुरी अवस्था।

अनुवाद

महाप्रभु से मिलने पर भट्टाचार्य ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। विविध प्रकार से उनकी स्तुति करने के बाद उन्होंने अत्यन्त दीन भाव से अपनी पूर्व दुर्मति का वर्णन किया।

भक्ति-साधन-श्रेष्ठ शुनिते हैल मन ।

प्रभु उपदेश कैल नाम-सङ्कीर्तन ॥ 241॥

भक्ति-साधन–भक्ति साधना में; श्रेष्ठ–सर्वश्रेष्ठ बात; शुनिते-सुनने को हैल–था; मन-मन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; उपदेश-उपदेश; कैल-किया; नाम-सङ्कीर्तन-नाम संकीर्तन।

अनुवाद

तत्पश्चात् भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से पूछा, "भक्ति की साधना में कौन-सा कार्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है?" महाप्रभु ने उत्तर दिया कि सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन है।

तात्पर्य

भक्ति को सम्पन्न करने की नौ विधियाँ हैं। श्रीमद्भागवत (7.5.23) के निम्नलिखित श्लोक में इनका वर्णन है :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

भगवान् की महिमा का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, भगवान् के चरणकमलों की सेवा, मन्दिर में पूजा करना, स्तुति करना, भगवान् का दास बनना, भगवान् का सखा बनना तथा भगवान् के चरणकमलों में पूर्णतया आत्मसमर्पण करना-सर्वात्म-निवेदन-भक्ति की ये नौ विधियाँ हैं। भक्तिरसामृतसिन्धु में इनका विस्तार 64 अंगों में किया गया है। जब सार्वभौम भट्टाचार्य ने महाप्रभु से पूछा कि इनमें से कौन-सी विधि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त उत्तर दिया कि भगवान् के पवित्र नाम कीर्तन-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/ हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे-ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। तत्पश्चात् उन्होंने बृहन्नारदीय पुराण (38.126) के निम्नलिखित श्लोक से अपने कथन की पुष्टि की।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ 242॥

हरेः नाम-भगवान् हरि का पावन नाम; हरेः नाम-भगवान् हरि का पावन नाम; हरेः नाम-भगवान् का पावन नाम; एव–निश्चय ही; केवलम् केवल; कलौ-इस कलियुग में; न अस्ति–नहीं है; एव-निश्चित रूप से; न अस्ति–नहीं है; एव-निश्चित रूप से; न अस्ति–नहीं है; एव–निश्चित रूप से; गतिः–साधन; अन्यथा-अन्य और कोई।

अनुवाद

"कलह और दिखावे के इस युग में उद्धार का एकमात्र साधन भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है, अन्य कोई नहीं है, अन्य कोई नहीं है।"

तात्पर्य

चूँकि इस युग के लोग बहुत पतित हैं, इसलिए वे केवल हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन ही कर सकते हैं। इस तरह वे देहात्म-बुद्धि से छुटकारा पा सकते हैं और भगवान् की सेवा में लगने के योग्य बन सकते हैं। जब तक मनुष्य समस्त कल्मषों से शुद्ध नहीं हो जाता, तब तक वह भगवान् की भक्तिमय सेवा में नहीं लग सकता। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (7.28) में हुई

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

"जिन लोगों ने पिछले जन्मों में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये हैं, जिनके पापकर्म पूरी तरह नष्ट हो चुके हैं और जो मोह जनित द्वन्द्व से मुक्त हो चुके हैं, वे दृढ़तापूर्वक मेरी सेवा में लग जाते हैं। कभी-कभी लोग तरुण युवकों तथा युवतीयों को कृष्णभावनामृत आन्दोलन में गम्भीरतापूर्वक कार्य करते देखकर विस्मित हो जाते हैं। पापकर्म-अवैध यौन सम्बन्ध, मांसाहार, नशा तथा जुआ-छोड़कर गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन करने से वे सारे कल्मष से शुद्ध हो चुके होते हैं। इसलिए वे भगवान् की भक्तिमय सेवा में पूरी तरह लग सकते हैं।

इस कलियुग में हरि-कीर्तन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। श्रीमद्भागवत (12.3.51-52) में भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने का महत्त्व बतलाया गया है :

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत ॥

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।

द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्तनात् ॥

“दोषों के सागर समान इस कलियुग में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्य केवल हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करके कल्मषरहित हो सकता है और भगवधाम पहुँचने का पात्र बन सकता है। जो आत्म-साक्षात्कार सत्ययुग में ध्यान से, त्रेता में विभिन्न यज्ञ करने से तथा द्वापर में भगवान् कृष्ण की पूजा करने से प्राप्त किया जाता था, उसे कलियुग में हरे कृष्ण का कीर्तन करने से प्राप्त किया जा सकता है।”

एइ श्लोकेर अर्थ शुनाइल करिया विस्तार ।

शुनि’ भट्टाचार्य-मने हैल चमत्कार ॥ 243॥

एइ श्लोकेर–इस श्लोक का; अर्थ–अर्थ; शुनाइल--सुनाया; करिया-करके; विस्तार विस्तार करके; शुनि’–सुनकर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य के; मने-मन में; हैल-हो गया; चमत्कार–चमत्कार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने बृहन्नारदीय-पुराण के हरेर्नाम श्लोक की विस्तार से व्याख्या की। सार्वभौम भट्टाचार्य उनकी व्याख्या सुनकर चकित रह गये।

गोपीनाथाचार्य बले,—‘आमि पूर्वे ये कहिले ।

शुन, भट्टाचार्य, तोमार सेइ त’ हइल’ ॥244॥

गोपीनाथ-आचार्य–गोपीनाथ आचार्य; बले-कहते हैं; आमि-मैं; पूर्वे-पहले, पूर्वसमय में; ये-जो; कहिल-कहा; शुन-सुनो; भट्टाचार्य–मेरे प्रिय भट्टाचार्य; तोमार-आपके साथ; सेइ-वह; त’–निस्सन्देह; ह-इल-घटित हुआ है।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने सार्वभौम भट्टाचार्य को स्मरण कराया, “प्रिय भट्टाचार्य, मैंने आपसे जो कुछ पहले कहा था, अब वह घटित हो गया।”

तात्पर्य

गोपीनाथ आचार्य ने इसके पूर्व सार्वभौम भट्टाचार्य को बतलाया था कि जब उन्हें महाप्रभु की कृपा प्राप्त होगी, तभी वे भक्तियोग की दिव्य प्रक्रिया को भलीभाँति समझ सकेंगे। अब यह भविष्यवाणी पूरी हो चुकी थी। अब भट्टाचार्य पूरी तरह से वैष्णव बन चुके थे और बिना किसी दबाव के स्वतः सारे नियमों का पालन कर रहे थे। इसीलिए भगवद्गीता (2.40) में कहा गया है- स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्-"केवल थोड़ी-सी भक्ति करके मनुष्य महान् से महान् संकट से बच सकता है।" सार्वभौम भट्टाचार्य विकट संकट में थे, क्योंकि वे मायावादी दर्शन के कट्टर अनुयायी थे। किन्तु किसी प्रकार वे श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्पर्क में आये और शुद्ध भक्त बन गये। इस तरह से वे निर्विशेषवाद के महान् गर्त में गिरने से बचा लिए गये।

भट्टाचार्य कहे ताँरे करि' नमस्कारे ।

तोमार सम्बन्धे प्रभु कृपा कैल मोरे ॥ 245 ॥

भट्टाचार्य कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; ताँरे–गोपीनाथ आचार्य को; करि'-करके; नमस्कारे-नमस्कार; तोमार सम्बन्धे-आपसे सम्बन्ध के कारण; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कृपा-कृपा; कैल-दिखाई; मोरे–मुझ पर।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य को नमस्कार करते हुए भट्टाचार्य ने कहा, "मैं आपका सम्बन्धी हूँ और आप भक्त हैं, अतएव आपकी कृपा से महाप्रभु ने मुझ पर कृपा की है।"

तुमि—महाभागवत, आमि—तर्क-अन्धे ।

प्रभु कृपा कैल मोरे तोमार सम्बन्धे ॥ 246 ॥

तुमि-आप; महा-भागवत–उत्तम श्रेणी के भक्त; आमि-मैं; तर्क-अन्धे–तर्कों के अन्धकार में प्रभु-भगवान्; कृपा-कृपा; कैल-दिखाई; मोरे-मुझ पर; तोमार-आपके; सम्बन्धे-सम्बन्ध से।

अनुवाद

"आप महाभागवत (उच्च कोटि के भक्त) हैं और मैं तर्कशास्त्र के अन्धकार में पड़ा हुआ व्यक्ति। किन्तु भगवान् के साथ आपका सम्बन्ध होने के कारण भगवान् ने मुझे अपना आशीर्वाद प्रदान किया है।"

विनय शुनि' तुष्टये प्रभु कैल आलिङ्गन ।

कहिल,—याञा करह ईश्वर दरशन ॥ 247 ॥

विनय शुनि'–सार्वभौम भट्टाचार्य की यह विनम्र बात सुनकर; तुष्ट्ये-तुष्ट होकर; प्रभु–महाप्रभु; कैल–किया; आलिङ्गन-आलिंगन; कहिल-कहा; याञा-जाकर; करह-करो; ईश्वर दरशन-भगवान जगन्नाथ के मन्दिर में दर्शन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इस विनीत वचन से अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने भट्टाचार्य का आलिंगन करके उनसे कहा, "अब आप मन्दिर में भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने जाएँ।"

जगदानन्द दामोदर,—दुइ सङ्गे लञा ।

घरे आइल भट्टाचार्य जगन्नाथ देखिया ॥ 248॥

जगदानन्द-जगदानन्द; दामोदर-दामोदर; दुइ-दो व्यक्ति; सङ्गे–उनके साथ; लञा–लेकर; घरे-अपने घर को; आइल-लौट आये; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ को; देखिया–मन्दिर में देखकर।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर के दर्शन करने के बाद सार्वभौम भट्टाचार्य जगदानन्द तथा दामोदर के साथ घर लौट आये।

उत्तम उत्तम प्रसाद बहुत आनिला ।

निज-विप्र-हाते दुइ जना सङ्गे दिला ॥ 249॥

उत्तम उत्तम–उत्तम; प्रसाद-जगन्नाथ को अर्पित भोजन का शेष; बहुत-बहुत; आनिला–लाये; निज-विप्र-अपने निजी ब्राह्मण सेवक के; हाते-हाथ में; दुइ-दोनों; जना व्यक्तियों; सङ्गे उसके साथ; दिला दिया।

अनुवाद

भट्टाचार्य अपने साथ भगवान जगन्नाथ का बहुत-सा सर्वोत्तम प्रसाद ले आये थे। उन्होंने यह सारा प्रसाद अपने ब्राह्मण सेवक तथा जगदानन्द और दामोदर को दे दिया।

निज कृत दुइ श्लोक लिखिया ताल-पाते ।

‘प्रभुके दिह’ बलि’ दिल जगदानन्द-हाते ॥ 250॥

निज-स्वयं; कृत-रचित; दुइ-दो; श्लोक-श्लोक; लिखिया-लिखकर; ताल-पाते-ताल पत्र पर; प्रभुके दिह-श्री चैतन्य महाप्रभु को दीजिये; बलि’-यह कहकर; दिल-इसे दिया; जगदानन्द-हाते-जगदानन्द के हाथों में।

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने ताड़पत्र पर दो श्लोकों की रचना की और वह ताड़पत्र जगदानन्द प्रभु को देते हुए उनसे प्रार्थना की कि वे उसे श्री चैतन्य महाप्रभु को दे दें।

प्रभु-स्थाने आइला दुँहे प्रसाद-पत्री लञा ।

मुकुन्द दत्त पत्री निल तार हाते पाञा ॥ 251॥

प्रभु-स्थाने-चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान पर; आइला–लौट गये; दुँहे जगदानन्द और दामोदर दोनों; प्रसाद–प्रसाद; पत्री-ताल पत्र; लञा-लेकर; मुकुन्द दत्त-मुकुन्द दत्त; पत्री-तालपत्र; निल–लिया; तार–जगदानन्द के; हाते-हाथ में; पाञा–लेकर।

अनुवाद

तब जगदानन्द तथा दामोदर प्रसाद तथा वह लिखा ताड़पत्र लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु के पास लौट आये। किन्तु मुकुन्द दत्त ने वह ताड़पत्र महाप्रभु को दिये जाने के पूर्व ही जगदानन्द के हाथ से ले लिया।

दुइ श्लोक बाहिर-भिते लिखिया राखिल ।

तबे जगदानन्द पत्री प्रभुके लञा दिल ॥ 252॥

दुइ-दो; श्लोक-श्लोक; बाहिर–बाहर; भिते-दीवार पर; लिखिया-लिखकर; राखिल-रखे; तबे-तत्पश्चात्; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; पत्री-तालपत्र; प्रभुके-महाप्रभु को; लञा–लाकर; दिल-दिया।

अनुवाद

तब मुकुन्द दत्त ने कमरे की बाहरी दीवाल पर दोनों श्लोकों को लिख दिये। इसके बाद जगदानन्द ने मुकुन्द दत्त से ताड़पत्र ले लिया और उसे श्री चैतन्य महाप्रभु को दे दिया।

प्रभु श्लोक पड़ि' पत्र छिण्डिया फेलिल ।

भित्ये देखि' भक्त सब श्लोक कण्ठे कैल ॥ 253॥

प्रभु–महाप्रभु; श्लोक-श्लोक; पड़ि'–पढ़कर; पत्र-तालपत्र; छिण्डिया-टुकड़े टुकड़े करके; फेलिल–फेंक दिया; भित्ये-बाहर की दीवार पर; देखि'–देखकर; भक्त-भक्तगण; सब–सभी; श्लोक-श्लोक; कण्ठे–कंठस्थ; कैल–कर लिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने दोनों श्लोकों को पढ़ते ही ताड़पत्र को तुरन्त फाड़ डाला। किन्तु सारे भक्तों ने बाहरी दीवाल पर इन श्लोकों को पढ़े और उन्हें कण्ठस्थ कर लिये। ये श्लोक इस प्रकार थे।

वैराग्य-विद्या-निज-भक्ति-योग-

शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः ।

श्री-कृष्ण-चैतन्य-शरीर-धारी

कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥ 254॥

वैराग्य-जिससे कृष्णभावना विकसित नहीं होती उन सब चीजों से वैराग्य; विद्या-ज्ञान; निज-अपना; भक्ति-योग-भक्तियोग; शिक्षा-अर्थम्-शिक्षा देने के लिए; एकः-एक व्यक्ति; पुरुषः-परम पुरुष; पुराणः-अत्यन्त पुरातन अथवा शाश्वत; श्रीकृष्ण-चैतन्य–श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु; शरीर-धारी-देह धारण करके; कृपा-अम्बुधिः-दिव्य कृपा के सागर; ग्रः-जो; तम्-उनकी; अहम्-मैं; प्रपद्ये-शरण में जाता हूँ।

अनुवाद

"मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करता हूँ, जो हमें वास्तविक ज्ञान, अपनी भक्ति तथा कृष्णभावनामृत के विकास में बाधक वस्तुओं से विरक्ति सिखलाने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए हैं। वे दिव्य कृपा के सिन्धु होने के कारण अवतरित हुए हैं। मैं उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ।"

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगला श्लोक श्री कवि-कर्णपूर-कृत चैतन्य-चन्द्रोदय नाटक (6.74-75) में पाये जाते हैं।

कालान्नष्टं भक्ति-योगं निजं यः

प्रादुष्कर्तुं कृष्ण-चैतन्य-नामा ।

आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे

गाढं गाढं लीयतां चित्त-भृङ्गः ॥255॥

कालात्-भौतिक मनोवृत्तियों और सकाम कर्म तथा शुष्क ज्ञान के चिर काल तक दुरुपयोग से; नष्टम्-नष्ट; भक्ति-योगम्-भक्तियोग का विज्ञान; निजम्-जो केवल उन्हीं पर लागू होती है; यः–जो; प्रादुष्कर्तुम् पुनः जागृत करने हेतु; कृष्ण-चैतन्य-नामा-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु नामक; आविर्भूतः-जो प्रकट हुए हैं; तस्य-उनके; पाद-अरविन्दे-चरणकमलों में; गाढ़म् गाढ़म्-अत्यन्त घनिष्ठता से; लीयताम्-लीन हो जाये; चित्त-भृङ्गः–मधु-मक्खी की भाँति मेरी चेतना।

अनुवाद

"मधुकर के समान मेरी चेतना उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करे, जो अब श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के रूप में अपने प्रति प्राचीन भक्तियोग की शिक्षा देने के लिए प्रकट हुए हैं। यह भक्तियोग समय के प्रभाव से लुप्तप्राय हो चुका था।"

तात्पर्य

भगवद्गीता (4.7) में भगवान् कृष्ण द्वारा कहा गया है :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

"जब जब धार्मिक प्रथा का ह्रास और अधर्म की प्रधानता होती है, तब तब हे भरतवंशी, मैं अवतरित होता हूँ।"

चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के विषय में भी यही बात लागु होती है। श्री चैतन्य महाप्रभु इस जगत् में कृष्ण के प्रच्छन्न अवतार के रूप में प्रकट हुए, किन्तु उनके आविर्भाव की पुष्टि श्रीमद्भागवत, महाभारत तथा अन्य वैदिक शास्त्रों से होती है। वे इस जगत् के पतितात्माओं को शिक्षा देने के लिए प्रकट हुए, क्योंकि इस कलियुग में प्रायः हर व्यक्ति सकाम तथा अनुष्ठान-कर्मों में एवं मानसिक तर्क में लिप्त है। अतएव भक्तियोग को पुनर्जीवित करने की नितान्त आवश्यकता थी। इसीलिए भगवान् स्वयं भक्त-वेश में अवतरित हुए, जिससे पतित जनसमूह भगवान् के दृष्टान्त से लाभ उठा सके।

भगवद्गीता के अन्त में भगवान् कृष्ण ने अपने भक्त को पूर्ण आत्मसमर्पण का परामर्श देते हुए उसे संरक्षण देने का वचन दिया। दुर्भाग्यवश लोग इतने पतित हो गये हैं कि वे भगवान् कृष्ण के आदेशों को स्वीकार नहीं कर सकते। अतएव उसी उद्देश्य से कृष्ण पुनः अवतरित हुए, किन्तु उन्होंने यह कार्य भिन्न प्रकार से सम्पन्न किया। उन्होंने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में हमें आदेश दिया कि हम उनकी शरण ग्रहण करें, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के रूपमें उन्होंने हमें कृष्ण की शरण स्वीकार करने की विधि की शिक्षा दी। इसीलिए गोस्वामियों ने उनकी प्रशंसा इस प्रकार की है- नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते । भगवान् श्रीकृष्ण निश्चय ही परमेश्वर हैं, किन्तु वे श्री चैतन्य महाप्रभु के समान उदार नहीं हैं। भगवान् कृष्ण ने मनुष्य को केवल यही आदेश दिया कि मेरे भक्त बनो (मन्मना भव मद्भक्तो), किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्णभावनामृत की विधि वास्तव में सिखलाई। यदि कोई भगवान् कृष्ण का भक्त बनना चाहता है, तो सर्वप्रथम उसे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी होगी, जैसाकि सार्वभौम भट्टाचार्य तथा अन्य उन्नत्त भक्तों ने किया।

एइ दुइ श्लोक—भक्त-कण्ठे रत्न-हार ।

सार्वभौमेर कीर्ति घोषे ढक्का-वाद्याकार ॥ 256 ॥

एइ दुइ श्लोक-ये दो श्लोक; भक्त-कण्ठे-भक्तों के कंठ में; रत्न-हार-मोती (रत्न) के हार; सार्वभौमेर-सार्वभौम भट्टाचार्य की; कीर्ति-कीर्ति; घोषे–घोषित करना; ढक्का-ढोल के; वाद्यवादन के; आकार रूप में।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा रचित ये दोनों श्लोक उनके नाम तथा यश की घोषणा ढोल की थाप के समान उच्च स्वर से सदैव करते रहेंगे, क्योंकि ये श्लोक सारे भक्तों के कंठ का रत्नहार बन चुके हैं।

सार्वभौम हैला प्रभुर भक्त एकतान ।

महाप्रभुर सेवा-विना नाहि जाने आन ॥ 257॥

सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; हैला–हो गये; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-भक्त; एकतानएकनिष्ठ; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; सेवा–सेवा; विना-के अतिरिक्त; नाहि-नहीं; जाने-जानते; आन-कुछ और।

अनुवाद

निस्सन्देह, सार्वभौम भट्टाचार्य चैतन्य महाप्रभु के अनन्य भक्त बन गये। महाप्रभु की सेवा के अतिरिक्त वे दूसरा कुछ भी नहीं जानते थे।

'श्री-कृष्ण-चैतन्य शची-सूत गुण-धाम' ।

एइ ध्यान, एइ जप, लय एइ नाम ॥ 258॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु; शची-सूत–माता शची के पुत्र; गुण-धाम-सारे गुणों के आगार; एइ–यह; ध्यान-ध्यान; एइ-यह; जप-कीर्तन; लय-वे लेते हैं; एइ–यही; नाम-पावन नाम।

अनुवाद

भट्टाचार्य सदैव माता शची के पुत्र एवं समस्त सद्गुणों के आगार श्रीकृष्ण चैतन्य के नाम का कीर्तन करते थे। निस्सन्देह नाम-कीर्तन ही उनका ध्यान बन गया।

एक-दिन सार्वभौम प्रभु-आगे आइला ।

नमस्कार करि' श्लोक पड़िते लागिला ॥259॥

एक-दिन-एक दिन; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य, प्रभु-आगे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष; आइला–आये; नमस्कार करि'-नमस्कार करके; श्लोक-एक श्लोक; पड़िते लागिला–पढ़ने लगे।

अनुवाद

एक दिन सार्वभौम भट्टाचार्य चैतन्य महाप्रभु के समक्ष आये और नमस्कार करने के बाद एक श्लोक सुनाने लगे।

भागवतेर 'ब्रह्म-स्तवे'र श्लोक पड़िला।

श्लोक-शेषे दुइ अक्षर-पाठ फिराइला॥ 260॥

भागवतेर–श्रीमद्भागवत से; ब्रह्म-स्तवेर-ब्रह्माजी की स्तुतियों का; श्लोक-एक श्लोक; पड़िला-पढ़ा; श्लोक-शेषे–श्लोक के अन्त में; दुइ अक्षर-दो अक्षरों का; पाठ-पाठ; फिराइला-बदल दिया।

अनुवाद

वे श्रीमद्भागवत से ब्रह्माजी की एक स्तुति सुनाने लगे, किन्तु उन्होंने श्लोक के अन्तिम दो अक्षरों को बदल दिया।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो

भुञ्जान एवात्म-कृतं विपाकम्।

द्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते

जीवेत यो भक्ति-पदे स दाय-भाक्॥ 261॥

तत्-अतः; ते-आपकी; अनुकम्पाम्-दया; सुसमीक्षमाणः-की आशा करते हुए; भुञ्जानः-सहन करते हुए; एव–निश्चित रूप से; आत्म-कृतम्-अपने कर्मों का; विपाकम्-कर्मफल; हृत् हृदय से; वाक्-वाणी से; वपुर्भिः-और शरीर से; विदधन्-अर्पित करते हुए; नमः-नमस्कार; ते-आपको; जीवेत–जीवित रहे; यः-जो कोई; भक्ति-पदे-भक्ति में; सः-वह; दाय-भाक्-अधिकारी।

अनुवाद

[यह श्लोक था] "जो आपकी अनुकम्पा चाहता है और अपने विगत कर्मों से उत्पन्न सभी प्रकार की विपरीत परिस्थितियों को सहन करता है, जो मन, वचन तथा शरीर से सदैव आपकी सेवा में संलग्न रहता है और जो सदैव आपको नमस्कार करता है, वह निश्चय ही आपका अनन्य भक्त बनने का पात्र है।"

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्रीमद्भागवत (10.14.8) के इस श्लोक को पढ़ते समय मुक्तिपदे को बदलकर भक्तिपदे कर दिया। मुक्ति का अर्थ है मोक्ष और निर्विशेष ब्रह्मतेज में समा जाना; भक्ति का अर्थ है पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य सेवा करना। शुद्ध भक्ति विकसित हो जाने के कारण भट्टाचार्य को मुक्तिपदे शब्द नहीं भाया, जो कि भगवान् के निर्विशेष ब्रह्म पहलू का द्योतक है। किन्तु उन्हें श्रीमद्भागवत का एक भी शब्द बदलने का अधिकार नहीं था, जैसाकि चैतन्य महाप्रभु बतलायेंगे। यद्यपि सार्वभौम ने भक्ति के आवेश में शब्द बदल दिया था, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसकी संस्तुति नहीं की।

प्रभु कहे, 'मुक्ति-पदे'—इहा पाठ हय ।

'भक्ति-पदे' केने पड़, कि तोमार आशय ॥ 262॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; मुक्ति-पदे-"मुक्ति पदे" शब्द; इहा-यह; पाठ-पाठ; हय-है; भक्ति-पदे-"भक्ति पदे"; केने-क्यों; पड़-आप पढ़ते हो; कि-क्या; तोमार-आपका; आशय-आशय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त आपत्ति की, "उस श्लोक में 'मुक्तिपदे' शब्द आया है, किन्तु आपने इसे बदलकर 'भक्तिपदे' कर दिया है। आप क्या कहना चाहते हैं?"

भट्टाचार्य कहे,—'भक्ति'-सम नहे मुक्ति-फल ।

भगवद्भक्ति-विमुखेर हय दण्ड केवल ॥ 263 ॥

भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य ने; कहे-कहा; भक्ति-भक्ति; सम-समान; नहे-नहीं; मुक्ति-मुक्ति का; फल-फल; भगवत्-भक्ति-भगवद् भक्ति; विमुखेर-जो विमुख है; हय-है; दण्ड–दण्ड; केवल–केवल।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "शुद्ध भगवत्प्रेम का उदय जो भक्ति का फल है, वह भौतिक बन्धन की मुक्ति से कहीं बढ़कर है। जो भक्ति से विमुख हैं, उनके लिए ब्रह्मतेज में समा जाना एक प्रकार का दण्ड है।"

तात्पर्य

ब्रह्माण्ड-पुराण में कहा गया है :

सिद्धलोकस्तु तमसः पारे यत्र वसन्ति हि ।

सिद्धा ब्रह्मसुखे मग्ना दैत्याश्च हरिणा हताः ॥

"सिद्धलोक (ब्रह्मलोक) में दो प्रकार के जीव रहते हैं-वे जो पूर्वजन्मों में असुर होने के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा मारे जाते हैं तथा वे जो भगवान् के निर्विशेष तेज का भोग करना चाहते हैं।" तमसः शब्द का अर्थ है "ब्रह्माण्ड के आवरण।" भौतिक तत्त्वों की परतें ब्रह्माण्ड को आच्छादित करती हैं और निर्विशेष ब्रह्मतेज इन परतों के बाहर होता है। यदि कोई भगवान् के निर्विशेष तेज में ही रहने का इच्छुक है, तो वह भगवान् की सेवा करने के अवसर से वंचित रहता है। इसीलिए भक्तगण निर्विशेष ब्रह्मतेज में समाने को एक प्रकार का दण्ड ही मानते हैं। कभी-कभी भक्तगण ब्रह्मतेज में समा जाने के विषय में सोचते हैं; अतएव वे सिद्धलोक को प्राप्त होते हैं। अपनी निर्विशेष समझ के कारण वास्तव में उन्हें दण्ड मिलता है। सार्वभौम भट्टाचार्य अगले श्लोकों में मुक्तिपद तथा भक्तिपद का अन्तर बताना जारी रखते हैं।

कृष्णेर विग्रह येइ सत्य नाहि माने ।

येइ निन्दा-युद्धादिक करे ताँर सने ॥ 264॥

सेइ दुइर दण्ड हय—'ब्रह्म-सायुज्य-मुक्ति' ।

तार मुक्ति फल नहे, येइ करे भक्ति ॥ 265॥

कृष्णेर- भगवान् श्रीकृष्ण का; विग्रह-दिव्य रूप; येइ-जो कोई; सत्य-सत्य; नाहि-नहीं; माने-मानता; येइ-जो कोई; निन्दा-निन्दा; मुद्ध-आदिक-युद्ध आदि; करे-करता है; ताँर सने-उनके साथ (श्रीकृष्ण के साथ); सेइ-ये; दुर-दोनों को; दण्ड हय–दण्ड मिलता है; ब्रह्म-सायुज्य-मुक्ति-ब्रह्मज्योति में लीन होकर; तार-उसकी; मुक्ति-ऐसी मुक्ति; फल-फल; नहे-नहीं; येइ-जो; करे-करता है; भक्ति-भक्ति।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने आगे कहा, "भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य रूप को न मानने वाले निर्विशेषवादी तथा भगवान् की निन्दा करने और उनसे सदैव युद्ध करने वाले असुर ब्रह्मज्योति में समाकर दण्डित होते हैं। किन्तु जो व्यक्ति भगवान् की भक्तिमयी सेवा में लगा रहता है, उसके साथ ऐसा नहीं होता।"

यद्यपि से मुक्ति हय पञ्च-परकार।

सालोक्य-सामीप्य-सारूप्य-सार्ष्टि-सायुज्य आर ॥266॥

यद्यपि यद्यपि; से-वह; मुक्ति-मुक्ति; हय-है; पञ्च-परकार–पाँच प्रकार की; सालोक्य-सालोक्य नामक; सामीप्य–सामीप्य नामक; सारूप्य-सारूप्य नामक; सार्ष्टि-सार्ष्टि नामक; सायुज्य-सायुज्य; आर-और।

अनुवाद

"मुक्ति पाँच प्रकार की है-सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि तथा सायुज्य।"

तात्पर्य

सालोक्य का अर्थ है भौतिक मुक्ति के बाद उस लोक को जाना जहाँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् निवास करते हैं। सामीप्य का अर्थ है पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का पार्षद बनना। सारूप्य का अर्थ है भगवान् जैसा चतुर्भुज रूप प्राप्त करना। सार्ष्टि का अर्थ है भगवान् जैसा ऐश्वर्य प्राप्त करना। सायुज्य का अर्थ है भगवान् के ब्रह्मतेज में समा जाना। ये मुक्ति के पाँच प्रकार हैं।

'सालोक्यादि' चारि यदि हय सेवा-द्वार।

तबु कदाचित्भक्त करे अङ्गीकार ॥ 267॥

सालोक्य-आदि-सालोक्य आदि; चारि-चार प्रकार की मुक्ति; यदि-यदि; हय-है; सेवा-द्वार-भगवान् की सेवा करने का साधन; तबु–फिर भी; कदाचित् कदाचित्; भक्त-शुद्ध भक्त; करे-करता है; अङ्गीकार–स्वीकार।

अनुवाद

"यदि शुद्ध भक्त को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा करने का अवसर मिले, तो वह कभी-कभी सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य या सार्ष्टि मुक्ति को तो स्वीकार करता है, किन्तु सायुज्य को कभी नहीं।"

'सायुज्य' शुनिते भक्तेर हय घृणा-भय।

नरक वाञ्छये, तबु सायुज्य ना लय ॥ 268॥

सायुज्य–ब्रह्मज्योति में लीन होकर मुक्ति; शुनिते-सुनने में भी; भक्तेर-भक्त को; हय-है; घृणा-घृणा; भय-भय; नरक-नरक; वाञ्छये वह चाहता है; तबु तथापि; सायुज्य–सायुज्य (भगवान् की ज्योति में लीन होकर); ना लय-नहीं स्वीकार करना।

अनुवाद

"शुद्ध भक्त तो सायुज्य मुक्ति का नाम भी सुनना नहीं चाहता, क्योंकि उससे उसे भय तथा घृणा उत्पन्न होते हैं। निस्सन्देह, शुद्ध भक्त भगवान् के तेज में समा जाने की अपेक्षा नरक जाना पसन्द करेगा।"

तात्पर्य

श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती का कथन है- कैवल्यं नरकायते। निर्विशेषवादियों की भगवान् के तेज के साथ एक हो जाने की धारणा नरक तुल्य है। अतएव पाँच प्रकार की मुक्तियों में से प्रथम चार (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सार्ष्टि) उतनी अवांछनीय नहीं हैं, क्योंकि ये भगवान् की सेवा का साधन बन सकती हैं। किन्तु कृष्ण का शुद्ध भक्त इनका भी अस्वीकार कर देता है; वह तो जन्म-जन्मांतर कृष्ण की सेवा में ही लगे रहना चाहता है। वह जन्म के चक्र को रोकने का अधिक इच्छुक नहीं होता, क्योंकि वह नारकीय अवस्था में भी भगवान् की सेवा करने का इच्छुक बना रहता है। इसीलिए शुद्ध भक्त सायुज्य मुक्ति से घृणा करता है और उससे भयभीत रहता है। सायुज्य मुक्ति भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति के प्रति अपराध के कारण प्राप्त होती है; इसीलिए शुद्ध भक्त के लिए यह वांछनीय नहीं है।

ब्रह्मे, ईश्वरे सायुज्य दुइ त' प्रकार।

ब्रह्म-सायुज्य हैते ईश्वर-सायुज्य धिक्कार॥ 269॥

ब्रह्मे–ब्रह्मज्योति में; ईश्वरे-भगवान् के शरीर में; सायुज्य-लीन होना; दुई–दोनों; त'–निस्सन्देह; प्रकार-प्रकार; ब्रह्म-सायुज्य–ब्रह्मज्योति में लीन होना; हैते–की अपेक्षा; ईश्वर-सायुज्य–ईश्वर के शरीर में लीन होना; धिक्कार-अधिक निन्दनीय है।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने आगे कहा, "सायुज्य मुक्ति दो प्रकार की है-ब्रह्मतेज में समा जाना और भगवान् के शरीर में समा जाना। भगवान् के शरीर में समा जाना तो उनके तेज में समा जाने से भी अधिक निन्दनीय है।

तात्पर्य

मायावादी वेदान्तियों के अनुसार, जीव की चरम सफलता निर्विशेष ब्रह्म में समा जाना है। निर्विशेष ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर का शारीरिक तेज ब्रह्मलोक या सिद्धलोक के नाम से विख्यात है। ब्रह्म-संहिता (5.40) के अनुसार- यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि–भौतिक ब्रह्माण्ड पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर की किरणों से उत्पन्न होते हैं। पतंजलि के नियमों का पालन करने वाले योगी परम सत्य के व्यक्तित्व को तो मानते हैं, किन्तु वे भगवान् के दिव्य शरीर में समा जाना चाहते हैं। यही उनकी मनोकामना रहती है। भगवान् सबसे महान् अधिकारी होने के कारण लाखों जीवों को आसानी से अपने शरीर में समा जाने दे सकते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही सारी वस्तुओं के उद्गम हैं। और उनका शारीरिक तेज ब्रह्मज्योति, ब्रह्मलोक या सिद्धलोक कहलाता है। इस तरह ब्रह्मलोक या सिद्धलोक ऐसा स्थान है, जहाँ स्फुलिंग के समान अनेक जीव एकत्र हैं, जो भगवान् के अंश हैं। चूँकि ये जीव अपना अलग अस्तित्व बनाये रखना नहीं चाहते, अतएव उन सबको मिलाकर ब्रह्मलोक में रहने दिया जाता है, जिस प्रकार सूर्य से निकलने वाली किरणों में अनेक परमाणु कण रहते हैं।

सिद्ध शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सिद्ध उस व्यक्ति का सूचक है, जिसे ब्रह्मतेज का साक्षात्कार हो चुका है और जिसे इसका पूर्ण ज्ञान होता है कि जीव भौतिक परमाणु नहीं, अपितु आध्यात्मिक स्फुलिंग है। भगवद्गीता में इसे ब्रह्मभूत कहा गया है। बद्ध अवस्था में जीव जीवभूत कहलाता है अर्थात् "पदार्थ के भीतर प्राण शक्ति।" ब्रह्मभूत जीवों को ब्रह्मलोक या सिद्धलोक में रहने दिया जाता है, किन्तु दुर्भाग्यवश कभी-कभी उनका भौतिक जगत् में पुनः पतन हो जाता है, क्योंकि वे भक्तिमयी सेवा में लगे हुए नहीं हैं। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत के श्लोक (10.2.32) द्वारा की गई है- येऽन्येऽरविन्दाक्ष। ये आधे मुक्त जीव मुक्त होने का झूठा दावा करते हैं, किन्तु जब तक भगवान् की भक्तिमयी सेवा नहीं की जाती, तब तक जीव भौतिक रूप में दूषित बना रहता है। इसीलिए ये जीव विमुक्तमानिन: कहे गये हैं, जिसका अर्थ यह है। कि वे अपने आपको भ्रान्तिवश मुक्त मानते हैं, यद्यपि उनकी बुद्धि अभी भी निर्मल नहीं हुई है। यद्यपि ये जीव सिद्धलोक तक पहुँचने के लिए कठिन तपस्या करते हैं, किन्तु वे वहाँ स्थायी रूप से नहीं रह सकते, क्योंकि वे आनन्द से विहीन होते हैं। ये जीव ब्रह्मभूत स्थिति पर होने पर भी तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शारीरिक तेज के रूप में

भगवत्-साक्षात्कार करने पर भी भगवान् की सेवा की उपेक्षा करने के कारण नीचे गिर जाते हैं। उन्हें पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् के विषय में जो थोड़ा-बहुत ज्ञान होता है, उसका वे ठीक से उपयोग नहीं कर पाते। आनन्द से वंचित रहने के कारण वे भौतिक जगत् का भोग करने के लिए नीचे आ जाते हैं। यह अवश्य ही मुक्त लोगों के लिए पतन है। भक्तगण ऐसे पतन को नरक जाने के समान मानते हैं।

पतंजलि योग के अनुयायी वास्तव में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर में समा जाना चाहते हैं। इसका अर्थ यह है कि वे भगवान् के विषय में जानते हुए भी उनकी सेवा नहीं करना चाहते। अतएव इनकी स्थिति तो उनसे भी बदतर है, जो भगवान् के तेज में समा जाना चाहते हैं। ये योगी भगवान् के शरीर में समा जाने हेतु भगवान् विष्णु के चतुर्भुज रूप पर ध्यान करते हैं। पतंजलि-पद्धति में भगवान् के स्वरूप को-क्लेश-कर्म-विपाकाशयैर परामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वर: कहा गया है, अर्थात् "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ऐसे व्यक्ति हैं, जो कष्टमय भौतिक जीवन के भागी नहीं होते।" योगीजन अपने मन्त्र में परम पुरुष की शाश्वतता को स्वीकार करते हैं- स पूर्वेषामपि गुरु: कालानवच्छेदात् अर्थात् "ऐसा व्यक्ति सर्वोच्च होता है और काल के द्वारा प्रभावित नहीं होता।" इस तरह पतंजलि-पद्धति के अनुयायी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शाश्वतता को स्वीकार करते हैं तथापि उनके अनुसार- पुरुषार्थशून्यानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति। वे मानते हैं कि सिद्ध अवस्था में पुरुष की धारणा का लोप हो जाता है। उनके वर्णन के अनुसार चितिशक्तिरिति। उनका विश्वास है कि पूर्ण बन जाने पर कोई भी पुरुष नहीं बना रह सकता। यह योग-पद्धति इसीलिए निन्दनीय है, क्योंकि इसकी अन्तिम धारणा निर्विशेष है। ये योगी प्रारम्भ में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को मानते हैं, किन्तु अन्त में निर्विशेष बनने के लिए वे इस विचार को त्याग देते हैं। ये सबसे बड़े अभागे हैं, क्योंकि परम सत्य की साकार धारणा से अवगत होते हुए भी वे भगवान् की भक्तिमयी सेवा की उपेक्षा करते हैं और इस तरह पुन: इस भौतिक जगत् में आ गिरते हैं। जैसा ऊपर कहा गया है, इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (10.2.32) द्वारा होती है-आरुह्यकृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदघ्रयः-भगवान् के चरणकमलों की उपेक्षा करने के कारण ये योगी पुनः भौतिक जगत् में आ गिरते हैं (पतन्त्यधः)। अतएव योग का यह मार्ग निर्विशेषवादियों के मार्ग से भी बदतर है। इसकी पुष्टि भगवान् कपिलदेव के कथन से भी होती है, जो श्रीमद्भागवत के निम्नलिखित श्लोक (3.29.13) में व्यक्त हुआ है।

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥ 270 ॥

सालोक्य-भगवान् के लोक में रहने की मुक्ति; सार्ष्टि-भगवान् जैसा ऐश्वर्य प्राप्त करना; सामीप्य–सदा भगवान् की संगति में रहना; सारूप्य-भगवान् के जैसे शरीर को प्राप्त करना; एकत्वम्-भगवान् के शरीर में लीन हो जाना; अपि-यद्यपि, उत–कहा जाता है; दीयमानम्-दी जाती है; न-नहीं; गृह्णन्ति–स्वीकार करता; विना-बिना; मत्-मेरी; सेवनम्-सेवा; जनाः-शुद्ध भक्त।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने अन्त में कहा, "समस्त प्रकार की मुक्तियाँ प्रदान किये जाने पर भी शुद्ध भक्त उन्हें स्वीकार नहीं करता। वह भगवान् की सेवा में लगे रहने से ही सन्तुष्ट रहता है।"

प्रभु कहे,—'मुक्ति-पदे'र आर अर्थ हय ।

मुक्ति-पद-शब्दे 'साक्षातीश्वर' कहय ॥ 271॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; मुक्ति-पदेर-'मुक्ति पदे' का; आर-अन्य; अर्थ-अर्थ; हय-है; मुक्ति-पद-शब्दे-'मुक्तिपद' शब्द से; साक्षात्-प्रत्यक्ष; ईश्वर–ईश्वर; कहय-कहे जाते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मुक्ति-पदे" शब्द का अन्य अर्थ है। "मुक्ति-पद" साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का द्योतक है।

मुक्ति पदे याँर, सेइ 'मुक्ति-पद' हय ।

किम्वा नवम पदार्थ 'मुक्तिर' समाश्रय ॥ 272॥

मुक्ति-मुक्ति; पदे-चरणकमलों में, याँर-जिनके; सेइ-ऐसा व्यक्ति; मुक्ति-पद हय–'मुक्ति पद' कहा जाता है; किम्वा-अथवा; नवम-नौंवाँ; पद-अर्थ-पदार्थ; मुक्तिर–मुक्ति का; समाश्रय-आश्रय।

अनुवाद

"चूँकि सभी प्रकार की मुक्तियाँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों में विद्यमान रहती हैं, अतएव वे मुक्तिपद कहे जाते हैं। एक अन्य अर्थ के अनुसार मुक्ति नौवाँ विषय है और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मुक्ति के आश्रय हैं।"

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण मुकुन्द भी कहलाते हैं, जिसका अर्थ है समस्त प्रकार की मुक्तियाँ प्रदान करके दिव्य आनन्द प्रदान करने वाले। श्रीमद्भागवत में बारह स्कन्ध हैं, जिनमें से नवें स्कन्ध में विभिन्न प्रकार की मुक्तियों का वर्णन है। किन्तु दसवाँ स्कन्ध मुक्ति की व्याख्याओं का वास्तविक केन्द्र है, क्योंकि भगवान् कृष्ण श्रीमद्भागवत में जिनकी चर्चा की गई है, उन विषयों में दसवें विषय हैं। चूँकि सभी प्रकार की मुक्तियाँ श्रीकृष्ण के चरणकमलों में वास करती हैं, अतएव वे मुक्तिपद कही जा सकती हैं।

दुइ-अर्थे 'कृष्ण' कहि, केने पाठ फिरि।

सार्वभौम कहे,—ओ-पाठ कहिते ना पारि॥ 273॥

दुइ-अर्थ-दो अर्थों से; कृष्ण-भगवान् श्रीकृष्ण; कहि-मैं स्वीकार करता हूँ; केने-क्यों; पाठ-पाठ; फिरि-बदलू; सार्वभौम कहे-सार्वभौम ने उत्तर दिया; ओ-पाठ-ऐसा पाठ; कहिते-कहना; ना-नहीं; पारि-समर्थ हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "चूँकि मैं इन दोनों अर्थों से श्रीकृष्ण को समझ सकता हूँ, तो फिर श्लोक को बदलने से क्या लाभ?" सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "मैं इस श्लोक का वह पाठ नहीं कर पा रहा था।"

यद्यपि तोमार अर्थ एइ शब्दे कय।

तथापि 'आश्लिष्य-दोषे' कहन ना याय॥ 274॥

यद्यपि-यद्यपि; तोमार-आपका; अर्थ-अर्थ; एइ-यह; शब्द-शब्द से; कय-कहा जाता है; तथापि-तथापि; आश्लिष्य-दोषे-अस्पष्टता के दोष से; कहन–कहना; ना–नहीं; याय–सम्भव।

अनुवाद

“यद्यपि आपकी व्याख्या सही है, किन्तु ‘मुक्तिपद’ पद में असमंजसता होने के कारण इसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।”

यद्यपि ‘मुक्ति’ शब्देर हय पञ्च वृत्ति ।

रूढ़ि-वृत्त्ये कहे तबु ‘सायुज्ये’ प्रतीति ॥ 275 ॥

यद्यपि यद्यपि; मुक्ति-शब्देर–मुक्ति शब्द के; हय-हैं; पञ्च वृत्ति-पाँच अर्थ; रूढ़ि-वृत्त्ये-मुख्य अर्थ से; कहे-यह कहता है; तबु-फिर भी; सायुज्ये-परम के साथ एक हो जाना; प्रतीति–प्रतीत होता है।

अनुवाद

“मुक्ति’ शब्द पाँच प्रकार की मुक्तियों का घोतक है। किन्तु सामान्यतया इसका मुख्य अर्थ सायुज्य की प्रतीति है।”

मुक्ति-शब्द कहिते मने हय घृणा-त्रास ।

भक्ति-शब्द कहिते मने हय त’ उल्लास ॥ 276 ॥

मुक्ति-शब्द-‘मुक्ति’ शब्द; कहिते-कहने से; मने-मन में; हय–होती है; घृणा-घृणा; त्रास-और भय; भक्ति-शब्द-भक्ति शब्द; कहिते-कहने से; मने-मन में; हय-होता है; त’–निस्सन्देह; उल्लास-दिव्य आनन्द।

अनुवाद

“मुक्ति’ शब्द की ध्वनि मात्र से मन में घृणा तथा भय का भाव उत्पन्न होता है, किन्तु जब हम' भक्ति' शब्द कहते हैं, तो हमारे मन में दिव्य आनन्द की सहज अनुभूति होती है।”

शुनिया हासेन प्रभु आनन्दित-मने ।

भट्टाचार्य कैल प्रभु दृढ़ आलिङ्गने ॥ 277॥

शुनिया-यह व्याख्या सुनकर; हासेन-हँसते हैं; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; आनन्दित-मने-मन में अत्यन्त आनन्दित होकर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य को; कैल–किया; प्रभु–महाप्रभु; दृढ़-दृढ़; आलिङ्गने-आलिङ्गन।

अनुवाद

यह व्याख्या सुनकर महाप्रभु हँसने लगे और तुरन्त ही उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक भट्टाचार्य का दृढ आलिंगन किया।

येइ भट्टाचार्य पड़े पड़ाय मायावादे ।

ताँर ऐछे वाक्य स्फुरे चैतन्य-प्रसादे ॥ 278॥

येइ-वह; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; पड़े-पढ़ते; पड़ाय-पढ़ाते; मायावादे-मायावाद शून्यवाद दर्शन; ताँर-उसकी; ऐछे-ऐसी; वाक्य-व्याख्या; स्फुरे–प्रकट होती है; चैतन्य-प्रसादे-चैतन्य महाप्रभु की कृपा से।

अनुवाद

जो व्यक्ति मायावाद-दर्शन पढ़ने और पढ़ाने का अभ्यस्त था, वही अब "मुक्ति" शब्द से घृणा कर रहा था। यह सब केवल श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से ही सम्भव हुआ।

लोहाके यावत्स्पर्शि' हेम नाहि करे ।

तावत्स्पर्श-मणि केह चिनिते ना पारे ॥ 279॥

लोहाके-लोहा; यावत्-जब तक; स्पर्शि'–स्पर्श करने से; हेम–सोना; नाहि-नहीं: करे–परिवर्तित हो जाता; तावत्-तब तक; स्पर्श-मणि-चिन्तामणि; केह-कोई; चिनिते-पहचानने में; ना-नहीं; पारे-सक्षम है।

अनुवाद

जब तक स्पर्शमणि लोहे को अपने स्पर्श से सोना न बना दे, तब तक कोई भी व्यक्ति किसी अज्ञात पत्थर को स्पर्शमणि के रूप में नहीं जान सकता।

भट्टाचार्येर वैष्णवता देखि' सर्व-जन ।

प्रभुके जानिल—'साक्षात्व्रजेन्द्र-नन्दन' ॥ 280 ॥

भट्टाचार्येर सार्वभौम भट्टाचार्य का; वैष्णवता-वैष्णव धर्म की स्पष्ट समझ; देखि'-देखकर; सर्व-जन-सभी व्यक्ति; प्रभुके–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; जानिल-जान गये; साक्षात् साक्षात्; व्रजेन्द्र-नन्दन–महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य की दिव्य वैष्णवता देखकर हर व्यक्ति यह जान सका कि चैतन्य महाप्रभु नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हैं।

काशी-मिश्र-आदि यत नीलाचल-वासी ।

शरण लइल सबे प्रभु-पदे आसि' ॥281॥

काशी-मिश्र-काशी मिश्र; आदि-आदि; यत-सबके; नीलाचल-वासी-नीलाचल वासी (जगन्नाथ पुरी के निवासी); शरण-शरण; लइल-ली; सबे-सबने; प्रभु-पदे-महाप्रभु के चरणकमलों की; आसि-आकर।

अनुवाद

इस घटना के बाद काशीमिश्र आदि जगन्नाथ पुरी के सारे निवासी महाप्रभु के चरणकमलों की शरण में आ गये।

सेइ सब कथा आगे करिब वर्णन ।

सार्वभौम करे यैछे प्रभुर सेवन ॥ 282॥

सेइ सब-ये सब; कथा-कथाएँ; आगे-आगे; करिब–वर्णन करूँगा; वर्णन-वर्णन; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; करे-करते हैं; यैछे-जैसे; प्रभुर–महाप्रभु की; सेवन–सेवा।

अनुवाद

मैं इसका वर्णन बाद में करूँगा कि सार्वभौम भट्टाचार्य किस प्रकार महाप्रभु की सेवा में सदा लगे रहते थे।

यैछे परिपाटी करे भिक्षा-निर्वाहन ।

विस्तारिया आगे ताहा करिब वर्णन ॥ 283 ॥

यैछे-कैसे; परिपाटी–पूर्णरूपेण; करे-करते हैं; भिक्षा–भिक्षा देने का निर्वाहन-कार्य; विस्तारिया-विस्तार करके; आगे-आगे; ताहा-वह; करिब वर्णन-मैं वर्णन करूँगा।

अनुवाद

मैं इसका भी विस्तार से वर्णन करूँगा कि किस तरह सार्वभौम भट्टाचार्य ने भिक्षा देकर श्री चैतन्य महाप्रभु की सम्यक् सेवा की।

एइ महाप्रभुर लीला—सार्वभौम-मिलन ।

इहा येइ श्रद्धा करि' करये श्रवण ॥ 284॥

ज्ञान-कर्म-पाश हैते हय विमोचन ।

अचिरे मिलये ताँरे चैतन्य-चरण ॥ 285 ॥

एइ–यह; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; लीला-लीला; सार्वभौम-मिलन-सार्वभौम भट्टाचार्य से मिलाप; इहा-यह; येइ-जो कोई; श्रद्धा-श्रद्धा; करि'-करके; करये-करता है; श्रवण-श्रवण; ज्ञान-कर्म-ज्ञान तथा सकाम कर्म के; पाश–जाल; हैते–से; हय–होता है; विमोचन-विमोचन; अचिरे–शीघ्र; मिलये-मिलता है; ताँरे-ऐसा भक्त; चैतन्य-चरण-चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल को।

अनुवाद

यदि कोई व्यक्ति श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु के मिलन से सम्बन्धित इन लीलाओं को सुनता है, तो वह तुरन्त ही मानसिक तर्कवितर्क तथा सकाम कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। और श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त करता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥286 ॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ–श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों में; यार–जिसकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-कहता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

मैं कृष्णदास श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के छठे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें सार्वभौम भट्टाचार्य की मुक्ति का वर्णन हुआ है।

परिशिष्ट

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा विरचित

श्रीचैतन्य-चरितामृत

मध्य लीला - भाग 2

अध्याय 7-11

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

श्रीचैतन्य चरितामृत भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवन एवं उपदेशों पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ है, जो कि एक दार्शनिक, सन्त, आध्यात्मिक गुरु एवं योगी की भूमिका निभा रहे दिव्य अवतार थे। उन्होंने भारत में सोलहवीं शताब्दि में महान् सामाजिक एवं धार्मिक सुधार के आन्दोलन का प्रवर्तन किया था। उनकी शिक्षाएँ सर्वोच्च दार्शनिक एवं आध्यात्मिक सत्य का समावेश करती हैं। और इनसे आज तक असंख्य दार्शनिक एवं धार्मिक व्यक्ति प्रभावित हुए हैं।

मूल बंगाली पाठ का यह भाषांतर उसके तात्पर्यो के साथ श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद (ऊपर का चित्र देखें) का कार्य है, जो कि विश्व की प्राचीन संस्कृति एवं विचारधारा के गुरु हैं और सुप्रसिद्ध भगवद्गीता यथारूप के लेखक हैं। श्रीचैतन्य चरितामृत का यह भाषांतर वर्तमान समय के मनुष्यों के बौद्धिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के लिए एक अति महत्त्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करता है।

श्रीचैतन्य-चरितामृत

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।

जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत

श्रीचैतन्य-चरितामृत

मध्य लीला, द्वितीय खण्ड

अध्याय 7-11

मूल बंगला श्लोक, श्लोक का हिन्दी लिप्यन्तरण,

शब्दार्थ, अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य सहित

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

विषय-सूची

भूमिका

अध्याय सात

महाप्रभु द्वारा दक्षिण भारत की यात्रा

अध्याय आठ

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री रामानन्द राय के बीच वार्तालाप

अध्याय नौ

श्री चैतन्य महाप्रभु की तीर्थयात्राएँ

अध्याय दस

महाप्रभु का जगन्नाथ पुरी लौट आना

अध्याय ग्यारह

श्री चैतन्य महाप्रभु की बेड़ा-कीर्तन लीलाएँ

परिशिष्ट

लेखक परिचय

विशेष शब्दावली

श्रीचैतन्य-चरितामृत

श्लोकानुक्रमणिका

उद्धृत श्लोकों की अनुक्रमणिका

बांग्ला वर्णमाला

बांग्ला उच्चारण सम्बन्धी निर्देश

भूमिका

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा उपदेशों का मुख्य ग्रन्थ है। श्री चैतन्य महाप्रभु उस महान् सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, जो भारत में 500 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जिसने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरी धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधाराओं को न केवल भारत में अपितु समग्र विश्व में प्रभावित किया है। उन श्रीकृष्ण चैतन्य के प्रभाव को प्रसारित करने में कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भतिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के प्रयासों का मुख्य योगदान रहा है, जो इस ग्रन्थ के अनुवादक तथा भाष्यकार होने के साथ-साथ अन्तराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) के संस्थापक-आचार्य भी हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु को अतीव ऐतिहासिक महत्व का पुरुष माना जाता है। किन्तु ऐतिहासिक विश्लेषण की हमारी पारम्परिक विधि, जो व्यक्ति को उनके समय की उपज के रूप में देखती है, यहाँ पर विफल हो जाती है, क्योंकि श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसे पुरुष हैं, जो ऐतिहासिक व्यवस्था के सीमित क्षेत्र से परे हैं।

जिस समय पश्चिम में मानव भौतिक ब्रह्माण्ड की संरचना का अध्ययन करने तथा नवीन सागरों और महाद्वीपों की खोज में समुद्री यात्राएँ करने में अपनी अनुसन्धानात्मक शक्ति लगा रहा था, तभी पूर्व में श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसी क्रान्ति का प्रवर्तन एवं कुशल नेतृत्व कर रहे थे, जो मनुष्य के आध्यात्मिक स्वभाव के सर्वोच्च विज्ञान सम्मत ज्ञान की दिशा में निर्दिष्ट था।

श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवनचरित के मुख्य ऐतिहासिक स्रोत मुरारि गुप्त तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा लिखे गये कड़चा (दैनन्दिनियाँ) हैं। मुरारि गुप्त एक वैद्य तथा श्रीकृष्ण चैतन्य के अन्तरंग पार्षद थे, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास ग्रहण करने तक के प्रारम्भिक चौबीस वर्षों के विषय में विस्तृत टिप्पणियाँ लिखीं। श्री चैतन्य महाप्रभु के अड़तालीस वर्षों के जीवन की शेष घटनाएँ श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्य अन्तरंग पार्षद स्वरूप दामोदर गोस्वामी के कड़चा में अंकित हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृत के तीन खण्ड हैं, जिन्हें लीला कहा जाता है। ये हैंआदि लीला, मध्य लीला तथा अन्त्य लीला/मुरारि गुप्त का कडुचा ही आदि लीला का आधार है और स्वरूप दामोदर का कड़चा मध्य तथा अन्त्य लीलाओं के लिए विस्तृत विवरण प्रदान करता है।

आदिलीला के सत्रह अध्यायों में से प्रथम बारह अध्याय सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रस्तावना स्वरूप हैं। वैदिक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा कृष्णदास कविराज यह स्थापित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु कलियुग (जो पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जो भौतिकता, दम्भ तथा कलह का प्रतीक है) के लिए कृष्ण के अवतार हैं। लेखक यह भी प्रमाणित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण से अभिन्न हैं और अधम युग के पतितात्माओं को महामन्त्र के संकीर्तन का प्रचार करके शुद्ध भगवत्प्रेम उदारतापूर्ण वितरित करने के लिए अवतरित होते हैं। यह संकीर्तन महामन्त्र का बृहद् सार्वजनिक कीर्तन है। इसके उपरान्त कृष्णदास कविराज ने इस ग्रन्थ के बारहवें अध्याय में इस जगत् में श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का गुह्य प्रयोजन, उनके सह-अवतारों तथा प्रमुख भक्तों का वर्णन किया है और उनकी शिक्षाओं को सार रूप में प्रस्तुत की हैं। आदि लीला के शेष अध्यायों (13 से 17 तक) में लेखक ने चैतन्य महाप्रभु के दिव्य जन्म तथा संन्यास ग्रहण करने तक के जीवन का संक्षिप्त विवरण दिया है। इसमें उनके बचपन के चमत्कारों, अध्ययन, विवाह तथा प्रारम्भिक दार्शनिक शास्त्रार्थों के साथ-साथ उनके व्यापक संकीर्तन-आन्दोलन के संगठन तथा मुस्लिम सरकार द्वारा दमन के विरुद्ध उनके कानून अवज्ञा आन्दोलन का वर्णन है।

तीनों लीलाओं में सबसे लम्बी मध्यलीला की विषय वस्तु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा एक संन्यासी, शिक्षक, दार्शनिक तथा गुरु एवं योगी के रूप में सारे भारत की विस्तृत एवं घटनापूर्ण यात्राओं का विशद् वर्णन है। छह वर्षों की इस अवधि में श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्रमुख शिष्यों को शिक्षाएँ देते हैं। वे अपने समकालीन सुविख्यात दार्शनिकों तथा धर्मज्ञों से, जिनमें शंकराचार्य के अनुयायी, बौद्ध तथा मुसलमान सम्मिलित हैं, शास्त्रार्थ करते हैं और उन्हें तथा उनके शिष्य तथा अनुयायी वर्गों को अपने दल में सम्मिलित करते हैं। इस खण्ड में उड़ीसा में होने वाले विशाल जगन्नाथ रथयात्रा उत्सव के अवसर पर चैतन्य महाप्रभु की चमत्कार-पूर्ण लीलाओं का विस्तृत विवरण सम्मिलित है।

अन्त्यलीला में श्री चैतन्य की प्रकट उपस्थिति के अन्तिम अठारह वर्षों का विवरण है, जिसे उन्होंने जगन्नाथ पुरी के सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर के निकट लगभग एकान्त में बिताये। इन अन्तिम वर्षों में श्रीकृष्ण चैतन्य भावसमाधि में गहरे उतरते गये, जो समस्त पूर्वी अथवा पाश्चात्य धार्मिक तथा साहित्यिक इतिहास में अद्वितीय है। उनके नित्य संगी स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा दिये गये प्रत्यक्षदर्शी विवरण, जिनसे श्री चैतन्य की शाश्वत तथा नित्य वर्धमान धार्मिक परमानन्द की अवस्था प्रकट होती है, आधुनिक मनोविज्ञानियों तथा प्रत्यक्षवादियों के धार्मिक अनुभवों की अनुसन्धानात्मक तथा विवरणात्मक क्षमताओं को स्पष्ट रूप से चुनौती देने वाले हैं।

इस महान् ग्रन्थ के रचयिता कृष्णदास कविराज गोस्वामी का जन्म 1507 ई. में हुआ था। वे चैतन्य महाप्रभु के विश्वस्त अनुयायी रघुनाथ दास गोस्वामी के शिष्य थे। रघुनाथ दास विख्यात वैरागी सन्त थे, जिन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा बतलाई गई चैतन्य महाप्रभु की समस्त लीलाओं को सुना था और स्मरण कर रखा था। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के निधन के बाद रघुनाथ दास ने अपने इन आराध्यों की विरह वेदना सहन न कर सकने के कारण गोवर्धन पर्वत से कूदकर आत्म-हत्या करने के उद्देश्य से वृन्दावन की यात्रा की। किन्तु वृन्दावन में उनकी भेंट चैतन्य महाप्रभु के दो सर्वाधिक अन्तरंग शिष्यों-रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से हुई, जिन्होंने उनसे आत्महत्या की योजना का परित्याग करने तथा चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम जीवन की प्रेरक घटनाओं को प्रकट करने के लिए प्रेरित किया। उस समय कृष्णदास कविराज गोस्वामी भी वृन्दावन में रह रहे थे, जिन्हें रघुनाथ दास गोस्वामी ने श्री चैतन्य के दिव्य जीवन का पूर्ण विवरण प्रदान किया।

उस समय तक श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवन पर अनेक समसामयिक विद्वान तथा भक्तों द्वारा कई जीवन-चरित विषयक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। इनमें मुरारि गुप्त कृत श्रीचैतन्य–चरित, लोचन दास ठाकुर कृत चैतन्य–मंगल तथा वृन्दावन दास कृत चैतन्य-भागवत सम्मिलित हैं, जिनमें से चैतन्य भागवत के लेखक वृन्दावन दास ठाकुर को उस समय श्री चैतन्य के जीवन के विशेषज्ञ माने जाते थे। जब वृन्दावन दास इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना कर रहे थे, तब उन्होंने इस भय से श्री चैतन्य के जीवन की अनेक घटनाओं को, विशेषतया परवर्ती घटनाओं को सम्मिलित नहीं किया कि इससे ग्रन्थ का आकार बढ़ जायेगा। इस अन्तिम लीलाओं को सुनने के इच्छुक वृन्दावन के भक्तों ने कृष्णदास कविराज गोस्वामी से, जिन्हें वे महान् सन्त और विद्वान के रूप में सम्मान देते थे, यह अनुरोध किया कि इन घटनाओं का विस्तार से वर्णन करने वाले ग्रन्थ की रचना करें। इस अनुरोध पर तथा वृन्दावन के मदन मोहन अर्चाविग्रह की अनुमति तथा आशीर्वाद से उन्होंने श्रीचैतन्य चरितामृत की रचना प्रारम्भ की, जिसे चैतन्य महाप्रभु के गहन दर्शन तथा शिक्षाओं के सम्यक्र प्रस्तुतीकरण, एवं जीवन-चरित विषयक श्रेष्ठता के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा गूढ़ शिक्षा के सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में आज सारे विश्व में मान्यता दी जा रही है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने वृद्धावस्था में इस ग्रंथ पर कार्य प्रारम्भ किया, जब उनका स्वास्थ्य गिर चुका था। जैसाकि उन्होंने स्वयं लिखा है, "अब मैं अति वृद्ध एवं अक्षमता से विक्षुब्ध हूँ। लिखते समय मेरे हाथ काँपते हैं, मुझे ठीक से किसी बात का स्मरण नहीं हो पाता, न ही मैं ठीक से देख या सुन सकता हूँ फिर भी मैं लिखता हूँ जो कि

अपने आप में एक महान् आश्चर्य है।" तो भी उन्होंने इस अक्षम अवस्था में मध्यकालीन भारत के इस महान्तम साहित्यिक मणि को पूरा किया, जो साहित्यिक इतिहास के आश्चर्यों में एक है।

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, इसका औग्रेजी अनुवाद कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा सम्पन्न किया गया, जो समग्र विश्व में भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा के सर्वाधिक विख्यात शिक्षक हैं। श्रील प्रभुपाद का भाष्य दो बँगला भाष्यों पर आधारित है-एक तो उनके गुरु, महान् वैदिक विद्वान, उपदेशक और संत श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, जिन्होंने भविष्यवाणी की थी कि, "एक समय ऐसा आयेगा, जब श्रीचैतन्य चरितामृत पढ़ने के लिए विश्वभर के लोग बँगला सीखेंगे" और दूसरा भाष्य श्रील भतिसिद्धान्त के पिता भक्तिविनोद ठाकुर का जिन्होंने आधुनिक युग में श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के प्रचार में अग्रदूत का काम किया।

श्रील प्रभुपाद स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा में आते हैं और वे पहले विद्वान हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य के अनुयायियों के प्रमुख ग्रन्थों का आँग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। उनकी बँगला तथा संस्कृत में विद्वता और श्रीकृष्ण चैतन्य के उपदेशों से उनका अन्तरंग परिचय ऐसा उपयुक्त मेल है, जो उन्हें इस महत्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ को अंग्रेजी भाषी संसार के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए सर्वाधिक योग्य बनाता है। वे जिस सहजता तथा स्पष्टता से से पूर्णतया अपरिचित पाठक को भी इन गहन तथा स्मरणीय ग्रन्थ को समझने तथा उसकी प्रशंसा करने के लिए समर्थ बनाता है।

तात्पर्य समेत सम्पूर्ण मूल पाठ को नौ सचित्र खण्डों में भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो समकालीन मनुष्य के बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रमुख महत्वपूर्ण योगदान का प्रतिनिधित्व करता है।

श्रील प्रभुपाद के द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत का हिन्दी अनुवाद उनके शताब्दी उत्सव के अवसर पर प्रकाशित किया जा रहा है, जो भारत के भक्तों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

-प्रकाशक

अध्याय सात

महाप्रभु द्वारा दक्षिण भारत की यात्रा

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में सातवें अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने माघ मास (जनवरी फरवरी) में संन्यास ग्रहण किया और फाल्गुन मास (फरवरी-मार्च) में वे जगन्नाथ पुरी गये। उन्होंने फाल्गुन मास में दोलयात्रा उत्सव देखा और चैत्र मास में सार्वभौम भट्टाचार्य का उद्धार किया। वैशाख मास में उन्होंने दक्षिण भारत की यात्रा प्रारम्भ की। जब उन्होंने अकेले ही यात्रा करने का प्रस्ताव रखा, तो श्री नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें कृष्णदास नामक एक ब्राह्मण को सहायक के रूप में दे दिया। जब श्री चैतन्य महाप्रभु चलने लगे, तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने उन्हें चार जोड़ी कपड़े दिये और प्रार्थना की कि वे गोदावरी तट पर निवास कर रहे रामानन्द राय से अवश्य मिलें। नित्यानन्द प्रभु अन्य भक्तों के साथ-साथ आलालनाथ तक महाप्रभु के साथ गये। किन्तु वहाँ पर उन सबको छोड़कर भगवान् चैतन्य कृष्णदास ब्राह्मण सहित आगे बढ़ गये। महाप्रभु कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे मन्त्र का कीर्तन करने लगे। महाप्रभुने जिस भी गाँव में रात बिताई और जो भी व्यक्ति उनके पड़ाव में उनसे मिलने आया उससे उन्होंने कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रचार करने की प्रार्थना की। भक्तों की संख्या बढ़ाने के लिए वे एक गाँव के लोगों को शिक्षा देने के बाद दूसरे गाँवों की ओर बढ़ते गये। इस तरह वे अन्त में कूर्मस्थान पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने कूर्म नामक ब्राह्मण को अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान की और कुष्ठ रोग से पीड़ित वासुदेव नामक एक अन्य ब्राह्मण को निरोग बनाया। कुष्ठ रोगी ब्राह्मण को अच्छा करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु को वासुदेवामृतप्रद उपाधि मिली, जिसका अर्थ है "जिसने वासुदेव कोढ़ी को अमृत प्रदान किया।"

धन्यं तं नौमि चैतन्यं वासुदेवं दयार्द्र-धी ।

नष्ट-कुष्ठं रूप-पुष्टं भक्ति-तुष्टं चकार यः ॥1॥

धन्यम्-शुभ; तम्-उनको; नौमि-मैं नमस्कार करता हूँ; चैतन्यम्-श्री चैतन्य महाप्रभु; वासुदेवम् वासुदेव नामक ब्राह्मण को; दया-आई-धी-दयालु होकर; नष्ट-कुष्ठम् कुष्ठ रोग नष्ट किया; रूप-पुष्टम्-सुन्दर; भक्ति-तुष्टम्-भक्ति में तुष्ट; चकार-किया; यः-भगवान्।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वासुदेव नामक ब्राह्मण पर अत्यन्त कृपालु होकर उसका कुष्ठ रोग ठीक कर दिया। उन्होंने उसे भक्ति से सन्तुष्ट एक सुन्दर पुरुष में परिवर्तित कर दिया। मैं उन महिमावान श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर प्रणाम करता हूँ।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय; जय गौर-भक्त-वृन्द-भगवान् चैतन्य के भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो एवं श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

एइ-मते सार्वभौमेर निस्तार करिल ।

दक्षिण-गमने प्रभुर इच्छा उपजिल ॥ 3 ॥

एइ-मते-इस प्रकार; सार्वभौमेर-सार्वभौम भट्टाचार्य का; निस्तार-उद्धार; करिल-किया गया; दक्षिण-गमने-दक्षिण भारत जाने की; प्रभुर–महाप्रभु की; इच्छा-इच्छा; उपजिल-उठी।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य का उद्धार करने के बाद महाप्रभु को दक्षिण भारत में प्रचार करने की इच्छा हुई।

माघ-शुक्ल-पक्षे प्रभु करिल सन्न्यास ।

फाल्गुने आसिया कैल नीलाचले वास ॥4॥

माघ-शुक्ल-पक्षे–माघ मास के शुक्ल पक्ष में प्रभु–महाप्रभु; करिल-स्वीकार किया; सन्न्यास-संन्यास; फाल्गुने-अगले महीने फाल्गुन में; आसिया–आकर; कैल-किया; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; वास–निवास।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने माघ मास के शुक्लपक्ष में संन्यास ग्रहण किया। उसके अगले मास फाल्गुन में वे जगन्नाथ पुरी गये और वहाँ रहे।

फाल्गुनेर शेषे दोल-यात्रा से देखिल ।

प्रेमावेशे ताँहा बहु नृत्य-गीत कैल ॥5॥

फाल्गुनेर-फाल्गुन महीने के; शेषे–अन्त में; दोल-यात्रा–दोल यात्रा उत्सव; से-वह; देखिल–देखा; प्रेम-आवेशे-भगवत्प्रेम के भावावेश में; ताँहा-वहाँ; बहु-बहुत; नृत्य-गीत-गान और नृत्य; कैल–किया।

अनुवाद

फाल्गुन मास के अन्त में उन्होंने दोलयात्रा उत्सव देखा और अपने स्वाभाविक भगवत् प्रेम के भावावेश में आकर उन्होंने उस अवसर पर कीर्तन तथा विविध प्रकार से नृत्य किया।

चैत्रे रहि' कैल सार्वभौम-विमोचन ।

वैशाखेर प्रथमे दक्षिण याइते हैल मन ॥ 6 ॥

चैत्रे-चैत्र (मार्च-अप्रैल) मास में; रहि'-वहाँ रहकर; कैल-किया; सार्वभौम-विमोचन-सार्वभौम भट्टाचार्य का उद्धार; वैशाखेर–वैशाख मास के; प्रथमे-प्रारम्भ में; दक्षिण-दक्षिण भारत; याइते-जाने का; हैल-हुआ; मन–मन।

अनुवाद

चैत्र मास में जगन्नाथ पुरी में रहते हुए उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य का उद्धार किया और वैशाख मास के लगते ही उन्होंने दक्षिण भारत जाने का निश्चय किया।

निज-गण आनि' कहे विनय करिया ।

आलिङ्गन करि' सबाय श्री-हस्ते धरिया ॥7॥

तोमा-सबा जानि आमि प्राणाधिक करि' ।

प्राण छाड़ा याय, तोमा-सबा छाड़िते ना पारि ॥8॥

निज-गण आनि'–सभी भक्तों को बुलाकर; कहे-कहा; विनय-विनय; करिया-करके; आलिङ्गन करि'-आलिंगन करके; सबाय-उन सबको; श्री-हस्ते-अपने करकमलों से; धरिया-उनको पकड़कर; तोमा-सबा-तुम सब; जानि-मैं जानता हूँ; आमि-मैं; प्राण-अधिक-अपने प्राणों से अधिक; करि'-लेकर; प्राण छाड़ा-प्राण त्यागना; याय–सम्भव है; तोमा-सबा-तुम सबको; छाड़िते-छोड़ने में; ना पारि-सक्षम नहीं हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने सारे भक्तों को बुलाकर और उनके हाथ पकड़कर विनयपूर्वक उनसे इस प्रकार कहा, "तुम सभी लोग मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यारे हो। मैं अपना प्राण छोड़ सकता हूँ, किन्तु तुम लोगों को छोड़ पाना मेरे लिए कठिन है।"

तुमि-सब बन्धु मोर बन्धु-कृत्य कैले ।

इहाँ आनि' मोरे जगन्नाथ देखाइले ॥9॥

तुमि-सब-तुम सब; बन्धु-मित्र; मोर-मेरे; बन्धु-कृत्य-मित्र का कर्तव्य; कैले-तुमने निभाया है; इहाँ–यहाँ; आनि'–लाकर; मोरे-मुझे; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ; देखाइले-तुमने दर्शन कराया है।

अनुवाद

"तुम सब मेरे मित्र हो और तुम लोगों ने मुझे जगन्नाथ पुरी लाकर तथा मन्दिर में भगवान जगन्नाथ का दर्शन करने का अवसर प्रदान करके अपना मित्र-कर्तव्य निभाया है।"

एबे सबा-स्थाने मुञि मागों एक दाने ।

सबे मेलि' आज्ञा देह, याइब दक्षिणे ॥10॥

एबे-अब; सबा-स्थाने-तुम सबसे; मुञि-मैं; मागों-माँगता हूँ; एक दाने-एक अनुदान; सबे मेलि'-सब मिलकर; आज्ञा देह-आज्ञा दो; याइब-मैं जाऊँगा; दक्षिणे-दक्षिण भारत।

अनुवाद

"अब मैं तुम लोगों से एक छोटा-सा दान माँग रहा हूँ। कृपा करके मुझे दक्षिण भारत की यात्रा पर प्रस्थान करने की अनुमति प्रदान करें।"

विश्वरूप-उद्देशे अवश्य आमि याब ।

एकाकी याइब, काहो सङ्गे ना लइब ॥11॥

विश्वरूप-उद्देशे-विश्वरूप को ढूँढने के लिए; अवश्य-अवश्य; आमि-मैं; याब-जाऊँगा; एकाकी-अकेला; याइब-मैं जाऊँगा; काहो-किसी को; सङ्गे-साथ में; ना-नहीं; लइब-लूँगा।

अनुवाद

"मैं विश्वरूप की खोज करने जाउँगा। तुम लोग मुझे क्षमा करना, किन्तु मैं अकेले जाना चाहता हूँ। मैं किसी को अपने साथ नहीं ले जाना चाहता।"

सेतुबन्ध हैते आमि ना आसि यावत् ।

नीलाचले तुमि सब रहिबे तावत् ॥12॥

सेतुबन्ध-सेतुबन्ध, भारत की दक्षिण दिशा की सीमा; हैते-से; आमि-मैं; ना-नहीं; आसि-लौटकर आता; यावत्-जब तक; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में ; तुमि-तुम; सब-सब; रहिबे-रहो; तावत्-तब तक।

अनुवाद

"जब तक मैं सेतुबन्ध से लौट न आऊँ, तब तक तुम सब जगन्नाथ पुरी में ही रहना।"

विश्वरूप-सिद्धि-प्राप्ति जानेन सकल ।

दक्षिण-देश उद्धारिते करेन एइ छल ॥13॥

विश्वरूप-विश्वरूप की; सिद्धि-सिद्धि की; प्राप्ति-प्राप्ति; जानेन–महाप्रभु जानते हैं; सकल-सब कुछ; दक्षिण-देश-दक्षिण भारत; उद्धारिते-उद्धार करने के लिए; करेन-करते हैं; एइ–यह; छल–बहाना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सर्वज्ञ हैं, इसलिए वे भलीभाँति जानते थे कि विश्वरूप पहले ही चल बसे हैं, किन्तु अनजान बनने का बहाना आवश्यक था, जिससे वे दक्षिण भारत जाकर वहाँ के लोगों का उद्धार कर सकें।

शुनिया सबार मने हैल महा-दुःख ।

निःशब्द हइला, सबार शुकाइल मुख ॥14॥

शुनिया-यह सुनकर; सबार-सब भक्तों के; मने-मन में; हैल-हुआ; महा-दुःख-अत्यन्त दुःख; निःशब्द-चुप; हइला–हो गये; सबार-सबके; शुकाइल-शुष्क हो गये; मुख-चेहरे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से यह समाचार सुनकर सारे भक्त अत्यन्त दुःखी हुए, उनके मुख सूख गये और वे मौन हो गये।

नित्यानन्द-प्रभु कहे,—"ऐछे कैछे हय ।

एकाकी याइबे तुमि, के इहा सहय" ॥15॥

नित्यानन्द-प्रभु कहे-नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया; ऐछे कैछे हय–ऐसा कैसे सम्भव है; एकाकी-अकेले; याइबे-जाओगे; तुमि-आप; के-कौन; इहा-इसे; सहय–सह सकता है।

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "यह कैसे हो सकता है कि आप अकेले जाएँ? इसे कौन सहन कर सकता है?"

दुइ-एक सङ्गे चलुक, ना पड़ हठ-रङ्गे ।

यारे कह सेइ दुइ चलुक्तोमार सङ्गे ॥ 16 ॥

दुइ-दो; एक-या एक; सङ्गे-आपके साथ; चलुक-जाने दो; ना–नहीं; पड़-पड़ जाओगे; हठ-रङ्गे–चोरों और गुण्डों के फंदे में; यारे-जिसे भी; कहआप कहो; सेइ-वे ही; दुइ-दो; चलुक्–जाएँ; तोमार-आपके; सङ्गे–साथ।

अनुवाद

"हममें से एक या दो को अपने साथ चलने दें, अन्यथा आप रास्ते में चोरों तथा धूर्तों के चंगुल में पड़ सकते हैं। हममें से आप जिन्हें चाहें ले लें, किन्तु हर हालत में दो व्यक्तियों को आपके साथ जाना चाहिए।"

दक्षिणेर तीर्थ-पथ आमि सब जानि ।

आमि सङ्गे याइ, प्रभु, आज्ञा देह तुमि ॥ 17॥

दक्षिणेर-दक्षिण भारत के; तीर्थ-पथ-तीर्थ के मार्ग; आमि-मैं; सब-सब; जानि-जानता हूँ; आमि-मैं; सड़े-आपके साथ; याइ-चलता हूँ; प्रभु-हे मेरे प्रभु; आज्ञा-आज्ञा; देह-दो; तुमि-आप।

अनुवाद

"मैं दक्षिण भारत के विभिन्न तीर्थस्थलों के सारे मार्ग जानता हूँ। बस, आप आज्ञा दें तो मैं आपके साथ चला चलूँ।"

प्रभु कहे, "आमि—नर्तक, तुमि—सूत्र-धार ।

तुमि यैछे नाचाओ, तैछे नर्तन आमार" ॥18॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने उत्तर दिया; आमि-मैं; नर्तक-नर्तक; तुमि-तुम; सूत्र-धार-सूत्रधार; तुमि-तुम; यैछे-जैसे; नाचाओ-नचाओ; तैछे-वैसे; नर्तन-नर्तन, नृत्य; आमार-मेरा।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं तो मात्र नर्तक हूँ और तुम डोर खींचने वाले (सूत्रधार) हो। तुम जिस तरह नचाओगे, मैं उसी तरह नाचूँगा।"

सन्न्यास करिया आमि चलिलाँ वृन्दावन ।

तुमि आमा लञा आइले अद्वैत-भवन ॥19॥

सन्न्यास करिया-संन्यास लेने के बाद; आमि-मैं; चलिलाँ-गया; वृन्दावन-वृन्दावन की ओर; तुमि-तुम; आमा–मुझे; लञा–लेकर; आइले-गये; अद्वैत-भवन-अद्वैत प्रभु के घर।

अनुवाद

"संन्यास ग्रहण करने के बाद मैंने वृन्दावन जाने का निश्चय किया, किन्तु तुम मुझे वहाँ न ले जाकर अद्वैत प्रभु के घर ले आये।"

नीलाचल आसिते पथे भाङ्गिला मोर दण्ड ।

तोमा-सबार गाढ़-स्नेहे आमार कार्य-भङ्ग ॥ 20॥

नीलाचल-जगन्नाथ पुरी; आसिते-जाते हुए; पथे–रास्ते में; भाङ्गिला-तुमने तोड़ दिया; मोर-मेरा; दण्ड–संन्यास दण्ड; तोमा-सबार-तुम सबके; गाढ़-स्नेहे-गहरे स्नेह के कारण; आमार-मेरा; कार्य-भङ्ग-कार्य बिगड़ गया।

अनुवाद

"जगन्नाथ पुरी आते समय तुमने मेरा संन्यास-दण्ड तोड़ डाला। मैं जानता हूँ कि तुम सबका मुझ पर अतीव स्नेह है, किन्तु इससे मेरे कार्य में बाधा पहुँचती है।"

जगदानन्द चाहे आमा विषय भुञ्जाइते ।

येइ कहे सेइ भये चाहिये करिते ॥ 21॥

जगदानन्द-जगदानन्द; चाहे-चाहता है; आमा–मुझे; विषय-विषय तृप्ति; भुञ्जाइते-का आनन्द देना; येइ कहे-वह जो कुछ कहता है; सेइ-वह; भये-भय के कारण; चाहिये-मैं चाहता हूँ; करिते-करना।

अनुवाद

"जगदानन्द चाहता है कि मैं शारीरिक इन्द्रिय-भोग करूँ और वह मुझसे जो-जो कहता है, वह भयवश मैं करता हूँ।"

कभु यदि इँहार वाक्य करिये अन्यथा ।

क्रोधे तिन दिन मोरे नाहि कहे कथा ॥ 22॥

कभु-कभी-कभी; यदि-यदि; इँहार-जगदानन्द का; वाक्य-कहना; करिये-मैं करता हूँ; अन्यथा-कुछ और; क्रोधे-क्रोध में; तिन दिन-तीन दिन; मोरे-मुझे; नाहि-नहीं; कहे-बोलता; कथा-वार्तालाप।

अनुवाद

"यदि कभी मैं उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ करता हूँ, तो वह क्रोधवश तीन दिनों तक मुझसे बात नहीं करता।"

मुकुन्द हयेन दुःखी देखि' सन्न्यास-धर्म ।

तिनबारे शीते स्नान, भूमिते शयन ॥ 23 ॥

मुकुन्द-मुकुन्द; हयेन–हो जाता है; दुःखी-अप्रसन्न; देखि'-देखकर; सन्न्यास-धर्म-संन्यास धर्म के सिद्धान्त; तिन-बारे-तीन बार; शीते-शीलकाल में; स्नान-स्नान; भूमिते-पृथ्वी पर; शयन-लेटकर।

अनुवाद

"संन्यासी होने के कारण मेरा धर्म है कि जमीन पर सोऊँ और जाड़े में भी प्रतिदिन तीन बार स्नान करूँ। किन्तु मुकुन्द बेचारा मेरी कठोर तपस्या को देखकर अत्यन्त दुःखी होता है।"

अन्तरे दुःखी मुकुन्द, नाहि कहे मुखे ।

इहार दुःख देखि' मोर द्वि-गुण हये दुःखे ॥ 24॥

अन्तरे-मन में; दुःखी-दुःखी; मुकुन्द-मुकुन्द; नाहि-नहीं; कहे-कहता है; मुखे-मुख से; इहार-उसके; दुःख-दुःख; देखि'–देखकर; मोर-मेरा; द्वि-गुण-दुगना; हये-है; दुःखे–दुःख।

अनुवाद

"हाँ, मुकुन्द कुछ कहता नहीं, किन्तु मैं जानता हूँ कि वह अन्दर से अत्यन्त दुःखी है और उसे दुःखी देखकर मैं उससे दुगना दुःखी हो जाता हूँ।"

आमि त'—सन्न्यासी, दामोदर—ब्रह्मचारी ।

सदा रहे आमार उपर शिक्षा-दण्ड धरि' ॥25॥

आमि त’-मैं निस्सन्देह; सन्न्यासी-संन्यासी; दामोदर-दामोदर; ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारी; सदा-सदा; रहे-रहता है; आमार उपर-मेरे ऊपर; शिक्षा-दण्ड–मेरी शिक्षा के लिए दण्डा; धरि’-रखकर।

अनुवाद

“यद्यपि मैं संन्यासी हूँ और दामोदर एक ब्रह्मचारी है, फिर भी वह मुझे शिक्षा देने के लिए अपने हाथ में दण्ड लिए रहता है।”

इँहार आगे आमि ना जानि व्यवहार।

इँहारे ना भाय स्वतन्त्र चरित्र आमार॥ 26॥

इँहार आगे-उसके समक्ष; आमि–मैं; ना-नहीं; जानि-जानता; व्यवहार-व्यवहार; इँहारे-उसके लिए; ना-नहीं; भाय-है; स्वतन्त्र–स्वतंत्र; चरित्र-चरित्र; आमार-मेरा।

अनुवाद

“दामोदर के अनुसार सामाजिक व्यवहार में मैं अब भी नौसिखिया हूँ, अतएव उसे मेरी स्वतन्त्र प्रकृति नहीं भाती।”

लोकापेक्षा नाहि इँहार कृष्ण-कृपा हैते।

आणि लोकापेक्षा कभु ना पारि छाड़िते॥ 27॥

लोक-अपेक्षा-समाज की अपेक्षा; नाहि-नहीं है; इँहार-दामोदर की; कृष्ण-कृपा-कृष्ण कृपा; हैते–से; आमि-मैं; लोक-अपेक्षा–लोक अपेक्षा पर निर्भर; कभु-किसी भी समय; ना-नहीं; पारि-सकता; छाड़िते-छोड़।

अनुवाद

“दामोदर पण्डित तथा अन्य लोगों को भगवान् कृष्ण की अधिक कृपा प्राप्त हैए अतएव वे लोग लोक-मत से स्वतन्त्र हैं। इसलिए वे चाहते हैं कि मैं इन्द्रियतृप्ति करूँए भले ही यह अनैतिक क्यों न हो। किन्तु मैं एक दीन संन्यासी हूँ। मैं संन्यास के कर्तव्यों को नहीं त्याग सकताए अतएव मैं उनका कठोरता से पालन करता हूँ।”

तात्पर्य

ब्रह्मचारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह संन्यासी की सहायता करे। अतएव ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह संन्यासी को उपदेश न दे। यही शिष्टाचार है। अतएव दामोदर को चाहिए था कि वह चैतन्य महाप्रभु को उनके कर्तव्य के विषय में उपदेश न देता।

"अतएव तुमि सब रह नीलाचले ।

दिन कत आमि तीर्थ भ्रमिब एकले" ॥28॥

अतएव–अतएव; तुमि-तुम; सब-सब; रह-रहो; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; दिन-दिन; कत-कुछ; आमि-मैं; तीर्थ-तीर्थस्थानों पर; भ्रमिब-मैं भ्रमण करूँगा; एकले-अकेले।

अनुवाद

"अतएव तुम सभी लोग कुछ दिनों तक यहाँ नीलाचल में रहो, जिससे मैं अकेले ही तीर्थस्थानों की यात्रा कर आऊँ।"

इँहा-सबार वश प्रभु हये ये ये गुणे ।

दोषारोप-च्छले करे गुण आस्वादने ॥29॥

इँहा-सबार-सब भक्तों के; वश–नियंत्रित; प्रभु–महाप्रभु; हये-है; ये ये-जो जो; गुणे-गुण; दोष-आरोप-छले-दोषारोपण के बहाने; करे-करते हैं; गुण-गुण; आस्वाद आस्वाद आस्वादने-आस्वादन।

अनुवाद

वास्तव में महाप्रभु अपने सारे भक्तों के सद्गुणों के वशीभूत थे। उन्होंने दोषारोपण करने के बहाने उन सारे गुणों का आस्वादन किया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने प्रिय भक्तों पर जिन दोषों का आरोप किया, वास्तव में उन दोषों के बहाने वे उनके प्रगाढ़ प्रेम की अत्यन्त प्रशंसा कर रहे थे। फिर भी उन्होंने एक-एक करके इन सारे दोषों का उल्लेख इस तरह से किया,

मानो वे उनके प्रगाढ़ स्नेह से दुःखी हों। कभी-कभी श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी संगी महाप्रभु के प्रगाढ़ प्रेमवश नियम-विरुद्ध आचरण करते थे और कभी-कभी उनके प्रेमवश महाप्रभु स्वयं भी संन्यासी के नियमों का उल्लंघन कर देते थे। लोक-दृष्टि में ऐसे उल्लंघन अच्छे नहीं माने जाते, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के स्नेह से इस प्रकार वशीभूत थे कि वे कुछ नियमों को भंग करने के लिए बाध्य थे। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु उन पर दोषारोपण करते थे, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वे यह इंगित कर रहे थे कि वे उनके शुद्ध भगवत्प्रेम युक्त व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न हैं। इसीलिए श्लोक 27 में वे उल्लेख करते हैं कि उनके भक्त तथा संगी सामाजिक व्यवहार की अपेक्षा कृष्ण-प्रेम को अधिक महत्त्व देते हैं। पूर्ववर्ती आचार्यों की भक्ति के ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं जब उन्होंने कृष्ण-प्रेम से अभिभूत होकर सामाजिक व्यवहार की तनिक भी परवाह नहीं की। दुर्भाग्यवश, जब तक हम इस भौतिक जगत् में हैं, हमें सामान्य जनता की आलोचना से बचने के लिए सामाजिक रीति-रिवाजों का पालन करना होगा। यही श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा है।

चैतन्येर भक्त-वात्सल्य—अकथ्य-कथन ।

आपने वैराग्य-दुःख करेन सहन ॥ 30॥

चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु का; भक्त-वात्सल्य-भक्तों के लिए प्रेम; अकथ्य-कथन-शब्दों में अकथनीय; आपने–स्वयं; वैराग्य-वैराग्य का; दुःख-दुःख; करेन-करते हैं; सहन-सहन।

अनुवाद

अपने भक्तों के प्रति श्री चैतन्य महाप्रभु में जो प्रेम था, उसका सही-सही वर्णन कोई भी नहीं कर सकता। उन्होंने संन्यास ग्रहण करने के फलस्वरूप सभी प्रकार के निजी दुःखों को सदैव सहन किया।

सेइ दुःख देखि' येइ भक्त दुःख पाय ।

सेइ दुःख ताँर शक्त्ये सहन ना याय ॥31॥

सेइ दुःख-वही दुःख; देखि'–देखकर; येइ-जो; भक्त-भक्त; दुःख-दुःख; पाय-पाते हैं; सेइ दुःख-वही दुःख; ताँर-उनकी; शक्त्ये-शक्ति से; सहन-सहन करना; ना-नहीं; याय–सम्भव।

अनुवाद

कभी-कभी श्री चैतन्य महाप्रभु असह्य नियमों का पालन करते और सारे भक्त उनसे अत्यधिक दु:खी होते। यद्यपि महाप्रभु नियमों का कठोरता से पालन करते, किन्तु वे अपने भक्तों के दु:खों को सहन नहीं कर पाते थे।

गुणे दोषोद्गार-च्छले सबा निषेधिया ।

एकाकी भ्रमिबेन तीर्थ वैराग्य करिया ॥ 32॥

गुणे-गुणों में; दोष-उद्गार-छले-दोषारोपण के बहाने; सबा-उन सबको; निषेधिया-इन्कार करके; एकाकी-अकेले; भ्रमिबेन-भ्रमण करेंगें; तीर्थ-तीर्थ स्थानों में; वैराग्य-वैराग्य; करिया का पालन करके।

अनुवाद

अतएव उन्हें अपने साथ चलने और दु:खी होने से रोकने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके गुणों को दोष कहकर घोषित किया।

तात्पर्य

महाप्रभु सारे तीर्थस्थानों का अकेले भ्रमण करना चाहते थे और संन्यास-धर्म का दृढ़ता से पालन करना चाहते थे।

तबे चारि-जन बहु मिनति करिल ।

स्वतन्त्र ईश्वर प्रभु कभु ना मानिल ॥33॥

तबे-तत्पश्चात्; चारि-जन-चारों लोगों ने; बहु-बहुत; मिनति–प्रार्थना; करिल-की; स्वतन्त्र स्वतंत्र; ईश्वर–ईश्वर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; कभु-कभी भी; नान; मानिल-माने।

अनुवाद

तब चार भक्तों ने बहुत अनुनय-विनय की कि वे महाप्रभु के साथ चलें, किन्तु स्वतन्त्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की।

तबे नित्यानन्द कहे,—ये आज्ञा तोमार ।

दुःख सुख ये हउक्कर्तव्य आमार ॥ 34॥

तबे-तब; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; कहे-कहने लगे; ये आज्ञा-जो आज्ञा; तोमार-आपकी; दुःख सुख-दुःख सुख; ये-जो कुछ; हउक्-हो; कर्तव्य-कर्तव्य; आमार-मेरा।

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "आपकी आज्ञा मेरा कर्तव्य है, चाहे उससे हमें सुख मिले या दुःख।"

किन्तु एक निवेदन करों आर बार ।

विचार करिया ताहा कर अङ्गीकार ॥ 35॥

किन्तु किन्तु; एक-एक; निवेदन निवेदन; करों-मैं करता हूँ; आर बार-दुबारा; विचार-विचार; करिया-करके; ताहा-वह; कर-करो; अङ्गीकार-स्वीकार।

अनुवाद

"फिर भी मैं आपसे एक निवेदन करना चाहता हूँ। कृपया इस पर विचार करें और यदि उचित समझे, तो स्वीकार कर लें।"

कौपीन, बहिर्वास आर जल-पात्र ।

आर किछु नाहि याबे, सबे एइ मात्र ॥ 36॥

कौपीन–लंगोटी; बहिर्-वास–बाहरी वस्त्र; आर-और; जल-पात्र-जलपात्र; आर किछु-और कुछ; नाहि-नहीं; याबे-जायेगा; सबे-सब; एइ–यह; मात्र-मात्र।

अनुवाद

"आप अपने साथ एक लँगोटा, बाह्य वस्त्र तथा एक जलपात्र लें। आप इससे अधिक कुछ भी न लें।"

तोमार दुइ हस्त बद्ध नाम-गणने ।

जल-पात्र-बहिर्वास वहिबे केमने ॥ 37॥

तोमार-आपके; दुइ-दोनों; हस्त-हाथ; बद्ध-लगेंगे; नाम-पावन नाम; गणने-गिनने में; जल-पात्र-जलपात्र; बहिर्-वास-बाहर का वस्त्र; वहिबे-उठायेंगे; केमने-कैसे।

अनुवाद

"जब आपके दोनों हाथ सदैव नाम-जप तथा पवित्र नाम जप की गिनती करने में लगे रहेंगे, तो आप जलपात्र तथा बाह्य वस्त्रों को किस प्रकार ले जायेंगे?"

तात्पर्य

इस श्लोक से स्पष्ट है कि चैतन्य महाप्रभु नित्यप्रति नामों की निश्चित संख्या का जप किया करते थे। छः गोस्वामी भी श्री चैतन्य महाप्रभु के पदचिह्नों पर चलते थे, और हरिदास ठाकुर भी इस सिद्धान्त का पालन करते थे। श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, श्रील रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी तथा श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी-इन छः गोस्वामियों के विषय में श्रीनिवास आचार्य ने पुष्टि की है- संख्यापूर्वकनामगाननतिभिः (षड् गोस्वामी अष्टक 6)। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अन्य कर्तव्यों के अतिरिक्त नित्य निश्चित संख्या में पवित्र नाम-जप की पद्धति का सूत्रपात किया। जैसाकि इस श्लोक (तोमार दुइ हस्त बद्ध नामगणने) से पुष्टि होती है, चैतन्य महाप्रभु अपनी अँगुलियों पर नाम गिनते थे। एक हाथ जप में लगा रहता था, तो दूसरा हाथ जप की संख्या बताता था। इसका समर्थन चैतन्य-चन्द्रामृत से तथा श्रील रूप गोस्वामी-कृत स्तवमाला से होता है :

बध्नन् प्रेमभरप्रकम्पितकरो ग्रन्थीन् कटीडोरकैः ।

संख्यातुं निज-लोकमङ्गलहरेकृष्णेति नाम्नां जपन् ॥

(चैतन्य चन्दामृत 16)

हरे कृष्णेत्युच्चैः स्फुरितरसनो नामगणना-

कृतग्रन्थिश्रेणिसुभगकटिसूत्रोज्ज्वलकरः ।

(प्रथम-चैतन्याष्टक 5)

अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी भक्तों को नित्य कम-से-कम सोलह माला जप करना चाहिए और अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ ने इसी संख्या की संस्तुति की है। हरिदास ठाकुर नित्य 3 लाख नाम का जाप करते थे।

16 माला का अर्थ है लगभग 28000 नाम। हरिदास ठाकुर या अन्य गोस्वामियों की नकल करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु प्रत्येक भक्त के लिए प्रतिदिन निश्चित संख्या के नाम-जप करना अनिवार्य है।

प्रेमावेशे पथे तुमि हबे अचेतन ।

ए-सब सामग्री तोमार के करे रक्षण ॥ 38॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; पथे-मार्ग में; तुमि-आप; हबे-होंगे; अचेतन–अचेत; ए-सब-यह सब; सामग्री-सामान की; तोमार-आपके; के-कौन; करे–करेगा; रक्षण–रक्षा।

अनुवाद

"जब आप रास्ते में भगवत्प्रेम के आवेश में अचेत हो जायेंगे, तो आपके सामान की-जलपात्र, वस्त्र आदि की रक्षा कौन करेगा?"

'कृष्णदास'-नामे एइ सरल ब्राह्मण ।

इँहो सङ्गे करि' लह, धर निवेदन ॥ 39॥

कृष्ण-दास-नामे-कृष्णदास नामक; एइ-यह; सरल-सरल; ब्राह्मण-ब्राह्मण; इँहो-इसे; सङ्गे-आपके साथ; करि'-लेकर; लह-ले जाओ; धर-जरा स्वीकार करो; निवेदन-प्रार्थना।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने आगे कहा, "यह कृष्णदास नामक एक सीधासादा ब्राह्मण है। कृपया आप इसे अपने साथ ले जाएँ। यही मेरी विनती है।"

तात्पर्य

यह कृष्णदास काला कृष्णदास के नाम से जाना जाता है, किन्तु यह वह काला कृष्णदास नहीं है, जिसका उल्लेख आदिलीला, अध्याय 11, श्लोक 37 में हुआ है। आदिलीला के ग्यारहवें अध्याय में उल्लिखित काला कृष्णदास बारह गोपालों में से एक हैं, जो श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का पोषण करने के लिये प्रकट हुए। वे नित्यानन्द प्रभु के महान्

भक्त के रूप में जाने जाते हैं। जो काला कृष्णदास नामक ब्राह्मण महाप्रभु के साथ दक्षिण भारत और बाद में बंगाल भी गया, उसका उल्लेख मध्यलीला, अध्याय 10, श्लोक 62-79 में हुआ है। इन दोनों को एक नहीं समझना चाहिए।

जल-पात्र-वस्त्र वहि' तोमा-सङ्गे याबे ।

ये तोमार इच्छा, कर, किछु ना बलिबे ॥40॥

जल-पात्र-जलपात्र; वस्त्र और वस्त्र; वहि'-उठाकर; तोमा-सङ्गे-आपके साथ; याबे-जायेगा; ये-जो कुछ; तोमार इच्छा-आपकी इच्छा; कर-आप करो; किछु ना बलिबे-वह कुछ नहीं बोलेगा।

अनुवाद

"वह आपका जलपात्र तथा वस्त्र वहन करेगा। आप चाहे जो भी करेंगे, वह एक शब्द भी नहीं बोलेगा।"

तबे ताँर वाक्य प्रभु करि' अङ्गीकारे ।

ताहा-सबा लञा गेला सार्वभौम-घरे ॥41॥

तबे-तत्पश्चात्; ताँर-नित्यानन्द प्रभु के; वाक्य-शब्द; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; करि'-करके; अङ्गीकारे–स्वीकार; ताहा-सबा-वे सब; लञा-लेकर; गेला-गये; सार्वभौम-घरे–सार्वभौम भट्टाचार्य के घर।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु के अनुरोध को मानकर भगवान् चैतन्य ने अपने सारे भक्तों को अपने साथ लिया और वे सार्वभौम भट्टाचार्य के घर गये।

नमस्करि' सार्वभौम आसन निवेदिल ।

सबाकारे मिलि' तबे आसने वसिल ॥42॥

नमस्करि'-नमस्कार करके; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; आसन-आसन; निवेदिल-पेश किया; सबकारे उन सबको; मिलि'–मिलकर; तबे-उसके बाद; आसने वसिल-अपना आसन ग्रहण किया।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने उनके प्रविष्ट होते ही महाप्रभु को नमस्कार किया और उन्हें बैठने को आसन दिया। फिर अन्य सारे भक्तों को बैठाने के बाद भट्टाचार्य स्वयं बैठे।

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य-अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

(ऊपर) श्री रंग-क्षेत्र, भारत का सबसे बड़ा मंदिर जहाँ भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने हर्षोन्मादपूर्ण भगवत्प्रेम में कीर्तन व नृत्य किया था। (नीचे) चिदम्बरम् का मंदिर, जिसको श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी दक्षिण भारत की यात्रा में भेंट दी थी।

(बाँयी तरफ) अद्वैत आचार्य के घर का पुनर्निर्माण, जो चैतन्य महाप्रभु के भक्तावतार थे। (दायी तरफ) तिरुपति मंदिर, जो दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र है।

अपने निजी संगियों तथा सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथजी की वेदी की प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् वे अपनी दक्षिण भारत की यात्रा पर रवाना हो गये।

जब महाप्रभु ने कोढ़ी ब्राह्मण वासुदेव को स्पर्श किया तो उसका कोढ़ तथा उसका कष्ट एकसाथ दूर भाग गये। उसका शरीर अत्यन्त सुन्दर हो गया जिससे उसे परम सुख हुआ।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री रामानन्द राय का गाढ़ालिंगन किया। प्रभु तथा सेवक दोनों ने भावविभोर होकर अपनी चेतना खो दी।

तब वेदमाता गायत्री श्रीकृष्ण की वंशी की दिव्य ध्वनि से प्रकट होकर स्वयंभू ब्रह्मा के कमलमुख में उनके आठ कर्णकुहरों से प्रविष्ट हुई।

श्री षड्भुज, छह भुजाओं वाला रूप, जो चैतन्य महाप्रभु ने प्रकट किया था। यह रूप सूचित करता है कि वे भगवान् रामचन्द्र (धनुष्य व बाण से दर्शित), भगवान् कृष्ण (वेणु से दर्शित) तथा भगवान् चैतन्य स्वयं (दण्ड व कमण्डलु से दर्शित) हैं।

जब गोपियाँ श्री श्री राधा और कृष्ण को उनकी दिव्य लीलाओं में प्रवृत्त करने का काम करती हैं, तो उनका सुख करोड़ गुना बढ़ जाता है।

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को संयुक्त रूप में राधा व कृष्ण का अपना वास्तविक रूप प्रकट किया, तो रामानन्द राय दिव्य आनन्द में मूर्छित हुए।

जैसे ही विशाल पक्षी अपनी चोंच में बड़ी थाली लेकर उड़ा, अस्पृश्य खाना बौद्धों के ऊपर सर्वत्र बिखरकर गिरा। फिर वह थाली प्रमुख बौद्धाचार्य के सिर पर जा गिरी और उससे वह बेहोश हो पड़ा।

श्री शैल में चैतन्य महाप्रभु शिवजी व उनकी पत्नी पार्वती से मिले, जो ब्राह्मण के रूप में आए थे।

अग्निदेव ने, असली सीता को ले जाकर दुर्गा देवी पार्वती के पास रखा और मायावी सीता रावण को दे दी। रावण वध के बाद मायावी सीता भगवान् रामचन्द्र के समक्ष लायी गयी तो अग्निदेव ने इस सीता को ओझल कराकर असली सीता लाकर दी।

श्रीपाद मध्वाचार्य (11 वी शताब्दी), जो भारतभर में अपनी पाण्डित्यपूर्ण विद्वत्ता और भगवद्भक्ति के कारण जाने जाते हैं। चैतन्य महाप्रभु ने उनके सम्प्रदाय या शिष्य परम्परा में दीक्षा लेना पसन्द किया।

सप्ततल वन के भीतर चैतन्य महाप्रभु गए तो उन्होंने इन वृक्षों का आलिंगन किया और वे वैकुण्ठ लोक चले गए।

अपनी दक्षिण भारत की यात्रा से लौटने के बाद चैतन्य महाप्रभु अपने सारे भक्तों से मिले और वे उन्हें अपने निजी निवास में ले गए। वहाँ पर उन्होंने उनमें से हर एक के लिए महान प्रेम व स्नेह प्रदर्शित किया।

नाना कृष्ण-वार्ता कहि' कहिल ताँहारे ।

'तोमार ठाञि आइलाँ आज्ञा मागिबारे ॥43॥

नाना-विविध; कृष्ण-वार्ता-कृष्ण-कथाओं की; कहि'–चर्चा करके; कहिल-उन्होंने सूचित किया; ताँहारे-सार्वभौम भट्टाचार्य को; तोमार ठाञि-आपके पास; आइलाँ-मैं आ गया हूँ; आज्ञा-आज्ञा; मागिबारे–मांगने के लिए।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण विषयक विविध वार्ताएँ करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य को बतलाया, "मैं तो आपके यहाँ आपका आदेश प्राप्त करने आया हूँ।"

सन्न्यास करि' विश्वरूप गियाछे दक्षिणे ।

अवश्य करिब आमि ताँर अन्वेषणे ॥44॥

सन्न्यास करि'–संन्यास लेने के बाद; विश्वरूप-विश्वरूप (श्री चैतन्य महाप्रभु के बडे भाई); गिया-चला गया है; दक्षिणे-दक्षिण भारत को; अवश्य-अवश्य; करिब-करूँगा; आमि-मैं; ताँर-उसकी; अन्वेषणे-खोज।

अनुवाद

"मेरा बड़ा भाई विश्वरूप संन्यास लेकर दक्षिण भारत चला गया है। अब मुझे उसकी खोज करने जाना है।"

आज्ञा देह, अवश्य आमि दक्षिणे चलिब ।

तोमार आज्ञाते सुखे लेउटि' आसिब' ॥ 45 ॥

आज्ञा देह-कृपया आज्ञा दो; अवश्य-अवश्य; आमि-मैं; दक्षिणे-दक्षिण भारत में; चलिब–जाऊँगा; तोमार-आपकी; आज्ञाते-आज्ञा से; सुखे-सुखपूर्वक; लेउटि'-लौटकर; आसिब-मैं आऊँगा।

अनुवाद

"कृपया मुझे जाने की अनुमति दें, क्योंकि मुझे दक्षिण भारत की यात्रा करनी है। आपकी आज्ञा से मैं शीघ्र ही सुखपूर्वक वापस लौट आऊँगा।"

शुनि' सार्वभौम हैला अत्यन्त कातर ।

चरणे धरिया कहे विषाद-उत्तर ॥46॥

शुनि'-यह सुनकर; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; हैला-हो गये; अत्यन्त अत्यन्त; कातर–विक्षिप्त; चरणे-चरणकमल; धरिया-पकड़कर; कहे-कहने लगे; विषाद-दुःख का; उत्तर-उत्तर।

अनुवाद

यह सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिए और विषाद से पूर्ण यह उत्तर दिया।

'बहु-जन्मेर पुण्य-फले पाइनु तोमार सङ्ग ।

हेन-सङ्ग विधि मोर करिलेक भङ्ग ॥ 47॥

बहु-जन्मेर-बहुत जन्मों के; पुण्य-फले-पुण्य फल के रूप में; पाइनु-मुझे मिला; तोमार-आपका; सङ्ग-संग; हेन-सङ्ग–ऐसी संगति; विधि-भाग्य; मोर-मेरी; करिलेक–की है; भङ्ग-भंग।

अनुवाद

"मुझे कुछ पुण्यकर्मों के कारण अनेक जन्मों के बाद आपका संग मिला था। अब विधाता इस अमूल्य संग का विच्छेद कर रहा है।"

शिरे वज़ पड़े यदि, पुत्र मरि' याय ।

ताहा सहि, तोमार विच्छेद सहन ना याय ॥48॥

शिरे–सिर पर; वज़वज़; पड़े-गिर जाए; यदि-यदि; पुत्र-पुत्र; मरि'-मर; याय-जाए; ताहा-वह; सहि-मैं सहन कर सकता हूँ; तोमार-आपका; विच्छेद-वियोग; सहन-सहन; ना याय-नहीं किया जा सकता।

अनुवाद

"यदि मेरे सिर पर वज्रपात हो जाए अथवा मेरा पुत्र मर जाए, तो मैं उसे सहन कर सकता हूँ। किन्तु मैं आपके वियोग के दुःख को नहीं सह सकता।"

स्वतन्त्र-ईश्वर तुमि करिबे गमन ।

दिन कथो रह, देखि तोमार चरण ॥49॥

स्वतन्त्र-ईश्वर–स्वतंत्र भगवान्; तुमि-आप; करिबे-करोगे; गमन-प्रस्थान; दिन-दिन; कथो-कुछ; रह-कृपया रुक जाओ; देखि-मैं देख लूँ; तोमार चरण-आपके चरणकमल।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप स्वतन्त्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। आपको जाना निश्चित है, यह मैं जानता हूँ। फिर भी मैं आपसे कुछ दिन और रुकने के लिए निवेदन कर रहा हूँ, जिससे आपके चरणकमलों का दर्शन कर सकूं।"

ताहार विनये प्रभुर शिथिल हैल मन ।

रहिल दिवस कथो, ना कैल गमन ॥50॥

ताहार–सार्वभौम भट्टाचार्य की; विनये-विनय पर; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु का; शिथिल-शिथिल; हैल–हो गया; मन–मन; रहिल-रुक गये; दिवस-दिन; कथो-कुछ; ना-नहीं; कैल-किया; गमन प्रस्थान।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य की विनती सुनकर, चैतन्य महाप्रभु दयार्द्र हो गये। वे कुछ दिन और रुके रहे और प्रस्थान नहीं किया।

भट्टाचार्य आग्रह करि' करेन निमन्त्रण ।

गृहे पाक करि' प्रभुके करा'न भोजन ॥51॥

भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; आग्रह-आग्रह; करि'–करके; करेन-किया; निमन्त्रण-निमंत्रण; गृहे-घर पर; पाक-पकवान; करि'-बनाकर ; प्रभुके–चैतन्य महाप्रभु को; करा'न-कराया; भोजन-भोजन।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने बड़े ही आग्रहपूर्वक चैतन्य महाप्रभु को अपने घर आमन्त्रित किया और उन्हें अच्छी तरह भोजन कराया।

ताँहार ब्राह्मणी, ताँर नाम–'षाठीर माता' ।

रान्धि' भिक्षा देन तेंहो, आश्चर्य ताँर कथा ॥52॥

ताँहार ब्राह्मणी-उनकी पत्नी; ताँर नाम-उनका नाम; षाठीर माता-षाठी माता; रान्धि'–रसोई पकाकर; भिक्षा देन–भोजन दिया; तेंहो–उसने; आश्चर्य-आश्चर्यजनक; ताँर-उसका; कथा–व्याख्यान।

अनुवाद

भट्टाचार्य की पत्नी का नाम पाठीमाता (पाठी की माता) था। उन्होंने ही भोजन पकाया। इन लीलाओं का वर्णन अत्यन्त आश्चर्यजनक है।

आगे त' कहिब ताहा करिया विस्तार ।

एबे कहि प्रभुर दक्षिण-यात्रा-समाचार ॥53॥

आगे-बाद में; त'–निस्सन्देह; कहिब-मैं कहूँगा; ताहा–वे सब घटनाएँ; करिया-करके; विस्तार विस्तार; एबे-अब; कहि-मैं वर्णन करता हूँ; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु का; दक्षिण-दक्षिण भारत में; यात्रा-भ्रमण का; समाचार-व्याख्यान, वर्णन।

अनुवाद

बाद में इसका विस्तार से वर्णन करूँगा, किन्तु इस समय मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की दक्षिण भारत यात्रा का वर्णन करना चाहता हूँ।

दिन पाँच रहि' प्रभु भट्टाचार्य-स्थाने ।

चलिबार लागि' आज्ञा मागिला आपने ॥54॥

दिन पाँच-पाँच दिन; रहि'-रुककर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भट्टाचार्य-स्थाने-सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर; चलिबार लागि'–प्रस्थान करने हेतु; आज्ञा-आज्ञा; मागिला-माँगी; आपने स्वयं।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर पाँच दिन रुककर श्री चैतन्य महाप्रभु ने दक्षिण भारत के लिए प्रस्थान करने हेतु स्वयं अनुमति माँगी।

प्रभुर आग्रहे भट्टाचार्य सम्मत हइला ।

प्रभु ताँरे लञा जगन्नाथ-मन्दिरे गेला ॥55॥

प्रभुर आग्रहे-श्री चैतन्य महाप्रभु की उत्सुकता से; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; सम्मत हइला–मान गये; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको (सार्वभौम भट्टाचार्य को); लञा-लेकर; जगन्नाथ-मन्दिरे-भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर; गेला-गये।

अनुवाद

भट्टाचार्य की अनुमति पाकर श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथजी के मन्दिर में दर्शन करने गये। वे अपने साथ भट्टाचार्य को लेते गये।

दर्शन करि' ठाकुर-पाश आज्ञा मागिला ।

पूजारी प्रभुरे माला-प्रसाद आनि' दिला ॥56॥

दर्शन करि'-दर्शन करके; ठाकुर-पाश– भगवान् से; आज्ञा मागिला-आज्ञा माँगी; पूजारी-पुजारी; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; माला-माला; प्रसाद-अन्न प्रसाद; आनि'–लाकर; दिला दिया।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे भी आज्ञा माँगी। तब पुजारी ने महाप्रभु को तुरन्त प्रसाद और माला लाकर दी।

आज्ञा-माला पाञा हर्षे नमस्कार करि' ।

आनन्दे दक्षिण-देशे चले गौरहरि ॥57॥

आज्ञा-माला-आज्ञा की माला; पाञा-पाकर; हर्षे–हर्षपूर्वक; नमस्कार-नमस्कार; करि'–करके; आनन्दे-अत्यन्त आनन्दपूर्वक; दक्षिण-देशे-दक्षिण भारत को; चले जाते हैं; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

माला के रूप में भगवान जगन्नाथजी की आज्ञा पाकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें नमस्कार किया और अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर दक्षिण भारत जाने की तैयारी की।

भट्टाचार्य-सङ्गे आर यत निज-गण ।

जगन्नाथ प्रदक्षिण करि करिला गमन ॥58॥

भट्टाचार्य-सङ्गे–सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ; आर-और; यत-सब; निज-गण-निजी भक्त; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ; प्रदक्षिण-प्रदक्षिणा; करि'-करके; करिला-किया; गमन प्रस्थान।

अनुवाद

अपने निजी संगियों तथा सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथजी की वेदी की प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् वे अपनी दक्षिण भारत की यात्रा पर रवाना हो गये।

समुद्र-तीरे तीरे आलालनाथ-पथे ।

सार्वभौम कहिलेन आचार्य-गोपीनाथे ॥59॥

समुद्र-तीरे-समद्र तट पर; तीरे-तट पर; आलालनाथ-पथे-आलालनाथ मन्दिर की ओर जानेवाले मार्ग पर; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य ने; कहिलेन-कहा; आचार्य-गोपीनाथे-गोपीनाथ आचार्य को।

अनुवाद

जब महाप्रभु समुद्र-तट पर स्थित आलालनाथ के मार्ग पर जा रहे थे, तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने गोपीनाथ आचार्य को निम्नलिखित आदेश दिया।

चारि कोपीन-बहिर्वास राखियाछि घरे ।

ताहा, प्रसादान्न, लञा आइस विप्र-द्वारे ॥60॥

चारि कोपीन-बहिर्वास–कोपीन तथा बाह्य वस्त्रों की चार जोड़ी; राखियाछि-मैंने रखे हैं; घरे–घर पर; ताहा–वे; प्रसाद-अन्न-भगवान जगन्नाथ का अन्न-प्रसाद; लञा-लेकर; आइस-आ जाओ; विप्र-द्वारे-किसी ब्राह्मण के द्वारा।

अनुवाद

"मैंने घर पर कौपीन तथा बाहरी वस्त्रों के जो चार जोड़े रख छोड़े हैं, उन्हें लाओ और साथ में कुछ जगन्नाथजी का प्रसाद भी लेते आओ। तुम किसी ब्राह्मण की सहायता से ये चीजें अपने साथ लेते आना।"

तबे सार्वभौम कहे प्रभुर चरणे ।

अवश्य पालिबे, प्रभु, मोर निवेदने ॥ 61॥

तबे–तत्पश्चात्; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य ने; कहे-कहा; प्रभुर चरणे–महाप्रभु के चरणकमलों में; अवश्य–अवश्य; पालिबे-आप रखोगे, मानो; प्रभु-मेरे प्रभु; मोर-मेरा; निवेदने निवेदन।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु विदा हो रहे थे, तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने उनके चरणकमलों पर यह निवेदन किया, "हे प्रभु, मेरी एक अन्तिम प्रार्थना है और मुझे आशा है कि आप उसे अवश्य पूरी करेंगे।"

‘रामानन्द राय’ आछे गोदावरी-तीरे ।

अधिकारी हयेन तेंहो विद्यानगरे ॥ 62॥

रामानन्द राय-रामानन्द राय; आछे-हैं; गोदावरी-तीरे-गोदवरी नटी के तट पर; अधिकारी-एक जिम्मेदार अधिकारी; हयेन-हैं; तेंहो-वे; विद्यानगरे-विद्यानगर नामक नगर में।

अनुवाद

“गोदावरी नदी के किनारे स्थित विद्यानगर नामक नगरी में रामानन्द राय नामक एक जिम्मेदार सरकारी अधिकारी हैं।”

तात्पर्य

भक्तिविनोद ठाकुर ने अमृत-प्रवाह-भाष्य में लिखा है कि विद्यानगर आजकल पोरबन्दर के नाम से विख्यात है। पश्चिमी भारत के गुजरात प्रान्त में भी एक अन्य पोरबन्दर है।

शूद्र विषयि-ज्ञाने उपेक्षा ना करिबे ।

आमार वचने ताँरे अवश्य मिलिबे ॥ 63 ॥

शूद्र-शूद्र; विषयि-ज्ञाने-एक सांसारी मनुष्य होने के नाते; उपेक्षा-उपेक्षा; ना करिबे-नहीं करें; आमार-मेरे; वचने-अनुरोध पर; ताँरे–उनको; अवश्य-अवश्य; मिलिबे-मिलें।

अनुवाद

“आप कृपया उन्हें भौतिक कार्यकलापों में व्यस्त रहने वाला शूद्र समझकर उनकी उपेक्षा न करें। मेरी विनती है कि आप उनसे अवश्य मिलें।”

तात्पर्य

वर्णाश्रम धर्म में शूद्र चौथा सामाजिक विभाग है। परिचयात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् (भगवद्गीता 18.44)। शूद्रों का कार्य है कि वे तीन उच्च वर्गों-ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों की सेवा करें। श्री रामानन्द राय करण जाति के थे, जो बंगाल में कायस्थ जाति के बराबर है। यह जाति सारे भारत में शूद्र तुल्य मानी जाती है। कहा जाता है कि उत्तर भारत

से जितने ब्राह्मण बंगाल आते थे, वे बंगाली कायस्थों को पहले अपने यहाँ नौकर रख लेते थे। बाद में क्लर्क-वर्ग बंगाल में कायस्थ हो गये। अब कायस्थों में अनेक जातियाँ हो गई हैं। बंगाल में कभी-कभी कहा जाता है कि जो लोग किसी विशिष्ट जाति के नहीं हैं, वे सब कायस्थ होते हैं। यद्यपि कायस्थों या करणों को शूद्र माना जाता है, किन्तु ये लोग अत्यन्त बुद्धिमान तथा काफी शिक्षित होते हैं। इनमें से अधिकांश वकील या राजनीतिज्ञ होते हैं। इसलिए कभी-कभी बंगाल में कायस्थों को क्षत्रिय माना जाता है। किन्तु उड़ीसा में करण समेत कायस्थ जाति को शूद्र वर्ग माना जाता है। श्रील रामानन्द राय इसी करण जाति के थे, अतएव वे शूद्र माने जाते थे। वे उड़ीसा के राजा महाराज प्रतापरुद्र के राज्य के अन्तर्गत दक्षिण भारत के राज्यपाल थे। दूसरे शब्दों में, सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु को यह बतलाया कि यद्यपि रामानन्द राय शूद्र जाति के हैं, किन्तु हैं अत्यन्त जिम्मेदार सरकारी अधिकारी। जहाँ तक आध्यात्मिक उन्नति की बात है, भौतिकतावादी, राजनीतिज्ञ अथवा शूद्र सभी सामान्यतया अयोग्य होते हैं। इसलिए सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से विनती की कि वे रामानन्द राय की उपेक्षा नहीं करें, क्योंकि वे शूद्र कुल में उत्पन्न होकर और भौतिकतावादी प्रतीत होने पर भी आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत हैं।

विषयी वह है, जो गृहस्थ जीवन में लिप्त रहकर केवल बीवी-बच्चों तथा सांसारिक इन्द्रियतृप्ति में रुचि रखता है। इन्द्रियों को या तो भौतिक भोग में या फिर भगवान् की सेवा में लगाई जा सकती हैं। जो लोग भगवान् की सेवा में नहीं लगे हैं और केवल भौतिक इन्द्रियतृप्ति में ही रुचि रखते हैं, वे विषयी कहलाते हैं। श्रील रामानन्द राय सरकारी नौकरी करते थे और करण जाति के थे। वे निश्चित रूप से गेरुवा वस्त्र धारण करने वाले संन्यासी नहीं थे, किन्तु वे परमहंस गृहस्थ पद को प्राप्त थे। चैतन्य महाप्रभु का शिष्य बनने के पहले सार्वभौम भट्टाचार्य रामानन्द राय को एक सामान्य विषयी समझते थे, क्योंकि वे सरकारी नौकरी में लगे हुए गृहस्थ थे। किन्तु जब भट्टाचार्य को वैष्णव दर्शन का वास्तविक ज्ञान हुआ, तो वे रामानन्द राय के उच्च आध्यात्मिक पद को समझ सके; इसीलिए उन्होंने उन्हें अधिकारी कहा। अधिकारी वह है, जो कृष्ण के दिव्य विज्ञान को जानता है और उनकी सेवा में लगा रहता है। इसीलिए सारे गृहस्थ भक्त दास अधिकारी कहलाते हैं।

तोमार सङ्गेर योग्य तेंहो एक जन ।

पृथिवीते रसिक भक्त नाहि ताँर सम ॥ 64॥

तोमार-आपके; सङ्गेर-संग के; योग्य-योग्य; तेंहो-वे (रामानन्द राय); एक-एक; जन-व्यक्ति; पृथिवीते-जगत् में; रसिक-दिव्य रसों में निपुण; भक्त-भक्त; नाहि नहीं है; ताँर सम-उनके समान।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने आगे कहा, "रामानन्द राय आपकी संगति के लिए उपयुक्त व्यक्ति है। दिव्य रसों के ज्ञान के विषय में अन्य कोई भक्त उनकी बराबरी नहीं कर सकता।"

पाण्डित्य आर भक्ति-रस,—दुँहेर तेंहो सीमा ।

सम्भाषिले जानिबे तुमि ताँहार महिमा ॥65॥

पाण्डित्य-पाण्डित्य, ज्ञान; आर-और; भक्ति-रस-भक्ति रस; दुँहेर-इन दोनों की; तेंहो-वह; सीमा-सीमा; सम्भाषिले-जब आप उनसे बात करेंगे; जानिबे-जान जाओगे; तुमि-आप; ताँहार-उनकी; महिमा-महिमाएँ।

अनुवाद

"वे अत्यन्त विद्वान एवं भक्ति-रस में दक्ष हैं। वे वास्तव में अत्यन्त उन्नत हैं और जब आप उनसे बात करेंगे, तो देखेंगे कि वे कितने महिमावान हैं।"

अलौकिक वाक्य चेष्टा ताँर ना बुझिया ।

परिहास करियाछि ताँरे 'वैष्णव' बलिया ॥66॥

अलौकिक-असाधारण; वाक्य-शब्द; चेष्टा-काम; ताँर-उनकी; ना-बिना; बुझिया-समझे; परिहास-परिहास; करियाछि-मैंने किया है; ताँरे—उनका; वैष्णव-वैष्णव; बलिया-जैसे।

अनुवाद

"जब पहले पहल मैंने रामानन्द राय से बात की थी, तो मुझे इसका अनुभव नहीं हो पाया था कि उनकी बातचीत तथा चेष्टाएँ दिव्य और असामान्य हैं। मैंने उनका परिहास किया था, क्योंकि वे वैष्णव थे।"

तात्पर्य

जो भी वैष्णव या भगवान् का शुद्ध भक्त नहीं होता, वह भौतिकतावादी है। जो वैष्णव श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों के अनुसार जीवन बिताता है, वह निश्चय ही भौतिकतावादी स्तर पर नहीं होता। चैतन्य का अर्थ है "आध्यात्मिक बल।" श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे कार्यकलाप आध्यात्मिक ज्ञान के स्तर पर होते थे; अतएव जो आध्यात्मिक स्तर पर

हैं, वे ही उनके कार्यकलापों को समझ सकते हैं। जो भौतिकतावादी व्यक्ति इन कार्यकलापों को नहीं समझ सकते, वे सामान्यतया कर्मी या ज्ञानी कहलाते हैं। ज्ञानी कोरे तर्कवादी हैं, जो केवल यही जानने में लगे रहते हैं कि आत्मा क्या है और पदार्थ क्या है। उनकी पद्धति होती है, नेतिनेति कहने की—"यह आत्मा नहीं है, यह ब्रह्म नहीं है।" ज्ञानी मन्दबुद्धि कर्मियों से कुछ उन्नत होते हैं, क्योंकि कर्मी केवल इन्द्रियतृप्ति में रुचि लेते हैं। वैष्णव बनने के पूर्व सार्वभौम भट्टाचार्य एक मानसिक तर्कवादी अर्थात् ज्ञानी थे, इसीलिए वे सर्वदा वैष्णवों का मजाक उड़ाया करते थे। वैष्णव कभी भी ज्ञानियों की चिन्तन पद्धति को नहीं मानता। ज्ञानी तथा कर्मी दोनों अपने अपूर्ण ज्ञान के लिए प्रत्यक्ष इन्द्रिय-अनुभूति पर निर्भर रहते हैं। कर्मी प्रत्यक्ष अनुभूति किये बिना किसी बात को नहीं मानते और ज्ञानी केवल परिकल्पनाएँ प्रस्तुत करते रहते हैं। किन्तु वैष्णव या भगवान् के शुद्ध भक्त न तो प्रत्यक्ष इन्द्रिय अनुभूति की विधि का, न ही मानसिक चिन्तन की विधि का पालन करते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दास होने के कारण वे सीधे भगवान् से ज्ञान प्राप्त करते हैं, जैसाकि भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं या कभी-कभी वे भीतर से चैत्य-गुरु के रूप में ज्ञान प्रदान करते हैं। जैसाकि भगवद्गीता (10.10) में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं :

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

"जो लोग निरन्तर प्रेमपूर्वक मेरी सेवा करने में समर्पित रहते हैं, उन्हें मैं बुद्धि प्रदान करता हूँ जिससे वे मेरे पास आ सकते हैं।"

यह माना जाता है कि वेद भगवान् द्वारा कहे गये हैं। उनकी पहली अनुभूति ब्रह्मा को हुई, जो इस ब्रह्माण्ड के प्रथम जीव हैं (तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये)। ज्ञान प्राप्त करने की हमारी विधि परम्परा-विधि है, जिसमें कृष्ण से ब्रह्मा को, ब्रह्मा से नारद, व्यास, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा छः गोस्वामियों को ज्ञान प्राप्त हुआ है। गुरु-शिष्य परम्परा से ब्रह्मा को आदि पुरुष कृष्ण ने भीतर से ज्ञान प्रदान किया। हमारा ज्ञान इसीलिए पूर्ण है, क्योंकि यह गुरु से शिष्य को हस्तान्तरित होता है। वैष्णव सदैव भगवान् की दिव्य प्रममयी सेवा में लगा रहता है, अतएव ज्ञानी या कर्मीजन में से कोई भी उसके कार्यों को नहीं समझ सकता। कहा भी गया है-वैष्णवेर क्रियामुद्रा विज्ञेह ना बुझय-इन्द्रिय-ज्ञान पर निर्भर अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति भी वैष्णव के कार्यों को नहीं समझ सकता। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा वैष्णव-मत में दीक्षित होने के बाद ही सार्वभौम भट्टाचार्य को यह समझ आया कि उन्होंने रामानन्द राय को समझने में क्या भूल की है, क्योंकि वे अत्यन्त विद्वान थे और उनके सारे प्रयत्न भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति सम्पन्न करने की दिशा में उन्मुख थे।

तोमार प्रसादे एबे जानिनु ताँर तत्त्व ।

सम्भाषिले जानिबे ताँर येमन महत्त्व ॥ 67॥

तोमार प्रसादे-आपकी कृपा से; एबे-अब; जानिनु-मैंने समझ लिया है; ताँर-उनका (रामानन्द राय का); तत्त्व-सत्य; सम्भाषिले-आपस में बातचीत करने से; जानिबे-आप जान जायेंगे; ताँर–उनका; येमन-ऐसा; महत्त्व महत्त्व।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "आपकी कृपा से मैंने अब रामानन्द राय को वास्तव में समझा है। आप उनसे बातें करेंगे, तो आप भी उनकी महानता को स्वीकार करेंगे।"

अङ्गीकार करि' प्रभु ताँहार वचन ।

ताँरे विदाय दिते ताँरे कैल आलिङ्गन ॥ 68॥

अङ्गीकार करि'-यह प्रस्ताव मानकर; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; ताँहार-उनका (सार्वभौम भट्टाचार्य का); वचन–अनुरोध; ताँरे–उनको; विदाय दिते–विदा किया; ताँरे-उनका; कैल–किया; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य के इस अनुरोध को मान लिया कि वे रामानन्द राय से अवश्य मिलें। महाप्रभु ने सार्वभौम से विदा लेते हुए उनका आलिंगन किया।

"घरे कृष्ण भजि' मोरे करिह आशीर्वादे ।

नीलाचले आसि' येन तोमार प्रसादे" ॥ 69॥

घरे–घर पर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; भजि'–पूजा करके; मोरे-मुझे; करिह-दो; आशीर्वादे-आशीर्वाद; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी; आसि'-लौटकर; येन-ताकि; तोमार-आपकी; प्रसादे-दया से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भट्टाचार्य से कहा कि जब वे अपने घर में भगवान् कृष्ण की भक्ति में लगे हों, तब वे उन्हें आशीर्वाद देते रहें, जिससे सार्वभौम की कृपा से वे पुनः जगन्नाथ पुरी वापस आ सकें।

तात्पर्य : करिह आशीर्वादे का अर्थ है "आप मुझे आशीर्वाद देते रहें।" संन्यासी होने के कारण चैतन्य महाप्रभु चौथे आश्रम में थे और इसलिए अत्यन्त सम्मानित तथा पूज्य पद पर थे, जबकि गृहस्थ होने के कारण सार्वभौम भट्टाचार्य द्वितीय पद पर थे। अतएव उम्मीद तो यह की जाती है कि संन्यासी गृहस्थ को आशीर्वाद दे, किन्तु महाप्रभु ने अपने व्यावहारिक आचरण के द्वारा एक गृहस्थ से आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। इस घटना से श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा की विशिष्टता दिखाई देती है। उन्होंने भौतिक धारणाओं की परवाह न करते हुए हर व्यक्ति को समान पद प्रदान किया। उनका आन्दोलन सर्वथा आध्यात्मिक है। यद्यपि सार्वभौम भट्टाचार्य कहने को गृहस्थ थे, किन्तु वे इन्द्रियतृप्ति में रुचि रखने वाले तथाकथित कर्मियों से भिन्न थे। श्री चैतन्य महाप्रभु से दीक्षित हो जाने के बाद भट्टाचार्य आध्यात्मिक स्तर पर पूर्णतः अवस्थित थे। अतएव वे संन्यासी को भी आशीर्वाद देने में सक्षम थे। वे घर पर भी सदैव भगवान् की सेवा में लगे रहते थे। हमारी गुरु-शिष्य परम्परा में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के रूप में पूर्ण गृहस्थ-परमहंस का उदाहरण हमें प्राप्त है। उन्होंने अपनी पुस्तक शरणागति (31.6) में कहा है- ये दिन गृहे, भजन देखि गृहेते गोलोक भाय। जब भी कोई गृहस्थ अपने घर पर भगवान् की महिमा का गायन करता है, तो उसके सारे कार्य गोलोक वृन्दावन के कार्यों में परिणत हो जाते हैं अर्थात् उन आध्यात्मिक कार्यों में बदल जाते हैं जो कृष्ण के धाम, गोलोक वृन्दावन में सम्पन्न होते हैं। भौम वृन्दावन में अर्थात् इस ग्रह के वृन्दावन धाम में कृष्ण जो भी कार्यकलाप प्रदर्शित करते हैं, वे गोलोक वृन्दावन में सम्पन्न किये जाने वाले उनके कार्यों से भिन्न नहीं होते। कहीं पर भी वृन्दावन की यही सही अनुभूति है। हमने अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में नव-वृन्दावन के कार्यकलापों का सूत्रपात किया है, जहाँ भक्त सदैव दिव्य कृष्ण-भक्ति में लगे रहते हैं और यह गोलोक वृन्दावन से भिन्न नहीं है। निष्कर्ष यह है कि जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु की परम्परा के अनुसार पूरी तरह कार्य करता है, वह संन्यासी को भी आशीर्वाद देने में सक्षम है, भले ही वह स्वयं गृहस्थ क्यों न हो। कोई संन्यासी किसी भी उन्नत पद पर क्यों न हो, उसे भगवान् की सेवा करके अपने आपको दिव्य पद तक ऊपर उठाना चाहिए। अपने वास्तविक आचरण द्वारा चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य से आशीर्वाद माँगा। इस तरह उन्होंने दृष्टान्त प्रस्तुत किया कि वैष्णव के सामाजिक पद की परवाह न करते हुए किस तरह उसके आशीर्वाद की आशा की जानी चाहिए।

एत बलि' महाप्रभु करिला गमन ।

मूर्च्छित हञा ताहाँ पड़िला सार्वभौम ॥ 70 ॥

एत बलि'-यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करिला–किया; गमन-प्रस्थान; मूर्च्छित- मूर्च्छित; हञा–होकर; ताहाँ-वहाँ; पड़िला–गिर गये; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी यात्रा पर चल पड़े और उधर सार्वभौम भट्टाचार्य तुरन्त मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

तारे उपेक्षिया कैल शीघ्र गमन ।

के बुझिते पारे महाप्रभुर चित्त-मन ॥71॥

तारे–सार्वभौम भट्टाचार्य की; उपेक्षिया-उपेक्षा करके; कैल-किया; शीघ्र-शीघ्र; गमन-गमन; के-कौन; बुझिते-समझ; पारे-सकता है; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; चित्त-मन-मन और इच्छा।

अनुवाद

यद्यपि सार्वभौम भट्टाचार्य मूर्छित हो गये, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस पर ध्यान नहीं दिया, प्रत्युत वे तुरन्त वहाँ से चले गये। भला श्री चैतन्य महाप्रभु के मन तथा मनोभाव को कौन समझ सकता है?

तात्पर्य

स्वाभाविक तौर पर यह आशा की जाती थी कि जब सार्वभौम भट्टाचार्य मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े, तब श्री चैतन्य महाप्रभु को उनकी देखभाल करनी चाहिए थी और उनकी चेतना आने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए थी; किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। बल्कि श्री चैतन्य महाप्रभु तुरन्त अपनी यात्रा पर निकल पड़े। अतएव दिव्य पुरुष के कार्यों को समझ पाना अत्यन्त कठिन है। कभी-कभी ऐसे पुरुष भले ही असामान्य लगें, किन्तु दिव्य व्यक्ति भौतिक धारणाओं से अछूते रहकर अपने पद पर बने रहते हैं।

महानुभावेर चित्तेर स्वभाव एइ हय ।

पुष्प-सम कोमल, कठिन वज्र-मय ॥72॥

महा-अनुभावेर-महान् व्यक्ति का; चित्तेर-मन का; स्वभाव-स्वभाव; एइ हय-यही है; पुष्प-सम-फूल के समान; कोमल कोमल; कठिन–कठोर; वज्र-मय-वज्र के समान।

अनुवाद

एक महान् व्यक्ति के मन का स्वभाव ऐसा ही होता है। कभी वह फूल के समान कोमल हो जाता है, तो कभी वज्र के समान कठोर।

तात्पर्य

महापुरुष के व्यवहार में फूल की कोमलता तथा वज्र की कठोरता का सम्मिलन होता है। उत्तर रामचरित का निम्नलिखित उद्धरण (2.7) इस व्यवहार की व्याख्या करता है। मध्यलीला के तृतीय अध्याय के श्लोक 212 को भी देखा जा सकता है।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।

लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमीश्वरः ॥73॥

वज्रात् अपि-वज्र से भी; कठोराणि-कठोर; मृदूनि-कोमल; कुसुमात् अपि-पुष्प से भी; लोक-उत्तराणाम्-मानव स्वभाव से ऊपर व्यक्ति का; चेतांसि-हृदय; कः-कौन; नु–किन्तु; विज्ञातुम् समझने में; ईश्वरः-सक्षम।

अनुवाद

"सामान्य व्यक्ति से ऊँचे व्यवहार वालों के हृदय कभी वज्र से भी अधिक कठोर होते हैं, तो कभी फूल से भी अधिक कोमल होते हैं। महापुरुषों में ऐसे विरोधाभासों को समझने में कौन समर्थ हो सकता है?"

नित्यानन्द प्रभु भट्टाचार्ये उठाइल ।

ताँर लोक-सङ्गे ताँरे घरे पाठाइल ॥74॥

नित्यानन्द प्रभु-श्री नित्यानन्द प्रभु ने; भट्टाचार्ये-सार्वभौम भट्टाचार्य; उठाइल-उठाया; ताँर–उनके; लोक-सङ्गे–साथियों सहित; ताँरे–उनके (भट्टाचार्य); घरे–घर; पाठाइल-भेज दिया।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य को उठाया और उनके लोगों की सहायता से उन्हें उनके घर भेज दिया।

भक्त-गण शीघ्र आसि' लैल प्रभुर साथ ।

वस्त्र-प्रसाद लञा तबे आइला गोपीनाथ ॥75 ॥

भक्त-गण-भक्त; शीघ्र-शीघ्र; आसि'-आकर; लैल–लिया; प्रभुर–महाप्रभु का; साथ-संग; वस्त्र-वस्त्र; प्रसाद-भगवान् जगन्नाथ के प्रसाद; लञा–के साथ; तबे-तब; आइला-आये; गोपीनाथ-गोपीनाथ आचार्य।

अनुवाद

तुरन्त सारे भक्त आ गये और श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ हो लिए। इसके बाद गोपीनाथ आचार्य वस्त्र तथा प्रसाद लेकर आये।

सबा-सङ्गे प्रभु तबे आलालनाथ आइला ।

नमस्कार करि' तारे बहु-स्तुति कैला ॥ 76 ॥

सबा-सड़े-उन सबके साथ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तबे-तब; आलालनाथ-आलालनाथ नामक स्थान; आइला–पहुँचे; नमस्कार करि'-नमस्कार करके; तारे-श्री चैतन्य महाप्रभु; बहु-स्तुति-बहुत स्तुति; कैला-की।

अनुवाद

सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ आलालनाथ तक गये। वहाँ उन सबने नमस्कार किया और विविध स्तुतियाँ कीं।

प्रेमावेशे नृत्य-गीत कैल कत-क्षण ।

देखिते आइला ताहाँ वैसे यत जन ॥77॥

प्रेम-आवेशे-भगवत्-प्रेमावेश में; नृत्य-गीत-नृत्य और कीर्तन; कैल–किया; कत-क्षण-कुछ समय के लिए; देखिते-देखने के लिए; आइला–आये; ताहाँ-वहाँ; वैसे-जो रहते थे; यत जन-सभी लोग।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कुछ समय तक अत्यधिक भावावेश में नृत्य और कीर्तन किया। पड़ोस के सारे लोग उन्हें देखने आये।

चौदिकेते सब लोक बले 'हरि' 'हरि' ।

प्रेमावेशे मध्ये नृत्य करे गौरहरि ॥78॥

चौदिकेते-चारों ओर; सब लोक-सभी लोग; बले-जोर जोर से बोलने लगे; हरि हरि-'हरि हरि'- भगवान् का पावन नाम; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; मध्ये-मध्य में; नृत्य करे-नृत्य करते हैं; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

गौरहरि के नाम से विख्यात श्री चैतन्य महाप्रभु के चारों ओर लोग जोर-जोर से हरि नाम का उच्चारण करने लगे। श्री चैतन्य महाप्रभु हमेशा की तरह अपने प्रेमावेश में मग्न होकर उन सबके बीच नाचते रहे।

काञ्चन-सदृश देह, अरुण वसन ।

पुलकाश्रु-कम्प-स्वेद ताहाते भूषण ॥79॥

काञ्चन-सदृश–पिघले सोने की तरह; देह-शरीर; अरुण-केसरी; वसन-वस्त्र; पुलक-अश्रु-पुलकित शरीर तथा रोते हुए; कम्प–कांपते हुए; स्वेद-पसीना; ताहाते-उन पर; भूषण-आभूषण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का शरीर प्राकृतिक रूप से अत्यन्त सुन्दर था। यह पिघले सोने के समान था और केसरिया वस्त्र से सज्जित था। वे भाव-लक्षणों यथा रोमांच, अश्रु, कम्पन तथा शरीर-भर में पसीने से अलंकृत होकर अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे।

देखिया लोकेर मने हैल चमत्कार ।

यत लोक आइसे, केह नाहि याय घर ॥80॥

देखिया-यह सब देखकर; लोकेर-लोगों के; मने-मन में; हैल-था; चमत्कार-आश्चर्य; यत-सब; लोक-लोग; आइसे-वहाँ आ गये; केह-कोई भी; नाहि-नहीं; याय-जाता; घर-घर।

अनुवाद

वहाँ पर उपस्थित सारे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के नृत्य तथा उनके शारीरिक परिवर्तनों को देखकर चकित थे। जो भी वहाँ आया वह घर जाने का नाम नहीं ले रहा था।

केह नाचे, केह गाय, 'श्री-कृष्ण' 'गोपाल'।

प्रेमेते भासिल लोक,—स्त्री-वृद्ध-आबाल ॥81॥

केह नाचे-कोई नाचता है; केह गाय-कोई गाता है; श्री-कृष्ण-भगवान् कृष्ण के नाम का; गोपाल–गोपाल; प्रेमेते-भगवत्प्रेम में; भासिल-तैरने लगे; लोक-सभी लोग; स्त्री-महिलाएँ; वृद्ध–वृद्ध पुरुष; आ-बाल-बच्चों से लेकर।

अनुवाद

बच्चे, बूढ़े तथा स्त्रियाँ-हर कोई श्रीकृष्ण तथा गोपाल नाम ले-लेकर नाचने-गाने लगा। इस तरह वे सब भगवत्प्रेम के सागर में तैर रहे थे।

देखि' नित्यानन्द प्रभु कहे भक्त-गणे।

एइ-रूपे नृत्य आगे हबे ग्रामे-ग्रामे ॥82॥

देखि'–यह देखकर; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; प्रभु-प्रभु; कहे-कहते हैं; भक्त-गणे-भक्तों को; एइ-रूपे-इस प्रकार; नृत्य-नृत्य; आगे-भविष्य में; हबे-होगा; ग्रामे-ग्रामे-प्रत्येक गाँव में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के कीर्तन तथा नृत्य को देखकर श्री नित्यानन्द प्रभु ने भविष्यवाणी की कि आगे चलकर गाँव-गाँव में ऐसा नृत्य तथा कीर्तन होगा।

तात्पर्य

श्री नित्यानन्द प्रभु की यह भविष्यवाणी न केवल भारत पर अपितु सारे विश्व पर लागू होती है। उनकी कृपा से अब ऐसा ही हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के सदस्य अब पाश्चात्य देशों में गाँव-गाँव में यात्रा कर रहे हैं और अपने साथ अर्चाविग्रह भी लिए रहते हैं। ये भक्त सारे विश्व में विविध पुस्तकें वितरित करते हैं। हमें आशा है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के सन्देश का प्रचार करने वाले ये भक्त गम्भीरतापूर्वक एवं दृढ़ता के साथ उनका अनुसरण करेंगे। यदि वे नियमों का पालन करें और नित्य सोलह माला का जप करें, तो श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करने का उनका प्रयत्न अवश्य ही सफल होगा।

अतिकाल हैल, लोक छाड़िया ना याय ।

तबे नित्यानन्द-गोसाञि सृजिला उपाय ॥83॥

अतिकाल-बहुत देर; हैल-हो गई; लोक-लोग; छाड़िया-छोड़कर; ना याय-नहीं जाते हैं; तबे-उस समय; नित्यानन्द-श्रील नित्यानन्द प्रभु; गोसाञि-गोसांई; सृजिला–निकाला; उपाय-साधन।

अनुवाद

यह देखकर कि काफी विलम्ब हो रहा है, नित्यानन्द गोसांई ने भीड़ छटाने का उपाय ढूँढ निकाला।

मध्याह्न करिते गेला प्रभुके लञा ।

ताहा देखि' लोक आइसे चौदिके धाञा ॥84॥

मध्याह्न करिते-दोपहर का भोजन करने के लिए; गेला–गये; प्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा-लेकर; ताहा देखि'–उन्हें देखकर; लोक-सभी लोग; आइसे-आये; चौदिके चारों ओर; धाञा-दौड़कर।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु को दोपहर का भोजन कराने ले गये, तो सारे लोग उनके चारों ओर दौड़ते हुए आये।

मध्याह्न करिया आइला देवता-मन्दिरे ।

निज-गण प्रवेशि' कपाट दिल बहिद्वरि ॥85॥

मध्याह्न करिया-स्नान आदि करके; आइला-लौटकर आये; देवता-मन्दिरे-भगवान् के मन्दिर को; निज-गण प्रवेशि'-अपने लोगों को अन्दर प्रविष्ट करके; कपाट दिल-बन्द किये; बहिर्-द्वारे-बाहर का द्वार।

अनुवाद

स्नान करने के बाद वे दोपहर के समय मन्दिर लौट आये। श्री नित्यानन्द प्रभु ने अपने लोगों को भीतर लेकर बाहरी दरवाजे को बन्द कर लिया।

तबे गोपीनाथ दुइ-प्रभुरे भिक्षा कराइल ।

प्रभुर शेष प्रसादान्न सबे बाँटि' खाइल ॥86॥

तबे-तब; गोपीनाथ-गोपीनाथ आचार्य; दुइ-प्रभुरे–चैतन्य महाप्रभु एवं नित्यानन्द प्रभु दोनों को; भिक्षा कराइल–प्रसाद खिलाया; प्रभुर–महाप्रभु का; शेष-शेष; प्रसाद-अन्न–अन्न–प्रसाद; सबे-उन सबने; बाँटि'–बाँटकर; खाइल-खाया।

अनुवाद

तत्पश्चात् गोपीनाथ आचार्य दोनों प्रभुओं के खाने के लिए प्रसाद ले आये, और जब वे खा चुके, तो प्रभुओं के शेष बचे प्रसाद को सभी भक्तों में बाँट दिया गया।

शुनि' शुनि' लोक-सब आसि' बहिर्द्वारि।

'हरि' 'हरि' बलि' लोक कोलाहल करे ॥ 87॥

शुनि' शुनि'-यह सुनकर; लोक-सब-सभी लोग; आसि'-वहाँ आये; बहिर्-द्वारे-बाहर के द्वार पर; हरि हरि-भगवान् का पावन नाम "हरि हरि"; बलि'–उच्चारण करके; लोक-सभी लोग; कोलाहल-कोलाहल; करे–करने लगे।

अनुवाद

यह सुनकर सारे लोग बाहरी दरवाजे पर आ गये और 'हरि' 'हरि' कहकर कीर्तन करने लगे। इस तरह वहाँ पर कोलाहल मच गया।

तबे महाप्रभु द्वार कराइल मोचन।

आनन्दे आसिया लोक पाइल दरशन ॥88॥

तबे-इसके बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; द्वार-द्वार; कराइल-किया; मोचन–खोलना; आनन्दे-आनन्द में; आसिया-आकर; लोक-सभी लोगों ने; पाइल-पाया; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

दोपहर के भोजन के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने दरवाजा खुलवा दिया। इस तरह हर एक ने बड़े ही आनन्द से उनका दर्शन प्राप्त किया।

एइ-मत सन्ध्या पर्यन्त लोक आसे, याय ।

'वैष्णव' हइल लोक, सबै नाचे, गाय ॥89॥

एइ-मत-इस प्रकार; सन्ध्या पर्यन्त–संध्या तक; लोक-लोग; आसे याय-आये और गये; वैष्णव-भक्त, वैष्णव; हइल-बन गये; लोक-सभी लोग; सबे–वे सब; नाचे-नाचने लगे; गाय-और कीर्तन करने लगे।

अनुवाद

लोग संध्या-समय तक आते और जाते रहे। वे सभी वैष्णव-भक्त बन गये और कीर्तन करने और नाचने लगे।

एइ-रूपे सेइ ठाञि भक्त-गण-सङ्गे ।

सेइ रात्रि गोङाइला कृष्ण-कथा-रङ्गे ॥10॥

एइ-रूपे-इस प्रकार; सेइ ठाञि-उसी जगह पर; भक्त-गण-सङ्गे-भक्तों के साथ; सेइ रात्रि-वह रात; गोङाइला–गुजारी; कृष्ण-कथा-रङ्गे-आनन्दपूर्वक भगवान् कृष्ण की चर्चा करने में।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रात वहीं बिताई, और अपने भक्तों के साथ बड़े ही आनन्द से भगवान् कृष्ण की लीलाओं की चर्चा की।

प्रातःकाले स्नान करि' करिला गमन ।

भक्त-गणे विदाय दिला करि' आलिङ्गन ॥91॥

प्रातः-काले-प्रातः काल; स्नान-स्नान; करि'–करके; करिला-प्रारम्भ की; गमन-यात्रा; भक्त-गणे-सभी भक्तों को; विदाय–विदाई; दिला-दी; करि'-करके; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

प्रातःकाल स्नान करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी दक्षिण-भारत यात्रा पर चल पड़े। उन्होंने भक्तों का आलिंगन करके उनसे विदा ली।

मूर्च्छित हञा सबे भूमिते पड़िला ।

ताँहा-सबा पाने प्रभु फिरि' ना चाहिला ॥92॥

मूर्च्छित हञा–मूर्छित होकर; सबे-सभी; भूमिते-भूमि पर; पड़िला–गिर पड़े; ताँहा-सबा–उन सब; पाने की ओर; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु ने; फिरि'–मुड़कर; ना-नहीं; चाहिला–देखा।

अनुवाद

यद्यपि वे सब बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़े थे, किन्तु महाप्रभु ने मुड़कर उनकी ओर नहीं देखा-वे आगे ही बढ़ते गये।

विच्छेदे व्याकुल प्रभु चलिला दुःखी हञा ।

पाछे कृष्णदास याय जल-पात्र लञा ॥ 93 ॥

विच्छेदे-विरह में; व्याकुल-व्याकुल; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चलिला–चले गये; दुःखी-दुःखी; हञा–होकर; पाछे-पीछे; कृष्णदास-उनका सेवक कृष्णदास; याय-गया; जल-पात्र-जलपात्र; लञा-लेकर।

अनुवाद

वियोग के कारण महाप्रभु अत्यन्त व्याकुल हो उठे और दुःखी मन से चलते रहे। उनका सेवक कृष्णदास उनका जलपात्र लिए उनके पीछे पीछे चल रहा था।

भक्त-गण उपवासी ताहाडिरहिला ।

आर दिने दुःखी हञा नीलाचले आइला ॥94॥

भक्त-गण-भक्त गण; उपवासी-उपवास करके; ताहाडि-वहाँ; रहिला-रहे; आर दिने-अगले दिन; दुःखी-दुःखी; हञा–होकर; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी; आइला-लौट गये।

अनुवाद

सारे भक्त वहीं बिना खाये पड़े रहे, किन्तु अगले दिन सभी दुःखी मन से जगन्नाथ पुरी लौट गये।

मत्त-सिंह-प्राय प्रभु करिला गमन ।

प्रेमावेशे याय करि' नाम-सङ्कीर्तन ॥ 95॥

मत्त-सिंह-एक उन्मत्त शेर; प्राय-की भाँति; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करिला-किया; गमन प्रस्थान; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; याय-गये; करि'-करते हुए ; नाम-सङ्कीर्तन-हरिनाम संकीर्तन।

अनुवाद

प्रायः उन्मत्त सिंह की भाँति श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी यात्रा पर निकल पड़े। वे प्रेमावेश से पूर्ण थे और कृष्ण-नाम का निम्नवत् उच्चारण करते हुए संकीर्तन करते जा रहे थे।

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! हे ।

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! हे ॥

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! रक्ष माम् ।

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! पाहि माम् ॥

राम! राघव! राम! राघव! राम! राघव! रक्ष माम् ।

कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! पाहि माम् ॥ 96 ॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; हे–हे; रक्ष–कृपया रक्षा करो; माम्-मेरी; पाहि-कृपया रक्षा करो; राम-भगवान् राम; राघव-राजा रघु के वंशज; केशव-केशी राक्षस के हन्ता।

अनुवाद

महाप्रभु कीर्तन कर रहे थे-

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! हे

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! हे

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! रक्ष माम्

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! पाहि माम्

अर्थात् "हे भगवान् कृष्ण! कृपया मेरी रक्षा कीजिये और मेरा पालन कीजिये।" उन्होंने यह भी कीर्तन किया-

राम! राघव! राम! राघव! राम! राघव! रक्ष माम् ।

कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! पाहि माम् ।

अर्थात् हे राजा रघु के वंशज! हे भगवान् राम! मेरी रक्षा करें। हे कृष्ण, हे केशी असुर के संहारक केशव, कृपया मेरा पालन करें।

एइ श्लोक पड़ि' पथे चलिला गौरहरि ।

लोक देखि पथे कहे,—बल 'हरि' 'हरि' ॥ 97॥

एइ श्लोक पड़ि'-यह (कृष्ण! कृष्ण!) श्लोक पढ़कर; पथे रास्ते में; चलिला-गये; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभुः लोक देखि'-दूसरे लोगों को देखकर; पथे-मार्ग में; कहे-वे कहते हैं; बल-कहो; हरि हरि-भगवान् हरि का नाम हरि हरि बोलो।

अनुवाद

इस श्लोक का कीर्तन करते हुए गौरहरि श्री चैतन्य महाप्रभु अपने मार्ग पर चले जा रहे थे। जब वे किसी को देखते, तो वे उससे अनुरोध करते कि "हरि! हरि!" बोलो।

सेइ लोक प्रेम-मत्त हञा बले 'हरि' 'कृष्ण' ।

प्रभुर पाछे सङ्गे याय दर्शन-सतृष्ण ॥98॥

सेइ लोक-वह व्यक्ति; प्रेम-मत्त-भगवत् प्रेम में पागल; हञा–होकर; बले-कहता है; हरि कृष्ण-भगवान् हरि तथा भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; प्रभुर पाछे–महाप्रभु के पीछे; सङ्गे–उनके साथ; याय-जाता है; दर्शन-सतृष्ण-उनके दर्शन करने के लिए अत्यन्त उत्सुक होकर।

अनुवाद

जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु को "हरि! हरि!" बोलते सुनता, वह भी हरि तथा कृष्ण के नामों का उच्चारण करने लगता। इस तरह वे सब महाप्रभु का दर्शन पाने की उत्सुकता से उनके पीछे-पीछे चलने लगते।

कत-क्षणे रहि' प्रभु तारे आलिङ्गिया ।

विदाय करिल तारे शक्ति सञ्चारिया ॥ 99॥

कत-क्षणे रहि'-कुछ क्षण ठहरकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे–उनमें से प्रत्येक को; आलिङ्गिया-आलिंगन करके; विदाय करिल-विदा किया; तारे-उनमें से प्रत्येक में; शक्ति-आध्यात्मिक शक्ति; सञ्चारिया-संचारित करके।

अनुवाद

कुछ समय बाद महाप्रभु उन लोगों का आलिंगन करते और उन्हें आध्यात्मिक शक्ति से ओतप्रोत करने के बाद घर वापस जाने के लिए कहते।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में बतलाया है कि यह आध्यात्मिक शक्ति ह्लादिनी शक्ति तथा संवित् शक्ति का सार है। इन दोनों शक्तियों से मनुष्य भक्ति से समन्वित होता है। स्वयं भगवान् कृष्ण या उनका प्रतिनिधि कोई शुद्ध भक्त इन सम्मिलित शक्तियों को किसी भी व्यक्ति को कृपा करके दे सकते हैं। इन शक्तियों से युक्त होकर कोई भी व्यक्ति भगवान् का शुद्ध भक्त बन सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने जिस पर भी कृपा की, उसे यह भक्ति-शक्ति प्रदान की। इस तरह महाप्रभु के सारे अनुयायी भगवान् की कृपावश कृष्णभावनामृत का प्रचार करने में समर्थ हो सके।

सेइ-जन निज-ग्रामे करिया गमन ।

'कृष्ण' बलि' हासे, कान्दे, नाचे अनुक्षण ॥ 100॥

सेइ-जन-वह व्यक्ति; निज-ग्रामे-अपने गाँव को; करिया गमन-लौटकर; कृष्ण बलि'–कृष्ण का पावन नाम कहकर; हासे-हँसता है; कान्दे-रोता है; नाचे-नाचता है; अनुक्षण-सदा।

अनुवाद

इस प्रकार शक्ति को पाकर हर व्यक्ति कृष्ण-नाम का कीर्तन करता और कभी हँसता, रोता और नाचता हुआ अपने घर को लौटता।

यारे देखे, तारे कहे,—कह कृष्ण-नाम ।

एइ-मत 'वैष्णव' कैल सब निज-ग्राम ॥ 101॥

यारे देखे-जिसे भी वह मिलता; तारे-उसको; कहे-वह कहता; कह कृष्ण-नाम-कृपया हरे कृष्ण मंत्र का उच्चारण करो; एइ-मत-इस प्रकार; वैष्णव-भगवान् के भक्त; कैल-हो गये; सब-सब; निज-ग्राम-अपने गाँव।

अनुवाद

इस प्रकार शक्ति प्राप्त व्यक्ति जिस किसी को देखता, उसी से प्रार्थना करता कि वह कृष्ण-नाम का उच्चारण करें। इस तरह सारे गाँव वाले भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के भक्त बन जाते।

तात्पर्य

ऐसे शक्ति-प्राप्त प्रचारक बनने के लिए मनुष्य के लिए यह आवश्यक है। कि उसे चैतन्य महाप्रभु या उनके भक्त श्री गुरुदेव की कृपा प्राप्त हो। भक्त को प्रत्येक व्यक्ति को महामन्त्र का कीर्तन करने का अनुरोध करना चाहिए। इस तरह ऐसा व्यक्ति दूसरों को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का शुद्ध भक्त बनने का मार्ग दिखलाकर उन्हें वैष्णव बना सकता है।

ग्रामान्तर हैते देखिते आइल यत जन ।

ताँर दर्शन-कृपाय हय ताँर सम ॥102॥

ग्राम-अन्तर हैते–विभिन्न गाँवों से; देखिते-देखने के लिए; आइल-आये; यत जन-सभी लोग; ताँर–उनके; दर्शन-कृपाय-दर्शन की कृपा से; हय-हो गये; ताँर सम-उसी प्रकार के भक्त।

अनुवाद

ऐसे शक्ति प्राप्त लोगों का दर्शन करने मात्र से विभिन्न गाँवों के लोग जो उन्हें देखने आते, उनकी कृपादृष्टि से उन्हीं के समान बन जाते।

सेइ याइ' ग्रामेर लोक वैष्णव करय ।

अन्य-ग्रामी आसि' ताँरे देखि' वैष्णव हय ॥ 103॥

सेइ-वह भक्त; याइ'-अपने गाँव में जाकर; ग्रामेर लोक-गाँव के सभी लोगों को; वैष्णव-भक्त; करय-बनाता; अन्य-ग्रामी–विभिन्न गाँवों के निवासी; आसि'-वहाँ आकर; ताँरे देखि'–उसे देखकर; वैष्णव हय-भक्त हो जाते।

अनुवाद

जब शक्ति से संचारित ये लोग अपने अपने गाँवों को लौटते, तो इन्होंने भी दूसरों को भक्त बना लिया। जब और लोग विभिन्न गाँवों से इन्हें देखने आये, तो वे भी भक्त बन गये।

सेइ याइ' आर ग्रामे करे उपदेश ।

एइ-मत 'वैष्णव' हैल सब दक्षिण-देश ॥ 104॥

सेइ-वह व्यक्ति; याइ'–जाकर; आर-अन्य; ग्रामे-गाँव को; करे-देता है; उपदेश-उपदेश; एइ-मत-इस प्रकार; वैष्णव-भक्त; हैल–हो गये; सब-सब; दक्षिण-देश-दक्षिण भारत के लोग।

अनुवाद

इस प्रकार जैसे जैसे वे सारे शक्ति प्राप्त लोग एक गाँव से दूसरे गाँव जाने लगे, वैसे वैसे दक्षिण भारत के सारे लोग भक्त बनते गये।

एइ-मत पथे याइते शत शत जन ।

'वैष्णव' करेन ताँरे करि' आलिङ्गन ॥105॥

एइ-मत-इस प्रकार; पथे-मार्ग में; माइते-जाते समय; शत शत-सैंकड़ों; जन-लोग; वैष्णव-भक्त; करेन-बनाते हैं; तारे–उनको; करि'-करके; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

इस तरह कई सौ लोग वैष्णव बन गये, जो महाप्रभु को रास्ते में मिले और जिन्हें उन्होंने गले लगाया।

येइ ग्रामे रहि' भिक्षा करेन याँर घरे ।

सेइ ग्रामेर यत लोक आइसे देखिबारे ॥ 106॥

येइ ग्रामे-जिस किसी गाँव में; रहि'–ठहरते हैं; भिक्षा–भिक्षा; करेन-लेने के लिए; याँर–जिसके; घरे–घर पर; सेइ-उसी; ग्रामेर–गाँव के; यत लोक-सभी लोग; आइसे-आते हैं; देखिबारे-दर्शन के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जिस-जिस गाँव में भिक्षा ग्रहण करने के लिए रुके, वहीं अनेक लोग उनका दर्शन करने आये।

प्रभुर कृपाय हय महाभागवत ।

सेइ सब आचार्य हञा तारिल जगत् ॥ 107॥

प्रभुर कृपाय-महाप्रभु की कृपा से; हय–हो गये; महा-भागवत–प्रथम श्रेणी के भक्त; सेइ सब-ऐसे सभी लोग; आचार्य-गुरु; हञा–होकर; तारिल-उद्धार किया; जगत्-सारे जगत् का।

अनुवाद

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से सारे व्यक्ति उच्च कोटि के भक्त बन गये। बाद में वे शिक्षक या गुरु बने और उन्होंने सम्पूर्ण जगत् का उद्धार किया।

एइ-मत कैला यावत्गेला सेतुबन्धे ।

सर्व-देश 'वैष्णव' हैल प्रभुर सम्बन्धे ॥108॥

एइ-मत-इस प्रकार; कैला–किया; यावत्-तक; गेला-गये; सेतुबन्धे-सेतु बन्धु, भारत का दक्षिणतम भाग; सर्व-देश-सभी देश; वैष्णव-भक्त; हैल–हो गये; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; सम्बन्धे–के सम्बन्ध में।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु भारत की दक्षिण सीमा तक गये और उन्होंने सारे प्रान्तों के लोगों को वैष्णव बना दिया।

नवद्वीपे येइ शक्ति ना कैला प्रकाशे ।

से शक्ति प्रकाशि' निस्तारिल दक्षिण-देशे ॥109॥

नवद्वीपे–नवद्वीप में; येइ-जो; शक्ति-शक्ति; ना-नहीं; कैला-की; प्रकाशे-प्रकट; से-वह; शक्ति-शक्ति; प्रकाशि'–प्रकट करके; निस्तारिल-उद्धार किया; दक्षिण-देशे-दक्षिण भारत का।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नवद्वीप में अपनी आध्यात्मिक शक्ति प्रकट नहीं की, किन्तु उन्होंने ने दक्षिण भारत में उसे प्रकट किया और वहाँ के सारे लोगों का उद्धार किया।

तात्पर्य

नवद्वीप धाम श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्मस्थल है। उस समय वहाँ अनेक स्मार्त (वैदिक कर्मकाण्डी किन्तु अभक्त) रहते थे। स्मृति-शास्त्र के अनुयायी स्मार्त कहलाते हैं। उनमें से अधिकांश अभक्त होते हैं और उनका मुख्य कार्य है ब्राह्मण-सिद्धान्तों का कड़ाई से पालन करना। किन्तु इन्हें भक्ति का ज्ञान नहीं होता। नवद्वीप में सारे विद्वान लोग स्मृति-शास्त्र के अनुयायी (स्मार्त) हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें बदलने का प्रयास नहीं किया। इसीलिए लेखक ने यह विशेष रूप से उल्लेख किया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने जो आध्यात्मिक शक्ति नवद्वीप में प्रकट नहीं की थी, वह उनकी कृपा से दक्षिण भारत में प्रकट हुई। इस तरह वहाँ का हर व्यक्ति वैष्णव बन गया। इससे यह समझना चाहिए कि अनुकूल परिस्थिति होने पर लोग प्रचार-कार्य में रुचि लेते हैं। यदि जिन लोगों को बदला जाना है वे उत्पात करते हैं, तो हो सकता है। कि प्रचारक उनके बीच कृष्णभावनामृत का प्रचार करने का पसन्द न करे। श्रेयस्कर यही होगा कि जहाँ परिस्थिति उपयुक्त हो, वहाँ जाकर प्रचार-कार्य किया जाए। इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन का पहला प्रयास भारत में ही किया गया, किन्तु भारत के लोग राजनीतिक विचारों में मग्न रहने के कारण इसे ग्रहण नहीं कर सके। उन्हें राजनीतिक नेताओं ने लुभा रखा था। इसीलिए हमने अपने गुरु का आदेश मानकर पश्चिम में आना श्रेयस्कर समझा और श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से यह आन्दोलन सफल हो रहा है।

प्रभुके ये भजे, तारे ताँर कृपा हय ।

सेइ से ए-सब लीला सत्य करि' लय ॥110॥

प्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु; ये-जो कोई; भजे-पूजा करता है; तारे-उस पर; ताँर–चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-कृपा; हय-होती है; सेइ से-ऐसा व्यक्ति; ए-सब-ये सब; लीला-लीलाएँ; सत्य-सत्य; करि'-मानकर; लय-लेता है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अन्यों को किस तरह शक्ति प्रदान करते हैं, उसे केवल वही समझ सकता है, जो वास्तव में भगवद्भक्त है और जिसे उनकी कृपा प्राप्त हो चुकी है।

अलौकिक-लीलाय यार ना हय विश्वास ।

इह-लोक, पर-लोक तार हय नाश ॥111॥

अलौकिक-आलौकिक; लीलाय-लीलाओं में; यार–किसी की; ना-नहीं; हय-है; विश्वास–विश्वास; इह-लोक-इस संसार में; पर-लोक-अगले लोक में; तार-उसका; हय-होता है; नाश-नाश।

अनुवाद

जो व्यक्ति महाप्रभु की असामान्य दिव्य लीलाओं में विश्वास नहीं करता, उसका इस लोक तथा परलोक दोनों में विनाश हो जाता है।

प्रथमेइ कहिल प्रभुर ये-रूपे गमन ।

एइ-मत जानिह यावत्दक्षिण-भ्रमण ॥112॥

प्रथमेइ-आरम्भ में; कहिल-मैंने वर्णन किया है; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; ये-रूपे-जैसा; गमन-भ्रमण; एइ-मत-इस प्रकार; जानिह-आपको जानना चाहिए; यावत्-जब तक; दक्षिण-भ्रमण-दक्षिण भारत में भ्रमण।

अनुवाद

मैंने पहले महाप्रभु के गमन के विषय में जो कुछ कहा है, उसे महाप्रभु की दक्षिण भारत की पूरी यात्रा की अवधि पर लागू समझना चाहिए।

एइ-मत याइते याइते गेला कूर्म-स्थाने ।

कूर्म देखि' कैल ताँरे स्तवन-प्रणामे ॥113॥

एइ-मत-इस प्रकार; याइते याइते-चलते चलते; गेला–वे गये; कूर्म-स्थाने-कुर्म क्षेत्र नामक तीर्थ-स्थान पर; कूर्म देखि'–भगवान् कूर्म का दर्शन करके; कैल–भेंट की; ताँरे–उनको; स्तवन-स्तुति; प्रणामे-और नमस्कार।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कूर्मक्षेत्र नामक तीर्थस्थान में पहुँचे, तो उन्होंने अर्चाविग्रह का दर्शन किया, स्तुति की तथा प्रणाम किया।

तात्पर्य

कूर्मस्थान सुप्रसिद्ध तीर्थस्थल है। वहाँ पर कूर्मदेव का मन्दिर है। प्रपन्नामृत में कहा गया है कि भगवान जगन्नाथ ने एक रात श्री रामानुजाचार्य को जगन्नाथ पुरी से उठाकर कूर्मक्षेत्र में फेंक दिया। यह कूर्मक्षेत्र दक्षिणी रेलवे लाइन पर स्थित है। इसके लिए चिका कोल रोड नामक रेलवे स्टेशन जाना होता है। इस स्टेशन से कूर्माचल नामक तीर्थस्थल पर पहुँचने के लिए आठ मील पूर्व की ओर जाना होता है। तेलुगुभाषी इस तीर्थस्थल को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानते हैं। गंजाम मैनुअल नामक सरकारी गजट में इसका उल्लेख है। वहाँ पर कूर्मदेव का अर्चाविग्रह है और श्रील रामानुजाचार्य को जगन्नाथ पुरी से इसी स्थान पर स्थानांतरित कर दिये गये थे। उस समय उन्होंने सोचा कि कूर्मदेव का विग्रह शिवजी का अर्चाविग्रह है, इसलिए उन्होंने वहाँ उपवास किया। किन्तु जब उन्हें बाद में पता लगा कि कूर्मविग्रह भगवान् विष्णु का ही अन्य रूप है, तो उन्होंने कूर्मदेव की भव्य पूजा का प्रबन्ध करा दिया। यह कथन प्रपन्नामृत (अध्याय 36) में पाया जाता है। कूर्मक्षेत्र या कूर्मस्थान का यह पवित्र स्थल वास्तव में जगन्नाथ पुरी में भगवान जगन्नाथजी के प्रभाव से श्रीपाद रामानुजाचार्य द्वारा पुनः स्थापित किया गया था। बाद में यह मन्दिर विजयनगर के राजा के प्रबन्ध में चला गया। अर्चाविग्रह की पूजा मध्वाचार्य सम्प्रदाय के वैष्णवों द्वारा की जाती थी। इस मन्दिर में कुछ शिलालेख हैं, जो श्री नरहरि तीर्थ द्वारा लिखे गये बताये जाते हैं। ये मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा में हुए हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इन लेखों का विवरण इस प्रकार दिया है : (1) श्री पुरुषोत्तम यति अनेक विद्वान पुरुषों के शिक्षक के रूप में आविर्भूत हुए। वे भगवान् विष्णु के प्रिय भक्त थे। (2) उनके उपदेशों का सारे जगत् में सम्मान होता था और वे अपने तर्क से अनेक अभक्तों का उद्धार करते थे। (3) उन्होंने आनन्दतीर्थ को दीक्षा दी और अनेक मूर्खा को संन्यास दिलाया तथा उन्हें अपने डण्डे से दण्ड दिया (4) उनकी सारी कृतियाँ तथा उनके वचन अत्यन्त सशक्त हैं। उन्होंने अनेक लोगों को विष्णु-भक्ति प्रदान की, जिससे वे वैकुण्ठ लोक जाने के योग्य बने। (5) उनके भक्ति-विषयक उपदेश किसी भी व्यक्ति को भगवान् के चरणकमलों को प्राप्त कराने के योग्य थे। (6) उन्होंने नरहरि तीर्थ को भी दीक्षित किया और वे कलिंग प्रान्त के शासक भी बने। (7) नरहरि तीर्थ ने शवरों से युद्ध किया, जो कि चण्डाल या शिकारी थे और इस तरह कूर्म मन्दिर को बचाया। (8) नरहरि तीर्थ अत्यन्त धर्मात्मा तथा शक्तिशाली राजा थे। (9) उनका देहान्त वैशाख सुदी 11, शाक सम्बत 1203 में

हुआ। इसके पूर्व मन्दिर का निर्माण हो चुका था और यह योगानन्द नृसिंहदेव को समर्पित हो चुका था। इस शिलालेख की तिथि 29 मार्च 1281 शनिवार है।

प्रेमावेशे हासि' कान्दि' नृत्य-गीत कैल ।

देखि' सर्व लोकेर चित्ते चमत्कार हैल ॥114॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; हासि'-हँसते हुए; कान्दि'-रोते हुए; नृत्य-गीत-नाचते गाते हुए; कैल-किया; देखि'–देखकर; सर्व लोकेर-वहाँ सभी लोग; चित्ते-मन में; चमत्कार–चमत्कार; हैल–हो गया।

अनुवाद

जब तक श्री चैतन्य महाप्रभु इस स्थान पर रहे, वे यथावत् अपने भगवत्प्रेम के भावावेश में रहे और हँसते, रोते, नाचते तथा कीर्तन करते रहे। जो भी उन्हें देखता, आश्चर्यचकित रह जाता।

आश्चर्य शुनिया लोक आइल देखिबारे ।

प्रभुर रूप-प्रेम देखि' हैला चमत्कारे ॥ 115॥

आश्चर्य-आश्चर्यजनक घटना; शुनिया-सुनकर; लोक-लोग; आइल-आये; देखिबारे-देखने के लिए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; रूप-रूप को; प्रेम–तथा भगवत् प्रेम को; देखि'–देखकर; हैला-हो गये; चमत्कारे-आश्चर्यचकित।

अनुवाद

इन अद्भुत घटनाओं को सुन-सुनकर लोग वहाँ उनके दर्शन करने आते। जब वे महाप्रभु का सौन्दर्य तथा उनकी भावदशा देखते, तो वे आश्चर्यचकित रह जाते।

दर्शने 'वैष्णव' हैल, बले 'कृष्ण' 'हरि' ।

प्रेमावेशे नाचे लोक ऊर्ध्व बाहु करि' ॥116॥

दर्शने-दर्शन करके; वैष्णव हैल–वे भक्त बन गये; बले-बोलने लगे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; हरि-भगवान् हरि; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; नाचे-नाचते हैं; लोक-सभी लोग; ऊर्ध्व बाहु करि'–बाजू ऊपर करके।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु के दर्शन-मात्र से लोग भक्त बन गये। वे "कृष्ण" तथा "हरि" एवं समस्त पवित्र नामों का कीर्तन करने लगे। वे सभी प्रेमावेश में मग्न होकर अपने हाथ ऊपर उठा-उठाकर नाचने लगे।

कृष्ण-नाम लोक-मुखे शुनि' अविराम ।

सेइ लोक 'वैष्णव' कैल अन्य सब ग्राम ॥ 117॥

कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; लोक-मुखे-उन लोगों के मुख से; शुनि'–सुनकर; अविराम-सदा; सेइ लोक-वही लोग; वैष्णव-भक्त; कैल-बनाये; अन्य-अन्य; सब-सब; ग्राम–गाँव।

अनुवाद

उन्हें सदैव भगवान् कृष्ण के पवित्र नामों का कीर्तन करते सुनकर दूसरे सभी गाँवों के लोग भी वैष्णव बन गये।

एइ-मत परम्पराय देश 'वैष्णव' हैल ।

कृष्ण-नामामृत-वन्याय देश भासाइल ॥118॥

एइ-मत-इस प्रकार; परम्पराय-गुरु-शिष्य परम्परा से; देश-देश; वैष्णव हैल-भक्त बन गया; कृष्ण-नाम-अमृत-कृष्ण के पावन नाम का अमृत; वन्याय-बाढ़ में; देश-सारा देश; भासाइल-डूब गया।

अनुवाद

कृष्ण का पवित्र नाम सुन-सुनकर सारा देश वैष्णव बन गया। ऐसा प्रतीत होता था मानो कृष्ण के पवित्र नाम के अमृत ने सम्पूर्ण देश को आप्लावित कर दिया हो।

कत-क्षणे प्रभु यदि बाह्य प्रकाशिला ।

कूर्मेर सेवक बहु सम्मान करिला ॥119॥

कत-क्षणे-कुछ समय के बाद; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यदि-जब; बाह्य-बाह्य चेतना; प्रकाशिला-प्रकट की; कूर्मेर- भगवान् कूर्म के अर्चाविग्रह; सेवक-एक सेवक; बहु-बहुत; सम्मान-सम्मान; करिला–दिखाया।

अनुवाद

कुछ समय बाद जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने बाह्य चेतना दिखलाई, तो कूर्मदेव के एक पुजारी ने उन्हें विविध भेटें दीं।

येइ ग्रामे याय ताहाँ एइ व्यवहार ।

एक ठाञि कहिल, ना कहिब आर बार ॥120॥

येइ ग्रामे-जिस किसी गाँव में; याय–वो जाते; ताहाँ-वहाँ; एइ–यह; व्यवहार-व्यवहार; एक ठाञि-एक स्थान पर; कहिल-वर्णन किया है; ना-नहीं; कहिब-वर्णन करूँगा; आर-दूसरी; बार-बार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रचार-विधि का वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ, अतएव मैं उसे फिर से नहीं दोहराऊँगा। महाप्रभु जिस किसी गाँव में जाते, उनका व्यवहार वैसा ही रहता।

'कूर्म'-नामे सेइ ग्रामे वैदिक ब्राह्मण ।

बहु श्रद्धा-भक्त्ये कैल प्रभुर निमन्त्रण ॥121॥

कूर्म-नामे-कूर्म नाम के; सेइ-उस; ग्रामे-गाँव में; वैदिक ब्राह्मण-एक वैदिक ब्राह्मण ने; बहु-बहुत; श्रद्धा-भक्त्ये-श्रद्धा और भक्ति के साथ; कैल–दिया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण-निमंत्रण।

अनुवाद

एक गाँव में कूर्म नाम का एक वैदिक ब्राह्मण था। उसने बड़े ही सत्कार तथा भक्ति से श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर आमन्त्रित किया।

घरे आनि' प्रभुर कैल पाद प्रक्षालन ।

सेइ जल वंश-सहित करिल भक्षण ॥122॥

घरे आनि'–उनको घर लाने के बाद; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; कैल-किया; पाद प्रक्षालन-चरणकमलों को धोया; सेइ जल-उसी जल को; वंश-सहित सभी परिवार के सदस्यों सहित; करिल भक्षण-पी लिया।

अनुवाद

यह ब्राह्मण महाप्रभु को अपने घर ले आया, उसने उनके चरणकमल धोये और उस जल को परिवार सहित पिया।

अनेक प्रकार स्नेहे भिक्षा कराइल ।

गोसाञि शेषान्न स-वंशे खाइल ॥ 123॥

अनेक प्रकार अनेक प्रकार; स्नेहे-स्नेह में; भिक्षा–भोजन; कराइल-खिलाया; गोसाञि-भगवान् चैतन्य महाप्रभु का; शेष-अन्न-बचा हुआ भोजन; स-वंशे-परिवार के सभी सदस्यों सहित; खाइल-खाया।

अनुवाद

उस कूर्म ब्राह्मण ने महाप्रभु को बड़े ही स्नेह तथा आदर से सभी प्रकार का भोजन कराया। उसके बाद जो शेष बचा उसे परिवार के सारे सदस्यों सहित उसने खाया।

येइ पाद-पद्म तोमार ब्रह्मा ध्यान करे।

सेइ पाद-पद्म साक्षाताइल मोर घरे ॥124॥

येइ–जिन; पाद-पद्म-चरणकमलों का; तोमार-आपके; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; ध्यान करे-ध्यान करते हैं; सेइ पाद-पद्म-वही चरणकमल; साक्षात्-साक्षात्; आइल-आये हैं; मोर-मेरे; घरे–घर पर।

अनुवाद

फिर उस ब्राह्मण ने प्रार्थना करनी शुरू की, "हे प्रभु, आपके जिन चरणकमलों का ध्यान ब्रह्माजी करते हैं, वे ही चरणकमल मेरे घर में पधारे हैं।"

मोर भाग्येर सीमा ना याय कहन ।

आजि मोर श्लाघ्य हैल जन्म-कुल-धन ॥ 125॥

मोर-मेरे; भाग्येर–भाग्य की; सीमा-सीमा; ना-नहीं; याय–सम्भव; कहन-वर्णन करना; आजि-आज; मोर-मेरा; श्लाघ्य-धन्य; हैल-हो गया; जन्म-जन्म; कुल–कुल; धन-सम्पत्ति।

अनुवाद

“हे प्रभु, मेरे महान् सौभाग्य की कोई सीमा नहीं रही। इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आज मेरा परिवार, जन्म तथा मेरा धन सभी धन्य हो गये।”

कृपा कर, प्रभु, मोरे, याँ तोमा-सङ्गे ।

सहिते ना पारि दुःख विषय-तरङ्गे ॥126॥

कृपा कर-कृपया दया करो; प्रभु-हे मेरे प्रभुः मोरे-मुझ पर; याँ–मैं जाता हूँ; तोमा-सङ्गे-आपके साथ; सहिते ना पारि-मैं सहन नहीं कर सकता; दुःख–दुःख; विषय-तरङ्गे–भौतिक जीवन की लहरों का।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की, “हे प्रभु, आप मुझ पर कृपादृष्टि करें और मुझे अपने साथ चलने दें। मैं अब और अधिक समय तक भौतिक जीवन से उत्पन्न दुःख की लहरों को सहन नहीं कर सकता।”

तात्पर्य

यह कथन सब पर लागू होता है, चाहे कोई कितना ही धनी अथवा समृद्ध क्यों न हो। नरोत्तम दास ठाकुर ने इस कथन की पुष्टि इस प्रकार की है-संसार-विषानले, दिवानिशि हिया ज्वले।वे कहते हैं कि भौतिकतावादी जीवन-शैली से हृदय जलता रहता है। भौतिक जगत् के दुःखमय जीवन जीने का कोई साधन हूँढे नहीं मिलता। यह तथ्य है कि जहाँ तक धन की बात है, कोई अत्यन्त सुखी हो सकता है, और वह हर प्रकार से ऐश्वर्यवान् हो सकता है, फिर भी उसे अपने शरीर तथा अपने परिवार के सदस्यों तथा आश्रितों के लिए उनके विषयों की पूर्ति का प्रबन्ध करना पड़ता है। अन्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसे काफी कष्ट उठाने पड़ते हैं। इसीलिए नरोत्तम दास ठाकुर विनती करते हैं-विषय छाड़िया कबे शुद्ध हबे मन। अतएव मनुष्य को भौतिकतावादी जीवन-शैली से मुक्त हो जाना चाहिए। उसे दिव्य आनन्द के सागर में डूब जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, भौतिकतावादी जीवन-शैली से मुक्त हुए बिना दिव्य आनन्द का आस्वादन नहीं किया जा सकता। ऐसा लगता है। कि कूर्म नामक ब्राह्मण भौतिक दृष्टि से अत्यन्त सुखी था, क्योंकि उसने अपनी कुल-परम्परा का वर्णन जन्म-कुल-धन कहकर किया है। अब धन्य होने पर वह सारा भौतिक ऐश्वर्य छोड़ना चाह रहा था। वह श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ यात्रा करना चाह रहा था। वैदिक संस्कृति के अनुसार जब मनुष्य पचास वर्ष की

आयु प्राप्त कर ले, तो उसे अपना परिवार त्यागकर शेष जीवन भगवान् की सेवा में बिताने के लिए वृन्दावन चले जाना चाहिए।

प्रभु कहे,—"ऐछे बात्कभु ना कहिबा।

गृहे रहि' कृष्ण-नाम निरन्तर लइबा" ॥ 127॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; ऐछे बात्-ऐसे वचन; कभु-कभी भी; ना कहिबा-नहीं बोलने चाहिए; गृहे रहि'–घर पर रहकर; कृष्ण-नाम-भगवान् का पावन नाम; निरन्तर निरन्तर; लइबा-तुम्हें जपना चाहिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "अब फिर से ऐसा मत कहना। अच्छा यही होगा कि तुम घर पर रहो और सदैव कृष्ण-नाम का जप करो।"

तात्पर्य

इस कलियुग में सहसा अपना परिवार त्यागने की सलाह नहीं दी जाती, क्योंकि लोगों को ब्रह्मचारियों तथा गृहस्थों के रूप में समुचित प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को सलाह दी कि वह अपना पारिवारिक जीवन त्यागने के लिए इतना उत्सुक न हो। अच्छा यही होगा कि वह गृहस्थ बना रहे, और किसी गुरु के निर्देशन में हरे कृष्ण महामन्त्र का नियमित कीर्तन करके शुद्ध बनने का प्रयास करे। यही श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है। यदि हर कोई इस शिक्षा का पालन करे, तो फिर संन्यास लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। अगले श्लोक में श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबको सलाह दी है कि वे निरपराध भाव से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करके तथा जो भी व्यक्ति मिले उसे इसी नियम की शिक्षा देकर आदर्श गृहस्थ बनें।

यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।

आमार आज्ञाय गुरु हञा तार' एइ देश ॥128॥

यारे-जिस किसी से; देख-तुम मिलो; तारे-उसको; कह-कहो; कृष्ण-उपदेश-भगवान् द्वारा कही गई भगवद्गीता अथवा श्रीमद्भागवत जो श्रीकृष्ण की पूजा करने का परामर्श देती है, उसका उपदेश; आमार आज्ञाय-मेरी आज्ञा से; गुरु हञा–गुरु बनकर; तार'-उद्धार करो; एइ देश–इस देश का।

अनुवाद

"हर एक को उपदेश दो कि वह भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत में दिये गये भगवान् श्रीकृष्ण के आदेशों का पालन करे। इस तरह गुरु बनो और इस देश के हर व्यक्ति का उद्धार करने का प्रयास करो।"

तात्पर्य

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ का यही उत्कृष्ट उद्देश्य है। बहुत-से लोग आकर पूछते हैं कि क्या इस संघ में सम्मिलित होने के लिए परिवार का त्याग करना आवश्यक है ? किन्तु यह हमारा उद्देश्य नहीं है। मनुष्य अपने घर पर सुखपूर्वक रह सकता है। हम तो हर एक से इतना ही अनुरोध करते हैं कि महामन्त्र-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—का जप करे। यदि वह कुछ पढ़ना जानता है और भगवद्गीता यथारूप तथा श्रीमद्भागवत पढ़ सकता है, तो और भी अच्छा। अब इन ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवाद भी उपलब्ध हैं और ये अत्यन्त अधिकृत रूप से किये गये हैं, इसलिये वे सभी वर्गों के लोगों को अच्छे लगते हैं। भौतिक कार्यकलापों में ही निमग्न रहने के बजाय सारे विश्व के लोगों को इस आन्दोलन का लाभ उठाना चाहिए और घर में रहते हुए अपने परिवार सहित हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करना चाहिए। मनुष्य को अवैध सम्बन्ध, मांसाहार, जुआ तथा नशे जैसे पापकर्मों से भी बचना चाहिए। इन चारों में से अवैध सम्बन्ध अत्यन्त पापमय है। हर व्यक्ति को विवाह करना चाहिए। विशेष रूप से हर स्त्रीम को अवश्य विवाह करना चाहिए। यदि स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है, तो कुछ पुरुष एक से अधिक पत्नियाँ रख सकते हैं। इस तरह समाज में वेश्यावृत्ति नहीं पनपती। यदि पुरुष के एक से अधिक विवाह कर ले, तो अवैध यौनाचार रुक जायेगा। वह कृष्ण को अर्पित करने के लिए नाना प्रकार के व्यंजन–अन्न फल, फूल तथा दूध-भी तैयार कर सकता है। भला मनुष्य क्यों व्यर्थ ही मांसाहार की लत डाले, और बिभत्स कसाई-घर चलाये? धूम्रपान करने और चाय-काफी पीने से क्या लाभ? लोग पहले से ही भौतिक भोग में मदोन्मत्त हैं, और यदि वे अधिक नशा करेंगे, तो फिर आत्म-साक्षात्कार के लिए अवसर कहाँ? इसी तरह मनुष्य को जुआ नहीं खेलना चाहिए और व्यर्थ ही मन को विक्षिप्त नहीं बनाना चाहिए। मानव-जीवन का वास्तविक उद्देश्य आध्यात्मिक पद प्राप्त करके भगवान् के पास लौटना है। आध्यात्मिक साक्षात्कार का यही सार है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन मानव समाज को श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा कूर्म ब्राह्मण को दिये गये उपदेश में बताई गई विधि से जीवन की पूर्णता तक ऊपर उठाने का प्रयास कर रहा है। अर्थात् मनुष्य को घर में रहकर हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करना चाहिए और भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत में दिये हुए कृष्ण के उपदेशों का प्रचार करना चाहिए।

कभु ना बाधिबे तोमार विषय-तरङ्ग ।

पुनरपि एइ ठाञि पाबे मोर सङ्ग ॥129॥

कभु-किसी समय; ना-नहीं; बाधिबे-रुकेगी; तोमार-तुम्हारी; विषय-तरङ भौतिक जीवन प्रणाली; पुनरपि-दोबारा; एइ ठाञि-इस स्थान पर; पाबे-तुम्हें मिलेगा; मोर-मेरा; सङ्ग-संग।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कूर्म ब्राह्मण को यह भी उपदेश दिया, "यदि तुम इस उपदेश का पालन करोगे, तो तुम्हारा गृहस्थ जीवन तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति में बाधक नहीं बनेगा। यदि तुम इन नियमों का पालन करोगे, तो हम पुनः यहीं मिलेंगे, अथवा तुम मेरा साथ कभी नहीं छोड़ोगे।"

तात्पर्य

यह सुअवसर हर एक के लिए है। यदि कोई व्यक्ति महाप्रभु के प्रतिनिधि के मार्गदर्शन में चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का पालन करे और हरे कृष्ण मन्त्र का जप करे, इसी नियम को यथासम्भव हर एक को सिखलाये, तो उसे भौतिक जीवन का कल्मष छू तक नहीं पायेगा। फिर चाहे वह वृन्दावन, नवद्वीप या जगन्नाथ पुरी जैसे तीर्थस्थानों में रहे, अथवा यूरोप के शहरों में रहे, जहाँ भौतिकतावादी जीवन की प्रधानता है। यदि कोई भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का पालन करता है, तो वह भगवान् के सान्निध्य में रहता है। वह जहाँ भी रहता है, उस स्थान को वह वृन्दावन तथा नवद्वीप बना देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि भौतिकता उसे छू भी नहीं पाती। कृष्णभावनामृत में अग्रसर होने वाले के लिए सफलता का यही रहस्य है।

एइ मत याँर घरे करे प्रभु भिक्षा ।

सेइ ऐछे कहे, ताँरे कराय एइ शिक्षा ॥130॥

एइ मत-इस प्रकार; याँर-जिसके; घरे–घर पर; करे-करते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भिक्षा–भोजन; सेइ-वही पुरुष; ऐछे-उसी प्रकार; कहे-कहते; ताँरे–उसको; कराय-देते; एइ–यह; शिक्षा-ज्ञान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जिस किसी के घर में प्रसाद ग्रहण करके भिक्षा लेते, वे उस घर के रहने वालों को अपने संकीर्तन आन्दोलन में सम्मिलित कर लेते और उन्हें वैसी ही शिक्षा देते, जैसी कि कूर्म नामक ब्राह्मण को दी थी।

तात्पर्य

यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का बहुत ही सुन्दर वर्णन हुआ है। जो व्यक्ति उनकी शरण ग्रहण करता है और मन तथा हृदय से उनका पालन करता है, उसे अपना स्थान बदलने की आवश्यकता नहीं है। न ही उसे अपना पद बदलने की आवश्यकता है। वह गृहस्थ, डाक्टर, इंजीनियर या कुछ भी बना रह सकता है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। उसे केवल श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेश का पालन करना है, हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करना है। और सम्बन्धियों तथा मित्रों को भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत की शिक्षाओं का उपदेश देना है। उसे श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का पालन करते हुए घर पर दीनता तथा विनयशीलता सीखने की आवश्यकता है। इस तरह उसका जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से सफल हो जायेगा। उसे "मैं महान् भक्त हूँ" ऐसा सोचकर बनावटी ढंग से उच्च भक्त बनने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। इस तरह के विचार से बचना चाहिए। अच्छा तो यही होगा कि शिष्य न बनाये जाएँ। मनुष्य को घर पर ही हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करके तथा श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा स्थापित नियमों का प्रचार करके शुद्ध बनना चाहिए। इस तरह वह गुरु बन सकता है और भौतिक जीवन के कल्मष से मुक्त हो सकता है।

अनेक सहजिया लोग श्रील रूप, सनातन, रघुनाथ दास, भट्ट रघुनाथ, जीव तथा गोपाल भट्ट गोस्वामी, इन छ: गोस्वामियों के कार्यकलापों की निन्दा करते हैं। ये श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी संगी हैं और उन्होंने भक्ति-विषयक पुस्तकें लिखकर समाज को ज्ञान प्रदान किया। इसी तरह नरोत्तम दास ठाकुर तथा अन्य महान् आचार्यों–यथा मध्वाचार्य, रामानुजाचार्य आदि ने हजारों शिष्य बनाये और उन्हें भक्ति करने के लिए प्रेरित किया। किन्तु सहजियों का एक वर्ग है, जो यह सोचता है कि ये सारे कार्य भक्ति के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं। निस्सन्देह, वे इन कार्यों को भौतिकता का अन्य रूप मानते हैं। इस तरह वे श्री चैतन्य महाप्रभु के नियमों का विरोध करके उनके चरणकमलों पर अपराध करते हैं। उन्हें महाप्रभु के उपदेशों पर विचार करना चाहिए और विनम्र तथा विनीत समझे जाने के स्थान पर, श्री चैतन्य महाप्रभु के उन अनुयायियों की आलोचना करने से बचना चाहिए, जो प्रचार-कार्य में लगे हुए हैं। अपने प्रचारकर्ताओं की रक्षा करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने चैतन्य-चरितामृत के इन श्लोकों में बहुत ही स्पष्ट उपदेश दिया।

पथे याइते देवालये रहे येइ ग्रामे ।

याँर घरे भिक्षा करे, सेइ महा-जने ॥ 131॥

कुर्मे यैछे रीति, तैछे कैल सर्व-ठाञि ।

नीलाचले पुनः यावत्ना आइला गोसाञि ॥132॥

पथे याइते-सड़क पर जाते समय; देवालये–मन्दिर में; रहे-वे रहते; येइ ग्रामे-किसी भी गाँव में; याँर घरे-जिसके भी घर में; भिक्षा करे–भोजन करते; सेइ महा-जने-उसी महान् व्यक्ति को; कूर्म-ब्राह्मण कूर्म के; यैछे-जैसे; रीति-प्रकार; तैछे-उसी तरह; कैल-किया; सर्व-ठाञि-सभी स्थानों पर; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी को पुनः-फिर; यावत्-जब तक नहीं; ना-नहीं; आइला–लौटे; गोसाञि-महाप्रभु।

अनुवाद

अपनी यात्रा के दौरान श्री चैतन्य महाप्रभु या तो मन्दिर में या सड़क के किनारे रात बिताते। जब वे किसी व्यक्ति के घर भोजन ग्रहण करते, तो वे उसे वही उपदेश देते, जो उन्होंने कूर्म ब्राह्मण को दिया था। दक्षिण भारत की यात्रा से जगन्नाथ पुरी लौट आने तक महाप्रभु इसी प्रकार प्रचार करते रहे।

अतएव इहाँ कहिलाँ करिया विस्तार ।

एइ-मत जानिबे प्रभुर सर्वत्र व्यवहार ॥ 133॥

अतएव–अतएव; इहाँ–यहाँ; कहिल-मैंने वर्णन किया है; करिया विस्तार-विस्तारपूर्वक; एइ-मत-इस प्रकार; जानिबे-आप समझ सकते हैं; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; सर्वत्र सर्वत्र; व्यवहार–व्यवहार।

अनुवाद

इस तरह मैंने कूर्म के प्रसंग में महाप्रभु के व्यवहार का विस्तार से वर्णन किया है। इसी तरह से आप सारे दक्षिण भारत में महाप्रभु के व्यवहार को जान सकेंगे।

एइ-मत सेइ रात्रि ताहाडि रहिला ।

प्रातः-काले प्रभु स्नान करिया चलिला ॥134॥

एइ-मत-इस प्रकार; सेइ रात्रि-उस रात; ताहाडि-वहाँ; रहिला-रहे; प्रातः-काले-सुबह; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; स्नान-स्नान; करिया-करके; चलिला–फिर चल पड़े।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु एक स्थान में रात-भर रहते, और प्रातःकाल स्नान करके पुनः चल देते।

प्रभुर अनुव्रजि' कूर्म बहु दूर आइला ।

प्रभु ताँरे यत्न करि' घरे पाठाइला ॥135॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; अनुव्रजि'–पीछे पीछे जाकर; कूर्म-कूर्म नामक ब्राह्मण; बहु-बहुत; दूर-दूर; आइला–आया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे–उसको; यत्न करि'–काफी प्रयास करके; घरे-उसके घर; पाठाइला–भेज दिया।

अनुवाद

जब महाप्रभु चले, तो कूर्म ब्राह्मण बहुत दूर तक उनके पीछे-पीछे आया, किन्तु अन्त में महाप्रभु ने उसे घर वापस भेज दिया।

'वासुदेव'-नाम एक द्विज महाशय ।

सर्वाङ्गे गलित कुष्ठ, ताते कीड़ा-मय ॥ 136॥

वासुदेव-नाम-वासुदेव नामक; एक द्विज-एक ब्राह्मण; महाशय-महापुरुष; सर्व-अङ्गे-पूरे शरीर पर; गलित-बहुत अधिक; कुष्ठ-कुष्ठ रोग; ताते-उसमें; कीड़ा-मय-जीवित कीड़ों से भरा।

अनुवाद

वासुदेव नाम का एक अन्य ब्राह्मण था, जो एक महान् व्यक्ति था, किन्तु कोढ़ से पीड़ित था। उसका शरीर जीवित कीड़ों से भरा था।

अङ्ग हैते येइ कीड़ा खसिया पड़य ।

उठाञा सेइ कीड़ा राखे सेइ ठाञ ॥ 137॥

अङ्ग हैते-उसके शरीर से; येइ-जो; कीड़ा-एक कीड़ा; खसिया–गिरता; पड़य-नीचे; उठाञा-उठाकर; सेइ-उसे; कीड़ा-कीड़ा; राखे-रखता; सेइ ठाञ-उसी स्थान पर।

अनुवाद

यद्यपि वासुदेव कोढ़ से पीड़ित था, किन्तु ज्ञानी था। ज्योंही उसके शरीर से कोई कीड़ा गिर पड़ता, तो वह उसे उठाकर पुनः उसी स्थान में रख देता।

रात्रिते शुनिला तेंहो गोसाञिर आगमन ।

देखिबारे आइला प्रभाते कूर्मेर भवन ॥ 138॥

रात्रिते-रात को; शुनिला-सुना; तेंहो–उसने; गोसाञिर-चैतन्य महाप्रभु का; आगमन-आगमन; देखिबारे-उनके दर्शन के लिए; आइला-वह आया; प्रभाते-प्रातः काल; कूर्मेर-कूर्म नामक ब्राह्मण के; भवन-घर पर।

अनुवाद

एक रात को वासुदेव ने महाप्रभु के आगमन की बात सुनी, और प्रातः होते ही वह कूर्म के घर महाप्रभु का दर्शन करने आया।

प्रभुर गमन कूर्म-मुखेते शुनिञा ।

भूमिते पड़िला दुःखे मूर्च्छित हञा ॥ 139॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; गमन प्रस्थान; कूर्म-मुखेते-कूर्म ब्राह्मण के मुख से; शुनिञा-सुनकर; भूमिते-भूमि पर; पड़िला-गिर गया; दुःखे-दुःखी होकर; मूर्च्छित-मूर्च्छित; हञा-होकर।

अनुवाद

जब वह कोढ़ी वासुदेव कूर्म के घर चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने गया, तो उसे बताया गया कि महाप्रभु वहाँ से पहले ही जा चुके हैं। इस पर वह बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा।

अनेक प्रकार विलाप करिते लागिला ।

सेइ-क्षणे आसि' प्रभु ताँरे आलिङ्गिला ॥ 140 ॥

अनेक प्रकार–अनेक प्रकार; विलाप–विलाप; करिते-करने; लागिला-लगा; सेइ-क्षणे-तत्क्षण; आसि'-लौटकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरेउसका; आलिङ्गिला-आलिंगन किया।

अनुवाद

जब वह कोढ़ी ब्राह्मण वासुदेव महाप्रभु का दर्शन न कर सकने के कारण विलाप कर रहा था, तो महाप्रभु तुरन्त उस स्थान को लौट आये और उन्होंने उसका आलिंगन किया।

प्रभु-स्पर्शे दुःख-सङ्गे कुछ दूरे गेल ।

आनन्द सहिते अङ्ग सुन्दर हइल ॥ 141॥

प्रभु-स्पर्शे-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्पर्श से; दुःख-सङ्गे–दुःख सहित; कुष्ठ-कुष्ठ रोग; दूरे-दूर; गेल-चला गया; आनन्द सहिते-बड़ी प्रसन्नता से; अङ्ग–सारा शरीर; सुन्दर-सुन्दर; हइल हो गया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसका स्पर्श किया, तो उसका कोढ़ तथा उसका कष्ट एकसाथ दूर भाग गये। वासुदेव का शरीर अत्यन्त सुन्दर हो गया, जिससे उसे परम सुख प्राप्त हुआ।

प्रभुर कृपा देखि' ताँर विस्मय हैल मन ।

श्लोक पड़ि' पाये धरि, करये स्तवन ॥ 142॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-कृपा; देखि'–देखकर; ताँर-वासुदेव ब्राह्मण का; विस्मय हैल मन-मन विस्मित हो गया; श्लोक पड़ि'–एक श्लोक पढ़कर; पाये धरि-चरणकमल को छूकर; करये स्तवन-स्तुति करता है।

अनुवाद

वह ब्राह्मण वासुदेव श्री चैतन्य महाप्रभु की अद्भुत कृपा देखकर चकित था और वह महाप्रभु के चरणकमलों का स्पर्श करके श्रीमद्भागवत का एक श्लोक सुनाने लगा।

क्वाहं दरिद्रः पापीयान्क्व कृष्णः श्री-निकेतनः ।

ब्रह्म-बन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥ 143॥

क्व-कौन; अहम्-मैं; दरिद्रः-दरिद्र; पापीयान्–पापी; क्व-कौन; कृष्णः-कृष्ण भगवान्; श्री-निकेतनः-सभी ऐश्वर्य के दिव्य रूप; ब्रह्म-बन्धुः--ब्राह्मण का मित्र जो ब्राह्मण कहलाने के योग्य भी नहीं है; इति–इस तरह; स्म-निश्चित रूप से; अहम्-मैं; बाहुभ्याम्-भुजाओं से; परिरम्भितः-आलिंगित किया गया।

अनुवाद

उसने कहा, "मैं कौन हूँ? एक पापी दरिद्र ब्रह्मबन्धु। और कृष्ण कौन हैं? छः ऐश्वर्ययुक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्। फिर भी उन्होंने अपनी दोनों भुजाओं में भरकर मेरा आलिंगन किया है।"

तात्पर्य

यह श्लोक सुदामा ब्राह्मण ने भगवान् कृष्ण से भेंट के समय कहा था (श्रीमद्भागवत 10.81.16)।

बहु स्तुति करि' कहे,—शुन, दया-मय ।

जीवे एइ गुण नाहि, तोमाते एइ हय ॥ 144॥

मोरे देखि' मोर गन्धे पलाय पामर ।

हेन-मोरे स्पर्श' तुमि,—स्वतन्त्र ईश्वर ॥145॥

बहु-बहुत; स्तुति-प्रार्थनाएँ; करि'–करके; कहे-कहता है; शुन-कृपया सुनो; दया-मय-हे दयामय प्रभु; जीवे-जीव में; एइ-यह; गुण-गुण; नाहि-नहीं है; तोमाते-आप में; एइ–यह; हय है; मोरे देखि'–मुझे देखने से; मोर गन्धे-मेरे शरीर की गंध से; पलाय-दूर जाता है; पामर-एक पापी व्यक्ति भी; हेन-मोरे-मेरे जैसा व्यक्ति; स्पर्श'–स्पर्श; तुमि-आप; स्वतन्त्र–पूर्णतया स्वतन्त्र; ईश्वर–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

वासुदेव ब्राह्मण ने आगे कहा, "हे दयामय प्रभु, ऐसी कृपा सामान्य जीवों में सम्भव नहीं। ऐसी कृपा तो केवल आप में ही पाई जा सकती है। पापी व्यक्ति भी मुझे देखकर मेरे शरीर की दुर्गंध के कारण दूर चला जाता है, फिर भी आपने मेरा स्पर्श किया। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का व्यवहार ऐसा स्वतन्त्र होता है।"

किन्तु आछिलाँ भाल अधम हञा ।

एबे अहङ्कार मोर जन्मिबे आसिया ॥ 146 ॥

किन्तु किन्तु; आछिलाँ-मैं था; भाल-ठीक ठाक; अधम-अधम पुरुष; हञा-होकर; एबे-अब; अहङ्कार-अहंकार; मोर-मेरा; जन्मिबे-प्रकट होगा; आसिया-आना।

अनुवाद

उस दीन विनम्र वासुदेव को चिन्ता थी कि श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से ठीक हो जाने से कहीं वह गर्वित न हो उठे।

प्रभु कहे,—"कभु तोमार ना हबे अभिमान ।

निरन्तर कह तुमि 'कृष्ण' 'कृष्ण' नाम" ॥147॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; कभु-कभी; तोमार-तुम्हें; ना-नहीं; हबे-होगा; अभिमान-अभिमान; निरन्तर–निरन्तर; कह-जप करो; तुमि-तुम; कृष्ण कृष्ण नाम-कृष्ण का नाम।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को इससे बचाने के लिए उपदेश दिया कि वह निरन्तर हरे कृष्ण मन्त्र का जप करे। ऐसा करने से वह कभी भी व्यर्थ गर्वित नहीं होगा।

कृष्ण उपदेशि' कर जीवेर निस्तार ।

अचिराते कृष्ण तोमा करिबेन अङ्गीकार ॥ 148॥

कृष्ण उपदेशि'–कृष्ण का उपदेश देकर; कर-करो; जीवेर-सभी जीवों का; निस्तार-उद्धार; अचिराते-अति शीघ्र; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तोमा-तुम्हें; करिबेन-करेंगे; अङ्गीकार–स्वीकार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वासुदेव को यह भी सलाह दी कि वह कृष्ण के विषय में उपदेश दे और इस तरह जीवों का उद्धार करे। फलस्वरूप, कृष्ण शीघ्र ही उसका अपने भक्त के रूप में स्वीकार कर लेंगे।

तात्पर्य

यद्यपि वासुदेव विप्र कोढ़ी था और उसने अत्यधिक कष्ट सहन किया था, फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसे ठीक करने के बाद कृष्ण-चेतना के प्रचार के लिए उपदेश दिया। बदले में महाप्रभु ने यही चाहा कि वासुदेव विप्र कृष्ण के उपदेशों का प्रचार करे और सारे मनुष्यों का उद्धार करे। अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की यही विधि है। इस संघ के हर सदस्य को अत्यन्त घृणित अवस्था से उबारा गया है, किन्तु अब वे कृष्णभावनामृत सम्प्रदाय के प्रचार में लगे हुए हैं। उन्हें न केवल भौतिकतावाद रूपी रोग से छुटकारा मिला है, अपितु वे अत्यन्त सुखी जीवन बिता रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति उन्हें कृष्ण के महान् भक्तों के रूप में स्वीकार करता है, और उनके गुण उनके चेहरों से प्रकट हो जाते हैं। यदि कोई चाहता है कि कृष्ण द्वारा भक्त के रूप में उसे मान्यता मिले, तो उसे श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश मानते हुए प्रचार-कार्य में लग जाना चाहिए। तब उसे निःसन्देह ही साक्षात् कृष्णस्वरूप श्रीकृष्ण चैतन्य के चरणकमल प्राप्त हो सकेंगे।

एतेक कहिया प्रभु कैल अन्तर्धाने ।

दुइ विप्र गलागलि कान्दे प्रभुर गुणे ॥149॥

एतेक-इतना; कहिया–कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैल-हो गये; अन्तर्धाने-अन्तर्धान; दुइ विप्र-दोनों ब्राह्मण कूर्म तथा वासुदेव; गलागलि-एक दूसरे का आलिंगन करके; कान्दे-रोने लगे; प्रभुर गुणे-चैतन्य महाप्रभु की कृपा के कारण।

अनुवाद

वासुदेव ब्राह्मण को इस प्रकार उपदेश देने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु उस स्थान से अदृश्य हो गये। तब कूर्म तथा वासुदेव दोनों ब्राह्मण एक-दूसरे के गले लगकर श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य गुणों का स्मरण करके रोने लगे।

'वासुदेवोद्धार' एइ कहिल आख्यान ।

'वासुदेवामृत-प्रद' हैल प्रभुर नाम ॥ 150॥

वासुदेव-उद्धार-वासुदेव का उद्धार ; एइ-यह; कहिल–वर्णित है; आख्यान-कथा; वासुदेव-अमृत-प्रद-वासुदेव को अमृत देने वाला; हैल-हो गया; प्रभुर नाम-श्री चैतन्य महाप्रभु का पावन नाम।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने जिस तरह वासुदेव कोढ़ी का उद्धार किया, और जिस तरह उनका नाम वासुदेवामृत-प्रद पड़ा, उसका वर्णन मैंने किया है।

तात्पर्य

'वासुदेवामृत-प्रद' नाम का उल्लेख सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा रचित श्लोकों में हुआ है।

एइ त' कहिल प्रभुर प्रथम गमन ।

कूर्म-दरशन, वासुदेव-विमोचन ॥ 151॥

एइ त' कहिल-इस प्रकार मैंने वर्णन किया है; प्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का; प्रथम गमन-यात्रा का आरम्भ; कूर्म-दरशन–कूर्म मन्दिर के दर्शन करके; वासुदेव-विमोचन-और वासुदेव नामक कुष्ठ-पीड़ित ब्राह्मण का उद्धार करना।

अनुवाद

इस तरह मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रारम्भिक यात्रा का वर्णन समाप्त करता हूँ, जिसमें उन्होंने कूर्म-मन्दिर का दर्शन किया और कोढ़ी ब्राह्मण वासुदेव का उद्धार किया।

श्रद्धा करि' एइ लीला ये करे श्रवण ।

अचिराते मिलये तारे चैतन्य-चरण ॥ 152॥

श्रद्धा करि'–अति श्रद्धा सहित; एइ लीला-यह लीला; ये-जो कोई; करे-करता है; श्रवण-श्रवण; अचिराते-अति शीघ्र; मिलये-मिलते हैं; तारे-उसको; चैतन्य-चरण-चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

जो कोई श्री चैतन्य महाप्रभु की इन लीलाओं को अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सुनेगा, उसे तुरन्त ही उनके चरणकमल प्राप्त हो जायेंगे।

तात्पर्य

जब मनुष्य की चेतना चैतन्य महाप्रभु की कृपा से कृष्ण-भावना सहित जाग्रत होती है, तो उसका आध्यात्मिक जीवन जाग्रत होता है और वह भगवान् की सेवा में अनुरक्त हो जाता है। केवल तभी वह आचार्य बन सकता है। दूसरे शब्दों में, सबको श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए प्रचार-कार्य में लग जाना चाहिए। इस तरह भगवान् कृष्ण प्रसन्न होंगे और तुरन्त ही उसे मान्यता प्रदान करेंगे। वस्तुतः श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त को प्रचार-कार्य में लग जाना चाहिए, जिससे भगवान् के अनुयायियों की संख्या में वृद्धि हो। इस प्रकार वास्तविक वैदिक ज्ञान का प्रचार सारे विश्व में करने से सारी मानवता को लाभ पहुँचेगा।

चैतन्य-लीलार आदि-अन्त नाहि जानि ।

सेइ लिखि, येइ महान्तेर मुखे शुनि ॥ 153 ॥

चैतन्य-लीलार- श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का; आदि-आरम्भ; अन्त-और अन्त; नाहि-नहीं; जानि–मैं जानता हूँ; सेइ-वही; लिखि-मैं लिखता हूँ; येइ-जो; महान्तेर–महापुरुषों के; मुखे-मुख से; शुनि-मैं सुनता हूँ।

अनुवाद

मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का आदि और अन्त नहीं जानता। फिर भी मैंने जो कुछ लिखा है, उसे महापुरुषों के मुख से सुनकर लिखा है।

इथे अपराध मोर ना लइओ, भक्त-गण ।

तोमा-सबार चरण—मोर एकान्त शरण ॥ 154॥

इथे-इसमें; अपराध-अपराध; मोर-मेरे; ना लइओन लो; भक्त-गण-हे भक्तों; तोमा-आप; सबार-सबके; चरण-चरणकमल; मोर-मेरा; एकान्त-अकेला; शरण-आश्रय।

अनुवाद

हे भक्तों, कृपया इस विषय में मेरे अपराधों पर विचार मत करना। आपके चरणकमल ही मेरे एकमात्र शरण हैं।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 155॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों पर; यार-जिनकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करता है; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों पर प्रार्थना करते हुए और सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के सातवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें महाप्रभु की दक्षिण-भारत-यात्रा तथा वासुदेव ब्राह्मण के मोक्ष का वर्णन हुआ है।

अध्याय आठ

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री रामानन्द राय के बीच वार्तालाप

आठवें अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में दिया है। जियड़-नृसिंह मन्दिर में दर्शन के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु गोदावरी नदी के तट पर स्थित विद्यानगर नामक स्थान पर गये। जब श्रील रामानन्द राय नदी में स्नान करने वहाँ गये, तभी दोनों की भेंट हुई। अपना परिचय देने के बाद श्री रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे कुछ दिनों तक गाँव में रहें। उनकी प्रार्थना मानकर चैतन्य महाप्रभु वहाँ कुछ वैदिक ब्राह्मणों के घर में रहे। श्रील रामानन्द राय हररोज संध्या-समय श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने आते थे। सामान्य वस्त्र धारण किये रामानन्द राय ने महाप्रभु को सादर नमस्कार किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे पूजा के उद्देश्य और उसकी विधि के विषय में प्रश्न पूछे और उन्हें वैदिक साहित्य से कुछ श्लोक सुनाने को भी कहा।

सर्वप्रथम श्रील रामानन्द राय ने वर्णाश्रम पद्धति का व्याख्यान किया। उन्होंने कर्मार्पण के विषय में अनेक श्लोक सुनाये, जिनमें कहा गया था कि हर वस्तु भगवान् को समर्पित की जानी चाहिए। फिर उन्होंने अनासक्त कर्म, भक्तिमिश्रित ज्ञान तथा अन्त में भगवान् की रागानुगा भक्ति के विषय में बतलाया। श्रील रामानन्द राय द्वारा सुनाये गये श्लोकों को सुन लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने समस्त प्रकार की मानसिक कल्पना से रहित शुद्ध भक्ति को स्वीकार किया। इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा कि वे भक्ति के उच्चतर स्तर की व्याख्या करें। तब श्रील रामानन्द राय ने अनन्य भक्ति, भगवत्प्रेम, शुद्ध दास्य भाव, सख्य भाव तथा वात्सल्य भाव से भगवान् की सेवा के विषय में व्याख्या की। अन्त में उन्होंने माधुर्य भाव से भगवान् की सेवा के विषय में बतलाया। तत्पश्चात् उन्होंने बतलाया कि किस प्रकार विभिन्न उपायों से माधुर्य भाव को विकसित किया जा सकता है। यह माधुर्य प्रेम कृष्ण के प्रति श्रीमती राधारानी के प्रेम में सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त करता है। इसके बाद उन्होंने श्रीमती राधारानी की स्थिति तथा भगवत्प्रेम के रसों का वर्णन किया। तब श्रील रामानन्द राय ने अपना एक श्लोक सुनाया, जो प्रेम-विलास-विवर्त से सम्बन्धित था। उन्होंने यह भी

बतलाया कि माधुर्य प्रेम की सारी अवस्थाएँ वृन्दावनवासियों, विशेषतया गोपियों की कृपा के माध्यम से प्राप्त की जा सकती हैं। इस तरह उन्होंने इन सारे विषयों का स्पष्टता से वर्णन किया। श्रील रामानन्द राय ने धीरे-धीरे महाप्रभु की स्थिति समझ ली और जब श्रील चैतन्य महाप्रभु ने अपना वास्तविक रूप प्रदर्शित किया, तो रामानन्द राय बेहोश हो गये। कुछ दिनों बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा कि वे सरकारी नौकरी से अवकाश लेकर जगन्नाथ पुरी चले आयें। रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के मिलन का यह विवरण स्वरूप दामोदर गोस्वामी की कड़चा (स्मृति-पुस्तिका) से लिया गया है।

सञ्चार्य रामाभिध-भक्त-मेघे

स्व-भक्ति-सिद्धान्त-चयामृतानि ।

गौराब्धिरेतैरमुना वितीर्णैस्

तज्ज्ञत्व-रत्नालयतां प्रयाति ॥1॥

सञ्चार्य-शक्ति प्रदान करके; राम-अभिध-राम नाम का; भक्त-मेघे–मेघ-सदृश भक्त में; स्व-भक्ति-अपनी भक्ति के सिद्धान्त-सिद्धान्त का; चय-सारा संग्रह; अमृतानि-अमृत; गौर-अब्धिः -श्री चैतन्य महाप्रभु रूपी समुद्र; एतैः–इनसे; अमुना-श्री रामानन्द राय रूपी मेघ से; वितीर्णैः–वितरित करना; तत्-शत्व-भक्ति के ज्ञान का; रत्न-आलयताम् रत्नों से भरपूर समुद्र होने का गुण; प्रयाति–पूरा हुआ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु, जो गौरांग भी कहलाते हैं, भक्ति विषयक समस्त सैद्धान्तिक ज्ञान के सागर हैं। उन्होंने श्री रामानन्द राय को शक्ति प्रदान की, जिनकी तुलना भक्ति के बादल से की जा सकती है। यह बादल भक्ति के समस्त सैद्धान्तिक निष्कर्षों रूपी जल से पूरित था, और सागर द्वारा शक्तिप्रदत्त था कि वह इस जल को स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु रूपी समुद्र के ऊपर फैला दे। इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु रूपी समुद्र स्वयं शुद्ध भक्ति के ज्ञान रूपी रत्नों से भर गया।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभुः जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय हो; जय गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

पूर्व-रीते प्रभु आगे गमन करिला ।

'जियड़-नृसिंह'-क्षेत्रे कत-दिने गेला ॥3॥

पूर्व-रीते-उनके पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आगे-आगे; गमन प्रस्थान; करिला-किया; जियड़-नृसिंह–जियड़ नृसिंह; क्षेत्रे-तीर्थ स्थान पर; कत-दिने कुछ दिनों के बाद; गेला–पहुँचे।

अनुवाद

अपने पूर्ववर्ती कार्यक्रम के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे यात्रा की और कुछ दिनों के बाद जियड़-नृसिंह नामक तीर्थस्थान पहुँचे।

तात्पर्य

जियड़-नृसिंह मन्दिर विशाखापत्तन से लगभग 5 मील की दूरी पर एक पहाड़ी की चोटी पर स्थित है। वहाँ पर दक्षिण भारतीय रेलवे पर सिंहाचल नामक एक रेलवे स्टेशन है। सिंहाचल नाम से विख्यात मन्दिर विशाखापत्तन क्षेत्र का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है। यह मन्दिर अत्यन्त वैभवयुक्त है और स्थानीय भवन निर्माण कला का अनूठा उदाहरण है। एक शिलालेख में यह उल्लेख है। कि पहले किसी रानी ने अर्चाविग्रह को सोने का पानी चढ़ाया था। विशाखापत्तनम गजेटियर में इसका वर्णन मिलता है। मन्दिर के चारों ओर पुजारियों तथा भक्तों के रहने के लिए मकान बने हैं। इस समय दर्शनार्थी भक्तों के लिए अनेक आवासीय मकान बन गये हैं। मूल विग्रह मन्दिर के गर्त में स्थित है, किन्तु उनकी एक अनुकृति भी है, जो विजय-मूर्ति कहलाती है। यह छोटी मूर्ति मन्दिर से हिलाई जा सकती है और शोभायात्रा में ले जाई जा सकती है। सारे पुजारी सामान्यतया रामानुज सम्प्रदाय के हैं, और उन्हीं पर अर्चाविग्रह की पूजा का भार है।

नृसिंह देखिया कैल दण्डवत्प्रणति ।

प्रेमावेशे कैल बहु नृत्य-गीत-स्तुति ॥4॥

नृसिंह देखिया–मन्दिर में भगवान् नृसिंह के दर्शन करके; कैल–किया; दण्डवत्-प्रणति-नमस्कार (दण्डवत् प्रणाम); प्रेमावेशे-प्रेमावेश में; कैल-किया; बहु-सभी प्रकार के; नृत्य-नृत्य; गीत–कीर्तन; स्तुति-स्तुति करना।

अनुवाद

मन्दिर में भगवान् नृसिंह के अर्चाविग्रह का दर्शन करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने दण्डवत् प्रणाम किया। फिर प्रेमावेश में उन्होंने अनेक प्रकार से नृत्य किया, कीर्तन किया और स्तुतियाँ कीं।

"श्री-नृसिंह, जय नृसिंह, जय जय नृसिंह ।

प्रह्लादेश जय पद्मा-मुख-पद्म-भृङ्ग" ॥5॥

श्री-नृसिंह-भगवान् नृसिंह लक्ष्मी सहित; जय नृसिंह- भगवान् नृसिंह की जय हो; जय जय-जय हो; नृसिंह-नृसिंह देव की; प्रह्लाद-ईश-प्रह्लाद महाराज के भगवान्; जय-जय हो; पद्मा–लक्ष्मी देवी; मुख-पद्म–मुखकमल; भृङ्ग-भौंरा।

अनुवाद

"नृसिंहदेव की जय हो! नृसिंहदेव की जय हो! प्रह्लाद महाराज के प्रभु नृसिंहदेव की जय हो, जो भौंरे के समान ही लक्ष्मीजी के कमल सदृश मुख को देखने में सदैव लगे रहते हैं।"

तात्पर्य

लक्ष्मीजी सदैव भगवान् नृसिंहदेव द्वारा आलिंगित होती हैं। महान् भाष्यकार श्रील श्रीधर स्वामी ने श्रीमद्भागवत पर अपने भाष्य में इसका उल्लेख किया है। श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध की टीका करते हुए श्रीधर स्वामी ने निम्नलिखित श्लोक (10.87.1) की रचना की है :

वागीश यस्यवदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि ।

यस्यास्ते हृदये सम्वित् तं नृसिंहमहं भजे ॥

"विद्या की देवी सरस्वती सदैव भगवान् नृसिंहदेव की सहायता करती हैं और वे लक्ष्मीजी का सदैव अपने वक्षस्थल पर आलिंगन करते हैं। भगवान् सदैव अपने आप ज्ञान में पूर्ण हैं। हम उन नृसिंहदेव को नमस्कार करते हैं।"

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध (1.1.1) की टीका करते हुए श्रीधर स्वामी ने नृसिंहदेव का वर्णन इस प्रकार किया है :

प्रह्लाद-हृदयाह्लादं भक्ताविद्याविदारणम् ।

शरदिन्दुरुचिं वन्दे पारीन्द्रवदनं हरिम् ॥

"मैं उन भगवान् नृसिंहदेव को नमस्कार करता हूँ, जो प्रह्लाद महाराज को उनके हृदय के भीतर से सदैव प्रकाश प्रदान करते हैं, और जो भक्तों पर आक्रमण करने वाली अविद्या का सदैव विनाश करते हैं। उनकी कृपा चाँदनी की तरह फैली हुई है, और उनका मुख सिंह के समान है। मैं उन्हें बारम्बार नमस्कार करता हूँ।"

उग्रोऽप्यनुग्र एवायं स्व-भक्तानां नृ-केशरी ।

केशरीव स्व-पोतानामन्येषां उग्र-विक्रमः ॥ 6॥

उयः-उग्र; अपि-यद्यपि; अनुयः-दयावान; एव–निश्चित रूप से; अयम्-यह; स्व-भक्तानाम्-अपने शुद्ध भक्तों को; नृ-केशरी-मनुष्य और सिंह के शरीर वाले; केशरी इव-शेरनी की भाँती; स्व-पोतानाम्-अपने बच्चों को; अन्येषाम् अन्यों के लिए; उग्र-उग्र; विक्रमः-जिसकी शक्ति।

अनुवाद

"यद्यपि सिंहिनी अत्यन्त हिंस्र होती है, किन्तु वह अपने बच्चों के प्रति अत्यन्त दयालु होती है। इसी तरह यद्यपि नृसिंहदेव हिरण्यकशिपु जैसे अभक्तों के प्रति अत्यन्त उग्र हैं, किन्तु वे प्रह्लाद महाराज जैसे भक्तों के प्रति अत्यन्त कोमल एवं दयालु हैं।"

तात्पर्य

यह श्रीमद्भागवत के सातवें स्कन्ध के श्लोक (7.9.1) पर श्रीधर स्वामी द्वारा दिये गये भाष्य का श्लोक है।

एइ-मत नाना श्लोक पड़ि' स्तुति कैल ।

नृसिंह-सेवक माला-प्रसाद आनि' दिल ॥7॥

एइ-मत-इस प्रकार; नाना-नाना प्रकार के; श्लोक-श्लोक; पड़ि'–पढ़कर; स्तुति-स्तुतियाँ; कैल-की; नृसिंह-सेवक-मन्दिर में भगवान् नृसिंह का पुजारी; माला-मालाएँ; प्रसाद-भगवान् नृसिंहदेव के भोजन का बचा हुआ प्रसाद; आनि'–लाकर; दिल-दिया।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने शास्त्रों से अनेक श्लोक सुनाये। तब नृसिंहदेव के पुजारी ने महाप्रभु को मालाएँ तथा प्रसाद लाकर दिया।

पूर्ववत्कोन विप्रे कैल निमन्त्रण ।

सेइ रात्रि ताहाँ रहि' करिला गमन ॥8॥

पूर्व-वत्-पहले की तरह; कोन-किसी; विप्रे–ब्राह्मण; कैल-दिया; निमन्त्रण-निमंत्रण; सेइ रात्रि-उस रात; ताहाँ-वहाँ; रहि-रहकर; करिला-किया; गमन प्रस्थान।

अनुवाद

पहले की ही तरह एक ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने यहाँ आमन्त्रित किया। महाप्रभु ने वह रात्रि मन्दिर में ही बिताइ और पुनः अपनी यात्रा शुरू कर दी।

प्रभाते उठिया प्रभु चलिला प्रेमावेशे ।

दिग्विदिक्नाहि ज्ञान रात्रि-दिवसे ॥9॥

प्रभाते-प्रात:काल; उठिया-उठकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चलिला–गये; प्रेम-आवेशे–महान् प्रेमावेश में; दिक्-विदिक्-सही अथवा गलत दिशा; नाहि-नहीं था; ज्ञान-ज्ञान; रात्रि-दिवसे–दिन और रात।

अनुवाद

अगली सुबह श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रेमावेश में अपनी यात्रा पर बिना किसी दिशा-ज्ञान के ही चल पड़े और दिन-रात चलते गये।

पूर्ववत् वैष्णव' करि' सर्व लोक-गणे ।

गोदावरी-तीरे प्रभु आइला कत-दिने ॥10॥

पूर्व-वत्-पहले की तरह; वैष्णव-भक्त; करि'-बनाकर; सर्व-सब; लोक-गणे-लोगों को; गोदावरी-तीरे-गोदावरी नदी के तट पर; प्रभु–महाप्रभु; आइला-पहुँचे; कत-दिने कुछ दिनों के बाद।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पहले की ही तरह मार्ग में मिलने वाले अनेक लोगों को वैष्णव बनाया। कुछ दिनों बाद महाप्रभु गोदावरी नदी के तट पर जा पहुँचे।

गोदावरी देखि' हइल 'यमुना'-स्मरण ।

तीरे वन देखि' स्मृति हैल वृन्दावन ॥11॥

गोदावरी-गोदावरी नदी; देखि'–देखकर; हइल-हुआ; यमुना स्मरण-यमुना नदी का स्मरण; तीरे-तट पर; वन-वन; देखि'–देखकर; स्मृति-स्मृति; हैल–थी; वृन्दावन-श्री वृन्दावन।

अनुवाद

जब उन्होंने गोदावरी नदी देखी, तो उन्हें यमुना नदी का स्मरण हो आया और जब उन्होंने नदी के तट पर स्थित वन देखा, तो उन्हें श्री वृन्दावन धाम की याद हो आई।

सेइ वने कत-क्षण करि' नृत्य-गान ।

गोदावरी पार हञा ताहाँ कैल स्नान ॥12॥

सेइ वने-उस वन में; कत-क्षण-कुछ काल के लिए; करि'-करके; नृत्य-गान-नृत्य और कीर्तन; गोदावरी–गोदावरी नदी; पार हञा–पार करके; ताहाँ-वहाँ; कैल-किया; स्नान-स्नान।

अनुवाद

इस वन में कुछ समय तक कुछ काल के लिए पहले की तरह कीर्तन तथा नृत्य करने के बाद महाप्रभु ने नदी पार की और दूसरे किनारे पर पहुँचकर स्नान किया।

घाट छाड़ि' कत-दूरे जल-सन्निधाने ।

वसि' प्रभु करे कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तने ॥13॥

घाट छाड़ि'–स्नान-घाट छोड़कर; कत-दूरे-थोड़ी दूरी पर; जल-सन्निधाने–जल के निकट; वसि'–बैठकर; प्रभु-महाप्रभु; करे–करने लगे; कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तने-भगवान् कृष्ण के पावन नाम का संकीर्तन।

अनुवाद

नदी में स्नान करने के बाद महाप्रभु स्नान-घाट से कुछ दूर गये और कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन में लग गये।

हेन-काले दोलाय चड़ि' रामानन्द राय ।

स्नान करिबारे आइला, बाजना बाजाय ॥14॥

हेन-काले-इस समय; दोलाय चड़ि-पालकी में चढ़कर; रामानन्द राय-श्रील रामानन्द राय; स्नान-स्नान; करिबारे-करने के लिए; आइला-वहाँ आये; बाजना बाजाय-बाजे-गाजे के साथ।

अनुवाद

उस समय बाजे-गाजे के साथ पालकी पर चढ़कर रामानन्द राय वहाँ स्नान करने आये।

ताँर सड़े बहु आइला वैदिक ब्राह्मण ।

विधि-मते कैल तेंहो स्नानादि-तर्पण ॥15॥

ताँर सङ्गे–उनके साथ; बहु-बहुत से; आइला–आये; वैदिक-वैदिक सिद्धान्तों का पालन करने वाले; ब्राह्मण-ब्राह्मण; विधि-मते-विधि के अनुसार; कैल–किया; तेंहो उन्होंने, श्री रामानन्द राय ने; स्नान-आदि-तर्पण-स्नान, तर्पण इत्यादि।

अनुवाद

रामानन्द राय के साथ साथ वैदिक सिद्धान्तों का पालन करने वाले अनेक ब्राह्मण थे। रामानन्द राय ने वैदिक रीति से स्नान किया और अपने पितरों को तर्पण दिया।

प्रभु ताँरे देखि' जानिल—एइ राम-राय ।

ताँहारे मिलिते प्रभुर मन उठि' धाय ॥ 16 ॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको; देखि'-देखकर; जानिल-जान गये; एइ-यह; राम-राय-श्रील रामानन्द राय; ताँहारे-उनको; मिलिते-मिलने के लिए; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु का; मन–मन; उठि'–उठकर; धाय-पीछे भागता है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जान गये कि जो व्यक्ति नदी में स्नान करने आये हैं, वे रामानन्द राय हैं। महाप्रभु उनसे मिलने के लिए इतने इच्छुक हो उठे कि उनका मन उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा।

तथापि धैर्य धरि' प्रभु रहिला वसिया ।

रामानन्द आइला अपूर्व सन्न्यासी देखिया ॥ 17॥

तथापि–तथापि; धरिय धरि'-धैर्य धरकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; रहिला-रहे; वसिया-बैठे; रामानन्द-श्रील रामानन्द राय; आइला–पहुँचे; अपूर्व–अपूर्व; सन्न्यासी-संन्यासी; देखिया-देखकर।

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु का मन उसके पीछे पीछे दौड़ रहा था, किन्तु वे धैर्यपूर्वक बैठे रहे। तब रामानन्द राय इस अपूर्व संन्यासी को देखकर उनसे मिलने आये।

सूर्य-शत-सम कान्ति, अरुण वसन ।

सुबलित प्रकाण्ड देह, कमल-लोचन ॥18॥

सूर्य-शत-सैकड़ों सूर्य; सम-के समान; कान्ति-चमक; अरुण-केसरिया; वसन-वस्त्र; सुबलित-अत्यन्त सुदृढ़; प्रकाण्ड–विशाल; देह-शरीर; कमल-लोचन-कमल-दल जैसे नेत्र।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ने देखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु सौ सूर्यों के समान कान्तिवान हैं। उन्होंने केसरिया वस्त्र पहन रखा था। उनका शरीर विशाल तथा सुदृढ़ था और उनकी आँखें कमल की पंखुड़ियों जैसी थीं।

देखिया ताँहार मने हैल चमत्कार ।

आसिया करिल दण्डवत्नमस्कार ॥19॥

देखिया-देखकर; ताँहार-उनके; मने-मन में; हैल–हो गया; चमत्कार-आश्चर्य; आसिया-वहाँ आकर; करिल-किया; दण्ड-वत्-दण्डवत्; नमस्कार-नमस्कार।

अनुवाद

जब रामानन्द राय ने इस अद्भुत संन्यासी को देखा, तो वे आश्चर्यचकित रह गये। वे उनके पास गये और तुरन्त भूमि पर दण्डवत् गिरकर उन्हें सादर नमस्कार किया।

उठि' प्रभु कहे,—ऊठ, कह 'कृष्ण' 'कृष्ण' ।

तारे आलिङ्गिते प्रभुर हृदय सतृष्ण ॥ 20॥

उठि'-उठकर; प्रभु–महाप्रभु ने; कहे-कहा; उठ-उठो; कह-कहो; कृष्ण कृष्ण-कृष्ण कृष्ण; तारे–उनका; आलिङ्गिते-आलिंगन करने के लिए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; हृदय-हृदय; स-तृष्ण-बहुत उत्सुक।

अनुवाद

महाप्रभु खड़े हो गये और उन्होंने रामानन्द राय से उठने तथा कृष्ण-नाम का कीर्तन करने के लिए कहा। श्री चैतन्य महाप्रभु उनका आलिंगन करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे।

तथापि पुछिल,—तुमि राय रामानन्द? ।

तेंहो कहे,—सेइ हऽदास शूद्र मन्द ॥ 21॥

तथापि–तथापि; पुछिल-उन्होंने पूछा; तुमि-तुम; राय रामानन्द-रामानन्द राय; तेंहो कहे-उन्होंने उत्तर दिया; सेइ हऽ–मैं वही हूँ; दास-सेवक; शूद्र-शूद्र जाति वाला; मन्द-अत्यन्त नीच।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने पूछा कि क्या आप रामानन्द राय हो? तो उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, मैं आपका तुच्छ दास हूँ और शूद्र जाति का हूँ।"

तबे तारे कैल प्रभु दृढ़ आलिङ्गन ।

प्रेमावेशे प्रभु-भृत्य दोंहे अचेतन ॥ 22 ॥

तबे-तत्पश्चात्; तारे–उनको; कैल–किया; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; दृढ़-दृढ़; आलिङ्गन-आलिंगन; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; प्रभु-भृत्य-स्वामी तथा सेवक; दोंहे-दोनों; अचेतन-अचेत।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री रामानन्द राय का दृढ़ता से आलिंगन किया। इस तरह प्रभु तथा दास दोनों प्रेमावेश में अचेत-से हो गये।

स्वाभाविक प्रेम दोंहार उदय करिला ।

दुँहा आलिङ्गिया दुँहे भूमिते पड़िला ॥23॥

स्वाभाविक-स्वाभाविक; प्रेम-प्रेम; दोंहार-दोनों का; उदय-जाग पड़ा; करिला-था; दुँहा-दोनों; आलिङ्गिया-आलिंगन करके; दुँहे वे दोनों; भूमिते-भूमि पर; पड़िला-गिर पड़े।

अनुवाद

दोनों में एक-दूसरे के प्रति स्वाभाविक प्रेम उमड़ आया, दोनों ने आलिंगन किया और दोनों भूमि पर गिर पड़े।

तात्पर्य

श्रील रामानन्द राय विशाखा गोपी के अवतार थे। चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् भगवान् कृष्ण थे, अतएव विशाखा तथा कृष्ण में प्रेम का उदय होना स्वाभाविक था। श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभु श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण के सम्मिलित रूप हैं और विशाखा गोपी श्रीमती राधारानी की प्रधान सहायिका थी। रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक-दूसरे का दृढ़ आलिंगन किया, क्योंकि उनमें स्वाभाविक प्रेम उमड़ आया था।

स्तम्भ, स्वेद, अश्रु, कम्प, पुलक, वैवर्य ।

दुँहार मुखेते शुनि' गद्गद 'कृष्ण' वर्ण ॥24॥

स्तम्भ-जड़; स्वेद-पसीना; अश्रु-अश्रु; कम्प–कम्पन; पुलक-पुलकित होना; वैवर्य-पीलापन; दुँहार-दोनों के; मुखेते–मुख में; शुनि'–सुनकर; गद्गद-गद्गद होने लगा; कृष्ण वर्ण-कृष्ण का नाम।

अनुवाद

एक-दूसरे का आलिंगन करते समय उनमें स्तम्भ, स्वेद, अश्रु, कम्प, पुलक, वैवर्य-ये भावलक्षण प्रकट हो आये। उनके मुखों से रुक-रुककर "कृष्ण" शब्द निकल रहा था।

देखिया ब्राह्मण-गणेर हैल चमत्कार।

वैदिक ब्राह्मण सब करेन विचार ॥25॥

देखिया-यह देखकर; ब्राह्मण-गणेर-कर्मकण्डी ब्राह्मण; हैल-हो गये; चमत्कार-आश्चर्यचकित; वैदिक-वैदिक कर्मकाण्डी; ब्राह्मण-ब्राह्मण; सब-सबने; करेन-किया; विचार-विचार।

अनुवाद

जब रूढ़िवादी कर्मकाण्डी वैदिक ब्राह्मणों ने इस प्रेम-आवेश के प्राकट्य को देखा, तो वे आश्चर्यचकित रह गये। वे सारे ब्राह्मण इस प्रकार विचार करने लगे।

एइ त' सन्न्यासीर तेज देखि ब्रह्म-सम।

शूद्रे आलिङ्गिया केने करेन क्रन्दन ॥ 26 ॥

एइ त'-यह निस्सन्देह; सन्न्यासीर-संन्यासी श्री चैतन्य महाप्रभु; तेज-शारीरिक ज्योति; देखि-हम देखते हैं; ब्रह्म-सम-ब्रह्म की ही भाँति; शुद्रे-शूद्र अथवा श्रमिक; आलिङ्गिया-आलिंगन करके; केने-क्यों; करेन-करता है; क्रन्दन-रोना।

अनुवाद

ब्राह्मणों ने सोचा, "हम देख रहे हैं कि इस संन्यासी में ब्रह्म जैसा तेज है, किन्तु यह समाज के चौथे वर्ण के एक शूद्र का आलिंगन करके रो क्यों रहा है?"

एइ महाराज—महा-पण्डित, गम्भीर।

सन्न्यासीर स्पर्शे मत्त हइला अस्थिर ॥27॥

एइ महाराज-यह रामानन्द राय जो गवर्नर है; महा-पण्डित-महान् पण्डित; गम्भीर-गम्भीर; सन्न्यासीर स्पर्शे-एक संन्यासी के स्पर्श से; मत्त-पागल; हइला–हो गया; अस्थिर-अस्थिर।

अनुवाद

उन्होंने सोचा, "यह रामानन्द राय तो मद्रास का गवर्नर है, प्रकाण्ड पण्डित और गम्भीर व्यक्ति है, किन्तु इस संन्यासी का स्पर्श करके यह पागल व्यक्ति की तरह व्याकुल हो उठा है।"

एइ-मत विप्र-गण भावे मने मन ।

विजातीय लोक देखि, प्रभु कैल सम्वरण ॥28॥

एइ-मत-इस प्रकार; विप्र-गण-सभी ब्राह्मण; भावे-सोचते हैं; मने मन-अपने मन में; विजातीय लोक-बाहरी लोग; देखि-देखकर; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु ने; कैल-किया; सम्वरण-संभाला।

अनुवाद

जब सारे ब्राह्मण श्री चैतन्य महाप्रभु एवं रामानन्द राय के कार्यों के विषय में इस प्रकार सोच रहे थे, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन बाहरी ब्राह्मणों को देख लिया, अतएव उन्होंने अपने दिव्य भावों को रोका।

तात्पर्य

रामानन्द राय का श्री चैतन्य महाप्रभु से घनिष्ठ सम्बन्ध था, अतएव उन्हें सजातीय अर्थात् भगवान् के अन्तरंग समुदाय के व्यक्ति माने जा सकते हैं। किन्तु सारे ब्राह्मण वैदिक अनुष्ठानों को मानने वाले थे, अतएव वे श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ किसी प्रकार की घनिष्ठता नहीं बना पा रहे थे। इसीलिए इन्हें विजातीय लोक कहा गया है। दूसरे शब्दों में, ये शुद्ध भक्त नहीं थे। कोई कितना ही विद्वान ब्राह्मण क्यों न हो, किन्तु यदि वह शुद्ध भक्त नहीं है, तो वह विजातीय है-जाति-निकाला है या यों कह लें कि अभक्त है। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय भावविभोर होकर आलिंगन कर रहे थे, किन्तु महाप्रभु ने बाहरी ब्राह्मणों को देखकर अपने भावों को रोका।

सुस्थ हञा दुँहे सेइ स्थानेते वसिला ।

तबे हासि' महाप्रभु कहिते लागिला ॥29॥

सु-स्थ हञा-स्थिर होकर; दुँहे वे दोनों; सेइ-उस; स्थानेते-स्थान पर; वसिला-बैठ गये; तबे-तब; हासि'–मुस्कुराकर; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु; कहिते-बोलने; लागिला-लगे।

अनुवाद

जब दोनों के मन स्थिर हो गये, तो दोनों बैठ गये और श्री चैतन्य महाप्रभु ने हँसकर इस प्रकार कहना शुरू किया।

सार्वभौम भट्टाचार्य कहिल तोमार गुणे ।

तोमारे मिलिते मोरे करिल यतने ॥ 30॥

सार्वभौम भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य ने; कहिल-कहा; तोमार-आपके; गुणे-गुणों; तोमारे-आपको; मिलिते-मिलने के लिए; मोरे-मुझे; करिल-किया; यतने-प्रयास।

अनुवाद

"सार्वभौम भट्टाचार्य ने आपके सारे अच्छे गुण मुझसे बतलाये हैं और उन्होंने मुझे प्रभावित करने का भरसक प्रयास किया कि मैं आपसे मिलूँ।"

तोमा मिलिबारे मोर एथा आगमन ।

भाल हैल, अनायासे पाइलुँ दरशन ॥ 31॥

तोमा-आपको; मिलिबारे-मिलने के लिए: मोर-मेरा: एथा–यहाँ; आगमन-आना; भाल हैल-बहुत अच्छा हुआ; अनायासे बिना किसी कठिनाई के; पाइलुँ-मैंने पा लिया है; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

"निस्सन्देह, मैं यहाँ आपसे ही मिलने आया हूँ। अच्छा हुआ कि बिना प्रयास के आपसे यहाँ भेंट हो गई।"

राय कहे,—सार्वभौम करे भृत्य-ज्ञान ।

परोक्षेह मोर हिते हय सावधान ॥ 32॥

राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; करे-करते हैं; भृत्य-ज्ञान-मुझे अपना सेवक समझते हैं; परोक्षेह-मेरी अनुपस्थिति में; मोर-मेरे; हिते-हित के लिए; हय-हैं; सावधान-सदा सावधान।

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "सार्वभौम भट्टाचार्य मुझे अपने सेवक की तरह मानते हैं। वे मेरी अनुपस्थिति में भी मेरा हित करने के लिए सोचते रहते हैं।"

ताँर कृपाय पाइनु तोमार दरशन ।

आजि सफल हैल मोर मनुष्य-जनम ॥ 33॥

ताँर कृपाय-उनकी कृपा से; पाइनु-मैंने पाया है; तोमार-आपका; दरशन-दर्शन; आजि-आज; स-फल-सफल; हैल–हो गया है; मोर-मेरा; मनुष्य-जनम-मनुष्य जन्म।

अनुवाद

"उनकी कृपा से मुझे यहाँ पर आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। फलतः मैं मानता हूँ कि आज मेरा मनुष्य-जन्म सफल हो गया।"

सार्वभौमे तोमार कृपा,—तार एइ चिह्न ।

अस्पृश्य स्पर्शिले हञा ताँर प्रेमाधीन ॥ 34॥

सार्वभौमे-सार्वभौम भट्टाचार्य पर; तोमार-आपकी; कृपा-कृपा; तार-ऐसी कृपा का; एइ-यह; चिह्न चिह्न; अस्पृश्य-अछूत; स्पर्शले-आपने स्पर्श किया है; हञा-होकर; ताँर-उनके; प्रेम-अधीन-प्रेम से प्रेरित होकर।

अनुवाद

"मैं देख रहा हूँ कि आपने सार्वभौम भट्टाचार्य पर विशेष कृपा की है। अतएव आपने मेरा स्पर्श किया है, यद्यपि मैं अस्पृश्य (अछूत) हूँ। यह आपके प्रति उनके प्रेम के ही कारण है।"

काहाँ तुमि—साक्षातीश्वर नारायण ।

काहाँ मुञि—राज-सेवी विषयी शूद्राधम ॥ 35॥

काहाँ–कहाँ; तुमि-आप; साक्षात्-साक्षात्; ईश्वर नारायण–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; काहाँ–कहाँ; मुञि-मैं; राज-सेवी–सरकारी नौकर; विषयी-भौतिक; शूद्र-अधम–शूद्र से भी नीच, चुतर्थ श्रेणी का पुरुष।

अनुवाद

"आप साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण हैं और मैं भौतिकतावादी कार्यों में रुचि रखने वाला केवल एक सरकारी नौकर हूँ। निस्सन्देह, मैं शूद्रों में भी सबसे नीच हूँ।"

मोर स्पर्शे ना करिले घृणा, वेद-भय ।

मोर दर्शन तोमा वेदे निषेधय ॥ 36॥

मोर-मेरे; स्पर्शे–स्पर्श से; ना-नहीं; करिले-आपने की; घृणा-घृणा; वेद-भय-वेदों के आदेशों से भयभीत होकर; मोर-मेरा; दर्शन-दर्शन; तोमा-आप; वेद-वेदों के आदेश; निषेधय-मनाही की गई है।

अनुवाद

"आपको इस वैदिक आदेश का भी भय नहीं है कि आपको शूद्र का संग नहीं करना चाहिए। यद्यपि वेदों में शूद्रों की संगति करने का निषेध है, किन्तु आपको मेरा स्पर्श करने में कोई घृणा नहीं हुई।"

तात्पर्य

भगवद्गीता (9.32) में भगवान् कहते हैं :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

"हे पार्थ, जो मेरी शरण ग्रहण करते हैं, वे भले ही निम्न जन्म के–स्त्रियाँ, वैश्य तथा शूद्र-क्यों न हों, परम गन्तव्य को प्राप्त कर सकते हैं।"

पापयोनय: का अर्थ है, "निम्न जाति की स्त्रियों से उत्पन्न।" वैश्य व्यापारी होते हैं और शूद्र कामकाज करने वाले चाकर या सेवक होते हैं। वैदिक विभाजन के अनुसार वे निम्न जाति में आते हैं। निम्न जीवन का अर्थ है। कृष्णभावनामृतविहीन जीवन। समाज में उच्च अथवा निम्न पद की गणना मनुष्य की कृष्णभावना के अनुसार की जाती

है। ब्राह्मण को सर्वोच्च पद पर इसीलिए माना जाता है, क्योंकि वह परम सत्य, ब्रह्म को जानता है। दूसरी जाति क्षत्रिय की है। वे भी ब्रह्म को जानते हैं, किन्तु ब्राह्मणों से कम। वैश्य तथा शूद्र भगवत्-चेतना को ठीक से नहीं समझते, किन्तु यदि भगवान् कृष्ण तथा गुरु की कृपा से वे कृष्णभावना ग्रहण करते हैं, तो वे निम्न जातियों के (पापयोनयः) नहीं रहते। यह स्पष्ट कहा गया है- तेऽपि यान्ति परां गतिम्।

जीवन का सर्वोच्च पद प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति भगवद्धाम वापस नहीं लौट सकता। भले ही कोई शूद्र, वैश्य या स्त्री क्यों न हो, यदि वह कृष्णभावना में भगवान् की सेवा में लगा रहता है, तो उसे स्त्री, शूद्र, वैश्य या शूद्र से अधम नहीं माना जा सकता। भगवान् की सेवा में लगा व्यक्ति भले ही निम्न कुल में उत्पन्न क्यों न हुआ हो, वह निम्न वंश का नहीं माना जा सकता। पद्म-पुराण में वर्जित किया गया है- वीक्षते जाति सामान्यात् स याति नरकं ध्रुवम्। जो व्यक्ति भगवद्भक्त से जन्म के आधार पर भेदभाव करता है, वह तुरन्त नरक जाता है। यद्यपि रामानन्द राय ने शूद्र कुल में जन्म लिया था, किन्तु उन्हें शूद्र नहीं माने जा सकते, क्योंकि वे महान् भक्त थे। वे दिव्य पद को प्राप्त थे। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया। श्री रामानन्द राय ने आध्यात्मिक विनयशीलतावश ही अपने आपको शूद्र के रूप में प्रस्तुत किया (राजसेवी विषयी शूद्राधम)। भले ही कोई सरकारी नौकरी या अन्य किसी रुपये-पैसे के व्यापार में-भौतिकतावादी जीवन में क्यों न लगा हो, उसे केवल कृष्णभावनामृत स्वीकार करना चाहिए। कृष्णभावनामृत अत्यन्त सरल विधि है। मनुष्य को केवल भगवन्नाम का जप और पापकर्म का निषेध करने वाले नियमों का पालन करने की आवश्यकता है। इस तरह से वह अस्पृश्य, विषयी या शूद्र नहीं रह जाता। जो आध्यात्मिक जीवन में उन्नत हैं, उन्हें अभक्तों की-अर्थात् सरकारी नौकरी वालों, इन्द्रिय-तृप्ति के लिए विषय-भोग में लगे हुए व्यक्तियों की या अन्यों की सेवा करने वालों की संगति नहीं करनी चाहिए। ऐसे लोग विषयी अर्थात् भौतिकतावादी माने जाते हैं। ऐसा कहा भी गया है :

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य

पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य ।

सन्दर्शनं विषयिनामथ योषितां च

हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु ॥

“जो व्यक्ति अविद्या के सागर को लाँघने के उद्देश्य से भक्ति में गम्भीरतापूर्वक लगा हुआ है और जिसने सारे भौतिक कार्यों को त्याग दिया है, उसे कभी भी शूद्र, वैश्य या स्त्री को नहीं देखना चाहिए।” (श्री चैतन्य चन्द्रोदय नाटक 8.23)।

तोमार कृपाय तोमाय कराय निन्द्य-कर्म ।

साक्षातीश्वर तुमि, के जाने तोमार मर्म ॥ 37॥

तोमार कृपाय-आपकी कृपा; तोमाय-आपको; कराय-प्रेरणा देती है; निन्द्य-कर्म-निषिद्ध कर्म; साक्षात् ईश्वर– साक्षात् ईश्वर; तुमि-आप; के जाने-कौन जान सकता है; तोमार-आपका; मर्म-मर्म।

अनुवाद

"आप स्वयं साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, अतएव आपके प्रयोजन (रहस्य) को कोई नहीं समझ सकता। यह आपकी कृपा है कि आप मेरा स्पर्श कर रहे हैं, यद्यपि वेदों द्वारा इसकी अनुमति नहीं है।"

तात्पर्य

किसी संन्यासी के लिए विषयी तथा भौतिकतावादी लोगों को देखना पूरी तरह वर्जित है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी असीम अहैतुकी कृपा के कारण जन्म तथा पद पर विचार किये बिना ही किसी पर भी कृपा कर सकते थे।

आमा निस्तारिते तोमार इहाँ आगमन ।

परम-दयालु तुमि पतित-पावन ॥ 38॥

आमा निस्तारिते-मेरा उद्धार करने हेतु; तोमार-आपका; इहाँ–यहाँ; आगमन-आगमन; परम-दयालु-परम दयालु; तुमि-आप; पतित-पावन-पतित पावन।

अनुवाद

"आप यहाँ मेरा उद्धार करने के लिए विशेष रूप से पधारे हैं। आप इतने दयालु हैं कि सभी पतितात्माओं को केवल आप ही उबार सकते हैं।"

तात्पर्य

प्रार्थना (39) में श्रील नरोत्तम दास ठाकुर गाते हैं :

श्रीकृष्णचैतन्य-प्रभु दया कर मोरे

तोमा विना के दयालु जगत संसारे।

पतितपावन-हेतु तव अवतार

मो-सम पतित प्रभु ना पाइने आर॥

"हे प्रभु, आप मुझ पर कृपालु हों। इन तीनों लोकों में आपसे अधिक दयालु और कौन हो सकता है? आप बद्ध पतित जीवों का उद्धार करने के लिए ही अवतरित होते हैं, किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुझसे बड़ा पतित आपको दूसरा कोई नहीं मिलेगा।"

श्री चैतन्य महाप्रभु का विशिष्ट उद्देश्य पतितात्माओं का उद्धार करना है। निस्सन्देह, इस कलियुग में शायद ही कोई ऐसा हो जो वैदिक दृष्टि से पतित न हो। रूप गोस्वामी को शिक्षा देते समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने वैदिक धर्म के इन तथाकथित अनुयायियों का वर्णन इस प्रकार किया है (मध्य 19.146) :

वेदनिष्ठमध्ये अर्धेक वेद 'मुखे' माने।

वेदनिषिद्ध पाप करे, धर्म नाहि गणे॥

वैदिक नियमों के तथाकथित अनुयायी वेदों को औपचारिक रूप से ही मानते हैं, किन्तु वे उन नियमों के विपरीत कर्म करते हैं। यह इस कलियुग का लक्षण है। लोग अपने आपको हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि बतलाकर किसी एक धर्म का पालन करते हैं, किन्तु वास्तव में कोई भी व्यक्ति धर्मशास्त्रों में बतलाये गये नियमों का पालन नहीं करता। यही इस युग का रोग है। इसलिए दयालु चैतन्य महाप्रभु ने तो केवल हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने की सलाह दी है- हरेर्नाम हरेनम हरेर्नामेव केवलम्। महाप्रभु किसी भी व्यक्ति का उद्धार कर सकते हैं चाहे वह शास्त्रों के मतानुसार पतित ही क्यों न हो। यही श्री चैतन्य महाप्रभु की विशिष्ट कृपा है। इसीलिए वे पतित-पावन कहलाते हैं।

महान्त-स्वभाव एइ तारिते पामर।

निज कार्य नाहि तबु यान तार घर॥ 39॥

महान्त-स्वभाव-सन्त पुरुषों का स्वभाव; एइ–यह; तारिते-उद्धार करना; पामर-पतित आत्माओं का; निज-अपना; कार्य-कार्य; नाहि-नहीं है; तबु-फिर भी; यान-जाते हैं; तार-उसके; घर–घर।

अनुवाद

"सारे सन्त पुरुषों का यह सामान्य कार्य है कि वे पतितों का उद्धार करते हैं। इसीलिए वे लोगों के घरों में जाते हैं, यद्यपि वहाँ उनका कोई निजी कार्य नहीं रहता।"

तात्पर्य

एक संन्यासी का नियम है कि वह द्वार-द्वार जाकर भिक्षा माँगे। वह केवल इसलिए भिक्षा नहीं माँगता कि वह भूखा है। उसका वास्तविक उद्देश्य तो हर घर के निवासियों को कृष्णभावनामृत का उपदेश देकर जाग्रत करना होता है। संन्यासी मात्र भिक्षा माँगने के लिए अपना उच्च पद छोड़कर भिखारी नहीं बनता। इसी प्रकार गृहस्थ जीवन में रहकर कोई व्यक्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो सकता है, किन्तु स्वेच्छा से वह भी साधु-महात्मा का जीवन बिता सकता है। रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी मन्त्री थे, किन्तु उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का विनीत भाव से प्रचार करने के लिए स्वेच्छा से साधु-जीवन स्वीकार किया। उनके बारे में कहा जाता है-त्यक्त्वा तूणमशेषमण्डलपति श्रेणीं सदा तुच्छवत् भूत्वा दीनगणेशकौ करुणया कौपीनकन्थाश्रितौ। यद्यपि ये दोनों गोस्वामी राजसी ठाठ-बाट से रह रहे थे, किन्तु चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए वे संन्यासी बन गये। मनुष्य को इस पर भी विचार करना चाहिए कि जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचार-कार्य में लगे हुए हैं, वे श्री चैतन्य महाप्रभु के मार्गदर्शन में रहते हैं। वे वास्तव में भिखारी नहीं होते हैं, उनका वास्तविक कार्य तो पतितात्माओं का उद्धार करना है। इसलिए चाहे किसी पुस्तक का ही प्रचार क्यों न हो, उसके लिए वे द्वार-द्वार जा सकते हैं, जिससे लोग उसे पढ़कर ज्ञान प्राप्त कर सकें। पहले ब्रह्मचारी तथा संन्यासी द्वार-द्वार जाकर भीख माँगते थे। किन्तु आजकल, विशेषतया पश्चिमी देशों में, यदि कोई द्वार-द्वार भिक्षा माँगे, तो उसे पुलिस पकड़ सकती है। पश्चिमी देशों में भीख माँगना अपराध माना जाता है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को भीख माँगने से कोई सरोकार नहीं। वे तो कृष्णभावनामृत सम्बन्धी साहित्य का प्रचार करने के लिए कठोर परिश्रम करते हैं, जिससे लोग उसे पढ़कर लाभान्वित हों। किन्तु यदि कोई व्यक्ति कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को कोई चन्दा या सहायता देता है, तो वह उसे कभी अस्वीकार नहीं करता।

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीन-चेतसाम् ।

निःश्रेयसाय भगवन्नान्यथा कल्पते क्वचित् ॥ 40॥

महत्-विचलनम्–सन्त पुरुषों का भ्रमण; नृणाम्-लोगों के; गृहिणाम् गृहस्थों के; दीन-चेतसाम्-दीन-हृदयवाले; निःश्रेयसाय-परम हित के लिए; भगवन्-हे मेरे स्वामी; न अन्यथा-अन्यथा नहीं; कल्पते-कोई सोचता है; क्वचित्-किसी भी समय।

अनुवाद

"हे प्रभु, कभी-कभी बड़े से बड़े सन्त पुरुष भी गृहस्थों के घर जाते हैं, यद्यपि ये गृहस्थ सामान्यतया तुच्छ बुद्धि वाले होते हैं। जब कोई सन्त पुरुष उनके घर जाता है, तो यही समझना चाहिए कि गृहस्थों को लाभ पहुँचाने के अतिरिक्त उनका अन्य कोई उद्देश्य नहीं हो सकता।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.8.4) का है।

आमार सङ्गे ब्राह्मणादि सहस्रक जन ।

तोमार दर्शने सबार द्रवी-भूत मन ॥41॥

आमार सड़े-मेरे साथ; ब्राह्मण-आदि-ब्राह्मण तथा अन्य; सहस्त्रेक-एक हजार से अधिक; जन-व्यक्ति; तोमार-आपके; दर्शने-दर्शन में; सबार-सबके; द्रवी-भूत-द्रवित हो गये; मन-हृदय।

अनुवाद

"मेरे साथ ब्राह्मणों को मिलाकर लगभग एक हजार व्यक्ति हैं और उन सबके हृदय आपके दर्शन से द्रवीभूत हो चुके हैं।"

'कृष्ण' 'कृष्ण' नाम शुनि सबार वदने ।

सबार अङ्ग—पुलकित, अश्रु—नयने ॥42॥

कृष्ण कृष्ण-'कृष्ण,' 'कृष्ण'; नाम-पावन नाम; शुनि–मैं सुनता हूँ; सबार-हर एक के; वदने-मुख से; सबार-सबके; अङ्ग–शरीर; पुलकित–पुलकित; अश्रु-अश्रु; नयने-नेत्रों में।

अनुवाद

"मैं हर व्यक्ति को कृष्ण-नाम का कीर्तन करते हुए सुन रहा हूँ। प्रत्येक व्यक्ति का शरीर भाव से पुलकित है और हर एक की आँखों में आँसू हैं।"

आकृत्ये-प्रकृत्ये तोमार ईश्वर-लक्षण ।

जीवे ना सम्भवे एइ अप्राकृत गुण ॥43॥

आकृत्ये शारीरिक लक्षणों में; प्रकृत्ये–व्यवहार में; तोमार-आपका; ईश्वर-परम भगवान् के; लक्षण-लक्षण; जीवे-सामान्य जीव में; ना-नहीं; सम्भवे-सम्भव; एइ-ये; अप्राकृत-दिव्य; गुण-गुण।

अनुवाद

"हे मान्यवर, आप अपने शारिरिक लक्षणों तथा स्वभाव से पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् हैं। सामान्य जीवों में ऐसे दिव्य लक्षणों का मिलना असम्भव है।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के शारीरिक लक्षण असाधारण थे। निस्सन्देह, उनका शरीर नाप में असाधारण था। उनकी छाती तथा उनके भुजाओं की लम्बाई समान थी। इसे न्यग्रोध परिमण्डल कहते हैं। जहाँ तक उनके स्वभाव की बात है, वे हर एक के प्रति दयालु थे। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अतिरिक्त सबके प्रति अन्य कोई ऐसा दयालु नहीं हो सकता। इसीलिए भगवान् का नाम कृष्ण अर्थात् "सर्वाकर्षक" है। भगवद्गीता (14.4) में कहा गया है कि कृष्ण हर एक के दयालु पिता हैं। वे सभी योनियों (सर्वयोनिषु) के बीजदाता आदि पिता (बीजप्रदः पिता) हैं। तो फिर वे किसी जीव के प्रति निष्ठुर कैसे हो सकते हैं? चाहे कोई मनुष्य हो, पशु या वृक्ष हो, भगवान् हर एक पर दयालु होते हैं। यही ईश्वर का गुण है। उन्होंने भगवद्गीता (9.29) में भी कहा है- समोऽहम् सर्वभूतेषु–"मैं हर एक के प्रति समान रूप से दयालु हूँ।" उनका उपदेश है-सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।"सभी धर्मों को त्यागकर केवल मेरी शरण में आओ।" यह उपदेश केवल अर्जुन के लिए नहीं, अपितु सारे जीवों के लिए है। जो भी उनके इस उपदेश से लाभ उठाता है, वह तुरन्त सारे पापों से मुक्त होकर भगवधाम लौट जाता है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु इस ग्रह पर उपस्थित थे, तब उन्होंने भी यही उपदेश दिया था।

प्रभु कहे,—तुमि महा-भागवतोत्तम ।

तोमार दर्शने सबार द्रव हैल मन ॥44॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; तुमि-आप; महा-भागवत-उत्तम-उच्च भक्तों में सर्वोत्तम; तोमार दर्शने-आपके दर्शन से; सबार–प्रत्येक का; द्रव-द्रवित; हैल-हो गया; मन–मन।

अनुवाद

महाप्रभु ने रामानन्द राय को उत्तर दिया, "हे महोदय, आप सर्वोच्च भक्तों के शिरोमणि हैं, अतएव आपके दर्शन से हर एक का हृदय द्रवित हो उठा है।"

तात्पर्य

प्रथम कक्षा के भक्त हुए बिना कोई उपदेशक नहीं बन सकता। सामान्यतया उपदेशक सर्वोच्च भक्त होता है, किन्तु सामान्य जनता से मिलने के लिए उसे भक्तों तथा अभक्तों में अन्तर करना होता है। अन्यथा महान् भक्त ऐसा अन्तर नहीं करता है। वह तो हर एक को सदैव भगवान् की सेवा में लगा हुआ देखता है। जब कोई व्यक्ति उपदेश या प्रचार-कार्य में लग जाता है, तो उसे मनुष्यों में अन्तर करना चाहिए और यह समझना चाहिए कि कुछ लोग भगवान् की भक्ति में नहीं लगे हैं। तब उपदेशक ऐसे अबोध लोगों पर दया करता है, जिन्हें यह ज्ञान नहीं है कि भगवान् की पूजा कैसे की जाए। श्रीमद्भागवत (11.2.45) में सर्वोच्च भक्त के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

"उन्नत भक्त सभी जीवों को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अंश रूप में देखता है। हर एक कृष्ण में हैं और कृष्ण भी हर एक में हैं। ऐसी दृष्टि उसी में हो सकती है, जो भक्ति में बहुत उन्नत है।"

अन्येर कि कथा, आमि—'मायावादी सन्न्यासी' ।

आमिह तोमार स्पर्शे कृष्ण-प्रेमे भासि ॥45॥

अन्येर–दूसरों का; कि कथा-क्या कहें; आमि-मैं; मायावादी सन्न्यासी–मायावादी संन्यासी; आमिह-मैं; तोमार-आपके; स्पर्शे-स्पर्श से; कृष्ण-कृष्ण के; प्रेमे-प्रेम में; भासि-तैरता हूँ।

अनुवाद

"यद्यपि मैं मायावादी संन्यासी अर्थात् अभक्त हूँ, किन्तु आपका स्पर्श पाने मात्र से मैं भी कृष्ण-प्रेम के सागर में तैर रहा हूँ। दूसरों का तो कहना ही क्या?"

एइ जानि' कठिन मोर हृदय शोधिते ।

सार्वभौम कहिलेन तोमारे मिलिते ॥ 46॥

एइ जानि'–यह जानकर; कठिन-अत्यन्त कठोर; मोर-मेरा; हृदय-हृदय; शोधिते–शुद्ध करने के लिए; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य ने; कहिलेन-कहा; तोमारे-आपसे; मिलिते-मिलने के लिए।

अनुवाद

"सार्वभौम भट्टाचार्य यह जानते थे कि ऐसा होगा और इसीलिए मेरे अत्यन्त कठोर हृदय को शुद्ध करने के उद्देश्य से उन्होंने मुझे आपसे मिलने के लिए कहा है।"

एइ-मत दुँहे स्तुति करे दुँहार गुण ।

दुँहे दुँहार दरशने आनन्दित मन ॥47॥

एइ-मत-इस प्रकार; दुँहे वे दोनों; स्तुति–प्रशंसा; करे-करते हैं; दुँहार-एक-दूसरे के; गुणगुणों की; दुँहे-वे दोनों; दुँहार–उन दोनों के; दरशने-दर्शन से; आनन्दित-आनन्दित; मन-मन।

अनुवाद

इस तरह दोनों एक-दूसरे के गुणों की प्रशंसा करते रहे, और दोनों ही एक-दूसरे को देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे।

हेन-काले वैदिक एक वैष्णव ब्राह्मण ।

दण्डवत्करि' कैल प्रभुरे निमन्त्रण ॥48॥

हेन-काले-उस समय; वैदिक-वैदिक अनुष्ठानों का अनुयायी; एक-एक; वैष्णव ब्राह्मण-वैष्णव ब्राह्मण; दण्डवत्-दण्डवत् प्रणाम; करि'-करके; कैल–किया; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण-निमन्त्रण।

अनुवाद

उसी समय एक वैष्णव ब्राह्मण आया, जो वैदिक नियमों का पालन करने वाला था और उसने नमस्कार किया। महाप्रभु के समक्ष दण्डवत् गिरने के बाद उसने उन्हें भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया।

निमन्त्रण मानिल तारे वैष्णव जानिया ।

रामानन्दे कहे प्रभु ईषत् हासिया ॥49॥

निमन्त्रण-निमंत्रण; मानिल-स्वीकार किया; तारे–उसको (ब्राह्मण को); वैष्णव-भक्त; जानिया-समझकर; रामानन्दे-रामानन्द को; कहे-कहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ईषत्-थोड़ा सा; हासिया-मुस्कुराकर।

अनुवाद

महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को एक भक्त जानकर उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और कुछ-कुछ हँसते हुए रामानन्द राय से वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस वैष्णव ब्राह्मण का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। कोई भले ही ब्राह्मण-संस्कृति के विधि-विधानों का पालन करने वाला पक्का ब्राह्मण क्यों न हो, किन्तु यदि वह भक्त नहीं है, अर्थात् श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुयायी नहीं है, तो उसका निमन्त्रण स्वीकार नहीं करना चाहिए। वर्तमान समय में लोग इतने गिर चुके हैं कि वैष्णव नियमों के पालन की बात जाने दें, वे वैदिक नियमों तक का पालन नहीं करते। वे सर्वभक्षी हैं जो कुछ भी खा लेते हैं- अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को निमन्त्रण स्वीकार करते समय बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है।

तोमार मुखे कृष्ण-कथा शुनिते हय मन ।

पुनरपि पाइ येन तोमार दरशन ॥50॥

तोमार मुखे-आपके मुख से; कृष्ण-कथा-कृष्ण कथाएँ; शुनिते-सुनने के लिए; हय-है; मन-मेरा मन; पुनरपि-फिर; पाइ-मैं पाऊँ; येन-यदि सम्भव हो तो; तोमार-आपका; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

"मैं आपसे भगवान् कृष्ण के विषय में सुनना चाहता हूँ। मेरा मन ऐसा चाहता है, अतएव मैं आपके दर्शन फिर से करना चाहता हूँ।"

राय कहे, आइला यदि पामर शोधिते ।

दर्शन-मात्रे शुद्ध नहे मोर दुष्ट चित्ते ॥51॥

दिन पाँच-सात रहि' करह मार्जन ।

तबे शुद्ध हय मोर एइ दुष्ट मन ॥52॥

राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; आइला-आप आये हैं; यदि यद्यपि; पामर-पतित आत्मा को; शोधिते-सुधारने के लिए; दर्शन-मात्रे–मात्र आपके दर्शन से; शुद्ध नहे-शुद्ध नहीं हुई; मोर-मेरी; दुष्ट-दुष्ट; चित्ते-चेतना; दिन–दिन; पाँच-सात-पाँच या सात; रहि-रहकर; करह-कृपया करो; मार्जन-सफाई; तबे-तब; शुद्ध-शुद्ध; हय-होगा; मोर-मेरा; एइ-यह; दुष्ट-दुष्ट; मन–मन।

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, यद्यपि आप मुझ पतित का शोधन करने आये हैं, किन्तु मेरा मन आपको देखने से अभी शुद्ध नहीं हुआ है। कृपया आप पाँच-सात दिन रुकें और मेरे दूषित मन को शुद्ध कर दें। इतने दिनों में मेरा मन अवश्य ही शुद्ध हो जायेगा।"

यद्यपि विच्छेद दोंहार सहन ना याय ।

तथापि दण्डवत्करि' चलिला राम-राय ॥53॥

यद्यपि यद्यपि; विच्छेद–विरह; दोंहार-उन दोनों का; सहन-सहन; ना-नहीं; याय-सम्भव; तथापि तथापि; दण्डवत्-दण्डवत्; करि'-करके; चलिला–गये; राम-राय-रामानन्द राय।

अनुवाद

यद्यपि वे दोनों एक-दूसरे के विछोह को सहन नहीं कर सकते थे, फिर भी रामानन्द राय ने महाप्रभु को नमस्कार किया और वहाँ से विदा ली।

प्रभु याइ' सेइ विप्र-घरे भिक्षा कैल ।

दुइ जनार उत्कन्ठाय आसि' सन्ध्या हैल ॥54॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; याइ'–जाकर; सेइ-उस; विप्र-घरे–ब्राह्मण के घर पर; भिक्षा-दोपहर का भोजन; कैल–स्वीकार किया; दुइ-दोनों; जनार-लोगों को; उत्कण्ठाय-बेचैनी में; आसि-आकर; सन्ध्या-सन्ध्या; हैल-प्रकट हुई।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु उस ब्राह्मण के घर गये, जिसने उन्हें आमन्त्रित किया था और उन्होंने वहीं भोजन किया। जब संध्या हुई, तो रामानन्द राय तथा महाप्रभु दोनों ही एक-दूसरे से पुनः मिलने के लिए उत्कण्ठित हो उठे।

प्रभु स्नान-कृत्य करि' आछेन वसिया ।

एक-भृत्य-सङ्गे राय मिलिला आसिया ॥55॥

प्रभु–महाप्रभु; स्नान-कृत्य-स्नान करने की दैनिक क्रिया; करि'-समाप्त करके; आछेन-थे; वसिया–बैठे; एक-एक; भृत्य-नौकर; सङ्गे–के साथ; राय-राय रामानन्द मिलिला–मिले; आसिया-आकर।

अनुवाद

शाम का स्नान करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु बैठकर रामानन्द राय के आने की प्रतीक्षा करने लगे। तभी रामानन्द राय एक नौकर के साथ उनसे मिलने के लिए आये।

तात्पर्य

आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत वैष्णव को, चाहे वह गृहस्थ हो या संन्यासी, दिन में तीन बार–प्रातः, दोपहर और शाम को-स्नान करना चाहिए। जो व्यक्ति अर्चाविग्रह की सेवा में नियुक्त हो, उसे पद्मपुराण के सिद्धान्तों का पालन करते हुए नियमित रूप से स्नान करना चाहिए। स्नान के बाद उसे अपने शरीर में बारह तिलक भी लगाने चाहिए।

नमस्कार कैल राय, प्रभु कैल आलिङ्गने ।

दुइ जने कृष्ण-कथा कय रहः-स्थाने ॥56॥

नमस्कार-नमस्कार; कैल–किया; राय-रामानन्द राय ने; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कैल-किया; आलिङ्गने-आलिंगन करके; दुइ-दोनो; जने–व्यक्ति; कृष्ण-कथा-कृष्ण कथाओं की; कय-चर्चा की; रहः-स्थाने-एकान्त स्थान में।

अनुवाद

रामानन्द राय ने महाप्रभु के पास आकर सादर नमस्कार किया और महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया। फिर वे दोनों एकान्त स्थान में कृष्ण के विषय में चर्चा करने लगे।

तात्पर्य

रहः स्थाने अर्थात् "एकान्त स्थान में" अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कृष्ण तथा उनकी लीलाएँ–विशेषतया उनकी वृन्दावन-लीलाएँ तथा गोपियों के साथ आचरण-ये चर्चाएँ अत्यन्त गोपनीय हैं। इनकी सार्वजनिक रूप से चर्चा नहीं की जा सकती, क्योंकि जिन्हें कृष्ण की लीलाओं की दिव्य प्रकृति के विषय में जानकारी नहीं है, वे सदैव यह सोचकर अपराध के भागी बनते हैं। कि कृष्ण एक सामान्य मनुष्य हैं और गोपियाँ सामान्य युवतियाँ हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु, कृष्ण तथा गोपियों के आचरण के विषय में सार्वजनिक रूप से कभी भी चर्चा नहीं करते थे, अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तों का पालन करते हुए कृष्णभावनामृत आन्दोलन के भक्तों के लिए यह आदेश है कि वे कृष्ण की वृन्दावन-लीलाओं की चर्चा जनता के समक्ष न करें। सामान्य जनता में कृष्णभावनामृत जाग्रत करने की सबसे प्रभावशाली विधि संकीर्तन है। यदि हो सके तो भगवद्गीता की शिक्षओं की चर्चा करनी चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु इस सिद्धान्त का कठोरता से पालन करते थे और विद्वानों के साथ, यथा सार्वभौम भट्टाचार्य तथा प्रकाशानन्द सरस्वती के साथ भगवद्गीता के दर्शन पर चर्चा करते थे। किन्तु वे सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी जैसे शिष्यों को भक्ति-सम्प्रदाय के नियमों की शिक्षा देते थे। वे रामानन्द राय के साथ कृष्ण तथा गोपियों के मध्य सर्वोच्च भक्तिमय आचरण की चर्चा करते थे। सामान्य जनों के लिए वे बड़ी तत्परता से संकीर्तन करते थे। हमें भी चाहिए कि कृष्णभावनामृत का सारे विश्व में प्रचार करते समय इन्हीं सिद्धान्तों को अपनायें।

प्रभु कहे,—"पड़ श्लोक साध्येर निर्णय" ।

राय कहे,—"स्व-धर्माचरणे विष्णु-भक्ति हय" ॥57॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; पड़-जरा पढ़ो; श्लोक-शास्त्रों से एक श्लोक; साध्येर–जीवन के उद्देश्य से सम्बन्धित; निर्णय-निर्णय; राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; स्व-धर्म-आचरणे-अपने नियत कर्तव्य के करने से; विष्णु-भक्ति-भगवान् विष्णु की भक्ति; हय-होती है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को आदेश दिया, "जीवन के चरम लक्ष्य से सम्बन्धित शास्त्रों से एक श्लोक सुनायें।" इस पर रामानन्द ने उत्तर दिया, "यदि कोई अपने सामाजिक पद सम्बन्धी नियत कर्मों को सम्पन्न करता है, तो वह अपनी मूल कृष्णभावनामृत को जाग्रत करता है।"

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में वेदार्थ-संग्रह में श्री रामानुजाचार्य ने बतलाया है कि जीव को स्वभावतः भक्ति अत्यन्त प्रिय है। निस्सन्देह, यही जीवन-लक्ष्य है। यह भक्ति परम ज्ञान या कृष्णभावनामृत है और यह समस्त भौतिक कर्म से विरक्ति उत्पन्न करने वाली है। दिव्य अवस्था में जीव भगवत्-सेवा की सर्वोच्चता को पूरी तरह स्वीकार कर सकता है। भक्त केवल भक्ति से भगवान् को प्राप्त करते हैं। ऐसा ज्ञान होने पर मनुष्य अपने वृत्तिपरक कार्य में लग जाता है और इसे भक्तियोग कहते हैं। भक्तियोग सम्पन्न करने पर मनुष्य शुद्ध भक्ति के पद को प्राप्त कर सकता है।

श्री व्यासदेव के पिता महामुनि पराशर ने विशेष रूप से उल्लेख किया है। कि वर्णाश्रम धर्म के अनुसार कर्म करते हुए मानव समाज में भगवद्भक्ति को जाग्रत किया जा सकता है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने वर्णाश्रम धर्म की स्थापना इसी उद्देश्य से की है कि मनुष्यों को भगवद्धाम वापस जाने का अवसर मिल सके। भगवान् श्रीकृष्ण, जिन्हें भगवद्गीता में पुरुषोत्तम कहा गया है, स्वयं अवतरित हुए और उन्होंने यह घोषित किया कि वर्णाश्रम धर्म की स्थापना उन्होंने की है। जैसेकि भगवद्गीता (4.13) में कहा गया है :

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।

तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम् ॥

भगवद्गीता में अन्यत्र (18.45-46) भगवान् कहते हैं :

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।

स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।

स्वकर्मणा तमभ्यर्थ्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

मानव समाज को चार वर्गो-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र-में विभाजित किया जाना चाहिए और सबको अपने नियत-कर्मों (स्वाभाविक धर्म) में सदैव लगे रहना चाहिए। भगवान् कहते हैं कि जो लोग अपने-अपने नियत-कर्मों में लगे हुए हैं, वे अपने स्वाभाविक धर्म का पालन करने के साथ-साथ ही भगवान् की प्रेमाभक्ति करके पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं। वास्तव में वर्गविहीन समाज का आधुनिक आदर्श केवल कृष्णभावनामृत द्वारा ही लाया जा सकता है। सारे लोग अपना-अपना स्वाभाविक कार्य करें और जो लाभ हो उसे भगवान् की सेवा में अर्पित कर दें। दूसरे शब्दों में, अपना स्वाभाविक कर्तव्य निभाने तथा उसके फलों को भगवान् की सेवा में लगाने से ही जीवन की पूर्णता प्राप्त हो सकती है। इस विधि की पुष्टि बोधायन, तंक, द्रमिड, गुहदेव, कपर्दि तथा भारुचि जैसे महापुरुषों ने की है। वेदान्त-सूत्र से भी इसकी पुष्टि होती है।

वर्णाश्रमाचार-वता पुरुषेण परः पुमान् ।

विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत्तत्तोष-कारणम् ॥58॥

वर्ण-आश्रम-आचार्येर-वता-जो चार आश्रमों और वर्षों के अनुसार व्यवहार करता है; पुरुषेण–पुरुष से; परः-परम; पुमान्–पुरुष; विष्णुः-भगवान् विष्णु; आराध्यते-पूजे जाते हैं; पन्था-मार्ग; न-नहीं; अन्यत्-अन्य; तत्-तोष-कारणम्-भगवान् को सन्तुष्ट करने का उपाय।

अनुवाद

"वर्णाश्रम प्रणाली में नियत कर्तव्यों को उचित रीति से सम्पन्न करके पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की पूजा की जाती है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तुष्ट करने की अन्य कोई विधि है ही नहीं। मनुष्य को चारों वर्गों तथा चारों आश्रमों के संस्थान में स्थित होना चाहिए।"

तात्पर्य

यह श्लोक विष्णु पुराण (3.8.9) से लिया गया है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में कहा है, "तात्पर्य यह है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तुष्ट करने से ही जीवन की पूर्णता की अनुभूति की जा सकती है।" श्रीमद्भागवत (1.2.13) में भी इसकी पुष्टि हुई है :

अत: पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रम विभागशः ।

स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥

"हे द्विज-श्रेष्ठ, अतः अन्तिम निर्णय यही निकलता है कि मनुष्य वर्ण तथा आश्रम के अनुसार नियत कर्म (स्वधर्म) का पालन करके जो सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करता है, वह है भगवान् हरि को तुष्ट करना।"

प्रत्येक मनुष्य को अपनी प्रवृत्ति के अनुसार ही नियत कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। उसे अपनी क्षमताओं के अनुसार ही वर्णाश्रम संस्थान में पद स्वीकार करना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के विभाग समाज के अन्तर्गत प्राकृतिक विभाग हैं। वर्णाश्रम धर्म के अनुसार हर व्यक्ति का अपना-अपना नियत कर्तव्य होता है। जो लोग अपने नियत कर्तव्य पूरा करते हैं, वे शान्तिपूर्वक रहते हैं और भौतिक परिस्थितियों से विचलित नहीं होते। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास-ये आध्यात्मिक विभाग आश्रम कहलाते हैं। यदि कोई व्यक्ति वर्ण तथा आश्रम दोनों के नियत कर्तव्यों को पूरा करता है, तो उससे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तुष्ट रहते हैं। यदि वह अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करता है, तो वह अपराधी बन जाता है और नरक को जाता है। वास्तव में हम देखते हैं कि विभिन्न लोग विभिन्न तरीकों से अपने अपने कामों में लगे रहते हैं, अतएव कर्म के अनुसार विभाग बनने चाहिए। पूर्णता प्राप्त करने के लिए मनुष्य को भक्ति को अपने जीवन का केन्द्रबिन्दु बनाना चाहिए। इस तरह वह कर्म, संगति तथा शिक्षा द्वारा अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति को जाग्रत कर सकता है। वर्णाश्रम धर्म को जन्म से नहीं अपितु योग्यता के अनुसार स्वीकार करना चाहिए। इस प्रणाली को लागू किये बिना मानव-कार्यों को ढंग से सम्पन्न नहीं किये जा सकते।

ब्राह्मण लोग वे बुद्धिमान व्यक्ति हैं, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझ सकते हैं। वे सदैव ज्ञान के अनुशीलन में लगे रहते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे भारत के हों या भारत से बाहर के। जो लोग स्वभावतः शूरवीर होते हैं और दूसरों पर शासन करना चाहते हैं, वे क्षत्रिय कहलाते हैं। जो लोग खेती करके अन्न उपजाना, गौवों तथा अन्य पशुओं की रक्षा करना एवं व्यापार में लगे रहना चाहते हैं, वे वैश्य या व्यापारी कहलाते हैं। जो लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य होने के लिए पर्याप्त बुद्धिमान नहीं होते, वे किसी स्वामी की सेवा करने के लिए होते हैं और शूद्र कहलाते

हैं। इस तरह हर व्यक्ति भगवान् की सेवा में लग सकता है और अपनी स्वाभाविक कृष्ण-चेतना को जागृत कर सकता है। यदि समाज ऐसे प्राकृतिक विभाजनों के अनुसार कार्य नहीं करता, तो सामाजिक व्यवस्था में गिरावट आती है। निष्कर्ष यही है कि समाज को वर्णाश्रम धर्म की वैज्ञानिक विधि अपनानी चाहिए।

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह आर"।

राय कहे, "कृष्णे कर्मार्पण—सर्व-साध्य-सार" ॥59॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; एहो–यह; बाह्य-बाहरी; आगे-आगे; कह-कहो; आर-और; राय कहे-श्री रामानन्द राय ने कहा; कृष्णे-कृष्ण को; कर्म-अर्पण-कर्मफल अर्पित करना; सर्व-साध्य-सार-सिद्धि के सभी साधनों का सार।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "यह तो बाह्य है। आप मुझे कोई दूसरा साधन बतलायें।" इस पर रामानन्द ने उत्तर दिया, "सारी पूर्णता का सार यह है कि अपने कर्मों के फल कृष्ण को अर्पित किये जाएँ।"

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ 60॥

यत्-जो कुछ; करोषि-तुम करते हो; यत्-जो कुछ; अश्नासि-खाते हो; यत्-जो कुछ; जुहोषि-यज्ञ करते हो; ददासि–दान में देते हो; यत्-जो कुछ; यत्-जो कुछ; तपस्यसि-तप करते हो; कौन्तेय हे कुन्ती-पुत्र; तत्व ह; कुरुष्व-कर दो; मत्-मुझे; अर्पणम्-अर्पण।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "हे कुन्ती-पुत्र, तुम जो कुछ करो, जो भी खाओ, जो भी यज्ञ करो, जो भी दान दो तथा तुम जितनी भी तपस्याएँ करो, उन सबके फल मुझे, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को अर्पण करो।"

तात्पर्य

महाप्रभु यह कह चुके हैं कि इस कलियुग में वर्णाश्रम धर्म का ठीक से पालन नहीं हो पाता, इसलिए उन्होंने रामानन्द राय को आदेश दिया कि वे अपनी बात को आगे बढ़ायें। रामानन्द राय ने उत्तर में भगवद्गीता का यह श्लोक (9.27) पढ़ा, जिसमें आदेश दिया गया है कि वर्णाश्रम धर्म का निर्वाह करते हुए मनुष्य अपने कर्मफल प्रेमपूर्वक भगवान् कृष्ण को अर्पित कर दे। स्वाभाविक है कि श्री चैतन्य महाप्रभु रामानन्द राय से भक्ति सम्पन्न करने की बात पूछ रहे थे। रामानन्द राय ने सर्वप्रथम वर्णाश्रम धर्म के सिद्धान्तों को भौतिक लोगों के दृष्टिकोण से बतलाया। किन्तु यह विचार दिव्य नहीं है। जब तक मनुष्य इस भौतिक जगत् में रहता है, तब तक उसे वर्णाश्रम धर्म का पालन करना आवश्यक है, किन्तु भक्ति तो दिव्य होती है। वर्णाश्रम धर्म की पद्धति भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के अन्तर्गत है, किन्तु दिव्य भक्ति तो सर्वोच्च पद पर स्थित होती है।

श्री चैतन्य महाप्रभु का सम्बन्ध वैकुण्ठ से था और संकीर्तन आन्दोलन को प्रसारित करने की उनकी विधियाँ भी वैकुण्ठ से लाई गई थीं। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने गाया है-गोलोकेर प्रेमधन, हरिनाम-सङ्कीर्तन, रति न जन्मिल केने ताय। अर्थात् संकीर्तन आन्दोलन का इस भौतिक जगत् से कोई सरोकार नहीं है। यह आध्यात्मिक जगत्, गोलोक वृन्दावन से लाया गया है। नरोत्तम दास ठाकुर को खेद है कि संसारी लोग इस संकीर्तन आन्दोलन को गम्भीरता से ग्रहण नहीं करते। भक्ति तथा संकीर्तन आन्दोलन की स्थिति पर विचार करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने वर्णाश्रम धर्म प्रणाली को भौतिक बतलाया, यद्यपि इसका उद्देश्य आध्यात्मिक पद पर उन्नत होना है। किन्तु संकीर्तन आन्दोलन तो मनुष्य को तुरन्त ही आध्यात्मिक पद को प्राप्त कराने वाला है। फलतः वर्णाश्रम धर्म को बाह्य कहा गया है और श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से विषय की गहराई में जाकर आध्यात्मिक पद को अनावृत करने के लिए। कहा।

कभी-कभी भौतिकतावादी लोग भगवान् विष्णु को एक भौतिक कल्पना मान बैठते हैं। निर्विशेषवादी लोग सोचते हैं कि भगवान् विष्णु से भी बढ़कर निर्विशेष ब्रह्म है। निर्विशेषवादी लोग भगवान् विष्णु की पूजा को गलत ढंग से समझते हैं। वे भगवान् विष्णु के शरीर में समाहित होने के लिए उनकी पूजा करते हैं। कोई विष्णु-आराधन को गलत न समझे, इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से अनुरोध किया कि वे अपनी बात को और स्पष्ट करें। तब रामानन्द राय ने भगवद्गीता का श्लोक उधृत करते हुए कहा कि अपने नियत कर्मों के फलों को भगवान् विष्णु या कृष्ण को अर्पित किया जाए। श्रीमद्भागवत (1.2.8) में भी कहा गया है :

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।।

“यदि कोई व्यक्ति वर्णाश्रम धर्म के अनुसार नियत कर्म सम्पन्न करता है, किन्तु अपनी सुप्त कृष्णभावना को जागृत नहीं करता, तो उसके सारे कार्य व्यर्थ जाते हैं। उसके सारे काम व्यर्थ का श्रम बनकर रह जाते हैं।”

प्रभु कहे,—“एहो बाह्य, आगे कह आर”।

राय कहे,—“स्वधर्म-त्याग, एइ साध्य-सार” ॥ 61॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने उत्तर दिया; एहो–यह; बाह्य-बाह्य; आगे-आगे; कह-बोलो; आर-और अधिक; राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; स्व-धर्म-त्याग-स्वाभाविक धर्म का त्याग; एइ-यह; साध्य-सार–पूर्णता का सार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “यह भी बाह्य है। इस विषय पर आगे कहो।” तब रामानन्द राय ने उत्तर दिया, “वर्णाश्रम में अपने नियत कर्मों को त्यागना ही पूर्णता का सार है।”

तात्पर्य

ब्राह्मण अपने परिवार को त्यागकर संन्यास ग्रहण कर सकता है। अन्य लोग यथा क्षत्रिय तथा वैश्य भी अपने अपने परिवार त्यागकर कृष्णभावनामृत अंगीकार कर सकते हैं। ऐसा त्याग कर्म-त्याग कहलाता है। ऐसे त्याग से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तुष्ट होते हैं।

इसके विपरीत अपने कर्मफलों को कृष्ण को अर्पित करके फलों का त्याग करने की पद्धति दोषरहित नहीं मानी जाती, क्योंकि यद्यपि ऐसी पद्धति सूचित करती है कि मनुष्य कृष्ण का स्वीकार परम पुरुष के रूप में करे, फिर भी इस में मनुष्य भौतिक कर्मों में संलग्न होता है। चूँकि ऐसे कर्म भौतिक ब्रह्माण्ड के भीतर होते हैं, अतः श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें बाह्य समझा। इसे संशोधित करने के लिए रामानन्द राय ने संस्तुति की कि भौतिक कर्मों को लाँघने के लिए संन्यास ग्रहण किया जाए। इसका समर्थन श्रीमद्भागवत के निम्नलिखित श्लोक (11.11.32) से होता है :

आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मयादिष्टानपि स्वकान्।

धर्मान्सन्त्यज्य यः सर्वान्मां भजेत्स च सत्तमः ॥ 62॥

आज्ञाय-पूर्णरूपेण जानकर; एवम्-इस प्रकार; गुणान्–गुण; दोषान्–दोष; मया-मुझसे; आदिष्टान्-आदेश दिया; अपि-यद्यपि; स्वकान्-अपना; धर्मान्–नियत कर्म; सन्त्यज्य-त्यागकर; यः-जो कोई; सर्वान्–सभी को; माम्-मेरी; भजेतु-सेवा करे; सः-वह; च-और; सत्-तमः सर्वोत्तम व्यक्ति।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "शास्त्रों में नियत कर्तव्यों का वर्णन हुआ है। उनका विश्लेषण करने पर उनके गुण-दोषों का पता चल सकता है और तब उनका पूर्ण परित्याग करके पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा की जा सकती है। ऐसा व्यक्ति उच्च कोटि का माना जाता है।"

सर्व-धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वां सर्व-पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥63 ॥

सर्व-धर्मान्–सभी धर्मों को (सभी नियत धर्मों को); परित्यज्य-त्यागकर; माम् एकम्-केवल मेरी; शरणम् शरण में; व्रज-आओ; अहम्--मैं; त्वाम्-तुम्हें; सर्व-पापेभ्यः-सभी पापफलों से; मोक्षयिष्यामि मुक्ति देंगा; मा–मत; शुचः-चिंता करो।

अनुवाद

"जैसाकि शास्त्र (भगवद्गीता 18.66) में कहा गया है, यदि तुम सारे धार्मिक तथा नियत कर्तव्यों को त्यागकर मुझ भगवान् की शरण में आ जाओ, तो मैं तुम्हें तुम्हारे जीवनभर के सारे पापकर्मों के फलों से छुटकारा दिला हूँगा। तुम चिन्ता मत करो।"

तात्पर्य

इस प्रसंग में श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी अपनी पुस्तक मन:शिक्षा (2) में उपदेश देते हैं :

न धर्मं नाधर्मं श्रुतिगणनिरुक्तं किल कुरु ।

व्रजे राधाकृष्णप्रचुरपरिचर्यामिह तनु ॥

इस तरह उन्होंने आदेश दिया है कि हमें वेदों में बतलाये गये धार्मिक या अधार्मिक कृत्यों को करने की आवश्यकता नहीं है। सबसे उत्तम मार्ग यही है कि भगवान् कृष्ण तथा राधारानी की सेवा में तत्पर रहा जाए। इस जीवन की यही पूर्णता है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत (4.29.46) में नारद मुनि ने कहा है :

यदा यस्यानुगृह्णाति भगवान् आत्मभावितः ।

सजहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥

"जब कोई वास्तव में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की प्रेममयी सेवा करने लगता है, तो वह भौतिक जगत् के सभी कार्यों का तथा वैदिक साहित्य द्वारा नियत किये गये सारे कर्तव्यों का परित्याग कर देता है। इस तरह वह भगवान् की भक्ति में स्थिर हो जाता है।"

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह आर" ।

राय कहे, "ज्ञान-मिश्रा भक्ति—साध्य-सार" ॥ 64॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; एहो–यह; बाह्य-बाहरी; आगे-आगे; कह-कहो; आर-और; राय कहे-राय ने उत्तर दिया; ज्ञान-मिश्रा भक्ति-ज्ञान-मिश्रित भक्ति; साध्य-सार–पूर्णता का सार है।

अनुवाद

रामानन्द राय को इस तरह बातें करते सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके कथन को अस्वीकार करते हुए कहा, "आगे कुछ और कहो।" तब रामानन्द राय ने कहा, "ज्ञानमिश्रित भक्ति ही पूर्णता का सार है।"

तात्पर्य

अवैदिक तार्किक ज्ञान से मिश्रित भक्ति निश्चय ही शुद्ध भक्ति नहीं है। अतएव श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने अपने अनुभाष्य में उपदेश दिया है कि कर्मकाण्ड द्वारा आत्म-साक्षात्कार होना मुक्ति तथा बद्ध जीवन के बीच की तटस्थ अवस्था है। यह स्थान इस भौतिक जगत् से परे विरजा नदी में है, जहाँ भौतिक प्रकृति के तीनों गुण तटस्थ अथवा अव्यक्तावस्था में निष्क्रिय रहते हैं। किन्तु आध्यात्मिक जगत् में आध्यात्मिक शक्ति प्रकट होती है और उसे वैकुण्ठ लोक कहते हैं, जहाँ कोई चिन्ता नहीं रहती। भौतिक जगत् जो ब्रह्माण्ड कहलाता है, बहिरंगा शक्ति का सृजन है। भौतिक सृष्टि तथा आध्यात्मिक सृष्टि के बीच में विरजा नदी तथा ब्रह्मलोक स्थित हैं। विरजा नदी तथा ब्रह्मलोक उन जीवों के आश्रय-

स्थान हैं, जो भौतिक जीवन से ऊबकर, भौतिक विविधता को नकारकर निर्विशेष अस्तित्व की ओर उन्मुख होते हैं। चूँकि ये स्थान वैकुण्ठ-लोकों में नहीं हैं, अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु इन्हें बाह्य बतलाते हैं। ब्रह्मलोक तथा विरजा नदी में कोई वैकुण्ठ लोकों की कल्पना नहीं कर सकता। ब्रह्मलोक तथा विरजा नदी भी काफी कठिन तपस्या के बाद प्राप्त हो पाते हैं। किन्तु इन क्षेत्रों में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनकी दिव्य प्रेमाभक्ति की कोई जानकारी नहीं हो पाती। ऐसे आध्यात्मिक ज्ञान के बिना भौतिक परिस्थितियों से विरक्ति का होना इस भौतिक जगत् का दूसरा पक्ष है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह सब बाह्य है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया, तो रामानन्द राय ने यह प्रस्ताव रखा कि दर्शन तथा तर्क पर आधारित भक्ति अधिक उन्नत अवस्था है। इसलिए उन्होंने भगवद्गीता का निम्नलिखित श्लोक (18.54) उधृत किया।

ब्रह्म-भूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥65॥

ब्रह्म-भूतः–भौतिक बुद्धि से विरक्त किन्तु निराकार से आसक्त; प्रसन्न-आत्मा-प्रसन्न-आत्मा; न शोचति-नहीं सोचता (चिन्ता करता); न काङ्क्षति-न आकांक्षा करता है; समः-समान भाव रखता है; सर्वेषु-सभी; भूतेषु-जीवों में; मत्-भक्तिम्-मेरी भक्ति; लभते-पाता है; पराम्-दिव्य।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "भगवद्गीता के अनुसार-'जो इस प्रकार दिव्य पद को प्राप्त है, उसे परम ब्रह्म की अनुभूति तुरन्त हो जाती है और वह पूर्णतया प्रसन्न हो जाता है। वह न तो कभी चिन्ता करता है, न किसी वस्तु की इच्छा रखता है। वह सभी जीवों के प्रति समभाव रख है। उस अवस्था में वह मेरी पूर्ण भक्ति प्राप्त करता है।"

तात्पर्य

भगवद्गीता के इस श्लोक में कहा गया है कि जो व्यक्ति एकेश्वरवाद को स्वीकार करता है, अर्थात् जो आध्यात्मिक जीवन के विषय में दार्शनिक चर्चाओं में लगा रहता है, वह प्रसन्न होता है और समस्त भौतिक चिन्ताओं तथा लालसाओं से छुटकारा पा लेता है। उस अवस्था में वह समदर्शी हो जाता है। वह सारे जीवों को आध्यात्मिक रूप में देखता है। इस

उच्च अवस्था को प्राप्त करने पर वह शुद्ध भक्ति प्राप्त कर सकता है। निष्कर्ष यह है कि कर्म-मिश्रित भक्ति, ज्ञानमिश्रित भक्ति से निकृष्ट है।

प्रभु कहे, "एहो बाह्य, आगे कह आर"।

राय कहे,—"ज्ञान-शून्या भक्ति—साध्य-सार" ॥66॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; एहो–यह; बाह्य-बाहरी; आगे-आगे; कह-कहो; आर-और आगे; राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; ज्ञान-शून्या भक्ति-ज्ञान रहित भक्ति; साध्य-सार-जीवन की पूर्णता का सार।

अनुवाद

यह सुनकर महाप्रभु ने पहले की तरह इसे भी बाह्य भक्ति मानते हुए अस्वीकार कर दिया। उन्होंने रामानन्द राय से पुनः आगे बोलने के लिए कहा। इस पर रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "ज्ञान से रहित शुद्ध भक्ति ही पूर्णता का सार है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अनुभाष्य नामक अपने भाष्य में कहा है कि भक्ति की यह ज्ञानमिश्रित अवस्था भी बाह्य है और वैकुण्ठ लोक में की जाने वाली शुद्ध भक्ति के क्षेत्र में नहीं आती। जब कोई भौतिक विचार उठता है, चाहे वह सकारात्मक हो या नकारात्मक, तो ऐसी सेवा आध्यात्मिक नहीं रह जाती। भले ही वह भौतिक कल्मष से रहित क्यों न हो, किन्तु मानसिक तर्क होने के कारण भक्ति शुद्ध और भौतिक जीवन के कल्मष से मुक्त नहीं रह पाती। जो जीव पूरा शुद्ध रहना चाहता है, उसे इस भौतिक विचार से ऊपर उठना चाहिए। यह जरूरी नहीं है कि भौतिक अस्तित्व के निषेध का अर्थ आध्यात्मिक जगत् हो । भौतिक जगत् का निषेध करने पर भी, हो सकता है, आध्यात्मिक जगत् अर्थात् सच्चिदानन्द प्रकट न हो। वास्तव में जब तक मनुष्य भगवान् के साथ अपने सनातन सम्बन्ध को नहीं समझ लेता, तब तक वह आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश नहीं पा सकता। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ ही है भौतिक जीवन से विरक्त होना और भगवान् की प्रेममयी सेवा में लगना। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा कि वे ज्ञानमिश्रित भक्ति से भी परे की कोई बात बतायें। शुद्ध भक्त भगवान् के चरणकमलों में पूर्णतया शरणागत होता है और वह अपने प्रेम के बल पर ही अजेय कृष्ण को जीत लेता है। कृष्ण सदैव विजेता रहते हैं। उन्हें कोई जीत नहीं सकता। मात्र पूर्ण शरणागति द्वारा ही शुद्ध भक्ति की अवस्था प्राप्त की जा सकती है। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत के

श्लोक (10.14.3) से होती है, जिसमें ब्रह्माजी ने श्रीकृष्ण की शक्ति से पराजित होकर उनकी शरण पूर्णतया ग्रहण की थी।

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव

जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीय-वार्ताम् ।

स्थाने स्थिताः श्रुति-गतां तनु-वाङ्मनोभिर्

ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्री-लोक्याम् ॥ 67॥

ज्ञाने-ज्ञान पाने हेतु; प्रयासम्-अनावश्यक प्रयास; उदपास्य-दूर रखकर; नमन्तः-पूर्णतया शरणागत होकर; एव–निश्चित रूप से; जीवन्ति–जीते हैं; सत्-मुखरिताम्-महान् म्वरूप-सिद्ध भक्तों दारा घोषित: भवदीय-वार्ताम-आप भगवान से सम्बन्धित चर्चा; स्थाने स्थिताः-अपने पद पर स्थित; श्रुति-गताम्-श्रवण द्वारा से प्राप्त; तनु-वाक्-मनोभिः-शरीर, वाणी और मन से; ग्रे-वे जो; प्रायशः-सदैव; अजित-हे मेरे अजेय प्रभु (इन्द्रियानुभूति से परे एवं असीम रूप से स्वतन्त्र); जितः-जीते गये; अपि-अवश्य; असि-आप हैं; तैः–ऐसे शुद्ध भक्तों से; त्रि-लोक्याम्-तीनों लोकों में।

अनुवाद

रामानन्द ने आगे कहा, "[ब्रह्माजी ने कहा :] 'हे प्रभु, जिन भक्तों ने परम सत्य के बारे में निर्विशेष खयाल को त्याग दिया है और जिन्होंने चिन्तन के दार्शनिक सत्यों के बारे में विचार-विमर्श करना त्याग दिया है, उन्हें स्वरूपसिद्ध भक्तों से आपके नाम, रूप, लीलाओं तथा गुणों के बारे में श्रवण करना चाहिए। उन्हें भक्ति के नियमों का पूर्णतया पालन करना चाहिए और अवैध सम्बन्ध, जुआ, नशा तथा पशु-हत्या से दूर रहना चाहिए। मन, कर्म तथा वचन से शरणागत होकर वे किसी भी वर्ण या आश्रम में रह सकते हैं। निस्सन्देह, आप सदैव अजेय होते हुए भी ऐसे व्यक्तियों द्वारा जीते जाते हैं।"

प्रभु कहे, "एहो हय, आगे कह आर" ।

राय कहे, "प्रेम-भक्ति—सर्व-साध्य-सार" ॥ 68 ॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; एहो हय-यह ठीक है; आगे कह आर-आगे कुछ और कहो; राय कहे-राय ने उत्तर दिया; प्रेम-भक्ति-प्रेमाभक्ति; सर्व-साध्य-सार–सभी पूर्णता का सार है।

अनुवाद

इस पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "यह ठीक है, फिर भी कुछ आगे कहो।" तब रामानन्द राय ने कहा, "समस्त पूर्णता का सार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भावपूर्ण प्रेमाभक्ति है।"

तात्पर्य

इस प्रसंग का सार देते हुए श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में लिखते हैं कि रामानन्द की बात सुनने के बाद महाप्रभु ने कहा-एहो हय, आगे कह आर।इसका अर्थ यह है कि भक्ति में यही विधि मान्य है, किन्तु इसमें इससे भी अधिक कुछ छिपा रहता है। इसीलिए महाप्रभु ने अनुरोध किया कि वे यह बतायें कि इसके आगे क्या है। समस्त वर्षों तथा आश्रमों के कर्तव्यों का पालन करना ही अपने समस्त कर्मफलों को भगवान् को अर्पित करने के समान नहीं है। जब कोई व्यक्ति सारे सकाम कर्म छोड़कर भगवान् का पूर्णतया शरणागत बनता है, तो वह स्वधर्म-त्याग करता है, जिसमें वह अपने वर्ण को छोड़कर संन्यास ग्रहण करता है। यह निश्चित रूप से बेहतर है। किन्तु संन्यास ग्रहण करने से भी उत्तम है ज्ञान-मिश्रित भक्ति का अनुशीलन। तो भी ये सारे कर्म आध्यात्मिक जगत् के कार्यों की तुलना में बाह्य हैं। इनमें शुद्ध भक्ति नहीं पायी जाती। न तो कोरे ज्ञान से शुद्ध भक्ति प्राप्त हो सकती है, न केवल सत्संगति से पूर्णता प्राप्त हो सकती है। आत्म-साक्षात्कार द्वारा भक्ति सर्वथा भिन्न विषय है। इसमें लेशमात्र भी सकाम कर्म नहीं रहता, क्योंकि मनुष्य अपने कर्मफल भगवान् को अर्पित कर देता है, अपने नियत कर्तव्यों का परित्याग कर देता है और संन्यास आश्रम ग्रहण कर लेता है। ऐसी भक्ति कोरे चिन्तन-युक्त दार्शनिक भक्ति से श्रेष्ठ है। इसकी पुष्टि श्रील रूप गोस्वामी द्वारा भक्तिरसामृतसिन्धु (1.1.11) में की गई है :

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

"मनुष्य को सकाम कर्मों या दार्शनिक चिन्तन द्वारा किसी लाभ की इच्छा किये बिना भगवान् की अनुकूल प्रेमाभक्ति करनी चाहिए। यही शुद्ध भक्ति कहलाती है।"

फिर भी कभी-कभी प्राथमिक अवस्था में भक्तिमय कार्यकलाप अशुद्ध लग सकते हैं, किन्तु परिपक्व अवस्था में ये पूर्णतया शुद्ध होते हैं या भौतिक कार्यकलापों से मुक्त होते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम वाक्य को सुनकर रामानन्द राय ने उत्तर दिया-प्रेमभक्ति-सर्वसाध्यसार। श्री चैतन्य महाप्रभु ने वस्तुतः इस श्लोक को (ज्ञाने प्रयासम्)

पूर्णता के मूल सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया। प्रगति करने के लिए इस सिद्धान्त का अभ्यास करना आवश्यक है। जब वास्तव में और प्रगति हो जाती है, तो मनुष्य भगवान् की भावपूर्ण प्रेमाभक्ति को प्राप्त होता है। यह पहली अवस्था साधन-भक्ति कहलाती है। साधन-भक्ति का परिणाम है भावपूर्ण प्रेमाभक्ति। प्राथमिक अवस्था में साधन भक्ति के अन्तर्गत श्रद्धा, भक्तों की संगति तथा भक्ति करना आते हैं। इस तरह मनुष्य सभी अवांछित वस्तुओं से मुक्त हो जाता है। तब वह भक्ति में स्थिर हो जाता है और उसमें भक्ति-कार्य करने की इच्छा और बढ़ जाती है। इस तरह वह भगवान् तथा उनकी भक्ति में आसक्त हो जाता है।

नानोपचार-कृत-पूजनमार्त-बन्धोः

प्रेम्णैव भक्त-हृदयं सुख-विद्रुतं स्यात् ।

यावत्क्षुदस्ति जठरे जरठा पिपासा

तावत्सुखाय भवतो ननु भक्ष्य-पेये ॥69 ॥

नाना-उपचार-नाना प्रकार के उपचार; कृत–किये गये; पूजनम्-पूजा के; आर्त-बन्धोः–सभी दु:खियों के बन्धु भगवान् के; प्रेम्णा–प्रेमभाव से; एव-निस्सन्देह; भक्त-हृदयम्-भक्त के हृदय को; सुख-विद्रुतम्-दिव्य आनन्द में द्रवित करते हैं; स्यात्-हो जाता है; यावत्-जब तक; क्षुत्-भूख; अस्ति–होती है; जठरे पेट में; जरठा-तेज; पिपासा-प्यास; तावत्-तब तक; सुखाय–सुख के लिए; भवतः-हैं; ननु निस्सन्देह; भक्ष्य-खाने के पदार्थ; पेये-और पीने के पदार्थ।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "जब तक पेट में भूख और प्यास है, तब तक विविध प्रकार के खाद्य-पेय पदार्थों से मनुष्य अत्यन्त सुख का अनुभव करता है। इसी तरह जब शुद्ध प्रेम से भगवान् की पूजा की जाती है, तो उस पूजा के दौरान किए गये विभिन्न कार्यकलापों से भक्त के हृदय में दिव्य आनन्द जाग्रत होता है।"

कृष्ण-भक्ति-रस-भाविता मतिः

क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते ।

तत्र लौल्यमपि मूल्यमेकलं

जन्म-कोटि-सुकृतैर्न लभ्यते ॥ 70 ॥

कृष्ण-भक्ति-रस-भाविता-कृष्णभक्ति के रस में मग्न; मतिः-बुद्धि; क्रीयताम्-खरीद ली जाए; यदि-यदि; कुतः अपि-कहीं न कहीं; लभ्यते-उपलब्ध है; तत्र-वहाँ; लौल्यम्-लोभ; अपि-निस्सन्देह; मूल्यम्-मूल्य; एकलम्-केवल; जन्म-कोटि-लाखों जन्मों में; सुकृतैः-पुण्य कर्मो से; न-नहीं; लभ्यते-पाया जाता।

अनुवाद

"सैकड़ों-हजारों जन्मों के पुण्यकर्मों से भी कृष्णभावनाभावित शुद्ध भक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। इसे तो केवल एक मूल्य पर-उसे प्राप्त करने की उत्कट लालसा से ही–प्राप्त की जा सकती है। यदि यह कहीं भी उपलब्ध हो सके, तो उसे तुरन्त ही खरीद लेनी चाहिए।"

तात्पर्य

पिछले दो श्लोक 69 तथा 70 श्रील रूप गोस्वामी कृत पद्यावली (13, 14) से लिये गये हैं। श्लोक 69 में श्रद्धायुक्त भक्ति का और श्लोक 70 में उत्कट लालसा से की जाने वाली भक्ति का उल्लेख है। पहली अर्थात् श्रद्धा भक्ति विधि-विधानों के अनुसार सम्पन्न की जाने वाली भक्ति है, जबकि दूसरी भक्ति किसी बाह्य प्रयास के बिना भगवान् के प्रति स्वतः स्फूर्त (रागानुराग प्रेम) भक्ति है। इसके आगे श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय की वार्ता का विषय भगवान् की स्वतःस्फूर्त रागानुगा प्रेम-भक्ति होगा। शास्त्रों के आदेशानुसार विधि-विधान तब तक आवश्यक हैं, जहाँ तक मनुष्य की मूल सुप्त कृष्ण-चेतना स्वतः जाग्रत नहीं होती। स्वतः स्फूर्त क्रिया का उदाहरण है समुद्र में नदियों का बहना। इस जल-प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता। जिस तरह जल के प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता, उसी तरह जब मनुष्य की सुप्त कृष्ण-चेतना जाग्रत हो जाती है, तो यह निर्बाध रूप से कृष्ण के चरणकमलों की ओर स्वतः बह निकलती है। अब रामानन्द राय इसके आगे जो भी कहेंगे, वह स्वतः स्फूर्त प्रेम पर आधारित होने के कारण महाप्रभु को स्वीकार्य होगा और महाप्रभु उनसे इस विषय पर अधिकाधिक प्रश्न करते जायेंगे।

प्रभु कहे, "एहो हय, आगे कह आर" ।

राय कहे, "दास्य-प्रेम—सर्व-साध्य-सार" ॥71॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; एहो हय-यह ठीक है; आगे कह आर-आगे और कहो; राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; दास्य-प्रेम-दासता के रस में स्वाभाविक प्रेम; सर्व-साध्य-सार–पूर्णता का सार है।

अनुवाद

स्वतः स्फूर्त प्रेम की बात सुनकर महाप्रभु ने कहा, "यह ठीक है, किन्तु यदि आप और अधिक जानते हों तो कृपया मुझे बतलायें।" इसके उत्तर में रामानन्द राय ने कहा, "स्वतः स्फूर्त दास्य प्रेम-स्वामी तथा सेवक में आदान-प्रदान होने वाला प्रेम-ही सर्वोच्च पूर्णता है।"

तात्पर्य

भगवान् की स्वतः स्फूर्त प्रेमा-भक्ति सेवक तथा सेव्य के बीच घनिष्ठ आसक्ति से युक्त भक्ति कहलाती है। यह घनिष्ठता ममता कहलाती है। सेवक तथा सेव्य में अभिन्नता का भाव होता है। यह ममता सेवक (दास) द्वारा सेव्य (स्वामी) के प्रति की गई सेवा अर्थात् दास्य प्रेम से शुरू होती है। जब तक ऐसा सम्बन्ध नहीं होता, तब तक वास्तव में भगवान् तथा उनके भक्त के बीच प्रेम व्यापार स्थिर नहीं हो पाता। जब भक्त यह अनुभव करता है कि, "भगवान् मेरे स्वामी हैं," और वह उनकी सेवा करता है, तो कृष्णभावनामृत का उदय होता है। यह दृढ़ चेतना भगवत्प्रेम के ज्ञान मात्र से अधिक उच्च स्तर पर होती है।

यन्नाम-श्रुति-मात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ।

तस्य तीर्थ-पदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥72॥

यत्-जिसका; नाम-नाम; श्रुति-मात्रेण-सुनने मात्र से; पुमान्–मनुष्य; भवति-हो जाता है; निर्मलः-निर्मल; तस्य–उनका; तीर्थ-पदः- भगवान् का, जिनके चरणकमलों में सभी तीर्थस्थान स्थित हैं; किम्-क्या; वा-और; दासानाम्-दासों के लिए; अवशिष्यते-बाकी रह जाता है।

अनुवाद

"जिन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमल तीर्थस्थानों को उत्पन्न करते हैं, उनके पवित्र नाम को सुनने से ही मनुष्य निर्मल हो जाता है। अतएव जो उनके दास बन चुके हैं, उन्हें अब आगे पाने के लिए क्या बचा है?"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (9.5.16) का है, जो महर्षि दुर्वासा मुनि की स्वीकारोक्ति है। दुर्वासा मुनि, जो कि जाति के ब्राह्मण और महान् योगी हैं, महाराज अम्बरीष से घृणा करते थे। जब उन्होंने अपनी योगशक्ति से महाराज अम्बरीष

को दण्ड देना चाहा, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सुदर्शन चक्र ने उनका पीछा किया। जब मामला शान्त हो गया तो उन्होंने कहा, "जब कोई व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पवित्र नाम को सुनता है, तो वह तुरन्त निर्मल हो जाता है। भगवान् भक्तों के स्वामी हैं और उनके शरणागत भक्त उनके ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं।"

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरः

प्रशान्त-निःशेष-मनो-रथान्तरः ।

कदाहमैकान्तिक-नित्य-किङ्करः

प्रहर्षयिष्यामि स-नाथ-जीवितम् ॥73॥

भवन्तम्-आप; एव–निश्चय ही; अनुचरन्-सेवा करने से; निरन्तरः-निरन्तर, सदा; प्रशान्त-शान्त हो जाते हैं; निःशेष-सब; मनः-रथ-इच्छाएँ; अन्तरः-अन्य; कदा–कब; अहम्-मैं; ऐकान्तिक-अकेले; नित्य-शाश्वत; किङ्करः-दास; प्रहर्षयिष्यामि-मैं प्रसन्न होऊँगा; स-नाथ-योग्य स्वामी के साथ; जीवितम्-रहकर।

अनुवाद

"आपकी निरन्तर सेवा करते रहने से मनुष्य सारी भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और पूर्णतया शान्त बन जाता है। वह दिन कब आयेगा जब आप मुझे अपना सनातन दास बना लेंगे और मैं आप जैसे पूर्ण स्वामी को पाकर परम हर्ष का अनुभव करूँगा?"

तात्पर्य

यह कथन परम सन्त भक्त यामुनाचार्य का है, जो उनके स्तोत्ररत्न (43) से लिया गया है।

प्रभु कहे, "एहो हय, किछु आगे आर" ।

राय कहे, "सख्य-प्रेम–सर्व-साध्य-सार" ॥74॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; एहो हय-यह भी ठीक है; किछु-कुछ; आगे-आगे; आर-और; राय कहे-रामानन्द राय ने कहा; सख्य-प्रेम-सख्य-प्रेम; सर्व-साध्य-सार-उच्च श्रेणी की पूर्णता की अवस्था।

अनुवाद

रामानन्द राय से यह सुनकर महाप्रभु ने पुनः प्रार्थना की कि वे और आगे बढ़े। रामानन्द राय ने उत्तर में कहा, "सख्य भाव से की गई कृष्ण की प्रेमाभक्ति सर्वोच्च पूर्णता है।"

तात्पर्य

जब तक भगवान् की प्रेममयी सेवा सेव्य-सेवक सम्बन्ध में की जाती है, तब तक कुछ भय रहता है, क्योंकि स्वार्थ की प्रगाढ़ता के बावजूद दास को स्वामी का भय बना रहता है। इस अवस्था में दास सदैव स्वामी से भयभीत रहता है और उसका आदर करता है। किन्तु जब भक्त उन्नति करता है, तब उसे किसी बात का भय नहीं रह जाता। वह अपने आपको भगवान् के समान पद पर मानता है। ऐसे अवसर पर भक्त को पूर्ण विश्वास हो जाता है कि भगवान् कृष्ण मित्र (सखा) हैं और यदि भक्त उनके समान पद पर रहता है, तो वे बिल्कुल असन्तुष्ट नहीं होंगे। यह विचार विश्रम्भ कहलाता है-इसमें सम्मान-प्रवृत्ति का अभाव रहता है। इस प्रवृत्ति को अपनाने पर सख्य प्रेम उपजता है। इस अवस्था में भगवान् तथा भक्त के बीच समानता की विकसित चेतना उत्पन्न होती है।

इत्थं सतां ब्रह्म-सुखानुभूत्या

दास्यं गतानां पर-दैवतेन ।

मायाश्रितानां नर-दारकेण

सार्धं विजह्वः कृत-पुण्य-पुञ्जाः ॥75 ॥

इत्थम्-इस प्रकार; सताम्-भगवान् के निराकार पहलू को महत्त्व देने वाले लोगों के; ब्रह्म-निराकार ज्योति; सुख-सुख से; अनुभूत्या-अनुभव करने वाला; दास्यम्-दास्य भाव; गतानाम्-उनका जिन्होंने स्वीकार किया है; पर-दैवतेन–परम पूज्य विग्रह; माया-आश्रितानाम्-माया के जाल में फँसे सामान्य व्यक्तियों के लिए; नर-दारकेण-उनके लिए जो इस भौतिक संसार में बालक के समान हैं; सार्धम्-मित्रता में; विजह्वः-क्रीड़ा करते थे; कृत-पुण्य-पुञ्जाः-जिन्होंने पुण्यों के ढेर को संचित किया है।

अनुवाद

"जो लोग भगवान् के ब्रह्मतेज की सराहना करते हुए आत्म-साक्षात्कार में लगे हैं, और जो लोग भगवान् को स्वामी के रूप में स्वीकार करके भक्ति में लगे हैं, तथा वे जो भगवान् को सामान्य पुरुष मानकर

माया के पाश में बँधे रहते हैं, कभी यह नहीं समझ सकते कि कुछ महापुरुष अनेक पुण्यकर्मों को संचित करने के बाद ग्वालबालों के रूप में भगवान् के साथ मित्र बनकर खेल रहे हैं।"

तात्पर्य

यह कथन शुकदेव गोस्वामी का है (भागवत 10.12.11), जो कृष्ण के साथ खेलने वाले तथा यमुना नदी के तट पर उनके साथ भोजन करने वाले ग्वालबालों के भाग्य की सराहना कर रहे हैं।

प्रभु कहे,—"एहो उत्तम, आगे कह आर" ।

राय कहे, "वात्सल्य-प्रेम—सर्व-साध्य-सार" ॥ 76 ॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; एहो उत्तम-यह बहुत अच्छा है; आगे-और आगे; कह-कहो; आर-कुछ और; राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; वात्सल्य-प्रेम-वात्सल्य भाव में भगवान् की प्रेममयी सेवा; सर्व-साध्य-सार-सर्वोच्च पूर्णता की अवस्था।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "यह कथन अति उत्तम है, किन्तु आगे कहते चलो।" तब रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "भगवान् के प्रति वात्सल्य प्रेम सर्वोच्च पूर्णता की अवस्था है।"

तात्पर्य

वात्सल्य प्रेम सख्य प्रेम से आगे की अवस्था है। सख्य सम्बन्ध में समानता का भाव रहता है, किन्तु जब समानता का भाव आगे बढ़कर वात्सल्य का रूप धारण कर लेता है, तो वात्सल्य प्रेम का पद प्राप्त हो जाता है। इस सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत का निम्नलिखित श्लोक (10.8.46) उद्धृत किया गया है, जिसमें शुकदेव गोस्वामी कृष्ण के प्रति नन्द महाराज तथा माता यशोदा के उत्कट प्रेम की प्रशंसा करते हैं।

नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन्श्रेय एवं महोदयम् ।

यशोदा वा महा-भागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥77॥

नन्दः–नन्द महाराज; किम्-क्या; अकरोत्–किया है; ब्रह्मन्-हे ब्राह्मण; श्रेयः-शुभ कर्म; एवम्-इस तरह; महा-उदयम्-कृष्ण के पिता की उच्च स्थिति तक ऊपर उठने के लिए; यशोदा-यशोदा माता; वा–अथवा; महा-भागा–महा भाग्यवान; पपौ–पिया; यस्याः -जिनके; स्तनम्-स्तन; हरिः-भगवान् ने।

अनुवाद

रामानन्द राय कहते रहे, "हे ब्राह्मण, भला नन्द महाराज ने कौन-सा पुण्यकर्म किया था, जिसके कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण उन्हें पुत्र रूप में प्राप्त हुए? और माता यशोदा ने कौन-से पुण्यकर्म किये थे, जिनके कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से अपने आपको "माता" कहलवाया और अपने स्तनों का पान कराया?"

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्ग-संश्रया ।

प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्ति-दात् ॥ 78 ॥

न-नहीं; इमम्-यह (ईश्वर-प्रेम); विरिञ्चः-ब्रह्माजी; न-नहीं; भवः-शिवजी; नन ही; श्रीः-लक्ष्मी देवी; अपि-भी; अङ्ग-विष्णु के वक्षस्थल पर; संश्रया-आश्रय लेती हैं; प्रसादम्-पक्ष; लेभिरे-पाया है; गोपी-माता यशोदा; यत्-जो; तत्-वह; प्राप–प्राप्त किया; विमुक्ति-दात्-मुक्तिदाता से।

अनुवाद

"मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण से माता यशोदा को जो कृपा-प्रसाद मिला, वह न तो कभी ब्रह्माजी को प्राप्त हो सका, न शिवजी को, न ही उन लक्ष्मीजी को जो सदैव भगवान् विष्णु के वक्षस्थल पर विराजमान रहती हैं।"

तात्पर्य

यह कथन श्रीमद्भागवत (10.9.20) का है। जब माता यशोदा कृष्ण को रस्सी से न बाँध पाईं, तो कृष्ण ने अपने आपको बँधवा लिया। श्री शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित के समक्ष कृष्ण-लीलाओं का वर्णन करते हुए इस तरह से प्रशंसा की।

प्रभु कहे, "एहो उत्तम, आगे कह आर" ।

राय कहे, "कान्ता-प्रेम सर्व-साध्य-सार" ॥79॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; एहो उत्तम-यह अति उत्तम है; आगे-आगे; कह-कहो; आर-और अधिक; राय कहे-रामानन्द राय ने कहा; कान्ता-प्रेम-पति-पत्नी के बीच प्रेम; सर्व-साध्य-सार-उच्चतम पूर्णता की अवस्था है।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "तुम्हारे कथन उत्तरोत्तर अच्छे होते जा रहे हैं, किन्तु इन सबसे बढ़कर अन्य दिव्य रस है, जिसे आप अच्छी तरह बतला सकते हैं।" तब रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "भगवत्प्रेम में कृष्ण के प्रति माधुर्य आसक्ति सर्वोपरि है।"

तात्पर्य

सामान्यतया भगवत्प्रेम स्वामित्व की घनिष्ठता से रहित होता है। दास्य प्रेम में विश्वास का अभाव रहता है। सख्य प्रेम में अधिक स्नेह का अभाव रहता है; जब यह स्नेह बढ़कर वात्सल्य सम्बन्ध का रूप धारण करता है, तो भी उसमें पूर्ण स्वतन्त्रता का अभाव रहता है। किन्तु जब कोई कृष्ण को दाम्पत्य-भाव से प्रेम करने लगता है, तो अन्य सम्बन्धों के सारे अभाव प्रकट हो आते हैं। दाम्पत्य अवस्था में भगवत्प्रेम में कोई अभाव नहीं रह जाता। इस श्लोक का सारांश यह है कि वात्सल्य प्रेम निश्चित रूप से सख्य प्रेम से बढ़कर है और दाम्पत्य प्रेम उससे भी ऊँचा है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से और आगे बढ़ने के लिए कहा, तभी उन्होंने दाम्पत्य सम्बन्ध (माधुर्य भाव) की बात उठाई, जो दिव्य प्रेम की सर्वोच्च पूर्णावस्था है।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त-रतेः प्रसादः

स्वर्योषितां नलिन-गन्ध-रुचां कुतोऽन्याः ।

रासोत्सवेऽस्य भुज-दण्ड-गृहीत-कण्ठ-

लब्धाशिषां य उदगाव्रज-सुन्दरीणाम् ॥80॥

न–नहीं; अयम्-यह; श्रियः-लक्ष्मी देवी की; अङ्गे–छातीपर; उ–अफसोस है; नितान्त-रतेः-जिनका अन्तरंग सम्बन्ध है; प्रसादः-कृपा; स्वः-स्वर्ग-लोकों की; योषिताम्-महिलाओं की; नलिन–कमल-पुष्प की; गन्ध-गन्ध वाला; रुचाम्-शारीरिक कान्ति; कुतः-बहुत कम; अन्याः-अन्य; रास-उत्सवे-रास नृत्य के उत्सव में; अस्य-भगवान् श्रीकृष्ण

की; भुज-दण्ड-भुजाओं से; गृहीत-आलिंगित किया गया; कण्ठ-उनकी गर्दन में; लब्ध-आशिषाम्-जिन्हें ऐसा आशीर्वाद मिला; यः-जो; उदगात्-प्रकट हुआ; व्रज-सुन्दरीणाम् व्रजभूमि की सुन्दर दिव्य बालाएँ।

अनुवाद

"जब भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों के साथ रासनृत्य कर रहे थे, तब उनकी भुजाएँ गोपियों के गले के इर्द गिर्द उनका आलिंगन कर रही थीं। ऐसा दिव्य सुयोग न तो कभी लक्ष्मीजी को प्राप्त हुआ, न ही वैकुण्ठ की अन्य प्रेयसियों को। न ही स्वर्गलोक की उन श्रेष्ठ सुन्दरियों ने कभी ऐसी कल्पना की थी, जिनकी शारीरिक कान्ति तथा सुगन्धि कमल के फूल जैसी है। तो भला उन सांसारिक स्त्रियों की बात ही क्या, जो भौतिक दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर हों?"

तात्पर्य

यह श्लोक (भागवत 10.47.60) उद्धव ने उस समय कहा था, जब वे कृष्ण का सन्देश लेकर गोपियों के पास श्री वृन्दावन गये थे। उद्धव गोपियों की गतिविधियाँ जानने के लिए वृन्दावन में रहे थे। जब उन्होंने कृष्ण के विरह में गोपियों द्वारा प्रकट प्रेम-भाव देखा, तो उन्होंने उनके सर्वोच्च प्रेम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए यह श्लोक कहा। उन्होंने स्वीकार किया कि गोपियों के भाग्य की तुलना में जब लक्ष्मी का भाग्य नगण्य है, तो स्वर्ग की सुन्दरियों की तो बात ही नहीं उठती।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमान-मुखाम्बुजः ।

पीताम्बर-धरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ-मन्मथः ॥ 81॥

तासाम्-उनमें; आविरभूत्-प्रकट हुए; शौरिः-भगवान् कृष्ण; स्मयमान-मुस्कुराते हुए; मुख-अम्बुजः-कमलमुख वाले; पीत-अम्बर-धरः-पीताम्बर पहने; स्रग्वी-फूलों की माला धारण किये; साक्षात्-साक्षात्; मन्मथ-कामदेव को; मन्मथः-मोहित करने वाले।

अनुवाद

“गोपियों की विरह भावनाओं के कारण कृष्ण पीताम्बर पहने फूलों की माला धारण किये एकाएक उनके बीच में प्रकट हो गये। उनका कमल-मुख मुस्कुरा रहा था और वे कामदेव के मन को भी आकृष्ट करने वाले थे।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.32.2) का है। कृष्ण रासनृत्य के बीच से ही अन्तर्धान हो गये थे, जिससे गोपियाँ उनके विरह और उनके प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण विह्वल हो उठीं। फलस्वरूप कृष्ण को पुनः प्रकट होना पड़ा।

कष्ण-प्राप्तिर उपाय बह-विध हय ।

कृष्ण-प्राप्ति–तारतम्य बहुत आछय ॥82 ॥

कृष्ण-प्राप्तिर-कृष्ण के चरणकमल की शरण पा लेने के उपाय-उपाय; बहु-विध-नाना प्रकार के; हय-हैं; कृष्ण-प्राप्ति- भगवान् कृष्ण की कृपा पा लेने का; तारतम्य-तुलनाएँ; बहुत-नाना प्रकार की; आछय-हैं।

अनुवाद

“कृष्ण की कृपा प्राप्त करने के अनेक साधन तथा विधियाँ हैं। अब उन सारी दिव्य विधियों का अध्ययन सापेक्ष महत्त्व की दृष्टि से किया जायेगा।”

किन्तु याँर येइ रस, सेइ सर्वोत्तम ।

तट-स्थ हञा विचारिले, आछे तर-तम ॥83॥

किन्तु किन्तु; याँर-कुछ भक्तों का; येइ रस-प्रेम के आदान-प्रदान का जो भी रस हो; सेइ-वह; सर्व-उत्तम-सर्वोत्तम; तट-स्थ-तटस्थ; हञा–होकर; विचारिले-अगर विचार किया जाए; आछे-हैं; तर-तम-निम्न और ऊँचे स्तर के।

अनुवाद

“यह सच है कि भगवान् के साथ जिस भक्त का जैसा भी सम्बन्ध है, वही उसके लिए सर्वोत्तम है। किन्तु तो भी जब हम विभिन्न विधियों का अध्ययन तटस्थ होकर करते हैं, तो हम समझ सकते हैं कि प्रेम की उच्च तथा निम्न कोटियाँ होती हैं।”

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि यह श्लोक भगवत्प्रेम की कुछ विधियों की मनमानी खोज का समर्थन नहीं करता न ही ऐसी विधियों को सर्वोच्च माना जा सकता है। श्रील रूप गोस्वामी ने भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.101) में कहा है :

श्रुतिस्मृतिपुराणादिपञ्चरात्रविधिं विना ।

ऐकान्तिकी हरेभक्तिरुत्पातायैव कल्पते ॥

वे इस श्लोक में स्पष्ट कहते हैं कि मनुष्य को वैदिक साहित्य तथा अन्य गौण साहित्य को देखना चाहिए और वेदों के निष्कर्षों का अनुसरण करना चाहिए। मनोकल्पित भक्ति-प्रवृत्ति से दिव्य क्षेत्र में केवल गड़बड़ी ही मचती है। यदि गृहस्थ जीवन में अत्यधिक आसक्त व्यक्ति श्रीमद्भागवत या कृष्णभावनामृत को अपनी आजीविका का साधन बनाता है, तो उसका यह कार्य निश्चित रूप से अपराधपूर्ण है। न तो गुरु बनकर संसारी ग्राहकों को मन्त्र बेचने चाहिए, न ही अपनी आजीविका के लिए चेले बनाने चाहिए। ये सारे कार्य अपराधपूर्ण हैं। न ही किसी को संकीर्तन के लिए पेशेवर टोली बनाकर आजीविका चलानी चाहिए, न ही संसार में समाज, मैत्री तथा प्यार में आसक्त रहकर भक्ति करनी चाहिए। न ही तथाकथित सामाजिक शिष्टाचार पर निर्भर रहना चाहिए। यह सब मानसिक कल्पनाएँ हैं। इनमें से किसी एक की भी तुलना शुद्ध भक्ति से नहीं की जा सकती। अनन्य भक्ति या कृष्णभावनामृत की तुलना सांसारिक कार्यों से नहीं की जा सकती। ऐसी अनेक अवैध टोलियाँ हैं, जो अपने आपको श्री चैतन्य महाप्रभु से सम्बन्धित बताती हैं-यथा आउल, बाउल, कर्ताभजा, नेडा, दरवेश, सांइ, सखीभेकी, स्मार्त, जात गोसांई, अतिवाड़ी, चूड़ाधारी तथा गौरांग नागरी।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग हैं, जो इन टोलियों के बारे में जात-गोस्वामियों की राय को प्रामाणिक समझते हैं और इन मत को श्री रूप तथा सनातन आदि छः गोस्वामियों के मत के बराबर समझते हैं। यह एक प्रकार की धोखेबाजी ही है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अभक्त भी हैं, जो अवैध गीत रचते हैं, धन के लिए मन्दिरों की स्थापना करते हैं, वेतन पाने के लिए वे पुजारी बनकर अर्चाविग्रहों की पूजा करते हैं और जाति से ब्राह्मण होने को ही सब कुछ मान लेते हैं, किन्तु वे शुद्ध वैष्णव के महत्त्व को नहीं जानते। वास्तव में स्मार्त जाति के ब्राह्मण सात्वत पञ्चरात्र के नियमों के विरोधी होते हैं। फिर अनेक मायावादी हैं और वे भी हैं, जो इन्द्रिय-भोग में बुरी तरह लिप्त रहते हैं। इनमें से किसी की भी तुलना कृष्णभावनामृत के शुद्ध प्रचारक से नहीं की जा सकती। प्रत्येक कृष्णभावनाभावित व्यक्ति विभिन्न दिव्य उपकरणों का

उपयोग भगवान् की सेवा में करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है। ऐसा भक्त सारे भौतिक भोगों को त्यागकर अपने गुरु और श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में पूर्ण रूप से समर्पित हो जाता है। वह आदर्श ब्रह्मचारी, संयमी गृहस्थ, नियमित वानप्रस्थ या त्रिदण्डी संन्यासी हो सकता है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। ढोंगी अध्यात्मवादियों तथा शुद्ध भक्तों का कोई मुकाबला नहीं है, न ही इस बात पर तर्क किया जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति पूजा की अपनी विधि खोज सकता है।

इस श्लोक के तात्पर्य को समझाने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य आदि दिव्य रसों की तुलनात्मक स्थिति की व्याख्या की जाए। ये सारे रस दिव्य पद को प्राप्त हैं। शुद्ध भक्त इनमें से किसी एक को आधार बनाकर आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करते हैं। वास्तव में इनमें से किसी रस का आश्रय तब लिया जाना चाहिए, जब कोई भौतिक आसक्ति से पूर्णतया विमुक्त हो जाए। भौतिक आसक्ति से पूर्णतया मुक्त होने पर ही भक्त के हृदय में दिव्य रस के भाव का उदय होता है। यही स्वरूपसिद्धि अर्थात् भगवान् के साथ अपने सनातन सम्बन्ध की पूर्णता है। यह स्वरूपसिद्धि किसी एक दिव्य रस में अवस्थित हो सकती है। सारे रस अपने में पूर्ण हैं। किन्तु निष्पक्ष अध्ययन से पता चलेगा कि दास्य रस शान्त रस से उत्तम है, सख्य रस दास्य रस से उत्तम है, वात्सल्य रस सख्य रस से उत्तम है और इन सबसे बढ़कर है माधुर्य रस। किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से ये सब एक ही धरातल पर अवस्थित हैं, क्योंकि ये सभी एक ही केन्द्रबिन्दु, कृष्ण पर आधारित हैं।

इन रसों की तुलना देवी-देवताओं की पूजा से प्राप्त होने वाले भावों से नहीं की जा सकती। कृष्ण एक हैं, किन्तु देवता अनेक हैं। वे भौतिक हैं। कृष्ण-प्रेम की तुलना विभिन्न देवताओं के प्रति भौतिक प्रेम से नहीं की जा सकती। चूँकि मायावादी भौतिक स्तर पर होते हैं, अतएव वे शिव या दुर्गा की पूजा करने का परामर्श देते हैं और कहते हैं कि काली तथा कृष्ण की पूजा एक समान है। किन्तु आध्यात्मिक स्तर पर देवता-पूजा नहीं होती। आराध्य तो केवल कृष्ण ही हैं। अतएव यद्यपि शान्त रस या दास्य रस, वात्सल्य रस या माधुर्य रस के भक्तों में कोई अन्तर नहीं होता, तो भी इन विभिन्न दिव्य स्थितियों में प्रेम की गहनता का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यह कहा जा सकता है कि दास्य रस शान्त रस से बेहतर है, किन्तु भगवत्प्रेम दोनों में ही रहता है। इसी तरह सख्य रस, शान्त-रस तथा दास्य रस से उत्तम कहा जा सकता है। इसी प्रकार वात्सल्य रस सख्य रस से बेहतर है और जैसाकि पहले कहा जा चुका है, माधुर्य रस वात्सल्य रस से श्रेष्ठ है।

दक्ष आचार्य दिव्य स्तर पर भक्ति के बारे में सब कुछ जानते हैं। उन्होंने भगवत्प्रेम के विविध प्रकारों का विश्लेषण किया है। दुर्भाग्यवश कुछ अनुभवहीन अवैध संसारी लोग शुद्ध प्रेम की दिव्य स्थिति को समझे बिना इस दिव्य प्रक्रिया में दोष निकालने का प्रयास करते हैं। यह आध्यात्मिक रूप से अनुभवहीन व्यक्तियों की हठधर्मिता ही कहलायेगी। ऐसा दोषारोपण अभागे संसारी हठी व्यक्तियों का लक्षण ही है।

यथोत्तरमसौ स्वाद-विशेषोल्लास-मय्यपि ।

रतिर्वासनया स्वाद्वी भासते कापि कस्यचित् ॥ 84॥

यथा उत्तरम्-एक के बाद एक; असौ-वह; स्वाद-विशेष-विशेष स्वाद; उल्लास-सुखद; मयी-होने पर; अपि-यद्यपि; रतिः-प्रेम; वासनया-इच्छा से; स्वाद्वी-मधुर; भासते-लगता है; का अपि-कोई; कस्यचित्-उनमें से कोई।

अनुवाद

"एक के बाद एक रसों में अधिकाधिक प्रेम का अनुभव होता है। किन्तु सर्वोच्च स्वाद वाला प्रेम तो माधुर्य रस में ही प्रकट होता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृतसिन्धु (2.5.38) का है। यह आदिलीला (4.45) में भी आया है।

पूर्व-पूर्व-रसेर गुण—परे परे हय ।

दुइ-तिन गणने पञ्च पर्यन्त बाड़य ॥85 ॥

पूर्व-पूर्व–पिछले प्रत्येक का; रसेर-रस का; गुण-गुण; परे परे-बाद के प्रत्येक रस में; हय-हैं; दुइ-तिन-दो या तीन; गणने-गिनती में; पञ्च–पाँच; पर्यन्त–तक, पर्यन्त; बाड़य-बढ़ता है।

अनुवाद

"एक रस से लेकर बाद के रसों तक क्रमशः बढ़ोतरी होती जाती है। दूसरे, तीसरे और अधिक से अधिक पाँचवे रस तक प्रत्येक परवर्ती रस के गुण में पूर्ववर्ती रस के गुण प्रकट होते हैं।"

गुणाधिक्ये स्वादाधिक्य बाड़े प्रति-रसे ।

शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्येर गुण मधुरेते वैसे ॥86॥

गुण-आधिक्ये-दिव्य गुणों के बढ़ने से; स्वाद-आधिक्य-स्वाद की वृद्धि; बाड़े-बढ़ती है; प्रति-रसे-प्रत्येक रस में; शान्त-शान्त रस; दास्य–दास्य रस; सख्य–सख्य रस; वात्सल्येर–वात्सल्य रस के; गुण-गुण; मधुरेते-माधुर्य रस में; वैसे-प्रकट होते हैं।

अनुवाद

"गुणों में वृद्धि के साथ-साथ प्रत्येक रस के स्वाद में भी वृद्धि होती जाती है। अतएव शान्त रस, दास्य रस, सख्य रस तथा वात्सल्य रस के सारे गुण माधुर्य रस में प्रकट होते हैं।"

आकाशादिर गुण येन पर-पर भूते ।

दुइ-तिन क्रमे बाड़े पञ्च पृथिवीते ॥ 87॥

आकाश-आदिर-आकाश, वायु इत्यादि के; गुण-गुण; येन-जैसे; पर-पर-एक के बाद एक; भूते-भौतिक तत्त्वों में; दुइ-तिन-दो और तीन; क्रमे-क्रम से; बाड़े-बढ़ते हैं; पञ्च-सब पाँच; पृथिवीते-पृथ्वी में।

अनुवाद

पाँच भौतिक तत्त्वों-आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी-में गुणों की उत्तरोत्तर वृद्धि एक, दो, तथा तीन की क्रमिक विधि से होती है और अन्तिम अवस्था में पृथ्वी तत्त्व में पाँचों गुण पूर्णतया दृष्टिगोचर होते हैं।

परिपूर्ण-कृष्ण-प्राप्ति एइ 'प्रेमा' हैते ।

एइ प्रेमार वश कृष्ण—कहे भागवते ॥88॥

परिपूर्ण–परिपूर्ण; कृष्ण-प्राप्ति-भगवान् कृष्ण के चरणकमल की प्राप्ति; एइ-यह; प्रेमा–भगवत्प्रेम; हैते–से; एइ प्रेमार-उस भगवत्प्रेम के; वश–नियंत्रण में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कहे–कहा गया है; भागवते–श्रीमद्भागवत में।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की पूर्ण प्राप्ति भगवत्प्रेम से, विशेष रूप से माधुर्य रस द्वारा सम्भव हो पाती है। भगवान् कृष्ण इस स्तर के प्रेम के वश में हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत में ऐसा कहा गया है।"

तात्पर्य

माधुर्य रस के सर्वोच्च गुण की व्याख्या करने के लिए श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी भौतिक तत्त्वों-आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी-का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। आकाश में शब्द (ध्वनि) का गुण है। इसी तरह वायु में ध्वनि तथा स्पर्श के गुण हैं। अग्नि में तीन गुण होते हैं-शब्द, स्पर्श तथा रूप। जल में चार गुण हैं-शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस (स्वाद)। और पृथ्वी में पाँचों गुण होते हैं-शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध। अब यह देखा जा सकता है कि आकाश का गुण सबमें-वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी में हैं। पृथ्वी में हमें भौतिक प्रकृति के सारे गुण मिलते हैं। यही बात माधुर्य रस पर भी लागू होती है। माधुर्य रस में शान्त, दास्य, सख्य तथा वात्सल्य के अतिरिक्त स्वयं माधुर्य प्रेम के सारे गुण पाये जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि माधुर्य रस द्वारा भगवान् पूर्णतया तुष्ट होते हैं।

माधुर्य रस को श्रृंगार रस भी कहा जाता है। श्रीमद्भागवत का यह निष्कर्ष है कि भगवान् की प्रेममयी सेवा के संपूर्ण संयोग रूपी माधुर्य रस में भगवान् पूर्णतया भक्त के वश में होने के लिए राजी हो जाते हैं। माधुर्य रस की पराकाष्ठा राधारानी में देखी जाती है; अतएव हम देखते हैं कि राधा-कृष्ण की लीलाओं में कृष्ण सदैव श्रीमती राधारानी के वश में रहते हैं।

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।

दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥89॥

मयि–मेरी; भक्तिः–भक्ति; हि–अवश्य; भूतानाम् सभी जीवों का; अमृतत्वाय-अमर होने के लिए; कल्पते-के निमित्त है; दिष्ट्या-सौभाग्य से; यत्-क्या; आसीत्-है; मत्-स्नेहः-मेरे लिए प्रेम; भवतीनाम्-आप सबका; मत्-आपनः-मेरी कृपा पाने का साधन।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण ने गोपियों से कहा, 'मेरी कृपा प्राप्त करने का साधन मेरी प्रेममयी सेवा है और सौभाग्य से तुम सब उसी में लगी हुई हो। जो जीव मेरी सेवा करते हैं, वे वैकुण्ठ जाने और ज्ञान तथा आनन्द से पूर्ण शाश्वत जीवन प्राप्त करने के पात्र हैं।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक (10.82.44) में मानव जीवन की पूर्ति का सार दिया गया है। इस श्लोक में दो महत्त्वपूर्ण शब्द हैं- भक्ति तथा अमृतत्व। मानव जीवन का उद्देश्य शाश्वत जीवन का प्राकृतिक पद प्राप्त करना है। यह शाश्वत जीवन एकमात्र भक्ति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

कृष्णेर प्रतिज्ञा दृढ़ सर्व-काले आछे ।

ये यैछे भजे, कृष्ण तारे भजे तैछे ॥90 ॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की प्रतिज्ञा–प्रतिज्ञा; दृढ़-दृढ़; सर्व-काले-सभी समय; आछे-होती है; झे-कोई भी; यैछे-जैसे; भजे-भजता है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तारे-उसको; भजे–व्यवहार करते हैं; तैछे-हमेशा उसी प्रकार।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण ने सदा सदा के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा की है। जो कोई कृष्ण की जितनी सेवा करता है, वे उसे भगवद्भक्ति में उतनी ही सफलता प्रदान करते हैं।"

तात्पर्य

यह सोचना बहुत बड़ी भूल होगी कि कोई किसी भी रूप में या किसी भी प्रकार से कृष्ण की पूजा कर सकता है और फिर भी उनकी कृपा-रूपी फल प्राप्त कर सकता है। ऐसा निर्णय निपट भौतिकतावादी व्यक्तियों का है। ऐसे लोग सामान्यतया यह कहते हैं कि भगवान् की पूजा की आप अपनी नई विधि बना सकते हैं और किसी भी तरह की पूजा से भगवान् तक पहुँचा जा सकता है। यह सत्य है कि कर्म, ज्ञान, योग तथा तपस्या द्वारा विभिन्न फलों की प्राप्ति के लिए पृथक्-पृथक् विधियाँ हैं। इसलिए भौतिकवादी लोग कहते हैं कि इनमें से चाहे जिस विधि को अपना लिया जाए, भगवान् की कृपा तो प्राप्त होगी ही। उनका दावा है कि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कोई किस प्रकार की विधि अपनाता है। इस सम्बन्ध में एक सामान्य उदाहरण दिया जाता है : यदि कोई किसी निश्चित स्थान को जाना चाहता है, तो वहाँ जाने के अनेक मार्ग होते हैं और इनमें से किसी भी एक मार्ग से वहाँ तक पहुँचा जा सकता है। इसी तरह ये निपट भौतिकतावादी भी कहते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा प्राप्त करने की विभिन्न विधियाँ हैं। उनका कहना है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कल्पना दुर्गा, काली, शिवजी, गणेश, भगवान् राम, कृष्ण, निर्विशेष ब्रह्म या अन्य कुछ भी के रूप में की जा सकती है और जो जिस भी तरह और जिस भी रूप में चाहे, भगवन्नाम का कीर्तन किया जा सकता है। ऐसे

भौतिकतावादियों का दावा है कि चूँकि अन्ततोगत्वा सभी नाम तथा रूप एक हैं, अत: इससे फल एक-सा मिलता है। वे यह भी उदाहरण देते हैं कि जिस मनुष्य के कई नाम हों, वह किसी भी एक नाम से पुकारे जाने पर उत्तर देगा। इसलिए उनका कहना है कि हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि कोई काली, दुर्गा, शिव, गणेश या अन्य किसी के नाम का जप करता है, तो परिणाम एक-सा होगा।

ऐसे दावे मानसिक तर्कवितर्क करने वालों द्वारा किये जाते हैं और उनके लिए ये निस्सन्देह, सुहावने होते हैं, किन्तु जो वास्तविक ज्ञानी हैं, वे ऐसे निष्कर्षों को स्वीकार नहीं करते, क्योंकि ये निष्कर्ष शास्त्रों के विरुद्ध हैं। कम-से-कम प्रामाणिक आचार्य ऐसे निष्कर्ष को तो नहीं स्वीकार करेंगे। कृष्ण ने भगवद्गीता (9.25) में स्पष्ट कहा है :

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः ।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

"जो लोग देवताओं की पूजा करते हैं, वे देवताओं के बीच जन्म लेंगे, जो पितरों की पूजा करते हैं, वे पितरों के पास जायेंगे, जो भूत-प्रेत को पूजते हैं, वे भूत-प्रेतों के बीच उत्पन्न होंगे और जो मेरी पूजा करते हैं, वे मेरे साथ रहेंगे।"

भगवद्धाम में केवल भक्तों को प्रवेश करने दिया जाता है, देवताओं के पूजकों, कर्मियों, योगियों या अन्यों को नहीं। जो व्यक्ति स्वर्गीय ग्रहों में जाना चाहता है, वह अनेक देवताओं की पूजा करता है और भौतिक प्रकृति प्रसन्न होकर ऐसे भक्तों को वांछित पद प्रदान कर सकती है। भौतिक प्रकृति हर व्यक्ति को अपना स्वभाव प्रदान करती है, जिससे वह विविध देवताओं के प्रति श्रद्धा को बढ़ाता है। किन्तु भगवद्गीता (7.20) में कहा गया है कि देवताओं की पूजा उन लोगों के लिए है, जिनकी बुद्धि नष्ट हो चुकी है :

कामैस्तैस्तैर्हत ज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्य देवताः ।

तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥

"जिनकी बुद्धि भौतिक इच्छाओं से विकृत हो चुकी है, वे देवताओं की शरण में जाते हैं और वे अपने अपने स्वभावों के अनुसार पूजा की विधियों का पालन करते हैं।"

कोई भले ही स्वर्गलोक क्यों न चला जाए, किन्तु ऐसे वर के परिणाम सीमित होते हैं :

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।

देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥

“अल्प बुद्धि वाले लोग देवताओं की पूजा करते हैं और उनके फल सीमित तथा नश्वर होते हैं। जो लोग देवताओं को पूजते हैं, वे देवताओं के ग्रहों को जाते हैं, किन्तु मेरे भक्त अन्ततः मेरे परम धाम पहुँचते हैं।” (भगवद्गीता 7.23)

स्वर्गलोक या किसी अन्य भौतिक लोक पहुँचने का अर्थ यह नहीं है कि ज्ञान तथा आनन्द से युक्त शाश्वत जीवन की प्राप्ति हो गई है। भौतिक जगत् का अन्त होने पर ये सारी भौतिक उपलब्धियाँ भी समाप्त हो जायेंगी। भगवद्गीता (18.55) में कृष्ण के कहने के अनुसार जो लोग कृष्ण की प्रेमाभक्ति में रत होते हैं, वे ही वैकुण्ठ लोक में प्रवेश कर सकते हैं और भगवान् के पास जा सकते हैं, अन्य लोग नहीं :

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः ।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

“केवल भक्ति द्वारा मुझे, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को यथारूप में समझा जा सकता है। जब मनुष्य ऐसी भक्ति से मुझे पूरी तरह जान लेता है, तभी वह भगवधाम में प्रवेश कर सकता है।”

चूँकि निर्विशेषवादी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नहीं समझ सकते, अतएव उनके लिए भगवान् के आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश कर पाना और भगवान् के पास वापस जा पाना सम्भव नहीं है। वास्तव में, विभिन्न साधनों से भिन्न-भिन्न परिणाम प्राप्त होते हैं। ऐसा नहीं है कि सारी उपलब्धियाँ एक जैसी ही हों। जो लोग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में रुचि रखते हैं, उनकी तुलना भगवान् की अनन्य भक्ति में रुचि रखने वालों से नहीं की जा सकती। इसीलिए श्रीमद्भागवत (1.1.2) में कहा गया है ।

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां

वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।

श्रीमद्भागवते महामुनि कृते किं वा परैरीश्वरः

सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥

“भौतिक स्वार्थों से युक्त सारे धार्मिक कृत्यों का बहिष्कार करते हुए यह भागवत पुराण सर्वोच्च सत्य की स्थापना करता है, जो शुद्ध हृदय वाले भक्तों की समझ में आने वाला है। यह सर्वोच्च सत्य सभी जीवों के कल्याण के लिए वास्तविक

सत्य को मोह (भ्रम) से अलग करता है। ऐसा सत्य तीनों कष्टों का समूल नाश करता है। महामुनि श्री व्यासदेव द्वारा संकलित यह सुन्दर भागवत अपने आप में भगवत्-साक्षात्कार के लिए पर्याप्त है। ज्योंही कोई व्यक्ति ध्यानपूर्वक तथा विनीत भाव से भागवत के सन्देश को सुनता है, त्योंही वह भगवान् के प्रति अनुरक्त हो जाता है।"

मुक्ति की इच्छा रखने वाले निर्विशेष ब्रह्म में लीन होने का प्रयास करते हैं। इसी उद्देश्य से वे धार्मिक अनुष्ठान करते हैं, किन्तु श्रीमद्भागवत इसे धोखेबाजी मानता है। ऐसे लोग स्वप्न में भी भगवधाम वापस जाने की बात नहीं सोच सकते। धर्म अर्थ, काम तथा मोक्ष के उद्देश्य और भक्ति के उद्देश्य में बहुत अन्तर है।

देवी दुर्गा भौतिक तत्त्वों से बने इस भौतिक जगत् की अध्यक्षा हैं। सारे देवता विविध निर्देशक हैं, जो भौतिक कार्यकलापों के विभागों के संचालन में लगे हुए हैं और वे भी उसी भौतिक शक्ति के अधीन हैं। किन्तु कृष्ण की अन्तरंगा शक्तियों को इस विराट् जगत् की सृष्टि से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। आध्यात्मिक जगत् तथा सारे आध्यात्मिक कार्यकलाप अन्तरंगा शक्ति अर्थात् आध्यात्मिक शक्ति के निर्देशन में रहते हैं और ऐसे कार्यकलाप योगमाया अर्थात् आध्यात्मिक शक्ति द्वारा सम्पन्न होते हैं। यह योगमाया पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आध्यात्मिक अथवा अन्तरंगा शक्ति है। जो लोग आध्यात्मिक जगत् में उन्नति प्राप्त करने में रुचि रखते हैं और भगवान् की सेवा में लगे रहना चाहते हैं, उन्हें योगमाया के अधीन आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त होती है। जो लोग भौतिक उन्नति चाहते हैं, वे इन्द्रियतृप्ति का विकास करने के लिए धार्मिक अनुष्ठान तथा आर्थिक विकास में जुटे रहते हैं। अन्ततोगत्वा वे भगवान् के निर्विशेष पहलू में समा जाने का प्रयास करते हैं। ऐसे लोग सामान्यतया निर्विशेषवादी बन जाते हैं। वे शिवजी या देवी दुर्गा की पूजा में रुचि दिखाते हैं, किन्तु उनका फल शतप्रतिशत भौतिकतावादी होता है।

कभी-कभी गोपियों का उदाहरण सामने रखकर भक्त देवी कात्यायनी की पूजा करते हैं, किन्तु वे उन्हें योगमाया का अवतार समझते हैं। गोपियों ने कात्यायनी, योगमाया की पूजा कृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने के लिए की थी। इसके विपरीत सप्त-शती में उल्लेख है कि सुरथ नामक एक क्षत्रिय राजा तथा समाधि नामक एक धनी वैश्य ने दुर्गा के रूप में भौतिक प्रकृति की पूजा की थी, जिससे उन्हें भौतिक सिद्धि प्राप्त हो सके। जो कोई योगमाया तथा महामाया को एक समझते हुए दोनों की पूजा की खिचड़ी बनाने का प्रयास करता है, वह बुद्धिमानी का परिचय नहीं देता। सारी वस्तुएँ एक हैं, यह सोचना एक प्रकार की मूर्खता है, जो कम बुद्धि वाले लोग ही सोचते हैं। मूर्ख तथा धूर्त ही कहेंगे कि योगमाया की पूजा तथा महामाया की पूजा एक है। यह निष्कर्ष मनोकल्पना की उपज मात्र है और इसमें व्यावहारिकता नहीं है। भौतिक जगत् में कभी-कभी अत्यन्त व्यर्थ की वस्तुओं को भी ऊँची उपाधि दे दी जाती है। बंगाल में यह किसी अन्धे

बच्चे का नाम पद्मलोचन रख देना कहलाता है। अन्धे बालक को पद्मलोचन कहना मूर्खता होगी और ऐसा करने का कोई अर्थ नहीं होता।

आध्यात्मिक जगत् में भगवान् सदैव अपने नाम, यश, रूप, गुण तथा लीलाओं से अभिन्न होते हैं। किन्तु भौतिक जगत् में ऐसी अभिन्नता असम्भव है, जहाँ व्यक्ति का नाम स्वयं व्यक्ति से भिन्न होता है। भगवान् के अनेक पवित्र नाम हैं यथा परमात्मा, ब्रह्म तथा स्रष्टा; किन्तु जो व्यक्ति स्रष्टा के रूप में भगवान् की पूजा करता है, वह पाँच दिव्य रसों के अन्तर्गत भक्त तथा भगवान् के सम्बन्ध को नहीं समझ सकता, न ही वह कृष्ण तत्त्व को समझ सकता है। कोई भी व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को मात्र निर्विशेष ब्रह्म के रूप में जानकर उनके छ: ऐश्वर्यों को नहीं समझ सकता।

परम सत्य की निर्विशेष अनुभूति अवश्य ही दिव्य है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जिसने यह अनुभूति प्राप्त कर ली है, वह भगवान् के सच्चिदानन्द स्वरूप को समझ सकता है। इसी तरह प्रत्येक जीव के हृदय में परम सत्य के पूर्ण विस्तार के रूप में विराजमान परमात्मा की अनुभूति भी परम सत्य की अपूर्ण जानकारी है। यहाँ तक कि भगवान् नारायण का भक्त भी वास्तव में कृष्ण के दिव्य आकर्षक स्वरूप को नहीं समझ सकता। निस्सन्देह, भगवान् के दिव्य सर्वाकर्षक स्वरूप से अनुरक्त कृष्ण-भक्त नारायण को भी अधिक महत्त्व नहीं देता। जब कभी गोपियों ने कृष्ण को नारायण रूप में देखा, तो वे उनके प्रति अधिक आकृष्ट नहीं हुई। गोपियों ने कृष्ण को कभी भी रुक्मिणीरमण कहकर नहीं पुकारा। वृन्दावन में कृष्ण-भक्त उन्हें राधारमण, नन्दनन्दन तथा यशोदानन्दन के नाम से पुकारते हैं, किन्तु वसुदेवनन्दन या देवकीनन्दन के नाम से नहीं। यद्यपि भौतिक विचार से नारायण, रुक्मिणी-रमण तथा कृष्ण एक हैं, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में कृष्ण के स्थान पर रुक्मणी-रमण या नारायण का नाम प्रयोग नहीं किया जा सकता। यदि कोई मूर्खतावश ऐसा करता है, तो भगवान् के प्रति उसका रस दूषित हो जाता है और वह रसाभास कहलाता है। उन्नत भक्त, जिसे भगवान् के दिव्य स्वरूप की अनुभूति हो चुकी है, कभी भी एक नाम के स्थान पर दूसरे नाम का प्रयोग करके रसाभास की स्थिति उत्पन्न करने की भूल नहीं करता। कलियुग के प्रभाव के कारण दिखावे और उदारता के नाम पर रसाभास का ही बोलबाला है। शुद्ध भक्त ऐसे पागलपन की सराहना नहीं करते।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

मम वर्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥91॥

ये-वे; यथा-जैसे; माम्-मेरी; प्रपद्यन्ते–शरण में आते हैं; तान्-उनको; तथा एव–उसी अनुपात में; भजामि-अपनी कृपा प्रदान करता हूँ; अहम्-मैं; मम-मेरे; वर्म-मार्ग; अनुवर्तन्ते-का अनुकरण करते हैं; मनुष्याः -मनुष्य; पार्थ-हे अर्जुन; सर्वशः-सभी तरह।

अनुवाद

"[भगवद्गीता (4.11) में भगवान् कृष्ण के अनुसार :] 'जिस भाव से सभी लोग मेरी शरण में आते हैं, उसी के अनुरूप मैं उन्हें फल प्रदान करता हूँ। हे पृथा-पुत्र, हर व्यक्ति सभी प्रकार से मेरे पथ का अनुसरण करता है।"

एइ 'प्रेमे'र अनुरूप ना पारे भजिते ।

अतएव 'ऋणी' हय—कहे भागवते ॥92॥

एइ-इस; प्रेमेर-भगवत्-प्रेम के अनुरूप-अनुसार; ना-नहीं; पारे-दे सकते; भजिते-प्रतिदान देना; अतएव–अतएव; ऋणी-ऋणी; हय हो जाते हैं; कहे-कहा गया है; भागवते- श्रीमद्भागवत में।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत (10.32.22) में कहा गया है कि भगवान् कृष्ण माधुर्य रस में भक्ति का आदान-प्रदान समान अनुपात में नहीं कर पाते, अतएव वे ऐसे भक्तों के सदैव ऋणी रहते हैं।"

न पारयेऽहं निरवद्य-संयुजां

स्व-साधु-कृत्यं विबुधायुषापि वः ।

या माभजन्दुर्जय-गेह-शृङ्खलाः

संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥ 93 ॥

न–नहीं; पारये-सकता हूँ; अहम्-मैं; निरवद्य–बिना कपट के; संयुजाम्-मिलन; स्व-साधु-कृत्यम्-तुम्हारी अपनी निष्कपट गतिविधियाँ; विबुध-आयुषा अपि-देवता की जीवन अवधि में भी; वः-तुम; या–जिन्होंने; मा–मेरी; अभजन्–

पूजा की है; दुर्जय-कठिनता से जीते जाने वाला; गेह-गृहस्थ जीवन; शृङ्खलाः-जंजीर; संवृश्च्य-काटकर; तत्व ह; वः–तुम्हारी; प्रतियातु-पुरस्कार हो; साधुना–पवित्र गतिविधियों से।

अनुवाद

"जब गोपियाँ कृष्ण से रासलीला में उनकी अनुपस्थिति के कारण असन्तुष्ट होकर विह्वल थीं, तभी कृष्ण वापस आ गये और उन्होंने उनसे कहा, 'हे गोपियों, हमारा मिलन निस्सन्देह समस्त भौतिक कल्मष से मुक्त है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं तुम सबके ऋण को अनेक जन्मों में भी नहीं चुका सकुँगा, क्योंकि तुम लोगों ने मुझे ढूँढ़ने के लिए अपने पारिवारिक बन्धनों को तोड़ डाला है। अतएव मैं ऋण चुकाने में असमर्थ हूँ। फलतः तुम लोग इस सम्बन्ध में किये गये अपने नेक कार्यों से सन्तुष्ट हो जाओ।"

यद्यपि कृष्ण-सौन्दर्य—माधुर धुर्य ।

व्रज-देवीर सङ्गे ताँर बाड़ये माधुर्य ॥94॥

यद्यपि यद्यपि; कृष्ण-सौन्दर्य-भगवान् कृष्ण का सौंदर्य; माधुर्येर–मधुरता; धुर्य-सर्वोत्तम; व्रज-देवीर-गोपियों की; सङ्गे-संगति में; ताँर-उनकी; बाड़ये-बढ़ जाती है; माधुर्य–मधुरता।

अनुवाद

"यद्यपि कृष्ण का अप्रतिम सौन्दर्य भगवत्प्रेम का सर्वोच्च माधुर्य है, किन्तु जब वे गोपियों के संग में होते हैं, तब उनका माधुर्य असीम रूप से बढ़ जाता है। फलस्वरूप गोपियों के साथ कृष्ण द्वारा प्रेम का आदान-प्रदान भगवत्प्रेम की चरम पूर्णता है।"

तात्पर्य

भगवान् के माधुर्य रस में कृष्ण तथा उनके भक्तों में पूरी घनिष्ठता रहती है। अन्य रसों में भगवान् तथा भक्त इतनी पूर्णता से दिव्य आनन्द का भोग नहीं करते। अगले श्लोक में, जो श्रीमद्भागवत (10.33.6) से है, इस श्लोक की पूरी व्याख्या हो जाती है।

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकी-सुतः ।

मध्ये मणीनां हैमानां महा-मरकतो यथा ॥95॥

तत्र-वहाँ; अति-शुशुभे–अत्यन्त सुन्दर थे; ताभिः–उनसे; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; देवकी-सुतः-देवकी पुत्र; मध्ये-के मध्य में; मणीनाम्-अमूल्य मणियों का; हैमानाम्-सोने में जड़ा; महा-मरकतः-मरकट नामक मणि; यथा-जैसे।

अनुवाद

"यद्यपि देवकी-पुत्र भगवान् समस्त सौन्दर्य के आगार हैं, किन्तु जब वे गोपियों के बीच होते हैं, तब वे और भी अधिक सुन्दर लगते हैं, क्योंकि वे सोने तथा अन्य मणियों से घिरे हुए मरकत मणि जैसे लगते हैं।"

प्रभु कहे,—एइ 'साध्यावधि' सुनिश्चय ।

कृपा करि' कह, यदि आगे किछु हय ॥ 96 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; एइ-यह; साध्य-अवधि–पूर्णता की चरमसीमा; सु-निश्चय–निश्चित रूप से; कृपा करि'–मुझ पर कृपा करके; कह-कहो; यदि-यदि; आगे-आगे; किछु हय-कुछ है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "यह निश्चय ही पूर्णता की सीमा है, किन्तु आप मुझ पर कृपा करें और यदि कुछ और हो तो उसे कहें।"

राय कहे,—इहार आगे पुछे हेन जने ।

एत-दिन नाहि जानि, आछये भुवने ॥ 97॥

राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; इहार आगे-इस बिन्दु से आगे; पुछे-पूछता है; हेन-ऐसा; जने–एक व्यक्ति; एत-दिन-आज तक; नाहि जानि–मैं नहीं जानता था; आछये-है; भुवने—इस भौतिक जगत् में।

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "आज तक मैं इस भौतिक संसार में ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानता था, जो भक्ति की इस पूर्ण अवस्था के आगे क्या है, इसके बारे में पूछ सके।"

इँहार मध्ये राधार प्रेम–'साध्य-शिरोमणि' ।

याँहार महिमा सर्व-शास्त्रेते वाखानि ॥98॥

इँहार मध्ये-गोपियों के प्रेम व्यवहार में; राधार प्रेम–श्रीमती राधारानी का भगवत्प्रेम; साध्य-शिरोमणि-सर्वोच्च पूर्णता; याँहार–जिसकी; महिमा-महिमा; सर्व-शास्त्रेते-प्रत्येक शास्त्र में; वाखानि-वर्णन।

अनुवाद

रामानन्द राय कहते गये, "गोपियों के प्रेम व्यापार में से कृष्ण के प्रति श्रीमती राधारानी का प्रेम सर्वोपरि है। निस्सन्देह, श्रीमती राधारानी की महिमा का बखान सभी प्रामाणिक शास्त्रों में उच्च स्तर पर हुआ है।"

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।

सर्व-गोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्त-वल्लभा ॥99॥

यथा-जैसे; राधा-श्रीमती राधारानी; प्रिया-अत्यन्त प्रिय; विष्णोः–भगवान् कृष्ण को; तस्याः-उनके; कुण्डम्-स्नान की जगह (राधाकुण्ड); प्रियम्-अत्यन्त प्रिय; तथा-वैसे ही; सर्व-गोपीषु-सभी गोपियों में; सा-वह (राधारानी); एव–निश्चित रूप से; एका-अकेली; विष्णोः- भगवान् कृष्ण को; अत्यन्त-वल्लभा-अत्यन्त प्रिय है।

अनुवाद

"जिस तरह श्रीमती राधारानी श्रीकृष्ण को परम प्रिय हैं, उसी तरह उनका स्नान-स्थान राधाकुण्ड भी उन्हें प्रिय है। सारी गोपियों में श्रीमती राधारानी सर्वोच्च हैं और कृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक पद्मपुराण से लिया गया है और श्रील रूप गोस्वामी कृत लघु भागवतामृत (2.1.45) में समाविष्ट है। यह आदिलीला, चतुर्थ अध्याय, श्लोक 215 एवं मध्यलीला, अष्टादश अध्याय, श्लोक 8 में भी दृष्टिगत होता है।

अनयाराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः ।

यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥100॥

अनया-उसके द्वारा; आराधितः-पूजित; नूनम्-निस्सन्देह; भगवान् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; हरिः-कृष्ण; ईश्वरः-भगवान्; यत् जिससे; नः-हमें; विहाय-त्यागकर; गोविन्दः- भगवान् श्रीकृष्ण; प्रीतः–सन्तुष्ट; याम्-जिसको; अनयत्-लाये; रहः-एकान्त स्थान।

अनुवाद

"[गोपियों ने परस्पर बातें करते हुए कहा :]'हे सखियों, जिस गोपी को कृष्ण अपने साथ एकान्त स्थल में ले गये हैं, उसने भगवान् की पूजा दूसरे सब की अपेक्षा अधिक की होगी।"

तात्पर्य

राधा नाम इस श्लोक के अनयाराधितः शब्द से (भागवत 10.30.28) बना है, जिसका अर्थ है, "उनके द्वारा भगवान् की पूजा की जाती है। कभी-कभी श्रीमद्भागवत के आलोचकों को उस ग्रन्थ में राधारानी का पवित्र नाम नहीं मिलता, किन्तु उस रहस्य का खुलासा यहाँ आराधितः शब्द से होता है, जिससे राधा नाम आया है। निस्सन्देह राधारानी का नाम प्रत्यक्ष रूप से अन्य पुराणों में मिलता है। इस गोपी द्वारा की गई कृष्ण की पूजा सर्वोपरि है, अतएव उनका नाम राधा अर्थात् "सर्वोच्च आराधिका" है।

प्रभु कहे—आगे कह, शुनिते पाइ सुखे ।

अपूर्वामृत-नदी वहे तोमार मुखे ॥ 101॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; आगे-आगे; कह-कृपया कहो; शुनिते-सुनने से; पाइ-मैं पाता हूँ; सुखे-सुख; अपूर्व-अमृत-अपूर्व अमृत; नदी-नदी; वहे-बहती है; तोमार मुखे-आपके मुख से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "बोलते जाइये। मुझे आपकी बातें सुनकर परम सुख हो रहा है, क्योंकि आपके मुख से अद्वितीय अमृत की नदी बह रही है।"

चुरि करि' राधाके निल गोपी-गणेर डरे ।

अन्यापेक्षा हैले प्रेमेर गाढ़ता ना स्फुरे ॥ 102॥

चुरि करि'–चुराकर; राधाके–श्रीमती राधारानी को; निल-ले गये; गोपी-गणेर-गोपियों के; डरे-डर से; अन्य-अपेक्षा-अन्यों पर निर्भर; हैले–यदि है; प्रेमेर-प्रेम की; गाढ़ता-गहराई; ना-नहीं; स्फुरे-प्रकट होती है।

अनुवाद

"श्रीकृष्ण ने रासनृत्य के समय अन्य गोपियों की उपस्थिति के कारण श्रीमती राधारानी से प्रेम का आदान-प्रदान नहीं किया। अन्यों पर आश्रित होने के कारण राधा तथा कृष्ण के प्रेम की प्रगाढ़ता प्रकट नहीं हो पाई। इसीलिए वे उन्हें चुरा ले गये।"

तात्पर्य

अन्य गोपियों के भय से भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानी को एकान्त स्थान में ले गये। इस सम्बन्ध में कंसारिरपि (इस अध्याय का श्लोक 106) श्लोक जयदेव गोस्वामी के गति गोविन्द से उधृत किया जायेगा।

राधा लागि' गोपीरे यदि साक्षात्करे त्याग ।

तबे जानि,—राधाय कृष्णेर गाढ़-अनुराग ॥ 103 ॥

राधा लागि'–श्रीमती राधारानी के लिए: गोपीरे-गोपियाँ; यदि-यदि; साक्षात्-साक्षात्; करे-करते हैं; त्याग-त्याग; तबे-तब; जानि-हम समझ सकते हैं; राधाय-श्रीमती राधारानी में; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; गाढ़-गाढ़; अनुराग-प्रेम।

अनुवाद

"यदि भगवान् कृष्ण ने राधारानी के लिए अन्य गोपियों का साथ त्याग दिया, तो हम यह समझ सकते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण में उनके लिए प्रगाढ़ स्नेह है।"

राय कहे,—तबे शुन प्रेमेर महिमा ।

त्रि-जगते राधा-प्रेमेर नाहिक उपमा ॥ 104॥

राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; तबे-तब; शुन-सुनो; प्रेमेर-उस प्रेम की; महिमा-महिमा; त्रि-जगते–तीनों जगतों में; राधा-प्रेमेर–श्रीमती राधारानी के प्रेमाचार की; नाहिक-नहीं है; उपमा-उपमा।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "अतएव आप मुझसे श्रीमती राधारानी के प्रेम की महिमा सुनें। तीनों लोकों में उसकी तुलना के योग्य अन्य कोई नहीं है।"

गोपी-गणेर रास-नृत्य-मण्डली छाड़िया ।

राधा चाहि' वने फिरे विलाप करिया ॥ 105॥

गोपी-गणेर-गोपियों की; रास-नृत्य-रास-नृत्य की; मण्डली–मण्डली; छाड़िया-छोड़कर; राधा-श्रीमती राधारानी; चाहि'–चाहते हुए; वने-वन में; फिरे-घूमती है; विलाप–विलाप; करिया-करते हुए।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी ने जब यह देखा कि उनके साथ अन्य गोपियों जैसा व्यवहार हो रहा है, तो उन्होंने चाल चली और रासनृत्य के मण्डल (वृत्त) को छोड़ दिया। श्रीमती राधारानी को न पाकर कृष्ण दुःखी हुए और विलाप करते हुए उनकी खोज में सारे वन में घूमने लगे।"

कंसारिरपि संसार-वासना-बद्ध-शृङ्खलाम् ।

राधामाधाय हृदये तत्याज व्रज-सुन्दरीः ॥106॥

कंस-अरिः-कंस के शत्रु, कृष्ण; अपि-भी; संसार-वासना-रासलीला का आनन्द लेने के इच्छुक; बद्ध-शृङ्खलाम्-ऐसे कार्यकलापों की ओर पूर्णरूपेण आकृष्ट होकर; राधाम्-श्रीमती राधारानी को; आधाय-लेकर; हृदये हृदय में; तत्याज-एक ओर चले गये; व्रज-सुन्दरीः-अन्य सुन्दर गोपियों को।

अनुवाद

"कंस के शत्रु भगवान् कृष्ण ने श्रीमती राधारानी को अपने हृदय में बसा लिया, क्योंकि वे उनके साथ नृत्य करना चाहते थे। इस तरह उन्होंने रासनृत्य के क्षेत्र को तथा व्रज की अन्य सुन्दरियों का साथ छोड़ दिया।"

अनवाद

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिकाम्

अनङ्ग-बाण-व्रण-खिन्न-मानसः ।

कृतानुतापः स कलिन्द-नन्दिनी

तटान्त-कुञ्जे विषसाद माधवः ॥ 107॥

इतः ततः-इधर उधर; ताम्-उनको; अनुसृत्य-ढूँढकर; राधिकाम्-श्रीमती राधारानी; अनङ्ग-कामदेव के; बाण-व्रण-बाण के घाव के; खिन्न-मानसः–जिसका हृदय घायल हो गया हो; कृत-अनुतापः-दुर्व्यवहार पर पछताते हुए; सः-वे (भगवान् कृष्ण); कलिन्द-नन्दिनी-यमुना नदी के तट-अन्त–तट पर; कुञ्जे-कुंजों में; विषसाद-खेद करने लगे; माधवः-भगवान् कृष्ण।

अनुवाद

"कामदेव के बाणों से विद्ध होकर तथा राधारानी के साथ किये गये दुर्व्यवहार से दुःखी होकर माधव, भगवान् कृष्ण, श्रीमती राधारानी को यमुना नदी के किनारे-किनारे खोजने लगे। किन्तु जब वे उन्हें नहीं खोज सके, तो वे वृन्दावन के कुंजों में प्रवेश करके विलाप करने लगे।"

तात्पर्य

उपर्युक्त दोनों श्लोक जयदेव गोस्वामी कृत गीत गोविन्द (3.1-2) से लिये गये हैं।

एइ दुइ-श्लोकेर अर्थ विचारिले जानि ।

विचारिते उठे येन अमतेर खनि ॥ 108॥

एइ-ये; दुई–दोनों; श्लोकेर-श्लोकों का; अर्थ-अर्थ; विचारिले-विचारने पर; जानि-मैं समझ सकता हूँ; विचारिते-विचार करते समय; उठे-उठता है; येन–की तरह; अमृतेर-अमृत की; खनि–खान।

अनुवाद

"केवल इन्हीं दो श्लोकों पर विचार करने से समझा जा सकता है कि ऐसे प्रेम-व्यापारों में कितना अमृत है। यह तो वैसा ही है जैसे अमृत की खान को खुला छोड़ दिया जाए।"

शत-कोटि गोपी-सङ्गे रास-विलास ।

तार मध्ये एक-मूर्त्ये रहे राधा-पाश ॥ 109॥

शत-कोटि-लाखों; गोपी-सङ्गे-गोपियों के साथ; रास-विलास-रासलीला में नाचते हुए; तार मध्ये-उनके बीच; एक-मूर्त्ये-उनके दिव्य रूपों में से एक; रहे-रहते हैं; राधा-पाश-श्रीमती राधारानी के पास।

अनुवाद

"यद्यपि रासनृत्य के समय श्रीकृष्ण लाखों गोपियों के बीच में थे, किन्तु तो भी उन्होंने अपने आपको अनेकों में से एक दिव्य रूप में श्रीमती राधारानी की बगल में रखा।"

साधारण-प्रेमे देखि सर्वत्र 'समता'।

राधार कुटिल-प्रेमे हइल 'वामता' ॥110॥

साधारण-प्रेमे-भगवान् के साधारण प्रेम में; देखि-हम देखते हैं; सर्वत्र-हर स्थान पर; समता-समता; राधार–श्रीमती राधारानी के; कुटिल-प्रेमे-ईश्वर के कुटिल प्रेम में; हइल-था; वामता–विरोधी तत्त्व।

अनुवाद

"यद्यपि भगवान् कृष्ण अपने सामान्य व्यवहार में सबके प्रति समभाव रखते हैं, किन्तु श्रीमती राधारानी के कुटिल प्रेमभाव के कारण विरोधी तत्त्व उपस्थित हो गये।"

अहेरिव गतिः प्रेम्णः स्वभाव-कुटिला भवेत्।

अतो हेतोरहेतोश्च यूनोर्मान उदञ्चति ॥ 111॥

अहेः-साँप की; इव-तरह; गतिः-चाल; प्रेम्णः-प्रेमाचार की; स्वभाव-स्वभाव से; कुटिला-कुटिल; भवेत्-होती है; अतः-अतः; हेतोः-किस कारण से; अहेतोः-कारण की अनुपरिस्थिति से; च-और; यूनोः–युवा दम्पति का; मानः-क्रोध; उदञ्चति-प्रकट हो जाता है।

अनुवाद

"तरुण युवक तथा तरुण युवती के मध्य प्रेम की प्रगति साँप की गति जैसी होती है। इसके फलस्वरूप तरुण युगलों में दो प्रकार का क्रोध उत्पन्न होता है-एक तो हेतु सहित क्रोध और दूसरे हेतु रहित क्रोध।"

तात्पर्य

रासनृत्य के समय प्रत्येक दो गोपियों के बीच कृष्ण का एक रूप था। किन्तु श्रीमती राधारानी के बगल में केवल एक कृष्ण थे। इतना होने पर भी श्रीमती राधारानी कृष्ण से असहमति प्रकट कर रही थी। यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत उज्वल नीलमणि (शृंगार-भेद-कथन 102) से लिया गया है।

क्रोध करि' रास छाड़ि' गेला मान करि' ।

ताँरे ना देखिया व्याकुल हैल श्री-हरि ॥112॥

क्रोध करि'-क्रोध करके; रास छाड़ि'–रास-नृत्य छोड़कर; गेला–चली गई; मान करि'–बुरा मानकर; ताँरे–श्रीमती राधारानी को; ना देखिया-न देखकर; व्याकुल-अत्यन्त व्याकुल; हैल-हो गये; श्री-हरि-भगवान् कृष्ण।

अनुवाद

"जब श्रीमती राधारानी बुरा मान गईं और क्रुद्ध होकर रासनृत्य से चली गईं, तो उन्हें न देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त व्याकुल हो उठे।"

सम्यक्सार वासना कृष्णेर रास-लीला ।

रास-लीला-वासनाते राधिका शृङ्खला ॥113॥

सम्यक्-सार–पूर्ण और आवश्यक; वासना-इच्छा; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; रास-लीला-रासलीला में नृत्य; रास-लीला-वासनाते की इच्छा से; राधिका-श्रीमती राधारानी; शृङ्खला-बांधने वाली कड़ी।

अनुवाद

"रासलीला मण्डल में भगवान् कृष्ण की इच्छा सम्यक् रूप से पूर्ण है, किन्तु उस इच्छा को बाँधने वाली कड़ी श्रीमती राधारानी हैं।"

ताँहा विनु रास-लीला नाहि भाय चित्ते ।

मण्डली छाड़िया गेला राधा अन्वेषिते ॥ 114॥

ताँहा विनु-उनके (राधारानी के) बिना; रास-लीला-रासलीला; नाहि-नहीं; भाय–शोभा देती; चित्ते-हृदय में; मण्डली छाड़िया-रासलीला का वृत्त छोड़कर; गेला-चले गये; राधा-श्रीमती राधारानी की; अन्वेषिते-खोज में।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के बिना कृष्ण के हृदय में रासनृत्य में आनन्द नहीं रहता। अतएव उन्होंने भी रासनृत्य मण्डल को छोड़ दिया और वे राधा की खोज में निकल गये।"

इतस्ततः भ्रमि' काहाँ राधा ना पाञा ।

विषाद करेन काम-बाणे खिन्न हञा ॥115॥

इतः-ततः-इधर उधर, भ्रमि'-घूमकर; काहाँ-कहीं; राधा-श्रीमती राधारानी को; ना-न; पाञा-पाकर; विषाद-दुःख; करेन-करते हैं; काम-बाणे-कामदेव के बाण से; खिन्न-घायल; हञा–होकर।

अनुवाद

"जब कृष्ण श्रीमती राधारानी की खोज में निकल गये, तो वे इधर-उधर घूमते रहे। किन्तु उन्हें न पाकर वे कामदेव के बाण से खिन्न होकर विलाप करने लगे।"

शत-कोटि-गोपीते नहे काम-निर्वापण ।

ताहातेइ अनुमानि श्री-राधिकार गुण ॥ 116॥

शत-कोटि-लाखों; गोपीते-गोपियों के बीच; नहे-नहीं हुई; काम-निर्वापण-काम-वासना की तुष्टि; ताहातेइ-उसी से; अनुमानि-हम अनुमान लगा सकते हैं; श्री-राधिकार गुण–श्रीमती राधारानी के दिव्य गुणों का।

अनुवाद

"चूँकि कृष्ण की काम-वासना लाखों गोपियों के बीच में भी पूरी नहीं हो सकी और इस प्रकार वे श्रीमती राधारानी की खोज कर रहे थे, अतएव हम अनुमान लगा सकते हैं कि राधारानी में कितने दिव्य गुण थे।"

प्रभु कहे—ये लागि' आइलाम तोमा-स्थाने ।

सेइ सब तत्त्व-वस्तु हैल मोर ज्ञाने ॥117॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; ये लागि'-इसके कारण; आइलाम–मैं आया हूँ; तोमा-स्थाने-आपके स्थान पर; सेइ सब-वे सब; तत्त्व-वस्तु–सत्य की वस्तुएँ; हैल–थीं; मोर-मेरी; ज्ञाने-समझ में।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा, "मैं जिसके लिए आपके निवासस्थान पर आया हूँ, वह तत्त्व-वस्तु अब मेरी समझ में आ चुकी है।"

एबे से जानिलुँ साध्य-साधन-निर्णय ।

आगे आर आछे किछु, शुनिते मन हय ॥118॥

एबे-अब; से-वह; जानिलुँ-मैं समझ गया हूँ; साध्य–परम उद्देश्य; साधन-और प्रक्रिया का; निर्णय-रहस्य; आगे-आगे; आर-और; आछे-है; किछु-कुछ; शुनिते-सुनने के लिए; मन–मन; हय है।

अनुवाद

"अब जाकर मैं जीवन के दिव्य लक्ष्य को और उसे प्राप्त करने की विधि को समझ पाया हूँ। इतने पर भी मैं सोचता हूँ कि अभी और कुछ बाकी है, जिसे पाने के लिए मेरा मन इच्छा रखता है।"

'कृष्णेर स्वरूप' कह 'राधार स्वरूप' ।

'रस' कोन्तत्त्व, 'प्रेम'—कोन्तत्त्व-रूप ॥ 119॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; स्वरूप-दिव्य स्वरूप; कह-कहो; राधार–श्रीमती राधारानी का; स्वरूप-दिव्य स्वरूप; रस-रस; कोन्-क्या; तत्त्व-वह सत्य; प्रेम-भगवत्प्रेम; कोन्-क्या; तत्त्व-रूप-वास्तविक रूप।

अनुवाद

"कृपया कृष्ण तथा श्रीमती राधारानी के दिव्य स्वरूप का वर्णन करें। इसके साथ दिव्य रस तथा भगवत्प्रेम का दिव्य स्वरूप भी बतलायें।"

कृपा करि' एइ तत्त्व कह त' आमारे ।

तोमा-विना केह इहा निरूपिते नारे ॥ 120॥

कृपा करि'-अपनी दया दिखाकर; एइ तत्त्व-यह सब सत्य; कह-कहो; त'-निश्चित रूप से; आमारे-मुझे; तोमा-विना-आपके सिवाय; केह-कोई; इहा-यह; निरूपिते-जानने के लिए; नारे-समर्थ नहीं।

अनुवाद

"कृपा करके मुझे इन सारे तत्त्वों को समझा दें। आपके अतिरिक्त इनको कोई और नहीं समझा सकता।"

राय कहे,—इहा आमि किछुइ ना जानि ।

तुमि येइ कहाओ, सेइ कहि आमि वाणी ॥121॥

राय कहे-रामानन्द राय ने कहा; इहा-यह; आमि-मैं; किछुइ-कुछ; ना-नहीं; जानि-जानता; तुमि-आप; येइ-जो कुछ; कहाओ-मुझ से कहलवाते हो; सेइ-वही; कहि-कहता हूँ; आमि-मैं; वाणी–वाणी।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मैं इसके विषय में कुछ भी नहीं जानता। मैं तो वही शब्द कह पाता हूँ, जिसे आप मुझसे बुलवाते हैं।"

तोमार शिक्षाय पड़ि येन शुक-पाठ ।

साक्षातीश्वर तुमि, के बुझे तोमार नाट ॥122॥

तोमार शिक्षाय-आपके आदेश से; पड़ि-मैं पढ़ता हूँ; येन-की भाँति; शुक-पाठ-तोते के पाठ; साक्षात्-साक्षात्; ईश्वर–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; तुमि-आपको; के-कौन; बुझे-समझ सकता है; तोमार-आपके; नाट-नाटकीय प्रदर्शन।

अनुवाद

"मैं तो आपके द्वारा दी गई शिक्षाओं को तोते की तरह केवल दोहराता हूँ। आप स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। आपके नाटकीय कृत्यों को भला कौन समझ सकता है?"

हृदये प्रेरण कर, जिह्वाय कहाओ वाणी ।

कि कहिये भाल-मन्द, किछुइ ना जानि ॥123॥

हृदये-हृदय में; प्रेरण-प्रेरणा; कर-आप देते हैं; जिह्वाय-जिह्वा पर; कहाओ-आप कहलवाते हो; वाणी-वचन; कि-जो कुछ; कहिये-मैं बोलता हूँ; भाल-मन्द-भला बुरा; किछुइ-कुछ; ना-नहीं; जानि-मैं जानता हूँ।

अनुवाद

"आप मेरे हृदय के भीतर से मुझे प्रेरित करते हैं और जीभ से कहलवाते हैं। मैं यह नहीं जानता कि मैं अच्छा बोल रहा हूँ या बुरा।"

प्रभु कहे,—मायावादी आमि त' सन्न्यासी ।

भक्ति-तत्त्व नाहि जानि, मायावादे भासि ॥124॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; मायावादी-मायावादी पुरुष; आमि-मैं; त'–निश्चित रूप से; सन्न्यासी-संन्यासी; भक्ति-तत्त्व-दिव्य प्रेमभक्ति का तत्त्व; नाहि-नहीं; जानि-मैं जानता; मायावादे-निर्विशेषवाद के दर्शन में; भासि-मैं तैरता हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं तो मायावादी संन्यासी हूँ और मैं यह भी नहीं जानता कि भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति है क्या। मैं तो केवल मायावादी दर्शन के सागर में तैरता रहता हूँ।"

सार्वभौम-सङ्गे मोर मन निर्मल हइल ।

'कृष्ण-भक्ति-तत्त्व कह,' ताँहारे पुछिल ॥ 125॥

सार्वभौम-सङ्गे-सार्वभौम भट्टाचार्य की संगति में; मोर-मेरा; मन–मन; निर्मल-निर्मल; हइल-हो गया है; कृष्ण-भक्ति-तत्त्व-कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति का रहस्य; कह-कृपया कहो; ताँहारे-उसे; पुछिल-मैं पूछता हूँ।

अनुवाद

"सार्वभौम भट्टाचार्य की संगति करने से मेरा मन निर्मल हुआ है। इसीलिए मैंने उनसे कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति के तत्त्व के विषय में पूछताछ की।"

तेंहो कहे—आमि नाहि जानि कृष्ण-कथा ।

सबे रामानन्द जाने, तेंहो नाहि एथा ॥ 126 ॥

तेंहो कहे-उन्होंने उत्तर दिया; आमि-मैं; नाहि-नहीं; जानि-जानता; कृष्ण-कथा-कृष्ण कथा; सबे-सभी; रामानन्द-रामानन्द राय; जाने-जानता है; तेंहो-वह; नाहि-नहीं; एथा-यहाँ।

अनुवाद

"सार्वभौम भट्टाचार्य ने मुझसे कहा, 'वास्तव में मैं भगवान् कृष्ण की कथा के विषय में नहीं जानता। रामानन्द राय ही सब कुछ जानता है, किन्तु वह यहाँ उपस्थित नहीं है।"

तोमार ठाञि आइलाङ तोमार महिमा शुनिया ।

तुमि मोरे स्तुति कर 'सन्न्यासी' जानिया ॥ 127॥

तोमार ठाञि-आपके पास; आइलाङ–मैं आया हूँ; तोमार-आपकी; महिमा-महिमा; शुनिया-सुनकर; तुमि-आप; मोरे-मेरी; स्तुति–प्रशंसा; कर-करते हो; सन्न्यासी-संन्यासी; जानिया-जानकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "मैं आपकी महिमा सुनकर आपके यहाँ आया हूँ। किन्तु आप मुझे संन्यासी जानकर मेरी प्रशंसा कर रहे हैं।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि संसारी व्यक्ति को भौतिक ऐश्वर्य से धनी होते हुए भी यह जानना चाहिए कि उच्च भक्तों का दिव्य ऐश्वर्य संसारी व्यक्ति के भौतिक ऐश्वर्य से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। भौतिक ऐश्वर्य से युक्त संसारी व्यक्ति को एक दिव्य भक्त के समक्ष गर्वित नहीं होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अपनी भौतिक मर्यादा, ऐश्वर्य, शिक्षा और सौन्दर्य के बल पर किसी दिव्य भक्त के पास जाता है और भगवान् के उन्नत भक्त का आदर नहीं करता, तो वैष्णव भक्त ऐसे भौतिकता से गर्वित व्यक्ति का सम्मान तो कर सकता है, किन्तु हो सकता है कि वह उसे दिव्य ज्ञान न दे। निस्सन्देह, वह भक्त उसे अब्राह्मण या शूद्र के रूप में देखता है। ऐसा गर्वित व्यक्ति कृष्ण-तत्त्व को नहीं समझ सकता। घमंडी व्यक्ति दिव्य जीवन में धोखा खाता है और मनुष्य का शरीर पाकर भी नरक में जा गिरेगा। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने व्यक्तिगत आचरण से सिखा रहे हैं कि एक वैष्णव के समक्ष किस प्रकार विनम्र और

विनीत होना चाहिए, भले ही वह उच्च पद को प्राप्त क्यों न हो। जगत् गुरु एवं आचार्य स्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु की यही शिक्षा है।

किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय ।

येइ कृष्ण-तत्त्व-वेत्ता, सेइ 'गुरु' हय ॥128॥

किबा-क्या; विप्र-एक ब्राह्मण; किबा-क्या; न्यासी-संन्यासी; शूद्र-शूद्र; केने-क्यों; नय-नहीं; येइ-जो कोई भी; कृष्ण-तत्त्व-वेत्ता-कृष्ण तत्त्व को जानने वाला हो; सेइ-वही; गुरु-आध्यात्मिक गुरु; हय होता है।

अनुवाद

"कोई चाहे ब्राह्मण हो अथवा संन्यासी या शूद्र हो–यदि वह कृष्ण-तत्त्व जानता है, तो गुरु बन सकता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक कृष्णभावनामृत आन्दोलन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में बतलाया है कि किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि ब्राह्मण-कुल में जन्म लेकर तथा संन्यासी के उच्च पद पर रहते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए शूद्र जाति में जन्मे रामानन्द राय से उपदेश ग्रहण करना अनुचित था। इस बात को स्पष्ट करने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को बताया कि कृष्णभावना का ज्ञान जाति से अधिक महत्त्वपूर्ण है। वर्णाश्रम-धर्म प्रणाली में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों के विविध कर्तव्य होते हैं। वास्तव में ब्राह्मण को अन्य सभी वर्गों या जातियों का गुरु माना जाता है; किन्तु जहाँ तक कृष्णभावनामृत का सम्बन्ध है, कोई भी व्यक्ति गुरु बनने के लिए सक्षम होता है, क्योंकि कृष्णभावनामृत का ज्ञान आत्मा के स्तर पर होता है। कृष्णभावनामृत का प्रसार करने के लिए केवल आत्म-ज्ञान से अवगत होने की आवश्यकता होती है। फिर चाहे वह ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य हो या शूद्र अथवा संन्यासी या गृहस्थ, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यदि वह इस विज्ञान को समझता है, तो वह गुरु बन सकता है।

हरिभक्ति-विलास में कहा गया है कि यदि उपयुक्त ब्राह्मण उपलब्ध हो, तो अब्राह्मण से दीक्षा नहीं लेनी चाहिए। यह उपदेश उनके लिए है, जो सांसारिक सामाजिक व्यवस्था पर अत्यधिक आश्रित रहते हैं और सांसारिक जीवन बिताना चाहते हैं। यदि कोई कृष्णभावनामृत के तत्त्व को समझता है और जीवन की पूर्णता के लिए दिव्य ज्ञान प्राप्त करने

का इच्छुक है, तो वह किसी भी सामाजिक स्तर के गुरु को स्वीकार कर सकता है, बशर्ते कि वह गुरु कृष्ण-विज्ञान (कृष्ण-तत्त्व) को पूरी तरह जानता हो। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर यह भी कहते हैं कि यदि कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी है और यदि वह कृष्ण-विज्ञान को जानता है, तो वह वर्म-प्रदर्शक गुरु, दीक्षागुरु अथवा शिक्षागुरु बन सकता है। आध्यात्मिक जीवन के विषय में सर्वप्रथम जानकारी देने वाले को वर्म-प्रदर्शक गुरु कहा जाता है। जो गुरु शास्त्रों के नियमानुसार दीक्षा देता है, वह दीक्षागुरु कहलाता है और जो ऊपर उठने के लिए शिक्षा देता है, वह शिक्षागुरु कहलाता है। वास्तव में गुरु की योग्यता उसके कृष्ण-तत्त्व के ज्ञान पर आधारित होती है। फिर चाहे वह ब्राह्मण हो अथवा क्षत्रिय, संन्यासी या शूद्र हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दिया गया यह आदेश शास्त्रों के आदेश के विरुद्ध नहीं है। पद्मपुराण में कहा गया है :

न शूद्राः भगवद्भक्तास्तेऽपि भागवतोत्तमाः ।

सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने ।

जो कृष्ण के विषय में आध्यात्मिक ज्ञान में वास्तव में उन्नत है, वह शूद्र-कुल में जन्म होने पर भी शूद्र नहीं होता। किन्तु एक विप्र या ब्राह्मण अपने छः ब्राह्मण कर्मों (पठन, पाठन, यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह) तथा वैदिक स्तोत्रों में भी पटु क्यों न हो, किन्तु यदि वह वैष्णव नहीं है, तो वह गुरु नहीं बन सकता। किन्तु यदि कोई चण्डाल परिवार में जन्म लेकर भी कृष्णभावनामृत में दक्ष हो, तो वह गुरु बन सकता है। ये शास्त्रों के आदेश हैं और इन्हीं आदेशों का दृढ़ता से पालन करते हुए श्री विश्वम्भर नामक गृहस्थ के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु को ईश्वरपुरी नामक संन्यासी गुरु ने दीक्षा दी थी। इसी प्रकार श्री नित्यानन्द प्रभु को माधवेन्द्र पुरी नामक संन्यासी ने दीक्षा दी थी। किन्तु कुछ लोगों का कहना है कि उन्हें लक्ष्मीपति तीर्थ ने दीक्षा दी। इसी तरह अद्वैत आचार्य ने गृहस्थ होते हुए भी माधवेन्द्र पुरी से दीक्षा ली और ब्राह्मण-कुल में जन्मे रसिकानन्द ने श्री श्यामानन्द प्रभु से दीक्षा ली, जो ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न नहीं थे। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जहाँ जन्मजात ब्राह्मण ने ऐसे व्यक्ति से दीक्षा ग्रहण की, जिनका जन्म ब्राह्मण कुल में नहीं था। श्रीमद्भागवत (7.11.35) में ब्राह्मण के लक्षण इस प्रकार बतलाये गये हैं :

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।

यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥

यदि शूद्र-कुल में जन्मा कोई व्यक्ति गुरु के समस्त गुणों से युक्त हो, तो उसका न केवल ब्राह्मण के रूप में स्वीकार करना चाहिए, अपितु योग्य गुरु के रूप में भी स्वीकार करना चाहिए। यही आदेश श्री चैतन्य महाप्रभु का भी है। इसीलिए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने सारे वैष्णवों के लिए विधिवत् जनेऊ-संस्कार का सूत्रपात किया।

कभी-कभी भजनानन्दी वैष्णव का सावित्र संस्कार (जनेऊ धारण करना) नहीं हुआ रहता, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इस पद्धति को प्रचार-कार्य के लिए प्रयोग में लाया जाए। वैष्णव दो प्रकार के होते हैं- भजनानन्दी तथा गोठ्यानन्दी। भजनानन्दी की रुचि प्रचार-कार्य में नहीं होती, किन्तु गोठ्यानन्दी लोगों के लाभ के लिए कृष्णभावना के प्रचार-कार्य में तथा वैष्णवों की संख्या बढ़ाने में सदैव रुचि रखता है। वैष्णव को ब्राह्मण-पद से ऊपर माना जाता है। प्रचारक के रूप में उसे ब्राह्मण की मान्यता मिलनी चाहिए, अन्यथा लोगों को उसके वैष्णव-पद के विषय में गलतफहमी हो सकती है। किन्तु वैष्णव ब्राह्मण का चुनाव उसके जन्म के आधार पर नहीं, अपितु उसके गुणों के आधार पर किया जाता है। दुर्भाग्यवश, जो बुद्धिमान नहीं हैं, वे ब्राह्मण तथा वैष्णव के अन्तर को नहीं समझ पाते। वे इस भ्रम में रहते हैं कि ब्राह्मण हुए बिना कोई गुरु नहीं बन सकता। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक में कहा है :

किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय।

येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेइ 'गुरु' हय॥

यदि कोई गुरु बन जाता है, तो वह स्वतः ब्राह्मण हो जाता है। कभी-कभी जाति-गुरु के लोग कहते हैं-ये कृष्ण-तत्त्व वेत्ता सेइ गुरु हय का अर्थ यह है कि जो ब्राह्मण नहीं है, वह शिक्षागुरु या वर्म-प्रदर्शक गुरु तो बन सकता है, किन्तु दीक्षागुरु नहीं बन सकता। ऐसे जाति-गुरुओं के अनुसार जन्म तथा कुल को सर्वोपरि माना जाता है। किन्तु वैष्णवों को यह वंश-परम्परा का विचार मान्य नहीं है। गुरु शब्द वर्म-प्रदर्शक गुरु, शिक्षागुरु तथा दीक्षागुरु पर समान रूप से लागू होता है। जब तक हम श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा स्थापित नियम को स्वीकार नहीं करते, तब तक यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे विश्व में नहीं फैल सकता। श्री चैतन्य महाप्रभु की आन्तरिक इच्छा थी-पृथिवीते आछे यत नगरादि-ग्राम सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम। श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार सारे विश्व में किया जाना चाहिए। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि लोग उनकी शिक्षाओं को ग्रहण करके शूद्र या चण्डाल बने रहें। ज्योंही कोई शुद्ध वैष्णव के रूप में प्रशिक्षित हो जाए, उसका प्रामाणिक ब्राह्मण के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इस श्लोक में श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का यही सार है।

‘सन्न्यासी’ बलिया मोरे ना करिह वञ्चन ।

कृष्ण-राधा-तत्त्व कहि’ पूर्ण कर मन ॥ 129॥

सन्न्यासी-संन्यासी; बलिया-ऐसा समझकर; मोरे-मुझे; ना करिह-न करो; वञ्चन-कपट; कृष्ण-राधा-तत्त्व-राधा-कृष्ण का तत्त्व; कहि’-वर्णन करके; पूर्ण-तुष्ट; कर-करो; मन-मेरा मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, “आप मुझे विद्वान संन्यासी समझकर ठगने की चेष्टा न करें। कृपया आप राधा तथा कृष्ण के तत्त्व का वर्णन करके मेरे मन को तुष्ट करें।”

यद्यपि राय—प्रेमी, महा-भागवते ।

ताँर मन कृष्ण-माया नारे आच्छादिते ॥ 130॥

तथापि प्रभुर इच्छा—परम प्रबल ।

जानिलेह रायेर मन हैल टलमल ॥ 131॥

यद्यपि यद्यपि; राय-रामानन्द राय; प्रेमी–कृष्ण के महान् प्रेमी; महा-भागवते-उच्च कोटि के भक्त; ताँर-उनका; मन–मन; कृष्ण-माया-कृष्ण की माया; नारे नहीं समर्थ; आच्छादिते-आच्छादित करना; तथापि तथापि; प्रभुर इच्छा-भगवान् की इच्छा; परम प्रबल-परम बलवान्; जानिलेह-यद्यपि इसका पता था; रायेर मन-रामानन्द राय का मन; हैल-था; टलमल-विचलित।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय भगवान् के महान् भक्त थे तथा भगवत्-प्रेमी थे और यद्यपि उनका मन कृष्ण की माया से कभी आच्छादित नहीं किया जा सकता था और वे महाप्रभु के दृढ़ और गम्भीर मन की बात समझ सकते थे, किन्तु फिर भी रामानन्द का मन कुछ-कुछ विचलित हो उठा।

तात्पर्य

पूर्ण भक्त सदा पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर की इच्छाओं के अनुरूप कार्य करता है। किन्तु भौतिकतावादी व्यक्ति माया की लहरों में बह जाता है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है- मायार वशे, याच्छ भेसे, खाच्छ हाबुडबु, भाई। भौतिक शक्ति के चंगुल में रहने वाला व्यक्ति सदैव माया की लहरों में बह जाता है। दूसरे शब्दों में, भौतिक जगत् में मनुष्य माया का दास रहता है। जबकि आध्यात्मिक शक्ति में रहना वाला मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दास होता है। यद्यपि रामानन्द राय जानते थे कि श्री चैतन्य महाप्रभु से कुछ छिपा नहीं है, फिर भी वे उस विषय पर महाप्रभु की इच्छा के कारण आगे बोलने लगे।

राय कहे,—"आमि—नट, तुमि—सूत्र-धार।

येइ मत नाचाओ, तैछे चाहि नाचिबार" ॥132॥

राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; आमि-मैं; नट-नर्तक; तुमि-आप; सूत्र-धार-धागा खींचने वाले; येइ-जिस; मत-तरीके से; नाचाओ-आप नचाते हो; तैछे-वैसे; चाहि–चाहता हूँ; नाचिबार-नाचना।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने कहा, "मैं तो केवल नाचने वाली कठपुतली हूँ, और आप रस्सी खींचने वाले हैं। आप मुझे जिस तरह नचायेंगे, मैं उसी तरह नाचूँगा।"

मोर जिह्वा—वीणा-यन्त्र, तुमि—वीणा-धारी।

तोमार मने येइ उठे, ताहाइ उच्चारि ॥ 133 ॥

मोर जिह्वा-मेरी जिह्वा; वीणा-यन्त्र-वीणा वाद्य; तुमि-आप; वीणा-धारी-वीणा वादक; तोमार मने-आपके मन में; येइ उठे-जो कुछ आता है; ताहाइ-वही; उच्चारि-मैं बताता हूँ।

अनुवाद

"हे प्रभु, मेरी जीभ वीणा के समान है, और आप इस वीणा के वादक हैं। अतएव जो आपके मन में उठता है, मैं उसी की ध्वनि उत्पन्न करता हूँ।"

परम ईश्वर कृष्ण—स्वयं भगवान्।

सर्व-अवतारी, सर्व-कारण-प्रधान ॥ 134॥

परम-परम; ईश्वर-ईश्वर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; स्वयम्-स्वयं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; सर्व-अवतारी–सभी अवतारों के स्रोत; सर्व-कारण-प्रधान-सभी कारणों के कारण।

अनुवाद

फिर रामानन्द राय कृष्ण-तत्त्व पर बोलने लगे। उन्होंने कहा, "कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। वे स्वयं आदि ईश्वर हैं, समस्त अवतारों के उद्गम तथा समस्त कारणों के कारण हैं।"

अनन्त वैकुण्ठ, आर अनन्त अवतार ।

अनन्त ब्रह्माण्ड इहाँ,—सबार आधार ॥ 135॥

अनन्त वैकुण्ठ–असंख्य वैकुण्ठ ग्रह; आर-और; अनन्त अवतार–अनन्त अवतार; अनन्त ब्रह्माण्ड-आनन्त ब्रह्माण्ड; इहाँ-इस भौतिक जगत् में; सबार-उन सब के; आधार-आधार।

अनुवाद

"वैकुण्ठ ग्रहों की संख्या अनन्त है और अवतार भी असंख्य हैं। भौतिक जगत् में भी असंख्य ब्रह्माण्ड हैं और कृष्ण उन सबके परम आधार हैं।"

सच्चिदानन्द-तनु, व्रजेन्द्र-नन्दन ।

सर्वैश्वर्य-सर्वशक्ति-सर्वरस-पूर्ण ॥136॥

सत्-चित्-आनन्द-तनु-कृष्ण का शरीर सत्-चित्त आनन्द है; व्रजेन्द्र-नन्दन-महाराज नन्द के पुत्र; सर्व-ऐश्वर्य-सभी ऐश्वर्य; सर्व-शक्ति-सभी शक्तियों से पूर्ण; सर्व-रस-पूर्ण-सभी रसों से पूर्ण।

अनुवाद

"श्रीकृष्ण का दिव्य देह सनातन है और आनन्द तथा ज्ञान से पूर्ण है। वे नन्द महाराज के पुत्र हैं। वे समस्त ऐश्वर्यों, शक्तियों तथा दिव्य रसों से पूर्ण हैं।"

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द-विग्रहः ।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्व-कारण-कारणम् ॥ 137॥

ईश्वरः–नियन्ता; परमः-परम; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; सत्-शाश्वत अस्तित्व; चित्-परम ज्ञान; आनन्द–आनन्द; विग्रहः-विग्रह; अनादिः-अनादि; आदिः-प्रत्येक वस्तु के स्रोत; गोविन्दः-गोविन्द नामक; सर्व-सभी; कारण-कारणों के; कारणम्-मूल कारण हैं।

अनुवाद

"गोविन्द के नाम से विख्यात श्रीकृष्ण परम नियन्ता हैं। उनका शरीर शाश्वत, आनन्दपूर्ण तथा आध्यात्मिक है। वे सबके उद्गम हैं। समस्त कारणों के मूल कारण होने के कारण उनका कोई अन्य उद्गम नहीं है।"

तात्पर्य

यह श्लोक ब्रह्म-संहिता (5.1) का है।

वृन्दावने 'अप्राकृत नवीन मदन' ।

काम-गायत्री काम-बीजे याँर उपासन ॥ 138॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; अप्राकृत-आध्यात्मिक; नवीन-नवीन; मदन-कामदेव; काम-गायत्री-कामनाओं के मंत्रों से; काम-बीजे-क्लीम् नामक कामनाओं के आध्यात्मिक बीज से; याँर-जिनकी; उपासन-पूजा।

अनुवाद

"वृन्दावन के आध्यात्मिक क्षेत्र में कृष्ण चिरनवीन आध्यात्मिक कामदेव हैं। उनकी पूजा आध्यात्मिक बीज क्लीम् के साथ कामगायत्री मन्त्र का उच्चारण करके की जाती है।"

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता (5.56) में वृन्दावन का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो

द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम् ।

कथा गानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रिय-सखी

चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च ॥

स यत्र क्षीराब्धिः स्रवति सुरभीभ्यश्च सुमहान्

निमेषार्द्धाख्यो वा व्रजति न हि यत्रापि समयः ।

भजे श्वेतद्वीपं तमहमिह गोलोकमिति यं

विदन्तस्ते सन्तः क्षितिविरलचाराः कतिपये ॥

वृन्दावन का आध्यात्मिक क्षेत्र सदैव आध्यात्मिक रहता है। वहाँ पर लक्ष्मी तथा गोपियाँ सदैव विद्यमान रहती हैं। वे कृष्ण को प्रिय हैं और वे सब भी कृष्ण के समान आध्यात्मिक हैं। वृन्दावन में कृष्ण परम पुरुष हैं और वे समस्त गोपियों के तथा लक्ष्मीयों के पति हैं। वृन्दावन के वृक्ष कल्पवृक्ष होते हैं। वहाँ की भूमि चिन्तामणि से बनी हुई है, और जल अमृत है। सारे शब्द संगीत की ध्वनियाँ और सारी गतियाँ नृत्य होती हैं। वंशी भगवान् की नित्य संगिनी होती है। गोलोक वृन्दावन सूर्य के समान स्वतः तेजवान और दिव्य आनन्द से पूर्ण होता है। जीवन की पूर्णता इस आध्यात्मिक लोक का आस्वादन करने में है; अतएव हर एक को चाहिए कि इसके ज्ञान के विषय में ज्ञान का अनुशीलन करे। वृन्दावन की आध्यात्मिक गौवें सदैव आध्यात्मिक दूध देने वाली हैं। वहाँ एक भी क्षण व्यर्थ नहीं जाता–दूसरे शब्दों में, वहाँ भूत, वर्तमान तथा भविष्य नहीं होता। समय का एक कण भी व्यर्थ नहीं जाता। इस भौतिक जगत् में भक्त उस दिव्य धाम की पूजा गोलोक वृन्दावन के रूप में करते हैं। स्वयं ब्रह्माजी ने कहा है, "मैं उस आध्यात्मिक लोक की पूजा करना चाहता हूँ, जहाँ कृष्ण विद्यमान हैं।" इस दिव्य वृन्दावन की प्रशंसा उन लोगों द्वारा नहीं की जाती, जो भक्त या स्वरूपसिद्ध नहीं हैं, क्योंकि यह वृन्दावन धाम पूरी तरह आध्यात्मिक है। वहाँ पर भगवान् की लीलाएँ भी आध्यात्मिक हैं। उनमें से कोई भी लीला भौतिक नहीं है। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर की प्रार्थना के अनुसार (प्रार्थना 1)-

आर कबे निताइ-चाँदेर करुणा करिबे ।

संसार-वासना मोर कबे तुच्छ ह'बे ॥

"मुझ पर नित्यानन्द प्रभु कब कृपा करेंगे, जिससे कि मैं भौतिक आनन्द की तुच्छता का अनुभव कर सकूँ?"

विषय-छाड़िया कबे शुद्ध ह'बे मन ।

कबे हाम हेरब श्रीवृन्दावन ॥

“मेरा मन भौतिक मल से कब शुद्ध होगा, ताकि मुझे आध्यात्मिक वृन्दावन की उपस्थिति का अनुभव हो सके?”

रूप-रघुनाथ-पदे हइबे आकुति ।

कबे हाम बुझब से युगल-पिरीति ॥

“कब मैं गोस्वामियों के उपदेशों के प्रति आकृष्ट हो सकेंगा, जिससे मैं यह समझ पाऊँ कि राधा तथा कृष्ण क्या हैं और वृन्दावन क्या है?”

इन श्लोकों से सूचित होता है कि यदि कोई वृन्दावन को समझना चाहता है, तो उसे पहले समस्त भौतिक इच्छाओं से शुद्ध होना पड़ता है एवं सकाम कर्म तथा तार्किक ज्ञान के आकर्षण से मुक्त होतना पड़ता है।

अप्राकृत नवीन मदन में अप्राकृत शब्द भौतिक विचार से सर्वथा विरुद्ध विचार का सूचक है। मायावादी इसे शून्य या निर्विशेष मानते हैं, किन्तु ऐसा नहीं है। भौतिक जगत् की प्रत्येक वस्तु जड़ है, किन्तु आध्यात्मिक जगत् की प्रत्येक वस्तु चेतन है। भोग की इच्छा कृष्ण तथा उनके अंशों अर्थात् जीवों में समान रूप में पाई जाती है। आध्यात्मिक जगत् में ऐसी इच्छाएँ भी आध्यात्मिक होती हैं। ऐसी इच्छाओं को किसी को भूलकर भी भौतिक नहीं समझना चाहिए। यदि इस भौतिक जगत् में कोई व्यक्ति यौन सुख के प्रति उन्मुख है और उसका भोग करता है, तो यह भोग क्षणिक होता है। कुछ ही मिनट के बाद उसका भोग समाप्त हो जाता है, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में यही भोग कभी न समाप्त होने वाला होता है। उसका निरन्तर भोग होता रहता है। आध्यात्मिक जगत् में ऐसी कामवासना प्रत्येक नवीन विशिष्टता के साथ अधिकाधिक आस्वाद्य लगती है। किन्तु भौतिक जगत् में कामवासना कुछ ही मिनटों में स्वादरहित हो जाती है, और यह कभी भी स्थायी नहीं होती। चूँकि कृष्ण अत्यधिक काम-उन्मुख प्रतीत होते हैं, इसलिए आध्यात्मिक जगत् में उन्हें नवीन कामदेव कहा गया है। किन्तु ऐसी इच्छा में कोई भौतिक उच्छृखलता नहीं रहती।

गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्री त्वं ततः स्मृताः-जो कोई गायत्री मन्त्र का जप करता है, वह क्रमशः भौतिक बन्धन से छूट जाता है। दूसरे शब्दों में, जो भवबन्धन से छुड़ाये, वही गायत्री है। गायत्री मन्त्र की व्याख्या मध्यलीला (21.125) में उपलब्ध है :

काम-गायत्री-मन्त्र-रूप, हय कृष्णेर स्वरूप,

सार्ध-चब्बिश अक्षर तार हय ।

से अक्षर 'चन्द्र' हय, कृष्णे करि' उदय

त्रिजगत् कैला काममय ॥

कामगायत्री मन्त्र वैदिक स्तुति के समान है, किन्तु यह साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् है। कामगायत्री तथा कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही 24 1/2 दिव्य अक्षरों से बने हैं (देखें मध्य. 21.125-29)। अक्षरों द्वारा अंकित यह मन्त्र भी कृष्ण है, और यह मन्त्र चन्द्रमा के समान उदय होता है। इसके कारण मानव-समाज में तथा सारे जीवों में इच्छा का विकृत प्रतिबिम्ब पड़ता है। क्लीं कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्-इस मन्त्र में कृष्ण को कामदेव, पुष्पबाण तथा अनंग कहा गया है। कामदेव मदनमोहन हैं, जो कृष्ण के साथ हमारे सम्बन्ध को स्थापित करने वाले अर्चाविग्रह हैं। पुष्पबाण (अर्थात् फूलों का बाण धारण करने वाले) गोविन्द या भगवान् हैं, जो हमारी भक्ति को स्वीकार करते हैं। अनङ्ग गोपीजन वल्लभ हैं, जो समस्त गोपियों को तुष्ट करते हैं और जीवन के चरम लक्ष्य हैं। यह कामगायत्री (क्लीं कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्ग प्रचोदयात्) इसी भौतिक जगत् से जरा भी सम्बन्धित नहीं है। आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नति होने पर मनुष्य अपनी शुद्ध इन्द्रियों से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा कर सकता है और भगवान् की इच्छाओं को पूरा कर सकता है।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

"सदैव मेरा चिन्तन करो और मेरे भक्त बनो। मेरी पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस प्रकार तुम निश्चित रूप से मेरे पास आ सकोगे। मैं तुम्हें यह वचन देता हूँ, क्योंकि तुम मेरे परम प्रिय मित्र हो।" (भगवद्गीता 18.65)

ब्रह्म-संहिता (5.27-28) में कहा गया है :

अथ वेणु निनादस्य त्रयीमूर्तिमयी गतिः ।

स्फुरन्ति प्रविवेशाशु मुखाब्जानि स्वयंभुवः ॥

गायत्रीं गायतस्तस्माद् अधिगत्य सरोजजः ।

संस्कृतश्चादिगुरुणा द्विजतामगमत्ततः ॥

त्रय्या प्रबुद्धोऽथ विधिर्विज्ञाततत्त्वसागरः ।

तुष्टाव वेदसारेण स्तोत्रेणानेन केशवम् ॥

“तब वेदमाता गायत्री श्रीकृष्ण की वंशी की दिव्य ध्वनि से प्रकट होकर स्वयंभू ब्रह्मा के कमलमुख में उनके आठ कानों से प्रविष्ट हुई। इस प्रकार कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण की वंशी के संगीत से उत्पन्न गायत्री मन्त्र को प्राप्त किया। इस तरह उन्हें द्विज का पद प्राप्त हुआ, क्योंकि उन्होंने परम आदि गुरु साक्षात् भगवान् से दीक्षा ग्रहण की। तीन वेदों से युक्त उस गायत्री के स्मरण द्वारा प्रकाशित होकर ब्रह्माजी सत्य के समुद्र से अवगत हुए। तब उन्होंने स्तोत्र द्वारा समस्त वेदों के सार श्रीकृष्ण की पूजा की।”

कृष्ण की वंशी की ध्वनि वैदिक स्तोत्रों की उद्गम है। कमलासीन ब्रह्माजी ने कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनी, जिससे वे गायत्री मन्त्र द्वारा दीक्षित हो गये।

पुरुष, योषित्, किबा स्थावर-जङ्गम ।

सर्व-चित्ताकर्षक, साक्षात्मन्मथ-मदन ॥ 139॥

पुरुष-पुरुष; योषित्-नारी; किबा-सब; स्थावर-जङ्गम-चर-अचर; सर्व-सबका; चित्त-आकर्षक-चित्त आकर्षित करने वाले; साक्षात् साक्षात्; मन्मथ-मदन-कामदेव।

अनुवाद

“कृष्ण नाम का ही अर्थ यह होता है कि वे कामदेव को भी आकृष्ट करने वाले हैं। अतएव वे सबके लिए-त्री तथा पुरुष, चर तथा अचर जीवों के लिए आकर्षक हैं। निस्सन्देह, कृष्ण सर्वचित्ताकर्षक के रूप में सर्वविदित हैं।”

तात्पर्य

जिस तरह भौतिक जगत् में अनेक खगोल-मण्डल हैं, जो तारे या ग्रह कहलाते हैं, उसी तरह आध्यात्मिक जगत् में अनेक दिव्य ग्रह हैं, जो वैकुण्ठ लोक कहलाते हैं। किन्तु आध्यात्मिक ब्रह्माण्ड भौतिक ब्रह्माण्डों के गुच्छ से बहुत ही दूरी पर है। भौतिक विज्ञानी इस ब्रह्माण्ड समूह में नक्षत्रों तथा ग्रहों की संख्या का अनुमान तक नहीं लगा सकते। वे

अन्तरिक्ष यानों द्वारा अन्य नक्षत्रों तक यात्रा करने में भी अक्षम हैं। भगवद्गीता (8.20) के अनुसार एक आध्यात्मिक जगत् भी है :

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात् सनातनः ।

यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥

"एक अन्य अव्यक्त प्रकृति भी है, जो शाश्वत है और इस व्यक्त तथा अव्यक्त पदार्थ से परे है। यह सर्वोपरि है और इसका नाश कभी नहीं होता। जब इस संसार की प्रत्येक वस्तु का नाश हो जाता है, तब भी वह उसी तरह बनी रहती है।"

इस तरह से एक अन्य प्रकृति भी है, जो भौतिक प्रकृति से श्रेष्ठ है। भाव या स्वभाव शब्द प्रकृति के लिए आये हैं। आध्यात्मिक प्रकृति शाश्वत है। सारे भौतिक ब्रह्माण्डों के विनष्ट हो जाने पर भी आध्यात्मिक जगत् के ग्रह जैसे का तैसे बने रहते हैं। वे उसी तरह बने रहते हैं, जिस तरह भौतिक शरीर के विनष्ट होने के बाद आत्मा का आस्तित्व बना रहता है। आध्यात्मिक जगत् अप्राकृत अर्थात् प्रतिपदार्थ या प्राकृतिक जगत् का विपरीत कहलाता है। इस दिव्य आध्यात्मिक जगत् का सर्वोच्च ग्रह गोलोक वृन्दावन कहलाता है। यह स्वयं भगवान् कृष्ण का धाम है। भगवान् कृष्ण भी पूर्णरूपेण आध्यात्मिक हैं। यहाँ कृष्ण अप्राकृत मदन के रूप में जाने जाते हैं। मदन नाम कामदेव का सूचक है, किन्तु कृष्ण आध्यात्मिक मदन हैं। उनका शरीर इस भौतिक ब्रह्माण्ड के मदन के समान भौतिक नहीं है। कृष्ण का शरीर पूर्णतया आध्यात्मिक-सच्चिदानन्द-विग्रह है। इसीलिए वे अप्राकृत मदन कहलाते हैं, वे मन्मथ मदन भी कहलाते हैं, जिसका अर्थ यह है कि वे मदन को भी आकृष्ट करने वाले हैं। कभी-कभी निपट भौतिकतावादी व्यक्ति कृष्ण की लीलाओं एवं उनके आकर्षक गुणों का गलत अर्थ लगाते हैं और उन पर अनैतिकता का लांछन लगाते हैं, क्योंकि वे गोपियों के साथ नृत्य करते थे। किन्तु लोग ऐसा दोषारोपण इसलिये करते हैं, क्योंकि वे नहीं जानते कि कृष्ण तो इस भौतिक जगत् से परे हैं। उनका शरीर सच्चिदानन्द विग्रह है-अर्थात् पूर्णतया आध्यात्मिक है। उनके शरीर में लेशमात्र भी भौतिक कल्मष नहीं पाया जाता। उनके शरीर को हाड़-मांस का पुतला नहीं मानना चाहिए। मायावादी दार्शनिक कृष्ण के शरीर को भौतिक मानते हैं, किन्तु यह अत्यन्त घृणित, स्थूल भौतिक धारणा है। जिस प्रकार कृष्ण पूर्णतया आध्यात्मिक है, उसी तरह गोपियाँ भी आध्यात्मिक हैं, जिसकी पुष्टि ब्रह्म-संहिता (5.37) से होती है :

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-

स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः ।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो अपने धाम गोलोक में राधा के साथ निवास करते हैं, जो उनकी आध्यात्मिक छवि के सदृश हैं और जो ह्लादिनी शक्ति स्वरूपा हैं। उनके साथ श्रीमती राधा की विश्वासपात्र सखियाँ हैं, जो उनके (राधारानी के) स्वरूप के विस्तार हैं और जो सदैव आनन्दमय आध्यात्मिक रस से आप्लावित रहती हैं।”

गोपियाँ भी उन्हीं के समान आध्यात्मिक गुणों वाली (निजरूपतया) हैं, क्योंकि वे कृष्ण की आनन्ददायिनी ह्लादिनी शक्ति की अंश हैं। कृष्ण और गोपियों को भौतिक पदार्थ से या भौतिक धारणा से कोई वास्ता नहीं है। इस भौतिक जगत् में जीव भौतिक शरीर के भीतर बन्दी बना हुआ है और अज्ञानवश वह अपने आपको यह शरीर समझता है। इसलिए यहाँ पुरुष तथा स्त्री के बीच काम-वासनाओं का भोग सर्वथा भौतिक है। भौतिकतावादी मनुष्य की कामेच्छाओं की तुलना कृष्ण की दिव्य कामेच्छाओं से नहीं की जा सकती। जब तक मनुष्य आत्म-विज्ञान में समुन्नत नहीं होता, तब तक वह कृष्ण तथा गोपियों के बीच की कामेच्छाओं को नहीं समझ सकता। चैतन्य-चरितामृत में गोपियों की कामेच्छाओं की तुलना स्वर्ण से की गई है, किन्तु भौतिकतावादी व्यक्ति की कामेच्छाओं की तुलना लोहे से की गई है। सोने और लोहे में किसी भी अवस्था में कोई समानता नहीं बताई जा सकती है। सारे जीव, चाहे चर हों या अचर, कृष्ण के अंश हैं; अतएव उनमें भी मूलत: उन जैसी ही कामेच्छा पाई जाती है। किन्तु जब इस कामेच्छा को पदार्थ के माध्यम से व्यक्त किया जाता है, तो वह घृणित बन जाती है। जब जीव आध्यात्मिक रूप से उन्नत होता है और भौतिक बन्धन से मुक्त हो जाता है, तब वह कृष्ण को सही ढंग से समझ सकता है। जैसाकि भगवद्गीता (4.9) में कहा गया है :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

“हे अर्जुन, जो मेरे प्राकट्य तथा मेरे कार्यों के दिव्य स्वभाव को जानता है, वह शरीर त्यागने के बाद इस भौतिक जगत् में फिर से शरीर धारण नहीं करता, अपितु मेरे सनातन धाम को प्राप्त करता है।”

जब मनुष्य कृष्ण के शरीर को तथा उनकी कामेच्छाओं को समझ लेता है, तब उसे तुरन्त मुक्ति प्राप्त हो जाती है। भौतिक शरीर के भीतर बन्दी बना हुआ बद्ध आत्मा कृष्ण को नहीं समझ सकता। भगवद्गीता (7.3) में कहा गया है:

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

“हजारों व्यक्तियों में से कोई एक व्यक्ति सिद्धि के लिए प्रयास करता है और जिन्हें सिद्धि प्राप्त हो चुकी है, उनमें से मुश्किल से कोई एक मुझे सही-सही जान पाता है।”

सिद्धये शब्द मुक्ति का सूचक है। मनुष्य भौतिक बन्धन से छूटने पर ही कृष्ण को समझ सकता है। जब कोई व्यक्ति कृष्ण को यथारूप में (तत्त्वत:) समझ लेता है, तब वह भौतिक शरीर में रहते हुए भी आध्यात्मिक जगत् में रहता है। इस विज्ञान को वही समझ सकता है, जो वास्तव में आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत है।

श्रील रूप गोस्वामी ने अपने भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.187) में कहा है :

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा ।

निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥

जब कोई व्यक्ति इस भौतिक जगत् में प्रेम तथा भक्तिपूर्वक कृष्ण की सेवा करना चाहता है, तो वह इस भौतिक जगत् में कर्म करते हुए भी मुक्त हो जाता है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (14.26) से होती है :

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।

स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

“जो पूरी तरह भक्ति में लगा रहता है, जो किसी भी परिस्थिति में अपनी स्थिति से नहीं भटकता, वह तुरन्त भौतिक प्रकृति के गुणों को पार कर जाता है और ब्रह्म-पद को प्राप्त होता है।”

भगवान् की प्रेमाभक्ति में लगे रहने मात्र से ही मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। जैसाकि भगवद्गीता (18.54) में कहा गया है- ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति । जो मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान में अत्यन्त उन्नत है और जिसने ब्रह्मभूत अवस्था प्राप्त कर ली है, वह न तो शोक करता है न किसी भौतिक वस्तु के लिए लालायित रहता है। यही आत्म-साक्षात्कार की अवस्था है।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ब्रह्मभूत अवस्था के दो विभाग मानते हैं-स्वरूपगत तथा वस्तुगत। जब कोई कृष्ण को वास्तव में समझ जाता है, किन्तु फिर भी कोई भौतिक सम्बन्ध बनाये रखता है, तो वह अपने स्वरूप (मूल चेतना) में स्थित बतलाया जाता है। जब यह स्वरूप (मूल चेतना) पूर्णतया आध्यात्मिक होता है, तो इसे कृष्णभावनामृत कहा

जाता है। जो ऐसी चेतना को प्राप्त होता है, वह वास्तव में वृन्दावन में रहता है। वह चाहे जहाँ रहे, भौतिक स्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जब कृष्ण की कृपा से कोई मनुष्य इस प्रकार उन्नत हो जाता है, तो वह भौतिक शरीर तथा मन से पूर्णतया शुद्ध हो जाता है और तब वह वास्तव में वृन्दावन में रहता है। यह अवस्था वस्तुगत है।

मनुष्य को चेतना की स्वरूपगत अवस्था में अपने आध्यात्मिक कार्य सम्पन्न करने चाहिए। उसे चिन्मयी गायत्री मन्त्र-आध्यात्मिक मन्त्रों का भी जप करना चाहिए-ॐ नमो भगवते वासुदेवाय या क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा। तथा क्लीं कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् ।ये कामगायत्री या कामबीज मन्त्र हैं। मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक गुरु से दीक्षा ले और इन कामगायत्री या कामबीज दिव्य मन्त्रों से कृष्ण की पूजा करे।

जैसाकि कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने पिछले श्लोक में तथा इस श्लोक में बतलाया है (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 8.138-139) :

वृन्दावनेऽप्राकृत नवीन मदन ।

कामगायत्री कामबीजे याँर उपासन ॥

पुरुष, योषित, किबा स्थावर-जङ्गम ।

सर्व-चित्ताकर्षक, साक्षात् मन्मथ-मदन ॥

जो व्यक्ति पूर्णतया शुद्ध है और गुरु द्वारा दीक्षित है, वह इस कामबीज के साथ कामगायत्री मन्त्र के जप द्वारा पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् कृष्ण की आराधना करता है। जैसाकि भगवद्गीता (18.65) में भी इसकी पुष्टि की गई है, भगवान् की दिव्य पूजा करनी चाहिए, जिससे वह सर्व-आकर्षक कृष्ण द्वारा आकर्षित होने योग्य बन सके :

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

“सदैव मेरा चिन्तन करो और मेरे भक्त बनो। मेरी पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस तरह तुम निश्चित रूप से मेरे पास आओगे। मैं तुम्हें यह वचन देता हूँ, क्योंकि तुम मेरे अत्यन्त प्रिय मित्र हो।”

चूँकि हर जीव कृष्ण का अंश है, इसलिए कृष्ण स्वाभाविक रूप से आकर्षक हैं। भौतिक आवरण के कारण कृष्ण के प्रति मनुष्य के आकर्षण में रुकावट आ जाती है। सामान्यतया इस भौतिक जगत् में व्यक्ति कृष्ण की ओर आकृष्ट नहीं होता, किन्तु भौतिक बन्धन से मुक्त होते ही वह स्वाभाविक रूप से आकृष्ट हो जाता है। इसीलिए इस श्लोक में कृष्ण को सर्वचित्ताकर्षक कहा गया है, जिसका अर्थ है, "प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः कृष्ण द्वारा आकृष्ट होता है।" यह आकर्षण हर एक के हृदय के भीतर रहता है और जब हृदय निर्मल हो जाता है, तब यह आकर्षण प्रकट हो जाता है (चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणम्)।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमान-मुखाम्बुजः ।

पीताम्बर-धरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ-मन्मथः ॥ 140॥

तासाम्-उनमें से; आविरभूत्-प्रकट हुए; शौरिः-भगवान् कृष्ण; स्मयमान-मुस्कुराते हुए; मुख-अम्बुजः-कमल मुख; पीत-अम्बर-धरः-पीताम्बर धारी; स्रग्वी-पुष्प माला से सुशोभित; साक्षात् साक्षात्; मन्मथ-कामदेव के; मन्मथः–कामदेव।

अनुवाद

"जब कृष्ण रासलीला नृत्य छोड़कर चले गये, तब गोपियाँ अत्यन्त खिन्न हो गईं; किन्तु जब वे शोकमग्न थीं तो कृष्ण पीताम्बर धारण किये पुनः प्रकट हो गये। फूलों की माला पहने तथा मृदु मुस्कान करते वे कामदेव को भी आकृष्ट करने वाले थे। इस तरह कृष्ण गोपियों के बीच प्रकट हो गये।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.32.2) से है।

नाना-भक्तेर रसामृत नाना-विध हय ।

सेइ सब रसामृतेर 'विषय' 'आश्रय' ॥ 141॥

नाना-भक्तेर-नाना प्रकार के भक्तों के; रस-अमृत-भक्ति अमृत अथवा दिव्य रस; नाना-विध–विभिन्न प्रकार के; हय हैं; सेइ सब-ये सब; रस-अमृतेर-भक्ति अमृत के; विषय-विषय; आश्रय-आश्रय।

अनुवाद

“हर भक्त का कृष्ण के साथ एक विशेष प्रकार का दिव्य रस होता है। किन्तु इन सारे दिव्य सम्बन्धों में भक्त पूजक (आश्रय) होता है और कृष्ण पूज्य (विषय) होते हैं।”

अखिल-रसामृत-मूर्तिः

प्रसृमर-रुचि-रुद्ध-तारका-पालिः ।

कलित-श्यामा-ललितो

राधा-प्रेयान्विधुर्जयति ॥142॥

अखिल-रस-अमृत-मूर्तिः–सर्व आनन्द के स्रोत, जिनमें भक्ति के सभी रस अर्थात् शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस सम्मिलित हैं; प्रसृमर-प्रसार करके; रुचि-अपनी शारीरिक ज्योति से; रुद्ध जिन्होंने वशीभूत किया है; तारका-तारका नामक गोपी को; पालिः–पालि नामक गोपी को; कलित-जिन्होंने मन हर लिये हैं; श्यामा-श्यामा नामक गोपी को; ललितः-और ललिता नामक गोपी को; राधा-प्रेयान्-जो श्रीमती राधारानी को अत्यन्त प्रिय हैं; विधुः–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् कृष्ण की; जयति–जय हो।

अनुवाद

“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की जय हो! उन्होंने निरन्तर बढ़ने वाले अपने आकर्षक लक्षणों के कारण तारका तथा पाली नामक गोपियों को जीत लिया है और श्यामा तथा ललिता के मनों को हर लिया है। वे श्रीमती राधारानी के सर्वाधिक आकर्षक प्रेमी हैं और समस्त रसों में भक्तों के लिए आनन्द के आगार हैं।”

तात्पर्य

प्रत्येक व्यक्ति में एक विशेष रस होता है, जिससे वह कृष्ण से प्रेम करता है, और उनकी सेवा करता है। हर प्रकार के भक्त के लिए कृष्ण सर्वाधिक आकर्षक मूर्ति हैं। इसीलिए वे सभी प्रकार के भक्तों के लिए अखिल रसामृत-मूर्ति कहलाते हैं, भले ही वह भक्त शान्त रस में हो, या दास्य, सख्य, माधुर्य या वात्सल्य रस में।

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृत सिन्धु का पहला श्लोक है।

शृङ्गार-रसराज-मय-मूर्ति-धर ।

अतएव आत्म-पर्यन्त-सर्व-चित्त-हर ॥143॥

शृङ्गार-रस-राज-मय-रसों के राजा, माधुर्य रस से युक्त; मूर्ति-धर-सभी आनन्द के मूर्तिमान आगार कृष्ण; अतएव–इसलिये; आत्म-पर्यन्त–स्वयं का भी; सर्व-सब; चित्त-हृदयों के; हर-आकर्षक।

अनुवाद

"कृष्ण सारे रसों में भक्तों के लिए सर्व-आकर्षक हैं, क्योंकि वे माधुर्य रस के मूर्तिमान स्वरूप हैं। कृष्ण न केवल समस्त भक्तों के लिए, अपितु स्वयं के लिए भी आकर्षक हैं।"

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-

श्रेणी-श्यामल-कोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम् ।

स्वच्छन्दं व्रज-सुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः

शृङ्गारः सखि मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीड़ति ॥ 144॥

विश्वेषाम्-सभी गोपियों का; अनुरञ्जनेन-आनन्दित करके; जनयन्–उत्पन्न करके; आनन्दम्-आनन्द; इन्दीवर-श्रेणी-नीलकमलों की पंक्ति के समान; श्यामल-श्यामल; कोमलैः-और कोमल; उपनयन्–लाकर; अङ्गैः-अपने अंगों से; अनङ्ग-उत्सवम्-कामदेव के उत्सव हेतु; स्वच्छन्दम्-बिना अवरोध के; व्रज-सुन्दरीभिः-व्रज की युवा गोपियों से; अभितः-दोनों ओर; प्रति-अङ्गम्-प्रत्येक अंग; आलिङ्गितः-आलिंगन करके; शृङ्गारः-शृंगारिक प्रेम; सखि-हे सखी; मूर्ति-मान्–मूर्तिमान; इव-की तरह; मधौ-वसंत ऋतु में; मुग्धः-मुग्ध होकर; हरिः-भगवान् हरि; क्रीड़ति-खेलते हैं।

अनुवाद

"हे सखियों, जरा देखो न, श्रीकृष्ण किस तरह वसन्त ऋतु का आनन्द लूट रहे हैं! गोपियाँ उनके सारे अंगों का आलिंगन कर रही हैं, जिससे वे श्रृंगार प्रेम के मूर्तिमान स्वरूप लगते हैं। वे अपनी दिव्य लीलाओं से सारी गोपियों तथा अखिल सृष्टि को जीवन प्रदान करते हैं। उनके मृदु श्यामल हाथ तथा पाँव नीले कमलों के समान हैं, जिनसे उन्होंने कामदेव के लिए उत्सव की सृष्टि कर दी है।"

तात्पर्य

यह प्रलोक गीतगोविन्द (1 11) का है।

लक्ष्मी-कान्तादि अवतारेर हरे मन ।

लक्ष्मी-आदि नारी-गणेर करे आकर्षण ॥145 ॥

लक्ष्मी-कान्त-आदि-लक्ष्मी-पति नारायण के; अवतारेर–अवतार का; हरे-वे हरते हैं; मन–मन; लक्ष्मी–लक्ष्मी; आदि-आदि; नारी-गणेर-सारी स्त्रियों को; करे-करते हैं; आकर्षण-आकर्षण।

अनुवाद

"वे संकर्षण के अवतार तथा लक्ष्मी-पति नारायण को भी आकर्षित करने वाले हैं। वे न केवल नारायण को अपितु नारायण की प्रेयसी लक्ष्मी समेत समस्त स्त्रियों को आकर्षित करते हैं।"

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा

मयोपनीता भुवि धर्म-गुप्तये ।

कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्

हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥146॥

द्विज-आत्म-जाः-ब्राह्मणों के पुत्र; मे-मेरे द्वारा; युवयोः-तुम दोनों का; दिदृक्षुणा-दर्शनाभिलाषी; मया-मेरे द्वारा; उपनीताः-लाया गया; भुवि-जगत् में; धर्म-गुप्तये-धर्म की रक्षा के लिए; कला-सभी शक्तियों सहित; अवतीर्णी-जो अवतरित हुए; अवनेः-जगत् में; भर-असुरान्-असुरों का भार; हत्वा-हत्या करके; इह-इस आध्यात्मिक जगत् में; भूयः–पुनः; त्वरया-अति शीघ्र; इतम्-लौट आयें; अन्ति–निकट; मे-मेरे।

अनुवाद

"[कृष्ण तथा अर्जुन को सम्बोधित करते हुए महाविष्णु (महापुरुष) ने कहा :] 'मैं आप दोनों को देखना चाहता था, इसलिए मैं ब्राह्मण-पुत्रों को यहाँ ले आया हूँ। आप दोनों इस भौतिक जगत् में धर्म की स्थापना करने के लिए अपनी-अपनी समस्त शक्तियों समेत प्रकट हुए हैं। आप कृपया सारे असुरों का वध करने के बाद तुरन्त आध्यात्मिक जगत् में लौट जायें।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.89.58) का है, जिसमें ब्राह्मण-पुत्रों की खोज करते हुए अर्जुन को कृष्ण भौतिक ब्रह्माण्ड से परे ले जाने की चेष्टा करते हैं।

भगवान् महाविष्णु इस भौतिक जगत् से परे स्थित हैं। वे भी कृष्ण के स्वरूप से आकृष्ट हुए थे। वास्तव में महाविष्णु ने द्वारका से ब्राह्मण के पुत्रों को चुरा लिया था, जिससे कृष्ण तथा अर्जुन उन्हें मिलने आयें। यह श्लोक यह दिखाने के लिए उद्धृत किया गया है कि कृष्ण इतने आकर्षक हैं कि महाविष्णु भी उनसे आकर्षित थे।

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे

तवाङ्घ्रि-रेणु-स्परशाधिकारः ।

यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो

विहाय कामान्सु-चिरं धृत-व्रता ॥ 147॥

कस्य–किसका; अनुभावः-परिणाम; अस्य-कालिय नाग का; न-नहीं; देव-मेरे प्रभु; विद्महे-हम जानते हैं; तव अङ्घ्रि-आपके चरणकमल की; रेणु-धूलि, रज; स्परश-स्पर्श के लिए; अधिकारः-अधिकार; यत्-जो; वाञ्छया-चाहने से; श्रीः-लक्ष्मी देवी; ललना-सर्वश्रेष्ठ नारी; अचरत्-किया; तपः-तप; विहाय-त्यागकर; कामान्–सारी इच्छाएँ; सु-चिरम्-लम्बे समय तक; धृत-नियम पालन; व्रता-व्रत के रूप में।

अनुवाद

“हे प्रभु! हम नहीं जानते कि किस तरह कालिय नाग को आपके चरणकमलों की धूल स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके लिए लक्ष्मीजी ने अन्य सारी इच्छाएँ त्यागकर तथा दृढ़ व्रत धारण करके शताब्दियों तक तपस्या की थी। निस्सन्देह, हम नहीं जानतीं कि इस कालिय नाग को ऐसा अवसर किस तरह प्राप्त हुआ।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.16.36) का है जिसे कालिय नाग की पत्नियों ने कहा था।

आपन-माधुर्ये हरे आपनार मन ।

आपना आपनि चाहे करिते आलिङ्गन ॥ 148॥

आपन-अपनी; माधुर्ये-मधुरता से; हरे-हरते हैं; आपना-अपना ही; मन–मन; आपना–स्वयं; आपनि–वे; चाहे-चाहते हैं; करिते-करना; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण की मधुरता इतनी आकर्षक है कि वह स्वयं उन्हीं के मन को चुरा लेती है। इस तरह वे स्वयं अपने आपको भी आलिंगन करना चाहते हैं।"

अपरिकलित-पूर्वः कश्चमत्कार-कारी

स्फुरति मम गरीयानेष माधुर्य-पूरः ।

अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्ध-चेताः

स-रभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव ॥149॥

अपरिकलित-पूर्वः-पहले कभी अनुभव नहीं किया गया; कः-कौन; चमत्कार-कारी-चमत्कार करके; स्फुरति-प्रकट करता है; मम–मेरा; गरीयान्-अधिक श्रेष्ठ; एषः–यह; माधुर्य-पूरः-मधुरता को आधिक्य; अयम्-यह; अहम्-मैं; अपि-भी; हन्त-हाय; प्रेक्ष्य-देखकर; यम्-जिसको; लुब्ध-चेताः-मेरा मन मुग्ध हो गया; स-रभसम्-तीव्रता से; उपभोक्तुम्-भोग करने के लिए; कामये-लालसा; राधिका इव-श्रीमती राधारानी की भाँति।

अनुवाद

"द्वारका के महल के रत्नजटित खंभों में अपनी ही परछाई देखकर कृष्ण ने यह कहते हुए उसे आलिंगन करना चाहा, "हाय, मैंने इसके पूर्व इतना सुन्दर व्यक्ति नहीं देखा। यह कौन है? इसे देखकर ही मैं श्रीमती राधारानी के समान इसका आलिंगन करने को उत्सुक हो रहा हूँ।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत ललित-माधव (8.34) से लिया गया है।

एइ त' सङ्क्षेपे कहिल कृष्णेर स्वरूप ।

एबे सङ्क्षेपे कहि शुन राधा-तत्त्व-रूप ॥ 150॥

एइ त'-इस प्रकार; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिल-मैंने कहा है; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; स्वरूप-स्वरूप; एबे–अब; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहि-मैं कहूँगा; शुन-कृपया सुनो; राधा-श्रीमती राधासनी की; तत्त्व-रूप-वास्तविक स्थिति।

अनुवाद

तब श्री रामानन्द राय ने कहा, "इस तरह मैंने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदि स्वरूप को संक्षेप में कहा है। अब मैं श्रीमती राधारानी की स्थिति का वर्णन करूँगा।"

कृष्णेर अनन्त-शक्ति, ताते तिन—प्रधान ।

'चिच्छक्ति', 'माया-शक्ति', 'जीव-शक्ति'-नाम ॥151॥

कृष्णेर- भगवान् कृष्ण की; अनन्त-शक्ति-अनन्त शक्तियाँ; ताते-उसमें; तिन-तीन; प्रधान-प्रधान; चित्-शक्ति-आध्यात्मिक (चित्) शक्ति; माया-शक्ति-माया शक्ति; जीव-शक्ति-तटस्था शक्ति अथवा जीव; नाम-नामक।

अनुवाद

"श्रीकृष्ण की अनन्त शक्तियाँ हैं, जिन्हें तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है। ये हैं- आध्यात्मिक शक्ति, भौतिक शक्ति तथा तटस्था शक्ति जो जीवों के नाम से विख्यात है।"

'अन्तरङ्गा', 'बहिरङ्गा', 'तटस्था' कहि यारे ।

अन्तरङ्गा 'स्वरूप-शक्ति'—सबार उपरे ॥152॥

अन्तरङ्गा-अन्तरंगा; बहिरङ्गा–बहिरंगा; तट-स्था-तटस्था; कहि-हम कहते हैं; यारे-जिनको; अन्तरङ्गा–अन्तरंगा शक्ति; स्वरूप-शक्ति-स्वरूप शक्ति; सबार उपरे-सबसे ऊपर।

अनुवाद

"दूसरे शब्दों में, अन्तरंगा, बहिरंगा तथा तटस्था—ये सब भगवान् की शक्तियाँ हैं, किन्तु अन्तरंगा शक्ति भगवान् की निजी शक्ति है और अन्य दो से श्रेष्ठ है।"

विष्णु-शक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथा परा ।

अविद्या-कर्म-संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥153॥

विष्णु-शक्तिः-विष्णु शक्ति; परा-आध्यात्मिक प्रोक्ता–कही गई है; क्षेत्रज्ञ-आख्या-क्षेत्रज्ञा नामक; तथा–तथा; परा-परा; अविद्या-अज्ञान; कर्म-सकाम कर्म; संज्ञा-संज्ञा; अन्या–अन्य; तृतीया-तीसरी; शक्तिः–शक्ति; इष्यते—इस तरह जानी जाती है।

अनुवाद

"भगवान् विष्णु की आदि शक्ति श्रेष्ठ अर्थात् आध्यात्मिक है। जीव वास्तव में इसी श्रेष्ठ शक्ति से सम्बन्धित है; किन्तु एक अन्य शक्ति भी है, जो भौतिक शक्ति कहलाती है। यह तीसरी शक्ति अज्ञान से भरी है।"

तात्पर्य

यह श्लोक विष्णु पुराण (6.7.61) का है।

सच्चिदानन्द-मय कृष्णेर स्वरूप ।

अतएव स्वरूप-शक्ति हय तिन रूप ॥ 154॥

सत्-चित्-आनन्द-मय-सत् चित आनन्दमय; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; स्वरूप-वास्तविक दिव्य रूप; अतएव–अतएव; स्वरूप-शक्ति-उनकी आध्यात्मिक निजी शक्ति; हय-है; तिन रूप-तीन रूप।

अनुवाद

"मूलतः भगवान् कृष्ण सच्चिदानन्द-विग्रह अर्थात् शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द के दिव्य रूप हैं, अतएव उनकी निजी शक्ति–अन्तरंगा शक्ति–के तीन विविध रूप हैं।"

आनन्दांशे 'ह्लादिनी', सदंशे 'सन्धिनी' ।

चिदंशे 'सम्वित्', यारे ज्ञान करि' मानि ॥ 155॥

आनन्द-अंशे-आनन्द में; ह्लादिनी–ह्लादिनी शक्ति; सत्-अंशे-शाश्वत रूप में; सन्धिनी–सन्धिनी (सर्जनात्मक) शक्ति; चित्-अंशे–ज्ञान रूप में; सम्वित्-सम्वित् शक्ति; यारे-जो; ज्ञान-ज्ञान; करि'-मानकर; मानि-मैं स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

"ह्लादिनी उनका आनन्द पक्ष है, सन्धिनी उनका शाश्वतता पक्ष है और सम्वित् ज्ञान पक्ष है।"

ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित्त्वय्येका सर्व-संश्रये ।

ह्लाद-ताप-करी मिश्रा त्वयि नो गुण-वर्जिते ॥ 156॥

ह्लादिनी-ह्लादिनी, जो आनन्द का सृजन करती है; सन्धिनी-आस्तित्व शक्ति; सम्वित्-ज्ञान की शक्ति; त्वयि-आपकी; एका मुख्य आन्तरिक शक्ति; सर्व-संश्रये-आप सब शक्तियों के आगार हैं; ह्लाद-आनन्द; ताप-करी-दुःख पीड़ा का सर्जन करने वाली; मिश्रा-मिश्रित; त्वयि-आपको; न उ-कभी नहीं; गुण-वर्जिते-आप, पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप समस्त दिव्य शक्तियों के दिव्य आगार हैं। आपकी ह्लादिनी (आनन्द देने वाली शक्ति), सन्धिनी (अस्तित्व शक्ति) तथा सम्वित् (ज्ञान शक्ति) शक्तियाँ वास्तव में आपकी एक ही अन्तरंगा शक्ति हैं। बद्ध आत्मा, आध्यात्मिक होते हुए भी कभी हर्ष का अनुभव करता है, तो कभी पीड़ा का और कभी हर्ष और पीड़ा दोनों के मिश्रण का। ऐसा पदार्थ का स्पर्श होने से होता है। किन्तु आप समस्त भौतिक गुणों से परे हैं; अतएव ये गुण आप में नहीं पाये जाते। आपकी परा आध्यात्मिक शक्ति पूर्णतया दिव्य है। आपके लिए सापेक्ष हर्ष, पीड़ा या हर्षमिश्रित पीड़ा जैसी कोई वस्तु नहीं होती।"

तात्पर्य

यह श्लोक विष्णु पुराण (1.12.69) का है।

कृष्णके आह्लादे, ता'ते नाम—'ह्लादिनी' ।

सेइ शक्ति-द्वारे सुख आस्वादे आपनि ॥ 157॥

कृष्णके-कृष्ण को; आह्लादे-आनन्द देती है; ता'ते-अतएव; नाम-नाम; ह्लादिनी–ह्लादिनी शक्ति; सेइ शक्ति-उसी शक्ति; द्वारे द्वारा; सुख-सुख; आस्वादे-आस्वादन करते हैं; आपनि-भगवान् कृष्ण स्वयं।

अनुवाद

“ह्लादिनी शक्ति कृष्ण को दिव्य आनन्द प्रदान करती है। इसी क्लादिनी शक्ति के माध्यम से कृष्ण समस्त आध्यात्मिक आनन्द का स्वयं आस्वादन करते हैं।”

सुख-रूप कृष्ण करे सुख आस्वादन ।

भक्त-गणे सुख दिते ‘ह्लादिनी’—कारण ॥ 158 ॥

सुख-रूप-सुख की मूर्ति; कृष्ण- भगवान् कृष्ण; करे-करते हैं; सुख-सुख; आस्वादन–आस्वादन; भक्त-गणे-भक्तों को; सुख-सुख; दिते-देने के लिए; ह्लादिनी-ह्लादिनी शक्ति; कारण कारण।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण मूर्तिमान सुख होते हुए भी सभी प्रकार के दिव्य सुख का आस्वादन करते हैं। उनके शुद्ध भक्तों द्वारा आस्वादन किया गया सुख भी उनकी ह्लादिनी शक्ति से प्रकट होता है।”

ह्लादिनीर सार अंश, तार ‘प्रेम’ नाम ।

आनन्द-चिन्मय-रस प्रेमेर आख्यान ॥ 159॥

ह्लादिनीर-ह्लादिनी शक्ति का; सार-सार; अंश-भाग; तार–इसका; प्रेम-भगवत्प्रेम; नाम-नाम; आनन्द–आनन्द; चित्-मय-रस-आध्यात्मिक रस का स्तर; प्रेमेर-भगवत्प्रेम की; आख्यान-व्याख्या।

अनुवाद

“इस क्लादिनी शक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश भगवत्प्रेम है। फलस्वरूप भगवत्प्रेम की व्याख्या भी आनन्द से पूर्ण दिव्य रस है।”

प्रेमेर परम-सार ‘महाभाव’ जानि ।

सेइ महाभाव-रूपा राधा-ठाकुराणी ॥ 160॥

प्रेमेर-भगवत्प्रेम का; परम-सार–परम सार; महा-भाव-दिव्य आनन्द जिसका नाम ‘महाभाव’ है; जानि-हम जानते हैं; सेइ-वह; महा-भाव-रूपा–महाभाव दिव्य आनन्द का स्वरूप; राधा-ठाकुराणी-श्रीमती राधारानी।

अनुवाद

“भगवत्प्रेम का सार अंश महाभाव अर्थात् दिव्य आह्लाद कहलाता है और इस महाभाव का प्रतिनिधित्व करने वाली हैं श्रीमती राधारानी।”

तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वथाधिका ।

महाभाव-स्वरूपेयं गुणैरतिवरीयसी ॥ 161॥

तयोः–उनका; अपि-तभी; उभयोः-दोनों (चन्द्रावली तथा राधारानी); मध्ये-मध्य में; राधिका–श्रीमती राधारानी; सर्वथा-सबसे; अधिका-अधिक; महा-भाव-स्वरूपा–महाभाव स्वरूपा; इयम्-यह; गुणैः-सद्गुणों से युक्त; अतिवरीयसी-सर्वोत्तम।

अनुवाद

“वृन्दावन की गोपियों में श्रीमती राधारानी तथा एक अन्य गोपी प्रमुख मानी जाती हैं। किन्तु जब हम गोपियों की परस्पर तुलना करते हैं, तो ऐसा लगता है कि श्रीमती राधारानी सबसे महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनके असली स्वरूप से सर्वोत्तम प्रेमभाव व्यक्त होता है। अन्य गोपियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला प्रेमभाव श्रीमती राधारानी के प्रेमभावे की बराबरी नहीं कर सकता।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत उज्ज्वल नीलमणि (4.3) से लिया गया है।

प्रेमेर ‘स्वरूप-देह’—प्रेम-विभावित ।

कृष्णेर प्रेयसी-श्रेष्ठा जगते विदित ॥ 162॥

प्रेमेर-भगवत्प्रेम; स्वरूप-देह-वास्तविक शरीर; प्रेम-भगवत्प्रेम से; विभावित-प्रभावित; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; प्रेयसी-प्रिय सखियों में; श्रेष्ठा-श्रेष्ठ; जगते सारे जगत् में; विदित-प्रसिद्ध हैं।

अनुवाद

“श्रीमती राधारानी का शरीर भगवत्प्रेम का वास्तविक रूपान्तर है। वे कृष्ण की सर्वाधिक प्रिय संगिनी हैं, जो सारे जगत् में सुप्रसिद्ध हैं।”

आनन्द-चिन्मय-रस-प्रतिभाविताभिस्

ताभिर्य एव निज-रूपतया कलाभिः ।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्म-भूतो

गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥ 163॥

आनन्द–आनन्द; चित्-ज्ञान; मय–युक्त; रस-रस; प्रति-प्रतिक्षण; भावितााभिः-जिसमें डूबे रहते हैं; ताभिः–उनसे; यः-जो; एव–अवश्य; निज-रूपतया-अपने निजी रूप से; कलाभिः-जो उनकी ह्लादिनी शक्ति की कलाओं के अंग हैं; गोलोके–गोलोक वृन्दावन में; एव–निस्सन्देह; निवसति–निवास करते हैं; अखिल-आत्म-सबके आत्मा; भूतः-जो हैं; गोविन्दम्-भगवान् गोविन्द; आदि-पुरुषम्-आदि पुरुष; तम्-उनकी; अहम्-मैं; भजामि-पूजा करता हूँ।

अनुवाद

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो अपने गोलोक-धाम में राधा के साथ निवास करते हैं। ये राधा उनके आध्यात्मिक स्वरूप के समान हैं, और आनन्ददायिनी ह्लादिनी-शक्ति स्वरूपा हैं। उनकी अन्तरंग सखियाँ उनके स्वरूप के विस्तार रूप हैं, और सदैव आनन्दमय रस से परिव्याप्त रहती हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक ब्रह्म-संहिता (5.37) से लिया गया है।

सेइ महाभाव हय 'चिन्तामणि-सार' ।

कृष्ण-वाञ्छा पूर्ण करे एइ कार्य ताँर ॥164॥

सेइ-वह; महा-भाव-परम आनन्द; हय-है; चिन्तामणि-सार–आध्यात्मिक जीवन का सार; कृष्ण-वाञ्छा-भगवान् कृष्ण की सभी इच्छाएँ; पूर्ण करे-पूर्ण करता है; एइ-यह; कार्य-कार्य; ताँर–उनका।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी का वह महाभाव ही आध्यात्मिक जीवन का सार है। उनका एकमात्र कार्य कृष्ण की समस्त इच्छाओं को पूर्ण करना रहता।"

‘महाभाव-चिन्तामणि’ राधार स्वरूप ।

ललितादि सखी—ताँर काय-व्यूह-रूप ॥ 165 ॥

महा-भाव-सर्वोच्च आध्यात्मिक आनन्द; चिन्ता-मणि-पारस पत्थर; राधार स्वरूप-श्रीमती राधारानी का दिव्य रूप; ललिता-आदि सखी–ललिता आदि सखियाँ; ताँर काय-व्यूह-रूप-उनके दिव्य शरीर की विस्तार।

अनुवाद

“श्रीमती राधारानी सर्वोत्तम आध्यात्मिक मणि हैं और अन्य गोपियाँ-यथा ललिता, विशाखा आदि-उनके आध्यात्मिक शरीर के विस्तार रूप हैं।”

राधा-प्रति कृष्ण-स्नेह—सुगन्धि उद्वर्तन ।

ता’ते अति सुगन्धि देह—उज्वल-वरण ॥ 166 ॥

राधा-प्रति-श्रीमती राधारानी के प्रति; कृष्ण-स्नेह-भगवान् कृष्ण का प्रेम; सुगन्धि उद्वर्तन–सुगन्धित लेप; ताते-उसमें; अति-अत्यन्त; सु-गन्धि–सुगन्धित; देह-शरीर; उज्वल-चमकदार; वरण-कान्ति।

अनुवाद

“श्रीमती राधारानी का दिव्य शरीर उज्वल कान्ति वाला है, तथा समस्त दिव्य सुगन्धियों से पूर्ण है। उनके प्रति कृष्ण का स्नेह सुगन्धित उबटन के समान है।”

तात्पर्य

सुगन्धि उद्वर्तन अनेक सुगन्धित पदार्थों तथा सुगन्धित तेलों से बने उबटन का सूचक है। इस उबटन को सारे शरीर में लगाने से शरीर का मैल तथा पसीना मिट जाता है। श्रीमती राधारानी का शरीर स्वत: सुगन्धित है, किन्तु जब कृष्ण-स्नेह रूपी उबटन से उनके शरीर का लेप किया जाता है, तो उनका शरीर दुगुना सुगन्धित तथा उज्ज्वल कान्ति से युक्त हो जाता है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी श्रीमती राधारानी के दिव्य शरीर का वर्णन यहीं से प्रारम्भ करते हैं। श्लोक 165-181 का यह विवरण श्री रघुनाथ दास गोस्वामी कृत प्रेमाम्भोज-मरन्द नामक पुस्तक पर आधारित है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने मूल संस्कृत का अनुवाद दिया है, जो इस प्रकार है :

“कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम दिव्य भाव से पूर्ण है। यह उज्वल मणि की तरह प्रतीत होता है। ऐसे दिव्य मणि से प्रकाशित राधारानी का शरीर सुगन्धि तथा कुमकुम से सज्जित किया जाता है। प्रात:काल उनके शरीर को करुणा के अमृत से नहलाया जाता है, दोपहर के बाद यौवन के अमृत से, और सन्ध्या-समय साक्षात् कान्ति के अमृत से नहलाया जाता है। इस तरह स्नान करने से उनका शरीर चिन्तामणि रत्न की तरह उज्ज्वल हो जाता है। वे विविध प्रकार के रेशमी वस्त्र पहनती हैं, जिनमें से एक है उनकी सहज लज्जा।

“साक्षात् सौन्दर्य रूपी लाल कुमकुम और माधुर्य रस रूपी श्याम कस्तूरी से सजाने पर उनका सौन्दर्य और भी निखर उठता है। इस तरह उनका शरीर विविध रंगों से सजाया जाता है। उनके आभूषण मानो विविध भावों के लक्षण हों यथा-कम्पन, अश्रु, हर्ष, स्तम्भित होना, स्वेद, गद् गद् वाणी, शारीरिक लालिमा, उन्माद तथा आलस्य। इस तरह उनका सारा शरीर इन नौ मणियों से अलंकृत रहता है। इस पर भी उनके शरीर का सौन्दर्य उनके दिव्य गुणों के कारण बढ़ जाता है, जो उनके शरीर पर फूलों की माला के रूप में रहते है। कृष्ण के प्रति प्रेम का भाव धीर तथा अधीर कहलाता है। ऐसा भाव श्रीमती राधारानी के शरीर की ओढ़नी है, जिसे कपूर से सुसज्जित किया जाता है। कृष्ण के प्रति उनका दिव्य क्रोध मानो उनके सिर के केश की सजावट के रूप में मूर्तिमान हुआ है, और उनका सौभाग्य रूपी तिलक उनके सुन्दर मस्तक पर सुशोभित है। श्रीमती राधारानी के कान के झुमके कृष्ण के पवित्र नाम हैं तथा उन नामों का और यश का श्रवण हैं। उनके अधर कृष्ण के प्रेम भाव रूपी ताम्बूल के कारण सदैव लाल रहते हैं। उनकी आँखों में लगा काजल कृष्ण-प्रेम के कारण उत्पन्न उनकी चालाकी है। कृष्ण के साथ उनका हास-परिहास और मृदु हास्य वह कपूर है, जिससे वे सुगन्धित बनी रहती हैं। वे अपने कमरे में गर्व की सुगन्धि के सहित सोती हैं, और जब वे बिस्तर पर लेटती हैं, तब उनके प्रेममय भावावेश की दिव्य विविधता उनके विरह रूपी हार के मध्य लाकेट के समान है। उनके दिव्य स्तन कृष्ण के प्रति स्नेह तथा रोष रूपी साड़ी से ढके रहते हैं। उनके पास कच्छपीवीणा नामक एक वाद्य है, जो यश तथा सौभाग्य तुल्य है और यह अन्य गोपियों के मुखों तथा स्तनों को वास्तव में सुखाने वाला है। वे हमेशा अपने दोनों हाथ अपनी गोपी सखी के कन्धे पर रखती हैं, जो उनके यौवनपूर्ण सौन्दर्य के समान है और वे अनेक दिव्य गुणों से सम्पन्न होते हुए भी कृष्ण रूपी कामदेव से पीड़ित रहती हैं। इस तरह वे पराजित हो जाती हैं। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी अपने मुँह में तिनका दबाकर श्रीमती राधारानी को सादर नमस्कार करते हैं। वे स्तुति करते हैं, “हे गान्धर्विका, श्रीमती राधारानी, जिस प्रकार भगवान् कृष्ण किसी शरणागत आत्मा को कभी नहीं ठुकराते, उसी प्रकार कृपया आप भी मुझे नहीं ठुकरायें।” यही प्रेमाम्भोज-मरन्द का अनुवाद-सार है, जिसे कविराज गोस्वामी ने उद्धृत किया है।

कारुण्यामृत-धाराय स्नान प्रथम ।

तारुण्यामृत-धाराय स्नान मध्यम ॥ 167॥

कारुण्य-अमृत-दया के अमृत की; धाराय-धारा में; स्नान-स्नान; प्रथम-प्रथम; तारुण्य-अमृत-युवावस्था का अमृत; धाराय-धारा में; स्नान-स्नान; मध्यम-मध्य में।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी पहला स्नान करुणा रूपी अमृत की धारा में करती हैं, और दूसरा स्नान युवावस्था के अमृत में करती हैं।"

तात्पर्य

श्रीमती राधारानी सर्वप्रथम अपने शरीर में कृष्ण के स्नेह का उबटन लगाती हैं। तब वे करुणा रूपी जल में स्नान करती हैं। पौगण्ड अवस्था (5-10 वर्ष की अवस्था) पार करने पर श्रीमती राधारानी सर्वप्रथम करुणा के रूप में प्रकट होती हैं। दूसरा स्नान दोपहर के समय तारुण्यामृत अर्थात् युवावस्था के अमृत में किया जाता है। यह उनकी नवीन तरुणावस्था की वास्तविक अभिव्यक्ति है।

लावण्यामृत-धाराय तदुपरि स्नान ।

निज-लज्जा-श्याम-पट्टसाटि-परिधान ॥ 168॥

लावण्य-अमृत-धाराय-शारीरिक चमक के अमृत की धारा; तत्-उपरि-उसके ऊपर; स्नान-स्नान; निज-निजी; लज्जा-लज्जा; श्याम-श्याम वर्ण का; पट्ट-रेशमी; साटि-वस्त्र; परिधान-पहनकर।

अनुवाद

"दोपहर के स्नान के बाद श्रीमती राधारानी शारीरिक कान्ति के अमृत से पुनः स्नान करती हैं और तब लज्जा रूपी वस्त्र धारण करती हैं, जो उनकी काली रेशमी साड़ी होती है।"

तात्पर्य

दूसरे स्नानों के अतिरिक्त दोपहर के बाद किया जाने वाला स्नान पूर्ण सौन्दर्य के अमृत में किया जाता है। यह अमृत सौन्दर्य तथा कान्ति के निजी गुणों को बताने वाला है। इस तरह विभिन्न प्रकार के जलों में तीन स्नान किये जाते हैं। तत्पश्चात् श्रीमती राधारानी दो प्रकार के वस्त्र पहनती हैं-अधोवस्त्र तथा ऊपरी वस्त्र। ऊपरी वस्त्र गुलाबी रंग का है, जो कृष्ण के प्रति उनकी अनुरक्ति और आकर्षण है, और अधोवस्त्र जो काले रंग की रेशमी साड़ी है, जो उनकी लज्जा है।

कृष्ण-अनुराग द्वितीय अरुण-वसन ।

प्रणय-मान-कञ्चुलिकाय वक्ष आच्छादन ॥ 169॥

कृष्ण-अनुराग-कृष्ण के लिए आकर्षण; द्वितीय-दूसरा; अरुण-वसन-गुलाबी वस्त्र; प्रणय-प्रेम के; मान-और क्रोध; कञ्चलिकाय-छोटे ब्लाउज से; वक्ष-वक्ष; आच्छादन-ढंकना।

अनुवाद

"कृष्ण के प्रति श्रीमती राधारानी का स्नेह उनका ऊपरी वस्त्र है, जिसका रंग गुलाबी है। वे अपने स्तनों को एक दूसरे वस्त्र से ढकती हैं, जो कृष्ण के प्रति स्नेह तथा रोष से युक्त होता है।"

सौन्दर्य—कुङ्कम, सखी-प्रणय—चन्दन ।

स्मित-कान्ति—कर्पूर, तिने—अङ्गे विलेपन ॥ 170॥

सौन्दर्य-उसकी व्यक्तिगत सुन्दरता; कुङ्कम-कुंकुम; सखी-प्रणय-अपनी सखियों के लिए उनका प्रेम; चन्दन–चन्दन का लेप; स्मित-कान्ति–उनकी मुस्कान की मधुरता; कर्पूर-कपूर; तिने–इन तीन वस्तुओं से; अङ्गे–शरीर पर; विलेपन-लेप।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के निजी सौन्दर्य की उपमा कुंकुम नामक लाल चूर्ण से की जाती है। अपनी सखियों के प्रति उनका स्नेह चन्दन-लेप की तरह है, और उनकी हँसी की मधुरता कपूर के समान है। इन सबको मिलाकर उनके शरीर पर लेप किया जाता है।"

कृष्णेर उज्ज्वल-रस—मृगमद-भर ।

सेइ मृगमदे विचित्रित कलेवर ॥ 171॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; उज्वल-रस-माधुर्य रस; मृग-मद-कस्तूरी का; भर-प्रचुर; सेइ-वह; मृग-मदे-कस्तूरी की सुगन्ध से बना; विचित्रित–सुशोभित; कलेवर-उनका सारा शरीर।

अनुवाद

"कृष्ण के प्रति माधुर्य प्रेम मानो कस्तूरी की प्रचुरता है। इसी कस्तूरी से राधारानी का सम्पूर्ण शरीर सजाया जाता है।"

प्रच्छन्न-मान वाम्य—धम्मिल्ल-विन्यास ।

'धीराधीरात्मक' गुण—अङ्गे पट-वास ॥ 172॥

प्रच्छन्न-ढका हुआ; मान-क्रोध; वाम्य-निपुणता; धम्मिल्ल-बालों के गुच्छों को; विन्यास-संवारना; धीर-अधीर-आत्मक-द्वेषपूर्ण क्रोध जो कभी अभिव्यक्त किया जाता है और कभी दबा लिया जाता है; गुण-गुण; अङ्गे–शरीर पर; पट-वास-रेशमी कपड़े से ढकना।

अनुवाद

प्रच्छन्न मान तथा ढका हुआ क्रोध उनके केश विन्यास हैं। ईर्ष्या के कारण उत्पन्न क्रोध का गुण उनके शरीर पर पड़े रेशमी वस्त्र का आवरण है।

राग-ताम्बूल-रागे अधर उज्वल ।

प्रेम-कौटिल्य—नेत्र-युगले कजल ॥ 173॥

राग-प्रेम का; ताम्बूल-पान सूपारी के; रागे-लाल रंग से; अधर-होंठ; उज्वल-चमकदार; प्रेम-कौटिल्य-प्रेम-व्यवहार में कपट, नेत्र-युगले दोनों आँखों पर; कज्जल-काजल।

अनुवाद

"कृष्ण के प्रति उनकी अनुरक्ति उनके चमकीले होठों पर पान का लाल रंग है। उनकी प्रेम-कुटिलता उनकी आँखों में लगा काजल है।"

‘सूद्दीप्त-सात्त्विक’ भाव, हर्षादि ‘सञ्चारी’ ।

एइ सब भाव-भूषण सब-अङ्गे भरि’ ॥ 174॥

सु-उद्दीप्त-सात्त्विक भाव-दीप्तिमान सात्त्विक भाव; हर्ष-आदि-हर्ष आदि; सञ्चारी–निरन्तर उपस्थित भावावेश; एइ सब-ये सब; भाव-भाव; भूषण-आभूषण; सब-सब; अङ्गे–शरीर; भरि’-भरकर।

अनुवाद

“उनके शरीर में सजे हुए गहने दीप्तिवान सात्त्विक भाव हैं, और इन स्थायी भावों में हर्ष प्रमुख है। ये सारे भाव उनके पूरे शरीर में गहनों के समान हैं।”

‘किल-किञ्चितादि’-भाव-विंशति-भूषित ।

गुण-श्रेणी-पुष्पमाला सर्वाङ्गे पूरित ॥ 175 ॥

किल-किञ्चित-आदि-किलकिंचित आदि; भाव-भाव से; विंशति-बीस; भूषित-विभूषित; गुण-श्रेणी-उनके आकर्षक गुण; पुष्प-माला-पुष्पमाला की भाँति; सर्व-अङ्गे-सारे शरीर पर; पूरित–पूर्णरूपेण।

अनुवाद

“किलकिंचित से प्रारम्भ होने वाले बीस प्रकार के भाव-लक्षणों से उनका शरीर विभूषित है। उनके दिव्य गुणों से उनके सारे शरीर पर लटक रही फूल की माला बनी है।”

तात्पर्य

किलकिंचित आदि बीस विभिन्न भावों का वर्णन इस प्रकार है- भाव (भाव), हाव (चेष्टा) तथा हेला (उपेक्षा) शरीर से सम्बन्धित होते हैं। आत्मा से सम्बन्धित भाव शोभा (सौन्दर्य), कान्ति (कान्ति), दीप्ति (प्रभा), माधुर्य (मधुरता), प्रगल्भता (अक्खड़पन), औदार्य (उदारता) तथा धैर्य (धीरज) हैं और स्वभाव से सम्बन्धित भाव हैं-लीला (लीला), विलास (आनन्दभोग), विच्छित्ति (सम्बन्ध तोड़ना) तथा विभ्रम (भ्रमित होना)। किलकिंचित, मोट्टायित तथा कुट्टमित भी ऐसे ही भाव हैं।

फूल की माला श्रीमती राधारानी के गुणों को प्रदर्शित करती है। यह माला तीन भागों में बँटी है-मानसिक, मौखिक तथा शारीरिक। उनके क्षमा तथा करुणा के गुण मानसिक हैं। उनकी कर्णप्रिय सुमधुर बातें मौखिक हैं और आयु, सौन्दर्य, कान्ति तथा लावण्य-ये उनके शारीरिक गुण हैं।

सौभाग्य-तिलक चारु-ललाटे उज्वल ।

प्रेम-वैचित्य—रत्न, हृदय—तरल ॥ 176 ॥

सौभाग्य-तिलक-सौभाग्य का तिलक; चारु–सुन्दर; ललाटे-ललाट पर; उज्वल-उज्जवल; प्रेम-भगवत्प्रेम की; वैचित्य-विविधता; रत्न-रत्न; हृदय-हृदय; तरल-लाकेट।

अनुवाद

"उनके सुन्दर चौड़े मस्तक पर सौभाग्य का तिलक है। उनके विविध प्रेम-व्यवहार मणि हैं और उनका हृदय लाकेट है।"

मध्य-वयस, सखी-स्कन्धे कर-न्यास ।

कृष्णलीला-मनोवृत्ति-सखी आश-पाश ॥ 177॥

मध्य-वयस-किशोरावस्था; सखी-सखी के; स्कन्धे-कन्धे पर; कर-हाथ; न्यास-रखकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण की; लीला-लीलाएँ; मनः-मन की; वृत्ति-गतिविधियाँ; सखी-गोपियाँ; आश-पाश–इधर उधर।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी की गोपी सखियाँ उनकी मानसिक क्रियाएँ हैं, जो कृष्ण-लीलाओं पर ही केन्द्रित रहती हैं। वे अपना हाथ युवावस्था की प्रतीक अपनी सखी के कन्धे पर रखती हैं।"

तात्पर्य

राधारानी की आठ सखियाँ कृष्ण-लीला से सम्बन्धित आनन्द की विविध प्रकार हैं। श्रीकृष्ण की इन लीलाओं के साथ के अन्य कार्यकलाप गोपिकाओं की सहायिकाओं की सूचक हैं।

निजाङ्ग-सौरभालये गर्व-पर्यङ्क ।

ता'ते वसि' आछे, सदा चिन्ते कृष्ण-सङ्ग ॥ 178॥

निज-अङ्ग-उनको शरीर; सौरभ-आलये-सुगन्ध के धाम में; गर्व गर्व; पर्यङ्क-सेज; ताते-उस पर; वसि'– बैठकर; आछे-है; सदा-सदा; चिन्ते-सोचती हैं; कृष्ण-सङ्ग-कृष्ण की संगति।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी की सेज साक्षात् गर्व है, जो उनकी शारीरिक सुगन्धि के धाम में स्थित है। वे सदैव उसमें आसीन होकर कृष्ण के संग के विषय में सोचती रहती हैं।"

कृष्ण-नाम-गुण-यश—अवतंस काणे ।

कृष्ण-नाम-गुण-यश-प्रवाह-वचने ॥ 179॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; नाम-पावन नाम; गुण-गुण; यश-यश; अवतंस-आभूषण; काणे-कान पर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; नाम-पावन नाम; गुण-गुण; यश-यश; प्रवाह-तरंगें; वचने-उनकी बातचीत में।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के कान की बालियाँ भगवान् कृष्ण के नाम, यश तथा गुणों की प्रतीक हैं। भगवान् कृष्ण के नाम, यश तथा गुणों की महिमा उनकी वाणी को आप्लावित किये रहती है।"

कृष्णके कराय श्याम-रस-मधु पान ।

निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्व-काम ॥ 180॥

कृष्णके-कृष्ण को; कराय-वे प्रेरणा देती हैं; श्याम-रस-माधुर्य-प्रेम रस की; मधु-शहद; पान-पीना; निरन्तर– निरन्तर; पूर्ण–पूर्ण; करे-करती हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; सर्व-काम-सब प्रकार की कामुक इच्छाएँ।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी कृष्ण को माधुर्य रस का मधु पीने के लिए प्रेरित करती रहती हैं। फलतः वे कृष्ण की सारी काम-वासनाओं को पूरा करने में लगी रहती हैं।"

कृष्णेर विशुद्ध-प्रेम-रत्नेर आकर ।

अनुपम-गुणगण-पूर्ण कलेवर ॥ 181॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; विशुद्ध-प्रेम-शुद्ध दिव्य प्रेम का; रत्नेर–अमूल्य रत्न की; आकर-खान; अनुपम–अनुपम; गुण-गण-गुण; पूर्ण–पूर्ण; कलेवर-दिव्य शरीर।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी कृष्ण-प्रेम रूपी अमूल्य मणियों से पूर्ण खान के सदृश हैं। उनका दिव्य शरीर अद्वितीय आध्यात्मिक गुणों से पूर्ण है।"

का कृष्णस्य प्रणय-जनि-भूः श्रीमती राधिकैका

कास्य प्रेयस्यनुपम-गुणा राधिकैका न चान्या ।

जैह्म्यं केशे दृशि तरलता निष्ठरत्वं कुचेऽस्या

वाञ्छा-पूर्त्यै प्रभवति हरे राधिकैको न चान्या ॥ 182॥

का-कौन; कृष्णस्य-भगवान् कृष्ण का; प्रणय-जनि-भूः-कृष्ण-प्रेम का जन्मस्थान; श्रीमती–सर्व सुन्दरी; राधिका-श्रीमती राधारानी; एका-अकेली; को-कौन; अस्य-उनकी; प्रेयसी-अत्यन्त प्रिय प्रेयसी; अनुपम-गुणा-अत्यन्त गुणों वाली; राधिका-श्रीमती राधारानी; एका-अकेली; न-नहीं; च-भी; अन्या-अन्य कोई; जैह्म्यम्-कपट, केशे–बालों में; दृशि-नेत्रों में; तरलता-अस्थिरता; निष्ठुरत्वम्-निष्ठुरता; कुचे स्तनों में; अस्याः-उनके; वाञ्छा-इच्छाओं की; पूर्त्यै-पूर्ति के लिए; प्रभवति-प्रकट करती हैं; हरेः- भगवान् कृष्ण के; राधिका-श्रीमती राधारानी; एका-अकेली; न-नहीं; च अन्या-और कोई।

अनुवाद

"यदि कोई पूछे कि कृष्ण-प्रेम का उद्गम कहाँ है, तो उत्तर होगा एकमात्र श्रीमती राधारानी में। कृष्ण का सर्वाधिक प्रिय मित्र कौन है? पुनः उत्तर होगा एकमात्र श्रीमती राधारानी। अन्य कोई नहीं। श्रीमती राधारानी के बाल अत्यन्त सुंघराले हैं, उनकी दोनों आँखें हमेशा चंचल रहती हैं और उनके स्तन दृढ़ हैं। चूँकि श्रीमती राधारानी में सारे दिव्य गुण प्रकट हैं, अतएव अकेले वे ही कृष्ण की सारी इच्छाएँ पूरी करने में समर्थ हैं-अन्य कोई नहीं।"

तात्पर्य

यह श्लोक कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत श्री गोविन्द लीलामृत (11.122) से लिया गया है। प्रश्नोत्तर के रूप में इस श्लोक में श्रीमती राधारानी की महिमा का वर्णन हुआ है।

याँर सौभाग्य-गुण वाञ्छे सत्यभामा ।

याँर ठाञि कला-विलास शिखे व्रज-रामा ॥183॥

याँर सौन्दर्यादि-गुण वाञ्छे लक्ष्मी-पार्वती ।

याँर पतिव्रता-धर्म वाञ्छे अरुन्धती ॥184॥

याँर–जिनका; सौभाग्य-सौभाग्य; गुण-गुण; वाञ्छे-चाहती हैं; सत्यभामा-सत्यभामा, कृष्ण की रानियों में से एक; याँर ठाञि-जिनसे; कला-विलास-चौसठ कलाएँ, शिखे-सीखती हैं; व्रज-रामा-वृन्दावन की सभी गोपियाँ; याँर–जिनका; सौन्दर्य-आदि-सौन्दर्य आदि; गुण-गुण; वाञ्छे–चाहती हैं; लक्ष्मी-भाग्य की देवी लक्ष्मी; पार्वती-शिवजी की पत्नी पार्वती; याँर–जिनका; पति-व्रता-प्रतिव्रता; धर्म-धर्म; वाञ्छे–चाहती हैं; अरुन्धती-वशिष्ठ मुनि की पत्नी अरुन्धती।

अनुवाद

"यहाँ तक कि श्रीकृष्ण की रानियों में से एक सत्यभामा भी श्रीमती राधारानी के सौभाग्य और उत्तम गुणों के लिए इच्छा करती रहती हैं। सारी गोपियाँ श्रीमती राधारानी से सजने की कला सीखती हैं और विष्णु-पत्नी लक्ष्मी तथा शिव-पत्नी पार्वती भी उनके सौन्दर्य और गुणों के लिए इच्छा करती हैं। वसिष्ठ की पतिव्रता पत्नी अरुन्धती भी श्रीमती राधारानी के पातिव्रत्य तथा धार्मिक नियमों का अनुकरण करना चाहती हैं।"

याँर सद्गुण-गणने कृष्ण ना पाय पार ।

ताँर गुण गणिबे केमने जीव छार ॥ 185॥

याँर-जिनके; सत्-गुण-सद्गुण; गणने-गिनने में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ना-नहीं; पाय-पाते हैं; पार-सीमा; ताँर-उनके; गुण-गुण; गणिबे-गिन सकता है; केमने-कैसे; जीव–एक जीव; छार–अत्यन्त तुच्छ।

अनुवाद

"स्वयं भगवान् कृष्ण भी श्रीमती राधारानी के दिव्य गुणों का पार नहीं पा सकते, तो भला तुच्छ जीव किस प्रकार उनकी गिनती कर सकता है?"

प्रभु कहे,—जानिलुँ कृष्ण-राधा-प्रेम-तत्त्व ।

शुनिते चाहिये दुँहार विलास-महत्त्व ॥ 186॥

प्रभु कहे-चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; जानिलुँ–अब मैं जान गया हूँ; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; राधा-श्रीमती राधारानी के; प्रेम-प्रेम का; तत्त्व-सत्य; शुनिते-सुनना; चाहिये-मैं चाहता हूँ; दुँहार-उन दोनों का; विलास-महत्त्व-विलास की महानता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "अब जाकर मैं राधा तथा कृष्ण के प्रेम-तत्त्व को समझ सकता हूँ। तो भी मैं सुनने का इच्छुक हूँ कि वे दोनों ऐसे प्रेम का उपभोग किस गौरवपूर्ण ढंग से करते हैं।"

राय कहे,—कृष्ण हय 'धीर-ललित' ।

निरन्तर काम-क्रीड़ा—याँहार चरित ॥ 187॥

राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; हय-हैं; धीर-ललित-ऐसे व्यक्ति जो विभिन्न गुणों से अपनी प्रेमिका को सदा नियंत्रण में रख सकते हैं; निरन्तर–निरन्तर; काम-क्रीड़ा काम क्रीड़ाएँ; याँहार–जिनका; चरित–चरित्र।

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "भगवान् कृष्ण धीरललित हैं, क्योंकि वे अपनी प्रेयसियों को सदा वश में रख सकते हैं। इस तरह उनका एकमात्र व्यापार है इन्द्रियतृप्ति का भोग करना।"

तात्पर्य

हमें यह सदैव स्मरण में रखना चाहिए कि कृष्ण की इन्द्रियतृप्ति की भौतिक जगत् की इन्द्रियतृप्ति से तुलना कभी नहीं करनी चाहिए। जैसाकि हम पहले कह चुके हैं, कृष्ण की इन्द्रियतृप्ति स्वर्ण जैसी है और उस इन्द्रियतृप्ति का जो विकृत

रूप इस भौतिक जगत् में पाया जाता है, वह लोहे के समान है। तात्पर्य यह है कि कृष्ण निर्विशेष नहीं हैं। उनमें वे सारी इच्छाएँ रहती हैं, जो इस भौतिक जगत् में विकृत रूप में प्रकट होती हैं। किन्तु उनके गुण भिन्न हैं—एक आध्यात्मिक है और दूसरा भौतिक। जिस तरह जीवन और मृत्यु में अन्तर है, उसी तरह आध्यात्मिक इन्द्रियतृप्ति और भौतिक इन्द्रियतृप्ति में अन्तर होता है।

विदग्धो नव-तारुण्यः परिहास-विशारदः ।

निश्चिन्तो धीर-ललितः स्यात्प्रायः प्रेयसी-वशः ॥188॥

विदग्धः-होशियार; नव-तारुण्यः-सदा तरूण; परिहास-परिहास में; विशारदः-निपुण; निश्चिन्तः–निश्चिन्त; धीर-ललितः–प्रेमाचार में निपुण; स्यात् है; प्रायः–प्रायः; प्रेयसी-वशः-अपनी प्रेमिकाओं को नियन्त्रण में रखने वाले।

अनुवाद

"जो व्यक्ति अत्यन्त चालाक होता है, सदैव तरुण रहता है, परिहास करने में दक्ष होता है, चिन्तारहित होता है और जो अपनी प्रेयसियों को सदैव वश में रखता है, वह धीरललित कहलाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृत सिन्धु (2.1.230) का है।

रात्रि-दिन कुञ्जे क्रीड़ा करे राधा-सङ्गे ।

कैशोर वयस सफल कैल क्रीड़ा-रङ्गे ॥189॥

रात्रि-दिन-दिन-रात; कुञ्जे-वृन्दावन की कुंजों में; क्रीड़ा-क्रीड़ा; करे-करते हैं; राधा-सङ्गे-राधारानी के साथ; कैशोर-कैशोरावस्था; वयस-आयु; स-फल-सफल; कैल–किया; क्रीड़ा-रङ्गे–विविध लीलाओं में आनन्द लेकर।

अनुवाद

"भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावन के कुंजों में श्रीमती राधारानी के सात दिन-रात क्रीड़ा करते हैं। इस तरह उनकी कैशोर अवस्था राधारानी के साथ क्रीड़ा में सफल होती है।"

वाचा सूचित-शर्वरी-रति-कला-प्रागल्भ्यया राधिकां

व्रीड़ा-कुञ्चित-लोचनां विरचयन्नग्रे सखीनामसौ ।

तद्वक्षोरुह-चित्र-केलि-मकरी-पाण्डित्य-पारं गतः

कैशोरं सफली-करोति कलयन्कुञ्जे विहारं हरिः ॥ 190॥

वाचा-वाणी से; सूचित-बताते हुए; शर्वरी–रात्रि की; रति-कामुक लीलाओं में; कला-भाग का; प्रागल्भ्यया-धृष्टता से; राधिकाम्–श्रीमती राधारानी; व्रीड़ा-लज्जा से; कुञ्चित-लोचनाम्-अपने नेत्र बन्द करके; विरचयन्–बनाकर; अग्रे-आगे; सखीनाम्-अपनी सखियों के; असौ–वह; तत्-उनके; वक्षः-रुह-वक्षस्थल पर; चित्र-केलि-विविध क्रीड़ाएँ; मकरी-मछली का चित्र बनाना; पाण्डित्य-दक्षता की; पारम्-सीमा; गतः-जो पहुँच गये; कैशोरम्-किशोरावस्था; स-फली-करोति-सफल करते हैं; कलयन्-करते हुए; कुञ्ज–कुंजों में; विहारम्-विहार; हरिः- भगवान्।

अनुवाद

“इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण ने गत रात्रि की रति-क्रीड़ा का वर्णन किया। इससे राधारानी ने लज्जावश अपनी आँखें बन्द कर लीं। इस अवसर का लाभ उठाते हुए श्रीकृष्ण ने उनके स्तनों पर तरह-तरह की मछलियाँ चित्रित कर दीं। इस तरह वे समस्त गोपियों के लिए अत्यन्त कुशल चित्रकार बन गये। ऐसी लीलाओं में भगवान् ने अपनी कैशोर अवस्था का पूरी तरह भोग किया।”

तात्पर्य

यह श्लोक भी भक्तिरसामृत सिन्धु (2.1.119) का है।

प्रभु कहे,—एहो हय, आगे कह आर ।

राय कहे,—ईहा वइ बुद्धि-गति नाहि आर ॥ 191॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; एहो हय–यह सब ठीक है; आगे कह आर-आगे और कुछ कहो; राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; इहा वइ–इसके सिवाय; बुद्धि-गति–मेरी बुद्धि की गति; नाहि नहीं है; आर-और अधिक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यह तो ठीक है, किन्तु और आगे कहिये।" तब रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मैं नहीं समझता कि मेरी बुद्धि इससे आगे जा सकती है।"

येबा 'प्रेम-विलास-विवर्त' एक हय ।

ताहा शुनि' तोमार सुख हय, कि ना हय ॥ 192॥

येबा-जो कुछ; प्रेम-विलास-विवर्त–प्रेमाचार के आनन्द में उत्पन्न भ्रम; एक हय-एक है; ताहा-वह; शुनि'–सुनकर; तोमार-आपको; सुख-सुख; हय-है; कि-अथवा; ना-नहीं; हय-है।

अनुवाद

तब रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाया, "प्रेम विलास विवर्त नामक एक अन्य विषय है। चाहें तो आप उसे मुझसे सुन सकते हैं, किन्तु मैं कह नहीं सकता कि इससे आप सुखी होंगे अथवा नहीं।"

तात्पर्य

ये बातें हमारे ज्ञानवर्धन के लिए दी गई हैं, जो श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के अमृत-प्रवाह-भाष्य के अनुसार हैं। संक्षेप में श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा, "हे रामानन्द, आपने श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण के जीवन-लक्ष्य और लीलाओं के विषय में जो वर्णन किया, वह निश्चित रूप से सत्य है। किन्तु फिर भी, यदि कुछ और हो तो उसे भी कहें।" इस पर रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मेरी समझ में तो अब और कुछ कहने को शेष नहीं रहा, किन्तु एक विषय और है, जिसे मैं आपको बतला सकता हूँ और वह है प्रेमविलासविवर्त। किन्तु मैं कह नहीं सकता कि इससे आपको सुख मिलेगा अथवा नहीं।"

एत बलि' आपन-कृत गीत एक गाहिल ।

प्रेमे प्रभु स्व-हस्ते ताँर मुख आच्छादिल ॥ 193॥

एत बलि'-यह कहकर; आपन-कृत-अपना रचित; गीत-गीत; एक-एक; गाहिल–गाया; प्रेमे-भगवत्-प्रेम में प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; स्व-हस्ते-अपने हाथ से; ताँर-उनका (रामानन्द राय का); मुख-मुख; आच्छादिल-ढक लिया।

अनुवाद

यह कहकर रामानन्द राय ने स्वरचित एक गीत गाना शुरू किया, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने भावावेश में आकर तुरन्त ही अपने हाथ से रामानन्द राय का मुँह बन्द कर दिया।

तात्पर्य

अब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के बीच जिन विषयों की चर्चा होने जा रही है, उन्हें न तो भौतिकतावादी कवि समझ सकता है, न उन्हें बुद्धि या भौतिक अनुभूति से समझा जा सकता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि आध्यात्मिक रस की अनुभूति केवल तभी हो सकती है, जब मनुष्य सत्त्वगुण से ऊपर दिव्य पद पर स्थित हो। यह पद विशुद्ध सत्त्व कहलाता है (सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव-शब्दितम्)। विशुद्ध सत्त्व की अनुभूति भौतिक जगत् के क्षेत्र से परे है और इसकी अनुभूति न तो शारीरिक इन्द्रियों द्वारा हो पाती है, न मानसिक चिन्तन द्वारा। स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म मन के साथ हमारी पहचान आध्यात्मिक ज्ञान से भिन्न होती है। चूँकि बुद्धि तथा मन भौतिक हैं, अतएव श्री राधा-कृष्ण का प्रेम उनकी अनुभूति से परे है। सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्-जब हम सारी भौतिक उपाधियों से मुक्त हो जाते हैं और हमारी इन्द्रियाँ भक्ति-विधि द्वारा पूर्णतया निर्मल हो जाती हैं, तब हम परम सत्य के इन्द्रिय कार्यों को समझ सकते हैं (हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते)।

आध्यात्मिक इन्द्रियाँ भौतिक इन्द्रियों से परे हैं। भौतिकतावादी किसी भौतिक विविधता का निषेध ही सोच सकता है; वह आध्यात्मिक विविधता नहीं समझ सकता। वह इतना ही सोच सकता है कि आध्यात्मिक विविधता भौतिक विविधता की विरोधी मात्र है, और वह निषेध या शून्य है। किन्तु ऐसा विचार आध्यात्मिक अनुभूति के पास भी नहीं फटक पाता। स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म मन के अश्चर्यजनक कार्यकलाप सदैव अपूर्ण रहते हैं। वे आध्यात्मिक ज्ञान की कोटि से निम्न और क्षणभंगुर हैं। आध्यात्मिक रस सदैव अद्भुत होता है और पूर्ण, शुद्ध, नित्यमुक्त (अर्थात् सारी भौतिक धारणाओं से शाश्वत रूप से मुक्त) कहा जाता है। जब हम अपनी भौतिक इच्छाएँ पूरी नहीं कर पाते, तब अवश्य ही खेद और उलझन होती है। इसे ही विवर्त कहा जा सकता है। किन्तु आध्यात्मिक जीवन में दुःख, उन्मत्तता या अपूर्णता नहीं पाई जाती। श्रीमती राधारानी और कृष्ण के आध्यात्मिक कार्यकलापों को समझने में श्रील रामानन्द राय दक्ष थे और जब उन्होंने महाप्रभु से पूछा कि वे उनके आध्यात्मिक सत्य की अनुभूति की पुष्टि करते हैं या नहीं, उसी समय यह आध्यात्मिक अनुभव भी महाप्रभु के समक्ष रखा गया।

इस सम्बन्ध में तीन पुस्तकें महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो भक्तदास बाउल कृत विवर्त-विलास, दूसरी जगदानन्द पण्डित प्रणीत प्रेमविवर्त और तीसरी श्री रामानन्द राय कृत प्रेमविलास-विवर्त। इनमें से भक्त दास बाउल कृत विवर्त- विलास

अन्य दो पुस्तकों से सर्वथा भिन्न है। कभी-कभी कोई विश्वविद्यालय के विद्यार्थी अथवा प्राध्यापक इस दिव्य साहित्य को पढ़ने का प्रयास करता है। और सांसारिक दृष्टि से एक समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने की चेष्टा करता है, ताकि वह डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर सके। किन्तु ऐसी अनुभूति रामानन्द राय की अनुभूति से निश्चित रूप से भिन्न है। यदि वास्तव में किसी को चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय से डाक्टरेट उपाधि लेनी हो, तो उसे सर्वप्रथम समस्त भौतिक उपाधियों से मुक्त होना होगा (सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्)। जो अपनी पहचान अपने भौतिक शरीर से करता है, वह श्री रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच हुई वार्ता को नहीं समझ सकता। मनुष्य-निर्मित धार्मिक शास्त्र तथा दिव्य दार्शनिक वार्ताएँ सर्वथा भिन्न होती हैं-इन दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर होता है। इस विषय का वर्णन श्रीमन् मध्वाचार्य ने बड़े परिश्रमपूर्वक किया है। चूँकि भौतिक दार्शनिक जीवन की भौतिक धारणा में स्थित होते हैं, अतएव वे आध्यात्मिक प्रेम-विलास-विवर्त को नहीं समझ सकते। वे एक तश्तरी पर हाथी को नहीं बैठा सकते। इसी तरह भौतिक ज्ञानी भी आध्यात्मिक हाथी को अपनी सीमित अनुभूति के भीतर नहीं पकड़ पाते। यह तो मेढ़क द्वारा अटलांटिक समुद्र को अपने कुएँ से कई गुना बड़ा कल्पित करके उसकी थाह लेने जैसा प्रयास है। भौतिकतावादी दार्शनिक तथा सहजिया लोग रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच राधाकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित वार्ता को नहीं समझ सकते। निर्विशेषवादी या प्राकृत सहजियों की एकमात्र प्रवृत्ति निर्विशेषवाद के स्तर तक ही पहुँच पाती है। वे आध्यात्मिक विविधता की बात नहीं समझ सकते। इसीलिए जब रामानन्द राय अपने बनाये श्लोक सुनाने लगे, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके मुँह को अपने हाथ से ढक दिया।

पहिलेहि राग नयन-भङ्गे भेल

अनुदिन बाढ़ल, अवधि ना गेल

ना सो रमण, ना हाम रमणी

दुँहु-मन मनोभव पेषल जानि’

ए सखि, से-सब प्रेम-काहिनी

कानु-ठामे कहबि विछुरल जानि’

ना खोंजलुँ दूती, ना खोंजलुँ आन्

दुँहुकेरि मिलने मध्य त पाँच-बाण

अब्सोहि विराग, तुँहु भेलि दूती

सु-पुरुख-प्रेमकि ऐछन रीति ॥194॥

पहिलेहि-आरम्भ में; राग-आकर्षण; नयन-भङ्गे–नेत्रों की भाव-भंगिमा से; भेल-था; अनु-दिन-धीरे धीरे, दिन-प्रतिदिन; बाढ़ल-बढ़ गई; अवधि–सीमा; ना-नहीं; गेल–पहुँचा; ना-न; सो-वे; रमण-भोक्ता; ना-नहीं; हाम-मैं; रमणी-भोग्य; दुँहु-मन-दोनों मन; मनः-भव-मनोभाव; पेषल–दबाए जाने पर; जानि'–जानकर; ए-यह; सखि-हे प्रिय सखी; से-सब-वे सब; प्रेम-काहिनी–प्रेम व्यापार; कानु-ठामे-कृष्ण के समक्ष; कहबि-तुम कहोगी; विछुरल-वे भूल गये हैं; जानि'–जानते हुए; ना-नहीं; खोंजलुँ–खोज लिया; दूती–सन्देशवाहक; ना-नहीं; खोंजलुँ–खोजा; आन्-अन्य कोई; दुँहुकेरि–हम दोनों में से; मिलने-मिलन से; मध्य-बीच में; त-निस्सन्देह; पाँच-बाण-कामदेव के पाँच बाण; अब्-अब; सोहि वह; विराग-वियोग; तुँहु-तुम्हें; भेलि–हुआ; दूती–सन्देशवाहक; सु-पुरुख-एक सुन्दर व्यक्ति के; प्रेमकि-प्रेमाचार का; ऐछन-ऐसा; रीति–परिणाम।

अनुवाद

"हाय! हमारे मिलन के पूर्व हमारे बीच चितवन के आदान-प्रदान से प्रारम्भिक अनुरक्ति हुई थी। इस तरह अनुरक्ति विकसित होती रही। यह अनुरक्ति क्रमशः बढ़ने लगी है और अब इसकी कोई सीमा नहीं रही। अब वही अनुरक्ति हमारे बीच स्वाभाविक व्यवहार बन चुकी है। ऐसा नहीं है कि यह भोक्ता कृष्ण के कारण है, न ही मुझ भोग्या के कारण है। ऐसा नहीं है। यह अनुरक्ति हमारे पारस्परिक मिलन से ही सम्भव हो सकी है। आकर्षण का यह आदान-प्रदान मनोभव अर्थात् कामदेव कहलाता है। मेरा मन और कृष्ण का मन मिलकर एक हो गया है। अब इस विरह की घड़ी में इन प्रेम-व्यापारों की व्याख्या कर पाना कठिन है। हे प्रिय सखी, सम्भव है कृष्ण ये सारी बातें भूल चुके हों, किन्तु तुम समझ सकती हो, इसलिए यह सन्देश उन तक ले जा सकती हो। किन्तु प्रथम मिलन के समय हम दोनों के बीच न तो कोई दूत था, न ही मैंने किसी से कहा था कि वह उनके पास जाए। कामदेव के पाँच बाण ही हमारे माध्यम थे। अब इस विरह की अवधि में वह आकर्षण दूसरी भावदशा तक बढ़ गया है। हे प्रिय सखी, कृपया मेरी दूती बनो, क्योंकि सुन्दर पुरुष से प्रेम करने का यही परिणाम होता है।"

तात्पर्य

इन श्लोकों की रचना पहले रामानन्द राय ने की और वे ही इन्हें गाया करते थे। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का सुझाव है कि दाम्पत्य प्रेम भोगने के समय अनुरक्ति की तुलना साक्षात् कामदेव से की जा सकती है। किन्तु वियोग के समय कामदेव अत्यन्त उन्नत प्रेम का दूत बन जाता है। यही प्रेम-विलास-विवर्त कहलाता है। जब वियोग होता है, तब स्वयं दाम्पत्य प्रेम का भोग दूत का काम करता है और श्रीमती राधारानी ने ऐसी दूती को सखी कहा है। ऐसे आदान-प्रदान का सार है-वियोग तथा संभोग दोनों ही में दिव्य प्रेम के व्यापार समान रूप से आस्वाद्य है। जब श्रीमती राधारानी कृष्ण-प्रेम में पूर्णरूपेण मग्न थीं, तब वे श्याम तमाल वृक्ष को कृष्ण समझ बैठीं और उन्होंने उसे आलिंगन कर लिया। ऐसी भूल प्रेम-विवर्त-विलास कहलाती है।

राधाया भवतश्च चित्त-जतुनी स्वेदैर्विलाप्य क्रमाद्

युञ्जन्नद्रि-निकुञ्ज-कुञ्जर-पते निर्भूत-भेद-भ्रमम् ।

चित्राय स्वयमन्वरञ्जयदिह ब्रह्माण्ड-हर्म्योदरे

भूयोभिर्नव-राग-हिङ्गुल-भरैः शृङ्गार-कारुः कृती ॥ 195॥

राधायाः- श्रीमती राधारानी का; भवतः च-और आपका; चित्त-जतुनी-लाख की भाँति दो मन; स्वेदैः-पसीने से; विलाप्य–पिघलकर; क्रमात्-धीरे धीरे; युञ्जन्–बनाकर; अद्रि-गोवर्धन पर्वत का; निकुञ्ज–आमोद-प्रमोद के लिए एकान्त स्थान पर; कुञ्जर-पते-हे हाथियों के राजा; निर्धेत–पूर्णतया ले जाकर; भेद-भ्रमम्-भेद के भ्रम को; चित्राय-आश्चर्य को बढ़ाने के लिए; स्वयम्-स्वयं; अन्वरञ्जयत्-रंगीन; इह-इस संसार में; ब्रह्माण्ड–ब्रह्माण्ड के; हर्म्य-उदरे-राजमहल के अन्दर; भूयोभिः–विविध साधनों से; नव-राग-नये आकर्षण का; हिङ्गुल-भरैः-सिंदूर से; शृङ्गार–प्रेमाचार का; कारुः–कारीगर; कृती-अत्यन्त निपुण।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप गोवर्धन पर्वत के जंगल में रहते हैं और आप हाथियों के राजा की तरह माधुर्य प्रेम की कला में पटु हैं। हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, आपका हृदय तथा श्रीमती राधारानी का हृदय दोनों लाख की तरह हैं और वे अब आपके आध्यात्मिक पसीने में द्रवित हो गये हैं। इसलिए अब आप में तथा राधारानी में कोई भी व्यक्ति अन्तर नहीं बता सकता। अब आपने अपने नवीन स्नेह को, जो सिन्दूर की तरह है, दोनों के द्रवित हृदयों

के साथ मिश्रित कर दिया है और सारे विश्व के कल्याण हेतु इस ब्रह्माण्ड रूपी प्रासाद के भीतर दोनों के हृदयों को लाल रंग दे दिया है।"

तात्पर्य

श्री रामानन्द राय द्वारा उधृत यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत उज्ज्वल नीलमणि (14.155) का है।

प्रभु कहे,—'साध्य-वस्तुर अवधि' एइ हय ।

तोमार प्रसादे इहा जानिलुँ निश्चय ॥196॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुष्टि की; साध्य-वस्तुर-जीवन के उद्देश्य की; अवधि'–अवधि, सीमा; एइ-यह; हय-है; तोमार-आपकी; प्रसादे-कृपा से; इहा-यह; जानिलुँ-मैंने समझ लिया है; निश्चय–निश्चित रूप से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री रामानन्द राय द्वारा सुनाये गये इन श्लोकों की पुष्टि यह कहकर की, "मानव-जीवन के लक्ष्य की यही सीमा है। केवल आपकी कृपा से मैं निश्चित रूप से इसे समझ सका हूँ।"

'साध्य-वस्तु' 'साधन' विनु केह नाहि पाय ।

कृपा करि' कह, राय, पाबार उपाय ॥ 197॥

साध्य-वस्तु-जीवन का उद्देश्य; साधन विनु-प्रक्रिया के पालन बिना; केह नाहि पाय-कोई नहीं पाता; कृपा करि'-कृपा करके; कह-कृपया कहो; राय-मेरे प्रिय रामानन्द राय; पाबार उपाय-पाने का साधन।

अनुवाद

"विधि के पालन बिना जीवन-लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। अब आप मुझ पर कृपा करके उस उपाय को बतलायें, जिससे यह जीवन-लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।"

राय कहे,—येइ कहाओ, सेइ कहि वाणी ।

कि कहिये भाल-मन्द, किछुइ ना जानि ॥198॥

राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; येइ-जो कुछ; कहाओ-आप कहलवाते हो; सेइ-वही; कहि-मैं कहता हूँ; वाणी-वचन; कि-क्या; कहिये-मैं कह रहा हूँ; भाल-मन्द-भला-बुरा; किछुइ ना जानि–मैं कुछ नहीं जानता।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मैं क्या कह रहा हूँ, यह मैं नहीं जानता, किन्तु अच्छा या बुरा जो भी है, उसे आप ही मुझसे कहलवा रहे हैं। मैं तो केवल उसी सन्देश को दोहरा रहा हूँ।"

त्रिभुवन-मध्ये ऐछे हय कोन्धीर ।

ये तोमार माया-नाटे हइबेक स्थिर ॥ 199॥

त्रिभुवन-मध्ये–तीनों भुवनों में; ऐछे-इतना; हय-है; कोन्-कौन; धीर-धीर; ये–जो; तोमार-आपकी; माया-नाटे–विभिन्न शक्तियों के छल में; हइबेक-होगा; स्थिर-स्थिर।

अनुवाद

"तीनों लोकों में ऐसा कौन अविचलित व्यक्ति होगा, जो आपकी विभिन्न शक्तियों के अदलने-बदलने पर स्थिर रह सके?"

मोर मुखे वक्ता तुमि, तुमि हओ श्रोता ।

अत्यन्त रहस्य, शुन, साधनेर कथा ॥200॥

मोर मुखे-मेरे मुख से; वक्ता-वक्ता; तुमि-आप हो; तुमि-आप; हओ-हो; श्रोता-श्रोता; अत्यन्त रहस्य-अत्यन्त रहस्यपूर्ण; शुन-अब कृपया सुनें; साधनेर कथा-प्रक्रिया का वृत्तान्त।

अनुवाद

"वास्तव में आप ही मेरे मुँह से बोल रहे हैं और साथ साथ आप ही सुन भी रहे हैं। यह अत्यन्त रहस्यमय है। जो भी हो, कृपा करके उस व्याख्या को सुनें जिससे लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।"

तात्पर्य

श्रील सनातन गोस्वामी ने हमें यह सलाह दी है कि वैष्णव के मुख से ही कृष्ण के विषय में सुना जाए। उन्होंने अवैष्णव से सुनने के लिए स्पष्ट मना किया है :

अवैष्णवमुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतम् ।

श्रवणं नैव कर्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः ॥

पद्मपुराण का प्रमाण देते हुए उन्होंने आगाह किया है कि कोई अवैष्णव कितना ही बड़ा संसारी पण्डित क्यों न हो, उससे कृष्ण के विषय में सुनना नहीं चाहिए। जिस तरह साँप के होठों के स्पर्श से दूध जहरीला हो जाता है, उसी तरह अवैष्णव द्वारा दिया गया कृष्ण विषयक प्रवचन भी विषैला होता है। किन्तु वैष्णव द्वारा दिया गया प्रवचन आध्यत्मिक रूप से शक्तिप्रद होता है, क्योंकि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरणागत होता है। भगवद्गीता (10.10) में भगवान् कृष्ण कहते हैं :

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

"जो निरन्तर मेरी भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी पूजा करते हैं, उन्हें मैं ऐसी बुद्धि देता हूँ, जिससे वे मेरे पास आ सकते हैं।" जब शुद्ध वैष्णव बोलता है, तो वह प्रामाणिक होता है। यह कैसे? क्योंकि उसकी वाणी को स्वयं कृष्ण हृदय के भीतर से व्यवस्थित करते हैं। श्रील रामानन्द राय यह आशीर्वाद श्री चैतन्य महाप्रभु से प्राप्त करते हैं, इसीलिए वे स्वीकार करते हैं कि वे जो कुछ भी बोल रहे हैं, उनकी अपनी बुद्धि से नहीं निकल रहा, प्रत्युत वह सब श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रेरित है। भगवद्गीता (15.15) के अनुसार :

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो

मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो

वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम् ॥

"मैं हर एक के हृदय में स्थित हूँ और मुझ से ही स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति प्राप्त होती है। सारे वेदों के द्वारा जानने योग्य मैं ही हूँ; निश्चित रूप से, मैं ही वेदान्त का संकलनकर्ता हूँ और मैं सारे वेदों का ज्ञाता हूँ।"

सारी बुद्धि हर मनुष्य के भीतर स्थित परमात्मा से उद्भूत होती है। अभक्तगण भगवान् से इन्द्रियतृप्ति की याचना करना चाहते हैं, इसलिए वे माया के वशीभूत हो जाते हैं। किन्तु एक भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा निर्देशित होने के कारण योगमाया से प्रभावित होता है। इसीलिए एक भक्त तथा एक अभक्त के कथनों में जमीन-आसमान का अन्तर रहता है।

राधा-कृष्णेर लीला एइ अति गूढ़तर ।

दास्य-वात्सल्यादि-भावे ना हय गोचर ॥201॥

राधा-कृष्णेर लीला-राधा-कृष्ण की लीलाएँ; एइ–यह है; अति-अत्यन्त; गूढ़तर-अधिक रहस्यमय; दास्य-दास्य; वात्सल्य-आदि-और वात्सल्य आदि की; भावे-भावों में; ना हय-नहीं है; गोचर-समझे जाने योग्य।

अनुवाद

"राधा तथा कृष्ण की लीलाएँ अत्यन्त गूढ़ हैं। उन्हें दास्य, सख्य या वात्सल्य रसों के माध्यम से नहीं समझा जा सकता।"

सबे एक सखी-गणेर इहाँ अधिकार ।

सखी हैते हय एइ लीलार विस्तार ॥202॥

सबे-केवल; एक-एक; सखी-गणेर-गोपियों का; इहाँ–इसमें; अधिकार-अधिकार; सखी-गोपियों; हैते-से; हय-है; एइ लीलार–इन लीलाओं का; विस्तार-विस्तार।

अनुवाद

"वास्तव में एकमात्र गोपियों को ही यह अधिकार है कि वे इन दिव्य लीलाओं का आस्वादन करें और केवल वे ही इन लीलाओं का विस्तार कर सकती हैं।"

सखी विना एइ लीला पुष्ट नाहि हय ।

सखी लीला विस्तारिया, सखी आस्वादय ॥203॥

सखी विना-गोपियों के बिना; एइ लीला-ये लीलाएँ; पुष्ट-पोषण; नाहि हय-कभी नहीं होती; सखी-गोपियाँ; लीला-लीलाएँ; विस्तारिया–विस्तार करके; सखी-गोपियाँ; आस्वादय-इस रस का आस्वादन करती हैं।

अनुवाद

"गोपियों के बिना राधाकृष्ण की इन लीलाओं का संवर्धन नहीं हो सकता। केवल उन्हीं के सहयोग से इन लीलाओं का विस्तार होता है। इन रसों का आस्वादन करना भी उन्हीं का कार्य है।"

सखी विना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति ।

सखी-भावे ये ताँरे करे अनुगति ॥204॥

राधा-कृष्ण-कुञ्जसेवा-साध्य सेइ पाय ।

सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय ॥205॥

सखी विना-गोपियों के बिना; एइ लीलाय-इन लीलाओं में; अन्येर–दूसरों का; नाहि-नहीं है; गति-प्रवेश; सखी-भावे-गोपियों के मनोभाव में; ये-जो कोई भी; ताँरे–भगवान् कृष्ण का; करे-करता है; अनुगति–अनुगमन; राधा-कृष्ण-राधा कृष्ण की; कुञ्ज-सेवा-वृन्दावन के कुंजों में सेवा; साध्य उद्देश्य; सेइ पाय-वह पाता है; सेइ-वह; साध्य-लक्ष्य; पाइते-पाने के लिए; आर-अन्य; नाहिक–नहीं है; उपाय-साधन।

अनुवाद

"गोपियों की सहायता के बिना इन लीलाओं में प्रवेश नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति गोपी भाव में भगवान् की पूजा करता है और गोपियों के पदचिह्नों पर चलता है, वही श्री श्री राधा-कृष्ण की सेवा वृन्दावन के कुंजों में कर सकता है। केवल तभी वह राधा और कृष्ण के माधुर्य रस को समझ सकता है। इसके अतिरिक्त इसे समझने का कोई अन्य उपाय नहीं है।"

तात्पर्य

भगवद्धाम वापस जाने का उपाय भक्ति है, किन्तु सबमें भगवत्सेवा करने की रुचियाँ भिन्न होती हैं। कोई दास्य रस में भक्ति करने की प्रवृत्ति रखता है, तो कोई सख्य या वात्सल्य रस में। किन्तु इन सब में से कोई भी किसी को माधुर्य

प्रेम में प्रवेश पाने के लिए सक्षम नहीं बना सकता। ऐसी सेवा कर पाने के लिए गोपियों के सखी-भाव का अनुसरण करना होगा। तभी माधुर्य रस को समझा जा सकता है।

उज्ज्वल नीलमणि में श्रील रूप गोस्वामी का उपदेश है :

प्रेमलीलाविहाराणां

सम्यग् विस्तारिका सखी

विश्रम्भरत्नपेटी च ।

गोपियों तथा कृष्ण में माधुर्य रस का तथा उनके भोग का विस्तार करने वाली सखी कहलाती है। वह माधुर्य-लीलाओं में अन्तरंग गोपी होती है। ऐसी सहायिकाएँ कृष्ण के विश्वासपात्र के रूप में रत्न-स्वरूप होती हैं। सखियों के वास्तविक कार्य का विवरण उज्वल नीलमणि में इस प्रकार मिलता है :

मिथः प्रेमगुणोत्कीर्तिस्तयोरासक्तिकारिता ।

अभिसारो द्वयोरेव सख्याः कृष्णे समर्पणम् ॥

नर्माश्वासननेपथ्यं हृदयोद्घाटपाटवम् ।

छिद्र संवृतिरेतस्याः पत्यादेः परिवाँचना ॥

शिक्षा संगमनं काले सेवनं व्यजनादिभिः ।

तयोर्द्वयोरुपालम्भः सन्देशप्रेषणं तथा ॥

नायिकाप्राणसंरक्षा प्रयत्नाद्याः सखी-क्रियाः ॥

कृष्ण की माधुर्य लीलाओं में कृष्ण नायक होते हैं, और राधिका नायिका। गोपीयों का पहला कार्य होता है, नायक तथा नायिका दोनों की महिमा का बखान करना। उनका दूसरा काम है, क्रमशः ऐसी परिस्थिति ला देना कि नायक नायिका के प्रति और नायिका नायक के प्रति आकृष्ट हो। उनका तीसरा काम है, उन्हें इस तरह प्रेरित करना कि वे एक-दूसरे के निकट आयें। उनका चौथा काम कृष्ण की शरण में जाना, पाँचवा हर्षमय वातावरण की सृष्टि करना, छठा उनको लीलाओं को भोग करते रहने का प्रोत्साहन देना, सातवाँ नायक तथा नायिका दोनों को सजाना-सँवारना, आठवाँ उनकी

इच्छाएँ व्यक्त करने में निपुणता बताना, नौवाँ नायिका के दोषों को छिपाना, दसवाँ उसके पति तथा परिवार वालों को धोखा देना, ग्यारहवाँ शिक्षा देना, बारहवाँ उचित समय पर नायक-नायिका को मिलाना, तेरहवाँ नायक-नायिका को पंखा झलना, चौदहवाँ नायक-नायिका को कभी-कभी डाँटना, पंद्रहवाँ बातें शुरू कराना और सोलहवाँ कार्य है सभी प्रकार से नायिका की रक्षा करना।

कुछ भौतिकतावादी सहजिया, जो वास्तव में राधा तथा कृष्ण की लीलाओं को समझ नहीं सकते हैं, वे किसी प्रमाण के बिना मनोकल्पना से अपनी खुद की जीवन-शैली बनाते हैं। ऐसे सहजिया सखीभेकी या कभी-कभी गौरनागरी कहलाते हैं। वे मानते हैं कि यह भौतिक शरीर, जो कुत्तों तथा सियारों के खाने योग्य है, कृष्ण द्वारा भोग्य है। फलतः वे कृष्ण को आकृष्ट करने के लिए अपने आपको सखियाँ मानकर अपना भौतिक शरीर कृत्रिम साधनों से सजाते-सँवारते हैं। किन्तु कृष्ण कभी भी इस तरह भौतिक शरीर के सजने-सँवरने से आकृष्ट नहीं होते। जहाँ तक राधारानी और उनकी गोपियों का सम्बन्ध है, उनके शरीर, घर, वस्त्र, आभूषण, प्रयत्न तथा कार्य-सभी आध्यात्मिक होते हैं। ये सभी कृष्ण की आध्यात्मिक इन्द्रियों को तुष्ट करने के निमित्त होते हैं। निस्सन्देह, ये सब कृष्ण को इतना प्रसन्न करने वाले तथा प्रिय हैं कि वे श्रीमती राधारानी तथा उनकी सखियों के वश में हो जाते हैं। उन्हें ब्रह्माण्ड के 14 भुवनों में किसी संसारी वस्तु से कोई वास्ता नहीं रहता। यद्यपि कृष्ण सर्वाकर्षक हैं, किन्तु इतने पर भी वे गोपियों तथा श्रीमती राधारानी के द्वारा आकृष्ट होते हैं।

किसी को मानसिक तर्कवितर्कों से बहक जाना नहीं चाहिए कि उसका भौतिक शरीर पूर्ण है, इसलिए वह सखी बन सकता है। यह अहंग्रहोपासना अर्थात् मायावादियों द्वारा अपने शरीर की पूजा सर्वोपरि (ब्रह्म) मानकर करने जैसी बात होगी। श्रील जीव गोस्वामी ने संसारियों को ऐसी धारणा से दूर रहने के लिए सतर्क किया है। उन्होंने यह भी चेतावनी दी है कि गोपियों के पदचिह्नों पर चले बिना अपने आपको भगवान् का संगी सोचना वैसा ही अपराध है जैसाकि अपने आपको भगवान् मानना। ऐसा सोचना अपराध है। मनुष्य को कृष्ण के साथ गोपियों की वार्ताओं को सुनते हुए वृन्दावन में रहने का अभ्यास करना चाहिए। किन्तु उसे अपने आपको गोपी नहीं मानना चाहिए, क्योंकि ऐसा सोचना अपराध है।

विभुरपि सुख-रूपः स्व-प्रकाशोऽपि भावः

क्षणमपि न हि राधा-कृष्णयोर्या ऋते स्वाः ।

प्रवहति रस-पुष्टिं चिद्विभूतीरिवेशः

श्रयति न पदमासां कः सखीनां रस-ज्ञः ॥ 206॥

विभुः-सर्व शक्तिमान; अपि-यद्यपि; सुख-रूपः-मूर्तिमान सुख; स्व-प्रकाशः-स्वयं प्रकाशित; अपि-यद्यपि; भावः–पूर्णरूपेण आध्यात्मिक कार्यकलाप; क्षणम् अपि-एक क्षण के लिए भी; न—कभी नहीं; हि-अवश्य; राधा-कृष्णयोः- श्री राधा और कृष्ण के; याः-जिनको; ऋते-बिना; स्वाः-अपने निजी संगी (गोपियाँ); प्रवहति-ले जाती है; रस-पुष्टिम् उच्चतम रस की पूर्णता; चित्-विभूतीः-आध्यात्मिक शक्तियाँ; इव-की भाँति; ईशः-पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; श्रयति-आश्रय लेती है; न-नहीं; पदम्प द; आसाम्-उनका; कः-जो; सखीनाम्-निजी सखियों का; रस-ज्ञः-जो रस-तत्त्व से परिचित है वह।

अनुवाद

“श्री राधा तथा कृष्ण की लीलाएँ स्वतः तेजोमय हैं। वे मूर्तिमान सुख हैं, अनन्त तथा सर्वशक्तिमान हैं। इतने पर भी ऐसी लीलाओं का आध्यात्मिक रस भगवान् की सखियों अर्थात् गोपियों के बिना कभी पुष्ट नहीं होता। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के बिना कभी भी पूर्ण नहीं होते। अतएव गोपियों की शरण लिए बिना कोई राधा तथा कृष्ण की संगति प्राप्त नहीं कर सकता। भला गोपियों की शरण लिए बिना राधा-कृष्ण की आध्यात्मिक लीलाओं में कौन रुचि रख सकता है?”

सखीर स्वभाव एक अकथ्य-कथन ।

कृष्ण-सह निज-लीलाय नाहि सखीर मन ॥207॥

सखीर-गोपियों का; स्वभाव-स्वभाव; एक-एक; अकथ्य-अवर्णनीय; कथन-वृत्तान्त; कृष्ण-सह-कृष्ण के साथ; निज-लीलाय-अपनी लीलाओं में; नाहि-नहीं; सखीर-गोपियों का; मन–मन।

अनुवाद

“गोपियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति (स्वभाव) अवर्णनीय है। गोपियाँ कृष्ण के साथ कभी भी स्वयं भोग करना नहीं चाहतीं।”

कृष्ण सह राधिकार लीला ये कराय ।

निज-सुख हैते ताते कोटि सुख पाय ॥208॥

कृष्ण सह-कृष्ण के साथ; राधिकार–श्रीमती राधारानी की; लीला-लीलाएँ; ये-जो; कराय-वे कराती हैं; निज-सुख-अपने सुख; हैते–की अपेक्षा; ताते-उसमें; कोटि-करोड़ों गुना; सुख-सुख; पाय-उन्हें मिलता है।

अनुवाद

"जब गोपियाँ श्री श्री राधा और कृष्ण को उनकी दिव्य लीलाओं में प्रवृत्त करने का काम करती हैं, तो उनका सुख करोड़ गुना बढ़ जाता है।"

राधार स्वरूप—कृष्ण-प्रेम-कल्पलता ।

सखी-गण हय तार पल्लव-पुष्प-पाता ॥209॥

राधार स्वरूप-श्रीमती राधारानी का आध्यात्मिक स्वभाव; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम की; कल्प-लता-लता; सखी-गण-गोपियाँ; हय-हैं; तार-उस लता की; पल्लव-शाखाएँ; पुष्प-पुष्प; पाता–पत्तियाँ।

अनुवाद

"स्वभाव से श्रीमती राधारानी भगवत्प्रेम की लता के समान हैं और गोपियाँ उस लता की टहनियाँ, फूल तथा पत्तियाँ हैं।"

कृष्ण-लीलामृत यदि लताके सिञ्चय ।

निज-सुख हैते पल्लवाद्येर कोटि-सुख हय ॥210॥

कृष्ण-लीलामृत-कृष्ण लीलाओं का अमृत; यदि-यदि; लताके-लता को; सिञ्चय-सींचता है; निज-सुख हैते-अपने निजी सुख की अपेक्षा; पल्लव-आद्येर-शाखाओं का, पुष्पों और पत्तों का; कोटि-करोड़ गुना; सुख-सुख; हय होता है।

अनुवाद

"जब इस लता पर कृष्ण-लीला रूपी अमृत छिड़का जाता है, तो टहनियों, फूलों तथा पत्तियों को जो सुख मिलता है, वह लता की तुलना में एक करोड़ गुना अधिक होता है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में कहा है, "श्रीमती राधारानी भगवत्प्रेम की लता हैं और गोपियाँ टहनियों, फूलों तथा पत्तियों के समान हैं। जब लता पर जल छिड़का जाता है, तो टहनियाँ, फूल तथा पत्तियाँ अप्रत्यक्ष रूप से लता को मिलने वाले सारे लाभ प्राप्त करती हैं। किन्तु लता की जड़ में डाला गया जल जितना प्रभावशाली होता है उतना टहनियों, फूलों तथा पत्तियों पर सीधे डाला गया जल नहीं होता। जब गोपियाँ कृष्ण से सीधे मिलती हैं, तब वे उतनी प्रसन्न नहीं होतीं, जितनी कि वे श्रीमती राधारानी को कृष्ण से मिलाने के बाद होती हैं। उनका दिव्य आनन्द उन्हें मिलाने में निहित हैं।"

सख्यः श्री-राधिकाया व्रज-कुमुद-विधोर्ह्लादिनी-नाम-शक्तेः

सारांश-प्रेम-वल्ल्याः किसलय-दल-पुष्पादि-तुल्याः स्व-तुल्याः ।

सिक्तायां कृष्ण-लीलामृत-रस-निचयैरुल्लसन्त्याममुष्यां

जातोल्लासाः स्व-सेकाच्छत-गुणमधिकं सन्ति यत्तन्न चित्रम् ॥ 211॥

सख्यः-ललिता एवं विशाखा जैसी सखियाँ; श्री-राधिकायाः-श्रीमती राधारानी की; व्रज-कुमुद-व्रज भूमि के कमल समान निवासियों के; विधोः–चन्द्र (कृष्ण) की; ह्लादिनी-ह्लादिनी; नाम-नामक; शक्तेः-शक्ति; सार-अंश-सक्रिय सिद्धान्त; प्रेम-वल्ल्याः-भगवत्-प्रेम की लता के; किसलय-नये उगे; दल-पत्ते; पुष्प-फूल; आदि-आदि; तुल्याः-समान; स्व-तुल्याः-उसके समान; सिक्तायाम्-सींचने पर; कृष्ण-लीला-कृष्ण लीलाओं के; अमृत-अमृत के; रस-निचयैः-रस की बूंदों से; उल्लसन्त्याम्-चमकते हुए; अमुष्याम्-उनके (श्रीमती राधारानी के); जात-उल्लासाः-आनन्द जागृत करके; स्व-सेकात्-अपने ऊपर छिड़काव की अपेक्षा; शत-गुणम्-सौ गुना; अधिकम्-अधिक; सन्ति–हैं; यत्-जो; तत्-वह; न-नहीं; चित्रम्-आश्चर्यजनक।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी की निजी सखियाँ-सारी गोपियाँ-उन्हीं के समान हैं। जिस तरह चन्द्रमा कमल-पुष्पों को अच्छा लगता है, कृष्ण उसी तरह व्रजभूमि के निवासियों को अच्छे लगते हैं। उनकी आनन्ददायिनी शक्ति आह्लादिनी कहलाती है, जिसका मुख्य सक्रिय तत्त्व श्रीमती राधारानी हैं। उनकी उपमा उस लता से दी जाती है, जिसमें नये-नये फूल तथा कोंपले लगी हैं। जब कृष्ण-लीला रूपी अमृत श्रीमती राधारानी पर छिड़का

जाता है, तो उनकी सारी सखियों (गोपियाँ) को, वह अमृत अपने ऊपर छिड़के जाने की अपेक्षा, सैकड़ों गुना अधिक आनन्द का अनुभव होता है। वास्तव में यह तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है।"

तात्पर्य

यह श्लोक भी गोविन्द लीलामृत (10.16) से लिया गया है।

यद्यपि सखीर कृष्ण-सङ्गमे नाहि मन ।

तथापि राधिका यत्ने करान सङ्गम ॥212॥

यद्यपि यद्यपि; सखीर-गोपियों का; कृष्ण-सङ्गमे-कृष्ण के साथ प्रत्यक्ष संगम; नाहि-नहीं; मन-मन; तथापि तथापि; राधिका–श्रीमती राधारानी; यत्ने-बड़े प्रयत्न से; करान-कराती हैं; सम-कृष्ण से संगम।

अनुवाद

"यद्यपि श्रीमती राधारानी की सखियाँ (गोपियाँ) कृष्ण के साथ प्रत्यक्ष भोग नहीं करना चाहतीं, किन्तु श्रीमती राधारानी श्रीकृष्ण को गोपियों के साथ भोग करने के लिए प्रेरित करने का काफी प्रयत्न करती हैं।"

नाना-च्छले कृष्णे प्रेरि' सङ्गम कराय ।

आत्म-कृष्ण-सङ्ग हैते कोटि-सुख पाय ॥213 ॥

नाना-छले-विविध बहानों से; कृष्णे-कृष्ण को प्रेरि'- भेजकर; सङ्गम-प्रत्यक्ष संग; कराय-कराती हैं; आत्म-कृष्ण-सङ्ग-कृष्ण के साथ निजी संग; हैते-की अपेक्षा; कोटि-सुख-करोड़ गुना सुख; पाय-वे पाती हैं।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी कभी-कभी तरह-तरह के बहानों से गोपियों को कृष्ण के पास भेजती हैं, जिससे वे उनका प्रत्यक्ष संग कर सकें। ऐसे अवसरों पर उन्हें अपने प्रत्यक्ष मिलन की अपेक्षा एक करोड़ गुना अधिक सुख मिलता है।"

अन्योन्ये विशुद्ध प्रेमे करे रस पुष्ट ।

ताँ-सबार प्रेम देखि' कृष्ण हय तुष्ट ॥ 214॥

अन्योन्ये-आपस में; विशुद्ध-विशुद्ध, दिव्य; प्रेमे-भगवत्प्रेम में; करे-करती है; रस-रस; पुष्ट-वर्धन; ताँ-सबार-उन सबका; प्रेम-भगवत्प्रेम; देखि'–देखकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; हय हो जाते हैं; तुष्ट-सन्तुष्ट।

अनुवाद

"भगवत्प्रेम के पारस्परिक व्यवहार में दिव्य रस की पुष्टि होती है। जब कृष्ण यह देखते हैं कि गोपियों ने उनके लिए किस तरह से शुद्ध प्रेम विकसित कर लिया है, तो वे अत्यधिक तुष्ट होते हैं।"

तात्पर्य

श्रीमती राधारानी तथा गोपियों को कृष्ण के संग से प्राप्त होने वाले अपने खुद के सुख में कोई रुचि नहीं है। प्रत्युत वे कृष्ण के साथ एक-दूसरे को मिलते देखकर सुखी होती हैं। इस तरह भगवत्प्रेम से उनके आदानप्रदान और अधिक पुष्ट होते हैं, जिसे देखकर कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

सहज गोपीर प्रेम,—नहे प्राकृत काम ।

काम-क्रीड़ा-साम्ये तार कहि 'काम'-नाम ॥ 215॥

सहज-स्वाभाविक; गोपीर-गोपियों का; प्रेम-भगवत्प्रेम; नहे-नहीं है; प्राकृत-भौतिक; काम-कामवासना; काम-क्रीड़ा-कामुक क्रीड़ा; साम्ये-के समान लगने में; तार-ऐसी गतिविधियों का; कहि-मैं कहता हूँ; काम-नाम-"कामवासना" नाम।

अनुवाद

"यह ध्यान देने की बात है कि परम भगवान् से प्रेम करना गोपियों का सहज गुण है। उनकी कामेच्छा की तुलना भौतिक कामवासना से नहीं की जानी चाहिए। फिर भी कभी-कभी उनकी इच्छा भौतिक कामवासना जैसी प्रतीत होती है, इसलिए कभी-कभी कृष्ण के प्रति उनका दिव्य प्रेम "काम" कहकर पुकारा जाता है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि दिव्य ज्ञान से पूर्ण कृष्ण पर भौतिक कामवासना कभी भी आरोपित नहीं की जानी चाहिए। भौतिक कामवासना को भगवान् की सेवा में नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि यह

भौतिकतावादियों पर ही लागू होता है, कृष्ण पर नहीं। कृष्ण की तुष्टि के लिए केवल प्रेम अर्थात् भगवत्प्रेम उपयोगी है। प्रेम भगवान् के प्रति की गई पूर्ण सेवा है। गोपियों का काम-व्यापार वास्तव में सर्वोच्च भगवत्प्रेम है, क्योंकि गोपियाँ कभी-भी अपनी निजी तुष्टि के लिए कार्य नहीं करतीं। वे अन्य गोपियों को भगवान् की सेवा में लगा करके ही प्रसन्न होती हैं। गोपियों को स्वयं भगवान् की सेवा में लगकर उतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी कि अन्य गोपियों को उनकी सेवा में लगाने से होती है। भौतिक काम तथा भगवत्प्रेम में यही अन्तर है। कामवासना भौतिक जगत् पर लागू होती है और भगवत्प्रेम केवल कृष्ण पर लागू होता है।

प्रेमैव गोप-रामाणां काम इत्यगमत्प्रथाम् ।

इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः ॥216॥

प्रेमा-भगवत्प्रेम; एव–अवश्य; गोप-रामाणाम्-सभी गोपियों की; कामः-कामवासना; इति–इस प्रकार; अगमत्-सामयिक हो गया; प्रथाम्-प्रथा; इति–इस प्रकार; उद्धव-आदयः-ऊद्धव आदि सभी भक्त; अपि निश्चित रूप से; एतम्-इस प्रकार के व्यवहार को; वाञ्छन्ति–चाहते हैं; भगवत्-प्रियाः-जो भगवान् को अत्यन्त प्रिय हैं।

अनुवाद

"गोपियों के कृष्ण के साथ व्यवहार शुद्ध भगवत्प्रेम के स्तर पर होते हैं। किन्तु कभी-कभी उन्हें काममय मान लिया जाता है। किन्तु ऐसे व्यवहार सर्वथा आध्यात्मिक होते हैं, अतएव उद्धव जैसे भगवान् के अन्य अत्यन्त प्रिय भक्त भी उनमें भाग लेने के इच्छुक रहते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.285) का है।

निजेन्द्रिय-सुख-हेतु कामेर तात्पर्य ।

कृष्ण-सुख-तात्पर्य गोपी-भाव-वर्य ॥217॥

निज-इन्द्रिय-अपनी इन्द्रियों के; सुख-सुख के; हेतु-कारण से; कामेर-कामुक इच्छा; तात्पर्य-चेष्टा; कृष्ण-कृष्ण के; सुख-सुख; तात्पर्य-अभिप्राय; गोपी-भाव-वर्य-गोपियों का सर्वप्रथम मनोभाव।

अनुवाद

“कामेच्छाओं का अनुभव तब होता है, जब कोई अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए उत्सुक रहता है। किन्तु गोपियों का भाव ऐसा नहीं होता। उनकी एकमात्र इच्छा कृष्ण की इन्द्रियों को तृप्त करना है।”

निजेन्द्रिय-सुख-वाञ्छा नाहि गोपिकार ।

कृष्णे सुख दिते करे सङ्गम-विहार ॥218॥

निज-इन्द्रिय-सुख-अपने इन्द्रिय सुख के लिए; वाञ्छा-इच्छा; नाहि-नहीं है; गोपिकार-गोपियों की; कृष्णे-कृष्ण को; सुख-सुख; दिते-देने के लिए; करे-करती हैं; सङ्गम-विहार-कृष्ण के साथ विहार।

अनुवाद

“गोपियों में अपनी खुद की इन्द्रियतृप्ति की रंचमात्र इच्छा नहीं है। उनकी एकमात्र इच्छा कृष्ण को आनन्द देने की होती है। इसी कारण वे उनसे मिलती हैं और उनके साथ भोग करती हैं।”

यत्ते सुजात-चरणाम्बुरुहं स्तनेषु

भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।

तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित्

कूर्पादिभिर्भमति धीभवदायुषां नः ॥ 219॥

यत्-क्योंकि; ते-आपके; सुजात-कोमल; चरण-अम्बु-रुहम्-चरणकमल; स्तनेषु-स्तनों पर; भीताः-डरकर; शनैः-बड़ी सावधानी से; प्रिय-हे प्रिय; दधीमहि-हम रखती हैं; कर्कशेषु-बहुत कठोर; तेन-ऐसे चरणकमलों से; अटवीम्-वन; अटसि-आप भ्रमण करते हो; तत् व्यथते-उन्हें पीड़ा होती है; न-नहीं; किम् स्वित्-क्या; कूर्प-आदिभिः-छोटे कंकरों से; भ्रमति–विचलित होती है; धीः-बुद्धि; भवत्-आयुषाम्-उन लोगों की जो आपको अपना जीवन समझते हैं; नः-हमारे।

अनुवाद

“[सारी गोपियों ने कहा :] ‘हे कृष्ण, हम आपके कोमल चरणकमलों को बड़ी सावधानी से अपने कठोर स्तनों पर रखती हैं। जब आप जंगल में विचरण करते हैं, तो आपके कोमल चरणकमलों में कंकड़-

पत्थर लगते हैं। हम डरती रहती हैं कि इससे आपको पीड़ा होती होगी। चूँकि आप हमारे जीवन और आत्मा हैं, अतएव जब आपके चरणकमलों को पीड़ा पहुँचती हैं, तो हमारे मन अत्यन्त विचलित हो उठते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.31.19) से लिया गया है।

सेइ गोपी-भावामृते याँर लोभ हय ।

वेद-धर्म-लोक त्यजि' से कृष्णे भजय ॥220॥

सेइ-वह; गोपी-गोपियों के भाव-अमृते-प्रेमावेश के अमृत में; याँर–जिनका; लोभ-लोभ, आसक्ति; हय-है; वेद-धर्म-वेदों का धर्म; लोक-लोगों की सम्मति; त्यजि'-त्यागकर; से-वह; कृष्णे-कृष्ण को; भजय-प्रेमयुक्त सेवा करता है।

अनुवाद

"जो व्यक्ति गोपियों के ऐसे प्रेमभाव से आकृष्ट है, वह वैदिक जीवन के विधानों या लोकमत की परवाह नहीं करता। प्रत्युत वह कृष्ण की शरण में पूर्णतया जाकर उनकी सेवा करता है।"

रागानुग-मार्गे ताँरे भजे येइ जन ।

सेइ-जन पाय व्रजे व्रजेन्द्र-नन्दन ॥221॥

राग–अनुग-स्वाभाविक आसक्ति; मार्गे–मार्ग से; ताँरे-कृष्ण की; भजे–पूजा करता है; येइ-जो; जन-व्यक्ति; सेइ-जन-वही व्यक्ति; पाय-पाता है; व्रजे-वृन्दावन में; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र को।

अनुवाद

"जो व्यक्ति रागानुग मार्ग पर (स्वतःस्फूर्त प्रेम से) भगवान् की पूजा करता है और वृन्दावन जाता है, उसे नन्द महाराज के पुत्र व्रजेन्द्रनन्दन की शरण प्राप्त होती है।"

तात्पर्य

कृष्ण की सेवा करने की कुल 64 विधियाँ हैं और ये शास्त्रों में निर्देशित और गुरु द्वारा दिये गये विधि-विधान हैं। इन विधियों के अनुसार कृष्ण की सेवा करनी चाहिए, किन्तु यदि व्रजभूमि में वास करने वाले भक्तों के समान किसी में

कृष्ण-प्रेम का सहज उदय होता है, तो वह रागानुग-भक्ति के स्तर पर स्थित हो जाता है। स्वतःस्फूर्त रागानुग भक्ति प्राप्त करने वाला व्यक्ति व्रजभूमि के निवासियों जैसा पद प्राप्त करता है। व्रजभूमि में कृष्ण-भक्ति के लिए कोई विधान नहीं बनाये गये हैं। हर काम सहज भाव से कृष्ण-प्रेम में किया जाता है। यहाँ वैदिक विधि के नियमों का पालन करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसे नियमों का पालन तो इस भौतिक जगत् में किया जाता है। जब तक कोई भौतिक स्तर पर होता है, तब तक उसके लिए उन नियमों का पालन करना आवश्यक है। लेकिन कृष्ण का स्वत:स्फूर्त रागानुग प्रेम तो दिव्य होता है। लगने को ऐसा लगता है कि विधि-विधानों का अतिक्रमण हो रहा है, किन्तु भक्त दिव्य पद पर स्थित होता है। ऐसी सेवा गुणातीत या निर्गुण कहलाती है, क्योंकि वह भौतिक प्रकृति के तीन गुणों द्वारा कलुषित नहीं होती।

व्रज-लोकेर कोन भाव लञा येइ भजे ।

भाव-योग्य देह पाञा कृष्ण पाय व्रजे ॥ 222॥

व्रज-लोकेर-गोलोक वृन्दावन का; कोन-कोई; भाव-भाव; लञा–स्वीकार करके; येइ-जो कोई; भजे-भक्ति करता है; भाव-योग्य-उस आध्यात्मिक आकर्षण के योग्य; देह-शरीर; पाञा-पाकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; पाय-पाकर; व्रजे-वृन्दावन में।

अनुवाद

“इस मुक्त अवस्था में भक्त भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति के पाँच रसों में से किसी एक रस के द्वारा आकृष्ट होता है। वह उसी भाव से भगवान् की सेवा करते रहने से गोलोक वृन्दावन में कृष्ण की सेवा करने के लिए आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करता है।”

ताहाते दृष्टान्त—उपनिषद्श्रुति-गण ।

राग-मार्गे भजि’ पाइल व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ 223 ॥

ताहाते-इस विषय पर; दृष्टान्त-उदाहरण; उपनिषद् श्रुति-गण-मूर्तिमान उपनिषद् और श्रुतियाँ रूपी संत ; राग-मार्गे–स्वत:स्फूर्त प्रेम के मार्ग पर; भजि’–पूजा करके; पाइल-पाया; व्रजेन्द्र-नन्दन-भगवान् कृष्ण के चरणकमल।

अनुवाद

"जो सन्तजन उपनिषदों का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। रागानुग प्रेम के मार्ग पर भगवान् की पूजा करके उन्होंने नन्द महाराज के पुत्र व्रजेन्द्रनन्दन के चरणकमल प्राप्त किये।"

तात्पर्य

गोलोक वृन्दावन ग्रह में कृष्ण के सेवकों में रक्तक तथा पत्रक प्रमुख हैं। श्रीदामा, सुबल आदि उनके मुख्य सखा हैं। वहाँ पर प्रौढ़ गोपियाँ तथा गोप भी हैं, जिनमें नन्द महाराज, माता यशोदा तथा अन्य प्रमुख हैं। ये सारे व्यक्ति कृष्ण के प्रति अपनी-अपनी अनुरक्ति के अनुसार भगवान् की प्रेममयी सेवा में सदैव लगे रहते हैं। जो व्यक्ति भगवान् की प्रत्यक्ष सेवा करने के लिए भगवत्-धाम लौटना चाहता है, वह कृष्ण की ओर सेवक, सखा, पिता अथवा माता के रूप में आकर्षित हो सकता है। इस जीवन में विशेष भाव में कृष्ण की निरन्तर सेवा करते रहने से इस भौतिक शरीर के त्यागने पर मनुष्य उपयुक्त आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करता है, जिससे वह उसी विशेष भाव में कृष्ण की सेवा कर सके। वह दास, सखा, पिता या माता के रूप में सेवा कर सकता है। इसी तरह यदि कोई व्यक्ति माधुर्य भाव से कृष्ण की सेवा करना चाहता है, तो वह गोपियों के मार्गदर्शन में वैसा ही शरीर प्राप्त कर सकता है। इस सम्बन्ध में सबसे ज्वलन्त उदाहरण उन सन्त पुरुषों का है, जिन्हें श्रुति कहा गया है और जो उपनिषदों का प्रतिनिधत्व करते हैं। ये श्रुतिगण यह समझते थे कि कृष्ण की सेवा किये बिना तथा गोपियों के पदचिह्नों का अनुसरण किये बिना भगवद्धाम में प्रवेश करने की एवं माधुर्य प्रेम में कृष्ण की सेवा करने की कोई सम्भावना नहीं है। इसीलिए वे कृष्ण की स्वत:स्फूर्त रागानुगा भक्ति करते थे और गोपियों के चरणचिह्नों का अनुसरण करते थे।

निभृत-मरुन्मनोऽक्ष-दृढ़-योग-युजो हृदि यन्

मुनय उपासते तदरयोऽपि ययु: स्मरणात् ।

स्त्रिय उरगेन्द्र-भोग-भुज-दण्ड-विषक्त-धियो

वयमपि ते समा: सम-दृशोऽङ्घ्रि-सरोज-सुधा: ॥ 224॥

निभृत-नियन्त्रित; मरुत्-प्राणवायु; मन:-मन; अक्ष–इन्द्रियाँ; दृढ़-दृढ़; योग-योगाभ्यास में; मुज:-लगे हुए; हृदि-हृदय में; यत्-जो; मुनय:-महान् ऋषि; उपासते-पूजा करते हैं; तत्-वह; अरय:-शत्रु; अपि-भी; ययु:-पाते हैं; स्मरणात्-स्मरण करके; स्त्रिय:-गोपियाँ; उरग-इन्द्र–सर्पो की; भोग-शरीरों की भाँति; भुज-भुजाएँ; दण्ड-दण्डों की तरह; विषक्त-

बंधे हुए; धियः-जिनके मन; वयम् अपि-हम भी; ते-आपके; समाः–उनके समान; सम-दृशः-वैसे ही भावों से; अङ्घ्रि-सरोज-चरणकमल का; सुधाः-अमृत।

अनुवाद

"बड़े बड़े मुनि योगाभ्यास तथा प्राणायाम द्वारा अपने मन तथा इन्द्रियों को जीतते हैं। इस तरह योग में प्रवृत्त होकर वे अपने हृदयों के भीतर परमात्मा का दर्शन करते हैं, और अन्ततः निर्विशेष ब्रह्म में प्रवेश करते हैं। किन्तु यह पद तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शत्रु भी उनका केवल चिन्तन करके प्राप्त करते हैं। किन्तु व्रजांगनाएँ अर्थात् गोपियाँ कृष्ण के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर कृष्ण का और उनकी सर्प जैसी भुजाओं का आलिंगन करना चाहती थीं। इस प्रकार उन्होंने अन्ततोगत्वा भगवान् के चरणकमलों के अमृत का आस्वादन किया। इसी तरह हम उपनिषद् भी गोपियों के पदचिह्नों पर चलकर कृष्ण के चरणकमलों का अमृत चख सकते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.87.23) से लिया गया है, जो मूर्तिमान वेद रूपी श्रुतियों द्वारा कहा गया है।

'सम-दृशः'-शब्दे कहे 'सेइ भावे अनुगति'।

'समाः'-शब्दे कहे श्रुतिर गोपी-देह-प्राप्ति॥ 225॥

सम-दृशः शब्दे- समदृशः शब्द से; कहे-अभिप्राय है; सेइ-उस; भावे-भाव में; अनुगति–अनुगमन करके; समाः शब्दे-समः शब्द से; कहे-अर्थ है; श्रुतिर 'श्रुति नामक व्यक्तियों का; गोपी-देह-गोपियों की देह; प्राप्ति-प्राप्ति।

अनुवाद

"पिछले श्लोक के चतुर्थ चरण में उल्लिखित 'समदृशः' शब्द का अर्थ है, 'गोपियों के भाव का अनुगमन करते हुए।' 'समाः' का अर्थ है, 'श्रुतियों द्वारा गोपियों जैसा ही शरीर प्राप्त करके।"

'अङ्घ्रि-पद्म-सुधा'य कहे 'कृष्ण-सङ्गानन्द'।

विधि-मार्गे ना पाइये व्रजे कृष्ण-चन्द्र॥ 226॥

अङ्घ्रि-पद्म-सुधाय-कृष्ण के चरणकमलों से निकले अमृत से; कहे-अभिप्राय है; कृष्ण-सङ्ग-आनन्द-कृष्ण के संग का दिव्य आनन्द; विधि-मार्गे–विधि विधानों के पथ पर; ना पाइये-कोई पाता नहीं; व्रजे–गोकुल वृन्दावन में; कृष्ण-चन्द्र-भगवान् कृष्ण।

अनुवाद

"अङ्घ्रि-पद्मसुधा' का अर्थ है, कृष्ण से घनिष्ठतापूर्वक संगति करते हुए।' ऐसी पूर्णता एकमात्र भगवान् के रागानुग प्रेम द्वारा मिल सकती है। केवल विधि-विधानों द्वारा भगवान् की सेवा करने से गोलोक वृन्दावन में कृष्ण को प्राप्त नहीं किया जा सकता।"

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिका-सुतः ।

ज्ञानिनां चात्म-भूतानां यथा भक्ति-मतामिह ॥227॥

न–नहीं; अयम्-यह भगवान् कृष्ण; सुख-आपः-सरलता से उपलब्ध; भगवान्-पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; देहिनाम्-भौतिक व्यक्तियों के लिए, जो स्वयं को शरीर समझते हैं; गोपिका-सुतः–माता यशोदा का पुत्र; ज्ञानिनाम्-ज्ञानियों के लिए; च-और; आत्म-भूतानाम्-घोर व्रत-तप करने वालों के लिए; यथा-जैसे; भक्ति-मताम्-स्वतःस्फूर्त भक्ति में मग्न लोगों के लिए; इह-इस संसार में।

अनुवाद

"यशोदा के पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण उन भक्तों को सुलभ हैं, जो रागानुगा भक्ति में लगे हुए हैं। किन्तु वे शुष्क चिन्तकों, कठिन व्रत तथा तपस्या द्वारा आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करने वालों या शरीर को आत्मा मानने वालों को इतनी सरलता से सुलभ नहीं हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.9.21) का है, जिसे श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा था। यह उस प्रसंग में आता है, जिसमें वे माता यशोदा तथा कृष्ण के अन्य भक्तों का महिमागान करते हुए कहते हैं कि गोपियाँ किस तरह कृष्ण को अपने प्रेम से वशीभूत कर सकती हैं।

अतएव गोपी-भाव करि अङ्गीकार ।

रात्रि-दिन चिन्ते राधा-कृष्णेर विहार ॥228॥

अतएव–अतएव; गोपी-भाव-गोपियों का प्रेम-भाव; करि–करके; अङ्गीकार-स्वीकार; रात्रि-दिन-दिन-रात; चिन्ते–व्यक्ति सोचता है; राधा-कृष्णेर-राधा और कृष्ण का; विहार-विहार, लीलाएँ।

अनुवाद

"अतएव मनुष्य को गोपियों के सेवाभाव को ग्रहण करना चाहिए। ऐसे दिव्य भाव में श्री राधाकृष्ण की लीलाओं का निरन्तर चिन्तन करना चाहिए।"

सिद्ध-देहे चिन्ति' करे ताहाँञि सेवन ।

सखी-भावे पाय राधा-कृष्णेर चरण ॥ 229॥

सिद्ध-देहे-सिद्धावस्था में; चिन्ति'-स्मरण करके; करे-करता है; ताहाँञि-आध्यात्मिक जगत् में; सेवन–सेवा; सखी-भावे-गोपी भाव में; पाय-पाता है; राधा-कृष्णेर-राधा और कृष्ण के; चरण-चरणकमल।

अनुवाद

"राधा-कृष्ण तथा उनकी लीलाओं का दीर्घकाल तक चिन्तन करने और भौतिक कल्मष से पूरी तरह मुक्त होने पर मनुष्य आध्यात्मिक जगत् को चला जाता है। वहाँ भक्त को गोपी के रूप में राधा तथा कृष्ण की सेवा करने का सुअवसर प्राप्त होता है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि सिद्धदेह शब्द का अर्थ "परिपूर्ण आध्यात्मिक देह" है और यह पाँच तत्त्वों से बने भौतिक स्थूल देह और मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार से बने सूक्ष्म देह से परे है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य दव्य युगल राधा तथा कृष्ण किी सेवा करने के योग्य पूर्णतया आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करता है-सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।

मनुष्य जब अपने आध्यात्मिक शरीर को प्राप्त होता है, जो इस स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक शरीर से परे है, तभी वह राधाकृष्ण की सेवा करने के योग्य होता है। यह शरीर सिद्धदेह कहलाता है। जीव को पूर्वकर्मों तथा मानसिक अवस्था के अनुसार एक विशेष प्रकार का स्थूल शरीर प्राप्त होता है। इस जीवन में मानसिक अवस्था तरह-तरह से बदलती है,

और वही जीव अपनी इच्छाओं के अनुरूप अगले जन्म में दूसरा शरीर प्राप्त करता है। मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व जताने में सदैव तत्पर रहते हैं। उस सूक्ष्म शरीर के अनुसार मनुष्य को स्थूल देह मिलता है, जिससे वह अपनी इच्छित वस्तुओं का भोग कर सके। वर्तमान देह के कार्यों के अनुसार मनुष्य अन्य सूक्ष्म शरीर तैयार करता है और इस सूक्ष्म शरीर के अनुसार उसे दूसरा स्थूल शरीर प्राप्त होता है। यही भौतिक जगत् का नियम है। किन्तु जब मनुष्य आध्यात्मिक पद प्राप्त कर लेता है और स्थूल या सूक्ष्म शरीर की कामना नहीं करता, तो उसे अपना मूल आध्यात्मिक शरीर प्राप्त होता है। जैसाकि भगवद्गीता (4.9) में पुष्टि की गई है-त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।

मनुष्य आध्यात्मिक शरीर से आध्यात्मिक जगत् तक उन्नत होता है और गोलोक वृन्दावन अथवा अन्य किसी वैकुण्ठ लोक में स्थित होता है। आध्यात्मिक शरीर में भौतिक इच्छाएँ नहीं रह जातीं और मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् राधाकृष्ण की सेवा करके परम सन्तुष्ट रहता है। यह भक्ति का पद है। (हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते)। जब आध्यात्मिक शरीर, मन तथा इन्द्रियाँ पूरी तरह शुद्ध हो जाते हैं, तब मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनकी प्रेयसी की सेवा कर सकता है। वैकुण्ठ लोक में भगवान् की प्रेयसी लक्ष्मी हैं और गोलोक वृन्दावन में श्रीमती राधारानी हैं। मनुष्य भौतिक कल्मष से रहित आध्यात्मिक शरीर द्वारा राधाकृष्ण तथा लक्ष्मीनारायण की सेवा कर सकता है। जब मनुष्य इस तरह आध्यात्मिक रूप से अवस्थित हो जाता है, तब वह अपनी खुद की इन्द्रियतृप्ति के बारे में नहीं सोचता। यह आध्यात्मिक शरीर सिद्ध-देह कहलाता है-अर्थात् ऐसा शरीर जिसके द्वारा मनुष्य राधा तथा कृष्ण की दिव्य सेवा कर सकता है। इसकी विधि यही है कि दिव्य इन्द्रियों को प्रेममयी सेवा में लगाया जाये। इस श्लोक में-सखी भावे पाय राधाकृष्णेर चरण का विशेष उल्लेख हुआ है, जिसका अर्थ यह है कि गोपियों के भाव में आध्यात्मिक रूप से उन्नत व्यक्ति ही राधा-कृष्ण के चरणकमलों की सेवा में लग सकता है।

गोपी-आनुगत्य विना ऐश्वर्य-ज्ञाने ।

भजिलेह नाहि पाय व्रजेन्द्र-नन्दने ॥ 230॥

गोपी-आनुगत्य-गोपियों का अनुसरण किए; विना-बिना; ऐश्वर्य-ज्ञाने-ऐश्वर्य के ज्ञान में; भजिलेह-यदि भगवान् की सेवा की जाए; नाहि-नहीं; पाय-पाता है; व्रजेन्द्र-नन्दने-नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण को।

अनुवाद

“जब तक मनुष्य गोपियों के चरणचिह्नों का अनुसरण नहीं करता, तब तक उसे नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण के चरणकमलों की सेवा प्राप्त नहीं हो सकती। यदि वह भगवान् के ऐश्वर्य के ज्ञान से परास्त हो जाता है, तो उसे भगवान् के चरणकमल प्राप्त नहीं हो सकते, भले ही वह भक्तिमयी सेवा में क्यों न लगा हुआ हो।”

तात्पर्य

मनुष्य विधि-मार्ग से लक्ष्मीनारायण की पूजा कर सकता है, जिसमें शास्त्र तथा गुरु के आदेशानुसार नियमपूर्वक भगवान् की पूजा करनी होती है। किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, राधा-कृष्ण की पूजा इस विधि से सीधे नहीं की जा सकती। राधा, कृष्ण तथा गोपी के मध्य का व्यवहार लक्ष्मी-नारायण के ऐश्वर्यों से रहित होता है। विधि-मार्ग का उपयोग लक्ष्मी-नारायण की पूजा में किया जाता है, किन्तु रागानुग प्रेम, जिसमें वृन्दावन की निवासिनी गोपियों के चरणचिह्नों पर चलना होता है, दिव्य रूप से अधिक उन्नत होता है, और इसीसे राधा-कृष्ण की पूजा की जाती है। भगवान् को उनके ऐश्वर्य में पूजते हुए यह उन्नत पद प्राप्त नहीं किया जा सकता। जो लोग राधा तथा कृष्ण के माधुर्य प्रेम द्वारा आकृष्ट होते हैं, उन्हें गोपियों का अनुसरण करना चाहिए। तभी गोलोक वृन्दावन में भगवान् की सेवा में प्रविष्ट हुआ जा सकता है, और राधा तथा कृष्ण की प्रत्यक्ष संगति प्राप्त की जा सकती है।

ताहाते दृष्टान्त—लक्ष्मी करिल भजन ।

तथापि ना पाइल व्रजे व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ 231॥

ताहाते-उसमें; दृष्टान्त-प्रमाण; लक्ष्मी-लक्ष्मी देवी; करिल-की; भजन-पूजा; तथापि-फिर भी; ना-नहीं; पाइल-पाया; व्रजे-वृन्दावन में; व्रजेन्द्र-नन्दन–नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण को।

अनुवाद

“इस प्रसंग में अकथनीय उदाहरण लक्ष्मीजी का है, जिन्होंने वृन्दावन में कृष्ण की लीलाओं को प्राप्त करने के लिए भगवान् कृष्ण की पूजा की। किन्तु अपनी ऐश्वर्यमयी जीवन-शैली के कारण उन्हें वृन्दावन में कृष्ण की सेवा प्राप्त नहीं हो सकी।”

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त-रतेः प्रसादः

स्वर्योषितां नलिन-गन्ध-रुचां कुतोऽन्याः ।

रासोत्सवेऽस्य भुज-दण्ड-गृहीत-कण्ठ-

लब्धाशिषां य उदगाद्व्रज-सुन्दरीणाम् ॥232॥

न-नहीं; अयम्-यह; श्रियः-लक्ष्मी देवी; अङ्गे-वक्षस्थल पर; उ–खेद है; नितान्त-रतेः-घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी; प्रसादः-कृपा; स्वः-स्वर्ग लोकों की; योषिताम्-स्त्रियों की; नलिन–कमल के फूल की; गन्ध–सुगन्ध युक्त; रुचाम्-और शारीरिक कान्ति; कुतः-बहुत कम; अन्याः-अन्य; रास-उत्सवे-रास उत्सव में; अस्य-भगवान् कृष्ण की; भुज-दण्ड-भुजाओं से; गृहीत-आलिंगित; कण्ठ–उनकी गर्दन में; लब्ध-आशिषाम्-ऐसा आशीवार्द पाया; यः-जो; उदगात्-प्रकट हो गया; व्रज-सुन्दरीणाम्-व्रज की सुन्दरियाँ दिव्य गोपियों का।

अनुवाद

"जब भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों के साथ रासलीला में नृत्य कर रहे थे, तब भगवान् की भुजाएँ गोपियों की गर्दन को आलिंगित किए थीं। यह दिव्य कृपा न तो लक्ष्मीजी को, न ही वैकुण्ठ में अन्य किसी प्रेयसी को प्राप्त हो पाई। न ही स्वर्गलोक की उन सुन्दरियों ने कभी ऐसी कल्पना भी की थी, जिनकी शारीरिक कान्ति तथा सुगन्ध कमल-पुष्प जैसी है। तो भला संसारी स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाए, जो भौतिक दृष्टि से कितनी भी सुन्दर क्यों न हों ?"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.47.60) का है।

एत शुनि' प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन ।

दुइ जने गलागलि करेन क्रन्दन ॥ 233॥

एत शुनि'-इतना सुनकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे-रामानन्द राय को; कैल–किया; आलिङ्गन-आलिंगन; दुइ जने-दोनों ने; गलागलि–गले लगाकर; करेन-किया; क्रन्दन–रुदन।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय का आलिंगन किया और दोनों एक-दूसरे को गले लगाकर रुदन करने लगे।

एइ-मत प्रेमावेशे रात्रि गोङाइला।

प्रातः-काले निज-निज-कार्ये दुँहे गेला ॥ 234॥

एइ-मत-इस प्रकार; प्रेम-आवेशे-भगवत्प्रेम के आवेश में; रात्रि-रात्रि; गोङाइला–गुजारी; प्रातः-काले-प्रात:काल; निज-निज-कार्ये-अपने अपने कार्य में; दुँहे वे दोनों; गेला–चले गये।

अनुवाद

इस तरह सारी रात भगवान् के प्रेमावेश में बीती और प्रात:काल दोनों अपने-अपने कार्यों पर चले गये।

विदाय-समये प्रभुर चरणे धरिया।

रामानन्द राय कहे विनति करिया ॥ 235॥

विदाय-समये-जाते समय; प्रभुर चरणे-चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; धरिया-पकड़कर; रामानन्द राय-रामानन्द राय; कहे-कहते हैं; विनति करिया-अत्यन्त विनयपूर्वक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से विदा होने के पूर्व रामानन्द राय ने पृथ्वी पर गिरकर महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिए। फिर वे अत्यन्त विनीत भाव से इस प्रकार बोले।

'मोरे कृपा करिते तोमार इहाँ आगमन।

दिन दश रहि' शोध मोर दुष्ट मन ॥ 236 ॥

मोरे–मुझ पर; कृपा-कृपा; करिते-करने के लिए; तोमार-आपका; इहाँ–यहाँ; आगमन-आना; दिन दश रहि'–कम से कम दस और दिन रूककर; शोध-शुद्ध करो; मोर-मेरा; दुष्ट मन-दुष्ट मन।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने कहा, "आप मुझ पर अपनी अहैतुकी कृपा दर्शाने ही यहाँ आये हैं। अतएव आप यहाँ कम-से-कम दस दिन तक रुक जायें और मेरे दूषित मन को शुद्ध कर दें।"

तोमा विना अन्य नाहि जीव उद्धारिते ।

तोमा विना अन्य नाहि कृष्ण-प्रेम दिते ॥ 237॥

तोमा विना-आपके बिना; अन्य-और कोई; नाहि-नहीं है; जीव-जीव; उद्धारिते-उद्धार करने के लिए; तोमा विना-आपके बिना; अन्य-और कोई; नाहि-नहीं है; कृष्ण-प्रेम दिते-कृष्ण-प्रेम प्रदान करने के लिए।

अनुवाद

"आपके अतिरिक्त ऐसा कौन है, जो सारे जीवों का उद्धार कर सके, क्योंकि केवल आप ही कृष्ण-प्रेम प्रदान कर सकते हैं।"

प्रभु कहे,—आइलाङशुनि' तोमार गुण ।

कृष्ण-कथा शुनि, शुद्ध कराइते मन ॥238॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; आइलाङ–मैं आया हूँ; शुनि'–सुनकर; तोमार-आपके; गुण-गुण; कृष्ण-कथा-कृष्ण कथाएँ; शुनि–मैं सुनता हूँ; शुद्ध कराइते–मात्र शुद्ध कराने के लिए; मन–मन।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं आपके सद्गुण सुनकर यहाँ आया हूँ। मैं तो आपके पास कृष्ण का गुणानुवाद सुनने और इस तरह अपना मन शुद्ध करने आया हूँ।"

यैछे शुनिलुँ, तैछे देखिलुँ तोमार महिमा ।

राधा-कृष्ण-प्रेमरस-ज्ञानेर तुमि सीमा ॥ 239॥

यैछे-इतना; शुनिलुँ–जितना मैंने सुना है; तैछे-उतना; देखिलुँ-मैंने देखा है; तोमार महिमा-आपकी महिमा; राधा-कृष्ण-प्रेम-रस-ज्ञानेर-राधा-कृष्ण के प्रेमाचार का दिव्य ज्ञान; तुमि-आप; सीमा-चरम सीमा।

अनुवाद

"जिस तरह मैंने आपके बारे में सुना था, उसी तरह मैंने आपकी महिमा भी देख ली। जहाँ तक राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का सम्बन्ध है, आप तो ज्ञान की सीमा हैं।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को राधा-कृष्ण के प्रेम के दिव्य ज्ञान में सबसे बड़े अधिकारी के रूप में पाया। इस श्लोक में महाप्रभु वास्तव में कहते हैं कि रामानन्द राय इस ज्ञान की पराकाष्ठा थे।

दश दिनेर का-कथा यावतामि जीब' ।

तावत्तोमार सङ्ग छाड़िते नारिब ॥ 240॥

दश दिनेर-दस दिन का; का-कथा-क्या कहें; यावत्-जब तक; आमि-मैं; जीब-जीवित रहूँगा; तावत्-तब तक; तोमार-आपका; सङ्ग-संग, साथ; छाड़िते-छोड़ना; नारिब–मैं नहीं सकूँगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "दस दिन की क्या बात है, जब तक मैं जीवित रहूँगा तब तक आपका साथ छोड़ पाना मेरे लिए असम्भव होगा।"

नीलाचले तुमि-आमि थाकिब एक-सङ्गे ।

सुखे गोङाइब काल कृष्ण-कथा-रङ्गे ॥ 241॥

नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; तुमि-आप; आमि-मैं; थाकिब रहेंगे; एक-सङ्गे-इकठ्ठ; सुखे-सुखपूर्वक; गोङाइब-गुजारेंगे; काल-समय; कृष्ण-कथा-रङ्गे–कृष्ण कथा की चर्चा के आनन्द में।

अनुवाद

"आप और मैं दोनों साथ साथ जगन्नाथ पुरी में रहेंगे। हम एक साथ आनन्द में कृष्ण तथा उनकी लीलाओं की चर्चा करते हुए अपना समय बितायेंगे।"

एत बलि' दुँहे निज-निज कार्ये गेला ।

सन्ध्या-काले राय पुनः आसिया मिलिला ॥ 242॥

एत बलि'-यह कहकर; दुँहे वे दोनों; निज-निज-अपने अपने; कार्ये कार्य में; गेला–चले गये; सन्ध्या-काले-सायंकाल; राय-रामानन्द राय; पुनः–पुनः; आसिया-वहाँ आकर; मिलिला–मिले।

अनुवाद

इस तरह वे दोनों अपने अपने कामों पर चले गये। तत्पश्चात् संध्या-समय रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने आये।

अन्योन्ये मिलि' दुँहे निभृते वसिया ।

प्रश्नोत्तर-गोष्ठी कहे आनन्दित हञा ॥ 243॥

अन्योन्ये-परस्पर; मिलि'–मिलकर; दुँहे-वे दोनों; निभृते-एकान्त स्थान पर; वसिया-बैठकर; प्रश्न-उत्तर–प्रश्नों तथा उत्तरों की; गोष्ठी-चर्चा; कहे-की; आनन्दित-आनन्दित; हञा–होकर।

अनुवाद

इस तरह वे बारम्बार मिलते, एकान्त स्थान में बैठते और प्रश्नोत्तर के रूप में प्रसन्न चित्त होकर कृष्ण की लीलाओं पर चर्चा करते थे।

प्रभु पुछे, रामानन्द करेन उत्तर ।

एइ मत सेइ रात्रे कथा परस्पर ॥244॥

प्रभु पुछे–महाप्रभु पूछते; रामानन्द–राय रामानन्द; करेन-देते; उत्तर-उत्तर; एइ मत-इस प्रकार; सेइ रात्रे-उस रात; कथा-चर्चा; परस्पर-परस्पर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रश्न पूछते थे और रामानन्द राय उत्तर देते थे। इस तरह रात-भर वे चर्चा में लगे रहते।

प्रभु कहे,—"कोन्विद्या विद्या-मध्ये सार?" ।

राय कहे,—"कृष्ण-भक्ति विना विद्या नाहि आर" ॥ 245॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने पूछा; कोन्-क्या; विद्या-ज्ञान; विद्या-मध्ये-ज्ञान के मध्य; सार-सबसे महत्त्वपूर्ण; राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण भक्ति; विना–विना; विद्या–विद्या; नाहि-नहीं है; आर-और कुछ।

अनुवाद

एक अवसर पर महाप्रभु ने पूछा, "सभी प्रकार की विद्याओं में कौन-सी विद्या सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "दिव्य कृष्ण-भक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई विद्या महत्त्वपूर्ण नहीं है।"

तात्पर्य

श्लोक 245 से 257 तक श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के प्रश्नोत्तर हैं। इस आदान-प्रदान में भौतिक तथा आध्यात्मिक अस्तित्व के अन्तर को दिखाने की चेष्टा की गई है। कृष्णभावनामृत की विद्या सदा दिव्य है और समस्त विद्याओं में श्रेष्ठ है। भौतिक विद्या का लक्ष्य भौतिक इन्द्रियतृप्ति के कार्यों को बढ़ाना रहता है। किन्तु भौतिक इन्द्रियतृप्ति से परे ज्ञान का एक नकारात्मक पक्ष भी है, जो ब्रह्म-विद्या अर्थात् निर्विशेष दिव्य ज्ञान कहलाता है। किन्तु इस ब्रह्म-विद्या अर्थात् निराकार ब्रह्म के ज्ञान से भी परे भगवान् विष्णु की भक्तिमयी सेवा का ज्ञान है। यह ज्ञान उच्चतर है और इससे भी बढ़कर है। भगवान् कृष्ण की भक्तिमयी सेवा, जो सर्वोच्च विद्या है। श्रीमद्भागवत (4.29.49) के अनुसार : तत्कर्म हरितोषं यत् सा विद्या तन्मतिर्यया-"भगवान् को प्रसन्न करने के निमित्त किया गया कार्य सर्वोत्तम है, और जो विद्या कृष्ण-चेतना को बढ़ाये वही सर्वश्रेष्ठ है।"

श्रीमद्भागवत (7.5.23-24) के ही अनुसार :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं ।

अर्चनं वन्दनं दास्यम् सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

इति पुंसार्पिताविष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।

क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥

यह प्रह्लाद महाराज का कथन है, जो उन्होंने अपने पिता द्वारा उठाये गये प्रश्न के उत्तर में कहा था। प्रह्लाद महाराज ने कहा, "भगवान् विष्णु के विषय में सुनना या कहना, उन्हें स्मरण करना, उनके चरणकमलों की सेवा करना, उनकी पूजा करना, उनकी स्तुति करना, उनका दास तथा मित्र बनना, उनकी सेवा में सर्वस्व निछावर कर देना-ये भक्ति के विविध प्रकार हैं। जो व्यक्ति ऐसे कार्यों में लगा हुआ है, वह सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त माना जाता है।"

'कीर्ति-गण-मध्ये जीवेर कोन्बड़ कीर्ति?' ।

'कृष्ण-भक्त' बलिया याँहार हय ख्याति ॥ 246 ॥

कीर्ति-गण-मध्ये-महिमापूर्ण कार्यों में; जीवेर-जीव का; कोन्-कौन सा; बड़-महान्; कीर्ति-महिमा; कृष्ण-भक्त कृष्ण भक्त; बलिया-जैसा; याँहार–जिसकी; हय-है; ख्याति–ख्याति।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से पूछा, "समस्त यशस्वी कार्यों में कौन-सा कार्य सर्वाधिक यशस्वी है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "वह व्यक्ति जो भगवान् कृष्ण के भक्त के रूप में विख्यात है, वही सर्वाधिक यश तथा कीर्ति भोगता है।"

तात्पर्य

कृष्ण-भक्त बनना तथा कृष्णभावनामृत में कार्य करना ही किसी जीव के लिए सर्वोच्च यश प्राप्त करना है। इस भौतिक जगत् में हर व्यक्ति प्रचुर भौतिक ऐश्वर्य एकत्र करके या बैंकों में पैसा जमा करके विख्यात बनना चाहता है। कर्मियों के बीच धनी समाज में आगे बढ़ने के लिए निरन्तर स्पर्धा चलती रहती है। सारा विश्व उसी स्पर्धा में लगा है। किन्तु इस प्रकार का नाम तथा यश नश्वर है, क्योंकि यह सब केवल तब तक रहता है, जब तक नश्वर भौतिक शरीर रहता है। इससे कोई ब्रह्मज्ञानी अर्थात् निर्विशेषवादी पण्डित के रूप में, तो कोई भौतिक ऐश्वर्यवान व्यक्ति के रूप में विख्यात हो सकता है। किन्तु ऐसी ख्याति कृष्ण-भक्त की ख्याति से निकृष्ट होती है। गरुड़ पुराण में कहा गया है :

कलौ भागवतं नाम दुर्लभं नैव लभ्यते ।

ब्रह्मरुद्रपदोत्कृष्टं गुरुणा कथितं मम ॥

"इस कलियुग में महान् भक्त के रूप में यश पाना दुर्लभ है। किन्तु ऐसा पद ब्रह्मा तथा महादेव जैसे देवताओं से श्रेष्ठतर है। यह सारे गुरुओं का मत है।"

इतिहास समुच्चय में पुण्डरीक से नारद कहते हैं :

जन्मान्तर सहस्रेषु यस्य स्याद् बुद्धिरीदृशी ।

दासोऽहं वासुदेवस्य सर्वाल्लोकान् समुद्धरेत् ॥

"जब अनेकानेक जन्मों के बाद मनुष्य को अनुभूति होती है कि वह वासुदेव का सनातन दास है, तो वह सारे लोकों का उद्धार कर सकता है।"

आदि पुराण में कृष्ण तथा अर्जुन की वार्ता में कहा गया है : भक्तानां अनुगच्छन्ति मुक्तयः श्रुतिभिः सह–"वैदिक ज्ञान से मुक्ति का सर्वोच्च पद प्राप्त होता है। हर व्यक्ति भक्त के पदचिह्नों का अनुसरण करता है।" इसी प्रकार बृहन्नारदीय पुराण में भी कहा गया है : अद्यापि च मुनि श्रेष्ठा ब्रह्माद्या अपि देवता:-"आज तक ब्रह्मा तथा शिवजी जैसे बड़े-बड़े देवता भी भक्त के प्रभाव को नहीं जान पाये।" इसी प्रकार गरुड़ पुराण में कहा गया है :

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते

सत्रयाजीसहस्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः ।

सर्ववेदान्तविकोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते

वैष्णवानां सहस्रेभ्य एकान्त्येको विशिष्यते ॥

"कहा जाता है कि हजारों ब्राह्मणों में से कोई एक यज्ञ करने के योग्य होता है, और ऐसे हजारों योग्य याज्ञिक ब्राह्मणों में कोई एक ब्राह्मण सारे वैदिक ज्ञान को लाँघ चुका होता है। ऐसा व्यक्ति इन सारे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ माना जाता है। फिर भी ऐसे हजारों वेदान्तवित् ब्राह्मणों में कोई एक विष्णु-भक्त हो सकता है, जो अत्यन्त विख्यात होता है। ऐसे हजारों वैष्णवों में से वह एक, जो कृष्ण की सेवा में दृढ़ रहता है, सर्वाधिक प्रसिद्ध होता है। जो व्यक्ति भगवान् की सेवा पूर्ण रूप से समर्पित है, वह निश्चित रूप से भगवधाम वापस जाता है।"

श्रीमद्भागवत (3.13.4) में भी एक कथन है, जो इस प्रकार है :

श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य

नन्वञ्जसा सूरिभिरीडितोऽर्थः ।

तत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्द

पादारविन्दं हृदयेषु येषाम् ॥

"अत्यधिक कठिन श्रम के बाद वैदिक साहित्य का पंडित अत्यन्त विख्यात हो जाता है। किन्तु जो व्यक्ति सदैव अपने हृदय में मुकुन्द के चरणकमलों की महिमा का श्रवण और कीर्तन करता रहता है, वह निश्चय ही श्रेष्ठ है।"

नारायण-व्यूह-स्तव में कहा गया है :

नाहं ब्रह्मापि भूयासं त्वद्भक्तिरहितो हरे ।

त्वयि भक्तस्तु कीटोऽपि भूयासं जन्म-जन्मसु ॥

"यदि ब्रह्मा भगवद्भक्त नहीं है, तो मैं उस ब्रह्मा के रूप में जन्म लेने की आकांक्षा नहीं करता। किन्तु मैं एक कीड़े के रूप में जन्म लेना पसन्द करूँगा, यदि मुझे भक्त के घर में रहने का अवसर मिले।"

श्रीमद्भागवत में ऐसे ही अनेक श्लोक हैं, विशेष रूप से 3.25.38, 4.24.29, 4.31.22, 7.9.24 तथा 10.14.30 ।

शिवजी ने ही कहा था, "मैं कृष्ण के विषय में सच्चाई नहीं जानता, किन्तु कृष्ण-भक्त सारी सच्चाई जानता है। भगवान् कृष्ण के सारे भक्तों में प्रह्लाद महानतम हैं।"

प्रह्लाद से भी अधिक उन्नत माने जाते हैं पाण्डव। पाण्डवों से भी अधिक उन्नत यदुवंशी हैं और यदुवंश में उद्धव सर्वाधिक उन्नत हैं, किन्तु उद्धव से भी बढ़कर व्रजधाम की गोपियाँ हैं।

बृहद् वामन पुराण में भृगु मुनि से ब्रह्माजी कहते हैं :

षष्टिवर्षसहस्राणि मया तप्तं तपः पुरा ।

नन्दगोपव्रजस्त्रीणां पादरेणूपलब्धये ॥

"मैंने गोपियों के चरणकमलों की धूलि को समझने के लिए 60 हजार वर्ष तक तपस्या की और ध्यान किया। फिर भी मैं इसे समझ नहीं सका। मैं तो क्या, शिवजी, शेषजी तथा लक्ष्मीजी भी इसे नहीं समझ सके।"

आदि पुराण में स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कहते हैं :

न तथा मे प्रियतमो ब्रह्मा रुद्रश्च पार्थिव ।

न च लक्ष्मिर्न चात्मा च यथा गोपीजनो मम ॥

"मुझे गोपियों के समान ब्रह्माजी, शिवजी, लक्ष्मीजी प्रिय नहीं हैं, यहाँ तक कि स्वयं मैं भी प्रिय नहीं हूँ।" समस्त गोपियों में से श्रीमती राधारानी सर्वोच्च हैं। रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी श्रीमती राधारानी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के

सबसे महान् सेवक हैं। जो लोग इनकी सेवा में लगे रहते हैं, वे रूपानुग भक्त कहलाते हैं। श्रील रूप गोस्वामी के सम्बन्ध में चैतन्य-चन्द्रामृत (26) में कहा गया है :

आस्तां वैराग्यकोटिर्भवतु शमदमक्षान्तिमैत्र्यादिकोटि-

स्तत्त्वानुध्यानकोटिर्भवतु भवतु वा वैष्णवी भक्तिकोटिः ।

कोट्यंशोऽप्यस्य न स्यात्तदपि गुणगणो यः स्वतः सिद्ध आस्ते

श्रीमच्चैतन्यचन्द्रप्रियचरणनखज्योतिरामोदभाजाम् ॥

श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में लगे रहने वाले के गुणों—यथा कीर्ति, तपस्या, ज्ञान—की तुलना अन्यों के सद्गुणों से नहीं करनी चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में लगे रहने वाले भक्त की पूर्णता ऐसी है।

‘सम्पत्तिर मध्ये जीवेर कोन्सम्पत्ति गणि?’ ।

‘राधा-कृष्णे प्रेम याँर, सेइ बड़ धनी’ ॥247॥

सम्पत्तिर-धन दौलत, सम्पत्ति का; मध्ये-के बीच; जीवेर-जीवों का; कोन्-क्या; सम्पत्ति--सम्पत्ति; गणि-हम मानते हैं; राधा-कृष्णे-श्रीमती राधारानी और कृष्ण का; प्रेम-प्रेम; याँर–जिसकी; सेइ-वह; बड़-बहुत बड़ा; धनी–धनी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, “धनवानों में सर्वोच्च कौन है?” रामानन्द राय ने उत्तर दिया, “जो राधा तथा कृष्ण के प्रेम का सबसे बड़ा धनी है, वही सबसे बड़ा धनवान है।”

तात्पर्य

इस भौतिक जगत् में प्रत्येक व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने के लिए धन प्राप्त करने का प्रयास करता है। वास्तविकता तो यह है कि कोई भी व्यक्ति भौतिक सम्पत्ति प्राप्त करने और उसे बनाये रखने के अतिरिक्त और किसी बात की परवाह नहीं करता। इस भौतिक जगत् में धनवान व्यक्ति सामान्यतया सबसे महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं, किन्तु जब हम भौतिकतावादी धनी व्यक्ति की तुलना राधा-कृष्ण की भक्ति के धनवान व्यक्ति से करते हैं, तो राधा-कृष्ण की भक्ति वाला ही सबसे बड़ा धनवान पाया जाता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार (10.39.2) :

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने।

तथापि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किञ्चन ॥

"लक्ष्मी के आश्रय भगवान् कृष्ण के भक्तों के लिए कौन-सी बात कठिन है ? हे राजन्, यद्यपि ये भक्त कुछ भी प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु ये किसी बात की इच्छा नहीं करते।"

'दुःख-मध्ये कोन दुःख हय गुरुतर?'।

'कृष्ण-भक्त-विरह विना दुःख नाहि देखि पर' ॥ 248॥

दुःख-मध्ये-जीवन की दुःखी अवस्था में; कोन–क्या; दुःख–दुःख; हय-है; गुरुतर-अधिक कष्टदायक; कृष्ण-भक्त-विरह-कृष्ण भक्त से विरह; विना-सिवाय; दुःख-दुःख; नाहि-नहीं है; देखि–मैं देखता हूँ; पर-अन्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "समस्त दुःखों में कौन-सा दुःख सर्वाधिक कष्टदायक है?" श्री रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मेरी जानकारी में कृष्ण-भक्त के विरह से बढ़कर कोई दूसरा असह्य दुःख नहीं है।"

तात्पर्य

इसके विषय में वैदिक साहित्य में भगवान् का कथन है :

मामनाराध्य दुःखार्तः कुटुम्बासक्तमानसः।

सत्संगरहितो मत्य वृद्धसेवापरिच्युतः ॥

"जो व्यक्ति मेरी पूजा नहीं करता, जो परिवार के प्रति अत्यधिक आसक्त है, और जो भक्ति में लिप्त नहीं होता, उसे सबसे दुःखी व्यक्ति मानना चाहिए। इसी तरह जो वैष्णवों की संगति नहीं करता या अपने से बड़ों की सेवा नहीं करता, वह भी सर्वाधिक दुःखी व्यक्ति है।"

बृहद्भागवतामृत (1.5.44) में भी कहा गया है :

स्वजीवनाधिकं प्रार्थ्यं श्रीविष्णुजनसङ्गतः।

विच्छेदेन क्षणं चात्र न सुखांशं लभामहे ॥

“जीव के जीवन में जिन-जिन वांछित वस्तुओं का अनुभव होता है, उनमें से भगवद्भक्तों की संगति सबसे बड़ी है। भक्त से क्षण-भर का भी वियोग हमें सुखी अनुभव नहीं होने देता।”

‘मुक्त-मध्ये कोन्जीव मुक्त करि’ मानि?’ ।

‘कृष्ण-प्रेम याँर, सेइ मुक्त-शिरोमणि’ ॥ 249॥

मुक्त-मध्ये-मुक्त जीवों के मध्य; कोन्-क्या, कौन; जीव-जीव; मुक्त-मुक्त; करि’-करते हैं; मानि–हम स्वीकार; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; याँर–जिसका; सेइ-ऐसा व्यक्ति; मुक्त-शिरोमणि-सर्वोत्तम मुक्तात्मा।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, “समस्त मुक्त पुरुषों में किसे सबसे महान् माना जाए?” रामानन्द राय ने उत्तर दिया, “जो कृष्ण-प्रेम से युक्त है, उसे ही सर्वोच्च मुक्ति प्राप्त है।” ।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (6.14.5) में कहा गया है :

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण-परायणः ।

सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥

“हे महामुनि, लाखों मुक्त पुरुषों तथा लाखों सिद्ध पुरुषों में नारायण का भक्त अत्यन्त दुर्लभ होता है। वह अत्यन्त पूर्ण एवं शान्त व्यक्ति होता है।”

‘गान-मध्ये कोन गान—जीवेर निज धर्म ?’ ।

‘राधा-कृष्णेर प्रेम-केलि’—येइ गीतेर मर्म ॥ 250॥

गान-मध्ये-गीतों के मध्य; कोन गान-कौन सा गीत; जीवेर-जीव का; निज-अपना; धर्म-धर्म; राधा-कृष्णेर प्रेम-केलि-राधा कृष्ण के प्रेम-व्यवहार; येइ-जो; गीतेर-गीत का; मर्म–अर्थ।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से पूछा, "अनेक गीतों में से किस गीत को जीव का वास्तविक धर्म माना जाए?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "श्री राधा तथा कृष्ण के प्रेम का वर्णन करने वाला गीत अन्य समस्त गीतों से श्रेष्ठ है।"

तात्पर्य

जैसाकि श्रीमद्भागवत (10.33.36) में कहा गया है :

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमास्थितः ।

भजते तादृशी: क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

"भगवान् कृष्ण मनुष्य के रूप में अवतरित होते हैं और वृन्दावन में अपनी दिव्य लीलाएँ प्रकट करते हैं, जिससे बद्धजीव उनके दिव्य कार्यकलापों के विषय में सुनने के लिए आकृष्ट हो।" अभक्तों को राधाकृष्ण सम्बन्धी प्रेम-गीतों में भाग लेना वर्जित है। भक्त बने बिना राधाकृष्ण की लीलाओं के उन गीतों को सुनना अत्यन्त खतरनाक है, जिन्हें जयदेव गोस्वामी, चण्डीदास तथा अन्य उन्नत भक्तों ने लिखा है। यद्यपि शिवजी ने समुद्र भरकर विष-पान किया था, किन्तु हमें इसका अनुकरण नहीं करना चाहिए। पहले भगवान् कृष्ण का शुद्ध भक्त बनना चाहिए। तभी जयदेव के गीतों को सुनकर दिव्य आनन्द का अनुभव किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति शिवजी के कार्यों का मात्र अनुकरण करता है और विषपान करता है, तो उसकी मृत्यु निश्चित है।

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के बीच की वार्ताएँ केवल उच्च भक्तों के निमित्त हैं। संसारी लोग तथा शोध के लिए इन वार्ताओं के अध्ययन करने वाले लोग इनको नहीं समझ सकेंगे। उल्टे इनका प्रभाव विषैला होगा।

'श्रेयो-मध्ये कोन श्रेयः जीवेर हय सार?' ।

'कृष्ण-भक्त-सङ्ग विना श्रेयः नाहि आर' ॥251॥

श्रेयः-मध्ये-लाभदायक कार्यकलापों में; कोन-कौन सा; श्रेयः-श्रेयस्कर; जीवेर-जीव का; हय-है; सार-सार; कृष्ण-भक्त-सङ्ग-भगवान् कृष्ण भक्तों के संग हेतु; विना-बिना; श्रेयः-श्रेय; नाहि-नहीं है; आर-अन्य।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "समस्त शुभ तथा लाभप्रद कार्यों में से जीव के लिए सर्वश्रेष्ठ कार्य कौन-सा है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "एकमात्र शुभ कार्य कृष्ण-भक्तों की संगति है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (11.2.30) के अनुसार :

अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः ।

संसारेऽस्मिन् क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम् ॥

"हम आपसे सर्वाधिक कल्याणप्रद कार्य के विषय में पूछ रहे हैं। मैं सोचता हूँ कि इस भौतिक जगत् में भक्तों की संगति, चाहे क्षण-भर के लिए ही क्यों न हो, मनुष्य के लिए सबसे बड़ा खजाना है।"

'काँहार स्मरण जीव करिबे अनुक्षण?' ।

'कृष्ण'-नाम-गुण-लीला—प्रधान स्मरण' ॥ 252॥

काँहार–किसका; स्मरण-स्मरण; जीव-जीव; करिबे करना चाहिए; अनुक्षण-निरन्तर; कृष्ण-नाम-कृष्ण के पावन नाम का; गुण-लीला-उनके गुण और उनकी लीलाएँ; प्रधान स्मरण-महत्त्वपूर्ण स्मरण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "सारे जीव किसका निरन्तर स्मरण करें ?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "स्मरण करने की मुख्य वस्तु सदैव भगवान् के नाम, गुण तथा लीलाएँ हैं।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (2.2.36) का कथन है :

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा ।

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान् नृणाम् ॥

शुकदेव गोस्वामी ने कहा, "जीव का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक परिस्थिति में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सदैव स्मरण करे। सारे मनुष्यों को भगवान् का श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण करना चाहिए।"

‘ध्येय-मध्ये जीवेर कर्तव्य कोन्ध्यान?’ ।

‘राधा-कृष्ण-पदाम्बुज-ध्यान—प्रधान’ ॥ 253 ॥

ध्येय-मध्ये-ध्यान के सभी प्रकारों में से; जीवेर-जीव का; कर्तव्य कर्तव्य; कोन्-किसका; ध्यान-ध्यान; राधा-कृष्ण-पद-अम्बुज-राधाकृष्ण के चरणकमलों पर ध्यान-ध्यान; प्रधान-महत्त्वपूर्ण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने और आगे पूछा, “समस्त प्रकार के ध्यानों में से कौन-सा ध्यान जीवों के लिए आवश्यक है?” श्रील रामानन्द राय ने उत्तर दिया, “प्रत्येक जीव का प्रधान कर्तव्य यह है कि वह राधाकृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करे।”

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (1.2.14) का कथन है :

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः ।

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥

सूत गोस्वामी ने शौनक आदि ऋषियों को बतलाया, “हर व्यक्ति को ध्यानपूर्वक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की लीलाओं के विषय में सुनना चाहिए। उसे उनके कार्यकलापों का गुणगान करना चाहिए और उनका नियमित ध्यान करना चाहिए।”

‘सर्व त्यजि’ जीवेर कर्तव्य काहाँ वास?’ ।

‘व्रज-भूमि वृन्दावन याहाँ लीला-रास’ ॥254॥

सर्व-सब कुछ; त्यजि-त्यागकर; जीवेर-जीव का; कर्तव्य-कर्तव्य; काहाँ-कहाँ; वास–निवास; व्रज-भूमि-व्रज भूमि; वृन्दावन-वृन्दावन; याहाँ-जहाँ; लीला-रास-भगवान् कृष्ण ने रासलीला रची।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "जीव को अन्य सारे स्थान त्यागकर कहाँ रहना चाहिए?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "उसे वृन्दावन या व्रजभूमि नामक पवित्र स्थान में रहना चाहिए, जहाँ भगवान् ने रासनृत्य किया था।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (10.47.61) के अनुसार :

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां

वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।

या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा

भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥

उद्धव ने कहा, "मैं वृन्दावन की वह लता तथा पौधा बनना चाहता हूँ, जिसे मुकुन्द के चरणकमलों की पूजा करने के लिए, परिवार तथा मित्रों से अपने सारे सम्बन्ध तोड़कर गोपियों ने अपने पैरों से रौंदा हो। उन चरणकमलों की खोज वैदिक साहित्य के अध्ययन में दक्ष सभी बड़े बड़े सन्त करते हैं।"

'श्रवण-मध्ये जीवेर कोन्श्रेष्ठ श्रवण?' ।

'राधा-कृष्ण-प्रेम-केलि कर्ण-रसायन' ॥ 255॥

श्रवण-मध्ये-सभी प्रकार के श्रवणों में से; जीवेर-जीव का; कोन्-कौन सा; श्रेष्ठ-सबसे महत्त्वपूर्ण; श्रवण-श्रवण का विषय; राधा-कृष्ण-प्रेम-केलि-राधा कृष्ण की प्रेम कथाएँ; कर्ण-रस-अयन-कान को सर्वाधिक प्रिय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "सुने जाने वाले समस्त विषयों में से कौन-सा विषय समस्त जीवों के लिए सर्वोत्तम है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "राधा तथा कृष्ण के प्रेम-व्यापार के विषय में श्रवण करना कानों को सर्वाधिक सुहावना लगता है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (10.33.39) के अनुसार :

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः

श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ।

भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं

हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

"जो व्यक्ति रासनृत्य में कृष्ण तथा गोपियों के व्यवहार को श्रद्धापूर्वक सुनता है और जो इन कार्यों का वर्णन करता है, वह भक्ति की सिद्धि प्राप्त करता है। और साथ ही भौतिक वासनामय इच्छाओं से रहित हो जाता है।"

जब मनुष्य मुक्त होता है और राधाकृष्ण के प्रेमालापों का श्रवण करता है, तो उसमें कामेच्छाएँ नहीं रह पातीं। एक संसारी धूर्त ने एक बार कहा कि जब कोई वैष्णव "राधा, राधा" के नाम का उच्चारण करता है, तो उसे राधा नामक नाइन (नाइ की पत्नी) का स्मरण हो आता है। यह एक व्यावहारिक उदाहरण है। जब तक मनुष्य मुक्त न हो, तब तक उसे राधा-कृष्ण के प्रेम के विषय में सुनने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। यदि वह बिना मुक्त हुए रासलीला का वर्णन सुनता है, तो उसे अपने खुद के सांसारिक कार्यों का तथा राधा नामक किसी स्त्री के साथ अपने अवैध सम्बन्ध का स्मरण हो सकता है। बद्ध अवस्था में ऐसी बातों को स्मरण करने की चेष्टा तक नहीं करनी चाहिए। साधना मार्ग का अनुसरण करने से मनुष्य को कृष्ण-प्रेम के रागानुग पद पर उन्नत होना चाहिए। केवल तभी उसे राधा-कृष्ण की लीला सुननी चाहिए। यद्यपि ये प्रेम-व्यापार बद्ध तथा मुक्त दोनों जीवों के लिए समान रूप से सुहावने लगने वाले हो सकते हैं, किन्तु बद्धजीवों को इन्हें नहीं सुनना चाहिए। रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की वार्ताएँ मुक्त स्तर पर सम्पन्न होती हैं।

'उपास्येर मध्ये कोनुपास्य प्रधान?' ।

'श्रेष्ठ उपास्य—युगल 'राधा-कृष्ण' नाम' ॥ 256॥

उपास्येर–पूजा के विषय (वस्तु); मध्ये-मध्य; कोन्-कौन सा; उपास्य-पूज्य; प्रधान–प्रधान; श्रेष्ठ-श्रेष्ठ; उपास्य-पूज्य वस्तु; युगल-युगल; राधा-कृष्ण नाम-राधा कृष्ण का पावन नाम अथवा हरे कृष्ण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "समस्त पूजा के योग्य (उपास्य) वस्तुओं में से कौन प्रधान है?" रामानन्द ने उत्तर दिया, "प्रधान पूजा योग्य वस्तु राधाकृष्ण का नाम-हरे कृष्ण मन्त्र-है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (6.3.22) के अनुसार :

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।

भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥

"इस भौतिक जगत् में जीव का एकमात्र कार्य भक्तियोग के मार्ग को स्वीकार करना तथा भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना है।"

'मुक्ति, भुक्ति वाञ्छे येइ, काहाँ दुँहार गति?' ।

'स्थावर-देह, देव-देह यैछे अवस्थिति' ॥ 257॥

मुक्ति-मुक्ति; भुक्ति–विषय भोग; वाञ्छे-चाहता है; येइ-जो; काहाँ-कहाँ; दुँहार-उन दोनों में से; गति-मंजिल; स्थावर-देह-वृक्ष का शरीर; देव-देह-देवता का शरीर; यैछे-जैसे; अवस्थिति-स्थित।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "और जो मुक्ति चाहते हैं तथा जो इन्द्रियतृप्ति की इच्छा करते हैं, उनका गन्तव्य क्या है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "जो लोग भगवान् के अस्तित्व में समा जाने की चेष्टा करते हैं, उन्हें वृक्ष के समान शरीर धारण करना होगा और जो लोग इन्द्रियतृप्ति में अधिक आसक्त हैं, उन्हें देवताओं का शरीर मिलेगा।"

तात्पर्य

जो लोग भगवान् के अस्तित्व में समा जाना चाहते हैं, उन्हें इस भौतिक जगत् में इन्द्रियतृप्ति की इच्छा नहीं होती। किन्तु साथ ही उन्हें भगवान् के चरणकमलों की सेवा करने का कोई ज्ञान नहीं रहता। अतएव उन्हें हजारों वर्षों तक वृक्ष की तरह खड़े रहना पड़ता है। यद्यपि वृक्ष जीवातमा हैं, फिर भी वे अचर हैं। जो मुक्तात्मा भगवान् के अस्तित्व में समा

जाते हैं, वे वृक्ष से अधिक अच्छे नहीं हैं। वृक्ष भी भगवान् की सृष्टि में खड़े हैं, क्योंकि भौतिक शक्ति तथा भगवान् की शक्ति एक ही हैं। इसी तरह ब्रह्मतेज भी भगवान् की ही शक्ति है। अतएव चाहे कोई ब्रह्मतेज में रहे या भौतिक शक्ति में, दोनों एक-से हैं, क्योंकि इन दोनों में से किसी में भी आध्यात्मिक क्रियाशीलता नहीं होती। इनसे अच्छे तो वे हैं, जो इन्द्रियतृप्ति की इच्छा करते हैं और स्वर्गलोक जाना चाहते हैं। ऐसे लोग उसी तरह भोग करना चाहते हैं, जिस तरह नन्दनकानन में स्वर्ग के निवासी भोग करते हैं। वे जीवन का भोग करने के लिए कम-से-कम अपनी पहचान तो बनाये रखते हैं, किन्तु निर्विशेषवादी तो अपनी पहचान खोने का प्रयास करते हैं और इसके साथ ही वे भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों आनन्द से वंचित हो जाते हैं। बौद्ध दार्शनिकों का अन्तिम गंतव्य पत्थर की तरह हो जाना है, जो जड़ है, जिसमें न भौतिक और न ही आध्यात्मिक क्रियाशीलता है। जहाँ तक कठोर श्रम करने वाले कर्मियों की बात है, श्रीमद्भागवत (11.10.23) में कहा गया है :

इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ।

भुञ्जीत देववत् तत्र भोगान् दिव्यान् निजार्जितान् ॥

“स्वर्गलोक जाने के लिए नाना प्रकार के यज्ञ करने के बाद कर्मीजन वहाँ पहुँचते हैं और देवताओं के साथ रहकर उसी सीमा तक भोग करते हैं, जहाँ तक उनके पुण्यों के फल मिल सकें।”

जैसाकि श्रीमद्भगवद्गीता (9.20-21) में भगवान् कृष्ण ने कहा है :

जैविद्या मां सोमपाः पूतपापा

यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।

ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकम्

अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।

एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना

गतागतं कामकामा लभन्ते ॥

“जो लोग स्वर्गलोक की खोज में वेदाध्ययन करते हैं और सोमरस का पान करते हैं, वे मेरी अप्रत्यक्ष पूजा करते हैं। वे इन्द्र के पवित्र स्वर्गीय ग्रह में जन्म लेते हैं, जहाँ वे देवों जैसा आनन्द भोगते हैं। जब वे स्वर्ग का विशाल इन्द्रिय-सुख भोग चुकते हैं, और उनके पुण्यकर्मों का फल समाप्त हो जाता है, तब वे पुनः इस मर्त्यलोक में लौट आते हैं। इस तरह जो वैदिक सिद्धान्तों के माध्यम से सुख की कामना करते हैं, उन्हें केवल बारम्बार जन्म और मृत्यु ही हाथ लगते हैं।”

अतएव पुण्यकर्मों का फल समाप्त हो जाने पर कर्मीजन पुनः इस लोक में बरसात के रूप में लौट आते हैं, और विकास क्रम में घास तथा पौधों के रूप में जीवन बिताते हैं।

अरस-ज्ञ काक चूषे ज्ञान-निम्ब-फले ।

रस-ज्ञ कोकिल खाय प्रेमाम्र-मुकुले ॥ 258 ॥

अरस-ज्ञ-रसहीन; काक-कौए; चूषे-चूसते हैं; ज्ञान-ज्ञान का; निम्ब-फले-कडुवे नीम का फल; रस-ज्ञ-दिव्य रस के भोगी; कोकिल-कोयल; खाय-खाते हैं; प्रेम-आम्र-मुकुले-भगवत्प्रेम के आम की कलियाँ।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, “सभी दिव्य रसों से रहित व्यक्ति (अरसिक) उन कौवों के समान हैं, जो ज्ञानरूपी नीम वृक्ष के कटु फलों का रस चूसते हैं, जबकि रसज्ञ व्यक्ति उन कोयलों के तुल्य हैं, जो भगवत्प्रेम रूपी आम्र वृक्ष की मंजरियों को खाते हैं।”

तात्पर्य

अनुभवजन्य दर्शन की तार्किक शुष्क प्रक्रिया नीम वृक्ष के फल के समान तिक्त होती है। इस फल को चखना कौवों का काम है। दूसरे शब्दों में, परम सत्य की अनुभूति की दार्शनिक विधि कौवे जैसे व्यक्तियों द्वारा ग्रहण की जाती है। किन्तु कोयलों जैसे भक्तों की वाणी मधुर होती है, जिससे वे भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं, और भगवत्प्रेम रूपी आम के मधुर फल का आस्वादन करते हैं। ऐसे भक्त भगवान् के साथ मधुर रस का आस्वादन करते हैं।

अभागिया ज्ञानी आस्वादये शुष्क ज्ञान ।

कृष्ण-प्रेमामृत पान करे भाग्यवान् ॥ 259॥

अभागिया-अभागे; ज्ञानी–कोरे ज्ञानी, तर्कवादी; आस्वादये-आस्वादन करते हैं; शुष्क-शुष्क; ज्ञान-ज्ञान; कृष्ण-प्रेम-अमृत-कृष्ण-प्रेम का अमृत; पान-पान; करे-करते हैं; भाग्यवान्-भाग्यशाली।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "अभागे शुष्क दार्शनिक दर्शन की शुष्क विधि का आस्वादन करते हैं, किन्तु भक्तगण नियमित रूप से कृष्ण-प्रेम रूपी अमृत का पान करते हैं। अतएव वे सर्वाधिक भाग्यशाली हैं।"

एइ-मत दुइ जन कृष्ण-कथा-रसे ।

नृत्य-गीत-रोदने हैल रात्रि-शेषे ॥ 260 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; दुइ जन-वे दोनों (चैतन्य महाप्रभु और रामानन्द राय); कृष्ण-कथा-रसे-कृष्ण कथाओं की चर्चा के रस में; नृत्य-गीत-नृत्य और कीर्तन में; रोदने-रोने में; हैल–था; रात्रि-शेषे-रात व्यतीत हो गई।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय ने कृष्ण-कथा के रस का आस्वादन करते हुए पूरी रात बिताई। उनके कीर्तन करते, नाचते तथा रोते हुए सारी रात बीत गई।

दोंहे निज-निज-कार्ये चलिला विहाने ।

सन्ध्या-काले राय आसि' मिलिला आर दिने ॥ 261॥

दोंहे-वे दोनों; निज-निज-कार्ये-अपने अपने कार्य में; चलिला-चले गये; विहाने-प्रातः काल होने पर; सन्ध्या-काले-सायंकाल; राय-रामानन्द राय; आसि'–पुनः आकर; मिलिला–मिले; आर-अगले; दिने–दिन।

अनुवाद

प्रातः होने पर दोनों अपने अपने कार्य पर चले गये, किन्तु संध्या-समय रामानन्द पुनः महाप्रभु से मिलने आये।

इष्ट-गोष्ठी कृष्ण-कथा कहि कत-क्षण ।

प्रभु-पद धरि' राय करे निवेदन ॥ 262॥

इष्ट-गोष्ठी-आध्यात्मिक चर्चा; कृष्ण-कथा-कृष्ण कथाएँ; कहि'–कहकर; कत-क्षण-कुछ समय के लिए; प्रभु-पद-महाप्रभु के चरणकमल; धरि'-पकड़कर; राय-रामानन्द राय; करे-करते हैं; निवेदन निवेदन।

अनुवाद

उसी दिन संध्या-समय कुछ समय तक कृष्ण-कथा की चर्चा चलाने के बाद रामानन्द राय ने महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिए और इस तरह बोले।

'कृष्ण-तत्त्व', 'राधा-तत्त्व', 'प्रेम-तत्त्व-सार'।

'रस-तत्त्व' 'लीला-तत्त्व' विविध प्रकार॥ 263॥

कृष्ण-तत्त्व-कृष्ण तत्त्व; राधा-तत्त्व-राधा तत्त्व; प्रेम-तत्त्व-सार–उनके प्रेमाचार का सार; रस-तत्त्व-दिव्य रस का तत्त्व; लीला-तत्त्व- भगवान् की लीलाओं का तत्त्व; विविध प्रकार–विविध प्रकार के।

अनुवाद

"राधारानी तथा कृष्ण विषयक तत्त्व तथा उनके दिव्य प्रेम, रस तथा लीलाओं के अनेकानेक दिव्य तत्त्व हैं।"

एत तत्त्व मोर चित्ते कैले प्रकाशन।

ब्रह्माके वेद येन पड़ाइल नारायण॥ 264॥

एत तत्त्व-तत्त्व के यह सब प्रकार; मोर चित्ते-मेरे हृदय में: कैले-आपने किये: प्रकाशन-प्रकट; ब्रह्माके–ब्रह्माजी को; वेद-वैदिक ज्ञान; येन-जैसे; पड़ाइल-पढ़ाया; नारायण-नारायण ने।

अनुवाद

"आपने मेरे हृदय में इन अनेक दिव्य तत्त्वों (सत्यों) को प्रकट किया है। नारायण ने इसी तरह ब्रह्माजी को शिक्षा दी थी।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने ब्रह्मा के हृदय को ज्ञान से प्रकाशित किया था। श्वेताश्वतर उपनिषद् (6.18) में वैदिक सूचना दी गई है :

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं

यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।

तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं

मुमुक्षुर्वे शरणं अहं प्रपद्ये ॥

"चूँकि मैं मुक्ति चाहता हूँ, इसलिए मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ, जिन्होंने सर्वप्रथम ब्रह्मा के हृदय के भीतर से वैदिक ज्ञान का प्रकाश किया। भगवान् समस्त प्रकाश तथा आध्यात्मिक उन्नति के आदि स्रोत हैं। श्रीमद्भागवत (2.9.30-35, 11.14.3, 12.4.40 तथा 12.13.19) में इससे सम्बन्धित अनेक सन्दर्भ हैं।"

अन्तर्यामी ईश्वरेर एइ रीति हये ।

बाहिरे ना कहे, वस्तु प्रकाशे हृदये ॥ 265 ॥

अन्तर्यामी-अन्तर्यामी परमात्मा; ईश्वरेर–भगवान् की; एइ-यह; रीति-रीति; हये-है; बाहिरे-बाहर से; ना कहे-नहीं कहते हैं; वस्तु–वास्तविकता; प्रकाशे-प्रकट करते हैं; हृदये-हृदय में।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "परमात्मा हर एक के हृदय के भीतर से बोलते हैं, बाहर से नहीं। वे सभी प्रकार से भक्तों को उपदेश देते हैं, और यही उनकी उपदेश-विधि है।"

तात्पर्य

यहाँ पर श्री रामानन्द राय स्वीकार करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु परमात्मा हैं। परमात्मा ही भक्त को प्रेरणा देते हैं, इसलिए वे गायत्री मन्त्र के मौलिक उद्गम हैं। गायत्री में कहा गया है- ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् । सविता समस्त बुद्धि का आदि स्रोत है। वह सविता श्री चैतन्य महाप्रभु हैं। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (2.4.22) से होती है :

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती

वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि।

स्वलक्षणा प्रादुरभूत किलास्यतः

स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्॥

"जिन भगवान् ने सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा के हृदय के भीतर से निहित ज्ञान को वर्धित किया और सृष्टि तथा परमात्मा के पूर्ण ज्ञान से उन्हें प्रेरित किया और जो ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होते प्रतीत हुए, वे मुझ पर प्रसन्न हों।" यह श्लोक शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित के समक्ष श्रीमद्भागवत सुनाने के पूर्व भगवान् से आशीर्वाद माँगने के लिए कहा था।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्व-राट्

तेने ब्रह्म हृदा य आदि-कवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।

तेजो-वारि-मृदां यथा विनिमयो यत्र त्रि-सर्गोऽमृषा

धाम्ना स्वेन सदा निरस्त-कुहकं सत्यं परं धीमहि॥ 266॥

जन्म-आदि-उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय; अस्य-इसका (ब्रह्माण्ड का); यतः-जिनसे; अन्वयात्-आध्यात्मिक सम्बन्ध से सीधा; इतरतः–भौतिक सम्बन्ध के अभाव से अप्रत्यक्ष रूप में; च-भी; अर्थेषु-सभी विषयों में; अभिज्ञः–पूर्णतया परिचित; स्व-राट्-स्वतंत्र; तेने-दिया; ब्रह्म-परम सत्य; हृदा-हृदय में; यः-जो; आदि-कवये-ब्रह्माजी को; मुह्यन्ति-मोहे जाते हैं; यत्-जिन में; सूरयः-ब्रह्माजी जैसे महापुरूष और अन्य देवता तथा महान ब्राह्मण; तेजः-वारि-मृदाम्-अग्नि, जल और पृथ्वी के; यथा-जैसे; विनिमयः-आदान-प्रदान; यत्र-जिसमें; त्रि-सर्गः-तीन गुणों की भौतिक सृष्टि; अमृषा-वास्तविक; धाम्ना-अपने धाम के साथ; स्वेन–अपनी निजी; सदा-सदा; निरस्त-कुहकम्-सभी भ्रमणा से रहित; सत्यम्-सत्य; परम्-परम; धीमहि-ध्यान करते हैं।

अनुवाद

"हे मेरे प्रभु, वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण, हे सर्वव्यापी भगवान्, मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ। मैं भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ, क्योंकि वे परम अद्वय सत्य हैं और व्यक्त ब्रह्माण्डों की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारणों के आदि कारण हैं। वे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से समस्त जगत् से अवगत रहते हैं और वे

स्वतंत्र हैं, क्योंकि उनसे परे अन्य कोई भी कारण नहीं है। उन्होंने ही पहले प्रथम-जीव ब्रह्मा के हृदय में वैदिक ज्ञान प्रदान किया। उनके द्वारा बड़े-बड़े ऋषि और देवतागण भी मोहित हो जाते हैं, जैसे अग्नि में जल या जल में भूमि दिखने से मनुष्य भ्रमित हो जाता है। उन्हीं के कारण तीन गुणों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं से निर्मित भौतिक ब्रह्माण्ड वास्तविकता प्रतीत होते हैं, यद्यपि वे अवास्तविक होते हैं। अतएव मैं उन परम सत्य श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ, जो अपने दिव्य धाम में निरन्तर रहते हैं, जो भौतिक जगत् की माया से सदा मुक्त है। मैं उनका ध्यान करता हूँ, क्योंकि वे परम सत्य हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.1.1) का मंगलाचरण है।

एक संशय मोर आछये हृदये ।

कृपा करि' कह मोरे ताहार निश्चये ॥ 267॥

एक संशय-एक सन्देह; मोर-मेरा; आछये-है; हृदये-हृदय में; कृपा करि'-कृपा करके; कह–कहें; मोरे-मुझे; ताहार-उसका; निश्चये-निश्चय।

अनुवाद

तत्पश्चात् रामानन्द राय ने कहा कि उनके हृदय में अब एक ही संशय बचा है; अतएव उन्होंने महाप्रभु से याचना की कि, "आप मुझ पर कृपालु हों और मेरा संशय दूर करें।"

पहिले देखिलुँ तोमार सन्न्यासि-स्वरूप ।

एबे तोमा देखि मुञि श्याम-गोप-रूप ॥ 268 ॥

पहिले–आरम्भ में; देखिलुँ-मैंने देखा; तोमार-आपका; सन्न्यासि-स्वरूप-संन्यासी रूप; एबे–अब; तोमा-आपको; देखि-देखता हूँ; मुञि-मैं; श्याम-गोप-रूप-श्यामसुन्दर, ग्वाले के रूप में।

अनुवाद

तब रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "पहले मैंने आपको संन्यासी के रूप में देखा, किन्तु अब मैं आपको एक गोपाल बालक श्यामसुन्दर के रूप में देख रहा हूँ।"

तोमार सम्मुखे देखि काञ्चन-पञ्चालिका ।

ताँर गौर-कान्त्ये तोमार सर्व अङ्ग ढाका ॥ 269 ॥

तोमार-आपके; सम्मुखे-सामने; देखि-मैं देखता हूँ; काञ्चन-पञ्चालिका-सोने की एक गुड़िया; ताँर-इसके; गौर-कान्त्ये-सुनहरे वर्ण से; तोमार-आपका; सर्व-सारा; अङ्ग–शरीर; ढाका-ढक गया था।

अनुवाद

"अब मैं आपको सुनहरे गुड्डे की तरह प्रकट होते देख रहा हूँ और आपका सारा शरीर सुनहरी कान्ति से आच्छादित प्रतीत होता है।"

तात्पर्य

श्यामसुन्दर तो श्याम रंग के हैं, किन्तु यहाँ रामानन्द राय कहते हैं कि उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को सुनहरे रंग में प्रकट होते देखा। श्री चैतन्य महाप्रभु का कान्तिमय शरीर श्रीमती राधारानी के शारीरिक रंग से ढका था।

ताहाते प्रकट देखों स-वंशी वदन ।

नाना भावे चञ्चल ताहे कमल-नयन ॥ 270 ॥

ताहाते-उसमें; प्रकट-प्रकट; देखों-मैं देखता हूँ; स-वंशी-वंशी सहित; वदन-मुख; नाना भावे-नाना भावों में; चञ्चल-चंचल; ताहे-उसमें; कमल-नयन-कमलनयन।

अनुवाद

"मैं देख रहा हूँ कि आप मुख में वंशी धारण किये हैं और आपके कमल-नेत्र विभिन्न भावों के कारण चंचल हो रहे हैं।"

एइ-मत तोमा देखि' हय चमत्कार ।

अकपटे कह, प्रभु, कारण इहार ॥271॥

एइ-मत-इस प्रकार; तोमा-आपको; देखि'-देखकर; हय-होता है; चमत्कार-चमत्कार; अकपटे–बिना कपट के; कह-कृपया बताओ; प्रभु-मेरे प्रभु; कारण-कारण; इहार-इसका।

अनुवाद

"मैं आपको वास्तव में इसी रूप में देख रहा हूँ और यह अत्यन्त अद्भुत है। हे प्रभु, कृपया निष्कपट भाव से बतलायें कि ऐसा क्यों हो रहा है।"

प्रभु कहे,—कृष्णे तोमार गाढ़-प्रेम हय ।

प्रेमार स्वभाव एइ जानिह निश्चय ॥272॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; कृष्णे-कृष्ण में; तोमार-आपका; गाढ़-प्रेम-प्रगाढ़ प्रेम; हय-है; प्रेमार-ऐसे दिव्य प्रेम का; स्वभाव-स्वभाव; एइ-यह; जानिह-जान लो; निश्चय-निश्चित रूप से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "आप में कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है और जिसमें भगवान् के प्रति ऐसा प्रगाढ़ भावमय प्रेम होता है, वह स्वाभाविक रूप से वस्तुओं को इसी तरह से देखता है। आप इसे निश्चय जानें।"

महा-भागवत देखे स्थावर-जङ्गम ।

ताहाँ ताहाँ हय ताँर श्री-कृष्ण-स्फुरण ॥ 273 ॥

महा-भागवत–महा भागवत भक्त; देखे-देखता है; स्थावर-जङ्गम-चर-अचर; ताहाँ ताहाँ–यहाँ वहाँ; हय-है; ताँर-उसको; श्री-कृष्ण-स्फुरण-श्रीकृष्ण की उपस्थिति।

अनुवाद

"आध्यात्मिक स्थिति में उन्नत भक्त प्रत्येक चर तथा अचर वस्तु को भगवान् के रूप में देखता है। उसे इधर-उधर दिखने वाली सारी वस्तुएँ भगवान् कृष्ण के ही स्वरूप जान पड़ती हैं।"

स्थावर-जङ्गम देखे, ना देखे तार मूर्ति ।

सर्वत्र हय निज इष्ट-देव-स्फूर्ति ॥ 274॥

स्थावर-जङ्गम-स्थावर-जंगम; देखे-वह देखता है; ना-नहीं; देखे-देखता है; तार–इनका; मूर्ति-रूप; सर्वत्र सर्वत्र; हय-है; निज-उसके अपने; इष्ट-देव-पूज्य भगवान्; स्फूर्ति–उपस्थिति।

अनुवाद

"महान् भक्त अर्थात् महाभागवत अवश्य हर चर तथा अचर को देखता है, किन्तु वह उनके बाह्य रूपों को नहीं देखता। प्रत्युत वह जहाँ कहीं भी देखता है, उसे तुरन्त भगवान् का स्वरूप प्रकट होते दिखता है।"

तात्पर्य

कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण, महाभागवत सर्वत्र कृष्ण का ही दर्शन करता है, अन्य किसी का नहीं। इसकी पुष्टि ब्रह्म-संहिता (5.38) में इस प्रकार हुई है- प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्ति विलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।

जब भी भक्त कोई वस्तु देखता है, चाहे वह चर हो या अचर, वह तुरन्त कृष्ण का स्मरण करता है। महाभागवत ज्ञान में उन्नत होता है। यह ज्ञान भक्त में सहज रूप से होता है, क्योंकि उसने भगवद्गीता में पढ़ा है कि किस तरह कृष्णभावनामृत जाग्रत किया जाए। भगवद्गीता (7.8) के अनुसार भगवान् कृष्ण कहते हैं :

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।

प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥

"हे कुन्ती-पुत्र (अर्जुन), मैं जल का स्वाद हूँ, सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रकाश हूँ, वैदिक मन्त्रों का ॐ हूँ, आकाश का शब्द तथा मनुष्य का पौरुष हूँ।"

अतएव जब भक्त जल या अन्य द्रव पीता है, तो वह तुरन्त कृष्ण का स्मरण करता है। भक्त के लिए चौबीसों घण्टे कृष्णभावनामृत को जागृत रखना कठिन नहीं है। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु कहते हैं :

स्थावर जङ्गम देखे ना देखे तार मूर्ति ।

सर्वत्र हय निज इष्टदेव-स्फूर्ति ॥

सन्त पुरुष या महाभागवत चौबीसों घण्टे कृष्ण का दर्शन करता है और उनके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं देखता। जहाँ तक चर तथा अचर वस्तुओं का सम्बन्ध है, भक्त इन सबको कृष्ण की शक्ति का परिवर्तित रूप मानता है। जैसाकि भगवद्गीता (7.4) में भगवान् कृष्ण ने कहा है :

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहङ्कार इतीयं मे भिन्न प्रकृतिरष्टधा ॥

"भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार—ये आठों मिलकर मेरी भिन्न भौतिक शक्तियाँ बनती हैं।"

वास्तव में कृष्ण से भिन्न कुछ भी नहीं है। जब भक्त किसी वृक्ष को देखता है, तो वह जानता है कि यह वृक्ष दो शक्तियों-भौतिक तथा आध्यात्मिक-का संयोग (समन्वय) है। निकृष्ट अपरा शक्ति भौतिक है, जिससे वृक्ष का शरीर बनता है, किन्तु वृक्ष के भीतर आध्यात्मिक स्फुलिंग, जीव होता है, जो कृष्ण का अंश है। यह इस जगत् में कृष्ण की उत्कृष्ट परा शक्ति है। हम जो भी सजीव वस्तु देखते हैं, वह मात्र इन दोनों शक्तियों का समन्वय है। जब महाभागवत इन शक्तियों के बारे में सोचता है, तो वह तुरन्त समझ जाता है कि वे परमेश्वर की अभिव्यक्तियाँ हैं। प्रात:काल जब हम सूर्य का उदय होते देखते हैं, तो हम उठकर प्रात:काल के कार्यों में जुट जाते हैं। इसी तरह भक्त भगवान् की शक्ति को देखते ही तुरन्त भगवान् कृष्ण का स्मरण करता है। इसकी व्याख्या सर्वत्र हय निज इष्ट देव स्फूर्ति श्लोक में की गई है। जिस भक्त ने भक्ति के द्वारा अपने जीवन को निर्मल बना लिया है, वह पग-पग पर कृष्ण का ही दर्शन करता है। अगले श्लोक में जो श्रीमद्भागवत (11.2.45) से लिया गया है इसी की व्याख्या हुई है।

सर्व-भूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ 275 ॥

सर्व-भूतेषु-सभी भूतों (पदार्थ, जीव, तथा इनके मिश्रण) के; यः-जो कोई; पश्येत् देखता है; भगवत्-भावम्--भगवान् की सेवा में लगने की सम्भावना; आत्मनः-परम आत्मा अथवा दिव्यता (जीवन की भौतिक कल्पना के परे); भूतानि-सभी जीव; भगवति–भगवान् में; आत्मनि-अस्तित्व का मूल सिद्धान्त; एषः-यह; भागवत-उत्तमः-भक्ति में उन्नत मनुष्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "भक्ति में अग्रसर व्यक्ति हर वस्तु के भीतर आत्माओं के आत्मा, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को देखता है। फलस्वरूप वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के स्वरूप को समस्त कारणों के कारण के रूप में देखता है और यह समझता है कि सारी वस्तुएँ उन्हीं में स्थित हैं।"

वन-लतास्तरव आत्मनि विष्णुं

व्यञ्जयन्त्य इव पुष्प-फलाढयाः ।

प्रणत-भार-विटपा मधु-धाराः

प्रेम-हृष्ट-तनवो ववृषुः स्म ॥ 276 ॥

वन-लताः-वन की लताएँ; तरवः–वृक्ष; आत्मनि-परमात्मा में; विष्णुम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; व्यञ्जयन्त्यः-दिखते हुए; इव-की भाँति; पुष्प-फल-आढूयाः-पुष्प, फलों आदि से भरपूर; प्रणत-भार–भार से नीचे झुके; विटपाः-वृक्ष; मधु-धाराः-मधु धाराएँ; प्रेम-हृष्ट-भगवत्प्रेम से प्रेरित; तनवः–जिनके शरीर; ववृषुः–निरन्तर बरसाते थे; स्म–निश्चित रूप से।

अनुवाद

"कृष्ण-प्रेम के भाव में पौधे, लताएँ तथा वृक्ष फूलों तथा फलों से लदे थे, जिसके कारण वे झुके जा रहे थे। वे कृष्ण के ऐसे प्रगाढ़ प्रेम से प्रेरित थे कि वे लगातार मधु की वर्षा कर रहे थे। इस तरह गोपियों ने वृन्दावन के पूरे जंगल को देखा।"

तात्पर्य

यह श्लोक (भागवत 10.35.9) कृष्ण की अनुपस्थिति में गोपियों द्वारा गाया गया एक गीत है। कृष्ण की अनुपस्थिति में गोपियाँ सदैव उनके विचार में मग्न रहती थीं। इसी प्रकार से महाभागवत हर वस्तु को भगवान् की सेवा में लगी देखता है। श्रील रूप गोस्वामी की संस्तुति है :

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः ।

मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते ॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु 1.2.126)

भागवत को ऐसी कोई वस्तु नहीं दिखती, जो कृष्ण से सम्बन्धित न हो। मायावादी दार्शनिकों की भाँति, भक्त भौतिक जगत् को मिथ्या नहीं देखता। क्योंकि वह जानता है कि भौतिक जगत् की हर वस्तु कृष्ण से सम्बन्धित है। भक्त जानता है कि ऐसी वस्तुओं का उपयोग भगवान् की सेवा में कैसे किया जाए-यह महाभागवत का गुण है। गोपियों ने पौधों, लताओं तथा वन-वृक्षों को फल-फूल से लदा देखा, जो कृष्ण की सेवा के लिए उद्यत थे। इस तरह उन्हें अपने आराध्य श्रीकृष्ण का स्मरण तुरन्त हो आया। उन्होंने एक संसारी व्यक्ति की तरह पौधों, लताओं तथा वृक्षों को नहीं देखा।

राधा-कृष्णे तोमार महा-प्रेम हय ।

याहाँ ताहाँ राधा-कृष्ण तोमारे स्फुरय ॥ 277॥

राधा-कृष्णे-राधा तथा कृष्ण में; तोमारआपको; महा-प्रेम-महान् प्रेम; हय-है; याहाँ ताहाँ-कहीं भी और हर जगह; राधा-कृष्ण-राधारानी और भगवान् कृष्ण; तोमारे-आपको; स्फुरय-प्रकट होते है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "हे राय, आप महान् भक्त हैं, और राधाकृष्ण के प्रेमभाव से सदैव पूरित रहते हैं। अतएव आप जहाँ कहीं जो कुछ देखते हैं, वह आप में कृष्णभावनामृत को जाग्रत करता है।"

राय कहे,—प्रभु तुमि छाड़ भारि-भूरि ।

मोर आगे निज-रूप ना करिह चुरि ॥ 278 ॥

राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; प्रभु-मेरे प्रभु; तुमि-आप; छाड़-छोड़ दो; भारि-भूरि-वे गम्भीर बातें; मोर-मेरे; आगे-समक्ष; निज-रूप-आपका असली रूप; ना-नहीं; करिह-करो; चुरि-चोरी।

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, कृपया आप इन सारी गम्भीर बातों को छोड़ दें। कृपया आप मुझसे अपना असली रूप मत छिपायें।"

राधिकार भाव-कान्ति करि' अङ्गीकार ।

निज-रस आस्वादिते करियाछ अवतार ॥ 279॥

राधिकार–श्रीमती राधारानी का; भाव-कान्ति-भावावेश तथा कान्ति; करि'–करके; अङ्गीकार–स्वीकार; निज-रस-अपना दिव्य रस; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; करियाछ-आपने लिया है; अवतार–अवतार।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "हे प्रभु, मैं जानता हूँ कि आपने श्रीमती राधारानी का भाव तथा शारीरिक वर्ण धारण कर रखा है। इस तरह आप अपने निजी दिव्य रस का आस्वादन कर रहे हैं, और इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए हैं।"

निज-गूढ़-कार्य तोमार—प्रेम आस्वादन ।

आनुषङ्गे प्रेम-मय कैले त्रिभुवन ॥280॥

निज-गूढ़-कार्य-निजी रहस्यमय कार्य; तोमार-आपका; प्रेम-दिव्य प्रेम; आस्वादन-आस्वादन; आनुषङ्गे–एक साथ; प्रेम-मय-भगवत्प्रेम में परिवर्तित; कैले-आपने बनाया है; त्रि-भुवन-सारे जगत् को।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप निजी कारणों से चैतन्य महाप्रभु के इस रूप में अवतरित होकर प्रकट हुए हैं। आप अपने स्वयं के आध्यात्मिक आनन्द का आस्वादन करने के लिए आये हैं और साथ ही साथ भगवत्प्रेम का प्रसार करके सारे जगत् को रूपान्तरित कर रहे हैं।"

आपने आइले मोरे करिते उद्धार ।

एबे कपट कर,—तोमार कोन व्यवहार ॥ 281॥

आपने–स्वयं; आइले-आप आये हैं; मोरे-मेरे पास; करिते-करने; उद्धार-उद्धार; एबे-अब; कपट-कपट; कर—आप करते हैं; तोमार-आपका; कोन–क्या; व्यवहार-व्यवहार।

अनुवाद

“हे प्रभु, आप मुझे मुक्ति प्रदान करने के लिए अपनी अहैतुकी कृपा से मेरे समक्ष प्रकट हुए हैं। अब लेकिन आप छल कर रहे हैं। ऐसे व्यवहार का क्या कारण है?”

तबे हासि’ ताँरे प्रभु देखाइल स्वरूप ।

‘रस-राज’, ‘महाभाव’—दुइ एक रूप ॥282॥

तबे–अतः; हासि’–मुस्कुराकर; ताँरे–उनको (रामानन्द राय को); प्रभु–महाप्रभु ने; देखाइल-दिखाया; स्वरूप-अपना निजी स्वरूप; रस-राज-रसराज; महा-भाव-महाभाव; दुई–दोनों; एक-एक; रूप-रूप।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण समस्त आनन्द के आगार हैं और श्रीमती राधारानी साक्षात् महाभावमय भगवत्प्रेम की मूर्तिमन्त स्वरूप हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु में ये दोनों स्वरूप मिलकर एक हो गये हैं। ऐसा होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को अपना वास्तविक स्वरूप दिखलाया।

तात्पर्य

इसका वर्णन राधाभावद्युतिसुवलितं नौमिकृष्णस्वरूपम् में हुआ है। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानी के स्वरूप में मग्न थे। इसका पता रामानन्द राय को तब चला, जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को देखा। एक उन्नत भक्त यह समझ सकता है- श्रीकृष्णचैतन्य, राधाकृष्ण नहे अन्य। श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण तथा राधा का समन्वित रूप होने के कारण राधा-कृष्ण युगल से अभिन्न हैं। स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने इसकी व्याख्या की है :

राधा कृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिरस्माद्

एकात्मानावपि भुवि पुरा देहभेदं गतौ तौ ।

चैतन्याख्यं प्रकटं अधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तं

राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम् ॥

(चैतन्य-चरितामृत, आदि 1.5)

राधा-कृष्ण एक हैं। राधा-कृष्ण कृष्ण तथा कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति का संयुक्त रूप हैं। जब कृष्ण अपनी ह्लादिनी शक्ति को प्रकट करते हैं, तो वे दो-राधा तथा कृष्ण–प्रतीत होते हैं। अन्यथा राधा तथा कृष्ण दोनों एक हैं। इस एकत्व की अनुभूति श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से महाभागवत कर सकता है। रामानन्द राय के साथ ऐसा ही हुआ। मनुष्य ऐसा ही पद पाने की आकांक्षा कर सकता है, किन्तु उसे महाभागवत का अनुकरण नहीं करना चाहिए।

देखि' रामानन्द हैला आनन्दे मूर्च्छिते ।

धरिते ना पारे देह, पड़िला भूमिते ॥283॥

देखि'–यह रूप देखकर; रामानन्द-रामानन्द राय; हैला-हो गये; आनन्दे-आनन्द में; मूर्च्छिते-अचेत; धरिते-उनको पकड़ना; ना-नहीं; पारे-सम्भव; देह-शरीर; पड़िला–गिर गये; भूमिते-भूमि पर।

अनुवाद

यह स्वरूप देखकर रामानन्द राय दिव्य आनन्द के कारण मूर्छित हो गये। वे खड़े नहीं रह सके, अतः भूमि पर गिर पड़े।

प्रभु ताँरे हस्त स्पर्शि' कराइला चेतन ।

सन्न्यासीर वेष देखि' विस्मित हैल मन ॥ 284॥

प्रभु–महाप्रभु; ताँरे-रामानन्द राय को; हस्त-हाथ; स्पर्शि'–स्पर्श करके; कराइला–किया; चेतन-सचेत; सन्न्यासीर-संन्यासी; वेष-वेश; देखि'–देखकर; विस्मित–विस्मित; हैल–हो गया; मन–मन।

अनुवाद

जब रामानन्द राय मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े, तो चैतन्य महाप्रभु ने उनके हाथ का स्पर्श किया, जिससे उन्हें तुरन्त चेतना प्राप्त हो गई। किन्तु जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को संन्यासी वेश में देखा, तो वे आश्चर्यचकित हो गये।

आलिङ्गन करि' प्रभु कैल आश्वासन ।

तोमा विना एइ-रूप ना देखे अन्य-जन ॥285॥

आलिङ्गन करि'–उनका आलिंगन करके; प्रभु–महाप्रभु ने; कैल-किया; आश्वासन-आश्वस्त; तोमा विना-आपके बिना; एइ-रूप-यह रूप; ना-नहीं; देखे-देखा; अन्य-जन-अन्य किसी ने।

अनुवाद

रामानन्द राय का आलिंगन करने के बाद महाप्रभु ने उन्हें सान्त्वना दी और बतलाया, "आपके अतिरिक्त अन्य किसी ने यह स्वरूप नहीं देखा है।"

तात्पर्य

भगवद्गीता (7.25) में कहा गया है :

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥

"मैं मूर्खा तथा बुद्धिहीनों के समक्ष कभी प्रकट नहीं होता। उनके लिए तो मैं अपनी अन्तरंगा शक्ति (योगमाया) से आच्छादित रहता हूँ, जिससे वे मुझ अजन्मा तथा अव्यय को नहीं जान पाते।"

भगवान् अपना यह अधिकार बनाये रखते हैं कि वे हर एक के समक्ष प्रकट न हों। किन्तु भक्तगण सदैव भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं। वे अपनी जीभ से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करके और महाप्रसाद का आस्वादन करके उनकी सेवा करते हैं। निष्ठावान भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को धीरे धीरे प्रसन्न कर लेता है, और भगवान् अपने आपको प्रकट कर देते हैं। कोई भी मनुष्य अपने निजी प्रयास से भगवान् का दर्शन नहीं कर सकता। भगवान् जब भक्त की सेवा से प्रसन्न होते हैं, तभी वे स्वयं को प्रकट करते हैं।

मोर तत्त्व-लीला-रस तोमार गोचरे ।

अतएव एइ-रूप देखाइलुँ तोमारे ॥ 286 ॥

मोर-मेरा; तत्त्व-लीला-तत्त्व तथा लीलाएँ; रस-और रस; तोमार-आपकी; गोचरे–जानकारी में; अतएव–अतएव; एइ-रूप-यह रूप; देखाइलुँ-मैंने दिखाया है; तोमारे-आपको।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुष्टि की, "मेरी लीलाओं तथा रसों का सारा तत्त्व (सत्य) आपको ज्ञात है। इसीलिए मैंने आपको यह स्वरूप दिखलाया है।"

गौर अङ्ग नहे मोर—राधाङ्ग-स्पर्शन ।

गोपेन्द्र-सुत विना तेंहो ना स्पर्शे अन्य-जन ॥287॥

गौर-गोरा; अङ्ग-शरीर; नहे-नहीं; मोर-मेरा; राधा-अङ्ग–श्रीमती राधारानी के शरीर का; स्पर्शन-स्पर्श; गोपेन्द्र-सुत-नन्द महाराज का पुत्र; विना-बिना; तेंहो–श्रीमती राधारानी; ना-नहीं; स्पर्शे-छूती हैं; अन्य-जन-और किसी को।

अनुवाद

"वास्तव में मेरा शरीर गौर वर्ण का नहीं है। यह तो श्रीमती राधारानी के शरीर का स्पर्श करने से ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु राधारानी नन्द महाराज के पुत्र के अतिरिक्त अन्य किसी का स्पर्श नहीं करती।"

ताँर भावे भावित करि' आत्म-मन ।

तबे निज-माधुर्य करि आस्वादन ॥288॥

ताँर–श्रीमती राधारानी के; भावे-भावावेश में; भावित-रंग लिया; करि'–करके; आत्म-मन-शरीर तथा मन; तबे-तब; निज-माधुर्य–मेरा अपना दिव्य माधुर्य; करि-मैं करता हूँ; आस्वादन-आस्वादन।

अनुवाद

"अब मैंने अपने शरीर तथा मन को श्रीमती राधारानी के भाव में रंग लिया है। इस तरह मैं अपने ही माधुर्य का आस्वादन उस रूप में कर रहा हूँ।"

तात्पर्य

गौरसुन्दर ने यहाँ श्री रामानन्द राय को बतलाया, "आप वास्तव में गौर वर्ण वाले किसी भिन्न व्यक्ति को देख रहे थे। वास्तव में मैं गौर वर्ण का नहीं हूँ। मैं नन्द महाराज का पुत्र श्रीकृष्ण होने के कारण श्याम हूँ, किन्तु श्रीमती राधारानी के सम्पर्क में आते ही मैं बाहर से गौर वर्ण का हो जाता हूँ। श्रीमती राधारानी कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी के शरीर का स्पर्श नहीं करती। मैं श्रीमती राधारानी का वर्ण स्वीकार करके अपने ही दिव्य स्वरूप का आस्वादन करता हूँ। राधारानी

के बिना कृष्ण के माधुर्य रस के दिव्य आनन्द का आस्वादन नहीं किया जा सकता।" इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्राकृत सहजिया सम्प्रदाय पर टीका करते हैं, जो कृष्ण तथा भगवान् चैतन्य को पृथक्-पृथक् शरीर वाले मानता है। वे यहाँ श्लोक 287 में आये गौर अङ्ग नहे मोर शब्दों की गलत विवेचना करते हैं। उस श्लोक में तथा इस श्लोक में यह समझा जा सकता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण से अभिन्न हैं। दोनों एक ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। कृष्ण के रूप में भगवान् आध्यात्मिक आनन्द का भोग करते हैं और समस्त भक्तों के आश्रय-विषय-विग्रह-बने रहते हैं। अपने गौरांग स्वरूप में कृष्ण श्रीमती राधारानी के भाव में कृष्ण-विरह का आस्वादन करते हैं। यह भाव से पूरित स्वरूप श्रीकृष्ण चैतन्य है। श्रीकृष्ण सदैव समस्त आनन्द के दिव्य आगार हैं और धीरललित कहलाते हैं। श्रीमती राधारानी मूर्तिमन्त आध्यात्मिक शक्ति हैं, जो साक्षात् कृष्ण-प्रेम हैं। इसीलिए केवल कृष्ण ही उनका स्पर्श कर सकते हैं। यह धीरललित पक्ष भगवान् के किसी अन्य रूप में न तो विष्णु में, न नारायण में देखा जाता है। इसीलिए श्रीमती राधारानी गोविन्द-नन्दिनी तथा गोविन्द-मोहिनी कहलाती हैं, क्योंकि वे ही कृष्ण के दिव्य आनन्द की एकमात्र स्रोत हैं और वे ही ऐसी हैं, जो उनके चित्त को हर सकती हैं।

तोमार ठाञि आमार किछु गुप्त नाहि कर्म ।

लुकाइले प्रेम-बले जान सर्व-मर्म ॥289॥

तोमार ठाञि-आपके सामने; आमार-मेरा; किछु-कुछ भी; गुप्त-गुप्त; नाहि-नहीं है; कर्म-कर्म; लुकाइले–यदि मैं छुपाऊँ भी; प्रेम-बले-आपके प्रेम के बल पर; जान-आप जानते हो; सर्व-मर्म-सब कुछ विस्तार से।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शुद्ध भक्त रामानन्द राय के समक्ष स्वीकार किया, "अब कोई ऐसा गुप्त कार्य नहीं है, जो आपसे अज्ञात हो। यद्यपि मैं अपने कार्यों को गुप्त रखने की चेष्टा करता हूँ, फिर भी आप मेरे प्रति अपने उन्नत प्रेम के कारण प्रत्येक बात को विस्तार से समझ सकते हैं।"

गुप्ते राखिह, काहाँ ना करिओ प्रकाश ।

आमार बातुल-चेष्टा लोके उपहास ॥ 290॥

गुप्ते-गुप्त; राखिह-रखो; काहाँ-कहीं भी; ना-नहीं; करिओ-करो; प्रकाश-प्रकाशित; आमार-मेरा; बातुल-चेष्टा-उन्मत्त व्यक्ति जैसे कार्यकलाप; लोके-सामान्य लोगों में; उपहास-हँसी।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने रामानन्द राय से अनुरोध किया, "इन सारी बातों को गुप्त रखें। आप इन्हें कहीं भी प्रकट न करें। चूँकि मेरे कार्य उन्मत्त व्यक्ति जैसे प्रतीत होते हैं, अतएव लोग उनकी गम्भीरता न समझते हुए हँसी उड़ा सकते हैं।"

आमि—एक बातुल, तुमि—द्वितीय बातुल ।

अतएव तोमाय आमाय हइ सम-तुल ॥291॥

आमि-मैं; एक-एक; बातुल-उन्मत्त आदमी; तुमि-आप; द्वितीय-दूसरे; बातुल-उन्मत्त आदमी; अतएव–अतएव; तोमाय-आप; आमाय-मैं; हइ-हैं; सम-तुल–समान स्तर पर।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने तब कहा, "मैं सचमुच उन्मत्त व्यक्ति हूँ और आप भी उन्मत्त हो। अतएव हम दोनों समान धरातल पर हैं।"

तात्पर्य

रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की ये वार्ताएँ एक सामान्य व्यक्ति, जो भक्त नहीं है, उसे हास्यास्पद प्रतीत होती हैं। सारा जगत् भौतिक विचारधाराओं से भरा है और लोग इन वार्ताओं को, संसारी दर्शन द्वारा बद्ध होने के कारण, समझने में असमर्थ हैं। जो लोग संसारी कार्यों में अत्यधिक लिप्त रहते हैं, वे रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच की इन भावपूर्ण वार्ताओं को नहीं समझ सकेंगे। इसीलिए महाप्रभु ने रामानन्द राय से अनुरोध किया कि वे इन सारी वार्ताओं को गुप्त रखें और उन्हें सामान्य जनता के सामने प्रकट न करें । जो वास्तव में कृष्णभावनामृत में उन्नत होता है, वही इन गुप्त बातों को समझ सकता है, अन्यथा ये विक्षिप्त प्रतीत होंगी। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को बतलाया कि वे दोनों ही बातुल (उन्मत्त) लगते हैं और एक ही धरातल पर हैं। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (2.69) द्वारा भी होती है :

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

"जो समस्त जीवों के लिए रात है, वह संयमी व्यक्तियों के लिए जगने का समय है, और जो समस्त जीवों के लिए जगने का समय है, वह अन्तर्दर्शी मुनियों के लिए रात है।"

कभी-कभी संसारी व्यक्तियों को कृष्णभावनामृत एक प्रकार का पागलपन जैसा प्रतीत होता है, जिस तरह संसारी व्यक्तियों के कार्य कृष्णभावनाभावित व्यक्ति द्वारा पागलपन का एक रूप समझे जाते हैं।

एइ-रूप दश-रात्रि रामानन्द-सङ्गे ।

सुखे गोडाइला प्रभु कृष्ण-कथा-रङ्गे ॥292॥

एइ-रूप-इस प्रकार; दश-रात्रि–दस रातें; रामानन्द सङ्गे-श्री रामानन्द राय के साथ; सुखे-सुखपूर्वक; गोङाइला–व्यतीत की; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कृष्ण-कथा-रङ्गे–कृष्ण कथाओं की चर्चा के दिव्य आनन्द में।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय ने कृष्ण की लीलाओं पर चर्चा करते हुए सुखपूर्वक दस रातें बिताईं।

निगूढ़ व्रजेर रस-लीलार विचार ।

अनेक कहिल, तार ना पाइल पार ॥293 ॥

निगूढ़-अत्यन्त रहस्यपूर्ण; व्रजेर-व्रजभूमि वृन्दावन की; रस-लीलार-कृष्ण तथा गोपियों के माधुर्य प्रेम की लीलाओं का; विचार-विचार; अनेक-अनेक; कहिल–बातें की; तार–उनकी; ना-नहीं; पाइल-पाई; पार-सीमा।

अनुवाद

रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच हुई वार्ताएँ अत्यन्त गूढ़ हैं, जो वृन्दावन (व्रजभूमि) में राधा तथा कृष्ण के माधुर्य प्रेम से सम्बन्धित हैं। यद्यपि दोनों ने इन लीलाओं पर विस्तार से बातें कीं, किन्तु वे उनका पार नहीं पा सके।

तामा, काँसा, रूपा, सोना, रत्न-चिन्तामणि ।

केह यदि काहाँ पोता पाय एक-खानि ॥294॥

तामा-तांबा; काँसा–कांसा; रूपा-चांदी; सोना-सोना; रत्न-चिन्तामणि-चिन्तामणि पत्थर, सारी धातुओं का आधार; केह-कोई; यदि-यदि; काहाँ-कहीं; पोता-दबा हुआ; पाय-पाता है; एक-खानि–एक खान में।

अनुवाद

वस्तुतः ये वार्ताएँ उस विशाल खान के तुल्य हैं, जहाँ पर एक ही स्थान से सभी तरह की धातुएँ निकाली जा सकती हैं यथा ताँबा, काँसा, चाँदी, सोना तथा अन्य सभी धातुओं का आधार चिन्तामणि पत्थर।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच हुई वार्ताओं का सारांश इस प्रकार दिया है-रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा पूछे गये पाँच प्रश्नों के उत्तर दिये और ये प्रश्न तथा उनके उत्तर श्लोक 57 से 67 में दिये गये हैं। पहला उत्तर ताँबे के समान दूसरा उससे बेहतर काँसे के समान, तीसरा उससे भी बेहतर चाँदी के समान, चौथा सर्वोत्तम धातु स्वर्ण के समान है, किन्तु पाँचवा उत्तर अत्यन्त मूल्यवान रत्न चिन्तामणि के समान है, क्योंकि इसमें भक्तिमय जीवन के चरम लक्ष्य-अनन्य भक्ति का उल्लेख है और यह अपने पूर्व के चार उत्तरों पर प्रकाश डालने वाला है।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इंगित करते हैं कि व्रजभूमि में रेतीले तटों वाली यमुना नदी है। वहाँ कदम्ब वृक्ष हैं, गौवें हैं, कृष्ण की लकुटियाँ हैं। जिनसे वे गौवें हाँकते थे, तथा कृष्ण की वंशी है। ये सभी शान्त रस से सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त कृष्ण के प्रत्यक्ष दास हैं-यथा चित्रक, पत्रक तथा रक्तक-ये सभी दास्य भाव के साकार रूप हैं। वहाँ श्रीदामा तथा सुदामा आदि मित्र भी हैं, जो सख्य भाव के द्योतक हैं। नन्द महाराज तथा माता यशोदा वात्सल्य रस के प्रतीक हैं। इन सबसे ऊपर हैं-माधुर्य रस की प्रतीक श्रीमती राधारानी तथा उनकी गोपी सखियाँ–ललिता, विशाखा आदि। इस तरह पाँचों रस–शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य निरन्तर व्रजभूमि में विद्यमान रहते हैं। इनकी तुलना क्रमशः ताँबा, काँसा, चाँदी, सोना तथा सभी धातुओं की आधार चिन्तामणि से की गई है। इसलिए श्रील कविराज गोस्वामी वृन्दावन या व्रजभूमि में धातुओं की खान के सनातन अस्तित्व का उल्लेख करते हैं।

क्रमे उठाइते सेह उत्तम वस्तु पाय ।

ऐछे प्रश्नोत्तर कैल प्रभु-रामराय ॥295॥

क्रमे-धीरे धीरे; उठाइते-उठाने के लिए; सेह-उस व्यक्ति को; उत्तम–उत्तम; वस्तु-धातु; पाय-पाता है; ऐछे-उसी प्रकार; प्रश्न-उत्तर–प्रश्न तथा उत्तर; कैल-किये हैं; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; राम-राय-और रामानन्द राय ने।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय ने एक से एक उत्तम धातुओं को निकालने वाले खनिक का काम किया। उनके प्रश्न तथा उत्तर बिल्कुल इसी तरह के हैं।

आर दिन राय-पाशे विदाय मागिला ।

विदायेर काले ताँरे एइ आज्ञा दिला ॥ 296 ॥

आर दिन-अगले दिन; राय-पाशे-रामानन्द राय से; विदाय मागिला–विदा माँगी; विदायेर काले प्रस्थान के समय; ताँरे–उनको; एइ–यह; आज्ञा-आज्ञा; दिला-दी।

अनुवाद

अगले दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रस्थान करने के लिए रामानन्द राय से अनुमति माँगी। विदा होते समय महाप्रभु ने राय को निम्नलिखित आज्ञा दी।

विषय छाड़िया तुमि याह नीलाचले ।

आमि तीर्थ करि' ताँहा आसिब अल्प-काले ॥ 297॥

विषय-भौतिक कार्य; छाड़िया-छोड़कर; तुमि-आप; याह-जाओ; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी; आमि-मैं; तीर्थ करि'-अपनी तीर्थयात्रा समाप्त करके; ताँहा-वहाँ; आसिब-लौट जाऊँगा; अल्प-काले-बहुत जल्दी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे कहा, "आप सारे भौतिक कार्यकलाप छोड़कर जगन्नाथ पुरी जायें। मैं अपनी तीर्थयात्रा समाप्त करके शीघ्र ही वहाँ लौट आऊँगा।"

दुइ-जने नीलाचले रहिब एक-सङ्गे ।

सुखे गोङाइब काल कृष्ण-कथा-रङ्गे ॥ 298॥

दुइ-जने–हम दोनों; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; रहिब-रहेंगे; एक-सङ्गे-साथ में; सुखे-सुखपूर्वक; गोङाइब–व्यतीत करेंगे; काल-समय; कृष्ण-कथा-रङ्गे–कृष्ण कथाओं की चर्चा में आनन्द लेते हुए।

अनुवाद

"हम दोनों जगन्नाथ पुरी में मिलकर रहेंगे और कृष्ण-कथा कहते हुए सुखपूर्वक अपना समय बितायेंगे।"

एत बलि' रामानन्दे करि' आलिङ्गन ।

ताँरे घरे पाठाइया करिल शयन ॥299॥

एत बलि'-यह कहकर; रामानन्दे-श्री रामानन्द राय का; करि'-करके; आलिङ्गन-आलिंगन; ताँरे–उनको; घरे-उनके घर; पाठाइया–भेजकर; करिल-किया; शयन-विश्राम।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय का आलिंगन किया और उन्हें उनके घर भेजकर वे स्वयं विश्राम करने लगे।

प्रातःकाले उठि' प्रभु देखि' हनुमान् ।

ताँरे नमस्करि' प्रभु दक्षिणे करिला प्रयाण ॥ 300 ॥

प्रातः-काले-प्रातः काल; उठि'–उठकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; देखि'-देखकर; हनुमान्–गाँव के विग्रह हनुमान; ताँरे-उनको; नमस्करि'-नमस्कार करके; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; दक्षिणे-दक्षिण की ओर; करिला–किया; प्रयाण-प्रस्थान।

अनुवाद

प्रातःकाल जगने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु स्थानीय मन्दिर में गये, जहाँ हनुमानजी का विग्रह था। उन्हें नमस्कार करने के बाद महाप्रभु ने दक्षिण भारत के लिए प्रस्थान किया।

तात्पर्य

भारत के समस्त कस्बों तथा शहरों में भगवान् रामचन्द्र के शाश्वत सेवक हनुमानजी के मन्दिर हैं। यहाँ तक कि वृन्दावन में गोविन्दजी के मन्दिर के पास भी हनुमान मन्दिर है। पहले यह मन्दिर गोपालजी मन्दिर के सामने था, किन्तु गोपालजी का वह विग्रह साक्षीगोपाल के रूप में उड़ीसा चले गये। भगवान् रामचन्द्रजी के शाश्वत दास होने के कारण हनुमानजी की पूजा लाखों वर्षों से बड़े ही आदर के साथ होती चली आ रही है। यहाँ तक कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने दृष्टान्त प्रस्तुत किया कि किस तरह मनुष्य को हनुमानजी का आदर करना चाहिए।

'विद्यापूरे' नाना-मत लोक वैसे यत ।

प्रभु-दर्शने 'वैष्णव' हैल छाड़ि' निज-मत ॥ 301॥

विद्यापूरे विद्यानगर में; नाना-मत–विभिन्न विचार वाले; लोक-लोग; वैसे-रहते थे; यत-सब; प्रभु-दर्शने-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करके; वैष्णव-वैष्णव; हैल-हो गये; छाड़ि'–छोड़कर; निज-मत-अपना अपना मत।

अनुवाद

विद्यानगर के सारे निवासी विभिन्न मतों को मानने वाले थे, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के बाद उन्होंने अपना-अपना मत त्याग दिया और वैष्णव बन गये।

रामानन्द हैला प्रभुर विरहे विह्वल ।

प्रभुर ध्याने रहे विषय छाड़िया सकल ॥ 302॥

रामानन्द-श्रील रामानन्द राय; हैला-हो गये; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; विरहे-विरह में; विह्वल-विह्वल; प्रभुर ध्याने-श्री चैतन्य महाप्रभु का ध्यान करके; रहे-रहते; विषय-सांसारिक कार्य; छाड़िया–छोड़कर; सकल-सब।

अनुवाद

रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु के विरह में विह्वल हो उठे। वे अपने सारे भौतिक कार्यकलाप त्यागकर महाप्रभु के ध्यान में मग्न रहने लगे।

सङ्क्षेपे कहिलुँ रामानन्देर मिलन ।

विस्तारि' वर्णिते नारे सहस्र-वदन ॥ 303 ॥

सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; रामानन्देर मिलन-श्रील रामानन्द राय से मिलन; विस्तारि'–विस्तार से; वर्णिते वर्णन करने के लिए; नारे–नहीं सम्भव; सहस्र-वदन-हजारों मुखवाले भगवान् शेषनाग।

अनुवाद

मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के मिलन का संक्षेप में वर्णन किया है। इसका पूरे विस्तार से वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। यहाँ तक कि हजार फनों वाले भगवान् शेषनाग भी इसका वर्णन नहीं कर सकते।

सहजे चैतन्य-चरित्र—घन-दुग्ध-पूर ।

रामानन्द-चरित्र ताहे खण्ड प्रचुर ॥ 304॥

सहजे-साधारणतया; चैतन्य-चरित्र-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; घन-दुग्ध-पूर–गाढ़े दूध की भाँति; रामानन्द-चरित्र-रामानन्द राय की कथा; ताहे-उसमें; खण्ड-मिश्री मिठास); प्रचुर–बड़ी मात्रा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलाप गाढ़े दूध के समान हैं और रामानन्द राय के कार्यकलाप मिश्री के ढेर के समान हैं।

राधा-कृष्ण-लीला—ताते कर्पूर-मिलन ।

भाग्यवान् येइ, सेइ करे आस्वादन ॥ 305॥

राधा-कृष्ण-लीला-राधा-कृष्ण की लीलाएँ; ताते-उस मिश्रण में; कर्पूर-कपूर; मिलन-मिलाया; भाग्यवान्–भाग्यशाली; येइ-वह जो; सेइ-वह व्यक्ति; करे-करता है; आस्वादन-आस्वादन।

अनुवाद

उनका मिलन गाढ़े दूध और मिश्री के मिश्रण के समान है। जब वे राधा तथा कृष्ण की लीलाओं के विषय में बातें करते हैं, तो मानो उसमें कपूर मिल गया हो। जो व्यक्ति इस मिश्रित व्यंजन का स्वाद चखता है, वह परम भाग्यशाली है।

ये इहा एक-बार पिये कर्ण-द्वारे ।

तार कर्ण लोभे इहा छाड़िते ना पारे ॥ 306 ॥

ये-जो कोई; इहा-यह; एक-बार-एक बार; पिये-पी लेता है; कर्ण-द्वारे-कान द्वारा; तार-उसको; कर्ण-कान; लोभे-लोभ में; इहा-इसे; छाड़िते-छोड़ना; ना-नहीं; पारे-सम्भव।

अनुवाद

इस अद्भुत व्यंजन को कानों से ग्रहण करना होता है। जो इसे ग्रहण करता है, वह इसका और अधिक आस्वादन करने के लिए लालायित हो जाता है।

'रस-तत्त्व-ज्ञान' हय इहार श्रवणे ।

'प्रेम-भक्ति' हय राधा-कृष्णेर चरणे ॥ 307॥

रस-तत्त्व-ज्ञान-राधा-कृष्ण के माधुर्य-प्रेम के रस का दिव्य ज्ञान; हय-है; इहार-इसको; श्रवणे-सुनने से; प्रेम-भक्ति-प्रेमाभक्ति; हय-सम्भव हो जाती है; राधा-कृष्णेर चरणे-राधा-कृष्ण के चरणकमलों में।

अनुवाद

रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की वार्ताओं को सुनकर राधाकृष्ण-लीलाओं के रसों का दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है। इस तरह राधा तथा कृष्ण के चरणकमलों के प्रति अनन्य प्रेम विकसित हो सकता है।

चैतन्येर गूढ़-तत्त्व जानि इहा हैते ।

विश्वास करि' शुन, तर्क ना करिह चित्ते ॥ 308॥

चैतन्येर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; गूढ़-तत्त्व-गुप्त तत्त्व; जानि-हम जान सकते हैं; इहा हैते–इन बातों से; विश्वास करि'-दृढ़ विश्वास करके; शुन-सुनते हैं; तर्क-तर्क; ना-नहीं; करिह–करते; चित्ते-हृदय में।

अनुवाद

लेखक का हर पाठक से यही अनुरोध है कि इन वार्ताओं को श्रद्धापूर्वक बिना तर्क किये सुने। इस तरह से अध्ययन करने पर ही वह श्री चैतन्य महाप्रभु के गूढ़ तत्त्व को समझ सकेगा।

अलौकिक लीला एइ परम निगूढ़ ।

विश्वासे पाइये, तर्के हय बहु-दूर ॥ 309॥

अलौकिक-अप्राकृत; लीला-लीलाएँ; एइ-यह; परम-परम; निगूढ़ रहस्यपूर्ण; विश्वासे-श्रद्धा से; पाइये हम पा सकते हैं; तर्के–तर्क से; हय-है; बहु-दूर-बहुत दूर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का यह अंश परम गोपनीय है। मनुष्य केवल श्रद्धा से तुरन्त लाभान्वित हो सकता है, अन्यथा तर्क करने से वह इससे वंचित रहेगा।

श्री-चैतन्य-नित्यानन्द-अद्वैत-चरण ।

याँहार सर्वस्व, ताँरे मिले एइ धन ॥ 310॥

श्री-चैतन्य- श्री चैतन्य महाप्रभु का; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु का; अद्वैत-चरण-श्री अद्वैत प्रभु के चरणकमल; याँहार सर्व-स्व-जिनका सर्वस्व; ताँरे–उसको; मिले-मिलता है; एइ–यह; धन-धन।

अनुवाद

जिसने श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु के चरणकमलों को सब कुछ मान रखा है, वही इस दिव्य खजाने को प्राप्त कर सकता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि जो श्रद्धावान हैं उन्हें कृष्ण सुलभ हैं, किन्तु जो तर्क करने के अभ्यस्त हैं, उनके लिए कृष्ण दुर्लभ हैं। इसी तरह जिस व्यक्ति में दृढ़ श्रद्धा है, वही रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की इन वार्ताओं को समझ सकता है। जो अश्रौतपन्थी हैं अर्थात् जो गुरु-शिष्य परम्परा से जुड़े नहीं हैं, उनकी इन वार्ताओं में श्रद्धा नहीं हो सकती। वे सदैव संशय करते हैं और कपोल-कल्पना में लगे रहते हैं। ऐसे स्वच्छन्द लोग इन वार्ताओं को नहीं समझ पाते । जो तर्क करने वाले हैं, उनसे भी ये दिव्य वार्ताएँ दूर रहती हैं। इस सम्बन्ध में कठ उपनिषद (1.2.9) का कहना है-नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ। मुण्डक उपनिषद (3.2.3) के अनुसार :

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो

न मेधया न बहुना श्रुतेन

यमेवैषवृणुते तेन लभ्य-

स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू स्वाम् ॥

और ब्रह्मसूत्र (2.1.11) के अनुसार-तर्काप्रतिष्ठानात् ।

सभी वैदिक ग्रंथों की घोषणा है कि दिव्य विषयों को केवल तर्क या दलील से नहीं समझे जा सकते। आध्यात्मिक बातें व्यावहारिक ज्ञान से बहुत ऊपर हैं। यदि कोई कृष्ण के दिव्य प्रेम-व्यापारों में रुचि रखता है, तो वह कृष्ण-कृपा होने पर ही उन्हें समझ सकता है। जो व्यक्ति केवल भौतिक बुद्धि के बल पर इन दिव्य कथाओं को समझना चाहता है, उसका प्रयास निष्फल जाता है। फिर चाहे वह प्राकृत सहजिया हो या संसारी अवसरवादी या पंडित, संसारी साधनों के द्वारा इन कथाओं को समझने के लिए किया जाने वाला उसका श्रम व्यर्थ जायेगा। अतः मनुष्य को सारे सांसारिक प्रयास त्यागकर भगवान् विष्णु का शुद्ध भक्त बनने का प्रयास करना चाहिए। जब ऐसा भक्त विधानों का पालन करता है, तो इन कथाओं का सत्य उसके समक्ष प्रकट होगा। इसकी पुष्टि भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.234) में हुई है :

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः ।

सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः ॥

मनुष्य अपनी स्थूल भौतिक इन्द्रियों से भगवान् के नाम, लीला, रूप, गुण तथा पार्षदों को नहीं समझ सकता। किन्तु निरन्तर सेवा करते रहने से जब इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती हैं, तो राधाकृष्ण की लीलाओं का आध्यात्मिक सत्य (तत्त्व) प्रकट होता है। मुण्डक उपनिषद में पुष्टि हुई है-यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्। जिस पर पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की कृपा होती है, वही श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य स्वरूप को समझ सकता है।

रामानन्द राये मोर कोटी नमस्कार ।

याँर मुखे कैल प्रभु रसेर विस्तार ॥ 311॥

रामानन्द राये-श्री रामानन्द राय को; मोर-मेरा; कोटी-करोड़; नमस्कार-नमस्कार; याँर मुखे-जिनके मुख से; कैल-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; रसेर विस्तार-दिव्य रस का विस्तार।

अनुवाद

मैं श्री रामानन्द राय के चरणकमलों में एक करोड़ बार नमस्कार करता हूँ, क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके मुख से प्रचुर आध्यात्मिक ज्ञान का विस्तार किया।

दामोदर-स्वरूपेर कड़चा-अनुसारे ।

रामानन्द-मिलन-लीला करिल प्रचारे ॥ 312॥

दामोदर-स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर गोस्वामी की; कड़चा-गुटके के; अनुसारे-अनुसार; रामानन्द-मिलन-लीला-रामानन्द मिलन-लीला का; करिल किया है; प्रचारे-प्रचार।

अनुवाद

मैंने श्री स्वरूप दामोदर के गुटकों के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय की मिलन-लीलाओं का प्रचार किया है।

तात्पर्य

लेखक प्रत्येक अध्याय के अन्त में गुरु-शिष्य परम्परा के महत्त्व को स्वीकार करते चलते हैं। वे यह दावा कभी नहीं करते कि उन्होंने शोध-कार्य के आधार पर यह दिव्य साहित्य रचा है। वे स्वरूप दामोदर, रघुनाथ दास गोस्वामी तथा अन्य प्रामाणिक भक्तों द्वारा लिखे गये गुटकों (टिप्पणियों) के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। दिव्य साहित्य का लेखन इसी तरह से किया जाता है, क्योंकि यह साहित्य तथाकथित विद्वानों तथा शोधार्थियों के लिए नहीं है। सही विधि है-महाजनो येन गतः स पन्थाः। महापुरुषों तथा आचार्यों का पूरी तरह अनुगमन करना अनिवार्य है। आचार्यवान् पुरुषो वेद—जिसे आचार्य की कृपा प्राप्त होती है, वह हर बात जान जाता है। कविराज गोस्वामी का यह कथन समस्त शुद्ध भक्तों के लिए अत्यन्त मूल्यवान है। कभी-कभी प्राकृत सहजिये दावा करते हैं कि उन्होंने अपने गुरु से सत्य सुना है। किन्तु अप्रामाणिक गुरु से श्रवण करके दिव्य ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। गुरु को प्रामाणिक होना चाहिए, और उसे अपने प्रामाणिक गुरु से श्रवण किया हुआ होना चाहिए। तभी उसके सन्देश को प्रामाणिक माना जायेगा। इसकी पुष्टि भगवान् कृष्ण द्वारा भगवद्गीता (4.1) से होती है :

श्री भगवान् उवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहमव्ययम् ।

विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

“भगवान् ने कहा, 'मैंने यह अमर योग-विद्या का उपदेश सूर्यदेव विवस्वान को प्रदान किया, और विवस्वान् ने इसे मनुष्य जाति के पिता मनु को प्रदान किया, और मनु ने इसे इक्ष्वाकु को प्रदान किया।”

इस तरह कोई सन्देश प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु-शिष्य परम्परा से एक प्रामाणिक गुरु से प्रामाणिक शिष्य तक पहुँचाया जाता है। इसीलिए श्रील कविराज गोस्वामी पहले ही की तरह इस अध्याय की समाप्ति छ: गोस्वामियों के चरणकमलों पर अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए करते हैं। इस तरह वे अपना यह दिव्य साहित्य-चैतन्य-चरितामृत प्रस्तुत कर सके।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥313॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों पर; यार–जिनकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करता है; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ दास के चरणकमलों पर प्रार्थना करते उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार चैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के आठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जो श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के मध्य हुई वार्ताओं से सम्बन्धित है ।

अध्याय नौ

श्री चैतन्य महाप्रभु की तीर्थयात्राएँ

नवें अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इस प्रकार दिया है। विद्यानगर से चलने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु इन तीर्थस्थानों में गये : गौतमी-गंगा, मल्लिकार्जुन, अहोवल-नृसिंह, सिद्धवट, स्कन्द क्षेत्र, त्रिमठ, वृद्धकाशी, बौद्धस्थान, तिरुपति, तिरुमल्ल, पानानृसिंह, शिवकांची, विष्णुकांची, त्रिकालहस्ती, वृद्धकोल, शियाली-भैरवी, कावेरी नदी तथा कुम्भकर्ण कपाल।

अन्त में महाप्रभु श्री रंगक्षेत्र गये, जहाँ उन्होंने वेंकट भट्ट नामक ब्राह्मण को सपरिवार कृष्ण-भक्त बनाया। श्री रंग से चलने के बाद चैतन्य महाप्रभु ऋषभ पर्वत आये, जहाँ उनकी भेंट परमानन्द पुरी से हुई, जो बाद में जगन्नाथ पुरी आ गये। तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु आगे गये और सेतुबन्ध रामेश्वर पहुँचे। श्री शैलपर्वत पर उनकी भेंट शिवजी तथा उनकी पत्नी दुर्गा से एक ब्राह्मण-ब्राह्मणी के वेश में हुई। इसके बाद वे कामकोष्ठीपुरी गये और फिर वहाँ से दक्षिण मथुरा पहुँचे। उनसे भगवान् रामचन्द्र के भक्त, एक ब्राह्मण ने बातें की। तत्पश्चात् महाप्रभु ने कृतमाला नदी में स्नान किया। उन्होंने महेन्द्रशैल नामक पर्वत पर परशुराम के दर्शन किये। तत्पश्चात् महाप्रभु सेतुबन्ध गये और धनुस्तीर्थ में स्नान किया। वे

रामेश्वर भी गये, जहाँ उन्होंने सीतादेवी से सम्बन्धित कुछ कागजात प्राप्त किये, जिनके मायारूप का हरण रावण ने किया था। इसके बाद महाप्रभु ने पाण्ड्य देश, ताम्रपर्णी नदी, नयत्रिपति, चियड़तला, तिलकांची, गजेन्द्रमोक्षण, पानागड़ि, चाम्तापुर, श्री वैकुण्ठ, मलय पर्वत तथा कन्याकुमारी इत्यादि स्थानों का भ्रमण किया। इसके बाद मल्लार देश में महाप्रभु का सामना भट्टथारियों से हुआ और उन्होंने काला कृष्णदास को उनके चंगुल से छुड़ाया। महाप्रभु ने पयस्विनी नदी के तट पर ब्रह्म-संहिता का पाँचवा अध्याय प्राप्त किया। इसके बाद वे पयस्विनी, शृंगवेरपुरी मठ तथा मत्स्य-तीर्थ गये। उडुपी नामक गाँव में उन्होंने श्री मध्वाचार्य द्वारा संस्थापित गोपाल विग्रह के दर्शन किये। तत्पश्चात् उन्होंने तत्त्ववादियों को शास्त्रार्थ में हराया। इसके बाद महाप्रभु फल्गुतीर्थ, त्रितकूप, पंचाप्सरा, सूर्पारक तथा कोलापुर गये। पांडरपुर में उन्हें शंकरारण्य (विश्वरूप) के अन्तर्धान होने का समाचार श्रीरंग पुरी से मिला। फिर वे कृष्णवेण्वा नदी के तट पर गये, जहाँ उन्होंने वैष्णव ब्राह्मणों के यहाँ से बिल्वमंगल ठाकुर कृत श्रीकृष्ण कर्णामृत नामक पुस्तक प्राप्त की। तत्पश्चात् महाप्रभु ने तापी, महिष्मतीपुर, नर्मदा नदी तथा ऋष्यमूक पर्वत देखा। वे दण्डकारण्य में प्रविष्ट हुए और वहाँ उन्होंने सात ताड़ वृक्षों का उद्धार किया। वहाँ से वे पम्पा सरोवर आये और पंचवटी, नासिक, ब्रह्मगिरि तथा गोदावरी नदी का उद्गम कुशावर्त देखा। इस तरह महाप्रभु ने दक्षिण भारत के प्रायः समस्त तीर्थों को देखा। अन्त में वे उसी रास्ते से होकर, फिर से विद्यानगर होते हुए जगन्नाथ पुरी लौट आये।

मध्य लीला 9.1

नाना-मत-ग्राह-ग्रस्तान्दाक्षिणात्य-जन-द्विपान् ।

कृपारिणा विमुच्यैतागौरश्चक्रे स वैष्णवान् ॥

शब्दार्थ

नाना-मत-नाना प्रकार के मतों से; ग्राह-मगरमच्छ की भाँति; ग्रस्तान्-पकड़े हुए; दाक्षिणात्य-जन–दक्षिण भारत के निवासी; द्विपान्–हाथियों की भाँति; कृपा-अरिणा-उनकी कृपा रूपी चक्र से; विमुच्य–मुक्त करके; एतान्-इन सबको; गौरः-श्री चैतन्य महाप्रभु; चक्रे–परिवर्तन किया; सः-उन्होंने; वैष्णवान्-वैष्णव सम्प्रदाय में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने दक्षिण भारत के निवासियों का हृदय-परिवर्तन किया। ये लोग हाथी के समान बलशाली थे, किन्तु वे विभिन्न विचारधाराओं-यथा बौद्ध, जैन, मायावादी दर्शन-रूपी घड़ियालों

(मगरमच्छों) के चंगुल में फंसे हुए थे। महाप्रभु ने अपनी कृपा रूपी चक्र से सबको वैष्णव अर्थात् भगवद्भक्त बनाकर सबका उद्धार किया।

तात्पर्य

यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दक्षिण भारत के लोगों को वैष्णव बनाये जाने की तुलना भगवान् विष्णु द्वारा घड़ियाल के आक्रमण से गजेन्द्र का उद्धार किये जाने से की गई है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने दक्षिण भारत की यात्रा की, तब वहाँ के प्रायः सारे निवासी बौद्ध, जैन तथा मायावादी दर्शन रूपी घड़ियालों के चंगुलों में फंसे हुए थे। यहाँ पर कविराज गोस्वामी कहते हैं कि यद्यपि ये लोग हाथियों के समान बलवान थे, किन्तु वे लगभग मृत्यु के चंगुल में थे, क्योंकि उन पर विभिन्न दर्शनों रूपी घड़ियालों ने हमला कर रखा था। जैसे श्री चैतन्य महाप्रभु ने विष्णु के रूप में गजेन्द्र हाथी को अपनी कृपा द्वारा घड़ियाल के चंगुल से बचाया, वैसे ही उन्होंने दक्षिण भारत के सभी लोगों को वैष्णव बनाकर विभिन्न दर्शनों के पाश से छुड़ाया।

मध्य लीला 9.2

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥

शब्दार्थ

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय अद्वैत-चन्द्र-श्री अद्वैत प्रभु की जय हो; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत प्रभु की जय हो तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

मध्य लीला 9.3

दक्षिण-गमन प्रभुर अति विलक्षण ।

सहस्र सहस्र तीर्थ कैल दरशन ॥

शब्दार्थ

दक्षिण-गमन-दक्षिण भारत का भ्रमण; प्रभुर–महाप्रभु का; अति-अत्यन्त; विलक्षण-असाधारण; सहस्र सहस्र-हजारों; तीर्थ-तीर्थ स्थान; कैल–किया; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की दक्षिण भारत की यात्रा निश्चय ही अद्वितीय थी, क्योंकि उन्होंने वहाँ कई हजार तीर्थस्थान देखे।

मध्य लीला 9.4

सेइ सब तीर्थ स्पर्शि' महा-तीर्थ कैल ।

सेइ छले सेइ देशेर लोक निस्तारिल ॥

शब्दार्थ

सेइ सब-उन सब; तीर्थ–तीर्थस्थान; स्पर्शि'–स्पर्श करके; महा-तीर्थ–महातीर्थ; कैल-बनाये; सेइ छले-उसी बहाने से; सेइ देशेर-उन देशों के; लोक-लोगों का; निस्तारिल-उद्धार किया।

अनुवाद

उन तीर्थस्थानों में जाने के बहाने उन्होंने हजारों निवासियों का हृदय परिवर्तन किया और इस तरह उनका उद्धार किया। उन्होंने तीर्थस्थानों को अपने स्पर्श मात्र से महान् तीर्थस्थलों में परिणत कर दिया।

तात्पर्य

कहा गया है- तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि। तीर्थ वह स्थान है जहाँ बड़े-बड़े सन्त पुरुष जाते हैं या रहते हैं। यद्यपि ये तीर्थ पहले से तीर्थस्थल थे, किन्तु महाप्रभु के जाने से वे सभी निर्मल हो गये। इन तीर्थस्थानों में अनेक लोग जाते हैं और वहाँ अपने पापकर्म छोड़ आते हैं, और इस तरह कल्मष से मुक्त हो जाते हैं। जब ये कल्मष बढ़कर ढेर का रूप धारण कर लेते हैं, तब वे श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके सच्चे अनुयायियों जैसे महापुरुषों के आने से नष्ट हो जाते हैं। किसी अस्पताल में कई तरह के रोगी आते हैं, जिससे वह अनेक रोगों से संक्रमित हो जाता है। वस्तुतः अस्पताल सदैव संक्रमित रहता है, किन्तु कुशल चिकित्सक अपनी उपस्थिति तथा व्यवस्था से अस्पताल को कीटाणुरहित बनाये रखता है। इसी तरह तीर्थस्थल आने वाले पापियों के पापों से दूषित रहते हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु जैसे महापुरुषों के आने से ऐसे स्थानों का सारा कल्मष दूर हो जाता है।

मध्य लीला 9.5

सेइ सब तीर्थेर क्रम कहिते ना पारि ।

दक्षिण-वामे तीर्थ-गमन हय फेराफेरि ॥

शब्दार्थ

सेइ सब-वे सब; तीर्थेर-तीर्थ स्थानों का; क्रम-क्रम; कहिते-बताने में; ना पारि-मैं अक्षम हूँ; दक्षिण-वामे दाएँ, बाएँ; तीर्थ-गमन–तीर्थों में जाकर; हय है; फेराफेरि–जाना-आना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने जिन समस्त तीर्थस्थानों का भ्रमण किया, उनका क्रमबद्ध वर्णन कर पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं संक्षेप में इतना ही कह सकता हूँ कि महाप्रभु ने आते-जाते दाहिने तथा बाँये के सारे तीर्थस्थानों का भ्रमण किया।

मध्य लीला 9.6

अतएव नाम-मात्र करिये गणन् ।

कहिते ना पारि तार यथा अनुक्रम ॥

शब्दार्थ

अतएव–अतएव; नाम-मात्र–नाम मात्र; करिये गणन-गिनना; कहिते-बताने के लिए; ना पारि-असमर्थ; तार-उसका; यथा-जैसे; अनुक्रम-क्रमबद्ध।

अनुवाद

चूँकि इन सारे स्थानों का क्रमबद्ध वर्णन कर पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है, अतएव मैं नाम के लिए ही उनका वर्णन करूँगा।

मध्य लीला 9.7

पूर्ववत्पथे याइते ये पाय दरशन ।

येइ ग्रामे याय, से ग्रामेर यत जन ॥

मध्य लीला 9.8

सबेइ वैष्णव हय, कहे 'कृष्ण' 'हरि' ॥

अन्य ग्राम निस्तारये सेइ 'वैष्णव' करि' ॥

शब्दार्थ

पूर्व-वत्-पहले की भाँति; पथे-मार्ग पर; याइते-जाते समय; ये-जो कोई; पाय-पाता है; दरशन-दर्शन; येइ-जो; ग्रामे-गाँव में; याय-श्री चैतन्य महाप्रभु जाते; से-उस; ग्रामेर-गाँव के; यत–जितने; जन-लोग; सबेइ-वे सब; वैष्णव हय-भक्त हो जाते; कहे-कहते हैं; कृष्ण हरिकृष्ण और हरि के पावन नाम; अन्य ग्राम-दूसरे गाँव; निस्तारये-उद्धार करते हैं; सेइ-वे; वैष्णव-भक्त; करि'-बनाकर।

अनुवाद

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, भगवान् चैतन्य महाप्रभु जिन-जिन गाँवों में गये, वहाँ के सारे निवासी वैष्णव बन गये, और 'हरि' तथा 'कृष्ण' नाम का उच्चारण करने लगे। इस तरह महाप्रभु जितने सारे गाँवों में गये, उनका हर व्यक्ति वैष्णव भक्त बन गया।

तात्पर्य

कृष्ण तथा हरि के पवित्र नाम अथवा हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन आध्यात्मिक दृष्टि से इतना शक्तिशाली है कि आज भी जब हमारे प्रचारक विश्व के सुदूर भागों में जाते हैं, तो लोग तुरन्त हरे कृष्ण का कीर्तन करना प्रारम्भ कर देते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् थे। अन्य कोई ऐसा नहीं है, जो उनकी या उनकी शक्तियों की बराबरी कर सके। किन्तु उनके पदचिह्नों पर चलने और हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने का उतना ही प्रभाव है, जितना चैतन्य महाप्रभु के समय में था। हमारे प्रचारक मुख्यतया यूरोप तथा अमरीका जैसे देशों के हैं, फिर भी वे जहाँ कहीं शाखाएँ खोलने जाते हैं, श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिलती है। निस्सन्देह, लोग सर्वत्र हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का कीर्तन गम्भीरतापूर्वक करते हैं।

मध्य लीला 9.9

दक्षिण देशेर लोक अनेक प्रकार।

केह ज्ञानी, केह कर्मी, पाषण्डी अपार ॥

शब्दार्थ

दक्षिण देशेर-दक्षिण भारत के; लोक-लोग; अनेक-अनेक प्रकार-प्रकार; केह-कोई; ज्ञानी–ज्ञानी; केह-कोई; कर्मी-सकाम कर्मी; पाषण्डी-अभक्त; अपार-असंख्य।

अनुवाद

दक्षिण भारत में अनेक प्रकार के लोग थे। कुछ तो ज्ञानी थे और कुछ सकाम कर्मी, किन्तु अभक्तों की संख्या अपार थी।

मध्य लीला 9.10

सेइ सब लोक प्रभुर दर्शन-प्रभावे ।

निज-निज-मत छाड़ि' हइल वैष्णवे ॥

शब्दार्थ

सेइ सब लोक-वे सब लोग; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन-प्रभावे-दर्शन के प्रभाव से; निज-निज-अपने अपने; मत-सिद्धान्त; छाड़ि'–छोड़कर; हइल हो गये; वैष्णवे-भक्त।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से इन सारे लोगों ने अपने-अपने मत त्याग दिये और वैष्णव अर्थात् कृष्ण-भक्त बन गये।

वैष्णवेर मध्ये राम-उपासक सब ।

केह 'तत्त्ववादी', केह हय 'श्री-वैष्णव' ॥11॥

वैष्णवेर मध्ये-वैष्णवों के बीच; राम-उपासक सब-सभी भगवान् श्री रामचन्द्र के भक्त; केह-कोई; तत्त्व-वादी-मध्वाचार्य का अनुयायी; केह-कोई; हय-है; श्री-वैष्णव-श्री रामानुजाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा।

अनुवाद

उस समय दक्षिण भारत के सारे वैष्णव भगवान् रामचन्द्र के उपासक थे। उनमें से कुछ तत्त्ववादी थे और कुछ रामानुजाचार्य के अनुयायी थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने संकेत किया है कि "तत्त्ववादी" का अर्थ है श्रील मध्वाचार्य के अनुयायी। मध्वाचार्य ने अपनी गुरु-शिष्य परम्परा को शंकराचार्य के मायावादी अनुयायियों से पृथक् करने के लिए अपने दल का नाम तत्त्ववादी रखा। निर्विशेष अद्वैतवादियों पर ये तत्त्ववादी सर्वदा आक्रमण करते हैं और उनके निर्विशेष दर्शन को पराजित करने की चेष्टा करते हैं। सामान्यतया ये पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की श्रेष्ठता जताते हैं। किन्तु मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा वास्तव में, ब्रह्मा-वैष्णव-सम्प्रदाय के नाम से जानी जाती है-अर्थात् यह सम्प्रदाय ब्रह्माजी से लेकर चला आ रहा है। फलस्वरूप मध्वाचार्य के अनुयायी तत्त्ववादी ब्रह्मा के मोह की उस घटना को स्वीकार नहीं करते, जो श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध में आई है। श्रील मध्वाचार्य ने श्रीमद्भागवत के उस अंश की जान-बूझकर टीका नहीं की, जिसमें ब्रह्म-मोहन (अर्थात् ब्रह्मा के मोहित होने) का उल्लेख हुआ है। श्रील माधवेन्द्र पुरी तत्त्ववादी गुरु-शिष्य परम्परा के आचार्यों में से एक थे। उन्होंने शुद्ध भक्ति की प्राप्ति को ही अध्यात्मवाद का चरम लक्ष्य बतलाया। श्री चैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा अर्थात् गौड़ीय सम्प्रदाय के वैष्णव यद्यपि उसी तत्त्ववाद सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं, किन्तु फिर भी वे तत्त्ववादियों से पृथक् हैं। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी मध्वगौड़ीय सम्प्रदाय के नाम से जाने जाते हैं।

पाषण्डी शब्द शुद्ध भक्ति के विरोधियों का सूचक है। विशेषतया ये मायावादी अर्थात् निर्विशेषवादी हैं। हरिभक्ति-विलास (1.73) में पाषण्डी की परिभाषा इस प्रकार दी हुई है :

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः ।

समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम् ॥

पाषण्डी वह है, जो सोचता है कि भगवान् नारायण तथा ब्रह्माजी, शिवजी आदि देवता एक ही पद पर स्थित हैं। लेकिन भक्तजन कभी-भी भगवान् नारायण को ब्रह्माजी तथा शिवजी के पद पर नहीं मानते। मध्वाचार्य सम्प्रदाय तथा रामानुज सम्प्रदाय मुख्य रूप से भगवान् रामचन्द्र के उपासक हैं, यद्यपि यह माना जाता है कि श्री वैष्णव लोग भगवान् नारायण तथा लक्ष्मी के उपासक हैं तथा तत्त्ववादी भगवान् कृष्ण के उपासक हैं। आजकल मध्व सम्प्रदाय के अधिकांश मठों में भगवान् रामचन्द्र की पूजा की जाती है।

अध्यात्म-रामायण नामक पुस्तक के बारहवें से पन्द्रहवें अध्यायों में श्री रामचन्द्र तथा सीताजी के अर्चाविग्रहों की पूजा किये जाने का उल्लेख है। उसमें एक कथन है कि भगवान् रामचन्द्र के काल में एक ब्राह्मण था, जिसने यह व्रत

ले रखा था कि भगवान् रामचन्द्र का दर्शन किये बिना वह प्रात:कालीन भोजन नहीं करेगा। कभी-कभी कार्यवश भगवान् रामचन्द्र राजधानी से पूरे सप्ताह बाहर रहते थे। अतएव उस अवधि में नागरिकों को उनका दर्शन नहीं मिल पाता था। फलतः इस ब्राह्मण ने अपने व्रत के कारण उस सप्ताह जल की एक बूंद भी ग्रहण नहीं की। आठ-नौ दिन बाद जब उसने साक्षात् भगवान् रामचन्द्र के दर्शन किये, तब उसने अपना उपवास तोड़ा। उस ब्राह्मण के दृढ़ व्रत को देखकर भगवान् श्री रामचन्द्र ने अपने भाई लक्ष्मण को आदेश दिया कि वे उस ब्राह्मण को सीता-राम के अर्चाविग्रह की एक जोड़ी दे दें। उस ब्राह्मण ने लक्ष्मणजी से वे अर्चाविग्रह प्राप्त किये और आजीवन उनकी श्रद्धापूर्वक पूजा करता रहा। उसके मृत्यु के समय वह इन अर्चाविग्रहों को हनुमानजी को देता गया, जिन्हें वे वर्षों तक अपने गले में लटकाकर भक्तिसहित उनकी सेवा करते रहे। किन्तु अनेक वर्षों बाद जब हनुमानजी गन्धमादन पर्वत चले गये, तो वे अर्चाविग्रहों को पाण्डवों में से एक भीमसेन को देते गये। भीमसेन उन्हें अपने महल में ले आये और उन्हें वहाँ उन्होंने बहुत सावधानी से रखा। अन्तिम पाण्डव राजा क्षेमकान्त ने उसी महल में उनकी पूजा की। बाद में ये अर्चाविग्रह उड़ीसा के राजा गजपतियों की निगरानी में चले गये। नरहरि तीर्थ नामक एक आचार्य ने, जो मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा में थे, उड़ीसा के राजा से इन विग्रहों को प्राप्त किया।

ध्यान देने की बात है कि राम तथा सीता के ये विशेष अर्चाविग्रह राजा इक्ष्वाकु के समय से ही पूजे जाते रहे हैं। निस्सन्देह, इनकी पूजा भगवान् रामचन्द्र के आविर्भाव के पहले से राजकुमारों द्वारा होती रही होगी। बाद में, भगवान् रामचन्द्र के काल में इनकी पूजा लक्ष्मण ने की। कहा जाता है कि श्री मध्वाचार्य ने अपने तिरोधान के तीन मास पूर्व इन अर्चाविग्रहों को प्राप्त किया था और इनकी स्थापना उडुपी मन्दिर में कर दी थी। तब से उस मठ में मध्वाचार्य सम्प्रदाय वाले उनकी पूजा करते रहे हैं। जहाँ तक श्री वैष्णवों का सम्बन्ध है, रामानुजाचार्य से शुरू करके अन्य सबने सीताराम-अर्चाविग्रहों की पूजा की। तिरुपति तथा अन्य स्थानों में भी सीता-राम के अर्चाविग्रह पूजे जाते हैं। श्री रामानुज सम्प्रदाय की एक अन्य शाखा रामानन्दी या रामात है और इसके अनुयायी भी सीताराम अर्चाविग्रहों की पूजा नियमपूर्वक करते हैं। रामानुज सम्प्रदाय के वैष्णव राधाकृष्ण की अपेक्षा भगवान् रामचन्द्र की पूजा को वरीयता प्रदान करते हैं।

सेइ सब वैष्णव महाप्रभुर दर्शने ।

कृष्ण-उपासक हैल, लय कृष्ण-नामे ॥12॥

सेइ सब-वे सब; वैष्णव-भक्त; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शने-दर्शन करने से; कृष्ण-उपासक-भगवान् कृष्ण के उपासक (भक्त); हैल-हो गये; लय–लिया; कृष्ण-नामे-भगवान् कृष्ण का पावन नाम।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने के बाद वे सारे वैष्णव कृष्ण-भक्त बन गये और हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने लगे।

राम! राघव! राम! राघव! राम! राघव! पाहि माम् ।

कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! रक्ष माम् ॥13॥

राम-हे राम; राधव-हे राघव; पाहि-कृपया रक्षा करें; माम्-मेरी; कृष्ण-हे कृष्ण; केशव-हे केशव, केशी दैत्य के हन्ता; रक्ष-रक्षा करें; माम्-मेरी।

अनुवाद

"हे रघुवंशी रामचन्द्र, कृपया आप मेरी रक्षा करें! हे केशी असुर को मारने वाले कृष्ण, कृपया आप मेरी रक्षा करें!"

एइ श्लोक पथे पड़ि' करिला प्रयाण ।

गौतमी-गङ्गाय याइ' कैल गङ्गा-स्नान ॥14॥

एइ श्लोक-यह संस्कृत श्लोक; पथे-मार्ग में; पड़ि-पढ़ते हुए; करिला–किया; प्रयाण-प्रस्थान; गौतमी-गङ्गाय-गौतम गंगा नदी के तट पर; याइ'–जाकर; कैल-किया; गङ्गा-स्नान-गंगा-स्नान।

अनुवाद

मार्ग पर जाते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु इसी रामराघव मन्त्र का कीर्तन करते थे। इस प्रकार कीर्तन करते-करते वे गौतमी-गंगा के तट पर पहुँचे और वहाँ पर उन्होंने स्नान किया।

तात्पर्य

गौतमी-गंगा गोदावरी नदी की एक शाखा है। प्राचीन काल में इस नदी के तट पर राजमहेन्द्री शहर के उस पार गौतम नामक ऋषि निवास करते थे; जिसके कारण नदी की इस शाखा का नाम गौतमी-गंगा पड़ा।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का कहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु जिन जिन तीर्थस्थानों पर गये, उनका वर्णन तो श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने किया है, किन्तु वे क्रमानुसार नहीं हैं। किन्तु गोविन्द दास की किताब है, जिसमें भौगोलिक स्थिति के उल्लेख के साथ क्रमानुसार वर्णन है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर इस ग्रंथ की सहायता लेने के लिए पाठकों से निवेदन करते हैं। गोविन्द दास के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु गौतमी गंगा से त्रिमन्द गये और वहाँ से घुण्डिराम तीर्थ गये। श्री चैतन्य चरितामृत के अनुसार गौतमी-गंगा का दर्शन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु मल्लिकार्जुन तीर्थ गये।

मल्लिकार्जुन-तीर्थे याइ' महेश देखिल ।

ताहाँ सब लोके कृष्ण-नाम लओयाइल ॥15॥

मल्लिकार्जुन-तीर्थे–मल्लिकाअर्जुन तीर्थ; याइ'–जाकर; महेश-शिवजी की प्रतिमा; देखिल-उन्होंने देखी; ताहाँ-वहाँ; सब लोके-सभी लोगों को; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; लओयाइल-कीर्तन करने की प्रेरणा की।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु मल्लिकार्जुन तीर्थ गये और वहाँ पर शिवजी के अर्चाविग्रह का दर्शन किया। उन्होंने सारे लोगों को हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए प्रेरित भी किया।

तात्पर्य

मल्लिकार्जुन का दूसरा नाम श्री शैल है। यह कृष्णा नदी के दक्षिणी तट पर कर्णल से लगभग एक सौ मील उत्तर-पूर्व में स्थित है। गाँव के चारों ओर बड़ी-बड़ी दीवालें हैं और इन दीवालों के भीतर मल्लिकार्जुन अर्चाविग्रह है। यह शिवजी का अर्चाविग्रह है और ज्योतिर्लिंगों में से एक है।

रामदास महादेवे करिल दरशन ।

अहोवल-नृसिंहेरे करिला गमन ॥ 16 ॥

राम-दास-रामदास; महा-देवे-महादेव का; करिल-किया; दरशन-दर्शन; अहोवल-नृसिंहेरे-अहोवल नृसिंह; करिला–किया; गमन प्रस्थान।

अनुवाद

वहाँ पर उन्होंने भगवान् राम के दास महादेव (शिव) का दर्शन किया। इसके बाद वे अहोवल-नृसिंह देखने गये।

नृसिंह देखिया ताँरे कैल नति-स्तुति ।

सिद्धवट गेला याहाँ मूर्ति सीतापति ॥17॥

नृसिंह देखिया-भगवान् नृसिंह देव के अर्चाविग्रह का दर्शन करने के बाद; ताँरे-उनको; कैल-किया; नति-स्तुति-विविध स्तुतियाँ की; सिद्धवट-सिद्धवट; गेला–वे गये; याहाँ-जहाँ; मूर्ति-विग्रह; सीता-पति-भगवान् रामचन्द्र।

अनुवाद

अहोवल नृसिंह अर्चाविग्रह का दर्शन करने के बाद चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् की स्तुति की। फिर वे सिद्धवट गये, जहाँ उन्होंने सीतादेवी के स्वामी रामचन्द्र के अर्चाविग्रह का दर्शन किया।

तात्पर्य

यह सिद्धवट जिसे सिघौट भी कहा जाता है, कुड़ापा गाँव से दस मील पूर्व है। पहले यह स्थान दक्षिण बनारस कहलाता था। यहाँ पर बरगद का विशाल वृक्ष है; अतएव यह सिद्धवट कहलाता है। वट का अर्थ है बरगद का पेड़।

रघुनाथ देखि' कैल प्रणति स्तवन ।

ताहाँ एक विप्र प्रभुर कैल निमन्त्रण ॥18॥

रघु-नाथ देखि'–महाराज रघु के वंशज भगवान् रामचन्द्र का दर्शन करने के बाद; कैल–किया; प्रणति-प्रणाम; स्तवन-स्तुति; ताहाँ-वहाँ; एक-एक; विप्र-ब्राह्मण; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कैल–किया; निमन्त्रण-निमंत्रण।

अनुवाद

महाप्रभु ने रघुवंशी भगवान् रामचन्द्र के अर्चाविग्रह का दर्शन करने के बाद उनको नमस्कार किया और स्तुति की। तत्पश्चात् एक ब्राह्मण ने उन्हें भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया।

सेइ विप्र राम-नाम निरन्तर लय ।

‘राम’ ‘राम’ विना अन्य वाणी ना कहय ॥19॥

सेइ विप्र-वह ब्राह्मण; राम-नाम-भगवान् रामचन्द्र का पावन नाम; निरन्तर–निरन्तर; लय-जपता है; राम राम राम राम; विना-बिना; अन्य-अन्य; वाणी-शब्द; ना-नहीं; कहय-बोलता।

अनुवाद

वह ब्राह्मण निरन्तर पवित्र राम-नाम का उच्चारण करता था। वह ब्राह्मण राम-नाम के अतिरिक्त अन्य किसी शब्द का उच्चारण नहीं करता था।

सेइ दिन ताँर घरे रहि’ भिक्षा करि’ ।

ताँरे कृपा करि’ आगे चलिला गौरहरि ॥20॥

सेइ दिन-उस दिन; ताँर घरे-उस ब्राह्मण के घर में; रहि’-रहकर; भिक्षा करि’-प्रसाद लेकर; ताँरे–उस पर; कृपा करि’–कृपा करके; आगे-आगे; चलिला–चले गये; गौर-हरि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

उस दिन भगवान् चैतन्य वहीं रहे और उसके घर में प्रसाद ग्रहण किया। इस तरह उस ब्राह्मण पर कृपा करने के बाद महाप्रभु आगे बढ़ गये।

स्कन्द-क्षेत्र-तीर्थे कैल स्कन्द दरशन ।

त्रिमठ आइला, ताहाँ देखि’ त्रिविक्रम ॥ 21॥

स्कन्द-क्षेत्र-तीर्थे–स्कन्द क्षेत्र नामक तीर्थस्थान में; कैल-किया; स्कन्द दरशन-स्कन्द जी (कार्तिकेय, शिवजी के पुत्र) का दर्शन करके; त्रिमठ–त्रिमठ; आइला–पहुँचे; ताहाँ-वहाँ; देखि’–दर्शन किया; त्रिविक्रम-भगवान् विष्णु के त्रिविक्रम रूप का।

अनुवाद

स्कन्द-क्षेत्र नामक तीर्थस्थल में श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्कन्द का मन्दिर देखा। वहाँ से वे त्रिमठ गये, जहाँ उन्होंने विष्णु के अर्चाविग्रह त्रिविक्रम का दर्शन किया।

पुनः सिद्धवट आइला सेइ विप्र-घरे ।

सेइ विप्र कृष्ण-नाम लय निरन्तरे ॥ 22॥

पुनः–पुनः; सिद्ध-वट-सिद्धवट; आइला-लौट आये; सेइ-उसी; विप्र-घरे-ब्राह्मण के घर में; सेइ विप्र-वह ब्राह्मण; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; लय-ज़पता है; निरन्तरे–निरन्तर।

अनुवाद

त्रिविक्रम मन्दिर का दर्शन करने के बाद महाप्रभु सिद्धवट लौट आये, जहाँ वे पुनः उसी ब्राह्मण के घर गये, जो अब निरन्तर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करता था।

भिक्षा करि' महाप्रभु ताँरे प्रश्न कैल ।

"कह विप्र, एइ तोमार कोन्दशा हैल" ॥ 23॥

भिक्षा करि'- भोजन करने के बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उसको; प्रश्न कैल–प्रश्न पूछा; कह विप्र-मेरे ब्राह्मण मित्र, कहो; एइ–यह; तोमार-तुम्हारी; कोन्–क्या; दशा-दशा; हैल–हो गई।

अनुवाद

भोजन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण से पूछा, "हे मित्रवर, मुझसे अपनी वर्तमान स्थिति के विषय में बतलाओ।"

मध्य लीला 9.24

पूर्वे तुमि निरन्तर लैते राम-नाम ।

एबे केने निरन्तर लओ कृष्ण-नाम ॥24॥

पूर्वे-इससे पूर्व; तुमि-तुम; निरन्तर–निरन्तर; लैते–जपा करते थे; राम-नाम-भगवान् रामचन्द्र का पावन नाम; एबे-अब; केने-क्यों; निरन्तर–निरन्तर; लओ-जपते हो; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम।

अनुवाद

“पहले तो तुम भगवान् राम के पवित्र नाम का निरन्तर जप करते थे। तुम अब कृष्ण-नाम का निरन्तर जप क्यों करते हो?”

विप्र बले,—एइ तोमार दर्शन-प्रभावे ।

तोमा देखि’ गेल मोर आजन्म स्वभावे ॥25॥

विप्र बले-ब्राह्मण ने उत्तर दिया; एइ-यह; तोमार दर्शन-प्रभावे-आपके दर्शन के प्रभाव से; तोमा देखि’–आपको देखकर; गेल-चला गया; मोर-मेरा; आ-जन्म-जीवनभर का; स्वभावे-स्वभाव।

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, “हे महाशय, यह आपके प्रभाव से है। आपका दर्शन करने के बाद मैंने अपने जीवन-भर के उस अभ्यास को छोड़ दिया।”

बाल्यावधि राम-नाम-ग्रहण आमार ।

तोमा देखि’ कृष्ण-नाम आइल एक-बार ॥26॥

बाल्य-अवधि-बचपन से; राम-नाम-ग्रहण-भगवान् रामचन्द्र का पावन नाम जपना; आमार-मेरा; तोमा देखि’–आपको देखकर; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम; आइल-आया; एक-बार मात्र एक बार।

अनुवाद

“मैं अपने बचपन से भगवान् रामचन्द्र के नाम का कीर्तन करता रहा हूँ, किन्तु आपको देखने के बाद मैंने एक बार भगवान् कृष्ण के नाम का कीर्तन किया।”

सेइ हैते कृष्ण-नाम जिह्वाते वसिला ।

कृष्ण-नाम स्फुरे, राम-नाम दूरे गेला ॥ 27॥

सेइ हैते-उस समय से लेकर; कृष्ण-नाम- भगवान् कृष्ण का पावन नाम; जिह्वाते-जिह्वा पर; वसिला-दृढ़तापूर्वक बैठ गया; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; स्फुरे–स्वतः आता है; राम-नाम-राम नाम; दूरे-दूर; गेला–चला गया।

अनुवाद

तब से मेरी जिह्वा पर कृष्ण का पावन नाम ही बैठ गया है। क्योंकि अब मैं कृष्ण-नाम का कीर्तन करता हूँ, अतः भगवान् रामचन्द्र का नाम दूर भाग गया है।

बाल्यकाल हैते मोर स्वभाव एक हय ।

नामेर महिमा-शास्त्र करिये सञ्चय ॥28॥

बाल्यकाल हैते–मेरे बचपन से; मोर-मेरा; स्वभाव-स्वभाव; एक-एक; हय-है; नामेर-पावन नाम के; महिमा-महिमा सम्बन्धी; शास्त्र-शास्त्र; करिये सञ्चय-मैं संचय करता हूँ।

अनुवाद

"मैं अपने बचपन से शास्त्रों से पवित्र नाम की महिमाओं का संग्रह करता रहा हूँ।"

रमन्ते य़ोगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।

इति राम-पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥ 29॥

रमन्ते-आनन्द लेते हैं; योगिनः-योगी जन; अनन्ते-अनन्त में; सत्य-आनन्दे-वास्तविक आनन्द; चित्-आत्मनि-आध्यात्मिक अस्तित्व में; इति इस प्रकार; राम-राम; पदेन–शब्द से; असौ-वे; परम्-परम; ब्रह्म-ब्रह्म; अभिधीयते-कहलाते हैं।

अनुवाद

"परम सत्य राम कहलाता है, क्योंकि अध्यात्मवादी आध्यात्मिक अस्तित्व के असीम यथार्थ सुख में आनन्द लेते हैं।"

तात्पर्य

यह पद्म पुराण में प्राप्त भगवान् रामचन्द्र के शतनाम स्तोत्र का आठवाँ श्लोक है।

कृषिर्भु-वाचकः शब्दो णश्च निर्वृति-वाचकः ।

तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥ 30॥

कृषिः-कृष् क्रियात्मक धातु; भू-आकर्षक अस्तित्व; वाचकः-दर्शाने वाला; शब्दः-शब्द; णः–ण अक्षर; च-और; निर्वृति-आध्यात्मिक आनन्द; वाचकः-दर्शाने वाला; तयोः-दोनों का; ऐक्यम्-मिलन; परम्-परम; ब्रह्म-परम सत्य; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; इति–इस प्रकार; अभिधीयते-कहलाते हैं।

अनुवाद

"कृष् शब्द भगवान् के अस्तित्व का आकर्षक स्वरूप है, और ण का अर्थ है आध्यात्मिक आनन्द। कृष् धातु ण प्रत्यय से मिलकर कृष्ण बनाती है, जिसका अर्थ है परम सत्य।"

तात्पर्य

यह श्लोक महाभारत के उद्योग पर्व (71.4) से लिया गया है।

परं ब्रह्म दुइ-नाम समान हइल ।

पुनः आर शास्त्रे किछु विशेष पाइल ॥ 31॥

परम् ब्रह्म-परम ब्रह्म; दुइ-नाम-दो नाम (राम तथा कृष्ण); समान–समान स्तर पर; हइल-हैं; पुनः पुनः; आर-आगे; शास्त्रे प्रामाणिक शास्त्रों में; किछु-कुछ; विशेष-विशेष; पाइल-मिलता है।

अनुवाद

"जहाँ तक राम तथा कृष्ण के पवित्र नामों का सम्बन्ध है, वे एक समान हैं। किन्तु अधिक उन्नति के लिए हमें प्रामाणिक शास्त्रों से कुछ विशेष जानकारी प्राप्त होती है।"

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।

सहस्र-नामभिस्तुल्यं राम-नाम वरानने ॥ 32॥

राम-राम; राम-राम; इति–इस प्रकार; राम-राम; इति–इस प्रकार; रमे-मैं आनन्द लेता हूँ; रामे-राम के पावन नाम में; मनः-रमे-अत्यन्त सुन्दर; सहस्र-नामभिः-एक हजार नामों के साथ; तुल्यम्-बराबर; राम-नाम-राम का पावन नाम; वर-आनने–हे सुन्दर मुखी।

अनुवाद

"[शिवजी ने अपनी पत्नी दुर्गा से कहा :]'हे वरानना, मैं राम, राम, राम के पवित्र नाम का कीर्तन करता हूँ, और इस सुन्दर ध्वनि का आनन्द लूटता हूँ। रामचन्द्र का यह पवित्र नाम भगवान् विष्णु के एक हजार नामों के बराबर है।"

तात्पर्य

यह श्लोक पद्म पुराण के उत्तर खण्ड में आये बृहद्विष्णु-सहस्रनाम स्तोत्र (72.335) से लिया गया है।

मध्य लीला 9.33

सहस्र-नाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम् ।

एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति ॥ 33॥

सहस्रनाम्नाम्-एक हजार नामों का; पुण्यानाम्-पुण्य; त्रिः-आवृत्त्या-तीन बार जपने से; तु–किन्तु; यत्-जो; फलम्-फल; एक-आवृत्त्या-एक बार जपने से; तु-किन्तु; कृष्णस्य-भगवान् कृष्ण का; नाम-पावन नाम; एकम् मात्र एक; तत्-वह फल; प्रयच्छति–देता है।

अनुवाद

"विष्णु के पवित्र सहस्र नामों को तीन बार उच्चारण करने से जो पुण्य मिलता है, वही कृष्ण के नाम का केवल एक बार उच्चारण करने से मिल जाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक ब्रह्माण्ड-पुराण का है, जो रूप गोस्वामी कृत लघु भागवतामृत (1.5.354) में आया है। तीन बार राम-नाम लेने से जो फल मिलता है, वही एक बार कृष्ण-नाम लेने से प्राप्त हो जाता है।

एइ वाक्ये कृष्ण-नामेर महिमा अपार ।

तथापि लइते नारि, शुन हेतु तार ॥ 34॥

एइ वाक्ये-इस कथन में; कृष्ण-नामेर-कृष्ण के पावन नाम की महिमा-महिमा; अपार-अपार; तथापि तथापि; लइते-जपना; नारि-मैं अक्षम हूँ; शुन-जरा सुनो; हेतु-कारण; तार-उसका।

अनुवाद

"शास्त्रों के कथनानुसार कृष्ण के पवित्र नाम की महिमा अपार है। फिर भी मैं उनका नाम नहीं ले पाया। कृपया आप इसका कारण सुनें।"

इष्ट-देव राम, ताँर नामे सुख पाइ ।

सुख पाञा राम-नाम रात्रि-दिन गाइ ॥ 35 ॥

इष्ट-देव-मेरे पूज्य स्वामी; राम-भगवान् श्री रामचन्द्र; ताँर नामे-उनके पावन नाम में; सुख पाइ–मुझे सुख मिलता है; सुख पाञा-ऐसे दिव्य सुख को पाकर; राम-नाम-भगवान् राम का पवित्र नाम; रात्रि-दिन-दिन रात; गाइ-मैं गाता हूँ।

अनुवाद

"मेरे आराध्य देव भगवान् रामचन्द्र रहे हैं, और उनके पवित्र नाम के कीर्तन से मैं सुख प्राप्त करता रहा हूँ। चूँकि मुझे इतना सुख प्राप्त हुआ, इसलिए मैं भगवान् राम के पवित्र नाम का कीर्तन दिन-रात करता रहा।"

तोमार दर्शने यबे कृष्ण-नाम आइल।

ताहार महिमा तबे हृदये लागिल ॥ 36॥

तोमार दर्शने-आपके दर्शन से; यबे-जब; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम; आइल-प्रकट हुआ; ताहार-उसकी; महिमा-महिमा; तबे-उस समय; हृदये-हृदय में; लागिल-स्थिर हो गई।

अनुवाद

"आपके आने से भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम भी आया। तब मेरे हृदय में कृष्ण नाम की महिमा का उदय हुआ।"

सेइ कृष्ण तुमि साक्षात्—इहा निर्धारिल ।

एत कहि' विप्र प्रभुर चरणे पड़िल ॥ 37॥

सेइ-वे; कृष्ण-कृष्ण भगवान्; तुमि-आप; साक्षात्-साक्षात्; इहा-यह; निर्धारिल-निश्चय; एत कहि'-यह कहकर; विप्र-ब्राह्मण; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु के; चरणे-चरणकमलों पर; पड़िल-गिर पड़ा।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने कहा, "हे महाशय, आप वही भगवान् कृष्ण स्वयं हैं। यह मेरा दृढ़ मत है।" यह कहकर वह ब्राह्मण महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़ा।

तारे कृपा करि' प्रभु चलिला आर दिने ।

वृद्धकाशी आसि' कैल शिव-दरशने ॥ 38॥

तारे–उस पर; कृपा करि'–कृपा करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चलिला–चले गये; आर दिने-अगले दिन; वृद्धकाशी-वृद्धकाशी को; आसि-आकर; कैल–किया; शिव-दरशने-शिव मन्दिर में दर्शन करने।

अनुवाद

उस ब्राह्मण पर कृपा करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने अगले दिन प्रस्थान किया और वृद्धकोशी आये, जहाँ उन्होंने शिवजी के मन्दिर की मुलाकात ली।

तात्पर्य

वृद्धकाशी का वर्तमान नाम वृद्धाचलम है। यह मणिमुख नदी के किनारे पर दक्षिणी आर्कट जिले में स्थित है। यह स्थान कालहस्तिपुर भी कहलाता है। यहाँ के शिव मन्दिर की पूजा रामानुजाचार्य के चचेरे भाई गोविन्द ने अनेक वर्षों तक की।

ताहाँ हैते चलि' आगे गेला एक ग्रामे ।

ब्राह्मण-समाज ताहाँ, करिल विश्रामे ॥ 39॥

ताहाँ हैते-वहाँ से; चलि'–जाकर; आगे-आगे; गेला-गये; एक-एक; ग्रामे-गाँव को; ब्राह्मण-समाज-ब्राह्मण समाज; ताहाँ-वहाँ; करिल विश्रामे-उन्होंने विश्राम किया।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु वृद्धकाशी से रवाना होकर आगे बढ़ते रहे। उन्होंने एक गाँव में विश्राम किया और उन्होंने देखा कि वहाँ के अधिकांश निवासी ब्राह्मण थे।

प्रभुर प्रभावे लोक आइल दरशने ।

लक्षार्बुद लोक आइसे ना याय गणने ॥40॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभावे-प्रभाव से; लोक-लोग; आइल-आये; दरशने-उनके दर्शन के लिए; लक्ष-अर्बुद-कई लाख; लोक-लोग; आइसे–आये; ना-नहीं; याय गणने-गिने जा सकते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से करोड़ों लोग उनके दर्शन करने आये। इन लोगों की संख्या अनन्त थी, अतएव उनकी गिनती नहीं की जा सकती थी।

गोसाञि सौन्दर्य देखि' ताते प्रेमावेश ।

सबे 'कृष्ण' कहे, 'वैष्णव' हैल सर्व-देश ॥41॥

गोसाञि-महाप्रभु का; सौन्दर्य-सौन्दर्य; देखि'–देखकर; ताते-उनमें; प्रेम-आवेश-प्रेमावेश; सबे-सब लोग; कृष्ण कहे-कृष्ण का पावन नाम बोल उठे; वैष्णव-वैष्णव भक्त; हैल-हो गये; सर्व-देश-सभी लोग।

अनुवाद

महाप्रभु का शरीर अत्यन्त सुन्दर था। साथ ही वे सदैव भगवान् के प्रेमभाव से आविष्ट रहते थे। उनका दर्शन करने से ही सारे लोग कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने लगे और प्रत्येक व्यक्ति वैष्णव भक्त बन गया।

तार्किक-मीमांसक, व्रत मायावादि-गण ।

साङ्ख्य, पातञ्जल, स्मृति, पुराण, आगम ॥42॥

तार्किक दार्शनिक; मीमांसक-मीमांसा दर्शन के अनुयायी; यत–सभी; मायावादि-गण-शंकराचार्य के अनुयायी; साङ्ख्य–कपिल के अनुयायी; पातञ्जलयोग के अनुयायी; स्मृति-स्मृति, पूरक वैदिक साहित्य; पुराण-पुराण; आगम-तंत्र शास्त्र।

अनुवाद

दार्शनिक कई प्रकार के होते हैं। कुछ तार्किक होते हैं, जो गौतम या कणाद के अनुयायी होते हैं। कुछ जैमिनि के मीमांसा-दर्शन के अनुयायी होते हैं। कुछ शंकराचार्य के मायावाद-दर्शन के तथा कुछ कपिल के सांख्य-दर्शन या पतंजलि के योग-दर्शन के अनुयायी होते हैं। कुछ बीस शास्त्रों से युक्त स्मृति शास्त्र का पालन करते हैं, तथा अन्य लोग पुराण एवं तन्त्र शास्त्र का पालन करते हैं। इस तरह दार्शनिकों के विभिन्न प्रकार होते हैं।

निज-निज-शास्त्रोद्ग्राहे सबाइ प्रचण्ड ।

सर्व मत दुषि' प्रभु करे खण्ड खण्ड ॥43॥

निज-निज-अपना अपना; शास्त्र-शास्त्र; उद्ग्राहे-सिद्धान्त स्थापित करने के लिए सबाई-वे सब; प्रचण्ड–अत्यन्त शक्तिशाली; सर्व-सभी; मत-मत; दुषि'-दूषित करके, तिरस्कृत करके; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; करे-करते हैं; खण्ड खण्ड-टुकड़े टुकड़े।

अनुवाद

ये विभिन्न शास्त्रों के अनुयायी अपने-अपने शास्त्रों के निष्कर्ष प्रस्तुत करने के लिए तैयार थे। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबके मतों का खण्डन किया और अपने भक्ति-सम्प्रदाय की स्थापना की, जो वेदों, वेदान्त, ब्रह्मसूत्र तथा अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्व दर्शन पर आधारित था।

सर्वत्र स्थापय प्रभु वैष्णव-सिद्धान्ते ।

प्रभुर सिद्धान्त केह ना पारे खण्डिते ॥44॥

सर्वत्र-सर्वत्र; स्थापय-स्थापित करते हैं; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; वैष्णव-सिद्धान्ते-वैष्णव सिद्धान्त; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; सिद्धान्त-सिद्धान्त; केह-कोई भी; ना पारे-समर्थ नहीं है; खण्डिते-खण्डित करने के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सर्वत्र भक्ति-सम्प्रदाय की स्थापना की। उन्हें कोई परास्त नहीं कर पाया।

हारि' हारि' प्रभु-मते करेन प्रवेश ।

एइ-मते 'वैष्णव' प्रभु कैल दक्षिण देश ॥ 45 ॥

हारि' हारि'–परास्त होकर; प्रभु-मते-श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय में; करेन प्रवेश-प्रवेश करते हैं; एइ-मते-इस प्रकार; वैष्णव-वैष्णव भक्त; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु ने; कैल–किया; दक्षिण–दक्षिण भारत; देश-देश।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के द्वारा पराजित होकर ये सारे दार्शनिक तथा इनके अनुयायी महाप्रभु के सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये। इस तरह भगवान् चैतन्य ने दक्षिण भारत को वैष्णवों का देश बना दिया।

पाषण्डी आइल यत पाण्डित्य शुनिया ।

गर्व करि' आइल सड़े शिष्य-गण लञा ॥46॥

पाषण्डी–नास्तिक; आइल-वहाँ आये; यत-सब; पाण्डित्य-ज्ञान; शुनिया-सुनकर; गर्व करि'-अत्यन्त गर्व सहित; आइल-वहाँ आये; सङ्गे–के साथ; शिष्य-गण-शिष्य गण; लञा–लेकर।

अनुवाद

जब पाखंडियों ने महाप्रभु के पाण्डित्य के बारे में सुना, तो वे अपने-अपने शिष्यों को लेकर बड़े गर्व के साथ उनके पास आये।

बौद्धाचार्य महा-पण्डित निज नव-मते ।

प्रभुर आगे उद्ग्राह करि' लागिला बलिते ॥47॥

बौद्ध-आचार्य–बौद्ध दर्शन का प्रमुख; महा-पण्डित–महान् पण्डित; निज-अपने; नव-नौ; मते-दार्शनिक सिद्धान्त; प्रभुर आगे-चैतन्य महाप्रभु के सामने; उद्ग्राह-तर्क; करि'-करके; लागिला-लगा; बलिते-बोलने।

अनुवाद

उनमें से एक बौद्ध-सम्प्रदाय का मुखिया था और बहुत बड़ा पंडित था। वह बौद्धवाद के नौ दार्शनिक निष्कर्षों की स्थापना करने के उद्देश्य से महाप्रभु के समक्ष आया और इस प्रकार बोलने लगा।

सद्यपि असम्भाष्य बौद्ध अयुक्त देखिते ।

तथापि बलिला प्रभु गर्व खण्डाइते ॥48॥

यद्यपि-यद्यपि; असम्भाष्य-चर्चा के अयोग्य; बौद्ध-बौद्ध दर्शन के अनुयायी; अयुक्त-अयोग्य; देखिते-देखने के लिए; तथापि तथापि; बलिला–बोले; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; गर्व–गर्व; खण्डाइते-कम करने के लिए।

अनुवाद

यद्यपि बौद्धजन विवाद करने के लिए अनुपयुक्त होते हैं और वैष्णवों को चाहिए कि उनका दर्शन न करें, किन्तु उनके मिथ्या अहंकार को कम करने के उद्देश्य से ही चैतन्य महाप्रभु उनसे बोले।

तर्क-प्रधान बौद्ध-शास्त्र 'नव मते' ।

तर्केइ खण्डिल प्रभु, ना पारे स्थापिते ॥49॥

तर्क-प्रधान-तर्क से भरपूर; बौद्ध-शास्त्र–बौद्ध शास्त्र; नव मते–नौ मूल सिद्धान्तों में; तर्केइ-तर्क से; खण्डिल–खण्डित किया; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ना-नहीं; पारे-सका; स्थापिते-स्थापित करना।

अनुवाद

बौद्ध सम्प्रदाय के सारे शास्त्र मुख्यतः तर्क पर आश्रित हैं और उनमें नौ सिद्धान्त प्रमुख हैं। चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें उनके तर्क में परास्त कर दिया, अतएव वे अपना मत स्थापित नहीं कर पाये।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि बौद्ध सम्प्रदाय के अनुसार दर्शन को समझने के दो मार्ग हैं-हीनायान तथा महायान बौद्ध मार्ग के नौ सिद्धान्त हैं : (1) सृष्टि नित्य है, अतएव स्रष्टा को मानने की आवश्यकता नहीं है। (2) विराट् जगत् मिथ्या है। (3) "मैं हूँ" सत्य है। (4) जन्म तथा मृत्यु का चक्र चलता है। (5) भगवान् बुद्ध ही सत्य जानने के एकमात्र स्रोत हैं। (6) निर्वाण अर्थात् विनाश का सिद्धान्त ही चरम लक्ष्य है। (7) बुद्ध का दर्शन ही एकमात्र दार्शनिक मार्ग है। (8) वेदों की रचना मनुष्यों ने की है। (9) अन्यों पर दया करने जैसे पुण्यकर्म करने चाहिए।

तर्क द्वारा परम सत्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। कोई तर्क में कितनाही दक्ष क्यों न हो, अन्य व्यक्ति तर्ककला में उससे भी अधिक दक्ष हो सकता है। चूँकि तर्कशास्त्र में शब्दाडम्बर अधिक है, अतएव तर्क द्वारा परम सत्य विषयक किसी वास्तविक निर्णय पर नहीं पहुँचा जा सकता। वैदिक सिद्धान्तों के अनुयायी इसे समझते हैं। किन्तु यहाँ कहा गया

है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने तर्क द्वारा बौद्ध दर्शन को परास्त किया। इस्कान के प्रचारकों को ऐसे लोगों से निश्चय ही सामना करना पड़ेगा, जो बुद्धिगम्य तर्क में विश्वास करते हैं। इनमें से अधिकांश लोग वेदों के प्रमाण पर विश्वास नहीं करते। फिर भी वे बौद्धिक चिन्तन तथा तर्क में विश्वास करते हैं। अतएव कृष्णभावनामृत के प्रचारकों को तर्क द्वारा अन्यों को परास्त करने के लिए तैयार रहना चाहिए, जिस तरह चैतन्य महाप्रभु ने किया। इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है- तर्केइ खण्डिल प्रभु। श्री चैतन्य महाप्रभु ने ऐसे सशक्त तर्क प्रस्तुत किये कि बौद्ध लोग अपना मत स्थापित करने के लिए उन्हें काट नहीं पाये।

उनका पहला सिद्धान्त यह है कि यह सृष्टि सनातन है। किन्तु यदि ऐसा होता, तो फिर प्रलय का सिद्धान्त ही न रहता। बौद्धों का मत है कि प्रलय सर्वोच्च सत्य है। यदि सृष्टि सनातन हो, तो फिर प्रलय का प्रश्न ही नहीं उठता। यह तर्क सशक्त नहीं है, क्योंकि व्यावहारिक अनुभव से हम देखते हैं कि भौतिक वस्तुओं का प्रारम्भ, मध्य और अन्त होता है। बौद्ध दर्शन का चरम लक्ष्य शरीर का विलय करना है। ऐसा प्रस्ताव इसलिए रखा जाता है, क्योंकि शरीर को प्रारम्भ होता है। इसी तरह समग्र जगत् भी एक विराट् शरीर है, किन्तु यदि हम यह मान लें कि यह जगत् सनातन है, तो फिर विलय का प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव शून्य प्राप्त करने के लिए प्रत्येक वस्तु के विलय की कल्पना बकवास है। हमें अपने व्यावहारिक अनुभव से सृष्टि का प्रारम्भ स्वीकार करना होता है, और जब हम उसके प्रारम्भ को स्वीकार करते हैं, तो हमें उसके स्रष्टा का भी स्वीकार करना होता है। ऐसे स्रष्टा का शरीर सर्वव्यापी होना चाहिए, जैसाकि भगवद्गीता (13.14) में बतलाया गया है :

सर्वतः पाणि पादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

"उनके हाथ, पाँव, आँखें, सिर और मुख सर्वत्र हैं और वे कानों से हर बात सुनते हैं। इस तरह परमात्मा का अस्तित्व सर्वव्यापी है।"

परम पुरुष सर्वत्र विद्यमान हैं। उनका शरीर सृष्टि के पहले से था, अन्यथा वे स्रष्टा कैसे हो सकते हैं? यदि परम पुरुष उत्पन्न किये गये व्यक्ति होते, तो उनके लिए स्रष्टा बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। निष्कर्ष यह निकलता है कि इस विराट् जगत् की सृष्टि किसी निश्चित समय में होती है, और इसका स्रष्टा सृष्टि के पहले से विद्यमान था। अतएव स्रष्टा सृष्ट व्यक्ति नहीं है। स्रष्टा, परम ब्रह्म या परमात्मा है। पदार्थ केवल आत्मा के अधीन ही नहीं, अपितु वस्तुतः आत्मा के आधार

पर उत्पन्न किया जाता है। जब आत्मा माता के गर्भ में प्रवेश करता है, तब माता उन सारे अवयवों को प्रदान करती है, जिनसे शरीर उत्पन्न होता है। भौतिक जगत् में हर एक वस्तु का सृजन होता है; अतः कोई स्रष्टा होना ही चाहिए। ये स्रष्टा परमात्मा हैं और पदार्थ से भिन्न हैं। भगवद्गीता में पुष्टि की गई है कि भौतिक शक्ति निकृष्ट है और आध्यात्मिक शक्ति जीव है। निकृष्ट तथा उत्कृष्ट (परा तथा अपरा) दोनों शक्तियाँ परम पुरुष की शक्तियाँ हैं।

बौद्धों का तर्क है कि यह जगत् मिथ्या है, किन्तु यह ठीक नहीं है। यह जगत् नश्वर है, लेकिन मिथ्या नहीं है। जब तक यह शरीर है, तब तक सुख तथा दुःख लगे रहेंगे, भले ही हम शरीर न हों। इन सुखों तथा दुःखों को हम गम्भीरता से न भी लें, तो भी ये वास्तविक हैं। हम वास्तव में यह नहीं कह सकते कि ये मिथ्या हैं। यदि शारीरिक सुख तथा दुःख मिथ्या होते, तो सृष्टि भी मिथ्या होती और तब कोई भी इसके प्रति अधिक रुचि नहीं लेता। निष्कर्ष यह निकलता है कि भौतिक सृष्टि न तो मिथ्या है न काल्पनिक। हाँ, यह नश्वर अवश्य है।

बौद्धों का यह मत है कि, "मैं हूँ" यह आखरी सत्य है, किन्तु इसमें व्यक्तिगत 'मैं' या 'तुम' सम्मिलित नहीं है। यदि "मैं" या "तुम" या निजि आस्तित्व न रहे, तो फिर तर्क की कोई सम्भावना नहीं रह जाती। बौद्ध-दर्शन तर्क पर आश्रित है, किन्तु यदि कोई "मैं हूँ" पर ही आश्रित रहे, तो फिर तर्क नहीं हो सकता। इसके लिए अन्य व्यक्ति अर्थात् 'तुम' भी होना चाहिए। आत्मा तथा परमात्मा का अस्तित्व–अर्थात् द्वैत-दर्शन तो होना ही चाहिए। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (2.12) द्वारा होती है, जहाँ भगवान् कहते हैं :

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।

न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥

"ऐसा कोई समय न था जब मैं या तुम, या ये सारे राजा नहीं थे; न ही भविष्य में ऐसा समय आयेगा जब हममें से कोई नहीं रहेगा।"

भूतकाल में हम विभिन्न शरीरों में विद्यमान थे, और इस शरीर के विनाश के बाद हम अन्य शरीर में विद्यमान रहेंगे। आत्मा सनातन है और वह इस शरीर में या अन्य शरीर में विद्यमान रहता है। यहाँ तक कि इसी जीवन-काल में हम बालक, युवक, मनुष्य तथा वृद्ध के शरीर में अपने अस्तित्व का अनुभव करते हैं। इस शरीर के विनाश के बाद हम दूसरा शरीर प्राप्त करते हैं। बौद्ध सम्प्रदाय भी देहान्तर के सिद्धान्त का स्वीकार करता है, लेकिन वह अगले जन्म की ठीक से

व्याख्या नहीं करता। जीवन की 84,00,000 योनियाँ हैं और अगले जन्म में हमें इनमें से कोई भी एक योनि प्राप्त हो सकती है। अतएव यह मनुष्य शरीर मिलने की कोई गारंटी नहीं है।

बौद्धों के पाँचवें सिद्धान्त के अनुसार भगवान् बुद्ध ही ज्ञान प्राप्ति के एकमात्र उद्गम हैं। हम इसे स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि भगवान् बुद्ध ने वैदिक ज्ञान का बहिष्कार किया। मनुष्य को आदर्श ज्ञान के सिद्धान्त को स्वीकार करना होगा, क्योंकि केवल बुद्धिगम्य तर्कवितर्क से परम सत्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। यदि हर व्यक्ति प्रमाण (अधिकारी) बन जाए या अपनी ही बुद्धि को चरम कसौटी मान ले, जैसाकि आजकल फैशन है, तो शास्त्रों की व्याख्या कई विविध प्रकारों से की जायेगी और हर व्यक्ति अपने दर्शन का सर्वश्रेष्ठ होने का दावा करेगा। यह एक बहुत बड़ी समस्या बन गई है, और हर व्यक्ति मनमाने ढंग से शास्त्रों की व्याख्या करके अपना खुद का प्रमाण खड़ा कर रहा है। यत मत तत पथ। अब हर व्यक्ति अपने सिद्धान्त को ही परम सत्य घोषित करने का प्रयास कर रहा है। बौद्धों का सिद्धान्त है कि निर्वाण या प्रलय ही चरम लक्ष्य है। निर्वाण शरीर पर लागू होता है। लेकिन आत्मा तो एक शरीर से दूसरे शरीर में चला जाता है। यदि ऐसा न होता, तो फिर इतने प्रकार के शरीरों का अस्तित्व कैसे होता? यदि अगला जन्म तथ्य है, तो अगला शारीरिक रूप भी तथ्य है। ज्योंही हमें भौतिक शरीर मिलता है, त्योंही हमें इस तथ्य स्वीकार कर लेना चाहिए कि यह शरीर नष्ट हो जायेगा, और हमें दूसरा शरीर धारण करना होगा। यदि सारे भौतिक शरीरों का विनाश होना ही है और यदि हम अगले जन्म को मिथ्या नहीं मानते, तो हमें अभौतिक अर्थात् आध्यात्मिक शरीर को प्राप्त करना होगा। किन्तु आध्यात्मिक शरीर कैसे प्राप्त होता है, इसकी व्याख्या भगवद्गीता (4.9) में भगवान् कृष्ण द्वारा हुई है :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

“जो व्यक्ति मेरे प्राकट्य एवं मेरे कार्यकलापों की दिव्य प्रकृति को जानता है, वह अपना शरीर त्यागने के बाद इस भौतिक जगत् में फिर से जन्म नहीं लेता, अपितु हे अर्जुन, मेरे सनातन धाम को प्राप्त करता है।”

यही चरम सिद्धि है—अपने भौतिक शरीर को त्यागना और दूसरा भौतिक शरीर धारण न करना, लेकिन भगवान् के धाम को वापस जाना। ऐसा नहीं है। कि सिद्धावस्था में मनुष्य का अस्तित्व शून्य हो जायेगा। अस्तित्व तो बना ही रहता है, लेकिन यदि हम शरीर को विनष्ट करना ही चाहते हैं, तो हमें आध्यात्मिक शरीर स्वीकार करना पड़ेगा, अन्यथा आत्मा की शाश्वतता नहीं बनी रहती।

हम यह मत नहीं मानते कि बौद्ध दर्शन ही एकमात्र मार्ग है, क्योंकि इस दर्शन में अनेक दोष हैं। पूर्ण दर्शन तो वह होता है, जिसमें कोई दोष न हो और ऐसा दर्शन वेदान्त दर्शन है। वेदान्त दर्शन में कोई दोष लक्षित नहीं होता। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सत्य को जानने का सर्वोपरि दार्शनिक मार्ग वेदान्त है। बौद्ध सम्प्रदाय के अनुसार वेदों की रचना सामान्य मनुष्यों द्वारा हुई है। यदि ऐसा होता, तो वे प्रामाणिक न स्वीकार किये जाते । वैदिक साहित्य से हमें पता चलता है कि सृष्टि के तुरन्त बाद ब्रह्माजी को वेदों की शिक्षा दी गई। यद्यपि ब्रह्माजी इस ब्रह्माण्ड के प्रथम पुरुष हैं, फिर भी ब्रह्मा ने वेदों का सृजन नहीं किया। यदि ब्रह्मा, जिन्हें प्रथम उत्पन्न जीव माना जाता है, उन्होंने वेदों की सृष्टि नहीं की, तो ब्रह्मा को यह वैदिक ज्ञान कहाँ से मिला? स्पष्ट है। कि वेद इस भौतिक जगत् में उत्पन्न सामान्य व्यक्ति से नहीं आये। श्रीमद्भागवत के अनुसार-तेने ब्रह्म हृदा य आदि कवये—सृष्टि करने के बाद परम पुरुष ने ब्रह्मा के हृदय के भीतर वैदिक ज्ञान प्रदान किया। सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई व्यक्ति नहीं था, फिर भी उन्होंने वेदों की रचना नहीं की। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि वेदों की रचना किसी सृजित प्राणी ने नहीं की। वैदिक ज्ञान उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से प्राप्त हुआ, जिन्होंने इस भौतिक जगत् की रचना की। इसे शंकराचार्य ने भी स्वीकार किया है, यद्यपि वे वैष्णव नहीं थे।

यह कहा जाता है कि बौद्धों का एक गुण दया है, किन्तु दया सापेक्ष वस्तु है। हम दया उस पर करते हैं, जो हमारे अधीन होता है या हमसे अधिक कष्ट भोग रहा होता है। किन्तु यदि हमसे कोई श्रेष्ठ व्यक्ति उपस्थित हो, तो वह हमारी दया का पात्र नहीं बन सकता। उल्टे हम उस श्रेष्ठ व्यक्ति की दया के पात्र बन जाते हैं। अतएव दया तथा कृपा दिखलाना सापेक्ष कार्य है। यह परम सत्य नहीं है। इसके अतिरिक्त हमें यह भी जानना चाहिए कि दया वास्तव में क्या है। किसी रोगी को खाने के लिए कुपथ्य भोजन देना दया नहीं है, बल्कि क्रूरता है। यह जाने बिना कि वास्तव में दया है क्या, हम अवांछित स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं। यदि हम असली दया दिखलाना चाहते हैं, तो हमें कृष्णभावनामृत का प्रचार करना चाहिए, जिससे मनुष्यों को खोई चेतना प्राप्त हो सके जो जीव की मूल चेतना है। चूँकि बौद्ध दर्शन आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानता, अतएव बौद्धों की तथाकथित दया दोषपूर्ण है।

बौद्धाचार्य 'नव प्रश्न' सब उठाइल ।

दृढ़ युक्ति-तर्के प्रभु खण्ड खण्ड कैल ॥50॥

बौद्ध-आचार्य–बौद्ध सम्प्रदाय के शिक्षक; नव प्रश्न–नौ प्रकार के प्रश्न; सब-सब; उठाइल-उठाए; दृढ़-प्रबल; युक्ति–तर्क; तर्के-न्याय सहित; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; खण्ड खण्ड कैल-टुकड़े टुकड़े कर दिये।

अनुवाद

बौद्ध-सम्प्रदाय के प्रचारक ने नौ सिद्धान्त प्रस्तुत किये, लेकिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने प्रबल तर्क से उन्हें खण्ड-खण्ड कर डाले।

दार्शनिक पण्डित सबाइ पाइल पराजय ।

लोके हास्य करे, बौद्ध पाइल लज्जा-भय ॥51॥

दार्शनिक–दार्शनिक; पण्डित–पण्डित; सबाइ–वे सब; पाइल पराजय-पराजित हुए; लोके-सामान्य लोग; हास्य करे-हँसने लगे; बौद्ध–बौद्ध लोगों को; पाइल-मिला; लज्जा-लज्जा; भय-भय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे बौद्धिक चिन्तकों तथा पण्डितों को हरा दिया, और बौद्ध दार्शनिकों पर जब लोग हँसने लगे, तो उन्हें लज्जा तथा भय दोनों का अनुभव हुआ।

तात्पर्य

ये सभी दार्शनिक नास्तिक थे, क्योंकि वे ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते थे। नास्तिक मानसिक तर्कवितर्क में कितने ही दक्ष क्यों न हों और भले ही तथाकथित महान् दार्शनिक हों, किन्तु वे दृढ़ श्रद्धा तथा भगवत् चेतना में स्थित वैष्णव द्वारा पराजित किये जा सकते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए इस्कान की सेवा में लगे सारे प्रचारकों को सशक्त तर्क प्रस्तुत करने और सभी तरह के नास्तिकों को पराजित करने में दक्ष होना चाहिए।

प्रभुके वैष्णव जानि' बौद्ध घरे गेल ।

सकल बौद्ध मिलि' तबे कुमन्त्रणा कैल ॥52॥

प्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु को; वैष्णव जानि'–वैष्णव जानकर; बौद्ध-बौद्ध लोग; घरे गेल-घर लौट गये; सकल बौद्ध-सभी बौद्ध लोग; मिलि-मिलकर; तबे-तत्पश्चात्; कु-मन्त्रणा-षड्यंत्र; कैल-रचा।

अनुवाद

बौद्ध लोग जान गये कि श्री चैतन्य महाप्रभु वैष्णव हैं, अतएव वे दुःखी मन से अपने-अपने घर वापस गये। किन्तु बाद में उन लोगों ने महाप्रभु के विरुद्ध षड्यन्त्र रचना शुरू कर दिया।

अपवित्र अन्न एक थालिते भरिया ।

प्रभु-आगे निल 'महा-प्रसाद' बलिया ॥53॥

अपवित्र-अशुद्ध; अन्न-भोजन; एक-एक; थालिते-थाली में; भरिया-भरकर; प्रभु-आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष; निल-लाये; महा-प्रसाद बलिया-इसे महाप्रसाद कहकर।

अनुवाद

षड्यन्त्र रचने के बाद वे बौद्धजन अपवित्र भोजन की थाली श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष ले आये, और कहा कि यह महाप्रसाद है।

तात्पर्य

अपवित्र अन्न ऐसा भोजन है, जिसे एक वैष्णव स्वीकार नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, किसी अवैष्णव द्वारा महाप्रसाद के नाम पर दिया गया भोजन वैष्णव को ग्राह्य नहीं होता। समस्त वैष्णवों को यही सिद्धान्त मानना चाहिए। जब चैतन्य महाप्रभु से पूछा गया कि, "वैष्णव का आचरण क्या है?" तो उन्होंने उत्तर दिया, "वैष्णव को चाहिए कि अवैष्णव (असत्) की संगति से बचे।" असत् शब्द अवैष्णव का सूचक है। असत्-सङ्ग-त्याग,-एइ वैष्णव-आचार्येर (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 22.87)। इस मामले में वैष्णव को कट्टर होना चाहिए और अवैष्णव के साथ सहयोग नहीं करना चाहिए। यदि कोई अवैष्णव महाप्रसाद कहकर भोजन दे, तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। ऐसा भोजन प्रसाद नहीं हो सकता, क्योंकि अवैष्णव भगवान् को कुछ भी अर्पित नहीं कर सकता। कभी-कभी कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचारकों को ऐसे घर में भोजन स्वीकार करना पड़ता है, जिसका स्वामी अवैष्णव होता है। किन्तु यदि इस भोजन को अर्चाविग्रह को अर्पित कर दिया जाए, तो इसे खाया जा सकता है। वैष्णव को अवैष्णव द्वारा पकाया सामान्य भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि अवैष्णव बिना दोष के भी भोजन पकाये, तो वह उसे भगवान् विष्णु को अर्पित नहीं कर सकता, और न उसे महाप्रसाद के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। भगवद्गीता (9.26) के अनुसार भगवान् कृष्ण कहते हैं :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतं अश्नामि प्रयतात्मनः॥

“यदि कोई भक्ति तथा प्रेमपूर्वक मुझे एक पत्ती, एक फूल, फल या जल अर्पित करता है, तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।”

कृष्ण अपने भक्त द्वारा भक्तिपूर्वक अर्पित की गई कोई भी वस्तु स्वीकार कर सकते हैं। अवैष्णव शाकाहारी तथा अत्यन्त शुद्ध रसोइया हो सकता है, फिर भी वह भगवान् विष्णु को भोजन अर्पित नहीं कर सकता। अतएव उसके पकाये भोजन को महाप्रसाद के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता। अच्छा यही होगा कि वैष्णव ऐसे भोजन को अस्पृश्य समझकर त्याग दे।

हेन-काले महाकाय एक पक्षी आइल ।

ठोंटे करि’ अन्न-सह थालि लञा गेल ॥54॥

हेन-काले-इस समय; महा-काय–विशाल; एक-एक; पक्षी-पक्षी; आइल-प्रकट हुआ; ठोंटे करि’-चोंच से; अन्न-सह-अन्न के साथ; थालि-थाली; लञा-लेकर; गेल-चला गया।

अनुवाद

जब यह दूषित भोजन श्री चैतन्य महाप्रभु को लाकर दिया गया, तब एक बड़ा-सा पक्षी उस स्थान में प्रकट हुआ, और थाली को अपनी चोंच में दबा ली और उसे लेकर उड़ गया।

बौद्ध-गणेर उपरे अन्न पड़े अमेध्य हैया ।

बौद्धाचार्येर माथाय थालि पड़िल बाजिया ॥55॥

बौद्ध-गणेर-सभी बौद्ध लोगों के उपरे–उपर; अन्न-अन्न; पड़े-गिरने लगा; अमेध्य-अछूत; हैया–होकर; बौद्ध-आचार्येर–बौद्ध प्रमुख के; माथाय-सिर पर; थालि-थाली; पड़िल–गिर गई; बाजिया-ऊँची आवाज करके।

अनुवाद

वह अछूत भोजन उन बौद्धों के ऊपर गिर पड़ा और उस बड़े पक्षी ने वह थाली उस प्रमुख बौद्धाचार्य के सिर के ऊपर गिरा दी। जब वह उसके सिर पर गिरी, तो बड़े जोर की आवाज हुई।

तेरछे पड़िल थालि,—माथा काटि’ गेल ।

मूर्च्छित हञा आचार्य भूमिते पड़िल ॥56॥

तेरछे-तिरछी होकर; पड़िल–गिरी; थालि-थाली; माथा-सिर; काटि–कट; गेल-गया; मूर्च्छित-मूर्छित; हञा-होकर; आचार्य-प्रमुख भूमिते-पृथ्वी पर; पड़िल-गिर गया।

अनुवाद

थाली धातु की बनी थी, अतएव जब उसकी धार उस आचार्य के सिर पर लगी, तो घाव हो गया। फलतः वह आचार्य तुरन्त बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा।

हाहाकार करि' कान्दे सब शिष्य-गण ।

सबे आसि' प्रभु-पदे लइल शरण ॥57॥

हाहा-कार-गर्जने की ध्वनि; करि'-करके; कान्दे-रोने लगे; सब-सब; शिष्य-गण-शिष्य; सबे–वे सब; आसि'–आकर; प्रभु-पदे-चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का; लइल–लिया; शरण-आश्रय।

अनुवाद

जब आचार्य बेहोश हो गया, तो उसके सारे शिष्य जोर-जोर से रोने लगे और शरण पाने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की ओर दौड़े।

तुमि त' ईश्वर साक्षात्, क्षम अपराध ।

जीयाओ आमार गुरु, करह प्रसाद ॥58 ॥

तुमि-आप; त'–निस्सन्देह; ईश्वर–ईश्वर; साक्षात् साक्षात्; क्षम–कृपया क्षमा करें; अपराध-अपराध; जीयाओ-चेतना में लौटाना; आमार–हमारा; गुरु-गुरु; करह-करो; प्रसाद यह कृपा।

अनुवाद

उन सबने श्री चैतन्य महाप्रभु को साक्षात् भगवान् सम्बोधित करते हुए कहा, "कृपया, हमारा अपराध क्षमा करें। हम पर कृपा करें और हमारे गुरुदेव को जीवनदान दें।"

प्रभु कहे,—सबे कह 'कृष्ण' 'कृष्ण' 'हरि' ।

गुरु-कर्णे कह कृष्ण-नाम उच्च करि' ॥59॥

प्रभु कहे-चैतन्य महाप्रभु ने कहा; सबे-तुम सब; कह-कीर्तन करो; कृष्ण कृष्ण हरि-भगवान् कृष्ण और हरि के पावन नाम; गुरु-कर्णे-गुरु के कान के निकट; कह-जप करो; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; उच्च करि'-ऊँची आवाज में।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने उन बौद्ध शिष्यों से कहा, "तुम सभी मिलकर अपने गुरु के कान में जोर से कृष्ण तथा हरि के नामों का उच्चारण करो।"

तोमा-सबार 'गुरु' तबे पाइबे चेतन ।

सब बौद्ध मिलि' करे कृष्ण-सङ्कीर्तन ॥ 60॥

तोमा-सबार-तुम सबके; गुरु-गुरु; तबे-तब; पाइबे-पायेंगे; चेतन-चेतना; सब बौद्ध-सारे बौद्ध-शिष्य; मिलि'–मिलकर; करे-करते हैं; कृष्ण-सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण मंत्र का संकीर्तन।

अनुवाद

"इस तरह से तुम्हारे गुरु को चेतना प्राप्त होगी।" श्री चैतन्य महाप्रभु का परामर्श मानकर वे सारे बौद्ध शिष्य कृष्ण के पवित्र नाम का सामूहिक कीर्तन करने लगे।

गुरु-कर्णे कहे सबे 'कृष्ण' 'राम' 'हरि' ।

चेतन पाञा आचार्य बले 'हरि' 'हरि' ॥ 61॥

गुरु-कर्णे-गुरु के कान में; कहे-उन्होंने कहा; सबे-सबने मिलकर; कृष्ण राम हरि–"कृष्ण," "राम" और "हरि" के पवित्र नाम; चेतन-चेतना; पाञा-पाकर; आचार्य-प्रमुख; बले-बोलने लगा; हरि हरि-भगवान् का नाम "हरि हरि"।

अनुवाद

जब सारे शिष्य कृष्ण, राम तथा हरि के पवित्र नामों का कीर्तन करने लगे, तो बौद्ध आचार्य की चेतना वापस आ गई और वह तुरन्त ही हरि-नाम का कीर्तन करने लगा।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर टीका करते हैं कि वास्तव में श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे बौद्ध शिष्यों को कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने के लिए दीक्षित कर दिया और जब वे कीर्तन करने लगे, तो वे वास्तव में भिन्न व्यक्ति बन गये। उस समय वे बौद्ध या नास्तिक नहीं रहे, अपितु वैष्णव बन गये। फलस्वरूप उन्होंने तुरन्त श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा मान ली। उनकी मूल कृष्णभावना जाग्रत हो उठी और वे तुरन्त हरे कृष्ण का कीर्तन करने लगे तथा भगवान् विष्णु की पूजा करने लगे।

शिष्य को हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए दीक्षित करके माया के पाश से छुड़ाने वाला गुरु ही होता है। इस तरह सुप्त मनुष्य हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करके अपनी चेतना को जाग्रत कर सकता है : हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे। दूसरे शब्दों में, गुरु सुप्त जीव को जगाकर उसे मूल चेतना प्रदान करता है, जिससे वह भगवान् विष्णु की पूजा कर सकता है। दीक्षा का यही प्रयोजन होता है। दीक्षा का अर्थ है, आध्यात्मिक चेतना का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना।

यहाँ यह ध्यान देने की बात यह है कि बौद्धों के गुरु ने अपने शिष्यों को दीक्षा नहीं दी, प्रत्युत वे श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु द्वारा दीक्षित हुए और तब उन्होंने अपने तथाकथित गुरु को दीक्षा दी। यह परम्परा पद्धति है। वास्तव में वह तथाकथित बौद्ध आचार्य शिष्य के पद पर था और जब उसके शिष्यों ने श्री चैतन्य महाप्रभु से दीक्षा ले ली, तो वे उसके गुरु बन गये। यह इसलिए सम्भव हो सका, क्योंकि बौद्धाचार्य के शिष्यों को श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त हुई। जब तक गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त न हो, तब तक कोई गुरु नहीं बन सकता। हमें समस्त ब्रह्माण्ड के गुरु श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों को मानना चाहिए, जिससे हम समझ सकें कि गुरु तथा शिष्य कैसे बना जाए।

कृष्ण बलि' आचार्य प्रभुरे करेन विनय।

देखिया सकल लोक हइल विस्मय ॥62॥

कृष्ण बलि'–कृष्ण का पावन नाम जपकर; आचार्य–बौद्धों का तथाकथित गुरु; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; करेन-करता है; विनय-विनय; देखिया-यह देखकर; सकल लोक-सभी लोग; हइल-हो गये; विस्मय–विस्मित।

अनुवाद

जब वह बौद्धाचार्य कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने लगा और श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण में आ गया, तो वहाँ पर एकत्र सारे लोग आश्चर्य से चकित रह गये।

एइ-रूपे कौतुक करि' शचीर नन्दन ।

अन्तर्धान कैल, केह ना पाय दर्शन ॥ 63॥

एइ-रूपे-इस प्रकार; कौतुक करि'–कौतुक करके; शचीर नन्दन-माता शचीदेवी के पुत्र; अन्तर्धान कैल-ओझल हो गये; केह-कोई; ना-नहीं; पाय-पाता; दर्शन-दर्शन।

अनुवाद

तब शचीदेवी के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु सहसा आँखों से नाटकीय ढंग से ओझल हो गये, और उन्हें कोई ढूँढ नहीं सका।

महाप्रभु चलि' आइला त्रिपति–त्रिमल्ले ।

चतुर्भुज मूर्ति देखि' व्येङ्कटाद्रये चले ॥ 64॥

महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; चलि' आइला–चलकर आये; त्रिपति-त्रिमल्ले-तिरुपति और तिरुमल नामक तीर्थ स्थानों पर; चतुर्भु ज-चतुर्भुज; मूर्ति-मूर्ति; देखि'–देखकर; व्येङ्कट-अद्रये-वेंकट पर्वत नामक तीर्थस्थान की ओर; चले-चलने लगे।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु तिरुपति तथा तिरुमल्ल आये, जहाँ उन्होंने चतुर्भुजी मूर्ति देखी। तत्पश्चात् वे वेंकट पर्वत की ओर चल पड़े।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने वास्तव में महाप्रभु की यात्रा का क्रमबद्ध वर्णन किया है। तिरुपति मन्दिर को कभी-कभी तिरुपटुर कहा जाता है। यह चन्द्रगिरि जिले में आर्कट के दक्षिण की ओर स्थित है। यह प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। व्यंकटेश्वर, चतुर्भुज विष्णु के रूप में बालाजी के अर्चाविग्रह हैं, जो अपने नाम के अनुरूप, श्री तथा भू नामक अपनी

शक्तियों समेत, तिरुपति से लगभग आठ मील दूरी पर व्यंकट पर्वत पर स्थित हैं। यह व्यंकटेश्वर अर्चाविग्रह भगवान् विष्णु के रूप में है और वह स्थान, जहाँ यह स्थित है, व्यंकटक्षेत्र कहलाता है। यद्यपि दक्षिण भारत में अनेक मन्दिर हैं, किन्तु बालाजी का यह मन्दिर अत्यन्त वैभवशाली है। यहाँ पर आश्विन मास (सितम्बर-अक्टूबर) मास में एक विशाल मेला लगता है। दक्षिणी रेलवे पर तिरुपति नामक रेलवे स्टेशन है। निम्न-तिरुपति व्यंकट पर्वत की घाटी पर स्थित है। वहाँ भी अनेक मन्दिर हैं, जिनमें गोविन्द राज तथा भगवान् रामचन्द्र के मन्दिर हैं।

त्रिपति आसिया कैल श्री-राम दरशन ।

रघुनाथ-आगे कैल प्रणाम स्तवन ॥65॥

त्रिपति आसिया-तिरुपति आकर; कैल श्री-राम दरशन-श्री रामचन्द्र मन्दिर के दर्शन किये; रघुनाथ-आगे-भगवान् रामचन्द्र के समक्ष; कैल-किया; प्रणाम-नमस्कार; स्तवन-प्रार्थना।

अनुवाद

तिरुपति पहुँचकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् रामचन्द्र के मन्दिर का दर्शन किया। वहाँ उन्होंने प्रार्थना की और रघुवंशी रामचन्द्र के समक्ष नमस्कार किया।

स्व-प्रभावे लोक-सबार कराञा विस्मय ।

पाना-नृसिंहे आइला प्रभु दया-मय ॥66॥

स्व-प्रभावे-अपने ही प्रभाव से; लोक-सबार-सभी लोगों को; कराञा-प्ररित किया; विस्मय-चमत्कृत कर; पाना-नृसिंहे-भगवान् पाना-नृसिंह को; आइला-आये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; दया-मय-परम दयालु।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जहाँ-जहाँ जाते, वहीं उनके प्रभाव से हर व्यक्ति विस्मित हो उठता। फिर वे पाना-नृसिंह मन्दिर आये। महाप्रभु इतने दयामय हैं।

तात्पर्य

यह पाना-नृसिंह या पानाकल-नरसिंह कृष्णा जिले में मंगलगिरि नामक पर्वत पर विजयवाड़ा शहर से लगभग 7 मील दूरी पर स्थित है। इस मन्दिर तक पहुँचने के लिए 600 सीढ़ियाँ चढ़नी होती हैं। कहा जाता है कि जब यहाँ भगवान् को चाशनी के साथ भोजन दिया जाता है, तो वे आधे से अधिक नहीं खाते। इसी मन्दिर में वह शंख है, जिसे तंजोर के दिवंगत राजा ने भेंट किया था, और यह कहा जाता है कि भगवान् कृष्ण ने इसी शंख को बजाया था। इस मन्दिर में मार्च के महीने में एक बड़ा मेला लगता है।

नृसिंहे प्रणति-स्तुति प्रेमावेशे कैल ।

प्रभुर प्रभावे लोक चमत्कार हैल ॥ 67॥

नृसिंहे-भगवान् नृसिंह को; प्रणति-स्तुति-प्रणाम तथा स्तुति करने के बाद; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; कैल-किया; प्रभुर–महाप्रभु के प्रभावे-प्रभाव से; लोक-लोग; चमत्कार हैल-विस्मित हो गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रेमावेश में आकर भगवान् नृसिंह को नमस्कार किया और उनकी स्तुति की। लोग भगवान् चैतन्य के प्रभाव को देखकर चकित हो गये।

शिव-काञ्ची आसिया कैल शिव दरशन ।

प्रभावे 'वैष्णव' कैल सब शैव-गण ॥ 68 ॥

शिव-काञ्ची–शिवकांची नामक तीर्थ स्थान में; आसिया-आकर; कैल-किये; शिव दरशन–शिव मन्दिर के दर्शन; प्रभावे-अपने प्रभाव से; वैष्णव कैल-वैष्णव बनाया; सब-सब; शैव-गण-शिवजी के भक्तों को।

अनुवाद

शिवकांची आकर चैतन्य महाप्रभु ने शिवजी के अर्चाविग्रह का दर्शन किया। उन्होंने अपने प्रभाव से सारे शिव-भक्तों को वैष्णव बना दिया।

तात्पर्य

यह शिवकांची कांचीपुरम या दक्षिण भारत की काशी कहलाता है। शिवकांची में सैकड़ों मन्दिर हैं, जिनमें शिवजी के प्रतीक पाये जाते हैं और उनमें से एक तो अत्यन्त प्राचीन मन्दिर माना जाता है।

विष्णु-काञ्ची आसि' देखिल लक्ष्मी-नारायण ।

प्रणाम करिया कैल बहुत स्तवन ॥ 69॥

विष्णु-काञ्ची-विष्णुकांची नामक पवित्र स्थान पर; आसि'-आकर; देखिल-महाप्रभु ने दर्शन किये; लक्ष्मी-नारायण-भगवान् नारायण और माता लक्ष्मी के अर्चाविग्रह की; प्रणाम करिया-नमस्कार करके; कैल-की; बहुत स्तवन–बहुत स्तुतियाँ।

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु विष्णुकांची नामक स्थान गये, जहाँ उन्होंने लक्ष्मी-नारायण के अर्चाविग्रह देखे और उन्हें प्रसन्न करने के लिए नमस्कार किया तथा अनेक स्तुतियाँ कीं।

तात्पर्य

विष्णुकांची कांचीपुरम से लगभग पाँच मील की दूरी पर है। यहीं पर भगवान् विष्णु के दूसरे रूप वरदराज रहते हैं। यहाँ पर एक बड़ा सरोवर है, जो अनन्त सरोवर कहलाता है।

प्रेमावेशे नृत्य-गीत बहुत करिल ।

दिन-दुइ रहि' लोके 'कृष्ण-भक्त' कैल ॥ 70 ॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; नृत्य-गीत-नृत्य और कीर्तन; बहुत-बहुत; करिल-किया; दिन-दुइ-दो दिन; रहि-रहकर; लोके-सामान्य लोगों को; कृष्ण-भक्त-भगवान् कृष्ण के भक्त; कैल-बनाया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु विष्णुकांची में दो दिन ठहरे, तो उन्होंने भावावेश में नृत्य और कीर्तन किया। जब सारे लोगों ने उन्हें देखा, तो वे कृष्ण-भक्त बन गये।

त्रिमलय देखि' गेला त्रिकाल-हस्ति-स्थाने ।

महादेव देखि' ताँरे करिल प्रणामे ॥71॥

त्रिमलय देखि'–त्रिमलय देखने के बाद; गेला-गये; त्रिकाल-हस्ति-स्थाने-त्रिकालहस्ति नामक स्थान पर; महादेव-शिवजी; देखि'–देखकर; ताँरे–उनको; करिल प्रणामे-प्रणाम किया।

अनुवाद

त्रिमलय देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु त्रिकालहस्ति देखने गये। यहीं पर उन्होंने शिवजी को देखा और उन्हें सभी प्रकार से प्रणाम किया।

तात्पर्य

त्रिकालहस्ति या श्रीकालहस्ति तिरुपति से लगभग 22 मील पूर्व में स्थित है। इसके पश्चिम में सुवर्णमुखी नदी है। त्रिकालहस्ति का मन्दिर नदी की दक्षिण की ओर स्थित है। यह श्रीकालहस्ति या कालहस्ति नाम से प्रसिद्ध है। और शिव मन्दिर के लिए विख्यात है। यहाँ शिवजी वायुलिंग शिव कहलाते हैं।

पक्षि-तीर्थ देखि' कैल शिव दरशन ।

वृद्धकोल-तीर्थे तबे करिला गमन ॥72॥

पक्षि-तीर्थ देखि'–पक्षितीर्थ देखकर; कैल–किया; शिव दरशन-शिवजी के मन्दिर का दर्शन करके; वृद्धकोल-तीर्थे–वृद्धकोल नामक तीर्थस्थान को; तबे-तब; करिला गमन-गये।

अनुवाद

पक्षितीर्थ में श्री चैतन्य महाप्रभु ने शिवजी का मन्दिर देखा। तब वे वृद्धकोल तीर्थ गये।

तात्पर्य

पक्षितीर्थ तिरुकाडिकुण्डम भी कहलाता है और चिमलिपट से नौ मील दक्षिण-पूर्व में स्थित है। यह 500 फुट ऊँचाई पर वेदगिरि या वेदालचम पर्वतश्रेणी पर बसा है। यहाँ पर शिवजी का मन्दिर है और अर्चाविग्रह वेदगिरीश्वर कहलाता है। कहा जाता है कि नित्य वहाँ पर दो पक्षी मन्दिर के पुजारी से भोजन प्राप्त करने आते हैं, और ऐसा कहा जाता है कि ये पक्षी अनन्त काल से यहाँ आते हैं।

श्वेत-वराह देखि, ताँरे नमस्करि’ ।

पीताम्बर-शिव-स्थाने गेला गौरहरि ॥73॥

श्वेत-वराह-श्वेत वराह अवतार; देखि-देखकर; ताँरे-उनको; नमस्करि’-नमस्कार करके; पीत-अम्बर-पीत वस्त्र; शिव-स्थाने शिवजी के मन्दिर को; गेला–गये; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

वृद्धकोल में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् श्वेतवराह का मन्दिर देखा। उन्हें नमस्कार करने के बाद महाप्रभु शिवजी के मन्दिर गये, जहाँ अर्चाविग्रह को पीले रंग के वस्त्र पहनाये जाते हैं।

तात्पर्य

श्वेतवराह का मन्दिर वृद्धकोल या श्रीमुष्णम में है। यह मन्दिर पत्थर का बना है और बलिपीठम् हरितस्थान से लगभग एक मील दक्षिण में स्थित है। यहाँ पर श्वेतवराह अवतार का विग्रह है, जिसके सिर के ऊपर शेषनाग का छत्र है।

शिवजी का मन्दिर पीताम्बर अथवा चिदाम्बरम् में स्थित है। यह मन्दिर कुडालोर से 26 मील दक्षिण में स्थित है, और यहाँ शिवजी का अर्चाविग्रह आकाशलिंग कहलाता है। यह मन्दिर लगभग 39 एकड़ भूमि पर स्थित है और यह भूमि एक दीवार और 60 फुट चौड़ी एक सड़क से घिरी है।

शियाली भैरवी देवी करि’ दरशन ।

कावेरीर तीरे आइला शचीर नन्दन ॥74॥

शियाली भैरवी–शियाली भैरवी; देवी-देवी का; करि’ दरशन-दर्शन करके; कावेरीर तीरे-कावेरी नदी के तट पर; आइला-आये; शचीर नन्दन-माता शची के पुत्र।

अनुवाद

शियाली भैरवी (दुर्गादेवी का अन्य रूप) मन्दिर देखने के बाद शचीदेवी के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु कावेरी नदी के किनारे गये।

तात्पर्य

शियाली भैरवी का मन्दिर तंजोर जिले में तंजोर शहर से लगभग 48 मील उत्तर-पूर्व की ओर स्थित है। यहाँ पर शिवजी का प्रसिद्ध मन्दिर है, और एक विशाल सरोवर भी है। कहा जाता है कि एक बार एक शिव-भक्त छोटा बालक उस मन्दिर में आया और माता दुर्गा ने, जो भैरवी कहलाती हैं, उसे अपना दूध पिलाया। इस मन्दिर को देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु त्रिचिनापल्ली जिले से होते हुए कावेरी (कोलिरन) नदी के किनारे पहुँचे। श्रीमद्भागवत (11.5.40) में कावेरी नदी को अत्यन्त पवित्र मानी गई है।

गो-समाजे शिव देखि' आइला वेदावन ।

महादेव देखि' ताँरे करिला वन्दन ॥75॥

गो-समाजे-गो समाज नामक स्थान पर; शिव देखि'–शिवजी का अर्चाविग्रह देखकर; आइला वेदावन-वेदावन पहुँचे; महादेव देखि'–शिवजी के दर्शन करने के बाद; ताँरे–उनको; करिला वन्दन-वन्दन किया।

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु गोसमाज नामक स्थान गये, जहाँ उन्होंने शिव-मन्दिर देखा। तब वे वेदावन पहुँचे, जहाँ उन्होंने शिवजी का दूसरा अर्चाविग्रह देखा और उन्हें नमस्कार किया।

तात्पर्य

गोसमाज शिव-भक्तों का तीर्थस्थल है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और वेदवन के निकट स्थित है।

अमृतलिङ्ग-शिव देखि' वन्दन करिल ।

सब शिवालये शैव वैष्णव' हइल ॥ 76 ॥

अमृत-लिङ्ग-शिव-अमृतलिंग नामक शिवजी की मूर्ति; देखि'–देखकर; वन्दन करिल-नमस्कार किया; सब शिव-आलये-शिवजी के सभी मन्दिरों में; शैव-शिव भक्तों को; वैष्णव हइल-भगवान् कृष्ण के भक्त बनाये।

अनुवाद

अमृतलिंग नामक शिव के अर्चाविग्रह को देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें नमस्कार किया। इस तरह उन्होंने शिवजी के सारे मन्दिर देखे और शिवजी के भक्तों को वैष्णव बनाये।

देव-स्थाने आसि' कैल विष्णु दरशन ।

श्री-वैष्णवेर सङ्गे ताहाँ गोष्ठी अनुक्षण ॥77॥

देव-स्थाने–देवस्थान नामक स्थान; आसि'–आकर; कैल–किया; विष्णु दरशन-भगवान् विष्णु के मन्दिर का दर्शन; श्री-वैष्णवेर सड़े-रामानुज गुरु-शिष्य परम्परा में वैष्णवों के साथ; ताहाँ-वहाँ; गोष्ठी–चर्चा; अनुक्षण-सदा।

अनुवाद

देवस्थान आकर चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् विष्णु का मन्दिर देखा और वहाँ रामानुजाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा के वैष्णवों से बातें कीं। ये वैष्णव श्री वैष्णव कहलाते हैं।

कुम्भकर्ण-कपाले देखि' सरोवर ।

शिव-क्षेत्रे शिव देखे गौराङ्ग-सुन्दर ॥78॥

कुम्भकर्ण-कपाले-कुम्भकरण कपाल में; देखि'–देखकर; सरोवर-सरोवर; शिव-क्षेत्रे-शिवक्षेत्र में; शिव-शिवजी; देखे-देखे; गौराङ्ग-सुन्दर-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

कुम्भकर्ण-कपाल आकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक विशाल सरोवर देखा और फिर शिवक्षेत्र नामक पवित्र स्थान देखा, जहाँ पर शिवजी का मन्दिर है।

तात्पर्य

कुम्भकर्ण रावण के भाई का नाम है। आजकल कुम्भकर्ण-कपाल का शहर कुम्भकोणम के नाम से जाना जाता है। कुम्भकोणम तंजोर शहर से चौबीस मील उत्तर-पूर्व में स्थित है। यहाँ पर शिवजी के 12, विष्णु के 4 तथा ब्रह्माजी का एक मन्दिर है। शिवक्षेत्र तंजोर शहर के भीतर शिवगंगा नामक विशाल सरोवर के तट पर स्थित है। यहाँ पर शिवजी का एक बड़ा मन्दिर बृहतीश्वर-शिव-मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है।

पाप-नाशने विष्णु कैल दरशन ।

श्री-रङ्ग-क्षेत्रे तबे करिला गमन ॥79॥

पाप-नाशने-पापनाशक स्थान में; विष्णु-भगवान् विष्णु का; कैल-किया; दरशन-दर्शन; श्री-रङ्ग-क्षेत्रे-श्री रंगक्षेत्र नामक पावन स्थान में; तबे-तब; करिला-किया; गमन प्रस्थान।

अनुवाद

शिवक्षेत्र नामक तीर्थ देखने के बाद चैतन्य महाप्रभु पापनाशन आये, जहाँ उन्होंने भगवान् विष्णु के मन्दिर में दर्शन किये। अन्त में वे श्री-रंगक्षेत्र पहुँचे।

तात्पर्य

पापनाशन नाम के दो तीर्थस्थान हैं : एक कुम्भकोणम् से 8 मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है और दूसरा तिरुनेलवेलि जिले में ताम्रपर्णी नदी के निकट तिरुनेलवेल (पालमकोटा) शहर से 20 मील पश्चिम में है।

श्री-रंगक्षेत्र (श्रीरंगम) अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान है। यह तिरुच्चिरापल्ली जिले में कुम्भकोणम के पश्चिम में लगभग दस मील दूर और तिरुच्चिरापल्ली शहर के निकट कावेरी नदी के एक द्वीप में स्थित है। श्रीरंगम मन्दिर भारत का सबसे बड़ा मन्दिर है, और यह सात परकोटों से घिरा है। श्रीरंगम तक सात मार्ग भी जाते हैं। इनके प्राचीन नाम हैं धर्म-मार्ग, राजमहेन्द्र मार्ग, कुलशेखर मार्ग, आलिनाडन मार्ग, तिरुविक्रम मार्ग, माडमाडि गाइस का तिरुबिडि मार्ग तथा अडइयावल इन्दान मार्ग। इस मन्दिर की स्थापना धर्मवर्मा के राज्यकाल से भी पूर्व की गई थी। यह राजा राजमहेन्द्र से भी पहले राज्य करता था। श्रीरंगम मन्दिर में कई विख्यात राजा रह चुके हैं-यथा कुलशेखर, यामुनाचार्य अर्थात् आलबन्दारु आदि। यामुनाचार्य, श्री रामानुज, सुदर्शनाचार्य तथा अन्यों ने भी इस मन्दिर की देखभाल की है।

लक्ष्मी की अवतार गोदादेवी या आंडाल बारह आलवारों में से एक थीं। आलवार मुक्त पुरुष थे और दिव्य सूरि कहलाते थे। उनका विवाह श्री-रंगनाथ के अर्चाविग्रह से हुआ था। बाद में वे भगवान् के शरीर में प्रविष्ट कर गईं। कार्मुक के अवतार तिरुमंग (आलवारों में से एक) ने चोरी से कुछ धन प्राप्त करके श्रीरंगम की चौथी चाहारदीवारी बनवा दी। कहा जाता है कि 289 कलि सम्बत्सर में तोण्डरडिप्पडि नामक आलवार का जन्म हुआ। जब ये भक्ति में लगे थे, तो एक वेश्या के जाल में फँस गये। अपने भक्त को इतना पतित हुआ देखकर श्री-रंगनाथ ने अपने नौकर के हाथ उस वेश्या के पास एक सोने का थाल भेजा। जब मन्दिर में सोने के थाल की खोज की गई, तो वह वेश्या के घर में पाया गया। जब भक्त ने उस वेश्या पर रंगनाथ की कृपा देखी तो उसकी भूल सुधार ली गई। तब उसने रंगनाथ-मन्दिर की तीसरी चाहारदीवारी बनवाई और वहाँ पर तुलसी का बगीचा लगा दिया।

रामानुजाचार्य का एक विख्यात शिष्य कूरेश था। इनका पुत्र रामपिल्लाइ था, जिसका पुत्र वाग्विजय भट्ट हुआ, जिसका पुत्र वेदव्यास भट्ट या श्री सुदर्शनाचार्य हुए। जब सुदर्शनाचार्य बूढ़े हो गये, तब मुसलमानों ने रंगनाथ के मन्दिर पर हमला कर दिया और लगभग 1200 श्रीवैष्णवों को मार डाला। उस समय रंगनाथ के अर्चाविग्रह को विजयनगर राज्य के तिरुपति मन्दिर में ले जाया गया। गिंगि के गवर्नर गोप्पणार्य श्री-रंगनाथ को तिरुपति मन्दिर से सिंहब्रह्म नामक स्थान में ले आये, जहाँ वे तीन वर्ष तक रहे। 1293 शक संवत (1371 ई.) में अर्चाविग्रह को पुनः रंगनाथ मन्दिर में स्थापित कर दिया गया। रंगनाथ मन्दिर की पूर्वी दीवाल में वेदान्तदेशिक द्वारा लिखित एक लेख है, जिसमें बतलाया गया है कि किस प्रकार रंगनाथ इस मन्दिर में वापस आये।

कावेरीते स्नान करि' देखि' रङ्गनाथ ।

स्तुति-प्रणति करि' मानिला कृतार्थ ॥80॥

कावेरीते-कावेरी नदी में स्नान करि'–स्नान करने के बाद; देखि'–देखकर; रङ्ग-नाथ–रंगनाथ मन्दिर; स्तुति-स्तुति; प्रणति-प्रणाम; करि'-करके; मानिला–मन में सोचा; कृत-अर्थ-सफल।

अनुवाद

कावेरी नदी में स्नान करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने रंगनाथ मन्दिर देखा और वहाँ स्तुति की तथा प्रणाम किया। इस तरह उन्होंने अपने आपको कृतार्थ माना।

प्रेमावेशे कैल बहुत गान नर्तन ।

देखि' चमत्कार हैल सब लोकेर मन ॥81॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; कैल–किया; बहुत-बहुत; गान–गाना; नर्तन-नृत्य; देखि'–जिसे देखकर; चमत्कार-चमत्कार; हैल-हो गये; सब-सभी; लोकेर-लोगों के; मन–मन।

अनुवाद

रंगनाथ मन्दिर में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भावावेश में आकर नृत्य तथा कीर्तन किया, जिसे देखकर सारे लोग आश्चर्यचकित हो गये।

श्री-वैष्णव एक,—'व्येङ्कट भट्ट' नाम ।

प्रभुरे निमन्त्रण कैल करिया सम्मान ॥82॥

श्री-वैष्णव एक-रामानुज सम्प्रदाय का एक भक्त; व्येङ्कट भट्ट-वेंकट भट; नाम-नामक; प्रभुरे–चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण-निमंत्रण; कैल-दिया; करिया-करके; सम्मान-सम्मान।

अनुवाद

तब वेंकट भट्ट नामक एक वैष्णव ने श्री चैतन्य महाप्रभु को बड़े ही आदर के साथ अपने घर आमन्त्रित किया।

तात्पर्य

श्री वेंकट भट्ट वैष्णव ब्राह्मण थे और श्री रंगक्षेत्र के निवासी थे। वे श्री रामानुजाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा में थे। श्रीरंग तामिल नाड़ का एक महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल है। इस प्रान्त के लोग वेंकट नाम नहीं रखते। अतएव यह माना जाता है कि वे उस प्रान्त का नहीं थे, भले ही वे वहाँ दीर्घकाल से रह रहे हो। वेंकट भट्ट श्री रामानुज-सम्प्रदाय की बड़गलइ शाखा से सम्बन्धित थे। उनके भाई, श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती रामानुज-सम्प्रदाय के थे। वेंकट भट्ट के पुत्र बाद में गौड़ीय सम्प्रदाय में गोपाल भट्ट गोस्वामी के नाम से विख्यात हुए, और उन्होंने वृन्दावन में राधारमण मन्दिर की स्थापना की। नरहरि चक्रवर्ती द्वारा लिखित भक्तिरत्नाकर ग्रन्थ में उनके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त है।

निज-घरे लञा कैल पाद-प्रक्षालन ।

सेइ जल लञा कैल सवंशे भक्षण ॥83॥

निज-घरे-अपने घर; लञा–लाकर; कैल–किया; पाद-प्रक्षालन-चरण अभिषेक; सेइ जल-वही जल; लञा–लेकर; कैल–किया; सवंशे-परिवार के सभी सदस्यों के साथ; भक्षण–पिया।

अनुवाद

श्री वेंकट भट्ट श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर ले गये। उन्होंने महाप्रभु के चरण धोये और उस जल को उनके परिवार के सारे लोगों ने पिया।

भिक्षा कराञा किछु कैल निवेदन ।

चातुर्मास्य आसि' प्रभु, हैल उपसन्न ॥84॥

भिक्षा कराञा–भोजन देने के बाद; किछु-कुछ; कैल–किया; निवेदन-निवेदन; चातुर्मास्य-चातुर्मास; आसि'–आकर; प्रभु-मेरे प्रभु: हैल उपसन्न-आ गया है।

अनुवाद

महाप्रभु को भोजन कराने के बाद वेंकट भट्ट ने निवेदन किया कि चातुर्मास का समय आ चुका है।

चातुर्मास्ये कृपा करि' रह मोर घरे ।

कृष्ण-कथा कहि' कृपाय उद्धार' आमारे ॥85॥

चातुर्मास्ये-चतुर्मास की अवधि में; कृपा करि'–कृपा करके; रह-रहें; मोर घरे-मेरे घर पर; कृष्ण-कथा- भगवान् कृष्ण की कथाएँ; कहि'–कहकर; कृपाय-आप की दया से; उद्धार' आमारे-मेरा उद्धार करें।

अनुवाद

वेंकट भट्ट ने कहा, "आप मुझ पर कृपा करें, और चातुर्मास-भर मेरे घर पर रहें। आप भगवान् कृष्ण की लीलाएँ कहकर कृपा करके मेरा उद्धार करें।"

ताँर घरे रहिला प्रभु कृष्ण-कथा-रसे ।

भट्ट-सङ्गे गोङाइल सुखे चारि मासे ॥86॥

ताँर घरे–उनके घर पर; रहिला-रहे; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; कृष्ण-कथा-से-कृष्ण कथा की लीलाओं का दिव्य रस लेते हुए; भट्ट-सङ्गे–वेंकट भट्ट के साथ; गोङाइल-व्यतीत किये; सुखे-सुखपूर्वक; चारि मासे–चार मास।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु वेंकट भट्ट के घर पर चार महीने तक लगातार रहे। महाप्रभु ने बड़े ही सुखपूर्वक भगवान् कृष्ण की लीलाएँ कहते हुए और दिव्य रस का आस्वादन करते हुए अपने दिन बिताये।

कावेरीते स्नान करि' श्री-रङ्ग दर्शन ।

प्रतिदिन प्रेमावेशे करेन नर्तन ॥87॥

कावेरीते-कावेरी नदी में; स्नान करि'–स्नान करके; श्री-रङ्ग दर्शन-श्रीरंग मन्दिर में दर्शन करके; प्रति-दिन-प्रतिदिन; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; करेन-करते; नर्तन-नृत्य।

अनुवाद

वहाँ रहते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कावेरी नदी में स्नान किया और श्री-रंग मन्दिर देखा। महाप्रभु प्रतिदिन भावावेश में नाचते भी रहे।

सौन्दर्यादि प्रेमावेश देखि, सर्व-लोक ।

देखिबारे आइसे, देखे, खण्डे दुःख-शोक ॥88॥

सौन्दर्य-आदि-शरीर सौन्दर्य आदि; प्रेम-आवेश-उनका प्रेमावेश; देखि-देखकर; सर्व-लोक-सभी लोग; देखिबारे–देखने के लिए; आइसे-वहाँ आते; देखे-और देखते हैं; खण्डे दुःख-शोक-और सभी दुःख और शोक से छुटकारा पाते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर के सौन्दर्य तथा उनके प्रेमावेश को हर एक ने देखा। उन्हें देखने अनेक लोग आते रहते थे, और उनका दर्शन करने से ही उनका दुःख तथा शोक भाग जाता था।

लक्ष लक्ष लोक आइल नाना-देश हैते ।

सबे कृष्ण-नाम कहे प्रभुके देखिते ॥89॥

लक्ष लक्ष-लाखों; लोक-लोग; आइल-वहाँ आयें; नाना-देश-विभिन्न देशों; हैते–से; सबे–वे सब; कृष्ण-नाम कहे-हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करते हैं; प्रभुके-महाप्रभु को; देखिते-देखकर।

अनुवाद

विभिन्न देशों से लाखों लोग महाप्रभु का दर्शन करने आये और उन्हें देखने के बाद उन्होंने हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन किया।

कृष्ण-नाम विना केह नाहि कहे आर ।

सबे कृष्ण-भक्त हैल,—लोके चमत्कार ॥90॥

कृष्ण-नाम विना-हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन के अतिरिक्त; केह-किसी को; नाहि-नहीं; कहे-बोलते; आर-कुछ और; सबे–वे सब; कृष्ण-भक्त-कृष्ण भक्त; हैल–हो गये; लोके-लोग; चमत्कार–चकित रह गये।

अनुवाद

वे केवल हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने लगे, और सबके सब भगवान् कृष्ण के भक्त बन गये। इस तरह सारी जनता आश्चर्यचकित थी।

श्री-रङ्ग-क्षेत्रे वैसे यत वैष्णव-ब्राह्मण ।

एक एक दिन सबे कैल निमन्त्रण ॥91॥

श्री-रङ्ग-क्षेत्रे-श्री रंग क्षेत्र में; वैसे-रहने वाले; यत–सब; वैष्णव-ब्राह्मण-वैष्णव ब्राह्मण; एक एक दिन-प्रतिदिन; सबे–वे सब; कैल निमन्त्रण-महाप्रभु को निमन्त्रण दिया।

अनुवाद

श्री रंगक्षेत्र में रहने वाले सारे वैष्णव ब्राह्मणों ने महाप्रभु को एक-एक दिन अपने अपने घरों में आमन्त्रित किया।

एक एक दिने चातुर्मास्य पूर्ण हैल ।

कतक ब्राह्मण भिक्षा दिते ना पाइल ॥92॥

एक एक दिने–दिन ब दिन; चातुर्मास्य-चतुमास की अवधि; पूर्ण हैल–पूर्ण हुई; कतक ब्राह्मण-कुछ ब्राह्मण; भिक्षा दिते-उन्हें भोजन देने के लिए; ना-नहीं; पाइल-अवसर पाया।

अनुवाद

यद्यपि प्रतिदिन विभिन्न ब्राह्मण महाप्रभु को आमन्त्रित करते रहते, किन्तु कुछ को भोजन कराने का अवसर नहीं मिल पाया, क्योंकि चातुर्मास्य की अवधि बीत गई।

सेइ क्षेत्रे रहे एक वैष्णव-ब्राह्मण ।

देवालये आसि' करे गीता आवर्तन ॥ 93 ॥

सेइ क्षेत्रे-उसी पावन स्थान पर; रहे-रहता था; एक-एक; वैष्णव-ब्राह्मण-वैष्णव ब्राह्मण; देव-आलये–मन्दिर में; आसि'-आकर; करे-करता; गीता- भगवद्गीता; आवर्तन-पाठ, उच्चारण।

अनुवाद

श्री रंगक्षेत्र में एक ब्राह्मण वैष्णव नित्य मन्दिर में दर्शन करने आता था, और समूची भगवद्गीता का पाठ करता था।

अष्टादशाध्याय पड़े आनन्द-आवेशे ।

अशुद्ध पड़ेन, लोक करे उपहासे ॥94॥

अष्टादश-अध्याय-अठारह अध्याय; पड़े-पढ़ता; आनन्द-आवेशे-आनन्द के आवेश में; अशुद्ध पड़ेन–अशुद्ध उच्चारण में; लोक-सामान्य लोग; करे-करते; उपहासे-उपहास।

अनुवाद

वह ब्राह्मण अत्यन्त भावावेश में भगवद्गीता के अठारहों अध्याय का पाठ करता था। किन्तु वह शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकता था, इसलिए लोग उसका मजाक उड़ाते थे।

केह हासे, केह निन्दे, ताहा नाहि माने ।

आविष्ट हञा गीता पड़े आनन्दित-मने ॥95॥

केह हासे-कोई हँसता; केह निन्दे-कोई आलोचना करता; ताहा-वह; नाहि माने-उनकी पहवाह नहीं करता; आविष्ट हजा–आवेश में होने के कारण; गीता पड़े-'भगवद्गीता' पढ़ता है; आनन्दित-अत्यन्त सुखपूर्वक; मने-अपने मन में।

अनुवाद

अशुद्ध उच्चारण करने से लोग कभी उसकी आलोचना करते और उस पर हँसते थे; किन्तु वह उनकी कोई परवाह नहीं करता था। वह भगवद्गीता का पाठ करने के कारण भावाविष्ट रहता था और मन-ही-मन अत्यन्त सुखी था।

पुलकाश्रु, कम्प, स्वेद,—यावत्पठन ।

देखि' आनन्दित हैल महाप्रभुर मन ॥ 96॥

पुलक-पुलकित होना; अश्रु-अश्रु; कम्प-कंपन; स्वेद-पसीना; यावत्-जब तक; पठन-ग्रंथ पढ़ने पर; देखि'–यह देखकर; आनन्दित-अत्यन्त प्रसन्न होकर; हैल-हो गया; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मन–मन।

अनुवाद

भगवद्गीता पढ़ते समय ब्राह्मण को दिव्य शारीरिक विकारों का अनुभव होता था। उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे, उसकी आँखों से आँसू आते रहते थे, उसका शरीर काँपने लगता था और वह पसीना-पसीना हो जाता था। यह देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त आनन्दित होते थे।

तात्पर्य

यद्यपि निरक्षर होने के कारण वह ब्राह्मण शब्दों का ठीक से उच्चारण नहीं कर पा रहा था, फिर भी भगवद्गीता पढ़ते हुए उसमें भाव प्रकट हो रहे थे। श्री चैतन्य महाप्रभु इन लक्षणों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे। यह सूचित करता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भक्ति से प्रसन्न होते हैं, विद्वत्ता से नहीं। यद्यपि वह ब्राह्मण शब्दों का सही-सही उच्चारण नहीं कर रहा था, किन्तु साक्षात् भगवान् कृष्णस्वरूप महाप्रभु ने इसे बुरा नहीं माना, प्रत्युत वे उसके भाव (भक्ति) से प्रसन्न थे। श्रीमद्भागवत (1.5.11) में इसकी पुष्टि हुई है :

तद्वाग्विसर्गो जनताघ-विप्लवो

यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।

नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥

दूसरी ओर, जो साहित्य अनन्त भगवान् के नाम, यश, रूप तथा लीलाओं की महिमा के वर्णन से पूर्ण है, वह एक भिन्न सृष्टि है, जो ऐसे दिव्य शब्दों से परिपूर्ण होता है, जिससे इस जगत् की पथभ्रष्ट सभ्यता के पापमय जीवनों में क्रान्ति आ सकती है। ऐसा दिव्य साहित्य कुछ त्रुटि होने पर भी ईमानदार शुद्ध व्यक्तियों द्वारा सुना, गाया और स्वीकार किया जाता है।" इस विषय पर अधिक जानकारी के लिए कृपया इस श्लोक के तत्पर्य को देखें।

महाप्रभु पुछिल ताँरे, शुन, महाशय ।

कोनर्थ जानि' तोमार एत सुख हय ॥ 97॥

महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुछिल–पूछा; ताँरे–उससे; शुन-सुनो; महा-आशय-हे महाशय; कोन्-क्या; अर्थ-अर्थ; जानि'–जानकर; तोमार-आपको; एत-इतना अधिक; सुख-सुख; हय है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण से पूछा, "हे महोदय, आप ऐसे भावावेश में क्यों हैं? आपको भगवद्गीता के किस अंश से ऐसा दिव्य सुख प्राप्त होता है?"

विप्र कहे,—मूर्ख आमि, शब्दार्थ ना जानि ।

शुद्धाशुद्ध गीता पड़ि, गुरु-आज्ञा मानि' ॥98॥

विप्र कहे-ब्राह्मण ने उत्तर दिया; मूर्ख आमि-मैं अनपढ़ हूँ; शब्द-अर्थ-शब्दों का अर्थ; ना जानि–नहीं जानता; शुद्ध-अशुद्ध--कभी शुद्ध कभी अशुद्ध; गीता- भगवद्गीता; पड़ि-पढ़ता हूँ; गुरु-आज्ञा-अपने गुरु की आज्ञा; मानि'–स्वीकार करके।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मैं मूर्ख हैं, अतएव मैं शब्दों का अर्थ नहीं जानता। मैं कभी भगवद्गीता का शुद्ध पाठ करता हूँ, कभी अशुद्ध, किन्तु ऐसा करके मैं अपने गुरु के आदेश का पालन कर रहा हूँ।"

तात्पर्य

यह ऐसे व्यक्ति का अच्छा उदाहरण है, जो भगवद्गीता का गलत पाठ करते हुए भी श्री चैतन्य महाप्रभु का ध्यान आकृष्ट करने में सफल हो सका। उसके आध्यात्मिक कार्य शब्दों के सही उच्चारण जैसी भौतिक वस्तुओं पर आश्रित नहीं थे, प्रत्युत उसकी सफलता अपने गुरु के उपदेशों का दृढ़ता से पालन करने पर आश्रित थी।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।

तस्यैते कथिता ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

"केवल उन महात्माओं को ही, जिन्हें भगवान् तथा गुरु में पूर्ण श्रद्धा है, वैदिक ज्ञान का आशय स्वत: प्रकट होता है।" (श्वेताश्वतर उपनिषद् 6.23)

जो व्यक्ति गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन करते हैं, उन्हें भगवद्गीता या श्रीमद्भागवत के शब्दों के अर्थ प्रकट होते हैं। इसी तरह जिसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में समान श्रद्धा होती है, उसे भी शब्दों के अर्थ प्रकट होते हैं। दूसरे शब्दों में, कृष्ण तथा गुरु दोनों के प्रति श्रद्धा ही आध्यात्मिक जीवन की सफलता का रहस्य है।

अर्जुनेर रथे कृष्ण हय रज्जु-धर ।

वसियाछे हाते तोत्र श्यामल सुन्दर ॥99॥

अर्जुनेर-अर्जुन के; रथे-रथ में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; हय-हैं; रज्जु-धर-लगाम पकड़े हुए; वसियाछे-वहाँ बैठे हैं; हाते-हाथ में; तोत्र-लगाम; श्यामल-श्यामल; सुन्दर-अत्यन्त सुन्दर।

अनुवाद

वह ब्राह्मण कहता गया, "वास्तव में मैं भगवान् कृष्ण के उस चित्र को ही देखता हूँ, जिसमें वे अर्जुन के सारथी के रूप में रथ पर बैठे हैं। वे अपने हाथों में लगाम थामे हुए अत्यन्त सुन्दर तथा साँवले लगते हैं।"

अर्जुनेरे कहितेछेन हित-उपदेश ।

ताँरे देखि' हय मोर आनन्द-आवेश ॥100॥

अर्जुनेरे–अर्जुन को; कहितेछेन-वे बोल रहे हैं; हित-उपदेश-हितोपदेश; ताँरे-उनको; देखि'–देखकर; हय-है; मोर-मेरा; आनन्द-दिव्य आनन्द; आवेश-आवेश।

अनुवाद

"जब मैं रथ में बैठे और अर्जुन को उपदेश देते हुए भगवान् कृष्ण के चित्र को देखता हूँ, तो मैं भावमय आनन्द से पूरित हो उठता हूँ।"

यावत्पड़ों, तावत्पाङ ताँर दरशन ।

एइ लागि' गीता-पाठ ना छाड़े मोर मन ॥101॥

यावत्-जब तक; पड़ों-मैं पढ़ता हूँ; तावत्-तब तक; पाङ–पाता हूँ; ताँर-उनका; दरशन-दर्शन; एइ लागि'-इस कारण; गीता-पाठ- भगवद्गीता का पाठ; ना छाड़े-नहीं छोड़ता; मोर मन-मेरा मन।

अनुवाद

"जब तक मैं गीता पढ़ता हूँ, तब तक मैं भगवान् के सुन्दर स्वरूप का ही दर्शन करता हूँ। इसी कारण से मैं भगवद्गीता पढ़ता हूँ और मेरा मन उससे विचलित नहीं होता।"

प्रभु कहे,—गीता-पाठे तोमाराइ अधिकार ।

तुमि से जानह एइ गीतार अर्थ-सार ॥102॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; गीता-पाठे-गीता-पाठ में; तोमाराइ अधिकार-तुम उचित अधिकारी हो; तुमि-तुम; से-वह; जानह–जानते हो; एइ-इस; गीतार-भगवद्गीता का; अर्थ-सार–वास्तविक सार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने ब्राह्मण से कहा, "निस्सन्देह, भगवद्गीता पढ़ने के तुम्हीं अधिकारी हो। तुम जो कुछ जानते हो, वही भगवद्गीता का वास्तविक तात्पर्य है।"

तात्पर्य

शास्त्रों के अनुसार- भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया। मनुष्य को शुद्ध भक्त से भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत को सुनकर उन्हें समझना चाहिए। मात्र पाण्डित्य या कुशाग्र बुद्धि से इन्हें नहीं समझा जा सकता। यह भी कहा भी गया है :

गीताधीता च येनापि भक्तिभावेन चेतसा ।

वेदशास्त्र पुराणानि तेनाधीतानि सर्वशः ॥

जो व्यक्ति श्रद्धा तथा भक्ति के साथ भगवद्गीता पढ़ता है, उसे वैदिक ज्ञान का सार प्रकट हो जाता है। श्वेताश्वतर उपनिषद (6.23) के अनुसार :

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

"जिन महात्माओं में भगवान् तथा गुरु के प्रति दृढ़ श्रद्धा होती है, उन्हीं को वैदिक ज्ञान स्वतः प्रकट होता है।"

सारा वैदिक साहित्य श्रद्धा तथा भक्ति से समझा जा सकता है, सांसारिक पाण्डित्य से नहीं। इसीलिए हमने भगवद्गीता यथारूप प्रस्तुत की है। ऐसे अनेक विद्वान तथा दार्शनिक हैं, जो भगवद्गीता का पाठ पांडित्यपूर्ण ढंग से करते हैं। वे अपना समय तो नष्ट करते ही हैं, किन्तु उनकी टीकाएँ पढ़ने वाले भी दिग्भ्रमित हो जाते हैं।

एत बलि' सेइ विप्रे कैल आलिङ्गन ।

प्रभु-पद धरि' विप्र करेन रोदन ॥ 103 ॥

एत बलि'-यह कहकर; सेइ विप्रे-उस ब्राह्मण का; कैल आलिङ्गन-उन्होंने आलिंगन किया; प्रभु-पद-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; धरि'-पकड़कर; विप्र-ब्राह्मण; करेन-करता है; रोदन-रोदन, रोता।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण का आलिंगन किया, और वह ब्राह्मण महाप्रभु के चरणकमलों को पकड़कर रोने लगा।

तोमा देखि' ताहा हैते द्वि-गुण सुख हय ।

सेइ कृष्ण तुमि,—हेन मोर मने लय ॥104॥

तोमा देखि'–आपको देखकर; ताहा हैते–भगवान् कृष्ण के दर्शन से; द्वि-गुण-दुगना; सुख-सुख; हय होता है; सेइ कृष्ण-वही भगवान् कृष्ण; तुमि-आप हैं; हेन-ऐसा; मोर-मेरा; मने-मन; लय-समझता है।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने कहा, "आपको देखकर मेरा सुख दुगना हो गया है। मैं तो समझता हूँ कि आप ही वे भगवान् कृष्ण हैं।"

कृष्ण-स्फूर्ये ताँर मन हाञाछे निर्मल ।

अतएव प्रभुर तत्त्व जानिल सकल ॥ 105॥

कृष्ण-स्फूर्ये-कृष्ण की स्फूर्ति से; ताँर-उसका; मन-मन; हाञाछे-हो गया; निर्मल-निर्मल; अतएव–अतएव; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; तत्त्व-तत्त्व; जानिल-समझ सका; सकल-सब।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण के प्रकाशित होने से ब्राह्मण का मन शुद्ध हो गया, अतएव वह श्री चैतन्य महाप्रभु के तत्त्व को पूरी तरह से समझ सका।

तबे महाप्रभु ताँरे कराइल शिक्षण ।

एइ बात्काहाँ ना करिह प्रकाशन ॥ 106॥

तबे-तब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–ब्राह्मण को; कराइल-दी; शिक्षण-शिक्षा; एइ बात्-यह बात; काहाँ-कहीं भी; ना-न; करिह–करो; प्रकाशन-प्रकट।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को भलीभाँति शिक्षा दी, और उससे अनुरोध किया कि वह यह बात किसी से प्रकट नहीं करे कि वे साक्षात् कृष्ण हैं।

सेइ विप्र महाप्रभुर बड़ भक्त हैल ।

चारि मास प्रभु-सङ्ग कभु ना छाड़िल ॥107॥

सेइ विप्र-वह ब्राह्मण; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; बड़-परम; भक्त-भक्त; हैल–हो गया; चारि मास-चार मास के लिए; प्रभु-सङ्ग–महाप्रभु का संग; कभु-कभी भी; ना-नहीं; छाड़िल-छोड़ा।

अनुवाद

वह ब्राह्मण श्री चैतन्य महाप्रभु का महान् भक्त बन गया और चतुर्मास के चार महीनों तक लगातार उसने उनका साथ नहीं छोड़ा।

एइ-मत भट्ट-गृहे रहे गौरचन्द्र ।

निरन्तर भट्ट-सङ्गे कृष्ण-कथानन्द ॥ 108॥

एइ-मत-इस तरह; भट्ट-गृहे-वेंकट भट्ट के घर में; रहे-रहे; गौरचन्द्र-श्री चैतन्य महाप्रभु; निरन्तर–निरन्तर; भट्ट-सङ्गे–वेंकट भट्ट के साथ; कृष्ण-कथा-आनन्द-कृष्ण कथा का दिव्य आनन्द लेते हुए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु वेंकट भट्ट के घर पर रहे और निरन्तर भगवान् कृष्ण के विषय में बातें करते रहते। इस तरह वे परम आनन्दित थे।

श्री-वैष्णव' भट्ट सेवे लक्ष्मी-नारायण ।

ताँर भक्ति देखि' प्रभुर तुष्ट हैल मन ॥109॥

श्री-वैष्णव-रामानुज सम्प्रदाय का एक भक्त; भट्ट-वेंकट भट्ट; सेवे-पूजा करता था; लक्ष्मी-नारायण-भगवान् नारायण और भाग्य की देवी लक्ष्मी की; ताँर-उसकी; भक्ति-भक्ति; देखि'–देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; तुष्ट-तुष्ट; हैल–हो गया; मन-मन।

अनुवाद

रामानुज सम्प्रदाय का वैष्णव होने के कारण वेंकट भट्ट लक्ष्मी तथा नारायण के अर्चाविग्रह की पूजा करता था। उसकी शुद्ध भक्ति देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न थे।

निरन्तर ताँर सङ्गे हैल सख्य-भाव ।

हास्य-परिहासे दुँहे सख्येर स्वभाव ॥110॥

निरन्तर–निरन्तर; ताँर सङ्गे-उसकी संगति में; हैल-था; सख्य-भाव-सख्य भाव; हास्य-हास्य; परिहासे-हँसी मजाक में; दुँहे-वे दोनों; सख्येर–मित्रता का; स्वभाव-स्वभाव।

अनुवाद

एक दूसरे के साथ लगातार रहने से श्री चैतन्य महाप्रभु तथा वेंकट भट्ट में धीरे-धीरे मैत्रीभाव स्थापित हो गया। वे कभी मिलकर हँसते और कभी मजाक करते।

प्रभु कहे,—भट्ट, तोमार लक्ष्मी-ठाकुराणी ।

कान्त-वक्षः-स्थिता, पतिव्रता-शिरोमणि ॥ 111॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; भट्ट मेरे प्रिय भट्टाचार्य; तोमार-तुम्हारी; लक्ष्मी-ठाकुराणी लक्ष्मी देवी; कान्त-उनके पति का (नारायण); वक्षः-स्थिता-वक्ष, स्थल पर स्थित; पति-व्रता-पतिव्रता; शिरोमणि-सर्वोच्च।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भट्ट से कहा, "तुम्हारी आराध्य देवी लक्ष्मी सदैव नारायण के वक्षस्थल पर विराजमान रहती हैं, और वे निश्चय ही सृष्टि की सबसे अधिक पतिव्रता स्त्री हैं।

आमार ठाकुर कृष्ण—गोप, गो-चारक ।

साध्वी हञा केने चाहे ताँहार सङ्गम ॥112॥

आमार ठाकुर-मेरे पूज्य देव; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; गोप-गोप; गो-चारक-गौएँ चरानेवाले; साध्वी हञा–पतिव्रता होकर; केने-क्यों; चाहे-चाहती हैं; ताँहार-उनका; सङ्गम-संग।

अनुवाद

"किन्तु मेरे स्वामी तो ग्वालबाल श्रीकृष्ण हैं, जो गायों के चराने में लगे रहते हैं। ऐसा क्यों है कि लक्ष्मी ऐसी पतिव्रता स्त्री होते हुए भी मेरे प्रभु का साथ चाहती हैं?"

एइ लागि' सुख-भोग छाड़ि' चिर-काल ।

व्रत-नियम करि' तप करिल अपार ॥113॥

एइ लागि'-इस कारण; सुख-भोग-वैकुण्ठ भोग; छाड़ि-छोड़कर; चिर-काल-दीर्घकाल तक; व्रत-नियम-व्रतों और नियमों का; करि'–पालन करके; तप-तप; करिल अपार–घोर किया।

अनुवाद

"लक्ष्मीजी ने कृष्ण की संगति प्राप्त करने के लिए ही वैकुण्ठ लोक के सारे सुख त्याग दिये और दीर्घकाल तक व्रत-नियम का पालन करके अपार तपस्या की।"

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे

तवाङ्घ्रि-रेणु-स्परशाधिकारः ।

यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो

विहाय कामान्सु-चिरं धृत-व्रता ॥114॥

कस्य–किसका; अनुभावः–परिणाम; अस्य-नाग (कालिया) का; न-नहीं; देव-हे प्रभु; विद्महे-हम जानते हैं; तव अङ्घ्रि-आपके चरणकमल की; रेणु-धूलि; स्परश-स्पर्श के लिए; अधिकारः-अधिकार; यत्-जो; वाञ्छया-इच्छा करने से; श्रीः-भाग्य की देवी लक्ष्मी; ललना-सर्वश्रेष्ठ महिला; अचरत्-किया; तपः-तप; विहाय-त्यागकर; कामान्–सभी इच्छाओं को; सु-चिरम्-लम्बे समय तक; धृत–नियम पाला; व्रता-व्रत।

अनुवाद

तब चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे प्रभु, हम नहीं जानते कि कालिय नाग को किस तरह आपके चरणकमलों की धूलि प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। इसके लिए तो लक्ष्मीदेवी को भी समस्त इच्छाओं को त्यागकर और व्रत करके सदियों तक तपस्या करनी पड़ी थी। निस्सन्देह, हम नहीं जानते कि किस तरह कालिय नाग को ऐसा सुअवसर मिल सका।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.16.36) से है जिसमें कालिय नाग की पत्नियों का कथन है।

भट्ट कहे, कृष्ण-नारायण—एकइ स्वरूप ।

कृष्णेते अधिक लीला-वैदग्ध्यादि-रूप ॥115॥

भट्ट कहे-वेंकट भट्ट ने कहा; कृष्ण-नारायण-कृष्ण तथा नारायण; एकइ स्वरूप-एक ही स्वरूप हैं; कृष्णेते-भगवान् कृष्ण में; अधिक–अधिक; लीला-लीलाएँ; वैदग्ध्य-आदि-रूप-क्रीड़ा रस के कारण।

अनुवाद

तब वेंकट भट्ट ने कहा, "भगवान् कृष्ण तथा भगवान् नारायण एक ही रूप हैं, किन्तु कृष्ण की लीलाएँ अपने क्रीडा रस के कारण अधिक आस्वाद्य हैं।"

तार स्पर्शे नाहि याय पतिव्रता-धर्म ।

कौतुके लक्ष्मी चाहेन कृष्णेर सङ्गम ॥116॥

तार स्पर्शे-कृष्ण को लक्ष्मी के स्पर्श के कारण; नाहि-नहीं; याय-भंग होता; पतिव्रता-धर्म-पतिव्रता धर्म; कौतुके–अत्यन्त आनन्द में; लक्ष्मी-लक्ष्मी; चाहेन–चाहती हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; सङ्गम–संगति।

अनुवाद

"चूँकि कृष्ण तथा नारायण एक ही व्यक्ति हैं, अतएव कृष्ण के साथ लक्ष्मी का संग उनके पतिव्रता धर्म को भंग नहीं करता। प्रत्युत यह तो अत्यन्त आनन्द की बात थी कि लक्ष्मीजी ने भगवान् कृष्ण का साथ करना चाहा।"

तात्पर्य

यह श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रश्न का उत्तर है, जिससे हमें पता चलता है। कि वेंकट भट्ट को सत्य का पता था। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाया कि नारायण दिव्य ऐश्वर्य से पूर्ण कृष्ण के ही एक रूप हैं। यद्यपि कृष्ण द्विभुज हैं और नारायण चतुर्भुज हैं, किन्तु उनमें कोई अन्तर नहीं है। वे एक ही व्यक्ति हैं। नारायण कृष्ण जैसे ही सुन्दर हैं, लेकिन कृष्ण की लीलाएँ अधिक आमोदकारी हैं। ऐसा नहीं है कि इन आमोदकारी लीलाओं के कारण कृष्ण नारायण से अलग हो जाते हैं। कृष्ण के साथ संगति करने की लक्ष्मीजी की कामना पूर्णतया स्वाभाविक है। दूसरे शब्दों में, यह समझ में आने वाली बात है कि एक पतिव्रता स्त्री अपने पति का संग उसकी विभिन्न वेशभूषाओं में करना चाहती है। अतएव यदि लक्ष्मीजी कृष्ण के संग रहना चाहती हैं, तो इसकी आलोचना नहीं की जानी चाहिए।

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्ण-स्वरूपयोः ।

रसेनोत्कृष्यते कृष्ण-रूपमेषा रस-स्थितिः ॥117॥

सिद्धान्ततः–वास्तव में; तु–किन्तु; अभेदे-कोई भेद नहीं है; अपि-यद्यपि; श्री-ईश-लक्ष्मी के पति नारायण; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; स्वरूपयोः-स्वरूपों में; रसेन-दिव्य रसों से; उत्कृष्यते-श्रेष्ठ हैं; कृष्ण-रूपम्-भगवान् कृष्ण का स्वरूप; एषा–यह; रस-स्थितिः–रस के आगार।

अनुवाद

वेंकट भट्ट ने आगे कहा, "दिव्य अनुभूति के अनुसार नारायण तथा कृष्ण के स्वरूपों में कोई अन्तर नहीं है। किन्तु कृष्ण में माधुर्य रस के कारण विशेष दिव्य आकर्षण है, अतएव वे नारायण से बढ़कर हैं। यह दिव्य रसों का निर्णय है।"

तात्पर्य

वेंकट भट्ट द्वारा उद्धृत यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.59) में भी पाया जाता है।

कृष्ण-सङ्गे पतिव्रता-धर्म नहे नाश ।

अधिक लाभ पाइये, आर रास-विलास ॥118॥

कृष्ण-सङ्गे–भगवान् कृष्ण की संगति में; पति-व्रता-पतिव्रता; धर्म-धर्म; नहे-नहीं; नाश-नष्ट होता; अधिक-अधिक; लाभ-लाभ; पाइये-मिलता है; आर-और; रारा-विलास-रास नृत्य का आनन्द।

अनुवाद

"लक्ष्मीजी ने विचार किया कि उनका पतिव्रता धर्म कृष्ण के साथ उनका सम्बन्ध होने से नष्ट नहीं होगा। प्रत्युत कृष्ण की संगति करने से वे रासनृत्य के लाभ का आस्वादन कर सकेंगी।"

विनोदिनी लक्ष्मीर हय कृष्णे अभिलाष ।

इहाते कि दोष, केने कर परिहास ॥119॥

विनोदिनी-भोक्ता; लक्ष्मीर-भाग्य की देवी का; हय-है; कृष्णे-भगवान् कृष्ण के लिए; अभिलाष–अभिलाषा; इहाते-इसमें; कि-क्या; दोष-दोष; केने-क्यों; कर-आप करते हो; परिहास-परिहास।

अनुवाद

वेंकट भट्ट ने आगे बतलाया, "माता लक्ष्मी दिव्य आनन्द की भोक्ता भी हैं, अतएव यदि उन्होंने कृष्ण के साथ भोग करना चाहा, तो इसमें कौन-सा दोष है? आप इसका मजाक क्यों उड़ा रहे हैं?"

प्रभु कहे,—दोष नाहि, इहा आमि जानि ।

रास ना पाइल लक्ष्मी, शास्त्रे इहा शुनि ॥ 120॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने उत्तर दिया; दोष नाहि-दोष नहीं है; इहा आमि जानि–मैं यह जानता हूँ; रास ना पाइल लक्ष्मी-भाग्य की देवी लक्ष्मी रास-नृत्य में सम्मिलित न हो सकीं; शास्त्रे इहा शुनि-हम प्रामाणिक शास्त्रों से यह जानकारी पाते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मुझे पता है कि लक्ष्मीजी में कोई दोष नहीं है, फिर भी वे रासनृत्य में प्रविष्ट नहीं हो पाईं। प्रामाणिक शास्त्रों से हम ऐसा सुनते हैं।"

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त-रतेः प्रसादः

स्वर्योषितां नलिन-गन्ध-रुचां कुतोऽन्याः ।

रासोत्सवेऽस्य भुज-दण्ड-गृहीत-कण्ठ-

लब्धाशिषां य उदगाव्रज-सुन्दरीणाम् ॥ 121॥

न-नहीं; अयम्-यह; श्रियः-भाग्य की देवी लक्ष्मी का; अड़े-वक्षस्थल पर; उ-खेद है; नितान्त-रतेः-बहुत अंतरंग भाव से सम्बन्धित; प्रसादः-कृपा; स्वः-स्वर्ग लोकों की; योषिताम्-स्त्रियों का; नलिन–कमल की; गन्ध-गंध; रुचाम्-और शारीरिक चमक; कुतः-बहुत कम; अन्याः-अन्य; रास-उत्सवे-रास नृत्य के उत्सव में; अस्य-भगवान् श्रीकृष्ण का; भुज-

दण्ड–भुजाओं से; गृहीत-आलिंगित; कण्ठ–उनकी गर्दनें; लब्ध-आशिषाम्-जिसने यह आशिष पाई; यः-जो; उदगात्-प्रकट हो गया; व्रज-सुन्दरीणाम्-व्रजभूमि की सुन्दर गोपियों का।

अनुवाद

"जब भगवान् श्रीकृष्ण रासलीला में गोपियों के साथ नृत्य कर रहे थे, तब उन्होंने गोपियों को अपनी बाहों में भरकर उनका आलिंगन किया। यह दिव्य कृपा लक्ष्मी या वैकुण्ठ की अन्य प्रेयसियों को प्राप्त नहीं हो पाई। न ही स्वर्गलोक की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियों ने, जिनकी शारीरिक कान्ति तथा सुगन्ध कमल-पुष्प जैसी होती हैं, कभी इसकी कल्पना की। तो भला संसारी स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाए, चाहे वे भौतिक अनुमान से कितनी ही सुन्दर क्यों न हों?"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.47.60) का है।

लक्ष्मी केने ना पाइल, इहार कि कारण ।

तप करि' कैछे कृष्ण पाइल श्रुति-गण ॥ 122॥

लक्ष्मी-लक्ष्मी ने; केने-क्यों; ना-नहीं; पाइल-पाया; इहार-इसका; कि-क्या; कारण-कारण; तप करि'–कठिन तप करके; ऐछे-कैसे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; पाइल-पाया; श्रुति-गण-श्रुति, वैदिक अधिकारी।

अनुवाद

"किन्तु क्या आप मुझे बता सकेंगे कि लक्ष्मी रासनृत्य में क्यों प्रवेश नहीं पा सकीं? वैदिक ज्ञान के अधिकारी नृत्य में प्रवेश करके कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त कर सके।"

निभृत-मरुन्मनोऽक्ष-दृढ़-योग-युजो हृदि यन्

मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ।

स्त्रिय उरगेन्द्र-भोग-भुज-दण्ड-विषक्त-धियो

वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रि-सरोज-सुधाः ॥ 123॥

निभृत-नियंत्रित; मरुत्-प्राणवायु; मनः-मन; अक्ष–इन्द्रियाँ; दृढ़-दृढ़; योग-योगाभ्यास में; युजः-जो लगे हैं; हृदि-हृदय के भीतर; यत्-जो; मुनयः-मुनि गण; उपासते-पूजा करते हैं; तत्व ह; अरयः-शत्रु; अपि-भी; ययुः-पाते हैं; स्मरणात्-स्मरण करके; स्त्रियः-गोपियाँ; उरग-इन्द्र-सांपों की; भोग-शरीरों की भाँति; भुज-भुजाएँ; दण्ड–दण्डों की भाँति; विषक्त–लिपटी हुई; धियः-जिनके मन; वयम् अपि-हम भी; ते-आपके; समाः–उनके समान; सम-दृशः–वैसी ही भावनाओं वाले; अङ्घ्रि-सरोज-चरणकमल का; सुधाः-अमृत।

अनुवाद

"बड़े बड़े ऋषि योगाभ्यास तथा श्वास-नियन्त्रण द्वारा मन तथा इन्द्रियों को जीतते हैं। इस तरह योग में रत रहकर तथा अपने हृदयों में परमात्मा का दर्शन करते हुए वे निर्विशेष ब्रह्म में प्रवेश करते हैं। किन्तु भगवान् के शत्रु भी मात्र उनके बारे में सोचने के द्वारा वही पद प्राप्त करते हैं। किन्तु कृष्ण के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर व्रज की गोपियाँ कृष्ण तथा उनकी सर्प जैसी भुजाओं का आलिंगन चाहती हैं। गोपियों को अन्ततः भगवान् के चरणकमलों का अमृत आस्वादन करने को मिला। इसी प्रकार हम उपनिषद् भी गोपियों के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए भगवान् के चरणकमलों का अमृत आस्वादन सकते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.87.23) से है।

श्रुति पाय, लक्ष्मी ना पाय, इथे कि कारण ।

भट्ट कहे,—इहा प्रवेशिते नारे मोर मन ॥ 124॥

श्रुति पाय-वैदिक अधिकारी (श्रुतियाँ) ने प्रवेश पाया; लक्ष्मी ना पाय-और लक्ष्मी को प्रवेश न मिल सका; इथे कि कारण-इसका क्या कारण है; भट्ट कहे-वेंकट भट्ट ने उत्तर दिया; इहा-इसमें; प्रवेशिते-प्रवेश पाना; नारे-सम्भव नहीं; मोर-मेरे; मन-मन के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा यह पूछे जाने पर कि रासनृत्य में लक्ष्मी क्यों प्रवेश नहीं कर पाईं, जबकि वैदिक ज्ञान के अधिकारी कर पाये, तब वेंकट भट्ट ने उत्तर दिया, "मैं इस बर्ताव के रहस्य में प्रवेश नहीं कर सकता।"

आमि जीव,—क्षुद्र-बुद्धि, सहजे अस्थिर ।

ईश्वरेर लीला—कोटि-समुद्र-गम्भीर ॥125॥

आमि जीव-मैं एक सामान्य जीव हूँ; क्षुद्र-बुद्धि-सीमित बुद्धि वाला; सहजे अस्थिर-आसानी से उत्तेजित हो जाने वाला; ईश्वरेर लीला-भगवान् की लीलाएँ; कोटि-समुद्र-लाखों समुद्रों की भाँति; गम्भीर-गहन।

अनुवाद

वेंकट भट्ट ने तब स्वीकार किया, "मैं एक सामान्य मनुष्य हूँ। मेरी बुद्धि अत्यन्त सीमित है और मैं सरलता से विचलित हो जाता हूँ, अतएव मेरा मन भगवान् की लीलाओं के अगाध समुद्र में प्रवेश नहीं कर पाता।

तुमि साक्षात्सेइ कृष्ण, जान निज-कर्म ।

यारे जानाह, सेइ जाने तोमार लीला-मर्म ॥126॥

तुमि-आप; साक्षात्-साक्षात्; सेइ-वे; कृष्ण–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; जान-आप जानते हैं; निज-कर्म-अपने कार्यकलाप; यारे जानाह-और जिसको आप बताते हैं; सेइ-वह व्यक्ति; जाने-जानता है; तोमार-आपकी; लीला-मर्म-लीलाओं का मर्म (भेद)।

अनुवाद

"आप साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। आप ही अपने कार्यों के प्रयोजन को समझते हैं, या फिर जिसे आप यह ज्ञान प्रदान करें, वह भी आपकी लीलाओं को समझ सकता है।"

तात्पर्य

स्थूल कुंठित इन्द्रियों से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को तथा उनकी लीलाओं को नहीं जाने जा सकते। भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति करके अपनी इन्द्रियों को निर्मल बनाना आवश्यक है। जब भगवान् प्रसन्न होते हैं और अपने आपको प्रकट करते हैं, तब भगवान् के दिव्य रूप, नाम, गुण तथा लीलाओं को समझा जा सकता है। इसकी पुष्टि कठ उपनिषद (2.23) तथा मुण्डक उपनिषद (3.2.3) द्वारा हुई है- यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैषआत्मा विवृणुते तनू स्वाम्–"जिस पर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा हो जाती है, वही उनके दिव्य नाम, गुण, रूप तथा लीलाओं को समझ सकता है।"

प्रभु कहे,—कृष्णेर एक स्वभाव विलक्षण ।

स्व-माधुर्ये सर्व चित्त करे आकर्षण ॥127॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; एक-एक; स्वभाव-स्वभाव; विलक्षण-विशेष; स्व-माधुर्ये-उनका माधुर्य प्रेम; सर्वसभी; चित्त-हृदयों को; करे-करते हैं; आकर्षण–आकर्षित।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "भगवान् कृष्ण का एक विशिष्ट स्वभाव है। वे अपने माधुर्य रस द्वारा हर एक के चित्त को आकर्षित कर लेते हैं।"

व्रज-लोकेर भावे पाइये ताँहार चरण ।

ताँरे ईश्वर करि' नाहि जाने व्रज-जन ॥ 128॥

व्रज-लोकेर-गोलोक वृन्दावन के निवासियों के; भावे-भावावेश में; पाइये-मिलते हैं; ताँहार-भगवान् कृष्ण के; चरण-चरणकमल; ताँरे–उनको; ईश्वर-ईश्वर; करि'-स्वीकार करके; नाहि-नहीं; जाने-जानते; व्रज-जन-व्रजभूमि के निवासी।

अनुवाद

"व्रजलोक या गोलोक वृन्दावन के निवासियों के चरण चिह्नों का अनुसरण करके मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों का आश्रय प्राप्त सकता है। किन्तु उस लोक के निवासी जानते नहीं हैं कि कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।"

केह ताँरे पुत्र-ज्ञाने उदुखले बान्धे ।

केह सखा-ज्ञाने जिनि' चड़े ताँर कान्धे ॥129॥

केह-कोई; ताँरे–उनको; पुत्र-ज्ञाने-पुत्र मानकर; उदुखले–एक बड़ी ऊखल में; बान्धे-बांध देता है; केह-कोई; सखा-ज्ञाने-सखा मानकर; जिनि'-जीतकर; चड़े-चढ़ जाता है; ताँर–उनके; कान्धे-कन्धे पर।

अनुवाद

"वहाँ कोई उन्हें पुत्र के रूप में स्वीकार करके कभी-कभी उन्हें ओखली से बाँध देता है। कोई उन्हें अपना अन्तरंग सखा मानकर, उन पर विजय पाकर उनके कन्धों पर चढ़ जाता है।"

'व्रजेन्द्र-नन्दन' बलि' ताँरे जाने व्रज-जन ।

ऐश्वर्य-ज्ञाने नाहि कोन सम्बन्ध-मानन ॥ 130॥

व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र; बलि'–के रूप में; ताँरे–उनको; जाने-जानते हैं; व्रज-जन-व्रजभूमि के निवासी; ऐश्वर्य-ज्ञाने–आदर भाव में; नाहि-नहीं है; कोन-कोई; सम्बन्ध–सम्बन्ध; मानन-बारे में।

अनुवाद

"व्रजभूमि के निवासी कृष्ण को व्रजभूमि के राजा महाराज नन्द के पुत्ररूप में जानते हैं, और वे मानते हैं कि ऐश्वर्य-रस में भगवान् के साथ कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।"

व्रज-लोकेर भावे येइ करये भजन ।

सेइ जन पाय व्रजे व्रजेन्द्र-नन्दन ॥131॥

व्रज-लोकेर-व्रजभूमि के निवासियों के; भावे-भाव में; येइ-जो; करये-करता है; भजन-पूजा; सेइ जन-वह व्यक्ति; पाय-पाता है; व्रजे-व्रज में; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र भगवान् कृष्ण को।

अनुवाद

"जो व्यक्ति व्रजभूमि के निवासियों के चरणचिह्नों का अनुसरण करता है, वह भगवान् को व्रज के दिव्यलोक में प्राप्त करता है। वहाँ पर महाराज नन्द के पुत्र के रूप में विख्यात हैं।"

तात्पर्य

व्रजभूमि या गोलोक वृन्दावन के निवासी कृष्ण को महाराज नन्द के पुत्र के रूप में जानते हैं। वे उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में नहीं जानते, जैसे सामान्य लोग जानते हैं। भगवान् हर एक के सर्वोपरि पालक हैं और समस्त पुरुषों में प्रधान पुरुष हैं। व्रजभूमि में कृष्ण निश्चित रूप से प्रेम के केन्द्रबिन्दु हैं, किन्तु वहाँ उन्हें कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में नहीं जानता। प्रत्युत वे उन्हें मित्र, पुत्र, प्रेमी या स्वामी के रूप में जानते हैं। प्रत्येक दशा में कृष्ण ही केन्द्रबिन्दु हैं। व्रजभूमि के निवासी भगवान् से दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस द्वारा सम्बन्धित हैं। भक्ति में लगा हुआ व्यक्ति उन्हें इनमें से किसी भी दिव्य सम्बन्ध में अर्थात् रस में स्वीकार कर सकता है। जब ऐसा व्यक्ति पूर्णावस्था को प्राप्त कर लेता है, तब वह अपने शुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप में कृष्ण के पास लौट जाता है।

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिका-सुतः ।

ज्ञानिनां चात्म-भूतानां यथा भक्ति-मतामिह ॥132॥

न-नहीं; अयम्-यह भगवान् श्रीकृष्ण; सुख-आपः-सुगमता से उपलब्ध; भगवान्–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; देहिनाम्-भौतिक व्यक्तियों के लिए, जो स्वयं को शरीर मानते हैं; गोपिका-सुतः–माता यशोदा का पुत्र; ज्ञानिनाम्-ज्ञानियों (मानसिक तर्क करने वालों) के लिए; च-और; आत्म-भूतानाम्-घोर तपस्या करनेवाले व्यक्तियों के लिए; यथा-यथा; भक्ति-मताम्-स्वतःस्फूर्त भक्ति में लगे व्यक्तियों के लिए; इह-इस संसार में।

अनुवाद

तब चैतन्य महाप्रभु ने प्रमाण दिया, "यशोदा-पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण उन भक्तों को सुलभ हैं, जो रागानुगा भक्ति में लगे हैं, किन्तु वे ज्ञानियों, तपस्या में रत आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करने वालों या आत्मा और शरीर को एक मानने वालों को सहज सुलभ नहीं हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.9.21) से लिया गया है और मध्यलीला (8.227) में भी आया है।

श्रुति-गण गोपी-गणेर अनुगत हञा ।

व्रजेश्वरी-सुत भजे गोपी-भाव लञा ॥ 133॥

श्रुति-गण-वैदिक मंत्रों के अधिकारी: गोपी-गणेर-गोपियों के; अनुगत हञा-चरणचिह्नों पर चलकर; व्रजेश्वरी-सुत-माता यशोदा के पुत्र; भजे-पूजा करते हैं; गोपी-भाव-गोपियों के भाव में; लञा–स्वीकार करके।

अनुवाद

"वैदिक साहित्य के अधिकारियों ने, जो श्रुतिगण कहलाते हैं, गोपी-भाव में कृष्ण की पूजा की और उनके चरणचिह्नों का अनुसरण किया।"

तात्पर्य

वैदिक साहित्य के अधिकारियों ने, जो श्रुति-गण कहलाते हैं, भगवान् कृष्ण के रासनृत्य में प्रवेश करना चाहा; अतः उन्होंने गोपियों के भाव में भगवान् की पूजा करनी प्रारम्भ की। प्रारम्भ में वे असफल रहे। जब गोपियों के भाव में मात्र कृष्ण का चिन्तन करने से वे नृत्य में प्रवेश नहीं कर पाये, तो उन्होंने वास्तव में गोपियों जैसा शरीर धारण कर लिया। यहाँ तक कि उन्होंने गोपियों के ही समान व्रजभूमि में जन्म भी लिया और फलस्वरूप वे गोपियों के प्रेम-भाव में निमग्न हो गये। इस तरह उन्हें भगवान् की रासलीला में प्रवेश करने को मिला।

बाह्यान्तरे गोपी-देह व्रजे यबे पाइल ।

सेइ देहे कृष्ण-सङ्गे रास-क्रीड़ा कैल ॥134॥

बाह्य-अन्तरे-बाह्य तथा आन्तरिक रूप से; गोपी-देह-गोपी का शरीर; व्रजे-व्रजभूमि में; यबे-जब; पाइल-उन्हें मिला; सेइ देहे-उस शरीर में; कृष्ण-सङ्गे–कृष्ण के साथ; रास-क्रीड़ा-रास नृत्य की लीलाएँ; कैल-कीं।

अनुवाद

"वैदिक स्तोत्रों के साकार अधिकारियों ने गोपियों जैसा शरीर प्राप्त किया और व्रजभूमि में जन्म लिया। तब उन शरीरों में उन्हें भगवान् की रासलीला नृत्य में प्रविष्ट होने दिया गया।"

गोप-जाति कृष्ण, गोपी—प्रेयसी ताँहार ।

देवी वा अन्य स्त्री कृष्ण ना करे अङ्गीकार ॥135॥

गोप-जाति-गोप-समाज; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; गोपी-व्रजभूमि की युवतियाँ, गोपियाँ; प्रेयसी–सर्वप्रिया; ताँहार-उनकी; देवी-देवताओं की पत्नियाँ; वा-अथवा; अन्य-अन्य; स्त्री-महिलाएँ; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ना-नहीं; करे-करते; अङ्गीकार-स्वीकार।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण गोप जाति के हैं, और गोपियाँ कृष्ण की सर्वप्रिय प्रेमिकाएँ हैं। यद्यपि स्वर्गलोक के निवासियों की पत्नियाँ भौतिक जगत् में सर्वाधिक ऐश्वर्यवान हैं, किन्तु न तो वे, न भौतिक जगत् की अन्य स्त्रियाँ, कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त कर सकती हैं।"

लक्ष्मी चाहे सेइ देहे कृष्णेर सङ्गम ।

गोपिका-अनुगा हञा ना कैल भजन ॥ 136 ॥

लक्ष्मी-लक्ष्मीदेवी; चाहे-चाहती हैं; सेइ-उसी; देहे-शरीर में; कृष्णेर सङ्गम-कृष्ण का संग; गोपिका-गोपियों की; अनुगा–अनुगामी; हञा–होकर; ना-नहीं; कैल-की; भजन-पूजा।

अनुवाद

"लक्ष्मीजी कृष्ण के साथ भोग करना चाहती थीं, किन्तु साथ ही साथ लक्ष्मी के रूप में अपना आध्यात्मिक शरीर बनाये रखना चाहती थीं। किन्तु उन्होंने कृष्ण की पूजा करने में गोपियों के पदचिह्नों का अनुसरण नहीं किया।"

अन्य देहे ना पाइये रास-विलास ।

अतएव 'नायं' श्लोक कहे वेद-व्यास ॥137॥

अन्य देहे-गोपियों के शरीर से अतिरिक्त देह में; ना-नहीं; पाइये-मिलता; रास-विलास-रास नृत्य की लीलाएँ; अतएव–अतएव; नायम्-नायम शब्द से आरम्भ करके; श्लोक-संस्कृत श्लोक; कहे-कहते हैं; वेद-व्यास-द्वैपायन वेदव्यास।

अनुवाद

"वैदिक साहित्य के सर्वोपरि अधिकारी व्यासदेव ने नायं सुखापो भगवान् से प्रारम्भ होने वाले श्लोक की रचना की, क्योंकि गोपियों के शरीर के अतिरिक्त अन्य कोई शरीर में व्यक्ति रासलीला नृत्य में प्रवेश नहीं कर सकता।"

तात्पर्य

इस श्लोक से भगवद्गीता (9.25) के निम्नलिखित श्लोक की पुष्टि होती है :

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः ।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

भगवान् कृष्ण ने कहा-"देवताओं की पूजा करने वाले देवताओं के मध्य जन्म लेंगे, पूर्वजों की पूजा करने वाले पूर्वजों के पास जाते हैं, भूतप्रेतों की पूजा करने वाले उन्हीं के बीच जन्म लेंगे और जो मेरी पूजा करते हैं, वे मेरे साथ रहेंगे।"

इस भौतिक जगत् में प्रत्येक बद्धात्मा अपना भौतिक शरीर बारम्बार बदलता है, किन्तु जब आत्मा सारे भौतिक आवरणों से शुद्ध हो जाता है, तब उसके दोबारा भौतिक शरीर पाने का कोई अवसर नहीं रहता। ऐसा जीव अपने उस मौलिक आध्यात्मिक स्वरूप में बना रहता है, जिसे कृष्णभावनामृत के अभ्यास के माध्यम से कृष्ण को वास्तविक रूप में समझने से ही पाना सम्भव है। जैसा कृष्ण ने भगवद्गीता (4.9) में कहा है :

जन्म कर्म च मे दिव्यं एवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

"हे अर्जुन, जो मेरे आविर्भाव तथा कार्यकलापों के दिव्य स्वभाव को जानता है, वह इस शरीर को त्यागने पर इस भौतिक संसार में पुनः जन्म नहीं लेता है, प्रत्युत मेरे शाश्वत धाम को प्राप्त करता है।"

मनुष्य अपने मूल आध्यात्मिक शरीर को प्राप्त करके ही वैकुण्ठ में प्रवेश कर सकता है। जहाँ तक भगवान् की रासलीला का सम्बन्ध है, इस भौतिक जगत् में रहने वाले के लिए उनके नृत्यों का अनुकरण करने की चेष्टा करना व्यर्थ है। रासलीला में प्रवेश पाने के लिए गोपियों जैसा आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करना आवश्यक है। नायं सुखापो श्लोक में भक्तों को भक्तिमत् कहा गया है। अर्थात् वे भक्ति में पूर्णतः लगे रहते हैं और भौतिक कल्मष से रहित होते हैं। मात्र कृष्ण

की रासलीला का अनुकरण करने से या अपने आपको सखी समझने और उसकी तरह वेश बनाने से कोई रासलीला में प्रवेश नहीं कर सकता। कृष्ण की रासलीला नितान्त आध्यात्मिक है। भौतिक कल्मष से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव कृत्रिम भौतिक साधनों से कृष्ण-लीलाओं में कोई प्रवेश नहीं पा सकता। नायं सुखापो श्लोक का यही उपदेश है और इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

पूर्वे भट्टर मने एक छिल अभिमान ।

'श्री-नारायण' हयेन स्वयं-भगवान् ॥138॥

पूर्व–इससे पूर्व; भट्टर-वेंकट भट्ट के; मने-मन में; एक-एक; छिल-थी; अभिमान-धारणा; श्री-नारायण-नारायण के रूप में भगवान्; हयेन-हैं; स्वयम्-स्वयं; भगवान्-भगवान्।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा की गई इस विवेचना के पूर्व वेंकट भट्ट मानते थे कि श्री नारायण ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

ताँहार भजन सर्वोपरि-कक्षा हय ।

श्री-वैष्णवे'र भजन एइ सर्वोपरि हय ॥ 139॥

ताँहार भजन–नारायण की पूजा; सर्व-उपरि–सर्वोच्च; कक्षा-स्तर; हय-है; श्री-वैष्णवेर-श्री रामानुजाचार्य के अनुयायियों की; भजन-पूजा; एइ-यह; सर्व-उपरि हय-सर्वश्रेष्ठ है।

अनुवाद

इस प्रकार सोचते हुए वेंकट भट्ट का विश्वास था कि नारायण की पूजा ही सर्वोपरि पूजा है-भक्ति की अन्य सभी विधियों से सर्वोपरि है, क्योंकि इसका अनुसरण रामानुजाचार्य के श्री वैष्णव शिष्य करते थे।

एइ ताँर गर्व प्रभु करिते खण्डन ।

परिहास-द्वारे उठाय एतेक वचन ॥ 140 ॥

एइ-यह; ताँर-वेंकट भट्ट का; गर्व-गर्व; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करिते खण्डन-टुकड़े टुकड़े करने के लिए; परिहास-द्वारे-परिहास के बहाने; उठाय-उठाते हैं; एतेक-कई; वचन–शब्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु वेंकट भट्ट की इस भ्रान्ति को समझ गये थे, और इसे सुधारने के उद्देश्य से ही महाप्रभु इस प्रकार परिहास में इतना बोल रहे थे।

प्रभु कहे,—भट्ट, तुमि ना करिह संशय ।

'स्वयं-भगवान् कृष्ण एइ त निश्चय ॥ 141॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; भट्ट-प्रिय वेंकट भट्ट; तुमि-तुम; ना करिह-नहीं करो; संशय-सन्देह; स्वयम्-भगवान्–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; कृष्ण-कृष्ण हैं; एइ त' निश्चय-यही निष्कर्ष है।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने कहा, "हे वेंकट भट्ट, अब अधिक संशय मत करो। कृष्ण ही स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, और यही वैदिक साहित्य का निर्णय है।"

कृष्णेर विलास-मूर्ति—श्री-नारायण ।

अतएव लक्ष्मी-आद्येर हरे तेंह मन ॥142॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; विलास-मूर्ति–विलास मूर्ति; श्री-नारायण-भगवान् नारायण; अतएव–अतएव; लक्ष्मी-आद्यैर-लक्ष्मी आदि देवियों का; हरे-आकर्षित करते हैं; तेंह-वे (भगवान् नारायण); मन-मन।

अनुवाद

"कृष्ण का ऐश्वर्यशाली रूप, भगवान् नारायण, लक्ष्मी तथा उनकी सखियों के मन को आकृष्ट करता है।"

एते चांश-कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ।

इन्द्रारि-व्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे ॥143॥

एते-ये; च-और; अंश-अंश; कला:-अंशों के अंश; पुंसः-पुरुष अवतारों के; कृष्णः- भगवान् कृष्ण; तु–किन्तु; भगवान्–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; स्वयम्-स्वयं; इन्द्र-अरि–इन्द्रदेव के शत्रु; व्याकुलम्-व्याकुल; लोकम्-संसार; मृड़यन्ति–प्रसन्न करते हैं; युगे युगे-प्रत्येक युग में।

अनुवाद

"ईश्वर के ये सारे अवतार, पुरुषावतार के अंश या कला हैं। किन्तु कृष्ण साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। जब-जब इन्द्र के शत्रुओं द्वारा यह जगत् व्याकुल होता है, तब-तब हर युग में वे अपने विभिन्न स्वरूपों द्वारा संसार की रक्षा करते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.3.28) से लिया गया है।

नारायण हैते कृष्णेर असाधारण गुण ।

अतएव लक्ष्मीर कृष्णे तृष्णा अनुक्षण ॥ 144॥

नारायण हैते–नारायण से अधिक; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; असाधारण गुण-असाधारण गुण; अतएव–अतएव; लक्ष्मीर-लक्ष्मी की; कृष्णे-कृष्ण में; तृष्णा-इच्छा; अनुक्षण–सदैव।

अनुवाद

"चूँकि कृष्ण में ऐसे चार असाधारण गुण हैं, जो नारायण में नहीं हैं, अतएव लक्ष्मीजी सदैव उनका संग चाहती हैं।"

तात्पर्य

भगवान् नारायण में 60 दिव्य गुण होते हैं। किन्तु भगवान् कृष्ण में इनके अतिरिक्त भी चार असाधारण दिव्य गुण पाये जाते हैं। ये हैं-(1) समुद्र के तुल्य उनकी अद्भुत लीलाएँ, (2) माधुर्य प्रेम में सर्वश्रेष्ठ भक्तों (गोपियों) से घिरा होना, (3) कृष्ण का वंशीवादन, जिसकी ध्वनि तीनों लोकों को आकृष्ट करने वाली है तथा (4) कृष्ण का असाधारण सौन्दर्य, जो तीनों लोकों के परे है। भगवान् कृष्ण का सौन्दर्य अनुपम और अपार है।

तुमि ये पड़िला श्लोक, से हय प्रमाण।

सेइ श्लोके आइसे 'कृष्ण—स्वयं भगवान्' ॥145॥

तुमि-तुमने; ये-जो; पड़िला-पढ़ा है; श्लोक-श्लोक; से-वह; हय-है; प्रमाण-प्रमाण; सेइ श्लोके—उस श्लोक में; आइसे कृष्ण-कृष्ण हैं; स्वयम् भगवान्-स्वयं भगवान्।

अनुवाद

"तुमने सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि से आरम्भ होने वाला श्लोक सुनाया है। यह श्लोक ही साक्षी है कि कृष्ण स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।"

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्ण-स्वरूपयोः।

रसेनोत्कृष्यते कृष्ण-रूपमेषा रस-स्थितिः ॥146॥

सिद्धान्ततः–वास्तव में; तु–किन्तु; अभेदे-कोई भेद नहीं; अपि-यद्यपि; श्री-ईश-लक्ष्मी के पति श्री नारायण; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; स्वरूपयोः-रूपों में; रसेन-दिव्य रसों से; उत्कृष्यते-श्रेष्ठ हैं; कृष्ण-रूपम्-भगवान् कृष्ण का रूप; एषा–यह; रस-स्थितिः-आनन्द का आगार।

अनुवाद

"दिव्य अनुभूति के अनुसार कृष्ण तथा नारायण के रूपों में कोई अन्तर नहीं है। फिर भी माधुर्य रस के कारण कृष्ण में विशिष्ट दिव्य आकर्षण है। फलतः वे नारायण से बढ़कर हैं। यह दिव्य रसों का निष्कर्ष है।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृत सिन्धु (1.2.59) से लिया गया है। यहाँ श्रील कृष्णदास कविराज कहते हैं कि चैतन्य महाप्रभु ने वेंकट भट्ट को यह श्लोक सुनाया, किन्तु इससे पहले उन्होंने कहा कि वेंकट भट्ट ने उन्हें यह श्लोक सुनाया। चूँकि उनकी वार्ता भक्तिरसामृतसिंधु की रचना से काफी पहले हुई थी, अत: यह प्रश्न उठ सकता है कि यह श्लोक उन दोनों ने कैसे सुनाया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर व्याख्या करते हैं कि यह श्लोक तथा अन्य अनेक श्लोक भक्तिरसामृतसिंधु की रचना के काफी पहले से भक्तों में प्रचलित थे। अतः भक्तगण उन्हें सदा सुनाया करते थे और उनके तात्पर्य भावावेश में आकर स्पष्ट किया करते थे।

स्वयं भगवान् कृष्ण हरे लक्ष्मीर मन।

गोपिकार मन हरिते नारे 'नारायण' ॥147॥

स्वयम् भगवान्–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; कृष्ण-भगवान् कृष्ण हैं; हरे-आकर्षित करते हैं; लक्ष्मीर-लक्ष्मी का; मन–मन; गोपिकार-गोपियों के; मन–मन; हरिते-हरने के लिए; नारे-नहीं कर सकते; नारायण-भगवान् नारायण।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण लक्ष्मी के मन को आकृष्ट करते हैं, किन्तु भगवान् नारायण गोपियों के मन को आकृष्ट नहीं कर पाते। इससे कृष्ण की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है।"

नारायणेर का कथा, श्री कृष्ण आपने।

गोपिकारे हास्य कराइते हय 'नारायणे' ॥ 148॥

नारायणेर-भगवान् नारायण का; का कथा-क्या कहा जाए; श्री-कृष्ण-भगवान् श्रीकृष्ण; आपने–स्वयं; गोपिकारे-गोपियों को; हास्य कराइते-प्रसन्न करने के लिए; हय-बने; नारायणे-नारायण के रूप में।

अनुवाद

"भगवान् नारायण के विषय में क्या कहा जाये, गोपियों के साथ मजाक उड़ाने के लिए भगवान् कृष्ण स्वयं नारायण के रूप में प्रकट हुए।"

'चतुर्भुज-मूर्ति' देखाय गोपी-गणेर आगे।

सेइ 'कृष्णे' गोपिकार नहे अनुरागे ॥149॥

चतुर्भुज-मूर्ति–चतुर्भुज मूर्ति; देखाय-दिखाते हैं; गोपी-गणेर-गोपियों के; आगे-समक्ष; सेइ कृष्णे-उन कृष्ण में; गोपिकार-गोपियों का; नहे-नहीं; अनुरागे-आकर्षण।

अनुवाद

"यद्यपि कृष्ण ने नारायण का चतुर्भुज स्वरूप धारण कर लिया, किन्तु वे गोपिकाओं की प्रेमदृष्टि को आकृष्ट नहीं कर सके।"

गोपीनां पशुपेन्द्र-नन्दन-जुषो भावस्य कस्तां कृती

विज्ञातुं क्षमते दुरूह-पदवी-सञ्चारिणः प्रक्रियाम् ।

आविष्कुर्वति वैष्णवीमपि तनुं तस्मिन्भुजैर्जीष्णुभिर्

यासां हन्त चतुर्भिरद्भुत-रुचिं रागोदयः कुञ्चति ॥ 150॥

गोपीनाम्-गोपियों का; पशुप-इन्द्र-नन्दन-जुषः-व्रज के राजा महाराज नन्द के पुत्र की सेवा के; भावस्य-भाव का; कः-क्या; ताम्-उसे; कृती-विद्वान; विज्ञातुम्-समझने के लिए; क्षमते-समर्थ हैं; दुरूह-समझना कठिन; पदवी–स्थिति; सञ्चारिणः-जो प्रेरित करती है; प्रक्रियाम्-कार्यकलाप; आविष्कुर्वति–वे प्रकट करते हैं; वैष्णवीम्-विष्णु का; अपि-निश्चित रूप से; तनुम्–शरीर; तस्मिन्-उसमें; भुजैः-भुजाओं से; जिष्णुभिः-अति सुन्दर; यासाम्-जिनका (गोपियों का); हन्त-खेद है; चतुर्भिः-चार; अद्भुत-अद्भुत; रुचिम्-सुन्दर; राग-उदयः–राग प्रेम का उदय (भावनाएँ); कुञ्चति–कम हो गई।

अनुवाद

"एक बार भगवान् कृष्ण ने चतुर्भुजी नारायण का अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण किया। किन्तु जब गोपियों ने उनके इस भव्य स्वरूप को देखा, तो उनके भाव कुंठित हो गये। इसलिए विद्वान व्यक्ति भी गोपियों के ऊर्मिमय भावों को नहीं समझ सकता, क्योंकि वे नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण के आदि स्वरूप पर पूरी तरह स्थिर हैं। कृष्ण के साथ गोपियों का परम रस आध्यात्मिक जीवन का सबसे बड़ा रहस्य है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत ललित-माधव-नाटक (6.14) का है, जिसे नारद मुनि ने कहा था।

एत कहि' प्रभु ताँर गर्व चूर्ण करिया ।

ताँरे सुख दिते कहे सिद्धान्त फिराइया ॥ 151॥

एत कहि'-यह कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर–वेकंट भट्ट का; गर्व–गर्व; चूर्ण करिया-भंग किया; ताँरे–उसको; सुख दिते-सुख देने के लिए; कहे-कहते हैं; सिद्धान्त फिराइया-सारी बात को बदलकर।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने वेंकट भट्ट के गर्व को चूर्ण कर दिया, किन्तु उन्हें पुनः प्रसन्न करने के उद्देश्य से वे इस प्रकार बोले।

दुःख ना भाविह, भट्ट, कैलुँ परिहास ।

शास्त्र-सिद्धान्त शुन, याते वैष्णव-विश्वास ॥152॥

दुःख-दुःख; ना-नहीं; भाविहकरना; भट्ट-मेरे प्रिय भट्ट; कैलुँ परिहास-मैं तो मात्र मजाक कर रहा था; शास्त्र-सिद्धान्त-शास्त्रों के निष्कर्ष; शुन-सुनो; याते-जिनमें; वैष्णव-विश्वास-वैष्णवों की श्रद्धा।

अनुवाद

महाप्रभु ने वेंकट भट्ट को यह कहकर सान्त्वना दी, "वास्तव में मैंने जो कुछ कहा, वह परिहास था। अब तुम मुझसे शास्त्रों का निष्कर्ष सुन सकते हो, जिसमें हर वैष्णव भक्त का दृढ़ विश्वास होता है।"

कृष्ण-नारायण, यैछे एकइ स्वरूप ।

गोपी-लक्ष्मी-भेद नाहि हय एक-रूप ॥ 153 ॥

कृष्ण-नारायण-भगवान् कृष्ण और भगवान् नारायण; यैछे-जैसे; एक-एक स्वरूप-स्वरूप; गोपी-गोपियाँ; लक्ष्मी-लक्ष्मी; भेद-अन्तर; नाहि-नहीं है; हय-है; एक-रूप-समान रूप।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण तथा भगवान् नारायण में कोई भेद नहीं है, क्योंकि दोनों एकरूप हैं। इसी प्रकार गोपियों तथा लक्ष्मी में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि वे भी एकरूप हैं।"

गोपी-द्वारे लक्ष्मी करे कृष्ण-सङ्गास्वाद ।

ईश्वरत्वे भेद मानिले हय अपराध ॥ 154॥

गोपी-द्वारे-गोपियों द्वारा; लक्ष्मी-लक्ष्मी; करे-करती हैं; कृष्ण-सङ्ग-आस्वाद-भगवान् कृष्ण की संगति की मधुरता का आस्वादन; ईश्वरत्वे-भगवान् में; भेद-भेद; मानिले–यदि कोई माने; हय-है; अपराध-अपराध।

अनुवाद

"लक्ष्मीजी गोपियों के माध्यम से कृष्ण संग का आस्वादन करती हैं। हमें चाहिए कि भगवान् के स्वरूपों में भेदभाव न बरतें, क्योंकि ऐसा करना अपराध है।"

एक ईश्वर—भक्तेर ध्यान-अनुरूप ।

एकइ विग्रहे करे नानाकार रूप ॥155॥

एक ईश्वर–भगवान् एक हैं; भक्तेर-भक्तों के; ध्यान-ध्यान; अनुरूप-अनुरूप; एकइ–एक ही; विग्रहे-अर्चाविग्रह में; करे-प्रकट होते हैं; नाना-आकार–विविध; रूप-रूप।

अनुवाद

"भगवान् के दिव्य रूपों में कोई अन्तर नहीं होता। विभिन्न भक्तों की विभिन्न अनुरक्तियों के कारण विभिन्न रूप प्रकट होते हैं। वास्तव में भगवान् एक हैं, लेकिन वे अपने भक्तों को सन्तुष्ट करने के लिए विविध रूपों में प्रकट होते हैं।"

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता (5.33) में कहा गया है :

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्त रूपम्

आद्य पुराणपुरुषं नवयौवनं च ।

भगवान् अद्वैत हैं। कृष्ण, राम, नारायण तथा विष्णु रूपों में कोई अन्तर नहीं है। वे सभी एक हैं। कभी-कभी मूर्ख लोग हमसे हरे कृष्ण मन्त्र में आने वाले "राम" के विषय में पूछते हैं कि यह भगवान् रामचन्द्र के लिए है, या भगवान् बलराम के लिए। यदि कोई भक्त यह कहे कि हरे कृष्ण महामन्त्र का राम नाम बलराम के लिए आया है, तो कोई मूर्ख व्यक्ति नाराज हो उठेगा, क्योंकि वह राम से भगवान् रामचन्द्र समझता है। वास्तव में बलराम तथा भगवान् राम में कोई अन्तर नहीं है। हरे राम कीर्तन में राम शब्द चाहे रामचन्द्र का द्योतक हो या बलराम का, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। किन्तु यह सोचना अपराध है कि बलराम राम से या राम बलराम से श्रेष्ठ हैं। नये भक्त इस शास्त्रीय सिद्धान्त को नहीं समझते; इसलिए वे कभी-कभी अनावश्यक अपराधपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर देते हैं।

श्लोक 154 में इसको श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त सरल ढंग से स्पष्ट करते हैं-ईश्वरत्वे भेद मानिले हय अपराध-"ईश्वर के विविध रूपों में अन्तर करना अपराध है।" किन्तु यह भी नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् के विविध रूप तथा देवताओं के रूप एक ही हैं। यह निश्चित रूप से अपराध है, जैसी कि वैष्णव-तन्त्र में पुष्टि हुई है :

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः ।

समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम् ॥

"जो ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे बड़े-बड़े देवताओं को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण के समान मानता है, वह पाषण्डी है" (हरिभक्ति विलास 7.117)।

अतः हमें भगवान् के स्वरूपों में अन्तर नहीं करना चाहिए। किन्तु हमें यह भी समझना चाहिए कि भगवान् के विविध रूपों को देवताओं या मनुष्यों के तुल्य न मानें। उदाहरणार्थ, कभी-कभी मूर्ख संन्यासी नारायण की समता दरिद्र नारायण से करते हैं, क्योंकि वे भगवान् के शरीर को भौतिक समझते हैं, जो सरासर अपराध है। प्रामाणिक गुरु से उपदेश प्राप्त किये बिना इन विभिन्न स्वरूपों को पूरी तरह से नहीं समझा जा सकता। ब्रह्म-संहिता में पुष्टि हुई है- वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ । केवल अध्ययन या वैदिक अध्ययन से भगवान् के विभिन्न रूपों को नहीं समझा जा सकता। स्वरूपसिद्ध भक्त से इसे सीखना होगा। तभी भगवान् के विभिन्न रूपों में अन्तर करना सीखा जा सकता है। निष्कर्ष यह है कि भगवान् के रूपों में अन्तर नहीं है, किन्तु उनके स्वरूपों तथा देवताओं के स्वरूपों में अन्तर अवश्य है।

मणिर्यथा विभागेन नील-पीतादिभिर्युतः ।

रूप-भेदमवाप्नोति ध्यान-भेदात्तथाच्युतः ॥156॥

मणिः-मणि, विशेषकर वैदुर्य मणि; यथा-जैसे; विभागेन–अलग अलग; नील-नीला; पीत–पीला; आदिभिः-और दूसरे रंगों वाला; युतः-मिलाकर; रूप-भेदम्-रूपों के भेद; अवाप्नोति मिलते हैं; ध्यान-भेदात्-ध्यान भेद से; तथा–तथा; अच्युतः-अच्युत भगवान्।

अनुवाद

“जब वैदूर्य मणि अन्य वस्तुओं का स्पर्श करता है, तो यह विभिन्न रंगों में विभक्त होता प्रतीत होता है, फलतः उसके रूप भी भिन्न लगने लगते हैं। इसी प्रकार भक्त के ध्यान-भाव के अनुसार अच्युत भगवान् एक होते हुए भी विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्री नारद पञ्चरात्र से लिया गया है।

भट्ट कहे,—काहाँ आमि जीव पामर ।

काहाँ तुमि सेइ कृष्ण,—साक्षातीश्वर ॥ 157॥

भट्ट कहे-वेंकट भट्ट ने कहा; काहाँ–कहाँ; आमि-मैं; जीव-एक साधारण जीव; पामर-पतित; काहाँ–कहाँ; तुमि-आप; सेइ कृष्ण-वही पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् कृष्ण; साक्षात् ईश्वर–साक्षात् ईश्वर।

अनुवाद

तब वेंकट भट्ट ने कहा, “मैं सामान्य पतित जीव हूँ, किन्तु आप तो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं।”

अगाध ईश्वर-लीला किछुइ ना जानि ।

तुमि येइ कह, सेइ सत्य करि’ मानि ॥ 158॥

अगाध-अगाध; ईश्वर-लीला-भगवान् की लीलाएँ; किछुइ-कुछ भी; ना जानि-मैं नहीं जानता; तुमि-आप; येइ-जो कुछ; कह–कहते हैं; सेइ सत्य-वह सत्य है; करि’ मानि–मैं स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

“भगवान् की लीलाएँ अगाध हैं और मैं उनके विषय में कुछ भी नहीं जानता। आप जो भी कहते हैं मैं उन्हें ही सत्य के रूप में स्वीकार करता हूँ।”

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विषयक सत्य जानने की यही विधि है। अर्जुन ने भगवद्गीता सुनने के बाद यही बात कही थी (10.14) :

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।

न हि ते भगवन् व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥

"हे कृष्ण, आपने मुझसे जो कुछ भी कहा है, उसे मैं सत्य के रूप में स्वीकार करता हूँ। हे प्रभु, आपके व्यक्तित्व को न देवता समझ सकते हैं न असुर।"

केवल अपने तर्क, दलील तथा शिक्षा से भगवान् की लीलाओं के सत्य को समझ पाना सम्भव नहीं है। हमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से प्रामाणिक सूचना प्राप्त करनी चाहिए, जिस तरह अर्जुन ने कृष्ण से भगवद्गीता के प्रवचन करने पर प्राप्त की। हमें भगवद्गीता या किसी भी अन्य वैदिक साहित्य पर विश्वास करना होगा। ये वैदिक ग्रंथ भगवान् के विषय में ज्ञान के एकमात्र स्रोत हैं। हमें यह समझ लेना चाहिए कि हम तर्क की प्रक्रिया से परम सत्य को नहीं जान सकते।

मोरे पूर्ण कृपा कैल लक्ष्मी-नारायण ।

ताँर कृपाय पाइनु तोमार चरण-दरशन ॥ 159॥

मोरे-मुझ पर; पूर्ण–पूर्ण; कृपा-कृपा; कैल-की; लक्ष्मी-नारायण-लक्ष्मी नारायण ने; ताँर कृपाय-उनकी कृपा से; पाइनु-मैंने पाया है; तोमार-आपके; चरण-दरशन-चरणकमलों का दर्शन।

अनुवाद

"मैं लक्ष्मी-नारायण की सेवा में लगा हुआ था और उन्हीं की कृपा से मैं आपके चरणकमलों का दर्शन कर सका हूँ।"

कृपा करि' कहिले मोरे कृष्णेर महिमा ।

याँर रूप-गुणैश्वर्येर केह ना पाय सीमा ॥ 160॥

कृपा करि'-अहैतुकी कृपा दिखाकर; कहिले-आपने बताईं; मोरे-मुझे; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; महिमा-महिमाएँ; याँर–जिनके; रूप-गुण-ऐश्वर्येर-रूप, गुण और ऐश्वर्य की; केह-कोई; ना-नहीं; पाय-पाता; सीमा-सीमा।

अनुवाद

"अपनी अहैतुकी कृपा से आपने मुझे भगवान् कृष्ण की महिमा बतलाई। भगवान् के ऐश्वर्य, गुण तथा रूप का कोई भी अन्त नहीं पा सकता।"

एबे से जानिनु कृष्ण-भक्ति सर्वोपरि ।

कृतार्थ करिले, मोरे कहिले कृपा करि' ॥ 161॥

एबे-अब; से-वह; जानिनु-मैं समझता हूँ; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण भक्ति; सर्व-उपरि–सर्वश्रेष्ठ ; कृत-अर्थ-सफल; करिले-आपने की है; मोरे-मुझे; कहिले-आपने कहा है; कृपा करि'-अपनी अहैतुकी कृपा से।

अनुवाद

"अब मैं समझ सका हूँ कि भगवान् कृष्ण की भक्ति ही सर्वोपरि पूजा है। आपने अहैतुकी कृपा करते हुए तथ्यों की व्याख्या करके ही मेरे जीवन को कृतार्थ कर दिया।"

एत बलि' भट्ट पड़िला प्रभुर चरणे ।

कृपा करि' प्रभु ताँरे कैला आलिङ्गने ॥ 162॥

एत बलि'-यह कहकर; भट्ट-वेंकट भट्ट; पड़िला–गिर पड़े; प्रभुर चरणे–महाप्रभु के चरणकमलों पर; कृपा करि'–उन पर कृपा करके; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे-उनका; कैला–किया; आलिङ्गने-आलिंगन।

अनुवाद

यह कहकर वेंकट भट्ट महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और महाप्रभु ने अपनी अहैतुकी कृपा करते हुए उनका आलिंगन किया।

चातुर्मास्य पूर्ण हैल, भट्ट-आज्ञा लञा ।

दक्षिण चलिला प्रभु श्री-रङ्ग देखिया ॥ 163 ॥

चातुर्मास्य-चतुर्मास की अवधि; पूर्ण हैल–पूर्ण हुई; भट्ट-आज्ञा लञा-वेंकट भट्ट से आज्ञा लेकर; दक्षिण–दक्षिण; चलिला–चले गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; श्री-रङ्ग देखिया-श्रीरंग मन्दिर का दर्शन करके।

अनुवाद

जब चातुर्मास्य का काल व्यतीत हो गया, तब पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रस्थान करने के लिए वेंकट भट्ट से अनुमति माँगी, और श्रीरंग का दर्शन करने के बाद वे दक्षिण भारत की ओर आगे बढ़ गये।।

सङ्क्ते चलिला भट्ट, ना याय भवने ।

ताँरे विदाय दिला प्रभु अनेक यतने ॥ 164॥

सङ्गेते-उनके साथ; चलिला–चलने लगे; भट्ट-वेंकट भट्ट; ना याय भवने-अपने घर वापस नहीं जाते; ताँरे-उनको; विदाय दिला–विदा दी; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु: अनेक यतने-अत्यन्त प्रयास से (बहुत मुश्किल से)।

अनुवाद

वेंकट भट्ट घर लौटना नहीं चाहते थे, किन्तु उनके साथ जाना चाह रहे थे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने बड़े ही प्रयत्न से उन्हें विदा किया।

प्रभुर वियोगे भट्ट हैल अचेतन ।

एइ रङ्ग-लीला करे शचीर नन्दन ॥ 165॥

प्रभुर वियोगे- श्री चैतन्य महाप्रभु के वियोग के कारण; भट्ट-वेंकट भद्र: हैल-हो गये; अचेतन-अचेत; एइ–यह; रङ्ग-लीला-श्री रंगक्षेत्र में लीलाएँ; करे-करते हैं; शचीर नन्दन-माता शची के पुत्र।

अनुवाद

महाप्रभु के चले जाने पर वेंकट भट्ट बेहोश होकर गिर पड़े। श्री-रंगक्षेत्र में शचीपुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ ऐसी थीं।

ऋषभ-पर्वते चलि' आइला गौरहरि ।

नारायण देखिला ताँहा नति-स्तुति करि' ॥ 166 ॥

ऋषभ-पर्वते-ऋषभ पर्वत को; चलि'–पैदल चलकर; आइला–पहुँचे; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु; नारायण-भगवान् नारायण के अर्चाविग्रह को; देखिला देखा; ताँहा-वहाँ; नति-स्तुति करि'-प्रणाम तथा स्तुति करके।

अनुवाद

महाप्रभु ने ऋषभ पर्वत पहुँचकर भगवान् नारायण का मन्दिर देखा और नमस्कार किया। साथ ही विविध स्तुतियाँ कीं।

तात्पर्य

दक्षिण तामिलनाडु के मदुरई जिले में ऋषभ पर्वत है। मदुरई शहर से बारह मील उत्तर की ओर आनागड़-मलय-पर्वत है, जिसे ऋषभ पर्वत भी कहते हैं और जो कुटकाचल पर्वतों में से एक है। इसी के निकट वाले जंगल में भगवान् ऋषभदेव ने आत्मदाह कर लिया था।

परमानन्द-पुरी ताहाँ रहे चतुर्मास ।

शुनि' महाप्रभु गेला पुरी-गोसाञिर पाश ॥167॥

परमानन्द-पुरी-परमानन्द पुरी; ताहाँ-वहाँ; रहे-रहे; चतुर्-मास-चार मास; शुनि'–सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला–गये; पुरी-परमानन्द पुरी; गोसाञिर-गोसांई ; पाश–के पास।

अनुवाद

परमानन्द पुरी चतुर्मास में इसी ऋषभ पर्वत में रह रहे थे और जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह सुना, तो वे तुरन्त उन्हें मिलने गये।

पुरी-गोसाञिर प्रभु कैल चरण वन्दन ।

प्रेमे पुरी गोसाञि ताँरे कैल आलिङ्गन ॥168॥

पुरी-गोसाञिर-परमानन्द पुरी की; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैल–किया; चरण वन्दन-चरण वन्दना; प्रेमे-प्रेम में; पुरी गोसाञि-परमानन्द पुरी; ताँरे–उनको; कैल-किया; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

परमानन्द पुरी से मिलने पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका पाद-स्पर्श करके सम्मान किया और परमानन्द पुरी ने प्रेमवश महाप्रभु का आलिंगन किया।

तिन-दिन प्रेमे दोंहे कृष्ण-कथा-रङ्गे ।

सेइ विप्र-घरे दोंहे रहे एक-सङ्गे ॥ 169॥

तिन-दिन-तीन दिन; प्रेमे-प्रेम में; दोंहे-दोनों; कृष्ण-कथा-कृष्ण कथाओं की चर्चा करते रहे; रङ्गे-आनन्द में; सेइ विप्र-घरे–एक ब्राह्मण के घर में; दोंहे-वे दोनों; रहे-रहे; एक-सङ्गे–एक साथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु परमानन्द पुरी के साथ उसी ब्राह्मण के घर रुके, जहाँ परमानन्द पुरी रह रहे थे। दोनों ने कृष्ण-कथा की चर्चा में तीन दिन बिताये।

पुरी-गोसाञि बले,—आमि याब पुरुषोत्तमे ।

पुरुषोत्तम देखि' गौड़े याब गङ्गा-स्नाने ॥ 170 ॥

पुरी-गोसाञि-परमानन्द पुरी; बले–कहा; आमि-मैं; याब-जाऊँगा; पुरुषोत्तमे-जगन्नाथ पुरी; पुरुषोत्तम देखि'–जगन्नाथ पुरी देखकर; गौड़े याब-बंगाल जाऊँगा; गङ्गा-स्नाने-गंगा-स्नान के लिए।

अनुवाद

परमानन्द पुरी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाया कि वे जगन्नाथ पुरी स्थित पुरुषोत्तम का दर्शन करने जा रहे हैं। वहाँ भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने के बाद वे गंगास्नान करने बंगाल जायेंगे।

प्रभु कहे,—तुमि पुनः आइस नीलाचले ।

आमि सेतुबन्ध हैते आसिब अल्प-काले ॥ 171॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; तुमि-आप; पुनः–दोबारा; आइस-आना; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; आमि-मैं; सेतुबन्ध हैते–रामेश्वर से; आसिब-लौट आऊँगा; अल्प-काले–अति शीघ्र।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे कहा, "कृपा करके जगन्नाथ पुरी फिर आयें, क्योंकि मैं शीघ्र ही रामेश्वर (सेतुबन्ध) से वहाँ लौट आऊँगा।"

तोमार निकटे रहि,—हेन वाञ्छा हय।

नीलाचले आसिबे मोरे हञा सदयं ॥ 172 ॥

तोमार निकटे-आपके साथ; रहि-मैं रहूँ; हेन-ऐसी; वाञ्छा हय–मेरी इच्छा है; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी; आसिबे-आओ; मोरे–मुझ पर; हञा–होकर; स-दय-दयालु।

अनुवाद

"मेरी इच्छा है कि आपके साथ रहूँ, अतएव यदि आप जगन्नाथ पुरी वापस आ सकें, तो यह मेरे ऊपर महान् कृपा होगी।"

एत बलि' ताँर ठाञि एइ आज्ञा लञा।

दक्षिणे चलिला प्रभु हरषित हञा ॥ 173 ॥

एत बलि'-यह कहकर; ताँर ठाञि-उनसे ; एइ आज्ञा लञा-आज्ञा लेकर; दक्षिणे चलिला–दक्षिण भारत चल पड़े; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हरषित हञा–अत्यन्त प्रसन्न होकर।

अनुवाद

परमानन्द पुरी से इस तरह बातें करके महाप्रभु ने उनसे प्रस्थान करने की आज्ञा माँगी और अत्यन्त प्रसन्न चित्त से दक्षिण भारत के लिए रवाना हो गये।

परमानन्द पुरी तबे चलिला नीलाचले।

महाप्रभु चलि चलि आइला श्री-शैले ॥ 174॥

परमानन्द पुरी-परमानन्द पुरी; तबे-तब; चलिला नीलाचले-जगन्नाथ पुरी की ओर चल पड़े; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चलि चलि-चलते चलते; आइला-आ गये; श्री-शैले-श्री शैल।

अनुवाद

इस तरह परमानन्द पुरी जगन्नाथ पुरी चले गये, और श्री चैतन्य महाप्रभु श्री शैल की ओर चल पड़े।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है, "कृष्णदास कविराज गोस्वामी किस श्री शैल का संकेत कर रहे हैं, यह स्पष्ट नहीं है। इस क्षेत्र में मल्लिकार्जुन का कोई मन्दिर नहीं है, क्योंकि धारवाड़ जिले में स्थित श्री शैल यहाँ पर नहीं हो सकता। वह श्री शैल बेलगाम के दक्षिण में है और मल्लिकार्जुन का शिव-मन्दिर यहीं पर स्थित है (इस अध्याय का श्लोक 15 देखें)। कहा जाता है कि इस पर्वत पर शिवजी देवी के साथ रहते थे। यही नहीं, ब्रह्माजी भी सारे देवताओं के साथ यहाँ रहते थे।"

शिव-दुर्गा रहे ताहाँ ब्राह्मणेर वेशे ।

महाप्रभु देखि' दोंहार हइल उल्लासे ॥ 175॥

शिव-दुर्गा–शिवजी और उनकी पत्नी दुर्गा; रहे ताहाँ-वहाँ रहते थे; ब्राह्मणेर वेशे-ब्राह्मण के वेश में; महाप्रभु देखि'–श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर; दोंहार-दोनों को; हइल-हुआ; उल्लासे-अत्यन्त हर्ष।

अनुवाद

इसी श्री शैल पर शिवजी तथा उनकी पत्नी दुर्गा ब्राह्मण-वेश में रहते थे, और जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को देखा तो अत्यन्त प्रसन्न हुए।

तिन दिन भिक्षा दिल करि' निमन्त्रण ।

निभृते वसि' गुप्त-वार्ता कहे दुइ जन ॥ 176 ॥

तिन दिन–तीन दिन; भिक्षा दिल-भिक्षा दी; करि' निमन्त्रण-उन्हें निमन्त्रित करके; निभृते-एकान्त स्थान में; वसि'–इकट्ठे बैठकर; गुप्त-वार्ता–गुप्त बातचीत; कहे-करते; दुइ जन-वे दोनों।

अनुवाद

ब्राह्मण वेशधारी शिवजी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को भिक्षा दी, और एकान्त में तीन दिन बिताने का आमन्त्रण दिया। दोनों वहाँ पर साथ बैठकर गुप्त बातें करते रहे।

ताँर सङ्गे महाप्रभु करि इष्टगोष्ठी ।

ताँर आज्ञा लञा आइला पुरी कामकोष्ठी ॥ 177॥

ताँर सङ्गे उनके साथ; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; करि इष्ट-गोष्ठी-आध्यात्मिक विषयों की चर्चा करके; ताँर–उनकी; आज्ञा-आज्ञा; लञा–लेकर; आइला-आ गये; पुरी कामकोष्ठी–कामकोष्ठी पुरी को।

अनुवाद

शिवजी से वार्तालाप करने के बाद महाप्रभु ने उनसे विदा ली और कामकोष्ठी-पुरी गये।

दक्षिण-मथुरा आइला कामकोष्ठी हैते ।

ताहाँ देखा हैल एक ब्राह्मण-सहिते ॥178॥

दक्षिण-मथुरा-दक्षिणी मथुरा में; आइला–पहुँचे; कामकोष्ठी हैते–कामकोष्ठी से; ताहाँ-वहाँ; देखा हैल-वे मिले; एक-एक; ब्राह्मण-सहिते-ब्राह्मण से।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कामकोष्ठी से दक्षिण-मथुरा पहुँचे, तो वहाँ उनकी भेंट एक ब्राह्मण से हुई।

तात्पर्य

यह दक्षिण मथुरा, जिसे आजकल मदुरई कहा जाता है, भागाइ नदी के किनारे स्थित है। यह तीर्थस्थान विशेषतया शिव-भक्तों के लिए है, इसीलिए यह शैवक्षेत्र कहलाता है। इस क्षेत्र में पहाड़ तथा जंगल हैं। इसमें दो शिव-मन्दिर भी हैं—एक है रामेश्वर का और दूसरा है सुन्दरेश्वर का। एक देवी का-मीनाक्षी देवी का मन्दिर भी है, जो स्थापत्य कला की दृष्टि से महान् है। इसे पांड्यवंशी राजाओं ने बनवाया था और मुसलमानों के आक्रमण से इसे तथा सुन्दरेश्वर मन्दिर को भारी क्षति पहुँची। 1372 ई. में मदुरई के सिंहासन पर कम्पन्न उदैयर नामक राजा राज्य करता था। बहुत पहले सम्राट कुलशेखर इस क्षेत्र में राज्य करते थे, जिन्होंने ब्राह्मणों की एक बस्ती बसाई थी। कुलशेखर की ग्याहरवीं पीढ़ी का राजा अनन्तगुण पांड्य के नाम से विख्यात हुआ।

सेइ विप्र महाप्रभुके कैल निमन्त्रण ।

राम-भक्त सेइ विप्र—विरक्त महाजन ॥ 179॥

सेइ विप्र-उस ब्राह्मण ने; महाप्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कैल-किया; निमन्त्रण-निमन्त्रण; राम-भक्त-भगवान् रामचन्द्र का भक्त; सेइ-वह; विप्र-ब्राह्मण; विरक्त-विरक्त; महाजन-एक महान् भक्त और अधिकारी था।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने महाप्रभु को अपने घर आमन्त्रित किया। यह ब्राह्मण महान् भक्त था और श्री रामचन्द्र भगवान् के बारे में विशेषज्ञ अधिकारी था। वह भौतिक कार्यकलापों से सदा विरक्त रहता था।

कृतमालाय स्नान करि' आइला ताँर घरे ।

भिक्षा कि दिबेन विप्र,—पाक नाहि करे ॥180॥

कृतमालाय-कृतमाला नदी में स्नान करि'-स्नान करके; आइला-आये; ताँर-ब्राह्मण के; घरे-घर को; भिक्षा-भिक्षा देने; कि दिबेन-क्या हूँ; विप्र-ब्राह्मण; पाक-भोजन; नाहि करे–नहीं बनाया था।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कृतमाला नदी में स्नान करके उस ब्राह्मण के घर भोजन करने गये, किन्तु उन्होंने देखा कि भोजन तैयार नहीं था-अभी ब्राह्मण ने उसे पकाया नहीं था।

महाप्रभु कहे ताँरे,—शुन महाशय ।

मध्याह्न हैल, केने पाक नाहि हय ॥ 181॥

महाप्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; ताँरे–उसको; शुन महाशय-कृपया सुनो महाशय; मध्याह्न हैल-अब दोपहर हो गई है; केने-क्यों; पाक नाहि हय-तुमने भोजन नहीं बनाया।

अनुवाद

यह देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे महाशय, मुझे बतायें कि आपने भोजन क्यों नहीं पकाया है। अब तो दोपहर हो चुकी है।"

विप्र कहे,—प्रभु, मोर अरण्ये वसति ।

पाकेर सामग्री वने ना मिले सम्प्रति ॥ 182॥

विप्र कहे-ब्राह्मण ने उत्तर दिया; प्रभु-हे प्रभु; मोर-मेरा; अरण्ये-वन में; वसति-निवास है; पाकेर सामग्री-भोजन बनाने की सामग्री; वने-वन में; ना मिले उपलब्ध नहीं है; सम्प्रति इस समय।

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, हम वन में रहते हैं। इस समय हमें भोजन की सारी सामग्री वन में प्राप्त नहीं हो सकती।"

वन्य शाक-फल-मूल आनिबे लक्ष्मण ।

तबे सीता करिबेन पाक-प्रयोजन ॥183॥

वन्य-वन की; शाक-सब्जियाँ; फल-मूल-फल फूल; आनिबे-लायेंगे; लक्ष्मण-लक्ष्मण; तबे-तब; सीता-सीता माता; करिबेन–करेगी; पाक-प्रयोजन-भोजन पकाना।

अनुवाद

"जब लक्ष्मण जंगल से शाक-सब्जियाँ, फल तथा कन्दमूल लायेंगे, तब सीताजी भोजन पकाने का प्रबन्ध करेंगी।"

ताँर उपासना शुनि' प्रभु तुष्ट हैला ।

आस्ते-व्यस्ते सेइ विप्र रन्धन करिला ॥ 184॥

ताँर-उसकी; उपासना-उपासना विधि; शुनि'–सुनकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः तुष्ट हैला-बहुत सन्तुष्ट हुए; आस्ते-व्यस्ते-जल्दी जल्दी से; सेइ-वह; विप्र-ब्राह्मण; रन्धन करिला-भोजन पकाने लगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उस ब्राह्मण की पूजा-विधि सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। अन्त में ब्राह्मण ने त्वरित भोजन पकाने की व्यवस्था की।

प्रभु भिक्षा कैल दिनेर तृतीय-प्रहरे ।

निर्विण्ण सेइ विप्र उपवास करे ॥ 185॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भिक्षा कैल-अपना भोजन किया; दिनेर-दिन का; तृतीय-प्रहरे-तीसरे पहरे, लगभग तीन बजे; निर्विण्ण–दु:खी होकर; सेइ-उस; विप्र-ब्राह्मण ने; उपवास करे-उपवास किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तीन बजे के लगभग दोपहर का भोजन किया। किन्तु दु:खी होने के कारण वह ब्राह्मण उपवास पर रह गया।

प्रभु कहे,—विप्र काँहे कर उपवास ।

केने एत दु:ख, केने करह हुताश ॥186 ॥

प्रभु कहे-चैतन्य महाप्रभु ने कहा; विप्र-मेरे प्रिय ब्राह्मण; काँहे-क्यों; कर उपवास-उपवास कर रहे हो; केने-क्यों; एत-इतना; दु:ख-दु:ख; केने-क्यों; करह हुताश-इतने चिन्तित हो।

अनुवाद

ब्राह्मण को उपवास किए देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उससे पूछा, "आप उपवास क्यों कर रहे हैं? आप दु:खी क्यों हैं? आप इतने चिन्तित क्यों हैं?"

विप्र कहे,—जीवने मोर नाहि प्रयोजन ।

अग्नि-जले प्रवेशिया छाड़िब जीवन ॥ 187॥

विप्र कहे-ब्राह्मण ने कहा; जीवने मोर-मेरे जीवन के लिए; नाहि-नहीं है; प्रयोजन-आवश्यकता; अग्नि-अग्नि में; जले-जल में; प्रवेशिया-प्रवेश करके; छाड़िब-मैं त्याग दूँगा; जीवन-जीवन।

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मेरे जीने का कोई प्रयोजन नहीं है। मैं या तो अग्नि में या जल में प्रवेश करके अपने प्राण त्याग दूँगा।"

जगन्माता महा-लक्ष्मी सीता-ठाकुराणी ।

राक्षसे स्पर्शिल ताँरे,—इहा काने शुनि ॥ 188॥

जगत्-माता-जगत् माता; महा-लक्ष्मी–महालक्ष्मी; सीता-ठाकुराणी-माता सीता; राक्षसे-राक्षस रावण ने; स्पर्शल-स्पर्श किया; ताँरे–उन्हें; इहा-यह; काने शुनि–मैंने सुना है।

अनुवाद

"हे महाशय, सीताजी जगजननी और महालक्ष्मी हैं। उनका स्पर्श राक्षस रावण ने किया है और मैं यह समाचार सुनकर अत्यन्त क्षुब्ध हूँ।"

ए शरीर धरिबारे कभु ना युयाय ।

एइ दुःखे ज्वले देह, प्राण नाहि याय ॥ 189॥

ए शरीर-यह शरीर; धरिबारे--धारण करने के लिए; कभु-कभी; ना-नहीं; युयाय-योग्य हूँ; एइ दुःखे-इस दुःख में; ज्वले देह-मेरा शरीर जल रहा है; प्राण-मेरे प्राण; नाहि याय-निकलते नहीं।

अनुवाद

"हे महाशय, इस दुःख के कारण अब मैं जीवित नहीं रह सकता। यद्यपि मेरा शरीर जल रहा है, किन्तु प्राण निकल नहीं रहे।"

प्रभु कहे,—ए भावना ना करिह आर ।

पण्डित हञा केने ना करह विचार ॥190॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; ए भावना-इस प्रकार की भावना; ना-न; करिह–करो; आर-अब; पण्डित हजा-एक विद्वान पण्डित होकर; केन–क्यों; ना करह-नहीं करते; विचार-विचार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "आप अब इस तरह न सोचें। आप तो विद्वान पंडित हैं। आप इस समस्या पर विचार क्यों नहीं करते?"

ईश्वर-प्रेयसी सीता—चिदानन्द-मूर्ति ।

प्राकृत-इन्द्रियेर ताँरे देखिते नाहि शक्ति ॥191॥

ईश्वर-प्रेयसी–भगवान् की प्रियतम पत्नी; सीता-माता सीता; चित्-आनन्द-मूर्ति-चिदानन्द मूर्ति; प्राकृत-भौतिक; इन्द्रियेर–इन्द्रियों में; ताँरे–उनको; देखिते-देखने के लिए; नाहि-नहीं है; शक्ति–शक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कहते रहे, "भगवान् रामचन्द्र की प्रियतमा सीतादेवी का रूप निश्चय ही आनन्दमय एवं आध्यात्मिक है। उन्हें कोई भी व्यक्ति अपनी भौतिक आँखों से नहीं देख सकता, क्योंकि किसी भी भौतिक प्राणी में वह शक्ति नहीं है।"

स्पर्शिबार कार्य आछुक, ना पाय दर्शन ।

सीतार आकृति-माया हरिल रावण ॥ 192॥

स्पर्शिबार-स्पर्श करने के लिए; कार्य-कार्य; आछुक-छोड़ो; ना-नहीं; पाय-पाता; दर्शन-दर्शन; सीतार-माता सीता का; आकृति-माया-माया की आकृति (रूप); हरिल-हरकर ले गया; रावण-राक्षस रावण।

अनुवाद

"माता सीता को स्पर्श करने की तो बात ही दूर रही, भौतिक इन्द्रिय वाला व्यक्ति उन्हें देख तक नहीं सकता। रावण ने तो उनके भौतिक मायारूप का ही हरण किया था।"

रावण आसितेइ सीता अन्तर्धान कैल ।

रावणेर आगे माया-सीता पाठाइल ॥193 ॥

रावण-दैत्य रावण; आसितेइ-जैसे ही वहाँ पहुँचा; सीता-माता सीता; अन्तर्धान कैल–अन्तर्धान हो गई; रावणेर आगे-राक्षस रावण के समक्ष; माया-सीता–सीता की माया मूर्ति; पाठाइल-भेज दी।

अनुवाद

"ज्योंही रावण सीताजी के सम्मुख आया, वे अप्रकट हो गईं। उन्होंने रावण को धोखा देने के लिए ही अपना मायारूप भेजा।"

अप्राकत वस्तु नहे प्राकत-गोचर ।

वेद-पुराणेते एइ कहे निरन्तर ॥ 194॥

अप्राकृत-आध्यात्मिक; वस्तु-वस्तु; नहे-नहीं; प्राकृत-भौतिक; गोचर-क्षेत्र के भीतर; वेद-पुराणेते-वेद और पुराण; एइ–यह; कहे-कहते हैं; निरन्तर–सदा।

अनुवाद

"आध्यात्मिक वस्तु कभी-भी भौतिक अनुभूति के सीमा-क्षेत्र में नहीं रहती। यही वेदों और पुराणों का निर्णय है।"

तात्पर्य

जैसाकि कठ उपनिषद (2.3.9, 12) में कहा गया है :

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य

न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।

हृदा मनीषा मनसाभिक्लप्तो

य एतद् विदुरामृतास्ते भवन्ति ।

नैव वाचा न मनसा

प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।

"आत्मा न तो भौतिक नेत्रों, न शब्दों, न ही मन की सीमा के अन्तर्गत है।"

इसी प्रकार से श्रीमद्भागवत (10.84.13) में कहा गया है :

यस्यात्माबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके ।

स्वधी: कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।

यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्

जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

"जो मनुष्य तीन तत्त्वों से बने अपने शरीर की पहचान आत्मा से करता है, जो अपने शरीर के उत्पादों को अपने कुटुम्बी समझता है, जो अपनी जन्मभूमि को पूज्य समझता है, और जो तीर्थस्थान पर मात्र स्नान करने जाता है, न कि दिव्य ज्ञानीजनों को मिलने के लिए, उसे एक गधे या गाय जैसा समझना चाहिए।"

आध्यात्मिक वस्तु के बारे में कुछ वैदिक कथन हैं। आध्यात्मिक वस्तुओं को बुद्धिहीन व्यक्ति नहीं देख सकते, क्योंकि आत्मा को देखने के लिए उनके पास न तो आँखें हैं, न मन। फलतः वे सोचते हैं कि आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है। किन्तु वेदों के अनुयायी श्रीमद्भागवत तथा कठ उपनिषद में प्राप्य उपरिलिखित श्लोकों जैसे वैदिक वाक्यों से जानकारी प्राप्त करते हैं।

विश्वास करह तुमि आमार वचने ।

पुनरपि कु-भावना ना करिह मने ॥195॥

विश्वास करहविश्वास करो; तुमि-तुम; आमार-मेरे; वचने-वचन में; पुनरपि-दोबारा; कु-भावना-दुर्भावना; ना करिह-न करो; मने-मन में।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को आश्वस्त किया, "मेरे वचनों में विश्वास रखें, और अपने मन को इस कुंभावना से बोझिल मत करें।"

तात्पर्य

आध्यात्मिक ज्ञान की यही विधि है। अचिन्त्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्। "हमें तर्क-वितर्क द्वारा अपनी भौतिक अनुभूति से परे की वस्तुओं को समझने का प्रयास नहीं करना चाहिए।" महाजनो येन गतः स पन्थाः- "हमें परम्परा से चले आ रहे महापुरुषों के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए।" यदि हम किसी प्रामाणिक आचार्य के पास जायें और उनके वचनों में श्रद्धा रखें, तो आध्यात्मिक साक्षात्कार सरल हो सकेगा।

प्रभुर वचने विप्रेर हइल विश्वास ।

भोजन करिल, हैल जीवनेर आश ॥ 196॥

प्रभुर वचने-श्री चैतन्य महाप्रभु के वचनों में; विप्रेर-ब्राह्मण का; हइल-था; विश्वास-विश्वास; भोजन करिल-भोजन किया; हैल-हो गई; जीवनेर-जीने के लिए; आश-आशा।

अनुवाद

यद्यपि वह ब्राह्मण उपवास कर रहा था, किन्तु उसे श्री चैतन्य महाप्रभु के शब्दों पर विश्वास था, अतएव उसने भोजन ग्रहण किया और इस तरह उसकी जान बच गई।

ताँरे आश्वासिया प्रभु करिला गमन ।

कृतमालाय स्नान करि आइला दुर्वशन ॥ 197॥

ताँरे आश्वासिया-उसको विश्वास दिलाया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करिला गमन-प्रस्थान किया; कृतमालाय-कृतमाला नदी में; स्नान करि-स्नान करके; आइला-आये; दुर्वशन-दुर्वशन।

अनुवाद

ब्राह्मण को आश्वासन देने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत में और आगे बढ़ते गये और अन्त में दुर्वशन पहुँचे, जहाँ उन्होंने कृतमाला नदी में स्नान किया।

तात्पर्य

आजकल यह कृतमाला नदी भागाइ अथवा वैगइ नदी कहलाती है। इसकी तीन शाखा नदियाँ हैं-सुरुली, वराह नदी तथा बट्टिलागुण्डु। करभाजन ऋषि ने श्रीमद्भागवत (11.5.39) में कृतमाला नदी का उल्लेख किया है।

दुर्वशने रघुनाथे कैल दरशन ।

महेन्द्र-शैले परशुरामेर कैल वन्दन ॥198॥

दुर्वशने-दुर्वशन में; रघुनाथे-भगवान् रामचन्द्र का; कैल दरशन-श्री चैतन्य महाप्रभु ने दर्शन किया; महेन्द्र-शैले–महेन्द्र शैल पर्वत पर; परशु-रामेर-भगवान् परशुराम की; कैल वन्दन-वन्दना की।

अनुवाद

दुर्वशन में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् रामचन्द्र के मन्दिर का दर्शन किया। इसी तरह महेन्द्र-शैल नामक पर्वत पर उन्होंने भगवान् परशुराम के दर्शन किये।

तात्पर्य

दुर्वशन या दर्भशयन में, जो आजकल तिरुप्पुल्लनि कहलाता है, और जो रमनद से सात मील पूर्व स्थित है, भगवान् रामचन्द्र का एक मन्दिर है। महेन्द्र-शैल तिरुनेलवेलि के निकट है और जहाँ यह पर्वत समाप्त होता है, वहाँ तिरुचेन्दुर नामक शहर है। महेन्द्र-शैल के पश्चिम में त्रिबाँकुर का प्रदेश है। रामायण में महेन्द्र-शैल का उल्लेख हुआ है।

सेतुबन्धे आसि' कैल धनुस्तीर्थे स्नान ।

रामेश्वर देखि ताहाँ करिल विश्राम ॥ 199॥

सेतुबन्धे आसि'–सेतुबन्ध पहुँचकर; कैल–किया; धनुः-तीर्थे स्नान-धनुस्तीर्थ पर स्नान; रामेश्वर देखि'–रामेश्वर तीर्थस्थान को देखकर; ताहाँ-वहाँ; करिल विश्राम-विश्राम किया।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु सेतुबन्ध (रामेश्वर) गये, जहाँ उन्होंने धनुस्तीर्थ नामक स्थान पर स्नान किया। वहाँ से वे रामेश्वर मन्दिर देखने गये और तब विश्राम किया।

तात्पर्य

मण्डपम से पम्बम नामक द्वीप तक समुद्र से होकर जाने वाला मार्ग कहीं रेतीला तथा कहीं जल से युक्त है। पम्बम द्वीप लगभग 17 मील लम्बा तथा छ: मील चौड़ा है। इसी द्वीप में पम्बम बन्दरगाह से चार मील उत्तर दिशा में सेतुबन्ध है, जहाँ रामेश्वर का मन्दिर आया हुआ है। यह शिवजी का मन्दिर है और रामेश्वर नाम सूचित करता है कि शिवजी एक ऐसे महापुरुष हैं, जिनके इष्टदेव भगवान् राम हैं। इस तरह रामेश्वर के मन्दिर में स्थापित शिवजी भगवान् रामचन्द्र के बड़े भक्त हैं। कहा जाता है- देवीपत्तनमारभ्य गच्छेयुः सेतुबन्धनम्-"दुर्गा देवी का मन्दिर देखने के बाद ही रामेश्वर मन्दिर में जाना चाहिए।" इस क्षेत्र में चौबीस भिन्न-भिन्न तीर्थस्थान हैं, जिनमें से धनुस्तीर्थ एक है और यह रामेश्वर से लगभग 12 मील दक्षिण पूर्व में स्थित है। यह दक्षिण भारतीय रेल के अन्तिम स्टेशन रमनद के निकट है। कहा जाता है कि रावण के छोटे भाई विभीषण के कहने पर भगवान् रामचन्द्र ने अयोध्या लौटते समय इस स्थान पर अपने धनुष से लंका जाने वाले

पुल को नष्ट किया था। यह भी कहा जाता है कि जो कोई धनुस्तीर्थ जाता है, वह जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है और जो यहाँ स्नान करता है, वह अग्निष्टोम नामक यज्ञ करने के सारे फल प्राप्त करता है।

विप्र-सभाय शुने ताँहा कूर्म-पुराण ।

तार मध्ये आइला पतिव्रता-उपाख्यान ॥200॥

विप्र-सभाय-ब्राह्मणों की सभा में; शुने-सुना; ताँहा-वहाँ; कूर्म-पुराण-कूर्म पुराण; तार मध्ये-उस ग्रंथ में; आइला–आया; पति-व्रता-पतिव्रता का; उपाख्यान-व्याख्यान।

अनुवाद

वहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने ब्राह्मणों के संग में कूर्म-पुराण सुना, जिसमें पतिव्रता स्त्री की कथा का आख्यान है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि कूर्म-पुराण के केवल दो खण्ड वर्तमान समय में उपलब्ध हैं-पूर्व खण्ड तथा उत्तर खण्ड कभी-कभी कहा जाता है कि कूर्म-पुराण में 6,000 श्लोक हैं, किन्तु श्रीमद्भागवत के अनुसार मूल कूर्म-पुराण में 17,000 श्लोक हैं और यह अठारह महा-पुराणों में पन्द्रहवाँ माना जाता है।

पतिव्रता-शिरोमणि जनक-नन्दिनी ।

जगतेर माता सीता—रामेर गृहिणी ॥ 201॥

पति-व्रता-पतिव्रता; शिरोमणि-सर्वोच्च; जनकनन्दिनी-राजा जनक की पुत्री है; जगतेर–तीनों जगतों की; माता-माता; सीता–सीता; रामेर-भगवान् रामचन्द्र की; गृहिणी-पत्नी।

अनुवाद

श्रीमती सीतादेवी तीनों लोकों की माता तथा भगवान् रामचन्द्र की पत्नी हैं। वे पतिव्रता स्त्रियों में सर्वोच्च हैं और राजा जनक की पुत्री हैं।

रावण देखिया सीता लैल अग्निर शरण ।

रावण हैते अग्नि कैल सीताके आवरण ॥ 202॥

रावण देखिया-रावण को देखने के बाद; सीता-माता सीता; लैल-ले लिया; अग्निर-अग्नि का; शरण-आश्रय; रावण-रावण; हैते–से; अग्नि-अग्नि ने; कैल-किया; सीताके–माता सीता को; आवरण-ढक लिया।

अनुवाद

जब रावण माता सीता का हरण करने आया और उन्होंने उसे देखा तो उन्होंने अग्नि-देवता की शरण ग्रहण कर ली। अग्निदेव ने माता सीता के शरीर को ढक लिया और इस तरह रावण से उनकी रक्षा हो सकी।

'माया-सीता' रावण निल, शुनिला आख्याने ।

शुनि' महाप्रभु हैल आनन्दित मने ॥ 203॥

माया-सीता-माया सीता; रावण-दैत्य रावण; निल-लिया; शुनिला सुना; आख्याने–कूर्म पुराण के प्रसंग में; शुनि'–सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु: हैल-हो गये; आनन्दित-आनन्दित; मने-मन में।

अनुवाद

कूर्म-पुराण में यह सुनकर कि किस तरह रावण ने माता सीता के माया रूप का हरण किया, श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त आनन्दित हुए।

सीता लञा राखिलेन पार्वतीर स्थाने ।

'माया-सीता' दिया अग्नि वञ्चिला रावणे ॥ 204॥

सीता लञा-माता सीता को लेकर; राखिलेन-रखा; पार्वतीर स्थाने-माता पार्वती अथवा दुर्गादेवी के पास; माया-सीता-माया निर्मित सीता को; दिया–दिया; अग्नि-अग्नि; वञ्चिला–ठग लिया; रावणे-दैत्य रावण को।

अनुवाद

अग्नि-देव वास्तविक सीता को देवी दुर्गा अर्थात् पार्वती के स्थान पर ले आये और रावण को सीता का माया-रूप दे दिया। इस तरह रावण को ठगा गया।

रघुनाथ आसि' यबे रावणे मारिल ।

अग्नि-परीक्षा दिते यबे सीतारे आनिल ॥ 205॥

रघुनाथ-भगवान् रामचन्द्र; आसि'-आकर; यबे-जब; रावणे-रावण को; मारिल-मारा; अग्नि-परीक्षा-अग्नि परीक्षा; दिते-देने के लिए; यबे-जब; सीतारे-सीता को; आनिल-लाये।

अनुवाद

जब भगवान् रामचन्द्रजी ने रावण को मार डाला, तब उसके बाद सीतादेवी परीक्षा हेतु अग्नि के समक्ष लायी गई।

तबे माया-सीता अग्नि करि अन्तर्धान ।

सत्य-सीता आनि' दिल राम-विद्यमान ॥206॥

तबे-उस समय; माया-सीता-माया की सीता; अग्नि-अग्निदेव; करि-करके; अन्तर्धान–अन्तर्धान; सत्य-सीता-असली सीता; आनि'–लाकर; दिल-दे दिया; राम-रामचन्द्र की; विद्यमान उपस्थिति में।

अनुवाद

जब रामचन्द्रजी द्वारा अग्नि के समक्ष माया सीता लाई गईं तो अग्नि ने इस माया-रूप को अप्रकट कर दिया और भगवान् रामचन्द्र को वास्तविक सीता लाकर प्रदान कीं।

शुनिञा प्रभुर आनन्दित हैल मन ।

रामदास-विप्रेर कथा हइल स्मरण ॥207॥

शुनिञा-सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आनन्दित-आनन्दित; हैल-हो गया; मन–मन; रामदास-विप्रेर-रामदास ब्राह्मण की; कथा-कथा; हइल स्मरण-उन्हें याद आई।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कहानी सुनी, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें रामदास विप्र के शब्द याद आये।

ए-सब सिद्धान्त शुनि' प्रभुर आनन्द हैल ।

ब्राह्मणेर स्थाने मागि' सेइ पत्र निल ॥ 208॥

ए-सब सिद्धान्त-ये सब निर्णायक कथन; शुनि'–सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; आनन्द–आनन्द, हैल–हुआ; ब्राह्मणेर स्थाने–ब्राह्मणों से; मागि'-माँगकर; सेइ-वे; पत्र-पत्र; निल-ले लिए।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कूर्म-पुराण से इन निश्चयात्मक सिद्धान्तों को सुना, तो उन्हें अतीव प्रसन्नता हुई। उन्होंने ब्राह्मण की अनुमति से कूर्म-पुराण के इन हस्तलिखित पन्नों को ले लिया।

नूतन पत्र लेखाञा पुस्तके देओयाइल ।

प्रतीति लागि' पुरातन पत्र मागि' निल ॥209॥

नूतन-नूतन; पत्र-पत्र; लेखाञा-लिखवाकर; पुस्तके-पुस्तक में; देओयाइल-उन्होंने दिया; प्रतीति लागि'–स्पष्ट प्रमाण के रूप में, पुरातन-पुरातन; पत्र–पत्र; मागि'-माँगकर; निल-ले लिए।

अनुवाद

चूँकि कूर्म-पुराण अत्यन्त प्राचीन है, अतएव उसकी पाण्डुलिपि भी अत्यन्त प्राचीन थी। श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रत्यक्ष साक्ष्य के लिए मूल पन्ने रख लिए और नये पन्नों पर मूल की प्रतिलिपि करके कूर्म पुराण में लगा दी।

पत्र लञा पुनः दक्षिण-मथुरा आइला ।

रामदास विप्रे सेइ पत्र आनि दिला ॥ 210॥

पत्र लञा-उन पत्रों को लेकर; पुनः–पुनः; दक्षिण-मथुरा-दक्षिण मथुरा; आइला-आये; रामदास विप्रे–रामदास ब्राह्मण को; सेइ पत्र-उन्हीं पत्रों को; आनि-लाकर; दिला–दे दिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तब लौटकर दक्षिण मथुरा (मदुरई) आये और कूर्म पुराण की मूल पाण्डुलिपि रामदास विप्र को दी।

सीतयाराधितो वह्निश्छाया-सीतामजीजनत् ।

तां जहार दश-ग्रीवः सीता वह्नि-पुरं गता ॥211॥

परीक्षा-समये वह्निं छाया-सीता विवेश सा ।

वह्निः सीतां समानीय तत्पुरस्तादनीनयत् ॥ 212॥

सीतया–माता सीता द्वारा; आराधितः–बुलाने पर; वह्निः-अग्नि देवता; छाया-सीताम्-माता सीता का माया रूप; अजीजनत्-निर्मित किया; ताम्-उसको; जहार-अगवा करके; दश-ग्रीवः-दस मुखी रावण ने; सीता-माता सीता; वह्नि-पुरम्-अग्नि देवता के निवास ; गता–चली गई; परीक्षा-समये-परीक्षा के समय; वह्निम्-अग्नि; छाया-सीता-माया रूपी सीता; विवेश-प्रवेश कर गई; सा-वह; वह्निः-अग्नि देवता; सीताम्-मूल सीता को; समानीय–वापस लाकर; तत्-पुरस्तात् उनकी उपस्थिति में; अनीनयत्-वापस लाया।

अनुवाद

"जब सीताजी ने अग्निदेव का आवाहन किया, तो वे सीता का मायारूप ले आये, और दस सिरों वाले रावण ने इस माया-सीता का अपहरण कर लिया। तब मूल सीता अग्निदेव के घर चली गई। जब भगवान् रामचन्द्र ने सीता के शरीर की परीक्षा ली, तो वह माया-सीता थी जो अग्नि में प्रवेश कर गई। उसी समय अग्निदेव ने मूल सीता को अपने घर से लाकर भगवान् रामचन्द्र को अर्पित कर दीं।"

तात्पर्य

ये दोनों श्लोक कूर्म-पुराण के हैं।

पत्र पाञा विप्रेर हैल आनन्दित मन ।

प्रभुर चरणे धरि' करये क्रन्दन ॥213॥

पत्र पाञा-पत्र पाकर; विप्रेर–ब्राह्मण का; हैल-हो गया; आनन्दित-आनन्दित; मन-मन; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; धरि'-पकड़कर; करये-करने लगा; क्रन्दन–रुदन।

अनुवाद

रामदास विप्र कूर्म पुराण के मूल पन्ने पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह तुरन्त श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिरकर रुदन करने लगा।

विप्र कहे,—तुमि साक्षात्श्री-रघुनन्दन ।

सन्न्यासीर वेषे मोरे दिला दरशन ॥ 214॥

विप्र कहे-ब्राह्मण ने कहा; तुमि-आप; साक्षात्-साक्षात्; श्री-रघुनन्दन-भगवान् श्री रामचन्द्र; सन्न्यासीर वेषे-संन्यासी के वेष में; मोरे-मुझे; दिला–दिया; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

पाण्डुलिपि पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ब्राह्मण ने कहा, "आप साक्षात् भगवान् रामचन्द्र हैं, और संन्यासी के वेश में मुझे दर्शन देने आये हैं।"

महा-दुःख हइते मोरे करिला निस्तार ।

आजि मोर घरे भिक्षा कर अङ्गीकार ॥215॥

महा-दुःख-महान् दुःख; हइते-से; मोरे-मुझे; करिला निस्तार-आपने छुड़ाया; आजि-आज; मोर-मेरे; घरे–घर पर; भिक्षा–भोजन; कर-करें; अङ्गीकार–स्वीकार।

अनुवाद

"हे मान्यवर, आपने मुझे अत्यन्त दुःखद परिस्थिति से उबारा है। मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे घर भोजन करें। कृपया मेरा यह निमन्त्रण स्वीकार करें।"

मनो-दुःखे भाल भिक्षा ना दिल सेइ दिने ।

मोर भाग्ये पुनरपि पाइलुँ दरशने ॥ 216॥

मनो-दुःखे-मानसिक दुःख के कारण; भाल भिक्षा-अच्छा भोजन; ना दिल-आपको नहीं दे सका; सेइ दिने-उस दिन; मोर भाग्ये-अपने सौभाग्य से; पुनरपि पुनः; पाइलुँ-मैंने पाया है; दरशने-दर्शन।

अनुवाद

“मानसिक क्षोभ के कारण उस दिन मैं आपको अच्छा भोजन नहीं करा सका। अब सौभाग्यवश आप पुनः मेरे घर पधारे हैं।”

एत बलि’ सेइ विप्र सुखे पाक कैल ।

उत्तम प्रकारे प्रभुके भिक्षा कराइल ॥ 217॥

एत बलि’-यह कहकर; सेइ विप्र-वह ब्राह्मण; सुखे-खुश होकर; पाक कैल-भोजन बनाने लगा; उत्तम प्रकारे–उत्तम प्रकार से प्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु को; भिक्षा-भोजन; कराइल-दिया।

अनुवाद

यह कहकर उस ब्राह्मण ने सुखपूर्वक भोजन बनाया और श्री चैतन्य महाप्रभु को उत्तम कोटि का भोजन कराया।

सेइ रात्रि ताहाँ रहि’ ताँरे कृपा करि’ ।

पाण्ड्य-देशे ताम्रपर्णी गेला गौरहरि ॥ 218॥

सेइ रात्रि-उस रात; ताहाँ-वहाँ; रहि-रहकर; ताँरे-ब्राह्मण पर; कृपा करि’-कृपा करके; पाण्ड्य-देशे-पाड्यदेश नामक स्थान में; ताम्रपर्णी–ताम्रपर्णी नामक नदी को; गेला–चले गये; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वह रात उस ब्राह्मण के घर बिताई। उस पर कृपा करने के बाद महाप्रभु ने पाण्ड्य देश में ताम्रपर्णी नदी की ओर यात्रा प्रारम्भ की।

तात्पर्य

पाण्ड्य देश दक्षिण भारत में है और केरल और चोल के नाम से प्रसिद्ध है। इस सारे प्रदेश में पाण्ड्य पदवीधारी अनेक राजा हुए, जिन्होंने मदुरई तथा रामेश्वर नामक स्थानों पर राज्य किया। रामायण में ताम्रपर्णी नदी का नाम आया है। यह पुरुणई के नाम से प्रसिद्ध है, और तिरुनेल्वेली से होकर बहती है और बाद में बंगाल की खाड़ी में गिरती है। श्रीमद्भागवत (11.5.39) में भी ताम्रपर्णी नदी का उल्लेख है।

ताम्रपर्णी स्नान करि' ताम्रपर्णी-तीरे।

नय त्रिपति देखि' बुले कुतूहले ॥219॥

ताम्रपर्णी–ताम्रपरणी नदी में स्नान करि'–स्नान करके; ताम्रपर्णी-तीरे–ताम्रपर्णी नदी के तट पर; नय त्रिपति–नय त्रिपती; देखि'–देखने के बाद; बुले-भ्रमण करने लगे; कुतूहले-उत्सुकतापूर्वक।

अनुवाद

ताम्रपर्णी नदी के तट पर नयत्रिपति नामक स्थान में भगवान् विष्णु के नौ मन्दिर थे। महाप्रभु ने नदी में स्नान करने के बाद अत्यन्त उत्सुकता से अर्चाविग्रह देखे और वहाँ विचरण किया।

तात्पर्य

नयत्रिपति (नव-तिरुपति) नामक विष्णु के ये नौ मन्दिर आल्वार तिरुनगरइ के चारों ओर स्थित हैं। यह तिरुनेल्वेली से लगभग 17 मील दक्षिण पूर्व में स्थित एक कस्बा है। वार्षिक उत्सव के समय इन मन्दिरों के अर्चाविग्रह इस कस्बे में एकत्र होते हैं।

चियड़तला तीर्थे देखि' श्री-राम-लक्ष्मण।

तिल-काञ्ची आसि' कैल शिव दरशन ॥ 220॥

चियड़तला–चियड़तला; तीर्थ-तीर्थ स्थान; देखि-देखकर; श्री-राम-लक्ष्मण-राम लक्ष्मण के विग्रह को; तिल-काञ्ची–तिलकांची आकर किया; आसि'–आकर; कैल-किया; शिव दरशन-शिवजी के मन्दिर का दर्शन।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु चियड़तला नामक तीर्थस्थान गये, जहाँ उन्होंने रामचन्द्र तथा लक्ष्मण दोनों भाइयों के अर्चाविग्रह देखे। तब वे तिलकांची गये, जहाँ उन्होंने शिवजी का मन्दिर देखा।

तात्पर्य

कभी-कभी चियड़तला को छेरतला कहा जाता है। यह कैल शहर के निकट है। यहाँ पर श्री रामचन्द्र तथा उनके भाई लक्ष्मण को समर्पित एक मन्दिर है। तिलकांची (तेनकशी) तिरुनेल्वली शहर से लगभग तीस मील उत्तर पूर्व की ओर है।

गजेन्द्र-मोक्षण-तीर्थे देखि विष्णु-मूर्ति ।

पानागड़ि-तीर्थे आसि' देखिल सीतापति ॥ 221॥

गजेन्द्र-मोक्षण-तीर्थे–गर्जेन्द्र मोक्षण नामक तीर्थस्थान; देखि-देखकर; विष्णु-मूर्ति-भगवान् विष्ण की मूर्ति; पानागड़ि-तीर्थे–पाणागढ़ी तीर्थस्थल को; आसि'–आकर; देखिल-देखा; सीता-पति-भगवान् रामचन्द्र और सीतादेवी।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु गजेन्द्रमोक्षण नामक तीर्थस्थान गये, जहाँ उन्होंने भगवान् विष्णु का मन्दिर देखा। फिर वे पानागड़ि नामक पवित्र स्थल पर आये, जहाँ उन्होंने भगवान् रामचन्द्र तथा सीताजी के अर्चाविग्रह देखे।

तात्पर्य

कभी-कभी भ्रमवश लोग गजेन्द्रमोक्षण मन्दिर को शिव-मन्दिर समझ बैठते हैं। यह कैवेर (नगरकोइल) शहर से लगभग दो मील दक्षिण में है। वस्तुतः इसमें जो अर्चाविग्रह है, वह शिवजी का नहीं, अपितु भगवान् विष्णु का है।

पानागड़ि (पन्नकुड़ी) तिरुनेल्वेलि से लगभग तीस मील दक्षिण में है। पहले यहाँ के मन्दिर में श्री रामचन्द्र का अर्चाविग्रह था, किन्तु बाद में शैवों ने रामचन्द्र के स्थान में शिवजी का अर्चाविग्रह रख दिया, जिसका नाम रामेश्वर या रामलिंग शिव है।

चाम्तापुरे आसि' देखि' श्री-राम-लक्ष्मण ।

श्री-वैकुण्ठे आसि' कैल विष्णु दरशन ॥222॥

चाम्तापुरे–चम्तापुर में; आसि'–आकर; देखि'–देखा; श्री-राम-लक्ष्मण-श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण; श्री-वैकुण्ठे आसि'–श्री वैकुण्ठ आकर; कैल–किया; विष्णु दरशन-भगवान् विष्णु के मन्दिर का दर्शन।

अनुवाद

बाद में महाप्रभु चाम्तापुर गये, जहाँ उन्होंने श्री रामचन्द्र तथा लक्ष्मण के अर्चाविग्रह के दर्शन किये। इसके बाद वे श्री वैकुण्ठ गये, और वहाँ भगवान् विष्णु का मन्दिर देखा।

तात्पर्य

कभी-कभी चाम्तापुर को चेंगानुर भी कहा जाता है। यह केरल रियासत में स्थित है। यहाँ भगवान् रामचन्द्र तथा लक्ष्मण का एक मन्दिर है। श्री वैकुण्ठ ताम्रपर्णी नदी के तट पर स्थित है और आल्वार तिरुनगरइ से लगभग 4 मील उत्तर तथा तिरुनेल्वेलि से 16 मील दक्षिण पूर्व है।

मलय-पर्वते कैल अगस्त्य-वन्दन ।

कन्या-कुमारी ताहाँ कैल दरशन ॥223॥

मलय-पर्वते–मलय पर्वत में; कैल-की; अगस्त्य-वन्दन-अगस्त्य मुनि की वंदना; कन्याकुमारी कन्याकुमारी; ताहाँ-वहाँ; कैल दरशन-दर्शन किया।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु मलय पर्वत गये और उन्होंने अगस्त्य मुनि की वन्दना की। तत्पश्चात् उन्होंने कन्याकुमारी (केप केमोरिन) नामक स्थान की मुलाकात ली।

तात्पर्य

दक्षिण भारत में वह पर्वतों की माला, जो केरल से प्रारम्भ होकर कन्याकुमारी तक फैली हुई है, मलय पर्वत कहलाती है। अगस्त्य के सम्बन्ध में चार प्रकार के मत हैं : (1) तंजोर जिले में अगस्त्यमपल्ली नामक गाँव में अगस्त्य मुनि का मन्दिर है। (2) शिवगिरि नामक पर्वत पर भगवान् स्कन्द का मन्दिर है, जिसकी स्थापना अगस्त्य मुनि द्वारा की गई बताई जाती है। (3) कुछ लोग कहते हैं कि कन्याकुमारी के पास पठिया नामक पर्वत है, जहाँ अगस्त्य मुनि रहते थे। (4) अगस्त्यमलय नामक एक अन्य स्थान भी है, जो ताम्रपर्णी नदी के दोनों किनारे में फैली हुई एक पर्वत माला है। केप केमोरिन कन्याकुमारी भी कहलाता है।

आम्लितलाय देखि' श्री-राम गौरहरि ।

मल्लार-देशेते आइला यथा भट्टथारि ॥224॥

आम्लितलाय-आम्लितला; देखि'–देखकर; श्री-राम-श्री रामचन्द्र का अर्चाविग्रह; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु; मल्लार-देशेते-मल्लार देश; आइला-आये; यथा-जहाँ; भट्टथारि-भट्टाथारि जाति।

अनुवाद

कन्याकुमारी देख चुकने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु आम्लितल आये, जहाँ उन्होंने श्री रामचन्द्र के अर्चाविग्रह का दर्शन किया। तत्पश्चात् वे मल्लार देश गये, जहाँ भट्टथारि जाति के लोग रहते थे।

तात्पर्य

मल्लार देश के उत्तर में दक्षिण कनर है। इसके पूर्व में कुर्ग तथा मैसूर है। दक्षिण में कोचिन तथा पश्चिम में अरब सागर है। भट्टथारि लोग खानाबदोश जाति के हैं। वे इच्छानुसार डेरा डालकर रहते हैं। उनके रहने का कोई स्थायी स्थान नहीं है। बाहर से तो वे संन्यासियों का वेश धारण करते हैं, किन्तु उनका असली काम चोरी और ठगी है। वे दूसरों को अपने डेरों में स्त्रियाँ लाने को फँसाते हैं, और अनेक स्त्रियों को ठगते हैं और अपनी जाति में रख लेते हैं। इस तरह उनकी जनसंख्या बढ़ती है। बंगाल में भी ऐसी ही एक जाति है। वस्तुतः विश्वभर में खानाबदोश जातियाँ हैं, जिनका कार्य फुसलाना, ठगना और अबोध स्त्रियों को चुराना है।

तमाल-कार्तिक देखि' आइल वेतापनि ।

रघुनाथ देखि' ताहाँ वञ्चिला रजनी ॥ 225॥

तमाल-कार्तिक-तमाल कार्तिक स्थान; देखि-देखकर; आइल-आये; वेतापनि-वेतापनि; रघुनाथ देखि'–भगवान् रामचन्द्र का मन्दिर देखकर; ताहाँ-वहाँ; वञ्चिला रजनी–रात व्यतीत की।

अनुवाद

मल्लार देश घूमने के बाद महाप्रभु तमालकार्तिक गये, और वहाँ से वेतापनि गये। वहाँ उन्होंने रघुनाथ अर्थात् रामचन्द्र का मन्दिर देखा और वहीं रात बिताई।

तात्पर्य

तमालकार्तिक तिरुनेल्वेलि से 44 मील दक्षिण तथा अरमवल्ली पर्वत से 2 मील दक्षिण की ओर स्थित है। यह तोवलइ जिले में स्थित है। वहाँ सुब्रह्मण्य अर्थात् शिवपुत्र कार्तिक का मन्दिर है।

वेतापनि या वातापाणी तामिलनाडु रियासत में कैल के उत्तर में है। यह भूतपण्डि नाम से भी विख्यात है और तोबल जिले के अन्तर्गत है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ पर पहले भगवान् रामचन्द्र का अर्चाविग्रह था। बाद में इसके स्थान पर शिवजी का अर्चाविग्रह स्थापित कर दिया गया, जो रामेश्वर या भूतनाथ के नाम से विख्यात है।

गोसाञि सङ्गे रहे कृष्णदास ब्राह्मण ।

भट्टथारि-सह ताहाँ हैल दरशन ॥ 226॥

गोसाञि-महाप्रभु; सङ्गे–के साथ; रहे-था; कृष्णदास ब्राह्मण-कृष्णदास नामक एक ब्राह्मण सेवक; भट्टथारि-सह-भट्टाथारि के साथ; ताहाँ-वहाँ; हैल-तक; दरशन-भेंट।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ उनका सेवक था, जिसका नाम कृष्णदास था। वह ब्राह्मण था, किन्तु वहाँ उसकी भेंट भट्टथारियों से हो गई।

स्त्री-धन देखाञा ताँर लोभ जन्माइल ।

आर्य सरल विप्रेर बुद्धि-नाश कैल ॥227॥

स्त्री-धन-महिलाएँ; देखाञा-दिखाकर; ताँर-उसको; लोभ-आकर्षण; जन्माइल-उन्होंने उत्पन्न किया; आर्य–आर्य (पुरुष); सरल-सरल; विप्रेर–ब्राह्मण की; बुद्धि-नाश-बुद्धि नाश; कैल-की।

अनुवाद

भट्टथारियों ने ब्राह्मण कृष्णदास को स्त्रियों के माध्यम से लोभ में फँसा लिया, क्योंकि वह सरल एवं भला आदमी था। उन्होंने अपनी बुरी संगति से उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी।

प्राते उठि' आइला विप्र भट्टथारि-घरे ।

ताहार उद्देशे प्रभु आइला सत्वरे ॥ 228॥

प्राते-प्रातः काल; उठि'–बिस्तर से उठकर; आइला-आया; विप्र-ब्राह्मण कृष्णदास; भट्टथारि-घरे-भट्टाथारियों के स्थान पर; ताहार उद्देशे-उसके लिए; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला-आये; सत्वरे-अति शीघ्र।

अनुवाद

भट्टथारियों से फुसलाया हुआ कृष्णदास प्रातःकाल उठते ही उनके घर गया और महाप्रभु भी उसे ढूँढने के लिए तेजी से वहाँ गये।

आसिया कहेन सब भट्टथारि-गणे ।

आमार ब्राह्मण तुमि राख कि कारणे ॥ 229॥

आसिया-आकर; कहेन-उन्होंने कहा; सब-सब; भट्टथारि-गणे-भट्टाथारियों को; आमार-मेरा; ब्राह्मण-ब्राह्मण सहायक; तुमि-तुम; राख-रख रहे हो; कि-किस; कारणे-कारण से।

अनुवाद

भट्टथारियों के पास आकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे पूछा, "तुम लोग मेरे ब्राह्मण सहायक को अपने यहाँ क्यों रखे हुए हो?"

आमिह सन्न्यासी देख, तुमिह सन्न्यासी ।

मोरे दुःख देह,—तोमार 'न्याय' नाहि वासि ॥ 230॥

आमिह-मैं; सन्न्यासी-संन्यासी; देख-तुम देखते हो; तुमिह-तुम भी; सन्न्यासी-संन्यासी; मोरे-मुझे; दुःख-दुःख; देह-देते हो; तोमार-तुम्हारा; न्याय-न्याय; नाहि वासि–मुझे नहीं दिखता।

अनुवाद

"मैं संन्यासी हूँ और तुम लोग भी हो। फिर भी तुम लोग जान-बूझकर मुझे कष्ट दे रहे हो। मुझे इसमें कोई अच्छा कारण नहीं दिखता।"

शुनि' सब भट्टथारि उठे अस्त्र लञा ।

मारिबारे आइल सबे चारि-दिके धाञा ॥ 231॥

शुनि'-यह सुनकर; सब-सब; भट्टथारि-भट्टथारी; उठे-उठे; अस्त्र-शस्त्र; लञा–लेकर; मारिबारे—मारने के लिए; आइल-आये; सबे-सब; चारि-दिके-चारों ओर से; धाञा-दौड़कर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की बात सुनकर सारे भट्टथारि सभी दिशाओं से अपने-अपने हाथों में हथियार लिए महाप्रभु को मारने के लिए दौड़े आये।

तार अत्र तार अङ्गे पड़े हात हैते ।

खण्ड खण्ड हैल भट्टथारि पलाय चारि भिते ॥ 232॥

तार अस्त्र-उनके शस्त्र; तार अड़े-उनके शरीरों पर; पड़े-गिरते हैं; हात हैते-उनके हाथों से; खण्ड खण्ड–खण्ड खण्ड हो गये; हैल-हो गये; भट्टथारि-भट्टाथारी; पलाय-भाग गये; चारि भिते-चारों दिशाओं में।

अनुवाद

किन्तु उनके हथियार उनके हाथों से छूटकर गिर पड़े, और उन्हीं के शरीरों पर जा लगे। इस तरह जब कुछ भट्टथारि कटकर टुकड़े-टुकड़े हो गये, तो अन्य लोग चारों दिशाओं में भाग गये।

भट्टथारि-घरे महा उठिल क्रन्दन ।

केशे धरि' विप्रे लञा करिल गमन ॥ 233॥

भट्टथारि-घरे-भट्टथारियों के घर पर; महा-जोरदार; उठिल-उठा; क्रन्दन-रोना; केशे धरि'–बालों से पकड़कर; विप्रे–ब्राह्मण कृष्णदास; लञा-लेकर; करिल-किया; गमन प्रस्थान।

अनुवाद

जब भट्टथारि जाति में चीख-चीत्कार मच गई, तब श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्णदास के बाल पकड़कर उसे बाहर ले आये।

सेइ दिन चलि' आइला पयस्विनी-तीरे ।

स्नान करि' गेला आदि-केशव-मन्दिरे ॥ 234॥

सेइ दिन-उसी दिन; चलि'–चलकर; आइला–आये; पयस्विनी-तीरे-पयस्विनी नदी के तट पर; स्नान करि'-स्नान करके; गेला–गये; आदि-केशव-मन्दिरे-आदि केशव मन्दिर को।

अनुवाद

उसी रात श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनका सहायक कृष्णदास पयस्विनी नदी के तट पर आये। उन्होंने स्नान किया और फिर वे आदि-केशव का मन्दिर देखने गये।

केशव देखिया प्रेमे आविष्ट हैला ।

नति, स्तुति, नृत्य, गीत, बहुत करिला ॥235॥

केशव देखिया-भगवान् केशव के विग्रह को देखकर; प्रेमे-प्रेमावेश में; आविष्ट हैला-अभिभूत हो गये; नति–प्रणाम; स्तुति-स्तुति; नृत्य-नृत्य; गीत-गान; बहुत करिला-कई प्रकार से किया।

अनुवाद

आदि-केशव मन्दिर को देखते ही महाप्रभु भावाविष्ट हो गये। वे विविध नमस्कार तथा स्तुतियाँ करके कीर्तन करने लगे और नाचने लगे।

प्रेम देखि' लोके हैल महा-चमत्कार ।

सर्व-लोक कैल प्रभुर परम सत्कार ॥ 236॥

प्रेम देखि'–उनके प्रेमभाव को देखकर; लोके-लोग; हैल-हो गये; महा-चमत्कार-अत्यन्त चकित; सर्व-लोक-सभी लोग; कैल–किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; परम सत्कार–बड़ा सत्कार।

अनुवाद

वहाँ के सारे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु की भावमयी लीलाओं को देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने महाप्रभु का अच्छे से सत्कार किया।

महा-भक्त-गण-सह ताहाँ गोष्ठी कैल ।

'ब्रह्म-संहिताध्याय'-पुँथि ताहाँ पाइल ॥ 237॥

महा-भक्त-गण-सह-उच्च भक्तों के साथ; ताहाँ-वहाँ; गोष्ठी कैल-चर्चा की; ब्रह्म-संहिता-अध्याय-ब्रह्म-संहिता का एक अध्याय; पुँथि-शास्त्र; ताहाँ-वहाँ; पाइल-पाया।

अनुवाद

आदि-केशव के मन्दिर में श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्नत भक्तों के बीच आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा की। वहाँ रहते हुए उन्हें ब्रह्म-संहिता का एक अध्याय मिला।

पुँथि पाञा प्रभुर हैल आनन्द अपार ।

कम्पाश्रु-स्वेद-स्तम्भ-पुलक विकार ॥ 238॥

पुँथि पाञा-उस शास्त्र को पाकर; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु का; हैल-था; आनन्द-आनन्द; अपार-अपार; कम्प–कम्पन; अश्रु-अश्रु; स्वेद-पसीना; स्तम्भ-जड़ता; पुलक-पुलकित होना; विकार-विकार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इस शास्त्र का एक अध्याय प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न थे और उनके शरीर में कम्प, अश्रु, पसीना, समाधि तथा प्रसन्नता के भावरूपी विकार प्रकट हो आये।

सिद्धान्त-शास्त्र नाहि 'ब्रह्म-संहिता'र सम ।

गोविन्द-महिमा ज्ञानेर परम कारण ॥ 239॥

अल्पाक्षरे कहे सिद्धान्त अपार ।

सकल-वैष्णव-शास्त्र-मध्ये अति सार ॥ 240॥

सिद्धान्त-शास्त्र-निर्णायक शास्त्र; नाहि-नहीं है; ब्रह्म-संहितार सम-ब्रह्म-संहिता जैसा; गोविन्द-महिमा-भगवान् गोविन्द की महिमाएँ; ज्ञानेर-ज्ञान का; परम–अन्तिम; कारण-कारण; अल्प-अक्षरे-संक्षिप्त में; कहे-वर्णन है; सिद्धान्त-सिद्धान्त; अपार-असीम; सकल-सब; वैष्णव-शास्त्र-वैष्णव शास्त्र; मध्ये-मध्य; अति सार-अत्यन्त आवश्यक।

अनुवाद

जहाँ तक अन्तिम आध्यात्मिक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, ब्रह्म-संहिता के समान अन्य कोई शास्त्र नहीं है। निस्सन्देह, यह शास्त्र भगवान् गोविन्द की महिमाओं का परम प्रकाश है, क्योंकि यह उनके विषय में सर्वोच्च ज्ञान प्रकट करता है। चूँकि सारे सिद्धान्त ब्रह्म-संहिता में संक्षेप में दिये हैं, अतएव यह सारे वैष्णव ग्रंथों का सार है।

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शास्त्र है। श्री चैतन्य महाप्रभु को आदि-केशव मन्दिर से इसका पाँचवा अध्याय प्राप्त हुआ था। पाँचवे अध्याय में अचिन्त्य भेदाभेद-तत्त्व (एक साथ ऐक्य तथा विभिन्नता) का दार्शनिक सिद्धान्त प्रस्तुत हुआ है। इसी अध्याय में भक्ति की विधियाँ, अठारह अक्षरी वैदिक स्तुति, आत्मा विषयक वार्ता, परमात्मा तथा सकाम कर्म, काम-गायत्री की व्याख्या, काम-बीज तथा आदि महाविष्णु, आध्यात्मिक जगत् का विशेषतः गोलोक-वृन्दावन का वर्णन इत्यादि भी दिये हुए हैं। ब्रह्म-संहिता में देवता गणेश, गर्भोदकशायी विष्णु, गायत्री मन्त्र की उत्पत्ति, गोविन्द का स्वरूप तथा उनकी दिव्य स्थिति तथा धाम, जीव, सर्वोच्च लक्ष्य, देवी दुर्गा, तपस्या का अर्थ, पाँच स्थूल तत्त्व, भगवत्प्रेम, निर्विशेष ब्रह्म, ब्रह्माजी की दीक्षा तथा भगवान् का दर्शन करने के लिए दिव्य प्रेम-दृष्टि की भी व्याख्या हुई है। भक्ति के चरणों की भी व्याख्या है। मन, योगनिद्रा, लक्ष्मी, रागानुगा भक्ति, रामचन्द्रादि अवतार, अर्चाविग्रह, बद्धजीव तथा उनके कर्तव्य, विष्णु विषयक तत्त्व, स्तुतियाँ, वैदिक स्तुतियाँ, शिवजी, वैदिक ग्रंथ, साकारवाद तथा निर्विशेषवाद, अच्छा आचरण तथा अन्य अनेक विषयों की व्याख्या की गई है। इसके अतिरिक्त सूर्य तथा भगवान् के विश्वरूप का भी वर्णन भी मिलता है। ये सारे विषय ब्रह्म-संहिता में संक्षेप में दिये हुए हैं।

बहु यत्ने सेइ पुँथि निल लेखाइया ।

‘अनन्त पद्मनाभ’ आइला हरषित हञा ॥241॥

बहु यत्ने-बड़ी सावधानी से; सेइ पुँथि-वह शास्त्र; निल–लिया; लेखाइया-नकल करवाकर; अनन्त-पद्मनाभ-अनन्त पद्मनाभ; आइला–आये; हरषित-अत्यन्त प्रसन्न; हञा–होकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने यत्नपूर्वक ब्रह्म-संहिता की प्रतिलिपि उतारी और बाद में वे हर्षित होकर अनन्त-पद्मनाभ नामक स्थान गये।

तात्पर्य

अनन्त पद्मनाभ के लिए मध्यलीला, प्रथम अध्याय श्लोक 115 देखना चाहिए।

दिन-दुइ पद्मनाभेर कैल दरशन ।

आनन्दे देखिते आइला श्री-जनार्दन ॥ 242॥

दिन-दुइ-दो दिन; पद्मनाभेर–पद्मनाभ अर्चाविग्रह का; कैल दरशन–मन्दिर का दर्शन किया; आनन्दे-आनन्दपूर्वक; देखिते-देखने के लिए; आइला–आये; श्री-जनार्दन-श्री जनार्दन मन्दिर को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अनन्त-पद्मनाभ में दो-तीन दिन रहे, और उन्होंने वहाँ का मन्दिर देखा। फिर हर्षपूर्वक वे श्री जनार्दन मन्दिर देखने गये।

तात्पर्य

श्री जनार्दन मन्दिर त्रिवेन्द्रम से 26 मील उत्तर वरकल रेलवे स्टेशन के पास स्थित है।

दिन-दुइ ताहाँ करि' कीर्तन-नर्तन ।

पयस्विनी आसिया देखे शङ्कर नारायण ॥ 243 ॥

दिन-दुइ-दो दिन; ताहाँ-वहाँ; करि'-करके; कीर्तन-नर्तन-कीर्तन और नृत्य; पयस्विनी आसिया–पयस्विनी नदी के तट पर आकर; देखे-देखा; शङ्कर नारायण-शंकर नारायण का मन्दिर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु श्री जनार्दन में दो दिन तक कीर्तन तथा नृत्य करते रहे। फिर वे पयस्विनी नदी के किनारे गये और वहाँ उन्होंने शंकर-नारायण का मन्दिर देखा।

शृङ्गेरि-मठे आइला शङ्कराचार्य-स्थाने ।

मत्स्य-तीर्थ देखि' कैल तुङ्गभद्राय स्नाने ॥ 244॥

शृङ्गेरि-मठे-शृंगेरि मठ में; आइला–आये; शङ्कराचार्य-स्थाने शंकराचार्य के स्थान पर; मत्स्य-तीर्थ-मत्स्य-तीर्थ नामक स्थान; देखि'–देखकर; कैल-किया; तुङ्गभद्राय स्नाने-तुंगभद्रा नदी में स्नान।

अनुवाद

वहाँ उन्होंने शृंगेरी मठ देखा जो शंकराचार्य का निवास है। फिर उन्होंने मत्स्य-तीर्थ देखा और तुंगभद्रा नदी में स्नान किया।

तात्पर्य

श्रृंगेरी-मठ कर्नाटक प्रान्त के चिकमगलुर जिले में स्थित है। यह मठ तुंग तथा भद्रा नदियों के संगम पर हरिहरपुर से 7 मील दक्षिण में स्थित है। इस स्थान का असली नाम श्रृंगगिरि या शृंगवेरपुरी है और यह शंकराचार्य का मुख्यालय है।

शंकराचार्य के चार मुख्य शिष्य थे और उन्होंने उनकी देख-रेख में चार केन्द्रों की स्थापना की। उत्तर भारत में बदरिकाश्रम में ज्योतिर्मठ की स्थापना की गई थी। पुरुषोत्तम में भोगवर्धन या गोवर्धन मठ की, द्वारका में सारदा मठ की तथा दक्षिण भारत में श्रृंगेरी मठ की स्थापना की गई। शृंगेरी मठ के संन्यासी सरस्वती, भारती तथा पुरी उपाधियाँ धारण करते हैं। वे सभी एकदण्डी संन्यासी कहलाते हैं, जबकि वैष्णव संन्यासी त्रिदण्डी संन्यासी कहलाते हैं। श्रृंगेरी मठ दक्षिण भारत के आन्ध्र, द्रविड़, कर्णाट तथा केरल प्रदेश में स्थित है। इनकी जाति भूरिवार कहलाती है और वंश भूर्भुवः कहलाता है। यह स्थान रामेश्वर कहलाता है और उनका नारा है अहं ब्रह्मास्मि। इनके अर्चाविग्रह वराह हैं, इनकी शक्ति कामाक्षी है, आचार्य हस्तामलक हैं और इन संन्यासियों के ब्रह्मचारी सहायक चैतन्य कहलाते हैं। तीर्थस्थल तुंगभद्रा कहलाता है और ये यजुर्वेद पाठी हैं।

शंकराचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा की सूची उपलब्ध है। आचार्यों के नाम और उनके संन्यास लेने की तारीख शकाब्दानुसार (ईसवी सन के लिए इसमें 78 वर्ष जोड़ें) इस प्रकार है : शंकराचार्य, 622 शक; सुरेश्वराचार्य, 630; बोधनाचार्य, 680; ज्ञानधनाचार्य, 768; ज्ञानोत्तम शिवाचार्य, 827; ज्ञानगिरि आचार्य, 871; सिंहगिरि आचार्य, 958; ईश्वर तीर्थ, 1019; नरसिंह तीर्थ, 1067; विद्यातीर्थ विद्याशंकर, 1150; भारतीकृष्ण तीर्थ, 1250; विद्यारण्य भारती, 1253; चन्द्रशेखर भारती, 1290; नरसिंह भारती, 1309; पुरुषोत्तम भारती, 1328; शंकरानन्द, 1350; चन्द्रशेखर भारती, 1371; नरसिंह भारती, 1386; पुरुषोत्तम भारती, 1398; रामचन्द्र भारती, 1430; नरसिंह भारती, 1479; नरसिंह

भारती, 1485; धनमडि नरसिंह भारती, 1498; अभिनव नरसिंह भारती, 1521; सच्चिदानन्द भारती, 1544; नरसिंह भारती, 1585; सच्चिदानन्द भारती, 1627; अभिनव सच्चिदानन्द भारती, 1663; नृसिंह भारती, 1689; सच्चिदानन्द भारती, 1692; अभिनव सच्चिदानन्द भारती, 1730; नरसिंह भारती, 1739; सच्चिदानन्द शिवाभिनव विद्यानरसिंह भारती, 1788।

ऐसा माना जाता है कि शंकराचार्य का जन्म 608 शकाब्द में वैशाख मास की शुक्ल तृतीया को कालाडि नामक स्थान में दक्षिण भारत में हुआ था। उनके पिता का नाम शिवगुरु था, जिनका देहान्त उनके बाल्यकाल में ही हो गया था। जब शंकराचार्य केवल आठ वर्ष के थे, तभी उन्होंने सारे शास्त्रों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था और गोविन्द से संन्यास ले लिया था, जो नर्मदा के तट पर निवास करते थे। संन्यास ग्रहण करने के बाद शंकराचार्य कुछ दिनों तक अपने गुरु के साथ रहे। फिर उन्होंने गुरु से वाराणसी जाने की आज्ञा माँगी, जहाँ से वे बदरिकाश्रम गये और वहाँ 12 वर्ष की अवस्था तक रहे। वहाँ रहकर उन्होंने ब्रह्मसूत्र, दस उपनिषदों तथा भगवद्गीता पर भाष्य लिखे। उन्होंने सनत्-सुजातीय भी लिखी तथा नृसिंह-तापिनि पर भाष्य भी लिखा। उनके अनेक शिष्यों में से पद्मपाद, सुरेश्वर, हस्तामलक तथा त्रोटक चार प्रमुख हैं। शंकराचार्य वाराणसी से प्रयाग आये, जहाँ महान् विद्वान कुमारिल भट्ट से उनकी भेंट हुई। शंकराचार्य उनसे शास्त्रार्थ करना चाहते थे, किन्तु मृत्युशय्या पर होने के कारण कुमारिल भट्ट ने उन्हें अपने शिष्य मण्डन के पास माहिष्मती नगर में भेज दिया। यहीं पर शंकराचार्य ने मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ में हराया। मण्डन मिश्र की पत्नी सरस्वती या उभयभारती थी, जिसने शंकराचार्य तथा उसके पति के बीच के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ का काम किया। कहा जाता है कि उसने शंकराचार्य से श्रृंगार कला तथा प्रेम के विषयों पर वार्ता करनी चाही, किन्तु शंकराचार्य बाल ब्रह्मचारी थे, अतएव उन्हें ऐसे विषयों का कोई अनुभव न था। अतः उन्होंने उभयभारती से एक मास का अवकाश माँगा और वे अपनी योगशक्ति से एक राजा के शरीर में प्रवेश कर गये, जो अभी अभी मरा था। इस तरह शंकराचार्य को श्रृंगार-विषयक ज्ञान प्राप्त हुआ। इस अनुभव के बाद उन्होंने उभयभारती से शास्त्रार्थ करना चाहा, किन्तु उसने शास्त्रार्थ किए बिना उन्हें आशीर्वाद दे दिया और श्रृंगेरी मठ की क्रमागत स्थिति के सम्बन्ध में आश्वस्त किया। तत्पश्चात् वह भौतिक जीवन से विरक्त हो गई। बाद में मण्डन मिश्र ने शंकराचार्य से संन्यास ग्रहण किया और सुरेश्वर नाम से विख्यात हुए। शंकराचार्य ने भारत-भर के अनेक विद्वानों को परास्त करके उन्हें अपने मायावाद-दर्शन में दीक्षित किया। उन्होंने 33 वर्ष की अवस्था में अपने भौतिक शरीर का त्याग किया।

ऐसा माना जाता है कि मत्स्यतीर्थ मालाबार जिले में समुद्र के किनारे स्थित था।

मध्वाचार्य-स्थाने आइला याँहा 'तत्त्ववादी'।

उडुपीते 'कृष्ण' देखि, ताहाँ हैल प्रेमोन्मादी ॥245॥

मध्व-आचार्य-स्थाने-मध्वाचार्य के स्थान पर; आइला–आये; याँहा-जहाँ; तत्त्व-वादी-तत्त्ववादी नामक दार्शनिक; उडुपीते-उडुपी नामक स्थान पर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के विग्रह; देखि-देखकर; ताहाँ-वहाँ; हैल-हो गये; प्रेम-उन्मादी-प्रेम में उन्मत्त।

अनुवाद

तत्पश्चात् चैतन्य महाप्रभु मध्वाचार्य के स्थान उडुपी पर पहुँचे, जहाँ तत्त्ववादी के नाम से जाने जाने वाले दार्शनिक रहते थे। वे वहाँ भगवान् कृष्ण के अर्चाविग्रह को देखकर भावविह्वल हो उठे।

तात्पर्य

श्रीपाद मध्वाचार्य का जन्म उडुपी के निकट हुआ, जो दक्षिण भारत के दक्षिण कनर जिले में सह्याद्रि के पश्चिम में स्थित है। यह दक्षिण कनर प्रान्त का मुख्य शहर है और उडुपी से दक्षिण की ओर स्थित मंगलोर शहर के निकट है। उडुपी शहर के निकट पाजका-क्षेत्र है, जहाँ मध्वाचार्य ने शिवाल्ली ब्राह्मण-वंश में मध्यगेह भट्ट के पुत्र-रूप में 1040 शकाब्द (1118 ई.) में जन्म लिया। कुछ लोगों के मतानुसार उनका जन्म 1160 शकाब्द (1238 ई.) में हुआ।

बचपन में मध्वाचार्य वासुदेव कहलाते थे और उनके विषय में कुछ अद्भुत कहानियाँ कही जाती हैं। कहा जाता है कि उनके पिता पर अधिक ऋण था और मध्वाचार्य ने इमली के बीजों को सिक्कों में बदलकर ऋण चुकाया। अभी वे पाँच ही वर्ष के थे तो उनका जनेऊ संस्कार किया गया। मणिमान नामक एक असुर साँप के रूप में उनके घर के पास रहता था, जिसे मध्वाचार्य ने पाँच वर्ष की आयु में अपने बाँये पाँव के अंगूठे से मार डाला। जब उनकी माता चिन्तित होतीं, तो वे एक छलांग में उनके सामने प्रकट हो जाते। वे बचपन से ही प्रकाण्ड विद्वान थे और उनके पिता के न चाहने पर भी उन्होंने 12 वर्ष की आयु में संन्यास ग्रहण कर लिया। अच्युत प्रेक्ष से संन्यास लेने के बाद उनका नाम पूर्णप्रज्ञ तीर्थ पड़ा। सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करने के बाद उन्होंने शृंगेरी मठ के प्रमुख विद्याशंकर से शास्त्रार्थ किया। विद्याशंकर उनकी उपस्थिति में वास्तव में बौना हो गये। मध्वाचार्य सत्य तीर्थ के साथ बदरिकाश्रम गये। वहाँ पर व्यासदेव से उनकी भेंट हुई, और उन्होंने भगवद्गीता पर अपना भाष्य उन्हें सुनाया। इस प्रकार वे व्यासदेव से अध्ययन करके प्रकाण्ड पंडित बन गये।

बदरिकाश्रम से आनन्द-मठ आने के समय तक मध्वाचार्य ने भगवद्गीता पर अपना भाष्य पूरा कर लिया था। उनके साथी सत्य तीर्थ ने समूचा भाष्य लिख दिया। बदरिकाश्रम से लौटने पर मध्वाचार्य गोदावरी नदी के तट पर स्थित गंजाम गये । यहाँ उनकी भेंट शोभन भट्ट तथा स्वामी शास्त्री नामक दो पंडितों से हुई। बाद में ये दोनों मध्वाचार्य गुरु-शिष्य परम्परा में पद्मनाभ तीर्थ तथा नरहरि तीर्थ के नाम से विख्यात हुए। उडुपी लौटने पर वे कभी-कभी सागर में स्नान करते थे। ऐसे ही एक अवसर पर उन्होंने एक स्तुति की रचना की, जो पाँच अध्यायों में है। एक बार जब समुद्र-तट पर बैठे हुए वे भगवान् कृष्ण के ध्यान में मग्न थे, तब उन्होंने देखा कि द्वारका के लिए सामग्री ले जाने वाला एक मालवाही जहाज संकट में है। उन्होंने कुछ ऐसे संकेत दिये, जिससे वह जहाज समुद्र-तट पर जा लगा और इस तरह वह बच गया। उस जहाज के मालिक उन्हें कुछ भेंटस्वरूप देना चाहते थे, किन्तु उन्होंने मात्र कुछ गोपीचन्दन लेना स्वीकार किया। जब चन्दन का एक बड़ा ढेला उनके पास लाया जा रहा था, तो वह बीच से टूट गया और उसमें से भगवान् कृष्ण का एक बड़ा अर्चाविग्रह निकला। अर्चाविग्रह एक हाथ में डण्डा और दूसरे में खाद्य पदार्थ लिए था। ज्योंही मध्वाचार्य ने इस रूप में कृष्ण के अर्चाविग्रह को प्राप्त किया, उन्होंने एक स्तुति लिखी। यह अर्चाविग्रह इतना भारी था कि तीस व्यक्ति मिलकर भी उसे उठा नहीं सकते थे। फिर भी मध्याचार्य स्वयं इस अर्चाविग्रह को उडुपी लाये। मध्वाचार्य के आठ संन्यासी शिष्य उनके आठ मठों के आचार्य बने। मध्वाचार्य के द्वारा स्थापित विधि के अनुसार उडुपी में कृष्ण की पूजा इस समय भी की जाती है।

तब मध्वाचार्य दूसरी बार बदरिकाश्रम गये। जब वे महाराष्ट्र से होकर जा रहे थे, तब एक स्थानीय राजा जनता के कल्याण हेतु एक विशाल सरोवर खुदवा रहा था। चूँकि मध्वाचार्य अपने शिष्यों के साथ उस क्षेत्र से गुजर रहे थे, अतः उन्हें भी इस खुदाई में उसकी सहायता करनी पड़ी। कुछ समय के बाद मध्याचार्य ने राजा से भेंट की और उसे उस कार्य में लगाया और अपने शिष्यों के साथ वे आगे बढ़ गये।

गांग प्रदेश में प्रायः हिन्दुओं तथा मुसलमानों में झगड़े होते रहते थे। हिन्दू नदी के एक ओर थे और मुसलमान दूसरी ओर। साम्प्रदायिक तनाव के कारण नदी पार करने के लिए कोई नाव उपलब्ध नहीं थी। मुसलमान सैनिक हमेशा यात्रियों को दूसरे किनारे आने से रोकते थे, किन्तु मध्याचार्य ने इन सैनिकों की कोई परवाह नहीं की। अतः इसके बावजूद जब वे नदी पार करके दूसरी ओर पहुँचे और सैनिकों से मिले, तो उन्हें राजा के पास लाया गया। मुस्लिम राजा उनसे बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें एक राज्य तथा कुछ धन देना चाहा, किन्तु मध्वाचार्य ने इसे लेने से मना कर दिया। मार्ग पर जाते समय कुछ डाकुओं ने उन पर आक्रमण कर दिया, किन्तु अपने शारीरिक बल से उन्होंने उन सबको मार

डाला। जब उनके साथी सत्य तीर्थ पर एक बाघ ने आक्रमण किया, तो मध्वाचार्य ने अपने बल से दोनों को अलग किया। जब वे व्यासदेव से मिले, तो उनसे उन्हें अष्टमूर्ति नामक शालग्राम-शिला प्राप्त हुई। इसके बाद उन्होंने महाभारत का संक्षिप्तीकरण किया।

मध्वाचार्य की भगवद्भक्ति तथा उनका प्रकाण्ड पाण्डित्य भारत-भर में विख्यात हो गया। फलस्वरूप शंकराचार्य द्वारा स्थापित श्रृंगेरी मठ के स्वामी कुछ बेचैन हो उठे। उस समय शंकराचार्य के अनुयायी मध्वाचार्य की उभरती शक्ति से डरकर वे उनके शिष्यों को नाना प्रकार से सताने लगे। वे यह सिद्ध करने का भी प्रयास करने लगे कि मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है। शंकराचार्य के मायावाद-दर्शन का एक अनुयायी, जिसका नाम पुण्डरीक पुरी था, मध्वाचार्य से शास्त्रार्थ करने आया। कहा जाता है कि मध्वाचार्य की सारी पुस्तकें चुरा ली गईं; किन्तु बाद में कुम्ल के शासक राजा जयसिंह की सहायता से वे ढूँढ ली गईं। शास्त्रार्थ में पुण्डरीक पुरी मध्वाचार्य से परास्त हुआ। विष्णुमंगल निवासी का त्रिविक्रमाचार्य नामक एक महापुरुष मध्वाचार्य का शिष्य बन गया और बाद में उसके पुत्र नारायणाचार्य ने श्री मध्वविजय की रचना की । त्रिविक्रमाचार्य के देहान्त के बाद नारायणाचार्य के छोटे भाई ने संन्यास ले लिया और वह विष्णु तीर्थ कहलाया।

उस समय यह ख्याति फैली थी कि पूर्णप्रज्ञ मध्वाचार्य की शारीरिक शक्ति की कोई सीमा नहीं थी। तभी कडंजरि नामक एक व्यक्ति था, जो इसके लिए प्रसिद्ध था कि उसके पास तीस व्यक्तियों के बराबर शक्ति है; मध्वाचार्य ने अपने। पाँव के अँगूठे को जमीन पर रखकर उस व्यक्ति से कहा कि अँगूठे को हटा दे, किन्तु वह बलशाली व्यक्ति अनेक प्रयासों के बावजूद भी ऐसा नहीं कर पाया। श्रील मध्वाचार्य ने 80 वर्ष की आयु में, ऐतरेय उपनिषद का भाष्य लिखते हुए इस भौतिक संसार से विदा ली। मध्वाचार्य के विषय में अधिक जानकारी के लिए नारायण आचार्य विरचित मध्वविजय ग्रंथ देखना चाहिए।

मध्व-सम्प्रदाय के आचार्यों ने उडुपी को प्रधान केन्द्र बनाया और यहाँ के मठ का नाम उत्तरराढ़ी मठ प्रसिद्ध हुआ। मध्व-सम्प्रदाय के विभिन्न केन्द्रों के नाम उडुपी में प्राप्त हो सकते हैं, जिनके चलाने वाले थे-(1) विष्णु तीर्थ (शोदमठ), (2) जनार्दन तीर्थ (कृष्णपुर मठ), (3) वामन तीर्थ (कनुर मठ), (4) नरसिंह तीर्थ (अदमर मठ), (5) उपेन्द्र तीर्थ (पुत्तुगी मठ), (6) राम तीर्थ (शिरुर मठ), (7) हृषीकेश तीर्थ (पलिमर मठ), तथा (8) अक्षोभ्य तीर्थ (पेजावर मठ)। मध्वाचार्य सम्प्रदाय की गुरु-शिष्य परम्परा इस प्रकार है (तिथियाँ शकाब्द में जन्म की तिथियाँ हैं और ईसवी सन् के लिए 78 वर्ष जोड़िए)-(1) हंस परमात्मा; (2) चतुर्मुख ब्रह्मा; (3) सनकादि; (4) दुर्वासा; (5) ज्ञाननिधि; (6) गरुडवाहन;

(7) कैवल्य तीर्थ; (8) ज्ञानेश तीर्थ; (9) पर तीर्थ; (10) सत्यप्रज्ञ तीर्थ; (11) प्राज्ञ तीर्थ; (12) अच्युत प्रेक्षाचार्य तीर्थ; (13) श्री मध्वाचार्य, 1040 शक; (14) पद्मनाभ, 1120; नरहरि, 1127; माध्व, 1136; तथा अक्षोभ्य, 1159; (15) जयतीर्थ, 1167; (16) विद्याधिराज, 1190; (17) कवीन्द्र, 1255; (18) वागीश, 1261; (19) रामचन्द्र, 1269; (20) विद्यानिधि, 1298; (21) श्री रघुनाथ, 1366; (22) रयुवर्य (जिन्होंने चैतन्य महाप्रभु से बात की थी), 1424; (23) रघूत्तम, 1471; (24) वेदव्यास, 1517; (25) विद्याधीश, 1541; (26) वेदनिधि, 1553; (27) सत्यव्रत, 1557; (28) सत्यनिधि, 1560; (29) सत्यनाथ, 1582; (30) सत्याभिनव, 1595; (31) सत्यपूर्ण, 1628; (32) सत्यविजय, 1648; (33) सत्यप्रिय, 1659; (34) सत्यबोध, 1666; (35) सत्यसन्ध, 1705; (36) सत्यवर, 1716; (37) सत्यधर्म, 1719; (38) सत्यसंकल्प, 1752; (39) सत्यसन्तुष्ट, 1763; (40) सत्यपरायण, 1763; (41) सत्यकाम, 1785; (42) सत्येष्ट, 1793; (43) सत्यपराक्रम, 1794; (44) सत्यधीर, 1801; (45) सत्यधीर तीर्थ, 1808।

सोलहवें आचार्य (विद्याधिराज तीर्थ) के बाद दूसरी गुरु-शिष्य परम्परा चली, जिसमें राजेन्द्र तीर्थ, 1254; विजय ध्वज; पुरुषोत्तम; सुब्रह्मण्य; तथा व्यास राय, 1470-1520 सम्मिलित हैं। उन्नीसवें आचार्य रामचन्द्र तीर्थ की भी अन्य गुरु-शिष्य परम्परा चली, जिसमें विबुधेन्द्र, 1218; जितामित्र, 1348; रघुनन्दन; सुरेन्द्र; विजेन्द्र; सुधीन्द्र; तथा राघवेन्द्र तीर्थ, 1545 सम्मिलित हैं।

आज तक उडुपी मठ में अन्य 14 मध्वतीर्थ संन्यासी हुए हैं। जैसा बतलाया जा चुका है, उडुपी दक्षिण कनर में मंगलोर से लगभग 36 मील उत्तर स्थित है। यह समुद्र के निकट है।

इस तात्पर्य की अधिकतर जानकारी साउथ कानाड़ा मैनुअल तथा बाम्बे गजट में उपलब्ध है।

नर्तक गोपाल देखे परम-मोहने।

मध्वाचार्ये स्वप्न दिया आइला ताँर स्थाने॥ 246॥

नर्तक गोपाल–नृत्य करते गोपाल; देखे-देखा; परम-मोहने-परम सुन्दर; मध्व-आचार्ये-मध्वाचार्य के; स्वप्न दिया-स्वप्न में प्रकट होकर; आइला–आये; ताँर–उनके; स्थाने–स्थान पर।

अनुवाद

उडुपी मठ में श्री चैतन्य महाप्रभु ने नर्तक गोपाल' के अतीव सुन्दर अर्चाविग्रह के दर्शन किये। यह विग्रह मध्वाचार्य के स्वप्न में आये थे।

गोपी-चन्दन-तले आछिल डिङ्गाते ।

मध्वाचार्य सेइ कृष्ण पाइला कोन-मते ॥247॥

गोपी-चन्दन-तले–गोपी चन्दन के ढेर के नीचे (तिलक में प्रयुक्त पीली मिट्टी); आछिल-आये; डिङ्गाते-नाव में; मध्व-आचार्य–मध्वाचार्य; सेइ कृष्ण-वह कृष्ण विग्रह; पाइला–पाया; कोन-मते-किसी न किसी तरह।

अनुवाद

मध्वाचार्य ने कृष्ण का यह विग्रह उस गोपीचन्दन के ढेर से किसी न किसी तरह प्राप्त किया था, जो नाव में लाया गया था।

मध्वाचार्य आनि' ताँरे करिला स्थापन ।

अद्यावधि सेवा करे तत्त्ववादि-गण ॥ 248॥

मध्व-आचार्य–मध्वाचार्य; आनि'–लाकर; ताँरे–उनकी; करिला स्थापन-स्थापना की; अद्य-अवधि-आज तक; सेवा करे-पूजा करते हैं; तत्त्ववादि-गण-तत्त्ववादी लोग।

अनुवाद

मध्वाचार्य इस नर्तक गोपाल के विग्रह को उडुपी ले आये और उन्होंने उन्हें मन्दिर में स्थापित कर दिया। मध्वाचार्य के अनुयायी अर्थात् तत्त्ववादीगण आज भी इस मूर्ति की पूजा करते हैं।

कृष्ण-मूर्ति देखि' प्रभु महा-सुख पाइल ।

प्रेमावेशे बहु-क्षण नृत्य-गीत कैल ॥ 249॥

कृष्ण-मूर्ति देखि'–भगवान् कृष्ण की मूर्ति देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; महा-सुख-महान् हर्ष; पाइल-पाया; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; बहु-क्षण-बहुत समय तक; नृत्य-गीत-नृत्य और गान; कैल–किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को गोपाल का यह सुन्दर रूप देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ। वे देर तक भावावेश में नृत्य तथा कीर्तन करते रहे।

तत्त्ववादि-गण प्रभुके 'मायावादी' ज्ञाने ।

प्रथम दर्शने प्रभुके ना कैल सम्भाषणे ॥ 250॥

तत्त्ववादि-गण-तत्त्ववादी लोग; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को; मायावादी ज्ञाने-मायावादी संन्यासी समझकर; प्रथम दर्शने-प्रथम भेंट में; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु से; ना-नहीं; कैल-किया; सम्भाषणे-वार्तालाप।

अनुवाद

पहले तो तत्त्ववादी वैष्णवों ने श्री चैतन्य महाप्रभु को मायावादी संन्यासी समझा, अतएव उन्होंने उनसे बात नहीं की।

पाछे प्रेमावेश देखि' हैल चमत्कार ।

वैष्णव-ज्ञाने बहुत करिल सत्कार ॥ 251॥

पाछे-बाद में; प्रेम-आवेश-प्रेमावेश; देखि'–देखकर; हैल चमत्कार–हो गये चकित; वैष्णव-ज्ञाने-वैष्णव समझकर; बहुत-बहुत; करिल-किया; सत्कार-सत्कार।

अनुवाद

बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु को भावावेश में देखकर वे लोग चकित रह गये। तत्पश्चात् उन्हें वैष्णव जानकर उन्होंने उनका अच्छा स्वागत किया।

'वैष्णवता' सबार अन्तरे गर्व जानि' ।

ईषत् हासिया किछु कहे गौरमणि ॥ 252॥

वैष्णवता-वैष्णव भाव का; सबार-उन सबके; अन्तरे मन में; गर्व–गर्व; जानि'–जानकर; ईषत् नम्रता से; हासिया–मुस्कराकर; किछु-कुछ; कहे-कहा; गौर-मणि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जान गये कि तत्त्ववादियों को अपने वैष्णव होने पर अत्यधिक गर्व है। अतएव वे मुसकाये और उनसे बातें करने लगे।

ताँ-सबार अन्तरे गर्व जानि गौरचन्द्र ।

ताँ-सबा-सङ्गे गोष्ठी करिला आरम्भ ॥ 253॥

ताँ-सबार-उन सबके; अन्तरे-मन में; गर्व–गर्व; जानि-जानकर; गौर-चन्द्र-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँ-सबा-सङ्गे–उन सबके साथ; गोष्ठी–चर्चा; करिला-की; आरम्भ-आरम्भ।

अनुवाद

उन्हें अत्यन्त गर्वित जानकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे शास्त्रार्थ शुरू किया।

तत्त्ववादी आचार्य—सब शास्त्रेते प्रवीण ।

ताँरे प्रश्न कैल प्रभु हञा येन दीन ॥ 254॥

तत्त्ववादी आचार्य-तत्त्ववादी सम्प्रदाय के प्रमुख प्रचारक; सब-सब; शास्त्रेते-शास्त्रों में; प्रवीण-अनुभवी; ताँरे–उसको; प्रश्न-प्रश्न; कैल–किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हञा–होकर; येन-यथा; दीन-अत्यन्त नम्र।

अनुवाद

तत्त्ववादियों का मुख्य आचार्य शास्त्रों में अत्यन्त पटु था। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यन्त विनीत भाव से उससे प्रश्न किया।

साध्य-साधन आमि ना जानि भाल-मते ।

साध्य-साधन-श्रेष्ठ जानाह आमाते ॥ 255 ॥

साध्य-साधन-जीवन का उद्देश्य और उसे किस प्रकार पाया जाए; आमि–मैं; ना-नहीं; जानि-जानता; भाल-मते-अच्छी तरह; साध्य-साधन-जीवन का उद्देश्य और उसे प्राप्त करने की विधि; श्रेष्ठ-श्रेष्ठ; जाना-कृपया बताएँ; आमाते-मुझे।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं जीवन का लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने की विधि को ठीक से नहीं जानता। कृपया मुझे बतलायें कि मानवता के लिए सर्वश्रेष्ठ आदर्श क्या है और उसे कैसे प्राप्त किया जाए?"

आचार्य कहे,—‘वर्णाश्रम-धर्म, कृष्ण समर्पण’ ।

एइ हय कृष्ण-भक्तेर श्रेष्ठ ‘साधन’ ॥ 256 ॥

आचार्य कहे-आचार्य ने कहा; वर्ण-आश्रम-धर्म-वर्णाश्रम धर्म; कृष्णे-कृष्ण को; समर्पण-समर्पण करना; एइ हय-यह है; कृष्ण-भक्तेर-कृष्ण भक्त की; श्रेष्ठ साधन-श्रेष्ठ साधना।

अनुवाद

आचार्य ने उत्तर दिया, “जब चारों वर्षों तथा चारों आश्रमों के कार्य कृष्ण को समर्पित किये जाते हैं, तो वे ही सर्वश्रेष्ठ साधन होते हैं, जिनसे जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।”

‘पञ्च-विध मुक्ति’ पाञा वैकुण्ठे गमन ।

‘साध्य-श्रेष्ठ’ हय,—एइ शास्त्र-निरूपण ॥ 257॥

पञ्च-विध मुक्ति–पाँच प्रकार की मुक्ति; पाञा-पाकर; वैकुण्ठे-वैकुण्ठ लोक; गमन-जाना; साध्य-श्रेष्ठ हय-जीवन के उद्देश्य की सर्वोच्च उपलब्धि है; एइ-यह; शास्त्र-निरूपण-सभी शास्त्रों का निष्कर्ष है।

अनुवाद

“जब मनुष्य वर्णाश्रम धर्म के कार्य कृष्ण को समर्पित करता है, तो वह पाँच प्रकार की मुक्ति का पात्र होता है और वैकुण्ठ लोक भेज दिया जाता है। यही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है और यही सारे शास्त्रों का निष्कर्ष है।”

प्रभु कहे,—शास्त्रे कहे श्रवण-कीर्तन ।

कृष्ण-प्रेम-सेवा-फलेर ‘परम-साधन’ ॥ 258 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; शास्त्रे कहे-शास्त्रों में कहा गया है; श्रवण-कीर्तन-श्रवण कीर्तन; कृष्ण-प्रेम-सेवा-भगवान् कृष्ण की प्रेमाभक्ति ; फलेर–परिणाम की; परम-साधन-लक्ष्य प्राप्त करने की सर्वश्रेष्ठ विधि।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "शास्त्रों के निष्कर्ष के अनुसार कृष्ण की प्रेमाभक्ति प्राप्त करने के सर्वश्रेष्ठ साधन श्रवण तथा कीर्तन हैं।"

तात्पर्य

तत्त्ववादियों के अनुसार चारों वर्षों तथा आश्रमों के कर्तव्यों को सम्पन्न करना ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम विधि है। इस भौतिक जगत् में किसी एक वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) में रहे बिना चरम लक्ष्य की पूर्ति के लिए सामाजिक कार्यों को समुचित रीति से सम्पन्न नहीं किया जा सकता। हमें आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) के सिद्धान्तों का भी पालन करना होता है, जो सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक समझे जाते हैं। इस तरह तत्त्ववादी यह स्थापित करते हैं कि कृष्ण के लिए वर्णाश्रम के सिद्धान्तों का पालन करना वही सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम विधि है। इस तरह तत्त्ववादियों ने अपने सिद्धान्तों की स्थापना मानव-समाज को ध्यान में रखते हुए की। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने इससे भिन्न मत व्यक्त किया, जब उन्होंने यह कहा कि भगवान् विष्णु के विषय में श्रवण और कीर्तन ही सर्वोत्तम विधि है। तत्त्ववादियों के अनुसार सर्वोच्च लक्ष्य भगवधाम वापस जाना है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुसार भगवत्प्रेम की प्राप्ति ही सर्वोच्च लक्ष्य है, भले ही आप भौतिक जगत् में हों या आध्यात्मिक जगत् में। भौतिक जगत् में इसका अभ्यास शास्त्रों के आदेशानुसार किया जाता है और आध्यात्मिक जगत् में तो वास्तविक उपलब्धि पहले से ही रहती है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद-सेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम् ॥ 259॥

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव-लक्षणा ।

क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥ 260॥

श्रवणम्-भगवान् विष्णु के पावन नाम, रूप, गुण, पार्षद और लीलाओं का श्रवण; कीर्तनम् विष्णु के पावन नाम रूप, गुण से और पार्षद सम्बन्धित दिव्य ध्वनियों का कीर्तन और उनकी चर्चा करना; विष्णोः –भगवान् विष्णु का; स्मरणम्-भगवान् के नाम, रूप, पार्षदों का स्मरण और जिज्ञासा; पाद-सेवनम्-समय, देश, काल के अनुसार भगवान् विष्णु की भक्ति करना; अर्चनम्-भगवान् कृष्ण, भगवान् रामचन्द्र, लक्ष्मी-नारायण अथवा विष्णु के अन्य रूपों की अर्चना; वन्दनम्-भगवान् की वन्दना करना; दास्यम्-सदा अपने आपको पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् का सनातन दास

समझना; सख्यम्-पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् से मित्रता करना; आत्म-निवेदनम्-शरीर, मन और आत्मा को भगवत् सेवा के लिए पूरी तरह समर्पित करना; इति–इस प्रकार; पुंसा-मनुष्यों द्वारा; अर्पिता-अर्पित; विष्णौ–भगवान् विष्णु को; भक्तिः -- भक्ति; चेत्-यदि; नव-लक्षणा-ऊपर बताई गईं नौ प्रकार की विधियाँ; क्रियेत–मानव को सम्पन्न करनी चाहिए; भगवति-भगवान्; अद्धा-सीधे (कर्म, ज्ञान तथा योग द्वारा परोक्ष रूप से नहीं); तत्-वह; मन्ये-मैं समझता हूँ; अधीतम्-समझ; उत्तमम्-प्रथम श्रेणी का।

अनुवाद

"इस विधि में श्रवण, कीर्तन, भगवान् के पवित्र नाम, रूप, गुण, लीलाओं तथा पार्षदों का स्मरण, देश, काल तथा पात्र के अनुसार सेवा करना, अर्चाविग्रह की पूजा करना, स्तुति करना, अपने आपको कृष्ण का शाश्वत दास समझना, उनके प्रति सख्य भाव उत्पन्न करना और उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित करना सम्मिलित हैं। जब इस तरह कृष्ण की नौ प्रकार से सीधी प्रेममयी सेवा की जाती है, तो वही जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है। यही प्रामाणिक शास्त्रों का मत है।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने ये श्लोक श्रीमद्भागवत (7.5.23-24) से उद्धृत किये।

श्रवण-कीर्तन हइते कृष्णे हय 'प्रेमा'।

सेइ पञ्चम पुरुषार्थ—पुरुषार्थेर सीमा ॥ 261॥

श्रवण-कीर्तन-प्रवण तथा कीर्तन; हइते-से; कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; हय-है; प्रेमा-दिव्य प्रेम; सेइ-वह; पञ्चम पुरुष-अर्थ-पाचवा पुरुषार्थ; पुरुष-अर्थेर सीमा-जीवन के उद्देश्यों की सीमा।

अनुवाद

"जब मनुष्य श्रवण-कीर्तन से आरम्भ होने वाली इन नौ विधियों से कृष्ण की प्रेममयी सेवा करता है, तब उसे सिद्धि का पाँचवाँ पद एवं जीवन के लक्ष्य की सीमा प्राप्त होती है।"

तात्पर्य

प्रत्येक व्यक्ति धर्म, आर्थिक विकास, इन्द्रियतृप्ति तथा अन्ततोगत्वा ब्रह्म में समा जाने की सफलता चाहता है। ये सामान्य व्यक्तियों की सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं, किन्तु शुद्ध वैदिक नियमों के अनुसार सर्वोच्च उपलब्धि भगवान् के श्रवणम् कीर्तनम् के पद को प्राप्त करना है। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत 1.1.2) में हुई है :

धर्मः प्रोज्झित कैतवोऽत्र परमो निर्मात्सराणां सतां

वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।

श्रीमद्भागवते महामुनि-कृते-किं वा परैरीश्वरः

सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥

"भौतिकता से प्रेरित सारे धार्मिक कृत्यों का बहिष्कार करते हुए यह भागवत-पुराण उस सर्वोच्च सत्य का प्रतिपादन करता है, जिसे शुद्ध हृदय वाले भक्तगण ही समझ सकते हैं। यह सर्वोच्च सत्य वास्तविकता है, जिसे सबके कल्याण हेतु मोह (भ्रम) से अलग रहकर किया जाता है। ऐसा सत्य तीनों प्रकार के तापों को समूल नष्ट करता है। महामुनि श्री व्यासदेव द्वारा रचित यह सुन्दर भागवत भगवत्-साक्षात्कार कराने के लिए अपने आप में पर्याप्त है। अन्य किसी शास्त्र की क्या आवश्यकता है? ज्योंही कोई ध्यानपूर्वक तथा विनीत होकर भागवत का सन्देश सुनता है, त्योंही इस ज्ञान के अनुशीलन से भगवान् उसके हृदय में स्थापित हो जाते हैं।" श्रीमद्भागवत के इस श्लोक के अनुसार, वे सभी धार्मिक अनुष्ठान छल-कपट हैं, जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के भौतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सम्पन्न किये जाते हैं।

श्रीधर स्वामी के अनुसार सफलता की भौतिक विचारधारा (मोक्ष) की इस भौतिक जगत् के लोग ही इच्छा करते हैं। किन्तु भक्त इस भौतिक जगत् में स्थित नहीं होते, अतएव उन्हें मोक्ष की कामना नहीं होती।

भक्त तो जीवन की सारी अवस्थाओं में मुक्त रहता है, क्योंकि वह भक्ति की नौ विधियों (श्रवणं, कीर्तनं इत्यादि) में लगा रहता है। श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन के अनुसार कृष्ण-भक्ति प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में सदैव रहती है। इसे केवल श्रवणं कीर्तनं विष्णो: की विधि से जागृत किये जाने की आवश्यकता है। श्रवणादि शुद्धचित्ते करये उदय (चैतन्य चरितामृत, मध्य 22.107)। जब व्यक्ति वास्तव में भक्ति में लगा होता है, तब भगवान् के साथ उसका सनातन सम्बन्ध-दास स्वामी सम्बन्ध-जागृत होता है।

एवं-व्रतः स्व-प्रिय-नाम-कीर्यो

जातानुरागो द्रुत-चित्त उच्चैः ।

हसत्यथो रोदिति रौति गायत्य्

उन्माद-वन्नृत्यति लोक-बाह्यः ॥ 262॥

एवम्-व्रतः-जब कोई इस प्रकार कीर्तन व नृत्य करने का व्रत लेता है; स्व-अपना; प्रिय-अत्यन्त प्रिय; नाम-पावन नाम; कीत्र्या-कीर्तन करके; जात-इस तरह विकसित करता है; अनुरागः-अनुराग; द्रुत-चित्तः-उत्सुकता से; उच्चैः-ऊँचे स्वर में; हसति-हँसता है; अथो-और; रोदिति-रोता है; रौति विक्षिप्त होता है; गायति–गाता है; उन्माद-वत्-एक पागल की तरह; नृत्यति-नाचता है; लोक-बाह्यः-लोगों की परवाह न करते हुए।

अनुवाद

"जब कोई व्यक्ति वास्तव में उन्नत होता है और अपने प्रिय भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन में आनन्द का अनुभव करता है, तब वह उत्तेजित होकर जोर-जोर से पवित्र नाम का उच्चारण करता है। वह किसी की परवाह न करते हुए हँसता है, रोता है, क्षोभित होता है और पागल मनुष्य की तरह कीर्तन करता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.2.40) से लिया गया है।

कर्म-निन्दा, कर्म-त्याग, सर्व-शास्त्रे कहे ।

कर्म हैते प्रेम-भक्ति कृष्णे कभु नहे ॥ 263 ॥

कर्म-निन्दा-सकाम कर्मों की निन्दा; कर्म-त्याग-सकाम कर्मों का त्याग; सर्व-शास्त्रे कहे-सभी प्रामाणिक शास्त्रों में कहा गया है; कर्म हैते-सकाम कर्म से; प्रेम-भक्ति-प्रेमाभक्ति; कृष्णे-कृष्ण के लिए; कभु नहे-कभी नहीं मिल सकती।

अनुवाद

"प्रत्येक प्रामाणिक शास्त्र सकाम कर्म की निन्दा करता है। सभी जगह यही उपदेश दिया गया है कि सारे सकाम कर्मों का त्याग कर दिया जाए, क्योंकि इसके द्वारा जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य, भगवत्प्रेम को प्राप्त नहीं किया जा सकता।"

तात्पर्य

वेदों में तीन कांड या विभाग हैं-कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड तथा उपासना काण्ड। कर्मकाण्ड सकाम कर्म किये जाने पर बल देता है, किन्तु अन्ततः कर्मकाण्ड तथा ज्ञान-काण्ड का त्याग कर दिया जाए और एकमात्र उपासना-काण्ड अर्थात् भक्तिकाण्ड ग्रहण कर लिया जाए। कर्मकाण्ड या ज्ञानकाण्ड द्वारा भगवत्प्रेम नहीं पाया जा सकता। किन्तु भगवान् को अपना कर्म समर्पित करके दूषित मन से छुटकारा पाया जा सकता है। इस प्रकार मानसिक कलुष से मुक्त होकर आध्यात्मिक पद प्राप्त किया जा सकता है। उसके बाद शुद्ध भक्त की संगति की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि केवल शुद्ध भक्त की संगति से ही मनुष्य भगवान् कृष्ण का शुद्ध भक्त बन सकता है। शुद्ध भक्ति की अवस्था तक पहुँचने पर श्रवणं कीर्तनं की विधि अत्यावश्यक हो जाती है। भक्ति की नौ विधियों को सम्पन्न करने से, जो श्रवणं कीर्तनं से आरम्भ होती हैं, मनुष्य पूर्ण रूप से शुद्ध बन सकता है। अन्याभिलाषिता शून्य ज्ञानकर्माद्यनावृतम् (भक्तिरसामृतसिन्धु 1.1.11)। उसी के बाद भगवद्गीता (18.65, 66) में दिये कृष्ण के आदेश का पालन किया जा सकता है :

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।

मामेवैष्यसि सत्यम् ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

"सदा मेरे विषय में सोचो तथा मेरे भक्त बनो। मेरी पूजा करो तथा मुझे ही नमस्कार करो। इस तरह तुम अवश्य ही मेरे पास आओगे। मैं तुम्हें यह वचन देता हूँ, क्योंकि तुम मेरे प्रिय मित्र हो। सारे धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्त कर दूँगा। डरो मत।" इस तरह मनुष्य भगवान् की प्रेममयी सेवा करने की अपनी मूल वैधानिक स्थिति विकसित कर सकता है।

कर्मकाण्ड या ज्ञानकाण्ड से कोई भी भक्ति के सर्वोच्च पद पर उन्नत नहीं हो सकता। शुद्ध भक्ति केवल शुद्ध भक्तों की संगति से ही समझी और प्राप्त की जा सकती है। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि कर्मकाण्ड के कार्य दो प्रकार के होते हैं-पवित्र तथा अपवित्र। पवित्र कार्य निस्सन्देह, अपवित्र कार्यों से अच्छे होते हैं, किन्तु पवित्र कार्यों से भी भगवान् कृष्ण के भावपूर्ण प्रेम की प्राप्ति नहीं की जा सकती। पवित्र तथा अपवित्र कार्यों से भौतिक सुख या दुःख तो मिल सकते हैं, किन्तु मात्र इनसे शुद्ध भक्त बनने की सम्भावना नहीं होती। भक्ति का अर्थ है

कृष्ण को सन्तुष्ट करना। प्रत्येक प्रामाणिक शास्त्र में, चाहे उसमें ज्ञानकाण्ड पर बल हो या कर्मकाण्ड पर, वैराग्य के सिद्धान्त की सदा प्रशंसा की जाती है। इसका सबसे बड़ा वैदिक साक्ष्य है वैदिक ज्ञान का परिपक्व फल श्रीमद्भागवत। श्रीमद्भागवत (1.5.12) में कहा गया है :

नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं

न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।

कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे

न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥

"समस्त भौतिक आकर्षण से मुक्त होने पर भी आत्म-साक्षात्कार का ज्ञान अच्छा प्रतीत नहीं होता, यदि वह अच्युत (ईश्वर) की धारणा से रहित हो। तो फिर सकाम कर्मों का क्या लाभ, जो प्रारम्भ से ही पीड़ादायक तथा नश्वर प्रकृति के हैं, यदि उन्हें भगवान् की सेवा में प्रयुक्त न किया जा सके?" इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञान भी, जो कर्मकाण्ड से बढ़कर है, सफल नहीं होता यदि वह भक्ति से रहित है। अतः श्रीमद्भागवत् के प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त में कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड की निन्दा की गई है। उदाहरण के रूप में श्रीमद्भागवत (1.1.2) में कहा गया है- धर्म: प्रोज्झित कैतवोऽत्र।

इसकी व्याख्या श्रीमद्भागवत (11.11.32) तथा भगवद्गीता के (18.66) निम्नलिखित श्लोकों में दी गई है।

आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मयादिष्टानपि स्वकान् ।

धर्मान्सन्त्यज्य यः सर्वान्मां भजेत्स च सत्तमः ॥ 264॥

आज्ञाय-पूर्णतया जानकर; एवम्-इस प्रकार; गुणान्–गुण; दोषान्-दोष; मया-मुझसे; आदिष्टान्–उपदेशित; अपि-यद्यपि; स्वकान्-अपने; धर्मान्–कर्तव्य; सन्त्यज्य-त्यागकर; यः-जो कोई; सर्वान्स बको; माम्-मुझे; भजेत्-भजता है; सः-वह; च-और; सत्-तमः-प्रथम श्रेणी का व्यक्ति।

अनुवाद

"धार्मिक शास्त्रों में नियत कर्मों का वर्णन किया गया है। उनकी विवेचना करने पर मनुष्य उनके गुणों तथा दोषों को पूरी तरह समझ सकता है और तब भगवान् की सेवा करने के लिए उनका पूर्ण परित्याग कर सकता है। जो मनुष्य ऐसा करता है, वह प्रथम कोटि का व्यक्ति (उत्तम) कहलाता है।"

सर्व-धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वां सर्व-पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ 265॥

सर्व-धर्मान्–सभी प्रकार के नियत कर्म; परित्यज्य-त्यागकर; माम् एकम् केवल मेरी; शरणम् शरण; व्रज-आओ; अहम्-मैं; त्वाम्-तुम्हें; सर्व-पापेभ्यः-सभी पापों के फलों से; मोक्षयिष्यामि मुक्त कर दूँगा; मा–मत; शुचः–चिन्ता करो।

अनुवाद

"सारे धर्मों को त्याग कर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापकर्मों से मुक्त कर दूँगा। तुम डरो मत।"

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ।

मत्कथा-श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ 266॥

तावत्-तब तक; कर्माणि-सकाम कर्म; कुर्वीत-करने चाहिए; न निर्विद्येत-सन्तुष्ट नहीं होता; ग्रावता-जब तक; मत्-कथा-मेरी चर्चाएँ; श्रवण-आदौ-श्रवण, कीर्तन आदि; वा–अथवा; श्रद्धा-श्रद्धा; यावत्-जब तक; न-नहीं; जायते-जागृत होती।

अनुवाद

"जब तक मनुष्य सकाम कर्म द्वारा तृप्त नहीं होता और श्रवणं कीर्तनं विष्णोः द्वारा भक्ति के लिए रुचि विकसित नहीं कर लेता, तब तक उसे वैदिक आदेशों के विधि-विधानों के अनुसार कर्म करना आवश्यक है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.20.9) से है।

पञ्च-विध मुक्ति त्याग करे भक्त-गण ।

फल्गु करि' 'मुक्ति' देखे नरकेर सम ॥ 267॥

पञ्च-विध–पाँच प्रकार की; मुक्ति-मुक्ति; त्याग करे-त्यागते हैं; भक्त-गण-भक्तगण; फल्गु-तुच्छ; करि'-समझकर; मुक्ति-मुक्ति; देखे-देखते हैं; नरकेर-नरक के; सम-समान।

अनुवाद

"शुद्ध भक्त मुक्ति के पाँचों प्रकारों को त्याग देते हैं। निस्सन्देह उनके लिए मुक्ति अत्यन्त नगण्य है, क्योंकि वे इसे नरक के समान मानते हैं।"

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥ 268॥

सालोक्य-सालोक्य, उसी लोक में रहना जहाँ भगवान् रहते हैं; सार्टि-भगवान् के समान ऐश्वर्य पाना; सामीप्य–सदैव पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् के साथ रहना; सारूप्य-भगवान् जैसा स्वरूप पाना; एकत्वम्पू र्ण पुरूषोत्तम भगवान् के शरीर में लीन हो जाना; अपि-भी; उत–निश्चित रूप से; दीयमानम्-दिये जाने पर; न-कभी नहीं; गृह्णन्ति-स्वीकार करते; विना-बिना; मत्-मेरी; सेवनम्-भक्ति के; जनाः-भक्तगण।

अनुवाद

"शुद्ध भक्त सदैव पाँच प्रकार की मुक्ति का बहिष्कार करते हैं-ये हैं वैकुण्ठ लोक में रहना, भगवान् जैसे ऐश्वर्यों से युक्त होना, भगवान् जैसा स्वरूप प्राप्त करना, भगवान् की संगति करना तथा भगवान् के शरीर में समा जाना। शुद्ध भक्त भगवद्भक्ति के बिना इन वरदानों को स्वीकार नहीं करते।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (3.29.13) से लिया गया है।

यो दुस्त्यजान्क्षिति-सुत-स्वजनार्थ-दारान्

प्रार्थ्यां श्रियं सुर-वरैः सदयावलोकाम् ।

नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधु-द्विद्

सेवानुरक्त-मनसामभवोऽपि फल्गुः ॥ 269॥

यः–वह जो; दुस्त्यजान्-त्याग करने में अति कठिन; क्षिति-धरती; सुत-बच्चे; स्वजन-बन्धु बान्धव; अर्थ-धन; दारान्-और पत्नी; प्रार्थ्याम्-वांछित; श्रियम्-भाग्य; सुर-वरैः-सर्वोच्च देवताओं द्वारा; स-दया-दयालु; अवलोकाम्-जिसकी दृष्टि; न ऐच्छत्-नहीं चाहते थे; नृपः-राजा (महाराज भरत); तत्-वह; उचितम्-उचित है; महताम्-महान् व्यक्तियों

का; मधु-द्वि-मधु दैत्य के हन्ता का; सेवा-अनुरक्त-सेवा में अनुरक्त; मनसाम्-जिनके मन; अभवः-जन्म-मरण के चक्र की समाप्ति; अपि-भी; फल्गुः-तुच्छ।

अनुवाद

"भौतिक ऐश्वर्य, भूमि, सन्तान, समाज, मित्र, धन, पत्नी या लक्ष्मी के आशीर्वादों को त्याग पाना अत्यन्त कठिन है, जो बड़े-बड़े देवताओं द्वारा भी प्रार्थित हैं। किन्तु राजा भरत को ऐसी वस्तुओं की कामना नहीं थी और यह उनके पद के अनुरूप भी था, क्योंकि ऐसे शुद्ध भक्त के लिए, जिसका मन सदैव भगवान् की सेवा में लगा रहता है, मुक्ति या भगवान् से तादात्म्य भी तुच्छ है। तो फिर भौतिक अवसरों के विषय में तो कहना ही क्या?"

तात्पर्य

शुकदेव गोस्वामी ने राजा परीक्षित से राजा भरत की प्रशंसा में यह श्लोक कहा है (श्रीमद्भागवत 5.14.44)।

नारायण-पराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति।

स्वर्गापवर्ग-नरकेष्वपि तुल्यार्थ-दर्शिनः ॥ 270॥

नारायण-पराः–भगवान् नारायण के भक्त; सर्वे-सभी; न-कभी नहीं; कुतश्चन-कहीं भी; बिभ्यति- भयभीत होते हैं; स्वर्ग–स्वर्ग लोकों में; अपवर्ग–मुक्ति के पथ पर; नरकेषु-अथवा जीवन की नरकावस्था में; अपि-भी; तुल्य-समान; अर्थ–मूल्य; दर्शिनः-देखने वाले।

अनुवाद

"भगवान् नारायण का भक्त नरक से नहीं डरता, क्योंकि वह इसे स्वर्ग जाने या मुक्ति के ही समान मानता है। भगवान् नारायण के भक्त इन वस्तुओं को एक-सा ही मानने के अभ्यस्त होते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (6.17.28) का है, जिसमें चित्रकेतु के व्यक्तित्व का वर्णन हुआ है। एक बार जब चित्रकेतु ने देवी पार्वती को शम्भु (शिव) की गोद में बैठे देखा, तो उसने शिवजी की आलोचना यह कहकर की कि वे निर्लज्ज होकर सामान्य पुरुष की भाँति अपनी पत्नी को गोद में बैठाये हैं। इसके लिए पार्वती ने चित्रकेतु को शाप दे

दिया। बाद में वह वृत्तासुर नामक असुर बना। चित्रकेतु अत्यन्त पराक्रमी राजा तथा भक्त था और वह शिवजी से भी बदला ले सकता था, किन्तु जब पार्वती ने उसे शाप दिया, तो उसने तुरन्त पार्वती के शाप को नतमस्तक होकर स्वीकार कर लिया। जब उसने शाप स्वीकार कर लिया, तो शिवजी ने उसकी प्रशंसा की और पार्वती से कहा कि भगवान् नारायण का भक्त किसी भी पद को स्वीकार करने से डरता नहीं, बशर्ते कि उसे भगवान् की सेवा करने का अवसर मिलता हो। नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति का यही अर्थ है।

मुक्ति, कर्म—दुइ वस्तु त्यजे भक्त-गण ।

सेइ दुइ स्थाप' तुमि 'साध्य', 'साधन' ॥ 271॥

मुक्ति-मुक्ति; कर्म–सकाम कर्म; दुइ-दोनों; वस्तु-वस्तुएँ; त्यजे-भक्त-गण-भक्तगण; सेइ-वे; दुइ-दोनों; स्थाप'–स्थापित करते हैं; ते साध्य-जीवन का उद्देश्य; साधन-उपलब्धि की प्रक्रिया।

अनुवाद

"भक्तगण मुक्ति तथा सकाम कर्म-इन दोनों का परित्या हैं। आप इन्हें ही जीवन का लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने की विधि में स्थापित करना चाह रहे हैं।"

सन्न्यासी देखिया मोरे करह वञ्चन ।

ना कहिला तेञि साध्य-साधन-लक्षण ॥ 272 ॥

सन्न्यासी-संन्यासी; देखिया-देखकर; मोरे-मुझे; करह-तुम करते हो, कपट; ना कहिला–नहीं वर्णन किया; तेञि-अतः; साध्य-उद्देश्य; साधन लक्षण-लक्षण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उस तत्त्ववादी आचार्य से कहते रहे, "संन्यासी वेश में देखकर मेरे साथ कपटपूर्ण आचरण कर रहे हैं। विधि (साधन) तथा चरम लक्ष्य (साध्य) का सही-सही वक्त किया है।"

शुनि' तत्त्वाचार्य हैला अन्तरे लज्जित ।

प्रभुर वैष्णवता देखि, हइला विस्मित ॥ 273॥

शुनि'–सुनकर; तत्त्व-आचार्य-तत्त्ववादी सम्प्रदाय का आचार्य; हैला–हो गया; अन्तरे-मन में; लज्जित-लज्जित; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; वैष्णवता-वैष्णवता; देखि-देखकर; हइला-हो गया; विस्मित–चकित।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की बात सुनकर तत्त्ववादी सम्प्रदाय का आचार्य अत्यधिक लज्जित हो गया। वैष्णव-धर्म में श्री चैतन्य महाप्रभु की दृढ़ श्रद्धा देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया।

आचार्य कहे,—तुमि येइ कह, सेइ सत्य हय ।

सर्व-शास्त्रे वैष्णवेर एइ सुनिश्चय ॥ 274॥

आचार्य कहे-तत्त्ववादी आचार्य ने कहा; तुमि-आप; येइ-जो कुछ; कह-कहते हैं; सेइ-वह; सत्य-सत्य; हय-है; सर्व-शास्त्रे-सभी प्रामाणिक शास्त्रों में; वैष्णवेर-भगवान् विष्णु के भक्तों के; एइ-यह; सु-निश्चय-निष्कर्ष।

अनुवाद

तत्त्ववादी आचार्य ने उत्तर दिया, "आपने जो कहा है, वह सत्य है; यही सारे प्रामाणिक वैष्णव शास्त्रों का निर्णय है।"

तथापि मध्वाचार्य ये करियाछे निर्बन्ध ।

सेइ आचरिये सबे सम्प्रदाय-सम्बन्ध ॥ 275॥

तथापि-तथापि; मध्व-आचार्य–मध्वाचार्य; ये-जो कुछ; करियाछे–सिद्धान्त बनाया है; निर्बन्ध–विधि विधान; सेइ-वह; आचरिये-हम पालन करते हैं; सबे-सब; सम्प्रदाय-सम्प्रदाय; सम्बन्ध–सम्बन्ध।

अनुवाद

"तो भी मध्वाचार्य ने हमारे सम्प्रदाय के लिए जो सूत्र निश्चित कर दिये हैं, हम उन्हीं का पालन सम्प्रदाय की नीति के रूप में करते हैं।"

प्रभु कहे,—कर्मी, ज्ञानी,—दुइ भक्ति-हीन ।

तोमार सम्प्रदाये देखि सेइ दुइ चिह्न ॥ 276 ॥

प्रभु कहे- श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; कर्मी-सकाम कर्मी; ज्ञानी-ज्ञानी; दुइ-दोनों; भक्ति-हीन-अभक्त; तोमार-आपके; सम्प्रदाये-सम्प्रदाय में; देखि-मैं देखता हूँ; सेइ-वही; दुइ-दोनों; चिह्न–लक्षण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "सकाम कर्मी तथा ज्ञानी–दोनों ही अभक्त माने जाते हैं। हमें ये दोनों आपके सम्प्रदाय में दिखते हैं।"

सबे, एक गुण देखि तोमार सम्प्रदाये ।

सत्य-विग्रह करि' ईश्वरे करह निश्चये ॥ 277॥

सबे-सब में; एक-एक; गुण-गुण; देखि-मैं देखता हूँ; तोमार-आपके; सम्प्रदाये-सम्प्रदाय में; सत्य-विग्रह-भगवान् के विग्रह को सत्य; करि'-मानकर; ईश्वरे-पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; करह-आप करते हो; निश्चये निश्चय।

अनुवाद

"मुझे आपके सम्प्रदाय में जो एकमात्र गुण दिखता है, वह यही है। कि आप लोग भगवान् के अर्चाविग्रह को सत्य रूप मानते हैं।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मध्वाचार्य सम्प्रदाय के तत्त्ववादी आचार्य को यह बता देना चाहा कि उनका सामान्य आचरण शुद्ध भक्ति के अनुकूल नहीं है, क्योंकि उसे सकाम कर्म तथा ज्ञान के कल्मष से रहित होना चाहिए। जहाँ तक सकाम कर्म की बात है, यह कल्मष जीवन के उच्चतर स्तर तक ऊपर उठने की इच्छा करना है और ज्ञान का कल्मष परम सत्य में विलीन हो जाने की इच्छा करना है। मध्वाचार्य का तत्त्ववादी सम्प्रदाय वर्णाश्रम धर्म के सिद्धान्त को मानता है, जिसमें सकाम कर्म निहित होता है। उनका चरम लक्ष्य (मुक्ति) मात्र एक प्रकार की भौतिक इच्छा है। शुद्ध भक्त को सभी तरह की भौतिक इच्छाओं से मुक्त होना चाहिए। वह केवल कृष्ण की भक्ति में लगा रहता है। तो भी, चैतन्य महाप्रभु को इस बात की प्रसन्नता थी कि मध्वाचार्य सम्प्रदाय अथवा तत्त्ववाद सम्प्रदाय भगवान् के दिव्य रूप को स्वीकार करता है। यह वैष्णव सम्प्रदायों की सबसे बड़ी विशेषता है।

यह तो मायावाद सम्प्रदाय ही है, जो भगवान् के दिव्य स्वरूप को स्वीकार नहीं करता। यदि कोई वैष्णव सम्प्रदाय भी इस निर्विशेष प्रवृत्ति में बह जाता है, तो उस सम्प्रदाय का कोई स्थान नहीं होता। यह तथ्य है कि ऐसे अनेक तथाकथित वैष्णव हैं, जिनका चरम लक्ष्य भगवान् के अस्तित्व में विलीन हो जाना होता है। उदाहरण के लिए, सहजिया वैष्णव-दर्शन भगवान् से तादात्म्य चाहता है। श्री चैतन्य महाप्रभु इंगित करते हैं कि श्री माधवेन्द्र पुरी ने मध्वाचार्य को इसीलिए स्वीकार किया, क्योंकि उनका सम्प्रदाय भगवान् के दिव्य स्वरूप को स्वीकार करता है।

एइ-मत ताँर घरे गर्व चूर्ण करि' ।

फल्गु-तीर्थे तबे चलि आइला गौरहरि ॥ 278॥

एइ-मत-इस प्रकार; ताँर घरे-उसके घर में; गर्व गर्व; चूर्ण-भंग; करि'–करके; फल्गु-तीर्थे–फल्गुतीर्थ स्थान को; तबे-तब; चलि–चले; आइला–आये; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने तत्त्ववादियों के गर्व को चूर-चूर कर दिया। तब वे फल्गु तीर्थ गये।

त्रितकूपे विशालार करि' दरशन ।

पञ्चाप्सरा-तीर्थे आइला शचीर नन्दन ॥ 279॥

त्रितकूपे–त्रितकूप; विशालार–विशाला नामक विग्रह के; करि'-करके; दरशन-दर्शन; पञ्च-अप्सरा-तीर्थे–पंचाप्सरा तीर्थ स्थान को; आइला–आये; शचीर नन्दन–शची माता के पुत्र।

अनुवाद

माता शची के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु तब त्रितकूप गये और वहाँ पर विशाला अर्चाविग्रह का दर्शन करने के बाद वे पंचाप्सरा नामक तीर्थस्थान गये।

तात्पर्य

स्वर्ग की अप्सराएँ प्रायः नर्तकियाँ कहलाती हैं। स्वर्गीय ग्रहों की युवतियाँ अत्यन्त सुन्दरी होती हैं और यदि पृथ्वी पर कोई स्त्री अत्यन्त सुन्दर होती है, तो उसकी तुलना अप्सराओं से की जाती है। लता, बुदबुदा, समीची, सौरभेयी

तथा वर्णा नाम की पाँच अप्सराएँ थीं। कहा जाता है कि अच्युत ऋषि की तपस्या भंग करने के लिए इन्द्र ने इन पाँच अप्सराओं को भेजा था। स्वर्ग के राजा इन्द्र ऐसा करने का अभ्यस्त था। जब भी इन्द्र किसी व्यक्ति को कठिन तपस्या करते देखता, तो वह अपने पद के बारे में भयभीत होने लगता था। इन्द्र सदैव चिन्तित रहता था कि यदि कोई व्यक्ति उससे अधिक शक्तिशाली हो जायेगा, तो उसका वह उच्च पद छिन लिया जायेगा। अतः जब भी वह किसी ऋषि को तपस्या करते देखता, तो वह उसे विचलित करने के लिए अप्सराएँ भेज देता था। यहाँ तक कि विश्वामित्र जैसे महान् ऋषि भी उसकी योजना के शिकार बन गये थे।

जब पाँच अप्सराएँ अच्युत ऋषि का ध्यान भंग करने पहुँची, तो ऋषि ने उन्हें दण्ड देकर शाप दे दिया; फलस्वरूप वे अप्सराएँ सरोवर में मगरमच्छ बन गईं और वह सरोवर पंचाप्सरा कहलाने लगा। भगवान् रामचन्द्र भी इस स्थान पर पधारे थे। श्री नारद मुनि के वृत्तान्त से पता चलता है कि जब अर्जुन तीर्थस्थलों की यात्रा करने गया, तो उसने पाँच अप्सराओं के शापित होने का पता चला। उसने उनका इस निन्द्य अवस्था से उद्धार किया और उस दिन से यह सरोवर पंचाप्सरा तीर्थस्थान बन गया।

गोकर्णे शिव देखि' आइला द्वैपायनि ।

सूर्पारक-तीर्थे आइला न्यासि-शिरोमणि ॥ 280॥

गोकर्णे–गोकर्ण नामक स्थान पर; शिव-शिवजी का मन्दिर; देखि'–देखकर; आइला–आये; द्वैपायनि-द्वैपायनि; सूर्पारक-तीर्थे-सूर्पारक तीर्थ स्थान को; आइला-आये; न्यासि-शिरोमणि-सर्वश्रेष्ठ संन्यासी, श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

पंचाप्सरा की मुलाकात लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु गोकर्ण गये। वहाँ उन्होंने शिवजी का मन्दिर देखा और फिर द्वैपायनी गये। तब संन्यासियों में सर्वश्रेष्ठ श्री चैतन्य महाप्रभु सूर्पारक तीर्थ गये।

तात्पर्य

गोकर्ण कर्नाटक राज्य में उत्तर कनर में स्थित है और करवर से लगभग 33 मील दक्षिण पूर्व में है। यह स्थान महाबलेश्वर शिवजी के मन्दिर के लिए प्रसिद्ध है। इस मन्दिर को देखने लाखों लोग आते हैं।

सूर्पारक बम्बई से लगभग 26 मील उत्तर में है। महाराष्ट्र में बम्बई के निकट थाना नामक जिला और सोपारा नामक स्थान है। सूर्पारक का उल्लेख महाभारत (शान्ति पर्व, अध्याय 41, श्लोक 66-67) में हुआ है।

कोलापुरे लक्ष्मी देखि' देखेन क्षीर-भगवती ।

लाङ्ग-गणेश देखि' देखेन चोर-पार्वती ॥281॥

कोलापुरे–कोलापुर; लक्ष्मी-लक्ष्मी; देखि'–देखकर; देखेन-उन्होंने दर्शन किया; क्षीर-भगवती-क्षीर भगवती मन्दिर; लाङ्ग-गणेश-लांग गणेश मूर्ति; देखि'–देखकर; देखेन-उन्होंने देखा; चोर-पार्वती–पार्वतीदेवी जिसे 'चोर' कहते हैं।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु कोलापुर नामक नगर गये, जहाँ उन्होंने क्षीर भगवती के मन्दिर में लक्ष्मीजी को और चोर पार्वती नामक अन्य मन्दिर में लांग गणेश के दर्शन किये।

तात्पर्य

कोलापुर पहले के बम्बई प्रदेश कहलाने वाला और वर्तमान महाराष्ट्र प्रदेश का एक नगर है। पहले कोलापुर एक देशी रियासत था। यह उत्तर में सांतारा जिला से, पूर्व तथा दक्षिण में बेलगाम से तथा पश्चिम में रत्नागिरि जिले से घिरा है। इस स्थान पर उर्णा नामक नदी है। बम्बई गजट से पता चलता है कि यहाँ लगभग 250 मन्दिर थे, जिनमें से छह अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इनके नाम हैं- (1) अम्बाबाई या महालक्ष्मी मन्दिर, (2) विठोबा मन्दिर, (3) टेम्बलाई मन्दिर, (4) महाकाली मन्दिर, (5) फिरांग-इ या प्रत्यंगिरा मन्दिर तथा (6) याल्लाम्मा मन्दिर।

तथा हैते पाण्डरपुरे आइला गौरचन्द्र ।

विठ्ठल-ठाकुर देखि' पाइला आनन्द ॥282॥

तथा हैते-वहाँ से; पाण्डर-पुरे–पाण्डरपुर; आइला–आये; गौरचन्द्र-श्री चैतन्य महाप्रभु; विठ्ठल-ठाकुर–विठ्ठल नामक विग्रह; देखि-देखकर; पाइला–पाया; आनन्द-आनन्द।

अनुवाद

वहाँ से श्री चैतन्य महाप्रभु पांडरपुर गये, जहाँ उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक विट्ठल ठाकुर का मन्दिर देखा।

तात्पर्य

पांडरपुर शहर भीमा नदी के तट पर स्थित है। कहा जाता है कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु पांडरपुर गये, तब उन्होंने तुकाराम को दीक्षा दी और इस तरह तुकाराम उनके शिष्य बने । तुकाराम आचार्य महाराष्ट्र प्रान्त में अत्यधिक प्रसिद्ध हुए और उन्होंने सारे प्रान्त में संकीर्तन आन्दोलन का प्रसार किया। आज भी तुकाराम की कीर्तन टोली मुम्बई में और सारे महाराष्ट्र राज्य में अत्यन्त लोकप्रिय है। इनकी लिखी पुस्तक अभंग है। उनकी संकीर्तन-टोली गौड़ीय वैष्णव कीर्तन मंडलियों जैसी ही है, क्योंकि वे भी मृदंग तथा करताल के साथ भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करते हैं।

इस श्लोक में उल्लिखित विट्ठलदेव दो भुजाओं वाले विष्णु के रूप हैं और वे नारायण हैं।

प्रेमावेशे कैल बहुत कीर्तन-नर्तन ।

ताहाँ एक विप्र ताँरे कैल निमन्त्रण ॥283 ॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; कैल–किया; बहुत-बहुत; कीर्तन-नर्तन-कीर्तन तथा नृत्य; ताहाँ-वहाँ; एक-एक; विप्र-ब्राह्मण ने; ताँरे–उनको; कैल–दिया; निमन्त्रण-निमंत्रण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सदा की तरह कई प्रकार से नृत्य और कीर्तन करने लगे और एक ब्राह्मण उन्हें भावावेश में देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने महाप्रभु को अपने घर पर भोजन करने के लिए भी आमन्त्रण दिया।

बहुत आदरे प्रभुके भिक्षा कराइल ।

भिक्षा करि' तथा एक शुभ-वार्ता पाइल ॥284॥

बहुत आदरे-अत्यन्त आदर तथा प्रेम सहित; प्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु को; भिक्षा कराइल-भोजन कराया; भिक्षा करि'–भोजन करने के बाद; तथा-वहाँ; एक-एक; शुभ-वार्ता–शुभ समाचार; पाइल-पाया।

अनुवाद

इस ब्राह्मण ने अतीव सम्मान सहित तथा प्रेमपूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन कराया। भोजन करने के बाद महाप्रभु को शुभ समाचार मिला।

माधव-पुरीर शिष्य 'श्री-रङ्ग-पुरी' नाम ।

सेइ ग्रामे विप्र-गृहे करेन विश्राम ॥ 285॥

माधव-पुरीर शिष्य-माधवेन्द्र पुरी के एक शिष्य; श्री-रङ्ग-पुरी-श्री रंग पुरी; नाम-नामक; सेइ ग्रामे-उस गाँव में; विप्र-गृहे-एक ब्राह्मण के घर में; करेन विश्राम-विश्राम कर रहे हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को यह समाचार मिला कि श्री माधवेन्द्र पुरी के एक शिष्य श्री रंग पुरी उसी गाँव में एक ब्राह्मण के घर उपस्थित हैं।

शुनिया चलिला प्रभु ताँरे देखिबारे ।

विप्र-गृहे वसि' आछेन, देखिला ताँहारे ॥ 286 ॥

शुनिया-यह सुनकर; चलिला–चले गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको; देखिबारे-मिलने के लिए; विप्र-गृहे-ब्राह्मण के घर में; वसि'-बैठे; आछेन-थे; देखिला–देखा; ताँहारे-उनको।

अनुवाद

यह समाचार सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु तुरन्त श्री रंग पुरी को मिलने उस ब्राह्मण के घर गये। प्रवेश करते ही महाप्रभु ने उन्हें वहाँ बैठे देखा।

प्रेमावेशे करे ताँरे दण्ड-परणाम ।

अश्रु, पुलक, कम्प, सर्वाङ्गे पड़े घाम ॥ 287॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; करे–किया; ताँरे–उनको; दण्ड-परणाम-दण्डवत् प्रणाम; अश्रु-अश्रु; पुलक-पुलक; कम्प-कंपन; सर्व-अङ्गे-सारे शरीर पर; पड़े-हो गया; घाम-पसीना।

अनुवाद

श्री रंग पुरी को देखते ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने भूमि पर दण्डवत् गिरकर भावावेश में प्रणाम किया। उनके शरीर में अश्रु, हर्ष, कम्पन तथा स्वेद (पसीने) के दिव्य विकार लक्षण प्रकट हो गये थे।

देखिया विस्मित हैल श्री-रङ्ग-पुरीर मन ।

'उठह श्रीपाद' बलि' बलिला वचन ॥ 288॥

देखिया-देखकर; विस्मित–चकित; हैल–हो गया; श्री-रङ्ग-पुरीर-श्री रंग पुरी का; मन–मन; उठह-उठकर; श्री-पाद--श्रीपाद; बलि' कहकर; बलिला वचन–बोलने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को ऐसे भावावेश में देखकर श्रीरंग पुरी ने कहा, "हे श्रीपाद, कृपया उठे।"

श्रीपाद, धर मोर गोसाञिर सम्बन्ध ।

ताहा विना अन्यत्र नाहि एइ प्रेमार गन्ध ॥ 289॥

श्री-पाद-हे श्रीपाद; धर-आप रखते हो; मोर-मेरे; गोसाञिर-प्रभु माधवेन्द्र पुरी के साथ; सम्बन्ध–सम्बन्ध; ताहा विना-उसके बिना; अन्यत्र-और कहीं; नाहि-नहीं है; एइ-यह; प्रेमार-प्रेम की; गन्ध–सुगन्ध।

अनुवाद

"हे श्रीपाद, आप श्री माधवेन्द्र पुरी से सम्बन्धित हैं, जिनके बिना प्रेमानन्द की कोई सुगन्ध नहीं होती।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर लिखते हैं कि मध्वाचार्य से लेकर पूज्यपाद श्रीपाद लक्ष्मीपति तीर्थ तक की गुरु-शिष्य परम्परा में केवल भगवान् कृष्ण की पूजा होती थी। श्रील माधवेन्द्र पुरी के बाद राधा तथा कृष्ण दोनों की पूजा की स्थापना की गई। इसीलिए श्री माधवेन्द्र पुरी को प्रेमपूर्ण पूजा का मूल माना जाता है। जो माधवेन्द्र पुरी की गुरु-शिष्य परम्परा में नहीं है, उसमें प्रेम-लक्षण उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं होती। इस प्रसंग में गोसांई शब्द महत्त्वपूर्ण है। जो गुरु पूर्णरूपेण भगवान् के प्रति समर्पित है और जिसके पास भगवान् की सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं होता, वह सर्वोत्तम परमहंस कहलाता है। परमहंस को इन्द्रियतृप्ति से कोई सरोकार नहीं रहता; वह तो भगवान् की इन्द्रिय-तुष्टि

में ही रुचि लेता है। इस तरह जिस व्यक्ति का इन्द्रियों पर नियन्त्रण होता है, वह गोसांई या गोस्वामी कहा जाता है। इन्द्रियों को तब तक नियंत्रित नहीं की जा सकतीं, जब तक कोई भगवान् की सेवा में नहीं लगता। अतः प्रामाणिक गुरु, जो अपनी इन्द्रियों पर पूरा नियंत्रण रखता है, वह चौबीसों घण्टे भगवान् की सेवा में लगा रहता है। उसे गोसांई अथवा गोस्वामी सम्बोधित किया जा सकता है। गोस्वामी पदवी कभी उत्तराधिकार से नहीं मिलती, प्रत्युत प्रामाणिक गुरु को ही प्रदान की जा सकती है।

वृन्दावन के छह महान् गोस्वामी श्रील रूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ, श्री जीव, गोपाल भट्ट तथा दास रघुनाथ थे, जिनमें से किसी को भी गोस्वामी की पदवी उत्तराधिकार में नहीं मिली थी। वृन्दावन के वे सभी गोस्वामी प्रामाणिक गुरु के रूप में भक्ति के उच्चतम पद को प्राप्त थे, इसीलिए ये सभी गोस्वामी कहलाये। इन्हीं छः गोस्वामियों ने वृन्दावन के सारे मन्दिरों का शुभारम्भ किया। बाद में इन मन्दिरों की पूजा का भार गोस्वामियों के कुछ गृहस्थ शिष्यों को सौंप दिया गया। तभी से गोस्वामी पदवी का वंशानुगत उपयोग किया जाने लगा। किन्तु जो प्रामाणिक गुरु होता है और श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय, कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करता है और जिसका अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण है, वही गोस्वामी कहला सकता है। दुर्भाग्यवश वंशानुगत प्रक्रिया चालू है; अतएव वर्तमान समय में इस पदवी का शाब्दिक व्युत्पत्ति की अज्ञानता के कारण बहुत हद तक दुरुपयोग हो रहा है।

एत बलि' प्रभुके उथामा कैल आलिङ्गन ।

गलागलि करि' दुँहे करेन क्रन्दन ॥290 ॥

एत बलि'-यह कहकर; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को; उथाजा-उठाकर; कैल-किया; आलिङ्गन-आलिंगन; गलागलि–गले लगकर; करि'–करके; दुँहे-वे दोनों; करेन-करने लगे; क्रन्दन-रोदन।

अनुवाद

यह कहकर श्री रंग पुरी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को उठाया और उनका आलिंगन किया। आलिंगन करते समय दोनों भाववश रुदन करने लगे।

क्षणेके आवेश छाड़ि' दुँहार धैर्य हैल ।

ईश्वर-पुरीर सम्बन्ध गोसाञि जानाइल ॥ 291॥

क्षणेके-कुछ क्षणों के बाद; आवेश-आवेश; छाड़ि'-त्यागकर; दुँहार-उन दोनों का; धैर्य-धैर्य; हैल-हुआ; ईश्वर-पुरीर-ईश्वरी पुरी का; सम्बन्ध–सम्बन्ध; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु; जानाइल-बताया।

अनुवाद

कुछ क्षणों के बाद उन्हें होश आया, तो वे शान्त हुए। तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री रंग पुरी से ईश्वर पुरी के साथ अपने सम्बन्ध के विषय में बतलाया।

अद्भुत प्रेमेर वन्या दुँहार उथलिल ।

दुँहे मान्य करि' दुँहे आनन्दे वसिल ॥ 292॥

अद्भुत-अद्भुत; प्रेमेर-भगवत्प्रेम का; वन्या-डूब जाना; दुँहार-उन दोनों का; उथलिल-उठा; दुँहे-वे दोनों; मान्य करि'–सम्मान दर्शाकर; दुँहे-वे दोनों; आनन्दे-आनन्दपूर्वक; वसिल-बैठ गये।

अनुवाद

वे दोनों अपने भीतर उठने वाले अद्भुत प्रेम-भाव से आप्लावित हो उठे। अन्त में दोनों बैठ गये और आदरपूर्वक बातें करने लगे।

दुइ जने कृष्ण-कथा कहे रात्रि-दिने ।

एइ-मते गोङाइल पाँच-सात दिने ॥ 293॥

दुइ जने-दोनों व्यक्ति; कृष्ण-कथा-कृष्ण कथा; कहे-कहने लगे; रात्रि-दिने-दिन रात; एइ-मते-इस प्रकार; गोङाइल-व्यतीत किये; पाँच-सात-पाँच सात; दिने-दिन।

अनुवाद

इस तरह वे दोनों लगातार पाँच-सात दिनों तक कृष्ण-विषयक कथाओं की चर्चा करते रहे।

कौतुके पुरी ताँरे पुछिल जन्म-स्थान ।

गोसाञि कौतुके कहेन 'नवद्वीप' नाम ॥294॥

कौतुके-जिज्ञासा के कारण; पुरी-श्री रंग पुरी; ताँरे–उनको; पुछिल–पूछा; जन्म-स्थान-जन्म स्थान; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु; कौतुके-सामान्यतः; कहेन–कहा; नव-द्वीप-नवद्वीप; नाम-नाम्।

अनुवाद

श्री रंग पुरी ने उत्सुकतावश चैतन्य महाप्रभु से उनके जन्मस्थान के विषय में पूछा, तो महाप्रभु ने बतलाया कि नवद्वीप धाम उनका जन्मस्थान है।

श्री-माधव-पुरीर सङ्गे श्री-रङ्ग-पुरी ।

पूर्वे आसियाछिला तेंहो नदीया-नगरी ॥295॥

श्री-माधव-पुरीर सङ्गे-श्री माधवेन्द्र पुरी के साथ; श्री-रङ्ग-पुरी–श्री रंग पुरी; पूर्वे-पहले; आसियाछिला-आये थे; तेंहो-वे; नदीया-नगरी-नदीया नगरी में।

अनुवाद

पहले श्री रंग पुरी श्री माधवेन्द्र पुरी के साथ नवद्वीप जा चुके थे, अतएव उन्हें वहाँ हुई घटनाएँ याद आ गईं।

जगन्नाथ मिश्र-घरे भिक्षा ये करिल ।

अपूर्व मोचार घण्ट ताहाँ ये खाइल ॥ 296 ॥

जगन्नाथ-मिश्र-घरे-श्री जगन्नाथ मिश्र के घर में; भिक्षा-भोजन; ये-वहः करिल-किया; अपूर्व–अपूर्व; मोचार घण्ट–केले के फूलों से बनी सब्जी; ताहाँ-वहाँ; ये-वह; खाइल-खाई।

अनुवाद

नवद्वीप का नाम सुनते ही श्री रंग पुरी को स्मरण हो आया कि वे माधवेन्द्र पुरी के साथ जगन्नाथ मिश्र के घर गये थे, जहाँ उन्होंने दोपहर का भोजन किया था। यहाँ तक कि उन्हें केले के फूलों की बनी सब्जी का अद्वितीय स्वाद भी याद आ गया।

जगन्नाथेर ब्राह्मणी, तेंह—महा-पतिव्रता ।

वात्सल्ये हयेन तेंह येन जगन्माता ॥ 297॥

जगन्नाथेर-जगन्नाथ मिश्र की; ब्राह्मणी-पत्नी; तेंह-वे; महा-अत्यन्त; पति-व्रता-पतिव्रता; वात्सल्ये-वात्सल्य प्रेम में; हयेन-थीं; तेंह-वे; येन-जैसे; जगत्-माता-सारे जगत् की माता।

अनुवाद

श्री रंग पुरी को जगन्नाथ मिश्र की पत्नी भी याद आई। वे अत्यन्त समर्पित तथा पतिव्रता थीं। वात्सल्य में तो वे जगन्माता तुल्य थीं।

रन्धने निपुणा ताँ-सम नाहि त्रिभुवने ।

पुत्र-सम स्नेह करेन सन्न्यासि-भोजने ॥ 298॥

रन्धने-भोजन बनाने में; निपुणा-निपुण; ताँ-सम-उनकी तरह; नाहि-कोई नहीं है; त्रि-भुवने–तीनों भुवनों में; पुत्र-सम-अपने पुत्रों के समान; स्नेह करेन-वे स्नेहिल थीं; सन्न्यासि-भोजने-संन्यासियों को भोजन कराने में।

अनुवाद

उन्हें यह भी स्मरण हो आया कि श्री जगन्नाथ मिश्र की पत्नी शचीमाता भोजन बनाने में कैसी निपुण थीं। उन्हें स्मरण हो आया कि वे संन्यासियों के प्रति अत्यधिक स्नेह रखती थीं और उन्हें अपने पुत्रों के समान भोजन कराती थीं।

ताँर एक योग्य पुत्र करियाछे सन्न्यास ।

'शङ्करारण्य' नाम ताँर अल्प वयस ॥ 299॥

ताँर-उनका; एक-एक; योग्य-योग्य; पुत्र-पुत्र; करियाछे–स्वीकार किया; सन्न्यास-संन्यास; शङ्करारण्य–शंकरारण्य; नाम-नामक; ताँर-उसका; अल्प-छोटी; वयस-आयु।

अनुवाद

श्री रंग पुरी यह भी जानते थे कि उनके एक योग्य पुत्र ने कम वय में ही संन्यास ले लिया था। उसका नाम शंकरारण्य था।

एइ तीर्थे शङ्करारण्येर सिद्धि-प्राप्ति हैल ।

प्रस्तावे श्री-रङ्ग-पुरी एतेक कहिल ॥ 300 ॥

एइ तीर्थे-इसी पवित्र स्थान में; शङ्करारण्येर–शंकरारण्य ने; सिद्धि-प्राप्ति-सिद्धि प्राप्ति; हैल–कर ली; प्रस्तावे-बातचीत के दौरान; श्री-रङ्ग-पुरी-श्री रंग पुरी; एतेक-इस प्रकार; कहिल–बोले।

अनुवाद

श्री रंग पुरी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाया कि इसी तीर्थ पांडरपुर में शंकरारण्य नामक संन्यासी ने सिद्धि प्राप्त की थी।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के बड़े भाई का नाम विश्वरूप था। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के पूर्व ही घर छोड़कर संन्यास ग्रहण कर लिया था और उनका नाम शंकरारण्य स्वामी था। वे सारे देश में भ्रमण करके अन्त में पांडरपुर गये, जहाँ सिद्धि प्राप्त करने के बाद संसार से चल बसे। दूसरे शब्दों में, उन्होंने अपना भौतिक शरीर पांडरपुर में त्यागा और वे दिव्य लोक सिधार गये। श्री माधवेन्द्र पुरी के शिष्य श्री रंग पुरी ने, जो ईश्वर पुरी के गुरुभाई थे, यह महत्त्वपूर्ण समाचार श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाया।

प्रभु कहे,—पूर्वाश्रमे तेंह मोर भ्राता ।

जगन्नाथ मिश्र—पूर्वाश्रमे मोर पिता ॥ 301॥

प्रभ कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; पूर्व-आश्रमे-मेरे पहले के आश्रम में; तेंह-वे; मोर भ्राता-मेरा भाई; जगन्नाथ मिश्र–जगन्नाथ मिश्र; पूर्व-आश्रमे-मेरे पिछले आश्रम में; मोर पिता-मेरे पिताजी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मेरे पूर्व आश्रम में शंकरारण्य मेरा भाई था और जगन्नाथ मिश्र मेरे पिता थे।"

एइ-मत दुइ-जने इष्ट-गोष्ठी करि' ।

द्वारका देखिते चलिला श्री-रङ्ग-पुरी ॥ 302॥

एइ-मत-इस प्रकार; दुइ-जने–उन दोनों ने; इष्ट-गोष्ठी करि'-कई विषयों की चर्चा की; द्वारका देखिते-द्वारका देखने के लिए; चलिला-चल पड़े; -रङ्ग-पुरी–श्री रंग पुरी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से बातें करने के बाद श्री रंग पुरी द्वारका धाम के लिए रवाना हो गये।

दिन चारि तथा प्रभुके राखिल ब्राह्मण ।

भीमा-नदी स्नान करि' करेन विठ्ठल दर्शन ॥ 303 ॥

दिन-दिन; चारि-चार; तथा-वहाँ; प्रभुके–चैतन्य महाप्रभु को; राखिल-रखा; ब्राह्मण-ब्राह्मण ने; भीमा-नदी-भीमा नदी में; न करि'–स्नान करके; करेन-किया; विठ्ठल दर्शन–विठ्ठल के मन्दिर का दर्शन।

अनुवाद

श्री रंग पुरी के द्वारका-गमन के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु पाण्डरपुर में उस ब्राह्मण के घर चार दिनों तक और रहे। उन्होंने भीमा नदी में स्नान किया और विठ्ठल-मन्दिर का दर्शन किया।

तबे महाप्रभु आइला कृष्ण-वेण्वा-तीरे ।

नाना तीर्थ देखि' ताहाँ देवता-मन्दिरे ॥ 304॥

तबे-तत्पश्चात्; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला–आये; कृष्ण-वेण्वा-तीरे-कृष्णवेण्वा नदी के तट पर; नाना-नाना; तीर्थ-तीर्थ स्थान; देखि-देखकर; ताहाँ-वहाँ; देवता-मन्दिरे-कुछ देवताओं के मन्दिरों में।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्णवेण्वा नदी के किनारे गये, जहाँ उन्होंने अनेक तीर्थस्थल तथा विभिन्न देवों के मन्दिर देखे।

तात्पर्य

यह नदी कृष्णा नदी की एक शाखा है। कहा जाता है कि ठाकुर बिल्वमंगल इसी नदी के किनारे रहते थे। यह नदी कभी-कभी वीणा, वेणी, सिना तथा भीमा भी कहलाती है।

ब्राह्मण-समाज सब—वैष्णव-चरित ।

वैष्णव सकल पड़े 'कृष्ण-कर्णामृत' ॥ 305॥

ब्राह्मण-समाज-ब्राह्मण समाज; सब-सब; वैष्णव-चरित-शुद्ध भक्त; वैष्णव सकल-सभी वैष्णव; पड़े-पढ़ते थे; कृष्ण-कर्णामृत-कृष्णकर्णामृत (बिल्वमंगल ठाकुर कृत)।

अनुवाद

वहाँ के ब्राह्मण-समाज में सभी शुद्ध भक्त थे, जो नियमित रूप से बिल्वमंगल ठाकुर कृत कृष्णकर्णामृत नामक ग्रंथ का अध्ययन करते थे।

तात्पर्य

बिल्वमंगल ठाकुर कृत इस पुस्तक में 112 श्लोक हैं। इसी नाम की दो-तीन पुस्तकें और भी हैं और बिल्वमंगल की पुस्तक पर दो भाष्य भी उपलब्ध हैं। एक भाष्य तो कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा ही लिखित है, और दूसरा चैतन्य दास गोस्वामी द्वारा।

कृष्ण-कर्णामृत शुनि' प्रभुर आनन्द हैल ।

आग्रह करिया पुँथि लेखाञा लैल ॥ 306॥

कृष्ण-कर्णामृत शुनि'-कृष्णकर्णामृत सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; आनन्द हैल–अत्यन्त आनन्द हुआ; आग्रह करिय-बड़ी उत्सुकता से; पुँथि–पुस्तक; लेखाञा-नकल करवाकर; लैल-ले ली।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्णकर्णामृत पुस्तक सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़ी ही उत्सुकता से उसकी नकल करवाई तथा उसे अपने साथ लेते गये।

'कर्णामृत'-सम वस्तु नाहि त्रिभुवने ।

याहा हैते हय कृष्णे शुद्ध-प्रेम-ज्ञाने ॥ 307॥

कर्णामृत-कृष्णकर्णामृत; सम-समान; वस्तु नाहि कोई वस्तु नहीं है; त्रि-भुवने-तीनों भुवनों में; ग्राहा हैते–जिससे; हय-है; कृष्णे-भगवान् कृष्ण का; शुद्ध-प्रेम-ज्ञाने-शुद्ध भक्ति का ज्ञान।

अनुवाद

तीनों लोकों में कृष्णकर्णामृत की बराबरी का कोई ग्रंथ नहीं है। इस पुस्तक को पढ़ने से कृष्ण की शुद्ध भक्ति का ज्ञान प्राप्त होता है।

सौन्दर्य-माधुर्घ-कृष्ण-लीलार अवधि ।

सेइ जाने, ये 'कर्णामृत' पड़े निरवधि ॥ 308॥

सौन्दर्य-सौन्दर्य; माधुर्य–माधुर्य; कृष्ण-लीलार-कृष्ण की लीलाओं की; अवधि-सीमा; सेइ जाने-वह जानता है; ये-जो कोई; कर्णामृत-कृष्णकर्णामृत पुस्तक; पड़े-पढ़ता है; निरवधि-लगातार।

अनुवाद

जो व्यक्ति निरन्तर कृष्णकर्णामृत को पढ़ता है, वह भगवान् कृष्ण के सौन्दर्य तथा उनकी लीलाओं के मधुर स्वाद को समझ सकता है।

'ब्रह्म-संहिता', 'कर्णामृत' दुइ पुँथि पाञा ।

महा-रत्न-प्राय पाइ आइला सङ्गे लञा ॥ 309॥

ब्रह्म-संहिता- ब्रह्म-संहिता पुस्तक; कर्णामृत-कृष्णकर्णामृत पुस्तक; दुइ-दोनों; पूँथि–पुस्तकें; पाञा-पाकर; महा-रत्न-प्राय-अत्यन्त मूल्यवान रत्नों की तरह; पाइ-पाकर; आइला-लौट आये; सड़े-अपने साथ; लञा-लेकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ब्रह्म-संहिता तथा कृष्ण-कर्णामृत नामक दो पुस्तकों को अत्यन्त मूल्यवान रत्न मानते थे। अतएव अपनी वापसी यात्रा में वे इन्हें अपने साथ ले आये।

तापी स्नान करि' आइला माहिष्मती-पुरे ।

नाना तीर्थ देखि ताहाँ नर्मदार तीरे ॥310॥

तापी-तापी नदी में; स्नान करि'-स्नान करके; आइला-आये; माहिष्मती-पुरे-माहिष्मती पुर में; नाना तीर्थ–अनेक तीर्थस्थानों को; देखि-देखकर; ताहाँ-वहाँ; नर्मदार तीरे-नर्मदा नदी के तट पर।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु तापी नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ स्नान करने के बाद वे माहिष्मतीपुर गये। वहाँ रहते हुए उन्होंने नर्मदा नदी के किनारे अनेक तीर्थस्थानों को देखा।

तात्पर्य

तापी नदी ताप्ती भी कहलाती है। यह नदी मुल्ताइ पर्वत से निकलती है। और सौराष्ट्र से होकर पश्चिमी दिशा में बहती हुई अरब सागर में गिरती है।

महाभारत में माहिष्मतीपुर (महेश्वर) का उल्लेख सहदेव की विजय यात्रा के प्रसंग में प्राप्त होता है। पाण्डवों में सबसे छोटे भाई सहदेव ने इस प्रान्त पर विजय प्राप्त की थी। महाभारत के अनुसार :

ततो रत्नान्युपादाय पुरीं माहिष्मतीं ययौ ।

तत्र नीलेन राज्ञा स चक्रे युद्धं नरर्षभाः ॥

"रत्न प्राप्त करने के बाद सहदेव माहिष्मती नगर में गये, जहाँ पर उन्होंने राजा नील के साथ युद्ध किया।"

धनुस्तीर्थ देखि' करिला निर्विन्ध्याते स्नाने ।

ऋष्यमूक-गिरि आइला दण्डकारण्ये ॥ 311॥

धनुः-तीर्थ–धनुस्तीर्थ; देखि'–देखकर; करिला-किया; निर्विन्ध्याते-निर्विन्ध्या नदी में; स्नाने–स्नान; ऋष्यमूक-गिरि–ऋष्यमूक पर्वत पर; आइला–आये; दण्डक-अरण्ये-दण्डकारण्य नामक पर्वत में।

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु धनुस्तीर्थ में पहुँचे, जहाँ पर उन्होंने निर्विन्ध्या नदी में स्नान किया। तत्पश्चात् वे ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे और वहाँ से दण्डकारण्य चले गये।

तात्पर्य

कुछ लोगों का मत है कि ऋष्यमूक पर्वत-श्रृंखला है, जिसकी शुरूआत बेलारी जिले के हाम्पिग्राम से होती है। यह पर्वत-श्रेणी तुंगभद्रा नदी के किनारे-किनारे चलती है और धीरे-धीरे हैदराबाद राज्य तक पहुँच जाती है। अन्यों के मतानुसार यह पर्वत मध्यप्रदेश में स्थित है और आजकल राम्प कहलाता है। दण्डकारण्य विस्तृत भूभाग है, जो खानदेश के उत्तर से प्रारम्भ होकर नासिक तथा औरंगाबाद होते हुए दक्षिणी आहम्मद नगर तक फैला है। गोदावरी नदी इसी भूभाग से होकर बहती है और यहाँ पर एक विशाल जंगल है, जिसमें भगवान् रामचन्द्र रहे थे।

'सप्ततात-वृक्ष' देखे कानन-भितर ।

अति वृद्ध, अति स्थूल, अति उच्चतर ॥ 312॥

सप्त-ताल-वृक्ष–सात ताड़ के वृक्ष; देखे-देखे; कानन भितर–वन के भीतर; अति वृद्ध–अत्यन्त पुराने; अति स्थूल-अत्यन्त भारी; अति उच्चतर–अत्यन्त ऊँचे।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने दण्डकारण्य जंगल के भीतर सप्ततात नामक स्थान देखा। यहाँ के ताड़ के सात वृक्ष अत्यन्त पुराने, मोटे तथा ऊँचे थे।

तात्पर्य

सप्ततात का उल्लेख रामायण के किष्किन्धा काण्ड में अध्याय ग्यारह तथा बारह में हुआ है।

सप्ततात देखि प्रभ आलिङन कैल ।

सशरीरे सप्ततात वैकुण्ठे चलिल ॥ 313॥

सप्त-ताल देखि'–सात ताड़ के वृक्ष देखकर; प्रभु–चैतन्य महाप्रभु ने; आलिङ्गन कैल-आलिंगन किया; स-शरीरे-शरीरों सहित; सप्त-ताल-सात ताल वृक्ष; वैकुण्ठे चलिल-वैकुण्ठलोक को लौट गये।

अनुवाद

सात ताड़ वृक्षों को देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें गले लगा लिया। फलस्वरूप वे वृक्ष वैकुण्ठ लोक वापस चले गये।

शून्य-स्थल देखि लोकेर हैल चमत्कार ।

लोके कहे, ए सन्न्यासी–राम-अवतार ॥ 314॥

शून्य-स्थल-शून्य स्थान; देखि-देखकर; लोकेर-सामान्य लोगों का; हैल-था; चमत्कार-आश्चर्य; लोके कहे-सभी लोग कहने लगे; ए सन्न्यासी-यह संन्यासी; राम-अवतार-भगवान् रामचन्द्र के अवतार हैं।

अनुवाद

जब सातों ताड़ के वृक्ष वैकुण्ठ लोक चले गये, तो वहाँ के सारे लोग चकित रह गये। तब वे कहने लगे, "श्री चैतन्य महाप्रभु नामक यह संन्यासी अवश्य ही भगवान् रामचन्द्र के अवतार हैं।"

सशरीरे ताल गेल श्री-वैकुण्ठ-धाम ।

ऐछे शक्ति कार हय, विना एक राम ॥ 315॥

स-शरीरे-भौतिक शरीर सहित; ताल-ताड़ के वृक्ष; गेल-गये; श्री-वैकुण्ठ-धाम-श्री वैकुण्ठधाम; ऐछे-ऐसी; शक्ति-शक्ति; कार–किसकी; हय-है; विना-बिना; एक-एक; राम-भगवान् रामचन्द्र।

अनुवाद

"केवल भगवान् रामचन्द्र में सप्ततालों को वैकुण्ठ लोक भेजने की शक्ति है।"

प्रभु आसि' कैल पम्पा-सरोवरे स्नान ।

पञ्चवटी आसि, ताहाँ करिल विश्राम ॥ 316॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आसि'-आकर; कैल-किया; पम्पा-सरोवरे-पम्पा सरोवर में; स्नान-स्नान; पञ्चवटी आसि-तब पंचवटी आकर; ताहाँ-वहाँ; करिल-लिया; विश्राम–विश्राम।

अनुवाद

अन्ततः श्री चैतन्य महाप्रभु पम्पा नामक सरोवर आये, जहाँ उन्होंने स्नान किया। इसके बाद वे पंचवटी गये, जहाँ उन्होंने विश्राम किया।

तात्पर्य

कुछ लोगों के अनुसार तुंगभद्रा नदी का प्राचीन नाम पम्बा था। अन्यों के अनुसार राज्य की राजधानी विजयनगर पम्पा तीर्थ कहलाती थी। कुछ और लोगों के अनुसार हैदराबाद की ओर अनागुण्डि के निकट पम्पा सरोवर है। यहाँ से होकर तुंगभद्रा नदी भी बहती है। पम्पा सरोवर के विषय में अनेक विभिन्न मत हैं।

नासिके त्र्यम्बक देखि' गेला ब्रह्मगिरि।

कुशावर्ते आइला याहाँ जन्मिला गोदावरी ॥ 317॥

नासिके–पवित्र स्थान नासिक पर; त्र्यम्बक-शिवजी की मूर्ति; देखि-देखकर; गेला–गये; ब्रह्मगिरि–ब्रह्मगिरी नामक स्थान पर; कुशावर्ते आइला-तब कुशावर्त नामक स्थान पर वे आये; याहाँ–जहाँ; जन्मिला-जन्म लिया; गोदावरी–गोदावरी नदी।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु नासिक गये, जहाँ उन्होंने त्र्यम्बक (शिवजी) का दर्शन किया। तब वे ब्रह्मगिरि गये और फिर गोदावरी के उद्गम स्थान कुशावर्त गये।

तात्पर्य

कुशावर्त पश्चिमी घाट में सह्याद्रि पर स्थित है। यह नासिक तीर्थ के पास है, किन्तु कुछ लोगों के मतानुसार यह विन्ध्य घाटी में स्थित था।

सप्त गोदावरी आइला करि' तीर्थ बहुतर।

पुनरपि आइला प्रभु विद्यानगर ॥ 318॥

सप्त गोदावरी–सप्त गोदावरी नामक स्थान में; आइला–आये; करि' तीर्थ बहुतर-अनेक पवित्र स्थानों के दर्शन करके; पुनरपि-पुनः; आइला-लौट आये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; विद्यानगर-वह स्थान जहाँ वे रामानन्द राय से मिले थे।

अनुवाद

अन्य अनेक तीर्थों की मुलाकात लेने के बाद महाप्रभु सप्तगोदावरी गये। अन्त में वे विद्यानगर लौट आये।

तात्पर्य

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोदावरी नदी के उद्गम से यात्रा करते हुए हैदराबाद रियासत के उत्तरी भाग को देखा। अन्त में वे कलिंग राज्य लौट आये।

रामानन्द राय शुनि' प्रभुर आगमन ।

आनन्दे आसिया कैल प्रभु-सह मिलन ॥ 319॥

रामानन्द राय-रामानन्द राय; शुनि'–सुनकर; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु के; आगमन-आगमन का; आनन्दे-आनन्द में; आसिया-आकर; कैल–किया; प्रभु-सह-चैतन्य महाप्रभु के साथ; मिलन-मिलन।

अनुवाद

जब रामानन्द राय ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु आ गये हैं, तो वे अत्यन्त आनन्दित हो उठे और तुरन्त ही उन्हें मिलने गये।

दण्डवत् हञा पड़े चरणे धरिया ।

आलिङ्गन कैल प्रभु ताँरे उठाञा ॥ 320॥

दण्डवत् हञा–दण्ड की भाँति; पड़े-गिर गये; चरणे-चरणकमलों को; धरिया-पकड़कर; आलिङ्गन-आलिंगन; कैल–किया; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको; उठाञा-उठाकर।

अनुवाद

जब रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का स्पर्श करते हुए दण्डवत् गिर पड़े, तो महाप्रभु ने तुरन्त उन्हें उठा लिया और उनका आलिंगन किया।

दुइ जने प्रेमावेशे करेन क्रन्दन ।

प्रेमानन्दे शिथिल हैल दुँहाकार मन ॥ 321॥

दुइ जने-वे दोनों; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; करेन-करने लगे; क्रन्दन-रूदन; प्रेम-आनन्दे-प्रेमावेश में; शिथिल हैल-शिथिल हो गये; दुँहाकार-दोनों के; मन-मन।

अनुवाद

वे दोनों भावाविष्ट होकर रोने लगे और इस तरह उनके मन शिथिल पड़ गये।

कत-क्षणे दुइ जना सुस्थिर हञा ।

नाना इष्ट-गोष्ठी करे एकत्र वसिया ॥ 322॥

कत-क्षणे-कुछ क्षणों के बाद; दुइ-दोनों; जना व्यक्ति; सु-स्थिर हञा-होश में आकर; नाना-नाना; इष्ट-गोष्ठी–चर्चाएँ; करे–करने लगे; एकत्र–इकठ्ठ; वसिया-बैठकर।

अनुवाद

कुछ समय के बाद दोनों को होश में आये और वे एकसाथ बैठकर विभिन्न विषयों पर बातें करने लगे।

तीर्थ-यात्रा-कथा प्रभु सकल कहिला ।

कर्णामृत, ब्रह्म-संहिता,—दुइ पुँथि दिला ॥ 323॥

तीर्थ यात्रा-कथा-उनकी तीर्थयात्रा से सम्बन्धित बातें; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सकल कहिला-सब कुछ वर्णन किया; कर्णामृत-कृष्ण कर्णामृत नामक पुस्तक; ब्रह्म-संहिता- ब्रह्म-संहिता नामक पुस्तक; दुइ-दोनों; पुँथि-शास्त्र; दिला–दिये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को तीर्थस्थानों की यात्रा का सुन्दर विवरण सुनाया और उन्हें बतलाया कि उन्होंने कृष्णकर्णामृत तथा ब्रह्म-संहिता नामक दो ग्रंथ किस तरह प्राप्त किये। महाप्रभु ने दोनों पुस्तकें रामानन्द राय को दे दीं।

प्रभु कहे,—तुमि येइ सिद्धान्त कहिले ।

एइ दुइ पुँथि सेइ सब साक्षी दिले ॥ 324॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; तुमि-आपने; येइ-जो कुछ; सिद्धान्त-सिद्धान्त; कहिले–कहा था; एइ दुई-ये दोनों; पुँथि-पुस्तकें; सेइ-वही; सब-सब; साक्षी-प्रमाण; दिले-देती हैं।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा : "आपने मुझसे भक्ति के विषय में जो कुछ कहा है, उसकी पुष्टि इन दोनों पुस्तकों से होती है।"

रायेर आनन्द हैल पुस्तक पाइया ।

प्रभु-सह आस्वादिल, राखिल लिखिया ॥ 325॥

रायेर-रामानन्द राय को; आनन्द–आनन्द; हैल-हुआ; पुस्तक पाइया-उन दोनों पुस्तकों को पाकर; प्रभु-सह-महाप्रभु के साथ; आस्वादिल-आस्वादन लिया; राखिल-रखा; लिखिया-लिखकर।

अनुवाद

इन पुस्तकों को पाकर रामानन्द राय अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने महाप्रभु के साथ मिलकर इनका रसास्वादन किया और दोनों की एक प्रतिलिपि तैयार कर ली।

'गोसाञि आइला' ग्रामे हैल कोलाहल ।

प्रभुके देखिते लोक आइल सकल ॥ 326॥

गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला'–लौट आये हैं; ग्रामे-गाँव में; हैल-हो गया; कोलाहल-कोलाहल; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु के; देखिते-दर्शन के लिए; लोक-लोग; आइल-वहाँ आये; सकल-सभी।

अनुवाद

विद्यानगर गाँव में श्री चैतन्य महाप्रभु के आने की खबर फैल गई और सारे लोग एक बार फिर उनके दर्शन के लिए आये।

लोक देखि' रामानन्द गेला निज-घरे ।

मध्याह्न उठिला प्रभु भिक्षा करिबारे ॥ 327॥

लोक देखि'–लोगों को देखकर; रामानन्द-रामानन्द राय; गेला–चले गये; निज-घरे-अपने घर; मध्याह्न दोपहर को; उठिला प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु उठे; भिक्षा करिबारे-अपना भोजन करने के लिए।

अनुवाद

यहाँ पर एकत्र लोगों को देखकर श्री रामानन्द राय अपने घर चले आये। दोपहर में श्री चैतन्य महाप्रभु भोजन करने के लिए उठे।

रात्रि-काले राय पुनः कैल आगमन ।

दुइ जने कृष्ण-कथाय कैल जागरण ॥ 328॥

रात्रि-काले-रात को; राय-रामानन्द राय; पुनः-पुनः; कैल–किया; आगमन-आगमन; दुइ जने-वे दोनों; कृष्ण-कथाय-कृष्ण कथाओं पर चर्चा; कैल-की; जागरण-रातभर जागकर।

अनुवाद

रामानन्द राय रात्रि में फिर आये और वे तथा चैतन्य महाप्रभु दोनों कृष्ण-विषयक कथाओं पर चर्चा करते रहे। उन्होंने इसी तरह रात बिताई।

दुइ जने कृष्ण-कथा कहे रात्रि-दिने ।

परम-आनन्दे गेल पाँच-सात दिने ॥ 329॥

दुइ जने–वे दोनों; कृष्ण-कथा-कृष्ण कथाएँ; कहे-कहने लगे; रात्रि-दिने–दिन रात; परम-आनन्दे-परम आनन्द में; गेल-व्यतीत हो गये; पाँच-सात दिने–पाँच से सात दिन।

अनुवाद

रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु रात-दिन कृष्ण-कथा की चर्चा करते रहे। इस तरह उन्होंने बड़े ही आनन्द में पाँच-सात दिन बिता दिये।

रामानन्द कहे,—प्रभु, तोमार आज्ञा पाञा ।

राजाके लिखिलुँ आमि विनय करिया ॥ 330॥

रामानन्द कहे-रामानन्द राय ने कहा; प्रभु-मेरे प्रिय प्रभु; तोमार आज्ञा-आपकी आज्ञा; पाञा-पाकर; राजाके लिखिलुँ-राजा को एक पत्र लिखा है; आमि-मैंने; विनय करिया-अत्यन्त नम्रता से।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "हे प्रभु, आपकी अनुमति से मैं विनयपूर्वक राजा को एक पत्र लिख चुका हूँ।"

राजा मोरे आज्ञा दिल नीलाचले याइते ।

चलिबार उद्योग आमि लागियाछि करिते ॥ 331॥

राजा-राजा ने; मोरे-मुझे; आज्ञा दिल-आज्ञा दी है; नीलाचले याइते-जगन्नाथ पुरी जाने की; चलिबार-जाने के लिए; उद्योग-प्रबन्ध; आमि-मैं; लागियाछि-लगा हूँ; करिते-करने।

अनुवाद

"राजा ने मुझे जगन्नाथ पुरी लौट जाने का आदेश दे दिया है और मैं वापस जाने का प्रबन्ध कर रहा हूँ।"

प्रभु कहे,—एथा मोर ए-निमित्ते आगमन ।

तोमा लञा नीलाचले करिब गमन ॥ 332॥

प्रभु कहे-चैतन्य महाप्रभु ने कहा; एथा-यहाँ; मोर-मेरा; ए-निमित्ते-इस कारण; आगमन-आगमन; तोमा लञा-आपको लेकर; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; करिब-मैं करूँगा; गमन प्रस्थान।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं केवल इसी कार्य के लिए यहाँ लौटकर आया हूँ। मैं आपको अपने साथ जगन्नाथ पुरी ले चलना चाहता हूँ।"

राय कहे,—प्रभु, आगे चल नीलाचले ।

मोर सङ्गे हाती-घोड़ा, सैन्य-कोलाहले ॥ 333॥

राय कहे-रामनाथ ने उत्तर दिया; प्रभु-प्रभु; आगे चल-आप आगे चलो; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी; मोर सङ्गे–मेरे साथ; हाती-घोड़ा-हाथी और घोड़े; सैन्य-सिपाही; कोलाहले-जोर से गर्जते हुए।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "हे प्रभु, अच्छा यही होगा, यदि आप जगन्नाथ पुरी अकेले जायें, क्योंकि मेरे साथ अनेक घोड़े, हाथी तथा सैनिक होंगे, जिनके कारण बहुत कोलाहल मचता रहेगा।"

दिन-दशे इहा-सबार करि' समाधान ।

तोमार पाछे पाछे आमि करिब प्रयाण ॥ 334॥

दिन-दशे-दस दिनों में; इहा-सबार-इस सबकी; करि' समाधान-व्यवस्था करके; तोमार-आपके; पाछे पाछे-पीछे पीछे; आमि-मैं; करिब–करूँगा; प्रयाण-प्रयाण।

अनुवाद

"मैं दस दिनों में सारी तैयारी कर लूँगा। मैं जल्दी ही आपके पीछे-पीछे नीलाचल आऊँगा।"

तबे महाप्रभु ताँरे आसिते आज्ञा दिया ।

नीलाचले चलिला प्रभु आनन्दित हञा ॥ 335॥

तबे-तब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको; आसिते-आने की; आज्ञा दिया-आज्ञा देकर; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; चलिला–चले गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आनन्दित हञा–आनन्दपूर्वक।

अनुवाद

रामानन्द राय को नीलाचल आने की आज्ञा देकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक जगन्नाथ पुरी के लिए चल दिये।

येइ पथे पूर्वे प्रभु कैला आगमन ।

सेइ पथे चलिला देखि, सर्व वैष्णव-गण ॥ 336 ॥

येइ पथे-जिस मार्ग से; पूर्वे-पहले; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला आगमन-आये थे; सेइ पथे-उसी मार्ग से; चलिला–चले; देखि-देखकर; सर्व-सभी; वैष्णव-गण-वैष्णवों को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जिस रास्ते से पहले विद्यानगर आये थे, उसी से लौटे और सारे वैष्णवजन रास्ते में उन्हें फिर से मिले।

याहाँ याय, लोक उठे हरि-ध्वनि करि' ।

देखि' आनन्दित-मन हैला गौरहरि ॥ 337॥

याहाँ याय–जहाँ जहाँ वे जाते; लोक उठे-लोग खड़े हो जाते; हरि-ध्वनि करि'-हरे कृष्ण मन्त्र के पावन नाम का कीर्तन करते हुए; देखि'–देखकर; आनन्दित-आनन्दित; मन-मन में; हैला-हो गये; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

जहाँ कहीं भी श्री चैतन्य महाप्रभु जाते, श्री हरि के नाम का उच्चारण होता। यह देखकर महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए।

आलालनाथे आसि' कृष्णदासे पाठाइल ।

नित्यानन्द-आदि निज-गणे बोलाइल ॥ 338॥

आलालनाथे-आलालनाथ नामक स्थान; आसि'–आकर; कृष्णदासे-कृष्णदास, उनका सहायक; पाठाइल-आगे भेजा; नित्यानन्द-प्रभु नित्यानन्द; आदि-आदि; निज-गणे–निजी साथी; बोलाइल–बुलाया।

अनुवाद

आलालनाथ पहुँचकर महाप्रभु ने अपने सहायक कृष्णदास को नित्यानन्द प्रभु तथा अन्य निजी संगियों को बुलाने के उद्देश्य से आगे भेज दिया।

प्रभुर आगमन शुनि' नित्यानन्द राय ।

उठिया चलिला, प्रेमे थेह नाहि पाय ॥ 339॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आगमन-आगमन; शुनि'–सुनकर; नित्यानन्द राय-भगवान् नित्यानन्द; उठिया चलिला-उठ खड़े हुए और चल पड़े; प्रेमे-महान् प्रेमावेश में; थेह-धैर्य; नाहि पाय-नहीं रख सके।

अनुवाद

ज्योंही नित्यानन्द प्रभु ने श्री चैतन्य महाप्रभु के आगमन की खबर सुनी, त्योंही वे तुरन्त उठकर उन्हें मिलने चल दिये। वे महान् भाव के कारण अत्यन्त अधीर हो उठे।

जगदानन्द, दामोदर-पण्डित, मुकुन्द ।

नाचिया चलिला, देहे ना धरे आनन्द ॥ 340॥

जगदानन्द-जगदानन्द; दामोदर-पण्डित-दामोदर पण्डित; मुकुन्द-मुकुन्द; नाचिया-नाचकर; चलिला–चल पड़े; देहे-शरीर में; ना धरे–नहीं समाता; आनन्द-आनन्द।

अनुवाद

आनन्द के मारे श्री नित्यानन्द राय, जगदानन्द, दामोदर पण्डित तथा मुकुन्द भावविभोर हो उठे और वे रास्ते-भर नाचते हुए महाप्रभु से मिलने गये।

गोपीनाथाचार्य चलिला आनन्दित हञा ।

प्रभुरे मिलिला सबे पथे लाग्पाञा ॥ 341॥

गोपीनाथ-आचार्य-गोपीनाथ आचार्य; चलिला–चल पड़े; आनन्दित-आनन्दित; हञा–होकर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; मिलिला–मिले; सबे-सब; पथे-मार्ग में; लाग्-भेंट; पाञा-पाया।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य भी अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में गये। वे सब महाप्रभु से मिलने गये और अन्त में रास्ते में ही उन सबकी भेंट हो गई।

प्रभु प्रेमावेशे सबाय कैल आलिङ्गन ।

प्रेमावेशे सबे करे आनन्द-क्रन्दन ॥ 342॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; सबाय-सबका; कैल आलिङ्गन-आलिंगन किया; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; सबे करे-सबने किया; आनन्द-क्रन्दन–आनन्द में रूदन।

अनुवाद

महाप्रभु भी प्रेमवश हो गये और उन्होंने सबका आलिंगन किया। वे सभी प्रेमवश आनन्दित होकर रोने लगे।

सार्वभौम भट्टाचार्य आनन्दे चलिला ।

समुद्रेर तीरे आसि' प्रभुरे मिलिला ॥ 343 ॥

सार्वभौम भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; आनन्दे-आनन्द में आकर; चलिला-गये; समुद्रेर तीरे-समुद्र के तट से; आसि-आये; प्रभुरे मिलिला-श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य भी परम आनन्दित होकर महाप्रभु से मिलने गये, और उनकी भेंट समुद्र के किनारे हो गई।

सार्वभौम महाप्रभुर पड़िला चरणे ।

प्रभु ताँरे उठाञा कैल आलिङ्गने ॥ 344॥

सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; पड़िला–गिर पड़े; चरणे-चरणों पर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः ताँरे–उनको; उठाञा-उठाकर; कैल आलिङ्गने-आलिंगन किया।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और महाप्रभु ने उन्हें उठाकर उनका आलिंगन किया।

प्रेमावेशे सार्वभौम करिला रोदने ।

सबा-सङ्गे आइला प्रभु ईश्वर-दरशने ॥ 345 ॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; सार्वभौम सार्वभौम; करिला रोदने-रोने लगे; सबा-सङ्गे–उन सबके साथ; आइला–आये; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; ईश्वर-दरशने-जगन्नाथ मन्दिर में दर्शन के लिए।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य अत्यधिक प्रेमावेश में रोने लगे। तब महाप्रभु सबके साथ जगन्नाथ मन्दिर गये।

जगन्नाथ-दरशन प्रेमावेशे कैल ।

कम्प-स्वेद-पुलकाश्रुते शरीर भासिल ॥ 346 ॥

जगन्नाथ-दरशन-जगन्नाथ भगवान् का दर्शन करके; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; कैल-हुआ; कम्प–कम्पन; स्वेद-पसीना; पुलक-पुलक; अश्रुते-अश्रुओं सहित; शरीर-सारा शरीर; भासिल-भीग गया।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करते समय प्रेमावेश के कारण कम्पन, स्वेद, अश्रु तथा पुलक से महाप्रभु का शरीर आप्लावित हो उठा।

बहु नृत्य-गीत कैल प्रेमाविष्ट हञा ।

पाण्डा-पाल आइल सबे माला-प्रसाद लञा ॥ 347॥

बह-बहुत; नृत्य-गीत-नृत्य तथा कीर्तन; कैल-किया; प्रेम-आविष्ट–प्रेमावेश में; हञा-होकर; पाण्डा-पाल–पुजारी और सेवक; आइल-आये; सबे-सभी; माला-प्रसाद–माला और जगन्नाथ का प्रसाद; लञा-देने के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेमावेश के कारण नाचने लगे और कीर्तन करने लगे। उस समय सारे पाण्डे तथा पुजारी उन्हें भगवान जगन्नाथ का प्रसाद तथा माला देने आये।

तात्पर्य

भगवान् जगन्नाथ की सेवा में लगे पुजारी पाण्डा या पण्डित कहलाते हैं और वे ब्राह्मण होते हैं। मन्दिर के बाहरी मामलों की देख-रेख करने वाले पाल कहलाते हैं। चैतन्य महाप्रभु को मिलने के लिए पुजारी तथा पाल दोनों ही गये।

माला-प्रसाद पाञा प्रभु सुस्थिर हइला ।

जगन्नाथेर सेवक सब आनन्दे मिलिला ॥ 348 ॥

माला-प्रसाद-माला और प्रसाद; पाञा-पाकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सु-स्थिर हइला–धीर हो गये; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ के; सेवक-सेवक; सब-सब; आनन्दे मिलिला–उन्हें आनन्दपूर्वक मिले।

अनुवाद

भगवान जगन्नाथ की माला तथा प्रसाद पाकर श्री चैतन्य महाप्रभु सन्तुष्ट हुए। भगवान् जगन्नाथ के सारे सेवक बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले।

काशी-मिश्र आसि' प्रभुर पड़िला चरणे ।

मान्य करि' प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गने ॥ 349॥

काशी-मिश्र-काशी मिश्र; आसि'–आकर; प्रभुर–महाप्रभु के; पड़िला–गिर पड़े; चरणे-चरणों पर; मान्य करि'-आदरपूर्वक; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे–उनका; कैल-किया; आलिङ्गने-आलिगेन।

अनुवाद

बाद में काशी मिश्र आये और वे महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े। महाप्रभु ने बड़े ही आदर से उनका आलिंगन किया।

प्रभु लञा सार्वभौम निज-घरे गेला ।

मोर घरे भिक्षा बलि' निमन्त्रण कैला ॥ 350॥

प्रभु लञा-श्री चैतन्य महाप्रभु को लेकर; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; निज-घरे-अपने घर को; गेला–गये; मोर–मेरे; घरे–घर पर; भिक्षा–भोजन; बलि'–कहकर; निमन्त्रण कैला-निमन्त्रण दिया।

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु को अपने साथ अपने घर यह कहकर ले गये, "आज आप मेरे घर में भोजन करेंगे।" इस तरह उन्होंने महाप्रभु को आमन्त्रित किया।

दिव्य महाप्रसाद अनेक आनाइल ।

पीठा-पाना आदि जगन्नाथ ये खाइल ॥ 351॥

दिव्य-दिव्य; महा-प्रसाद-जगन्नाथजी का बचा हुआ भोजन; अनेक-अनेक; आनाइल-लाये; पीठा-पाना आदि–मिठाईयाँ, रबड़ी आदि; जगन्नाथ- भगवान् जगन्नाथ ने; ये-जो; खाइल-खाया था।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य भगवान् जगन्नाथ द्वारा छोड़े गये विविध प्रकार के प्रसाद ले आये। वे अनेक प्रकार के पकवान तथा औटे दूध की बनी वस्तुएँ ले आये।

मध्याह्न करिला प्रभु निज-गण लञा ।

सार्वभौम-घरे भिक्षा करिला आसिया ॥ 352॥

मध्याह्न दोपहर का भोजन; करिला-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; निज-गण लञा-अपने साथियों के साथ; सार्वभौम-घरे–सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर; भिक्षा-भोजन; करिला–किया; आसिया-आकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने संगियों समेत सार्वभौम भट्टाचार्य के धर गये और वहाँ दोपहर का भोजन किया।

भिक्षा कराञा तारे कराइल शयन ।

आपने सार्वभौम करे पाद-संवाहन ॥ 353 ॥

भिक्षा कराञा–भोजन कराने के बाद; ताँरे–उनको; कराइल-कराया; शयन-विश्राम; आपने-स्वयं; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; करे–करने लगे; पाद-संवाहन-पाँवो की मालिश।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन कराने के बाद सार्वभौम भट्टाचार्य ने उन्हें विश्राम के लिए शयन कराया और स्वयं उनके पाँव दबाने लगे।

प्रभु ताँरे पाठाइल भोजन करते ।

सेइ रात्रि तर घरे रहिला ताँर प्रीते ॥ 354॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको; पाठाइल-भेजा; भोजन करिते-भोजन करने के लिए; सेइ रात्रि-उस रात; ताँर घरे-उनके घर पर; रहिला-रहे; ताँर प्रीते-उनको सन्तुष्ट करने के लिए।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य से कहा कि जाकर भोजन करें और महाप्रभु उन्हें प्रसन्न करने के लिए उस रात्रि उन्हीं के घर रुके।

सार्वभौम-सङ्गे आर लञा निज-गण ।

तीर्थ-यात्रा-कथा कहि' कैल जागरण ॥ 355॥

सार्वभौम-सङ्गे–सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ; आर-और; लञा निज-गण-अपने निजी साथियों को लेकर; तीर्थ-यात्रा-कथा-तीर्थयात्रा की कथाएँ, कहि' बताकर, कैल-किया; जागरण-रात भर जागे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके निजी संगी सार्वभौम भट्टाचार्य के यहीं रहे। वे सारी रात महाप्रभु की तीर्थयात्रा का वृत्तान्त सुनते हुए जगते रहे।

प्रभु कहे,—एत तीर्थ कैलुँ पर्यटन ।

तोमा-सम वैष्णव ना देखिलुँ एक-जन ॥ 356॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; एत तीर्थ–इतने तीर्थस्थानों की; कैलुँ पर्यटन–मैंने यात्रा की है; तोमा-सम-आपकी तरह; वैष्णव-वैष्णव भक्त; ना-नहीं; देखिलुँ-मैं देख सका; एक-जन-एक व्यक्ति भी।

अनुवाद

महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य से कहा, "मैंने अनेक तीर्थस्थानों की यात्रा की है, किन्तु कहीं भी आप जैसा वैष्णव नहीं देखा।"

एक रामानन्द राय बहु सुख दिल ।

भट्ट कहे,—एइ लागि' मिलिते कहिल ॥ 357॥

एक-एक; रामानन्द राय-रामानन्द राय ने; बहु सुख-बहुत सुख; दिल-दिया; भट्ट कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; एइ लागि'-इस कारण; मिलिते-मिलने के लिए; कहिल-मैंने विनती की थी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कहते रहे, "रामानन्द राय की बातों से मुझे बहुत सुख प्राप्त हुआ।" भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "इसीलिए मैंने आपसे विनती की थी कि आप उनसे अवश्य मिलें।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य चन्द्रोदय (भाग 8 का आरम्भ) में श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है-"सार्वभौम, मैंने अनेक तीर्थस्थानों की यात्राएँ की हैं, किन्तु मुझे आप जैसा वैष्णव कहीं नहीं मिला। किन्तु मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि रामानन्द राय सचमुच अद्भुत हैं।"

सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "इसीलिए, हे प्रभु, मैंने आपसे प्रार्थना की थी कि आप उनसे अवश्य भेंट करें।"

इस पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "इन तीर्थों में अनेकानेक वैष्णव हैं। और उनमें से अधिकांश भगवान् नारायण की पूजा करते हैं। अन्य, जो तत्त्ववादी कहलाते हैं, वे भी लक्ष्मी-नारायण के उपासक हैं, किन्तु वे शुद्ध वैष्णव सम्प्रदाय के नहीं हैं। शिवजी के अनेक उपासक हैं और अनेक नास्तिक भी हैं। तो भी हे भट्टाचार्य, मुझे रामानन्द राय तथा उनके विचार अत्यन्त प्रिय हैं।"

तीर्थ-यात्रा-कथा एइ कैलुँ समापन ।

सङ्क्षेपे कहिलुँ, विस्तार ना याय वर्णन ॥ 358॥

तीर्थ-यात्रा-कथा-तीर्थ यात्रा की कथा; एइ-ये; कैलुँ समापन-मैंने समाप्त कर दी है; सङ्क्षेपे कहिलुँ-मैंने संक्षेप में वर्णन किया है; विस्तार-विस्तारपूर्वक; ना याय वर्णन-वर्णन करना सम्भव नहीं है।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु की तीर्थयात्रा का वर्णन संक्षेप में पूरा किया है। इसे और विस्तार से नहीं बतलाया जा सकता।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इंगित किया है कि इस अध्याय के 74वें श्लोक में यह कहा गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने शियाली-भैरवी का मन्दिर देखा, किन्तु वास्तव में उन्होंने शियाली में श्री भू-वराह का मन्दिर देखा। शियाली तथा चिदम्बरम् के निकट श्री मुष्णम् का मन्दिर है। इसी मन्दिर में श्री भू-वराह का अर्चाविग्रह है। चिदम्बरम की सीमा के अन्तर्गत दक्षिण आर्काट नाम का एक जिला है और शियाली इस जिले में है। पास ही श्री भू-वराह देव का मन्दिर है, न कि भैरवीदेवी का। यह श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का निष्कर्ष है।

अनन्त चैतन्य-लीला कहिते ना जानि ।

लोभे लज्जा खाञा तार करि टानाटानि ॥ 359॥

अनन्त-अनन्त; चैतन्य-लीला-चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ, कहिते-वर्णन करना; ना जानि-मैं नहीं जानता; लोभे-लोभ में आकर; लज्जा खाञा-निर्लज्ज होकर; तार-उनका; करि-मैं करता हूँ; टानाटानि-कुछ प्रयास मात्र।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अनन्त हैं। उनके कार्यकलापों का कोई ठीक से वर्णन नहीं कर सकता, फिर भी लोभवश मैंने चेष्टा की है। इससे मेरी निर्लज्जता ही प्रकट होती है।

प्रभुर तीर्थ यात्रा-कथा शुने येइ जन ।

चैतन्य-चरणे पाय गाढ़ प्रेम-धन ॥ 360॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; तीर्थ-यात्रा-पवित्र तीर्थों की यात्रा का; कथा-विषय; शुने-सुनता है; येइ-जो; जन-व्यक्ति; चैतन्य-चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में; पाय-पाता है; गाढ़-प्रगाढ़; प्रेम-धन-प्रेम-धन।

अनुवाद

जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु की विभिन्न तीर्थस्थानों की यात्रा के विषय में सुनता है, वह प्रगाढ़ प्रेमभाव रूपी धन को प्राप्त करता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है, "निर्विशेषवादी अपनी इन्द्रियों की प्रत्यक्ष अनुभूति से परम सत्य के किसी रूप की कल्पना करते हैं। वे इन काल्पनिक रूपों की पूजा करते हैं, किन्तु न तो श्रीमद्भागवत न ही श्री चैतन्य महाप्रभु इस प्रकार की इन्द्रियतृप्ति की पूजा को किसी प्रकार से आध्यात्मिक महत्त्व देते हैं।" मायावादी अपने आपको सर्वोपरि मानते हैं। वे मानते हैं कि परब्रह्म का कोई व्यक्तिगत रूप नहीं होता, और उनके सारे स्वरूप मायाजाल या आकाश-पुष्प के समान काल्पनिक होते हैं। मायावादी लोग तथा ईश्वर के रूपों की कल्पना करने वाले दोनों ही भ्रमित हैं। उनके अनुसार अर्चाविग्रह की या भगवान् के किसी भी स्वरूप की पूजा बद्धजीव के भ्रम का परिणाम है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु अपने अचिन्त्य-भेदाभेद तत्त्व दर्शन के आधार पर श्रीमद्भागवत के निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं। इस दर्शन के अनुसार भगवान् अपनी सृष्टि से एक साथ अभिन्न तथा भिन्न हैं। अर्थात् एकत्व में विविधता है। इस तरह महाप्रभु ने सकाम कर्मियों, तर्कवादी ज्ञानियों तथा योगियों की अयोग्यता सिद्ध की। ऐसे व्यक्तियों की अनुभूति समय तथा शक्ति का अपव्यय मात्र है।

आदर्श स्थापित करने के उद्देश्य से ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने विविध तीर्थस्थानों के मन्दिरों में स्वयं दर्शन किया। वे जहाँ कहीं भी जाते थे, वहाँ वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रेम में भावविह्वल हो जाते थे। जब कोई वैष्णव किसी देवता के मन्दिर में जाता है, तब उस देव के प्रति उसकी दृष्टि निर्विशेषवादियों तथा मायावादियों से भिन्न होती है। इसकी पुष्टि ब्रह्म-संहिता द्वारा होती है। उदाहरण के तौर पर शिव-मन्दिर में वैष्णव का जाना अभक्त के जाने से भिन्न होता है। अभक्त शिवजी के विग्रह को काल्पनिक मानता है, क्योंकि वह यही सोचता है कि आखिर परम सत्य तो शून्य है। किन्तु एक वैष्णव शिवजी को एकसाथ भगवान् से अभिन्न तथा भिन्न करके देखता है। इस सम्बन्ध में दूध तथा दही का दृष्टान्त

प्रस्तुत किया जाता है। दही, वास्तव में दूध के अतिरिक्त कुछ और नहीं है, किन्तु साथ ही साथ वह दूध भी नहीं है। वह दूध से अभिन्न होकर भी भिन्न होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु का यही दर्शन है और इसकी पुष्टि भगवान् कृष्ण भगवद्गीता (9.4) द्वारा करते हैं।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥

"यह सारा ब्रह्माण्ड मेरे अव्यक्त रूप से ओतप्रोत है। सारे जीव मुझ में हैं, किन्तु मैं उन में नहीं हूँ।"

परम सत्य, भगवान् सब कुछ हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हर वस्तु ईश्वर है। इसी कारण से श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके अनुयायी सभी देवताओं के मन्दिरों में गये, किन्तु उन्होंने उन्हें उस रूप में नहीं देखा, जैसाकि निर्विशेषवादी देखते हैं। हर व्यक्ति को श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुसरण करते हुए सारे मन्दिरों को देखना चाहिए। कभी-कभी सांसारिक सहजिये यह मान लेते हैं कि गोपियाँ कात्यायनी-मन्दिर में उसी तरह गईं, जिस तरह संसारी लोग देवी मन्दिर में जाते हैं। किन्तु गोपियों ने कात्यायनी से प्रार्थना की कि वे उन्हें पतिरूप में कृष्ण प्रदान करें, जबकि संसारी लोग कात्यायनी के मन्दिर में भौतिक लाभ प्राप्त करने की इच्छा लेकर जाते हैं। एक वैष्णव तथा एक अभक्त के जाने में यही अन्तर है।

गुरु-शिष्य परम्परा की प्रक्रिया को न समझने के कारण तथाकथित तार्किकों ने पञ्चोपासना का सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं, जिसके अन्तर्गत विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य या गणेश–इन पाँच देवताओं में से किसी एक की पूजा की जाती है। इस विचारधारा में निर्विशेषवादी इन पाँच देवताओं में से एक को सर्वोपरि समझते हैं और बाकी अन्य देवताओं का अस्वीकार करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु या वैष्णवों को ऐसा दार्शनिक चिन्तन जो निश्चित रूप से मूर्ति-पूजा है, स्वीकार्य नहीं है। यह काल्पनिक अर्चाविग्रह-पूजा हाल ही में मायावादी निर्विशेषवाद में परिवर्तित हो गई है। कृष्णभावनामृत के अभाव में लोग मायावाद-दर्शन के शिकार हो जाते हैं। फलस्वरूप वे कभी-कभी नितान्त नास्तिक बन जाते हैं। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने निजी आचरण से आत्म-साक्षात्कार की विधि स्थापित की। जैसाकि चैतन्य-चरितामृत (मध्य 8.274) में कहा गया है :

स्थावर-जङ्गम देखे, ना देखे तार मूर्ति ।

सर्वत्र हय निज इष्टदेवस्फूर्ति ॥

“एक वैष्णव कभी भी किसी भी स्थावर या जंगम वस्तु का भौतिक रूप नहीं देखता। वह जहाँ भी देखता है, वहाँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति को देखता है और तुरन्त ही भगवान् के दिव्य रूप का स्मरण करता है।”

चैतन्य-चरित शुन श्रद्धा-भक्ति करि’ ।

मात्सर्य छाड़िया मुखे बल ‘हरि’ ‘हरि’ ॥ 361॥

चैतन्य-चरित-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ, शुन-सुनो; श्रद्धा-श्रद्धा; भक्ति-भक्ति; करि’–स्वीकार करके; मात्सर्य-ईर्ष्या; छाड़िया-त्यागकर; मुखे-मुख से; बल-कहो; हरि हरि–“हरि हरि”।

अनुवाद

कृपया श्रद्धा तथा भक्ति के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु की दिव्य लीलाओं का श्रवण करें। सब लोग भगवान् से ईष्र्या करना छोड़कर भगवान् के पवित्र नाम हरि का कीर्तन करो।

एइ कलि-काले आर नाहि कोन धर्म ।

वैष्णव, वैष्णव-शास्त्र, एइ कहे मर्म ॥ 362॥

एइ कलि-काले-इस कलियुग में; आर-अन्य; नाहि कोन-कोई नहीं है; धर्म-धर्म; वैष्णव-भक्त; वैष्णव-शास्त्र-भक्ति युक्त साहित्य; एइ कहे मर्म-यही सार है।

अनुवाद

इस कलियुग में कोई असली धर्म नहीं रहा। केवल वैष्णव भक्तों तथा वैष्णव शास्त्रों द्वारा स्थापित सिद्धान्त रह गये हैं। यही सभी बातों का सार है।

तात्पर्य

मनुष्य को भक्ति की विधि तथा इसके समर्थक शास्त्रों में दृढ़ आस्था होनी चाहिए। यदि मनुष्य श्रद्धापूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को सुनता है, तो वह ईर्ष्या की स्थिति से मुक्त हो सकता है। श्रीमद्भागवत ऐसे ही ईर्ष्यारहित व्यक्तियों (निर्मत्सराणां सताम्) के लिए है। इस युग में श्री चैतन्य महाप्रभु के आन्दोलन से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए, अपितु हरि तथा कृष्ण के पवित्र नामों-महामन्त्र का कीर्तन करना चाहिए। सनातन धर्म का यही सार है। इस श्लोक में

वैष्णव शब्द का सन्दर्भ शुद्ध भक्त तथा स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से है और वैष्णव-शास्त्र शब्द श्रुति या वेदों का सूचक है, जिन्हें शब्द प्रमाण अर्थात् दिव्य ध्वनि रूपी साक्ष्य कहा जाता है। जो व्यक्ति वैदिक साहित्य का दृढ़ता से पालन करता है और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता है, वह निश्चय ही दिव्य गुरु-शिष्य परम्परा में स्थान प्राप्त करेगा। जो लोग जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें इस सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। श्रीमद्भागवत (11.19.17) में कहा गया है :

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् ।

प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात् स विरज्यते ॥

"वैदिक साहित्य, प्रत्यक्ष अनुभूति, इतिहास तथा अनुमान-ये चार प्रकार के साक्ष्य-प्रमाण हैं। परम सत्य की अनुभूति के लिए सब को इन सिद्धान्तों पर अटल रहना चाहिए।"

चैतन्य-चन्द्रेर लीला–अगाध, गम्भीर ।

प्रवेश करते नारि,—स्पर्शि रहि' तीर ॥ 363॥

चैतन्य-चन्द्रेर लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; अगाध-अगाध, गहरी; गम्भीर-गम्भीर; प्रवेश करते—प्रवेश करने के लिए; नारि-मैं असमर्थ हूँ; स्पर्शि-मैं स्पर्श करता हूँ; रहि' तीर-तट पर खड़े होकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अगाध समुद्र की भाँति हैं। उनमें प्रवेश कर पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं तो समुद्र-तट पर खड़े होकर केवल जल का स्पर्श कर रहा हूँ।

चैतन्य-चरित श्रद्धाय शुने येइ जन ।

यतेक विचारे, तत पाय प्रेम-धन ॥ 364॥

चैतन्य-चरित-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; श्रद्धाय-श्रद्धा से; शुने-सुनता है; येइ जन-जो व्यक्ति; यतेक विचारे–जहाँ तक वह विचारपूर्वक अध्ययन करता है; तत-वहाँ तक; पाय-वह पाता है; प्रेम-धन-प्रेम धन।

अनुवाद

जितना अधिक कोई श्रद्धापूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को सुनता है और व्याख्या करके उनका अध्ययन करता है, उतना ही अधिक वह भगवत्प्रेम रूपी धन को प्राप्त करता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 365 ॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; यार–जिसकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों पर प्रार्थना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

तात्पर्य

सदैव की तरह प्रणेता इस अध्याय का समापन श्री रूप तथा श्री रघुनाथ का नाम लेते हुए और उनके चरणकमलों पर अपने आपको पुनः समर्पित करते हुए करते हैं।

इस प्रकार श्री चैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के नवम अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दक्षिण भारत के अनेक तीर्थ-स्थानों की यात्राओं का वर्णन हुआ है ।

अध्याय दस

महाप्रभु का जगन्नाथ पुरी लौट आना

जब श्री चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत की यात्रा पर थे, तब सार्वभौभ भट्टाचार्य ने राजा प्रतापरुद्र से बहुत बातें कीं। जब महाराज प्रतापरुद्र ने भट्टाचार्य से यह प्रार्थना की कि वे महाप्रभु से उनकी भेंट करा दें, तो भट्टाचार्य ने आश्वासन दिया कि दक्षिण भारत से महाप्रभु के लौटते ही वे ऐसा करने की चेष्टा करेंगे। जगन्नाथ पुरी लौटने पर महाप्रभु काशी मिश्र के घर रहे। सार्वभौम भट्टाचार्य ने महाप्रभु के लौट आने पर अनेक वैष्णवों का उनसे परिचय कराया। रामानन्द राय के पिता भवानन्द राय ने अपने दूसरे पुत्र वाणीनाथ पट्टनायक को महाप्रभु की सेवा में भेंट कर दिया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने संगियों से भट्टथारियों की संगति के द्वारा कृष्णदास के दूषित होने की बात बतलाई और उसे निकाल देने का प्रस्ताव रखा। नित्यानन्द प्रभु ने कृष्णदास को बंगाल भेज दिया, जिससे वह जाकर नवद्वीप के भक्तों को महाप्रभु के जगन्नाथ पुरी लौट आने का समाचार दे। इस तरह नवद्वीप के सारे भक्त जगन्नाथ पुरी आने की व्यवस्था करने लगे। उस समय परमानन्द पुरी नवद्वीप में थे; वे महाप्रभु के लौटने का समाचार पाकर अपने साथ कमलाकान्त नामक एक ब्राह्मण को लेकर तुरन्त ही जगन्नाथ पुरी के लिए चल पड़े। नवद्वीप के एक निवासी ने, जिनका नाम पुरुषोत्तम भट्टाचार्य था, वाराणसी में शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने चैतन्यानन्द से संन्यास ग्रहण किया था, किन्तु अपना नाम स्वरूप रखा था। अब वे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण में आये। श्री ईश्वर पुरी के तिरोधान के बाद उनका शिष्य गोविन्द अपने गुरु की आज्ञानुसार चैतन्य महाप्रभु की सेवा करने गया। केशव भारती से सम्बन्ध होने के कारण ब्रह्मानन्द भारती का भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने आदर सहित स्वागत किया। जगन्नाथ पुरी आने पर महाप्रभु ने उन्हें मृगचर्म न पहनने का परामर्श दिया। जब ब्रह्मानन्द ने महाप्रभु को ठीक से समझ लिया तो उन्होंने उन्हें साक्षात् कृष्ण के रूप में स्वीकार कर लिया। किन्तु जब सार्वभौम भट्टाचार्य ने महाप्रभु को कृष्ण कहकर सम्बोधित किया, तो महाप्रभु ने तुरन्त इसका विरोध किया। तभी काशीश्वर गोस्वामी भी महाप्रभु से भेंट करने आये। इस अध्याय में चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के लिए भक्तगण विभिन्न स्थानों से आते हैं और वे भक्तगण उन नदियों के समान हैं, जो अनेक स्थानों से बहकर समुद्र में जा मिलती हैं।

तं वन्दे गौर-जलदं स्वस्य यो दर्शनामृतैः ।

विच्छेदावग्रह-म्लान-भक्त-शस्यान्यजीवयत् ॥1॥

तम्-उनको; वन्दे मैं सादर नमस्कार करता हूँ; गौर-श्री चैतन्य महाप्रभु; जल-दम्-पानी से भरे मेघ; स्वस्य-अपने; यः-वे जो; दर्शन-अमृतैः-दर्शन रूपी अमृत; विच्छेद–विरह के कारण; अवग्रह-वर्षा का अभाव; म्लान-शोक ग्रस्त, शुष्क; भक्त-भक्त; शस्यानि–अन्न; अजीवयत्-रक्षा करता है।

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जो वर्षा की कमी से कष्ट पा रहे भक्तरूपी धान्य के खेतों में जल बरसाने वाले बादल की तरह हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु का वियोग सूखे की तरह है, किन्तु जब महाप्रभु लौटते हैं, तो उनकी उपस्थिति उस अमृत-वर्षा की तरह है, जो सूखते हुए अनाज पर बरसकर उसे नष्ट होने से बचा लेती है।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय जय; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैत आचार्य की जय हो तथा भगवान् चैतन्य के समस्त भक्तों की जय हो!

पूर्वे यबे महाप्रभु चलिला दक्षिणे ।

प्रतापरुद्र राजा तबे बोलाइल सार्वभौमे ॥ 3 ॥

पूर्वे-पहले; यबे-जब; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; चलिला–चले थे; दक्षिणे- अपनी दक्षिण भारत की यात्रा पर; प्रतापरुद्र प्रतापरूद्र; राजा-राजा ने; तबे-उस समय; बोलाइल–बुलाया; सार्वभौमे सार्वभौम भट्टाचार्य को।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत के लिए चल पड़े, तब राजा प्रतापरुद्र ने सार्वभौम भट्टाचार्य को अपने महल में बुलाया।

वसिते आसन दिल करि' नमस्कारे ।

महाप्रभुर वार्ता तबे पुछिल ताँहारे ॥4॥

वसिते-बैठने के लिए; आसन-आसन; दिल-दिया; करि' करके; नमस्कारे- नमस्कार; महाप्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु का; वार्ता–समाचार; तबे-उस समय; पुछिल-पूछा; ताँहारे-उनसे।

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य राजा से मिले, तो राजा ने उन्हें सम्मानपूर्वक आसन प्रदान किया और श्री चैतन्य महाप्रभु का समाचार पूछा।

शुनिलाङ तोमार घरे एक महाशय ।

गौड़ हइते आइला, तेंहो महा-कृपामय ॥5॥

शुनिलाङ–मैंने सुना है; तोमार-आपके; घरे-घर पर; एक-एक; महाशय-महापुरुष; गौड़ हड़ते-बंगाल से; आइला–आये हैं; तेंहो-वे; महा-कृपा-मय-अत्यन्त कृपालु।

अनुवाद

राजा ने भट्टाचार्य से कहा, "मैंने सुना है कि बंगाल से एक महापुरुष आये हैं, जो आपके घर ठहरे हैं। मैंने यह भी सुना है कि वे अत्यन्त कृपालु हैं।"

तोमारे बहु कृपा कैला, कहे सर्व-जन ।

कृपा करि' कराह मोरे ताँहार दर्शन ॥ 6 ॥

तोमारे-आपके ऊपर; बहु कृपा-बहुत दया; कैला-की; कहे-कहता है; सर्व-जन-प्रत्येक व्यक्ति; कृपा करि'–कृपा करके; कराह-व्यवस्था करो; मोरे-मेरे लिए; ताँहार-उनका; दर्शन-दर्शन।

अनुवाद

"मैंने यह भी सुना है कि इस महापुरुष ने आप पर महती कृपा की है। जो भी हो, विभिन्न लोगों से मैं यही सुन रहा हूँ। अब आप कृपा करके मेरी उनसे भेंट कराकर मुझे कृतार्थ करें।"

भट्ट कहे,—ये शुनिला सब सत्य हय ।

ताँर दर्शन तोमार घटन ना हय ॥7॥

भट्ट कहे-भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; ये-जो; शुनिला–आपने सुना है; सब-सब; सत्य-सच; हय-है; ताँर दर्शन-उनका दर्शन; तोमार-आपके; घटन–घटना, सम्भव; ना हय-नहीं है।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "आपने जो कुछ भी सुना है, वह सत्य है। किन्तु जहाँ तक भेंट करने की बात है, उसका प्रबन्ध कर पाना अत्यन्त कठिन है।"

विरक्त सन्न्यासी तेंहो रहेन निर्जने ।

स्वप्नेह ना करेन तेंहो राज-दरशने ॥8॥

विरक्त-वैरागी; सन्न्यासी-संन्यासी; तेंहो-वे; रहेन–स्वयं को रखते हैं; निर्जने-एकान्त स्थान में; स्वप्नेह-स्वप्न में भी; ना-नहीं; करेन-करते; तेंहो-वे; राज-दरशने-राजा से मुलाकात।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु संन्यासी हैं और सांसारिक मामलों से अत्यधिक विरक्त हैं। वे निर्जन स्थान में ठहरते हैं और सपने में भी किसी राजा से भेंट नहीं करते।"

तथापि प्रकारे तोमा कराइताम दरशन ।

सम्प्रति करिला तेंहो दक्षिण गमन ॥9॥

तथापि तथापि; प्रकारे-किसी न किसी प्रकार; तोमा-आपकी; कराइताम-मैं व्यवस्था कर देता; दरशन-दर्शन; सम्प्रति-अभी; करिला-किया है; तेंहो-उन्होंने; दक्षिण भारत के दक्षिण भाग में; गमन प्रस्थान।

अनुवाद

“इतने पर भी मैं आपकी भेंट कराने का प्रयास करता, किन्तु वे हाल ही में दक्षिण भारत के भ्रमण पर गये हैं।”

राजा कहे,—जगन्नाथ छाड़ि’ केने गेला ।

भट्ट कहे,—महान्तेर एइ एक लीला ॥ 10 ॥

राजा कहे-राजा ने कहा; जगन्नाथ छाड़ि’– भगवान जगन्नाथ के धाम को छोड़कर; केने गेला–वे क्यों गये; भट्ट कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; महान्तेर–महान् पुरुष की; एइ–यह; एक-एक; लीला-लीला।

अनुवाद

राजा ने पूछा, “उन्होंने जगन्नाथ पुरी को क्यों छोड़ा?” भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, “महापुरुषों की लीलाएँ ही ऐसी हैं।”

तीर्थ पवित्र करिते करे तीर्थ-भ्रमण ।

सेइ छले निस्तारये सांसारिक जन ॥11॥

तीर्थ-तीर्थस्थान; पवित्र करिते-पवित्र करने के लिए; करे-करते हैं; तीर्थ-भ्रमण-तीर्थ स्थानों की यात्रा; सेइ छले-उसी बहाने से; निस्तारये-उद्धार करते हैं; सांसारिक-बद्ध; जन-आत्माएँ।

अनुवाद

“बड़े-बड़े सन्त तीर्थस्थानों को पवित्र बनाने के लिए उनकी यात्रा करते हैं। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु अनेक तीर्थों का भ्रमण कर रहे हैं और अनेकानेक बद्धजीवों का उद्धार कर रहे हैं।”

भवद्विधा भागवतास्तीर्थी-भूताः स्वयं विभो ।

तीर्थी-कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः-स्थेन गदा-भृता ॥ 12॥

भवत्-आप; विधाः-की तरह; भागवताः-भक्त; तीर्थी-पवित्र तीर्थस्थान की तरह; भूताः-वर्तमान; स्वयम्-स्वयं; विभो-हे भगवान्; तीर्थी-कुर्वन्ति–तीर्थ के पवित्र स्थान बनाते हैं; तीर्थानि-पवित्र स्थान; स्व-अन्तः-स्थेन-उनके हृदयों में स्थित होने के कारण; गदा-भृता-भगवान् द्वारा।

अनुवाद

"आप जैसे सन्त पुरुष साक्षात् तीर्थ हैं। वे अपनी शुद्धता के कारण भगवान् के चिरन्तन संगी हैं, अतएव वे तीर्थों को भी शुद्ध कर सकते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.13.10) का है, जिसे महाराज युधिष्ठिर ने विदुर से कहा था और यह आदिलीला (1.63) में भी आया है।

वैष्णवेर एइ हय एक स्वभाव निश्चल ।

तेंहो जीव नहेन, हन स्वतन्त्र ईश्वर ॥ 13 ॥

वैष्णवेर-महान् भक्तों का; एइ–यह; हय-है; एक-एक; स्वभाव-स्वभाव; निश्चल-निश्चल; तेंहो-वे; जीव-बद्ध आत्मा; नहेन-नहीं है; हन-है; स्वतन्त्र-स्वतंत्र; ईश्वर–ईश्वर।

अनुवाद

"वैष्णव तीर्थस्थानों की यात्रा उन्हें पवित्र बनाने तथा पतित बद्धजीवों का उद्धार करने के लिए करता है। यह वैष्णवों का कर्तव्य है। वास्तव में श्री चैतन्य महाप्रभु जीव नहीं, अपितु साक्षात् पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् हैं। फलस्वरूप वे पूर्णतः स्वतन्त्र नियन्ता हैं, फिर भी भक्तरूप में वे भक्त के कार्य करते हैं।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इंगित करते हैं कि तीर्थस्थानों में ऐसे अनेक स्थायी निवासी होते हैं, जो तीर्थस्थानों में रहने के विधि-विधानों का ठीक से पालन नहीं करते, इसलिए महान् भक्तों को उनका उद्धार करने के लिए इन स्थानों में जाना पड़ता है। यही वैष्णव का कार्य है। वैष्णव दूसरों को भौतिकता में ग्रस्त देखकर दुःखी होता है। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त वैष्णवों के आराध्य देव हैं, पूर्ण तथा स्वतन्त्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, फिर भी वैष्णवों के कार्यकलापों की शिक्षा उन्हीं की दी हुई है। वे पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तः–अर्थात् पूर्ण, पूर्णतया शुद्ध तथा सनातन रूप से मुक्त हैं। वे सनातन हैं, क्योंकि उनका न तो आदि है और न अन्त।

राजा कहे,—ताँरे तुमि याइते केने दिले ।

पाय पड़ि' यत्न करि' केने ना राखिले ॥14॥

राजा कहे-राजा ने कहा; ताँरे–उनको; तुमि-आपने; माइते-जाने; केने-क्यों; दिले–दिया; पाय-उनके चरणकमलों पर; पड़ि'-गिरकर; यत्न करि'-बहुत प्रयास करके; केने-क्यों; ना-नहीं; राखिले-रोका।

अनुवाद

यह सुनकर राजा ने कहा, "आपने उन्हें क्यों जाने दिया? आपने उनके चरणकमलों पर गिरकर उन्हें यहीं क्यों नहीं रखा?"

भट्टाचार्य कहे,—तेंहो स्वयं ईश्वर स्वतन्त्र ।

साक्षात्श्रीकृष्ण, तेंहो नहे पर-तन्त्र ॥ 15॥

भट्टाचार्य कहे-सार्वभौम ने उत्तर दिया; तेंहो-वे; स्वयम्-स्वयं; ईश्वर–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; स्वतन्त्र-स्वतंत्र; साक्षात्-साक्षात्; श्री-कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तेंहो-वे; नहे-नहीं हैं; पर-तन्त्र–किसी के अधीन।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और वे पूर्ण तथा स्वतन्त्र हैं। साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण होने के कारण वे किसी पर आश्रित नहीं हैं।"

तथापि राखिते ताँरे बहु यत्न कैलुँ ।

ईश्वरेर स्वतन्त्र इच्छा, राखिते नारिलुँ ॥ 16 ॥

तथापि तथापि; राखिते-रखने के लिए; ताँरे–उन्हें; बहु-बहुत; यत्न–प्रयास; कैलुँ-मैंने किये; ईश्वरेर–परम भगवान् की; स्वतन्त्र-स्वतंत्र; इच्छा-इच्छा; राखिते-रखने के लिए; नारिलुँ-मैं अक्षम था।

अनुवाद

"फिर भी मैंने उन्हें यहाँ रखने के लिए बहुत प्रयत्न किया, किन्तु वे परम भगवान् हैं तथा पूर्णतया स्वतन्त्र हैं, अतएव मैं इसमें सफल नहीं हो सका।"

राजा कहे,—भट्ट तुमि विज्ञ-शिरोमणि ।

तुमि ताँरे 'कृष्ण' कह, ताते सत्य मानि ॥17॥

राजा कहे-राजा ने कहा; भट्ट सार्वभौम भट्टाचार्य; तुमि-आप; विज्ञ-शिरोमणि-सर्वश्रेष्ठ अनुभवी विद्वान; तुमि-आप; ताँरे–उनको; कृष्ण कह-भगवान् कृष्ण कहते हो; ताते-आपका वचन; सत्य मानि–मैं सत्य स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

राजा ने कहा, "हे भट्टाचार्य, मैं जिन्हें जानता हूँ उनमें से आप सर्वाधिक विद्वान तथा अनुभवी व्यक्ति हैं। अतएव जब आप श्री चैतन्य महाप्रभु को भगवान् कृष्ण कहते हैं, तो मैं इसको सत्य के रूप में स्वीकार करता हूँ।

तात्पर्य

आध्यात्मिक विज्ञान में आगे बढ़ने का यही उपाय है। आचार्य या प्रामाणिक गुरु के शब्दों को स्वीकार करना चाहिए, जिससे आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग साफ हो सके। यही सफलता का रहस्य है। हाँ, मनुष्य का मार्गदर्शक ऐसा आध्यात्मिक गुरु होना चाहिए, जो पूर्ववर्ती आचार्य के आदेशों का बिना विचलित हुए दृढ़ता से पालन करने वाला हो। गुरु जो भी कहे, उसे शिष्य को स्वीकार करना चाहिए। तभी सफलता निश्चित होती है। यही वैदिक पद्धति है।

सार्वभौम भट्टाचार्य एक ब्राह्मण एवं स्वरूपसिद्ध व्यक्ति थे, जबकि प्रतापरुद्र एक क्षत्रिय थे। क्षत्रिय राजा विद्वान ब्राह्मणों एवं सन्त पुरुषों के आदेशों का पालन श्रद्धापूर्वक किया करते थे और इस तरह वे अपने देश का शासन चलाते थे। इसी प्रकार वैश्य राजा के आदेशों का पालन करते थे और शूद्र इन तीन उच्चतर जातियों की सेवा करते थे। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र आपस में मिलजुलकर रहते थे और अपने नियत कर्मों का पालन करते थे। फलस्वरूप समाज में शान्ति थी और लोग कृष्णभावनामृत के कर्तव्यों को पूरा करने में समर्थ थे। फलतः वे इस जीवन में सुखी थे और भगवद्धाम वापस जाने में सक्षम थे।

पुनरपि इहाँ ताँर हैले आगमन ।

एक-बार देखि करि सफल नयन ॥18॥

पुनरपि-फिर भी; इहाँ–यहाँ; ताँर-उनका; हैले-जब हो; आगमन-आगमन; एक-बार-एक बार; देखि'–देखकर; करि-मैं करता हूँ; स-फल-सफल; नयन-अपने नेत्र।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु जब पुनः यहाँ आयें, तो मैं अपने नेत्रों को सफल बनाने के लिए उनका एक बार दर्शन करना चाहता हूँ।"

भट्टाचार्य कहे,—तेंहो आसिबे अल्प-काले ।

रहिते ताँरे एक स्थान चाहिये विरले ॥19॥

भट्टाचार्य कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; तेंहो-वे; आसिबे-आयेंगे; अल्प-काले–अति शीघ्र; रहिते-रखने के लिए; ताँरे–उनको; एक-एक; स्थान-स्थान; चाहिये-चाहिए; विरले-एकान्त।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "श्री चैतन्य महाप्रभु शीघ्र ही लौट आयेंगे। मैं उनके लिए एक उत्तम स्थान चाहता हूँ, जो एकान्त तथा शान्त हो।"

ठाकुरेर निकट, आर हइबे निर्जने ।

ए-मत निर्णय करि' देह' एक स्थाने ॥20॥

ठाकुरेर निकट-भगवान जगन्नाथ के मन्दिर के निकट; आर-भी; हइबे-होना चाहिए; निर्जने-एकान्त; ए-मत-इस प्रकार; निर्णय करि'–निर्णय करके; देह'–कृपया दो; एक स्थाने–एक स्थान।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु का निवासस्थान एकान्त में हो तथा जगन्नाथ मन्दिर के निकट भी। आप इस प्रस्ताव पर विचार करें और उनके लिए एक अच्छा-सा स्थान दें।"

राजा कहे,—ऐछे काशी-मिश्रेर भवन ।

ठाकुरेर निकट, हय परम निर्जन ॥21॥

राजा कहे-राजा ने उत्तर दिया; ऐछे-ठीक वैसा ही; काशी-मिश्रेर भवन-काशी मिश्र का घर; ठाकुरेर निकट-भगवान जगन्नाथ के निकट; हय-है; परम-अत्यन्त; निर्जन-एकान्त।

अनुवाद

राजा ने उत्तर दिया, "आप जैसा चाहते हैं, काशी मिश्र का घर वैसा ही है। वह मन्दिर के निकट है और अत्यन्त निर्जन तथा शान्त भी है।"

एत कहि' राजा रहे उत्कण्ठित हञा ।

भट्टाचार्य काशी-मिश्रे कहिल आसिया ॥ 22॥

एत कहियह कहकर; राजा-राजा; रहे-रहे; उत्कण्ठित-अति उत्सुक; हञा-होकर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; काशी-मिश्रे-काशी मिश्र को; कहिल-कहा; आसिया-आकर।

अनुवाद

यह कहकर राजा महाप्रभु के पुनरागमन के लिए अत्यन्त आतुर हो उठे। तब सार्वभौम भट्टाचार्य काशी मिश्र के घर राजा की इच्छा बतलाने गये।

काशी-मिश्र कहे,—आमि बड़ भाग्यवान् ।

मोर गृहे 'प्रभु-पादेर' हबे अवस्थान ॥ 23 ॥

काशी-मिश्र कहे-काशी मिश्रने कहा; आमि-मैं; बड़-बहुत; भाग्यवान्-भाग्यवान्; मोर गृहे-मेरे घर में प्रभु-पादेर-प्रभुओं के स्वामी का; हबे-होगा; अवस्थान-निवास।

अनुवाद

जब काशी मिश्र ने यह प्रस्ताव सुना तो उन्होंने कहा, "मैं परम भाग्यवान् हूँ कि समस्त प्रभुओं के स्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु मेरे घर पर ठहरेंगे।"

तात्पर्य

इस श्लोक में श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए प्रयुक्त प्रभुपाद शब्द महत्त्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद की टीका है-"श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हैं और उनके सारे दास उन्हें प्रभुपाद कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि उनके चरणकमलों में शरण लेने वाले अनेक प्रभु हैं।" शुद्ध वैष्णव को प्रभु

कहा जाता है और वैष्णवों में यह सम्बोधन शिष्टाचार के रूप में प्रयुक्त होता है। जब बहुत से प्रभु किसी अन्य प्रभु के चरणकमलों की शरण लेते हैं, तब प्रभुपाद सम्बोधन का प्रयोग किया जाता है। श्री नित्यानन्द प्रभु तथा श्री अद्वैत प्रभु भी प्रभुपाद कहलाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री अद्वैत प्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु ये सभी विष्णु-तत्त्व हैं, अतएव सारे जीव उनके चरणकमलों की शरण में हैं। भगवान् विष्णु हर एक के शाश्वत प्रभु हैं और भगवान् विष्णु का प्रतिनिधि भगवान् का विश्वासपात्र दास होता है। ऐसा व्यक्ति नये वैष्णवों के लिए गुरु का कर्तव्य निभाता है, अतएव गुरु श्रीकृष्ण चैतन्य या भगवान् विष्णु के समान ही आदरणीय होता है। इसीलिए गुरु को ॐ विष्णुपाद या प्रभुपाद कहा जाता है। आचार्य अर्थात् गुरु का आदर सामान्यतया अन्य लोगों द्वारा श्रीपाद के रूप में किया जाता है और दीक्षित वैष्णव को प्रभु कहकर सम्बोधित किया जाता है। प्रभु, प्रभुपाद तथा विष्णुपाद का वर्णन श्रीमद्भागवत, श्रीचैतन्य चरितामृत तथा श्रीचैतन्य-भागवत जैसे प्रामाणिक शास्त्रों में मिलता है। इस सम्बन्ध में ये शास्त्र अनन्य भक्तों द्वारा स्वीकृत प्रमाणों को प्रस्तुत करते हैं।

प्राकृत सहजिये वैष्णव तक कहलाने के पात्र नहीं होते। वे सोचते हैं कि केवल गोस्वामी जाति के लोगों को ही प्रभुपाद कहना चाहिए। ऐसे अज्ञानी सहजिये अपने आपको वैष्णव-दास-अनुदास कहते हैं, किन्तु वे शुद्ध वैष्णव को प्रभुपाद कहने के विरोधी होते हैं। दूसरे शब्दों में, वे प्रभुपाद कहलाने वाले प्रामाणिक गुरु से ईर्ष्या करते हैं। इस तरह वे गुरु को सामान्य मनुष्य या किसी जाति विशेष का सदस्य मानने के कारण अपराध के भागी बनते हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ऐसे सहजियों को सर्वाधिक अभागा बतलाते हैं, जो अपनी भ्रान्त धारणाओं के कारण नरक को जाते हैं।

एइ-मत पुरुषोत्तम-वासी यत जन ।

प्रभुके मिलिते सबार उत्कण्ठित मन ॥24॥

एइ-मत-इस प्रकार; पुरुषोत्तम-वासी-जगन्नाथ पुरी के निवासी; यत-सभी; जन-लोग; प्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु को; मिलिते-मिलने के लिए; सबार–प्रत्येक व्यक्ति; उत्कण्ठित-उत्सुक; मन-मन।

अनुवाद

इस तरह जगन्नाथ पुरी अर्थात् पुरुषोत्तम के सारे निवासी श्री चैतन्य महाप्रभु से फिर से भेंट करने के लिए परम उत्सुक हो गये।

सर्व-लोकेर उत्कण्ठा यबे अत्यन्त बाड़िल ।

महाप्रभु दक्षिण हैते तबहि आइल ॥ 25॥

सर्व-लोकेर-सभी लोगों की; उत्कण्ठा-उत्सुकता; यबे-जब; अत्यन्त-बहुत अधिक; बाड़िल-बढ़ गई; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; दक्षिण हैते–दक्षिण भारत से; तबहि-उसी समय; आइल-लौट आये।

अनुवाद

जब जगन्नाथ पुरी के सारे निवासी पुनः महाप्रभु से भेंट करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो गये, तभी महाप्रभु दक्षिण भारत से लौट आये।

शुनि' आनन्दित हैल सबाकार मन ।

सबे आसि' सार्वभौमे कैल निवेदन ॥26॥

शुनि'–सुनकर; आनन्दित–प्रसन्न; हैल–हो गये; सबाकार–प्रत्येक का; मन-मन; सबे आसि'-हर एक ने आकर; सार्वभौमे-सार्वभौम भट्टाचार्य को; कैल-किया; निवेदन-निवेदन।

अनुवाद

महाप्रभु की वापसी के बारे में सुनकर सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे सभी लोग सार्वभौम भट्टाचार्य के पास जाकर इस प्रकार बोले।

प्रभुर सहित आमा-सबार कराह मिलन ।

तोमार प्रसादे पाइ प्रभुर चरण ॥ 27॥

प्रभुर सहित-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; आमा-सबार-हम सबका; कराह-व्यवस्था करो; मिलन-भेंट; तोमार-आपकी; प्रसादे-कृपा से; पाइ–हम पाते हैं; प्रभुर चरण-महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

"कृपा करके श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ हमारी भेंट कराने की व्यवस्था कर दें। आपकी कृपा के बल पर ही हमें महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त हो सकती है।"

भट्टाचार्य कहे,—कालि काशी-मिश्रेर घरे ।

प्रभु याइबेन, ताहाँ मिलाब सबारे ॥28॥

भट्टाचार्य कहे-भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; कालि–कल; काशी-मिश्रेर घरे–काशी मिश्र के घर में; प्रभु–महाप्रभु; याइबेन-जायेंगे; ताहाँ-वहाँ; मिलाब सबारे-मैं आप सबके मिलन की व्यवस्था करूँगा।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने लोगों से कहा, "महाप्रभु कल काशी मिश्र के घर पर होंगे। तभी मैं आप लोगों की उनसे मिलने की व्यवस्था करूँगा।"

आर दिन महाप्रभु भट्टाचार्येर सङ्गे ।

जगन्नाथ दरशन कैल महा-रङ्गे ॥29॥

आर दिन-अगले दिन; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; भट्टाचार्येर सङ्गे-सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ के; दरशन-दर्शन; कैल–किये; महा-रङ्गे–अत्यन्त उत्साहपूर्वक।

अनुवाद

अगले दिन श्री चैतन्य महाप्रभु आ गये और वे बड़े ही उत्साहपूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ भगवान जगन्नाथ के मन्दिर में दर्शन करने गये।

महा-प्रसाद दिया ताहाँ मिलिला सेवक-गण ।

महाप्रभु सबाकारे कैल आलिङ्गन ॥ 30॥

महा-प्रसाद-भगवान जगन्नाथ के भोजन के अवशेष; दिया–दिये; ताहाँ-वहाँ; मिलिला–मिले; सेवक-गण-सेवक गण; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सबाकारे-सबको; कैल-किया; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ के सारे सेवकों ने चैतन्य महाप्रभु को भगवान् का प्रसाद लाकर दिया। तब बदले में, चैतन्य महाप्रभु ने उन सबका आलिंगन किया।

दर्शन करि' महाप्रभु चलिला बाहिरे ।

भट्टाचार्य आनिल ताँरे काशी-मिश्र-घरे ॥31॥

दर्शन करि'–भगवान जगन्नाथ के दर्शन कर; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; चलिला-चले गये; बाहिरे-बाहर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; आनिल-लाये; ताँरे-उनको; काशी-मिश्र-घरे-काशी मिश्र के घर पर।

अनुवाद

भगवान जगन्नाथ का दर्शन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु मन्दिर से बाहर आ गये। फिर भट्टाचार्य उन्हें काशी मिश्र के घर ले गये।

काशी-मिश्र आसि' पड़िल प्रभुर चरणे ।

गृह-सहित आत्मा ताँरे कैल निवेदने ॥ 32॥

काशी-मिश्र-काशी मिश्र; आसि-आकर; पड़िल-गिर पड़े; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे-चरणकमलों पर; गृह-सहित-अपने घर; आत्मा-स्वयं को; ताँरे-उनको; कैल-किया; निवेदने-समर्पण।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु काशी मिश्र के घर आये, तो वे तुरन्त उनके चरणकमलों पर गिर पड़े और उन्होंने स्वयं को तथा अपने सारे घर-बार को उनकी शरण में दे दिया।

प्रभु चतुर्भुज-मूर्ति ताँरे देखाइल ।

आत्मसात्करि' तारे आलिङ्गन कैल ॥ 33॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चतुर्भु ज-मूर्ति–चतुर्भुज रूप; ताँरे–उनको; देखाइल-दिखाया; आत्मसात् करि'–स्वीकार करके; तारे–उनको; आलिङ्गन कैल-आलिंगन किया।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने काशी मिश्र को अपना चतुर्भुज स्वरूप दिखलाया। महाप्रभु ने उसकी सेवा स्वीकार की और उसे गले लगाया।

तबे महाप्रभु ताहाँ वसिला आसने ।

चौदिके वसिला नित्यानन्दादि भक्त-गणे ॥ 34॥

तबे-उस समय; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; ताहाँ-वहाँ; वसिला-बैठ गये; आसने-अपने आसन पर; चौ-दिके चारों ओर; वसिला-बैठ गये; नित्यानन्द-आदि-नित्यानन्द प्रभु आदि; भक्त-गणे-सभी भक्त।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने लिए तैयार किये गये आसन पर बैठ गये और नित्यानन्द प्रभु समेत सारे भक्तगण उनके चारों ओर बैठ गये।

सुखी हैला देखि' प्रभु वासार संस्थान ।

येइ वासाय हय प्रभुर सर्व-समाधान ॥ 35॥

सुखी हैला-बहुत आनन्दित होकर; देखि'–देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः वासार-निवासस्थान की; संस्थान-स्थिति; येइ वासाय-जिस स्थान पर; हय-है; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; सर्व-समाधान-सभी आवश्यकताओं की पूर्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निवासस्थान को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, जिसमें उनकी सारी आवश्यकताओं को पूरा करने का ध्यान रखा गया था।

सार्वभौम कहे,—प्रभु, योग्य तोमार वासा ।

तुमि अङ्गीकार कर,—काशी-मिश्रेर आशा ॥ 36॥

सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य ने; कहे–कहा; प्रभु-मेरे प्रिय प्रभु; योग्य-योग्य; तोमार-आपके; वासा–निवासस्थान; तुमि-आप; अङ्गीकार कर–स्वीकार करें; काशी-मिश्रेर आशा-काशी मिश्र की आशा।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "यह स्थान आपके अनुकूल है। कृपया इसे स्वीकार करें; ऐसी काशी मिश्र की आशा है।"

प्रभु कहे,—एइ देह तोमा-सबाकार ।

येइ तुमि कह, सेइ सम्मत आमार ॥ 37॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; एइ देह-यह शरीर; तोमा-सबाकार-आप सबका है; येइ-जो कुछ; तुमि-आप; कह-कहते हो; सेइ-वही; सम्मत आमार-मुझे स्वीकार है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यह मेरा शरीर आप सबका है। अतएव आप लोग जो भी कहेंगे, वह मुझे स्वीकार है।"

तबे सार्वभौम प्रभुर दक्षिण-पार्श्वे वसि' ।

मिलाइते लागिला सब पुरुषोत्तम-वासी ॥ 38॥

तबे-तत्पश्चात्; सार्वभौम-सार्वभौम; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; दक्षिण-पार्श्वे-दायीं ओर; वसि'-बैठकर; मिलाइते-परिचय देने; लागिला-लगे; सब-सब; पुरुषोत्तम-वासी-पुरुषोत्तम (जगन्नाथ पुरी) के निवासियों का।

अनुवाद

इसके बाद सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु की दाहिनी ओर बैठकर पुरुषोत्तम अर्थात् जगन्नाथ पुरी के सारे निवासियों का परिचय कराने लगे।

एइ सब लोक, प्रभु, वैसे नीलाचले ।

उत्कण्ठित हाञाछे सबे तोमा मिलिबारे ॥39॥

एइ सब लोक-ये सब लोग; प्रभु–मेरे प्रभु, वैसे-रहते हैं; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; उत्कण्ठित हजाछे-वे अत्यन्त उत्सुक हो उठे हैं; सबे-सब; तोमा-आपको; मिलिबारे-मिलने को।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "हे प्रभु, ये नीलाचल के सारे निवासी आपसे मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो रहे हैं।"

तृषित चातक यैछे करे हाहाकार ।

तैछे एइ सब,—सबे कर अङ्गीकार ॥40॥

तृषित-प्यासे; चातक–चातक पक्षी; यैछे-की तरह; करे-करते हैं; हाहाकार-निराशा भरी चित्कार; तैछे-उसी प्रकार; एइ सब-ये सब; सबे-इन सबको; कर अङ्गीकार-कृपया स्वीकार करें।

अनुवाद

"आपकी अनुपस्थिति में ये सारे लोग प्यासे चातकों की तरह निराश होकर रोदन कर रहे थे। कृपया इन्हें अपनी शरण में लें।"

जगन्नाथ-सेवक एइ, नाम-जनार्दन ।

अनवसरे करे प्रभुर श्री-अङ्ग-सेवन ॥41॥

जगन्नाथ-सेवक-भगवान् जगन्नाथ के सेवक; एइ–यह; नाम-नामक; जनार्दन जनार्दन; अनवसरे–नवयौवन के अवसर पर; करे-करता है; प्रभुर-भगवान् के; श्री-अङ्ग-दिव्य शरीर की; सेवन–सेवा।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने सर्वप्रथम जनार्दन का परिचय देते हुए कहा, "यह भगवान् जगन्नाथ का सेवक जनार्दन है। यह भगवान् की तब सेवा करता है, जब उनके दिव्य शरीर को नया बनाया जाता है।"

तात्पर्य

स्नान-यात्रा उत्सव के बाद अनवसर के समय भगवान् जगन्नाथ 15 दिनों तक मन्दिर से अनुपस्थित रहते हैं, जिससे उनको नया बनाया जा सके। ऐसा प्रतिवर्ष होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु से जिस जनार्दन का परिचय कराया जा रहा था, वह उस समय यही सेवा कर रहा था। भगवान जगन्नाथ के श्रृंगार को नवयौवन भी कहा जाता है, जिससे यह सूचित होता है कि जगन्नाथ अर्चाविग्रह को पुनः यौवन प्रदान किया जाता है।

कृष्णदास-नाम एइ सुवर्ण-वेत्र-धारी ।

शिखि माहाति-नाम एइ लिखनाधिकारी ॥42॥

कृष्णदास-कृष्णदास; नाम-नामक; एइ–यह; सुवर्ण-स्वर्ण; वेत्र-धारी-दण्डधारी; शिखि माहाति–शिखि माहिति; नाम-नामक; एइ-यह; लिखन-अधिकारी-लेखन का अधिकारी।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने बतलाया, "यह कृष्णदास है, जो सोने का एक दण्ड लिए रहता है और यह है शिखि माहिति जो लेखन अधिकारी है।

तात्पर्य

लेखन अधिकारी देउलकरण-पदप्राप्त कर्मचारी भी कहलाता है। वह विशेष रूप से मादला-पांजि नामक कैलण्डर अर्थात् पंजी लिखने के लिए नियुक्त किया जाता है।

प्रद्युम्न-मिश्र इँह वैष्णव प्रधान।

जगन्नाथेर महा-सोयार इँह 'दास' नाम ॥43॥

प्रद्युम्न-मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; इँह-यह व्यक्ति; वैष्णव प्रधान-वैष्णवों का मुखिया; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ का; महा-सोयार-महान् सेवक; इँह-यह; दास नाम-'दास' नामक।

अनुवाद

यह प्रद्युम्न मिश्र है, जो सारे वैष्णवों का मुखिया है। यह जगन्नाथजी का महान् सेवक है और इसका नाम 'दास' है।

तात्पर्य

उड़ीसा में अधिकांश ब्राह्मणों की उपाधि दास है। सामान्यतया यह समझा जाता है कि दास ब्राह्मण-इतर जातियों का द्योतक है, किन्तु उड़ीसा में ब्राह्मण दास उपाधि ही प्रयुक्त करते हैं। इसकी पुष्टि चुल्लि भट्ट द्वारा होती है। वास्तव में हर व्यक्ति दास है, क्योंकि हर व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दास होता है। इस दृष्टि से प्रामाणिक ब्राह्मण को दास उपाधि का पहला अधिकार है। अतएव यहाँ पर दास उपाधि उपयुक्त ही है।

मुरारि माहाति इँह—शिखि-माहातिर भाइ।

तोमार चरण विनु आर गति नाइ ॥44॥

मुरारि माहाति-मुरारि माहिति; इँह-यह; शिखि-माहातिर–शिखि माहिति का; भाइ–छोटा भाई; तोमार-आपके; चरण-चरणकमल; विनु–बिना; आर-अन्य कोई; गति-गति; नाइ–नहीं है।

अनुवाद

"यह शिखि माहिति का भाई मुरारि माहिती है। आपके चरणकमलों के अतिरिक्त इसका अन्य कोई आश्रय नहीं है।"

चन्दनेश्वर, सिंहेश्वर, मुरारि ब्राह्मण ।

विष्णुदास,—इँह ध्याये तोमार चरण ॥ 45 ॥

चन्दनेश्वर–चन्देश्वर; सिंहेश्वर सिंहेश्वर; मुरारि ब्राह्मणमुरारी नामक ब्राह्मण; विष्णुदास-विष्णुदास; इँह-वे सब; ध्याये-ध्यान करते हैं; तोमार-आपके; चरण-चरणकमलों का।

अनुवाद

"ये चन्दनेश्वर, सिंहेश्वर, मुरारि ब्राह्मण तथा विष्णुदास हैं। ये सभी निरन्तर आपके चरणकमलों का ध्यान करने में लगे रहते हैं।"

प्रहरराज महापात्र इँह महा-मति ।

परमानन्द महापात्र इँहार संहति ॥ 46॥

प्रहरराज-प्रहरराजा; महापात्र–महापात्र; इँह-यह; महा-मति-अति बुद्धिमान; परमानन्द महापात्र-परमानन्द महापात्र; इँहार-उसका; संहति–मिश्रण।

अनुवाद

"ये परमानन्द प्रहरराज हैं, जो महापात्र नाम से भी जाने जाते हैं। ये अत्यधिक बुद्धिमान हैं।"

तात्पर्य

प्रहरराज उपाधि उन ब्राह्मणों को दी जाती है, जो सिंहासन रिक्त होने पर राजा का प्रतिनिधित्व करते हैं। उड़ीसा में राजा की मृत्यु के समय से लेकर दूसरे राजा के सिंहासनारूढ़ होने तक प्रतिनिधि ही सिंहासन पर आसीन होता है। यही प्रतिनिधि प्रहरराज कहलाता है। प्रहरराज का चुनाव सामान्यतया राजा के निकट के पुरोहितों के परिवार से ही किया जाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु के जमाने में परमानन्द प्रहरराज ही प्रहरराज थे।

ए-सब वैष्णव—एइ क्षेत्रेर भूषण ।

एकान्त-भावे चिन्ते सबै तोमार चरण ॥47॥

ए-सब वैष्णव-ये सब शुद्ध भक्त; एइ क्षेत्रेर–इस पावन क्षेत्र के; भूषण-आभूषण; एकान्त-भावे-एकाग्र भाव से; चिन्ते-ध्यान करते हैं; सबे-सब; तोमार चरण-आपके चरणकमलों का।

अनुवाद

"ये सारे शुद्ध भक्त जगन्नाथ पुरी के आभूषणों के समान सेवा करते हैं। ये सभी आपके चरणकमलों का अविचलित भाव से ध्यान करते हैं।"

तबे सबै भूमे पड़े दण्डवत् हञा ।

सबा आलिङ्गिला प्रभु प्रसाद करिया ॥48॥

तबे-तत्पश्चात्; सबे–वे सब; भूमे-धरती पर पड़े-गिर गये; दण्ड-वत्-दण्ड की भाँति सीधे; हञा-होकर; सबा–उन सबका; आलिङ्गिला–गले लगाया; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रसाद करिया-कृपापूर्वक।

अनुवाद

इस परिचय के बाद सारे लोग जमीन पर डण्डे की तरह गिर पड़े। श्री चैतन्य महाप्रभु ने हर एक पर कृपा करके उन सबका आलिंगन किया।

हेन-काले आइला तथा भवानन्द राय ।

चारि-पुत्र-सङ्ग पड़े महाप्रभुर पाय ॥49॥

हेन-काले-इस समय; आइला-आये; तथा-वहाँ; भवानन्द राय-भवानन्द राय; चारि-पुत्र-सङ्गे-अपने चार पुत्रों के साथ; पड़े-गिर पड़े; महाप्रभुर पाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर।

अनुवाद

तभी भवानन्द राय अपने चार पुत्रों के साथ आये और वे सभी श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े।

तात्पर्य

भवानन्द राय के पाँच पुत्र थे, जिनमें से एक अत्यन्त उच्च कोटी के महापुरूष रामानन्द राय थे। भवानन्द राय पहली बार श्री चैतन्य महाप्रभु से उनकी दक्षिण यात्रा से वापस आने के अवसर पर मिले थे। तब रामानन्द राय सरकारी पद पर कार्य कर रहे थे, अतएव भवानन्द राय अपने अन्य चार पुत्रों के साथ महाप्रभु से मिलने गये। इनके नाम थे वाणीनाथ, गोपीनाथ, कलानिधि तथा सुधानिधि। भवानन्द राय तथा उनके पाँचों पुत्रों का वर्णन आदिलीला (10.133-34) में हुआ है।

सार्वभौम कहे,—एइ राय भवानन्द ।

इँहार प्रथम पुत्र—राय रामानन्द ॥50॥

सार्वभौम कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने आगे कहा; एइ-ये; राय भवानन्द-भवानन्द राय; इँहार–इनका; प्रथम पुत्र-प्रथम पुत्र; राय रामानन्द-रामानन्द राय।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने आगे बतलाया, "ये भवानन्द राय हैं, जिनके प्रथम पुत्र रामानन्द राय हैं।"

तबे महाप्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन ।

स्तुति करि' कहे रामानन्द-विवरण ॥51॥

तबे-तब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे–उनका; कैल–किया; आलिङ्गन-गले लगाया; स्तुति करि'-बहुत प्रशंसा करके; कहे-कहा; रामानन्द-रामानन्द राय का; विवरण–विवरण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भवानन्द राय का आलिंगन किया और बड़े ही आदर के साथ उनके पुत्र रामानन्द राय का बखान किया।

रामानन्द-हेन रत्न याँहार तनय ।

ताँहार महिमा लोके कहन ना याय ॥52॥

रामानन्द-हेन-रामानन्द राय की भाँति; रत्न-रत्न; याँहार–जिसका; तनय-पुत्र; ताँहार-उसकी; महिमा-महिमा का; लोके–इस संसार में; कहन-वर्णन करना; ना-नहीं; याय–सम्भव है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भवानन्द राय का यह कहकर सम्मान किया, जिस व्यक्ति को रामानन्द राय जैसा पुत्र-रत्न हो, उसकी महिमा का वर्णन इस मर्त्यलोक में नहीं किया जा सकता।

साक्षात्पाण्डु तुमि, तोमार पत्नी कुन्ती ।

पञ्च-पाण्डव तोमार पञ्च-पुत्र महा-मति ॥53॥

साक्षात् पाण्डु–साक्षात् महाराज पाण्डु; तुमि-आप; तोमार-आपकी; पत्नी-पत्नी; कुन्ती–कुन्ती देवी के समान; पञ्च-पाण्डव-पाँच पाण्डव; तोमार-आपके; पञ्च-पुत्र-पाँच पुत्र; महा-मति-सभी अत्यन्त बुद्धिमान।

अनुवाद

"आप साक्षात् महाराज पाण्डु हैं और आपकी पत्नी साक्षात् कुन्ती हैं। आपके सारे के सारे पुत्र अत्यन्त बुद्धिमान हैं, जो पाँचों पाण्डवों का प्रतिनिधित्व करते हैं।"

राय कहे,—आमि शूद्र, विषयी, अधम ।

तबु तुमि स्पर्श,—एइ ईश्वर-लक्षण ॥54॥

राय कहे-भवानन्द राय ने उत्तर दिया; आमि शूद्र-मैं शूद्र हूँ; विषयी-भौतिक कर्मों में व्यस्त; अधम-नीच; तबु-फिर भी; तुमि-आपने; स्पर्श-छुआ; एइ–यह; ईश्वर-लक्षण–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् का लक्षण है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा की गई प्रशंसा सुनकर भवानन्द राय ने निवेदन किया, "मैं चार वर्षों में चौथा (शूद्र) हूँ और सांसारिक कार्यों में लगा रहने वाला प्राणी हूँ। मैं अत्यन्त पतित हूँ, फिर भी आपने मेरा स्पर्श किया। यह इसका प्रमाण है कि आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।"

तात्पर्य

जैसाकि भगवद्गीता (5.18) में कहा गया है :

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिनः ॥

"विनीत साधु अपने वास्तविक ज्ञान के बल पर विद्वान तथा सज्जन ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता तथा चाण्डाल को समान दृष्टि से देखते हैं।"

जो व्यक्ति आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत हैं, वे किसी व्यक्ति की भौतिक अवस्था की परवाह नहीं करते। आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत व्यक्ति हर जीव के आध्यात्मिक स्वरूप को देखता है, फलतः वह विद्वान ब्राह्मण, कुत्ता, चाण्डाल या अन्य किसी में कोई भेदभाव नहीं बरतता। वह मनुष्य के भौतिक शरीर से प्रभावित नहीं होता, अपितु मनुष्य के आध्यात्मिक स्वरूप को देखता है। फलतः भवानन्द राय को श्री चैतन्य महाप्रभु का कथन अच्छा लगा, जिससे पता चलता है कि महाप्रभु ने भवानन्द राय की सामाजिक स्थिति की परवाह नहीं की कि वे सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहने वाले शूद्र जाति के थे। बल्कि महाप्रभु ने भवानन्द राय, रामानन्द राय तथा उनके भाइयों की आध्यात्मिक स्थिति पर ही विचार किया। भगवान् का भक्त भी ऐसी ही मनोवृत्ति रखता है। वह किसी भी व्यक्ति को किसी भी जीव को-आश्रय देता है, चाहे वह ब्राह्मण वंश का हो या चांडाल हो। गुरु सारे लोगों का उद्धार करके हर व्यक्ति को आध्यात्मिक जीवन की प्रेरणा देता है। ऐसे भक्त की शरण लेकर मनुष्य अपना जीवन सफल बना सकता है। जैसाकि श्रीमद्भागवत (2.4.18) में पुष्टि की गई है :

किरात हूणान्ध्रपुलिन्द पुल्कशा

आभीरशुम्भा यवनाः खसादयः ।

येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः

शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥

“किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कश, आभीर, शुम्भ, यवन तथा खस जातियाँ, यहाँ तक कि अन्य लोग भी जो पापकर्मों के अभ्यस्त हैं, भगवद्भक्त की शरण ग्रहण करके शुद्ध बन सकते हैं, क्योंकि भगवान् की भक्ति परम है। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।”

जो कोई भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् या उनके शुद्ध भक्त की शरण लेता है, वह आध्यात्मिक पद को प्राप्त करता है और भौतिक कल्मष से शुद्ध हो जाता है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (9.32) में कृष्ण भी करते हैं :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

“हे पृथा-पुत्र, जो मेरी शरण लेते हैं, वे भले ही निम्न जन्म वाले स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र क्यों न हो, मेरे परम धाम पहुँच सकते हैं।”

निज-गृह-वित्त-भृत्य-पञ्च-पुत्र-सने ।

आत्मा समर्पिलुँ आमि तोमार चरणे ॥55॥

निज-अपना; गृह-घर; वित्त-धन; भृत्य-सेवक; पञ्च-पुत्र-पाँच पुत्र; सने-के साथ; आत्मा-स्वयं; समर्पिलुँ–समर्पित करता हूँ; आमि-मैं; तोमार-आपके चरणे-चरणकमलों पर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा की प्रशंसा करते हुए भवानन्द राय ने यह भी कहा, “मैं अपने घर, धन, नौकरों तथा पाँचों पुत्र समेत आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ।

तात्पर्य

शरणागति की यही विधि है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का गीत है :

मानस, देह, गेह, यो किछु मोर

अर्पिलुँ तुया पदे नन्दकिशोर !

(शरणागति)

जब कोई भगवान् के चरणकमलों की शरण लेता है, तो वह अपना सर्वस्व अर्पित करके-अपना घर, शरीर, मन, तथा जो भी उसके पास में होता है उसे अर्पित करके ऐसा करता है। यदि इस शरणागति में कोई व्यवधान पड़े, तो तुरन्त ही अनासक्त होकर उसका परित्याग कर देना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अपने सारे परिवार के सदस्यों सहित शरण ग्रहण कर सके, तो उसे संन्यास लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु यदि तथाकथित पारिवारिक जनों के कारण शरणागति की प्रक्रिया में व्यवधान आता हो, तो शरणागति को पूरा करने के लिए उनका तुरन्त परित्याग कर देना चाहिए।

एइ वाणीनाथ रहिबे तोमर चरणे ।

यबे येइ आज्ञा, ताहा करिबे सेवने ॥56॥

एइ वाणीनाथ-यह वाणीनाथ; रहिबे-रहेगा; तोमार चरणे-आपके चरणकमलों परा; यबे-जब; येइ-जो कुछ; आज्ञा-आज्ञा; ताहा-वह; करिबे-पूरी करेगा; सेवने-सेवा।

अनुवाद

"यह वाणीनाथ नामक मेरा पुत्र आपके चरणकमलों में रहकर आपके आदेशों का तुरन्त पालन करेगा और आपकी सेवा करता रहेगा।"

आत्मीय-ज्ञाने मोरे सङ्कोच ना करिबे ।

येइ यबे इच्छा, तबे सेइ आज्ञा दिबे ॥57॥

आत्मीय-ज्ञाने-अपना सम्बन्धी समझने से; मोरे-मुझे; सङ्कोच-संकोच; ना-न; करिबे-करो; येइ-जो कुछ; यबे-जब कभी; इच्छा-आप इच्छा करें; तबे-तब; सेइ-वह; आज्ञा-आज्ञा; दिबे-दें।

अनुवाद

"हे प्रभु, कृपया आप मुझे अपना सम्बन्धी (आत्मीय) समझें। आप जब भी जो चाहें, उसके लिए आदेश देने में तनिक भी संकोच नहीं करें।"

प्रभु कहे,—कि सङ्कोच, तुमि नह पर।

जन्मे जन्मे तुमि आमार सवंशे किङ्कर ॥58॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; कि सङ्कोच-कैसा संकोच; तुमि-आप; नह–नहीं हो; पर-पराये; जन्मे जन्मे-जन्म-जन्मांतर में; तुमि-आप; आमार-मेरे; स-वंशे-परिवार के सदस्यों सहित; किङ्कर-सेवक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भवानन्द राय की बात यह कहते हुए मान ली, "मैं बिना संकोच के स्वीकार करता हूँ, क्योंकि आप पराये नहीं हैं। आप जन्म-जन्मांतर अपने परिवार सहित मेरे सेवक रहते आये हैं।"

दिन-पाँच-सात भितरे आसिबे रामानन्द।

ताँर सङ्गे पूर्ण हबे आमार आनन्द ॥59॥

दिन-पाँच-सात-पाँच अथवा सात दिन; भितरे–के भीतर; आसिबे-आयेंगे; रामानन्द-रामानन्द; ताँर सङ्गे–उनके साथ; पूर्ण हबे–पूर्ण होगा; आमार-मेरा; आनन्द-आनन्द।

अनुवाद

"पाँच-सात दिनों के ही भीतर श्री रामानन्द आने वाले हैं। ज्यों ही वे आ जायेंगे, हमारी सारी इच्छाएँ पूरी हो जायेंगी। मुझे उनके संग में अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है।"

एत बलि' प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन।

ताँर पुत्र सब शिरे धरिल चरण ॥60॥

एत बलि'-यह कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनका; कैल-किया; आलिङ्गन-गले लगाया; ताँर पुत्र-उनके पुत्र; सब-सब; शिरे–सिर पर; धरिल-रखे; चरण-उनके चरण।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने भवानन्द का आलिंगन किया। फिर उन्होंने उनके पुत्रों के सिरों पर अपने चरणकमल रखे।

तबे महाप्रभु तारे घरे पाठाइल ।

वाणीनाथ-पट्टनायके निकटे राखिल ॥ 61॥

तबे-तत्पश्चात्; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे-उनको (भवानन्द राय); घरे-घर; पाठाइल–भेज दिया; वाणीनाथ-पट्टनायके–वाणीनाथ पट्टनायक को; निकटे-पास; राखिल-रखा।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने भवानन्द राय को उनके घर वापस भेज दिया और अपनी निजी सेवा में केवल वाणीनाथ पट्टनायक को रख लिया।

भट्टाचार्य सब लोके विदाय कराइल ।

तबे प्रभु काला-कृष्णदासे बोलाइल ॥ 62॥

भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; सब लोके-सब लोगों को; विदाय कराइल-जाने के लिए कहा; तबे-उस समय; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; काला-कृष्णदासे-काला कृष्णदास को; बोलाइल–बुला भेजा।

अनुवाद

फिर सार्वभौम भट्टाचार्य ने सभी लोगों से विदा होने के लिए कहा। तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने काला कृष्णदास को बुलवाया, जो उनके साथ दक्षिण भारत की यात्रा में गया था।

प्रभु कहे,—भट्टाचार्य, शुनह इँहार चरित ।

दक्षिण गियाछिल इँह आमार सहित ॥ 63 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; भट्टाचार्य-हे भट्टाचार्य; शुनह-जरा सुनो; इँहार चरित-इसका चरित्र; दक्षिण गियाछिल-दक्षिण भारत गया था; इँह-यह; आमार सहित–मेरे साथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे भट्टाचार्य, जरा इस आदमी के चरित्र पर विचार कीजिये, जो मेरे साथ दक्षिण भारत गया था।"

भट्टथारि-काछे गेला आमारे छाड़िया।

भट्टथारि हैते इँहारे आनिलुँ उद्धारिया ॥ 64॥

भट्टथारि-काछे–भट्टथारियों की संगति में; गेला–चला गया; आमारे छाड़िया-मुझे छोड़कर; भट्टथारि हैते–भट्टथारियों से; इँहारे-उसे; आनिलुँ-मैं ले आया; उद्धारिया-बचा करके।

अनुवाद

"इसने भट्टथारियों के साथ रहने के लिए मेरा संग छोड़ दिया था, किन्तु मैं उनकी संगति से बचाकर इसे यहाँ लाया हूँ।"

एबे आमि इहाँ आनि' करिलाङ विदाय।

याहाँ इच्छा, याह, आमा-सने नाहि आर दाय ॥65॥

एबे-अब; आमि-मैंने; इहाँ–यहाँ; आनि'–लाकर; करिलाङविदाय-चले जाने को कहा है; याहाँ इच्छा-जहाँ भी वह चाहे; याह-जाना; आमा-सने मेरे साथ; नाहि आर-नहीं है; दाय–जिम्मेदारी।

अनुवाद

"मैं इसे यहाँ लाया हूँ, अतएव मैं इसे अब विदा कर रहा हूँ। अब वह जहाँ चाहे जा सकता है, क्योंकि मैं आगे इसके लिए उत्तरदायी नहीं हूँ।"

तात्पर्य

काला कृष्णदास को खानाबदोश लोगों ने स्त्रियों का लालच देकर अपने वश में कर लिया था। माया इतनी प्रबल होती है कि काला कृष्णदास श्री चैतन्य महाप्रभु का साथ छोड़कर खानाबदोश स्त्रियों के साथ चला गया। कोई व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु की संगति में भी क्यों न रहे, वह माया से मोहित होकर अपनी तुच्छ स्वतन्त्रता के कारण महाप्रभु का संग छोड़ सकता है। माया से बूरी तरह वशीभूत व्यक्ति ही ऐसा अभागा हो सकता है कि वह महाप्रभु का संग त्याग दे। फिर भी जब तक मनुष्य अत्यन्त विवेकशील नहीं होता, उसे माया का प्रभाव खींच सकता है, भले ही वह श्री चैतन्य महाप्रभु का निजी सहायक क्यों न हो। तो फिर औरों का कहना ही क्या? भट्टथारी लोग अपनी संख्या बढ़ाने के उद्देश्य से बाहरी लोगों को आकृष्ट करने के लिए स्त्रियों का उपयोग करते थे। यह वास्तविक प्रमाण है, जो यह दिखलाता है कि

महाप्रभु की संगति से किसी भी समय पतन हो सकता है। मनुष्य को केवल अपनी थोड़ी-सी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करने की देर है। एक बार पतन होने पर और भगवान् की संगति से अलग होने पर मनुष्य भौतिक जगत् में कष्ट भोगने का पात्र बन जाता है। यद्यपि महाप्रभु काला कृष्णदास का परित्याग कर चुके थे, किन्तु उसे दूसरा अवसर प्रदान किया गया, जैसाकि अगले श्लोकों से प्रकट होता है।

एत शुनि' कृष्णदास कान्दिते लागिल ।

मध्याह्न करिते महाप्रभु चलि' गेल ॥ 66 ॥

एत शुनि'-यह सुनकर; कृष्णदास-काला कृष्णदास; कान्दिते लागिल-रोने लगा; मध्याह्न-दोपहर का भोजन; करिते-करने के लिए; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चलि' गेल-चले गये।

अनुवाद

यह सुनकर कि महाप्रभु ने उसका परित्याग कर दिया है, काला कृष्णदास रोने लगा। किन्तु महाप्रभु ने उसकी परवाह नहीं की और वे अपना दोपहर का भोजन करने तुरन्त चले गये।

नित्यानन्द, जगदानन्द, मुकुन्द, दामोदर ।

चारि-जने युक्ति तबे करिला अन्तर ॥ 67॥

नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; जगदानन्द-जगदानन्द; मुकुन्द-मुकुन्द; दामोदर-दामोदर; चारि-जने-चारों व्यक्ति; युक्ति–तरकीब; तबे-तब; करिला-की; अन्तर-मन में।

अनुवाद

इसके बाद नित्यानन्द प्रभु, जगदानन्द, मुकुन्द तथा दामोदर आदि अन्य भक्त किसी युक्ति पर विचार करने लगे।

तात्पर्य

भले ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् किसी व्यक्ति का परित्याग कर दें, किन्तु भक्त उसका परित्याग नहीं करते। अतएव भगवान् के भक्त भगवान् से भी अधिक कृपालु होते हैं। श्रील नरोत्तम दास का गीत है- छाड़िया वैष्णव सेवा निस्तार

पेयेछे केबा–शुद्ध भक्तों की सेवा में लगे बिना भौतिक जाल से किसी का उद्धार नहीं हो सकता। कभी-कभी स्वयं भगवान् अत्यन्त कठोर हो सकते हैं, किन्तु भक्त सदैव दयालु रहते हैं। इस तरह काला कृष्णदास को उपर्युक्त चार भक्तों की कृपा प्राप्त हो सकी।

गौड़-देशे पाठाइते चाहि एक-जन ।

‘आइके कहिबे याइ, प्रभुर आगमन ॥ 68॥

गौड़-देशे-बंगाल; पाठाइते-भेजने के लिए; चाहि-हम चाहते हैं; एक-जन-एक व्यक्ति को; आइके–माता शचीदेवी को; कहिबे-सूचना देने के लिए; याइ-जाना; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; आगमन-वापसी।

अनुवाद

महाप्रभु के चारों भक्तों ने विचार किया, “हमें ऐसा एक व्यक्ति चाहिए, जो बंगाल जाकर शचीमाता को श्री चैतन्य महाप्रभु के जगन्नाथ पुरी आने की सूचना दे सके।”

अद्वैत-श्रीवासादि यत भक्तगण ।

सबेइ आसिबे शुनि’ प्रभुर आगमन ॥ 69॥

अद्वैत-अद्वैत प्रभु; श्रीवास-आदि-श्रीवास आदि सभी भक्त; यत-सब; भक्त-गण-भक्त; सबेइ-सभी; आसिबे-आयेंगे; शुनि’–सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; आगमन-वापसी।

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु के आगमन का समाचार सुनकर अद्वैत तथा श्रीवास जैसे भक्त उन्हें मिलने के लिए निश्चित रूप से आना चाहेंगे।”

एइ कृष्णदासे दिब गौड़े पाठाञा ।

एत कहि’ तारे राखिलेन आश्वासिया ॥ 70 ॥

एइ-इस; कृष्णदासे-काला कृष्णदास को; दिब-दूर; गौड़े-बंगाल; पाठाञा-हम भेज दें; एत कहि-यह कहकर; तारे-उसको; राखिलेन-उन्होंने रख लिया; आश्वासिया–आश्वासन देकर।

अनुवाद

यह कहकर कि, "कृष्णदास को हम बंगाल क्यों न भेज दें" उन सबने कृष्णदास को महाप्रभु की सेवा में लगाये रखा और उसे आश्वस्त किया।

तात्पर्य

चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने काला कृष्णदास को निकाल दिया था, इसलिए वह अत्यन्त खिन्न होकर रोने लगा था। अतएव महाप्रभु के भक्तों ने उस पर दया दिखलाइ, उसे आश्वासन दिया और महाप्रभु की सेवा करते रहने के लिए प्रेरित किया।

आर दिने प्रभु-स्थाने कैल निवेदन ।

आज्ञा देह' गौड़-देशे पाठाइ एक-जन ॥71॥

आर दिने-अगले दिन; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष; कैल-किया; निवेदन–निवेदन; आज्ञा देह'–कृपया आज्ञा दें; गौड़-देशे-बंगाल को; पाठाइ-हम भेज दें; एक-जन-एक व्यक्ति को।

अनुवाद

अगले दिन भक्तों ने श्री चैतन्य महाप्रभु से निवेदन किया, "कृपा करके एक व्यक्ति को बंगाल जाने की अनुमति प्रदान करें।"

तोमार दक्षिण-गमन शनि' शची 'आई' ।

अद्वैतादि भक्त सब आछे दुःख पाइ' ॥72॥

तोमार-आपकी; दक्षिण-गमन-दक्षिण भारत की यात्रा; शुनि'–सुनकर; शची आइ-माता शची; अद्वैत-आदि-श्री अद्वैत प्रभु तथा अन्य; भक्त-भक्त; सब-सब; आछे-रहते हैं; दुःख पाइ'-अत्यन्त दुःखी।

अनुवाद

माता शची तथा अद्वैत प्रभु आदि भक्तगण दक्षिण भारत भ्रमण से आपके पुनरागमन का समाचार न पाकर अत्यन्त दुःखी हैं।

एक-जन याइ' कहुक्शुभ समाचार ।

प्रभु कहे,—सेइ कर, ये इच्छा तोमार ॥73॥

एक-जन-एक व्यक्ति; याइ'–जाकर; कहुक्-सूचना दे; शुभ समाचार-यह शुभ समाचार; प्रभु कहे–महाप्रभु ने उत्तर दिया; सेइ कर-वही करो; ये–जो; इच्छा-इच्छा; तोमार-आपकी।

अनुवाद

"एक व्यक्ति बंगाल जाकर उन्हें जगन्नाथ पुरी में आपके पुनरागमन का शुभ समाचार दे आये।" यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आप लोग जो चाहें तय करें।"

तबे सेइ कृष्णदासे गौड़े पाठाइल ।

वैष्णव-सबाके दिते महा-प्रसाद दिल ॥74॥

तबे-तत्पश्चात्; सेइ-वह; कृष्णदासे-कृष्णदास; गौड़े-बंगाल को; पाठाइल-भेजा; वैष्णव-सबाके-सब वैष्णवों को; दिते-देने के लिए; महाप्रसाद-जगन्नाथ का महाप्रसाद; दिल-उन्होंने दिया।

अनुवाद

इस तरह काला कृष्णदास बंगाल भेज दिया गया और वहाँ बाँटे जाने के लिए उसे भगवान् जगन्नाथ का पर्याप्त प्रसाद दे दिया गया।

तबे गौड़-देशे आइला काला-कृष्णदास ।

नवद्वीपे गेल तेंह शची-आइ-पाश ॥75॥

तबे-तब; गौड़-देशे-बंगाल; आइला–आया; कालो-कृष्णदास-काला कृष्णदास; नवद्वीपे–नवद्वीप; गेल-गया; तेंह-वह; शची-आइ-पाश-माता शची के समक्ष।

अनुवाद

तब काला कृष्णदास बंगाल गया, जहाँ सर्वप्रथम वह माता शची को मिलने नवद्वीप पहुँचा।

महा-प्रसाद दिया ताँरे कैल नमस्कार ।

दक्षिण हैते आइला प्रभु,—कहे समाचार ॥ 76॥

महा-प्रसाद दिया–महाप्रसाद देकर; ताँरेशची माता को; कैल नमस्कार-झुककर प्रणाम किया; दक्षिण हैते–दक्षिण भारत की यात्रा से; आइला–लौट आये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहे समाचार-यह समाचार दिया।

अनुवाद

शची माता के पास पहुँचकर काला कृष्णदास ने प्रथम उन्हें नमस्कार किया और महाप्रसाद भेंट किया। फिर उसने यह शुभ समाचार दिया कि श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी दक्षिण भारत की यात्रा से लौट आये हैं।

शुनिया आनन्दित हैल शचीमातार मन ।

श्रीवासादि आर यत यत भक्त-गण ॥ 77॥

शुनिया-सुनकर; आनन्दित-अत्यन्त आनन्दित; हैल-हो गया; शची-मातार-शची माता का; मन-मन; श्रीवास-आदि-श्रीवास आदि; आर-तथा अन्य; यत यत-सभी; भक्त-गण-भक्तगण।

अनुवाद

इस शुभ समाचार से माता शची तथा श्रीवास ठाकुर इत्यादि नवद्वीप के सारे भक्तों को परम आनन्द हुआ।

शुनिया सबार हैल परम उल्लास ।

अद्वैत-आचार्य-गृहे गेला कृष्णदास ॥78 ॥

शुनिया-सुनकर; सबार-सबको; हैल-हो गया; परम-परम; उल्लास-आनन्द; अद्वैत-आचार्य-अद्वैत आचार्य प्रभु के; गृहे-घर में; गेला--गया; कृष्णदास-कृष्णदास।

अनुवाद

महाप्रभु की पुरी में वापसी सुनकर सभी लोग अत्यन्त हर्षित हुए। इसके बाद कृष्णदास अद्वैत आचार्य के घर गया।

आचार्येरे प्रसाद दिया करि' नमस्कार ।

सम्यक्कहिल महाप्रभुर समाचार ॥79॥

आचार्येर-श्री अद्वैत आचार्य को; प्रसाद-भगवान जगन्नाथ का प्रसाद; दिया-देकर; करि'-करके; नमस्कार–प्रणाम; सम्यक् पूर्णतया; कहिल–सूचना दी; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; समाचार-समाचार।

अनुवाद

नमस्कार करने के बाद कृष्णदास ने अद्वैत आचार्य को महाप्रसाद दिया। फिर उसने उनसे महाप्रभु का समाचार विस्तार में बतलाया।

शुनि' आचार्य-गोसाञि आनन्द हइल ।

प्रेमावेशे हुङ्कार बहु नृत्य-गीत कैल ॥80॥

शुनि'–सुनकर; आचार्य-अद्वैत आचार्य; गोसाञि-गुरु को; आनन्द हइल-आनन्द हुआ; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश; हुङ्कार-गर्जन; बहु-नाना प्रकार का; नृत्य-गीत-नृत्य तथा कीर्तन; कैल-किया।

अनुवाद

जब अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु के लौट आने का समाचार सुना, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रेमावेश में आकर हुँकार की और बहुत देर तक नृत्य और कीर्तन करते रहे।

हरिदास ठाकुरेर हैल परम आनन्द ।

वासुदेव दत्त, गुप्त मुरारि, सेन शिवानन्द ॥81॥

हरिदास ठाकुरेर-हरिदास ठाकुर को; हैल-हुआ; परम-अत्यन्त; आनन्द–आनन्द; वासुदेव दत्त–वासुदेव दत्त; गुप्त मुरारि-मुरारि गुप्त; सेन शिवानन्द-शिवानन्द सेन।

अनुवाद

यह शुभ समाचार पाकर हरिदास ठाकुर परम प्रसन्न हुए। इसी तरह वासुदेव दत्त, मुरारि गुप्त तथा शिवानन्द सेन भी प्रसन्न हुए।

आचार्यरत्न, आर पण्डित वक्रेश्वर ।

आचार्यनिधि, आर पण्डित गदाधर ॥82॥

आचार्यरत्न-आचार्यरत्न; आर-और; पण्डित वक्रेश्वर–वक्रेश्वर पण्डित; आचार्यनिधि-आचार्यनिधि; आर-एवं; पण्डित गदाधर-गदाधर पण्डित।

अनुवाद

इस शुभ समाचार से आचार्यरत्न, वक्रेश्वर पण्डित, आचार्यनिधि तथा गदाधर पण्डित सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए।

श्रीराम पण्डित आर पण्डित दामोदर ।

श्रीमान्पण्डित, आर विजय, श्रीधर ॥83 ॥

श्री-राम पण्डित-श्रीराम पण्डित; आर-तथा; पण्डित दामोदर-दामोदर पण्डित; श्रीमान् पण्डित-श्रीमान् पण्डित; आर-और; विजय-विजय; श्रीधर-श्रीधर।

अनुवाद

श्रीराम पण्डित, दामोदर पण्डित, श्रीमान पण्डित, विजय तथा श्रीधर भी इस समाचार को सुनकर परम प्रसन्न हुए।

राघव-पण्डित, आर आचार्य नन्दन ।

कतेक कहिब आर यत प्रभुर गण ॥ 84॥

राघव-पण्डित-राधव पण्डित; आर-और; आचार्य नन्दन-अद्वैत आचार्य के पुत्र; कतेक–कितने; कहिब-मैं वर्णन करूँ; आर-अन्य; यत-सब; प्रभुर गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के संगी।

अनुवाद

राघव पंडित, अद्वैत आचार्य का पुत्र तथा समस्त भक्तगण अत्यन्त प्रसन्न हुए। मैं कहाँ तक और भक्तों के नामों का वर्णन करूँ?

शुनिया सबार हैल परम उल्लास ।

सबे मेलि' गेला श्री-अद्वैतेर पाश ॥85 ॥

शुनिया-सुनकर; सबार–प्रत्येक को; हैल-हुआ; परम उल्लास-परम आनन्द; सबे मेलि'–सब मिलकर; गेला-गये; श्री-अद्वैतेर पाश-श्री अद्वैत आचार्य के घर।

अनुवाद

वे सभी अत्यन्त प्रसन्न थे, और सभी मिलकर अद्वैत आचार्य के घर आये।

आचार्येर सबे कैल चरण वन्दन ।

आचार्य-गोसाञि सबारे कैल आलिङ्गन ॥86॥

आचार्येर-अद्वैत आचार्य का; सबे-सब; कैल-किया; चरण वन्दन-चरण वन्दन; आचार्य-गोसाञि–अद्वैत आचार्य; सबारे-सबको; कैल–किया; आलिङ्गन गले लगाया।

अनुवाद

सारे भक्तों ने अद्वैत आचार्य के चरणकमलों पर नमस्कार किया, और अद्वैत आचार्य ने उन सबका आलिंगन किया।

दिन दुइ-तिन आचार्य महोत्सव कैल ।

नीलाचल याइते आचार्य मुक्ति दृढ़ कैल ॥ 87॥

दिन दुइ-तिन-दो तीन दिन के लिए; आचार्य-अद्वैत आचार्य; महोत्सव–महोत्सव; कैल–किया; नीलाचल-जगन्नाथ पुरी; याइते-जाने के लिए; आचार्य-अद्वैत आचार्य; युक्ति–निर्णय; दृढ़-दृढ़; कैल–किया।

अनुवाद

तब अद्वैत आचार्य ने एक उत्सव मनाया, जो दो-तीन दिनों तक चला। तत्पश्चात् उन सबने जगन्नाथ पुरी जाने का दृढ़ संकल्प किया।

सबे मेलि' नवद्वीपे एकत्र हञा ।

नीलाद्रि चलिल शचीमातार आज्ञा लञा ॥88 ॥

सबे-सब; मेलि'–मिलकर; नवद्वीपे-नवद्वीप में; एकत्र हञा–इकट्ठे होकर; नीलाद्रि-जगन्नाथ पुरी को; चलिल-प्रस्थान किया; शची-मातार-माता शची की; आज्ञा-आज्ञा; लञा–लेकर।

अनुवाद

सारे भक्त नवद्वीप में एकत्र हुए और शची माता की आज्ञा लेकर नीलाद्रि अर्थात् जगन्नाथ पुरी के लिए चल दिये।

प्रभुर समाचार शुनि' कुलीन-ग्राम-वासी ।

सत्यराज-रामानन्द मिलिला सबे आसि' ॥89॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; समाचार-समाचार; शुनि'–सुनकर; कुलीन-ग्राम-वासी-कुलीन ग्राम के निवासी; सत्यराज–सत्यराज; रामानन्द-रामानन्द; मिलिला-मिले; सबे-सब; आसि'-आकर।

अनुवाद

सत्यराज, रामानन्द तथा अन्य भक्त जो कुलीन ग्राम के निवासी थे, आकर अद्वैत आचार्य के साथ हो लिए।

मुकुन्द, नरहरि, रघुनन्दन खण्ड हैते ।

आचार्येर ठाञि आइला नीलाचल याइते ॥90॥

मुकुन्द-मुकुन्द; नरहरि नरहरि; रघुनन्दन-रघुनन्दन; खण्ड हैते–खण्ड नामक स्थान से; आचार्येर ठाञि-अद्वैत आचार्य के पास; आइला–आये; नीलाचल याइते-नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) जाने के लिए।

अनुवाद

मुकुन्द, नरहरि, रघुनन्दन तथा अन्य सब लोग खण्ड नामक स्थान से अद्वैत आचार्य के घर आये, जिससे वे उनके साथ जगन्नाथ पुरी जा सकें।

से-काले दक्षिण हैते परमानन्द-पुरी ।

गङ्गा-तीरे-तीरे आइला नदीया नगरी ॥91॥

से-काले-उस समय; दक्षिण हैते–दक्षिण से; परमानन्द-पुरी-परमानन्द पुरी; गङ्गा-तीरे-तीरे-गंगा के किनारे किनारे; आइला–आये; नदीया नगरी-नदिया नगर को।

अनुवाद

उसी समय परमानन्द पुरी दक्षिण भारत से आ गये। वे गंगा नदी के किनारे-किनारे यात्रा करते हुए अन्ततः नदिया नगरी पहुँचे।

आइर मन्दिर सुखे करिला विश्राम ।

आइ ताँरे भिक्षा दिला करिया सम्मान ॥92॥

आइर मन्दिरे-शचीमाता के घर पर; सुखे-सुखपूर्वक; करिला–लिया; विश्राम-विश्राम; आइ-माता शची; ताँरे–उनको; भिक्षा दिला–भोजन दिया; करिया सम्मान-सम्मानपूर्वक।

अनुवाद

नवद्वीप में परमानन्द पुरी ने शचीमाता के घर में ही अपना रहने और भोजन करने का स्थान बनाया। वे उन्हें हर वस्तु बड़े ही आदर के साथ देती थीं।

प्रभुर आगमन तेंह ताहाँञि शुनिल ।

शीघ्र नीलाचल याइते ताँर इच्छा हैल ॥93 ॥

प्रभुर आगमन-श्री चैतन्य महाप्रभु की वापसी; तेंह-उन्होंने; ताहाँञि-वहाँ; शुनिल-सुना; शीघ्र-शीघ्र; नीलाचल-जगन्नाथ पुरी को; याइते-जाने के लिए; ताँर-उनकी; इच्छा-इच्छा; हैल–हो गई।

अनुवाद

जब परमानन्द पुरी शचीमाता के घर पर रह रहे थे, तभी उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के जगन्नाथ पुरी लौटने का समाचार सुना। अतएव उन्होंने शीघ्रातिशीघ्र वहाँ जाने का निश्चय किया।

प्रभुर एक भक्त—'द्विज कमलाकान्त' नाम ।

ताँरे लञा नीलाचले करिला प्रयाण ॥ 94॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; एक भक्त–एक भक्त; द्विज कमलाकान्त-द्विज कमलाकान्त; नाम-नामक; ताँरे–उसको; लञा-अपना साथी स्वीकार करके; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी को; करिला–किया; प्रयाण-प्रस्थान।

अनुवाद

वहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु का एक भक्त था, जिसका नाम द्विज कमलाकान्त था, जिसे परमानन्द पुरी अपने साथ जगन्नाथ पुरी लेते गये।

सत्वरे आसिया तेंह मिलिला प्रभुरे ।

प्रभुर आनन्द हैल पाञा ताँहारे ॥ 95॥

सत्वरे-अति शीघ्र; आसिया-आकर; तेंह-वे; मिलिला–मिले; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु से; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; आनन्द–आनन्द; हैल–हुआ; पाञा-पाकर; ताँहारे-उनसे।

अनुवाद

परमानन्द पुरी शीघ्र ही श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर आ पहुँचे। महाप्रभु उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

प्रेमावेशे कैल ताँर चरण वन्दन ।

तेंह प्रेमावेशे कैल प्रभुरे आलिङ्गन ॥ 96॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; कैल-किया; ताँर-उनके; चरण वन्दन-चरण वन्दन; तेंह-परमानन्द पुरी; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; कैल–किया; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आलिङ्गन-गले लगाया।

अनुवाद

महाप्रभु ने अत्यन्त प्रेमावेश में परमानन्द पुरी के चरणकमलों की पूजा की और परमानन्द पुरी ने भी महाप्रभु का प्रेमावेश में आलिंगन किया।

प्रभु कहे,—तोमा-सङ्गे रहिते वाञ्छा हय ।

मोरे कृपा करि' कर नीलाद्रि आश्रय ॥ 97॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तोमा-सड़े-आपके साथ; रहिते-रहने के लिए; वाञ्छा हय–मेरी इच्छा है; मोरे-मुझ पर; कृपा करि'–कृपा करके; कर–स्वीकार करें; नीलाद्रि-जगन्नाथ पुरी में; आश्रय-आश्रय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "कृपया मेरे साथ रुकें और जगन्नाथ पुरी की शरण ग्रहण करके मेरे ऊपर कृपा करें।"

पुरी कहे,—तोमा-सङ्गे रहिते वाञ्छा करि' ।

गौड़ हैते चलि' आइलाङ नीलाचल-पुरी ॥98॥

पुरी कहे-परमानन्द पुरी ने उत्तर दिया; तोमा-सङ्गे-आपके साथ; रहिते-रहने के लिए; वाञ्छा करि'-इच्छा करके; गौड़ हैते-बंगाल से; चलि'–यात्रा करके; आइलाङ-मैं आया हूँ; नीलाचल-पुरी-जगन्नाथ पुरी में।

अनुवाद

परमानन्द पुरी ने कहा, "मैं भी आप के साथ रहना चाहता हूँ। इसीलिए मैं गौड़ देश (बंगाल) से जगन्नाथ पुरी आया हूँ।"

दक्षिण हैते शुनि' तोमार आगमन ।

शची आनन्दित, आर यत भक्त-गण ॥99॥

दक्षिण हैते–दक्षिण भारत से; शुनि'–सुनकर; तोमार आगमन-आपकी वापसी; शची–माता शची; आनन्दित-अत्यन्त आनन्दित; आर-और; यत-सब; भक्त-गण-भक्त।

अनुवाद

"नवद्वीप में माता शची तथा अन्य सारे भक्त दक्षिण भारत से आपका पुनरागमन सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुए।"

सबे आसितेछेन तोमारे देखिते ।

ताँ-सबार विलम्ब देखि' आइलाङ त्वरिते ॥100 ॥

सबे-सब; आसितेछेन-आ रहे हैं; तोमारे-आपको; देखिते-देखने के लिए; ताँ-सबार-उन सबकी; विलम्ब देरी; देखि'–देखकर; आइलाङ–मैं आया हूँ; त्वरिते-बहुत जल्दी।

अनुवाद

"वे सभी आपके दर्शन के लिए यहाँ आ रहे हैं। किन्तु जब मैंने देखा कि वे विलम्ब कर रहे हैं, तो मैं तुरन्त अकेले ही चला आया।"

काशी-मिश्रेर आवासे निभृते एक घर।

प्रभु ताँरे दिल, आर सेवार किङ्कर॥ 101॥

काशी-मिश्रेर–काशी मिश्र के; आवासे–घर पर; निभृते-एकान्त; एक-एक घर–कमरा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे-परमानन्द पुरी को; दिल-दिया; आर-और; सेवार–उनकी सेवा के लिए; किङ्कर-एक सेवक।

अनुवाद

काशी मिश्र के घर में एक एकान्त कमरा था, जिसे श्री चैतन्य महाप्रभु ने परमानन्द पुरी को दे दिया। उन्होंने एक सेवक भी दिया।

आर दिने आइला स्वरूप दामोदर।

प्रभुर अत्यन्त मर्मी, रसेर सागर॥ 102॥

आर दिने-अगले दिन; आइला-आये; स्वरूप दामोदर-स्वरूप दामोदर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; अत्यन्त-बहुत; मर्मी–प्रगाढ़ मित्र; रसेर-दिव्य रसों का; सागर-सागर।

अनुवाद

अगले दिन स्वरूप दामोदर भी आ गये। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के घनिष्ठ मित्र थे और दिव्य रसों के सागर थे।

तात्पर्य

शंकराचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा में ब्रह्मचारी के नामों में एक नाम "स्वरूप" रहता है। वैदिक परम्परा में संन्यासियों के दस नाम होते हैं और यह प्रथा है कि जो ब्रह्मचारी तीर्थ या आश्रम पदवी वाले संन्यासी का सहायक होता है, उसे स्वरूप की पदवी प्राप्त होती है। दामोदर स्वरूप पहले नवद्वीप में रहते थे और उनका नाम पुरुषोत्तम आचार्य था। जब वे वाराणसी गये, तब उन्होंने तीर्थ पदवीधारी संन्यासी से संन्यास ग्रहण किया। यद्यपि उन्हें ब्रह्मचारी अवस्था में स्वरूप की पदवी मिली थी, किन्तु जब उन्होंने संन्यास लिया तब भी उन्होंने अपना नाम नहीं बदला। वास्तव में संन्यासी होने पर उन्हें तीर्थ कहा जाना चाहिए था, किन्तु उन्होंने अपना पहला ब्रह्मचारी नाम स्वरूप नहीं बदला।

'पुरुषोत्तम आचार्य' ताँर नाम पूर्वाश्रमे ।

नवद्वीपे छिला तेंह प्रभुर चरणे ॥ 103॥

पुरुषोत्तम आचार्य–पुरुषोत्तम आचार्य; ताँर उनका; नाम-नाम; पूर्व-आश्रमे-पिछले आश्रम में; नवद्वीपे-नवद्वीप में; छिला-थे; तेंह-वे; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे-चरणों में।

अनुवाद

जब स्वरूप दामोदर श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण में नवद्वीप में निवास कर रहे थे, तब उनका नाम पुरुषोत्तम आचार्य था।

प्रभुर सन्न्यास देखि' उन्मत्त हञा ।

सन्न्यास ग्रहण कैल वाराणसी गिया ॥ 104॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; सन्न्यास देखि'–संन्यास देखने पर; उन्मत्त हञा-उन्मत्त होकर; सन्न्यास ग्रहण कैल-उन्होंने भी संन्यास ग्रहण कर लिया; वाराणसी-वाराणसी; गिया-जाकर।

अनुवाद

जब उन्होंने देखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण कर लिया है, तो पुरुषोत्तम आचार्य उन्मत्त हो उठे और संन्यास ग्रहण करने तुरन्त वाराणसी गये।

'चैतन्यानन्द' गुरु ताँर आज्ञा दिलेन ताँरे ।

वेदान्त पड़िया पड़ाओ समस्त लोकेरे ॥105॥

चैतन्य-आनन्द–चैतन्यानन्द भारती के नाम के; गुरु-गुरु ने; ताँर–उनको; आज्ञा-आज्ञा; दिलेन-दी; ताँरे–उनको; वेदान्त पड़िया-वेदान्त-सूत्र पढ़कर; पड़ाओ-पढ़ाओ; समस्त-सब; लोकेरे लोगों को।

अनुवाद

संन्यास के अन्त में उनके गुरु चैतन्यानन्द भारती ने उन्हें आदेश दिया, "वेदान्त-सूत्र पढ़ो और अन्यों को इसकी शिक्षा दो।"

परम विरक्त तेंह परम पण्डित ।

काय-मने आश्रियाछे श्री-कृष्ण-चरित ॥106॥

परम-परम; विरक्त-विरक्त; तेंह-वे; परम-परम; पण्डित–पण्डित, विद्वान; काय-मने–तन तथा मन से; आश्रियाछे-आश्रय लिया; श्री-कृष्ण-चरित-श्रीकृष्ण के चरित्र का।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर परम विरक्त तथा महान् पण्डित थे। उन्होंने आत्मा तथा मन से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण की।

'निश्चिन्ते कृष्ण भजिब' एइ त' कारणे ।

उन्मादे करिल तेंह सन्न्यास ग्रहणे ॥107॥

निश्चिन्ते–निश्चिन्त; कृष्ण-भगवान् कृष्ण की; भजिब-मैं पूजा करूँगा; एइ–इसके लिए; त'–निश्चित रूप से; कारणे-कारण; उन्मादे-उन्माद में; करिल–किया; तेंह-उन्होंने; सन्न्यास-संन्यास; ग्रहणे-ग्रहण।

अनुवाद

वे बिना किसी उपद्रव के श्रीकृष्ण की पूजा करने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहते थे, इसीलिए प्रायः उन्मादावस्था में उन्होंने संन्यास स्वीकार कर लिया।

सन्न्यास करिला शिखा-सूत्र-त्याग-रूप ।

योग-पट्ट ना निल, नाम हैल 'स्वरूप' ॥ 108॥

सन्न्यास करिला-संन्यास ग्रहण किया; शिखा-बालों की शिखा; सूत्र-जनेऊ, यज्ञोपवीत; त्याग-त्यागकर; रूप–के रूप में; योग-पट्ट-गेरुए रंग की वेशभूषा; ना निल-स्वीकार नहीं किया; नाम-नाम; हैल-था; स्वरूप-स्वरूप।

अनुवाद

संन्यास ग्रहण करने के बाद पुरुषोत्तम आचार्य ने नियमानुसार अपनी चोटी तथा जनेऊ तो त्याग दिये, किन्तु उन्होंने गेरुवा वस्त्र नहीं स्वीकार किया। उन्होंने संन्यासी पदवी भी नहीं स्वीकार की, अपितु नैष्ठिक ब्रह्मचारी बने रहे।

तात्पर्य

संन्यास आश्रम के विधि-विधान होते हैं। मनुष्य को आठ प्रकार के श्राद्ध करने पड़ते हैं। उसे अपने पुरखों का तर्पण करना पड़ता है और विरजा-होम यज्ञ करना होता है। फिर उसे शिखा कटानी पड़ती है और जनेऊ भी त्याग देना पड़ता है। संन्यास ग्रहण करने के ये प्रारम्भिक कृत्य हैं। स्वरूप दामोदर ने इन सबको स्वीकार कर लिया। किन्तु पुरुषोत्तम आचार्य ने गेरुवा वस्त्र, संन्यासी नाम या दण्ड स्वीकार नहीं किया। इसलिए वे अपना ब्रह्मचारी नाम ही रखे रहे। वास्तव में पुरुषोत्तम आचार्य ने विधिवत् संन्यास नहीं लिया, अपितु उन्होंने सांसारिक जीवन से विरक्ति ले ली थी। वे संन्यास आश्रम की औपचारिकता से अपनी शान्ति भंग नहीं करना चाहते थे। वे शान्त भाव से श्रीकृष्ण की पूजा करना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने मन और आत्मा से संन्यास ग्रहण कर लिया, किन्तु उसके दिखावे में नहीं पड़े। विरक्ति का अर्थ ही है कुछ न करके एकमात्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की सेवा करना। जब कोई व्यक्ति इस पद पर भगवान् को प्रसन्न करने का प्रयास करता है, तो वह संन्यासी तथा योगी दोनों होता है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (6.1) में की गई है :

श्रीभगवान् उवाच

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः ॥

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने कहा, 'जो अपने कर्मफल से विरक्त है और जो नियत कर्म करता है, वह संन्यासी है और वास्तविक योगी है; न कि वह जो न तो अग्नि जलाता है और न कोई कर्म करता है।"

‘गुरु-ठाञि आज्ञा मागि’ आइला नीलाचले ।

रात्रि-दिने कृष्ण-प्रेम-आनन्द-विह्वले ॥109॥

गुरु-ठाञि-अपने गुरु से; आज्ञा मागि’-आज्ञा माँगकर; आइला-आ गये; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी; रात्रि-दिने–दिन रात; कृष्ण-प्रेम-आनन्द–कृष्ण-प्रेम के आनन्द में; विह्वले विह्वल होकर।

अनुवाद

अपने संन्यास-गुरु से आज्ञा लेकर स्वरूप दामोदर नीलाचल गये और वहाँ उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण ग्रहण की। फिर वे अहर्निश कृष्ण के प्रेम में आनन्दविह्वल होकर भगवान् की प्रेममयी सेवा में दिव्य रस का आस्वादन करने लगे।

पाण्डित्येर अवधि, वाक्य नाहि कारो सने ।

निर्जने रहये, लोक सब नाहि जाने ॥110॥

पाण्डित्येर अवधि–ज्ञान की पराकाष्ठा; वाक्य नाहि-शब्द नहीं; कारो सने-किसी से; निर्जने-किसी एकान्त स्थान में; रहये-रहने लगे; लोक-सामान्य लोग; सब-सब; नाहि जाने-नहीं जान सके।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर पाण्डित्य की पराकाष्ठा थे, किन्तु वे किसी से एक शब्द भी नहीं बोलते थे। वे निर्जन स्थान में रहते थे और कोई यह नहीं जान सका कि वे कहाँ थे।

कृष्ण-रस-तत्त्व-वेत्ता, देह—प्रेम-रूप ।

साक्षात्महाप्रभुर द्वितीय स्वरूप ॥ 111॥

कृष्ण-रस-कृष्ण सम्बन्धी दिव्य रस; तत्त्व-तत्त्व के; वेत्ता-जानकार; देह-शरीर; प्रेम-रूप-प्रेम का रूप; साक्षात्-साक्षात्; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; द्वितीय-दूसरा; स्वरूप-रूपः।

अनुवाद

श्री स्वरूप दामोदर साक्षात् प्रेमस्वरूप थे और कृष्ण-रस के ज्ञान को पूर्णतया जानने वाले थे। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के द्वितीय विस्तार के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि-रूप थे।

ग्रन्थ, श्लोक, गीत केह प्रभु-पाशे आने ।

स्वरूप परीक्षा कैले, पाछे प्रभु शुने ॥112॥

ग्रन्थ-शास्त्र; श्लोक-श्लोक; गीत-गीत; केह-कोई भी प्रभु-पाशे-श्री चैतन्य महाप्रभु के पास; आने-लाता है; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; परीक्षा कैले–परीक्षा करने के बाद; पाछे-बाद में; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभुः शुने-सुनते।

अनुवाद

यदि कोई पुस्तक लिखता, श्लोक तथा गीत बनाता और उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष सुनाना चाहता, तो सर्वप्रथम स्वरूप दामोदर उनकी परीक्षा करते और फिर शुद्ध रूप में उसे महाप्रभु के सामने रखते। केवल तभी श्री चैतन्य महाप्रभु सुनने के लिए राजी होते।

भक्ति-सिद्धान्त-विरुद्ध, आर रसाभास ।

शुनिते ना हय प्रभुर चित्तेर उल्लास ॥113॥

भक्ति-सिद्धान्त-भक्ति के निष्कर्ष (सिद्धान्त); विरुद्ध-विरुद्ध; आर-और; रस-आभास-दिव्य रसों का अतिक्रमण; शुनिते-सुनने से; ना-नहीं; हय–होता; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; चित्तेर--हृदय में; उल्लास-आनन्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कभी-भी भक्ति के सिद्धान्तों के विरुद्ध पुस्तकें या श्लोक नहीं सुनना चाहते थे। वे रसाभास अर्थात् दिव्य रसों का अतिक्रमण भी नहीं सुनना चाहते थे।

तात्पर्य

भक्तिसिद्धान्त-विरुद्ध उस सिद्धान्त का निर्देश करता है, जो विविधता में एकता के सिद्धान्त का विरुद्ध हो और यह सिद्धान्त अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्व अर्थात् एक साथ ऐक्य एवं भिन्नता के रूप में जाना जाता है, जबकि रसाभास वह है, जो कुछ दिव्य सर जैसा प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं है। शुद्ध वैष्णवों को भक्ति-विरुद्ध की इन

दोनों बातों से बचना चाहिए। ये गलत धारणाएँ मायावाद दर्शन के समानान्तर चलती हैं। जो कोई मायावाद दर्शन में लगा रहता है, वह धीरे-धीरे भक्ति-पद से नीचे गिर जाता है। रसों के अतिक्रमण (रसाभास) द्वारा मनुष्य अन्ततोगत्वा प्राकृत सहजिया बन जाता है और हर बात को सस्ती मानने लगता है। वह बाउल सम्प्रदाय का सदस्य भी बन सकता है, और क्रमशः भौतिक कार्यकलापों के प्रति आकृष्ट हो सकता है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्तिसिद्धान्त-विरुद्ध तथा रसाभास से बचने की सलाह दी है। इस तरह भक्त शुद्ध बना रह सकता है और पतन से बच सकता है। हर एक प्राणी को भक्ति-सिद्धान्त-विरुद्ध तथा रसाभास से दूर रहने की चेष्टा करनी चाहिए।

अतएव स्वरूप आगे करे परीक्षण ।

शुद्ध हय यदि, प्रभुरे करा'न श्रवण ॥114॥

अतएव–अतएव; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; आगे-पहले; करे-करते; परीक्षण-परीक्षा; शुद्ध-शुद्ध; हय-हो; यदि-यदि; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; करा'न-कराते; श्रवण-श्रवण।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी सारे साहित्य का परीक्षण यह जानने के लिए करते थे कि उनके निष्कर्ष सही हैं या नहीं। केवल तभी वे उसे श्री चैतन्य महाप्रभु को सुनाये जाने की अनुमति देते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि यदि कोई वस्तु से भक्ति सम्पन्न करने में बाधा आती हो, तो उसे अशुद्ध समझनी चाहिए। भगवान् के शुद्ध भक्त अशुद्ध सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करते। अशुद्ध भक्त ही रसाभास तथा भक्ति-मार्ग के विरुद्ध अन्य सिद्धान्तों को मानते हैं। ऐसे अशुद्ध सिद्धन्तों के अनुयायी कभी-भी शुद्ध भक्त नहीं माने जाते। रसाभास मार्ग का अनुसरण करने वाले अनेक दल हैं, जिनके अनुयायी कभी-कभी सामान्य व्यक्तियों द्वारा पूज्य माने जाते हैं। जो लोग रसाभास तथा भक्तिसिद्धान्त-विरुद्ध सिद्धान्तों को ग्रहण करते हैं, उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त कभी नहीं माने जा सकते। स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कभी-भी ऐसे अनुयायियों को गौड़ीय वैष्णव की मान्यता नहीं प्रदान की, न ही उन्हें कभी परम भगवान्, श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने तक दिया।

विद्यापति, चण्डीदास, श्री-गीत-गोविन्द ।

एइ तिन गीते करा'न प्रभुर आनन्द ॥115॥

विद्यापति–मिथिला प्रान्त के प्राचीन वैष्णव कवि; चण्डीदास–बीरभूम जिले के नान्नुर गाँव में जन्मे बंगाली वैष्णव कवि चण्डीदास; श्री-गीत-गोविन्द-जयदेव गोस्वामी का एक प्रसिद्ध काव्य, गीत गोविन्द; एइ-ये; तिन–तीन; गीते-गीत; करा'न–देते; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; आनन्द-आनन्द।

अनुवाद

श्री स्वरूप दामोदर विद्यापति तथा चण्डीदास के गीत तथा जयदेव गोस्वामी कृत श्री गीत गोविन्द पढ़ा करते थे। वे इन गीतों को गाकर श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त आनन्दित किया करते थे।

सङ्गीते—गन्धर्व-सम, शास्त्रे बृहस्पति ।

दामोदर-सम आर नाहिं महा-मति ॥116॥

सङ्गीते-संगीत में; गन्धर्व-सम-गन्धर्वों के समान; शास्त्रे-प्रामाणिक शास्त्रों में; बृहस्पति-(देवताओं के पुरोहित) बृहस्पति के समान; दामोदर-सम-स्वरूप दामोदर के समान; आर-कोई अन्य; नाहि-नहीं; महा-मति–महान् व्यक्ति।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गन्धर्वों के तुल्य दक्ष गायक थे और शास्त्र चर्चा में वे देवताओं के पुरोहित बृहस्पति के समान थे। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वरूप दामोदर जैसा कोई अन्य महापुरुष नहीं था।

तात्पर्य

स्वरूप दामोदर गोस्वामी संगीत तथा वैदिक शास्त्रों में अत्यन्त निपुण थे। श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें उनके पटु गायन तथा संगीत-निपुणता के कारण दामोदर कहा करते थे। यह दामोदरनाम श्री चैतन्य महाप्रभु का दिया हुआ था, जिसे उन्होंने अपने संन्यास-गुरु द्वारा दिये गये नाम के साथ जोड़ लिया था। इसीलिए वे स्वरूप दामोदर या दामोदर स्वरूप कहलाते थे। उन्होंने संगीत दामोदर नामक संगीत ग्रंथ की रचना की।

अद्वैत-नित्यानन्देर परम प्रियतम ।

श्रीवासादि भक्त-गणेर हय प्राण-सम ॥117॥

अद्वैत-अद्वैत आचार्य के; नित्यानन्देर-नित्यानन्द प्रभु के; परम-अत्यन्त; प्रिय-तम–प्रिय; श्रीवास-आदि-श्रीवास आदि; भक्त-गणेर-भक्तों के; हय-हैं; प्राण-सम-प्राणों के समान।

अनुवाद

श्री स्वरूप दामोदर अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु को परम प्रिय थे, और वे श्रीवास ठाकुर आदि सभी भक्तजनों के प्राणों के तुल्य थे।

सेइ दामोदर आसि' दण्डवत् हैला ।

चरणे पड़िया श्लोक पड़िते लागिला ॥118॥

सेइ दामोदर-वे स्वरूप दामोदर; आसि-आकर; दण्ड-वत् हैला-दण्डवत् प्रणाम करने के लिए गिर गये; चरणे पड़िया-चरणकमलों पर गिरकर; श्लोक-एक श्लोक; पड़िते लागिला-पढ़ने लगे।

अनुवाद

वही स्वरूप दामोदर जगन्नाथ पुरी आकर श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और नमस्कार करने के बाद उन्होंने एक श्लोक सुनाया।

हेलोद्धूनित-खेदया विशदया प्रोन्मीलदामोदया

शाम्यच्छास्त्र-विवादया रस-दया चित्तार्पितोन्मादया ।

शश्वद्भक्ति-विनोदया स-मदया माधुर्य-मर्यादया

श्री-चैतन्य दयानिधे तव दया भूयादमन्दोदया ॥ 119॥

हेला-बहुत आसानी से; उद्धूनित-दूर कर देती है; खेदया–शोक; विशदया-जो प्रत्येक वस्तु को शुद्ध कर देता है; प्रोन्मीलत्-जागृत करके; आमोदया-दिव्य आनन्द; शाम्यत्-नष्ट करके; शास्त्र-प्रामाणिक शास्त्रों का; विवादया–विवाद; रस-दया-सभी दिव्य रसों को प्रदान करके; चित्त-हृदय में; अर्पित-स्थिर; उन्मादया-आनन्द; शश्वत्-सदैव; भक्ति-भक्ति; विनोदया–उत्तेजित करने वाली; स-मदया-भावपूर्ण; माधुर्य-प्रेम रस के; मर्यादया-सीमा; श्री-चैतन्य हे श्री चैतन्य महाप्रभु; दया-निधे-दया के सागर; तव-आपकी; दया-दया; भूयात् हो; अमन्द-सौभाग्य का; उदया जिसमें उदय हो।

अनुवाद

"हे कृपा के सागर श्री चैतन्य महाप्रभु! आपकी शुभ कृपा जाग्रत हो, जो सभी प्रकार के भौतिक दुःखों को आसानी से भगाने वाली है। आपकी कृपा से हर वस्तु शुद्ध तथा आनन्दमय बन जाती है। निस्सन्देह, आपकी कृपा दिव्य आनन्द को जगाती है और भौतिक सुख को आच्छादित कर देती है। आपकी शुभ कृपा से विभिन्न शास्त्रों के मतभेद विनष्ट हो जाते हैं। आपकी शुभ कृपा दिव्य रसों को उंडेलती है, जिससे हृदय आनन्द-मग्न हो जाता है। आपकी हर्ष से युक्त कृपा सदैव भक्ति को उद्दीप्त करती है और माधुर्य प्रेम को महिमान्वित करती है। आपकी अहैतुकी कृपा मेरे हृदय में दिव्य आनन्द को जाग्रत करे।"

तात्पर्य

यह महत्त्वपूर्ण श्लोक श्री चैतन्य-चन्द्रोदय-नाटक (8.10) का है, जिसमें महाप्रभु की अहैतुकी कृपा का वर्णन किया गया है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि सर्वादिक वदान्य पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु बद्धजीव को तीन प्रकार से अपनी अहैतुकी कृपा वितरित करते हैं। भौतिक जगत् में हर प्राणी इसलिए खिन्न रहता है, क्योंकि उसे अभाव सदैव सताता रहता है। वह अपने अस्तित्व को टिकाये रखने के लिए महान् संघर्ष करता है और इस जगत् से अधिकाधिक आनन्द निचोड़कर अपनी कष्टप्रद स्थिति को न्यूनतम बनाने का प्रयास करता है। किन्तु जीव को अपने इस प्रयास में कभी भी सफलता प्राप्त नहीं होती। कभी-कभी कष्टमय स्थिति में रहते हुए वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा की आकांक्षा करता है, जो भौतिकतावादी लोगों को मिलना अत्यन्त कठिन है। जब मनुष्य भगवान् की कृपा से कृष्णभावनाभावित हो जाता है, तब भगवान् के चरणकमलों की सुगन्ध का विस्तार होता है और इस तरह भौतिकतावादी व्यक्ति को उसके कष्ट से छुटकारा मिल जाता है। वस्तुतः भगवान् के चरणकमलों से दिव्य सम्बन्ध होने से उसका मन निर्मल हो जाता है। ऐसे अवसर पर उसे भगवान् की प्रेमाभक्ति का प्रकाश प्राप्त होता है।

शास्त्र अनेक प्रकार के हैं और उन्हें पढ़ने से मनुष्य कभी-कभी उलझन में पड़ जाता है। किन्तु जब मनुष्य को भगवान् की कृपा प्राप्त हो जाती है, तब उसका संशय दूर हो जाता है। न केवल शास्त्र सम्बन्धी भेदभाव दूर हो जाता है, अपितु एक प्रकार का दिव्य आनन्द उत्पन्न होता है। इस तरह मनुष्य पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाता है। भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति बद्धजीव को भगवान् के चरणकमलों की सेवा में निरन्तर लगाये रखती है। ऐसी भाग्यशाली लगन से कृष्ण के प्रति दिव्य प्रेम बढ़ जाता है। इस तरह मनुष्य की स्थिति निर्मल हो जाती है और दिव्य आनन्द के साथ ही उसका आत्मा हर्ष से पूरित हो जाता है।

इस तरह भक्त के हृदय में भगवान् कृष्ण की अहैतुकी कृपा व्यक्त होती है। ऐसी दशा में भौतिक आवश्यकताएँ मिट जाती हैं। भौतिक इच्छाओं के साथ सदैव रहने वाला क्लेश भी मिट जाता है। भगवान् की कृपा से वह दिव्य पद तक ऊपर उठ जाता है और तब उसमें वैकुण्ठ लोक के दिव्य रस प्रकट होते हैं। तब मनुष्य की भक्ति दृढ़ होती है और वह दृढ़ संकल्प के साथ भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगता है। ये सब मिलकर भक्त के हृदय में कृष्ण-प्रेम को जाग्रत करते हैं।

प्रारम्भ में बद्धजीव कृष्णभावना से विहीन होता है और भौतिक कार्यकलापों से सदैव खिन्न रहता है। बाद में शुद्ध भक्तों की संगति से वह परम सत्य को जानने के लिए उत्सुक हो उठता है। इस तरह वह भगवान् की दिव्य सेवा करने लगता है। फिर भगवान् की कृपा से सारी भ्रान्तियाँ दूर हो जाती हैं और हृदय सारे भौतिक मल से निर्मल हो जाता है। तभी दिव्य आनन्द जागृत होता है। भगवान् की कृपा से ही मनुष्य भक्ति के महत्त्व को पूरी तरह समझ जाता है। जब मनुष्य भगवान् की लीलाओं को सर्वत्र देखता है, तो उसे दिव्य आनन्द की स्थाई रूप से प्राप्ति होती है। ऐसे भक्त की सारी भौतिक इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और वह संसार-भर में भगवान् की महिमा का प्रचार करता है। ये कृष्णभावनाभावित कर्म उसे भौतिक कर्मों तथा मुक्ति की इच्छा से विलग करते हैं, क्योंकि पग-पग पर भक्त अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सम्बन्धित अनुभव करता है। ऐसा भक्त कभी-कभी गृहस्थ जीवन में ही क्यों न फँसा हो, भक्ति में लगे रहने के कारण वह भौतिक जगत् से अछूता रहता है। अतएव सुखी तथा मुक्त बनने के लिए हर एक को सलाह दी जाती है कि वह भक्ति की शरण ले।

उठाञा महाप्रभु कैल आलिङ्गन ।

दुइ-जने प्रेमावेशे हैल अचेतन ॥ 120॥

उठाञा उन्हें उठाकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैल–किया; आलिङ्गन-गले लगाया; दुइ-जने-दोनों व्यक्ति; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; हैल-हो गये; अचेतन-अचेत।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर को उनके पैरों पर खड़ा कर उनका आलिगंन किया। वे दोनों ही प्रेमावेश में अचेत हो गये।

कत-क्षणे दुइ जने स्थिर यबे हैला ।

तबे महाप्रभु तारे कहिते लागिला ॥ 121॥

कत-क्षणे-कुछ समय के बाद; दुइ जने-दोनों व्यक्ति; स्थिर–शान्त; यबे-जब; हैला-हो गये; तबे-तब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे–उनको; कहिते-कहने; लागिला-लगे।

अनुवाद

जब दोनों ने धैर्य-धारण किया, तो श्री चैतन्य महाप्रभु कहने लगे।

तुमि ये आसिबे, आजि स्वप्नेते देखिल ।

भाल हैल, अन्ध येन दुइ नेत्र पाइल ॥ 122॥

तुमि-तुम; ये-कि; आसिबे-आओगे; आजि-आज; स्वप्नेते-स्वप्न में; देखिल-मैंने देखा; भाल हैल-यह बहुत अच्छा है; अन्ध-एक अन्धे आदमी को; येन-जैसे; दुइ-दो; नेत्र-आँखें; पाइल-वापस मिल गई हों।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैंने सपने में देखा कि तुम आ रहे हो, अतएव यह अत्यन्त शुभ है। मैं तो अंधे व्यक्ति के समान था, किन्तु तुम्हारे आने से मुझे फिर से दृष्टि मिल गई है।"

स्वरूप कहे,—प्रभु, मोर क्षम' अपराध ।

तोमा छाड़ि' अन्यत्र गेनु, करिनु प्रमाद ॥123॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहा; प्रभु-मेरे प्रभु; मोर–मेरा; क्षम'–क्षमा करें; अपराध-अपराध; तोमा-आपको; छाड़ि'–छोड़कर; अन्यत्र-कहीं ओर; गेनु-मैं चला गया; करिनु-मैंने की है; प्रमाद-बड़ी गलती।

अनुवाद

स्वरूप ने कहा, "हे प्रभु, कृपया आप मेरा अपराध क्षमा करें। मैंने अन्यत्र जाने के लिए आपका संग छोड़ दिया था, और यही मेरी सबसे बड़ी भूल थी।"

तोमार चरणे मोर नाहि प्रेम-लेश ।

तोमा छाड़ि' पापी मुञि गेनु अन्य देश ॥ 124॥

तोमार चरणे-आपके चरणकमलों में; मोर-मेरा; नाहि-नहीं है; प्रेम-लेश-जरा सा भी प्रेम; तोमा-आपको; छाड़ि'–छोड़कर; पापी-पापी; मुञि-मैं; गेनु-चला गया; अन्य देश-दूसरे देश को।

अनुवाद

"हे प्रभु, आपके चरणकमलों के प्रति मेरा रंचमात्र भी प्रेम नहीं है। यदि ऐसा होता, तो मैं दूसरे देश क्यों जाता? अतएव मैं सबसे बड़ा पापी व्यक्ति हूँ।"

मुञि तोमा छाड़िल, तुमि मोरे ना छाड़िला ।

कृपा-पाश गले बान्धि' चरणे आनिला ॥125॥

मुञि-मैंने; तोमा-आपको; छाड़िल–छोड़ दिया; तुमि-आपने; मोरे-मुझे; ना-नहीं; छाड़िला–छोड़ा; कृपा-कृपा की; पाश-रस्सी; गले-गले से; बान्धि'–बाँधकर; चरणे-अपने चरणकमलों पर; आनिला-आप वापस ले आये।

अनुवाद

"मैंने तो आपका साथ छोड़ दिया, किन्तु आपने मुझे नहीं छोड़ा। आपने अपनी कृपारूपी रस्सी से मेरे गले को बाँधकर पुनः मुझे अपने चरणकमलों पर वापस ला दिया है।"

तबे स्वरूप कैल निताइर चरण वन्दन ।

नित्यानन्द-प्रभु कैल प्रेम-आलिङ्गन ॥ 126॥

तबे-तत्पश्चात्; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; कैल–किया; निताइर–नित्यानन्द प्रभु के; चरण-चरणकमल की; वन्दन-पूजा; नित्यानन्द-प्रभु-नित्यानन्द प्रभु ने; कैल-किया; प्रेम-आलिङ्गन-प्रेम से आलिंगन।

अनुवाद

तब स्वरूप दामोदर ने नित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों की वन्दना की और नित्यानन्द प्रभु ने प्रेमवश उनका आलिंगन किया।

जगदानन्द, मुकुन्द, शङ्कर, सार्वभौम ।

सबा-सङ्गे यथा-योग्य करिल मिलन ॥127॥

जगदानन्द-जगदानन्द; मुकुन्द-मुकुन्द; शङ्कर–शंकर; सार्वभौम सार्वभौम; सबा-सङ्गे-सबके साथ; यथा-योग्य-उचित प्रकार से; करिल–किया; मिलन-मेल।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु की वन्दना करने के बाद स्वरूप दामोदर जगदानन्द, मुकुन्द, शंकर तथा सार्वभौम से यथायोग्य रीति से मिले।

परमानन्द पुरीर कैल चरण वन्दन ।

पुरी-गोसाञि ताँरे कैल प्रेम-आलिङ्गन ॥128॥

परमानन्द पुरीर-परमानन्द पुरी का; कैल-उन्होंने की; चरण वन्दन–चरण वन्दना; पुरी-गोसाञि-परमानन्द पुरी ; ताँरे–उनको; कैल-किया; प्रेम-आलिङ्गन-प्रेम से आलिंगन।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने परमानन्द पुरी के चरणकमलों की भी वन्दना की और परमानन्द पुरी ने उलटकर प्रेमवश उनका आलिंगन किया।

महाप्रभु दिल ताँरे निभृते वासा-घर ।

जलादि-परिचर्या लागि' दिल एक किङ्कर ॥ 129॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; दिल-दिया; ताँरे–उनको; निभृते-एक एकान्त स्थान में; वासा-घर-रहने के लिए स्थान; जल-आदि-जलपूर्ति आदि; परिचर्या-सेवा; लागि'–के लिए; दिल-दिया; एक-एक; किङ्कर-सेवक।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर को एक एकान्त निवासस्थान दे दिया और एक सेवक से कहा कि वह उन्हें पानी तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ देता रहे।

आर दिन सार्वभौम-आदि भक्त-सङ्गे ।

वसिया आछेन महाप्रभु कृष्ण-कथा-रङ्गे ॥130॥

आर दिन-अगले दिन; सार्वभौम-आदि-सार्वभौम भट्टाचार्य आदि; भक्त-सङ्गे-भक्तों के साथ; वसिया आछेन-बैठे थे; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभुः कृष्ण-कथा-रङ्गे-कृष्ण कथाओं की चर्चा में व्यस्त।

अनुवाद

अगले दिन श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य इत्यादि भक्तों के साथ बैठकर कृष्ण-लीलाओं की चर्चाएँ करते रहे।

हेन-काले गोविन्देर हैल आगमन ।

दण्डवत्करि' कहे विनय-वचन ॥ 131॥

हेन-काले-उस समय; गोविन्देर–गोविन्द का; हैल–हुआ; आगमन-आगमन; दण्डवत् करि'–दण्डवत् प्रणाम करके; कहे-कहा; विनय-वचन-विनयपूर्वक।

अनुवाद

उसी समय गोविन्द वहाँ आ गये। उन्होंने प्रणाम करने के बाद विनीत होकर इस प्रकार कहा।

ईश्वर-पुरीर भृत्य,—'गोविन्द' मोर नाम ।

पुरी-गोसाञिर आज्ञाय आइनु तोमार स्थान ॥132॥

ईश्वर-पुरीर भृत्य-ईश्वर पुरी का सेवक; गोविन्द मोर नाम-मेरा नाम गोविन्द है; पुरी-गोसाञिर-ईश्वर पुरी की; आज्ञाय-आज्ञा से; आइनु-मैं आया हूँ; तोमार-आपके; स्थान-स्थान पर।

अनुवाद

"मैं ईश्वर पुरी का सेवक हूँ। मेरा नाम गोविन्द है। मैं अपने गुरु की आज्ञा का पालन करके यहाँ आया हूँ।"

सिद्ध-प्राप्ति-काले गोसाञि आज्ञा कैल मोरे ।

कृष्ण-चैतन्य-निकटे रहि सेविह ताँहारे ॥133॥

सिद्धि-प्राप्ति-काले-जीवन की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करने के लिए इस नश्वर जगत् से प्रस्थान के समय; गोसाञि—मेरे गुरु ने; आज्ञा–आज्ञा; कैल-दी थी; मोरे-मुझे; कृष्ण-चैतन्य-निकटे-श्रीकृष्ण चैतन्य के पास; रहि-रहकर; सेविह–सेवा करो; ताँहारे-उनकी।

अनुवाद

"सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करने के लिए इस मर्त्यलोक से विदा होने के पूर्व ईश्वर पुरी ने मुझसे कहा कि मुझे श्री चैतन्य महाप्रभु के पास जाना चाहिए और उनकी सेवा करनी चाहिए।"

काशीश्वर आसिबेन सब तीर्थ देखिया ।

प्रभु-आज्ञाय मुञि आइनु तोमा-पदे धाञा ॥ 134॥

काशीश्वर-काशीश्वर; आसिबेन-आयेगा; सब-सब; तीर्थ-तीर्थस्थानों के; देखिया-दर्शन करके; प्रभु-आज्ञाय-मेरे गुरु की आज्ञा से; मुञि-मैं; आइनु–आया हूँ; तोमा-आपके; पदे-चरणकमलों पर; धाञा-भागा भागा।

अनुवाद

"काशीश्वर भी सारे तीर्थों का भ्रमण करने के बाद यहाँ आयेगा। किन्तु मैं तो अपने गुरु की आज्ञानुसार आपके चरणकमलों पर उपस्थित होने के लिए शीघ्र चला आया।"

गोसाञि कहिल, 'पुरीश्वर' वात्सल्य करे मोरे ।

कृपा करि' मोर ठाञि पाठाइला तोमारे ॥ 135॥

गोसाञि कहिल-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; पुरीश्वर–ईश्वर पुरी; वात्सल्य-पिता का स्नेह; करे-करते हैं; मोरे-मुझ पर; कृपा करि'–कृपा करके; मोर ठाञि-मेरे पास; पाठाइला–भेजा; तोमारे-तुम्हें।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मेरे गुरु ईश्वर पुरी मुझ पर सदैव पिता जैसा स्नेह करते थे। इसीलिए उन्होंने अपनी अहैतुकी कृपावश तुम्हें यहाँ भेजा है।"

एत शुनि' सार्वभौम प्रभुरे पुछिल ।

पुरी-गोसाञि शूद्र-सेवक काँहे त' राखिल ॥136॥

एत शुनि'-यह सुनकर; सार्वभौम-सावभौम भट्टाचार्य; प्रभुरे–महाप्रभु को; पुछिल–पूछा; पुरी-गोसाञि-ईश्वर पुरी; शूद्र-सेवक-शूद्र सेवक; काँहे त'-क्यों; राखिल-रखा।

अनुवाद

यह सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से पूछा, "ईश्वर पुरी ने शूद्र को सेवक के रूप में क्यों रखा?"

तात्पर्य

काशीश्वर तथा गोविन्द दोनों ही ईश्वर पुरी के सेवक थे। ईश्वर पुरी के तिरोधान के बाद काशीश्वर भारत के समस्त तीर्थों का भ्रमण करने चला गया, किन्तु गोविन्द अपने गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिए तुरन्त ही श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण में चला आया। यद्यपि गोविन्द शूद्र कुल में जन्मा था, किन्तु ईश्वर पुरी ने उसे दीक्षा दी थी, इसलिए वह निश्चित रूप से ब्राह्मण बन चुका था। यहाँ पर सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से पूछा कि ईश्वर पुरी ने शूद्र परिवार का शिष्य क्यों बनाया। स्मृति-शास्त्र के अनुसार, जो वर्णाश्रम संस्थाओं की व्यवस्था के प्रति आदेश देता है, ब्राह्मण निम्न जातियों से शिष्य नहीं बना सकता। दूसरे शब्दों में, एक क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र को सेवक नहीं बनाया जा सकता। यदि गुरु ऐसे व्यक्ति को स्वीकार करता है, तो वह दूषित हो जाता है। इसलिए सार्वभौम भट्टाचार्य ने पूछा कि ईश्वर पुरी ने शूद्र जाति का सेवक या शिष्य क्यों स्वीकार किया।

इस प्रश्न के उत्तर में श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया कि उनके गुरु ईश्वर पुरी इतने शक्ति-सम्पन्न थे कि वे भगवान् जैसे थे। इस तरह ईश्वर पुरी समस्त जगत् के गुरु थे। वे सांसारिक शासन या नियमों से बद्ध नहीं थे। ईश्वर पुरी जैसा शक्ति-सम्पन्न गुरु जाति-पाँति का विचार किये बिना किसी को भी अपनी कृपा प्रदान कर सकता है। निष्कर्ष यह है कि शक्ति-संचारित गुरु कृष्ण तथा अपने स्वयं के गुरु द्वारा अधिकृत होता है और इसलिए उसे भगवान् जैसा ही अच्छा समझा जाना चाहिए। विश्वनाथ चक्रवर्ती का यही मत है- साक्षात्-धरित्वेन। अधिकृत गुरु हरि अर्थात् भगवान् के तुल्य है। जैसे हरि इच्छानुसार कार्य कर सकते हैं, वैसे शक्ति-संचारित गुरु भी स्वतन्त्र होता है। जिस तरह हरि सांसारिक नियमों से बद्ध नहीं होते, उसी प्रकार हरि द्वारा शक्ति से आवेशित गुरु भी बद्ध नहीं होता। चैतन्य-चरितामृत (अन्त्य लीला 7.11) के अनुसार-कृष्णशक्ति विना नहे तार प्रवर्तन । कृष्ण द्वारा शक्ति से आवेशित गुरु भगवान् के नाम की महिमा का प्रसार कर

सकता है, क्योंकि उसे भगवान् से अधिकार मिला होता है। लौकिक जगत् में अपने गुरु से अधिकार प्राप्त व्यक्ति अपने गुरु की ओर से कार्य कर सकता है। इसी प्रकार अपने गुरु के माध्यम से कृष्ण द्वारा शक्ति प्राप्त गुरु को साक्षात् भगवान् के तुल्य मानना चाहिए। साक्षात् धरित्वेन का यही अर्थ है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् तथा प्रामाणिक गुरु के कार्यों का वर्णन इस प्रकार करते हैं।

प्रभु कहे,—ईश्वर हय परम स्वतन्त्र ।

ईश्वरेर कृपा नहे वेद-परतन्त्र ॥137॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; ईश्वर-परम भगवान् या ईश्वर पुरी; हय-हैं; परम–पूर्णतः; स्वतन्त्र-स्वतंत्र; ईश्वरेर–परम भगवान् या ईश्वरपुरी की; कृपा-कृपा; नहे-नहीं है; वेद-परतन्त्र–वैदिक विधि विधान के अन्तर्गत।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "भगवान् तथा मेरे गुरु ईश्वर पुरी दोनों ही पूर्ण स्वतन्त्र हैं। अतएव भगवान् तथा ईश्वर पुरी दोनों की कृपा किसी वैदिक नियम के अधीन नहीं है।"

ईश्वरेर कृपा जाति-कुलादि ना माने ।

विदुरेर घरे कृष्ण करिला भोजने ॥138॥

ईश्वरेर कृपा-प्रभु की कृपा; जाति–जाति; कुल-आदि-वंश आदि; ना माने–नहीं मानती; विदुरेर–विदुर के; घरे–घर पर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; करिला–किया; भोजने–भोजन।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा जाति-पाँति के बन्धन से सीमित नहीं रहती। यद्यपि विदुर शूद्र थे, किन्तु कृष्ण ने उनके घर भोजन किया।

स्नेह-लेशापेक्षा मात्र श्रीकृष्ण-कृपार ।

स्नेह-वश हञा करे स्वतन्त्र आचार ॥ 139॥

स्नेह-स्नेह की; लेश-लेशमात्र; अपेक्षा-अपेक्षा; मात्र मात्र; श्री-कृष्ण-भगवान् श्रीकृष्ण की; कृपार-कृपा का; स्नेह-वश-स्नेह वश; हञा-होकर; करे-करते हैं; स्वतन्त्र-स्वतंत्र; आचार-व्यवहार।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण की कृपा एकमात्र स्नेह पर निर्भर है। केवल स्नेह के वशीभूत होकर कृष्ण स्वतन्त्र रूप से आचरण करते हैं।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण कृपालु हैं, किन्तु उनकी कृपा संसारी नियमों के अधीन नहीं है। वे तो केवल स्नेह के अधीन हैं, अन्य किसी के नहीं। भगवान् कृष्ण की सेवा दो प्रकार से की जा सकती है-स्नेह से या आदर (सम्मान) से। जब सेवा स्नेह से की जाती है, तब यह भगवान् की विशेष कृपा होती है। जब सेवा आदरवश की जाती है, तब सन्देह रहता है कि कृष्ण की कृपा निहित है अथवा नहीं। यदि कृष्ण की कृपा निहित रहती है, तो यह किसी जाति-पाँति पर निर्भर नहीं रहती। श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य को बताना चाह रहे थे कि भगवान् कृष्ण हर एक के गुरु हैं, और वे सांसारिक जाति-पाँति की परवाह नहीं करते। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने विदुर के घर कृष्ण द्वारा भोजन करने का दृष्टान्त रखा, जो जन्म से शूद्र थे। उसी तरह ईश्वर पुरी, शक्त्याविष्ट गुरु होने के नाते किसी पर भी कृपा कर सकते थे। इसीलिए उन्होंने गोविन्द को अपना सेवक बनाया, यद्यपि वह शूद्र कुल में जन्मा था। जब गोविन्द को दीक्षा दे दी गई, तो वह ब्राह्मण बन गया और तब ईश्वर पुरी ने उसे अपना निजी सेवक बना लिया। हरिभक्ति-विलास में श्री सनातन गोस्वामी कहते हैं कि यदि प्रामाणिक गुरु किसी को दीक्षा दे दे, तो वह तुरन्त ब्राह्मण बन जाता है। छद्म गुरु किसी व्यक्ति को ब्राह्मण नहीं बना सकता, जबकि प्रामाणिक गुरु ऐसा कर सकता है। यह शास्त्र का, श्री चैतन्य महाप्रभु का तथा समस्त गोस्वामियों का निर्णय है।

मर्यादा हैते कोटि सुख स्नेह-आचरणे ।

परमानन्द हय यार नाम-श्रवणे ॥ 140॥

मर्यादा हैते–मर्यादा से अधिक; कोटि-करोड़ों गुना; सुख-सुख; स्नेह-स्नेहपूर्वक; आचरणे-व्यवहार में; परम-आनन्द-परमानन्द; हय-है; यार–जिसका; नाम-पावन नाम; श्रवणे-सुनने से।

अनुवाद

"फलस्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ स्नेह-आचरण मर्यादा-आचरण की अपेक्षा लाखों गुना सुख प्रदान करने वाला है। भक्त भगवान् का पवित्र नाम सुनकर ही दिव्य आनन्द में मग्न हो जाता है।"

एत बलि' गोविन्देरे कैल आलिङ्गन ।

गोविन्द करिल प्रभुर चरण वन्दन ॥141॥

एत बलि'-यह कहकर; गोविन्देरे-गोविन्द को; कैल-किया; आलिङ्गन-आलिंगन; गोविन्द-गोविन्द; करिल–किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; चरण वन्दन-चरण वन्दना।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोविन्द का आलिंगन किया और गोविन्द ने भी महाप्रभु के चरणकमलों की वन्दना की।

प्रभु कहे,—भट्टाचार्य, करह विचार ।

गुरुर किङ्कर हय मान्य से आमार ॥ 142 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; भट्टाचार्य–मेरे प्रिय भट्टाचार्य; करह विचार-जरा विचार करो; गुरुर किङ्कर-गुरु का सेवक; हय होता है; मान्य-पूज्य; से-वह; आमार-मेरे लिए।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य से आगे कहा, "आप इस पर विचार करें। गुरु का सेवक मेरे लिए सदैव आदरणीय है।"

ताँहारे आपन-सेवा कराइते ना युयाय ।

गुरु आज्ञा दियाछेन, कि करि उपाय ॥ 143॥

ताँहारे-उससे; आपन-सेवा-अपनी सेवा; कराइते-कराना; ना मुयाय-उचित नहीं है; गुरु-गुरु; आज्ञा-आज्ञा; दियाछेन-दी है; कि-क्या; करि-मैं कर सकता हूँ; उपाय-उपाय।

अनुवाद

“अतएव यह उचित नहीं होगा कि गुरु का सेवक मेरी निजी सेवा करे। फिर भी मेरे गुरु ने यह आदेश दिया है। तो मैं क्या करूँ?”

तात्पर्य

गुरु के सेवक या शिष्य किसी एक-दूसरे के गुरु-भाई होते हैं; अत: उन्हें एक-दूसरे का आदर प्रभु अर्थात् स्वामी के रूप में करना चाहिए। किसी को गुरु-भाई का अनादर नहीं करना चाहिए। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य से पूछा कि गोविन्द के बारे में क्या किया जाए। गोविन्द श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु ईश्वर पुरी का निजी सेवक था और अब ईश्वर पुरी ने गोविन्द को आज्ञा दी थी कि वह चैतन्य महाप्रभु का निजी सेवक बने अतः प्रश्न था कि ऐसी स्थिति में क्या किया जाए? इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु अपने अनुभवी मित्र सार्वभौम भट्टाचार्य से पूछ रहे थे।

भट्ट कहे,—गुरुर आज्ञा हय बलवान् ।

गुरु-आज्ञा ना लङ्गिये, शास्त्र—प्रमाण ॥ 144॥

भट्ट कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; गुरुर आज्ञा-गुरु की आज्ञा; हय-है; बलवान् बलवती; गुरु-आज्ञा-गुरु की आज्ञा का; ना-नहीं; लङ्घिये-उल्लंघन हो सकता; शास्त्र-शास्त्रीय; प्रमाण-आदेश।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, “गुरु का आदेश अत्यन्त बलवान होता है और उसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। यही प्रामाणिक शास्त्रों का आदेश है।”

स शुश्रुवान्मातरि भार्गवेण

पितुर्नियोगात्प्रहृतं द्विषद्वत् ।

प्रत्यगृहीदग्रज-शासनं तद्

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया ॥145॥

सः-वे (लक्ष्मण, भगवान् रामचन्द्र के भाई); शुश्रुवान्–सुनकर; मातरि-माता को; भार्गवेण–परशुराम; पितुः-पिता की; नियोगात्-आज्ञा से; प्रहृतम्-हत्या करना; द्विषत्-वत्-शत्रु की भाँति; प्रत्यगृहीत्-मान लिया; अग्रज-शासनम्-बड़े

भाई का आदेश; तत्-वह; आज्ञा-आदेश; गुरूणाम्-गुरूओं का (बुजुर्गों का), जैसे गुरु अथवा पिता का; हि-क्योंकि; अविचारणीया-बिना सोचे समझे पालनीय।

अनुवाद

"अपने पिता की आज्ञा पाकर परशुराम ने अपनी माता रेणुका को मार डाला, मानो वह कोई शत्रु रही हो। भगवान् रामचन्द्र के छोटे भाई लक्ष्मण यह सुनकर तुरन्त अपने बड़े भाई की सेवा में लगकर उनके आदेशों का पालन करने लगे। गुरु की आज्ञा का बिना किसी विचार के पालन किया जाना चाहिए।"

तात्पर्य

यह श्लोक रघुवंश (14.46) का है। आगे के श्लोक में सीता के प्रति भगवान् रामचन्द्र के वचन हैं, जो रामायण (अयोध्या-काण्ड 22.9) से लिये गये हैं।

निर्विचारं गुरोराज्ञा मया कार्या महात्मनः ।

श्रेयो ह्येवं भवत्याश्च मम चैव विशेषतः ॥ 146 ॥

निर्विचारम्-बिना विचारों के पालनीय; गुरोः-गुरु की; आज्ञा-आज्ञा; मया-मुझे; कार्या-करना चाहिए; महा-आत्मनः-महात्मा का श्रेयः-सौभाग्य; हि-निस्सन्देह; एवम्-इस प्रकार; भवत्याः -आपके लिए; च-और; मम–मेरे लिए; च-भी; एव-अवश्य; विशेषतः-विशेषकर।

अनुवाद

"पिता जैसे महान् व्यक्ति की आज्ञा का पालन बिना विचार करना चाहिए, क्योंकि ऐसी आज्ञा हम दोनों का सौभाग्य है। विशेषतया मेरे लिए सौभाग्य है।"

तबे महाप्रभु ताँरे कैल अङ्गीकार ।

आपन-श्री-अङ्ग-सेवाय दिल अधिकार ॥147॥

तबे-इसके बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे–गोविन्द को; कैल–किया; अङ्गीकार–स्वीकार; आपन-अपने; श्री-अङ्ग-दिव्य शरीर की; सेवाय-सेवा में; दिल-दी; अधिकार–जिम्मेदारी।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के ऐसा कहने पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोविन्द का आलिंगन किया और उसे अपने शरीर की सेवा करने के लिए लगा लिया।

प्रभुर प्रिय भृत्य करि' सबे करे मान ।

सकल वैष्णवेर गोविन्द करे समाधान ॥ 148॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; प्रिय-प्रिय; भृत्य-सेवक; करि'-समझकर; सबे-सबने; करे-किया; मान-सम्मान; सकल-सब; वैष्णवेर-भक्तों की; गोविन्द-गोविन्द ने; करे-की; समाधान–सेवा।

अनुवाद

सभी व्यक्ति गोविन्द को श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रियतम दास समझकर उसका सम्मान करते थे और गोविन्द सारे वैष्णवों की सेवा करता था तथा उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखता था।

छोट-बड़-कीर्तनीया—दुइ हरिदास ।

रामाइ, नन्दाइ रहे गोविन्देर पाश ॥149॥ ।

छोट-बड़-छोटा तथा बड़ा; कीर्तनीया–कीर्तन गायक; दुइ-दो; हरिदास–हरिदास; रामाइ-रामाइ; नन्दाइ–नन्दाइ; रहे-रहने लगे; गोविन्देर पाश-गोविन्द के साथ।

अनुवाद

बड़ा हरिदास तथा छोटा हरिदास, दोनों जो गायक (कीर्तनिये) थे तथा रामाइ और नन्दाइ भी गोविन्द के साथ रहते थे।

गोविन्देर सङ्गे करे प्रभुर सेवन ।

गोविन्देर भाग्य-सीमा ना याय वर्णन ॥ 150॥

गोविन्देर सङ्गे–गोविन्द के साथ; करे-करते; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; सेवन-सेवा; गोविन्देर-गोविन्द के; भाग्य-सीमा-सौभाग्य की सीमा; ना-नहीं; याय वर्णन-वर्णन की जा सकती।

अनुवाद

वे सभी श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा करने के लिए गोविन्द के साथ रहते थे। अतः कोई भी गोविन्द के सौभाग्य का अनुमान नहीं लगा सकता था।

आर दिने मुकुन्द-दत्त कहे प्रभुर स्थाने ।

ब्रह्मानन्द-भारती आइला तोमार दरशने ॥ 151॥

आर दिने-अगले दिन; मुकुन्द-दत्त-मुकुन्द दन्त ने; कहे-कहा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; स्थाने–निवासस्थान पर; ब्रह्मानन्द-भारती–ब्रह्मानन्द भारती; आइला-आये हैं; तोमार दरशने-आपका दर्शन करने।

अनुवाद

अगले दिन मुकुन्द दत्त ने श्री चैतन्य महाप्रभु को सूचना दी, "आपके दर्शन हेतु ब्रह्मानन्द भारती आये हैं।"

आज्ञा देह' यदि ताँरे आनिये एथाइ ।

प्रभु कहे,—गुरु तेंह, याब ताँर ठाञि ॥152॥

आज्ञा देह'–आज्ञा दो; यदि यदि; ताँरे–उनको; आनिये-मैं ला सकता हूँ; एथाइ-यहाँ; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; गुरु तेंह-वे मेरे गुरु हैं; याब-मैं जाऊँगा; ताँर ठाञि-उनके पास।

अनुवाद

फिर मुकुन्द दत्त ने महाप्रभु से पूछा, "क्या मैं उन्हें यहाँ ले आऊँ?" तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "ब्रह्मानन्द भारती मेरे गुरुतुल्य हैं। अच्छा यही होगा कि मैं उनके पास जाऊँ।"

एत बलि' महाप्रभु भक्त-गण-सङ्गे ।

चलि' आइला ब्रह्मानन्द-भारतीर आगे ॥ 153 ॥

एत बलि'—यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भक्त-गण-सङ्गे-भक्तों के साथ; चलि'-चलकर; आइला-आये; ब्रह्मानन्द-भारतीर-ब्रह्मानन्द भारती; आगे-के समक्ष।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तगण ब्रह्मानन्द भारती के समक्ष आये।

ब्रह्मानन्द परियाछे मृग-चर्माम्बर ।

ताहा देखि' प्रभु दुःख पाइला अन्तर ॥ 154॥

ब्रह्मानन्द–ब्रह्मानन्द; परियाछे-पहने थे; मृग-चर्म-अम्बर–मृगचर्म की पोशाक; ताहा देखि'–उसे देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; दुःख–दुःख; पाइला–अनुभव किया; अन्तरे-अपने मन में।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्त उनके निकट पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि वे मृगचर्म पहने थे। यह देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त दुःखी हुए।

तात्पर्य

ब्रह्मानन्द भारती शंकर सम्प्रदाय के थे। (भारती उपाधि शंकर सम्प्रदाय में दस प्रकार के संन्यासियों की उपाधियों में से एक है।) संसार से विरक्त होने वाले व्यक्ति के लिए यह प्रथा बनी हुई है कि वह अपने शरीर को मृगचर्म या वृक्ष की छाल से ढके। ऐसा मनु-संहिता का आदेश है। किन्तु यदि संसार से विरक्त संन्यासी केवल मृगचर्म पहनता है और आध्यात्मिक प्रगति नहीं करता, तो वह मिथ्या सम्मान से भ्रमित होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु को ब्रह्मानन्द भारती द्वारा मृगचर्म पहनना अच्छा नहीं लगा।

देखिया त छद्म कैल येन देखे नाञि ।

मुकुन्देरे पुछे,—काहाँ भारती-गोसाञि ॥155॥

देखिया-देखकर; त'–अवश्य; छद्म कैल–अभिनय किया; येन-जैसे; देखे-देखा; नाञि-न हो; मुकुन्देरे पुछे-मुकुन्द से पूछा; काहाँ–कहाँ हैं; भारती-गोसाञि-ब्रह्मानन्द भारती, मेरे आध्यात्मिक गुरु।

अनुवाद

ब्रह्मानन्द भारती को मृगचर्म के वेश में देखकर चैतन्य महाप्रभु ने ऐसा बहाना बनाया मानों वे उन्हें नहीं देख रहे हैं। इसके विपरीत उन्होंने मुकुन्द दत्त से कहा, "मेरे गुरु ब्रह्मानन्द भारती कहाँ हैं?"

मुकुन्द कहे,—एइ आगे देख विद्यमान ।

प्रभु कहे,—तेंह नहेन, तुमि अगेयान ॥ 156 ॥

मुकुन्द कहे-मुकुन्द ने कहा; एइ आगे–यहाँ सामने; देख-देखो; विद्यमान-उपस्थित; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; तेंह नहेन–वे नहीं हैं; तुमि अगेयान-तुम गलत हो।

अनुवाद

मुकुन्द दत्त ने उत्तर दिया, "ये ब्रह्मानन्द भारती आपके समक्ष हैं।" महाप्रभु ने कहा, "तुम गलत कह रहे हो। ये ब्रह्मानन्द भारती नहीं हैं।"

अन्येरे अन्य कह, नाहि तोमार ज्ञान ।

भारती-गोसाञि केने परिबेन चाम ॥ 157॥

अन्येरे-किसी को; अन्य कह–आप कोई और कह रहे हो; नाहि-नहीं है; तोमार-तुम्हें; ज्ञान-ज्ञान; भारती–ब्रह्मानन्द भारती; गोसाञि-मेरे गुरु; केने-क्यों; परिबेन-पहनेंगे; चाम-चर्म।

अनुवाद

"तुम किसी दूसरे की बात कर रहे होगे, क्योंकि निश्चित रूप से ये ब्रह्मानन्द भारती नहीं हैं। तुम्हें कोई ज्ञान नहीं है। भला ब्रह्मानन्द भारती क्यों मृगचर्म पहनने लगे?"

शुनि' ब्रह्मानन्द करे हृदये विचारे ।

मोर चर्माम्बर एइ ना भाय इँहारे ॥ 158॥

शुनि'–सुनकर; ब्रह्मानन्द–ब्रह्मानन्द ने; करे-किया; हृदये-अपने भीतर; विचारे-विचार; मोर-मेरी; चर्म-अम्बर–चर्म की पोशाक; एइ-यह; ना-नहीं; भाय-अच्छी नहीं लगती; इँहारे-श्री चैतन्य महाप्रभु को।

अनुवाद

जब ब्रह्मानन्द भारती ने यह सुना तो उन्होंने सोचा, "मेरा मृगचर्म श्री चैतन्य महाप्रभु को अच्छा नहीं लग रहा है।"

भाल कहेन,—चर्माम्बर दम्भ लागि' परि ।

चर्माम्बर-परिधाने संसार ना तरि ॥159॥

भाल-अच्छा; कहेन-उन्होंने कहा; चर्म-अम्बर-चमड़े की पोशाक; दम्भ-अभिमान; लागि'–के कारण; परि-मैं पहनता हूँ; चर्म-अम्बर-परिधाने-चर्म की पोशाक पहनकर; संसार-संसार को; ना तरि-मैं पार नहीं कर सकता।

अनुवाद

इस तरह अपनी त्रुटि स्वीकार करते हुए ब्रह्मानन्द भारती ने सोचा, "उन्होंने ठीक ही कहा है। मैं इस मृगचर्म को केवल प्रतिष्ठा के लिए ही धारण करता हूँ। मैं केवल मृगचर्म पहनकर अज्ञान के सागर को पार नहीं कर सकता।"

आजि हैते ना परिब एइ चर्माम्बर ।

प्रभु बहिर्वास आनाइला जानिया अन्तर ॥160॥

आजि हैते–आज से; ना परिब–मैं नहीं पहनूंगा; एइ–यह; चर्म-अम्बर–चमड़े की पोशाक; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; बहिर्वास-संन्यासी के वस्त्र; आनाइला-किसी से मंगवाए; जानिया-जानकर; अन्तर-उसके मन का विचार।

अनुवाद

"आज से मैं यह मृगचर्म धारण नहीं करूँगा।" जैसे ही ब्रह्मानन्द भारती ने यह निश्चय किया, वैसे ही श्री चैतन्य महाप्रभु उनके मन की बात जान गये और उन्होंने तुरन्त ही संन्यासी के वस्त्र मँगा भेजे।

चर्माम्बर छाड़ि' ब्रह्मानन्द परिल वसन ।

प्रभु आसि' कैल ताँर चरण वन्दन ॥ 161॥

चर्म-अम्बर छाड़ि-चमड़े की पोशाक छोड़कर; ब्रह्मानन्द–ब्रह्मानन्द भारती; परिल-पहने; वसन-वस्त्र; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; आसि'-आकर; कैल-किया; ताँर–उनकी; चरण वन्दन–चरण वन्दना।

अनुवाद

ज्योंही ब्रह्मानन्द भारती ने अपना मृगचर्म त्याग दिया और संन्यासी के वस्त्र पहन लिए, त्योंही श्री चैतन्य महाप्रभु ने आकर उनके चरणकमलों में नमस्कार किया।

भारती कहे,—तोमार आचार लोक शिखाइते ।

पुनः ना करिबे नति, भय पाङ चित्ते ॥ 162॥

भारती कहे-ब्रह्मानन्द भारती ने कहा; तोमार-आपका; आचार-आचरण; लोक-सामान्य लोगों को; शिखाइते-शिक्षा देने के लिए; पुनः-दोबारा; ना-नहीं; करिबे-करूँगा; नति-नमस्कार; भय-भय; पाङ–मैं पाता हूँ; चित्ते-मन में।

अनुवाद

ब्रह्मानन्द भारती ने कहा, "आप अपने आचरण के द्वारा सामान्य जनता को शिक्षा देते हैं। मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं करूँगा, अन्यथा आप मुझे नमस्कार भी नहीं करेंगे और मेरी उपेक्षा करोगे। मुझे इसी का डर है।"

साम्प्रतिक 'दुई ब्रह्म' इहाँ 'चलाचल' ।

जगन्नाथ—अचल ब्रह्म, तुमि त' सचल ॥163 ॥

साम्प्रतिक-अभी; दुइ ब्रह्म-दो ब्रह्म अथवा आध्यात्मिक व्यक्ति; इहाँ–यहाँ; चल-अचल-चल और अचल; जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ; अचल ब्रह्म-अचल ब्रह्म; तुमि-आप; त'-तो; स-चल-संचल ब्रह्म।

अनुवाद

"इस समय मुझे दो ब्रह्म दिख रहे हैं—एक ब्रह्म हैं भगवान् जगन्नाथ जो गतिमान नहीं हैं और दूसरे ब्रह्म आप हैं, जो सचल हैं। भगवान् जगन्नाथ पूज्य अर्चाविग्रह हैं और वे अचल ब्रह्म हैं। किन्तु आप तो श्री चैतन्य महाप्रभु हैं और आप यहाँ-वहाँ चलते-फिरते रहते हैं। आप दोनों एक ही ब्रह्म अर्थात् भौतिक प्रकृति के स्वामी हैं, किन्तु आप दो भूमिकाएँ निभा रहे हैं-एक सचल की और दूसरी अचल की। इस तरह जगन्नाथ पुरी या पुरुषोत्तम में अब दो ब्रह्म निवास कर रहे हैं।"

तुमि—गौर-वर्ण, तेंह—श्यामल-वर्ण ।

दुइ ब्रह्मे कैल सब जगत्तारण ॥ 164॥

तुमि-आप; गौर-वर्ण-गौरवर्ण; तेंह-वे; श्यामल-वर्ण-श्याम वर्ण के; दुइ ब्रह्म-दोनों ब्रह्मों ने; कैल–किया; सब जगत्-सारे जगत् का; तारण-उद्धार।

अनुवाद

"दोनों ब्रह्मों में से आप गोरे रंग के हो और दूसरे ब्रह्म भगवान् जगन्नाथ साँवले हैं। किन्तु आप दोनों ही सारे जगत् का उद्धार कर रहे हैं।"

प्रभु कहे,—सत्य कहि, तोमार आगमने ।

दुइ ब्रह्म प्रकटिल श्री-पुरुषोत्तमे ॥ 165 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने वहा; सत्य कहि-मैं सत्य कहता हूँ; तोमार आगमने-आपकी उपस्थिति से; दुइ ब्रह्म-दोनों ब्रह्म; प्रकटिल-प्रकट हुए हैं; श्री-पुरुषोत्तमे-जगन्नाथ पुरी में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "वास्तव में, सच्ची बात तो यह है। कि आपकी उपस्थिति से जगन्नाथ पुरी में अब दो ब्रह्म हैं।"

'ब्रह्मानन्द' नाम तुमि—गौर-ब्रह्म 'चल' ।

श्याम-वर्ण जगन्नाथ वसियाछेन 'अचल' ॥ 166 ॥

ब्रह्मानन्द–ब्रह्मानन्द; नाम तुमि-आपका नाम; गौर-ब्रह्म-गौर नामक ब्रह्म; चल-चलायमान हैं; श्याम-वर्ण-श्याम वर्ण के; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ; वसियाछेन-बैठे हैं; अचल-अचल।

अनुवाद

"ब्रह्मानन्द तथा गौरहरि-दोनों ही सचल हैं, किन्तु श्याम-वर्ण वाले जगन्नाथ दृढ़ता से बैठे हैं और अचल हैं।"

तात्पर्य

ब्रह्मानन्द भारती यह सिद्ध करना चाहते थे कि भगवान् तथा जीव में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु यह सिद्ध करना चाहते थे कि वे तथा ब्रह्मानन्द भारती दोनों ही जीव हैं और यद्यपि सारे जीव ब्रह्म हैं, किन्तु वे संख्या में अनेक हैं, जबकि भगवान् परम ब्रह्म एक हैं। दूसरी ओर ब्रह्मानन्द भारती यह भी सिद्ध करना चाहते थे कि जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु एक ही भगवान् हैं, किन्तु अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु संचल प्रतीत होते हैं, जबकि जगन्नाथ अचल हैं। किन्तु दोनों एक ही हैं। इस तरह बहुत ही रोचक तर्क चल रहा था। तब ब्रह्मानन्द भारती ने अन्तिम निर्णय के लिए इस मामले को सार्वभौम भट्टाचार्य को सौंप दिया।

भारती कहे,—सार्वभौम, मध्यस्थ हञा ।

इँहार सने आमार 'न्याय' बुझ' मन दिया ॥ 167॥

भारती कहे-ब्रह्मानन्द भारती ने कहा; सार्वभौम-हे सार्वभौम भट्टाचार्य; मध्य-स्थ हञा-मध्यस्थ होकर; इँहार सने-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; आमार-मेरे; न्याय-तर्क; बुझ-समझने का प्रयास करो; मन दिया-ध्यानपूर्वक।

अनुवाद

ब्रह्मानन्द भारती ने कहा, "हे सार्वभौम भट्टाचार्य, आप मेरे तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच इस तर्क में मध्यस्थ बनो।"

'व्याप्य' 'व्यापक'-भावे 'जीव'-'ब्रह्म' जानि ।

जीव—व्याप्य, ब्रह्म—व्यापक, शास्त्रेते वाखानि ॥ 168॥

व्याप्य–स्थानीय; व्यापक-सब जगह उपस्थित; भावे-इस भाव में; जीव-जीव; ब्रह्मे-परम भगवान्; जानि–मैं जानता हूँ; जीव-जीव; व्याप्य-स्थानीय; ब्रह्म-परम भगवान्; व्यापक-सब जगह उपस्थित ; शास्त्रेते शास्त्रों में; वाखानि-वर्णन।

अनुवाद

ब्रह्मानन्द भारती ने कहा, "जीव स्थानीय है, जबकि परम ब्रह्म सर्वव्यापक है। यह शास्त्रों का निर्णय है।

तात्पर्य

ब्रह्मानन्द भारती ने सार्वभौम भट्टाचार्य का ध्यान इसीलिए आकृष्ट किया, क्योंकि वे उनसे तर्क का निर्णय कराना चाहते थे। तब उन्होंने कहा कि परब्रह्म सर्वव्यापक है। इसकी पुष्टि भगवान् कृष्ण द्वारा भगवद्गीता (13.3) में की गई है :

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।

क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥

"हे भरतवंशी, तुम जान लो कि मैं सभी शरीरों को जानने वाला भी हूँ और इस शरीर को तथा इसके ज्ञाता को जानना ज्ञान है। यही मेरा मत है।"

पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् अपने परमात्मा स्वरूप में सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। ब्रह्म-संहिता में कहा गया है- अण्डान्तस्थपरमाणुचयान्तरस्थम्-अपने सर्वव्यापी गुण के कारण भगवान् ब्रह्माण्ड के भीतर तथा ब्रह्माण्ड के सारे तत्त्वों के भीतर विद्यमान रहते हैं। यहाँ तक कि वे एक परमाणु के भीतर भी रहते हैं। इस तरह परम भगवान् गोविन्द सर्वव्यापी हैं। दूसरी ओर, सारे जीव अत्यन्त लघु हैं। कहा जाता है कि जीव बाल की नोक के दस हजारवें भाग के बराबर है। इसलिए जीव स्थानीय (स्थान विशेष में सीमित) है। सारे जीव ब्रह्मतेज में स्थित रहते हैं, जो परम भगवान् के देह की कान्ति है।

चर्म घुचाञा कैल आमारे शोधन ।

दोंहार व्याप्य-व्यापकत्वे एइ त' कारण ॥169॥

चर्म-मृगचर्म; घुचाञा-ले जाकर; कैल–किया; आमारे-मुझे; शोधन-शुद्धीकरण; दोंहार हम दोनों; व्याप्य-स्थानीय होने के कारण; व्यापकत्वे-सब जगह उपस्थित होने के कारण; एइ–यह; त'-निस्सन्देह; कारण कारण।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु ने मेरा मृगचर्म छुड़ाकर मुझे निर्मल बना दिया है। यह इसका प्रमाण है कि वे सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान हैं और मैं उनके अधीन हूँ।"

तात्पर्य

यहाँ पर ब्रह्मानन्द भारती यह बतलाना चाहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु परब्रह्म हैं और वे परब्रह्म के अधीनस्थ ब्रह्म हैं। इसकी पुष्टि वेदों से होती है-नित्योनित्यानां चेतनचेतनानाम्। भगवान् ब्रह्म या परम ब्रह्म हैं अर्थात् वे समस्त जीवों में अग्रणी हैं। परम ब्रह्म अर्थात् भगवान् तथा जीव दोनों व्यक्ति हैं, लेकिन परम ब्रह्म सर्वशक्तिमान हैं, जबकि जीव अधीन हैं।

सुवर्ण-वर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी।

सन्न्यास-कृच्छमः शान्तो निष्ठा-शान्ति-परायणः ॥ 170॥

सुवर्ण-सोने की; वर्णः-अंग कान्ति वाले; हेम-अङ्गः-जिनका शरीर पिघले सोने जैसा था; वर-अङ्गः-अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले; चन्दन-अङ्गदी-जिनके शरीर पर चन्दन का लेप था; सन्न्यास-कृत्-संन्यास का पालन करने वाले; शमः–सन्तुलित; शान्तः-शान्त; निष्ठा-भक्ति के; शान्ति–और शान्ति के; परायणः-सर्वोच्च आश्रय।

अनुवाद

"उनके शरीर का रंग सुनहला है और उनका सारा शरीर पिघले सोने जैसा है। उनके शरीर का अंग-प्रत्यंग सुडौल है तथा चन्दन से लेप किया हुआ है। संन्यास ग्रहण करके महाप्रभु सदैव सन्तुलित रहते हैं। वे हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन के अपने उद्देश्य में दृढ़ हैं और वे अपने द्वैत निर्णय तथा अपनी शान्ति में दृढ़ता से स्थित हैं।"

तात्पर्य

यह महाभारत के विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र का उद्धरण है।

एइ सब नामेर इँह हय निजास्पद।

चन्दनाक्त प्रसाद-डोर—श्री-भुजे अङ्गद ॥ 171॥

एइ सब-ये सब; नामेर-नामों के; इँह-श्री चैतन्य महाप्रभु; हय-हैं; निज-आस्पद-भंडार; चन्दन-अक्त-चंदन से लिपा हुआ; प्रसाद-डोर–जगन्नाथ विग्रह से मिला धागा; श्री-भुजे-अपने बाजू पर; अङ्गद-आभूषण।

अनुवाद

"विष्णुसहस्र-नाम-स्तोत्र के श्लोक में उल्लिखित सारे लक्षण श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में प्रकट हैं। उनकी भुजाएँ चन्दन-लेप एवं श्री जगन्नाथजी पर चढ़े डोरे से सुसज्जित हैं और ये उनके आभूषण-रूप कंकण हैं।"

भट्टाचार्य कहे,—भारती, देखि तोमार जय ।

प्रभु कहे,—येइ कह, सेइ सत्य हय ॥ 172॥

भट्टाचार्य कहे-भट्टाचार्य ने कहा; भारती-हे ब्रह्मानन्द भारती; देखि-मैं देखता हूँ; तोमार जय-आपकी विजय; प्रभु कहे-चैतन्य महाप्रभु ने कहा; येइ कह-जो कुछ आप कहते हैं; सेइ-वह; सत्य–सत्य; हय-है।

अनुवाद

यह सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य ने अपना निर्णय यह कहते हुए सुनाया, "हे ब्रह्मानन्द भारती, मैं देख रहा हूँ कि आप विजयी हो।" इस पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त उत्तर दिया, "ब्रह्मानन्द भारती ने जो कुछ कहा है उसे मैं स्वीकार करता हूँ। यह मेरे लिए बिल्कुल सही है।"

गुरु-शिष्य-न्याये सत्य शिष्येर पराजय ।

भारती कहे,—एहो नहे, अन्य हेतु हय ॥ 173 ॥

गुरु-शिष्य-न्यायेगुरु और शिष्य में तर्क; सत्य-अवश्य; शिष्येर-शिष्य की; पराजय-पराजय; भारती कहे-ब्रह्मानन्द भारती ने कहा; एहो नहे-ऐसा नहीं है; अन्य हेतु-अन्य कारण; हय-है।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको शिष्य और ब्रह्मानन्द भारती को अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया। तब उन्होंने कहा, "यह शिष्य अपने गुरु से तर्क में निश्चय ही हार गया है।" ब्रह्मानन्द भारती ने तुरन्त प्रतिवाद करते हुए कहा "आपकी हार का कारण यह नहीं है। कारण कुछ दूसरा ही है।

भक्त ठाञि हार' तुमि,—ए तोमार स्वभाव ।

आर एक शुन तुमि आपन प्रभाव ॥ 174॥

भक्त ठाञि-भक्त की उपस्थिति में; हार'-हार जाना; तुमि-आप; ए-यह; तोमार-आपका; स्वभाव-स्वभाव; आर-अन्य; एक-एक; शुन-सुनो; तुमि-आप; आपन प्रभाव-अपना प्रभाव।

अनुवाद

यह आपका स्वाभाविक गुण है कि आप अपने भक्तों के हाथों अपनी पराजय स्वीकार करते हैं। आपकी एक दूसरी भी महिमा है, जिसे आप सावधान होकर सुनो।

आजन्म करिनु मुञि 'निराकार'-ध्यान ।

तोमा देखि' 'कृष्ण' हैल मोर विद्यमान ॥ 175 ॥

आ-जन्म-मेरे जन्म से लेकर; करिनु–किया है; मुञि-मैं; निराकार-ध्यान-निराकार ब्रह्म का ध्यान; तोमा देखि'–आपको देखकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; हैल-हो गये; मोर-मुझे; विद्यमान–अनुभव।

अनुवाद

"मैं जन्म से ही निर्विशेष ब्रह्म का ध्यान करता रहा हूँ, किन्तु जब से आपको देखा है, मुझे कृष्ण की पूरी-पूरी अनुभूति हो गई है।"

तात्पर्य

ब्रह्मानन्द भारती ने स्वीकार किया कि जब भी गुरु तथा शिष्य में कोई तर्क होता है, तो स्वभावत: गुरु ही विजयी होता है, भले ही शिष्य प्रबल तर्क क्यों न प्रस्तुत करे। दूसरे शब्दों में, गुरु के वचन शिष्य के वचनों की अपेक्षा अधिक मान्य हैं। ऐसी परिस्थितियों में, श्री ब्रह्मानन्द भारती गुरु-पद पर होने के कारण श्री चैतन्य पर, जो अपने आपको ब्रह्मानन्द भारती का शिष्य मानते थे, विजयी हुए। किन्तु ब्रह्मानन्द भारती ने तर्क को पलटकर भक्त के पद से स्वीकार किया कि श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि महाप्रभु स्वेच्छा से अपने भक्त के प्रति स्नेह के कारण पराजित हुए। वे स्वेच्छा से हारे, क्योंकि भगवान् को कोई परास्त नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत (1.9.37) में भीष्म के शब्द महत्त्वपूर्ण हैं :

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा-

मृतम् अधिकर्तुम् अवप्लुतो रथस्थः।

धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु-

र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः॥

"मेरी इच्छा पूरी करते हुए तथा अपने वचन की परवाह न करते हुए वे रथ से नीचे उतरे, उसका पहिया लिया और तेजी से मेरी ओर दौड़े, जिस तरह सिंह हाथी को मारने जाता है। यहाँ तक कि वे रास्ते में अपना उत्तरीय वस्त्र भी गिराते गये।"

कृष्ण ने प्रतिज्ञा की थी कि वे कुरुक्षेत्र के युद्ध में लड़ेंगे नहीं, किन्तु कृष्ण की प्रतिज्ञा भंग करने के लिए भीष्म ने अर्जुन पर इतना उग्र आक्रमण किया कि कृष्ण को बाध्य होकर रथ का पहिया उठाकर भीष्म पर आक्रमण करना पड़ा। भगवान् ने यह ऐसा दिखाने के लिए किया कि वे भक्त की रक्षा अपनी प्रतिज्ञा की परवाह न करते हुए भी कर रहे हैं। ब्रह्मानन्द भारती ने कहा, "मैं अपने जीवन के प्रारम्भ से निर्विशेष ब्रह्म के साक्षात्कार के प्रति आसक्त था, लेकिन ज्योंही मैंने आपको देखा, त्योंही मैं भगवान् कृष्ण के प्रति अत्यधिक अनुरक्त हो उठा।" अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं भगवान् कृष्ण हैं। इस तरह ब्रह्मानन्द भारती उनके भक्त बन गये।

कृष्ण-नाम स्फुरे मुखे, मने नेत्रे कृष्ण।

तोमाके तद्रूप देखि' हृदय—सतृष्ण॥ 176॥

कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; स्फुरे प्रकट है; मुखे–मुख में; मने-मन में; नेत्रे-नेत्रों के सामने; कृष्ण-भगवान् कृष्ण की उपस्थिति; तोमाके-आपके; तत्-रूप-उनके रूप में; देखि'–देखता हूँ; हृदय-मेरा हृदय; स-तृष्ण-अति उत्सुक।

अनुवाद

ब्रह्मानन्द भारती कहते रहे, "जब से मैंने आपको देखा है, तब से मैं अपने मन में भगवान् कृष्ण की उपस्थिति का अनुभव कर रहा हूँ और उन्हें अपनी आँखों के सामने देख रहा हूँ। अब मैं भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहता हूँ। इसके अतिरिक्त, मैं अपने हृदय में आपको कृष्ण मानता हूँ, अतएव मैं आपकी सेवा करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।

बिल्वमङ्गल कैल यैछे दशा आपनार।

इहाँ देखि' सेइ दशा हइल आमार॥ 177॥

बिल्वमङ्गल-बिल्वमंगल; कैल–किया; यैछे-जैसी; दशा-दशा; आपनार-अपनी; इहाँ–यहाँ; देखि'–मैं देखता हूँ; सेइ दशा-वही दशा; हइल-हो गई; आमार-मेरी।

अनुवाद

"बिल्वमंगल ठाकुर ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साक्षात्कार के लिए अपनी निर्विशेष अनुभूति त्याग दी। अब मैं देख रहा हूँ कि मेरी दशा भी उन्हीं जैसी हो रही है, क्योंकि अब यह बदल चुकी है।"

तात्पर्य

प्रारम्भिक जीवन में बिल्वमंगल ठाकुर निर्विशेष अद्वैतवादी थे और वे निर्विशेष ब्रह्मज्योति का ध्यान किया करते थे। बाद में वे भगवान् कृष्ण के भक्त बन गये। उनके इस परिवर्तन की व्याख्या अगले श्लोक (178) में दी गई है, जो भक्तिरसामृतसिन्धु से उद्धृत है। कभी-कभी भक्त क्रमशः निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा का साक्षात्कार कर लेने के बाद भगवान् अर्थात् परम पुरुष के साक्षात्कार की अवस्था को प्राप्त करता है। ऐसे भक्त की स्थिति का वर्णन प्रबोधानन्द सरस्वती ने चैतन्य-चन्द्रामृत (5) में किया है :

कैवल्यं नरकायते त्रिदशपूराकाशपुष्पायते

दुर्दान्तेन्द्रियकालसर्पपटली प्रोत्खातदंष्ट्रायते ।

विश्वं पूर्णसुखायते विधिमहेन्द्रादिश्च कीटायते

यत्कारुण्यकटाक्षवैभववतां तं गौरमेव स्तुमः ॥

भक्त को कैवल्य अर्थात् ब्रह्मज्योति से एकाकार होना नरक जैसा लगता है। स्वर्गलोक उसे मायाजाल-जैसा प्रतीत होता है। योगी इन्द्रिय निग्रह के लिए ध्यान धरते हैं, किन्तु भक्त को इन्द्रियाँ दंतरहित सर्पो जैसी लगती हैं। भक्त को अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं करनी पड़ती, क्योंकि उसकी इन्द्रियाँ पहले से भगवान् की सेवा में लगी हुई रहती हैं। फलतः उसकी इन्द्रियों द्वारा सर्पो की तरह कार्य करने की सम्भावना नहीं रहती। भौतिक अवस्था में इन्द्रियाँ विषधर सर्पो जैसी प्रबल होती हैं। किन्तु जब इन्द्रियाँ भगवान् की सेवा में लग जाती हैं, तब वे उस सर्प की तरह रह जाती हैं, जिसके दाँत तोड़ दिये गये हैं, अतः वे भक्त के लिए खतरनाक नहीं रह जातीं। भक्त के लिए सारा जगत् वैकुण्ठ की प्रतिकृति होता है, क्योंकि उसे कोई चिन्ता नहीं सताती। वह प्रत्येक वस्तु को कृष्ण की समझता है और उसका भोग स्वयं नहीं

करना चाहता। यहाँ तक कि उसे ब्रह्मा या इन्द्र के पद की भी इच्छा नहीं होती। वह हर वस्तु को भगवान् की सेवा में लगा देने के लिए इच्छुक रहता है। अतएव उसके सामने कोई समस्या ही नहीं उठती। वह अपनी मूल वैधानिक अवस्था में स्थित रहता है। यह तभी सम्भव है, जब उस पर श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपादृष्टि हो।

चैतन्य-चन्द्रामृत में इसी सिद्धान्त से सम्बन्धित अनेक श्लोक हैं :

धिक् कुर्वन्ति च ब्रह्मयोगविदुषस्तं गौरचन्द्रं नुमः

(चैतन्य चन्द्रामृत 6)

तावद् ब्रह्मकथा विमुक्तपदवी तावन्न तिक्तीभवेत्

तावच्चापि विशृङ्खलत्वमयते नो लोकवेदस्थितिः ।

तावच्छास्त्रविदां मिथः कलकलो नाना बहिर्वर्त्मसु

श्रीचैतन्यपदाम्बुजप्रियजनो यावन्न दिग्गोचरः ॥

(चैतन्य चन्द्रामृत 19)

गौरश्चौरः सकल महरत् कोऽपि मे तीव्रवीर्यः ।

(चैतन्य चन्द्रामृत 60)

भक्त को निर्विशेष ब्रह्म की चर्चा अच्छी नहीं लगती। शास्त्रों के तथाकथित विधान भी उसके लिए व्यर्थ हैं। ऐसे अनेक लोग हैं, जो शास्त्रों पर वाद-विवाद करते हैं, किन्तु भक्त के लिए आसी चर्चाएँ मात्र कानफाड़ शोर के समान हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से ये सारी समस्याएँ दूर हो जाती हैं।

अद्वैत-वीथी-पथिकैरुपास्याः

स्वानन्द-सिंहासन-लब्ध-दीक्षाः ।

शठेन केनापि वयं हठेन

दासी-कृता गोप-वधू-विटेन ॥ 178 ॥

अद्वैत-वीथी-अद्वैत मार्ग पर; पथिकैः-पथिकों से; उपास्याः -पूज्य; स्व-आनन्द-आत्म-साक्षात्कार का; सिंह-आसन-सिंहासन पर; लब्ध-दीक्षाः-दक्षित होकर; शठेन-धोखेबाज से; केन-अपि-किसी; वयम्-मैं; हठेन–बलपूर्वक; दासी-कृता-दासी बनाकर; गोप-वधू-विटेन-गोपियों से हास्य विनोद करनेवाले बालक से।

अनुवाद

ब्रह्मानन्द भारती इस निष्कर्ष पर पहुँचे, "यद्यपि मैं अद्वैत मार्ग पर चलने वालों द्वारा पूजित था तथा योग पद्धति द्वारा आत्म-साक्षात्कार में दीक्षित था, किन्तु गोपियों से परिहास करने वाले एक चतुर बालक ने बलपूर्वक मुझे एक दासी के रूप में परिणत कर दिया है।"

तात्पर्य

यह श्लोक बिल्वमंगल ठाकुर का है। यह भक्तिरसामृत- सिन्धु (3.1.44) में आया है।

प्रभु कहे,—कृष्णे तोमार गाढ़ प्रेमा हय ।

याहाँ नेत्र पड़े, ताहाँ श्रीकृष्ण स्फुरय ॥ 179॥

प्रभु कहे-चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; कृष्णे-कृष्ण में; तोमार-आपका; गाढ़-गाढ; प्रेमा-प्रेम; हय-है; याहाँ–जहाँ भी; नेत्र-नेत्र; पड़े-गिरते हैं; ताहाँ-वहाँ; श्री-कृष्ण-भगवान् श्रीकृष्ण; स्फुरय-प्रकट होते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "कृष्ण के प्रति आप में अगाध प्रेम है, अतएव आप जहाँ भी देखते हैं, आपकी कृष्ण-चेतना बढती जाती है।"

भट्टाचार्य कहे,—दोंहार सुसत्य वचन ।

आगे यदि कृष्ण देन साक्षात्दरशन ॥180॥

भट्टाचार्य कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; दोंहार-दोनों का; सु-सत्य-ठीक; वचन-कथन; आगे-पहले; यदि यदि; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; देन-देते हैं; साक्षात्-साक्षात्; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "आप दोनों के कथन सही हैं। कृष्ण अपनी कृपा के माध्यम से साक्षात् दर्शन देते हैं।"

प्रेम विना कभु नहे ताँर साक्षात्कार।

इँहार कृपाते हय दरशन इँहार ॥ 181॥

प्रेम विना-बिना प्रेम के; कभु नहे–कभी नहीं; ताँर-उनका; साक्षात्कार–प्रत्यक्ष दर्शन; इँहार कृपाते-श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से; हय–सम्भव होता है; दरशन-दर्शन; इँहार–ब्रह्मानन्द भारती का।

अनुवाद

"कृष्ण-प्रेम के बिना हम उनका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर सकते। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से ब्रह्मानन्द भारती को भगवान् का साक्षात्कार हो सका।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा "आप ब्रह्मानन्द भारती हैं, ऐसा महान् भक्त जो भगवान् से भावावेश में प्रेम करता है। अतएव आप सर्वत्र कृष्ण के दर्शन करते हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं है।" सार्वभौम भट्टाचार्य ब्रह्मानन्द भारती तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की मध्यस्थता कर रहे थे और उनका निर्णय यह था कि ब्रह्मानन्द भारती जैसे महान् भक्त कृष्ण की कृपा से ही कृष्ण का दर्शन करते हैं। कृष्ण महान् भक्त की दृष्टि के सम्मुख स्वयं उसस्थित होते हैं। चूँकि ब्रह्मानन्द भारती महान् भक्त थे, अतएव उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में कृष्ण के दर्शन हुए। ब्रह्म-संहिता (5.38) में कहा गया है :

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन

सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।

यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं

गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जिनका वे भक्त सदैव दर्शन करते हैं जिनकी आँखों में प्रेम का अंजन लगा रहता है। वे भक्त के हृदय में स्थित अपने शाश्वत श्यामसुन्दर रूप में देखे जाते हैं।"

प्रभु कहे,—'विष्णु' 'विष्णु', कि कह सार्वभौम ।

'अति-स्तुति' हय एइ निन्दार लक्षण ॥182॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; विष्णु विष्णु भगवान् विष्णु, भगवान् विष्णु; कि कह–आप क्या कह रहे हैं; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; अति-स्तुति-ज्यादा स्तुति करना; हय-है; एइ–यह; निन्दार लक्षण-निन्दा का लक्षण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "अरे सार्वभौम भट्टाचार्य, यह आप क्या कह रहे हैं? हे विष्णु! मुझे बचाओ! ऐसी स्तुति निन्दा का दूसरा रूप है।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु भट्टाचार्य के कथन से कुछ उलझन में पड़ गये, अतएवं अपने आपको बचाने के लिए उन्होंने विष्णु के नाम का उच्चारण किया। यहाँ पर महाप्रभु इसकी पुष्टि करते हैं कि यदि किसी की अत्यधिक स्तुति की जाती है, तो यह एक प्रकार की निन्दा ही है। वे इस प्रकार के अपराधमूलक कथन का प्रतिरोध करते हैं।

एत बलि' भारतीरे लञा निज-वासा आइला ।

भारती-गोसाञि प्रभुर निकटे रहिला ॥183 ॥

एत बलि'-यह कहकर; भारतीरे–ब्रह्मानन्द भारती को; लञा-अपने साथ लेकर; निज-वासा आइला-अपने निवासस्थान पर लौट आये; भारती-गोसाञि-ब्रह्मानन्द भारती; प्रभुर निकटे-श्री चैतन्य महाप्रभु के घर पर; रहिला-रहे।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ब्रह्मानन्द भारती को अपने साथ अपने निवासस्थान ले गये। उस क्षण से ब्रह्मानन्द भारती महाप्रभु के साथ रहने लगे।

रामभद्राचार्य, आर भगवानाचार्य ।

प्रभु-पदे रहिला दुँहे छाड़ि' सर्व कार्य ॥184॥

रामभद्र-आचार्य रामभद्र आचार्य; आर-और; भगवानाचार्य-भगवान् आचार्य; प्रभु-पदे-श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण में; रहिला-रहे; दुँहे-वे दोनों; छाड़ि-त्यागकर; सर्व कार्य-अन्य सभी कर्तव्य।

अनुवाद

बाद में रामभद्र आचार्य तथा भगवान् आचार्य भी उनके साथ आ गये। वे अपने अपने उत्तरदायित्व को छोड़कर श्री चैतन्य महाप्रभु के आश्रय में रहे।

काशीश्वर गोसाञि आइला आर दिने ।

सम्मान करिया प्रभु राखिला निज स्थाने ॥185॥

काशीश्वर गोसाञि-काशीश्वर गोसांई, एक अन्य भक्त; आइला–आये; आर दिने-अगले दिन; सम्मान करिया-सम्मान करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; राखिला-रखे; निज स्थाने-अपने निवासस्थान पर।

अनुवाद

अगले दिन काशीश्वर गोसांई भी आ गये। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका बड़ा सम्मान किया और वे भी उन्हीं के साथ रहने लगे।

प्रभुके लञा करा'न ईश्वर दरशन ।

आगे लोक-भिड़ सब करि' निवारण ॥ 186॥

प्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा-लेकर; करा'न-सहायता करता था; ईश्वर दरशन-भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने में; आगे-आगे; लोक-भिड़ लोगों की भीड़; सब-सब; करि' निवारण-रोक कर।

अनुवाद

काशीश्वर महाप्रभु को जगन्नाथ मन्दिर के भीतर ले जाया करता था। वह भीड़ में महाप्रभु के आगे-आगे रहता और लोगों को दूर रखता, जिससे लोग उनका स्पर्श न कर सकें।

यत नद नदी यैछे समुद्रे मिलय ।

ऐछे महाप्रभुर भक्त याहाँ ताहाँ हय ॥ 187॥

यत–सब; नद नदी-नदियाँ; यैछे-जैसे; समुद्रे-समुद्र में; मिलय–मिलती हैं; ऐछे-इसी प्रकार; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-भक्त; याहाँ ताहाँ-जहाँ कहीं; हय-थे।

अनुवाद

जिस तरह सारी नदियाँ समुद्र में मिलती हैं, उसी तरह देश के सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण में आने लगे।

सबे आसि' मिलिला प्रभुर श्री-चरणे ।

प्रभु कृपा करि' सबाय राखिल निज स्थाने ॥188॥

सबे-सब; आसि-आकर; मिलिला–मिले; प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु के; श्री-चरणे-चरणकमलों में, आश्रय में; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कृपा करि'–कृपा करके; सबाय-सभी को; राखिल-रखा; निज स्थाने-अपने संरक्षण में।

अनुवाद

चूँकि सारे भक्त उनकी शरण में आने लगे, अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सब पर कृपा की और उन्हें अपने संरक्षण में रख लिया।

एइ त' कहिल प्रभुर वैष्णव-मिलन ।

इहा येइ शुने, पाय चैतन्य-चरण ॥ 189॥

एइ त'-इस प्रकार; कहिल-मैंने वर्णन किया है; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; वैष्णव-मिलन-भक्तों से मिलन; इहा-यह वर्णन; येइ-जो कोई; शुने-सुनता है; पाय-पाता है; चैतन्य-चरण-चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का आश्रय।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ समस्त वैष्णवों के मिलन का वर्णन किया है। जो भी इस वर्णन को सुनता है, वह अन्ततः उनके चरणकमलों की शरण प्राप्त करता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥190॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ–श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; यार–जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत पुस्तक; कहे-वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों पर प्रार्थना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए तथा उनका अनुगमन करते हुए, मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्री चैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के दसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें दक्षिण भारत से जगन्नाथ पुरी लौटने पर वैष्णवों से महाप्रभु की भेंट का वर्णन हुआ है।

अध्याय ग्यारह

श्री चैतन्य महाप्रभु की बेड़ा-कीर्तन लीलाएँ

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने ग्यारहवें अध्याय का सारांश अपने अमृत-प्रवाह भाष्य में इस प्रकार दिया है। जब सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु एवं राजा प्रतापरुद्र को मिलाने का भरसक प्रयत्न किया, तो महाप्रभु ने उनकी प्रार्थना ठुकरा दी। इसी समय श्री रामानन्द राय अपनी सरकारी नौकरी छोड़कर वहीं आ गये और उन्होंने भगवान् चैतन्य के सामने राजा प्रतापरुद्र की अत्यधिक प्रशंसा की। इससे महाप्रभु कुछ नरम हुए। राजा ने भी सार्वभौम भट्टाचार्य के सामने प्रतिज्ञा की और भट्टाचार्य ने संकेत किया कि राजा महाप्रभु से किस प्रकार मिल सकते हैं। अनवसर के समय, जब भगवान जगन्नाथ पंद्रह दिनों तक विश्राम कर रहे थे, महाप्रभु उनका दर्शन नहीं कर सके, अतः वे आलालनाथ चले गये। बाद में जब बंगाल के भक्तगण उन्हें देखने आये तो वे जगन्नाथ पुरी लौट आये। जब अद्वैत आचार्य तथा अन्य भक्त जगन्नाथ पुरी आ रहे थे, तब श्री चैतन्य महाप्रभु के दो निजी सहायक स्वरूप दामोदर तथा गोविन्द मालाएँ लेकर सभी भक्तों का स्वागत करने गये। राजा प्रतापरुद्र ने अपने महल की छत से सारे भक्तों को आते हुए देखा। गोपीनाथ आचार्य राजा के साथ छत पर खड़े थे और सार्वभौम भट्टाचार्य के आदेशों का पालन करते हुए, उन्होंने प्रत्येक भक्त की पहचान करवाई। राजा ने गोपीनाथ आचार्य से भक्तों के विषय में बातें की और इसका उल्लेख किया कि ये भक्त तीर्थयात्रा के नियमों का पालन न करके प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं। प्रसाद ग्रहण करने के पूर्व न तो उन्होंने अपने बाल कटवाएँ हैं, न ही उन्होंने तीर्थस्थान में उपवास किया है। जब सार्वभौम भट्टाचार्य ने राजा को बताया कि भक्तों ने तीर्थयात्रा के शास्त्र-कथित आदेशों का उल्लंघन क्यों किया है, तो राजा ने सारे भक्तों को रहने के लिए कमरे दिला दिये और उनके प्रसाद की व्यवस्था कर दी। श्री चैतन्य महाप्रभु ने वासुदेव दत्त तथा अन्य भक्तों से घुल-मिलकर बातें की। तभी हरिदास ठाकुर भी आ गये और श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके दीन तथा विनीत भाव के कारण उन्हें मन्दिर के निकट एक सुन्दर एकान्त स्थान

दे दिया। इसके बाद महाप्रभु सारे भक्तों को चार टोलियों में बाँटकर संकीर्तन करने लगे। संकीर्तन के बाद सारे भक्त अपने अपने डेरों में चले गये।

अत्युद्दण्डं ताण्डवं गौरचन्द्रः

कुर्वन्भक्तैः श्री-जगन्नाथ-गेहे ।

नाना-भावालङ्कताङ्गः स्व-धाम्ना

चक्रे विश्वं प्रेम-वन्या-निमग्नम् ॥1॥

अति-अत्यन्त; उद्दण्डम्-ऊँचे कूदकर; ताण्डवम्-अत्यन्त सुन्दर नृत्य करके; गौर-चन्द्रः- श्री चैतन्य महाप्रभु; कुर्वन्–करके; भक्तैः-भक्तों के साथ; श्री-जगन्नाथ-गेहे-भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर में; नाना-भाव-अलङ्कत-अङ्गः- अपने दिव्य शरीर में अनेक आनन्दमय लक्षणों के साथ; स्व-धाम्ना-अपने आनन्दमय प्रेम के प्रभाव से; चक्रे-किया; विश्वम्-सारे विश्व को प्रेम-वन्या-निमग्नम्-भावपूर्ण प्रेम की बाढ़ में डुबोया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथ मन्दिर के भीतर अपना सुन्दर नृत्य करके सारे जगत् को प्रेम के सागर में निमग्न कर दिया। उन्होंने बहुत ही अच्छी तरह से ऊँचे उछलकर नृत्य किया।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय जय; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत प्रभु की; जय-जय; गौर-भक्त-वृन्द–भगवान् चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत प्रभु की जय हो! श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

आर दिन सार्वभौम कहे प्रभु-स्थाने ।

अभय-दान देह' यदि, करि निवेदने ॥ 3 ॥

आर दिन–अगले दिन; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य ने; कहे–कहा; प्रभु-स्थाने-चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में; अभय-दान-अभय दान; देह'-दीजिए; यदि-यदि; करि-मैं करूँ; निवेदने निवेदन।

अनुवाद

अगले दिन सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से निवेदन किया कि वे उन्हें अनुमति दें, जिससे वे अभय होकर अपनी बात कह सकें।

प्रभु कहे,—कह तुमि, नाहि किछु भय ।

योग्य हैले करिब, अयोग्य हैले नय ॥4॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; कह तुमि हाँ, आप बोल सकते हो; नाहि-नहीं है; किछु-कुछ भी; भय- भय; योग्य-उचित; हैले–यदि हैं, तो; करिब–मैं स्वीकार करूँगा; अयोग्य-अनुचित; हैले–यदि हो; नय-तब मैं स्वीकार नहीं करूँगा।

अनुवाद

महाप्रभु ने भट्टाचार्य को आश्वासन दिया कि वे बिना किसी भय के अपनी बात कहें, किन्तु साथ में यह भी कहा कि यदि उनकी बात उपयुक्त होगी, तभी वे स्वीकार करेंगे, अन्यथा अस्वीकार कर देंगे।

सार्वभौम कहे—एइ प्रतापरुद्र राय ।

उत्कण्ठा हञाछे, तोमा मिलिबारे चाय ॥5॥

सार्वभौम कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; एइ–यह; प्रतापरुद्र राय–जगन्नाथ पुरी के राजा प्रतापरुद्र; उत्कण्ठा हञाछे-उत्सुक है; तोमा-आपसे; मिलिबारे-मिलने के लिए; चाय-वह चाहता है।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "प्रतापरुद्र राय नाम का एक राजा है। वह आपसे मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक है और आपकी अनुमति चाहता है।"

कर्णे हस्त दिया प्रभु स्मरे 'नारायण'।

सार्वभौम, कह केन अयोग्य वचन॥ 6॥

कर्णे-कानों पर; हस्त-हाथ; दिया-रखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; स्मरे-स्मरण करते हैं; नारायण-भगवान् नारायण का पावन नाम; सार्वभौम-मेरे प्रिय सार्वभौम; कह-आप कहते हो; केन–क्यों; अयोग्य वचन–अनुचित वचन।

अनुवाद

इस प्रस्ताव को सुनते ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने हाथों से कान बन्द कर दिये और कहा, "अरे सार्वभौम, आप मुझसे ऐसी अनुपयुक्त बात के लिए अनुरोध क्यों कर रहे हैं?"

विरक्त सन्न्यासी आमार राज-दरशन।

स्त्री-दरशन-सम विषेर भक्षण॥7॥

विरक्त–वैरागी ; सन्न्यासी-संन्यासी; आमार-मेरा; राज-दरशन-राजा को मिलना; स्त्री-दरशन-स्त्री को देखने; सम-के समान; विषेर-विष को; भक्षण-पीना।

अनुवाद

"मैं संन्यासी हूँ, इसलिए मेरे लिए किसी राजा से मिलना उसी तरह घातक है, जिस तरह किसी स्त्री से मिलना। इन दोनों से मिलना विषपान करने के तुल्य है।"

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य

पारं परं जिगमिषोर्भव-सागरस्य।

सन्दर्शनं विषयिणामथ योषितां च

हा हन्त हन्त विष-भक्षणतोऽप्यसाधु॥8॥

निष्किञ्चनस्य-भौतिक भोग से पूर्णतया विरक्त व्यक्ति; भगवत्-पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की; भजन-सेवा करने में; उन्मुखस्य-लगने में उत्सुक; पारम्-दूसरी ओर; परम्-दूर; जिगमिषोः-जाने का इच्छुक; भव-सागरस्य-भौतिक अस्तित्व के सागर का; सन्दर्शनम्-देखने (किसी भौतिक हेतु से); विषयिणाम्-भौतिक कार्यों में लगे लोगों का; अथ-तथा;

योषिताम्-स्त्रियों का; च-भी; हा खेद है; हन्त हन्त-अत्यन्त शोक की अभिव्यक्ति; विष-भक्षणतः-विषपान की अपेक्षा; अपि-भी; असाधु-अधिक दोषयुक्त है।

अनुवाद

अत्यधिक शोक प्रकट करते हुए महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य को बतलाया "हाय! जो व्यक्ति भवसागर को पार करना चाहता है और बिना किसी भौतिक हेतु के भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में लगना चाहता है, उसके लिए इन्द्रियतृप्ति में लगे भौतिकतावादी अथवा ऐसी ही रुचि रखने वाली स्त्री को देखना जान-बूझकर विष खाने से भी अधिक निन्दनीय है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्री चैतन्य-चन्द्रोदय-नाटक (8.23) का है। इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु एक संन्यासी के लिए सिद्धान्तों की स्थापना करते हैं, जो आध्यात्मिक प्रगति करने के लिए भौतिक संसार का त्याग करता है। आध्यात्मिक प्रगति जादूगरी के लिए नहीं, अपितु भौतिक जगत् पार करके वैकुण्ठ जाने के लिए होती है। पारं परं जिगमिषोः का अर्थ है भौतिक जगत् से उस पार जाने की इच्छा करना। कहते हैं कि वैतरणी नाम की एक नदी होती है, जिसके इस पार भौतिक जगत् है और उस पार आध्यात्मिक जगत् है। चूँकि वैतरणी नदी की तुलना विशाल सागर से की जाती है, इसलिए इसे भवसागर कहा जाता है, अर्थात् जन्म तथा मृत्यु की पुनरावृत्ति का सागर आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य जन्म-मृत्यु की इस पुनरावृत्ति को रोकना और वैकुण्ठ में प्रवेश करना है, जहाँ मनुष्य शाश्वत रूप से आनन्दपूर्वक रह सके।

दुर्भाग्यवश सामान्य जनों को आध्यात्मिक जीवन या वैकुण्ठ लोक की कोई भी जानकारी नहीं है। भगवद्गीता (8.20) में वैकुण्ठ लोक का वर्णन मिलता है।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात् सनातनः।

यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥

"एक दूसरी भी अव्यक्त प्रकृति है, जो शाश्वत है और इस व्यक्त तथा अव्यक्त पदार्थ से परे है। यह परम पूर्ण है और कभी विनष्ट नहीं होती। जब यह संसार विनष्ट हो जाता है, तब यह जैसी की तैसी बनी रहती है।"

इस तरह इस भौतिक जगत् के परे आध्यात्मिक प्रकृति है, जो शाश्वत है। आध्यात्मिक प्रगति का अर्थ है, भौतिक कार्यों को बन्द करना और आध्यात्मिक कार्यों का शुभारम्भ करना। यह विधि भक्तियोग है। भौतिक जगत् में इन्द्रियतृप्ति का साधन मुख्यतः स्त्री है। अतः जो आध्यात्मिक जीवन में गम्भीरता से रुचि रखता हो, उसे स्त्री से पूर्णरूपेण बचना चाहिए। संन्यासी को भौतिक लाभ के लिए किसी भी पुरुष या स्त्री से नहीं मिलना चाहिए। साथ ही, भौतिकतावादी पुरुषों तथा स्त्रियों से बातें करना भी घातक होता है और इनकी तुलना विष पीने से की गई है। श्री चैतन्य महाप्रभु इस बात पर अत्यन्त कठोर थे। इसीलिए उन्होंने राजा प्रतापरुद्र से भेंट करने से मना कर दिया, क्योंकि वह राजनीतिक तथा आर्थिक मामलों में सदैव व्यस्त रहता था। महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य जैसे अपने मित्र तथा भक्त के अनुरोध को भी ठुकराकर राजा से मिलना अस्वीकार कर दिया।

सार्वभौम कहे,—सत्य तोमार वचन ।

जगन्नाथ-सेवक राजा किन्तु भक्तोत्तम ॥9॥

सार्वभौम कहे-सावभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; सत्य-सत्य; तोमार-आपका; वचन-कथन; जगन्नाथ-सेवक-भगवान जगन्नाथ का सेवक; राजा-राजा; किन्तु किन्तु; भक्त-उत्तम-महान् भक्त।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, आपने जो कुछ कहा है, वह सही है; किन्तु यह राजा कोई सामान्य राजा नहीं है। यह जगन्नाथजी का महान् भक्त तथा सेवक है।"

प्रभु कहे,—तथापि राजा काल-सर्पाकार ।

काष्ठ-नारी-स्पर्शे यैछे उपजे विकार ॥10॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तथापि-फिर भी; राजा-राजा; काल-सर्प-आकार-विषैले सर्प की भाँति; काष्ठ-नारी–काठ की बनी स्त्री; स्पर्शे-के स्पर्श से; यैछे-जैसे; उपजे-उत्पन्न होती है; विकार-उत्तेजना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यह सच है कि राजा महान् भक्त है, फिर भी उसे विषैला साँप ही समझना होगा। इसी प्रकार स्त्री चाहे काठ की ही (पुतली) क्यों न हो, उसके रूप को स्पर्श करने मात्र से मनुष्य विचलित हो उठता है।"

तात्पर्य

श्री चाणक्य पण्डित ने अपनी नैतिक शिक्षाओं में कहा है-त्यज दुर्जनसंसर्ग भज साधुसमागमम्। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य को भौतिकतावादी लोगों की संगति त्याग देनी चाहिए और आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत लोगों की संगति करनी चाहिए। भौतिकतावादी व्यक्ति कितना ही योग्य क्यों न हो, वह विषैले सर्प से अधिक अच्छा नहीं है। हर व्यक्ति जानता है। कि साँप भयानक तथा विषैला होता है और जब इसका फन मणियों से अलंकृत होता है, तब भी यह कम विषैला या कम घातक नहीं होता। इसलिए भौतिकतावादी व्यक्ति कितना ही योग्य क्यों न हो, वह मणियों से अलंकृत सर्प से अधिक अच्छा नहीं है। अतएव ऐसे भौतिकतावादी व्यक्तियों के साथ व्यवहार करते समय सावधान रहना चाहिए, जिस प्रकार कि मणियुक्त सर्प से सावधान रहा जाता है।

स्त्री चाहे काठ की हो या पत्थर की, सजाने पर वह आकर्षक बन जाती है। उसके स्पर्श मात्र से मनुष्य कामुक हो जाता है। अतएव मनुष्य को अपने मन पर विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह इतना चंचल होता है कि वह किसी भी क्षण अपने शत्रुओं के वशीभूत हो सकता है। मन के साथ सर्वदा छह शत्रु लगे रहते हैं—काम, क्रोध, मद, मोह, मात्सर्य तथा भय। आध्यात्मिक चेतना में रत मन से भी उसी तरह सावधान रहने की आवश्यकता है, जिस तरह साँप से सावधान रहना चाहिए । मनुष्य को यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि उसका मन प्रशिक्षित हो गया है, अतएव वह जो चाहे सो कर सकता है। आध्यात्मिक जीवन में रुचि रखने वाले व्यक्ति को अपने मन को सदैव भगवान् की सेवा में लगाये रखना चाहिए, जिससे मन के साथ लगे हुए उसके शत्रु दमित हो जायें। यदि मन हर क्षण कृष्णभावनामृत में नहीं लगा रहेगा, तो वह शत्रुओं के वश में हो सकता है। इस तरह हम मन के शिकार बन सकते हैं।

हरे कृष्ण मन्त्र का जप करने से मन कृष्ण के चरणकमलों में निरन्तर लगा रहता है, जिससे मन के शत्रुओं को आक्रमण करने का अवसर नहीं मिल पाता। इन श्लोकों के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु के उदाहरण का अनुसरण करते हुए हमें मन के प्रति सदैव सतर्क रहना चाहिए और उसे किसी भी परिस्थिति में इधर-उधर नहीं लगाना चाहिए। एक बार उत्तेजित होने पर मन इस जीवन में विध्वंस कर सकता है, चाहे कोई कितना ही आध्यात्मिक रूप से उन्नत क्यों न हो।

मन विशेषतया भौतिकतावादी पुरुषों तथा स्त्रियों की संगति से उत्तेजित होता है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी आचरण के द्वारा हर एक को सचेत करते हैं कि भौतिकतावादी पुरुष या स्त्री से भेंट करने से बचा जाए।

आकारादपि भेतव्यं स्त्रीणां विषयिणामपि ।

यथाहर्मनसः क्षोभस्तथा तस्याकृतेरपि ॥11॥

आकारात्-शारीरिक आकार से; अपि-भी; भेतव्यम्-डरना चाहिए; स्त्रीणाम्-स्त्रियों के; विषयिणाम्-विषयी लोगों के; अपि-भी; यथा-जैसे; अहेः-सर्प से; मनसः-मन की; क्षोभः–उत्तेजना; तथा–वैसे; तस्य–इसका; आकृतेः-आकृति से; अपि-भी।

अनुवाद

"जिस तरह मनुष्य किसी जीवित सर्प या सर्प की आकृति को देखते ही डर जाता है, उसी तरह आत्म-साक्षात्कार के इच्छुक व्यक्ति को भौतिकतावादी पुरुष तथा स्त्री से डरना चाहिए। उसे उनके शारीरिक लक्षणों पर दृष्टि भी नहीं डालनी चाहिए।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्री चैतन्य-चन्द्रोदय नाटक (8.24) से लिया गया है।

ऐछे बात पुनरपि मुखे ना आनिबे ।

कह यदि, तबे आमाय एथा ना देखिबे ॥ 12॥

ऐछे बात-ऐसी बात; पुनरपि फिर कभी; मुखे–मुख में; ना–न; आनिबे-लाओ; कह यदि–यदि आप कहते हो; तबे-तब; आमाय-मुझे; एथा-यहाँ; ना–न; देखिबे-देखोगे।

अनुवाद

"हे भट्टाचार्य, यदि आप इसी तरह मुझसे कहते रहोगे, तो आप मुझे पुनः यहाँ कभी नहीं देखेंगे। अतः आप कभी भी ऐसा निवेदन अपने मुख से न करना।"

भय पाञा सार्वभौम निज घरे गेला ।

वासाय गिया भट्टाचार्य चिन्तित हइला ॥ 13॥

भय पाञा-डरकर; सार्वभौम सार्वभौम; निज-अपने; घरे–घर को; गेला–लौट आये; वासाय गिया-अपने घर पहुँचकर; भट्टाचार्य–भट्टाचार्य; चिन्तित हइला–चिन्तन करने लगे।

अनुवाद

सार्वभौम डरकर अपने घर वापस चले गये और इस विषय पर मनन करने लगे।

हेन काले प्रतापरुद्र पुरुषोत्तमे आइला ।

पात्र-मित्र-सङ्गे राजा दरशने चलिला ॥14॥

हेन काले-इस समय; प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र; पुरुषोत्तमे-जगन्नाथ पुरी में; आइला–पहुँचे; पात्र-मित्र-सङ्गे-अपने सचिवों, मंत्रियों, सैनिक अधिकारीयों इत्यादि के साथ; राजा-राजा; दरशने-भगवान् जगन्नाथ के दर्शनार्थ; चलिला–चले गये।

अनुवाद

उसी समय महाराज प्रतापरुद्र जगन्नाथ पुरी अर्थात् पुरुषोत्तम पधारे और वे अपने मन्त्रियों, सचिवों तथा सैनिक अधिकारियों समेत जगन्नाथ मन्दिर का दर्शन करने गये।

तात्पर्य

ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज प्रतापरुद्र अपनी राजधानी कटक में रहते थे। बाद में उन्होंने अपनी राजधानी जगन्नाथ पुरी से कुछ मील दूर खुर्दा में स्थानान्तरित कर ली। आजकल वहाँ खुर्दा रोड नामक एक रेलवे स्टेशन है।

रामानन्द राय आइला गजपति-सङ्गे ।

प्रथमेइ प्रभुरे आसि' मिलिला बहु-रङ्गे ॥15॥

रामानन्द राय-रामानन्द राय; आइला–आये; गजपति-सङ्गे–राजा के साथ; प्रथमेइ-पहले पहल; प्रभुरे–चैतन्य महाप्रभु को; आसि'–आकर; मिलिला–मिले; बहु-रङ्गे–अति प्रसन्न होकर।

अनुवाद

जब राजा प्रतापरुद्र जगन्नाथ पुरी लौटे, तब रामानन्द राय भी उनके साथ आये। वे तुरन्त हर्षपूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने गये।

राय प्रणति कैल, प्रभु कैल आलिङ्गन।

दुइ जने प्रेमावेशे करेन क्रन्दन ॥16॥

राय प्रणति कैल-रामानन्द राय ने नमस्कार किया; प्रभु–महाप्रभु ने; कैल–किया; आलिङ्गन-आलिंगन; दुइ जने-वे दोनों; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; करेन-किया; क्रन्दन-रोदन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलकर रामानन्द राय ने उन्हें नमस्कार किया। महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया और दोनों प्रेमावेश में आकर रोने लगे।

राय-सङ्गे प्रभुर देखि' स्नेह-व्यवहार।

सर्व भक्त-गणेर मने हैल चमत्कार ॥ 17॥

राय-सङ्गे-रामानन्द राय के साथ; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु का; देखि'-देखकर; स्नेह-व्यवहार-अत्यन्त घनिष्ठ स्नेह पूर्ण व्यवहार; सर्व-सभी; भक्त-गणेर-सभी भक्तों के; मने-मन में; हैल-हो गया; चमत्कार-आश्चर्यचकित्।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु के घनिष्ठ व्यवहार को देखकर सारे भक्त अचम्भित हो गये।

राय कहे,—तोमार आज्ञा राजाके कहिल।

तोमार इच्छाय राजा मोर विषय छाड़ाइल ॥18॥

राय कहे-रामानन्द राय ने कहा; तोमार आज्ञा-आपकी आज्ञा; राजाके कहिल-मैंने राजा को सूचित किया; तोमार इच्छाय-आपकी कृपा से; राजा-राजा ने; मोर-मेरी; विषय-भौतिक गतिविधियों से; छाड़ाइल-छूट दिलाई।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "मैंने राजा प्रतापरुद्र को आपके आदेश से अवगत करा दिया है कि वे मुझे नौकरी से मुक्त कर दें। आपकी कृपा से राजा ने प्रसन्न होकर मुझे इन भौतिक कार्यों से मुक्त कर दिया है।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से अनुरोध किया था कि वे गवर्नर पद से अवकाश प्राप्त कर लें। फलतः महाप्रभु की इच्छानुसार रामानन्द राय ने राजा के पास आवेदन भेज दिया था। राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें कार्यमुक्त कर दिया था। अतः रामानन्द राय अपनी नौकरी से मुक्त होकर सरकारी पेंशन पाने लगे।

आमि कहि,—आमा हैते ना हय 'विषय' ।

चैतन्य-चरणे रहों, यदि आज्ञा हय ॥19॥

आमि कहि-मैंने कहा; आमा हैते–मेरे द्वारा; ना-नहीं; हय–सम्भव; विषय-सरकारी सेवा; चैतन्य-चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में; रहों-मैं रहूँ; यदि आज्ञा हय–यदि आप की आज्ञा हो तो।

अनुवाद

"मैंने उनसे कहा, 'हे राजन्, अब मैं राजनैतिक कार्यों में नहीं लगा रहना चाहता। मेरी इच्छा केवल श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में रहने की है। कृपया मुझे अनुमति दें।"

तोमार नाम शुनि' राजा आनन्दित हैल ।

आसन हैते उठि' मोरे आलिङ्गन कैल ॥20॥

तोमार-आपका; नाम-नाम; शुनि'–सुनकर; राजा-राजा; आनन्दित-आनन्दित; हैल–हो गया; आसन हैते-अपने सिंहासन से; उठि'–खड़े होकर; मोरे-मुझे; आलिङ्गन कैल–गले लगाया।

अनुवाद

"जब मैंने यह प्रस्ताव रखा, तो आपका नाम सुनते ही राजा अत्यधिक प्रसन्न हो गये। वे तुरन्त अपने सिंहासन से उठे और उन्होंने मेरा आलिंगन कर लिया।"

तोमार नाम शुनि' हैल महा-प्रेमावेश ।

मोर हाते धरि' करे पिरीति विशेष ॥ 21॥

तोमार-आपका; नाम-नाम; शुनि'–सुनकर; हैल–हो गये; महा-महान्; प्रेम-आवेश-प्रेमावेश; मोर हाते-मेरा हाथ; धरि'-पकड़कर; करे–किया; पिरीति-स्नेह के लक्षण; विशेष-विशेष।

अनुवाद

"हे प्रभु, ज्योंही राजा ने आपका पवित्र नाम सुना, वे अत्यधिक भावविह्वल हो उठे। मेरा हाथ पकड़कर उन्होंने प्रेम के सारे लक्षणों को प्रदर्शित किये।"

तोमार ये वर्तन, तुमि खाओ सेइ वर्तन ।

निश्चिन्त हञा भज चैतन्येर चरण ॥22॥

तोमार-आपका; ये-जो कुछ; वर्तन-वेतन; तुमि-तुम; खाओ-लेते हो; सेइ-वह; वर्तन–वेतन; निश्चिन्त हजा–बिना चिन्ता के; भज-मात्र पूजा करो; चैतन्येर-भगवान् चैतन्य महाप्रभु के; चरण-चरणकमलों की।

अनुवाद

"ज्योंही उन्होंने मेरा निवेदन सुना, उन्होंने तुरन्त बिना कटौती के मेरी अवकाशवृत्ति (पेंशन) मंजूर कर दी। इस तरह राजा ने अवकाशवृत्ति के रूप में पूरा वेतन देने की अनुमति दी और मुझसे अनुनय किया कि मैं आपके चरणकमलों की सेवा निश्चिन्त होकर करूँ।"

आमि—छार, योग्य नहि ताँर दरशने ।

ताँरे येइ भजे ताँर सफल जीवने ॥ 23 ॥

आमि-मैं; छार–बहुत पतित; योग्य-योग्य; नहि-नहीं; ताँर-उनके; दरशने-दर्शन के लिए; ताँरे–उनको; येइ-जो कोई; भजे-भजता है; ताँर-उसका; सफल-सफल; जीवने-जीवन।

अनुवाद

"तब महाराज प्रतापरुद्र ने विनीत होकर कहा, 'मैं अत्यन्त पतित हूँ। और गर्हित हूँ। मैं महाप्रभु का दर्शन पाने के लिए अयोग्य हूँ। जो व्यक्ति उनकी सेवा में लगता है, उसका जीवन सफल हो जाता है।"

परम कृपालु तेंह व्रजेन्द्र-नन्दन ।

कोन-जन्मे मोरे अवश्य दिबेन दरशन ॥24॥

परम-परम; कृपालु-कृपालु; तेंह-श्री चैतन्य महाप्रभु; व्रजेन्द्र-नन्दन-महाराज नन्द के पुत्र; कोन-जन्मे–किसी भविष्य जन्म में; मोरे-मुझे; अवश्य-अवश्य; दिबेन-देंगे; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

"राजा ने तब कहा, 'श्री चैतन्य महाप्रभु महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण हैं। वे अत्यन्त कृपालु हैं और मैं आशा करता हूँ कि वे मुझे अगले जन्म में अवश्य दर्शन देंगे।"

ये ताँहार प्रेम-आर्ति देखिलुँ तोमाते ।

तार एक प्रेम-लेश नाहिक आमाते ॥25॥

ये-जो कुछ; ताँहार—उनकी; प्रेम-आर्ति-भगवत्प्रेम की दर्दनाक अनुभूति; देखिलुँ-मैंने देखी; तोमाते-आपके प्रति; तार-उसकी; एक-एक; प्रेम-लेश-प्रेम का भाग; नाहिक-नहीं है; आमाते-मुझ में।

अनुवाद

"हे प्रभु, मैं सोचता हूँ कि मुझ में महाराज प्रतापरुद्र के प्रेम का एक अंश भी नहीं है।"

प्रभु कहे,—तुमि कृष्ण-भकत-प्रधान ।

तोमाके ये प्रीति करे, सेइ भाग्यवान् ॥ 26॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तुमि-आप; कृष्ण-भकत-प्रधान-भगवान् कृष्ण के भक्तों के प्रमुख; तोमाके–आपको; ये-जो कोई; प्रीति करे—प्रेम करता है; सेइ-वह व्यक्ति; भाग्यवान्-अत्यन्त भाग्यशाली।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे रामानन्द राय, आप कृष्ण के भक्तों में अग्रणी हो, अतएव जो भी आप से प्रेम करता है, वह निश्चित रूप से अत्यन्त भाग्यशाली है।"

तोमाते ये एत प्रीति हइल राजार ।

एइ गुणे कृष्ण ताँरे करिबे अङ्गीकार ॥27॥

तोमाते-आप के लिए; ये-वह; एत-इतना; प्रीति–प्रेम; हइल–था; राजार–राजा का; एइ गुणे-इस कारण; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ताँरे–उसे; करिबे अङ्गीकार–स्वीकार करेंगे।

अनुवाद

"चूँकि राजा ने आप पर इतना प्रेम दर्शाया है, अतएव भगवान् कृष्ण उसे अवश्य स्वीकार करेंगे।"

तात्पर्य

राजा प्रतापरुद्र ने भट्टाचार्य के माध्यम से श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने के लिए प्रार्थना की थी और भट्टाचार्य ने यह प्रार्थना उनके समक्ष रखी भी। किन्तु महाप्रभु ने तुरन्त ही मिलने से मना कर दिया। अब जब रामानन्द राय ने महाप्रभु को बतलाया कि राजा उनके दर्शन के लिए कितने इच्छुक हैं, तो महाप्रभु तुरन्त प्रसन्न हो गये। श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से अनुरोध किया कि वे अपने सरकारी पद से अवकाश प्राप्त कर ले और श्री पुरुषोत्तम-क्षेत्र (जगन्नाथ पुरी) आकर उनके साथ रहें। जब यह प्रस्ताव राजा प्रतापरुद्र के समक्ष रखा गया, तो उन्होंने तुरन्त उसे स्वीकार कर लिया और रामानन्द को पूरी पेंशन देकर प्रोत्साहित भी किया। महाप्रभु को यह बात बहुत अच्छी लगी। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि जब कोई भगवान् के दास की सेवा करता है, तब भगवान् अधिक प्रसन्न होते हैं। सामान्य भाषा में कहावत है,

"यदि तुम मुझसे प्रेम करना चाहते हो, तो मेरे कुत्ते को प्रेम करो।" पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पास जाने के लिए उनके विश्वस्त दास के माध्यम से जाना होता है। यही विधि है। श्री चैतन्य महाप्रभु स्पष्ट कहते हैं, "हे रामानन्द राय, चूँकि राजा तुम्हें चाहता है, अतएव वह अत्यन्त भाग्यशाली है। तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण भगवान् कृष्ण उसे अवश्य अंगीकार करेंगे।"

ये मे भक्त-जनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः ।

मद्भक्तानां च ये भक्तास्ते में भक्त-तमा मताः ॥28॥

ये-वे जो; मे-मेरे; भक्त-जनाः-भक्त; पार्थ-हे अर्जुन; न-नहीं; मे-मेरे; भक्ताः -भक्त; च-और; ते—उन; जनाः-लोग; मत्-भक्तानाम्-मेरे भक्तों का; च-अवश्य; ये-वे जो; भक्ताः-भक्त; ते-ऐसे व्यक्ति; मे-मेरे; भक्त-तमाः-अत्यन्त उत्तम भक्त; मता:-यह मेरा मत है।

अनुवाद

"(भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा :) 'जो मेरे प्रत्यक्ष भक्त हैं, वे वास्तव में मेरे भक्त नहीं हैं, किन्तु जो मेरे दास के भक्त हैं, वे सचमुच मेरे भक्त हैं।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु यह श्लोक आदि पुराण से उधृत करते हैं। यह श्लोक लघुभागवतामृत (2.6) में भी आया है।

आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम् ।

मद्भक्त-पूजाभ्यधिका सर्व-भूतेषु मन्मतिः ॥29॥

मदर्थेष्वङ्ग-चेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ।

मय्यर्पणं च मनसः सर्व-काम-विवर्जनम् ॥ 30॥

आदरः-सम्मान; परिचय़याम्-सेवा में; सर्व-अङ्गैः–शरीर के सभी अंगों से; अभिवन्दनम्-अभिवादन करके; मत्-भक्त-मेरे भक्तों की पूजा-पूजा करके; अभ्यधिका-अति उच्च; सर्व-भूतेषु-सभी जीवों में; मत्-मतिः-मेरे साथ सम्बन्ध होने की अनुभूति; मत्-अर्थेषु-मेरे सेवा के लिए; अङ्ग-चेष्टाः-शारीरिक शक्ति लगाकर; च-और; वचसा-वाणी से; मत्-गुण-ईरणम्-मेरी महिमाएँ गाकर; मयि–मुझे; अर्पणम्-अर्पण; च-और; मनसः-मन की; सर्व-काम-सारी भौतिक कामनाएँ; विवर्जनम्-छोड़कर।

अनुवाद

"मेरे भक्त बड़ी सतर्कता तथा आदर से मेरी सेवा करते हैं। वे अपने सारे अंगों से मुझे नमस्कार करते हैं। वे मेरे अन्य भक्तों की पूजा करते हैं और सारे जीवों को मुझसे सम्बन्धित पाते हैं। वे मेरे लिए अपने शरीर की सारी शक्ति लगा देते हैं। वे मेरे गुणों तथा रूप की महिमा का बखान करने में अपनी वाणी का प्रयोग करते

हैं। वे अपना मन भी मुझे अर्पित कर देते हैं और सारी भौतिक इच्छाओं को त्यागने की चेष्टा करते हैं। मेरे भक्तों के यही लक्षण हैं।"

तात्पर्य

ये दोनों श्लोक श्रीमद्भागवत (11.19.21-22) के हैं। जब उद्धव भक्ति के विषय में प्रश्न कर रहे थे, तब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ने ये श्लोक कहे थे।

आराधनानां सर्वेषां विष्णोरााधनं परम् ।

तस्मात्परतरं देवि तदीयानां समर्चनम् ॥ 31॥

आराधनानाम्-पूजा; सर्वेषाम्-सबकी; विष्णोद्-भगवान् विष्णु की; आराधनम्-पूजा; परम्-परम, सर्वोच्च; तस्मात्-और भगवान् विष्णु की पूजा से; परतरम्-अधिक श्रेष्ठ; देवि-हे देवी; तदीयानाम्-भगवान् विष्णु से सम्बन्धित व्यक्तियों की; समर्चनम्-दृढ़ पूजा।

अनुवाद

"(शिवजी ने दुर्गा देवी से कहा :)'हे देवी, यद्यपि वेदों में देवताओं की पूजा की संस्तुति की गई है, लेकिन भगवान् विष्णु की पूजा सर्वोपरि है। किन्तु भगवान् विष्णु की सेवा से भी बढ़कर है उन वैष्णवों की सेवा, जो भगवान् विष्णु से सम्बन्धित हैं।"

तात्पर्य

वेदों के तीन विभाग हैं-कर्म-काण्ड, ज्ञान-काण्ड तथा उपासना-काण्ड। इनसे सम्बन्धित कार्य होते हैं-सकाम कर्म, अनुभवजन्य तर्कवितर्क तथा पूजा। वेदों में विभिन्न देवताओं तथा भगवान् विष्णु की पूजा के लिए संस्तुतियाँ हैं। पद्मपुराण के इस श्लोक के द्वारा शिवजी दुर्गा देवी के प्रश्नों का उत्तर दे रहे हैं। यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत लघु भागवतामृत (2.4) में भी सम्मिलित है। विष्णोरााधनम् शब्द भगवान् विष्णु या कृष्ण की पूजा का द्योतक है। इस तरह पूजा का सर्वोपरि रूप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की तुष्टि है। यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि भगवान् कृष्ण के भक्त की पूजा करके भगवान् विष्णु की अधिक अच्छी सेवा की जा सकती है। भक्त कई प्रकार के होते हैं-शान्त रस, दास्य रस, सख्य रस, वात्सल्य रस तथा माधुर्य रस में अवस्थित भक्त। यद्यपि सारे रस दिव्य पद पर हैं, किन्तु माधुर्य रस सर्वोपरि

दिव्य रस है। इस तरह निष्कर्ष यह निकला कि माधुर्य रस में भगवान् की भक्ति करने वाले भक्तों की पूजा सर्वोच्च आध्यात्मिक कृत्य है। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके अनुयायी मुख्यतः माधुर्य रस में ही भगवान् कृष्ण की पूजा करते हैं। अन्य वैष्णव आचार्य वात्सल्य रस तक ही पूजा करने की संस्तुति करते हैं। इसलिए श्रील रूप गोस्वामी अपनी कृति विदग्ध माधव (1.2) में श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय को सर्वोच्च मानते हैं :

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ ।

समर्पयितुम् उन्नतोज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम् ॥

श्री चैतन्य महाप्रभु इस कलियुग में माधुर्य रस की सर्वोत्कृष्टता प्रदर्शित करने के लिए प्रकट हुए, जो ऐसा उपहार था जिसे कोई भी आचार्य या अवतार इसके पूर्व भेंट नहीं कर सका था। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु को परम वदान्य अवतार माना जाता है। उन्होंने ही माधुर्य रस में कृष्ण-प्रेम की उत्कृष्टता दिखलाते हुए कृष्ण-प्रेम का वितरण किया।

दुरापा ह्यल्प-तपसः सेवा वैकुण्ठ-वर्मसु ।

यत्रोपगीयते नित्यं देव-देवो जनार्दनः ॥ 32॥

दुरापा–प्राप्त करने में अति कठिन; हि-अवश्य; अल्प-तपसः-जो आध्यात्मिक जीवन में उन्नत न हो; सेवा–सेवा; वैकुण्ठ-वर्मसु–वैकुण्ठ लौटने वाले व्यक्तियों को; यत्र-जहाँ; उपगीयते-पूजित होते हैं; नित्यम्-सदा; देव-देवः–भगवान्, देवों के देव; जनार्दनः-भगवान् कृष्ण।

अनुवाद

"जिनकी तपस्या बहुत कम है, वे भगवद्धाम वापस जाने के मार्ग पर आगे बढ़ते हुए शुद्ध भक्तों की सेवा शायद ही प्राप्त कर सकते हैं। शुद्ध भक्त उन भगवान् की महिमा के गायन में अपना शत-प्रतिशत समय लगाते हैं, जो देवताओं के स्वामी हैं और सारे जीवों के नियन्ता हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (3.7.20) से लिया गया है। महान् भगवद्भक्त मैत्रेय ऋषि से वार्ता करते हुए विदुर ने इस श्लोक को कहा था।

पुरी, भारती-गोसाञि, स्वरूप, नित्यानन्द ।

जगदानन्द, मुकुन्दादि यत भक्त-वृन्द ॥ 33 ॥

पुरी-परमानन्द पुरी; भारती–ब्रह्मानन्द भारती; गोसाञि-गुरु के स्तर पर; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; जगदानन्द-जगदानन्द; मुकुन्द-मुकुन्द; आदि तथा अन्य; ग्रत–सभी; भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त।

अनुवाद

उस समय महाप्रभु के समक्ष परमानन्द पुरी, ब्रह्मानन्द भारती गोसांई, स्वरूप दामोदर गोसांई, नित्यानन्द प्रभु, जगदानन्द, मुकुन्द तथा अन्य भक्त उपस्थित थे।

चारि गोसाञिर कैल राय चरण वन्दन ।

यथा-योग्य सब भक्तेर करिल मिलन ॥ 34॥

चारि गोसाञिर-चारों गोसांइयों का; कैल–किया; राय-रामानन्द राय ने; चरण वन्दन–चरणवन्दन; यथा-योग्य-उचित रूप से; सब-सब; भक्तेर-भक्तों से; करिल-किया; मिलन-मिलन।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने सभी भक्तों को, विशेषकर चारों गुरुओं को नमस्कार किया और वे अन्य सभी भक्तों से यथायोग्य रूप से मिले।

तात्पर्य

इस श्लोक में जिन चार गुरुओं का उल्लेख है, वे हैं परमानन्द पुरी, ब्रह्मानन्द भारती, स्वरूप दामोदर तथा नित्यानन्द प्रभु।

प्रभु कहे,—राय, देखिले कमल-नयन? ।

राय कहे,—एबे याइ पाब दरशन ॥ 35॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; राय-मेरे प्रिय रामानन्द राय; देखिले-क्या तुमने देखा है; कमल-नयन–कमलनयन भगवान जगन्नाथ को; राय कहे-रामानन्द राय ने कहा; एबे याइ-अब मैं जाऊँगा; पाब दरशन-मैं मन्दिर में दर्शन करूँगा।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से पूछा, "क्या तुमने कमल जैसे नेत्रों वाले भगवान जगन्नाथ के मन्दिर का दर्शन किया है?" रामानन्द राय ने कहा, "अब मैं मन्दिर में दर्शन करने जाऊँगा।"

प्रभु कहे,—राय, तुमि कि कार्य करिले? ।

ईश्वरे ना देखि' केने आगे एथा आइले? ॥ 36॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; राय-मेरे प्रिय रामानन्द राय; तुमि-तुमने; कि कार्य-कैसा काम; करिले-किया है; ईश्वरे-पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; ना देखि'–देखे बिना; केने-क्यों; आगे-पहले; एथा–यहाँ; आइले-तुम आये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मेरे प्रिय राय, तुमने क्या कर दिया? तुम पहले जगन्नाथजी का दर्शन करने जाते और तब यहाँ आते ? तुम पहले यहाँ पर क्यों आये हो?"

राय कहे, चरण—रथ, हृदय—सारथि ।

याहाँ लञा याय, ताहाँ याय जीव-रथी ॥ 37॥

राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; चरण-पैर; रथ-रथ; हृदय-हृदय; सारथि-सारथी; याहाँ–जहाँ कहीं; लञा–लेकर; याय-जाता है; ताहाँ-वहाँ; याय-जाता है; जीव-रथी-रथ पर बैठा जीव।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "चरण रथ के तुल्य हैं, और हृदय रथ चलाने वाले सारथी के समान है। हृदय जीव को जहाँ भी ले जाता है, जीव को वहीं जाना पड़ता है।"

तात्पर्य

भगवद्गीता (18.61) में कृष्ण बतलाते हैं :

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

“हे अर्जुन, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हर एक के हृदय में स्थित हैं और उन सारे जीवों को घुमा रहे हैं, जो भौतिक शक्ति से बने यंत्र पर सवार हैं।”

इस तरह जीव भौतिक प्रकृति द्वारा प्रदत्त रथ (शरीर) पर सवार होकर इस ब्रह्माण्ड के भीतर घूम रहा है। कठ उपनिषद् (1.3.3,4) में भी ऐसी ही व्याख्या हुई है :

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मन: प्रग्रहमेव च ॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥

“यहाँ कहा गया है कि प्राणी भौतिक प्रकृति द्वारा प्रदत्त शरीर रूपी रथ में सवार यात्री है और बुद्धि रथ को चलाने वाली (सारथी) है। मन घोड़ों को नियंत्रित करने वाली लगाम है और इन्द्रियाँ घोड़े हैं। इस तरह आत्मा भौतिक संसार का झूठा भोक्ता है।”

जो व्यक्ति कृष्णभावना में उन्नत है, वह मन तथा बुद्धि पर नियन्त्रण रख सकता है। दूसरे शब्दों में, वह घोड़ों (इन्द्रियों) पर नियन्त्रण रख सकता है, भले ही घोड़े कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों। जिस व्यक्ति का अपने मन और बुद्धि द्वारा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रहता है, वह आसानी से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् या विष्णु तक पहुँच सकता है, जो जीवन के परम लक्ष्य हैं। तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। जो वास्तव में उन्नत हैं, वे अपने परम गन्तव्य भगवान् विष्णु के पास पहुँचते हैं। ऐसे लोग भगवान् विष्णु की बहिरंगा शक्ति अर्थात् भौतिक जगत् द्वारा कभी मोहित नहीं होते।

आमि कि करिब, मन इहाँ लञा आइल।

जगन्नाथ-दरशने विचार ना कैल ॥ 38॥

आमि-मैं; कि-क्या; करिब–करूँ; मन-मेरा मन; इहाँ–यहाँ; लञाले; आइल-आया; जगन्नाथ-दरशने–भगवान् जगन्नाथ के दर्शनार्थ; विचार-विचार; ना-नहीं; कैल–किया।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय कहते गये, "मैं क्या करूँ? मेरा मन मुझे यहाँ ले आया। मैं पहले जगन्नाथजी के मन्दिर जाने की बात सोच ही न सका।"

प्रभु कहे,—शीघ्र गिया कर दरशन ।

ऐछे घर याइ' कर कुटुम्ब मिलन ॥39॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; शीघ्र गिया-शीघ्र जाकर; कर दरशन-भगवान जगन्नाथ के दर्शन करो; ऐछे—इसी प्रकार; घर याइ'-घर जाकर; कर-करो; कुटुम्ब-परिवार से; मिलन–मिलन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने परामर्श दिया, "भगवान् का दर्शन करने तुरन्त जगन्नाथ मन्दिर में जाओ। तब तुम घर जाकर अपने परिवार वालों से मिलो।"

प्रभु आज्ञा पाञा राय चलिला दरशने ।

रायेर प्रेम-भक्ति-रीति बुझे कोन्जने ॥ 40॥

प्रभु आज्ञा–महाप्रभु की आज्ञा; पाञा-पाकर; राय-रामानन्द राय; चलिला–चले गये; दरशने- भगवान जगन्नाथ के दर्शन करने; रायेर-रामानन्द राय के प्रेम-भक्ति-कृष्ण-प्रेम के आवेश की; रीति–प्रक्रिया; बुझे-समझ सकता है; कोन्जने-कौन व्यक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा पाकर रामानन्द राय शीघ्रतापूर्वक जगन्नाथ मन्दिर गये। भला रामानन्द राय की भक्ति को कौन समझ सकता है?

त्रे आसि' राजा सार्वभौमे बोलाइला ।

सार्वभौमे नमस्करि' ताँहारे पुछिला ॥41॥

क्षेत्रे-जगन्नाथ पुरी; आसि'–आकर; राजा-राजा; सार्वभौमे-सार्वभौम भट्टाचार्य को; बोलाइला–बुलाया; सार्वभौमे-सार्वभौम भट्टाचार्य को; नमस्करि'-नमस्कार करके; ताँहारे पुछिला–उनसे पूछा।

अनुवाद

जब राजा प्रतापरुद्र लौटकर जगन्नाथ पुरी आये, तो उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य को बुलवाया। जब भट्टाचार्य राजा से भेंट करने गये, तो राजा ने उन्हें नमस्कार किया और उनसे पूछा।

मोर लागि' प्रभु-पदे कैले निवेदन? ।

सार्वभौम कहे,—कैनु अनेक यतन ॥42॥

मोर लागि'-मेरी ओर से; प्रभु-पदे-महाप्रभु के चरणकमलों पर; कैले निवेदन-आपने निवेदन किया है; सार्वभौम कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; कैनु-मैंने किए; अनेक यतन–अनेक प्रयास।

अनुवाद

राजा ने पूछा, "क्या आपने महाप्रभु के समक्ष मेरा निवेदन प्रस्तुत किया?" सार्वभौम ने उत्तर दिया, "हाँ, मैंने भरसक प्रयत्न किया है।"

तथापि ना करे तेंह राज-दरशन ।

क्षेत्र छाड़ि' याबेन पुनः यदि करि निवेदन ॥43॥

तथापि तथापि; ना करे–नहीं करते; तेंह-वे; राज-दरशन-राजा से भेंट; क्षेत्र छाड़ि'-जगन्नाथ क्षेत्र को छोड़कर; याबेन–वे जायेंगे; पुनः–दोबारा; यदि-यदि; करि निवेदन-मैं निवेदन करूँ।

अनुवाद

"मेरे अथक प्रयास के बावजूद भी महाप्रभु राजा से मिलने के लिए राजी नहीं हैं। उन्होंने कहा कि यदि उनसे फिर से पूछा गया, तो वे जगन्नाथ पुरी छोड़कर अन्यत्र चले जायेंगे।"

शुनिया राजार मने दुःख उपजिल ।

विषाद करिया किछु कहिते लागिल ॥44॥

शुनिया-सुनकर; राजार-राजा के; मने-मन में; दुःख-दुःख; उपजिल-उठा; विषाद-शोक; करिया-करके; किछु-कुछ; कहिते-कहने; लागिल-लगे।

अनुवाद

यह सुनकर राजा अत्यन्त दुःखी हुए और शोक करते हुए इस प्रकार बोले।

पापी नीच उद्धारिते ताँर अवतार।

जगाइ माधाइ तेंह करिला उद्धार॥ 45॥

पापी-पापी; नीच-नीच; उद्धारिते-उद्धार करने के लिए; ताँर–उनका; अवतार-अवतार; जगाइ-जगाइ; माधाइ–माधाइ; तेंह-उन्होंने; करिला उद्धार-उद्धार किया।

अनुवाद

राजा ने कहा : "श्री चैतन्य महाप्रभु सभी प्रकार के पापी एवं निम्न पुरुषों का उद्धार करने के लिए ही अवतरित हुए हैं। फलस्वरूप उन्होंने जगाइ तथा माधाइ जैसे पापियों का उद्धार किया है।"

प्रतापरुद्र छाड़ि' करिबे जगलिस्तार।

एइ प्रतिज्ञा करि' करियाछेन अवतार?॥ 46॥

प्रतापरुद्र छाड़ि'-प्रतापरूद्र के अतिरिक्त; करिबे–वे करेंगे; जगत्-सारे संसार का; निस्तार-उद्धार; एइ प्रतिज्ञा–यह प्रतिज्ञा; करि'-करके; करियाछेन–लिया है; अवतार-अवतार।

अनुवाद

"हाय, क्या श्री चैतन्य महाप्रभु महाराज प्रतापरुद्र नामक राजा के अतिरिक्त अन्य सभी पापियों के ही उद्धार के लिए अवतरित हुए हैं?"

तात्पर्य

श्री नरोत्तम दास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु के उद्देश्य का वर्णन इस प्रकार किया है : पतित-पावन-हेतु तव अवतार / मो-सम पतित प्रभु ना पाइबे आर। यदि श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतार पापियों का उद्धार करने के लिए हुआ है, तो जो सबसे बड़ा पापी है और निम्न कुल में उत्पन्न हुआ है, उस पर महाप्रभु पहले ध्यान देते हैं। महाराज प्रतापरुद्र अपने आपको सबसे पतित जीव मानते थे, क्योंकि उन्हें निरन्तर भौतिक बातों में लगे रहना पड़ता था और भौतिक लाभों

का भोग करना होता था। श्री चैतन्य महाप्रभु का कार्य ही था सर्वाधिक पतित का उद्धार करना। तो फिर उन्होंने राजा का उद्धार करने से क्यों मना किया? जो मनुष्य जितना अधिक पतित होता है, उसे महाप्रभु द्वारा उद्धार किये जाने का उतना ही अधिक अधिकार होता है, बशर्ते कि वह महाप्रभु की शरण ग्रहण कर ले। महाराज प्रतापरुद्र पूर्णरूपेण शरणागत जीव थे, अतएव महाप्रभु उन्हें इस आधार पर मना नहीं कर सकते थे कि वे सांसारिक धनी व्यक्ति हैं।

अदर्शनीयानपि नीच-जातीन्

संवीक्षते हन्त तथापि नो माम् ।

मदेक-वर्णं कृपयिष्यतीति

निर्णीय किं सोऽवततार देवः ॥47॥

अदर्शनीयान्–जो देखने के योग्य न हो; अपि-यद्यपि; नीच-जातीन्-नीच जाति के लोग; संवीक्षते-अपनी दयापूर्ण दृष्टि डालते हैं; हन्त-खेद है; तथा अपि-फिर भी; न उ-नहीं; माम्-मुझ पर; मत्-मुझे; एक–अकेले; वर्जम्-त्यागकर; कृपयिष्यति-वे अपनी कृपा करेंगे; इति-इस प्रकार; निर्णीय--यह निर्णय लेकर; किम्-क्या; सः-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; अवततार–अवतार लिया है; देवः-भगवान्।

अनुवाद

"हाय! क्या श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह निर्णय लेकर अवतार लिया है कि वे मेरे अतिरिक्त अन्य सबका उद्धार करेंगे? वे अपनी कृपादृष्टि ऐसे अनेक निम्न जाति के व्यक्तियों पर डालते हैं, जिन्हें देखना भी वर्जित है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्री चैतन्य-चन्द्रोदय नाटक (8.28) से लिया गया है।

ताँर प्रतिज्ञा—मोरे ना करिबे दरशन ।

मोर प्रतिज्ञा—ताँहा विना छाड़िब जीवन ॥48॥

ताँर प्रतिज्ञा-उनकी प्रतिज्ञाः मोरे-मेरा; ना-नहीं; करिबे-करेंगे; दरशन-दर्शन; मोर प्रतिज्ञा–मेरी प्रतिज्ञा; ताँहा विना-उनके बिना; छाड़िब-मैं त्याग दूँगा; जीवन-जीवन।

अनुवाद

महाराज प्रतापरुद्र ने आगे कहा, "यदि श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुझे न देखने का संकल्प ले रखा है, तो मैं भी कृतसंकल्प हूँ कि यदि मैं उनका दर्शन नहीं पाता, तो मैं अपना जीवन त्याग दूँगा।"

तात्पर्य

महाराज प्रतापरुद्र जैसे संकल्प वाला भक्त कृष्णभावनामृत में आगे बढ़ने में निश्चय ही विजयी होगा। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (9.14) में श्रीकृष्ण करते हैं :

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।

नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

"ये महात्मा सदैव मेरे यश को गाते हुए, दृढ़ संकल्प के साथ प्रयत्न करते हुए, मेरे समक्ष नतमस्तक होकर निरन्तर भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करते हैं।"

ये उस महात्मा के लक्षण हैं, जो पूर्णरूपेण कृष्णभावना में भगवान् की सेवा में लगा रहता है। इस प्रकार महाराज प्रतापरुद्र का संकल्प अत्यन्त प्रशंसनीय है और दृढव्रत कहलाता है। इसी दृढ़ संकल्प के कारण वे भगवान् चैतन्य की प्रत्यक्ष कृपा प्राप्त करने में सफल हुए।

यदि सेइ महाप्रभुर ना पाइ कृपा-धन ।

किबा राज्य, किबा देह,—सब अकारण ॥49॥

यदि-यदि; सेइ-उन; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; ना-नहीं; पाइ-मैं पाता; कृपा-धन-कृपा धन; किबा राज्य–मेरे राज्य का क्या मूल्य; किबा देह-इस देह का क्या मूल्य; सब अकारण–प्रत्येक वस्तु निरर्थक।

अनुवाद

"यदि मुझे श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त नहीं होती, तो मेरा शरीर तथा मेरा राज्य निश्चित रूप से व्यर्थ हैं।"

तात्पर्य

यह दृढव्रत का सर्वोत्तम उदाहरण है। जिसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा प्राप्त नहीं हो पाती, उसका जीवन व्यर्थ है। श्रीमद्भागवत (5.5.5) में कहा गया है- पराभवस्तावदबोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम्। यदि कोई आध्यात्मिक जीवन के बारे में जिज्ञासा नहीं करता, तो उसका सब कुछ व्यर्थ है। आध्यात्मिक जिज्ञासा के बिना हमारा श्रम तथा हमारे श्रम का लक्ष्य समय के अपव्यय मात्र हैं।

एत शुनि' सार्वभौम हइला चिन्तित ।

राजार अनुराग देखि' हइला विस्मित ॥50॥

एत शुनि'—यह सुनकर; सार्वभौम-सार्वभौम; हइला–हो गये; चिन्तित-अत्यन्त चिन्तित; राजार-राजा का; अनुराग–अनुराग; देखि'–देखकर; हइला-हो गये; विस्मित–चकित।

अनुवाद

राजा प्रतापरुद्र के संकल्प को सुनकर सार्वभौम चिन्तित हो उठे। वे राजा के संकल्प को देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये।

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य विस्मित थे, क्योंकि भौतिक भोग में लिप्त रहने वाले दुनियावी व्यक्ति के लिए ऐसा संकल्प कर पाना सम्भव नहीं है। राजा को भौतिक आनन्द भोगने के लिए प्रचुर अवसर प्राप्त था, किन्तु वे सोच रहे थे कि यदि उन्हें महाप्रभु के दर्शन नहीं होते, तो सब कुछ व्यर्थ है। यह विस्मित होने के लिए पर्याप्त कारण है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि भक्ति को अहैतुकी होना चाहिए। कोई भी भौतिक अवरोध वास्तव में भक्ति की प्रगति को नहीं रोक सकता, यह भक्ति चाहे सामान्य व्यक्ति द्वारा सम्पन्न हो, चाहे राजा द्वारा। प्रत्येक दशा में भगवद्भक्ति सदैव पूर्ण होती है, चाहे भक्त किसी भी भौतिक पद पर हो। भक्ति इतनी उच्च होती है कि किसी भी पद पर रहते हुए इसे सम्पन्न की जा सकती है। हाँ, मनुष्य को दृढव्रत होना चाहिए।

भट्टाचार्य कहे—देव ना कर विषाद।

तोमारे प्रभुर अवश्य हइबे प्रसाद ॥51॥

भट्टाचार्य कहे-भट्टाचार्य ने कहा; देव-हे राजा; ना कर विषाद-शोक न करें; तोमारे-आपको; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; अवश्य-अवश्य; हइबे-होगी; प्रसाद-कृपा।

अनुवाद

अन्त में सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "हे राजन्! आप चिन्ता न करें। आपके दृढ़ संकल्प के कारण आपको श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा अवश्य प्राप्त होगी।"

तात्पर्य

राजा प्रतापरुद्र के दृढ़ संकल्प के कारण भट्टाचार्य ने भविष्यवाणी की कि राजा को अवश्य ही महाप्रभु की कृपा प्राप्त होगी। जैसाकि चैतन्य-चरितामृत में अन्यत्र (मध्य 19.151 में) कहा गया है-गुरु-कृष्ण प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज– "गुरु तथा कृष्ण की कृपा से मनुष्य को भक्ति का बीज प्राप्त होता है।" भट्टाचार्य राजा प्रतापरुद्र के गुरु थे और उन्होंने यह आशीर्वाद दिया कि महाप्रभु राजा पर कृपालु होंगे। गुरु तथा कृष्ण की कृपा मिलकर कृष्णभावनामृत में लगे भक्त को सफलता दिलाती है। इसकी पुष्टि वेदों से होती है :

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

"जिन महात्माओं की भगवान् तथा गुरु दोनों में अटूट श्रद्धा होती है, उन्हीं को सारा वैदिक ज्ञान स्वतः प्रकट होता है।" (श्वेताश्वतर उपनिषद् 6.23)

महाराज प्रतापरुद्र को भट्टाचार्य पर अटूट श्रद्धा थी, क्योंकि भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु को भगवान् घोषित कर दिया था। भट्टाचार्य पर अपने गुरु के रूप में अटूट श्रद्धा होने के कारण राजा प्रतापरुद्र ने तुरन्त ही श्री चैतन्य महाप्रभु को भगवान् के रूप में स्वीकार कर लिया और श्री चैतन्य महाप्रभु की मन ही मन पूजा करनी शुरू कर दी। भक्ति की यही विधि है। भगवद्गीता (9.34) में भगवान् कृष्ण के अनुसार :

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ।।

“तुम अपने मन को सदैव मेरे चिन्तन में लगाओ, मेरे भक्त बनो, मुझे नमस्कार करो और मेरी पूजा करो। इस तरह मुझमें पूर्णतया मग्न होने पर तुम मेरे पास अवश्य आओगे।”

यह विधि अत्यन्त सरल है। बस, गुरु द्वारा उसे इसका दृढ़ विश्वास प्राप्त होना चाहिए कि कृष्ण ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। ऐसा निश्चय कर लेने पर मनुष्य कृष्ण का चिन्तन, उनका कीर्तन तथा उनकी महिमा का गायन करके आगे उन्नति कर सकता है। इसमें सन्देह नहीं है कि ऐसे पूर्णतया शरणागत भक्त को भगवान् कृष्ण का आशीर्वाद प्राप्त होगा। श्रील सार्वभौम भट्टाचार्य इसकी और अधिक व्याख्या करते हैं।

तेंह—प्रेमाधीन, तोमार प्रेम—गाढ़तर ।

अवश्य करिबेन कृपा तोमार उपर ॥52॥

तेंह-वे (श्री चैतन्य महाप्रभु); प्रेम-अधीन–प्रेम के अधीन; तोमार प्रेम-आपका प्रेम; गाढ़-तर-बहुत गहन; अवश्य-अवश्य; करिबेन कृपा-वे कृपा करेंगे; तोमार उपर-आपके ऊपर।

अनुवाद

जब भट्टाचार्य ने राजा के दृढ़ संकल्प को जान लिया, तो उन्होंने घोषित किया, “केवल शुद्ध प्रेम से भगवान् तक पहुँचा जा सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति आपका प्रेम अत्यन्त गहरा है, अतएव वे आप पर अवश्य ही कृपा करेंगे।”

तात्पर्य

ऐसा संकल्प पहली योग्यता है। इसकी पुष्टि रूप गोस्वामी ने उपदेशामृत (3) में की है-उत्साहान् निश्चयाद् धैर्यात्। मनुष्य में प्रथम तो दृढ़ संकल्प, दृढ़ विश्वास होना चाहिए। मनुष्य को भक्ति में लगने पर यह दृढ़ संकल्प बनाये रखना चाहिए। तभी कृष्ण उसकी सेवा से प्रसन्न होंगे। गुरु तो भक्ति का मार्ग दिखला सकता है। यदि शिष्य इन सिद्धान्तों का पालन बिना विचलित हुए। दृढ़तापूर्वक करता है, तो उसे कृष्ण-कृपा अवश्य प्राप्त होगी। इसकी पुष्टि शास्त्रों से होती है।

तथापि कहिये आमि एक उपाय ।

एइ उपाय कर’ प्रभु देखिबे याहाय ॥53॥

तथापि-फिर भी; कहिये-कहता हूँ; आमि-मैं; एक उपाय-एक उपाय; एइ उपाय-यह उपाय; कर'-करने का प्रयास करो; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; देखिबे-आपसे मिलेंगे; याहाय-उससे।

अनुवाद

तब सार्वभौम ने सुझाया, "एक उपाय है, जिससे आप उनका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।"

रथ-यात्रा-दिने प्रभु सब भक्त लञा ।

रथ-आगे नृत्य करिबेन प्रेमाविष्ट हञा ॥54॥

रथ-यात्रा-दिने-रथयात्रा के दिन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सब-सब; भक्त-भक्तों को; लञा-अपने साथ लेकर; रथ-रथ; आगे–के आगे; नृत्य करिबेन-नृत्य करेंगे; प्रेम-आविष्ट हञा–प्रेमावेश में आकर।

अनुवाद

"रथयात्रा के दिन श्री चैतन्य महाप्रभु बड़े ही भावावेश में अर्चाविग्रह के समक्ष नृत्य करेंगे।"

प्रेमावेशे पुष्पोद्याने करिबेन प्रवेश ।

सेइ-काले एकले तुमि छाड़ि' राज-वेश ॥55॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; पुष्प-उद्याने-गुण्डीचा उद्यान में जहाँ भगवान् रहते हैं; करिबेन प्रवेश-प्रवेश करेंगे; सेइ-काले-उस समय; एकले-अकेले; तुमि-आप; छाड़ि-त्यागकर; राज-वेश-राजसी वेशभूषा।

अनुवाद

उस रथयात्रा के दिन भगवान जगन्नाथ के समक्ष नृत्य करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु गुण्डीचा उद्यान में जायेंगे। उस समय आप अपना राजसी वेश उतारकर अकेले ही वहाँ जायें।

'कृष्ण-रास-पञ्चाध्याय' करिते पठन ।

एकले याइ' महाप्रभुर धरिबे चरण ॥56॥

कृष्ण-रास-पञ्च-अध्याय-श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के पाँच अध्याय जिनमें भगवान् कृष्ण की रासनृत्य की लीलाओं का वर्णन है; करिते पठन-पढ़ना; एकले याइ'-अकेले जाकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; धरिबे चरण-चरणकमल पकड़ लेना।

अनुवाद

"जब श्री चैतन्य महाप्रभु गुण्डीचा उद्यान में प्रवेश करें, तभी आप भी वहाँ जायें और श्रीमद्भागवत् के उन पाँच अध्यायों को पढ़े, जिनमें गोपियों के साथ कृष्ण के रासनृत्य का वर्णन है। इस तरह आप महाप्रभु के चरणकमलों को पकड़ सकते हैं।"

बाह्य-ज्ञान नाहि, से-काले कृष्ण-नाम शुनि, ।

आलिङ्गन करिबेन तोमाय 'वैष्णव' 'जानि' ॥57॥

बाह्य-ज्ञान नाहि-बाहरी चेतना से रहित; से-काले-उस समय; कृष्ण-नाम शुनि'–भगवान् कृष्ण का पावन नाम सुनने से; आलिङ्गन करिबेन-वे गले लगा लेंगे; तोमाय-आपको; वैष्णव जानि'-वैष्णव समझकर।

अनुवाद

"प्रेमाविष्ट होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु को बाहरी सुधि-बुधि नहीं रहेगी। उसी समय आप श्रीमद्भागवत के वे अध्याय सुनाना शुरू करें। तब वे आपको शुद्ध वैष्णव जानकर गले लगा लेंगे।

तात्पर्य

एक वैष्णव दूसरे वैष्णव को परम सत्य के साक्षात्कार की ओर अग्रसर कराने में सहायक बनने के लिए सदैव तत्पर रहता है। सार्वभौम भट्टाचार्य जानते थे कि राजा शुद्ध वैष्णव है। राजा श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में निरन्तर सोचते रहते हैं, इसीलिए महाप्रभु के निकट पहुँचने में भट्टाचार्य उनकी सहायता करना चाहते थे। एक वैष्णव सदैव दयालु होता है, और जब वह किसी भावी भक्त को दृढव्रत देखता है, तो वह विशेष रूप से दयालु हो जाता है। फलस्वरूप भट्टाचार्य राजा की सहायता करने के लिए प्रस्तुत थे।

रामानन्द राय, आजि तोमार प्रेम-गुण ।

प्रभु-आगे कहिते प्रभुर फिरि' गेल मन ॥58॥

रामानन्द राय-रामानन्द राय; आजि-आज; तोमार-आपके; प्रेम-गुण-प्रेम के गुण; प्रभु-आगे-महाप्रभु के समक्ष; कहिते-जब उन्होंने कहा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; फिरि' गेल-परिवर्तन हो गया; मन-मन।

अनुवाद

"रामानन्द राय ने उनसे आपके प्रेम का जो विवरण दिया है, उससे महाप्रभु ने पहले ही अपना मन बदल लिया है।"

तात्पर्य

पहले महाप्रभु राजा को मिलना ही नहीं चाहते थे, किन्तु भट्टाचार्य तथा रामानन्द राय के सच्चे प्रयास के फलस्वरूप उनका मन (विचार) बदल गया। महाप्रभु ने पहले ही घोषित कर दिया था कि भक्तों की सेवा करने के कारण राजा पर कृष्ण कृपालु होंगे। यही विधि है कृष्णभावनामृत में प्रगति करने की। सर्वप्रथम भक्त की कृपा होनी चाहिए, फिर तो कृष्ण-कृपा अवतरित होगी ही। यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो / यस्याप्रसादान् न गतिः कुतोऽपि। अतएव हमारा पहला कर्तव्य यह है कि हम गुरु को तुष्ट करें, जो भगवान् की कृपा की व्यवस्था करता है। सामान्य व्यक्ति को पहले वह गुरु या भक्त की सेवा करनी शुरु करनी चाहिए। फिर भक्त की कृपा से भगवान् तुष्ट होंगे। भक्त के चरणकमलों की धूल को सिर पर धारण किये बिना उन्नति की आशा करना व्यर्थ है। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (7.5.32) में प्रह्लाद महाराज के कथन से हो जाती है :

नैषां मतिस्तावद् उरुक्रमाङ्घ्रिं

स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।

महीयसां पादरजोऽभिषेकं

निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥

शुद्ध भक्त के पास गये बिना मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नहीं समझ सकता। महाराज प्रतापरुद्र ने रामानन्द राय तथा सार्वभौम भट्टाचार्य दोनों की पूजा की। इस तरह उन्होंने शुद्ध भक्तों के चरणकमलों का स्पर्श किया, जिससे वे श्री चैतन्य महाप्रभु के निकट पहुँचने में समर्थ हो सके।

शुनि' गजपतिर मने सुख उपजिल ।

प्रभुरे मिलिते एइ मन्त्रणा दृढ़ कैल ॥59॥

शुनि'–सुनकर; गजपतिर-राजा प्रतापरुद्र के; मने-मन में; सुख-हर्ष; उपजिल-उपजा; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; मिलिते-मिलने के लिए; एइ–यह; मन्त्रणा-सुझाव; दृढ़ कैल-दृढ़ता से पालन करने का निर्णय लिया।

अनुवाद

महाराज प्रतापरुद्र ने भट्टाचार्य का परामर्श मान लिया और उनके आदेशों का पालन करने का दृढ़ निश्चय किया। इस तरह उन्हें दिव्य सुख का अनुभव हुआ।

स्नान-यात्रा कबे हबे पुछिल भट्टरे ।

भट्ट कहे,—तिन दिन आछये यात्रारे ॥ 60॥

स्नान-यात्रा-भगवान जगन्नाथ का स्नानोत्सव; कब-कब; हबे-होगा; पुछिल-उन्होंने पूछा; भट्टरे-भट्टाचार्य से; भट्ट कहे-भट्टाचार्य ने कहा; तिन दिन-तीन दिन; आछये-अभी बाकी हैं; यात्रारे-उत्सव में।

अनुवाद

जब राजा ने भट्टाचार्य से पूछा कि भगवान जगन्नाथ को नहलाने का उत्सव (स्नान-यात्रा) कब होगा, तो भट्टाचार्य ने बतलाया कि इस उत्सव के होने में केवल तीन दिन शेष हैं।

राजारे प्रबोधिया भट्ट गेला निजालय ।

स्नान-यात्रा-दिने प्रभुर आनन्द हृदय ॥ 61॥

राजारे-राजा को प्रबोधिया-प्रोत्साहन देकर; भट्ट–सार्वभौम भट्टाचार्य; गेला-चल गये; निज-आलय-अपने घर को; स्नान-यात्रा-दिने स्नान यात्रा के दिन; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आनन्द-आनन्द से भर गया; हृदय-हृदय।

अनुवाद

इस तरह राजा को प्रोत्साहित करके सार्वभौम भट्टाचार्य अपने घर चले गये। भगवान् जगन्नाथ की स्नान-यात्रा के दिन श्री चैतन्य महाप्रभु हृदय से परम प्रसन्न थे।

स्नान-यात्रा देखि' प्रभुर हैल बड़ सुख ।

ईश्वरेर 'अनवसरे' पाइल बड़ दुःख ॥62॥

स्नान-यात्रा- भगवान जगन्नाथ का स्नानोत्सव; देखि'-देखकर; प्रभुर- श्री चैतन्य महाप्रभु को; हैल-हुआ; बड़-बहुत; सुख-आनन्द; ईश्वरेर–भगवान् का; अनवसरे-विश्राम की लीला के दौरान; पाइल-मिला; बड़-अत्यन्त; दुःख-दुःख।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ की स्नान-यात्रा देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। किन्तु जब उत्सव के बाद भगवान जगन्नाथ विश्राम करने चले गये, तब भगवान् चैतन्य अत्यन्त दुःखी हो गये, क्योंकि वे उनका दर्शन नहीं पा सके।

तात्पर्य

श्री जगन्नाथ की स्नान-यात्रा रथयात्रा महोत्सव से एक पखवाड़ा पहले होती है। उसके बाद भगवान् जगन्नाथ के अर्चाविग्रह को फिर से रंगा जाता है, जिसमें लगभग एक पखवाड़ा लग जाता है। यह अवधि अनवसर कहलाती है। ऐसे अनेक लोग होते हैं, जो जगन्नाथजी के दर्शन हेतु नित्यप्रति मन्दिर में जाते हैं। उनके लिए स्नान-यात्रा के बाद की यह विश्रामावस्था (अनवसर) असह्य हो उठती है। श्री चैतन्य महाप्रभु को मन्दिर में से जगन्नाथजी की अनुपस्थिति अत्यन्त खलने वाली लगी।

गोपी-भावे विरहे प्रभु व्याकुल हञा ।

आलालनाथे गेला प्रभु सबारे छाड़िया ॥ 63 ॥

गोपी-भावे-गोपीयों के भाव में; विरहे-विरह में प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; व्याकुल-व्याकुल; हञा–होकर; आलालनाथे-आलालनाथ; गेला-चले गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सबारे सबको; छाड़िया-छोड़कर।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ से विलग होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु को वैसी ही व्याकुलता का अनुभव हुआ, जैसी कि कृष्ण के वियोग में गोपियों को हुई थी। ऐसी अवस्था में उन्होंने सबका संग छोड़ दिया और आलालनाथ चले गये।

पाछे प्रभुर निकट आइला भक्तगण ।

गौड़ हैते भक्त आइसे,—कैल निवेदन ॥64॥

पाछे-पीछे; प्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु के; निकट-निकट; आइला–आये; भक्त-गण-भक्त; गौड़ हैते-बंगाल से; भक्त-भक्त; आइसे–आये हैं; कैल निवेदन–निवेदन किया।

अनुवाद

भक्तगण महाप्रभु का पीछा करते-करते उनके समक्ष आये और उनसे पुरी लौट चलने के लिए अनुनय-विनय की। उन्होंने निवेदन किया कि बंगाल के भक्त पुरुषोत्तम-क्षेत्र में पधार रहे हैं।

सार्वभौम नीलाचले आइला प्रभु लञा ।

प्रभु आइला,—राजा-ठाञि कहिलेन गिया ॥65॥

सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; आइला–आये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु को; लञा–लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला–पहुँचे; राजा-ठाञि-राजा को; कहिलेन-कहो; गिया-जाने के बाद।

अनुवाद

इस तरह सार्वभौम भट्टाचार्य भगवान् चैतन्य को जगन्नाथ पुरी वापस ले आये। तब राजा प्रतापरुद्र के यहाँ जाकर उन्होंने महाप्रभु के आने की उन्हें जानकारी दी।

हेन-काले आइला तथा गोपीनाथाचार्य ।

राजाके आशीर्वाद करि' कहे,—शुन भट्टाचार्य ॥66॥

हेन-काले-उस समय; आइला–आये; तथा-वहाँ; गोपीनाथ-आचार्य–गोपीनाथ आचार्य; राजाके-राजा को; आशीर्वाद करि'-आशीर्वाद देकर; कहे-कहा; शुन भट्टाचार्य-मेरे प्रिय भट्टाचार्य, कृपया सुनो।

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य राजा प्रतापरुद्र के साथ थे, उसी समय गोपीनाथ आचार्य वहाँ आये। ब्राह्मण होने के नाते उन्होंने राजा को आशीर्वाद दिया और सार्वभौम भट्टाचार्य से इस प्रकार कहा।

गौड़ हैते वैष्णव आसितेछेन दुइ-शत ।

महाप्रभुर भक्त सब—महा-भागवत ॥ 67॥

गौड़ हैते-बंगाल से; वैष्णव-भक्त; आसितेछेन-आ रहे हैं; दुइ-शत-लगभग दो सौ की संख्या में; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-भक्त; सब-सब; महा-भागवत-अत्यन्त उन्नत भक्त।

अनुवाद

"लगभग दो सौ भक्त बंगाल से आ रहे हैं। वे सभी महाभागवत हैं और श्री चैतन्य महाप्रभु को विशेष रूप से समर्पित हैं।"

नरेन्द्रे आसिया सबे हैल विद्यमान ।

ताँ-सबारे चाहि वासा प्रसाद-समाधान ॥ 68॥

नरेन्द्रे-नरेन्द्र सरोवर के तट पर; आसिया-आकर; सबे–वे सब, हैल विद्यमान-रूके हैं; ताँ-सबारे उन सबके लिए; चाहि-मैं चाहता हूँ; वासा–निवासस्थान; प्रसाद-प्रसाद बाँटने के लिए; समाधान-व्यवस्था।

अनुवाद

"वे सभी नरेन्द्र सरोवर के तट पर आ चुके हैं और वहाँ प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि उनके रहने तथा प्रसाद की व्यवस्था हो जाए।"

तात्पर्य

नरेन्द्र नामक एक छोटा सरोवर है, जो आज भी जगन्नाथ पुरी में विद्यमान है, जहाँ चन्दन-यात्रा उत्सव मनाया जाता है। आज तक, जगन्नाथ मन्दिर की मुलाकात के लिए आने वाले सारे बंगाली भक्त पहले इसी सरोवर में स्नान करते हैं। वे मन्दिर में प्रवेश करने के पूर्व वहीं अपने हाथ-पाँव धोते हैं।

राजा कहे,—पड़िछाके आमि आज्ञा दिब ।

वासा आदि ये चाहिये,—पड़िछा सब दिब ॥ 69॥

राजा कहे-राजा ने कहा; पड़िछाके-सेवक को; आमि-मैं; आज्ञा दिब-आज्ञा दूँगा; वासा–निवासस्थान; आदि–तथा अन्य व्यवस्था; ये चाहिये-आपको जो कुछ चाहिए; पड़िछा-सेवक; सब-सबकुछ; दिब-देगा।

अनुवाद

राजा ने उत्तर दिया, "मैं मन्दिर के कर्मचारी को आज्ञा दिये देता हूँ। वह आपकी इच्छानुसार सबके लिए आवास तथा प्रसाद की व्यवस्था कर देगा।"

महाप्रभुर गण यत आइल गौड़ हैते ।

भट्टाचार्य, एके एके देखाह आमाते ॥ 70 ॥

महाप्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु के; गण–साथी; यत–सब; आइल-जो आये हैं; गौड़ हैते–बंगाल से; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; एके एके-एक एक करके; देखाह-कृपया दिखायें; आमाते-मुझे।

अनुवाद

"हे सार्वभौम भट्टाचार्य, कृपया मुझे बंगाल से आने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों को एक-एक करके दिखलाइये।"

भट्ट कहे,—अट्टालिकाय कर आरोहण ।

गोपीनाथ चिने सबारे, कराबे दरशन ॥ 71 ॥

भट्ट कहे-भट्टाचार्य ने कहा; अट्टालिकाय-महल की छत पर; कर आरोहण-जरा ऊपर आओ; गोपीनाथ-गोपीनाथ आचार्य; चिने-जानता है; सबारे-सबको; करावे दरशन-वह दिखाएगा।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने राजा से अनुरोध किया, "कृपया अपने महल की छत पर चढ़ जाएँ। गोपीनाथ आचार्य हर भक्त को जानते हैं। वे आपको उनकी पहचान करवा देंगे।"

आमि काहो नाहि चिनि, चिनिते मन हय ।

गोपीनाथाचार्य सबारे करा'बे परिचय ॥72॥

आमि-मैं; काहो-किसी को; नाहि-नहीं; चिनि-जानता; चिनिते मन हय–मैं जानना चाहता हूँ; गोपीनाथ-आचार्य-गोपीनाथ आचार्य; सबारे उन सबका; करा'बे परिचय–परिचय करवाएंगे।

अनुवाद

"वास्तव में मैं उनमें से किसी को नहीं पहचानता, यद्यपि उन्हें जानने की मेरी इच्छा है। चूँकि गोपीनाथ आचार्य उन सबको जानते हैं, अतएव वे उनका नाम आपको बता सकेंगे।"

एत बलि' तिन जन अट्टालिकाय चड़िल ।

हेन-काले वैष्णव सब निकटे आइल ॥73॥

एत बलि'-यह कहकर; तिन जन-तीनों व्यक्ति (राजा, गोपीनाथ आचार्य और सावभौम भट्टाचार्य); अट्टालिकाय-महल की छत पर; चड़िल-चढ़ गये; हेन-काले-इस समय; वैष्णव-वैष्णव भक्त; सब-सब; निकटे-निकट; आइल-आये।

अनुवाद

यह कहकर सार्वभौम भट्टाचार्य राजा तथा गोपीनाथ आचार्य के साथ महल के ऊपर चले गये। उसी समय बंगाल के सारे वैष्णव भक्त महल के निकट आ गये।

दामोदर-स्वरूप, गोविन्द,—दुइ जन ।

माला-प्रसाद लञा याय, याहाँ वैष्णव-गण ॥74॥

दामोदर-स्वरूप-स्वरूप दामोदर; गोविन्द-गोविन्द; दुइ जन-दो व्यक्ति; माला-प्रसाद-फूलों की मालाएँ तथा भगवान् जगन्नाथ का प्रसाद; लञा–लेकर; याय-गये; याहाँ-जहाँ; वैष्णव-गण-वैष्णव।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर तथा गोविन्द जगन्नाथजी का प्रसाद तथा फूलों की मालाएँ लेकर उस स्थान पर गये, जहाँ सारे वैष्णव खड़े थे।

प्रथमेते महाप्रभु पाठाइला दुँहारे ।

राजा कहे, एइ दुइ कोन्चिनाह आमारे ॥75 ॥

प्रथमेते-पहले; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; पाठाइला–भेजे; दुँहारे-दो व्यक्ति; राजा कहे-राजा ने कहा; एइ दुइ-ये दोनों; कोन्-कौन हैं; चिनाह-कृपया परिचय दो; आमारे-मुझे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन दोनों को पहले ही भेज दिया था। राजा ने पूछा, "ये दोनों कौन हैं? कृपया मुझे इनकी पहचान करायें।"

भट्टाचार्य कहे,—एइ स्वरूप-दामोदर ।

महाप्रभुर हय इँह द्वितीय कलेवर ॥ 76 ॥

भट्टाचार्य कहे-भट्टाचार्य ने कहा; एइ–यह महाशय; स्वरूप-दामोदर का नाम स्वरूप दामोदर है; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; हय-हैं; इँह-वह; द्वितीय-दूसरा; कलेवर–शरीर का विस्तार।

अनुवाद

श्री सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "ये स्वरूप दामोदर हैं, जो एक तरह से श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर के द्वितीय विस्तार रूप हैं।"

द्वितीय, गोविन्द—भृत्य, इहाँ दोंहा दिया ।

माला पाठाञाछेन प्रभु गौरव करिया ॥77॥

द्वितीय-दूसरे; गोविन्द गोविन्द है; भृत्य-निजी सेवक; इहाँ–यहाँ; दोंहा दिया-इन दोनों व्यक्तियों के माध्यम से; माला-पुष्प मालाएँ; पाठाञाछेन–भिजवाई हैं; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; गौरव करिया-अति सम्मानपूर्वक।

अनुवाद

"दूसरे व्यक्ति महाप्रभु का निजी सेवक गोविन्द है। महाप्रभु ने बंगाल के भक्तों का सम्मान करने के लिए इन दोनों के हाथों जगन्नाथजी का प्रसाद तथा मालाएँ भेजी हैं।"

आदौ माला अद्वैतेरे स्वरूप पराइल ।

पाछे गोविन्द द्वितीय माला आनि ताँरे दिल ॥78॥

आदौ-प्रारम्भ में; माला-एक माला; अद्वैतेरे-अद्वैत आचार्य को; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; पराइल-भेंट की; पाछे-बाद में; गोविन्द गोविन्द, महाप्रभु के निजी सेवक ने; द्वितीय दूसरी; माला-माला; आनि'–लाकर; ताँरे दिल-उनको दी।

अनुवाद

पहले स्वरूप दामोदर ने आगे बढ़कर अद्वैत आचार्य को माला पहनायी। इसके बाद गोविन्द ने आकर दूसरी माला अद्वैत आचार्य को पहनायी।

तबे गोविन्द दण्डवत्कैल आचार्येरे ।

ताँरे नाहि चिने आचार्य, पुछिल दामोदरे ॥79॥

तबे-उस समय; गोविन्द-गोविन्द; दण्डवत्-नमस्कार करने हेतु भूमि पर गिरकर दण्डवत्; कैल-किया; आचार्येरे-अद्वैत आचार्य को; ताँरे–उसको; नाहि-नहीं; चिने-पहचाना; आचार्य-अद्वैत आचार्य ने पुछिल-पूछा; दामोदरे-स्वरूप दामोदर को।

अनुवाद

जब गोविन्द ने भूमि पर गिरकर अद्वैत आचार्य को दण्डवत् प्रणाम किया, तो अद्वैत आचार्य ने स्वरूप दामोदर से उसकी पहचान के बारे में पूछताछ की, क्योंकि वे तब गोविंद को नहीं जानते थे।

दामोदर कहे,—इहार 'गोविन्द' नाम ।

ईश्वर-पुरीर सेवक अति गुणवान् ॥80॥

दामोदर कहे-दामोदर ने कहा; इहार-इसका; गोविन्द-गोविन्द; नाम-नाम; ईश्वर-पुरीर सेवक–ईश्वर पुरी का सेवक; अति गुणवान्-अत्यन्त गुणवान्।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने उन्हें बतलाया, "यह गोविन्द ईश्वर पुरी का सेवक था। वह अत्यन्त योग्य है।"

प्रभुर सेवा करिते पुरी आज्ञा दिल ।

अतएव प्रभु इँहाके निकटे राखिल ॥81॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; सेवा–सेवा; करिते-करने के लिए; पुरी-ईश्वर पुरी ने; आज्ञा दिल-आज्ञा दी; अतएव–इसलिए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; इँहाके-उसको; निकटे-अपने निकट; राखिल-रखा।

अनुवाद

“ईश्वर पुरी ने गोविन्द को आज्ञा दी कि वह श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा करे। अतएव महाप्रभु उसे अपने पास रखते हैं।”

राजा कहे,—याँरे माला दिल दुइ-जन ।

आश्चर्य तेज, बड़ महान्त,—कह कोन्जन? ॥82 ॥

राजा कहे-राजा ने पूछा; याँरे-जिस व्यक्ति को; माला-मालाएँ; दिल-दीं; दुइ-जन-स्वरूप दामोदर और गोविन्द ने; आश्चर्य तेज-शरीर की आश्चर्यजनक चमक; बड़ महान्त-बहुत बड़े भक्त; कह को जन-कृपया बताओ वे कौन हैं।

अनुवाद

राजा ने पूछा, “स्वरूप दामोदर तथा गोविन्द ने दोनों मालाएँ किसे पहनाईं? उनके शरीर का तेज इतना अधिक है कि वे अवश्य ही महान् भक्त होंगे। कृपया मुझे बतलायें कि वे कौन हैं?”

आचार्य कहे,—इँहार नाम अद्वैत आचार्य ।

महाप्रभुर मान्य-पात्र, सर्व-शिरोधार्य ॥83॥

आचार्य कहे-गोपीनाथ आचार्य ने कहा; इँहार नाम-इनका नाम; अद्वैत आचार्य-अद्वैत आचार्य; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; मान्य-पात्र-सम्माननीय; सर्व-शिरोधार्य–सर्वोच्च भक्त।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, “इनका नाम अद्वैत आचार्य है। इनका आदर श्री चैतन्य महाप्रभु भी करते हैं, अतएव वे सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं।”

श्रीवास-पण्डित ईंह, पण्डित-वक्रेश्वर ।

विद्यानिधि-आचार्य, इँह पण्डित-गदाधर ॥84॥

श्रीवास-पण्डित-श्रीवास पण्डित; इँह-ये; पण्डित-वक्रेश्वर–वक्रेश्वर पण्डित; विद्यानिधि-आचार्य–विद्यानिधि आचार्य; इँह-ये; पण्डित-गदाधर-गदाधर पण्डित।

अनुवाद

“ये श्रीवास पण्डित, वक्रेश्वर पण्डित, विद्यानिधि आचार्य तथा गदाधर पण्डित हैं।”

आचार्यरत्न इँह, पण्डित-पुरन्दर ।

गङ्गादास पण्डित इँह, पण्डित-शङ्कर ॥85॥

आचार्यरत्न–चन्द्रशेखर; इँह-यहाँ; पण्डित-पुरन्दर–पुरन्दर पण्डित; गङ्गादास पण्डित–गंगाधर पण्डित; इँह-यहाँ; पण्डित-शङ्कर-शंकर पण्डित।

अनुवाद

“ये रहे आचार्यरत्न, पुरन्दर पण्डित, गंगादास पंडित तथा शंकर पंडित।”

एइ मुरारि गुप्त, इँह पण्डित नारायण ।

हरिदास ठाकुर इँह भुवन-पावन ॥86॥

एइ-ये; मुरारि गुप्त-मुरारी गुप्त; इँह–यहाँ; पण्डित नारायण-नारायण पण्डित; हरिदास ठाकुर-हरिदास ठाकुर; इँह-यहाँ; भुवन-पावन–सारे ब्रह्माण्ड के उद्धारक।

अनुवाद

“ये हैं मुरारि गुप्त, पण्डित नारायण तथा सारे ब्रह्माण्ड के उद्धारक हरिदास ठाकुर।”

एइ हरि-भट्ट, एइ श्री-नृसिंहानन्द ।

एइ वासुदेव दत्त, एइ शिवानन्द ॥ 87॥

एइ-ये; हरि-भट्ट-हरि भट्ट; एइ-ये; श्री-नृसिंहानन्द-श्री नृसिंहानन्द; एइ–ये; वासुदेव दत्त–वासुदेव दत्त; एइ–ये; शिवानन्द–शिवानन्द ।

अनुवाद

ये रहे हरि भट्ट और वे हैं नृसिंहानन्द। ये वासुदेव दत्त तथा शिवानन्द सेन हैं।

गोविन्द, माधव घोष, एइ वासु-घोष ।

तिन भाइर कीर्तने प्रभु पायेन सन्तोष ॥88॥

गोविन्द-गोविन्द घोष; माधव घोष–माधव घोष; एइ-ये; वासु-घोष-वासुदेव घोष; तिन भाइर–तीन भाइयों के; कीर्तने-कीर्तन में; प्रभु–महाप्रभु; पायेन सन्तोष-बहुत आनन्द पाते हैं।

अनुवाद

"और ये हैं गोविन्द घोष, माधव घोष तथा वासुदेव घोष। ये तीनों भाई हैं और इनका संकीर्तन महाप्रभु को बहुत अच्छा लगता है।"

तात्पर्य

गोविन्द घोष उत्तर राढ़ीय क्षेत्र के कायस्थ वंश के थे और वे घोष ठाकुर के नाम से प्रसिद्ध थे। आज भी कटवा के निकट अग्रद्वीप नामक स्थान है, जहाँ घोष ठाकुर के नाम से मेला लगता है। वासुदेव घोष ने श्री चैतन्य महाप्रभु विषयक अनेक सुन्दर गीतों की रचना की और ये गीत नरोत्तम दास ठाकुर, भक्तिविनोद ठाकुर, लोचनदास ठाकुर, गोविंद दास ठाकुर तथा अन्य वैष्णवों के गीतों के ही समान प्रामाणिक वैष्णव गीत हैं।

राघव पण्डित, इँह आचार्य नन्दन ।

श्रीमान्पण्डित एइ, श्रीकान्त, नारायण ॥89॥

राघव पण्डित-राघव पण्डित; इँह-यहाँ; आचार्य नन्दन-आचार्य नन्दन; श्रीमान् पण्डित–श्रीमान् पण्डित; एइ-ये; श्रीकान्त-श्रीकान्त; नारायण-और नारायण।

अनुवाद

"ये हैं राघव पण्डित, ये रहे आचार्यनन्दन, वे श्रीमान पण्डित हैं तथा ये हैं श्रीकान्त तथा नारायण।"

तात्पर्य

नरोत्तम दास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी संगियों के सम्मान में निम्न प्रकार से गीत लिखा है (प्रार्थना 13) :

गौराङ्गेर सङ्गिगणे, नित्यसिद्ध करि' माने

से याय व्रजेन्द्रसुत-पाश।

बुद्धिमान व्यक्ति जानता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे निजी संगी तथा भक्त नित्यमुक्त हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि वे इस भौतिक जगत् के नहीं होते, क्योंकि वे भगवान् की सेवा में निरन्तर लगे रहते हैं। जो भगवान् की सेवा में चौबीसों घण्टे लगा रहता है और भगवान् को कभी नहीं भूलता, वह नित्यसिद्ध कहलाता है। इस कथन की पुष्टि श्रील रूप गोस्वामी ने भी की है :

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।

निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते।

"शरीर, मन, बुद्धि तथा वाणी से कृष्ण की सेवा में लगा हुआ व्यक्ति इस जगत् में नाना प्रकार के तथाकथित भौतिक कार्य करते हुए भी मुक्त पुरुष कहलाता है।" (भक्तिरसामृतसिन्धु 1.2.187)

भक्त सदैव यही सोचता रहता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा किस तरह अच्छी से अच्छी तरह की जाए और किस तरह उनके नाम, यश तथा लीलाओं का विश्वभर में प्रसार किया जाए। जो नित्यसिद्ध है, उसके पास अपनी क्षमता के अनुसार भगवान् के यश का सारे संसार में प्रसार करने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं होता। ऐसे लोग पहले से श्री चैतन्य महाप्रभु के संगी होते हैं। इसीलिए नरोत्तम दास कहते हैं, नित्यसिद्ध करि माने। किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु 500 वर्ष पूर्व स्वयं विद्यमान थे, अतएव केवल उन्हीं के संगी मुक्त थे। बल्कि नरोत्तम दास ठाकुर तो कहते हैं कि जो कोई भी भगवान् के नाम की महिमा का प्रसार करके श्री चैतन्य महाप्रभु की ओर से कार्य करता है, वह नित्यसिद्ध है। जो लोग भगवान् की महिमा का प्रचार करते हैं, ऐसे भक्तों का हमें नित्यसिद्ध के रूप में सम्मान करना चाहिए और उन्हें बद्ध नहीं समझना चाहिए।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।

स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

(भगवद्गीता 14.26)

जो व्यक्ति प्रकृति के भौतिक गुणों को पार कर जाता है, वह ब्रह्म-पद पर अवस्थित माना जाता है। नित्यसिद्धों का भी वही पद है। नित्यसिद्ध न केवल ब्रह्म-पद पर रहता है, अपितु उस पद पर कार्य भी करता है। यदि कोई श्री चैतन्य महाप्रभु के संगियों को नित्यसिद्ध स्वीकार कर ले, तो भी वह आसानी से भगवद्धाम वापस जा सकता है।

शुक्लाम्बर देख, एइ श्रीधर, विजय ।

वल्लभ-सेन, एइ पुरुषोत्तम, सञ्जय ॥90॥

शुक्लाम्बर–शुक्लाम्बर; देख-देखो; एइ-ये; श्रीधर-श्रीधर; विजय-विजय; वल्लभ-सेन-वल्लभ सेन; एइये; पुरुषोत्तम पुरुषोत्तम; सञ्जय-संजय।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य भक्तों की ओर संकेत करते रहे, "ये शुक्लाम्बर हैं। वे रहे श्रीधर। ये विजय हैं और ये हैं वल्लभ सेन। ये रहे पुरुषोत्तम और वे हैं संजय।"

कुलीन-ग्राम-वासी एइ सत्यराज-खान ।

रामानन्द-आदि सबे देख विद्यमान ॥91॥

कुलीन-ग्राम-वासी-कुलीन ग्राम के निवासी; एइ–ये; सत्यराज-खान-सत्यराज खान; रामानन्द-आदि-रामानन्द आदि; सबे-सब; देख-देखो; विद्यमान उपस्थित।

अनुवाद

"और ये सत्यराज तथा रामानन्द जैसे सभी कुलीन ग्राम के निवासी हैं। वे सभी यहाँ उपस्थित हैं। कृपा करके देखें।"

मुकुन्द-दास, नरहरि, श्री-रघुनन्दन ।

खण्ड-वासी चिरञ्जीव, आर सुलोचन ॥ 92 ॥

मुकुन्द-दास-मुकुन्द दास; नरहरि नरहरि; श्री-रघुनन्दन-श्री रघुनन्दन; खण्ड-वासी–खण्ड के निवासी; चिरञ्जीव-चिरंजीव; आर-और; सुलोचन–सुलोचन।

अनुवाद

"ये रहे मुकुन्द दास, नरहरि, श्री रघुनन्दन, चिरंजीव तथा सुलोचन-ये सभी खण्ड के निवासी हैं।"

कतेक कहिब, एड देख यत जन।

चैतन्येर गण, सब—चैतन्य-जीवन ॥ 93 ॥

कतेक कहिब-मैं कितने नाम बताऊँ; एइये; देख-देखो; मृत जन-सभी व्यक्ति; चैतन्येर गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथी; सब–इन सबको; चैतन्य-जीवन-श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन और आत्मा समझो।

अनुवाद

"मैं आपको कितने नाम गिनाऊँ? आप यहाँ जितने सारे भक्त देख रहे हैं, वे सब श्री चैतन्य महाप्रभु के संगी हैं, और महाप्रभु ही उनके प्राण हैं।"

राजा कहे—देखि' मोर हैल चमत्कार।

वैष्णवेर ऐछे तेज देखि नाहि आर ॥ 94॥

राजा कहे-राजा ने कहा; देखि'–देखने के बाद; मोर-मेरा; हैल-है; चमत्कार-आश्चर्य; वैष्णवेर-प्रभु के भक्तों का; ऐछे-ऐसा; तेज-तेज; देखि-मैं देखता हूँ; नाहि-नहीं; आर-अन्य कोई और।

अनुवाद

राजा ने कहा, "इन सब भक्तों को देखकर मैं अत्यधिक चकित हूँ, क्योंकि इसके पूर्व मैंने किसी में इतना तेज कभी नहीं देखा।"

कोटि-सूर्य-सम सब—उज्वल-वरण।

कभु नाहि शुनि एइ मधुर कीर्तन ॥ 95॥

कोटि-सूर्य-सम-लाखों सूर्यों की चमक के समान; सब-वे सब; उज्वल-वरण-अत्यन्त चमकदार; कभु नाहि शुनि-कभी नहीं सुनी; एइ–यह; मधुर कीर्तन-ऐसा मधुर कीर्तन।

अनुवाद

“सचमुच, उनका तेज करोड़ सूर्यों के तेज के समान है। न ही मैंने इसके पूर्व कभी भगवन्नाम का इतना मधुर कीर्तन होते सुना है।”

तात्पर्य

जब शुद्ध भक्त कीर्तन करते हैं, तो उनके ऐसे ही लक्षण होते हैं। सारे शुद्ध भक्त सूर्य-प्रकाश के समान चमकीले लगते हैं और उनकी शारीरिक कान्ति अत्यन्त तेजवान होती है। साथ ही उनका संकीर्तन अद्वितीय होता है। ऐसे अनेक पेशेवर कीर्तनिये हैं, जो अनेक वाद्य-यन्त्रों की सहायता से कलात्मक तथा संगीतात्मक ढंग से संकीर्तन कर सकते हैं, किन्तु उनका कीर्तन शुद्ध भक्तों के आकर्षक संकीर्तन की बराबरी नहीं कर सकता। जो कोई भक्त वैष्णव आचरण के नियमों का दृढ़ता से पालन करता है, तो उसकी शारीरिक कान्ति स्वाभाविक रूप से आकर्षक होगी और उसके द्वारा भगवान् के पवित्र नाम का गायन तथा कीर्तन प्रभावशाली होगा। लोग ऐसे कीर्तन की नि:संकोच भाव से प्रशंसा करेंगे। यहाँ तक कि कि भगवान् चैतन्य या श्रीकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित नाटक में अभिनय भी भक्तों के द्वारा ही किया जाना चाहिए। ऐसे नाटकों से दर्शकों में रुचि उत्पन्न होगी और वे शक्तिशाली सिद्ध होंगे। अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के सदस्यों को ये दो बातें स्मरण में रखनी चाहिए और भगवान् के यश का प्रसार करने में इन सिद्धान्तों का प्रयोग करना चाहिए।

ऐछे प्रेम, ऐछे नृत्य, ऐछे हरि-ध्वनि ।

काहाँ नाहि देखि, ऐछे काहाँ नाहि शुनि ॥ 96 ॥

ऐछे-ऐसा; प्रेम-प्रेम; ऐछे नृत्य-ऐसा नृत्य; ऐछे हरि-ध्वनि-ऐसी कीर्तन की ध्वनि; काहाँ-कहीं भी; नाहि देखि-मैंने नहीं देखी; ऐछे-ऐसी; काहाँ-कहीं; नाहि शुनि-मैंने कभी सुनी।

अनुवाद

“मैंने न तो कभी ऐसा प्रेमभाव देखा है, न भगवान् के नाम का इस तरह कीर्तन होते सुना है, न ही संकीर्तन के समय इस प्रकार का नृत्य होते देखा है।”

तात्पर्य

चूँकि जगन्नाथ पुरी में भगवान जगन्नाथ का मन्दिर स्थित है, इसलिए संसार के सभी भागों से अनेक भक्त भगवान् की महिमा प्रकट करने के लिए संकीर्तन करने वहाँ आते थे। महाराज प्रतापरुद्र ने इन भक्तों को देखा और सुना तो था, किन्तु यहाँ पर वे स्वीकार करते हैं कि महाप्रभु के पार्षदों द्वारा किया जाने वाला कीर्तन अद्वितीय था। इसके पूर्व उन्होंने न तो ऐसा संकीर्तन कभी सुना था, न ही भक्तों के इतने आकर्षक स्वरूप कभी देखे थे। अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के सदस्यों को चाहिए कि वे मायापुर में श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्मदिवस के अवसर पर भारत जाएँ और संकीर्तन करें। इससे भारत के प्रमुख व्यक्तियों का ध्यान उसी तरह आकृष्ट होगा, जिस प्रकार कि श्री चैतन्य महाप्रभु के संगियों के सौन्दर्य, शारीरिक तेज तथा संकीर्तन शैली से महाराज प्रतापरुद्र का ध्यान आकृष्ट हुआ था। जब श्री चैतन्य महाप्रभु इस ग्रह पर विद्यमान थे, तब उनके संगियों की संख्या अनगिनत थी, किन्तु जो भी शुद्ध जीवन बिताता है और श्री चैतन्य महाप्रभु के मिशन में निष्ठा रखता है, उसे महाप्रभु का नित्यसिद्ध संगी समझना चाहिए।

भट्टाचार्य कहे एइ मधुर वचन ।

चैतन्येर सृष्टि—एइ प्रेम-सङ्कीर्तन ॥ 97॥

भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य ने; कहे-उत्तर दिया; एइ–यह; मधुर वचन–मधुर वाणी; चैतन्येर सृष्टि श्री चैतन्य महाप्रभु की सृष्टि; एइ–यह; प्रेम-सङ्कीर्तन-प्रेम संकीर्तन।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "यह मधुर दिव्य ध्वनि महाप्रभु की विशेष सृष्टि है, जो प्रेम-संकीर्तन कहलाती है।"

अवतरि' चैतन्य कैल धर्म-प्रचारण ।

कलि-काले धर्म—कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन ॥98॥

अवतरि'–अवतरित होकर; चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैल–किया; धर्म-प्रचारण-धर्म का प्रचार; कलि-काले-इस कलियुग में; धर्म-धार्मिक सिद्धान्त; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण के पावन नाम का; सङ्कीर्तन-संकीर्तन।

अनुवाद

“इस कलियुग में श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्णभावनामृत धर्म का प्रचार करने के लिए अवतरित हुए हैं। अतएव भगवान् कृष्ण के पवित्र नामों का कीर्तन वही इस युग का धर्म है।”

सङ्कीर्तन-यज्ञे तौरे करे आराधन ।

सेइ त’ सुमेधा, आर—कलि-हत-जन ॥ 99॥

सङ्कीर्तन-यज्ञे-संकीर्तन में; तौरे-श्री चैतन्य महाप्रभु की; करे-करता है; आराधन-आराधना; सेइ त’-ऐसा व्यक्ति; सु-मेधा-अत्यन्त बुद्धिमान; आर-बाकी; कलि-हत-जन-इस कलियुग के शिकार।

अनुवाद

“जो भी व्यक्ति संकीर्तन द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा करता है, उसे अत्यन्त बुद्धिमान समझा जाना चाहिए। जो ऐसा नहीं करता, उसे इस युग का शिकार तथा बुद्धि से रहित समझा जाना चाहिए।”

तात्पर्य

धूर्त लोग कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति अपनी निजी धार्मिक विधि गढ़ सकता है। इस विचारधारा की यहाँ पर भर्त्सना की गई है। यदि कोई सचमुच धार्मिक बनना चाहता है, तो उसे हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन अपनाना चाहिए। श्रीमद्भागवत (6.3.19-22) में धर्म का असली अर्थ बतलाया गया है :

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं

न वै विदुऋषयो नापि देवाः ।

न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः

कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥

स्वयंम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ।

प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥

द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ।

गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।

भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥

इन श्लोकों का तात्पर्य यही है कि मनुष्य के द्वारा धर्म गढ़ा नहीं जा सकता। धर्म तो भगवान् की आचार्येर संहिता है। फलस्वरूप बड़े से बड़े सन्त, देवता या सिद्ध-मुख्य भी धर्म को नहीं गढ़ सकते। तो फिर असुरों, मनुष्यों, विद्याधरों, चारणों आदि की तो बात ही क्या? धर्म के सिद्धान्त परम्परा-पद्धति से अवतरित होते हैं, जिनका शुभारम्भ बारह महापुरुषों से होता है। ये हैं-ब्रह्माजी, महर्षि नारद, शिवजी, चारों कुमार, देवहूति-पुत्र कपिल, स्वायंभुव मनु, प्रह्लाद महाराज, राजा जनक, भीष्म पितामह, बलि महाराज, शुकदेव गोस्वामी तथा यमराज। धर्म के सिद्धान्त इन्हीं बारह पुरुषों को ज्ञात है। धर्म उन धार्मिक सिद्धान्तों का सूचक है, जिनके द्वारा मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझ सकता है। धर्म अत्यन्त गोपनीय, भौतिक प्रभाव से अकलुषित तथा सामान्य व्यक्तियों को समझने के लिए अत्यन्त कठिन होता है। किन्तु यदि कोई वास्तव में धर्म को समझ लेता है, तो वह तुरन्त मुक्त हो जाता है और भगवद्धाम चला जाता है। भागवत धर्म अर्थात् परम्परा पद्धति द्वारा विवेचित धर्म परम धर्म है। दूसरे शब्दों में, धर्म भक्तियोग के विज्ञान को बताने वाला है, जिसका शुभारम्भ नवदीक्षित भक्त द्वारा भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करने के साथ होता है। (तन्नामग्रहणादिभिः)

अतः इस कलियुग के लिए चैतन्य-चरितामृत (श्लोक 98) में संस्तुति की गई है, कलिकाले धर्म-कृष्णनाम-सङ्कीर्तन। कलियुग में भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन को धर्म की विधि के रूप में सारे वैदिक शास्त्रों ने स्वीकार किया है। इस चैतन्य चरितामृत के अगले श्लोक में, जो कि श्रीमद्भागवत (11.5.32) से ही है, इसकी और पुष्टि की गई है।

कृष्ण-वर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र-पार्षदम् ।

यज्ञैः सङ्कीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सु-मेधसः ॥100 ॥

कृष्ण-वर्णम्-कृष्ण शब्द को दोहराना; त्विषा-वर्ण सहित; अकृष्णम्-काला नहीं (सुनहरा); स-अङ्ग–साथियों सहित; उपाङ्ग–सेवक; अस्त्र-अस्त्र; पार्षदम्-पार्षद; यज्ञैः-यज्ञ से; सङ्कीर्तन-प्रायैः–प्रायः सामूहिक कीर्तन; यजन्ति–वे पूजा करते हैं; हि-अवश्य; सु-मेधसः–बुद्धिमान व्यक्ति।

अनुवाद

"इस कलियुग में बुद्धिमान लोग भगवान् के उन अवतार की, जो निरन्तर कृष्ण-नाम का गायन करते हैं, पूजा करने के लिए संकीर्तन करते हैं। यद्यपि उनका रंग साँवला नहीं है, तो भी वे साक्षात् कृष्ण हैं। वे अपने संगियों, सेवकों, अस्त्रों तथा पार्षदों से युक्त रहते हैं।"

तात्पर्य

इस श्लोक की व्याख्या के लिए देखें आदिलीला, अध्याय 3, श्लोक 52।

राजा कहे,—शास्त्र-प्रमाणे चैतन्य हन कृष्ण।

तबे केने पण्डित सब ताँहाते वितृष्ण? ॥101॥

राजा कहे-राजा ने कहा; शास्त्र-प्रमाणे-शास्त्रों के प्रमाण से; चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; हन हैं; कृष्ण–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण; तबे-अतः; केने-क्यों; पण्डित-तथाकथित विद्वान; सब-सब; ताँहाते-उनके प्रति; वितृष्ण-उदासीन।

अनुवाद

राजा ने कहा, "शास्त्रों के प्रमाण के अनुसार यह निष्कर्ष निकलता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ही स्वयं भगवान् कृष्ण हैं। तो फिर पण्डितजन कभी-कभी उनके प्रति उदासीन क्यों रहते हैं?"

भट्ट कहे,—ताँर कृपा-लेश हय याँरे।

सेइ से ताँहारे 'कृष्ण' करि' लइते पारे ॥102॥

भट्ट कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; ताँर कृपा-महाप्रभु चैतन्य की कृपा; लेश-लेश मात्र भी; हय-हो; याँरे-जिस पर; सेइ से-वही व्यक्ति केवल; ताँहारे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कृष्ण करि'-कृष्ण स्वीकार करके; लइते पारे-समझ सकता है।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, जिसे श्री चैतन्य महाप्रभु की रंचमात्र भी कृपा प्राप्त हुई है, वही व्यक्ति समझ पाता है कि वे कृष्ण हैं, अन्य कोई नहीं।

तात्पर्य

जिस पर भगवान् कृष्ण की विशेष कृपा होती है, वही व्यक्ति संकीर्तन आन्दोलन का प्रसार कर सकता है (कृष्णशक्ति विना नहे तार प्रवर्तन)। सर्वप्रथम भगवान् की कृपा प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति भगवान् के पवित्र नाम का प्रचार नहीं कर सकता। जो भगवन्नाम का प्रचार कर सके, उसे भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के शब्दों में लब्ध-चैतन्य कहा जाता है। लब्ध-चैतन्य वह है, जिसने अपनी मूल चेतना-कृष्णभावना–को जाग्रत कर लिया है। कृष्णभावनामृत में शुद्ध भक्त का इतना प्रभाव पड़ता है कि वह अन्यों को कृष्णभावनाभावित होने के लिए जाग्रत कर सकता है, जिससे वे स्वयं को कृष्ण की प्रेमाभक्ति में लगा सकते हैं। इस प्रकार शुद्ध भक्तों की वंशावली बढ़ती जाती है और अपने भक्तों की संख्या इस प्रकार बढ़ती देखकर चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। सुमेधसः शब्द का अर्थ है "कुशाग्र बुद्धि वाले।" ऐसे कुशाग्र बुद्धि के लोग सामान्य लोगों में चैतन्य महाप्रभु से प्रेम करने की रुचि उत्पन्न कर सकते हैं और उनके माध्यम से राधा-कृष्ण से प्रेम करने में रुचि उत्पन्न करा सकते हैं। जो लोग श्री चैतन्य महाप्रभु को समझने में रुचि नहीं रखते, वे अपनी कलात्मकता के बावजूद अपने पेशेवर कीर्तन तथा धन-प्राप्ति के हेतु नृत्य करने से निरे भौतिक बन जाते हैं। जिस व्यक्ति की श्री चैतन्य महाप्रभु में पूर्ण श्रद्धा नहीं होती, वह संकीर्तन आन्दोलन में ठीक से नाच-गा नहीं सकता। कृत्रिम गायन तथा नृत्य भावुकता के कारण हो सकता है, किन्तु इससे कृष्णभावनामृत में प्रगति करने में सहायता नहीं मिलती।

ताँर कृपा नहे यारे, पण्डित नहे केने ।

देखिले शुनिलेह ताँरे 'ईश्वर' ना माने ॥ 103 ॥

ताँर कृपा-उनकी कृपा; नहे–नहीं हो; यारे-जिस पर; पण्डित–विद्वान; नहे-यद्यपि; केने–तथापि; देखिले-देखने पर भी; शुनिलेह-सुनने से भी; ताँरे-उनको; ईश्वर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; ना माने–नहीं मानता।

अनुवाद

"जब तक किसी व्यक्ति पर श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा नहीं होती, तब तक कोई कितना ही बड़ा पण्डित क्यों न हो और वह कितना ही क्यों न देखे या सुने, वह महाप्रभु को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में नहीं स्वीकार कर सकता।"

तात्पर्य

यही सिद्धान्त उन असुरों पर लागू किया जा सकता है, चाहे वे श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय के ही क्यों न हों। महाप्रभु से विशेष शक्ति प्राप्त किये बिना कोई व्यक्ति उनके यश का प्रचार विश्वभर में नहीं कर सकता। कोई अपने आपको श्री चैतन्य महाप्रभु का कितना ही विद्वान अनुयायी क्यों न मानता हो और भले ही वह सारे विश्व में महाप्रभु के नाम का प्रचार क्यों न करता हो, किन्तु यदि उस पर श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा नहीं है, तो वह शुद्ध भक्तों में दोष निकालेगा और यह नहीं समझ सकेगा कि प्रचारक को महाप्रभु से किस तरह शक्ति प्राप्त होती है। जो व्यक्ति इस समय सारे विश्व में फैलने वाले कृष्णभावनामृत आन्दोलन की आलोचना करता है या इस आन्दोलन में या इस आन्दोलन के मुखिया में दोष निकालता है, उसे श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से वंचित समझना चाहिए।

अथापि ते देव पदाम्बुज-द्वय-

प्रसाद-लेशानुगृहीत एव हि ।

जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो

न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥104॥

अथ-अतः; अपि-निस्सन्देह; ते-आपके; देव-मेरे देव; पद-अम्बुज-द्वय-दोनों चरणकमल; प्रसाद-कृपा के; लेश-लेश मात्र से; अनुगृहीतः-अनुगृहीत; एव–अवश्य; हि-निस्सन्देह; जानाति–जानता है; तत्त्वम्-तत्त्व, सत्य; भगवत्-भगवान् के; महिम्नः-महिमा की; न-नहीं; च-और; अन्यः-दूसरा; एकः-एक; अपि यद्यपि; चिरम्-चिरकाल के लिए; विचिन्वन्–अनुमान लगाते हैं।

अनुवाद

"(ब्रह्माजी ने कहा) हे प्रभु, यदि किसी को आपके चरणकमलों की रंचमात्र भी कृपा प्राप्त हो जाती है, तो वह आपकी महानता को समझ सकता है। किन्तु जो लोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझने के लिए तर्कवितर्क करते हैं, वे अनेक वर्षों तक वेदों का अध्ययन करते रहने पर भी आपको नहीं जान पाते।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.14.29) से लिया गया है। इसकी व्याख्या मध्यलीला अध्याय 6, श्लोक 84 में की जा चुकी है।

राजा कहे,—सबे जगन्नाथ ना देखिया ।

चैतन्येर वासा-गृहे चलिला धाञा ॥ 105 ॥

राजा कहे-राजा ने कहा; सबे–वे सब; जगन्नाथ-भगवान जगन्नाथ के; ना देखिया-दर्शन के बिना; चैतन्येर–श्री चैतन्य महाप्रभु के; वासा-गृहे-निवासस्थान को; चलिला–वे चले गये; धाञा-दौड़ते हुए।

अनुवाद

राजा ने कहा, "सारे भक्त भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर जाने के बदले श्री चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान की ओर दौड़े जा रहे हैं।"

भट्ट कहे,—एइ त' स्वाभाविक प्रेम-रीत ।

महाप्रभु मिलिबारे उत्कण्ठित चित ॥ 106 ॥

भट्ट कहे-भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; एइ त'-यह है; स्वाभाविक-स्वाभाविक; प्रेम-रीत–प्रेम का आकर्षण; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मिलिबारे-मिलने के लिए; उत्कण्ठित-उत्सुक; चित-मन।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "यही रागानुग प्रेम है। सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं।"

आगे ताँरे मिलि' सबे ताँरे सङ्गे लञा ।

ताँर सङ्गे जगन्नाथ देखिबेन गिया ॥ 107॥

आगे-पहले; ताँरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; मिलि'–मिलकर; सबे-सभी भक्त; ताँरे–उनको; सङ्गे-साथ; लञा-लेकर; ताँर सड़े-उनके साथ; जगन्नाथ- भगवान् जगन्नाथ; देखिबेन-वे दर्शन करेंगे; गिया-जाकर।

अनुवाद

"सारे भक्त पहले श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलेंगे और तब उन्हें साथ लेकर वे सब भगवान जगन्नाथ का दर्शन करने मन्दिर में जायेंगे।"

राजा कहे,—भवानन्देर पुत्र वाणीनाथ ।

प्रसाद लञा सङ्गे चले पाँच-सात ॥108॥

राजा कहे-राजा ने कहा; भवानन्देर पुत्र-भवानन्द का पुत्र; वाणीनाथ-वाणीनाथ; प्रसाद लञा-महाप्रसाद लेकर; सङ्गे-अपने साथ; चले–चले; पाँच-सात-पाँच अथवा सात व्यक्तियों को।

अनुवाद

राजा ने कहा, "भवानन्द राय का पुत्र वाणीनाथ पाँच-सात अन्य लोगों के साथ जगन्नाथजी का प्रसाद लाने गये हैं।'"

महाप्रभुर आलये करिल गमन ।

एत महा-प्रसाद चाहि'—कह कि कारण ॥ 109॥

महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आलये-निवासस्थान; करिल गमन-वह जा चुका है; एत-इतना; महा-प्रसाद–महाप्रसाद; चाहि'-आवश्यकता होने की; कह-कृपा बताओ; कि कारण–क्या कारण है।

अनुवाद

"वस्तुतः वाणीनाथ पहले ही श्री चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान जा चुका है और पर्याप्त महाप्रसाद ले गया है। कृपा करके मुझे इसका कारण बतलायें।"

भट्ट कहे,—भक्तगण आइल जानिञा ।

प्रभुर इङ्गिते प्रसाद याय ताँरा लञा ॥110॥

भट्ट कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; भक्त-गण-सभी भक्त; आइल-आये हैं; जानिञा-जानकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; इङ्गिते-संकेत से; प्रसाद-जगन्नाथ का प्रसाद; याय-गये; ताँरा–वे सब; लञा–लेने हेतु।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "यह समझकर कि सारे भक्त आ चुके हैं, महाप्रभु ने संकेत दिया और इतनी मात्रा में महाप्रसाद ले आये हैं।"

राजा कहे,—उपवास, क्षौर—तीर्थेर विधान।

ताहा ना करिया केने खाइब अन्न-पान ॥ 111॥

राजा कहे-राजा ने कहा; उपवास-उपवास करना; क्षौर-बाल बनाना; तीर्थेर विधान-तीर्थ स्थान पर जाने के विधि विधान; ताहा–उन्हें; ना करिया-पालन करने के बिना; केने-क्यों; खाइब–वे खायेंगे; अन्न-पान-अन्न तथा जलपान।

अनुवाद

तब राजा ने भट्टाचार्य से पूछा, "उन भक्तों ने तीर्थस्थान की मुलाकात लेने के नियमों का-यथा उपवास रखने, बाल बनवाने इत्यादि का पालन क्यों नहीं किया? उन्होंने पहले प्रसाद क्यों ग्रहण किया?"

भट्ट कहे,—तुमि येइ कह, सेइ विधि-धर्म।

एइ राग-मार्गे आछे सूक्ष्म-धर्म-मर्म ॥112॥

भट्ट कहे-भट्टाचार्य ने कहा; तुमि येइ कह–आप जो कहते हैं; सेइ विधि-धर्म-वही विधि विधान है; एइ राग-मार्गे-इस स्वाभाविक प्रेम में; आछे-हैं; सूक्ष्म-धर्म-मर्म-धर्म प्रणाली की सूक्ष्म बारीकियाँ।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने राजा से कहा, "आपने जो कुछ कहा है, वह तीर्थस्थानों की मुलाकात लेने के नियमानुसार ठीक है, किन्तु एक दूसरा भी मार्ग है, जो स्वतःस्फूर्त रागानुग प्रेम का मार्ग है। इसके अनुसार धार्मिक नियमों के पालन में सूक्ष्म बारीकियाँ सन्निहित हैं।"

तात्पर्य

वैदिक नियमों के अनुसार तीर्थयात्रा करने के पूर्व ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहिए। सामान्यतया लोगों को काम-वासना इतनी सताती है कि रात में बिना संभोग के उन्हें नींद ही नहीं आती। इसलिए यह नियम बना हुआ है। कि सामान्य व्यक्ति तीर्थयात्रा पर जाने के पूर्व पूर्ण ब्रह्मचर्य रखे। तीर्थस्थान में प्रवेश करते ही वह दिन-भर उपवास रखे और अपना सिर मुंड़ाने के बाद तीर्थस्थान के निकटवर्ती नदी या सागर में स्नान करे। ये कृत्य पापकर्मों के प्रभावों को निरस्त करने के लिए किये जाते हैं। तीर्थस्थानों की मुलाकात लेने का अर्थ ही है पापमय जीवन के फलों को शमित करना। तीर्थस्थानों में जाने वाले लोग अपने पापों को वहाँ छोड़ते हैं, इसलिए ये तीर्थस्थान यात्रियों के पाप-कृत्यों से बोझिल हो उठते हैं।

किन्तु जब कोई सन्त-महात्मा या शुद्ध भक्त ऐसे तीर्थस्थान में जाता है, तो वह सामान्य लोगों द्वारा छोड़े गये पापकर्मों के फलों को नष्ट करके तीर्थस्थान को फिर से शुद्ध बना देता है। तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि (भागवत 1.13.10)। अतएव किसी तीर्थस्थान में सामान्य मनुष्य का जाना और किसी महान् सन्त पुरुष का जाना भिन्न-भिन्न है। सामान्य व्यक्ति तीर्थस्थान में अपने पाप छोड़ जाता है, किन्तु सन्त पुरुष या भक्त अपनी उपस्थिति से इन पापों को धो डालता है। श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त सामान्य लोग न थे और उन पर तीर्थस्थानों पर जाने वालों के नियमों को लागू नहीं किया जा सकता था। प्रत्युत उनमें श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए स्वत:स्फूर्त रागानुग प्रेम था। तीर्थस्थान में पहुँचते ही वे भगवान् चैतन्य का दर्शन करने गये और तीर्थस्थान के नियमों का पालन न करते हुए, उन्होंने महाप्रभु की आज्ञा के अनुसार महाप्रसाद ग्रहण किया।

ईश्वरेर परोक्ष आज्ञा—क्षौर, उपोषण ।

प्रभुर साक्षाताज्ञा—प्रसाद-भोजन ॥113॥

ईश्वरेर-पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की ; परोक्ष-अप्रत्यक्ष; आज्ञा-आज्ञा; क्षौर-बाल कटवाना; उपोषण-उपवास करना; प्रभुर–महाप्रभु की; साक्षात्-साक्षात्; आज्ञा-आज्ञा; प्रसाद-भोजन-प्रसाद लेना।

अनुवाद

"सिर मुंड़ाने तथा उपवास रखने के शास्त्रीय आदेश पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की परोक्ष आज्ञा हैं, किन्तु जब महाप्रभु प्रसाद ग्रहण करने की प्रत्यक्ष आज्ञा देते हैं, तो स्वाभाविक है कि भक्तगण उसे ही प्रथम कर्तव्य मानकर प्रसाद ग्रहण करते हैं।"

ताहाँ उपवास, याहाँ नाहि महा-प्रसाद ।

प्रभु-आज्ञा-प्रसाद-त्यागे हय अपराध ॥ 114॥

ताहाँ-वहाँ; उपवास-उपवास; याहाँ-जहाँ; नाहि-नहीं है; महा-प्रसाद-महाप्रसाद; प्रभु-आज्ञा-श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रत्यक्ष आज्ञा; प्रसाद–प्रसाद; त्यागे-त्यागकर; हय-है; अपराध-अपराध।

अनुवाद

"जहाँ महाप्रसाद उपलब्ध न हो, वहीं उपवास करना चाहिए, किन्तु जहाँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् प्रत्यक्ष रूप से प्रसाद ग्रहण करने का आदेश दें, वहाँ ऐसे सुअवसर की उपेक्षा करना अपराध है।"

विशेषे श्री-हस्ते प्रभु करे परिवेशन ।

एत लाभ छाड़ि' कोन्करे उपोषण ॥ 115 ॥

विशेषे-विशेष रूप से; श्री-हस्ते-अपने दिव्य हाथ से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः करे-करते हैं; परिवेशन–वितरण; एत-इतना; लाभ-लाभ; छाड़ि'–छोड़कर; कोन्-कौन; करे–करे; उपोषण-उपवास।

अनुवाद

"जब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने दिव्य हाथ से प्रसाद बाँट रहे हों, तो भला कौन उस अवसर को हाथ से जाने देगा और उपवास के विधान को स्वीकार करेगा?"

पूर्वे प्रभु मोरे प्रसाद-अन्न आनि' दिल ।

प्राते शय्याय वसि' आमि से अन्न खाइल ॥ 116॥

पूर्वे—इससे पहले; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मोरे-मुझे; प्रसाद-अन्न-महाप्रसाद का भात; आनि'–लाकर; दिल-दिया; प्राते-प्रातः काल सवेरे; शय्याय-मेरी शय्या पर; वसि'-बैठकर; आमि-मैंने; से-वह; अन्न-भात; खाइल-खाया।

अनुवाद

"इससे पहले एक दिन प्रातःकाल महाप्रभु ने मुझे महाप्रसाद का अन्न दिया था, जिसे मैंने बिना हाथ-मुँह धोये ही बिस्तर पर बैठे-बैठे खाया था।"

याँरे कृपा करि' करेन हृदये प्रेरण ।

कृष्णाश्रय हय, छाड़े वेद-लोक-धर्म ॥117॥

याँरे-जिस किसी पर; कृपा-कृपा; करि'-करके; करेन-देते हैं; हृदये-हृदय में; प्रेरण-प्रेरणा; कृष्ण-आश्रय-भगवान् कृष्ण का आश्रय; हय होता है; छाड़े-वह त्याग देता है; वेद-वैदिक सिद्धान्त; लोक-धर्म–लोक धर्म।

अनुवाद

“महाप्रभु जिस मनुष्य को भीतर से प्रेरित करके उस पर अपनी कृपा दर्शाते हैं, वह केवल भगवान् कृष्ण की शरण ग्रहण करता है और समस्त वैदिक तथा सामाजिक प्रथाओं को त्याग देता है।”

तात्पर्य

यह भगवद्गीता (18.66) में भगवान् कृष्ण का भी उपदेश है :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

सारे धर्मों को त्यागकर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों से छुटकारा दिला हूँगा। तुम डरो मत।” पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में ऐसी अटल श्रद्धा भगवान् की कृपा से ही हो सकती है। भगवान् हरेक के हृदय में आसीन हैं और जब वे अपने भक्त को स्वयं प्रेरित करते हैं, तब भक्त वैदिक या सामाजिक मान्यताओं की परवाह नहीं करता, प्रत्युत वह भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में अपने आपको लगा देता है। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत के निम्नलिखित श्लोक (4.29.46) में हुई है।

यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्म-भावितः ।

स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥ 118॥

यदा-जब; यम्-जिसको; अनुगृह्णाति–विशेष कृपा करते हैं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; आत्म-भावितः-जो हर एक के हृदय में विराजमान हैं; सः-वह व्यक्ति; जहाति-त्याग देता है; मतिम्-परवाह करना; लोके-लोक व्यवहार का; वेदे-वैदिक विधि विधान का; च-भी; परिनिष्ठिताम्-आसक्त।

अनुवाद

“जब कोई व्यक्ति अपने हृदय में आसीन भगवान् के द्वारा प्रेरित होता है, तब वह न तो सामाजिक रीतियों की न ही वैदिक विधानों की परवाह करता है।”

तात्पर्य

यह आदेश (श्रीमद्भागवत् 4.29.46) नारद मुनि ने पुरंजन की कथा के सन्दर्भ में राजा प्राचीनबर्हि को दिया था। यहाँ नारदजी का अभिप्राय यह है। कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा के बिना मनुष्य अपने आपको उन सकाम कर्मों से बाहर नहीं कर सकता, जो वेदों की परिधि में हैं। यहाँ तक कि पिछले श्लोकों में (श्रीमद्भागवत 4.29.42-44 में) नारद जी स्वीकार करते हैं कि ब्रह्माजी, शिवजी, मनु, दक्षादि प्रजापतिगण, चारों कुमार, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ तथा स्वयं नारद को भी सही ढंग से भगवान् की अहैतुकी कृपा प्राप्त नहीं हो सकी।

तबे राजा अट्टालिका हैते तलेले आइला ।

काशी-मिश्र, पड़िछा-पात्र, दुँहे आनाइला ॥ 119 ॥

तबे-तत्पश्चात्; राजा-राजा; अट्टालिका हैते–महल की छत से; तलेते-नीचे; आइला–आये; काशी-मिश्र-काशी मिश्र; पड़िछा-पात्र-मन्दिर का निदेशक; दुँहे-उन दोनों को; आनाइला–बुलाया।

अनुवाद

इसके बाद राजा प्रतापरुद्र अपने महल की अटारी से नीचे चले आये और काशी मिश्र को तथा मन्दिर की देख-रेख करने वाले को बुला भेजा।

प्रतापरुद्र आज्ञा दिल सेइ दुइ जने ।

प्रभु-स्थाने आसियाछेन यत प्रभुर गणे ॥120॥

सबारे स्वच्छन्द वासा, स्वच्छन्द प्रसाद ।

स्वच्छन्द दर्शन कराइह, नहे येन बाध ॥ 121॥

प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र ने; आज्ञा दिल-आज्ञा दी; सेइ दुइ जनेउन दोनों व्यक्तियों को; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; आसियाछेन-आ पहुँचे हैं; यत–जितने भक्त; प्रभुर गणे-प्रभु के संगी साथी; सबारे-उन सबको; स्वच्छन्द-सुविधाजनक; वासा-निवासस्थान; स्वच्छन्द-सुविधा जनक; प्रसाद-प्रसाद; स्वच्छन्द दर्शन-सुविधाजनक दर्शन; कराइह-व्यवस्था करना; नहे येन बाध-जिससे कोई कठिनाई न हो।

अनुवाद

फिर महाराज प्रतापरुद्र ने काशी मिश्र तथा मन्दिर की देख-रेख करने वाले से कहा, "श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों तथा संगियों के लिए आवास, प्रसाद तथा मन्दिर में दर्शन करने की सुविधा की समुचित व्यवस्था की जाए, जिससे उन्हें कोई कठिनाई न हो।"

प्रभुर आज्ञा पालिह दुँहे सावधान हञा ।

आज्ञा नहे, तबु करिह, इङ्गित बुझिया ॥ 122॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा-आज्ञा; पालिह-पालन की जाए; दुँहे-तुम दोनों; सावधान-सावधान; हञा–होकर; आज्ञा नहे-यद्यपि कोई प्रत्यक्ष आज्ञा नहीं है; तबु तथापि; करिह-करो; इङ्गित–संकेत; बुझिया-समझकर।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञाओं का सावधानी से पालन होना चाहिए। यद्यपि महाप्रभु सीधे कोई आदेश नहीं देंगे, फिर भी उनके संकेतों को समझकर उनकी इच्छाओं का पालन किया जाए।"

एत बलि' विदाय दिल सेइ दुइ-जने ।

सार्वभौम देखिते आइल वैष्णव-मिलने ॥ 123॥

एत बलि'-यह कहकर; विदाय दिल-विदाई दी; सेइ दुइ-जने-उन दोनों को; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; देखिते-देखने के लिए; आइल-आये; वैष्णव-मिलने-सभी वैष्णवों की सभा में।

अनुवाद

यह कहकर राजा ने उन दोनों को जाने दिया। सार्वभौम भट्टाचार्य भी सारे वैष्णवों के समूह से मिलने गये।

गोपीनाथाचार्य भट्टाचार्य सार्वभौम ।

दूरे रहि' देखे प्रभुर वैष्णव-मिलन ॥124॥

गोपीनाथ-आचार्य–गोपीनाथ आचार्य; भट्टाचार्य सार्वभौम-सार्वभौम भट्टचार्य; दूरे रहि'-दूर खड़े होकर; देखे-देखा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; वैष्णव-मिलन-वैष्णवों से मिलन।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य तथा सार्वभौम भट्टाचार्य दूर से श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ समस्त वैष्णवों का मिलन देखते रहे।

सिंह-द्वार डाहिने छाड़ि' सब वैष्णव-गण ।

काशी-मिश्र-गृह-पथे करिला गमन ॥ 125॥

सिंह-द्वार डाहिने–सिंहद्वार की दाईं ओर; छाड़ि'–छोड़कर; सब-सभी; वैष्णव-गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त; काशी-मिश्र-गृह-काशी मिश्र के घर को; पथे-मार्ग पर; करिला गमन-जाने लगे।

अनुवाद

मन्दिर के मुख्य द्वार की दाईं ओर से सारे वैष्णव काशी मिश्र के घर की ओर जाने लगे।

हेन-काले महाप्रभु निज-गण-सङ्गे ।

वैष्णवे मिलिला आसि' पथे बहु-रङ्गे ॥ 126 ॥

हेन-काले-इस समय; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-गण-सङ्गे-अपने पार्षदों सहित; वैष्णवे-सारे वैष्णवों से; मिलिला–मिले; आसि'-आकर; पथे–पथ पर; बहु-रङ्गे–अत्यन्त हर्षपूर्वक।

अनुवाद

तभी मार्ग पर श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी संगियों समेत सारे वैष्णवों से बड़ी ही प्रसन्नतापूर्वक मिले।

अद्वैत करिल प्रभुर चरण वन्दन ।

आचार्येरे कैल प्रभु प्रेम-आलिङ्गन ॥ 127॥

अद्वैत-अद्वैत आचार्य; करिल–किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण-चरणकमलों की; वन्दन-पूजा; आचार्येरे-अद्वैत आचार्य को; कैल–किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रेम-आलिङ्गन-प्रेमपूर्वक आलिंगन।

अनुवाद

सर्वप्रथम अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु के चरणकमलों की वन्दना की और महाप्रभु ने प्रेमवश तुरन्त उनका आलिंगन कर लिया।

प्रेमानन्दे हैला दुँहे परम अस्थिर ।

समय देखिया प्रभु हैला किछु धीर ॥128॥

प्रेम-आनन्दे-प्रेम आनन्द में; हैला-हो गये; दुँहे-वे दोनों; परम अस्थिर-अत्यन्त विचलित; समय–परिस्थिति; देखिया-देखकर; प्रभु-प्रभु: हैला-हो गये; किछु-कुछ; धीर-धीर।

अनुवाद

प्रेमवश श्री चैतन्य महाप्रभु तथा अद्वैत आचार्य विचलित हो उठे। किन्तु काल तथा परिस्थिति देखकर महाप्रभु ने धीरज धारण की।

श्रीवासादि करिल प्रभुर चरण वन्दन ।

प्रत्येके करिल प्रभु प्रेम-आलिङ्गन ॥ 129॥

श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर आदि भक्तों ने; करिल–किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; चरण वन्दन-चरण वन्दना; प्रत्येके-प्रत्येक को; करिलकिया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रेम-आलिङ्गन-प्रेमपूर्वक आलिंगन।

अनुवाद

इसके बाद श्रीवास ठाकुर तथा सभी भक्तों ने महाप्रभु के चरणकमलों की वन्दना की और महाप्रभु ने बारी-बारी से हर एक का अत्यन्त प्रेमभाव से आलिंगन किया।

एके एके सर्व-भक्ते कैल सम्भाषण ।

सबा लञा अभ्यन्तरे करिला गमन ॥ 130॥

एके एके-एक एक करके; सर्व-भक्ते-प्रत्येक भक्त को; कैल–किया; सम्भाषण-सम्बोधन; सबा लञा-उन सबको लेकर; अभ्यन्तरे-भीतर; करिला गमन–प्रवेश किया।

अनुवाद

महाप्रभु ने एक-एक करके सारे भक्तों को सम्बोधित किया और वे उन सबको अपने साथ घर के भीतर ले गये।

मिशेर आवास सेइ हय अल्प स्थान ।

असङ्ख्य वैष्णव ताहाँ हैल परिमाण ॥ 131॥

मिश्रर आवास-काशी मिश्र का आवास; सेइ-वह; हय-है; अल्प स्थान-अपर्याप्त स्थान; असङ्ख्य -असीमित; वैष्णव-वैष्णव, भक्त; ताहाँ-वहाँ; हैल-थे; परिमाण-बहुत भीड़ हो गई।

अनुवाद

चूँकि काशी मिश्र के घर में पर्याप्त स्थान न था, इसलिए वहाँ एकत्र भक्तों की भीड़ लग गई।

आपन-निकटे प्रभु सबा वसाइला ।

आपनि श्री-हस्ते सबारे माल्य-गन्ध दिला ॥ 132॥

आपन-निकटे-अपने निकट; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सबा–उन सबको; वसाइला–बैठाया; आपनि-अपने; श्री-हस्ते-हाथ से; सबारे-सबको; माल्य–माला; गन्ध-चंदन का लेप; दिला–भेंट किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे भक्तों को अपने पास बैठाया और अपने हाथ से उन्हें मालाएँ तथा चन्दन-लेप दिया।

भट्टाचार्य, आचार्य तबे महाप्रभुर स्थाने ।

यथा-योग्य मिलिला सबाकार सने ॥ 133॥

भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; आचार्य-गोपीनाथ आचार्य; तबे-तत्पश्चात्; महाप्रभुर स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के निवास पर; यथा-योग्य उचित प्रकार से; मिलिला–मिले; सबाकार सने-वहाँ एकत्रित सभी वैष्णवों के साथ।

अनुवाद

इसके बाद गोपीनाथ आचार्य तथा सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान पर सभी वैष्णवों से समुचित ढंग से मिले।

अद्वैतेरे कहेन प्रभु मधुर वचने ।

आजि आमि पूर्ण हइलाङ तोमार आगमने ॥134॥

अद्वैतेरे-अद्वैत आचार्य प्रभु को; कहेन–कहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मधुर वचने-मधुर वाणी में; आजि-आज; आमि-मैं; पूर्ण–पूर्ण; ह-इलाङ–हो गया; तोमार-आपके; आगमने-आगमन से॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मीठे वचनों से अद्वैत आचार्य प्रभु को सम्बोधित किया, "हे प्रिय महाशय, आपके आने से आज मैं पूर्ण हो गया हूँ।"

अद्वैत कहे,—ईश्वरेर एइ स्वभाव हय ।

यद्यपि आपने पूर्ण, सर्वैश्वर्य-मय ॥135॥

तथापि भक्त-सङ्गे हय सुखोल्लास ।

भक्त-सङ्गे करे नित्य विविध विलास ॥136॥

अद्वैत कहे-अद्वैत आचार्य प्रभु ने कहा; ईश्वरेर–भगवान् का; एइ–यह; स्वभाव-स्वभाव; हय-होता है; यद्यपि यद्यपि; आपने-स्वयं; पूर्ण–पूर्ण; सर्व-ऐश्वर्य-मय-सभी ऐश्वर्य से पूर्ण; तथापि-फिर भी; भक्त-सङ्गे-भक्तों के संग; हय-है; सुख-उल्लास-अत्यन्त आनन्द; भक्त-सङ्गे-भक्तों के साथ; करे-करते हैं; नित्य-सदा; विविध–विभिन्न; विलास-लीलाएँ।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य प्रभु ने उत्तर दिया, "यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्वाभाविक गुण है। यद्यपि वे स्वयं सम्पूर्ण हैं और समस्त ऐश्वर्यों से युक्त हैं, किन्तु वे अपने भक्तों के संग में अनेक प्रकार की नित्य लीलाएँ करके दिव्य आनन्द का आस्वादन करते हैं।"

वासुदेव देखि' प्रभु आनन्दित हञा ।

ताँरे किछु कहे ताँर अङ्गे हस्त दिया ॥ 137॥

वासुदेव-वासुदेव; देखि'–देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आनन्दित हञा-अत्यन्त आनन्दित होकर; ताँरे–उनको; किछु कहे-कुछ कहा; ताँर अङ्गे-उसके शरीर पर; हस्त दिया-अपना हाथ रखकर।

अनुवाद

"महाप्रभु ने ज्योंही मुकुन्द दत्त के बड़े भाई वासुदेव दत्त को देखा, त्योंही वे तुरन्त अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और उनके शरीर पर अपना हाथ रखकर बोलने लगे।"

यद्यपि मुकुन्द—आमा-सङ्गे शिशु हैते ।

ताँहा हैते अधिक सुख तोमारे देखते ॥ 138॥

यद्यपि यद्यपि, मुकुन्द-मुकुन्द; आमा-सङ्गे–मेरे साथ; शिशु हैते–बचपन से; ताँहा हैते-उसकी अपेक्षा; अधिक-अधिक; सुख-सुख; तोमारे देखते-आपको देखकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यद्यपि मुकुन्द मेरा बचपन का मित्र है, किन्तु उसकी तुलना में आपको देखकर मुझे कहीं अधिक प्रसन्नता हो रही है।"

तात्पर्य

वासुदेव दत्त श्री चैतन्य महाप्रभु के बचपन के मित्र मुकुन्द दत्त के बड़े भाई थे। मित्र को देखकर प्रसन्नता होनी स्वाभाविक है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने वासुदेव दत्त से बताया कि उनको देखकर उन्हें अपने मित्र के मिलने से बढ़कर प्रसन्नता हुई है।

वासु कहे,—मुकुन्द आदौ पाइल तोमार सङ्ग ।

तोमार चरण पाइल सेइ पुनर्जन्म ॥ 139॥

वासु कहे वासुदेव दत्त ने कहा; मुकुन्द-मुकुन्द; आदौ-शुरू में; पाइल-पाया; तोमार सङ्ग–आपका संग; तोमार चरण-आपके चरणकमल; पाइल-पाये; सेइ-वह; पुनः-जन्म-दिव्य पुनर्जन्म।

अनुवाद

वासुदेव ने उत्तर दिया, "मुकुन्द को प्रारम्भ में आपका साथ मिला। अतएव उसने आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली है। यही उसका दिव्य पुनर्जन्म है।"

छोट हञा मुकुन्द एबे हैल आमार ज्येष्ठ ।

तोमार कृपा-पात्र ताते सर्व-गुणे श्रेष्ठ ॥ 140 ॥

छोट हञा–छोटा होने पर; मुकुन्द-मुकुन्द; एबे-अब; हैल-हो गया है; आमार-मेरा; ज्येष्ठ वरिष्ठ; तोमार-आपका; कृपा-पात्र-कृपापात्र; ताते-अतः; सर्व-गुणे-सभी सद्गुणों में; श्रेष्ठ-श्रेष्ठ।

अनुवाद

इस तरह वासुदेव दत्त ने अपने छोटे भाई मुकुन्द से अपनी कनिष्ठता स्वीकार कर ली। उन्होंने कहा, "यद्यपि मुकुन्द मुझ से छोटा है, किन्तु उसे आपकी कृपा पहले प्राप्त हुई। अतः वह मुझसे आध्यात्मिक दृष्टि से वरिष्ठ हो गया। इसके अतिरिक्त, आप उस पर बहुत कृपालु हैं। इस तरह वह सारे सद्गुणों में मुझसे वरिष्ठ है।"

पुनः प्रभु कहे—आमि तोमार निमित्ते ।

दुइ पुस्तक आनियाछि 'दक्षिण' हइते ॥ 141॥

पुनः–दोबारा; प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; आमि-मैं; तोमार निमित्ते-आपके लिए; दुइ-दो; पुस्तक-पुस्तकें; आनियाछि–लाया हूँ; दक्षिण हइते-दक्षिण भारत से।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "मैं केवल आपके लिए दक्षिण भारत से दो पुस्तकें लाया हूँ।"

स्वरूपेर ठाञि आछे, लह ता लिखिया ।

वासुदेव आनन्दित पुस्तक पाञा ॥ 142॥

स्वरूपेर ठाडि-स्वरूप दामोदर के पास है; आछे-वे हैं; लह-आप ले लो; ता-उन्हें; लिखिया-नकल करके; वासुदेव-वासुदेव; आनन्दित-अत्यन्त प्रसन्न; पुस्तक-पुस्तकों को; पाञा-पाकर।

अनुवाद

"वे पुस्तकें स्वरूप दामोदर के पास रखी हैं और आप उनकी नकल करवा सकते हैं।" यह सुनकर वासुदेव अत्यन्त प्रसन्न हुए।"

प्रत्येक वैष्णव सबे लिखिया लइल।

क्रमे क्रमे दुइ ग्रन्थ सर्वत्र व्यापिल ॥ 143 ॥

प्रत्येक प्रत्येक; वैष्णव-भक्त ने; सबे-सब; लिखिया-नकल; लइल-कर लिया; क्रमे क्रमे-शनैः शनैः; दुइ ग्रन्थ-दोनों ग्रन्थ; सर्वत्र सर्वत्र; व्यापिल-प्रसारित हो गये।

अनुवाद

प्रत्येक वैष्णव ने इन दोनों पुस्तकों की प्रतिलिपि कर ली। धीरे-धीरे ये दोनों पुस्तकें (ब्रह्म-संहिता तथा श्रीकृष्णकर्णामृत) सारे भारत में व्याप्त हो गईं।

श्रीवासाद्ये कहे प्रभु करि' महा-प्रीत।

तोमार चारि-भाइर आमि हइनु विक्रीत ॥ 144॥

श्रीवास-आधे-श्रीवास तथा उनके तीन भाइयों को; कहे-कहने लगे; प्रभु–महाप्रभुः करि'–करके; महा-प्रीत-अत्यन्त स्नेहपूर्वक; तोमार-आप; चारि-भाइर–चारों भाइयों का; आमि–मैं; हइनु-हो गया; विक्रीत-खरीदा गया।

अनुवाद

महाप्रभु ने श्रीवास तथा उनके भाइयों को अत्यन्त प्रेम तथा स्नेह के साथ सम्बोधित किया, "मैं तो इतना कृतज्ञ हूँ कि तुम चारों भाइयों ने मुझे खरीद लिया है।"

श्रीवास कहेन,—केने कह विपरीत।

कृपा-मूल्ये चारि भाइ हइ तोमार क्रीत ॥ 145 ॥

श्रीवास कहेन–श्रीवास ठाकुर ने उत्तर दिया; केने-क्यों; कह विपरीत–आप विपरीत क्यों बोलते हैं; कृपा-मूल्ये-आपकी कृपा के मूल्य से; चारि भाइ–हम चारों भाई; हइ-हो गये हैं; तोमार-आपके द्वारा; क्रीत-खरीदे गये।

अनुवाद

तब श्रीवास ने महाप्रभु से कहा, "आप उल्टा क्यों कह रहे हैं? वास्तव में हम चारों भाई आपकी कृपा द्वारा खरीदे जा चुके हैं।"

शङ्करे देखिया प्रभु कहे दामोदरे।

सगौरव-प्रीति आमार तोमार उपरे॥ 146॥

शङ्करे देखियाशंकर को देखकर; प्रभु–महाप्रभु ने; कहे–कहा; दामोदरे-दामोदर को; स-गौरव-प्रीति–आदरपूर्वक प्रेम; आमार-मेरा; तोमार उपरे-आप पर।

अनुवाद

शंकर को देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने दामोदर से कहा, "तुम पर मेरा स्नेह गौरव से युक्त है।"

तात्पर्य

यहाँ पर महाप्रभु दामोदर पंडित से कह रहे हैं, जो स्वरूप दामोदर से भिन्न व्यक्ति हैं। दामोदर पंडित शंकर के बड़े भाई हैं। इस तरह महाप्रभु ने दामोदर को बतलाया कि उनका दामोदर के प्रति प्रेम आदर के स्तर पर है। किन्तु उनके छोटे भाई शंकर के प्रति महाप्रभु का प्रेम शुद्ध प्रेम के स्तर पर था।

शुद्ध केवल-प्रेम शङ्कर-उपरे।

अतएव तोमार सङ्गे राखह शङ्करे॥ 147॥

शुद्ध केवल-प्रेम-शुद्ध प्रेम; शङ्कर-उपरे–शंकर पर; अतएव–अतएव; तोमार सङ्गे-अपने साथ; राखह-रखो; शङ्करे–शंकर।

अनुवाद

"इसलिए तुम अपने छोटे भाई शंकर को अपने साथ रखो, क्योंकि वह मुझसे शुद्ध प्रेम से जुड़ा हुआ है।"

दामोदर कहे,—शङ्कर छोट आमा हैते ।

एबे आमार बड़ भाइ तोमार कृपाते ॥ 148॥

दामोदर कहे-दामोदर पण्डित ने कहा; शङ्कर–शंकर; छोट-छोटा; आमा हैते-मुझसे; एबे–अब; आमार-मेरा; बड़ भाइ-बड़ा भाई; तोमार-आपकी; कृपा-कृपा से।

अनुवाद

दामोदर पंडित ने उत्तर दिया, "शंकर मेरा छोटा भाई तो है, किन्तु आज से वह मेरा बड़ा भाई बन गया, क्योंकि उस पर आपकी विशेष कृपा है।"

शिवानन्दे कहे प्रभु,—तोमार आमाते ।

गाढ़ अनुराग हय, जानि आगे हैते ॥149॥

शिवानन्दे-शिवानन्द सेन को; कहे-कहा; प्रभु–महाप्रभु; तोमार-तुम्हारा; आमाते-मुझ पर; गाढ़ अनुराग-गहरा प्रेम; हय-है; जानि–मैं जानता हूँ; आगे हैते-आरम्भ से ही।

अनुवाद

फिर शिवानन्द सेन की ओर मुड़ते हुए महाप्रभु ने कहा, "मैं जानता हूँ कि प्रारम्भ से ही मेरे प्रति तुम्हारा अतीव अनुराग रहा है।"

शुनि' शिवानन्द-सेन प्रेमाविष्ट हञा ।

दण्डवत् हञा पदे श्लोक पड़िया ॥ 150॥

शुनि'–सुनकर; शिवानन्द-सेन–शिवानन्द सेन; प्रेम-आविष्ट हञा–प्रेमावेश में आकर; दण्डवत् हञा-दण्डवत् करके; पड़े-गिर गये; श्लोक-एक श्लोक; पड़िया-पढ़कर।

अनुवाद

यह सुनते ही शिवानन्द सेन भावविभोर हो उठे और महाप्रभु को प्रणाम करके भूमि पर गिर पड़े। फिर उन्होंने निम्नलिखित श्लोक सुनाना शुरू किया।

निमजतोऽनन्त भवार्णवान्तश्

चिराय मे कुलमिवासि लब्धः ।

त्वयापि लब्धं भगवन्निदानीम्

अनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः ॥ 151॥

निमज्जतः-डूबकर; अनन्त-हे अनन्त; भव-अर्णव-अन्तः–अज्ञान के अन्धकार के सागर में; चिराय-दीर्घ समय के बाद; मे-मुझे; कूलम्-किनारा; इव-जैसा; असि-आप हैं; लब्धः–मिले हैं; त्वया-आपसे; अपि-भी; लब्धम्-मिला है; भगवन्-हे मेरे स्वामी; इदानीम्-अब; अनुत्तमम् सर्वोत्तम; पात्रम्-पात्र; इदम्-यह; दयायाः-आपकी कृपा के योग्य।

अनुवाद

"हे प्रभु! हे असीम! यद्यपि मैं अज्ञान के सागर में डूबा हुआ था, किन्तु अब दीर्घकाल के बाद मैंने आपको उसी प्रकार प्राप्त किये हैं, जिस प्रकार किसी को समुद्र का किनारा मिल जाए। हे प्रभु, मुझे प्राप्त करके आपने ऐसा उपयुक्त व्यक्ति प्राप्त किया है, जिस पर आप अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान कर सकते हैं।"

तात्पर्य

यह आलबन्दारु यामुनाचार्य विरचित स्तोत्ररत्न का श्लोक 21 है। अज्ञान का सागर, भौतिक शरीर पाने के कारण, जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा रोग के पुनरावर्तन का भवसागर है, जिसमें गिरने पर भी मनुष्य भगवान् के साथ अपना सम्बन्ध पुनः जोड़ सकता है। वैसे तो भौतिक जीवन की 84,00,000 योनियाँ हैं, किन्तु मानव योनि में जीव को जन्म तथा मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिलने का अवसर प्राप्त होता है। जब मनुष्य भगवान् का भक्त बन जाता है, तब जन्म-मृत्यु के भयावह सागर से उसका उद्धार हो जाता है। भगवान् उन पतित आत्माओं पर अपनी कृपा दिखाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं, जो दुःखमय जीवन से संघर्ष कर रहे हैं। जैसाकि भगवद्गीता (15.7) में कृष्ण द्वारा कहा गया है :

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

“इस बद्ध जगत् में सारे जीव मेरे सनातन अंश हैं। बद्ध जीवन के कारण वे मन समेत छह इन्द्रियों से विकट जीवन-संघर्ष करते रहते हैं।”

इस तरह हर जीव इस भौतिक जगत् में घोर संघर्ष करता रहता है। वास्तव में जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का अंश है और जब वह भगवान् की शरण में आ जाता है, तब उसे जन्म-मृत्यु के सागर से छुटकारा मिल जाता है। पतितात्माओं पर अत्यन्त दयालु होने के कारण भगवान् जीवों को अज्ञान के समुद्र से बाहर निकालने के लिए उत्सुक रहते हैं। यदि जीव अपनी स्थिति समझता है और भगवान् की शरण ग्रहण करता है, तो उसका जीवन सफल हो जाता है।

प्रथमे मुरारि-गुप्त प्रभुरे ना मिलिया ।

बाहिरेते पड़ि’ आछे दण्डवत् हञा ॥ 152॥

प्रथमे-पहले; मुरारि-गुप्त-मुरारि गुप्त; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; ना-नहीं; मिलिया–मिलकर; बाहिरेते-बाहर; पड़ि’-गिरकर; आछे-वहाँ थे; दण्डवत्-दण्डवत्; हञा–होकर।

अनुवाद

मुरारि गुप्त पहले महाप्रभु से नहीं मिले, किन्तु दरवाजे के बाहर से ही उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया।

मुरारि ना देखिया प्रभु करे अन्वेषण ।

मुरारि लइते धाञा आइला बहु-जन ॥153 ॥

मुरारि-मुरारी; ना-नहीं; देखिया-देखने; प्रभु–महाप्रभु; करे-की; अन्वेषण-पूछताछ; मुरारि-मुरारी गुप्त; लड़ते-लेने के लिए; धाञा-दौड़कर; आइला–आये; बहु-जन–बहुत लोग।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्तों के बीच मुरारि गुप्त को नहीं देखा, तो उन्होंने उनके विषय में पूछताछ की। फलतः अनेक लोग उन्हें महाप्रभु के पास लाने के लिए दौड़े-दौड़े गये।

तृण दुइ-गुच्छ मुरारि दशने धरिया ।

महाप्रभु आगे गेला दैन्याधीन हञा ॥ 154॥

तृण-घास के; दुइ-दो; गुच्छ-गुच्छे; मुरारि-मुरारी; दशने-अपने दांतों में; धरिया-रखकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु के आगे-आगे; गेला-गया; दैन्य-अधीन–विनम्र होकर; हञा–होकर।

अनुवाद

इस तरह मुरारि गुप्त अपने दाँतो में तिनके के दो गुच्छे दबाकर अत्यन्त दीन-हीन भाव से महाप्रभु के समक्ष गये।

मुरारि देखिया प्रभु आइला मिलिते ।

पाछे भागे मुरारि, लागिला कहिते ॥155॥

मुरारि-मुरारी; देखिया-देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला–आये; मिलिते-मिलने के लिए; पाछे-पीछे; भागे-भाग गया; मुरारि-मुरारी; लागिला-लगा; कहिते-बोलने।

अनुवाद

यह देखकर कि मुरारि उनसे मिलने आ रहे हैं, श्री चैतन्य महाप्रभु उनके पास गये, किन्तु मुरारि दूर भागने लगे और इस प्रकार कहने लगे।

मोरे ना छुडिह, प्रभु, मुजि त’ पामर ।

तोमार स्पर्श-योग्य नहे पाप कलेवर ॥ 156॥

मोरे-मुझे; ना छुडिह-मत छुओ; प्रभु–मेरे प्रभु; मुजि-मैं; त’–निश्चित रूप से; पामर-अत्यन्त नीच; तोमार-आपके; स्पर्श-योग्य-स्पर्श के योग्य; नहे-नहीं; पाप-पापमय; कलेवर–शरीर।

अनुवाद

“हे प्रभु! कृपया आप मुझे न छुएँ। मैं अत्यन्त नीच हूँ और आपके छूने योग्य नहीं हैं, क्योंकि मेरा शरीर पापमय है।”

प्रभु कहे,—मुरारि, कर दैन्य संवरण ।

तोमार दैन्य देखि’ मोर विदीर्ण हय मन ॥ 157॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; मुरारि–मेरे प्रिय मुरारी; कर दैन्य संवरण-अपनी महान दीनता को रोको; तोमार-तुम्हारी; दैन्य-विनम्रता; देखि'–देखकर; मोर-मेरा; विदीर्ण हय मन–मन विचलित हो रहा है।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "हे मुरारि, कृपया तुम अपनी अनावश्यक दीनता बन्द करो। तुम्हारी दीनता देखकर मेरा मन विचलित हो रहा है।"

एत बलि' प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन ।

निकटे वसाञा करे अङ्ग सम्मार्जन ॥158॥

एत बलि'-यह कहकर; प्रभु–महाप्रभु ने; ताँरे–उनको; कैल-किया; आलिङ्गन-आलिंगन; निकटे-निकट; वसाञा-बैठाकर; करे-किया; अङ्ग-उसके शरीर के; सम्मार्जन-स्वच्छ।

अनुवाद

यह कहकर महाप्रभु ने मुरारि का आलिंगन किया और उन्हें अपने पास में बैठाया। फिर महाप्रभु अपने हाथों से उनका शरीर साफ करने लगे।

आचार्यरत्न, विद्यानिधि, पण्डित गदाधर ।

गङ्गादास, हरि-भट्ट, आचार्य पुरन्दर ॥159॥

प्रत्येके सबार प्रभु करि' गुण गान ।

पुनः पुनः आलिङ्गिया करिल सम्मान ॥ 160॥

आचार्यरल-आचार्यरत्न; विद्यानिधि–विद्यानिधि; पण्डित गदाधर-पण्डित गदाधर; गङ्गादास-गंगादास; हरि-भट्ट-हरिभट्ट; आचार्य पुरन्दर-आचार्य पुरन्दर; प्रत्येके-प्रत्येक; सबार-उन सबका; प्रभु–महाप्रभु; करि' गुण गान–गुणगान करके; पुनः पुनः-बारम्बार; आलिङ्गिया-आलिंगन करके; करिल-किया; सम्मान-सम्मान।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने आचार्यरत्न, विद्यानिधि, पंडित गदाधर, गंगादास, हरिभट्ट तथा आचार्य पुरन्दर इत्यादि सभी भक्तों का बारम्बार आलिंगन किया। उनके सद्गुणों का बखान किया और बारम्बार उनका सम्मान किया।

सबारे सम्मानि' प्रभुर हइल उल्लास ।

हरिदासे ना देखिया कहे,—काहाँ हरिदास ॥ 161॥

सबारे सम्मानि'–प्रत्येक भक्त का सम्मान करके; प्रभुर–महाप्रभु को; हइल-हुआ; उल्लास-हर्ष, आनन्द; हरिदासे–हरिदास ठाकुर को; ना देखिया-न देखकर; कहे-कहा; काहाँ हरिदास–हरिदास कहाँ है?

अनुवाद

इस तरह प्रत्येक भक्त का सम्मान करके श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। किन्तु हरिदास ठाकुर को न देखकर उन्होंने पूछा, "हरिदास कहाँ हैं?"

दूर हैते हरिदास गोसाञे देखिया ।

राजपथ-प्रान्ते पड़ि' आछे दण्डवत् हञा ॥162॥

दूर हैते-दूर से; हरिदास गोसाञे-हरिदास ठाकुर; देखिया-देखकर; राजपथ-प्रान्ते–राजपथ की एक ओर; पड़ि'-गिरकर; आछे-वे थे; दण्डवत् हञा–दण्डवत् प्रणाम कर रहे।

अनुवाद

तभी श्री चैतन्य महाप्रभु ने देखा कि हरिदास ठाकुर दूर से, रास्ते पर गिरकर, उन्हें प्रणाम कर रहे हैं।

मिलन-स्थाने आसि' प्रभुरे ना मिलिला ।

राजपथ-प्रान्ते दूरे पड़िया रहिला ॥ 163 ॥

मिलन-स्थाने-मिलन स्थल पर; आसि'–आकर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; ना–नही; मिलिला–मिले; राजपथ-प्रान्ते–राजपथ की एक ओर; दूर-दूर ही; पड़िया-भूमि पर पड़े; रहिला-रहे।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर महाप्रभु के मिलन-स्थल पर नहीं आये, अपितु वे दूर ही सामान्य रास्ते पर दण्डवत् पड़े रहे।

भक्त सब धाञा आइल हरिदासे निते ।

प्रभु तोमाय मिलिते चाहे, चलह त्वरिते ॥ 164॥

भक्त-भक्त; सब–सभी; धाञा-दौड़कर; आइल-आये; हरिदासे–हरिदास को; निते-लेने; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तोमाय-आपसे; मिलिते-मिलने के लिए; चाहे-चाहते हैं; चलह-आओ; त्वरिते-अति शीघ्र।

अनुवाद

तब सारे भक्त हरिदास ठाकुर के पास जाकर बोले, "महाप्रभु आपसे मिलना चाहते हैं। कृपया तुरन्त आइये।"

हरिदास कहे,—मुञि नीच-जाति छार ।

मन्दिर-निकटे याइते मोर नाहि आधिकार ॥ 165॥

हरिदास कहे-हरिदास ठाकुर ने कहा; मुञि-मैं; नीच-जाति-नीच जाति का; छार–पतित, घृणास्पद; मन्दिर-निकटे-मन्दिर के निकट; याइते-जाने का; मोर-मेरा; नाहि-नहीं है; आधिकार-अधिकार।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, "मैं मन्दिर के पास नहीं जा सकता, क्योंकि मैं नीच जाति का अधम व्यक्ति हूँ। मुझे वहाँ जाने का कोई अधिकार नहीं है।"

तात्पर्य

यद्यपि हरिदास ठाकुर इतने सम्मानित वैष्णव थे कि उन्हें हरिदास गोस्वामी कहा जाता था, किन्तु फिर भी वे सामान्य लोगों के विचारों को विचलित नहीं करना चाहते थे। वे इतने सम्मान्य थे कि उन्हें ठाकुर तथा गोसांइ कहा जाता था, जो महाभागवत वैष्णवों की पदवियाँ हैं। सामान्यतया गुरु को गोसांई तथा परमहंसों को ठाकुर कहा जाता है, क्योंकि वे आध्यात्मिकता के सर्वोच्च स्तर पर अवस्थित होते हैं। तो भी हरिदास ठाकुर मन्दिर के पास नहीं जाना चाहते थे,

यद्यपि स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें वहाँ बुलाया था। जगन्नाथ मन्दिर में अब भी वर्णाश्रम धर्म वाले हिन्दुओं को ही प्रवेश मिलता है। जो अहिन्दू हैं, उन्हें मन्दिर में प्रवेश करने नहीं दिया जाता। यह बहुत प्राचीन विधान है, अतएव हरिदास ठाकुर मन्दिर के निकट भी नहीं जाना चाह रहे थे, यद्यपि वे मन्दिर में प्रवेश करने के लिए सर्वथा योग्य एवं सक्षम थे। यही वैष्णव दैन्य कहलाता है।

निभृते टोटा-मध्ये स्थान यदि पाङ ।

ताहाँ पड़ि' रहो, एकले काल गोङाङ ॥166॥

निभृते-एकान्त स्थान में; टोटा-मध्ये-उद्यान के भीतर, स्थान-स्थान; यदि-यदि; पाङ–मुझे मिले; ताहाँ-वहाँ; पड़ि' रहो-मैं पड़ा रहूँगा; एकले-अकेला; काल-समय; गोङाङ–व्यतीत करूँगा।

अनुवाद

तब हरिदास ठाकुर ने अपनी इच्छा व्यक्त की, "यदि मुझे मन्दिर के निकट कोई एकान्त स्थान मिल जाता, तो मैं वहाँ अकेले रहकर अपना समय बिताता।"

जगन्नाथ-सेवकेर मोर स्पर्श नाहि हय ।

ताहाँ पड़ि' रहों,—मोर एइ वाञ्छा हय ॥167॥

जगन्नाथ–सेवकेर-भगवान जगन्नाथ के सेवकों का; मोर-मेरा; स्पर्श-स्पर्श; नाहि-नहीं; हय-हो; ताहाँ-वहाँ; पड़ि' रहों-मैं पड़ा रहूँ; मोर-मेरी; एइ–यह; वाञ्छा-इच्छा; हय-है।

अनुवाद

"मैं नहीं चाहता कि भगवान जगन्नाथ के सेवक मेरा स्पर्श करें। मैं वहाँ बगीचे में अकेला रहूँगा। यही मेरी इच्छा है।"

एइ कथा लोक गिया प्रभुरे कहिल ।

शुनिया प्रभुर मने बड़ सुख हइल ॥ 168॥

एइ कथा-यह सन्देश; लोक-लोगों ने; गिया-जाकर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कहिल–सूचित किया; शुनिया-सुनकर; प्रभुर मने-महाप्रभु के मन में; बड़-अत्यन्त; सुख–प्रसन्नता; हइल–हुई।

अनुवाद

जब लोगों ने श्री चैतन्य महाप्रभु को यह सन्देश दिया, तो वे यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

हेन-काले काशी-मिश्र, पड़िछा,—दुइ जन ।

आसिया करिल प्रभुर चरण वन्दन ॥ 169॥

हेन-काले-इस समय; काशी-मिश्र-काशी मिश्र; पड़िछा–अध्यक्ष; दुइ जन-दो व्यक्ति; आसिया-आकर; करिल-किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; चरण वन्दन-चरण वन्दन।

अनुवाद

उसी समय काशी मिश्र मन्दिर की देख-रेख करने वाले के साथ आये और उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर अपना सादर नमस्कार किया।

सर्व वैष्णव देखि' सुख बड़ पाइला ।

यथा-योग्य सबा-सने आनन्दे मिलिला ॥ 170॥

सर्व वैष्णव-सभी वैष्णवों को; देखि'-देखकर; सुख-हर्ष; बड़-अत्यधिक; पाइला–पाया; यथा-योग्य-उचित प्रकार से; सबा-सने-सबके साथ; आनन्दे-आनन्दपूर्वक; मिलिला–मिले।

अनुवाद

सारे वैष्णवों को एकसाथ देखकर काशी मिश्र तथा अध्यक्ष दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे उन सबसे समुचित रीति से अति प्रसन्नतापूर्वक मिले।

प्रभु-पदे दुइ जने कैल निवेदने ।

आज्ञा देह',—वैष्णवेर करि समाधाने ॥ 179॥

प्रभु-पदे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर; दुइ जने–उन दोनों ने; कैल-किया; निवेदने निवेदन; आज्ञा देह'–कृपया आज्ञा दीजिए; वैष्णवेर-सभी वैष्णवों की; करि–करें; समाधाने-व्यवस्था।

अनुवाद

दोनों ने श्री चैतन्य महाप्रभु से निवेदन किया, "कृपया हमें आदेश दें, जिससे हम सारे वैष्णवों के रहने की उचित व्यवस्था कर सकें।"

सबार करियाछि वासा-गृह-स्थान ।

महा-प्रसाद सबाकारे करि समाधान ॥ 172॥

सबार-उन सबके लिए; करियाछि-हमने व्यवस्था कर दी है; वासा-गृह-स्थान-रहने के लिए निवासस्थानों की; महा-प्रसाद–महाप्रसाद; सबाकारे-उन सबको; करि-करें; समाधान–वितरण।

अनुवाद

"सारे वैष्णवों के रहने की व्यवस्था हो चुकी है। अब हम उन सबों को महा-प्रसाद वितरित करेंगे।"

प्रभु कहे,—गोपीनाथ, याह' वैष्णव लञा ।

याहाँ याहाँ कहे वासा, ताहाँ देह' लञा ॥ 173॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; गोपीनाथ-मेरे प्रिय गोपीनाथ; याह'–कृपया जाओ; वैष्णव लञा-सभी वैष्णवों को लेकर; याहाँ याहाँ–जहाँ भी; कहे-वे कहे; वासा–निवासस्थान; ताहाँ-वहाँ; देह'–दो; लञा-स्वीकार करके।

अनुवाद

तुरन्त ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोपीनाथ आचार्य से कहा, "आप वैष्णवों के साथ जाएँ और काशी मिश्र तथा मन्दिर की देख-रेख करने वाले सजन जो भी निवासस्थान दें, वहाँ उन सबको रखने का प्रबन्ध करें।"

महा-प्रसादान्न देह वाणीनाथ-स्थाने ।

सर्व-वैष्णवेर इँहो करिबे समाधाने ॥ 174॥

महा-प्रसाद-अन्न-महाप्रसाद; देह-दो; वाणीनाथ-स्थाने-वाणीनाथ को; सर्व-वैष्णवेर-सभी वैष्णवों को; इँहो-वे; करिबे-करेंगे; समाधाने–वितरण।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने काशी मिश्र तथा मन्दिर के अध्यक्ष से कहा, "जहाँ तक जगन्नाथजी के महाप्रसाद की बात है, उसका भार वाणीनाथ राय को दे दिया जाए, क्योंकि वे सारे वैष्णवों की देखभाल कर सकते हैं और उन्हें महाप्रसाद वितरित कर सकते हैं।"

आमार निकटे एइ पुष्पेर उद्याने ।

एक-खानि घर आछे परम-निर्जने ॥ 175॥

आमार निकटे-मेरे निवासस्थान के निकट; एइ–यह; पुष्पेर उद्याने पुष्पों के उद्यान की; एक-खानि-एक; घर–कमरा; आछे-वहाँ है; परम-निर्जने-बिल्कुल एकान्त में।

अनुवाद

फिर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मेरे स्थान के पास इस फुलवारी में एक कमरा है, जो अत्यन्त एकान्त में है।"

सेइ घर आमाके देह'—आछे प्रयोजन ।

निभृते वसिया ताहाँ करिब स्मरण ॥ 176 ॥

सेइ घर–वह कमरा; आमाके देह'–कृपया मुझे दो; आछे प्रयोजन-आवश्यकता है; निभृते-एकान्त स्थान में; वसिया–बैठकर; ताहाँ-वहाँ; करिब स्मरण-प्रभु के चरणकमल मैं स्मरण करूँगा।

अनुवाद

"वह कमरा मुझे दे दें, क्योंकि मुझे उसकी आवश्यकता है। मैं उस एकान्त स्थान में बैठकर भगवान् के चरणकमलों का स्मरण करूँगा।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का यह कथन महत्त्वपूर्ण है। निभृते वसिया ताहाँ करिब स्मरण–"मैं एकान्त स्थान में बैठकर भगवान् के चरणकमलों का स्मरण करूँगा।" नवदीक्षित शिष्यों को एकान्त में बैठकर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते हुए भगवान् के चरणकमलों का स्मरण करने की नकल नहीं करनी है। हमें सदैव स्मरण रखना होगा कि यह तो स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु थे, जिन्हें अपने लिए या हरिदास ठाकुर के लिए एकान्त स्थान चाहिए था। कोई भी व्यक्ति सहसा हरिदास ठाकुर का पद प्राप्त नहीं कर सकता और न एकान्त स्थान में बैठकर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन तथा भगवान् के चरणकमलों का स्मरण कर सकता है। केवल हरिदास ठाकुर या श्री चैतन्य महाप्रभु ही ऐसा अभ्यास कर सकते हैं, जो स्वयं आचार्य के उचित व्यवहार को प्रदर्शित करते हैं।

आजकल हम देखते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के कुछ सदस्य एकान्त स्थान में बैठने के लिए अपना-अपना प्रचार कार्य छोड़ रहे हैं। यह शुभ लक्षण नहीं है। यह हकीकत है कि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने नवदीक्षितों के लिए इस विधि की भर्त्सना की है। यहाँ तक कि उन्होंने एक गीत में लिखा है-प्रतिष्ठार तरे, निर्जनेर घरे, तव हरिनाम केवल कैतव–"हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने की इच्छा से एकान्त स्थान में बैठे रहना छलावा है।" नवदीक्षितों के लिए यह बिल्कुल सम्भव नहीं है। नवदीक्षित को तो गुरु के निर्देशानुसार परिश्रमपूर्वक कार्य करना चाहिए और इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करना चाहिए। जब भक्ति परिपक्व हो जाय, तभी वह हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने के लिए एकान्त स्थान में बैठे, जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं किया था। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, किन्तु हमें शिक्षा देने के लिए वे छह वर्षों तक लगातार भारत का भ्रमण करते रहे और बाद में ही जगन्नाथ पुरी में रहने लगे। यहाँ तक कि जगन्नाथ पुरी में भी जगन्नाथ मन्दिर की विशाल सभाओं में वे हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन किया करते थे। कहने की बात यह है कि मनुष्य को अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रारम्भ में हरिदास ठाकुर की नकल नहीं करनी चाहिए। पहले उसे अपनी भक्ति पक्की बनानी चाहिए और इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु का समर्थन प्राप्त करना चाहिए। तभी वह किसी एकान्त स्थान में शान्तिपूर्वक बैठकर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर सकता है और भगवान् के चरणकमलों का स्मरण कर सकता है। इन्द्रियाँ अत्यन्त प्रबल होती हैं और यदि नवदीक्षित भक्त हरिदास ठाकुर की नकल करता है, तो उसके शत्रु (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य) उसे सतायेंगे और हैरान करेंगे। फलतः नवदीक्षित भक्त हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के बदले गहरी नींद सोयेगा। प्रचार-कार्य उन्नत भक्तों के निमित्त है और जब वे भक्ति के धरातल पर और ऊँचे उठ जाएँ, तब वे एकान्त स्थान में रहकर हरे

कृष्ण मन्त्र का कीर्तन कर सकते हैं। किन्तु यदि कोई उन्नत आध्यात्मिक जीवन की केवल नकल करता है, तो उसका उसी तरह पतन होगा, जिस तरह वृन्दावन में सहजियों का होता है।

मिश्र कहे,—सब तोमार, चाह कि कारणे? ।

आपन-इच्छाय लह, येइ तोमार मने ॥ 177॥

मिश्र कहे-काशी मिश्र ने कहा; सब-सब कुछ; तोमार-आपका; चाह कि कारणे-आप क्यों माँगते हैं; आपन-इच्छाय-आपकी अपनी इच्छा से; लह-आप ले लें; येइ-जो कुछ; तोमार मने-आपके मन में हो।

अनुवाद

तब काशी मिश्र ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "हर वस्तु आपकी है। फिर माँगने से क्या लाभ? आप अपनी इच्छानुसार जो चाहें ले सकते हैं।"

आमि-दुइ हुइ तोमार दास आज्ञाकारी ।

ये चाह, सेइ आज्ञा देह' कृपा करि' ॥ 178 ॥

आमि-हम; दुइ-दो; हइ-हैं; तोमार-आपके; दास-दास; आज्ञा-कारी-आज्ञा पालन करने वाले; ये चाह-आप जो कुछ चाहें; सेइ आज्ञा-वही आज्ञा; देह'–दो; कृपा करि'–कृपा करके।

अनुवाद

"हे प्रभु, हम दोनों दास आपकी आज्ञाओं को पूरा करने के लिए हैं। कृपा करके आप जो भी चाहें हमसे करने को कहें।"

एत कहि' दुइ जने विदाय लइल ।

गोपीनाथ, वाणीनाथ दुँहे सङ्गे निल ॥ 179॥

एत कहि'-यह कहकर; दुइ जने–वे दोनों; विदाय लइल-विदा ली; गोपीनाथ-गोपीनाथ आचार्य; वाणीनाथ-वाणीनाथ राय; दुँहे सङ्गे निल-उन दोनों को अपने साथ ले गये।

अनुवाद

यह कहकर काशी मिश्र तथा मन्दिर की देख-रेख करने वाले व्यक्ति ने विदा ली और गोपीनाथ तथा वाणीनाथ भी उनके साथ गये।

गोपीनाथे देखाइल सब वासा-घर ।

वाणीनाथ-ठाञि दिल प्रसाद विस्तर ॥ 180॥

गोपीनाथे-गोपीनाथ आचार्य को; देखाइल-दिखाये; सब-सब; वासा-घर-निवासस्थान; वाणीनाथ-ठाञि-वाणीनाथ राय को; दिल-दिया; प्रसाद विस्तर–प्रचुर मात्रा में प्रसाद।

अनुवाद

तब गोपीनाथ को सारे निवासस्थान दिखलाये गये और वाणीनाथ को प्रचुर मात्रा में जगन्नाथजी का महाप्रसाद दिया गया।

वाणीनाथ आइला बहु प्रसाद पिठा लञा ।

गोपीनाथ आइला वासा संस्कार करिया ॥181॥

वाणीनाथ–वाणीनाथ; आइला–लौट आये; बहु-प्रचुर मात्रा में प्रसाद–प्रसाद; पिठा लञा–मिठाई लेकर; गोपीनाथ-गोपीनाथ आचार्य; आइला-लौट आये; वासा-निवासस्थान; संस्कार करिया-सफाई करके।

अनुवाद

इस तरह वाणीनाथ राय प्रचुर मात्रा में भगवान् जगन्नाथजी के प्रसाद के साथ-साथ मिठाई आदि लेकर लौटे। गोपीनाथ आचार्य भी सारे आवासीय कमरों की सफाई कराने के बाद लौट आये।

महाप्रभु कहे,—शुन, सर्व वैष्णव-गण ।

निज-निज-वासा सबे करह गमन ॥182॥

महाप्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; शुन–कृपया सुनो; सर्व वैष्णव-गण-सभी वैष्णवगण; निज-निज-वासा-अपने अपने निवासस्थान को; सबे-आप सब; करह-करो; गमन प्रस्थान।

अनुवाद

तभी श्री चैतन्य महाप्रभु ने सभी वैष्णवों को सम्बोधित करते हुए कहा, "सभी लोग सुनिये। अब आप लोग अपने अपने रिहायशी कमरों में जा सकते हैं।"

समुद्र-स्नान करि' कर चूड़ा दरशन ।

तबे आजि इहँ आसि' करिबे भोजन ॥183॥

समुद्र-स्नान-समुद्र में स्नान; करि'-समाप्त करके; कर-करो; चूड़ा दरशन-मन्दिर के शिखर का दर्शन करके; तबे-उसके बाद; आजि-आज; इहँ–यहाँ; आसि'-लौटकर; करिबे भोजन- भोजन करो।

अनुवाद

"सभी लोग समुद्र जाकर स्नान करो और मन्दिर के शिखर के दर्शन करो। ऐसा करने के बाद यहाँ आकर भोजन प्राप्त करो।"

प्रभु नमस्करि' सबे वासाते चलिला ।

गोपीनाथाचार्य सबे वासा-स्थान दिला ॥ 184॥

प्रभु नमस्करि'-श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करके; सबे-सब भक्त; वासाते चलिला-अपने अपने निवासस्थान को चल पड़े; गोपीनाथ-आचार्य-गोपीनाथ आचार्य ने; सबे–प्रत्येक को; वासा–निवास; स्थान-स्थान; दिला दिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करने के बाद सारे भक्त अपने अपने निवासस्थानों को चले गये और गोपीनाथ आचार्य ने उन सबको उनके कमरे दिखलाये।

महाप्रभु आइला तबे हरिदास-मिलने ।

हरिदास करे प्रेमे नाम-सङ्कीर्तने ॥185॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला–आये; तबे-उसके बाद; हरिदास-मिलने-ठाकुर हरिदास को मिलने; हरिदास-ठाकुर हरिदास ने; करे-कर रहे; प्रेमे-प्रेमावेश में; नाम-सङ्कीर्तने–नाम संकीर्तन।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु हरिदास ठाकुर से मिलने गये और वहाँ देखा कि वे अत्यन्त प्रेम से महामन्त्र के कीर्तन में संलग्न हैं। हरिदास हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे-का कीर्तन कर रहे थे।

प्रभु देखि' पड़े आगे दण्डवत् हञा ।

प्रभु आलिङ्गन कैल ताँरे उठाञा ॥ 186 ॥

प्रभु देखि'–महाप्रभु को देखने के बाद; पड़े-गिर पड़े; आगे-उनके समक्ष; दण्डवत् छड़ी की भाँति दण्डवत्; हञा–होकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; आलिङ्गन कैल-आलिंगन किया; ताँरे–उनको; उठाञा-ऊपर उठाकर।

अनुवाद

ज्योंही हरिदास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु को देखा, वे उन्हें प्रणाम करने के लिए तुरन्त दण्डवत् गिर गये और श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें उठाकर अपने गले लगाया।

दुइ-जने प्रेमावेशे करेन क्रन्दने ।

प्रभु-गुणे भृत्य विकल, प्रभु भृत्य-गुणे ॥187॥

दुइ-जने–वे दोनों; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; करेन क्रन्दने-रोने लगे; प्रभु-गुणे-महाप्रभु के गुणों के; भृत्य-सेवक; विकल-विकल हो गया; प्रभु-प्रभु, भृत्य-गुणे-सेवक के गुणों से।

अनुवाद

तब महाप्रभु तथा उनके दास (हरिदास) दोनों ही प्रेमवश रुदन करने लगे। प्रभु अपने दास के गुण से और दास अपने स्वामी के गुण से प्रभावित थे।

तात्पर्य

मायावादी दार्शनिकों का कहना है कि जीव तथा भगवान् अभिन्न हैं, अतएव वे जीव के रूपान्तर की समता भगवान् के रूपान्तर से करते हैं। दूसरे शब्दों में, मायावादी कहते हैं कि यदि जीव प्रसन्न रहता है, तो भगवान् भी प्रसन्न रहते हैं और यदि जीव अप्रसन्न रहता है, तो भगवान् भी अप्रसन्न रहते हैं। इस प्रकार शब्दाडम्बर द्वारा मायावादी यह

सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि जीव तथा भगवान् में कोई अन्तर नहीं है। किन्तु यह सही नहीं है। इस श्लोक में कृष्णदास कविराज गोस्वामी बतलाते हैं-प्रभु-गुणे भृत्य विकल प्रभु भृत्यगुणे। भगवान् तथा जीव समान नहीं हैं, क्योंकि भगवान् सदैव स्वामी होते हैं और जीव सदैव दास होता है। रूपान्तर तो दिव्य गुणों के कारण होता है। यही कारण है कि ऐसा कहा जाता है कि भगवान् का दास तो भगवान् का हृदय होता है। और दास का हृदय भगवान् होते हैं। इसकी व्याख्या भगवान् कृष्ण द्वारा भगवद्गीता (4.11) में भी की गई है :

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।

"जो जिस प्रकार से मेरी शरण में आते हैं, उन्हें मैं उसी तरह से पुरस्कार देता हूँ। हे पृथा-पुत्र, हर व्यक्ति सभी तरह से मेरे ही पथ का अनुगमन करता है।"

भगवान् अपने दास को उसके दिव्य गुण के लिए बधाई देने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं। दास आनन्द से भगवान् की सेवा करता है, और भगवान् हैं कि वे प्रसन्न होकर दास से भी अधिक सेवा करने के लिए उत्सुक रहते हैं।

हरिदास कहे,—प्रभु, ना छुडिओ मोरे ।

मुञि—नीच, अस्पृश्य, परम पामरे ॥ 188॥

हरिदास कहे-ठाकुर हरिदास ने कहा; प्रभु-मेरे प्रिय प्रभु; ना छुडिओ मोरे–कृपया मुझे मत छूएँ; मुञि-मैं; नीच-सब से नीच; अस्पृश्य-अछूत; परम पामरे–निम्नतम मनुष्य।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, "हे प्रभु, कृपया आप मुझे न छुएँ, क्योंकि मैं अत्यन्त पतित, अछूत तथा मनुष्यों में सबसे नीच हूँ।"

प्रभु कहे,—तोमा स्पर्शि पवित्र हइते ।

तोमार पवित्र धर्म नाहिक आमाते ॥ 189॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; तोमा स्पर्शि-मैं तुम्हें छूता हूँ; पवित्र हइते-पवित्र होने के लिए; तोमार-तुम्हारा; पवित्र-पवित्र; धर्म–कार्यकलाप; नाहिक-नहीं है; आमाते-मुझमें।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "मैं तो पवित्र बनने के लिए तुम्हारा स्पर्श करना चाहता हूँ, क्योंकि तुम्हारे जैसे पवित्र कर्म मुझ में नहीं हैं।"

तात्पर्य

यह स्वामी तथा दास के बीच भावों के आदान-प्रदान का उदाहरण है। दास सोचता है कि वह बहुत अपवित्र है, अतएव स्वामी द्वारा स्पर्श करने योग्य नहीं है, किन्तु स्वामी सोचता है कि चूंकि वह अनेकानेक अशुद्ध जीवों की संगति करने से अपवित्र हो चुका है, अतएव उसे अपने आपको शुद्ध करने के लिए हरिदास ठाकुर जैसे शुद्ध भक्त का स्पर्श करना चाहिए। वास्तव में दास तथा स्वामी दोनों पहले से शुद्ध होते हैं, क्योंकि दोनों में से कोई भी भौतिक संसार की अशुद्धियों के सम्पर्क में नहीं रहता। वे दोनों गुण में समान होते हैं, क्योंकि दोनों ही परम शुद्ध होते हैं। हाँ, गुण की मात्रा में अन्तर अवश्य होता है, क्योंकि स्वामी असीम होता है और दास सीमित। फलत: दास सदैव स्वामी का आश्रित रहता है और यह सम्बन्ध सनातन तथा निर्विघ्न होता है। किन्तु ज्योंही दास स्वामी बनने की चेष्टा करना चाहता है, त्योंही वह माया में जा गिरता है। इस तरह अपनी स्वच्छन्द इच्छा के दुरुपयोग से ही मनुष्य माया के प्रभाव में आ जाता है।

मायावादी दार्शनिक स्वामी तथा दास की समता की व्याख्या मात्रा के सन्दर्भ में करने का प्रयास करते हैं, किन्तु वे यह नहीं बतला पाते कि यदि स्वामी तथा दास समान हैं, तो दास माया का शिकार क्यों होता है। वे यह बतलाने का प्रयत्न करते हैं कि जब यह दासरूपी जीव माया के चंगुल से छूटता है, तो वह फिर से तुरन्त तथाकथित स्वामी बन जाता है। ऐसी व्याख्या कभी भी सन्तोषजनक नहीं हो सकती। असीम होने के कारण स्वामी कभी भी माया का शिकार नहीं बन सकता, क्योंकि तब उसकी असीमता सीमित या पंगु हो जायेगी। इस तरह मायावादी व्याख्या सही नहीं है। सच तो यह है कि स्वामी सदा स्वामी ही रहता है और असीम होता है और दास सीमित होने के कारण कभी-कभी माया के प्रभाव से पंगु बन जाता है। माया भी स्वामी की शक्ति है और वह भी असीम है। अतः सीमित दास या सीमित जीव, स्वामी या स्वामी की शक्ति माया के अन्तर्गत रहने के लिए बाध्य होता है। माया के प्रभाव से छूटते ही मनुष्य पुनः शुद्ध

भक्त बन सकता है और गुण में भगवान् के समान हो सकता है। स्वामी तथा दास का यह सम्बन्ध उनके असीम तथा सीमित होने के कारण चलता रहता है।

क्षणे क्षणे कर तुमि सर्व-तीर्थे स्नान।

क्षणे क्षणे कर तुमि यज्ञ-तपो-दान ॥ 190॥

क्षणे क्षणे-प्रतिक्षण; कर-करते हो; तुमि-तुम; सर्व-तीर्थे स्नान-सभी तीर्थ स्थानों में स्नान; क्षणे क्षणे-प्रतिक्षण; कर-करते हो; तुमि-तुम; यज्ञ-यज्ञ; तपः–तपस्या; दान-दान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर की प्रशंसा करते हुए कहा, "तुम प्रतिक्षण सारे तीर्थस्थानों में स्नान करते हो और प्रतिक्षण यज्ञ, तप तथा दान करते रहते हो।"

निरन्तर कर चारि वेद अध्ययन।

द्विज-न्यासी हैते तुमि परम-पावन ॥ 191॥

निरन्तर-सदैव; कर-तुम करते हो; चारि-चारों; वेद-वेदों का; अध्ययन-अध्ययन; द्विज-ब्राह्मण; न्यासी-संन्यासी; हैते–की अपेक्षा; तुमि-तुम; परम-पावन-परम पावन।

अनुवाद

"तुम तो निरन्तर चारों वेदों का अध्ययन करते हो और किसी भी ब्राह्मण या संन्यासी से बढ़कर हो।"

अहो बत श्व-पचोऽतो गरीयान्

यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।

तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या

ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥ 192॥

अहो बत-यह कितना आश्चर्यजनक है; श्व-पचः-कुत्ता खाने वाला; अतः-दीक्षित ब्राह्मणों की अपेक्षा; गरीयान्-अधिक महिमावान; यत्-जिसकी; जिह्वा-अग्रे–जिह्वा पर; वर्तते-रहता है; नाम-पावन नाम; तुभ्यम्-आपका, मेरे प्रभु;

तेपुः-सम्पन्न की है; तपः-तपस्या; ते–वे; जुहुवुः-यज्ञ किये हैं; सस्नुः-सभी तीर्थस्थानों में स्नान किया; आय़ः-वास्तविक आर्य जाति वाले; ब्रह्म-सभी वेद; अनूचुः-पढ़े हैं; नाम-पावन नाम; गृणन्ति-जपते हैं; ये-जो; ते-वे।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह श्लोक सुनाया, "हे प्रभु, जो व्यक्ति आपके पवित्र नाम को अपनी जीभ पर सदैव रखता है, वह दीक्षित ब्राह्मण से बढ़कर बन जाता है। भले ही वह चंडाल परिवार में उत्पन्न हुआ हो और इस कारण से भौतिक दृष्टि में अत्यन्त नीच क्यों न माना जाये, तो भी वह प्रशंसनीय है। यह भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन का अद्भुत प्रभाव है। अतएव निष्कर्ष यह निकालना चाहिए कि जो व्यक्ति भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता है, समझ लो कि उसने वेदों में वर्णित सारे तप तथा यज्ञ सम्पन्न कर लिए; उसने सारे तीर्थस्थानों में स्नान कर लिया है; उसने सारे वेदों का अध्ययन कर लिया है और वह वास्तव में आर्य है।"

तात्पर्य

आर्य शब्द का अर्थ है उन्नत। जब तक कोई आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत न हो, तब तक वह आर्य नहीं कहला सकता। यही आर्य तथा अनार्य में अन्तर है। अनार्य वे हैं, जो आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत नहीं हैं। वैदिक संस्कृति का पालन करने, यज्ञ करने तथा वैदिक आदेशों का दृढ़ता से पालन करने से मनुष्य ब्राह्मण, संन्यासी या आर्य बन सकता है। समुचित योग्यता प्राप्त किये बिना ब्राह्मण, संन्यासी या आर्य बनना सम्भव नहीं है। भागवत धर्म किसी को सस्ता ब्राह्मण, संन्यासी या आर्य बनने की अनुमति नहीं देता। यहाँ पर वर्णित गुण या योग्यताएँ श्रीमद्भागवत (3.33.7) से उधृत हैं, जिन्हें कपिल देव की माता देवहूति ने तब बतलाया था, जब वे भक्तियोग के प्रभाव को भलीभाँति समझ गई थीं। इस तरह देवहूति ने भक्त की चतुर्दिक् महानता का संकेत करते हुए भक्त की प्रशंसा की है।

एत बलि ताँरे लञा गेला पुष्पोद्याने ।

अति निभृते ताँरे दिला वासा-स्थाने ॥ 193॥

एत बलि-यह कहकर; ताँरे लञा-उनको लेकर; गेला–गये; पुष्प-उद्याने–पुष्प उद्यान में; अति निभृते-एक अत्यन्त एकान्त स्थान में; ताँरे–उनको; दिला दिया; वासा-स्थाने-रहने का स्थान।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु हरिदास ठाकुर को फूल के बगीचे के भीतर ले गये और वहीं एक अत्यन्त एकान्त स्थान में उनको रहने के लिए निवासस्थान दे दिया।

एइ-स्थाने रहि' कर नाम सङ्कीर्तन ।

प्रति-दिन आसि' आमि करिब मिलन ॥194॥

एइ-स्थाने-इस स्थान पर; रहि-रहकर; कर-करो; नाम सङ्कीर्तन-नाम संकीर्तन; प्रति-दिन-प्रति दिन; आसि-आकर; आमि-मैं; करिब–करूँगा; मिलन-मिलन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर से निवेदन किया, "तुम यहीं पर रहो और हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करो। मैं प्रतिदिन यहीं तुमसे मिलने आता रहूँगा।"

मन्दिरेर चक्र देखि' करिह प्रणाम ।

एइ ठाञि तोमार आसिबे प्रसादान्न ॥195॥

मन्दिरेर–जगन्नाथ मन्दिर; चक्र-शिखिर के चक्र को; देखि'–देखकर; करिह प्रणाम-प्रणाम करो; एइ ठात्रि–इस स्थान पर; तोमार-तुम्हारा; आसिबे-आयेगा; प्रसाद-अन्न–प्रसाद।

अनुवाद

"तुम यहीं शान्तिपूर्वक रहो और मन्दिर के शिखर पर लगे चक्र को देखकर नमस्कार किया करो। जहाँ तक तुम्हारे प्रसाद की बात है, मैं उसे तुम्हारे पास भेजे जाने की व्यवस्था करा दूँगा।"

तात्पर्य

श्रील हरिदास ठाकुर मुसलमान परिवार में उत्पन्न हुए थे, अतएव मन्दिर प्रतिबन्धों के अनुसार वे जगन्नाथजी के मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकते थे। तो भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें नामाचार्य हरिदास ठाकुर के रूप में मान्यता दी। इतने पर भी हरिदास ठाकुर अपने आपको जगन्नाथ मन्दिर में प्रवेश करने के लिए अयोग्य मानते रहे। यदि श्री चैतन्य महाप्रभु चाहते तो उन्हें स्वयं अपने साथ जगन्नाथ मन्दिर के भीतर ले जा सकते थे, किन्तु उन्होंने लोकप्रचलित प्रथा को

तोड़ना नहीं चाहा। इसलिए उन्होंने अपने दास से कहा कि वह मन्दिर के शिखर पर बने विष्णुचक्र को देखे और नमस्कार करे। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि किसी को मन्दिर में प्रविष्ट होने नहीं दिया जाता या कोई अपने आपको मन्दिर में प्रवेश करने के लिए अयोग्य समझता है, तो वह मन्दिर के बाहर से चक्र का दर्शन कर सकता है। यह भीतर के अर्चाविग्रह के दर्शन जैसा ही है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील हरिदास ठाकुर के पास प्रतिदिन जाने का वादा किया, जिससे सूचित होता है कि भले ही उन्हें मन्दिर में प्रवेश करने के लिए अयोग्य माना जाता रहा हो, वे आध्यात्मिक जीवन में अत्यन्त उन्नत थे, जिसके कारण महाप्रभु उनके पास नित्यप्रति जाते थे। न ही उन्हें अपना भोजन माँगने के लिए अपने निवासस्थान से बाहर जाने की आवश्यकता थी। श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर को आश्वस्त किया कि उनके पास प्रसाद आता रहेगा। जैसाकि भगवद्गीता (9.22) में कहा गया है योगक्षेमं वहाम्यहम्-"मैं अपने भक्तों की सारी आवश्यकताओं का प्रबन्ध करता हूँ।"

यहाँ पर एक संकेत उन लोगों के लिए भी किया गया है, जो कृत्रिम रीति से ठाकुर हरिदास के आचरण की नकल करना चाहते हैं। ऐसी जीवन-शैली ग्रहण करने के पूर्व मनुष्य को श्री चैतन्य महाप्रभु या उनके प्रतिनिधि की अनुमति लेनी आवश्यक है। महाप्रभु के शुद्ध भक्त या दास का कर्तव्य है कि वह महाप्रभु के आदेश का पालन करे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु से बंगाल जाकर प्रचार करने के लिए कहा, तथा रूप और सनातन गोस्वामियों को वृन्दावन जाकर खोये हुए तीर्थस्थलों का पुनरुद्धार करने के लिए कहा। यहाँ पर महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर से जगन्नाथ पुरी में ही रहकर भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करते रहने के लिए कहा। इस तरह चैतन्य महाप्रभु ने विभिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न आदेश दिये; अतएव किसी को श्री चैतन्य महाप्रभु या उनके प्रतिनिधि की आज्ञा प्राप्त किये बिना हरिदास ठाकुर के आचरण का अनुकरण नहीं करना चाहिए। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने ऐसी नकल की निम्न प्रकार से भर्त्सना की है :

दुष्ट मन! तुमि किसेर वैष्णव?

प्रतिष्ठार तरे, निर्जनेर घरे।

तव हरिनाम केवल कैतव

"मेरे मन, तुम हरिदास ठाकुर की नकल करके एकान्त स्थान में हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करना चाहते हो, किन्तु तुम वैष्णव कहलाने योग्य नहीं हो, क्योंकि तुम तो सस्ती ख्याति चाहते हो, तुम्हें हरिदास ठाकुर के वास्तविक गुण नहीं

चाहिए। यदि तुम उनकी नकल करने का प्रयास करोगे, तो तुम पतित हो जाओगे, क्योंकि कनिष्ठ अवस्था के कारण तुम स्त्रियों तथा धन के विषय में सोचोगे। इस तरह तुम माया के चंगुल में पड़ जाओगे और एकान्त स्थान में तुम्हारा तथाकथित कीर्तन तुम्हारे पतन का कारण बन जायेगा।"

नित्यानन्द, जगदानन्द, दामोदर, मुकुन्द ।

हरिदासे मिलि' सबे पाइल आनन्द ॥196॥

नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; जगदानन्द-जगदानन्द; दामोदर दामोदर; मुकुन्द-मुकुन्द; हरिदासे–हरिदास से; मिलि'–मिलकर; सबे–वे सब; पाइल–हुए; आनन्द-अत्यन्त प्रसन्न।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु, जगदानन्द प्रभु, दामोदर प्रभु तथा मुकुन्द प्रभु हरिदास ठाकुर से मिलकर अत्यन्त आनन्दित हुए।

समुद्र-स्नान करि' प्रभु आइला निज स्थाने ।

अद्वैतादि गेला सिन्धु करिबारे स्नाने ॥ 197॥

समुद्र-स्नान करि'—समुद्र में स्नान करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला–आये; निज स्थाने-अपने स्थान पर; अद्वैत-आदि-अद्वैत प्रभु आदि भक्तगण; गेला-गये; सिन्धु–समुद्र पर; करिबारे—करने; स्नाने स्नान।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु समुद्र-स्नान करके अपने निवासस्थान वापस आ गये, तो अद्वैत प्रभु इत्यादि सारे भक्त समुद्र में स्नान करने गये।

आसि' जगन्नाथेर कैल चूड़ा दरशन ।

प्रभुर आवासे आइला करिते भोजन ॥ 198॥

आसि'-लौटकर; जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ का; कैल-किया; चूड़ा दरशन-मन्दिर शिखिर (चूड़ा) के दर्शन करके; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; आवासे–निवासस्थान पर; आइला–आये; करिते भोजन-भोजन करने के लिए।

अनुवाद

समुद्र-स्नान करने के बाद अद्वैत प्रभु समेत सारे भक्त लौट आये और उन्होंने लौटते समय जगन्नाथ मन्दिर की चोटी का दर्शन किया। इसके बाद वे भोजन करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान गये।

सबारे वसाइला प्रभु योग्य क्रम करि' ।

श्री-हस्ते परिवेशन कैल गौरहरि ॥ 199॥

सबारे-सभी भक्तों को; वसाइला–बैठाया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; योग्य-उचित; क्रम-क्रम में, एक के बाद दूसरे को; करि'–करके; श्री-हस्ते-अपने दिव्य हाथ से; परिवेशन–वितरण; कैल-किया; गौरहरि-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक-एक करके सारे भक्तों को उनके उचित स्थान पर बैठाया। फिर उन्होंने अपने दिव्य हाथ से प्रसाद वितरण करना शुरू किया।

अल्प अन्न नाहि आइसे दिते प्रभुर हाते ।

दुइ-तिनेर अन्न देन एक एक पाते ॥ 200॥

अल्प अन्न-थोड़ा प्रसाद; नाहि-नहीं; आइसे-आता; दिते-देने के लिए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; हाते-हाथ में; दुइ-दो; तिनेर-अथवा तीन; अन्न–अन्न; देन-उन्होंने दिया; एक एक पाते–केले के प्रत्येक पत्र में।

अनुवाद

सारे भक्तों को केले के पत्तों में प्रसाद परोसा गया और श्री चैतन्य महाप्रभु ने हर पत्ते पर इतनी मात्रा परोसी जो दो-तीन व्यक्तियों के लिए पर्याप्त थी, क्योंकि उनके हाथ इससे कम नहीं बाँट सकते थे।

प्रभु ना खाइले केह ना करे भोजन ।

ऊर्ध्व-हस्ते वसि रहे सर्व भक्त-गण ॥ 201॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु के; ना खाइले–खाये बिना; केह-कोई; ना–नहीं; करे-करता; भोजन-भोजन; ऊर्ध्व-हस्ते–हाथ को ऊपर उठाकर; वसि'–बैठे; रहे-रहे; सर्व-सभी; भक्त-गण-भक्तगण।

अनुवाद

सारे भक्त अपने-अपने हाथ परोसे हुए प्रसाद के ऊपर उठाये रहे, क्योंकि वे महाप्रभु को पहले खाते हुए देखे बिना खाना नहीं चाह रहे थे।

स्वरूप-गोसाञि प्रभुके कैल निवेदन ।

तुमि ना वसिले केह ना करे भोजन ॥ 202॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोसाञि ने; प्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कैल-किया; निवेदन–निवेदन; तुमि-आप; ना वसिले–यदि नहीं बैठेगे; केह-कोई; ना-नहीं; करे–करेगा; भोजन-भोजन।

अनुवाद

तब स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को सूचित किया, "जब तक आप बैठेंगे नहीं और प्रसाद नहीं ग्रहण करेंगे, तब तक कोई भोजन नहीं करेगा।"

तोमा-सङ्गे रहे यत सन्न्यासीर गण ।

गोपीनाथाचार्य ताँरे करियाछे निमन्त्रण ॥203॥

तोमा-सङ्गे-आपके साथ; रहे-रहते हैं; यत–जितने; सन्न्यासीर गण-संन्यासी; गोपीनाथ-आचार्य-गोपीनाथ आचार्य; ताँरे–उन सबको; करियाछे–किया है; निमन्त्रण-निमंत्रण।

अनुवाद

"गोपीनाथ आचार्य ने उन सारे संन्यासियों को आने और प्रसाद ग्रहण करने के लिए आमन्त्रित किया है, जो आपके साथ रहते हैं।"

आचार्य आसियाछेन भिक्षार प्रसादान्ने लञा ।

पुरी, भारती आछेन तोमार अपेक्षा करिया ॥ 204॥

आचार्य-गोपीनाथ आचार्य; आसियाछेन-आ गये हैं; भिक्षार- भोजन करने के लिए; प्रसाद-अन्न लञा–प्रसाद लेकर; पुरी-परमानन्द पुरी; भारती–ब्रह्मानन्द भारती; आछेन-हैं; तोमार-आपकी; अपेक्षा करिया-प्रतीक्षा कर रहे।

अनुवाद

"गोपीनाथ आचार्य सारे संन्यासियों को बाँटने के लिए पर्याप्त प्रसाद लेकर पहले ही आ चुके हैं और परमान्द पुरी तथा ब्रह्मानन्द भारती जैसे संन्यासी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

नित्यानन्द लञा भिक्षा करिते वैस तुमि ।

वैष्णवेर परिवेशन करितेछि आमि ॥205॥

नित्यानन्द लञा-श्री नित्यानन्द प्रभु को साथ लेकर; भिक्षा–भोजन; करिते-लेने; वैस-बैठ जाओ; तुमि-आप; वैष्णवेर-सभी वैष्णव भक्तों को; परिवेशन–प्रसाद वितरण; करितेछि-कर रहा हूँ; आमि–मैं।

अनुवाद

"आप बैठ जाएँ और नित्यानन्द प्रभु के साथ भोजन करें। मैं प्रसाद सारे वैष्णवों को वितरित कर दूँगा।"

तबे प्रभु प्रसादान्न गोविन्द-हाते दिला ।

यत्न करि' हरिदास-ठाकुरे पाठाइला ॥ 206॥

तबे-तत्पश्चात्; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभुः प्रसाद-अन्न–प्रसाद; गोविन्द-हाते-गोविन्द के हाथ में; दिला दे दिया; यत्न करि'-बड़ी सावधानी से; हरिदास-ठाकुरे-हरिदास ठाकुर को; पाठाइला–भेजा।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने कुछ प्रसाद गोविन्द के हाथों में हरिदास ठाकुर को भेजे जाने के लिए लाकर दिया।

आपने वसिला सब सन्यासीरे लञा ।

परिवेशन करे आचार्य हरषित हञा ॥207॥

आपने-स्वयं; वसिला-बैठ गये; सब-सब; सन्यासीरे लञा-सभी संन्यासियों को अपने साथ लेकर; परिवेशन करे–वितरण किया; आचार्य-गोपीनाथ आचार्य; हरषित हञा–आनन्द के साथ।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु अन्य संन्यासियों के साथ भोजन करने बैठ गये और गोपीनाथ आचार्य बड़े ही हर्ष के साथ प्रसाद का वितरण करने लगे।

स्वरूप गोसाञि, दामोदर, जगदानन्द ।

वैष्णवेरे परिवेशे तिन जने—आनन्द ॥ 208॥

स्वरूप गोसाञि-स्वरूप गोसांई; दामोदर-दामोदर; जगदानन्द-जगदानन्द; वैष्णवेरे परिवेशे-वैष्णवों को बाँटा; तिन जने–तीन व्यक्तियों ने; आनन्द–हर्षपूर्वक।

अनुवाद

इसके बाद स्वरूप दामोदर गोस्वामी, दामोदर पण्डित तथा जगदानन्द ने बड़े हर्ष से भक्तों को प्रसाद बाँटा।

नाना पिठा-पाना खाय आकण्ठ पूरिया ।

मध्ये मध्ये 'हरि' कहे आनन्दित हञा ॥ 209॥

नाना-नाना; पिठा-पाना–मिठाईयाँ और खीर; खाय-खाई; आ-कण्ठ पूरिया-पेट भरकर; मध्ये मध्ये-बीच में कभी-कभी; हरिकृष्ण का पावन नाम; कहे-वे कहने लगे; आनन्दित हञा–आनन्दित होकर।

अनुवाद

उन्होंने हर तरह की मिठाईयाँ तथा खीर भरपेट खाई और बीच-बीच में हर्षित होकर 'हरि' के पवित्र नाम का उच्चारण किया।

तात्पर्य

प्रसाद खाते समय बीच बीच में भगवान् हरि का नामोच्चारण करने की वैष्णवों में प्रथा है। साथ ही वे शरीर अविद्याजाल जैसे गीत भी गाते हैं। जो लोग प्रसाद ग्रहण करते हैं, उन्हें सदा स्मरण रखना चाहिए कि प्रसाद सामान्य भोजन नहीं है। प्रसाद दिव्य होता है। अतः हमें स्मरण रखना चाहिए :

महाप्रसादे गोविन्द नामब्रह्मणि वैष्णवे ।

स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते ॥

जो लोग पुण्यशाली नहीं हैं, वे महाप्रसाद तथा भगवान् के पवित्र नाम का महत्त्व नहीं समझ सकते। प्रसाद तथा भगवन्नाम दोनों ही ब्रह्म अर्थात् आध्यात्मिक पद पर होते हैं। प्रसाद को कभी-भी होटल के भोजन की तरह नहीं समझना चाहिए। साथ ही अर्चाविग्रह को अर्पित नहीं किये गये भोजन को छूना तक नहीं चाहिए। प्रत्येक वैष्णव इस नियम का दृढ़ता से पालन करता है और प्रसाद के अतिरिक्त कोई अन्य भोजन ग्रहण नहीं करता है। मनुष्य को प्रसाद श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना चाहिए, भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए और मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा करनी चाहिए और हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि अर्चाविग्रह, महाप्रसाद तथा पवित्र भगवन्नाम भौतिक नहीं हैं। अर्चाविग्रह की पूजा करके, प्रसाद खाकर तथा हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करके मनुष्य सदैव आध्यात्मिक पद पर बना रह सकता है (ब्रह्मभूयाय कल्पते)।

भोजन समाप्त हैल, कैल आचमन ।

सबारे पराइल प्रभु माल्य-चन्दन ॥ 210॥

भोजन-भोजन; समाप्त-समाप्त करके; हैल–हो गया; कैल–किया; आचमन-मुँह धोकर; सबारे-सब पर; पराइल-डाली; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; माल्य-चन्दन-माला और चन्दन का लेप।

अनुवाद

जब सभी लोग खाकर अपने अपने हाथ-मुँह धो चुके, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने हाथों से हर एक को फूल की माला तथा चन्दन-लेप से अलंकृत किया।

विश्राम करिते सबे निज वासा गेला ।

सन्ध्या-काले आसि' पुनः प्रभुके मिलिला ॥211॥

विश्राम करिते-विश्राम के लिए; सबे-सभी वैष्णव; निज-अपने अपने; वासा-निवासस्थान; गेला–गये; सन्ध्या-काले-संध्या समय; आसि-आकर; पुनः–पुनः; प्रभुके मिलिला-श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले।

अनुवाद

इस प्रकार प्रसाद ग्रहण करने के बाद वे सब अपने-अपने वासस्थानों में विश्राम करने चले गये और संध्या समय वे फिर महाप्रभु से मिलने आये।

हेन-काले रामानन्द आइला प्रभु-स्थाने ।

प्रभु मिलाइल ताँरे सब वैष्णव-गणे ॥ 212॥

हेन-काले—इस समय; रामानन्द-रामानन्द; आइला–आये; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; मिलाइल-मिलाया; ताँरे–उनको, (श्री रामानन्द राय); सब-सब; वैष्णव-गणे-भगवत्-भक्तों से।

अनुवाद

उसी समय रामानन्द राय भी श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने आये और महाप्रभु ने सभी वैष्णवों से उनका परिचय कराने के लिए इस अवसर का लाभ उठाया।

सबा लञा गेला प्रभु जगन्नाथालय ।

कीर्तन आरम्भ तथा कैल महाशय ॥ 213 ॥

सबा लञा-उन सबको लेकर; गेला-गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जगन्नाथ-आलय-भगवान जगन्नाथ के मन्दिर; कीर्तन-कीर्तन; आरम्भ-आरम्भ; तथा-वहाँ; कैल–किया; महाशय-महाशय।

अनुवाद

तब महापुरुष श्री चैतन्य महाप्रभु उन सबको जगन्नाथ मन्दिर ले गये और वहाँ उन्होंने भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन प्रारम्भ कर दिया।

सन्ध्या-धूप देखि' आरम्भिला सङ्कीर्तन ।

पड़िछा आसि' सबारे दिल माल्य-चन्दन ॥214॥

सन्ध्या -धूप-सायंकाल आरम्भ होने पर धूप आरती; देखि'-उन सबने देखी; आरम्भिला-शुरू किया; सङ्कीर्तन-संकीर्तन; पड़िछा–मन्दिर के निरीक्षक ने; आसि'-आकर; सबारे प्रत्येक को; दिल-दिया; माल्य-चन्दन-पुष्पमालाएँ तथा चन्दन लेप।

अनुवाद

भगवान् की धूप-आरती देखने के बाद सबने संकीर्तन प्रारम्भ किया। तब पड़िछा (मन्दिर की देखभाल करने वाला) आया और उसने हर एक को फूलमाला तथा चन्दन-लेप दिया।

चारि-दिके चारि सम्प्रदाय करेन कीर्तन ।

मध्ये नृत्य करे प्रभु शचीर नन्दन ॥215॥

चारि-दिके–चारों दिशाओं में; चारि-चार; सम्प्रदाय-टोलियाँ; करेन-किया; कीर्तन-संकीर्तन; मध्ये मध्य में; नृत्य करे-नृत्य किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; शचीर नन्दन-माता शची के पुत्र ने।

अनुवाद

चारों दिशाओं में संकीर्तन करने के लिए चार टोलियाँ बनायी गई और उन चारों के बीच में माता शची के पुत्र महाप्रभु स्वयं नृत्य करने लगे।

अष्ट मृदङ्ग बाजे, बत्रिश करताल ।

हरि-ध्वनि करे सबे, बले—भाल, भाल ॥216॥

अष्ट मृदङ्ग-आठ मृदंग; बाजे-बज उठी; बत्रिश-बत्तीस; करताल-करताल; हरि-ध्वनि-हरि की दिव्य ध्वनि; करे-करने लगे; सबे-उनमें से प्रत्येक ने; बले-कहा; भाल भाल–"बहुत अच्छा," "बहुत अच्छा"।

अनुवाद

चारों टोलियों के पास आठ मृदंग तथा बत्तीस करताल थे। वे सभी एकसाथ दिव्य ध्वनि करने लगे और हर व्यक्ति कहने लगा, "बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!"

कीर्तनेर ध्वनि महा-मङ्गल उठिल ।

चतुर्दश लोक भरि' ब्रह्माण्ड भेदिल ॥ 217॥

कीर्तनेर ध्वनि-संकीर्तन की ध्वनि; महा-मङ्गल उठिल-शुभ भाग्य जाग पड़ा; चतुर्-दश-चौदह; लोक-लोकों में; भरि'-भरकर; ब्रह्माण्ड-आखिल ब्रह्माण्ड; भेदिल-भेद दिया।

अनुवाद

जब संकीर्तन का कोलाहल गूँजने लगा, तो तुरन्त ही सारा सौभाग्य जाग उठा और यह ध्वनि चौदहों लोकों को पूरित करके ब्रह्माण्ड को भेद गई।

कीर्तन-आरम्भे प्रेम उथलि' चलिल ।

नीलाचल-वासी लोक धाञा आइल ॥218॥

कीर्तन-आरम्भे-संकीर्तन के आरम्भ में, प्रेम-प्रेम; उथल-जोर से उठा; चलिल-बहने लगा; नीलाचल-वासी-जगन्नाथ पुरी के सभी निवासी; लोक-लोग; धाञा-दौड़कर; आइल-आ गये।

अनुवाद

जब संकीर्तन प्रारम्भ हुआ, तो तुरन्त प्रेम-भाव ने हर वस्तु को आप्लावित कर दिया और जगन्नाथ पुरी के सारे निवासी दौड़ते हुए आये।

कीर्तन देखि' सबार मने हैल चमत्कार ।

कभु नाहि देखि ऐछे प्रेमेर विकार ॥219॥

कीर्तन देखि'-संकीर्तन देखकर; सबार-सबके; मने-मन में; हैल–हो गया; चमत्कार–आश्चर्य; कभु-कभी; नाहि-नहीं; देखि-देखा; ऐछे-ऐसा; प्रेमेर-प्रेमावेश का; विकार-प्रदर्शन।

अनुवाद

प्रत्येक व्यक्ति उस तरह संकीर्तन होते देखकर आश्चर्यचकित था। सबने स्वीकार किया कि इसके पूर्व कभी भी न तो ऐसा कीर्तन हुआ, न ईश्वर-प्रेम का ऐसा प्राकट्य हुआ।

तबे प्रभु जगन्नाथेर मन्दिर बेड़िया ।

प्रदक्षिण करि' बुलेन नर्तन करिया ॥ 220॥

तबे-तत्पश्चात्; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ के; मन्दिर-मन्दिर; बेड़िया-चारों ओर; प्रदक्षिण–प्रदक्षिणा; करि'–करके; बुलेन-चलने लगे; नर्तन करिया-नृत्य करते हुए।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथ मन्दिर की प्रदक्षिणा की और पूरी प्रदक्षिणा-भर लगातार नाचते रहे।

आगे-पाछे गान करे चारि सम्प्रदाय ।

आछाडेर काले धरे नित्यानन्द राय ॥ 221॥

आगे-पाछे-आगे पीछे; गान–गाकर; करे-किया; चार-चार; सम्प्रदाय–समूह; आछाडेर-गिरना; काले-उस समय; धरे-उठा लिया; नित्यानन्द राय-श्री नित्यानन्द प्रभु ने।

अनुवाद

जब प्रदक्षिणा की जा रही थी, तब चारों टोलियों ने आगे और पीछे कीर्तन किया। जब श्री चैतन्य महाप्रभु भूमि पर गिर पड़े, तो नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें उठा लिया।

अश्रु, पुलक, कम्प, स्वेद, गम्भीर हुङ्कार ।

प्रेमेर विकार देखि लोके चमत्कार ॥ 222॥

अश्रु-अश्रु; पुलक-पुलक; कम्प-कम्पन; स्वेद-पसीना; गम्भीर हुङ्कार–गहरी गुंज; प्रेमेर-प्रेमावेश का; विकार-रूपांतर; देखि'–देखकर; लोके-सारे लोग; चमत्कार–चकित हो गये।

अनुवाद

जब कीर्तन चल रहा था, तब श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में प्रेम-विकार उत्पन्न हुए-यथा अश्रु, हर्ष, कम्पन, प्रस्वेद तथा गम्भीर हुंकार। इन विकारों को देखकर वहाँ पर उपस्थित सारे लोग अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए।

पिच्कारि-धारा जिनि' अश्रु नयने ।

चारि-दिकेर लोक सब करये सिनाने ॥ 223॥

पिच्कारि-धारा–पिचकारी की भाँति जोर से पानी की धारा; जिनि'–जीतकर; अश्रु-अश्रु; नयने-आँखों में; चारि-दिकेर–चारों दिशाओं में; लोक-लोग; सब-सब; करये सिनाने-गीले हो गये।

अनुवाद

महाप्रभु के नेत्रों से अश्रु की धारा तेजी से निकल पड़ी, मानो पिचकारी से पानी निकल रहा हो। उनके चारों ओर खड़े लोग उनके अश्रुओं से भीग गये।

'बेड़ा-नृत्य' महाप्रभु करि' कत-क्षण ।

मन्दिरेर पाछे रहि' करये कीर्तन ॥ 224॥

बेड़ा-नृत्य-मन्दिर के चारों ओर नृत्य करके; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करि'-किया ; कत-क्षण-कुछ समय के लिए; मन्दिरेर पाछे–मन्दिर के पीछे; रहि'-रुककर; करये-किया; कीर्तन-संकीर्तन।

अनुवाद

मन्दिर की प्रदक्षिणा करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु कुछ समय तक मन्दिर के पीछे रहे और उन्होंने अपना संकीर्तन जारी रखा।

चारि-दिके चारि सम्प्रदाय उच्चैःस्वरे गाय ।

मध्ये ताण्डव-नृत्य करे गौरराय ॥ 225॥

चारि-दिके–चारों ओर; चारि सम्प्रदाय–चारों समूहों ने; उच्चैः-स्वरे–बहुत ऊँची आवाज में; गाय-गाया; मध्ये-मध्य में; ताण्डव-नृत्य-कूदना और नाचना; करे-किया; गौरराय-श्री चैतन्य महाप्रभु ने।

अनुवाद

चारों दिशाओं में चारों संकीर्तन टोलियाँ जोर-जोर से कीर्तन कर रही थीं और श्री चैतन्य महाप्रभु बीच में ऊँचे उछल-उछलकर नाच रहे थे।

बहु-क्षण नृत्य करि' प्रभु स्थिर हैला ।

चारि महान्तेरे तबे नाचिते आज्ञा दिला ॥ 226 ॥

बहु-क्षण-लम्बे समय तक; नृत्य करि'-नृत्य करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; स्थिर हैला-स्थिर हुए; चारि महान्तेरे-चार महान् पुरुषों को; तबे-तब; नाचिते-नाचने की; आज्ञा दिला–आज्ञा दी।

अनुवाद

लम्बे समय तक नाचने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु स्थिर हो गये और उन्होंने चार महापुरुषों को नृत्य शुरू करने का आदेश दिया।

एक सम्प्रदाये नाचे नित्यानन्द-राये ।

अद्वैत-आचार्य नाचे आर सम्प्रदाये ॥ 227॥

एक सम्प्रदाये-एक समूह में; नाचे-नाचने लगे; नित्यानन्द-राये-नित्यानन्द प्रभुः अद्वैत-आचार्य-अद्वैत आचार्य प्रभु; नाचे-नाचे; आर-दूसरे; सम्प्रदाये-समूह में।

अनुवाद

एक टोली में नित्यानन्द प्रभु नाचने लगे और दूसरी टोली में अद्वैत आचार्य नाचने लगे।

आर सम्प्रदाये नाचे पण्डित-वक्रेश्वर ।

श्रीवास नाचे आर सम्प्रदाय-भितर ॥ 228॥

आर सम्प्रदाये-दूसरे समूह में; नाचे-नाचे; पण्डित-वक्रेश्वर–वक्रेश्वर पण्डित; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; नाचे-नाचे; आर-दूसरे; सम्प्रदाय-भितर-समूह के मध्य में।

अनुवाद

अन्य टोली में वक्रेश्वर पण्डित तथा चौथी टोली में श्रीवास ठाकुर नाचने लगे।

मध्ये रहि' महाप्रभु करेन दरशन ।

ताहाँ एक ऐश्वर्य ताँर हइल प्रकटन ॥229॥

मध्ये रहि'-मध्य में रहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करेन दरशन-देख रहे थे; ताहाँ-वहाँ; एक-एक; ऐश्वर्य-चमत्कार; ताँर-उनका; हइल-हो गया; प्रकटन-प्रकट।

अनुवाद

जब यह नृत्य चल रहा था, तब श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें देख रहे थे और तब उन्होंने एक चमत्कार प्रदर्शित किया।

चारि-दिके नृत्य-गीत करे यत जन ।

सबे देखे,—प्रभु करे आमारे दरशन ॥ 230॥

चारि-दिके चारों ओर; नृत्य-गीत-नाचकर और गाकर; करे–किया; यत जन-सब लोग; सबे देखे-प्रत्येक ने देखा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करे–किया; आमारे दरशन–मुझे देख रहे हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु नाचने वालों के बीच में खड़े थे और सारी दिशाओं के नाचने वालों ने अनुभव किया कि श्री चैतन्य महाप्रभु उनकी ही ओर देख रहे हैं।

चारि जनेर नृत्य देखिते प्रभुर अभिलाष ।

सेइ अभिलाषे करे ऐश्वर्य प्रकाश ॥ 231॥

चारि जनेर-चार व्यक्तियों का; नृत्य-नृत्य; देखिते-देखने के लिए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; अभिलाष-इच्छा; सेइ अभिलाषे-उसके लिए; करे–किया; ऐश्वर्य प्रकाश-चमत्कार का प्रदर्शन।

अनुवाद

चारों महापुरुषों का नाच देखने की अभिलाषा से श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह चमत्कार दिखाया, मानो वे हर एक को देख रहे हों।

दर्शने आवेश ताँर देखि' मात्र जाने ।

केमने चौदिके देखे,—इहा नाहि जाने ॥232॥

दर्शने-दर्शन करते हुए; आवेश-भावपूर्ण प्रेम; ताँर-उनका; देखि'–देखकर; मात्र जाने-मात्र जानते थे; केमने-कैसे; चौ-दिके-चारों ओर; देखे-उन्होंने देखा; इहा नाहि जाने-कोई नहीं जानता।

अनुवाद

जिस किसी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को देखा, वह समझ सका कि वे चमत्कार कर रहे हैं, किन्तु वे यह नहीं जान सके कि वे चारों दिशाओं में किस प्रकार देख सकते हैं।

पुलिन-भोजने येन कृष्ण मध्य-स्थाने ।

चौदिकेर सखा कहे,—आमारे नेहाने ॥233॥

पुलिन-भोजने-यमुना के तट पर भोजन करते समय; येन-जैसे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मध्य-स्थाने-मध्य में बैठकर; चौ-दिकेर–चारों ओर से; सखा–बालगोपाल सखा; कहे-कहा; आमारे नेहाने-मुझे देखकर।

अनुवाद

जब कृष्ण अपनी वृन्दावन-लीलाओं में यमुना नदी के तट पर अपने मित्रों के बीच में बैठकर भोजन किया करते थे, तब हर ग्वालबाल यही अनुभव करता था कि कृष्ण उसकी ओर देख रहे हैं। इसी तरह जब चैतन्य महाप्रभु नाच देख रहे थे, तब हर व्यक्ति ने चैतन्य महाप्रभु को अपनी ओर देखते पाया।

नृत्य करते येइ आइसे सन्निधाने ।

महाप्रभु करे ताँरे दृढ़ आलिङ्गने ॥ 234॥

नृत्य करिते-नृत्य करते हुए; येइ-जो कोई; आइसे–आया; सन्निधाने–निकट; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करे–किया; ताँरे–उसको; दृढ़-दृढ़; आलिङ्गने-आलिंगन।

अनुवाद

जब कोई नाचता हुआ उनके निकट आता, तो श्री चैतन्य महाप्रभु उसका कसकर आलिंगन करते।

महा-नृत्य, महा-प्रेम, महा-सङ्कीर्तन ।

देखि' प्रेमावेशे भासे नीलाचल-जन ॥ 235॥

महा-नृत्य-महा नृत्य; महा-प्रेम-महान् प्रेम; महा-सङ्कीर्तन–महा संकीर्तन; देखि'–देखकर; प्रेम-आवेशे-'प्रेमावेश में; भासे-तैरने लगे; नीलाचल-जन-जगन्नाथ पुरी के सभी निवासी।

अनुवाद

महानृत्य, महाप्रेम तथा महासंकीर्तन देखकर जगन्नाथ पुरी के सारे लोग प्रेम के सागर में तैरने लगे।

गजपति राजा शुनि' कीर्तन-महत्त्व ।

अट्टालिका चड़ि' देखे स्वगण-सहित ॥ 236॥

गजपति राजा-उड़ीसा का राजा; शुनि'–सुनकर; कीर्तन-महत्त्व-संकीर्तन की महानता को; अट्टालिका चड़ि'–महल की चोटी पर चढ़कर; देखे-देखा; स्वगण-सहित-अपने निजी साथियों सहित।

अनुवाद

संकीर्तन की महानता को सुनकर राजा प्रतापरुद्र अपने महल के ऊपर चढ़ गये और उन्होंने अपने निजी संगियों सहित संकीर्तन होते देखा।

कीर्तन देखिया राजार हैल चमत्कार ।

प्रभुके मिलिते उत्कण्ठा बाड़िल अपार ॥ 237॥

कीर्तन देखिया-कीर्तन देखकर; राजार-राजा को; हैल–हो गया; चमत्कार-आश्चर्य; प्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु को; मिलिते-मिलने की; उत्कण्ठा-उत्कण्ठा; बाड़िल–बढ़ गई; अपार-असीम।

अनुवाद

राजा महाप्रभु का कीर्तन देखकर अत्यधिक आश्चर्यचकित थे और महाप्रभु से मिलने की उनकी उत्कण्ठा अत्यधिक बढ़ गई।

कीर्तन-समाप्त्ये प्रभु देखि' पुष्पाञ्जलि ।

सर्व वैष्णव लञा प्रभु आइला वासा चलि' ॥ 238॥

कीर्तन-समाप्त्ये-कीर्तन की समाप्ति पर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; देखि'–दर्शन करने के बाद; पुष्पाञ्जलि-भगवान जगन्नाथ के अर्चाविग्रह पर पुष्पों की भेंट; सर्व वैष्णव- सभी भक्तगण; लञा–लेकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु को; आइला-लौट गये; वासा-अपने निवासस्थान पर; चलि'–जाकर।

अनुवाद

जब संकीर्तन समाप्त हो गया, तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् जगन्नाथ के अर्चाविग्रह पर पुष्प अर्पित होते देखा। फिर वे तथा सारे वैष्णव अपने निवासस्थान लौट गये।

पड़िछा आनिया दिल प्रसाद विस्तर ।

सबारे बाँटिया ताहा दिलेन ईश्वर ॥ 239॥

पड़िछा–मन्दिर के अध्यक्ष ने; आनिया-लाकर; दिल-दिया; प्रसाद–प्रसाद; विस्तर–प्रचुर मात्रा में; सबारे-सबको; बाँटिया-बाँटकर; ताहा-वह; दिलेन–दिया; ईश्वर–महाप्रभु।

अनुवाद

तत्पश्चात् मन्दिर की देख-रेख करने वाला अध्यक्ष काफी मात्रा में प्रसाद ले आया, जिसे श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने हाथों से सारे भक्तों को बाँटा।

सबारे विदाय दिल करिते शयन ।

एइ-मत लीला करे शचीर नन्दन ॥240॥

सबारे-सबको; विदाय–विदा; दिल–दी; करिते शयन-विश्राम करने; एइ-मत-इस प्रकार; लीला-लीला; करे–की; शचीर नन्दन-माता शची के पुत्र ने।

अनुवाद

अन्त में सारे लोग सोने के लिए चले गये। इस तरह शचीमाता के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी लीलाएँ कीं।

यावताछिला सबे महाप्रभु-सङ्गे ।

प्रति-दिन एइ-मत करे कीर्तन-रङ्गे ॥ 241॥

यावत्-जब तक; आछिला-रहे; सबे-सारे भक्त; महाप्रभु-सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; प्रति-दिन-प्रतिदिन; एइ-मत-इस प्रकार; करे–किया; कीर्तन-रङ्गे-आनन्दपूर्वक कीर्तन।

अनुवाद

जब तक भक्तगण जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रहे, तब तक प्रतिदिन बड़े ही हर्ष के साथ संकीर्तन लीला चलती रही।

एइ त कहिलुँ प्रभुर कीर्तन-विलास ।

येबा इहा शुने, हय चैतन्येर दास ॥242॥

एइ त कहिलुँ–इस प्रकार मैंने वर्णन किया है। प्रभुर–महाप्रभु की; कीर्तन-विलास-संकीर्तन की लीलाएँ; ओबाजो कोई; इहा-इसे; शुने-सुनेगा; हय-हो जायेगा; चैतन्येर दास-श्री चैतन्य महाप्रभु का दास।

अनुवाद

इस तरह मैंने महाप्रभु की संकीर्तन लीला का वर्णन किया है और मैं हर एक को यही आशीर्वाद देता हूँ—यह विवरण सुनकर प्रत्येक व्यक्ति निश्चित रूप से श्री चैतन्य महाप्रभु का दास बन जायेगा।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 243॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथदास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; यार–जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत पुस्तक; कहे-वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस तरह श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के ग्यारहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त-तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु की बेड़ा-कीर्तन लीलाओं का वर्णन हुआ है।

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत

श्रीचैतन्य-चरितामृत

मध्य लीला, तृतीय खण्ड

अध्याय 12-16

मूल बंगला श्लोक, श्लोक का हिन्दी लिप्यन्तरण,

शब्दार्थ, अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य सहित

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

विषय-सूची

भूमिका

अध्याय बारह

गुण्डिचा मन्दिर की सफाई

अध्याय तेरह

रथयात्रा के समय महाप्रभु का भावमय नृत्य

अध्याय चौदह

वृन्दावन लीलाओं का सम्पादन

अध्याय पंद्रह

महाप्रभु द्वारा सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर प्रसाद स्वीकार करना

अध्याय सोलह

महाप्रभु द्वारा वृन्दावन जाने की चेष्टा

परिशिष्ट

लेखक परिचय

विशेष शब्दावली

श्रीचैतन्य-चरितामृत

श्लोकानुक्रमणिका

उधृत श्लोकों की अनुक्रमणिका

बांग्ला वर्णमाला

बांग्ला उच्चारण सम्बन्धी निर्देश

भूमिका

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा उपदेशों का मुख्य ग्रन्थ है। श्री चैतन्य महाप्रभु उस महान् सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, जो भारत में 500 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जिसने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरी धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधाराओं को न केवल भारत में अपितु समग्र विश्व में प्रभावित किया है। उन श्रीकृष्ण चैतन्य के प्रभाव को प्रसारित करने में कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के प्रयासों का मुख्य योगदान रहा है, जो इस ग्रन्थ के अनुवादक तथा भाष्यकार होने के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) के संस्थापक-आचार्य भी हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु को अतीव ऐतिहासिक महत्त्व का पुरुष माना जाता है। किन्तु ऐतिहासिक विश्लेषण की हमारी पारम्परिक विधि, जो व्यक्ति को उनके समय की उपज के रूप में देखती है, यहाँ पर विफल हो जाती है, क्योंकि श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसे पुरुष हैं, जो ऐतिहासिक व्यवस्था के सीमित क्षेत्र से परे हैं।

जिस समय पश्चिम में मानव भौतिक ब्रह्माण्ड की संरचना का अध्ययन करने तथा नवीन सागरों और महाद्वीपों की खोज में समुद्री यात्राएँ करने में अपनी अनुसन्धानात्मक शक्ति लगा रहा था, तभी पूर्व में श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसी क्रान्ति का प्रवर्तन एवं कुशल नेतृत्व कर रहे थे, जो मनुष्य के आध्यात्मिक स्वभाव के सर्वोच्च विज्ञान सम्मत ज्ञान की दिशा में निर्दिष्ट था।

श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवनचरित के मुख्य ऐतिहासिक स्रोत मुरारि गुप्त तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा लिखे गये कड़चा (दैनन्दिनियाँ) हैं। मुरारि गुप्त एक वैद्य तथा श्रीकृष्ण चैतन्य के अन्तरंग पार्षद थे, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास ग्रहण करने तक के प्रारम्भिक चौबीस वर्षों के विषय में विस्तृत टिप्पणियाँ लिखीं। श्री चैतन्य महाप्रभु के अड़तालीस वर्षों के जीवन की शेष घटनाएँ श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्य अन्तरंग पार्षद स्वरूप दामोदर गोस्वामी के कड़चा में अंकित हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृत के तीन खण्ड हैं, जिन्हें लीला कहा जाता है। ये हैं-आदि लीला, मध्य लीला तथा अन्त्य लीला। मुरारि गुप्त का कड़चा ही आदि लीला का आधार है और स्वरूप दामोदर का कड़चा मध्य तथा अन्त्य लीलाओं के लिए विस्तृत विवरण प्रदान करता है।

आदिलीला के सत्रह अध्यायों में से प्रथम बारह अध्याय सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रस्तावना स्वरूप हैं। वैदिक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा कृष्णदास कविराज यह स्थापित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु कलियुग (जो पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जो भौतिकता, दम्भ तथा कलह का प्रतीक है) के लिए कृष्ण के अवतार हैं। लेखक यह भी प्रमाणित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण से अभिन्न हैं और अधम युग के पतितात्माओं को महामन्त्र के संकीर्तन का

प्रचार करके शुद्ध भगवत्प्रेम उदारतापूर्ण वितरित करने के लिए अवतरित होते हैं। यह संकीर्तन महामन्त्र का बृहद् सार्वजनिक कीर्तन है। इसके उपरान्त कृष्णदास कविराज ने इस ग्रन्थ के बारहवें अध्याय में इस जगत् में श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का गुह्य प्रयोजन, उनके सह-अवतारों तथा प्रमुख भक्तों का वर्णन किया है और उनकी शिक्षाओं को सार रूप में प्रस्तुत की हैं। आदि लीला के शेष अध्यायों (13 से 17 तक) में लेखक ने चैतन्य महाप्रभु के दिव्य जन्म तथा संन्यास ग्रहण करने तक के जीवन का संक्षिप्त विवरण दिया है। इसमें उनके बचपन के चमत्कारों, अध्ययन, विवाह तथा प्रारम्भिक दार्शनिक शास्त्रार्थों के साथ-साथ उनके व्यापक संकीर्तन-आन्दोलन के संगठन तथा मुस्लिम सरकार द्वारा दमन के विरुद्ध उनके कानून अवज्ञा आन्दोलन का वर्णन है।

तीनों लीलाओं में सबसे लम्बी मध्यलीला की विषय वस्तु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा एक संन्यासी, शिक्षक, दार्शनिक तथा गुरु एवं योगी के रूप में सारे भारत की विस्तृत एवं घटनापूर्ण यात्राओं का विशद् वर्णन है। छह वर्षों की इस अवधि में श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्रमुख शिष्यों को शिक्षाएँ देते हैं। वे अपने समकालीन सुविख्यात दार्शनिकों तथा धर्मज्ञों से, जिनमें शंकराचार्य के अनुयायी, बौद्ध तथा मुसलमान सम्मिलित हैं, शास्त्रार्थ करते हैं और उन्हें तथा उनके शिष्य तथा अनुयायी वर्गों को अपने दल में सम्मिलित करते हैं। इस खण्ड में उड़ीसा में होने वाले विशाल जगन्नाथ रथयात्रा उत्सव के अवसर पर चैतन्य महाप्रभु की चमत्कार-पूर्ण लीलाओं का विस्तृत विवरण सम्मिलित है।

अन्त्यलीला में श्री चैतन्य की प्रकट उपस्थिति के अन्तिम अठारह वर्षों का विवरण है, जिसे उन्होंने जगन्नाथ पुरी के सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर केनिकट लगभग एकान्त में बिताये। इन अन्तिम वर्षों में श्रीकृष्ण चैतन्य भाव-समाधि में गहरे उतरते गये, जो समस्त पूर्वी अथवा पाश्चात्य धार्मिक तथा साहित्यिक इतिहास में अद्वितीय है। उनके नित्य संगी स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा दिये गये प्रत्यक्षदर्शी विवरण, जिनसे श्री चैतन्य की शाश्वत तथा नित्य वर्धमान धार्मिक परमानन्द की अवस्था प्रकट होती है, आधुनिक मनोविज्ञानियों तथा प्रत्यक्षवादियों के धार्मिक अनुभवों की अनुसन्धानात्मक तथा विवरणात्मक क्षमताओं को स्पष्ट रूप से चुनौती देने वाले हैं।

इस महान् ग्रन्थ के रचयिता कृष्णदास कविराज गोस्वामी का जन्म 1507 ई. में हुआ था। वे चैतन्य महाप्रभु के विश्वस्त अनुयायी रघुनाथ दास गोस्वामी के शिष्य थे। रघुनाथ दास विख्यात वैरागी सन्त थे, जिन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा बतलाई गई चैतन्य महाप्रभु की समस्त लीलाओं को सुना था और स्मरण कर रखा था। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के निधन के बाद रघुनाथ दास ने अपने इन आराध्यों की विरह वेदना सहन न कर सकने के कारण गोवर्धन पर्वत से कूदकर आत्महत्या करने के उद्देश्य से वृन्दावन की यात्रा की। किन्तु वृन्दावन में उनकी भेंट चैतन्य महाप्रभु के दो सर्वाधिक अन्तरंग शिष्यों-रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से हुई, जिन्होंने उनसे आत्महत्या की योजना का परित्याग करने तथा चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम जीवन की प्रेरक घटनाओं को प्रकट करने के लिए प्रेरित किया। उस समय कृष्णदास कविराज गोस्वामी भी वृन्दावन में रह रहे थे, जिन्हें रघुनाथ दास गोस्वामी ने श्री चैतन्य के दिव्य जीवन का पूर्ण विवरण प्रदान किया।

उस समय तक श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवन पर अनेक समसामयिक विद्वान तथा भक्तों द्वारा कई जीवन-चरित विषयक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। इनमें मुरारि गुप्त कृत श्रीचैतन्य-चरित, लोचन दास ठाकुर कृत चैतन्य-मंगल तथा वृन्दावन दास कृत चैतन्य-भागवत सम्मिलित हैं, जिनमें से चैतन्य भागवत के लेखक वृन्दावन दास ठाकुर को उस

समय श्री चैतन्य के जीवन के विशेषज्ञ माने जाते थे। जब वृन्दावन दास इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना कर रहे थे, तब उन्होंने इस भय से श्री चैतन्य के जीवन की अनेक घटनाओं को, विशेषतया परवर्ती घटनाओं को सम्मिलित नहीं किया कि इससे ग्रन्थ का आकार बढ़ जायेगा। इस अन्तिम लीलाओं को सुनने के इच्छुक वृन्दावन के भक्तों ने कृष्णदास कविराज गोस्वामी से, जिन्हें वे महान् सन्त और विद्वान के रूप में सम्मान देते थे, यह अनुरोध किया कि इन घटनाओं का विस्तार से वर्णन करने वाले ग्रन्थ की रचना करें। इस अनुरोध पर तथा वृन्दावन के मदन मोहन अर्चाविग्रह की अनुमति तथा आशीर्वाद से उन्होंने श्रीचैतन्य चरितामृत की रचना प्रारम्भ की, जिसे चैतन्य महाप्रभु के गहन दर्शन तथा शिक्षाओं के सम्यक् प्रस्तुतीकरण, एवं जीवन-चरित विषयक श्रेष्ठता के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा गूढ़ शिक्षा के सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में आज सारे विश्व में मान्यता दी जा रही है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने वृद्धावस्था में इस ग्रंथ पर कार्य प्रारम्भ किया, जब उनका स्वास्थ्य गिर चुका था। जैसाकि उन्होंने स्वयं लिखा है, "अब मैं अति वृद्ध एवं अक्षमता से विक्षुब्ध हूँ। लिखते समय मेरे हाथ काँपते हैं, मुझे ठीक से किसी बात का स्मरण नहीं हो पाता, न ही मैं ठीक से देख या सुन सकता हूँ, फिर भी मैं लिखता हूँ जो कि अपने आप में एक महान् आश्चर्य है।" तो भी उन्होंने इस अक्षम अवस्था में मध्यकालीन भारत के इस महान्तम साहित्यिक मणि को पूरा किया, जो साहित्यिक इतिहास के आश्चर्यों में एक है।

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, इसका अंग्रेजी अनुवाद कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा सम्पन्न किया गया, जो समग्र विश्व में भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा के सर्वाधिक विख्यात शिक्षक हैं। श्रील प्रभुपाद का भाष्य दो बँगला भाष्यों पर आधारित है—एक तो उनके गुरु, महान् वैदिक विद्वान, उपदेशक और संत श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, जिन्होंने भविष्यवाणी की थी कि, "एक समय ऐसा आयेगा, जब श्रीचैतन्य चरितामृत पढ़ने के लिए विश्वभर के लोग बँगला सीखेंगे और दूसरा भाष्य श्रील भक्तिसिद्धान्त के पिता भक्तिविनोद ठाकुर का जिन्होंने आधुनिक युग में श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के प्रचार में अग्रदूत का काम किया।

श्रील प्रभुपाद स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा में आते हैं। और वे पहले विद्वान हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य के अनुयायियों के प्रमुख ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। उनकी बँगला तथा संस्कृत में विद्वत्ता और श्रीकृष्ण चैतन्य के उपदेशों से उनका अन्तरंग परिचय ऐसा उपयुक्त मेल है, जो उन्हें इस महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ को अंग्रेजी भाषी संसार के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए सर्वाधिक योग्य बनाता है। वे जिस सहजता तथा स्पष्टता से कठिन दार्शनिक विचारों की स्थापना करते हैं, वह भारत की धार्मिक परम्परा से पूर्णतया अपरिचित पाठक को भी इन गहन तथा स्मरणीय ग्रन्थ को समझने तथा उसकी प्रशंसा करने के लिए समर्थ बनाता है।

तात्पर्य समेत सम्पूर्ण मूल पाठ को नौ सचित्र खण्डों में भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो समकालीन मनुष्य के बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रमुख महत्त्वपूर्ण योगदान का प्रतिनिधित्व करता है।

श्रील प्रभुपाद के द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत का हिन्दी अनुवाद उनके शताब्दी उत्सव के अवसर पर प्रकाशित किया जा रहा है, जो भारत के भक्तों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

-प्रकाशक

अध्याय बारह

गुण्डिचा मन्दिर की सफाई

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इस अध्याय का सारांश अपनी पुस्तक अमृत-प्रवाह-भाष्य में इस प्रकार दिया है : उड़ीसा के राजा महाराज प्रतापरुद्र ने श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के लिए भरसक प्रयास किया। श्रील नित्यानन्द प्रभु तथा अन्य भक्तों ने महाप्रभु को राजा की इच्छा बतलायी, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु उनसे मिलने के लिए राजी नहीं हुए। तभी श्री नित्यानन्द प्रभु को एक युक्ति सूझी और उन्होंने महाप्रभु की बाह्य पोशाक का एक कपड़ा राजा के पास भेजा। अगले दिन जब रामानन्द राय ने फिर से महाप्रभु से अनुरोध किया कि वे राजा से मिल लें, तो महाप्रभु ने मना करते हुए रामानन्द राय से कहा कि वे चाहें तो राजा के पुत्र को उनके सामने बुलायें। राजकुमार वैष्णव-वेश में महाप्रभु के समक्ष उपस्थित हुआ, जिससे कृष्ण की स्मृति जाग्रत हो उठी। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने महाराज प्रतापरुद्र के पुत्र का उद्धार किया।

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने रथयात्रा सम्पन्न होने के पूर्व गुण्डिचा मन्दिर की धुलाई की। फिर उन्होंने इन्द्रद्युम्न सरोवर में स्नान किया और निकटवर्ती बाग में प्रसाद ग्रहण किया। जब महाप्रभु गुण्डिचा मन्दिर की धुलाई कर रहे थे, तब किसी गौड़ीय वैष्णव ने महाप्रभु के पाँवों को धोकर उसका पानी पी लिया। यह घटना इसलिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे भक्त में प्रेमभाव उत्पन्न हो आया। इसके बाद अद्वैत प्रभु का पुत्र गोपाल कीर्तन के समय मूर्छित हो गया, किन्तु जब उसे होश नहीं आया, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसे जगाकर उसे अपनी कृपा प्रदान की। प्रसाद वितरण के समय नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु में कुछ हास्य-विनोद की बातें भी हुईं। अद्वैत प्रभु ने कहा कि नित्यानन्द प्रभु को कोई नहीं जानता और गृहस्थ ब्राह्मण का यह कर्तव्य नहीं है कि वह समाज में अज्ञात व्यक्ति के साथ भोजन ग्रहण करे। इस विनोदपूर्ण टिप्पणी के प्रत्युत्तर में नित्यानन्द प्रभु ने कहा कि अद्वैत आचार्य अद्वैतवादी हैं

और यदि कोई उनके साथ भोजन करे तो न जाने उसका मन किस दिशा में चला जाए। इन दोनों प्रभुओं की वार्ता के पीछे गूढ़ अर्थ छिपा हुआ है, जिसे केवल बुद्धिमान व्यक्ति ही समझ सकता है। जब सारे वैष्णव भोजन कर चुके, तो स्वरूप दामोदर तथा अन्यों ने कमरे के भीतर ही प्रसाद ग्रहण किया। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने अनवसर के बाद (विग्रह का निवृत्ति काल पूर्ण होने के बाद) जगन्नाथ अर्चाविग्रह को देखा, तो वे परम आनन्दित हुए। उस समय भगवान् चैतन्य के साथ अनेक भक्त थे और वे भी परम प्रसन्न थे।

श्री-गुण्डिचा-मन्दिरमात्म-वृन्दैः

सम्मार्जयन्क्षालनतः स गौरः ।

स्व-चित्त-वच्छीतलमुज्ज्वलं च

कृष्णोपवेशौपयिकं चकार ॥1॥

श्री-गुण्डिचा-श्री गुण्डीचा; मन्दिरम्-मन्दिर; आत्म-वृन्दैः-अपने साथियों के साथ; सम्मार्जयन्–धोया; क्षालनतः-साफ करके; सः-उन; गौरः-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; स्व-चित्त-वत्-अपने हृदय की तरह; शीतलम्-शीतल; उज्वलम्-उज्ज्वल; च-तथा; कृष्ण-भगवान् श्रीकृष्ण के; उपवेश-बैठने के लिए; औपयिकम्-योग्य; चकार-बनाया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों और संगियों के साथ गुण्डिचा मन्दिर को धोया तथा उसकी सफाई की और इस तरह उन्होंने मन्दिर को अपने हृदय के ही समान शीतल तथा उज्वल बना दिया, जिससे वह श्रीकृष्ण के बैठने के लिए अनुकूल स्थान बन सका।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; गौरचन्द्र-गौरचन्द्र, श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत प्रभु की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

गौरचन्द्र की जय हो! नित्यानन्द की जय हो! अद्वैत आचार्य की जय हो! श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

जय जय श्रीवासादि गौर-भक्त-गण ।

शक्ति देह,— करि येन चैतन्य वर्णन ॥ 3॥

जय जय-जय हो; श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर आदि; गौर-भक्त-गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की; शक्ति देह-कृपया मुझे शक्ति दो; करि येन-ताकि मैं कर सकें; चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु का; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर इत्यादि श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो! मैं उनसे शक्ति प्रदान करने की याचना करता हूँ, जिससे श्री चैतन्य महाप्रभु का उचित ढंग से वर्णन कर सकूँ।

पूर्वे दक्षिण हैते प्रभु यबे आइला ।

ताँरे मिलिते गजपति उत्कण्ठित हैला ॥4॥

पूर्वे-पहले समय में; दक्षिण हैते–दक्षिण भारत से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः यबे-जब; आइला–लौटे थे; ताँरे–उनको; मिलिते-मिलने के लिए; गजपति-उड़ीसा का राजा; उत्कण्ठित-उत्सुक; हैला हो गया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी दक्षिण भारत की यात्रा से वापस लौट आये, तब उड़ीसा के राजा महाराज प्रतापरुद्र उनसे मिलने के लिए अत्यन्त आतुर हो उठे।

कटक हैते पत्री दिल सार्वभौम-ठाञि ।

प्रभुर आज्ञा हय यदि, देखिबारे याइ ॥5॥

कटक हैते-उड़ीसा की राजधानी कटक से; पत्री-एक पत्र; दिल-भेजा; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य के; ठाञि-स्थान को प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; आज्ञा-अनुमति; हय-हो; यदि-यदि; देखिबारे याइ–मैं दर्शन के लिए आ सकें।

अनुवाद

राजा ने अपनी राजधानी कटक से सार्वभौम भट्टाचार्य के पास एक चिट्ठी भेजी, जिसमें यह अनुरोध किया गया था कि वे महाप्रभु से यह आज्ञा प्राप्त कर लें, ताकि वे वहाँ आकर उनसे मिल सके।

भट्टाचार्य लिखिल,—प्रभुर आज्ञा ना हैल ।

पुनरपि राजा ताँरे पत्री पाठाइल ॥ 6 ॥

भट्टाचार्य लिखिल–सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; आज्ञा-अनुमति; ना-नहीं; हैल-है; पुनरपि पुनः; राजा-राजा ने; ताँरे–उनको; पत्री- एक पत्र; पाठाइल–भेजा।

अनुवाद

राजा के पत्र का उत्तर देते हुए सार्वभौम भट्टाचार्य ने लिखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा नहीं मिल सकी। इसके बाद राजा ने उनको दूसरा पत्र लिखा।

प्रभुर निकटे आछे यत भक्तगण ।

मोर लागि' ताँ-सबारे करिह निवेदन ॥7॥

प्रभुर निकटे-श्री चैतन्य महाप्रभु के पास; आछे-हैं; यत-सभी; भक्त-गण-भक्तगण; मोर लागि'-मेरे लिए; ताँ-सबारे उन सबको; करिह-कृपया करो; निवेदन-प्रार्थना।

अनुवाद

राजा ने इस पत्र में सार्वभौम भट्टाचार्य से प्रार्थना की, "कृपया मेरी ओर से महाप्रभु के सारे भक्तों से यह निवेदन करें और मेरी ओर से यह पत्र उनको दे दें।

सेइ सब दयालु मोरे हञा सदय ।

मोर लागि' प्रभु-पदे करिबे विनय ॥8॥

सेइ सब–वे सब; दयालु दयालु; मोरे-मुझ पर; हञा–होकर; स-दय-पक्ष में; मोर लागि'-मेरे लिए; प्रभु-पदे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर; करिबे-करेंगे; विनय-विनम्र निवेदन।

अनुवाद

“यदि महाप्रभु से सम्बन्धित सारे भक्त मेरे प्रति अनुकूल हों, तो वे महाप्रभु के चरणकमलों में मेरा यह निवेदन प्रस्तुत कर सकते हैं।

ताँ-सबार प्रसादे मिले श्री-प्रभुर पाय ।

प्रभु-कृपा विना मोर राज्य नाहि भाय ॥9॥

ताँ-सबार प्रसादे-उन सबकी कृपा से; मिले-मिलते हैं; श्री-प्रभुर पाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; प्रभु-कृपा–महाप्रभु की कृपा के; विना-बिना; मोर-मेरा; राज्य-राज्य; नाहि-नहीं; भाय-मुझे अच्छा लगता।

अनुवाद

“समस्त भक्तों की कृपा से ही किसी को महाप्रभु के चरणों की शरण मिल सकती है। महाप्रभु की कृपा के बिना मुझे अपना राज्य अच्छा नहीं लगता।

यदि मोरे कृपा ना करिबे गौरहरि ।

राज्य छाड़ि’ योगी हइ’ हइब भिखारी ॥10॥

यदि-यदि; मोरे-मुझ पर; कृपा-कृपा; ना-नहीं; करिबे-करेंगे; गौरहरि–श्री चैतन्य महाप्रभु; राज्य छाड़ि’–राज्य छोड़कर; योगी-योगी; हइ’-होकर; हइब-हो जाऊँगा; भिखारी-एक भिखारी।

अनुवाद

“यदि गौरहरि, श्री चैतन्य महाप्रभु मुझ पर कृपा नहीं करेंगे, तो मैं अपना राज्य छोड़कर योगी बन जाऊँगा और द्वार-द्वार भिक्षा माँगूंगा।”

भट्टाचार्य पत्री देखि’ चिन्तित हञा ।

भक्त-गण-पाश गेला सेइ पत्री लञा ॥11॥

भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; पत्री-पत्र; देखि’–देखकर; चिन्तित हञा–अत्यन्त चिन्तित हो गये; भक्त-गण-सभी भक्तों के; पाश-पास; गेला–गये; सेइ-वह; पत्री-पत्र; लञा–लेकर।

अनुवाद

जब भट्टाचार्य को यह पत्र मिला, तो वे अत्यधिक चिन्तित हो उठे। वे उस पत्र को लेकर महाप्रभु के भक्तों के पास गये।

सबारे मिलिया कहिल राज-विवरण ।

पिछे सेइ पत्री सबारे कराइल दरशन ॥12॥

सबारे सबसे ; मिलिया-मिलकर; कहिल-कहने लगे; राज-विवरण-राजा की इच्छा का वर्णन; पिछे-बाद में; सेइ पत्री वही पत्र; सबारे-सबको; कराइल दरशन-दिखाया।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने सारे भक्तों से मिलकर राजा की इच्छा बतलाई। फिर उन्होंने सबको वह पत्र दिखाया।

पत्री देखि' सबार मने हइल विस्मय ।

प्रभु-पदे गजपतिर एत भक्ति हयः ॥ 13 ॥

पत्री-पत्र; देखि-देखकर; सबार-सबके; मने-मन में; हइल-हुआ; विस्मय-आश्चर्य; प्रभु-पदे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर; गजपतिर-उड़ीसा के राजा की; एत-इतनी; भक्ति-भक्ति; हय-है।

अनुवाद

पत्र पढ़कर सभी लोग चकित थे कि श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर राजा की इतनी भक्ति है।

सबे कहे,—प्रभु तौरे कभु ना मिलिबे ।

आमि-सब कहि यदि, दुःख से मानिबे ॥14॥

सबे कहे-सबने कहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तौरे–उनको; कभु–किसी समय; ना–नहीं; मिलिबे-मिलेंगे; आमि-सब-हम सब; कहि-कहें; यदि-यदि; दुःख-दुःख; से-श्री चैतन्य महाप्रभु; मानिबे–अनुभव करेंगे।

अनुवाद

भक्तों ने अपना विचार प्रकट किया, "महाप्रभु कभी भी राजा से नहीं मिलेंगे और यदि हम उनसे मिलने की प्रार्थना करें, तो वे निश्चित रूप से दुःखी हो जायेंगे।"

सार्वभौम कहे,—सबे चल' एक-बार।

मिलिते ना कहिब, कहिब राज-व्यवहार ॥15॥

सार्वभौम कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; सबे चल'–आओ हम सब चलें; एक-बार-एक बार; मिलिते-मिलने के लिए; ना कहिब-हम अनुरोध नहीं करेंगे; कहिब-हम मात्र वर्णन करेंगे; राज-व्यवहार-राजा का व्यवहार।

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "हम एक बार पुनः महाप्रभु के पास चलेंगे, किन्तु हम उनसे राजा से भेंट करने के लिए नहीं कहेंगे। बल्कि हम केवल राजा के उत्तम व्यवहार के विषय में ही कहेंगे।"

एत बलि' सबे गेला महाप्रभुर स्थाने।

कहिते उन्मुख सबे, ना कहे वचने ॥ 16॥

एत बलि'-इस प्रकार निर्णय करके; सबे–वे सब; गेला–गये; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; स्थाने स्थान पर; कहिते-कहने के लिए; उन्मुख-तैयार होकर; सबे-सभी; ना-नहीं; कहे-कह सके; वचने-एक शब्द भी।

अनुवाद

इस तरह तय करके वे सभी श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर गये। वहाँ वे कुछ कहना तो चाहते थे, किन्तु एक शब्द भी नहीं कह पाये।

प्रभु कहे,—कि कहिते सबार आगमन।

देखिये कहिते चाह,—ना कह, कि कारण? ॥17॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; कि-क्या; कहिते-कहने के लिए; सबार-तुम सब; आगमन-आये हो; देखिये-मैं देखता हूँ; कहिते चाह-तुम कुछ कहना चाहते हो; ना कह–परन्तु कह नहीं पा रहे हो; कि कारण-क्या कारण है।

अनुवाद

जब वे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर आ गये, तो उन्हें देखकर महाप्रभु ने कहा, "तुम सभी लोग यहाँ क्या कहने आये हो? मैं देख रहा हूँ कि तुम लोग कुछ कहना चाहते हो, किन्तु कह नहीं रहे। क्या कारण है?"

नित्यानन्द कहे,—तोमाय चाहि निवेदिते ।

ना कहिले रहिते नारि, कहिते भय चित्ते ॥18॥

नित्यानन्द कहे-नित्यानन्द प्रभु ने कहा; तोमाय-आपको; चाहि-हम चाहते हैं; निवेदिते-कुछ निवेदन करना; ना कहिले–यदि हम नहीं कहते हैं; रहिते नारि-हम नहीं रह सकते; कहिते--किन्तु कहते हुए; भय चित्ते-हमें भय लगता है।

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "हम आपसे कुछ कहना चाहते हैं। यद्यपि हमसे बिना कहे रहा नहीं जाता, किन्तु कहते हुए हमें अत्यधिक भय हो रहा है।

योग्यायोग्य तोमाय सब चाहि निवेदिते ।

तोमा ना मिलिले राजा चाहे योगी हैते ॥19॥

योग्य-उचित; अयोग्य-अनुचित; तोमाय-आपको; सब-हम सब; चाहि–चाहते हैं; निवेदिते-निवेदन करना; तोमा-आपको; ना मिलिले–यदि वह नहीं मिलता; राजा-राजा; चाहे-चाहता है; योगी हैते–योगी हो जाना।

अनुवाद

"हम आपसे कुछ ऐसी बात कहना चाहते हैं, जो उचित हो सकती है और नहीं भी हो सकती। बात यह है-यदि उड़ीसा का राजा आपके दर्शन नहीं पाता, तो वह योगी बन जायेगा।"

काणे मुद्रा लइ' मुञि हुइब भिखारी ।

राज्य-भोग नहे चित्ते विना गौरहरि ॥20॥

काणे मुद्रा-कान की बाली; लइ'–लेकर; मुञि-मैं; हइब-हो जाऊँगा; भिखारी-एक भिखारी; राज्य-भोग-राज्य-भोग; नहे-नहीं; चित्ते-मन में; विना-बिना; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु के।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "राजा ने निश्चय किया है कि वह भिखारी बनकर अपने कानों में हाथी-दाँत की बालियाँ पहन लेगा। वह श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का दर्शन किये बिना अपने राज्य का भोग नहीं करना चाहता।"

तात्पर्य

भारत में आज भी पेशेवर योगियों का एक ऐसा वर्ग है, जो पश्चिमी देशों के जिप्सियों जैसा है। वे कुछ जादू तथा योग-विधियाँ जानते हैं और उनका कार्य है द्वार-द्वार जाकर कभी याचना करके और कभी धमकाकर भीख माँगना। ऐसे योगी कभी-कभी कनफटा योगी भी कहलाते हैं। कनफटा शब्द सूचक है ऐसे व्यक्ति का जिसने हाथी-दाँत की बनी बाली (मुद्रा) पहनने के लिए कान में छेद करा रखा हो। महाराज प्रतापरुद्र श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन न कर पाने के कारण इतने हताश हो गये थे कि वे ऐसा ही योगी बनना चाह रहे थे। सामान्य लोग सोचते हैं कि योगी के कान में बाली (मुद्रा) अवश्य होनी चाहिए, किन्तु यह असली योगी का चिह्न नहीं है। महाराज प्रतापरुद्र भी सोचते थे कि योगी बनने के लिए कान में ऐसी मुद्रा पहनना आवश्यक है।

देखिब से मुख-चन्द्र नयन भरिया ।

धरिब से पाद-पद्म हृदये तुलिया ॥21॥

देखिब-मैं देखूँगा; से-वह; मुख-चन्द्र-चन्द्रमा के समान मुख; नयन भरिया-नयनों की तृप्ति तक; धरिब–मैं रखेंगा; से-उन; पाद-पद्म-चरणकमलों को; हृदये-अपने हृदय पर; तुलिया-उठाकर।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने आगे कहा, "राजा ने यह भी अभिलाषा व्यक्त की है कि वे महाप्रभु के चन्द्रमा सदृश मुख को दृष्टिभर देखना चाहते हैं। वे महाप्रभु के चरणकमलों को उठाकर अपने हृदय पर रखना चाहते हैं।"

यद्यपि शुनिया प्रभुर कोमल हय मन।

तथापि बाहिरे कहे निष्ठुर वचन ॥22॥

यद्यपि यद्यपि; शुनिया-सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; कोमल-द्रवित; हय-हो गया; मन–मन; तथापि फिर भी; बाहिरे-बाहर से; कहे-उन्होंने कहे; निष्ठुर वचन-कठोर वचन।

अनुवाद

इतनी सारी बातें सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु का मन निश्चित रूप से द्रवित हुआ, किन्तु ऊपर से वे कुछ कठोर वचन कहना चाहते थे।

तोमा-सबार इच्छा,—एइ आमारे लञा।

राजाके मिलह इहँ कटकेते गिया ॥ 23॥

तोमा-सबार-तुम सबकी; इच्छा-इच्छा; एइ-है; आमारे लञा-मुझे ले जाकर; राजाके राजा को; मिलह–मिलने; इहँ–यहाँ; कटकेते गिया-कटक जाकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं समझता हूँ कि तुम सब राजा से भेंट कराने के लिए मुझे कटक ले जाना चाहते हो।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु स्वाभाविक रूप से दया के आगार हैं, अतएव ज्योंही उन्होंने राजा का वचन सुना, उनका हृदय तुरन्त पसीज उठा। इस तरह महाप्रभु राजा को मिलने कटक तक जाने को तैयार थे। उन्होंने इस बात को मन में आने तक नहीं दिया कि राजा कटक से चलकर उन्हें देखने जगन्नाथ पुरी आये। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि श्री चैतन्य महाप्रभु इतने दयालु हैं कि वे राजा को मिलने कटक तक जाने को तैयार हो गये। स्पष्टतः ऐसी आशा नहीं की जाती थी कि राजा महाप्रभु से अपने स्थान पर मिलना चाहते थे, किन्तु ऊपर से अत्यन्त कठोर होने का प्रदर्शन करते हुए महाप्रभु ने संकेत किया कि यदि सारे भक्त ऐसा ही चाहते हैं, तो वे राजा को मिलने कटक जा सकते हैं।

परमार्थ थाकुक—लोके करिबे निन्दन ।

लोके रहु—दामोदर करिबे भर्त्सन ॥24॥

परम-अर्थ थाकुक-आध्यात्मिक उन्नति का क्या कहें; लोके-सामान्य लोग; करिबे निन्दन-निन्दा करेंगे; लोके रहु-सामान्य लोगों की क्या कहें; दामोदर दामोदर पण्डित; करिबे-करेंगे; भर्त्सन-भर्त्सना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "आध्यात्मिक प्रगति की बात तो दूर रही, सारे लोग मेरी निन्दा करेंगे। सारे लोगों की बात जाने दें, दामोदर तक मेरी भर्त्सना करेगा।

तोमा-सबार आज्ञाय आमि ना मिलि राजारे ।

दामोदर कहे यबे , मिलि तबे तारे ॥25॥

तोमा-सबार-आप सबकी; आज्ञाय-आज्ञा से; आमि-मैं; ना-नहीं; मिलि-मिलूँगा; राजारे-राजा को; दामोदर दामोदर पण्डित; कहे-कहे; यबे -जब; मिलि-मैं मिलूँगा; तबे-तब; तारे–उसे।

अनुवाद

"मैं तुम सब भक्तों के अनुरोध से राजा से नहीं मिलूँगा, किन्तु यदि दामोदर कहेगा तो मैं ऐसा करूँगा।"

तात्पर्य

आध्यात्मिक दृष्टि से संन्यासी को किसी भौतिकतावादी व्यक्ति, विशेषतया रुपये-पैसों की लेनदेन में व्यस्त रहने वाले राजा से मिलना वर्जित है। एक संन्यासी तथा एक राजा के मिलन को निन्दनीय माना जाता है। संन्यासी सदैव जनता की आलोचना का लक्ष्य होता है और लोगों के द्वारा उसकी छोटी-से-छोटी त्रुटि को भी गम्भीर मानी जाती है। लोग संन्यासी से आशा करते हैं कि प्रचार के अतिरिक्त वह किसी सामाजिक या राजनीतिक मामले में भाग न ले। यदि संन्यासी जनता की आलोचना का लक्ष्य बनता है, तो उसका प्रचार-कार्य सफल नहीं होगा। श्री चैतन्य महाप्रभु ऐसी आलोचना से सदैव बचे रहना चाहते थे, जिससे उनके प्रचार-कार्य में बाधा न पड़े। सौभाग्यवश जब महाप्रभु अपने भक्तों से बातें कर रहे थे, तो उस समय दामोदर पण्डित भी उपस्थित थे। दामोदर पण्डित अत्यन्त श्रद्धालु

भक्त तथा महाप्रभु के पक्के प्रेमी थे। जब भी कोई ऐसी बात होती, जिससे महाप्रभु के चरित्र पर दाग लग सके, तो वे तुरन्त इंगित करते थे और महाप्रभु के उच्च पद का भी ध्यान नहीं रखते थे। ऐसा कहा जाता है कि जिस बात में बुद्धिमान पुरुष अपने को संयमित रखते हैं, वहाँ मूर्ख दौड़कर चले जाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु दामोदर पण्डित द्वारा अपनी आलोचना किये जाने की मूर्खता का यहाँ संकेत करना चाहते थे। इसीलिए महाप्रभु ने अप्रत्यक्ष रूप में कहा कि यदि दामोदर पण्डित अनुमति दें, तो वे राजा को मिलने जा सकते हैं। इस कथन के पीछे गूढार्थ भी है, क्योंकि इसमें चेतावनी है कि दामोदर को अब महाप्रभु की आलोचना करने की हिम्मत नहीं करनी चाहिए, क्योंकि भक्त के रूप में उनके लिए यह उचित नहीं था। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने साथ रहने वाले सारे भक्तों के मार्गदर्शक तथा गुरु माने जाते थे। दामोदर पण्डित भी उन भक्तों में से एक थे और महाप्रभु ने उन्हें आगाह करके विशेष कृपा दिखलाई कि भविष्य में वे उनकी आलोचना न करें। भक्त या शिष्य को चाहिए कि वह कभी भी भगवान् या उनके प्रतिनिधि स्वरूप गुरु की आलोचना करने का प्रयास न करे।

दामोदर कहे,—तुमि स्वतन्त्र ईश्वर ।

कर्तव्याकर्तव्य सब तोमार गोचर ॥26॥

दामोदर कहे-दामोदर पण्डित ने कहा; तुमि-आप; स्वतन्त्र–पूर्णरूपेण स्वतंत्र; ईश्वर–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; कर्तव्य-करने योग्य; अकर्तव्य-करने योग्य नहीं; सब-सब; तोमार-आपके; गोचर-ज्ञान में है।

अनुवाद

दामोदर ने तुरन्त उत्तर दिया, "हे प्रभु, आप सर्वथा स्वतन्त्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। चूँकि आप हर बात को जानते हैं, अतएव आपको पता है कि क्या करने योग्य है और क्या नहीं।

आमि कोन्क्षुद्र-जीव, तोमाके विधि दिब? ।

आपनि मिलिबे तौरे, ताहाओ देखिब ॥ 27॥

आमि कोन्–मैं तो मात्र; क्षुद्र-जीव-एक तुच्छ जीव; तोमाके-आपके लिए; विधि-निर्देश; दिब-मैं दूँगा; आपनि-आप; मिलिबे-मिलेंगे; तौरे-राजा को; ताहाओ देखिब-मैं इसे देखूँगा।

अनुवाद

"मैं तो एक क्षुद्र जीव हूँ, अतएव मुझमें वह शक्ति कहाँ कि मैं आपको आदेश दें? आप स्वेच्छा से राजा से मिलेंगे और मैं देखूँगा।

राजा तोमारे स्नेह करे, तुमि—स्नेह-वश ।

ताँर स्नेहे कराबे ताँरे तोमार परश ॥ 28॥

राजा-राजा; तोमारे-आपके साथ; स्नेह करे—प्रेम करता है; तुमि-आप; स्नेह-वश-प्रेम के वश में हैं; ताँर-उसके; स्नेहे-प्रेम से; कराबे-करोगे; ताँरे–उसको; तोमार-अपना; परश-स्पर्श।

अनुवाद

"राजा आप पर अत्यन्त अनुरक्त है और आप भी उसके प्रति स्नेह का अनुभव करते हैं। अतएव मैं समझ सकता हूँ कि आप राजा के स्नेह से वशीभूत होकर उनका स्पर्श करेंगे।

यद्यपि ईश्वर तुमि परम स्वतन्त्र ।

तथापि स्वभावे हओ प्रेम-परतन्त्र ॥29॥

यद्यपि यद्यपि; ईश्वर–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; तुमि-आप; परम-पूरी तरह; स्वतन्त्र–स्वतंत्र; तथापि फिर भी; स्वभावे-अपने स्वभाव से; हओ-आप हो जाते हैं; प्रेम-परतन्त्र-प्रेम के वश में।

अनुवाद

"यद्यपि आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और पूर्णतया स्वतन्त्र हैं, फिर भी आप अपने भक्तों के स्नेह एवं प्रेम के अधीन हो जाते हैं। यही आपका स्वभाव है।"

नित्यानन्द कहे—ऐछे हय कोन्जन ।

ये तोमारे कहे, 'कर राज-दरशन' ॥ 30 ॥

नित्यानन्द कहे-नित्यानन्द प्रभु ने कहा; ऐछे-ऐसा; हय-है; को जन-कोई व्यक्ति; ये-जो; तोमारे-आपको; कहे-आज्ञा; कर देता है; राज-दरशन-राजा को मिलने को।

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "भला तीनों लोकों में ऐसा कौन-सा व्यक्ति है, जो आपसे कह सके कि आप राजा से मिलें?

किन्तु अनुरागी लोकेर स्वभाव एक हय ।

इष्ट ना पाइले निज प्राण से छाड़य ॥ 31॥

किन्तु-किन्तु; अनुरागी-प्रेमी; लोकेर-लोगों का; स्वभाव-स्वभाव; एक-एक; हय-है; इष्ट-वांछित; ना पाइले-पाये बिना; निज-अपना; प्राण-जीवन; से-वह; छाड़य-त्याग देता है।

अनुवाद

"फिर भी यदि अनुरक्त व्यक्ति को अपनी वांछित वस्तु प्राप्त न हो पाये, तो क्या यह उसका स्वभाव नहीं है कि वह अपना जीवन त्याग दे?

याज्ञिक-ब्राह्मणी सब ताहाते प्रमाण ।

कृष्ण लागि' पति-आगे छाड़िलेक प्राण ॥ 32॥

याज्ञिक-ब्राह्मणी-उन ब्राह्मणों की पत्नियाँ जो यज्ञ कर रहे थे; सब-सब; ताहाते-उस सम्बन्ध में; प्रमाण-प्रमाण; कृष्ण लागि'-कृष्ण के लिए; पति-आगे-अपने पतियों के सामने; छाड़िलेक प्राण-अपने प्राण त्याग दिये।

अनुवाद

"उदाहरणार्थ, यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों की कुछ पत्नियों ने कृष्ण के लिए अपने पतियों के समक्ष अपने प्राण त्याग दिये।"

तात्पर्य

यह उस घटना का वर्णन है, जब मथुरा के निकट चरागाह में श्रीकृष्ण तथा उनके ग्वालमित्र अपने पशुओं के झुंड के साथ उपस्थित थे। उस समय ग्वालों को भूख लग गई तो उन्होंने भोजन के लिए प्रार्थना की। इस पर भगवान् कृष्ण ने उनसे कहा कि वे पास में ही यज्ञ में संलग्न ब्राह्मणों के पास जायें और यज्ञ में से कुछ भोजन ले आयें। भगवान् का आदेश पाकर सारे ग्वालबाल ब्राह्मणों के पास गये और उनसे भोजन माँगा, किन्तु उन्होंने मना कर दिया। इसके

बाद ग्वालबालों ने ब्राह्मणों की पत्नियों से भोजन माँगा। ये सारी पत्नियाँ भगवान् के रागानुग प्रेम में अनुरक्त थीं, अतएव ज्योंही उन्होंने ग्वालबालों की प्रार्थना सुनी और यह समझ गईं कि कृष्ण को भोजन चाहिए, तो वे तुरन्त ही यज्ञ-स्थान छोड़कर चली गईं। इस पर उनके पतियों ने उनकी बहुत भर्त्सना की। फलस्वरूप वे अपना प्राण त्यागने पर तुल गईं। शुद्ध भक्त भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा के लिए अपना जीवन त्याग करने के लिए उद्यत हो जाता है, क्योंकि यही उसका स्वभाव है।

एक युक्ति आछे, यदि कर अवधान ।

तुमि ना मिलिलेह ताँरे, रहे ताँर प्राण ॥ 33॥

एक युक्ति–एक तरकीब; आछे-है; यदि-यदि; कर अवधान-आप विचार करें; तुमि-आप; ना मिलिलेह-न मिलें; ताँरे–उनसे; रहे-रह जाता है; ताँर-उसका; प्राण-जीवन।

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु ने महाप्रभु के विचारार्थ एक सुझाव रखा। उन्होंने कहा, "ऐसी एक युक्ति है, जिससे आपको राजा से मिलने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी, किन्तु उससे राजा के प्राण बच जायेंगे।

एक बहिर्वास यदि देह' कृपा करि' ।

ताहा पाञा प्राण राखे तोमार आशा धरि' ॥ 34॥

एक बहिर्वास–एक बाह्य वस्त्र; यदि-यदि; देह'-आप दें; कृपा करि'-कृपा करके; ताहा पाञा-उसे पाकर; प्राण राखे—वह जीवित रहेगा; तोमार आशा धरि'-आपसे भविष्य में किसी समय मिलने की आशा करके।

अनुवाद

"यदि आप कृपा करके अपना एक उत्तरीय वस्त्र राजा को भेज दें, तो वह किसी न किसी समय आपके दर्शन होने की आशा में जीवित बना रहेगा।"

तात्पर्य

इस प्रकार श्री नित्यानन्द प्रभु ने बड़ी ही युक्ति से यह सुझाव रखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु अपना कोई पुराना वस्त्र राजा को दे दें। यद्यपि राजा महाप्रभु से मिल नहीं पाएगा, किन्तु ऐसा वस्त्र पाकर उसे सान्त्वना मिल जायेगी। यद्यपि राजा महाप्रभु का दर्शन करने के लिए अत्यधिक उत्सुक था, किन्तु महाप्रभु के लिए उससे मिलना सम्भव नहीं था। अतः इस स्थिति को सुलझाने के लिए ही नित्यान्द प्रभु ने सुझाव रखा कि महाप्रभु राजा के पास अपना कोई पुराना वस्त्र भेज दें। इस तरह राजा सोचेगा कि महाप्रभु उस पर कृपा प्रदर्शित कर रहे हैं। तब राजा ऐसा कोई उग्र कार्य नहीं करेगा, जैसाकि प्राण त्यागना या भिक्षुक बनना।

प्रभु कहे,—तुमि-सब परम विद्वान् ।

येइ भाल हय, सेइ कर समाधान ॥ 35॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने उत्तर दिया; तुमि-सब-तुम सब; परम विद्वान् परम विद्वान हो; येइ-जो कुछ; भाल हय-भला है; सेइ-वह; कर समाधान-करो।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "चूँकि आप लोग सभी परम विद्वान हैं, अतएव आप लोग जो भी निर्णय लेंगे वह मुझे स्वीकार्य होगा।"

तबे नित्यानन्द-गोसाञि गोविन्देर पाश ।

मागिया लइल प्रभुर एक बहिर्वास ॥ 36॥

तबे-उस समय; नित्यानन्द-गोसाञि-नित्यानन्द प्रभु; गोविन्देर पाश-श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी सेवक गोविन्द से; मागिया-अनुरोध करके; लइल–लिया; प्रभुर-महाप्रभु का; एक-एक; बहिर्वास–बाह्य वस्त्र।

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु ने गोविन्द से कहकर महाप्रभु का पहना हुआ एक बाह्य वस्त्र प्राप्त कर लिया।

सेइ बहिर्वास सार्वभौम-पाश दिल ।

सार्वभौम सेइ वस्त्र राजारे पाठा'ल ॥ 37॥

सेइ-वह; बहिर्वास–बाह्य वस्त्र; सार्वभौम-पाश-सार्वभौम भट्टाचार्य को;दिल-दिया; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य ने; सेइ-वह; वस्त्र-वस्त्र; राजारे-राजा को; पाठा'ल–भेज दिया।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने वह पुराना वस्त्र सार्वभौम भट्टाचार्य को दे दिया और सार्वभौम भट्टाचार्य ने उसे राजा के पास भेज दिया।

वस्त्र पाञा राजार हैल आनन्दित मन ।

प्रभु-रूप करि' करे वस्त्रेर पूजन ॥ 38॥

वस्त्र पाञा-वह वस्त्र पाकर; राजार-राजा का; हैल–हो गया; आनन्दित मन–प्रसन्न मन; प्रभु-रूप करि'—उसे श्री चैतन्य महाप्रभु जैसा स्वयं जानकर; करे-की; वस्त्रेर वस्त्र की; पूजन-पूजा।

अनुवाद

जब राजा को वह पुराना वस्त्र मिल गया, तो उन्होंने उसकी वैसी ही पूजा शुरू कर दी, जैसे वे साक्षात् महाप्रभु की पूजा करते।

तात्पर्य

यही वैदिक आदेशों का भी निर्णय है। चूँकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् परम सत्य हैं, अतएव उनसे सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु भी समान पद को प्राप्त रहती है। चूँकि राजा को श्री चैतन्य महाप्रभु से अत्यन्त स्नेह था और उन्होंने महाप्रभु का दर्शन किये बिना ही भक्ति का सार आत्मसात् कर लिया था। अतएव ज्योंही उन्हें सार्वभौम भट्टाचार्य से वस्त्र प्राप्त हुआ, उन्होंने इस वस्त्र को श्री चैतन्य महाप्रभु मानकर उसकी पूजा प्रारम्भ कर दी। महाप्रभु के वस्त्र, बिस्तर तथा उनके खड़ाऊँ तथा अन्य सारी आवश्यक वस्तुएँ श्री बलदेव के अंश शेष-रूपी विष्णु की रूपान्तर हैं। अतएव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वस्त्र तथा साज-सामान भगवान् के ही अन्य रूप होते हैं। भगवान् से सम्बन्धित हर वस्तु पूजनीय होती है। श्री चैतन्य महाप्रभु का हमें उपदेश है कि जिस प्रकार कृष्ण पूजनीय हैं, उसी तरह उनका धाम वृन्दावन भी पूजनीय है। और जिस तरह वृन्दावन पूजनीय है, उसी तरह वृन्दावन की सारी वस्तुएँ-वृक्ष, मार्ग, नदी इत्यादि भी

पूजनीय हैं। अतएव शुद्ध भक्त गाता है- जय जय वृन्दावनवासी यत जन-अर्थात् "वृन्दावन के सारे निवासियों की जय हो।" यदि भक्त में पक्की भक्तिमयी प्रवृत्ति होती है, तो ये सारे निर्णय उसके अन्त:करण में जाग्रत हो जायेंगे या प्रकट हो जायेंगे :

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य-अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

जगन्नाथ पुरी, ओरिसा का महान रथ-यात्रा उत्सव, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के समय से बदला नहीं है।

उसी रथ-यात्रा उत्सव को, जिसे चैतन्य महाप्रभु ने मनाया था, उसे अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापक-आचार्य कृष्णकृपामूर्ति ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के द्वारा पश्चिमी देशों के कई शहरों में प्रस्तुत किया गया है।

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों द्वारा मन्दिर की सफाई का कार्य चल रहा है।

जब जगन्नाथ जी को रथ पर ले जाया जा रहा था तो राजा प्रतापरुद्र ने स्वयं सोने की बनी झाड़ु से रास्ता बुहारा।

जब श्री चैतन्य महाप्रभु नाचने लगे तो नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत आचार्य उनके पीछे हो लिए और 'हरि बोल !' कहने लगे।

महाराजा प्रतापरुद्र श्री चैतन्य महाप्रभु के पाँव दबाने लगे और जयति तेऽधिकम् से प्रारम्भ होने वाला रासलीला अध्याय सुनाने लगे। इन श्लोकों को सुनकर महाप्रभु ने कहा, "सुनाते रहो।"

हाथी भी रथ को हिला नहीं पाये थे, किन्तु फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने रथ को केवल अपने मस्तक से हिलाया।

गुण्डिचा मन्दिर के निकट इंद्रद्युम्न सरोवर में भगवान् चैतन्य महाप्रभु और उनके भक्त एक दूसरे पर पानी उछालने का आनन्द लेते थे और इस प्रकार उन्होंने वृन्दावन लीला को फिर से प्रकट किया।

श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी लाठी को घुमाते और उछालते और कभी कभी अपने सिर पर ले जाते, कभी पीठ पीछे, कभी सामने, कभी बगल में और कभी दोनों पाँवों के बीच। यह देख कर सारे लोग हँसने लगे।

विजया दशमी अथवा भगवान् रामचन्द्र के द्वारा रावण पर विजय पाने के उत्सव-दिन पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने सारे भक्तों को वानर सैनिकों जैसे सजाया और हनुमान के भावोन्माद में लंका पर आक्रमण कर दिया।

श्री शचीमाता ने देखा कि, यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु बहुत दूर जगन्नाथ पुरी में थे, फिर भी उन्होंने अन्न खा लिया था।

जब श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य और उनकी पत्नी के द्वारा बनाये गये प्रीतिभोजन का आस्वाद ले रहे थे, तो भट्टाचार्य के जामात अमोघ ने चैतन्य महाप्रभु का अपमान किया। यह देखकर सार्वभौम भट्टाचार्य व उनकी पत्नी को बहुत दुख हुआ।

जब गोपीनाथ आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा कि सार्वभौम भट्टाचार्य और उनकी पत्नी दोनों उपवास कर रहे हैं और उनका दामाद अमोघ हैजे से मरनासन्न है, तो यह सुनते ही श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ गये और अमोघ को शिक्षा दी। इसके बाद अमोघ अच्छा हो गया और जोर-जोर से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने लगा।

भगवान जगन्नाथ तथा बलराम दोनों भाई पुण्डरीक विद्यानिधि के घर आये और हँस-हँस कर उसे चपत लगाने लगे।

गदाधर पण्डित से चैतन्य महाप्रभु ने कहा कि तुम यदि मेरा सुख चाहते हो तो नीलाचल लौट जाओ। यह कह कर जब महाप्रभु नाव पर सवार हुए तो गदाधर मूर्छित होकर गिर पड़े।

“जिन महात्माओं की भगवान् तथा गुरु दोनों में दृढ़ श्रद्धा होती है, उन्हें ही वैदिक ज्ञान का पूर्ण सार स्वतः अनुभव होता है।” (श्वेताश्वतर उपनिषद् 6.23)

इस तरह महाराज प्रतापरुद्र तथा अन्य भक्तों के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए हमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की प्रत्येक वस्तु की पूजा करना सीखना चाहिए। शिवजी ने तदीयानाम् कहकर इस ओर इंगित किया है। पद्म पुराण में कहा गया है :

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम् ।

तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम् ॥

"हे देवी, समस्त पूजा-विधियों में विष्णु-पूजा सर्वश्रेष्ठ है। उससे भी महान् है। तदीय अर्थात् विष्णु से सम्बन्धित किसी भी वस्तु की पूजा।" श्री विष्णु सच्चिदानन्द विग्रह हैं। इसी तरह कृष्ण का सर्वाधिक विश्वासपात्र दास अर्थात् गुरु तथा विष्णु के सारे भक्त तदीय हैं। सच्चिदानन्द-विग्रह, गुरु, वैष्णव तथा उनके द्वारा उपयोग की गई कोई भी वस्तु तदीय है और निस्सन्देह, सभी जीवों द्वारा आराध्य मानी जानी चाहिए।

रामानन्द राय यबे 'दक्षिण" हैते आइला।

प्रभु-सङ्गे रहिते राजाके निवेदिला ॥ 39॥

रामानन्द राय-रामानन्द राय; यबे -जब; दक्षिण-दक्षिण भारत; हैते-से; आइला-लौटे; प्रभु-सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; रहिते-रहने के लिए; राजाके-राजा को; निवेदिला–निवेदन किया।

अनुवाद

दक्षिण भारत से अपनी नौकरी छोड़कर लौटने के बाद रामानन्द राय ने राजा से प्रार्थना की कि वे उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रहने की अनुमति दे दें।

तबे राजा सन्तोषे ताँहारे आज्ञा दिला।

आपनि मिलन लागि' साधिते लागिला ॥40॥

तबे—उस समय; राजा-राजा ने; सन्तोषे–अत्यन्त सन्तुष्ट होकर; ताँहारे-रामानन्द राय को; आज्ञा दिला-आज्ञा दी; आपनि-स्वयं; मिलन लागि'-मिलने के लिए; साधिते लागिला-व्यवस्था करने लगे।

अनुवाद

जब रामानन्द राय ने महाप्रभु के साथ ठहरने के लिए राजा से अनुमति माँगी, तो राजा ने बड़े ही सन्तोष के साथ तुरन्त ही उन्हें अनुमति दे दी। और राजा ने महाप्रभु से अपने मिलाप की व्यवस्था के लिए रामानन्द राय से अनुरोध करना प्रारम्भ कर दिया।

महाप्रभु महा-कृपा करेन तोमारे।

मोरे मिलिबारे अवश्य साधिबे ताँहारे ॥41॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; महा-कृपा-महान् कृपा; करेन-की; तोमारे-आप पर; मोरे-मुझे; मिलिबारे-मिलने के लिए; अवश्य-अवश्य; साधिबे-आपको व्यवस्था करनी चाहिए; ताँहारे-उनको।

अनुवाद

राजा ने रामानन्द राय से कहा, "श्री चैतन्य महाप्रभु आप पर अत्यन्त कृपालु हैं। अतएव आप मेरी भेंट के लिए उनसे अवश्य अनुरोध करें।"

एक-सङ्गे दुइ जन क्षेत्रे यबे आइला ।

रामानन्द राय तबे प्रभुरे मिलिला ॥42॥

एक-सङ्गे-इकठ्ठ; दुइ जन-ये दो व्यक्ति; क्षेत्रे-जगन्नाथ पुरी में; यबे -जब; आइला–लौटे; रामानन्द राय-रामानन्द राय; तबे-उस समय; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु से; मिलिला–मिले।

अनुवाद

राजा तथा रामानन्द राय साथ-साथ जगन्नाथ-क्षेत्र (पुरी) लौटे और तब श्री रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले।

प्रभु-पदे प्रेम-भक्ति जानाइल राजार ।

प्रसङ्ग पाञा ऐछे कहे बार-बार ॥43॥

प्रभु-पदे-महाप्रभु के चरणकमलों पर; प्रेम-भक्ति-प्रेमभाव; जानाइल-सूचित किया; राजार-राजा का; प्रसङ्ग-चर्चा; पाञा-पाकर; ऐछे—इस प्रकार; कहे-कहा; बार-बार-बारम्बार।

अनुवाद

उस समय रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु से राजा के प्रेमभाव के बारे में बतलाया। जब भी कोई अवसर मिलता, तो वे महाप्रभु को राजा के बारे में बारम्बार बतलाते।

राज-मन्त्री रामानन्द–व्यवहारे निपुण ।

राज-प्रीति कहि' द्रवाइल प्रभुर मन ॥44॥

राज-मन्त्री राजमंत्री; रामानन्द-श्री रामानन्द राय; व्यवहारे-सामान्य व्यवहार में; निपुण–अत्यन्त दक्ष; राज-प्रीति–चैतन्य महाप्रभु के प्रति राजा का प्रेम; कहि'-वर्णन करके; द्रवाइल-पिघला दिया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मन–मन।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय निस्सन्देह राजा के नीतिनिपुण मन्त्री थे। वे सामान्य व्यवहार में अत्यन्त निपुण थे। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु से राजा के प्रेम का वर्णन कर-करके महाप्रभु के मन को द्रवित कर दिया।

तात्पर्य

भौतिक जगत् में नीतिज्ञ व्यक्ति, लोगों से विशेषतया राजनैतिक मामलों के विषय में निपटना जानता है। महाप्रभु के कुछ बड़े-बड़े भक्त, यथा रामानन्द राय, रघुनाथ दास गोस्वामी, सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी सरकारी अफसर थे और उनका गृहस्थ जीवन अत्यन्त ऐश्वर्यपूर्ण था। फलस्वरूप वे जानते थे कि लोगों के साथ व्यवहार किस तरह किया जाये। कई मामलों में हमने रूप गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी और रामानन्द राय की निपुणता महाप्रभु की सेवा में देखी है। जब रघुनाथ दास गोस्वामी के पिता तथा चाचा को सरकारी कर्मचारी बन्दी बनाने वाले थे, तो रघुनाथ दास गोस्वामी ने उन्हें छिपा लिया और सरकारी अफसरों से स्वयं मिलकर बड़े ही ढंग से सारा मामला सुलझा दिया। यह तो केवल एक उदाहरण है। इसी तरह सनातन गोस्वामी को अपना मन्त्री-पद त्यागने पर कारागार में डाल दिया गया, किन्तु उन्होंने कारागार के सेवक को घूस देकर बड़ी ही युक्ति से अपने आपको नवाब के चंगुल से छुड़ाया, जिससे वे श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रह सकें। यहाँ हम महाप्रभु के अत्यन्त विश्वस्त भक्त रामानन्द राय को श्री चैतन्य महाप्रभु के हृदय को बड़ी ही युक्ति के साथ द्रवित करते देखते हैं, यद्यपि महाप्रभु ने राजा से मिलने से इनकार करने का निर्णय ले रखा था। रामानन्द राय की नीति तथा सार्वभौम भट्टाचार्य तथा अन्य महान् भक्तों के अनुनय-विनय से ही सफलता प्राप्त हो सकी। निष्कर्ष यह है कि भगवान् की सेवा में की जाने वाली राजनीति भी भक्ति का एक रूप है।

उत्कण्ठाते प्रतापरुद्र नारे रहिबारे ।

रामानन्द साधिलेन प्रभुरे मिलिबारे ॥ 45 ॥

उत्कण्ठाते-अत्यन्त उत्सुकता में; प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र; नारे रहिबारे-रह न सके; रामानन्द-श्री रामानन्द राय; साधिलेन–मना लिया; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; मिलिबारे-मिलने के लिए।

अनुवाद

चूँकि महाराज प्रतापरुद्र महाप्रभु का दर्शन न पा सकने के कारण अत्यन्त उत्कंठित थे और वे इसे सहन नहीं कर पा रहे थे, अतएव श्री रामानन्द राय ने निपुणता से राजा के साथ महाप्रभु की भेंट कराने की व्यवस्था की।

रामानन्द प्रभु-पाय कैल निवेदन ।

एक-बार प्रतापरुद्रे देखाह चरण ॥46॥

रामानन्द-रामानन्द ने; प्रभु-पाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर; कैल-किया; निवेदन-निवेदन; एक-बार-मात्र एक बार; प्रतापरुद्रे-महाराज प्रतापरुद्र को; देखाह–दिखा दो; चरण-अपने चरणकमल।

अनुवाद

रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु से खुलकर यह निवेदन किया, "कृपा करके कम-से-कम एक बार तो राजा को अपने चरणकमलों का दर्शन करने दें।"

प्रभु कहे,—रामानन्द, कह विचारिया ।

राजाके मिलते युयाय सन्यासी हञा? ॥47॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; रामानन्द-मेरे प्रिय रामानन्द; कह-कृपया मुझे कहो; विचारिया-उचित विचार करके; राजाके-राजा को; मिलिते-मिलना; युयाय-क्या यह उचित है; सन्यासी-संन्यासी; हञा–होकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "हे रामानन्द, संन्यासी को राजा से मिलना उचित होगा या नहीं, यह विचार करने के बाद ही तुम्हें मुझसे अनुरोध करना चाहिए।

राजार मिलने भिक्षुकेर दुइ लोक नाश ।

परलोक रहु, लोके करे उपहास ॥48॥

राजार मिलने-राजा से मिलने पर; भिक्षुकेर-साधु (संन्यासी) का; दुइ लोक-दोनों लोक; नाश-नष्ट; पर-लोक-आध्यात्मिक लोक; रहु-छोड़ दो; लोके-इस भौतिक जगत् में ; करे–करेंगे; उपहास-उपहास।

अनुवाद

"यदि कोई संन्यासी राजा से भेंट करता है, तो उसके लिए यह लोक तथा परलोक दोनों नष्ट हो जायेंगे। हाँ, परलोक के बारे में अभी से क्या कहा जाये। इसी लोक में लोग हँसी उड़ायेंगे, यदि संन्यासी राजा से भेंट करे।"

रामानन्द कहे,—तुमि ईश्वर स्वतन्त्र ।

कारे तोमार भय, तुमि नह परतन्त्र ॥49॥

रामानन्द कहे-रामानन्द राय ने कहा; तुमि-आप; ईश्वर–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; स्वतन्त्र-स्वतंत्र; कारे तोमार भय-आप किसी से भयभीत क्यों हैं?; तुमि नह–आप नहीं हैं; पर-तन्त्र-परतंत्र।

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, आप तो परम स्वतन्त्र हैं। आपको किसी से कोई डर नहीं है, क्योंकि आप किसी पर आश्रित नहीं हैं।"

प्रभु कहे,—आमि मनुष्य आश्रमे सन्यासी ।

काय-मनो-वाक्ये व्यवहारे भय वासि ॥50॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; आमि मनुष्य-मैं मनुष्य हूँ; आश्रमे-आश्रम में; सन्यासी-संन्यासी; काय-मनः-वाक्ये-अपने तन, मन और वाणी सहित; व्यवहारे-सामान्य व्यवहार में; भय-भय; वासि—मैं करता हूँ।

अनुवाद

जब रामानन्द राय ने महाप्रभु को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कहकर सम्बोधित किया, तो महाप्रभु ने यह कहकर आपत्ति की, "मैं परमेश्वर नहीं, अपितु एक सामान्य मनुष्य हूँ। इसलिए मुझे जनता के मत से तीन प्रकार से डरना चाहिए-अपने शरीर, मन तथा शब्दों से।

शुक्ल-वस्त्रे मसि-बिन्दु यैछे ना लुकाय ।

सन्यासीर अल्प छिद्र सर्व-लोके गाय ॥51॥

शुक्ल-वस्त्रे-सफेद वस्त्रों में; मसि-बिन्दु–स्याही का दाग; यैछे-जैसे; ना-नहीं; लुकाय-छुपता; सन्यासीर-संन्यासी का; अल्प-थोड़ा सा; छिद्र-दोष; सर्व-लोके-सामान्य जनता को; गाय-प्रकाशित हो जाता है।

अनुवाद

"जनता को जैसे ही किसी संन्यासी के आचरण में थोड़ा भी दोष दिख जाता है, तो वह उसे जंगल की आग की तरह विज्ञापित करती है। सफेद वस्त्र पर स्याही का काला धब्बा छिपाये नहीं छिपता। वह सदैव स्पष्ट दिखता रहता है।"

राय कहे,—कत पापीर करियाछ अव्याहति ।

ईश्वर-सेवक तोमार भक्त गजपति ॥52॥

राय कहे-रामानन्द राय ने उत्तर दिया; कत पापीर-असंख्य पापियों का; करियाछ-आपने किया है; अव्याहति–उद्धार; ईश्वर-सेवक-भगवान् का सेवक; तोमार-आपका; भक्त-भक्त; गजपति-राजा।

अनुवाद

रामानन्द ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, आपने अनेकों पापी पुरुषों का उद्धार किया है। यह उड़ीसा का राजा, प्रतापरुद्र वास्तव में भगवान् का सेवक और आपका भक्त है।"

प्रभु कहे,—पूर्ण यैछे दुग्धेर कलस ।

सुरा-बिन्दु-पाते केह ना करे परश ॥53॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने उत्तर दिया; पूर्ण–पूर्णतया भरा हुआ; यैछे-जैसे; दुग्धेर–दूध का; कलस-घड़ा; सुरा-बिन्दु-पाते–शराब की मात्र एक बूंद से; केह-कोई; ना करे-नहीं करता; परश-स्पर्श।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "भले ही किसी बड़े पात्र में कितना अधिक दूध क्यों न हो, किन्तु यदि इसमें शराब की एक भी बूंद गिर जाती है, तो वह अस्पृश्य हो जाता है।

यद्यपि प्रतापरुद्र–सर्व-गुणवान् ।

ताँहारे मलिन कैल एक 'राजा'-नाम ॥54॥

यद्यपि यद्यपि; प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र; सर्व-गुण-वान्-हर प्रकार से गुणवान; ताँहारे-उसको; मलिन कैल-अशुद्ध बना देता है; एक-एक; राजा-नाम-"राजा" का नाम ।

अनुवाद

"यद्यपि राजा समस्त सद्गुणों से सम्पन्न है, किन्तु उसके नाम के साथ 'राजा' पदवी लगी रहने से प्रत्येक वस्तु दूषित हो चुकी है।

तथापि तोमार यदि महाग्रह हय ।

तबे आनि' मिलाह तुमि ताँहार तनय ॥55॥

तथापि-फिर भी; तोमार-आपकी; यदि-यदि; महा-आग्रह–महान् उत्सुकता; हय-हो; तबे-तो; आनि'–लाकर; मिलाह-मिलाओ; तुमि-आप; ताँहार-उसके; तनय-पुत्र को।

अनुवाद

"किन्तु इतने पर भी यदि तुम अत्यधिक इच्छुक हो कि राजा मुझसे भेंट करे, तो सर्वप्रथम उसके पुत्र को लाकर मुझसे मिलाओ।

"आत्मा वै जायते पुत्रः"—एइ शास्त्र-वाणी ।

पुत्रेर मिलने येन मिलिबे आपनि ॥56॥

आत्मा वै जायते पुत्रः-पिता पुत्र जैसा होता है; एइ–यह; शास्त्र-वाणी-शास्त्र-वाणी; पुत्रेर मिलने-पुत्र से मिलने पर; येन--जैसे; मिलिबे–वह मिल जायेगा; आपनि-स्वयं।

अनुवाद

"शास्त्रों में इंगित किया गया है कि पुत्र पिता का प्रतिनिधित्व करता है, अतएव उसके पुत्र की भेंट मेरे साथ उसके पिता की भेंट के तुल्य होगी।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (10.78.36) में कहा गया है-आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् । वेदों का मत है कि मनुष्य अपने पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है। पुत्र पिता से अभिन्न होता है और प्रत्येक शास्त्र में इसे स्वीकार किया गया है। ईसाई धर्म में ऐसा विश्वास किया जाता है कि ईश्वर-पुत्र ईसा भी ईश्वर हैं। दोनों अभिन्न हैं।

तबे राय याइ' सब राजारे कहिला ।

प्रभुर आज्ञाय ताँर पुत्र लञा आइला ॥57॥

तबे-तत्पश्चात्; राय-रामानन्द राय ने; याइ'–जाकर; सब-सब कुछ; राजारे-राजा को; कहिला–सूचित किया; प्रभुर आज्ञाय महाप्रभु की आज्ञा से; ताँर पुत्र-उसका पुत्र; लञा आइला–वे अपने साथ ले आये।

अनुवाद

तब रामानन्द राय राजा के पास महाप्रभु के साथ हुई अपनी बातचीत से अवगत कराने गये और महाप्रभु की आज्ञा के अनुसार वे राजा के पुत्र को उनसे मिलाने के लिए अपने साथ लेते आये।

सुन्दर, राजार पुत्र—श्यामल-वरण ।

किशोर वयस, दीर्घ कमल-नयन ॥58॥

सुन्दर-सुन्दर; राजार पुत्र राजा का पुत्र; श्यामल-वरण-श्यामल वर्ण का; किशोर वयस–किशोर अवस्था; दीर्घ-बड़े; कमल-नयन–कमल जैसे नेत्र।

अनुवाद

राजकुमार नवयौवन अवस्था होने के कारण अत्यन्त सुन्दर था। उसका रंग साँवला था और कमल जैसी बड़ी-बड़ी आँखें थीं।

पीताम्बर, धरे अङ्गे रन-आभरण ।

श्री-कृष्ण-स्मरणे तेंह हैला 'उद्दीपन' ॥59॥

पीत-अम्बर-पीले वस्त्र; धरे-धारण किये हुए; अङ्गे–शरीर पर; रत्न-आभरण-रत्न-जड़ित आभूषण; श्री-कृष्ण-स्मरणे-श्रीकृष्ण का स्मरण करने की; तेंह-वह; हैला-था; उद्दीपन-प्रेरणा।

अनुवाद

राजकुमार पीला वस्त्र पहने था और रत्न के आभूषणों से उसका शरीर अलंकृत था। अतएव जो भी उसे देखता, उसे भगवान् कृष्ण का स्मरण हो आता।

ताँरे देखि, महाप्रभुर कृष्ण-स्मृति हैल ।

प्रेमावेशे ताँरे मिलि' कहते लागिल ॥ 60॥

ताँरे देखि–उसको देखकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कृष्ण-स्मृति-कृष्ण का स्मरण; हैल-हो आया; प्रेम-आवेशे–प्रेमावेश में; ताँरे–उसे; मिलि'–मिलकर; कहिते लागिल-कहने लगे।

अनुवाद

राजकुमार को देखते ही श्री चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण का स्मरण हो आया। अतः महाप्रभु उससे प्रेमावेश में मिलते हुए कहने लगे।

एइ–महा-भागवत, याँहार दर्शने ।

व्रजेन्द्र-नन्दन-स्मृति हय सर्व-जने ॥ 61॥

एइ–यहाँ है; महा-भागवत–प्रथम श्रेणी का भक्त; याँहार दर्शने-जिसके दर्शन से; व्रजेन्द्र-नन्दन-व्रजराज के पुत्र का; स्मृति-स्मरण; हय होता है; सर्व-जने–प्रत्येक व्यक्ति को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यहाँ है महान् भक्त। इसे देखकर किसी भी व्यक्ति को नन्द महाराज के पुत्र भगवान् कृष्ण की याद आ जायेगी।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में लिखा है कि भौतिकतावादी व्यक्ति भ्रमवश शरीर तथा मन को भौतिक सुख का साधन मान बैठता है। दूसरे शब्दों में, भौतिकतावादी देहात्मभाव को स्वीकार करता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने महाराज प्रतापरुद्र के पुत्र को भौतिकतावादी का पुत्र होने के कारण उसे भौतिकतावादी के रूप में नहीं लिया। न ही उन्होंने अपने आपको भोक्ता माना। मायावादी दार्शनिक सबसे बड़ी भूल यही करते हैं कि वे सच्चिदानन्द-विग्रह अर्थात् भगवान् के दिव्य रूप को भौतिक शरीर के समान मान बैठते हैं। किन्तु दिव्यता में कोई भौतिक कल्मष नहीं होता, न ही भौतिक पदार्थ में आध्यात्मिकता की कल्पना करने की सम्भावना रहती है। पदार्थ को आत्मा नहीं माना जा सकता। जैसाकि भौम इज्य-धी: (भागवत 10.84.13) शब्दों से सूचित होता है, भौतिकताग्रस्त मायावादी लोग पदार्थ में ईश्वर के रूप की कल्पना करते हैं, यद्यपि उनकी कल्पना के अनुसार ईश्वर अनन्त तथा रूपविहीन होते हैं। यह केवल मानसिक तर्क है। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, किन्तु वे अपने आपको गोपी की स्थिति में प्रस्तुत करते थे। उन्होंने राजा के पुत्र को साक्षात् महाराज नन्द का पुत्र, व्रजेन्द्रनन्दन हरि स्वीकार कर लिया। यह वैदिक संस्कृति के आदेश के अनुसार आदर्श दृष्टिकोण है, जिसकी पुष्टि श्रीमद्भगवद्गीता (पण्डिताः समदर्शिनः) में हुई है। वैष्णव-दर्शन के अनुसार परम सत्य को इस तरह स्वीकार करने की व्याख्या निम्नलिखित शब्दों में मुण्डक उपनिषद् (3.2.3) तथा कठ उपनिषद् (1.2.23) में हुई है :

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो

न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमेवैषा वृणुते तेन लभ्य-

स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

"भगवान् की प्राप्ति न तो पटु व्याख्याओं से, न व्यापक बुद्धि से, न ही अत्यधिक सुनने से हो सकती है। वे उसी के द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं, जिसे वे स्वयं चुनते हैं। वे ऐसे व्यक्ति को अपना स्वरूप प्रदर्शित करते हैं।"

जीव ऐसी आध्यात्मिक दृष्टि के अभाव के कारण भौतिक अस्तित्व में फँसा हुआ है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कल्याण-कल्पतरु में एक गीत लिखा है, संसारे आसिया प्रकृति भजिया 'पुरुष' अभिमाने मरि।जब जीव इस जगत् में आता है, तो वह अपने आपको भोक्ता समझता है। इस तरह वह अधिकाधिक फँसता जाता है।

कृतार्थ हइलाङआमि इँहार दरशने ।

एत बलि' पुनः तारे कैल आलिङ्गने ॥ 62॥

कृत-अर्थ हइलाङ–अत्यन्त कृतार्थ हुआ हूँ; आमि-मैं; इँहार-इस बालक के; दरशने-दर्शन से; एत बलि'-यह कहकर; पुनः–दोबारा; तारे-उसे; कैल-किया; आलिङ्गने-आलिंगन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "मैं इस लड़के को देखकर ही अत्यन्त कृतार्थ हो गया हूँ।" यह कहकर महाप्रभु ने राजकुमार को फिर से आलिंगन में ले लिया।

प्रभु-स्पर्शे राज-पुत्रेर हैल प्रेमावेश ।

स्वेद, कम्प, अश्रु, स्तम्भ, पुलक विशेष ॥ 63॥

प्रभु-स्पर्शे–महाप्रभु के स्पर्श से; राज-पुत्रेर-राजा के पुत्र का; हैल–हो गया; प्रेम-आवेश-प्रेमावेश; स्वेद-स्वेद; पसीना; कम्प–कम्पन; अश्रु-अश्रु; स्तम्भ-स्तम्भ; पुलक-रोमांच; विशेष—विशेष प्रकार से।

अनुवाद

ज्योंही श्री चैतन्य महाप्रभु ने राजकुमार का स्पर्श किया, त्योंही उसके शरीर में प्रेमाबेश के लक्षण स्वतः उत्पन्न हो गये। ये लक्षण थे-पसीना, कँपकँपी, आँसू, स्तम्भ तथा हर्ष।

'कृष्ण' 'कृष्ण' कहे, नाचे, करये रोदन ।

ताँर भाग्य देखि' श्लाघा करे भक्त-गण ॥ 64॥

कृष्ण कृष्ण-हे कृष्ण; हे कृष्ण; कहे–कहने लगा; नाचे-नाचने लगा; करये-करने लगा; रोदन-रोना; ताँर–उसका; भाग्य-भाग्य; देखि'–देखकर; श्लाघा–प्रशंसा; करे-करने लगे; भक्त-गण-सभी भक्त।

अनुवाद

वह राजकुमार रोने और नाचने लगा तथा "कृष्ण! कृष्ण" का उच्चारण करने लगा। उसके शारीरिक लक्षण तथा उसके कीर्तन एवं नृत्य को देखकर सारे भक्तों ने उसके सौभाग्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

तबे महाप्रभु ताँरे धैर्य कराइल ।

नित्य आसि' आमाय मिलिह—एइ आज्ञा दिल ॥65॥

तबे-उस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे-बालक को; धैर्य-शान्त; कराइल-कराया; नित्य-नित्य; प्रतिदिन; आसि'-आकर; आमाय-मुझे; मिलिह-मिले; एइ आज्ञा–यह आज्ञा; दिल–दी।

अनुवाद

उस समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस नवयुवक को शान्त कराया और उसे आदेश दिया कि वह नित्य ही उनसे मिलने वहाँ आया करे।

विदाय हञा राय आइल राज-पुत्रे लञा ।

राजा सुख पाइल पुत्रेर चेष्टा देखिया ॥66॥

विदाय हञा–विदा लेकर; राय-रामानन्द राय; आइल-लौट आये; राज-पुत्रे लञा-राजा के पुत्र को लेकर; राजा-राजा ने; सुख पाइल-अत्यन्त आनन्द अनुभव किया; पुत्रे-अपने पुत्र की; चेष्टा-गतिविधि; देखिया-देखकर।

अनुवाद

तब रामानन्द राय तथा राजकुमार ने श्री चैतन्य महाप्रभु से विदा ली और रामानन्द राय राजकुमार को राजमहल वापस ले आये। जब राजा ने अपने पुत्र के कार्यकलापों के बारे में सुना, तो वे अत्यन्त सुखी हुए।

पुत्रे आलिङ्गन करि' प्रेमाविष्ट हैला ।

साक्षात्परश येन महाप्रभुर पाइला ॥ 67॥

पुत्रे-अपने पुत्र को; आलिङ्गन-गले लगाकर; करि'–करके; प्रेम-आविष्ट हैला-प्रेमाविष्ट हो गये; साक्षात् साक्षात्; परश-स्पर्श; येन-जैसे; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; पाइला–उन्होंने पाया।

अनुवाद

अपने पुत्र का आलिंगन करने से ही राजा प्रेमाविष्ट हो गये, मानो उन्हें साक्षात् चैतन्य महाप्रभु का स्पर्श मिला हो।

सेइ हैते भाग्यवान्नाजार नन्दन ।

प्रभु-भक्त-गण-मध्ये हैला एक-जन ॥ 68 ॥

सेइ हैते-उस दिन से लेकर; भाग्यवान्–महा भाग्यवान्; राजार नन्दन-राजा का पुत्र; प्रभु-भक्त-गण-मध्ये–महाप्रभु के अन्तरंग भक्तों के मध्य; हैला-हो गया; एक-जन-एक व्यक्ति।

अनुवाद

तब से भाग्यशाली राजकुमार महाप्रभु के सर्वाधिक अन्तरंग भक्तों में से एक बन गया।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती लिखते हैं-यत्कारुण्य कटाक्ष वैभव-वताम् ।यदि श्री चैतन्य महाप्रभु क्षण-भर के लिए भी किसी पर अपनी दृष्टि कर दें, तो वह व्यक्ति तुरन्त ही भगवान् का सर्वाधिक विश्वस्त भक्त बन जाता है। वह राजकुमार महाप्रभु को पहली बार मिलने आया था, किन्तु महाप्रभु की कृपा से वह तुरन्त सर्वोच्च भक्त बन गया। यह सैद्धान्तिक नहीं, अपितु व्यवहार की बात थी। हम यहाँ नग्न-मातृका-न्याय सूत्र को लागू नहीं कर सकते। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी की माता अपने बचपन में नग्न रहती थी, तो कई बच्चों की माँ बन जाने पर भी उसे उसी तरह नग्न रहना चाहिए। यदि किसी को महाप्रभु की कृपा का आशीर्वाद मिलता है, तो वह तुरन्त सर्वोच्च भगवद्भक्त बन जाता है। नग्न-मातृका-न्याय का तर्क कहता है। कि यदि कोई व्यक्ति अमुक-अमुक तिथि को किसी उच्च पद पर नहीं पहुँच पाता, तो वह रात-भर में महान् भक्त नहीं बन सकता। इस विशिष्ट दृष्टान्त से वह साक्ष्य प्राप्त होता है, जिससे इस सिद्धान्त का विरोध हो जाता है। पिछले दिन वह लड़का सामान्य राजकुमार था, किन्तु अगले दिन

उसकी गिनती भगवान् के सर्वोच्च भक्तों में होने लगी। यह सब महाप्रभु की अहैतुकी कृपा से सम्भव हो सका। भगवान् सर्वशक्तिमान हैं और वे अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकते हैं।

एइ-मत महाप्रभु भक्त-गण-सङ्गे ।

निरन्तर क्रीड़ा करे सङ्कीर्तन-रङ्गे ॥69॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; भक्त-गण-सङ्गे-अपने शुद्ध भक्तों के समाज में; निरन्तर–निरन्तर; क्रीड़ा करे–लीलाएँ करते; सङ्कीर्तन-रङ्गे-अपने संकीर्तन आन्दोलन के दौरान।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी लीलाएँ करते हुए और संकीर्तन आन्दोलन का विस्तार करते हुए अपने शुद्ध भक्तों के समाज में कार्य करते थे।

आचार्यादि भक्त करे प्रभुरे निमन्त्रण ।

ताहाँ ताहाँ भिक्षा करे लञा भक्त-गण ॥ 70 ॥

आचार्य-आदि-अद्वैत आचार्य आदि; भक्त-भक्तगण; करे–करने लगे; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण-निमंत्रण; ताहाँ ताहाँ–यहाँ वहाँ; भिक्षा करे–भोजन करते; लञा–लेकर; भक्त-गण-सभी भक्त।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य जैसे कुछ प्रमुख भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने अपने घरों में भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया करते थे। महाप्रभु ऐसे निमन्त्रणों को स्वीकार कर लेते थे और अपने भक्तों समेत वहाँ जाते थे।

एइ-मत नाना रङ्गे दिन कत गेल ।

जगन्नाथेर रथ-यात्रा निकट हइल ॥71॥

एइ-मत-इस प्रकार; नाना रङ्गे–नाना प्रकार के आनन्द में; दिन कत-कुछ दिन; गेल–बीत गये; जगन्नाथेर-श्री जगन्नाथ की; रथ-यात्रा–रथयात्रा; निकट हइल-निकट आ गई।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु ने कुछ दिन बड़े हर्ष-उल्लास के साथ बिताये। तब जगन्नाथ रथयात्रा महोत्सव निकट आ पहुँचा।

प्रथमेइ काशी-मिश्रे प्रभु बोलाइल ।

पड़िछा-पात्र, सार्वभौमे बोलाञा आनिल ॥72॥

प्रथमेइ-आरम्भ में; काशी-मिश्रे-काशी मिश्र को प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; बोलाइल–बुलावा भेजा; पड़िछा-पात्र-मन्दिर के अध्यक्ष को सार्वभौमे-सार्वभौम भट्टाचार्य; बोलाञा–बुलाकर; आनिल-लाये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सर्वप्रथम काशी मिश्र को बुलावा भेजा, तब मन्दिर की देख-रेख करने वाले को और उसके बाद सार्वभौम को बुलावा भेजा।

तिन-जन-पाशे प्रभु हासिया कहिल।

गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जन-सेवा मागि' निल ॥73॥

तिन-जन-पाशे-तीन व्यक्तियों की उपस्थिति में प्रभु–महाप्रभु ने; हासिया-मुस्कुराकर; कहिल–कहा; गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जन-गुण्डीचा मन्दिर को धोने की; सेवा-सेवा; मागि' निल-माँगी।

अनुवाद

जब ये तीनों आ गये, तो महाप्रभु ने उनसे गुण्डिचा मन्दिर की धुलाई करने की अनुमति माँगी।

तात्पर्य

यह गुण्डिचा मन्दिर जगन्नाथ मन्दिर से दो मील उत्तर पूर्व दिशा में स्थित है। रथयात्रा उत्सव के समय, भगवान् जगन्नाथ अपने मूल मन्दिर से गुण्डिचा मन्दिर को जाते हैं और वहाँ एक सप्ताह विश्राम करते हैं। एक सप्ताह के बाद वे अपने मूल मन्दिर में वापस आते हैं। ऐसी जनश्रुति है कि जगन्नाथ मन्दिर की स्थापना करने वाले राजा इन्द्रद्युम्न की पत्नी का नाम गुण्डिचा था। प्रामाणिक शास्त्र में भी गुण्डिचा मन्दिर के नाम का उल्लेख मिलता है। अनुमान है कि

गुण्डिचा मन्दिर का क्षेत्रफल 288 क्यूबिट (हाथ) x 215 क्यूबिट है। (एक क्यूबिट लगभग डेढ़ फूट के बराबर माना जाता है)। मुख्य मन्दिर भीतर से 36 क्यूबिट x 30 क्यूबिट है और कीर्तन-भवन 32 क्यूबिट x 30 क्यूबिट है।

पड़िछा कहे,—आमि-सब सेवक तोमार।

ये तोमार इच्छा सेइ कर्तव्य आमार ॥74॥

पड़िछा कहे-अध्यक्ष ने कहा; आमि-सब-हम सब हैं; सेवक तोमार-आपके सेवक; ये तोमार-आपकी जो कुछ; इच्छा-इच्छा; सेइ-वही; कर्तव्य आमार-हमारा कर्तव्य।

अनुवाद

गुण्डिचा मन्दिर की धुलाई करने की महाप्रभु की याचना सुनकर पड़िछा अर्थात् मन्दिर के निरीक्षक ने कहा, "हे महोदय, हम सभी आपके सेवक हैं। आप जो भी इच्छा करेंगे, उसे पूरा करना हमारा कर्तव्य है।

विशेषे राजार आज्ञा हञाछे आमारे।

प्रभुर आज्ञा येइ, सेइ शीघ्र करिबारे ॥75॥

विशेषे-विशेषकर; राजार-राजा की; आज्ञा-आज्ञा; हञाछे-है; आमारे-मेरे लिए; प्रभुर-आपकी; आज्ञा-आज्ञा; येइ-जो; सेइ-वह; शीघ्र करिबारे-शीघ्र पूरी करो।

अनुवाद

"राजा ने मुझे विशेष आदेश दिया है कि जो भी आप आज्ञा दें, उसे मैं तुरन्त पूरा करूँ।

तोमार योग्य सेवा नहे मन्दिर-मार्जन।

एइ एक लीला कर, ये तोमार मन ॥76॥

तोमार-आपके; योग्य-योग्य; सेवा–सेवा; नहे-नहीं; मन्दिर-मार्जन–मन्दिर को धोना; एइ–यह; एक-एक; लीला-लीला; कर-आप करें; ये तोमार मन-जैसे आप चाहें।

अनुवाद

"हे प्रभु, मन्दिर की धुलाई करने की सेवा आपके योग्य नहीं है। फिर भी, यदि आप चाहते हैं, तो इसे हम आपकी लीला के रूप में स्वीकार करते हैं।

किन्तु घट, सम्मार्जनी बहुत चाहिये ।

आज्ञा देह—आजि सब इहाँ आनि दिये ॥77॥

किन्तु किन्तु; घट-घड़े; सम्मार्जनी-झाड़; बहुत-बहुत; चाहिये-चाहिए; आज्ञा देह-आज्ञा दो; आजि-आज ही शीघ्र; सब-सब; इहाँ–यहाँ; आनि दिये-मैं लाकर दूँगा।

अनुवाद

"मन्दिर की धुलाई करने के लिए अनेक घड़ों तथा झाड़ओं की आवश्यकता होगी, अतएव आप मुझे आदेश दें। मैं ये सारी चीजें तुरन्त लाये देता हूँ।"

नूतन एक-शत घट, शत सम्मार्जनी ।

पड़िछा आनिया दिल प्रभुर इच्छा जानि' ॥78॥

नूतन-नये; एक-शत-एक सौ; घट-घड़े; शत-एक सौ; सम्मार्जनी-झाड़ू; पड़िछा-अध्यक्ष ने; आनिया-लाकर; दिल-दिये; प्रभुर–महाप्रभु की; इच्छा-इच्छा; जानि'–जानकर।

अनुवाद

ज्योंही पड़िछा (निरीक्षक) को महाप्रभु की इच्छा का पता चल गया, उसने तुरन्त एक सौ नये घड़े तथा मन्दिर बुहारने के लिए एक सौ झाड़ लाकर दे दिये।

आर दिने प्रभाते लञा निज-गण ।

श्री-हस्ते सबार अङ्गे लेपिला चन्दन ॥79॥

आर दिने-अगले दिन; प्रभाते-प्रात:काल; लञालेकर; निज-गण-अपने निजी भक्त; श्री-हस्ते-अपने हाथ से; सबार अङ्गे-प्रत्येक के शरीर पर; लेपिला चन्दन-चन्दन का लेप किया।

अनुवाद

अगले दिन भोर होते ही महाप्रभु ने अपने संगियों को अपने साथ ले लिया और अपने हाथ से उन सबके शरीरों पर चन्दन-लेप लगाया।

श्री-हस्ते दिल सबारे एक एक मार्जनी ।

सब-गण लञा प्रभु चलिला आपनि ॥80॥

श्री-हस्ते-अपने हाथ से; दिल-दिया; सबारे–उनमें से प्रत्येक को; एक एक-एक एक; मार्जनी-झाड़; सब-गण-सभी साथी; लञा-लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः चलिला–चले; आपनि–स्वयं ।

अनुवाद

फिर उन्होंने अपने हाथ से हर भक्त को एक-एक झाड़ दी और उन सबको अपने साथ लेकर महाप्रभु गुण्डिचा गये।

गुण्डिचा-मन्दिरे गेला करिते मार्जन ।

प्रथमे मार्जनी लञा करिल शोधन ॥ 81॥

गुण्डिचा-मन्दिरे-गुण्डीचा मन्दिर को; गेला–गये; करिते-करने; मार्जन-धोने के लिए; प्रथमे-पहले; मार्जनी-झाड़; लञा–लेकर; करिल–किया; शोधन–साफ।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु तथा उनके संगी गुण्डिचा मन्दिर की सफाई करने गये। सर्वप्रथम उन्होंने झाड़ओं से मन्दिर को बुहारा।

भितर मन्दिर उपर,—सकल माजिल ।

सिंहासन माजि' पुनः स्थापन करिल ॥82॥

भितर मन्दिर-मन्दिर के भीतर; उपर-छत; सकल माजिल–सब कुछ साफ किया; सिंहासन-भगवान् का सिंहासन; माजि'–साफ करके; पुनः पुनः; स्थापन-स्थापना; करिल की।

अनुवाद

महाप्रभु ने मन्दिर के भीतर की हर चीज को, यहाँ तक कि छत को भी बहुत अच्छी तरह से साफ किया। फिर उन्होंने सिंहासन उठाया, उसे साफ किया और उसे पुनः उसी स्थान पर रख दिया।

छोट-बड़-मन्दिर कैल मार्जन-शोधन ।

पाछे तैछे शोधिल श्री-जगमोहन ॥83॥

छोट-बड़-मन्दिर–छोटे बड़े सब मन्दिर, कैल–किये; मार्जन-शोधन–अच्छी प्रकार साफ; पाछे-तत्पश्चात्; तैछे-उसी प्रकार; शोधिल-साफ किया; श्री-जगमोहन-मूल मन्दिर तथा कीर्तन हाल के बीच के स्थान को।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु तथा उनके संगियों ने मन्दिर की बड़ी तथा छोटी सारी इमारतें बुहारीं और साफ कीं। अन्त में उन्होंने मन्दिर तथा कीर्तन के सभास्थल के बीच के भाग को साफ किया।

चारि-दिके शत भक्त सम्मार्जनी-करे।

आपनि शोधेन प्रभु, शिखा'न सबारे ॥84॥

चारि-दिके चारों ओर; शत-सैंकड़ों; भक्त-भक्त; सम्मार्जनी-करे-सफाई करने लगे; आपनि-स्वयं; शोधेन-सफाई करते थे; प्रभु–महाप्रभु; शिखा'न सबारे-उन सबको सिखाते हुए।

अनुवाद

सैंकड़ों भक्त मन्दिर की चारों ओर सफाई करने में लगे थे और श्री चैतन्य महाप्रभु दूसरों को शिक्षा देने के लिए स्वयं भी कार्य कर रहे थे।

प्रेमोल्लासे शोधेन, लयेन कृष्ण-नाम ।

भक्त-गण 'कृष्ण' कहे, करे निज-काम ॥85॥

प्रेम-उल्लासे-बड़े आनन्द में; शोधेन-साफ किया; लयेन-करते थे; कृष्ण-हरे कृष्ण; नाम-नाम; भक्त-गण-भक्तगण; कृष्ण कहे-कृष्ण कहते थे; करे-करते थे; निज-काम-अपना अपना कार्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यन्त उल्लसित होकर सारे समय कृष्ण-नाम का उच्चारण करते हुए मन्दिर को बुहारा और धोया। इसी तरह सारे भक्त भी कीर्तन करते जाते थे और अपना-अपना कार्य कर रहे थे।

धूलि-धूसर तनु देखिते शोभन ।

काहाँ काहाँ अश्रु-जले करे सम्मार्जन ॥86॥

धूलि–धूल; धूसर-मिट्टी; तनु-तन; देखिते-देखने में; शोभन–अति सुन्दर; काहाँ काहाँ-कहीं कहीं; अश्रु-जले-अश्रुओं से; करे-करते थे; सम्मार्जन-धोना।

अनुवाद

महाप्रभु का सारा सुन्दर शरीर धूल से धूसरित था। इससे वह और भी दिव्य रूप से सुन्दर लगने लगा था। मन्दिर की सफाई करते हुए कभी-कभी महाप्रभु के आँसू आ जाते और कहीं-कहीं तो उन्होंने उन्हीं आँसुओं से ही धुलाई की।

भोग-मन्दिर शोधन करि' शोधिल प्राङ्गण ।

सकल आवास क्रमे करिल शोधन ॥ 87॥

भोग-मन्दिर-मन्दिर में भोजन रखने का स्थान; शोधन करि'–साफ करके; शोधिल प्राङ्गण-आंगन साफ किया; सकल-सभी; आवास-निवास-स्थान; क्रमे-एक के बाद दूसरा; करिल शोधन-साफ किया।

अनुवाद

इसके बाद जहाँ अर्चाविग्रह का भोजन रखा जाता था (भोग-मन्दिर), उस स्थान की सफाई की गई। तत्पश्चात् आँगन साफ किया गया और तब एक-एक करके सारे रिहायशी मकान साफ किये गये।

तृण, धूलि, झिङ्कर, सब एकत्र करिया ।

बहिर्वासे लञा फेलाय बाहिर करिया ॥88॥

तृण-तिनके; धूलि–धूल; झिङ्कर–बालु-कण; सब-सब; एकत्र-एक स्थान पर इकट्ठा; करिया-करके; बहिर्वासे लञा-अपने निजी बाहरी वस्त्र पर लेकर; फेलाय-फेंक दिया; बाहिर करिया-बाहर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तिनकों, धूल तथा बालू के कणों को एक स्थान पर एकत्र किया और फिर अपने वस्त्र में बाँधकर उन्हें बाहर ले जाकर फेंक दिया।

एइ-मत भक्त-गण करि' निज-वासे ।

तृण, धूलि बाहिरे फेलाय परम हरिषे ॥89॥

एइ-मत-इसी प्रकार; भक्त-गण-सारे भक्त; करि'-करके; निज-वासे-अपने अपने वस्त्रों में; तृण-तिनके; धूलि–धूल; बाहिरे फेलाय-बाहर फेंकने लगे; परम हरिषे-परम आनन्द में आकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के उदाहरण का अनुसरण करते हुए सारे भक्त भी उल्लासपूर्वक तिनके तथा धूल को अपने अपने वस्त्रों में बाँध-बाँधकर मन्दिर के बाहर ले जाकर फेंकने लगे।

प्रभु कहे,—के कत करियाछ सम्मार्जन ।

तृण, धूलि देखिलेइ जानिब परिश्रम ॥90॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; के-तुम में से प्रत्येक व्यक्ति; कत-कितनी; करियाछ-की है; सम्मार्जन-सफाई; तृण-तिनके; धूल-धूलि; देखिलेइ-जब मैं देखेंगा; जानिब-मैं समझ सकता हूँ; परिश्रम-तुमने कितना परिश्रम किया है।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने भक्तों से कहा, "मैं केवल यह देखकर कि कितने तिनके तथा धूल बाहर ले जाकर ढेर लगाया गया है, बतला सकता हूँ कि आप लोगों ने कितना परिश्रम किया है और कितनी अच्छी तरह से मन्दिर की सफाई की है।"

सबार इयाँटान बोझा एकत्र करिल ।

सबा हैते प्रभुर बोझा अधिक हइल ॥91॥

सबार-सब की; इयाँटान-इकट्ठी की हुई धूलि; बोझा-वजन; एकत्र-एक स्थान पर इकट्ठा करके किया हुआ; करिल-किया; सबा हैते–उन सबकी अपेक्षा; प्रभुर बोझा-श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा एकत्रित धूलि का ढेर; अधिक हइल-अधिकतर था।

अनुवाद

यद्यपि सारे भक्तों ने धूल का एक ढेर लगाया था, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु का ढेर उस से भी बड़ा था।

एइ-मत अभ्यन्तर करिल मार्जन ।

पुनः सबाकारे दिल करिया वण्टन ॥92॥

एइ-मत-इस प्रकार; अभ्यन्तर–अन्दर; करिल-की; मार्जन-सफाई; पुनः–पुनः; सबाकारे—उन सबको; दिल-दिया; करिया वण्टन-क्षेत्र बाँट दिया।

अनुवाद

जब मन्दिर की भीतरी सफाई पूरी हो गई, तो महाप्रभु ने फिर से भक्तों द्वारा साफ किये जाने के लिए अलग-अलग खण्ड निर्धारित किये।

सूक्ष्म धूलि, तृण, काङ्कर, सब करह दूर ।

भाल-मते शोधन करह प्रभुर अन्तःपुर ॥93॥

सूक्ष्म धूलि-सूक्ष्म धूलि (बारीक धूलि); तृण-तृण; काङ्कर–बालु के कण; सब-सब; करह—करो; दूर-दूर; भाल-मते-अच्छी तरह; शोधन–साफ करके; करह-करो; प्रभुर-भगवान् के; अन्तःपुर-भीतर।

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु ने सबको आदेश दिया कि वे सारी बारीक धूल, तिनके तथा बालू के कणों को बाहर फेंककर अच्छी तरह से मन्दिर के भीतरी भाग की सफाई करें।

सब वैष्णव लञा यबे दुइ-बार शोधिल ।

देखि' महाप्रभुर मने सन्तोष हइल ॥ 94॥

सब-सब; वैष्णव-भक्त; लञा–लेकर; यबे जब; दुइ-बार-दोबारा; शोधिल-सफाई की; देखि'–देखकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; मने-मन में; सन्तोष-सन्तोष; हइल-हुआ।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा सारे वैष्णवों ने मन्दिर की दुबारा सफाई कर ली, तो श्री चैतन्य महाप्रभु सफाई देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

आर शत जन शत घटे जल भरि' ।

प्रथमेइ लञा आछे काल अपेक्षा करि' ॥95॥

आर-अन्य; शत जन-लगभग एक सौ व्यक्ति; शत घटे-एक सौ घड़ों में; जल-जल; भरि'- भरकर; प्रथमेइ-पहले ही; लञा-लेकर; आछे-थे; काल-समय की; अपेक्षा करि'–प्रतीक्षा कर रहे थे।

अनुवाद

जब मन्दिर बुहारा जा रहा था, तो लगभग एक सौ व्यक्ति जल से भरे घड़े लिए तैयार खड़े थे और उनमें से पानी फेंकने के महाप्रभु के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे।

'जल आन' बलि' यबे महाप्रभु कहिल ।

तबे शत घट आनि' प्रभु-आगे दिल ॥ 96॥

जल आन-जल लाओ; बलि'–कहकर; यबे -जब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कहिल-आज्ञा दी; तबे-तब; शत घट–एक सौ घड़े; आनि'–लाकर; प्रभु-आगे-महाप्रभु के समक्ष; दिल-रख दिये।

अनुवाद

ज्योंही श्री चैतन्य महाप्रभु ने पानी लाने के लिए कहा, त्योंही सारे लोग तुरन्त जल से भरे उन एक सौ घड़ों को ले आये और लाकर महाप्रभु के सामने रख दिये।

प्रथमे करिल प्रभु मन्दिर प्रक्षालन ।

ऊर्ध्व-अधो भित्ति, गृह-मध्य, सिंहासन ॥ 97॥

प्रथमे-पहले; करिल-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; मन्दिर प्रक्षालन–मन्दिर को धोया; ऊर्ध्व-छत पर; अधः-फर्श पर; भित्ति-दीवारें; गृह-मध्य-घर के अन्दर; सिंहासन-भगवान् के सिंहासन को।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबसे पहिले मुख्य मन्दिर धोया और तब छत, दीवारें, फर्श, सिंहासन तथा कमरे के भीतर की अन्य वस्तुओं को भलीभाँति धोया।

खापरा भरिया जल ऊर्ध्वे चालाइल ।

से जले ऊर्ध्व शोधि भित्ति प्रक्षालिल ॥98॥

खापरा-जग; भरिया-भरकर; जल-जल; ऊर्ध्व-ऊपर छत पर; चालाइल-फेंकने लगे; सेइ जले—उस जल से; ऊर्ध्वे शोधि-छत धोने के बाद; भित्ति-दीवारें और फर्श; प्रक्षालिल–धुल गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं तथा उनके सारे भक्त छत पर जल फेंकने लगे। जब यह पानी नीचे की ओर गिरा, तो उससे दीवारें तथा फर्श धुल गये।

श्री-हस्ते करेन सिंहासनेर मार्जन ।

प्रभु आगे जल आनि' देय भक्त-गण ॥ 99॥

श्री-हस्ते-अपने हाथ से; करेन-करने लगे; सिंहासनेर मार्जन-भगवान् के सिंहासन की धुलाई; प्रभु आगे–महाप्रभु के समक्ष; जल-जल; आनि'–लाकर; देय–दिया; भक्त-गण–सारे भक्तों ने।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने हाथों से भगवान् जगन्नाथ का सिंहासन धोने लगे और सारे भक्त जल लाकर महाप्रभु को देने लगे।

भक्त-गण करे गृह-मध्य प्रक्षालन ।

निज निज हस्ते करे मन्दिर मार्जन ॥100॥

भक्त-गण-भक्त-गण; करे-करने लगे; गृह-मध्य-कमरे के भीतर; प्रक्षालन-धुलाई; निज निज-अपने अपने; हस्ते हाथ से; करे–करने लगे; मन्दिर मार्जन–मन्दिर की धुलाई।

अनुवाद

सारे भक्त मन्दिर के भीतर धुलाई करने लगे। हर एक के हाथ में एक एक झाड़ था, जिससे उन्होंने भगवान् के मन्दिर को स्वच्छ किया।

केह जल आनि' देय महाप्रभुर करे।

केह जल देय ताँर चरण-उपरे ॥ 101॥

केह-कोई; जल आनि'-जल लाकर; देय-देता था; महाप्रभुर करे-श्री चैतन्य महाप्रभु के हाथ में; केह-कोई; जल देय-जल डालता था; ताँर–उनके; चरण-उपरे-चरणकमलों पर।

अनुवाद

उनमें से कोई महाप्रभु के हाथों में पानी लाकर देता और कोई उनके चरणकमलों में पानी गिराता।

केह लुकाञा करे सेइ जल पान।

केह मागि' लय, केह अन्ये करे दान ॥ 102॥

केह-किसी ने; लुकाञा-छुपकर; करे-किया; सेइ जल-उस जल का; पान-पान; केह-किसी ने; मागि' लय-माँगकर लिया; केह-किसी और ने; अन्ये-किसी दूसरे को; करे–दिया; दान-दान में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों पर गिरने वाले जल को कोई चोरी-चोरी पी रहा था, कोई उस जल को माँग रहा था और कोई उस जल का दान कर रहा था।

घर धुइ' प्रणालिकाय जल छाड़ि' दिल।

सेइ जले प्राङ्गण सब भरिया रहिल ॥ 103 ॥

घर धुइ'–कमरा धोकर; प्रणालिकाय-नाली में; जल-जल; छाड़ि' दिल-जाने दिया; सेइ जले—उसी जल से; प्राङ्गण-आंगन; सब-सब; भरिया–भर गया; रहिल-भरा रहा।

अनुवाद

जब कमरा धुल गया, तो पानी को एक नाली से बाहर निकाल दिया गया और यही पानी बहकर बाहर के प्रांगण में भर गया।

निज-वस्त्रे कैल प्रभु गृह सम्मार्जन ।

महाप्रभु निज-वस्त्रे माजिल सिंहासन ॥ 104॥

निज-वस्त्रे-अपने कपड़े से; कैल–किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; गृह–कमरा; सम्मार्जन-पोंछा; महाप्रभु-चैतन्य महाप्रभु ने; निज-वस्त्रे-अपने कपड़े से; माजिल-चमकाया; सिंहासन-सिंहासन।

अनुवाद

महाप्रभु ने अपने वस्त्रों से कमरों को पोंछा और उन्हीं वस्त्रों से सिंहासन को चमकाया भी।

शत घट जले हैल मन्दिर मार्जन ।

मन्दिर शोधिया कैल–येन निज मन ॥ 105॥

शत-एक सौ; घट-घड़े; जले–पानी से; हैल–हो गया; मन्दिर-मन्दिर, मार्जन-साफ; मन्दिर–मन्दिर; शोधिया-साफ; कैल–किया; येन-जैसे; निज मन-अपना मन हो।

अनुवाद

इस तरह पानी के सौ घड़ों से सारे कमरे धो दिये गये। कमरों की सफाई के बाद भक्तों के मन कमरों की ही तरह निर्मल हो गये।

निर्मल, शीतल, स्निग्ध करिल मन्दिरे ।

आपन-हृदय येन धरिल बाहिरे ॥ 106 ॥

निर्मल-निर्मल; शीतल-शीतल; स्निग्ध-प्रसन्न करने वाला; करिल-किया; मन्दिरे–मन्दिर; आपन-हृदय-अपना हृदय; येन-जैसे; धरिल-रखा हो; बाहिरे-बाहर।

अनुवाद

स्वच्छ हो जाने के बाद मन्दिर शुद्ध, शीतल तथा मनभावन हो गया, मानो स्वयं महाप्रभु का शुद्ध मन प्रकट हुआ हो।

शत शत जन जल भरे सरोवरे।

घाटे स्थान नाहि, केह कूपे जल भरे ॥107॥

शत शत जन-सैंकड़ों व्यक्ति; जल भरे-जल भरने लगे; सरोवरे-सरोवर के; घाटे-घाट पर; स्थान-स्थान; नाहिं—नहीं था; केह-किसी ने; कूपे-कुएँ से; जल भरे-जल खींचा।

अनुवाद

चूँकि सैंकड़ों व्यक्ति सरोवर से जल लाने में लगे हुए थे, अतएव किनारे पर खड़े होने तक के लिए जगह नहीं थी। इसलिए कुछ लोग कुएँ से पानी खींचने लगे।

पूर्ण कुम्भ लञा आइसे शत भक्त-गण।

शून्य घट लञा याय आर शत जन ॥ 108॥

पूर्ण कुम्भ-जल से भरा घड़ा; लञा–लेकर; आइसे–आये; शत भक्त-गण-सैंकड़ों भक्त; शून्य घट–खाली घड़ा; लञा-वापस लेकर; याय-गये; आर-अन्य; शत जन-सैंकड़ों भक्त।

अनुवाद

सैंकड़ों भक्त जल से भरे घड़े लाते और सैंकड़ों भक्त खाली घड़ों को फिर से भरने के लिए ले जाते।

नित्यानन्द, अद्वैत, स्वरूप, भारती, पुरी।

इँहा विनु आर सब आने जल भरि' ॥109॥

नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; अद्वैत-अद्वैत आचार्य; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; भारती-ब्रह्मानन्द भारती; पुरी-परमानन्द पुरी; इँह-इन; विनु-के सिवाय; आर-अन्य; सब-सब; आने-लाए; जल-जल; भरि'-भरकर।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत आचार्य, स्वरूप दामोदर, ब्रह्मानन्द भारती तथा परमानन्द पुरी को छोड़कर सारे लोग घड़ों में पानी भरकर लाने में व्यस्त थे।

घटे घटे ठेकि' कत घट भाङ्गि' गेल ।

शत शत घट लोक ताहाँ लञा आइल ॥ 110॥

घटे घटे ठेकि'–जब घड़े एक दूसरे से टकराये; कत-कई; घट-घड़े; भाङ्गि' गेला-टूट गये; शत शत-सैंकड़ों; घट-घड़े; लोक-लोग; ताहाँ-वहाँ; लञा-लेकर; आइल-आये।

अनुवाद

लोगों के परस्पर टकरा जाने से अनेक घड़े टूट गये और सैंकड़ों लोगों को पानी भरने के लिए नये घड़े लाने पड़े।

जल भरे, घर धोय, करे हरि-ध्वनि ।

'कृष्ण' 'हरि' ध्वनि विना आर नाहि शुनि ॥ 111॥

जल भरे-जल भर रहे थे; घर धोय-कमरे धो रहे थे; करे हरि-ध्वनि-हरि के पावन नाम का उच्चारण कर रहे थे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; हरि-हरि का पावन नाम; ध्वनि-ध्वनि; विना–के सिवाए; आर-और कुछ; नाहि-नहीं था; शुनि-सुनने को।

अनुवाद

कुछ लोग घड़े भर रहे थे और कुछ कमरों की धुलाई कर रहे थे, किन्तु सारे लोग कृष्ण तथा हरि के नाम का उच्चारण करते जा रहे थे।

'कृष्ण' 'कृष्ण' कहि' करे घटेर प्रार्थन ।

‘कृष्ण’ ‘कृष्ण’ कहि’ करे घट समर्पण ॥112॥

कृष्ण कृष्ण कहि’–’’कृष्ण, कृष्ण’’ जपते हुए; करे-किया; घटेर–घडे; प्रार्थन-माँगे; कृष्ण कृष्ण-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; कहि’-जपते हुए; करे–किया; घट-घड़ों को; समर्पण-देना।

अनुवाद

कोई व्यक्ति “कृष्ण, कृष्ण” कहकर घड़ा माँग रहा था और कोई व्यक्ति “कृष्ण, कृष्ण” कहकर घड़ा दे रहा था।

येइ येइ कहे, सेइ कहे कृष्ण-नामे ।

कृष्ण-नाम हइल सङ्केत सब-कामे ॥ 113॥

येइ येइ कहे जो कोई कह रहा था; सेइ-वह; कहे-कहता था; कृष्ण-नामे-’कृष्ण’ का पावन नाम लेकर; कृष्ण-नाम हइल-’कृष्ण’ का पावन नाम हो गया; सङ्केत-संकेत; सब-कामे-सबके लिए जो कुछ चाहता था।

अनुवाद

जब किसी को कुछ कहना होता, तो वह ‘कृष्ण’ नाम का उच्चारण करके ऐसा करता। अतएव जिस किसी को जो कुछ माँगना होता, उसके लिए ‘कृष्ण’ नाम संकेत बन गया था।

प्रेमावेशे प्रभु कहे ‘कृष्ण’ ‘कृष्ण’-नाम ।

एकले प्रेमावेशे करे शत-जनेर काम ॥114॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; कहे-कहते थे; कृष्ण कृष्ण-नाम-’कृष्ण’ का पावन नाम; एकले-अकेले; प्रेम-आवेशे—प्रेमावेश में; करे-करते थे; शत-जनेर काम–सौ लोगों का काम।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर कृष्ण का नाम लेते थे, तो वे स्वयं सैंकड़ों आदमियों का काम करते थे।

शत-हस्ते करेन येन क्षालन-मार्जन ।

प्रतिजन-पाशे याइ' करान शिक्षण ॥115॥

शत-हस्ते–एक सौ हाथों से; करेन-वे करते थे; येन-जैसे; क्षालन-मार्जन-धोना और साफ करना; प्रतिजन-पाशे याइ'–प्रत्येक के पास जाकर; करान शिक्षण-वे उनको सिखा रहे थे।

अनुवाद

ऐसा प्रतीत होता मानो श्री चैतन्य महाप्रभु एक सौ हाथों से सफाई-धुलाई कर रहे हों। वे हर एक भक्त के पास यह शिक्षा देने के लिए पहुँचते कि काम किस तरह करना चाहिए।

भाल कर्म देखि' तारे करे प्रसंशन ।

मने ना मिलिले करे पवित्र भर्त्सन ॥116॥

भाल–अच्छा; कर्म-काम; देखि-देखकर; तारे-उसकी; करे-करते थे; प्रसंशन–प्रशंसा; मने-अपने मन में; ना-नहीं; मिलिले-ठीक लगने पर; करे-वे करते थे; पवित्र-साफ, बिना दंड दिये; भर्त्सन–प्रताड़ना।

अनुवाद

जब कोई ठीक से काम करता, तो महाप्रभु उसकी प्रशंसा करते, किन्तु जब वे देखते कि कोई व्यक्ति सन्तोषजनक कार्य नहीं कर रहा, तो वे बिना किसी द्वेष के उस व्यक्ति की प्रताड़ना करते।

तुमि भाल करियाछ, शिखाह अन्येरे ।

एइ-मत भाल कर्म सेहो येन करे ॥117॥

तुमि-तुमने; भाल करियाछ–अच्छा किया है; शिखाह अन्येरे-दूसरों को सिखाओ; एइ-मत-इस प्रकार; भाल कर्म-अच्छा काम; सेहो-वह भी; येन-ताकि; करे-करे।

अनुवाद

महाप्रभु कहते, "तुमने बहुत अच्छा किया है। तुम दूसरों को भी सिखला दो, जिससे वे भी इसी तरह से काम करें।"

ए-कथा शुनिया सबे सङ्कुचित हञा ।

भाल-मते कर्म करे सबे मन दिया ॥118॥

ए-कथा शुनिया-ये शब्द सुनकर; सबे-सब; सङ्कचित हञा-संकोच में पड़ गये; भाल-मते-बहुत अच्छा; कर्म करे–काम किया; सबे-सबने; मन दिया-ध्यान से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से ऐसा सुनकर हर व्यक्ति लज्जित हो जाता। इसलिए भक्तों ने बड़े ही मनोयोग से काम करना आरम्भ कर दिया।

तबे प्रक्षालन कैल श्री-जगमोहन ।

भोग-मन्दिर-आदि तबे कैल प्रक्षालन ॥119॥

तबे-तब; प्रक्षालन-धुलाई; कैल-की; श्री-जगमोहन-श्री जगमोहन (मन्दिर के सामने); भोग-मन्दिर-भोग मन्दिर; आदि-ऐसे सब स्थान; तबे-तब; कैल प्रक्षालन-धोये।

अनुवाद

उन्होंने जगमोहन-क्षेत्र की धुलाई की और इसके बाद जहाँ प्रसाद रखा जाता था, वह स्थान धोया गया। फिर अन्य सभी स्थान भी धोये गये।

नाटशाला धुइ' धुइल चत्वर-प्राङ्गण ।

पाकशाला-आदि करि' करिल प्रक्षालन ॥ 120॥

नाट-शाला–मिलने का स्थान; धुइ'-धोकर; धुइल-धोया; चत्वर-प्राङ्गण-आंगन और चबूतरा; पाक-शाला–रसोई; आदि-आदि; करि'–करके; करिल प्रक्षालन-धोया।

अनुवाद

इस तरह सभा-भवन, समूचे प्रांगण, चबूतरों, रसोई-घर तथा अन्य कमरों की धुलाई की गई।

मन्दिरेर चतुर्दिक्प्रक्षालन कैल ।

सब अन्तःपुर भाल-मते धोयाइल ॥ 121॥

मन्दिरेर–मन्दिर को; चतुर्-दिक्-चारों ओर; प्रक्षालन कैल-धोया; सब-सब; अन्तःपुर–कमरों के भीतर; भाल-मते-बड़ी सावधानी से धोयाइल-धोया।

अनुवाद

इस तरह मन्दिर के चारों ओर के सारे स्थान भीतर और बाहर से धो दिये गये।

हेन-काले गौड़ीया एक सुबुद्धि सरल ।

प्रभुर चरण-युगे दिल घट-जल ॥122॥

हेन-काले-इस समय; गौड़ीया-बंगाली वैष्णव; एक-एक; सु-बुद्धि-अति बुद्धिमान; सरल-सरल; प्रभुर चरण-युगे–महाप्रभु के चरणकमलों पर; दिल-डाला; घट-जल-एक घड़ा भर जल।

अनुवाद

जब पूरी तरह सफाई हो चुकी, तो बंगाल से आये हुए एक अत्यन्त बुद्धिमान एवं सरल वैष्णव ने आकर महाप्रभु के चरणकमलों पर जल चढ़ाया।

सेइ जल लञा आपने पान कैल ।

ताहा देखि' प्रभुर मने दुःख रोष हैल ॥123॥

सेइ जल-वह जल; लञा-लेकर; आपने-स्वयं; पान कैल-पी लिया; ताहा देखि'–उसे देखकर; प्रभुर–महाप्रभु के; मने-मन में; दुःख-दुःख; रोष-क्रोध; हैल-हुआ।

अनुवाद

तब उस गौड़ीय वैष्णव ने उस जल को लेकर पी लिया। यह देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु कुछ-कुछ दुःखी और बाहर से क्रुद्ध भी हुए।

यद्यपि गोसाञि तारे हञाछे सन्तोष ।

धर्म-संस्थापन लागि' बाहिरे महा-रोष ॥124॥

यद्यपि-यद्यपि; गोसाञि-महाप्रभु; तारे-उससे; हञाछे-हो गये; सन्तोष-सन्तुष्ट; धर्म-संस्थापन लागि'-धार्मिक सिद्धान्तों के शिष्टाचार की स्थापना के लिए; बाहिरे-बाहर से; महा-रोष-अत्यन्त क्रोध।

अनुवाद

यद्यपि महाप्रभु उससे सन्तुष्ट थे, किन्तु धर्म के शिष्टाचार की स्थापना करने के लिए वे बाहर से क्रुद्ध हुए।

शिक्षा लागि' स्वरूपे डाकि' कहिल ताँहारे ।

एइ देख तोमार 'गौड़ीया'र व्यवहारे ॥125॥

शिक्षा लागि'–शिक्षा देने हेतु; स्वरूपे-स्वरूप दामोदर को; डाकि'–बुलाकर; कहिल–कहा; ताँहारे—उसको; एइ देख-जरा देखो; तोमार-तुम्हारे; गौड़ीयार-बंगाल के इस वैष्णव का; व्यवहारे-व्यवहार।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर को बुलाया और उनसे कहा, "जरा अपने बंगाली वैष्णव का व्यवहार तो देखो।

ईश्वर-मन्दिरे मोर पद धोयाइल ।

सेइ जल आपनि लञा पान कैल ॥126॥

ईश्वर-मन्दिरे-भगवान् के मन्दिर में; मोर–मेरे; पद-पाँव को; धोयाइल-धोकर; सेइ जल-वह जल; आपनि–स्वयं; लञा–लेकर; पान कैल–पी लिया।

अनुवाद

"इस बंगाली वैष्णव ने भगवान् के मन्दिर के भीतर मेरे पाँव धोये हैं। यही नहीं, उसने जल भी पी लिया है।

एइ अपराधे मोर काहाँ हबे गति ।

तोमार 'गौड़ीया' करे एतेक फैजति! ॥127॥

एइ अपराधे-ऐसे अपराध से; मोर-मेरी; काहाँ-कहाँ; हबे-होगी; गति-गति; तोमार गौड़ीया–तुम्हारे बंगाली वैष्णव ने; करे–किया है; एतेक-ऐसा; फैजति–फँसाया है।

अनुवाद

"मैं नहीं जानता कि इस अपराध के कारण मेरी क्या गति होगी! तुम्हारे बंगाली वैष्णव ने मुझे झंझट में फंसा दिया है।"

तात्पर्य

यह महत्त्वपूर्ण है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर गोस्वामी से कहा कि बंगाली वैष्णव "तुम्हारा गौड़ीय वैष्णव' है। इसका अर्थ यह हुआ कि चैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय के समस्त गौड़ीय वैष्णव अनुयायी स्वरूप दामोदर गोस्वामी के अधीन हैं। गौड़ीय वैष्णव परम्परा का दृढ़ता से पालन करते हैं। स्वरूप दामोदर गोस्वामी महाप्रभु के निजी सचिव थे। दूसरा भक्त-समुदाय छः गोस्वामियों का था, फिर कविराज गोस्वामी थे। चैतन्य सम्प्रदाय की परम्परा का पालन करना आवश्यक है। भगवान् की सेवा करते समय अनेक प्रकार के अपराध हो सकते हैं, जिनका वर्णन भक्तिरसामृतसिंधु, हरिभक्ति-विलास तथा अन्य पुस्तकों में मिलता है। विधानों के अनुसार भगवान् के मन्दिर में अर्चाविग्रह के समक्ष किसी को किसी को नमस्कार स्वीकार नहीं करना चाहिए। न ही अर्चाविग्रह के समक्ष भक्त गुरु को नमस्कार करे और उसका चरण छुये। यह अपराध माना जाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् थे, अतएव मन्दिर में उनका पाद-प्रक्षालन (चरण धोया जाना) कोई अपराध नहीं था। किन्तु वे एक आचार्य की भूमिका निभा रहे थे, अतएव महाप्रभु अपने आपको एक सामान्य व्यक्ति मान रहे थे। वे सामान्य मनुष्यों को शिक्षा भी देना चाहते थे। ध्यान देने की बात यह है कि गुरु की भूमिका निभाने वाले भक्त को भी अर्चाविग्रह के समक्ष न तो नमस्कार स्वीकार करना चाहिए, न ही अपने शिष्य को अपना पाँव धोने देने चाहिए। यही शिष्टाचार है।

तबे स्वरूप गोसाञि तार घाड़े हात दिया ।

ढेका मारि' पुरीर बाहिर राखिलेन लञा ॥128॥

तबे-तत्पश्चात्; स्वरूप गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोसांई; तार-उसके; घाड़े-गले पर; हात दिया–हाथ से स्पर्श किया; ढेका मारि'-थोड़ा धकेलकर; पुरीर बाहिर-गुण्डीचा पुरी के मन्दिर के बाहर; राखिलेन-कर दिया; लञा-ले जाकर।

अनुवाद

तभी स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने गौड़ीय वैष्णव की गर्दन पकड़ ली और उसे धक्का देकर गुण्डिचा पुरी मन्दिर से बाहर कर दिया तथा उसे बाहर ही रहने दिया।

पुनः आसि' प्रभु पाय करिल विनय ।

'अज्ञ-अपराध' क्षमा करिते युयाय ॥ 129॥

पुनः आसि'–दोबारा आकर; प्रभु पाय-महाप्रभु के चरणकमलों पर; करिल विनय-विनय की; अज्ञ-अपराध-एक अनजान व्यक्ति का अपराध; क्षमा करिते-क्षमा करने; युयाय-के योग्य होता है।

अनुवाद

मन्दिर में वापस आकर स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे उस अबोध व्यक्ति को क्षमा कर दें।

तबे महाप्रभुर मने सन्तोष हइल ।

सारि करि' दुई पाशे सबारे वसाइला ॥130॥

तबे-तब; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; मने-मन में; सन्तोष हइला–सन्तोष हुआ; सारि करि'–एक पंक्ति बनाकर; दुइ पाशे-दोनों ओर; सबारे-सबको; वसाइला-बैठाया।

अनुवाद

इस घटना के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु को परम सन्तोष हुआ। तब उन्होंने सारे भक्तों को दो पंक्तियों में दोनों ओर बैठ जाने को कहा।

आपने वसिया माझे, आपनार हाते ।

तृण, काङ्कर, कुटा लागिला कुड़ाइते ॥131॥

आपने-स्वयं; वसिया माझे-मध्य में बैठकर; आपनार हाते-अपने हाथों से स्वयं; तृण-तिनके; काङ्कर–बालु-कण; कुटा-कूड़ा; लागिला–लग गये; कुड़ाइते-उठाने।

अनुवाद

तब महाप्रभु स्वयं बीच में बैठ गये और सभी तरह के तिनके, बालू के कण तथा गंदी वस्तुएँ चुनने लगे।

के कत कुड़ाय, सब एकत्र करिब ।

यार अल्प, तार ठाञि पिठा-पाना लइब ॥ 132॥

के कत कुड़ाय-किसने कितना इकट्ठा किया है; सब-सब; एकत्र–एक जगह इकट्ठा; करिब–मैं करूँगा; यार-जिसका; अल्प-थोड़ा; तार ठाञि-उससे; पिठा-पाना लइब–मिठाई और खीर जुर्माने के रूप में लूँगा।

अनुवाद

तिनके तथा बालू के कण चुनते हुए महाप्रभु ने कहा, "मैं हर एक के कूड़े को एकत्र करूँगा और जिसका कूड़ा कम होगा उससे कहूँगा कि वह जुर्माना के रूप में मिठाई (पिठा) तथा खीर (पाना) दे।"

एइ मत सब पुरी करिल शोधन ।

शीतल, निर्मल कैल—येन निज-मन ॥133॥

एइ मत-इस प्रकार; सब पुरी-गुण्डीचा पुरी का सब; करिल शोधन-उन्होंने साफ किया; शीतल-शीतल; निर्मल-निर्मल; कैल-किये; येन-जैसे; निज-मन-उसका अपना मन।

अनुवाद

इस तरह गुण्डिचा मन्दिर के सभी कमरे पूरी तरह स्वच्छ हो गये। सारे कमरे ठंडे तथा स्वच्छ थे, मानो निर्मल तथा शान्त मन हों।

प्रणालिका छाड़ि' यदि पानि वहाइल ।

नूतन नदी येन समुद्रे मिलिल ॥134॥

प्रणालिका–नालियों से पानी; छाड़ि'–छोड़कर; यदि-जब; पानि-पानी; वहाइल-बहने लगा; नूतन-नयी; नदी-नदी; येन-जैसे; समुद्रे-समुद्र में; मिलिल-मिल रही हो।

अनुवाद

जब सारे कमरों का पानी हाल कमरे से होकर निकाला गया, तो ऐसा लगा जैसे कि नई नदियाँ समुद्र से मिलने जा रही हों।

एइ-मत पुरद्वार-आगे पथ यत ।

सकल शोधिल, ताहा के वर्णिबे कत ॥135॥

एइ-मत-इस प्रकार; पुर-द्वार-मन्दिर के द्वार के; आगे-सामने की; पथ यत-सभी सड़कें; सकल-सभी; शोधिल-इतनी साफ हो गईं; ताहा-उसका; के वर्णिबे-कौन वर्णन कर सकता है; कत-कितना।

अनुवाद

मन्दिर के द्वार के बाहर की सारी सड़कें भी साफ की गईं। किन्तु कोई यह नहीं बता सकता था कि यह सब कैसे हुआ।

तात्पर्य

गुण्डिचा मन्दिर की सफाई के विषय में टीका करते हुए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु जगत्-गुरू के रूप में स्वयं यह शिक्षा दे रहे थे कि किस तरह मनुष्य को शुद्ध तथा शान्त हृदय में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का स्वागत करना चाहिए। यदि कोई चाहता है कि कृष्ण उसके हृदय में विराजमान हों, तो सर्वप्रथम उसे अपने हृदय को निर्मल बनाना चाहिए, जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने शिक्षाष्टक में संस्तुति की है। (चेतोदर्पण मार्जनम्) । इस युग में प्रत्येक व्यक्ति का हृदय मलिन रहता है, जैसाकि श्रीमद्भागवत में कहा गया है : हृद्यन्त:स्थो ह्यभद्राणि । हृदय के भीतर संचित सारी गंदगी को धो डालने के लिए हर एक को श्री चैतन्य महाप्रभु ने यही उपदेश दिया है कि वह हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करे। इसका पहला परिणाम यह होगा कि हृदय स्वच्छ हो जायेगा (चेतोदर्पण मार्जनम्) । इसी तरह श्रीमद्भागवत (1.2.17) में भी इस कथन की पुष्टि हुई है :

शृण्वतां स्वकथा कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।

हृद्यन्त:स्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥

“परम भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्येक के हृदय में स्थित परमात्मा हैं और सत्यनिष्ठ भक्तों के हितैषी हैं। भगवान् कृष्ण की शिक्षाएँ ध्यानपूर्वक सुने तथा कीर्तन किये जाने पर शुभ होती हैं। जो भक्त उनके सन्देशों का आस्वादन करता है, उस भक्त के हृदय से भगवान् भौतिक भोग की इच्छा को दूर कर देते हैं।”

यदि भक्त चाहता है कि उसका हृदय स्वच्छ बने, तो उसे भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा का श्रवण और कीर्तन करना चाहिए (शृण्वतां स्वकथाः कृष्णः) । यह सरल विधि है। कृष्ण स्वयं हृदय को स्वच्छ करने में सहायक होंगे, क्योंकि वे पहले से वहाँ विराजमान हैं। कृष्ण चाहते हैं कि वे हृदय के भीतर विराजमान रहें और वे निर्देश देना चाहते हैं, किन्तु मनुष्य को अपने हृदय को उसी तरह स्वच्छ रखना होगा जिस तरह महाप्रभु ने गुण्डिचा मन्दिर को स्वच्छ रखा था। अतएव भक्त को अपना हृदय उसी तरह निर्मल बनाना होगा, जिस तरह महाप्रभु ने गुण्डिचा मन्दिर को निर्मल बनाया था। इस तरह मनुष्य को शान्ति मिल सकती है और उसकी भक्ति समृद्ध हो सकती है। यदि हृदय में कूड़ा-करकट, बालू के कण, खर-पतवार या धूल भरी हो (अर्थात् अन्याभिलाष-पूर्ण) तो उसमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नहीं बिठाया जा सकता। हृदय को सकाम कर्म, तार्किक ज्ञान, योग और तथाकथित ध्यान के विभिन्न प्रकारों से प्राप्त समस्त भौतिक इच्छाओं से स्वच्छ रखना होगा। हृदय को बाह्य प्रयोजनों से रहित करके स्वच्छ रखना होगा। जैसाकि श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं- अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।दूसरे शब्दों में, किसी तरह का बाह्य मन्तव्य नहीं रहना चाहिए। मनुष्य को भौतिक उन्नति, ज्ञान द्वारा भगवान् को समझना, सकाम कर्म, तप इत्यादि का प्रयास नहीं करना चाहिए। ये सारे कार्य भगवान् के रागानुग प्रेम के सहज विकास के विरुद्ध हैं। ज्योंही हृदय में ये उपस्थित होते हैं, समझिये कि हृदय मलिन हो जाता है। अतएव कृष्ण के विराजने के लिए वह स्थान अयोग्य हो जाता है। अपने हृदय को शुद्ध रखे बिना उनमें हम भगवान् की उपस्थिति की अनुभूति नहीं कर सकते।

भौतिक जगत् का भरपूर भोग करने की इच्छा को भौतिक इच्छा कहते हैं। आधुनिक भाषा में इसे आर्थिक विकास कहा जाता है। आर्थिक विकास की अत्यधिक इच्छा हृदय के भीतर के कूड़ा-करकट तथा बालू के कणों के समान मानी जाती है। यदि कोई व्यक्ति भौतिक कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहता है, तो उसका हृदय सदा विचलित रहेगा। जैसाकि नरोत्तम दास ठाकुर ने कहा है :

संसार विषानले, दिवानिशि हियाज्चले,

जुड़ाइते ना कैनु उपाय

दूसरे शब्दों में, भौतिक ऐश्वर्य के लिए प्रयास भक्ति के सिद्धान्त के विरुद्ध है। पुण्यकर्म के लिए महान यज्ञ करना, दान, तपस्या, उच्चतर ग्रहमण्डलों को प्राप्त करना तथा भौतिक जगत् में सुखपूर्वक जीवनयापन करना इत्यादि भौतिक भोग के अन्तर्गत आते हैं।

आधुनिक भौतिक लाभ भौतिक कल्मषरूपी धूल के समान हैं। जब सकाम कर्म के चक्रवात से यह धूल उड़ती है, तो यह हृदय को आच्छादित कर देती है। इस तरह हृदयरूपी दर्पण धूल से आच्छादित हो जाता है। पुण्य तथा पापकर्म करने के लिए अनेक इच्छाएँ होती हैं, किन्तु लोग यह नहीं जानते कि किस तरह वे अपने हृदय जन्म-जन्मांतर तक मलिन बनाये रखते हैं। जो व्यक्ति सकाम कर्म की इच्छा नहीं छोड़ पाता उसे भौतिक कल्मषरूपी धूल से आवृत समझा जाता है। कर्मी प्रायः सोचता है कि सकाम कर्मों के फल को दूसरे कर्म से काटा जा सकता है। यह एक भूल है। यदि वह ऐसी भावना के बहकावे में आता है, तो वह अपने ही कर्म द्वारा ठगा जाता है। ऐसे कर्मों की तुलना हाथी के स्नान से की जाती है। हाथी कितनी भी अच्छी तरह से क्यों न स्नान करे, किन्तु नदी से बाहर निकलते ही वह भूमि से कुछ बालू लेता है और अपने सारे शरीर पर डाल लेता है। यदि कोई अपने विगत कर्मों का फल भोग रहा है, तो वह पुण्यकर्म करके उन्हें काट नहीं सकता। भौतिक योजनाओं द्वारा मानव-समाज के कष्टों को दूर नहीं किया जा सकता है। केवल कृष्णभावनामृत द्वारा ही इन कष्टों को दूर किया जा सकता है। जब कोई कृष्णभावनामृत ग्रहण करता है और भगवद्भक्ति में लगता है-भगवान् का कीर्तन करता है और उनकी महिमा का श्रवण करता है तभी उसका हृदय स्वच्छ होना शुरू होता है। जब हृदय वास्तव में स्वच्छ हो जाता है, तब मनुष्य बिना किसी रुकावट के भगवान् को स्पष्ट रूप से वहाँ विराजमान देख सकता है। श्रीमद्भागवत (9.4.68) में भगवान् इसकी पुष्टि करते हैं कि वे शुद्ध भक्त के हृदय में विराजमान रहते हैं। साधवो हृदयं मह्यम् साधूनाम हृदयं त्वहम् ।

निर्विशेष चिन्तन, अद्वैतवाद (भगवान् के अस्तित्व में विलीन होना), तार्किक ज्ञान, योग तथा ध्यान की तुलना बालू के कणों से की गई है। इन सबसे हृदय केवल क्षुब्ध होता है। ऐसे कार्यों से न तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्रसन्न किया जा सकता है, न ही हम अपने हृदय में भगवान् को शान्तिपूर्वक बैठने का अवसर दे सकते हैं। बल्कि इन सबसे भगवान् केवल विचलित होते हैं। कभी-कभी योगी तथा ज्ञानी अपने अभ्यास की शुरूआत में प्रारम्भिक साधना के रूप में हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते हैं। किन्तु जब वे गलत तरीके से सोचते हैं कि वे भवबन्धन से मुक्त हो चुके हैं, तो वे कीर्तन करना छोड़ देते हैं। वे मानते ही नहीं कि भगवान् का स्वरूप या भगवन्नाम ही चरम लक्ष्य हैं। पूर्ण

पुरुषोत्तम भगवान् ऐसे अभागों पर कभी कृपा नहीं करते, क्योंकि वे यह नहीं जानते कि भक्ति है क्या। ऐसे लोगों का वर्णन भगवद्गीता (16.19) में भगवान् कृष्ण ने इस प्रकार किया है :

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।

क्षिपाम्यजस्त्रमशुभान् आसुरीष्वेव योनिषु ॥

"जो ईर्ष्यालु तथा शैतान हैं, जो मनुष्यों में सबसे अधम हैं, उन्हें मैं इस भवसागर में निरन्तर अनेक आंसुरी योनियों में डाल देता हूँ।"

महाप्रभु ने अपने व्यावहारिक उदाहरण द्वारा हमें दिखलाया है कि बालू के सारे कणों को चुनकर बाहर ले जाकर फेंक देना चाहिए। श्री महाप्रभु ने मन्दिर के बाहर की भी सफाई की, क्योंकि उन्हें भय था कि बालू के ये कण कहीं भीतर न आ जाएँ। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि भले ही मनुष्य सकाम कर्म की इच्छा से मुक्त हो जाए, किन्तु कभी-कभी उसके हृदय के भीतर सकाम कर्म के प्रति सूक्ष्म इच्छा उत्पन्न हो जाती है। प्रायः मनुष्य सोचता है कि भक्ति-कार्य में प्रगति लाने के लिए वह व्यापार शुरू कर दे। किन्तु कल्मष इतना प्रबल होता है कि बाद में वह भ्रम में परिवर्तित हो सकता है, जिसे कुटिनाटि (छिद्रान्वेषण) तथा प्रतिष्ठाशा (उच्च पद के लिए नाम तथा यश की इच्छा), जीव हिंसा (अन्य जीवों के लिए ईष्य), निषिद्धाचार (शास्त्र-वर्जित वस्तुएँ स्वीकार करना), काम (भौतिक लाभ की कामना) तथा पूजा (लोकप्रियता की लालसा) के रूप में बतलाया गया है। कुटिनाटि का अर्थ है कपट । प्रतिष्ठाशा का उदाहरण है, हरिदास ठाकुर की नकल करके एकान्त स्थान में रहने का प्रयास। उसकी असली इच्छा तो नाम तथा यश कमाने की रहती है-दूसरे शब्दों में, वह सोचता है कि मूर्ख लोग उसे हरिदास ठाकुर की तरह प्रतिष्ठित मानने लगेंगे, क्योंकि वह एकान्त स्थान में रहता है। ये सब भौतिक इच्छाएँ हैं। नये भक्त को अन्य भौतिक इच्छाएँ भी-यथा स्त्रियाँ तथा धन (कामिनी-कांचन) सता सकती हैं। इस तरह उसका हृदय गंदी बातों से पुनः भर जाता है और वह भौतिकतावादी की तरह निष्ठुर हो जाता है। धीरे-धीरे वह विख्यात भक्त या अवतार बनने की इच्छा करने लगता है।

जीव-हिंसा (अन्य जीवों की ईर्ष्या) शब्द का वास्तविक अर्थ है। कृष्णभावनामृत का प्रचार बन्द कर देना। प्रचार-कार्य को परोपकार कहा गया है। जो लोग भक्ति के लाभों से परिचित नहीं हैं, उन्हें प्रचार द्वारा इसकी शिक्षा देनी चाहिए। यदि कोई प्रचार-कार्य बन्द करके एकान्त स्थान में बैठ जाता है, तो समझिये कि वह अपने आपको भौतिक

कर्म में लगा रहा है। यदि कोई व्यक्ति मायावादियों से समझौता करना चाहता है, तो भी वह भौतिक कर्म में संलग्न होता है। भक्तों को अभक्तों के साथ कभी समझौता नहीं करना चाहिए। कोई व्यक्ति पेशेवर गुरु, योगी या चमत्कारी व्यक्ति बनकर जनता को धोखा देकर या भ्रमित करके भले ही उत्कृष्ट योगी के रूप में ख्याति प्राप्त कर ले, किन्तु ये सभी हृदय के भीतर भरे धूल, कूड़ा तथा बालू के कण ही समझे जाते हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्य को विधि-विधानों का पालन करना चाहिए और अवैध यौन, जुआ, नशा तथा मांसाहार की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने हमें व्यावहारिक उपदेश देने के लिए ही मन्दिर की दो बार सफाई की। उनके द्वारा की गई दूसरी सफाई अधिक पूर्ण थी। इसका भाव था भक्ति के मार्ग के सारे अवरोधों को दूर भगा देना। उन्होंने दृढ़ संकल्प के साथ मन्दिर की सफाई की जो इस बात से स्पष्ट है कि सफाई के लिए उन्होंने अपने खुद के वस्त्रों तक का प्रयोग किया। श्री चैतन्य महाप्रभु यह स्वयं यह देखना चाहते थे कि मन्दिर संगमरमर की तरह स्वच्छ हो जाए। स्वच्छ संगमरमर शीतलता प्रदान करता है। भक्ति का अर्थ है भौतिक कल्मष से उत्पन्न सारे उपद्रवों से शान्ति प्राप्त करना। दूसरे शब्दों में, यह वह विधि है, जिससे मन शान्त होता है। जब मनुष्य भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, तभी मन शान्त तथा नितान्त स्वच्छ रह सकता है।

चाहे कोई कितनी ही गंदगी को दूर क्यों न करे, कभी-कभी निर्विशेषवाद, अद्वैतवाद, सिद्धि तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के लिए मन में सूक्ष्म इच्छाएँ बनी रहती हैं। ये सब स्वच्छ चादर में दाग के समान हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु इन्हें भी धो डालना चाहते थे।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने व्यावहारिक कार्य से हमें बतलाया कि किस तरह अपने हृदयों को स्वच्छ किया जा सकता है। एक बार हृदय स्वच्छ हो जाए, तो हमें उसमें आरूढ़ होने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण को आमन्त्रित करना चाहिए और हमें प्रसाद बाँटकर तथा हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करके उत्सव मनाना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु हर भक्त को अपने निजी आचरण से शिक्षा दिया करते थे। श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रसार करने वाला हर व्यक्ति ऐसी ही जिम्मेदारी लेता है। सफाई के दौरान महाप्रभु स्वयं लोगों को प्रताड़ित तथा प्रशंसित कर रहे थे, अतः जो आचार्य का कार्य कर रहे हैं, उन्हें महाप्रभु से सीखना चाहिए कि निजी उदाहरण के द्वारा भक्तों को किस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए। महाप्रभु उन लोगों से परम प्रसन्न थे, जो मन्दिर के भीतर एकत्र अवांछित वस्तुओं को निकालकर मन्दिर की सफाई कर रहे थे। यह अनर्थ निवृत्ति कहलाती है, जिसका अर्थ है समस्त अवांछित वस्तुओं से हृदय को स्वच्छ करना। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा गुण्डिचा मन्दिर की सफाई का संचालन हमें यह जताने के

लिए किया गया कि किस तरह हृदय को स्वच्छ तथा शान्त बनाकर भगवान् कृष्ण का स्वागत किया जाए और बिना किसी उत्पात के उन्हें हृदय के भीतर बिठाया जाए।

नृसिंह-मन्दिर-भितर-बाहिर शोधिल ।

क्षणेक विश्राम करि' नृत्य आरम्भिल ॥ 136 ॥

नृसिंह-मन्दिर-नृसिंहदेव का मन्दिर; भितर-भीतर; बाहिर–बाहर; शोधिल-साफ किया; क्षणेक-कुछ ही क्षण; विश्राम-आराम; करि'—करने के बाद; नृत्य-नृत्य; आरम्भिल–आरम्भ हुआ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नृसिंह मन्दिर की भी भीतर और बाहर से सफाई की। अन्त में उन्होंने कुछ मिनट विश्राम किया और तब नृत्य शुरू किया।

तात्पर्य

नृसिंह मन्दिर गुण्डिचा मन्दिर से बाहर ही एक सुन्दर मन्दिर है। इस मन्दिर में नृसिंह चतुर्दशी के दिन बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाता है। नवद्वीप में भी एक नृसिंह मन्दिर है, जहाँ पर यही उत्सव मनाया जाता है, जैसाकि मुरारि गुप्त ने अपनी पुस्तक चैतन्य-चरित में लिखा है।

चारि-दिके भक्त-गण करेन कीर्तन ।

मध्ये नृत्य करेन प्रभु मत्त-सिंह-सम ॥137॥

चारि-दिके–चारों ओर; भक्त-गण-भक्तों ने; करेन-किया; कीर्तन-कीर्तन; मध्ये-मध्य में; नृत्य-नृत्य; करेन-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; मत्त-सिंह-सम-उन्मत्त सिंह की भाँति।

अनुवाद

सारे भक्तों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चारों ओर संकीर्तन किया और महाप्रभु एक उन्मत्त सिंह के समान बीच में नाचने लगे।

स्वेद, कम्प, वैवण्र्याश्रु पुलक, हुङ्कार।

निज-अङ्ग धुइ' आगे चले अश्रु-धार ॥ 138॥

स्वेद-पसीना; कम्प-कंपन; वैवर्य-रंग पीला पड़ना; अश्रु-अश्रु; पुलक-रोमांच होना; हुङ्कार-गर्जना; निज-अङ्ग-निजी शरीर; धुइ'-धोकर; आगे-आगे; चले–चली गई; अश्रु-धार-अश्रुधारा।

अनुवाद

हमेशा की तरह जब चैतन्य महाप्रभु नाचने लगे तो पसीना, कँपकँपी, विवर्णता (रंग फीका पड़ना), आँसू, हर्ष तथा हुंकार प्रकट होने लगे। उनकी आँखों के अश्रुओं ने उनके शरीर को तथा उनके समक्ष खड़े लोगों के शरीरों को धो दिया।

चारि-दिके भक्त-अङ्ग कैल प्रक्षालने ।

आवणेर मेघ येन करे वरिषण ॥139॥

चारि-दिके-चारों ओर; भक्त-अङ्ग-भक्तों के शरीर; कैल-किये; प्रक्षालन-धोये; श्रावणेर मेघ-ठीक श्रावण के महीने में मेघ की तरह; येन-जैसे; करे वरिषण-बरसता है।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी आँखों के आँसुओं से सारे भक्तों के शरीरों को धो डाला। आँसू इस तरह गिर रहे थे मानों सावन मास की वर्षा हो।

महा-उच्च-सङ्कीर्तने आकाश भरिल ।

प्रभुर उद्दण्ड-नृत्ये भूमि-कम्प हैल ॥140॥

महा-उच्च-सङ्कीर्तने-ऊँची आवाज में कीर्तन करने से; आकाश-आकाश; भरिल-भर गया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; उद्दण्ड-नृत्ये-नृत्य और ऊँचे कूदने से; भूमि-कम्प-भूकम्प; हैल-हो गया।

अनुवाद

महान् तथा जोर-जोर से उच्चरित होने वाले संकीर्तन से आकाश गूंज उँठा और चैतन्य महाप्रभु के कूदने तथा नाचने से धरती हिलने लगी।

स्वरूपेर उच्च-गान प्रभुरे सदा भाय ।

आनन्दे उद्दण्ड नृत्य करे गौरराय ॥141॥

स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर गोस्वामी का; उच्च-गान-उच्च गान; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; सदा भाय-सदा भाता था; आनन्दे-आनन्द में; उद्दण्ड नृत्य-ऊँचे कूदना और नाचना; करे–किया; गौरराय-श्री चैतन्य महाप्रभु ने।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को स्वरूप दामोदर का जोर-जोर से संकीर्तन करना सदा पसन्द था। अतएव जब स्वरूप दामोदर गाते तो श्री चैतन्य महाप्रभु नाचते और हर्ष से ऊँचा उछलते थे।

एइ-मत कत-क्षण नृत्य ये करिया ।

विश्राम करिला प्रभु समय बुझिया ॥142॥

एइ-मत-इस प्रकार; कत-क्षण-कुछ क्षणों के लिए; नृत्य-नृत्य; ये-जो; करिया-करने के बाद; विश्राम करिला-आराम किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; समय बुझिया-समय को समझकर।

अनुवाद

महाप्रभु इस तरह कुछ समय तक कीर्तन करते और नाचते रहे। अन्त में परिस्थिति को समझकर वे रुक गये।

आचार्य-गोसाञि पुत्र श्री-गोपाल-नाम ।

नृत्य करिते ताँरे आज्ञा दिल गौरधाम ॥143॥

आचार्य-गोसाञि-श्री अद्वैत आचार्य का; पुत्र-पुत्र; श्री-गोपाल-नाम-श्री गोपाल नामक; नृत्य करिते-नृत्य करने के लिए; ताँरे–उसको; आज्ञा-आज्ञा; दिल–दी; गौरधाम-श्री चैतन्य महाप्रभु ने।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य के पुत्र श्री गोपाल को नाचने का आदेश दिया।

प्रेमावेशे नृत्य करि' हइला मूर्च्छिते ।

अचेतन हञा तेंह पड़िला भूमिते ॥144॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; नृत्य करि'-नृत्य करते हुए; हइला मूर्च्छिते–मूर्छित हो गया; अचेतन हञा-अचेत होकर; तेंह-वह; पड़िला–गिर गया; भूमिते-भूमि पर।

अनुवाद

प्रेमावेश में नाचते हुए श्री गोपाल मूर्छित हो गया और अचेत होकर जमीन पर गिर पड़ा।

आस्ते-व्यस्ते आचार्य तारे कैल कोले ।

श्वास-रहित देखि' आचार्य हैला विकले ॥145 ॥

आस्ते-व्यस्ते-बड़ी जल्दी में; आचार्य-अद्वैत आचार्य ने; तारे–उसको: कैल-लिया; कोले-अपनी गोद में; श्वास-रहित-बिना श्वास के; देखि'–देखकर; आचार्य-अद्वैत आचार्य; हैला-हो गये; विकले–व्याकुल।

अनुवाद

जब श्री गोपाल मूर्छित हो गया, तो अद्वैत आचार्य ने तुरन्त उसे अपनी गोद में उठा लिया। यह देखकर कि उसकी साँस नहीं चल रही, वे अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे।

नृसिंहेर मन्त्र पड़ि' मारे जल-छाँटि ।

हुङ्कारेर शब्दे ब्रह्माण्ड याय फाटि' ॥146 ॥

नृसिंहेर मन्त्र-नृसिंह देव की प्रार्थनाएँ; पड़ि'–पढ़कर; मारे–फेंका; जल-छाँटि-जल का छींटा; हुङ्कारेर शब्दे-गर्जने की आवाज से; ब्रह्माण्ड–सारा ब्रह्माण्ड; याय-हो गया; फाटि-फट गया।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य तथा अन्य लोग भगवान् नृसिंह के नाम का उच्चारण करके जल छिड़कने लगे। उच्चारण की हुंकार इतनी तेज थी कि उससे सारा ब्रह्माण्ड हिलता हुआ प्रतीत हुआ।

अनेक करिल, तबु ना हय चेतन ।

आचार्य कान्देन, कान्दे सब भक्त-गण ॥ 147॥

अनेक करिल–अनेक प्रयास किये गये; तबु-फिर भी; ना हयन आई; चेतन-चेतना; आचार्य कान्देन–अद्वैत आचार्य रोने लगे; कान्दे-रोने लगे; सब भक्त-गण-अन्य सारे भक्तगण भी।

अनुवाद

जब लड़के को कुछ समय तक होश नहीं आया, तो अद्वैत आचार्य तथा अन्य भक्तगण रोने लगे।

तबे महाप्रभु ताँर बुके हस्त दिल ।

'उठह गोपाल' बलि' उच्चैःस्वरे कहिल ॥ 148॥

तबे-तब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँर बुके-उसकी छाती पर; हस्त-हाथ; दिल-रखा; उठह गोपाल-उठो, गोपाल; बलि'–कहकर; उच्चैः-स्वरे-ऊँची आवाज में; कहिल-कहा।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री गोपाल की छाती पर अपना हाथ रखा और जोर से बोले, "गोपाल, उठो!"

शुनितेइ गोपालेर हइल चेतन ।

'हरि' बलि' नृत्य करे सर्व-भक्त-गण ॥149॥

शुनितेइ–सुनकर; गोपालेर-श्री गोपाल को; हइल-आ गई; चेतन-चेतना; हरि बलि'–हरि का पवित्र नाम लेकर; नृत्य करे-नृत्य करने लगे; सर्व-भक्त-गण-सभी भक्तगण।

अनुवाद

ज्योंही गोपाल ने श्री चैतन्य महाप्रभु की वाणी सुनी, उसे तुरन्त चेत हो गया। अतः सारे भक्त हरि का नाम लेकर नाचने लगे।

एइ लीला वर्णियाछेन दास वृन्दावन ।

अतएव सङ्क्षेप करि' करिलुँ वर्णन ॥150॥

एइ लीला-यह लीला; वर्णियाछेन-वर्णन की है; दास वृन्दावन-वृन्दावन दास ठाकुर; अतएव–अतएव; सङ्क्षेप-संक्षेप में; करि'-करके; करिलुँ वर्णन-मैंने वर्णन किया है।

अनुवाद

वृन्दावन दास ठाकुर ने इस घटना का विस्तार से वर्णन किया है, अतएव मैंने संक्षेप में ही इसे कहा है।

तात्पर्य

यह शिष्टाचार की बात है। यदि किसी पूर्ववर्ती आचार्य ने किसी विषय के बारे में कुछ लिखा है, तो निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए उसे दुहराने की या आचार्य से आगे बढ़ जाने की आवश्यकता नहीं रहती। जब तक किसी विशेष सुधार की गुंजाईश न हो, ऐसा नहीं करना चाहिए।

तबे महाप्रभु क्षणेक विश्राम करिया ।

स्नान करिबारे गेला भक्त-गण लञा ॥ 151॥

तबे-तत्पश्चात्; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; क्षणेक-कुछ समय के लिए; विश्राम करिया–विश्राम किया; स्नान करिबारे-स्नान करने के लिए; गेला-गये; भक्त-गण लञा–सभी भक्तों को साथ लेकर।

अनुवाद

विश्राम करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु तथा सारे भक्त स्नान करने चले गये।

तीरे उठि' परेन प्रभु शुष्क वसन ।

नृसिंह-देवे नमस्करि' गेला उपवन ॥ 152॥

तीरे उठि'-तट पर जाकर; परेन-पहने; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; शुष्क वसन-सूखे वस्त्र; नृसिंह-देवे-भगवान् नृसिंहदेव को; नमस्करि'-नमस्कार करके; गेला उपवन-उद्यान में प्रविष्ट हुए।

अनुवाद

स्नान करने के बाद महाप्रभु ने सरोवर के किनारे खड़े होकर सूखे कपड़े पहने। फिर पास ही के मन्दिर में स्थित भगवान् नृसिंह देव को नमस्कार करके वे बगीचे में आये।

उद्याने वसिला प्रभु भक्त-गण लञा ।

तबे वाणीनाथ आइला महा-प्रसाद लञा ॥15॥3॥

उद्याने उद्यान में; वसिला-बैठ गये; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; भक्त-गण लञा-भक्तों के साथ; तबे-उस समय; वाणीनाथ-वाणीनाथ राय; आइला-आये; महा-प्रसाद लञा-सभी प्रकार का महाप्रसाद लेकर।

अनुवाद

उस बगीचे में श्री चैतन्य महाप्रभु अन्य भक्तों के साथ बैठ गये। तभी वाणीनाथ राय सभी प्रकार का प्रसाद लेकर आये।

काशी-मिश्र, तुलसी-पड़िछा–दुइ जन ।

पञ्च-शत लोक यत करये भोजन ॥ 154॥

तत अन्न-पिठा-पाना सब पाठाइल ।

देखि' महाप्रभुर भने सन्तोष हइल ॥ 155॥

काशी-मिश्र-काशी मिश्र; तुलसी-पड़िछा–मन्दिर की देखरेख करने वाला, तुलसी; दुई जन-दोनों व्यक्ति; पञ्च-शत लोक-पाँच सौ लोगों; यत–जितना; करये भोजन-खा सके; तत–उतना; अन्न-पिठा-पाना-अन्न, मिठाई तथा खीर; सब-सब; पाठाइल-भेज दिया; देखि'–देखकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; मने-मन में; सन्तोष–सन्तोष; हइल–हुआ।

अनुवाद

काशी मिश्र तथा मन्दिर की देख-रेख करने वाला तुलसी- दोनों इतना अधिक प्रसाद लेकर आये जो पाँच सौ व्यक्तियों के खाने लायक था। इस प्रसाद में चावल, रोटियाँ, खीर तथा विविध प्रकार की तरकारियाँ थीं। इन्हें देखकर महाप्रभु अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

पुरी-गोसाञि, महाप्रभु, भारती ब्रह्मानन्द ।

अद्वैत-आचार्य, आर प्रभु-नित्यानन्द ॥ 156 ॥

पुरी-गोसाञि-परमानन्द पुरी; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भारती ब्रह्मानन्द-ब्रह्मानन्द भारती; अद्वैत-आचार्य-अद्वैत आचार्य; आर-और; प्रभु-नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के पास उपस्थित भक्तों में परमानन्द पुरी, ब्रह्मानन्द भारती, अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु थे।

आचार्यरत्न, आचार्यनिधि, श्रीवास, गदाधर ।

शङ्कर, नन्दनाचार्य, आर राघव, वक्रेश्वर ॥ 157॥

आचार्यरत्न–चन्द्रशेखर; आचार्यनिधि-आचार्य निधि; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; गदाधर-गदाधर पण्डित; शङ्कर-शंकर; नन्दन-आचार्य-नन्दनाचार्य; आर-और; राघव-राघव पण्डित; वक्रेश्वर–वक्रेश्वर।

अनुवाद

वहाँ पर आचार्यरत्न, आचार्यनिधि, श्रीवास ठाकुर, गदाधर पण्डित, शंकर, नन्दनाचार्य, राघव पण्डित तथा वक्रेश्वर भी उपस्थित थे।

प्रभु-आज्ञा पाञा वैसे आपने सार्वभौम ।

पिण्डार उपरे प्रभु वैसे लञा भक्त-गण ॥ 158॥

प्रभु-आज्ञा–महाप्रभु की आज्ञा; पाञा-पाकर; वैसे-बैठ गये; आपने-स्वयं; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; पिण्डार उपरे-ऊँचे मंच पर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभुः वैसे-बैठ गये; लञा–के साथ; भक्त-गण-सभी भक्तगण।

अनुवाद

महाप्रभु की आज्ञा पाकर सार्वभौम भट्टाचार्य बैठ गये। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके सारे भक्त काठ के चबूतरे (पिण्डार) पर बैठे।

तार तले, तार तले करि' अनुक्रम ।

उद्यान भरि' वैसे भक्त करिते भोजन ॥ 159॥

तार तले-उनके नीचे; तार तले-उनके नीचे; करि'—इस प्रकार; अनुक्रम–क्रमिक रूप से; उद्यान भरि'–सारा उद्यान भरकर; वैसे-बैठ गये; भक्त-सारे भक्त; करिते भोजन-भोजन करने के लिए।

अनुवाद

इस तरह सारे भक्त एक-दूसरे के पीछे पंक्ति बनाकर भोजन करने के लिए बैठ गये।

'हरिदास' बलि' प्रभु डाके घने घन ।

दूरे रहि' हरिदास करे निवेदन ॥160॥

हरिदास बलि'–हरिदास को पुकार कर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; डाके–बुलाया; घने घन–बारम्बार; दूरे रहि'-दूर खड़े; हरिदास ठाकुर हरिदास ने; करे निवेदन निवेदन किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु बारम्बार "हरिदास, हरिदास" कहकर पुकार रहे थे। वे उस समय दूर खड़े थे और वहीं से वे इस तरह बोले।

भक्त-सङ्गे प्रभु करुन प्रसाद अङ्गीकार ।

ए-सङ्गे वसिते योग्य नहि मुञि छार ॥ 161॥

भक्त-सङ्गे प्रभु-चैतन्य महाप्रभु को भक्तों के साथ बैठने दो; करुन-उन्हें लेने दो; प्रसाद–प्रसाद; अङ्गीकार ग्रहण; ए-सङ्गे–इस टोली के साथ; वसिते-बैठने के लिए; योग्य-योग्य; नहि-नहीं हूँ; मुञि-मैं; छार–अत्यन्त नीच।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, "महाप्रभु ! आप भक्तों के साथ भोजन ग्रहण करें। चूँकि मैं निन्दनीय हूँ, अतएव आप लोगों के बीच में नहीं बैठ सकता।

पाछे मोरे प्रसाद गोविन्द दिबे बहिर्द्वरि ।

मन जानि' प्रभु पुनः ना बलिल ताँरे ॥ 162॥

पाछे-आखिर में; मोरे-मुझे; प्रसाद प्रसाद; गोविन्द-चैतन्य महाप्रभु का निजी सेवक गोविन्द; दिबे-देगा; बहिर्-द्वारे द्वार के बाहर; मन जानि'-मन को जानकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; पुनः–दोबारा; ना-नहीं; बलिल–बुलाया; ताँरे–उन्हें।

अनुवाद

"गोविन्द बाद में मुझे दरवाजे के बाहर प्रसाद दे जायेगा।" महाप्रभु ने उनके मन की बात जान कर फिर से नहीं पुकारा।

स्वरूप-गोसाञि, जगदानन्द, दामोदर ।

काशीश्वर, गोपीनाथ, वाणीनाथ, शङ्कर ॥ 163॥

परिवेशन करे ताहाँ एइ सात-जन ।

मध्ये मध्ये हरि-ध्वनि करे भक्त-गण ॥164॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; जगदानन्द-जगदानन्द; दामोदर-दामोदर पण्डित; काशीश्वर-काशीश्वर; गोपीनाथ, वाणीनाथ, शङ्कर-गोपीनाथ, वाणीनाथ और शंकर; परिवेशन करे–वितरण किया; ताहाँ-वहाँ; एइये; सात-जन-सात व्यक्ति; मध्ये मध्ये-बीच बीच में; हरि-ध्वनि-हरि का पावन नाम पुकारा; करे–किया; भक्त-गण-सभी भक्तों ने।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी, जगदानन्द, दामोदर पण्डित, काशीश्वर, गोपीनाथ, वाणीनाथ तथा शंकर ने प्रसाद का वितरण किया और भक्तगण बीच-बीच में हरि नाम का उच्चारण करते जा रहे थे।

पुलिन-भोजन कृष्ण पूर्वे यैछे कैल ।

सेइ लीला महाप्रभुर मने स्मृति हैल ॥165॥

पुलिन–वन में; भोजन-भोजन; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; पूर्वे-पहले; यैछे-जैसा; कैल-किया; सेइ लीला-वही लीला; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; मने-मन में; स्मृति हैल-स्मरण हो आई।

अनुवाद

जिस तरह भगवान् श्रीकृष्ण ने पहले जंगल में भोजन किया था, श्री चैतन्य महाप्रभु को वही लीला याद हो आयी।

यद्यपि प्रेमावेशे प्रभु हैला अस्थिर।

समय बुझिया प्रभु हैला किछु धीर॥ 166॥

यद्यपि–यद्यपि, प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हैला-हो गये; अस्थिर-विचलित; समय बुझिया-समय और परिस्थिति को जानकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हैला-हो गये; किछु-कुछ; धीर-धीर।

अनुवाद

श्रीकृष्ण की लीलाओं के स्मरण मात्र से श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रेमावेश हो आया, किन्तु समय तथा परिस्थिति को देखते हुए वे कुछ धीर बने रहे।

प्रभु कहे,—मोरे देह' लाफ्रा-व्यञ्जने।

पिठा-पाना, अमृत-गुटिका देह' भक्त-गणे॥ 167॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने कहा; मोरे-मुझे; देह'–दो; लाफ्रा-व्यञ्जने-साधारण तरकारी; पिठा-पाना–मिठाई, खीर; अमृत-गुटिका-अमृत-गुटिका नामक पकवान; देह'-दो; भक्त-गणे-भक्तों को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आप मुझे साधारण तरकारी, जिसे लाफरा व्यंजन कहते हैं, परोसें और सभी भक्तों को मिठाई, खीर तथा अमृत गुटिका जैसे उत्तम व्यंजन परोसें।"

तात्पर्य

लाफरा व्यंजन कई हरी तरकारियों का मिश्रण है। प्रायः इसे चावल के साथ मिलाकर गरीबों को दिया जाता है। अमृत गुटिका मोटी पूड़ी तथा औंटे दूध से बनाया गया एक व्यंजन है। इसे अमृत रसावली भी कहते हैं।

सर्वज्ञ प्रभु जानेन याँरे येइ भाय।

ताँरे ताँरे सेइ देओयाय स्वरूप-द्वाराय ॥ 168॥

सर्व-ज्ञ प्रभु सर्वज्ञाता श्री चैतन्य महाप्रभु; जानेन–जानते थे; याँरे–किसको; येइ-क्या; भाय-अच्छा लगता है; ताँरे ताँरे–प्रत्येक व्यक्ति को; सेइ-वही; देओयाय-दिलवाया; स्वरूप-द्वाराय-स्वरूप दामोदर से।

अनुवाद

चूँकि चैतन्य महाप्रभु सब कुछ जानने वाले हैं, अतएव वे जानते थे कि किस व्यक्ति को कौन-सा व्यंजन पसन्द है। इसलिए चैतन्य महाप्रभु के आदेश से हरेक भक्त को स्वरूप दामोदर के हाथों से उन व्यंजनों को भरपेट परोसा गया।

जगदानन्द बेड़ाय परिवेशन करिते ।

प्रभुर पाते भाल-द्रव्य देन आचम्बिते ॥ 169॥

जगदानन्द-जगदानन्द; बेड़ाय-गये; परिवेशन–प्रसाद वितरण; करिते-करने के लिए; प्रभुर पाते-श्री चैतन्य महाप्रभु की थाली में; भाल-द्रव्य-प्रथम श्रेणी के व्यंजन; देन–दिये; आचम्बिते-अचानक।

अनुवाद

जगदानन्द प्रसाद वितरण करने आये और उसने सहसा सर्वश्रेष्ठ व्यंजन महाप्रभु की पत्तल में परोस दिये।

यद्यपि दिले प्रभु ताँरे करेन रोष ।

बले-छले तबु देन, दिले से सन्तोष ॥ 170॥

यद्यपि यद्यपि; दिले—इस प्रकार देने से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको; करेन-किया; रोष-क्रोध; बले-छले-किसी न किसी प्रकार (कभी चतुराई से और कभी बलपूर्वक); तबु-फिर भी; देन–दिया; दिले-जब दिया; से सन्तोष-श्री चैतन्य महाप्रभु प्रसन्न हो गये।

अनुवाद

जब महाप्रभु की पत्तल में इतना अच्छा प्रसाद परोस दिया गया, तो वे बाहर से अत्यधिक क्रुद्ध प्रतीत हुए। किन्तु फिर भी जब कभी किसी न किसी बहाने से अथवा जबरदस्ती उनकी पत्तल पर व्यंजन परोस दिये जाते, तो महाप्रभु को अत्यधिक सन्तोष हुआ।

पुनरपि सेइ द्रव्य करे निरीक्षण ।

ताँर भये प्रभु किछु करेन भक्षण ॥ 171॥

पुनरपि-फिर; सेइ द्रव्य-वही पकवान; करे निरीक्षण–सावधानी से देखते; ताँर भये-जगदानन्द के भय से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; किछु-कुछ; करेन-किया; भक्षण-ग्रहण।

अनुवाद

जब इस तरह भोजन परोस दिया जाता, तो महाप्रभु कुछ समय तक उसे देखते रहते। किन्तु जगदानन्द के भय से वे अन्ततः उसमें से कुछ न कुछ खा लेते।

ना खाइले जगदानन्द करिबे उपवास ।

ताँर आगे किछु खान—मने ऐ त्रास ॥ 172 ॥

ना खाइले--यदि वे न खाते; जगदानन्द-जगदानन्द; करिबे-करेगा; उपवास-उपवास; ताँर आगे—उसके सामने; किछु खान-कुछ खाया; मने-मन में; ऐ-यही; त्रास-भय।

अनुवाद

महाप्रभु जानते थे कि यदि वे जगदानन्द द्वारा परोसा गया भोजन नहीं खायेंगे, तो वे अवश्य उपवास करेंगे। इस भय से श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसके द्वारा दिये गये प्रसाद में से कुछ अंश खा लिया।

स्वरूप-गोसाञि भाल मिष्ट-प्रसाद लञा ।

प्रभुके निवेदन करे आगे दाण्डाजा ॥ 173 ॥

स्वरूप-गोसाञि-श्री स्वरूप दामोदर; भाल-उत्तम; मिष्ट-प्रसाद-मिठाई; लञा-लेकर; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु से; निवेदन करे–निवेदन किया; आगे-उनके सामने; दाण्डाला-खड़े होकर।

अनुवाद

तब स्वरूप दामोदर गोसांई कुछ उत्तम मिठाइयाँ ले आये और महाप्रभु के सामने खड़े होकर उन्हें अर्पित किया।

एइ महा-प्रसाद अल्प करह आस्वादन ।

देख, जगन्नाथ कैछे कर्याछेन भोजन ॥ 174॥

एइ महा-प्रसाद यह महाप्रसाद; अल्प-थोड़ा; करह आस्वादन–आस्वादन करो; देख-जरा देखो; जगन्नाथ-भगवान जगन्नाथ ने; कैछे-कैसा; कर्याछेन–किया है; भोजन-भोजन।

अनुवाद

तब स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा, "इस महाप्रसाद में से थोड़ा ले लें और देखें कि भगवान जगन्नाथ ने इसे किस प्रकार ग्रहण किया।"

एत बलि' आगे किछु करे समर्पण ।

ताँर स्नेहे प्रभु किछु करेन भोजन ॥ 175॥

एत बलि'–यह कहकर; आगे-सामने; किछु-कुछ; करे समर्पण-समर्पण किया; ताँर–उनके; स्नेहे-स्नेह के कारण; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; किछु-कुछ; करेन भोजन-खाया।

अनुवाद

यह कहकर स्वरूप दामोदर गोसांई ने महाप्रभु के सामने कुछ भोजन रख दिया और महाप्रभु ने स्नेहवश उसे ग्रहण किया।

एइ मत दुइ-जन करे बार-बार ।

विचित्र एई दुई भक्तेर स्नेह-व्यवहार ॥ 176 ॥

एइ मत-इस प्रकार; दुइ-जन-दोनों ने (स्वरूप दामोदर और जगदानन्द); करे-किया; बार-बार-बार बार; विचित्र-अद्भुत; एइ–इन; दुइ-दोनों; भक्तेर-भक्तों का; स्नेह-व्यवहार-स्नेहपूर्ण व्यवहार।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर तथा जगदानन्द ने महाप्रभु को बारम्बार कुछ भोजन दिया। इस तरह उन्होंने महाप्रभु के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार किया। यह अत्यन्त असामान्य बात थी।

सार्वभौमे प्रभु वसाञाछेन वाम-पाशे ।

दुइ भक्तेर स्नेह देखि' सार्वभौम हासे ॥177॥

सार्वभौमे–सार्वभौम भट्टाचार्य को प्रभु–महाप्रभु ने; वसाञाछेन-बैठाया; वाम-पाशे-अपनी बाईं ओर; दुइ भक्तेर–दोनों भक्तों का; स्नेह-स्नेह; देखि'–देखकर; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; हासे-हँसने लगे।

अनुवाद

महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य को अपने बाईं ओर बैठा लिया। सार्वभौम ने जब स्वरूप दामोदर तथा जगदानन्द का व्यवहार देखा, तो वे हँसने लगे।

सार्वभौमे देयान प्रभु प्रसाद उत्तम ।

स्नेह करि' बार-बार करान भोजन ॥ 178॥

सार्वभौमे–सार्वभौम भट्टाचार्य को; देयान-दूसरों से दिलवाया; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रसाद-प्रसाद; उत्तम-उत्तम; स्नेह करि'–स्नेहपूर्वक; बार-बार-बारम्बार; करान–करवाया; भोजन- भोजन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य को भी उत्तम भोजन देना चाहते थे, अतएव उन्होंने परोसने वाले से बार-बार उनकी पत्तल में उत्तम भोजन परोसने को कहा।

गोपीनाथाचार्य उत्तम महा-प्रसाद आनि' ।

सार्वभौमे दिया कहे सुमधुर वाणी ॥ 179॥

गोपीनाथ-आचार्य-गोपीनाथ आचार्य; उत्तम-उत्तम; महा-प्रसाद–महाप्रसाद; आनि'–लाकर; सार्वभौमे-सार्वभौम भट्टाचार्य को; दिया–दिया; कहे-कहा; सु-मधुर-अति मधुर वाणी-शब्द।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने भी उत्तम भोजन लाकर मधुर वचन कहते हुए सार्वभौम भट्टाचार्य को दिया।

काहाँ भट्टाचार्येर पूर्व जड़-व्यवहार।

काहाँ एइ परमानन्द, करह विचार ॥180॥

काहाँ–कहाँ; भट्टाचार सार्वभौम भट्टाचार्य का; पूर्व–पिछला; जड़-व्यवहार-जड़-व्यवहार; काहाँ–कहाँ; एइ–यह; परम-आनन्द-परमानन्द; करह विचार–जरा विचार करो।

अनुवाद

भट्टाचार्य को उत्तम भोजन परोसने के बाद गोपीनाथ आचार्य ने कहा, "जरा विचार करें कि भट्टाचार्य का पूर्ववर्ती भौतिक आचरण कैसा था! जरा विचार करें कि इस समय वे किस तरह दिव्य आनन्द भोग रहे हैं।"

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य पहले स्मार्त ब्राह्मण थे—अर्थात् वे भौतिक स्तर पर वैदिक नियमों का कड़ाई से पालन करते थे। संसारी स्तर पर किसी को विश्वास नहीं होता कि प्रसाद दिव्य होता है और गोविन्द ही आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, या कि वैष्णव मुक्त जीव होता है। ये दिव्य विचार सामान्य वैदिक पण्डित की विचार-सीमा के परे होते हैं। अधिकांश वैदिक पण्डित वेदान्ती कहलाते हैं। ये तथाकथित वेदान्ती परम सत्य को निर्विशेष मानते हैं। उनका यह भी विश्वास है कि किसी विशेष जाति में उत्पन्न व्यक्ति तब तक अपनी जाति नहीं बदल सकता, जब तक वह मरकर फिर से जन्म न ले। स्मार्त ब्राह्मण इस तथ्य को भी नहीं मानते कि महाप्रसाद दिव्य होता है और भौतिक दृष्टि से अकलुषित होता है। प्रारम्भ में सार्वभौम भट्टाचार्य भौतिक स्तर पर वैदिक विधि-विधानों को मानते थे, किन्तु गोपीनाथ आचार्य ने इंगित किया कि अब वही भट्टाचार्य किस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु की अहैतुकी कृपा से बदल चुके हैं। बदल जाने के कारण ही सार्वभौम ने वैष्णवों के साथ प्रसाद ग्रहण किया। वे श्री चैतन्य महाप्रभु की बगल में बैठे थे।

सार्वभौम कहे,—आमि तार्किक कुबुद्धि।

तोमार प्रसादे मोर ए सम्पत्सिद्धि ॥181॥

सार्वभौम कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; आमि-मैं; तार्किक-तर्क करने वाला दुनियावी व्यक्ति; कु-बुद्धि-अल्प बुद्धिमान; तोमार प्रसादे-आपकी कृपा से; मोर-मेरा; ए—यह; सम्पत्-ऐश्वर्य; सिद्धि-सिद्ध हुआ।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने गोपीनाथ आचार्य को उत्तर दिया, "मैं अल्पबुद्धि तार्किक था। फिर भी आपकी कृपा से मुझे सिद्धि का यह ऐश्वर्य प्राप्त हो सका है।

महाप्रभु विना केह नाहि दयामय ।

काकेरे गरुड़ करे,—ऐछे कोन्हय ॥ 182॥

महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; विना-के बिना; केह-कोई; नाहि-नहीं है; दया-मय-इतना दयालु; काकेरे-कौए को; गरुड़-गरुड; करे–परिवर्तित किया; ऐछे-ऐसा; कोन् हय-अन्य कौन है।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने आगे कहा, "श्री चैतन्य महाप्रभु के अतिरिक्त इतना दयावान कौन हो सकता है? उन्होंने एक कौवे को गरुड़ बना दिया है। भला इतना दयावान और कौन हो सकता है?

तार्किक-शृगाल-सङ्गे भेउ-भेउ करि ।

सेइ मुखे एबे सदा कहि 'कृष्ण' 'हरि' ॥183॥

तार्किक-तार्किक; शृगाल-गीदड़; सङ्गे–के संग; भेउ-भेउ करि-भौंकते हुए; सेइ मुखे-उसी मुख से; एबे–अब; सदा-सदा; कहि-बोलता हूँ; कृष्ण-भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; हरि-हरि।

अनुवाद

"तार्किक व्यक्ति रूपी सियारों के साथ मैं भौं-भौं की गूँज करता था। अब मैं उसी मुँह से 'कृष्ण' तथा 'हरि' के पवित्र नामों का उच्चारण कर रहा हूँ।

काहाँ बहिर्मुख तार्किक-शिष्यगण-सङ्गे ।

काहाँ एइ सङ्ग-सुधा-समुद्र-तरङ्गे ॥184॥

काहाँ–जबकि; बहिर्-मुख-अभक्तगण; तार्किक तर्क करने वाले; शिष्य-गण-शिष्यगण; सङ्गे–के साथ; काहाँ-अब; एइ–यह; सङ्ग–संगति; सुधा-अमृत के; समुद्र-समुद्र की; तरङ्गे–लहरों में।

अनुवाद

"कहाँ मैं अभक्त तार्किक शिष्यों की संगति में रहता था, कहाँ अब मैं भक्तों के संग-रूपी अमृत के सागर की लहरों में निमग्न हूँ।"

तात्पर्य

जैसाकि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने बतलाया है, बहिर्मुख शब्द भौतिक सुख का भोग करने में लिप्त रहने वाले व्यक्ति का सूचक है। ऐसा व्यक्ति अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की बहिरंगा शक्ति का भोक्ता बताता है। बाह्य ऐश्वर्य द्वारा आकृष्ट होने के कारण अभक्त कृष्ण के साथ अपने घनिष्ठ सम्बन्ध को भूल जाता है। ऐसे व्यक्ति को कृष्णभावनाभावित होने का विचार पसन्द नहीं आता। श्रीमद्भागवत (7.5.30-31) में श्रील प्रह्लाद महाराज ने यही बात कही है :

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा

मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ।

अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं

पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥

न ते विदुः स्वार्थगतिम् हि विष्णुम्

दुराशया ये बहिरर्थ-मानिनः ।

अन्धा यथान्धैरुपनीयमाना-

स्तेऽपीश तंत्र्यामुरु-दाम्नि बद्धाः ॥

ऐसे भौतिकतावादी जो भौतिक देह, भौतिक जगत् तथा भौतिक भोग के प्रति अत्यधिक आसक्त रहते हैं और जो अपनी भौतिक इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकते, वे भौतिक अस्तित्व के गहनतम अंधकारमय स्थानों को प्राप्त

होते हैं। ऐसे व्यक्ति न तो स्वयं, न ही सामूहिक प्रयासों से कृष्णभावनाभावित हो पाते हैं। ऐसे लोग यह समझ ही नहीं पाते कि मानव जीवन का चरम लक्ष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु को समझना है। मानव जीवन इसी विशेष उद्देश्य के लिए मिला है और मनुष्य को सभी प्रकार की तपस्याएँ तथा व्रत करने चाहिए तथा इन्द्रियतृप्ति की लालसा से दूर रहना चाहिए। भौतिकतावादी सदैव अंधे बने रहते हैं, क्योंकि उनका मार्गदर्शन सदैव अंधे मूढ़ लोग करते हैं। भौतिकतावादी व्यक्ति सोचता है कि वह कुछ भी करने के लिए स्वतन्त्र है। वह यह नहीं जानता कि वह प्रकृति के कठोर नियमों से बँधा हुआ है, न ही वह यह जानता है कि उसे एक शरीर से दूसरे में देहान्तर करना है और इसी भौतिक जगत् में सदा सड़ना है। ऐसे मूढ़ तथा मूर्ख लोग अपने मूर्ख नेताओं की इन्द्रियतृप्ति की प्रार्थनाओं के प्रति आकृष्ट होते हैं और यह नहीं समझ पाते कि कृष्णभावनामृत क्या है? आध्यात्मिक आकाश से बाहर भौतिक जगत् है। और भौतिकतावादी मूर्ख नहीं समझ पाता कि इस भौतिक आकाश का विस्तार कितना है। तब भला वह आध्यात्मिक आकाश के बारे में क्या जान सकता है? भौतिकतावादी लोग केवल अपनी अपूर्ण इन्द्रियों पर विश्वास करते हैं और प्रामाणिक शास्त्रों से कोई शिक्षा ग्रहण नहीं करते। वैदिक संस्कृति के अनुसार मनुष्य को शास्त्रों के प्रमाणों के माध्यम से देखना होता है। शास्त्रचक्षुः–वैदिक साहित्य के माध्यम से हर वस्तु को देखना चाहिए। इस तरह भौतिक जगत् तथा आध्यात्मिक जगत् में भेद किया जा सकता है। यदि ऐसे आदेशों की उपेक्षा की जाती है, तो आध्यात्मिक जगत् के अस्तित्व के प्रति आश्वस्त नहीं हुआ जा सकता। चूँकि भौतिकतावादी लोग अपनी आध्यात्मिक पहचान भूल चुके हैं, अतएव वे इसी भौतिक जगत् को सर्वस्व मान बैठते हैं। इसीलिए वे बहिर्मुख कहलाते हैं।

प्रभु कहे,—पूर्वे सिद्ध कृष्णे तोमार प्रीति ।

तोमा-सङ्गे आमा-सबार हैल कृष्णे मति ॥185॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; पूर्वे-पहले; सिद्ध-सिद्ध; कृष्णे-कृष्णभावनामृत में; तोमार-आपका; प्रीति–कृष्ण के प्रति प्रेम; तोमा-सङ्गे–तुम्हारी संगति से; आमा-सबार-हम सबकी; हैल-हुई; कृष्णे-कृष्ण की ओर; मति–चेतना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य को कहा, "आप अपने पूर्वजन्म से कृष्णभावनामृत में रहते आ रहे हो। आप कृष्ण से इतना प्रेम करते हो कि आपकी संगति से हम लोगों में कृष्णभावना विकसित हो रही है।"

भक्त-महिमा बाड़ाइते, भक्ते सुख दिते ।

महाप्रभु विना अन्य नाहि त्रिजगते ॥ 186॥

भक्त-महिमा-भक्तों की महिमा; बाड़ाइते-बढ़ाने के लिए; भक्ते-भक्तों को; सुख दिते-सुख देने के लिए; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; विना-के बिना; अन्य-अन्य कोई; नाहि-नहीं है; त्रि-जगते–तीनों भुवनों में।

अनुवाद

इस तरह तीनों लोकों के भीतर श्री चैतन्य महाप्रभु के अतिरिक्त ऐसा कोई अन्य व्यक्ति नहीं है, जो भक्तों की महिमा को बढ़ाने की इच्छा रखता हो और उन्हें सन्तोष प्रदान करता हो।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में कपिलदेव तथा देवहूति के मध्य हुई भक्तिविषयक वार्ता देखनी चाहिए, जो श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में पाई जाती है।

तबे प्रभु प्रत्येके, सब भक्तेर नाम लला ।

पिठा-पाना देओयाइल प्रसाद करिया ॥ 187॥

तबे-उसके बाद; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; प्रत्येके-प्रत्येक; सब भक्तेर–सभी भक्तों के नाम-नाम; लञा–लेकर; पिठा-पाना–मिठाई, खीर; देओयाइल–दिया; प्रसाद–प्रसाद; करिया-बनाकर।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथजी पर चढ़ाया गया सारा पीठा-पाना (मिठाई तथा खीर) लेकर अन्य सभी भक्तों को एक एक करके बुला-बुलाकर उनमें वितरित कर दिया।

अद्वैत-नित्यानन्द वसियाछेन एक ठाञि ।

दुइ-जने क्रीड़ा-कलह लागिल तथाइ ॥188॥

अद्वैत-नित्यानन्द-अद्वैत आचार्य और नित्यानन्द प्रभु; वसियाछेन-बैठ गये; एक ठाञि-साथ साथ; दुइ-जने–ये दोनों व्यक्ति; क्रीड़ा-कलह दिखावटी झगड़ा; लागिल-करने लगे; तथाइ-वहाँ।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु पास-पास बैठ गये और जब प्रसाद बाँटा जाने लगा, तो वे एक तरह के दिखावटी झगड़े (क्रीड़ा-कलह) में लग गये।

अद्वैत कहे,—अवधूतेर सङ्गे एक पङ्क्ति।

भोजन करिलुँ, ना जानि हबे कोन्गति ॥189॥

अद्वैत कहे-अद्वैत आचार्य ने कहा; अवधूतेर सङ्गे–एक अवधूत के साथ; एक पङ्क्ति-एक पंक्ति में; भोजन करिलुँ-मैं भोजन कर रहा हूँ; ना जानि-मैं नहीं जानता; हबे-होगी; कोन्-क्या; गति–गति।

अनुवाद

पहले अद्वैत आचार्य ने कहा, "मैं एक अज्ञात अवधूत के साथ पंक्ति में बैठा हूँ और उसके साथ भोजन कर रहा हूँ; अतः मैं नहीं जानता कि मेरी क्या गति होगी?

प्रभु त' सन्यासी, उँहार नाहि अपचय ।

अन्न-दोषे सन्यासीर दोष नाहि हय ॥ 190॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; त'—निस्सन्देह; सन्यासी-संन्यासी हैं; उँहार-उनके लिए; नाहि-नहीं है; अपचय-कोई खराबी; अन्न-दोषे–भोजन के दूषित होने से; सन्यासीर-संन्यासी के लिए; दोष-दोष; नाहि-नहीं; हय–होता है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तो संन्यासी हैं। अतएव वे कोई दोष नहीं देखते। तथ्य तो यह है कि संन्यासी कहीं का भी अन्न खाने से प्रभावित नहीं होता।

"नान्न-दोषेण मस्करी"—एइ शास्त्र-प्रमाण ।

आमि त' गृहस्थ-ब्राह्मण, आमार दोष-स्थान ॥ 191॥

न अन्न-दोषेण मस्करी-दूषित भोजन लेने से एक संन्यासी पर कोई प्रभाव नहीं होता; एइ–यह; शास्त्र-प्रमाण–शास्त्रों का प्रमाण; आमि-मैं; त'–निस्सन्देह; गृहस्थ-ब्राह्मण-गृहस्थ ब्राह्मण; आमार-मेरी; दोष-दूषित; स्थान-स्थिति।

अनुवाद

"शास्त्रों के अनुसार यदि संन्यासी दूसरे के घर में भोजन करे तो इसमें कोई त्रुटि नहीं है। किन्तु गृहस्थ ब्राह्मण के लिए इस तरह भोजन करना दोषपूर्ण है।

जन्म-कुल-शीलाचार ना जानि याहार ।

तार सङ्गे एक पङ्क्ति—बड़ अनाचार ॥192॥

जन्म-जन्म; कुल-कुल; शील-चरित्र; आचार-व्यवहार; ना-नहीं; जानि-मैं जानता हूँ; याहार–जिसका; तार सङ्गे-उसके साथ; एक पङ्क्ति-एक पंक्ति में; बड़ अनाचार-एक बड़ा दोष है।

अनुवाद

"जिन लोगों का पूर्वजन्म, कुल, चरित्र तथा आचरण अज्ञात हो, उनके साथ गृहस्थों को भोजन करना उचित नहीं है।"

नित्यानन्द कहे तुमि अद्वैत-आचार्य ।

'अद्वैत-सिद्धान्ते' बाधे शुद्ध-भक्ति-कार्य ॥ 193॥

नित्यानन्द कहे नित्यानन्द प्रभु ने कहा; तुमि-आप; अद्वैत-आचार्य-अद्वैत आचार्य, अद्वैतवाद के प्रचारक हो; अद्वैत-सिद्धान्ते-उस अद्वैतवाद में; बाधे–महान् रुकावट है; शुद्ध-भक्ति-कार्य-शुद्ध भक्ति।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने तुरन्त ही अद्वैत आचार्य का खण्डन करते हुए कहा, "आप निर्विशेष अद्वैतवाद के शिक्षक हो और अद्वैतवादी निष्कर्ष प्रगतिशील शुद्ध भक्ति के पथ में बहुत बड़ा अवरोध है।

तोमार सिद्धान्त-सङ्ग करे येइ जने ।

'एक' वस्तु विना सेइ 'द्वितीय' नाहि माने ॥ 194॥

तोमार-आपके; सिद्धान्त-सङ्ग–सिद्धान्त को मानना; करे-करता है; येइ जने-जो व्यक्ति; एक-एक; वस्तु-वस्तु; विना-के बिना; सेइ-ऐसा व्यक्ति; द्वितीय दूसरी वस्तु; नाहि माने-नहीं मानता।

अनुवाद

"जो आपके निर्विशेष अद्वैतवादी दर्शन में भाग लेता है, वह एक ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं स्वीकार करता।"

तात्पर्य

निर्विशेष अद्वैतवादी इसमें विश्वास नहीं करता कि ईश्वर ही एकमात्र पूजा के लक्ष्य हैं और सारे जीव उनके नित्य दास हैं। अद्वैतवादियों के अनुसार ईश्वर तथा भक्त भौतिक स्थिति में पृथक्-पृथक् हो सकते हैं, किन्तु जब वे आध्यात्मिक रूप से स्थित होते हैं, तब उनमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। यह अद्वैत सिद्धान्त कहलाता है। अद्वैतवादी भगवद्भक्ति को भौतिक कर्म मानते हैं, अतएव वे ऐसे भक्ति-कार्यों को सकाम कर्म जैसा ही मानते हैं। यह अद्वैतवादी भूल ही भक्ति के मार्ग का सबसे बड़ा अवरोध है।

वास्तव में अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द के बीच की यह वार्ता एक प्रकार की क्रीड़ा-कलह थी, जो सारे भक्तों के लिए महान् उपदेश का कार्य करती है। श्री नित्यानन्द प्रभु यह बतलाना चाहते थे कि शुद्ध भक्त अद्वैत आचार्य, अद्वैत सिद्धान्त से सहमत नहीं हैं। भक्ति का सिद्धान्त है :

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

"विद्वान अध्यात्मवादी, जो परम सत्य को मानते हैं, वे इस अद्वैत तत्त्व को ब्रह्म, परमात्मा या भगवान् कहते हैं।" (भागवत 1.2.11)

परम ज्ञान ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्-इन सभी का ज्ञान होता है। यह सिद्धान्त अद्वैतवादियों के सिद्धान्त जैसा नहीं है। श्री अद्वैत आचार्य को आचार्य की पदवी दी गई थी, क्योंकि उन्होंने भक्ति-सम्प्रदाय का विस्तार किया था, न कि अद्वैतवाद दर्शन का। चैतन्य-चरितामृत के आरम्भ (आदि 1.3) में वर्णित अद्वैत सिद्धान्त का सच्चा निष्कर्ष अद्वैतवादियों के दर्शन जैसा नहीं है। यहाँ अद्वैत सिद्धान्त का अर्थ है, अद्वय ज्ञान अर्थात् विविधता में एकता। वास्तव में श्रील नित्यानन्द प्रभु दोस्ताना क्रीड़ा-कलह के माध्यम से श्रील अद्वैत आचार्य की प्रशंसा कर रहे थे। वे भागवत के वदन्ति तत्तत्त्वविद के अनुसार वैष्णव सिद्धान्त प्रस्तुत कर रहे थे। छान्दोग्य उपनिषद के एक मन्त्र एकमेवाद्वितीयम् का भी यही निष्कर्ष है।

एक भक्त जानता है कि विविधता में एकत्व रहता है। शास्त्रों के मन्त्रों से न तो निर्विशेषवादियों के अद्वैत सिद्धान्त की पुष्टि होती है और न वैष्णव दर्शन विविधता से विहीन निर्विशेषवाद को मानता है। ब्रह्म महानतम हैं, जिनमें सारी वस्तुएँ निहित हैं और यही एकत्व है। जैसाकि कृष्ण ने भगवद्गीता (7.7) में कहा है-मत्तः परतरं नान्यत् कृष्ण से बढ़कर और कोई नहीं है। वे मूल तत्त्व हैं, क्योंकि हर वस्तु उन्हीं से उद्भूत है। इस तरह वे अन्य सारी वस्तुओं से एक साथ अभिन्न और भिन्न हैं। भगवान् सदैव नाना प्रकार के आध्यात्मिक कार्यों में लगे रहते हैं, लेकिन अद्वैतवादी आध्यात्मिक विविधता को समझ नहीं सकता। निष्कर्ष यह निकलता है कि यद्यपि शक्तिमान और शक्ति एक ही हैं, तथापि शक्तिमान की शक्ति में विविधताएँ होती हैं। इन विविधताओं में अपने व्यक्तिगत स्वरूप के विभिन्न अवयवों के बीच, समान वर्ग के प्रकारों के बीच तथा विभिन्न वर्गों के प्रकारों के बीच भेद होता है। दूसरे शब्दों में, विभिन्न श्रेणियों में सदा विविधता होगी जिन्हें ज्ञान, ज्ञाता तथा ज्ञेय कहा जाता है। ज्ञान, ज्ञाता तथा ज्ञेय का शाश्वत अस्तित्व है। इसी कारण सभी भक्त भगवान् के रूप, नाम, गुण, लीला तथा परिकर के सनातन अस्तित्व के विषय में जानते हैं। भक्तगण कभी भी अद्वैतवादी के एकत्व-प्रचार से सहमत नहीं होते। ज्ञान, ज्ञाता तथा ज्ञेय की धारणा में दृढ़ विश्वास के बिना न तो आध्यात्मिक विविधता को समझा जा सकता है, न ही आध्यात्मिक विविधता के दिव्य आनन्द का आस्वादन किया जा सकता है।

अद्वैतवाद का दर्शन बौद्ध दर्शन के शून्यवाद का दूसरा रूप है। श्री अद्वैत आचार्य से क्रीड़ा-कलह करते हुए श्री नित्यानन्द प्रभु इस प्रकार के अद्वैत दर्शन का खण्डन कर रहे थे। वैष्णव जन निश्चित रूप से भगवान् कृष्ण को आखरी एवं सर्वोपरि "एक" के रूप में स्वीकार करते हैं और जो भी कृष्ण से रहित है, उसे माया कहते हैं अर्थात् वह जिसका अस्तित्व ही नहीं है। बहिरंगा माया दो रूपों में प्रदर्शित होती है- जीवमाया तथा गुण माया। भौतिक जगत् में प्रकृति तथा प्रधान होते हैं। किन्तु जब कोई कृष्णभावनाभावित हो जाता है, तो भौतिक तथा आध्यात्मिक विविधताओं में भेद नष्ट हो जाता है। प्रह्लाद महाराज जैसा महान् भक्त सारी वस्तुओं को एक–कृष्ण-मानता है। जैसाकि श्रीमद्भागवत (7.4.37) में कहा गया है-कृष्ण-ग्रह-गृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् । जो कृष्णभावनाभावित होते हैं, वे भौतिक तथा आध्यात्मिक वस्तुओं में अन्तर नहीं करते। वे हर वस्तु को कृष्ण से सम्बन्धित अर्थात् आध्यात्मिक मानते हैं। अद्वय ज्ञान दर्शन द्वारा श्रील अद्वैत आचार्य ने शुद्ध भक्ति की महिमा का गुणगान किया है। श्रील नित्यानन्द प्रभु व्यंग्यपूर्वक निर्विशेष अद्वैतवादियों के दर्शन की भर्त्सना करते हैं और श्री अद्वैत प्रभु के यथार्थ अद्वैत दर्शन की प्रशंसा करते हैं।

हेन तोमार सङ्गे मोर एकत्रे भोजन ।

ना जानि, तोमार सङ्गे कैछे हय मन ॥195॥

हेन-इस प्रकार; तोमार-आपकी; सङ्गे-संगति में; मोर-मेरा; एकत्रे-इकट्ठे; भोजन-भोजन करना; ना जानि–मैं नहीं जानता; तोमार सङ्गे-आपकी संगति से; कैछे-कैसे; हय मन-मेरा मन बदल जायेगा।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने आगे कहा, "आप इस तरह के अद्वैतवादी हो! और मैं अब आपकी बगल में बैठकर खा रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि इससे मेरा मन किस तरह प्रभावित होगा?"

तात्पर्य

सङ्गात् सञ्जायते काम: (भगवद्गीता 2.62)। मनुष्य की चेतना समाज तथा संगति के अनुसार विकसित होती है। जैसाकि श्रील नित्यानन्द प्रभु स्वीकार करते हैं–भक्त को उन लोगों की संगति करते समय अत्यन्त सावधान रहना चाहिए, जो भक्त नहीं हैं। जब किसी गृहस्थ भक्त ने महाप्रभु से पूछा कि भक्त का व्यवहार कैसा होना चाहिए, तो चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त उत्तर दिया :

असत्-सङ्ग-त्याग,—एइ वैष्णव-आचार।

'स्त्री-सङ्गी' एक असाधु, 'कृष्णभक्त' आर॥

(चैतन्य-चरितामृत, मध्य 22.87)

वैष्णव या भक्त को अभक्तों से घनिष्ठता का त्याग कर देना आवश्यक है। श्रील रूप गोस्वामी ने उपदेशामृत में घनिष्ठता के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया है :

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।

भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्॥

भुङ्क्ते भोजयते शब्दों से सूचित होता है कि मनुष्य को भक्तों के साथ भोजन करना चाहिए। उसे अभक्तों द्वारा दिया गया भोजन नहीं करना चाहिए। और उसे सावधानीपूर्वक टालना चाहिए। भक्त को अभक्त द्वारा दिये गये भोजन को स्वीकार ही नहीं करना चाहिए, विशेषतया ऐसा भोजन जो होटलों में बना हो या हवाई जहाज में परोसा जाता है।

इस सम्बन्ध में श्रील नित्यानन्द प्रभु का इशारा इस ओर है कि मायावादियों तथा सहजिया वैष्णवों जैसे प्रच्छन्न मायावादी लोग, जो भौतिकतावाद से प्रभावित हैं, उनके भोजन करने से बचना चाहिए।

एइ-मत दुइ-जने करे बलाबलि ।

व्याज-स्तुति करे दुँहे, येन गालागालि ॥196॥

एइ-मत-इस प्रकार; दुइ-जने दोनों व्यक्ति; करे-करते रहे; बलाबलि-दोष-प्रतिदोष लगाना; व्याज-स्तुति–दोष लगाने के बहाने प्रशंसा करना; करे–किया; दुँहे–इन दोनों ने; येन-जैसे; गालागालि-गालियों का आदान-प्रदान।

अनुवाद

इस तरह दोनों बातें करते और एक-दूसरे की प्रशंसा करते रहे, यद्यपि उनकी प्रशंसा नकारात्मक जान पड़ती थी, क्योंकि ऐसा लग रहा था मानो वे एक दूसरे को गाली दे रहे हों।

तबे प्रभु सर्व-वैष्णवेर नाम लञा ।

महा-प्रसाद देन महा-अमृत सिञ्चिया ॥ 197॥

तबे-तत्पश्चात्; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सर्व-वैष्णवेर-सारे वैष्णवों के; नाम-नाम; लञा–लेकर; महा-प्रसाद–महाप्रसाद; देन–दिया; महा-अमृत-महा-अमृत; सिञ्चिया–छिड़ककर।

अनुवाद

तत्पश्चात् सारे वैष्णवों का नाम ले-लेकर बुलाकर महाप्रभु ने महाप्रसाद वितरित किया, मानो वे अमृत छिड़क रहे हों। उस समय अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु की क्रीड़ा-कलह अधिकाधिक रोचक लगने लगी।

भोजन करि' उठे सबे हरि-ध्वनि करि' ।

हरि-ध्वनि उठिल सब स्वर्ग-मर्त्य भरि' ॥ 198॥

भोजन करि'–भोजन करने के बाद; उठे-उठ खड़े हुए; सबे-सभी; हरि-ध्वनि-हरिनाम की गुंज; करि'-करके; हरि-ध्वनि-हरिनाम की गूंज; उठिल-उठी; सब-सब; स्वर्ग-मर्त्य-उच्च और निम्न लोक; भरि'–भर गये।

अनुवाद

भोजन करने के बाद सारे वैष्णव "हरि" "हरि" की ध्वनि करते हुए उठ खड़े हुए। यह हरि-ध्वनि सभी उच्चलोकों तथा निम्नलोकों में भर गई।

तबे महाप्रभु सब निज-भक्त-गणे ।

सबाकारे श्री-हस्ते दिला माल्य-चन्दने ॥199॥

तबे-तब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सब-सब; निज-भक्त-गणे–निजी भक्तों को; सबाकारे—उन सबको; श्री-हस्ते-अपने हाथ से; दिला-दी; माल्य-चन्दने-पुष्प-मालाएं तथा चन्दन का लेप।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने सारे भक्त संगियों को अपने हाथ से फूल-मालाएँ तथा चन्दन-लेप प्रदान किया।

तबे परिवेशक स्वरूपादि सात जन ।

गृहेर भितरे कैल प्रसाद भोजन ॥200॥

तबे-तब; परिवेशक–प्रसाद बाँटने वाले; स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर आदि; सात जन-सात भक्त; गृहेर भितरे–कमरे के भीतर; कैल-किया; प्रसाद भोजन-प्रसाद ग्रहण।

अनुवाद

प्रसाद वितरण में लगे स्वरूप दामोदर आदि सात भक्तों ने इसके बाद कमरे के भीतर भोजन किया।

प्रभुर अवशेष गोविन्द राखिल धरिया ।

सेइ अन्न हरिदासे किछु दिल लञा ॥201॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; अवशेष—उच्छिष्ट; गोविन्द–गोविन्द ने; राखिल-बचा लिया; धरिया-रखकर; सेइ अन्न-वह प्रसाद; हरिदासे-हरिदास ठाकुर को; किछु-कुछ; दिल-दिया; लञा–लाकर।

अनुवाद

गोविन्द ने महाप्रभु द्वारा छोड़े गये कुछ शेष प्रसाद को सावधानी से रख लिया और बाद में इसमें से कुछ अंश हरिदास ठाकुर को लाकर दे दिया।

भक्त-गण गोविन्द-पाश किछु मागि' निल ।

सेइ प्रसादान्न गोविन्द आपनि पाइल ॥202॥

भक्त-गण-अन्य सभी भक्तों ने; गोविन्द-पाश-गोविन्द से; किछ–थोड़ा; मागि'-माँगकर; निल-लिया; सेइ-वह; प्रसाद-अन्न-बचा हुआ भोजन; गोविन्द-गोविन्द ने; आपनि–स्वयं भी; पाइल-खाया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के उच्छिष्ट प्रसाद को बाद में उन भक्तों में वितरित किया गया, जिन्होंने याचना की और फिर जो कुछ बचा उसे स्वयं गोविन्द ने खाया।

स्वतन्त्र ईश्वर प्रभु करे नाना खेला ।

'धोया-पाखला' नाम कैल एइ एक लीला ॥203॥

स्वतन्त्र ईश्वर-स्वतंत्र परम भगवान्; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करे-की; नाना-अनेक; खेला–लीलाएँ; धोया-पाखला-धोना और साफ करना; नाम-नामक; कैल की; एइ–यह; एक-एक; लीला-लीला।

अनुवाद

"परम स्वतन्त्र भगवान् नाना प्रकार की लीलाएँ करते हैं। गुण्डिचा मन्दिर की धुलाई और सफाई उनमें से केवल एक है।

आर दिने जगन्नाथेर 'नेत्रोत्सव' नाम ।

महोत्सव हैल भक्तेर प्राण-समान ॥204॥

आर दिने-अगले दिन; जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ का; नेत्र-उत्सव–नेत्र दर्शन उत्सव; नाम-नामक; महा-उत्सव–महोत्सव; हैल–किया; भक्तेर-भक्तों के प्राण-समान-प्राण समान।

अनुवाद

अगले दिन नेत्रोत्सव मनाया गया। यह महोत्सव भक्तों के प्राणों के समान था।

तात्पर्य

भगवान् जगन्नाथ के अभिषेक उत्सव के बाद, रथयात्रा से एक पखवाड़ा पहले के दिनों में भगवान जगन्नाथ के शरीर को नहलाने के बाद फिर से रंगने की आवश्यकता पड़ती है। यह अंग-राग कहलाता है। नवयौवन के दिन प्रात:काल बड़ी ही सजधज के साथ नेत्रोत्सव मनाया जाता है, जो भक्तों को प्राणतुल्य प्रिय है।

पक्ष-दिन दु:खी लोक प्रभुर अदर्शने ।

दर्शन करिया लोक सुख पाइल मने ॥205॥

पक्ष-दिन-एक पखवाड़े तक; दु:खी-दु:खी; लोक-भक्त; प्रभुर-भगवान जगन्नाथ के; अदर्शने-दर्शन के बिना रहे; दर्शन करिया-दर्शन करके; लोक-सभी भक्तों ने; सुख-सुख; पाइल-पाया; मने-मन में।

अनुवाद

एक पखवाड़े तक सारे लोग भगवान जगन्नाथ का दर्शन न पाने से दु:खी थे। किन्तु इस उत्सव में भगवान् का दर्शन करके भक्तगण परम प्रसन्न थे।

महाप्रभु सुखे लञा सब भक्त-गण ।

जगन्नाथ-दरशने करिला गमन ॥206॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सुखे-बड़े आनन्दपूर्वक; लञा–लेकर; सब-सारे; भक्त-गण-भक्तगण को; जगन्नाथ-दरशने-भगवान जगन्नाथ के दर्शन के लिए; करिला गमन–चले गये।

अनुवाद

इस अवसर पर सारे भक्तों को अपने साथ लेकर महाप्रभु ने आनन्दपूर्वक मन्दिर में भगवान् का दर्शन किया।

आगे काशीश्वर याय लोक निवारिया ।

पाछे गोविन्द याय जल-करङ्ग लञा ॥ 207॥

आगे-सामने; काशीश्वर-काशीश्वर; याय-गया; लोक-लोगों की भीड़; निवारिया-रोककर; पाछे-पीछे; गोविन्द-गोविन्द; याय-गया; जल-पानी का; करङ्ग-कमंडलु; लञा-लेकर।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु मन्दिर में दर्शन करने गये, तो काशीश्वर उनके आगे-आगे चलकर भीड़ को रोक रहा था और पीछे-पीछे गोविन्द था, जो जल से भरा संन्यासी का कमण्डलु लिए हुए था।

तात्पर्य

करंग एक प्रकार का जलपात्र है, जिसे मायावादी संन्यासी तथा सामान्यतः अन्य सभी संन्यासी अपने साथ लिए रहते हैं।

प्रभुर आगे पुरी, भारती, दुँहार गमन ।

स्वरूप, अद्वैत,— दुँहेर पार्श्वै दुइ-जन ॥208॥

प्रभुर आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने; पुरी-परमानन्द पुरी; भारती–ब्रह्मानन्द भारती; दुँहार गमन-दोनों गये; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; अद्वैत-श्री अद्वैत आचार्य; दुँहेर-दोनों की; पार्श्वे दोनों ओर; दुइ-जन-दोनों व्यक्ति।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु मन्दिर की ओर जा रहे थे, तो परमानन्द पुरी तथा ब्रह्मानन्द भारती उनके आगे-आगे चल रहे थे और स्वरूप दामोदर तथा अद्वैत आचार्य उनके अगल-बगल चल रहे थे।

पाछे पाछे चलि' याय आर भक्त-गण ।

उत्कण्ठाते गेला सब जगन्नाथ-भवन ॥ 209॥

पाछे पाछे-पीछे-पीछे; चलि' याय-चले गये; आर-अन्य; भक्त-गण-भक्तगण; उत्कण्ठाते-बड़ी उत्सुकता के साथ; गेला-गये; सब-सभी; जगन्नाथ-भवन-भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर में।

अनुवाद

अन्य सारे भक्त परम उत्सुकता के साथ महाप्रभु के पीछे-पीछे जगन्नाथजी के मन्दिर में गये।

दर्शन-लोभेते करि' मर्यादा लङ्घन ।

भोग-मण्डपे यात्रा करे श्री-मुख दर्शन ॥210॥

दर्शन-लोभेते-दर्शन करने की उत्सुकता में; करि'-करके; मर्यादा लङ्घन-मर्यादा का उल्लंघन करके; भोग-मण्डपे–भोग लगाने के कमरे में; ग्राजा-जाकर; करे-किया; श्री-मुख दर्शन–कमल मुख का दर्शन।

अनुवाद

उन सबने भगवान् का दर्शन करने की परम उत्सुकता के कारण विधि-विधानों की उपेक्षा कर दी और भगवान् के मुख का दर्शन करने के लिए ही वे सभी भोग-मन्दिर में गये।

तात्पर्य

अर्चाविग्रह-पूजा के अनेक विधान हैं। उदाहरणार्थ, किसी को उस कमरे में नहीं घुसने दिया जाता, जहाँ भगवान् जगन्नाथ को भोजन अर्पित किया जाता है। किन्तु यहाँ पर भगवान् को पन्द्रह दिनों से न देखने के कारण उत्सुकतावश सारे लोगों ने विधानों का उल्लंघन कर दिया और वे कमरे के भीतर घुस गये।

तृषार्त प्रभुर नेत्र—भ्रमर-युगल ।

गाढ़ तृष्णाय पिये कृष्णेर वदन-कमल ॥211॥

तृषा-आर्त-प्यासे; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; नेत्र-नेत्र; भ्रमर-मुगल-दो भ्रमरों की भाँति; गाढ़-गहरी; तृष्णाय-प्यास में; पिये–पिया; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; वदन-कमल-कमल मुख।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् का दर्शन करने के लिए अत्यन्त प्यासे थे, अतः उनके दोनों नेत्र उन दो भौरों के तुल्य बन गये, जो साक्षात् कृष्णस्वरूप भगवान् जगन्नाथ के कमलवत् नेत्रों के मधु का पान कर रहे थे।

प्रफुल्ल-कमल जिनि' नयन-युगल ।

नीलमणि-दर्पण-कान्ति गण्ड झलमल ॥ 212॥

प्रफुल्ल-कमल-खिले हुए कमल पुष्प; जिनि'–जीतकर; नयन-युगल-दोनों नेत्र; नीलमणि-नील मणि; दर्पण-दर्पण की; कान्ति–चमक; गण्ड-गर्दन; झलमल-चमकदार।

अनुवाद

भगवान जगन्नाथ की आँखें प्रफुल्लित कमलों के सौन्दर्य को जीतने वाली और उनकी गर्दन नीलमणि से बने दर्पण की तरह कान्तियुक्त थी।

तात्पर्य

सामान्यतया श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथजी का दर्शन दूर से, गरुड़-स्तम्भ के पीछे खड़े होकर किया करते थे। किन्तु पन्द्रह दिनों से भगवान् का दर्शन न पा सकने के कारण महाप्रभु को अत्यधिक विरह सता रहा था। अतएव चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त उत्सुकतावश सभा-भवन को पार करते हुए वे भोग-कक्ष में पहुँचे, जिससे भगवान जगन्नाथ का मुख देख सकें। श्लोक 210 में इस काम को मर्यादा-लंघन कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि किसी को श्रेष्ठजन के बहुत निकट नहीं जाना चाहिए। भगवान् के अर्चाविग्रह तथा गुरु को दूर से ही देखना चाहिए। इसे मर्यादा कहते हैं। अन्यथा जैसा कहा जाता है, अधिक जान-पहचान से सम्मान कम होता है। कभी-कभी अर्चाविग्रह या गुरु के अत्यधिक निकट जाने से नये भक्त का पतन होता है। अतएव अर्चाविग्रह तथा गुरु के निजी सेवकों को सावधान रहना चाहिए, नहीं तो कहीं ऐसा न हो कि असावधानीवश वे अपना कर्तव्य भूल जाएँ।

श्री चैतन्य महाप्रभु की आँखों की उपमा प्यासे भौरों से दी गई है और श्री जगन्नाथ के नेत्रों की उपमा खिले हुए कमल के फूलों से। लेखक ने इन उपमाओं का प्रयोग श्री चैतन्य महाप्रभु का वह वर्णन करने के लिए किया है, जब वे जगन्नाथ के प्रेम में निमग्न थे।

बान्धुलीर फुल जिनि' अधर सुरङ्ग ।

ईषत् हसित कान्ति–अमृत-तरङ्ग ॥ 213॥

बान्धुलीर फुल–बांधुली नाम का लाल पुष्प; जिनि'–जीतकर; अधर-थोड़ी; सु-रङ्ग–पाण्डु रंग; ईषत्-हल्का; हसित-मुस्कुराकर; कान्ति–चमक; अमृत-अमृत की; तरङ्ग-लहरें।

अनुवाद

भगवान् की ठुड्डी लाल रंग से रंगी थी, जो बान्धुली फूल की शोभा को मात करने वाली थी। इससे उनके मन्द हास की सुन्दरता बढ़ गई, जो अमृत की चमकीली तरंगों के समान थी।

श्री-मुख-सुन्दर-कान्ति बाढ़े क्षणे क्षणे ।

कोटि-भक्त-नेत्र-भृङ्ग करे मधु-पाने ॥ 214॥

श्री-मुख-उनके सुन्दर मुख की; सुन्दर-कान्ति–सुन्दर कान्ति; बाढ़े-बढ़ गई; क्षणे क्षणे-प्रतिक्षण; कोटि-भक्त-लाखों भक्तों के; नेत्र-भृङ्ग-भौंरो जैसे नेत्र; करे-करने लगे; मधु-पाने-मधुपान में।

अनुवाद

उनके सुन्दर मुख की कान्ति प्रतिक्षण बढ़ती जा रही थी और करोड़ों भक्तों के नेत्र भौरों के तुल्य उसका मधुपान कर रहे थे।

यत पिये तत तृष्णा बाढ़े निरन्तर ।

मुखाम्बुज छाड़ि' नेत्र ना याय अन्तर ॥215॥

यत–जितना; पिये-वे पीते; तत-उतनी; तृष्णा–प्यास; बाढ़े-बढ़ती गई; निरन्तर–निरन्तर; मुख-अम्बुज-कमलमुख; छाड़ि'–छोड़कर; नेत्र-नेत्र; ना-नहीं; याय-गये; अन्तर-अलग।

अनुवाद

ज्यों-ज्यों उनके नेत्र भगवान् के कमल-मुख का अमृततुल्य मधु पी रहे थे, त्यों-त्यों उनकी प्यास बढ़ती जा रही थी। इस तरह उनकी आँखें उन्हें छोड़ नहीं पा रही थीं।

तात्पर्य

लघु भागवतामृत (1.5.538) में श्रील रूप गोस्वामी ने भगवान् के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया है :

असमानोर्ध्वमाधुर्य तरङ्गामृतवारिधिः।

जङ्गमस्थावरोल्लासिरूपो गोपेन्द्रनन्दनः ॥

“महाराज नन्द के पुत्र का सौन्दर्य अद्वितीय है। उनके सौन्दर्य से बढ़कर कुछ भी नहीं है, न ही उसकी बराबरी कोई कर सकता है। उनका सौन्दर्य अमृत-सागर में तरंगों के तुल्य है। यह सौन्दर्य जड़ तथा चेतन को समान रूप से आकृष्ट करने वाला है।”

इसी तरह तंत्र-शास्त्र में भगवान् के सौन्दर्य का अन्य वर्णन प्राप्त होता है :

कन्दर्पकोट्यर्बुदरूपशोभ

नीराज्यपादाब्जनखाञ्चलस्य ।

कुत्राप्यदृष्टश्रुतरम्यकान्ते-

र्ध्यानं परं नन्दसुतस्य वक्ष्ये ॥

“मैं नन्द महाराज के पुत्र श्रीकृष्ण पर परम ध्यान का वर्णन करूँगा। उनके चरणकमलों के अँगूठों के सिरों से करोड़ों कामदेवों के शरीरों का सौन्दर्य प्रतिबिम्बित होता है और उनके शरीर जैसी कान्ति न तो कहीं देखी गई है और न सुनी गई है।”

इस सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत (10.29.14) को भी देखना चाहिए।

एइ-मत महाप्रभु लञा भक्त-गण।

मध्याह्न पर्यन्त कैल श्री-मुख दरशन ॥ 216 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; लञा-लेकर; भक्त-गण-अपने पार्षदों को; मध्याह्न पर्यन्त–दोपहर तक; कैल–किया; श्री-मुख दरशन-भगवान् जगन्नाथ के कमल मुख का दर्शन।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों ने जगन्नाथजी के मुख का दर्शन करके दिव्य आनन्द प्राप्त किया।ऐसा दोपहर तक चलता रहा।

स्वेद, कम्प, अश्रु-जल वहे सर्व-क्षण ।

दर्शनेर लोभे प्रभु करे संवरण ॥ 217॥

स्वेद-पसीना; कम्प-कँपन; अश्रु-जल-अश्रु; वहे-बहने लगे; सर्व-क्षण-सदा; दर्शनेर-दर्शन के; लोभे-लोभ से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करे-की; संवरण-रोका।

अनुवाद

हमेशा की तरह चैतन्य महाप्रभु के शरीर में दिव्य आनन्द के लक्षण प्रकट हो आये। उन्हें पसीना हो आया और वे काँपने लगे। उनके नेत्रों से लगातार अश्रु की धारा बहने लगी। किन्तु महाप्रभु ने इन आँसुओं को रोका, जिससे भगवान् का मुख देखने में बाधा न पहुँचे।

मध्ये मध्ये भोग लागे, मध्ये दरशन ।

भोगेर समये प्रभु करेन कीर्तन ॥ 218॥

मध्ये मध्ये-बीच-बीच में; भोग लागे-भोग लगता था; मध्ये—कभी-कभी; दरशन-दर्शन; भोगेर समये-भोग लगाने के समय; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन कीर्तन-कीर्तन करते थे।

अनुवाद

जब-जब भोग लगाया जाता, केवल तब ही भगवान जगन्नाथ का मुख-दर्शन करने में बाधा पहुँचती थी। इसके बाद वे पुनः उनका मुख देखने लगते। जब भगवान् को भोग अर्पित किया जाता, तो श्री चैतन्य महाप्रभु कीर्तन करने लगते।

दर्शन-आनन्दे प्रभु सब पासरिला ।

भक्त-गण मध्याह्न करिते प्रभुरे लञा गेला ॥219॥

दर्शन-आनन्दे-भगवान् का मुख देखने की खुशी के कारण; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः सब-सब कुछ; पासरिला-भूल गये; भक्त-गण-भक्तगण; मध्याह्न दोपहर का भोजन; करिते-करने के लिए; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; लञा गेला-ले गये।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ के मुख का दर्शन करके परम आनन्द का अनुभव करने से श्री चैतन्य महाप्रभु सब कुछ भूल गये। किन्तु भक्तगण उन्हें दोपहर के समय भोजन कराने ले गये।

प्रातः काले रथ-यात्रा हबेक जानिया ।

सेवक लागाय भोग द्विगुण करिया ॥ 220॥

प्रातः काले-सुबह के समय; रथ-यात्रा-रथयात्रा उत्सव; हबेक-होगा; जानिया-यह जानकर; सेवक-भगवान् के पुजारियों ने; लागाय-लगाया; भोग-भोग; द्वि-गुण करिया-दुगना करके।

अनुवाद

यह जानते हुए कि रथयात्रा प्रातःकाल शुरू होगी, जगन्नाथजी के सारे सेवकों ने चढ़ाये जाने वाले भोजन की मात्रा दुगुनी कर दी।

गुण्डिचा-मार्जन-लीला सङ्क्षेपे कहिल ।

याहा देखि' शुनि' पापीर कृष्ण-भक्ति हैल ॥ 221॥

गुण्डिचा-मार्जन-लीला-गुण्डीचा मन्दिर साफ करने की लीला का; सङ्क्षेपे कहिल-मैंने संक्षेप में वर्णन किया; याहा देखि' शुनि'-जिसे देखकर और सुनकर; पापीर-पापी लोगों की; कृष्ण-भक्ति हैल–कृष्ण चेतना जाग उठी।

अनुवाद

मैंने गुण्डिचा मन्दिर के धोने और साफ करने की महाप्रभु की लीला का संक्षिप्त वर्णन किया है। इन लीलाओं को देखकर अथवा सुनकर पापी व्यक्तियों में भी कृष्ण-भक्ति जाग्रत हो सकती है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 222॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों पर; यार-जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रंथ; कहे-वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए और सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उन्हीं के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के बारहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें गुण्डिचा मन्दिर की धुलाई तथा सफाई का वर्णन हुआ है।

रथयात्रा के समय महाप्रभु का भावमय नृत्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपनी पुस्तक अमृत-प्रवाह-भाष्य में इस अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है : प्रात:काल स्नान करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने अर्चाविग्रहों (जगन्नाथ, बलदेव तथा सुभद्रा) को उनके तीन रथों पर विराजमान होते देखा। यह उत्सव पाण्डु-विजय कहलाता है। इस अवसर पर राजा प्रतापरुद्र ने सुनहरी मूठ वाली एक झाड़ ली और मार्ग साफ करना शुरू कर दिया। भगवान जगन्नाथ ने लक्ष्मीदेवी से अनुमति ली और गुण्डिचा मन्दिर जाने के लिए वे रथ पर चढ़कर रवाना हो गये। मन्दिर तक का मार्ग चौड़े बालुकामय समुद्री तट के किनारे से होकर जाता था और मार्ग के दोनों ओर रिहायशी मकान तथा बगीचे थे। इस मार्ग पर गौड़ कहे जाने वाले सेवकों ने रथों को खींचना शुरू किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी संकीर्तन-टोली के सात विभाग कर दिये। प्रत्येक विभाग के पास दो मृदंग थे—इस तरह कुल चौदह मृदंग हो गये। कीर्तन करते समय महाप्रभु में दिव्य भाव के अनेक लक्षण प्रकट हुए और जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यन्त आनन्दपूर्वक अपनी-अपनी अनुभूतियों का विनिमय किया। जब तीनों रथ बलगण्डि नामक स्थान पर पहुँच गये, तो भक्तों ने अर्चाविग्रहों को साधारण भोजन अर्पित किया। इस अवसर पर श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों ने नाचने के बाद पास के उद्यान में थोड़ा विश्राम किया।

स जीयाकृष्ण-चैतन्य: श्री-रथाग्रे ननर्त य: ।

येनासीजगतां चित्रं जगन्नाथोऽपि विस्मित: ॥ 1॥

स:-वे; जीयात्-दीर्घायु हों; कृष्ण-चैतन्य:-श्री चैतन्य महाप्रभु; श्री-रथ-अग्रे:-श्री जगन्नाथ के रथ के आगे; ननर्त—जिन्होंने नृत्य किया; य:-जिनसे; येन-हुआ; आसीत्-जो; जगताम्-सारे जगत् को; चित्रम्-आश्चर्य; जगन्नाथ:-भगवान् जगन्नाथ; अपि-भी; विस्मित:चकित हुए।

अनुवाद

श्री जगन्नाथ के रथ के समक्ष नृत्य वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य की जय हो! उनके नृत्य को देखकर न केवल सारा ब्रह्माण्ड चकित था, अपितु स्वयं भगवान जगन्नाथ भी अत्यधिक चकित हो गये।

जय जय श्री कृष्ण-चैतन्य नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की।

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य तथा प्रभु नित्यानन्द की जय हो! अद्वैतचन्द्र की जय हो! चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

जय श्रोता-गण, शुन, करि' एक मन ।

रथ-यात्राय नृत्य प्रभुर परम मोहन ॥ 3 ॥

जय-जय हो; श्रोता-गण-श्रोतागण की; शुन-कृपया सुनो; करि'-करके; एक मन-मन को सावधान; रथ-यात्राय-रथयात्रा उत्सव में; नृत्य-नृत्य; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; परम-अत्यन्त; मोहन-आकर्षक ।

अनुवाद

श्री चैतन्य-चरितामृत के श्रोताओं की जय हो! अब कृपा करके रथयात्रा उत्सव के समय श्री चैतन्य महाप्रभु के नृत्य का विवरण सुनें। उनका नृत्य अत्यन्त मनोहारी है। कृपा करके इसे ध्यानपूर्वक सुनें।

आर दिन महाप्रभु हञा सावधान ।

रात्रे उठि' गण-सङ्गे कैल प्रातः-स्नान ॥4॥

आर दिन-अगले दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हञा–होकर; सावधान-सावधान; रात्रे उठि'–रात को उठकर; गण-सङ्गे–निजी भक्तों के साथ; कैल-लिया; प्रातः-स्नान-प्रातः स्नान।

अनुवाद

अगले दिन श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके निजी संगी अँधेरे में ही जग गये और उन्होंने ध्यानपूर्वक प्रातःकालीन स्नान किया।

पाण्डु-विजय देखिबारे करिल गमन ।

जगन्नाथ यात्रा कैलछाड़ि' सिंहासन ॥5॥

पाण्डु-विजय-पांडु विजय नामक उत्सव; देखिबारे-देखने के लिए; करिल-किया; गमन-गमन; जगन्नाथ–भगवान जगन्नाथ; यात्रा–यात्रा; कैल-की; छाड़ि'-छोड़कर; सिंहासन-सिंहासन को।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने संगियों समेत पाण्डुविजय उत्सव देखने गये। इस उत्सव में भगवान जगन्नाथ अपना सिंहासन छोड़कर रथ पर चढ़ते हैं।

आपनि प्रतापरुद्र लञा पात्र-गण ।

महाप्रभुर गणे कराय विजय-दर्शन ॥ 6॥

आपनि-स्वयं; प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र ने; लञा-अपने साथ लेकर; पात्र-गण-अपने साथियों को; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; गणे-साथियों को; कराय-कराया; विजय-दर्शन-विजय दर्शन उत्सव का दर्शन।

अनुवाद

राजा प्रतापरुद्र तथा उनके संगियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त संगियों को पाण्डुविजय उत्सव देखने की अनुमति प्रदान की।

अद्वैत, निताइ आदि सङ्गे भक्तगण ।

सुखे महाप्रभु देखे ईश्वर-गमन ॥7॥

अद्वैत-अद्वैत आचार्य; निताइ–नित्यानन्द प्रभु; आदि-आदि; सङ्गे–के साथ; भक्त-गण-भक्तगण; सुखे-अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; देखे-देखा; ईश्वर-गमन-भगवान् की रथयात्रा का गमन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द प्रभु इत्यादि अन्य प्रमुख भक्त यह देखकर परम सुखी थे कि भगवान् जगन्नाथ किस तरह रथयात्रा शुरू करने जा रहे हैं।

बलिष्ठ दयिता' गण—येन मत्त हाती ।

जगन्नाथ विजय कराय करि' हाताहाति ॥8॥

बलिष्ठ दयिता' गण-बहुत बलवान जगन्नाथ को उठाने वाले दयिता; येन-जैसे; मत्त हाती-उन्मत्त हाथी; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ का; विजय-प्रस्थान; कराय-कराया ; करि'-करके; हाताहाति–हाथों हाथ।

अनुवाद

बलिष्ठ दयिता (जगन्नाथ अर्चाविग्रह को ले जाने वाले) मत्त हाथियों के समान शक्तिशाली थे। वे भगवान् जगन्नाथ को हाथोंहाथ सिंहासन से रथ तक ले गये।

तात्पर्य

दयिता शब्द उस व्यक्ति का सूचक है, जिसे भगवान् की कृपा प्राप्त हो चुकी है। भगवान जगन्नाथ के अनेक बलिष्ठ सेवक हैं, जिन्हें दयिता कहा जाता है। ये सेवक बहुत उच्च कुलों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के नहीं होते, किन्तु भगवान् की सेवा में लगे रहने के कारण वे उच्च सम्मानित पद पर उन्नत हुए हैं। इस तरह वे दयिता कहलाते हैं। भगवान जगन्नाथ के ये सेवक स्नान-यात्रा के दिन से लेकर सिंहासन से रथ तक ले जाये जाने वाले दिन तक भगवान् जगन्नाथ की देखभाल करते हैं। क्षेत्र-माहात्म्य में इन दयिताओं को शबरों से आया माना जाता है। शबर ऐसी जाति का नाम है, जिनका धंधा शूकर पालना और बेचना है। किन्तु ऐसे अनेक दयिता भी हैं, जो ब्राह्मण जाति के हैं। ब्राह्मण कुलों से आने वाले ऐसे दयिता दयितापति कहलाते हैं। ये दयितापति अनवसर के समय अर्थात् स्नान-यात्रा के बाद की विश्रान्ति अवधि में भगवान जगन्नाथ को मिठाइयाँ चढ़ाते हैं। ये नित्य प्रात:काल मिठाइयाँ भी चढ़ाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि अनवसर के समय भगवान जगन्नाथ ज्वर से पीड़ित रहते हैं और दयितापति उन्हें फलों के रस के रूप में औषधियाँ देते हैं। कहा जाता है कि प्रारम्भ में भगवान् जगन्नाथ शबरों द्वारा पूजित थे और नीलमाधव अर्चाविग्रह कहलाते थे। किन्तु बाद में जब अर्चाविग्रह की स्थापना मन्दिर के भीतर हो गई, तो वे जगन्नाथ कहलाने लगे। चूँकि ये अर्चाविग्रह शबरों से प्राप्त किये गये थे, इसलिए सारे शबर भक्त दयिताओं के पद पर उन्नत हुए।

कतक दयिता करे स्कन्ध आलम्बन ।

कतक दयिता धरे श्री-पद्म-चरण ॥9॥

कतक दयिता-कुछ दयिताओं ने; करे-किया; स्कन्ध-कंधो को; आलम्बन-पकड़ा; कतक-कुछ; दयिता-दयिताओं ने; धरे-पकड़े; श्री-पद्म-चरण-भगवान् के चरणकमल।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ के अर्चाविग्रह को ले जाते समय कुछ दयिताओं ने उनके कन्धे पकड़े और कुछ ने उनके चरणकमल पकड़ लिए।

कटि-तटे बद्ध, दृढ़ स्थूल पट्ट-डोरी ।

दुइ दिके दयिता-गण उठाय ताहा धरि' ॥10॥

कटि-तटे-कमर पर; बद्ध–बाँधी; दृढ़-दृढ़; स्थूल-मोटी; पट्ट-डोरी-रेशमी डोरी; दुइ दिके-दोनों ओर से; दयिता-गण-दयिताओं ने; उठाय-उठाया; ताहा–उस रस्सी को; धरि'-पकड़कर।

अनुवाद

जगन्नाथजी के अर्चाविग्रह की कमर पर मजबूत मोटी रेशम की रस्सी बाँधी गई। दयिताओं ने दोनों ओर से इस रस्सी को पकड़ लिया और अर्चाविग्रह को ऊपर उठा लिया।

उच्च दृढ़ तुली सब पाति' स्थाने स्थाने ।

एक तुली हैते त्वराय आर तुलीते आने ॥11॥

उच्च-ऊँचे; दृढ़-मज़बूत; तुली–कपास के गद्दे; सब-सब; पाति'–फैलाकर; स्थाने स्थाने-जगह जगह; एक तुली–एक गहे; हैते–से; त्वराय-अति शीघ्र; आर-अगले; तुलीते-गद्दे पर; आने-लाए।

अनुवाद

सिंहासन से लेकर रथ तक धुनी रुई के मजबूत गद्दे (तुली) बिछा दिये गये और जगन्नाथजी का भारी अर्चाविग्रह दयिताओं द्वारा एक गद्दे से दूसरे गद्दे तक ले जाया गया।

प्रभु-पदाघाते तुली हय खण्ड खण्ड ।

तुला सब उड़ि' याय, शब्द हय प्रचण्ड ॥12॥

प्रभु-पद-आघाते-भगवान जगन्नाथ की ठोकर से; तुली–गद्दे; हय-हो गये; खण्ड खण्ड-खण्ड खण्ड; तुला-अन्दर की कपास; सब-सब; उड़ि' याय-उड़ गई; शब्द-ध्वनि; हय-हुई; प्रचण्ड–बहुत ऊँची।

अनुवाद

जब दयितागण जगन्नाथजी के भारी अर्चाविग्रह को एक गद्दे से दूसरे तक ले जा रहे थे, तब कुछ गद्दे टूट गये और उनकी रुई हवा में उड़ने लगी। इन गद्दों के टूटने से पटाखे जैसा प्रचण्ड शब्द हुआ।

विश्वम्भर जगन्नाथे के चालाइते पारे? ।

आपन इच्छाय चले करिते विहारे ॥13॥

विश्वम्भर-ब्रह्माण्ड के पालक; जगन्नाथे-भगवान जगन्नाथ; के-कौन; चालाइते-उठा; पारे—सकता है; आपन–स्वयं की; इच्छाय-मर्जी से; चले-चलते हैं; करिते-करने; विहारे-लीला।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के पालनहार हैं। भला उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक कौन ले जा सकता है? किन्तु भगवान् स्वयं अपनी इच्छा से अपनी लीलाएँ करने के लिए चलते हैं।

महाप्रभु 'मणिमा' 'मणिमा' करे ध्वनि ।

नाना-वाद्य-कोलाहले किछुइ ना शुनि ॥14॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मणिमा मणिमा-सम्मानसूचक शब्द; करे-कर रहे थे; ध्वनि-उच्चारण; नाना-नाना; वाद्य-वाद्ययंत्र; कोलाहले-ऊँची गूंज से; किछुइ-कुछ भी; ना-नहीं; शुनि-सुनाई दे सकता था।

अनुवाद

जब भगवान् को सिंहासन से रथ तक ले जाये जा रहे थे, तब विविध वाद्य-यंत्रों से तुमुल ध्वनि हो रही थी और श्री चैतन्य महाप्रभु "मणिमा! मणिमा!" का उच्चारण कर रहे थे किन्तु उनकी आवाज किसी को सुनाई नहीं दे रही थी।

तात्पर्य

उड़ीसा में मणिमा शब्द का प्रयोग भद्र व्यक्ति को सम्बोधित करने के लिए किया जाता है। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् जगन्नाथजी को अत्यन्त आदरपूर्वक सम्बोधित कर रहे थे।

तबे प्रतापरुद्र करे आपने सेवन ।

सुवर्ण-मार्जनी लञा करे पथ सम्मार्जन ॥ 15 ॥

तबे-उस समय; प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र ने; करे-की; आपने–स्वयं; सेवन-सेवा; सुवर्ण-स्वर्ण की; मार्जनी-झाड़; लञा–लेकर; करे–किया; पथ-सड़क को; सम्मार्जन-साफ।

अनुवाद

जब भगवान् को सिंहासन से रथ तक ले जाये जा रहे थे, तब राजा प्रतापरुद्र हाथ में सुनहरी मूठ वाली झाड़ लिए भगवान् की सेवा हेतु मार्ग की सफाई करने में व्यस्त थे।

चन्दन-जलेते करे पथ निषेचने ।

तुच्छ सेवा करे वसि' राज-सिंहासने ॥16॥

चन्दन-जलेते-चन्दन-जल से; करे-किया; पथ-सड़क का; निषेचने-छिड़काव; तुच्छ—तुच्छ; सेवा–सेवा; करे-की; वसि'–यद्यपि अधिकारी थे; राज-सिंहासने-राज सिंहासन के।

अनुवाद

राजा ने मार्ग पर चन्दन से सुगन्धित जल का छिड़काव किया। यद्यपि वे राज-सिंहासन के स्वामी थे, किन्तु भगवान् जगन्नाथ के लिए तुच्छ सेवा में लगे हुए थे।

उत्तम हञा राजा करे तुच्छ सेवन ।

अतएव जगन्नाथेर कृपार भाजन ॥ 17॥

उत्तम हञा–यद्यपि अति आदरणीय; राजा-राजा ने; करे–स्वीकार की; तुच्छ—तुच्छ; सेवन–सेवा; अतएव–अतएव; जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ की; कृपार-कृपा का; भाजन-योग्य पात्र।

अनुवाद

यद्यपि राजा अत्यन्त सम्मानित व्यक्ति थे, फिर भी भगवान् के लिए वे तुच्छ सेवा कर रहे थे। अतएव वे भगवान् की कृपा प्राप्त करने के उपयुक्त पात्र बन गये।

महाप्रभु सुख पाइल से सेवा देखिते ।

महाप्रभुर कृपा हैल से-सेवा हइते ॥18॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सुख पाइल-अत्यन्त प्रसन्न हुए; से सेवा-उस प्रकार की सेवा से; देखिते-देखकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-कृपा; हैल–हुई; से सेवा हइते-उस सेवा के कारण।

अनुवाद

राजा को ऐसी तुच्छ सेवा में संलग्न देखकर चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। यह सेवा करने से ही राजा को महाप्रभु की कृपा प्राप्त हो पाई।

तात्पर्य

भगवान् की कृपा प्राप्त हुए बिना मनुष्य न तो भगवान् को समझ सकता है, न ही उनकी भक्ति में लग सकता है:

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-

पसादलेशानुगृहीत एव हि ।

जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो

न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥

(भागवत 10.14.29)

जिस भक्त को भगवान् की थोड़ी सी भी कृपा प्राप्त होती है, वही उन्हें समझ सकता है। अन्य लोग उन्हें समझने के लिए भले ही उनका दार्शनिक चिन्तन क्यों न करें, लेकिन वे उन्हें तनिक भी समझ नहीं पाते । यद्यपि महाराज प्रतापरुद्र श्री चैतन्य महाप्रभु को मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे, किन्तु महाप्रभु ने उनसे मिलने से इनकार कर दिया। किन्तु जब महाप्रभु ने देखा कि राजा भगवान् जगन्नाथ की तुच्छ सेवा में लगा है, तब वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस तरह राजा श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा पाने का पात्र बन सका। यदि कोई भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु को जगत्-गुरु और जगन्नाथजी को भगवान् कृष्ण स्वीकार कर लेता है, तो उसे कृष्ण तथा गुरु दोनों की सम्मिलित कृपा प्राप्त होती है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने रूप गोस्वामी को अपने उपदेशों में यही कहा है (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 19.151) :

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव ।

गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज ।।

भक्ति का बीज अंकुरित होकर दिव्य लता का रूप धारण करता है। अन्त में यह लता आध्यात्मिक आकाश में भगवान् के चरणकमलों तक जा पहुँचती है। यह भक्ति-बीज भगवान् तथा गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है। भगवान् की ही कृपा से प्रामाणिक गुरु की संगति प्राप्त होती है और गुरु की कृपा से भक्ति करने का अवसर प्राप्त होता है। भक्ति अर्थात् भक्तियोग की विद्या मनुष्य को इस लोक से वैकुण्ठ लोक ले जाती है।

रथेर साजनि देखि' लोके चमत्कार ।

नव हेममय रथ—सुमेरु-आकार ॥19॥

रथेर-रथ की; साजनि-सजावट; देखि'–देखकर; लोके-लोग; चमत्कार–चकित हो गये; नव-नया; हेम-मय-सुनहरा; रथ-रथ; सुमेरु-आकार–सुमेरू पर्वत जितना ऊँचा।

अनुवाद

रथ की सजावट देखकर हर व्यक्ति आश्चर्यचकित था। रथ नये सिरे से सोने का बना लग रहा था और सुमेरु पर्वत जितना ऊँचा था।

तात्पर्य

1973 ई. में लन्दन, इंग्लैंड में विशाल रथयात्रा का आयोजन किया गया था और रथ को ट्रैफैल्गर स्क्वायर तक लाया गया था। लन्दन के दैनिक समाचार-पत्र 'गार्डियन' के मुखपृष्ठ पर चित्र के नीचे शीर्षक छपा था, "ट्रैफैल्गर स्क्वायर में इस्कॉन की रथयात्रा नेल्सन स्तम्भ की समता करने वाली है।" नेल्सन स्तम्भ लार्ड नेल्सन की अत्यन्त प्रभावशाली मूर्ति है और काफी दूर से दिखती है। जिस तरह पुरी के निवासी रथयात्रा के रथ की तुलना सुमेरु पर्वत से कर रहे थे, उसी तरह लन्दन के निवासियों ने रथ की समता नेल्सन-स्मारक से की।

शत शत सु-चामर-दर्पणे उज्ज्वल ।

उपरे पताका शोभे चाँदोया निर्मल ॥20॥

शत शत-सैंकड़ों; सु-चामर—सुन्दर सफेद चामर; दर्पणे-दर्पण-सहित; उज्वल-चमकदार; उपरे-ऊँचाई पर; पताका-झंडा; शोभे–शोभा दे रहा था; चाँदोया-छत्र निर्मल-निर्मल।

अनुवाद

इस सजावट में चमकीले शीशे तथा सैंकड़ों चामर थे। रथ के ऊपर स्वच्छ छत्र तथा एक अत्यन्त सुन्दर झंडा था।

घाघर, किङ्किणी बाजे, घण्टार क्वणित ।

नाना चित्र-पट्ट-वस्त्रे रथ विभूषित ॥ 21॥

घाघर-घड़ियाल; किङ्किणी-छोटी घण्टिया; बाजे-बज रही थीं; घण्टार–घण्टियों के; क्वणित-बजने की ध्वनि; नाना-अनेक; चित्र-चित्र; पट्ट-वस्त्रे-रेशमी कपड़े से; रथ रथ; विभूषित–सुशोभित था।

अनुवाद

रथ को रेशमी वस्त्र तथा विविध चित्रों से भी सजाया गया था। अनेक पितल के घंटे, घड़ियाल तथा घुंघरू बज रहे थे।

लीलाय चड़िल ईश्वर रथेर उपर ।

आर दुइ रथे चड़े सुभद्रा, हलधर ॥22॥

लीलाय-लीला के लिए; चड़िल-चढ़ गये; ईश्वर-परम भगवान्; रथेर-रथ के; उपर-ऊपर; आर दुइ–और दो; रथेरथों में; चड़े-चढ़ गये; सुभद्रा- भगवान जगन्नाथ की बहन सुभद्रा; हलधर-बलराम।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ रथयात्रा-लीला के लिए एक रथ पर चढ़े और उनकी बहन सुभद्रा तथा बड़े भाई बलराम अन्य दो रथों पर आरूढ़ हुए।

पञ्च-दश दिन ईश्वर महा-लक्ष्मी लञा ।

ताँर सङ्गे क्रीड़ा कैल निभृते वसिया ॥23॥

पञ्च-दश दिन-पन्द्रह दिन; ईश्वर- भगवान्; महा-लक्ष्मी–महालक्ष्मी; लञा-के साथ; ताँर सङ्गे-उसकी संगति में; क्रीड़ा-आनन्द; कैल–किया; निभृते-एकान्त स्थान में; वसिया–बैठकर।

अनुवाद

भगवान् पन्द्रह दिनों तक महालक्ष्मी के साथ एकान्त स्थान में रहे। और उनके साथ क्रीड़ा-विहार किया।

तात्पर्य

अनवसर का पन्द्रह दिन का काल महालक्ष्मी के रहने के एकान्त स्थान के सम्मान में निभृत भी कहलाता है। वहाँ पर पन्द्रह दिन रहने के बाद भगवान् जगन्नाथ ने महालक्ष्मी से जाने की अनुमति ली।

ताँहार सम्मति लञा भक्ते सुख दिते ।

रथे चड़ि' बाहिर हैल विहार करिते ॥24॥

ताँहार सम्मति–उनकी आज्ञा; लञा–लेकर; भक्ते-भक्तों को; सुख दिते-सुख देने के लिए; रथे चड़ि'–रथ पर चढ़कर; बाहिर हैल-बाहर आये; विहार करिते-लीला करने।

अनुवाद

महालक्ष्मी की अनुमति लेकर भगवान् रथ पर चढ़ने और भक्तों के आनन्द हेतु अपनी लीलाएँ करने के लिए बाहर आये।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि आदर्श पति के रूप में भगवान जगन्नाथ अपनी पत्नी महालक्ष्मी के साथ पंद्रह दिनों तक एकान्त में रहे। तो भी भगवान् अपने भक्तों को सुख देने के लिए एकान्त स्थान से बाहर आना चाह रहे थे। भगवान् दो प्रकार से भोग करते हैं-स्वकीय तथा परकीय। स्वकीय रस में भगवान् का माधुर्य प्रेम द्वारका के विधि-विधानों को दर्शाता है, जहाँ भगवान् की कई रानियाँ हैं। किन्तु वृन्दावन में भगवान् का माधुर्य प्रेम अपनी विवाहिता पत्नियों के साथ न होकर गोपियों के साथ होता है। गोपियों के साथ यह माधुर्य प्रेम परकीय रस कहलाता है। भगवान जगन्नाथ उस एकान्त स्थान को छोड़ देते हैं, जहाँ वे महालक्ष्मी के साथ स्वकीय रस का भोग करते हैं और वे वृन्दावन चले जाते हैं, जहाँ वे परकीय रस का भोग करते हैं। अतएव भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर हमें याद दिलाते हैं कि परकीय रस में भगवान् को स्वकीय रस से अधिक आनन्द प्राप्त होता है।

भौतिक जगत् में अविवाहिता कुमारियों के साथ प्रेम-व्यवहार अर्थात् परकीय रस अत्यन्त अधम सम्बन्ध माना जाता है, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में इस प्रकार के प्रेम-व्यवहार को परम आनन्द माना जाता है। भौतिक जगत् में प्रत्येक वस्तु आध्यात्मिक जगत् का प्रतिबिम्ब मात्र है और वह प्रतिबिम्ब भी उल्टा या विकृत होता है। हम भौतिक जगत् के अपने अनुभवों के आधार पर आध्यात्मिक जगत् के व्यवहारों को नहीं समझ सकते। इसीलिए लौकिक विद्वान तथा शब्द तोड़ने-मरोड़ने वाले लोग गोपियों के साथ के प्रेम व्यवहार को गलत समझते हैं। आध्यात्मिक जगत् के परकीय रस की चर्चा केवल ऐसे व्यक्ति द्वारा की जानी चाहिए, जो भक्ति में अत्यन्त उन्नत हो। आध्यात्मिक जगत् के परकीय रस की तुलना भौतिक जगत् के परकीय रस से नहीं की जा सकती। पहला सोने के तुल्य है और दूसरा लोहे के समान है। दोनों में इतना अधिक अन्तर होता है कि वास्तव में उनकी तुलना ही नहीं की जा सकती। किन्तु जिस प्रकार एक जानकार व्यक्ति लोहे और सोने का अन्तर समझ सकता है उसी प्रकार, जिसे समुचित अनुभूति होती है, वह आध्यात्मिक जगत् के दिव्य कार्यकलापों से और भौतिक जगत् के कार्यकलापों में सरलता से अन्तर बता सकता है।

सूक्ष्म श्वेत-बालु पथे पुलिनेर सम ।

दुइ दिके टोटा, सब—येन वृन्दावन ॥ 25॥

सूक्ष्म-सूक्ष्म; श्वेत-बालु-सफेद बालु; पथे-मार्ग पर; पुलिनेर सम-यमुना तट की भाँति; दुइ दिके दोनों ओर; टोटा-उद्यान; सब-सब; येन–की भाँति; वृन्दावन-वृन्दावन के पावन स्थान जैसे।

अनुवाद

सारे मार्ग में बिछी महीन श्वेत बालू यमुना-तट के समान लग रही थी और दोनों ओर के छोटे-छोटे बगीचे वृन्दावन के बगीचों जैसे लग रहे थे।

रथे चड़ि' जगन्नाथ करिला गमन ।

दुइ-पार्श्वे देखि' चले आनन्दित-मन ॥ 26 ॥

रथे चड़ि'–रथ पर चढ़कर; जगन्नाथ-भगवान जगन्नाथ; करिला गमन-गमन कर रहे थे; दुइ-पार्श्वे दोनों ओर; देखि'–देखकर; चले-चले; आनन्दित-आनन्दपूर्वक; मन-मन में।

अनुवाद

जब भगवान जगन्नाथ रथ पर चढ़ गये और उन्होंने दोनों ओर के सौन्दर्य को निहारा, तो उनका मन आनन्द से भर गया।

'गौड़' सब रथ टाने करिया आनन्द ।

क्षणे शीघ्र चले रथ, क्षणे चले मन्द ॥ 27॥

गौड़-रथ खींचने वाले; सब-सब; रथ-रथ; टाने-खींचते थे; करिया–अनुभव करते हुए; आनन्द-आनन्द; क्षणे–कभी-कभी; शीघ्र चले-शीघ्र चलते थे; रथ-रथ; क्षणे-कभी-कभी; चले जाते थे; मन्द-अति मन्द गति से।

अनुवाद

रथ को खींचने वाले गौड़ कहलाते थे और वे रथ को अतीव आनन्द से खींच रहे थे। किन्तु यह रथ कभी तो बहुत तेज चलता था और कभी अत्यन्त मन्द हो जाता था।

क्षणे स्थिर हञा रहे, टानिलेह ना चले ।

ईश्वर-इच्छाय चले, ना चले कारो बले ॥28॥

क्षणे–कभी-कभी; स्थिर स्थिर; हञा–होकर; रहे-खड़े रहते थे; टानिलेह-खींचे जाने के बावजूद; ना चले–नहीं चलते थे; ईश्वर-इच्छाय-भगवान् की इच्छा से; चले-चलते थे; ना चले–नहीं चलते थे; कारो-किसी के भी; बले-बल से।

अनुवाद

कभी रथ स्थिर हो जाता और टस से मस न होता, भले ही इसे कितने ही जोर से क्यों न खींचा जाता। अतः यह रथ भगवान् की इच्छा से चल रहा था, किसी सामान्य व्यक्ति की शक्ति से नहीं।

तबे महाप्रभु सब लञा भक्त-गण ।

स्वहस्ते पराइल सबे माल्य-चन्दन ॥29॥

तबे-उस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सब-सब; लञा-लेकर; भक्त-गण-भक्तगण; स्व-हस्ते-अपने हाथ से; पराइल-सजाया; सबे-प्रत्येक को; माल्य-चन्दन-पुष्प मालाओं से और चन्दन लेप से।

अनुवाद

जब रथ स्थिर हो गया, तो महाप्रभु ने अपने सारे भक्तों को एकत्र किया और उन्हें अपने हाथों से फूलों की माला तथा चन्दन से सजाया।

परमानन्द पुरी, आर भारती ब्रह्मानन्द ।

श्री-हस्ते चन्दन पाञा बाड़िल आनन्द ॥ 30॥

परमानन्द पुरी-परमानन्द पुरी; आर-और; भारती ब्रह्मानन्द–ब्रह्मानन्द भारती; श्री-हस्ते-श्री चैतन्य महाप्रभु के हाथ से; चन्दन–चन्दन का लेप; पाञा-पाकर; बाड़िल-बढ़ गया; आनन्द-दिव्य आनन्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने हाथों से परमानन्द पुरी तथा ब्रह्मानन्द भारती को मालाएँ तथा चन्दन प्रदान किया। इससे उनका दिव्य आनन्द बढ़ गया।

अद्वैत-आचार्य, आर प्रभु-नित्यानन्द ।

श्री-हस्त-स्पर्शे दुँहार हइल आनन्द ॥ 31॥

अद्वैत-आचार्य-अद्वैत आचार्य; आर-और; प्रभु-नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; श्री-हस्त-स्पर्शे-श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य हस्त के स्पर्श से; वँहार–उन दोनों को; हइल-हो गया; आनन्द–दिव्य आनन्द।

अनुवाद

इसी तरह जब अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु को श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य हाथों का स्पर्श प्राप्त हुआ, तो वे दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुए।

कीर्तनीया-गणे दिल माल्य-चन्दन ।

स्वरूप, श्रीवास,—याहाँ मुख्य दुइ-जन ॥ 32॥

कीर्तनीया-गणे-कीर्तन करने वालों को; दिल-दिया; माल्य-चन्दन-मालाएँ और चन्दन लेप; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; श्रीवास-श्रीवास; याहाँ–जहाँ; मुख्य–मुख्य; दुइ-जन-दोनों व्यक्ति।

अनुवाद

महाप्रभु ने संकीर्तन करने वालों को भी मालाएँ तथा चन्दन दिया। दो मुख्य कीर्तनिये थे-स्वरूप दामोदर तथा श्रीवास ठाकुर।

चारि सम्प्रदाये हैल चब्बिश गायन ।

दुइ दुइ मार्दङ्गिक हैल अष्ट जन ॥ 33 ॥

चारि सम्प्रदाये-चारों टोलियों में; हैल-हो गये; चब्बिश–चौबीस; गायन-कीर्तन करने वाले; दुइ दुइ–प्रत्येक टोली में दो व्यक्ति; मार्दङ्गिक-मृदंग बजाने वाले; हैल–थे; अष्ट जन-आठ व्यक्ति।

अनुवाद

कीतर्न करने वालों की कुल चार टोलियाँ थीं, जिनमें कुल चौबीस कीर्तनिये थे। प्रत्येक टोली में दो-दो मृदंगवादक थे, जिससे आठ अतिरिक्त व्यक्ति हो गये।

तबे महाप्रभ मने विचार करिया।

चारि सम्प्रदाय दिल गायन बाँटिया॥ 34॥

तबे-इसके बाद; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; मने-मन में; विचार करिया-विचार करके; चारि सम्प्रदाय–चार टोलियाँ; दिल–बना दीं; गायन बाँटिया–गायकों को बाँटकर।

अनुवाद

जब चार टोलियाँ बन गईं, तो थोड़ा-सा विचार करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तनियों को बाँट दिया।

नित्यानन्द, अद्वैत, हरिदास, वक्रेश्वरे।

चारि जने आज्ञा दिल नृत्य करिबारे॥ 35॥

नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; अद्वैत-अद्वैत आचार्य; हरिदास-हरिदास ठाकुर; वक्रेश्वरे-वक्रेश्वर पण्डित; चारि जने–इन चार व्यक्तियों को; आज्ञा दिल–महाप्रभु ने आज्ञा दी; नृत्य करिबारे नृत्य करने के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत आचार्य, हरिदास ठाकुर तथा वक्रेश्वर पण्डित को आज्ञा दी कि वे चारों टोलियों में से प्रत्येक में जाकर नृत्य करें।

प्रथम सम्प्रदाये कैल स्वरूप–प्रधान।

आर पञ्च-जन दिल ताँर पालिगान॥ 36॥

प्रथम सम्प्रदाये-पहली टोली में; कैल-बनाया; स्वरूप-स्वरूप दामोदर को; प्रधान-प्रधान; आर-और अन्य; पञ्च-जन-पाँच व्यक्ति; दिल-दिये; ताँर-उनके; पालिगान-कीर्तन का प्रत्युत्तर देने वाले सहायक।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर को पहली टोली का अगुवा चुना गया और उन्हें पाँच सहायक दिये गये, जो उनके कीर्तन को दुहरायें।

दामोदर, नारायण, दत्त गोविन्द ।

राघव पण्डित, आर श्री-गोविन्दानन्द ॥ 37॥

दामोदर-दामोदर पण्डित; नारायण-नारायण; दत्त गोविन्द-गोविन्द दत्त; राघव पण्डित-राघव पण्डित; आर-और; श्री गोविन्दानन्द-श्री गोविन्दानन्द।

अनुवाद

जो पाँच जन स्वरूप दामोदर के गाने को दुहराते थे, वे थे दामोदर पण्डित, नारायण, गोविन्द दत्त, राघव पण्डित तथा श्री गोविन्दानन्द।

अद्वैतेरे नृत्य करिबारे आज्ञा दिल ।

श्रीवास–प्रधान आर सम्प्रदाय कैल ॥ 38 ॥

अद्वैतेरे-अद्वैत आचार्य को; नृत्य-नृत्य; करिबारे—करने के लिए; आज्ञा–आज्ञा; दिल-दी; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; प्रधान–प्रधान; आर-और दूसरा एक; सम्प्रदाय दल; कैल-बनाया।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य प्रभु को पहली टोली में नृत्य करने के लिए आदेश मिला। तब महाप्रभु ने एक अन्य टोली बनाई, जिसके प्रधान व्यक्ति हुए श्रीवास ठाकुर।

तात्पर्य

प्रथम टोली के मुख्य गायक बनाये गये दामोदर स्वरूप और इस टोली के दुहराने वाले गायक थे दामोदर पण्डित, नारायण, गोविन्द दत्त, राघव पण्डित तथा गोविन्दानन्द। श्री अद्वैत आचार्य को नर्तक नियुक्त किये गये। फिर अगली टोली बनी और श्रीवास ठाकुर को प्रमुख गायक बनाये गये।

गङ्गादास, हरिदास, श्रीमान्, शुभानन्द ।

श्री-राम पण्डित, ताहाँ नाचे नित्यानन्द ॥ 39॥

गङ्गादास–गंगादास; हरिदास-हरिदास; श्रीमान्–श्रीमान्; शुभानन्द-शुभानन्द; श्री-राम पण्डित-श्रीराम पण्डित; ताहाँ-वहाँ; नाचे-नाचे; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर के गाने को दोहराने वाले पाँच गायक थे-गंगादास, हरिदास, श्रीमान्, शुभानन्द तथा श्रीराम पण्डित। श्री नित्यानन्द प्रभु को नर्तक नियुक्त किये गये।

वासुदेव, गोपीनाथ, मुरारि याहाँ गाय ।

मुकुन्द–प्रधान कैल आर सम्प्रदाय ॥40॥

वासुदेव-वासुदेव; गोपीनाथ-गोपीनाथ; मुरारि-मुरारि; याहाँ–जहाँ; गाय-गाये; मुकुन्द मुकुन्द; प्रधान–प्रधान; कैल–बनाया; आर-एक अन्य; सम्प्रदाय–दल।

अनुवाद

एक अन्य टोली भी बना ली गई जिसमें वासुदेव, गोपीनाथ तथा मुरारि थे। ये सब दुहराने वाले गायक थे और मुकुन्द प्रधान गायक थे।

श्रीकान्त, वल्लभ-सेन आर दुइ जन ।

हरिदास-ठाकुर ताहाँ करेन नर्तन ॥41॥

श्रीकान्त, वल्लभ-सेन–श्रीकान्त एवं वल्लभ सेन; आर-अन्य; दुइ जन-दो व्यक्ति; हरिदास-ठाकुर-हरिदास ठाकुर ने; ताहाँ-वहाँ; करेन-किया; नर्तन-नृत्य।

अनुवाद

श्रीकान्त तथा वल्लभसेन नामक दो अन्य व्यक्ति दुहराने वाले गवैयों के साथ हो लिए। इस टोली के नर्तक थे ज्येष्ठ हरिदास (हरिदास ठाकुर)।

तात्पर्य

तीसरी टोली के प्रमुख गवैये मुकुन्द थे। इस टोली में वासुदेव, गोपीनाथ, मुरारि, श्रीकान्त तथा वल्लभसेन थे। बड़े हरिदास (हरिदास ठाकुर) नर्तक थे।

गोविन्द-घोष—प्रधान कैल आर सम्प्रदाय ।

हरिदास, विष्णुदास, राघव, याहाँ गाय ॥42॥

गोविन्द-घोष-गोविन्द घोष को; प्रधान–प्रधान; कैल-बनाया; आर-और अन्य; सम्प्रदाय-दल; हरिदास–छोटा हरिदास; विष्णुदास-विष्णुदास; राघव-राघव; याहाँ-जहाँ; गाय-गाते थे।

अनुवाद

महाप्रभु ने एक अन्य टोली बनाई, जिसके अगुवा गोविन्द धोष नियुक्त किये गये। इस टोली में छोटा हरिदास, विष्णुदास तथा राघव दुहराने वाले गवैये थे।

माधव, वासुदेव-घोष, दुइ सहोदर ।

नृत्य करेन ताहाँ पण्डित-वक्रेश्वर ॥43॥

माधव-माधव; वासुदेव-घोष-वासुदेव घोष; दुइ सहोदर दोनों भाइयों ने; नृत्य करेन-नृत्य किया; ताहाँ-वहाँ; पण्डित-वक्रेश्वर–वक्रेश्वर पण्डित।

अनुवाद

माधव घोष तथा वासुदेव घोष नामक दोनों भाई भी इस टोली में दुहराने वालों में सम्मिलित हो गये। वक्रेश्वर पण्डित इसके नर्तक थे।

कुलीन-ग्रामेर एक कीर्तनीया-समाज ।

ताहाँ नृत्य करेन रामानन्द, सत्यराज ॥44॥

कुलीन-ग्रामेर-कुलीन-ग्राम नामक गाँव के; एक-एक; कीर्तनीया-समाज-संकीर्तन दल; ताहाँ-वहाँ; नृत्य करेन-नृत्य करते थे; रामानन्द-रामानन्द; सत्यराज-सत्यराज खान।

अनुवाद

कुलीन-ग्राम नामक गाँव की एक कीर्तनियों की टोली थी, जिसमें रामानन्द तथा सत्यराज नर्तक के रूप में नियुक्त किये गये।

शान्तिपुरेर आचार्येर एक सम्प्रदाय ।

अच्युतानन्द नाचे तथा, आर सब गाय ॥45॥

शान्तिपूर-शान्तिपुर के; आचार-अद्वैत आचार्य का; एक-एक; सम्प्रदाय-दल; अच्युतानन्द-अद्वैत आचार्य के पुत्र अच्युतानन्द; नाचे-नृत्य कर रहे थे; तथा-वहाँ; आर-बाकी; सब-सब; गाय-गा रहे थे।

अनुवाद

शान्तिपुर की भी एक टोली थी, जिसे अद्वैत आचार्य ने बनाई थी। अच्युतानन्द इसके नर्तक थे और शेष लोग गवैये थे।

खण्डेर सम्प्रदाय करे अन्यत्र कीर्तन ।

नरहरि नाचे ताहाँ श्री-रघुनन्दन ॥ 46॥

खण्डेर-खण्ड नामक स्थान के; सम्प्रदाय–दल ने; करे-किया; अन्यत्र-एक दूसरे स्थान पर; कीर्तन-कीर्तन; नरहरि-नरहरि नाचे-नृत्य कर रहे थे; ताहाँ-वहाँ; श्री-रघुनन्दन–श्री रघुनन्दन।

अनुवाद

खण्ड के लोगों ने एक अन्य टोली बनाई थी। ये लोग एक भिन्न स्थान पर गा रहे थे। इस दल में नरहरि प्रभु तथा रघुनन्दन नाच रहे थे।

जगन्नाथेर आगे चारि सम्प्रदाय गाय ।

दुइ पाशे दुइ, पाछे एक सम्प्रदाय ॥47॥

जगन्नाथेर आगे-भगवान जगन्नाथ के विग्रह के समक्ष; चारि सम्प्रदाय गाय-चारों दल कीर्तन कर रहे थे; दुइ पाशे-दोनों ओर; दुइ–अन्य दो दल; पाछे–पिछली ओर; एक सम्प्रदाय-एक दूसरा दल।

अनुवाद

चार टोलियाँ भगवान जगन्नाथ के सामने कीर्तन कर रही थीं और नाच रही थीं। उनके दोनों ओर दो अन्य टोलियाँ थीं। पीछे भी एक टोली थी।

सात सम्प्रदाये बाजे चौद्द मादल ।

यार ध्वनि शुनि' वैष्णव हैल पागल ॥48॥

सात सम्प्रदाये-सात दलों में; बाजे-बजा रहे थे; चौह-चौदह; मादल-नगाड़े; यार–जिनकी; ध्वनि-ध्वनि; शुनि'–सुनकर; वैष्णव-सारे भक्त; हैल–हो गये; पागल-पागल।

अनुवाद

कुल मिलाकर सात संकीर्तन टोलियाँ थीं और प्रत्येक टोली में दो व्यक्ति ढोल नगाड़े बजा रहे थे। इस प्रकार एकसाथ चौदह ढोल बज रहे थे। इनकी ध्वनि इतनी कोलाहलपूर्ण थी कि सारे भक्त पागल हो गये।

वैष्णवेर मेघ-घटाय हइल बादल ।

कीर्तनानन्दे सब वर्षे नेत्र-जल ॥49॥

वैष्णवेर-भक्तों का; मेघ-घटाय-मेघों के संगठन से; हइल-हो गई; बादल–वर्षा; कीर्तन-आनन्दे-कीर्तन की दिव्य स्थिति में; सब-वे सब; वर्षे–वर्षा; नेत्र-जल-नेत्रों से जल की।

अनुवाद

सारे वैष्णव बादलों के समूह की तरह एकसाथ आये। जब भक्तों ने अत्यन्त भावपूर्वक नाम-कीर्तन किया, तो उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे मानों आँखों से वर्षा हो रही हो।

त्रि-भुवन भरि' उठे कीर्तनेर ध्वनि ।

अन्य वाद्यादिर ध्वनि किछुइ ना शुनि ॥50॥

त्रि-भुवन भरि'–तीनों लोकों को भरकर; उठे-उठी; कीर्तनेर ध्वनि-संकीर्तन की ध्वनि; अन्य-अन्य; वाद्य-आदिर-वाद्य-यंत्रो की; ध्वनि-ध्वनि; किछुइ-कुछ और; ना–नहीं; शुनि–सुन सके।

अनुवाद

जब संकीर्तन की प्रतिध्वनि हुई, तो उससे तीनों लोक भर गये। तब किसी को संकीर्तन के अतिरिक्त किसी बाजे की ध्वनि या अन्य ध्वनि नहीं सुनाई देती थी।

सात ठाञि बुले प्रभु 'हरि' 'हरि' बलि' ।

'जय जगन्नाथ', बलेन हस्त-युग तुलि' ॥51॥

सात ठाञि-सात दलों में; बुले-घूमते थे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हरि हरि बलि'-"हरि हरि" के पावन नाम का उच्चारण करते हुए; जय जगन्नाथ-भगवान जगन्नाथ की जय हो; बलेन-बोलने लगे; हस्त-युग–अपने दोनों हाथ; तुलि'–उठाकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु "हरि!, हरि!" उच्चारण करते हुए सातों दलों में विचरण कर रहे थे। वे अपने दोनों हाथ उठाकर जोर से बोले "जय जगन्नाथ!"

आर एक शक्ति प्रभु करिल प्रकाश ।

एक-काले सात ठाञि करिल विलास ॥52॥

आर-अन्य; एक–एक; शक्ति-शक्ति; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करिल-की; प्रकाश-प्रकट; एक-काले–एक साथ; सात ठाञि-सात स्थानों में; करिल-की; विलास-लीलाएँ।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक ही साथ सभी सातों टोलियों में लीलाएँ सम्पन्न करके अपनी अन्य योगशक्ति का परिचय दिया।

सबे कहे,—प्रभु आछेन मोर सम्प्रदाय ।

अन्य ठाञि नाहि या'न आमारे दयाय ॥53॥

सबे कहे-सबने कहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आछेन–विद्यमान हैं; मोर सम्प्रदाय-मेरे दल में; अन्य ठाञि-दूसरे स्थानों में; नाहि-नहीं; या'न-जाते; आमारे-मुझ पर; दयाय-कृपा करते हैं।

अनुवाद

हर एक ने कहा, "श्री चैतन्य महाप्रभु मेरी टोली में उपस्थित हैं। वे अन्यत्र कहीं नहीं जाते। वे हम सब पर कृपा की वृष्टि कर रहे हैं।"

केह लखिते नारे प्रभुर अचिन्त्य-शक्ति ।

अन्तरङ्ग-भक्त जाने, याँर शुद्ध-भक्ति ॥54॥

केह-कोई भी; लखिते-देख; नारे–नहीं सका; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; अचिन्त्य-अकल्पनीय; शक्ति-शक्ति; अन्तरङ्ग-आन्तरिक; भक्त-भक्त; जाने-जानता है; याँर–जिसकी; शुद्ध-भक्ति-शुद्ध भक्ति।

अनुवाद

वास्तव में कोई भी महाप्रभु की अचिन्त्य शक्ति को देख नहीं सका। केवल सर्वाधिक अन्तरंग भक्त ही, जो शुद्ध अनन्य भक्ति में स्थित थे, समझ सके।

कीर्तन देखिया जगन्नाथ हरषित।

सङ्कीर्तन देखे रथ करिया स्थगित ॥55॥

कीर्तन देखिया-संकीर्तन देखकर; जगन्नाथ–भगवान जगन्नाथ; हरषित-अत्यन्त प्रसन्न हुए; सङ्कीर्तन-संकीर्तन; देखे-देखा; रथ-रथ; करिया स्थगित किया खड़ा।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ संकीर्तन से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कीर्तन देखने के लिए ही अपने रथ को खड़ा कर दिया।

प्रतापरुद्रेर हैल परम विस्मय ।

देखिते विवश राजा हैल प्रेममय ॥56॥

प्रतापरुद्रेर-राजा प्रतापरुद्र को; हैल-हुआ; परम-अत्यन्त; विस्मय–विस्मय; देखिते-देखकर; विवश-निष्क्रिय; राजा-राजा; हैल–हो गये; प्रेम-मय-प्रेमाविष्ट।

अनुवाद

राजा प्रतापरुद्र भी संकीर्तन देखकर विस्मित हो गये। वे निष्क्रिय हो गये और कृष्ण के भावप्रेम में रूपान्तरित हो गये।

काशी-मिश्रे कहे राजा प्रभुर महिमा ।

काशी-मिश्र कहे,—तोमार भाग्येर नाहि सीमा ॥57॥

काशी-मिश्रे-काशी मिश्र को; कहे-कहा; राजा-राजा ने; प्रभुर महिमा-श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमाएँ; काशी-मिश्र कहे-काशी मिश्र ने कहा; तोमार-आपके; भाग्येर-भाग्य की; नाहि-नहीं है; सीमा-कोई सीमा।

अनुवाद

जब राजा ने काशी मिश्र से महाप्रभु की महिमा के विषय में बतलाया, तो काशीमिश्र ने उत्तर दिया, "हे राजा, आपके भाग्य की सीमा नहीं है।"

सार्वभौम-सङ्गे राजा करे ठाराठारि ।

आर केह नाहि जाने चैतन्येर चुरि ॥58॥

सार्वभौम-सङ्गे–सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ; राजा-राजा ने; करे-किया; ठाराठारि—संकेत; आर-और; केह-कोई; नाहि-नहीं; जाने-जान सका; चैतन्येर–श्री चैतन्य महाप्रभु की; चुरि–चाल।

अनुवाद

राजा तथा सार्वभौम भट्टाचार्य दोनों ही महाप्रभु की लीला से अवगत थे, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु की युक्तियों को अन्य कोई नहीं देख सकता था।

यारे ताँर कृपा, सेइ जानिबारे पारे ।

कृपा विना ब्रह्मादिक जानिबारे नारे ॥59॥

यारे-जिस पर; ताँर–उनकी; कृपा-कृपा; सेइ-वही व्यक्ति; जानिबारे-जान; पारे-सकता है; कृपा-कृपा; विना-के बिना; ब्रह्म-आदिक-ब्रह्मा आदि देवताओं के लिए; जानिबारे जानना; नारे-सम्भव नहीं।

अनुवाद

उन्हें केवल वही समझ सकता है, जिसे महाप्रभु की कृपा प्राप्त हो चुकी हो। महाप्रभु की कृपा के बिना ब्रह्मादिक देवतागण तक नहीं समझ सकते।

राजार तुच्छ सेवा देखि' प्रभुर तुष्ट मन ।

सेइ त' प्रसादे पाइल 'रहस्य-दर्शन' ॥ 60॥

राजार-राजा की; तुच्छ—तुच्छ; सेवा–सेवा; देखि'–देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का तुष्ट-सन्तुष्ट; मन–मन; सेइ-उसने; त'–निस्सन्देह; प्रसादे-कृपा से; पाइल-पाया; रहस्य-दर्शन-लीलाओं के रहस्य को देखा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु राजा को मार्ग की सफाई जैसा तुच्छ कार्य करते देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे। राजा ने इसी दीनता के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त की। अतएव वे श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यों के रहस्य को देख सकते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने महाप्रभु के कार्यों के रहस्य का वर्णन किया है। भगवान् जगन्नाथ श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य नृत्य तथा कीर्तन को देखकर चकित थे और उन्होंने नृत्य देखने के लिए ही अपना रथ रोक दिया। श्री चैतन्य महाप्रभु तब ऐसे रहस्यमय ढंग से नाचे कि उन्होंने भगवान् जगन्नाथ को प्रसन्न कर दिया। देखने वाला तथा नाचने वाला व्यक्ति एक ही परम पुरुष थे, किन्तु भगवान् एक ही समय एक और अनेक होकर अपनी लीलाओं की विविधता दिखला रहे थे। उनके रहस्यमय प्रदर्शन के पीछे यही अर्थ है। श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से राजा यह समझ सके कि वे दोनों किस तरह एक-दूसरे की लीलाओं का आनन्द ले रहे थे। दूसरा रहस्यमय प्रदर्शन यह था कि महाप्रभु एक ही साथ सातों दलों में उपस्थित थे। श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से राजा इसे भी समझ सके।

साक्षाते ना देय देखा, परोक्षे त' दया ।

के बुझिते पारे चैतन्य-चन्द्रेर माया ॥ 61॥

साक्षाते-साक्षात्; ना-नहीं; देय-दिया; देखा-भेट; परोक्षे-अप्रत्यक्ष रूप से; त'–निस्सन्देह; दया-कृपा की; के-कौन; बुझिते-समझ; पारे-सकता है; चैतन्य-चन्द्रेर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; माया–अन्तरंगा शक्ति।

अनुवाद

यद्यपि राजा को मिलने से मना कर दिया गया था, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उन पर अहैतुकी कृपा प्रदान की गई थी। भला श्री चैतन्य महाप्रभु की अन्तरंगा शक्ति को कौन समझ सकता है?

तात्पर्य

चूँकि महाप्रभु जगद्-गुरु की भूमिका अदा कर रहे थे, अतएव उन्होंने राजा से भेंट करना स्वीकार नहीं किया, क्योंकि राजा संसारी व्यक्ति होता है, जो कामिनी तथा कंचन में रुचि रखता है। निस्सन्देह, राजा शब्द मात्र उस व्यक्ति का निर्देश करता है, जो सदा कंचन तथा कामिनी से घिरा रहता है। संन्यासी के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु कामिनी तथा कंचन दोनों से डरते थे। राजा शब्द ही संन्यासी के लिए घृणित है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने राजा से मिलने से इनकार कर दिया था, किन्तु महाप्रभु की अहैतुकी कृपा से राजा को अप्रत्यक्ष रीति से महाप्रभु के रहस्यमय कार्यों का पता चल चुका था। श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यों से कभी-कभी ऐसा प्रदर्शित होता था कि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और कभी-कभी लगता था कि वे भक्त हैं। केवल शुद्ध भक्त ही ऐसे दोनों प्रकार के रहस्यमय कार्यों की प्रशंसा कर सकते हैं।

सार्वभौम, काशी-मिश्र,—दुइ महाशय ।

राजारे प्रसाद देखि' हइला विस्मय ॥62॥

सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; काशी-मिश्र-काशी मिश्र; दुइ महाशय-दोनों महाशय; राजारे–राजा पर; प्रसाद कृपा; देखि'–देखकर; हइला–हो गये; विस्मय-विस्मित।

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य तथा काशी मिश्र महोदयों ने राजा के ऊपर महाप्रभु की अहैतुकी कृपा देखी, तो वे चकित रह गये।

एइ-मत लीला प्रभु कैल कत-क्षण ।

आपने गायेन, नाचा'न निज-भक्त-गण ॥ 63 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; लीला-लीलाएँ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैल-कीं; कत-क्षण-कुछ समय के लिए; आपने गायेन–स्वयं गाकर; नाचा'न–नचवाया; निज-भक्त-गण-अपने निजी भक्तों को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कुछ समय तक अपनी लीलाएँ इसी प्रकार से कीं। वे स्वयं गा रहे थे और उन्होंने अपने संगियों को नाचने के लिए प्रेरित किया।

कभु एक मूर्ति, कभु हन बहु-मूर्ति ।

कार्य-अनुरूप प्रभु प्रकाशये शक्ति ॥64॥

कभु-कभी; एक मूर्ति–एक रूप; कभु-कभी; हन–हो जाते हैं; बहु-मूर्ति-बहु-मूर्ति; कार्य-अनुरूप-कार्य के अनुसार, प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रकाशये-दिखाते हैं; शक्ति-अपनी अन्तरंगा शक्ति।

अनुवाद

महाप्रभु अपनी आवश्यकता के अनुसार कभी एक रूप प्रदर्शित करते, तो कभी अनेक। ऐसा उनकी अन्तरंगा शक्ति द्वारा सम्पन्न हो रहा था।

लीलावेशे प्रभुर नाहि निजानुसन्धान ।

इच्छा जानि 'लीला शक्ति' करे समाधान ॥65॥

लीला-आवेशे-दिव्य लीलाओं के आवेश में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; नाहि-नहीं था; निज-अनुसन्धान-अपने बारे में स्मृति; इच्छा जानि-उनकी इच्छा जानकर; लीला शक्ति-लीला शक्ति; करे-की; समाधान-सभी व्यवस्था।

अनुवाद

महाप्रभु अपनी दिव्य लीलाओं के दौरान अपने आपको भूल गये, किन्तु उनकी अन्तरंगा शक्ति (लीला शक्ति) ने उनके मनोभावों को जानते हुए सारी व्यवस्था कर दी।

तात्पर्य

श्वेताश्वतर उपनिषद (6.8) में कहा गया है :

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।

“भगवान् की अनेक शक्तियाँ हैं, जो इतनी सुन्दरता से कार्य करती हैं कि सारी चेतना, बल तथा कार्य भगवान् की इच्छा से ही निर्देशित होते हैं।”

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी योगशक्ति का प्रदर्शन एक ही समय प्रत्येक संकीर्तन टोली में उपस्थित रहकर किया। अधिकांश लोगों ने सोचा कि वे एक जगह पर ही थे, किन्तु कुछ लोगों ने देखा कि वे अनेक थे। अन्तरंग भक्त जान गये कि महाप्रभु एक होकर भी अपने आपको संकीर्तन टोलियों में अनेक रूपों में प्रदर्शित कर रहे हैं। जब श्री चैतन्य महाप्रभु नाचने लगे, तो वे अपने आपको भूल गये और भाव-आनन्द में निमग्न हो गये। किन्तु उनकी अन्तरंगा शक्ति ने सारी व्यवस्था ठीक-ठीक कर दी। अन्तरंगा शक्ति और बहिरंगा शक्ति में यही भेद है। भौतिक जगत् में काफी प्रयत्न करने के बाद ही बहिरंगा (भौतिक) शक्ति कार्य करती है, किन्तु भगवान् जब भी चाहते हैं, तो अन्तरंगा शक्ति द्वारा हर कार्य स्वतः सम्पन्न हो जाता है। उनकी इच्छा से सारे कार्य इतने सुचारु रूप से सम्पन्न हो जाते हैं कि ऐसा लगता है मानो स्वतः सम्पन्न हुए हों। कभी-कभी अन्तरंगा शक्तियों के कार्यकलाप भौतिक जगत् में भी प्रकट होते हैं। वास्तव में, भौतिक प्रकृति के छात्र एवं प्रायः समस्त कार्य भगवान् की अचिन्त्य शक्ति द्वारा ही सम्पन्न होते हैं, किन्तु भौतिक प्रकृति के तथाकथित विज्ञानी तथा छात्र अन्ततः यह समझ नहीं पाते कि सारी बातें किस तरह घटित हो रही हैं। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह सब कुछ प्रकृति द्वारा हो रहा है, किन्तु वे यह नहीं जानते कि प्रकृति के पीछे शक्तिशाली पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का हाथ है। इसकी व्याख्या भगवद्गीता (9.10) में भगवान् कृष्ण द्वारा प्राप्त होती है :

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

“हे कुन्ती-पुत्र, यह भौतिक प्रकृति जो मेरी शक्तियों में से एक है, मेरी अध्यक्षता में कार्य करती है और यह समस्त चर तथा अचर प्राणियों को उत्पन्न करती है। इसके शासन में इस जगत् की बारम्बार सृष्टि और संहार होता रहता है।”

पूर्वे यैछे रासादि लीला कैल वृन्दावने ।

अलौकिक लीला गौर कैल क्षणे क्षणे ॥66॥

पूर्वे-पहले; यैछे-जैसे; रास-आदि लीला-रास आदि लीलाएँ; कैल-की; वृन्दावने-वृन्दावन में; अलौकिक-दिव्य; लीला-लीलाएँ; गौर-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैल-की; क्षणे क्षणे-प्रतिक्षण।

अनुवाद

जिस तरह पूर्वकाल में श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में रासलीला तथा अन्य लीलाएँ की थीं, उसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिक्षण अलौकिक लीलाएँ कर रहे थे।

भक्त-गण अनुभवे, नाहि जाने आन ।

श्री-भागवत-शास्त्र ताहाते प्रमाण ॥ 67॥

भक्त-गण-सभी भक्त; अनुभवे-अनुभव कर सके; नाहि जाने नहीं जानते; आन-अन्य लोग; श्री-भागवत-शास्त्र-श्रीमद्भागवत शास्त्र; ताहाते-उस सम्बन्ध में; प्रमाण-प्रमाण।

अनुवाद

केवल शुद्ध भक्तगण ही महाप्रभु को रथयात्रा के रथ के समक्ष नृत्य करने की अनुभूति कर सकते थे। अन्य लोग इसे नहीं समझ सके। भगवान् श्रीकृष्ण के विलक्षण नृत्य का वर्णन श्रीमद्भागवत में मिलता है।

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण ने रासलीला के समय अनेक रूपों में विस्तार कर लिया था और द्वारका में सोलह हजार पत्नियों से शादी करते समय भी उन्होंने अपना विस्तार कर लिया था। श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी सात संकीर्तन दलों में एक ही साथ नृत्य करते समय वही विधि अपनाई। राजा प्रतापरुद्र समेत शुद्ध भक्तों ने इन विस्तारों की अनुभूति की। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु ने बाह्य औपचारिकतावश राजा प्रतापरुद्र से मिलने से इनकार कर दिया था, क्योंकि वे राजा थे, किन्तु महाप्रभु की विशेष कृपा से राजा प्रतापरुद्र महाप्रभु के सर्वाधिक अन्तरंग भक्तों में से एक बन गये। राजा प्रतापरुद्र श्री चैतन्य महाप्रभु को एक साथ सातों दलों में उपस्थित देख सके। श्रीमद्भागवत में पुष्टि की गई है कि जब तक कोई व्यक्ति भगवान् का शुद्ध भक्त नहीं होता, तब तक वह भगवान् के दिव्य रूपों के विस्तारों को नहीं देख सकता।

एइ-मत महाप्रभु करे नृत्य-रङ्गे ।

भासाइल सब लोक प्रेमेर तरङ्गे ॥ 68 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करे-किया; नृत्य-रङ्गे-आनन्दपूर्वक नृत्य; भासाइल-डूब गये; सब-सब; लोक-लोग; प्रेमेर तरङ्गे–प्रेम की तरंगों में।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने परम प्रसन्न होकर नृत्य किया और प्रेम की तरंगों से सारे लोगों को आप्लावित कर दिया।

एइ-मत हैल कृष्णेर रथे आरोहण ।

तार आगे प्रभु नाचाइल भक्त-गण ॥ 69॥

एइ-मत-इस प्रकार; हैल-हुआ; कृष्णेर-भगवान् श्रीकृष्ण का; रथे-रथ पर; आरोहण-आरूढ़; तार आगे-उनके समक्ष; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; नाचाइल-नचाया; भक्त-गण-सभी भक्तों को।

अनुवाद

इस तरह भगवान् अपने जगन्नाथ रथ पर आरूढ़ हुए और श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने सारे भक्तों को रथ के समक्ष नाचने के लिए प्रोत्साहित किया।

आगे शुन जगन्नाथेर गुण्डिचा-गमन ।

तार आगे प्रभु यैछे करिला नर्तन ॥ 70 ॥

आगे-आगे; शुन-सुनो; जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ का; गुण्डिचा-गमन-गुण्डीचा मन्दिर को जाना; तार आगे-उनके समक्ष; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; यैछे-जैसे; करिला–किया; नर्तन-नृत्य।

अनुवाद

आप कृपा करके वह वृतान्त सुनिये, जिस समय भगवान जगन्नाथ गुण्डिचा मन्दिर जा रहे थे और महाप्रभु रथ के समक्ष नृत्य कर रहे थे।

एइ-मत कीर्तन प्रभु करिल कत-क्षण ।

आपन-उद्योगे नाचाइल भक्त-गण ॥79॥

एइ-मत-इस प्रकार; कीर्तन-कीर्तन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करिल-किया; कत-क्षण-कुछ समय के लिए; आपन-अपने; उद्योगे-प्रयास से; नाचाइल–नचवाया; भक्त-गण-सभी भक्तों को।

अनुवाद

महाप्रभु ने कुछ समय तक कीर्तन किया और अपने प्रयास से सारे भक्तों को नाचने के लिए प्रेरित किया।

आपनि नाचिते यबे प्रभुर मन हैल ।

सात सम्प्रदाय तबे एकत्र करिल ॥72॥

आपनि–स्वयं; नाचिते-नृत्य करने के लिए; यबे -जब; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मन-अब; हैल-हो गया; सात सम्प्रदाय–सभी सात दलों को; तबे-उस समय; एकत्र करिल-एकत्र किया।

अनुवाद

जब महाप्रभु का मन नाचने को हुआ, तो सातों टोलियाँ आकर मिल गईं।

श्रीवास, रामाइ, रघु, गोविन्द, मुकुन्द ।

हरिदास, गोविन्दानन्द, माधव, गोविन्द ॥73॥

श्रीवास–श्रीवास; रामाइ-रामाइ; रघु-रघु; गोविन्द गोविन्द; मुकुन्द-मुकुन्द; हरिदास-हरिदास; गोविन्दानन्द-गोविन्दानन्द; माधव-माधव; गोविन्द-गोविन्द।

अनुवाद

श्रीवास, रामाइ, रघु, गोविन्द, मुकुन्द, हरिदास, गोविन्दानन्द, माधव तथा गोविन्द इत्यादि महाप्रभु के सभी भक्त इकट्ठे हो गये।

उद्दण्ड-नृत्ये प्रभुर यबे हैल मन ।

स्वरूपेर सङ्गे दिल एई नव जन ॥74॥

उद्दण्ड-नृत्ये-ऊँचा कूदकर नृत्य करने का; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; यबे -जब; हैल मन-मन हुआ; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर; सङ्गे–के साथ; दिल-दिये; एइ-ये; नव जन–नौ भक्त।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु का ऊँचे कूदते हुए नृत्य करने का मन हुआ, तो उन्होंने इन नौ लोगों को स्वरूप दामोदर के अधीन कर दिया।

एइ दश जन प्रभुर सङ्गे गाय, धाय ।

आर सब सम्प्रदाय चारि दिके गाय ॥ 75॥

एइ दश जन-ये दस भक्त; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; सङ्गे–के साथ; गाय-कीर्तन कर रहे थे; धाय-दौड़े; आर-अन्य; सब-सब; सम्प्रदाय-भक्तों के दल; चारि दिके-चारों ओर; गाय-कीर्तन किया।

अनुवाद

ये भक्त (स्वरूप दामोदर तथा उनके अधीनस्थ भक्त) महाप्रभु के साथ-साथ गाते थे और उन्हीं के साथ दौड़ते भी थे। भक्तों के अन्य समूह भी गाते थे।

दण्डवत्करि, प्रभु गुड़ि' दुइ हात ।

ऊर्ध्व-मुखे स्तुति करे देखि' जगन्नाथ ॥ 76 ॥

दण्डवत् करि–दण्डवत् करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गुड़ि'–जोड़कर; दुइ हात–दोनों हाथ; ऊर्ध्व-मुखे—मुख ऊपर उठाकर; स्तुति करे-प्रार्थना करते; देखि'–दर्शन करते हुए; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ के विग्रह का।

अनुवाद

महाप्रभु ने हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए अपना मुख जगन्नाथजी की ओर उठाया और इस प्रकार प्रार्थना की।

नमो ब्रह्मण्य-देवाय गो-ब्राह्मण-हिताय च ।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥77॥

नमः-नमस्कार हो; ब्रह्मण्य-देवाय-ब्राह्मणों द्वारा पूजनीय भगवान् को; गो-ब्राह्मण-गौओं और ब्राह्मणों के; हिताय–हित के लिए; च-भी; जगत्-हिताय-जो सारे जगत् का हित करते हैं; कृष्णाय-कृष्ण को; गोविन्दाय–गोविन्द को; नमः नमः-बारम्बार नमस्कार।

अनुवाद

"मैं उन भगवान् कृष्ण को सादर नमस्कार करता हूँ, जो समस्त ब्राह्मणों के आराध्य देव हैं, जो गायों तथा ब्राह्मणों के शुभचिन्तक हैं तथा जो सदैव सारे जगत् को लाभ पहुँचाते हैं। मैं कृष्ण तथा गोविन्द के नाम से विख्यात भगवान् को बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य

यह श्लोक विष्णु पुराण (1.19.65) से लिया गया है।

जयति जयति देवो देवकी-नन्दनोऽसौ

जयति जयति कृष्णो वृष्णि-वंश-प्रदीपः ।

जयति जयति मेघ-श्यामलः कोमलाङ्गो

जयति जयति पृथ्वी-भार-नाशो मुकुन्दः ॥ 78॥

जयति–जय हो; जयति–जय हो; देवः–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की; देवकी-नन्दनः-देवकी के पुत्र की; असौ-वे; जयति जयति जय हो; कृष्णः-भगवान् कृष्ण की; वृष्णि-वंश-प्रदीपः-वृष्णि वंश की ज्योति; जयति जयति–जय हो; मेघ-श्यामलः-पूर्ण पुरुष भगवान् को जो श्याम मेघ की तरह दिखते हैं; कोमल-अङ्गः-जिनका तन कमल की भाँति कोमल है; जयति जयति-जय हो; पृथ्वी-भार-नाशः-जो सारे संसार को इसके भार से उबारने वाले हैं; मुकुन्दः-सबको मुक्ति प्रदान करने वाले।

अनुवाद

“उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की जय हो, जो देवकी-पुत्र कहलाते हैं। उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की जय हो, जो वृष्णि-वंश के दीपक हैं। उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की जय हो, जिनके शरीर की कान्ति नये बादल की तरह है और जिनका शरीर कमल के फूल के समान कोमल है! उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की जय हो, जो संसार को असुरों के भार से उद्धार करने के लिए इस पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं और जो हर एक को मुक्ति दे सकते हैं!’

तात्पर्य : यह श्लोक मुकुन्द माला (3) से लिया गया है।

जयति जन-निवासो देवकी-जन्म-वादो

यदु-वर-परिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ।

स्थिर-चर-वृजिन-घ्नः सुस्मित-श्री-मुखेन

व्रज-पुर-वनितानां वर्धयन्काम-देवम् ॥79॥

जयति–नित्य महिमायुक्त रहने वाले; जन-निवासः–जो मनुष्यों में यदुवंश के सदस्यों की तरह रहते हैं और सभी जीवों के परम आश्रय हैं; देवकी-जन्म-वादः-जो देवकी के पुत्र के रूप में प्रसिद्ध हैं (कोई भी वास्तव में पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् का माता-पिता नहीं बन सकता। इसलिए देवकी-जन्म-वादः का अर्थ यह है कि वे देवकी के पुत्र के रूप में जाने। जाते हैं। इसी प्रकार वे माता यशोदा, वसुदेव तथा नन्द महाराज के पुत्र के रूप में भी जाने जाते हैं); यदु-वर-परिषत्-यदुकुल के सदस्यों या वृन्दावन के ग्वालों द्वारा सेवित (ये सभी परम भगवान् के नित्य पार्षद व नित्य सेवक हैं); स्वैः दोर्भिः-अपनी भुजाओं द्वारा अथवा अर्जुन जैसे भक्तों द्वारा जो उनकी भुजाओं के समान हैं; अस्यन्-मारने वाले; अधर्मम्-दैत्यों अथवा अशुभ तत्त्वों को; स्थिर-चर-वृजिन-घ्नः-सभी चर-अचर जीवों के दुर्भाग्य का नाश करने वाले; सु-स्मित–सदा मुसकाने वाले; श्री-मुखेन--अपने सुन्दर मुख से; व्रज-पुर-वनितानाम्-वृन्दावन की गोपियों की; वर्धयन्-बढ़ाने वाले; काम-देवम्-काम-इच्छाओं को।

अनुवाद

“भगवान् श्रीकृष्ण जननिवास हैं अर्थात् समस्त जीवों के परम आश्रय हैं और वे देवकीनन्दन या यशोदानन्दन भी कहलाते हैं। वे यदुवंश के मार्गदर्शक हैं और वे अपनी बलशाली भुजाओं से समस्त अशुभ वस्तुओं का तथा अपवित्र मनुष्यों का वध करते हैं। अपनी उपस्थिति से वे उन समस्त वस्तुओं का विनाश

करते हैं, जो चर तथा अचर जीवों के लिए अशुभ वस्तुओं का विनाश करते हैं। उनका हँसमुख आनन्ददायक मुख वृन्दावन की गोपियों की कामेच्छाओं को बढ़ाने वाला है। वे विजयी और सुखी हों।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत से (10.90.48) से लिया गया है।

नाहं विप्रो न च नर-पतिर्नापि वैश्यो न शुद्रो

नाहं वर्णी न च गृह-पतिर्नो वनस्थो यतिर्वा ।

किन्तु प्रोद्यन्निखिल-परमानन्द-पूर्नामृताब्धेर्

गोपी-भर्तुः पद-कमलयोर्दास-दासानुदासः ॥80॥

न-नहीं; अहम्-मैं; विप्रः-ब्राह्मण; न-नहीं; च-भी; नर-पतिः-राजा अथवा क्षत्रिय; न-नहीं; अपि-भी; वैश्यः-वैश्य; न-नहीं; शूद्रः-शूद्र; न-नहीं; अहम्-मैं; वर्गी-किसी भी वर्ण का अथवा ब्रह्मचारी (ब्रह्मचारी किसी भी वर्ण का हो सकता है। कोई भी ब्रह्मचारी बन सकता है।); न-नहीं; च-भी; गृह-पतिः-गृहस्थ; नो-नही; वन-स्थः-वानप्रस्थ, वह जो पारिवारिक जीवन से निवृत्ति के बाद वन में जाता है और पारिवारिक जीवन से अनासक्त होना सीखता है; यतिः-साधु, संन्यासी; वा-अथवा; किन्तु किन्तु; प्रोद्यन्-बुद्धिमान; निखिल–सर्वत्र ; परम-आनन्द-दिव्य आनन्द सहित; पूर्ण–पूर्ण; अमृत-अब्धेः-अमृत के सागर; गोपी-भर्तुः-गोपियों के रखवाले परम पुरुष के; पद-कमलयोः-दोनों चरणकमलों के; दास-दास का; दास-अनुदासः-दासों का दास।

अनुवाद

"मैं न तो ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय, न वैश्य, न ही शूद्र हूँ। न ही मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी हूँ। मैं तो गोपियों के भर्ता भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों के दास के दास का भी दास हूँ। वे अमृत के सागर के तुल्य हैं और विश्व के दिव्य आनन्द के कारणस्वरूप हैं। वे सदैव तेजोमय रहते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत काव्यसंग्रह पद्यावली (74) से है।

एत पड़ि' पुनरपि करिल प्रणाम

योड़-हाते भक्त-गण वन्दे भगवान् ॥81॥

एत पड़ि'ये पढ़कर; पुनरपि-दोबारा; करिल-भगवान् ने किया; प्रणाम-प्रणाम; योड़-हाते-हाथ जोड़कर; भक्त-गण-सभी भक्तों ने; वन्दे-स्तुति की; भगवान्-भगवान् की।

अनुवाद

शास्त्र के इन श्लोकों को सुनाने के बाद महाप्रभु ने पुनः नमस्कार किया और सारे भक्तों ने भी हाथ जोड़कर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की वन्दना की।

उद्दण्ड नृत्य प्रभु करिया हुङ्कार।

चक्र-भ्रमि भ्रमे यैछे अलात-आकार ॥ 82॥

उद्दण्ड-कूदते हुए; नृत्य-नाचते हुए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करिया-करते हुए; हुङ्कार-ऊँची ध्वनि; चक्र-भ्रमि-चकरी की भाँति घूमते हुए; भ्रमे-घूमने लगे; यैछे-जैसे; अलात-आकार-अग्निपुंज।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु बादलों जैसी गर्जना करते हुए और चक्र की तरह चक्कर लगाते हुए ऊँचा उछल-उछलकर नाच रहे थे, तब वे घूमते अग्निपुंज की तरह लग रहे थे।

तात्पर्य

यदि जलती लकड़ी को तेजी से घुमायी जाए, तो वह अग्नि के चक्र जैसी प्रतीत होती है। यह अलात-आकार या आलात चक्र अर्थात् आग का गोला कहलाता है। यह पूरा गोला अग्नि का नहीं होता, अपितु एक ही जलती लकड़ी हिल रही होती है। इसी प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु एक व्यक्ति हैं, किन्तु जब वे नाच रहे थे और गोलाकार ऊँचा कूद रहे थे तो वे अलात-चक्र जैसे लग रहे थे।

नृत्ये प्रभुर याहाँ याँहा पड़े पद-तल।

ससागर-शैल मही करे टलमल ॥83॥

नृत्ये-नाचते समय; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; याहाँ याँहा-जहाँ जहाँ; पड़े-छुए; पद-तल-उनके चरण; स-सागर-समुद्रों के साथ; शैल–पहाड़ और पर्वत; मही–धरती; करे–करने लगी; टलमल-हिलने लगे।

अनुवाद

नाचते समय महाप्रभु जहाँ कहीं भी चरण रखते थे, पूरी धरती पर्वतों तथा समुद्रों समेत हिलती-डुलती प्रतीत हो रही थी।

स्तम्भ, स्वेद, पुलक, अश्रु, कम्प, वैवर्ण्य ।

नाना-भावे विवशता, गर्व, हर्ष, दैन्य ॥84॥

स्तम्भ-स्तम्भित होकर; स्वेद-पसीना; पुलक-रोमांच ; अश्रु-अश्रु; कम्प-कम्पन; वैव -रंग-परिवर्तन; नाना-भावे-अनेक प्रकार से; विवशता-असहायता; गर्ने–गर्व; हर्ष-हर्ष; दैन्य-विनम्रता।

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु नाच रहे थे, तब उनके शरीर में आनन्द के विविध दिव्य विकार उत्पन्न हो उठे। कभी ऐसा लगता मानों वे जड़ हो गये हों। कभी उनके शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते। कभी उन्हें पसीना आ जाता, कभी वे रोते, कभी वे काँपने लगते, कभी उनके शरीर का रंग बदल जाता और कभी उनके शरीर में विवशता, गर्व, हर्ष और दैन्य के लक्षण प्रकट हो आते।

आछाड़ खाञा पड़े भूमे गड़ि' याय ।

सुवर्ण-पर्वत यैछे भूमेते लोटाय ॥85 ॥

आछाड़ खाञा-पछाड़ खाकर; पड़े-गिर पड़े; भूमे-भूमि पर; गड़ि'-लोटते हुए; याय-गये; सुवर्ण-पर्वत–एक स्वर्ण पर्वत; यैछे-जैसे; भूमेते-भूमि पर; लोटाय-लोट रहा है।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु नाचते हुए पछाड़ खाकर गिरते तो वे भूमि पर लोटने लगते। उस समय ऐसा प्रतीत होता मानो सुवर्ण पर्वत भूमि पर लोट रहा हो।

नित्यानन्द-प्रभु दुइ हात प्रसारिया ।

प्रभुरे धरिते चाहे आश-पाश धाञा ॥86॥

नित्यानन्द-प्रभु-नित्यानन्द प्रभु; दुइ-दोनों; हात–हाथ; प्रसारिया-फैलाकर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; धरिते-पकड़ने के लिए; चाहे-चाहते; आश-पाश–यहाँ वहाँ; धाञा-दौड़कर।

अनुवाद

यह देखकर नित्यानन्द प्रभु अपने दोनों हाथ फैलाकर इधर-उधर दौड़ रहे महाप्रभु को पकड़ने का प्रयास करते।

प्रभु-पाछे बुले आचार्य करिया हुङ्कार ।

‘हरि-बोल’ ‘हरि-बोल’ बले बार बार ॥87॥

प्रभु-पाछे–महाप्रभु के पीछे; बुले-चल रहे थे; आचार्य-अद्वैत आचार्य; करिया-करके; हुङ्कार-ऊँची ध्वनि; हरि-बोल हरि-बोल–“हरि बोल" कहते हुए; बले-कहते थे; बार बार-बारम्बार।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य महाप्रभु के पीछे-पीछे चलते और बारम्बार जोर-जोर से "हरिबोल! हरिबोल!” का उच्चारण करते।

लोक निवारिते हैल तिन मण्डल ।

प्रथम-मण्डले नित्यानन्द महा-बल ॥88॥

लोक-लोगों को; निवारिते-रोकने के लिए; हैल-थे; तिन–तीन; मण्डल-चक्र; प्रथम-मण्डले-पहले चक्र में; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; महा-बल–महा बलवान।

अनुवाद

भीड़ को महाप्रभु के पास न आने से रोकने के लिए भक्तों ने तीन वर्तुल बना लिए थे। पहले वर्तुल का निर्देशन नित्यानन्द प्रभु कर रहे थे, जो साक्षात् बलराम अर्थात् महान् शक्ति के स्वामी हैं।

काशीश्वर गोविन्दादि यत भक्त-गण ।

हाताहाति करि' हैल द्वितीय आवरण ॥89॥

काशीश्वर-काशीश्वर; गोविन्द-आदि-गोविन्द आदि; व्रत-सभी; भक्त-गण-भक्तगण; हाताहाति–हाथ से हाथ जोड़कर; करि'–करके; हैल–हो गये; द्वितीय-दूसरा; आवरण-दायरा (चक्कर) ।

अनुवाद

काशीश्वर तथा गोविन्द आदि सारे भक्तों ने एक-दूसरे का हाथ पकड़कर महाप्रभु के चारों ओर दूसरा वृत्त बना लिया।

बाहिरे प्रतापरुद्र लञा पात्र-गण ।

मण्डल हञा करे लोक निवारण ॥90॥

बाहिरे-बाहर; प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र; लञा-लेकर; पात्र-गण-अपने निजी साथियों को; मण्डल-दायरा; हञा–बनाकर; करे-करते थे; लोक-भीड़ को; निवारण-रोकते थे।

अनुवाद

महाराज प्रतापरुद्र तथा उनके निजी सहायकों ने दोनों भीतरी वर्तुलों के चारों ओर एक तीसरा वर्तुल बना लिया, जिससे भीड़ अधिक निकट न आ सके।

हरिचन्दनेर स्कन्धे हस्त आलम्बिया ।

प्रभुर नृत्य देखे राजा आविष्ट हञा ॥ 91॥

हरिचन्दनेर-हरिचन्दन के; स्कन्धे कंधे पर; हस्त-हाथ; आलम्बिया-रखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; नृत्य देखे-नृत्य देखते थे; राजा-महाराज प्रतापरुद्र; आविष्ट हञा–अत्यन्त आवेश में।

अनुवाद

हरिचन्दन के कन्धों पर अपने हाथ रखकर राजा प्रतापरुद्र नृत्य करते हुए महाप्रभु का दर्शन कर सके और इससे वे अत्यधिक भावाविष्ट हो गये।

हेन-काले श्रीनिवास प्रेमाविष्ट-मन।

राजार आगे रहि' देखे प्रभुर नर्तन ॥92॥

हेन-काले—इस समय; श्रीनिवास-श्रीदास ठाकुर ने प्रेम-आविष्ट-मन-अत्यन्त प्रेमाविष्ट मन से; राजार आगे-राजा के समक्ष; रहि'-रहकर; देखे-देखा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; नर्तन-नृत्य को।

अनुवाद

जब राजा नाच देख रहे थे, तब उनके आगे खड़े श्रीवास ठाकुर ने ज्योंही महाप्रभु को नाचते देखा, वे भावाविष्ट हो गये।

राजार आगे हरिचन्दन देखे श्रीनिवास।

हस्ते ताँरे स्पर्शि' कहे,—हओ एक-पाश ॥ 93॥

राजार आगे-राजा के समक्ष; हरिचन्दन-हरिचन्दन ने; देखे-देखा; श्रीनिवास-श्रीवास ठाकुर को; हस्ते-अपने हाथ से; ताँरे–उनको; स्पर्शि'–स्पर्श करते हुए; कहे-कहा; हओ-कृपया हो जाओ; एक-पाश-एक ओर।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर को राजा के सामने खड़े देखकर हरिचन्दन ने अपने हाथ से श्रीवास को छूकर एक ओर हटने के लिए अनुरोध किया।

नृत्यावेशे श्रीनिवास किछुइ ना जाने।

बार बार ठेले, तेंहो क्रोध हैल मने ॥94॥

नृत्य-आवेशे-श्री चैतन्य महाप्रभु को नाचते हुए देखने में पूर्णरूपेण व्यस्त; श्रीनिवास-श्रीवास ठाकुर; किछुइ-कुछ भी; ना-नहीं; जाने-जान सके; बार बार-बारम्बार; ठेले-जब वह धकेलता था; तेंहो–श्रीवास; क्रोध-क्रुद्ध; हैल–हो गये; मने-मन में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को नृत्य करते हुए देखने में मग्न होने के कारण श्रीवास ठाकुर यह नहीं समझ पाये कि उन्हें क्यों छुआ और धकेला जा रहा था। जब उन्हें बारम्बार धकेला गया, तो वे नाराज हो उठे।

चापड़ मारिया तारे कैल निवारण ।

चापड़ खाञा क्रुद्ध हैला हरिचन्दन ॥95॥

चापड़ मारिया-थप्पड़ मारा; तारे-उसको; कैल निवारण-रोका; चापद खाञा-थप्पड़ खाने से; क्रुद्ध-क्रुद्ध; हैला-हो गया; हरिचन्दन–हरिचन्दन ।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर ने हरिचन्दन को झापड़ मारा, ताकि वह उन्हें धकेलना बन्द करे। इससे हरिचन्दन नाराज हो गया।

क्रुद्ध हञा ताँरे किछु चाहे बलिबारे ।

आपनि प्रतापरुद्र निवारिल तारे ॥96 ॥

क्रुद्ध हञा-क्रुद्ध होकर; ताँरे-श्रीवास ठाकुर को; किछु-कुछ; चाहे-चाहता था; बलिबारे–कहना; आपनि-स्वयं; प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र ने; निवारिल-रोका; तारे-उसको।

अनुवाद

जब क्रुद्ध हरिचन्दन श्रीवास ठाकुर से कुछ बोलने वाला था, तब प्रतापरुद्र महाराज ने खुद उसे रोका।

भाग्यवान्तुमि–इँहार हस्त-स्पर्श पाइला ।

आमार भाग्ये नाहि, तुमि कृतार्थ हैला ॥ 97॥

भाग्यवान् तुमि-तुम अति भाग्यशाली हो; इँहार-श्रीवास ठाकुर के; हस्त-हाथ का; स्पर्श-स्पर्श; पाइला–पाया है; आमार भाग्ये-मेरे भाग्य में; नाहि ऐसा नहीं है; तुमि-तुम; कृत-अर्थ हैला-कृतार्थ हो गये हो।

अनुवाद

राजा प्रतापरुद्र ने कहा, "तुम अत्यन्त भाग्यशाली हो, क्योंकि श्रीवास ठाकुर ने तुम्हें अपने स्पर्श से कृतार्थ किया है। मैं इतना भाग्यशाली नहीं हूँ। तुम्हें उनके प्रति कृतज्ञता का अनुभव करना चाहिए।

प्रभुर नृत्य देखि' लोके हैल चमत्कार ।

अन्य आछुक्, जगन्नाथेर आनन्द अपार ॥98॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; नृत्य-नृत्य; देखि'–देखकर; लोके–प्रत्येक व्यक्ति; हैल-हो गया; चमत्कार–चकित; अन्य आछुक्-दूसरों की बात छोड़ो; जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ का; आनन्द अपार-असीम आनन्द।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु के नृत्य को देखकर हर व्यक्ति चकित था। यहाँ तक कि भगवान जगन्नाथ भी उन्हें देखकर अतीव प्रसन्न हुए।

रथ स्थिर कैल, आगे ना करे गमन ।

अनिमिष-नेत्रे करे नृत्य दरशन ॥ 99॥

रथ–रथ; स्थिर कैल-रोककर; आगे-आगे; ना-नहीं; करे-करते थे; गमन-प्रस्थान; अनिमिष—बिना झपके; नेत्रे–नेत्रों को; करे–किए; नृत्य-नृत्य; दरशन-देखा।

अनुवाद

उनका रथ पूर्णतया स्थिर हो गया और जब तक जगन्नाथ अपलक नेत्रों से श्री चैतन्य महाप्रभु का नाच देखते रहे, तब तक रथ स्थिर खड़ा रहा।

सुभद्रा-बलरामेर हृदये उल्लास ।

नृत्य देखि' दुइ जनार श्री-मुखेते हास ॥100॥

सुभद्रा-सुभद्रा देवी; बलरामेर-और बलराम के; हृदये-हृदयों में; उल्लास–हर्ष; नृत्य-नृत्य; देखि'–देखकर; दुइ जनार–उन दोनों के; श्री-मुखेते-सुन्दर मुखों पर; हास-मुसकान।

अनुवाद

देवी सुभद्रा तथा भगवान् बलराम दोनों को अपने हृदयों में परम सुख तथा भाव का अनुभव हुआ। निस्सन्देह, वे नृत्य देखकर मुस्कुरा रहे थे।

उद्दण्ड नृत्ये प्रभुर अद्भुत विकार ।

अष्ट सात्त्विक भाव उदय हय सम-काल ॥ 101॥

उद्दण्ड-कूदकर; नृत्ये-नृत्य करने से; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; अद्भुत-अद्भुत; विकार-परिवर्तन; अष्ट सात्त्विक-आठ प्रकार के दिव्य; भाव-भाव; उदय हय-उदय हो गये; सम-काल-एक साथ।

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु नाच रहे थे और ऊँचे उछल रहे थे, तब उनके शरीर में आठ प्रकार के सात्त्विक भाव प्रकट हो आये। ये सारे लक्षण एकसाथ दृष्टिगोचर हो रहे थे।

मांस-व्रण सम रोम-वृन्द पुलकित ।

शिमुलीर वृक्ष येन कण्टक-वेष्टित ॥ 102॥

मांस-चमड़ी; व्रण-हँसी; सम-जैसे; रोम-वृन्द-शरीर के बाल; पुलकित-रोमांचित; शिमुलीर वृक्ष-कपास-वृक्ष; येन-जैसे; कण्टक–काँटों से; वेष्टित–घिर गया।

अनुवाद

उनके शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। ऐसा लगा मानो उनकी चमड़ी में फोड़े फूट निकले हों। उनका शरीर काँटों से आवृत-सेमल वृक्ष के समान प्रतीत हो रहा था।

एक एक दन्तेर कम्प देखिते लागे भय ।

लोके जाने, दन्त सब खसिया पड़य ॥103॥

एक एक-एक एक करके; दन्तेर-दाँतों का; कम्प-कम्पन; देखिते-देखकर; लागे-लगने लगा; भय-भय; लोके जाने-लोगों ने समझा; दन्त-दाँत; सब-सब; खसिया–ढीले होकर; पंड़य–गिर जायेंगे।

अनुवाद

उनके दाँतों को कटकटाते देखकर लोग डर गये और उन्होंने यहाँ तक सोच लिया कि उनके दाँत गिर जायेंगे।

सर्वाङ्गे प्रस्वेद छुटे ताते रक्तोद्गम ।

'जज गग' 'जज गग'—गद्गद-वचन ॥ 104॥

सर्वाङ्गे–सारे शरीर पर; प्रस्वेद-पसीना; छुटे-बहने लगा; ताते—इसके साथ; रक्त-उद्गम-रक्त टपकने लगा; जज गग जज गग-"जज गग जज गग" जगन्नाथ नाम का संकेत करने की ध्वनि; गद्गद-प्रसन्नता से गद्गद् हो गये; वचन–शब्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे शरीर से पसीना बह रहा था और साथ ही रक्त फूट रहा था। वे भावावेश में "जज गग, जज गग" की सँधी आवाज निकाल रहे थे।

जलयन्त्र-धारा यैछे वहे अश्रु-जल ।

आश-पाशे लोक यत भिजिल सकल ॥ 105॥

जल-यन्त्र-पिचकारी से; धारा-जल की धारा; यैछे-जैसे; वहे-निकल रही हो; अश्रु-जल-नेत्रों से अश्रु-जल; आश-पाशे-सभी ओर से; लोक-लोग; यत–जितने भी वहाँ थे; भिजिल-भीग गये; सकल-सब।

अनुवाद

महाप्रभु की आँखों से तेजी से अश्रु निकल रहे थे, मानो पिचकारी से जल निकल रहा हो, जिससे उनके चारों ओर खड़े लोग भीग गये।

देह-कान्ति गौर-वर्ण देखिये अरुण ।

कभु कान्ति देखि येन मल्लिका-पुष्प-सम ॥ 106 ॥

देह-कान्ति-शरीर की कान्ति; गौर-वर्ण-गौर वर्ण; देखिये-हर एक ने देखा; अरुण–गुलाबी; कभु-कभी; कान्ति–कान्ति; देखि-देखकर; येन-जैसे; मल्लिका-पुष्प-सम-मल्लिका-पुष्प से मिलती हुई।

अनुवाद

सभी लोगों ने देखा कि उनके शरीर का रंग गोरे से गुलाबी हो गया है, जिससे उनकी देह की कान्ति मल्लिका फूल जैसी लग रही थी।

कभु स्तम्भ, कभु प्रभु भूमिते लोटाय ।

शुष्क-काष्ठ-सम पद-हस्त ना चलय ॥ 107॥

कभु-कभी; स्तम्भ-स्तम्भित; कभु-कभी; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भूमिते-भूमि पर; लोटाय-लोटते थे; शुष्क-सूखी; काष्ठ-लकड़ी; सम-के समान; पद-हस्त–पाँव तथा हाथ; ना-नहीं; चलय–हिलते थे।

अनुवाद

कभी वे स्तम्भित जान पड़ते और कभी जमीन पर लोटने लगते। कभी-कभी उनके हाथ तथा पाँव लकड़ी जैसे कड़े हो जाते, जिससे वे चल-फिर नहीं सकते थे।

कभु भूमे पड़े, कभु श्वास हय हीन ।

याहा देखि' भक्त-गणेर प्राण हय क्षीण ॥ 108॥

कभु-कभी; भूमे-भूमि पर; पड़े-गिरते थे; कभु-कभी; श्वास–सांस; हय-होते थे; हीन-विहीन; लुप्त; याहा देखि'–जिसे देखकर; भक्त-गणेर-भक्तों के प्राण-प्राण; हय-होते थे; क्षीण-निर्बल।

अनुवाद

जब महाप्रभु जमीन पर गिर पड़ते, तो कभी-कभी उनकी साँस रुक-सी जाती। जब भक्तों ने ऐसा देखा, तो उनके प्राण भी क्षीण हो गये।

कभु नेत्रे नासाय जल, मुखे पड़े फेन ।

अमृतेर धारा चन्द्र-बिम्बे वहे येन ॥109॥

कभु-कभी; नेत्रे–नेत्रों से; नासाय-नासिकाओं से; जल-पानी; मुखे-मुख से; पड़े-गिरता था; फेन-झाग; अमृतेर-अमृत की; धारा-धाराएँ; चन्द्र-बिम्बे-चाँद से; वहे-बहती हों; येन-जैसे।

अनुवाद

कभी उनकी आँखों से पानी बहता, तो कभी नासिकाओं से। उनके मुख से फेन गिरता। ऐसा प्रतीत होता मानो चन्द्रमा से अमृत की धाराएँ बह चली हों।

सेइ फेन लञा शुभानन्द कैल पान ।

कृष्ण-प्रेम-रसिक तेंहो महा-भाग्यवान् ॥110॥

सेइ फेन-वही झाग; लञा-लेकर; शुभानन्द-शुभानन्द नाम के एक भक्त ने; कैल–किया; पान-पान; कृष्ण-प्रेम-रसिक-कृष्ण-प्रेम के रसिक; तेंहो-वह; महा-भाग्यवान्–अति भाग्यवान्।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से जो फेन गिरा, उसे शुभानन्द ने पी लिया, क्योंकि वह महाभाग्यशाली था और कृष्ण-प्रेम रस का आस्वादन करने में पटु था।

एइ-मत ताण्डव-नृत्य कैल कत-क्षण ।

भाव-विशेषे प्रभुर प्रवेशिल मन ॥ 111॥

एइ-मत-इस प्रकार; ताण्डव-नृत्य-ताण्डव नृत्य; कैल–किया; कत-क्षण-कुछ काल के लिए; भाव-विशेषे–विशेष भाव में प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; प्रवेशिल मन-मन प्रवेश कर गया।

अनुवाद

कुछ काल तक ऐसा प्रलयंकारी नृत्य करने के बाद महाप्रभु का मन प्रेमभाव में प्रविष्ट हुआ।

ताण्डव-नृत्य छाड़ि' स्वरूपेरे आज्ञा दिल ।

हृदय जानिया स्वरूप गाइते लागिल ॥112॥

ताण्डव-नृत्य छाड़ि'-ऐसा ताण्डव नृत्य त्यागकर; स्वरूपेरे-स्वरूप दामोदर को: आज्ञा दिल-आज्ञा दी; हृदय-मन; जानिया-जानकर; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; गाइते लागिल-गाने लगे।

अनुवाद

नाचना छोड़कर महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर को गाने के लिए आज्ञा दी। उनके मन की बात समझकर स्वरूप दामोदर इस प्रकार गाने लगे।

“सेइ त पराण-नाथ पाइनु ।

याहा लागि’ मदन-दहने झुरि’ गेनु” ॥113॥

सेइ त-वही निस्सन्देह; पराण-नाथ-मेरे प्राणनाथ; पाइनु-मैंने पा लिये हैं; याहा लागि’-जिनके लिए; मदन-दहने-मदन (कामदेव) द्वारा जलना; झुरि’ गेनु-मैं सूख गया।

अनुवाद

“अब मुझे अपने जीवन के स्वामी प्राप्त हो गये हैं, जिनके बिना मैं कामदेव द्वारा दग्ध हो रही थी और सूखी जा रही थी।”

तात्पर्य

यह गीत कुरुक्षेत्र नामक पुण्य स्थान पर कृष्ण से श्रीमती राधारानी के मिलन का सूचक है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण अपने भाई तथा बहन के साथ सूर्यग्रहण के अवसर पर गये थे। यह कृष्ण से विरह का गीत है। जब श्रीमती राधारानी कृष्ण से कुरुक्षेत्र में मिलीं, तो उन्हें वृन्दावन में श्रीकृष्ण के घनिष्ठ सान्निध्य का स्मरण हो आया और उन्होंने सोचा, “अब मुझे अपने जीवन के स्वामी मिल गये हैं। उसकी अनुपस्थिति में मैं कामदेव के बाण से जल रही थी और सूखी जा रही थी। अब मुझे पुनः अपना जीवन मिल गया।”

एइ धुया उच्चैः-स्वरे गाय दामोदर ।

आनन्दे मधुर नृत्य करेन ईश्वर ॥114॥

एइ धूया-यह टेक; उच्चैः-स्वरे-ऊँची आवाज में; गाय-गाया; दामोदर-दामोदर स्वरूप; आनन्दे-अत्यन्त आनन्द में; मधुर-मधुर; नृत्य-नृत्य; करेन-किया; ईश्वर-महाप्रभु ने।

अनुवाद

जब स्वरूप दामोदर इस टेक को जोर-जोर से गा रहे थे, तब श्री चैतन्य महाप्रभु दिव्य आनन्द में मग्न होकर ताल पर फिर नृत्य करने लगे।

धीरे धीरे जगन्नाथ करेन गमन ।

आगे नृत्य करि' चलेन शचीर नन्दन ॥ 115॥

धीरे धीरे-धीरे धीरे; जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ ने; करेन-किया; गमन प्रस्थान; आगे-आगे; नृत्य-नृत्य; करि'-करते हुए; चलेन-चले; शचीर नन्दन-माता शची के पुत्र।

अनुवाद

तब जगन्नाथजी का रथ धीरे-धीरे चलने लगा और शचीमाता के पुत्र आगे बढ़कर रथ के समक्ष नाचने लगे।

जगन्नाथे नेत्र दिया सबे नाचे, गाय ।

कीर्तनीया सह प्रभु पाछे पाछे याय ॥ 116 ॥

जगन्नाथे-भगवान जगन्नाथ पर; नेत्र-आँखें; दिया–टिकाकर; सबे-सभी भक्तों ने; नाचे गाय-नाचा और गाया; कीर्तनीया–संकीर्तन करने वालों के; सह-साथ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पाछे पाछे-पीछे पीछे; याय-आगे बढ़ने लगे।

अनुवाद

नाचते तथा गाते हुए, भगवान् जगन्नाथ के सामने जितने भक्त थे, वे उन्हीं पर आँखें टिकाये थे। तब चैतन्य महाप्रभु कीर्तनियों के साथ जुलूस के पिछले सिरे तक गये।

जगन्नाथे मग्न प्रभुर नयन-हृदय ।

श्री-हस्त-युगे करे गीतेर अभिनय ॥117॥

जगन्नाथे-भगवान जगन्नाथ में; मग्न-मग्न; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; नयन-हृदय-नयन और मन; श्री-हस्त-युगे-अपनी दोनों भुजाओं के साथ; करे–किया; गीतेर-गीत का; अभिनय-अभिनय।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु अपने नेत्रों तथा मन को भगवान जगन्नाथ पर टिकाए। हुए अपने दोनों हाथों से गीत का अभिनय करने लगे।

गौर यदि पाछे चले, श्याम हय स्थिरे ।

गौर आगे चले, श्याम चले धीरे-धीरे ॥118॥

गौर–श्री चैतन्य महाप्रभु; यदि-यदि; पाछे चले-पीछे चले जाते; श्याम–भगवान् जगन्नाथ; हय-हो जाते; स्थिरे-स्थिर; गौर-श्री चैतन्य महाप्रभु; आगे चले-आगे चलते; श्याम- भगवान जगन्नाथ; चले-चलने लगते; धीरे-धीरे-धीरे धीरे।

अनुवाद

गीत का अभिनय करते हुए महाप्रभु कभी-कभी जुलूस में पिछड़ जाते। ऐसे अवसरों पर भगवान् जगन्नाथ स्थिर हो जाते। जब चैतन्य महाप्रभु पुनः आगे आ जाते, तो भगवान् जगन्नाथ का रथ पुनः धीरे-धीरे चल देता।

एइ-मत गौर-श्यामे, दोंहे ठेलाठेलि ।

स्वरथे श्यामेरे राखे गौर महा-बली ॥ 119॥

एइ-मत-इस प्रकार; गौर-श्यामे-भगवान जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु; दोहे-उन दोनों के मध्य; ठेलाठेलि-आगे धकेलने की स्पर्धा; स्व-रथे-अपने ही रथ में; श्यामेरे-भगवान् जगन्नाथ; राखे-रखते हैं; गौर-श्री चैतन्य महाप्रभु; महा-बली-अत्यन्त शक्तिशाली।

अनुवाद

इस तरह चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् जगन्नाथ में यह देखने की होड़ लगी थी कि कौन आगे निकल जाए। किन्तु चैतन्य महाप्रभु इतने बलशाली थे कि जगन्नाथजी को अपने रथ में प्रतीक्षा करनी पड़ती।

तात्पर्य

अपने अनुभाष्य में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर चैतन्य महाप्रभु के भावावेश का वर्णन इस प्रकार करते हैं। वृन्दावन में गोपियों का साथ छोड़कर महाराज नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण द्वारका में अपनी लीलाओं में संलग्न हो गये। जब कृष्ण अपने भाई, बहन तथा अन्य लोगों के साथ द्वारका से कुरुक्षेत्र गये, तब वे वृन्दावन के निवासियों से पुनः मिले। श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण को समझने के लिए श्रीमती राधारानी की भूमिका अदा कर रहे थे (राधाभावद्युतिसुवलित)। भगवान् जगन्नाथ कृष्ण हैं और श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु श्रीमती राधारानी हैं। चैतन्य महाप्रभु द्वारा जगन्नाथजी को गुण्डिचा मन्दिर की ओर ले जाना श्रीमती राधारानी द्वारा कृष्ण को वृन्दावन ले जाने जैसा था। श्री क्षेत्र, जगन्नाथ पुरी को कृष्ण की परम ऐश्वर्य लीलास्थली द्वारका क्षेत्र माना जाता है। किन्तु वे श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा छोटे से गाँव वृन्दावन ले जाये जा रहे थे, जहाँ के सारे निवासी कृष्ण के प्रेम से ओतप्रोत हैं। श्री क्षेत्र ऐश्वर्य लीला का स्थल है, जिस तरह वृन्दावन माधुर्य लीला का स्थल है। रथ के पीछे-पीछे श्री चैतन्य महाप्रभु के चलने का अर्थ यह था कि भगवान जगन्नाथ अर्थात् कृष्ण वृन्दावन के निवासियों को भूल रहे हैं । यद्यपि कृष्ण ने वृन्दावन के निवासियों की उपेक्षा की थी, किन्तु वे उन्हें भुला नहीं पाये थे। इस तरह वे अपनी ऐश्वर्यपूर्ण रथयात्रा में वृन्दावन लौट रहे थे। श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीमती राधारानी की भूमिका में परीक्षा ले रहे थे कि क्या भगवान् को वृन्दावन के निवासियों की अब भी याद आती है या नहीं। जब चैतन्य महाप्रभु रथ से पिछड़ जाते, तो जगन्नाथ देव अर्थात् स्वयं कृष्ण श्रीमती राधारानी के मन को जान लेते। इसीलिए कभी-कभी जगन्नाथजी यह दिखाने के लिए नाचते हुए महाप्रभु से पिछड़ जाते कि वे श्रीमती राधारानी को भूले नहीं हैं। इस जगह भगवान् जगन्नाथ रथ का आगे बढ़ना रोक लेते और पूरी तरह रथ रोककर प्रतीक्षा करते। इस तरह जगन्नाथजी ने स्वीकार किया कि श्रीमती राधारानी के भाव के बिना वे सन्तुष्ट नहीं होंगे। जब जगन्नाथजी इस तरह प्रतीक्षा करते, तो गौरसुन्दर, चैतन्य महाप्रभु अपने श्रीमती राधारानी के भाव में कृष्ण के आगे आ जाते। ऐसे अवसरों पर भगवान् जगन्नाथ बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ते। इस तरह की पारस्परिक होड़ कृष्ण तथा राधारानी के प्रेम-व्यापार की अंग थी। महाप्रभु द्वारा जगन्नाथ के लिए और जगन्नाथ द्वारा श्रीमती राधारानी के लिए जो भाव की प्रतिस्पर्धा थी, उसमें चैतन्य महाप्रभु विजयी हुए।

नाचिते नाचिते प्रभुर हैला भावान्तर ।

हस्त तुलि' श्लोक पड़े करि' उच्चैः-स्वर ॥ 120॥

नाचिते नाचिते-नाचते नाचते; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; हैला-हो गया; भाव-अन्तर-भाव-परिवर्तन; हस्त तुलि'–भुजाएँ उठाकर; श्लोक पड़े-एक श्लोक पढ़ने लगे; करि'-करके; उच्चैः-स्वर-ऊँची आवाज।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु नाच रहे थे, तो उनका भाव बदल गया। वेअपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर ऊँचे स्वर से निम्नलिखित श्लोक सुनानेलगे।

यः कौमार-हरः स एव हि वरस्ता एव चैत्र-क्षपास्

ते चोन्मीलित-मालती-सुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बानिलाः ।

सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरत-व्यापार-लीला-विधौ

रेवा-रोधसि वेतसी-तरु-तले चेतः समुत्कण्ठते ॥ 121॥

यः-वही व्यक्ति जो; कौमार-हरः-युवावस्था में मेरा चित्तचोर; सः-वह; एव हि-निस्सन्देह; वरः-प्रेमी; ताः-इन; एव–अवश्य; चैत्र-क्षपाः-चैत्र मास की चांदनी रातें; ते-वे; च-और; उन्मीलित-खिले हुए; मालती मालती पुष्पों की; सुरभयः-सुगन्ध; प्रौढ़ाः-पूर्ण; कदम्ब-कदम्भ पुष्प की सुगन्ध से; अनिलाः-पवन; सा-वह; च-भी; एव–निस्सन्दह; अस्मि-मैं हूँ; तथापि–फिर भी; तत्र-वहाँ; सुरत-व्यापार–अन्तरंग व्यापार में; लीला-लीलाओं के; विधौ-रीति में; रेवा-रेवा नदी के; रोधसि-तट पर; वेतसी–वेतसी नामक; तरु-तले वृक्ष के तले; चेतः-मेरा मन; समुत्कण्ठते-जाने को उत्सुक है।

अनुवाद

“जिस व्यक्ति ने युवावस्था में मेरा हृदय चुरा लिया था, वही अब फिर से मेरा स्वामी है। ये चैत्र-मास की वही चाँदनी रातें हैं। वही मालती पुष्पों की सुगन्ध है और कदम्ब वन की वही मधुर वायु बह रही है। अपने घनिष्ठ सम्बन्ध में मैं वही प्रेमिका हूँ, फिर भी मेरा मन यहाँ सुखी नहीं है। मैं रेवा नदी के तट पर स्थित वेतसी वृक्ष के नीचे वापस जाने के लिए उत्सुक हूँ। यही मेरी उत्कण्ठा है।”

तात्पर्य

यह श्रील रूप गोस्वामी कृत पद्यावली का (386) श्लोक है।

एइ श्लोक महाप्रभु पड़े बार बार ।

स्वरूप विना अर्थ केह ना जाने इहार ॥122॥

एइ श्लोक-यह श्लोक; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; पड़े-पढ़ा; बार बार-बारम्बार; स्वरूप विना-स्वरूप दामोदर के अतिरिक्त; अर्थ-तात्पर्य; केह-कोई भी; ना जाने नहीं जानता था; इहार-इसका।

अनुवाद

श्री चैतन्य महप्रभु इस श्लोक को बारम्बार पढ़ रहे थे, किन्तु स्वरूप दामोदर के अलावा इसका अर्थ अन्य कोई नहीं समझ सका।

एइ श्लोकार्थ पूर्वे करियाछि व्याख्यान ।

श्लोकेर भावार्थ करि सङ्क्षेपे आख्यान ॥ 123 ॥

एइ श्लोक-अर्थ-इस श्लोक का अर्थ; पूर्वे-पहले; करियाछि-मैंने की है; व्याख्यान-व्याख्या; श्लोकेर-उसी श्लोक का; भाव-अर्थ-भावार्थ; करि-मैं करता हूँ; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; आख्यान-वर्णन।

अनुवाद

मैं इस श्लोक की व्याख्या पहले ही कर चुका हूँ। अब मैं संक्षेप में इसका वर्णन करूँगा।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में देखें मध्यलीला, अध्याय 1, श्लोक 53, 77-80 तथा 82-84।

पूर्वे यैछे कुरुक्षेत्रे सब गोपी-गण ।

कृष्णेर दर्शन पाञा आनन्दित मन ॥124॥

पूर्वे यैछे-जैसे पहले; कुरु-क्षेत्रे-कुरुक्षेत्र में; सब गोपी-गण-वृन्दावन की सारी गोपियाँ; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; दर्शन-दर्शन; पाञा-पाकर; आनन्दित मन-मन में अत्यन्त आनन्दित हुईं।

अनुवाद

पहले, जब वृन्दावन की सारी गोपियाँ कृष्ण से कुरुक्षेत्र की पवित्र भूमि में मिलीं, तो वे परम प्रसन्न हुईं।

जगन्नाथ देखि' प्रभुर से भाव उठिल ।

सेइ भावाविष्ट हञा धुया गाओयाइल ॥125 ॥

जगन्नाथ देखि'–भगवान् जगन्नाथ को देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; से भाव-वह भाव; उठिल-उठा, जाग पड़ा; सेइ-जो; भाव-आविष्ट-भावाविष्ट होकर; हञा-होकर; धुया-स्थायी (टेक); गाओयाइल-गवाया।

अनुवाद

इसी तरह भगवान जगन्नाथ का दर्शन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु में गोपी-भाव जाग्रत हुआ। इस भाव में मग्न होने के कारण उन्होंने स्वरूप दामोदर से कहा कि वे टेक गायें।

अवशेषे राधा कृष्णे करे निवेदन ।

सेइ तुमि, सेइ आमि, सेइ नव सङ्गम ॥126॥

अवशेषे–अन्त में; राधा-श्रीमती राधारानी; कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; करे-किया; निवेदन-निवेदन; सेइ तुमि-आप वही कृष्ण हैं; सेइ आमि-मैं वही राधारानी हूँ; सेइ नव सङ्गम-हम पहले जैसे ही नये उत्साह में मिल रहे हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान जगन्नाथ से इस प्रकार कहा, "आप वही कृष्ण हैं और मैं वही राधारानी हूँ। हम पुनः उसी प्रकार मिल रहे हैं, जिस तरह हम अपने जीवन के प्रारम्भ में मिले थे।

तथापि आमार मन हरे वृन्दावन ।

वृन्दावने उदय कराओ आपन-चरण ॥127॥

तथापि-फिर भी; आमार-मेरा; मन–मन; हरे–आकर्षित करता है; वृन्दावन-श्री वृन्दावन; वृन्दावने-वृन्दावन में; उदय कराओकृपया पुनः प्रकट कराओ; आपन-चरण-अपने चरणकमलों की ज्योति।

अनुवाद

यद्यपि हम दोनों वही हैं, किन्तु आज भी मेरा मन वृन्दावन-धाम के प्रति आकृष्ट होता है। मेरी इच्छा है कि आप पुनः वृन्दावन में अपने चरणकमल रखें।

इहाँ लोकारण्य, हाती, घोड़ा, रथ-ध्वनि ।

ताहाँ पुष्पारण्य, भृङ्ग-पिक-नाद शुनि ॥ 128॥

इहाँ–इस स्थान (कुरुक्षेत्र में); लोक-अरण्य–लोगों की बड़ी भीड़; हाती-हाथी; घोड़ा-घोड़े; रथ-ध्वनि-रथ-ध्वनि; ताहाँ-वहाँ वृन्दावन में; पुष्प-अरण्य–पुष्पों के उद्यान; भृङ्ग-भौंरे; पिक-पक्षियों की; नाद-ध्वनि; शुनि–मैं सुनती हूँ।

अनुवाद

कुरुक्षेत्र में लोगों की भीड़ है; उनके हाथी, घोड़े तथा घर घर्र करते रथ हैं। किन्तु वृन्दावन में फूलों के बाग हैं और उनमें मधुमक्खियों की गुंजार तथा पक्षियों की चहचहाहट सुनी जा सकती है।

इहाँ राज-वेश, सङ्गे सब क्षत्रिय-गण ।

ताहाँ गोप-वेश, सङ्गे मुरली-वादन ॥129॥

इहाँ–यहाँ कुरुक्षेत्र में; राज-वेश-राज-वेश में; सङ्गे-आपके साथ; सब-सभी; क्षत्रिय-गण-महान् योद्धा; ताहाँ-वहाँ वृन्दावन में; गोप-वेश-गोप-वेश में; सङ्गे-आपके संग; मुरली-वादन-आप की दिव्य बाँसुरी का वादन।

अनुवाद

"यहाँ कुरुक्षेत्र में आप राजसी वेश में हैं और आपके साथ बड़े-बड़े योद्धा हैं, किन्तु वृन्दावन में आप सामान्य ग्वालबाल की तरह अपनी सुन्दर मुरली लिए प्रकट हुए थे।

व्रजे तोमार सङ्गे येइ सुख-आस्वादन ।

सेइ सुख-समुद्रेर इहाँ नाहि एक कण ॥130॥

व्रजे-वृन्दावन में; तोमार-आपके; सङ्गे–संग में; येइ-जो; सुख-आस्वादन-दिव्य आनन्द का आस्वादन; सेइ-वह; सुख-समुद्रेर-दिव्य आनन्द के सागर का; इहाँ-यहाँ कुरुक्षेत्र में; नाहि-नहीं हैं; एक–एक; कण-कण।

अनुवाद

“यहाँ पर उस सुखसागर की एक बूंद भी नहीं है, जिसका आनन्द मैं वृन्दावन में आपके साथ लेती थी।

आमा लञा पुनः लीला करह वृन्दावने ।

तबे आमार मनो-वाञ्छा हय त’ पूरणे ॥ 131॥

आमा लञा-मुझे लेकर; पुनः–पुनः; लीला-लीलाएँ; करह-करो; वृन्दावने-वृन्दावन में; तबे-तब; आमार मनः-वाञ्छा–मेरे मन की इच्छा; हय-होगी; त’-निस्सन्देह; पूरणे-पूर्ण।

अनुवाद

“अतएव मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप वृन्दावन आयें और मेरे साथ लीलाविलास करें। यदि आप ऐसा करेंगे, तो मेरी मनोकामना पूरी हो जायेगी।”

भागवते आछे यैछे राधिका-वचन ।

पूर्वे ताहा सूत्र-मध्ये करियाछि वर्णन ॥132॥

भागवते-श्रीमद्भागवत में; आछे-है; यैछे-जैसे: राधिका-वचन-श्रीमती राधारानी का कथन; पूर्वे-पहले; ताहा-वह; सूत्र-मध्ये-रूपरेखा में; करियाछि वर्णन–मैंने वर्णन किया है।

अनुवाद

मैं पहले ही श्रीमद्भागवत से श्रीमती राधारानी के कथन का संक्षिप्त वर्णन कर चुका हूँ।

सेइ भावावेशे प्रभु पड़े आर श्लोक ।

सेइ सब श्लोकेर अर्थ नाहि बुझे लोक ॥ 133॥

सेइ-उसी; भाव-आवेशे-भावावेश में; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पड़े-पढ़ते हैं; आर-एक अन्य; श्लोक-श्लोक; सेइ-वे; सब श्लोकेर-सब श्लोकों का; अर्थ-अर्थ; नाहि-नहीं; बुझे-समझते; लोक-सामान्य लोग।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस भावावेश में अन्य कई श्लोक सुनाये, किन्तु सामान्य लोग उनका अर्थ नहीं समझ सके।

स्वरूप-गोसाञि जाने, ना कहे अर्थ तार ।

श्री-रूप-गोसाञि कैल से अर्थ प्रचार ॥134॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; जाने-जानते हैं; ना-नहीं; कहे-किया; अर्थ--अर्थ; तार–उन श्लोकों के; श्री-रूप-गोसाञि-श्री रूप गोस्वामी; कैल-किया; से-उस; अर्थ-अर्थ का प्रचार-प्रचार।

अनुवाद

इन श्लोकों का अर्थ स्वरूप दामोदर गोस्वामी को ज्ञात था, किन्तु उन्होंने इसे प्रकट नहीं किया। फिर भी श्री रूप गोस्वामी ने इसका अर्थ विज्ञापित किया है।

स्वरूप सङ्गे यार अर्थ करे आस्वादन ।

नृत्य-मध्ये सेइ श्लोक करेन पठन ॥ 135 ॥

स्वरूप सङ्गे–स्वरूप दामोदर गोस्वामी के संग में; झार–जिसका अर्थ-अर्थ; करे-करते हैं; आस्वादन-आस्वादन; नृत्य-मध्ये-नृत्य के मध्य; सेइ श्लोक-वह श्लोक; करेन पठन-पढ़ते हैं।

अनुवाद

नाचते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने निम्नलिखित श्लोक पढ़ना शुरू किया, जिसका आस्वादन उन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी के साथ किया।

आहुश्च ते नलिन-नाभ पदारविन्दं

योगेश्वरैर्हदि विचिन्त्यमगाध-बोधैः ।

संसार-कूप-पतितोत्तरणावलम्ब

गेहं जुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥ 136 ॥

आहुः-गोपियों ने कहा; च-और; ते-आपका; नलिन-नाभ-हे भगवान्, जिसकी नाभि कमल के पुष्प जैसी है; पद-अरविन्दम्-चरणकमल; योग-ईश्वरैः-महान् योगियों के; हृदि हृदय में; विचिन्त्यम्-ध्यान करने योग्य हैं; अगाध-बोधैः-जो अति विद्वान दार्शनिक हैं; संसार-कूप- भौतिक संसार रूपी अन्धे कुएँ में; पतित-उन पतितों के; उत्तरण-उद्धार के लिए; अवलम्बम्-एकमात्र आश्रय; गेहम्-पारिवारिक कार्यों में; जुषाम्-व्यस्त; अपि-यद्यपि; मनसि–मनों में; उदियात्-जागृत हो; सदा-सदा; नः-हमारे।

अनुवाद

"[गोपियाँ इस प्रकार बोलीं :]"हे कमल-नाभ, जो लोग भौतिक संसाररूपी गहरे कुएँ में गिर चुके हैं, उनके लिए आपके चरणकमल ही एकमात्र आश्रय हैं। आपके चरणों की पूजा तथा उनका ध्यान बड़े-बड़े योगी तथा विद्वान दार्शनिक करते हैं। हम चाहती हैं कि वे ही चरणकमल हमारे हृदयों में भी उदित हों, यद्यपि हम सभी गोपियाँ गृहस्थी के कार्यों में संलग्न रहने वाली सामान्य स्त्रीयाँ हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.82.48) का है। गोपियों को कभी भी कर्म-योग, ज्ञानयोग या ध्यानयोग में रुचि नहीं थी। वे तो एकमात्र भक्तियोग में रुचि रखती थीं। जब तक उन्हें बाध्य नहीं किया गया, उन्होंने भगवान् के चरणकमलों का ध्यान करना नहीं चाहा। प्रत्युत वे उन चरणकमलों को अपने वक्षस्थलों पर रखना चाहती थीं। कभी-कभी उन्हें खेद होता था कि उनके वक्षस्थल इतने कठोर हैं, जिससे उन्हें भय था कि कृष्ण अपने कोमल चरणकमल उन पर न रखना चाहें । जब वृन्दावन के चरागाहों के बालू के कण उनके चरणकमलों में गड़ जाते, तो गोपियों को वेदना होती और वे रोने लगतीं। गोपियाँ कृष्ण को हमेशा अपने पास घर पर रखना चाहती थीं। इस प्रकार उनके मन कृष्णभावनामृत में मग्न रहते थे। ऐसी शुद्ध कृष्णभावना केवल वृन्दावन में ही प्रकट हो सकती हैं। इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभुः गोपी-भाव से संतृप्त अपने मन की बात बताने लगे।

अन्येर हृदय—मन, मोर मन—वृन्दावन,

'मने 'वने' एक करि' जानि ।

ताहाँ तोमार पद-द्वय, कराह यदि उदय,

तबे तोमार पूर्ण कृपा मानि ॥137॥

अन्येर-दूसरों के; हृदय-हृदय; मन–मन; मोर मन–मेरा मन; बृन्दावन-वृन्दावन की चेतना; मने-मन के साथ; वने-वृन्दावन के साथ; एक करि'-एक करके; जानि-मैं जानती हूँ; ताहाँ-वहाँ वृन्दावन में; तोमार-आपके; पद-द्वय-दोनों चरणकमल; कराह करो; यदि-यदि; उदय-प्रकट; तबे-तब; तोमार—आपकी; पूर्ण–पूर्ण; कृपा-कृपा; मानि–मैं मानँ।

अनुवाद

श्रीमती राधारानी के भाव में श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "अधिकांश लोगों के लिए मन तथा हृदय एक होते हैं, किन्तु मेरा मन कभी भी वृन्दावन से अलग नहीं होता, अतएव मैं अपने मन और वृन्दावन को एक मानती हूँ। मेरा मन पहले से वृन्दावन है और चूँकि आप वृन्दावन को पसन्द करते हैं, तो क्या आप अपने चरणकमल वहाँ रखेंगे? इसे मैं आपकी पूर्ण कृपा मानूँगी।

तात्पर्य

मन का काम है सोचना, महसूस करना तथा इच्छा करना। इसी के द्वारा मन भौतिक रूप से अनुकूल वस्तुओं को स्वीकार करता है और प्रतिकूल वस्तुओं का त्याग करता है। साधारण लोगों की ऐसी ही चेतना रहती है। लेकिन जब मन कुछ भी स्वीकार या त्याग नहीं करता और केवल भगवान् के चरणकमलों में दृढ़ता से स्थित रहता है, तो उसका मन वृन्दावन के समान बन जाता है। जहाँ कृष्ण हैं, वहीं श्रीमती राधारानी, गोपियाँ, ग्वाल-बाल तथा अन्य सभी व्रजवासी हैं। जैसे ही कोई अपना मन कृष्ण पर केन्द्रित करता है, वैसे ही उसका मन वृन्दावन के समान बन जाता है। दूसरे शब्दों में, जब किसी का मन पूरी तरह भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की सेवा में ही लगा रहता है, तब वह भक्त कहीं और नहीं, केवल वृन्दावन में ही निवास करता है।

प्राण-नाथ, शुन मोर सत्य निवेदन

व्रज–आमार सदन, ताहाँ तोमार सङ्गम, ।

ना पाइले ना रहे जीवन ॥138॥

प्राण-नाथ हे मेरे प्राणनाथ; शुन–कृपया सुनें; मोर-मेरा; सत्य-सत्य; निवेदन-प्रार्थना; व्रज-वृन्दावन; आमार-मेरा; सदन–घर; ताहाँ-वहाँ; तोमार-आपका; सङ्गम-संग; ना पाइले–यदि मुझे नहीं मिला; ना-नहीं; रहे-रहेगा; जीवन-जीवन।

अनुवाद

"हे प्रभु, कृपया मेरी सच्ची विनती सुनें। मेरा घर वृन्दावन है और मैं वहाँ आपका सान्निध्य चाहती हूँ। किन्तु यदि मुझे सान्निध्य नहीं मिला, तो मेरा जीवन दूभर हो जायेगा।

तात्पर्य

जब मनुष्य का मन उपाधियों से मुक्त रहता है, तभी वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सान्निध्य की इच्छा कर सकता है। मन के लिए कुछ न कुछ-कार्य होना चाहिए। यदि मनुष्य को भौतिक बातों से मुक्त होना है, तो उसका मन खाली नहीं रह सकता। उसके पास सोचने, अनुभव करने तथा चाहने के लिए कुछ-न-कुछ होना ही चाहिए। यदि मनुष्य का मन कृष्ण-सम्बन्धी विचारों से, कृष्ण के लिए भावों से, और कृष्ण की सेवा करने की इच्छा से नहीं भरा है, तो उसका मन भौतिक कार्यकलापों से भर जायेगा। जिन्होंने सारे भौतिक कार्यकलापों का परित्याग कर दिया है और उनके विषय में सोचना बन्द कर दिया है, उन्हें कृष्ण का चिन्तन करने की अभिलाषा बनाये रखनी चाहिए। कृष्ण के बिना मनुष्य रह नहीं सकता, जिस तरह वह अपने मन के किसी मनोरंजन के बिना नहीं रह सकता।

पूर्वे उद्धव-द्वारे, एबे साक्षातामारे,

योग-ज्ञाने कहिला उपाय ।

तुमि—विदग्ध, कृपामय, जानह आमार हृदय,

मोरे ऐछे कहिते ना युयाय ॥ 139॥

पूर्वे-पहले; उद्धव-द्वारे-उद्धव द्वारा; एबे-अब; साक्षात्-साक्षात्; आमारे-मुझे; योग-योग-ध्यान; ज्ञाने-तार्किक ज्ञान; कहिला-आपने कहा है; उपाय-उपाय; तुमि-आप; विदग्ध-अत्यन्त चतुर; कृपा-मय-कृपालु; जानह–आप जानते हो; आमार-मेरा; हृदय-मन; मोरे-मुझे; ऐछे—उस तरह; कहिते-कहने के लिए; ना युयाय–बिल्कुल योग्य नहीं है।

अनुवाद

"हे कृष्ण, जब आप पहले मथुरा में रह रहे थे, तब आपने मुझे योग तथा ज्ञान की शिक्षा देने के लिए उद्धव को भेजा था। अब आप स्वयं वही बात कह रहे हैं, किन्तु मेरा मन उसे स्वीकार नहीं करता। मेरे मन में

ज्ञानयोग या ध्यानयोग के लिए कोई स्थान नहीं है। यद्यपि आप मुझे अच्छी तरह से जानते हैं, फिर भी ज्ञानयोग तथा ध्यानयोग का उपदेश दे रहे हैं। ऐसा करना आपके लिए उचित नहीं है।"

तात्पर्य

जो कृष्ण के विचारों में सदा मग्न रहता है, उसे परम सत्य की खोज करने की चिन्तन-विधि अर्थात् योग की विधि अच्छी नहीं लगती। भक्त कभी भी चिन्तनशील कार्यों में रुचि नहीं दिखाता। उसे ज्ञान का अनुशीलन या योग का अभ्यास करने के बजाय मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा करने और भगवान् की सेवा में निरन्तर लगे रहना चाहिए। मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा को भक्तगण भगवान् की प्रत्यक्ष सेवा मानते हैं। भगवान् की मूर्ति अर्चाविग्रह या अर्चा-अवतार कहलाती है, जो परम भगवान् का भौतिक पदार्थ (पीतल, पत्थर या लकड़ी) में प्राकट्य होता है। अन्ततः पदार्थ में प्रकट कृष्ण अथवा आत्मा में प्रकट कृष्ण में कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि दोनों ही उनकी शक्तियाँ हैं। कृष्ण के लिए पदार्थ और आत्मा में कोई अन्तर नहीं है। अतः भौतिक रूप में उनका प्राकट्य उनके मूल रूप सच्चिदानन्द विग्रह जितना ही अच्छा है। शास्त्रों द्वारा निर्धारित तथा गुरु द्वारा बतलाये गये विधि-विधानों के अनुसार अर्चाविग्रह पूजा में संलग्न भक्त को क्रमशः अनुभव होता है कि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रत्यक्ष सम्पर्क में है। अतः वह तथाकथित ध्यान, योगाभ्यास एवं मानसिक तर्कवितर्क में रुचि नहीं लेता।

चित्त काढ़ि' तोमा हैते, विषये चाहि लागाइते,

यत्न करि, नारि काढ़िबारे।

तारे ध्यान शिक्षा कराह, लोक हासाञा मार,

स्थानास्थान ना कर विचारे ॥140॥

चित्त काढ़ि'-चेतना समेटकर; तोमा हैते-आपसे; विषये-लौकिक विषयों में; चाहि-मैं चाहता हूँ; लागाइते-लगाना; यत्न करि-मैं प्रयास करता हूँ; नारि काढ़िबारे-मैं वापस नहीं ले सकता; तारे-ऐसे सेवक को; ध्यान-ध्यान की; शिक्षा-शिक्षा; कराह-आप देते हो; लोक-सामान्य लोग; हासाञा-हँसाना; मार-आप मार रहे हो; स्थान-अस्थान-उचित अथवा अनुचित स्थान; ना कर-न करो; विचारे-विचार।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "मैं अपनी चेतना आपसे हटाकर भौतिक कार्यों में लगाना चाहती हूँ, लेकिन लाख प्रयत्न करके भी ऐसा नहीं कर पाती। मैं स्वभाव से आपकी ओर उन्मुख हूँ। अतएव आपका यह उपदेश कि मैं आपका ध्यान करूँ, अत्यन्त हास्यास्पद प्रतीत होता है। इस तरह आप तो मुझे मारे डाल रहे हैं। आपके लिए अच्छा नहीं है कि आप मुझे अपने उपदेशों का पात्र समझें।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (1.1:11) में श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है :

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम् ।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

शुद्ध भक्त के लिए योग के अभ्यास या ज्ञान के अनुशीलन में लगने के लिए अवकाश ही नहीं रहता। शुद्ध भक्त के लिए वास्तव में ऐसे अनावश्यक कार्यों में मन लगा पाना असम्भव है। यदि शुद्ध भक्त चाहे तो भी उसका मन उसे ऐसा नहीं करने देता। शुद्ध भक्त की यही विशेषता है-वह सकाम कर्म, चिन्तन-दर्शन या योग-ध्यान से परे होता है। इसीलिए गोपियों ने अपनी अभिव्यक्ति इस प्रकार की।

नहे गोपी योगेश्वर, पद-कमल तोमार,

ध्यान करि' पाइबे सन्तोष ।

तोमार वाक्य-परिपाटी, तार मध्ये कुटिनाटी,

शुनि' गोपीर आरो बाढ़े रोष ॥ 141॥

नहे-नहीं; गोपी-गोपियाँ; योगेश्वर-योगाभ्यास में दक्ष; पद-कमल तोमार—आपके चरणकमल; ध्यान करि'-ध्यान से; पाइबे सन्तोष-हमें सन्तोष मिलता है; तोमार-आपके; वाक्य-कथन; परिपाटी–अत्यन्त कृपापूर्वक रचित; तार मध्ये-उसके मध्य; कुटिनाटी-छल; शुनि'–सुनकर; गोपीर-गोपियों का; आरो-और अधिक; बाढ़े-बढ़ता है; रोष-क्रोध।

अनुवाद

"गोपियाँ योगियों जैसी नहीं हैं। वे आपके चरणकमलों का ध्यान करने एवं तथाकथित योगियों का अनुकरण करने मात्र से कभी तुष्ट नहीं होंगी। गोपियों को ध्यान की शिक्षा देना एक अन्य प्रकार का छल है। जब उन्हें योगाभ्यास करने का उपदेश दिया जाता है, तब वे तनिक भी सन्तुष्ट नहीं होतीं। उल्टे वे आपसे और अधिक नाराज हो जाती हैं।"

तात्पर्य

श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती ने चैतन्य चन्द्रामृत (5) में कहा है :

कैवल्यं नरकायते त्रिदशपूराकाशपुष्पायते

दुर्दान्तेन्द्रियकालसर्पपटली प्रोत्खातदंष्ट्रायते ।

विश्वं पूर्णसुखायते विधिमहेन्द्रादिश्च कीटायते

यत्कारुण्यकटाक्षवैभववतां तं गौरमेव स्तुमः ॥

जिस शुद्ध भक्त ने श्री चैतन्य महाप्रभु के माध्यम से कृष्णभावनामृत की अनुभूति पा ली है, उसके लिए अद्वैतवादी दर्शन, जिससे वह परम से एकाकार हो जाता है, नरक के समान प्रतीत होता है। शुद्ध भक्त के लिए वह योगाभ्यास, जिससे मन को वश में किया जाता है और इन्द्रियों को संयमित किया जाता है, हास्यास्पद प्रतीत होता है। भक्त का मन तथा इन्द्रियाँ पहले से भगवान् की दिव्य सेवा में लगी रहती हैं। इस तरह इन्द्रिय कार्यों का विषैला प्रभाव हट जाता है। यदि किसी का मन सदैव भगवान् की सेवा में व्यस्त रहता है, तो उसके लिए भौतिक दृष्टि से सोचने, अनुभव करने या कर्म करने की सम्भावना नहीं रह जाती। इसी तरह सकाम कर्मी द्वारा स्वर्ग प्राप्त करने का प्रयास भी भक्त के लिए मायाजाल प्रतीत होता है। अन्ततः सारे स्वर्गीय ग्रह भौतिक हैं। और कालक्रम में वे विनष्ट हो जायेंगे। भक्त कभी ऐसी नश्वर वस्तुओं की परवाह नहीं करते। वे दिव्य भक्तिमय कार्यकलापों में लगे रहते हैं, क्योंकि वे आध्यात्मिक जगत् में उन्नत होना चाहते हैं, जहाँ वे शान्तिपूर्वक सनातन रूप से कृष्ण के पूर्ण ज्ञान से युक्त होकर रह सकते हैं। वृन्दावन में सारी गोपियाँ, ग्वालबाल, यहाँ तक कि बछड़े, गायें, वृक्ष तथा जल भी पूर्णतया कृष्णभावनाभावित होते हैं। वे कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु से तुष्ट नहीं होते।

देह-स्मृति नाहि यार, संसार-कूप काहाँ तार,

ताहा हैते ना चाहे उद्धार ।

विरह-समुद्र-जले, काम-तिमिङ्गिले गिले,

गोपी-गणे नेह' तार पार ॥ 142॥

देह-स्मृति-देहात्म बोध; नाहि-नहीं; यार–जिसका; संसार-कूप-भौतिक जीवन का अन्धा कूप; काहाँ–कहाँ है; तार-उसका; ताहा हैते-उससे; ना-नहीं; चाहे–चाहते; उद्धार-उद्धार; विरह-समुद्र-जले-विरह-समुद्र के जल में; काम-तिमिङ्गिले-तिमिंगिल मछली से रूप में दिव्य कामदेव; गिले-निगल जाती हैं; गोपी-गणे-गोपियाँ; नेह'-कृपया निकाल लो; तार पार-उसके पार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "गोपियाँ विरह रूपी महासागर में गिर गईं हैं और उन्हें आपकी सेवा करने की अभिलाषा रूपी तिमिंगल मछली निगले जा रही है। शुद्ध भक्त होने के कारण गोपियों को इन तिमिंगल मछलियों से बचाना है। उन्हें जीवन की भौतिक अनुभूति नहीं है, तो फिर वे मुक्ति की आकांक्षा क्यों करें? गोपियों को योगियों तथा ज्ञानियों द्वारा अभीष्ट मुक्ति नहीं चाहिए, क्योंकि वे पहले से ही भौतिक अस्तित्व के सागर से मुक्त हो चुकी हैं।

तात्पर्य

देहात्म बोध की उत्पत्ति भौतिक भोग की इच्छा से होती है। यह विषद स्मृति कहलाती है, जो असली जीवन के विपरीत है। जीव तो कृष्ण का सनातन दास है, किन्तु जब वह भौतिक जगत् का भोग करना चाहता है, तब वह आध्यात्मिक जीवन में प्रगति नहीं कर पाता। भौतिक दृष्टि से अग्रसर होने वाला व्यक्ति कभी सुखी नहीं हो सकता। श्रीमद्भागवत (7.5.30) में भी यही कहा गया है-अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वित चर्वणानाम्-असंयमित इन्द्रियों द्वारा मनुष्य नरक की ओर अग्रसर होता है। वह पहले से चबायी हुई वस्तु को चबाता रह सकता है, अर्थात् बारम्बार जन्म तथा मृत्यु को प्राप्त होता है। बद्धजीव जन्म तथा मृत्यु के बीच की अवधि का उपयोग घिसेपिटे कार्यों-आहार, निद्रा, भय और मैथुन में करते हैं। निम्न पशु-योनियों में भी हमें ये ही कार्य मिलते हैं। चूँकि ये कार्यकलाप बारम्बार किये जाते हैं, अतएव उनमें अपने आपको लगाना चबाये हुए को फिर से चबाने जैसा है। यदि मनुष्य घिसेपिटे भौतिक जीवन में लगे रहने की अभिलाषा त्याग दे और कृष्णभावनामृत में लग जाये, तो वह भौतिक प्रकृति के कठोर

नियमों से छूट जायेगा। उसे मुक्त होने के लिए अलग से प्रयास करने की जरूरत नहीं रहेगी। यदि वह भगवान् की सेवा मात्र में अपने आपको लगा सके, तो उसका स्वतः उद्धार हो जायेगा। इसीलिए श्रील बिल्वमंगल ठाकुर ने कहा है- मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान्–"मुक्ति तो मेरे समक्ष हाथ जोड़कर खड़ी रहती है और मेरी सेवा करने की भीख माँगती रहती है।"

वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना-पुलिन, वन,

सेइ कुञ्जे रासादिक लीला ।

सेइ व्रजेर व्रज-जन, माता, पिता, बन्धु-गण,

बड़ चित्र, केमने पासरिला ॥ 143॥

वृन्दावन-वृन्दावन की दिव्य भूमि; गोवर्धन-गोवर्धन पर्वत; यमुना-पुलिन-यमुना तट; वन-वे सभी वन जिनमें भगवान् की लीलाएँ सम्पन्न हुई; सेइ कुञ्जउस वन की झाड़ियाँ; रास-आदिक लीला-रास-नृत्य की लीलाएँ; सेइवे; व्रजेर-वृन्दावन के; व्रज-जन-व्रजवासी; माता-माता; पिता–पिता; बन्धु-गण-मित्रगण; बड़ चित्र-अत्यन्त विचित्र; केमने पासरिला-आप कैसे भूल गये हैं।

अनुवाद

"यह विचित्र बात है कि आप वृन्दावन की भूमि को भूल गये हैं। भला आप अपने पिता, माता तथा मित्रों को कैसे भूल गये? आपने गोवर्धन पर्वत, यमुना-तट तथा उस वन को, जहाँ आप रासनृत्य का आनन्द लूटते थे, किस तरह भुला दिया?

विदग्ध, मृदु, सद्गुण, सुशील, स्निग्ध, करुण,

तुमि, तोमार नाहि दोषाभास ।

तबे ये तोमार मन, नाहि स्मरे व्रज-जन,

से—आमार दुर्दैव-विलास ॥ 144॥

विदग्ध-अति सुसंस्कृत; मृदु-मृदु; सत्-गुण-सारे सद्गुणों से युक्त; सुशील-सुशील; स्निग्ध-कोमल-हृदय; करुण-दयावान; तुमि-आप; तोमार-आपमें; नाहि-नहीं है; दोष-आभास-दोष का आभास; तबे-फिर भी; ग्रे–निस्सन्देह; तोमार-आपका; मन–मन; नाहि-नहीं; स्मरे-स्मरण करता; व्रज-जन-वृन्दावन के निवासियों को; से-वह; आमार-मेरा; दुर्दैव-विलास-पूर्व पापों का फल।

अनुवाद

"हे कृष्ण, आप समस्त सद्गुणों से युक्त शिष्ट महानुभाव हैं। आप सदाचारी हैं, नम्र हृदय वाले तथा दयालु हैं। मैं जानती हूँ कि आपमें दोष का लेशमात्र भी नहीं है, फिर भी आपका मन वृन्दावनवासियों का स्मरण तक नहीं करता। यह हमारे दुर्भाग्य के अलावा और क्या हो सकता है?

ना गणि आपन-दुःख, देखि' व्रजेश्वरी-मुख,

व्रज-जनेर हृदय विदरे।

किबा मार' व्रज-वासी, किबा जीयाओ व्रजे आसि',

केन जीयाओ दुःख सहाइबारे? ॥ 145॥

ना गणि-मैं परवाह नहीं करती; आपन-दुःख-अपने निजी दुःख को; देखि'-देखकर; व्रजेश्वरी-मुख-माता यशोदा का मुख; व्रज-जनेर-वृन्दावन के सभी निवासियों के; हृदय विदरे-हृदय फट जाते हैं; किबा-क्या; मार' व्रज-वासी-आप सभी वृन्दावन के निवासियों को मार देना चाहते हो; किबा-अथवा; जीयाओ-आप उनको जीवित रखना चाहते हो; व्रजे आसि'-वृन्दावन में आकर; केन–क्यों; जीयाओ-उन्हें जीवित करते हो; दुःख सहाइबारे–दुःख झेलने के लिए।

अनुवाद

"मुझे अपने निजी दुःख की परवाह नहीं है, किन्तु जब मैं माता यशोदा का खिन्न मुखड़ा तथा आपके कारण समस्त वृन्दावनवासियों के भग्न हृदयों को देखती हूँ, तो मुझे आश्चर्य होता है कि आप कहीं उन सबको मारना तो नहीं चाहते। या आप यहाँ आकर उन्हें जीवनदान देना चाहते हैं? आप क्यों उन्हें कष्टप्रद स्थिति में जिन्दा रखना चाहते हैं?

तोमार ये अन्य वेश, अन्य सङ्ग, अन्य देश,

व्रज-जने कभु नाहि भाय ।

व्रज-भूमि छाड़िते नारे, तोमा ना देखिले मरे,

व्रज-जनेर कि हबे उपाय ॥146 ॥

तोमार-आपका; ये-वह; अन्य वेश-अन्य पोशाक; अन्य सङ्ग–अन्य साथी; अन्य देश-अन्य देश; व्रज-जने-वृन्दावन के निवासियों को; कभु–किसी समय; नाहि-नहीं; भाय-भाती; व्रज-भूमि-व्रज-भूमि; छाड़िते नारे-वे छोड़ना नहीं चाहते; तोमा-आपको; ना-नहीं; देखिले-देखकर; मरे-वे मर जाते हैं; व्रज-जनेर-वृन्दावन-वासियों का; कि-क्या; हबे-होगा; उपाय-उपाय।

अनुवाद

"वृन्दावन के निवासी आपको न तो राजकुमार के वेश में देखना चाहते हैं, न ही वे चाहते हैं कि आप अनजाने देश में महायोद्धाओं की संगति करें। वे वृन्दावन भूमि को छोड़ नहीं सकते और आपकी उपस्थिति के बिना वे सब मर रहे हैं। न जाने उनकी कैसी दशा होगी?

तुमि—व्रजेर जीवन, व्रज-राजेर प्राण-धन,

तुमि व्रजेर सकल सम्पद् ।

कृपार्द्र तोमार मन, आसि' जीयाओ व्रज-जन,

व्रजे उदय कराओ निज-पद ॥ 147॥

तुमि-आप; व्रजेर जीवन-वृन्दावन के जीवन और प्राण; व्रज-राजेर-व्रज नरेश, नन्द महाराज के प्राण-धन-प्राण-धन; तुमि-आप; व्रजेर-वृन्दावन का; सकल सम्पद्-सारा ऐश्वर्य; कृपा-अर्द्र-कृपा से द्रवित होकर; तोमार मन-आपका मन; आसि-आकर; जीयाओ-जीवन दान करो; व्रज-जन-वृन्दावन के सभी निवासियों को; व्रजे-वृन्दावन में; उदय कराओ-प्रकट करो; निज-पद-अपने चरणकमल।

अनुवाद

"हे कृष्ण, आप वृन्दावन धाम के प्राण और आत्मा हैं। आप विशेषकर नन्द महाराज के जीवन हैं। आप वृन्दावन भूमि में एकमात्र ऐश्वर्य हैं और आप अत्यन्त कृपालु हैं। कृपा करके आइये और सभी वृन्दावनवासियों को जीवन दीजिये। कृपया वृन्दावन में पुनः अपने चरणकमल रखिये।"

तात्पर्य

श्रीमती राधारानी ने कृष्ण से अलग होने पर अपना निजी दुःख प्रकट नहीं किया। वे वृन्दावन धाम के अन्य सभी लोगों की दशा के प्रति कृष्ण के भावों को जगाना चाहती थीं यथा-माता यशोदा, नन्द महाराज, ग्वालबाल, गोपियाँ, पक्षि तथा यमुना-तट के भौरों, यमुना-जल, वृक्ष, जंगल तथा वृन्दावन से मथुरा जाने के पूर्व कृष्ण से सम्बन्धित सारा साज-सामान आदि। श्रीमती राधारानी के ये भाव श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदर्शित किये जा रहे थे, अतएव उन्होंने भगवान् जगन्नाथ अर्थात् कृष्ण को वृन्दावन लौट चलने का आमन्त्रण दिया। जगन्नाथ पुरी से गुण्डिचा मन्दिर तक रथयात्रा के जाने का यही तात्पर्य है।

शुनिया राधिका-वाणी, व्रज-प्रेम मने आनि,

भावे व्याकुलित देह-मन ।

व्रज-लोकेर प्रेम शुनि', आपनाके 'ऋणी' मानि',

करे कृष्ण ताँरे आश्वासन ॥148 ॥

शुनिया-सुनने के पश्चात्; राधिका-वाणी–श्रीमती राधारानी की बात; व्रज-प्रेम-व्रज का प्रेम; मने आनि-स्मरण करके; भावे-उस भावावेश में; व्याकुलित-अत्यन्त व्याकुल हो गये; देह-मन-तन-मन; व्रज-लोकेर-वृन्दावन के निवासियों के प्रेम शुनि'-प्रेम-व्यवहार सुनकर; आपनाके–स्वयं को; ऋणी मानि'-अत्यन्त ऋणी समझकर; करे-किया; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; ताँरे–उनको; आश्वासन-आश्वासन दिया।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के वचनों को सुनकर भगवान् कृष्ण में वृन्दावनवासियों के प्रति प्रेम जाग्रत हो आया और उनका तन तथा मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा। अपने प्रति उनके प्रेम की बात सुनकर भगवान् ने

सोचा कि वे वृन्दावनवासियों के चिर ऋणी हैं। तब कृष्ण श्रीमती राधारानी को इस प्रकार सान्त्वना देने लगे।

प्राण-प्रिये, शुन, मोर ए-सत्य-वचन

तोमा-सबार स्मरणे, झुरों मुञि रात्रि-दिने, ।

मोर दुःख ना जाने कोन जन ॥149॥

प्राण-प्रिये-हे मेरी प्राण प्रिये; शुन-कृपया सुनो; मोर-मेरा; ए-सत्य-वचन-यह सत्य वचन; तोमा-सबार-तुम सब के; स्मरणे-स्मरण से; झुरों-रोता हूँ; मुञि-मैं; रात्रि-दिने-रात-दिन; मोर दुःख–मेरा दु:ख; ना जाने-नहीं जानता; कोन जन-कोई भी।

अनुवाद

"प्रिय श्रीमती राधारानी! कृपया मेरी बात सुनो। मैं सच कह रहा हूँ। मैं तुम समस्त वृन्दावनवासियों की याद कर-करके रात-दिन रोता रहता हूँ। कोई नहीं जानता कि इससे मैं कितना दुःखी हो जाता हूँ।"

तात्पर्य

कहा गया है-वृन्दावनं परित्यज्य पदमेकं न गच्छति । एक तरह से परम भगवान् कृष्ण (ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः) वृन्दावन से बाहर एक पग भी नहीं रखते। किन्तु अपने विविध कर्तव्यों को निभाने के लिए उन्हें वृन्दावन छोड़ना पड़ा। उन्हें कंस का संहार करने के लिए मथुरा जाना पड़ा। इसके बाद उनके पिता उन्हें द्वारका ले गये, जहाँ वे राजकाज में तथा असुरों के उत्पातों को शमन करने में लगे रहे। कृष्ण वृन्दावन से दूर थे, किन्तु वे तनिक भी सुखी नहीं थे, जैसाकि उन्होंने श्रीमती राधारानी से प्रकट किया। श्रीमती राधारानी श्रीकृष्ण की प्राणाधार हैं और उन्होंने उनसे अपने मन की बात इस प्रकार कही।

व्रज-वासी यत जन, माता, पिता, सखा-गण,

सबे हय मोर प्राण-सम ।

ताँर मध्ये गोपी-गण, साक्षात्मोर जीवन,

तुमि मोर जीवनेर जीवन ॥150॥

व्रज-वासी यत जन-वृन्दावन-धाम के सभी निवासी; माता-माता; पिता-पिता; सखा-गण-सखा; सबे-सभी; हय-हैं; मोर प्राण-सम-मेरे प्राण समान; ताँर मध्ये-उनमें से; गोपी-गण-गोपियाँ; साक्षात्-साक्षात्; मोर जीवन-मेरी जीवन और प्राण; तुमि-तुम; मोर जीवनेर जीवन-मेरे जीवन का जीवन (आधार) हो।

अनुवाद

श्रीकृष्ण ने आगे कहा, "वृन्दावन धाम के सारे निवासी-मेरे माता, पिता, ग्वालसखा तथा अन्य सभी मेरे प्राणों के समान हैं। वृन्दावन के सारे निवासियों में से गोपियाँ तो मेरे प्राण के समान हैं और गोपियों में, हे राधारानी! तुम मुख्य हो। अतएव तुम मेरे जीवन का भी जीवन हो।

तात्पर्य

श्रीमती राधारानी वृन्दावन के समस्त कार्यकलापों की केन्द्रबिन्दु हैं। वृन्दावन में कृष्ण श्रीमती राधारानी की कठपुतली हैं; इसीलिए आज भी सारे वृन्दावनवासी "जय राधे !" का उच्चारण करते हैं। यहाँ पर श्रीकृष्ण के अपने स्वयं के कथन से ऐसा लगता है कि राधारानी वृन्दावन की महारानी हैं और कृष्ण मात्र उनके अलंकरण हैं। कृष्ण को मदनमोहन कहा जाता है, किन्तु श्रीमती राधारानी तो कृष्ण को भी मोहने वाली हैं। फलस्वरूप श्रीमती राधारानी मदनमोहनमोहिनी कहलाती हैं।

तोमा-सबार प्रेम-रसे, आमाके करिल वशे,

आमि तोमार अधीन केवल ।

तोमा-सबा छाड़ाञा, आमा दूर-देशे लञा,

राखियाछे दुर्दैव प्रबल ॥ 151॥

तोमा-सबार-तुम सबके; प्रेम-से-प्रेमावेश और रस से; आमाके-मुझे; करिल-तुमने किया है; वशे-वश में; आमि-मैं; तोमार-तुम्हारे; अधीन–अधीन; केवल-केवल; तोमा-सबा-तुम सब से; छाड़ाञा-अलग होकर; आमा–मुझे; दूर-देशे-दूर देश को; लञा–लाकर; राखियाछे-रख दिया है; दुर्दैव-दुर्भाग्य; प्रबल-अति शक्तिशाली।

अनुवाद

“हे श्रीमती राधारानी! मैं तुम सबके प्रेम के अधीन हूँ। मैं तो एकमात्र तुम्हारे वश में हूँ। तुमसे मेरा विछोह तथा दूर स्थान में मेरा प्रवास मेरे प्रबल दुर्भाग्य के कारण ही हुआ है।

प्रिया प्रिय-सङ्ग-हीना, प्रिय प्रिया-सङ्ग विना,

नाहि जीये,–ए सत्य प्रमाण ।

मोर दशा शोने यबे , ताँर एइ दशा हबे,

एइ भये दुँहे राखे प्राण ॥ 152॥

प्रिया-प्रिय नारी; प्रिय-सङ्ग-हीना–प्रियतम से अलग होकर; प्रिय-प्रेमी पुरुष; प्रिया-सङ्ग विना–प्रियतमा से जुदा होकर; नाहि जीये-नहीं जीवित रह सकता; ए सत्य प्रमाण-यह सत्य है; मोर-मेरी; दशा-दशा; शोने यबे -यदि कोई सुने; ताँर-उसकी; एइ--यह; दशा-दशा; हबे-होगी; एइ भये--इस भय के कारण; दुँहे-दोनों; राखे प्राण-जीवित रहते हैं।

अनुवाद

“जब किसी स्त्री का उसके प्रेमी से विछोह होता है या कोई पुरुष अपनी प्रिया से विलग होता है, तो उनमें से कोई भी जीवित नहीं रह सकता। यह तथ्य है कि वे एक-दूसरे के लिए जीवित रहते हैं, क्योंकि यदि इनमें से कोई मरता है, तो दूसरा इसे सुनते ही मर जाता है।

सेइ सती प्रेमवती, प्रेमवान्सेइ पति,

वियोगे ये वाञ्छे प्रिय-हिते ।

ना गणे आपन-दुःख, वाञ्छे प्रियजन-सुख,

सेइ दुइ मिले अचिराते ॥ 153 ॥

सेइ सती–वह सती नारी; प्रेम-वती-प्रेम से पूर्ण; प्रेम-वान्-प्रेमी; सेइ पति-वह पति; वियोगे-विरह में; ये--जो; वाञ्छे-इच्छा करते हैं; प्रिय-हिते-दूसरे के हित के लिए; ना गणे-और परवाह नहीं करते; आपन-दुःख-निजी दुःख की; वाञ्छे-चाहते हैं; प्रिय-जन-सुख-आपने प्रिय के सुख को; सेइ-वे; दुइ–दोनों; मिले-मिल जाते हैं; अचिराते-बिना विलम्ब के।

अनुवाद

"ऐसी प्रेमवती सती पत्नी तथा प्रेमवान पति, विरह में एक-दूसरे की शुभकामना करते हैं और अपने निजी सुख की परवाह नहीं करते। वे एक-दूसरे के कल्याण की ही कामना करते रहते हैं। ऐसे प्रेमी-प्रेमिका दोनों शीघ्र ही फिर से मिलते हैं।

राखिते तोमार जीवन, सेवि आमि नारायण,

ताँर शक्त्ये आसि निति-निति ।

तोमा-सने क्रीड़ा करि', निति याइ यदु-पुरी,

ताहा तुमि मानह मोर स्फूर्ति ॥154॥

राखिते-मात्र रखने के लिए; तोमार जीवन-तुम्हारा जीवन; सेवि आमि नारायण-मैं सदा भगवान् नारायण की पूजा करता हूँ; ताँर शक्त्ये—उनकी शक्ति से; आसि निति-निति-मैं हर रोज तुम्हारे पास आता हूँ; तोमा-सने तुम्हारे साथ; क्रीड़ा करि'-लीलाएँ करने के लिए; निति-प्रतिदिन; याइ यदु-पुरी-मैं द्वारका धाम को लौट जाता हूँ, जो यदुपुरी के नाम से प्रसिद्ध है; ताहा-वह; तुमि-तुम; मानह–अनुभव करती हो; मोर-मेरी; स्फूर्ति-उपस्थिति।

अनुवाद

"तुम मेरी अत्यन्त प्रिय हो और मैं जानता हूँ कि तुम मेरे बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। तुम्हें जीवित रखने के लिए ही मैं भगवान् नारायण की पूजा करता हूँ। उनकी कृपामयी शक्ति से मैं तुम्हारे साथ लीला करने के लिए नित्य वृन्दावन आता हूँ। फिर मैं द्वारका धाम लौट जाता हूँ। इस तरह तुम वृन्दावन में सदैव मेरी उपस्थिति का अनुभव कर सकती हो।

मोर भाग्य मो-विषये, तोमार ने प्रेम हये,

सेइ प्रेम–परम प्रबल ।

लुकाञा आमा आने, सङ्ग कराय तोमा-सने,

प्रकटेह आनिबे सत्वर ॥155 ॥

मोर भाग्य-मेरा भाग्य; मो-विषये-मुझ से सम्बन्धित; तोमार-तुम्हारा; ये-जो कुछ; प्रेम-प्रेम; हये-है; सेइ प्रेमवह प्रेम; परम प्रबल–अत्यन्त प्रबल; लुकाञा-छुपकर; आमा आने-मुझे लाता है; सङ्ग कराय-तुम्हारे साथ संग करवाता है; तोमा-सने तुम्हारे साथ; प्रकटेह-प्रत्यक्ष प्रकट होता है; आनिबे-लायेगा; सत्वर–अति शीघ्र।

अनुवाद

"हमारा प्रेम-व्यापार इतना शक्तिशाली इसीलिए है, क्योंकि सौभाग्यवश मुझे नारायण की कृपा प्राप्त है। इससे मैं दूसरों से अप्रकट होकर वहाँ आ सकता हूँ। मुझे आशा है कि शीघ्र ही मैं सबको दिख सकूँगा।

तात्पर्य

कृष्ण की उपस्थिति दो प्रकार की होती है- प्रकट तथा अप्रकट/निष्ठावान भक्त के लिए ये दोनों एक-सी हैं। यदि कृष्ण शरीर से उपस्थित न भी हों, तो कृष्ण के कार्यों में भक्त की सतत तल्लीनता उन्हें उपस्थित करा देती है। इसकी पुष्टि ब्रह्म-संहिता (5.38) में हुई है :

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन

सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति ।

यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं

गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥

शुद्ध भक्त अपने उत्कट प्रेम के कारण भगवान् कृष्ण को अपने हृदय में ही विद्यमान देखता है। आदि भगवान् गोविन्द की जय हो! जब वृन्दावनवासियों के समक्ष कृष्ण प्रकट नहीं होते, तो वे लोग उनके विचारों में सदैव मग्न रहते हैं। इसलिए उस समय कृष्ण द्वारका में रहते हुए भी साथ ही साथ समस्त वृन्दावनवासियों के समक्ष उपस्थित रहते थे। यह उनकी अप्रकट उपस्थिति थी। जो भक्तगण कृष्ण के विचारों में सदैव डूबे रहते हैं, वे निश्चित रूप से शीघ्र ही कृष्ण का आमने-सामने प्रत्यक्ष दर्शन पायेंगे। दूसरे शब्दों में, जो भक्तगण सदैव कृष्णभावनामृत में डूबे रहते हैं और कृष्ण के विचारों में पूरी तरह मग्न रहते हैं, वे अवश्यमेव भगवद्धाम को लौट जाते हैं। फिर वे कृष्ण को प्रत्यक्ष देखते हैं, उनके

साथ वार्तालाप करते हैं और उनकी संगति का आनन्द लूटते हैं। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (4.9) में की गई है- त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।

शुद्ध भक्त जीवन-भर कृष्ण का गुणगान करता है और उनकी सेवा करता है। अतः अपना शरीर त्यागने पर वह तुरन्त गोलोक वृन्दावन लौट जाता है, जहाँ स्वयं कृष्ण उपस्थित होते हैं। तब वह कृष्ण से प्रत्यक्ष मिलता है। यही सफल मानव जीवन है। प्रकटेह आनिबे सत्वर का यही अर्थ है। शुद्ध भक्त को शीघ्र ही भगवान् श्रीकृष्ण का साक्षात् दर्शन होता है।

यादवेर विपक्ष, यत दुष्ट कंस-पक्ष,

ताहा आमि कैलुँ सब क्षय ।

आछे दुइ-चारि जन, ताहा मारि' वृन्दावन,

आइलाम आमि, जानिह निश्चय ॥ 156 ॥

यादवेर विपक्ष-यदुकुल के सभी शत्रु; व्रत-सब; दुष्ट-दुष्ट; कंस-पक्ष-कंस के साथी; ताहा–उनको; आमि-मैंने; कैलुँ सब क्षय-मार दिया है; आछे-फिर भी हैं; दुइ-चारि जन-दो-चार दैत्य; ताहा मारि'–उनको मारने के बाद; वृन्दावन-वृन्दावन; आइलाम आमि-मैं अति शीघ्र आऊँगा; जानिह निश्चय-इसे निश्चित जानो।

अनुवाद

"मैं यदुवंश के उत्पाती असुर शत्रुओं को पहले ही मार चुका हूँ और मैंने कंस तथा उनके मित्रों का भी वध कर दिया है। फिर भी दो-चार असुर अभी भी बचे हुए हैं। मैं उन्हें मारना चाहता हूँ और उनका वध करने के बाद मैं शीघ्र ही वृन्दावन लौट आऊँगा। इसे तुम निश्चित जानो।

तात्पर्य

जिस तरह कृष्ण वृन्दावन से एक पग भी बाहर नहीं जाते, उसी तरह कृष्ण का भक्त भी वृन्दावन नहीं छोड़ना चाहता। किन्तु जब उसे कृष्ण का कार्य संभालना होता है, तब वह वृन्दावन छोड़ देता है। अपना कार्य पूरा करने के बाद शुद्ध भक्त वृन्दावन, अर्थात् भगवद्धाम वापस लौट आता है। कृष्ण ने राधारानी को आश्वासन दिया कि वृन्दावन से

बाहर के असुरों का वध करने के बाद वे लौट आयेंगे। उन्होंने वचन दिया, "बचे हुए कुछ असुरों को मार करके तुरन्त ही मैं वापस आ रहा हूँ।"

सेइ शत्रु-गण हैते, व्रज-जन राखिते,

रहि राज्ये उदासीन हजा ।

येबा स्त्री-पुत्र-धने, करि राज्य आवरणे,

यदु-गणेर सन्तोष लागिया ॥ 157॥

सेइ-वे; शत्रु-गण हैते–शत्रुओं से; व्रज-जन-वृन्दावन के निवासियों को; राखिते-संरक्षण देने के लिए; रहि-मैं रहता हूँ; राज्ये-अपने राज्य में; उदासीन-तटस्थ; हजा-होकर; येबा-जो कोई; स्त्री-पुत्र-धने-पत्नियों, पुत्रों और धन-सम्पति; करि राज्य आवरणे-मैं अपने राज्य में रखता हूँ; यदु-गणेर-यदुकुल के; सन्तोष–सन्तोष; लागिया-के लिए।

अनुवाद

"मैं वृन्दावन के निवासियों को अपने शत्रुओं के हमलों से बचाना चाहता हूँ। इसीलिए मैं अपने राज्य में रहता हूँ, अन्यथा मैं अपने राजसी पद के प्रति उदासीन हूँ। मैं राज्य में जो भी पत्नियाँ, पुत्र तथा धन रखता हैं, वे सारे के सारे केवल यदुओं के सन्तोष के लिए हैं।

तोमार ये प्रेम-गुण, करे आमा आकर्षण,

आनिबे आमा दिन दश बिशे ।

पुनः आसि' वृन्दावने, व्रज-वधू तोमा-सने,

विलसिब रजनी-दिवसे ॥ 158॥

तोमार-तुम्हारे; ये-जो कुछ; प्रेम-गुण-प्रेम के गुण; करे-करते हैं; आमा–मुझे; आकर्षण-आकर्षित; आनिबे-ले आयेंगे; आमा–मुझे; दिन दश बिशे-दस-बीस दिनों में पुनः–दोबारा; आसि—आकर; वृन्दावने-वृन्दावन में; व्रज-वधू-वृन्दावन की गोपियाँ; तोमा-सने–तुम्हारे साथ; विलसिब-मैं आनन्द मनाऊँगा; रजनी-दिवसे–दिन-रात को।

अनुवाद

“तुम्हारे प्रेममय गुण मुझे सदैव वृन्दावन की ओर खींचते रहते हैं। वे दस-बीस दिनों में मुझे, निश्चय ही, वापस बुला लेंगे और लौटने पर मैं तुम्हारे तथा व्रजभूमि की सारी बालाओं के साथ रात-दिन विलास करूँगा।”

एत तौंरे कहि कृष्ण, व्रजे याइते सतृष्ण,

एक श्लोक पड़ि’ शुनाइल ।

सेइ श्लोक शुनि’ राधा, खाण्डिल सकल बाधा,

कृष्ण-प्राप्त्ये प्रतीति हइल ॥ 159॥

एत-इतना; तौंरे–श्रीमती राधारानी को; कहि-कहकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; व्रजे-वृन्दावन में; याइते-जाने के लिए; स-तृष्ण-अति उत्सुक; एक श्लोक-एक श्लोक; पड़ि-पढ़कर; शुनाइल-उन्हें सुनाया; सेइ श्लोक-वह श्लोक; शुनि’–सुनकर; राधा-श्रीमती राधारानी; खाण्डिल-नष्ट हो गईं; सकल-सब प्रकार की; बाधाबाधाएँ; कृष्ण-प्राप्त्ये-कृष्ण को पाने के लिए; प्रतीति हइल-विश्वास हुआ।

अनुवाद

श्रीमती राधारानी से बातें करते हुए कृष्ण वृन्दावन लौट आने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो उठे। उन्होंने उन्हें एक श्लोक सुनाया, जिससे उनके (श्रीमती राधारानी के) सारे कष्ट दूर हो गये और आश्वासन प्राप्त हुआ कि उन्हें पुनः श्रीकृष्ण प्राप्त हो जायेंगे।

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।

दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥ 160॥

मयि–मुझे; भक्तिः-श्रवण, कीर्तन आदि नौ प्रकार की भक्ति; हि-अवश्य; भूतानाम्-सभी जीवों के; अमृतत्वाय-भगवान् के नित्य पार्षद बनने के लिए; कल्पते-बिल्कुल उचित (योग्य) है; दिष्ट्या-सौभाग्य से; यत्-जो कुछ; आसीत्-वहाँ था; मत्-स्नेहः-मेरे लिए प्रेम और स्नेह; भवतीनाम्-तुम सब गोपियों का; मत्-आपनः-मुझे लौटाने का कारण है।

अनुवाद

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, "मुझे प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। मेरी भक्ति करना। हे गोपियों, तुम लोगों ने सौभाग्यवश मेरे लिए जितना भी स्नेह एवं प्रेम प्राप्त कर रखा है, उसी के कारण मैं तुम्हारे पास वापस आ रहा हूँ।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.82.44) का है।

एइ सब अर्थ प्रभु स्वरूपेर सने ।

रात्रि-दिने घरे वसि' करे आस्वादने ॥ 161 ॥

एइ सब-ये सब; अर्थ-अर्थ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; स्वरूपेर सने–स्वरूप दामोदर सहित; रात्रि-दिने-रात-दिन; घरे वसि'-अपने घर में बैठकर; करे-करते थे; आस्वादने-आस्वादन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने कमरे में स्वरूप दामोदर के साथ बैठ जाते और इन श्लोकों का रसास्वादन दिन-रात किया करते।

नृत्य-काले सेइ भावे आविष्ट हञा ।

श्लोक पड़ि' नाचे जगन्नाथ-मुख चाञा ॥ 162॥

नृत्य-काले-नृत्य करते समय; सेइ भावे-उसी भाव में; आविष्ट-मग्न; हञा-होकर; श्लोक पड़ि'-ये श्लोक पढ़ते हुए; नाचे-नृत्य कर रहे थे; जगन्नाथ-मुख-जगन्नाथ के मुख को; चाञा-देखते हुए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूर्णतया भावमग्न होकर नृत्य किया। जगन्नाथ के मुख का दर्शन करते हुए वे नाचते और इन श्लोकों को सुनाते जाते।

स्वरूप-गोसाञि भाग्य ना याय वर्णन ।

प्रभुते आविष्ट याँर काय, वाक्य, मन ॥163 ॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी का; भाग्य-भाग्य; ना--नहीं; याय वर्णन-वर्णन किया जा सकता; प्रभुते–महाप्रभु की सेवा में; आविष्ट–पूर्णरूपेण मग्न; याँर-जिनका; काय-तन; वाक्य-वाणी; मन-मन।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी के सौभाग्य का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे अपने शरीर, मन तथा वाणी से महाप्रभु की सेवा में सदैव लीन रहते हैं।

स्वरूपेर इन्द्रिये प्रभुर निजेन्द्रिय-गण ।

आविष्ट हञा करे गान-आस्वादन ॥ 164॥

स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर की; इन्द्रिये-इन्द्रियों में प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; निज-इन्द्रिय-गण-निजी इन्द्रियाँ; आविष्ट हञा–पूर्णतया आविष्ट होकर; करे-करती थीं; गान-गायन; आस्वादन–आस्वादन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की इन्द्रियाँ स्वरूप की इन्द्रियों से अभिन्न थीं। अतएव चैतन्य महाप्रभु स्वरूप दामोदर के गाने का आस्वादन करते हुए पूर्णतया निमग्न हो जाते थे।

भावेर आवेशे कभु भूमिते वसिया ।

तर्जनीते भूमे लिखे अधोमुख हञा ॥ 165॥

भावेर आवेशे-भावावेश के कारण; कभु-कभी-कभी; भूमिते-भूमि पर; वसिया-बैठकर; तर्जनीते-तर्जिनी अंगुली के साथ; भूमे-भूमि पर; लिखे-लिखते थे; अधोमुख हञा–नीचे देखते हुए।

अनुवाद

कभी-कभी भावावेश में चैतन्य महाप्रभु जमीन पर बैठ जाते और नीचे देखते हुए जमीन पर अपनी अँगुली से लिखा करते।

अङ्गुलिते क्षत हबे जानि' दामोदर ।

भये निज-करे निवारये प्रभु-कर ॥ 166॥

अङ्गुलिते-अँगुली पर; क्षत-जख्म; जख्म; हबे हो जायेंगे; जानि'-यह जानकर; दामोदर स्वरूप दामोदर; भये-भय के कारण; निज-करे-अपने हाथ से; निवारये-रोकते थे; प्रभु-कर-महाप्रभु का हाथ।

अनुवाद

यह जानकर कि अँगुली से इस प्रकार लिखते रहने से महाप्रभु को क्षति पहुँच सकती है, स्वरूप दामोदर ने अपने हाथ से उन्हें रोका।

प्रभुर भावानुरूप स्वरूपेर गान ।

यबे येइ रस ताहा करे मूर्तिमान् ॥ 167॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भाव-अनुरूप-भाव के अनुसार; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर का; गान-गायन; यबे – जब; येइ-जो कुछ; रस-रस; ताहा-वह; करे-करते थे; मूर्तिमान् साकार।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर महाप्रभु के भाव के अनुरूप ही गाया करते थे। जब भी महाप्रभु किसी रस विशेष का आस्वादन करते, स्वरूप दामोदर उसे गाकर साकार कर देते।

श्री-जगन्नाथेर देखे श्री-मुख-कमल ।

ताहार उपर सुन्दर नयन-युगल ॥ 168 ॥

श्री-जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ का; देखे-देखते थे; श्री-मुख-कमल-कमलमुख; ताहार उपर-उस पर; सुन्दर-सुन्दर; नयन-युगल-युगल नयन (दो नयन)।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान जगन्नाथ के सुन्दर कमल जैसे मुख तथा नेत्रों के दर्शन किए।

सूर्येर किरणे मुख करे झलमल ।

माल्य, वस्त्र, दिव्य अलङ्कार, परिमल ॥ 169॥

सुर-सूर्य की किरणे-किरणों से; मुख–मुख; करे-करता था; झलमल-चमकता; माल्य–माला; वस्त्र-वस्त्र; दिव्य अलङ्कार-सुन्दर आभूषण; परिमल-सुगन्ध से घिरा हुआ।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ माला पहने थे, सुन्दर वस्त्रों से सज्जित एवं सुन्दर आभूषणों से अलंकृत थे। उनका मुख सूर्य की किरणों से जगमगा रहा था और समूचा वातावरण सुगन्धित था।

प्रभुर हृदये आनन्द-सिन्धु उथलिल ।

उन्माद, झञ्झा-वात तत्क्षणे उठिल ॥ 170 ॥

प्रभुर हृदये-श्री चैतन्य महाप्रभु के हृदय में; आनन्द-सिन्धु–दिव्य आनन्द का सागर; उथलिल-उठा; उन्माद-उन्माद; झञ्झा-वात-तूफान; तत्-क्षणे-एकदम; उठिल-उमड़ पड़े।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के हृदय में दिव्य आनन्द का सागर उमड़ रहा था और उनमें उन्मत्तता के लक्षण तुरन्त तूफान की तरह जोर पकड़ने लगे।

आनन्दोन्मादे उठाय भावेर तरङ्ग ।

नाना-भाव-सैन्ये उपजिल युद्ध-रङ्ग ॥ 171॥

आनन्द-उन्मादे-दिव्य आनन्द के उन्माद में; उठाय-उठाया; भावेर-भावों की; तरङ्ग-तरंगें; नाना-अनेक; भाव-भाव; सैन्ये-सैनिकों में; उपजिल-प्रकट हो गये; युद्ध-रङ्ग–युद्ध के रूप में।

अनुवाद

दिव्य आनन्द की उन्मत्तता से विविध भावों की तरंगें उत्पन्न हुईं। ये भाव युद्ध करते हुए प्रतिद्वन्द्वी सैनिकों जैसे प्रतीत हो रहे थे।

भावोदय, भाव-शान्ति, सन्धि, शाबल्य ।

सञ्चारी, सात्त्विक, स्थायी स्वभाव-प्राबल्य ॥ 172॥

भाव-उदय-भावों का उदय होना; भाव-शान्ति-शान्ति के भाव; सन्धि–विभिन्न भावों की सन्धि; शाबल्य-सभी भावों का मिश्रण; सञ्चारी–सभी प्रकार के भावों का संचार; सात्त्विक-दिव्य; स्थायी-स्थायी; स्वभाव-स्वाभाविक भाव; प्राबल्य–बढ़ावा।

अनुवाद

प्राकृतिक भावों के सभी लक्षणों में वृद्धि हो गई; फलतः भावों का उदय, भाव-शान्ति, मिश्रित भाव, युक्त-भाव, दिव्य भाव तथा स्थाई भाव तथा भाव प्रबलता देखी गई।

प्रभुर शरीर येन शुद्ध-हेमाचल ।

भाव-पुष्प-द्रुम ताहे पुष्पित सकल ॥ 173॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; शरीर-शरीर; येन-जैसे; शुद्ध-शुद्ध; हेमाचल-हिमालय पर्वत; भाव-भाव; पुष्प-द्रुम-पुष्पों के वृक्ष; ताहे-उस स्थिति में; पुष्पित-खिल रहे हो; सकल-सभी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का शरीर दिव्य हिमालय पर्वत जैसा लगने लगा, जिसमें भावों के पुष्पित वृक्ष उगे हों और ये सारे वृक्ष खिल रहे हों।

देखिते आकर्षये सबार चित्त-मन ।

प्रेमामृत-वृष्ट्ये प्रभु सिञ्चे सबार मन ॥ 174॥

देखिते-देखने से; आकर्षये-आकर्षित करता था; सबार–प्रत्येक का; चित्त-मन-मन तथा चेतना; प्रेम-अमृत-वृष्ट्ये-भगवत्-प्रेम के अमृत की वर्षा से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सिञ्चे–छिड़का; सबार–प्रत्येक का; मन–मन।

अनुवाद

इन सारे लक्षणों को देखकर हर एक के मन तथा चित्त आकृष्ट हो रहे थे। महाप्रभु ने हर एक के मन को दिव्य भगवत्प्रेम रूपी अमृत से सींच दिया।

जगन्नाथ–सेवक यत राज-पात्र-गण ।

यात्रिक लोक, नीलाचल-वासी यत जन ॥ 175॥

जगन्नाथ-सेवक-भगवान् जगन्नाथ के सेवक; यत-सब; राज-पात्र-गण-तथा सरकारी अधिकारी गण; यात्रिक–यात्री गण; लोक-सामान्य लोग; नीलाचल-वासी-जगन्नाथ पुरी के निवासी; यत जन-वहाँ जितने भी लोग थे।

अनुवाद

उन्होंने जगन्नाथजी के सेवकों, सरकारी अफसरों, यात्रियों, सामान्य जनता तथा जगन्नाथ पुरी के सभी निवासियों के मनों को सिंचित किया।

प्रभुर नृत्य प्रेम देखि' हय चमत्कार ।

कृष्ण-प्रेम उछलिल हृदये सबार ॥ 176 ॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; नृत्य-नृत्य; प्रेम-प्रेम; देखि'–देखकर; हय-हो गया; चमत्कार-आश्चर्य; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; उछलिल-उमड़ पड़ा; हृदये-दिलों में; सबार-सबके।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के नृत्य तथा भाव-प्रेम को देखकर सारे लोग चकित हो गये। उन सबके हृदयों में कृष्ण-प्रेम का उछाल लेने लगा।

प्रेमे नाचे, गाय, लोक, करे कोलाहल ।

प्रभुर नृत्य देखि' सबै आनन्दे विह्वल ॥ 177॥

प्रेमे-प्रेम में; नाचे-नाचे; गाय-गाये; लोक-सामान्य लोग; करे–किया; कोलाहल–कोलाहल; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; नृत्य-नृत्य; देखि'–देखकर; सबे-सब; आनन्दे-दिव्य आनन्द में; विह्वल-विह्वल हो गये।

अनुवाद

हर व्यक्ति भाव-प्रेम में नाचने और गाने लगा तथा महान् कोलाहल गूँजने लगा। हर कोई श्री चैतन्य महाप्रभु को नाचते देखकर दिव्य आनन्द से अभिभूत हो गया।

अन्येर कि काय, जगन्नाथ-हलधर ।

प्रभुर नृत्य देखि' सुखे चलिला मन्थर ॥ 178॥

अन्येर कि काय-दूसरों की बात क्या करें ; जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ; हलधर-बलराम; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; नृत्य-नृत्य; देखि'–देखकर; सुखे-अत्यन्त हर्ष में; चलिला-चलने लगे; मन्थर–धीरे धीरे।

अनुवाद

अन्यों की जाने दें, भगवान् जगन्नाथ तथा भगवान् बलराम तक श्री चैतन्य महाप्रभु का नृत्य देखकर परम प्रसन्नतापूर्वक धीरे-धीरे चलने लगे।

कभु सुखे नृत्य-रङ्ग देखे रथ राखि' ।

से कौतुक ये देखिल, सेइ तार साक्षी ॥ 179॥

कभु-कभी; सुखे-सुख में; नृत्य-रङ्ग-नृत्य के रंग को; देखे-देखते थे; रथ-रथ; राखि'–रोककर; से कौतुक-वह मनोरंजन ; ये-जो कोई; देखिल देख सकता था; सेइ-वह; तार-उसका; साक्षी–साक्षी।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ तथा भगवान् बलराम कभी-कभी रथ रोक देते और प्रसन्नतापूर्वक महाप्रभु का नृत्य देखने लगते। जो कोई भी उन्हें रथ रोककर नृत्य देखते देख सका, वह उनकी लीलाओं का साक्षी है।

एइ-मत प्रभु नृत्य करिते भ्रमिते ।

प्रतापरुद्रेर आगे लागिला पड़िते ॥ 180॥

एइ-मत-इस प्रकार; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; नृत्य करिते-नाचते नाचते; भ्रमिते-घूमते घूमते; प्रतापरुद्रेर-राजा प्रतापरुद्र के; आगे-आगे; लागिला-लगे; पड़िते-नीचे गिर गये।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु इस तरह नाच तथा घूम रहे थे, तब वे महाराज प्रतापरुद्र के सामने गिर पड़े।

सम्भ्रमे प्रतापरुद्र प्रभुके धरिल ।

ताँहाके देखिते प्रभुर बाह्य-ज्ञान हइल ॥181॥

सम्भ्रमे-अत्यन्त सम्मान सहित; प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र; प्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु को; धरिल-ऊपर उठाया; ताँहाके–उनको; देखिते-देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; बाह्य-ज्ञान-बाहरी चेतना; हइल–हो गई।

अनुवाद

महाराज प्रतापरुद्र ने बड़े सम्मान से महाप्रभु को उठाया, किन्तु राजा को देखकर महाप्रभु को बाह्य चेतना आ गई।

राजा देखि' महाप्रभु करेन धिक्कार ।

छि, छि, विषयीर स्पर्श हइल आमार ॥ 182॥

राजा देखि'–राजा को देखकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करेन-किया; धिक्-कार-धिक्कार; छि छि छिः छिः; विषयीर-लौकिक विषयों में रुचि लेने वाले का; स्पर्श हइल-स्पर्श हो गया; आमार-मेरा।

अनुवाद

राजा को देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको यह कहकर धिक्कारा, "छिः! कितने दुःख की बात है कि मैंने ऐसे व्यक्ति का स्पर्श कर लिया, जो संसारी मामलों में रुचि रखता है।"

आवेशेते नित्यानन्द ना हैला सावधाने ।

काशीश्वर-गोविन्द आछिला अन्य-स्थाने ॥183॥

आवेशेते-आवेश में; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; ना-नहीं, हैला-थे; सावधाने-सावधान; काशीश्वर–काशीश्वर; गोविन्द-गोविन्द; आछिला-थे; अन्य-स्थाने-एक अन्य स्थान पर।

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु गिरे, तो न तो नित्यानन्द प्रभु ने, न ही काशीश्वर या गोविन्द ने उनको संभाला। नित्यानन्द अत्यधिक आवेश में थे और काशीश्वर तथा गोविन्द अन्यत्र थे।

यद्यपि राजार देखि' हाड़िर सेवन ।

प्रसन्न हञाछे ताँरे मिलिबारे मन ॥ 184॥

यद्यपि-यद्यपि; राजार--राजा को; देखि-देखकर; हाड़ि सेवन-भंगी की सेवा; प्रसन्न हञाछे-सन्तुष्ट हुए; तौरे मिलिबारे उन्हें मिलने के लिए; मन-उनका मन।

अनुवाद।

श्री चैतन्य महाप्रभु पहले ही राजा के व्यवहार से प्रसन्न हो चुके थे, क्योंकि राजा ने भगवान् जगन्नाथ के लिए झाड़ लगाने का काम स्वीकार किया था। अतः श्री चैतन्य महाप्रभु राजा को वास्तव में मिलना चाहते थे।

तथापि आपन-गणे करिते सावधान।

बाह्ये किछु रोषाभास कैला भगवान्॥ 185॥

तथापि–फिर भी; आपन-गणे-अपने साथियों को; करिते-करने के लिए; सावधान-सावधान; बाह्य-बाहर से; किछु-कुछ; रोष-आभास–दिखावटी क्रोध; कैला–दिखाया; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

तथापि अपने निजी संगियों को आगाह करने के लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने ऊपर से रोष प्रकट किया।

तात्पर्य

जब महाराज प्रतापरुद्र ने महाप्रभु से भेंट करने के लिए पूछा, तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कहते हुए तुरन्त मना कर दिया :

निष्किञ्चिनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य

पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।

सन्दर्शनं विषयिणामथ योषितां च

हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥

(चैतन्य-चन्द्रोदय-नाटक 8.23)

निष्किञ्चनस्य शब्द उस व्यक्ति का सूचक है, जिसने अपने सारे भौतिक कार्यकलाप समाप्त कर लिए हैं। ऐसा व्यक्ति भवसागर पार करने के लिए कृष्णभावनामृत में अपने कार्यकलाप सम्पन्न करना प्रारम्भ कर सकता है। ऐसे व्यक्ति के लिए संसारी लोगों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना अथवा किसी स्त्री से घनिष्ठ सम्पर्क रखना अत्यन्त खतरनाक सिद्ध होता है। यह औपचारिकता भगवद्धाम वापस जाने के लिए गम्भीर व्यक्ति को निभानी पड़ती है। इसीलिए जब राजा से उनका स्पर्श हुआ, तो महाप्रभु ने अपने निजी संगियों को इन सिद्धान्तों को समझाने के लिए ही बाहर से रोष प्रकट किया। चूँकि महाप्रभु राजा के विनीत आचरण से अत्यन्त सन्तुष्ट थे, अतएव उन्होंने जान-बूझकर राजा को अपना शरीर स्पर्श करने दिया, किन्तु अपने निजी संगियों को आगाह करने के लिए उन्होंने बाहर से रोष व्यक्त किया।

प्रभुर वचने राजार मने हैल भय ।

सार्वभौम कहे,—तुमि ना कर संशय ॥ 186॥

प्रभुर वचने-श्री चैतन्य महाप्रभु के कथन से; राजार-राजा के; मने-मन में; हैल-था; भय-भय; सार्वभौम कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; तुमि-आप (राजा); ना कर संशय-चिन्ता मत करो।

अनुवाद

महाप्रभु द्वारा बाहरी रोष दिखाये जाने पर राजा प्रतापरुद्र भयभीत हो गये, लेकिन सार्वभौम भट्टाचार्य ने राजा से कहा, "आप चिन्ता न करें।"

तोमार उपरे प्रभुर सुप्रसन्न मन ।

तोमा लक्ष्य करि' शिखायेन निज गण ॥187॥

तोमार उपरे–आपके ऊपर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; सु-प्रसन्न-अत्यन्त सन्तुष्ट; मन-मन; तोमा-आपको; लक्ष्य करि'–लक्ष्य करके; शिखायेन-वे सिखा रहे हैं; निज गण-अपने निजी साथियों को।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने राजा से कहा, "महाप्रभु आप से अत्यन्त प्रसन्न हैं। वे आपको लक्ष्य बनाकर अपने निजी संगियों को शिक्षा दे रहे थे कि संसारी लोगों से किस तरह व्यवहार करना चाहिए।"

तात्पर्य

यद्यपि ऊपर से राजा कंचन तथा कामिनी में रुचि रखने वाले संसारी व्यक्ति थे किन्तु भीतर से वे अपने भक्ति-कार्यों द्वारा शुद्ध हो चुके थे। उन्होंने भगवान् जगन्नाथ को प्रसन्न करने के लिए सड़क पर झाड़ देने का काम करके यह दिखला दिया था। यदि कोई धनाढ्य व्यक्ति ऊपर से कंचन तथा कामिनी में रुचि रखने वाला प्रतीत होता है, किन्तु यदि वास्तव में वह अत्यन्त दीन तथा विनीत है और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरणागत है, तो वह संसारी नहीं कहा जायेगा। ऐसा निर्णय श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके विश्वस्त भक्त ही कर सकते हैं। किन्तु सामान्य नियम के रूप में, भक्तों को कामिनी तथा कंचन में रुचि रखने वाले व्यक्तियों से घनिष्टता से मिलना-जुलना नहीं चाहिए।

अवसर जानि' आमि करिब निवेदन ।

सेइ-काले याइ' करिह प्रभुर मिलन ॥188॥

अवसर जानि'–शुभ अवसर पाकर; आमि-मैं; करिब–करूँगा; निवेदन निवेदन; सेइ-काले-उसी समय; याइ'-आकर; करिह-आप करो; प्रभुर मिलन-श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने आगे कहा, "उपयुक्त अवसर पाकर मैं आपका निवेदन प्रस्तुत करूँगा। तब आपके लिए आकर महाप्रभु से मिलना आसान होगा।"

तबे महाप्रभु रथ प्रदक्षिण करिया ।

रथ-पाछे याइ' ठेले रथे माथा दिया ॥ 189॥

तबे-उस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; रथ-रथ; प्रदक्षिण–प्रदक्षिणा; करिया-करके; रथ-पाछे-रथ के पीछे; याइ'-जाकर; ठेले- धकेला; रथे-रथ पर; माथा दिया-सिर लगाकर।

अनुवाद

जगन्नाथ की प्रदक्षिणा करके श्री चैतन्य महाप्रभु रथ के पीछे चले गये और अपने सिर से रथ को ढकेलने लगे।

ठेलितेइ चलिल रथ 'हड़' 'हड़' करि'।

चतुर्दिके लोक सब बले 'हरि' 'हरि' ॥190॥

ठेलितेइ-जैसे ही उन्होंने धकेला; चलिल–चल पड़ा; रथ-रथ; हड़ हड़ करि'-घर घर्र का शोर करके; चतुः-दिके-चारों ओर; लोक-सामान्य लोग; सब-सब; बले-कीर्तन करने लगे; हरि हरि–"हरि हरि" पावन नाम बोलकर।"

अनुवाद

उनके ढकेलते ही रथ'घर' घर' की आवाज करके चल पड़ा। चारों ओर से लोग भगवान् के पवित्र नाम-"हरि! हरि!"-का उच्चारण करने लगे।

तबे प्रभु निज-भक्त-गण लञा सङ्गे।

बलदेव-सुभद्राग्रे नृत्य करे रङ्गे ॥191॥

तबे-उस समय; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-अपने; भक्त-गण-भक्तों को; लञा-लेकर; सङ्गे-अपने साथ; बलदेव- भगवान् बलराम; सुभद्रा-भाग्य की देवी सुभद्रा; अग्रे-आगे; नृत्य-नृत्य; करे–करने लगे; रङ्गे-बड़े आनन्द में।

अनुवाद

जैसे ही रथ चल दिया, श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी संगियों को भगवान् बलराम तथा लक्ष्मी देवी सुभद्रा के रथों के समक्ष ले गये। वे अत्यधिक प्रेरित होकर उनके समक्ष नाचने लगे।

ताहाँ नृत्य करि' जगन्नाथ आगे आइला।

जगन्नाथ देखि' नृत्य करिते लागिला ॥192॥

ताहाँ-वहाँ; नृत्य करि'–नृत्य करके; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ के; आगे-आगे; आइला–आये; जगन्नाथ देखि'–भगवान् जगन्नाथ को देखकर; नृत्य-नृत्य; करिते-करने; लागिला-लगे।

अनुवाद

बलदेवजी तथा सुभद्रा के समक्ष नृत्य करने के बाद श्री महाप्रभु भगवान् जगन्नाथ के रथ के समक्ष आये और उन्हें देखकर पुनः नाचने लगे।

चलिया आइल रथ 'बलगण्डि'–स्थाने ।

जगन्नाथ रथ राखि' देखे डाहिने वामे ॥ 193॥

चलिया-चलते चलते; आइल-आया; रथ-रथ; बलगण्डि-स्थाने-बलगंडि नामक स्थान पर; जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ ने; रथ रथ; राखि'–रोककर; देखे-देखा; डाहिने वामे-बाएँ और दाएँ।

अनुवाद

जब वे बलगंडि नामक स्थान पर पहुँचे, तो भगवान जगन्नाथ ने अपना रथ रोक दिया और दाएँ-बाएँ देखने लगे।

वामे–'विप्र-शासन' नारिकेल-वन ।

डाहिने त' पुष्पोद्यान येन वृन्दावन ॥194॥

वामे-बाँयें ओर; विप्र-शासन-वह स्थान जहाँ ब्राह्मण रहते थे; नारिकेल-वन-नारियल का वन; डाहिने-दाईं ओर; त'–निस्सन्देह; पुष्प-उद्यान-पुष्पों का उद्यान; येन-जैसे; वृन्दावन-वृन्दावन।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ ने बाईं ओर ब्राह्मणों की बस्ती विप्रशासन और नारियल के वृक्षों का कुंज देखा। दाहिनी ओर उन्होंने पवित्र धाम वृन्दावन के जैसे सुन्दर पुष्पों के उद्यान देखे।

तात्पर्य

उड़ीसा प्रदेश में ब्राह्मणों के रहने वाले घरों को सामान्यतया विप्रशासन कहते हैं।

आगे नृत्य करे गौर लञा भक्त-गण ।

रथ राखि' जगन्नाथ करेन दरशन ॥ 195॥

आगे-सामने; नृत्य करे–नृत्य किया; गौर-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; लञा-साथ लेकर; भक्त-गण-भक्तों को; रथ राखि'–रथ को रोककर; जगन्नाथ-भगवान जगन्नाथ के; करेन दरशन-दर्शन किये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्त रथ के सामने नाच रहे थे और भगवान जगन्नाथ अपना रथ रोककर उनका नृत्य देखने लगे।

सेइ स्थले भोग लागे,—आछये नियम ।

कोटि भोग जगन्नाथ करे आस्वादन ॥ 196॥

सेइ स्थले-उस स्थल पर; भोग लागे-भोग लगाया जाता है; आछये नियम-यह नियम है; कोटि भोग-करोड़ों भोग; जगन्नाथ भगवान् जगन्नाथ; करे-किया; आस्वादन–चखा।

अनुवाद

भगवान् को विप्रशासन स्थान पर भोजन समर्पित किये जाने की प्रथा थी। उन्हें असंख्य व्यंजन समर्पित किये गये और जगन्नाथजी ने उन सबका आस्वादन किया।

जगन्नाथेर छोट-बड़ यत भक्त-गण ।

निज निज उत्तम-भोग करे समर्पण ॥ 197॥

जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ के; छोट-छोटे; बड़-उन्नत; यत-सभी; भक्त-गण-भक्त-गण; निज निज-अपना पकाया हुआ; उत्तम-भोग–उत्तम भोग; करे-किया; समर्पण-समर्पण।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ के सभी तरह के भक्तों ने—नये भक्त से लेकर उन्नत भक्तों ने—अपना-अपना सर्वोत्तम भोजन भगवान् को समर्पित किया।

राजा, राज-महिषी-वृन्द, पात्र, मित्र-गण ।

नीलाचल-वासी यत छोट-बड़ जन ॥ 198॥

राजा-राजा; राज-महिषी-वृन्द–रानियाँ; पात्र-मन्त्री; मित्र-गण-मित्र; नीलाचल-वासी-जगन्नाथ पुरी के सभी निवासी; यत–जितने; छोट-बड़-छोटे-बड़े; जन-व्यक्ति।

अनुवाद

इसमें राजा, उनकी रानियाँ, उनके मन्त्री तथा मित्र और जगन्नाथ पुरी के छोटे-बड़े सभी निवासी सम्मिलित थे।

नाना-देशेर देशी यत यात्रिक जन ।

निज-निज-भोग ताहाँ करे समर्पण ॥199॥

नाना-देशेर विभिन्न देशों के; देशी–स्थानीय; यत-सभी प्रकार के; यात्रिक-यात्री; जन-लोग; निज-निज-अपना पकाया हुआ; भोग-भोग; ताहाँ-वहाँ; करे-किया; समर्पण-समर्पण।

अनुवाद

विभिन्न देशों से जगन्नाथ पुरी आये हुए यात्रियों तथा स्थानीय भक्तों ने जगन्नाथजी को अपने हाथों से पकाया हुआ भोजन अर्पित किया।

आगे पाछे, दुइ पार्श्वे पुष्पोद्यान-वने ।

येइ याहा पाय, लागाय,–नाहिक नियमे ॥ 200॥

आगे पाछे-आगे-पीछे; दुइ पार्श्वे दोनों ओर; पुष्प-उद्यान-वने-फूल के बागों में; येइ-जिस किसी ने; याहा पाय-अवसर पाया; लागाय-भोग लगाया; नाहिक नियमे-वहाँ कोई सख्त नियम नहीं था।

अनुवाद

भक्तों ने रथ के आगे और पीछे, रथ के दोनों ओर तथा पुष्पोद्यान के भीतर—सभी जगह अपना भोजन अर्पित किया। जहाँ-जहाँ भी सम्भव था, उन्होंने भगवान् को भोग चढ़ाया, क्योंकि इसके लिए कोई नियत नियम नहीं थे।

भोगेर समय लोकेर महा भिड़ हैल ।

नृत्य छाड़ि' महाप्रभु उपवने गेल ॥ 201॥

भोगेर समय-भोग समर्पित करने के समय; लोकेर–सभी लोगों की; महा-बड़ी; भिड़-भीड़; हैल-हो गई; नृत्य छाड़ि'-अपना नृत्य छोड़कर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; उपवने गेल-निकट के उद्यान में गये।

अनुवाद

भोजन अर्पित करते समय बहुत बड़ी भीड़ एकत्र हो गई। तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपना नृत्य रोक दिया और वे पास के बगीचे में चले गये।

प्रेमावेशे महाप्रभु उपवन पाञा ।

पुष्पोद्याने गृह-पिण्डाय रहिला पड़िया ॥ 202॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; उपवन पाञा-निकट के सुन्दर बगीचे में आकर; पुष्प-उद्याने-उस पुष्प-उद्यान में; गृह-पिण्डाय-ऊँचे चबूतरे पर; रहिला-रहे; पड़िया-सीधे लेटकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु बगीचे में चले गये। वहाँ वे प्रेमावेश में निमग्न होकर एक चबूतरे पर लेट गये।

नृत्य-परिश्रमे प्रभुर देहे घन घर्म ।

सुगन्धि शीतल-वायु करेन सेवन ॥ 203॥

नृत्य-परिश्रमे-नृत्य के कारण थकान; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; देहे-शरीर पर; घन घर्म-अधिक पसीना; सुगन्धि–सुगन्धित; शीतल-वायु-शीतल वायु; करेन सेवन-अत्यन्त आनन्द पाया।

अनुवाद

महाप्रभु नाचने के कठोर श्रम से बहुत थक गये थे और उनके सारे शरीर पर पसीना था। अतएव उन्होंने बगीचे की सुगन्धित शीतल वायु का आनन्द उठाया।

यत भक्त कीर्तनीया आसिया आरामे ।

प्रति-वृक्ष-तले सबै करेन विश्रामे ॥ 204॥

यत भक्त–सारे भक्त; कीर्तनीया-संकीर्तन करने वाले; आसिया-आकर; आरामे-विश्राम-स्थल पर; प्रति-वृक्ष-तले प्रत्येक वृक्ष के नीचे; सबे–वे सब; करेन-करने लगे; विश्रामे-विश्राम।

अनुवाद

संकीर्तन करने वाले सारे भक्त भी वहाँ आ गये और उन्होंने वृक्षों के नीचे विश्राम किया।

एइ त' कहिल प्रभुर महा-सङ्कीर्तन ।

जगन्नाथेर आगे यैछे करिल नर्तन ॥ 205॥

एइ त'–इस प्रकार; कहिल-मैंने वर्णन किया है; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; महा-सङ्कीर्तन–महासंकीर्तन; जगन्नाथेर आगे-भगवान जगन्नाथ के समक्ष; यैछे-जैसे; करिल-उन्होंने किया; नर्तन-नृत्य।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा किये गये महासंकीर्तन का वर्णन किया है, जिस तरह वे जगन्नाथ के समक्ष नाचे थे।

रथाग्रेते प्रभु यैछे करिला नर्तन ।

चैतन्याष्टके रूप-गोसाञि कर्याछे वर्णन ॥ 206 ॥

रथ-अग्रेते-रथ के आगे; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; यैछे-जैसे; करिला–किया; नर्तन-नृत्य; चैतन्य-अष्टके-चैतन्याष्टक नामक प्रार्थना में; रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी ने; कर्याछे–किया है; वर्णन–स्पष्ट वर्णन।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने चैतन्याष्टक नामक अपनी स्तुति में महाप्रभु द्वारा जगन्नाथजी के रथ के समक्ष नाचने का स्पष्ट वर्णन किया है।

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी ने तीन स्तुतियाँ लिखी हैं और इनमें से हर एक का शीर्षक चैतन्याष्टक है। अगला श्लोक (7) प्रथम चैतन्याष्टक से है, जो स्तवमाला नामक ग्रंथ में सम्मिलित है।

रथारूढ़स्यारादधिपदवि नीलाचल-पतेर्

अदभ्र-प्रेमोर्मि-स्फुरित-नटनोल्लास-विवशः ।

स-हर्ष गायद्भिः परिवृत-तनुर्वैष्णव-जनैः

स चैतन्यः किं में पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥ 207॥

रथ-आरूढ़स्य-भगवान् का जो रथ पर सवार थे; आरात्-के सामने; अधिपदवि-बड़ी सड़क पर; नीलाचल-पतेः-नीलाचल के स्वामी भगवान जगन्नाथ का; अदर्भ-महान्; प्रेम-ऊर्मि-भगवत्-प्रेम की तरंगो से; स्फुरित–जो प्रकट हुआ; नटन-उल्लास-विवशः-नृत्य के दिव्य आनन्द से विह्वल होकर; स-हर्षम्-हर्ष सहित; गायद्भिः-गायकों से; परिवृत–घिरकर; तनुः-शरीर; वैष्णव-जनैः– भक्तों से; सः चैतन्यः-वे श्री चैतन्य महाप्रभुः किम्-क्या; मे-मेरा; पुनः अपि-दोबारा; दृशोः–दृष्टि के; यास्यति–प्रवेश करेंगे; पदम्-पथ में।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु ने रथ पर विराजमान नीलाचल के स्वामी भगवान् जगन्नाथ के समक्ष प्रमुख मार्ग में परम प्रसन्नतापूर्वक नृत्य किया। नृत्य करने के दिव्य आनन्द से अभिभूत होकर तथा नामोच्चार करने वाले वैष्णवों से घिरे महाप्रभु ने उत्कट भगवत्प्रेम की लहरें प्रकट कीं। ऐसे श्री चैतन्य महाप्रभु कब मेरे समक्ष पुनः दृष्टिगोचर होंगे?"

इहा येइ शुने सेइ श्री-चैतन्य पाय ।

सुदृढ़ विश्वास-सह प्रेम-भक्ति हय ॥208॥

इहा-यह; येइ-जो कोई; शुने-सुनता है; सेइ-वह व्यक्ति; श्री-चैतन्य पाय-श्री चैतन्य महाप्रभु को पायेगा; सु-दृढ़-सुदृढ़; विश्वास–विश्वास; सह–के साथ; प्रेम-भक्ति-प्रेमाभक्ति; हय-होगी।

अनुवाद

जो भी रथयात्रा के इस विवरण को सुनता है, उसे श्री चैतन्य महाप्रभु प्राप्त होंगे। उसे वह उच्च अवस्था भी प्राप्त होगी, जिससे उसे भगवद्भक्ति तथा भगवत्प्रेम में दृढ़ विश्वास प्राप्त होगा।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥209॥

श्री-रूप-श्री रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों पर; यार–जिसकी ; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ का; कहे-वर्णन किया है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की प्रार्थना करते हुए और उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के तेरहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें जगन्नाथजी की रथयात्रा के अवसर पर महाप्रभु के भावमय नृत्य का वर्णन हुआ है।

अध्याय चौदह

वृन्दावन लीलाओं का सम्पादन

महाराज प्रतापरुद्र एक वैष्णव का वेश धारण करके बलगंडि में अकेले एक बगीचे में गये और श्रीमद्भागवत के श्लोक उच्चारण करने लगे। फिर उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल दबाने का अवसर प्राप्त हुआ। महाप्रभु ने कृष्ण-प्रेमावेश में तुरन्त राजा का आलिंगन कर लिया और इस तरह उसे अपनी कृपा का दान दिया। जब बगीचे में प्रसाद बाँटा गया, तो भगवान् चैतन्य ने भी उसे ग्रहण किया। इसके बाद जब जगन्नाथजी का रथ चलते-चलते रुक गया, तो राजा प्रतापरुद्र ने उसे खींचने के लिए कई हाथी मँगाये, किन्तु वे असफल रहे। यह देखकर महाप्रभु ने जब रथ को पीछे से अपने सिर से ठेलना शुरू किया, तो वह रथ चलने लगा। तब भक्तों ने रथ को रस्सों से खींचना शुरू किया। गुण्डिचा मन्दिर के पास ही आइटोटा नाम का एक स्थान है। यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु के विश्राम की व्यवस्था की गई थी। जब भगवान् जगन्नाथ सुन्दराचल पर आरूढ़ हो गये, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसे वृन्दावन के रूप में देखा। उन्होंने इन्द्रद्युम्न सरोवर के जल में क्रीड़ाएँ कीं। महाप्रभु रथयात्रा के समय नौ दिनों तक लगातार सुन्दराचल में रहे। पाँचवे दिन महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर ने लक्ष्मी की लीलाएँ देखीं। उस समय गोपियों की लीलाओं की बड़ी चर्चा होती रही। जब रथ पुनः खींचा जाने लगा और कीर्तन शुरू हो गया, तो कुलीन ग्राम के रामानन्द वसु तथा सत्यराज खान नामक दो भक्तों से अनुरोध किया गया कि वे प्रतिवर्ष रथयात्रा उत्सव के लिए रेशमी रस्से लाएँ।

गौरः पश्यन्नात्म-वृन्दैः श्री-लक्ष्मी-विजयोत्सवम् ।

श्रुत्वा गोपी-रसोल्लासं हृष्टः प्रेम्णा ननर्त सः ॥ 1॥

गौरः-श्री चैतन्य महाप्रभुः पश्यन्–देखकर; आत्म-वृन्दैः-अपने निजी पार्षदों के साथ; श्री-लक्ष्मी-लक्ष्मी-देवी के; विजय-उत्सवम्-विजय उत्सव; श्रुत्वा-सुनकर; गोपी-गोपियों की; रस-उल्लासम्-रस की उत्तमता; हृष्टः-अति प्रसन्न होकर; प्रेम्णा-प्रेमावेश में; ननर्त-नृत्य किया; सः-श्री चैतन्य महाप्रभु ने।

अनुवाद

अपने निजी भक्तों के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु लक्ष्मी विजयोत्सव में गये। वहाँ उन्होंने गोपियों के सर्वोत्कृष्ट प्रेम की चर्चा की। इन सबको सुनने से ही वे परम प्रसन्न हुए और भगवत्प्रेम से अभिभूत होकर खूब नाचे।

जय जय गौरचन्द्र श्री-कृष्ण-चैतन्य ।

जय जय नित्यानन्द जयाद्वैत धन्य ॥2॥

जय जय-जय हो; गौरचन्द्र-गौरचन्द्र की; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; जय जय-जय हो; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-अद्वैत आचार्य की; धन्य-धन्य।

अनुवाद

गौरचन्द्र नाम से विख्यात श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! नित्यानन्द प्रभु की जय हो! परम धन्य अद्वैत आचार्य की जय हो!

जय जय श्रीवासादि गौर-भक्त-गण ।

जय श्रोता-गण,—याँर गौर प्राण-धन ॥ 3॥

जय जय-जय हो; श्रीवास-आदि-श्रीवास आदि की; गौर-भक्त-गण-भगवान् चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की; जय-जय हो; श्रोता-गण-श्रोताओं की; याँर-जिनके; गौर-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्राण-धन-जीवन और आत्मा (सर्वस्व)।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर इत्यादि समस्त भक्तों की जय हो! उन सारे पाठकों की जय हो, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने प्राणधन माने हैं।

एइ-मत प्रभु आछेन प्रेमेर आवेशे ।

हेन-काले प्रतापरुद्र करिल प्रवेशे ॥4॥

एइ-मत-इस प्रकार; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; आछेन-थे; प्रेमेर आवेशे-प्रेमावेश में; हेन-काले-इस समय; प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र ने; करिल प्रवेशे-प्रवेश किया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर विश्राम कर रहे थे, तभी राजा प्रतापरुद्र बगीचे के भीतर प्रविष्ट हुए।

सार्वभौम-उपदेशे छाड़ि' राज-वेश ।

एकला वैष्णव-वेशे करिल प्रवेश ॥5॥

सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य के; उपदेशे-उपदेशानुसार; छाड़ि'-त्यागकर; राज-वेश-राजसी वेशभूषा; एकला-अकेले; वैष्णव-वेशे-वैष्णव के वेश में; करिल प्रवेश-प्रवेश किया।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के उपदेशानुसार राजा ने अपना राजसी वेश छोड़ दिया और अब वह वैष्णव-वेश में बगीचे में प्रविष्ट हुए।

तात्पर्य

कभी-कभी अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के सदस्यों को पुस्तक वितरित करते समय, विशेषतया पाश्चात्य देशों में लोगों तक पहुँचने में कठिनाई होती है, क्योंकि वहाँ के लोग भक्तों के परम्परागत गेरुवे वस्त्र से अपरिचित होते हैं। इसलिए भक्त पूछते हैं कि क्या वे जनता के समक्ष यूरोपीय तथा अमरीकी वेशभूषा में जा सकते हैं? सार्वभौम भट्टाचार्य ने राजा प्रतापरुद्र को जों उपदेश दिया था, उसके अनुसार हम अपने सेवा कार्य की सुविधा हेतु अपना वेश जैसा चाहें, बदल सकते हैं। अतः जब हमारे भक्तगण जनता से मिलते समय या हमारी पुस्तकों का प्रचार करते समय, अपना वेश बदलते हैं, तो वे भक्ति के नियमों को तोड़ते नहीं हैं। असली सिद्धान्त तो कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करना है और यदि इस कार्य के लिए किसी को सामान्य पाश्चात्य वेशभूषा पहननी पड़े, तो इसमें कोई एतराज नहीं होना चाहिए।

सब-भक्तेर आज्ञा निल योड़-हात हञा ।

प्रभु-पद धरि' पड़े साहस करिया ॥ 6 ॥

सब-भक्तेर-सभी भक्तों की; आज्ञा निल-आज्ञा ली; योड़-हात हञा-हाथ जोड़कर; प्रभु-पद धरि'-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरण पकड़कर; पड़े—गिर पड़े; साहस करिया-साहस करके।

अनुवाद

महाराज प्रतापरुद्र इतने विनीत थे कि सर्वप्रथम उन्होंने सारे भक्तों से हाथ जोड़कर अनुमति माँगी। तब साहस बटोरकर वे महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़े और उनका स्पर्श किया।

आङ्‌खि मुदि' प्रभु प्रेमे भूमिते शयान ।

नृपति नैपुण्ये करे पाद-संवाहन ॥7॥

आङ्‌खि मुदि'-आँखे मूंदकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रेमे-प्रेमावेश में; भूमिते-भूमि पर; शयान-लेटे थे; नृपति–राजा; नैपुण्ये-बड़ी निपुणता से; करे-किया; पाद-संवाहन-चरण दबाए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर आँखें मूंदे चबूतरे पर लेटे थे और राजा बड़ी निपुणता से उनके पाँव दबाने लगे।

रास-लीलार श्लोक पड़ि' करेन स्तवन ।

"जयति तेऽधिकं" अध्याय करेन पठन ॥8॥

रास-लीलार–रास लीला के; श्लोक-श्लोक; पड़ि'–पढ़कर; करेन-किया; स्तवन-स्तवन (स्तुति); जयति तेऽधिकम्- जयति तेऽधिकम् शब्दों के आरम्भ करके; अध्याय-अध्याय; करेन–किया; पठन–पठन।

अनुवाद

वे श्रीमद्भागवत से रासलीला विषयक श्लोक पढ़कर सुनाने लगे। उन्होंने "जयति तेऽधिकम्" से प्रारम्भ होने वाला अध्याय पढ़ा।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध, अध्याय इकतीस के ये श्लोक गोपी-गीत के नाम से विख्यात हैं।

शुनिते शुनिते प्रभुर सन्तोष अपार।

'बल, बल' बलि' प्रभु बले बार बार ॥9॥

शुनिते शुनिते-सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; सन्तोष अपार-अपार सन्तोष; बल बल–बारम्बार पढ़ो; बलि'–कहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; बले–कहा; बार बार-बारम्बार।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन श्लोकों को सुना, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और बारम्बार कहने लगे "सुनाते रहो, सुनाते रहो।"

"तव कथामृतं" श्लोक राजा ये पड़िल।

उठि' प्रेमावेशे प्रभु आलिङ्गन कैल ॥10॥

तव कथामृतम्-तव कथामृतम् शब्दों से आरम्भ होने वाला श्लोक; श्लोक-श्लोक; राजा-राजा; ये पड़िल-जैसे उन्होंने पढ़ा; उठि'–उठकर; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; आलिङ्गन कैल-आलिंगन किया।

अनुवाद

ज्योंही राजा ने "तव कथामृतं" शब्दों से आरम्भ होने वाला श्लोक पढ़ा, त्योंही महाप्रभु तुरन्त प्रेमावेश में आकर उठे और उन्होंने राजा का आलिंगन कर लिया।

तुमि मोरे दिले बहु अमूल्य रतन।

मोर किछु दिते नाहि, दिलुँ आलिङ्गन ॥11॥

तुमि-तुमने; मोरे-मुझे; दिले–दिया; बहु-बहुत; अमूल्य-अमूल्य; रतन-रत्न; मोर–मेरा; किछु-कुछ; दिते-देने के लिए; नाहि-नहीं; दिलुँ-मैं देता हूँ; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

राजा द्वारा सुनाये गये श्लोक को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, तुमने मुझे अमूल्य रत्न प्रदान किये हैं, किन्तु मेरे पास बदले में तुम्हें देने के लिए कुछ भी नहीं है। इसीलिए मैं तुम्हारा आलिंगन-मात्र कर रहा हूँ।"

एत बलि' सेइ श्लोक पड़े बार बार ।

दुइ-जनार अड़े कम्प, नेत्रे जल-धार ॥12॥

एत बलि'—यह कहकर; सेइ श्लोक-वह श्लोक; पड़े-पढ़ा; बार बार-बारम्बार; दुइ-जनार-दोनों के (श्री चैतन्य महाप्रभु और राजा प्रतापरुद्र के); अङ्गे–शरीरों में; कम्प-कँपन; नेत्रे-नेत्रों में; जल-धार-जलधारा।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु उसी श्लोक को बारम्बार पढ़ने लगे। राजा तथा श्री चैतन्य महाप्रभु दोनों ही काँप रहे थे और उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे।

तव कथामृतं तप्त-जीवनं

कविभिरीड़ितं कल्मषापहम् ।

श्रवण-मङ्गलं श्रीमदाततं

भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः ॥13॥

तव-आपकी; कथा-अमृतम्-कथामृत; तप्त-जीवनम्-भौतिक संसार में दुःखी लोगों के लिए जीवन है; कविभिः–महान् पुरुषों द्वारा; ईड़ितम्-वर्णित; कल्मष-अपहम्-सभी पापफलों को नष्ट करने वाले; श्रवण-मङ्गलम्-सुनने वालों को आध्यात्मिक लाभ प्रदान करने वाले; श्री-मत्-सभी दिव्य शक्ति से युक्त; आततम् सारे विश्व में प्रसारित; भुवि-भौतिक जगत् में; गृणन्ति–जपते हैं और प्रचार करते हैं; ग्रे-वे जो; भूरि-दाः-अत्यन्त परोपकारी; जनाः-व्यक्ति।

अनुवाद

“हे प्रभु, आपकी वाणी का अमृत तथा आपके कार्यकलापों का वर्णन इस भौतिक जगत् से संतप्त जीवों के लिए प्राणतुल्य हैं। ये कथाएँ महापुरुषों द्वारा संप्रेषित की जाती हैं और ये सभी पापफलों का नाश करने वाली हैं। जो भी इन कथाओं को सुनता है, उसे सौभाग्य प्राप्त होता है। ये कथाएँ विश्वभर में प्रसारित होती हैं और आध्यात्मिक शक्ति से युक्त होती हैं। जो लोग ईश्वर के सन्देश का प्रचार करते हैं, वे निश्चय ही महान् दानी तथा कल्याणकर्ता हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.31.9) से लिया गया है।

‘भूरिदा’ ‘भूरिदा’ बलि’ करे आलिङ्गन।

इँहो नाहि जाने,—इहों हय कोन्जन ॥14॥

भूरि-दा-अत्यन्त परोपकारी; भूरि-दा-अत्यन्त परोपकारी; बलि’-पुकारकर; करे-किया; आलिङ्गन-आलिंगन; इँहो–श्री चैतन्य महाप्रभु; नाहि जाने नहीं जानते थे; इहों-प्रतापरुद्र महाराज; हय-है; को जन-कौन।

अनुवाद

इस श्लोक को पढ़ने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त राजा प्रतापरुद्र का आलिंगन कर लिया और कहा, “तुम अत्यन्त वदान्य (दानी) हो! तुम अत्यन्त दानी हो।” अभी तक श्री चैतन्य महाप्रभु यह नहीं जानते थे कि राजा कौन थे।

पूर्व-सेवा देखि’ ताँरे कृपा उपजिल।

अनुसन्धान विना कृपा-प्रसाद करिल ॥15॥

पूर्व-सेवा-पिछली सेवा; देखि’–देखकर; ताँरे–उनके प्रति; कृपा-कृपा; उपजिलउत्पन्न हुई; अनुसन्धान–पूछताछ; विना-बिना; कृपा-कृपा का प्रसाद-प्रसाद; करिल–दिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु में राजा की पिछली सेवा के फलस्वरूप दयाभाव जागा था। अतएव बिना पूछे कि वह कौन है, महाप्रभु ने तुरन्त उस पर कृपा की।

एइ देख,—चैतन्येर कृपा-महाबल ।

तार अनुसन्धान विना कराय सफल ॥16॥

ऐई-यह; देख-जरा देखो; चैतन्येर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; कृप-महा-बल-कृपा का महान् बल; तार अनुसन्धान-उसके बारे में पूछे; विना-बिना; कराय-वे करते हैं; स-फल-सफल।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा कितनी शक्तिशाली है! महाप्रभु ने राजा से पूछे बिना हर काम को सफल बना दिया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा इतनी बलशाली है कि वह स्वत: कार्य करती है। यदि कोई व्यक्ति कृष्ण की प्रेममयी सेवा करता है, तो वह कभी व्यर्थ नहीं जाती। इसको आध्यात्मिक खाते में लिख लिया जाता है और सही समय आने पर वह फलदायक होती है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (2.40) द्वारा होती है :

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

"इस प्रयास में कोई हानि या कमी नहीं है और इस मार्ग पर थोड़ी-सी भी प्रगति मनुष्य की भयानक से भयानक भय से रक्षा कर सकती है।"

इस युग में श्री चैतन्य महाप्रभु ने समस्त पतितात्माओं को भक्ति की संकीर्तन नामक अर्थात् भगवान् के पवित्र नाम के सामूहिक कीर्तन की सर्वोच्च शक्तिशाली विधि प्रदान की है और जो भी इसे श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से ग्रहण करता है, वह तुरन्त दिव्य पद को प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत (11.5.32) की संस्तुति है- यज्ञैः सङ्कीर्तन प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ।

कृष्णभावनामृत के जिज्ञासु को श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा अवश्य प्राप्त होगी, तभी उसकी भक्ति शीघ्र सफल होगी। राजा प्रतापरुद्र के साथ यही हुआ। मनुष्य पर श्री चैतन्य महाप्रभु की दृष्टि पड़नी चाहिए और श्रद्धापूर्वक थोड़े-से ही प्रयास से की गई सेवा से महाप्रभु आश्वस्त हो जायेंगे कि वह व्यक्ति भगवद्धाम वपास जाने के लिए सुपात्र है। शुरू में महाराज प्रतापरुद्र को श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने का अवसर प्राप्त होने की गुंजाईश नहीं थी, किन्तु जब महाप्रभु ने देखा कि वह राजा क्षुद्र झाड़ देने वाले के रूप में भगवान् जगन्नाथ की सेवा कर रहा है, तो राजा पर महाप्रभु की कृपा निश्चित हो गई। जब महाराज प्रतापरुद्र वैष्णव के रूप में महाप्रभु की सेवा कर रहे थे, तो महाप्रभु ने यह भी नहीं पूछा कि वह कौन है। प्रत्युत उन्हें उन पर दया आ गई और उन्होंने उनका आलिंगन कर लिया।

कृष्णदास कविराज गोस्वामी इंगित करना चाहते हैं कि महाराज प्रतापरुद्र के प्रति महाप्रभु की कृपा के साथ किसी भी वस्तु की तुलना नहीं की जा सकती; इसीलिए वे देख (अर्थात् "जरा देखो") और चैतन्येर कृपा-महाबल ("श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा कितनी शक्तिशाली है") शब्दों का प्रयोग करते हैं। श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती भी इसकी पुष्टि करते हैं- यत्कारुण्य-कटाक्षवैभववताम् (चैतन्य चन्द्रामृत 5) । आध्यात्मिक प्रगति में महाप्रभु की रंचमात्र भी कृपा बहुत बड़ी निधि बन जाती है। अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन का श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा के माध्यम से प्रचार करना चाहिए। जब श्रील रूप गोस्वामी को श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा तथा दयालुता का अनुभव हुआ, तो उन्होंने कहा :

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते ।

कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः ॥

"मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य को सादर नमस्कार करता हूँ, जो किसी अन्य अवतार से, यहाँ तक कि स्वयं कृष्ण से भी अधिक दयालु हैं, क्योंकि वे मुक्तहस्त से वह-शुद्ध कृष्ण-प्रेम-प्रदान कर रहे हैं, जो किसी ने कभी नहीं दिया।" श्रील लोचन दास ठाकुर ने भी गाया है- परम करुण, पहुँ दुइ जन, निताई-गौरचन्द्र–"निताई तथा गौर—ये दोनों भाई इतने दयालु हैं कि कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता।" इसी प्रकार श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने गाया है :

व्रजेन्द्रनन्दन येइ, शचीसुत हैल सेइ,

बलराम हइल निताइ

दीन-हीन यत छिल, हरि नामे उद्धारिल,

तार साक्षी जगाइ-माधाइ ।।

“पवित्र नाम का प्रचार करके इस युग के सभी पापियों का उद्धार करने के लिए, भगवान् कृष्ण और भगवान् बलराम श्री चैतन्य महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु के रूप में अवतरित हुए हैं। जगाई और माधाई उनकी सफलता के जीवंत उदाहरण हैं।”

श्री चैतन्य महाप्रभु का विशिष्ट मिशन है—कलियुग में सारे पतित जीवों का उद्धार करना। कृष्ण-भक्तों को भगवधाम जाने योग्य बनने के लिए महाप्रभु की कृपा की निरन्तर खोज करनी चाहिए।

प्रभु बले,—के तुमि, करिला मोर हित? ।

आचम्बिते आसि’ पियाओ कृष्ण-लीलामृत? ॥ 17॥

प्रभु बले–महाप्रभु ने कहा; के तुमि-तुम कौन हो; करिला-तुमने किया है; मोर-मेरा; हित-भला; आचम्बिते-अचानक; आसि’–आकर; पियाओ-तुमने मुझे पिलाया है; कृष्ण-लीला-अमृत-कृष्ण लीला का अमृत।

अनुवाद

अन्त में श्री चैतन्य महाप्रभु बोले, “तुम कौन हो? तुमने मेरे लिए इतना किया है। सहसा यहाँ आकर तुमने मुझे कृष्ण की लीलाओं का अमृतपान कराया है।”

राजा कहे,—आमि तोमार दासेर अनुदास ।

भृत्येर भृत्य कर,—एइ मोर आश ॥18॥

राजा कहे-राजा ने कहा; आमि-मैं; तोमार-आपके; दासेर अनुदास-दासों का अनुदास; भृत्येर भृत्य-सेवकों का सेवक; कर–मुझे करो; एइ–यह; मोर आश–मेरी इच्छा ।

अनुवाद

राजा ने उत्तर दिया, “हे प्रभु, मैं आपके दासों का परम आज्ञाकारी दास हूँ। मेरी अभिलाषा है कि आप मुझे अपने दासों के दास के रूप में स्वीकार करें।”

तात्पर्य

भक्त की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि वह भगवान् के दासों का दास बने। वस्तुतः किसी को भगवान् का प्रत्यक्ष दास बनने की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। यह अच्छी बात नहीं है। जब प्रह्लाद महाराज को नृसिंहदेव ने वर दिया, तो प्रह्लाद ने सभी प्रकार के भौतिक वर अस्वीकार कर दिये, केवल यही प्रार्थना की कि वे भगवान् के दासों के दास बनें। इसी प्रकार जब देवताओं के कोषाध्यक्ष कुवेर ने ध्रुव महाराज को वर देना चाहा था, तो ध्रुव चाहते तो असीम भौतिक वैभव माँग सकते थे, किन्तु उन्होंने यही वर माँगा कि वे भगवान् के दासों के दास बने रहें। खोलावेचा श्रीधर एक अत्यन्त निर्धन व्यक्ति थे, किन्तु जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें वर देना चाहा, तो उन्होंने भी महाप्रभु से यही प्रार्थना की कि उन्हें भगवान् के दासों का दास बना रहने दिया जाए। निष्कर्ष यह है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दासों का दास होना ही सर्वोच्च वर है, जिसकी कामना की जा सकती है।

तबे महाप्रभु ताँरे ऐश्वर्य देखाइल।

'कारेह ना कहिबे' एइ निषेध करिल ॥19॥

तबे-उस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे-राजा को; ऐश्वर्य-दिव्य शक्ति; देखाइल-दिखाइ; कारेह ना कहिबे-किसी को न कहना; एइ-यह; निषेध करिल-मना किया।

अनुवाद

उस समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने राजा को अपना कुछ दैवी ऐश्वर्य दिखलाया और उन्हें मना किया कि वे इसे किसी से प्रकट न करे।

'राजा'—हेन ज्ञान कभु ना कैल प्रकाश।

अन्तरे सकल जानेन, बाहिरे उदास ॥20॥

राजा-राजा; हेन ज्ञान-ऐसा ज्ञान; कभु-कभी; ना-नहीं; कैल प्रकाश-प्रकट किया; अन्तरे-हृदय के भीतर; सकल-सब कुछ; जानेन-जानते थे; बाहिरे-बाहर से; उदास-तटस्थ।

अनुवाद

यद्यपि जो कुछ घटित हो रहा था, उसे महाप्रभु मन ही मन जानते थे, किन्तु बाह्य रूप से उन्होंने उसे प्रकट नहीं किया। न ही उन्होंने यह प्रकट किया कि वे यह जान रहे थे कि वे राजा प्रतापरुद्र से बातें कर रहे थे।

प्रतापरुद्रेर भाग्य देखि' भक्त-गणे ।

राजारे प्रशंसे सबे आनन्दित-मने ॥21॥

प्रतापरुद्रेर-राजा प्रतापरुद्र का; भाग्य-सौभाग्य; देखि-देखकर; भक्त-गणे-सारे भक्त; राजारे-राजा की; प्रशंसे-प्रशंसा की; सबे-सभी ने; आनन्दित-मने-आनन्दित मनों से।

अनुवाद

राजा प्रतापरुद्र पर महाप्रभु की विशेष कृपा देखकर सारे भक्तों ने राजा के भाग्य की प्रशंसा की और उन सबके मन आनन्दमग्न हो गये।

तात्पर्य

यह वैष्णव का गुण है। यदि किसी अन्य भक्त को श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा तथा शक्ति प्राप्त होती है, तो वह कभी उससे ईर्ष्या नहीं करता। एक शुद्ध वैष्णव किसी व्यक्ति को भक्ति में उन्नति करते देखकर अत्यन्त प्रसन्न होता है। दुर्भाग्यवश ऐसे अनेक तथाकथित वैष्णव हैं, जो श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा कृपाप्राप्त लोगों को देखकर ईर्ष्या करते हैं। यह तथ्य है कि चैतन्य महाप्रभु की विशेष कृपा प्राप्त किये बिना कोई व्यक्ति महाप्रभु के सन्देश का प्रचार नहीं कर सकता। यह हर वैष्णव को पता है। फिर भी कुछ ऐसे ईर्ष्यालु व्यक्ति हैं, जो यह सहन नहीं कर सकते कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन का सारे संसार में विस्तार हो रहा है। वे इस आन्दोलन के प्रचारक में कमियाँ निकालते हैं और उसके द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु के मिशन को पूरा करने हेतु की जाने वाली सर्वोत्तम सेवा के लिए उसकी प्रशंसा नहीं करते।

दण्डवत्करि' राजा बाहिरे चलिला ।

योड़ हस्त करि' सब भक्तेरे वन्दिला ॥22॥

दण्डवत् करि'-दण्डवत् प्रणाम करके; राजा-राजा; बाहिरे-बाहर; चलिला-चले गये; योड़-जोड़कर; हस्त-हाथ; करि'–करके; सब-सब; भक्तेरे-भक्तों को; वन्दिला-नमस्कार किया।

अनुवाद

राजा बड़े ही विनीत भाव से हाथ जोड़कर भक्तों को प्रणाम करके और श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करके बाहर चले गये।

मध्याह्न करिला प्रभु लञा भक्त-गण ।

वाणीनाथ प्रसाद लञा कैल आगमन ॥23॥

मध्याह्न करिला–दोपहर का भोजन स्वीकार किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; लञा-साथ लेकर; भक्त-गण-सभी भक्तों को; वाणीनाथ-वाणीनाथ; प्रसाद लञा-जगन्नाथ को सभी प्रकार का प्रसाद लेकर; कैल–किया; आगमन-आगमन।

अनुवाद

इसके बाद वाणीनाथ राय सभी प्रकार के प्रसाद ले आया और श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्तों सहित भोजन किया।

सार्वभौम-रामानन्द-वाणीनाथे दिया ।

प्रसाद पाठा'ल राजा बहुत करिया ॥24॥

सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; रामानन्द-रामानन्द राय; वाणीनाथे दिया-वाणीनाथ राय द्वारा; प्रसाद–प्रसाद; पाठा'ल–भेजा था; राजा-राजा; बहुत करिया-बड़ी मात्रा में।

अनुवाद

राजा ने भी सार्वभौम भट्टाचार्य, रामानन्द राय तथा वाणीनाथ राय के हाथों पर्याप्त प्रसाद भेजा।

'बलगण्डि भोगेर प्रसाद–उत्तम, अनन्त ।

'नि-सकड़ि' प्रसाद आइल, यार नाहि अन्त ॥25॥

बलगण्डि भोगेर-बलगंडि में दिया गया भोजन; प्रसाद-प्रसाद; उत्तम–उत्तम; अनन्त-सभी प्रकार का; नि-सकड़ि-दुग्ध-पदार्थ तथा फल जैसा बिना पकाया भोजन; प्रसाद–प्रसाद; आइल-आ गया; यार–जिसका; नाहि-नहीं है; अन्त–अन्त।

अनुवाद

राजा द्वारा भेजा गया प्रसाद बलगंडि उत्सव में अर्पित किया गया था। इसमें दूध के बने कच्चे पदार्थ तथा फल थे। ये सभी उत्तम कोटि के थे और अनन्त किस्मों वाले थे।

छाना, पाना, पैड़, आम्र, नारिकेल, काँठाल ।

नाना-विध कदलक, आर बीज-ताल ॥26॥

छाना-दही; पाना-फल का रस; पैड़-नारियल; आम्र-आम; नारिकेल-सूखा नारियल; काँठाल-कटहल; नाना-विध-नाना प्रकार के; कदलक–केले; आर-और; बीज-ताल-ताड़ फल के बीज।

अनुवाद

उसमें दही, फल का रस, नारियल, आम, सूखा नारियल, कटहल, तरह-तरह के केले तथा ताड़फल के बीज थे।

तात्पर्य

जगन्नाथजी को अर्पित किये जाने वाले प्रसाद की यह पहली सूची है।

नारङ्ग, छोलङ्ग, टाबा, कमला, बीज-पूर।

बादाम, छोहारा, द्राक्षा, पिण्ड-खर्जुर ॥27॥

नारङ्ग–नारंगियाँ; छोलङ्ग–अंगूर; टाबा-एक प्रकार की नारंगी; कमला–सन्तरा; बीज-पूर-एक अन्य प्रकार का सन्तरा; बादाम-बादाम; छोहारा–छुआरा; द्राक्षा-किशमिश; पिण्ड-खर्जुर–पिण्ड खजूर।

अनुवाद

उसमें नारंगियाँ, चकोतरे, कमला, बादाम, छोहारे, किशमिश तथा खजूरें थीं।

मनोहरा-लाड़ आदि शतेक प्रकार।

अमृत-गुटिका-आदि, क्षीरसा अपार ॥28॥

मनोहरा-लाड़-एक प्रकार का सन्देश; आदि-आदि; शतेक प्रकार-सैंकड़ों प्रकार; अमृत-गुटिका-गोल मिठाई; आदि-आदि; क्षीरसा-गाढ़ा दूध; अपार–विभिन्न प्रकार का।

अनुवाद

उसमें मनोहर लड्डु इत्यादि सैंकड़ों प्रकार की मिठाइयाँ, अमृत गुटिका जैसी मिठाइयाँ तथा औटे दूध की अनेक किस्में थीं।

अमृत-मण्डा, सरवती, आर कुम्ड़ा-कुरी।

सरामृत, सरभाजा, आर सरपुरी ॥29॥

अमृत-मण्डा-एक प्रकार का पपीता; सरवती–एक प्रकार की नारंगी; आर-और; कुम्ड्रा-कुरी-सीताफल का गुदा; सरामृत-क्रीम; सर-भाजा-फ्राई की हुई क्रीम; आर-और; सर-पुरी-क्रीम से बनाई एक प्रकार की पूरी।

अनुवाद

उसमें पपीते, शरबती नारंगी तथा सीताफल का गुदा थे। सरामृत (क्रीम), सरभाजा (तली क्रीम) तथा क्रीम की बनी पूड़ी (सरपुरी) थीं।

हरि-वल्लभ, सेडोति, कर्पूर, मालती।

डालिमा मरिच-लाडू, नवात, अमृति ॥ 30॥

हरि-वल्लभ-घी में तली हुई रोटी की तरह की मिठाई; सेडोति–एक प्रकार के सुगन्धित पुष्प से बनी मिठाई; कर्पूर-एक फूल; मालती–मालती पुष्प; डालिमा-अनार; मरिच-लाड़-काली मिर्च से बनी एक प्रकार की मिठाई; नवात-बुझी शक्कर की एक अन्य प्रकार की मिठाई; अमृति-अमृती-जिलिपी (चावल का आटा, बेसन तथा दही से बनी घी में तली और चाशनी में डुबाई मिठाई)।

अनुवाद

हरिवल्लभ मिठाई तथा सेवंती, कपूर एवं मालती फूलों से बनी मिठाइयाँ भी थीं। उसमें अनार, काली मिर्च से बनी मिठाइयाँ, नवात (चीनी को गलाकर बनाई गई मिठाई) तथा अमृति जिलिपि थीं।

पद्मचिनि, चन्द्रकान्ति, खाजा, खण्डसार।

वियरि, कह्या, तिलाखाजार प्रकार॥ 31॥

पद्म-चिनि–कमल पुष्पों से निकाली शक्कर; चन्द्र-कान्ति-उड़द दाल से बनाई गई एक प्रकार की रोटी; खाजा–खाजा (खस्ता मिठाई); खण्ड-सार-खण्डसारी; वियरि-भुने चावलों से बनी मिठाई; कह्या-सरसों के बीजों से बनाई मिठाई; तिलाखाजार-तिलों से बनी मिठाई; प्रकार-सभी प्रकार की।

अनुवाद

उसमें कमलचीनी, बड़ा, खाजा, खण्डसारी, वियरि (तले चावल से बनी मिठाई), कह्या (तिल से बनी मिठाई) तथा तिलखाजा (तिल से बनी मिठाई) थे।

नारङ्ग-छोलङ्ग-आम्र-वृक्षेर आकार।

फुल-फल-पत्र-युक्त खण्डेर विकार॥ 32॥

नारङ्ग-छोलङ्ग-आम्र-वृक्षेर आकार-संतरे, निम्बू और आम के वृक्षों के आकार की विभिन्न मिठाइयाँ; फुल-फल-पत्र-मुक्त-फलों, फूलों तथा पत्तों से युक्त; खण्डेर विकार-रतालू से बनाए।

अनुवाद

खण्डसारी से बनी नारंगी, नींबू तथा आम के वृक्ष के आकार की मिठाइयाँ, फल-फूल तथा पत्तियों से सजाई गई थीं।

दधि, दुग्ध, ननी, तक्र, रसाला, शिखरिणी।

स-लवण मुद्गाङ्कर, आदा खानि खानि॥ 33॥

दधि-दही; दुग्ध-दूध; ननी-मक्खन; तक्र—मठा; रसाला-फल-रस; शिखरिणी-तले दही और रतालू से बनी मिठाई (शिखरिणी); स-लवण-नमकीन; मुद्ग-अङ्कर-मूँग दाल के अंकुरित बीज ; आदा-अदरक; खानि खानि-टुकड़े किए हुए।

अनुवाद

उसमें दही, दूध, मक्खन, छाछ, फलों का रस, शिखरिणी (दही तथा शक्कर से तलकर बनी) तथा कतरे अदरक से युक्त नमकीन मूँग की दाल के अंकुर थे।

लेम्बु-कुल-आदि नाना-प्रकार आचार।

लिखिते ना पारि प्रसाद कतेक प्रकार॥ 34॥

लेम्बु-निंबू; कुल-बेर; आदि-आदि; नाना-प्रकार-नाना प्रकार के; आचार-अचार; लिखिते-लिखने के लिए; ना-नही; पारि-मैं सक्षम हूँ; प्रसाद–प्रसाद; कतेक प्रकार–कितने ही प्रकार।

अनुवाद

उसमें कई प्रकार के अचार भी थे-यथा नींबू का अचार, बेर का अचार इत्यादि। मैं भगवान जगन्नाथजी को अर्पित किये जाने वाले पकवानों के प्रकारों का वर्णन करने में सक्षम नहीं हूँ।

तात्पर्य

श्लोक 26 से 34 तक लेखक भगवान जगन्नाथ को चढ़ाये जाने वाले विविध भोजनों का वर्णन कर रहे हैं। लेखक ने यथासम्भव उनका वर्णन किया है, किन्तु अन्त में उन्होंने पूरी तरह से उनका वर्णन कर सकने में अपनी असमर्थता व्यक्त की है।

प्रसादे पूरित हइल अर्ध उपवन।

देखिया सन्तोष हैल महाप्रभुर मन॥ 35॥

प्रसादे-सभी प्रसाद से; पूरित हइल-भर गया; अर्ध उपवन-आधा उद्यान; देखिया-देखकर; सन्तोष-सन्तोष; हैल–हुआ; महाप्रभुर मन-श्री चैतन्य महाप्रभु के मन में।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने देखा कि नाना प्रकार के प्रसाद से आधा बगीचा भरा हुआ है, तो वे परम सन्तुष्ट हुए।

एइ-मत जगन्नाथ करेन भोजन ।

एइ सुखे महाप्रभुर जुड़ाय नयन ॥ 36॥

एइ-मत-इस प्रकार; जगन्नाथ–भगवान जगन्नाथ ने; करेन भोजन-भोजन किया; एइ सुखे इस खुशी में; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; जुड़ाय-पूर्ण सन्तोष हुआ; नयन-नयन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु यह देखकर पूर्णतया सन्तुष्ट थे कि भगवान् जगन्नाथ ने किस तरह सारा भोजन ग्रहण किया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए वैष्णव को भगवान् जगन्नाथ या राधाकृष्ण के अविग्रह को तरह-तरह के पकवान चढ़ते देखकर पूर्णतया सन्तुष्ट होना चाहिए। उसे अपनी खुद की भूख बुझाने के लिए वह नाना प्रकार के व्यंजन नहीं जुटाने चाहिए, बल्कि उसकी तुष्टि तो अर्चाविग्रह पर चढ़ाये जाने वाले विविध प्रकार के भोजन को देखने में है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने अपने गुर्वष्टक में लिखा है :

चतुर्विधश्रीभगवत्प्रसाद

स्वाद्वन्नतृप्तान् हरि-भक्त-सङ्घान् ।

कृत्वैव तृप्तिं भजत: सदैव

वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥

"गुरु सदैव कृष्ण को चार प्रकार का स्वादिष्ट भोजन अर्पित करता है [चाटने वाला (लेह्य), चबाने वाला (चर्व्य), पीने वाला (पेय) तथा चूसा जाने वाला (चूष्य)]। जब गुरु देखता है कि भक्तगण भगवत्प्रसाद खाकर सन्तुष्ट हो गये हैं, तो वह भी सन्तुष्ट होता है। मैं ऐसे गुरु के चरणकमलों को सादर नमस्कार करता हूँ।"

गुरु का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्यों को अचविग्रह पर अर्पित करने के लिए तरह-तरह का उत्तम भोजन तैयार करने में लगाये। अर्पित किये जाने के बाद यही भोजन भक्तों में प्रसाद के रूप में वितरित किया जाता है। ऐसे कार्यों से गुरु तुष्ट होता है, यद्यपि इतने प्रकार के प्रसाद वह न तो स्वयं खाता है न ही उसे इनकी आवश्यकता पड़ती है। प्रसाद को अर्पित होते तथा वितरित होते देखकर उसे भक्ति में प्रोत्साहन मिलता है।

केया-पत्र-द्रोणी आइल बोझा पाँच-सात।

एक एक जने दश दोना दिल,—एत पात॥ 37॥

केया-पत्र-द्रोणी-केतकी वृक्ष के पत्तों से बनी प्लेटें; आइल-आ गईं; बोझा-बोझों में; पाँच-सात-पाँच-सात; एक एक जने–प्रत्येक व्यक्ति को; दश दोना दिल-ऐसी दस प्लेटें दी गईं; एत पात-पत्तों की इतनी प्लेटें।

अनुवाद

फिर केतकी वृक्ष की पत्तियों की बनी प्लेटों के पाँच-सात बोझ आये। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी दस दस प्लेटें दी गईं और इस तरह पत्तों की ये प्लेटें बाँटी गईं।

कीर्तनीयार परिश्रम जानि' गौरराय।

ताँ-सबारे खाओयाइते प्रभुर मन धाय॥ 38॥

कीर्तनीयार-सभी गायकों का; परिश्रम–परिश्रम; जानि'–जानकर; गौरराय–श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँ-सबारे उन सबको; खाओयाइते-खिलाने के लिए; प्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु; मन धाय-मन अति उत्सुक था।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सभी कीर्तनियों के परिश्रम को समझ रहे थे, अतएव वे उन्हें पेट भरकर खिलाना चाहते थे।

पाँति पाँति करि' भक्त-गणे वसाइला।

परिवेशन करिबारे आपने लागिला॥ 39॥

पाँति पाँति करि'–विभिन्न पंक्तियों में; भक्त-गणे-सभी भक्तगण; वसाइला–बैठा दिये गये; परिवेशन–वितरण; करिबारे-करने; आपने–स्वयं; लागिला–लगे।

अनुवाद

सारे भक्त पाँतों में बैठ गये और श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं प्रसाद का वितरण करने लगे।

प्रभु ना खाइले, केह ना करे भोजन।

स्वरूप-गोसाञि तबे कैल निवेदन॥40॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ना खाइले-खाए बिना; केह-कोई; ना-नहीं: करे भोजन-भोजन स्वीकार करना; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने; तबे-उस समय; कैल निवेदन निवेदन किया।

अनुवाद

किन्तु भक्त तब तक प्रसाद ग्रहण नहीं कर रहे थे, जब तक स्वयं महाप्रभु प्रसाद ग्रहण न कर लें। स्वरूप गोस्वामी ने यह बात महाप्रभु को बताई।

आपने वैस, प्रभु, भोजन करते।

तुमि ना खाइले, केह ना पारे खाइते॥41॥

आपने वैस-आप स्वयं बैठ जाएँ; प्रभु-मेरे प्रभु; भोजन करिते-भोजन करने के लिए; तुमि ना खाइले-आपके खाये बिना; केह-कोई; ना पारे–नहीं सकता; खाइते-खा।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने कहा, "हे प्रभु, कृपया आप खाने के लिए बैठ जायें। जब तक आप नहीं खायेंगे, तब तक कोई भी नहीं खायेगा।"

तबे महाप्रभु वैसे निज-गण लञा।

भोजन कराइल सबाके आकण्ठ पूरिया ॥42॥

तबे-उस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; वैसे-बैठ गये; निज-गण लञा-अपने निजी साथियों सहित; भोजन कराइल-भोजन कराया; सबाके-उन सबको; आकण्ठ पूरिया-भरपेट।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी संगियों समेत बैठ गये और उन सबको भरपेट भोजन कराया।

भोजन करि' वसिला प्रभु करि' आचमन ।

प्रसाद उबरिल, खाय सहस्त्रेक जन ॥43॥

भोजन करि'- भोजन करने के पश्चात्; वसिला प्रभु–महाप्रभु बैठ गये; करि'-करके; आचमन–मुख का आचमन; प्रसाद–प्रसाद; उबरिल-इतना अधिक था; खाय-खाया; सहस्रक जन-हजारों व्यक्तियों ने।

अनुवाद

भोजन करने के बाद महाप्रभु अपना मुँह धोकर बैठ गये। इतना अधिक प्रसाद बचा था कि उसे हजारों लोगों में वितरित कर दिया गया।

प्रभुर आज्ञाय गोविन्द दीन-हीन जने ।

दुःखी काङ्गाल आनि' कराय भोजने ॥44॥

प्रभुर आज्ञाय-श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा पर; गोविन्द–उनके निजी सेवक गोविन्द; दीन-हीन जने–सभी दीन लोगों को; दुःखी–दुःखी; काङ्गाल-कंगाल; आनि'–बुलाकर; कराय भोजने–भोजन कराया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश पर उनके निजी सेवक गोविन्द ने सारे दीन-भिखारियों को बुलाया, जो अपनी गरीबी से दुःखी थे और उन्हें भर-पेट भोजन कराया।

काङ्गालेर भोजन-रङ्ग देखे गौरहरि ।

'हरि-बोल' बलि' तारे उपदेश करि ॥45॥

काङ्गालेर–भिखारियों को; भोजन-रङ्ग–खाने की प्रक्रिया; देखे-देखा; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; हरि-बोल बलि'–'हरि बोल' कहकर; तारे–उनको; उपदेश करि-उपदेश दिया।

अनुवाद

गरीबों को प्रसाद ग्रहण करते देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने "हरिबोल!" का उच्चारण किया और उन्हें उपदेश दिया कि वे इस नाम का कीर्तन करें।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने एक गीत में कहा है :

मिछे मायार वशे, याच्छ भेसे',

खाच्छ हाबुडुबु, भाइ ।

जीव कृष्णदास, ए विश्वास

क'र्ले त'आर दुःख नाइ ॥

"हे लोगों, हर व्यक्ति अज्ञान रूपी सागर की तरंगों के वशीभूत है, किन्तु यदि तुम श्रीकृष्ण को अपने सनातन स्वामी के रूप में स्वीकार कर लो, तो इस तरह मोह की तरंगों में डूबने की गुंजाईश ही न रहे। तब आपके सारे कष्ट समाप्त हो जायेंगे।" कृष्ण भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के अन्तर्गत भौतिक जगत् का संचालन करते हैं, फलतः जीवन के तीन स्तर हैं-उच्च, मध्य तथा निम्न। मनुष्य जिस भी स्तर पर रहता है, वह भौतिक प्रकृति की तरंगों से ऊपर-नीचे उछाला जाता है। फिर चाहे वह धनी हो या मध्य वर्ग का हो अथवा दीन-भिखारी हो, इस से कोई अन्तर नहीं पड़ता। जब तक मनुष्य भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के वशीभूत रहता है, वह इन तीनों विभागों का अनुभव करता रहेगा।

इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने भिखारियों को उपदेश दिया कि वे प्रसाद ग्रहण करते समय 'हरिबोल!" का उच्चारण करें। ऐसे उच्चारण का अर्थ है, अपने आपको कृष्ण के नित्य दास के रूप में स्वीकार करना। यही एकमात्र समाधान है, किसी की सामाजिक स्थिति चाहे जो भी हो। हर व्यक्ति माया के वशीभूत होकर कष्ट भोग रहा है; इसलिए सर्वोत्तम उपाय यही है कि माया के पाश से निकलने की विधि सीखी जाए। भगवद्गीता (14.26) यह विधि बताती है :

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।

स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

“जो पूर्ण भक्ति में लगा हुआ है और जो किसी भी परिस्थिति में च्युत नहीं होता, वह तुरन्त ही भौतिक प्रकृति के गुणों को पार कर जाता है और इस तरह ब्रह्म-पद को प्राप्त होता है।”

भगवान् की भक्तिमयी सेवा करना स्वीकार करके मनुष्य माया के पाश से छूट सकता है और दिव्य पद प्राप्त कर सकता है। भक्ति का प्रारम्भ श्रवणं कीर्तनम् से होता है, अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु ने भिखारियों को उपदेश दिया कि वे दिव्य पद तक ऊपर उठने के लिए हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करें। दिव्य पद पर धनी, मध्यम वर्ग तथा गरीब में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

‘हरि-बोल’ बलि’ काङ्गाल प्रेमे भासि’ याय ।

ऐछन अद्भुत लीला करे गौरराय ॥ 46॥

हरि-बोल बलि’–“हरि बोल” पुकारकर; काङ्गाल-भिखारी वर्ग; प्रेमे-प्रेमावेश में; भासि’ याय-तैरने लग गये; ऐछन-ऐसी; अद्भुत-अद्भुत; लीला-लीलाएँ; करे-कीं; गौरराय-श्री चैतन्य महाप्रभु ने।

अनुवाद

ज्योंही भिखारियों ने “हरिबोल" का उच्चारण किया, वे सभी तुरन्त भगवत्प्रेम में निमग्न हो गये। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्भुत लीलाएँ सम्पन्न कीं।

तात्पर्य

ईश्वर-प्रेम के भाव का अनुभव करना दिव्य पद पर स्थित होने का सूचक है। यदि मनुष्य अपने आपको उस दिव्य स्थिति में रख पाए, तो वह निश्चित रूप से भगवद्धाम वापस जायेगा। आध्यात्मिक जगत् में उच्च, मध्य या निम्न वर्ग नहीं होते। इसकी पुष्टि ईशोपनिषद् (मंत्र 7) द्वारा होती है :

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

“जो व्यक्ति सारे जीवों को आध्यात्मिक स्फुलिंग के रूप में गुणात्मक दृष्टि से भगवान् से अभिन्न देखता है, वह वस्तुओं का असली ज्ञाता बन जाता है। तो फिर उसके लिए मोह या चिन्ता कैसी ?”

इहाँ जगन्नाथेर रथ-चलन-समय ।

गौड सब रथ टाने, आगे नाहि याय ॥47॥

इहाँ-उद्यान के बाहर; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ के; रथ-चलन-समय-रथ खींचते समय; गौड़--गौड़ नामक कार्यकर्ता जिन्होंने रथ खींचा; सब-सब ने; रथ टाने-रंथ खींचने पर; आगे-आगे; नाहि याय-नहीं जाता था।

अनुवाद

जब जगन्नाथजी का रथ खींचने का समय हो गया, तो बगीचे के बाहर सारे कार्यकर्ता (गौड़) उसे खींचने का प्रयास करने लगे, किन्तु रथ आगे नहीं बढ़ा।

टानिते ना पारे गौड़, रथ छाड़ि’ दिल ।

पात्र-मित्र लञा राजा व्यग्र हञा आइल ॥48॥

टानिते ना पारे-वे खींच न सके; गौड़-गौड़; रथ छाड़ि’ दिल-रथ खींचना छोड़ दिया; पात्र-मित्र-सभी अधिकारी तथा मित्र; लञा-अपने साथ लेकर; राजा-राजा; व्यग्र-अति चिन्ताग्रस्त; हञा-होकर; आइल-आये।

अनुवाद

जब गौड़ों ने देखा कि रथ टस से मस नहीं हो रहा, तो उन्होंने प्रयास करना छोड़ दिया। तभी अत्यन्त चिन्तित राजा वहाँ आये और उनके साथ उनके अधिकारी तथा मित्र थे।

महा-मल्ल-गणे दिल रथ चालाइते ।

आपने लागिला रथ, ना पारे टानिते ॥49॥

महा-मल्ल-गणे-बड़े-बड़े पहलवानों को; दिल-दिया; रथ-रथ; चालाइते-खींचने के लिए; आपने–स्वयं; लागिला-लग गये; रथ-रथ; ना पारे टानिते-चल न सका।

अनुवाद

तब राजा ने रथ खींचने के लिए बड़े-बड़े पहलवानों को लगाया और साथ में राजा भी सम्मिलित हो गये किन्तु रथ हिलाये नहीं हिला।

व्यग्र हञा आने राजा मत्त-हाती-गण ।

रथ चालाइते रथे करिल योजन ॥50॥

व्यग्र हञा–चिन्ताग्रस्त होकर; आने-लाये; राजा-राजा; मत्त-हाती-गण-अति बलशाली हाथी; रथ चालाइते-रथ को चलाने के लिए; रथे-रथ में; करिल योजन-जोड़ दिये।

अनुवाद

रथ को चलाने की और अधिक उत्सुकता में राजा ने अत्यन्त बलशाली हाथी मँगवाकर रथ में जोते।

मत्त-हस्ति-गण टाने यार व्रत बल ।

एक पद ना चले रथ, हइल अचल ॥51॥

मत्त-हस्ति-गण-बलवान हाथी; टाने-खींचने लगे; यार व्रत बल–जितनी भी शक्ति उनके पास थी; एक पद-एक पग; ना चले–नहीं चला; रथ-रथ; हइल-था; अचल-अचल।

अनुवाद

बलशाली हाथियों ने रथ को पूरी शक्ति से खींचा, लेकिन इतने पर भी रथ एक इंच भी नहीं हिला तथा अचल बना रहा।

शुनि' महाप्रभु आइला निज-गण लञा ।

मत्त-हस्ती रथ टाने,—देखे दाण्डाञा ॥52॥

शुनि'–सुनने के बाद; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला-आये; निज-गण लञा-अपने निजी भक्तों के साथ; मत्त-हस्ती-मत्त हाथियों को; रथ टाने-रथ को खींचने का प्रयास करते हुए; देखे-उन्होंने देखा; दाण्डाञा-वहाँ खड़े होकर।

अनुवाद

ज्योंही श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह खबर सुनी, वे अपने सारे निजी संगियों के साथ वहाँ गये। वे वहाँ खड़े होकर हाथियों द्वारा रथ खींचने का प्रयास देखने लगे।

अङ्कुशेर घाय हस्ती करये चित्कार ।

रथ नाहि चले, लोके करे हाहाकार ॥53॥

अङ्कुशेर-अंकुश के; घाय-मारने से; हस्ती-हाथियों ने; करये-किया; चित्कार-चित्कार; रथ-रथ; नाहि चले–नहीं चला; लोके-सभी लोग; करे–करने लगे; हाहा-कार-हाहाकार।

अनुवाद

सारे हाथी अंकुश से मारे जाने के कारण चिंघाड़ रहे थे, फिर भी रथ हिल-डुल नहीं रहा था। वहाँ पर एकत्र सारे लोग हाहाकार करने लगे।

तबे महाप्रभु सब हस्ती घुचाइल ।

निज-गणे रथ-काछि टानिबारे दिल ॥54॥

तबे-उस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सब-सब; हस्ती-हाथियों को; घुचाइल-खुलवा दिया; निज-गणे-अपने पार्षदों को; रथ-काछि–रथ की डोरी; टानिबारे दिल-खींचने को दी।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे हाथियों को छोड़ दिया और रथ की रस्सियाँ अपने संगियों के हाथों में थमा दीं।

आपने रथेर पाछे ठेले माथा दिया ।

हड् हड् करि, रथ चलिल धाइया ॥55॥

आपने-स्वयं; रथेर पाछे-रथ के पीछे; ठेले-ढकेला; माथा दिया-अपने सिर से; हड् हड् करि–घरै घरं ध्वनि करके; रथ-रथ; चलिल-चलने लगा; धाइया-दौड़कर।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं रथ के पिछले हिस्से में गये और अपने सिर से रथ को ठेलने लगे। तब वह रथ घर घर की आवाज करके चलने लगा।

भक्त-गण काछि हाते करि' मात्र धाय ।

आपने चलिल रथ, टानिते ना पाय ॥56॥

भक्त-गण-भक्तगण; काछि–रस्सियाँ; हाते-हाथों में; करि'-लेकर; मात्र केवल; धाय-दौड़े; आपने-अपने आप; चलिल-चल पड़ा; रथ-रथ; टानिते-खींचने का; ना पाय-उन्हें अवसर न मिला।

अनुवाद

वास्तव में रथ स्वतः चलने लगा और भक्तगण अपने हाथों में मात्र रस्सियाँ थामे रहे। चूँकि रथ बिना प्रयास के चल रहा था, अतएव भक्तों को खींचने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

आनन्दे करये लोक 'जय' 'जय'-ध्वनि ।

'जय जगन्नाथ' बइ आर नाहि शुनि ॥57॥

आनन्दे-आनन्द में; करये—करने लगे; लोक-सभी लोग; जय जय-ध्वनि-'जय हो' की ध्वनि; जय जगन्नाथ-भगवान जगन्नाथ की जय हो; बइ-इसके अतिरिक्त; आर नाहि शुनि-और कुछ सुनाई नहीं दिया।

अनुवाद

जब रथ आगे बढ़ने लगा, तो सभी लोग प्रसन्न होकर "जय!" "जय!" तथा "भगवान् जगन्नाथ की जय हो!" बोलने लगे। इसके अतिरिक्त और कुछ भी सुनाई नहीं पड़ रहा था।

निमेषे त' गेल रथ गुण्डिचार द्वार।

चैतन्य-प्रताप देखि' लोके चमत्कार ॥58॥

निमेषे-एक क्षण में; त'–निस्सन्देह; गेल-पहुँच गया; रथ-रथ; गुण्डिचार द्वार-गुण्डिचा मन्दिर के द्वार पर; चैतन्य-प्रताप-श्री चैतन्य महाप्रभु की शक्ति को; देखि'-देखकर; लोके–सभी लोग; चमत्कार–चकित हो गये।

'जय गौरचन्द्र', 'जय श्री कृष्ण-चैतन्य' ।

एइ-मत कोलाहल लोके धन्य धन्य ॥59॥

जय गौरचन्द्र-गौरहरि की जय; जय श्री-कृष्ण-चैतन्य–श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की जय हो; एइ-मत-इस प्रकार; कोलाहल-कोलाहल; लोके-सामान्य लोगों में; धन्य धन्य-"धन्य, धन्य!" बोलने लगे

अनुवाद

भीड़ ने "जय गौरचन्द्र!" "जय श्रीकृष्ण चैतन्य!" का तुमुल नाद किया। और लोग "अद्भुत! अद्भुत!" कहने लगे।

देखिया प्रतापरुद्र पात्र-मित्र-सङ्गे ।

प्रभुर महिमा देखि' प्रेमे फुले अङ्गे ॥ 60॥

देखिया-देखकर; प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र; पात्र-मित्र-सड़े-अपने मन्त्रियों तथा मित्रों सहित; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; महिमा-महिमा; देखि'–देखने से; प्रेमे-प्रेम में; फुले-रोमांच; अङ्गे–शरीर से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की महानता देखकर प्रतापरुद्र महाराज तथा उनके मंत्री एवं मित्रगण भावमय प्रेम से इतने अभिभूत हुए कि उन्हें रोमांच हो आया।

पाण्डु-विजय तबे करे सेवक-गणे ।

जगन्नाथ वसिला गिया निज-सिंहासने ॥ 61॥

पाण्डु-विजय रथ से उतरकर; तबे-उस समय; करे–किया; सेवक-गणे-सभी सेवकों ने; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ; वसिला-बैठ गये; गिया-जाकर; निज-सिंहासने-अपने सिंहासन पर।

अनुवाद

तब जगन्नाथजी के सारे सेवकों ने उन्हें रथ से नीचे उतारा और भगवान् अपने सिंहासन पर बैठने चले गये।

सुभद्रा-बलराम निज-सिंहासने आइला ।

जगन्नाथेर स्नान-भोग हइते लागिला ॥62॥

सुभद्रा-बलराम–सुभद्रा तथा बलराम; निज-अपने अपने; सिंहासने सिंहासनों पर; आइला–विराजमान हो गये; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ का; स्नान-भोग-स्नान तथा भोग; हइते लागिला-होना आरम्भ हो गया।

अनुवाद

सुभद्रा तथा बलराम भी अपने-अपने सिंहासन पर बैठ गये। इसके बाद जगन्नाथजी को स्नान कराया गया और अन्त में भोग लगाया गया।

आङ्गिनाते महाप्रभु लञा भक्त-गण ।

आनन्दे आरम्भ कैल नर्तन-कीर्तन ॥ 63॥

आङ्गिनाते–मन्दिर के आंगन में; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा भक्त-गण-अपने भक्तों सहित; आनन्दे-आनन्दपूर्वक; आरम्भ कैल-आरम्भ किया; नर्तन-कीर्तन-नर्तन एवं कीर्तन।

अनुवाद

जब भगवान जगन्नाथ, भगवान् बलराम तथा सुभद्रा अपने-अपने सिंहासनों पर बैठ गये, तो श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के साथ मन्दिर के आँगन में बड़े ही हर्ष से संकीर्तन करने लगे और नाचने-गाने लगे।

आनन्दे महाप्रभुर प्रेम उथलिल ।

देखि' सब लोक प्रेम-सागरे भासिल ॥ 64॥

आनन्दे-आनन्दावेश में; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; प्रेम-प्रेम; उथलिल-उमड़ आया; देखि'–देखकर; सब लोक-सभी लोग; प्रेम-सागरे-प्रेमसागर में; भासिल-डूब गये।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु नाच-गा रहे थे, तो वे प्रेमाविष्ट हो गये और जिन लोगों ने उन्हें देखा, वे भी भगवत्प्रेम के सागर में डूब गये।

नृत्य करि' सन्ध्या-काले आरति देखिल ।

आइटोटा आसि' प्रभु विश्राम करिल ॥65॥

नृत्य करि'-नृत्य करने के बाद; सन्ध्या-काले-संध्याकाल में; आरति देखिल-आरती का उत्सव देखा; आइटोटा आसि-आइटोटा स्थान पर आकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; विश्राम करिल-रातभर विश्राम किया।

अनुवाद

गुण्डिचा मन्दिर के आँगन में अपना नृत्य समाप्त करके संध्या-समय महाप्रभु ने आरती उत्सव देखा। तत्पश्चात् वे आइटोटा नामक स्थान पर गये और वहाँ रात्रि में विश्राम किया।

अद्वैतादि भक्त-गण निमन्त्रण कैल ।

मुख्य मुख्य नव जन नव दिन पाइल ॥66॥

अद्वैत-आदि-अद्वैत आचार्य आदि; भक्त-गण-भक्तगण; निमन्त्रण कैल-श्री चैतन्य महाप्रभु को निमंत्रण दिया; मुख्य मुख्य–मुख्य; नव जन–नौ भक्तों ने; नव दिन-नौ दिन; पाइल-अवसर पाया।

अनुवाद

तभी अद्वैत आचार्य इत्यादि प्रमुख भक्तों ने नौ दिनों तक अपने-अपने घरों में महाप्रभु को आमन्त्रित करने का अवसर प्राप्त किया।

आर भक्त-गण चातुर्मास्ये यत दिन ।

एक एक दिन करि' करिल वण्टन ॥ 67॥

आर भक्त-गण-बाकी भक्तगण; चातुर्मास्ये-वर्षा ऋतु के चार मासों में; यत दिन-सभी दिन; एक एक दिन करि'–एक एक दिन करके प्रत्येक ने; करिल वण्टन-बाँट लिया।

अनुवाद

शेष भक्तों ने वर्षा के चार महीनों में महाप्रभु को एक एक दिन अपने यहाँ आमन्त्रित किया। इस तरह उन्होंने आमन्त्रणों का बँटवारा कर लिया।

चारि मासेर दिन मुख्य-भक्त बाँटि' निल ।

आर भक्त-गण अवसर ना पाइल ॥ 68॥

चारि मासेर दिन-चारों मास के दिन; मुख्य-भक्त-मुख्य भक्तों ने; बाँटि' निल-आपस में बाँट लिए; आर भक्त-गण-अन्य भक्तों को; अवसर–अवसर; ना पाइल-न मिल पाया।

अनुवाद

इस चार महीने की अवधि में प्रतिदिन का आमन्त्रण महत्त्वपूर्ण भक्तों ने आपस में बाँट लिया। शेष भक्तों को महाप्रभु को अपने यहाँ आमन्त्रित करने का अवसर ही नहीं मिल पाया।

एक दिन निमन्त्रण करे दुइ-तिने मिलि' ।

एइ-मत महाप्रभुर निमन्त्रण-केलि ॥69॥

एक दिन-एक दिन; निमन्त्रण-निमंत्रण; करे-किया; दुइ-तिने-दो तीन भक्त; मिलि'–मिलकर; एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; निमन्त्रण-निमंत्रण; केलि-की लीलाएँ।

अनुवाद

चूँकि उन्हें एक एक दिन नहीं मिला, अतएव दो या तीन भक्तों ने मिलकर आमन्त्रण दिया। ये लीलाएँ हैं महाप्रभु द्वारा आमन्त्रण स्वीकार करने की।

प्रातः-काले स्नान करि' देखि' जगन्नाथ ।

सङ्कीर्तने नृत्य करे भक्त-गण साथ ॥ 70 ॥

प्रातः-काले--प्रात:काल; स्नान करि'–स्नान करके; देखि'–दर्शन करके; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ; सङ्कीर्तने-संकीर्तन में; नृत्य करे-नृत्य करते थे; भक्त-गण साथ-भक्तों के साथ।

अनुवाद

प्रात:काल स्नान करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने मन्दिर जाया करते थे। तब वे अपने भक्तों के साथ संकीर्तन करते थे।

कभु अद्वैते नाचाय, कभु नित्यानन्दे ।

कभु हरिदासे नाचाय, कभु अच्युतानन्दे ॥71॥

कभु-कभी; अद्वैते-अद्वैत आचार्य को; नाचाय-नचाया; कभु नित्यानन्दे-कभी नित्यानन्द प्रभु को; कभु हरिदासे नाचाय-कभी हरिदास को नचाया; कभु-कभी; अच्युतानन्दे-अच्युतानन्द को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तन तथा नृत्य के द्वारा कभी अद्वैत आचार्य को नाचने के लिए प्रेरित किया। तो कभी वे नित्यानन्द प्रभु, हरिदास ठाकुर तथा अच्युतानन्द को नाचने के लिए प्रेरित करते।

कभु वक्रेश्वरे, कभु आर भक्त-गणे ।

त्रिसन्ध्या कीर्तन करे गुण्डिचा-प्राङ्गणे ॥72॥

कभु वक्रेश्वरे-कभी वक्रेश्वर पण्डित; कभु-कभी; आर भक्त-गणे-अन्य भक्तगण; त्रि-सन्ध्या-तीन बार (प्रात:काल, सन्ध्याकाल और दोपहर को); कीर्तन करे-कीर्तन करते थे; गुण्डिचा-प्राङ्गणे-गुण्डिचा मन्दिर के प्रांगण में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कभी वक्रेश्वर को कीर्तन तथा नृत्य में लगा देते थे तो कभी अन्य भक्तों को। महाप्रभु गुण्डिचा मन्दिर के आँगन में नित्य तीन बार–प्रात:, दोपहर तथा शाम को-संकीर्तन करते थे।

वृन्दावने आइला कृष्ण—एइ प्रभुर ज्ञान ।

कृष्णेर विरह-स्फूर्ति हैल अवसान ॥73॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; आइला कृष्ण-कृष्ण आये हैं; एइ प्रभुर ज्ञान–यह श्री चैतन्य महाप्रभु की चेतना थी; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण से; विरह-स्फूर्ति-विरह-अनुभूति; हैल अवसान-समाप्त हुई।

अनुवाद

इस समय पर चैतन्य महाप्रभु को लगा कि कृष्ण वृन्दावन लौट चुके हैं। ऐसा सोचकर उनकी कृष्ण-विरह की अनुभूति शान्त हो गई।

राधा-सङ्गे कृष्ण-लीला—एइ हैल ज्ञाने ।

एइ रसे मग्न प्रभु हइला आपने ॥74॥

राधा-सङ्गे-राधारानी के संग; कृष्ण-लीला-भगवान् कृष्ण की लीलाएँ; एइ हैल ज्ञाने-यह उनकी चेतना थी; एइ रसे मग्न-इस रस में मग्न; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; हइला आपने–स्वयं रहे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सदैव राधा तथा कृष्ण की लीलाओं का चिन्तन करते रहते और वे इसी चेतना में निमग्न रहते।

नानोद्याने भक्त-सङ्गे वृन्दावन-लीला ।

'इन्द्रद्युम्न'-सरोवरे करे जल-खेला ॥75 ॥

नाना-उद्याने–विभिन्न उद्यानों में; भक्त-सङ्गे–भक्तों के साथ; वृन्दावन-लीला-वृन्दावन की लीलाएँ; इन्द्रद्युम्न–इन्द्रद्युम्न; सरोवरे-सरोवर में; करे जल-खेला-जल-क्रीड़ाएँ कीं।

अनुवाद

गुण्डिचा मन्दिर के पास अनेक बगीचे थे और श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्त इन सबमें वृन्दावन-लीलाएँ किया करते थे। इन्द्रद्युम्न नामक सरोवर में वे जल-क्रीड़ा करते थे।

आपने सकल भक्ते सिञ्चे जल दिया ।

सब भक्त-गण सिञ्चे चौदिके बेड़िया ॥76 ॥

आपने–स्वयं; सकल भक्ते-सभी भक्तों पर; सिञ्चे-छिड़कते; जल दिया-जल से; सब भक्त-गण-सभी भक्तगण; सिञ्चे–छिड़कते थे; चौ-दिके बेड़िया-महाप्रभु को चारों ओर से घेरकर।

अनुवाद

महाप्रभु स्वयं सारे भक्तों पर जल उछालते और सारे भक्त भी उन्हें चारों ओर से घेरकर उन पर पानी उछालते।

कभु एक मण्डल, कभु अनेक मण्डल ।

जल-मण्डूक-वाद्ये सबे बाजाय करताल ॥ 77॥

कभु एक मण्डल--कभी एक गोला; कभु-कभी; अनेक मण्डल–अनेक गोले; जल-मण्डूक-वाद्ये-जल में मेंडकों के टने की ध्वनि के समान; सबे–वे सब; बाजाय-बजाते थे; करताल-करताल।

अनुवाद

जल में वे कभी एक वृत्त (मण्डल) बनाते और कभी अनेक वृत्त बनाते। वे जल के भीतर करताल बजाकर मेढ़कों की टर्राहट की नकल उतारते।

दुई-दुई जने मेलि' करे जल-रण ।

केह हारे, केह जिने—प्रभु करे दरशन ॥78॥

दुइ-दुइ जने-दो दो व्यक्ति के समूह में; मेलि'–मिलकर; करे-करते थे; जल-रण-जल-युद्ध; केह हारे-कोई पराजित होता था; केह जिने-कोई विजयी होता था; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करे दरशन-उसे देखते थे।

अनुवाद

कभी दो भक्त जोड़ी बनाकर जल में लड़ते। इनमें से एक जीत जाता और दूसरा हार जाता। महाप्रभु यह सारा तमाशा देखते रहते।

अद्वैत-नित्यानन्दे जल-फेलाफेलि ।

आचार्य हारिया पाछे करे गालागालि ॥79॥

अद्वैत-नित्यानन्दे-अद्वैत आचार्य एवं नित्यानन्द प्रभु; जल-फेलाफेलि–एक दूसरे पर जल फेंककर; आचार्य हारिया-अद्वैत आचार्य पराजित होने के बाद; पाछे-अन्त में; करे-करने लगे; गालागालि–गाली गलोच।

अनुवाद

पहला खिलवाड़ अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु के बीच हुआ। वे एक-दूसरे पर पानी फेंकने लगे। अद्वैत आचार्य हार गये और बाद में नित्यानन्द को गालियाँ देने लगे।

विद्यानिधिर जल-केलि स्वरूपेर सने ।

गुप्त-दत्ते जल-केलि करे दुइ जने ॥80॥

विद्यानिधिर-विद्यानिधि की; जल-केलि-जल-क्रीड़ा; स्वरूपेर सने–स्वरूप दामोदर के साथ; गुप्त-दत्ते-मुरारि गुप्त और वासुदेव दत्त; जल-केलि-जल-क्रीड़ा; करे-करते थे; दुइ जने-दो व्यक्ति।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर तथा विद्यानिधि भी एक-दूसरे पर पानी फेंकने लगे। मुरारि गुप्त तथा वासुदेव दत्त ने भी इसी तरह खिलवाड़ किया।

श्रीवास-सहित जल खेले गदाधर ।

राघव-पण्डित सने खेले वक्रेश्वर ॥81॥

श्रीवास-सहित-श्रीवास ठाकुर के साथ; जल खेले-जल क्रीड़ा करते थे; गदाधर-गदाधर पण्डित; राघव-पण्डित सने-राघव पण्डित के साथ; खेले-खेलते थे; वक्रेश्वर-वक्रेश्वर पण्डित।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर तथा गदाधर पण्डित के बीच जलक्रीड़ा हुई तथा राघव पण्डित और वक्रेश्वर पण्डित के बीच भी ऐसी ही क्रीड़ा हुई। वे एक-दूसरे पर जल फेंकने में व्यस्त हो गये।

सार्वभौम-सङ्गे खेले रामानन्द-राय ।

गाम्भीर्य गेल दोंहार, हैल शिशु-प्राय ॥82॥

सार्वभौम-सङ्गे–सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ; खेले-खेलते थे; रामानन्द-राय-श्री रामानन्द राय; गाम्भीर्य-गम्भीरता; गेल-लुप्त हो गई; दोंहार-दोनों की; हैल-हो गये; शिशु-प्राय–शिशु के समान।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य श्रीरामानन्द राय के साथ जल-क्रीड़ा करने लगे। वे दोनों अपनी गम्भीरता त्यागकर बच्चों जैसे बन गये।

महाप्रभु ताँ दोंहार चाञ्चल्य देखिया ।

गोपीनाथाचार्ये किछु कहेन हासिया ॥83॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँ दोंहार-इन दोनों व्यक्तियों की; चाञ्चल्य-चंचलता; देखिया-देखकर; गोपीनाथ-आचार्ये-गोपीनाथ आचार्य को; किछु-कुछ; कहेन–कहा; हासिया-मुस्कुराकर।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य तथा रामानन्द राय की चंचलता देखी, तो वे हँसने लगे और गोपीनाथ आचार्य से बोले।

पण्डित, गम्भीर, दुँहे—प्रामाणिक जन ।

बाल-चाञ्चल्य करे, कराह वर्जन ॥84॥

पण्डित-पण्डित; गम्भीर-अत्यन्त गम्भीर; दुँहे-वे दोनों; प्रामाणिक जन-प्रामाणिक व्यक्ति; बाल-चाञ्चल्य करे-बालक की तरह चंचलता; कराह वर्जन-उन्हें बन्द करने को कहो।

अनुवाद

“भट्टाचार्य तथा रामानन्द राय दोनों से कहो कि वे अपना बालकों जैसा खेल बन्द कर दें, क्योंकि दोनों अत्यन्त विद्वान, गम्भीर तथा महापुरुष हैं।”

गोपीनाथ कहे,—तोमार कृपा-महासिन्धु ।

उछलित करे यबे तार एक बिन्दु ॥85 ॥

गोपीनाथ कहे-गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया; तोमार कृपा-आपकी कृपा से; महा-सिन्धु–महासागर; उछलित करे-उमड़ता है; यबे-जब; तार-उसकी; एक बिन्दु-एक बूँद।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "मुझे लगता है कि आपकी महान् कृपा रूपी सिंधु का एक बिन्दु उनके ऊपर उछलकर गिर पड़ा है।

मेरु-मन्दर-पर्वत डुबाय यथा तथा ।

एइ दुइ–गण्ड-शैल, इहार का कथा ॥86॥

मेरु-मन्दर-सुमेरु और मन्दर पर्वत; पर्वत–पर्वत; डुबाय-डूब जाते हैं; यथा तथा-जहाँ कहीं भी; एइ दुइ-ये दोनों; गण्ड-शैल-अत्यन्त छोटी पहाड़ियों; इहार का कथा-के क्या कहने।

अनुवाद

"आपके कृपा-सिन्धु की एक बूंद सुमेरु तथा मन्दर जैसे विशाल पर्वतों को डुबो सकती है। चूँकि ये दोनों महाशय लघु पर्वतों जैसे हैं, अतएव ये दोनों आपकी कृपा रूपी सिन्धु में डूबे जा रहे हैं।

शुष्क-तर्क-खलि खाइते जन्म गेल याँर ।

ताँरे लीलामृत पियाओ,—ए कृपा तोमार ॥87॥

शुष्क-तर्क-शुष्क तर्क का; खलि-खली की टिकिया; खाइते-खाकर; जन्म-जन्म भर; गेल-व्यतीत हुआ; याँर–जिसका; ताँरे–उसको; लीला-अमृत-अपनी लीलाओं का अमृत; पियाओ-आपने पिलाया; ए-यह; कृपा-कृपा; तोमार-आपकी।

अनुवाद

"तर्क उस शुष्क खली के समान है, जिसमें से सारा तेल निचोड़ लिया गया हो। भट्टाचार्य का सारा जीवन ऐसी शुष्क खली को खाने में बीता, किन्तु अब आपने उन्हें दिव्य लीलाओं का अमृतपान कराया है। निश्चय ही यह आपकी उन पर महती कृपा है।"

हासि' महाप्रभु तबे अद्वैते आनिल ।

जलेर उपरे ताँरे शेष-शय्या कैल ॥88॥

हासि'-मुस्कुराकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तबे—उस समय; अद्वैते आनिल-अद्वैत आचार्य को बुलाया; जलेर उपरे–जल की सतह पर; ताँरे–उनको; शेष-शय्या-शेषनाग की शय्या; कैल-बनाया।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य की बात सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु हँसने लगे और अद्वैत आचार्य को बुलाकर उन्हें शेष नाग की शय्या जैसा बनने को कहा।

आपने ताँहार उपर करिल शयन ।

'शेष-शायी-लीला' प्रभु कैल प्रकटन ॥89॥

आपने-स्वयं; ताँहार उपर-अद्वैत आचार्य के ऊपर; करिल शयन-लेट गये; शेष-शायी-लीला–शेषशायी विष्णु; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैल प्रकटन-प्रकट किया।

अनुवाद

जल में तैर रहे अद्वैत प्रभु के ऊपर लेटकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने शेषशायी विष्णु की लीला का प्रदर्शन किया।

अद्वैत निज-शक्ति प्रकट करिया ।

महाप्रभु लञा बुले जलेते भासिया ॥90 ॥

अद्वैत-अद्वत आचार्य ने; निज-शक्ति-अपनी निजी शक्ति; प्रकट करिया-प्रकट की; महाप्रभु लञा-श्री चैतन्य महाप्रभु को उठाते हुए; बुले-चलने लगे; जलेते-जल पर; भासिया-तैरते हुए।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य अपनी निजी शक्ति प्रकट करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु को लेकर जल के ऊपर तैरते रहे।

एइ-मत जल-क्रीड़ा करि' कत-क्षण ।

आइटोटा आइला प्रभु लञा भक्त-गण ॥11॥

एइ-मत-इस प्रकार; जल-क्रीड़ा-जल-क्रीड़ा; करि'-करके; कत-क्षण-कुछ क्षणों के लिए; आइटोटा-आइटोटा नामक स्थान को; आइला–लौट आये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा भक्त-गण-भक्तों के साथ।

अनुवाद

कुछ काल तक जल-क्रीड़ा करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के साथ आइटोटा नामक अपने स्थान पर लौट आये।

पुरी, भारती आदि ग्रत मुख्य भक्त-गण ।

आचार निमन्त्रणे करिला भोजन ॥92॥

पुरी-परमानन्द पुरी; भारती–ब्रह्मानन्द भारती; आदि-आदि; प्रत–सभी; मुख्य-मुख्य; भक्त-गण-भक्तों ने; आचार्येर-अद्वैत आचार्य के; निमन्त्रणे-निमन्त्रण से; करिला भोजन-उनका भोजन स्वीकार किया।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य द्वारा निमन्त्रित किये जाने पर परमानन्द पुरी, ब्रह्मानन्द भारती तथा महाप्रभु के अन्य प्रमुख भक्तों ने भोजन ग्रहण किया।

वाणीनाथ आर यत प्रसाद आनिल ।

महाप्रभुर गणे सेइ प्रसाद खाइल ॥ 93 ॥

वाणीनाथ-वाणीनाथ राय; आर-अतिरिक्त; यत-जो कुछ; प्रसाद–प्रसाद; आनिल-लाये थे; महाप्रभुर गणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी पार्षद; सेइ-वह; प्रसाद प्रसाद; खाइल-खा लिया।

अनुवाद

वाणीनाथ राय अपने साथ जो भी अधिक प्रसाद लाये थे, उसे महाप्रभु के अन्य संगियों ने खाया।

अपराह्णे आसि' कैल दर्शन, नर्तन ।

निशाते उद्याने आसि' करिला शयन ॥94॥

अपराहे-दोपहर के समय; आसि-आकर; कैल-किया; दर्शन नर्तन-भगवान् का दर्शन और नृत्य; निशाते-रात को; उद्याने-उद्यान में; आसि'–आकर; करिला शयन-विश्राम किया।

अनुवाद

दोपहर के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु गुण्डिचा मन्दिर में भगवान् का दर्शन करने तथा नाचने के लिए गये। रात्रि में वे विश्राम करने के लिए बगीचे में गये।

आर दिन आसि' कैल ईश्वर दरशन ।

प्राङ्गणे नृत्य-गीत कैल कत-क्षण ॥ 95 ॥

आर दिन-अगले दिन; आसि'-आकर; कैल–किया; ईश्वर दरशन-भगवान् का दर्शन; प्राङ्गणे-प्रांगण में; नृत्य-गीत-नृत्य तथा कीर्तन; कैल–किया; कत-क्षण-कुछ समय के लिए।

अनुवाद

अगले दिन श्री चैतन्य महाप्रभु गुण्डिचा मन्दिर भी गये और भगवान् का दर्शन किया। तब वे आँगन में कुछ समय तक गाते और नाचते रहे।

भक्त-गण-सङ्गे प्रभु उद्याने आसिया ।

वृन्दावन-विहार करे भक्त-गण लञा ॥ 96 ॥

भक्त-गण-सङ्गे–भक्तों के साथ; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; उद्याने-उद्यान में; आसिया-आकर; वृन्दावन-विहार-वृन्दावन लीलाएँ; करे-कीं; भक्त-गण लञा-सभी भक्तों के साथ।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के साथ बगीचे में गये और वहाँ उन्होंने वृन्दावन-लीला का आनन्द उठाया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इंगित किया है कि यह वृन्दावन-विहार कृष्ण का गोपियों के साथ मिलने-जुलने या परकीय रस का द्योतक नहीं है। जिस तरह कृष्ण ने वृन्दावन-लीला में स्त्रियों या दूसरों की पत्नियों के साथ दिव्य संगति की थी, जगन्नाथ पुरी के बगीचे में महाप्रभु ने उस प्रकार नहीं किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी वृन्दावन-लीला में अपने आपको श्रीमती राधारानी का सहायक माना। जब श्रीमती राधारानी ने कृष्ण की संगति का आनन्द लिया, तो उनकी दासियाँ अत्यन्त प्रसन्न थीं। जगन्नाथ के बगीचे में महाप्रभु के वृन्दावन-विहार की गौरांग नागरियों के कार्यकलापों से तुलना नहीं करनी चाहिए।

वृक्ष-वल्ली प्रफुल्लित प्रभुर दरशने ।

भृङ्ग-पिक गाय, वहे शीतल पवने ॥ 97॥

वृक्ष-वल्ली-वृक्ष एवं लताएँ; प्रफुल्लित–प्रसन्न हो गई; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; दरशने-दर्शन से; भृङ्ग-भ्रमर; पिक-पक्षी; गाय-गाने लगे; वहे-चल रही थी शीतल-शीतल; पवने–वायु।

अनुवाद

बगीचे में नाना प्रकार के वृक्ष तथा लताएँ थे और वे सभी श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर अत्यन्त प्रफुल्लित थे। पक्षी चहचहा रहे थे, भौंरे गुनगुना रहे थे और शीतल पवन बह रही थी।

प्रति-वृक्ष-तले प्रभु करेन नर्तन ।

वासुदेव-दत्त मात्र करेन गायन ॥98॥

प्रति-वृक्ष-तले–प्रत्येक वृक्ष के नीचे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन नर्तन-नृत्य करते थे; वासुदेव-दत्त-वासुदेव दत्त; मात्र केवल; करेन-कर रहे थे; गायन-कीर्तन।

अनुवाद

चूँकि महाप्रभु हर वृक्ष के नीचे नाच रहे थे, इसलिए वासुदेव को अकेले गाना पड़ा।

एक एक वृक्ष-तले एक एक गान गाय ।

परम-आवेशे एका नाचे गौरराय ॥99॥

एक एक वृक्ष-तले–प्रत्येक वृक्ष के नीचे; एक एक-एक एक; गान-गीत; गाय-गाया; परम-आवेशे-परम आवेश में आकर; एका-अकेले; नाचे-नृत्य किया; गौरराय-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

जब वासुदेव दत्त हर वृक्ष के नीचे पृथक्-पृथक् गाना गा रहे थे, तो श्री चैतन्य महाप्रभु बड़े ही भावावेश में अकेले नाच रहे थे।

तबे वक्रेश्वरे प्रभु कहिला नाचिते ।

वक्रेश्वर नाचे, प्रभु लागिला गाइते ॥ 100 ॥

तबे-उसके पश्चात्; वक्रेश्वरे-वक्रेश्वर पण्डित को; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कहिला–आदेश दिया; नाचिते-नाचने का; वक्रेश्वर नाचे-वक्रेश्वर पण्डित नाचने लगे; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; लागिला-लगे; गाइते-गाने।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने वक्रेश्वर पण्डित को नाचने के लिए आदेश दिया और ज्योंही वे नाचने लगे, महाप्रभु गाने लगे।

प्रभु-सङ्गे स्वरूपादि कीर्तनीया गाय ।

दिक्विदिक्नाहि ज्ञान प्रेमेर वन्याय ॥ 101॥

प्रभु-सङ्गे–श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर आदि; कीर्तनीया–कीर्तनिया; गाय-गाने लगे; दिक्-विदिक्-समय एवं परिस्थिति की; नाहि-नहीं; ज्ञान-सुध-बुध; प्रेमेर-प्रेम की; वन्याय-विभोर होने के कारण।

अनुवाद

तब स्वरूप दामोदर तथा अन्य कीर्तनिये भी श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ गाने लगे। प्रेमविभोर होने के कारण उन्हें समय तथा परिस्थिति का ध्यान ही न रहा।

एइ मत कत-क्षण करि' वन-लीला ।

नरेन्द्र-सरोवरे गेला करिते जल-खेला ॥ 102॥

एइ मत-इस प्रकार; कत-क्षण-कुछ समय के लिए; करि'-करके; वन-लीला-उद्यान में लीला; नरेन्द्र-सरोवरे-नरेन्द्र सरोवर नामक सरोवर में; गेला–वे चले गये; करिते-करने; जल-खेला-जल-क्रीड़ा।

अनुवाद

कुछ समय तक इस तरह उद्यान-लीला करने के बाद वे सभी नरेन्द्र सरोवर में स्नान करने गये और वहाँ जल-क्रीड़ा का आनन्द लूटा।

जल-क्रीड़ा करि' पुनः आइला उद्याने ।

भोजन-लीला कैला प्रभु लञा भक्त-गणे ॥103 ॥

जल-क्रीड़ा-जल क्रीड़ा; करि'-करके; पुनः–पुनः; आइला-आ गये; उद्याने उद्यान में; भोजन-लीला–प्रसाद लेने की लीलाएँ, कैला-की; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; लञा भक्त-गणे-सभी भक्तों सहित।

अनुवाद

जल-क्रीड़ा करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु पुनः बगीचे में लौट आये और वहाँ भक्तों के साथ प्रसाद ग्रहण किया।

नव दिन गुण्डिचाते रहे जगन्नाथ ।

महाप्रभु ऐछे लीला करे भक्त-साथ ॥104॥

नव दिन–नौ दिन; गुण्डिचाते-गुण्डिचा मन्दिर में; रहे-रहे; जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; ऐछे-ऊपर लिखे तरीके से; लीला-लीलाएँ; करे-कीं; भक्त-साथ-अपने भक्तों के साथ।

अनुवाद

भगवान् श्री जगन्नाथ देव नौ दिनों तक गुण्डिचा मन्दिर में निवास करते रहे। इस बीच श्री चैतन्य महाप्रभु भी वहीं रुके रहे और अपने भक्तों के साथ लीलाएँ करते रहे, जिनका वर्णन किया जा चुका है।

'जगन्नाथ-वल्लभ' नाम बड़ पुष्पाराम ।

नव दिन करेन प्रभु तथाइ विश्राम ॥ 105॥

जगन्नाथ-वल्लभ-जगन्नाथ वल्लभ; नाम-नामक; बड़-बड़ा; पुष्प-आराम-उद्यान; नव दिन–नौ दिन; करेन-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तथाइ-वहाँ; विश्राम-विश्राम।

अनुवाद

जहाँ महाप्रभु लीलाएँ कर रहे थे, वह बगीचा बहुत बड़ा था और "जगन्नाथ वल्लभ" कहलाता था। श्री चैतन्य महाप्रभु ने वहीं नौ दिनों तक विश्राम किया।

'हेरा-पञ्चमी'र दिन आइल जानिया ।

काशी-मिश्रे कहे राजा सयन करिया ॥ 106 ॥

हेरा-पञ्चमीर दिन-हेरापंचमी के दिन; आइल-निकट आ रहा था; जानिया-यह जानकर; काशी-मिश्रे-काशी मिश्र को; कहे-कहा; राजा-राजा ने; स-यत्न करिया-बड़े ध्यान से।

अनुवाद

यह जानकर कि हेरापंचमी उत्सव आने वाला है, राजा प्रतापरुद्र ने काशी मिश्र से बड़ी सावधानी से बात की।

कल्य 'हेरा-पञ्चमी' हबे लक्ष्मीर विजय ।

ऐछे उत्सव कर येन कभु नाहि हय ॥107॥

कल्य-कल; हेरा-पञ्चमी–हेरापंचमी का उत्सव; हबे-होगा; लक्ष्मीर-भाग्य की देवी का; विजय-आगमन; ऐछे-ऐसा; उत्सव–उत्सव; कर-करो; येन-जैसा; कभु-कभी भी; नाहि हय-नहीं हुआ।

अनुवाद

"कल हेरापंचमी या लक्ष्मीविजय उत्सव होगा। तुम इस उत्सव को इस तरह से मनाओ, जैसाकि इसके पूर्व कभी न मनाया गया हो।"

तात्पर्य

हेरापंचमी का उत्सव रथयात्रा के पाँच दिन बाद पड़ता है। भगवान जगन्नाथ अपनी पत्नी लक्ष्मी को छोड़कर वृन्दावन अर्थात् गुण्डिचा मन्दिर चले जाते हैं। भगवान् से विरह के कारण लक्ष्मी निश्चय करती है कि वे भगवान् का दर्शन करने गुण्डिचा मन्दिर जायेंगी। अतः गुण्डिचा मन्दिर में लक्ष्मीजी के आगमन को हेरापंचमी के रूप में मनाया जाता है। कभी-कभी अतिवाड़ी सम्प्रदाय के लोग हेरापंचमी का नाम बिगाड़कर उसे हरापंचमी कहते हैं। हेरा शब्द का अर्थ है "देखना" और यह सूचक है लक्ष्मीजी द्वारा जगन्नाथजी के दर्शन के लिए जाने का। पंचमी शब्द का अर्थ है "पाँचवाँ दिन" और इस का उपयोग इसलिए किया जाता है, क्योंकि यह चन्द्र के पाँचवें दिन मनाया जाता है।

महोत्सव कर तैछे विशेष सम्भार।

देखि' महाप्रभुर यैछे हय चमत्कार ॥108॥

महोत्सव-महोत्सव; कर-मनाओ; तैछे-ऐसे; विशेष सम्भार-बड़ी शान से; देखि-देखकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; यैछे-ताकि; हय-हो; चमत्कार-आश्चर्य।

अनुवाद

राजा प्रतापरुद्र ने कहा, "तुम इस उत्सव को इतने शानदार ढंग से मनाओ कि इसे देखकर चैतन्य महाप्रभु पूरी तरह प्रसन्न और चकित हो जाएँ।

ठाकुरेर भाण्डारे आर आमार भाण्डारे।

चित्र-वस्त्र-किङ्किणी, आर छत्र-चामरे ॥109॥

ठाकुरेर-अर्चाविग्रह के; भाण्डारे–भण्डार में; आर-और; आमार-मेरे; भाण्डारे-गोदाम में; चित्र-वस्त्र-चित्रित वस्त्र; किङ्किणी-छोटी घण्टियाँ; आर-और; छत्र-छत्र; चामरे–चामर।

अनुवाद

"मेरे भण्डार में तथा अर्चाविग्रह के भण्डार-घर में जितने भी छपे कपड़े, छोटी घंटियाँ, छत्र तथा चामर हों, इन सबको ले लो।

ध्वजावृन्द-पताका-घण्टाय करह मण्डन।

नाना-वाद्य-नृत्य-दोलाय करह साजन ॥ 110॥

ध्वजा-वृन्द-कई प्रकार की झण्डियाँ; पताका-बड़े झण्डे; घण्टाय–घण्टियों से; करह-करो; मण्डन-सजावट; नाना-वाद्य-नाना प्रकार के वाद्य यंत्र; नृत्य-नृत्य; दोलाय–डोली पर; करह साजन आकर्षक रूप से सजाओ।

अनुवाद

"सभी तरह की छोटी बड़ी झंडियाँ तथा झंडे और घण्टे एकत्र करो। तब वाहन (दोला) सजाओ और विभिन्न संगीत तथा नृत्य मंडलियों को उसके साथ कर दो। इस तरह वाहन को आकर्षक ढंग से सजाओ।

द्विगुण करिया कर सब उपहार ।

रथ-यात्रा हैते यैछे हय चमत्कार ॥111॥

द्वि-गुण करिया-दुगना करके; कर-करो; सब–सभी प्रकार के; उपहार–उपहार; रथ-यात्रा हैते–रथयात्रा की अपेक्षा; यैछे-ताकि; हय-हो जाये; चमत्कार-अधिक आश्चर्यजनक।

अनुवाद

"प्रसाद की मात्रा को भी दुगुना कर दो। प्रसाद इतनी मात्रा में बने कि रथयात्रा उत्सव को भी मात दे दे।

सेइत' करिह,—प्रभु लञा भक्त-गण ।

स्वच्छन्दे आसिया यैछे करेन दरशन ॥112॥

सेइत' करिह-वह करो; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा भक्त-गण-अपने साथ सभी भक्तों को लेकर; स्वच्छन्दे-मुक्त रूप से; आसिया–आकर; यैछे-जैसे; करेन दरशन–मन्दिर के दर्शन के लिए।

अनुवाद

"उत्सव की व्यवस्था ऐसी हो कि श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों समेत स्वच्छन्दपूर्वक बिना किसी कठिनाई के अर्चाविग्रह का दर्शन करने जा सकें।"

प्रातःकाले महाप्रभु निज-गण लञा ।

जगन्नाथ दर्शन कैल सुन्दराचले याञा ॥ 113 ॥

प्रातःकाले-प्रात:काल; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-गण लञा-अपने साथियों को लेकर; जगन्नाथ दर्शन-भगवान जगन्नाथ के दर्शन; कैल–किया; सुन्दराचले-गुण्डिचा मन्दिर को; याञा-गये।

अनुवाद

प्रात:काल श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी संगियों को साथ लेकर भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने सुन्दराचल गये।

तात्पर्य

गुण्डिचा मन्दिर ही सुन्दराचल है। जगन्नाथ पुरी स्थित जगन्नाथजी का मन्दिर नीलाचल कहलाता है और गुण्डिचा का मन्दिर सुन्दराचल।

नीलाचले आइला पुनः भक्त-गण-सङ्गे ।

देखिते उत्कण्ठा हेरा-पञ्चमीर रङ्गे ॥ 114॥

नीलाचले–जगन्नाथ पुरी; आइला-लौट आये; पुनः–पुनः; भक्त-गण-सड़े-अपने भक्तों के साथ; देखिते-देखने के लिए; उत्कण्ठा-अत्यन्त उत्सुकता से; हेरा-पञ्चमीर रङ्गे–हेरापंचमी उत्सव को।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके निजी संगी हेरापंचमी उत्सव देखने के लिए बड़ी ही उत्सुकता के साथ नीलाचल लौट आये।

काशी-मिश्र प्रभुरे बहु आदर करिया ।

स्वगण-सह भाल-स्थाने वसाइल लञा ॥115॥

काशी-मिश्र-काशी मिश्र; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; बहु-बहुत; आदर करिया–आदर दिया; स्व-गण-सह-अपने साथियों सहित; भाल-स्थाने–उत्तम स्थान पर; वसाइल-बैठाया; लञा-ले जाकर।

अनुवाद

काशी मिश्र ने बड़े ही आदर के साथ चैतन्य महाप्रभु का स्वागत किया और महाप्रभु तथा उनके संगियों को एक बहुत अच्छे स्थान में ले जाकर बिठाया।

रस-विशेष प्रभुर शुनिते मन हैल ।

ईषत् हासिया प्रभु स्वरूपे पुछिल ॥ 116॥

रस-विशेष-एक विशेष रस; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; शुनिते-सुनने के लिए; मन हैल-इच्छा थी; ईषत् हासिया-थोड़ा मुस्कुराकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; स्वरूपे पुछिल-स्वरूप दामोदर से पूछा।

अनुवाद

बैठने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा एक विशेष भक्ति-रस के बारे में सुनने को हुई, अतः वे मन्द हँसते हुए स्वरूप दामोदर से पूछने लगे।

यद्यपि जगन्नाथ करेन द्वारकाय विहार ।

सहज प्रकट करे परम उदार ॥117॥

तथापि वत्सर-मध्ये हय एक-बार ।

वृन्दावन देखिते ताँर उत्कण्ठा अपार ॥118॥

यद्यपि यद्यपि; जगन्नाथ-भगवान् जगन्नाथ; करेन-करते हैं; द्वारकाय-द्वारका धाम में; विहार-लीलाएँ; सहज-स्वाभाविक; प्रकट-प्राकट्य; करे-करते हैं; परम-परम; उदार-उदारता; तथापि फिर भी; वत्सर-मध्ये-एक वर्ष के अन्दर; हय-हो जाती है; एक-बार-एक बार; वृन्दावन देखिते-वृन्दावन देखने के लिए; ताँर–उनकी; उत्कण्ठा-उत्सुकता; अपार-असीम।

अनुवाद

"यद्यपि जगन्नाथ भगवान् द्वारका धाम में अपनी लीलाएँ करते हैं। और वहाँ परम उदारता प्रकट करते हैं, फिर भी वर्ष में एक बार वे वृन्दावन देखने के लिए अत्यधिक उत्कण्ठित हो उठते हैं।"

वृन्दावन-सम एइ उपवन-गण ।

ताहा देखिबारे उत्कण्ठित हय मन ॥ 119॥

वृन्दावन-सम-वृन्दावन के समान; एइ-ये सब; उपवन-गण-उपवन; ताहा–वे उपवन; देखिबारे-देखने के लिए; उत्कण्ठित-अति उत्सुक; हय मन-उनका मन हो जाता है।

अनुवाद

पड़ोस के बगीचों की ओर लक्ष्य करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "ये सारे बगीचे वृन्दावन जैसे ही हैं, अतएव जगन्नाथजी इन्हें फिर से देखने के लिए अत्यधिक उत्सुक हैं।

बाहिर हइते करे रथ-यात्रा-छल ।

सुन्दराचले याय प्रभु छाड़ि' नीलाचल ॥120॥

बाहिर ह-इते-बाहर से; करे-करते हैं; रथ-यात्रा-छल-रथयात्रा का आनन्द लेने का बहाना; सुन्दराचले-गुण्डिचा मन्दिर को; याय-जाते हैं; प्रभु-भगवान जगन्नाथ; छाड़ि'–छोड़कर; नीलाचल-जगन्नाथ पुरी को।

अनुवाद

"बाहर से वे यह दिखावा करते हैं कि वे रथयात्रा में भाग लेना चाहते हैं, लेकिन वास्तव में वे वृन्दावन की प्रतिमूर्ति गुण्डिचा मन्दिर अर्थात् सुन्दराचल जाने के लिए जगन्नाथ पुरी छोड़ना चाहते हैं।

नाना-पुष्पोद्याने तथा खेले रात्रि-दिने ।

लक्ष्मीदेवीरे सङ्गे नाहि लय कि कारणे? ॥ 121॥

नाना-पुष्प-उद्याने-पुष्पों के विभिन्न उद्यानों में; तथा-वहाँ; खेले-वे खेलते हैं; रात्रि-दिने-रात-दिन; लक्ष्मी-देवीरे–लक्ष्मी देवी को; सङ्गे-अपने संग; नाहि-नहीं; लय-लेते; कि कारणे-क्या कारण है?

अनुवाद

"भगवान् रात-दिन फूलों के विभिन्न बगीचों में लीलाओं का आनन्द लेते हैं। लेकिन वे अपने साथ लक्ष्मीदेवी को क्यों नहीं ले जाते ?"

स्वरूप कहे,—शुन, प्रभु, कारण इहार।

वृन्दावन-क्रीड़ाते लक्ष्मीर नाहि अधिकार ॥122॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया; शुन-कृपया सुनें; प्रभु-हे मेरे प्रभु; कारण इहार–इसका कारण; वृन्दावन-क्रीड़ाते-वृन्दावन की लीलाओं में लक्ष्मीर-लक्ष्मी देवी का; नाहि-नही; अधिकार—प्रवेश।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, कृपया इसका कारण सुनें। लक्ष्मीदेवी को वृन्दावन लीलाओं में प्रवेश नहीं कराया जा सकता।

वृन्दावन-लीलाय कृष्णेर सहाय गोपी-गण।

गोपी-गण विना कृष्णेर हरिते नारे मन ॥123॥

वृन्दावन-लीलाय-वृन्दावन की लीलाओं में; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; सहाय-सहायिकाएँ; गोपी-गण-सभी गोपियाँ; गोपी-गण विना-गोपियों के बिना; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; हरिते-आकर्षित करने के लिए; नारे-कोई सक्षम नहीं है; मन–मन।

अनुवाद

"वृन्दावन लीलाओं में एकमात्र सहायिकाएँ गोपियाँ ही हैं। गोपियों के अतिरिक्त अन्य कोई कृष्ण का मन आकृष्ट नहीं कर सकता।"

प्रभु कहे,—यात्रा-छले कृष्णेर गमन।

सुभद्रा आर बलदेव, सङ्गे दुइ जन ॥ 124॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; यात्रा-छले-रथयात्रा के बहाने; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; गमन–प्रस्थान; सुभद्रा-उनकी बहन सुभद्रा; आर-और; बलदेव-उनके भाई बलराम; सङ्गे–उनके साथ; दुइ जन-दो व्यक्ति।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "कृष्ण वहाँ रथयात्रा के बहाने सुभद्रा तथा बलदेव के साथ जाते हैं।

गोपी-सङ्गे यत लीला हय उपवने ।

निगूढ़ कृष्णेर भाव केह नाहि जाने ॥125॥

गोपी-सङ्गे-गोपियों के साथ; यत लीला-सारी लीलाएँ; हय उपवने-इन उद्यानों में होती हैं; निगूढ़-अत्यन्त गुप्त; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; भाव-भाव; केह-कोई; नाहि-नहीं; जाने-जानता।

अनुवाद

"उन बगीचों में गोपियों के साथ की सारी लीलाएँ भगवान् कृष्ण के अत्यन्त गुह्य भाव हैं। उन्हें कोई नहीं जानता।

अतएव कृष्णेर प्राकट्ये नाहि किछु दोष ।

तबे केने लक्ष्मीदेवी करे एत रोष? ॥126॥

अतएव-चूँकि; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; प्राकट्ये-ऐसे प्रदर्शन से; नाहि-नहीं; किछु-कुछ; दोष-दोष; तबे-अतः; केने-क्यों; लक्ष्मी देवी लक्ष्मी देवी; करे-करे; एत-इतना; रोष-क्रोध।

अनुवाद

"चूँकि कृष्ण की लीलाओं में कोई दोष नहीं है, तो फिर लक्ष्मीजी क्यों रुष्ट होती हैं?"

स्वरूप कहे,—प्रेमवतीर एइ त' स्वभाव ।

कान्तेर औदास्य-लेशे हय क्रोध-भाव ॥127॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया; प्रेम-वतीर—उस लड़की का, जो प्रेम से अत्यन्त पीड़ित है; एइ–यह; त'–निस्सन्देह; स्वभाव-स्वभाव; कान्तेर-प्रिय की; औदास्य-उदासीनता से; लेशे-लेश मात्र भी; हय–होता है; क्रोध-भाव-क्रोध।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया, "प्रेम-पीड़ित युवती का स्वभाव है कि वह अपने प्रेमी से उपेक्षित होने पर तुरन्त क्रुद्ध हो जाती है।"

हेन-काले, खचित याहे विविध रतन ।

सुवर्णेर चौदोला करि' आरोहण ॥ 128॥

हेन-काले-जब स्वरूप दामोदर और भगवान् चैतन्य महाप्रभु वार्तालाप कर रहे थे; खचित-सजे हुए थे; याहे-जिस पर; विविध-विभिन्न; रतन-रत्न; सुवर्णेर-सोने के; चौदोला–चार पुरुषों द्वारा उठाई पालकी पर; करि' आरोहण-चढ़कर।

अनुवाद

जब स्वरूप दामोदर तथा श्री चैतन्य महाप्रभु इस प्रकार बातें कर रहे थे, तो लक्ष्मीजी का जुलूस निकट आ गया। वे सोने की पालकी में सवार थीं, जिसे चार आदमी ले जा रहे थे और पालकी तरह-तरह के रत्नों से सजी हुई थी।

छत्र-चामर-ध्वजा पताकार गण ।

नाना-वाद्य-आगे नाचे देव-दासी-गण ॥129॥

छत्र-छत्रों की; चामर-चामरों की; ध्वजा-और ध्वजाओं की; पताकार-और बड़े झण्डों की; गण-समूह; नाना-वाद्य-नाना प्रकार के वाद्ययंत्र; आगे-आगे; नाचे-नाचती थी; देव-दासी-गण-देव दासियाँ।

अनुवाद

पालकी के चारों ओर लोग छत्र, चामर तथा झंडे-झंडियाँ लिए हुए थे और इनके आगे-आगे गवैये तथा नर्तकियाँ थीं।

ताम्बूल-सम्पुट, झारि, व्यजन, चामर ।

साथे दासी शत, हार दिव्य भूषाम्बर ॥130॥

ताम्बूल-सम्पुट-पान बनाने की सामग्री से भरे बक्से; झारि-जल-पात्र (घडे); व्यजन-पंखे; चामर-चामर; साथे-साथ में; दासी–दासियाँ; शत-सैंकड़ों; हार–हार; मालाएँ; दिव्य-अमूल्य; भूषाम्बर–पोशाकें।

अनुवाद

दासियाँ जल के घड़े, चामर तथा पान की पिटारियाँ लिए थीं। ऐसी सैंकड़ों दासियाँ थीं और वे सभी आकर्षक वस्त्र धारण किये थीं और बहुमूल्य हार पहने थीं।

अलौकिक ऐश्वर्य सङ्गे बहु-परिवार ।

क्रुद्ध हञा लक्ष्मीदेवी आइला सिंह-द्वार ॥ 131॥

अलौकिक-अलौकिक; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; सङ्गे–के साथ; बहु-परिवार–परिवार के बहुत से सदस्य; क्रुद्ध हञा-क्रुद्ध होकर; लक्ष्मी देवी लक्ष्मी देवी; आइला–पहुँच गये; सिंह-द्वार-मन्दिर के मुख्य द्वार पर।

अनुवाद

लक्ष्मीजी क्रुद्ध मुद्रा में मन्दिर के मुख्य द्वार पर आ पहुँचीं। उनके साथ उनके परिवार के अनेक सदस्य थे और वे सभी असाधारण ऐश्वर्य का प्रदर्शन कर रहे थे।

जगन्नाथेर मुख्य मुख्य यत भृत्य-गणे ।

लक्ष्मीदेवीर दासी-गण करेन बन्धने ॥ 132॥

जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ के; मुख्य मुख्य–मुख्य; यत-सब; भृत्य-गणे-सेवकगण; लक्ष्मी देवीर-लक्ष्मी देवी की; दासी-गण-दासियों ने; करेन बन्धने-कैद कर लिए।

अनुवाद

जब जुलूस आ गया, तो लक्ष्मीजी की सारी दासियाँ भगवान् जगन्नाथ के सारे प्रधान सेवकों को बन्दी बनाने लगीं।

बान्धिया आनिया पाड़े लक्ष्मीर चरणे ।

चोरे येन दण्ड करि' लय नाना-धने ॥ 133॥

बान्धिया-कैद करने के बाद; आनिया-लाकर; पाडे-गिरा दिया; लक्ष्मीर चरणे-लक्ष्मी देवी के चरणकमलों पर ; चोरे–एक चोर; येन-जैसे; दण्ड करि'–सजा दिये जाने पर; लय-ली जाता है; नाना-धने-उनकी सारी सम्पत्ति।

अनुवाद

दासियों ने जगन्नाथजी के सेवकों को बाँधकर उन्हें हथकड़ियाँ लगा दीं और उन्हें लाकर लक्ष्मीजी के चरणकमलों पर गिरने के लिए बाध्य किया। वे सभी धन लूटने वाले चोरों की तरह बन्दी बना लिए गये।

तात्पर्य

जब भगवान जगन्नाथ अपनी रथयात्रा प्रारम्भ करते हैं, तब वे लक्ष्मीजी को आश्वासन देते हैं कि वे अगले दिन लौट आयेंगे। किन्तु जब वे नहीं लौटते, तो लक्ष्मीजी दो-तीन दिन प्रतीक्षा करने के बाद ऐसा अनुभव करने लगती हैं। कि उनके पति ने उनकी उपेक्षा की है। अतएव वे स्वाभाविक रूप से काफी क्रुद्ध होती हैं। वे स्वयं तथा उनकी सखियाँ खूब सज-धजकर मन्दिर से बाहर आती हैं और मुख्य द्वार के सामने खड़ी हो जाती हैं। तब उनकी सखियाँ जगन्नाथजी के सारे प्रधान सेवकों को बन्दी बना लेती हैं और उन्हें लाकर जबरन लक्ष्मीजी के चरणकमलों के समक्ष नतमस्तक कराती हैं।

अचेतनवत्तारे करेन ताड़ने ।

नाना-मत गालि देन भण्ड-वचने ॥ 134॥

अचेतन-वत्-लगभग अचेत; तारे-सेवकों को; करेन-दी; ताड़ने-सजा; नाना-मत-नाना प्रकार की; गालि–गालियाँ; देन-दी गईं; भण्ड-वचने-कई कटु (अपशब्द) कहे गये।

अनुवाद

जब नौकर लक्ष्मी के चरणकमलों पर गिरे, तो वे लगभग अचेत हो गये। उन्हें डाँटा-डपटा गया और भद्दी-भद्दी गालियाँ दी गईं तथा मजाक के पात्र बनाये गये।

लक्ष्मी-सङ्गे दासी-गणेर प्रागल्भ्य देखियो ।

हासे महाप्रभुर गण मुखे हस्त दिया ॥ 135॥

लक्ष्मी-सङ्गे–लक्ष्मी देवी की संगति में; दासी-गणेर-दासियों का; प्रागल्भ्य-दुर्व्यवहार; देखिया-देखकर; हासे-हँसने लगे; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; गण-साथियों ने; मुखे-अपने मुखों को; हस्त-हाथों से; दिया-ढक लिया।

अनुवाद

जब महाप्रभु के संगियों ने लक्ष्मीजी की दासियों की ऐसी धृष्टता देखी, तो उन्होंने अपने हाथों से अपना मुख ढक लिया और वे हँसने लगे।

दामोदर कहे,—ऐछे मानेर प्रकार।

त्रिजगते काहाँ नाहि देखि शुनि आर ॥ 136 ॥

दामोदर कहे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा; ऐछे-ऐसे; मानेर-घमण्ड का; प्रकार-प्रकार; त्रि-जगते–तीनों भुवनों में; काहाँ–नहीं भी; नाहि-नहीं; देखि-मैं देखता हूँ; शुनि–मैं सुनता हूँ; आर-अथवा।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने कहा, "तीनों लोकों में इस तरह का अहंकार नहीं है। कम-से-कम मैंने न तो देखा है, न सुना है।

मानिनी निरुत्साहे छाड़े विभूषण।

भूमे वसि' नखे लेखे, मलिन-वदन ॥ 137॥

मानिनी-गर्वीली स्त्री; निरुत्साहे-मायूसी के कारण; छाड़े-त्याग देती है; विभूषण-सभी प्रकार के आभूषण; भूमे वसि' पृथ्वी पर बैठकर; नखे-नाखूनों से; लेखे–लकीरें खींचती है; मलिन-वदन-उदास चेहरे से।

अनुवाद

"जब कोई स्त्री उपेक्षित और निराश हो जाती है, तो अहंकार (मान) वश वह अपने आभूषण उतारकर खिन्न होकर फर्श पर बैठ जाती है और अपने नाखूनों से फर्श पर रेखाएँ खींचती है।

पूर्वे सत्यभामार शुनि एवं-विध मान।

व्रजे गोपी-गणेर मान—रसेर निधान ॥ 138॥

पूर्वे-पहले; सत्यभामार-रानी सत्यभामा का; शुनि-मैं सुनता हूँ; एवं-विध मान-इस प्रकार का गर्व; व्रजे-वृन्दावन में; गोपी-गणेर-गोपियों का; मान-मान; रसेर निधान-सभी दिव्य रसों का भण्डार।

अनुवाद

"मैंने इस प्रकार का गर्व (मान) कृष्ण की सबसे गर्वीली महारानी सत्यभामा में सुना है। मैंने समस्त दिव्य रसों की खान समान वृन्दावन की गोपियों में भी ऐसा मान सुना है।

इँहो निज-सम्पत्ति सब प्रकट करिया ।

प्रियेर उपर याय सैन्य साजाञा ॥ 139॥

इँहो–यह; निज-सम्पत्ति-अपना निजी ऐश्वर्य; सब-सब; प्रकट करिया-प्रकट किया; प्रियेर उपर-अपने प्रिय पति के विरुद्ध; याय-गईं; सैन्य साजाञा-सिपाहियों के साथ।

अनुवाद

"किन्तु लक्ष्मीजी के किस्से में मैं अन्य प्रकार का मान देख रहा हूँ। वे अपना ऐश्वर्य प्रदर्शित करती हैं, यहाँ तक कि अपने पति पर आक्रमण करने के लिए अपने सैनिकों के साथ जाती हैं।"

तात्पर्य

लक्ष्मीजी की धृष्टता को देखकर स्वरूप दामोदर गोसांई ने महाप्रभु से गोपियों के प्रेम-व्यापार की उत्कृष्टता बतानी चाही। अतएव उन्होंने कहा, "हे प्रभु, मुझे कभी भी लक्ष्मीजी के आचरण जैसी किसी वस्तु का अनुभव नहीं हुआ। हम कभी-कभी यह तो देखते हैं कि प्रियतमा पत्नी को अपने पद का गर्व होता है और उपेक्षा के कारण वह असन्तुष्ट होती है। तब उसे अपनी सूरत की परवाह नहीं रह जाती, वह गन्दे वस्त्र पहनती है और खिन्न भाव से फर्श पर बैठकर अपने नाखूनों से रेखाएँ खींचती रहती है। हमने इस तरह का मान सत्यभामा तथा वृन्दावन की गोपियों में तो सुना है, किन्तु जगन्नाथ पुरी में लक्ष्मीजी के साथ हम कुछ दूसरी ही बात पाते हैं। वे अपने पति पर अत्यधिक क्रुद्ध होती हैं और अपने महान् ऐश्वर्य से उन पर आक्रमण करती हैं।"

प्रभु कहे,—कह व्रजेर मानेर प्रकार ।

स्वरूप कहे,—गोपी-मान-नदी शत-धार ॥ 140॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने कहा; कह-कृपया बताओ; व्रजेर-वृन्दावन के; मानेर-गर्व के; प्रकार-प्रकार; स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया; गोपी-मान-गोपियों का मान; नदी-नदी की तरह; शत-धार-सौ धाराओं के साथ बहने वाली।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "कृपया वृन्दावन में प्रकट होने वाले समस्त प्रकार के मानों का वर्णन कीजिये।" स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया, "गोपियों का मान सैंकड़ों धाराओं के साथ बहने वाली नदी के समान है।

नायिकार स्वभाव, प्रेम-वृत्ते बहु भेद ।

सेइ भेदे नाना-प्रकार मानेर उद्भेद ॥ 141॥

नायिकार–नायिका का; स्वभाव-स्वभाव; प्रेम-वृत्ते-प्रेमाचार में; बहु-कई; भेद-प्रकार; सेइ-उस; भेदे-हर प्रकार में; नाना-प्रकार-कई प्रकारों; मानेर-महिला के द्वेषपूर्ण क्रोध में; उद्भेद-ऐसे उप-भेद।

अनुवाद

"विभिन्न स्त्रियों (नायिकाओं) में प्रेम के गुण तथा स्वभाव भिन्न भिन्न होते हैं। उनके ईर्ष्यायुक्त क्रोध के भी अनेक भेद तथा गुण होते हैं।

सम्यक्गोपिकार मान ना याय कथन ।

एक-दुइ-भेदे करि दिग्दरशन ॥ 142॥

सम्यक् पूर्णतया; गोपिकार-गोपियों का; मान-द्वेषपूर्ण क्रोध; ना-नहीं; याय-सम्भव है; कथन-कहने के लिए; एक-दुइ–एक दो; भेदे विभिन्न प्रकारों में; करि-मैं करता हूँ; दिक्-दरशन-संकेत।

अनुवाद

"गोपियों द्वारा प्रदर्शित विविध प्रकार के ईर्ष्यायुक्त क्रोध का पूरा वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है, किन्तु कुछ सिद्धान्तों से संकेत मिल जायेगा।

माने केह हय 'धीरा', केह त' 'अधीरा' ।

एइ तिन-भेदे, केह हय 'धीराधीरा' ॥143॥

माने-द्वेषपूर्ण क्रोध के स्तर पर; केह-कुछ महिलाएँ; हय धीरा-अत्यन्त धीर होती हैं; केह त'-और उनमें से कुछ; अधीरा-अधीर होती हैं; एइ तिन-भेदे-और तीसरा प्रकार भी है; केह हय-कुछ होती हैं; धीरा-अधीरा-धीर-अधीर।

अनुवाद

"द्वेषपूर्ण क्रोध से युक्त नायिकाओं के तीन भेद हैं-धीर, अधीर तथा धीराधीरा।

'धीरा' कान्ते दूरे देखि' करे प्रत्युत्थान ।

निकटे आसिले, करे आसन प्रदान ॥ 144॥

धीरा-धीर; कान्ते-नायक; दूरे-दूर से ही; देखि'–देखकर; करे प्रत्युत्थान-खड़ी हो जाती है; निकटे आसिले-जब नायक निकट आता है; करे-करती है; आसन-आसन; प्रदान–पेश करती है।

अनुवाद

"जब धीर नायिका दूर से ही अपने नायक को आते देख लेती है, तो उसके स्वागत के लिए वह तुरन्त उठ खड़ी होती है। जब वह निकट आ जाता है, तो वह तुरन्त उसे बैठने के लिए आसन देती है।

हृदये कोप, मुखे कहे मधुर वचन ।

प्रिय आलिङ्गिते, तारे करे आलिङ्गन ॥ 145 ॥

हृदये-हृदय में; कोप-क्रोध; मुखे-मुख में; कहे-कहती है; मधुर-मधुर; वचन-वचन; प्रिय–प्रिय; आलिङ्गिते-आलिंगन करने पर; तारे-उसको; करे आलिङ्गन-आलिंगन करती है।

अनुवाद

"धीरा नायिका अपने क्रोध को अपने हृदय में छिपा लेती है और बाहर से मीठी बोली बोलती है। जब उसका प्रेमी उसको आलिंगन करता है, तो वह भी उसे आलिंगन करती है।

सरल व्यवहार, करे मानेर पोषण ।

किम्वा सोल्लुण्ठ-वाक्ये करे प्रिय-निरसन ॥ 146 ॥

सरल व्यवहार-सरल व्यवहार; करे-करती है; मानेर-द्वेषपूर्ण क्रोध का; पोषण-पोषण; किम्वा-अथवा; सोल्लुण्ठ-थोड़ा हँसकर; वाक्ये-शब्दों से; करे-करती है; प्रिय-प्रेमी की; निरसन-अवहेलना।

अनुवाद

"धीरा नायिका का व्यवहार अत्यन्त सरल होता है। वह अपने मान को अपने हृदय के भीतर रखती है, किन्तु मृदु वचनों तथा मुसकानों से वह अपने प्रेमी के आचरण का प्रतिवाद करती है।

'अधीरा' निष्ठर-वाक्ये करये भर्त्सन ।

कर्णोत्पले ताड़े, करे मालाय बन्धन ॥ 147॥

अधीरा-अधीर नायिका; निष्ठर-वाक्ये-निष्ठुर शब्दों से; करये-करती है; भर्त्सन-भर्सना; कर्ण-उत्पले ताड़े-कान खींचकर; करे-करती है; मालाय–माला से; बन्धन-बन्धन।

अनुवाद

"किन्तु अधीर नायिका कभी-कभी अपने प्रेमी की भर्त्सना कटु शब्दों से करती है, कभी-कभी उसके कान खींच लेती है और कभी-कभी फूल की माला से उसे बाँध देती है।

'धीराधीरा' वक्र-वाक्ये करे उपहास ।

कभु स्तुति, कभु निन्दा, कभु वा उदास ॥148॥

धीरा-अधीरा-धीर-अधीर नायिका; वक्र-वाक्ये करे उपहास-द्विअर्थी शब्दों में उपहास करती है; कभु स्तुति-कभी प्रशंसा; कभु निन्दा-कभी निन्दा; कभु वा उदास-कभी मिला जुला व्यवहार।

अनुवाद

"धीर तथा अधीर स्वभाव वाली नायिका सदैव द्विअर्थी शब्दों से मजाक उड़ाती है। कभी वह अपने प्रेमी की प्रशंसा करती है, कभी निन्दा करती है और कभी निरपेक्ष रहती है।

'मुग्धा', 'मध्या', 'प्रगल्भा',—तिन नायिकार भेद ।

'मुग्धा' नाहि जाने मानेर वैदग्ध्य-विभेद ॥149॥

मुग्धा-‘मुग्ध’; मध्या-’मध्य’; प्रगल्भा–प्रगल्भ; तिन-तीन; नायिकार-नायिकाओं में; भेद-भेद; मुग्धा-मुग्ध; नाहि जाने-नहीं जानती; मानेर-द्वेषपूर्ण क्रोध का; वैदग्ध्य-विभेद–छलपूर्ण व्यवहार की बारीकियाँ।

अनुवाद

“नायिकाओं का वर्गीकरण मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा के रूप में भी किया जा सकता है। मुग्धा नायिका द्वेषपूर्ण क्रोध के छलपूर्ण व्यवहार की बारीकियों के विषय में अधिक नहीं जानती रहती।

मुख आच्छादिया करे केवल रोदन ।

कान्तेर प्रिय-वाक्य शुनि’ हय परसन्न ॥150॥

मुख आच्छादिया-मुख को ढककर; करे-करती है; केवल–केवल; रोदन-रोना; कान्तेर–प्रेमी के; प्रिय-वाक्य–प्रिय शब्द; शुनि’–सुनकर; हय हो जाती है; परसन्न-सन्तुष्ट।

अनुवाद

“मुग्धा नायिका केवल अपना मुँह ढककर रोती रहती है। जब वह अपने प्रेमी से मधुर शब्द सुनती है, तो अत्यन्त प्रसन्न हो उठती है।

‘मध्या' ‘प्रगल्भा’ धरे धीरादि-विभेद ।

तार मध्ये सबार स्वभावे तिन भेद ॥ 151॥

मध्या-’मध्य' श्रेणी की; प्रगल्भा–‘प्रगल्भ' श्रेणी की; धरे होती हैं; धीरा-आदि-विभेद- धीर, ''अधीर’ और ' धीर-अधीर’ की तीन श्रेणियाँ; तार मध्ये-उनमें से ; सबार-उन सबके; स्वभावे-स्वभाव में; तिन भेद-तीन प्रकार हैं।

अनुवाद

“मध्या तथा प्रगल्भा नायिकाओं को धीर, अधीर तथा धीराधीर में विभाजित की जा सकती हैं। इन सबके गुणों के और तीन विभाग किये जा सकते हैं।

केह ‘प्रखरा’, केह ‘मृदु’, केह हय ‘समा’ ।

स्व-स्वभावे कृष्णेर बाड़ाय प्रेम-सीमा ॥ 152॥

केह-कुछ; प्रखरा-बहुत बातूनी; केह-कुछ; मृदु-बहुत मृदु; केह हय-उनमें से कुछ हैं; समा–समभाव; स्व-स्वभावे-अपने निजी स्वभाव से; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; बाड़ाय-बढ़ाती है; प्रेम-सीमा-प्रेम की सीमा।

अनुवाद

"इनमें से कुछ अत्यधिक बातूनी, कुछ मृदु तथा कुछ संतुलित होती हैं। हर नायिका अपने स्वभाव के अनुसार श्रीकृष्ण के प्रेमभाव को बढ़ाती है।

प्राखर्य, मार्दव, साम्य स्वभाव निर्दोष ।

सेइ सेइ स्वभावे कृष्णे कराय सन्तोष ॥153॥

प्राखर्य-बातूनी; मार्दव-मृदुता; साम्य-समभाव होकर; स्वभाव-स्वभाव; निर्दोष-निर्दोष; सेइ सेइ स्वभावे-उन दिव्य गुणों में; कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; कराय-कराती है; सन्तोष–सन्तोष।

अनुवाद

"यद्यपि कुछ गोपियाँ बातूनी, कुछ मृदु तथा कुछ संतुलित हैं, किन्तु वे सभी दिव्य तथा निर्दोष हैं। वे अपने विशिष्ट गुणों द्वारा कृष्ण को प्रसन्न करती हैं।"

ए-कथा शुनिया प्रभुर आनन्द अपार ।

'कह, कह, दामोदर',—बले बार बार ॥ 154॥

ए-कथा शुनिया-यह वर्णन सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आनन्द अपार-अपार आनन्द; कह कह-कृपया कहते रहिए; दामोदर-मेरे प्रिय दामोदर; बले बार बार-उन्होंने बारम्बार कहा।

अनुवाद

यह विवरण सुनकर महाप्रभु को असीम आनन्द का अनुभव हुआ। उन्होंने स्वरूप दामोदर से आगे कहते रहने के लिए बारम्बार प्रार्थना की।

दामोदर कहे,—कृष्ण रसिक-शेखर ।

रस-आस्वादक, रसमय-कलेवर ॥ 155॥

दामोदर कहे-दामोदर ने कहा; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; रसिक-शेखर-दिव्य रसों के स्वामी; रस-आस्वादक-दिव्य रसों के भोक्ता; रस-मय-कलेवर–जिनका शरीर सभी दिव्य आनन्द से निर्मित है।

अनुवाद

दामोदर गोस्वामी ने कहा, "कृष्ण समस्त दिव्य रसों के स्वामी हैं। वे सभी दिव्य रसों का आस्वादन करने वाले हैं और उनका शरीर दिव्य आनन्द से बना हुआ है।

प्रेममय-वपु कृष्ण भक्त-प्रेमाधीन ।

शुद्ध-प्रेमे, रस-गुणे, गोपिका—प्रवीण ॥156॥

प्रेम-मय-वपु-प्रेममय शरीर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; भक्त-प्रेम-अधीन–अपने भक्तों की प्रेममयी भावनाओं के सदा अधीन; शुद्ध-प्रेमे-शुद्ध दिव्य प्रेम में; रस-गुणे-दिव्य रस के गुणों में; गोपिका-गोपिकाएँ, प्रवीण-अत्यन्त अनुभवी।

अनुवाद

"कृष्ण प्रेममय हैं और सदैव अपने भक्त के प्रेम के अधीन रहते हैं। गोपियाँ शुद्ध प्रेम में तथा दिव्य रसों के आचार-व्यवहार में अत्यन्त अनुभवी हैं।

गोपिकार प्रेमे नाहि रसाभास-दोष ।

अतएव कृष्णेर करे परम सन्तोष ॥ 157॥

गोपिकार-गोपिकाओं के; प्रेमे-प्रेम-व्यापार में; नाहि-नहीं है; रस-आभास-रस का आभास; दोष-दोष; अतएव-अतएव; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण को; करे-वे करती हैं; परम सन्तोष-परम सन्तोष।

अनुवाद

"गोपियों के प्रेम में कोई दोष या मिलावट नहीं है, अतएव वे कृष्ण को परम सन्तोष प्रदान करती हैं।

तात्पर्य

जब कृष्ण के साथ किसी का सम्बन्ध दूषित होता है, तब वह रसाभास कहलाता है। रसाभास की विभिन्न किस्में हैं-प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी। रसाभास दो शब्दों से बना है-रस तथा आभास–अर्थात् रस की छाया। यदि

कोई व्यक्ति किसी एक रस का आस्वादन करता हो और यदि उस पर कुछ दूसरा रस आरोपित कर दिया जाए, तो उसे उपरस कहते हैं। यदि मूल रस से कुछ निकाला जाए, तो उसे अनुरस कहते हैं। यदि मूल रस से काफी भिन्न किसी वस्तु की प्रशंसा की जाती है, तो उसे अपरस कहते हैं। उपरस, अनुरस तथा अपरस क्रमशः प्रथम (उत्तम), द्वितीय (मध्यम) तथा तृतीय (कनिष्ठ) रसाभास कहलाते हैं। भक्तिरसामृतसिंधु (4.9.1-2) में कहा गया है :

पूर्वमेवानुशिष्टेन विकला रसलक्षणा

रसा एव रसाभासा रसज्ञैरनुकीर्तिताः ।

स्युस्त्रिधोपरसाश्चानुरसाश्चापरसाश्च ते

उत्तमा, मध्यमाः प्रोक्ताः कनिष्ठाश्चेत्यमी क्रमात् ॥

एवं शशङ्कांशु-विराजिता निशाः

स सत्य-कामोऽनुरताबला-गणः ।

सिषेव आत्मन्यवरुद्ध-सौरतः ।

सर्वाः शरत्काव्य-कथा-रसाश्रयाः ॥ 158 ॥

एवम्-इस प्रकार; शशङ्क–अंशु–चाँदनी की किरणों में; विराजिताः-सुन्दर तरीके से; निशाः-रातें; सः-वे; सत्य-कामः-परम सत्य; अनुरत-जिनकी ओर आकर्षित हैं; अबला-गणः-गोपियाँ; सिषेव–किया; आत्मनि–स्वयं में; अवरुद्ध-सौरतः-उनकी दिव्य कामभावनाएँ अवरुद्ध हुई; सर्वाः-सभी; शरत्-शरद ऋतु में; काव्य-काव्य; कथा-वाणी; रस-आश्रयाः-दिव्य रसों से पूर्ण।

अनुवाद

“परम सत्य भगवान् श्रीकृष्ण शरद ऋतु में प्रत्येक रात रासनृत्य का आनन्द लेते रहे। वे चाँदनी रात में पूर्ण दिव्य रस से युक्त होकर यह नृत्य करते रहे। वे कवित्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग करते थे और उन स्त्रियों से घिरे रहते थे, जो उनके प्रति अत्यन्त आकृष्ट थीं।’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.33.25) का है। सारी गोपियाँ दिव्य आत्माएँ हैं। ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए कि गोपियों तथा कृष्ण के शरीर भौतिक हैं। वृन्दावन धाम भी आध्यात्मिक धाम है और वहाँ के दिन-रात, वृक्ष, फूल, जल तथा हर वस्तु आध्यात्मिक है। उनमें रंचमात्र भी भौतिक कल्मष नहीं होता। परम ब्रह्म तथा परमात्मा स्वरूप कृष्ण किसी भी भौतिक वस्तु में रुचि नहीं लेते। गोपियों के साथ उनके सारे कार्यकलाप आध्यात्मिक हैं और आध्यात्मिक जगत् में घटित होते हैं। उन्हें भौतिक जगत् से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। भगवान् कृष्ण की काम-इच्छाएँ तथा गोपियों के साथ उनके सारे व्यवहार आध्यात्मिक स्तर पर होते हैं। गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाओं का रसास्वादन करने के विचार के पूर्व मनुष्य को दिव्य अनुभूति होनी चाहिए। जो व्यक्ति सांसारिक स्तर पर है, उसे सर्वप्रथम विधि-विधानों का पालन करके अपने आपको शुद्ध कर लेना चाहिए। केवल तभी उसे कृष्ण तथा गोपियों को समझने का प्रयास करना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी यहाँ पर कृष्ण तथा गोपियों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में बातें कर रहे हैं। अतएव वार्ता का विषय न तो भौतिक है, न कामवासना से भरा हुआ। संन्यासी होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु स्त्रियों के साथ अपने आचार-व्यवहार में अत्यन्त कठोर थे। यदि गोपियाँ आध्यात्मिक स्तर पर न होतीं, तो श्री चैतन्य महाप्रभु कभी भी स्वरूप दामोदर गोस्वामी से उनका उल्लेख तक न करते। अतएव ये विवरण भौतिक कार्य से लेशमात्र भी सम्बन्धित नहीं हैं।

‘वामा’ एक गोपी-गण, ‘दक्षिणा’ एक गण ।

नाना-भावे कराय कृष्णे रस आस्वादन ॥ 159॥

वामा–वाम पक्ष की; एक-एक; गोपी-गण-गोपियों की टोली; दक्षिणा–दक्षिण पक्ष की; एक-एक दूसरी; गण-गोपियों की टोली; नाना-भावे-विभिन्न प्रेमभावों में; कराय-कराती हैं; कृष्णे-कृष्ण को; रस आस्वादन-दिव्य रस का आस्वादन।

अनुवाद

“गोपियों दो वर्ग किये जा सकते हैं-वामा (वामपक्षी) तथा दक्षिणा (दक्षिणपक्षी)। दोनों ही वर्ग की गोपियाँ विभिन्न प्रकार के प्रेमभाव प्रकट करके कृष्ण को दिव्य रसों का आस्वादन कराती हैं।

गोपी-गण-मध्ये श्रेष्ठा राधा-ठाकुराणी ।

निर्मल-उज्वल-रस-प्रेम-रत्न-खनि ॥ 160॥

गोपी-गण-मध्ये-सभी गोपियों में से; श्रेष्ठा-सर्वश्रेष्ठ; राधा-ठाकुराणी-श्रीमती राधारानी; निर्मल-निर्मल; उज्वल-उज्वल; रस-रस में; प्रेम-प्रेम की; रत्न-खनि-रत्न खान।

अनुवाद

समस्त गोपियों में श्रीमती राधारानी प्रमुख हैं। वे प्रेमरूपी रत्न की खान हैं और समस्त शुद्ध दिव्य माधुर्य रस की स्रोत हैं।

वयसे 'मध्यमा' तेंहो स्वभावेते 'समा' ।

गाढ़ प्रेम-भावे तेंहो निरन्तर 'वामा' ॥161॥

वयसे मध्यमा-वयस्क अवस्था; तेंहो–श्रीमती राधारानी की; स्व-भावेते-स्वभाव में; समा–संतुलित; गाढ़-गहरे; प्रेम-भावे-प्रेम भाव में; तेंहो-वे; निरन्तर–निरन्तर; वामा-वाम पक्ष की टोली की गोपियों की।

अनुवाद

"राधारानी वयस्क हैं और उनका चरित्र (स्वभाव) समदर्शी है। वे सदैव प्रगाढ़ प्रेम में निमग्न रहती हैं और निरन्तर वामपक्षी गोपीयों के भाव का अनुभव करती रहती हैं।

तात्पर्य

रूप गोस्वामी ने उज्वल नीलमणि में वामा तथा दक्षिणा गोपियों की व्याख्या की है। वामा का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

मनग्रहे सदोद्युक्ता तच्छैथिल्ये च कोपणा ।

अभेद्या नायके प्रायः क्रूरा वामेति कीर्त्यते ॥

"जो गोपी सदैव ईर्ष्यायुक्त क्रोध करने के लिए उत्सुक रहती है, जो उस पद को प्राप्त करने के लिए अत्यधिक इच्छुक रहती है, जो पराजित होने पर तुरन्त क्रुद्ध हो जाती है, जो कभी नायक के वश में नहीं रहती और जो सदैव उसका विरोध करती रहती है, वह वामा अर्थात् बायें पक्ष की गोपी कहलाती है।"

श्रील रूप गोस्वामी ने दक्षिणा गोपी का वर्णन इस प्रकार किया है :

असह्या माननिर्बन्धे नायके युक्तवादिनी।

साम्भिस्तेन भेद्या च दक्षिणा परिकीर्तिता॥

"जो गोपी स्त्रियोचित-क्रोध (मान) को सहन नहीं कर सकती, जो नायक से उपयुक्त वचन कहती है और उसके मीठे वचनों से तुष्ट रहती है, वह दक्षिणा अर्थात् दाहिने पक्ष की गोपी कहलाती है।"

वाम्य-स्वभावे मान उठे निरन्तर।

तार मध्ये उठे कृष्णेर आनन्द-सागर॥ 162॥

वाम्य-स्वभावे-वाम स्वभाव की होने के कारण; मान-स्त्रियोचित क्रोध वाली; उठे-प्रकट होता है; निरन्तर निरन्तर; तार मध्ये-उस व्यापार में; उठे-उठाती है; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; आनन्द-सागर-दिव्य आनन्द का सागर।

अनुवाद

"वामा गोपी होने के कारण उनका स्त्रियोचित क्रोध सदैव जाग्रत होता रहता है, किन्तु कृष्ण को उनके कार्यकलापों से दिव्य आनन्द मिलता है।

अहेरिव गतिः प्रेम्णः स्वभाव-कुटिला भवेत्।

अतो हेतोरहेतोश्च यूनोर्मान उदञ्चति॥ 163॥

अहेः-सर्प की; इव-भाँति; गतिः-गति; प्रेम्णः-प्रेम-व्यवहार की; स्वभाव-स्वभावतः; कुटिला-कुटिल; भवेत् है; अतः-अतः; हेतोः–किसी कारण से; अहेतोः-बिना कारण; च-और; यूनोः–युवा युगल का; मानः-क्रोध; उदञ्चति-प्रकट होता है।

अनुवाद

"तरुण-तरुणी के बीच प्रेम की प्रगति स्वभाव से साँप की गति के समान कुटिल होती है। इसलिए उनके बीच दो प्रकार का क्रोध उत्पन्न होता है—सकारण क्रोध तथा अकारण क्रोध।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रील रूप गोस्वामी कृत उज्वल-नीलमणि (शृंगार भेद प्रकरण 102) से है।

एत शुनि' बाड़े प्रभुर आनन्द-सागर।

'कह, कह' कहे प्रभु, बले दामोदर॥ 164॥

एत शुनि'-यह सुनकर; बाड़े-बढ़ गया; प्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु का; आनन्द-सागर-दिव्य आनन्द का सागर; कह कह-बोलते चलो; कहे प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; बले दामोदर-दामोदर गोस्वामी उत्तर देते रहे।

अनुवाद

इन बातों को सुनकर महाप्रभु के दिव्य आनन्द का सागर बढ़ने लगा। अतएव उन्होंने स्वरूप दामोदर से कहा, "कहते चलो, कहते चलो।" तथा स्वरूप दामोदर आगे कहते रहे।

'अधिरूढ़ महाभाव'—राधिकार प्रेम।

विशुद्ध, निर्मल, यैछे दश-वाण हेम॥ 165॥

अधिरूढ़ महा-भाव-अति उन्नत प्रेम; राधिकार प्रेम–श्रीमती राधारानी का प्रेम-व्यापार; विशुद्ध-विशुद्ध; निर्मल-निर्मल; यैछे-जैसे; दश-वाण-दस बार शुद्ध किया हुआ; हेम–स्वर्ण।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी का प्रेम अत्यधिक उन्नत भाव (अधिरूढ़ महाभाव) है। उनके सारे व्यापार नितान्त शुद्ध तथा भौतिक कल्मष से रहित हैं। वस्तुतः उनके व्यापार सोने से भी दस गुना अधिक शुद्ध हैं।

कृष्णेर दर्शन यदि पाय आचम्बिते।

नाना-भाव-विभूषणे हय विभूषिते॥ 166॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; दर्शन-दर्शन; यदि यदि; पाय-पाती है; आचम्बिते-अचानक; नाना-नाना प्रकार के; भाव-भाव; विभूषणे-आभूषणों से; हय-है; विभूषिते-सज जाता है।

अनुवाद

"जैसे ही राधारानी को कृष्ण का दर्शन करने का अवसर प्राप्त होता है, सहसा उनका शरीर विविध भावरूपी आभूषणों से अलंकृत हो जाता है।

अष्ट 'सात्त्विक', हर्षादि व्यभिचारी' याँर।

'सहज प्रेम', विंशति 'भाव'-अलङ्कार ॥ 167॥

अष्ट-आठ; सात्त्विक–सात्त्विक लक्षण; हर्ष-आदि-हर्ष आदि; व्यभिचारी-विशिष्ट लक्षण; याँर-जिनका; सहज प्रेम–सहज प्रेम; विंशति-बीस; भाव-भाव के; अलङ्कार-अलंकार।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के शरीर के दिव्य आभूषणों में आठ सात्त्विक या दिव्य भाव, हर्ष या आनन्दमय सहज प्रेम इत्यादि तैंतीस व्यभिचारी भाव तथा बीस भाव-अलंकार सम्मिलित हैं।"

तात्पर्य

तैंतीस व्यभिचारी भाव अर्थात् भावमय प्रेम में अभिव्यक्त होने वाले शारीरिक लक्षण निम्नवत् हैं—(1) निर्वेद (उपेक्षा); (2) विषाद; (3) दैन्य (दीनता); (4) ग्लानि (ऐसा सोचना कि मैंने कुछ गलती की है); (5) श्रम (थकान); (6) मद (उन्माद); (7) गर्व; (8) शंका; (9) त्रास (झटका); (10) आवेग (तीव्र आवेश); (11) उन्माद; (12) अपस्मार (भूलना); (13) व्याधि (रोग); (14) मोह; (15) मृति (मृत्यु); (16) आलस्य; (17) जाड्य (असमर्थता) (18) व्रीडा (लज्जा); (19) अवहित्था (छुपाव); (20) स्मृति; (21) वितर्क; (22) चिन्ता; (23) मति (ध्यान); (24) धृति (सहनशीलता) (25) हर्ष; (26) औत्सुक्य (उत्सुकता); (27) औग्रय (हिंसा); (28) अमर्ष (क्रोध); (29) असूया (ईर्ष्या); (30) चापल्य (धृष्टता); (31) निद्रा; (32) सुप्ति (गहरी नींद) तथा (33) प्रबोध (जाग्रति)।

'किल-किञ्चित', 'कुट्टमित', 'विलास', 'ललित'।

'विव्वोक', 'मोट्टायित', आर 'मौग्ध्य', 'चकित' ॥ 168॥

किल-किञ्चित-कृष्ण को देखते समय जो एक विशेष प्रकार का भाव-आभूषण; कुट्टमित-श्लोक 197 में वर्णित लक्षण; विलास-श्लोक 187 में वर्णित लक्षण; ललित-श्लोक 192 में वर्णित लक्षण; विव्वोक-नायक की भेंट की अवहेलना करना ; मोट्टायित-नायक के शब्द तथा उसकी याद से कामवासना जागृत होना; आर-और; मौग्ध्य-मुग्ध

होने की दशा (सब कुछ जानने पर भी न जानने की दशा); चकित–नायिका के भयभीत होने की दशा यद्यपि वह भयभीत नहीं होती है।

अनुवाद

जिन कतिपय लक्षणों की विवेचना निम्नलिखित श्लोकों में की गई है वे हैं—किलकिंचित, कुट्टमित, विलास, ललित, विव्वोक, मोट्टायित, मौग्ध्य तथा चकित।

एत भाव-भूषाय भूषित श्री-राधार अङ्ग ।

देखिते उथले कृष्ण-सुखाब्धि-तरङ्ग ॥ 169॥

एत-इतने अधिक; भाव-भूषाय-भाव रूपी आभूषणों से; भूषित-सजी हुई; श्री-राधार–श्रीमती राधारानी का; अङ्ग–शरीर; देखिते-देखने के लिए; उथले-उठता है; कृष्ण-सुख-अब्धि-कृष्ण के आनन्द का सागर; तरङ्ग-लहरें।

अनुवाद

"जब श्रीमती राधारानी इन अनेक भाव-आभूषणों को प्रकट करती हैं, तो कृष्ण के सुख-समुद्र में तुरन्त दिव्य लहरें उठने लगती हैं।

किल-किञ्चितादि-भावेर शुन विवरण ।

ये भाव-भूषाय राधा हरे कृष्ण-मन ॥ 170 ॥

किल-किञ्चित-आदि-"किल किंचित" नामक भाव से प्रारम्भ करके; भावेर-भावों का; शुन-सुनो; विवरण-वर्णन; ये भाव-भूषाय—जिस भाव रूपी आभूषणों सहित; राधा-श्रीमती राधारानी; हरे-मोह लेती है; कृष्ण-मन-कृष्ण का मन।

अनुवाद

"अब किलकिंचित इत्यादि विभिन्न भावों का विवरण सुनें। श्रीमती राधारानी इन भावरूपी आभूषणों से कृष्ण के मन को हर लेती हैं।

राधा देखि' कृष्ण यदि छुडिते करे मन ।

दान-घाटि-पथे यबे वर्जेन गमन ॥ 171॥

राधा-श्रीमती राधारानी को; देखि'-देखकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यदि-यदि; छुडिते-छूने का; करे मन-मन करता है; दान-घाटि-पथे–'दान घाटी' के मार्ग से; यबे-जब; वर्जेन-रोक देते हैं; गमन-जाने से।

अनुवाद

"जब श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानी को देखते हैं और उनका मन श्रीमती राधारानी के शरीर का स्पर्श करने को करता है, तो वे उन्हें उस स्थान पर जाने से रोक देते हैं जहाँ से यमुना नदी को पार की जा सकती है।

यबे आसि' माना करे पुष्प उठाइते ।

सखी-आगे चाहे यदि गाये हात दिते ॥ 172॥

यबे-जब; आसि'–निकट आकर; माना करे-रोक देते हैं; पुष्प उठाइते-फूल चुनने के लिए; सखी-आगे-श्रीमती राधारानी की सखियों के सामने; चाहे-चाहते हैं; यदि-यदि; गाये-शरीर को; हात दिते-हाथ से छूना।

अनुवाद

"राधारानी के पास जाकर कृष्ण उन्हें फूल चुनने से मना करते हैं। वे उनकी सखियों के सामने भी उनका स्पर्श कर सकते हैं।

एइ-सब स्थाने 'किल-किञ्चित' उद्गम ।

प्रथमे 'हर्ष' सञ्चारी—मूल कारण ॥ 173 ॥

एइ-सब स्थाने-ऐसे स्थानों पर; किल-किञ्चित-'किलकिंचित' नामक भावों के लक्षणों का; उद्गम-जागरण होता है; प्रथमे-प्रारम्भ में; हर्ष-हर्ष; सञ्चारी-परमानन्द का भाव; मूल कारण-मूल कारण।

अनुवाद

"ऐसे अवसरों पर किलकिंचित भाव के लक्षण जाग्रत होते हैं। सर्वप्रथम भावप्रेम में हर्ष का संचार होता है और यही इन लक्षणों का मूल कारण है।

तात्पर्य

जब भी श्रीमती राधारानी अपना घर छोड़ती हैं, वे सदैव अत्यन्त सुसज्जित एवं आकर्षक होती हैं। यह उनका स्त्रियोचित स्वभाव है कि वे श्रीकृष्ण का ध्यान आकृष्ट करना चाहती हैं और उनके अत्यन्त आकर्षक रीति से सजी हुई देखकर श्रीकृष्ण उनके शरीर का स्पर्श करना चाहते हैं। तब कृष्ण उनमें कुछ दोष खोजते हैं और वे उन्हें नदी पार करने तथा फूल तोड़ने से मना करते हैं। श्रीमती राधारानी तथा श्रीकृष्ण के बीच की लीलाएँ ऐसी हैं। श्रीमती राधारानी गोपी होने से सदा दूध का पात्र लिए रहती हैं और प्रायः यमुना के उस पार दूध बेचने जाती हैं। नदी पार करने के लिए उन्हें उतराई देनी होती है। जिस स्थान पर नाविक उतराई लेते हैं उसे दानघाटि कहते हैं। भगवान् कृष्ण उन्हें यह कहकर रोकते हैं, "सर्वप्रथम तुम्हें उतराई देनी होगी; तभी मैं तुम्हें जाने दूँगा।" यह लीला दानकेलिलीला कहलाती है। इसी प्रकार यदि श्रीमती राधारानी फूल चुनना चाहती हैं, तो श्रीकृष्ण बाग का मालिक बनकर उन्हें मना करते हैं। यह लीला किलकिञ्चित कहलाती है। श्रीकृष्ण द्वारा मना करने से श्रीमती राधारानी में लज्जा का उदय होता है। उस समय उनके शरीर में किलकिंचित नामक प्रेमभाव के लक्षण उत्पन्न होते हैं। अगले श्लोक में इन प्रेमभाव के लक्षणों का वर्णन हुआ है। यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत उज्ज्वल नीलमणि (अनुभाव प्रकरण 39) से लिया गया है।

गर्वाभिलाष-रुदित-स्मितासूया-भय-क्रुधाम् ।

सङ्करी-करणं हर्षादुच्यते किल-किञ्चितम् ॥ 174॥

गर्व–गर्व; अभिलाष–अभिलाषा; रुदित--रोदन; स्मित–मुस्कुराहट; असूया-ईर्ष्या; भय-भय; क्रुधाम्-क्रोध; सङ्करी-करणम्-सिकुड़कर दूर हटना; हर्षात्-हर्ष के कारण; उच्यते-कहलाता है; किल-किञ्चितम्-किलकिंचित नामक लक्षण।

अनुवाद

"गर्व, अभिलाषा, रुदन, हँसी, ईर्ष्या, भय तथा क्रोध-ये सात प्रेमभाव-लक्षण हैं, जो हर्ष के कारण सिकुड़कर दूर हटने के फलस्वरूप प्रकट होते हैं। ये लक्षण किलकिंचित भाव कहलाते हैं।

आर सात भाव आसि' सहजे मिलय ।

अष्ट-भाव-सम्मिलने 'महा-भाव' हय ॥ 175 ॥

आर-अन्य; सात-सात; भाव-भाव; आसि'-मिलकर; सहजे–स्वाभावतः; मिलय-मिल जाते हैं; अष्ट-भाव-आठ प्रकार के भाव; सम्मिलने-मिलने से; महा-भाव हय-महाभाव होता है ।

अनुवाद

"सात दिव्य भाव और हैं और जब वे हर्ष के स्तर पर मिलते हैं, तो उनका मेल (मिलाप) महाभाव कहलाता है।"

गर्व, अभिलाष, भय, शुष्क-रुदित ।

क्रोध, असूया हय, आर मन्द-स्मित ॥ 176॥

गर्व-गर्व; अभिलाष-अभिलाषा; भय-भय; शुष्क-रुदित-बनावटी रोना; क्रोध-क्रोध; असूया-ईर्ष्या; हय–होता है; आर-और; मन्द-स्मित-मृदु मुस्कान।

अनुवाद

"महाभाव में सात अवयव मिले होते हैं—गर्व, अभिलाषा, भय, बनावटी रोदन, क्रोध, ईर्ष्या तथा मृदु मुस्कान।

नाना-स्वादु अष्ट-भाव एकत्र मिलन ।

याहार आस्वादे तृप्त हय कृष्ण-मन ॥177॥

नाना-नाना प्रकार; स्वादु-स्वादिष्ट; अष्ट-भाव-आठ प्रकार के भाव लक्षण; एकत्र–एक स्थान पर; मिलन–मिलकर; याहार–जिनके; आस्वादे-आस्वादन से; तृप्त-सन्तुष्ट; हय हो जाता है; कृष्ण-मन-कृष्ण का मन।

अनुवाद

"दिव्य हर्ष के स्तर पर प्रेमभाव के आठ लक्षण हैं और जब वे मिलते हैं, तो उनका आस्वादन करके भगवान् कृष्ण का मन पूर्णतः तृप्त हो जाता है।

दधि, खण्ड, घृत, मधु, मरीच, कर्पूर ।

एलाचि-मिलने यैछे रसाला मधुर ॥ 178॥

दधि-दही; खण्ड–खांड; घृत-घी; मधु-शहद; मरीच–काली मिर्च; कर्पूर-कपूर; एलाचि–इलायची; मिलने-इकट्ठे मिलकर; यैछे-जैसे; रसाला-अत्यन्त स्वादिष्ट; मधुर-और मीठा।

अनुवाद

“उनकी उपमा दही, खाँड, घी, शहद, काली मिर्च, कपूर तथा इलायची के मिश्रण से दी जाती है। इन्हें मिला देने पर वे अत्यन्त स्वादिष्ट और मधुर हो जाते हैं।

एइ भाव-मुक्त देखि’ राधास्य-नयन ।

सङ्गम हइते सुख पाय कोटि-गुण ॥ 179॥

एइ भाव-इन भाव लक्षणों के; युक्त-इकट्ठे मिलने से; देखि’–देखकर; राधा-आस्य-नयन–श्रीमती राधारानी का मुख और नयन; सङ्गम हइते-सीधे आलिंगन की अपेक्षा; सुख पाय–सुख पाया; कोटि-गुण-करोड़ों गुना।

अनुवाद

“भगवान् श्रीकृष्ण भावमय प्रेम के इस मिश्रण से प्रकाशित श्रीमती राधारानी के मुखमण्डल को देखकर उनसे प्रत्यक्ष मिलन की अपेक्षा करोड़ों गुना अधिक सन्तुष्ट होते हैं।

तात्पर्य

इसकी अधिक व्याख्या अगले श्लोक में की गई है, जो श्रील रूप गोस्वामी कृत उज्वल नीलमणि (अनुभाव प्रकरण 41) से लिया गया है।

अन्तः स्मेरतयोज्वला जल-कण-व्याकीर्ण-पक्ष्माङ्करा

किञ्चित्पाटलिताञ्चला रसिकतोत्सिक्ता पुरः कुञ्चती ।

रुद्धायाः पथि माधवेन मधुर-व्याभुग्न-तोरोत्तरा

राधायाः किल-किञ्चित-स्तवकिनी दृष्टिः श्रियं वः क्रियात् ॥ 180॥

अन्तः-अन्दर से; अप्रकट; स्मेरतया उज्वल-मृदु मुसकान से उद्दीप्त; जल-कण-पनी की बूंदों से; व्याकीर्ण–छिड़के हुआ; पक्ष्म-अङ्करा-पलकों से; किञ्चित्-बहुत थोड़ा; पाटलित-अञ्चला-थोड़ी सी लाली सफेद से मिली हुई नेत्रों के किनारों पर; रसिकता-उसिक्ता-भगवान् के छल-पूर्ण व्यवहार से मिलकर; पुरः-सामने; कुञ्चती-सिकुड़ जाती है; रुद्धायाः-रोके जाने पर; पथि-मार्ग में; माधवेन-कृष्ण द्वारा; मधुर-मधुर; व्याभुग्न-तिरछी करके; तोरा-उत्तरा–

नेत्र; राधायाः-श्रीमती राधारानी के; किल-किञ्चित-किल-किंचित नामक भाव लक्षण; स्तवकिनी–पुष्पों के गुलदस्ते की भाँति; दृष्टिः-दृष्टि; श्रियम्-सौभाग्य; वः–तुम सबके; क्रियात्-करें।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी का किलकिंचित भाव, जो गुलदस्ते के समान है, सबको सौभाग्य प्रदान करे। जब श्रीकृष्ण ने राधारानी का दानघाटि का रास्ता रोक दिया, तो उनके हृदय में हँसी उत्पन्न हुई। उनकी आँखें चमक उठीं और उनकी आँखों से नये आँसू बहने लगे, जिससे वे लाल-लाल हो गईं। कृष्ण से उनके मधुर सम्बन्ध के कारण उनकी आँखें उत्साहयुक्त थीं और जब उनका रोना रुक गया, तो वे और अधिक सुन्दर लगने लगीं।'

बाष्प-व्याकुलतारुणाञ्चल-चलन्नेत्रं रसोल्लासितं

हेलोल्लास-चलाधरं कुटिलित-भ्रू-युग्ममुद्यस्मितम् ।

राधायाः किल-किञ्चिताञ्चितमसौ वीक्ष्याननं सङ्गमाद्

आनन्दं तमवाप कोटि-गुणितं योऽभून्न गीर्गोचरः ॥181॥

बाष्प-अश्रुओं से; व्याकुलित-व्याकुल; अरुण-अञ्चल-लाल रंग वाला; चलन्-हिलते; नेत्रम्-नेत्र; रस-उल्लासितम्-दिव्य रस से उत्तेजित होने के कारण; हेल-उल्लास-उपेक्षित उल्लास के कारण; चल-अधरम् हिलते होंठ; कुटिलित-टेढ़ी; भ्रू-युग्मम्-दो भौएँ; उद्यत्-जगने से; स्मितम् मुस्कुराती हुई; राधायाः–श्रीमती राधारानी के; किल-किञ्चित-किलकिंचित नामक आनन्द भाव से; अञ्चितम्-भाव; असौ-वे (कृष्ण); वीक्ष्य-दृष्टि डालने के बाद; आननम्-मुख; सङ्गमात्-आलिंगन की अपेक्षा; आनन्दम्-आनन्द; तम्-वह; अवाप-पाया; कोटि-गुणितम्-करोड़ों गुना; यः-जो; अभूत्-हुआ; न-नहीं; गीः-गोचरः-वर्णन किया जाने वाला विषय।

अनुवाद

"आँसुओं से व्याकुल श्रीमती राधारानी की आँखें लाल-लाल हो गईं, मानो सूर्योदय के समय पूर्वी क्षितिज हो। उनके होंठ हर्ष तथा काम-वासना के मारे कांपने लगे। उनकी भौंहे टेढ़ी हो गईं और उनके कमल जैसे मुखमण्डल में हल्की-सी मुस्कान आ गई। राधारानी के मुखमण्डल से ऐसे भाव प्रकट होते देखकर

श्रीकृष्ण को उनका आलिंगन करने की अपेक्षा लाखों गुना अधिक सुख प्राप्त हुआ। भगवान् कृष्ण का यह सुख तनिक भी भौतिक नहीं है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण गोविन्द लीलामृत (9.18) से है।

एत शुनि' प्रभु हैला आनन्दित मन ।

सुखाविष्ट हञा स्वरूपे कैला आलिङ्गन ॥182॥

एत शुनि'-यह सुनकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु: हैला-हो गये; आनन्दित मन-अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न; सुख-आविष्ट हञा-हर्ष में डूबकर; स्वरूपे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी जी को ; कैला–किया; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त आनन्दित हुए और इस सुख में मग्न होकर उन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी का आलिंगन कर लिया।

'विलासादि'-भाव-भूषार कह त' लक्षण ।

येइ भावे राधा हरे गोविन्देर मन? ॥ 183॥

विलास-आदि-दिव्य आनन्द आदि से; भाव-भाव के; भूषार-आभूषणों के; कह-कृपया कहो; त'–निस्सन्देह; लक्षण-लक्षण; येइ भावे-जिन लक्षणों से; राधा-श्रीमती राधारानी; हरे-मोह लेती है; गोविन्देर मन-श्री गोविन्द का मन।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर से कहा, "कृपा करके श्रीमती राधारानी के शरीर को अलंकृत करने वाले उन भावरूपी आभूषणों को बतलाइये, जिनसे वे श्री गोविन्द के मन को हर लेती हैं।"

तबे त' स्वरूप-गोसाञि कहिते लागिला ।

शुनि' प्रभुर भक्त-गण महा-सुख पाइला ॥184॥

तबे-उस समय; त'–निस्सन्देह; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर; कहते लागिला-कहने लगे; शुनि'–सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गण-सभी भक्तगण; महा-सुख पाइला–महान् सुख मिला।

अनुवाद

इस तरह अनुरोध किये जाने पर स्वरूप दामोदर ने कहना प्रारम्भ किया। इसे सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्त अत्यन्त प्रसन्न थे।

राधा वसि' आछे, किबा वृन्दावने याय ।

ताहाँ यदि आचम्बिते कृष्ण-दरशन पाय ॥ 185॥

राधा वसि' आछे–श्रीमती राधारानी बैठी हैं; किबा–अथवा; वृन्दावने याय-वृन्दावन जा रही हैं; ताहाँ-वहाँ; यदि-यदि; आचम्बिते-अचानक; कृष्ण-दरशन पाय-कृष्ण के दर्शन करने का अवसर पाती हैं।

अनुवाद

"कभी-कभी जब श्रीमती राधारानी बैठी रहती हैं या जब वे वृन्दावन जा रही होती हैं, तो वे कृष्ण का दर्शन पा जाती हैं।

देखिते नाना-भाव हय विलक्षण ।

से वैलक्षण्येर नाम 'विलास'-भूषण ॥186॥

देखिते-देखकर; नाना-भाव-विभिन्न भाव; हय-होते हैं; विलक्षण-विभिन्न लक्षण; से-वे; वैलक्षण्येर–विभिन्न लक्षणों का; नाम-नाम; विलास-विलास; भूषण-आभूषण।

अनुवाद

"उस समय विभिन्न भावों के जो-जो लक्षण प्रकट होते हैं, वे विलास कहलाते हैं।

तात्पर्य

इसका वर्णन अगले श्लोक में पाया जाता है। यह श्लोक उज्ज्वल नीलमणि (अनुभाव प्रकरण 39) से लिया गया है।

गति-स्थानासनादीनां मुख-नेत्रादि-कर्मणाम् ।

तात्कालिकं तु वैशिष्ट्यं विलासः प्रिय-सङ्ग-जम् ॥ 187॥

गति-चलते हुए; स्थान–खड़े हुए; आसन-आदीनाम्-और बैठे हुए आदि का; मुख–मुख पर; नेत्र–नेत्रों का; आदि–आदि; कर्मणाम् कर्मों का; तात्कालिकम्-उस समय से सम्बन्धित; तु-तब; वैशिष्ट्यम्-विशिष्ट लक्षण; विलासः-विलास नामक; प्रिय-सङ्ग-जम्-प्रियतम के मिलने से उत्पन्न।

अनुवाद

"नायिका के मुख, नेत्रों तथा शरीर के अन्य भागों में प्रकट होने वाले विविध लक्षण तथा उसके चलने, खड़े होने या अपने प्रेमी से मिलने पर बैठने की मुद्रा को विलास कहते हैं।"

लज्जा, हर्ष, अभिलाष, सम्भ्रम, वाम्य, भय ।

एत भाव मिलि' राधाय चञ्चल करय ॥188॥

लज्जा-लज्जा; हर्ष-हर्ष; अभिलाष-अभिलाषा; सम्भ्रम-सम्मान; वाम्य-वाम पन्थी गोपियों के लक्षण; भय-भय; एत-ये; भाव-भाव; मिलि'–इकट्ठे मिलकर; राधाय–श्रीमती राधारानी को; चञ्चल करय-उत्तेजित करना।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने कहा, "लज्जा, हर्ष, अभिलाषा, आदर, भय तथा वामा गोपियों के लक्षण-ये सब मिलकर श्रीमती राधारानी को चंचल बनाते हैं।

तात्पर्य

इसकी व्याख्या गोविन्द लीलामृत (9.11) में प्राप्य अगले श्लोक में दी गई है।

पुरः कृष्णालोकात्स्थगित-कुटिलास्या गतिरभूत्

तिरश्चीनं कृष्णाम्बर-दर-वृतं श्री-मुखमपि ।

चलत्तारं स्फारं नयन-युगमाभुग्नमिति सा

विलासाख्य-स्वालङ्करण-वलितासीप्रिय-मुदे ॥189॥

पुरः-राधारानी के सामने; कृष्ण-आलोकात्-भगवान् कृष्ण को देखने से; स्थगित-कुटिला-रुक गई और छल कपट की भूमिका ले ली; अस्याः -श्रीमती राधारानी की; गतिः–प्रगति; अभूत्-हो गई; तिरश्चीनम्-टेढ़ी होने के कारण; कृष्ण-अम्बर–नीले वस्त्र के; दर-वृतम्-ढकी गई; श्री-मुखम् अपि-उनका मुख भी; चलत्-तारम्-चलते तारों के समान; स्फारम्-चौड़ी; नयन-मुगम्-दोनों नेत्र; आभुग्नम्-अत्यन्त टेढ़े; इति-इस प्रकार; सा-वे (राधारानी); विलास-आख्य–विलास नामक; स्व-अलङ्करण-निजी आभूषणों से; वलित-सज्जित; आसीत्-थीं; प्रिय-मुदे-श्रीकृष्ण के आनन्द को बढ़ाने मात्र के लिए।

अनुवाद

"जब श्रीमती राधारानी ने भगवान् कृष्ण को अपने सामने देखा, तो उनकी गति रुक गई और उनकी मनोवृत्ति वामा (कुटिला) सी हो गई। यद्यपि उनका मुख नीले वस्त्र से थोड़ा सा ढका था, किन्तु उनके बड़े-बड़े और वक्र नेत्र चंचल थे। इस तरह वे विलास के आभूषण से अलंकृत थीं और उनका सौन्दर्य भगवान् कृष्ण को आनन्द प्रदान करने के लिए बढ़ गया।'

कृष्ण-आगे राधा यदि रहे दाण्डाञा ।

तिन-अङ्ग-भङ्गे रहे भू नाचाञा ॥ 190॥

कृष्ण-आगे-कृष्ण के समक्ष; राधा-श्रीमती राधारानी; यदि-यदि; रहे-रहती हैं; दाण्डाञा–खड़ी; तिन-अङ्ग-भड़े-त्रिभंगी शरीर वाली; रहे-रहती है; भू-भौंहे; नाचाञा-नाचते हुए।

अनुवाद

"जब श्रीमती राधारानी कृष्ण के समक्ष खड़ी होती हैं, तब वे तीन स्थानों से टेढ़ी हो जाती हैं—गर्दन, कमर तथा पाँव से और उनकी भौंहे नाचने लगती हैं।

मुखे-नेत्रे हय नाना-भावेर उद्गार ।

एइ कान्ता-भावेर नाम 'ललित'-अलङ्कार ॥191॥

मुखे-मुख पर; नेत्रे-नेत्रों में; हय-हैं; नाना-भावेर-अनेक भाव; उद्गार-प्रकट; एई–यह; कान्ता-भावेर-स्त्रियोचित दशा का; नाम-नाम; ललित-ललित का; अलङ्कार-आभूषण।

अनुवाद

“जब श्रीमती राधारानी के मुख पर तथा नेत्रों पर विविध भावों का उदय होता है, जो सुन्दर नारी-सुलभ प्रवृत्ति के उपयुक्त होते हैं, तब ललित अलंकार का प्राकट्य हुआ माना जाता है।

विन्यास-भङ्गिङ्गानां भू-विलास-मनोहरा ।

सुकुमारा भवेद् यत्र ललितं तदुदाहृतम् ॥ 192॥

विन्यास-प्रबन्ध में; भङ्गिः–टेढ़े; अङ्गानाम्-शारीरिक अंगो का; भू-विलास-भौहों की लीला के कारण; मनोहरा–मनोहर; सु-कुमारा-अत्यन्त कोमल; भवेत्-हो सकता है; यत्र-जहाँ; ललितम्-ललित; तत्व ह; उदाहृतम्-कहता है।

अनुवाद

“जब शारीरिक अंग मुलायम तथा भंगिमायुक्त हो और जब भौंहे सुन्दर ढंग से उत्तेजित हों, तो नारी-स्वभाव का सौन्दर्य आभूषण प्रकट होता है, जिसे ललित अलंकार कहा जाता है।

तात्पर्य

यह श्लोक उज्ज्वल नीलमणि (अनुभाव प्रकरण 51) से है।

ललित-भूषित राधा देखे यदि कृष्ण ।

दुँहे दुँहा मिलिबारे हयेन सतृष्ण ॥193॥

ललित-भूषित-‘ललित अलंकार’ से सज्जित; राधा-श्रीमती राधारानी; देखे-देखती हैं; यदि यदि; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; दुँहे वे दोनों; हा-एक दूसरे से; मिलिबारे-मिलने के लिए; हयेन–हो जाते हैं; स-तृष्ण-अत्यन्त उत्सुक।

अनुवाद

“जब भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानी को इन ललित अलंकारों से विभूषित देखते हैं, तो दोनों में एक-दूसरे से मिलने की उत्कण्ठा जाग्रत हो जाती है।

ह्रिया तिर्यग्ग्रीवा-चरण-कटि-भङ्गी-सुमधुरा

चलच्चिल्ली-वल्ली-दलित-रतिनाथोर्जित-धनुः ।

प्रिय-प्रेमोल्लासोल्लसित-ललितालालित-तनुः

प्रिय-प्रीत्यै सासीदुदित-ललितालङ्कृति-ग्रुता ॥ 194॥

ह्रिया-उनके लज्जा-भाव से; तिर्यक्-टेढ़ी होकर; ग्रीवा-गर्दन की; चरण-घुटनों की; कटि-कमर की; भङ्गी-टेढ़ेपन से; सु-मधुरा–अति मधुर; चलत्-चिल्ली-चंचल भौएँ; वल्ली-लताओं से; दलित-हारी हुई; रति-नाथ-कामदेव की; ऊर्जित-शक्तिमय; धनुः—जिससे धनुष; प्रिय-प्रेम-उल्लास-प्रिया के प्रेमपूर्ण भाव के कारण; उल्लसित-प्रेरित होकर; ललित-ललित नामक भाव; आलालित-तनुः-जिनका शरीर ढका है; प्रिय-प्रीत्यै–प्रियतम को प्रसन्न करने हेतु; सा-श्रीमती राधारानी; आसीत्-थीं; उदित-जग गईं; ललित-अलङ्कृति-युता-'ललित अलंकार' से युक्त होकर।

अनुवाद

"जब श्रीकृष्ण के प्रेम को बढ़ाने मात्र के लिए श्रीमती राधारानी को ललित अलंकार से सजाया गया, तो उनकी गर्दन, घुटनों तथा कमर से एक आकर्षक भाव-भंगिमा प्रकट हुई। यह कृष्ण से बचने की उनकी इच्छा तथा उनकी लज्जा से उत्पन्न हुई। उनकी भौहों की चंचलता कामदेव के शक्तिशाली धनुष को जीतने वाली थी। अपने प्रियतम के हर्ष को बढ़ाने के लिए, उन्होंने अपने शरीर को ललित अलंकारों से सजाया था।'

तात्पर्य

यह श्लोक गोविन्द लीलामृत (9.14) से लिया गया है।

लोभे आसि' कृष्ण करे कञ्चुकाकर्षण ।

अन्तरे उल्लास, राधा करे निवारण ॥ 195॥

लोभे-लोभ में; आसि-आकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करे-करते हैं; कञ्चुक-आकर्षण-उनकी साड़ी का पल्लू खींचकर; अन्तरे-अन्दर; उल्लास-अत्यन्त प्रसन्न; राधा-श्रीमती राधारानी; करे-करती हैं; निवारण-रोकना।

अनुवाद

“जब कृष्ण आगे बढ़कर लालचवश श्रीमती राधारानी की साड़ी का किनारा खींचते हैं, तब वे भीतर से अत्यधिक प्रसन्न होती हैं, किन्तु बाहर से उन्हें रोकने का प्रयास करती हैं।

बाहिरे वामता-क्रोध, भितरे सुख मने ।

‘कुट्टमित’-नाम एइ भाव-विभूषणे ॥196 ॥

बाहिरे-बाहर से; वामता–विरोध; क्रोध-क्रोध; भितरे–अन्दर से; सुख–सुख; मने-मन में; कुट्टमित–कुट्टमित; नाम-नामक; एइ–यह; भाव-विभूषणे-भाव का आभूषण।

अनुवाद

“श्रीमती राधारानी की यह आनन्दमय भाव कुट्टमित कहलाता है। जब यह भाव प्रकट होता है, तब वे बाह्य रूप से कृष्ण से दूर रहना चाहती हैं और ऊपर से क्रुद्ध होती हैं, यद्यपि मन ही मन वे अत्यन्त सुखी होती हैं।

स्तनाधरादि-ग्रहणे हृत्प्रीतावपि सम्भ्रमात् ।

बहिः क्रोधो व्यथित-वत्प्रोक्तं कुट्टमितं बुधैः ॥ 197॥

स्तन-स्तन; अधर-होंठ; आदि-आदि; ग्रहणे-छुए जाने पर; हृत्-प्रीतौ–हृदय की सन्तुष्टि; अपि-यद्यपि; सम्भ्रमात्-सम्मान के कारण; बहिः-बाहर से; क्रोधः-क्रोध; व्यथित–दुःखी; वत्-जैसे; प्रोक्तम्-बुलाया; कुट्टमितम्-‘कुट्टमित’ शब्द; बुधैः–विद्वानों द्वारा।

अनुवाद

“जब कृष्ण उनकी साड़ी की किनारी तथा उनके घूघट को पकड़ लेते हैं, तो वे बाहर से अपमानित तथा क्रुद्ध प्रतीत होती हैं, किन्तु अपने हृदय में अत्यन्त सुखी होती हैं। विद्वान लोग इसे कुट्टमित भाव कहते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण उज्वल नीलमणि (अनुभाव प्रकरण 44) का है।

कृष्ण-वाञ्छा पूर्ण हय, करे पाणि-रोध ।

अन्तरे आनन्द राधा, बाहिरे वाम्य-क्रोध ॥ 198॥

कृष्ण-वाञ्छा-भगवान् कृष्ण की इच्छाएँ; पूर्ण–पूर्ण; हय–हो जाए; करे-करती है; पाणि-रोध-अपने हाथ से विरोध; अन्तरे हृदय के भीतर; आनन्द–दिव्य आनन्द; राधा-श्रीमती राधारानी; बाहिरे-बाहर से; वाम्य–विरोध; क्रोध-तथा क्रोध।

अनुवाद

"यद्यपि श्रीमती राधारानी अपने हाथ से कृष्ण को रोक रही थीं, किन्तु भीतर ही भीतर सोच रही थीं, 'कृष्ण को अपनी इच्छा पूरी करने दो।' इस तरह वे भीतर से अत्यन्त प्रसन्न थीं, किन्तु बाहर से विरोध तथा क्रोध प्रकट कर रही थीं।

व्यथा पाञा' करे येन शुष्क रोदन ।

ईषत् हासिया कृष्णे करेन भर्त्सन ॥ 199॥

व्यथा पाञा'-अप्रसन्न होकर; करे-करती हैं; सेन-जैसे; शुष्क–बनावटी ; रोदन-रोदन; ईषत्-कोमलता से; हासिया-मुस्कुराकर; कृष्णे-कृष्ण की; करेन-करती हैं; भर्त्सन-भत्र्सना।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी बाहर से बनावटी रोदन जैसा भाव प्रदर्शित करती हैं मानो उन्हें व्यथा पहुँचती हो। फिर वे मन्द हँसती हैं और कृष्ण को ताड़ना देती हैं।

पाणि-रोधमविरोधित-वाञ्छं

भर्त्सनाश्च मधुर-स्मित-गर्भाः ।

माधवस्य कुरुते करभोरुर्

हारि शुष्क-रुदितं च मुखेऽपि ॥200॥

पाणि-हाथ; रोधम्-रोककर; अविरोधित–बिना रूकावट के; वाञ्छम्-कृष्ण की इच्छा को; भर्त्सनाः-ताड़ना; च-और; मधुर-मधुर; स्मित-गर्भाः–मुस्कुराने के मृदुभाव युक्त; माधवस्य-श्रीकृष्ण का; कुरुते-करती हैं; करभ-ऊरुः–जिनकी जांघे एक शिशु हाथी की सैंड के समान हैं; हारिमुग्ध; शुष्क-रुदितम्-बनावटी रोदन; च-और; मुखे-मुख पर; अपि-था।

अनुवाद

"वास्तव में उनकी इच्छा नहीं होती कि वे कृष्ण को अपना शरीर छूने से मना करें, किन्तु हाथी के बच्चे की दूंड जैसी जाँघों वाली श्रीमती राधारानी उनके आगे बढ़ने पर विरोध करती हैं और मीठी हँसी द्वारा उन्हें प्रताड़ित करती हैं। ऐसे अवसरों पर वे अपने आकर्षक मुख पर अश्रु लाये बिना रोती हैं।'

एइ-मत आर सब भाव-विभूषण।

याहाते भूषित राधा हरे कृष्ण मन ॥ 201॥

एइ-मत-इस प्रकार; आर-भी; सब-सब; भाव-विभूषण-भाव-विभूषण; याहाते-जिनसे; भूषित-सजकर; राधा-श्रीमती राधारानी; हरे-आकर्षित कर लेती हैं; कृष्ण मन-कृष्ण के मन को।

अनुवाद

"इस प्रकार श्रीमती राधारानी उन विभिन्न प्रेम-भावों से अलंकृत एवं विभूषित हैं, जो श्रीकृष्ण के मन को आकृष्ट करते हैं।

अनन्त कृष्णेर लीला ना याय वर्णन।

आपने वर्णेन यदि 'सहस्र-वदन' ॥ 202॥

अनन्त-असीम; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; लीला-लीलाएँ; ना-नहीं; याय-सम्भव हैं; वर्णन-वर्णन; आपने–स्वयं; वर्णेन-वर्णन करते हैं; यदि-यदि; सहस्र-वदन–सहस्र-मुखी शेष।

अनुवाद

“श्रीकृष्ण की अनन्त लीलाओं का वर्णन कर पाना बिल्कुल सम्भव नहीं है, भले ही वे स्वयं सहस्र वदन अर्थात् एक हजार मुख वाले शेष नाग के अवतार के रूप में उनका वर्णन क्यों न करें।”

श्रीवास हासिया कहे,—शुन, दामोदर ।

आमार लक्ष्मीर देख सम्पत्ति विस्तर ॥203॥

श्रीवास–श्रीवास ठाकुर; हासिया–मुस्कुराकर; कहे-कहते हैं; शुन-कृपया सुनो; दामोदर-हे दामोदर गोस्वामी; आमार लक्ष्मीर-मेरी लक्ष्मी देवी; देख-जरा देखो; सम्पत्ति विस्तर–महान् ऐश्वर्य।

अनुवाद

इस पर श्रीवास ठाकुर हँस पड़े और स्वरूप दामोदर से बोले, “हे। महाशय, जरा सुनो तो! देखो मेरी लक्ष्मीजी कितनी ऐश्वर्यवान हैं!

वृन्दावनेर सम्पदेख,—पुष्प-किसलय ।

गिरिधातु-शिखिपिच्छ-गुञ्जाफल-मय ॥ 204॥

वृन्दावनेर-वृन्दावन का; सम्पद्-ऐश्वर्य; देख-देखो; पुष्प-किसलय-कुछ पुष्प और शाखाएँ; गिरि-धातु-पर्वतों से कुछ धातुएँ; शिखि-पिच्छ-कुछ मोरों के पंख; गुञ्जा-फल-मय-कुछ गुंजफल।

अनुवाद

“जहाँ तक वृन्दावन के ऐश्वर्य की बात है, उसमें कुछ फूल तथा टहनियाँ, कुछ पहाड़ी खनिज, कुछ मोरपंख तथा गुंजा नामक पौधा हैं।

वृन्दावन देखिबारे गेला जगन्नाथ ।

शुनि’ लक्ष्मी देवीर मने हैल आसोयाथ ॥ 205॥

वृन्दावन-वृन्दावन धाम; देखिबारे-देखने के लिए; गेला–गये; जगन्नाथ-भगवान् जगन्नाथ; शुनि’–सुनकर; लक्ष्मी-देवीर-लक्ष्मी देवी के; मने-मन में; हैल-थी; आसोयाथ-ईर्ष्या।

अनुवाद

“वृन्दावन देखने का निश्चय करने पर जब जगन्नाथजी वहाँ गये, तो इसे सुनकर लक्ष्मीजी को ईर्ष्या तथा बेचैनी का अनुभव होने लगा।

एत सम्पत्ति छाड़ि’ केने गेला वृन्दावन ।

ताँरे हास्य करिते लक्ष्मी करिला साजन ॥ 206॥

एत सम्पत्ति-इतना अधिक ऐश्वर्य; छाड़ि’–छोड़कर; केने-क्यों; गेला–वे गये; वृन्दावन-वृन्दावन को; ताँरे हास्य करिते-उनका मजाक उड़ाने के लिए; लक्ष्मी-लक्ष्मी देवी; करिला की; साजन–इतनी सजावट।

अनुवाद

“उन्हें आश्चर्य हुआ कि, ‘जगन्नाथजी इतना ऐश्वर्य छोड़कर वृन्दावन क्यों गये?’ उनकी हँसी उड़ाने के उद्देश्य से लक्ष्मीजी ने अपने आपको सजाने का काफी प्रबन्ध किया।

“तोमार ठाकुर, देख एत सम्पत्ति छाड़ि’ ।

पत्र-फल-फुल-लोभे गेला पुष्प-बाड़ी ॥207॥

तोमार ठाकुर–आपके स्वामी; देख-जरा देखो; एत सम्पत्ति छाड़ि’-इतनी सम्पत्ति छोड़कर; पत्र-फल-फुल-पत्ते, फल, फूल; लोभे–के लोभ में; गेला–गये; पुष्प-बाड़ी-गुण्डिचा की फुलवाड़ी में।

अनुवाद

“तब लक्ष्मीजी की सेविकाओं ने भगवान जगन्नाथजी के दासों से कहा, “तुम्हारे स्वामी भगवान् जगन्नाथ ने लक्ष्मीजी के महान् ऐश्वर्य का त्याग क्यों किया और कुछ पत्तियों, फूलों तथा फलों के लिए वे श्रीमती राधारानी का फूलों का बगीचा क्यों देखने गये?

एइ कर्म करे काहाँ विदग्ध-शिरोमणि? ।

लक्ष्मीर अग्रेते निज प्रभुरे देह’ आनि” ॥ 208॥

एइ-ऐसा; कर्म-काम; करे-किया; काहाँ–कहाँ; विदग्ध-शिरोमणि-सभी निपुणों का प्रमुख; लक्ष्मीर-लक्ष्मी के; अग्रेते-समक्ष; निज-अपने; प्रभुरे–स्वामी को; देह’–पेश करो; आनि’–लाकर।

अनुवाद

"तुम्हारे स्वामी हर बात में अत्यन्त पटु हैं, लेकिन तो भी वे ऐसे कार्य क्यों करते हैं? तुम लोग अपने स्वामी को लक्ष्मीजी के समक्ष लाओ।'

एत बलि' महा-लक्ष्मीर सब दासी-गणे ।

कटि-वस्त्रे बान्धि' आने प्रभुर निज-गणे ॥ 209॥

एत बलि'—यह कहकर; महा-लक्ष्मीर-लक्ष्मी देवी की; सब-सब; दासी-गणे-दासियाँ; कटि-वस्त्रे-अपने कमर के वस्त्रों से; बान्धि'–बाँधकर; आने-ले आईं; प्रभुर-जगन्नाथ के; निज-गणे-निजी सेवकों को।

अनुवाद

इस तरह लक्ष्मीजी की सारी दासियाँ जगन्नाथजी के सभी दासों को बन्दी बनाकर, कटिवस्त्रों से बाँधकर, लक्ष्मीजी के समक्ष ले आईं।

लक्ष्मीर चरणे आनि' कराय प्रणति ।

धन-दण्ड लय, आर कराय मिनति ॥ 210॥

लक्ष्मीर चरणे-लक्ष्मी देवी के चरणों में; आनि'–लाकर; कराय प्रणति-प्रणाम करवाया; धन-दण्ड लय-जुर्माना लिया; आर-और; कराय-करवाई; मिनति–मिन्नतें।

अनुवाद

"जब जगन्नाथजी के सारे दास लक्ष्मीजी के चरणकमलों के समक्ष लाये गये, तो उनको दण्ड दिया गया और उन्हें प्रणाम करने के लिए बाध्य किया गया।

रथेर उपरे करे दण्डेर ताड़न ।

चोर-प्राय करे जगन्नाथेर सेवक-गण ॥ 211॥

रथेर उपरे–रथ पर; करे-किया; दण्डेर ताड़न-डण्डों से पीटा; चोर-प्राय-चोरों की भाँति; करे-उन्होंने बर्ताव किया; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ के; सेवक-गण-निजी सेवकों ने।

अनुवाद

फिर सारी दासियाँ रथ पर लाठियों से प्रहार करने लगीं और उन्होंने भगवान् जगन्नाथ के दासों के साथ लगभग चोरों जैसा बर्ताव किया।

सब भृत्य-गण कहे,—योड़ करि' हात ।

'कालि आनि दिब तोमार आगे जगन्नाथ' ॥212॥

सब भृत्य-गण कहे-सभी सेवकों ने कहा; झोड़ करि' हात–हाथ जोड़कर; कालि-कल; आनि-लाकर; दिब-हम देंगे; तोमार-आपके; आगे-आगे; जगन्नाथ-भगवान् जगन्नाथ को।

अनुवाद

"अन्त में भगवान जगन्नाथ के सारे दासों ने हाथ जोड़कर लक्ष्मीजी से विनती की और उन्हें विश्वास दिलाया कि वे अगले दिन जगन्नाथजी को लाकर उनके समक्ष पेश कर देंगे।

तबे शान्त हञा लक्ष्मी याय निज घर ।

आमार लक्ष्मीर सम्पद् द्वाक्य-अगोचर ॥213॥

तबे-तब; शान्त हञा–शान्त होकर; लक्ष्मी-लक्ष्मण देवी; याय-लौट गईं; निज घर-अपने घर को; आमार-मेरा; लक्ष्मीर-लक्ष्मी देवी का; सम्पद्-ऐश्वर्य; वाक्य-अगोचर-अवर्णनीय।

अनुवाद

"तब लक्ष्मीजी इस प्रकार शान्त किए जाने पर अपने घर चली गईं। देखो न! हमारी लक्ष्मीजी का ऐश्वर्य वर्णनातीत है।"

दुग्ध आउटि' दधि मथे तोमार गोपी-गणे ।

आमार ठाकुराणी वैसे रत्न-सिंहासने ॥214॥

दुग्ध आउटि'–उबलते दूध; दधि-दही में; मथे–मथने; तोमार—तुम्हारी; गोपी-गणे-गोपियाँ; आमार—मेरी; ठाकुराणी-ठाकुरानी; वैसे—बैठती है; रल-सिंहासने-रत्नजड़ित सिंहासन पर।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर ने स्वरूप दामोदर से आगे कहा, "आपकी गोपियाँ दूध औंटने तथा दही मथने में लगी रहती हैं, किन्तु मेरी ठकुरानी लक्ष्मीजी तो रत्नों के सिंहासन पर बैठी रहती हैं।"

नारद-प्रकृति श्रीवास करे परिहास ।

शुनि' हासे महाप्रभुर यत निज-दास ॥ 215॥

नारद-प्रकृति–नारद मुनि के भाव में; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर ने; करे–किया; परिहास-परिहास; शुनि'–सुनकर; हासे-हँसे; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; यत-सभी; निज-दास-दासगण।

अनुवाद

नारद मुनि के भाव में श्रीवास ठाकुर इस प्रकार मजाक कर रहे थे। यह सुनकर महाप्रभु के सारे निजी दास हँसने लगे।

प्रभु कहे,— श्रीवास, तोमाते नारद-स्वभाव ।

ऐश्वर्य-भावे तोमाते, ईश्वर-प्रभाव ॥ 216॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; श्रीवास-मेरे प्रिय श्रीवास; तोमाते-तुम में; नारद-स्वभाव-नारद का स्वभाव; ऐश्वर्य-भावे-ऐश्वर्य के भाव; तोमाते-तुममें; ईश्वर-प्रभाव-भगवान् की शक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तब श्रीवास ठाकुर से कहा, "अरे श्रीवास, तुम्हारा स्वभाव ठीक नारद मुनि जैसा है। भगवान् का ऐश्वर्य तुम पर अपना सीधा असर कर रहा है।

इँहो दामोदर-स्वरूप—शुद्ध-व्रजवासी ।

ऐश्वर्य ना जाने इँहो शुद्ध-प्रेमे भासि' ॥ 217॥

इँहो–यहाँ; दामोदर-स्वरूप-दामोदर स्वरूप गोस्वामी; शुद्ध-व्रज-वासी-वृन्दावन के एक शुद्ध निवासी; ऐश्वर्य ना जाने-वे ऐश्वर्य नहीं जानते हैं; इँहो-वे; शुद्ध-प्रेमे-शुद्ध भक्ति में; भासि'-तैर रहे हैं।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर वृन्दावन के शुद्ध भक्त हैं। वे इतना भी नहीं जानते कि ऐश्वर्य क्या होता है, क्योंकि वे शुद्ध भक्ति में ही डूबे रहते हैं।"

स्वरूप कहे,—श्रीवास, शुन सावधाने ।

वृन्दावन-सम्पद्तोमार नाहि पड़े मने? ॥ 218॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहा; श्रीवास–मेरे प्रिय श्रीवास; शुन सावधाने-कृपया ध्यान से सुनो; वृन्दावन-सम्पद्-वृन्दावन की सम्पत्ति; तोमार-तुम्हारे; नाहि-नहीं; पड़े-पड़ती; मने-मन में।

अनुवाद

तब स्वरूप दामोदर ने उलटकर कहा, "अरे श्रीवास, तुम मेरी बात ध्यान से सुनो। तुम वृन्दावन के दिव्य ऐश्वर्य को भूल गये हो।

वृन्दावने साहजिक ग्रे सम्पत्सिन्धु ।

द्वारका-वैकुण्ठ-सम्पत्—तार एक बिन्दु ॥ 219॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; साहजिक-स्वाभाविक; ये-जो कुछ; सम्पत्-सिन्धुसम्पत्ति का सागर; द्वारका-द्वारका का; वैकुण्ठ-सम्पत्-वैकुण्ठ के सभी ऐश्वर्य; तार-उसका; एक बिन्दु-एक बिन्दु।

अनुवाद

"वृन्दावन का प्राकृतिक ऐश्वर्य एक समुद्र के समान है। द्वारका तथा वैकुण्ठ का ऐश्वर्य एक बूंद के बराबर भी नहीं है।

परम पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् ।

कृष्ण याहाँ धनी ताहाँ वृन्दावन-धाम ॥ 220॥

परम पुरुष-उत्तम–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; स्वयम् भगवान्–स्वयं भगवान्; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; याहाँ-जहाँ; धनी–वास्तव में धनी; ताहाँ-वहाँ; वृन्दावन-धाम-वृन्दावन धाम।

अनुवाद

"श्रीकृष्ण समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और उनका पूर्ण ऐश्वर्य केवल वृन्दावन धाम में ही प्रकट होता है।

चिन्तामणि-मय भूमि रत्नेर भवन ।

चिन्तामणि-गण दासी-चरण-भूषण ॥ 221॥

चिन्तामणि-मय-दिव्य चिन्तामणि पत्थर से बनी; भूमि-भूमि; रत्नेर-रत्नों की; भवन-मूल-स्रोत; चिन्तामणि-गण-ऐसे चिन्तामणि पत्थर; दासी-चरण-भूषण-वृन्दावन की दासियों के पाद-आभूषण।

अनुवाद

"वृन्दावन धाम दिव्य चिन्तामणि से बना है। इसकी पूरी भूमि बहुमूल्य रत्नों की खान है और चिन्तामणि का प्रयोग वृन्दावन की दासियों के चरणकमलों को अलंकृत करने के लिए किया जाता है।

कल्पवृक्ष-लतार—याहाँ साहजिक-वन ।

पुष्प-फल विना केह ना मागे अन्य धन ॥ 222॥

कल्प-वृक्ष-लतार–लताएँ तथा कल्पवृक्ष; याहाँ–जहाँ; साहजिक-वन-सहज वन; पुष्प-फल विना-पुष्प और फल के अलावा; केह-कोई भी; ना मागे-नहीं चाहता; अन्य-अन्य कोई; धन-सम्पत्ति।

अनुवाद

वृन्दावन कल्पवृक्ष तथा लताओं का प्राकृतिक वन है और वृन्दावन के निवासियों को इन कल्पवृक्षों के फल और फूल के अतिरिक्त किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं रहती।

अनन्त काम-धेनु ताहाँ फिरे वने वने ।

दुग्ध-मात्र देन, केह ना मागे अन्य धने ॥ 223॥

अनन्त-असीम; काम-धेनु-कामधेनु; ताहाँ-वहाँ; फिरे-चरती हैं वने वने-वन-वन में; दुग्ध-मात्र देन-केवल दूध देती है; केह-कोई भी; ना-नहीं; मागे-चाहता; अन्य धने-कोई और सम्पत्ति।

अनुवाद

"वृन्दावन में कामधेनु गौएँ हैं जिनकी संख्या अनन्त है। वे एक जंगल से दूसरे जंगल में चरती हैं और केवल दूध देती हैं। लोगों को और कुछ भी नहीं चाहिए।

सहज लोकेर कथा—याहाँ दिव्य-गीत ।

सहज गमन करे,—यैछे नृत्य-प्रतीत ॥ 224॥

सहज लोकेर कथा-सामान्य लोगों का स्वाभाविक वाणी; याहाँ -जहाँ; दिव्य-गीत-दिव्य संगीत; सहज गमन–सहज चलना; करे-वे करते हैं; यैछे-की तरह; नृत्य-प्रतीत-नृत्य प्रतीत होने वाला।

अनुवाद

"वृन्दावन के लोगों की सहज वाणी संगीत जैसी लगती है और उनकी सहज चाल नृत्य जैसी प्रतीत होती है।

सर्वत्र जल—याहाँ अमृत-समान ।

चिदानन्द ज्योतिः स्वाद्य—याहाँ मूर्तिमान् ॥ 225॥

सर्वत्र-हर जगह; जल-जल; याहाँ-जहाँ; अमृत-समान-अमृत समान; चित्-आनन्द-दिव्य आनन्द; ज्योतिः-ज्योति; स्वाद्य-अनुभव होता है; याहाँ-जहाँ; मूर्तिमान्–मूर्तिमान् ।

अनुवाद

"वृन्दावन का जल अमृत के समान होता है और वहाँ ब्रह्मज्योति का तेज जो दिव्य आनन्द से परिपूर्ण है, साक्षात् दृष्टिगोचर होता है।

लक्ष्मी जिनि' गुण याहाँ लक्ष्मीर समाज ।

कृष्ण-वंशी करे याहाँ प्रिय-सखी-काय ॥ 226॥

लक्ष्मी-लक्ष्मी देवी; जिनि'–जीतकर; गुण-गुण; याहाँ–जहाँ; लक्ष्मीर समाज-गोपियों का समाज; कृष्ण-वंशी-भगवान् कृष्ण की वंशी; करे-अपने हाथ में; याहाँ-जहाँ; प्रिय-सखी-काय-एक प्रिय सखी।

अनुवाद

"वहाँ गोपियाँ भी लक्ष्मियाँ हैं और वे वैकुण्ठ में रहने वाली लक्ष्मी को मात करती हैं। वृन्दावन में भगवान् कृष्ण अपनी प्रिय संगिनी दिव्य वंशी को सदैव बजाते रहते हैं।

श्रियः कान्ताः कान्तः परम-पुरुषः कल्प-तरवो

द्रुमा भूमिश्चिन्तामणि-गण-मयी तोयममृतम् ।

कथा गानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रिय-सखी

चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च ॥ 227॥

श्रियः-भाग्य की देवी; कान्ताः-सखियाँ; कान्तः–भोक्ता; परम-पुरुषः-परम पुरुष; कल्प-तरवः-कल्पवृक्ष ; द्रुमाः-सारे वृक्ष; भूमिः-भूमि; चिन्तामणि-गण-मयी-दिव्य चिन्तामणि रत्न से निर्मित; तोयम्-जल; अमृतम्-अमृत; कथा-वार्तालाप; गानम्-संगीत; नाट्यम्-नृत्य; गमनम्-चलना फिरना; अपि-भी; वंशी-वंशी; प्रिय-सखी-नित्य सखी; चित्-आनन्दम्-दिव्य आनन्द; ज्योतिः-ज्योति; परम्-परम; अपि-भी; तत्-वह; आस्वाद्यम्-हर जगह देखी जाती है; अपि च-भी।

अनुवाद

"वृन्दावन की ललनाएँ-गोपियाँ–सर्वोपरि लक्ष्मियाँ हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ही वृन्दावन में भोक्ता हैं। वहाँ के सारे वृक्ष कल्पतरु हैं और वहाँ की भूमि दिव्य चिन्तामणि पत्थर की बनी हुई है। यहाँ का जल अमृत है, वहाँ का वार्तालाप संगीत होता है, चलना-फिरना नृत्य होता है और बाँसुरी कृष्ण की चिरसंगिनी है। सर्वत्र दिव्य आनन्द का तेज अनुभव किया जाता है, अतएव वृन्दावन धाम ही एकमात्र आस्वाद्य धाम है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण ब्रह्म-संहिता (5.56) से है।

चिन्तामणिश्चरण-भूषणमङ्गनानां

शृङ्गार-पुष्प-तरवस्तरवः सुराणाम् ।

वृन्दावने व्रज-धनं ननु काम-धेनु-

वृन्दानि चेति सुख-सिन्धुरहो विभूतिः ॥ 228॥

चिन्तामणिः-दिव्य चिन्तामणि; चरण-चरणकमल का; भूषणम्-आभूषण; अङ्गनानाम्-वृन्दावन की सभी महिलाओं का; शृङ्गार-श्रृंगार के लिए; पुष्प-तरवः-पुष्प-वृक्ष; तरवः सुराणाम्-देवताओं के वृक्ष (कल्पवृक्ष); वृन्दावने-वृन्दावन में; व्रज-धनम्-व्रज के निवासियों की विशेष सम्पत्ति; ननु-अवश्य; काम-धेनु-कामधेनु गौओं के; वृन्दानि–समूहों; च-और; इति–इस प्रकार; सुख-सिन्धुः-सुख का सागर; अहो-कितनी ही; विभूतिः-ऐश्वर्य।

अनुवाद

"व्रजभूमि की ललनाओं के पायल (नूपुर) चिन्तामणि पत्थर के बने हुए हैं। यहाँ के वृक्ष कल्पतरु हैं और उनके फूलों से गोपियाँ अपने आपको सजाती हैं। वहाँ पर कामधेनु गौएँ भी हैं, जो असीम दूध देती हैं। ये धेनुएँ वृन्दावन की सम्पत्ति हैं। इस तरह वृन्दावन का वैभव बड़े ही आनन्द से प्रदर्शित होता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक बिल्वमंगल ठाकुर द्वारा रचित है और भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.173) से लिया गया है।

शुनि' प्रेमावेशे नृत्य करे श्रीनिवास ।

कक्ष-तालि बाजाय, करे अट्ट-अट्ट हास ॥229॥

शुनि'–सुनकर; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; नृत्य-नृत्य; करे-करने लगे; श्रीनिवास-श्रीवास ठाकुर; कक्ष-तालि-अपनी बगल में हथेलियों से; बाजाय-बजाकर; करे-की; अट्ट-अट्ट हास-बहुत ऊँचे अट्टहास करके।

अनुवाद

तब श्रीवास ठाकुर प्रेम से अभिभूत होकर नाचने लगे। वे अपनी काँख में हथेली मारकर आवाज निकालने लगे और जोर-जोर से हँसने लगे।

राधार शुद्ध-रस प्रभु आवेशे शुनिल ।

सेइ रसावेशे प्रभु नृत्य आरम्भिल ॥ 230॥

राधार–श्रीमती राधारानी का; शुद्ध-रस-शुद्ध दिव्य रस; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; आवेशे शुनिल-आवेश में आकर सुना; सेइ-उसी; रस-आवेशे-दिव्य प्रेम में मग्न होकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; नृत्य आरम्भिल-नृत्य करने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीमती राधारानी के शुद्ध दिव्य रस की इन व्याख्याओं को सुना, तो वे दिव्य प्रेम-भाव में मग्न होकर नाचने लगे।

रसावेशे प्रभुर नृत्य, स्वरूपेर गान ।

‘बल’ 'बल’ बलि’ प्रभु पाते निज-काण ॥ 231॥

रस-आवेशे–रसावेश में प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; नृत्य-नृत्य; स्वरूपेर गान-और स्वरूप दामोदर का गायन; बल बल-कहते चलो, कहते चलो; बलि’–कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; पाते–फैला दिये; निज-काण-अपने कान।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु रस के आवेश में नाच रहे थे और स्वरूप दामोदर गा रहे थे तो महाप्रभु ने कहा, “गाते रहो! गाते रहो!” फिर महाप्रभु ने अपने कान फैला दिये।

व्रज-रस-गीत शुनि’ प्रेम उथलिल ।

पुरुषोत्तम-ग्राम प्रभु प्रेमे भासाइल ॥ 232॥

व्रज-रस-गीत-श्री वृन्दावन धाम के रस से सम्बन्धित गीत; शुनि’–सुनकर; प्रेम-दिव्य आनन्द; उथलिल–जाग पड़ा; पुरुषोत्तम-ग्राम-पुरुषोत्तम नामक (जगन्नाथ पुरी) स्थान; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रेमे-दिव्य प्रेम में; भासाइल-डूब गया।

अनुवाद

इस तरह वृन्दावन के गीत सुनकर महाप्रभु का प्रेम जाग्रत हुआ। इस तरह उन्होंने पुरुषोत्तम ग्राम अर्थात् जगन्नाथ पुरी को भगवत्प्रेम से आप्लावित कर दिया।

लक्ष्मी देवी यथा-काले गेला निज-घर ।

प्रभु नृत्य करे, हैल तृतीय प्रहर ॥233॥

लक्ष्मी देवी लक्ष्मी देवी; यथा-काले उचित समय पर; गेला–लौट गईं; निज-घर-अपने घर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; नृत्य करे–नृत्य करते हुए; हैल-हो गया; तृतीय प्रहर–दिन की तीसरा पहर।

अनुवाद

अन्ततः लक्ष्मीजी अपने घर लौट गईं। अभी श्री चैतन्य महाप्रभु नाच ही रहे थे कि तीसरा पहर हो गया।

चारि सम्प्रदाय गान करि' बहु श्रान्त हैल ।

महाप्रभुर प्रेमावेश द्विगुण बाड़िल ॥ 234॥

चारि सम्प्रदाय-संकीर्तन के चारों दल; गान करि'-गायन के पश्चात्; बहु-बहुत; श्रान्त हैल-थक गये; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; प्रेम-आवेश-प्रेमावेश; द्वि-गुण-दो गुना; बाड़िल-बढ़ गया।

अनुवाद

काफी गाने के बाद चारों संकीर्तन-टोलियाँ थक गईं, लेकिन महाप्रभु का प्रेमावेश बढ़कर दुगुना हो गया।

राधा-प्रेमावेशे प्रभु हैला सेइ मूर्ति ।

नित्यानन्द दूरे देखि' करिलेन स्तुति ॥ 235॥

राधा-प्रेम-आवेशे–श्रीमती राधारानी के प्रेमावेश में; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; हैला-हो गये; सेइ मूर्ति-उसी रूप जैसे; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु ने; दूरे देखि'-दूर से देखकर; करिलेन स्तुति-प्रार्थना की।

अनुवाद

श्रीमती राधारानी के प्रेमावेश में डूबकर नाचते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हीं के रूप में दिखने लगे। नित्यानन्द प्रभु, जो दूर से इस रूप को देख रहे थे, उनकी स्तुति करने लगे।

नित्यानन्द देखिया प्रभुर भावावेश ।

निकटे ना आइसे, रहे किछु दूर-देश ॥ 236 ॥

नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; देखिया-देखकर, प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; भाव-आवेश-प्रेमावेश; निकटे-पास; ना आइसे नहीं आये; रहे-रहे; किछु–थोड़े से; दूर-देश-दूर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के भावावेश को देखकर नित्यानन्द प्रभु उनके निकट नहीं गये और कुछ दूरी पर ही रहे।

नित्यानन्द विना प्रभुके धरे कोन्जन ।

प्रभुर आवेश ना झाय, ना रहे कीर्तन ॥ 237॥

नित्यानन्द विना-नित्यानन्द प्रभु के अतिरिक्त; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को; धरे-पकड़ सकता था; को जन-कौन व्यक्ति; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आवेश-प्रेम-भाव; ना याय-नहीं रुक सका; ना रहे-जारी न रखा जा सका; कीर्तन-कीर्तन।

अनुवाद

केवल नित्यानन्द प्रभु ही ऐसे थे, जो महाप्रभु को पकड़ सकते थे, किन्तु महाप्रभु का आवेश रुकने का नाम नहीं ले रहा था। उस समय कीर्तन भी नहीं चालू रखा जा सकता था।

भङ्गि करि' स्वरूप सबार श्रम जानाइल ।

भक्त-गणेर श्रम देखि' प्रभुर बाह्य हैल ॥ 238॥

भङ्गि करि'-संकेत करके; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; सबार-सबकी; श्रम-थकावट; जानाइल-बताई; भक्त-गणेर-भक्तों की; श्रम-थकावट; देखि'-देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; बाह्य हैल-बाहरी चेतना आई।

अनुवाद

तब स्वरूप दामोदर ने महाप्रभु को बतलाया कि सारे भक्त थक गये हैं। यह दशा देखकर महाप्रभु को बाह्य चेतना आ गई।

सब भक्त लञा प्रभु गेला पुष्पोद्याने ।

विश्राम करिया कैला माध्याह्निक स्नाने ॥ 239॥

सब भक्त लञा-सभी भक्तों के साथ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला-गये; पुष्प-उद्याने-पुष्प-उद्यान में; विश्राम करिया-विश्राम करके; कैला–किया; माध्याह्निक स्नाने-मध्याह्न में स्नान।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु सभी भक्तों को लेकर फूल के बगीचे में आये। वहाँ पर थोड़ी देर विश्राम करने के बाद उन्होंने दोपहर का स्नान किया।

जगन्नाथेर प्रसाद आइल बहु उपहार ।

लक्ष्मीर प्रसाद आइल विविध प्रकार ॥ 240॥

जगन्नाथेर प्रसाद-जगन्नाथ का प्रसाद; आइल-आ गया; बहु-बहुत; उपहार-भेंट; लक्ष्मीर प्रसाद–लक्ष्मी देवी का प्रसाद; आइल-आ पहुँचा; विविध प्रकार–विविध प्रकार का।

अनुवाद

तभी श्री जगन्नाथजी पर चढ़ाया गया विविध प्रकार का पर्याप्त प्रसाद आया और इसके बाद लक्ष्मीजी पर अर्पित विविध प्रकार का प्रसाद भी आया।

सबा लञा नाना-रङ्गे करिला भोजन ।

सन्ध्या स्नान करि' कैल जगन्नाथ दरशन ॥ 241॥

सबा लञा-सभी भक्तों के साथ; नाना-रङ्गे–अत्यन्त आनन्द सहित; करिला भोजन-भोजन किया; सन्ध्या स्नान करि'–सन्ध्या-स्नान करने के बाद; कैल-किया; जगन्नाथ दरशन-भगवान् जगन्नाथ का दर्शन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने दोपहर का भोजन किया और शाम को स्नान करने के बाद वे जगन्नाथजी का दर्शन करने गये।

जगन्नाथ देखि' करेन नर्तन-कीर्तन ।

नरेन्द्रे जल-क्रीड़ा करे लञा भक्त-गण ॥ 242॥

जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ का; देखि'–दर्शन करके; करेन-किया; नर्तन-कीर्तन-नृत्य तथा कीर्तन; नरेन्द्रे-नरेन्द्र सरोवर में; जल-क्रीड़ा-जल-क्रीड़ा; करे-की; लञा भक्त-गण-भक्तों के साथ।

अनुवाद

भगवान जगन्नाथ को देखते ही श्री चैतन्य महाप्रभु नाचने और कीर्तन करने लगे। तत्पश्चात् अपने भक्तों के साथ उन्होंने नरेन्द्र सरोवर में जलक्रीड़ा की।

उद्याने आसिया कैल वन-भोजन ।

एइ-मत क्रीड़ा कैल प्रभु अष्ट-दिन ॥243॥

उद्याने उद्यान में; आसिया-आकर; कैल-किया; वन-भोजन-वन में भोजन; एइ-मत-इस प्रकार; क्रीड़ा-लीलाएँ, कैल-कीं; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; अष्ट-दिन-लगातार आठ दिन तक।

अनुवाद

तत्पश्चात् फूल के बगीचे में आकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने भोजन किया। इस तरह आठ दिनों तक महाप्रभु सभी प्रकार की लीलाएँ लगातार करते रहे।

आर दिने जगन्नाथेर भितर-विजय ।

रथे चड़ि' जगन्नाथ चले निजालय ॥244॥

आर दिने-अगले दिन; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ के; भितर-विजय-मन्दिर के अन्दर से बाहर आकर; रथे चड़ि'–रथ पर चढ़कर; जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ; चले-लौट गये; निज-आलय-अपने घर को।

अनुवाद

अगले दिन भगवान् जगन्नाथ मन्दिर से बाहर निकले और रथ पर चढ़कर अपने धाम वापस चले गये।

पूर्ववत्कैल प्रभु लञा भक्त-गण ।

परम आनन्दे करेन नर्तन-कीर्तन ॥ 245॥

पूर्व-वत्-पहले की तरह किया; कैल–किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; लञा-लेकर; भक्त-गण-सभी भक्तों को; परम आनन्दे-परम आनन्द सहित; करेन-किया; नर्तन-कीर्तन-नर्तन कीर्तन।

अनुवाद

पहले की तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्त पुनः परम आनन्दित होकर कीर्तन करने और नाचने लगे।

जगन्नाथेर पुनः पाण्डु-विजय हइल ।

एक गुटि पट्ट-डोरी ताँहा टुटि' गेल ॥ 246॥

जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ; पुनः-का पुनः; पाण्डु-विजय-भगवान् को उठाने का उत्सव; हइल-था; एक गुटि–एक गुच्छा; पट्ट-डोरी–रेशमी रस्सियाँ; ताँहा-वहाँ; टुटि' गेल-टूट गई।

अनुवाद

पाण्डुविजय के समय भगवान् जगन्नाथ को जब ले जाये जा रहे थे, तो रेशमी डोरियों का एक गुच्छा टूट गया।

पाण्डु-विजयेर तुलि फाटि-फुटि याय ।

जगन्नाथेर भरे तुला उड़िया पलाय ॥ 247॥

पाण्डु-विजयेर–पाडूँ-विजय के उत्सव के; तुलि–रूई के गुच्छे; फाटि-फुटि याय-टूट फूट गये; जगन्नाथेर भरे-भगवान जगन्नाथ के भार से; तुला-रूई; उड़िया पलाय-हवा में उड़ने लगी।

अनुवाद

जब जगन्नाथ के अर्चाविग्रह को ले जाया जाता है, तो उन्हें थोड़ी-थोड़ी दूरी पर रुई के गद्दों पर रखा जाता है। जब रस्सियाँ टूट गईं, तो जगन्नाथजी के भार से रुई के गद्दे भी टूट गये और उनकी रुई हवा में उड़ने लगी।

कुलीन-ग्रामी रामानन्द, सत्यराज खाँन ।

तौरे आज्ञा दिल प्रभु करिया सम्मान ॥248॥

कुलीन-ग्रामी–कुलीन ग्राम के निवासी; रामानन्द-रामानन्द; सत्यराज खाँन-सत्यराज खान; तौरे–उनको; आज्ञा दिल-आज्ञा दी; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करिया सम्मान–बहुत आदर सहित।

अनुवाद

उस शाम कुलीन ग्राम के रामानन्द वसु तथा सत्यराज खान उपस्थित थे, अतः श्री चैतन्य महाप्रभु ने बड़े आदर के साथ उन्हें यह आदेश दिया।

एइ पट्ट-डोरीर तुमि हओ यजमान ।

प्रति-वत्सर आनिबे 'डोरी' करिया निर्माण ॥ 249॥

एइ पट्ट-डोरीर-इन रेशमी; तुमि-रस्सियों का तुम; हओ-हो जाओ; यजमान–पूजा करने वाले प्रति-वत्सर–प्रति वर्ष; आनिबे-तुम्हें लानी चाहिए; डोरी-रस्सियाँ; करिया निर्माण-बनाकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द वसु और सत्यराज खान दोनों को आदेश दिया कि वे इन रस्सियों के पूजक बनें और अपने गाँव से प्रतिवर्ष रेशमी डोरियाँ लाया करें।

तात्पर्य

ऐसा प्रतीत होता है कि कुलीन ग्राम के स्थानीय निवासी रेशमी रस्सियाँ तैयार करते थे, अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द वसु तथा सत्यराज खान से कहा कि वे प्रतिवर्ष जगन्नाथ की सेवा में रस्सियाँ लाया करें।

एत बलि' दिल ताँरे छिण्डा पट्ट-डोरी।

इहा देखि' करिबे डोरी अति दृढ़ करि' ॥ 250॥

एत बलि'–यह कहकर; दिल-दी; ताँरे–उनको; छिण्डा-टूटी हुई; पट्ट-डोरी-रेशमी रस्सियाँ; इहा देखि'–यह देखकर; करिबे-तुम्हें बनानी चाहिए; डोरी-रस्सियाँ; अति-बहुत; दृढ़ करि'–मजबूत करके।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें टूटी रेशमी डोरियाँ दिखलाईं और कहा, "इस नमूने को देखो। तुम इनसे अधिक मजबूत रस्सियाँ बनाना।"

एइ पट्ट-डोरीते हय 'शेष'-अधिष्ठान।

दश-मूर्ति हञा येंहो सेवे भगवान् ॥ 251॥

एइ पट्ट-डोरीते—इस रस्सी में; हय-हैं; शेष-अधिष्ठान–शेष नाग का निवास; दश-मूर्ति हञा–दस रूपों में विस्तार कर; येंहो-जो; सेवे-पूजा करते हैं; भगवान्-भगवान् की।

अनुवाद

फिर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द वसु और सत्यराज खान को बतलाया कि यह रस्सी उन भगवान् शेष का धाम है, जो दश रूपों में विस्तार करके पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा करते हैं।

तात्पर्य

शेष नाग के वर्णन के लिए कृपया आदिलीला 5.123-124 देखें।

भाग्यवान्सत्यराज वसु रामानन्द।

सेवा-आज्ञा पाञा हैल परम-आनन्द ॥ 252॥

भाग्यवान्-अत्यन्त भाग्यवान्; सत्यराज-सत्यराज; वसु रामानन्द-रामानन्द वसु; सेवा-आज्ञा-सेवा की आज्ञा ; पाञा-पाकर; हैल-हो गये; परम-परम; आनन्द-आनन्दित।

अनुवाद

महाप्रभु से सेवा करने का आदेश पाकर भाग्यशाली सत्यराज तथा रामानन्द वसु परम प्रसन्न हुए।

प्रति वत्सर गुण्डिचाते भक्त-गण-सङ्गे ।

पट्ट-डोरी लञा आइसे अति बड़ रङ्गे ॥ 253 ॥

प्रति वत्सर–प्रति वर्ष; गुण्डिचाते-गुण्डिचा मन्दिर को साफ करने का उत्सव; भक्त-गण-सङ्गे-दूसरे भक्तों के साथ; पट्ट-डोरी-रेशमी रस्सियाँ; लञा-लेकर; आइसे–आये; अति-बहुत; बड़-बड़े; रङ्गे–हर्ष के साथ।

अनुवाद

उसके बाद वर्षानुवर्ष जब गुण्डिचा मन्दिर की सफाई होती, तो सत्यराज तथा रामानन्द वसु अन्य भक्तों के साथ आते और प्रसन्नतापूर्वक रेशमी डोरी लाते।

तबे जगन्नाथ याइ' वसिला सिंहासने ।

महाप्रभु घरे आइला लञा भक्त-गणे ॥ 254॥

तबे-उसके बाद; जगन्नाथ-भगवान् जगन्नाथ; याइ'-जाकर; वसिला-विराजमान हो गये; सिंहासने-अपने सिंहासन पर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; घरे-अपने निवासस्थान को; आइला-लौट गये; लञा–लेकर; भक्त-गणे-भक्तों को।

अनुवाद

इस तरह जगन्नाथजी अपने मन्दिर लौट आये और अपने सिंहासन पर आसीन हुए। श्री चैतन्य महाप्रभु भी अपने भक्तों सहित अपने निवासस्थान पर लौट आये।

एइ-मत भक्त-गणे यात्रा देखाइल ।

भक्त-गण लञा वृन्दावन-केलि कैल ॥ 255॥

एइ-मत-इस प्रकार; भक्त-गणे-सभी भक्तों को; यात्रा–रथयात्रा उत्सव; देखाइल-दिखाया; भक्त-गण-भक्तों के; लञा-साथ; वृन्दावन-केलि-वृन्दावन की लीलाएँ; कैल-कीं।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों को रथयात्रा उत्सव दिखलाया और उनके साथ वृन्दावन लीला सम्पन्न की।

चैतन्य गोसाञि लीला—अनन्त, अपार ।

'सहस्र-वदन' यार नाहि पाय पार ॥ 256 ॥

चैतन्य-गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु की; लीला-लीलाएँ; अनन्त-अनन्त; अपार-असीम; सहस्र-वदन-भगवान् शेष जिनके हजारों मुख हैं; यार-जिनकी; नाहि-नहीं; पाय-मिलती; पार–सीमा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अनन्त और अपार हैं। यहाँ तक कि सहस्र-वदन शेष नाग भी उनकी लीलाओं का पार नहीं पा सकते।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 257॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; यार–जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों पर प्रार्थना करते हुए तथा उनकी कृपा की सदा कामना करते हुए मैं, कृष्णदास उन्हीं के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस तरह श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के चौदहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें वृन्दावन-लीलाओं और हेरापञ्चमी यात्रा का वर्णन हुआ है।

अध्याय पंद्रह

महाप्रभु द्वारा सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर प्रसाद स्वीकार करना

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में इस अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है : रथयात्रा उत्सव के बाद श्री अद्वैत आचार्य प्रभु ने पुष्पों तथा तुलसी दल से श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा की। बदले में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी थाल में बचे फूलों तथा तुलसीदल से अद्वैत आचार्य की पूजा योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते (आप जैसे भी हों-मैं आपका आदर करता हूँ) मन्त्र पढ़कर की। इसके बाद अद्वैत आचार्य प्रभु ने श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रसाद ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया। जब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों ने नन्दोत्सव मनाया, तब महाप्रभु ने ग्वालबाल का वेश धारण किया। इस तरह यह उत्सव अत्यन्त उल्लासपूर्ण रहा। इसके बाद महाप्रभु तथा उनके भक्तों ने विजयदशमी उत्सव मनाया-वह दिन जिस दिन भगवान् रामचन्द्र ने लंका को जीता था। इसमें सारे भक्त भगवान् रामचन्द्र के सैनिक बन गये और श्री चैतन्य महाप्रभु ने हनुमान के आवेश में विविध दिव्य आनन्ददायक कार्यकलाप कर दिखाये। तत्पश्चात् महाप्रभु तथा उनके भक्तों ने विविध अन्य उत्सव सम्पन्न किये।

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने सभी भक्तों से बंगाल लौट जाने को कहा। उन्होंने नित्यानन्द प्रभु को बंगाल में प्रचार-कार्य के लिए भेजा तथा उनके साथ रामदास, गदाधर दास तथा अन्य कुछ भक्तों को भी भेजा। इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने बड़ी नम्रता सहित श्रीवास ठाकुर के हाथ अपनी माता के लिए थोड़ा-सा जगन्नाथजी का प्रसाद तथा उनका वस्त्र भेजा। जब महाप्रभु ने राघव पण्डित, वासुदेव दत्त, कुलीन ग्राम के निवासियों तथा अन्य भक्तों को विदाई दी तो उन्होंने उनके दिव्य गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। रामानन्द वसु तथा सत्यराज खान ने कुछ प्रश्न पूछे और श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें आदेश दिया कि सभी गृहस्थ भक्तों को निरन्तर भगवन्नाम का कीर्तन करने वाले वैष्णवों की सेवा में ही लगना चाहिए। उन्होंने खण्ड के वैष्णवों को भी निर्देश दिया। इसी तरह सार्वभौम भट्टाचार्य तथा विद्यावाचस्पति को भी उपदेश दिया और भगवान् रामचन्द्र के चरणकमलों में दृढ़ श्रद्धा के लिए मुरारि गुप्त की प्रशंसा

की। वासुदेव दत्त की विनीत प्रार्थना पर विचार करते हुए उन्होंने यह सिद्ध किया कि भगवान् श्रीकृष्ण समस्त बद्धजीवों का उद्धार करने में समर्थ हैं।

तत्पश्चात् जब श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर प्रसाद ग्रहण कर रहे थे, तो सार्वभौम के दामाद अमोघ ने उनकी आलोचना करके परिवार में उत्पात खड़ा कर दिया। अगले ही दिन उसे विसूचिका रोग (हैजा) हो गया। तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने दया करके उसे बचाया और उसे भगवान् कृष्ण के नाम-कीर्तन के प्रति जाग्रत किया।

सार्वभौम-गृहे भुञ्जन्स्व-निन्दकममोघकम् ।

अङ्गी-कुर्वन्स्फुटां चक्रे गौरः स्वां भक्त-वश्यताम् ॥1॥

सार्वभौम-गृहे-सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर; भुञ्जन्–प्रसाद ग्रहण करते समय; स्व-निन्दकम्-उनकी निन्दा करने वाले व्यक्ति को; अमोघकम्-अमोघ नामक; अङ्गी-कुर्वन्–स्वीकार करके; स्फुटाम्-प्रकट किया; चक्रे–बनाया; गौरः-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; स्वाम्-अपने आपको; भक्त-वश्यताम्-अपने भक्तों का कृतज्ञ।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर प्रसाद ग्रहण कर रहे थे, तब अमोघ ने उनकी आलोचना की। फिर भी महाप्रभु ने अमोघ को स्वीकार करके दिखला दिया कि वे अपने भक्तों के कितने कृतज्ञ हैं।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय; नित्यानन्द नित्यानन्द प्रभु की; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत चन्द्र प्रभु की जय हो; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैतचन्द्र की जय हो तथा चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

जय श्री-चैतन्य-चरितामृत-स्रोता-गण ।

चैतन्य-चरितामृत—याँर प्राण-धन ॥ 3 ॥

जय-जय जय; श्री-चैतन्य-चरितामृत-श्रोता-गण-श्री चैतन्य चरितामृत के श्रोताओं की; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत; याँर-जिनका; प्राण-धन-प्राण तथा आत्मा।

अनुवाद

श्री चैतन्य-चरितामृत के श्रोताओं की जय हो, जिन्होंने इसे अपना प्राण तथा आत्मा मान रखा है।

एइ-मत महाप्रभु भक्त-गण-सङ्गे ।

नीलाचले रहि' करे नृत्य-गीत-रङ्गे ॥4॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; भक्त-गण-सङ्गे-अपने भक्तों के साथ; नीलाचले रहि'-नीलाचल, जगन्नाथ पुरी में ठहरकर; करे-किया; नृत्य-गीत-रङ्गे–अति प्रसन्न होकर गायन तथा नृत्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में रहते हुए अपने भक्तों के साथ निरन्तर कीर्तन और नर्तन का आनन्द लेते रहे।

प्रथमावसरे जगन्नाथ-दरशन ।

नृत्य-गीत करे दण्ड-परणाम, स्तवन ॥5॥

प्रथम-अवसरे दिन के आरम्भ में; जगन्नाथ-दरशन-प्रभु जगन्नाथ के दर्शन करके; नृत्य-गीत करे-नृत्य और गायन किया; दण्ड-परणाम-दण्डवत् प्रणाम किया; स्तवन-प्रार्थना (स्तुति) की।

अनुवाद

दिन आरम्भ होते ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने मन्दिर में भगवान् जगन्नाथ के अर्चाविग्रह के दर्शन किये, उन्हें नमस्कार किया, उनकी स्तुति की और उनके समक्ष नाचा-गाया।

'उपल-भोग' लागिले करे बाहिरे विजय ।

हरिदास मिलि' आइसे आपन निलय ॥ 6॥

उपल-भोग लागिले-उपल भोग लगाते समय; करे बाहिरे विजय-वे बाहर खड़े रहे; हरिदास मिलि'-हरिदास ठाकुर से मिलकर; आइसे-वापस आये; आपन निलय-अपने घर को।

अनुवाद

मन्दिर में जाने के बाद, श्री चैतन्य महाप्रभु उपलभोग के समय मन्दिर के बाहर रहते थे। तब वे हरिदास ठाकुर से मिलने जाते और फिर अपने निवासस्थान लौट आते थे।

तात्पर्य

दोपहर के समय जब भोग-वर्धन-खण्ड नामक स्थान में उपलभोग अर्पित किया जाता, तब श्री चैतन्य महाप्रभु मन्दिर के बाहर चले जाते। बाहर जाने के पूर्व वे गरुड़ स्तम्भ के पास खड़े होकर नमस्कार और प्रार्थना करते थे। बाद में सिद्धबकुल जाते, जहाँ हरिदास ठाकुर रहते थे। हरिदास ठाकुर से भेंट करने के बाद वे काशी मिश्र के घर लौट आते जहाँ पर वे रह रहे थे।

घरे वसि' करे प्रभु नाम सङ्कीर्तन ।

अद्वैत आसिया करे प्रभुर पूजन ॥7॥

घरे वसि'-अपने कमरे में बैठकर; करे-करते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नाम सङ्कीर्तन-माला पर जप; अद्वैत-अद्वैत आचार्य ने आकर; आसिया-आकर; करे–की; प्रभुर पूजन-महाप्रभु की पूजा।

अनुवाद

महाप्रभु अपने कमरे में बैठकर माला पर जप करते और अद्वैत प्रभु वहाँ पर महाप्रभु की पूजा करने आया करते।

सुगन्धि-सलिले देन पाद्य, आचमन ।

सर्वाङ्गे लेपये प्रभुर सुगन्धि चन्दन ॥8॥

सु-गन्धि-सलिले सुगन्धित जल; देन–दिया; पाद्य-पाँव धोने के लिए जल; आचमन-मुख धोकर; सर्व-अङ्गे-सारे शरीर पर; लेपये-लगाया; प्रभुर–महाप्रभु के; सु-गन्धि चन्दन–सुगन्धित चन्दन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा करते समय अद्वैत आचार्य उन्हें मुँह तथा पाँव धोने के लिए सुगन्धित जल दिया करते। फिर अद्वैत आचार्य महाप्रभु के पूरे शरीर में सुगन्धित चन्दन का लेप किया करते।

गले माला देन, माथाय तुलसी-मञ्जरी ।

योड़-हाते स्तुति करे पदे नमस्करि' ॥9॥

गले-गले में; माला-माला; देन–पहनाते; माथाय–सिर पर; तुलसी-मञ्जरी-तुलसी मंजरी; योड़-हाते-दोनों हाथ जोड़कर; स्तुति करे-स्तुति करते; पदे-चरणकमलों पर; नमस्करि'-नमस्कार करके।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य महाप्रभु के गले में फूल की माला और सिर पर तुलसी की मंजरी चढ़ाया करते थे। फिर हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार करते और उनकी स्तुति करते थे।

पूजा-पात्रे पुष्प-तुलसी शेष ये आछिल ।

सेइ सब लञा प्रभु आचार्ये पूजिल ॥10॥

पूजा-पात्रे-पूजा के फूल और तुलसी दल वाली प्लेट पर; पुष्प-तुलसी-पुष्प और तुलसी; शेष-शेष (बाकी); ये आछिल-जो कुछ वहाँ थे; सेइ सब-वे सब; लञा-लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; आचार्ये पूजिल-अद्वैत आचार्य की पूजा की।

अनुवाद

इस तरह अद्वैत आचार्य द्वारा पूजे जाने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु थाल में बचे फूलों तथा तुलसी मंजरी एवं जो कुछ सामग्री बची होती, उससे अद्वैत आचार्य की पूजा करते।

"योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते" एइ मन्त्र पड़े।

मुख-वाद्य करि' प्रभु हासाय आचार्येरे ॥11॥

यः असि-आप जो कुछ भी हैं; सः असि-आप वही हैं; नमः अस्तु ते–मैं आपको नमस्कार करता हूँ; एइ मन्त्र पड़े-यह मंत्र पढ़ते; मुख-वाद्य करि'–मुख में कुछ ध्वनि करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हासाय-हँसाते; आचार्येरे-अद्वैत आचार्य को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु "आप जैसे भी हो, हो। लेकिन मैं आपको नमस्कार करता हूँ"-इस मन्त्र का उच्चारण करके अद्वैत आचार्य की पूजा करते थे। इसके अतिरिक्त भी महाप्रभु अपने मुँह के भीतर कुछ ध्वनि करते, जिससे अद्वैत आचार्य को हँसी आ जाती।

एइ-मत अन्योन्ये करेन नमस्कार।

प्रभुरे निमन्त्रण करे आचार्य बार बार ॥12॥

एइ-मत-इस प्रकार; अन्योन्ये-एक दूसरे को; करेन-करते थे; नमस्कार–सादर नमस्कार; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण-निमंत्रण; करे-देते थे; आचार्य-अद्वैत आचार्य; बार बार-बारम्बार।

अनुवाद

इस तरह अद्वैत आचार्य तथा श्री चैतन्य महाप्रभु एक-दूसरे को सादर नमस्कार करते थे। तब अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को बारम्बार अपने यहाँ आने का निमन्त्रण देते।

आचार्येर निमन्त्रण—आश्चर्य-कथन।

विस्तारि' वणियाछेन दास-वृन्दावन ॥13॥

आचार निमन्त्रण-अद्वैत आचार्य का निमंत्रण; आश्चर्य-कथन-आश्चर्यजनक कथा; विस्तारि'–बहुत स्पष्ट रूप से; वर्णियाछेन-वर्णन किया है; दास-वृन्दावन-वृन्दावन दास ठाकुर।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य का निमन्त्रण दूसरी अद्भुत कथा है। इसका विस्तृत स्पष्ट वर्णन वृन्दावन दास ठाकुर ने किया है।

पुनरुक्ति हय, ताहा ना कैलुँ वर्णन ।

आर भक्त-गण करे प्रभुरे निमन्त्रण ॥14॥

पुनः-उक्ति–दोहराना; हय-है; ताहा-वह; ना-नहीं; कैलुँ-मैंने किया; वर्णन-वर्णन; आर भक्त-गण-अन्य भक्त; करे-करते; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण-निमंत्रण।

अनुवाद

चूँकि अद्वैत आचार्य के निमन्त्रण का वर्णन श्रील वृन्दावन दास ठाकुर कर चुके हैं, अतएव मैं इस कथा को नहीं दुहराऊँगा। किन्तु मैं यह कहूँगा कि अन्य भक्तों ने भी महाप्रभु को निमन्त्रण दिये।

एक एक दिन एक एक भक्त-गृहे महोत्सव ।

प्रभु-सङ्गे ताहाँ भोजन करे भक्त सब ॥15॥

एक एक दिन-प्रतिदिन; एक एक भक्त-गृहे-एक के बाद दूसरे भक्त के घर में; महोत्सव–महोत्सव; प्रभु-सङ्गे–श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; ताहाँ-वहाँ; भोजन-भोजन; करे–किया; भक्त-भक्तों ने; सब-सभी।

अनुवाद

प्रतिदिन एक के बाद दूसरा भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु तथा अन्य भक्तों को भोजन के लिए निमन्त्रण देता और अपने यहाँ उत्सव मनाता।

चारि-मास रहिला सबे महाप्रभु-सङ्गे ।

जगन्नाथेर नाना यात्रा देखे महा-रङ्गे ॥16॥

चारि-मास-चार मास; रहिला-रहे; सबे-सारे भक्त; महाप्रभु-सङ्गे–श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ के; नाना यात्रा-कई यात्रा उत्सव; देखे-उन्होंने देखे; महा-रङ्गे–अत्यन्त आनन्द के साथ।

अनुवाद

सारे भक्त लगातार चार मास तक जगन्नाथ पुरी में रहे और उन्होंने बड़े ही उत्साह के साथ भगवान् जगन्नाथ के सारे उत्सव मनाये।

कृष्ण-जन्म-यात्रा-दिने नन्द-महोत्सव ।

गोप-वेश हैला प्रभु लञा भक्त सब ॥ 17॥

कृष्ण-जन्म-यात्रा-कृष्ण जन्म का उत्सव; दिने-के दिन पर; नन्द-महोत्सव-कृष्ण के पिता नन्द महाराज द्वारा आयोजित उत्सव; गोप-वेश हैला–ग्वाल बाल की वेशभूषा अपनाई; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; लञा–लेकर; भक्त सब-सभी भक्तों को।

अनुवाद

भक्तों ने कृष्ण जन्माष्टमी उत्सव भी मनाया, जिसे नन्द महोत्सव भी कहा जाता है। इस अवसर पर श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों ने ग्वालों का वेश धारण किया।

दधि-दुग्ध-भार सबे निज-स्कन्धे करि' ।

महोत्सव-स्थाने आइला बलि 'हरि' 'हरि' ॥18॥

दधि-दुग्ध-दही एवं दूध के; भार–पात्र; सबे–वे सब; निज-स्कन्धे-अपने कन्धों पर; करि'-रखकर; महोत्सव-स्थाने-महोत्सव स्थान पर; आइला-आये; बलि हरि हरि–"हरि हरि" बोलते हुए।

अनुवाद

ग्वालों का वेश धारण करके तथा कंधे में बहँगी पर दूध तथा दही के बर्तन लेकर सारे भक्त 'हरि' 'हरि' का उच्चारण करते हुए महोत्सव-स्थल पर आये।

कानाञि-खुटिया आछेन 'नन्द'-वेश धरि' ।

जगन्नाथ-माहाति हञाछेन 'व्रजेश्वरी' ॥19॥

कानाञि-खुटिया-कानाइ खुटिया; आछेन-है; नन्द-वेश धरि'–नन्द महाराज का वेश धारण करके; जगन्नाथ-माहाति-जगन्नाथ माहाति; हञाछेन-था; व्रजेश्वरी-माता यशोदा।

अनुवाद

कानाइ खुटिया ने नन्द महाराज का वेश बनाया और जगन्नाथ माहाति ने माता यशोदा का वेश बना लिया।

आपने प्रतापरुद्र, आर मिश्र-काशी ।

सार्वभौम, आर पड़िछा-पात्र तुलसी ॥20॥

आपने प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र स्वयं; आर-और; मिश्र-काशी-काशी मिश्र; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; आर-और; पड़िछा-पात्र तुलसी-पड़िचापात्र तुलसी, मन्दिर का अध्यक्ष।

अनुवाद

उस समय काशी मिश्र, सार्वभौम भट्टाचार्य तथा तुलसी पड़िछापात्र समेत राजा प्रतापरुद्र भी वहाँ उपस्थित थे।

इँहा-सबा लञा प्रभु करे नृत्य-रङ्ग ।

दधि-दुग्ध हरिद्रा-जले भरे सबार अङ्ग ॥21॥

इँहा-सबा लञा-उन सबको लेकर; प्रभु-भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने; करे नृत्य-रङ्ग-प्रसन्न होकर नृत्य किया; दधि-दही; दुग्ध-दूध; हरिद्रा-हल्दी; जले-जल से; भरे-सरोबार कर दिये; सबार-उन सबके; अङ्ग–शरीर।

अनुवाद

सदैव की तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने उल्लासपूर्वक नृत्य किया। सारे लोग दूध, दही तथा हल्दी के पीले जल से सराबोर हो गये।

अद्वैत कहे,—सत्य कहि, ना करिह कोप ।

लगुड़ फिराइते पार, तबे जानि गोप ॥22॥

अद्वैत कहे-अद्वैत आचार्य ने कहा; सत्य कहि-मैं सत्य कहता हूँ; ना करिह कोप-कृपया क्रुद्ध न हो; लगुड़-डंडा; दण्ड; फिराइते पार—यदि आप घुमा सकते हो; तबे जानि-तब मैं समझेंगा; गोप-ग्वाल बाल।

अनुवाद

तभी श्रील अद्वैत आचार्य ने कहा, "आप नाराज न हों। मैं सच कह रहा हूँ। यदि आप इस लाठी को चन्द्राकार रूप में घुमा सको, तो मैं समझेंगा कि आप ग्वाले हो।"

तबे लगुड़ लञा प्रभु फिराइते लागिला ।

बार बार आकाशे फेलि' लुफिया धरिला ॥ 23 ॥

तबे-तब; लगुड़-छड़ी; लञा-लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; फिराइते लागिला-घुमाने लगे; बार बार-बारम्बार; आकाशे-आकाश में, फेलि'–फेंकते हुए; लुफिया-उन्होंने फिर; धरिला-पकड़ लिया।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य की चुनौती को स्वीकार करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने बड़ी-सी लाठी ली और वे उसे चारों ओर घुमाने लगे। वे बार-बार लाठी को आकाश में उछालते और गिरते समय पकड़ लेते।

शिरेर उपरे, पृष्ठे, सम्मुखे, दुइ-पाशे ।

पाद-मध्ये फिराय लगुड़, देखि' लोक हासे ॥24॥

शिरेर उपरे सिर के ऊपर; पृष्ठे-पीठ के पीछे; सम्मुखे-सामने; दुइ-पाशे-दोनों ओर; पाद-मध्ये दोनों पाँवों के बीच; फिराय-चारों ओर घुमाया; लगुड़-छड़ी को; देखि'–देखकर; लोक हासे-सारे लोग हँसने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी लाठी को घुमाते और उछालते और कभी-कभी अपने सिर पर ले जाते, कभी पीठ पीछे, कभी सामने, कभी बगल में और कभी दोनों पाँवों के बीच। यह देखकर सारे लोग हँसने लगे।

अलात-चक्रेर प्राय लगुड़ फिराय ।

देखि' सर्व-लोक-चित्ते चमत्कार पाय ॥25॥

अलात-चक्रेर-जलती मशाल का चक्र; प्राय-की भाँति; लगुड़ फिराय-छड़ी को घुमाइ; देखि'–देखकर; सर्व-लोक-सभी लोग; चित्ते–मन में; चमत्कार पाय-अत्यन्त चकित हो गये।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु लाठी को अग्निबाण (अलातचक्र) की तरह घुमा रहे थे, तो देखने वालों के हृदय चमत्कृत हो गये।

एइ-मत नित्यानन्द फिराय लगुड़।

के बुझिबे ताँहा बँहार गोप-भाव गूढ़ ॥26॥

एइ-मत-इस प्रकार; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु ने; फिराय लगुड़-छड़ी को घुमाइ; के-कौन; बुझिबे-समझेगा; ताँहा-वहाँ; हार–उन दोनों का; गोप-भाव-ग्वाल-भाव; गूढ़-बहुत गहरा।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने भी लाठी घुमाई। कौन समझ सकता है कि वे ग्वालों के भाव में कितने गहरे डूब गये थे?

प्रतापरुद्रेर आज्ञाय पड़िछा-तुलसी ।

जगन्नाथेर प्रसाद-वस्त्र एक लञा आसि ॥ 27॥

प्रतापरुद्रेर-राजा प्रतापरुद्र की; आज्ञाय-आज्ञा पाकर; पड़िछा-तुलसी–मन्दिर का अध्यक्ष तुलसी; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ का; प्रसाद-वस्त्र-उपयोग किया हुआ वस्त्र; एकएक; लञा–लेकर; आसि-आया।

अनुवाद

महाराज प्रतापरुद्र की आज्ञा पाकर मन्दिर का निरीक्षक तुलसी भगवान् जगन्नाथ के उतारे वस्त्रों में से एक वस्त्र ले आया।

बहु-मूल्य वस्त्र प्रभु-मस्तके बान्धिल ।

आचार्यादि प्रभुर गणेरे पराइल ॥28॥

बहु-मूल्य-बहुत मूल्यवान; वस्त्र-वस्त्र; प्रभु-मस्तके-श्री चैतन्य महाप्रभु के सिर पर; बान्धिल-लपेट दिया; आचार्य-आदि-अद्वैत आचार्य आदि; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; गणेरे-साथियों पर; पराइल-रखा।

अनुवाद

यह बहुमूल्य वस्त्र श्री चैतन्य महाप्रभु के सिर पर लपेट दिया गया। अद्वैत आचार्य आदि दूसरे भक्तों ने भी अपने सिरों पर इसी तरह वस्त्र लपेट लिये।

कानाजि-खुटिया, जगन्नाथ, दुइ-जन ।

आवेशे विलाइल घरे छिल यत धन ॥29॥

कानाजि-खुटिया–कानाइ खुटिया; जगन्नाथ–जगन्नाथ माहाति; दुइ-जन-दो व्यक्ति; आवेशे-प्रेमावेश में; विलाइल-बाँट दिया; घरे–घर पर; छिल–था; यत-सभी; धन-धन।

अनुवाद

कानाइ खुटिया जिसने भावावेश में नन्द महाराज का और जगन्नाथ माहाति जिसने माता यशोदा का वेश धरा था, घर में संचित सारे धन को बाँट दिया।

देखि' महाप्रभु बड़ सन्तोष पाइला ।

माता-पिता-ज्ञाने दुँहे नमस्कार कैला ॥ 30॥

देखि'–देखकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; बड़-बहुत; सन्तोष–सन्तोष; पाइला–पाया; माता-पिता-ज्ञाने-माता-पिता मानकर; दुँहे-दोनों को; नमस्कार कैला-नमस्कार किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु यह देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उन दोनों को अपना पिता तथा माता के रूप में स्वीकार करके नमस्कार किया।

परम-आवेशे प्रभु आइला निज-घर ।

एइ-मत लीला करे गौराङ्ग-सुन्दर ॥ 31॥

परम-आवेशे–महान् भावावेश में; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला–लौट गये; निज-घर–अपने निवास स्थान को; एइ-मत-इस प्रकार; लीला-लीलाएँ; करे–कीं; गौराङ्ग-सुन्दर-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु परम आवेश में अपने निवासस्थान पर लौट आये। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने, जो गौरांग सुन्दर के नाम से जाने जाते थे, विविध लीलाएँ कीं।

विजया-दशमी—लङ्का-विजयेर दिने ।

वानर-सैन्य कैला प्रभु लञा भक्त-गणे ॥ 32॥

विजया-विजय; दशमी-दशमी; लङ्का-विजयेर दिने-लंका पर विजय पाने का उत्सव दिन; वानर-सैन्य-वानर सेना; कैला-बनाई; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; लञा भक्त-गणे-सभी भक्तों को लेकर।

अनुवाद

लंका पर श्री रामचन्द्र की विजय का उत्सव, विजयादशमी मनाने के दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने सारे भक्तों को वानर सैनिकों का वेश धारण कराया।

हनुमानावेशे प्रभु वृक्ष-शाखा लञा ।

लङ्का-गड़े चड़ि' फेले गड़ भाङ्गिया ॥ 33 ॥

हनुमान्-आवेशे-हनुमान के भाव में; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; वृक्ष-शाखा लञा-एक वृक्ष की बड़ी शाखा लेकर; लङ्का-गड़े-लंका के किले पर; चड़ि-चढ़कर; फेले-तोड़ दिया; गड़-किले को; भाङ्गिया-ध्वस्त करके।

अनुवाद

हनुमान के आवेश में श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक विशाल वृक्ष की शाखा ले ली और लंका गढ़ की दीवालों पर चढ़कर वे उसे तहस-नहस करने लगे।

'काहाँरे राव्णा' प्रभु कहे क्रोधावेशे ।

'जगन्माता हरे पापी, मारिमु सवंशे ॥ 34॥

काहाँरे राणा-दुष्ट रावण कहाँ है; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कहे-कहा; क्रोध-आवेशे-क्रोध में आकर; जगत्-माता-जगत् माता; हरे-अपहरण किया; पापी-पापी; मारिमु-मैं मारूँगा; स-वंशे-उसके सारे परिवार सहित।

अनुवाद

हनुमान के भावावेश में श्री चैतन्य महाप्रभु ने क्रुद्ध होकर कहा, कहाँ है वह धूर्त रावण? उसने जगन्माता सीताजी का अपहरण किया है। अब मैं उसे तथा उसके सारे परिवार को मार डालूँगा।"

गोसाञि आवेश देखि' लोके चमत्कार।

सर्व-लोक 'जय' 'जय' बले बार बार॥ 35॥

गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आवेश-भावावेश; देखि'–देखकर; लोके–सभी लोग; चमत्कार–चकित रह गये; सर्व-लोक-सभी लोग; जय जय-जय जयकार; बले-बोलने लगे; बार बार-बारम्बार।

अनुवाद

सारे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु का आवेश देखकर अचम्भित हो गये और बारम्बार "जय हो! जय हो!" का घोष करने लगे।

एइ-मत रास-यात्रा, आर दीपावली।

उत्थान-द्वादशी यात्रा देखिला सकलि॥ 36॥

एइ-मत-इस प्रकार; रास-यात्रा-भगवान् कृष्ण का रास-नृत्य; आर-और; दीप-आवली–दीपावली का दिन जब दियों की पैंक्तियाँ जलाई जाती हैं; उत्थान-द्वादशी-यात्रा-उत्थान द्वादशी उत्सव; देखिला सकलि-उन सबने भाग लिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके सारे भक्तों ने रास-यात्रा, दीपावली तथा उत्थान द्वादशी इन सभी उत्सवों में भाग लिया।

तात्पर्य

दीपावली उत्सव कार्तिक मास (अक्टूबर-नवम्बर) की अँधेरी रात (अमावस्या) में पड़ता है। रासयात्रा अर्थात् भगवान् कृष्ण का रासनृत्य उसी मास की पूर्णिमा की रात्री को होता है। उत्थान द्वादशी उसी मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के एक दिन बाद पड़ती है। श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों ने इन सारे उत्सवों में भाग लिया।

एक-दिन महाप्रभु नित्यानन्दे लञा ।

दुइ भाइ युक्ति कैल निभृते वसिया ॥ 37॥

एक-दिन-एक दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नित्यानन्दे लञा-नित्यानन्द प्रभु को लेकर; दुई भाइ–दोनों भाइयों ने; युक्ति कैल-आपस में विचारविमर्श किया; निभृते वसिया–किसी एकान्त स्थान में बैठकर।

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु दोनों भाइयों ने एकान्त स्थान में बैठकर परस्पर विचार-विमर्श किया।

किबा युक्ति कैल दुँहे, केह नाहि जाने ।

फले अनुमान पाछे कैल भक्त-गणे ॥ 38॥

किबा युक्ति कैल-क्या विचार-विमर्श किया; दुँहे-उन दोनों ने; केह नाहि जाने-कोई नहीं जानता; फले-उसके परिणाम से; अनुमान-अनुमान; पाछे-बाद में; कैल-लगाया; भक्त-गणे-सभी भक्तों ने।

अनुवाद

यह कोई नहीं जान पाया कि दोनों भाइयों ने परस्पर क्या बातें कीं, किन्तु बाद में सभी भक्तों ने अनुमान लगा लिया कि उनका विषय क्या था।

तबे महाप्रभु सब भक्ते बोलाइल ।

गौड़-देशे याह सबे विदाय करिल ॥ 39॥

तबे महाप्रभु-उसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सब-सभी; भक्ते- भक्तों को; बोलाइल–बुलाया; गौड़-देशे-बंगाल में; ग्राह-लौट जाओ; सबे-सब को; विदाय करिल-विदा दी।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे भक्तों को बुलाकर उनसे बंगाल वापस जाने के लिए कहा। इस तरह उन्होंने उन सबको विदा किया।

सबारे कहिल प्रभु—प्रत्यब्द आसिया ।

गुण्डिचा देखिया याबे आमारे मिलिया ॥40॥

सबारे उन सबको; कहिल-कहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रति-अब्द-प्रति वर्ष; आसिया-आकर; गुण्डिचा-गुण्डीचा मन्दिर का उत्सव; देखिया-देखकर; याबे-तुम्हें जाना चाहिए; आमारे मिलिया-मुझे मिलने के बाद।

अनुवाद

सारे भक्तों को विदा करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे प्रार्थना की कि वे प्रति वर्ष उन्हें देखने जगन्नाथ पुरी वापस आते रहें और गुण्डिचा मन्दिर की सफाई देखें।

आचार्येरे आज्ञा दिल करिया सम्मान ।

'आ-चण्डाल आदि कृष्ण-भक्ति दिओ दान' ॥41॥

आचार्येरे-अद्वैत आचार्य को; आज्ञा दिल-आज्ञा दी; करिया सम्मान-अति सम्मान सहित; आ-चण्डाल-सबसे नीच व्यक्ति (चाण्डाल) को भी; आदि-आदि; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण-भक्ति का; दिओ-दो; दान-दान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यन्त सम्मानपूर्वक अद्वैत आचार्य से प्रार्थना की, "आप अधम से अधम व्यक्तियों (चण्डालों) को भी कृष्ण-भक्ति रूपी चेतना प्रदान करें।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का यह आदेश उनके सभी भक्तों के लिए है। कृष्ण-भक्ति हर एक के लिए उपलब्ध है, यहाँ तक कि चण्डालों जैसे अधम लोगों के लिए भी। श्री अद्वैत तथा नित्यानन्द प्रभु से आगे चलने वाली परम्परा में इस आदेश का पालन हमें करना चाहिए और बिना भेदभाव के विश्वभर में कृष्ण-भक्ति का वितरण करना चाहिए।

ब्राह्मणों से लेकर निम्नतम स्तर के चण्डालों तक के मनुष्यों के विभिन्न प्रकार हैं। इस कलियुग में, हर व्यक्ति को कृष्णभावनामृत का ज्ञान दिये जाने की आवश्यकता है, चाहे वह किसी भी पद पर स्थित क्यों न हो। यही आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। हर व्यक्ति को इस भौतिक अस्तित्व की वेदना का अनुभव हो रहा है। यहाँ तक कि अमरीकी सीनेट में भी संसार की दुर्दशा का अनुभव किया जाता है, जिससे 30 अप्रैल 1974 का दिन प्रार्थना दिवस के रूप में नियत कर दिया गया है। इस तरह हर एक को समाज में अवैध सम्बन्ध, मांसाहार, जुआ तथा नशा करने से उत्पन्न हुई कलियुग की दुर्दशा का अनुभव हो रहा है। अब समय आ गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के सदस्य विश्वभर में कृष्ण-भक्ति का वितरण करें और इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश का पालन करें। महाप्रभु ने हर एक को गुरु बनने का आदेश दिया है (चैतन्य-चरितामृत, मध्य7.128)-आमार आज्ञाय गुरु हा तार 'एइ देश। प्रत्येक नगर तथा प्रत्येक गाँव के हर व्यक्ति को श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं से आलोकित किया जाना चाहिए। कृष्ण-भक्ति का वितरण बिना किसी भेदभाव के किया जाना चाहिए। इस तरह समूचा विश्व शान्त तथा सुखी बनेगा और हर व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमा का गान करेगा, जैसी कि उनकी इच्छा है।

चण्डाल शब्द का अर्थ है कुत्ता खाने वाला व्यक्ति, जो मनुष्यों में सबसे निम्न माना जाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु के वरदान से चण्डाल भी कृष्णभावनामृत का लाभ उठा सकता है। कृष्ण-भक्ति किसी एक जाति की बपौती नहीं। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दिये गये इस महान् वरदान को कोई भी प्राप्त कर सकता है। हर व्यक्ति को इसे प्राप्त करने तथा सुखी बनने का अवसर दिया जाना चाहिए।

इस श्लोक में आया दान शब्द भी महत्त्वपूर्ण है। जो भी कृष्ण-भक्ति के वितरण में लगता है, वह दानी व्यक्ति है। पेशेवर लोग धन के बदले श्रीमद्भागवत सुनाते हैं और कृष्ण-भक्ति की चर्चा करते हैं। वे ऐसी उच्च दिव्य सम्पत्ति का वितरण हर किसी को नहीं कर सकते। केवल शुद्ध भक्त ही, जिनका ध्येय केवल कृष्ण-सेवा है, दान के रूप में ऐसे दिव्य अमूल्य वरदान का वितरण कर सकते हैं।

नित्यानन्दे आज्ञा दिल,— 'याह गौड़-देशे ।

अनर्गल प्रेम-भक्ति करिह प्रकाशे ॥42॥

नित्यानन्दे-नित्यानन्द प्रभु को; आज्ञा दिल-श्री चैतन्य महाप्रभु ने आज्ञा दी; ग्राह गौड़-देशे-गौड़ देश बंगाल को जाओ; अनर्गल-बिना रोक टोक के; प्रेम-भक्ति-प्रेमाभक्ति का; करिह प्रकाशे-प्रकाश करो।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को आज्ञा दी, "आप बंगाल जाओ और बिना किसी प्रतिबन्ध के कृष्ण-भक्ति अर्थात् कृष्णभावनामृत का प्राकट्य करो।"

तात्पर्य

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को आदेश दिया कि सारे बंगालियों को भक्ति प्रदान करें। भगवद्गीता (9.32) में भगवान् ने कहा है :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।

स्त्रियो वैश्यास्तथाशूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।।

"हे पृथा-पुत्र, जो मेरी शरण में आते हैं, वे भले ही निम्न जन्म वाले–स्त्रियाँ, वैश्य तथा शूद्र-क्यों न हों, वे परम गन्तव्य तक पहुँच सकते हैं।" जो भी कृष्णभावनामृत अंगीकार करता है और नियमों का पालन करता है, वह भगवद्धाम वापस जा सकता है।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में लिखा है, "प्राकृतिक सहजिया नामक तथाकथित भक्त नित्यानन्द प्रभु को सामान्य मनुष्य मानते हैं। उन्होंने यह अफवाह फैलाई कि महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को उड़ीसा से केवल इसलिये बंगाल वापस जाने का आदेश दिया कि वे वहाँ जाकर विवाह करें और बच्चे उत्पन्न करें। यह नित्यानन्द प्रभु के प्रति सचमुच महान् अपराध है।"

ऐसा अपराध पाषण्ड बुद्धि कहलाता है। ये अपराधी नित्यानन्द प्रभु को अपने जैसे एक सामान्य मनुष्य मानते हैं। वे यह नहीं जानते कि नित्यानन्द प्रभु विष्णु-तत्त्व स्वरूप हैं। नित्यानन्द प्रभु को सामान्य मनुष्य मानना कुणपात्मवादियों नाम से पहचाने जाने वाले मानसिक तर्कवादियों का कार्य है। ये लोग अपने आपको भौतिक शरीर मान बैठते हैं, जो कि तीन भौतिक तत्त्वों का थैला मात्र होता है (कुणपे त्रिधातुके)। वे सोचते हैं कि उन्हीं की तरह नित्यानन्द प्रभु का भी शरीर भौतिक था और इन्द्रियतृप्ति के लिए मिला था। जो भी इस प्राकर से सोचता है, वह नरक के घोरतम क्षेत्र में जाने का पात्र होता है। जो लोग कामिनी तथा कंचन के पीछे भागते हैं, जो अत्यन्त स्वार्थी हैं और व्यापारी वृत्ति रखते हैं, वे अपने उर्वर मस्तिष्क से अनेक वस्तुएँ खोज सकते हैं और प्रामाणिक शास्त्रों के विरुद्ध कुछ भी कह सकते हैं। वे अबोध लोगों को ठगकर धन कमाने का धंधा करते हैं और अपने धंधे को आधार देने के लिए ऐसे

ही अपराधपूर्ण वक्तव्य देते रहते हैं। वास्तव में नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के अंशावतार होने के कारण सर्वाधिक दयालु अवतार हैं। न तो उन्हें सामान्य मनुष्य समझना चाहिए, न ही प्रजापतियों में से एक, जिन्हें ब्रह्मा ने सन्तान उत्पन्न करके वंशों को बढ़ाने का आदेश दिया था। नित्यानन्द प्रभु को इन्द्रियतृप्ति के कारणस्वरूप नहीं समझे जाने चाहिए। यद्यपि पेशेवर तथाकथित उपदेशक प्रचारक इसका समर्थन करते हैं, किन्तु किसी भी प्रामाणिक शास्त्र से इसकी पुष्टि नहीं होती। वास्तव में सहजियों तथा कृष्ण-भक्ति के अन्य पेशेवर वितरकों के ऐसे वक्तव्यों का कोई आधार नहीं है।

राम-दास, गदाधर आदि कत जने ।

तोमार सहाय लागि' दिलु तोमार सने ॥43॥

राम-दास-राम दास; गदाधर-गदाधर दास; आदि–तथा अन्य; कत जने-कुछ लोग; तोमार-आपके; सहाय–सहायक; लागि'–के रूप में; दिलु-मैं देता हूँ; तोमार सने-आपके साथ।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु को रामदास, गदाधर दास तथा अन्य कुछ सहायक दिये गये। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं इन्हें आपकी सहायता के लिए दे रहा हूँ।

मध्ये मध्ये आमि तोमार निकट याइब ।

अलक्षिते रहि' तोमार नृत्य देखिब' ॥44॥

मध्ये मध्ये-बीच बीच में; आमि-मैं; तोमार निकट-आपके निकट; याइब- जाऊँगा; अलक्षिते रहि'-अदृश्य रहकर; तोमार नृत्य-आपका नृत्य; देखिब-मैं देखूँगा।

अनुवाद

"मैं बीच-बीच में आपको देखने आया करूँगा। मैं अदृश्य रहकर आपका नृत्य देखा करूँगा।"

श्रीवास-पण्डिते प्रभु करि' आलिङ्गन ।

कण्ठे धरि' कहे तारे मधुर वचन ॥ 45 ॥

श्रीवास-पण्डिते–श्रीवास पण्डित को; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करि'-करके; आलिङ्गन-आलिंगन; कण्ठे धरि'-उनके गले में बाँहे डालकर; कहे-कहा; ताँरे-उनको; मधुर वचन–मधुर वचन।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीवास पण्डित का आलिगंन किया और उनके गले में बाँहे डालकर उनसे मधुर वचन कहे।

तोमार घरे कीर्तने आमि नित्य नाचिब ।

तुमि देखा पाबे, आर केह ना देखिब ॥46॥

तोमार घरे-आपके घर में; कीर्तने-कीर्तन के समय; आमि-मैं; नित्य-नित्य; नाचिब-नृत्य करूँगा; तुमि-आप; देखा पाबे-देख सकोगे; आर-अन्य; केह-कोई; ना देखिब-न देख पाएगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीवास ठाकुर से प्रार्थना की, "आप नित्य संकीर्तन करना और इतना समझ रखना कि आपकी उपस्थिति में मैं भी नृत्य करूँगा। आप यह नृत्य देख सकोगे, किन्तु अन्य लोग नहीं देख सकेंगे।

एइ वस्त्र माताके दिह', एइ सब प्रसाद ।

दण्डवत्करि' आमार क्षमाइह अपराध ॥47॥

एइ वस्त्र-यह वस्त्र; माताके दिह'–मेरी माता शचीदेवी को दे देना; एइ सब प्रसाद-यह सब जगन्नाथ प्रसाद; दण्डवत् करि'-दण्डवत् प्रणाम करके; आमार-मेरा; क्षमाइह-क्षमा करवा देना; अपराध-अपराध।

अनुवाद

"इस जगन्नाथ प्रसाद को और इस वस्त्र को लो। इन्हें मेरी माता शचीदेवी को जाकर दे देना। उन्हें प्रणाम करने के बाद उनसे प्रार्थना करना कि वे मेरा अपराध क्षमा कर दें।

ताँर सेवा छाडि' आमि करियाछि सन्यास ।

धर्म नहे, करि आमि निज धर्म-नाश ॥48॥

ताँर सेवा छाड़ि'–उनकी सेवा छोड़कर; आमि-मैंने; करियाछि–स्वीकार किया; सन्यास-संन्यास; धर्म नहे-यह मेरा धर्म नहीं है; करि–किया है; आमि-मैंने; निज धर्म-नाश-अपने धर्म का नाश।

अनुवाद

"मैंने अपनी माता की सेवा छोड़कर संन्यास धारण कर लिया है। वास्तव में मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था, क्योंकि ऐसा करके मैंने अपना धर्म नष्ट किया है।

ताँर प्रेम-वश आमि, ताँर सेवा-धर्म ।

ताहा छाड़ि' करियाछि बातुलेर कर्म ॥49॥

ताँर प्रेम-वश-उनके स्नेह के वशीभूत होकर; आमि-मैं; ताँर सेवा-उनकी सेवा; धर्म–मेरा धर्म; ताहा छाड़ि'–उसे छोड़कर; करियाछि-मैंने किया; बातुलेर कर्म-पागल का कार्य।

अनुवाद

"मैं अपनी माता के प्रेम के अधीन हूँ और मेरा धर्म है कि बदले में मैं उनकी सेवा करूँ। लेकिन ऐसा करने के बदले मैंने संन्यास ग्रहण कर लिया। निस्सन्देह, यह पागलपन है।

बातुल बालकेर माता नाहि लय दोष ।

एइ जानि' माता मोरे ना करय रोष ॥50॥

बातुल बालकेर-एक पागल पुत्र की; माता-माता; नाहि-नहीं; लय-स्वीकार करती; दोष-दोष; एइ जानि'-यह जानकर; माता-माता ने; मोरे-मुझ पर; ना करय रोष-क्रोध नहीं किया।

अनुवाद

"एक माता अपने पागल बेटे से रुष्ट नहीं होती। यह जानते हुए मेरी माता मुझ पर रोष नहीं करतीं।

कि काय सन्यासे मोर, प्रेम निज-धन ।

ये-काले सन्यास कैलुँ, छन्न हैल मन ॥51॥

कि काय-क्या प्रयोजन; सन्यासे–संन्यास धर्म में; मोर-मेरा; प्रेम-स्नेह; निज-धन–मेरा वास्तविक धन; ये-काले-जिस समय; सन्यास कैलुँ-मैंने संन्यास स्वीकार किया; छन्न-विक्षिप्त; हैल-हो गया था; मन–मन।

अनुवाद

"मुझे इस संन्यास को स्वीकार करने तथा अपने धनस्वरूप मातृप्रेम की बलि देने से कुछ भी प्रयोजन नहीं था। वास्तव में जब मैंने संन्यास स्वीकार किया, उस समय मुझ पर पागलपन सवार था।

नीलाचले आछों मुञि ताँहार आज्ञाते ।

मध्ये मध्ये आसिमु ताँर चरण देखिते ॥52॥

नीलाचले आछों-नीलाचल, जगन्नाथ पुरी में निवास; मुञि-मैं; ताँहार आज्ञाते-उनके आदेश के अन्तर्गत; मध्ये मध्ये-बीच बीच में; आसिमु-मैं जाऊँगा; ताँर-उनके; चरण देखिते-चरणकमलों के दर्शन करने।

अनुवाद

"मैं यहाँ जगन्नाथ पुरी (नीलाचल) में उनके आदेशों का पालन करने के लिए रुका हुआ हूँ। किन्तु बीच-बीच में मैं उनके चरणकमलों का दर्शन करने आता रहूँगा।

नित्य याइ' देखि मुञि ताँहार चरणे ।

स्फूर्ति-ज्ञाने तेंहो ताहा सत्य नाहि माने ॥53॥

नित्य साइ'–प्रतिदिन जाकर; देखि-दर्शन करता हूँ; मुञि-मैं; ताँहार चरणे-उनके चरणकमल; स्फूर्ति-ज्ञाने-मेरी उपस्थिति अनुभव करके; तेंहो-वे; ताहा–उसे; सत्य नाहि माने-सत्य नहीं मानती।

अनुवाद

"वास्तव में मैं रोज ही वहाँ अपनी माता के चरणकमलों का दर्शन करने जाता हूँ। यद्यपि उन्हें मेरी उपस्थिति का आभास होता है, पर वे इसे सत्य नहीं मानतीं।

एक-दिन शाल्यन्न, व्यञ्जन पाँच-सात ।

शाक, मोचा-घण्ट, भृष्ट-पटोल-निम्ब-पात ॥54॥

लेम्बु-आदा-खण्ड, दधि, दुग्ध, खण्ड-सार।

शालग्रामे समर्पिलेन बहु उपहार ॥55॥

एक-दिन-एक दिन; शालि-अन्न–शालि धान का पका हुआ चावल; व्यञ्जन-पकवान; पाँच-सात-पाँच-साँत; शाक-साग, पालक; मोचा-घण्ट-केले के फूलों की तरकारी; भृष्ट-तली; पटोल–पटोला सब्जियाँ; निम्ब-पात-नीम वृक्ष के पत्रों से; लेम्बु-निंबू; आदा-खण्ड-अदरक के टुकड़ों; दधि-दही; दुग्ध-दूध; खण्ड-सार-खांड; शालग्रामे-शालग्राम के रूप में भगवान् विष्णु को समर्पिलेन-समर्पित किया; बहु उपहार–बहुत से अन्न उपहार।

अनुवाद

"एक दिन मेरी माता शचीदेवी ने शालग्राम विष्णु को भोजन अर्पित किया। उन्होंने शालि धान से पकाया चावल, तरह-तरह की तरकारियाँ, पालक, केले के फूलों की बनी कढ़ी, नीम की पत्तियों के साथ तले पटोल, नींबू समेत अदरक के टुकड़े, दही, दूध, खांड तथा अन्य पकवान अर्पित किये।

प्रसाद लञा कोले करेन क्रन्दन।

निमाइर प्रिय मोर-ए-सब व्यञ्जन ॥56॥

प्रसाद लञा–प्रसाद लेकर; कोले-अपनी गोद में; करेन क्रन्दन-रो रही थी; निमाइर–निमाइ को; प्रिय–प्रिय; मोर-मेरे; ए-सब व्यञ्जन-यह सब प्रकार का भोजन।

अनुवाद

"अपनी गोद में भोजन लेकर तथा यह याद करके मेरी माता रो रही थीं कि यह भोजन तो मेरे निमाइ को अत्यन्त प्रिय है।

निमाञि नाहिक एथा, के करे भोजन।

मोर ध्याने अश्रु-जले भरिल नयन ॥57॥

निमाञि-निमाइ; नाहिक एथा-यहाँ उपस्थित नहीं है; के करे भोजन-इस भोजन को कौन खाएगा; मोर ध्याने-मेरा इस प्रकार ध्यान करने पर; अश्रु-जले-आँसुओं से; भरिल नयन-आँखें भर आईं।

अनुवाद

"मेरी माता सोच रही थीं, "यहाँ पर निमाई नहीं है। इस सारे भोजन को कौन ग्रहण करेगा?' जब वे मेरे बारे में इस तरह सोच रही थीं, तो उनकी आँखो में आँसू भर आये।

शीघ्र याइ' मुञि सब करिनु भक्षण ।

शून्य-पात्र देखि' अश्रु करिया मार्जन ॥58॥

शीघ्र-शीघ्र; याइ'–जाकर; मुञि-मैंने; सब-सब; करिनु भक्षण-खा लिया; शून्य-पात्र देखि'–खाली बर्तन देखकर; अश्रु-आँसू; करिया मार्जन-अपने हाथों से पोंछे।

अनुवाद

"जब वे इस तरह सोचकर रो रही थीं, तो मैं जल्दी से वहाँ गया और सब भोजन ग्रहण कर लिया। थाल को खाली देखकर उन्होंने अपने आँसू पोछ डाले।

'के अन्न-व्यञ्जन खाइल, शून्य केने पात?।

बालगोपाल किबा खाइल सब भात? ॥59॥

के-कौन; अन्न-व्यञ्जन खाइल-अन्न-भोजन खा गया है; शून्य केने पात-बर्तन खाली क्यों हैं; बाल-गोपाल-बाल गोपाल भगवान् ने; किबा खाइल-क्या खा लिया है; सब भात-सारा भात।

अनुवाद

"तब वे आश्चर्य करने लगीं कि किसने सारा भोजन खा लिया। यह थाल खाली क्यों है?' उन्हें यह आश्चर्य हुआ कि कहीं बालगोपाल ने तो नहीं खा लिया।

किबा मोर कथाय मने भ्रम हञा गेल! ।

किबा कोन जन्तु आसि' सकल खाइल? ॥ 60 ॥

किबा-अथवा; मोर कथाय-जब मैं ऐसा सोच रही थी; मने-मन में; भ्रम हञा गेल-मुझे भ्रम हुआ; किबा-अथवा; कोन जन्तु कोई पशु; आसि'–आकर; सकल खाइल-सब कुछ खा गया।

अनुवाद

"वे आश्चर्य करने लगीं कि थाल में पहले से भोजन था भी या नहीं। फिर उन्होंने सोचा कि हो सकता है कोई पशु आकर सारा भोजन खा गया हो।

किबा आमि अन्न-पात्रे भ्रमे ना बाड़िल!' ।

एत चिन्ति' पाक-पात्र याञा देखिल ॥61॥

किबा-अथवा; आमि-मैं; अन्न-पात्रे-अन्न पात्र में; भ्रमे-भ्रम से; ना बाड़िल-कुछ नहीं रखा; एत चिन्ति'-यह सोचकर; पाक-पात्र-रसोई के पात्र; याञा देखिल-जाकर देखे।

अनुवाद

"उन्होंने सोचा कि, 'हो सकता है गलती से मैंने थाल में भोजन रखा ही न हो।' इस तरह सोचते हुए वे रसोई-घर गईं और वहाँ बर्तनों को देखा।

अन्न-व्यञ्जन-पूर्ण देखि' सकल भाजने ।

देखिया संशय हैल किछु चमत्कार मने ॥ 62॥

अन्न-व्यञ्जन-पूर्ण-भात और तरकारी से भरे थे; देखि'–देखकर; सकल भाजने-सभी पात्र; देखिया-देखकर; संशय हैल–संशय हुआ; किछु-कुछ; चमत्कार–आश्चर्य; मने-मन में।

अनुवाद

जब उन्होंने देखा कि सारे बर्तन अब भी चावल तथा तरकारी से भरे हैं, तो उनके मन में कुछ सन्देह हुआ और वे अचम्भित हुईं।

ईशाने बोलाञा पुनः स्थान लेपाइल ।

पुनरपि गोपालके अन्न समर्पिल ॥ 63 ॥

ईशाने-ईशान सेवक को; बोलाञा–बुलाकर; पुनः-पुनः; स्थान-स्थान; लेपाइल-साफ करवाया; पुनरपि-दोबारा; गोपालके–गोपाल को; अन्न-अन्न (भात और तरकारी); समर्पिल-समर्पित किया।

अनुवाद

"इस तरह आश्चर्यचकित होकर उन्होंने अपने नौकर ईशान को बुलाया और उस स्थान की फिर से सफाई कराई। तब उन्होंने गोपाल को दूसरी थाल अर्पित की।

एइ-मत यबे करेन उत्तम रन्धन ।

मोरे खाओयाइते करे उत्कण्ठाय रोदन ॥ 64॥

एइ-मत-इस प्रकार; यबे-जब कभी; करेन-करती थी; उत्तम रन्धन-उत्तम भोजन पकाना; मोरे-मुझे; खाओयाइते-खिलाने के लिए; करे-करती थी; उत्कण्ठाय-बहत चिन्ता में; रोदन-रोदन।

अनुवाद

"अब जब भी वे कोई अच्छा भोजन बनाती हैं और मुझे वह भोजन खिलाना चाहती हैं, तब वे उत्कण्ठावश रोने लगती हैं।

ताँर प्रेमे आनि' आमाय कराय भोजने ।

अन्तरे मानये सुख, बाह्ये नाहि माने ॥65॥

ताँर प्रेमे-उनके प्रेम से; आनि'–लाकर; आमाय-मुझे; कराय भोजने–भोजन कराया; अन्तरे-अपने अन्दर; मानये-वे अनुभव करती हैं; सुख-सुख; बाह्ये-बाहर से; नाहि माने–नहीं मानतीं।

अनुवाद

उनके प्रेम के वशीभूत होकर मैं वहाँ भोजन करने के लिए जाता हूँ। मेरी माता ये बातें भीतर-भीतर जानती हैं और सुखी होती हैं, किन्तु बाहर से वे इन्हें नहीं मानती।

एइ विजया-दशमीते हैल एइ रीति ।

ताँहाके पुछिया ताँर कराइह प्रतीति ॥66॥

एइ विजया-दशमीते-पिछली विजयदशमी वाले दिन; हैल–हुई; एइ रीति-ऐसी घटना; ताँहाके–उनको; पुछिया-पूछकर; ताँर-उन्हें; कराइह-कराना; प्रतीति–विश्वास।

अनुवाद

"ऐसी घटना पिछली विजयादशमी के दिन घटी। तुम उनसे इस घटना के बारे में पूछ सकते हो और उन्हें विश्वास दिलाना कि मैं सचमुच वहाँ जाता हूँ।"

एतेक कहिते प्रभु विह्वल हइला ।

लोक विदाय करिते प्रभु धैर्य धरिला ॥ 67॥

एतेक कहिते-यह कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; विह्वल हइला–विह्वल हो गये; लोक विदाय करिते-भक्तों को विदा करने के लिए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; धैर्य धरिला-धैर्य रखा।

अनुवाद

यह सब कहते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु विह्वल हो गये, किन्तु भक्तों की विदाई पूरी करने के उद्देश्य से उन्होंने धैर्य धारण कर रखा।

राघव पण्डिते कहेन वचन सरस ।

'तोमार शुद्ध प्रेमे आमि हइ' तोमार वश' ॥ 68॥

राघव पण्डिते-राघव पण्डित को; कहेन–कहे; वचन–शब्द; स-रस-बहुत मधुर; तोमार-तुम्हारी; शुद्ध प्रेमे-शुद्ध भक्ति से; आमि हइ'-मैं हूँ; तोमार—तुम्हारे; वश–वश (कृतज्ञ) में।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु राघव पण्डित से मीठी वाणी में बोले, मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम शुद्ध है, जिसके लिए मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ।"

इँहार कृष्ण-सेवार कथा शुन, सर्व-जन ।

परम-पवित्र सेवा अति सर्वोत्तम ॥ 69॥

इँहार–इनकी; कृष्ण-सेवार-कृष्ण सेवा की; कथा-कथाएँ; शुन-सुनो; सर्व-जन-सभी लोग; परम-पवित्र-परम पवित्र; सेवा–सेवा; अति-अत्यन्त; सर्व-उत्तम-सर्वश्रेष्ठ।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबसे कहा, "सुनो! तुम लोग राघव पण्डित द्वारा की गई शुद्ध कृष्ण-भक्ति के बारे में सुनो! राघव पण्डित की सेवा परम शुद्ध तथा सर्वोत्तम है।

आर द्रव्य रहु–शुन नारिकेलेर कथा ।

पाँच गण्डा करि' नारिकेल विकाय तथा ॥70॥

आर द्रव्य रहु-अन्य पदार्थों के अलावा; शुन-जरा सुनो; नारिकेलेर कथा-नारियल भेंट करने की कथा; पाँच गण्डा करि'–पाँच गंडा के मूल्य पर; नारिकेल–नारियल; विकाय-बेचा जाता है; तथा-वहाँ।

अनुवाद

"अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त उसके द्वारा नारियल भेंट किये जाने के बारे में सुनो। एक नारियल पाँच गण्डे में बिकता है।

वाटिते कत शत वृक्षे लक्ष लक्ष फल ।

तथापि शुनेन यथा मिष्ट नारिकेल ॥71॥

वाटिते-उसके उद्यान में; कत शत-कितने सैंकड़ों; वृक्षे-वृक्ष हैं; लक्ष लक्ष फल-लाखों फल; तथापि-तथापि; शुनेन–सुनते है; यथा-जहाँ; मिष्ट नारिकेल-मीठे नारियल हैं।

अनुवाद

यद्यपि उसके पास पहले से सैंकड़ों वृक्ष तथा लाखों फल हैं, किन्तु फिर भी वह उस स्थान के विषय में सुनने के लिए अत्यधिक उत्सुक रहता है, जहाँ मीठा नारियल मिलता हो।

एक एक फलेर मूल्य दिया चारि-चारि पण ।

दश-क्रोश हैते आनाय करिया यतन ॥72॥

एक एक फलेर–प्रत्येक फल का; मूल्य-मूल्य; दिया-देकर; चारि-चारि पण-प्रत्येक फल का चार पण (एक पण बीस गंडा के बराबर होता है); दश-क्रोश-बीस मील दूर; हैते–से; आनाय–लाकर; करिया यतन-बड़े परिश्रम से।

अनुवाद

"वह बीस मील दूर स्थान से भी नारियल को यत्नपूर्वक लाता है। और हर नारियल के लिए चार पण चुकाता है।

प्रति-दिन पाँच-सात फल छोलाञा ।

सुशीतल करिते राखे जले डुबाइञा ॥73॥

प्रति-दिन-प्रति दिन; पाँच-सात-पाँच-सात; फल-फल; छोलाञा-छीलकर; सु-शीतल करिते-उन्हें ठंडा करने के लिए; राखे-रखता है; जले–पानी में; डुबाइञा-डुबोकर।

अनुवाद

"प्रतिदिन पाँच-सात नारियल छीलकर उन्हें शीतल बनाये रखने के लिए जल के भीतर रखा जाता है।

भोगेर समय पुनः छुलि' संस्करि' ।

कृष्णे समर्पण करे मुख छिद्र करि' ॥74॥

भोगेर समय-भोग लगाने के समय; पुनः पुनः; छुलि'–छीलकर; संस्करि'–साफ करके; कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; समर्पण-भोग; करे-लगाता है; मुख-चोटी पर; छिद्र करि'–छिद्र करके।

अनुवाद

"भोग लगाते समय नारियलों को फिर से छीला जाता है और साफ किया जाता है। उनमें ऊपर से छेद करने के बाद उन्हें कृष्ण को अर्पित किया जाता है।

कृष्ण सेइ नारिकेल-जल पान करि' ।

कभु शून्य फल राखेन, कभु जल भरि' ॥75 ॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; सेइ-उस; नारिकेल-जल-नारियल का जल; पान करि'-पीकर; कभु-कभी-कभी; शून्य-खाली; फल राखेन-फल को रख देते हैं; कभु-कभी-कभी; जल भरि'-जल से भरे रहते हैं।

अनुवाद

"इन नारियलों का जल कृष्ण पीते हैं और कभी-कभी नारियलों का जल निकालकर उन्हें पूरी तरह से खाली कर दिया जाता है। कभी-कभी इन नारियलों में जल भरा रहता है।

जल-शून्य फल देखि' पण्डित–हरषित ।

फल भाङ्गि' शस्ये करे सत्पात्र पूरित ॥ 76 ॥

जल-शून्य-जल के बिना; फल-फल; देखि'–देखने से; पण्डित-राघव पण्डित; हरषित-अति प्रसन्न; फल भाङ्गि'–फल को तोड़कर; शस्ये गूदे के साथ; करे–बनाता है; सत्-पात्र-अन्य थाली; पूरित-भरता है।

अनुवाद

"जब राघव पण्डित देखता है कि नारियलों का जल पी लिया गया है, तो वह अत्यन्त प्रसन्न होता है। तब वह नारियल तोड़कर गरी निकालता और उसे किसी अन्य थाल पर रख देता है।

शस्य समर्पण करि' बाहिरे धेयान ।

शस्य खाञा कृष्ण करे शून्य भाजन ॥77॥

शस्य-गूदा; समर्पण करि'-समर्पण करके; बाहिरे–मन्दिर के बाहर; धेयान-ध्यान करता है; शस्य खाञा-गूदा खाकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करे-करते हैं; शून्य-खाली; भाजन-वह थाली।

अनुवाद

"गरी चढ़ाने के बाद वह मन्दिर द्वार के बाहर ध्यान करता है। इस बीच भगवान् कृष्ण सारी गरी खाकर थाल को रिक्त छोड़ देते हैं।

कभु शस्य खाञा पुनः पात्र भरे शांसे ।

श्रद्धा बाड़े पण्डितेर, प्रेम-सिन्धु भासे ॥ 78॥

कभु-कभी-कभी; शस्य खाञा-गूदा खाकर; पुनः–पुनः; पात्र-प्लेट; भरे-भर देते हैं; शांसे-गुदे से; श्रद्धा-श्रद्धा; बाड़े-बढ़ जाती है; पण्डितेर-राघव पण्डित की; प्रेम-सिन्धु-प्रेम-सागर में; भासे-तैरने लगता है।

अनुवाद

"कभी-कभी गरी खाने के बाद कृष्ण थाल को नई गरी से भर देते हैं। इस तरह राघव पण्डित की श्रद्धा बढ़ती जाती है और वह प्रेम के सागर में तैरता रहता है।

एक दिन फल दश संस्कार करिया ।

भोग लागाइते सेवक आइल लञा ॥79॥

एक दिन-एक दिन; फल-फल; दश-दस; संस्कार करिया-साफ करने के बाद; भोग लागाइते-भोग लगाने के लिए; सेवक-सेवक; आइल-आया; लञा-लेकर।

अनुवाद

"एक दिन ऐसा हुआ कि एक नौकर अर्चाविग्रह पर चढ़ाने के लिए लगभग दस छिले हुए नारियल लाया।

अवसर नाहि हय, विलम्ब हइल ।

फल-पात्र-हाते सेवक द्वारे त' रहिल ॥80॥

अवसर नाहि हय-समय नहीं था; विलम्ब हइल-देर हो गई थी; फल-पात्र-फलों का पात्र; हाते-हाथों में; सेवक-सेवक; द्वारे द्वार पर; त'–निस्सन्देह; रहिल-रहा।

अनुवाद

"जब नारियल लाए गये, उस समय उन नारियलों को चढ़ाने के लिए समय न था, क्योंकि पहले ही काफी विलम्ब हो चुका था। अतएव वह नौकर नारियलों के पात्र को पकड़े हुए दरवाजे पर ही खड़ा रहा।

द्वारेर उपर भिते तेंहो हात दिल ।

सेइ हाते फल छुडिल, पण्डित देखिल ॥81॥

द्वारेर उपर-द्वार के ऊपर; भिते-छत पर; तेंहो–उसने; हात दिल-अपना हाथ छुआ; सेइ हाते-उसी हाथ से; फल छुडिल-फल को छुआ; पण्डित-राघव पण्डित ने; देखिल-देखा।

अनुवाद

"राघव पण्डित ने देखा कि उस नौकर ने दरवाजे के ऊपर की छत छुई है और उसी हाथ से नारियलों को छुआ है।

पण्डित कहे,—द्वारे लोक करे गतायाते ।

तार पद-धूलि उड़ि' लागे उपर भिते ॥82॥

पण्डित कहे-राघव पण्डित ने कहा; द्वारे-द्वार के बीच से; लोक-साधारण लोग; करे-करते हैं; गतायाते-आना और जाना; तार-उनके; पद-धूलि-पैरों की धूलि; उड़ि'-उड़कर; लागे-लगती है; उपर-ऊपर; भिते-छत को।

अनुवाद

"तब राघव पण्डित ने कहा, 'लोग इस दरवाजे से लगातार आते-जाते रहते हैं। उनके पैरों की धूल उड़कर छत को छूती है।

सेइ भिते हात दिया फल परशिला ।

कृष्ण-योग्य नहे, फल अपवित्र हैला ॥83॥

सेइ भिते-उसी छत पर; हात दिया-अपना हाथ छूकर; फल-फल; परशिला-छुआ; कृष्ण-योग्य नहे-कृष्ण को भेंट करने योग्य नहीं; फल-फल; अपवित्र हैला-अपवित्र हो गया है।

अनुवाद

"तुमने दरवाजे के ऊपर की छत छूकर नारियलों का स्पर्श किया है। अब ये कृष्ण पर चढ़ाने लायक नहीं रह गये, क्योंकि ये दूषित हो गये हैं।'

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का कहना है कि राघव पण्डित कोई ऐसे-वैसे सिरफिरे मनुष्य नहीं थे, जिन्हें सफाई की धुन सवार थी। वे संसारी व्यक्ति नहीं थे। निम्न चेतना होने पर जब कोई व्यक्ति किसी भौतिक वस्तु को आध्यात्मिक मान लेता है, तो वह भौमइज्यधी: कहलाता है। राघव पण्डित कृष्ण के सनातन दास थे और वे जितनी

वस्तुएँ देखता थे, वे सब भगवान् की सेवा से सम्बन्धित होती थीं। वे हमेशा इसी दिव्य विचार में डूबे रहते थे कि वह हर वस्तु को किस तरह कृष्ण की सेवा में लगाये। कभी-कभी कुछ नौसिखिए तथा निम्न स्तर के भक्त भौतिक शुद्धि और अशुद्धि के धरातल पर राघव पण्डित का अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु ऐसे अनुकरण से काम चलने वाला नहीं है। जैसाकि चैतन्य-चरितामृत (अन्त्यलीला 4.174) में कहा गया है- भद्राभद्रवस्तुज्ञान नाहिक 'प्राकृते'। दिव्य धरातल पर न तो कुछ उच्च है, न निम्न, न ही शुद्ध है, न अशुद्ध। भौतिक धरातल पर अच्छे तथा बुरे में अन्तर किया जाता है, किन्तु आध्यात्मिक धरातल पर हर वस्तु समान गुण वाली होती है।

'द्वैते' भद्राभद्रज्ञान, सब–'मनोधर्म'।

'एइ भाल, एइ मन्द'-एइ सब 'भ्रम'।

"भौतिक जगत् में अच्छे और बुरे का विचार मानसिक तर्क ही है। अतएव यह कहना कि 'यह अच्छा है और यह बुरा है'—यह सब भूल है।" (चैतन्य-चरितामृत, अन्त्य 4.176)

एत बलि' फल फेले प्राचीर लङ्घिया ।

ऐछे पवित्र प्रेम-सेवा जगत्जिनिया ॥84॥

एत बलि'-यह कहकर; फल फले-फलों को फेंक दिया; प्राचीर लङ्गिया-सीमा की दीवार के पार; ऐछे-ऐसी; पवित्र-पवित्र; प्रेम-सेवा-प्रेम सेवा; जगत् जिनिया-सारे जगत् को जीतकर।

अनुवाद

"राघव पण्डित की सेवा ऐसी थी। उन्होंने उन नारियलों को नहीं लिया, अपितु उन्हें दीवार से बाहर फेंक दिया। उनकी यह सेवा अनन्य प्रेम पर आश्रित है और यह सारे जगत् को जीतने वाली है।

तबे आर नारिकेल संस्कार कराइल ।

परम पवित्र करि' भोग लागाइल ॥85॥

तबे-तत्पश्चात्; आर-दूसरे; नारिकेल-नारियल; संस्कार कराइल-काटकर साफ किये; परम पवित्र करि'–उन्हें शुद्ध रखने में अत्यन्त सावधानी बरतकर; भोग लागाइल-भोग लगाया।

अनुवाद

"इसके बाद राघव पण्डित ने दूसरे नारियल मँगवाये, उन्हें साफ कराया और छिलवाया और बड़ी ही सावधानी से अर्चाविग्रह को खाने के लिए अर्पित किया।

एइ-मत कला, आम्र, नारङ्ग, काँठाल ।

याहा याहा दूर-ग्रामे शुनियाछे भाल ॥86॥

एइ-मत-इस प्रकार; कला-केले; आम्र-आम; नारङ्ग-नारंगियाँ; काँठाल-कटहल; याहा याहा-जो कुछ; दूर-ग्रामे-दूर स्थित गाँवों में; शुनियाछे-उन्होंने सुना; भाल–अच्छा।

अनुवाद

"इस तरह उन्होंने उत्तम केले, आम, नारंगी, कटहल तथा दूर-दूर के गाँवों से जिन-जिन उत्तम फलों के विषय में सुना—सबको एकत्र किया।

बहु-मूल्य दिया आनि' करिया यतन ।

पवित्र संस्कार करि' करे निवेदन ॥87॥

बहु-मूल्य-ऊँची कीमत; दिया-देकर; आनि'–लाकर; करिया यतन-बड़ी सावधानी से; पवित्र--पवित्र; संस्कार करि'–छीलकर; करे निवेदन-अर्चाविग्रह को भोग लगाया।

अनुवाद

"ये सारे फल दूर-दूर के स्थानों से काफी ऊँची कीमत देकर एकत्र किये गये। फिर उन्हें बड़ी सावधानी तथा सफाई से काटकर राघव पण्डित ने उन्होंने अर्चाविग्रह को अर्पित किया।

एइ मत व्यञ्जनेर शाक, मूल, फल ।

एइ मत चिड़ा, हुड़ुम, सन्देश सकल ॥88॥

एइ मत-इस प्रकार; व्यञ्जनेर-सब्जियों का; शाक-शाक (पालक); मूल-मूली; फल-फल; एइ मत-इस प्रकार; चिड़ा-चिवड़ा; हुड़म-पिसा चावल; सन्देश-मिठाइयाँ; सकल-सभी।

अनुवाद

"इस तरह राघव पण्डित बड़ी सावधानी तथा ध्यान से पालक, अन्य सब्जियाँ, मूली, फल, चिउड़ा, चूर्णित चावल तथा मिठाईयाँ तैयार करते।

एइ-मत पिठा-पाना, क्षीर-ओदन ।

परम पवित्र, आर करे सर्वोत्तम ॥89॥

एइ-मत-इस प्रकार; पिठा-पाना–मिठाई, खीर; क्षीर-ओदन-क्षीर; परम पवित्र-परम पवित्र; आर-और; करे-वे करते हैं; सर्व-उत्तम-सर्वोत्तम स्वादिष्ट ।

अनुवाद

"उन्होंने पीठा, पाना, खीर तथा प्रत्येक वस्तु को बड़े ही ध्यान से पकाई और पकाते समय इतनी सफाई रखी कि भोजन उत्तम कोटि का तथा स्वादिष्ट बने।

काशम्दि, आचार आदि अनेक प्रकार ।

गन्ध, वस्त्र, अलङ्कार, सर्व द्रव्य-सार ॥10॥

काशम्दि-काशम्दी (एक प्रकार का अचार); आचार-अन्य अचार; आदि-आदि; अनेक प्रकार–अनेक प्रकार के; गन्ध–सुगन्ध; वस्त्र-वस्त्र; अलङ्कार-आभूषण; सर्व-सब; द्रव्य-वस्तुओं में; सार–उत्तम।

अनुवाद

"राघव पण्डित काशम्दि जैसे सभी प्रकार के अचार भी भोग लगाते। उन्होंने विविध सुगन्धियाँ, वस्त्र, गहने तथा अच्छी से अच्छी वस्तुएँ अर्पित कीं।

एइ-मत प्रेमेर सेवा करे अनुपम ।

याहा देखि' सर्व-लोकेर जुड़ाय नयन ॥91॥

एइ-मत-इस प्रकार; प्रेमेर सेवा-प्रेममयी सेवा; करे-करते हैं; अनुपम-अद्वितीय; याहा देखि'–जिसे देखकर; सर्व-लोकेर-सभी लोगों के; जुड़ाय-प्रसन्न हो जाते हैं; नयन-नेत्र।

अनुवाद

"इस तरह राघव पण्डित अद्वितीय विधि से भगवान् की सेवा करते। उन्हें देखकर सारे लोग अत्यन्त सन्तुष्ट होते।"

एत बलि' राघवेरे कैल आलिङ्गने ।

एइ-मत सम्मानिल सर्व भक्त-गणे ॥92॥

एत बलि'-यह कहकर; राघवेरे-राघव पण्डित का; कैल आलिङ्गने-उन्होंने आलिंगन किया; एइ-मत-इस प्रकार; सम्मानिल-सम्मान किया; सर्व-सब; भक्त-गणे-भक्तों का।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने दयापूर्वक राघव पण्डित का आलिंगन किया। महाप्रभु ने अन्य सभी भक्तों का भी इसी तरह सम्मान किया।

शिवानन्द सेने कहे करिया सम्मान ।

वासुदेव-दत्तेर तुमि करिह समाधान ॥ 93 ॥

शिवानन्द सेने–शिवानन्द सेन को; कहे-कहा; करिया सम्मान-सम्मानपूर्वक; वासुदेव-दत्तेर–वासुदेव दत्त का; तुमि-तुम; करिह-रखो; समाधान-ध्यान।

अनुवाद

महाप्रभु ने शिवानन्द सेन से भी आदरपूर्वक कहा, "वासुदेव दत्त का ठीक से ध्यान रखना।

परम उदार इँहो, ये दिन ये आइसे ।

सेइ दिने व्यय करे, नाहि राखे शेषे ॥ 94॥

परम उदार–परम उदार; इँहो-वह; ये दिन-प्रतिदिन; ये आइसे–जो कुछ उसे मिलता है; सेइ दिने—उसी दिन; व्यय करे-खर्च कर देता है; नाहि-नहीं; राखे-रखता; शेषे कुछ शेष।

अनुवाद

“वासुदेव दत्त अत्यन्त उदार है। उसे प्रतिदिन जितनी आमदनी होती है, उसे वह खर्च कर देता है। वह कुछ भी बचाकर नहीं रखता।

‘गृहस्थ’ हयेन इँहो, चाहिये सञ्चय ।

सञ्चय ना कैले कुटुम्ब-भरण नाहि हय ॥ 95 ॥

गृहस्थ-गृहस्थ; हयेन-है; इँहो-वह (वासुदेव दत्त); चाहिये सञ्चय-कुछ धन बचाना चाहिए; सञ्चय ना कैलेधन बचाए बिना; कुटुम्ब-भरण-परिवार का पालन-पोषण; नाहि हय–सम्भव नहीं है।

अनुवाद

“गृहस्थ होने के कारण वासुदेव दत्त को कुछ धन बचाना चाहिए। किन्तु वह ऐसा नहीं करता, इसलिए उसके लिए अपने परिवार का भरण-पोषण कर पाना अत्यन्त कठिन है।

इहार घरेर आय-व्यय सब-तोमार स्थाने ।

‘सर खेल’ हञा तुमि करिह समाधाने ॥ 96 ॥

इहार-वासुदेव दत्त का; घरेर–पारिवारिक मामलों के; आय-व्यय-आय और व्यय; सब-सब; तोमार स्थाने तुम्हारे स्थान पर; सर खेल हञा–प्रबन्धक होकर; तुमि-तुम; करिह समाधाने-व्यवस्था करो।

अनुवाद

“कृपया वासुदेव दत्त के पारिवारिक मामलों पर ध्यान दें। उनके व्यवस्थापक बनकर समुचित प्रबन्ध करो।

तात्पर्य

वासुदेव दत्त तथा शिवानन्द सेन अड़ोस-पड़ोस में रहने वाले थे, जिसे अब कुमारहट्ट या हालिसहर कहते हैं।

प्रति-वर्षे आमार सब भक्त-गण लञा ।

गुण्डिचाय आसिबे सबाय पालन करिया ॥ 97॥

प्रति-वर्षे प्रति वर्ष; आमार-मेरे; सब-सब; भक्त-गण लञा-भक्तों के साथ; गुण्डिचाय-गुण्डिचा उत्सव पर सफाई; आसिबे-तुम आओगे; सबाय-हर एक का; पालन करिया-पोषण करने।

अनुवाद

"तुम लोग हर वर्ष आना और मेरे सारे भक्तों को अपने साथ गुण्डिचा उत्सव में लाना। मेरी यह भी विनती है कि उन सबका भरण-पोषण करना।"

कुलीन-ग्रामीरे कहे सम्मान करिया ।

प्रत्यब्द आसिबे यात्राय पट्ट-डोरी लञा ॥ 98॥

कुलीन-ग्रामीरे-कुलीन ग्राम की निवासियों को; कहे-कहा; सम्मान करिया-सम्मानपूर्वक; प्रति-अब्द-प्रति वर्ष; आसिबे–कृपया आओ; यात्राय रथयात्रा उत्सव पर; पट्ट-डोरी–रेशमी रस्सी; लञा–लेकर।

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु ने कुलीन ग्राम के सारे निवासियों को आदरपूर्वक आमन्त्रित किया कि वे प्रतिवर्ष आयें और रथयात्रा उत्सव के समय भगवान् जगन्नाथ को खींचे जाने के लिए रेशमी रस्सी लायें।

गुणराज-खाँन कैल श्री-कृष्ण-विजय ।

ताहाँ एक-वाक्य ताँर आछे प्रेममय ॥ 99॥

गुणराज-खाँन-गणराज खान ने; कैल–किया; श्री-कृष्ण-विजय-श्रीकृष्ण विजय नामक ग्रन्थ; ताहाँ-वहाँ; एक-वाक्य-एक वाक्य; ताँर-इसका; आछे-है; प्रेम-मय-कृष्ण-प्रेम से पूर्ण।

अनुवाद

फिर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "कुलीन ग्राम के श्री गुणराज खान ने श्रीकृष्णविजय नामक एक ग्रंथ रचा है, जिसमें लेखक के कृष्ण-प्रेम को प्रकट करने वाला एक वाक्य है।"

तात्पर्य

श्रीकृष्णविजय बंगाल में लिखा गया प्रथम काव्यग्रंथ माना जाता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि यह पुस्तक बाँग्ला शकाब्द 1395 (1473 ई.) में लिखी गई। यह 7 वर्षों में पूर्ण हुई (1402 शकाब्द में)। यह सरल भाषा में लिखी गई थी, जिसे अर्धशिक्षित बंगाली पुरुष तथा स्त्रियाँ भी पढ़ सकते थे। यहाँ तक कि कम पढ़े-लिखे सामान्य व्यक्ति भी इस पुस्तक को पढ़ और समझ लेते थे। इसकी भाषा अधिक अलंकारमयी नहीं है और काव्य कहीं-कहीं सुनने में मधुर भी नहीं है। यद्यपि दोहे में चौदह मात्राएँ होनी चाहिए, किन्तु कहीं 16 तो कहीं 12 या 13 मात्राएँ भी हैं। इसमें प्रयुक्त कुछ शब्द केवल स्थानीय लोग ही समझ सकते थे, किन्तु आज भी यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय है कि कोई भी पुस्तक-भंडार इसके बिना पूर्ण नहीं है। जो कृष्णभावनामृत में प्रगति करना चाहते हैं, उनके लिए यह पुस्तक अत्यन्त मूल्यवान है।

श्री गुणराज खान सर्वोत्कृष्ट वैष्णवों में से एक थे और उन्होंने सामान्य लोगों के समझने के लिए श्रीमद्भागवत के दशम तथा एकादश स्कन्धों का अनुवाद किया था। श्रीकृष्णविजय नामक पुस्तक की प्रशंसा श्री चैतन्य महाप्रभु ने बहुत की थी और यह समस्त वैष्णवों के लिए अत्यन्त मूल्यवान है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने गुणराज खान के परिवार का इतिहास तथा वंश-वृक्ष दिया है। जब आदिशूर नामक एक बंगाली सम्राट कान्यकुब्ज अथवा कन्नोज से पहली बार यहाँ आया, तो वह अपने साथ पाँच ब्राह्मण और पाँच कायस्थ लेता आया था। चूँकि सम्राट के साथ उनके निजी संगियों का होना आवश्यक माना जाता है, अतः ये ब्राह्मण राजा को उच्चतर आध्यात्मिक विषयों में तथा कायस्थ अन्य सेवाओं में सहायता प्रदान करने के लिए उनके साथ आये थे। उत्तरी भारत में कायस्थों को शूद्र माने जाते हैं, किन्तु बंगाल में इन्हें उच्च जाति के माने जाते हैं। यह तथ्य है कि बंगाल में ये कायस्थ उत्तरी भारत से, विशेषतया कान्यकुब्ज (कन्नौज) से आये थे। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि कान्यकुब्ज से आने वाले कायस्थ उच्च जाति के लोग थे। इनमें से दशरथ वसु एक महापुरुष थे और उसकी तेरहवीं पीढ़ी में गुणराज खान हुए।

उनका असली नाम मालाधर वसु था, लेकिन बंगाल के सम्राट ने उन्हें खान की उपाधि प्रदान की। इस तरह वे गुणराज खान कहलाये। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने गुणराज खान की वंशावली इस प्रकार दी है-(1) दशरथ वसु; (2) कुशल; (3) शुभशंकर; (4) हंस; (5) शक्तिराम (बागाण्डा), मुक्तिराम (माइनगर) तथा अलंकार (बंगज); (6) दामोदर; (7) अनन्तराम; (8) गुणीनायक तथा वीणानायक। बारहवीं पीढ़ी में भगीरथ तथा तेरहवी पीढ़ी में मालाधर वसु अर्थात् गुणराज खान हुए। श्री गुणराज खान के 14 पुत्र थे, जिनमें से दूसरे पुत्र लक्ष्मीनाथ वसु को सत्यराज खान

की उपाधि प्राप्त हुई। उसका पुत्र रामानन्द वसु था; अतएव वह पन्द्रहवीं पीढ़ी में हुआ। गुणराज खान सुप्रसिद्ध धनवान व्यक्ति थे। आज भी उनके महल, किला तथा मन्दिर अस्तित्व में हैं, जिनसे हम अनुमान लगा सकते हैं कि गुणराज खान के पास कितनी सम्पत्ति थी। श्री गुणराज खाँन बल्लाल सेन द्वारा प्रारम्भ की गई नकली कुलीनता की कभी परवाह नहीं करते थे।

"नन्दनन्दन कृष्ण–मोर प्राण-नाथ"।

एइ वाक्ये विकाइनु ताँर वंशेर हात ॥100॥

नन्द-नन्दन कृष्ण-नन्द महाराज का बेटा कृष्ण; मोर प्राण-नाथ–मेरे प्राणनाथ; एइ वाक्ये-इस वर्णन के कारण; विकाइनु-मैं बिक गया; ताँर-उसके; वंशेर हात-वंशजों के हाथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "नन्द महाराज के पुत्र श्रीकृष्ण मेरे प्राणाधार हैं।' मैं इसी वाक्य से गुणराज खान के उत्तराधिकारियों के हाथों बिक गया हूँ।

तात्पर्य

यहाँ जिस श्लोक के अंश का उल्लेख है, वह पूरा श्लोक इस तरह है :

एक-भावे वन्द हरि योड़ करि' हात।

नन्दनन्दन कृष्ण–मोर प्राण-नाथ ॥

"मैं हाथ जोड़कर नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण की वन्दना करता हूँ-वे मेरे प्राणनाथ हैं।"

तोमार कि कथा, तोमार ग्रामेर कुकुर।

सेइ मोर प्रिय, अन्य-जन रहु दूर ॥101॥

तोमार-तुम्हारा; कि कथा-क्या कहें; तोमार-तुम्हारे; ग्रामेर-गाँव का; कुकुर-एक कुत्ता; सेइ-वह; मोर-मुझे; प्रिय–अतिप्रिय; अन्य-जन-अन्यों का; रहु दूर-क्या कहना।

अनुवाद

“तुम्हारे लिए तो क्या कहना, तुम्हारे गाँव का रहने वाला कुत्ता भी मुझे अत्यन्त प्रिय है। तो फिर अन्यों के बारे में तो कहना ही क्या?”

तबे रामानन्द, आर सत्यराज खाँन ।

प्रभुर चरणे किछु कैल निवेदन ॥102॥

तबे-इसके बाद; रामानन्द-रामानन्द वसु; आर-और; सत्यराज खाँन-सत्यराज खान; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर; किछु-कुछ; कैल-किया; निवेदन-निवेदन।

अनुवाद

इसके बाद रामानन्द वसु तथा सत्यराज खान दोनों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में कुछ प्रश्न निवेदन किये।

गृहस्थ विषयी आमि, कि मोर साधने ।

श्री-मुखे आज्ञा कर प्रभु–निवेदि चरणे ॥ 103 ॥

गृहस्थ-गृहस्थ; विषयी-भौतिकतावादी व्यक्ति; आमि-मैं; कि-क्या; मोर साधने-आध्यात्मिक जीवन में मेरी प्रगति की प्रक्रिया; श्री-मुखे-आपके मुख से; आज्ञा कर-कृपया आज्ञा करो; प्रभु-मेरे प्रभु; निवेदि चरणे-मैं आपके चरणकमलों पर निवेदन करता हूँ।

अनुवाद

सत्यराज खान ने कहा, “हे प्रभु, गृहस्थ तथा भौतिकतावादी व्यक्ति होने के कारण मैं आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ने की विधि नहीं जानता। इसीलिए मैं आपके चरणकमलों की शरण स्वीकार करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे आदेश दें।”

प्रभु कहेन,—’कृष्ण-सेवा’, ‘वैष्णव-सेवन’ ।

‘निरन्तर कर कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन’ ॥ 104॥

प्रभु कहेन–महाप्रभु ने उत्तर दिया; कृष्ण-सेवा-कृष्ण की सेवा; वैष्णव-सेवन-वैष्णवों की आज्ञा का पालन करते हुए; निरन्तर निरन्तर; कर-करो; कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन-कृष्ण-नाम का संकीर्तन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "तुम निरन्तर कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करो और जब भी सम्भव हो, उनकी तथा उनके भक्त वैष्णवों की सेवा करो।"

सत्यराज बले,—वैष्णव चिनिब केमने? ।

के वैष्णव, कह ताँर सामान्य लक्षणे ॥105॥

सत्यराज बले-सत्यराज खान ने कहा; वैष्णव-एक वैष्णव को; चिनिब केमने-मैं कैसे पहचानँगा; के वैष्णव-कौन वैष्णव है; कह-कृपया कहो; ताँर-उसके; सामान्य लक्षणे-सामान्य लक्षण।

अनुवाद

यह सुनकर सत्यराज ने कहा, "मैं वैष्णव को कैसे पहचान सकता हूँ? कृपया मुझे बतायें कि वैष्णव कौन होता है? उसके सामान्य लक्षण क्या हैं?"

प्रभु कहे,–"याँर मुखे शुनि एक-बार ।

कृष्ण-नाम, सेइ पूज्य,—श्रेष्ठ सबाकार" ॥106॥

प्रभु कहे-चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; याँर मुखे-जिसके मुख में; शुनि-मैं सुनता हूँ; एक-बार-एक बार; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; सेइ पूज्य-वह पूजनीय है; श्रेष्ठ सबाकार–सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "जो भी व्यक्ति कृष्ण के पवित्र नाम का एक बार भी उच्चारण करता है, वह पूज्य है और सर्वोच्च मानव है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि एक बार कृष्ण का पवित्र नाम लेने से ही मनुष्य पूर्ण बनता है और उसे वैष्णव के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इसकी पुष्टि श्रील रूप गोस्वामी अपने उपदेशामृत (5) में करते हैं : कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत । पवित्र नाम में ऐसी श्रद्धा के साथ मनुष्य कृष्णभावना में जीवन का प्रारम्भ कर सकता है, किन्तु एक सामान्य व्यक्ति इतनी श्रद्धा के साथ कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण नहीं कर सकता। मनुष्य को कृष्ण के पवित्र नाम को दिव्यता के स्वरूप, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ एक समान होने के रूप में स्वीकार करना चाहिए। जैसाकि पद्म पुराण में कहा गया है : "कृष्ण के पवित्र नाम कृष्ण से अभिन्न है और यह चिन्तामणि रत्न की तरह है।। कृष्ण-नाम नितान्त दिव्य एवं शाश्वत रूप से भौतिक कल्मष से मुक्त ध्वनि में कृष्ण का साकार रूप है।" इस तरह मनुष्य को समझना होगा कि "कृष्ण" नाम तथा स्वयं कृष्ण अभिन्न हैं। ऐसी श्रद्धा के साथ मनुष्य को नाम-कीर्तन करते रहना होगा।

नया भक्त शुद्ध भक्त के भक्तिमय अवयवों को नहीं समझ सकता। किन्तु जब वह भक्ति में लगता है, विशेषतया अर्चाविग्रह की पूजा करता है और प्रामाणिक गुरु के आदेशानुसार चलता है, तब वह शुद्ध भक्त बन जाता है। कोई भी व्यक्ति ऐसे भक्त से कृष्णभावना के विषय में श्रवण करने का लाभ उठा सकता है और इस तरह धीरे-धीरे शुद्ध बन सकता है। दूसरे शब्दों में, कोई भी भक्त जो यह मानता है कि भगवान् का नाम भगवान् से अभिन्न है, वह शुद्ध भक्त है, भले ही वह अभी कनिष्ठ अवस्था में क्यों न हो। उसकी संगति से अन्य लोग भी वैष्णव बन सकते हैं।

जो व्यक्ति केवल हरि के अर्चाविग्रह की पूजा श्रद्धापूर्वक करता है, किन्तु भक्तों तथा अन्यों को समुचित आदर नहीं देता, वह भौतिकतावादी भक्त कहलाता है। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (11.2.47) में हुई है :

अर्चायामेव हरये पूजां यः पूजा श्रद्धयेहते ।

न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥

किन्तु ऐसे कनिष्ठ भक्त की संगति से भी मनुष्य भक्त बन सकता है। श्री चैतन्य ने सनातन गोस्वामी को शिक्षा देते समय कहा था :

श्रद्धावान् जन हय भक्ति अधिकारी ।

'उत्तम' 'मध्यम' 'कनिष्ठ'–श्रद्धा-अनुसारी ॥

याहार कोमल-श्रद्धा, से 'कनिष्ठ' जन ।

क्रमे क्रमे तेंहो भक्त हइबे 'उत्तम' ॥

रति-प्रेम-तारतम्ये भक्त-तरतम ।

"जिस व्यक्ति ने दृढ़ श्रद्धा प्राप्त कर ली है, वह कृष्णभावनामृत में अग्रसर होने का असली पात्र है। श्रद्धा के अनुसार उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ भक्त होते हैं। जिसमें प्रारम्भिक श्रद्धा होती है, वह कनिष्ठ अधिकारी या नौसिखिया भक्त कहलाता है। किन्तु कनिष्ठ भक्त भी गुरु द्वारा निर्धारित विधि-विधानों का कड़ाई से पालन करते रहने पर उच्च भक्त बन सकता है। अतः कृष्ण में श्रद्धा और अनुराग के आधार पर यह जाना जा सकता है कि कौन मध्यम-अधिकारी है और कौन उत्तम-अधिकारी। (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 22.64, 69, 71)

इस तरह यह निष्कर्ष निकलता है कि एक कनिष्ठ अधिकारी भी कर्मियों तथा ज्ञानियों से बेहतर है, क्योंकि उसे भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन में पूर्ण विश्वास रहता है। एक कर्मी या ज्ञानी कितना भी महान् क्यों न हो, वह भगवान् विष्णु, उनके नाम या उनकी भक्ति में श्रद्धा नहीं रखता। कोई धार्मिक रीति से कितना ही उन्नत क्यों न हो, किन्तु यदि वह भक्ति में प्रशिक्षित नहीं है, तो आध्यात्मिक धरातल पर उसे कोई श्रेय नहीं मिल सकता। गुरु द्वारा निर्धारित विधि-विधानों के अनुसार अर्चाविग्रह की पूजा में लगा रहने वाला कनिष्ठ भक्त भी कर्मी तथा ज्ञानी से श्रेष्ठ होता है।

"एक कृष्ण-नामे करे सर्व-पाप क्षय ।

नव-विधा भक्ति पूर्ण नाम हैते हय ॥ 107॥

एक कृष्ण-नामे-कृष्ण का एक पावन नाम; करे-कर सकता है; सर्व-पाप-सभी पाप-फलों का; क्षय-नाश; नव-विधा–नौ विधियाँ; भक्ति-भक्ति की; पूर्ण–पूर्ण; नाम हैते-पावन नाम का कीर्तन करने मात्र से; हय-है।

अनुवाद

"कृष्ण के पवित्र नाम का एक बार कीर्तन करने मात्र से मनुष्य सारे पापी जीवन के सारे फलों से छूट जाता है। पवित्र नाम का कीर्तन करने से मनुष्य भक्ति की नवों विधियों को पूरा कर सकता है।

तात्पर्य

नौ प्रकार की भक्ति (नवधा भक्ति) का उल्लेख श्रीमद्भागवत (7.5.23-24) में हुआ है :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

इति पुंसार्पिता विष्णो भक्तिश्चेन्नवलक्षणाः ।

क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥

सुनना, कीर्तन करना, पवित्र नाम, रूप, लीलाओं, गुणों और संगियों का स्मरण करना, समय, स्थान तथा कर्ता के अनुसार सेवा करना, अर्चाविग्रह की पूजा करना, प्रार्थना करना, स्वयं को सदा कृष्ण का सनातन सेवक समझना, भगवान् के साथ मैत्रीभाव स्थापित करना तथा उन्हें सर्वस्व समर्पित करना भक्ति की प्रक्रियाएँ हैं। भक्ति के ये नौ कार्य जब कृष्ण को सीधे समर्पित किये जाते हैं, तब वे जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि होते हैं। यही प्रामाणिक शास्त्रों का निर्णय है।"

जहाँ तक केवल एक बार कृष्ण के पवित्र नाम लेने से सभी पाप-फलों से मुक्त हो जाने का प्रश्न है, मनुष्य को भगवन्नाम का कीर्तन निरपराध भाव से करना चाहिए। तब केवल एक बार भगवन्नाम का जप जीव को सारे पाप-फलों से मुक्त करने के लिए पर्याप्त है। निरपराध भाव से जप करने वाला ऐसा व्यक्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं पूजनीय है। निस्सन्देह श्रवण, कीर्तन इत्यादि भक्ति की नवों विधियाँ भगवान् के पवित्र नाम का निरपराध कीर्तन करने से तुरन्त प्राप्त की जा सकती हैं।

इस सन्दर्भ में श्रील जीव गोस्वामी अपनी पुस्तक भक्ति-सन्दर्भ (173) में कहते हैं- यद्यपि अन्या भक्तिः कलौ कर्तव्या, तदा कीर्तनाख्य-भक्तिसंयोगेनैव। भक्ति की नवों विधियों में से कीर्तन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए श्रील जीव गोस्वामी का आदेश है कि अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य आदि अन्य विधियों को तो सम्पन्न करना ही चाहिए, किन्तु उनके पहले और बाद में पवित्र नाम का कीर्तन होना चाहिए। इसीलिए हमने अपने सारे केन्द्रों में यह विधि आरम्भ की है। अर्चन, आरति, भोग, समर्पण, अर्चाविग्रह अलंकरण के पहले और बाद में भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे-किया जाता है।

दीक्षा-पुरश्चर्या-विधि अपेक्षा ना करे ।

जिह्वा-स्पर्शे आ-चण्डाल सबारे उद्धारे ॥108॥

दीक्षा-दीक्षा; पुरश्चर्या-दीक्षा से पहले का कार्य; विधि-विधि-विधान; अपेक्षा-पर निर्भरता; ना-नहीं; करे-करती है; जिह्वा-जबान; स्पर्शे-स्पर्श करके; आ-चण्डाल–एक चाण्डाल भी; सबारे प्रत्येक का; उद्धारे-उद्धार करती है।

अनुवाद

“न तो दीक्षा लेने की आवश्यकता है न दीक्षा के पूर्व के आवश्यक कृत्य करने की। मनुष्य को केवल होठों पर पवित्र नाम लाना होता है। इस प्रकार अधम से अधम व्यक्ति (चण्डाल) का भी उद्धार हो जाता है।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी ने अपनी पुस्तक भक्ति-सन्दर्भ (283) में दीक्षा की व्याख्या की है।

दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात्

कुर्यात् पापस्य सङ्क्षयम् ।

तस्मात् दीक्षेति सा प्रोक्ता

देशिकैस्तत्त्वकोविदैः ॥

“दीक्षा वह विधि है, जिससे मनुष्य दिव्य ज्ञान को जाग्रत कर सकता है और अपने सारे पापकर्मों के फलों का क्षय कर सकता है। प्रामाणिक शास्त्रों के अध्ययन में पटु व्यक्ति इस विधि को दीक्षा नाम से जानता है।” दीक्षा के विधानों की व्याख्या हरिभक्ति-विलास (2.3-4) तथा भक्ति- सन्दर्भ (283) में की गई है :

द्विजानामनुपेतानां स्वकर्माध्ययनादिषु

यथाधिकारो नास्तीह स्याच्चोपनयनादनु ।

तथात्रादीक्षितानां तु मन्त्रदेवार्चनादिषु

नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिवसंस्तुतम् ॥

“भले ही कोई ब्राह्मण कुल में उत्पन्न क्यों न हुआ हो, वह दीक्षा तथा जनेऊ के बिना वैदिक कर्मकाण्ड सम्पन्न नहीं कर सकता। ब्राह्मण कुल में जन्म लेने पर भी मनुष्य दीक्षा तथा यज्ञोपवीत संस्कार के बाद ही ब्राह्मण बनता है। ब्राह्मण के रूप में दीक्षित हुए बिना वह ठीक से पवित्र नाम की पूजा नहीं कर सकता।”

वैष्णव नियमों के अनुसार मनुष्य को ब्राह्मण रूप में दीक्षित होना चाहिए। हरिभक्ति-विलास (2.6) में विष्णु यामल का निम्नलिखित उद्धरण दिया गया है :

अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वं निरर्थकम् ।

पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षाविरहितो जनः॥

"प्रामाणिक गुरु से दीक्षा प्राप्त किये बिना मनुष्य के सारे भक्ति-कार्य व्यर्थ जाते हैं। जिस व्यक्ति की ठीक से दीक्षा नहीं हुई रहती, वह पुनः पशु योनि को प्राप्त हो सकता है।"

हरिभक्ति-विलास (2.10) में आगे भी उद्धरण है :

अतो गुरुं प्रणम्यैवं सर्वस्वं विनिवेद्य च ।

गृहणीयाद्वैष्णवं मन्त्रं दीक्षापूर्व विधानतः ॥

"प्रामाणिक गुरु की शरण में जाना हर मनुष्य का धर्म है। उसे अपना तन, मन तथा बुद्धि–सब कुछ देकर गुरु से वैष्णव दीक्षा लेनी चाहिए।"

भक्ति-सन्दर्भ (298) में तत्त्व सागर का निम्नलिखित उद्धरण मिलता है :

यथा काञ्चनतां याति कास्यं रसविधानतः ।

तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥

"जब कांसे को पारे से स्पर्श कराया जाता है, तो वह रासायनिक क्रिया द्वारा सोने में बदल जाता है। इसी तरह विधिवत् दीक्षा होने पर व्यक्ति में ब्राह्मण के गुण आ जाते हैं।"

पुरश्चर्या विधि की व्याख्या करते हुए हरिभक्ति-विलास (17.11-12) में अगस्त्य-संहिता के निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये गये हैं :

पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च ।

होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते ॥

गुरोर्लब्धस्य मन्त्रस्य प्रसादेन यथाविधि ।

पञ्चाङ्गोपासनासिद्ध्यै पुरश्चैतद्विधीयते ॥

“प्रातः, दोपहर तथा सायंकाल अर्चाविग्रह का पूजन, हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन, तर्पण, अग्नि-यज्ञ तथा ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। ये पाँचों कार्य पुरश्चर्या कहलाते हैं। गुरु से दीक्षा लेते समय पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए पहले इन पुरश्चर्या कार्यों को सम्पन्न करना चाहिए।”

पुरः शब्द का अर्थ है “पहले” और चर्या का अर्थ है “कार्य।” इन कार्यों के आवश्यक होने के कारण ही हम अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ में शिष्यों को तुरन्त दीक्षित नहीं करते। दीक्षा के पूर्व छ: मास तक शिष्य को पहले आरती तथा शास्त्रों की कक्षाओं में भाग लेना होता है, विधि-विधानों का पालन करना होता है और अन्य भक्तों की संगति करनी होती है। जब वह पुरश्चर्या-विधि में वस्तुतः अग्रसर हो जाता है, तब स्थानीय मन्दिर-अध्यक्ष दीक्षा के लिए उसकी संस्तुति करता है। ऐसा नहीं है कि नियमों को पूरा किये बिना किसी को सहसा दीक्षित किया जा सके। जब वह हरे कृष्ण मन्त्र का प्रतिदिन सोलह माला जप करके, नियमों का पालन करके तथा कक्षाओं में उपस्थित रहकर उन्नति करता है, तब अगले छह महीनों में उसका यज्ञोपवीत कर दिया जाता है।

हरिभक्ति-विलास (17.4-5, 7) में कहा गया है।

विना येन न सिद्धः स्यान्मन्त्रो वर्षशतैरपि।

कृतेन येन लभते साधको वाञ्छितं फलम् ॥

पुरश्चरण सम्पन्नो मन्त्रो हि फलधायकः।

अतः पुरष्क्रियां कुर्यात् मन्त्रवित् सिद्धिकङ्क्षया ॥

पुरष्क्रिया हि मन्त्राणां प्रधानं वीर्यमुच्यते।

वीर्यहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः।

पुरश्चरणहीनो हि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥

“पुरश्चर्या विधि को सम्पन्न किये बिना इस मन्त्र का सैंकड़ों वर्षों तक कीर्तन करने पर भी पूर्णता प्राप्त नहीं की जा सकती। किन्तु जिसने पुरश्चर्या विधि का पालन किया है, उसे सरलता से सफलता प्राप्त हो सकती है। अपनी दीक्षा की पूर्णता चाहने वाले को चाहिए कि पहले वह पुरश्चर्या विधि का पालन करे। पुरश्चर्या विधि वह जीवनी शक्ति है, जिससे

मन्त्रोच्चार में सफलता प्राप्त होती है। इस जीवनी शक्ति के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता। इसी तरह पुरश्चर्या विधि की जीवनी शक्ति के बिना कोई मन्त्र सिद्ध नहीं होता।"

श्रील जीव गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ भक्ति-सन्दर्भ (283-84) में अर्चाविग्रह की पूजा और दीक्षा के महत्त्व का वर्णन इस प्रकार किया है :

यद्यपि श्रीभागवत-मते पञ्चरात्रादि-यत् अर्चन-मार्गस्य आवश्यकत्वं नास्ति तद् विनापि शरणापत्यादिनाम् एकतरेणापि पुरुषार्थ-सिद्धेरभिहितत्वात्, तथापि श्रीनारदादि-वर्तमानुसरद्भिः श्रीभगवता सह सम्बन्ध-विशेषम् दीक्षा-विधानेन श्री-गुरु-चरण सम्पादितम् चिकीर्षाद्भिः कृतायां दीक्षायामर्चनमवश्यं क्रियेतैव।

यद्यपि स्वरूपतो नास्ति, तथापि प्राय: स्वभावतो देहादिस्म्बन्धेन कर्दयशीलानां विक्षिप्तचित्तानां जनानां तत्तत्संकोचीकरणाय श्रीमद्ऋषि-प्रभृतिभि रत्रार्चनमार्गे क्वचित् क्वचित् काचित् काचिन् मर्यादा स्थापितास्ति।

"श्रीमद्भागवत का मत है कि अर्चाविग्रह की पूजा की प्रक्रिया वास्तव में आवश्यक नहीं है। ठीक उसी तरह जिस तरह पंचरात्र तथा अन्य शास्त्रों द्वारा निर्धारित आदेशों का पालन करना आवश्यक नहीं है। भागवत का आदेश है। कि अर्चाविग्रह की पूजा सम्पन्न किए बिना भी मनुष्य किसी अन्य भक्ति- विधि से मानव जीवन को पूरी तरह सफल बना सकता है, जैसे भगवान् के चरणों पर उनके संरक्षण के लिए स्वयं को समर्पित करने मात्र से। फिर भी, श्री नारद तथा उनके उत्तरवर्तियों के मार्ग पर चलने वाले वैष्णव, गुरु द्वारा दीक्षित होकर, उनकी कृपा प्राप्त करके भगवान् से निजी सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास करते हैं और इस परम्परा में दीक्षा के समय भक्तों को अर्चाविग्रह-पूजा शुरू करनी पड़ती है।

"यद्यपि अर्चाविग्रह-पूजा आवश्यक नहीं है, भक्ति के मार्ग पर चलने वाले अधिकांश व्यक्तियों की भौतिक बद्ध स्थिति को देखते हुए इस कार्य में लगना आवश्यक हो जाता है। उनकी शारीरिक एवं मानसिक स्थितियों पर विचार करने पर हमें ज्ञात होता है कि ऐसे प्रत्याशियों का चरित्र अशुद्ध और उनके मन उत्तेजित होते हैं। अत: इस भौतिक स्थिति को सुधारने के लिए महर्षि नारद तथा अन्यों ने अलग-अलग समय पर अर्चाविग्रह-पूजा के लिए विविध प्रकार के विधि-विधानों की संस्तुति की है।"

इसी प्रकार रामार्चन-चन्द्रिका में कहा गया है :

विनैव दीक्षां विप्रेन्द्र पुरश्चर्या विनैव हि ।

विनैव न्यासविधिना जपमात्रेण सिद्धिदा ॥

“हे ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ, दीक्षा प्रारम्भिक संस्कार या संन्यास आश्रम स्वीकार किये बिना भी, मनुष्य भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने मात्र से भक्ति में पूर्णता प्राप्त कर सकता है।”

दूसरे शब्दों में, हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन इतना प्रबल होता है कि यह औपचारिक दीक्षा पर निर्भर नहीं करता, किन्तु यदि कोई दीक्षित होता है और पंचरात्र विधि (अर्चाविग्रह-पूजा) का पालन करता है, तो शीघ्र ही उसकी कृष्ण-चेतना जाग्रत हो जायेगी और भौतिक जगत् से उसकी पहचान शीघ्र समाप्त हो जायेगी। जो जितना ही भौतिक पहचान से मुक्त होता है, वह उतना ही आत्मा की गुणात्मक रूप से परमात्मा से समानता का अनुभव कर सकता है। जब मनुष्य परम पद स्थित होता है, तब वह भगवान् के पवित्र नाम तथा भगवान् में अभिन्नता समझ सकता है। अनुभूति की इस अवस्था में भगवान् के पवित्र नाम अर्थात् हरे कृष्ण मन्त्र की पहचान किसी भौतिक ध्वनि से नहीं की जा सकती। यदि कोई व्यक्ति हरे कृष्ण महामन्त्र को भौतिक ध्वनि मानता है, तो उसका पतन हो जाता है। भगवान् के पवित्र नाम को साक्षात् भगवान् स्वीकार करके उसकी पूजा और कीर्तन करना चाहिए। इसलिए मनुष्य को प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में शास्त्रों के आधार पर सम्यक् रीति से दीक्षा लेनी चाहिए। यद्यपि भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन बद्ध तथा मुक्त दोनों प्रकार के जीवों के लिए समान रूप से उत्तम है, किन्तु बद्धजीवों के लिए यह विशेष रूप से लाभप्रद है, क्योंकि कीर्तन करके जीव मुक्त हो सकता है। जब नाम-कीर्तन करने वाला व्यक्ति मुक्त हो जाता है, तो वह भगवद्धाम वापस जाकर पूर्ण सिद्धि को प्राप्त होता है। चैतन्य-चरितामृत (आदि 7.73) के शब्दों में,

कृष्णमन्त्र हइते हबे संसारमोचन ।

कृष्णनाम हइते पाबे कृष्णेर चरण ॥

“केवल पवित्र कृष्ण-नाम का कीर्तन करने से मनुष्य को भौतिक संसार से मुक्ति मिल सकती है। हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन मात्र से मनुष्य भगवान् के चरणकमलों का दर्शन प्राप्त कर सकता है।”

भगवान् के पवित्र नाम का निरपराध कीर्तन दीक्षा-क्रिया पर आश्रित नहीं है। यद्यपि दीक्षा पुरश्चर्या या पुरश्चरण पर आश्रित है, लेकिन भगवन्नाम का वास्तविक कीर्तन पुरश्चर्या विधि अर्थात् नियामक विधि-विधानों पर निर्भर नहीं करता। यदि निरपराध भाव से कोई एक बार भी पवित्र भगवन्नाम का उच्चारण करता है, तो उसे सारी सफलता प्राप्त होती है। भगवन्नाम का कीर्तन करते समय जीभ को चलते रहना चाहिए। नाम-कीर्तन करने मात्र से ही मनुष्य का तुरन्त उद्धार हो जाता है। जिह्वा तो सेवोन्मुख-जिह्वा है अर्थात् यह सेवा से नियंत्रित होती है। जिसकी जीभ भौतिक वस्तुओं

के आस्वादन तथा उनके विषय में बातें करने में लगी रहती है, वह अपनी जीभ का उपयोग परम अनुभूति के लिए नहीं कर सकता।

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः ।

सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः ॥

"भौतिक इन्द्रियों से मनुष्य भगवान् के पवित्र नाम या उनके रूप, कार्य तथा लीलाओं को नहीं समझ सकता। किन्तु जब कोई वास्तव में भक्ति में लग जाता है और अपनी जिह्वा का उपयोग करता है, तब उसे भगवान् की अनुभूति होती है।" चैतन्य-चरितामृत (मध्य 17.134) के अनुसार :

अतएव कृष्णेर 'नाम' 'देह' 'विलास' ।

प्राकृतेन्द्रिय-ग्राह्य नहे, हय स्वप्रकाश ॥

"इन कुण्ठित भौतिक इन्द्रियों के द्वारा भगवान् के दिव्य नाम, उनके रूप, कार्य तथा लीलाओं को नहीं समझे जा सकते। वे तो स्वतंत्र रूप से व्यक्त होते हैं।"

अनुषङ्ग-फले करे संसारेर क्षय ।

चित्त आकर्षिया कराय कृष्ण प्रेमोदय ॥ 109॥

अनुषङ-फले साथ ही साथ परिणाम के रूप में; करे-करता है; संसारेर क्षय-भौतिक बद्धावस्था का अन्त; चित्त-विचार; आकर्षिया-आकर्षित करके; कराय-कराता है; कृष्णे-भगवान् कृष्ण के; प्रेम-उदय-दिव्य प्रेम की जागृति।

अनुवाद

"भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन द्वारा मनुष्य भौतिक कामों के बन्धन का विनाश करता है। इसके बाद वह कृष्ण के प्रति अत्यधिक आकृष्ट होता है और इस तरह सुप्त कृष्ण-प्रेम का उदय होता है।

आकृष्टिः कृत-चेतसां सु-मनसामुच्चाटनं चांहसाम्

आचण्डालममूक-लोक-सुलभो वश्यश्च मुक्ति-श्रियः ।

नो दीक्षां न च सक्रियां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते

मन्त्रोऽयं रसना-स्पृगेव फलति श्री-कृष्ण-नामात्मकः ॥110॥

आकृष्टिः-आकर्षण; कृत-चेतसाम्-साधु पुरुषों का; सु-मनसाम्-परम उदार मन वालों का; उच्चाटनम् नाश करने वालों का; च–तथा; अंहसाम्-पाप-फलों का; आ-चण्डालम्-चाण्डालों का भी; अमूक-गूगों के अतिरिक्त; लोक-सु-लभः-सभी लोगों के लिए सुलभ; वश्यः–पूर्ण नियन्ता; च-तथा; मुक्ति-श्रियः–मुक्ति का ऐश्वर्य; न उ-नहीं; दीक्षाम्-दीक्षा; न-नहीं; च-भी; सत्-क्रियाम्-पुण्य कर्म; न-नहीं; च-भी; पुरश्चर्याम्-दीक्षा से पहले के विधि-विधान; मनाक्-थोड़े; ईक्षते–निर्भर है; मन्त्रः-मन्त्र; अयम्-यह; रसना-जिह्वा; स्पृक्-स्पर्श करना; एव–मात्र; फलति-फलता है; श्री-कृष्ण-नाम-आत्मकः-भगवान् कृष्ण के पावन नाम से निर्मित।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम अनेक सन्त एवं उदार लोगों के लिए अत्यन्त आकर्षक है। यह सारे पापों का संहार करने वाला है और इतना शक्तिशाली है कि गैंगों के अतिरिक्त, जो इसका उच्चारण नहीं कर सकते, अधम से अधम व्यक्ति, चण्डाल तक के लिए यह सहज उपलब्ध है। कृष्ण का नाम मुक्ति के ऐश्वर्य का नियामक है और यह कृष्ण से अभिन्न है। जीभ से नाम का स्पर्श करते ही तुरन्त उसका प्रभाव पड़ता है। नाम-कीर्तन दीक्षा, पुण्यकर्म या दीक्षा के पूर्व पालन किये जाने वाले पुरश्चर्या नियमों पर आश्रित नहीं है। पवित्र नाम इन सारे कार्यों की प्रतीक्षा नहीं करता। वह स्वयं में पर्याप्त है।

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत पद्यावली (29) में प्राप्य है।

"अतएव याँर मुखे एक कृष्ण-नाम ।

सेइ त' वैष्णव, करिह ताँहार सम्मान" ॥111॥

अतएव–इसलिए; याँर मुखे-जिसके मुख में; एक-एक; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम; सेइ त' वैष्णव-वह वैष्णव है; करिह-दो; ताँहार-उसको; सम्मान-सम्मान।

अनुवाद

अन्त में श्री चैतन्य महाप्रभु ने उपदेश दिया, "जो व्यक्ति हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करता है, वह वैष्णव माना जाता है, अतएव तुम उसका पूरी तरह से सम्मान करना।"

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी अपनी पुस्तक उपदेशामृत में कहते हैं-कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत दीक्षास्ति चेत् प्रणतिभिश्च भजन्तम् ईशम्। जिस व्यक्ति को प्रामाणिक गुरु दीक्षा प्राप्त हो चुकी है और जो श्रद्धापूर्वक नाम जपते हुए तथा गुरु के आदेशों का पालन करते हुए दिव्य पद पर स्थित है, उसका उन्नत भक्त को सम्मान करना चाहिए। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की टिप्पणी है कि गृहस्थों के लिए वैष्णवों की सेवा करना सर्वाधिक आवश्यक है। उसे इस बात पर विचार नहीं करना होता कि वह वैष्णव दीक्षा-प्राप्त है अथवा नहीं। दीक्षित होकर भी मनुष्य मायावाद-दर्शन से कलुषित हो सकता है, किन्तु जो व्यक्ति भगवान् के पवित्र नाम का निरपराध कीर्तन करता है, वह इस तरह कलुषित नहीं हो सकता। समुचित दीक्षा-प्राप्त वैष्णव अपूर्ण हो सकता है, किन्तु जो व्यक्ति भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता है, वह सब प्रकार से पूर्ण है। भले ही वह नया भक्त क्यों न हो, उसे शुद्ध अनन्य भक्त मानना पड़ेगा। गृहस्थ का धर्म है कि ऐसे अनन्य वैष्णव को आदर प्रदान करे। यही श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश है।

खण्डेर मुकुन्द दास, श्री-रघुनन्दन ।

श्री-नरहरि,—एइ मुख्य तिन जन ॥ 112॥

खण्डेर-खण्ड नामक स्थान; मुकुन्द-दास-मुकुन्द दास; श्री-रघुनन्दन–श्री रघुनन्दन; श्री-नरहरि-श्री नरहरि; एइये; मुख्य–मुख्य; तिन–तीन; जन-व्यक्ति।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने खण्ड नामक स्थान के तीन निवासियों-मुकुन्द दास, रघुनन्दन तथा श्री नरहरि की ओर ध्यान दिया।

मुकुन्द दासेरे पुछे शचीर नन्दन ।

'तुमि—पिता, पुत्र तोमार-श्री-रघुनन्दन? ॥113॥

मुकुन्द दासेरे-मुकुन्द दास को; पुछे-पूछा; शचीर नन्दन–शची माता के पुत्र ने; तुमि-तुम; पिता–पिता; पुत्र-पुत्र; तोमार-तुम्हारा; श्री-रघुनन्दन-श्री रघुनन्दन।

अनुवाद

इसके बाद शची-पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुकुन्द दास से पूछा, "तुम पिता हो और तुम्हारा पुत्र रघुनन्दन है। ऐसा ही है न?

किबा रघुनन्दन—पिता, तुमि–तार तनय? ।

निश्चय करिया कह, याउक संशय' ॥ 114॥

किबा-अथवा; रघुनन्दन-रघुनन्दन; पिता-पिता; तुमि-तुम; तार-उसके; तनय-पुत्र; निश्चय करिया–निश्चय करके; कह-कहो; याउक संशय-मेरा संशय नष्ट हो जाए।

अनुवाद

"अथवा श्रील रघुनन्दन तुम्हारा पिता है और तुम उसके पुत्र हो? कृपा करके मुझे असली बात बताओ, जिससे मेरा सन्देह दूर हो जाए।"

मुकुन्द कहे,—रघुनन्दन मोर 'पिता' हय ।

आमि तार 'पुत्र',—एइ आमार निश्चय ॥115॥

मुकुन्द कहे-मुकुन्द दास ने उत्तर दिया; रघुनन्दन--मेरा पुत्र, रघुनन्दन; मोर-मेरा; पिता-पिता; हय-है; आमि-मैं; तार-उसका; पुत्र-पुत्र; एइ-यह; आमार-मेरा; निश्चय–निर्णय।

अनुवाद

मुकुन्द ने उत्तर दिया, "रघुनन्दन मेरा पिता है और मैं उसका पुत्र हूँ। यही मेरा निश्चय है।

आमा सबार कृष्ण-भक्ति रघुनन्दन हैते ।

अतएव पिता–रघुनन्दन आमार निश्चिते ॥116॥

आमा सबार–हम सबकी; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण-भक्ति; रघुनन्दन हैते-रघुनन्दन के कारण; अतएव–इसलिए; पिता–पिता; रघुनन्दन-रघुनन्दन; आमार निश्चिते-मेरा निर्णय।

अनुवाद

"रघुनन्दन के कारण हम सबको कृष्ण-भक्ति प्राप्त हुई है, इसलिए मेरे विचार में वही मेरा पिता है।"

शुनि' हर्षे कहे प्रभु–"कहिले निश्चय ।

याँहा हैते कृष्ण-भक्ति सेइ गुरु हय" ॥ 117॥

शुनि'–सुनकर; हर्षे-अत्यन्त हर्ष में; कहे प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; कहिले निश्चय तुमने ठीक कहा है; याँहा हैते–जिससे; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण-भक्ति; सेइ-वह व्यक्ति; गुरु हय-गुरु है।

अनुवाद

मुकुन्द दास से यह उचित निर्णय सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कहकर इसकी पुष्टि की, "हाँ, यह सही है। जो कृष्ण-भक्ति को जाग्रत करता है, वह निश्चित रूप से गुरु है।"

भक्तेर महिमा प्रभु कहिते पाय सुख ।

भक्तेर महिमा कहिते हय पञ्च-मुख ॥ 118॥

भक्तेर महिमा-भक्त की महिमा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहिते-बोलकर; पाय सुख–प्रसन्न होते हैं; भक्तेर महिमा-भक्त की महिमा; कहिते-बोलने के लिए; हय-हो गये; पञ्च-मुख-पाँच मुख वाले।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों की महिमा का बखान करने से अत्यन्त सुखी थे। जब वे उनकी महिमा का वर्णन कर रहे थे, तो मानो उनके पाँच मुख हो गये हों।

भक्त-गणे कहे,—शुन मुकुन्देर प्रेम ।

निगूढ़ निर्मल प्रेम, येन दग्ध हेम ॥119॥

भक्त-गणे कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों को बताया; शुन-कृपया सुनो; मुकुन्देर प्रेम-मुकुन्द का भगवत् प्रेम; निगूढ़-बहुत गहरा; निर्मल-निर्मल; प्रेम-प्रेम भाव; येन-जैसे; दग्ध-शुद्ध; हेम–सोना।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने अपने सारे भक्तों को बतलाया, "कृपा करके मुकुन्द के भगवत्प्रेम के विषय में सुनें। यह अत्यन्त गहरा और शुद्ध प्रेम है और इसकी उपमा केवल शुद्ध किये गये सोने से ही दी जा सकती है।

बाह्ये राज-वैद्य इँहो करे राज-सेवा ।

अन्तरे कृष्ण-प्रेम इँहार जानिबेक केबा ॥120॥

बाह्ये-बाहर से; राज-वैद्य-राज वैद्य; इँहो-वह; करे-करता है; राज-सेवा-सरकारी सेवा; अन्तरे-हृदय में; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; इँहार-मुकुन्द दास के; जानिबेक-जान सकता है; केबा-कौन ।

अनुवाद

"बाहर से मुकुन्द दास सरकारी नौकरी में लगा राज-वैद्य प्रतीत होता है, किन्तु भीतर से उसमें कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम है। भला उसके प्रेम को कौन समझ सकता है?

तात्पर्य

जब तक श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु प्रकट नहीं करते कि भगवान् की सेवा में लगा कौन व्यक्ति महान् भगवद्भक्त है, तब तक इसे कौन समझ सकता है ? इसीलिए चैतन्य-चरितामृत (मध्य 23.39) में कहा गया है- ताँर वाक्य, क्रिया, मुद्रा विज्ञेह ना बुझय–विद्वान से विद्वान व्यक्ति भी वैष्णव के कार्यकलापों को नहीं समझ सकता। वैष्णव भले ही किसी सरकारी नौकरी में या पेशे में लगा रहे जिससे बाहर से लोग उसकी स्थिति को नहीं समझ पाते, किन्तु भीतर से वह नित्यसिद्ध वैष्णव अर्थात् शाश्वत रूप से मुक्त वैष्णव हो सकता है। मुकुन्द दास बाहर से राजवैद्य थे, किन्तु भीतर से वे परम मुक्त परमहंस भक्त थे। श्री चैतन्य महाप्रभु इसे भलीभाँति जानते थे, किन्तु सामान्य लोग इसे जान नहीं पाये, क्योंकि वैष्णव के कार्यों तथा उसकी योजनाओं को सामान्य व्यक्ति समझ नहीं सकते। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनका प्रतिनिधि किसी भक्त के विषय में हर बात जानते हैं, भले ही भक्त ऊपर से सामान्य गृहस्थ तथा पेशेवर व्यापारी क्यों न लगता हो।

एक दिन म्लेच्छ-राजार उच्च-टुङ्गिते ।

चिकित्सार बात्कहे ताँहार अग्रेते ॥ 121॥

एक दिन-एक दिन; म्लेच्छ-राजार-मुस्लिम राजा का; उच्च-टुङ्गिते-उच्च स्थान पर; चिकित्सार बात्-ईलाज की बात; कहे-कह रहा था; ताँहार अग्रेते—उसके समक्ष।

अनुवाद

"एक दिन राजवैद्य मुकुन्द दास मुसलिम राजा के साथ ऊँचे आसन पर बैठकर ईलाज के विषय में बात कर रहा था।

हेन-काले एक मयूर-पुच्छेर आड़ानी ।

राज-शिरोपरि धरे एक सेवक आनि' ॥ 122॥

हेन-काले—इस समय; एक-एक; मयूर-पुच्छर-मयूर पंखों का; आड़ानी-पंखा; राज-शिर-उपरि-राजा के सिर के ऊपर; धरे-पकड़ रखा; एक-एक; सेवक-सेवक ने; आनि'–लाकर।

अनुवाद

"जिस समय राजा और मुकुन्द दास बातें कर रहे थे, उस समय एक नौकर मोर के पंखों का बना पंखा लाया, जिससे राजा के सिर की धूप से रक्षा की जा सके। फलतः वह राजा के सिर के ऊपर उस पंखे को पकड़े रहा।

शिखि-पिच्छ देखि' मुकुन्द प्रेमाविष्ट हैला ।

अति-उच्च टुङ्गि हैते भूमिते पड़िला ॥ 123 ॥

शिखि-पिच्छ-मयूर-पंख; देखि'–देखकर; मुकुन्द-मुकुन्द दास; प्रेम-आविष्ट हैला–प्रेमावेश में आ गया; अति-उच्च-बहुत ऊँचे; टुङ्गि–स्थान; हैते–से; भूमिते-भूमि पर; पड़िला–गिर गया।

अनुवाद

“मोर के पंख से बने पंखे को देखकर मुकुन्द भगवत्प्रेम में आविष्ट हो गया और वह उस उच्च आसन से भूमि पर गिर पड़ा।

राजार ज्ञान,—राज-वैद्येर हइल मरण ।

आपने नामिया तबे कराइल चेतन ॥ 124॥

राजार ज्ञान-राजा ने सोचा; राज-वैद्येर–राजवैद्य की; हइल मरण मृत्यु हो गई; आपने–स्वयं; नामिया--नीचे उतरकर; तबे-उसे; कराइल चेतन-होश में लाया।

अनुवाद

“राजा डर गया कि राजवैद्य की मृत्यु हो गई, फलतः वह स्वयं नीचे उतर गया और उसे होश में ले आया।

राजा बले—व्यथा तुमि पाइले कोन ठाञि? ।

मुकुन्द कहे,—अति-बड़ व्यथा पाइ नाइ ॥125॥

राजा बले-राजा ने कहा; व्यथा-दर्द; तुमि पाइले-तुमने पाया है; कोन ठाञि-कहाँ; मुकुन्द कहे-मुकुन्द ने उत्तर दिया; अति-बड़ व्यथा-बहुत अधिक दर्द; पाइ नाइ-मैंने नहीं पाया है।

अनुवाद

“जब राजा ने मुकुन्द से पूछा, “तुम्हें कहाँ दर्द है?’ तो मुकुन्द ने उत्तर दिया, 'मुझे अधिक दर्द नहीं है।’

राजा कहे,—मुकुन्द, तुमि पड़िला कि लागि’? ।

मुकुन्द कहे, राजा, मोर व्याधि आछे मृगी ॥126॥

राजा कहे-राजा ने पूछा; मुकुन्द–हे मुकुन्द; तुमि पड़िला-तुम गिर गये; कि लागि’-किस कारण; मुकुन्द कहे-मुकुन्द ने उत्तर दिया; राजा-मेरे प्रिय राजा; मोर-मुझे; व्याधि-रोग; आछे-है; मृगी–मिर्गी।

अनुवाद

“जब राजा ने पूछा, “हे मुकुन्द, तुम क्यों गिरे?’ तो मुकुन्द ने उत्तर दिया, ‘हे राजन्, मुझे मिरगी नामक रोग है।’

महा-विदग्ध राजा, सेइ सब जाने ।

मुकुन्देरे हैल ताँर ‘महा-सिद्ध’-ज्ञाने ॥ 127॥

महा-विदग्ध-अत्यन्त बुद्धिमान; राजा-राजा; सेइ-वह; सब जाने-सब कुछ। जानता है; मुकुन्देरे—मुकुन्द पर; हैल–था; ताँर-उसका; महा-सिद्ध-ज्ञाने–सम्पूर्ण भक्त के रूप में अनुमान।

अनुवाद

अत्यधिक बुद्धिमान होने के कारण राजा सारी बात जान गया। उसके अनुमान से मुकुन्द अत्यन्त असाधारण, महान, मुक्त पुरुष था।

रघुनन्दन सेवा करे कृष्णेर मन्दिरे ।

द्वारे पुष्करिणी, तार घाटेर उपरे ॥128॥

कदम्बेर एक वृक्षे फुटे बार-मासे ।

नित्य दुइ फुल हय कृष्ण-अवतंसे ॥ 129॥

रघुनन्दन-रघुनन्दन; सेवा करे-सेवा करता है; कृष्णेर मन्दिरे-भगवान् कृष्ण के मन्दिर में; द्वारे-द्वार के निकट; पुष्करिणी–एक सरोवर “पुष्करनी’; तार–इसके; घाटेर उपरे–तट पर; कदम्बेर-कदम्ब पुष्पों के; एक वृक्षे–एक वृक्ष पर; फुटे-खिलते हैं; बार-मासेबारह मास; नित्य-प्रतिदिन; दुइ फल-दो फूल; हय-होते हैं; कृष्ण-अवतंसे-कृष्ण की सजावट के लिए।

अनुवाद

“रघुनन्दन भगवान् कृष्ण के मन्दिर में निरन्तर सेवारत रहता है। मन्दिर के प्रवेश द्वार के निकट एक सरोवर है, जिसके तट पर एक कदम्ब का वृक्ष है, जो कृष्ण की सेवा के लिए नित्य दो फूल देता है।”

मुकुन्देरे कहे पुनः मधुर वचन ।

‘तोमार कार्य—धर्मे धन-उपार्जन ॥ 130॥

मुकुन्देर-मुकुन्द को; कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; पुनः–दोबारा; मधुर वचन-मधुर शब्द; तोमार कार्य-तुम्हारा कार्य; धर्मे धन-उपार्जन–भौतिक एवं आध्यात्मिक धन कमाना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु पुनः मुकुन्द से मीठी वाणी में बोले, “तुम्हारा कार्य भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों सम्पत्ति अर्जित करना है।

रघुनन्दनेर कार्य—कृष्णेर सेवन ।

कृष्ण-सेवा विना इँहार अन्य नाहि मन ॥131॥

रघुनन्दनेर कार्य-रघुनन्दन का कार्य; कृष्णेर सेवन-भगवान् कृष्ण की पूजा करना; कृष्ण-सेवा विना-कृष्ण पूजा के अतिरिक्त; इँहार—उसका; अन्य-अन्य; नाहि-नहीं है; मन-इरादा।

अनुवाद

“रघुनन्दन का यह भी कार्य है कि वह सदैव भगवान् कृष्ण की सेवा में लगा रहे। भगवान् कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त उसका अन्य कोई मन्तव्य नहीं है।”

नरहरि रहु आमार भक्त-गण-सने, ।

एइ तिन कार्य सदा करह तिन जने’ ॥132॥

नरहरि-नरहरि; रह-उसे रहने दो; आमार-मेरे; भक्त-गण-सने-अन्य भक्तों के साथ; एइ तिन कार्य-ये तीन कर्तव्य; सदा-सदा; करह-करो; तिन जने-तुम तीन व्यक्ति।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने नरहरि को आदेश दिया, “मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे भक्तों के साथ यहीं रहो। इस तरह तुम तीनों भगवान् की सेवा के लिए ये तीनों कार्य सदैव करते रहना।”

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तीन व्यक्तियों के लिए तीन अलग-अलग कार्य निर्धारित किये। मुकुन्द के लिए धन अर्जित करके धर्म का पालन करने, नरहरि के लिए अपने भक्तों की सेवा में लगे रहने और रघुनन्दन को मन्दिर में भगवान् की सेवा करते रहने का कार्य सुपुर्द किया। इस तरह एक व्यक्ति मन्दिर में पूजा करता है, दूसरा अपना नियत कर्म करके ईमानदारी से धन कमाता है और तीसरा भक्तों के साथ कृष्णभावनामृत का प्रचार करता है। ऊपर से ये तीनों प्रकार के सेवा-कार्य पृथक् लगते हैं, किन्तु वास्तव में हैं नहीं। जब कृष्ण या श्री चैतन्य महाप्रभु केन्द्र-बिन्दु होते हैं, तब हर कोई भगवान् की सेवा के लिए विभिन्न कार्यों में लग सकता है। यही श्री चैतन्य महाप्रभु का निर्णय है।

सार्वभौम, विद्या-वाचस्पति,— दुइ भाइ ।

दुइ-जने कृपा करि' कहेन गोसाञि ॥ 133॥

सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; विद्या-वाचस्पति–विद्या वाचस्पति; दुइ भाइ–दोनों भाई; दुइ-जने दोनों को; कृपा करि'-अहैतुकी कृपा करके; कहेन–कहा; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु ने।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी अहैतुकी कृपावश सार्वभौम भट्टाचार्य तथा विद्यावाचस्पति–इन दोनों भाइयों को निम्नलिखित आदेश दिये।

'दारु'-जल'-रूपे कृष्ण प्रकट सम्प्रति ।

'दरशन'-'स्नाने' करे जीवेर मुकति ॥ 134॥

दारु-लकड़ी; जल-जल; रूपे–के रूपों में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; प्रकट-प्रकट हुए; सम्प्रति-वर्तमान समय में; दरशन-देखने से; स्नाने स्नान करने से; करे–किया; जीवेर मुकतिबद्ध आत्माओं की मुक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "इस कलियुग में कृष्ण दो रूपों में-काठ तथा जल के रूप में प्रकट हुए हैं। इस तरह बद्धजीवों द्वारा काठ का दर्शन करके और जल में स्नान करके मुक्त होने में वे सहायक हैं।

'दारु-ब्रह्म'-रूपे—साक्षात्श्री-पुरुषोत्तम ।

भागीरथी हन साक्षात् 'जल-ब्रह्म'-सम ॥ 135॥

दारु-ब्रह्म-रूपे-लकड़ी के रूप में ब्रह्म; साक्षात्-साक्षात्; श्री-पुरुषोत्तम भगवान् जगन्नाथ; भागीरथी-गंगा नदी; हन-है; साक्षात्-साक्षात्; जल-ब्रह्म-सम-जल रूप में ब्रह्म।

अनुवाद

"भगवान जगन्नाथ काठ के रूप में साक्षात् भगवान् हैं और गंगा नदी जल के रूप में साक्षात् भगवान् है।

तात्पर्य

वेदों का आदेश है- सर्वं खल्विदं ब्रह्म-हर वस्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अथात् परम ब्रह्म की शक्ति है। परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत्-हर वस्तु परम ब्रह्म की शक्ति की अभिव्यक्ति है। चूँकि शक्ति तथा शक्तिमान अभिन्न हैं, अतएव हर वस्तु कृष्ण अथवा परम ब्रह्म है। भगवद्गीता (9.4) से इसकी पुष्टि होती है :

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥

"मेरे अव्यक्त रूप से यह सारा ब्रह्माण्ड व्याप्त है। सारे जीव मुझमें स्थित हैं, किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ।"

कृष्ण अपने निर्विशेष पहलू द्वारा सारे ब्रह्माण्ड में फैले हुए हैं। चूँकि प्रत्येक वस्तु भगवान् की शक्ति की अभिव्यक्ति है, अतएव भगवान् अपनी किसी भी शक्ति द्वारा अपने आपको प्रकट कर सकते हैं। भगवान् इस युग में जगन्नाथ के रूप में काठ के माध्यम से और गंगा नदी के रूप में जल के माध्यम से प्रकट हुए हैं। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य तथा विद्यावाचस्पति–दोनों भाइयों को भगवान जगन्नाथ जी तथा गंगा नदी की पूजा करने का आदेश दिया।

सार्वभौम, कर 'दारु-ब्रह्म'-आराधन ।

वाचस्पति, कर जल-ब्रह्मेर सेवन ॥ 136॥

सार्वभौम-हे सार्वभौम; कर-लग जाओ; दारु-ब्रह्म-लकड़ी रूप ब्रह्म की; आराधन-पूजा; वाचस्पति-और वाचस्पति आप; कर-करो; जल-ब्रह्मेर-जल में प्रकट परम ब्रह्म की; सेवन-पूजा।

अनुवाद

"हे सार्वभौम भट्टाचार्य, आप जगन्नाथ पुरुषोत्तम की पूजा में अपने आपको लगाओ और हे वाचस्पति, आप माता गंगा की पूजा करो।"

मुरारि-गुप्तेरे प्रभु करि' आलिङ्गन।

ताँर भक्ति-निष्ठा कहेन, शुने भक्त-गण॥ 137॥

मुरारि-गुप्तेरे-मुरारि गुप्त को प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करि' आलिङ्गन-आलिंगन करके; ताँर-उसकी; भक्ति-निष्ठा-भक्ति में श्रद्धा; कहेन–कहा; शुने भक्त-गण-सभी भक्तों ने सुना।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुरारि गुप्त का आलिंगन किया और उससे भक्ति-निष्ठा के विषय में बातें कीं। इसे सारे भक्तों ने सुना।

पूर्वे आमि इँहारे लोभाइल बार बार।

परम मधुर, गुप्त, व्रजेन्द्र कुमार॥ 138॥

पूर्वे-पहले; आमि-मैं; इँहारे-उसको; लोभाइल-उकसाया; बार बार-बारम्बार; परम मधुर-बहुत मधुर; गुप्त-हे गुप्त; व्रजेन्द्र-कुमार-भगवान् कृष्ण, नन्द महाराज के पुत्र।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "इसके पूर्व मैं मुरारि गुप्त को कृष्ण की ओर आकृष्ट होने के लिए बारम्बार प्रेरित करता रहा। मैंने उससे कहा, 'हे गुप्त, व्रजेन्द्र कुमार श्रीकृष्ण अत्यन्त मधुर हैं।

स्वयं भगवान्कृष्ण—सर्वांशी, सर्वाश्रय।

विशुद्ध-निर्मल-प्रेम, सर्व-रसमय॥139॥

स्वयम् भगवान् कृष्ण-स्वयं भगवान् कृष्ण; सर्व-अंशी-अन्य सबके स्रोत; सर्व-आश्रय-सभी शक्तियों के भण्डार; विशुद्ध-विशुद्ध; निर्मल-निर्मल; प्रेम-प्रेम; सर्व-रस-मय-सभी रसों से पूर्ण।

अनुवाद

"कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, समस्त अवतारों के उद्गम तथा सारी वस्तुओं के स्रोत हैं। वे विशुद्ध दिव्य प्रेम रूप हैं और समस्त आनन्द के आगार हैं।

सकल-सद्गुण-वृन्द-रत्न-रत्नाकर।

विदग्ध, चतुर, धीर, रसिक-शेखर ॥140॥

सकल-सब; सत्-गुण-दिव्य गुण; वृन्द-समूह; रत्न-रत्न; रत्न-आकर-रत्नों की खान; विदग्ध-बुद्धिमान; चतुर-दक्ष; धीर-शान्त; रसिक-शेखर-सभी दिव्य रसों के स्वामी।

अनुवाद

"कृष्ण समस्त दिव्य गुणों के आगार हैं। वे रत्नों की खान के तुल्य हैं। वे हर बात में दक्ष हैं, अत्यन्त बुद्धिमान एवं धीर हैं और वे समस्त दिव्य रसों की पराकाष्ठा हैं।

मधुर-चरित्र कृष्णेर मधुर-विलास।

चातुर्य-वैदग्ध्य करे याँर लीला-रस ॥141॥

मधुर-चरित्र-मधुर चरित्र; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; मधुर-विलास-मधुर लीलाएँ; चातुर्य-दक्षता; वैदग्ध्य-बुद्धिमत्ता; करे-प्रकट करते हैं; याँर–जिनकी; लीला-लीलाओं का; रस-रस।

अनुवाद

"उनका चरित्र अत्यन्त मधुर है और उनकी लीलाएँ मधुर हैं। वे बुद्धि में दक्ष हैं। इस तरह वे सारी लीलाओं एवं रसों का आनन्द लूटते हैं।'

सेइ कृष्ण भज तुमि, हओ कृष्णाश्रय।

कृष्ण विना अन्य-उपासना मने नाहि लय ॥142॥

सेइ कृष्ण-उन कृष्ण भगवान् की; भज तुमि-तुम सेवा में लगो; हओ कृष्ण-आश्रय-कृष्ण का आश्रय लो; कृष्ण विना-कृष्ण के बिना; अन्य-उपासना-अन्य कोई पूजा; मने नाहि लय-मन को नहीं भाती।

अनुवाद

तब मैंने मुरारि गुप्त से अनुरोध किया कि, "तुम कृष्ण की पूजा करो और उनकी शरण में जाओ। उनकी सेवा के अतिरिक्त मन को अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता।'

एइ-मत बार बार शुनिया वचन ।

आमार गौरवे किछु फिरि' गेल मन ॥143॥

एइ-मत-इस प्रकार; बार बार-बारम्बार; शुनिया वचन-इन शब्दों को सुनकर; आमार गौरवे-मेरे प्रभाव के कारण; किछु-कुछ; फिरि' गेल-बदल गया; मन-उसका मन।

अनुवाद

'तरह वह बारम्बार मुझे सुनता रहा। मेरे प्रभाव से उसका मन छ बदला।

आमारे कहेन,—आमि तोमार किङ्कर ।

तोमार आज्ञाकारी आमि नाहि स्वतन्तर ॥144॥

आमारे कहेन-उसने मुझे कहा; आमि-मैं; तोमार किङ्कर--आपका दास; तोमार आज्ञा-कारी-आपका आज्ञाकारी; आमि-मैं; नाहि-नहीं हूँ; स्वतन्तर–स्वतंत्र।

अनुवाद

"तब मुरारि गुप्त ने उत्तर दिया, 'मैं आपका सेवक और आज्ञावाहक हूँ मेरा स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है।'

एत बलि' घरे गेल, चिन्ति' रात्रि-काले ।

रघुनाथ-त्याग-चिन्ताय हइल विकले ॥ 145॥

एत बलि'-यह कहकर; घरे गेल-अपने घर गया; चिन्ति'-यह सोचते हुए; रात्रि-काले-रात को; रघुनाथ- भगवान् रामचन्द्र; त्याग–छोड़कर; चिन्ताय–विचार से; हइल विकले-विह्वल हो गया।

अनुवाद

"इसके बाद मुरारि गुप्त घर गया और रातभर सोचता रहा कि वह किस तरह रघुनाथ अर्थात् भगवान् रामचन्द्रजी का साथ छोड़ सकेगा। इस तरह वह विह्वल हो गया।

केमने छाड़िब रघुनाथेर चरण ।

आजि रात्र्ये प्रभु मोर कराह मरण ॥146 ॥

केमने छाड़िब-मैं कैसे छोडूंगा; रघुनाथेर चरण-भगवान् रघुनाथ के चरणकमल; आजि रात्र्ये-रात को; प्रभु-हे भगवान् रघुनाथ; मोर–मुझे; कराह मरण मृत्यु दे दो।

अनुवाद

"इसके बाद मुरारि गुप्त ने भगवान् रामचन्द्र के चरणकमलों की प्रार्थना की। उसने प्रार्थना की कि उसके लिए रघुनाथ के चरणकमल को त्याग पाना सम्भव नहीं होगा, अतएव रात में उसकी मृत्यु हो जाए।

एइ मत सर्व-रात्रि करेन क्रन्दन ।

मने सोयास्ति नाहि, रात्रि कैल जागरण ॥147॥

एइ मत-इस प्रकार; सर्व-रात्रि-सारी रात; करेन क्रन्दन-रोता रहा; मने-मन में;

सोयास्ति नाहि-शान्ति नहीं; रात्रि-सारी रातभर; कैल–किया; जागरण-जागता रहा।

अनुवाद

"इस तरह मुरारि गुप्त रातभर रोता रहा। उसके मन में शांति नहीं थी, अतः वह सो नहीं सका और रातभर जागता रहा।

प्रातः-काले आसि' मोर धरिल चरण ।

कान्दिते कान्दिते किछु करे निवेदन ॥148॥

प्रात:-काले-प्रात: काल; आसि'-आकर; मोर-मेरे; धरिल-पकड़ लिए; चरण-चरण; कान्दिते कान्दिते–निरन्तर रोते हुए; किछु करे निवेदन-कुछ निवेदन किया।

अनुवाद

"प्रात: काल मुरारि गुप्त मुझसे मिलने आया। मेरे चरण पकड़कर रोते हुए निवेदन किया।

रघुनाथेर पाय मुञि वेचियाछों माथा ।

काढ़िते ना पारि माथा, मने पाइ व्यथा ॥149॥

रघुनाथेर पाय-भगवान् रघुनाथ के चरणकमलों पर; मुञि-मैंने; वेचियाछों-बेच दिया है; माथा-सिर; काढ़िते-काटने के लिए; ना पारि-मैं सक्षम नहीं हूँ; माथा-मेरा सिर; मने-मेरे मन में; पाइ व्यथा-बहुत पीड़ा होती है।

अनुवाद

"मुरारि गुप्त ने कहा, 'मैंने अपना सिर रघुनाथ के चरणों में बेच दिया है। अब उसे मैं वापस नहीं ले सकता, क्योंकि इससे मुझे अत्यधिक पीड़ा होगी।

श्री-रघुनाथ-चरण छाड़ान ना याय ।

तव आज्ञा-भङ्ग हय, कि करों उपाय ॥ 150 ॥

श्री-रघुनाथ-चरण-भगवान् रामचन्द्र के चरणकमल; छाड़ान ना याय-छोड़े नहीं जा सकते; तव-आपकी; आज्ञा-आज्ञा; भङ्ग-भंग; हय–होती है; कि-क्या; करों-करूँ; उपाय-उपाय।

अनुवाद

"मुझसे रघुनाथ के चरणकमलों की सेवा छोड़ी नहीं जाती। साथ ही मैं ऐसा नहीं करता, तो आपकी आज्ञा भंग होती है। मैं क्या करूँ?'

ताते मोरे एइ कृपा कर, दयामय ।

तोमार आगे मृत्यु हउक, याउक संशय ॥151॥

ताते-अतः; मोरे-मुझ पर; एइ–यह; कृपा-कृपा; कर-करो; दया-मय-हे दयामय; तोमार आगे-आपके समक्ष; मृत्यु हउक-मुझे मरने दो; याउक संशय-और सभी संशय दूर हो जायेंगे।

अनुवाद

“इस तरह मुरारि गुप्त ने मुझसे निवेदन किया, ‘आप दयालु हैं, इसलिए आप मुझ पर यह कृपा करें : मुझे अपने सामने मर जाने दें, जिससे मेरे सारे संशय समाप्त हो जाएँ।’

एत शुनि’ आमि बड़ मने सुख पाइलुँ ।

इँहारे उठाञा तबे आलिङ्गन कैलुँ ॥152 ॥

एत शुनि’-यह सुनकर; आमि-मैंने; बड़-अत्यन्त; मने-मन में; सुख-सुख; पाइलुँ-पाया; इँहारे-उसको; उठाञा-उठाकर; तब-तब; आलिङ्गन कैलुँ-मैंने आलिंगन।

अनुवाद

“यह सुनकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ। तब मैंने मुरारि गुप्त को उठाकर उसका आलिंगन किया।

साधु साधु, गुप्त, तोमार सुदृढ़ भजन ।

आमार वचनेह तोमार ना टलिल मन ॥ 153॥

साधु साधु-तुम्हारी जय हो; गुप्त-मुरारि गुप्त; तोमार-तुम्हारा; सु-दृढ़-सुदृढ़; भजन-भजन; आमार-मेरे; वचनेह–अनुरोध पर भी; तोमार-तुम्हारा; ना टलिल-नहीं विचलित हुआ; मन–मन।

अनुवाद

“मैंने उससे कहा, “हे मुरारि गुप्त, तुम्हारी जय हो! तुम्हारी पूजा-विधि अत्यधिक सुदृढ़ है—यहाँ तक कि मेरे अनुरोध पर भी तुम्हारा मन नहीं बदला।

एइ-मत सेवकेर प्रीति चाहि प्रभु-पाय ।

प्रभु छाड़ाइलेह, पद छाड़ान ना याय ॥ 154॥

एइ-मत-इस प्रकार; सेवकेर-सेवक का; प्रीति–प्रेम; चाहि-होना चाहिए; प्रभु-पाय-भगवान् के चरणकमलों में; प्रभु छाड़ाइलेह-भले ही भगवान् छोड़ दें; पद-भगवान् के चरणकमल; छाड़ान ना याय-छोड़े नहीं जा सकते।

अनुवाद

“भगवान् के चरणकमलों पर सेवक का ऐसा ही प्रेम होना चाहिए। यहाँ तक कि भगवान् भी छुड़ाना चाहें, तो भी भक्त उनके चरणकमलों का आश्रय नहीं छोड़ सकता।

तात्पर्य

प्रभु शब्द इसका सूचक है कि भगवान् की सेवा भक्तों द्वारा निरन्तर की जानी चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण मूल प्रभु हैं। फिर भी अनेक भक्त भगवान् रामचन्द्र से अनुरक्त रहते हैं और मुरारि गुप्त ऐसी अनन्य भक्ति का ज्वलन्त उदाहरण है। वह भगवान् रामचन्द्र की पूजा श्री चैतन्य महाप्रभु के कहने पर भी छोड़ने को तैयार नहीं था। भक्ति की एकनिष्ठा ऐसी है, जैसाकि चैतन्य चरितामृत (अन्त्यलीला 4.46-47) में कहा गया है :

सेइ भक्त धन्य, ये ना छाड़े प्रभुर चरण ।

सेइ प्रभु धन्य, ये ना छाड़े निजजन ॥

दुर्दैवे सेवक यदि याय अन्य स्थाने ।

सेइ ठाकुर धन्य तारे चूले धरि’ आने ॥

भगवान् से अटूट सम्बन्ध होने से भक्त किसी भी स्थिति में भगवान् की सेवा नहीं त्यागता। जहाँ तक भगवान् का सम्बन्ध है, यदि भक्त छोड़ना भी चाहे तो भगवान् उसके बाल पकड़कर पुनः खींच लाते हैं।

एइ-मत तोमार निष्ठा जानिबार तरे ।

तोमारे आग्रह आमि कैलुँ बारे बारे ॥155 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; तोमार-तुम्हारी; निष्ठा-दृढ़ श्रद्धा; जानिबार तरे-समझने के लिय; तोमारे-तुम्हें; आग्रह-आग्रह; आमि कैलुँ-मैंने किया; बारे बारे-बारम्बार।

अनुवाद

“मैंने भगवान् के प्रति तुम्हारी दृढ़ श्रद्धा की परीक्षा करने के लिए ही तुमसे भगवान् रामचन्द्र की भक्ति छोड़कर कृष्ण की पूजा करने के लिए बारम्बार अनुरोध किया था।’

साक्षात् हनुमान्तुमि श्री-राम-किङ्कर ।

तुमि केने छाड़िबे ताँर चरण-कमल ॥ 156॥

साक्षात्-साक्षात्; हनुमान्-हनुमान; तुमि-तुम; श्री-राम-किङ्कर-श्री राम का सेवक; तुमि-तुम; केने-क्यों; छाड़िबे-छोड़ो; ताँर-उनके; चरण-कमल-चरणकमलों को।

अनुवाद

"इस तरह मैंने मुरारि गुप्त को बधाई देते हुए कहा, 'निस्सन्देह तुम हनुमान के अवतार हो, फलतः तुम भगवान् रामचन्द्र के सनातन दास हो। तो फिर तुम भगवान् रामचन्द्र तथा उनके चरणकमलों की पूजा क्यों त्यागो?"

सेइ मुरारि-गुप्त एई—मोर प्राण सम ।

इँहार दैन्य शुनि' मोर फाटये जीवन ॥157॥

सेइ मुरारि-गुप्त-वह मुरारि गुप्त; एइ–यह; मोर प्राण सम-मेरे जीवन के समान; इँहार-उसकी; दैन्य-विनम्रता; शुनि'–सुनकर; मोर-मेरा; फाटये-विचलित होता है; जीवन-जीवन।

अनुवाद

श्री चैतन्य ने आगे कहा, "मैं इस मुरारि गुप्त को अपने प्राण के समान मानता हूँ। जब मैं उसकी दीनता सुनता हूँ, तो मेरा जीवन विचलित हो जाता है।"

तबे वासुदेवे प्रभु करि' आलिङ्गन ।

ताँर गुण कहे हञा सहस्र-वदन ॥158 ॥

तबे-तब; वासुदेवे-वासुदेव को; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करि' आलिङ्गन-आलिंगन करके; ताँर गुण-उसके सद्गुण; कहे वर्णन करने लग गये; हञा–होकर; सहस्र-वदन-हजारों मुखों से।

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु ने वासुदेव दत्त का आलिंगन किया और उसकी महिमा का वर्णन इस तरह करने लगे मानो उनके हजार मुख हों।

निज-गुण शुनि' दत्त मने लज्जा पाञा ।

निवेदन करे प्रभुर चरणे धरिया ॥159॥

निज-गुण-अपने गुण; शुनि'–सुनकर; दत्त-वासुदेव दत्त ने; मने-मन में; लज्जा पाञा–लज्जित अनुभव करते हुए; निवेदन करे–निवेदन किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे धरिया-चरणकमल पकड़कर।

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु ने उसकी महिमा का वर्णन किया, तो वासुदेव दत्त तुरन्त मन में व्याकुल और लज्जित हो उठे। तब उन्होंने महाप्रभु के चरणकमल छूते हुए यह निवेदन किया।

जगत्तारिते प्रभु तोमार अवतार ।

मोर निवेदन एक करह अङ्गीकार ॥ 160॥

जगत् तारिते-सारे संसार को तारने के लिए; प्रभु-मेरे प्रभु; तोमार-आपका; अवतार–अवतार; मोर-मेरा; निवेदन–निवेदन; एक-एक; करह अङ्गीकार कृपया स्वीकार करो।

अनुवाद

वासुदेव दत्त ने महाप्रभु से कहा, "हे प्रभु, आप समस्त बद्धजीवों का उद्धार करने के लिए अवतरित होते हैं। मेरी आपसे एक विनती है, जिसे मैं चाहता हूँ कि आप स्वीकार करें।

करिते समर्थ तुमि हओ, दयामय ।

तुमि मन कर, तबे अनायासे हय ॥ 161॥

करिते-करने के लिए; समर्थ–समर्थ; तुमि-आप; हओ-हैं; दया-मय-हे दयामय; तुमि मन कर-यदि आप चाहें; तबे-तब; अनायासे-बिना कठिनाई के; हय-यह सम्भव हो जाता है।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप जो चाहें सो करने में समर्थ हैं और निस्सदेह आप दयालु हैं। यदि आप चाहें तो आसानी से सब कुछ कर सकते हैं।

जीवेर दुःख देखि' मोर हृदय विदरे।

सर्व-जीवेर पाप प्रभु देह' मोर शिरे ॥162॥

जीवेर-सभी बद्धात्माओं का; दुःख देखि'–दुःख देखकर; मोर-मेरा; हृदय-हृदय; विदरे-फट जाता है; सर्व-जीवेर-सभी जीवों के; पाप-पाप फल; प्रभु–मेरे प्रिय प्रभुः देह'-डाल दो; मोर शिरे-मेरे सिर पर।

अनुवाद

"हे प्रभु, समस्त बद्धजीवों के कष्टों को देखकर मेरा दिल फटता है; अतएव मेरी प्रार्थना है कि आप उनके पापकर्मों को मेरे ऊपर डाल दें।

जीवेर पाप लञा मुञि करों नरक भोग।

सकल जीवेर, प्रभु, घुचाह भव-रोग ॥ 163 ॥

जीवेर-सभी बद्धात्माओं का; पाप लञा-पाप फल लेकर; मुञि-मैं; करों-करूँगा; नरक–नारकीय जीवन का; भोग-भोग; सकल जीवेर-सभी जीवों का; प्रभु-मेरे प्रिय प्रभु; घुचाह-कृपया समाप्त कर दें; भव-रोग-भौतिक रोग।

अनुवाद

"हे प्रभु, सारे जीवों के पापों को अपने ऊपर लादकर मुझे निरन्तर नरक भोगने दें। किन्तु आप उनके रुग्ण भौतिक जीवन को समाप्त कर दें।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने इस श्लोक पर अपनी टीका इस प्रकार से दी है। "पाश्चात्य देशों में ईसाई लोग विश्वास करते हैं कि उनके गुरु ईसा मसीह अपने शिष्यों के सारे पापों को नष्ट करने के लिए प्रकट हुए। इस कार्य के लिए ईसा मसीह प्रकट हुए और फिर अन्तर्धान हो गये। किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि श्री वासुदेव दत्त ठाकुर तथा श्रील हरिदास ठाकुर इस दृष्टिकोण से ईसा मसीह की तुलना में लाखों गुना अधिक उन्नत हैं। ईसा मसीह ने केवल अपने अनुयायियों को उनके पापकर्मों के फलों से मुक्त किया, किन्तु वासुदेव दत्त तो यहाँ सारे ब्रह्माण्ड के हर जीव के पापों को स्वीकार करने के लिए तैयार है। इसलिए वासुदेव दत्त की तुलनात्मक स्थिति ईसा मसीह की स्थिति से लाखों गुना बेहतर है। वैष्णव इतना उदार होता है कि बद्धजीवों को भौतिक अस्तित्व से उबारने के लिए वह सारे संकट सहने को

तैयार रहता है। श्रील सुदेव दत्त स्वयं विश्व-प्रेम स्वरूप है, क्योंकि वह अपना सर्वस्व त्याग करने और भगवान् की सेवा में पूर्णत: लगने के लिए तैयार था।

श्रील वासुदेव दत्त भलीभाँति जानते थे कि श्री चैतन्य महाप्रभु आदि भगवान् हैं। वे माया-मोह से परे साक्षात् परम ब्रह्म थे। ईसा मसीह ने अपनी दया से अपने अनुयायियों के पापफलों को निस्सन्देह समाप्त कर दिया, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने उन्हें भौतिक अस्तित्व की पीड़ा से पूरी तरह से मुक्त करा दिया। किसी व्यक्ति को उसके पापों से एक बार छुड़ाया जा सकता है, किन्तु ईसाइयों में प्रथा है कि वे पापों को कबूल करते हैं और पुनः पाप करते हैं। इस तरह पापों से मुक्त होकर पुनः पाप करने से मनुष्य भौतिक अस्तित्व की पीड़ा से मुक्त नहीं हो सकता। रोगी व्यक्ति राहत के लिए वैद्य के पास जाता है, किन्तु अस्पताल से लौटने पर गंदी आदतों के कारण उसे फिर रोग पकड़ सकता है। इस तरह यह भौतिक अस्तित्व चलता रहता है। श्रील वासुदेव दत्त बद्धजीवों को भौतिक अस्तित्व से पूरी तरह छुटकारा दिलाना चाहते थे, जिससे वे पुनः पापकर्म करने का अवसर न पा सकें। श्रील वासुदेव दत्त तथा ईसा मसीह में यही अन्तर है। पापों के लिए क्षमादान प्राप्त करना और फिर पुनः पाप करना बहुत बड़ा अपराध है। ऐसा अपराध स्वयं पापकर्म से भी बढ़कर है। वासुदेव दत्त इतने उदार थे कि उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे बद्धजीवों का सारा अपराध उनके ऊपर लाद दें, जिससे बद्धजीव शुद्ध हो सकें और भगवद्धाम लौट सकें। यह प्रार्थना कपट भाव से रहित थी।

वासुदेव दत्त का उदाहरण न केवल इस जगत् में, अपितु सारे ब्रह्माण्ड में अद्वितीय है। यह सकाम कर्मियों या दुनियावी ज्ञानियों के तर्कों के परे है। बहिरंगा शक्ति द्वारा मोहित होने तथा अल्पज्ञान के कारण लोग एक-दूसरे से ईर्ष्या करते हैं। इसी कारण वे सकाम कर्म में फँसते हैं और मानसिक तर्क के द्वारा इस सकाम कर्म से बचना चाहते हैं। फलतः न तो कर्मी, न ही ज्ञानी शुद्ध हो पाते हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त ठाकुर के शब्दों में ऐसे लोग कुकर्मी तथा कुज्ञानी हैं। इसलिए मायावादियों तथा कर्मियों को दयावान वासुदेव दत्त की ओर ध्यान देना चाहिए, जो अन्यों के लिए नरक दशा के कष्ट भोगने के लिए तैयार थे। न ही वासुदेव दत्त को संसारी परोपकारी या लोकहितैषी समझना चाहिए। वे न तो ब्रह्मज्योति में विलीन होना चाहते थे, न ही उन्हें भौतिक सम्मान या यश में रुचि थी। वे उपकारियों, दार्शनिकों तथा सकाम कर्मियों से बहुत ऊपर थे। वे सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे, जो बद्धजीवों पर दया दिखाना चाहते थे। यह उनके दिव्य गुणों की अतिशयोक्ति नहीं है। यह एकदम सही है। वस्तुतः वासुदेव दत्त की कोई बराबरी नहीं हो सकती, वे पूर्णरूपेण वैष्णव-परदु:खदु:खी अर्थात् दूसरों के दु:ख सहते देखकर दु:खी होने वाले थे। ऐसे शुद्ध भक्त के प्राकट्य मात्र से समग्र

संसार शुद्ध हो जाता है। निस्सन्देह, उनकी दिव्य उपस्थिति से सारा जगत् महिमामण्डित होता है और सारे बद्धजीव भी महिमामंडित होते हैं। जैसाकि नरोत्तम दास ठाकुर ने पुष्टि की है, वासुदेव दत्त श्री चैतन्य महाप्रभु के आदर्श भक्त हैं :

गौराङ्गेर सङ्गि-गणे, नित्यसिद्ध करि' माने

से याय व्रजेन्द्रसुत-पाश।

जो भी श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवनकार्य को पूरा करता है, उसे नित्यमुक्त समझा जाना चाहिए। वह दिव्य व्यक्ति होता है और इस भौतिक जगत् का नहीं होता। पूरी जनता के उद्धार में लगा ऐसा भक्त स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु के समान दयालु होता है :

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।

कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः ॥

ऐसा व्यक्ति वास्तव में श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि उसका हृदय सदैव बद्धजीवों के प्रति करुणा से ओतप्रोत रहता है।

एत शुनि' महाप्रभुर चित्त द्रविला।

अश्रु-कम्प-स्वरभङ्गे कहिते लागिला ॥164॥

एत शुनि'-यह सुनकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; चित्त-हृदय; द्रविला-पिघल गया; अश्रु-अश्रु; कम्प-कँपन; स्वर-भङ्गे-स्वर कँपन; कहिते-बोलने; लागिला-लगे।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने वासुदेव का यह कथन सुना, तो उनका हृदय अत्यन्त द्रवित हो उठा। उनकी आँखो से आँसू बहने लगे और वे काँपने लगे। वे कम्पित स्वर में बोले।

"तोमार विचित्र नहे, तुमि—साक्षात्प्रह्लाद।

तोमार उपरे कृष्णेर सम्पूर्ण प्रसाद ॥ 165 ॥

तोमार-तुम में; विचित्र नहे-यह आश्चर्यजनक नहीं; तुमि-तुम; साक्षात् प्रह्लाद-प्रह्लाद महाराज का अवतार; तोमार उपरे-तुम्हारे ऊपर; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; सम्पूर्ण-सम्पूर्ण; प्रसाद-कृपा।

अनुवाद

वासुदेव दत्त को महान् भक्त स्वीकार करते हुए महाप्रभु ने कहा, "ऐसा कथन तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि तुम प्रह्लाद महाराज के अवतार हो। ऐसा लगता है कि भगवान् कृष्ण ने तुम्हें सम्पूर्ण कृपा प्रदान कर दी है। इसमें सन्देह नहीं है।

कृष्ण सेइ सत्य करे, येइ मागे भृत्य ।

भृत्य-वाञ्छा-पूर्ति विनु नाहि अन्य कृत्य ॥ 166 ॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; सेइ-वे; सत्य करे–सत्य करते हैं; येइ-जो कुछ; मागे-माँगता है; भृत्य-सेवक; भृत्य-वाञ्छा-सेवक की मनोकामना पूर्ति–पूरी किये; विनु-बिना; नाहि-नहीं; अन्य-अन्य; कृत्य कर्तव्य।

अनुवाद

"शुद्ध भक्त अपने स्वामी से जो भी माँगता है, उसे भगवान् कृष्ण अवश्य ही प्रदान करते हैं, क्योंकि उनके पास अपने भक्त की इच्छा पूरी करने के अतिरिक्त कोई अन्य कर्तव्य नहीं रहता।

ब्रह्माण्ड जीवेर तुमि वाञ्छिले निस्तार ।

विना पाप-भोगे हबे सबार उद्धार ॥167॥

ब्रह्माण्ड–ब्रह्माण्ड के; जीवेर-सभी जीवों का; तुमि वाञ्छिले–यदि तुम चाहो; निस्तार-उद्धार; विना-बिना; पाप-भोगे-पापकर्म को भोगकर; हबे-होगा; सबार-प्रत्येक का; उद्धार-उद्धार।

अनुवाद

"यदि तुम चाहते हो कि ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत सारे जीवों का उद्धार हो जाये, तो तुम्हारे द्वारा पापकर्मों का कष्ट भोगे बिना ही उनका उद्धार किया जा सकता है।

असमर्थ नहे कृष्ण, धरे सर्व बल ।

तोमाके वा केने भुञ्जाइबे पाप-फल? ॥168॥

असमर्थ नहे-असमर्थ नहीं है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; धरे-रखते हैं; सर्व बल-सभी शक्तियाँ; तोमाके–तुम्हें; वा–तब; केने-क्यों; भुञ्जाइबे-भोगने देंगे; पाप-फल-पापकर्म का फल।

अनुवाद

"कृष्ण अक्षम नहीं हैं, क्योंकि उनके पास सारी शक्तियाँ हैं। भला वे अन्य जीवों के पापकर्मों के फलों का कष्ट तुम्हें क्यों भोगने देंगे?

तुमि याँर हित वाञ्छ', से हैल 'वैष्णव' ।

वैष्णवेर पाप कृष्ण दूर करे सब ॥ 169॥

तुमि–तुम; याँर–जिसका; हित वाञ्छ'–हित चाहो; से-वह; हैल-तुरन्त हो जाता है; वैष्णव-भक्त; वैष्णवेर-वैष्णव का; पाप-सहज पापी जीवन; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; दूर करे-दूर करते हैं; सब-सब।

अनुवाद

"तुम जिस किसी का हित चाहते हो, वह तुरन्त वैष्णव हो जाता है। और कृष्ण सारे वैष्णवों को उनके विगत पापकर्मों से मुक्त कर देते हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने यहाँ वासुदेव दत्त को बतलाया कि कृष्ण सर्वशक्तिमान होने के कारण सारे बद्धजीवों का तुरन्त ही भौतिक जगत् से उद्धार कर सकते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के कहने का सारांश यह था कि, "तुम समस्त प्रकार के जीवों की बिना भेदभाव के मुक्ति चाहते हो। तुम उन सबके सौभाग्य के प्रति चिन्तित हो। मेरा कहना है कि तुम्हारी प्रार्थना मात्र से ही ब्रह्माण्ड के सारे जीव मुक्ति पा सकते हैं। तुम्हें उन लोगों के पापकर्मों को अपने ऊपर लेने की आवश्यकता नहीं है। अत: उनके पापमय जीवनों के लिए तुम क्यों कष्ट सहो। जिसे भी तुम्हारी दया प्राप्त होती है, वह तुरन्त वैष्णव बन जाता है और कृष्ण सारे वैष्णवों का उनके विगत पापकर्मों के फलों से उद्धार कर देते हैं।" भगवत्गीता (18.66) में भी कृष्ण ने वचन दिया है :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

“सारे धर्मों को त्यागकर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापफलों से मोक्ष दिला दूँगा। तुम डरो नहीं।”

श्रीकृष्ण की शरण में जाते ही मनुष्य वैष्णव बन जाता है। भगवद्गीता के इस श्लोक में कृष्ण वचन देते हैं कि वे अपने भक्त को उसके पापमय जीवन के सारे फलों से छुटकारा दिला देंगे। यह सच है कि पूर्णतया शरणागत वैष्णव भौतिक दूषण की चपेट में कभी भी नहीं आता। इसका अर्थ यह हुआ कि उसे पवित्र या अपवित्र विगत कर्मों का फल नहीं भोगना पड़ता। पापमय जीवन से मुक्त हुए बिना वह वैष्णव नहीं बन सकता। दूसरे शब्दों में, यदि कोई वैष्णव है, तो उसके पापमय जीवन का निश्चित रूप से अन्त हो जाता है। पद्म पुराण के अनुसार :

अप्रारब्ध फलं पापं कूटं बीजं फलोन्मुखम् ।

क्रमेनैव प्रलीयेत विष्णुभक्तिरतात्मनाम् ॥

“पापमय जीवन में पापमय कर्मों के लिए सुप्त फलों की विभिन्न अवस्थाएँ भोगनी होती हैं। पापमय फल प्रभाव दिखाने की प्रतीक्षा करते रह सकते हैं (फलोन्मुख), वे सुप्त रह सकते हैं (कूट), अथवा बीज की-सी अवस्था में (बीज) रह सकते हैं। किसी भी किस्से में, भगवान् विष्णु की भक्ति में प्रवृत्त होने पर ये सभी प्रकार के पापों के फल विलुप्त हो जाते हैं।”

यस्त्विन्द्र-गोपमथ वेन्द्रमहो स्व-कर्म-

बन्धानुरूप-फल-भाजनमातनोति ।

कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्ति-भाजां

गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥ 170॥

यः-वे जो (गोविन्द); तु–किन्तु; इन्द्र-गोपम्-इन्द्रगोप नाम का लाल रंग का छोटा कीड़ा; अथ वा-अथवा भी; इन्द्रम्-स्वर्ग का राजा इन्द्र; अहो-ओह; स्व-कर्म-अपने सकाम कर्मों के; बन्ध–बन्धन; अनुरूप के अनुसार; फल-फलों का; भाजनम्-भोगना; आतनोति–प्रदान करता है; कर्माणि-सभी सकाम कर्म और उनके फल; निर्दहति–नष्ट कर देता है; किन्तु किन्तु; च–निश्चय ही; भक्ति-भाजाम्-भक्ति में लगे लोगों का; गोविन्दम्-भगवान् गोविन्द को; आदि-पुरुषम्-आदि पुरुष; तम्-उनको; अहम्-मैं; भजामि-नमस्कार करता हूँ।

अनुवाद

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द को सादर नमस्कार करता हूँ, जो प्रत्येक व्यक्ति-स्वर्ग के राजा इन्द्र से लेकर छोटे से छोटे कीट (इन्द्रगोप) तक–के कष्टों तथा कर्मों के भोग को नियन्त्रित करते हैं। यही भगवान् भक्ति में लगे व्यक्ति के सकाम कर्म को नष्ट करते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण ब्रह्म-संहिता (5.54) से लिया गया है।

तोमार इच्छा-मात्रे हबे ब्रह्माण्ड-मोचन ।

सर्व मुक्त करिते कृष्णेर नाहि किछु श्रम ॥ 171॥

तोमार इच्छा-मात्रे–मात्र तुम्हारी इच्छा से; हबे-होगा; ब्रह्माण्ड-मोचन-ब्रह्माण्ड का उद्धार; सर्व-प्रत्येक की; मुक्त करिते-मुक्त करने के लिए; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; नाहि-नहीं है; किछु-कुछ भी; श्रम-प्रयास।

अनुवाद

"तुम्हारी सच्ची इच्छा-मात्र से ब्रह्माण्ड के सारे जीवों का उद्धार हो जायेगा, क्योंकि कृष्ण को ब्रह्माण्ड के जीवों को मुक्ति देने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता।

एक उडुम्बर वृक्षे लागे कोटि-फले ।

कोटि ये ब्रह्माण्ड भासे विरजार जले ॥ 172॥

एक उडुम्बर वृक्षे–एक उडुम्बर वृक्ष में; लागे-लगते हैं; कोटि-फले-लाखों फल; कोटि-लाखो; ये-जो; ब्रह्माण्ड–ब्रह्माण्डों की; भासे-तैरते हैं; विरजार–विरजा नदी के; जले-जल में।

अनुवाद

"जिस तरह उडुम्बर वृक्ष में करोड़ों फल लगते हैं, उसी तरह विरजा नदी के जल में करोड़ों ब्रह्माण्ड तैरते रहते हैं।

तात्पर्य

विरजा नदी भौतिक जगत् को आध्यात्मिक जगत् से अलग करने वाली नदी है। विरजा नदी की एक ओर ब्रह्मलोक का तेज तथा असंख्य वैकुण्ठ लोक हैं और दूसरी ओर यह भौतिक जगत् है। यह समझना होगा कि विरजा नदी का इस ओर का भाग कारणसागर में तैरने वाले भौतिक ग्रहों से भरा है। यद्यपि विरजा नाम आध्यात्मिक तथा भौतिक जगत् की सीमा-रेखा बताने वाला है, किन्तु विरजा नदी भौतिक शक्ति के आश्रित नहीं है। फलतः यह तीनों गुणों से रहित है।

तार एक फल पड़ि' यदि नष्ट हय ।

तथापि वृक्ष नाहि जाने निज-अपचय ॥ 173॥

तार-वृक्ष का; एक फल-एक फल; पड़ि'-गिरकर; यदि-यदि; नष्ट हय-नष्ट हो जाये; तथापि-तथापि; वृक्ष-वृक्ष; नाहि जाने-नहीं जानता; निज-अपचय-अपनी हानि।

अनुवाद

"इस उडुम्बर वृक्ष में करोड़ों फल लगते हैं, अतएव यदि एक फल गिरकर नष्ट हो जाए, तो भी वृक्ष को किसी प्रकार की क्षति का अनुभव नहीं होता।

तैछे एक ब्रह्माण्ड यदि मुक्त हय ।

तबु अल्प-हानि कृष्णेर मने नाहि लय ॥ 174॥

तैछे-इसी प्रकार; एक ब्रह्माण्ड–एक ब्रह्माण्ड; यदि-यदि; मुक्त हय-मुक्त हो जाता है; तबु-तथापि; अल्प-हानि–बहुत थोड़ी हानि; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; मने-मन; नाहि-बहुत गम्भीरता से नहीं लेता।

अनुवाद

"इसी तरह यदि जीवों के मुक्त हो जाने से एक ब्रह्माण्ड रिक्त भी हो जाए, तो भी कृष्ण के लिए यह मामूली बात है। वे इसे गम्भीरता से नहीं लेते।

अनन्त ऐश्वर्य कृष्णेर वैकुण्ठादि-धाम ।

तार गड़-खाइ—कारणाब्धि यार नाम ॥ 175 ॥

अनन्त-असीम; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; वैकुण्ठ-आदि-धाम-असंख्य वैकुण्ठ धाम; तार-वैकुण्ठ लोक के; गड़-खाइ-जल के चारों ओर; कारण-अब्धि-कारण सागर; यार-जिसका; नाम-नाम है।

अनुवाद

"सम्पूर्ण आध्यात्मिक जगत् कृष्ण का ऐश्वर्य है, जिसमें असंख्य वैकुण्ठ लोक हैं। सागर को वैकुण्ठ लोक के चारों ओर की जल की खाई माना जाता है।

ताते भासे माया लञा अनन्त ब्रह्माण्ड ।

गड़-खाइते भासे येन राइ-पूर्ण भाण्ड ॥ 176 ॥

ताते-इस जल में; भासे-तैरती है; माया–भौतिक शक्ति माया; लञा-लेकर; अनन्त-अनन्त; ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्ड; गड़-खाइते-पानी से घिरकर; भासे-तैरता है; येन-जैसे; राइ-पूर्ण भाण्ड-सरसों के बीजों से भरा घड़ा।

अनुवाद

"उस कारण सागर में माया तथा उसके अनन्त भौतिक ब्रह्माण्ड स्थित हैं। निस्सन्देह, माया तो राई के बीजों से भरे तैरते हुए पात्र के समान लगती है।

तार एक राइ-नाशे हानि नाहि मानि ।

ऐछे एक अण्ड-नाशे कृष्णेर नाहि हानि ॥ 177॥

तार–इसका; एक-एक; राइ-नाशे-सरसों के बीज की हानि; हानि-हानि; नाहि-नहीं; मानि-मानी जाती; ऐछे—इस प्रकार; एक-एक; अण्ड–ब्रह्माण्ड के; नाशे-नष्ट होने पर; कृष्णेर-कृष्ण की; नाहि हानि-हानि नहीं है।

अनुवाद

"यदि इस तैरते पात्र के करोड़ों बीजों में से एक बीज नष्ट हो जाए, तो यह हानि उल्लेखनीय नहीं है। इसी तरह यदि एक ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाए, तो भगवान् कृष्ण के लिए इसका महत्त्व नहीं है।

सब ब्रह्माण्ड सह यदि 'माया'र हय क्षय ।

तथापि ना माने कृष्ण किछु अपचय ॥ 178॥

सब ब्रह्माण्ड–सभी ब्रह्माण्डों; सह–सहित; यदि यदि; मायार-भौतिक शक्ति का; हय क्षय-नाश होता है; तथापि तथापि; ना-नहीं; माने-मानते; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; किछु-कुछ; अपचय-हानि।

अनुवाद

"एक ब्रह्माण्ड रूपी बीज की बात जाने दें, यदि सारे ब्रह्माण्ड तथा भौतिक शक्ति (माया) भी विनष्ट हो जाएँ, तो भी कृष्ण इस क्षति की परवाह तक नहीं करते।

कोटि-कामधेनु-पतिर छागी यैछे मरे ।

षड्-ऐश्वर्य-पति कृष्णेर माया किबा करे? ॥ 179॥

कोटि-करोड़ों; काम-धेनु-कामधेनु गाय; पतिर–स्वामी की; छागी–एक बकरी; यैछे-जैसे; मरे–मर जाती है; षट्-ऐश्वर्य-षट्-पति-छ: ऐश्वर्यों के स्वामी; कृष्णेर-कृष्ण की; माया-बाह्य शक्ति; किबा-क्या; करे-कर सकती है।

अनुवाद

"यदि एक करोड़ कामधेनुओं के मालिक की एक बकरी खो जाए, तो उसे इस हानि की परवाह नहीं होती। कृष्ण छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं। यदि सम्पूर्ण भौतिक शक्ति (माया) विनष्ट हो जाए, तो इससे उनको कौन सी क्षति पहुँचने वाली है?"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने 171 से 179 तक के श्लोकों की व्याख्या करते हुए बतलाया है कि यद्यपि इन श्लोकों का अर्थ अत्यन्त सरल है, किन्तु इसका तात्पर्य को समझना थोड़ा कठिन है। सामान्यतया बद्धजीव भौतिक बहिरंगा शक्ति द्वारा लुभाये जाने पर कृष्ण को भूल जाते हैं। फलतः वे कृष्णबहिर्मुख अर्थात् कृष्ण के साथ सम्बन्ध से रहित कहलाते हैं। जब ऐसा जीव भौतिक शक्ति के सीमा क्षेत्र में आता है, तब उसे भौतिक शक्ति द्वारा उत्पन्न किये गये असंख्य भौतिक ब्रह्माण्डों में से किसी एक में भेज दिया जाता है, जिससे बद्धजीवों को भौतिक जगत् में अपनी इच्छाएँ पूरी करने का अवसर मिल सके। अपने कर्मों का फल भोगने की उत्सुकता के कारण बद्धजीव भौतिक जीवन की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के बन्धन में फँस जाते हैं। फलतः उन्हें अपने कर्मफल का सुख-दुःख भोगना पड़ता है। किन्तु यदि बद्धजीव कृष्णभावनाभावित हो जाता है, तो उसके पाप तथा पुण्यकर्म पूर्णतया विनष्ट हो जाते हैं। भक्त बन जाने

मात्र से कर्म के सारे फलों से वह मुक्त हो सकता है। इसी तरह भक्त की इच्छामात्र से बद्धजीव मुक्ति प्राप्त कर सकता है और कर्म के फलों को लाँघ सकता है। चूँकि हर व्यक्ति इस तरह मुक्त हो जाता है, तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भक्त की इच्छा के आधार पर ही भौतिक जगत् का अस्तित्व होता है अथवा नहीं होता। किन्तु अन्ततोगत्वा भक्त की नहीं, अपितु पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की इच्छा से ही भौतिक सृष्टि का पूर्ण संहार होता है। किन्तु इससे उनकी कोई क्षति नहीं होती। करोड़ों कामधेनुओं के स्वामी को एक बकरी की हानि खलती नहीं। इसी तरह भगवान् कृष्ण भौतिक तथा आध्यात्मिक ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं। यह भौतिक जगत् उनकी सृष्टि का केवल एक चौथाई भाग है। यदि भक्त की इच्छानुसार भगवान् सृष्टि का विनाश कर भी दें, तो वे इतने ऐश्वर्यवान हैं कि इस क्षति की उन्हें परवाह नहीं रहती।

जय जय जह्यजामजित दोष-गृभीत-गुणां

त्वमसि यदात्मना समवरुद्ध-समस्त-भगः ।

अग-जगदोकसामखिल-शक्त्यवबोधक ते

क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः” ॥ 180॥

जय जय-कृपया अपनी महिमा दिखाएँ; जहि-कृपया विजय करें; अजाम्-अज्ञान, माया; अजित-हे अजेय पुरुष; दोष-दोष; गृभीत-गुणाम्-जिससे गुण स्वीकार किये जाते हैं; त्वम-आप; असि-हैं; यत-चूँकि; आत्मना-आपकी निजी अन्तरंगा शक्ति से; समवरुद्ध-से युक्त; समस्त-भगः-सभी प्रकार के ऐश्वर्य; अग-अचर; जगत्-चर; ओकसाम्-देह में बद्धजीव; अखिल–सभी; शक्ति-शक्ति के; अवबोधक-स्वामी; ते-आप; क्वचित् कभी-कभी; अजया–बाह्य शक्ति से; आत्मना-स्वयं; च-और; चरतः-(अपनी दृष्टि से) लीलाएँ प्रकट करते हुए; अनुचरेत् पुष्टि करते हैं; निगमः-सभी वेद।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कहते रहे, “हे प्रभु, हे अजित, हे समस्त शक्तियों के स्वामी, आप समस्त चर तथा अचर प्राणियों के अज्ञान को दूर करने के लिए कृपया अपनी अन्तरंगा शक्ति प्रकट कीजिए। अपने अज्ञान के कारण वे सभी दोषपूर्ण बातों को स्वीकार कर लेते हैं, जिससे भयानक स्थिति प्रकट हो जाती है। हे प्रभु, अपनी महिमा प्रकट करें! आप इसे आसानी से कर सकते हैं, क्योंकि आपकी अन्तरंगा शक्ति बहिरंगा शक्ति से परे है और आप समस्त ऐश्वर्य के आगार हैं। आप भौतिक शक्ति के भी प्रदर्शनकर्ता हैं। आप वैकुण्ठ में

अपनी लीलाएँ करते रहते हैं, जहाँ आप अपनी सुरक्षित अन्तरंगा शक्ति प्रकट करते हैं और कभी-कभी बहिरंगा शक्ति को उस पर दृष्टिपात करके प्रकट करते हैं। इस तरह आप लीलाएँ प्रकट करते हैं। वेदों द्वारा आपकी इन दोनों शक्तियों की पुष्टि होती है और वे उनसे प्रकट होने वाली लीलाओं को स्वीकार करते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.87.14) से लिया गया है। यह श्रुतिगणों अर्थात् मूर्तिमान वेदों की प्रार्थनाओं में से है, जिससे वे भगवान् की महिमा का वर्णन करते हैं।

भगवान् की तीन शक्तियाँ हैं-अन्तरंगा, बहिरंगा तथा तटस्था। जब बद्धजीवो को भगवान् की विस्मृति के कारण दण्डित किया जाता है, तब बहिरंगा शक्ति भौतिक जगत् की सृष्टि करती है और जीवों को उसके नियन्त्रण में रख दिया जाता है। भौतिक प्रकृति के तीन गुण जीव को निरन्तर भय की अवस्था में रखे रहते हैं। भयं द्वितीयाभिनिवेशतः नियन्त्रित बद्धजीव बहिरंगा शक्ति द्वारा नियन्त्रित होने के कारण सदा भयभीत बना रहता है। फलत: बहिरंगा शक्ति (माया) को जीतने के लिए बद्धजीव को सदैव सर्वशक्तिमान भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए, जिससे माया अपनी शक्तियाँ प्रकट न कर सके, जिनसे तारे चर तथ अचर जीव बँधे रहते हैं। इस प्रकार प्रार्थना करने से मनुष्य सदा के लिए भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए पात्र बन जायेगा और इस प्रकार भगवत्-धाम लौटने का अपना उद्देश्य पूरा कर सकेगा।

एइ मत सर्व-भक्तेर कहि' सब गुण ।

सबारे विदाय दिल करि' आलिङ्गन ॥181॥

एइ मत-इस प्रकार; सर्व-भक्तेर—सभी भक्तों के; कहि'–वर्णन करके; सब गुण-सभी सद्गुणों का; सबारे प्रत्येक व्यक्ति को; विदाय दिल-विदा दी; करि' आलिङ्गन-आलिंगन करके।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के सद्गुणों का बखान एक-एक करके करते रहे। इसके बाद उन्होंने सबका आलिंगन किया और उन्हें विदा कर दिया।

प्रभुर विच्छेदे भक्त करेन रोदन ।

भक्तेर विच्छेदे प्रभुर विषण्ण हैल मन ॥182॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु से; विच्छेदे-बिछड़ने के कारण; भक्त-सभी भक्त; करेन-करने लगे; रोदन-रोदन; भक्तेर-भक्तों से; विच्छेदे-बिछड़ने के कारण; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; विषण्ण-उदास; हैल–हो गया; मन–मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से आसन्न विछोह के कारण सारे भक्त रोने लगे। महाप्रभु भी भक्तों के विछोह के कारण खिन्न थे।

गदाधर-पण्डित रहिला प्रभुर पाशे ।

यमेश्वरे प्रभु याँरे कराइला आवासे ॥183॥

गदाधर-पण्डित-गदाधर पण्डित; रहिला-रहे; प्रभुर पाशे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; यमेश्वरे-यमेश्वर में प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; याँरे-जिनको; कराइला-कराया; आवासे–निवास।

अनुवाद

गदाधर पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु के पास रहे। उन्हें यमेश्वर में रहने के लिए स्थान दिया गया।

तात्पर्य

यमेश्वर जगन्नाथ मन्दिर के दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। गदाधर पण्डित वहीं रहे और वहाँ पर एक छोटा-सा बगीचा तथा रेतीला तट है, जिसे यमेश्वर टोटा कहा जाता है।

पुरी-गोसाञि, जगदानन्द, स्वरूप-दामोदर ।

दामोदर-पण्डित, आर गोविन्द, काशीश्वर ॥ 184॥

एइ-सब-सङ्गे प्रभु वैसे नीलाचले ।

जगन्नाथ-दरशन नित्य करे प्रातः-काले ॥185॥

पुरी-गोसाञि-परमानन्द पुरी; जगदानन्द-जगदानन्द; स्वरूप-दामोदर-स्वरूप दामोदर; दामोदर-पण्डित-दामोदर पण्डित; आर-और; गोविन्द-गोविन्द; काशीश्वर-काशीश्वर; एइ-सब-ये सभी महाशयों; सङ्गे–के साथ; प्रभु-श्री चैतन्य

महाप्रभु; वैसे-रहे; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; जगन्नाथ-दरशन- भगवान जगन्नाथ के दर्शन करते हुए; नित्य-प्रतिदिन; करे-करते थे; प्रातः-काले-प्रात:-काल।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी, नीलाचल में परमानन्द पुरी, जगदानन्द, स्वरूप दामोदर, दामोदर पण्डित, गोविन्द तथा काशीश्वर के साथ रहे। श्री चैतन्य महाप्रभु नित्य ही प्रातःकाल जगन्नाथजी का दर्शन करने जाते।

प्रभु-पाश आसि' सार्वभौम एक दिन ।

योड़-हात करि' किछु कैल निवेदन ॥186॥

प्रभु-पाश-श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में; आसि'-आकर; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; एक दिन-एक दिन; योड़-हात करि'–दोनों हाथ जोड़कर; किछु-कुछ; कैल–किया; निवेदन-निवेदन।

अनुवाद

एक दिन सार्वभौम भट्टाचार्य हाथ जोड़े हुए चैतन्य महाप्रभु के समक्ष आये और उनसे एक प्रार्थना करने लगे।

एबे सब वैष्णव गौड़-देशे चलि' गेल ।

एबे प्रभुर निमन्त्रणे अवसर हैल ॥ 187॥

एबे-अब; सब-सब; वैष्णव-भक्त; गौड़-देशे-बंगाल को; चलि' गेल-लौट गये हैं; एबे–अब; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; निमन्त्रणे-निमंत्रण के लिए; अवसर हैल–अवसर है।

अनुवाद

चूँकि सारे वैष्णव बंगाल वापस चले गये थे, अतएव यह अच्छा अवसर था कि महाप्रभु निमन्त्रण स्वीकार कर लेंगें।

एबे मोर घरे भिक्षा करह 'मास' भरि' ।

प्रभु कहे,—धर्म नहे, करिते ना पारि ॥188॥

एबे–अब; मोर घरे-मेरे घर पर; भिक्षा–भोजन; करह–स्वीकार करें; मास भरि'–एक मास के लिए; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; धर्म-धर्म; नहे-नहीं है; करिते-करना; ना पारि-मैं समर्थ नहीं।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "कृपया एक मास तक मेरे यहाँ भोजन करने का निमन्त्रण स्वीकार करें।" महाप्रभु ने उत्तर दिया, "ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि यह संन्यासी धर्म के विरुद्ध है।"

सार्वभौम कहे,—भिक्षा करह बिश दिन ।

प्रभु कहे, —एह नहे यति-धर्म-चिह्न ॥189॥

सार्वभौम कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; भिक्षा करह-भोजन स्वीकार करें; बिश दिन–बीस दिन के लिए; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; एह नहे-यह नहीं है; यति-धर्म-चिह्न-एक संन्यासी का धर्म।

अनुवाद

तब सार्वभौम ने कहा, "तो फिर बीस दिनों के लिए निमन्त्रण स्वीकार करें।" किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "यह संन्यास आश्रम का धर्म नहीं है।"

सार्वभौम कहे पुनः,—दिन 'पञ्च-दश' ।

प्रभु कहे,—तोमार भिक्षा 'एक' दिवस ॥ 190॥

सार्वभौम कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; पुनः-दोबारा; दिन पञ्च-दश-पन्द्रह दिन; प्रभु कहे–महाप्रभु ने उत्तर दिया; तोमार भिक्षा-आपके घर पर भोजन; एक दिवस-केवल एक दिन।

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य ने पुनः पन्द्रह दिन तक भोजन करने के लिए आग्रह किया, तो महाप्रभु ने कहा, "मैं आपके घर केवल एक दिन भोजन ग्रहण करूँगा।"

तबे सार्वभौम प्रभुर चरणे धरिया ।

‘दश-दिन भिक्षा कर’ कहे विनति करिया ॥191॥

तबे-तत्पश्चात्; सार्वभौमसार्वभौम भट्टाचार्य; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे धरिया-चणकमल पकड़कर; दश-दिन-दस दिन के लिए; भिक्षा कर–भोजन करने को; कहे-कहा; विनति करिया-विनति की।

अनुवाद

तब सार्वभौम ने महाप्रभु के चरण पकड़ लिए और विनयपूर्वक कहा, “कम-से-कम दस दिनों तक तो भोजन अवश्य ग्रहण करें।”

प्रभु क्रमे क्रमे पाँच-दिन घाटाइल ।

पाँच दिन ताँर भिक्षा नियम करिल ॥192॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; क्रमे क्रमे-धीरे धीरे; शनै शनै; पाँच-दिन-पाँच दिन तक; घाटाइल-कम कर दिया; पाञ्च-दिन-पाँच दिन के लिए; ताँर-उनका; भिक्षा-भोजन का निमंत्रण; नियम करिल-नियमपूर्वक स्वीकार कर लिया।

अनुवाद

इस तरह धीरे-धीरे महाप्रभु ने अवधि को घटाकर पाँच दिन दी। इस तरह वे महीने में लगातार पाँच दिनों तक भट्टाचार्य के निमन्त्रण को स्वीकार करते रहे।

तबे सार्वभौम करे आर निवेदन ।

तोमार सङ्गे सन्यासी आछे दश-जन ॥ 193॥

तबे-तत्पश्चात्; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य ने; करे-किया; आर-अन्य; निवेदन-निवेदन; तोमार सड़े-आपके साथ; सन्यासी-संन्यासी; आछे-हैं; दश-जन-दस व्यक्ति।

अनुवाद

इसके बाद सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, “हे प्रभु, आपके साथ दस संन्यासी हैं।”

तात्पर्य

संन्यासी को न तो स्वयं अपने लिए भोजन बनाना चाहिए, न ही किसी भक्त के घर कई दिनों तक लगातार भोजन ग्रहण करना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त दयालु तथा वत्सल थे। तो भी उन्होंने सार्वभौम के घर लम्बा निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। स्नेहवश उन्होंने महीने में केवल पाँच दिनों का निमन्त्रण स्वीकार किया। महाप्रभु के साथ रहने वाले दस संन्यासियों के नाम थे-(1) परमानन्द पुरी, (2) स्वरूप दामोदर, (3) ब्रह्मानन्द पुरी, (4) ब्रह्मानन्द भारती, (5) विष्णु पुरी, (6) केशव पुरी, (7) कृष्णानन्द पुरी, (8) नृसिंह तीर्थ, (9) सुखानन्द पुरी तथा (10) सत्यानन्द भारती।

पुरी-गोसाञि भिक्षा पाँच-दिन मोर घरे ।

पूर्वे आमि कहियाछों तोमार गोचरे ॥194॥

पुरी-गोसाञि-परमानन्द पुरी का; भिक्षा–भोजन का निमंत्रण; पाँच-दिन-पाँच दिन; मोरे घरे-मेरे घर पर; पूर्वे-पहले; आमि-मैंने; कहियाछों-कहा है; तोमार गोचरे–यह आप को मालूम है।

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने निवेदन किया कि परमानन्द पुरी भी उनके घर पाँच दिन का निमन्त्रण स्वीकार करेंगे। इसका निर्णय महाप्रभु के समक्ष पहले ही हो चुका था।

दामोदर-स्वरूप,—एइ बान्धव आमार ।

कभु तोमार सङ्गे याबे, कभु एकेश्वर ॥195॥

दामोदर-स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; एइ-यह; बान्धव आमार-मेरा अत्यन्त घनिष्ट मित्र; कभु-कभी-कभी; तोमार सङ्गे-आपके साथ; याबे-आयेंगे; कभु-कभी-कभी; एकेश्वर-अकेला।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "दामोदर स्वरूप मेरा घनिष्ठ मित्र है। कभी वह आपके साथ आयेगा और कभी अकेले।

आर अष्ट सन्यासीर भिक्षा दुइ दुइ दिवसे ।

एक एक-दिन, एक एक जने पूर्ण हइल मासे ॥196॥

आर-अन्य; अष्ट-आठ; सन्यासीर-संन्यासियों का; भिक्षा–भोजन का निमंत्रण; दुइ दुइ दिवसे-दो दो दिन प्रत्येक; एक एक-दिन-एक एक दिन; एक एक जने-एक व्यक्ति; पूर्ण–पूर्ण होगा; हइल-होगा; मासे–मास।

अनुवाद

"अन्य आठ संन्यासी दो-दो दिन का निमन्त्रण स्वीकार करेंगे। इस तरह पूरे महीने प्रतिदिन के लिए कार्यक्रम रहेगा।

तात्पर्य

महीने के तीस दिनों में श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पाँच दिन, परमानन्द पुरी गोस्वामी पाँच दिन, स्वरूप दामोदर चार दिन तथा आठ अन्य संन्यासी दो-दो दिन निमन्त्रण स्वीकार करेंगे। इस तरह तीस दिन पूरे हो जायेंगे।

बहुत सन्यासी यदि आइसे एक ठाञि ।

सम्मान करिते नारि, अपराध पाई ॥197॥

बहुत सन्यासी-बहुत से संन्यासी; यदि-यदि; आइसे-आते हैं; एक ठाञि-इकट्टे; सम्मान करिते नारि-मैं उनका उचित सम्मान नहीं कर सकता; अपराध पाइ-मैं अपराधी बनूँगा।

अनुवाद

"यदि सारे संन्यासी एकसाथ आयेंगे, तो मैं उनका समुचित सत्कार नहीं कर पाऊँगा और मैं अपराधी बनूँगा।

तुमिह निज-छाये आसिबे मोर घर ।

कभु सङ्गे आसिबेन स्वरूप-दामोदर ॥198॥

तुमिह-आप; निज-छाये-अकेले; आसिबे-आयें; मोर घर–मेरे घर पर; कभु-कभी-कभी; सङ्गे-आपके साथ; आसिबेन-आयेंगे; स्वरूप-दामोदर-स्वरूप दामोदर गोस्वामी।

अनुवाद

"कभी आप अकेले मेरे घर आयेंगे और कभी स्वरूप दामोदर के साथ।"

प्रभुर इङ्गित पाञा आनन्दित मन ।

सेइ दिन महाप्रभुर कैल निमन्त्रण ॥199॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; इङ्गित-स्वीकृति; पाञा-पाकर; आनन्दित-अत्यन्त आनन्दित; मन-मन; सेइ दिन-उसी दिन; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कैल-किया; दिया; निमन्त्रण-निमंत्रण।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस प्रबन्ध की पुष्टि कर दी, तो भट्टाचार्य अत्यन्त प्रसन्न हुए और तुरन्त उसी दिन महाप्रभु को अपने घर आने को निमन्त्रित किया।

'षाठीर माता' नाम, भट्टाचार्येर गृहिणी ।

प्रभुर महा-भक्त तेंहो, स्नेहेते जननी ॥ 200॥

षाठीर माता-षाठी की माता; नाम-नामक; भट्टाचार्येर गृहिणी-सार्वभौम भट्टाचार्य की पत्नी; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; महा-भक्त–एक महान् भक्त; तेंहो-वह; स्नेहेते-स्नेह-वश; जननी-एक माता की भाँति।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य की पत्नी षाठी की माता कहलाती थीं। वे श्री चैतन्य महाप्रभु की महान् भक्तिन थीं। वे माता के समान स्नेहिल थीं।

घरे आसि' भट्टाचार्य ताँरे आज्ञा दिल ।

आनन्दे षाठीर माता पाक चड़ाइल ॥ 201॥

घरे आसि'–घर आकर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य ने; ताँरे–उनको; आज्ञा दिल-आज्ञा दी; आनन्दे-पूर्ण सन्तोष सहित; षाठीर माता-षाठी की माता; पाक चड़ाइल-पकाने लगी।

अनुवाद

घर लौटकर सार्वभौम भट्टाचार्य ने अपनी पत्नी को आदेश दिया, तो उनकी पत्नी षाठीर माता बड़े ही आनन्द से भोजन पकाने लगीं।

भट्टाचार गृहे सब द्रव्य आछे भरि' ।

येबा शाक-फलादिक, आनाइल आहरि' ॥ 202॥

भट्टाचार्येर गृहे-सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर; सब द्रव्य-सब प्रकार की सामग्री; आछे-थी; भरि'-भरपूर; येबा-जो कुछ; शाक-पालक; फल-आदिक-फल आदि; आनाइल-वे लाये; आहरि'-इकट्ठे करके।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के घर में खाद्य पदार्थ का सदैव संग्रह रहता था। जितनी पालक, तरकारियाँ, फल इत्यादि की आवश्यकता थी, उतनी लाकर संग्रह कर दिया गया।

आपनि भट्टाचार्य करे पाकेर सब कर्म ।

षाठीर माता—विचक्षणा, जाने पाक-मर्म ॥203॥

आपनि स्वयं; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य ने; करे-व्यवस्था की; पाकेर–पकाने के; सब कर्म-सब काम की; षाठीर माता-षाठी की माता; विचक्षणा–अति अनुभवी; जाने-जानती थीं; पाक-मर्म–पकाने की कला।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य भोजन पकाने में अपनी पत्नी की सहायता करने लगे। उनकी पत्नी षाठीर माता अत्यन्त अनुभवी थीं और वे अच्छा भोजन बनाना जानती थीं।

पाक-शालार दक्षिणे—दुइ भोगालय ।

एक-घरे शालग्रामेर भोग-सेवा हय ॥204॥

पाक-शालार दक्षिणे-रसोई के दक्षिण की ओर; दुइ भोग-आलय-भोग लगाने के दो कमरे; एक-घरे–एक कमरे में; शालग्रामेर-भगवान् शालग्राम के; भोग-सेवा–भोग लगाने का; हय-था।

अनुवाद

रसोई-घर के दक्षिण की ओर भोजन अर्पण करने के दो कमरे थे, जिनमें से एक में शालग्राम नारायण को भोग लगाया जाता था।

तात्पर्य

वैदिक अनुयायी एक पत्थर की बटिया के रूप में शालग्राम शिला अर्थात् नारायण-विग्रह की पूजा करते हैं। आज भी भारत में हर ब्राह्मण अपने घर में शालग्राम शिला की पूजा करता है। वैश्य तथा क्षत्रियगण भी ऐसी पूजा करते हैं, लेकिन ब्राह्मण के घर में यह अनिवार्य है।

आर घर महाप्रभुर भिक्षार लागिया ।

निभृते करियाछे भट्ट नूतन करिया ॥ 205॥

आर घर-दूसरा कमरा; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; भिक्षार लागिया-भोजन कराने के लिए; निभृते करियाछे-एकान्त स्थान में बना; भट्ट-सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा; नूतन करिया-अभी अभी बनाया गया।

अनुवाद

दूसरा कमरा श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन कराने के लिए था। यह कमरा एकान्त में था और इसे भट्टाचार्य ने अभी नया नया बनवाया था।

बाह्ये एक द्वार तार, प्रभु प्रवेशिते ।

पाक-शालार एक द्वार अन्न परिवेशिते ॥206 ॥

बाह्ये-बाहर; एक द्वार–एक द्वार; तार-इस कमरे का; प्रभु प्रवेशिते-श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रवेश के लिए; पाक-शालार–रसोई का; एक द्वार-एक दूसरा द्वार; अन्न-अन्न, भोजन; परिवेशिते-परोसने के लिए।

अनुवाद

यह कमरा इस तरह बना था कि श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए बाहर से जाने के लिए केवल एक दरवाजा था, जो बाहर की ओर खुलता था। दूसरा दरवाजा रसोई घर के साथ लगा था, जिससे भोजन लाया जाता था।

बत्तिशा-आठिया कलार आड्गटिया पाते ।

तिन-मान तण्डुलेर उभारिल भाते ॥ 207॥

बत्तिशा-आठिया-बत्तिशा आठिया नामक; कलार–केले के वृक्ष का; आड्गटिया-विभाजित किए बिना; पाते-पत्ते पर; तिन-तीन; मान-मान (एक निश्चित वजन); तण्डुलेर-चावल के; उभारिल-डाल दिये; भाते-पकाया हुआ भात।

अनुवाद

सर्वप्रथम केले के बड़े पत्ते पर तीन मान (लगभग 6 पौंड) पकाया चावल परोसा गया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए जो भोजन तैयार किया गया, उसका वर्णन यहाँ से शुरू होता है। कविराज गोस्वामी द्वारा दिया गया यह वर्णन बतलाता है कि वे अवश्य ही भोजन बनाने और परोसने में दक्ष रहे होंगे।

पीत-सुगन्धि-घृते अन्न सिक्त कैल ।

चारि-दिके पाते घृत वहिया चलिल ॥208॥

पीत-पीले; सु-गन्धि–सुगन्धित; घृते-घी के साथ; अन्न-भात; सिक्त-मिला हुआ; कैल–किया; चारि-दिके–चारों ओर; पाते-पत्ते (पत्र); घृत-घी; वहिया चलिल-चूने तथा बहने लगा।

अनुवाद

तब पूरे चावल में इतना पीला सुगन्धित घी डाला गया कि वह पत्ते से बाहर बह चला।

केयापत्र-कलाखोला-डोड्गा सारि सारि ।

चारि-दिके धरियाछे नाना व्यञ्जन भरि' ॥ 209॥

केया-पत्र-केया पौधे का पत्ता; कला-खोला–केले के वृक्ष का पत्ता; डोड्गा-डोंगे; सारि सारि-एक के बाद एक; चारि-दिके-चारों दिशा में; धरियाछे-रखे थे; नाना-नाना प्रकार के; व्यञ्जन-पकवान; भरि'- भरकर।

अनुवाद

केले की छाल तथा केया की पत्तियों के बने अनेक दोने थे। इन्हें विविध तरकारियों से भरकर पत्तल के चारों ओर रख दिया गया।

दश-प्रकार शाक, निम्ब-तिक्त-सुख्त-झोल ।

मरिचेर झाल, छाना-बड़ा, बड़ि घोल ॥ 210॥

दश-प्रकार शाक-दस प्रकार के साग; निम्ब-तिक्त-सुख्त-झोल-नीम की कड़वी पत्तियाँ मिलाकर बनाया गया सुख्त नाम का 'सूप'; मरिचेर झाल–काली मिर्च से बना तीखा पकवान; छाना-बड़ा-भुने दही से बना नर्म 'केक'; बड़ि घोल-तली दाल के टुकड़ों का मट्ठा।

अनुवाद

व्यंजनों में दस प्रकार की पालक, कड़वी नीम की पत्तियों का बना शोरबा (सुख्त), काली मिर्च का बना तीखा व्यंजन, छाना-बड़ा, बड़ी घोल थे।

दुग्ध-तुम्बी, दुग्ध-कुष्माण्ड, वेसर, लाफ्रा ।

मोचा-घण्ट, मोचा-भाजा, विविध शाक्रा ॥211॥

दुग्ध-तुम्बी-दूध में पकाया गया सीताफल; दुग्ध-कुष्माण्ड–दूध में पकाया हुआ कद्दू; वेसर-बेसन से बना पकवान; लाफ्रा-कई सब्जियों का मिश्रण; मोचा-घण्ट-उबले हुए केले के फूल; मोचा-भाजा-तले हुए केले के फूल; विविध-नाना प्रकार की; शाक्रा-तरकारियाँ।

अनुवाद

व्यंजनों में दुग्ध-तुम्बी, दुग्ध-कुष्माण्ड, वेसर, लाफ्रा, मोचा-घण्टा, मोचा-भाजा तथा अन्य तरकारियाँ थीं।

वृद्ध-कुष्माण्ड-बड़ीर व्यञ्जन अपार ।

फुलबड़ी-फल-मूल विविध प्रकार ॥212॥

वृद्ध-कुष्माण्ड-बड़ीर-पके कद्दू में मिश्रित तली दाल के छोटे टुकड़े; व्यञ्जन-पकवान; अपार-असीम; फुल-बड़ी-एक अन्य प्रकार की दाल से मिश्रित छोटे टुकड़े; फल-फल; मूल-जडें; विविध प्रकार–विविध प्रकार के।

अनुवाद

अनेक प्रकार की वृद्धकुष्माण्ड बड़ी, फुलबड़ी, फल तथा विविध कन्द थे।

नव-निम्बपत्र-सह भृष्ट-वार्ताकी ।

फुल-बड़ी पटोल-भाजा, कुष्माण्ड-मान-चाकी ॥ 213॥

नव-नए उगे हुए; निम्ब-पत्र-नीम के पत्ते; सह–के साथ; भृष्ट-वार्ताकी-भुना हुआ बैंगन; फुल-बड़ी-हल्की बड़ी; पटोल-भाजा-तली हुई पटोल सब्जी; कुष्माण्ड-कद्दू के; मान–सीताफल के; चाकी-गोल टुकड़े।

अनुवाद

अन्य व्यंजनों में नीम की नई सुखाई पत्तियों से मिला बैंगन, हल्की बड़ी, सूखा पटोल तथा कुम्हड़े के बने पेठे थे।

भृष्ट-माष-मुद्ग-सूप अमृत निन्दय ।

मधुराम्ल, बड़ाम्लादि अम्ल पाँच छय ॥ 214॥

भृष्ट-तली हुई; माष-उड़द की दाल; मुद्ग-मूंग की दाल; सूप-सूप; अमृत-अमृत को; निन्दय–मात करके; मधुर-अम्ल-मीठी चटनी; बड़-अम्ल-तली दाल से तैयार किया खट्टा पकवान; आदि-आदि; अम्ल-खट्टा; पाँच छय-पाँच-छ: प्रकार का।

अनुवाद

तली उड़द की दाल तथा मूंग की दाल का शोरबा अमृत से भी बढ़कर था। मीठी चटनी के साथ ही पाँच-छ: प्रकार के खट्टे व्यंजन थे, जिनमें बड़ाम्ल मुख्य था।

मुद्ग-बड़ा, माष-बड़ा, कला-बड़ा मिष्ट ।

क्षीर-पुलि, नारिकेल-पुलि आर यत पिष्ट ॥ 215॥

मुद्ग-बड़ा-मूँग दाल से बना तला हुआ वड़ा; माष-बड़ा-उड़द दाल से बना तला हुआ वड़ा; कला-बड़ा-केले से बना तला हुआ वड़ा; मिष्ट–अति मधुर; क्षीर-पुलि-खीर से बनी मिठाई; नारिकेल-पुलि–नारियल बर्फी; आर-और; यत–प्रकार; पिष्ट–बर्फियाँ।

अनुवाद

मूँग की दाल, उड़द की दाल तथा मीठे केले के बड़े बने थे और मीठे चावल की बर्फी, नारिकेल की बर्फी तथा अन्य अनेक बर्फियाँ थीं।

काँजि-बड़ा, दुग्ध-चिड़ा, दुग्ध-लक्लकी ।

आर यत पिठा कैल, कहिते ना शकि ॥216॥

काँजि-बड़ा-खट्टे चावल के जल से बने वड़े; दुग्ध-चिड़ा-दूध में मिश्रित मीठे चावल; दुग्ध-लक्लकी-दूध और वड़े से बना एक अन्य चाटने वाला पदार्थ; आर-और; यत–नाना प्रकार की; पिठा-मिठाईयाँ; कैल-बनाए; कहिते-वर्णन करने में; ना शकि-मैं अक्षम हूँ।

अनुवाद

कांजी बड़ा, दुग्ध-चिड़ा, दुग्ध लक्लकी तथा विविध मिठाईयाँ थीं, जिनका वर्णन करने में मैं अक्षम हूँ।

घृत-सिक्त परमान्न, मृत्कुण्डिका भरि' ।

चाँपाकला-घनदुग्ध-आम्र ताहा धरि ॥ 217॥

घृत-सिक्त परम-अन्न-घी से मिश्रित मीठे चावल; मृत्-कुण्डिका भरि'-मिट्टी की हांडी भरकर; चाँपा-कला-एक प्रकार का केला; घन-दुग्ध-गाढ़ा दूध; आम्र-आम का गूदा; ताहा-वह; धरि–शामिल करके; उसके समेत।

अनुवाद

घी मिलाकर मीठे चावल को मिट्टी के पात्र में डाला गया और उसमें चाँपाकला, औंटाया दूध तथा आम मिला दिया गया।

रसाला-मथित दधि, सन्देश अपार ।

गौड़े उत्कले यत भक्ष्येर प्रकार ॥218॥

रसाला-स्वादिष्ट; मथित-मथा हुआ; दधि-दही; सन्देश-सन्देश मिठाई; अपार-असीम; गौड़े-बंगाल में; उत्कले-उड़ीसा में; यत-सभी; भक्ष्येर–खाद्य; प्रकार-प्रकार।

अनुवाद

अन्य व्यंजन थे—अत्यन्त स्वादिष्ट लस्सी तथा तरह-तरह की सन्देश मिठाइयाँ। वास्तव में बंगाल तथा उड़ीसा में उपलब्ध सभी विभिन्न खाद्यों को तैयार किया गया था।

श्रद्धा करि' भट्टाचार्य सब कराइल ।

शुभ्र-पीठोपरि सूक्ष्म वसन पातिल ॥ 219॥

श्रद्धा करि'-अत्यन्त श्रद्धा सहित; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य ने; सब कराइल-सब तैयार करवाई; शुभ्र-सफेद; पीठ-लकड़ी की एक चौकी; उपरि-ऊपर; सूक्ष्म-महीन; वसन-कपड़ा; पातिल-बिछाया।

अनुवाद

इस तरह भट्टाचार्य ने अनेक प्रकार के व्यंजन तैयार किये और तब उन्होंने श्वेत काठ की चौकी पर महीन वस्त्र बिछा दिया।

दुइ पाशे सुगन्धि शीतल जल-झारी ।

अन्न-व्यञ्जनोपरि दिल तुलसी-मञ्जरी ॥ 220॥

दुइ पाशे-दोनों ओर; सुगन्धि–सुगन्धित; शीतल-शीतल; जल-झारि–जल के घड़े; अन्न-व्यञ्जन-उपरि-भात और तरकारियों के ऊपर; दिल-रखी; तुलसी-मञ्जरी-तुलसी मंजरी।

अनुवाद

भोजन की थाली के दोनों ओर सुगन्धित शीतल जल से भरे घड़े थे। चावल के ढेर के ऊपर तुलसी की मंजरियाँ रखी गई थीं।

अमृत-गुटिका, पिठा-पाना आनाइल ।

जगन्नाथ-प्रसाद सब पृथक्धरिल ॥ 221॥

अमृत-गुटिका-अमृत गुटिका मिठाई; पिठा-पाना-खीर तथा वड़े; आनाइल-लाये; जगन्नाथ-प्रसाद-भगवान् जगन्नाथ का प्रसाद; सब-सब; पृथक् धरिल-अलग रखी।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने भगवान जगन्नाथ पर अर्पित किये गये कई प्रकार के व्यंजनों को भी सम्मिलित कर लिया था। इनमें अमृत गुटिका, खीर तथा केक सम्मिलित थे। इन्हें अलग रखा गया था।

तात्पर्य

यद्यपि जगन्नाथजी का अवशिष्ट भोजन भी भट्टाचार्य के घर आया था, किन्तु उसे घर पर बनाये गये व्यंजनों से पृथक् रखा गया था। कभी-कभी ऐसा होता है कि प्रसाद को पर्याप्त भोजन में मिलाकर वितरित किया जाता है, किन्तु सार्वभौम भट्टाचार्य ने जगन्नाथजी के प्रसाद को पृथक् ही रखा। उन्होंने विशेषत: महाप्रभु की तुष्टि के लिए ही ऐसा किया।

हेन-काले महाप्रभु मध्याह्न करिया ।

एकले आइल ताँर हृदय जानिया ॥222॥

हेन-काले-इस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मध्याह्न करिया-दोपहर का नियत कर्म समाप्त करके; एकले-अकेले; आइल-आये; ताँर–सार्वभौम भट्टाचार्य का; हृदय-हृदय; जानिया-जानकर।

अनुवाद

जब सारी वस्तुएँ तैयार हो गईं, तो श्री चैतन्य महाप्रभु दोपहर का कार्य समाप्त करने के बाद वहाँ अकेले ही आये। वे सार्वभौम भट्टाचार्य के हृदय की बात जानते थे।

भट्टाचार्य कैल तबे पाद प्रक्षालन ।

घरेर भितरे गेला करिते भोजन ॥ 223॥

भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य ने; कैल–किया; तबे—उसके पश्चात्; पाद प्रक्षालन-चरणों को धोकर; घरेर भितरे–कमरे के भीतर; गेला–प्रविष्ट हुए; करिते भोजन-भोजन करने के लिए।

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु के पाँव धो चुके, तो महाप्रभु दोपहर भोजन करने कमरे में प्रविष्ट हुए।

अन्नादि देखिया प्रभु विस्मित हञा ।

भट्टाचार्ये कहे किछु भङ्गि करिया ॥ 224॥

अन्न-आदि देखिया-अन्न की व्यवस्था देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; विस्मित हञा-चकित होकर; भट्टाचार्ये कहे-भट्टाचार्य को कहा; किछु—कुछ; भङ्गि-संकेत; करिया-करके।

अनुवाद

इतना बृहत आयोजन देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु कुछ विस्मित थे, अतः वे कुछ संकेत करके सार्वभौम भट्टाचार्य से कुछ बोले।

अलौकिक एइ सब अन्न-व्यञ्जन ।

दुइ प्रहर भितरे कैछे हइल रन्धन? ॥225॥

अलौकिक-असामान्य; एइ--यह; सब-सब; अन्न-व्यञ्जन-भात एवं सब्जियाँ; दुइ प्रहर भितरे-छः घण्टे के भीतर; कैछे-कैसे; हइल रन्धन-पकाने का काम समाप्त किया गया।

अनुवाद

"यह अत्यन्त असामान्य है! चावल तथा तरकारियों को छह घंटे के भीतर किस तरह पका लिया गया?

शत चुलाय शत जन पाक यदि करे ।

तबु शीघ्र एत द्रव्य रान्धिते ना पारे ॥226॥

शत चुलाय–एक सौ चूल्हों पर; शत जन-एक सौ लोग; पाक यदि करे–यदि पकाने लगे; तबु-फिर भी; शीघ्र इतनी जल्दी; एत द्रव्य-इतने व्यंजन; रान्धिते ना पारे-नहीं पकाए जा सकते।

अनुवाद

"यदि सौ आदमी सौ चूल्हों में भोजन पकाते, तो भी इतने सारे व्यंजनों को इतने कम समय में न बना

कृष्णेर भोग लागाञाछ,—अनुमान करि।

उपरे देखिये याते तुलसी-मञ्जरी ॥ 227॥

कृष्णेर भोग लागाञाछ–आपने कृष्ण को भोग लगा दिया है; अनुमान करि-मैं आशा करता हूँ; उपरे–भोजन के ऊपर; देखिये-मैं देखता हूँ; याते-क्योंकि; तुलसी-मञ्जरी-तुलसी के फूल।

अनुवाद

"मेरा अनुमान है कि कृष्ण को पहले ही भोजन अर्पित किया जा चुका है, क्योंकि थालों के ऊपर मुझे तुलसी मंजरियाँ दिखती हैं।

भाग्यवान्तुमि, सफल तोमार उद्योग।

राधा-कृष्णे लागाञाछ एतादृश भोग ॥ 228 ॥

भाग्यवान् तुमि-आप भाग्यशाली हैं; स-फल-सफल; तोमार-आपको; उद्योग-प्रयास; राधा-कृष्णे-राधा और कृष्ण को; लागाञाछ-लगाया है; एतादृश–ऐसा; भोग-भोग।

अनुवाद

"आप अत्यन्त भाग्यवान हैं और आपका परिश्रम सफल है, क्योंकि आपने राधा-कृष्ण को इतना अद्भुत भोजन प्रदान किया है।

अन्नेर सौरभ्य, वर्ण–अति मनोरम।

राधा-कृष्ण साक्षातिहाँ करियाछेन भोजन ॥ 229॥

अन्नेर सौरभ्य-पके भात की सुगन्धि; वर्ण-रंग; अति मनोरम-अत्यन्त आकर्षक राधा-कृष्ण-राधा और कृष्ण; साक्षात्-साक्षात्; इहाँ–यह सब; करियाछेन भोजन-भोजन कर लिया है।

अनुवाद

"चावल का रंग इतना आकर्षक है और इसकी सुगन्ध इतनी उत्तम है, मानो राधा तथा कृष्ण ने साक्षात् इसे ग्रहण किया है।

तोमार बहुत भाग्य कत प्रशंसिब ।

आमि–भाग्यवान्, इहार अवशेष पाबे ॥ 230॥

तोमार-आपका; बहुत-बहुत; भाग्य-सौभाग्य; कत-कितनी; प्रशंसिब–प्रशंसा करूँ; आमि-मैं; भाग्यवान्–भाग्यशाली; इहार-इसके; अवशेष-अवशेष; पाब-पाऊँगा।

अनुवाद

"हे प्रिय भट्टाचार्य, आप बड़े भाग्यशाली हो। मैं आपकी कितनी प्रशंसा करूँ? मैं भी अत्यन्त भाग्यशाली हूँ कि इस भोजन का अवशिष्ट ग्रहण कर रहा हूँ।

कृष्णेर आसन-पीठ राखह उठाञा ।

मोरे प्रसाद देह' भिन्न पात्रेते करिया ॥ 231॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; आसन-पीठ-बैठने का स्थान; राखह-अलग रखो; उठाञा-उठाकर; मोरे-मुझे; प्रसाद प्रसाद; देह'–दो; भिन्न-भिन्न; पात्रेते-पत्तल में; करिया–परोसकर।

अनुवाद

"कृष्ण का आसन उठाकर एक ओर रख दो; तब मुझे एक अलग पत्तल में प्रसाद दो।"

भट्टाचार्य बले—प्रभु ना करह विस्मय ।

येइ खाबे, ताँहार शक्त्ये भोग सिद्ध हय ॥ 232॥

भट्टाचार्य बले-भटाचार्य ने कहा; प्रभ-मेरे प्रभ: ना कर विपरा.आप चकित न हों; येइ खाबे-जो कोई खाएगा; ताँहार शक्त्ये-उनकी कृपा से; भोग-भोग; सिद्ध हय-बनाया गया है।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "हे प्रभु, यह उतना आश्चर्यजनक नहीं है। यह सब उनकी शक्ति तथा दया से ही सम्भव हो सका है, जिन्हें यह भोजन करना है।

उद्योग ना छिल मोर गृहिणीर रन्धने ।

याँर शक्त्ये भोग सिद्ध, सेइ ताहा जाने ॥ 233॥

उद्योग-परिश्रम; ना छिल-नहीं किया; मोर--मेरी; गृहिणीर-मेरी पत्नी का; रन्धने-पकाने में; याँर शक्त्ये—जिनकी शक्ति से; भोग सिद्ध-भोजन पकाया गया है; सेइ-वे; ताहा जाने-इसे जानते हैं।

अनुवाद

"मेरी पत्नी तथा मैंने भोजन बनाने में कोई विशेष प्रयास नहीं किया। जिनकी शक्ति से यह भोजन तैयार हुआ है, वे सब कुछ जानते हैं।

एइत आसने वसि' करह भोजन ।

प्रभु कहे,—पूज्य एई कृष्णेर आसन ॥ 234॥

एइत आसने-इसी आसन पर; वसि'–बैठकर; करह भोजन-आप भोजन करें; प्रभु

कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; पून्य-पूज्य; एइ–यह; कृष्णेर आसन-कृष्ण का

अनुवाद

"अब कृपा करके इस स्थान पर बैठे और भोजन करें।" चैतन्य ने उत्तर दिया, "यह स्थान पूजनीय है, क्योंकि इसका उपयोग द्वारा हो चुका है।"

तात्पर्य

शिष्टाचार के अनुसार जो वस्तुएँ कृष्ण द्वारा उपयोग में लाई गई होती हैं, उनका उपयोग अन्य किसी द्वारा नहीं किया जाना चाहिए। इसी तरह गुरु द्वारा उपयोग में लाई गई वस्तुओं का भी अन्य द्वारा उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। यह शिष्टाचार है। कृष्ण या गुरु द्वारा उपयोग में लाई गई वस्तुएँ पूज्य हैं। विशेषतया उनके बैठने या भोजन करने के स्थान का प्रयोग अन्य किसी द्वारा नहीं किया जाना चाहिए। भक्त को चाहिए कि सावधानी से इसका पालन करे।

भट्ट कहे,—अन्न, पीठ,—समान प्रसाद ।

अन्न खाबे, पीठे वसिते काहाँ अपराध? ॥ 235॥

भट्ट कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; अन्न–अन्न; भोजन; पीठ-आसन के; समान-समान; प्रसाद-भगवान् का प्रसाद; अन्न खाबे-आप भोजन करेंगे; पीठे वसिते-उस आसन पर बैठने में; काहाँ अपराध-अपराध कहाँ है ?

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "भोजन तथा बैठने का स्थान-दोनों ही भगवान् की कृपा के तुल्य हैं। यदि आप उच्छिष्ट भोजन कर सकते हैं, तो इस स्थान पर आपके बैठने में कौन-सा अपराध है?"

प्रभु कहे,—भाल कैले, शास्त्र-आज्ञा हय ।

कृष्णेर सकल शेष भृत्य आस्वादय ॥236 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; भाल कैले-आपने ठीक कहा है; शास्त्र-आज्ञा हय-शास्त्रों का आदेश है; कृष्णेर सकल शेषकृष्ण द्वारा छोड़ा हुआ सब कुछ; भृत्य-सेवक; आस्वादय-ले सकता है।

अनुवाद

तब चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हाँ, आपने ठीक कहा है। शास्त्रों का आदेश है कि भक्त कृष्ण द्वारा छोड़ी गई किसी भी वस्तु का आस्वादन कर सकता है।

त्वयोपयुक्त-स्रग्गन्ध-वासोऽलङ्कार-चर्चिताः ।

उच्छिष्ट-भोजिनो दासास्तव मायां जयेम हि ॥ 237॥

त्वया-आप द्वारा; उपयुक्त–उपयोग में लाई गई; स्रक्-फूलों की मालाएँ; गन्ध-चन्दन लेप जैसे सुगन्धित पदार्थ; वासः-वस्त्र; अलङ्कार-आभूषण; चर्चिताः-से सजाए गये; उच्छिष्ट–उच्छिष्ट भोजन (प्रसादी); भोजिनः-खाने से; दासाः-सेवक गण; तव-आपकी; मायाम्-माया को; जयेम-जीत सकते हैं; हि-निश्चय ही।

अनुवाद

"हे प्रभु, आपको अर्पित की गईं मालाएँ, सुगन्धित पदार्थ, वस्त्र, गहने तथा अन्य वस्तुएँ बाद में आपके सेवकों द्वारा काम में लाई जा सकती हैं। इन वस्तुओं को ग्रहण करने तथा आपका उच्छिष्ट भोजन खाने से हम माया को जीत सकेंगे।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.6.46) का है। हरे कृष्ण आन्दोलन में हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन, भावावेश में नाचना तथा भगवान् को भोग लगाए गये भोजन का आस्वादन करना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। कोई भले ही निरक्षर अथवा सिद्धान्त समझने में असमर्थ क्यों न हो, किन्तु यदि वह ये तीनों बातें करता है, तो निश्चित रूप से बिना किसी देरी के वह मुक्त हो जाता है।

यह श्लोक उद्धव ने भगवान् कृष्ण से कहा था। यह उद्धव गीता प्रवचन के समय की बात है। उस समय द्वारका में कुछ उत्पात हुआ था, जिससे भगवान् कृष्ण ने इस भौतिक जगत् छोड़कर वैकुण्ठ जाने का निर्णय किया। उद्धव इस परिस्थिति को समझ गये थे और वे पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् से बातें कर रहे थे। उपर्युक्त श्लोक इसी बातचीत का एक अंश है। इस जगत् में कृष्ण की लीलाएँ प्रकट लीलाएँ कहलाती हैं और वैकुण्ठ लोक में उनकी लीलाएँ अप्रकट लीलाएँ कहलाती हैं। "अप्रकट" से हमारा अभिप्राय यह है कि वे हमारी आँखों के समक्ष प्रकट नहीं होती हैं। ऐसा नहीं है कि भगवान् की लीलाओं का अस्तित्व नहीं होता। जिस तरह सूर्य निरन्तर प्रकाशित होता रहता है, उसी तरह ये लीलाएँ भी निरन्तर चलती रहती हैं, किन्तु जब सूर्य हमारी आँखों के सामने होता है, तो हम दिन (प्रकट) कहते हैं और जब सामने नहीं होता, तो रात (अप्रकट) कहते हैं। जो लोग रात की सीमाओं से ऊपर हैं, वे सदैव वैकुण्ठ लोक में रहते हैं, जहाँ उनके लिए भगवान् की लीलाएँ निरन्तर प्रकट रहती हैं। ब्रह्म-संहिता द्वारा (5.37-38) इसकी पुष्टि होती है :

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-

स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः ।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन

सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति ।

यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो अपने धाम गोलोक में राधा के साथ निवास करते हैं, जो उनके आध्यात्मिक स्वरूप के सदृश हैं और साक्षात् ह्लादिनी शक्ति हैं। उनकी संगिनी उनकी सखियाँ हैं, जो साक्षात् उनके शरीरस्वरूप हैं और सदैव आनन्दमय आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत रहती हैं। मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो श्यामसुन्दर हैं-अचिन्त्य असंख्य गुणों से युक्त साक्षात् कृष्ण हैं, जिनका दर्शन शुद्ध भक्तगण अपनी आँखों में प्रेम का अंजन लगाकर अपने-अपने हृदयों के भीतर करते हैं।”

तथापि एतेक अन्न खाओन ना याय ।

भट्ट कहे,—जानि, खाओ यतेक युयाय ॥238॥

तथापि-तथापि; एतेक-इतना अधिक; अन्न-भोजन; खाओन-खाना; ना याय-सम्भव नहीं है; भट्ट कहे-भट्टाचार्य ने कहा; जानि–मैं जानता हूँ; खाओ-आप खा सकते हो; यतेक–कितना अधिक; युयाय-सम्भव है।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “यहाँ इतना भोजन है कि उसे खा पाना असम्भव है।” भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, “मैं जानता हूँ कि आप कितना खा सकते हैं।”

नीलाचले भोजन तुमि कर बायान्न बार ।

एक एक भोगेर अन्न शत शत भार ॥239॥

नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; भोजन-भोजन ग्रहण; तुमि-आप; कर-करते हो; बायान्न बार-बावन बार; एक एक भोगेर–प्रत्येक भोग का; अन्न-पकवान; शत शत भार-सैंकड़ों बाल्टियाँ।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में दिन-भर में आप कम-से-कम 52 बार भोजन करते हैं और एक-एक बार में आप प्रसाद से भरी सैंकड़ों बाल्टियाँ ग्रहण करते हैं।

द्वारकाते षोल-सहस्र महिषी-मन्दिरे ।

अष्टादश माता, आर यादवेर घरे ॥ 240॥

द्वारकाते-द्वारका धाम में; षोल-सहस्र-सोलह हजार; महिषी–रानियाँ; मन्दिरे-महलों में; अष्टादश माता-अठारह माताएँ; आर-और; यादवेर घरे-यदु कुल के घर में।

अनुवाद

द्वारका में आपके सोलह हजार महलों में सोलह हजार रानियाँ हैं। वहाँ अठारह माताएँ, अनेक मित्र तथा यदुवंश के अनेक सम्बन्धी भी हैं।

व्रजे ज्येठा, खुड़ा, मामा, पिसादि गोप-गण ।

सखा-वृन्द सबार घरे द्विसन्ध्या-भोजन ॥241॥

व्रजे-वृन्दावन में; ज्येठा-पिता के बड़े भाई; खड़ा-पिताजी के छोटे भाई; मामा-माताजी के भाई; पिसा-मौसियों के पति; आदि-आदि; गोप-गण-गोप-गण; सखा-वृन्द-सैंकड़ों सखा-मित्र; सबार-उन सबके; घरे–घरों में; द्वि-सन्ध्या-दिन में दो बार; भोजन-भोजन।

अनुवाद

“वृन्दावन में भी आपके ताऊ, चाचा, मामा, फूफा तथा अनेक ग्वाले हैं। वहाँ गोप-मित्र भी हैं और आप उन सबके घरों में प्रात: और सांयकाल दो बार भोजन करते हैं।”

तात्पर्य

द्वारका में भगवान् कृष्ण की अठारह माताएँ थीं—यथा देवकी, रोहिणी आदि। इसके अतिरिक्त वृन्दावन में उनकी पालक माता यशोदा थीं। भगवान् कृष्ण के दो चाचा भी थे, जो नन्द महाराज के भाई थे। जैसाकि बृहत् श्री श्री-राधा-कृष्णगणोद्देश दीपिका (32) में श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है- उपनन्दोऽभिनन्दश्च पितृव्यौ पूर्वजो पितुः- "नन्द महाराज के ज्येष्ठ भाई उपनन्द तथा अभिनन्द थे।" इसी तरह उसी श्लोक में नन्द महाराज के छोटे भाइयों के भी नाम दिये हुए हैं। पितृव्यौ तु कनीयांसौ स्यातां सन्नन्द-नन्दनौ–"सन्नन्द तथा नन्दन (अथवा सुनन्द और पाण्डव) कृष्ण के पिता नन्द महाराज के छोटे भाई थे।" इस पुस्तक में श्रीकृष्ण के मामाओं के नामों का भी वर्णन मिलता है (श्लोक 46) : यशोधर-यशोदेवसुदेवाद्यास्तु मातुला:–"यशोधर, यशोदेव तथा सुदेव-ये कृष्ण के मामा थे।" "राधा-कृष्णगणोद्देश दीपिका (38) में कृष्ण के फूफाओं के भी नामों का उल्लेख हुआ है, जो नन्द महाराज की बहिनों के पति थे–महानीलः सुनीलश्च रमणावेतयोः क्रमात्-महानील तथा सुनील कृष्ण के फूफा थे।"

गोवर्धन-यज्ञे अन्न खाइला राशि राशि ।

तार लेखाय एइ अन्न नहे एक ग्रासी ॥ 242॥

गोवर्धन-यज्ञे-गोवर्धन पूजा उत्सव में; अन्न–अन्न; खाइला-आपने खाया; राशि राशि–ढेरों; तार-उसकी; लेखाय-तुलना में; एइ–यह; अन्न-भोजन; नहे-नहीं; एक ग्रासी–एक ग्रास भी।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "आपने गोवर्धन पूजा के अवसर पर जितने ढेरों चावल खाया था, उसकी तुलना में यह अल्पमात्र एक कौर भी नहीं है।"

तुमि त' ईश्वर, मुञि क्षुद्र जीव छार ।

एक-ग्रास माधुकरी करह अङ्गीकार ॥ 243 ॥

तुमि-आप; त'-निस्सन्देह; ईश्वर–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; मुञि-मैं; क्षुद्र जीव-एक तुच्छ जीव; छार–बेकार; एक-ग्रास-एक ग्रास; माधु-करी-जैसे मधुमक्खियाँ कट्ठा करती हैं; करह–कृपया करो; अङ्गीकार–स्वीकार।

अनुवाद

“कहाँ आप पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्, और कहाँ मैं एक क्षुद्रतम जीव! अतएव आप मेरे घर में अल्प मात्रा में भोजन ग्रहण कीजिए।”

तात्पर्य

संन्यासी से आशा की जाती है कि वह प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ से थोड़ा-थोड़ा भोजन संग्रह करे अर्थात् उसे खाने के लिए जितना चाहिए उतना ही ले। यह प्रथा माधुकरी कहलाती है। माधुकरी शब्द माधुकर से बना है, जिसका अर्थ है “मधु संग्रह करने वाली मक्खी।” मक्खियाँ हर फूल से थोड़ा-थोड़ा मधु एकत्र करती हैं और यह मधु एकत्र होकर छत्ता बन जाता है। संन्यासियों हो चाहिए कि हर गृहस्थ के यहाँ से थोड़ा-थोड़ा लें और उतना ही खाएँ, जिससे शरीर का पोषण हो सके। संन्यासी होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य के घर से थोड़ा भोजन ले सकते थे और भट्टाचार्य यही अनुनय-विनय कर रहे थे। अन्य अवसरों पर महाप्रभु ने जितना भोजन किया था, उसकी तुलना में भट्टाचार्य का भोजन एक कौर भी नहीं था। भट्टाचार्य यही बात महाप्रभु से कहना चाह रहे थे।

एत शुनि’ हासि’ प्रभु वसिला भोजने ।

जगन्नाथेर प्रसाद भट्ट देन हर्ष-मने ॥ 244॥

एत शुनि’-यह सुनकर; हासि’–मुस्कुराकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; वसिला भोजने–भोजन करने बैठ गये; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ का; प्रसाद–प्रसाद; भट्ट-सार्वभौम भट्टाचार्य ने; देन हर्ष-मने-अति प्रसन्न होकर दिया।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु हँसने लगे और खाने के लिए बैठ गये। भट्टाचार्य ने अति प्रसन्न होकर सबसे पहले उन्हें जगन्नाथजी का प्रसाद दिया।

हेन-काले ‘अमोघ,’—भट्टाचार्येर जामाता ।

कुलीन, निन्दक तेंहो षाठी-कन्यार भर्ता ॥ 245॥

हेन-काले-ठीक उसी समय; अमोघ–अमोघ; भट्टाचार्येर जामाता–भट्टाचार्य का दामाद; कुलीन–कुलीन वंश में जन्मा; निन्दक-निन्दक; तेंहो-वह; षाठी-कन्यार भर्ता-सार्वभौम भट्टाचार्य की पुत्री षाठी का पति।

अनुवाद

उसी समय भट्टाचार्य की पुत्री षाठी का पति अर्थात् उनका जामाता अमोघ आया। यद्यपि वह उच्च ब्राह्मण कुल में जन्मा था, किन्तु वह निन्दक था।

भोजन देखिते चाहे, आसिते ना पारे ।

लाठि-हाते भट्टाचार्य आछेन दुयारे ॥ 246 ॥

भोजन-भोजन; देखिते चाहे वह देखना चाहता था; आसिते ना पारेन आ सका; लाठि-हाते-हाथ में छड़ी लेकर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; आछेन-थे; दुयारे द्वार पर।

अनुवाद

अमोघ चाहता था कि महाप्रभु को भोजन करते देखे, किन्तु उसे अन्दर जाने नहीं दिया गया। भट्टाचार्य दरवाजे पर लाठी लेकर अपने घर की रखवाली करते रहे।

तेंहो यदि प्रसाद दिते हैला आन-मन ।

अमोघ आसि' अन्न देखि' करये निन्दन ॥247॥

तेंहो-वे (भट्टाचार्य); यदि-जब; प्रसाद दिते-प्रसाद दे रहे थे; हैला-हो गये; आन-मन-असावधान; अमोघ–अमोघ; आसि-आकर; अन्न देखि'–भोजन देखकर; करये निन्दन-निन्दा करने लगा।

अनुवाद

किन्तु ज्योंही भट्टाचार्य प्रसाद वितरण करने लगे और थोड़े असावधान हुए, त्योंही अमोघ भीतर आ गया। भोजन की मात्रा देखकर वह निन्दा करने लगा।

एइ अन्ने तृप्त हय दश बार जन ।

एकेला सन्यासी करे एतेक भक्षण! ॥ 248॥

एइ अन्ने-इतने भोजन के साथ; तृप्त हय–सन्तुष्ट हो सकते हैं; दश बार जन–कम से कम दस से बारह लोग; एकेला-अकेले; सन्यासी-यह संन्यासी; करे-करता है; एतेक-इतना; भक्षण-भोजन।

अनुवाद

“इतना भोजन तो दस-बारह लोगों को तुष्ट कर सकता है, लेकिन यह संन्यासी तो अकेले ही इतना सारा खा रहा है।”

शुनितेइ भट्टाचार्य उलटि’ चाहिल ।

ताँर अवधान देखि’ अमोघ पलाइल ॥ 249॥

शुनितेइ–सुनकर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; उलटि’ चाहिल-अपनी दृष्टि उसकी ओर डाली; ताँर-उनका; अवधान-ध्यान; देखि’-देखकर; अमोघ–अमोघ; पलाइल–भाग गया।

अनुवाद

जब अमोघ ने यह कहा, तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने उसकी ओर घूरकर देखा। भट्टाचार्य का रुख देखकर अमोघ तुरन्त भाग गया।

भट्टाचार्ये लाठि लञा मारिते धाइल ।

पलाइल अमोघ, तार लाग ना पाइल ॥ 250 ॥

भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; लाठि लञा-लाठी लेकर; मारिते-मारने के लिए; धाइल-दौड़े; पलाइल- भाग गया; अमोघ–अमोघ; तार-उसको; लाग ना पाइल-पकड़ न सके।

अनुवाद

भट्टाचार्य लाठी लिए उसके पीछे-पीछे उसे मारने के लिए दौड़े, किन्तु अमोघ इतनी तेजी से निकल भागा कि भट्टाचार्य उसे पकड़ न पाये।

तबे गालि, शाप दिते भट्टाचार्य आइला ।

निन्दा शुनि’ महाप्रभु हासिते लागिला ॥ 251॥

तबे-उस समय; गालि–गाली देते हुए; शाप दिते-शाप देते हुए; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; आइला–लौट आये; निन्दा शुनि’–निन्दा सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हासिते लागिला-हँसने लगे।

अनुवाद

तब भट्टाचार्य अपने दामाद को गाली देने लगे और शाप देने लगे। जब भट्टाचार्य लौटे, तो उन्होंने देखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु उनके द्वारा की गई अमोघ की आलोचना सुनकर हँस रहे थे।

शुनि' षाठीर माता शिरे-बुके घात मारे ।

'षाठी राण्डी हउक'—इहा बले बारे बारे ॥ 252॥

शुनि'-यह सुनकर; षाठीर माता-षाठी की माता; शिरे–सिर पर; बुके–वक्षस्थल पर; घात मारे-हाथ मारने लगी; घाठी राण्डी हउक-शाठी को विधवा होने दो; इहा बले–यह कहने लगी; बारे बारे-बारम्बार।

अनुवाद

जब भट्टाचार्य की पत्नी षाठी की माता ने इस घटना को सुनी, तो वह यह कहकर तुरन्त अपना सिर तथा छाती पीटने लगी, "यह षाठी को राँड (विधवा) हो जाने दो!"

दुँहार दुःख देखि' प्रभु दुँहा प्रबोधिया ।

दुँहार इच्छाते भोजन कैल तुष्ट हञा ॥ 253॥

दुँहार दुःख देखि'–दोनों का दुःख देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; दुँहा प्रबोधिया-दोनों को शान्त करके; दुँहार इच्छाते-उन दोनों की मर्जी से; भोजन कैल-भोजन किया; तुष्ट हञा–पूर्णतया तुष्ट होकर।

अनुवाद

पति-पत्नी दोनों के शोक को देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें सान्त्वना दिलाने का प्रयास किया। महाप्रभु ने उन दोनों की इच्छापूर्ति के लिए प्रसाद ग्रहण किया और वे अत्यन्त तुष्ट हुए।

आचमन कराञा भट्ट दिल मुख-वास ।

तुलसी-मञ्जरी, लवङ्ग, एलाचि रस-वास ॥ 254॥

आचमन कराञा-मुख, हाथ और पैर धोने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु को जल देकर; भट्ट–सार्वभौम भट्टाचार्य ने; दिल मुख-वास-कुछ सुगन्धित मसाले दिये; तुलसी-मञ्जरी-तुलसी के फूल (मंजरी); लवङ्ग-लौंग; एलाचि–इलायची; रस-वास-जिस से लार टपकने लगती है।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु खा चुके, तो भट्टाचार्य ने उनके मुँह, हाथ तथा पाँव धुलाये और उन्हें सुगन्धित मसाले, तुलसी-मंजरियाँ, लवंग तथा इलायची खाने को दी।

सर्वाङ्गे पराइल प्रभुर माल्य-चन्दन ।

दण्डवत् हञा बले सदैन्य वचन ॥ 255॥

सर्व-अङ्गे–सारे शरीर पर; पराइल-लगाया; प्रभुर–महाप्रभु के; माल्य-चन्दन-फूलों की माला तथा चन्दन का लेप; दण्डवत् हञा–दण्डवत् प्रणाम करके; बले–कहा; स-दैन्य-विनम्रता सहित; वचन–शब्द।

अनुवाद

फिर भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु को फूल-माला पहनाई और उनके शरीर पर चन्दन का लेप किया। नमस्कार करने के बाद भट्टाचार्य ने विनयपूर्वक इस प्रकार निवेदन किया।

निन्दा कराइते तोमा आनिनु निज-घरे ।

एइ अपराध, प्रभु, क्षमा कर मोरे ॥ 256 ॥

निन्दा कराइते–मात्र निन्दा कराने के लिए; तोमा-आपको; आनिनु-मैं लाया; निज-घरे-अपने घर पर; एइ अपराध-यह अपराध; प्रभु-मेरे प्रभु; क्षमा कर-कृपया क्षमा करें; मोरे-मेरा।

अनुवाद

"मैं आपको अपने घर आपकी निन्दा कराने के लिए ही लाया। यह बहुत बड़ा अपराध है। मैं इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।"

प्रभु कहे,—निन्दा नहे, 'सहज' कहिल ।

इहाते तोमार किबा अपराध हैल? ॥257॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; निन्दा नहे-निन्दा नहीं; सहज-ठीक; कहिल-उसने कहा; इहाते-इसमें; तोमार-आपका; किबा-क्या; अपराध-अपराध; हैल–था।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "अमोघ ने जो कुछ कहा है, वह सही है, अतएव यह निन्दा नहीं है। इसमें आपका क्या अपराध है?"

एत बलि' महाप्रभु चलिला भवने ।

भट्टाचार्य ताँर घरे गेला ताँर सने ॥ 258॥

एत बलि'-यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः चलिला भवने-अपने निवासस्थान पर लौट गये; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; ताँर घरे-उनके घर; गेला-गये; ताँर सने-उनके साथ।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ से चलकर अपने घर वापस आये। सार्वभौम भट्टाचार्य भी उनके साथ-साथ गये।

प्रभु-पदे पड़ि' बहु आत्म-निन्दा कैल ।

ताँरे शान्त करि' प्रभु घरे पाठाइल ॥ 259॥

प्रभु-पदे-श्री चैतन्य महाप्रभु के पाँव में; पड़ि'-गिरकर; बहु-बहुत; आत्म-निन्दा कैल-अपनी निन्दा की; ताँरे-उनको; शान्त करि'–शान्त करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; घरे पाठाइल-घर वापस भेज दिया।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने महाप्रभु के चरणों पर गिरकर आत्म-निन्दा में अनेक बातें कहीं। तब महाप्रभु ने उन्हें शान्त किया और उन्हें घर वापस भेज दिया।

घरे आसि' भट्टाचार्य षाठीर माता-सने ।

आपना निन्दिया किछु बलेन वचने ॥ 260 ॥

घरे आसि'–घर लौटकर; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; षाठीर माता-सने-षाठी की माता के साथ; आपना निन्दिया-अपने आपको कोसते हुए; किछ-कुछ; बलेन वचने-शब्द कहे।

अनुवाद

अपने घर लौटकर सार्वभौम भट्टाचार्य ने षाठी की माता से परामर्श किया। फिर अपनी निन्दा करते हुए वे इस प्रकार बोले।

चैतन्य-गोसाञि निन्दा शुनिल याहा हैते ।

तारे वध कैले हय पाप-प्रायश्चित्ते ॥ 261॥

चैतन्य गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु की; निन्दा-निन्दा; शुनिल-मैंने सुनी; याहा हैते–जिससे; तारे वध कैले-उसका यदि वध किया जाए; हय-हो जाए; पाप-प्रायश्चित्ते-पाप-पूर्ण कर्म का प्रायश्चित्त है।

अनुवाद

“जिस व्यक्ति ने श्री चैतन्य महाप्रभु की निन्दा की, यदि उसका वध कर दिया जाए, तो उससे पापकर्म का प्रायश्चित्त हो सकता है।”

तात्पर्य

वैष्णव की निन्दा के विषय में स्कन्द पुराण का निम्नलिखित उद्धरण हरिभक्ति-विलास में प्राप्त होता है :

यो हि भागवतं लोकमुपहासं नृपोत्तम ।

करोति तस्य नश्यति अर्थधर्मयशः सुताः ॥

निन्दां कुर्वन्ति ये मूढा वैष्णवानां महात्मनाम् ।

पतन्ति पितृभिः सार्धं महारौरव संज्ञिते ॥

हन्ति निन्दति वै द्वेष्टि वैष्णवान्नाभिनन्दति ।

क्रुध्यते याति नो हर्ष दर्शने पतनानि षट् ॥

मार्कण्डेय तथा भगीरथ की इस वार्ता में कहा गया है, “हे राजन्, जो महाभागवत का उपहास करता है, उसके पुण्यकर्मों का फल, उसका ऐश्वर्य, उसका यश तथा उसके पुत्र नष्ट हो जाते हैं। सारे वैष्णव महान् आत्मा होते हैं। जो भी उनकी निन्दा करता है, वह महारौरव नामक नरक में जा पड़ता है। उसके साथ उसके पूर्वज भी आते हैं। जो कोई वैष्णव

का वध करता है या उसकी निन्दा करता है और जो कोई वैष्णव से ईर्ष्या करता है या उस पर क्रुद्ध होता है अथवा जो कोई वैष्णव को देखकर नमस्कार नहीं करता या हर्ष का अनुभव नहीं करता, वह निश्चित रूप से नरक में गिरता है।"

हरिभक्ति-विलास (10.314) में द्वारका माहात्म्य का निम्नलिखित श्लोक प्राप्त होता है :

करपत्रैश्च फाल्यन्ते सुतीव्रर्यमशासनैः ।

निन्दां कुर्वन्ति ये पापा वैष्णवानां महात्मनाम् ॥

प्रह्लाद महाराज तथा बलि महाराज की वार्ता में यह कहा गया है, "जो पापी लोग महान् आत्मा ऐसे वैष्णवों की निन्दा करते हैं, उन्हें यमराज अत्यन्त कठोर दण्ड देते हैं।"

भक्ति-सन्दर्भ (313) में भगवान् विष्णु की निन्दा करने के विषय में जीव गोस्वामी ने निम्नलिखित कथन दिया है :

ये निन्दन्ति हृषीकेशं तद्भक्तं पुण्यरूपिणम् ।

शतजन्मार्जितं पुण्यं तेषां नश्यति निश्चितम् ॥

ते पच्यन्ते महाघोरे कुम्भीपाके भयानके ।

भक्षिताः कीटसङ्घेन यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।

श्रीविष्णोरवमाननाद् गुरुतरं श्रीवैष्णवोल्लङ्घनम् ॥

तदीयदूषकजनान्न पश्येत् पुरुषाधमान् ।

तैः सार्धं वञ्चकजनैः सहवासं न कारयेत् ॥

"जो भगवान् विष्णु तथा उनके भक्तों की निन्दा करता है, वह अपने सौ जन्मों में अर्जित पुण्य को खो देता है। ऐसा व्यक्ति कुम्भीपाक नरक में सड़ता है और जब तक सूर्य तथा चाँद का अस्तित्व रहता है, तब तक कीड़ों द्वारा काटा जाता है। अतएव भगवान् विष्णु तथा उनके भक्तों की निन्दा करने वाले व्यक्ति का मुँह तक नहीं देखना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों का संग करने का कभी भी प्रयास नहीं करना चाहिए।"

आगे भी जीव गोस्वामी अपने भक्ति-सन्दर्भ (265) में श्रीमद्भागवत (10.74.40) का प्रमाण देते हैं :

निन्दां भगवतः शृण्वंस् तत्परस्य जनस्य वा।

ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्युतः ॥

"यदि भगवान् या भगवान् के भक्त की निन्दा सुनकर मनुष्य वहाँ से तुरन्त हट नहीं जाता, तो वह अपनी भक्ति से पतित हो जाता है।" इसी प्रकार शिवजी की पत्नी सती श्रीमद्भागवत (4.4.17) में कहती हैं :

कर्णौपिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे

धर्मावितर्यसृणिभिर्नुभिरास्यमाने।

छिन्द्यात् प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चे-

जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत् स धर्मः ॥

"यदि कोई किसी गैरजिम्मेदार व्यक्ति द्वारा धर्म के स्वामी तथा नियन्ता की निन्दा होते सुनता है, तो उसे चाहिए कि वह अपने कान बन्द कर ले और यदि उसको दण्ड नहीं दे सकता, तो वहाँ से चला जाये। किन्तु यदि वह उसका वध कर सकता हो, तो उसे चाहिए कि बलपूर्वक उसकी जीभ काट ले और अपराध करने वाले को मारने के बाद अपना भी प्राण त्याग दे।"

किम्वा निज-प्राण यदि करि विमोचन।

दुइ योग्य नहे, दुइ शरीर ब्राह्मण ॥ 262 ॥

किम्वा-अथवा; निज-प्राण-मैं अपने प्राण; यदि-यदि; करि विमोचन-त्याग दें; दुइ-ये दोनों कर्म; योग्य नहे-योग्य नहीं; दुइ शरीर-दोनों शरीर; ब्राह्मण-ब्राह्मण के हैं।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने आगे कहा, "अथवा यदि मैं अपने प्राण त्याग हूँ, तो इस पापकर्म का प्रायश्चित्त हो सकता है। किन्तु इनमें से दोनों विचार उपयुक्त नहीं हैं, क्योंकि दोनों शरीर ब्राह्मणों के हैं।

पुनः सेइ निन्दकेर मुख ना देखिब।

परित्याग कैलुँ, तार नाम ना लइब ॥ 263 ॥

पुनःदोबारा; सेइ-उस; निन्दकेर-निन्दक का; मुख–मुख; ना-नहीं; देखिब-देखूँगा; परित्याग-त्याग; कैलुँ-मैं करता हूँ; तार-उसका; नाम-नाम; ना-नहीं; लइब-लँगा।

अनुवाद

"इसके बजाए, मैं उस निन्दक का अब फिर कभी मुंह तक नहीं देखूँगा। मैं उसका परित्याग कर रहा हूँ और उससे सम्बन्ध तोड़ रहा हूँ। अब मैं उसका नाम तक नहीं लूँगा।

षाठीरे कह—तारे छाड़क, से हइल 'पतित' ।

'पतित' हइले भर्ता त्यजिते उचित ॥ 264॥

षाठीरे कह–षाठी को कह दो; तारे छाड़क-उसे छोड़ दे; से हइल-वह हो गया है; पतित-पतित; पतित हइले–जब कोई पतित हो जाता है; भर्ता-ऐसे पति को; त्यजिते-त्याग देना; उचित-कर्तव्य होता है।

अनुवाद

"मेरी पुत्री षाठी से कहो कि वह अपने पति से सम्बन्ध तोड़ ले, क्योंकि वह पतित हो चुका है। जब पति पतित हो जाय, तो पत्नी का कर्तव्य है कि वह उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर ले।"

तात्पर्य

श्रील सार्वभौम भट्टाचार्य ने विचार किया कि यदि अमोघ को मार डाला जाए, तो ब्राह्मण का वध करने का पापफल भोगना पड़ेगा। उसी कारण से भट्टाचार्य के लिए आत्महत्या भी करना उचित नहीं था, क्योंकि वे भी ब्राह्मण थे। चूँकि इन दोनों में से भट्टाचार्य कुछ भी स्वीकार नहीं कर सकते थे, इसीलिए उन्होंने अमोघ से अपना सम्बन्ध तोड़ देने और उसका मुख कभी न देखने का निश्चय किया।

जहाँ तक ब्राह्मण के शरीर का वध करने की बात है, ब्रह्म-बन्धु जो ब्राह्मण पिता से जन्मा है, किन्तु ब्राह्मण-गुणों से विहीन है, उसके बारे में श्रीमद्भागवत (1.7.53) का निम्नलिखित आदेश है :

श्री भगवान् उवाच

ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः ।

“भगवान् कृष्ण ने कहा, 'ब्रह्म-बन्धु का वध नहीं करना चाहिए, किन्तु यदि वह आततायी है, तो उसका वध अवश्य कर देना चाहिए।”

श्रील श्रीधर स्वामी ने श्रीमद्भागवत के इस श्लोक की टीका करते हुए स्मृति से उद्धरण दिया है :

आततायिनमायान्तमपि वेदान्तपारगम् ।

जिघांसन्तं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥

“यदि आततायी वेदान्त का बहुत बड़ा विद्वान हो, तो भी अन्यों का वध करने की ईर्ष्या के कारण उसका वध कर देना चाहिए। ऐसी दशा में ब्राह्मण का वध करना पाप नहीं है।”

श्रीमद्भागवत (1.7.57) में यह भी कहा गया है :

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा ।

एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥

“ब्रह्म-बन्धु के लिए जिन दण्डों की संस्तुति की गई है वे हैं—सिर के बाल मुंडा देना, उसकी सम्पत्ति छीन लेना तथा उसे उसके घर से निकाल देना। उसके शरीर का वध करने के लिए कोई आदेश नहीं है।”

सार्वभौम भट्टाचार्य की पुत्री षाठी के लिए यह सलाह दी गई कि वह अपने पति से अपना सम्बन्ध त्याग दे। इसके विषय में श्रीमद्भागवत (5.5.18) का कहना है-न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेत मृत्युम्–“जो अटल मृत्यु से अपने आश्रितों को मोक्ष न दिला सके, वह पति नहीं कहला सकता।” यदि मनुष्य कृष्णभावनाभावित नहीं है और आध्यात्मिक शक्ति से विहीन है, तो वह जन्म-मृत्यु के चक्र से अपनी पत्नी की रक्षा नहीं कर सकता। फलतः ऐसा व्यक्ति पति नहीं माना जा सकता। पत्नी को कृष्णभावनामृत में प्रगति करने के लिए अपना जीवन तथा सर्वस्व कृष्ण को अर्पित कर देना चाहिए। यदि वह कृष्णभावनामृत का परित्याग करने वाले पति से अपना सम्बन्ध तोड़ लेती है, तो वह द्विजपत्नियों, अर्थात् यज्ञ सम्पन्न करने में व्यस्त ब्राह्मणों की पत्नियों के पदचिह्नों का अनुसरण करती है। ऐसी पत्नी की अपने पति से सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए भर्त्सना नहीं की जानी चाहिए। इस प्रसंग में श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवत (10.23.31-32) में द्विज-पत्नियों को विश्वास दिलाया है :

पतयो नाभ्यसूयेरन् पितृभ्रातृसुतादयः ।

लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥

न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यङ्गसङ्गो नृणामिह ।

तन्मनो मयि युञ्जाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥

“मेरी प्रिय द्विजपत्नियों, तुम सब विश्वस्त रहो कि तुम्हारे लौटने पर तुम्हारे पति तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेंगे, न ही तुम्हारे भाई, पुत्र अथवा पिता तुम्हें स्वीकार करने से इनकार करेंगे। चूँकि तुम मेरी भक्त हो, अतः न केवल तुम्हारे सम्बन्धी प्रत्युत सामान्यजन तथा देवगण भी तुम से सन्तुष्ट रहेंगे। मेरे लिए दिव्य प्रेम शारीरिक सम्बन्ध पर निर्भर नहीं करता, प्रत्युत जिस किसी का मन मुझ में मग्न है, वह अतिशीघ्र, निश्चित् रूप से मेरे शाश्वत संगी के तौर पर मेरे पास आयेगा।”

पतिं च पतितं त्यजेत् ॥ 265॥

पतिम्-पति को; च-और; पतितम्-पतित को; त्यजेत्–छोड़ देना चाहिए।

अनुवाद

“यदि पति पतित हो जाए, तो उससे सम्बन्ध तोड़ लेना चाहिए।”

तात्पर्य

यह उद्धरण स्मृति शास्त्र का है। जैसाकि श्रीमद्भागवत (7.11.28) में कहा गया है :

सन्तुष्टालोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् ।

अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत् ॥

“जो पत्नी सन्तुष्ट रहती है, जो लालची नहीं होती, जो दक्ष है और धर्म के सिद्धान्त जानती है, जो प्रिय तथा सत्य भाषण करती है और मोहग्रस्त नहीं होती, जो सदैव स्वच्छ रहती है और स्नेहमयी है, उसे अपने उस पति की आज्ञाकारिणी होना चाहिए जो पतित नहीं है।”

सेइ रात्रे अमोघ काहाँ पलाञा गेल ।

प्रातः-काले तार विसूचिका-व्याधि हैल ॥ 266 ॥

सेइ रात्रे-उसी रात; अमोघ–सार्वभौम भट्टाचार्य का दामाद, अमोघ; काहाँ–कहाँ; पलात्रा गेल–भाग गया; प्रातः-काले-प्रात:काल; तार-उसको; विसूचिका-व्याधि-हैजे का संक्रामक रोग; हैल–हो गया।

अनुवाद

उस रात को सार्वभौम भट्टाचार्य का दामाद अमोघ भाग गया और प्रातः होते ही वह हैजे से ग्रस्त हो गया।

अमोघ मरेन—शुनि' कहे भट्टाचार्य ।

सहाय हइया दैव कैल मोर कार्य ॥ 267॥

अमोघ मरेन-अमोघ मरणासन्न है; शुनि'-यह सुनकर; कहे भट्टाचार्य-भट्टाचार्य ने कहा; सहाय हइया-सहायक हो रहा है; दैव-भाग्य; कैल–किया; मोर-मेरा; कार्य-कर्तव्य।

अनुवाद

जब भट्टाचार्य ने सुना कि अमोघ हैजे से मर रहा है, तो उन्होंने सोचा, "यह दैव की कृपा है कि जो मैं करना चाह रहा हूँ वही हो रहा है।"

ईश्वरे त' अपराध फले तत-क्षण ।

एत बलि' पड़े दुइ शास्त्रेर वचन ॥ 268॥

ईश्वरे-पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की; त'-निस्सन्देह; अपराध-अपराध का; फले-फल देता है; तत-क्षण-तत्काल; एत बलि'-यह कहकर; पड़े-पढे; दुइ-दो; शास्त्रेर वचन-शास्त्रों के उद्धरण।

अनुवाद

जब कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति अपराध करता है, तो कर्म तुरन्त प्रभाव दिखाता है।" यह कहकर उन्होंने शास्त्रों से दो श्लोक सुनाये।

महता हि प्रयत्नेन हस्त्यश्व-रथ-पत्तिभिः ।

अस्माभिर्यदनुष्ठेयं गन्धर्वैस्तदनुष्ठितम् ॥ 269॥

महता-बहुत बड़ा; हि-निश्चित रूप से; प्रयत्नेन–प्रयास से; हस्ति–हाथी; अश्व-घोड़े; रथ-रथ; पत्तिभिः-पैदल सैनिकों से; अस्माभिः–हम से; यत्-जो कुछ; अनुष्ठेयम्-प्रबन्ध करना है; गन्धर्वैः-गन्धर्वो से; तत्व ह; अनुष्ठितम्-कर दिया गया है।

अनुवाद

"जिस कार्य को हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकों को एकत्र करके बड़े ही प्रयत्न के साथ हमें करना पड़ता, उसे गन्धर्वो ने पहले ही सम्पन्न कर लिया है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण महाभारत (वनपर्व 241.15) का है। जब सारे पाण्डव वनवास कर रहे थे, तब भीमसेन ने यह बात कही थी। उस समय कौरवों तथा गन्धर्वो के बीच लड़ाई हुई थी। कौरव सैनिक कर्ण के सेनापतित्व में लड़ रहे थे, किन्तु गन्धर्वो के सेनापति ने अपनी श्रेष्ठ सैनिक शक्ति के कारण सारे कौरवों को बन्दी बना लिया था। उस समय दुर्योधन के मन्त्रियों तथा सेनापतियों ने महाराज युधिष्ठिर से सहायता करने की प्रार्थना की। इस प्रकार की प्रार्थना सुनने पर भीमसेन ने पाण्डवों के प्रति दुर्योधन के पूर्व नृशंस दुष्कृत्यों का स्मरण करके ये वचन कहे थे। भीमसेन को यह उचित लगा कि दुर्योधन अपनी सेना समेत बन्दी बना लिया गया। इसी को यदि पाण्डवों को करना पड़ता, तो उन्हें काफी प्रयत्न करना पड़ता।

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ।

हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ 270॥

तात्पर्य

आयुः-जीवन की अवधि; श्रियम्-ऐश्वर्य; यशः-यश; धर्मम्-धर्म; लोकान्-सम्पत्ति; आशिषः-सौभाग्य; एव–निश्चय ही; च–तथा; हन्ति-नाश करता है; श्रेयांसि-सौभाग्य; सर्वाणि-सब; पुंसः-मनुष्य के महत्-महान् आत्माओं के; अतिक्रमः-उल्लंघन से।

अनुवाद

“जब कोई व्यक्ति किसी महापुरुषों के साथ दुर्व्यवहार करता है, तो उसकी आयु, ऐश्वर्य, कीर्ति, धर्म, धन तथा सौभाग्य सभी नष्ट हो जाते हैं।”

तात्पर्य

यह महाराज परीक्षित से शुकदेव गोस्वामी का कथन है (श्रीमद्भागवत 10.4.46)। इसमें कृष्ण की बहन (योगमाया) को मारने के प्रयास का वर्णन है, जो कृष्ण-जन्म से पूर्व माता यशोदा की पुत्री के रूप में पैदा हुई थी। योगमाया तथा कृष्ण एक समय पैदा हुए थे। वसुदेव योगमाया को ले आये और उसके स्थान पर कृष्ण को रख आये थे। जब वह मथुरा लाई गई और कंस ने उसे मारने का प्रयास किया, तब वह उसके हाथ से छूट गई और उसका वध नहीं हो पाया। तब उसने कंस को बतलाया कि उसके शत्रु कृष्ण का जन्म हो चुका है। इस पर कंस बौखला गया और उसने अपने असुर संगियों से परामर्श किया। जब यह बड़ा षड्यन्त्र चल रहा था, तब शुकदेव गोस्वामी ने यह श्लोक कहा। वे ईगित करते हैं कि असुर अपने दुष्कर्मों के कारण अपना सर्वस्व खो देता है।

महद्-अतिक्रम शब्द का अर्थ है, “भगवान् विष्णु तथा उनके भक्तों से ईर्ष्या।” यह शब्द महत्त्वपूर्ण है। महत् शब्द महापुरुष का सूचक है, जो भक्त हो सकता है या स्वयं भगवान् हो सकते हैं। भगवान् की सेवा में निरन्तर लगे रहने के कारण भक्तगण भगवान् के ही तुल्य महान् बन जाते हैं। भगवद्गीता (9.13) में भी भगवान् कृष्ण ने महत् शब्द की व्याख्या की है :

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।

भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥

“हे पृथा-पुत्र, जो मोहग्रस्त नहीं हैं, ऐसे महापुरुष दैवी प्रकृति के संरक्षण में रहते हैं। वे निरन्तर भक्ति में लगे रहते हैं, क्योंकि वे मुझे आदि अव्यय पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में जानते हैं।”

भगवान् तथा उनके भक्तों से ईर्ष्या करना असुर के लिए शुभ नहीं है। ऐसी ईर्ष्या से वह अपना सर्वस्व, जो उसके लिए हितकारक समझा जाता है, खो देता है।

गोपीनाथाचार्य गेला प्रभु-दरशने ।

प्रभु ताँरे पुछिल भट्टाचार्य-विवरणे ॥ 271॥

गोपीनाथाचार्य-गोपीनाथ आचार्य; गेला–गये; प्रभु-दरशने-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करने; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको; पुछिल–पूछा; भट्टाचार्य-विवरण सार्वभौम भट्टाचार्य के घर का हालचाल।

अनुवाद

उसी समय गोपीनाथ आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने आये, तो महाप्रभु ने उनसे सार्वभौम भट्टाचार्य के घर में घट रही घटनाओं के बारे में पूछा।

आचार्य कहे,—उपवास कैल दुइ जन ।

विसूचिका-व्याधिते अमोघ छाड़िछे जीवन ॥ 272॥

आचार्य कहे-गोपीनाथ आचार्य ने कहा; उपवास-उपवास; कैल–किया; दुइ जन-दोनों ने; विसूचिका-व्याधिते-हैजे के रोग से; अमोघ–अमोघ; छाड़िछे जीवन-मरने वाला है।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने महाप्रभु को बतलाया कि पति-पत्नी दोनों ही उपवास पर हैं और उनका दामाद अमोघ हैजे से मर रहा है।

शुनि' कृपामय प्रभु आइला धाञा ।

अमोघेरे कहे तार बुके हस्त दिया ॥ 273॥

शुनि'-यह सुनकर; कृपा-मय-कृपालु; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला–आये; धाञा-दौड़कर; अमोघेरे-अमोघ को; कहे-कहा; तार-उसकी; बुके–छाती पर; हस्त दिया-अपना हाथ रखकर।

अनुवाद

ज्योहीं महाप्रभु ने सुना कि अमोघ मरणासन्न है, वे तुरन्त जल्दी-जल्दी उसके पास दौड़े गये। फिर अमोघ की छाती पर अपना हाथ रखकर वे इस प्रकार बोले।

सहजे निर्मल एइ 'ब्राह्मण"-हृदय ।

कृष्णेर वसिते एइ योग्य-स्थान हय ॥ 274॥

सहजे–स्वभाव से; निर्मल-निर्मल; एइ–यह; ब्राह्मण-हृदय-ब्राह्मण का हृदय; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; वसिते-बैठने के लिए; एइ-यह; योग्य-स्थान-योग्य स्थान; हय-है।

अनुवाद

"ब्राह्मण का हृदय स्वभाव से शुद्ध होता है, अतः कृष्ण के वास करने के लिए यह उपयुक्त स्थान होता है।"

'मात्सर्य'-चण्डाल केने इहाँ वसाइले ।

परम पवित्र स्थान अपवित्र कैले ॥ 275॥

मात्सर्य-द्वेष; चण्डाल-चांडाल को; केने-क्यों; इहाँ–यहाँ; वसाइले-बैठने दिया; परम पवित्र-परम पवित्र; स्थान-स्थान को; अपवित्र-अपवित्र; कैले–तुमने किया।

अनुवाद

"उसमें तुमने ईर्ष्या रूपी चण्डाल को भी स्थान क्यों दिया? इसी के कारण तुमने अपने अत्यन्त पवित्र स्थान, हृदय को भी दूषित कर दिया है।"

सार्वभौम-सङ्गे तोमार 'कलुष' हैल क्षय ।

'कल्मष' घुचिले जीव 'कृष्ण-नाम' लय ॥ 276 ॥

सार्वभौम-सङ्गे–सार्वभौम की संगति से; तोमार तुम्हारा; कलुष-कल्मष; हैल क्षय-अब समाप्त हो गया है; कल्मष-कल्मष; घुचिले–समाप्त होने पर; जीव-जीव; कृष्ण-नाम-हरे कृष्ण महामंत्र; लय-जप सकता है।

अनुवाद

"किन्तु सार्वभौम भट्टाचार्य की संगति से तुम्हारा सारा कल्मष घुल चुका है। जब मनुष्य के हृदय का सारा कल्मष धुल जाता है, तब वह हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर सकता है।"

उठह, अमोघ, तुमि लओ कृष्ण-नाम ।

अचिरे तोमारे कृपा करिबे भगवान् ॥ 277॥

उठह-उठो; अमोघ–अमोघ; तुमि-तुम; लओ-जप करो; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; अचिरे–अति शीघ्र; तोमारे-तुम पर; कृपा-कृपा; करिबे-करेंगे; भगवान्–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"अतएव हे अमोघ, तुम उठो और हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करो! यदि तुम ऐसा करोगे, तो कृष्ण अवश्य ही तुम पर कृपां करेंगे।"

तात्पर्य

परम सत्य की अनुभूति तीन अवस्थाओं में की जाती है—निर्विशेष ब्रह्म, परमात्मा तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्। ये तीनों एक ही सत्य हैं, किन्तु ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् तीन विभिन्न पहलू हैं। ब्रह्म को जानने वाला ब्राह्मण कहलाता है और जब ब्राह्मण भगवान् की भक्तिमयी सेवा में लग जाता है, तब वह वैष्णव कहलाता है। जब तक मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नहीं जान लेता, तब तक निर्विशेष ब्रह्म की उसकी अनुभूति अपूर्ण रहती है। भले ही कोई ब्राह्मण नामाभास के पद पर हरे कृष्ण मन्त्र का जप करे, किन्तु वह शुद्ध ध्वनि नहीं होती। जब वह ब्राह्मण भगवान् के साथ अपने सनातन सम्बन्ध को समझते हुए उनकी सेवा करता है, तो उसकी भक्ति अभिधेय कहलाती है। जब वह इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तो वह भागवत या वैष्णव कहलाता है। इससे सूचित होता है कि वह कल्मष तथा भौतिक आसक्ति से मुक्त हो चुका है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (7.28) में भगवान् कृष्ण ने की है :

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

"जिन्होंने इस जन्म में तथा पूर्वजन्म में पुण्यकर्म किया है, जिनके पापकर्म समूल नष्ट हो चुके हैं और जो मोह के द्वन्द्व से मुक्त हैं, वे संकल्पपूर्वक मेरी सेवा करते हैं।"

कोई ब्राह्मण कितना ही बड़ा विद्वान क्यों न हो, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह भौतिक कल्मष से मुक्त है। किन्तु ब्राह्मण का कल्मष सत्त्वगुणमय होता है। भौतिक जगत् में तीन गुण हैं—सतो, रजो तथा तमोगुण और ये सभी कल्मष की विभिन्न श्रेणियाँ मात्र हैं। जब तक ब्राह्मण ऐसे कल्मष को लाँघकर शुद्ध भक्ति के पद को प्राप्त नहीं करता, तब तक उसे वैष्णव के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। एक निर्विशेषवादी परम सत्य के निर्विशेष ब्रह्म पहलू से अवगत हो सकता है, किन्तु उसके कार्यकलाप निर्विशेष धरातल पर होते हैं। कभी-कभी वह भगवान् के रूप (सगुण

उपासना) की कल्पना करता है, किन्तु ऐसे प्रयास उसे पूर्ण साक्षात्कार प्राप्त करने में सहायता नहीं कर पाते । निर्विशेषवादी अपने आपको ब्राह्मण मान सकता है और वह सत्त्वगुणी भी हो सकता है, किन्तु इतने पर भी वह भौतिक प्रकृति के एक ना एक गुण से बद्ध रहता है। इसका अर्थ यह है कि वह तब भी मुक्त नहीं है, क्योंकि गुणों से पूर्णतया शुद्ध हुए बिना मुक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। किसी भी हालत में मायावाद दर्शन मनुष्य को बद्ध बनाये रखता है। यदि कोई उचित दीक्षा द्वारा वैष्णव बन जाता है, तो वह स्वतः ब्राह्मण बन जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसकी पुष्टि गरुड़ पुराण से होती है :

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते ।

सत्रयाजीसहस्रेभ्य: सर्ववेदान्तपारगः ।

सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते ॥

"हजारों ब्राह्मणों में से कोई एक यज्ञ करने के योग्य होता है। ऐसे कई हजार योग्य ब्राह्मणों में से कोई एक वेदान्त दर्शन से पूर्णतः अवगत होता है। ऐसे करोड़ों विद्वान वेदान्तियों में कोई एक विष्णु-भक्त हो सकता है। और वही सर्वाधिक पूजनीय है।"

पूर्णतया योग्य ब्राह्मण हुए बिना आध्यात्म-विज्ञान में प्रगति नहीं की जा सकती। असली ब्राह्मण कभी भी वैष्णवों से ईर्ष्या नहीं करता। यदि वह ऐसा करता है, तो वह अपूर्ण नौसिखिया माना जाता है। निर्विशेषवादी ब्राह्मण सदैव वैष्णव सिद्धान्तों का विरोध करते हैं। वे वैष्णवों से ईर्ष्या करते हैं, क्योंकि उन्हें अपने जीवन का लक्ष्य ज्ञात नहीं रहता। न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम् । किन्तु जब एक ब्राह्मण वैष्णव बन जाता है, तो उसका द्वन्द्व समाप्त हो जाता है। यदि वह ब्राह्मण वैष्णव नहीं बनता, तो उसका ब्राह्मण-पद से पतन हो जाता है। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (11.5.3) द्वारा होती है-न भजन्ति अवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः।

इस कलियुग में हम वास्तव में देख सकते हैं कि अनेक तथाकथित ब्राह्मण वैष्णवों से ईर्ष्या करते हैं। कलि के कल्मष से ग्रस्त ऐसे ब्राह्मण अर्चाविग्रह पूजा को काल्पनिक मानते हैं- अर्च्ये विष्णौ शिलाधीगुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धिः। ऐसा दूषित ब्राह्मण भगवान् के रूप की ऊपर ऊपर से कल्पना कर सकता है, किन्तु वास्तव में वह मन्दिर के अर्चाविग्रह को पत्थर या काष्ठ का बना मानता है। इसी तरह ऐसा कल्मष-ग्रस्त ब्राह्मण गुरु को सामान्य मनुष्य मानता है और जब कृष्णभावनामृत आन्दोलन किसी को वैष्णव बनाता है, तो वह विरोध करता है। ऐसे अनेकों

ब्राह्मण हमसे यह कहकर लड़ने का प्रयास करते हैं, "आप किसी यूरोपियन या अमेरिकन को ब्राह्मण कैसे बना सकते हैं? ब्राह्मण तो केवल ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो सकता है।" वे इस बात पर विचार ही नहीं करते कि प्रामाणिक शास्त्रों में कहीं भी ऐसा नहीं कहा गया। भगवान् कृष्ण द्वारा भगवद्गीता (4.13) में विशेष रूप से कहा गया है-चातुर्वर्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः–भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों तथा उनके लिए नियत कर्म के अनुसार ही मानव समाज के चार वर्षों की सृष्टि मेरे द्वारा हुई है।"

इस तरह ब्राह्मण जातिप्रथा की उपज नहीं है। वह तो केवल योग्यता के बल पर ही ब्राह्मण बनता है। इसी तरह वैष्णव भी किसी जाति से सम्बन्धित नहीं होता, प्रत्युत उसकी उपाधि उसके द्वारा की जाने वाली भक्ति से निर्धारित होती है।

शुनि' 'कृष्ण' 'कृष्ण' बलि' अमोघ उठिला।

प्रेमोन्मादे मत्त हञा नाचिते लागिला॥ 278॥

शुनि'–सुनकर; कृष्ण कृष्ण-कृष्ण का पावन नाम; बलि'–कहकर; अमोघ ठिला–अमोघ उठ खड़ा हुआ; प्रेमोन्मादे-कृष्ण के प्रेमावेश में; मत्त हञा-उन्मत्त होकर; चिते लागिला-नाचने लगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की वाणी सुनकर तथा उनका स्पर्श पाकर, रणशय्या में पड़ा अमोघ उठ खड़ा हुआ और कृष्ण के पवित्र नाम का शीर्तन करने लगा। इस तरह वह प्रेमोन्मत्त होकर नाचने लगा।

कम्प, अश्रु, पुलक, स्तम्भ, स्वेद, स्वर-भङ्ग।

प्रभु हासे देखि' तार प्रेमेर तरङ्ग॥ 279॥

कम्प–काँपना; अश्रु-अश्रु; पुलक-रोमांच; स्तम्भ-जड़ होकर; स्वेद-पसीना; स्वर-भङ्ग-स्वर का लड़खड़ाना; प्रभु हासे-श्री चैतन्य महाप्रभु हँसने लगे; देखि'-देखकर; तार-अमोघ की; प्रेमेर तरङ्ग-प्रेम की तरंगें।

अनुवाद

प्रेमोन्मत्त होकर नाचते समय अमोघ में सारे भावलक्षण-यथा कम्पन, अश्रु, पुलकित होना, स्तम्भ, स्वेद तथा स्वरभंग प्रकट हो आये। इस प्रेम-तरंगों को देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु हँसने लगे।

प्रभुर चरणे धरि' करये विनय।

अपराध क्षम मोरे, प्रभु, दयामय ॥280॥

प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; धरि'-पकड़कर; करये-किया; विनय-निवेदन; अपराध-अपराध; क्षम–कृपया क्षमा करो; मोरे-मेरे; प्रभु-हे प्रभु; दया-मय-दयामय।

अनुवाद

अमोघ महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़ा और विनीत भाव से बोला, "हे दयामय प्रभु, कृपया मेरा अपराध क्षमा करें।"

एइ छार मुखे तोमार करिनु निन्दने।

एत बलि' आपन गाले चड़ाय आपने ॥ 281॥

एइ छार मुखे-इस घृणित मुख से; तोमार-आपकी; करिनु-मैंने की; निन्दने-निन्दा; एत बलि'—यह कहकर; आपन-अपनी; गाले–गालों पर; चड़ाय-थप्पड़ मारा; आपने–स्वयं।

अनुवाद

अमोघ ने न केवल महाप्रभु से क्षमा-दान माँगा, अपितु वह यह कहकर अपने गालों पर चपत लगाने लगा, "मैंने इसी मुँह से आपकी निन्दा की है।"

चड़ाइते चड़ाइते गाल फुलाइल।

हाते धरि' गोपीनाथाचार्य निषेधिल ॥ 282॥

चड़ाइते चड़ाइते-बारम्बार चपत लगाकर; गाल-गाल; फुलाइल-सुजा दिया; हाते धरि'-उसके हाथ पकड़कर; गोपीनाथ-आचार्य-गोपीनाथ आचार्य ने; निषेधिल-रोका।

अनुवाद

अमोघ अपने गालों पर तब तक चपत लगाता रहा, जब तक उसके गाल सूज नहीं गये। अन्त में गोपीनाथ आचार्य ने उसके हाथ पकड़कर उसे रोका।

प्रभु आश्वासन करे स्पर्शि' तार गात्र ।

सार्वभौम-सम्बन्धे तुमि मोर स्नेह-पात्र ॥ 283 ॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; आश्वासन करे-आश्वासन दिया; स्पर्शि'–स्पर्श करके; तार-उसके; गात्र-शरीर को सार्वभौम-सम्बन्धे-सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ सम्बन्ध होने के कारण; तुमि-तुम; मोर-मेरे; स्नेह-पात्र-स्नेह-पात्र।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसके शरीर का स्पर्श करते हुए उसे यह कहकर शान्त किया, "तुम मेरे स्नेह-पात्र हो, क्योंकि तुम सार्वभौम भट्टाचार्य के दामाद हो।

सार्वभौम-गृहे दास-दासी, ये कुक्कुर ।

सेह मोर प्रिय, अन्य जन रहु दूर ॥284॥

सार्वभौम-गृहे–सार्वभौम भट्टाचार्य के घर के; दास-दासी–दास-दासियाँ; ये कुकुर-एक कुत्ता भी; सेह-वे सब; मोर-मुझे; प्रिय–अति प्रिय; अन्य जन-अन्य लोगों की; रहु दूर-क्या बात करें।

अनुवाद

"सार्वभौम भट्टाचार्य के घर का हर प्राणी मुझे अत्यन्त प्रिय है- यहाँ तक कि उनके दास-दासियाँ तथा उनका कुत्ता भी। तो भला उनके सम्बन्धियों के विषय में क्या कहूँ?"

अपराध' नाहि, सदा लओ कृष्ण-नाम ।

एत बलि' प्रभु आइला सार्वभौम-स्थान ॥ 285॥

अपराध' नाहि-अपराध न करो; सदा-सदा; लओ-जपो; कृष्ण-नाम-हरे कृष्ण महामंत्र; एत बलि'-यह कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला–आये; सार्वभौम-स्थान–सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर।

अनुवाद

"अरे अमोघ, अब तुम सदैव हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करना और आगे कोई अपराध न करना।" अमोघ को इस तरह उपदेश देकर श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम के घर गये।

प्रभु देखि' सार्वभौम धरिला चरणे ।

प्रभु ताँरे आलिङ्गिया वसिला आसने ॥ 286 ॥

प्रभु देखि'-श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य ने; धरिला चरणे-उनके चरण पकड़ लिए; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे–उनका; आलिङ्गिया-आलिंगन करके; वसिला आसने-अपने आसन पर बैठ गये।

अनुवाद

महाप्रभु को देखते ही सार्वभौम भट्टाचार्य ने उनके चरणकमल पकड़ लिए। महाप्रभु भी उनका आलिंगन किया और फिर बैठ गये।

प्रभु कहे,—अमोघ शिशु, किबा तार दोष ।

केने उपवास कर, केने कर रोष ॥287॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; अमोघ शिशु-अमोघ बच्चा है; किला-क्या; तार दोष-उसका दोष; केने-क्यों; उपवास कर–उपवास कर रहे हो; केने-क्यों; कर रोष-आप क्रुद्ध हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कहकर सार्वभौम को शान्त किया, "आखिर आपका दामाद अमोघ एक बच्चा है। अतएव इसमें उसका क्या दोष? आप क्यों उपवास कर रहे हो और गुस्सा क्यों कर रहे हो?"

उठ, स्नान कर, देख जगन्नाथ-मुख ।

शीघ्र आसि, भोजन कर, तबे मोर सुख ॥288॥

उठ-उठो; स्नान कर-स्नान करो; देख-दर्शन करो; जगन्नाथ-मुख-भगवान् जगन्नाथ के मुख के; शीघ्र आसि-शीघ्र लौटकर; भोजन कर–भोजन करो; तबे मोर सुख-तभी मुझे खुशी होगी।

अनुवाद

“उठो और स्नान करो। फिर जाकर जगन्नाथजी के मुख का दर्शन करो। तब लौटकर अपना भोजन करो। तभी मैं प्रसन्न होऊँगा।”

तावत्रहिब आमि एथाय वसिया ।

यावत्ना खाइबे तुमि प्रसाद आसिया ॥289॥

तावत्-तब तक; रहिब-रहुँगा; आमि-मैं; एथाय-यहाँ; वसिया–बैठा; यावत्-जब तक; ना खाइबे–नहीं खाओगे; तुमि-आप; प्रसाद-जगन्नाथ भगवान् का प्रसाद; आसिया–यहाँ आकर।

अनुवाद

“जब तक आप लौट करके जगन्नाथजी का प्रसाद ग्रहण नहीं कर लेते, तब तक मैं यहीं रुका रहूँगा।”

प्रभु-पद धरि’ भट्ट कहिते लागिला ।

मरित’ अमोघ, तारे केने जीयाइला ॥290 ॥

प्रभु-पद-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; धरि’-पकड़कर; भट्ट-सार्वभौम भट्टाचार्य; कहिते लागिला-कहने लगे; मरित’ अमोघ–अमोघ मर गया होता; तारे-उसको; केने-क्यों; जीयाइला-जीवित किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को पकड़कर भट्टाचार्य ने कहा, “आपने अमोघ को क्यों जिलाया? यदि वह मर गया होता तो अच्छा हुआ होता।”

प्रभु कहे,—अमोघ शिशु, तोमार बालक ।

बालक-दोष ना लय पिता, ताहाते पालक ॥291॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; अमोघ शिशु-अमोघ बच्चा है; तोमार बालक-आपका पुत्र; बालक-दोष-बालक का दोष; ना लय-नहीं स्वीकार करता; पिता-पिता; ताहाते-उसका; पालक-पालक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "अमोघ तो बच्चा है और आपका पुत्र है। पिता अपने पुत्र के दोष पर ध्यान नहीं देता, विशेष करके तब जब वह उसका पालक हो।"

एबे 'वैष्णव' हैल, तार गेल 'अपराध'।

ताहार उपरे एबे करह प्रसाद ॥292॥

एबे-अब; वैष्णव हैल-वैष्णव बन गया है; तार-उसका; गेल-चला गया है; अपराध-अपराध; ताहार उपरे—उसके ऊपर; एबे-अब; करह प्रसाद-दया दिखाओ।

अनुवाद

"अब वैष्णव बन जाने से वह अपराधरहित हो चुका है। अब आप निःसंकोच भाव से उस पर कृपा कर सकते हैं।"

भट्ट कहे,—चल, प्रभु, ईश्वर-दरशने।

स्नान करि' ताँहा मुञि आसिछों एखने ॥293॥

भट्ट कहे-भट्टाचार्य ने कहा; चल–जाओ; प्रभु-मेरे पुत्र; ईश्वर-दरशने–भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने; स्नान करि'–स्नान करके; ताँहा-वहाँ; मुञि-मैं; आसिछों-लौट आऊँगा; एखने–यहाँ।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "हे प्रभु, चलिए, जगन्नाथजी का दर्शन करने चलिए। मैं स्नान करने के बाद वहाँ जाऊँगा और तब लौटूँगा।"

प्रभु कहे,—गोपीनाथ, इहाञि रहिबा।

इँहो प्रसाद पाइले, वार्ता आमाके कहिबा ॥294॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; गोपीनाथ-गोपीनाथ; इहाञि रहिबा-कृपया यहाँ रहो; इँहो–सार्वभौम भट्टाचार्य ने प्रसाद पाइले-जब वे प्रसाद ग्रहण कर ले ; वार्ता-समाचार; आमाके कहिबा-मुझे सूचित करो।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोपीनाथ से कहा, "तुम यहीं रुको और मुझे सूचित करना जब सार्वभौम भट्टाचार्य प्रसाद ग्रहण कर चुके।"

एत बलि' प्रभु गेला ईश्वर-दरशने ।

भट्ट स्नान दर्शन करि' करिला भोजने ॥ 295॥

एत बलि'-यह कहकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला–चले गये; ईश्वर-दरशने-भगवान जगन्नाथ का दर्शन करने; भट्ट सार्वभौम भट्टाचार्य ने; स्नान दर्शन करि'–स्नान तथा भगवान जगन्नाथ का दर्शन करके; करिला भोजने–भोजन किया।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने चले गये। सार्वभौम भट्टाचार्य ने स्नान किया, भगवान जगन्नाथ का दर्शन किया और फिर वे भोजन ग्रहण करने के लिए अपने घर लौट आये।

सेइ अमोघ हैल प्रभुर भक्त 'एकान्त' ।

प्रेमे नाचे, कृष्ण-नाम लय महा-शान्त ॥296 ॥

सेइ अमोघ-वही अमोघ; हैल–हो गया; प्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु का; भक्त-भक्त; एकान्त–दृढ़; प्रेमे नाचे-प्रेमावेश में नाचने लगा; कृष्ण-नाम लय-हरे कृष्ण महामंत्र जपने जगा; महा-शान्त-अति शान्त होकर।

अनुवाद

इसके बाद अमोघ श्री चैतन्य महाप्रभु का शुद्ध भक्त बन गया। वह प्रेम में नाचता और शान्त भाव से भगवान् कृष्ण के नाम का जप करता।

ऐछे चित्र-लीला करे शचीर नन्दन ।

येइ देखे, शुने, ताँर विस्मय हय मन ॥ 297॥

ऐछे-इस प्रकार; चित्र-लीला-विविध लीलाएँ; करे-कीं; शचीर नन्दन–शची माता के पुत्र; येइ देखे–जो कोई देखता है; शुने-सुनता है; ताँर-उसका; विस्मय-चकित; हय हो जाता है; मन–मन।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी विविध लीलाएँ सम्पन्न कीं। जो भी उन्हें देखता या सुनता है, वह विस्मित हुए बिना नहीं रहता।

ऐछे भट्ट-गृहे करे भोजन-विलास ।

तार मध्ये नाना चित्र-चरित्र-प्रकाश ॥ 298॥

ऐछे-इस प्रकार; भट्ट-गृहे-सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर; करे-कीं; भोजन-बलास–भोजन की लीला; तार मध्ये-उस लीला के मध्य; नाना-नाना प्रकार की; चित्र-रित्र-लीलाएँ; प्रकाश–दिखाई।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य के घर में भोजन करने का आनन्द उठाया। इसी एक लीला के अन्तर्गत अनेक अद्भुत लीलाएँ प्रकट हुईं।

सार्वभौम-घरे एइ भोजन-चरित ।

सार्वभौम-प्रेम याँहा हइला विदित ॥ 299॥

सार्वभौम-घरे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने घर पर; एइ-ये; भोजन-चरित-भोजन-लीलाएँ; सार्वभौम-प्रेम-सार्वभौम भट्टाचार्य का प्रेम; याँहा-जहाँ; हइला-हो गया; विदित–सर्वज्ञात।

अनुवाद

ये श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के विशिष्ट लक्षण हैं। इस तरह महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर भोजन किया और महाप्रभु के प्रति सार्वभौम का प्रेम विख्यात हुआ।

तात्पर्य

जैसाकि शाखा निर्णयामृत में कहा गया है :

अमोघपण्डितं वन्दे श्रीगौरेणात्मसात्कृतम् ।

प्रेमगद्गदसान्द्राङ्गं पुलकाकुलविग्रहम् ॥

“मैं उन अमोघ पण्डित को नमस्कार करता हूँ, जिन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपना बना लिया। इसके फलस्वरूप वे निरन्तर प्रेम में मग्न रहते थे और गदगद वाणी तथा रोमांच द्वारा भाव लक्षण प्रकट करते थे।”

षाठीर मातार प्रेम, आर प्रभुर प्रसाद ।

भक्त-सम्बन्धे याहा क्षमिल अपराध ॥ 300॥

षाठीर मातार प्रेम–षाठी की माता का प्रेम; आर-और; प्रभुर प्रसाद-श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा; भक्त-सम्बन्धे-भक्त के साथ सम्बन्धित होने के कारण; याहा–जहाँ; क्षमिल अपराध-श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपराध क्षमा कर दिया।

अनुवाद

इस तरह मैंने सार्वभौम की पत्नी षाठी की माता के प्रेम का वर्णन किया है। मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु की महान् कृपा का भी वर्णन किया है, जिसे उन्होंने अमोघ के अपराध को क्षमा करके प्रदर्शित किया। उन्होंने अमोघ का भक्त के साथ सम्बन्ध होने के कारण ऐसा किया।

तात्पर्य

अमोघ अपराधी था, क्योंकि उसने महाप्रभु की निन्दा की थी। फलस्वरूप वह हैजे से मरने ही वाला था। रोगग्रस्त होने के बाद अमोघ को अपने अपराधों से मुक्त होने का अवसर प्राप्त नहीं हो पाया, किन्तु महाप्रभु को सार्वभौम भट्टाचार्य तथा उनकी पत्नी दोनों अत्यन्त प्रिय थे। उनके सम्बन्ध के कारण ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने अमोघ को क्षमा कर दिया। इस तरह वह महाप्रभु से दण्डित होने के बजाय महाप्रभु की दया के कारण बचा लिया गया। यह सब श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति सार्वभौम भट्टाचार्य के अटल प्रेम के कारण हुआ। बाहर से अमोघ सार्वभौम भट्टाचार्य का दामाद था और सार्वभौम उसका पालन कर रहे थे। फलत: यदि अमोघ को क्षमा नहीं किया जाता, तो उसके दण्ड से सार्वभौम सीधे प्रभावित होते । अमोघ की मृत्यु से अप्रत्यक्ष रूप से सार्वभौम भट्टाचार्य की मृत्यु हो गई होती।

श्रद्धा करि’ एइ लीला शुने येइ जन ।

अचिरात्याय सेइ चैतन्य-चरण ॥ 301॥

श्रद्धा करि'–श्रद्धा तथा प्रेम सहित; एइ लीला-यह लीला; शुने-सुनता है; येइ जन-जो कोई व्यक्ति; अचिरात्-अति शीघ्र; पाय-पाता है; सेइ-वह; चैतन्य-चरण-भगवान् चैतन्य के चरणकमल।

अनुवाद

जो कोई श्रद्धा तथा प्रेम से श्री चैतन्य महाप्रभु की इन लीलाओं को सुनता है, उसे तुरन्त ही महाप्रभु के चरणों में शरण मिलेगी।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 302॥

श्री-रूप-श्री रूप गोस्वामी; रघुनाथ–श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों पर; यार–जिसकी ; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत पुस्तक; कहे-वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की प्रार्थना करते हुए और सदैव उनकी कृपा की इच्छा रखते हुए उन्हीं के पदचिह्नों पर चलते हुए मैं कृष्णदास श्री चैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस तरह श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के पन्द्रहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर महाप्रभु के भोजन करने का वर्णन हुआ है।

अध्याय सोलह

महाप्रभु द्वारा वृन्दावन जाने की चेष्टा

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने ग्रन्थ अमृत-प्रवाह-भाष्य में इस अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। "जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन जाने की इच्छा प्रकट की, तो रामानन्द राय तथा सार्वभौम भट्टाचार्य ने अप्रत्यक्ष रूप से

अनेक व्यवधान डाले। यथासमय बंगाल के सारे भक्त तीसरे वर्ष जगन्नाथ पुरी आये। इस बार वैष्णवों की पत्नियाँ अपने साथ तरह-तरह का भोजन लाई थीं, क्योंकि वे जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रित करना चाहती थीं। जब भक्तगण आ गये, तो चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें फूलों की मालाएँ आशीर्वाद स्वरूप भेजीं। उस वर्ष भी गुण्डिचा मन्दिर की सफाई की गई और जब चातुर्मास्य का काल बीत गया, तो सारे भक्त बंगाल में अपने घर वापस चले गये। चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को प्रतिवर्ष नीलाचल आने से मना किया। कुलीनग्राम के निवासियों द्वारा प्रश्न किये जाने पर चैतन्य महाप्रभु ने पुनः वैष्णवों के लक्षण बताए। विद्यानिधि भी जगन्नाथ पुरी आये और उन्होंने ओड़न षष्ठी उत्सव देखा। जब भक्तों ने महाप्रभु से विदाई ली, तो महाप्रभु वृन्दावन जाने के लिए दृढ़-संकल्प थे और वे विजयदशमी के दिन वे चल पड़े।

महाराज प्रतापरुद्र ने श्री चैतन्य महाप्रभु की वृन्दावन यात्रा के लिए अनेक प्रकार के प्रबन्ध किये। जब महाप्रभु ने चित्रोत्पला नदी पार कर ली, तो रामानन्द राय, मर्दराज तथा हरिचन्दन उनके साथ-साथ गये। श्री चैतन्य महाप्रभु ने गदाधर पण्डित से अनुरोध किया कि वे नीलाचल, जगन्नाथ पुरी वापस जाएँ, किन्तु उन्होंने इस आदेश का पालन नहीं किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कटक पहुँचकर गदाधर पण्डित से नीलाचल वापस जाने के लिए पुनः अनुरोध किया और भद्रक पहुँचकर रामानन्द राय को भी विदा कर दिया। इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने उड़ीसा की सीमा पार की और नाव से पानिहाटि आ पहुँचे। इसके बाद वे राघव पण्डित के घर गये। वहाँ से वे कुमारहट्ट गये और अन्त में कुलिया गये, जहाँ उन्होंने कई अपराधियों को क्षमादान दिया। वहाँ से वे रामकेलि गये, जहाँ वे श्री रूप और सनातन को मिले तथा उन्हें अपने प्रधान शिष्यों के रूप में स्वीकार किया। रामकेलि से लौटते समय उनकी भेंट रघुनाथ दास से हुई, जिन्हें महाप्रभु ने उपदेश देकर घर वापस भेज दिया। तत्पश्चात् महाप्रभु नीलाचल लौट आये और किसी साथी को लिये बिना ही वृन्दावन जाने की योजना बनाने लगे।

गौड़ोद्यानं गौर-मेघः सिञ्चन्स्वालोकनामृतैः ।

भवाग्नि-दग्ध-जनता-वीरुधः समजीवयत् ॥ 1॥

गौड़-उद्यानम्-गौड़ देश नामक उद्यान पर; गौर-मेघः-गौर नामक मेघ; सिञ्चन्-जल बरसाकर; स्व-अपने; आलोकन-अमृतैः-दृष्टि रूपी अमृत से; भव-अग्नि-भौतिक अस्तित्व की दावाग्नि; दग्ध–जले हुए; जनता-जनता; वीरुधः-जो लताओं एवं पौधों के समान है; समजीवयत्-पुनर्ज्जीवित किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु रूपी बादल ने अपनी दृष्टिरूपी अमृत से गौड़देश के उद्यान को सींचा और उन लोगों को जीवन प्रदान किया, जो लताओं तथा वृक्षों की भाँति भौतिक अस्तित्व की दावाग्नि से जल रहे थे।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ 2 ॥

जय जय-जय जय; गौरचन्द्र-श्री चैतन्य महाप्रभु; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैतचन्द्र की जय हो तथा महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

प्रभुर हइल इच्छा याइते वृन्दावन ।

शुनिया प्रतापरुद्र हइला विमन ॥ 3 ॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; हइल-थी; इच्छा-इच्छा; याइते-जाने की; वृन्दावन-वृन्दावन; शुनिया–सुनकर; प्रतापरुद्र महाराज प्रतापरुद्र; हइला विमन-उदास हो गये।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन जाने का निश्चय किया, तो महाराज प्रतापरुद्र यह समाचार सुनकर अत्यन्त खिन्न हो उठे।

सार्वभौम, रामानन्द, आनि' दुइ जन ।

दुँहाके कहेन राजा विनय-वचन ॥4॥

सार्वभौम–सार्वभौम भट्टाचार्य और; रामानन्द-रामानन्द को; आनि'–बुलाकर; दुइ जन-दोनों व्यक्ति; दुँहाके–उन दोनों को; कहेन–कहा; राजा-राजा ने; विनय-वचन-विनयपूर्वक शब्द।

अनुवाद

अतएव राजा ने सार्वभौम भट्टाचार्य तथा रामानन्द राय को बुलवा भेजा और उनसे विनीत शब्द कहे।

नीलाद्रि छाड़ि' प्रभुर मन अन्यत्र याइते ।

तोमरा करह यत्न ताँहारे राखिते ॥5॥

नीलाद्रि–जगन्नाथ पुरी; छाड़ि'–छोड़कर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मन–मन; अन्यत्र–किसी और जगह; याइते-जाने को; तोमरा-आप दोनों; करह-करो; यत्न-प्रयास; ताँहारे–उनको; राखिते-रखने का।

अनुवाद

महाराज प्रतापरुद्र ने कहा, "कृपा करके श्री चैतन्य महाप्रभु को जगन्नाथ पुरी में ही रखने का प्रयास करें, क्योंकि अब वे अन्यत्र जाने की सोच रहे हैं।

ताँहा विना एइ राज्य मोरे नाहि भाय ।

गोसाञि राखिते करह नाना उपाय ॥ 6 ॥

ताँहा विना-उनके बिना; एइ राज्य–यह राज्य; मोरे-मुझे; नाहि भाय-अच्छा नहीं लगता; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु को; राखिते-रखने के लिए; करह-करो; नाना उपाय-नाना उपाय।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु के बिना मेरा यह राज्य मुझे अच्छा नहीं लग रहा। अतएव ऐसा उपाय करें कि महाप्रभु यहीं रुके रहें।"

रामानन्द, सार्वभौम, दुइ-जना-स्थाने ।

तबे युक्ति करे प्रभु—'याब वृन्दावने' ॥7॥

रामानन्द-रामानन्द; सार्वभौम-सार्वभौम; दुइ-जना-स्थाने-दोनों व्यक्तियों के आगे; तबे-तब; युक्ति करे-परामर्श किया; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; याब वृन्दावने-मैं वृन्दावन जाऊँगा।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय तथा सार्वभौम से परामर्श किया और कहा, "मैं वृन्दावन जाऊँगा।"

दुँहे कहे,—रथ-यात्रा कर दरशन ।

कार्तिक आइले, तबे करिह गमन ॥8॥

दुँहे कहे-दोनों ने कहा; रथ-यात्रा–रथयात्रा; कर दरशन-कृपया दर्शन करो; कार्तिक आइले-कार्तिक मास के आने पर; तबे-उस समय; करिह गमन-आप जा सकते हैं।

अनुवाद

रामानन्द राय तथा सार्वभौम भट्टाचार्य ने महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे सर्वप्रथम रथयात्रा उत्सव मना लें, तब कार्तिक मास आने पर वृन्दावन जाएँ।

कार्तिक आइले कहे—एबे महा-शीत ।

दोल-यात्रा देखि' याओ—एइ भाल रीत ॥9॥

कार्तिक आइले-जब कार्तिक मास आया; कहे-उन दोनों ने कहा; एबे-अब; महा-शीत-अत्यन्त ठंड; दोल-यात्रा देखि'–'दोल यात्रा' उत्सव देखने के बाद; याओ-आप जाएँ; एइ–यह; भाल रीत–एक अच्छा कार्यक्रम है।

अनुवाद

किन्तु जब कार्तिक मास आया तो दोनों ने महाप्रभु से कहा, "अब बहुत जाड़ा पड़ रहा है। अच्छा हो यदि आप दोल-यात्रा उत्सव देखकर जायें। यह अत्युत्तम रहेगा।"

आजि-कालि करि' उठाय विविध उपाय ।

याइते सम्मति ना देय विच्छेदेर भय ॥10॥

आजि-कालि करि'-आजकल करके; उठाय-उन्होंने रखे; विविध उपाय-विविध युक्तियाँ; याइते-जाने की; सम्मति–अनुमति; ना देय नहीं दी; विच्छेदेर भय–बिछोह के भय से।

अनुवाद

इस तरह उन दोनों ने महाप्रभु को अप्रत्यक्ष रूप से वृन्दावन जाने की अनुमति न देने के लिए अनेक अवरोध उपस्थित किये। वे ऐसा इसलिए कर रहे थे, क्योंकि वे उनके विछोह से भयभीत थे।

यद्यपि स्वतन्त्र प्रभु नहे निवारण ।

भक्त-इच्छा विना प्रभु ना करे गमन ॥11॥

यद्यपि यद्यपि; स्वतन्त्र–पूर्णरूपेण स्वतंत्र; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नहे निवारण-उनको रोके नहीं जा सकते थे; भक्त-इच्छा विना-भक्तों की इच्छा के बिना; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ना करे गमन–नहीं गये।

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्णतया स्वतन्त्र हैं और उन्हें रोक पाने में कोई समर्थ नहीं है, किन्तु तो भी वे अपने भक्तों की अनुमति के बिना नहीं गये।

तृतीय वत्सरे सब गौड़ेर भक्त-गण ।

नीलाचले चलिते सबार हैल मन ॥ 12॥

तृतीय वत्सरे-तीसरे वर्ष; सब-सब; गौड़ेर भक्त-गण-बंगाल के भक्तगण; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी; चलिते-जाने के लिए; सबार-सबका; हैल–था; मन–मन।

अनुवाद

तीसरे वर्ष भी बंगाल के सारे भक्त पुनः जगन्नाथ पुरी जाना चाहते थे।

सबे मेलि' गेला अद्वैत आचार्येर पाशे ।

प्रभु देखिते आचार्य चलिला उल्लासे ॥13॥

सबे-सभी; मेलि'–इकट्ठे होकर; गेला–गये; अद्वैत-अद्वैत; आचार्येर-नवद्वीप के नेता के; पाशे-पास; प्रभु देखिते-श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने के लिए; आचार्य-अद्वैत आचार्य; चलिला–चल पड़े; उल्लासे-अत्यन्त प्रसन्न होकर।

अनुवाद

सारे बंगाली भक्त अद्वैत आचार्य के पास आये और अद्वैत आचार्य अत्यन्त उल्लासपूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी के लिए रवाना हो गये।

यद्यपि प्रभुर आज्ञा गौड़ेते रहिते ।

नित्यानन्द-प्रभुके प्रेम-भक्ति प्रकाशिते ॥14॥

तथापि चलिला महाप्रभुरे देखते ।

नित्यानन्देर प्रेम-चेष्टा के पारे बुझिते ॥ 15 ॥

यद्यपि यद्यपि; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; आज्ञा–आज्ञा; गौड़ेते रहिते-बंगाल में रहने के लिए; नित्यानन्द-प्रभुके–नित्यानन्द प्रभु को प्रेम-भक्ति-भगवत्-प्रेम भक्ति का; प्रकाशिते-प्रचार करने के लिए; तथापि-फिर भी; चलिला-चले गये; महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; देखते-मिलने; नित्यानन्देर-नित्यानन्द प्रभु की; प्रेम-चेष्टा–प्रेम की गतिविधियाँ; के-कौन; पारे-सक्षम है; बुझिते-समझने में।

अनुवाद

यद्यपि महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को बंगाल में रहकर भगवत्प्रेम का विस्तार करने के लिए कहा था, लेकिन नित्यानन्द प्रभु महाप्रभु का दर्शन करने के लिए रवाना हो गये। भला नित्यानन्द प्रभु के प्रेमभाव को कौन समझ सकता है?

आचार्यरत्न, विद्यानिधि, श्रीवास, रामाइ ।

वासुदेव, मुरारि, गोविन्दादि तिन भाइ ॥ 16 ॥

राघव पण्डित निज-झालि साजाञा ।

कुलीन-ग्राम-वासी चले पट्ट-डोरी लञा ॥ 17॥

आचार्यरत्न–आचार्यरत्न; विद्यानिधि–विद्यानिधि; श्रीवासश्रीवास; रामाइ–रामाइ; वासुदेव-वासुदेव; मुरारि मुरारि; गोविन्द-आदि तिन भाइ–गोविन्द तथा उसके दो भाई; राघव पण्डित-राघव पण्डित; निज-झालि-अपने थैले; साजाञा-छाँटकर; कुलीन-ग्राम-वासी-कुलीन-ग्राम के निवासी; चले-चल पड़े; पट्ट-डोरी लञा-रेशमी रस्सियाँ लेकर।

अनुवाद

आचार्यरत्न, विद्यानिधि, श्रीवास, रामाइ, वासुदेव, मुरारि, गोविन्द तथा उसके दो भाई एवं राघव पण्डित समेत नवद्वीप के सारे भक्तजन चल पड़े। राघव पण्डित अपने साथ विभिनन प्रकार के भोजन के झोले लेकर चल पड़े। कुलीनग्राम के निवासी भी रेशमी रस्सियाँ लेकर चल पड़े।

खण्ड-वासी नरहरि, श्री-रघुनन्दन ।

सर्व-भक्त चले, तार के करे गणन ॥18॥

खण्ड-वासी नरहरि-खंड ग्राम के निवासी नरहरी; श्री-रघुनन्दन-श्री रघुनन्दन; सर्व-भक्त–सभी भक्त; चले–चल पड़े; तार–उनकी ; के-कौन; करे गणन-गणना कर सकता है।

अनुवाद

खण्डग्राम के निवासी नरहरि तथा श्री रघुनन्दन एवं अन्य अनेक भक्त भी रवाना हो गये। भला उनकी गिनती कौन कर सकता है?

शिवानन्द-सेन करे घाटि समाधान ।

सबारे पालन करि' सुखे लञा यान् ॥19॥

शिवानन्द-सेन–शिवानन्द सेन; करे-किया; घाटि समाधान-चुंगी देने के लिए खर्च की व्यवस्था; सबारे प्रत्येक पालन-पालन; करि'-करके; सुखे-सुखपूर्वक; लञा–लेकर; यान्–गये।

अनुवाद

शिवानन्द सेन पर सारी टोली का भार था। उन्होंने कर वसूले जाने वाले स्थानों पर कर चुकाये जाने की व्यवस्था की। उन्होंने सारे भक्तों की निगरानी का जिम्मा ले रखा था और उनके साथ वे सुखपूर्वक यात्रा कर रहे थे।

सबार सर्व-कार्य करेन, देन वासा-स्थान ।

शिवानन्द जाने उड़िया-पथेर सन्धान ॥20॥

सबार-उन सबका; सर्व-कार्य-सब कार्य; करेन-उन्होंने किया; देन–दिया; वासा-स्थान–निवासस्थान; शिवानन्द-शिवानन्द; जाने-जानते थे; उड़िया-पथेर-उड़ीसा के मार्ग; सन्धान-संगम-स्थान।

अनुवाद

शिवानन्द सेन भक्तों की सभी आवश्यकताओं को पूरी करते। विशेष रूप से उन्होंने उनके रहने के लिए कमरों की व्यवस्था की और वे उड़ीसा के सभी मार्ग जानते थे।

से वत्सर प्रभु देखि सब ठाकुराणी ।

चलिला आचार्य-सङ्गे अच्युत-जननी ॥21॥

से वत्सर-उस वर्ष; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु के; देखिते-दर्शन के लिए; सब ठाकुराणी-सभी भक्तों की पत्नियाँ ; चलिला–गईं; आचार्य-सङ्गे–अद्वैत आचार्य के साथ; अच्युत-जननी-अच्युतानन्द की माता।

अनुवाद

उस वर्ष भक्तों की पलियाँ (ठाकुरानियाँ) भी श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने गईं। अच्युतानन्द की माता सीतादेवी अद्वैत आचार्य के साथ गईं।

श्रीवास पण्डित-सङ्गे चलिला मालिनी ।

शिवानन्द-सङ्गे चले ताँहार गृहिणी ॥22॥

श्रीवास पण्डित-सङ्गे–श्रीवास पण्डित के साथ; चलिला–गई; मालिनी–उनकी पत्नी मालिनी; शिवानन्द-सङ्गे–शिवानन्द सेन के साथ; चले–गई; ताँहार-उनकी; गृहिणी-पत्नी।

अनुवाद

श्रीवास पण्डित अपनी पत्नी मालिनी को ले गये और शिवानन्द सेन की पत्नी भी अपने पति के साथ गई।

शिवानन्देर बालक, नाम—चैतन्य-दास ।

तेंहो चलियाछे प्रभुरे देखिते उल्लास ॥ 23 ॥

शिवानन्देर बालक-शिवानन्द का पुत्र; नाम-नामक; चैतन्य-दास-चैतन्य दास; तेंहो-वह; चलियाछे-जा रहा था; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु के; देखिते-दर्शन के लिए; उल्लास–प्रसन्न होकर।

अनुवाद

शिवानन्द सेन का पुत्र चैतन्य दास भी परम प्रसन्नतापूर्वक महाप्रभु के दर्शन की इच्छा से उन सबके साथ जा रहा था।

आचार्यरत्न-सड़े चले ताँहार गृहिणी ।

ताँहार प्रेमेर कथा कहिते ना जानि ॥24॥

आचार्यरल-सङ्गे–चन्द्रशेखर के साथ; चले–गई; ताँहार-उनकी; गृहिणी-पत्नी; ताँहार-उनके; प्रेमेर कथा-प्रेमभाव का वर्णन; कहिते-करने के लिए; ना जानि–मैं नहीं जानता कैसे।

अनुवाद

चन्द्रशेखर (आचार्यरत्न) की पत्नी भी गई। महाप्रभु के प्रति चन्द्रशेखर के प्रेम की महानता का वर्णन मेरे बूते की बात नहीं है।

सब ठाकुराणी महाप्रभुके भिक्षा दिते ।

प्रभुर नाना प्रिय द्रव्य निल घर हैते ॥ 25 ॥

सब ठाकुराणी-महान् भक्तों की सभी पत्नियाँ; महाप्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु को; भिक्षा दिते-भोजन देने के लिए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; नाना-नाना प्रकार के; प्रिय द्रव्य–प्रिय व्यंजन; निलले लिए; घर हैते–घर से।

अनुवाद

महान् भक्तों की सारी पत्नियाँ महाप्रभु को तरह-तरह का भोजन भेंट करने के लिए अपने-अपने घरों से महाप्रभु की मनपसन्द वस्तुएँ ले आई थीं।

शिवानन्द-सेन करे सब समाधान ।

घाटियाल प्रबोधि' देन सबारे वासा-स्थान ॥26॥

शिवानन्द-सेन–शिवानन्द सेन ने; करे-की; सब समाधान-सारी व्यवस्था; घाटियाल-कर लगाने वाले सभी अधिकारी; प्रबोधि'–सन्तुष्ट करके; देन–दिया; सबारे-प्रत्येक को; वासा-स्थान–निवासस्थान।

अनुवाद

जैसा कहा जा चुका है, शिवानन्द सेन ने टोली की सभी आवश्यकताओं का प्रबन्ध किया। विशेषतया वे कर वसूल करने वाले व्यक्तियों को शान्त करते और हर एक के लिए विश्राम-स्थल ढूँढते थे।

भक्ष्य दिया करेन सबार सर्वत्र पालने ।

परम आनन्दे यान प्रभुर दरशने ॥27॥

भक्ष्य दिया-भोजन देकर; करेन-उन्होंने किया; सबार–प्रत्येक का; सर्वत्र-सब जगह; पालने-पालन; परम आनन्दे-परम प्रसन्नतापूर्वक; यान–वे गये; प्रभुर दरशने-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करने।

अनुवाद

शिवानन्द सेन सभी भक्तों को भोजन देते थे और रास्ते-भर उनकी देख-रेख करते थे। इस तरह वे परम प्रसन्नतापूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी गये।

रेमुणाय आसिया कैल गोपीनाथ दरशन ।

आचार्य करिल ताहाँ कीर्तन, नर्तन ॥28॥

रेमुणाय–रेमुणा; आसिया-आकर; कैल–किये; गोपीनाथ दरशन-गोपीनाथ के दर्शन; आचार्य-अद्वैत आचार्य; करिल–किया; ताहाँ-वहाँ; कीर्तन-कीर्तन; नर्तन-नृत्य।

अनुवाद

जब वे सब रेमुणा पहुँचे, तो सारे लोग भी गोपीनाथ का दर्शन करने गये। वहाँ मन्दिर में अद्वैत आचार्य ने नृत्य किया और गाया।

नित्यानन्देर परिचय सब सेवक सने ।

बहुत सम्मान आसि' कैल सेवक-गणे ॥ 29॥

नित्यानन्देर-नित्यानन्द प्रभु का; परिचय-परिचय; सब-सब; सेवक सने–मन्दिर के पुजारियों से; बहुत सम्मान–बहुत सम्मान; आसि-आकर; कैल-किया; सेवक-गणे-सभी पुजारियों ने।

अनुवाद

मन्दिर के सारे पुजारी श्री नित्यानन्द प्रभु से पहले से परिचित थे; अतएव वे सब आये और उन्होंने प्रभु का बहुत सम्मान किया।

सेइ रात्रि सब महान्त ताहाञि रहिला ।

बार क्षीर आनि' आगे सेवक धरिला ॥ 30॥

सेइ रात्रि-उस रात; सब महान्त-सभी महान् भक्त; ताहाञि रहिला–वहीं रहे; बार-बारह पात्र; क्षीर-खीर; आनि'–लाकर; आगे-नित्यानन्द प्रभु के आगे; सेवक-पुजारियों ने; धरिला-रख दिये।

अनुवाद

उस रात सारे बड़े-बड़े भक्त मन्दिर में रहे और पुरोहितों ने दूध की खीर के बारह पात्र लाकर नित्यानन्द प्रभु के सामने रख दिये।

क्षीर बाँटि' सबारे दिल प्रभु-नित्यानन्द ।

क्षीर-प्रसाद पाञा सबार बाड़िल आनन्द ॥ 31॥

क्षीर-खीर; बाँटि'–बाँटकर; सबारे-सबको; दिल–दे दी; प्रभु-नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु; क्षीर-प्रसाद-खीर का प्रसाद; पाञा-पाकर; सबार-सबका; बाड़िल-बढ़ गया; आनन्द–दिव्य आनन्द।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने इस खीर को प्रसाद रूप में हर एक को बाँट दिया। इस तरह हर एक को दिव्य आनन्द बढ़ गया।

माधव-पुरीर कथा, गोपाल-स्थापन ।

ताँहारे गोपाल यैछे मागिल चन्दन ॥ 32॥

माधव-पुरीर कथा-माधवेन्द्र पुरी की कथा; गोपाल-स्थापन–गोपाल की पूर्ति की स्थापना; ताँहारे—उनसे; गोपाल–भगवान् गोपाल; यैछे-जैसे; मागिल-उन्होंने माँगा; चन्दन-चन्दन।

अनुवाद

तब सबने माधवेन्द्र पुरी द्वारा गोपाल-अर्चाविग्रह की स्थापना की कहानी की चर्चा की और इसकी भी चर्चा की कि किस तरह गोपाल ने उनसे चन्दन माँगा था।

ताँर लागि' गोपीनाथ क्षीर चुरि कैल ।

महाप्रभुर मुखे आगे ए कथा शुनिल ॥ 33 ॥

ताँर लागि'–उन (माधवेन्द्रपुरी) के लिए; गोपीनाथ-गोपीनाथ नामक अर्चाविग्रह; क्षीर-खीर; चुरि–चुराकर; कैल–किया; महाप्रभुर मुखे-श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से; आगे-पहले; ए कथा-यह घटना; शुनिल-सुनी थी।

अनुवाद

गोपीनाथ ने ही माधवेन्द्र पुरी के लिए खीर चुराई थी। इस घटना का वर्णन स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु पहले कर चुके थे।

सेइ कथा सबार मध्ये कहे नित्यानन्द ।

शुनिया वैष्णव-मने बाड़िल आनन्द ॥ 34॥

सेइ कथा–वही घटना; सबार मध्ये-उन सबके मध्य; कहे-सुनाई; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु ने; शुनिया-सुनकर; वैष्णव-मने-सभी वैष्णवों के मन में; बाड़िल-बढ़ गया; आनन्द-दिव्य आनन्द।

अनुवाद

यही कथा भगवान् नित्यानन्द ने सारे भक्तों को फिर से सुनाई। इस कथा को फिर से सुनकर भक्तों का दिव्य आनन्द बढ़ गया।

तात्पर्य

यहाँ पर महाप्रभु मुखे अर्थात् " श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से शब्द महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने माधवेन्द्र पुरी की कथा सबसे पहले अपने गुरु श्रीपाद ईश्वर पुरी के मुख से सुनी थी। यह कथा मध्यलीला के चौथे अध्याय में अठारहवें श्लोक में दी हुई है। शान्तिपुर में श्री अद्वैत के घर पर कुछ समय तक रुकने के बाद महाप्रभु ने यह कथा नित्यानन्द प्रभु, जगदानन्द प्रभु, दामोदर पण्डित तथा मुकुन्द दास को सुनाई थी। जब ये लोग रेमुणा में गोपीनाथ के मन्दिर में गये, तो महाप्रभु ने माधवेन्द्र पुरी द्वारा गोपाल- अर्चाविग्रह की स्थापना तथा गोपीनाथ द्वारा खीर की चोरी का वर्णन किया था। इस घटना के कारण भगवान् गोपीनाथ क्षीरचोरा के नाम से विख्यात हैं।

एइ-मत चलि' चलि' कटक आइला ।

साक्षि-गोपाल देखि' सबे से दिन रहिला ॥ 35 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; चलि' चलि'-चलते चलते; कटक आइला–वे कटक पहुँच गये; साक्षि-गोपाल देखि'–साक्षी गोपाल अर्चाविग्रह को देखकर; सबे-सभी भक्त; से दिन-उस दिन; रहिला-वहाँ रह गये।

अनुवाद

इस तरह चलते चलते भक्तगण कटक शहर पहुँचे, जहाँ पर वे एक दिन रहे और उन्होंने साक्षि-गोपाल का मन्दिर देखा।

साक्षि-गोपालेर कथा कहे नित्यानन्द ।

शुनिया वैष्णव-मने बाड़िले आनन्द ॥ 36॥

साक्षि-गोपालेर-साक्षी गोपाल की; कथा-कथा; कहे-वर्णन की; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु ने; शुनिया-सुनकर; वैष्णव-मने-सभी वैष्णवों के मन में; बाड़िल-बढ़ गया; आनन्द–दिव्य आनन्द।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु ने साक्षि-गोपाल के सारे कार्यकलाप कह सुनाये, तो सारे वैष्णवों के मन में दिव्य आनन्द उमड़ आया।

तात्पर्य

इन कार्यकलापों के लिए देखें मध्यलीला अध्याय 5, श्लोक 8-138।

प्रभुके मिलिते सबार उत्कण्ठा अन्तरे।

शीघ्र करि' आइला सबे श्री-नीलाचले॥ 37॥

प्रभुके मिलते-श्री चैतन्य महाप्रभु को मिलने के लिए; सबार-सबकी; उत्कण्ठा-उत्सुकता; अन्तरे-हृदय में; शीघ्र करि'-शीघ्र; आइला–पहुँच गये; सबे–वे सब; श्री-नीलाचले–जगन्नाथ पुरी।

अनुवाद

टोली के सारे लोग महाप्रभु को देखने के लिए मन में बड़े उत्सुक थे, अतएव वे जल्दी-जल्दी जगन्नाथ पुरी की ओर चले।

आठारनालाके आइला गोसाञि शुनिया।

दुइ-माला पाठाइला गोविन्द-हाते दिया॥ 38॥

आठारनालाके-आठारनाला; आइला–वे पहुँच गये; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु; शुनिया–सुनकर; दुइ-माला-दो मालाएँ; पाठाइला–भेजी; गोविन्द-हाते दिया-गोविन्द के हाथों से।

अनुवाद

जब वे सब आठारनाला नामक पुल पर आ गये, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके आने का समाचार सुनकर गोविन्द के हाथों दो फूल-मालाएँ भेजीं।

दुइ माला गोविन्द दुइ-जने पराइल।

अद्वैत, अवधूत-गोसाञि बड़ सुख पाइल॥ 39॥

दुइ माला-दोनों मालाएँ; गोविन्द-गोविन्द; दुइ-जने पराइल-दो व्यक्तियों (अद्वैत आचार्य और नित्यानन्द प्रभु) के गले में डाल दी; अद्वैत-अद्वैत आचार्य; अवधूत-गोसाञि-नित्यानन्द प्रभु; बड़ सुख पाइल–अत्यन्त प्रसन्न हो गये।

अनुवाद

गोविन्द ने वे दोनों मालाएँ अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु को भेंट कीं। इससे वे दोनों अत्यन्त सुखी हुए।

ताहाञि आरम्भ कैल कृष्ण-सङ्कीर्तन ।

नाचिते नाचिते चलि' आइला दुइ-जन ॥ 40 ॥

ताहाञि-उसी स्थल पर; आरम्भ कैल-आरम्भ किया; कृष्ण-सङ्कीर्तन-भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का संकीर्तन; नाचिते नाचिते-नाचते नाचते; चलि'–चल रहे थे; आइला–पहुँच गये; दुइ-जन-वे दोनों।

अनुवाद

उन्होंने वे उसी स्थान पर भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन प्रारम्भ कर दिया और अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु दोनों ही नाचते-नाचते जगन्नाथ पुरी पहुँचे।

पुनः माला दिया स्वरूपादि निज-गण ।

आगु बाड़ि' पाठाइल शचीर नन्दन ॥41॥

पुनःपुनः; माला-मालाएँ; दिया-दीं; स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा अन्य; निज-गण-अपने निजी पार्षदों को; आगु बाड़ि'-आगे बढ़कर; पाठाइल-भेजा; शचीर नन्दन-शची माता के पुत्र ने।

अनुवाद

तब दूसरी बार श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर तथा अपने अन्य निजी संगियों के हाथों मालाएँ भेजीं। शचीमाता के पुत्र द्वारा भेजे जाने से वे सभी आगे बढ़े।

नरेन्द्र आसिया ताहाँ सबारे मिलिला ।

महाप्रभुर दत्त माला सबारे पराइला ॥ 42 ॥

नरेन्द्र-नरेन्द्र नामक सरोवर पर; आसिया-आकर; ताहाँ-वहाँ; सबारे सब लोग; मिलिला–मिले; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा; दत्त–दी गई; माला-मालाएँ; सबारे पराइला–प्रत्येक भक्त को भेंट कीं।

अनुवाद

जब बंगाल से आने वाले भक्त नरेन्द्र सरोवर पहुँचे, तो स्वरूप दामोदर तथा अन्य लोग उनसे मिले और उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा भेजी गई मालाएँ भेंट कीं।

सिंह-द्वार-निकटे आइला शुनि' गौरराय ।

आपने आसिया प्रभु मिलिला सबाय ॥43॥

सिंह-द्वार–सिंह द्वार के; निकटे–निकट; आइला–पहुँच गये हैं; शुनि'–सुनकर; गौरराय-श्री चैतन्य महाप्रभु; आपने-स्वयं; आसिया-आकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः मिलिला सबाय-उन सबसे मिले।

अनुवाद

जब भक्तगण सिंह-द्वार के पास पहुँच गये, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह समाचार सुना और वे स्वयं उनसे मिलने गये।

सबा लञा कैल जगन्नाथ-दरशन ।

सबा लञा आइला पुनः आपन-भवन ॥44॥

सबा लञा-उन सबको लेकर; कैल–किया; जगन्नाथ-दरशन-भगवान जगन्नाथ का दर्शन; सबा लञा-उन सबको लेकर; आइला–लौट गये; पुनः–दोबारा; आपन-भवन-अपने भवन को।

अनुवाद

फिर श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके सारे भक्तों ने भगवान जगन्नाथ का दर्शन किया। अन्त में वे उन सबको अपने साथ लेकर अपने निवासस्थान लौट गये।

वाणीनाथ, काशी-मिश्र प्रसाद आनिल ।

स्वहस्ते सबारे प्रभु प्रसाद खाओयाइल ॥45॥

वाणीनाथ-वाणीनाथ; काशी-मिश्र-काशीमिश्र; प्रसाद आनिल-सब प्रकार का प्रसाद लाये; स्व-हस्ते-अपने हाथों से; सबारे प्रत्येक भक्त को प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; प्रसाद-भगवान् जगन्नाथ का प्रसाद; खाओयाइल-खिलाया।

अनुवाद

तब वाणीनाथ राय तथा काशी मिश्र बड़ी मात्रा में प्रसाद ले आये और श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस प्रसाद को अपने हाथों से सबको बाँटा तथा खिलाया।

पूर्व वत्सरे याँर येइ वासा-स्थान ।

ताहाँ सबा पाठाञा कराइल विश्राम ॥ 46॥

पूर्व वत्सरे-गत वर्ष; याँर–जिसका; येइ-जहाँ कहीं; वासा-स्थान–निवासस्थान; ताहाँ-वहाँ; सबा–सबको; पाठाञा–भेजकर; कराइल विश्राम–विश्राम करवाया।

अनुवाद

पिछले वर्ष हर एक को विशेष निवासस्थान मिला था; उसे वही स्थान पुनः दिया गया। इस तरह वे सभी आराम करने चले गये।

एइ-मत भक्त-गण रहिला चारि मास ।

प्रभुर सहित करे कीर्तन-विलास ॥47॥

एइ-मत-इस प्रकार; भक्त-गण-भक्तगण; रहिला-रहे; चारि मास-चार मास के लिए; प्रभुर सहित-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; करे-कीं; कीर्तन-विलास-संकीर्तन की लीलाएँ।

अनुवाद

सारे भक्त लगातार चार मास तक वहीं रहे और श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन का आनन्द लेते रहे।

पूर्ववत् रथ-यात्रा-काल याबे आइल ।

सबा लञा गुण्डिचा-मन्दिर प्रक्षालिल ॥48॥

पूर्व-वत्-गत वर्ष की भाँति; रथ-यात्रा-काल-रथयात्रा उत्सव का समय; याबे-जब; आइल-आया; सबा लञा-उन सबको लेकर; गुण्डिचा-मन्दिर-गुण्डीचा मन्दिर; प्रक्षालिल-धोया।

अनुवाद

जब रथयात्रा का समय आया, तो सबने पिछले वर्ष की तरह गुण्डिचा मन्दिर की सफाई की।

कुलीन-ग्रामी पट्ट-डोरी जगन्नाथे दिल ।

पूर्ववत् रथ-अग्रे नर्तन करिल ॥49॥

कुलीन-ग्रामी–कुलीन ग्राम के निवासियों ने; पट्ट-डोरी-रेशमी रस्सियाँ; जगन्नाथे दिल-भगवान जगन्नाथ को भेंट की; पूर्व-वत्-गत वर्ष की भाँति; रथ-अग्रे–रथ के आगे; नर्तन करिल-नृत्य किया।

अनुवाद

कुलीन ग्राम के निवासियों ने रेशमी डोरियाँ जगन्नाथजी को भेंट की और पहले की तरह वे सब भगवान् के रथ के आगे नाचे।

बहु नृत्य करि' पुनः चलिल उद्याने ।

वापी-तीरे ताहाँ याइ' करिल विश्रामे ॥50॥

बह नृत्य करि'-बहुत नृत्य करने के बाद; पुनः–पुनः; चलिल–चल पड़े; उद्याने-उद्यान को; वापी-तीरे-सरोवर के तट पर; ताहाँ याइ'-वहाँ जाकर; करिल विश्रामे-विश्राम किया।

अनुवाद

काफी नाचने के बाद सभी निकटवर्ती बगीचे में गये और उन्होंने सरोवर के तट पर विश्राम किया।

राढ़ी एक विप्र, तेंहो—नित्यानन्द दास ।

महा-भाग्यवान्तेंहो,—नाम कृष्णदास ॥51॥

राढ़ी एक विप्र-राढ़-देश (जहाँ गंगा नहीं बहती) का एक ब्राह्मण; तेंहो-वह; नित्यानन्द दास-भगवान् नित्यानन्द का दास; महा-भाग्यवान्–महा-भाग्यवान; तेंहो-वह; नाम-नामक; कृष्णदास-कृष्णदास।

अनुवाद

कृष्णदास नामक एक ब्राह्मण, जो राढ़देश का रहने वाला था और नित्यानन्द प्रभु का सेवक था, महा भाग्यशाली व्यक्ति था।

घट भरि' प्रभुर तेंहो अभिषेक कैल ।

ताँर अभिषेके प्रभु महा-तृप्त हैल ॥52॥

घट भरि'-जल का एक घड़ा भरकर; प्रभुर-भगवान् चैतन्य महाप्रभु का; तेंहो-उसने; अभिषेक कैल-अभिषेक किया; ताँर-उसके; अभिषेके–महाप्रभु को नहलाने के कार्य से; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; महा-तृप्त हैल–अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये।

अनुवाद

कृष्ण दास ने एक बड़े पात्र में जल भरकर महाप्रभु के ऊपर डालकर स्नान कराया। इससे महाप्रभु अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये।

बलगण्डि-भोगेर बहु प्रसाद आइल ।

सबा सङ्गे महाप्रभु प्रसाद खाइल ॥53॥

बलगण्डि-भोगेर-बलगण्डी पर लगाए गये भोग का; बहु प्रसाद-बड़ी मात्रा में प्रसाद; आइल-आया; सबा सङ्गे–सभी भक्तों के साथ; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; प्रसाद–प्रसाद; खाइल-खाया।

अनुवाद

तभी बलगण्डि में भगवान् का अर्पित काफी प्रसाद आया, जिसे श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके सभी भक्तों ने ग्रहण किया।

तात्पर्य

बलगंडि के सन्दर्भ के लिए देखें मध्यलीला 13.193।

पूर्ववत् रथ-यात्रा कैल दरशन।

हेरा-पञ्चमी-यात्रा देखे लञा भक्त-गण ॥54॥

पूर्व-वत्-गत वर्ष की भाँति; रथ-यात्रा–रथयात्रा उत्सव के; कैल दरशन-दर्शन किये; हेरा-पञ्चमी-यात्रा-हेरा-पंचमी का उत्सव; देखे-उन्हों ने देखा; लञा भक्त-गण-सभी भक्तों के संग।

अनुवाद

पिछले वर्ष की तरह महाप्रभु ने सारे भक्तों सहित रथयात्रा उत्सव तथा हेरापंचमी उत्सव भी देखा।

आचार्य-गोसाञि प्रभुर कैल निमन्त्रण।

तार मध्ये कैल यैछे झड़-वरिषण ॥55॥

आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य ने प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कैल-किया; निमन्त्रण-निमंत्रण; तार मध्ये-उस घटना के मध्य; कैल-हुआ; यैछे-जैसा; झड़-वरिषण-तूफान।

अनुवाद

तब अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रण दिया, किन्तु तभी तेज वर्षा के साथ भीषण तूफान आ गया।

विस्तारि' वर्णियाछेन दास-वृन्दावन।

श्रीवास प्रभुरे तबे कैल निमन्त्रण ॥56॥

विस्तारि'–विस्तार करके; वर्णियाछेन-वर्णन किया है; दास-वृन्दावन-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने; श्रीवास-श्रीवास ने; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; तबे-तब; कैल निमन्त्रण-निमंत्रण दिया।

अनुवाद

इन सारी घटनाओं का विस्तृत वर्णन श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने किया है। तब एक दिन श्रीवास ठाकुर ने महाप्रभु को निमन्त्रण दिया।

तात्पर्य

चैतन्य भागवत (अन्त्यलीला, अध्याय 9) में निम्नलिखित विवरण मिलता है। एक दिन श्रील अद्वैत आचार्य ने यह सोचकर महाप्रभु को आमन्त्रण दिया कि यदि वे अकेले आयेंगे, तो उन्हें भरपेट खिलाया जायेगा। किन्तु ऐसी घटना घटी कि जब अन्य संन्यासी अद्वैत आचार्य के घर भोजन करने जा रहे थे, तो तेज वर्षा के साथ भीषण अंधड़ आ गया, जिससे वे उनके घर नहीं पहुँच सके। इस तरह अद्वैत आचार्य की इच्छानुकूल श्री चैतन्य महाप्रभु अकेले ही पहुँचे और उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया।

प्रभुर प्रिय-व्यञ्जन सब रान्धेन मालिनी ।

‘भक्त्ये दासी’-अभिमान, ‘स्नेहेते जननी’ ॥57॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; प्रिय-व्यञ्जन–प्रिय व्यंजन (तरकारियाँ); सब-सब; रान्धेन–पकाए; मालिनी–श्रीवास ठाकुर की पत्नी, मालिनी; भक्त्ये दासी–भक्ति में वह एक दासी जैसी थी; अभिमान-उनकी धारणा थी; स्नेहेते-प्रेम में; जननी–ठीक एक माता की तरह।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर की पत्नी मालिनी देवी ने महाप्रभु की प्रिय तरकारियाँ पकाईं। वे भक्तिवश अपने आपको श्री चैतन्य महाप्रभु की दासी मानती थीं, किन्तु स्नेह में वे माता तुल्य थीं।

आचार्यरत्न-आदि यत मुख्य भक्त-गण ।

मध्ये मध्ये प्रभुरे करेन निमन्त्रण ॥58॥

आचार्यरत्न–चन्द्रशेखर; आदि-आदि; यत-सब; मुख्य भक्त-गण-मुख्य भक्तगण; मध्ये मध्ये-बीच बीच में; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; करेन निमन्त्रण-निमन्त्रण देते थे।

अनुवाद

चन्द्रशेखर (आचार्यरत्न) आदि प्रमुख भक्त बारी-बारी से श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रित देते रहे।

चातुर्मास्य-अन्ते पुनः नित्यानन्दे लञा ।

किला युक्ति करे नित्य निभृते वसिया ॥59॥

चातुर्मास्य-अन्ते-चतुर्मास के अन्त में; पुनः–दोबारा; नित्यानन्दे-श्री नित्यानन्द प्रभु; लञा–विश्वास में लेकर; किबा-क्या; युक्ति करे-वे परामर्श करने लगे; नित्य-प्रतिदिन; निभृते-एकान्त स्थान में; वसिया–बैठकर।

अनुवाद

चातुर्मास्य बीत जाने पर चैतन्य महाप्रभु नित्य ही एकान्त स्थान में नित्यानन्द से फिर परामर्श करने लगे। किन्तु कोई यह नहीं जान सका कि वे क्या परामर्श करते थे।

आचार्य-गोसाञि प्रभुके कहे ठारे-ठोरे ।

आचार्य तर्जा पड़े, केह बुझिते ना पारे ॥60॥

आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य ने; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को; कहे-कहा; ठारे-ठोरे-संकेत द्वारा; आचार्य-अद्वैत आचार्य; तर्जा पड़े-कुछ पद्य पढ़े; केह-कोई; बुझिते-समझने के लिए; ना पारे-सक्षम न था।

अनुवाद

तब श्रील अद्वैत आचार्य ने इशारों से चैतन्य महाप्रभु से कुछ कहा और कुछ पद्य पढ़े, जिन्हें कोई समझ नहीं सका।

ताँर मुख देखि' हासे शचीर नन्दन ।

अङ्गीकार जानि' आचार्य करेन नर्तन ॥ 61॥

ताँर मुख–उनका मुख; देखि'–देखकर; हासे-हँसने लगे; शचीर नन्दन-श्री चैतन्य महाप्रभु; अङ्गीकार जानि'–स्वीकृति समझकर; आचार्य-अद्वैत आचार्य ने; करेन-किया; नर्तन-नृत्य।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य का मुँह देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु हँसने लगे। यह जानकर कि महाप्रभु ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है, अद्वैत आचार्य नाचने लगे।

किबा प्रार्थना, किबा आज्ञा—केह ना बुझिल ।

आलिङ्गन करि' प्रभु ताँरे विदाय दिल ॥ 62॥

किबा-क्या; प्रार्थना-प्रार्थना; किबा-क्या; आज्ञा-आदेश; केह-कोई भी; ना बुझिल-नहीं जानता था; आलिङ्गन करि'-आलिंगन करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको; विदाय दिल-विदा दी।

अनुवाद

यह कोई नहीं जान सका कि अद्वैत आचार्य ने किस चीज के लिए प्रार्थना की अथवा महाप्रभु ने क्या आदेश दिया। आचार्य का आलिंगन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें विदा किया।

नित्यानन्दे कहे प्रभु,—शुनह, श्रीपाद ।

एइ आमि मागि, तुमि करह प्रसाद ॥ 63 ॥

नित्यानन्दे-नित्यानन्द प्रभु को; कहे–कहा; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; शुनह-कृपया सुनो; श्रीपाद-हे श्रीपाद (हे पवित्र व्यक्ति); एइ–यह; आमि-मैं; मागि–प्रार्थना करता हूँ; तुमि-तुम्हें; करह–कृपया करो; प्रसाद-दया।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु से कहा, "हे श्रीपाद, कृपया मेरी सुनो। मैं तुम से कुछ अनुरोध करना चाहता हूँ। उसे स्वीकार करो।

प्रति-वर्ष नीलाचले तुमि ना आसिबा ।

गौड़े रहि' मोर इच्छा सफल करिबा ॥ 64॥

प्रति-वर्ष–प्रतिवर्ष; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; तुमि-तुम; ना आसिबा-न आओ; गौड़े रहि'–बंगाल में रहकर; मोर इच्छा–मेरी इच्छा; स-फल करिबा-पूरी करो।

अनुवाद

"प्रतिवर्ष जगन्नाथ पुरी न आओ, अपितु बंगाल में ही रहकर मेरी इच्छा पूरी करो।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का सन्देश है कि इस पतित कलियुग में एकमात्र प्रभावी औषधि–हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन का प्रसार किया जाए। वे अपनी माता के आदेशानुसार जगन्नाथ पुरी में रह रहे थे और भक्तगण उनका दर्शन करने आते रहते थे। फिर भी महाप्रभु ने सोचा कि इस सन्देश का पूरे बंगाल में अच्छी तरह प्रचार करना चाहिए, किन्तु उनकी अनुपस्थिति में इसे सम्पन्न कर सकने वाला कोई अन्य व्यक्ति नहीं था। इसीलिए महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु से अनुरोध किया कि वे वहाँ रुककर कृष्णभावनामृत के सन्देश का प्रसार करें। महाप्रभु ने ऐसे ही प्रचार-कार्य का उत्तरदायित्व रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी को सौंप रखा था। इसीलिए नित्यानन्द प्रभु से अनुरोध किया गया कि वे प्रतिवर्ष जगन्नाथ पुरी न आयें, यद्यपि जगन्नाथजी के दर्शन से प्रत्येक भक्त को बहुत लाभ पहुँचता है। तो क्या इसका यह अर्थ होता है कि महाप्रभु नित्यानन्द प्रभु को सुअवसर से वंचित रखना चाहते थे? नहीं। जो श्री चैतन्य महाप्रभु का आज्ञाकारी दास है, उसे उनके आदेश का पालन करना चाहिए, भले ही उसे जगन्नाथ पुरी जाकर जगन्नाथजी के दर्शन से वंचित क्यों न होना पड़े। दूसरे शब्दों में, श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश का पालन करना भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करके अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने की अपेक्षा बहुत बड़ा सौभाग्य है।

विश्वभर में चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करना अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए वृन्दावन या जगन्नाथ पुरी में रहने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। कृष्णभावनामृत का प्रसार करना श्री चैतन्य महाप्रभु का कार्य है, अतएव उनके निष्ठावान भक्तों को उनकी इच्छा पूरी करनी चाहिए।

पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम ।

सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम ॥

श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों को विश्व के नगर-नगर तथा ग्राम-ग्राम में कृष्णभावनामृत का प्रचार करना चाहिए। इससे महाप्रभु तुष्ट होंगे। अपनी निजी तृप्ति के लिए मनमाने ढंग से कार्य करने की जरूरत नहीं है। यह आदेश परम्परा से प्राप्त होता है और गुरु इस आदेश को शिष्य के समक्ष प्रस्तुत करता है, जिससे वह श्री चैतन्य महाप्रभु के सन्देश का प्रसार कर सके। प्रत्येक शिष्य का कर्तव्य है कि वह अपने प्रामाणिक गुरु के आदेश का पालन करे और चैतन्य महाप्रभु के सन्देश को सारे विश्व में प्रसारित करे।

ताहाँ सिद्धि करे—हेन अन्ये ना देखिये ।

आमार 'दुष्कर' कर्म, तोमा हैते हुये ॥ 65 ॥

ताहाँ-वहाँ; सिद्धि-सफलता; करे-कर सकते हो; हेन–जो; अन्ये-अन्य कोई व्यक्ति; ना-नहीं; देखिये-देखता हूँ; आमार-मेरा; दुष्कर–कठिन; कर्म-कार्य; तोमा-तुम्हारे; हैते–द्वारा; हये-सफल होता है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "तुम वह कार्य कर सकते हो, जिसे मैं भी नहीं कर सकता। तुम्हारे अतिरिक्त मुझे गौड़देश में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिल सकता, जो मेरे उद्देश्य को वहाँ पूरा कर सके।"

तात्पर्य

भगवान् चैतन्य का उद्देश्य इस युग के पतित जीवों का उद्धार करना है। इस कलियुग में लगभग शतप्रतिशत जनता पतित है। निश्चय ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने अनेक पतित जीवों का उद्धार किया, किन्तु उनके शिष्य उच्च जाति से आये थे। उदाहरणार्थ, श्री रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, सार्वभौम भट्टाचार्य तथा अन्य अनेक लोग सामाजिक दृष्टि से उच्च थे, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से पतित थे, जिनका उद्धार महाप्रभु ने किया। श्रील रूप तथा सनातन गोस्वामी सरकारी नौकरी में थे और सार्वभौम भट्टाचार्य भारत के शीर्षस्थ विद्वान थे। इसी प्रकार प्रकाशानन्द सरस्वती हजारों मायावादी संन्यासियों के अगुवा थे। किन्तु श्रील नित्यानन्द प्रभु ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने जगाइ तथा माधाइ जैसे व्यक्तियों का उद्धार किया। इसीलिए भगवान् चैतन्य कहते हैं-आमार 'दुष्कर' कर्म तोमा हइते हये। जगाइ तथा माधाइ का उद्धार एकमात्र नित्यानन्द प्रभु की कृपा से हो सका। जब उन्होंने नित्यानन्द प्रभु को घायल कर दिया, तो भगवान् चैतन्य क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने सुदर्शन चक्र से उन्हें मार डालने का निश्चय किया। किन्तु नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें महाप्रभु के रोष से बचाया और उनका उद्धार किया। गौर-निताई अवतार में यह माना जाता है कि भगवान् असुरों का वध नहीं करेंगे, अपितु कृष्णभावनामृत का प्रचार करके उनका उद्धार करेंगे। जगाइ तथा माधाइ के किस्से में महाप्रभु इतने क्रुद्ध थे कि वे उन्हें तुरन्त ही मार डालते, किन्तु नित्यानन्द प्रभु इतने दयालु थे कि उन्होंने उन्हें न केवल मृत्यु से बचा लिया, अपितु उन्हें दिव्य पद भी दिलाया। अतः जो श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा सम्भव नहीं हो सका, उसे नित्यानन्द प्रभु ने कर दिखाया।

इसी तरह यदि कोई व्यक्ति परम्परा में गौर-निताई की सेवा के प्रति सत्यनिष्ठ है, तो वह नित्यानन्द प्रभु की सेवा को भी मात दे सकता है। यह गुरु-शिष्य परम्परा विधि है। नित्यानन्द प्रभु ने तो जगाइ तथा माधाइ का ही उद्धार किया, किन्तु नित्यानन्द प्रभु का दास उनकी कृपा से हजारों जगाइयों तथा माधाइयों का उद्धार कर सकता है। गुरु-शिष्य

परम्परा की यही विशेषता है। गुरु-शिष्य परम्परा में स्थित व्यक्ति को उसके कार्यकलापों से जाना जा सकता है। जहाँ तक भगवान् तथा उनके भक्तों के कार्यों का सम्बन्ध है, यह बिल्कुल सही साबित होता है। अतएव शिवजी कहते हैं :

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परं ।

तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम् ॥

"सभी प्रकार की पूजाओं में भगवान् विष्णु की पूजा सर्वश्रेष्ठ है, किन्तु भगवान् विष्णु की पूजा से भी श्रेष्ठ है उनके भक्त अर्थात् वैष्णव की पूजा।" (पद्म पुराण)

विष्णु की कृपा से एक वैष्णव विष्णु से अच्छी सेवा कर सकता है यह वैष्णव का विशेष अधिकार है। भगवान् तो चाहते हैं कि उनके दास उनसे बढ़कर कार्य करें। उदाहरणार्थ, कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को लड़ने के लिए उकसाया, क्योंकि युद्धभूमि के सारे योद्धाओं को कृष्ण की योजना के अनुसार मरना ही था। कृष्ण स्वयं इसका श्रेय लेना नहीं चाहते थे, वे यह श्रेय अर्जुन को देना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने अर्जुन से लड़ने और यश अर्जित करने के लिए कहा :

तस्मात् त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व

जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्

मयैवैते निहताः पूर्वमेव

निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥

"अतएव उठो और युद्ध करने के लिए तैयार हो जाओ और यश कमाओ। अपने दुश्मनों को जीतकर तुम समृद्धशाली राज्य का भोग करोगे। वे मेरी योजना से पहले ही मर चुके हैं, अतः हे सव्यसाची, तुम युद्ध में निमित्त मात्र बनो। (भगवद्गीता 11.33)

इस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उस भक्त को श्रेय देते हैं, जो किसी बड़े कार्य को ढंग से पूरा करता है। भगवान् रामचन्द्र के दास हनुमानजी अथवा वज्रांगजी एक अन्य उदाहरण हैं। हनुमानजी ही एक छलांग में भारतवर्ष के किनारे से लंका के किनारे जा पहुँचे थे। जब भगवान् रामचन्द्रजी ने वहाँ जाना चाहा, तो हनुमान ने पत्थर का मार्ग बना दिया, यद्यपि उनकी इच्छा से ही पत्थर समुद्र में तैर सके थे। यदि हम केवल श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों का पालन करें

और नित्यानन्द प्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करें, तो यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन आगे बढ़ सकता है और हमारे प्रचारकों द्वारा भगवत्-सेवा में निष्ठावान रहकर इससे भी अधिक कठिन कार्य सम्पन्न हो सकते हैं।

नित्यानन्द कहे,—आमि 'देह' तुमि 'प्राण' ।

'देह' 'प्राण" भिन्न नहे,—एइ त प्रमाण ॥ 66 ॥

नित्यानन्द कहे नित्यानन्द प्रभु ने कहा; आमि-मैं; देह-देह; तुमि-आप; प्राण-प्राण; देह-देह; प्राण-प्राण; भिन्न नहे-पृथक् नहीं; एइ त प्रमाण-यही प्रमाण है।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, आप प्राण हैं और मैं शरीर हूँ। प्राण तथा शरीर में कोई अन्तर नहीं है। अपितु प्राण शरीर से बढ़कर है।"

अचिन्त्य-शक्त्ये कर तुमि ताहार घटन ।

ये कराह, सेइ करि, नाहिक नियम ॥ 67॥

अचिन्त्य-शक्त्ये-अचिन्त्य शक्ति से; कर-करो; तुमि-आप; ताहार-उस सम्बन्ध का; घटन–सम्पन्न; ये-जो कुछ; कराह-आप मुझसे करवाते हो; सेइ-वह; करि-मैं करता हूँ; नाहिक नहीं है; नियम–कोई अवरोध।

अनुवाद

"आप अपनी अचिन्त्य शक्ति से जो चाहें सो कर सकते हैं और आप मुझसे जो भी कराते हैं, उसे मैं बिना किसी प्रतिबन्ध के करता हूँ।"

तात्पर्य

जैसाकि श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में कहा गया है-तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये। ब्रह्माजी इस ब्रह्माण्ड के पहले जीव हैं और वे ही इस ब्रह्माण्ड के स्रष्टा भी हैं। सो कैसे? यद्यपि ब्रह्मा प्रथम जीव हैं, किन्तु वे विष्णु तत्त्व की कोटि में नहीं आते। प्रत्युत वे जीव तत्त्व के अंश हैं। इतने पर भी उन भगवान् की कृपा से, जिन्होंने उन्हें हृदय के भीतर से ज्ञान दिया (तेने ब्रह्म हृदा), ब्रह्माजी विशाल ब्रह्माण्ड की सृष्टि कर सके। जो लोग वास्तव में भगवान् के शुद्ध भक्त हैं, उनके

हृदय में सदैव स्थित रहने वाले भगवान् उन्हें हृदय में उपदेश देते हैं। ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति (भगवद्गीता 18.61)। यदि जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेशों का पालन करे, तो क्षुद्र प्राणी होते हुए भी वह भगवान् की कृपा से कठिन से कठिन कार्य कर सकता है। इसकी भी पुष्टि भगवद्गीता (10.10) में कृष्ण द्वारा की गई है :

तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

"जो लोग निरन्तर भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी पूजा करते हैं, उन्हें मैं ऐसी बुद्धि देता हूँ, जिससे वे मेरे पास आ सकते हैं।"

शुद्ध भक्त के लिए हर कार्य सम्भव है, क्योंकि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेशों पर चलता है। उनकी अचिन्त्य शक्ति के कारण एक शुद्ध भक्त उन कार्यों को कर सकता है, जो अत्यन्त दुष्कर माने जाते हैं। वह ऐसे कार्य कर सकता है, जो भगवान् ने पहले स्वयं भी नहीं किये होते। इसीलिए नित्यानन्द प्रभु ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा- ये कराह, सेइ करि, नाहिक नियम–"मैं नहीं जानता कि किस नियम के अनुसार मैं यह अद्भुत कार्य कर रहा हूँ, किन्तु मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि आप जो भी चाहते हैं वह मैं करूँगा।" यद्यपि भगवान् अपने भक्त को सारा श्रेय देना चाहते हैं, किन्तु भक्त स्वयं श्रेय कभी नहीं लेता, क्योंकि वह केवल भगवान् के निर्देशन में ही कार्य करता है। फलस्वरूप सारा श्रेय भगवान् को मिलता है। भगवान् तथा उनके भक्त का सम्बन्ध ही ऐसा है। भगवान् अपने दास को सारा श्रेय देना चाहते हैं, किन्तु दास कोई श्रेय नहीं लेना चाहता, क्योंकि वह जानता है कि हर काम भगवान् द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

ताँरे विदाय दिल प्रभु करि' आलिङ्गन ।

एइ-मत विदाय दिल सब भक्त-गण ॥ 68॥

ताँरे–उनको (नित्यानन्द प्रभु को); विदाय दिल-विदा किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करि'–करके; आलिङ्गन-आलिंगन; एइ-मत-इस प्रकार; विदाय दिल-विदा किया; सब-सब; भक्त-गण-भक्तों को।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु का आलिंगन किया और उन्हें विदा किया। तब उन्होंने अन्य सारे भक्तों को विदा किया।

कुलीन-ग्रामी पूर्ववत्कैल निवेदन ।

"प्रभु, आज्ञा कर,—आमार कर्तव्य साधन" ॥ 69॥

कुलीन-ग्रामी–कुलीन ग्राम के एक निवासी ने; पूर्व-वत्-पिछले वर्ष की तरह; कैल-किया; निवेदन-निवेदन; प्रभु-मेरे प्रभु; आज्ञा कर-आज्ञा करो; आमार-मेरा; कर्तव्य-मेरा कर्तव्य; साधन–करने की।

अनुवाद

पिछले वर्ष की तरह कुलीनग्राम के एक निवासी ने महाप्रभु से विनती की, "हे प्रभु, कृपा करके बतायें कि मेरा क्या कर्तव्य है और मैं इसे कैसे पूरा करूँ?"

प्रभु कहे,—"वैष्णव-सेवा, नाम-सङ्कीर्तन ।

दुइ कर, शीघ्र पाबे श्री-कृष्ण-चरण" ॥ 70 ॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; वैष्णव-सेवा-वैष्णवों की सेवा; नाम-सङ्कीर्तन-नाम संकीर्तन; दुइ कर-ये दो काम करो; शीघ्र-शीघ्र; पाबे-तुम पाओगे; श्री कृष्ण-चरण-भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में शरण।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "तुम्हें भगवान् कृष्ण के दासों की सेवा में लगना चाहिए और सदैव कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए। यदि तुम ये दोनों काम करोगे, तो तुम्हें शीघ्र ही श्रीकृष्ण के चरणकमलों में शरण प्राप्त हो सकेगी।"

तेंहो कहे,—"के वैष्णव, कि ताँर लक्षण?" ।

तबे हासि' कहे प्रभु जानि' ताँर मन ॥71॥

तेंहो कहे-उसने कहा, के-कौन; वैष्णव-वैष्णव; कि-क्या; ताँर-उसका; लक्षण-लक्षण; तबे-तब; हासि'–मुस्कुराकर; कहे-कहा; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; जानि'–जानकर; ताँर मन-उसका मन।

अनुवाद

उस कुलीनग्राम के निवासी ने कहा, "कृपा करके बतलायें कि वास्तव में वैष्णव कौन है और उसके लक्षण क्या हैं?" उसके मन की बात जानकर श्री चैतन्य महाप्रभु मुस्काने लगे और उन्होंने यह उत्तर दिया।

"कृष्ण-नाम निरन्तर याँहार वदने ।

सेइ वैष्णव-श्रेष्ठ, भज ताँहार चरणे ॥72॥

कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; निरन्तर–निरन्तर; याँहार-जिसके; वदने-मुख में; सेइ-ऐसा व्यक्ति; वैष्णव-श्रेष्ठ-श्रेष्ठ वैष्णव; भज-पूजा करो; ताँहार चरणे-उसके चरणकमलों की।

अनुवाद

"जो व्यक्ति सदैव भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता रहता है, उसे उत्तम श्रेणी का वैष्णव समझना चाहिए और तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उसके चरणकमलों की सेवा करो।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का कहना है कि कोई भी वैष्णव, जो निरन्तर भगवन्नाम का कीर्तन करता है, उसे वैष्णवता के द्वितीय स्तर में स्थित समझना चाहिए। ऐसा भक्त उस नये वैष्णव से श्रेष्ठ होता है, जिसने अभी केवल भगवन्नाम का कीर्तन करना सीखा है। नौसिखिया भक्त मात्र भगवन्नाम कीर्तन करने का प्रयास करता है, जबकि उन्नत भक्त कीर्तन करने का और उसका आनन्द लेने का अभ्यस्त होता है। ऐसा उन्नत भक्त मध्यम भागवत कहलाता है, जिससे यह इंगित होता है कि उसने नये और पूर्ण भक्त के बीच का पद प्राप्त कर लिया है। इस तरह की माध्यमिक स्थिति वाला भक्त प्रचारक बनता है। नौसिखिये भक्त अथवा सामान्य व्यक्ति को चाहिए कि ऐसे मध्यम भागवत की पूजा करे, क्योंकि वही माध्यम होता है।

श्रील रूप गोस्वामी ने अपनी पुस्तक उपदेशामृत (5) में कहा है। प्रणतिभिश्च भजन्तमीशम्-अर्थात् मध्यम अधिकारी भक्तों को परस्पर नमस्कार करना चाहिए।

इस श्लोक में निरन्तर अर्थात् बिना रुके शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अन्तर शब्द का अर्थ है, "अन्तराल" या "अवकाश।" यदि कोई व्यक्ति भक्ति के अतिरक्ति कोई अन्य इच्छा करता है-अर्थात् वह कभी भक्ति करता है, तो कभी

इन्द्रियतृप्ति का प्रयास करता है, तो उसकी सेवा में व्यवधान आयेगा। इसलिए शुद्ध भक्त को चाहिए कि कृष्ण-सेवा के अतिरक्त अन्य कोई इच्छा न करे। उसे कर्म तथा ज्ञान से ऊपर उठना चाहिए। श्रील रूप गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ भक्तितरसामृत-सिन्धु (1.1.11) में लिखा है :

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम् ।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ।।

यह शुद्ध भक्ति का स्तर है। मनुष्य को सकाम कर्म या ज्ञान द्वारा प्रेरित नहीं होना चाहिए, अपितु अनुकूल भाव से एकमात्र कृष्ण की सेवा करनी चाहिए। यह प्रथम कोटि की (उत्तम) भक्ति है।

अन्तर का दूसरा अर्थ है "यह शरीर।" यह शरीर आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में बाधक है, क्योंकि यह सदैव इन्द्रियतृप्ति में लगा रहता है। इसी तरह अन्तर का अर्थ है "धन।" यदि धन का उपयोग कृष्ण-सेवा में नहीं किया जाता, तो वह भी बाधक है। अन्तर का एक अर्थ "जनता" भी है। सामान्य लोगों की संगति से भक्ति के नियम भ्रष्ट हो सकते हैं। इसी तरह अन्तर का अर्थ "लालच" भी हो सकता है अर्थात् अधिक धन एकत्र करना अथवा अधिक इन्द्रिय-तृप्ति करना। अन्तर का एक अर्थ "नास्तिक विचार" भी है, जिसके कारण मनुष्य मन्दिर के अर्चाविग्रह को पत्थर, काठ या सोने का बना मानता है। ये सारे अवरोध हैं। मन्दिर का अर्चाविग्रह भौतिक नहीं होता-वे तो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। इसी तरह गुरु को सामान्य व्यक्ति मानना भी अवरोध है (गुरुपुनरमतिः)। न किसी वैष्णव को किसी जाति या राष्ट्र का सदस्य मानना चाहिए, न वैष्णव को भौतिक समझना चाहिए। चरणामृत को सामान्य पेय जल नहीं समझना चाहिए, न भगवान् के पवित्र नाम को सामान्य ध्वनि समझना चाहिए। इसी तरह कृष्ण को सामान्य व्यक्ति नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वे समस्त विष्णु तत्त्वों के उद्गम हैं। न ही भगवान् को देवता मानना चाहिए। आध्यात्मिक बातों को भौतिक कारणों में मिलाने से अध्यात्म भौतिक वस्तु और संसारी वस्तु आध्यात्मिक प्रतीत होती है। यह सब अल्प ज्ञान के कारण होता है। मनुष्य को विष्णु तथा उनसे सम्बन्धित वस्तुओं को उनसे पृथक् नहीं मानना चाहिए। यह अपराध है।

श्रील जीव गोस्वामी ने भक्ति-सन्दर्भ (265) में लिखा है : नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतम् इत्यादौ देहद्रविणादिनिमित्तक पाषण्ड'शब्देन च दश अपराधा लक्ष्यन्ते पाषण्डमयत्वात् तेषाम्। "इस श्लोक में हम पाषण्ड शब्द देखते हैं। यह शब्द पारिभाषिक अर्थ में सूचित करता है : अपना शरीर अथवा सम्पत्ति का दुरुपयोग करना, किन्तु इस

श्लोक में इसका अभिप्राय है भगवान् के पवित्र नाम के विरुद्ध दस अपराध, क्योंकि इनमें से प्रत्येक से नास्तिक व्यवहार उपजता है।"

मायावादी लोग अपने अल्पज्ञान के कारण विष्णु तथा वैष्णवों को अपूर्ण मानते हैं। यह निन्दनीय है। श्रीमद्भागवत (11.2.46) में मध्यम वैष्णव का वर्णन इस प्रकार किया गया है :

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।

प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥

"मध्यम वैष्णव ईश्वर से प्रेम, भक्तों से मित्रता, अबोधों को उपदेश देना और ईर्ष्यालु लोगों का परित्याग करता है।" मध्यम वैष्णव के ये चार कार्य हैं। चैतन्य-चरितामृत (मध्य 22.64) में श्री सनातन गोस्वामी को शिक्षा दी गई है कि :

श्रद्धावान् जन हय भक्ति-अधिकारी।

'उत्तम', 'मध्यम' 'कनिष्ठ'–श्रद्धा-अनुसारी ॥

"श्रद्धावान व्यक्ति भक्ति प्राप्त करने के लिए उपयुक्त पात्र है। भक्ति में श्रद्धा की कोटि के अनुसार उसे उत्तम, मध्यम या कनिष्ठ वैष्णव कहा जाता है।"

शास्त्र-युक्ति नाहि जाने दृढ, श्रद्धावान्।

'मध्यम अधिकारी' सेइ महाभाग्यवान् ॥

"जिसने मध्यम अवस्था प्राप्त कर ली है, वह व्यक्ति शास्त्रीय ज्ञान में बहुत अग्रणी नहीं होता, किन्तु उसे भगवान् में दृढ़ श्रद्धा होती है। ऐसा व्यक्ति मध्यम स्तर को प्राप्त करके अत्यन्त भाग्यशाली होता है। (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 22.67)

रतिप्रेमतारतम्ये भक्त तरतम।

"भगवान् के लिए आकर्षण तथा प्रेम-ये ही भक्ति के चरम लक्ष्य हैं। ऐसे आकर्षण तथा भगवत्प्रेम की कोटियों से भक्ति की अवस्थाओं का अन्तर समझ में आता है। ये हैं-कनिष्ठ, मध्यम तथा उत्तम (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 22.71)। मध्यम भक्त नाम-कीर्तन के प्रति अत्यधिक आकृष्ट रहता है और जप करते रहने से वह प्रेम के पद को प्राप्त करता है। यदि कोई व्यक्ति अत्यन्त अनुरक्ति के साथ भगवान् के पवित्र नाम का जप करता है, तो वह गुरु, अन्य वैष्णवों तथा

स्वयं कृष्ण के सनातन दास के रूप में अपने आपको समझ सकता है। इस तरह मध्यम वैष्णव अपने आपको कृष्णदास मानता है। अतएव वह अबोध नौसिखियों (कनिष्ठों) में कृष्णभावनामृत का प्रचार करता है और हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन की महत्ता पर बल देता है। मध्यम भक्त अभक्त या प्रेरित भक्त की पहचान कर सकता है। प्रेरित भक्त या अभक्त भौतिक स्तर पर रहते हैं और प्राकृत कहलाते हैं। मध्यम भक्त ऐसे भौतिकतावादी लोगों से मिलता-जुलता नहीं। किन्तु वह यह समझता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनसे सम्बन्धित सारी वस्तुएँ एक ही दिव्य स्तर पर होती हैं। वास्तव में इनमें से कोई भी भौतिक नहीं हैं।

वर्षान्तरे पुनः ताँरा ऐछे प्रश्न कैल ।

वैष्णवेर तारतम्य प्रभु शिखाइल ॥73॥

वर्ष-अन्तरे–एक वर्ष के बाद; पुनः–दोबारा; ताँरा–वे (कुलीन ग्राम के निवासी); ऐछे-ऐसा; प्रश्न-प्रश्न; कैल-किया; वैष्णवेर-वैष्णवों का; तारतम्य तारतम्य (ऊपरी तथा निचली श्रेणियाँ); प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; शिखाइल–सिखाया।

अनुवाद

अगले वर्ष भी कुलीनग्राम के निवासियों ने महाप्रभु से फिर वही प्रश्न पूछा। इस प्रश्न को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुनः विभिन्न प्रकार के वैष्णवों के विषय में शिक्षा दी।

याँहार दर्शने मुखे आइसे कृष्ण-नाम ।

ताँहारे जानिह तुमि 'वैष्णव-प्रधान' ॥74॥

याँहार दर्शने-जिसके दर्शन से; मुखे-मुख में; आइसे-अपने आप (स्वतः) जाग जाता है; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम; ताँहारे-उसको; जानिह–जानना चाहिए; तुमि-तुम्हें; वैष्णव-प्रधान-श्रेष्ठ वैष्णव।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "उत्तम कोटि का वैष्णव वह है, जिसकी उपस्थिति मात्र से अन्य लोग कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने लगते हैं।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि यदि वैष्णव को देखते ही किसी दर्शक को कृष्ण का नाम स्मरण हो आता है, तो उस वैष्णव को महाभागवत अर्थात् उत्तम कोटि का भक्त समझना चाहिए। ऐसे वैष्णव को अपने कृष्णभावनाभावित कर्तव्य का सदैव स्मरण रहता है और उसे आत्म-साक्षात्कार का ज्ञान रहता है। वह सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से प्रेम करता है और यह प्रेम निर्मल होता है। इसी प्रेम के कारण वह सदैव आध्यात्मिक अनुभूति के प्रति जागरूक रहता है। चूँकि वह जानता है कि कृष्णभावनामृत ज्ञान तथा कर्म का आधार है, अतएव वह सारी वस्तुओं को कृष्ण से सम्बन्धित देखता है। ऐसा व्यक्ति कृष्ण के पवित्र नाम का पूर्ण रीति से कीर्तन कर सकता है। ऐसा महाभागवत वैष्णव अपनी दिव्य दृष्टि से देख सकता है कि कौन व्यक्ति माया के वश में आकर सो रहा है। वह ऐसे सोने वाले बद्धजीवों को कृष्णभावनामृत का ज्ञान प्रसारित करके जगाने में लगा रहता है। वह उन नेत्रों को खोलता है, जो कृष्ण की विस्मृति से बन्द हैं। इस तरह जीव भौतिक शक्ति की जड़ता से मुक्त हो जाता है और भगवान् की भक्ति में पूरी तरह लग जाता है। मध्यम अधिकारी वैष्णव अन्यों में कृष्ण-भक्ति जागृत कर सकता है और उन्हें ऐसे कार्यों में प्रवृत्त कर सकता है, जिससे वे प्रगति कर सकते हैं। इसीलिए चैतन्य-चरितामृत (मध्यलीला, अध्याय 6, श्लोक 279) में कहा गया है :

लोहाके यावत् स्पर्शि' हेम नाहि करे ।

तावत् स्पर्श-मणि केह चिनिते ना पारे ।

"जब तक पारस पत्थर लोहे को सोने में न बदल दे, तब तक पारस पत्थर के मूल्य को नहीं जाना जा सकता।" किसी की परीक्षा उसके कार्यों से होनी चाहिए, न कि वायदों से। एक महाभागवत निन्दनीय जीवन बिताने वाले जीव को भगवान् की सेवा में लगा सकता है। महाभागवत की यही परीक्षा है। यद्यपि प्रचार-कार्य करना महाभागवत का कार्य नहीं है, किन्तु अन्यों को वैष्णव बनाने के लिए वह मध्यम भागवत के पद तक उतर सकता है। वास्तव में महाभागवत कृष्णभावनामृत का प्रसार करने के लिए उपयुक्त होता है, किन्तु वह इसमें अन्तर नहीं कर पाता कि कृष्णभावनामृत का प्रसार कहाँ किया जाए और कहाँ नहीं। वह सोचता है कि यदि अवसर मिले तो हर व्यक्ति कृष्णभावनामृत ग्रहण करने में सक्षम है। कनिष्ठ तथा मध्यम अधिकारियों को सदैव महाभागवत की बात सुनने के लिए उत्सुक रहना चाहिए और हर तरह से उसकी सेवा करनी चाहिए। कनिष्ठ तथा मध्यम अधिकारी क्रमशः उत्तम अधिकारी बन सकते हैं। श्रीमद्भागवत (11.2.45) में उत्तम अधिकारी के लक्षण दिये हुए हैं :

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥

“उत्तम अधिकारी प्रत्येक वस्तु में परमात्मा अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण को देखता है। फलस्वरूप वह प्रत्येक वस्तु को भगवान् के सन्दर्भ में देखता है और यह समझता है कि जिसका भी अस्तित्व है, वह शाश्वत रूप से भगवान् में ही स्थित है।”

सनातन गोस्वामी को शिक्षा देते हुए महाप्रभु ने यह भी कहा था :

शास्त्रयुक्त्ये सुनिपुण दृढ श्रद्धा याँर ।

‘उत्तम अधिकारी से तारये संसार ॥

“जो व्यक्ति वैदिक साहित्य में दक्ष होता है और भगवान् में पूर्ण श्रद्धा रखता है, वह उत्तम अधिकारी अर्थात् प्रथम श्रेणी का वैष्णव है। वह सारे संसार का उद्धार कर सकता है और हर व्यक्ति को कृष्णभावनामृत की ओर उन्मुख कर सकता है।” (चैतन्य-चरितामृत, मध्य 22.65) महाभागवत पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान, भक्ति तथा भक्त को अत्यन्त प्रेम तथा स्नेह से देखता है। वह कृष्ण, कृष्णभावना तथा कृष्ण-भक्त के परे कुछ भी नहीं देखता। महाभागवत जानता है कि हर व्यक्ति भिन्न-भिन्न ढंगों से भगवान् की सेवा में लगा हुआ है। इसलिए वह हर व्यक्ति को कृष्णभावनाभावित पद तक उठाने के लिए स्वयं मध्यम स्तर तक नीचे उतर आता है।

क्रम करि’ कहे प्रभु ‘वैष्णव’-लक्षण ।

‘वैष्णव’, ‘वैष्णवतर’, आर ‘वैष्णवतम’ ॥75 ॥

क्रम करि’–क्रमानुसार; कहे प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; वैष्णव-लक्षण-वैष्णव के लक्षण; वैष्णव-सामान्य वैष्णव (सकारात्मक); वैष्णव-तर-उच्चतर वैष्णव (तुलनात्मक स्तरीय); आर-और; वैष्णव-तम-उत्तम वैष्णव ।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने विभिन्न प्रकार के वैष्णवों-वैष्णव, वैष्णवतर तथा वैष्णवतम-की शिक्षा दी। इस तरह उन्होंने कुलीनग्राम के निवासियों को एक के बाद एक करके वैष्णव के सारे लक्षण अच्छी तरह समझा दिये।

एइ-मत सब वैष्णव गौड़े चलिला ।

विद्यानिधि से वत्सर नीलाद्रि रहिला ॥76 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; सब-सब; वैष्णव-भक्त; गौड़े चलिला–बंगाल लौट गये; विद्यानिधि–पुण्डरीक विद्यानिधि; से वत्सर-उस वर्ष; नीलाद्रि रहिला-जगन्नाथ पुरी में रहे।

अनुवाद

अन्ततोगत्वा सारे वैष्णवजन बंगाल लौट गये, किन्तु उस वर्ष पुण्डरीक विद्यानिधि जगन्नाथ पुरी में ही रहे।

स्वरूप-सहित ताँर हय सख्य-प्रीति ।

दुइ-जनाय कृष्ण-कथाय एकत्र-इ स्थिति ॥ 77॥

स्वरूप-सहित-स्वरूप दामोदर गोस्वामी सहित; ताँर-उनकी; हय-है; सख्य-प्रीति-घनिष्ठ मित्रता; दुइ-जनाय–वे दोनों; कृष्ण-कथाय-कृष्ण कथाओं में; एकत्र-इ-एक समान स्तर पर; स्थिति-स्थित।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा पुण्डरीक विद्यानिधि में घनिष्ठ मित्रता थी और जहाँ तक कृष्ण विषयक कथाओं पर चर्चा करने की बात थी, वे दोनों ही समान स्तर के थे।

गदाधर-पण्डिते तेंहो पुनः मन्त्र दिल ।

ओड़न-षष्ठीर दिने यात्रा ये देखिल ॥78॥

गदाधर-पण्डिते-गदाधर पण्डित को; तेंहो–पुण्डरीक विद्यानिधि ने; पुनः–दूसरी; मन्त्र-दीक्षा; दिल-दी; ओड़न-षष्ठीर दिने–ओड़नषष्ठी के दिन; यात्रा-उत्सव; ये-निस्सन्देह; देखिल-उन्होंने देखा।

अनुवाद

पुण्डरीक विद्यानिधि ने गदाधर पण्डित को दुबारा दीक्षित किया और ओडनषष्ठी के दिन उन्होंने उत्सव देखा।

तात्पर्य

शीत ऋतु के प्रारम्भ में ओड़नषष्ठी उत्सव होता है। यह उत्सव इसका सूचक है कि उस दिन के बाद भगवान् जगन्नाथजी को गर्म वस्त्र दिये जाने चाहिएँ। यह वस्त्र सीधे जुलाहे से खरीदा जाता है। अर्चन मार्ग के अनुसार वस्त्र को सर्वप्रथम धोना चाहिए, जिससे माँड निकल जाए और तब उसे भगवान् को ओढ़ाना चाहिए। पुण्डरीक विद्यानिधि ने देखा कि पुजारी भगवान् जगन्नाथजी को ओढ़ाने के पूर्व वस्त्र को धोता नहीं था। चूँकि वे भक्तों में कुछ न कुछ त्रुटि निकालना चाहते थे, इसलिए उन्हें क्रोध आ गया।

जगन्नाथ परेन तथा 'माडुया' वसन ।

देखिया सघृण हैल विद्यानिधिर मन ॥79॥

जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ ने; परेन-पहनी थी; तथा-वहाँ; माडुया वसन-मांड लगा वस्त्र; देखिया-देखकर; स-घृण-घृणापूर्वक; हैल-हो गया; विद्यानिधिर मन-विद्यानिधि का मन।

अनुवाद

जब पुण्डरीक विद्यानिधि ने देखा कि जगन्नाथजी को मांड़युक्त वस्त्र ओढ़ाया जाता है, तो उनका मन कुछ-कुछ घृणा से भर गया। इस तरह उनका मन दूषित हो गया।

सेइ रात्र्ये जगन्नाथ-बलाइ आसिया ।

दुइ–भाइ चड़ा'न ताँरे हासिया हासिया ॥80॥

सेइ रात्र्ये-उसी रात; जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ; बलाइ–भगवान् बलराम; आसिया-आकर; दुई-भाइ-दोनों भाई; चड़ान-थप्पड़ मारने लगे (चपट लगाई); ताँरे–उन्हें; हासिया हासिया-हँसते-हँसते।

अनुवाद

उस रात को भगवान जगन्नाथ तथा बलराम दोनों भाई पुण्डरीक विद्यानिधि के घर आये और हँस-हँसकर उन्हें चपत लगाने लगे।

गाल फुलिल, आचार्य अन्तरे उल्लास ।

विस्तारि' वर्णियाछेन वृन्दावन-दास ॥81॥

गाल-गालें; फुलिल–सूज गई; आचार्य-पुण्डरीक विद्यानिधि; अन्तरे हृदय में; उल्लास-अति प्रसन्न; विस्तारि'–विस्तार से; वर्णियाछेन-वर्णन किया है; वृन्दावन-दास-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर।

अनुवाद

यद्यपि चपत लगने से उनके गाल सूज गये थे, किन्तु पुण्डरीक विद्यानिधि भीतर से अत्यन्त प्रसन्न थे। इस घटना का विस्तृत वर्णन ठाकुर वृन्दावन दास ने किया है।

एइ-मत प्रत्यब्द आइसे गौड़ेर भक्त-गण ।

प्रभु-सङ्गे रहि' करे यात्रा-दरशन ॥82॥

एइ-मत-इस प्रकार; प्रति-अब्द-प्रति वर्ष; आइसे-आते थे; गौड़ेर-बंगाल के; भक्त-गण-भक्तगण; प्रभु-सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; रहि-रहते थे; करे-करते थे; मात्रा-दरशन-रथयात्रा उत्सव के दर्शन।

अनुवाद

प्रतिवर्ष बंगाल के भक्तगण आते और रथयात्रा का दर्शन करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ ठहरते थे।

तार मध्ये ये ये वर्षे आछये विशेष ।

विस्तारिया आगे ताहा कहिब निःशेष ॥ 83 ॥

तार मध्ये-इन घटनाओं के मध्य; ये ये-जो जो; वर्षे-वर्षों में; आछये-हुआ; विशेष-विशेष; विस्तारिया–विस्तार करके; आगे-आगे; ताहा-वह; कहिब-मैं कहूँगा; निःशेष-पूर्णतया।

अनुवाद

उन वर्षों में जो कुछ उल्लेखनीय घटनाएँ घटीं, उनका वर्णन बाद में किया जायेगा।

एइ-मत महाप्रभुर चारि वत्सर गेल ।

दक्षिण ग्राजा आसिते दुइ वत्सर लागिल ॥84॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चारि–चार; वत्सर-वर्ष; गेल–व्यतीत हुए; दक्षिण ग्राजा–दक्षिण भारत की यात्रा करने के बाद; आसिते-लौट आने में; दुइ वत्सर लागिल-दो वर्ष लग गये।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने चार वर्ष बिताये। प्रथम दो वर्ष उन्होंने दक्षिण भारत के भ्रमण में लगा दिये।

आर दुइ वत्सर चाहे वृन्दावन याइते ।

रामानन्द-हठे प्रभु ना पारे चलिते ॥85॥

आर दुइ वत्सर-और दो वर्ष; चाहे वे चाहते थे; वृन्दावन याइते-वृन्दावन जाने के लिए; रामानन्द-हठे-रामानन्द राय की चालबाजी के कारण; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; ना पारे-न सके; चलिते-जा।

अनुवाद

अन्य दो वर्षों तक श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जाना चाहते रहे, किन्तु वे रामानन्द राय की चालों के कारण जगन्नाथ पुरी छोड़ नहीं पाये।

पञ्चम वत्सरे गौड़ेर भक्त-गण आइला ।

रथ देखि' ना रहिला, गौड़ेरे चलिला ॥86॥

पञ्चम वत्सरे–पाँचवे वर्ष में; गौड़ेर-बंगाल के; भक्त-गण-भक्तगण; आइला-आये; रथ देखि'–रथयात्रा देखकर; ना रहिला–नहीं रुके; गौड़ेरे चलिला–बंगाल को लौट गये।

अनुवाद

पाँचवें वर्ष बंगाल के भक्तगण रथयात्रा देखने आये, किन्तु देखने के बाद वे रुके नहीं, अपितु बंगाल लौट गये।

तबे प्रभु सार्वभौम-रामानन्द-स्थाने ।

आलिङ्गन करि' कहे मधुर वचने ॥87॥

तबे-तब; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सार्वभौम-रामानन्द-स्थाने-सार्वभौम भट्टाचार्य और रामानन्द राय के समक्ष; आलिङ्गन करि'-आलिंगन करके; कहे-कहे; मधुर वचने-मधुर वचन।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य तथा रामानन्द राय के समक्ष एक प्रस्ताव रखा। उन्होंने उन दोनों का आलिंगन करते हुए मधुर वचन कहे।

बहुत उत्कण्ठा मोर याइते वृन्दावन ।

तोमार हठे दुइ वत्सर ना कैलुँ गमन ॥88॥

बहुत उत्कण्ठा-बहुत उत्सुकता; मोर-मेरी; याइते वृन्दावन-वृन्दावन जाने की; तोमार हठे-तुम्हारी चालों से; दुइ वत्सर-दो वर्ष तक; ना कैलुँ-मैंने नहीं किया; गमन-प्रस्थान।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "वृन्दावन जाने की मेरी इच्छा अत्यन्त बलवती हो उठी है। तुम्हारी चालों के कारण मैं विगत दो वर्षों से वहाँ जा नहीं पाया।"

अवश्य चलिब, दुँहे करह सम्मति ।

तोमा-दुँहा विना मोर नाहि अन्य गति ॥89॥

अवश्य–अवश्य; चलिब-मैं जाऊँगा; दुँहे तुम दोनों; करह सम्मति–इस प्रस्ताव को स्वीकार करो; तोमा-दुँहा विना-तुम दोनों के सिवाये; मोर-मेरी; नाहि-नहीं है; अन्य गति-अन्य गति।

अनुवाद

"अब मैं अवश्य जाऊँगा। अब तो तुम लोग अनुमति दोगे न? तुम दोनों के अतिरिक्त मेरे पास कोई अन्य आश्रय नहीं है।"

गौड़-देशे हय मोर 'दुइ समाश्रय' ।

'जननी' 'जाह्नवी',—एइ दुइ दयामय ॥ 90॥

गौड़-देशे-बंगाल में; हय-हैं; मोर-मेरे; दुइ-दो; समाश्रय-आश्रय (ठिकाने); जननी-माता; जाह्नवी-माता गंगा; एइ दुइ-ये दोनों; दया-मय-अति दयालु।

अनुवाद

"बंगाल में मेरे दो आश्रय हैं-मेरी माता तथा गंगा नदी। ये दोनों अत्यन्त दयामय हैं।"

गौड़-देश दिया याब ताँ-सबा देखियो ।

तुमि दुँहे आज्ञा देह' परसन्न हञा ॥91॥

गौड़-देश-बंगाल देश; दिया-होते हुए; याब-मैं जाऊँगा; ताँ-सबा-उन सबको; देखिया-देखकर; तुमि हे तुम दोनों; आज्ञा देह'–मुझे आज्ञा दो; परसन्न हञा–प्रसन्न होकर।

अनुवाद

"मैं बंगाल होता हुआ वृन्दावन जाऊँगा और अपनी माता तथा गंगा नदी दोनों को देखूगा। क्या अब तुम दोनों मुझे अनुमति दोगे?"

शुनिया प्रभुर वाणी मने विचारय ।

प्रभु-सने अति हठ कभु भाल नय ॥92॥

शुनिया-यह सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; वाणी-वाणी; मने-उनके मनों में; विचारय-विचार किया; प्रभु-सने-भगवान् चैतन्य महाप्रभु के साथ; अति-अत्यन्त; हठ-चालबाजी; चालें; कभु–किसी भी समय; भाल नयअच्छी नहीं है।

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य तथा रामानन्द राय ने ये शब्द सुने, तो वे विचार करने लगे कि यह अच्छी बात नहीं है कि उन्होंने महाप्रभु के साथ इतनी चालें चली थीं।

दुँहे कहे,—एबे वर्षा, चलिते नारिबा ।

विजया दशमी आइले अवश्य चलिबा ॥ 93 ॥

दुँहे कहे-उन दोनों ने कहा; एबे–अब; वर्षा–वर्षा ऋतु; चलिते नारिबा-आप नहीं जा सकोगे; विजया-दशमी-विजय दशमी के दिन; आइले-जब यह आयेगी; अवश्य-अवश्य; चलिबा-आप जायेंगे।

अनुवाद

उन दोनों ने कहा, "वर्षा ऋतु होने के कारण आपके लिए यात्रा करनी कठिन हो जायेगी। वृन्दावन प्रस्थान करने के लिए विजयादशमी तक प्रतीक्षा करना ठीक रहेगा।"

आनन्दे महाप्रभु वर्षा कैल समाधान ।

विजया-दशमी-दिने करिल पयान ॥94॥

आनन्दे-बहुत आनन्द में; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; वर्षा-वर्षा ऋतु; कैल समाधान व्यतीत की; विजया-दशमी-दिने-विजयदशमी के दिन; करिल पयान-वे चले गये।

अनुवाद

इस तरह अनुमति प्राप्त करके श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने वर्षा ऋतु बीत जाने तक प्रतीक्षा की और जब विजयादशमी आई तो वे वृन्दावन के लिए चल पड़े।

जगन्नाथेर प्रसाद प्रभु यत पात्राछिल ।

कड़ार, चन्दन, डोर, सब सङ्गे लैल ॥95॥

जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ का; प्रसाद–प्रसाद; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; यत-जितना; पाबाछिल-मिला था; कड़ार-एक प्रकार का तिलक; चन्दन–चन्दन; डोर-डोरियाँ; सब-सब; सड़े लैल-उन्होंने अपने साथ ले ली।

अनुवाद

महाप्रभु ने जगन्नाथजी का प्रसाद एकत्र किया। उन्होंने अपने साथ भगवान् का कड़ार अंजन, चन्दन तथा डोरियाँ भी प्रसाद रूप में ले लीं।

जगन्नाथे आज्ञा मागि' प्रभाते चलिला ।

उड़िया-भक्त-गण सङ्गे पाछे चलि' आइला ॥16॥

जगन्नाथे-भगवान जगन्नाथ से; आज्ञा मागि'-आज्ञा लेकर; प्रभाते-प्रात:काल; चलिला–चल पड़े; उड़िया-भक्त-गण-उड़ीसा के सभी भक्त; सङ्गे–उनके साथ; पाछे-पीछे पीछे; चलि' आइला–चले।

अनुवाद

भोर के समय भगवान जगन्नाथ से आज्ञा लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु चल पड़े और उड़ीसा के सारे भक्त भी उनके पीछे पीछे जाने लगे।

उड़िया-भक्त-गणे प्रभु यत्ने निवारिला ।

निज-गण-सङ्गे प्रभु 'भवानीपुर' आइला ॥ 97॥

उड़िया-भक्त-गणे-उड़ीसा के भक्तगण को; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; यत्न-बड़े प्रयास से; निवारिला-रोका; निज-गण-सङ्गे-अपने निजी साथियों सहित; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; भवानीपुर आइला-भवानीपुर आये।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु बड़े यत्न से उड़ीसा के भक्तों को अपने साथ चलने से मना कर पाये। फिर वे अपने निजी संगियों के साथ सबसे पहले भवानीपुर गये।

तात्पर्य

सुप्रसिद्ध स्थान जानकादेइपुर अथवा जानकीदेवीपुर पहुँचने के पूर्व भवानीपुर से होकर जाना पड़ता है।

रामानन्द आइला पाछे दोलाय चड़िया ।

वाणीनाथ बहु प्रसाद दिल पाठाञा ॥98॥

रामानन्द-रामानन्द राय; आइला–आये; पाछे-पीछे; दोलायचड़िया-पालकी में चढ़कर; वाणीनाथ-वाणीनाथ राय; बहु-बहुत मात्रा में प्रसाद-जगन्नाथ का प्रसाद; दिल-दिया; पाठाञा-भेजकर।

अनुवाद

जब भगवान् चैतन्य भवानीपुर पहुँच गये, तो उनके पीछे पीछे रामानन्द राय अपनी पालकी पर चढ़कर आये और वाणीनाथ राय ने महाप्रभु के लिए प्रचुर मात्रा में प्रसाद भेजा था।

प्रसाद भोजन करि' तथाय रहिला।

प्रातःकाले चलि' प्रभु' भुवनेश्वर' आइला ॥19॥

प्रसाद भोजन करि–प्रसाद ग्रहण करके; तथाय रहिला–वे वहाँ रूक गये; प्रातः-काले-प्रात:काल; चलि'–चलकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; भुवनेश्वर आइला-भुवनेश्वर नामक स्थान पर पहुँचे।

अनुवाद

प्रसाद ग्रहण करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ रात-भर रहे। प्रातः होते ही वे चल पड़े और अन्त में भुवनेश्वर आ पहुँचे।

'कटके' आसिया कैल 'गोपाल' दरशन।

स्वप्नेश्वर-विप्र कैल प्रभुर निमन्त्रण ॥100॥

कटके-कटक नगर; आसिया-आकर; कैल-किया; गोपाल दरशन–भगवान् गोपाल का दर्शन; स्वप्नेश्वर-विप्र-स्वप्नेश्वर नामक ब्राह्मण; कैल-किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण-निमंत्रण।

अनुवाद

कटक नगर पहुँचकर उन्होंने गोपाल मन्दिर के दर्शन किये। वहाँ पर स्वप्नेश्वर नाम के ब्राह्मण ने उन्हें भोजन करने के लिए निमन्त्रण दिया।

रामानन्द-राय सब-गणे निमन्त्रिल।

बाहिर उद्याने आसि' प्रभु वासा कैल ॥ 101॥

रामानन्द-राय-रामानन्द राय ने; सब-गणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी अनुयायियों को; निमन्त्रिल-निमन्त्रित किया; बाहिर उद्याने-बाहर के उद्यान में; आसि-आकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; वासा कैल-उसे अपना विश्राम स्थल बनाया।

अनुवाद

रामानन्द राय ने अन्य सभी जनों को भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया और श्री चैतन्य महाप्रभु ने मन्दिर के बाहर बगीचे में अपना विश्राम स्थान बनाया।

भिक्षा करि' बकुल-तले करिला विश्राम ।

प्रतापरुद्र-ठाञि राय करिल पयान ॥ 102॥

भिक्षा करि'–भोजन करने के बाद; बकुल-तले–बकुल वृक्ष के नीचे; करिला विश्राम-विश्राम किया; प्रतापरुद्र-ठाञि-महाराज प्रतापरुद्र की उपस्थिति में; राय-रामानन्द राय ने; करिल पयान–प्रस्थान किया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु बकुल वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे, तो रामानन्द राय तुरन्त महाराज प्रतापरुद्र के पास गये।

शुनि' आनन्दित राजा अति-शीघ्र आइला ।

प्रभु देखि' दण्डवत्भूमेते पड़िला ॥103॥

शुनि'-यह सुनकर; आनन्दित-अति प्रसन्न हुए; राजा-राजा; अति-शीघ्र-अति शीघ्र; आइला–आये; प्रभु देखि'–श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर; दण्डवत् दण्डवत् प्रणाम किया; भूमेते-भूमि पर; पड़िला–गिर गये।

अनुवाद

राजा यह समाचार पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। और शीघ्रता से वहाँ आये। महाप्रभु को देखकर उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया।

पुनः उठे, पुनः पड़े प्रणय-विह्वल ।

स्तुति करे, पुलकाङ, पड़े अश्रु-जल ॥ 104॥

पुनः–पुनः; उठे-उठे; पुनः–पुनः; पड़े-गिर पड़े; प्रणय-विह्वल-प्रेम से विह्वल होकर; स्तुति करे-स्तुति की; पुलक-अङ्ग-सारा शरीर हर्ष से काँप रहा था; पड़े-बहने लगे; अश्रु-जल-अश्रु जल।

अनुवाद

प्रेम से विह्वल होकर राजा बारम्बार उठते और गिरते रहे। जब वे प्रार्थना कर रहे थे, तो उनका सारा शरीर काँपने लगा और उनकी आँखों से आँसू बह चले।

ताँर भक्ति देखि' प्रभुर तुष्ट हैल मन।

उथि' महाप्रभु ताँरे कैला आलिङ्गन ॥ 105 ॥

ताँर भक्ति–उसकी भक्ति; देखि'–देखकर; प्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु; तुष्ट-प्रसन्न; हैल–था; मन–मन; उठि'–उठकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे–उनको; कैला आलिङ्गन-आलिंगन किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु राजा की भक्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, अतएव उन्होंने उठकर उनका आलिंगन किया।

पुनः स्तुति करि' राजा करये प्रणाम।

प्रभु-कृपा-अश्रुते ताँर देह हैल स्नान ॥106॥

पुनः पुनः; स्तुति करि'-स्तुति करके; राजा-राजा ने; करये प्रनाम-प्रणाम किया; प्रभु कृपा-महाप्रभु की कृपा के; अश्रुते-अश्रुओं से; ताँर–महाप्रभु का; देह-शरीर; हैल–हो गया; स्नान-भीग गया।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने राजा का आलिंगन किया, तो राजा ने बारम्बार प्रार्थना की और उन्हें नमस्कार किया। इस तरह महाप्रभु की कृपा से राजा की आँखों में आँसू आ गये, जिससे महाप्रभु का शरीर नहा उठा।

सुस्थ करि, रामानन्द राजारे वसाइला।

काय-मनो-वाक्ये प्रभु ताँरे कृपा कैला ॥ 107॥

सुस्थ करि-उसको शान्त करके; रामानन्द-रामानन्द राय ने; राजारे वसाइला-राजा को बैठाया; काय-मनो-वाक्ये-तन मन और वाणी से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे-राजा को; कृपा कैला-अपनी कृपा दिखलाई।

अनुवाद

अन्त में रामानन्द राय ने राजा को सान्त्वना दी और उन्हें बैठाया। महाप्रभु ने भी अपने शरीर, मन तथा वाणी से राजा पर कृपा की।

ऐछे ताँहारे कृपा कैल गौरराय ।

“प्रतापरुद्र-सन्त्राता” नाम हैल याय ॥ 108॥

ऐछे-ऐसी; ताँहारे-राजा को; कृपा-कृपा; कैल-दिखलाई; गौरराय-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; प्रतापरुद्र-सन्त्राता–प्रतापरुद्र संत्राता (उद्धारक); नाम-नाम; हैल–हो गया; याय-जिससे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने राजा पर इतनी कृपा प्रदर्शित की कि उस दिन से महाप्रभु का नाम 'प्रतापरुद्र-संत्राता' अर्थात् ‘महाराज प्रतापरुद्र के उद्धारक’ पड़ गया।

राज-पात्र-गण कैल प्रभुर वन्दन ।

राजारे विदाय दिला शचीर नन्दन ॥109॥

राज-पात्र-गण-राजा के अधिकारी गण; कैल-की; प्रभुर वन्दन–महाप्रभु की वन्दना; राजारे-राजा को; विदाय दिला–विदा दी; शचीर नन्दन-माता शची के पुत्र ने।

अनुवाद

सारे सरकारी अधिकारियों ने भी महाप्रभु को नमस्कार किया और तब शची-पुत्र महाप्रभु ने राजा तथा उनके व्यक्तियों को विदा किया।

बाहिरे आसि’ राजा आज्ञा-पत्र लेखाइल ।

निज-राज्ये यत ‘विषयी’, ताहारे पाठाइल ॥110॥

बाहिरे आसि’–बाहर आकर; राजा-राजा ने; आज्ञा-पत्र-आदेश पत्र; लेखाइल-लिखवाकर; निज-राज्ये-अपने राज्य में; यत-सभी; विषयी-सरकारी सेवक; ताहारे-उनको; पाठाइल–भेजा।

अनुवाद

तब राजा बाहर गये और उन्होंने आदेश पत्र लिखाकर अपने राज्य-भर के सरकारी नौकरों को भिजवाया।

'ग्रामे-ग्रामे' नूतन आवास करिबा ।

पाँच-सात नव्य-गृहे सामग्रये भरिबा ॥111॥

ग्रामे-ग्रामे–प्रत्येक गाँव में; नूतन–नया; आवास–निवासस्थान; करिबा-तुम्हें बनाना चाहिए; पाँच-सात-पाँच से सात; नव्य-गृहे-नये घरों में; सामग्रये–भोजन से; भरिबा-भर देना चाहिए।

अनुवाद

उनका आदेश था, "प्रत्येक गाँव में नये आवास स्थान बनाये जाएँ और पाँच-सात नये घरों में सभी तरह का भोजन संग्रह कर लिया जाए।

आपनि प्रभुके लञा ताहाँ उत्तरिबा ।

रात्रि-दिबा वेत्र-हस्ते सेवाय रहिबा ॥ 112॥

आपनि–स्वयं; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा–लेकर; ताहाँ उत्तरिबा-तुम्हें वहाँ जाना चाहिए; रात्रि-दिबा–रात दिन; वेत्र-हस्ते–हाथ में छड़ी लेकर; सेवाय रहिबा-उनकी सेवा में लगे रहना चाहिए।

अनुवाद

"तुम लोग स्वयं महाप्रभु को इन नवनिर्मित घरों में ले जाना। तुम लोग रात-दिन अपने हाथों में बेंत (लाठी) लिए उनकी सेवा में लगे रहना।"

दुइ महा-पात्र,—'हरिचन्दन', 'मर्दराज' ।

ताँरे आज्ञा दिल राजा—'करिह सर्व काय ॥ 113॥

दुइ महा-पात्र-दो प्रतिष्ठित अधिकारियों को; हरिचन्दन-हरिचन्दन; मर्दराज-मर्दराज; ताँरे–उनको; आज्ञा दिल-आज्ञा दी; राजा-राजा ने; करिह-करो; सर्व काय-जो कुछ आवश्यक हो।

अनुवाद

राजा ने हरिचन्दन तथा मर्दराज नामक दो सम्मानित अधिकारियों को आदेश दिया कि इन आदेशों के पालन करने के लिए जो भी आवश्यक हो, करें।

एक नव्य-नौका आनि' राखह नदी-तीरे ।

याहाँ स्नान करि' प्रभु या'न नदी-पारे ॥ 114॥

ताहाँ स्तम्भ रोपण कर 'महा-तीर्थ' करि' ॥

नित्य स्नान करिब ताहाँ, ताहाँ येन मरि ॥115॥

एक–एक; नव्य-नयी; नौका-नौका; आनि'–लाकर; राखह-रखो; नदी-तीरे-नदी के तट पर; याहाँ-जहाँ; स्नान करि'–स्नान करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; या'न-जाएँ; नदी-पारे-नदी के दूसरे तट पर; ताहाँ-वहाँ; स्तम्भ-स्मृति स्तभ; रोपण कर-स्थापित करो; महा-तीर्थ करि'-उस स्थान को एक महान् तीर्थ स्थान बनाकर; नित्य-प्रतिदिन; स्नान करिब–मैं स्नान करूँगा; ताहाँ-वहाँ; ताहाँ-वहाँ; येन मरि-मैं मरना चाहूँगा।

अनुवाद

राजा ने उन्हें यह भी आदेश दिया कि नदी के तटों पर एक नयी नाव रखें और जहाँ-जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु स्नान करें या नदी के उस पार जाएँ, वहाँ-वहाँ वे स्मृति-स्तम्भ स्थापित कर दें और उस स्थान को तीर्थस्थल बना दें। राजा ने कहा, "मैं वहीं-वहीं स्नान किया करूँगा और मुझे मरने भी वहीं देना।"

चतुर्द्वारि करह उत्तम नव्य वास ।

रामानन्द, याह तुमि महाप्रभु-पाश ॥116 ॥

चतुर्द्वारि–चतुर्द्वार नामक स्थान पर; करह-बनाओ; उत्तम–उत्तम; नव्य वास–नया निवासस्थान; रामानन्द-रामानन्द राय; याह तुमि-वहाँ आप जाओ; महाप्रभु-पाश-श्री चैतन्य महाप्रभु के पास।

अनुवाद

राजा ने आगे आदेश दिया, "चतुर्द्वार पर एक नया वासस्थान तैयार कराना। हे रामानन्द, अब आप महाप्रभु के पास लौट सकते हैं।"

सन्ध्याते चलिबे प्रभु,—नृपति शुनिल ।

हस्ती-उपर ताम्बु-गृहे स्त्री-गणे चड़ाइल ॥117॥

सन्ध्याते-संध्या समय; चलिबे प्रभु–महाप्रभु चलेंगे; नृपति शुनिल-राजा ने सुना; हस्ती-उपर हाथियों की पीठ पर; ताम्बु-गृहे–तम्बुओं में; स्त्री-गणे-सभी महिलाओं को; चड़ाइल-बैठाया।

अनुवाद

जब राजा ने सुना कि महाप्रभु उस दिन संध्या-समय चले जायेंगे, तो उसने तुरन्त ही कुछ ऐसे हाथी लाये जाने का प्रबन्ध कर दिया जिनकी पीठ पर छोटे-छोटे तम्बू लगे हों। फिर महल की सारी स्त्रियाँ उन हाथियों पर बैठ गईं।

प्रभुर चलिबार पथे रहे सारि हञा ।

सन्ध्याते चलिला प्रभु निज-गण लञा ॥ 118॥

प्रभुर–महाप्रभु के; चलिबार पथे-प्रस्थान के पथ पर; रहे-रहे; सारि हञा-एक पंक्ति में होकर; सन्ध्याते-सांयकाल; चलिला प्रभु–महाप्रभु चल पड़े; निज-गण लञा-अपने लोगों को लेकर।

अनुवाद

ये सारी स्त्रियाँ उस मार्ग में पंक्ति बाँधकर प्रतीक्षारत रहीं, जिससे होकर महाप्रभु जाने वाले थे। उस शाम को महाप्रभु अपने भक्तों सहित वहाँ से चल पड़े।

'चित्रोत्पला-नदी' आसि' घाटे कैल स्नान ।

महिषी-सकल देखि' करये प्रणाम ॥ 119॥

चित्रोत्पला-नदी-चित्रोत्पला नदी; आसि'–आकर; घाटे-घाट पर; कैल स्नान-स्नान किया; महिषी-सकल-राजमहल की सभी रानियों तथा महिलाओं ने; देखि'–देखकर; करये प्रणाम–प्रणाम किया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु चित्रोत्पला नदी में स्नान करने गये, तो सारी रानियों तथा स्त्रियों ने उन्हें सादर नमस्कार किया।

प्रभुर दरशने सबे हैल प्रेममय ।

‘कृष्ण’ ‘कृष्ण’ कहे, नेत्र अश्रु वरिषय ॥ 120 ॥

प्रभुर दरशने–महाप्रभु के दर्शन से; सबे–वे सब, हैल–हो गईं; प्रेम-मय-प्रेम से वह्वल; कृष्ण कृष्ण कहे-कृष्ण के पावन नाम का कीर्तन किया; नेत्र-नेत्रों से; अश्रु-अश्रु; वरिषय-बरस पड़े।

अनुवाद

महाप्रभु को देखकर वे सारी स्त्रियाँ भगवत्प्रेम से अभिभूत हो उठीं और आँखों से अश्रु गिराते हुए “कृष्ण! कृष्ण!” कीर्तन करने लगीं।

एमन कृपालु नाहि शुनि त्रिभुवने ।

कृष्ण-प्रेमा हय याँर दूर दरशने ॥121॥

एमन कृपालु-ऐसा कृपालु पुरुष; नाहि-नहीं; शुनि–हम सुनतीं; त्रि-भुवने–तीनों भुवनों में; कृष्ण-प्रेमा हय-कृष्ण-प्रेम मिलता है; याँर–जिन्हें; दूर दरशने-दूर से देखने से ही।

अनुवाद

तीनों लोकों में श्री चैतन्य महाप्रभु के समान दयामय कोई नहीं है। उनका दूर से दर्शन करने मात्र से मनुष्य भगवत्प्रेम से अभिभूत हो जाता है।

नौकाते चड़िया प्रभु हैल नदी पार ।

ज्योत्स्नावती रात्र्ये चलि’ आइला चतुर्द्वार ॥122॥

नौकाते चड़िया-नौका पर चढ़कर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हैल-गये; नदी पार-नदी के पार; ज्योत्स्नावती–पूर्ण चन्द्र से प्रकाशित; रात्र्ये-रात में; चलि’–चलकर; आइला–आये; चतुर्द्वार–चतुर्द्वार को।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने एक नई नाव में चढ़कर नदी को पार किया। वे चाँदनी रात में चलकर चतुर नामक नगर में जा पहुँचे।

रात्र्ये तथा रहि' प्राते स्नान-कृत्य कैल ।

हेन-काले जगन्नाथेर महा-प्रसाद आइल ॥123॥

रात्र्ये-उस रात को; तथा रहि'-वहाँ ठहरकर; प्राते-प्रातः काल; स्नान-कृत्य कैल-स्नान किया; हेन-काले-उस समय; जगन्नाथेर- भगवान जगन्नाथ का; महा-प्रसाद आइल–महाप्रसाद आ गया।

अनुवाद

महाप्रभु ने रात वहीं बिताई और प्रातःकाल उठकर स्नान किया। उसी समय जगन्नाथजी का प्रसाद आ गया।

राजार आज्ञाय पड़िछा पाठाय दिने-दिने ।

बहुत प्रसाद पाठाय दिया बह-जने ॥124॥

राजार आज्ञाय-राजा की आज्ञा से; पड़िछा–मन्दिर के अध्यक्ष ने पाठाय-भेजा; दिने-दिने-प्रतिदिन; बहुत प्रसाद-बहुत प्रसाद; पाठाय-उसने भेजा; दिया बहु-जने-कई व्यक्तियों से उठवाकर।

अनुवाद

राजा की आज्ञा के अनुसार मन्दिर का निरीक्षक प्रतिदिन काफी मात्रा में प्रसाद भेज देता था, जिसे कई लोग उठाकर लाते थे।

स्वगण-सहिते प्रभु प्रसाद अङ्गीकरि' ।

उठिया चलिला प्रभु बलि' 'हरि' 'हरि' ॥ 125॥

स्व-गण-सहिते-अपने साथियों के साथ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रसाद-प्रसाद; अङ्गीकरि'-लेकर; उठिया-उठकर; चलिला–चल पड़े; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; बलि'–बोलते हुए; हरि हरि–"हरि, हरि"।

अनुवाद

प्रसाद ग्रहण करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु उठ खड़े हुए और "हरि! हरि!" कीर्तन करते हुए चल पड़े।

रामानन्द, मर्दराज, श्री-हरिचन्दन ।

सड़े सेवा करि' चले एइ तिन जन ॥ 126॥

रामानन्द-रामानन्द; मर्दराज-मर्दराज; श्री-हरिचन्दन–श्री हरिचन्दन; सङ्गे–के पाथ; सेवा करि'–सेवा करते हुए; चले–चले; एइ तिन जन-ये तीन महोदय।

अनुवाद

रामानन्द राय, मर्दराज तथा श्री हरिचन्दन सदैव श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ रहते और उनकी सेवा करते थे।

प्रभु-सङ्गे पुरी-गोसाञि, स्वरूप-दामोदर ।

जगदानन्द, मुकुन्द, गोविन्द, काशीश्वर ॥127॥

हरिदास-ठाकुर, आर पण्डित-वक्रेश्वर ।

गोपीनाथाचार्य, आर पण्डित-दामोदर ॥ 128॥

रामाइ, नन्दाइ, आर बहु भक्त-गण ।

प्रधान कहिलुँ, सबार के करे गणन ॥ 129॥

प्रभु-सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; पुरी-गोसाञि-परमानन्द पुरी; स्वरूप-दामोदर-स्वरूप दामोदर; जगदानन्द-जगदानन्द; मुकुन्द-मुकुन्द; गोविन्द-गोविन्द; काशीश्वर–काशीश्वर; हरिदास-ठाकुर-हरिदास ठाकुर; आर-और; पण्डित-वक्रेश्वर-पण्डित वक्रेश्वर; गोपीनाथ-आचार्य–गोपीनाथ आचार्य; आर-और; पण्डित-दामोदर-पण्डित दामोदर; रामाइ–रामाइ; नन्दाइ–नन्दाइ; आर-और; बहु भक्त-गण-बहुत से भक्त; प्रधान–प्रधान; कहिलुँ–मैंने वर्णन किये हैं; सबार-उन सबका; के-कौन; करे गणन-वर्णन कर सकता है।

अनुवाद

महाप्रभु के साथ साथ परमानन्द पुरी गोस्वामी, स्वरूप दामोदर, जगदानन्द, मुकुन्द, गोविन्द, काशीश्वर, हरिदास ठाकुर, वक्रेश्वर पण्डित, गोपीनाथ आचार्य, दामोदर पण्डित, रामाइ, नन्दाइ तथा अन्य अनेक भक्त थे। इनमें से मुख्य भक्तों के नाम मैंने गिनाये हैं। पूरी संख्या बता पाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है।

गदाधर-पण्डित यबे सङ्गेते चलिला ।

'क्षेत्र-सन्यास ना छाड़िह'—प्रभु निषेधिला ॥130॥

गदाधर-पण्डित-गदाधर पण्डित; यबे-जब; सङ्गेते-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; चलिला-चलने लगे; क्षेत्र-सन्यास–एक तीर्थस्थान पर संन्यास (क्षेत्र संन्यास); ना छाड़िहन छोड़ो; प्रभु निषेधिला-श्री चैतन्य महाप्रभु ने मना किया।

अनुवाद

जब गदाधर पण्डित महाप्रभु के साथ जाने को उद्यत हुए, तो उन्हें मना कर दिया गया और कहा गया कि वे क्षेत्र-संन्यास-व्रत का परित्याग न करे।

तात्पर्य

जब कोई क्षेत्र-संन्यास लेता है, तो अपना गृहस्थ जीवन त्याग कर भगवान् विष्णु से सम्बन्धित किसी तीर्थस्थान में जाता है। ऐसे स्थानों के अन्तर्गत पुरुषोत्तम (जगन्नाथ पुरी), नवद्वीप धाम तथा मथुरा धाम आते हैं। क्षेत्र-संन्यासी इन स्थानों में अकेले या अपने परिवार के साथ रहता है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर क्षेत्र-संन्यास को इस कलियुग में वानप्रस्थ स्थिति से श्रेयस्कर मानते हैं। सार्वभौम भट्टाचार्य इसी तरह रह रहे थे और उन्हें क्षेत्र-संन्यासी कहा गया है अर्थात् वे जगन्नाथ पुरी में रहने वाले संन्यासी थे।

पण्डित कहे,–"याहाँ तुमि, सेइ नीलाचल ।

क्षेत्र-सन्यास मोर याउक रसातल" ॥ 131॥

पण्डित कहे-गदाधर पण्डित ने कहा; याहाँ–जहाँ कहीं; तुमि-आप होते हो; सेइ-वही; नीलाचल-जगन्नाथ पुरी; क्षेत्र-सन्यास-क्षेत्र संन्यास (एक तीर्थस्थान पर रहने का प्रण); मोर-मेरा; याउक-जाने दो; रसातल-नरक में।

अनुवाद

जब गदाधर पण्डित से लौट जाने के लिए कहा गया तो वे महाप्रभु से बोले, "आप जहाँ भी रहते हैं, वही जगन्नाथ पुरी है। मेरा तथाकथित क्षेत्र-संन्यास नरक में जाए।"

प्रभु कहे,—"इँहा कर गोपीनाथ सेवन" ।

पण्डित कहे,—"कोटि-सेवा त्वत्पाद-दर्शन" ॥ 132॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; इँहा-यहाँ; कर-करो; गोपीनाथ सेवन-गोपीनाथ की पूजा; पण्डित कहे–पण्डित ने कहा; कोटि-सेवा-लाखों गुना पूजा; त्वत्-पाद-दर्शन-आपके चरणकमल के दर्शन करने से।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने गदाधर पण्डित से जगन्नाथ पुरी में रुक जाने तथा गोपीनाथ की सेवा करने के लिए कहा, तो गदाधर पण्डित ने उत्तर दिया, "आपके चरणकमलों के दर्शन मात्र से गोपीनाथ की करोड़ बार सेवा हो जाती है।"

प्रभु कहे,—"सेवा छाड़िबे, आमाय लागे दोष ।

इँहा रहि' सेवा कर,—आमार सन्तोष" ॥ 133॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; सेवा छाड़िबे-आप सेवा छोड़ दोगे; आमाय-मुझे; लागे-लगेगा; दोष-दोष; इँहा रहि'–यहाँ रहकर; सेवा कर-सेवा करो; आमार-मेरा; सन्तोष-सन्तोष।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यदि आप उनकी सेवा करना बन्द कर दोगे, तो यह मेरा दोष होगा। अतः अच्छा यही होगा कि आप यहाँ रहकर सेवा-कार्य करो। इससे मुझे सन्तोष मिलेगा।"

पण्डित कहे,–"सब दोष आमार उपर ।

तोमा-सङ्गे ना याइब, याइब एकेश्वर" ॥ 134॥

पण्डित कहे-पण्डित ने कहा; सब-सब; दोष-दोष; आमार उपर मेरे ऊपर; तोमा-सङ्गे-आप के साथ; ना याइब-मैं नहीं जाऊँगा; याइब-मैं जाऊँगा; एकेश्वर-अकेले।

अनुवाद

पण्डित ने उत्तर दिया, "चिन्ता न करें। सारे दोष मेरे सिर पर होंगे। लीजिये, मैं आपके साथ नहीं, अपितु अकेले जाऊँगा।

आइ'के देखिते याइब, ना याइब तोमा लागि' ।

'प्रतिज्ञा' 'सेवा'-त्याग-दोष, तार आमि भागी" ॥ 135॥

आइ'के–माता शचीदेवी को; देखिते-देखने के लिए; याइब-मैं जाऊँगा; ना याइब-मैं नहीं जाऊँगा; तोमा लागि'-आपके लिए; प्रतिज्ञा-सेवा-गोपीनाथ की सेवा तथा प्रण; त्याग-दोष-त्यागने का दोष; तार-उसके लिए; आमि भागी–मैं उत्तरदायी हूँ।

अनुवाद

"मैं शचीमाता को मिलने जाऊँगा, किन्तु आपके कारण नहीं जाऊँगा। मैं गोपीनाथ की सेवा करने के अपने व्रत को भंग करने के लिए स्वयं जिम्मेदार होऊँगा।"

एत बलि' पण्डित-गोसाञि पृथक्कलिला ।

कटक आसि' प्रभु ताँरे सङ्गे आनाइला ॥136 ॥

एत बलि'-यह कहकर; पण्डित-गोसाञि-गदाधर पण्डित; पृथक् चलिला-अलग चले गये; कटक आसि'कटक आने पर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे-उनको; लङ्गे-अपने साथ; आनाइला–ले लिया।

अनुवाद

इस तरह गदाधर पण्डित गोस्वामी अकेले यात्रा पर निकले, किन्तु जब वे सभी लोग कटक पहुँचे तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें बुला लिया और वे महाप्रभु के साथ हो गए।

पण्डितेर गौराङ्ग-प्रेम बुझन ना याय ।

‘प्रतिज्ञा’, ‘श्री-कृष्ण-सेवा’ छाड़िल तृण-प्राय ॥ 137॥

पण्डितेर–गदाधर पण्डित का; गौराङ्ग-प्रेम-श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए प्रेम; बुझन-समझकर; ना याय–सम्भव नहीं है; प्रतिज्ञा–प्रतिज्ञा; श्री-कृष्ण-सेवा-भगवान् की सेवा; छाड़िल–छोड़ दी; तृण-प्राय-प्रायः तिनके की तरह।

अनुवाद

गदाधर पण्डित तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच के प्रेम की घनिष्ठता को कोई नहीं समझ सकता। गदाधर पण्डित ने अपनी प्रतिज्ञा तथा गोपीनाथ की सेवा का उसी तरह परित्याग कर दिया, जिस तरह कोई तिनके के टुकड़े को त्याग देता है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की संगति पाने मात्र के लिए गदाधर पण्डित ने गोपीनाथ की सेवा करते रहने की अपनी जीवन भर की प्रतिज्ञा तोड़ दी। इस प्रकार के प्रेम को केवल अत्यन्त विश्वस्त भक्तगण ही समझ सकते हैं। सामान्यतया इसका तात्पर्य कोई नहीं समझ सकता।

ताँहार चरित्रे प्रभु अन्तरे सन्तोष ।

ताँहार हाते धरि’ कहे करि’ प्रणय-रोष ॥ 138॥

ताँहार चरित्रे-उनके व्यवहार से; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; अन्तरे-अपने हृदय में; सन्तोष-बहुत सन्तुष्ट हुए; ताँहार हाते धरि’–उनका हाथ पकड़कर; कहे-कहा; करि’-दिखाते हुए; प्रणय-रोष-प्रेम में क्रोध।

अनुवाद

गदाधर पण्डित का आचरण श्री चैतन्य महाप्रभु के हृदय को अत्यन्त मोहक लगा। फिर भी महाप्रभु ने उनका हाथ पकड़कर प्रेममय क्रोध प्रदर्शित करते हुए कहा।

‘प्रतिज्ञा’, ‘सेवा’ छाड़िबे,—ए तोमार ‘उद्देश’ ।

से सिद्ध हइल—छाड़ि’ आइला दूर देश ॥ 139॥

प्रतिज्ञा–प्रतिज्ञा; सेवा-और सेवा; छाड़िबे-छोड़ दूँगा; ए-यह; तोमार-तुम्हारा; उद्देश-उद्देश्य; से-वह; सिद्ध-पूरा; हइल हो गया है; छाड़ि'–छोड़कर; आइला-आ गये हो; दूर देश-दूर देश में।

अनुवाद

"तुमने गोपीनाथ की सेवा छोड़ी है और पुरी में रहने की अपनी प्रतिज्ञा भंग की है। चूँकि तुम इतनी दूर निकल आये हो, अतएव वह सब अब पूर्ण हो गया।

आमार सङ्गे रहिते चाह,—वाञ्छ निज-सुख ।

तोमार दुइ धर्म याय,—आमार हय 'दुःख' ॥ 140॥

आमार सङ्गे–मेरे साथ; रहिते-रहने के लिए; चाह-तुम चाहते हो; वाञ्छ-तुम इच्छा करते हो; निज-सुख-अपनी खुद की इन्द्रियतृप्ति; तोमार-तुम्हारे; दुइ धर्म-दो धर्म; याय-नष्ट होते हैं; आमार-मुझे; हय है; दुःख-दुःख।।

अनुवाद

"मेरे साथ जाने की तुम्हारी इच्छा तुम्हारे द्वारा इन्द्रियतृप्ति की अभिलाषा मात्र है। इस तरह तुम दो धार्मिक सिद्धान्तों को तोड़ रहे हो, जिसके कारण मैं अत्यन्त दुःखी हूँ।"

मोर सुख चाह यदि, नीलाचले चल ।

आमार शपथ, यदि आर किछु बल ॥ 141 ॥

मोर-मेरा; सुख-सुख; चाह-तुम चाहते हो; यदि-यदि; नीलाचले चल-जगन्नथ पुरी (नीलाचल) लौट जाओ; आमार शपथ–मेरी निन्दा; यदि-यदि; आर-और; किछु-कुछ; बल-तुम कहते हो।

अनुवाद

"यदि तुम मेरी प्रसन्नता चाहते हो, तो तुम नीलाचल लौट जाओ। यदि इस विषय में तुम कुछ अधिक कहोगे तो तुम मेरी निन्दा ही करोगे।"

एत बलि' महाप्रभु नौकाते चड़िला ।।

मूर्च्छित हञा पण्डित तथाइ पड़िला ॥142॥

एत बलि'-यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नौकाते चड़िला-नौका पर चढ़ गये; मूर्च्छित हञा–मूर्च्छित होकर; पण्डित–गदाधर पण्डित गोस्वामी; तथाई-वहाँ; पड़िला-गिर गये।

अनुवाद

यह कह कर श्री चैतन्य महाप्रभुनाव में चढ़ गये और गदाधर पण्डित तुरन्त ही मूच्छित होकर जमीन पर गिर पड़े।

पण्डिते लञा याइते सार्वभौमे आज्ञा दिला ।

भट्टाचार्य कहे,—"उठ, ऐछे प्रभुर लीला ॥ 143॥

पण्डिते लञा–पण्डित को लेकर; याइते-जाने के लिए; सार्वभौमे-सार्वभौम भट्टाचार्य को; आज्ञा दिला–आज्ञा दी; भट्टाचार्य कहे-सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; उठ-कृपया उठो; ऐछे-ऐसी हैं; प्रभुर लीला-महाप्रभु की लीलाएँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य को आदेश दिया कि वे अपने साथ गदाधर पण्डित को लेते जाएँ। अतएव भट्टाचार्य ने गदाधर पण्डित से कहा, "उठो! श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ ऐसी ही हैं।"

तुमि जान, कृष्ण निज-प्रतिज्ञा छाड़िला ।

भक्त कृपा-वशे भीष्मेर प्रतिज्ञा राखिला ॥ 144॥

तुमि जान-तुम जानते हो; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; निज-प्रतिज्ञा-अपनी प्रतिज्ञा; छाड़िला–छोड़ दी; भक्त कृपा-वशे–भक्त की भक्ति से प्रभावित होकर; भीष्मेर-भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा राखिला–प्रतिज्ञा निभाने के लिए।

अनुवाद

"तुम जानते हो कि भगवान् कृष्ण ने भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा रखने के लिए स्वयं अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन किया।"

स्व-निगममपहाय मत्प्रतिज्ञाम्

ऋतमधिकर्तुमवप्लुतो रथ-स्थः ।

धृत-रथ-चरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्

हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥ 145 ॥

स्व-निगमम्-अस्त्र न पकड़ने और पाण्डवों की ओर से युद्ध करने की अपनी प्रतिज्ञा; अपहाय–छोड़कर; मत्-प्रतिज्ञाम्-मेरी प्रतिज्ञा; ऋतम्-सत्य; अधिकर्तुम्-और अधिक करने के लिए; अवप्लुतः-कूदकर; रथ-स्थः-रथ पर बैठे (भगवान् कृष्ण); धृत-जिन्होंने पकड़ लिया; रथ-चरणः-रथ का पहिया; अभ्ययात्-आगे भागे; चलत्-गुः-सारी धरती को कॅपाकर; हरिः–एक सिंह; इव-की तरह; हन्तुम्-मारने हेतु; इभम् हाथी को; गत-उत्तरीयः-बाहरी वस्त्र को गिराकर।

अनुवाद

"मेरी प्रतिज्ञा को सत्य बनाने के लिए भगवान् कृष्ण ने कुरुक्षेत्र में अत्र ग्रहण न करने की अपनी खुद की प्रतिज्ञा तोड़ दी। उनका उत्तरीय वस्त्र नीचे गिर रहा था, तभी वे अपने रथ से कूद पड़े, रथ का पहिया उठा लिया और मुझे मारने के लिए दौड़ते हुए आये। वे मुझ पर उसी तरह झपटे, जिस तरह सिंह हाथी को मारने के लिए झपटता है। उन्होंने सारी पृथ्वी को हिला दिया।"

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण ने प्रतिज्ञा की थी कि वे कुरुक्षेत्र युद्ध में न तो युद्ध करेंगे, न ही अत्र ग्रहण करेंगे। किन्तु जब भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा रखने के लिए भगवान् की प्रतिज्ञा तोड़नी चाही, तो भगवान् तुरन्त अपने रथ से नीचे उतर आये और भीष्म की प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिए उन्होंने रथ का एक पहिया उठा लिया और उन्हें मारने के लिए आगे दौड़े। यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.9.37) से लिया गया है।

एइ-मत प्रभु तोमार विच्छेद सहिया ।

तोमार प्रतिज्ञा रक्षा कैल यत्न करिया ॥ 146 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; तोमार-तुम्हारा; विच्छेद सहिया-बिछोह सहन करके; तोमार प्रतिज्ञा–तुम्हारी प्रतिज्ञा की रक्षा कैल–रक्षा की; यत्न करिया-बहुत प्रयास करके।

अनुवाद

"इसी तरह तुम्हारा वियोग सहते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने बड़े यत्न से तुम्हारे व्रत की रक्षा की है।"

एइ-मत कहि' ताँरे प्रबोध करिला ।

दुइ-जने शोकाकुल नीलाचले आइला ॥ 147॥

एइ-मत-इस प्रकार; कहि'–कहकर; ताँरे–उनको; प्रबोध करिला–जगाया; दुइ-जने-दोनों व्यक्ति; शोक-आकुल-शोकग्रस्त होकर; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; आइला–लौट गये।

अनुवाद

इस तरह से सार्वभौम भट्टाचार्य ने गदाधर पण्डित में प्राण संचार किया। फिर दोनों अत्यन्त शोकाकुल होकर जगन्नाथ पुरी अर्थात् नीलाचल वापस चले आये।

प्रभु लागि' धर्म-कर्म छाड़े भक्त-गण ।

भक्त-धर्म-हानि प्रभुर ना हय सहन ॥148॥

प्रभु लागि'–श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए; धर्म-कर्म-धर्म-कर्म, सभी नियत कर्म; छाड़े-छोड़ देते हैं; भक्त-गण-सारे भक्तगण; भक्त-धर्म-भक्त के धर्म का; हानि–त्याग करना; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; ना हय-नहीं था; सहन-सहनीय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के निमित्त सारे भक्त अपने सभी तरह के कार्य छोड़ देते थे। फिर भी महाप्रभु नहीं चाहते थे कि भक्तगण अपने वचनबद्ध कर्तव्यों को छोड़ दें।

'प्रेमेर विवर्त' इहा शुने येइ जन ।

अचिरे मिलिये ताँरे चैतन्य-चरण ॥149॥

प्रेमेर विवर्त–प्रेम का विरोधाभास ; इहा-यह; शुने-सुनता है; येइ जन-जो कोई व्यक्ति; अचिरे–शीघ्र ही; मिलिये-मिलती है; ताँरे–उसको; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

ये सब प्रेम के विरोधाभास हैं। जो कोई भी इन घटनाओं को सुनता है, उसे शीघ्र ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त हो जाती है।

दुइ राज-पात्र येइ प्रभु-सङ्गे याय ।

'याजपुर' आसि' प्रभु तारे दिलेन विदाय ॥ 150॥

दुइ राज-पात्र-दोनों सरकारी अधिकारी; येइ-जो; प्रभु-सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के संग; याय-गये; याजपुर आसि'–याजपुर आकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तारे-उनको; दिलेन विदाय–विदा किया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनकी टोली याजपुर पहुँची, तो महाप्रभु ने उन दोनों सरकारी अधिकारियों को लौट जाने के लिए कहा, जो उनके साथ आये थे।

तात्पर्य

याजपुर उड़ीसा का सुप्रसिद्ध स्थान है। यह कटक जिले की एक तहसील है और वैतरणी नदी की दक्षिण दिशा में स्थित है। पूर्वकाल में ऋषियों ने वैतरणी नदी के उत्तरी तट पर बड़े-बड़े यज्ञ किये थे, फलस्वरूप यह स्थान 'याजपुर' अर्थात् "ऐसा स्थान जहाँ यज्ञ सम्पन्न होते हैं" कहलाता है। कुछ लोगों का कहना है कि यह राजा ययाति की राजधानियों में से एक था और ययाति नगर से याजपुर नाम बना है। जैसाकि महाभारत (वनपर्व, अध्याय 114) में कहा गया है :

एते कलिंगाः कौन्तेय यत्र वैतरणी नदी ।

यत्रायजत धर्मोऽपि देवान् शरणं एत्य वै ।

अत्र वै ऋषयोऽन्ये च पुरा क्रतुभिरीजिरे ॥

महाभारत के अनुसार महान् ऋषियों ने प्राचीनकाल में इस स्थान पर यज्ञ किये थे। आज भी वहाँ देवताओं तथा अवतारों के अनेक मन्दिर हैं और वराहदेव का भी एक अर्चाविग्रह है। यह अर्चाविग्रह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है और अनेक तीर्थयात्री यहाँ आते हैं। जो लोग भगवान् की शक्ति के पूजक हैं, वे वाराही, वैष्णवी तथा इन्द्राणी के साथ

साथ अन्तरंगा शक्ति अर्थात् देवी के ऐसे ही अनेक रूपों की पूजा करते हैं। शिवजी के अनेक अर्चाविग्रह हैं। और दशाश्वमेध घाट नामक नदी के तट पर अनेक स्थान हैं। कभी-कभी याजपुर को नाभिगया या विरजाक्षेत्र भी कहते हैं।

प्रभु विदाय दिल, राय याय ताँर सने ।

कृष्ण-कथा रामानन्द-सने रात्रि-दिने ॥ 151॥

प्रभु विदाय दिल–महाप्रभु ने विदा किया; राय-रामानन्द राय; याय-गये; ताँर सने उनके साथ; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण कथाओं की चर्चा की; रामानन्द-सने-रामानन्द राय के साथ; रात्रि-दिने–दिन रात।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अधिकारियों को विदा कर दिया, किन्तु रामानन्द राय उनके साथ बने रहे। महाप्रभु रामानन्द राय से दिन-रात श्रीकृष्ण के विषय में बातें करते।

प्रति-ग्रामे राज-आज्ञाय राज-भृत्य-गण ।

नव्य गृहे नाना-द्रव्ये करये सेवन ॥152॥

प्रति-ग्रामे-प्रत्येक गाँव में; राज-आज्ञाय-राजा की आज्ञा से; राज-भृत्य-गण-सरकारी सेवकों ने; नव्य गृहे-नये घरों में; नाना-द्रव्ये-नाना प्रकार के द्रव्यों (अन्न) के साथ; करये सेवन-सेवा की।

अनुवाद

राजा के आदेशानुसार सरकारी अधिकारियों ने गाँव-गाँव में नये घर बनवा दिये और हर एक में अन्न का संग्रह कर दिया। इस तरह उन्होंने महाप्रभु की सेवा की।

एइ-मत चलि' प्रभु 'रेमुणा' आइला ।

तथा हैते रामानन्द-राये विदाय दिला ॥ 153॥

एइ-मत-इस प्रकार; चलि'चलकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; रेमुणा आइला-रेमुणा आये; तथा हैते-वहाँ से; रामानन्द-राये-रामानन्द राय को; विदाय दिला–विदा दी।

अनुवाद

अन्त में श्री चैतन्य महाप्रभु रेमुणा पहुँचे, जहाँ से उन्होंने श्री रामानन्द राय को भी विदा किया।

तात्पर्य

मध्यलीला (1.149) में बतलाया जा चुका है कि भद्रक से रामानन्द राय को विदा किया गया। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि उन दिनों रेमुणा नामक स्थान के अन्तर्गत भद्रक भी था।

भूमेते पड़िला राय नाहिक चेतन ।

राये कोले करि' प्रभु करये क्रन्दन ॥ 154॥

भूमेते पड़िला-भूमि पर गिर गये; राय-रामानन्द राय; नाहिक चेतन-चेतना न रही; राये-रामानन्द राय को; कोले करि'-गोद में लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करये क्रन्दन-रोने लगे।

अनुवाद

जब रामानन्द राय बेहोश होकर भूमि पर गिर गये, तो श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें अपनी गोद में लेकर विलाप करने लगे।

रायेर विदाय-भाव ना याय सहन ।

कहिते ना पारि एइ ताहार वर्णन ॥155॥

रायेर विदाय-भाव-रामानन्द राय से विरह भाव; ना याय–सम्भव नहीं; सहन–सहन करना; कहिते-वर्णन करना; ना पारि-मैं सक्षम नहीं हूँ; एइ–यह; ताहार-उसका; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

रामानन्द राय से वियोग के कारण महाप्रभु की भावनाओं का वर्णन कर पाना अत्यन्त कठिन है। यह प्रायः असह्य है, अतएव मैं इसके आगे वर्णन नहीं कर सकता।

तबे 'ओद्र-देश-सीमा' प्रभु चलि' आइला ।

तथा राज-अधिकारी प्रभुरे मिलिला ॥ 156 ॥

तबे-तत्पश्चात्; ओढ्र-देश-सीमा-उड़ीसा की सीमा; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; चलि'–चलकर; आइला–पहुँचे; तथा-वहाँ; राज अधिकारी-एक सरकारी अधिकारी; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु से; मिलिला–मिला।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु अन्त में उड़ीसा राज्य की सीमा पर आ पहुँचे, तो एक सरकारी अधिकारी उनसे मिलने आया।

दिन दुइ-चारि तेंहो करिल सेवन ।

आगे चलिबारे सेइ कहे विवरण ॥ 157॥

दिन दुइ-चारि-दो चार दिन; तेंहो–उसने; करिल सेवन–महाप्रभु की सेवा की; आगे-आगे; चलिबारे-जाने के लिए; सेइ–उस अधिकारी ने; कहे-बताया; विवरण-विवरण।

अनुवाद

वह सरकारी अधिकारी दो-चार दिन तक उनकी सेवा करता रहा। उसने महाप्रभु को आगे की विस्तृत जानकारी भी दी।

मद्यप यवन-राजार आगे अधिकार ।

ताँर भये पथे केह नारे चलिबार ॥ 158॥

मद्यप-शराबी; यवन–मुस्लिम; राजार-एक राजा का; आगे-आगे; अधिकार-राज्य; ताँर भये-ऐसे राजा के भय के मारे; पथे-पथ पर; केह-कोई भी; नारे-नहीं सकता; चलिबार-चलना।

अनुवाद

उसने महाप्रभु को बतलाया कि आगे का भूभाग एक शराबी मुस्लिम गवर्नर द्वारा शासित है। उस राजा के भय से लोग मार्ग पर स्वतन्त्र होकर चल नहीं सकते।

पिछलदा पर्यन्त सब ताँर अधिकार ।

ताँर भये नदी केह हैते नारे पार ॥159॥

पिछलदा–पिछलदा नामक स्थान; पर्यन्त–तक; सब-सब; ताँर-उसके; अधिकार-अधिकार में है; ताँर भये-उसके भय से; नदी-नदी; केह-कोई भी; हैते-पार करना; नारे-सक्षम नहीं; पार-दूसरी ओर।

अनुवाद

मुस्लिम सरकार की सीमा पिछलदा तक है। मुसलमानों के भय से कोई भी व्यक्ति नदी पार नहीं करता था।

तात्पर्य

पुराने जमाने में पिछलदा तमलुक तथा बंगाल का अंश था। पिछलदा तमलुक से लगभग 14 मील दक्षिण स्थित है। तमलुक में रूपनारायण नदी विख्यात है और पिछलदा इसी नदी के किनारे स्थित था।

दिन कत रह–सन्धि करि' ताँर सने ।

तबे सुखे नौकाते कराइब गमने ॥ 160॥

दिन कत रह-कुछ दिन यहाँ रहें; सन्धि करि'–शन्ति की बातचीत करके; ताँर सने-उसके साथ; तबे-तब; सुखे-सुखपूर्वक; नौकाते-नौका पर; कराइब गमने-मैं आपकी जाने में सहायता करूँगा।

अनुवाद

महाराज प्रतापरुद्र के सरकारी अधिकारी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को यह भी बतलाया कि उन्हें कुछ दिन तक उड़ीसा की सीमा में रुकना चाहिए, जिससे मुस्लिम गवर्नर से शान्तिपूर्ण समझौता किया जा सके। इस तरह महाप्रभु नाव से नदी को शान्तिपूर्वक पार कर सकेंगे।

सेइ काले से यवनेर एक अनुचर ।

'उड़िया-कटके' आइल करि' वेशान्तर ॥ 161॥

सेइ काले-उसी समय; से यवनेर-मुस्लिम गर्वनर का; एक अनुचर-एक सेवक; उड़िया-कटके-उड़ीसा सैनिकों के कैम्प की; आइल-आया; करि' वेश-अन्तर–वेश बदलकर।

अनुवाद

उसी समय मुस्लिम गवर्नर का एक सेवक वेश बदलकर उड़ीसा के खेमे (शिविर) में आया।

प्रभुर सेइ अदभुत चरित्र देखिया।

हिन्दु-चर कहे सेइ यवन-पाश गिया ॥ 162 ॥

'एक सन्यासी आइल जगन्नाथ हइते।

अनेक सिद्ध-पुरुष हय ताँहार सहिते ॥ 163 ॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; सेइ-वह; अदभुत चरित्र-अद्भुत लक्षण; देखिया-देखकर; हिन्दु-चर–हिन्दू जासूस (गुप्तचर); कहे–कहा; सेइ-वह; यवन-पाश गिया-मुस्लिम राजा के पास जाकर; एक सन्यासी–एक संन्यासी; आइल-आया है; जगन्नाथ हइते-जगन्नाथ पुरी से; अनेक-अनेक; सिद्ध-पुरुष–सिद्ध पुरुष; हय-हैं; ताँहार सहिते-उसके साथ।

अनुवाद

उस मुस्लिम जासूस ने श्री चैतन्य महाप्रभु के अद्भुत गुण देखे और उसने मुस्लिम गवर्नर के पास लौटने पर बतलाया, "एक संन्यासी अनेक सिद्ध पुरुषों के साथ जगन्नाथ पुरी से आया है।"

निरन्तर करे सबे कृष्ण-सङ्कीर्तन।

सबे हासे, नाचे, गाय, करये क्रन्दन ॥164॥

निरन्तर-निरन्तर; करे-करते हैं; सबे-सभी; कृष्ण-सङ्कीर्तन-कृष्ण नाम का संकीर्तन; सबे–वे सब; हासे-हँसते हैं; नाचे-नाचते हैं; गाय-गाते हैं; करये क्रन्दन-और रोते हैं।

अनुवाद

"ये सारे सन्त महात्मा निरन्तर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते हैं। और सभी हँसते, नाचते, गाते तथा रोते हैं।"

लक्ष लक्ष लोक आइसे ताहा देखिबारे।

ताँरे देखि' पुनरपि याइते नारे घरे ॥ 165॥

लक्ष लक्ष-लाखों; लोक-लोग; आइसे-आते हैं; ताहा–उन्हें; देखिबारे-देखने के लिए; ताँरे देखि'–उनको देखकर; पुनरपि–पुनः; याइते-जाने में; नारे-सक्षम नहीं हूँ; घर-घर।

अनुवाद

"उन्हें देखने के लिए लाखों की संख्या में लोग आते हैं और एक बार देख लेने के बाद वे अपने घर वापस जाने का नाम नहीं लेते।"

सेइ सब लोक हय बाउलेर प्राय।

'कृष्ण' कहि' नाचे, कान्दे, गड़ागड़ि याय ॥ 166॥

सेइ सब लोक-वे सब लोग; हय-हैं; बाउलेर प्राय-पागल जैसे; कृष्ण कहि'–कृष्ण का पावन नाम जप करके; नाचे-वे नाचते हैं; कान्दे-रोते हैं; गड़ागड़ि याय-भूमि पर लोटते हैं।

अनुवाद

ये सारे लोग पागल जैसे हो जाते हैं। वे केवल कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करते हैं तथा नाचते हैं। कभी-कभी वे रोते भी हैं और भूमि पर लोटते हैं।

कहिबार कथा नहे–देखिले से जानि।

ताँहार प्रभावे ताँरे 'ईश्वर' करि' मानि' ॥ 167॥

कहिबार कथा-ये बातें वर्णनीय; नहे-नहीं हैं; देखिले–यदि कोई देखे; से जानि-वह समझ सकता है; ताँहार प्रभावे-उनके प्रभाव से; ताँरे–उनको; ईश्वर करि'–भगवान् का रूप; मानि–मैं स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

"वस्तुतः इन बातों का वर्णन भी नहीं किया जा सकता। केवल देखकर ही उन्हें समझा जा सकता है। उसके प्रभाव को देखकर मैं उन्हें भगवान् मानता हूँ।"

एत कहि' सेइ चर 'हरि' 'कृष्ण' गाय।

हासे, कान्दे, नाचे, गाय बाउलेर प्राय ॥ 168॥

एत कहि'-यह कहकर; सेइ चर-वह सन्देशवाहक; हरि-हरि; कृष्ण-कृष्ण; गाय-गाने लगा; हासे-हँसने लगा; कान्दे-रोने लगा; नाचे-नाचने लगा; गाय-गाने लगा; बाउलेर प्राय-एक पागल की भाँति।

अनुवाद

यह कहने के बाद वह सन्देशवाहक हरि तथा कृष्ण के नाम का कीर्तन करने लगा। वह हँसने, रोने, नाचने तथा उन्मत्त की तरह गाने भी लगा।

एत शुनि' यवनेर मन फिरि' गेल ।

आपन-'विश्वास' उड़िया स्थाने पाठाइल ॥ 169॥

एत शुनि'-यह सुनने के बाद; यवनेर-मुस्लिम गवर्नर का; मन–मन; फिरि' गेल-बदल गया; आपन-अपना; विश्वास–सचिव; उड़िया-उड़ीसा सरकार का प्रतिनिधि; स्थाने–स्थान पर; पाठाइल–भेजा।

अनुवाद

यह सुनकर मुस्लिम गवर्नर का मन फिर गया। तब उसने अपने निजी सचिव को उड़ीसा शासन के प्रतिनिधि के पास भेजा।

'विश्वास' आसिया प्रभुर चरण वन्दिल ।

'कृष्ण' 'कृष्ण' कहि' प्रेमे विह्वल हइल ॥ 170॥

विश्वास-सचिव ने; आसिया–आकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण-चरणकमलों की; वन्दिल–पूजा की; कृष्ण कृष्ण-भगवान् का पावन नाम "कृष्ण, कृष्ण"; कहि'–कहकर; प्रेमे-प्रेमावेश में; विह्वल-विह्वल; हइल–हो गया।

अनुवाद

वह मुस्लिम सचिव श्री चैतन्य महाप्रभु को देखने आया। जब उसने महाप्रभु के चरणकमलों पर अपना सादर नमस्कार निवेदन किया और "कृष्ण, कृष्ण" के पवित्र नाम का उच्चारण किया, तो वह भी प्रेमभाव में विह्वल हो गया।

धैर्य हञा उड़ियाके कहे नमस्करि ।

‘तोमा-स्थाने पाठाइला म्लेच्छ अधिकारी ॥171॥

धैर्य हञा–शान्त होकर; उड़ियाके-उड़ीसा सरकार के प्रतिनिधि को; कहे-कहा; नमस्करि’-नमस्कार करके; तोमा-स्थाने तुम्हारे स्थान को; पाठाइला–भेजा है; म्लेच्छ-मुस्लिम; अधिकारी-अधिकारी।

अनुवाद

शान्त होने पर मुस्लिम सचिव ने अभिवादन करने के बाद उड़ीसा सरकार के प्रतिनिधि को सूचित किया, “मुस्लिम गवर्नर ने मुझे यहाँ भेजा है।

तुमि यदि आज्ञा देह’ एथाके आसिया ।

यवन अधिकारी याय प्रभुके मिलिया ॥ 172॥

तुमि-तुम; यदि यदि; आज्ञा–आज्ञा; देह’–दो; एथाके–यहाँ; आसिया-आकर; यवन अधिकारी-मुस्लिम अधिकारी (गवर्नर); याय-चला जायेगा; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को; मिलिया–मिलने के बाद।

अनुवाद

“यदि आप सहमत हों, तो मुस्लिम गवर्नर श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने यहाँ पर आयें और फिर लौट जाएँ।”

बहुत उत्कण्ठा ताँर, कर्याछे विनय ।

तोमा-सने एइ सन्धि, नाहि युद्ध-भय’ ॥173॥

बहुत-बहुत; उत्कण्ठा-उत्सुक; ताँर–उनको; कर्याछे-बना दिया है; विनय-निवेदन पत्र; तोमा-सने-आपके साथ; एइ–यह; सन्धि–सन्धि प्रस्ताव; नाहि नहीं है; युद्ध-भय-युद्ध का भय।

अनुवाद

“मुस्लिम गवर्नर अत्यन्त उत्सुक हैं और उन्होंने आदरपूर्वक निवेदन किया है। यह शान्ति का प्रस्ताव है। आप डरें नहीं कि हम युद्ध करेंगे।”

शुनि’ महा-पात्र कहे हञा विस्मय ।

‘मद्यप झवनेर चित्त ऐछे के करय! ॥ 174॥

शुनि’–सुनकर; महा-पात्र-उड़ीसा सरकार के प्रतिनिधि ने; कहे-कहा; हञा विस्मयचकित होकर; मद्यप-शराबी; यवनेर-मुस्लिम; चित्त-हृदय; ऐछे-इस प्रकार; के करय-किसने बनाया है।

अनुवाद

यह प्रस्ताव सुनकर उड़ीसा सरकार का प्रतिनिधि महापात्र अत्यन्त विस्मित हुआ। उसने सोचा, “यह मुस्लिम गवर्नर तो शराबी है। उसके मन को किसने बदल दिया है?”

आपने महाप्रभु ताँर मन फिराइल ।

दर्शन-स्मरणे याँर जगत्तारिल ॥ 175॥

आपने–स्वयं; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर-उसका; मन–मन; फिराइल-बदल दिया; दर्शन-दर्शन से; स्मरणे-स्मरण से; याँर–जिनके; जगत्-सारे जगत् का; तारिल-उन्होंने उद्धार किया है।

अनुवाद

“अवश्य ही स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस मुसलमान के मन को बदला होगा। उनकी उपस्थिति एवं उनके स्मरण मात्र से सारे संसार का उद्धार हो जाता है।”

तात्पर्य

इससे समझ में आ जाता है कि चूँकि मुस्लिम गवर्नर शराबी (मद्यप) था, अतः सामान्य रूप से उसके मन के बदलने की सम्भावना नहीं थी, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु किसी के भी मन को कृष्णभावनामृत की ओर मोड़ सकते हैं। कोई भी मनुष्य श्री चैतन्य महाप्रभु के पवित्र नाम के स्मरण-मात्र से या उनका दर्शन करने से इस भवसागर से पार हो सकता है। इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन को सारे विश्व में प्रसारित किया जा रहा है, किन्तु यदि महाप्रभु की कृपा न रहे, तो एक भी शराबी यवन या मलेच्छ बदलकर कृष्णभावनामृत को स्वीकार न करे। प्रायः लोग हजारों विदेशी लोगों को वैष्णव बनते देखकर हैरान रह जाते हैं। सामान्यत: विदेशी लोग मांसाहार, मद्यपान, चूत क्रीड़ा तथा अवैध यौनाचार में आसक्त होते हैं, अतएव उनके द्वारा कृष्णभावनामृत ग्रहण करना सचमुच हैरान करने वाली बात है। विशेष करके भारत में तो इस बात पर बड़ी हैरानी होती है। किन्तु यहाँ पर इसका उत्तर दिया हुआ है-दर्शन-स्मरणे याँर जगत

तारिल। यह परिवर्तन श्री चैतन्य महाप्रभु के स्मरण मात्र से सम्भव है। विदेशी भक्त बड़ी ही निष्ठा से श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों के नाम का कीर्तन करते हैं- श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादिगौरभक्तवृन्द। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों की कृपा से लोग निर्मल (पवित्र) बन रहे हैं और उनकी चेतना माया से मुड़कर कृष्ण की ओर उन्मुख हो रही है।

विश्वास शब्द सचिव का सूचक है। यह उपाधि सामान्यतया हिन्दू जाति के कायस्थों में पाई जाती है। आज भी बंगाल के कायस्थ इस विश्वास उपाधि का प्रयोग करते हैं। विश्वासी वह व्यक्ति है, जिस पर विश्वास किया जा सके। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का कहना है कि बंगाल में मुस्लिम शासन के समय विश्वासखाना नामक सचिवालय था। विश्वासखाना कार्यालय में केवल अत्यन्त विश्वसनीय लोगों को नियुक्त किया जाता था। उन्हें कायस्थ जाति से चुना जाता था। यह जाति आज भी व्यापार कार्य तथा सरकारी कामकाज के प्रबन्ध में दक्ष है। विश्वासखाना या सचिवालय सामान्यतया अत्यन्त विश्वसनीय एवं आज्ञाकारी सेवक है। जब भी कोई विश्वसनीय सेवा की आवश्यकता पड़ती थी, तब इन अधिकारियों को नियुक्त किया जाता था।

एत बलि' विश्वासेरे कहिल वचन ।

'भाग्य ताँर–आसि' करुक प्रभु दरशन ॥ 176 ॥

एत बलि'-यह कहकर; विश्वासेरे-मुस्लिम गवर्नर के सेक्रेटरी को; कहिल वचन-ये शब्द कहे; भाग्य-सौभाग्य; ताँर-उसका; आसि'–आकर; करुक-उसे करने दो; प्रभु दरशन-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन।

अनुवाद

यह सोचकर महापात्र ने मुस्लिम सचिव को तुरन्त बतलाया, "यह तो तुम्हारे गवर्नर का बड़ा भाग्य है। उससे कहो कि वे आकर चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करें।

प्रतीत करिये—यदि निरस्त्र हञा ।

आसिबेक पाँच-सात भृत्य सङ्गे लञा?" ॥ 177॥

प्रतीत–समझा दो; करिये-मैं करूँगा; यदि-यदि; निरस्त्र हञा–अस्त्र-शस्त्र के बिना; आसिबेक-वह आये; पाँच-सात–पाँच से सात; भृत्य-सेवक; सङ्गे–के साथ; लञा–लेकर।

अनुवाद

"किन्तु मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि उन्हें यहाँ बिना हथियार के आना चाहिए। हाँ, वे अपने साथ पाँच-सात सेवक ला सकते हैं।"

'विश्वास' याञा ताँहारे सकल कहिले ।

हिन्दु-वेश धरि' सेइ यवन आइल ॥ 178॥

विश्वास सेक्रेटरी ने; याञा-लौटकर; ताँहारे-मुस्लिम गवर्नर को; सकल कहिल-सब कुछ बता दिया; हिन्दु-वेश धरि'–हिन्दू वेश धारण करके; सेइ यवन-वह मुस्लिम गवर्नर; आइल-आया।

अनुवाद

वह सचिव लौटकर मुस्लिम गवर्नर के पास गया और उसे यह समाचार दिया। तब वह मुस्लिम गवर्नर हिन्दू-वेश धारण करके श्री चैतन्य महाप्रभु को देखने आया।

दूर हैते प्रभु देखि' भूमेते पड़िया ।

दण्डवत्करे अश्रु-पुलकित हञा ॥ 179॥

दूर हैते-दूर से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु को; देखि'–देखकर; भूमेते पड़िया-भूमि पर गिरकर; दण्डवत् करे-दण्डवत् प्रणाम किया; अश्रु-अश्रु; पुलकित–पुलकित; हञा-होकर।

अनुवाद

दूर से ही श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर मुस्लिम गवर्नर ने भूमि पर गिरकर नमस्कार किया। उसकी आँखों में आँसू आ गये और भावाविष्ट होने के कारण वह पुलकित हो उठा।

महा-पात्र आनिल ताँरे करिया सम्मान ।

योड़-हाते प्रभु-आगे लय कृष्ण-नाम ॥180॥

महा-पात्र-उड़ीसा सरकार का प्रतिनिधि; आनिल-लाया; ताँरे–उसको; करिया सम्मान-सम्मान सहित; योड़-हाते-हाथ जोड़कर; प्रभु-आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष; लय कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम का जपने लगा।

अनुवाद

इस तरह महापात्र मुस्लिम गवर्नर को आदरपूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष ले गया। तब वह गवर्नर हाथ जोड़कर महाप्रभु के समक्ष खड़ा हो गया और कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने लगा।

अधम यवन-कुले केन जन्म हैल ।

विधि मोरे हिन्दु-कुले केन ना जन्माइल ॥181॥

अधम-अधम; यवन-कुले-मुस्लिम वंश में; केन–क्यों; जन्म हैल-जन्म दिया; विधि-विधाता ने; मोरे-मुझे; हिन्दु-कुले-हिन्दू कुल में; केन–क्यों; ना-नहीं; जन्माइल-उत्पन्न किया।

अनुवाद

तब गवर्नर ने विनीत भाव से पूछा, "मेरा जन्म मुस्लिम परिवार में क्यों हुआ?" यह अधम जन्म माना जाता है। विधाता ने मुझे हिन्दू परिवार में क्यों नहीं जन्म लेने दिया?

'हिन्दु' हैले पाइताम तोमार चरण-सन्निधान ।

व्यर्थ मोर एइ देह, याउक पराण ॥182॥

हिन्दु हैले–यदि मैं हिन्दू कुल में जन्मा होता; पाइताम–मुझे मिलती; तोमार-आपके; चरण-चरणकमलों की; सन्निधान-निकटता; व्यर्थ-बेकार; मोर-मेरा; एइ-यह; देह-शरीर; याउक पराण-मैं शीघ्र मर जाऊँ।

अनुवाद

"यदि मेरा जन्म हिन्दू परिवार में हुआ होता, तो मेरे लिए आपके चरणकमलों के निकट रहना आसान हुआ होता। चूँकि अब मेरा शरीर व्यर्थ है, अतएव मुझे तुरन्त मर जाना चाहिए।"

एत शुनि' महा-पात्र आविष्ट हञा ।

प्रभुके करेन स्तुति चरणे धरिया ॥ 183 ॥

एत शुनि'-यह सुनकर; महा-पात्र-उड़ीसा सरकार के प्रतिनिधि ने; आविष्ट हञा-विह्वल होकर; प्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु की; करेन-की; स्तुति-स्तुति; चरणे धरिया-उनके चरण पकड़कर।

अनुवाद

गवर्नर की विनीत बात सुनकर महापात्र को हर्षातिरेक हो आया। उसने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिए और निम्नलिखित स्तुति करनी प्रारम्भ की।

'चण्डाल–पवित्र याँर श्री-नाम-श्रवणे ।

हेन-तोमार एइ जीव पाइल दरशने ॥184॥

चण्डाल–चण्डाल, मनुष्यों में नीच; पवित्र-पवित्र; याँर–जिसका; श्री-नाम-श्रवणे-पावन नाम सुनने से; हेन-तोमार-आप जैसे का; एइ जीव-इस बद्धात्मा ने; पाइल–पा लिया है; दरशने-दर्शन।

अनुवाद

"आपका पवित्र नाम सुनने मात्र से अधम चण्डाल भी पवित्र हो जाता है। इस बद्धजीव को आपका दर्शन अब जाकर मिला है।"

इँहार ये एइ गति, इथे कि विस्मय? ।

तोमार दर्शन-प्रभाव एइ-मत हय' ॥185॥

इँहार–इस मुस्लिम गवर्नर की; ये-जो; एइ–यह; गति-गति; इथे-इसमें; कि-क्या; विस्मय–विस्मय; तोमार-आपके; दर्शन-प्रभाव-दर्शन का प्रभाव; एइ-मत हय-ही ऐसा है।

अनुवाद

"इसमें आश्चर्य की क्या बात यदि इस मुस्लिम गवर्नर को ऐसी गति प्राप्त हुई। आपके दर्शन मात्र से यह सब सम्भव है।"

यन्नामधेय-श्रवणानुकीर्तनाद्

यत्प्रहणाद यत्स्मरणादपि क्वचित् ।

श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते

कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥ 186॥

यत्-जिनके; नामधेय-नाम का; श्रवण-श्रवण करने से; अनुकीर्तनात्-और तत्पश्चात् जपने से; यत्-जिनको; प्रह्वणात्-सम्मान करने से; यत्-जिनके; स्मरणात्-मात्र स्मरण से; अपि-भी; क्वचित् कभी-कभी; श्व-अदः–कुत्ता खाने वाला (चण्डाल); अपि-भी; सद्यः–तत्क्षण; सवनाय–वैदिक यज्ञ करने के; कल्पते-योग्य हो जाता है; कुतः-क्या कहना; पुनः–दोबारा; ते-आपका; भगवन्-हे भगवन्; नु-अवश्य; दर्शनात्-दर्शन करने से।

अनुवाद

"उन व्यक्तियों की आध्यात्मिक उन्नति के बारे में तो कुछ कहना ही नहीं, जो भगवान् का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करते हैं। यदि चण्डाल-परिवार में उत्पन्न व्यक्ति भी एक बार भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करता है, या उनका कीर्तन करता है, उनकी लीलाओं का श्रवण करता है, उन्हें नमस्कार करता है या उनका स्मरण भी करता है, तो वह तुरन्त वैदिक यज्ञ करने का अधिकारी बन जाता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.33.6) का है। इस श्लोक के अनुसार मनुष्य चाहे जिस पद पर हो, इसका कोई महत्त्व नहीं है। कोई अधम से अधम अर्थात् चण्डाल हो सकता है, किन्तु यदि वह भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन और श्रवण करता है, तो वह वैदिक यज्ञ करने का अधिकारी बन जाता है। इस कलियुग के लिए यह विशेष रूप से सही है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(बृहन्नारदीय पुराण 38.126)

"कलह और दिखावे के इस युग में मुक्ति पाने का केवल एक ही साधन है और वह है भगवान् के पवित्र नाम का स्मरण। इस के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है, अन्य कोई साधन नहीं है, अन्य कोई साधन नहीं है।" ब्राह्मण- कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति तब तक यज्ञ नहीं कर सकता, जब तक वह ठीक से शुद्ध नहीं हो जाता और उसका यज्ञोपवीत नहीं हो जाता। किन्तु श्रीचैतन्य चरिचामृत के (श्रीमद्भागवत से उधृत किये गये) इस श्लोक के अनुसार, निम्नतम व्यक्ति भी यदि भगवान् के पवित्र नाम का निष्ठापूर्वक कीर्तन और श्रवण करता है, तो वह तुरन्त यज्ञ करने का अधिकारी बन जाता है। कभी-कभी ईर्ष्यालु लोग पूछते हैं कि इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अमरीकी तथा

यूरोपियन सदस्य किस तरह ब्राह्मण बन सकते हैं और यज्ञ कर सकते हैं? वे यह नहीं जानते कि ये यूरोपियन तथा अमरीकी पवित्र भगवन्नाम का-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे-का कीर्तन करने के कारण पहले से ही शुद्ध हो चुके हैं। यही प्रमाण है। श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते। भले ही कोई चण्डाल परिवार में क्यों न जन्मा हो, किन्तु महामन्त्र का कीर्तन करने के कारण वह यज्ञ कर सकता है।

जो लोग पाश्चात्य वैष्णवों में दोष निकालते हैं, उन्हें श्रीमद्भागवत के इस श्लोक को तथा इस श्लोक पर श्रील जीव गोस्वामी की टीका देखनी चाहिए। इस के सम्बन्ध में श्रील जीव गोस्वामी ने कहा है कि ब्राह्मण बनने के लिए संस्कार की प्रतीक्षा करनी होती है और यज्ञोपवीत करना होता है। किन्तु पवित्र नाम का कीर्तन करने वाले व्यक्ति को यज्ञोपवीत की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं होती। भक्तों को हम तब तक यज्ञ करने की अनुमति नहीं देते, जब तक उनका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हो जाता। किन्तु इस श्लोक के अनुसार निरपराध भाव से पवित्र नाम का जप करने वाला व्यक्ति अग्नि-यज्ञ कर सकता है, भले ही यज्ञोपवीत संस्कार द्वारा वह द्विज न बन पाया हो। जब भगवान् कपिलदेव अपनी माता देवहूति को शुद्ध सांख्य दर्शन का उपदेश दे रहे थे, तब देवहूति ने यही निर्णय दिया था।

तबे महाप्रभु ताँरे कृपा-दृष्टि करि' ।

आश्वासिया कहे,—तुमि कह 'कृष्ण' 'हरि' ॥ 187॥

तबे-तत्पश्चात्; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उस पर; कृपा-दृष्टि करि'-कृपा दृष्टि करके; आश्वासिया-आश्वासन देकर; कहे-कहा; तुमि-तुम; कह-कहो; कृष्ण-"कृष्ण" का पावन नाम; हरि-पावन नाम "हरि।"

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस मुस्लिम गवर्नर पर अपनी कृपादृष्टि डाली। उसे आश्वासन देते हुए उन्होंने उससे "कृष्ण" तथा "हरि" के पवित्र नामों का कीर्तन करने के लिए कहा।

तात्पर्य

यह तो श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा है कि वे चण्डालों, म्लेच्छों तथा यवनों तक को भगवान् के पवित्र नाम कीर्तन करने का उपदेश देते हैं। दूसरे शब्दों में, जो "कृष्ण" तथा "हरि" के पवित्र नामों के कीर्तन को अंगीकार कर लेता है, उसे पहले ही श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा मिल चुकी होती है। अब इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन के माध्यम से कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने का महाप्रभु का अनुरोध विश्वभर के सभी लोगों की पहुँच तक आ रहा है। जो

भी महाप्रभु के उपदेशों पर चलता है, वह निश्चित रूप से शुद्ध हो जायेगा। जो निरपराध होकर पवित्र भगवन्नाम का जप करता है, वह पहले से ही ब्राह्मण से श्रेष्ठ है। दुर्भाग्यवश भारत में ऐसे अनेक मूर्ख तथा धूर्त हैं, जो पाश्चात्य वैष्णवों को कुछ मन्दिरों में घुसने नहीं देते। ऐसे धूर्त वेदों को ठीक से नहीं समझते। जैसाकि पहले कहा जा चुका है- यन्नामधेय श्रवणानुकीर्तनाद्... सवनाय कल्पते।

सेइ कहे,—'मोरे यदि कैला अङ्गीकार।

एक आज्ञा देह, सेवा करि ये तोमार॥ 188॥

सेइ कहे-मुस्लिम गवर्नर ने कहा; मोरे-मुझे; यदि-यदि; कैला अङ्गीकार-आपने स्वीकार कर लिया है; एक आज्ञा–एक आज्ञा; देह-दो; सेवा–सेवा; करि-मैं करूँ; ये–ताकि; तोमार-आपकी।

अनुवाद

तब मुस्लिम गवर्नर ने कहा, "चूँकि आपने मुझे कृपा करके अपनाया है, अतः आप कृपया कोई आदेश दें, जिससे मैं आपकी सेवा कर सकें।"

तात्पर्य

यदि कोई व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों का पालन करके–अर्थात् कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन द्वारा अपने आपको शुद्ध बना लेता है, तो वह भगवान् की सेवा करने के लिए उत्सुक होगा ही। यही परीक्षा है। जब मनुष्य उत्साहपूर्वक भगवान् की सेवा में लग जाता है, तो समझिये कि वह कृष्ण तथा हरि के नाम-कीर्तन के फल का लाभ उठा रहा है।

गो-ब्राह्मण-वैष्णवे हिंसा कर्याछि अपार।

सेइ पाप हइते मोर हडक निस्तार॥189॥

गो-ब्राह्मण-वैष्णवे-गायों, ब्राह्मणों और वैष्णवों के प्रति; हिंसा–हिंसा तथा ईर्ष्या; कछि -मैंने की है; अपार-असीम; सेइ पाप हइते-उन पापफलों से; मोर-मेरा; हउक-हो जाए; निस्तार-उद्धार।

अनुवाद

तब उस मुस्लिम गर्वनर ने उन असंख्य पापकर्मों के फलों से अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना की, जिसे उसने इसके पूर्व ब्राह्मणों तथा वैष्णवों के प्रति ईर्ष्यालु रहकर तथा गौवों की हत्या करके अर्जित किया था।

तात्पर्य

हरि तथा कृष्ण के पवित्र नामों का कीर्तन करने से मनुष्य पापकृत्यों से-यथा गोवध, ब्राह्मणों तथा वैष्णवों के अपमान आदि से मुक्त हो जाता है। गौवों का वध करना और ब्राह्मणों तथा वैष्णवों का अपमान करना अत्यन्त पापमय है। ऐसे पाप-कृत्यों से संचित होने वाले दुष्कर्म बहुत बड़े होते हैं, किन्तु कृष्ण की शरण में जाने से और उनके पवित्र नाम का कीर्तन करने से यह सारा कर्म तुरन्त निरस्त हो जाता है। अपने पापकर्मों के फल (कर्म) से छूटने पर मनुष्य भगवान् की सेवा करने के लिए उत्सुक बनता है। यही परीक्षा है। चूँकि मुस्लिम गवर्नर श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति से तुरन्त शुद्ध हो गया था, अतएव वह कृष्ण तथा हरि के नामों का उच्चारण कर सका। इसीलिए वह कुछ सेवा करना चाह रहा था और महाप्रभु उसकी इच्छाएँ पूर्ण करना चाहते थे। फलतः उन्होंने तुरन्त अपने भक्त मुकुन्द दत्त से कहलवाया कि हाँ, करने योग्य कुछ सेवा-कार्य है।

तबे मुकुन्द दत्त कहे,—'शुन, महाशय ।

गङ्गा-तीर याइते महाप्रभुर मन हय ॥190॥

तबे-तत्पश्चात्; मुकुन्द दत्त कहे-मुकुन्द दत्त (श्री चैतन्य महाप्रभु के एक भक्त) ने कहा; शुन महाशय-सुनो महाशय; गङ्गा-तीर याइते-गंगा के तट जाने की; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मन-इच्छा; हय-है।

अनुवाद

तब मुकुन्द दत्त ने मुस्लिम गवर्नर से कहा, "हे महोदय, कृपया सुनें। श्री चैतन्य महाप्रभु गंगा नदी के तट तक जाना चाहते हैं।

ताहाँ याइते कर तुमि सहाय-प्रकार ।

एइ बड़ आज्ञा, एइ बड़ उपकार' ॥ 191॥

ताहाँ याइते-वहाँ जाने के लिए; कर-करो; तुमि-तुम; सहाय-प्रकार–सभी प्रकार की सहायता; एइ बड़ आज्ञा–यह एक बड़ी आज्ञा है; एइ बड़ उपकार-यह एक बड़ा उपकार है।

अनुवाद

"आप उनकी सहायता करें, जिससे वे वहाँ जा सकें। आपके लिए यही पहला बड़ा आदेश है और यदि आप इसे पूरा कर दें, तो आप द्वारा यह महान् सेवा होगी।"

तबे सेइ महाप्रभुर चरण वन्दिया ।

सबार चरण वन्दि चले हृष्ट हञा ॥ 192॥

तबे-तत्पश्चात्; सेइ-गवर्नर ने; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण वन्दिया-चरणकमलों की वंदना की; सबार चरण वन्दि'-अन्य सब भक्तों के चरणकमलों पर सम्मान दर्शाया; चले–चला गया; हृष्ट हञा–अत्यन्त प्रसन्न होकर।

अनुवाद

इसके बाद मुस्लिम गवर्नर ने श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ ही साथ उनके सारे भक्तों के चरणकमलों की वन्दना की और फिर चला गया। वह अत्यधिक सन्तुष्ट था।

महा-पात्र ताँर सने कैल कोलाकुलि ।

अनेक सामग्री दिया करिल मितालि ॥ 193॥

महा-पात्र-उड़ीसा के प्रतिनिधि ने; ताँर सने उसके साथ; कैल-किया; कोलाकुलि-आलिंगन; अनेक-अनेक; सामग्री-पदार्थ; दिया-भेंट के रूप में दिये; करिल मितालि-और मित्रता स्थापित की।

अनुवाद

गवर्नर के विदा होने के पूर्व महापात्र ने उसका आलिगंन किया और उसे अनेक वस्तुएँ भेंट में दीं। इस तरह उसने उसके साथ मित्रता स्थापित कर ली।

प्रातः-काले सेइ बह नौका साजाञा ।

प्रभुके आनिते दिल विश्वास पाठाञा ॥ 194॥

प्रातःकाले प्रात: काल; सेइ-गवर्नर ने; बहु-बहुत; नौका-नौकाएँ, साजाञा-सजाकर; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को; आनिते-लाने के लिए; दिल–दीं; विश्वास-सेक्रेटरी को; पाठाञा–भेजकर।

अनुवाद

अगले दिन प्रातःकाल उस गवर्नर ने अपने सचिव को अनेक अच्छी तरह सजी हुई नावों के साथ महाप्रभु को नदी के उस पार ले जाने के लिए भेजा।

महा-पात्र चलि' आइला महाप्रभुर सने ।

म्लेच्छ आसि' कैल प्रभुर चरण वन्दने ॥ 195॥

महा-पात्र-उड़ीसा सरकार का प्रतिनिधि; चलि'–चलकर; आइला–गया; महाप्रभुर सने-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; म्लेच्छ-दूसरे तट के गवर्नर ने; आसि-आकर; कैल-की; प्रभुर चरण वन्दने–महाप्रभु के चरणकमलों की वंदना।

अनुवाद

महापात्र ने श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ नदी पार की और जब वे दूसरे किनारे पर पहुँच गये तो मुस्लिम गवर्नर ने स्वयं महाप्रभु की अगवानी की और उनके चरणकमलों की पूजा की।

एक नवीन नौका, तार मध्ये घर ।

स्व-गणे चड़ाइला प्रभु ताहार उपर ॥ 196॥

एक-एक; नवीन-नई; नौका-नौका; तार–जिसके; मध्ये मध्य में; घर-एक कमरा था; स्व-गणे-अपने साथियों के साथ; चड़ाइला–चढ़ाया; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; ताहार उपर-उस पर।

अनुवाद

नावों में से एक नाव नई बनवाइ हुई थी, जिसके बीच एक कमरा बना था। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों को उसी नाव में बैठा दिया।

महा-पात्रे महाप्रभु करिला विदाय ।

कान्दिते कान्दिते सेइ तीरे रहि' चाय ॥197॥

महा-पात्रे–महापात्र को; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करिला विदाय–विदा किया; कान्दिते कान्दिते-रोते रोते; सेइ-वह महापात्र; तीरे-तट पर; रहि' चाय-खड़ा रहा और देखता रहा।

अनुवाद

अन्त में श्री चैतन्य महाप्रभु ने महापात्र को भी विदा किया। महापात्र नदी के तट पर खड़े होकर नाव की ओर देख-देखकर रोने लगा।

जल-दस्यु-भये सेइ यवन चलिल ।

दश नौका भरि' बह सैन्य सङ्गे निल ॥ 198॥

जल-दस्यु-भये-डाकुओं के भय से; सेइ-वह; झवन-मुस्लिम गवर्नर; चलिल-साथ गया; दश नौका भरि'–दस नौकाएँ भरकर; बहु-बहुत; सैन्य–सिपाही; सङ्गे-अपने साथ; निल-ले लिये।

अनुवाद

तब स्वयं मुस्लिम गवर्नर श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ चल पड़ा। गवर्नर ने समुद्री डाकुओं के कारण साथ में दस नावें ले लीं, जिनमें अनेक सैनिक सवार थे।

'मन्त्रेश्वर'-दुष्ट-नदे पार कराइल ।

'पिछल्दा' पर्यन्त सेइ यवन आइल ॥199॥

मन्त्रेश्वर-मंत्रेश्वर नामक; दुष्ट-नदे-नदी के खतरनाक स्थल पर; पार कराइल-पार करने की व्यवस्था की; पिछल्दा पर्यन्त–पिछलदा नामक स्थान तक; सेइ-वह; यवन-मुस्लिम गवर्नर; आइल-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ गया।

अनुवाद

मुस्लिम गवर्नर श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ मन्त्रेश्वर के आगे तक गया। यह स्थान डाकुओं के कारण अत्यन्त खतरनाक था। वह महाप्रभु को पिछल्दा नामक स्थान ले गया, जो मन्त्रेश्वर के निकट ही था।

तात्पर्य

आज के डायमण्ड बन्दरगाह के निकट गंगा का चौड़ा मुख मन्त्रेश्वर कहलाता था। नाव गंगा नदी से होकर रूपनारायण नदी में प्रविष्ट हुई और पिछल्दा गाँव जा पहुँची। पिछल्दा तथा मन्त्रेश्वर काफी पास-पास स्थित हैं। मन्त्रेश्वर निकल जाने के बाद मुस्लिम गवर्नर महाप्रभु के साथ-साथ पिछल्दा तक गया।

ताँरे विदाय दिल प्रभु सेइ ग्राम हैते।

से-काले ताँर प्रेम-चेष्टा ना पारि वर्णिते ॥ 200॥

ताँरे-गवर्नर को; विदाय दिल-विदा किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सेइ ग्राम हैते–पिछलदा नामक गाँव से; से-काले-उन समय; ताँर-उसकी; प्रेम-चेष्टा-प्रेमावेश में की गई गतिविधियाँ, ना पारि-मैं सक्षम नहीं हूँ; वर्णिते-वर्णन करने में।

अनुवाद

अन्त में श्री चैतन्य महाप्रभु ने गवर्नर को भी विदा दी। गवर्नर द्वारा प्रदर्शित प्रेमभाव का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुस्लिम गवर्नर को पिछल्दा से विदा दी। कृष्णदास कविराज गोस्वामी यहाँ बतलाते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु के कारण बिछुड़ने से गवर्नर में प्रेमभाव के लक्षण प्रकट हो आये। इन लक्षणों का वर्णन कर पाना असम्भव है।

अलौकिक लीला करे श्री-कृष्ण-चैतन्य।

येइ इहा शुने ताँर जन्म, देह धन्य ॥201॥

अलौकिक-असाधारण; लीला-लीलाएँ; करे-करते हैं; श्री-कृष्ण-चैतन्यश्री चैतन्य महाप्रभु; येइ-जो कोई; इहा-इसे; शुने-सुनता है; ताँर-उसका; जन्म-जन्म; देह-देह; धन्य-धन्य हो जाता है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अलौकिक हैं। जो भी इन कार्यकलापों को सुनता है, वह धन्य हो जाता है और उसका जीवन पूर्ण हो जाता है।

सेइ नौका चड़ि' प्रभु आइला 'पानिहाटि' ।

नाविकेरे पराइल निज-कृपा-साटी ॥ 202॥

सेइ नौका चड़ि'–उसी नौका पर चढ़कर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला–आये; पानिहाटि–पानिहाटि नामक स्थान पर; नाविकेरे–नौका के कप्तान; पराइल-उन्होंने पहनाये; निज-कृपा-साटी–विशेष कृपा के तौर पर उनके पहने हुए निजी वस्त्र।

अनुवाद

महाप्रभु अन्ततः पानिहाटि पहुँचे और उन्होंने नाव चलाने वाले को कृपा-कृत्य के रूप में अपना वस्त्र दे दिया।

'प्रभु आइला' बलि' लोके हैल कोलाहल ।

मनुष्य भरिल सब, किबा जल, स्थल ॥ 203॥

प्रभु आइला–महाप्रभु आ पहुँचे हैं; बलि'-यह कहकर; लोके–निवासियों में; हैल-वहाँ होने लगी; कोलाहल–अत्यन्त हलचल; मनुष्य-सभी प्रकार के व्यक्ति; भरिल-भर गये; सब-सब; किबा जल-जल पर; स्थल-अथवा स्थल पर।

अनुवाद

पानिहाटि गंगा-तट पर आया हुआ था। श्री चैतन्य महाप्रभु के आगमन का समाचार सुनकर सभी तरह के लोग स्थल पर तथा जल में एकत्र हो गये।

तात्पर्य

पानिहाटि गाँव गंगा के तट पर खड़दह के पास है।

राघव-पण्डित आसि' प्रभु लञा गेला ।

पथे याइते लोक-भिड़े कष्टे-सृष्ट्ये आइला ॥ 204॥

राघव-पण्डित-राघव पण्डित; आसि'–आकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु को; लञा–लेकर; गेला-अपने घर चले गये; पथे याइते-सड़क पर जाते हुए; लोक-भिड़े-लोगों की भीड़ में; कष्टे-सृष्ट्ये-अत्यन्त कठिनाई से; आइला–पहुँचे।

अनुवाद

आखिरकार श्री चैतन्य महाप्रभु को राघव पण्डित अपने साथ ले गये। रास्ते-भर काफी भीड़ इकट्ठी हो गई थी, जिससे महाप्रभु बड़ी कठिनाई से राघव पण्डित के घर पहुँच पाये।

एक-दिन प्रभु तथा करिया निवास ।

प्राते कुमारहट्ट आइला,—याहाँ श्रीनिवास ॥ 205॥

एक-दिन-एक दिन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तथा-वहाँ; करिया निवास-निवास किया; प्राते-प्रातः काल; कुमारहट्टे-कुमारहट्ट नामक नगर; आइला–पहुँचे; याहाँ–जहाँ; श्रीनिवास–श्रीवास ठाकुर का घर था।

अनुवाद

महाप्रभु श्री राघव पण्डित के घर केवल एक दिन ठहरे। अगले दिन प्रात:काल वे कुमारहट्ट गये, जहाँ श्रीवास ठाकुर रहते थे।

तात्पर्य

कुमारहट्ट का वर्तमान नाम हालिसहर है। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण किये जाने के बाद श्रीवास ठाकुर ने महाप्रभु से बिछुड़ने के कारण नवद्वीप छोड़ दिया और हालिसहर जाकर रहने लगे थे।

श्री चैतन्य महाप्रभु कुमारहट्ट के बाद कंचनपल्ली (कंचड़ापाड़ा) गये, जहाँ शिवानन्द सेन रहते थे। शिवानन्द सेन के यहाँ दो दिन रहकर महाप्रभु वासुदेव दत्त के घर गये। उनके यहाँ से वे नवद्वीप के पश्चिम की ओर विद्यानगर गाँव गये। वहाँ से वे कुलियाग्राम गये और वहाँ माधवदास के घर पर एक सप्ताह रुके रहे। वहाँ उन्होंने देवानन्द तथा अन्यों के अपराधों को क्षमा किया। चूँकि कविराज गोस्वामी ने शान्तिपुराचार्य के नाम का उल्लेख किया है, इसलिए कुछ लोग सोचते हैं कि कुलियाग्राम कांचड़ापाड़ा के निकट का एक गाँव है। इस भूल के कारण उन्होंने नव कुलियार पाट नामक एक नये स्थान की खोज कर ली है। वास्तव में इस नाम का कोई स्थान नहीं है। वासुदेव दत्त का घर छोड़ने के

बाद श्री चैतन्य महाप्रभु अद्वैत आचार्य के घर गये। वहाँ से वे नवद्वीप के पश्चिम में स्थित विद्यानगर गये और विद्यावाचस्पति के घर रूके। ये विवरण चैतन्य-भागवत, चैतन्य-मंगल, चैतन्य-चन्द्रोदय नाटक तथा चैतन्य-चरित काव्य में दिये गये हैं। श्रील कविराज गोस्वामी ने इस पूरी यात्रा का विस्तृत वर्णन नहीं दिया, अतएव चैतन्य-चरितामृत के आधार पर कुछ अनधिकृत लोगों ने कांचड़ापाड़ा के निकट कुलियार पाट नामक स्थान ढूंढ़ निकाला है।

ताहाँ हैते आगे गेला शिवानन्द-घर।

वासुदेव-गृहे पाछे आइला ईश्वर॥ 206॥

ताहाँ हैते–वहाँ से; आगे-आगे; गेला-श्री चैतन्य महाप्रभु गये; शिवानन्द-घर-शिवानन्द सेन के घर; वासुदेव-गृहे वासुदेव दत्त के घर; पाछे-इसके बाद; आइला–आये; ईश्वर–महाप्रभु।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर के घर से चलकर महाप्रभु शिवानन्द सेन के घर गये और बाद में वासुदेव दत्त के घर गये।

'वाचस्पति-गृहे' प्रभु येमते रहिला।

लोक-भिड़ भये यैछे 'कुलिया' आइला॥ 207॥

वाचस्पति-गृहे-विद्यावाचस्पति के घर पर; प्रभु–महाप्रभु; येमते-जैसे; रहिला-कुछ समय वहाँ रहे; लोक-भिड़ भये-लोगों की भीड़ के भय से; यैछे-जैसे; कुलिया आइला–वे कुलिया आये (नवद्वीप का वर्तमान नगर)।

अनुवाद

महाप्रभु कुछ समय तक विद्यावाचस्पति के घर पर रहे, किन्तु वहाँ पर काफी भीड़ थी अतएव वे कुलिया चले गये।

तात्पर्य

विद्यावाचस्पति का घर विद्यानगर में था, जो कोलद्वीप या कुलिया के पास ही था। यहीं पर देवानन्द पण्डित रह रहे थे। यह जानकारी चैतन्य-भागवत (मध्य-खण्ड, अध्याय 21) से प्राप्त होती है। चैतन्य-चन्द्रोदय नाटक में कुलिया के

विषय में निम्नलिखित कथन प्राप्त होता है : ततः कुमारहट्टे श्रीवासपण्डितवाट्याम् अभ्याययौ।"वहाँ से महाप्रभु कुमारहट्ट स्थित श्रीवास पण्डित के घर गये।" ततोऽद्वैतवाटीं अभ्येत्य हरिदासेनाभिवन्दितस्तथैव तरणीवना नवद्वीपस्य पारे कुलियानामग्रामे माधवदासवाट्यामुत्तीर्णवान्। एवं स्पत दिनानि तत्र स्थित्वा पुनस्तटवर्मना एव चलितवान्–" श्रीवास आचार्य के घर से होकर महाप्रभु अद्वैत आचार्य के घर गये, जहाँ हरिदास ठाकुर ने उन्हें नमस्कार किया। तब महाप्रभु नाव से नवद्वीप के उस पार कुलिया नामक स्थान को गये, जहाँ वे माधवदास के घर पर सात दिनों तक रुके। तब वे गंगा के किनारे-किनारे आगे चले गये।"

श्री चैतन्यचरित महाकाव्य में कहा गया है-अन्येद्युः स श्रीनवद्वीपभूमेः पारे गंगा पश्चिमे क्वापि देशे, श्रीमान् सर्वप्राणिनां ततदंगैर्नेत्रानन्दं सम्यगागत्य तेने- "महाप्रभु नवद्वीप से गंगा की पूर्वी दिशा में गये और सारे लोग महाप्रभु को आते देखकर परम प्रसन्न हुए।"

चैतन्य-भागवत (अन्त्य खण्ड, अध्याय 3) में कहा गया है-सर्वपारिषदसङ्गे श्रीगौरसुन्दर/आचम्बिते आसिऽउत्तरिला ताँर घर–"महाप्रभु अपनी पूरी टोली के साथ विद्यानगर आ गये और विद्यावाचस्पति के घर ठहर गये।" नवद्वीपादि सर्वदिके हैल ध्वनि—"इस तरह नवद्वीप-भर में महाप्रभु के आगमन का पता चल गया।" वाचस्पति घरे आइला न्यासि-चूड़ामणि—"इस तरह समस्त संन्यासियों में अग्रणी श्री चैतन्य महाप्रभु विद्यावाचस्पति के घर आये। इसके आगे कहा गया है :

अनन्त अर्बुद लोक बलि' 'हरि' 'हरि'।

चलिलेन देखिबारे गौरांग श्रीहरि ॥

पथ नाहि पाय केहो लोकेर गहले ।

वनडाल भांगि' लोक दशदिके चले ॥

लोकेर गहले यत अरण्य आछिल ।

क्षणेके सकल दिव्य पथमय हैल ॥

क्षणेके आइल सब लोक खेया-घाटे ।

खेयारी करिते पार पड़िल संकटे ॥

सत्वरे आसिला वाचस्पति महाशय।

करिलेन अनेक नाउकार समुच्चय॥

नाउकार अपेक्षा आर केहो नाहि करे।

नाना मते पार हय ये ये मते पारे।

हेनमते गंगा पार हइ 'सर्वजन।

सभेइ धरेन वाचस्पतिर चरण॥

लुकाञा गेला प्रभु कुलिया नगर।

कुलियाय आइलेन वैकुण्ठ-ईश्वर॥

सर्वलोक 'हरि' बलि' वाचस्पति–संगे।

सेइ-क्षणे सभे चलिलेन महा–रंगे॥

कुलिया-नगरे आइलेन न्यासि-मणि।

सेइ-क्षणे सर्व-दिके हैल महाध्वनि॥

सबे गंगा मध्ये नदियाय-कुलियाय।

शुनि मात्र सर्वलोके महानन्दे धाया।

वाचस्पतिर ग्रामे (विद्यानगरे) छिल यतेक गहल

तार कोटि कोटिगुणे पूरिल सकल

लक्ष लक्ष नाउका वा आइल कोठा हइते

ना जानि कतेक पार हय कतमते॥

लक्ष लक्ष लोक भासे जाह्नवीर जले

सभे पार हयेन परम कुतूहले॥

गंगाय हञा पार आपना-आपनि।

कोलाकोलि करि 'सभे करे हरि-ध्वनि॥

क्षणेके कुलिया-ग्राम-नगर प्रान्तर।

परिपूर्ण हइल स्थल, नाहि अवसर॥

क्षणेके आइला महाशय वाचस्पति।

तेंहो नाहि पायेन प्रभुर कोथा स्थिति॥

कुलिया प्रकाशे यतेक पापी छिल।

उत्तम, मध्यम, निच,-सबे पार हइल॥

कुलिया—ग्रामेते आसि' श्रीकृष्णचैतन्य।

हेन नाहि, यारे प्रभु ना करिला धन्य।

"जब श्री चैतन्य महाप्रभु विद्यावाचस्पति के घर ठहरे तो लाखों लोग उनका दर्शन करने तथा हरिनाम-कीर्तन करने आये। इस तरह इतनी भीड़ हो गई कि चलने के लिए भी स्थान नहीं रहा, अतएव गाँव के निकट का जंगल काटकर स्थान बनाया गया। अनेक सड़कें अपने आप बन गईं और बहुत से लोग नाव से महाप्रभु का दर्शन करने आये। इस तरह इतने लोग आये कि उन्हें पार कराते-कराते नाविकों के नाक में दम हो गया। जब विद्यावाचस्पति अचानक आये, तो उन्होंने इन लोगों को लाने के लिए अनेक नावों का प्रबन्ध किया। किन्तु लोगों में नावों की प्रतीक्षा करने के लिए धैर्य नहीं रह गया। उन्होंने जैसे-तैसे नदी पार की और विद्यावाचस्पति के घर की ओर आगे बढ़े। इस अपार भीड़ के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु चुपके से कुलिया नगर चले गये। किन्तु जब महाप्रभु विद्यानगर छोड़ कर चले गये, तो उनके जाने का समाचार सब लोगों को प्रकट हो गया। अतएव वे वाचस्पति के साथ कुलिया नगर गये। चूँकि महाप्रभु के आने का समाचार तुरन्त फैल गया, अतएव बहुत बड़ी भीड़ आ गई और उल्लासपूर्वक महाप्रभु का स्वागत करने लगी। जब यह भीड़ महाप्रभु को देखने गई, तो इसमें लोगों की संख्या दस-हजार गुनी बढ़ गई। कोई भी व्यक्ति यह नहीं बता सकता था कि कितने लोगों ने उनके दर्शन हेतु नदी पार की होगी, किन्तु गंगा नदी पार करते हुए लाखों लोगों ने तुमुल ध्वनि की। नदी पार करने के बाद लोग परस्पर एक दूसरे का आलिंगन करने लगे, क्योंकि उन्होंने महाप्रभु के

आगमन का शुभ समाचार सुना था। इस तरह कुलिया के सारे निवासियों का पापियों का, बीच वालों का तथा आध्यात्मिक रूप से बढ़-चढ़े लोगों का उद्धार हो गया और वे श्री चैतन्य महाप्रभु के कारण धन्य हो गये।

जैसाकि चैतन्य-भागवत (अन्त्य खण्ड, अध्याय 6) में कहा गया है :

खानायोड़ा बड़गाछि, आर डोगाछिया।

गंगार ओपार कभु या येन 'कुलिया' ॥

श्री चैतन्य महाप्रभु खानायोदा, बड़ागाची और दोगाछिया होकर गये और तब कुलिया में पहुँचने से पहले उन्होंने गंगा नदी पार की।" चैतन्य मंगल में बतलाया गया है कि :

गंगा-स्नान करि प्रभु राढ़ देश दिया।

क्रमे क्रमे उत्तरिला नगर 'कुलिया' ॥

मायेर वचने पुनः गेला नवद्वीप।

वारकोणा-घाट, निज वाड़ीर समीप ॥

"श्री चैतन्य महाप्रभु राढ़ देश से होते हुए शनैः शनैः गंगा पहुँचे। नदी में स्नान करने के बाद उन्होंने इसे पार किया और कुलिया गये। चूँकि उन्होंने अपनी माता को वचन दिया था कि वे नवद्वीप लौटेंगे, अतः वे वारकोना घाट गये, जो उनके घर के निकट एक गाँव है।"

प्रेमदास की टीका में कहा गया है कि :

नदीयार माझखाने, सकल लोकते।

जाने 'कुलिया-पाहाड़पुर' नामे स्थान ॥

"प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि नदिया के बीच में कुलिया-पहाड़पुर नामक एक गाँव है।"

श्री नरहरि चक्रवर्ती अथवा घनश्याम दास ने अपनी पुस्तक भक्तिरत्नाकर में लिखा है :

कुलिया पहाड़पुर देख श्रीनिवास।

पूर्वे ‘कोलद्वीप’-पर्वताख्य–ए प्रचार ॥

“उसने कहा, “हे श्रीनिवास, कुलिया-पहाड़पुर गाँव तो देखो, जिसे पहले कोलाद्वीप कहा जाता था।”

घनश्याम दास द्वारा ही लिखी गई अन्य पुस्तक नवद्वीप-परिक्रमा में भी कहा गया है-कुलिया-पाहाड़पुर ग्राम पूर्वे कोलद्वीपपर्वताख्यानन्द नाम। “कुलिया-पाहाड़पुर गाँव पहले कोलाद्वीप पर्वताख्या नाम से जाना जाता था।”

अतएव निष्कर्ष यह निकलता है कि आज का नवद्वीप शहर तथा बाहर द्वीप, कोलेर गंज, कोल-आमाद, कोलेर दह, गदखालि इत्यादि स्थान पहले कुलिया कहलाते थे। किन्तु तथाकथित कुलियार पाट मूल कुलिया नहीं है।

माधव-दास-गृहे तथा शचीर नन्दन ।

लक्ष-कोटि लोक तथा पाइल दरशन ॥ 208॥

माधव-दास-गृहे-माधवदास के घर पर; तथा-वहाँ; शचीर नन्दन-माता शची का पुत्र; लक्ष-कोटि लोक-लाखों लोगों ने; तथा-वहाँ; पाइल दरशन-उनका दर्शन पाया।

अनुवाद

जब महाप्रभु माधवदास के घर पर ठहरे, तो लाखों-करोड़ों लोग उनका दर्शन करने आये।

तात्पर्य

माधव दास की पहचान इस प्रकार की जाती है। श्रीकर चट्टोपाध्याय के परिवार में युधिष्ठिर चट्टोपाध्याय ने जन्म लिया। पहले वे तथा उनके परिवार के सदस्य बिल्वग्राम तथा पाटूलि में रहते थे। वहाँ से वह परिवार कुलिया पाहाड़पुर गया, जो पहले पाड़पुर कहलाता था। युधिष्ठिर चट्टोपाध्याय का सबसे बड़ा पुत्र माधव दास कहलाता था, दूसरा पुत्र हरिदास था और सबसे छोटा पुत्र कृष्णसम्पत्ति चट्टोपाध्याय कहलाता था। इन तीनों भाइयों के उपनाम क्रमशः छकड़ि, तिनकड़ि तथा दुकड़ि थे। माधवदास का पौत्र वंशीवदन था और उसका पौत्र रामचन्द्र था। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के समय में रामचन्द्र और इनके वंशज अब भी वाघनापाड़ा या वैची में रह रहे हैं।

सात दिन रहि’ तथा लोक निस्तारिला ।

सब अपराधि-गणे प्रकारे तारिला ॥ 209॥

सात दिन–सात दिन; रहि-रहकर; तथा-वहाँ; लोक-लोग; निस्तारिला-उद्धार किया; सब-सब; अपराधि-गणे-अपराधी; प्रकारे-किसी न किसी रूप में; तारिला-उद्धार किया।

अनुवाद

महाप्रभु वहाँ सात दिनों तक रुके रहे और उन्होंने सभी तरह के अपराधियों तथा पापियों का उद्धार किया।

'शान्तिपुराचार्य'-गृहे ऐछे आइला ।

शची-माता मिलि' ताँर दुःख खण्डाइला ॥ 210॥

शान्तिपुर-आचार्य-अद्वैत आचार्य के; गृहे-घर; ऐछे-इसी प्रकार; आइला–गये; शची-माता-माता शची; मिलि'–मिलकर; ताँर-उसको; दुःख-दुःख; खण्डाइला-शान्त किया।

अनुवाद

कुलिया छोड़ने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु शान्तिपुर में अद्वैत आचार्य के घर गये। यहीं पर उनकी माता शचीमाता उनसे मिलीं और उनका महान् दुःख दूर हुआ।

तबे 'रामकेलि'-ग्रामे प्रभु यैछे गेला ।

'नाटशाला' हैते प्रभु पुनः फिरि' आइला ॥ 211॥

तबे-तब; रामकेलि-ग्रामे रामकेलि गाँव में प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; यैछे-इसी प्रकार; गेला–गये; नाटशाला–कानाई नाटशाला नामक स्थान; हैते-से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः पुनः–दोबारा; फिरि' आइला–लौट आये।

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु रामकेलि गाँव तथा कानाइ नाटशाला नामक स्थान गये। वहाँ से वे शान्तिपुर लौट आये।

शान्तिपुरे पुनः कैल दश-दिन वास ।

विस्तारि' वर्णियाछेन वृन्दावन-दास ॥ 212॥

शान्तिपुरे-शान्तिपुर में; पुनः–दोबारा; कैल–किया; दश-दिन-दस दिन के लिए; वास–निवास; विस्तारि'–विस्तारपूर्वक; वर्णियाछेन-वर्णन किया है; वृन्दावन-दास-वृन्दावन दास ठाकुर ने।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु शान्तिपुर में दस दिनों तक रुके। इसका विस्तृत वर्णन वृन्दावन दास ठाकुर ने किया है।

अतएव इहाँ तार ना कैलुँ विस्तार ।

पुनरुक्ति हय, ग्रन्थ बाड़ये अपार ॥213॥

अतएव–अतएव; इहाँ–यहाँ; तार-उस घटना का; ना कैलुँ-नहीं दिया; विस्तार-विस्तार; पुनरुक्ति–दोहराने से ; हय-यह है; ग्रन्थ-ग्रंथ; बाड़ये-बढ़ जाता है; अपार-अपार।

अनुवाद

मैं इन घटनाओं का वर्णन नहीं करूँगा, क्योंकि वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा ये पहले ही वर्णित हो चुकी हैं। उसी बात को दुहराने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसे दोहराने से इस ग्रंथ का आकार बढ़कर असीम हो जायेगा।

तार मध्ये मिलिला यैछे रूप-सनातन ।

नृसिंहानन्द कैल यैछे पथेर साजन ॥ 214॥

सूत्र-मध्ये सेइ लीला आमि त' वणिलुँ ।

अतएव पुनः ताहा इहाँ ना लिखिलुँ ॥215॥

तार मध्ये-उस दौरान; मिलिला-वे मिले; यैछे-कैसे; रूप-सनातन-दो भाई रूप और सनातन; नृसिंहानन्द-नृसिंहानन्द, कैल–किया; यैछे-कैसे; पथेर साजन मार्ग की सजावट; सूत्र-मध्ये--रूपरेखा में; सेइ लीला–वे लीलाएँ; आमि-मैंने; त'–निस्सन्देह; वर्णिलँ-वर्णन की हैं; अतएव-इसलिए; पुनः–दोबारा; ताहा–उसे; इहाँ–यहाँ; ना लिखिलुँ–मैंने नहीं लिखी हैं।

अनुवाद

इन वर्णनों से पता चलता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु किस तरह रूप तथा सनातन बन्धुओं से मिले और किस तरह नृसिंहानन्द ने मार्ग सजाया। मैं पहले ही इस पुस्तक के संक्षिप्त विवरण में इनका वर्णन कर चुका हूँ, अतएव मैं उनको फिर से नहीं दुहराऊँगा।

तात्पर्य

यह जानकारी आदिलीला (अध्याय 10, श्लोक 35) तथा मध्यलीला (अध्याय 1, श्लोक 155-162 तथा 175-226) में दी हुई है।

पुनरपि प्रभु यदि 'शान्तिपुर' आइला।

रघुनाथ-दास आसि' प्रभुरे मिलिला॥ 216॥

पुनरपि दोबारा; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; यदि-जब; शान्तिपुर आइला–शान्तिपुर आये; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास; आसि'–आकर; प्रभुरे मिलिला-श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु शान्तिपुर लौटे, तब रघुनाथ दास उनसे मिलने आये।

'हिरण्य', 'गोवर्धन',—दुइ सहोदर।

सप्तग्रामे बार-लक्ष मुद्रार ईश्वर॥217॥

हिरण्य-हिरण्य; गोवर्धन-गोवर्धन; दुइ सहोदर दोनों भाई; सप्तग्रामे सप्तग्राम नामक गाँव में; बार-लक्ष–12 लाख; मुद्रार-मुद्राएँ; ईश्वर-कमाते थे।

अनुवाद

सप्तग्राम के निवासी हिरण्य तथा गोवर्धन नामक दो भाइयों की वार्षिक आय बारह लाख रुपये थी।

तात्पर्य

हिरण्य तथा गोवर्धन हुगली जिले के सप्तग्राम के निवासी थे। वास्तव में वे सप्तग्राम के नहीं, अपितु पास ही के गाँव कृष्णपुर के निवासी थे। उनका जन्म एक बड़े कायस्थ परिवार में हुआ था। यद्यपि उनकी कुल उपाधि का पता नहीं लग सका है, किन्तु यह बात पक्की है कि वे एक सम्मानित परिवार से थे। बड़े भाई का नाम हिरण्य मजुमदार और छोटे भाई का नाम गोवर्धन मजुमदार था। श्री रघुनाथ दास गोवर्धन मजुमदार के पुत्र थे। इनके कुल-पुरोहित बलराम आचार्य थे, जो हरिदास ठाकुर के प्रिय थे और इस कुल के गुरु यदुनन्दन आचार्य थे, जो वासुदेव दत्त के प्रिय पात्र थे।

सप्तग्राम कलकत्ता से बर्दवान जाने वाली पूर्वीय रेलवे पर स्थित है और आजकल का रेलवे स्टेशन त्रिशबीघा कहलाता है। उन दिनों वहाँ पर सरस्वती नामक एक बड़ी-सी नदी थी। वर्तमान त्रिशबीघा एक बड़ा बन्दरगाह है। 1592 ई. में पठानों का आक्रमण हुआ और 1632 ई. में सरस्वती नदी में भारी बाढ़ आई जिससे यह विशाल बन्दरगाह अंशतः नष्ट हो गया। कहा जाता है कि 17वीं तथा 18वीं सदी में पुर्तगाली व्यापारी अपने जहाजों से यहाँ तक आते थे। उन दिनों सप्तग्राम जो बंगाल की दक्षिणी ओर स्थित था, अत्यन्त समृद्ध एवं प्रसिद्ध था। यहाँ के व्यापारी जो यहाँ के मुख्य निवासी थे, वे सप्तग्राम सुवर्णवणिक कहलाते थे। यहाँ अनेक धनीमानी लोग थे और हिरण्य तथा गोवर्धन मजमुदार कायस्थ जाति के थे। वे भी अत्यन्त धनी थे, इसीलिए इस श्लोक में कहा गया है कि जमींदारों के रूप में उनकी वार्षिक आमदनी 12 लाख रुपये थी। इस सम्बन्ध में आदिलीला (अध्याय 11, श्लोक 41) देखना चाहिए, जिसमें उद्धारण दत्त का उल्लेख है, जो सप्तग्राम सुवर्णवणिक जाति के थे।

महैश्वर्य-युक्त दुँहे—वदान्य, ब्रह्मण्य ।

सदाचारी, सत्कुलीन, धार्मिकाग्र-गण्य ॥218॥

महा-ऐश्वर्य-युक्त-धन में अत्यन्त सम्पन्न; हे दोनों भाई; वदान्य-अत्यन्त दयालु; ब्रह्मण्य–ब्राह्मण संस्कृति को समर्पित; सत्-आचारी–सद् व्यवहार करनेवाले; सत्-कुलीन–कुलीन; धार्मिक-अग्र-गण्य-धार्मिक लोगों में अग्रणी।

अनुवाद

हिरण्य तथा गोवर्धन मजुमदार दोनों ही अत्यन्त ऐश्वर्यवान तथा वदान्य थे। वे सदाचारी और ब्राह्मण संस्कृति को समर्पित थे। वे सम्माननीय कुलीन परिवार के थे और धार्मिकों में उनका प्रमुख स्थान था।

नदीया-वासी, ब्राह्मणेर उपजीव्य-प्राय ।

अर्थ, भूमि, ग्राम दिया करेन सहाय ॥ 219॥

नदीया-वासी-नदिया के निवासी; ब्राह्मणेर-सभी ब्राह्मणों को; उपजीव्य-प्राय-आय का लगभग पूरा स्रोत; अर्थ–धन; भूमि-भूमि; ग्राम–गाँव; दिया–दान देकर; करेन सहाय-सहायता करते थे।

अनुवाद

नदिया के रहने वाले प्रायः सारे ब्राह्मण हिरण्य तथा गोवर्धन के दान पर आश्रित थे, क्योंकि वे उन्हें धन, भूमि तथा गाँव देते थे।

तात्पर्य

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु के काल में नवद्वीप अत्यन्त समृद्धशाली तथा अच्छी जनसंख्या वाला था, किन्तु सारे ब्राह्मण हिरण्य तथा गोवर्धन के दान पर निर्भर रहते थे। क्योंकि ये दोनो भाई ब्राह्मणों का बहुत आदर करते थे, अतः वे उन्हें उदार भाव से धन देते थे।

नीलाम्बर चक्रवर्ती—आराध्य दुँहार।

चक्रवर्ती करे दुँहाय 'भ्रातृ-व्यवहार ॥220॥

नीलाम्बर चक्रवर्ती-नीलाम्बर चक्रवर्ती (श्री चैतन्य महाप्रभु के नाना); आराध्य दुँहार इन दोनों के पूज्य; चक्रवर्ती–नीलाम्बर चक्रवर्ती; करे-करते थे; दुँहाय–उन दोनों से; भ्रातृ-व्यवहार-भ्राता का व्यवहार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के नाना नीलाम्बर चक्रवर्ती इन दोनों के द्वारा पूजित थे, किन्तु नीलाम्बर चक्रवर्ती उनके साथ अपने भाइयों जैसा व्यवहार करते थे।

मिश्र-पुरन्दरेर पूर्वे कर्याछेन सेवने।

अतएव प्रभु भाल जाने दुइ-जने ॥ 221॥

मिश्र-पुरन्दरेर–पुरन्दर मिश्र को (श्री चैतन्य महाप्रभु के पिता); पूर्वे-पहले; कर्याछेन सेवने–सेवा की थी; अतएव–अतएव; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; भाल-बहुत अच्छी तरह; जाने-जानते थे; दुइ-जने-दोनों भाइयों को।

अनुवाद

पहले ये दोनों भाई श्री चैतन्य महाप्रभु के पिता मिश्र पुरन्दर की काफी सेवा कर चुके थे। इसीलिए महाप्रभु इन्हें भलीभाँति जानते थे।

सेइ गोवर्धनेर पुत्र—रघुनाथ दास ।

बाल्य-काल हैते तेंहो विषये उदास ॥ 222॥

सेइ-उस; गोवर्धनेर पुत्र-गोवर्धन मजुमदार का पुत्र; रघुनाथ दास-रघुनाथ दास; बाल्यकाल हैते-बचपन से ही; तेंहो-वह; विषये उदास-भौतिक सुख की और उदासीन।

अनुवाद

रघुनाथ दास गोवर्धन मजुमदार के पुत्र थे। वे बचपन से ही भौतिक भोगों की ओर अनासक्त रहते थे।

सन्यास करि' प्रभु यबे शान्तिपुर आइला ।

तबे आसि' रघुनाथ प्रभुरे मिलिला ॥ 223 ॥

सन्यास करि'–संन्यास लेने के बाद; प्रभु–महाप्रभु; यबे-जब; शान्तिपुर आइला-शान्तिपुर गये; तबे-उस समय; आसि'-आकर; रघुनाथ–रघुनाथ दास; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; मिलिला–मिले।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु संन्यास ग्रहण करने के बाद शान्तिपुर वापस आये, तब रघुनाथ दास उनसे मिले थे।

प्रभुर चरणे पड़े प्रेमाविष्ट हञा ।

प्रभु पाद-स्पर्श कैल करुणा करिया ॥224॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणे-चरणकमलों पर; पड़े-गिर पड़े; प्रेम-आविष्ट–प्रेमावेश में आकर; हञा–होकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पाद-स्पर्श कैल-चरणों से स्पर्श किया; करुणा-करुणा; करिया–दिखाकर।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने गये, तो वे प्रेमवश महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े। महाप्रभु ने उन पर कृपा दिखाते हुए उन्हें अपने चरणों से छू दिया।

ताँर पिता सदा करे आचार्य-सेवन ।

अतएव आचार्य तारे हैला परसन्न ॥ 225 ॥

ताँर पिता-उनके पिता; सदा-सदा; करे-करते थे; आचार्य-सेवन-अद्वैत आचार्य की पूजा; अतएव आचार्य-अतएव अद्वैत आचार्य; ताँरे-उस पर; हैला परसन्न–प्रसन्न हो गये।

अनुवाद

रघुनाथ दास के पिता गोवर्धन सदैव ही अद्वैत आचार्य की अत्यधिक सेवा करते थे। फलतः अद्वैत आचार्य भी इस परिवार से अत्यन्त प्रसन्न थे।

आचार्य प्रसादे पाइल प्रभुर उच्छिष्ट-पात ।

प्रभुर चरण देखे दिन पाँच-सात ॥ 226 ॥

आचार्य-प्रसादे-अद्वैत आचार्य की दया से; पाइल-पाया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; उच्छिष्ट-पात-भोजन की जूठन; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण-चरणकमल; देखे-देखे; दिन-दिन; पाँच-सात-पाँच सात।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास वहाँ रहते, तो अद्वैत आचार्य उन्हें महाप्रभु द्वारा छोड़ा गया भोजन दिया करते थे। इस तरह रघुनाथ दास पाँच-सात दिनों तक महाप्रभु के चरणकमलों की सेवा में लगे रहे।

प्रभु ताँरे विदाय दिया गेला नीलाचल ।

तेंहो घरे आसि' हैला प्रेमेते पागल ॥ 227॥

प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे-रघुनाथ दास को; विदाय दिया–विदा की; गेला-लौट गये; नीलाचल-जगन्नाथ पुरी को; तेंहो-वे; घरे आसि'–घर लौटकर; हैला–हो गये; प्रेमेते पागल-प्रेम में पागल।

अनुवाद

रघुनाथ दास को विदा करके श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी लौट आये। घर लौटकर रघुनाथ दास प्रेम के भावावेश में पागल हो उठे।

बार बार पलाय तेंहो नीलाद्रि याइते ।

पिता तौंरे बान्धि' राखे आनि' पथ हैते ॥ 228॥

बार बार-बारम्बार; पलाय–घर छोड़ देते थे; तेंहो-वे; नीलाद्रि याइते-जगन्नाथ पुरी जाने के लिए; पिता-उनके पिता; तौंरे–उनको; बान्धि'–बांधकर; राखे-रखते थे; आनि'–वापस लाकर; पथ हैते–रास्ते से।

अनुवाद

रघुनाथ दास जगन्नाथ पुरी जाने के लिए घर से बारम्बार भागते रहते थे, किन्तु उनके पिता उन्हें बाँध रखते और वापस लाते रहते।

पञ्च पाइक तौंरे राखे रात्रि-दिने ।

चारि सेवक, दुइ ब्राह्मण रहे ताँर सने ॥229॥

पञ्च–पाँच; पाइक-चौकीदार; तौंरे-रघुनाथ दास की; राखे-रखवाली करते; रात्रि-दिने–दिन रात; चारि सेवक-चार सेवक; दुइ ब्राह्मण-पकाने के लिए दो ब्राह्मण; रहे-रहते; ताँर सने उनके साथ।

अनुवाद

उनके पिता ने उनकी रात-दिन रखवाली करने के लिए पाँच चौकीदार नियुक्त कर रखे थे। उनकी सुख-सुविधा देखने के लिए चार नौकर और उनके लिए भोजन बनाने के लिए दो ब्राह्मण नियुक्त कर रखे थे।

एकादश जन तौंरे राखे निरन्तर ।

नीलाचले याइते ना पाय, दुःखित अन्तर ॥230॥

एकादश–ग्यारह; जन-व्यक्ति; तौंरे–उनको; राखे-रखते थे; निरन्तर–निरन्तर (रातदिन); नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; याइते-जाने के लिए; ना पाय-समर्थ नहीं; दुःखित अन्तर मन में अति दुःखी थे।

अनुवाद

इस तरह ग्यारह व्यक्ति रघुनाथ दास को निरन्तर वश में रखते थे। इस तरह वे जगन्नाथ पुरी नहीं जा सके, फलतः वे अत्यन्त दुःखी रहते थे।

एबे यदि महाप्रभु 'शान्तिपुर' आइला ।

शुनिया पितारे रघुनाथ निवेदिला ॥ 231॥

एबे-अब; यदि-जब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; शान्तिपुर–शान्तिपुर; आइला–आये; शुनिया-सुनकर; पितारे-पिता को; रघुनाथ–रघुनाथ दास; निवेदिला-प्रार्थना की।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास को पता चला कि श्री चैतन्य महाप्रभु शान्तिपुर पधारे हैं, तो उन्होंने अपने पिता से निवेदन किया।

"आज्ञा देह', याजा देखि प्रभुर चरण ।

अन्यथा, ना रहे मोर शरीरे जीवन" ॥ 232॥

आज्ञा देह'–कृपया मुझे आज्ञा दें; याजा-जाकर; देखि-दर्शन करने की; प्रभुर चरण-महाप्रभु के चरणकमल; अन्यथा-अन्यथा; ना रहे-नहीं रहेगा; मोर–मेरे; शरीरे-शरीर में; जीवन-जीवन।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने अपने पिता से पूछा, "कृपा करके मुझे महाप्रभु के चरणकमलों का दर्शन करने की अनुमति दें। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे, तो मेरे प्राण इस शरीर के भीतर नहीं रह पायेंगे।"

शुनि' ताँर पिता बहु लोक-द्रव्य दिया ।

पाठाइल बलि' 'शीघ्र आसिह फिरिया' ॥ 233॥

शुनि'–सुनकर; ताँर-उनके; पिता–पिता; बह-बहुत से; लोक-द्रव्य–सेवक तथा द्रव्य; दिया-देकर; पाठाइल–भेजा; बलि' कहकर; शीघ्र-शीघ्र; आसिह-आओ; फिरिया-लौटकर।

अनुवाद

यह विनती सुनकर रघुनाथ दास के पिता सहमत हो गये। अनेक नौकर तथा सामग्री देकर पिता ने अपने पुत्र को श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के लिए यह कहकर भेजा कि वह शीघ्र ही लौट आये।

सात दिन शान्तिपुरे प्रभु-सङ्गे रहे ।

रात्रि-दिवसे एइ मनः-कथा कहे ॥234॥

सात दिन-सात दिन; शान्तिपुरे–शान्तिपुर में; प्रभु-स-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; रहे-रहे; रात्रि-दिवसे–दिन और रात; एइ-ये; मनः-कथा-अपने मन में शब्द; कहे-कहे।

अनुवाद

रघुनाथ दास शान्तिपुर में सात दिन तक श्री चैतन्य महाप्रभु के संग में रहे। उस अवधि में रात-दिन उनके मन में निम्नलिखित विचार घुमड़ते रहे।

'रक्षकेर हाते मुञि केमने छुटिब! ।

केमने प्रभुर सङ्गे नीलाचले याब?' ॥235॥

रक्षकेर हाते-चौकीदारों के हाथों से; मुञि-मैं; केमने-कैसे; छुटिब-छूटूँगा; केमने-कैसे; प्रभुर सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; प्राब-मैं जाऊँगा।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने सोचा, "मैं इन रखवालों के चंगुल से किस तरह छूट पढ़ूँगा? मैं किस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ नीलाचल जा पढ़ूँगा?"

सर्वज्ञ गौराङ्ग-प्रभु जानि' ताँर मन ।

शिक्षा-रूपे कहे ताँरे आश्वास-वचन ॥ 236॥

सर्व-ज्ञ-सबकुछ जानते थे; गौराङ्ग-प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जानि'–जान गये; ताँर-उनका; मन-मन; शिक्षा-रूपे–शिक्षा के रूप में; कहे-कहे; ताँरे-रघुनाथ दास को; आश्वास-वचन-आश्वासन के वचन।

अनुवाद

चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु सर्वज्ञ थे, अतएव वे रघुनाथ दास के मन की बात समझ गये। इसलिए महाप्रभु ने उन्हें ढाढ़स बंधाते हुए इस प्रकार उपदेश दिया।

स्थिर हञा घरे याओ, ना हओ बातुल ।

क्रमे क्रमे पाय लोक भव-सिन्धु-कूल ॥ 237॥

स्थिर हजा–स्थिर होकर; घरे याओ-घर जाओ; ना-न; हओ-होओ; बातुल-उन्मत्त; क्रमे क्रमे-धीरे धीरे; पाय-पाता है; लोक-व्यक्ति; भव-सिन्धु-कूल–भौतिक सागर के दूरस्थ तट।

अनुवाद

"धैर्य धरो और घर वापस जाओ। पागल मत बनो। तुम क्रमशः भवसागर को पार कर सकोगे।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (10.14.58) में कहा गया है :

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं

महत्पदं पुण्ययशोमुरारेः ।

भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं

पदं पदं यद् विपदां न तेषाम् ॥

यह भौतिक संसार एक विशाल सागर के समान है। यह ब्रह्मलोक से पाताल लोक तक फैला हुआ है और इस सागर में अनेक लोक या द्वीप हैं। जीव भक्ति के विषय में कुछ न जानने के कारण इस समुद्र के इर्द-गिर्द घूमता रहता है, मानो किनारे तक पहुँचने के लिए वह तैरने का प्रयास कर रहा हो। अस्तित्व टिकाये रखने के लिए हमारा संघर्ष ऐसा ही है। हर व्यक्ति भौतिक अस्तित्व के सागर से बाहर निकलने के लिए प्रयत्नशील रहता है। किन्तु व्यक्ति तुरन्त ही किनारे तक नहीं पहुँच पाता। वह प्रयास करने पर श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से सागर को पार कर सकता है। वह भले ही समुद्र पार करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो, लेकिन पागल की तरह काम करके सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। उसे

अत्यन्त धैर्यपूर्वक तथा बुद्धिपूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु या उनके प्रतिनिधि के आदेशों के अनुसार समुद्र पार करना होगा। तब वह किसी न किसी दिन किनारे पर पहुँच जायेगा और भगवद्धाम वापस जा सकेगा।

मर्कट-वैराग्य ना कर लोक देखाञा ।

यथा-योग्य विषय भुञ्ज' अनासक्त हञा ॥ 238॥

मर्कट-वैराग्य-वानर वैराग्य; ना कर-न करो; लोक-लोगों को; देखाञा–दिखाने के लिए; ग्रथा-योग्य-यथा योग्य; विषय- भौतिक विषयों का; भुञ्ज'–भोग करो; अनासक्त-अनासक्त; हञा–होकर।

अनुवाद

"तुम दिखावटी भक्त मत बनो और मिथ्या वैरागी मत बनो। अभी तुम उपयुक्त ढंग से भौतिक जगत् का भोग करो, किन्तु इसमें आसक्त मत होना।"

तात्पर्य

मर्कट-वैराग्य मिथ्या वैराग्य का सूचक है और यह इस श्लोक का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इस शब्द की टीका करते हुए इंगित करते हैं कि बन्दर वस्त्र ग्रहण न करके जंगल में नंगे रहकर वैराग्य का दिखावा करते हैं। इस तरह वे अपने आपको वैरागी मानते हैं, किन्तु वास्तव में वे दर्जनों बन्दरियों के साथ विषय-भोग करने में लगे रहते हैं। ऐसा वैराग्य मर्कट-वैराग्य कहलाता है। जब तक मनुष्य भौतिक कर्म से उदासीन नहीं हो जाता और इसे आध्यात्मिक उन्नति में बाधक नहीं मानने लगता, तब तक वह वास्तव में वैराग्य प्राप्त नहीं कर सकता। वैराग्य को फल्गु–क्षणिक या नश्वर–नहीं होना चाहिए, अपितु पूरे जीवन भर चलना चाहिए। क्षणिक वैराग्य या मर्कट-वैराग्य श्मशान में अनुभव किये जाने वाले वैराग्य के समान है। जब मनुष्य शव को मरघट ले जाता है, तो वह कभी-कभी सोचता है, "शरीर की यही अन्तिम गति है। तो फिर मैं रात-दिन कठोर श्रम क्यों करता हूँ?" मरघट जाते समय ऐसे विचार स्वभावतः हर व्यक्ति के मन में उठते हैं, किन्तु श्मशान से लौटते ही वह इन्द्रिय-भोग के लिए भौतिक कार्यों में फिर से लग जाता है। यह श्मशान-वैराग्य या मर्कट-वैराग्य कहलाता है।

भगवान् की सेवा करने के उद्देश्य से आवश्यक वस्तुएँ स्वीकार करनी चाहिए। इस तरह रहने पर मनुष्य वास्तविक वैरागी बन सकता है। भक्तिरसामृतसिंधु (1.2.108) में कहा गया है :

यावता स्यात् स्वनिर्वाहः स्वीकुर्यात् तावदर्थवित् ।

आधिक्ये न्यूनतायां च च्यवते परमार्थतः ॥

“जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं को स्वीकार करनी चाहिए, किन्तु व्यर्थ ही आवश्यकताओं को बढ़ानी नहीं चाहिए। न ही उनमें व्यर्थ ही कटौती करनी चाहिए। अध्यात्म में प्रगति करने के लिए जितना आवश्यक हो उतना स्वीकार करना चाहिए।”

श्री जीव गोस्वामी ने दुर्गम सङ्गमनी में स्वनिर्वाहः शब्द की टीका स्व-स्वभक्तिनिर्वाहः के रूप में की है। अनुभवी भक्त केवल उन्हीं भौतिक वस्तुओं को स्वीकार करेगा, जिनसे भगवान् की सेवा करने में सहायता मिल सके। भक्तिरसामृतसिंधु (1.2.256) में मर्कट-वैराग्य अथवा फल्गु-वैराग्य की व्याख्या इस प्रकार की गई है :

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः ।

मुमुक्षिभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते ॥

“जब मुक्ति पाने के लिए उत्सुक व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सम्बन्धित वस्तुओं को भौतिक समझकर त्याग देते हैं, तो उनका वैराग्य अपूर्ण कहलाता है।” भगवान् की सेवा करने के लिए जो भी उपयुक्त हो, उसे स्वीकार करना चाहिए। भौतिक वस्तु कहकर उसका बहिष्कार नहीं करना चाहिए।” युक्त-वैराग्य की व्याख्या इस प्रकार की गई है :

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः ।

निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते ॥

“वस्तुओं को भगवान् की सेवा के लिए स्वीकार करनी चाहिए, न कि निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए। यदि किसी वस्तु को आसक्तिरहित होकर स्वीकार की जाए और इसलिए स्वीकार की जाए कि वह कृष्ण से सम्बन्धित है, तो वह वैराग्य युक्त-वैराग्य कहलाता है।” चूँकि कृष्ण परम सत्य हैं, अतएव जो भी वस्तु उनकी सेवा के लिए स्वीकार की जाती है, वह भी परम सत्य होती है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मर्कट-वैराग्य शब्द का प्रयोग उन तथाकथित वैष्णवों को लक्षित करके किया है, जो श्रील रूप गोस्वामी का अनुकरण करने के प्रयास में लँगोट पहनते हैं। ऐसे लोग माला की झोली लिए रहते हैं और जप करते हैं, किन्तु मन में वे सदैव कामिनी और कंचन प्राप्त करने की भावना छिपाये रहते हैं। लोगों से छिपकर ये मर्कट-

वैरागी स्त्रियाँ रखते हैं, किन्तु बाहर से अपने आपको वैरागी दिखलाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ऐसे मर्कट-वैरागियों या छद्म वैष्णवों के सदा विरुद्ध रहते थे।

अन्तरे निष्ठा कर, बाह्ये लोक-व्यवहार।

अचिरात्कृष्ण तोमाय करिबे उद्धार ॥239॥

अन्तरे-हृदय में; निष्ठा कर–दृढ़ श्रद्धा रखो; बाह्य-बाहर से; लोक-व्यवहार-लोक व्यवहार; अचिरात्-बहुत जल्दी; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तोमाय तुम्हारा; करिबे-करेंगे; उद्धार-उद्धार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "तुम्हें चाहिए कि अन्तर से श्रद्धावान बने रहो, किन्तु बाहर से सामान्य व्यक्ति जैसा व्यवहार करो। इस तरह कृष्ण जल्द ही प्रसन्न होंगे और तुम्हें माया के पाश से छुड़ा लेंगे।"

वृन्दावन देखि' यबे आसिब नीलाचले।

तबे तुमि आमा-पाश आसिह कोन छले ॥ 240॥

वृन्दावन देखि'-वृन्दावन देखने के पश्चात्; यबे-जब; आसिब-मैं लौटुंगा; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; तबे-उस समय; तुमि-तुम; आमा-पाश–मेरे पास; आसिह-आओ; कोन छले-किसी बहाने से।

अनुवाद

"जब मैं वृन्दावन की मुलाकात लेने के बाद लौट आऊँ, तब तुम मुझसे नीलाचल, जगन्नाथ पुरी में मिल सकते हो। तब तक तुम निकल भागने की कोई दूसरी युक्ति सोच सकते हो।"

से छल से-काले कृष्ण स्फुराबे तोमारे।

कृष्ण-कृपा याँरे, तारे के राखिते पारे ॥ 241॥

से छल-वह छल; से-काले-उस समय; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; स्फुराबे-दिखाएंगे; तोमारे-तुम्हें; कृष्ण-कृपा-कृष्ण की कृपा; याँरे-जिस पर; तारे-उसको; के-कौन; राखिते-रखने में; पारे-सक्षम है।

अनुवाद

"उस समय तुम्हें कौन-से उपायों को काम में लाना पड़ेगा, यह तो कृष्ण ही बतलायेंगे। यदि किसी पर कृष्ण की कृपा हो, तो उसे कोई रोक नहीं सकता।"

तात्पर्य

यद्यपि श्रील रघुनाथ दास श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ जाने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे, किन्तु महाप्रभु ने उन्हें भगवान् कृष्ण की कृपा होने तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा। उन्होंने रघुनाथ दास को परामर्श दिया कि वे अपने हृदय में कृष्णभावनामृत को सुदृढ़ बनाये रखें और बाहर से सामान्य व्यक्ति जैसा व्यवहार करें। कृष्णभावनामृत में उन्नत हर व्यक्ति के लिए यही युक्ति है। मनुष्य मानव-समाज में सामान्य व्यक्ति की तरह रह सकता है, किन्तु कृष्ण को तुष्ट करना तथा उनकी महिमा का प्रचार करना ही उसका व्यापार होना चाहिए। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को भौतिक वस्तुओं में मग्न नहीं होना चाहिए, क्योंकि उसका एकमात्र कार्य तो भगवद्भक्ति है। जो इस तरह कार्य में लगा रहेगा, उस पर कृष्ण अवश्य ही कृपा करेंगे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ दास को सलाह दी- यथायोग्य विषय भुञ्ज 'अनासक्त हजा। वही बात अन्तरे निष्ठा कर, बाह्य लोकव्यवहार में भी कही गई है। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य को अपने अन्तर में कृष्ण की सेवा करने के अतिरिक्त कोई अन्य भाव नहीं लाना चाहिए। ऐसे ही संकल्प से कृष्णभावनामृत का अनुशीलन किया जा सकता है। इसकी पुष्टि भक्तिरसामृत सिन्धु (1.2.200) से हो जाती है :

लौकिकी वैदिकी वापि या क्रिया क्रियते मुने ।

हरिसेवानुकूलैव सा कार्या भक्तिमिच्छता ॥

भक्त एक सामान्य मनुष्य की तरह या वैदिक आदेशों के कट्टर अनुयायी के रूप में काम कर सकता है। हर हालत में वह जो भी करता है, भक्ति की प्रगति के लिए करता है, क्योंकि वह कृष्णभावनामय होता है।

एत कहि' महाप्रभु ताँरे विदाय दिल ।

घरे आसि' महाप्रभुर शिक्षा आचरिल ॥ 242॥

एत कहि'-यह कहकर; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे-रघुनाथ दास को; विदाय दिल-विदा किया; घरे आसि'–घर लौटकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; शिक्षा-शिक्षा का; आचरिल-अभ्यास किया।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ दास को विदा किया। वे अपने घर लौट गये और महाप्रभु द्वारा बताई गई विधि के अनुसार कार्य करने लगे।

बाह्य वैराग्य, बातुलता सकल छाड़िया ।

यथा-योग्य कार्य करे अनासक्त हञा ॥ 243॥

बाह्य वैराग्य-बाह्य वैराग्य; वातुलता-पागलपन; सकल-सब; छाड़िया-त्यागकर; यथा-योग्य–यथायोग्य; कार्य-कार्य; करे-किया; अनासक्त हञा–अनासक्त होकर।

अनुवाद

घर आने पर रघुनाथ दास ने सारा पागलपन तथा बाह्य छद्म वैराग्य छोड़ दिया और वे गृहस्थी के कार्यों में बिना आसक्ति के रहने लगे।

देखि' ताँर पिता-माता बड़ सुख पाइल ।

ताँहार आवरण किछु शिथिल हइल ॥ 244॥

देखि'–देखकर; ताँर-उसके; पिता-माता-पिता माता ने; बड़-अत्यधिक; सुख-सुख; पाइल-पाया; ताँहार आवरण-उन पर कड़ी दृष्टि; किछु-कुछ; शिथिल हइल-ढीली कर दी।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास के माता-पिता ने देखा कि उनका पुत्र गृहस्थ की तरह रह रहा है, तो वे अत्यन्त सुखी हुए। फलस्वरूप उन्होंने चौकसी में ढील कर दी।

तात्पर्य

जब रघुनाथ दास के पिता तथा माता ने देखा कि उनका पुत्र पागल जैसा व्यवहार नहीं कर रहा है और जिम्मेदारी के साथ अपना कर्तव्य निभाता है, तो वे अत्यन्त सुखी हुए। वे ग्यारहों व्यक्ति–पाँच रखवाले, 4 निजी नौकर तथा 2 ब्राह्मण, जो उसकी रखवाली में रहते थे, चौकसी में ढिलाई बरतने लगे। जब रघुनाथ दास गृहस्थी के कार्य करने लगे, तो उनके माता-पिता ने रखवालों की संख्या घटा दी।

इहाँ प्रभु एकत्र करि' सब भक्त-गण ।

अद्वैत-नित्यानन्दादि यत भक्तजन ॥ 245 ॥

सबा आलिङ्गन करि' कहेन गोसाञि ।

सबे आज्ञा देह'—आमि नीलाचले याइ ॥ 246 ॥

इहाँ–यहाँ (शान्तिपुर में); प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; एकत्र करि'–एक जगह इकट्ठे करके; सब भक्त-गण-सब भक्तों को; अद्वैत-नित्यानन्द-आदि-अद्वैत आचार्य और नित्यानन्द प्रभु आदि; यत भक्त-जन-सभी भक्तों; सबा आलिङ्गन करि'-सबका आलिंगन करके; कहेन गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा ; सबे-तुम सब; आज्ञा देह'–मुझे आज्ञा दो; आमि-मैं; नीलाचले-नीलाचल, जगन्नाथ पुरी; याइ–जा सकूँ।

अनुवाद

तभी शान्तिपुर में श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने सारे भक्तों-अद्वैत आचार्य, श्री नित्यानन्द प्रभु आदि को एकत्र किया और उन सबका आलिंगन करने के बाद उनसे जगन्नाथ पुरी जाने की अनुमति माँगी।

सबार सहित इहाँ आमार हइल मिलन ।

ए वर्ष 'नीलाद्रि' केह ना करिह गमन ॥ 247॥

सबार सहित सबके साथ; इहाँ–यहाँ; आमार-मेरा; हइल-हो गया; मिलन-मिलन; ए वर्ष-इस वर्ष; नीलाद्रि-जगन्नाथ पुरी; केह-तुमसे कोई; ना–न; करिह गमन-जाओ।

अनुवाद

चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु शान्तिपुर में सबसे मिल चुके थे, अतः उन्होंने सारे भक्तों से विनती की कि वे इस वर्ष जगन्नाथ पुरी न आयें।

ताहाँ हैते अवश्य आमि 'वृन्दावन' याब ।

सबे आज्ञा देह', तबे निर्विघ्ने आसिब ॥ 248॥

ताहाँ हैते-वहाँ से; अवश्य-अवश्य; आमि-मैं; वृन्दावन याब-वृन्दावन जाऊँगा; सबे-आप सब; आज्ञा देह'–मुझे आज्ञा दो; तबे-तब; निर्विघ्ने–बिना रूकावट के; आसिब-मैं लौटकर आऊँगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं जगन्नाथ पुरी से वृन्दावन अवश्य जाऊँगा। यदि आप सभी लोग मुझे अनुमति दें, तो मैं बिना किसी कठिनाई के यहाँ फिर आ जाऊँगा।"

मातार चरणे धरि' बहु विनय करिल ।

वृन्दावन याइते ताँर आज्ञा लइल ॥ 249॥

मातार–शती माता के; चरणे-चरण; धरि'-पकड़कर; बह विनय करिल-विनम्रता से निवेदन किया; वृन्दावन याइते-वृन्दावन जाने के लिए; ताँर–उनकी; आज्ञा-आज्ञा; लइल-ली।

अनुवाद

महाप्रभु ने अपनी माता के चरण पकड़कर उनसे विनयपूर्वक अनुमति माँगी। उन्होंने महाप्रभु को वृन्दावन जाने की अनुमति दे दी।

तबे नवद्वीपे ताँरे दिल पाठाञा ।

नीलाद्रि चलिला सङ्गे भक्त-गण लञा ॥ 250॥

तबे-इसके बाद; नवद्वीपे-नवद्वीप को; ताँरे–उनको; दिल पाठाञा-वापस भेज दिया; नीलाद्रि–जगन्नाथ पुरी को; चलिला–प्रस्थान किया; सङ्गे-अपने साथ; भक्त-गण लञा-सभी भक्तों को लेकर।

अनुवाद

श्रीमती शचीदेवी को नवद्वीप वापस भेज दिया गया और महाप्रभु अपने भक्तों सहित नीलाद्रि अर्थात् जगन्नाथ पुरी के लिए रवाना हो गये।

सेइ सब लोक पथे करेन सेवन ।

सुखे नीलाचल आइला शचीर नन्दन ॥251॥

सेइ सब लोक-उन सब लोगों ने; पंथे-सड़क पर; करेन सेवन-सेवा की; सुखे-अत्यन्त सुख में; नीलाचल-जगन्नाथ पुरी को; आइला–लौट आये; शचीर नन्दन-माता शची का पुत्र।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ जाने वाले भक्तों ने नीलाचल जगन्नाथ पुरी के रास्ते-भर उनकी सभी प्रकार से सेवा की। इस तरह महाप्रभु परम प्रसन्नतापूर्वक लौट आये।

प्रभु आसि' जगन्नाथ दरशन कैल ।

'महाप्रभु आइला'–ग्रामे कोलाहल हैल ॥ 252॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; आसि'-लौटकर; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ का; दरशन-दर्शन; कैल–किया; महाप्रभु आइला–श्री चैतन्य महाप्रभु वापस आये हैं; ग्रामे-नगर में; कोलाहल हैल–महा कोलाहल हो गया (समाचार पूरे नगर में फैल गयो)।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी आकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् के मन्दिर का दर्शन किया। फिर तो सारे नगर में यह समाचार फैल गया कि महाप्रभु लौट आये हैं।

आनन्दित भक्त-गण आसिया मिलिला ।

प्रेम-आलिङ्गन प्रभु सबारे करिला ॥ 253 ॥

आनन्दित-अति प्रसन्न; भक्त-गण-सभी भक्त; आसिया-आ गये; मिलिला-मिले; प्रेम-आलिङ्गन-प्रेम से आलिंगन किया; प्रभु–महाप्रभु ने; सबारे-सभी भक्तों का; करिला-किया।

अनुवाद

तब सारे भक्तों ने आकर परम सुखपूर्वक महाप्रभु से भेंट की। महाप्रभु ने भी उन सबका एक-एक करके प्रेमपूर्वक आलिंगन किया।

काशी-मिश्र, रामानन्द, प्रद्युम्न, सार्वभौम ।

वाणीनाथ, शिखि-आदि यत भक्त-गण ॥ 254॥

काशी-मिश्र-काशी मिश्र; रामानन्द-रामानन्द राय; प्रद्युम्न–प्रद्युम्न; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; वाणीनाथ–वाणीनाथ; शिखि-आदि-शिखि माहिति आदि; यत भक्त-गण-सभी भक्त।

अनुवाद

काशी मिश्र, रामानन्द राय, प्रद्युम्न, सार्वभौम भट्टाचार्य, वाणीनाथ राय, शिखि माहिति तथा अन्य सारे भक्त भी महाप्रभु से मिले।

गदाधर-पण्डित आसि' प्रभुरे मिलिला ।

सबार अग्रेते प्रभु कहिते लागिला ॥ 255॥

गदाधर-पण्डित-गदाधर पण्डित; आसि-आकर; प्रभुरे मिलिला–महाप्रभु से मिले; सबार अग्रेते-सभी भक्तों के समक्ष; प्रभु–महाप्रभु; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

गदाधर पण्डित भी आये और महाप्रभु से मिले। तब महाप्रभु सभी भक्तों के समक्ष इस प्रकार बोले।

'वृन्दावन याब आमि गौड़-देश दिया ।

निज-मातार, गङ्गार चरण देखिया ॥ 256॥

वृन्दावन याब-वृन्दावन को जाऊँगा; आमिमैं; गौड़-देश दिया–बंगाल से होकर; निज-मातार-अपनी माता के; गङ्गार-गंगा नदी के; चरण-चरणों के; देखिया-दर्शन के लिए।

अनुवाद

"मैंने अपनी माता तथा गंगा नदी का दर्शन करने के लिए ही बंगाल से होते हुए वृन्दावन जाने का संकल्प किया था।"

एत मते करि' कैलुँ गौड़ेरे गमन ।

सहस्त्रेक सङ्गे हैल निज-भक्त-गण ॥ 257॥

एत-ऐसा; मते–निर्णय; करि'-करके; कैलुँ-मैंने किया; गौडेरे-बंगाल को; गमन प्रस्थान; सहस्त्रेक-हजारों लोग; सङ्गे-मेरे साथ; हैल–हो गये; निज-भक्त-गण-मेरे अपने भक्त।

अनुवाद

"इस तरह मैं बंगाल गया, लेकिन हजारों भक्त मेरे साथ चल पड़े।"

लक्ष लक्ष लोक आइसे कौतुक देखिते ।

लोकेर सङ्गट्टे पथ ना पारि चलिते ॥ 258 ॥

लक्ष लक्ष लोक-कई लाख लोग; आइसे–आये; कौतुक-उत्सुकता के कारण; देखिते-मुझे देखने; लोकेर सङ्घट्टे-इतने अधिक लोगों के इकट्ठा होने के कारण; पथ-सड़क; ना पारि-मैं अक्षम हो गया; चलिते-उनके बीच जाने से।

अनुवाद

"लाखों लोग उत्सुकतावश मुझे देखने आये और ऐसी भीड़ हुई कि रास्ते में मुक्त होकर चलना भी कठिन हो गया।"

यथा रहि, तथा घर-प्राचीर हय चूर्ण ।

यथा नेत्र पड़े तथा लोक देखि पूर्ण ॥ 259॥

यथा रहि-मैं जहाँ भी ठहरा; तथा-वहाँ; घर-प्राचीर-मकान और सीमा की दीवारें; हय–हो गये; चूर्ण टूट गये; यथा-जहाँ भी; नेत्र–दृष्टि; पड़े-पड़ती; तथा-वहाँ; लोक-लोगों से; देखि-देखा; पूर्ण-भरा हुआ।

अनुवाद

"भीड़ इतनी बढ़ गई कि मैं जिस घर में रुका था, वह घर तथा उसकी चाहारदीवारी टूट-फूट गई और मैं जिधर देखता उधर विशाल जनसमूह ही दिखाई पड़ता था।"

कटे-सृष्ट्ये करि' गेलाङरामकेलि-ग्राम ।

आमार ठाञि आइला 'रूप' 'सनातन' नाम ॥ 260 ॥

कष्टे-सृष्ट्ये-अत्यन्त कठिनाई से; करि'-करके; गेलाङ-मैं गया; रामकेलि-ग्राम-रामकेलि गाँव में; आमार ठाञि—मेरे समक्ष; आइला–आये; रूप सनातन नाम-रूप और सनातन नाम के दो भाई।

अनुवाद

"मैं बड़ी मुश्किल से रामकेलि गाँव गया, जहाँ मुझे रूप तथा सनातन दो भाई मिले।

दुई भाइ—भक्त-राज, कृष्ण-कृपा-पात्र ।

व्यवहारे—राज-मन्त्री हय राज-पात्र ॥ 261॥

दुइ भाइ-दोनों भाई; भक्त-राज-भक्त शिरोमणी; कृष्ण-कृपा-पात्र-कृष्ण कृपा के योग्य अधिकारी; व्यवहारे-व्यवहार में; राज-मन्त्री–राजमंत्री, सरकार के मंत्री; हय-थे; राज-पात्र-सरकारी अफसर।

अनुवाद

"ये दोनों भाई महान् भक्त तथा कृष्ण-कृपा के समुचित पात्र हैं। किन्तु सामान्य तौर पर वे हैं सरकारी अधिकारी-राजा के मन्त्री।"

विद्या-भक्ति-बुद्धि-बले परम प्रवीण ।

तबु आपनाके माने तृण हैते हीन ॥ 262 ॥

विद्या–विद्या; भक्ति-भक्ति; बुद्धि–और बुद्धि के; बले-बल पर; परम-परम; प्रवीण-दक्ष; तबु-फिर भी; आपनाके–स्वयं को; माने-वे सोचते थे; तृण-एक तिनके; हैते–से भी; हीन-नीच।

अनुवाद

"श्रील रूप तथा सनातन शिक्षा, भक्ति, बुद्धि तथा बल में अत्यन्त अनुभवी हैं, फिर भी वे अपने आपको सड़क के तिनके से भी नीच मानते हैं।"

ताँर दैन्य देखि' शुनि' पाषाण विदरे ।

आमि तुष्ट हञा तबे कहिलुँ दोंहारे ॥ 263 ॥

"उत्तम हञा हीन करि' मानह आपनारे ।

अचिरे करिबे कृष्ण तोमार उद्धारे” ॥ 264॥

ताँर दैन्य देखि’–उनकी विनम्रता देखकर; शुनि’–अथवा उनके विषय में सुनकर; पाषाण-पत्थर; विदरे-पिघल जाता था; आमि–मैंने; तुष्ट हन्ना-बहुत प्रसन्न होकर; तबे-तब; कहिलँ दोंहारे-उन दोनों से कहा; उत्तम हजा–हर दृष्टि से वस्तुतः उत्तम होने के कारण; हीन-हीन, विनीत; करि’–मानकर; मानह-तुम समझते हो; आपनारे-अपने आपको; अचिरे–अति शीघ्र; करिबे-करेंगे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तोमार-तुम्हारा; उद्धारे-उद्धार।

अनुवाद

“निस्सन्देह, इन दोनों भाइयों के दैन्य से पत्थर भी पिघल सकता था। उनके आचरण से तुष्ट होकर मैंने उनसे कहा, ‘यद्यपि तुम दोनों उच्च कोटि के हो, किन्तु अपने आपको निम्न मानते हो; इसीलिए कृष्ण शीघ्र ही तुम दोनों का उद्धार करेंगे।”

तात्पर्य

शुद्ध भक्त के गुण ही ऐसे होते हैं। भौतिक दृष्टि से कोई कितना ही ऐश्वर्यवान, अनुभवी, प्रभावशाली तथा शिक्षित क्यों न हो, किन्तु यदि वह अपने आपको रास्ते में पड़े तृण से भी हीन मानता है, तो श्री चैतन्य महाप्रभु या भगवान् कृष्ण उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। महाराज प्रतापरुद्र ने राजा होते हुए भी हाथ में झाड़ लेकर जगन्नाथ रथ के लिए मार्ग बुहारा। इस विनीत सेवा के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु राजा पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और इसीलिए उन्होंने राजा का आलिंगन किया था। श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों के अनुसार भक्त को भौतिक शक्ति पाकर कभी भी फूल नहीं जाना चाहिए। उसे यह जान लेना चाहिए कि भौतिक शक्ति पूर्व पुण्य कर्मों का फल होता है, फलत: वह नश्वर होता है। किसी भी क्षण मनुष्य का सारा भौतिक ऐश्वर्य समाप्त हो सकता है, इसीलिए एक भक्त कभी भी ऐसे ऐश्वर्य पर गर्वित नहीं होता। वह सदैव विनीत तथा दीन बना रहता है और अपने आपको तृण के समान हीन मानता है। इसके कारण भक्तगण भगवद्धाम वापस जाने के पात्र होते हैं।

एत कहि’ आमि यबे विदाय ताँरे दिल ।

गमन-काले सनातन ‘प्रहेली’ कहिल ॥ 265 ॥

याँर सड़े हय एइ लोक लक्ष कोटि ।

वृन्दावन याइबार एइ नहे परिपाटी ॥266 ॥

एत कहि'-इस प्रकार कहकर; आमि-मैंने; यबे-जब; विदाय–विदा; ताँरे-उनको; दिल–दी; गमन-काले-जाते समय; सनातन-सनातन ने; प्रहेली-समस्या, पहेली, उलझन; कहिल-कही; याँर सङ्गे–जिस के साथ; हय-है; एइ–यह; लोक-लोगों की भीड़; लक्ष कोटि-लाखों; वृन्दावन-वृन्दावन धाम; याइबार-जाने के लिए; एइ–यह; नहे-नहीं; परिपाटी-रीति।

अनुवाद

"उनसे ऐसा कहकर मैंने उनसे विदा ली। जब मैं विदा हो रहा था, तो सनातन ने मुझसे कहा, 'जब हजारो लोगों की भीड़ किसी का अनुसरण कर रही हो, तब इस प्रकार से वृन्दावन जाना उचित नहीं है।"

तबु आमि शुनिलुँ मात्र, ना कैलुँ अवधान ।

प्राते चलि' आइलाङ 'कानाइर नाटशाला'-ग्राम ॥ 267॥

तबु–फिर भी; आमि-मैंने; शुनिलुँ–सुना; मात्र मात्र; ना-नहीं; कैलुँ–दिया; अवधान-कोई ध्यान; प्राते-प्रातः काल; चलि' आइलाङ–मैं चला गया; कानाइर नाटशाला-कानाई नाटशाला; ग्राम–गाँव।

अनुवाद

"यद्यपि मैंने यह सुना, किन्तु उस पर ध्यान नहीं दिया, और प्रातःकाल मैं कानाइ नाटशाला गया।

रात्रि-काले मने आमि विचार करिल ।

सनातन मोरे किबा 'प्रहेली' कहिल ॥ 268॥

रात्रि-काले-रात को; मने-मन में; आमि-मैंने; विचार करिल-विचार किया; सनातन-सनातन ने; मोरे-मुझे; किबा-क्या; प्रहेली-पहेली; कहिल-कही थी।

अनुवाद

किन्तु रात में मैंने सनातन के कहे हुए पर विचार किया।

भालत' कहिल,—मोर एत लोक सङ्गे ।

लोक देखि' कहिबे मोरे— 'एइ एक ढङ्गे' ॥ 269 ॥

भालत' कहिल-उसने बहुत अच्छा कहा है; मोर-मुझे; एत-इतनी; लोक-भीड़ के; सङ्गे–साथ; लोक-लोग; देखि'–देखकर; कहिबे मोरे-मेरे बारे में; एइ–यह; एक–एक और; ढङ्गे-ढोंगी।

अनुवाद

मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि सनातन ने बहुत ठीक कहा था। मेरे साथ बहुत बड़ी भीड़ थी, अतएव इतने सारे लोगों को देखकर लोग निश्चय ही मेरी निन्दा करेंगे कि 'यह एक और धूर्त है।'

'दुर्लभ' 'दुर्गम' सेइ 'निर्जन' वृन्दावन ।

एकाकी याइब, किबा सङ्गे एक-जन ॥ 270॥

दुर्लभ-दुलर्भ; दुर्गम–कठिन; सेइ-वह; निर्जन-एकान्त; वृन्दावन-वृन्दावन; एकाकी–अकेले; याइब मैं जाऊँगा; किबा–अथवा; सङ्गे–मेरे साथ; एक-जन-मात्र एक व्यक्ति।

अनुवाद

"तब मैं सोचने लगा कि वृन्दावन तो एकान्त स्थान है। यह दुर्गम और दुर्लभ है। इसलिए मैंने अकेले या फिर बहुत हुआ तो अपने साथ केवल एक व्यक्ति लेकर जाने का निश्चय किया है।"

माधवेन्द्र-पुरी तथा गेला 'एकेश्वरे' ।

दुग्ध-दान-च्छले कृष्ण साक्षात्दल ताँरे ॥ 271॥

माधवेन्द्र-पुरी-माधवेन्द्र पुरी; तथा-वहाँ; गेला-गये; एकेश्वरे-अकेले; दुग्ध-दान-छले-दान में दूध देने के बहाने; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; साक्षात् साक्षात्; दिल-दिया; ताँरे–उनको।

अनुवाद

"माधवेन्द्र पुरी अकेले ही वृन्दावन गये थे और कृष्ण ने दूध देने के बहाने उन्हें दर्शन दिया था।"

बादियार बाजि पाति' चलिलाङ तथारे ।

बहु-सङ्गे वृन्दावन गमन ना करे ॥ 272॥

बादियार–एक खानाबदोश का; बाजि-जादू; पाति'–दिखाते हुए; चलिलाङ–मैं गया; तथारे-वहाँ; बहु-सङ्गे-बहुत लोगों के साथ; वृन्दावन-वृन्दावन धाम को; गमन-जाना; ना करे–नहीं करता।

अनुवाद

"तब मैं समझ पाया कि मैं खेल दिखाने वाले जादूगर की तरह वृन्दावन जा रहा हूँ और यह निश्चय ही ठीक नहीं है। किसी को भी इतने सारे लोगों के साथ वृन्दावन नहीं जाना चाहिए।"

एका याइब, किबा सङ्गे भृत्य एक-जन ।

तबे से शोभय वृन्दावनेर गमन ॥273॥

एका याइब मैं अकेला जाऊँगा; किबा-अथवा; सङ्गे–मेरे साथ; भृत्य-सेवक; एक-जन-एक व्यक्ति; तबे—उस प्रकार; से-वह; शोभय–शोभा देता है; वृन्दावनेर गमन-वृन्दावन को जाना।

अनुवाद

"इसीलिए मैंने अकेले या अधिक से अधिक एक नौकर के साथ वृन्दावन जाने का निश्चय किया है। इस तरह मेरी वृन्दावन यात्रा बहुत सुन्दर होगी।"

वृन्दावन याब काहाँ 'एकाकी' हञा! ।

सैन्य सङ्गे चलियाछि ढाक बाजाञा! ॥ 274॥

वृन्दावन याब–मुझे वृन्दावन जाना चाहिए; काहाँ–जबकि; एकाकी हञा-अकेले; सैन्य–सिपाहियों; सङ्गे–के साथ; चलियाछि-मैं जा रहा हूँ; ढाक बाजाञा-ढोल बजाते हुए।

अनुवाद

"मैंने सोचा, मैं वृन्दावन अकेले न जाकर सैनिकों को साथ लिए और ढोल बजाते जा रहा हूँ।"

धिक्, धिकापनाके बलि' हइलाङअस्थिर ।

निवृत्त हञा पुनः आइलाङगङ्गा-तीर ॥ 275 ॥

धिक् धिक्-धिक् धिक्, धिक्कार; आपनाके–मुझे; बलि'–कहकर; हइलाङ–मैं हो गया; अस्थिर–अस्थिर, विक्षिप्त; निवृत्त हञा–ऐसा कार्य छोड़कर; पुनः–पुनः; आइलाङ–मैं लौट आया; गङ्गा-तीर-गंगा तट पर।

अनुवाद

"इसलिए मैंने अपने आपको धिक्कारा और अत्यन्त उत्तेजित होकर मैं गंगा-तीर लौट आया।"

भक्त-गणे राखिया आइनु निज निज स्थाने ।

आमा-सङ्गे आइला सबे पाँच-छय जने ॥ 276 ॥

भक्त-गणे-भक्तगण; राखिया–छोड़कर; आइनु-मैं आया; निज निज स्थाने-अपने अपने स्थान पर; आमा-सङ्गे-मेरे साथ; आइला–आये; सबे–मात्र; पाँच-छय जने–पाँच छः व्यक्ति।

अनुवाद

"तब मैंने सारे भक्तों को वहाँ छोड़ दिया और अपने साथ केवल पाँच-छः व्यक्तियों को रखा।"

निर्विघ्ने एबे कैछे याइब वृन्दावने ।

सबे मेलि' युक्ति देह' हञा परसन्ने ॥ 277॥

निर्विघ्ने–बिना रूकावट के; एबे-अब; कैछे-कैसे; याइब मैं जाऊँगा; वृन्दावने-वृन्दावन को; सबे मेलि'-सब मिलकर; युक्ति देह'–परामर्श दो; हञा परसन्ने-मुझ पर प्रसन्न होकर।

अनुवाद

"अब मैं चाहता हूँ कि तुम सब लोग मुझ पर प्रसन्न होओ और मुझे अच्छी सलाह दो। मुझे बताओ कि मैं किस तरह निर्विघ्न होकर वृन्दावन जा सकता हूँ।"

गदाधरे छाड़ि' गेनु, इँहो दुःख पाइल ।

सेइ हेतु वृन्दावन याइते नारिल ॥ 278॥

गदाधरे छाड़ि'–गदाधर पण्डित को छोड़कर; गेनु-मैं गया; इँहो-गदाधर पण्डित को; दुःख पाइल-दुःख हुआ; सेइ हेतु-उसी कारण; वृन्दावन-वृन्दावन धाम को; याइते नारिल-मैं न जा सका।

अनुवाद

"मैंने यहाँ गदाधर पण्डित को छोड़ दिया, तो वह अत्यन्त दु:खी हुआ। इसलिए मैं वृन्दावन नहीं जा सका।"

तबे गदाधर-पण्डित प्रेमाविष्ट हञा ।

प्रभु-पद धरि' कहे विनय करिया ॥ 279॥

तबे-तब; गदाधर पण्डित–गदाधर पण्डित; प्रेम-आविष्ट हञा–प्रेमावेश में आकर; प्रभु-पद धरि'–महाप्रभु के चरणकमल पकड़कर; कहे-कहने लगे; विनय करिया-बड़ी नम्रता के साथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के शब्दों से उत्साहित होकर गदाधर पण्डित प्रेमभाव में डूब गये। उन्होंने तुरन्त ही महाप्रभु के चरण पकड़ लिए और विनीत भाव से कहा।

तुमि याहाँ-याहाँ रह, ताहाँ 'वृन्दावन' ।

ताहाँ यमुना, गङ्गा, सर्व-तीर्थ-गण ॥280 ॥

तुमि-आप; याहाँ-याहाँ-जहाँ कहीं; रह-रहते हो; ताहाँ वृन्दावन-वह स्थान वृन्दावन है; ताहाँ-वहाँ; यमुना-यमुना नदी, गङ्गा-गंगा नदी; सर्व-तीर्थ-गण-अन्य सभी तीर्थस्थान।

अनुवाद

गदाधर पण्डित ने कहा, "आप जहाँ कहीं भी ठहरते हैं, वहीं वृन्दावन है और वहीं यमुना, गंगा नदियाँ तथा अन्य तीर्थस्थल हैं।"

तबु वृन्दावन याह' लोक शिखाइते ।

सेइत करिबे, तोमार येइ लय चित्ते ॥ 281॥

तबु-फिर भी; वृन्दावन याह'–आप वृन्दावन जाते हो; लोक शिखाइते-सामान्य लोगों को उपदेश देने; सेइत-वह; करिबे-आप करेंगे; तोमार-अपना; येइ-जो; लय-लाते हो; चित्ते–मन में।

अनुवाद

"यद्यपि आप जहाँ भी ठहरते हैं वहीं वृन्दावन है, तो भी आप लोगों को शिक्षा देने के लिए वृन्दावन जाते हैं। अन्यथा, जो आप को अच्छा लगे, वही करते हैं।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए वृन्दावन जाना अनिवार्य नहीं था, क्योंकि वे जहाँ कहीं भी रुकते थे, वह स्थान तुरन्त वृन्दावन बन जाता था। वहीं पर गंगा नदी, यमुना नदी तथा अन्य तीर्थस्थल हो जाते थे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने रथयात्रा में नृत्य करते समय स्वयं भी यही बात कही थी। उस समय उन्होंने कहा था कि उनका मन ही वृन्दावन है (मोर-मन-वृन्दावन)। चूँकि उनका मन वृन्दावन था, अतएव राधा तथा कृष्ण की सारी लीलाएँ उनके भीतर घटित होती रहती थीं। तो भी लोगों को शिक्षा देने के उद्देश्य से वे भौमवृन्दावन अर्थात् इस भौतिक जगत् के वृन्दावन गये। इस तरह उन्होंने हर एक को परम पवित्र स्थान वृन्दावन धाम जाने का उपदेश दिया।

भौतिकतावादी लोग वृन्दावन धाम को अस्वच्छ शहर मानते हैं, क्योंकि वहाँ अनेक बन्दर तथा कुत्ते हैं और यमुना नदी के किनारे बहुत गंदगी है। कुछ समय पूर्व एक भौतिकतावादी ने मुझसे पूछा था, "आप वृन्दावन में क्यों रह रहे हैं? संन्यास लेने के बाद आपने ऐसे गन्दे स्थान को क्यों चुना?" ऐसा व्यक्ति कभी नहीं समझ सकता कि इस पृथ्वी का वृन्दावन धाम सदैव मूल वृन्दावन धाम का प्रतिनिधित्व करने वाला धाम है। फलतः वृन्दावन धाम भगवान् कृष्ण की ही तरह पूज्य है। आराध्यो भगवान् ब्रजेश-तनयस्तद्धाम वृन्दावनम्-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनका धाम वृन्दावन समान रूप से पूज्य हैं। कभी-कभी ऐसे भौतिकतावादी लोग भी पर्यटकों के रूप में वृन्दावन जाते हैं, जिन्हें कोई आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता। जो व्यक्ति ऐसी भौतिक दृष्टि के साथ वृन्दावन जाता है, उसे कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं मिलता। ऐसे व्यक्ति को विश्वास ही नहीं होता कि कृष्ण तथा वृन्दावन अभिन्न हैं। चूँकि वे अभिन्न हैं, अतएव वृन्दावन भगवान् कृष्ण के ही समान पूज्य है। श्री चैतन्य महाप्रभु की दृष्टि (मोर-मन-वृन्दावन) सामान्य भौतिकतावादी व्यक्ति की दृष्टि से भिन्न है। रथयात्रा उत्सव में श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीमती राधारानी के भाव में निमग्न होकर भगवान् कृष्ण को वृन्दावन धाम वापस खींच लाये। उन्होंने इसके विषय में आहुश्च ते (मध्य 13.136) से प्रारम्भ होने वाले श्लोकों में कहा है।

श्रीमद्भागवत (10.84.13) में कहा गया है :

यस्यात्म बुद्धिः कुणपे त्रिधातुके

स्वधी: कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।

यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि-

ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

“जो व्यक्ति तीन तत्त्वों से बने इस शरीर को आत्मा मानता है, जो शरीर के उत्पादों को अपने सम्बन्धी मानता है, जो जन्मभूमि को पूज्य मानता है और जो तीर्थस्थान की यात्रा दिव्य ज्ञान वाले पुरुषों से मिलने के बदले स्नान करने के उद्देश्य से जाता है, उसे गधा या गाय तुल्य समझना चाहिए।”

श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं वृन्दावन धाम का जीर्णोद्धार किया और अपने मुख्य शिष्यों, रूप तथा सनातन को इसका विकास करने तथा सामान्य जनता की आध्यात्मिक दृष्टि को आकृष्ट करने के लिए इसे प्रस्तुत करने की सलाह दी। इस समय वृन्दावन में लगभग पाँच हजार मन्दिर हैं और उसके बाद भी अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ एक विशाल भव्य मन्दिर बनवा रहा है, जिसमें भगवान् कृष्ण, बलराम, राधाकृष्ण तथा गुरु गौरांग की पूजा की जायेगी। चूँकि वृन्दावन में कोई प्रमुख कृष्ण-बलराम मन्दिर नहीं है, अतएव हम एक ऐसा मन्दिर बनवाने का प्रयास कर रहे हैं, जिससे लोग कृष्ण-बलराम अथवा निताइ-गौरचन्द्र की ओर आकृष्ट हो सकें। व्रजेन्दनन्दन येइ, शची सुत हैल सेइ। नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं कि बलराम तथा नन्द महाराज के पुत्र साक्षात् गौर-निताई के रूप में अवतरित हुए हैं। इस आधारभूत सिद्धान्त का प्रचार करने के उद्देश्य से हम कृष्ण-बलराम मन्दिर की स्थापना कर रहे हैं, जिससे विश्वभर में यह प्रसारित किया जा सके कि गौर-निताई की पूजा कृष्ण-बलराम पूजा ही है।

यद्यपि राधाकृष्ण की लीलाओं में प्रवेश कर पाना अत्यन्त कठिन है, किन्तु वृन्दावन के अधिकांश भक्तगण राधाकृष्ण लीला के प्रति आकर्षित होते हैं। किन्तु चूँकि निताइ-गौरचन्द्र बलराम तथा कृष्ण के प्रत्यक्ष अवतार हैं, अतएव हम श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के माध्यम से बलराम तथा कृष्ण के सीधे सम्पर्क में आ सकते हैं। जो लोग कृष्णभावना में अत्यन्त उन्नत हैं, वे श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से राधा-कृष्ण की लीलाओं में प्रवेश कर सकते हैं। कहा गया है- श्रीकृष्णचैतन्य राधाकृष्ण नहे अन्य।” श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु राधा तथा कृष्ण के सम्मिलित रूप हैं।”

कभी-कभी भौतिकतावादी लोग राधा-कृष्ण तथा कृष्ण-बलराम की लीलाओं को भुलाकर वृन्दावन जाकर उस भूमि की आध्यात्मिक सुविधाएँ स्वीकार करते हुए भौतिक कार्यकलापों में व्यस्त हो जाते हैं। यह श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों के विरुद्ध है। प्राकृत सहजिये अपने आपको व्रजवासी या धामवासी घोषित करते हैं, किन्तु वे अधिकांशतः इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते हैं। इस तरह वे भौतिकतावादी जीवन-शैली में अधिकाधिक लिप्त होते जाते हैं। असली कृष्ण-भक्त उनके कार्यकलापों की निन्दा करते हैं। स्वरूप दामोदर जैसे शाश्वत व्रजवासी वृन्दावन धाम आये तक नहीं। श्री पुण्डरीक विद्यानिधि, श्री हरिदास ठाकुर, श्रीवास पण्डित, शिवानन्द सेन, श्री रामानन्द राय, श्री शिखि माहिति, श्री माधवीदेवी तथा श्री गदाधर पण्डित गोस्वामी कभी भी वृन्दावन धाम नहीं गये। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इंगित करते हैं कि हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है कि इन महापुरुषों ने वृन्दावन धाम की यात्रा की। तो भी हम देखते हैं कि अनेक अभक्त, मायावादी संन्यासी, प्राकृत सहजिये, सकाम कर्मी, ज्ञानी तथा भौतिक उद्देश्यों से प्रेरित कई अन्य लोग वृन्दावन में रहने जाते हैं। इनमें से अनेक लोग वहाँ भिक्षुक बनकर अपनी आर्थिक समस्या सुलझाने जाते हैं। यद्यपि जो भी वृन्दावन में रहता है, वह किसी न किसी रूप से लाभान्वित होता है, किन्तु असली वृन्दावन का महत्त्व तो शुद्ध भक्त ही समझते हैं। जैसाकि ब्रह्म-संहिता में कहा गया है- प्रेमाञ्जनच्छुरित-भक्तिविलोचनेन। जब कोई व्यक्ति अपने नेत्रों को शुद्ध कर लेता है, तो वह देख सकता है कि श्री वृन्दावन तथा वैकुण्ठ स्थित आदि गोलोक वृन्दावन एक ही हैं।

श्रील नरोत्तम दास ठाकुर, श्रीनिवास आचार्य, श्री जगन्नाथ दास बाबाजी महाराज, श्री भगवान् दास बाबाजी महाराज तथा श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज और बाद में कलकत्ता के श्रील भक्तिविनोद ठाकुर सदैव नाम-भजन में लगे रहे तथा वे निश्चित रूप से और कहीं नहीं, अपितु वृन्दावन में ही रहते रहे। इस समय, हरे कृष्ण आन्दोलन के सदस्य विश्वभर के भौतिक रूप से समृद्ध नगरों में—यथा लन्दन, न्यूयार्क, लास एंजिलिस, पेरिस, मास्को, ज्यूरिख तथा स्टाकहोम में रह रहे हैं। किन्तु हम तो श्रील भक्तिविनोद ठाकुर तथा अन्य आचार्यों के पदचिह्नों का अनुसरण करने में ही तुष्ट हैं। चूँकि हम राधा-कृष्ण मन्दिरों में रहते हैं और निरन्तर हरिनाम संकीर्तन करते रहते हैं, अतएव हम अन्यत्र नहीं, अपितु वृन्दावन में ही रहते हैं। हम श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों में चलते हुए विश्वभर के अपने शिष्यों के दर्शनार्थ वृन्दावन में एक मन्दिर बनवाने का प्रयास कर रहे हैं।

एइ आगे आइला, प्रभु, वर्षार चारि मास ।

एइ चारि मास कर नीलाचले वास ॥282॥

एइ-अभी; आगे-आगे; आइला-आये हैं; प्रभु-मेरे प्रभु; वर्षार चारि मास-वर्षा ऋतु के चार मास; एइ चारि मास-ये चार मास; कर-करो; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; वास–निवास।

अनुवाद

इस अवसर को पाकर गदाधर पण्डित ने कहा, "अब तो चातुर्मास्य प्रारम्भ हो चुका है। अतएव आपको अगले चार मास जगन्नाथ पुरी में ही बिताने चाहिए।"

पाछे सेइ आचरिबा, येइ तोमार मन ।

आपन-इच्छाय चल, रह,—के करे वारण ॥283॥

पाछे-इसके बाद; सेइ-वह; आचरिबा-आप कीजिए; येइ-जो; तोमार मन-आपका मन; आपन-इच्छाय-अपनी इच्छा के अनुसार; चल-आप जाते हो; रह-आप रहते हो; के-कौन; करे वारण-आपको रोक सकता है।

अनुवाद

"यहाँ चार महीने रहने के बाद आप जैसा चाहें कर सकते हैं। वास्तव में आपको जाने या रहने से कोई रोक नहीं सकता।"

शुनि' सब भक्त कहे प्रभुर चरणे ।

सबाकार इच्छा पण्डित कैल निवेदने ॥ 284॥

शुनि'–सुनकर; सब-सब; भक्त-भक्तों ने; कहे-कहा; प्रभुर चरणे–महाप्रभु के चरणकमलों में; सबाकार इच्छा-हर एक की इच्छा; पण्डित–गदाधर पण्डित ने; कैल-किया है; निवेदने निवेदन।

अनुवाद

यह कथन सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर उपस्थित भक्तों ने कहा कि गदाधर पण्डित ने उनकी इच्छा को सही ढंग से प्रस्तुत की है।

सबार इच्छाय प्रभु चारि मास रहिला ।

शुनिया प्रतापरुद्र आनन्दित हैला ॥285॥

सबार इच्छाय-हर एक की इच्छा के कारण; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चारि मास-चार मास के लिए; रहिला-रूक गये; शुनिया-यह सुनकर; प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र; आनन्दित हैला-बहुत प्रसन्न हुआ।

अनुवाद

सारे भक्तों के अनुरोध पर श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में चार मास तक रुके रहने के लिए राजी हो गये। यह सुनकर राजा प्रतापरुद्र अत्यधिक प्रसन्न हुए।

सेइ दिन गदाधर कैल निमन्त्रण ।

ताहाँ भिक्षा कैल प्रभु लञा भक्त-गण ॥ 286 ॥

सेइ दिन-उसी दिन; गदाधर-गदाधर पण्डित ने; कैल निमन्त्रण-निमन्त्रण दिया; ताहाँ-अपने घर पर; भिक्षा कैल–भोजन किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; लञा-के संग; भक्त-गण-अपने भक्तों।

अनुवाद

उस दिन गदाधर पण्डित ने श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रण दिया और महाप्रभु ने अन्य भक्तों सहित उनके यहाँ भोजन ग्रहण किया।

भिक्षाते पण्डितेर स्नेह, प्रभुर आस्वादन ।

मनुष्येर शक्त्ये दुइ ना याय वर्णन ॥287॥

भिक्षाते-खाना खिलाने में; पण्डितेर–गदाधर पण्डित का; स्नेह-स्नेह; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आस्वादन–आस्वादन; मनुष्येर–एक सामान्य मनुष्य की; शक्त्ये-शक्ति में; दुइ–ये दोनों; ना याय-सम्भव नहीं; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

सम्भवत: कोई भी साधारण व्यक्ति गदाधर पण्डित द्वारा परोसे गये स्नेहपूर्ण भोजन एवं महाप्रभु द्वारा इस भोजन के आस्वादन का वर्णन नहीं कर सकता।

एइ मत गौर-लीला—अनन्त, अपार ।

सङ्क्षेपे कहिये, कहा ना याय विस्तार ॥288॥

एइ मत-इस प्रकार; गौर-लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; अनन्त-अनन्त; अपार-अपार; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिये-मैंने वर्णन की हैं; कहा-वर्णन करना; ना याय विस्तार कोई भी इतने विस्तार से नहीं कर सकता।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी लीलाएँ करते हैं, जो अनन्त तथा अपार हैं। किसी न किसी प्रकार इनका संक्षिप्त वर्णन किया गया है। इनका विस्तृत वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

सहस्र-वदने कहे आपने 'अनन्त'।

तबु एक लीलार तेंहो नाहि पाय अन्त॥ 289॥

सहस्र-वदने-सहस्र मुखों से; कहे-करते हैं; आपने–स्वयं; अनन्त-अनन्त देव; तबु-फिर भी; एक लीलार-मात्र एक लीला का भी; तेंहो-वे (अनन्त देव); नाहि-नहीं; पाय-पा सकते; अन्त-अन्त।

अनुवाद

यद्यपि अनन्तदेव अपने सहस्र मुखों से भगवान् की लीलाओं का सदैव वर्णन करते रहते हैं, किन्तु वे किसी एक लीला का भी पार नहीं पा सकते।

श्री-रूप-रघुनाथ पदे यार आश।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥ 290॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों पर; झार–जिनकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-लिखा है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा रघुनाथ के चरणकमलों पर प्रार्थना करते हुए तथा उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के सोलहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें महाप्रभु द्वारा वृन्दावन जाने के प्रयास का वर्णन हुआ है।

परिशिष्ट

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयत:

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत

श्रीचैतन्य-चरितामृत

मध्य लीला, चतुर्थ खण्ड

अध्याय 17-20

मूल बंगला श्लोक, श्लोक का हिन्दी लिप्यन्तरण,

शब्दार्थ, अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य सहित

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

विषय-सूची

भूमिका

अध्याय सत्रह

महाप्रभु की वृन्दावन यात्रा

अध्याय अठारह

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा वृन्दावन में भ्रमण

अध्याय उन्नीस

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा श्रील रूप गोस्वामी को उपदेश

अध्याय बीस

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा सनातन गोस्वामी को परम सत्य के विज्ञान की शिक्षा

परिशिष्ट

लेखक परिचय

विशेष शब्दावली

श्लोकानुक्रमणिका

उद्धृत श्लोकों की अनुक्रमणिका

बांग्ला वर्णमाला

बांग्ला उच्चारण सम्बन्धी निर्देश

भूमिका

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा उपदेशों का मुख्य ग्रन्थ है। श्री चैतन्य महाप्रभु उस महान् सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, जो भारत में 500 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जिसने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरी धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधाराओं को न केवल भारत में अपितु समग्र विश्व में प्रभावित किया है। उन श्रीकृष्ण चैतन्य के प्रभाव को प्रसारित करने में कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के प्रयासों का मुख्य योगदान रहा है, जो इस ग्रन्थ के अनुवादक तथा भाष्यकार होने के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) के संस्थापक-आचार्य भी हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु को अतीव ऐतिहासिक महत्त्व का पुरुष माना जाता है। किन्तु ऐतिहासिक विश्लेषण की हमारी पारम्परिक विधि, जो व्यक्ति को उनके समय की उपज के रूप में देखती है, यहाँ पर विफल हो जाती है, क्योंकि श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसे पुरुष हैं, जो ऐतिहासिक व्यवस्था के सीमित क्षेत्र से परे हैं।

जिस समय पश्चिम में मानव भौतिक ब्रह्माण्ड की संरचना का अध्ययन करने तथा नवीन सागरों और महाद्वीपों की खोज में समुद्री यात्राएँ करने में अपनी अनुसन्धानात्मक शक्ति लगा रहा था, तभी पूर्व में श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसी क्रान्ति का प्रवर्तन एवं कुशल नेतृत्व कर रहे थे, जो मनुष्य के आध्यात्मिक स्वभाव के सर्वोच्च विज्ञान सम्मत ज्ञान की दिशा में निर्दिष्ट था।

श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवनचरित के मुख्य ऐतिहासिक स्रोत मुरारि गुप्त तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा लिखे गये कड़चा (दैनन्दिनियाँ) हैं। मुरारि गुप्त एक वैद्य तथा श्रीकृष्ण चैतन्य के अन्तरंग पार्षद थे, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास ग्रहण करने तक के प्रारम्भिक चौबीस वर्षों के विषय में विस्तृत टिप्पणियाँ लिखीं। श्री चैतन्य महाप्रभु के अड़तालीस वर्षों के जीवन की शेष घटनाएँ श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्य अन्तरंग पार्षद स्वरूप दामोदर गोस्वामी के कड़चा में अंकित हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृत के तीन खण्ड हैं, जिन्हें लीला कहा जाता है। ये हैं-आदि लीला, मध्य लीला तथा अन्त्य लीला। मुरारि गुप्त का कड़चा ही आदि लीला का आधार है और स्वरूप दामोदर का कड़चा मध्य तथा अन्त्य लीलाओं के लिए विस्तृत विवरण प्रदान करता है।

आदिलीला के सत्रह अध्यायों में से प्रथम बारह अध्याय सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रस्तावना स्वरूप हैं। वैदिक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा कृष्णदास कविराज यह स्थापित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु कलियुग (जो पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जो भौतिकता, दम्भ तथा कलह का प्रतीक है) के लिए कृष्ण के अवतार हैं। लेखक यह भी प्रमाणित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण से अभिन्न हैं और अधम युग के पतितात्माओं को महामन्त्र के संकीर्तन का प्रचार करके शुद्ध भगवत्प्रेम उदारतापूर्ण वितरित करने के लिए अवतरित होते हैं। यह संकीर्तन महामन्त्र का बृहद् सार्वजनिक कीर्तन है। इसके उपरान्त कृष्णदास कविराज ने इस ग्रन्थ के बारहवें अध्याय में इस जगत् में श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का गुह्य प्रयोजन, उनके सह-अवतारों तथा प्रमुख भक्तों का वर्णन किया है और उनकी शिक्षाओं को सार रूप में प्रस्तुत की हैं। आदि लीला के शेष अध्यायों (13 से 17 तक) में लेखक ने चैतन्य महाप्रभु के दिव्य जन्म तथा संन्यास ग्रहण करने तक के जीवन का संक्षिप्त विवरण दिया है। इसमें उनके बचपन के चमत्कारों, अध्ययन, विवाह तथा प्रारम्भिक दार्शनिक शास्त्रार्थों के साथ-साथ उनके व्यापक संकीर्तन-आन्दोलन के संगठन तथा मुस्लिम सरकार द्वारा दमन के विरुद्ध उनके कानून अवज्ञा आन्दोलन का वर्णन है।

तीनों लीलाओं में सबसे लम्बी मध्यलीला की विषय वस्तु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा एक संन्यासी, शिक्षक, दार्शनिक तथा गुरु एवं योगी के रूप में सारे भारत की विस्तृत एवं घटनापूर्ण यात्राओं का विशद् वर्णन है। छह वर्षों की इस अवधि में श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्रमुख शिष्यों को शिक्षाएँ देते हैं। वे अपने समकालीन सुविख्यात दार्शनिकों तथा धर्मज्ञों से, जिनमें शंकराचार्य के अनुयायी, बौद्ध तथा मुसलमान सम्मिलित हैं, शास्त्रार्थ करते हैं और उन्हें तथा उनके शिष्य तथा अनुयायी वर्गों को अपने दल में सम्मिलित करते हैं। इस खण्ड में उड़ीसा में होने वाले विशाल जगन्नाथ रथयात्रा उत्सव के अवसर पर चैतन्य महाप्रभु की चमत्कार-पूर्ण लीलाओं का विस्तृत विवरण सम्मिलित है।

अन्त्यलीला में श्री चैतन्य की प्रकट उपस्थिति के अन्तिम अठारह वर्षों का विवरण है, जिसे उन्होंने जगन्नाथ पुरी के सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर केनिकट लगभग एकान्त में बिताये। इन अन्तिम वर्षों में श्रीकृष्ण चैतन्य भाव-समाधि में गहरे उतरते गये, जो समस्त पूर्वी अथवा पाश्चात्य धार्मिक तथा साहित्यिक इतिहास में अद्वितीय है। उनके नित्य संगी स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा दिये गये प्रत्यक्षदर्शी विवरण, जिनसे श्री चैतन्य की शाश्वत तथा नित्य वर्धमान धार्मिक परमानन्द की अवस्था प्रकट होती है,

आधुनिक मनोविज्ञानियों तथा प्रत्यक्षवादियों के धार्मिक अनुभवों की अनुसन्धानात्मक तथा विवरणात्मक क्षमताओं को स्पष्ट रूप से चुनौती देने वाले हैं।

इस महान् ग्रन्थ के रचयिता कृष्णदास कविराज गोस्वामी का जन्म 1507 ई. में हुआ था। वे चैतन्य महाप्रभु के विश्वस्त अनुयायी रघुनाथ दास गोस्वामी के शिष्य थे। रघुनाथ दास विख्यात वैरागी सन्त थे, जिन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा बतलाई गई चैतन्य महाप्रभु की समस्त लीलाओं को सुना था और स्मरण कर रखा था। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के निधन के बाद रघुनाथ दास ने अपने इन आराध्यों की विरह वेदना सहन न कर सकने के कारण गोवर्धन पर्वत से कूदकर आत्महत्या करने के उद्देश्य से वृन्दावन की यात्रा की। किन्तु वृन्दावन में उनकी भेंट चैतन्य महाप्रभु के दो सर्वाधिक अन्तरंग शिष्यों-रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से हुई, जिन्होंने उनसे आत्महत्या की योजना का परित्याग करने तथा चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम जीवन की प्रेरक घटनाओं को प्रकट करने के लिए प्रेरित किया। उस समय कृष्णदास कविराज गोस्वामी भी वृन्दावन में रह रहे थे, जिन्हें रघुनाथ दास गोस्वामी ने श्री चैतन्य के दिव्य जीवन का पूर्ण विवरण प्रदान किया।

उस समय तक श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवन पर अनेक समसामयिक विद्वान तथा भक्तों द्वारा कई जीवन-चरित विषयक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। इनमें मुरारि गुप्त कृत श्रीचैतन्य-चरित, लोचन दास ठाकुर कृत चैतन्य-मंगल तथा वृन्दावन दास कृत चैतन्य-भागवत सम्मिलित हैं, जिनमें से चैतन्य भागवत के लेखक वृन्दावन दास ठाकुर को उस समय श्री चैतन्य के जीवन के विशेषज्ञ माने जाते थे। जब वृन्दावन दास इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना कर रहे थे, तब उन्होंने इस भय से श्री चैतन्य के जीवन की अनेक घटनाओं को, विशेषतया परवर्ती घटनाओं को सम्मिलित नहीं किया कि इससे ग्रन्थ का आकार बढ़ जायेगा। इस अन्तिम लीलाओं को सुनने के इच्छुक वृन्दावन के भक्तों ने कृष्णदास कविराज गोस्वामी से, जिन्हें वे महान् सन्त और विद्वान के रूप में सम्मान देते थे, यह अनुरोध किया कि इन घटनाओं का विस्तार से वर्णन करने वाले ग्रन्थ की रचना करें। इस अनुरोध पर तथा वृन्दावन के मदन मोहन अर्चाविग्रह की अनुमति तथा आशीर्वाद से उन्होंने श्रीचैतन्य चरितामृत की रचना प्रारम्भ की, जिसे चैतन्य महाप्रभु के गहन दर्शन तथा शिक्षाओं के सम्यक् प्रस्तुतीकरण, एवं जीवन-चरित विषयक श्रेष्ठता के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा गूढ़ शिक्षा के सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में आज सारे विश्व में मान्यता दी जा रही है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने वृद्धावस्था में इस ग्रंथ पर कार्य प्रारम्भ किया, जब उनका स्वास्थ्य गिर चुका था। जैसाकि उन्होंने स्वयं लिखा है, "अब मैं अति वृद्ध एवं अक्षमता से विक्षुब्ध हूँ। लिखते समय मेरे हाथ काँपते हैं, मुझे ठीक से किसी बात का स्मरण नहीं हो पाता, न ही मैं ठीक से देख

या सुन सकता हूँ, फिर भी मैं लिखता हूँ जो कि अपने आप में एक महान् आश्चर्य है।" तो भी उन्होंने इस अक्षम अवस्था में मध्यकालीन भारत के इस महान्तम साहित्यिक मणि को पूरा किया, जो साहित्यिक इतिहास के आश्चर्यों में एक है।

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, इसका अंग्रेजी अनुवाद कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा सम्पन्न किया गया, जो समग्र विश्व में भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा के सर्वाधिक विख्यात शिक्षक हैं। श्रील प्रभुपाद का भाष्य दो बँगला भाष्यों पर आधारित है—एक तो उनके गुरु, महान् वैदिक विद्वान, उपदेशक और संत श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, जिन्होंने भविष्यवाणी की थी कि, "एक समय ऐसा आयेगा, जब श्रीचैतन्य चरितामृत पढ़ने के लिए विश्वभर के लोग बँगला सीखेंगे और दूसरा भाष्य श्रील भक्तिसिद्धान्त के पिता भक्तिविनोद ठाकुर का जिन्होंने आधुनिक युग में श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के प्रचार में अग्रदूत का काम किया।

श्रील प्रभुपाद स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा में आते हैं। और वे पहले विद्वान हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य के अनुयायियों के प्रमुख ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। उनकी बँगला तथा संस्कृत में विद्वत्ता और श्रीकृष्ण चैतन्य के उपदेशों से उनका अन्तरंग परिचय ऐसा उपयुक्त मेल है, जो उन्हें इस महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ को अंग्रेजी भाषी संसार के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए सर्वाधिक योग्य बनाता है। वे जिस सहजता तथा स्पष्टता से कठिन दार्शनिक विचारों की स्थापना करते हैं, वह भारत की धार्मिक परम्परा से पूर्णतया अपरिचित पाठक को भी इन गहन तथा स्मरणीय ग्रन्थ को समझने तथा उसकी प्रशंसा करने के लिए समर्थ बनाता है।

तात्पर्य समेत सम्पूर्ण मूल पाठ को नौ सचित्र खण्डों में भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो समकालीन मनुष्य के बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रमुख महत्त्वपूर्ण योगदान का प्रतिनिधित्व करता है।

श्रील प्रभुपाद के द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत का हिन्दी अनुवाद उनके शताब्दी उत्सव के अवसर पर प्रकाशित किया जा रहा है, जो भारत के भक्तों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

-प्रकाशक

अध्याय सत्रह

महाप्रभु की वृन्दावन यात्रा

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में इस अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। "श्री जगन्नाथ रथयात्रा में भाग लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन जाने का निश्चय किया। श्री रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा करने के लिए बलभद्र भट्टाचार्य नामक ब्राह्मण को चुना। महाप्रभु सूर्योदय होने के पूर्व ही कटक नगर के लिए चल पड़े। कटक के उत्तर में वे एक घने जंगल में प्रविष्ट हुए, जहाँ उनकी भेंट अनेक बाघों तथा हाथियों से हुई, जिन्हें उन्होंने हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में लगाया। जब भी वे किसी गाँव में जाते, वे भिक्षा माँगकर कुछ चावल तथा शाक-सब्जियाँ प्राप्त कर लेते। यदि कोई गाँव मार्ग में नहीं पड़ता था, तो खाने के लिए उनके पास जो भी चावल बचा रहता था, वे उसे पकाते और जंगल से शाक-सब्जियाँ एकत्र कर लाते। श्री चैतन्य महाप्रभु बलभद्र भट्टाचार्य के व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न थे।

इस तरह महाप्रभु झारखंड के जंगलों को पार करते हुए अन्त में वाराणसी पहुँचे। वाराणसी में मणिकर्णिका घाट पर स्नान करने के बाद वे तपन मिश्र से मिले, जो उन्हें अपने निवासस्थान ले गये और आदरपूर्वक उन्हें रहने के लिए सुखदायक स्थान दिया। वाराणसी में महाप्रभु के पुराने मित्र वैद्य चन्द्रशेखर ने भी उनकी सेवा की। श्री चैतन्य महाप्रभु के व्यवहार को देखकर एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने मायावादी संन्यासियों के प्रमुख प्रकाशानन्द सरस्वती को सूचना दी। प्रकाशानन्द ने महाप्रभु पर अनेक आरोप लगाये। इससे उस ब्राह्मण को अत्यधिक खेद हुआ और उसने यह बात महाप्रभु को बताई तथा उनसे पूछा कि मायावादी संन्यासी कृष्ण का पवित्र नाम क्यों नहीं लेते। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया कि वे सब अपराधी हैं, अतः किसी को भी उनकी संगति नहीं करनी चाहिए। इस तरह महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को अपना आशीर्वाद दिया।

इसके बाद महाप्रभु प्रयाग तथा मथुरा से होकर निकले और उन्होंने माधवेन्द्र पुरी के शिष्य सानोडिया ब्राह्मण के घर भोजन किया। उस ब्राह्मण के घर भोजन स्वीकार करके उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया और उसके बाद उन्होंने वृन्दावन के बारहों वन देखे और वे अत्यधिक प्रेम से आनन्दित हो उठे। वृन्दावन में यात्रा करते समय उन्होंने तोतों तथा अन्य पक्षियों को चहचहाते सुना।

गच्छन्वृन्दावनं गौरो व्याघ्रेभैण-खगान्वने ।

प्रेमोन्मत्तान्सहोन्नृत्यान्विदधे कृष्ण-जल्पिनः ॥ 1॥

गच्छन्-जाते समय; वृन्दावनम्-वृन्दावन धाम को; गौरः-श्री चैतन्य महाप्रभु; व्याघ्र–बाघों; इभ-हाथियों; एण-हिरनों; खगान्–और पक्षियों को; वने-वन में; प्रेम-उन्मत्तान्-प्रेमभाव से पागल; सह–साथ; उन्नृत्यान्-नृत्य; विदधे-बना दिया; कृष्ण-भगवान् कृष्ण का नाम; जल्पिनः-जपकर (कीर्तन करके)।

अनुवाद

वृन्दावन जाते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु झारखंड के जंगलों से होकर गुजरे और उन्होंने सारे बाघों, हाथियों, हिरनों तथा पक्षियों को हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन और नृत्य करने के लिए प्रेरित किया। इस तरह ये सारे पशु प्रेमभाव से उन्मत्त हो उठे।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; गौरचन्द्र-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैतचन्द्र की जय हो! महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

शरत्काल हैल, प्रभुर चलिते हैल मति ।

रामानन्द-स्वरूप-सङ्गे निभृते युकति ॥ 3 ॥

शरत्-काल हैल-शरद ऋतु आ गई; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; चलिते-चलने की; हैल–हो गई; मति–इच्छा; रामानन्द-रामानन्द राय; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; सङ्गे-के साथ; निभृते-एकान्त में; युकति–परामर्श किया।

अनुवाद

जब शरद ऋतु आई, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन जाने का निश्चय किया। उन्होंने एकान्त में रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी से परामर्श किया।

"मोर सहाय कर यदि, तुमि-दुइ जन ।

तबे आमि याञा देखि श्री-वृन्दावन ॥4॥

मोर-मेरी; सहाय-सहायता; कर-करो; यदि-यदि; तुमि-तुम; दुइ जन-दोनों व्यक्ति; तबे-तब; आमि-मैं; याञा-जाकर; देखि-दर्शन करूँगा; श्री-वृन्दावन-श्री वृन्दावन धाम।

अनुवाद

महाप्रभु ने रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी से अनुरोध किया कि वे उन्हें वृन्दावन जाने में सहायता करें।

रात्र्ये उठि' वन-पथे पलाञा याब ।

एकाकी याइब, काहों सङ्गे ना लइब ॥5॥

रात्र्ये उठि'–रात को उठकर; वन-पथे-वन के रास्ते सड़क पर; पलाजा याब-मैं चुपके से चला जाऊँगा; एकाकी याइब-मैं अकेला जाऊँगा; काहों-किसी को भी; सङ्गे-अपने साथ; ना लइब–मैं नहीं लूँगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं भोर के समय यात्रा आरम्भ करूँगा और जंगल के मार्ग में अलक्षित होकर अकेले जाऊँगा। मैं अपने साथ किसी को भी नहीं लूँगा।

केह यदि सङ्ग लइते पाछे उठि' धाय ।

सबारे राखिबा, येन केह नाहि याय ॥ 6 ॥

केह-कोई; यदि यदि; सङ्ग लइते-साथ जाना चाहे; पाछे-पीछे; उठि'–उठकर; धाय-दौड़ता है; सबारे हर व्यक्ति को; राखिबा-कृपया रोक लेना; येन –ताकि; केह-कोई भी; नाहि याय-न जाय।

अनुवाद

यदि कोई मेरे पीछे आना भी चाहे, तो उसे आप लोग रोक लें। मैं नहीं चाहता कि कोई भी मेरे साथ जाये।

प्रसन्न हञा आज्ञा दिबा, ना मानिबा 'दुःख' ।

तोमा-सबार 'सुखे' पथे हबे मोर 'सुख' ॥7॥

प्रसन्न हञा–प्रसन्न होकर; आज्ञा दिबा-आज्ञा दो; ना–न; मानिबा दुःख होना अप्रसन्न; तोमा-सबार-तुम सबकी; सुखे-प्रसन्नता से; पथे–रास्ते में; हबे-होगी; मोर-मुझे; सुख–प्रसन्नता।

अनुवाद

"तुम लोग कृपया प्रसन्नतापूर्वक मुझे आज्ञा दो और दुःखी मत हो। यदि तुम लोग सुखी होंगे, तो मैं वृन्दावन को प्रस्थान करते हुए सुखी हूँगा।"

दुइ-जन कहे,—'तुमि ईश्वर 'स्वतन्त्र' ।

येइ इच्छा, सेइ करिबा, नह 'परतन्त्र' ॥8॥

दुइ-जन कहे-जब दोनों व्यक्तियों ने उत्तर दिया; तुमि-आप; ईश्वर–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; स्व-तन्त्र–पूर्णतया स्वतन्त्र; येइ इच्छा-जो आपकी इच्छा हो; सेइ-वह; करिबा-आप करेंगे; नह–आप नहीं हैं; पर-तन्त्र–किसी पर निर्भर।

अनुवाद

यह सुनकर रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा, "हे प्रभु, आप पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। चूँकि आप किसी पर आश्रित नहीं हैं, अतएव आपकी जो इच्छा होगी आप वही करेंगे।

किन्तु आमा-दुँहार शुन एक निवेदने ।

'तोमार सुखे आमार सुख'–कहिला आपने ॥9॥

किन्तु किन्तु; आमा-दुँहार–हम दोनों का; शुन-कृपया सुनो; एक निवेदने-एक निवेदन; तोमार सुखे-आपकी प्रसन्नता में; आमार सुख-हमारी प्रसन्नता है; कहिला-आपने पहले कहा है; आपने–स्वयं।

अनुवाद

"हे प्रभु, कृपया हमारी एक विनती सुनें। आपने पहले ही कहा है कि हमारे सुख से आपको सुख मिलेगा। यह आपका अपना कथन है।

आमा-दुँहार मने तबे बड़ 'सुख' हय ।

एक निवेदन यदि धर, दयामय ॥10॥

आमा-बँहार–हम दोनों के; मने-मन में; तबे-अतः; बड़-बहुत; सुख हय-सुख होगा; एक निवेदन-एक निवेदन; यदि यदि; धर-आप मानें; दया-मय-कृपालु प्रभु।

अनुवाद

"यदि आप हमारी केवल एक विनती मान लें, तो हम अत्यधिक सुखी होंगे।

'उत्तम ब्राह्मण' एक सङ्गे अवश्य चाहि ।

भिक्षा करि' भिक्षा दिबे, याबे पात्र वहि' ॥11॥

उत्तम ब्राह्मण-उत्तम ब्राह्मण; एक–एक; सङ्गे-संग; अवश्य-अवश्य; चाहि-हम चाहते हैं; भिक्षा करि'-भिक्षा माँगकर आपके लिए; भिक्षा दिबे-आपको भोजन दे; याबे-जाए; पात्र वहि'–आपका जलपात्र उठाकर।

अनुवाद

"हमारे प्रभु! आप अपने साथ एक उत्तम ब्राह्मण अवश्य ले लें। वह आपके लिए भिक्षा लायेगा, पकायेगा, आपको प्रसाद देगा और आपकी यात्रा के समय आपका जलपात्र उठायेगा।

वन-पथे याइते नाहि 'भोज्यान्न'-ब्राह्मण ।

आज्ञा कर,—सङ्गे चलुक विप्र एक-जन' ॥ 12॥

वन-पथे-वन के मार्ग पर; याइते-जाते हुए; नाहि-नहीं है; भोज्य-अन्न-ब्राह्मण-ऐसा ब्राह्मण जिसका भोजन स्वीकार किया जा सके; आज्ञा कर-कृपया आज्ञा दीजिये; सङ्गे-साथ; चलुक-चल सकता है; विप्र-ब्राह्मण; एक-जन–एक व्यक्ति।

अनुवाद

"जब आप जंगल से होकर यात्रा करेंगे, तो आपको ऐसा कोई ब्राह्मण नहीं मिल सकेगा, जिसके यहाँ आप भोजन कर सकें। अतएव आप कृपया आज्ञा दें, जिससे आपके साथ कम-से-कम एक शुद्ध ब्राह्मण जा सके।"

प्रभु कहे,—निज-सङ्गी काँहो ना लइब ।

एक-जने निले, आनेर मने दुःख हइब ॥13॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; निज-सङ्गी-अपने साथियों में से; काँहो-किसी को भी; ना-नहीं; लइब-मैं ले जाऊँगा; एक-जने निले–अगर मैं किसी को ले जाऊँ; आनेर मने दूसरों के मन में; दुःख हइब-दुःख होगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं अपने साथ अपने किसी भी संगी को नहीं ले जाऊँगा, क्योंकि यदि मैं किसी को भी चुनँगा, तो अन्य सभी लोग दुःखी होंगे।

नूतन सङ्गी हइबेक,—स्निग्ध याँर मन ।

ऐछे यबे पाइ, तबे लइ 'एक' जन ॥14॥

नूतन-नया; सङ्गी-साथी; ह-इबेक—होना चाहिए; स्निग्ध-अत्यन्त शान्त; याँर-जिसका; मन–मन; ऐछे-ऐसा; यबे–यदि; पाइ–मैं पा सकें; तबे-तो; लइ-मैं ले लूँगा; एक जन-एक व्यक्ति को।

अनुवाद

"ऐसा व्यक्ति नया ही होना चाहिए। उसे शान्तचित्त होना चाहिए। यदि मुझे ऐसा व्यक्ति मिल सके, तो मैं उसे अपने साथ लेने के लिए तैयार हूँ।"

तात्पर्य

इससे पूर्व जब श्री चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत गये थे, तब वे अपने साथ काला कृष्णदास नामक एक ब्राह्मण को लेते गये थे। किन्तु वह एक स्त्री के पाश में फँस गया और चैतन्य महाप्रभु को उसे बंजारों के चंगुल से छुड़ाने में कष्ट सहन करना पड़ा था। इसीलिए महाप्रभु यहाँ कहते हैं कि उन्हें कोई नया व्यक्ति चाहिए, जो शान्त चित्त वाला हो। जिसका चित्त शान्त नहीं होता वह कई वेगों में, विशेषतया कामवासना के प्रभाव में आ जाता है, भले ही वह महाप्रभु के ही संग में क्यों न रहे। ऐसा व्यक्ति का स्त्रियों के वशीभूत हो जायेगा और परम भगवान् के संग रहते हुए भी पतित हो जायेगा। माया इतनी प्रबल है कि जब तक मनुष्य उसके चंगुल में न पड़ने का संकल्प नहीं करता, तब तक उसे भगवान् भी संरक्षण प्रदान नहीं कर सकते। परम भगवान् तथा उनका प्रतिनिधि सदैव संरक्षण देना चाहते हैं, किन्तु ऐसे व्यक्ति को उनके व्यक्तिगत संग का लाभ उठाना चाहिए। जो व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् या उनके प्रतिनिधि को सामान्य व्यक्ति मानता है, वह अवश्य ही पतित हो जाता है। अत: महाप्रभु काला कृष्णदास जैसे व्यक्ति को अपने साथ नहीं ले जाना चाह रहे थे। वे ऐसे व्यक्ति को चाहते थे, जो दृढ़-संकल्प, शान्तचित्त तथा अविचल रहने वाला हो।

स्वरूप कहे,—एइ बलभद्र-भट्टाचार्य ।

तोमाते सु-स्निग्ध बड़, पण्डित, साधु, आर्य ॥15॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा; एइ–यह; बलभद्र-भट्टाचार्य भलभद्र भट्टाचार्य; तोमाते-आपके प्रति; सु-स्निग्ध-स्नेहिल; बड़-बड़ा; पण्डित-विद्वान; साधु-साधु; आर्य-आध्यात्मिक चेतना में उन्नत।

अनुवाद

तब स्वरूप दामोदर ने कहा, "यह बलभद्र भट्टाचार्य है। इसे आपके प्रति अत्यधिक अनुराग है। यह सच्चरित्र, विद्वान तथा आध्यात्मिक चेतना में उन्नत है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु को नया व्यक्ति चाहिए था, काला कृष्णदास जैसा व्यक्ति नहीं जो स्त्रियों के प्रति आसक्त हो जाए। इसलिए स्वरूप दामोदर ने तुरन्त एक नये ब्राह्मण किया, जिसका नाम बलभद्र भट्टाचार्य था। श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने इस व्यक्ति की अच्छी तरह परीक्षा की थी और यह देख लिया था कि श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति उसमें बहुत प्रेम था। न केवल महाप्रभु के प्रति उसका प्रेम था, अपितु वह विद्वान तथा सच्चरित्र भी था। वह कपट स्वभावयुक्त नहीं था और वह कृष्णभावना में उन्नत था। बंगाली कहावत है-अति भक्ति चोरेर लक्षण–"अत्यधिक भक्ति चोर का लक्षण है।" जो व्यक्ति अपने आपको बहुत बड़ा भक्त मानता है, किन्तु मन में कुछ दूसरा ही सोचता रहता है, वह कपटी स्वभाव का है। जो कपटी स्वभाव का नहीं है, वह साधु है। स्वरूप दामोदर ने तुरन्त संकेत किया कि महाप्रभु के साथ जाने के लिए बलभद्र भट्टाचार्य सर्वथा उपयुक्त था, क्योंकि वह विद्वान तथा सरल था और श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के प्रति अत्यधिक प्रेम रखता था। वह कृष्णभावनामृत में उन्नत भी था, इसलिए उसे ही महप्रभु के निजी दास के रूप में जाने के लिए उपयुक्त समझा गया।

श्लोक 14 तथा 15 में स्निग्ध ("अत्यन्त शान्त") तथा सु-स्निग्ध ("स्नेहिल") शब्द आये हैं। इनका प्रयोग श्रीमद्भागवत (1.1.8) में भी हुआ है- ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत–"जिस शिष्य में गुरु के लिए वास्तविक प्रेम होता है, उसे गुरु की कृपा से सारा गुह्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है।" श्रील श्रीधर स्वामी की टीका है कि स्निग्धस्य का अर्थ प्रेमवत: है। जिसमें अपने गुरु के लिए विपुल प्रेम होता है, वह प्रेमवत: है।

प्रथमेइ तोमा-सङ्गे आइला गौड़ हैते ।

दुँहार इच्छा आछे 'सर्व-तीर्थ' करिते ॥ 16॥

प्रथमेइ-आरम्भ में; तोमा-सङ्गे-आपके साथ; आइला-आया; गौड़ हैते–बंगाल से; दुँहार इच्छा-उसकी इच्छा; आछे-है; सर्व-तीर्थ–सभी तीर्थस्थानों में; करिते-जाकर देखने की।

अनुवाद

"प्रारम्भ में वह बंगाल से आपके साथ आया था। उसकी इच्छा है कि वह समस्त तीर्थस्थानों का दर्शन करे।

दुँहार सङ्गे आछे विप्र एक 'भृत्य' ।

इँहो पथे करिबेन सेवा-भिक्षा-कृत्य ॥17॥

दुँहार सङ्गे-उसके साथ; आछे-है; विप्र-ब्राह्मण; एक-एक; भृत्य-सेवक; इँहो–यह व्यक्ति; पथे-मार्ग में; करिबेन–करेगा; सेवा–सेवा; भिक्षा-कृत्य-और पकाने की व्यवस्था।

अनुवाद

"इसके अतिरिक्त आप दूसरा ब्राह्मण भी ले जाएँ, जो रास्ते में सेवक का काम कर सके और आपकी भोजन-व्यवस्था कर सके।

इँहारे सङ्गे लह यदि, सबार हय 'सुख' ।

वन-पथे याइते तोमार नहिबे कोन 'दुःख' ॥18॥

इँहारे-उसको; सङ्गे-साथ लेना; लह-आप स्वीकार करें; यदि-यदि; सबार हय सुख-हर व्यक्ति प्रसन्न होगा; वन-पथे–जंगल के मार्ग पर; याइते-जाने में; तोमार-आपको; नहिबे–नहीं होगी; कोन-कोई; दुःख–कठिनाई।

अनुवाद

"यदि आप उसे भी साथ ले सकें, तो हम अत्यन्त सुखी होंगे। यदि आपके साथ जंगल के मार्ग में दो लोग रहेंगे, तो निश्चित रूप से आपको कोई भी कठिनाई या असुविधा नहीं होगी।

सेइ विप्र वहि' निबे वस्त्राम्बु-भाजन ।

भट्टाचार्य भिक्षा दिबे करि' भिक्षाटन ॥19॥

सेइ विप्र-दूसरा ब्राह्मण; वहि' निबे-उठायेगा; वस्त्र-अम्बु-भाजन-वस्त्र तथा जलपात्र; भट्टाचार्य-बलभद्र भट्टाचार्य; भिक्षा दिबे-भोजन पकाने का प्रबन्ध करेगा; करि'-करके; भिक्षा-अटन-भिक्षा माँगना

अनुवाद

"दूसरा ब्राह्मण आपके वस्त्र तथा जलपात्र लिए रहेगा और बलभद्र भट्टाचार्य भिक्षा माँगकर आपके लिए भोजन पकायेगा।"

ताँहार वचन प्रभु अङ्गीकार कैल ।

बलभद्र-भट्टाचार्ये सड़े करि' निल ॥ 20॥

ताँहार वचन-उनके वचन; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; अङ्गीकार कैल–स्वीकार कर लिये; बलभद्र-भट्टाचार्ये-बलभद्र भट्टाचार्य को; सङ्गे करि' निल-अपने साथ ले लिया।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर पण्डित की बात मान ली और बलभद्र भट्टाचार्य को अपने साथ ले जाना स्वीकार कर लिया।

पूर्व-रात्र्ये जगन्नाथ देखि' 'आज्ञा' लञा ।

शेष-रात्रे उठि' प्रभु चलिला लुकाञा ॥21॥

पूर्व-रात्र्ये-पिछली रात को; जगन्नाथ देखि'–भगवान् जगन्नाथ के दर्शन करके; आज्ञा लञा–आज्ञा लेकर; शेष-रात्रे-रात की समाप्ति के निकट; उठि'–उठकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चलिला–चल पड़े; लुकाञा-छुपकर।

अनुवाद

पिछली रात्रि श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान जगन्नाथ का दर्शन किया था और उनसे आज्ञा ले ली थी। अब रात्रि समाप्त होने के पूर्व महाप्रभु जगे और तुरन्त चल पड़े। उनको किसीने देखा नहीं।

प्रातः काले भक्त-गण प्रभु ना देखिया ।

अन्वेषण करि' फिरे व्याकुल हञा ॥22॥

प्रातः काले-प्रातः काल; भक्त-गण-सभी भक्त; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु को; ना देखिया-न देखकर; अन्वेषण करि'-ढूंढने लगे; फिरे-घूमने लगे; व्याकुल हञा-व्याकुल होकर।

अनुवाद

चूँकि महाप्रभु जा चुके थे, अतः जब प्रातःकाल भक्तों ने उन्हें नहीं देखा, तो वे अत्यन्त व्याकुल होकर उनकी खोज करने लगे।

स्वरूप-गोसाञि सबाय कैल निवारण ।

निवृत्त हञा रहे सबै जानि' प्रभुर मन ॥23॥

स्वरूप-गोसाञि–स्वरूप दामोदर गोस्वामी; सबाय-सबको; कैल-किया; निवारण-रोका; निवृत्त हञा–संयम करके; रहे-रह गये; सबे-सब; जानि'-जानते हुए; प्रभुर मन-श्री चैतन्य महाप्रभु के मन को।

अनुवाद

जब सारे भक्त महाप्रभु की खोज कर रहे थे, तब स्वरूप दामोदर ने उन्हें रोका। तब सारे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के मन की बात जानकर चुप हो गये।

प्रसिद्ध पथ छाड़ि' प्रभु उपपथे चलिला ।

'कटक' डाहिने करि' वने प्रवेशिला ॥24॥

प्रसिद्ध–प्रसिद्ध; पथ–मार्ग; छाड़ि'–छोड़कर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; उपपथे-उपमार्ग से; चलिला-चलने लगे; कटक–कटक नगर को; डाहिने-दाहिनी ओर; करि'-रखकर; वने-वन में; प्रवेशिला–प्रवेश किया।

अनुवाद

महाप्रभु जाने-पहचाने सार्वजनिक मार्ग पर न चलकर उपमार्ग से होकर गये। इस तरह उन्होंने कटक शहर को अपनी दाईं ओर छोड़ते हुए जंगल में प्रवेश किया।

निर्जन-वने चले प्रभु कृष्ण-नाम लञा ।

हस्ति-व्याघ्र पथ छाड़े प्रभुरे देखिया ॥25॥

निर्जन-वने-एकान्त वन में; चले–चलने लगे; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभुः कृष्ण-नाम लञा-कृष्ण का पावन नाम लेते हुए; हस्ति–हाथियों; व्याघ्र–बाघों ने; पथ छाड़े-पथ छोड़ दिया; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; देखिया-देखकर।

अनुवाद

जब महाप्रभु सुनसान जंगल से होकर कृष्ण-नाम का कीर्तन करते हुए जा रहे थे, तो बाघों तथा हाथियों ने उन्हें देखकर रास्ता छोड़ दिया।

पाले-पाले व्याघ्र, हस्ती, गण्डार, शूकर-गण ।

तार मध्ये आवेशे प्रभु करिला गमन ॥26॥

पाले-पाले–झुण्डों में; व्याघ्र–बाघ; हस्ती-हाथी; गण्डार–गैंडे; शूकर-गण-सूअर; तार मध्ये उनके बीच से; आवेशे-आवेश में; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करिला गमन-गुजरे।

अनुवाद

जब महाप्रभु भावावेश में जंगल से होकर जा रहे थे, तो झुंड के झुंड बाघ, हाथी, गैंडे तथा सुअर आये। महाप्रभु इन सबके बीच से होकर चलते गये।

देखि' भट्टाचार्येर मने हय महा-भय ।

प्रभुर प्रतापे तारा एक पाश हय ॥27॥

देखि'–देखकर; भट्टाचार्येर– भट्टाचार्य के; मने-मन में; हय-हुआ; महा-भय-बहुत भय; प्रभुर प्रतापे-चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से; तारा–वे; एक पाश हय–एक ओर होकर खड़े रहे।

अनुवाद

बलभद्र भट्टाचार्य उन्हें देखकर अत्यन्त डरा हुआ था, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रताप से सारे पशु एक ओर खड़े रहे।

एक-दिन पथे व्याघ्र करियाछे शयन ।

आवेशे तार गाये प्रभुर लागिल चरण ॥ 28॥

एक-दिन-एक दिन; पथे-मार्ग में; व्याघ्र-एक बाघ, करियाछे शयन-लेटा हुआ था; आवेशे-प्रेमावेश में; तार गाये-उसके शरीर पर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; लागिल-लग गये; चरण-चरणकमल।

अनुवाद

एक दिन एक बाघ रास्ते में लेटा हुआ था और श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में रास्ते पर चले जा रहे थे, तो उनका पाँव उस बाघ से छू गया।

प्रभु कहे,—कह 'कृष्ण', व्याघ्र उठिल ।

'कृष्ण' 'कृष्ण' कहि' व्याघ्र नाचिते लागिल ॥29॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; कह कृष्ण-कृपया हरे कृष्ण कहो; व्याघ्र उठिल-बाघ उठ खड़ा हुआ; कृष्ण कृष्ण कहि'-'कृष्ण कृष्ण' कहते हुए; व्याघ्र-बाघ ने; नाचिते-नाचना; लागिल शुरू किया।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "कृष्ण-नाम का कीर्तन करो!" इस पर वह बाघ तुरन्त उठ खड़ा हुआ और "कृष्ण! कृष्ण!" कहकर नृत्य करने लगा।

आर दिने महाप्रभु करे नदी स्नान ।

मत्त-हस्ति-यूथ आइल करिते जल-पान ॥ 30॥

आर दिने एक अन्य दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करे–किया; नदी स्नान-नदी में स्नान; मत्त-हस्ति-यूथ-उन्मत्त हाथियों का झुंड; आइल-आ गया; करिते-करने के लिए; जल-पान-जल पान।

अनुवाद

अन्य दिन जब श्री चैतन्य महाप्रभु नदी में स्नान कर रहे थे, तब मत्त हाथियों का एक झुंड पानी पीने के लिए वहाँ आया।

प्रभु जल-कृत्य करे, आगे हस्ती आइला ।

'कृष्ण कह' बलि' प्रभु जल फेलि' मारिला ॥31॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जल-कृत्य करे–स्नान कर रहे थे और जल में गायत्री मंत्र जप रहे थे; आगे-सामने; हस्ती-हाथी; आइला–आये; कृष्ण कह–हरे कृष्ण बोलो; बलि' कहकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; जल फेलि'–जल उछालकर; मारिला-मारा।

अनुवाद

जब महाप्रभु स्नान कर रहे थे और गायत्री मन्त्र जप रहे थे, तब वे हाथी उनके सामने आये। महाप्रभु ने तुरन्त उन हाथियों पर पानी उछालकर उनसे कृष्ण-नाम का उच्चारण करने के लिए कहा।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् थे, जो एक महाभागवत अर्थात् महान् उन्नत भक्त की भूमिका निभा रहे थे। महाभागवत स्तर पर भक्त अपने मित्रों तथा शत्रुओं में कोई अन्तर नहीं करता। उस स्तर पर वह सबको कृष्ण-भक्त के रूप में देखता है। जैसाकि भगवद्गीता (5.18) में कहा गया है :

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

"विनीत साधु वास्तविक ज्ञान के कारण विद्वान तथा विनयी ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता, तथा चण्डाल को समान दृष्टि से देखता है।"

महाभागवत, विद्वान तथा आध्यात्मिक चेतना में उन्नत होने के कारण एक बाघ, हाथी या विद्वान में कोई अन्तर नहीं देखता। उन्नत चेतना की पहचान यह है कि वह निर्भय हो जाता है। वह किसी से ईर्ष्या नहीं करता और भगवान् की सेवा में सदैव लगा रहता है। वह हर जीव को भगवान् के शाश्वत अंश के रूप में देखता है और अपनी क्षमता अनुसार भगवत्कृपा से सेवा करता है। जैसाकि कृष्ण भगवद्गीता (15.15) में पुष्टि करते हैं :

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो

मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ॥

"मैं हर एक के हृदय में स्थित हूँ और मुझ से ही स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होती है।"

महाभागवत जानता है कि कृष्ण सबके हृदय में स्थित हैं। कृष्ण आदेश देते हैं और जीव उनके आदेशों का पालन करता है। बाघ, हाथी तथा सुअर के हृदय में भी कृष्ण हैं। इसीलिए कृष्ण उनसे कहते हैं, "ये महाभागवत हैं। इन्हें परेशान मत करनाक।" तो भला पशु ऐसे महापुरुष से क्यों ईर्ष्या करने लगे ? कनिष्ठ भक्तों या भक्ति में कम उन्नत लोगों को महाभागवत का अनुकरण नहीं करना चाहिए। उन्हें केवल उनके पदचिह्नों पर चलना चाहिए। अनुकरण शब्द का अर्थ है "नकल करना" और अनुसरण का अर्थ है "शिक्षाओं का पालन करनाक।" हमें महाभागवत या श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों का अनुकरण करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। हमें हमारी क्षमता के अनुसार उनके पदचिह्नों का अनुगमन करने का सर्वोत्तम प्रयास करना चाहिए। महाभागवत का हृदय भौतिक कल्मष से पूर्णतया मुक्त होता है और वह बाघ तथा हाथी जैसे हिंसक पशुओं तक का मित्र बन सकता है। वस्तुतः महाभागवत उनके साथ अपने घनिष्ठ मित्र जैसा ही व्यवहार करता है। इस स्तर पर पहुँचकर ईर्ष्या का प्रश्न ही नहीं उठता। जब महाप्रभु जंगल से होकर जा रहे थे, तब वे भावावेश में थे और वे इस जंगल को वृन्दावन समझ रहे थे। वे तो केवल कृष्ण की खोज कर रहे थे।

सेइ जल-बिन्दु-कणा लागे यार गाय ।

सेइ 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहे, प्रेमे नाचे, गाय ॥ 32॥

सेइ-उस; जल-जल की; बिन्द-बूंदे; कणा-कण; लागे–स्पर्श की; यार-जिनके; गाय-शरीर; सेइ-वे; कृष्ण कृष्ण-कृष्ण कृष्ण; कहे-कहने लगे; प्रेमे-प्रेमावेश में; नाचे-नाचने लगे; गाय-गाने लगे।

अनुवाद

जिन हाथियों के शरीर पर महाप्रभु द्वारा उछाला पानी पड़ा, वे "कृष्ण! कृष्ण!" कहने लगे और प्रेम में नाचने और गाने लगे।

केह भूमे पड़े, केह करये चित्कार ।

देखि' भट्टाचार्येर मने हय चमत्कार ॥ 33॥

केह-उनमें से कुछ; भूमे-भूमि पर; पड़े-गिर गये; केह-उनमें से कुछ ने; करये-किया; चित्-कार-चिंघाड़े; देखि'–देखकर; भट्टाचार्येर–भट्टाचार्य के; मने-मन में; हय–हो गया; चमत्कार-आश्चर्य।

अनुवाद

कुछ हाथी भूमि पर गिर पड़े और कुछ प्रेमवश चिंघाड़ने लगे। यह देखकर बलभद्र भट्टाचार्य एकदम आश्चर्यचकित हो गया।

पथे याइते करे प्रभु उच्च सङ्कीर्तन ।

मधुर कण्ठ-ध्वनि शुनि' आइसे मृगी-गण ॥ 34॥

पथे याइते–मार्ग से गुजरते समय; करे–किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; उच्च-उच्च स्वर में; सङ्कीर्तन–हरे कृष्ण का कीर्तन; मधुर-मधुर; कण्ठ-ध्वनि-उनके कण्ठ की मधुर ध्वनि; शुनि'–सुनकर; आइसे-आईं; मृगी-गण-हिरणियाँ।

अनुवाद

कभी-कभी जंगल से गुजरते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु उच्च स्वर से कीर्तन करने लगते। उनकी मधुर वाणी सुनकर सारी हिरणियाँ उनके निकट आ जातीं।

डाहिने-वामे ध्वनि शुनि' याय प्रभु-सङ्गे ।

प्रभु तार अङ्ग मुछे, श्लोक पड़े रङ्गे ॥ 35॥

डाहिने-वामे दाहिनी और बाईं ओर; ध्वनि-ध्वनि; शुनि'–सुनकर; याय-वे पीछे पीछे गये; प्रभु-सड़े-महाप्रभु के साथ; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; तार–उनके; अङ्ग-शरीर; मुछे-थपथपाते; श्लोक-श्लोक; पड़े-पढ़ते; रङ्गे–अति उत्सुक होकर।

अनुवाद

उनका उच्च स्वर सुनकर हिरणियाँ उनके दाएँ-बाएँ चलती जातीं। महाप्रभु उन्हें अत्यन्त उत्सुकता से श्लोक सुनाते हुए उनकी पीठ थपथपाते।

धन्याः स्म मूढ़-मतयोऽपि हरिण्य एता

या नन्द-नन्दनमुपात्त-विचित्र-वेशम् ।

आकर्ण्य वेणु-रणितं सह-कृष्ण-साराः

पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥ 36॥

धन्याः-धन्य, भाग्यशाली; स्म–निश्चित रूप से; मूढ़-मतयः-मूर्ख, बुद्धिहीन; अपि-यद्यपि; हरिण्यः-हिरणी; एताः-ये; ग्राः-जो; नन्द-नन्दनम्-महाराज नन्द के पुत्र; उपात्त-विचित्र-वेशम्-आकर्षक वस्त्र पहने; आकर्ण्य-सुनकर; वेणु-रणितम्-उसकी वंशी की ध्वनि; सह-कृष्ण-साराः–काले हिरणों (उनके पतियों) के साथ; पूजाम् दधुः-उन्होंने पूजा की; विरचिताम्-किया; प्रणय-अवलोकैः–उनकी प्रेम भरी निगाहों से।

अनुवाद

"वे मूर्ख हिरण धन्य हैं, क्योंकि वे सुन्दर वेशधारी और बाँसुरी बजा रहे नन्द महाराज के पुत्र के समीप आये। निस्सन्देह, हिरण तथा हिरणियाँ प्रेम की चितवनों से भगवान् की पूजा करते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.21.11) का है, जो वृन्दावन की गोपियों की उक्ति-रूप में है।

हेन-काले व्याघ्र तथा आइल पाँच-सात ।

व्याघ्र-मृगी मिलि' चले महाप्रभुर साथ ॥ 37॥

हेन-काले-इस समय; व्याघ्र-बाघ; तथा-वहाँ; आइल-आये; पाँच-सात-पाँच-सात; व्याघ्र-मृगी–बाघ तथा हिरण; मिलि'–इकट्ठे मिलकर; चले-चलने लगे; महाप्रभुर साथ-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु जंगल से होकर जा रहे थे, तो पाँच-सात बाघ आये और वे हिरणों के साथ मिलकर महाप्रभु के पीछे-पीछे चलने लगे।

देखि' महाप्रभुर 'वृन्दावन'-स्मृति हैल ।

वृन्दावन-गुण-वर्णन श्लोक पड़िल ॥ 38॥

देखि'–देखकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; वृन्दावन-वृन्दावन की पवित्र भूमि की; स्मृति हैल–याद आई; वृन्दावन-श्री वृन्दावन के; गुण-गुणों के; वर्णन-वर्णन कर; श्लोक-श्लोक; पड़िल-पढ़ा।

अनुवाद

बाघों तथा हिरणों को अपने पीछे आते देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु को सहसा वृन्दावन का स्मरण हो आया। अतः वे वृन्दावन के दिव्य गुणों का वर्णन करने वाला श्लोक सुनाने लगे।

यत्र नैसर्ग-दुर्वैराः सहासन्नृ-मृगादयः ।

मित्राणीवाजितावास-द्रुत-रुट्तर्षणादिकम् ॥ 39॥

यत्र-जहाँ; नैसर्ग-स्वाभाविक रूप से; दुर्वैराः-शत्रुता में रहकर; सह आसन्-इकट्ठे रहते हैं; नृ-मनुष्य; मृग-आदयः-और पशु; मित्राणि-मित्र; इव-की भाँति; अजित-भगवान् कृष्ण के; आवास–निवास; द्रुत-चले गये; रुट्-क्रोध; तर्षण-आदिकम्-प्यास आदि।

अनुवाद

“वृन्दावन भगवान् का दिव्य धाम है। वहाँ न भूख है, न क्रोध, न ही प्यास है। यद्यपि मनुष्यों तथा हिंसक पशुओं में सहज वैर होता है, किन्तु वे वहाँ दिव्य भाव में मैत्रीपूर्वक रहते हैं।”

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य-अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

श्री राधा-कुण्ड, जो श्री चैतन्य महाप्रभु की वृन्दावन भेंट के समय एक छोटा, उथला तालाब था और जिसका स्थान श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रकट किया था।

जब भगवान् चैतन्य ने गोवर्धन पर्वत देखा, तो वे कृष्णप्रेम में विभोर हो गये और उन्होंने अत्यानन्द में नृत्य किया।

श्री राधा-रमण का मन्दिर और विग्रह, जिसे श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी ने श्रील रूप और सनातन गोस्वामी के मार्गदर्शन में स्थापित किया था। श्री राधा-रमण जी गोपाल भट्ट गोस्वामी द्वारा पूजित एक शालिग्राम-शिला में से प्रकट हुए और वे वृन्दावन के सात मुख्य विग्रहों में से एक हैं।

कभी कभी श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जाने के लिए झारीखंड के जंगल में से गुजरते समय उच्च स्वर से कीर्तन करते थे। उनकी मधुर ध्वनि सुनकर सारे हरिन-हिरनियाँ उनके पास आये और उनके पीछे दाहिने-बाँये होकर चलने लगे। महान कुतुहल के साथ एक श्लोक बोलते हुए भगवान् ने उन्हें अपनी हथेली से थपथपाया। फिर पाँच-सात शेर आये और वे भगवान् के पीछे पीछे चलने लगे। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा "बोलो 'कृष्ण! कृष्ण!"', तो शेर और हिरन बोलने लगे "कृष्ण!" और नाचने लगे। जब सारे शेर और हिरन नाचने और कूदने लगे, तो बलभद्र भट्टाचार्य ने उन्हें देखा और वे आश्चर्यचकित हो गये। सचमुच, शेर और हिरन एक दूसरे का आलिंगन करने लगे और मुख से मुख का स्पर्श करके एक दूसरे को चूमने लगे। जब चैतन्य महाप्रभु ने यह सारी क्रीड़ा देखी तो वे मुस्कुराने लगे।

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन के जंगलों में घूम रहे थे, तो चरने वाली गायों के झुण्ड ने उन्हें देखा, तो वे जोर से रम्भाने लगी और इससे वे हर्षोन्मादपूर्ण प्रेम से स्तम्भित हो गये। जैसे ही भगवान् वन में मधुर ध्वनि में पवित्र नाम गाने लगे, वैसे ही सारे हिरन-हिरनियाँ उनके पास आये और जब उन्होंने उनका मुखकमल देखा तो वे उनके शरीर को चाटने लगे। मधुमक्खियाँ एवं तोते व कोयल जैसे पक्षी पंचम स्वर में जोर से गाने लगे और मोर भगवान् के सामने नाचने लगे। श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर वृक्ष व लताएँ आनन्दित हुए। उनकी टहनियाँ खड़ी हो गई, मधु के रूप में वे आनन्द के अश्रु बहाने लगे, फूलों व फलों के भार से वे उनके चरणकमलों में नतमस्तक हुए तथा उन्होंने भगवान् को अनेक वस्तुएँ भेंट दी, मानो वे मित्र हो। इस प्रकार सारे चर व अचर जीव भगवान् चैतन्य महाप्रभु को देखकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुए।

महाप्रभु ने गोवर्धन पर्वत को देख कर भूमि पर गिर कर दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने गोवर्धन पर्वत के एक शिला-खण्ड का आलिंगन किया और उन्मत्त हो गये।

माता यशोदा ने भगवान् को सामान्य बालक समझ कर उन्हें रस्सी से बाँधना चाहा।

रूप गोस्वामी का आलिंगन करने के बाद महाप्रभु एक नाव में सवार हो गये। रूप गोस्वामी मूर्च्छित होकर उसी स्थान पर गिर पड़े।

श्री चैतन्य महाप्रभु, सनातन गोस्वामी को आँगन में आया हुआ देख कर, तेजी से उनके पास गये और उनका आलिंगन करने के बाद स्वयं भावविभोर हो गये।

अपने मुख में तृण पकड़ कर और अपना शीश झुका कर सनातन गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के पाँव पकड़ लिए।

प्रत्येक जीवात्मा के हृदय में परमात्मा निवास करते हैं, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पूर्ण विस्तार हैं।

तात्पर्य

यह कथन श्रीमद्भागवत (10.13.60) का है। श्रीकृष्ण के बछड़ों और गोपाल बालकों को चुराकर ब्रह्माजी ने उन्हें सुला दिया था और छिपा दिया था। एक क्षण बाद ब्रह्मा कृष्ण की दशा देखने आये। जब उन्होंने देखा कि कृष्ण अब भी अपने ग्वालमित्रों तथा पशुओं के साथ व्यस्त हैं और तनिक भी विचलित नहीं हैं, तो उन्होंने वृन्दावन के दिव्य वैभव की प्रशंसा की।

‘कृष्ण कृष्ण कह’ करि’ प्रभु यबे बलिल ।

‘कृष्ण’ कहि’ व्याघ्र-मृग नाचिते लागिल ॥40॥

कृष्ण कृष्ण कह–’’कृष्ण! कृष्ण!’’ कहो; करि’-इस प्रकार; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यबेजब; बलिल–उच्चार किया; कृष्ण कहि’–कृष्ण के पवित्र नाम का; व्याघ्र-मृग-बाघ और हिरन; नाचिते लागिल-नाचने लगे।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “कृष्ण! कृष्ण!’ बोलो’ तो बाघ तथा हिरन “कृष्ण!” का नाम लेने लगे और नृत्य करने लगे।

नाचे, कुन्दे व्याघ्र-गण मृगी-गण-सङ्गे ।

बलभद्र-भट्टाचार्य देखे अपूर्व-रङ्गे ॥41॥

नाचे-नाचने लगे; कुन्दे-कूदने लगे; व्याघ्र-गण-बाघ; मृगी-गण-सङ्गे–हिरणियों के साथ; बलभद्र-भट्टाचार्य–बलभद्र भट्टाचार्य; देखे-देखने लगा; अपूर्व-रङ्गे–अति चकित होकर।

अनुवाद

जब सारे बाघ तथा हिरन नाचने और कूदने लगे, तो बलभद्र भट्टाचार्य उन्हें देखकर आश्चर्यचकित रह गया।

व्याघ्र-मृग अन्योन्ये करे आलिङ्गन ।

मुखे मुख दिया करे अन्योन्ये चुम्बन ॥42॥

व्याघ्र-मृग-बाघ और मृग; अन्योन्ये-एक दूसरे को; करे–करने लगे; आलिङ्गन-आलिंगन; मुखे मुख दिया–मुख से मुख छूकर; करे–करने लगे; अन्योन्ये चुम्बन-एक दूसरे का चुम्बन।

अनुवाद

बाघ तथा हिरन एक-दूसरे का आलिंगन करने लगे और एक-दूसरे का मुख स्पर्श करके चूमने लगे।

कौतुक देखिया प्रभु हासिते लागिला।

ता-सबाके ताहाँ छाड़ि' आगे चलि' गेला ॥43॥

कौतुक देखिया-यह कौतुक देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हासिते लागिला-मुस्कुराने लगे; ता-सबाके–वे सब; ताहाँ छाड़ि'–उस स्थान को छोड़कर; आगे-आगे; चलि' गेला–चले गये।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कौतुक देखा, तो वे मन्दहास करने लगे। अन्त में उन पशुओं को छोड़कर महाप्रभु अपने रास्ते पर चल दिये।

मयूरादि पक्षि-गण प्रभुरे देखिया।

सङ्गे चले, 'कृष्ण' बलि' नाचे मत्त हञा ॥44॥

मयूर-आदि-मयूर आदि; पक्षि-गण-विभिन्न पक्षी; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; देखिया-देखकर; सङ्गे चले-साथ चलने लगे; कृष्ण बलि'–कृष्ण के पावन नाम का कीर्तन करते हुए; नाचे-नाचने लगे; मत्त हञा-उन्मत्त होकर।

अनुवाद

मोर इत्यादि पक्षियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु को देखा, तो उन्होंने भी कीर्तन करते और नाचते हुए महाप्रभु का पीछा करना शुरू कर दिया। वे सब कृष्ण के पावन नाम से मतवाले हो गये थे।

‘हरि-बोल’ बलि’ प्रभु करे उच्च-ध्वनि ।

वृक्ष-लता—प्रफुल्लित, सेइ ध्वनि शुनि, ॥ 45 ॥

हरि-बोल-“हरि बोल” की ध्वनि; बलि’–बोलकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करे-की; उच्च-ध्वनि-उच्च ध्वनि; वृक्ष-लता-वृक्ष और लताएँ; प्रफुल्लित-अत्यन्त प्रसन्न हो गये; सेइ-वह; ध्वनि-ध्वनि; शुनि’–सुनकर।

अनुवाद

जब महाप्रभु उच्चस्वर से “हरिबोल” का उच्चारण करते, तो सारे वृक्ष तथा लताएँ उनकी ध्वनि सुनकर प्रफुल्लित हो जातीं।

तात्पर्य

हरे कृष्ण मन्त्र का उच्चस्वर से कीर्तन करना इतना शक्तिशाली है कि यह वृक्षों तथा लताओं के भी कानों में प्रविष्ट हो सकता है-पशुओं तथा मनुष्यों के विषय में तो कहना ही क्या। एक बार महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर से पूछा था कि पेड़-पौधों का किस तरह उद्धार किया जा सकता है। इस पर हरिदास ठाकुर ने कहा था कि हरे कृष्ण महामन्त्र के उच्चस्वर से कीर्तन से न केवल पेड़-पौधे अपितु कीड़े-मकोड़े तथा अन्य सभी प्राणी भी लाभान्वित होंगे। अतः हरे कृष्ण के ऊँचे कीर्तन से क्षुब्ध नहीं होना चाहिए, क्योंकि यह कीर्तन करने वाले के लिए ही नहीं, अपितु इसे सुनने का अवसर पाने वाले हर एक श्रोता के लिए भी लाभप्रद है।

‘झारिखण्डे’ स्थावर-जङ्गम आछे यत ।

कृष्ण-नाम दिया कैल प्रेमेते उन्मत्त ॥ 46॥

झारिखण्डे-झारखण्ड नामक स्थान में; स्थावर-जङ्गम-चर-अचर; आछे-हैं; यत–सभी; कृष्ण-नाम दिया-सबको भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम देकर; कैल–किया; प्रेमेते-प्रेम में; उन्मत्त-पागल।

अनुवाद

इस तरह झारखण्ड के वन के सारे चर-अचर जीव महाप्रभु द्वारा ध्वनित कृष्ण का पवित्र नाम सुनकर मतवाले हो रहे थे।

तात्पर्य

झारखण्ड के विशाल जंगल में आटगड़, ढेकानल, आंगुल, लाहारा, कियझड़, बामड़ा, बोनाइ, गांगपुर, छोटा नागपुर, यशपुर तथा सरगुजा समेत विशाल भूभाग है। ये सारे स्थान पर्वतों तथा जंगलों से ढके हैं और झारखंड कहलाते हैं।

येइ ग्राम दिया ग्रान, याहाँ करेन स्थिति ।

से-सब ग्रामेर लोकेर हय 'प्रेम-भक्ति' ॥47॥

येइ ग्राम-जिन गाँवों में से; दिया ग्रान–महाप्रभु गुजरते थे; याहाँ-जहाँ; करेन-लेते थे; स्थिति–विश्राम; से-सब-वे सब; ग्रामेर–गाँवों के; लोकेर लोगों में; हय-जागृत हो गई; प्रेम-भक्ति-भगवान् की प्रेमभक्ति।

अनुवाद

महाप्रभु जिन-जिन गाँवों से होकर गये और जिन-जिन स्थानों में यात्रा के दौरान रुके, वहाँ के सारे लोग पवित्र हो गये और उनमें भगवत्प्रेम जागृत हो गया।

केह यदि ताँर मुखे शुने कृष्ण-नाम ।

ताँर मुखे आन शुने ताँर मुखे आन ॥48॥

सबे 'कृष्ण' 'हरि' बलि' नाचे, कान्दे, हासे ।

परम्पराय 'वैष्णव' हुइल सर्व देशे ॥49॥

केह-किसी ने; यदि-जब; ताँर मुखे-उनके मुख से; शुने-सुना; कृष्ण-नाम-हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन; ताँर मुखे-उसके मुख से; आन शुने-किसी और ने सुना; ताँर मुखे-और उसके मुख से; आन-किसी और ने; सबे–वे सब; कृष्ण-भगवान् कृष्ण के पावन नाम का; हरि-भगवान् का अन्य पावन नाम; बलि'–बोलकर; नाचे-नाचने लगे; कान्दे-रोने लगे; हासे-हँसने लगे; परम्पराय-परम्परा से; वैष्णव-भक्त; हइल हो गये; सर्व-देशे-सभी देशों में।

अनुवाद

यदि किसी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से पवित्र नाम का कीर्तन सुना और अन्य किसी ने इस व्यक्ति से यह कीर्तन सुना और पुनः तीसरे व्यक्ति से और किसी ने सुना, तो इस तरह की गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से सारे देशों के लोग वैष्णव बन गये। इस प्रकार हर व्यक्ति कृष्ण तथा हरि के नाम का कीर्तन करता, नाचता, रोता और हँसता।

तात्पर्य

यहाँ पर हरे कृष्ण महामन्त्र की दिव्य शक्ति का वर्णन हुआ है। पहली बात यह है कि पवित्र नाम का उच्चारण श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा किया जा रहा था। जब कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष उनसे सुनता है, तब वह शुद्ध हो जाता है। जब अन्य व्यक्ति उस व्यक्ति से सुनता है, तो वह भी शुद्ध हो जाता है। इस तरह शुद्ध भक्तों में शुद्धि की यह प्रक्रिया चलती रहती है। श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और कोई भी उनकी तरह शक्तिशाली नहीं हो सकता। फिर भी किसी शुद्ध भक्त के उच्चारण से हजारों लोग शुद्ध हो सकते हैं। यह शक्ति हर व्यक्ति के भीतर है, बशर्ते कि वह निरपराध होकर तथा भौतिक स्वार्थ से रहित होकर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करे। इस तरह निरपराध भाव से जब कोई शुद्ध भक्त कीर्तन करेगा, तो दूसरा व्यक्ति वैष्णव बन जायेगा और तब उससे अन्य वैष्णव प्रकट होगा। यही परम्परा पद्धति है।

यद्यपि प्रभु लोक-सङ्घट्टेर त्रासे ।

प्रेम 'गुप्त' करेन, बाहिरे ना प्रकाशे ॥50॥

यद्यपि यद्यपि; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; लोक-सङ्घट्टेर–लोगों की भीड़ से; त्रासे-भयभीत होकर; प्रेम-प्रेम को; गुप्त करेन-गुप्त रखते हैं; बाहिरे-बाहर; ना-नहीं; प्रकाशे–व्यक्त करते।

अनुवाद

महाप्रभु ने हमेशा अपने प्रेमभाव का प्रदर्शन नहीं किया। वे लोगों की भीड़ से भयभीत थे, अतः उन्होंने अपने प्रेम को गुप्त रखा।

तथापि ताँर दर्शन-श्रवण-प्रभावे ।

सकल देशेर लोक हइल 'वैष्णवे' ॥51॥

तथापि-तथापि, ताँर–उनके; दर्शन-दर्शन की; श्रवण-श्रवण की; प्रभावे-शक्ति से; सकल-सभी; देशेर-देशों के लोक-लोग; हइल हो गये; वैष्णवे-भगवान् के शुद्ध भक्त।

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने सहज प्रेमभाव को प्रकट नहीं किया, फिर भी हर व्यक्ति उन्हें देखकर और सुनकर शुद्ध भक्त बन गया।

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को महावदान्य अवतार कहा है। यद्यपि इस समय श्री चैतन्य महाप्रभु प्रकट रूप में उपस्थित नहीं हैं, किन्तु सारे संसार के लोग उनके नाम (श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द) का कीर्तन करके भक्त बनते जा रहे हैं। ऐसा महाप्रभु के पवित्र नाम के प्रेममय कीर्तन के कारण हो रहा है। कहा जाता है कि शुद्ध भक्त भगवान् का हर क्षण दर्शन कर सकता है, जिसके फलस्वरूप वह भगवत्-शक्ति से आवेशित रहता है। इसकी पुष्टि ब्रह्म-संहिता (5.38) द्वारा होती है- प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।

श्री चैतन्य महाप्रभु 500 वर्ष पूर्व प्रकट हुए, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी उपस्थिति के समय हरे कृष्ण महामन्त्र जितना शक्तिशाली था, अब वह उससे कम शक्तिशाली है। परम्परा के माध्यम से श्री चैतन्य महाप्रभु का श्रवण करके मनुष्य शुद्ध हो सकता है। इसलिए इस श्लोक में कहा गया है- तथापि ताँर दर्शन-श्रवण-प्रभावे । ऐसा नहीं है कि हर व्यक्ति कृष्ण या श्रीकृष्ण चैतन्य को प्रकट रूप में देख सकता है, किन्तु यदि वह श्रीचैतन्य-चरितामृत जैसे ग्रन्थों तथा शुद्ध वैष्णवों की परम्परा से उनके विषय में श्रवण करता है, तो उसके संसारी इच्छाओं तथा निजी स्वार्थों से रहित शुद्ध वैष्णव बनने में कोई बाधा नहीं है।

गौड़, बङ्ग, उत्कल, दक्षिण-देशे गिया ।

लोकेर निस्तार कैल आपने भ्रमिया ॥52॥

गौड़-बंगाल; बङ्ग–पूर्वी बंगाल; उत्कल-उड़ीसा; दक्षिण-देशे-दक्षिण भारत; गिया-जाकर; लोकेर-सभी लोगों का निस्तार-उद्धार; कैल–किया; आपने–स्वयं; भ्रमिया-भ्रमण करके।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल, पूर्वी बंगाल, उड़ीसा तथा दक्षिणी देशों की यात्रा की और कृष्णभावना का प्रसार करके सभी प्रकार के लोगों का उद्धार किया।

मथुरा याइबार छले आसेन झारिखण्ड ।

भिल्ल-प्राय लोक ताहाँ परम-पाषण्ड ॥53॥

मथुरा-मथुरा; याइबार-जाने के; छले-बहाने से; आसेन-आये; झारिखण्ड-झारखण्ड में; भिल्ल-प्राय-भीलों की तरह; लोक-लोग; ताहाँ-वहाँ; परम-पाषण्ड-भगवद्भावना से रहित।

अनुवाद

जब मथुरा जाते हुए महाप्रभु झारिखण्ड आये, तो उन्होंने देखा कि वहाँ के लोग लगभग असभ्य थे और भगवद्भावना से विहीन थे।

तात्पर्य

भिल्ल शब्द भीलों की जाति के लोगों के लिए आया है। ये भील काले अफ्रीकी जैसे होते हैं और शूद्रों से भी निम्न होते हैं। ऐसे लोग प्रायः जंगलों में रहते हैं और इन्हीं से चैतन्य महाप्रभु की भेंट हुई थी।

नाम-प्रेम दिया कैल सबार निस्तार।

चैतन्येर गूढ़-लीला बुझिते शक्ति कार ॥54॥

नाम-प्रेम दिया-उनको प्रेमावेश तथा पावन नाम प्रदान कर; कैल–किया; सबार निस्तार–उन सबका उद्धार; चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु की; गूढ़-लीला-गूढ़ लीलाएँ; बुझिते-समझने की; शक्ति-शक्ति; कार किसके पास है ?

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन भीलों को भी पवित्र नाम का कीर्तन करने और दिव्य प्रेम-पद तक ऊपर उठने का अवसर प्रदान किया। इस तरह उन्होंने उन सबका उद्धार किया। भला महाप्रभु की दिव्य लीलाओं को समझ पाने की शक्ति किसमें है?

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की दया के प्रमाणस्वरूप हम अनुभव कर रहे हैं कि अफ्रीका के लोग अन्य वैष्णवों की तरह कृष्णभावनामृत स्वीकार करने, नाचने, गाने और प्रसाद ग्रहण करने लगे हैं। यह सब महाप्रभु की शक्ति का फल है। सारे जगत् में यह शक्ति किस तरह कार्य कर रही है, इसे भला कौन समझ सकता है?

वन देखि' भ्रम हय–एइ वृन्दावन' ।

शैल देखि' मने हय—एइ 'गोवर्धन' ॥55॥

वन देखि'–वन देखकर; भ्रम हय-भ्रम हुआ; एइ–यह; वृन्दावन-वृन्दावन; शैल देखि'–पहाड़ी देखकर; मने हय-मन में विचार आया; एइ गोवर्धन–यही गोवर्धन पर्वत है।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु झारिखण्ड जंगल से होकर जा रहे थे, तब उन्होंने उसे वृन्दावन ही समझ लिया। जब वे पहाड़ियों से होकर गुजर रहे थे, तो उन्हें वे गोवर्धन पर्वत समझ बैठे।

याहाँ नदी देखे ताहाँ मानये—'कालिन्दी' ।

महा-प्रेमावेशे नाचे प्रभु पड़े कान्दि' ॥56॥

याहाँ–जहाँ कहीं; नदी-नदी; देखे-देखते; ताहाँ-वहाँ; मानये-मान लिया; कालिन्दी-यमुना नदी है; महा-प्रेम-आवेशे–महा प्रेमावेश में; नाचे-नाचने लगे; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; पड़े-गिर गये; कान्दि'-रोते हुए।

अनुवाद

इसी तरह जब भी श्री चैतन्य महाप्रभु कोई नदी देखते, तो वे उसे तुरन्त यमुना नदी मान बैठते। इस तरह जंगल में वे परम प्रेमावेश से पूर्ण हो जाते और नाचते तथा रोते-रोते गिर पड़ते थे।

पथे याइते भट्टाचार्य शाक-मूल-फल ।

याहाँ येइ पायेन ताहाँ लयेन सकल ॥57॥

पथे याइते–मार्ग में चलते समय; भट्टाचार्य-बलभद्र भट्टाचार्य; शाक-शाक (पालक); मूल-मूल (जड़ें); फल-फल; याहाँ-जहाँ कहीं; येइ-जो कुछ; पायेन-वे पाते; ताहाँ-वहाँ; लयेन-वे ले लेते; सकल-सब।

अनुवाद

मार्ग में बलभद्र भट्टाचार्य सभी तरह के शाक, कन्द तथा फल जहाँ कहीं उपलब्ध होते, एकत्र कर लेते।

ये-ग्रामे रहेन प्रभु, तथाय ब्राह्मण ।

पाँच-सात जन आसि' करे निमन्त्रण ॥58॥

ये-ग्रामे-जिस किसी गाँव में; रहेन-रहते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तथाय-वहाँ; ब्राह्मण-ब्राह्मण, पाँच-सात जन–पाँच-सात व्यक्ति; आसि'-आकर; करे-कर जाते; निमन्त्रण-निमन्त्रण।

अनुवाद

जब भी श्री चैतन्य महाप्रभु किसी गाँव में जाते, तो पाँच-सात ब्राह्मण आकर महाप्रभु को निमन्त्रण दे जाते।

केह अन्न आनि' देय भट्टाचार्य-स्थाने ।

केह दुग्ध, दधि, केह घृत, खण्ड आने ॥ 59॥

केह-कोई; अन्न–अन्न; आनि'–लाकर; देय-दे जाता; भट्टाचार्य-स्थाने–बलभद्र भट्टाचार्य के पास; केह--कोई; दुग्ध-दुग्ध; दधि-दही; केह-कोई; घृत-घी; खण्ड-खांड; आने-ले आता।

अनुवाद

कुछ लोग अन्न लाकर बलभद्र भट्टाचार्य को दे जाते। अन्य लोग दूध तथा दही ले आते, तो कोई घी तथा शक्कर ले आता।

याहाँ विप्र नाहि ताहाँ 'शूद्र-महाजन'।

आसि' सबे भट्टाचार्ये करे निमन्त्रण ॥ 60॥

याहाँ–जहाँ कहीं; विप्र-ब्राह्मण; नाहिन मिलता; ताहाँ-वहाँ; शूद्र-महा-जन-ब्राह्मणों के अलावा दूसरे कुलों के जन्मे भक्तों की; आसि'–आकर; सबे–वे सब; भट्टाचार्थे–बलभद्र भट्टाचार्य को करे निमन्त्रण-निमन्त्रण देते।

अनुवाद

कुछ गाँवों में ब्राह्मण नहीं थे, फिर भी अब्राह्मण कुलों में जन्मे भक्त आते और बलभद्र भट्टाचार्य को आमन्त्रित कर जाते।

तात्पर्य

वास्तव में संन्यासी या ब्राह्मण निम्न कुल में जन्मे व्यक्ति के आमन्त्रण को स्वीकार नहीं करते। किन्तु ऐसे अनेक भक्त होते हैं, जो दीक्षा द्वारा ब्राह्मण-पद तक ऊपर उठ जाते हैं। ये लोग शूद्र महाजन कहलाते हैं। इसका अर्थ है, वह व्यक्ति जो अब्राह्मण परिवार में उत्पन्न होकर दीक्षा से ब्राह्मण-पद प्राप्त कर लेता है। ऐसे भक्तों ने बलभद्र भट्टाचार्य को आमन्त्रित किया। मायावादी संन्यासी केवल ब्राह्मण परिवार का निमन्त्रण स्वीकार करेगा, किन्तु एक वैष्णव उस ब्राह्मण का निमन्त्रण स्वीकार नहीं करेगा, जो वैष्णव सम्प्रदाय का न हो। किन्तु यदि वह व्यक्ति दीक्षा-प्राप्त वैष्णव है, तो एक वैष्णव ब्राह्मण या शूद्र महाजन का भी निमन्त्रण स्वीकार कर लेगा। श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं शूद्र महाजनों का निमन्त्रण स्वीकार किया। इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि वैष्णव मन्त्र द्वारा दीक्षा-प्राप्त कोई भी व्यक्ति का स्वीकार ब्राह्मण के रूप में किया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति का निमन्त्रण स्वीकार किया जा सकता है।

भट्टाचार्य पाक करे वन्य-व्यञ्जन ।

वन्य-व्यञ्जने प्रभुर आनन्दित मन ॥61॥

भट्टाचार्य–बलभद्र भट्टाचार्य; पाक करे- भोजन पकाता था; वन्य-व्यञ्जन–जंगली सब्जियों के सभी प्रकार के व्यंजन; वन्य-व्यञ्जने-ऐसी जंगली सब्जियों से; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आनन्दित मन-मन प्रसन्न हो जाता।

अनुवाद

बलभद्र भट्टाचार्य जंगल से एकत्र किये गये सभी तरह के साग-सब्जी को पकाता और श्री चैतन्य महाप्रभु इन व्यंजनों को परम प्रसन्न होकर ग्रहण करते थे।

दुइ-चारि दिनेर अन्न राखेन संहति ।

याहाँ शून्य वन, लोकेर नाहिक वसति ॥62॥

ताहाँ सेइ अन्न भट्टाचार्य करे पाक ।

फल-मूले व्यञ्जन करे, वन्य नाना शाक ॥ 63 ॥

दुइ-चारि-दो चार; दिनेर-दिनों का; अन्न–अन्न; राखेन-रखता; संहति–संग्रह करके; याहाँ-जहाँ कभी; शून्य वन-निर्जन वन; लोकेर लोगों का; नाहिक-नहीं होता; वसति–निवास; ताहाँ-वहाँ; सेइ-वही; अन्न–अन्न; भट्टाचार्य–बलभद्र भट्टाचार्य; करे पाक-पकाता; फल-मूले–मूल और फलों से; व्यञ्जन करे-सब्जियाँ तैयार करता; वन्य-वन के; नाना शाक-नाना प्रकार के शाक।

अनुवाद

बलभद्र भट्टाचार्य दो-चार दिन चल सकने के लिए अन्न का संग्रह कर लेता था। निर्जन स्थान पर वह इसी अन्न को पकाता और जंगल से एकत्र किये हुए साग-सब्जी तथा फल-मूल को खाने के लिए तैयार करता।

परम सन्तोष प्रभुर वन्य-भोजने ।

महा-सुख पान, ये दिन रहेन निर्जने ॥ 64॥

परम-परम; सन्तोष-सन्तोष; प्रभुर–महाप्रभु को; वन्य-भोजने–जंगल से एकत्र की हुई सब्जियाँ खाने में; महा-सुख पान-महा सुख पाया; ये दिन-जिस दिन; रहेन-ठहरना पड़ा; निर्जने-एकान्त स्थान में।

अनुवाद

महाप्रभु इस जंगली साग-सब्जी को खाकर परम सुखी होते और इससे भी अधिक सुखी तब होते जब वे किसी निर्जन स्थान में ठहरते।

भट्टाचार्य सेवा करे, स्नेहे यैछे 'दास' ।

ताँर विप्र वहे जल-पात्र-बहिर्वास ॥65॥

भट्टाचार्य–बलभद्र भट्टाचार्य; सेवा करे-सेवा की; स्नेहे-अत्यन्त स्नेह से; यैछे-ठीक उसी तरह; दास-जैसे एक सेवक; ताँर विप्र-उसका ब्राह्मण सहायक; वहे-उठाता; जल-पात्र-जलपात्र; बहिर्वास-और वस्त्र।

अनुवाद

बलभद्र भट्टाचार्य महाप्रभु से इतना स्नेह करता कि वह दास की तरह सेवा करता रहता। उसका सहायक ब्राह्मण जलपान्न तथा वस्त्र लिये रहता।

निर्झरिते उष्णोदके स्नान तिन-बार ।

दुइ-सन्ध्या अग्नि-ताप काष्ठेर अपार ॥66॥

निझरिते-झरनों में; उष्ण-उदके-गरम पानी में; स्नान-स्नान; तिन-बार-तीन बार; दुइ-सन्ध्या–प्रात: और संध्या; अग्नि-ताप-अग्नि की गर्मी; काष्ठेरः-लकड़ी की; अपार–असीम।

अनुवाद

महाप्रभु झरने के गरम जल से तीन बार स्नान करते थे। वे प्रातः और सायंकाल प्रचुर लकड़ियों से उत्पन्न अग्नि से अपने आपको गरमाते थे।

निरन्तर प्रेमावेशे निर्जने गमन ।

सुख अनुभवि' प्रभु कहेन वचन ॥ 67॥

निरन्तर-सदैव: प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; निर्जने–निर्जन स्थान में; गमन-जाकर; सुख अनुभवि'-सुख अनुभव करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहेन–कहे; वचन-ये वचन ।

अनुवाद

इस एकान्त जंगल में यात्रा करते हुए और परम सुख का अनुभव करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने ये वचन कहे।

शुन, भट्टाचार्य,— "आमि गेलाङ बहु-देश ।

वन-पथे दुःखेर काहाँ नाहि पाइ लेश ॥ 68 ॥

शुन–कृपया सुनो; भट्टाचार्य–मेरे प्रिय भट्टाचार्य; आमि-मैंने; गेलाङ–भ्रमण किया है; बहु-देश-बहुत देशों में; वन-पथे-वन के मार्ग से; दुःखेर-दुःख; काहाँ-कहीं भी; नाहि पाइ–नहीं पाया; लेश-तनिक भी।

अनुवाद

“हे भट्टाचार्य, मैंने जंगल से होकर बहुत दूर की यात्रा की है, किन्तु मुझे तनिक भी कष्ट नहीं हुआ है।

कृष्ण—कृपालु, आमाय बहुत कृपा कैला।

वन-पथे आनि’ आमाय बड़ सुख दिला ॥ 69 ॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कृपालु अत्यन्त दयालु; आमाय-मुझ पर; बहुत-बहुत; कृपा-कृपा; कैला–दिखाई; वन-पथे-वन के मार्ग में; आनि’-लाकर; आमाय-मुझे; बड़-बड़ा; सुख–सुख; दिला दिया।

अनुवाद

“कृष्ण मुझ पर विशेष कृपालु हैं। उन्होंने जंगल से होकर जाने वाले इस पथ पर लाकर मुझ पर कृपा दिखलाई है। इस तरह उन्होंने मुझे अत्यधिक आनन्द प्रदान किया है।

पूर्वे वृन्दावन याइते करिलाङविचार।

माता, गङ्गा, भक्त-गणे देखिब एक-बार ॥ 70 ॥

पूर्वे-पहले; वृन्दावन-वृन्दावन को; याइते-जाने का; करिलाङ–मैंने किया; विचार-विचार; माता-माता; गङ्गा-गंगा; भक्त-गणे-और भक्तों को; देखिब-मैं देबूंगा; एक-बार-एक बार।

अनुवाद

इसके पूर्व मैंने वृन्दावन जाने और रास्ते में एक बार फिर से अपनी माता, गंगा नदी तथा अन्य भक्तों को देखने का निश्चय किया था।

भक्त-गण-सङ्गे अवश्य करिब मिलन।

भक्त-गणे सङ्गे लञा याब ‘वृन्दावन’ ॥79॥

भक्त-गण-सङ्गे-अपने सभी भक्तों के संग; अवश्य–अवश्य; करिब–करूँगा; मिलन–मिलन; भक्त-गणे-सभी भक्त; सङ्गे–साथ; लञा–लेकर; याब-मैं जाऊँगा; वृन्दावन-वृन्दावन धाम को।

अनुवाद

"मैंने सोचा था कि एक बार फिर सभी भक्तों को देखूगा और उनसे मिलूँगा तथा उन्हें अपने साथ वृन्दावन ले जाऊँगा।

एत भावि' गौड़-देशे करिलुँ गमन ।

माता, गङ्गा भक्ते देखि' सुखी हैल मन ॥72॥

एत भावि'-इस प्रकार विचार करके; गौड़-देशे-बंगाल को; करिलुँ गमन-मैं गया; माता-अपनी माता; गङ्गा-गंगा; भक्ते-भक्तों को; देखि'–देखकर; सुखी–प्रसन्न; हैल-हो गया; मन–मेरा मन।

अनुवाद

"इस तरह मैं बंगाल गया और वहाँ अपनी माता, गंगा नदी तथा भक्तों को देखकर अत्यन्त सुखी हुआ।

भक्त-गणे लञा तबे चलिलाङरङ्गे ।

लक्ष-कोटि लोक ताहाँ हैल आमा-सङ्गे ॥73॥

भक्त-गणे-सभी भक्त; लञा-लेकर; तबे-तब; चलिलाङ रङ्गे–मैं अत्यन्त आनन्दित होकर चल पड़ा; लक्ष-कोटि-कई हजारों लाखों; लोक-लोग; ताहाँ-वहाँ; हैल–हो गये; आमा-सङ्गे–मेरे साथ।

अनुवाद

"किन्तु जब मैं वृन्दावन को चलने लगा, तो हजारों, लाखों लोग एकत्रित हो गये और मेरे साथ चलने लगे।

सनातन-मुखे कृष्ण आमा शिखाइला ।

ताहा विघ्न करि' वन-पथे लञा आइला ॥74॥

सनातन-मुखे–सनातन के मुख से; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; आमा–मुझे; शिखाइला–सिखाया; ताहा–कि; विघ्न करि'-बाधा डालकर; वन-पथे-वन मार्ग से; लञा–लेकर; आइला–आया।

अनुवाद

"इस तरह मैं एक बड़ी भीड़ के साथ वृन्दावन जा रहा था, किन्तु सनातन के मुख से कृष्ण ने मुझे एक शिक्षा दी। इस तरह कुछ अवरोध डालकर उन्होंने मुझे इस जंगल से होकर जाने वाले वृन्दावन के मार्ग पर ला दिया।

कृपार समुद्र, दीन-हीने दयामय ।

कृष्ण-कृपा विना कोन 'सुख' नाहि हय" ॥75 ॥

कृपार समुद्र कृपा सागर; दीन-हीने–निर्धनों और पतितों पर; दया-मय-अत्यन्त दयालु; कृष्ण-कृपा-कृष्ण की कृपा; विना-बिना; कोन-कोई भी; सुख–सुख; नाहि हये-नहीं मिलता।

अनुवाद

"कृष्ण कृपा के सागर हैं। वे दीन तथा पतितों पर विशेष रूप से दयालु हैं। उनकी कृपा के बिना सुख की कोई सम्भावना नहीं है।"

भट्टाचार्ये आलिङ्गिया ताँहारे कहिल ।

'तोमार प्रसादे आमि एत सुख पाइल' ॥76 ॥

भट्टाचार्ले-बलभद्र भट्टाचार्य का; आलिङ्गिया-आलिंगन करके; ताँहारे-उसको; कहिल–कहा; तोमार प्रसादे-तुम्हारी कृपा से; आमि-मुझे; एत–इतना; सुख–सुख; पाइल-मिला।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने बलभद्र भट्टाचार्य का आलिंगन किया और उससे कहा, "तुम्हारी कृपा से ही मैं अब इतना सुखी हूँ।"

तेंहो कहेन,— "तुमि 'कृष्ण', तुमि 'दयामय'।

अधम जीव मुञि, मोरे हइला सदय ॥ 77॥

तेंहो कहेन–भट्टाचार्य ने कहा; तुमि कृष्ण-आप स्वयं कृष्ण हैं; तुमि-आप; दया-मय-दयालु; अधम-अधम; जीव-जीव; मुञि-मैं; मोरे-मुझ पर; हइला-आप हुए हैं; स-दय-दयालु।

अनुवाद

बलभद्र भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, आप साक्षात् कृष्ण हैं, इसीलिए आप इतने दयालु हैं। मैं तो पतित जीव हूँ, किन्तु आपने मुझ पर अतीव कृपा की है।

मुञि छार, मोरे तुमि सङ्गे लञा आइला।

कृपा करि' मोर हाते 'प्रभु' भिक्षा कैला ॥78॥

मुञि-मैं; छार–अत्यन्त पतित; मोरे-मुझे; तुमि-आप; सङ्गे–साथ; लञा–लेकर; आइला–आये हैं; कृपा करि'–कृपा करके; मोर हाते-मेरे हाथ से; प्रभु मेरे प्रभु; भिक्षा कैला-आपने भोजन स्वीकार किया।

अनुवाद

"हे महोदय, मैं अत्यन्त पतित हूँ, फिर भी आप मुझे अपने साथ ले आये। आपने महती कृपा करके मेरे द्वारा बनाया हुआ भोजन स्वीकार किया है।

अधम-काकेरे कैला गरुड़-समान।

‘स्वतन्त्र ईश्वर’ तुमि–स्वयं भगवान् ॥79॥

अधम-काकेरे-नीच कौआ; कैला-आपने बनाया है; गरुड़-समान–गरुड़ के समान; स्वतन्त्र–स्वतन्त्र; ईश्वर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; तुमि-आप; स्वयम् भगवान् स्वयं मूल परम भगवान् हैं।

अनुवाद

“यद्यपि मैं अधम कौवे से अधिक अच्छा नहीं हूँ, किन्तु आपने मुझे अपना वाहन गरुड़ बनाया है। आप स्वतन्त्र पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर हैं-आदि भगवान् हैं।

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।

यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द-माधवम् ॥80॥

मूकम्-गूंगे को; करोति-कर देते हैं; वाचालम्-वाचाल, बिना अवरोध बोलने वाला; पङ्गुम्-लंगड़े को; लङ्घयते-पार करवाते हैं; गिरिम्-पर्वत; यत्-कृपा-जिनकी कृपा; तम्-उनको; अहम्-मैं; वन्दे-नमस्कार करता हूँ; परम-आनन्द-परमानन्द; माधवम्-माधव, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सच्चिदानन्द विग्रह-दिव्य आनन्द, ज्ञान तथा शाश्वतता के मूर्तिमान रूप हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ, जिनकी कृपा से गूंगा वक्ता बन जाता है और लंगड़ा पर्वत को लाँघ जाता है। ऐसी है भगवान् की कृपा।”’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत की श्रीधर स्वामी कृत भावार्थ-दीपिका-टीका (1.1.1) से उधृत है।

एइ-मत बलभद्र करेन स्तवन ।

प्रेम-सेवा करि’ तुष्ट कैल प्रभुर मन ॥81॥

एइ-मत-इस प्रकार; बलभद्र-बलभद्र भट्टाचार्य; करेन-की; स्तवन-स्तुति; प्रेम-सेवा करि'-प्रेमभाव से सेवा करके; तुष्ट-तुष्ट; कैल–किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मन–मन।

अनुवाद

इस तरह बलभद्र भट्टाचार्य ने महाप्रभु की स्तुति की। उसने प्रेममयी सेवा करके महाप्रभु के मन को तुष्ट किया।

एइ-मत नाना-सुखे प्रभु आइला 'काशी' ।

मध्याह्न-स्नान कैल मणिकर्णिकाय आसि' ॥82 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; नाना-सुखे-बहुत सुख से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः आइला-आये; काशी-काशी नामक तीर्थस्थान में; मध्याह्न-स्नान-मध्याह्न स्नान; कैल-किया; मणिकर्णिकाय-मणिकर्णिका के स्नान घाट पर; आसि-आकर।

अनुवाद

अन्त में महाप्रभु प्रसन्न मन से काशी नामक तीर्थस्थान में आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने मणिकर्णिका नामक घाट में स्नान किया।

तात्पर्य

काशी वाराणसी (बनारस) का दूसरा नाम है। यह प्राचीन काल से तीर्थस्थान रहा है। यहाँ पर आसिः तथा वरुणा नामक दो नदियाँ मिलती हैं। मणिकर्णिका इसलिए विख्यात है, क्योंकि यहाँ पर महापुरुषों के मतानुसार भगवान् विष्णु के कान से मणिजटित कान की बाली गिर गई थी। कुछ लोगों का विचार है कि शिवजी के कान की बाली गिरी थी। मणि का अर्थ है "रत्न" तथा कर्णिका का अर्थ है "कान सेका।" कुछ लोगों के मतानुसार प्रभु विश्वनाथ बहुत बड़े वैद्य हैं, जो कान में भगवान् राम के नाम की ध्वनि सुनने वाले व्यक्ति के भवरोग का इलाज करके उद्धार करते हैं। इसलिए यह तीर्थस्थान

मणिकर्णिका कहलाता है। कहा जाता है कि जहाँ से होकर गंगा नदी बहती है, उससे उत्तम अन्य कोई स्थान नहीं होता और मणिकर्णिका घाट तो विशेष रूप से पवित्र है, क्योंकि यह प्रभु विश्वनाथ को अतीव प्रिय है। काशीखण्ड में कहा गया है-

संसारिचिन्तामणिरत्र यस्मात्

तारकं सज्जनकर्णिकायाम् ।

शिवोऽभिधत्ते सहसान्तकाले

तद् गीयतेऽसौ मणिकर्णिकेति ।

मुक्तिलक्ष्मी महापीठमणिस्तच्चरणाब्जयोः ।

कर्णिकेयं ततः प्राहुर्यां जना मणिकर्णिकाम् ॥

काशीखण्ड के इस परिच्छेद के अनुसार यदि मनुष्य मणिकर्णिका में शरीर-त्याग करता है, तो वह शिवजी के नाम का स्मरण करने मात्र से ही मुक्ति लाभ करता है।

सेइ-काले तपन-मिश्र करे गङ्गा-स्नान ।

प्रभु देखि' हैल तर किछु विस्मय ज्ञान ॥83॥

सेइ-काले—उस समय; तपन-मिश्र–तपन मिश्र नामक ब्राह्मण; करे गङ्गा-स्नान-गंगा स्नान कर रहे थे; प्रभु देखि'–महाप्रभु को देखकर हैल–हुआ; ताँर-उन्हें; किछु-कुछ; विस्मय ज्ञान-आश्चर्य ।

अनुवाद

उस समय तपन मिश्र गंगा में स्नान कर रहे थे। वे महाप्रभु को वहाँ देखकर विस्मित हुए।

'पूर्वे शुनियाछि प्रभु कछेन सन्यास' ।

निश्चय करिया हैल हृदये उल्लास ॥84॥

पूर्वे-पूर्व काल में; शुनियाछि-मैंने सुना है; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; कर्याछेन सन्यास-संन्यास लिया है; निश्चय करिया–निश्चय करके; हैल–था; हृदये-हृदय में; उल्लास-उल्लास, अत्यन्त हर्ष।

अनुवाद

तब तपन मिश्र सोचने लगे, "मैंने सुना है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण कर लिया है।" यह सोचकर तपन मिश्र मन ही मन अत्यन्त प्रफुल्लित हुए।

प्रभुर चरण धरि' करेन रोदन ।

प्रभु तारे उठाञा कैल आलिङ्गन ॥85॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण-चरणकमल; धरि-पकड़कर; करेन-किया; रोदन-रोने लगा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे-उसको; उठाञा-उठाकर; कैल-किया; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

फिर उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिये और रुदन करने लगे। महाप्रभु ने उन्हें उठाकर उनका आलिंगन किया।

प्रभु लञा गेला विश्वेश्वर-दरशने ।

तबे आसि' देखे बिन्दु-माधव-चरणे ॥86॥

प्रभु लञा-महाप्रभु को लेकर; गेला–वे गये; विश्वेश्वर-दरशने—विश्वेश्वर मन्दिर में दर्शन करने; तबे-तब; आसि'–आकर; देखे-देखा; बिन्दु-माधव-चरणे-बिन्दु माधव के चरणकमल।

अनुवाद

तब तपन मिश्र श्री चैतन्य महाप्रभु को विश्वेश्वर मन्दिर में दर्शन करने ले गये। वहाँ से आते हुए दोनों ने बिन्दु माधव के चरणकमलों का दर्शन किया।

तात्पर्य

बिन्दु माधव मन्दिर वाराणसी का सबसे पुराना विष्णु मन्दिर है। आजकल यह वेणी माधव कहलाता है और गंगा नदी के तट पर स्थित है। पहले यहाँ पाँच नदियाँ मिलती थीं, जिनके नाम थे- धूतपापा, किरणा, सरस्वती, गंगा तथा यमुना। अब केवल गंगा नदी दिखती है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने जिस बिन्दु माधव के प्राचीन मन्दिर को देखा था, उसे बाद में मुगल वंश के कट्टर हिन्दु-विरोधी सम्राट औरंगजेब ने तुड़वा दिया और उसके स्थान पर एक बहुत बड़ी मस्जिद बनवा दी। बाद में इसी मस्जिद के बगल में एक दूसरा मन्दिर बनवाया गया, जो आज भी विद्यमान है। बिन्दु माधव मन्दिर में चतुर्भुजी नारायण तथा देवी लक्ष्मी के अर्चाविग्रह हैं। इनके समक्ष श्री गरुड़-स्तम्भ और अगल-बगल राम, सीता, लक्ष्मण तथा हनुमानजी के विग्रह हैं।

महाराष्ट्र प्रदेश में सतारा नाम की रियासत है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के समय वहाँ का राजकुमार वैष्णव सम्प्रदाय का था। ब्राह्मण होने के नाते उसने अर्चाविग्रह की पूजा का भार सँभाला। उसका नाम श्रीमन्त बालासाहेब पन्थ महाराज था। वह रियासत आज भी मन्दिर के रख-रखाव का खर्च देती है। इस वंश के प्रथम राजा महाराज जगतजीवन राव साहेब ने 200 वर्ष पूर्व मन्दिर में पूजा करने का भार अपने ऊपर ले लिया।

घरे लञा आइला प्रभुके आनन्दित हजा ।

सेवा करि' नृत्य करे वस्त्र उड़ाञा ॥87॥

घरे लञा-अपने घर; आइला–ले आया; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को; आनन्दित हजा–अति प्रसन्न होकर; सेवा करि'-सेवा की; नृत्य करे-नाचने लगे; वस्त्र उड़ाना-अपना वस्त्र हिलाते हुए।

अनुवाद

तपन मिश्र खुशी-खुशी श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर ले आये और उनकी सेवा करने लगे। वे अपने वस्त्र लहराकर नृत्य करने लगे।

प्रभुर चरणोदक सवंशे कैल पान ।

भट्टाचार्येर पूजा कैल करिया सम्मान ॥88॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; चरण-उदक-चरणकमलों को धोने में लगा जल; स-वंशे-आपने सारे परिवार सहित; कैल पान-पिया; भट्टाचार्येर–भट्टाचार्य की; पूजा-पूजा; कैल-की; करिया–दिखाते हुए; सम्मान-सम्मान।

अनुवाद

उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को धोया और बाद में उस चरणोदक को उन्होंने स्वयं तथा पूरे परिवार ने पिया। उन्होंने बलभद्र भट्टाचार्य की भी पूजा की और सम्मान किया।

प्रभुरे निमन्त्रण करि' घरे भिक्षा दिल ।

बलभद्र-भट्टाचार्ये पाक कराइल ॥89॥

प्रभुरे निमन्त्रण करि'–महाप्रभु को निमंत्रण करके; घरे–घर पर; भिक्षा दिल-भोजन दिया; बलभद्र-भट्टाचार्ये-बलभद्र भट्टाचार्य से; पाक कराइल–भोजन बनवाया।

अनुवाद

तपन मिश्र ने श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर में भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया और बलभद्र भट्टाचार्य को भोजन बनाने का काम सौंप दिया।

तात्पर्य

वाराणसी (बनारस) में श्री चैतन्य महाप्रभु तपन मिश्र के घर ठहरे। तपन मिश्र के घर के पास ही पंचनदी घाट था, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु नित्य स्नान करते थे और बिन्दु माधव के मन्दिर जाया करते थे। फिर वे तपन मिश्र के घर पर भोजन करते थे। बिन्दु माधव मन्दिर के पास एक विशाल वटवृक्ष है। कहा जाता है कि इसके नीचे महाप्रभु भोजन के बाद विश्राम किया करते थे। वही वटवृक्ष आज तक चैतन्य-वट के नाम से प्रसिद्ध है। भाषा में परिवर्तन के साथ उसका नाम अब यतनवट बन गया है। स्थानीय लोग इसे अभी भी यतनवट ही कहते हैं।

इस समय एक गली से सटी हुई वल्लभाचार्य की समाधि है, किन्तु इसका कोई चिह्न नहीं है कि श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ किसी समय रहे थे। वल्लभाचार्य भी अपने शिष्यों में महाप्रभु के नाम से जाने जाते थे। सम्भवतः श्री चैतन्य महाप्रभु यतनवट पर रहे, किन्तु न तो चन्द्रशेखर, न ही तपन मिश्र के घर का कोई चिह्न है और न ही मायावादी संन्यासी प्रकाशानन्द सरस्वती का कोई चिह्न है, जिसके साथ महाप्रभु ने वेदान्त-सूत्र पर शास्त्रार्थ किया था। यतनवट से थोड़ी ही दूरी पर कलकत्ता के शशिभूषण नियोगी महाशय द्वारा स्थापित गौर-नित्यानन्द का मन्दिर है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के समय में इस मन्दिर की व्यवस्था शशिभूषण की सास तथा साले नारायणचन्द्र घोष द्वारा की जाती थी।

भिक्षा करि' महाप्रभु करिला शयन ।

मिश्र-पुत्र रघु करे पाद-सम्वाहन ॥90॥

भिक्षा करि'—भोजन करने के बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करिला शयन-विश्राम किया; मिश्र-पुत्र-तपन मिश्र के पुत्र; रघु-रघु ने; करे-किया; पाद-सम्वाहन-पाँव दबाए।

अनुवाद

भोजन के बाद जब श्री चैतन्य महाप्रभु विश्राम करने लगे, तब तपन मिश्र के पुत्र रघु ने उनके पाँव दबाये।

प्रभुर ‘शेषान्न’ मिश्र सवंशे खाइल ।

‘प्रभु आइला’ शुनि’ चन्द्रशेखर आइल ॥91॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; शेष-अन्न-भोजन का अवशेष; मिश्र-तपन मिश्रः स-वंशे-अपने परिवार सहित; खाइल-खाया; प्रभु आइला–महाप्रभु आये हैं; शुनि’–सुनकर; चन्द्रशेखर आइल–चन्द्रशेखर आया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा छोड़े गये भोजन को तपन मिश्र के सारे परिवार ने ग्रहण किया। जब महाप्रभु के आने का समाचार फैल गया, तो चन्द्रशेखर भी उन्हें मिलने आये।

मिश्रेर सखा तेंहो प्रभुर पूर्व दास ।

वैद्य-जाति, लिखन-वृत्ति, वाराणसी-वास ॥12॥

मिश्रेर सखा–तपन मिश्र के मित्र; तेंहो-वह; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; पूर्व दास-पुराने दास; वैद्य-जाति–वैद्य जाति के; लिखन-वृत्ति-पेशे से क्लर्क (मुनीम); वाराणसी-वास-वाराणसी के निवासी।

अनुवाद

चन्द्रशेखर तपन मिश्र के मित्र थे और श्री चैतन्य महाप्रभु अपने दास के रूप में उन्हें बहुत पहले से जानते थे। वे जाति के वैद्य थे, किन्तु मुनीम का पेशा करते थे। उस समय वे वाराणसी में रह रहे थे।

आसि’ प्रभु-पदे पड़ि’ करेन रोदन ।

प्रभु उठि’ ताँरे कृपाय कैल आलिङ्गन ॥ 93॥

आसि'–आकर; प्रभु-पदे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर; पड़ि'—गिरकर; करेन-किया; रोदन-रोदन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; उठि'–खड़े होकर; तौरे-उसको; कृपाय-कृपा करके; कैल–किया; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

चन्द्रशेखर वहाँ आकर श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिरकर रोने लगे। महाप्रभु ने खड़े होकर अपनी अहैतुकी कृपावश उनका आलिंगन किया।

चन्द्रशेखर कहे,—"प्रभु, बड़ कृपा कैला ।

आपने आसिया भृत्ये दरशन दिला ॥ 94॥

चन्द्रशेखर कहे-चन्द्रशेखर ने कहा; प्रभु-मेरे प्रिय प्रभु; बड़ कृपा कैला-आपने अपनी अहैतुकी कृपा की है; आपने–स्वयं; आसिया-आकर; भृत्ये-आपने दास को; दरशन दिला-अपना दर्शन दिया।

अनुवाद

चन्द्रशेखर ने कहा, "हे प्रभु, आपने मुझ पर अपनी अहैतुकी कृपा प्रदर्शित की है, क्योंकि मैं आपका पुराना सेवक हूँ। निस्सन्देह, आप मुझे दर्शन देने के लिए यहाँ पधारे हैं।

आपन-प्रारब्धे वसि' वाराणसी-स्थाने ।

'माया', 'ब्रह्म' शब्द विना नाहि शुनि काणे ॥15॥

आपन-प्रारब्धे-मेरे पूर्व कर्मों के कारण; वसि'-रहकर; वाराणसी-स्थाने-वाराणसी में; माया-माया; ब्रह्म-और ब्रह्म; शब्द-शब्द; विना-के सिवा; नाहि शुनि–मैं नहीं सुनता हूँ; काणे-कान में।

अनुवाद

“मैं अपने विगत कर्मों के कारण वाराणसी में रह रहा हूँ, किन्तु यहाँ पर मैं ‘माया’ तथा ‘ब्रह्म’ शब्दों के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुनता।”

तात्पर्य

इस श्लोक में प्रारब्धे (विगत कर्म) महत्त्वपूर्ण शब्द है। भक्त होने के कारण चन्द्रशेखर कृष्ण तथा उनकी दिव्य लीलाओं के विषय में सुनने के लिए सदैव उत्सुक रहते थे। किन्तु बनारस के अधिकांश निवासी निर्विशेषवादी, शिव-उपासक तथा पंचोपासना-विधि के अनुयायी थे और अब भी हैं। निर्विशेषवादी लोग निराकार ब्रह्म के किसी रूप की कल्पना करते हैं और ध्यान लगाने में सुविधा के लिए वे विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य तथा देवी दुर्गा के रूपों पर अपने चित्त को एकाग्र करते हैं। वस्तुतः ये पंचोपासक किसी के भक्त नहीं होते। ठीक ही कहा गया है कि हर एक का दास होने का अर्थ है, किसी का भी दास न होना। वाराणसी अथवा काशी निर्विशेषवादियों का मुख्य तीर्थस्थल है और यह भक्तों के लिए तनिक भी उपयुक्त नहीं है। एक वैष्णव तो ऐसे स्थान में रहना चाहता है, जहाँ विष्णु के मन्दिर हों (विष्णुतीर्थ)। वाराणसी में शिवजी के सौंकडों और हजारों मन्दिर अर्थात् पंचोपासक मन्दिर हैं। इसलिए चैतन्य महाप्रभु से बात करते हुए चन्द्रशेखर ने असन्तोष व्यक्त किया कि विगत दुष्कर्मों के कारण ही उन्हें बनारस में रहना पड़ रहा है। भक्तिरसामृतसिन्धु में भी कहा गया है-दुर्जात्यारम्भकं पापं यत्स्यात् प्रारब्धमेवतत्-मनुष्य को अपने विगत दुष्कर्मों के फलस्वरूप ही निम्न स्तर में जन्म लेना पड़ता है।” किन्तु ब्रह्म-संहिता (5.54) में कहा गया है-कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजाम्-" भक्ति करने वाले के लिए विगत कर्मों या दुष्कर्मों के साथ कर्मफल नहीं बना रहता।” भक्त पर कर्मफल का प्रभाव नहीं होता। कर्मफल कर्मियों पर लागू होता है, भक्तों पर नहीं।

भक्त तीन प्रकार के होते हैं–नित्यसिद्ध, जो सदा दिव्य स्तर पर होते हैं; साधनसिद्ध, जो भक्तिमयी सेवा के आचरण के कारण दिव्य स्तर पर ऊपर उठ जाते हैं; तथा साधक, जो नौसिखिए होते हैं और

सिद्धि की ओर अग्रसर हो रहे होते हैं। साधकगण धीरे-धीरे कर्मफल से मुक्त होते जाते हैं। भक्तिरसामृतसिन्धु (1.1.17) में भक्तियोग के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार मिलता है :

क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत सुदुर्लभा ।

सान्द्रानन्द-विशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा ॥

भक्ति नौसिखियों के लिए भी क्लेशघ्नी है। इसका अर्थ यह है कि यह सभी प्रकार के कष्टों को कम कर देती है या नष्ट कर देती है। शुभदा शब्द बतलाता है कि भक्ति सर्व सौभाग्य प्रदान करने वाली है और कृष्ण-आकर्षिणी शब्द बतलाता है कि भक्ति कृष्ण को धीरे-धीरे भक्त की ओर आकृष्ट करती है। फलस्वरूप भक्त पर पाप का कर्मफल लागू नहीं होता। भगवद्गीता (18.66) में कृष्ण कहते हैं :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

“सभी प्रकार के धर्मों को त्यागकर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों के कर्मफलों से उबार लूँगा। डरो मत।”

इस तरह पूर्ण शरणागत निष्ठावान भक्त को तुरन्त ही सारे पापों के फलों से मुक्ति मिल जाती है। पापों के फलीभूत होने की तीन अवस्थाएँ हैं। पहली अवस्था में मनुष्य पापकर्म करता है। किन्तु इसके पूर्व इस कर्म का बीज उपस्थित होता है और उससे भी पूर्व अज्ञान रहता है, जिसके कारण मनुष्य पाप करता है। इन तीनों अवस्थाओं में कष्ट निहित होता है। किन्तु कृष्ण अपने भक्त पर कृपालु रहते हैं, फलस्वरूप वे पाप, पापबीज तथा पाप कराने वाले अज्ञान-इन तीनों अवस्थाओं को तुरन्त नष्ट कर देते हैं। पद्मपुराण से इसकी पुष्टि होती है :

अप्रारब्ध फलं पापं कूटं बीजं फलोन्मुखम् ।

क्रमेणैव प्रलीयेत विष्णुभक्तिरतात्मनाम् ॥

इसकी अधिक व्याख्या के लिए भक्तिरसामृतसिन्धु देखना चाहिए।

षड्-दर्शन-व्याख्या विना कथा नाहि एथा ।

मिश्र कृपा करि' मोरे शुनान कृष्ण-कथा ॥ 96 ॥

षट्-दर्शन-षट् दर्शन; व्याख्या व्याख्या; विना-के अतिरिक्त; कथा–बातचीत (चर्चा); नाहि-नहीं; एथा-यहाँ; मिश्र–तपन मिश्र; कृपा करि'–कृपा करके; मोरे-मुझे; शुनान-सुनाता है (व्याख्या करता है); कृष्ण-कथा- भगवान् कृष्ण की कथा।

अनुवाद

चन्द्रशेखर ने आगे कहा, "वाराणसी में छः दर्शनों की व्याख्या के अतिरिक्त कोई दूसरी बात नहीं होती। इतने पर भी तपन मिश्र मुझ पर बहुत कृपालु हैं, क्योंकि वे कृष्ण सम्बन्धी कथाएँ सुनाते हैं।

तात्पर्य

छः दर्शन हैं (1) वैशेषिक–कणाद ऋषि द्वारा प्रतिपादित, (2) न्याय-गौतम ऋषि द्वारा प्रतिपादित, (3) योग–पतंजलि ऋषि द्वारा प्रतिपादित, (4) सांख्य–कपिल ऋषि द्वारा प्रतिपादित, (5) कर्ममीमांसा–जैमिनि ऋषि द्वारा प्रतिपादित तथा (6) ब्रह्ममीमांसा या वेदान्त, परम सत्य का अन्तिम निर्णय (जन्माद्यस्य यतः)-वेदव्यास द्वारा प्रतिपादित । वस्तुतः वेदान्त दर्शन भक्तों के निमित्त है, क्योंकि भगवद्गीता (15.15) में भगवान् कृष्ण कहते हैं-वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्–"मैं वेदान्त का संकलन-कर्ता और समस्त वेदों का ज्ञाता हूँ।" वेदव्यास कृष्ण के अवतार हैं, अतएव कृष्ण ही वेदान्त दर्शन के संकलन-कर्ता हैं। अतः कृष्ण स्पष्ट रूप से वेदान्त दर्शन को जानते हैं। भगवद्गीता में कहा गया है कि जो भी कृष्ण से वेदान्त दर्शन सुनता है, वह वेदान्त के सही अर्थ को वास्तव में जानता है। मायावादी अपने आपको

वेदान्ती कहते हैं, किन्तु वे वेदान्त दर्शन के तात्पर्य को बिल्कुल ही नहीं समझते। ठीक से शिक्षित न होने के कारण सामान्य लोग वेदान्त का अर्थ शांकरभाष्य मानते हैं।

निरन्तर दुँहे चिन्ति तोमार चरण।

'सर्वज्ञ ईश्वर' तुमि दिला दरशन ॥ 97॥

निरन्तर–सदैव; दुँहे-हम दोनों; चिन्ति-ध्यान करते हैं; तोमार चरण-आपके चरणकमलों का; सर्व-ज्ञ-सर्वज्ञ; ईश्वर–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; तुमि-आपने; दिला दरशन-अपने दर्शन दिये।

अनुवाद

"हे प्रभु, हम दोनों निरन्तर आपके चरणकमलों का चिन्तन करते हैं। यद्यपि आप सर्वज्ञ पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् हैं, तथापि आपने हमें अपना दर्शन दिया है।

शुनि,—'महाप्रभु' याबेन श्री-वृन्दावने।

दिन कत रहि' तार' भृत्य दुइ-जने" ॥98॥

शुनि-मैंने सुना है; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; याबेन-जायेंगे; श्री-वृन्दावने-वृन्दावन को; दिन कत-कुछ दिनों के लिए; रहि'-रहकर; तार'–कृपया उद्धार करें; भृत्य-सेवकों; दुइ-जने—दोनों का।

अनुवाद

"हे प्रभु, मैंने सुना है कि आप वृन्दावन जा रहे हैं। कृपया वाराणसी में कुछ दिन रहकर आप हमारा उद्धार कर दें, क्योंकि हम दोनों आपके सेवक हैं।"

तात्पर्य

यद्यपि चन्द्रशेखर महाप्रभु के नित्य सेवक हैं, फिर भी उन्होंने विनम्र भाव से पतित के रूप में अपने आपको प्रस्तुत किया। अतः उन्होंने महाप्रभु से अपने तथा तपन मिश्र दोनों के उद्धार के लिए प्रार्थना की, जो उनके सेवक थे।

मिश्र कहे,–'प्रभु, यावत्काशीते रहिबा ।

मोर निमन्त्रण विना अन्य ना मानिबा' ॥ 99॥

मिश्र कहे-तपन मिश्र ने कहा; प्रभु–मेरे प्रभु; यावत्-जब तक; काशीते रहिबा-आप काशी (वाराणसी) में रहेंगे; मोर निमन्त्रण-मेरे निमंत्रण के; विना-बिना; अन्य-अन्य किसी का; ना मानिबा–स्वीकार न करें।

अनुवाद

तब तपन मिश्र ने कहा, "हे प्रभु, आप जब तक वारणसी में रहें, आप कृपया मेरे अतिरिक्त अन्य किसी का निमन्त्रण स्वीकार न करें।"

एइ-मत महाप्रभु दुइ भृत्येर वशे ।

इच्छा नाहि, तबु तथा रहिला दिन-दशे ॥100॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; दुइ-दो; भृत्येर–सेवकों से; वशे–वश होकर; इच्छा नाहि-ऐसी कोई इच्छा नहीं थी; तबु तथापि; तथा-वहाँ; रहिला-रहे; दिन-दशे-दस दिन तक।

अनुवाद

अपने इन दो सेवकों की प्रार्थनाओं से वश होकर महाप्रभु वाराणसी में दस दिनों तक रहे, यद्यपि उनकी कोई ऐसी योजना नहीं थी।

महाराष्ट्रीय विप्र आइसे प्रभु देखिबारे ।

प्रभुर रूप-प्रेम देखि' हय चमत्कारे ॥101॥

महाराष्ट्रीय-महाराष्ट्र राज्य का; विप्र-एक ब्राह्मण; आइसे-आया; प्रभु देखिबारे-श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने; प्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु का; रूप-प्रेम-रूप और प्रेम; देखि'–देखकर; हय चमत्कारे–चकित रह गया।

अनुवाद

वाराणसी में महाराष्ट्र का रहने वाला एक ब्राह्मण था, जो नित्य ही श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने आता था। वह ब्राह्मण महाप्रभु के सौन्दर्य तथा कृष्ण-प्रेम को देखकर अतीव चकित था।

विप्र सब निमन्त्रय, प्रभु नाहि माने ।

प्रभु कहे,–'आजि मोर हञाछे निमन्त्रणे' ॥ 102॥

विप्र-ब्राह्मण; सब-सब; निमन्त्रय-निमन्त्रण देते; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; नाहि माने–नहीं स्वीकार करते; प्रभु कहे-महाप्रभु उत्तर देते; आजि-आज; मोर-मेरा; हञाछे-हो गया है; निमन्त्रणे-निमन्त्रण।

अनुवाद

जब वाराणसी के ब्राह्मण महाप्रभु को भोजन पर निमन्त्रित करते, तो वे उनका निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते थे। वे यह उत्तर देते, "मैं पहले से अन्यत्र निमन्त्रित हूँ।"

एइ-मत प्रति-दिन करेन वञ्चन ।

सन्न्यासीर सङ्ग-भये ना मानेन निमन्त्रण ॥ 103 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; प्रति-दिन-प्रतिदिन; करेन वञ्चन–अन्य निमन्त्रकों को मना कर देते; सन्न्यासीर-मायावादी संन्यासियों की; सङ्ग-भये-संगति के भय से; ना मानेन-नहीं स्वीकार करते थे; निमन्त्रण–निमन्त्रण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिदिन लोगों के निमन्त्रण अस्वीकार करते रहते थे, क्योंकि वे मायावादी संन्यासियों की संगति से डरते थे।

तात्पर्य

वैष्णव संन्यासी उस समूह का आमन्त्रण स्वीकार नहीं करता, जो मायावादी संन्यासियों तथा वैष्णव संन्यासियों को एक ही मानता है। दूसरे शब्दों में, वैष्णव संन्यासियों को मायावादी संन्यासियों की संगति करना तनिक भी नहीं भाता, उनके साथ भोजन करना तो दूर रहा। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के संन्यासियों को इस सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। यह आदेश श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने निजी आचरण से दिया है।

प्रकाशानन्द श्रीपाद सभाते वसिया।

'वेदान्त' पड़ान बहु शिष्य-गण लञा॥ 104॥

प्रकाशानन्द-प्रकाशानन्द; श्रीपाद–एक महान् संन्यासी; सभाते-सभा में; वसिया-बैठकर; वेदान्त–वेदान्त दर्शन का; पड़ान-उपदेश देते थे; बहु-बहुत से; शिष्य-गण-शिष्य; लञा–लेकर।

अनुवाद

वहाँ प्रकाशानन्द सरस्वती नामक एक महान् मायावादी संन्यासी थे, जो अपने अनुयायियों की एक बहुत बड़ी सभा को वेदान्त-दर्शन पढ़ाया करते थे।

तात्पर्य

श्रीपाद प्रकाशानन्द सरस्वती एक मायावादी संन्यासी थे, जिनके गुणों का वर्णन चैतन्य-भागवत (मध्यखण्ड, अध्याय 3) में किया गया है :

‘हस्त’ ‘पद’ ‘मुख’ मोर नाहिक ‘लोचन’ ।

वेद मोर एइ-मत करे विडम्बन ।

काशीते पड़ाय वेटा ‘प्रकाश-आनन्द’ ।

सेइ वेटा करे मोर अंग खण्ड-खण्ड ॥

वाखानये वेद, मोर विग्रह ना माने ।

सर्वांगे हइल कुष्ठ, तबु नाहि जाने ।

सर्व यज्ञमय मोर ये -अंग-पवित्र ।

‘अज’ ‘भव’ आदि गाय याँहार चरित्र ॥

‘पुण्य’ पवित्रता पाय ये -अंग-परशे ।

ताहा ‘मिथ्या’ बले वेटा केमन साहसे ॥

मध्यखण्ड, अध्याय 20 में कहा गया है :

संन्यासी ‘प्रकाशानन्द’ वसये काशीते ।

मोरे खण्ड-खण्ड वेटा करे भाल-मते ॥

पड़ाय ‘वेदान्त’ मोर ‘विग्रह’ ना माने ।

कुष्ठ कराइलुँ अंगे, तबु नाहि जाने ॥

‘सत्य’ मोर ‘लीलाकर्म’ ‘सत्य’ मोर ‘स्थान ।

इहा 'मिथ्या' बले, मोरे करे खान्-खान् ॥

निर्विशेषवादी होने के कारण प्रकाशानन्द सरस्वती परम सत्य की व्याख्या उन्हें हाथ, पैर मुख या आँखों से विहीन बताकर करते थे। इस तरह वे ईश्वर के साकार रूप को न मानकर लोगों को ठगा करते थे। ऐसे मूर्ख थे-प्रकाशानन्द सरस्वती । उनका एकमात्र कार्य रह गया था, भगवान् को निर्विशेष बतलाकर भगवान् के अंगों को काटना। यद्यपि भगवान् का स्वरूप होता है, किन्तु प्रकाशानन्द सरस्वती भगवान् के हाथों तथा पाँवों को काट डालना चाहते थे। यह तो असुरों का कार्य है। वेदों का कहना है कि जो लोग भगवान् के स्वरूप को स्वीकार नहीं करते, वे मूढ़ हैं। भगवान् का स्वरूप वास्तविक है, जैसाकि श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (15.15) में कहा है-वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः ।जब कृष्ण अहम् कहते हैं, तो उसका अर्थ होता है, "मैं, "अर्थात् एक व्यक्ति। एव शब्द जोड़ने से उसकी पुष्टि होती है। इस प्रकार वेदान्त-दर्शन द्वारा परम पुरुष को जाना जाता है। जो कोई भी वैदिक ज्ञान को निर्विशेष बतलाता है, वह असुर है। भगवान् के स्वरूप की पूजा करके मनुष्य जीवन में सफल बनता है। मायावादी संन्यासी उन भगवान् के साकार रूप को अस्वीकार करते हैं, जो पतितात्माओं के उद्धारकर्ता हैं। मायावादी असुर इस स्वरूप को काटकर खण्ड-खण्ड कर देने का प्रयास करते हैं।

भगवान् की पूजा तो ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे उन्नत देवता भी करते हैं। प्रथम मायावादी संन्यासी शंकराचार्य ने भी यह हकीकत का स्वीकार किया है। कि भगवान् का स्वरूप दिव्य होता है : नारायणः परोऽव्यक्तात्–"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण अव्यक्त अर्थात् अप्रकट भौतिक शक्ति के परे हैं।" अव्यक्तात् अण्डसम्भवः–"यह भौतिक जगत् उस अव्यक्त भौतिक शक्ति की सृष्टि है। किन्तु नारायण का अपना सनातन स्वरूप है, जो भौतिक शक्ति द्वारा उत्पन्न नहीं हुआ है। भगवान् के स्वरूप की पूजा करने मात्र से ही मनुष्य शुद्ध हो जाता है। किन्तु मायावादी संन्यासी निर्विशेषवादी दार्शनिक होते हैं और वे भगवान् के स्वरूप को माया अर्थात् मिथ्या बतलाते हैं। भला किसी मिथ्या वस्तु की पूजा करने से कोई शुद्ध कैसे बन सकता है? मायावादी दार्शनिकों के पास निर्विशेषवादी बनने का पर्याप्त कारण नहीं है। वे ऐसे सिद्धान्त का अन्धा पालन करते हैं, जिसका समर्थन तर्क द्वारा नहीं हो सकता। बनारस के

मुख्य मायावादी संन्यासी प्रकाशानन्द की यही स्थिति थी। उनसे वेदान्त दर्शन की शिक्षा देने की आशा की जाती थी, किन्तु वे भगवान् के स्वरूप को स्वीकार नहीं करते थे, अतः उन्हें कोढ़ हो गया। तो भी वे परम सत्य को निर्विशेष बतलाकर पाप पर पाप करते रहे। यद्यपि परम सत्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सदैव अपनी लीलाएँ प्रदर्शित करते हैं, किन्तु मायावादी सन्यासियों का दावा है कि ये लीलाएँ मिथ्या हैं।

कुछ लोग यह झूठा दावा करते हैं कि प्रकाशानन्द सरस्वती ही बाद में प्रबोधानन्द सरस्वती कहलाये। किन्तु यह सही नहीं है। प्रबोधानन्द सरस्वती गोपाल भट्ट गोस्वामी के चाचा तथा गुरु थे। प्रबोधानन्द सरस्वती अपने गृहस्थ जीवन में श्री रंगक्षेत्र के निवासी थे और वे रामानुज वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। प्रकाशनन्द सरस्वती तथा प्रबोधानन्द सरस्वती को एक ही व्यक्ति मानना भूल होगी।

एक विप्र देखि' आइला प्रभुर व्यवहार।

प्रकाशानन्द-आगे कहे चरित्र ताँहार ॥105॥

एक विप्र-एक ब्राह्मण; देखि'–देखकर; आइला-आया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; व्यवहार-व्यवहार; प्रकाशानन्द-आगे-मायावादी संन्यासी प्रकाशानन्द के समक्ष; कहे-कहा; चरित्र ताँहार-उनके लक्षण।

अनुवाद

एक ब्राह्मण जिसने श्री चैतन्य महाप्रभु के विचित्र व्यवहार को देखा था, वह प्रकाशानन्द सरस्वती के पास आया और उसने महाप्रभु के गुणों का बखान किया।

"एक सन्न्यासी आइला जगन्नाथ हैते।

ताँहार महिमा-प्रताप ना पारि वर्णिते ॥106॥

एक-एक; सन्न्यासी–संन्यासी; आइला–आया है; जगन्नाथ हैते–जगन्नाथ पुरी से; ताँहार-उसकी; महिमा-महिमा; प्रताप-प्रताप; ना पारि वर्णिते-मैं वर्णन नहीं कर सकता।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने प्रकाशानन्द सरस्वती से कहा, "जगन्नाथ पुरी से एक संन्यासी आया है, जिसके अद्भुत प्रभाव तथा यश का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ।

सकल देखिये ताँते अद्भुत-कथन ।

प्रकाण्ड-शरीर, शुद्ध-काञ्चन-वरण ॥ 107॥

सकल देखिये-मैं हर चीज देखता हूँ; ताँते–उसमें; अद्भुत-कथन-अद्भुत वर्णन; प्रकाण्ड-शरीर–प्रकाण्ड शरीर; शुद्ध-शुद्ध; काञ्चन–स्वर्ण जैसा; वरण-रंग-रूप, वर्ण।

अनुवाद

"उस संन्यासी की हर वस्तु निराली है। उसका शरीर सुगठित तथा अत्यलंकृत है और उसका रंग विशुद्ध सोने के समान है।

आजानु-लम्बित भुज, कमल-नयन ।

यत किछु ईश्वरेर सर्व सल्लक्षण ॥ 108॥

आजानु-लम्बित-घुटनों तक लम्बी; भुज-भुजाएँ; कमल-नयन–कमल के समान नयन; यत–जितने; किछु-कुछ; ईश्वरेर–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् के; सर्व-सभी; सत्-लक्षण-दिव्य लक्षण।

अनुवाद

"उसकी भुजाएँ घुटने तक लम्बी हैं और उसकी आँखें कमल की पंखुड़ियों जैसी हैं। उसके शरीर में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सारे लक्षण हैं।

ताहा देखि' ज्ञान हय—'एइ नारायण ।

येइ ताँरे देखे, करे कृष्ण-सङ्कीर्तन ॥ 109॥

ताहा देखि’–वह देखकर; ज्ञान हय–पता लगता है; एइ नारायण-वह नारायण भगवान् स्वयं है; येइ-कोई भी जो कोई; ताँरे–उसको; देखे-देखता है; करे-करता है; कृष्ण-सङ्कीर्तन-कृष्ण के पावन नाम का संकीर्तन।

अनुवाद

“जो भी उसके ये लक्षण देखता है, वह उसे साक्षात् नारायण मानने लगता है। जो भी उसे देखता है, वह तुरन्त कृष्ण-नाम का कीर्तन करने लगता है।

‘महा-भागवत’-लक्षण शुनि भागवते ।

से-सब लक्षण प्रकट देखिये ताँहाते ॥ 110॥

महा-भागवत-महान् भक्त के लक्षण-लक्षण; शुनि–हम सुनते हैं; भागवते-श्रीमद्भागवत में; से-सब लक्षण-वे सब लक्षण; प्रकट-प्रकट; देखिये-मैं देखता हूँ; ताँहाते-उसमें।

अनुवाद

“हमने श्रीमद्भागवत में महाभागवत के जो-जो लक्षण सुने हैं, वे सभी लक्षण श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में प्रकट हैं।

‘निरन्तर कृष्ण-नाम’ जिह्वा ताँर गाय ।

दुइ-नेत्रे अश्रु वहे गङ्गा-धारा-प्राय ॥111॥

निरन्तर–निरन्तर; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पवित्र नाम; जिह्वा-जीभ; ताँर-उसकी; गाय-गाती है; दुइ-नेत्रे-दोनों नेत्रों में; अश्रु-अश्रु; वहे-बहते हैं; गङ्गा-धारा-प्राय-गंगा की धारा की भाँति।

अनुवाद

"उसकी जीभ निरन्तर कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करती है और उसकी आँखों से आँसू गंगा की धारा की तरह निरन्तर बहते रहते हैं।

क्षणे नाचे, हासे, गाय, करये क्रन्दन ।

क्षणे हुहुङ्कार करे,—सिंहेर गर्जन ॥112॥

क्षणे-कभी; नाचे-नाचता है; हासे-हँसता है; गाय-गाता है; करये क्रन्दन-रोता है; क्षणे-कभी; हाँ-कार-उँची ध्वनि; करे-करता है; सिंहेर गर्जन सिंह की तरह गर्जन।

अनुवाद

"कभी वह नाचता है, हँसता है, गाता है, रोता है और कभी सिंह की तरह गर्जना करता है।

जगत्मङ्गल ताँर 'कृष्ण-चैतन्य'-नाम ।

नाम, रूप, गुण ताँर, सब—अनुपम ॥113॥

जगत्-मङ्गल-सारे जगत् के लिए शुभ; ताँर-उसका; कृष्ण-चैतन्य कृष्ण चैतन्य; नाम-नाम; नाम-नाम; रूप-रूप; गुण-गुण; ताँर-उसके; सब-सब; अनुपम-अद्वितीय।

अनुवाद

"उसका नाम कृष्ण चैतन्य है, जो सारे जगत् के लिए शुभ है। उसका सब कुछ-नाम, रूप तथा गुण सभी अद्वितीय हैं।

देखिले से जानि ताँर 'ईश्वरेर रीति' ।

अलौकिक कथा शुनि' के करे प्रतीति ?" ॥114॥

देखिले-देखने मात्र से; से-उसको; जानि–पता पड़ता है; ताँर-उसके; ईश्वरेर रीति–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के लक्षण; अलौकिक-अलौकिक; कथा-कथा; शुनि'-सुनकर; के-कौन; करे प्रतीति–विश्वास करेगा।

अनुवाद

"उसे देखने से ही जान पड़ता है कि उसमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सारे गुण विद्यमान हैं। ऐसे गुण निश्चित रूप से असामान्य हैं। भला इन पर कौन विश्वास करेगा?"

शुनिया प्रकाशानन्द बहुत हासिला।

विप्रे उपहास करि' कहते लागिला ॥115॥

शुनिया–सुनकर; प्रकाशानन्द-प्रकाशानन्द सरस्वती; बहुत हासिला-बहुत जोर से हंसे; विप्रे–ब्राह्मण का; उपहास करि'–परिहास करके; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

यह विवरण सुनकर प्रकाशानन्द सरस्वती खूब हँसे। उस ब्राह्मण का उपहास करते हुए वे इस तरह बोले।

"शुनियाछि गौड़-देशेर सन्न्यासी'—भावुक'।

केशव-भारती-शिष्य, लोक-प्रतारक ॥ 116॥

शुनियाछि-मैंने सुना है; गौड़-देशेर सन्न्यासी–बंगाल से संन्यासी; भावुक-भावुक; केशव-भारती-शिष्य-केशव भारती का शिष्य; लोक-प्रतारक-प्रथम श्रेणी का ढोंगी।

अनुवाद

प्रकाशानन्द सरस्वती ने कहा, "हाँ, मैंने भी उसके विषय में सुना है। वह बंगाल से आया हुआ संन्यासी है और अत्यन्त भावुक है। मैंने यह भी सुना है कि वह भारती सम्प्रदाय का है, क्योंकि वह केशव भारती का शिष्य है। किन्तु वह केवल ढोंगी है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु को भावुक माना जाता था, क्योंकि वे सदैव भाव दशा में रहते थे। चूँकि वे कृष्ण के प्रति प्रेम प्रदर्शित करते थे, अत: मूर्ख लोग उन्हें भावुक मानते थे। भौतिक जगत् में तथाकथित भक्त कभी-कभी भाव-लक्षण प्रकट करते हैं। चैतन्य महाप्रभु के भावमय प्रेम की तुलना उन नकली भाव-प्रदर्शकों से नहीं की जा सकती। ऐसे प्रदर्शन अधिक काल तक नहीं चलते। वे क्षणिक होते हैं। हमने अपनी आँखों से देखा है कि नकली भाव प्रकट करने वाले ऐसे ढोंगी कुछ लक्षण दिखाने के बाद तुरन्त ही बीड़ी-सिगरेट पीने लगते हैं। प्रारम्भ में जब प्रकाशानन्द सरस्वती ने श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों के विषय में सुना, तो वे उन्हें किसी बनावटी व्यक्ति के कार्यकलाप मान बैठे। फलतः उन्होंने महाप्रभु को लोकप्रतारक अर्थात् बनावटी व्यक्ति कहा। मायावादी लोग भक्त द्वारा व्यक्त किये जाने वाले दिव्य लक्षणों को नहीं समझ सकते । अतः जब ऐसे लक्षण प्रकट होते हैं, तब मायावादी लोग उनकी तुलना क्षणिक भावावेश से करने लगते हैं। फिर भी प्रकाशानन्द सरस्वती का कथन अपराध-पूर्ण है; अत: उन्हें पाषण्डी (नास्तिक) समझना चाहिए। श्रील रूप गोस्वामी के अनुसार प्रकाशानन्द सरस्वती भगवद्भक्ति में नहीं लगे थे, अतः उनका संन्यास फल्गु-संन्यास था। चूँकि वे भगवान् की सेवा में वस्तुओं का उपयोग करना नहीं जानते थे, अत: उनका संसार से वैराग्य बनावटी था।

'चैतन्य'-नाम ताँर, भावुक-गण लञा ।

देशे देशे ग्रामे ग्रामे बुले नाचाञा ॥117॥

चैतन्य–चैतन्य; नाम ताँर-उसका नाम; भावुक-गण लञा-कुछ भावुकों के साथ; देशे देशे-देश देश में; ग्रामे ग्रामे-गाँव से गाँव; बुले-घूमता है; नाचाञा–नचाते हुए।

अनुवाद

प्रकाशानन्द सरस्वती ने आगे कहा: "मैं जानता हूँ कि उसका नाम चैतन्य है और उसके साथ अनेक भावुक लोग रहते हैं। उसके अनुयायी उसके साथ नाचते हैं और एक देश से दूसरे देश तथा एक गाँव से दूसरे गाँव में जाते रहते हैं।

येइ ताँरे देखे, सेइ ईश्वर करि' कहे ।

ऐछे मोहन-विद्या—ये देखे से मोहे ॥118॥

येइ-जो कोई; ताँरे–उसको; देखे-देखता है; सेइ-वही व्यक्ति; ईश्वर करि'–पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की भाँति; कहे-मानता है; ऐछे-ऐसी; मोहन-विद्या-तांत्रिक विद्या; ये देखे–जो देखता है; से मोहे-वह मोहित हो जाता है।

अनुवाद

"जो भी उसे देखता है, वह उसे पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार कर लेता है। चूँकि वह अपनी योगशक्ति से लोगों को सम्मोहित करता है, अतः जो भी उसे देखता है, वह मोहित हो जाता है।

सार्वभौम भट्टाचार्य–पण्डित प्रबल ।

शुनि' चैतन्येर सङ्गे हइल पागल ॥ 119॥

सार्वभौम भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; पण्डित प्रबल-एक प्रकांड विद्वान; शुनि'–मैंने सुना है; चैतन्येर सङ्गे–चैतन्य के संग में; हइल पागल-पागल हो गया है।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य बहुत बड़े विद्वान थे, किन्तु मैंने सुना है कि वे भी इस चैतन्य की संगति से पागल हो गये हैं।

'सन्न्यासी'—नाम-मात्र, महा-इन्द्रजाली! ।

'काशीपुरे' ना विकाबे ताँर भावकालि ॥120॥

सन्न्यासी-संन्यासी; नाममात्र केवल नाम का; महा-इन्द्रजाली–महा जादूगर; काशीपुरे–काशी में; ना विकाबे–नहीं बिकेगा, प्रभाव नहीं करेगा; ताँर-उसकी; भावकालिभावुक गतिविधियाँ।

अनुवाद

"यह चैतन्य केवल नाम का संन्यासी है। वास्तव में यह एक बहुत बड़ा जादूगर है। जो भी हो, काशी में उसकी भावुकता की माँग अधिक नहीं होगी।

'वेदान्त' श्रवण कर, ना याइह ताँर पाश ।

उच्छृङ्खल-लोक-सङ्गे दुइ-लोक-नाश" ॥ 121॥

वेदान्त–वेदान्त दर्शन; श्रवण कर-सुनते रहो; ना-नहीं; याइह-जाओ; ताँर पाश-उसके पास; उच्छृङ्खल-उच्छृखल; लोक-लोगों; सङ्गे–के संग; दुइ-लोक-नाश–इस लोक और परलोक का नाश।

अनुवाद

"तुम चैतन्य को मिलने मत जाना। तुम वेदान्त सुनते रहो। यदि तुम ऐसे उच्छृखल लोगों का संग करोगे, तो तुम्हारा यह लोक तथा परलोक दोनों नष्ट हो जायेंगे।"

तात्पर्य

इस श्लोक में उच्छृखल शब्द सूचक है, जिसका अर्थ है "मनमौजी"। भगवद्गीता (16.23) में कृष्ण कहते हैं :

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥

जो व्यक्ति उदंडतापूर्वक कार्य करता है और शास्त्रीय नियमों का पालन नहीं करता, उसे कभी भी सिद्धि, सुख या वैकुण्ठ प्राप्त नहीं होता।"

एत शुनि' सेइ विप्र महा-दुःख पाइला ।

'कृष्ण' 'कृष्ण' कहि' तथा हैते उठि' गेला ॥ 122॥

एत शुनि'-यह सुनकर; सेइ विप्र-वह ब्राह्मण; महा-दुःख पाइला–बहुत दुःखी हुआ; कृष्ण कृष्ण कहि'–भगवान् कृष्ण का पावन नाम बोलता हुआ; तथा हैते-वहाँ से; उठि' गेला-उठकर चला गया।

अनुवाद

जब उस ब्राह्मण ने प्रकाशानन्द सरस्वती को श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में इस तरह कहते सुना, तो वह अत्यन्त दुःखी हुआ। वह कृष्ण कृष्ण कहता हुआ वहाँ से तुरन्त चला गया।

प्रभुर दरशने शुद्ध हञाछे ताँर मन ।

प्रभु-आगे दुःखी हञा कहे विवरण ॥ 123॥

प्रभुर दरशने-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करके; शुद्ध-शुद्ध; हञाछे-हो गया था; ताँर मन-उसका मन; प्रभु-आगे-महाप्रभु के समक्ष; दुःखी हञा–अत्यन्त दुःखी होकर; कहे विवरण-घटनाओं का वर्णन किया।

अनुवाद

उस ब्राह्मण का चित्त भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के कारण पहले से शुद्ध हो चुका था। अतः वह श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गया और प्रकाशानन्द सरस्वती के सामने जो कुछ हुआ था, उन्हें कह सुनाया।

शुनि' महाप्रभु तबे ईषत् हासिला ।

पुनरपि सेइ विप्र प्रभुरे पुछिला ॥ 124॥

शुनि'–सुनकर; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; तबे—तब; ईषत्-धीरे से; हासिला-हँसे; पुनरपि दोबारा; सेइ-उस; विप्र--ब्राह्मण ने; प्रभुरे पुछिला-श्री चैतन्य महाप्रभु से पूछा।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु थोड़ा मुस्कुरात्ये। तब वह ब्राह्मण महाप्रभु से पुनः बोला।

"तार आगे यबे आमि तोमार नाम लइल ।

सेह तोमार नाम जाने,—आपने कहिल ॥ 125॥

तार आगे-उसके सामने; बे-जब; आमि-मैंने; तोमार-आपका; नाम-नाम; लइल-बोला; सेह-वह; तोमारः-आपका; नाम-नाम; जाने-जानता था; आपने कहिल-उसने स्वयं कहा।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने कहा, "ज्योंही मैंने उसके सामने आपके नाम का उच्चारण किया, त्योंही उसने इस बात की पुष्टि की कि वह आपके नाम को जानता है।

तोमार 'दोष' कहिते करे नामेर उच्चार ।

चैतन्य' 'चैतन्य' करि' कहे तिन-बार ॥ 126॥

तोमार दोष-आपका दोष; कहिते-कहते हुए; करे–किया; नामेर-नाम का; उच्चार–उच्चारण; चैतन्य चैतन्य–"चैतन्य, चैतन्य'; करि'-करके; कहे तिन-बार-उसने तीन बार किया।

अनुवाद

"आपके दोषों को गिनाते हुए उसने तीन बार चैतन्य' चैतन्य 'चैतन्य' उच्चारण करके आपके नाम का उच्चारण किया।

तिन-बारे 'कृष्ण-नाम' ना आइल तार मुखे ।

'अवज्ञा 'ते नाम लय, शुनि' पाइ दुःखे ॥ 127॥

तिन-बारे-तीन बार; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम; ना आइल-नहीं आया; तार मुखे-उसके मुख में; अवज्ञाते-तिरस्कार रूप में; नाम लय-आपका नाम लिया; शुनि'–सुनकर; पाइ दुःखे-मुझे बहुत दुःख हुआ।

अनुवाद

"यद्यपि उसने आपका नाम तीन बार लिया, किन्तु 'कृष्ण' का नाम एक बार भी नहीं लिया। चूँकि उसने तिरस्कार करके आपका नाम लिया, अतएव मुझे बहुत दुःख हुआ।

तात्पर्य

प्रकाशानन्द सरस्वती ने श्री चैतन्य महाप्रभु को नीचा दिखाने के लिए ही निन्दा की थी। ब्रह्म, चैतन्य, आत्मा, परमात्मा, जगदीश, ईश्वर, विराट्, विभु, भूमा, विश्वरूप तथा व्यापक शब्द अपरोक्ष रूप से कृष्ण के ही सूचक हैं। किन्तु इन नामों का उच्चारण करने वाला पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण तथा उनकी दिव्य लीलाओं के प्रति वास्तव में आकृष्ट नहीं होता। इन नामों से थोड़ा सा आलोक तो प्राप्त होता है, किन्तु मनुष्य यह नहीं समझ सकता कि भगवान् का नाम पवित्र भगवान् से अभिन्न है। अल्पज्ञान के कारण वह भगवान् के नाम को भौतिक मानता है। मायावादी दार्शनिक एवं पंचोपासक आध्यात्मिक

जगत् वैकुण्ठ के अस्तित्व तथा वहाँ की आनन्दमय विविधता के विषय में तनिक भी नहीं समझ सकते। वे परम सत्य तथा उनकी आध्यात्मिक विविधता अर्थात् उनके नाम, रूप, गुण, लीलाओं को नहीं समझ सकेंगे। फलत: वे कृष्ण के दिव्य कार्यों को माया मानते हैं। इसीलिए इस भ्रान्त धारणा से बचने के लिए मनुष्य को भगवान् के पवित्र मान के प्रत्यक्ष ज्ञान को विकसित करना चाहिए। मायावादी दार्शनिक यह बात नहीं जानते, अतएव वे बड़े अपराध करते हैं। अत: मनुष्य को मायावादी निर्विशेषवादियों के मुख से कृष्ण या भक्ति के विषय में कुछ भी नहीं सुनना चाहिए।

इहार कारण मोरे कह कृपा करि' ।

तोमा देखि' मुख मोर बले 'कृष्ण' 'हरि"' ॥ 128॥

इहार-इसका; कारण कारण; मोरे-मुझे; कह–कृपया बताएँ; कृपा करि'-अपनी अहैतुकी दया से; तोमा देखि'–आपको देखकर; मुख–मुख; मोर-मेरा; बले-कहता है; कृष्ण हरि-'कृष्ण' और 'हरि' के पावन नाम।

अनुवाद

"आखिर प्रकाशानन्द ने 'कृष्ण' तथा 'हरि' के नाम क्यों नहीं लिए? उसने चैतन्य' नाम का तीन बार उच्चारण किया। मैं तो आपको देखकर ही 'कृष्ण' तथा 'हरि' नामों का उच्चारण करने के लिए प्रेरित हो जाता हूँ।"

प्रभु कहे,–"मायावादी कृष्णे अपराधी ।

'ब्रह्म', 'आत्मा, 'चैतन्य' कहे निरवधि ॥ 129॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; मायावादी–मायावादी; कृष्णे-कृष्ण के; अपराधी–महान् अपराधी; ब्रह्म–ब्रह्म; आत्मा-आत्मा; चैतन्य-चैतन्य; कहे-कहते हैं; निरवधि–सदैव।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मायावादी निर्विशेषवादी लोग भगवान् कृष्ण के सबसे बड़े अपराधी हैं। इसीलिए वे मात्र 'ब्रह्म,' 'आत्मा' तथा 'चैतन्य' शब्दों का उच्चारण करते हैं।

अतएव तार मुखे ना आइसे कृष्ण-नाम ।

'कृष्ण-नाम', 'कृष्ण-स्वरूप'–दुइत 'समान' ॥ 130॥

अतएव–इसलिए; तार मुखे-उनके मुखों में; ना-नहीं; आइसे–प्रकट होता; कृष्ण-नाम-"कृष्ण" का पावन नाम; कृष्ण-नाम-"कृष्ण" का पावन नाम; कृष्ण-स्वरूप-कृष्ण" का स्वरूप; दुइत समान दोनों समान हैं।

अनुवाद

"कृष्ण' का पवित्र नाम उनके मुखों पर नहीं आता, क्योंकि वे भगवान् कृष्ण, जो अपने नाम से अभिन्न हैं, उनके प्रति अपराधी हैं।

'नाम', विग्रह', 'स्वरूप'–तिन एक-रूप ।

तिने 'भेद' नाहि,—तिन चिदानन्द-रूप' ॥ 131॥

नाम-नाम; विग्रह-विग्रह; स्वरूप-स्वरूप; तिन-ये तीनों; एक-रूप-एकरूप; तिने–तीनों में; भेद नाहि-अन्तर नहीं है; तिन-ये तीनों; चित्-आनन्द-रूप-दिव्य आनन्दमय हैं।

अनुवाद

"भगवान् का पवित्र नाम, उनका विग्रह और उनका स्वरूप-ये तीनों एक हैं। इनमें कोई अन्तर नहीं है। चूँकि ये सभी परम पूर्ण हैं, अतः ये चिदानन्द स्वरूप अर्थात् दिव्य रूप से आनन्दमय हैं।

देह-देहीर, नाम-नामीर कृष्णे नाहि 'भेद' ।

जीवेर धर्म—नाम-देह-स्वरूपे 'विभेद' ॥ 132॥

देह-देहीर-शरीर और शरीर का मालिक (देह और देही); नाम-नामीर-नाम और नाम का स्वामी; कृष्णे-कृष्ण में; नाहि भेद-भेद नहीं है; जीवेर धर्म–बद्ध जीव की स्थिति; नाम-नाम; देह-तन; स्वरूपे-भौतिक रूप; विभेद विभेद।

अनुवाद

"कृष्ण के शरीर तथा स्वयं कृष्ण में या उनके नाम तथा स्वयं उनमें कोई अन्तर नहीं है। किन्तु जहाँ तक बद्धजीव का सवाल है, उसका नाम उसके शरीर से, उसके मूल स्वरूप आदि से भिन्न होता है।

तात्पर्य

यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु उस ब्राह्मण से कह रहे हैं कि ये मायावादी दार्शनिक यह नहीं समझ सकते कि जीव गुण में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समान है। वे इसे स्वीकार नहीं करते, इसलिए वे सोचते हैं कि जीव माया द्वारा बद्ध होने के कारण मूल ब्रह्म से विभाजित हो गया। मायावादियों का विश्वास है कि परम सत्य अन्ततः निर्विशेष है। जब भी ईश्वर का अवतार या स्वयं ईश्वर प्रकट होते हैं, तब मायावादी लोग उन्हें माया से आवृत मानते हैं। दूसरे शब्दों में, मायावादी निर्विशेषवादी सोचते हैं कि ईश्वर का स्वरूप भी इस भौतिक जगत् की उपज है। अल्पज्ञानी होने के कारण वे यह नहीं समझ सकते कि कृष्ण का स्वयं अपने से भिन्न कोई शरीर नहीं है। वे तथा उनका शरीर दोनों एक ही परम सत्य हैं। ऐसे लोग कृष्ण का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण उनके चरणकमलों पर अपराध करते हैं। इसीलिए वे परम सत्य के मूल नाम "कृष्ण' का नामोच्चारण नहीं करते। वे अपने निर्विशेष ढंग से निर्विशेष ब्रह्म, आत्मा का उच्चारण करते हैं। दूसरे शब्दों में, वे परम सत्य के अप्रत्यक्ष निर्देश में उलझे रहते हैं। यदि वे कभी भूल से "गोविन्द," "कृष्ण" या "माधव" नाम का उच्चारण करते भी हैं, तो वे यह नहीं समझ पाते कि ये

नाम परम पुरुष गोविन्द, कृष्ण या माधव के समान ही हैं। अन्ततोगत्वा निर्विशेषवादी होने के कारण उनके साकार नामोच्चारण में कोई शक्ति नहीं रहती। वास्तव में वे कृष्ण में विश्वास नहीं करते, अपितु इन नामों को भौतिक ध्वनियाँ मानते हैं। पवित्र भगवन्नाम की महिमा न समझ पाने के कारण ही वे अप्रत्यक्ष नाम अर्थात् ब्रह्म, आत्मा तथा चैतन्य नामों का उच्चारण करते रहते हैं।

वास्तविकता तो यह है कि कृष्ण का नाम तथा कृष्ण पुरुष (नामी) दोनों ही आध्यात्मिक हैं। कृष्ण से सम्बन्धित हर वस्तु दिव्य, आनन्दमय तथा वस्तुपरक है। बद्धजीव के लिए शरीर आत्मा से भिन्न है और पिता द्वारा दिया गया नाम भी आत्मा से भिन्न है। भौतिक वस्तुओं के साथ अपनी पहचान बनाने के कारण ही बद्धजीव अपनी वास्तविक स्थिति प्राप्त नहीं कर पाता। वह कृष्ण का नित्य दास होकर भी भिन्न रीति से कार्य करता है। स्वरूप अर्थात् जीव की वास्तविक पहचान का वर्णन महाप्रभु ने इस प्रकार किया है- जीवेर 'स्वरूप' हय–कृष्णेर 'नित्य दास'। बद्धजीव अपने मूल स्वरूप के कार्यों को भूल चुका है। किन्तु कृष्ण के साथ ऐसा नहीं है। कृष्ण का नाम तथा स्वयं कृष्ण अभिन्न हैं। माया कृष्ण जैसी कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि कृष्ण भौतिक सृष्टि की उपज नहीं हैं। कृष्ण के शरीर तथा उनके आत्मा में कोई अन्तर नहीं है। कृष्ण एकसाथ शरीर और आत्मा दोनों हैं। शरीर तथा आत्मा का अन्तर बद्धजीवों पर लागू होता है। बद्धजीव का शरीर उसकी आत्मा से भिन्न है और उसका नाम उसके शरीर से भिन्न है। किसी का नाम जॉन हो सकता है और हम जॉन कहकर पुकारें, तो हो सकता है, वह कभी भी प्रकट न हो सके। किन्तु यदि हम कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं, तो वे तुरन्त हमारी जीभ पर प्रकट होते हैं। पद्म पुराण में कृष्ण ने कहा है- यत्र गायन्ति मद्भक्ता तत्र तिष्ठामि नारद–'हे नारद, जहाँ कहीं भी मेरे भक्त मेरा कीर्तन करते रहते हैं, मैं वहाँ उपस्थित रहता हूँ।" जब भक्तगण कृष्ण के पवित्र नाम का-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे-कीर्तन करते हैं, तो कृष्ण तुरन्त वहाँ उपस्थित हो जाते हैं।

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य-रस-विग्रहः ।

पूर्णः शुद्धो नित्य-मुक्तोऽभिन्नत्वान्नाम-नामिनोः ॥ 133॥

नामः-पावन नाम; चिन्तामणिः-सभी आध्यात्मिक वरदानों के दिव्य आनन्दमय दाता; कृष्णः-कृष्ण से अभिन्न; चैतन्य-रस-विग्रहः-सभी दिव्य रसों के स्वरूप; पूर्णः-पूर्ण; शुद्धः-शुद्ध, भौतिक कल्मष से रहित; नित्य-शाश्वत; मुक्तः-मुक्त; अभिन्न-त्वात्-अभिन्न होने के कारण; नाम-पावन नाम का; नामिनोः-और उस नाम के स्वामी का।

अनुवाद

"कृष्ण का पवित्र नाम दिव्य रूप से आनन्दमय है। यह सभी प्रकार के आध्यात्मिक वर देने वाला है, क्योंकि यह समस्त आनन्द के आगार, स्वयं कृष्ण है। कृष्ण का नाम पूर्ण है और यह सभी दिव्य रसों का स्वरूप है। यह किसी भी स्थिति में भौतिक नाम नहीं है और यह स्वयं कृष्ण से किसी तरह कम शक्तिशाली नहीं है। चूँकि कृष्ण का नाम भौतिक गुणों से कलुषित नहीं होता, अतएव इसका माया में लिप्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। कृष्ण का नाम सदैव मुक्त तथा आध्यात्मिक है, यह कभी भी भौतिक प्रकृति के नियमों द्वारा बद्ध नहीं होता। ऐसा इसीलिए है, क्योंकि कृष्ण-नाम तथा स्वयं कृष्ण अभिन्न हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक पद्म पुराण का है।

अतएव कृष्णेर 'नाम', 'देह', 'विलास'।

प्राकृतेन्द्रिय-ग्राह्य नहे, हय स्व-प्रकाश ॥ 134॥

अतएव–अतएव; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; नाम-पावन नाम; देह-देह; विलास-लीलाएँ; प्राकृत-इन्द्रिय-भौतिक पदार्थ से बनी कुंठित इन्द्रियों से; ग्राह्य-अनुभवगम्य; नहे–नहीं; हय-हैं; स्व-प्रकाश-स्व प्रकाशित।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम, उनका शरीर तथा उनकी लीलाएँ इन कुंठित भौतिक इन्द्रियों द्वारा नहीं जाने जा सकते। वे स्वतन्त्र रूप से प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

कृष्ण का दिव्य शरीर, नाम, रूप, गुण, लीलाएँ तथा पार्षद सब मिलकर परम सत्य की रचना करते हैं और कृष्ण के ही तुल्य (सच्चिदानन्द-विग्रह) हैं। जब तक जीव भौतिक प्रकृति के तीन गुणों- सतो, रजो तथा तमो गुणों से बद्ध रहता है, तब तक उसकी भौतिक इन्द्रियों के विषय-भौतिक रूप, स्वाद, गन्ध, शब्द तथा स्पर्श-उसे आध्यात्मिक ज्ञान तथा आनन्द को समझने में सहायक नहीं होते। वे तो शुद्ध भक्त को अनुभव होते हैं। जीव के भौतिक नाम, रूप तथा गुण एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। भौतिक जगत् में परम पूर्ण की कोई धारणा नहीं है; किन्तु जब हम कृष्णभावनामृत को स्वीकार करते हैं, तब हमें पता चलता है कि कृष्ण के शरीर तथा उनके नाम, कार्य तथा पार्षदों में कोई अन्तर नहीं है।

कृष्ण-नाम, कृष्ण-गुण, कृष्ण-लीला-वृन्द ।

कृष्णेर स्वरूप-सम—सब चिदानन्द ॥ 135॥

कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम; कृष्ण-गुण-कृष्ण के दिव्य गुण; कृष्ण-लीला-वृन्द-भगवान् कृष्ण की दिव्य लीलाएँ; कृष्णेर स्वरूप-कृष्ण के स्वरूप के; सम-समान; सब-सभी; चित्-आनन्द-आध्यात्मिक और आनन्दमय।

अनुवाद

“कृष्ण का पवित्र नाम, उनके दिव्य गुण तथा उनकी दिव्य लीलाएँ स्वयं भगवान् कृष्ण के समान हैं। वे सभी आध्यात्मिक तथा आनन्दमय हैं।

अतः श्रीकृष्ण-नामादि न भवेद्ग्राह्यमिन्द्रियैः ।

सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः ॥ 136 ॥

अतः-इसलिए (चूँकि कृष्ण के नाम, रूप तथा गुण सभी परम भूमिका पर होते हैं); श्री-कृष्ण-नाम-आदि-श्रीकृष्ण नाम, रूप, गुण, लीलाएँ आदि; न-नहीं; भवेत्-हो। सकतीं; ग्राह्यम्-अनुभव; इन्द्रियैः-कुंठित भौतिक इन्द्रियों से; सेवा-उन्मुखे-उनकी सेवा में लगे व्यक्ति को; हि-निस्सन्देह; जिह्वा-आदौ-जीभ से आरम्भ होकर; स्वयम्-स्वयं; एव–ही; स्फुरति-प्रकट होती हैं; अदः-वे (कृष्ण के नाम, स्वरूप, गुण आदि)।

अनुवाद

“इसलिए भौतिक इन्द्रियाँ कृष्ण के नाम, रूप, गुण तथा लीलाओं को समझ नहीं पातीं। जब बद्धजीवों में कृष्णभावना जाग्रत होती है और वह अपनी जीभ से भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता है तथा भगवान् के शेष बचे भोजन का आस्वादन करता है, तब उसकी जीभ शुद्ध हो जाती है और वह क्रमशः समझने लगता है कि कृष्ण कौन हैं।’

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.234) में लिपिबद्ध है।

ब्रह्मानन्द हैते पूर्णानन्द लीला-रस ।

ब्रह्म-ज्ञानी आकर्षिया करे आत्म-वश ॥ 137॥

ब्रह्म-आनन्द-आत्म-साक्षात्कार का सुख; हैते-से; पूर्ण-आनन्द–पूर्ण आनन्द; लीला-रस-भगवत् लीलाओं के रस; ब्रह्म-ज्ञानी–ब्रह्मज्ञानी; आकर्षिया-आकर्षित करके; करे-करते हैं; आत्म-वश-कृष्ण के अधीन।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण की लीलाओं के रस आनन्द से पूर्ण हैं। वे ज्ञानी को ब्रह्म-साक्षात्कार के आनन्द से आकर्षित कर उसे जीत लेते हैं।

तात्पर्य

जब कोई यह समझ लेता है कि वह इस भौतिक जगत् का नहीं, अपितु आध्यात्मिक जगत् का है, तो वह मुक्त कहलाता है। आध्यात्मिक जगत् में स्थित होना निश्चय ही आनन्दप्रद है, किन्तु जो लोग भगवान् कृष्ण के नाम, रूप, गुण तथा लीलाओं की अनुभूति करते हैं, वे आत्मा का साक्षात्कार करने वाले की तुलना में कई गुना अधिक दिव्य आनन्द का भोग करते हैं। जब कोई आत्म-साक्षात्कार के पद पर स्थित होता है, तब वह सरलतापूर्वक निश्चित रूप से कृष्ण के प्रति आकृष्ट हो सकता है और उनका दास बन सकता है। इसकी व्याख्या भगवद्गीता (18.54) में हुई है :

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥

“जो इस तरह दिव्य पद को प्राप्त है, उसे तुरन्त परम ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और वह पूर्णतः प्रसन्न बन जाता है। वह न कभी शोक करता है, न किसी वस्तु की इच्छा करता है। वह सभी जीवों को समदृष्टि से देखता है। इस स्थिति में वह मेरी शुद्ध भक्ति को प्राप्त करता है।”

जब कोई आध्यात्मिक अनुभूति (ब्रह्मभूत) प्राप्त कर लेता है, तब वह प्रसन्न रहता है (प्रसन्नात्मा), क्योंकि उसे भौतिक सोच-विचारों से मुक्ति मिल जाती है। जो यह पद प्राप्त कर लेता है, वह भौतिक कर्म तथा कर्मफल से विचलित नहीं होता। वह हर एक को आत्मा के रूप में देखता है (पण्डिताः समदर्शिनः) । जब मनुष्य पूरी तरह से अनुभूति प्राप्त कर लेता है, तब वह शुद्ध भक्ति के पद को प्राप्त करता है (मद्भक्तिं लभते पराम्)। भक्ति के पद को पाते ही मनुष्य स्वतः अनुभव करने लगता है कि कृष्ण कौन हैं। जैसा भगवान् ने भगवद्गीता (18.55) में कहा है :

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः ।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

“केवल भक्ति से मुझे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में यथारूप समझा जा सकता है और जब कोई ऐसी भक्ति से परमेश्वर को पूरी तरह समझ लेता है, तब वह भगवधाम में प्रवेश कर सकता है।”

भक्ति-पद पर रहकर ही मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण तथा उनके दिव्य नाम, रूप, गुण, लीलाओं एवं पार्षदों को समझ सकता है। इस तरह आध्यात्मिक योग्यता प्राप्त करने पर ही जीव को भगवद्धाम में प्रवेश करने दिया जाता है और वह भगवद्धाम वापस जा सकता है (विशते तदनन्तरम्)।

स्व-सुख-निभृत-चेतास्तव्युदस्तान्य-भावो ।

ऽप्यजित-रुचिर-लीलाकृष्ट-सारस्तदीयम् ।

व्यतनुत कृपया यस्तत्त्व-दीपं पुराणं

तमखिल-वृजिन-घ्नं व्यास-सूनुं नतोऽस्मि ॥138॥

स्व-सुख-आत्मा के सुख में; निभृत-एकान्त; चेताः-जिसकी चेतना; तत्-उसके कारण; व्युदस्त-व्यक्त करके; अन्य-भावः-अन्य प्रकार की चेतना; अपि-यद्यपि; अजित-श्रीकृष्ण को; रुचिर-प्रसन्न करने वाली, रुचिकर; लीला-लीलाओं से; आकृष्ट-आकर्षित होकर; सार:-जिनका हृदय; तदीयम्-भगवान् की लीलाओं से; व्यतनुत–प्रकट, प्रदर्शित; कृपया-कृपापूर्वक; यः-जो; तत्त्व-दीपम्-परम सत्य के उद्दीप्त प्रकाश; पुराणम्-पुराण (श्रीमद्भागवतम्); तम्-उनको; अखिल-वृजिन-घ्नम्-सभी अशुभ को नष्ट करके; व्यास-सूनुम्-व्यासदेव के सुपुत्र को; नतः अस्मि-मैं प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

“मैं अपने गुरु व्यास-पुत्र शुकदेव गोस्वामी को सादर नमस्कार करता हूँ। वे ही इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत सारी अशुभ वस्तुओं को परास्त करते हैं। यद्यपि वे प्रारम्भ में ब्रह्म-

साक्षात्कार के सुख में निमग्न थे और अन्य समस्त प्रकार की चेतना का परित्याग करके एकान्त वास कर रहे थे, किन्तु वे श्रीकृष्ण की अत्यन्त रागमयी लीलाओं के प्रति आकृष्ट हो गये। अतएव उन्होंने कृपापूर्वक श्रीमद्भागवत नामक सर्वोच्च पुराण का प्रवचन किया, जो परम सत्य का उज्वल प्रकाश है और जो भगवान् कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करता है।'

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (12.12.69) का यह श्लोक सूत गोस्वामी द्वारा कहा गया था।

ब्रह्मानन्द हैते पूर्णानन्द कृष्ण-गुण ।

अतएव आकर्षये आत्मारामेर मन ॥139॥

ब्रह्म-आनन्द–ब्रह्म साक्षात्कार का आनन्द; हैते–से; पूर्ण-आनन्द–पूर्ण आनन्द; कृष्ण-गुण-भगवान् कृष्ण के गुण; अतएव–अतएव; आकर्षये-आकर्षित करते हैं; आत्म-आरामेर मन–स्वरूपसिद्ध व्यक्तियों के मन।

अनुवाद

"श्रीकृष्ण के दिव्य गुण पूर्णतया आनन्दमय तथा आस्वाद्य हैं। फलस्वरूप भगवान् कृष्ण के गुण आत्म-साक्षात्कार प्राप्त व्यक्तियों के मन को भी आत्म-साक्षात्कार के आनन्द से आकर्षित कर लेते हैं।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।

कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत-गुणो हरिः ॥ 140॥

आत्म-आरामः-जो व्यक्ति जो भगवान् की सेवा में दिव्य रूप से स्थित होने में आनन्द का अनुभव करते हैं; च-भी; मुनयः-महान साधु जिन्होंने भौतिक स्वार्थों, सकाम कर्मों इत्यादि का पूरी तरह त्याग कर दिया है; निर्ग्रन्थाः-जो लोग किसी भौतिक इच्छा में रुचि नहीं रखते; अपि-अवश्य; उरुक्रमे–

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को, जिनकी लीलाएँ अद्भुत हैं; कुर्वन्ति-करते हैं; अहैतुकीम्-अकारण या बिना भौतिक इच्छाओं के; भक्तिम्-भक्ति; इत्थम्-भूत-इतने अद्भुत कि आत्म-तुष्ट लोगों का ध्यान आकृष्ट कर लेते हैं; गुणः-दिव्य गुणों से पूर्ण; हरिः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"जो आत्माराम अर्थात् स्वयं-सन्तुष्ट हैं और बाहरी भौतिक इच्छाओं से आकृष्ट नहीं होते, वे भी श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति के प्रति आकर्षित होते हैं, जिनके गुण दिव्य हैं और कार्यकलाप अद्भुत हैं। भगवान् हरि कृष्ण कहलाते हैं, क्योंकि उनका स्वरूप अत्यन्त दिव्य और आकर्षक है।'

एइ सब रहु—कृष्ण-चरण-सम्बन्धे ।

आत्मारामेर मन हरे तुलसीर गन्धे ॥141॥

एइ सब रहु-भगवान् कृष्ण लीलाओं के अलावा; कृष्ण-चरण-सम्बन्धे-कृष्ण के चरणकमलों से सम्बन्धित; आत्म-आरामेर-आत्माराम व्यक्तियों के; मन–मन; हरे-आकर्षित करती है; तुलसीर गन्धे-तुलसीदल की सुगन्ध।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण की लीलाओं के अतिरिक्त, जब उनके चरणकमलों पर तुलसी-दल चढ़ाया जाता है, तब उसकी सुगन्ध से आत्म-साक्षात्कार प्राप्त व्यक्तियों (आत्माराम) के भी मन आकृष्ट हो जाते हैं।

तस्यारविन्द-नयनस्य पदारविन्द-

किञ्जल्क-मिश्र-तुलसी-मकरन्द-वायुः ।

अन्तर्गतः स्व-विवरेण चकार तेषां

सङ्क्षोभमक्षर-जुषामपि चित्त-तन्वोः ॥142॥

तस्य-उनके; अरविन्द-नयनस्य–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के, जिनके नेत्र कमल के समान हैं; पद-अरविन्द-चरणकमलों का; किल्क -केसर से; मिश्र-मिश्रित; तुलसी-तुलसी-पत्र की; मकरन्द–सुगन्ध से; वायुः-वायु; अन्तः-गतः-प्रवेश किया; स्व-विवरेण-नासिकाओं से; चकार–किया; तेषाम्-उनका; सङ्क्षोभम्-महान् उत्तेजना; अक्षर-जुषाम्-निर्विशेष के साक्षात्कार के अनुभवी (चार कुमार); अपि-भी; चित्त-तन्वोः -मन और शरीर का।

अनुवाद

"जब भगवान् के चरणकमलों से तुलसी तथा केशर की सुगन्ध ले जाने वाली वायु ने उन मुनियों (कुमारों) की नासिकाओं से होकर हृदय में प्रवेश किया, तो निर्विशेष ब्रह्म में आसक्त रहते हुए भी उन्होंने अपने तन तथा मन में परिवर्तन का अनुभव किया।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (3.15.43) से लिया गया है। विदुर तथा मैत्रेय दिति के गर्भ के विषय में बात कर रहे थे। दिति के गर्भ से देवतागण अत्यन्त भयभीत हो उठे और वे ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी ने उनसे चतुःसन कुमारों द्वारा जय तथा विजय के शापित होने की कथा कह सुनाई। एक बार चतु:सन कुमार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण से भेंट करने वैकुण्ठ गये, जहाँ सातवें द्वार में प्रवेश करते समय जय तथा विजय नामक दो द्वारपालों ने उन्हें रोक दिया। ईष्र्या-वश जय और विजय ने कुमारों को प्रविष्ट होने नहीं दिया; फलस्वरूप कुमारों ने क्रुद्ध होकर उन दोनों को शाप दे दिया कि वे इस भौतिक जगत् में असुरों के परिवार में जन्म लें। सर्वज्ञ भगवान् इस घटना को तुरन्त जान गये, अतः वे अपनी पत्नी लक्ष्मीदेवी के साथ आये। उन चतु:सन कुमारों ने तुरन्त भगवान् को नमस्कार किया। मात्र भगवान् का दर्शन करने तथा उनके पाँवों पर चढ़ी तुलसी तथा केसर की गन्ध सँघकर ही चारों कुमार भक्त बन गये और उन्होंने अपना दीर्घकालीन निर्विशेषवाद त्याग दिया। इस प्रकार चारों कुमार मात्र तुलसी तथा

केसर की गन्ध सँघकर वैष्णव बन गये। जो लोग ब्रह्म-साक्षात्कार के स्तर पर हैं और कृष्ण के चरणकमलों पर जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया है, वे भगवान् के चरणकमलों की गन्ध सँघकर ही तुरन्त वैष्णव बन जाते हैं। किन्तु जो लोग अपराधी हैं या असुर हैं, वे कभी भगवान् के व्यक्तिगत लक्षणों के प्रति आकृष्ट नहीं होते, भले ही वे भगवान् के मन्दिर में कई बार क्यों न जाते हों। हमने वृन्दावन में ऐसे अनेक मायावादी संन्यासी देखे हैं, जो गोविन्दजी, गोपीनाथ या मदनमोहन के मन्दिर में आते तक नहीं, क्योंकि वे इन मन्दिरों को माया समझते हैं। इसीलिए वे मायावादी कहलाते हैं। इसीलिए श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने कहा कि ये मायावादी सबसे बड़े अपराधी हैं।

अतएव 'कृष्ण-नाम' ना आइसे तार मुखे ।

मायावादि-गण याते महा बहिर्मुखे ॥ 143 ॥

अतएव–इसलिए; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम; ना-नहीं; आइसे-आता; तार मुखे-उनके मुखों में; मायावादि-गण-सभी मायावादियों के; याते-क्योंकि; महा बहिः-मुखे-नास्तिक दर्शन के कारण महान् अपराधी।

अनुवाद

"चूँकि मायावादी महान् अपराधी तथा नास्तिक हैं, इसीलिए कृष्ण का पवित्र नाम उनके मुखों से नहीं निकलता।

तात्पर्य

चूँकि मायावादी दार्शनिक यह कहकर भगवान् की निरन्तर निन्दा करते रहते हैं कि उनके सिर, हाथ या पाँव नहीं हैं, अतएव वे ब्रह्म का आंशिक साक्षात्कार करने पर भी अनेक जन्मों तक अपराधी बने रहते हैं। किन्तु यदि ऐसे निर्विशेषवादियों ने भगवान् के चरणकमलों पर अपराध नहीं किये होते, तो वे भक्त की संगति में तुरन्त भक्त बन जाते हैं। दूसरे शब्दों में, यदि निर्विशेषवादी अपराधी नहीं होता, तो

वह अन्य भक्तों की संगति का अवसर पाने पर भक्त बन सकता है। यदि वह अपराधी है, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की संगति पाकर भी उसे बदला नहीं जा सकता। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु इस मायावादी अपराधी से बहुत भयभीत थे; इसीलिए वे इस प्रकार बोले।

भावकालि वेचिते आमि आइलाङकाशीपुरे ।

ग्राहक नाहि, ना विकाय, लञा याब घरे ॥144॥

भावकालि–भक्ति-भाव; वेचिते-बेचने के लिए; आमि-मैं; आइलाङ–आया हूँ; काशीपुरे–काशी नगर में; ग्राहक नाहि-कोई ग्राहक नहीं; ना विकाय-नहीं बिकते; लञा याब घरे-तब मुझे अपनी वस्तु घर वापस ले जानी होगी।

अनुवाद

"मैं इस काशी नगरी में अपने प्रेम-भावों को बेचने आया हूँ, किन्तु मुझे कोई ग्राहक नहीं मिल पा रहा है। यदि वे नहीं बिक सकते तो उन्हें मैं घर वापस लेता जाऊँगा।

भारी बोझा लञा आइलाङ, केमने लञा याब? ।

अल्प-स्वल्प-मूल्य पाइले, एथाइ वेचिब ॥ 145॥

भारी बोझा–भारी बोझ; लञा-उठाकर, लाकर; आइलाङ–मैं आया; केमने-कैसे; लञा याब–वापस ले जाऊँगा; अल्प-स्वल्प-मूल्य-वास्तविक मूल्य का एक तुच्छ भाग; पाइले–यदि मुझे मिले; एथाइ–यहाँ; वेचिब मैं बेच दूँगा।

अनुवाद

"मैं इस शहर में बेचने के लिए भारी बोझ लेकर आया हूँ। इसे फिर वापस ले जाना कठिन कार्य है, अतः यदि मुझे असली मूल्य का कुछ अंश भी मिल सका, तो मैं इस काशी नगरी में इसे बेच दूँगा।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् का दिव्य नाम बेच रहे थे। किन्तु काशी तो मायावादियों (निराकारवादियों) की नगरी थी; अतः यहाँ के लोग कभी भी हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन नहीं करेंगे। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु निराश थे। वे इन मायावादियों को हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन की महिमा कैसे सिखलाते ? भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन के प्रति आकर्षण शुद्ध भक्तों की सम्पत्ति है और काशी में ऐसे शुद्ध भक्त मिलने की कोई सम्भावना नहीं थी। फलस्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु की गठरी निश्चित रूप से भारी थी। इसीलिए महाप्रभु ने सुझाव रखा कि यदि काशी में शुद्ध भक्त नहीं हैं, तो भी यदि किसी की हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने की थोड़ी सी भी रुचि हो, तो वे उचित मूल्य न पाने पर भी यह भारी बोझ उसे दे देंगे।

वास्तव में जब हम पश्चिम में हरे कृष्ण आन्दोलन का प्रचार करने आये, तब हमें इसका अनुभव हुआ था। जब 1965 में हम न्यूयार्क आये, तो हमें कभी आशा नहीं थी कि हरे कृष्ण महामन्त्र को इस देश में स्वीकार किया जायेगा। फिर भी हमने लोगों को अपने स्टोरफ्रन्ट में आने और हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया। भगवान् का नाम इतना आकर्षक है कि न्यूयार्क में हमारे स्टोरफ्रन्ट में आने मात्र से भाग्यशाली युवा कृष्णभावनाभावित हो गये। यद्यपि यह मिशन नगण्य पूँजी से चालू हुआ था, किन्तु अब यह सुचारु रूप से चल रहा है। पश्चिम में हरे कृष्ण महामन्त्र का प्रसार इसलिए हो सका, क्योंकि ये युवा लोग अपराधी नहीं थे। ये लोग अधिक शुद्ध नहीं थे, न ही वैदिक ज्ञान में उन्नत थे, किन्तु वे अपराधी नहीं थे, इसलिए उन्होंने हरे कृष्ण आन्दोलन के महत्त्व को स्वीकार किया। अब हम यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न हैं कि यह आन्दोलन पश्चिमी देशों में दिन दूनी रात चौगुणी प्रगति कर रहा है। इससे हम यही निष्कर्ष निकालते हैं कि पश्चिमी देशों के तथाकथित म्लेच्छ तथा यवन, अपराधी मायावादियों या नास्तिक निर्विशेषवादियों की अपेक्षा अधिक शुद्ध हैं।

एत बलि' सेइ विप्रे आत्मसाथ करि' ।

प्राते उठि मथुरा चलिला गौरहरि ॥146॥

एत बलि'-यह कहकर; सेइ विप्रे—इस ब्राह्मण को; आत्मसाथ करि'-अपने भक्त के रूप में स्वीकार करके; प्राते उठि–प्रातः काल उठकर; मथुरा चलिला-मथुरा के लिए चल पड़े; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को अपने भक्त के रूप में स्वीकार कर लिया। अगले दिन वे जल्दी उठकर मथुरा के लिए चल पड़े।

सेइ तिन सङ्गे चले, प्रभु निषेधिल ।

दूर हैते तिन-जने घरे पाठाइल ॥ 147॥

सेइ तिन-वे तीन; सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; चले–चलने लगे; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; निषेधिल-मना किया; दूर हैते-दूर से; तिन-जने–उन तीन व्यक्तियों को; घर–घर; पाठाइल-वापस भेज दिया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु मथुरा के लिए चल पड़े, तो तीनों भक्त उनके साथ चलने लगे। किन्तु महाप्रभु ने दूर से ही उन्हें साथ चलने से मना किया और उन्हें घर लौट जाने के लिए आदेश दिया।

प्रभुर विरहे तिने एकत्र मिलिया ।

प्रभु-गुण गान करे प्रेमे मत्त हञा ॥ 148॥

प्रभुर विरहे–महाप्रभु से विरह के कारण; तिने–वे तीनों; एकत्र–इकट्ठे; मिलिया-मिलकर; प्रभु-गुण-महाप्रभु के दिव्य गुणों का; गान करे–महिमागान करने लगे; प्रेमे-प्रेम में; मत्त हञा-उन्मत्त होकर।

अनुवाद

महाप्रभु के विरह में तीनों जन एकत्र होकर उनके पवित्र गुणों का महिमागान करते और इस तरह प्रेमभाव में निमग्न रहते।

'प्रयागे' आसिया प्रभु कैल वेणी-स्नान।

'माधव' देखिया प्रेमे कैल नृत्य-गान॥ 149॥

प्रयागे-प्रयाग में; आसिया-आकर; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैल-किया; वेणी-स्नान-गंगा तथा यमुना के संगम पर स्नान; माधव-वहाँ के अधिष्ठाता विग्रह, वेणी माधव; देखिया-दर्शन करके; प्रेमे-प्रेमावेश में; कैल-किया; नृत्य-गान-नृत्य और कीर्तन।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु प्रयाग गये जहाँ उन्होंने गंगा और यमुना नदी के संगम में स्नान किया। फिर वे वेणी माधव के मन्दिर गये और वहाँ प्रेमावेश में उन्होंने कीर्तन और नृत्य किया।

तात्पर्य

प्रयाग शहर इलाहाबाद शहर से कुछ मील दूरी पर स्थित है। यहाँ पर अनेक यज्ञ सफलतापूर्वक सम्पन्न होने के कारण इसका नाम प्रयाग पड़ा। कहा गया है-प्रकृष्टः याग: यागफलं यस्मात्। यदि कोई प्रयाग में यज्ञ करता है, तो उसे तुरन्त बिना किसी मुश्किल के फल मिलता है। प्रयाग तीर्थराज भी कहलाता है। यह पवित्र स्थल गंगा तथा यमुना नदियों के संगम पर स्थित है। यहाँ हर वर्ष माघ-मेला नामक उत्सव लगता है और हर बारहवें वर्ष कुम्भ-मेला भी लगता है। प्रतिवर्ष यहाँ अनेक लोग स्नान

करने आते हैं। माघ-मेला में सामान्यतया स्थानीय जिले के लोग आते हैं, जबकि कुम्भ मेले में सारे भारत से लोग वहाँ रहने आते हैं और गंगा तथा यमुना में स्नान करते हैं। जो भी वहाँ जाता है, उसे इस स्थान के आध्यात्मिक प्रभाव का तुरन्त अनुभव होता है। यहाँ पर एक किला भी है, जिसे 500 वर्ष पूर्व सम्राट अकबर ने बनवाया था और इसी किले के पास त्रिवेणी है। प्रयाग के उस पार प्रतिष्ठानपुर नामक स्थान है, जिसे झूसी भी कहा जाता है। यहाँ अनेक साधु-महात्मा रहते हैं, इसलिए आध्यात्मिक दृष्टि से यह अत्यन्त आकर्षक है।

यमुना देखिया प्रेमे पड़े झाँप दिया ।

आस्ते-व्यस्ते भट्टाचार्य उठाय धरिया ॥ 150॥

यमुना-यमुना नदी; देखिया-देखकर; प्रेमे-प्रेमावेश में; पड़े-गिर गये; झाँप दिया-कूदकर; आस्ते-व्यस्ते–अत्यन्त तेजी से; भट्टाचार्य–बलभद्र भट्टाचार्य ने; उठाय-उठाया; धरिया-पकड़कर।

अनुवाद

ज्योंही श्री चैतन्य महाप्रभु ने यमुना नदी देखी, वे उसमें कूद पड़े। बलभद्र भट्टाचार्य ने शीघ्र ही उन्हें पकड़ लिया और सावधानी से ऊपर खींच लिया।

एइ-मत तिन-दिन प्रयागे रहिला ।

कृष्ण-नाम-प्रेम दिया लोक निस्तारिला ॥151॥

एइ-मत-इस प्रकार; तिन-दिन-तीन दिन तक; प्रयागे-प्रयाग में; रहिला-रहे; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; प्रेम-और प्रेम; दिया-देकर; लोक निस्तारिला-लोगों का उद्धार किया।

अनुवाद

महाप्रभु प्रयाग में तीन दिन रहे। उन्होंने कृष्ण का पवित्र नाम तथा प्रेम प्रदान किया। इस तरह उन्होंने अनेक लोगों का उद्धार किया।

‘मथुरा’ चलिते पथे यथा रहि’ याय ।

कृष्ण-नाम-प्रेम दिया लोकेरे नाचाय ॥ 152॥

मथुरा-मथुरा; चलिते-जाते समय; पथे–रास्ते में; यथा-जहाँ भी; रहि’–रुकते; झाय-गये; कृष्ण-नाम-प्रेम-कृष्ण का पवित्र नाम और प्रेम; दिया–दिया; लोकेरे नाचाय–लोगों को नृत्य करवाया।

अनुवाद

मथुरा जाते हुए जहाँ भी महाप्रभु रुकते, वे कृष्ण-नाम तथा कृष्ण-प्रेम प्रदान करते। इस तरह वे लोगों को नचाते।

पूर्वे येन ‘दक्षिण’ याइते लोक निस्तारिला ।

‘पश्चिम’-देशे तैछे सब ‘वैष्णव’ करिला ॥153॥

पूर्वे-पहले; येन-जब; दक्षिण–दक्षिण भारत; याइते-जाते समय; लोक-लोगों का; निस्तारिला-उन्होंने उद्धार किया; पश्चिम-देशे–पश्चिम देशों में; तैछे-उसी प्रकार; सब-सबको; वैष्णव-भक्त; करिला-बनाया।

अनुवाद

जब उन्होंने दक्षिण भारत का भ्रमण किया था, तब उन्होंने अनेक लोगों का उद्धार किया था और जब वे पश्चिमी प्रदेश में गये, तब उन्होंने उसी तरह से अनेक लोगों को वैष्णव बनाया।

तात्पर्य

पहले जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने दक्षिण तथा पश्चिम भारत का भ्रमण किया था, तब अनेक लोगों को वैष्णव बना लिया था। इसी तरह अब पश्चिमी जगत् में जहाँ कहीं भी भक्तगण कीर्तन कर रहे हैं, वहाँ हरे कृष्ण आन्दोलन लोगों का उद्धार कर रहा है। यह सब महाप्रभु की कृपा से हो रहा है। श्री महाप्रभु ने

भविष्यवाणी की थी कि वे विश्व के हर नगर और हर गाँव के लोगों को हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने का अवसर प्रदान करके उनका उद्धार करेंगे।

पथे याहाँ याहाँ हय यमुना-दर्शन।

ताहाँ झाँप दिया पड़े प्रेमे अचेतन॥ 154॥

पथे–रास्ते में; याहाँ याहाँ–जहाँ जहाँ; हय-है; यमुना-दर्शन-यमुना का दर्शन; ताहाँ-वहाँ वहाँ; झाँप दिया पड़े-कूदकर गिर जाते थे; प्रेमे अचेतन–बेहोश होकर।

अनुवाद

मथुरा जाते हुए महाप्रभु को कई बार यमुना नदी मिली और वे यमुना नदी को देखते ही उसमें तुरन्त कूद पड़ते तथा जल के भीतर कृष्ण-प्रेम में अचेत हो जाते।

मथुरा-निकटे आइला—मथुरा देखिया।

दण्डवत् हञा पड़े प्रेमाविष्ट हञा॥ 155॥

मथुरा-निकटे-मथुरा के निकट; आइला–आये; मथुरा देखिया-मथुरा नगर को देखकर, दण्डवत् हञा–दण्डवत् प्रणाम किया; पड़े-गिर गये; प्रेम-आविष्ट हञा–प्रेमावेश में आकर।

अनुवाद

जब मथुरा के निकट पहुँचकर उन्होंने शहर देखा, तो उन्होंने भूमि पर गिरकर अत्यन्त प्रेमाविष्ट होकर दण्डवत् प्रणाम किया।

मथुरा आसिया कैला 'विश्रान्ति-तीर्थे' स्नान।

'जन्म-स्थाने' 'केशव' देखि' करिला प्रणाम॥ 156॥

मथुरा आसिया-मथुरा के अन्दर आकर; कैला–किया; विश्रान्ति-तीर्थे–विश्राम घाट पर; स्नान-स्नान; जन्म-स्थाने-भगवान् कृष्ण के जन्म स्थान पर; केशव-केशव नाम का अर्चाविग्रह; देखि'–देखकर; करिला प्रणाम–सादर प्रणाम किया।

अनुवाद

मथुरा नगरी में प्रवेश करने पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने विश्राम घाट में स्नान किया। फिर वे कृष्ण की जन्मभूमि का दर्शन करने गये और उन्होंने केशवजी का दर्शन किया। महाप्रभु ने उन्हें सादर नमस्कार किया।

तात्पर्य

अब केशवजी का मन्दिर काफी अच्छा बन चुका है। किसी समय केशवजी के मन्दिर पर सम्राट औरंगजेब ने आक्रमण किया था और वहाँ पर इतनी बड़ी मस्जिद बनवा दी थी कि उसके सामने केशवजी का मन्दिर तुच्छ लगता था। किन्तु अनेक धनी मारवाड़ियों की सहायता से मन्दिर का सुधार हुआ है और एक विशाल मन्दिर बन रहा है, जिसके सामने अब मस्जिद तुच्छ प्रतीत हो रही है। वहाँ पर कई पुरातात्विक खोजें की गई हैं और विदेश के अनेक लोग कृष्ण की जन्मभूमि की महिमा जानने लगे हैं। यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन अनेक विदेशियों को केशवजी के मन्दिर के प्रति आकृष्ट करा रहा है और अब वे वृन्दावन के कृष्ण-बलराम मन्दिर के द्वारा भी अधिकाधिक आकृष्ट हो सकेंगे।

प्रेमानन्दे नाचे, गाय, सघन हुङ्कार।

प्रभुर प्रेमावेश देखि' लोके चमत्कार॥ 157॥

प्रेम-आनन्दे-प्रेमानन्द में विभोर होकर; नाचे-नृत्य किया; गाय-कीर्तन किया; सघन बारम्बार; हुङ्कार-ऊँची ध्वनि में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; प्रेम-आवेश-प्रेमावेश; देखि'-देखकर; लोके–सभी लोग; चमत्कार–चकित रह गये।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु नाचने, गाने तथा जोर-जोर से हुंकार भरने लगे, तो सारे लोग उनके प्रेमावेश को देखकर चकित रह गये।

एक-विप्न पड़े प्रभुर चरण धरिया ।

प्रभु-सड़े नृत्य करे प्रेमाविष्ट हञा ॥ 158॥

एक-विप्र-एक ब्राह्मण; पड़े-गिर पड़ा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरण धरिया-चरणकमल पकड़कर; प्रभु-सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के संग; नृत्य करे-वह नृत्य करने लगा; प्रेम-आविष्ट हञा–प्रेमावेश में आकर।

अनुवाद

एक ब्राह्मण आकर महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़ा और फिर प्रेमाविष्ट होकर उनके साथ साथ नृत्य करने लगा।

दुँहे प्रेमे नृत्य करि' करे कोलाकुलि ।

हरि कृष्ण कह दुँहे बले बाहु तुलि' ॥159॥

दुँहे-दोनों ने प्रेमे-प्रेमावेश में; नृत्य करि'-नृत्य करके; करे–किया; कोलाकुलि-आलिंगन; हरि-हरि के पावन नाम का; कृष्ण-कृष्ण के पावन नाम का; कह-कीर्तन करते रहे; दुँहे-वे दोनों; बले-बोलते रहे; बाहु तुलि'–भुजाएँ उठाकर।

अनुवाद

वे दोनों भावाविष्ट होकर नाचने तथा एक-दूसरे को आलिंगन करने लगे। वे हाथ उठाकर कहने लगे, "हरि तथा कृष्ण के नामों का कीर्तन करो!"

लोक ‘हरि’ ‘हरि’ बले, कोलाहल हैल ।

‘केशव’-सेवक प्रभुके माला पराइल ॥ 160॥

लोक-सारे लोग; हरि हरि बले-हरि, हरि के पावन नाम का कीर्तन करने लगे; कोलाहल हैल-वहाँ बहुत शोर मच गया; केशव-सेवक-भगवान् केशव की सेवा में लगे पुजारी ने; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को; माला पराइल-माला भेंट की।

अनुवाद

तब सारे लोग “हरि! हरि!” उच्चारण करने लगे और वहाँ बहुत कोलाहल होने लगा। भगवान् केशव की सेवा में लगे पुजारी ने महाप्रभु को लाकर एक माला भेंट की।

लोके कहे प्रभु देखि’ हञा विस्मय ।

ऐछे हेन प्रेम ‘लौकिक’ कभु नय ॥ 161॥

लोके कहे-लोगों ने कहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; देखि-देखकर; हञा विस्मय–विस्मित हो गये; ऐछे-ऐसा; हेन-उस जैसा; प्रेम-भगवत् प्रेम; लौकिक-लौकिक, सामान्य; कभु नय-कभी नहीं है।

अनुवाद

जब लोगों ने श्री चैतन्य महाप्रभु को नृत्य करते तथा कीर्तन करते देखा, तो वे आश्चर्यचकित रह गये और सबने कहा, “ऐसा दिव्य प्रेम होना कोई सामान्य बात नहीं है।”

याँहार दर्शने लोके प्रेमे मत्त हञा ।

हासे, कान्दे, नाचे, गाय, कृष्ण-नाम लञा ॥162॥

याँहार दर्शने-जिन्हें देखकर; लोके-लोग; प्रेमे प्रेमवश; मत्त हञा-उन्मत्त होकर; हासे-हँसने लगे; कान्दे-रोने लगे; नाचे-नाचने लगे; गाय-गाने लगे; कृष्ण-नाम लञा-कृष्ण नाम ले लेकर।

अनुवाद

लोगों ने कहा, "श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन मात्र से हर व्यक्ति कृष्ण-प्रेम में मतवाला हो रहा है। हर कोई हँस रहा है, रो रहा है, नाच रहा है, कीर्तन कर रहा है और कृष्ण का पवित्र नाम ले रहा है।

सर्वथा-निश्चित—इँहो कृष्ण-अवतार ।

मथुरा आइला लोकेर करिते निस्तार ॥ 163 ॥

सर्वथा-बिल्कुल; निश्चित–निश्चित; इँहो-वे; कृष्ण-अवतार–भगवान् कृष्ण के अवतार; मथुरा आइला-मथुरा आये हैं; लोकेर–लोगों का; करिते-करने; निस्तार-उद्धार।

अनुवाद

"निश्चय ही श्री चैतन्य महाप्रभु सभी तरह से भगवान् कृष्ण के अवतार हैं। अब वे हर एक का उद्धार करने मथुरा आये हैं।"

तबे महाप्रभु सेइ ब्राह्मणे लञा ।

ताँहारे पुछिला किछु निभृते वसिया ॥ 164॥

तबे-इसके बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सेइ-उस; ब्राह्मणे-ब्राह्मण को; लञा–लेकर; ताँहारे-उसके पास; पुछिला-पूछा; किछु-कुछ; निभृते वसिया-एकान्त स्थान में बैठकर।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु उस ब्राह्मण को एक ओर ले गये। फिर एकान्त स्थान में बैठकर उससे पूछने लगे।

'आर्य, सरल, तुमि—वृद्ध ब्राह्मण ।

काहाँ हैते पाइले तुमि एइ प्रेम-धन?' ॥165॥

आर्य-भक्ति सेवा में उन्नत; सरल-सरल; तुमि-तुम; वृद्ध ब्राह्मण-वृद्ध ब्राह्मण; काहाँ हैते–कहाँ से; पाइले तुमि-तुमने पाया; एइ–यह; प्रेम-धन-प्रेम का दिव्य धन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आप वृद्ध ब्राह्मण हैं, निष्ठावान हैं तथा आध्यात्मिक जीवन में उन्नत हैं। आपको भावमय कृष्ण-प्रेम का यह दिव्य वैभव कहाँ से मिला?"

विप्र कहे,—'श्रीपाद श्री-माधवेन्द्र-पुरी ।

भ्रमिते भ्रमिते आइला मथुरा-नगरी ॥ 166 ॥

विप्र कहे-ब्राह्मण ने कहा; श्रीपाद श्रीपाद; श्री-माधवेन्द्र-पुरी–श्री माधवेन्द्र पुरी; भ्रमिते भ्रमिते-यात्रा करते समय; आइला–आये; मथुरा-नगरी-मथुरा नगर में।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने कहा, "श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी अपने भ्रमण के समय मथुरा नगरी में आये थे।

कृपा करि' तेंहो मोर निलये आइला ।

मोरे शिष्य करि' मोर हाते 'भिक्षा' कैला ॥ 167॥

कृपा करि'–उनकी अहैतुकी कृपा से; तेंहो-वे; मोर निलये-मेरे घर पर; आइला-आये; मोरे-मुझे; शिष्य करि'-शिष्य बनाकर; मोर हाते-मेरे हाथ से; भिक्षा कैला-भोजन किया।

अनुवाद

“मथुरा में रहते हुए श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी मेरे घर पधारे थे और उन्होंने मुझे शिष्य बनाया था। उन्होंने मेरे घर में भोजन भी किया था।

गोपाल प्रकट करि’ सेवा कैल ‘महाशय’ ।

अद्यापिह ताँहार सेवा ‘गोवर्धने’ हय ॥ 168॥

गोपाल-गोपाल का अर्चाविग्रह; प्रकट करि’–स्थापित करके; सेवा–सेवा; कैल-की; महाशय-उन महान् भक्त ने; अद्यापिह–अब तक; ताँहार-गोपाल विग्रह; सेवा-सेवा; गोवर्धने-गोवर्धन पर्वत पर; हय-की जाती है।

अनुवाद

“गोपाल अर्चाविग्रह की स्थापना करने के बाद श्रील माधवेन्द्र पुरी ने उनकी सेवा की। आज भी गोवर्धन पर्वत पर उसी अर्चाविग्रह की पूजा की जाती है।”

शुनि’ प्रभु कैल ताँर चरण वन्दन ।

भय पाना प्रभु-पाय पड़िला ब्राह्मण ॥ 169॥

शुनि’-यह सुनकर; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैल–किया; ताँर-उसका; चरण वन्दन–चरण वन्दन; भय पाञा–भयभीत होकर; प्रभु-पाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर; पड़िला–गिर पड़ा; ब्राह्मण-ब्राह्मण।

अनुवाद

ज्योंही महाप्रभु ने उस ब्राह्मण के साथ माधवेन्द्र पुरी के सम्बन्ध के बारे में सुना, त्योंही उन्होंने उस ब्राह्मण के चरणकमलों पर अपना नमस्कार निवेदित किया। वह ब्राह्मण भी डरकर तुरन्त ही महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़ा।

प्रभु कहे,—"तुमि 'गुरु', आमि 'शिष्य'-प्राय।

'गुरु' हञा 'शिष्ये' नमस्कार ना युयाय॥ 170॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तुमि-आप; गुरु-मेरे आध्यात्मिक गुरु; आमि-मैं; शिष्य-प्राय-आपके शिष्य के समान; गुरु हञा–आध्यात्मिक गुरु होने के कारण; शिष्ये-शिष्य को; नमस्कार-नमस्कार; ना युयाय-उचित नहीं है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आप मेरे गुरु-पद पर आसीन हैं और मैं आपका शिष्य हूँ। चूँकि आप मेरे गुरु हैं, अतः यह उचित नहीं होगा कि आप मुझे नमस्कार करें।"

शुनिया विस्मित विप्र कहे भय पाञा।

ऐछे बात् कह केने सन्न्यासी हञा॥171॥

शुनिया-यह सुनकर; विस्मित–विस्मित हो गया; विप्र-वह ब्राह्मण; कहे-कहने लगा; भय पाञा–भयभीत होकर; ऐछे बात्-ऐसी बात; कह-आप कहते हैं; केने-क्यों; सन्न्यासी हञा–यद्यपि आप संन्यासी हो।

अनुवाद

यह सुनकर ब्राह्मण डर गया। तब उसने कहा, "आप ऐसा क्यों कह रहे हैं? आप तो संन्यासी हैं।

किन्तु तोमार प्रेम देखि' मने अनुमानि।

माधवेन्द्र-पुरीर 'सम्बन्ध' धर—जानि॥ 172॥

किन्तु फिर भी; तोमार प्रेम-आपका उत्कट प्रेम; देखि'–देखकर; मने-मेरे मन में; अनुमानि–मैं अनुमान लगाता हूँ; माधवेन्द्र-पुरीर-श्री माधवेन्द्र पुरी के साथ; सम्बन्ध-सम्बन्ध; धर-आपका है; जानि–मैं समझ सकता हूँ।

अनुवाद

"आपके उत्कट प्रेम को देखकर मैं अनुमान लगा सकता हूँ कि आपका माधवेन्द्र पुरी के साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध होना चाहिए। ऐसा मैं समझता हूँ।

कृष्ण-प्रेमा ताँहा, याँहा ताँहार 'सम्बन्ध' ।

ताहाँ विना एइ प्रेमार काहाँ नाहि गन्ध ॥ 173 ॥

कृष्ण-प्रेमा-कृष्ण-प्रेम; ताँहा-वहाँ; याँहा-जहाँ; ताँहार-उसका; सम्बन्ध-सम्बन्ध; ताहाँ विना-उनके बिना; एइ प्रेमार—इस प्रेम की; काहाँ नाहि गन्ध-गन्ध की भी सम्भावना नहीं है।

अनुवाद

"इस तरह का उत्कट प्रेम तभी अनुभव किया जा सकता है, जब किसी का माधवेन्द्र पुरी से सम्बन्ध हो। उनके बिना, ऐसे दिव्य उत्कट प्रेम की सुगन्ध भी सम्भव नहीं है।"

तबे भट्टाचार्य तारे 'सम्बन्ध' कहिल ।

शुनि' आनन्दित विप्र नाचिते लागिल ॥ 174॥

तबे-तत्पश्चात्; भट्टाचार्य-बलभद्र भट्टाचार्य; तारे–ब्राह्मण को; सम्बन्ध कहिल-सम्बन्ध समझाया; शुनि'–सुनकर; आनन्दित–प्रसन्न होकर; विप्र-ब्राह्मण; नाचिते लागिल-नाचने लगा।

अनुवाद

तब बलभद्र भट्टाचार्य ने माधवेन्द्र पुरी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु का सम्बन्ध कह सुनाया। यह सुनकर ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुआ और नाचने लगा।

तबे विप्र प्रभुरे लञा आइला निज-घरे ।

आपन-इच्छाय प्रभुर नाना सेवा करे ॥ 175 ॥

तबे-तत्पश्चात्; विप्र-ब्राह्मण; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; लञा-लेकर; आइला-लौट आया; निज-घरे-अपने घर पर; आपन-इच्छाय-अपनी ही इच्छा से; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; नाना-नाना प्रकार की; सेवा-सेवाएँ; करे-की।

अनुवाद

तब वह ब्राह्मण श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर ले गया और अपनी इच्छा से महाप्रभु की अनेक प्रकार से सेवा करने लगा।

भिक्षा लागि' भट्टाचार्ये कराइला रन्धन ।

तबे महाप्रभु हासि' बलिला वचन ॥ 176 ॥

भिक्षा लागि' भोजन के लिए; भट्टाचार्ये-बलभद्र भट्टाचार्य को; कराइला रन्धन-पकाने के लिए काम में लगाया; तबे—उस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; हासि'–मुस्कुराकर; बलिला वचन-ये वचन कहे।

अनुवाद

उसने बलभद्र भट्टाचार्य से कहा कि महाप्रभु का भोजन पकायें। उस समय महाप्रभु ने हँसते हुए ये वचन कहे।

"पुरी-गोसाञि तोमार घरे कर्याछेन भिक्षा ।

मोरे तुमि भिक्षा देह,—एइ मोर 'शिक्षा"' ॥ 177॥

पुरी-गोसाञि-माधवेन्द्र पुरी ने; तोमार घरे-आपके घर पर; कर्याछेन भिक्षा-भोजन करना स्वीकार किया; मोरे-मेरे लिए; तुमि भिक्षा देह-आपका भोजन पकाना बेहतर है; एइ-यही; मोर शिक्षा-मेरा आदेश है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "माधवेन्द्र पुरी आपके स्थान पर पहले ही भोजन कर चुके हैं। अतः आप भोजन बनाकर मुझे दे सकते हैं। यह मेरा आदेश है।"

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ 178॥

यत् यत्-जैसा भी; आचरति-करता है; श्रेष्ठः-श्रेष्ठ पुरुष; तत् तत् वही; एव-निश्चित रूप से; इतरः-साधारण; जनः-लोग; सः-वह; यत्-जो कुछ; प्रमाणम्-प्रमाण; कुरुते-करता है; लोकः-लोग; तत्-वही; अनुवर्तते-पालन करते हैं।

अनुवाद

"महापुरुष जो भी कर्म करता है, सामान्यजन उसका अनुसरण करते हैं। और वह अपने आदर्श कार्यों से जो भी मानदण्ड स्थापित करता है, सारा जगत् उसका अनुगमन करता है।"'

तात्पर्य

यह उद्धरण भगवद्गीता (3.21) का है।

यद्यपि 'सनोड़िया' हय सेइत ब्राह्मण ।

सनोड़िया-घरे सन्न्यासी ना करे भोजन ॥ 179॥

यद्यपि यद्यपि, सनोड़िया-सनोड़िया ब्राह्मण संप्रदाय; हय–था; सेइत–वह; ब्राह्मण-ब्राह्मण; सनोड़िया-घरे–किसी सनोड़िया (सुनार) के घर में; सन्न्यासी-संन्यासी; ना करे भोजन-भोजन नहीं करता।

अनुवाद

वह ब्राह्मण सनोड़िया जाति का ब्राह्मण था और संन्यासी ऐसे ब्राह्मण के घर भोजन नहीं करता।

तात्पर्य

उत्तर पश्चिमी भारत में वैश्यों के अनेक उपविभाग पाये जाते हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर लिखते हैं कि वैश्यजन आगरवाला, कालवार तथा सानवाड़ में विभाजित हैं। इनमें से आगरवाला उच्चकोटि के वैश्य हैं और कालवार तथा सानवाड़ अपने पेशों के कारण निम्न माने जाते हैं। कालवार तो शराब तथा अन्य मादक वस्तुएँ पीते हैं और वैश्य होने पर भी निम्न वर्ग के माने जाते हैं। कालवार तथा सानवाड़ वैश्यों के पुरोहित सनोड़िया ब्राह्मण कहलाते हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि बंगाल में सानोयाड़ शब्द सुवर्ण-वणिक का सूचक है। बंगाल में ऐसे पुरोहित हैं, जो इस सुवर्ण-वणिक जाति का मार्गदर्शन करते हैं। यह जाति भी निम्न मानी जाती है। सानवाड़ तथा सुवर्णवणिक में अधिक अन्तर नहीं है। सामान्यतया सुवर्णवणिक बैंकर होते हैं, जो सोने तथा चाँदी का व्यापार करते हैं। पश्चिमी भारत में आगरवाला भी यही काम करते हैं। सुवर्णवणिक या आगरवाला जाति का यह मौलिक व्यापार है। ऐतिहासिक दृष्टि से आगरवाला अयोध नामक प्रदेश से आये और सुवर्णवणिक भी वहीं से आये। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि आगरवाला तथा सुवर्णवणिक एक ही जाति के हैं। सनोड़िया ब्राह्मण कालवार तथा सानवाड़ जाति के पुरोहित थे। इसलिए वे निम्न जाति के ब्राह्मण माने जाते थे और संन्यासियों को उनसे भिक्षा या भोजन लेना मना है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस सनोड़िया ब्राह्मण का पकाया भोजन स्वीकार कर लिया, क्योंकि वह माधवेन्द्र पुरी सम्प्रदाय से था। श्रील माधवेन्द्र पुरी, ईश्वर पुरी के गुरु थे

और ईश्वर पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु थे। इस तरह भौतिक उच्चता या निम्नता का भेदभाव बरते बिना आध्यात्मिक स्तर पर आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

तथापि पुरी देखि' ताँर 'वैष्णव'-आचार ।

'शिष्य' करि' ताँर भिक्षा कैल अङ्गीकार ॥ 180॥

तथापि फिर भी; पुरी-माधवेन्द्र पुरी; देखि-देखकर; ताँर-ब्राह्मण का; वैष्णव-आचार-वैष्णव की भाँति व्यवहार; शिष्य करि'-शिष्य बनाकर; ताँर भिक्षा-उसके द्वारा दिया भोजन; कैल अङ्गीकार– स्वीकार किया।

अनुवाद

यद्यपि वह ब्राह्मण सनोड़िया जाति का था, किन्तु श्रील माधवेन्द्र पुरी ने देखा कि उसका आचरण वैष्णव जैसा है, इसलिए उन्होंने उसे अपना शिष्य बना लिया। माधवेन्द्र पुरी ने उसका पकाया भोजन भी ग्रहण किया था।

महाप्रभु ताँरे यदि 'भिक्षा' मागिल ।

दैन्य करि' सेइ विप्र कहिते लागिल ॥ 181॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे-उससे; यदि-जब; भिक्षा मागिल- भोजन माँगा; दैन्य करि'-दीनता के कारण; सेइ विप्र-वह ब्राह्मण; कहते लागिल-कहने लगा।

अनुवाद

इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वेच्छा से उस ब्राह्मण से भोजन माँगा और वह ब्राह्मण स्वाभाविक दैन्य का अनुभव करते हुए इस प्रकार बोला।

तोमारे 'भिक्षा' दिब—बड़ भाग्य से आमार ।

तुमि—ईश्वर, नाहि तोमार विधि-व्यवहार ॥ 182॥

तोमारे-आपको; भिक्षा दिब-मैं भोजन दूँगा; बड़ भाग्य-महान् सौभाग्य; से-वह; आमार-मेरा; तुमि-आप; ईश्वर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हो; नाहि-नहीं है; तोमार-आपके लिए; विधि-व्यवहार–नियमों के अन्तर्गत व्यवहार।

अनुवाद

"आपको भोजन देने में मेरा महान् सौभाग्य है। आप परम भगवान् हैं और दिव्य पद पर होने के कारण आप पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है।

'मूर्ख'-लोक करिबेक तोमार निन्दन ।

सहिते ना पारिमु सेइ 'दुष्टे'र वचन ॥ 183॥

मूर्ख-लोक-मूर्ख लोग; करिबेक–करेंगे; तोमार निन्दन–आपकी निन्दा; सहिते ना पारिमु-मैं सहन नहीं कर सकेंगा; सेइ–उन; दुष्टेर वचन-दुष्टों के शब्द।

अनुवाद

"मूर्ख लोग आपकी निन्दा करेंगे, किन्तु मैं ऐसे दुष्ट लोगों के वचन सहन नहीं कर सकूँगा।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि यद्यपि वह ब्राह्मण उच्च जाति का नहीं था, फिर भी उसने तथाकथित जात-ब्राह्मणों की निडर होकर भर्त्सना की, क्योंकि वह शुद्ध भक्ति-पद पर अवस्थित था। कुछ लोग श्री चैतन्य महाप्रभु का इसलिए विरोध करते हैं, क्योंकि उन्होंने निम्न जाति के वैष्णव को अंगीकार किया। ऐसे लोग महाप्रसाद को दिव्य नहीं मानते; इसीलिए इन्हें यहाँ मूर्ख तथा दुष्ट कहा गया है। शुद्ध भक्त में ऐसे उच्च जाति के लोगों को ललकारने की शक्ति होती है और उसकी

साहसिक उक्तियों को गर्वयुक्त नहीं मानना चाहिए। उसे तो स्पष्ट वक्ता मानना चाहिए। ऐसा व्यक्ति उच्च जाति के ऐसे ब्राह्मण की चापलूसी नहीं करता, जो अ-वैष्णव हो।

प्रभु कहे,—श्रुति, स्मृति, यत ऋषि-गण ।

सबे 'एक'-मत नहे, भिन्न भिन्न धर्म ॥184॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; श्रुति-वेद; स्मृति-पुराण; यत-सब; ऋषि-गण-ऋषि गण; सबे–वे सब; एक-मत नहे-सहमत नहीं; भिन्न भिन्न धर्म–भिन्न धार्मिक संप्रदाय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "वेद, पुराण तथा ऋषिगण सदैव आपस में सहमत नहीं होते। फलतः धर्म के भिन्न भिन्न सिद्धान्त पाये जाते हैं।

तात्पर्य

परम सत्य तक पहुँचे बिना एक-मत होना सम्भव नहीं है। नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्न–कहा जाता है कि कोई विद्वान या ऋषि तब तक बड़ा नहीं होता, जब तक वह दूसरे विद्वान से भिन्न मत न रखे। भौतिक स्तर पर एकता की सम्भावना नहीं रहती, इसीलिए विभिन्न प्रकार की धार्मिक प्रणालियाँ हैं। किन्तु परम सत्य एक है और जब कोई परम सत्य को प्राप्त हुआ रहता है, तब मतभेद नहीं रहता। उस परम पद पर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पूजनीय होते हैं। जैसाकि भगवद्गीता (18.55) में कहा गया है- भक्त्या मामभिजानाति यावान् यथास्मि तत्त्वतः । परम पद के स्तर पर अर्चाविग्रह एक होता है और पूजा-विधि भी एक होती है। यही विधि भक्ति है।

विश्वभर में अनेक धर्म हैं, क्योंकि वे सब भक्ति के परम पद पर आसीन नहीं हैं। जैसाकि भगवद्गीता (18.66) में स्थपित हुआ है- सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। एकम् का अर्थ है "एक"-कृष्ण। इस पद पर विभिन्न धार्मिक प्रणालियाँ नहीं हैं। श्रीमद्भागवत (1.1.2) के अनुसार धर्मः

प्रोज्झितकैतवोऽत्र। भौतिक स्तर पर धार्मिक प्रणालियाँ भिन्न हैं। श्रीमद्भागवत प्रारम्भ से ही इन्हें धर्मः कैतवः-ठगने वाला धर्म कहता है। इनमें से कोई भी धर्म वास्तव में शुद्ध तथा मौलिक नहीं है। वास्तविक धर्म तो वह है, जो मनुष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का प्रेमी बनाता हो। श्रीमद्भागवत (1.2.6) के शब्दों में :

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सूप्रसीदति ॥

"सारी मानवता का परम धर्म वह है, जिससे लोग दिव्य भगवान् की प्रेमाभक्ति प्राप्त कर सकें। ऐसी भक्ति बिना किसी स्वार्थ के तथा बिना किसी अवरोध के होनी चाहिए, जिससे आत्मा पूरी तरह तुष्ट हो सके।"

इस स्तर पर भगवान् की सेवा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं होता। जब मनुष्य का कोई छिपा स्वार्थ नहीं होता, तब सिद्धान्तों में एकता तथा सहमति होती है। चूँकि हर एक का शरीर तथा मन भिन्न है, अतएव नाना प्रकार के धर्मों की आवश्यकता होती है। किन्तु आध्यात्मिक पद प्राप्त कर लेने पर शारीरिक तथा मानसिक अन्तर नहीं रह जाते । फलतः परम पद पर धर्म में ऐक्य होता है।

धर्म-स्थापन-हेतु साधुर व्यवहार ।

पुरी-गोसाञिर ये आचरण, सेइ धर्म सार ॥185॥

धर्म-स्थापन-हेतु-धर्म की स्थापना के लिए; साधुर व्यवहार-भक्त का व्यवहार; पुरी-गोसाञिर-माधवेन्द्र पुरी का; ये आचरण-जो व्यवहार; सेइ-वह; धर्म सार-सारे धर्म का सार।

अनुवाद

"भक्त के आचरण से धर्म के वास्तविक प्रयोजन की स्थापना होती है। माधवेन्द्र पुरी गोस्वामी का आचरण ऐसे धर्मों का सार है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इस श्लोक पर अपनी निम्नलिखित टीका दी है। साधु व्यक्ति महाजन या महात्मा कहलाता है। भगवद्गीता (9.13) में महात्मा की परिभाषा भगवान् कृष्ण द्वारा इस प्रकार दी गई है :

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।

भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥

"हे पार्थ, जो भ्रमित नहीं हैं, ऐसे महात्मा दैवी प्रकृति के संरक्षण में रहते हैं। वे पूर्णतया भक्ति में संलग्न रहते हैं, क्योंकि वे मुझे आदि तथा अव्यय पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में जानते हैं।"

भौतिक जगत् में विभिन्न मतावलम्बियों द्वारा महात्मा शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न रूपों में ग्रहण किया जाता है। संसारी भी अपना पृथक् दृष्टिकोण रखते हैं। इन्द्रियतृप्ति में लगे रहने वाले बद्धजीव के लिए महाजन की मान्यता उसके द्वारा दी जाने वाली इन्द्रियतृप्ति के अनुपात के अनुसार होती है। उदाहरणार्थ, एक व्यापारी किसी बैंकर (साहूकार) को महाजन मान सकता है और भौतिक भोग की कामना रखने वाले कर्मीजन जैमिनि जैसे दार्शनिक को महाजन मान सकते हैं। ऐसे कई योगी हैं, जो इन्द्रियों पर नियन्त्रण चाहते हैं, उनके लिए पतंजलि ऋषि महाजन हैं। ज्ञानियों के लिए नास्तिक कपिल, वशिष्ठ, दुर्वासा, दत्तात्रेय तथा अन्य निर्विशेष दार्शनिक महाजन हैं। असुरगण हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, रावण के पुत्र मेघनाद, जरासंघ इत्यादि को महाजन मानते हैं। भौतिकतावादी मानववादियों के लिए, जो शरीर के विकासवाद के मानने वाले हैं, डार्विन जैसा व्यक्ति महाजन है। जो विज्ञानी कृष्ण की बहिरंगा शक्ति से मोहग्रस्त हैं और जिनका पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से किसी तरह का नाता नहीं है, उन्हें भी कुछ लोग महाजन मानते हैं। इसी प्रकार दार्शनिक, इतिहासकार, साहित्यकार, वक्ता तथा सामाजिक और राजनीतिक नेता भी कभी-कभी महाजन माने जाते हैं। ऐसे महाजनों का आदर कुछ लोगों द्वारा किया जाता है, जिनका वर्णन श्रीमद्भागवत (2.3.19) में हुआ है :

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुत: पुरुष: पशुः ।

न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥

“ऐसे व्यक्ति जो कुत्तों, सुअरों, ऊँटों तथा गधों की तरह हैं, वे उन लोगों की प्रशंसा करते हैं, जो बुराइयों से उद्धार करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं को कभी भी नहीं सुनते।”

इस तरह भौतिकतावादी स्तर पर पशु-प्रवृत्ति वाले नेताओं की पूजा पशुओं द्वारा की जाती है। कभी-कभी वैद्य, मनोरोग चिकित्सक तथा सामाजिक कार्यकर्ता शारीरिक कष्ट, दु:ख, भय इत्यादि को दूर करने का प्रयास करते हैं, किन्तु उन्हें आध्यात्मिक पहचान का कोई ज्ञान नहीं होता और ईश्वर से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। फिर भी मोहग्रस्त लोगों द्वारा वे महाजन माने जाते हैं। आत्मवंचित (खुद को ठगने वाला) व्यक्ति कभी-कभी ऐसे पुरोहित वर्ग से अपना नेता या गुरु चुनते है, जो भौतिक जीवन के नियमों के आधार पर औपचारिक रूप से नियुक्त किया गया हो। इस तरह वे इन औपचारिक पुजारियों द्वारा ठगे जाते हैं। कभी-कभी लोग श्रील वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा नामांकित ढुंगविप्र (धूर्त ब्राह्मण) को महाजन के रूप में स्वीकार करते हैं। ऐसे धूर्त श्रील हरिदास ठाकुर के गुणों की नकल करते हैं और हरिदास ठाकुर से ईर्ष्या करते हैं, जो सचमुच ही महाजन थे। वे नाना प्रकार के बनावटी प्रयास करते हैं, अपने आपको महान् भगवद्भक्त के रूप में या तंत्रविद्या, सम्मोहन विद्या तथा चमत्कार के ज्ञाता योगियों के रूप में प्रचारित करते हैं। कभी-कभी लोग पूतना, तृणावर्त, वत्स, बक, अघासुर तथा धेनुक, कालिय और प्रलम्ब जैसे असुरों को भी पूजनीय मानते हैं। कुछ लोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के नकलचियों तथा प्रतिद्वंद्वियों को–यथा पौण्डूक, शृगाल वासुदेव, शुक्राचार्य, या चार्वाक जैसे नास्तिकों, राजा वेन, सुगत तथा अर्हत जैसे नास्तिकों को भी मान्यता प्रदान करते हैं। जो लोग ऐसे नकलचियों का महाजन के रूप में स्वीकार करते हैं, उनकी श्री चैतन्य महाप्रभु में परम भगवान् के रूप में कोई श्रद्धा नहीं रहती। वे ईश्वरविहीन ठगों को मानते हैं, जो अपने आपको ईश्वर का अवतार बताते हैं और वाग्जाल से मूर्ख संसारी लोगों को ठगते हैं। इस तरह न जाने कितने धूर्तो को महाजन मान लिया जाता है।

भक्ति-रहित लोग कभी-कभी भौतिक स्वार्थों वाले व्यक्तियों को गलती से महाजन मान लेते हैं। एकमात्र प्रयोजन कृष्ण-भक्ति होना चाहिए। कभी- कभी सकाम-कर्मी, शुष्क दार्शनिक, अभक्तगण, योगी तथा भौतिक ऐश्वर्य एवं कांचन-कामिनी में आसक्त व्यक्ति महाजन मान लिए जाते हैं। किन्तु ऐसे अनधिकृत महाजनों के विषय में श्रीमद्भागवत (6.3.25) का यह कथन है :

प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं

देव्याविमोहित-मतिर्बत माययालम् ।

त्रय्यां जड़ीकृत-मतिर्मधु-पुष्पितायां

वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥

इस भौतिक संसार में, सकाम कर्मी उन मूर्खा द्वारा महाजन के रूप में स्वीकार किये जाते हैं, जो भक्ति के मूल्य से अनजान हैं। ऐसे मूर्खा की सांसारिक बुद्धि और मानसिक तर्कवितर्क की विधियाँ भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के नियंत्रण में होती हैं। फलस्वरूप वे शुद्ध भक्ति को नहीं समझ सकते। वे भौतिक कार्यकलापों से आकृष्ट होते हैं और वे भौतिक प्रकृति की पूजा करने लगते हैं। इस प्रकार वे सकाम कर्मी के रूप में जाने जाते हैं। यहाँ तक कि वे आध्यात्मिक कार्यकलापों के स्वांग में दिखने वाले भौतिक कार्यकलापों में फँस जाते हैं। भगवद्गीता में ऐसे लोगों को वेद-वाद-रताः कहा गया है। वे वेदों के वास्तविक अभिप्राय को नहीं समझ पाते; फिर भी वे अपने आपको वेदों के अधिकारी मानते हैं। वैदिक ज्ञान को समझने वाले लोगों को कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में जानना चाहिए। वेदैश्च सर्वैरहम् एव वेद्यः । (भगवद्गीता 15.15)

इस भौतिक जगत् में कोई कर्म-वीर के रूप में, कोई धर्म-वीर के रूप में तो कोई ज्ञान-वीर के रूप में या त्याग-वीर के रूप में विख्यात हो सकता है। कुछ भी हो, इस विषय में श्रीमद्भागवत (3.23.56) का निम्नलिखित मत है:

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ।

न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥

“जिसके कार्य धार्मिक जीवन में प्रगति करने हेतु नहीं हैं, जिसके धार्मिक कर्मकाण्ड उसे वैराग्य में ऊपर उठने में सहायक नहीं हैं तथा जिसका वैराग्य उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्ति की ओर ले जाने में सहायक नहीं होते, उसे मृत ही समझना चाहिए, भले ही वह श्वास ले रहा हो।”

निष्कर्ष यह है कि सारे पुण्यकर्म, सकाम कर्म, धार्मिक सिद्धान्त तथा वैराग्य को अन्ततोगत्वा भक्ति की ओर ले जाने वाला होना चाहिए। सेवा करने की विभिन्न विधियाँ हैं। मनुष्य अपने देश, समाज, वर्णाश्रम धर्म, बीमार, गरीब, धनी, स्त्री, देवता इत्यादि की सेवा कर सकता है। यह सब इन्द्रियतृप्ति या भौतिक भोग के अन्तर्गत आता है। यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि लोग ऐसे भौतिक कार्यों की ओर आकृष्ट होते हैं और इन कार्यों से जुड़े नेताओं को महाजन अर्थात् महान् आदर्श नेता के रूप में स्वीकार किया जाता है। वास्तव में वे केवल भ्रमित करने वाले नेता हैं, किन्तु सामान्य व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि उसे किस तरह भ्रमित किया जा रहा है।

नरोत्तम दास ठाकुर का कहना है- साधु-शास्त्र-गुरु-वाक्य, चित्तेते करिया ऐक्य। “मनुष्य को साधुओं, शास्त्रों और गुरु के शब्दों को अपने मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार करना चाहिए।” श्री चैतन्य महाप्रभु जैसा महापुरुष साधु है। शास्त्र तो शास्त्रों के आदेश हैं। और गुरु वह है, जो शास्त्रों के आदेशों की पुष्टि करता है। इन तीनों के मार्गदर्शन को स्वीकार करना ही जीवन की वास्तविक प्रगति के लिए महाजनों का सही अर्थों में अनुसरण करना है। (महाजनो येन गतः स पन्थाः)। मोह से आवृत व्यक्ति को सही रास्ता नहीं सूझता, अत: श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं- धर्म-स्थापन-हेतु साधुर व्यवहार। “भक्त का आचरण अन्य सारे व्यवहारों के लिए आदर्श स्थापित करने वाला होता है। स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति के नियमों का पालन किया और दूसरों को भी वैसा ही करने की शिक्षा दी। पुरी-गोसाञि ये आचरण, सेइ धर्म सार। श्री चैतन्य महाप्रभु माधवेन्द्र पुरी के आचरण का अनुसरण करते थे और अन्यों

को भी उसका पालन करने के लिए कहते थे। दुर्भाग्यवश लोग अनन्त काल से भौतिक शरीर के प्रति आकृष्ट होते रहे हैं।

यस्मात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके

स्वधी: कलत्रादिषु भौम इज्य-धीः ।

यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि-

जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

“जो व्यक्ति तीन तत्त्वों से बने इस शरीर को आत्मा मानता है और शरीर के उपफलों को अपने सम्बन्धी मानता है, जो अपनी जन्मभूमि को पूज्य मानता है और जो तीर्थस्थानों में दिव्य ज्ञान वाले व्यक्तियों से भेंट करने के स्थान पर स्नान करने के उद्देश्य से जाता है, उसे गधे या गाय के समान समझना चाहिए।” (भागवत 10.84.13) जो लोग गड्डालिका-प्रवाह न्याय को मानते हैं और छद्म महाजनों के पदचिह्नों पर चलते हैं, वे माया की तरंगों द्वारा बहा ले जाये जाते हैं। इसीलिए भक्तिविनोद ठाकुर सतर्क करते हैं :

मिछे मायार वशे, याच्छ भेसे’

खाच्छ हाबुडुबु, भाइ ।

जीव कृष्ण-दास, ए विश्वास,

करले त’ आर दुःख नाइ ॥

“माया की तरंगों में मत बहो। केवल भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करो, तो सारे दु:ख समाप्त हो जायेंगे।” जो लोग सामाजिक रीति-रिवाज तथा आचरण का पालन करते हैं, वे महाजनों द्वारा बताये गये पथ का अनुसरण करना भूल जाते हैं—इस तरह वे महाजनों के चरणकमलों के प्रति अपराधी बनते हैं। कभी-कभी वे ऐसे महाजनों को अत्यधिक रुढ़िवादी मानते हैं या फिर अपने खुद के महाजन उत्पन्न कर लेते हैं। इस तरह वे परम्परा प्रणाली की अवहेलना करते हैं। यह सबके लिए बड़ा दुर्भाग्य है।

प्रामाणिक महाजन के चरणचिह्नों पर नहीं चलने से सुख की सारी योजनाएँ व्यर्थ हो जाएँगी। मध्यलीला (25.55, 56, 58) में इसका वर्णन हुआ है :

परम कारण ईश्वरे केह नाहि माने ।

स्व-स्व-मत स्थापे पर-मतेर खण्डने ॥

ताते छय दर्शन हैते 'तत्त्व' नाहि जानि ।

'महाजन येइ कहे, सेइ सत्य मानि ॥

श्रीकृष्ण-चैतन्य-वाणी-अमृतेर धार ।

सिंहो ये कहये वस्तु, सेइ 'तत्त्व'–सार ॥

लोग इतने अभागे हैं कि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेशों को नहीं मानते। उल्टे वे तथाकथित महाजनों से समर्थन प्राप्त करते हैं। ताते छय दर्शन हैते 'तत्त्व' नाहि जानि–केवल तर्कवादियों का अनुसरण करके वास्तविक सत्य को नहीं जाना जा सकता। हमें गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत महाजनों के चरणचिह्नों का अनुसरण करना होगा। तभी हमारा प्रयास सफल होगा। श्रीकृष्ण-चैतन्य-वाणी-अमृतेर धार–"श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा कहा गया प्रत्येक शब्द अमृत का सतत प्रवाह है।" जो भी उनके शब्दों को यथार्थ सत्य के रूप में स्वीकार करता है, वही परम सत्य के सार को समझ सकता है।

सांख्य दर्शन या पतंजलि की योग प्रणाली के द्वारा परम सत्य का निर्धारण नहीं किया जा सकता, क्योंकि सांख्य या पतंजलि के अनुयायी योगी विष्णु को भगवान् नहीं मानते (न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्)। ऐसे लोगों की आकांक्षा कभी पूरी नहीं होती, इसीलिए वे बहिरंगा शक्ति द्वारा आकर्षित होते हैं। ज्ञानी लोग भले ही सारे विश्व में विख्यात हों, किन्तु वास्तव में वे अधिकृत सत्ता होते नहीं। ऐसे नेता स्वयं कट्टरपंथी होते हैं तनिक भी उदार नहीं होते। किन्तु यदि हम इस दर्शन का प्रचार करें, तो लोग वैष्णवों को साम्प्रदायिक कहेंगे। श्रील माधवेन्द्र पुरी वास्तविक महाजन थे, किन्तु पथभ्रष्ट लोग सत्य-

असत्य का भेद नहीं कर पाते। किन्तु जो कृष्णभावनाभावित है, वह भगवान् तथा उनके भक्तों द्वारा बनाये गये वास्तविक धार्मिक पथ को समझ जाते हैं। श्री माधवेन्द्र पुरी सच्चे महाजन थे, क्योंकि वे परम सत्य को सही ढंग से समझते थे और जीवन-भर शुद्ध भक्त जैसा आचरण करते रहे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री माधवेन्द्र पुरी की विधि का समर्थन किया है। इसीलिए यद्यपि भौतिक दृष्टि से सनोड़िया ब्राह्मण निम्न पद था, फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसे आत्म-साक्षात्कार के सर्वोच्च पद पर अवस्थित माना।

श्रीमद्भागवत (6.3.20) में बारह महाजनों का उल्लेख है—ब्रह्मा, नारद, शम्भु, चार कुमार, कपिल, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि, शुकदेव तथा यमराज।

गौड़ीय सम्प्रदाय में अपने महाजनों का चुनाव करने के लिए हमें श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके प्रतिनिधियों का अनुसरण करना होगा। उनके अगले प्रतिनिधि हैं श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी। फिर आते हैं, छः गोस्वामी–श्री रूप, श्री सनातन, भट्ट रघुनाथ, श्री जीव, गोपाल भट्ट तथा दास रघुनाथ। विष्णु स्वामी के अनुयायी श्रीधर स्वामी थे, जो श्रीमद्भागवत के सुविख्यात भाष्यकार हैं। वे भी महाजन थे। इसी प्रकार चण्डीदास, विद्यापति तथा जयदेव भी महाजन थे। जो व्यक्ति नकली गुरु बनने के लिए महाजनों की नकल करता है, वह महाजनों के पदचिह्नों पर चलने से कोसों दूर रहता है। कभी-कभी लोग वास्तव में यह नहीं समझ पाते कि एक महाजन अन्य महाजनों का अनुसरण कैसे करता है। इस तरह लोग अपराध करते हैं और भक्ति से विलग हो जाते हैं।

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना

नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम् ।

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां

महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥ 186 ॥

तर्कः-शुष्क तर्क; अप्रतिष्ठः-अनिर्णित; श्रुतयः-वेद; विभिन्नाः-विभिन्न मतों वाले; न—नहीं; असौ-वह; ऋषिः-ऋषि; यस्य–जिसका; मतम्-विचार; न-नहीं; भिन्नम्-अलग; धर्मस्य-धार्मिक सिद्धान्तों का; तत्त्वम्-तत्त्व; निहितम्-बसा हुआ है; गुहायाम् सिद्ध भक्त के हृदय में; महा-जनः-स्वरूपसिद्ध पूर्ववर्ती आचार्य; येन—जिस रीति से; गतः–कार्य किया; सः-वह; पन्थाः -शुद्ध पवित्र मार्ग।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "शुष्क तर्क में निर्णय का अभाव होता है। जिस महापुरुष का मत अन्यों से भिन्न नहीं होता, उसे महान् ऋषि नहीं माना जाता। केवल विभिन्न वेदों के अध्ययन से कोई सही मार्ग पर नहीं आ सकता, जिससे धार्मिक सिद्धान्तों को समझा जाता है। धार्मिक सिद्धान्तों का ठोस सत्य शुद्ध स्वरूपसिद्ध व्यक्ति के हृदय में छिपा रहता है। फलस्वरूप, जैसाकि सारे शास्त्र पुष्टि करते हैं, मनुष्य को महाजनों द्वारा बतलाये गये प्रगतिशील पथ पर ही चलना चाहिए।"

तात्पर्य

यह श्लोक महाभारत, वनपर्व (313.117) से लिया गया है, जिसे युधिष्ठिर महाराज ने कहा था।

तबे सेइ विप्र प्रभुके भिक्षा कराइल ।

मधु-पुरीर लोक सब प्रभुके देखिते आइल ॥ 187॥

तबे-तत्पश्चात्; सेइ विप्र-वही ब्राह्मण; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को; भिक्षा कराइल–भोजन परोसा; मधु-पुरीर-मथुरा के लोक-सामान्य लोग; सब-सब; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु के; देखिते आइल-दर्शन करने आये।

अनुवाद

इस वार्ता के बाद ब्राह्मण श्री चैतन्य ने महाप्रभु को भोजन कराया। फिर मथुरा के सारे निवासी महाप्रभु का दर्शन करने आये।

लक्ष-सङ्ख्य लोक आइसे, नाहिक गणन ।

बाहिर हञा प्रभु दिल दरशन ॥ 188॥

लक्ष-सङ्ख्य-लाखों की संख्या में; लोक आइसे–लोग आये; नाहिक गणन-उनकी गिनती नहीं; बाहिर हञा–बाहर आकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; दिल दरशन-दर्शन दिया।

अनुवाद

लोग लाखों की संख्या में आये, जिनकी गणना कोई नहीं कर सकता था। अतः श्री चैतन्य महाप्रभु लोगों को दर्शन देने के लिए घर से बाहर आये।

बाहु तुलि' बले प्रभु 'हरि-बोल'-ध्वनि ।

प्रेमे मत्त नाचे लोक करि' हरि-ध्वनि ॥ 189॥

बाह तुलि'–भुजाएँ ऊपर उठाकर; बले-कहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हरि-बोल-ध्वनि—हरि बोल" की दिव्य ध्वनि; प्रेमे प्रेम में; मत्त-उन्मत्त होकर; नाचे-नाचे; लोक-लोग; करि' हरि-ध्वनि-दिव्य ध्वनि "हरि" बोलकर।

अनुवाद

जब लोग एकत्र हो गये, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने हाथ उठाकर जोर से कहा, "हरि बोल!" लोगों ने महाप्रभु के साथ नामोच्चारण किया और प्रेमाविष्ट हो गये। वे उन्मत्त की तरह नाचने तथा "हरि!" की दिव्य ध्वनि का उच्चारण करने लगे।

यमुनार 'चब्बिश घाटे' प्रभु कैल स्नान ।

सेइ विप्र प्रभुके देखाय तीर्थ-स्थान ॥190॥

यमुनार-यमुना नदी के; चब्लिश घाटे–चौबीस घाटों पर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैल–किया; स्नान-स्नान; सेइ विप्र-उस ब्राह्मण ने; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को; देखाय–दिखाए; तीर्थ-स्थान-तीर्थ स्थान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने यमुना नदी के किनारे के चौबीस घाटों में स्नानकिया और उस ब्राह्मण ने उन्हें सारे तीर्थस्थान दिखलाये।

तात्पर्य

यमुना के तट के चौबीस घाट (स्नान करने के स्थान) इस प्रकार हैं- (1) अविमुक्त, (2) अधिरूढ़, (3) गुह्यतीर्थ, (4) प्रयागतीर्थ, (5) कनखलतीर्थ, (6) तिन्दुक, (7) सूर्यतीर्थ, (8) वटस्वामी, (9) ध्रुवघाट, (10) ऋषितीर्थ, (11) मोक्षतीर्थ, (12) बोधतीर्थ, (13) गोकर्ण, (14) कृष्णगंगा, (15) वैकुण्ठ, (16) असिकुण्ड, (17) चतु:सामुद्रिककूप, (18) अक्रूरतीर्थ, (19) याज्ञिकविप्रस्थान, (20) कुब्जाकूप, (21) रंगस्थल, (22) मंचस्थल, (23) मल्लयुद्ध स्थान तथा (24) दशाश्वमेध।

स्वयम्भु, विश्राम, दीर्घ-विष्णु, भूतेश्वर ।

महाविद्या, गोकर्णादि देखिला विस्तर ॥ 191॥

स्वयम्भु-स्वयंभु; विश्राम–विश्राम; दीर्घ-विष्णु-दीर्घ विष्णु; भूतेश्वर–भूतेश्वर; महाविद्या-महाविद्या; गोकर्ण–गोकर्ण; आदि-आदि; देखिला-देखे; विस्तर–बहुत से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने यमुना नदी के तट पर स्थित सारे तीर्थस्थानों को देखा, जिनमें स्वयम्भु, विश्रामघाट, दीर्घ विष्णु, भूतेश्वर, महाविद्या तथा गोकर्ण सम्मिलित हैं।

‘वन’ देखिबारे यदि प्रभुर मन हैल ।

सेइत ब्राह्मणे प्रभु सङ्गेते लइल ॥ 192॥

वन-वन; देखिबारे–देखने के लिए; यदि-जब; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मन–मन; हैल–हुआ; सेइत-निस्सन्देह, उस; ब्राह्मणे-ब्राह्मण को प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सङ्गेते लइल-अपने साथ ले गये।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु को वृन्दावन के विविध वनों को देखने की इच्छा हुई, तो उन्होंने उसी ब्राह्मण को अपने साथ ले लिया।

मधु-वन, ताल, कुमुद, बहुला-वन गेला ।

ताहाँ ताहाँ स्नान करि’ प्रेमाविष्ट हैला ॥193॥

मधु-वन-मधुवन; ताल-तालवन; कुमुद कुमुदवन; बहुला-वन-बहुलावन; गेला–उन्होंने देखा; ताहाँ ताहाँ–यहाँ वहाँ; स्नान करि’–स्नान करके; प्रेम-आविष्ट हैला–प्रेमाविष्ट हो गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने विभिन्न वन देखे, जिनमें मधुवन, तालवन, कुमुदवन तथा बहुलावन सम्मिलित हैं। वे जहाँ जहाँ गये, उन्होंने अत्यन्त प्रेमपूर्वक स्नान किया।

तात्पर्य

वन शब्द का अर्थ है “जंगल।” वृन्दावन उस जंगल का नाम है, जहाँ श्रीमती वृन्दादेवी (तुलसी देवी) प्रचुरता में उगती हैं। वास्तव में यह वैसा जंगल नहीं है, जैसाकि हम घनी हरी वनस्पति से समझते हैं। वृन्दावन में ऐसे बारह वन हैं। कुछ यमुना नदी के पश्चिम में स्थित हैं और कुछ पूर्व की ओर। पूर्व की

ओर के वनों में भद्रवन, बिल्ववन, लौहवन, भाण्डीरवन तथा महावन हैं, जबकि पश्चिम की ओर के वनों के नाम हैं मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, काम्यवन, खदिरवन तथा वृन्दावन। वृन्दावन क्षेत्र के ये बारह वन हैं।

पथे गाभी-घटा चरे प्रभुरे देखिया ।

प्रभुके बेड़य आसि' हुङ्कार करिया ॥ 194॥

पथे–पथ में; गाभी-घटा–गौओं के झुण्ड; चरे–चर रहे; प्रभुरे देखिया-श्री चैतन्य महाप्रभु को देखने के बाद; प्रभुके बेड़य-उन्होंने महाप्रभु को घेर लिया; आसि-आकर; हुँ-कार करिया-रंभाने लगीं।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन से होकर जा रहे थे, तब चरती हुई गौवों के झुंड ने उन्हें जाते हुए देखा। वे तुरन्त उन्हें घेरकर उच्च स्वर से रँभाने लगीं।

गाभी देखि' स्तब्ध प्रभु प्रेमेर तरङ्गे ।

वात्सल्ये गाभी प्रभुर चाटे सब-अङ्गे ॥195॥

गाभी देखि'–गौओं को देखकर; स्तब्ध-स्तब्ध हो गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः प्रेमेर तरङ्गे–प्रेम की तरंगों में; वात्सल्ये-अति स्नेह के कारण; गाभी–सभी गौएं; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चाटे-चाटने लगी; सब-अङ्गे–सारे शरीर पर।

अनुवाद

झुंड को पास आते देखकर महाप्रभु प्रेमवश स्तब्ध रह गये। तब गौएं बड़े ही वात्सल्य से उनके शरीर को चाटने लगीं।

सुस्थ हञा प्रभु करे अङ्ग-कण्डूयन ।

प्रभु-सङ्गे चले, नाहि छाड़े धेनु-गण ॥196॥

सुस्थ हञा–शान्त होकर; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करे-किया; अङ्ग–शरीर का; कण्डूयन–सहलाया; प्रभु-सङ्गे–श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; चले–गईं; नाहि छाड़े-नहीं छोड़ती थीं; धेनु-गण-सभी गौएँ।

अनुवाद

स्वस्थचित्त होकर श्री चैतन्य महाप्रभु गौओं को सहलाने लगे और गौएं भी उनका साथ न छोड़ पाने के कारण उन्हीं के साथ-साथ चलने लगीं।

कष्टे-सृष्ट्ये धेनु सब राखिल गोयाल ।

प्रभु-कण्ठ-ध्वनि शुनि' आइसे मृगी-पाल ॥ 197॥

कष्टे-सृष्ट्ये-अत्यन्त कठिनाई से; धेनु-गौओं को; सब-सब; राखिल-पीछे रखा; गोयाल-ग्वालों ने प्रभु-कण्ठ-ध्वनि-श्री चैतन्य महाप्रभु की संगीतमय ध्वनि; शुनि'–सुनकर; आइसे-आ गये; मृगी-पाल-हिरणों के झुण्ड।

अनुवाद

ग्वाले बड़ी कठिनाई से अपनी गौएं संभाल पाये। फिर जब महाप्रभु ने कीर्तन किया, तो उनकी मधुर ध्वनि सुनकर सारे हिरन उनके पास आ गये।

मृग-मृगी मुख देखि' प्रभु-अङ्ग चाटे ।

भय नाहि करे, सङ्गे याय वाटे-वाटे ॥ 198॥

मृग-मृगी-हिरण और हिरणियाँ; मुख देखि'–उनका मुख देखकर; प्रभु-अङ्ग चाटे-महाप्रभु के शरीर को चाटने लगे; भय नाहि करे-उन्हें जरा भी भय नहीं लगता था; सङ्गे याय-उनके साथ गये; वाटे-वाटे-सारे मार्ग में।

अनुवाद

जब हिरनों तथा हिरनियों ने आकर महाप्रभु का मुख देखा, तो वे उनका शरीर चाटने लगे। उनसे तनिक भी भयभीत हुए बिना वे उनके साथ-साथ रास्ते में चलने लगे।

शुक, पिक, भृङ्ग प्रभुरे देखि 'पञ्चम' गाय ।

शिखि-गण नृत्य करि' प्रभु-आगे याय ॥ 199॥

शुक-तोते; पिक–कोयलें; भृङ्ग-भौंरे; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; देखि'–देखकर; पञ्चम–पंचम स्वर में; गाय-गाने लगे; शिखि-गण-मोर; नृत्य-नृत्य; करि'-करके; प्रभु-आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के आगे; याय-जाने लगे।

अनुवाद

भौंरे तथा तोता और कोयल जैसे पक्षी पंचम स्वर में गाने लगे तथा मोर महाप्रभु के आगे नाचने लगे।

प्रभु देखि' वृन्दावनेर वृक्ष-लता-गणे ।

अङ्कर पुलक, मधु-अश्रु वरिषणे ॥ 200॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु को; देखि'–देखकर; वृन्दावनेर-वृन्दावन के; वृक्ष-लता-गणे-वृक्ष और लताएँ; अङ्कर शाखाएँ; पुलक-पुलकित होकर; मधु-अश्रु-मधु (शहद) के अश्रु; वरिषणे-बरसाने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर वृन्दावन के वृक्ष तथा लताएँ सब प्रफुल्लित हो उठे। उनकी टहनियाँ खड़ी हो गईं और वे मधु के रूप में प्रेम के आँसू बहाने लगे।

फुल-फल भरि' डाल पड़े प्रभु-पाय ।

बन्धु देखि' बन्धु येन 'भेट' लञा याय ॥201॥

फुल-फल भरि'-फूल और फूलों से लदी; डाल-डालें (शाखाएँ); पड़े-गिर गईं; प्रभु-पाय-महाप्रभु के चरणकमलों पर; बन्धु देखि'–एक मित्र को देखकर; बन्धु-दूसरा मित्र; येन -जैसे; भेट-एक भेंट; लञा–लेकर; याय-जाता है।

अनुवाद

फूल-फल से लदे वृक्ष तथा लताएँ महाप्रभु के चरणों पर गिरकर नाना प्रकार की भेंटों से उनका स्वागत करने लगीं, मानो उनके मित्र हों।

प्रभु देखि' वृन्दावनेर स्थावर-जङ्गम ।

आनन्दित—बन्धु येन देखे बन्धु-गण ॥ 202॥

प्रभु देखि'–महाप्रभु को देखकर; वृन्दावनेर-वृन्दावन के; स्थावर-जङ्गम-चर-अचर सभी जीव; आनन्दित–प्रसन्न होकर बन्धु-मित्र; येन -जैसे; देखे-देखकर; बन्धु-गण-मित्र गण।

अनुवाद

इस तरह वृन्दावन के सारे चर तथा अचर प्राणी महाप्रभु को देखकर परम हर्षित हुए। ऐसा लग रहा था मानों मित्रगण अपने अन्य मित्र को देखकर प्रसन्न हुए हों।

ता-सबार प्रीति देखि' प्रभु भावावेशे ।

सबा-सने क्रीड़ा करे हञा तार वशे ॥ 203 ॥

ता-सबार-उन सबका; प्रीति–प्रेम; देखि'–देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भाव-आवेशे-भावावेश में आकर; सबा-सने-सबके साथ; क्रीड़ा-खेल; करे–करने लगे; हञा–होकर; तार–उनके; वशे–वश में।

अनुवाद

उनके स्नेह को देखकर महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो गये। वे उनसे उसी तरह खेलने लगे, जिस तरह मित्र एक दूसरे के साथ खेलते हैं। इस तरह वे स्वेच्छा से अपने मित्रों के वशीभूत हो गये।

प्रति वृक्ष-लता प्रभु करेन आलिङ्गन ।

पुष्पादि ध्याने करेन कृष्णे समर्पण ॥ 204॥

प्रति–प्रत्येक; वृक्ष-लता-वृक्ष और लता को प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन आलिङ्गन-आलिंगन करने लगे; पुष्प-आदि-सभी पुष्पों तथा फलों आदि; ध्याने-ध्यान में; करेन-करने लगे; कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; समर्पण-समर्पण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु हर वृक्ष तथा हर लता को आलिंगन करने लगे और वे बदले में उन्हें अपने फल-फूल समर्पित करने लगे, मानो वे समाधि में हों।

अश्रु-कम्प-पुलक-प्रेमे शरीर अस्थिरे ।

'कृष्ण' बल, 'कृष्ण' बल—बले उच्चैःस्वरे ॥205॥

अश्रु-अश्रु; कम्प-कॅपन; पुलक-पुलक; प्रेमे-प्रेमावेश में; शरीर-सारा शरीर; अस्थिरे–अस्थिर; कृष्ण बल–"कृष्ण" कहो; कृष्ण बल–"कृष्ण" बोलो; बले-महाप्रभु ने कहा; उच्चैः-स्वरे-ऊँची आवाज में।

अनुवाद

महाप्रभु का शरीर चंचल था और उसमें अश्रु, कॅपन तथा हर्ष प्रकट हो रहे थे। वे जोर-जोर से "कृष्ण बोल!" "कृष्ण बोल!" कह रहे थे।

स्थावर-जङ्गम मिलि' करे कृष्ण-ध्वनि ।

प्रभुर गम्भीर-स्वरे येन प्रति-ध्वनि ॥ 206॥

स्थावर-जङ्गम-सभी जीव, स्थावर और जंगम; मिलि'–मिलकर; करे–करने लगे; कृष्ण-ध्वनि-''हरे कृष्ण'' की ध्वनि; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; गम्भीर-स्वरे-गम्भीर स्वर में; येन -जैसे; प्रति-ध्वनि-प्रति ध्वनि (गुंज)।

अनुवाद

तब सारे चर तथा अचर प्राणी हरे कृष्ण की दिव्य ध्वनि का उच्चारण करने लगे, मानो वे चैतन्य महाप्रभु के गहन स्वर की प्रतिध्वनि कर रहे हों।

मृगेर गला धरि' प्रभु करेन रोदने ।

मृगेर पुलक अङ्गे, अश्रु नयने ॥ 207॥

मृगेर-हिरन के; गला धरि'–गले पकड़कर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करेन-किया; रोदने-रोदन; मृगेर मृगों का; पुलक अङ्गे–पुलकित; अश्रु-अश्रु; नयने-आँखों

अनुवाद

फिर महाप्रभु मृगों को गले लगाकर रोने लगे। उन मृगों के शरीरों से हर्ष प्रकट हो रहा था और नेत्रों में आँसू थे।

वृक्ष-डाले शुक-शारी दिल दरशन ।

ताहा देखि’ प्रभुर किछु शुनिते हैल मन ॥208॥

वृक्ष-डाले–वृक्ष की एक शाखा पर; शुक-शारी-नर और मादा तोतों की जोड़ी; दिल-दिया; दरशन–दर्शन; ताहा देखि’–उसे देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; किछु-कुछ; शुनिते-सुनने को; हैल-हो गया; मन–मन।

अनुवाद

जब नर तथा मादा तोता वृक्ष की डाल पर दिखे, तो महाप्रभु उन्हें देखकर उनको बोलते हुए सुनना चाहते थे।

शुक-शारिका प्रभुर हाते उड़ि’ पड़े।

प्रभुके शुनाजा कृष्णेर गुण-श्लोक पड़े ॥ 209॥

शुक-शारिका-तोते, नर और मादा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; हाते-हाथ पर; उड़ि’–उड़कर; पड़े-गिर गये; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु को ; शुनाजा-सुनाने; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; गुण-श्लोक पड़े-गुण-श्लोक (दिव्य गुणों) पढ़ने लगे (सुनाने लगे)।

अनुवाद

नर तथा मादा दोनों तोते उड़कर महाप्रभु के हाथ पर बैठ गये और कृष्ण के दिव्य गुणों का गान करने लगे, जिसे महाप्रभु सुनते रहे।

सौन्दर्यं ललनालि-धैर्य-दलनं लीला रमा-स्तम्भिनी

वीर्यं कन्दुकताद्रि-वर्यममलाः पारे-परार्धं गुणाः ।

शीलं सर्व-जनानुरञ्जनमहो यस्यायमस्मत्प्रभुर्

विश्वं विश्व-जनीन-कीर्तिरवतात्कृष्णो जगन्मोहनः ॥ 210॥

सौन्दर्यम्-शारीरिक सुन्दरता; ललना-आलि-गोपियों के समूह का; धैर्य-धैर्य: दलनम्-नष्ट करने की; लीला-लीला; रमा-रमा (लक्ष्मी देवी); स्तम्भिनी–चकित करने वाली; वीर्यम्-शक्ति, बल; कन्दुकित-फेंकने के लिए एक छोटी गेंद की भाँति बनाकर; अद्रि-वर्यम्-महान् पर्वत; अमलाः–बिना दाग के; पारे-परार्धम्-असीम; गुणाः–गुण; शीलम्-व्यवहार; सर्व-जन-सभी प्रकार के जीव; अनुरञ्जनम् सन्तुष्ट करके; अहो-ओह; यस्य–जिसका; अयम्-यह; अस्मत्-प्रभुः-हमारे प्रभु; विश्वम्-सारा ब्रह्माण्ड; विश्व-जनीन–प्रत्येक के हितार्थ; कीर्तिः–जिसकी महिमा; अवतात्-वे बनाये रखें; कृष्णः- भगवान् कृष्ण; जगत्-मोहनः-सारे संसार को आकर्षित करने वाले।

अनुवाद

नर तोता गाने लगा, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का गुणगान ब्रह्माण्ड में हर एक के लिए लाभप्रद है। उनका सौन्दर्य वृन्दावन की गोपियों को मात देने वाला है और उनके धैर्य को दमित करने वाला है। उनकी लीलाएँ लक्ष्मीदेवी को स्तम्भित करने वाली हैं तथा उनका शारीरिक बल गोवर्धन पर्वत को गेंद जैसा छोटा खिलौना बना देता है। उनके निर्मल गुण अनन्त हैं और उनका आचरण सबको तुष्ट करने वाला है। भगवान् कृष्ण सबके लिए आकर्षक हैं। ओह, हमारे प्रभु सारे ब्रह्माण्ड का पालन करें!"

तात्पर्य

यह श्लोक गोविन्द लीलामृत (13.29) में पाया जाता है।

शुक-मुखे शुनि' तबे कृष्णेर वर्णन ।

शारिका पड़ये तबे राधिका-वर्णन ॥ 211॥

शुक-मुखे-नर तोते के मुख से; शुनि'–सुनकर; कृष्णेर वर्णन–भगवान् कृष्ण का वर्णन; शारिका–मादा तोता; पड़ये-पढ़ती है; तबे-तब; राधिका-वर्णन–श्रीमती राधारानी का वर्णन।

अनुवाद

नर तोते से भगवान् कृष्ण का वर्णन सुनकर मादा तोता श्रीमती राधारानी का वर्णन करने लगी।

श्री-राधिकायाः प्रियता सु-रूपता

सु-शीलता नर्तन-गान-चातुरी ।

गुणालि-सम्पत्कविता च राजते

जगन्मनो-मोहन-चित्त-मोहिनी ॥ 212॥

श्री-राधिकायाः–श्रीमती राधारानी का; प्रियता-प्रेम; सु-रूपता-अनुपम सुन्दरता; सु-शीलता-सुशील व्यवहार; नर्तन-गान-कीर्तन और नृत्य में; चातुरी–चातुर्य; गुण-आलि-सम्पत्-ऐसे दिव्य गुणों की उपलब्धि; कविता–कविता; च-और; राजते-चमकते हैं; जगत्-मनः-मोहन-कृष्ण के, जो अखिल ब्रह्माण्ड के मन को आकर्षित करते हैं; चित्त-मोहिनी-मन को आकर्षित करने वाली।

अनुवाद

मादा तोता ने कहा, "श्रीमती राधारानी का स्नेह, उनका अनुपम सौन्दर्य तथा उत्तम आचरण, उनका कलापूर्ण नृत्य तथा गायन और उनकी कविता-सबके सब इतने आकर्षक हैं कि वे उन कृष्ण के मन को भी आकृष्ट कर लेते हैं, जो ब्रह्माण्ड के हर व्यक्ति के मन को आकर्षित करने वाले हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक गोविन्द-लीलामृत (13.30) में पाया जाता है।

पुनः शुक कहे,—कृष्ण 'मदन-मोहन' ।

तबे आर श्लोक शुक करिल पठन ॥ 213॥

पुनः–दोबारा; शुक–नर तोते ने; कहे-कहा; कृष्ण मदन-मोहन-कृष्ण कामदेव के मन के विजेता हैं; तबे-तत्पश्चात्; आर-एक अन्य; श्लोक-श्लोक; शुक-नर तोते ने; करिल पठन–पढ़कर सुनाया।

अनुवाद

तत्पश्चात् नर तोते ने कहा, "कृष्ण तो कामदेव के भी मन को मोहने वाले हैं। फिर वह दूसरा श्लोक सुनाने लगा।

वंशी-धारी जगन्नारी-चित्त-हारी स शारिके।

विहारी गोप-नारीभिर्जीयान्मदन-मोहनः ॥ 214॥

वंशी-धारी-वंशीधारी; जगत्-नारी–ब्रह्माण्ड की सभी स्त्रियों के; चित्त-हारी-हृदयों को चुरानेवाले हैं; सः-वे; शारिके–मेरी प्यारी तोती; विहारी-भोक्ता; गोप-नारीभिः-गोपियों के साथ; जीयात्-उनकी महिमा बनी रहे; मदन-कामदेव के; मोहनः-मोहित करने वाले।

अनुवाद

तब तोते ने कहा, 'हे प्रिये शारी! (मादा तोता) श्रीकृष्ण वंशी धारण करने वाले हैं और ब्रह्माण्ड-भर की सारी स्त्रियों के हृदयों को हरने वाले हैं। वे सुन्दर गोपिकाओं के विशेष रूप से भोक्ता हैं और कामदेव को भी मोहने वाले हैं। आओ उनका यशोगान करें।"

तात्पर्य

यह श्लोक भी गोविन्द-लीलामृत (13.31) में प्राप्य है।

पुनः शारी कहे शुके करि' परिहास ।

ताहा शुनि' प्रभुर हैल विस्मय-प्रेमोल्लास ॥ 215॥

पुनः-दोबारा; शारी कहे-मादा तोते ने कहा; शुके–नर तोते को; करि' परिहास-परिहास में; ताहा शुनि'-वह सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; हैल–हो गया; विस्मय–विस्मय; प्रेम-उल्लास-प्रेम की जागृति।

अनुवाद

तब मादा तोता ने नर तोते से परिहास करते हुए बोलना प्रारम्भ किया और श्री चैतन्य महाप्रभु उसे इस तरह बोलते सुनकर अद्भुत प्रेम से चकित रह गये।

राधा-सङ्गे यदा भाति तदा 'मदन-मोहनः' ।

अन्यथा विश्व-मोहोऽपि स्वयं 'मदन-मोहितः' ॥ 216 ॥

राधा-सड़े- श्रीमती राधा के संग; यदा-जब; भाति-चमकते हैं; तदा-तब; मदन-मोहनः-कामदेव के मन को मोहने वाले; अन्यथा-अन्यथा; विश्व-मोहः-सारे जगत् को मोहने वाले; अपि-यद्यपि; स्वयम्-स्वयं; मदन-मोहितः–कामदेव से मोह लिये जाते हैं।

अनुवाद

मादा तोता (शारी) ने कहा, "जब श्रीकृष्ण राधारानी के साथ होते हैं, तब वे कामदेव को भी मोहने वाले (मदनमोहन) होते हैं। अन्यथा जब वे अकेले होते हैं, तब वे समस्त ब्रह्माण्ड को मोहने वाले होते हुए भी काम के वशीभूत हो जाते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक भी गोविन्द-लीलामृत (13.32) से है।

शुक-शारी उड़ि' पुनः गेल वृक्ष-डाले ।

मयूरेर नृत्य प्रभु देखे कुतूहले ॥ 217॥

शुक-शारी-नर तथा मादा तोते; उड़ि'–उड़कर; पुनः–दोबारा; गेल-चले गये; वृक्ष-डाले–वृक्ष की डाल पर; मयूरेर–मोरों के; नृत्य-नृत्य को; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभुः देखे-देखने लगे; कुतूहले–उत्सुकता से।

अनुवाद

तब नर तथा मादा तोते उड़कर वृक्ष की डाल पर चले गये और श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक मोरों का नृत्य देखने लगे।

मयूरेर कण्ठ देखि' प्रभुर कृष्ण-स्मृति हैल ।

प्रेमावेशे महाप्रभु भूमिते पड़िल ॥ 218॥

मयूरेर–मोरों के; कण्ठ-कंठ; देखि-देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कृष्ण-स्मृति-भगवान् कृष्ण का स्मरण; हैल-हो गया; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; भूमिते-भूमि पर; पड़िल-गिर पड़े।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने मोरों की नीली गर्दन देखी, तो तुरन्त उनमें कृष्ण की स्मृति जाग उठी और वे प्रेमाविष्ट होकर भूमि पर गिर पड़े।

प्रभुरे मूर्च्छित देखि' सेइ त ब्राह्मण ।

भट्टाचार्य-सङ्गे करे प्रभुर सन्तर्पण ॥ 219॥

प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; मूर्च्छित-मूर्छित; देखि'–देखकर; सेइ त ब्राह्मण-निस्सन्देह वह ब्राह्मण; भट्टाचार्य-सङ्गे–भट्टाचार्य के साथ; करे-करने लगा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; सन्तर्पण-संरक्षण।

अनुवाद

जब ब्राह्मण ने देखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु मूर्च्छित हो गये हैं, तो उसने तथा बलभद्र भट्टाचार्य ने उनकी देख-रेख की।

आस्ते-व्यस्ते महाप्रभुर लञा बहिर्वास ।

जल-सेक करे अङ्गे, वस्त्रेर वातास ॥ 220॥

आस्ते-व्यस्ते–अत्यन्त शीघ्रता में; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; लञा–लेकर; बहिर्वास–बाह्य वस्त्र; जल-सेक करे-जल छिड़कने लगा; अङ्गे–शरीर पर; वस्त्रेर वातास-वस्त्र से पंखा झलने लगा।

अनुवाद

उन्होंने तुरन्त महाप्रभु के शरीर पर पानी छिड़का। फिर उन्होंने महाप्रभु का बाहरी वस्त्र ले लिया और उससे पंखा झलने लगे।

प्रभु-कर्णे कृष्ण-नाम कहे उच्च करि' ।

चेतन पाञा प्रभु या'न गड़ागड़ि ॥ 221॥

प्रभु-कर्णे-श्री चैतन्य महाप्रभु के कान में; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण के पावन नाम का; कहे-कीर्तन करने लगे; उच्च करि'-ऊँचे स्वर में; चेतन पाञा-चेतना पाकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; या'न–चले गये; गड़ागड़ि-भूमि पर लोटने लगे।

अनुवाद

फिर वे महाप्रभु के कान में कृष्ण-नाम का उच्चारण करने लगे। जब महाप्रभु को चेतना आई, तो वे भूमि पर लोटने लगे।

कण्टक-दुर्गम वने अङ्ग क्षत हैल ।

भट्टाचार्य कोले करि' प्रभुरे सुस्थ कैल ॥ 222॥

कण्टक-दुर्गम-कांटों के कारण दुर्गम स्थान; वने-वन में; अङ्ग–शरीर; क्षत हैल-क्षत हो गया; भट्टाचार्य-बलभद्र भट्टाचार्य; कोले करि'–उन्हें अपनी गोद में लेकर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; सुस्थ कैल-शान्त किया।

अनुवाद

जब महाप्रभु भूमि पर लोट रहे थे, तब तीक्ष्ण काँटों से उनका शरीर घायल हो गया। बलभद्र भट्टाचार्य ने गोद में उठाकर उन्हें शान्त किया।

कृष्णावेशे प्रभुर प्रेमे गरगर मन ।

'बोल्' 'बोल्' करि' उठि' करेन नर्तन ॥223॥

कृष्ण-आवेशे–कृष्ण के प्रेमावेश में प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रेमे-प्रेम से; गरगर–विक्षिप्त; मन–मन; बोल् बोल्-बोल बोल; करि' कहकर; उठि'–उठकर; करेन नर्तन-नृत्य करने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का मन कृष्ण के प्रेम में भ्रमण कर रहा था। वे तुरन्त उठ खड़े हुए और बोले, "कीर्तन करो! कीर्तन करो!" फिर वे स्वयं नाचने लगे।

भट्टाचार्य, सेइ विप्र 'कृष्ण-नाम' गाय ।

नाचिते नाचिते पथे प्रभु चलि' याय ॥ 224॥

भट्टाचार्य–भट्टाचार्य ने; सेइ विप्र-उसी ब्राह्मण ने; कृष्ण-नाम गाय-कृष्ण के पावन नाम का कीर्तन किया; नाचिते नाचिते-नाचते नाचते; पथे-पथ पर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चलि' याय-आगे चलने लगे।

अनुवाद

महाप्रभु का आदेश पाने पर बलभद्र भट्टाचार्य तथा ब्राह्मण दोनों कृष्ण-नाम का कीर्तन करने लगे। तब महाप्रभु नाचते-नाचते मार्ग पर आगे बढ़ने लगे।

प्रभुर प्रेमावेश देखि' ब्राह्मण—विस्मित ।

प्रभुर रक्षा लागि' विप्र हइला चिन्तित ॥ 225॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; प्रेम-आवेश-प्रेमावेश; देखि'–देखकर; ब्राह्मण-ब्राह्मण; विस्मित–चकित हो गया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; रक्षा लागि'–रक्षा के लिए: विप्र-ब्राह्मण; हइला–हो गया; चिन्तित-अति चिन्तित ।

अनुवाद

वह ब्राह्मण श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेमावेश के भावों को देखकर विस्मित था। फिर वह महाप्रभु को सुरक्षा प्रदान करने के लिए चिन्तित हो उठा।

नीलाचले छिला यैछे प्रेमावेश मन ।

वृन्दावन याइते पथे हैल शत-गुण ॥ 226॥

नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; छिला-था; यैछे-जितना; प्रेम-आवेश मन–सदैव प्रेमावेश की मन:स्थिति में; वृन्दावन-वृन्दावन; याइते-जाकर; पथे-पथ पर; हैल-हो गया; शत-गुण-सौ गुना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का मन जगन्नाथ पुरी में प्रेमावेश में मग्न था, किन्तु जब वे वृन्दावन के मार्ग से होकर निकल रहे थे, तब वह प्रेम सैंकड़ों गुना बढ़ गया।

सहस्र-गुण प्रेम बाड़े मथुरा दरशने ।

लक्ष-गुण प्रेम बाड़े, भ्रमेन यबे वने ॥ 227॥

सहस्त्र-गुण-एक हजार गुना; प्रेम-प्रेम; बाड़े-बढ़ गया; मथुरा-मथुरा; दरशने-के दर्शन करने से; लक्ष-गुण-लाख गुना; प्रेम बाड़े-प्रेम बढ़ गया; भ्रमेन-भ्रमण किया; यबे-जब; वने-वृन्दावन के वन में।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने मथुरा देखा तो उनका प्रेम हजार गुना बढ़ गया, किन्तु जब वे वृन्दावन के जंगलों में घूम रहे थे, तब वह लाख गुना बढ़ गया।

अन्य-देश प्रेम उछले 'वृन्दावन'-नामे ।

साक्षात्भ्रमये एबे सेइ वृन्दावने ॥ 228॥

प्रेमे गरगर मन रात्रि-दिवसे ।

स्नान-भिक्षादि-निर्वाह करेन अभ्यासे ॥229॥

अन्य-देश-अन्य देशों में; प्रेम-प्रेम; उछले-बढ़ता है; वृन्दावन-नामे-वृन्दावन के नाम से; साक्षात्-साक्षात्; भ्रमये-भ्रमण करने लगे; एबे-अब; सेइ वृन्दावने-उसी वृन्दावन में; प्रेमे-प्रेम में; गरगर–भटकने लगा; मन–मन; रात्रि-दिवसे–दिन और रात; स्नान-भिक्षा-आदि-स्नान-भोजन आदि; निर्वाह करने पर; करेन-करते; अभ्यासे-अभ्यास से।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु अन्यत्र थे, तब वृन्दावन का नाम सुनकर ही उनका प्रेम बढ़ जाता था। अब जबकि वे वृन्दावन के जंगल में वास्तव में भ्रमण कर रहे थे, तो उनका मन रात-दिन प्रेम में निमग्न रहता था। वे मात्र अभ्यास के कारण खाते और नहाते थे।

एइ-मत प्रेम–यावत्भ्रमिल 'बार' वन ।

एकत्र लिखिलुँ, सर्वत्र ना याय वर्णन ॥ 230॥

एइ-मत-इस प्रकार; प्रेम-प्रेम; यावत्-जब तक; भ्रमिल-वे भ्रमण करते रहे; बार वन-वृन्दावन में बारह वनों में; एकत्र-एक स्थान पर; लिखिलुँ–मैंने लिखा है; सर्वत्र-हर जगह; ना याय वर्णन-वर्णन नहीं किया जा सकता।

अनुवाद

इस तरह मैंने महाप्रभु के प्रेम का वर्णन किया है, जो वृन्दावन के बारहों वनों में भ्रमण करते समय उन्होंने एक स्थान पर प्रकट किया। सभी स्थानों पर उन्होंने क्या अनुभव किया इसका पूरा-पूरा वर्णन कर पाना असम्भव होगा।

वृन्दावने हैल प्रभुर यतेक प्रेमेर विकार ।

कोटि-ग्रन्थे 'अनन्त' लिखेन ताहार विस्तार ॥ 231॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; हैल-थे; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; ग्रतेक-इतने; प्रेमेर विकार-प्रेम के विकार; कोटि-ग्रन्थे-करोड़ों ग्रन्थों में; अनन्त-भगवान् अनन्त; लिखेन-लिखते हैं; ताहार–उनका; विस्तार–विस्तार।

अनुवाद

वृन्दावन में श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रेम-विकार की जो अनुभूति हुई, उसका विशद वर्णन करने के लिए भगवान् अनन्त लाखों ग्रन्थों की रचना करते हैं।

तबु लिखिबारे नारे तार एक कण ।

उद्देश करिते करि दिग्दरशन ॥ 232॥

तबु–फिर भी; लिखिबारे-लिखना; नारे-सम्भव नहीं है; तार-उसका; एक-एक; कण-भाग; उद्देश-संकेत; करिते-करने के लिए; करि-मैं करता हूँ; दिक्-दरशन-दिशा निर्देश देना।

अनुवाद

चूँकि भगवान् अनन्त स्वयं इन लीलाओं के एक अंश का भी वर्णन नहीं कर सकते, अतः मैं तो केवल दिशा-निर्देश ही कर रहा हूँ।

जगत्भासिल चैतन्य-लीलार पाथारे ।

याँर यत शक्ति तत पाथारे साँतारे ॥ 233॥

जगत्-सारा जगत्; भासिल-डूब गया; चैतन्य-लीलार-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं की; पाथारे-बाढ़ में; याँर–जिसकी; यत-इतनी; शक्ति-शक्ति; तत–उतना; पाथारे-बाढ़ में; साँतारे-तैरता है।

अनुवाद

सारा संसार श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं की बाढ़ में डूब गया। कोई भी व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार ही उस जल में तैर सकता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 234॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ–श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; झार–जिसकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-लिखते हैं; कृष्णदास-श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुगमन करता हुआ श्री चैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस तरह श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के सत्रहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें महाप्रभु की वृन्दावन यात्रा का वर्णन हुआ है।

अध्याय अठारह

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा वृन्दावन में भ्रमण

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह भाष्य में अठारहवें अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने आरिटग्राम में राधाकुण्ड तथा श्यामकुण्ड की खोज की। इसके बाद उन्होंने गोवर्धन गाँव में हरिदेव के विग्रह का दर्शन किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोवर्धन पर्वत पर चढ़ना अच्छा नहीं समझा, क्योंकि इस पर्वत की पूजा कृष्ण के रूप में की जाती है। गोपाल अर्चाविग्रह श्री चैतन्य महाप्रभु के मन की बात जान गये, अतः मुसलमानों के आक्रमण के बहाने उन्होंने अपने आपको गांठुलि-ग्राम में स्थानान्तरित कर दिया। तब श्री चैतन्य महाप्रभु गोपाल का दर्शन करने गांठुलि-ग्राम गये। कुछ वर्षों बाद गोपालजी मथुरा के विठ्ठलेश्वर मन्दिर भी गये तथा श्रील रूप गोस्वामी को दर्शन देने के लिए ही वहाँ एक मास रुके रहे।

श्री चैतन्य महाप्रभु नन्दीश्वर, पावन सरोवर, शेषशायी, खेलातीर्थ, भाण्डीरवन, भद्रवन, लोहवन तथा महावन देखने के बाद गोकुल गये और अन्त में वे मथुरा लौट आये। मथुरा में भारी भीड़ देखकर उन्होंने अपना आवास अक्रूर घाट के पास बनाया, जहाँ से वे कालियाह्रद, द्वादशादित्यघाट, केशीघाट, रासस्थली, चीरघाट तथा आमलितला का दर्शन करने नित्य वृन्दावन जाते थे। कालियाह्रद सरोवर में अनेक लोग एक मछुआरे को कृष्ण समझ बैठे। जब कुछ गणमान्य व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने आये, तो उन लोगों ने यह विचार व्यक्त किया कि संन्यास लेने वाला व्यक्ति नारायण बन जाता है। महाप्रभु ने उनकी गलती सुधारी। इस तरह उनमें कृष्णभावना का उदय हुआ और वे यह समझ सके कि संन्यासी केवल एक जीव होता है, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नहीं।

अक्रूरघाट में स्नान करते समय श्री चैतन्य महाप्रभु लम्बे समय तक पानी के भीतर रहे। बलभद्र भट्टाचार्य ने सोरो क्षेत्र नामक तीर्थस्थान दिखलाने के बाद महाप्रभु को प्रयाग ले जाने का निश्चय किया। प्रयाग जाते हुए मार्ग में एक गाँव में रुकने पर श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेमवश मूच्छित हो गये। वहाँ से होकर गुजर रहे कुछ पठान सिपाहियों श्री चैतन्य महाप्रभु को देखा और उन्होंने गलती से समझा कि बलभद्र भट्टाचार्य तथा अन्य संगियों ने उन्हें धतूरा का विष देकर मार डाला है और उनका धन छीनकर ले जा रहे हैं। फलतः उन लोगों ने उनके संगियों को बन्दी बना लिया। किन्तु जब श्री चैतन्य महाप्रभु को चेतना आई, तब उनके संगियों को छोड़ दिया गया। महाप्रभु ने सिपाहियों में से एक व्यक्ति से बात की जो धार्मिक व्यक्ति जान पड़ता था। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कुरान द्वारा कृष्ण-भक्ति की स्थापना की। इस तरह सिपाहियों के सरदार विजुली खान ने श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण स्वीकार कर ली और वह अपने दल समेत कृष्ण का भक्त बन गया। आज वही गाँव पठान वैष्णवों का गाँव कहलाता है। सोरो में गंगास्नान करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु तीन नदियों-गंगा, यमुना तथा सरस्वती–के संगम प्रयाग आ पहुँचे।

वृन्दावने स्थिर-चरान्नन्दयन्स्वावलोकनैः ।

आत्मानं च तदालोकाग़ौराङ्गः परितोऽभ्रमत् ॥1॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; स्थिर-चरान्-चर और अचर को; नन्दयन्–आनन्द प्रदान करते हुए; स्व-अवलोकनैः-अपनी चितवन से; आत्मानम्-अपने आपको; च-भी; तत्-आलोकात्-उनको देखने से; गौराङ्गः-श्री चैतन्य महाप्रभु; परितः-चारों ओर; अभ्रमत्-यात्रा की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे वृन्दावन में घूमकर सारे चर तथा अचर जीवों को अपनी चितवन से प्रफुल्लित किया। हर व्यक्ति को देखने में महाप्रभु को प्रसन्नता होती। इस तरह भगवान् गौरांग ने वृन्दावन का भ्रमण किया।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ 2॥

जय जय-जय हो; गौरचन्द्र-भगवान् गौरचन्द्र (श्री चैतन्य महाप्रभु) की; जय-जय हो; नित्यानन्द–भगवान् नित्यानन्द की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-श्री अद्वैत गोसांई की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द–भगवान् चैतन्य के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री गौरचन्द्र की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैत प्रभु की जय हो तथा भगवान् चैतन्य के भक्तगण श्रीवास ठाकुर आदि की जय हो!

एइ-मत महाप्रभु नाचिते नाचिते ।

'आरिट्'-ग्रामे आसि' 'बाह्य' हैल आचम्बिते ॥ 3॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु को; नाचिते नाचिते-नाचते नाचते; आरिट्-ग्रामे-आरिट ग्राम में; आसि'–आकर; बाह्य-इन्द्रिय अनुभूति; हैल-हुई; आचम्बिते-अचानक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर नाचते रहते थे, किन्तु जब वे आरिट ग्राम आये, तो उनकी बाह्य चेतना जाग्रत हो उठी।

तात्पर्य

आरिट् ग्राम का अन्य नाम अरिष्ट ग्राम भी है। श्री चैतन्य महाप्रभु को उस गाँव में ज्ञात हुआ कि वहीं पर श्रीकृष्ण ने अरिष्टासुर का वध किया था। यहाँ रहते हुए महाप्रभु ने राधाकुण्ड के विषय में पूछताछ की, किन्तु कोई भी उन्हें बता न सका कि यह कहाँ पर है। यहाँ तक कि उनके साथ का ब्राह्मण भी यह निश्चित नहीं कर सका कि वह कहाँ है। तब श्री चैतन्य महाप्रभु समझ गये कि राधाकुण्ड तथा श्यामकुण्ड नामक पवित्र स्थल लोगों की दृष्टि से ओझल हो चुके हैं। अतएव उन्होंने राधाकुण्ड तथा श्यामकुण्ड,

इन दोनों कुण्डों की खोज दो धान के खेतों में जल समूह के रूप में की। यद्यपि इनमें बहुत कम जल था, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु सर्वज्ञ थे और समझ सकते थे कि पूर्वकाल में ये दोनों कुण्ड श्री राधाकुण्ड तथा श्यामकुण्ड कहलाते थे। इस तरह राधाकुण्ड तथा श्यामकुण्ड की खोज हुई।

आरिटे राधा-कुण्ड-वार्ता पुछे लोक-स्थाने ।

केह नाहि कहे, सङ्गेर ब्राह्मण ना जाने ॥4॥

आरिटे-आरिट ग्राम में; राधा-कुण्ड-वार्ता–राधा कुण्ड के विषय में; पुछे-पूछा; लोक-स्थाने–स्थानीय लोगों से; केह-कोई भी; नाहि-नहीं; कहे-बता सका; सङ्गेर-उनका साथी; ब्राह्मण-ब्राह्मण भी; ना जाने नहीं जानता था।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्थानीय लोगों से पूछा कि राधाकुण्ड कहाँ है, किन्तु उन्हें कोई भी न बता सका। उनके साथ रहने वाला ब्राह्मण भी कुछ नहीं जानता था।

तीर्थ 'लुप्त' जानि' प्रभु सर्वज्ञ भगवान् ।

दुई धान्य-क्षेत्रे अल्प-जले कैला स्नान ॥5॥

तीर्थ-तीर्थ स्थान; लुप्त-लुप्त; जानि'–जानकर, प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; सर्व-ज्ञ-सर्वज्ञ; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; दुइ-दो; धान्य-क्षेत्रे- धान के खेतों में; अल्प-जले-थोड़े गहरे पानी में; कैला स्नान-स्नान किया।

अनुवाद

तब महाप्रभु समझ गये कि राधाकुण्ड नामक तीर्थस्थल लुप्त हो चुका है। किन्तु सर्वज्ञ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के नाते महाप्रभु ने दो धान के खेतों में राधाकुण्ड तथा श्यामकुण्ड खोज निकाले। उनमें बहुत कम जल था, किन्तु महाप्रभु ने वहाँ स्नान किया।

देखि’ सब ग्राम्य-लोकेर विस्मय हैल मन ।

प्रेमे प्रभु करे राधा-कुण्डेर स्तवन ॥ 6 ॥

देखि’–देखकर; सब ग्राम्य-लोकेर–गाँव के सभी लोगों के; विस्मय हैल–चकित हो गये; मन–मन; प्रेमे-प्रेमावेश में प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करे-किया; राधा-कुण्डेर-राधाकुण्ड की; स्तवन-स्तुति।

अनुवाद

जब गाँव के लोगों ने धान के खेतों के बीच स्थित दो कुण्डों में श्री चैतन्य महाप्रभु को स्नान करते देखा, तो वे अत्यधिक आश्चर्यचकित हुए। तब महाप्रभु ने श्री राधाकुण्ड की स्तुति की।

सब गोपी हैते राधा कृष्णेर प्रेयसी ।

तैछे राधा-कुण्ड प्रिय ‘प्रियार सरसी’ ॥7॥

सब–सभी; गोपी-गोपियों; हैते–से; राधा-राधारानी; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; प्रेयसी–अत्यन्त प्रिय; तैछे-उसी प्रकार; राधा-कुण्ड–राधाकुण्ड; प्रिय–अति प्रिय; प्रियार सरसी–अत्यन्त प्रिय राधारानी का सरोवर।

अनुवाद

“समस्त गोपियों में राधारानी सर्वाधिक प्रिय हैं। इसी तरह राधाकुण्ड भी भगवान् को अत्यन्त प्रिय है, क्योंकि यह श्रीमती राधारानी को अत्यन्त प्रिय है।

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।

सर्व-गोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्त-वल्लभा ॥8॥

यथा-जैसे; राधा-श्रीमती राधारानी; प्रिया–प्रिय; विष्णोः– भगवान् कृष्ण की: तस्याः-उनका; कुण्डम्-कुण्ड, सरोवर; प्रियम्-अति प्रिय; तथा-तथा; सर्व-गोपीषु-सभी गोपियों में से; सा-वह; एव–निस्सन्देह; एका-अकेली; विष्णोः–भगवान् कृष्ण की; अत्यन्त–अत्यन्त; वल्लभा–प्रिय।

अनुवाद

"जिस प्रकार श्रीमती राधारानी भगवान् कृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं, उसी प्रकार उनका सरोवर राधाकुण्ड भी उन्हें अत्यधिक प्रिय है। समस्त गोपियों में श्रीमती राधारानी निश्चित रूप से अत्यन्त प्रिय हैं।'

तात्पर्य

यह पद्म पुराण का श्लोक है।

येइ कुण्डे नित्य कृष्ण राधिकार सङ्गे ।

जले जल-केलि करे, तीरे रास-रङ्गे ॥9॥

येइ कुण्डे-उस कुण्ड में; नित्य-प्रतिदिन; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; राधिकार सङ्गे-श्रीमती राधारानी के संग; जले-जल में; जल-केलि-क्रीड़ा; करे-करते; तीरे-तट पर; रास-रङ्गे-अपना रास नृत्य।

अनुवाद

इस कुण्ड में भगवान् कृष्ण तथा श्रीमती राधारानी नित्य प्रति जलविहार किया करते थे और इसके तट पर रासनृत्य करते थे।

सेइ कुण्डे येइ एक-बार करे स्नान ।

ताँरे राधा-सम 'प्रेम' कृष्ण करे दान ॥ 10 ॥

सेइ कुण्डे-उस कुण्ड में; येइ-जो भी; एक-बार एक बार; करे स्नान-स्नान करता है; तौंरे–उसको; राधा-सम-श्रीमती राधारानी के समान; प्रेम-प्रेम; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करे दान-प्रदान करते हैं।

अनुवाद

"जो कोई इस कुण्ड में एक बार भी स्नान करता है, उसे भगवान् कृष्ण श्रीमती राधारानी जैसा ही प्रेम प्रदान करते हैं।

कुण्डेर 'माधुरी'—येन राधार 'मधुरिमा' ।

कुण्डेर 'महिमा'—येन राधार 'महिमा' ॥11॥

कुण्डेर-कुण्ड की; माधुरी-मधुरता; येन -जैसे; राधार–श्रीमती राधारानी की; मधुरिमा-मधुरता; कुण्डेर-कुण्ड की; महिमा-महिमा; येन -जैसे; राधार–श्रीमती 'राधारानी की; महिमा-महिमाएँ।

अनुवाद

"राधाकुण्ड का आकर्षण श्रीमती राधरानी के ही समान मधुर है। इसी तरह राधाकुण्ड की महिमा श्रीमती राधारानी की महिमा के ही समान महान् है।

श्री-राधेव हरेस्तदीय-सरसी प्रेष्ठाद्भुतैः स्वैर्गुणैर्

यस्यां श्री-युत-माधवेन्दुरनिशं प्रीत्या तया क्रीड़ति ।

प्रेमास्मिन्बत राधिकेव लभते यस्यां सकृत्स्नान-कृत्

तस्या वै महिमा तथा मधुरिमा केनास्तु वर्ण्यः क्षितौ ॥12॥

श्री-राधा-श्रीमती राधारानी; इव-की तरह; हरेः-कृष्ण का; तदीय-उनका: सरसी-कुण्ड; प्रेष्ठा-अत्यन्त प्रिय; अद्भुतैः–अद्भुत; स्वैः-अपने; गुणैः-दिव्य गुण; यस्याम्-जिनमें; श्री-युत-ऐश्वर्य पूर्ण; माधव-श्रीकृष्ण; इन्दुः-चन्द्र की भाँति: अनिशम्-निरन्तर; प्रीत्या-अत्यन्त प्रेम से; तया–श्रीमती राधारानी के

साथ; क्रीड़ति-लीलाएँ करते हैं; प्रेमा-प्रेम; अस्मिन्-भगवान् कृष्ण के लिए; बत-निस्सन्देह; राधिका इव-श्रीमती राधारानी की भाँति; लभते-पाती है; यस्याम्-जिसमें; सकृत्-एक बार; स्नान-कृत्-जो स्नान करता है; तस्याः -कुण्ड का; वै-निश्चित रूप से; महिमा-महिमा: तथा-तथा; मधुरिमा-मधुरता; केन-किससे; अस्तु-हो सकता है; वर्ण्यः-वर्णन; क्षितौ-इस पृथ्वी पर।

अनुवाद

"राधाकुण्ड अपने अद्भुत दिव्य गुणों के कारण कृष्ण को श्रीमती राधारानी के ही समान प्रिय है। इसी कुण्ड में सर्व ऐश्वर्यमान भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमती राधारानी के साथ अत्यन्त आनन्दपूर्वक दिव्य लीलाएँ कीं। जो भी राधाकुण्ड में एक बार स्नान करता है, वह श्रीकृष्ण के प्रति राधारानी के प्रेमाकर्षण को प्राप्त करता है। भला इस लोक में ऐसा कौन होगा जो श्री राधाकुण्ड की महिमा तथा मधुरिमा का वर्णन कर सके?"

तात्पर्य

यह श्लोक गोविन्द-लीलामृत (7.102) का है।

एइ-मत स्तुति करे प्रेमाविष्ट हञा ।

तीरे नृत्य करे कुण्ड-लीला सरिया ॥13॥

एइ-मत-इस प्रकार; स्तुति करे-स्तुति की; प्रेम-आविष्ट-प्रेमावेश में अभिभूत; हञा–होकर; तीरे-तट पर; नृत्य करे–नृत्य किया; कुण्ड-लीला-राधाकुण्ड की लीलाएँ; सडरिया-स्मरण करके।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने राधाकुण्ड की स्तुति की। प्रेमावेश में अभिभूत होकर वे राधाकुण्ड के किनारे भगवान् कृष्ण द्वारा सम्पन्न की गई लीलाओं का स्मरण करके नृत्य करने लगे।

कुण्डेर मृत्तिका लञा तिलक करिल ।

भट्टाचार्य-द्वारा मृत्तिका सङ्गे करि' लैल ॥14॥

कुण्डेर-कुण्ड की; मृत्तिका–मिट्टी; लञा–लेकर; तिलक करिल-तिलक किया; भट्टाचार्य-द्वारा–बलभद्र भट्टाचार्य की सहायता से; मृत्तिका-मिट्टी; सङ्गे-अपने साथ; करि'-करके; लैल-ले ली।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने राधाकुण्ड की मिट्टी से अपने शरीर पर तिलक लगाया और बलभद्र भट्टाचार्य की सहायता से उस कुण्ड से कुछ मिट्टी एकत्र की तथा उसे अपने साथ लेते गये।

तबे चलि' आइला प्रभु 'सुमनः-सरोवर' ।

ताहाँ 'गोवर्धन' देखि' हइला विह्वल ॥15॥

तबे-तत्पश्चात्; चलि'–चलकर; आइला–आये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सुमनः-सरोवर-सुमनस् नामक सरोवर पर; ताहाँ-वहाँ; गोवर्धन–गोवर्धन पर्वत; देखि'–देखकर; हइला विह्वल-विह्वल हो गये।

अनुवाद

राधाकुण्ड से श्री चैतन्य महाप्रभु सुमनस्-सरोवर गये। जब उन्होंने वहाँ से गोवर्धन पर्वत देखा, तो वे प्रसन्नता के मारे विह्वल हो उठे।

गोवर्धन देखि' प्रभु हइला दण्डवत् ।

'एक शिला' आलिङ्गिया हइला उन्मत्त ॥16॥

गोवर्धन देखि'–गोवर्धन पर्वत देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हइला दण्डवत्-दण्डवत् प्रणाम किया; एक शिला-शिला का एक टुकड़ा; आलिङ्गिया-आलिंगन करके; हइला-हो गये; उन्मत्त-उन्मत्त।

अनुवाद

महाप्रभु ने गोवर्धन पर्वत को देखकर भूमि पर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने गोवर्धन पर्वत के एक शिला-खण्ड का आलिंगन किया और उन्मत्त हो गये।

प्रेमे मत्त चलि' आइला गोवर्धन-ग्राम ।

'हरिदेव' देखि' ताहाँ हइला प्रणाम ॥17॥

प्रेमे-प्रेम में; मत्त-उन्मत्त; चलि'–चलकर; आइला–आये; गोवर्धन-ग्राम-गोवर्धन नामक गाँव में; हरिदेव-हरिदेव नामक आर्चाविग्रह जो वहाँ स्थापित था; देखि'–दर्शन करके; ताहाँ-वहाँ; हइला प्रणाम-प्रणाम किया।

अनुवाद

प्रेम में उन्मत्त महाप्रभु गोवर्धन नामक गाँव में आये। वहाँ उन्होंने हरिदेव अर्चाविग्रह का दर्शन किया और उन्हें सादर नमस्कार किया।

'मथुरा'-पद्मेर पश्चिम-दले याँर वास ।

'हरिदेव' नारायण–आदि परकाश ॥18॥

मथुरा-पच्चर-मथुरा रूपी कमलपुष्प की; पश्चिम-दले–पश्चिमी पंखुड़ी पर; याँर-जिसका; वास–निवास; हरिदेव-भगवान् हरिदेव; नारायण-नारायण के अवतार; आदि-मूल ; परकाश-प्राकट्य।

अनुवाद

हरिदेव नारायण के अवतार हैं और उनका निवास स्थान मथुरा रूपी कमल की पश्चिमी पंखुड़ी पर है।

हरिदेव-आगे नाचे प्रेमे मत्त हञा ।

सब लोक देखिते आइल आश्चर्य शुनिया ॥19॥

हरिदेव-आगे-हरिदेव के समक्ष; नाचे-नाचने लगे; प्रेमे-प्रेमावेश में; मत्त हञा-उन्मत्त होकर; सब लोक-सभी लोग; देखिते-देखने के लिए; आइल-आये; आश्चर्य-आश्चर्यजनक गतिविधियाँ; शुनिया-सुनकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेम में उन्मत्त होकर हरिदेव अर्चाविग्रह के सम्मुख नृत्य करने लगे। महाप्रभु के अद्भुत कार्यकलाप सुनकर सारे लोग उन्हें देखने आये।

प्रभु-प्रेम-सौन्दर्य देखि' लोके चमत्कार ।

हरिदेवेर भृत्य प्रभुर करिल सत्कार ॥20॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु का; प्रेम-सौन्दर्य-प्रेम तथा सौन्दर्य; देखि'–देखकर; लोके-लोग; चमत्कार–चकित हो गये; हरिदेवेर–प्रभु हरिदेव के; भृत्य–सेवक; प्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु का; करिल सत्कार–स्वागत किया।

अनुवाद

जब लोगों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेमावेश तथा उनके शारीरिक सौन्दर्य को देखा, तो वे चकित रह गये। हरिदेव विग्रह की सेवा करने वाले पुजारी ने महाप्रभु का भलीभाँति सत्कार किया।

भट्टाचार्य 'ब्रह्म-कण्डे' पाक यात्रा कैल ।

ब्रह्म-कुण्डे स्नान करि' प्रभु भिक्षा कैल ॥21॥

भट्टाचार्य बलभद्र भट्टचार्य; ब्रह्म-कुण्डे–ब्रह्मकुण्ड के तट पर; पाक-भोजन पकाना; याञा-वहाँ जाकर; कैल–किया; ब्रह्म-कुण्डे–ब्रह्मकुण्ड पर; स्नान करि'-स्नान करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भिक्षा कैल–भोजन किया।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने ब्रह्मकुण्ड में भोजन पकाया और महाप्रभु ने ब्रह्मकुण्ड में स्नान करने के बाद भोजन किया।

से-रात्रि रहिला हरिदेवेर मन्दिरे ।

रात्रे महाप्रभु करे मनेते विचारे ॥ 22॥

से-रात्रि-उस रात; रहिला-रहे; हरि-देवेर-हरिदेव के; मन्दिरे–मन्दिर में; रात्रे-रात को; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करे–किया; मनेते-मन में; विचारे-विचार।

अनुवाद

उसी रात महाप्रभु हरिदेव के मन्दिर में रुके रहे और रात में वे अपने मन में सोचने लगे।

'गोवर्धन-उपरे आमि कभु ना चड़िब ।

गोपाल-रात्र्येर दरशन केमने पाइब?' ॥ 23 ॥

गोवर्धन-उपरे–गोवर्धन पर्वत पर; आमि-मैं; कभु-कभी; ना-नहीं; चड़िब-चढ़ेगा; गोपाल-रात्र्येर–भगवान् गोपाल के; दरशन-दर्शन; केमने-कैसे; पाइब मैं करूँगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सोचा, "मैं तो गोवर्धन पर्वत पर चढ़ेगा नहीं, तो फिर मुझे गोपाल राय के दर्शन किस प्रकार हो सकेंगे?"

एत मने करि' प्रभु मौन करि' रहिला ।

जानिया गोपाल किछु भङ्गी उठाइला ॥ 24॥

एत-इतना; मने करि'-मन में विचार करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मौन–मौन; करि'-होकर; रहिला-रह गये; जानिया-जानकर; गोपाल–भगवान् गोपाल ने; किछु-कुछ; भङ्गी–चाल; उठाइला–चली।

अनुवाद

इस तरह सोचते हुए महाप्रभु मौन हो गये, किन्तु भगवान् गोपाल उनके विचार को जानते थे, इसलिए उन्होंने एक चाल चली।

अनारुरुक्षवे शैलं स्वस्मै भक्ताभिमानिने ।

अवरुह्य गिरेः कृष्णो गौराय स्वमदर्शयत् ॥ 25 ॥

अनारुरुक्षवे-जो चढ़ने को तैयार नहीं थे; शैलम्-पर्वत पर; स्वस्मै–स्वयं को; भक्त-अभिमानिने-अपने आपको भगवान् कृष्ण का भक्त मानकर; अवरुह्य-नीचे उतरकर; गिरेः-पर्वत से; कृष्णः- भगवान् कृष्ण ने; गौराय-श्री चैतन्य महाप्रभु को; स्वम्-स्वयं; अदर्शयत् दर्शन दिया।

अनुवाद

गोवर्धन पर्वत से नीचे उतरकर भगवान् गोपाल ने श्री चैतन्य महाप्रभु को दर्शन दिया, क्योंकि महाप्रभु अपने आपको कृष्ण-भक्त मानने के कारण पर्वत पर चढ़ने के लिए अनिच्छुक थे।

'अन्नकूट'-नामे ग्रामे गोपालेर स्थिति ।

राजपुत-लोकेर सेइ ग्रामे वसति ॥ 26 ॥

अन्नकूट-नामे-अन्नकूट नामक; ग्रामे-गाँव में; गोपालेर-गोपाल का; स्थिति निवास; राजपुत-लोकेर-राजस्थान के लोग; सेइ ग्रामे-उसी गाँव में; वसति-रहते थे।

अनुवाद

गोपाल गोवर्धन पर्वत पर अन्नकूट गाँव में स्थित थे। उस गाँव में जो लोग रहते थे, वे मुख्यतः राजस्थान के थे।

तात्पर्य

अन्नकूट ग्राम का उल्लेख भक्ति-रत्नाकर (पंचम तरंग) में हुआ है।

गोप-गोपी भुञ्जायेन कौतुक अपार।

एइ हेतु 'आनियोर' नाम से इहार॥

अन्नकूट-स्थान एइ देख श्रीनिवास।

ए-स्थान दर्शने हय पूर्ण अभिलाष॥

"यहीं पर सभी गोपियों तथा गोपों ने श्रीकृष्ण के साथ अद्भुत लीलाओं का आनन्द लूटा। इसीलिए यह स्थान 'आनियोर' भी कहलाता है। यहीं अन्नकूट उत्सव मनाया गया था। हे श्रीनिवास, जो भी इस स्थान का दर्शन करता है, उसकी सारी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं।" यह भी कहा गया है :

कुण्डेर निकट देख निविड़-कानन।

एथाइ 'गोपाल' छिला हञा सङ्गोपन॥

"कुण्ड के निकट के इस घने जंगल को तो देखो! यहीं पर गोपाल को छिपा दिया गया था।" रघुनाथ दास गोस्वामी भी स्तवावली (व्रज-विलास-स्तव 75) में लिखते हैं :

व्रजेन्द्रवर्यापित भोगमुच्चै-

धृत्वा बृहत्कायमघारिरुत्कः ।

वरेण राधां छलयन्विभुड़े भुङ्क्ते

यत्रान्नकूटं तदहं प्रपद्ये ॥

“जब नन्द महाराज ने गोवर्धन पर्वत को प्रचुर भोजन अर्पण किया, तब कृष्ण ने विशाल रूप धारण कर लिया और सबको उनसे वर माँगने के लिए आमन्त्रित किया। तब श्रीमती राधारानी के साथ भी छल करते हुए, उन्होंने सारा प्रस्तुत भोजन खा लिया। मुझे अन्नकूट नाम से जाने जा रहे उस स्थान में शरण मिले, जहाँ भगवान् कृष्ण ने इन लीलाओं का आनन्द लूटा।”

एक-जन आसि’ रात्रे ग्रामीके बलिल ।

‘तोमार ग्राम मारिते तुरुक-धारी साजिल ॥27॥

एक-जन-एक व्यक्ति ने; आसि-आकर; रात्रे-रात को; ग्रामीके-ग्रामवासियों के पास; बलिल–कहाँ; तोमार-तुम्हारे; ग्राम–गाँव पर; मारिते-आक्रमण करने हेतु; तुरुक-धारी-तुर्की मुस्लिम सिपाही; साजिल–तैयार हैं।

अनुवाद

एक व्यक्ति ने गाँव में आकर ग्रामवासियों को सूचित किया, “तुर्क सैनिक तुम लोगों के गाँव पर आक्रमण करने वाले हैं।

आजि रात्र्ये पलाह, ना रहिह एक-जन ।

ठाकुर लञा भाग’, आसिबे कालि यवन’ ॥28॥

आजि रात्र्ये-आज रात को; पलाह-भाग जाओ; ना रहिह-यहाँ न रहो; एक-जन–एक व्यक्ति; ठाकुर-भगवान् की मूर्ति को; लञा-लेकर; भाग'–भाग जाओ; आसिबे-आयेंगे; कालि–कल; यवन-मुस्लिम सिपाही।

अनुवाद

"आज रात में इस गाँव से भाग जाओ और एक व्यक्ति भी यहाँ न रहे। अपने साथ गोपाल का अर्चाविग्रह लो और यहाँ से पलायन करो, क्योंकि मुसलमान सैनिक कल यहाँ आ जायेंगे।"

शुनिया ग्रामेर लोक चिन्तित हुइल ।

प्रथमे गोपाल लञा गाँठुलि-ग्रामे खुइल ॥ 29॥

शुनिया-यह सुनकर; ग्रामेर लोक-सभी ग्रामवासी; चिन्तित हइल-चिन्तित हो गये; प्रथमे-पहले; गोपाल लञा-गोपाल को लेकर; गाँठुलि-ग्रामे-गांठुली गाँव में; खुइल-उन्हें छुपा दिया।

अनुवाद

यह सुनकर सारे ग्रामवासी अत्यन्त चिन्तित हो उठे। पहले उन्होंने गोपाल को उठाया और फिर उन्हें गाँठुलि नामक गाँव में ले गये।

विप्र-गृहे गोपालेर निभृते सेवन ।

ग्राम उजाड़ हैल, पलाइल सर्व-जन ॥ 30॥

विप्र-गृहे एक ब्राह्मण के घर में; गोपालेर-भगवान् गोपाल की; निभृते-छुपकर; सेवन-पूजा होने लगी; ग्राम–गाँव; उजाड़ हैल-उजड़ गया; पलाइल–भाग गये; सर्व-जन-सभी लोग।

अनुवाद

गोपाल के अर्चाविग्रह को एक ब्राह्मण के घर में रखा गया और चोरी-चुपके उनकी पूजा की जाती रही। सभी लोगों के भाग जाने से अन्नकूट ग्राम उजाड़ हो गया था।

ऐछे म्लेच्छ-भये गोपाल भागे बारे-बारे ।

मन्दिर छाड़ि' कुञ्जे रहे, किबा ग्रामान्तरे ॥ 31॥

ऐछे-इस प्रकार; म्लेच्छ-भये-मुस्लिमों के भय से; गोपाल-गोपाल राय का अर्चाविग्रह; भागे-भाग गया; बारे-वारे-बारम्बार; मन्दिर छाड़ि'–मन्दिर छोड़कर; कुञ्जे-कुंज में, झाड़ी में; रहे-रहे; किबा-अथवा; ग्राम-अन्तरे–एक विभिन्न गाँव में।

अनुवाद

मुसलमानों के भय से गोपाल के अर्चाविग्रह को बारम्बार एक गाँव से दूसरे गाँव में ले जाया जा रहा था। इस तरह मन्दिर छोड़ने के बाद गोपाल कभी झाड़ी में तो कभी किसी गाँव में और कभी अन्य गाँव में रहे।

प्रातःकाले प्रभु 'मानस-गङ्गा'य करि' स्नान ।

गोवर्धन-परिक्रमाय करिला प्रयाण ॥ 32॥

प्रातः-काले–प्रातः काल; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मानस-गङ्गाय-मानसगंगा नामक सरोवर में; करि'-करके; स्नान-स्नान; गोवर्धन-गोवर्धन पर्वत की; परिक्रमाय-परिक्रमा; करिला-की; प्रयाण-आरम्भ करके।

अनुवाद

प्रातःकाल श्री चैतन्य महाप्रभु ने मानसगंगा नामक कुंड में स्नान किया। फिर उन्होंने गोवर्धन की परिक्रमा की।

गोवर्धन देखि’ प्रभु प्रेमाविष्ट हञा ।

नाचिते नाचिते चलिला श्लोक पड़िया ॥ 33॥

गोवर्धन देखि’–गोवर्धन पर्वत के दर्शन करने से; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रेम-आविष्ट हञा–प्रेमाविष्ट होकर; नाचिते नाचिते-नाचते नाचते; चलिला–चले; श्लोक पड़िया-श्लोक पढ़ते पढ़ते।

अनुवाद

गोवर्धन पर्वत को देखते ही श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण-प्रेम से आविष्ट हो गये। उन्होंने नाचते-नाचते निम्नलिखित श्लोक सुनाया।

हन्तायमद्रिरबला हरि-दास-वर्यो

यद्राम-कृष्ण-चरण-स्परश-प्रमोदः ।

मानं तनोति सह-गो-गणयोस्तयोर्यत् ।

पानीय-सूयवस-कन्दर-कन्द-मूलैः ॥ 34॥

हन्त-ओह; अयम्-यह; अद्रिः-पर्वत; अबलाः-हे मित्रों; हरि-दास-वर्यः-भगवान् के सेवकों में से सर्वोत्तम; यत्-क्योंकि; राम-कृष्ण-चरण-भगवान् कृष्ण और बलराम के चरणकमलों के; स्परश-स्पर्श से; प्रमोदः–प्रसन्न होकर; मानम्-सम्मान; तनोति–प्रदान करता है; सह–के साथ; गो-गणयोः–गाएं, बछड़े और ग्वाले; तयोः-उनको (श्रीकृष्ण और बलराम को); यत्-क्योंकि; पानीय-पीने का जल; सूयवस–अति कोमल घास; कन्दर-गुफाएँ; कन्द-मूलैः-और कन्द मूल।

अनुवाद

“सभी भक्तों में यह गोवर्धन पर्वत सर्वश्रेष्ठ है! हे सखियों, यह पर्वत कृष्ण तथा बलराम के साथ ही उनके बछड़ों, गायों तथा ग्वालमित्रों को सभी तरह की वस्तुएँ-पीने के लिए जल,

कोमल घास, गुफाएँ, फल, फूल तथा तरकारियाँ–देता है। इस तरह यह पर्वत भगवान् का सम्मान करता है। गोवर्धन पर्वत कृष्ण तथा बलराम के चरणकमलों का स्पर्श पाकर अत्यन्त प्रफुल्लित दिखता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.21.18) से है। शरद ऋतु में जब कृष्ण तथा बलराम ने जंगल में प्रवेश किया, तब गोपिकाओं ने यह कहा था। गोपियाँ परस्पर बातें करके कृष्ण तथा बलराम की लीलाओं का गुणगान कर रही थीं।

'गोविन्द-कुण्डादि' तीर्थे प्रभु कैला स्नान।

ताहाँ शुनिला–गोपाल गेल गाँठुलि ग्राम ॥ 35॥

गोविन्द-कुण्ड-आदि-गोविन्द कुण्ड आदि; तीर्थे–तीर्थ स्थानों पर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला स्नान-स्नान किया; ताहाँ-वहाँ; शुनिला सुना; गोपाल–गोपाल भगवान्; गेल-गये हैं; गाँठुलि–गाँठुली; ग्राम–गाँव को।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोविन्द-कुण्ड में स्नान किया और वहाँ रहते हुए उन्होंने सुना कि गोपाल-अर्चाविग्रह पहले ही गाँठुलि ग्राम चले गये हैं।

सेइ ग्रामे गिया कैल गोपाल-दरशन।

प्रेमावेशे प्रभु करे कीर्तन-नर्तन ॥ 36॥

सेड ग्रामे-उसी गाँव को; गिया-जाकर; कैल-किए; गोपाल-दरशन–गोपाल के दर्शन; प्रेम-आवेशे—प्रेमावेश में; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करे–किया; कीर्तन-नर्तन-कीर्तन और नर्तन।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु गाँठुलि ग्राम गये और वहाँ उन्होंने गोपाल अर्चाविग्रह का दर्शन किया। वे प्रेमाविष्ट होकर कीर्तन तथा नृत्य करने लगे।

गोपालेर सौन्दर्य देखि' प्रभुर आवेश ।

एइ श्लोक पड़ि' नाचे, हैल दिन-शेष ॥ 37॥

गोपालेर–गोपाल का; सौन्दर्य-सौन्दर्य; देखि'–देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आवेश-प्रेमावेश; एइ श्लोक पड़ि'-इस श्लोक को पढ़कर; नाचे-नाचने लगे; हैल-हो गया; दिन-शेष-दिन समाप्त।

अनुवाद

गोपाल-अर्चाविग्रह का सौन्दर्य देखते ही महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो गये और उन्होंने निम्नलिखित श्लोक पढ़ा। फिर वे दिन डूबने तक कीर्तन करते रहे और नाचते रहे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर गोविन्द-कुण्ड के विषय में निम्नलिखित जानकारी देते हैं। पैठा गाँव से थोड़ी दूरी पर गोवर्धन पर्वत पर आनियोर नामक गाँव है। गोविन्द-कुण्ड इसी के निकट स्थित है और यहीं पर गोविन्द तथा बलदेव के दो मन्दिर हैं। कुछ लोगों के अनुसार महारानी पद्मावती ने यह कुण्ड खुदवाया था। भक्ति-रत्नाकर (पंचम तरंग) में निम्नलिखित कथन पाया जाता है :

एइ श्री गोविन्द-कुण्ड-महिमा अनेक ।

एथा इन्द्र कैल गोविन्दर अभिषेक ॥

“गोविन्द-कुण्ड अपने अनेक आध्यात्मिक क्रियाकलापों के लिए प्रसिद्ध है। यहीं पर भगवान् गोविन्द द्वारा पराजित इन्द्र ने उनकी स्तुति की थी तथा उनका अभिषेक कराया था।” स्तवावली (व्रजविलास स्तव 74) में निम्नलिखित श्लोक पाया जाता है:

नीचैः प्रौढभयात् स्वयं सुरपतिः पादौ विधृत्येह यैः

स्वर्गङ्गासलिलैश्चकार सुरभिद्वाराभिषेकोत्सवम् ।

गोविन्दस्य नवं गवामधिपता राज्ये स्फुटं कौतुकात्

तैर्यत् प्रादुरभूत् सदा स्फुरतु तद् गोविन्दकुण्डं दृशोः ॥

“अत्यन्त भय के कारण उत्पन्न दीनता से इन्द्र ने भगवान् कृष्ण के चरणकमलों को पकड़ लिया और सुरभि गाय की उपस्थिति में उनका अभिषेक-उत्सव स्वर्गिक गंगा नदी के जल से नहलाकर किया। इस प्रकार भगवान् कृष्ण का गौवों पर स्वामित्व अद्भुत रूप से प्रकट हो गया। मैं प्रार्थना करता हूँ कि उस स्नानोत्सव से उत्पन्न सरोवर गोविन्द कुण्ड मेरे नेत्रों के सम्मुख नित्य विद्यमान रहे।”

मथुरा खण्ड में भी यह कहा गया है :

यत्राभिषिक्तो भगवान् मघोना यदुवैरिणा ।

गोविन्दकुण्डं तज्जातं स्नानमात्रेण मोक्षदम् ॥

“गोविन्द कुण्ड में केवल स्नान करने से मनुष्य को मोक्ष मिल जाता है। इस कुण्ड की सृष्टि तब हुई जब श्रीकृष्ण को राजा इन्द्र ने स्नान कराया था।”

गाँठुलि ग्राम बिलछु तथा गोपालपुर नामक दो गाँवों के पास स्थित है। किवदन्ती के अनुसार यहीं पर राधा और कृष्ण पहली बार मिले थे। भक्ति-रत्नाकर (पंचम तरंग) में कहा गया है-सखी मुँह वस्त्रे गांठि दिल सङ्गोपने: “किसी सखी ने दोनों (राधा-कृष्ण) के बाह्य वस्त्रों में चुपके से गाँठ लगा दी। यह

भी कहा जाता है—फागुया लैया केह गांठ खुलि दिला।" फागुया लेकर उन्होंने गाँठ खोल दी।" इसीलिए यह गाँव गाँठुलि कहलाता है।

वामस्तामरसाक्षस्य भुज-दण्डः स पातु वः ।

क्रीड़ा-कन्दुकतां येन नीतो गोवर्धनो गिरिः ॥ 38॥

वामः-बायाँ; तामरस-अक्षस्य-कमल की पत्तियों जैसे नेत्रों वाले कृष्ण की; भुज-दण्डः-भुजा; सः-वह; पातु-रक्षा करे; वः-आप सबकी; क्रीड़ा-कन्दुकताम्-एक खिलौने की तरह; येन –जिससे; नीतः-उठाया; गोवर्धनः-गोवर्धन; गिरिः-पर्वत।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "कमल-फूल की पंखुड़ियों जैसे नेत्र वाले श्रीकृष्ण की वाम भुजा आपकी सदैव रक्षा करे। उन्होंने अपनी इसी भुजा से गोवर्धन पर्वत को खिलौने की तरह उठा लिया था।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.62) में पाया जाता है।

एइ-मत तिन-दिन गोपाले देखिला ।

चतुर्थ-दिवसे गोपाल स्वमन्दिरे गेला ॥ 39॥

एइ-मत-इस प्रकार; तिन-दिन-तीन दिन तक; गोपाले–गोपाल के; देखिला-दर्शन किये; चतुर्थ-दिवसे–चौथे दिन; गोपाल–गोपाल अर्चाविग्रह; स्व-मन्दिरे-अपने मन्दिर में; गेला–लौट गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोपाल-अर्चाविग्रह का तीन दिन तक दर्शन किया। चौथे दिन यह विग्रह अपने मन्दिर में लौट गये।

गोपाल सङ्गे चलि' आइला नृत्य-गीत करि ।

आनन्द-कोलाहले लोक बले 'हरि' 'हरि' ॥40॥

गोपाल सङ्गे–गोपाल के संग; चलि'–चलकर; आइला–आये; नृत्य-गीत करि-नृत्य गान करते हुए; आनन्द-कोलाहले–अत्यन्त आनन्दपूर्वक; लोक-लोगों ने; बले-कहा; हरि हरि-"हरि, हरि"।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु गोपल विग्रह के साथ-साथ चलने लगे और कीर्तन तथा नृत्य करने लगे। लोगों की विशाल तथा हर्षित भीड़ भी साथ-साथ कृष्ण के दिव्य नाम "हरि! हरि!" का कीर्तन करने लगी।

गोपाल मन्दिरे गेला, प्रभु रहिला तले ।

प्रभुर वाञ्छा पूर्ण सब करिल गोपाले ॥41॥

गोपाल–गोपाल अर्चाविग्रह; मन्दिरे गेला-अपने मन्दिर में लौट गये; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; रहिला तले–पर्वत के नीचे रहे; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; वाञ्छा-इच्छाएँ, पूर्ण–पूरी; सब-सब; करिल-की; गोपाले–गोपाल विग्रह ने।

अनुवाद

तब गोपाल अपने मन्दिर लौट गये और श्री चैतन्य महाप्रभु पर्वत की तलहटी पर रहे। इस तरह गोपाल विग्रह ने श्री चैतन्य महाप्रभु की सारी इच्छाएँ पूरी कर दीं।

एइ-मत गोपालेर करुण स्वभाव ।

येइ भक्त जनेर देखिते हय ‘भाव’ ॥42॥

एइ-मत-इस तरह; गोपालेर-गोपाल अर्चाविग्रह का; करुण स्वभाव-करूणामय स्वभाव; येइ-जो; भक्त जनेर-भक्त जनों को देखते-देखकर; हय–हो गये; भाव-प्रेमावेश।

अनुवाद

भगवान् गोपाल अपने भक्तों के प्रति ऐसा ही दयापूर्ण आचरण करते हैं। यह देखकर भक्तगण भावाविष्ट हो गये।

देखिते उत्कण्ठा हय, ना चड़े गोवर्धने ।

कोन छले गोपाल आसि’ उतरे आपने ॥43॥

देखिते-देखने के लिए; उत्कण्ठा हय-उत्सुक था; ना चड़े-ऊपर नहीं चढ़ते थे; गोवर्धने-गोवर्धन पर्वत पर; कोन छले-किसी चाल से; गोपाल–गोपाल अर्चाविग्रह; आसि’–आकर; उतरे-उतरे; आपने स्वयं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु गोपाल को देखने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित थे, किन्तु वे गोवर्धन पर्वत पर चढ़ना नहीं चाहते थे। इसलिए गोपाल विग्रह किसी युक्ति से स्वयं नीचे उतर आये।

कभु कुञ्जे रहे, कभु रहे ग्रामान्तरे ।

सेइ भक्त, ताहाँ आसि’ देखये ताँहारे ॥44॥

कभु-कभी-कभी; कुञ्जे–कुंजों में; रहे-रहते हैं; कभु-कभी-कभी; रहे–वे रहते हैं; ग्राम-अन्तरे-अन्य गाँव में; सेइ भक्त-वही भक्त; ताहाँ आसि’-वहाँ आकर; देखये ताँहारे–उनको देखता है।

अनुवाद

इस तरह किसी न किसी बहाने गोपाल कभी जंगल की झाड़ी में तो कभी गाँव में रुकते हैं। जो भक्त होता है, वह अर्चाविग्रह के दर्शन करने आता है।

पर्वते ना चड़े दुई–रूप-सनातन ।

एइ-रूपे ताँ-सबारे दियाछेन दरशन ॥ 45 ॥

पर्वते-पर्वत पर; ना चड़े-नहीं चढे; दुड़-दोनों; रूप-सनातन-रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी; एइ-रूपे-इस प्रकार; ताँ-सबारे उनको; दियाछेन–दिया; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

रूप तथा सनातन दोनों भाई पर्वत पर नहीं चढ़े। गोपालजी ने उन्हें भी अपना दर्शन दिया।

वृद्ध-काले रूप-गोसाञि ना पारे याइते ।

वाञ्छा हैल गोपालेर सौन्दर्य देखिते ॥ 46॥

वृद्ध-काले–वृद्धावस्था में; रूप-गोसाञि-रूप गोस्वामी; ना पारे-असमर्थ थे; याइते-जाने में; वाञ्छा हैल-इच्छा थी; गोपालेर–गोपाल के; सौन्दर्य देखिते-सौन्दर्य को देखने की।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी वृद्धावस्था में वहाँ नहीं जा सकते थे, किन्तु गोपाल का सौन्दर्य देखने की उनकी इच्छा थी।

म्लेच्छ-भये आइला गोपाल मथुरा-नगरे ।

एक-मास रहिल विठ्ठलेश्वर-घरे ॥47॥

म्लेच्छ-भये-मुस्लिमों के भय से; आइला–आये; गोपाल–गोपाल अर्चाविग्रह; मथुरा-नगरे-मथुरा नगर में; एक-मास–एक मास; रहिल-रहे; विठ्ठलेश्वर-घरे-विठ्ठलेश्वर के मन्दिर में।

अनुवाद

मुसलमानों के भय से गोपाल मथुरा चले गये, जहाँ विठ्ठलेश्वर के मन्दिर में वे पूरे एक मास तक रहे।

तात्पर्य

जब श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी दोनों भाई वृन्दावन गये, तो उन्होंने वहीं रहने का निश्चय किया। वे भी श्री चैतन्य महाप्रभु का उदाहरण अपने सामने रखकर पर्वत पर नहीं चढ़े, क्योंकि वे इस पर्वत को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से अभिन्न मानते थे। गोपाल ने कुछ बहाना करके श्री चैतन्य महाप्रभु को पर्वत के नीचे दर्शन दिया था। उसी तरह उन्होंने रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी पर भी कृपा दिखलाई। जब अपनी वृद्ध अवस्था की असमर्थता के कारण रूप गोस्वामी गोवर्धन पर्वत नहीं जा सके, तब गोपाल कृपा करके मथुरा चले गये और विठ्ठलेश्वर मन्दिर में एक मास तक रहे। तभी श्रील रूप गोस्वामी ने जी-भरकर गोपाल के सौन्दर्य का अवलोकन किया।

भक्ति-रलाकर (पंचम तरंग) में विठ्ठलेश्वर मन्दिर का निम्नलिखित वर्णन मिलता है :

विटुलेर सेवा कृष्णचैतन्य-विग्रह ।

ताहार दर्शने हैल परम आग्रह ॥

श्रीविठ्ठलनाथ–भट्ट-वल्लभ-तनय ।

करिला यतेक प्रीति कहिले ना हय ॥

गाठोलिग्रामे गोपाल आइला ‘छल’ करि’।

ताँरे देखि 'नृत्य-गीते मग्न गौरहरि ॥

श्रीदास-गोस्वामी आदि परामर्श करि' ।

श्रीविठ्ठलेश्वरे कैला सेवा-अधिकारी ॥

पिता श्री-वल्लभ-भट्ट ताँर अदर्शने ।

कत-दिन मथुराय छिलेन निर्जने ॥

श्री वल्लभ भट्ट के दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ का जन्म 1432 शकाब्द (1510 ई.) में और छोटे पुत्र विठ्ठलेश्वर का जन्म 1437 (1515 ई.) में तथा देहान्त 1507 शकाब्द (1585 ई.) में हुआ। विठ्ठलेश्वर के सात पुत्र थे-गिरिधर, गोविन्द, बालकृष्ण, गोकुलेश, रघुनाथ, यदुनाथ तथा घनश्याम। विठ्ठलेश्वर ने अपने पिता के कई अपूर्ण ग्रन्थों को पूरा किया-यथा वेदान्त-सूत्र का भाष्य, श्रीमद्भागवत की सुबोधिनी टीका, विद्वन्मण्डन, शृंगार-रस-मण्डन तथा न्यासादेश-विवरण। श्री चैतन्य महाप्रभु विठ्ठलेश्वर के जन्म के पूर्व वृन्दावन गये थे। जब गोपाल विठ्ठलेश्वर के घर पर रखे हुए थे, तब श्रील रूप गोस्वामी अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे।

तबे रूप गोसाञि सब निज-गण लञा ।

एक-मास दरशन कैला मथुराय रहिया ॥48॥

तबे-तब; रूप गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी; सब-सब; निज-गण लञा-आपने साथियों को साथ लेकर; एक-मास–एक मास के लिए; दरशन कैला- भगवान् के अर्चाविग्रह के दर्शन किए; मथुराय रहिया-मथुरा नगरी में रहकर ।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी तथा उनके संगी एक मास तक मथुरा में रहे और उन्होंने वहाँ गोपाल विग्रह का दर्शन किया।

सङ्गे गोपाल-भट्ट, दास-रघुनाथ ।

रघुनाथ-भट्ट-गोसाञि, आर लोकनाथ ॥49॥

सङ्गे-रूप गोस्वामी के साथ; गोपाल-भट्ट-गोपाल भट्ट; दास-रघुनाथ–रघुनाथ दास गोस्वामी; रघुनाथ-भट्ट-गोसाञि-रघुनाथ भट्ट गोस्वामी; आर-और; लोकनाथ-लोकनाथ दास गोस्वामी।

अनुवाद

जब रूप गोस्वामी मथुरा में रुके थे, तब उनके साथ गोपाल भट्ट गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी तथा लोकनाथ दास गोस्वामी थे।

तात्पर्य

श्री लोकनाथ गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी संगी थे और बहुत महान् भगवद्भक्त थे। वे बंगाल प्रान्त के यशोहर (जेस्सोर) जिले में तालखड़ि गाँव के निवासी थे। पहले वे कानापाड़ा में रहते थे। उनके पिता का नाम पद्मनाभ था और उनका एकमात्र छोटा भाई प्रगल्भ था। श्री लोकनाथ श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश से ही वृन्दावन में रहने गये थे। उन्होंने गोकुलानन्द नामक मन्दिर की स्थापना की। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने लोकनाथ दास गोस्वामी को ही अपना गुरु बनाया और वे ही उनके एकमात्र शिष्य थे। चूँकि लोकनाथ दास गोस्वामी नहीं चाहते थे कि चैतन्य-चरितामृत में उनके नाम का उल्लेख हो, इसलिए इस प्रसिद्ध ग्रन्थ में प्रायः उनका नाम नहीं पाया जाता। अब यशोहर स्टेशन पूर्वी बंगाल रेलवे लाईन पर बाँग्लादेश में है। रेलवे स्टेशन से बस द्वारा सोनाखाली जाना पड़ता है, जहाँ से खेजुरा जाना होता है। फिर वहाँ से पैदल या बरसात में नाव से तालखड़ि गाँव पहुँचा जा सकता है। आज भी इस गाँव में लोकनाथ गोस्वामी के छोटे भाई के वंशज रह रहे हैं।

भूगर्भ-गोसाञि, आर श्री-जीव-गोसाञि ।

श्री-यादव-आचार्य, आर गोविन्द गोसाञि ॥50॥

भूगर्भ-गोसाञि-भूगर्भ गोसांई; आर-और; श्री-जीव-गोसाञि-श्री जीव गोस्वामी श्री यादव-आचार्यश्री यादव आचार्य; आर-और; गोविन्द गोसाञि–गोविन्द गोस्वामी।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी के साथ भूगर्भ गोस्वामी, श्री जीव गोस्वामी, श्री यादव आचार्य तथा गोविन्द गोस्वामी भी थे।

श्री-उद्धव-दास, आर माधव–दुइ-जन ।

श्री-गोपाल-दास, आर दास-नारायण ॥51॥

श्री-उद्धव-दास-श्री उद्धव दास; आर-और; माधव-माधव; दुइ-जन-दो व्यक्ति; श्री-गोपाल दास-श्री गोपाल दास; आर-और; दास-नारायण–नारायण दास।

अनुवाद

उनके साथ श्री उद्धव दास, माधव, श्री गोपाल दास तथा नारायण दास भी थे।

'गोविन्द' भक्त, आर वाणी-कृष्णदास ।

पुण्डरीकाक्ष, ईशान, आर लघु-हरिदास ॥52॥

गोविन्द गोविन्द; भक्त–एक महान् भक्त; आर-और; वाणी-कृष्णदास-वाणी कृष्णदास; पुण्डरीकाक्ष-पुण्डरीकाक्ष; ईशान-ईशान; आर-और; लघु-हरिदास-लघु हरिदास।

अनुवाद

महान् भक्त गोविन्द, वाणी कृष्णदास, पुण्डरीकाक्ष, ईशान तथा लघु हरिदास भी उनके साथ थे।

तात्पर्य

लघु हरिदास तथा प्रयाग में आत्महत्या करने वाले छोटा हरिदास में भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए। कोई भी भक्त सामान्य रूप से हरिदास होता है। फलतः कई हरिदास हो चुके हैं। किन्तु प्रधान थे ठाकुर हरिदास एक मध्यम हरिदास भी थे।

भक्ति रत्नाकर (षष्ठ तरंग) में श्रील रूप गोस्वामी के साथ रहने वाले बहुत से प्रमुख भक्तों की सूची दी हुई है :

गोस्वामी गोपाल-भट्ट अति दयामय

भूगर्भ, श्रीलोकनाथ-गुणेर आलय।

श्री-माधव, श्रीपरमानन्द-भट्टाचार्य

श्रीमधुपण्डित,–याँर चरित्र आश्चर्य।

प्रेमी कृष्णदास कृष्णदास ब्रह्मचारी

यादव आचार्य, नारायण कृपावान्

श्रीपुण्डरीकाक्ष-गोसाँइ, गोविन्द, ईशान।

श्रीगोविन्द, वाणी कृष्णदास अत्युदार

श्रीउद्धव—मध्ये मध्ये गौड़े गति याँर।

द्विज-हरिदास कृष्णदास कविराज

श्रीगोपालदास याँर अलौकिक काय

श्रीगोपाल, माधवादि यतेक वैष्णव॥

“श्रील रूप गोस्वामी के साथ निम्नलिखित वैष्णव उपस्थित थे-दयावान गोपाल भट्ट गोस्वामी, भूगर्भ गोस्वामी, सद्गुणों की खान श्री लोकनाथ दास गोस्वामी, श्री माधव, श्री परमानन्द भट्टाचार्य, अद्भुत गुणों

वाले श्री मधु पण्डित, प्रेमी कृष्णदास, कृष्णदास ब्रह्मचारी, यादव आचार्य, दयालु नारायण, श्री पुण्डरीकाक्ष गोस्वामी, गोविन्द, ईशान, श्री गोविन्द, वदान्य वाणी कृष्णदास, यदाकदा बंगाल जाते रहने वाले श्री उद्धव, द्विज हरिदास, कृष्णदास कविराज, पूर्णतः अलौकिक शरीर वाला श्री गोपाल दास, श्री गोपाल, माधव तथा अनेक अन्य।"

एइ सब मुख्य-भक्त लञा निज-सङ्गे।

श्री-गोपाल दरशन कैला बहु-रङ्गे ॥53॥

एइ सब-इन सब; मुख्य-भक्त-मुख्य भक्तों को; लञा निज-सङ्गे-अपने साथ लेकर; श्री-गोपाल दरशन-भगवान् गोपाल का दर्शन; कैला बहु-रङ्गे-बड़े हर्ष से किया।

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी ने परम प्रसन्नतापूर्वक इन सारे भक्तों के साथ भगवान् गोपाल का दर्शन किया।

एक-मास रहि' गोपाल गेला निज-स्थाने ।

श्री-रूप-गोसाञि आइला श्री-वृन्दावने ॥54॥

एक-मास रहि'–एक मास रहकर; गोपाल–गोपाल अर्चाविग्रह; गेला-गये; निज-स्थाने-अपने स्थान पर; श्री-रूप-गोसाञि-श्री रूप गोस्वामी; आइला–लौट गये; श्री-वृन्दावने-वृन्दावन को।

अनुवाद

मथुरा में एक मास रुके रहने के बाद गोपाल-अर्चाविग्रह अपने स्थान लौट गये और श्री रूप गोस्वामी वृन्दावन चले आये।

प्रस्तावे कहिलुँ गोपाल-कृपार आख्यान ।

तबे महाप्रभु गेला 'श्री-काम्यवन' ॥55॥

प्रस्तावे-इस कथा के दौरान; कहिलैं-मैंने बताया; गोपाल-कृपार–गोपाल की कृपा का; आख्यान-वर्णन; तबे-तत्पश्चात्; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला–चले गये; श्री-काम्य-वन-श्री काम्यवन को।

अनुवाद

इस कथा के मध्य मैं गोपाल की दया का वर्णन कर चुका हूँ। श्री चैतन्य महाप्रभु गोपाल विग्रह का दर्शन करने के बाद श्री काम्यवन गये।

तात्पर्य

आदिवराह पुराण में काम्यवन का वर्णन आया है :

चतुर्थं काम्यकवनं वनानां वनमुत्तमम् ।

तत्र गत्वा नरो देवि मम लोके महीयते ॥

शिवजी ने कहा : "इनमें से सर्वोत्तम वन चौथा वन है, जिसका नाम है। काम्यक। हे देवी, जो कोई भी वहाँ जाता है, वह मेरे धाम की महिमा का आनन्द उठाने का पात्र है।"

भक्ति रत्नाकर (पंचम तरंग) में भी कहा गया है :

एइ काम्यवने कृष्णलीला मनोहर

करिबे दर्शन स्थान कुण्ड बहुतर

काम्यवने यत्र तीर्थ लेखा नाहि तार ।

“इस काम्यवन में कृष्ण ने मनमोहक लीलाएँ कीं। यहाँ आप अनेक सरोवरों तथा अन्य दिव्य स्थलों के दर्शन कर सकेंगे। काम्यवन में पाए जाने वाले सभी पवित्र तीर्थों का लिखकर वर्णन करना भी मेरे लिए सम्भव नहीं है।

प्रभुर गमन-रीति पूर्वे ये लिखिल ।

सेइ-मत वृन्दावने तावत्देखिल ॥56॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; गमन-रीति-यात्रा की रीति; पूर्वे-पहले; ये–जो; लिखिल-मैंने लिखी है; सेइ-मत-उसी प्रकार; वृन्दावने-वृन्दावन में; तावत् देखिल-सभी स्थानों में गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का वृन्दावन भ्रमण पहले ही वर्णित हो चुका है। उन्होंने उसी प्रेमभाव से सारे वृन्दावन की यात्रा की।

ताहाँ लीला-स्थली देखि’ गेला ‘नन्दीश्वर’ ।

‘नन्दीश्वर’ देखि’ प्रेमे हइला विह्वल ॥ 57॥

ताहाँ-काम्यवन में; लीला-स्थली–लीला के सारे स्थान; देखि’–देखकर; गेला नन्दीश्वर–नन्दीश्वर गये; नन्दीश्वर देखि’–नन्दीश्वर देखकर; प्रेमे हइला विह्वल-प्रेम में विह्वल हो गये।

अनुवाद

काम्यवन में कृष्ण के लीला-स्थलों को देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु नन्दीश्वर गये। वहाँ पर वे प्रेम से विह्वल हो उठे।

तात्पर्य

नन्दीश्वर महाराज नन्द का घर है।

‘पावनादि’ सब कुण्डे स्नान करिया।

लोकेरे पुछिल, पर्वत-उपरे याञा ॥58॥

पावन-आदि-पावन आदि; सब कुण्डे–सब कुण्डों में; स्नान करिया-स्नान करके; लोकेरे पुछिल-वहाँ लोगों से पूछा; पर्वत-उपरे याञा–पर्वत के ऊपर चढ़े।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पावन सरोवर इत्यादि समस्त विख्यात कुण्डों में स्नान किया। तत्पश्चात् वे एक पर्वत पर चढ़ गये और लोगों से पूछा।

तात्पर्य

पावन सरोवर का वर्णन मथुरा माहात्म्य में आया है :

पावने सरसि स्नात्वा कृष्णं नन्दीश्वरे गिरौ।

दृष्ट्वा नन्दं यशोदां च सर्वाभिष्टमवाप्नुयात् ॥

“जो नन्दीश्वर पर्वत के निकट स्थित पावन सरोवर में स्नान करेगा, वह वहाँ नन्द तथा यशोदा के साथ कृष्ण का दर्शन करेगा और अपनी समस्त इच्छाएँ पूर्ण करेगा।”

किछु देव-मूर्ति हय पर्वत-उपरे?।

लोक कहे,—मूर्ति हय गोफार भितरे ॥59॥

किछु–कोई; देव-मूर्ति–देव मूर्ति; हय-वहाँ हैं; पर्वत-उपरे–पर्वत की चोटी पर; लोक कहे-लोगों ने उत्तर दिया; मूर्ति हय–हाँ, वहाँ मूर्तियाँ हैं; गोफार भितरे–गुफा के भीतर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "क्या इस पर्वत के ऊपर कोई देव-मूर्ति है?" स्थानीय लोगों ने उत्तर दिया, "इस पर्वत पर देव-मूर्तियाँ हैं, किन्तु वे एक गुफा के भीतर स्थित हैं।

दुइ-दिके माता-पिता पुष्ट कलेवर ।

मध्ये एक शिशु' हय त्रिभङ्ग-सुन्दर ॥ 60 ॥

दुइ-दिके दोनों ओर; माता-पिता-माता पिता; पुष्ट कलेवर–सुगठित शरीर; मध्ये-उनके मध्य; एक-एक; शिशु-शिशु; हय-है; त्रि-भङ्ग-तीन स्थानों पर वह टेढ़ा; सुन्दर-सुन्दर।

अनुवाद

वहाँ सुगठित शरीर वाले माता-पिता हैं और उनके बीच में एक अत्यन्त सुन्दर शिशु है, जो तीन स्थानों से टेढ़ा (त्रिभंग) है।"

शुनि' महाप्रभु मने आनन्द पाञा ।

'तिन' मूर्ति देखिला सेइ गोफा उघाड़िया ॥61॥

शुनि'-यह सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मने-मन में; आनन्द पाञा-आनन्द अनुभव करके; तिन मूर्ति–तीन मूर्तियाँ, देखिला-देखी; सेइ गोफा उघाड़िया-उस गुफा को खुदवाकर।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। गुफा की खुदाई कराने पर उन्हें तीन मूर्तियाँ दिखीं।

व्रजेन्द्र-व्रजेश्वरीर कैल चरण वन्दन ।

प्रेमावेशे कृष्णेर कैल सर्वाङ्ग-स्पर्शन ॥62॥

व्रज-इन्द्र-व्रज के राजा, नन्द महाराज; व्रज-ईश्वरीर-और व्रज की रानी, माता यशोदा: कैल-की; चरण वन्दन-चरणकमलों की पूजा; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में आकर; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; कैल–किया; सर्व-अङ्ग-स्पर्शन–सारे शरीर का स्पर्श।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नन्द महाराज तथा माता यशोदा को सादर नमस्कार किया और अत्यन्त प्रेमाविष्ट होकर उन्होंने भगवान् कृष्ण के शरीर का स्पर्श किया।

सब दिन प्रेमावेशे नृत्य-गीत कैला।

ताहाँ हैते महाप्रभु 'खदिर-वन' आइला॥ 63॥

सब दिन–सभी दिन; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; नृत्य-गीत कैला-नृत्य किया और कीर्तन किया; ताहाँ हैते–वहाँ से; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; खदिर-वन आइला–खदिर वन नामक स्थान पर आये।

अनुवाद

महाप्रभु नित्य ही प्रेमाविष्ट होकर कीर्तन करते और नृत्य करते। अन्त में वे खदिरवन गये।

तात्पर्य

भक्ति-रत्नाकर (पंचम तरंग) में खदिरवन का वर्णन आया है :

देखह खदिरवन विदित जगते।

विष्णुलोक-प्राप्ति एथा गमन-मात्रेते॥

"खदिरवन को देखो, जो यह पूरे विश्व में विख्यात है। जो कोई खदिरवन आता है, वह तुरन्त विष्णु-लोक को उन्नत हो सकता है।"

लीला-स्थल देखि' ताहाँ गेला 'शेषशायी' ।

'लक्ष्मी' देखि' एइ श्लोक पड़ेन गोसाञि ॥ 64॥

लीला-स्थल देखि'–लीला स्थल देखकर; ताहाँ-वहाँ; गेला–प्रस्थान किया; शेष-शायी-शेषशायी को देखने के लिए; लक्ष्मी-लक्ष्मी देवी; देखि'–देखकर; एइ-यह; श्लोक-श्लोक; पड़ेन–पढ़ा; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु ने।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण के लीला-स्थलों को देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु शेषशायी गये, जहाँ उन्होंने लक्ष्मी का दर्शन किया और निम्नलिखित श्लोक सुनाया।

यत्ते सुजात-चरणाम्बुरुहं स्तनेषु

भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।

तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित्

कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥65॥

यत्-जो; ते-आपके; सुजात-बहुत सुन्दर; चरण-अम्बु-रुहम्-चरणकमल; स्तनेषु स्तनों पर; भीताः–भयभीत होकर; शनैः-धीरे से; प्रिय-हे प्रिय; दधीमहि-हम रखते हैं; कर्कशेषु-कठोर; तेन-उनके साथ; अटवीम्-मार्ग; अटसि-आप घूमते हो; तत्-वे; व्यथते-पीड़ित होते हैं; न-नहीं; किम् स्वित्-हम सोचते हैं; कूर्प-आदिभिः-छोटे पत्थरों से; भ्रमति-घूमते हो; धीः-मन; भवत्-आयुषाम्-उनके जिनके आप जीवन हो; नः-हमारे।

अनुवाद

"'हे प्रिय! आपके चरणकमल इतने कोमल हैं कि हम उन्हें धीमे से अपने स्तनों पर डरती हुई रखती हैं कि कहीं आपके चरणों में चोट न आ जाए। हमारा जीवन एकमात्र आप पर टिका है। अतः हमारे मन में यही चिन्ता बनी रहती है कि जब आप जंगल के मार्ग पर घूमते हैं तो कंकड़ों से आपके पैर कहीं छिल न जाएँ।"'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.31.19) में आया है। इसमें गोपियों का कथन है, जब कृष्ण उन्हें रास-लीला के बीच में ही छोड़कर चले गये थे।

तबे 'खेला-तीर्थ' देखि 'भाण्डीरवन' आइला।

यमुना पार हा 'भद्र-वन' गेला ॥66॥

तबे-तत्पश्चात्; खेला-तीर्थ–खेला तीर्थ; देखि'–देखकर; भाण्डीरवन-भाण्डीरवन; आइला–आये; यमुना पार हजा-यमुना नदी को पार करके; भद्र-वन–भद्रवन; गेला-चले गये।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने खेलातीर्थ देखा और तब वे भाण्डीरवन गये। यमुना नदी पार करके वे भद्रवन गये।

तात्पर्य

भक्ति-रत्नाकर में कहा गया है कि श्रीकृष्ण और बलराम खेलातीर्थ में ग्वालबलों के साथ पूरा दिन खेला करते थे। माता यशोदा को उनके स्नान एवं भोजन के लिए उन्हें बुलाना पड़ता था।

'श्रीवन' देखि' पुनः गेला 'लोह-वन'।

'महावन' गिया कैला जन्म-स्थान-दरशन ॥ 67॥

श्री-वन-श्रीवन; देखि'–देखकर; पुनः–पुनः; गेला–गये; लोह-वन-लोहवन; महा-वन-महावन; गिया-जाकर; कैला–किया; जन्म-स्थान-जन्मस्थान का; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीवन तथा लोहवन देखा। फिर वे महावन गये और कृष्ण की बाल-लीलाओं का स्थान गोकुल देखा।

तात्पर्य

श्रीवन (जिसे बिल्ववन भी कहते हैं) के विषय में भक्ति रत्नाकर का कथन है- देवतापूजित बिल्ववन शोभामय–"बिल्ववन के सुन्दर वन की पूजा सारे देवता करते हैं।"

लोहवन के विषय में भक्ति-रत्नाकर (पंचम तरंग) में यह कहा गया है :

लोहवने कृष्णेर अद्भुत गोचारण।

एथा लोह-जंघासुरे वधे भगवान्॥

"भगवान् कृष्ण लोहवन में गायें चराते थे। इस स्थान पर लोह-जंघासुर नामक असुर का वध किया गया था।"

महावन का विवरण भक्ति-रत्नाकर (पंचम तरंग) में इस प्रकार है :

देख नन्द-यशोदा-आलय महावने

एइ देख श्रीकृष्णचन्द्रेर जन्मस्थल

श्रीगोकुल, महावन–दुइ 'एक' हय।

"महावन में नन्द तथा यशोदा के घर को देखो। कृष्ण के जन्मस्थान को देखो। महावन तथा कृष्ण का जन्मस्थान, गोकुल-ये दोनों एक हैं।"

यमलार्जुन-भङ्गादि देखिल सेइ स्थल ।

प्रेमावेशे प्रभुर मन हैल टलमल ॥ 68॥

यमल-अर्जुन-भङ्ग-वह स्थान जहाँ युगल अर्जुन वृक्ष तोड़े गये थे; आदि-आदि. देखिल-देखे; सेइ स्थल-वही स्थान; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मन–मन; हैल–हो गया; टलमल-विह्वल।

अनुवाद

जिस स्थान पर श्रीकृष्ण ने जुड़वा अर्जुन वृक्षों को तोड़ा था, उसे देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेमाभिभूत हो गये।

'गोकुल' देखिया आइला 'मथुरा'-नगरे ।

जन्म-स्थान' देखि' रहे सेइ विप्र-घरे ॥ 69॥

गोकुल देखिया-गोकुल देखकर; आइला-आये; मथुरा-नगरे-मथुरा नगर में; जन्म-स्थान-भगवान् कृष्ण का जन्म स्थान; देखि'–देखकर; रहे-रहे; सेइ विप्र-घरे-उसी सनोड़िया ब्राह्मण के घर पर।

अनुवाद

गोकुल देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु मथुरा लौट आये, जहाँ उन्होंने कृष्ण का जन्मस्थान देखा। वहाँ पर वे उसी सनोड़िया ब्राह्मण के घर पर रहे।

लोकेर सङ्घट्ट देखि मथुरा छाड़िया ।

एकान्ते 'अक्रूर-तीर्थे' रहिला आसिया ॥ 70 ॥

लोकेर-लोगों की; सङ्गट्ट-भीड़; देखि-देखकर; मथुरा-मथुरा नगर; छाड़िया-छोड़कर; एकान्ते-एकान्त स्थान में; अक्रूर-तीर्थे–अक्रूर तीर्थ में; रहिला-रहे; आसिया-आकर।

अनुवाद

मथुरा में भीड़ एकत्र होती देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु मथुरा छोड़कर अक्रूर तीर्थ चले गये। वहाँ वे एकान्त स्थान में रहे।

तात्पर्य

भक्ति-रत्नाकर (पंचम तरंग) में अक्रूर तीर्थ का भी उल्लेख हुआ है :

देख, श्रीनिवास, एइ अक्रूर ग्रामेते ।

श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु छिलेन निभृते ॥

"हे श्रीनिवास, देखो यह अक्रूर का गाँव है, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु एकान्त में रहते थे।"

आर दिन आइला प्रभु देखिते 'वृन्दावन' ।

'कालीय-ह्रदे' स्नान कैला आर प्रस्कन्दन ॥79॥

आर दिन–अगले दिन; आइला–आये; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; देखिते-देखने के लिए; वृन्दावन-वृन्दावन; कालीय-ह्रदे-कालिय सरोवर में; स्नान कैला-स्नान किया; आर-और; प्रस्कन्दन–प्रस्कन्दन में।

अनुवाद

अगले दिन श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन गये और उन्होंने कालीय ह्रद तथा प्रस्कन्दन में स्नान किया।

तात्पर्य

भक्ति रत्नाकर (पंचम तरंग) में कालीय ह्रद का उल्लेख है :

ए कालीय-तीर्थ पाप विनाशय ।

कालीयतीर्थ-स्थाने बहु-कार्य-सिद्धि हय ॥

“कालीय-ह्रद में स्नान करने वाले व्यक्ति के सारे पापकर्मों के फल दूर हो जाते हैं। कालीय-ह्रद में स्नान करने से कार्य-सिद्धि भी मिल सकती है।”

‘द्वादश-आदित्य’ हैते ‘केशी-तीर्थे’ आइला ।

रास-स्थली देखि प्रेमे मूर्च्छित हइला ॥72॥

द्वादश-आदित्य हैते-द्वादशादित्य से; केशी-तीर्थे आइला-केशी तीर्थ आये; रास-स्थली देखि’–रास नृत्य का स्थान देखकर; प्रेमे-प्रेमावेश में; मूर्च्छित हइला–मूर्छित हो गये।

अनुवाद

प्रस्कन्दन नामक पुण्यस्थली देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु द्वादशादित्य गये। वहाँ से वे केशीतीर्थ गये और जब उन्होंने वह स्थान देखा, जहाँ रासनृत्य होता था, तो वे प्रेमावेश से तुरन्त मूर्छित हो गये।

चेतन पाञा पुनः गड़ागड़ि याय ।

हासे, कान्दे, नाचे, पड़े, उच्चैः-स्वरे गाय ॥73॥

चेतन पाञा-चेतना लौटने पर; पुनः–दोबारा; गड़ागड़ि याय-धरती पर लोटने लगे; हासे-हँसने लगे; कान्दे-रोने लगे; नाचे-नाचने लगे; पड़े-गिरने लगे; उच्चैः-स्वरे गाय-ऊँचे स्वर में गाने लगे।

अनुवाद

जब महाप्रभु सचेत हुए तो वे भूमि पर लोटने लगे। कभी वे हँसते, कभी रोते तो कभी नाचते और गिर पड़ते। वे ऊँचे स्वर से कीर्तन भी करते।

एइ-रङ्गे सेइ-दिन तथा गोडाइला ।

सन्ध्या-काले अक्रूरे आसि' भिक्षा निर्वाहिला ॥74॥

एइ-रङ्गे–इस आनन्द में; सेइ-दिन-वह दिन; तथा गोङाइला-वहाँ व्यतीत किया; सन्ध्या-काले-संध्याकाल को; अक्रूरे आसि'–अक्रूर तीर्थ लौटकर; भिक्षा निर्वाहिला-भोजन किया।

अनुवाद

इस तरह दिव्य आनन्द का अनुभव करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने केशीतीर्थ में वह दिन प्रसन्नतापूर्वक बिता दिया। शाम को वे अक्रूर तीर्थ लौट आये, जहाँ उन्होंने भोजन किया।

प्राते वृन्दावने कैला 'चीर-घाटे' स्नान ।

तेतुली-तलाते आसि' करिला विश्राम ॥75 ॥

प्राते-प्रातः काल; वृन्दावने-वृन्दावन में; कैला–किया; चीर-घाटे स्नान-चीर घाट पर स्नान; तेतुली-तलाते-तेन्तुली वृक्ष के नीचे; आसि'-आकर; करिला विश्राम-विश्राम किया।

अनुवाद

प्रातःकाल श्री चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन लौटकर चीरघाट में स्नान किया। तब वे तेतुलीतला गये, जहाँ उन्होंने विश्राम किया।

कृष्ण-लीला-कालेर सेइ वृक्ष पुरातन ।

तार तले पिंड़ि-बान्धा परम-चिक्कण ॥ 76 ॥

कृष्ण-लीला-कालेर-कृष्ण लीला के समय; सेइ वृक्ष-वही इमली का वृक्ष; पुरातन-बहुत प्राचीन; तार तले-उस वृक्ष के नीचे; पिंड़ि-बान्धा-एक चबूतरा था; 'परम-चिक्कण-बहुत चमकदार।

अनुवाद

तेंतुलीतला नामक इमली का वृक्ष अत्यन्त पुराना था, जो श्रीकृष्ण की लीलाओं के समय से वहीं था। उस वृक्ष के नीचे अत्यन्त चमकीला चबूतरा बना था।

निकटे यमुना वहे शीतल समीर ।

वृन्दावन-शोभा देखे यमुनार नीर ॥ 77॥

निकटे-तेन्दुली तला अथवा आम्ली तला के निकट; यमुना-यमुना; वहे-बहती थी; शीतल समीर-बहुत शीतल पवन; वृन्दावन-शोभा-वृन्दावन की शोभा; देखे-देखी; यमुनार-यमुना नदी का; नीर–जल।

अनुवाद

इस इमली के वृक्ष के निकट यमुना नदी बहती थी, इसलिए अत्यन्त शीतल हवा बहती थी। वहाँ पर महाप्रभु ने वृन्दावन की शोभा तथा यमुना नदी का जल देखा।

तेंतुल-तले वसि' करे नाम-सङ्कीर्तन ।

मध्याह्न करि' आसि' करे 'अक्रूरे' भोजन ॥ 78॥

तेंतुल-तले-इमली के वृक्ष के नीचे; वसि'–बैठकर; करे-किया; नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन; मध्याह्न करि' मध्याह्न को; आसि'–लौटकर; करे-किया; अक्रूरे-अक्रूर तीर्थ; भोजन-भोजन किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इस इमली के पुराने वृक्ष के नीचे बैठकर भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करते थे। दोपहर को वे भोजन करने के लिए अक्रूर तीर्थ लौट आते थे।

अक्रूरेर लोक आइसे प्रभुरे देखिते ।

लोक-भिड़े स्वच्छन्दे नारे 'कीर्तन' करिते ॥ 79 ॥

अक्रूरेर लोक-अक्रूर तीर्थ में लोग; आइसे–आये; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; देखिते-देखने के लिए; लोक-भिड़े-लोगों की इतनी भीड़ के कारण; स्वच्छन्दे-अपनी मर्जी से (बिना अवरोध के); नारे-न कर सके; कीर्तन करिते-कीर्तन करना।

अनुवाद

अक्रूरतीर्थ के निकट रहने वाले सारे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु को देखने आते थे और भीड़ बढ़ जाने से महाप्रभु शान्तिपूर्वक नाम-कीर्तन नहीं कर पाते थे।

वृन्दावने आसि' प्रभु वसिया एकान्त ।

नाम-सङ्कीर्तन करे मध्याह्न-पर्यन्त ॥ 80॥

वृन्दावने आसि'-वृन्दावन आकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; वसिया–बैठकर; एकान्त-एकान्त स्थान में; नाम-सङ्कीर्तन करे–नाम संकीर्तन किया; मध्याह्न-पर्यन्त-मध्याह्न पर्यन्त।

अनुवाद

अतः श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन चले जाते थे और एकान्त स्थान में बैठकर दोपहर तक नाम-संकीर्तन करते रहते थे।

तृतीय-प्रहरे लोक पाय दरशन ।

सबारे उपदेश करे 'नाम-सङ्कीर्तन' ॥81॥

तृतीय-प्रहरे-तीसरे पहरे; लोक-लोगों ने; पाय दरशन-दर्शन किया; सबारे-प्रत्येक को; उपदेश करे-उपदेश किया; नाम-सङ्कीर्तन–नाम संकीर्तन।

अनुवाद

दोपहर के बाद ही लोग उनका दर्शन प्राप्त कर सके। महाप्रभु ने हर एक व्यक्ति को नाम संकीर्तन का महत्त्व बतलाया।

हेन-काले आइल वैष्णव 'कृष्णदास' नाम ।

राजपुत-जाति,—गृहस्थ, यमुना-पारे ग्राम ॥82॥

हेन-काले-इस समय; आइल-आया; वैष्णव-एक भक्त; कृष्णदास नाम-कृष्णदास नाम का; राजपुत-जाति–राजपूत (क्षत्रिय) जाति का; गृहस्थ-गृहस्थ; यमुना-पारे ग्राम-जिसका निवास यमुना के उस पार था।

अनुवाद

तभी कृष्णदास नामक एक वैष्णव श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने आया। वह गृहस्थ था और क्षत्रिय जाति का था। उसका घर यमुना नदी के उस पार था।

'केशी' स्नान करि' से 'कालीय-दह' याइते ।

आम्लि-तलाय गोसाञिरे देखे आचम्बिते ॥83 ॥

केशी स्नान करि'–केशीतीर्थ नायक स्थान पर स्नान करने के बाद; सेइ-उस व्यक्ति ने; कालीय-दह याइते-कालिय दह की ओर जाकर; आम्लि-तलाय-आम्लीतला नामक स्थान पर; गोसाञिरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; देखे-देखा; आचम्बिते-अचानक।

अनुवाद

केशीतीर्थ में स्नान करने के बाद कृष्णदास कालीयदह की ओर गया और उसने एकाएक श्री चैतन्य महाप्रभु को आम्लितला (तेंतुलीतला) में बैठे हुए देखा।

प्रभुर रूप-प्रेम देखि' हइल चमत्कार ।

प्रेमावेशे प्रभुरे करेन नमस्कार ॥84॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; रूप-प्रेम-सुन्दरता तथा प्रेम; देखि'–देखकर; हइल चमत्कार–चकित रह गया; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; करेन नमस्कार-नमस्कार किया।

अनुवाद

महाप्रभु के सौंदर्य तथा प्रेम को देखकर कृष्णदास अत्यधिक अचम्भित हुआ। उसने प्रेमवश महाप्रभु को सादर नमस्कार किया।

प्रभु कहे,—के तुमि, काहाँ तोमार घर? ।

कृष्णदास कहे,—मुइ गृहस्थ पामर ॥85॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने पूछा; के तुमि-तुम कौन हो; काहाँ–कहाँ; तोमार-तुम्हारा; घर–निवास है; कृष्णदास कहे–कृष्णराज ने उत्तर दिया; मुइ-मैं; गृहस्थ–एक गृहस्थ; पामर-अति पतित।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्णदास से पूछा, "तुम कौन हो? तुम्हारा घर कहाँ है?" इस पर कृष्णदास ने उत्तर दिया, "मैं अत्यन्त पतित गृहस्थ हूँ।

राजपुत-जाति मुञि, ओ-पारे मोर घर ।

मोर इच्छा हय–'हङवैष्णव-किङ्कर' ॥86॥

राजपुत-जाति–राजपूत जाति का हूँ; मुञि-मैं; ओ-पारे-यमुना के पास दूसरी ओर; मोर घर–मेरा घर; मोर इच्छा हय–मेरी इच्छा; हङ–होने की; वैष्णव-किङ्कर-एक वैष्णव का सेवक।

अनुवाद

“मैं राजपूत जाति का हूँ और मेरा घर यमुना नदी के उस पार है। किन्तु मैं वैष्णव का सेवक बनना चाहता हूँ।

किन्तु आजि एक मुञि ‘स्वप्न’ देखिनु।

सेइ स्वप्न परतेक तोमा आसि’ पाइनु ॥87॥

किन्तु किन्तु; आजि-आज; एक-एक; मुञि-मैंने; स्वप्न-स्वप्न; देखिन-देखा; सेइ स्वप्न-उस स्वप्न; परतेक के अनुसार; तोमा-आपको; आसि-आकर; पाइनु-मैंने पाया है (मैं मिला हूँ)।

अनुवाद

आज मैंने एक सपना देखा है। उस स्वप्न के अनुसार ही मैं यहाँ आया हूँ तथा आपको पा सका हूँ।”

प्रभु ताँरे कृपा कैला आलिङ्गन करि।

प्रेमे मत्त हैल सेइ नाचे, बले ‘हरि’ ॥88॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे–उस पर; कृपा कैला-कृपा दिखाई; आलिङ्गन करि-आलिंगन करके; प्रेमे-प्रेम में; मत्त हैल-उन्मत्त होकर; सेइ-वह कृष्णदास; नाचे-नाचने लगा; बले-कीर्तन करने लगा; हरि-भगवान् के पावन नाम का।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्णदास का आलिंगन करते हुए उसे अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान की। कृष्णदास प्रेम से उन्मत्त हो उठा और वह नाचने लगा तथा पवित्र हरि नाम का कीर्तन करने लगा।

प्रभु-सङ्गे मध्याह्ने अक्रूर तीर्थे आइला।

प्रभुर अवशिष्ट-पात्र-प्रसाद पाइला ॥89॥

प्रभु-सङ्गे–महाप्रभु के संग; मध्याह्न-मध्यान्ह में; अक्रूर तीर्थे–अक्रूर तीर्थ को; आइला–आया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; अवशिष्ट-पात्र-प्रसाद-भोजन का शेष; पाइला–पाया।

अनुवाद

कृष्णदास महाप्रभु के साथ अक्रूरतीर्थ आया, जहाँ उसे महाप्रभु का शेष बचा भोजन दिया गया।

प्राते प्रभु-सङ्गे आइला जल-पात्र लञा ।

प्रभु-सङ्गे रहे गृह-स्त्री-पुत्र छाड़िया ॥90॥

प्राते-प्रातः काल; प्रभु-सङ्गे–श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; आइला–आया; जल-पात्र लञा-जलपात्र उठाकर; प्रभु-सङ्गे रहे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रहा; गृह-घर; स्त्री-पत्नी; पुत्र-पुत्र; छाड़िया–छोड़कर।

अनुवाद

अगले दिन कृष्णदास श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ उनका जलपात्र लिए हुए वृन्दावन गया। इस तरह कृष्णदास ने अपनी पत्नी, घर तथा बच्चे छोड़ दिये, जिससे कि वह श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रह सके।

वृन्दावने पुनः 'कृष्ण' प्रकट हइल ।

याहाँ ताहाँ लोक सब कहते लागिल ॥91॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; पुनः–पुनः; कृष्ण-भगवान् श्रीकृष्ण; प्रकट हइल-प्रकट हुए; याहाँ ताहाँ-हर जगह, जहाँ यही; लोक-लोग; सब-सब; कहते लागिल-कहने लगे।

अनुवाद

महाप्रभु जहाँ भी जाते, वहाँ के सारे लोग कहते, "वृन्दावन में पुनः कृष्ण प्रकट हुए हैं।"

एक-दिन अक्रूरेते लोक प्रातः-काले ।

वृन्दावन हैते आइसे करि' कोलाहले ॥92॥

एक-दिन-एक दिन; अकूते-अक्रूर तीर्थ में; लोक-लोग; प्रातःकाले-प्रातः काल; वृन्दावन हैते–वृन्दावन से; आइसे–आये; करि'-करते हुए; कोलाहले-कोलाहर, शोर।

अनुवाद

एक दिन प्रातःकाल अनेक लोग अक्रूरतीर्थ आये। चूँकि वे वृन्दावन से आये थे, अतः वे अधिक कोलाहल कर रहे थे।

प्रभु देखि' करिल लोक चरण वन्दन ।

प्रभु कहे,—काहाँ हैते करिला आगमन? ॥ 93 ॥

प्रभु देखि'–श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर; करिल-की; लोक-लोगों ने; चरण वन्दन-उनके चरणकमलों में सम्मान (आदर); प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; काहाँ हैते–कहाँ से; करिला आगमन-आप आये हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर उन सबने उनके चरणकमलों में अपना नमस्कार निवेदित किया। तब महाप्रभु ने उन सबसे पूछा, "तुम लोग कहाँ से आ रहे हो?"

लोके कहे,—कृष्ण प्रकट कालीय-दहेर जले! ।

कालीय-शिरे नृत्य करे, फणा-रत्न ज्वले ॥ 94॥

लोके कहे-सभी लोगों ने उत्तर दिया; कृष्ण प्रकट-कृष्ण पुनः प्रकट हुए हैं; कालीय-दहेर जले–कालिय सरोवर के जल में; कालीय-शिरे–कालिय नाग के फणों पर; नृत्य करे-नाचते हैं; फणा-रत्न ज्वले–उन फणों पर मणियाँ चमक रही हैं।

अनुवाद

लोगों ने उत्तर दिया, "कालीयदह के जल में कृष्ण पुनः प्रकट हुए हैं। वे कालीय सर्प के फनों पर नाचते हैं और फनों के रत्न चमचमा रहे हैं।

साक्षात्देखिल लोक—नाहिक संशय ।

शुनि' हासि' कहे प्रभु,—सब 'सत्य' हय ॥ 95॥

साक्षात्-साक्षात्; देखिल लोक-सभी लोगों ने देखा; नाहिक संशय-इसमें कोई सन्देह नहीं; शुनि'–सुनकर; हासि-हँसकर; कहे प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; सब सत्य हय-आपने जो कुछ कहा है, वह सत्य है।

अनुवाद

"सबने साक्षात् कृष्ण को देखा है, इसमें संशय नहीं है।" यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु हँसने लगे और बोले, "यह सब सत्य है।"

एइ-मत तिन-रात्रि लोकेर गमन ।

सबे आसि' कहे,—कृष्ण पाइलुँ दरशन ॥ 96 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; तिन-रात्रि–तीन रात; लोकेर गमन–लोग जाते रहे; सबे-सब; आसि'-आकर; कहे-कहने लगे; कृष्ण पाइलुँ-दरशन-हमने कृष्ण के साक्षात् दर्शन किये हैं।

अनुवाद

लगातार तीन रात तक लोग कृष्ण का दर्शन करने कालीयदह गये और हर एक यही कहता हुआ लौटा कि, "अब हमने साक्षात् कृष्ण का दर्शन किया है।"

प्रभु-आगे कहे लोक,—श्रीकृष्ण देखिल ।

'सरस्वती' एइ वाक्ये 'सत्य' कहाइल ॥97॥

प्रभु-आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष; कहे लोक-सभी लोग कहने लगे: श्री-कृष्ण देखिल कि हमने भगवान् श्रीकृष्ण को देख लिया है; सरस्वती-सरस्वती देवी ने; एइ वाक्ये—यह कथन; सत्य-सत्य; कहाइल-लोगों से कहलवाया है।

अनुवाद

हर व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु के आगे आकर यही कहता, "अब हमने कृष्ण को प्रत्यक्ष देखा है। इस तरह सरस्वती देवी की कृपा से हर व्यक्ति को सच कहना पड़ा।

महाप्रभु देखि' 'सत्य' कृष्ण-दरशन ।

निजाज्ञाने सत्य छाड़ि' 'असत्ये सत्य-भ्रम' ॥ 98॥

महाप्रभु देखि'–श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर; सत्य–सच में; कृष्ण-दरशन-कृष्ण को देखकर; निज-अज्ञाने-अपने अज्ञान से; सत्य छाड़ि'–सत्य को छोड़कर; असत्ये-असत्य को; सत्य-भ्रम-सत्य के भ्रम में समझा।

अनुवाद

जब लोगों ने श्री चैतन्य महाप्रभु को देखा, तो वास्तव में उन्होंने कृष्ण का ही दर्शन किया, किन्तु अपने अज्ञान के कारण ही उन्होंने गलत वस्तु को कृष्ण मान लिया था।

भट्टाचार्य तबे कहे प्रभुर चरणे ।

‘आज्ञा देह’, याइ’ करि कृष्ण दरशने!’ ॥19॥

भट्टाचार्य-बलभद्र भट्टाचार्य; तबे-उस समय; कहे-कहने लगा; प्रभुर चरणे- श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में; आज्ञा देह’–कृपया आज्ञा दो; याइ’–जाकर; करि कृष्ण दरशने-श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन करूँ।

अनुवाद

तभी बलभद्र भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में निवेदन किया, “मुझे आज्ञा दें कि मैं जाकर कृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन कर सकें।”

तात्पर्य

जो लोग विभ्रान्त चित्त से श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आ रहे थे, वे वास्तव में भगवान् कृष्ण का दर्शन कर रहे थे, किन्तु वे लोग यह सोचने की भूल कर रहे थे कि कृष्ण कालीयदह में आये हुए हैं। वे सभी यही कह रहे थे कि उन्होंने कृष्ण को कालीय सर्प के फन पर लीला करते प्रत्यक्ष देखा है और कालीय के फनों में मणियाँ चमक रही हैं। चूँकि वे अपने अधूरे ज्ञान से मनोकल्पना कर रहे थे, अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें सामान्य व्यक्ति दिख रहे थे और उस हद में नाविक का दीपक कृष्ण के रूप में दिख रहा था। मनुष्य को गुरु की कृपा से वस्तुओं को यथारूप देखना चाहिए, अन्यथा कृष्ण का साक्षात् दर्शन करने के फेर में वह सामान्य व्यक्ति को कृष्ण या कृष्ण को ही सामान्य व्यक्ति समझ बैठेगा। हर व्यक्ति को आत्मसिद्ध गुरु द्वारा प्रस्तुत वैदिक साहित्य के प्रमाण के अनुसार ही कृष्ण का दर्शन करना चाहिए। निष्ठावान व्यक्ति ही अपने गुरु के पारदर्शी माध्यम से कृष्ण का दर्शन कर पाता है। जब तक गुरु द्वारा दिये गये ज्ञान से प्रकाश प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक कोई भी व्यक्ति वस्तुओं को असली रूप में नहीं देख सकता, भले ही वह निरन्तर गुरु के साथ ही क्यों न रह रहा हो। कालीय दह की यह घटना उन लोगों के लिए अत्यन्त शिक्षाप्रद है, जो कृष्णभावना में आगे बढ़ना चाहते हैं।

तबे ताँरे कहे प्रभु चापड़ मारिया ।

“मूर्खर वाक्ये ‘मूर्ख’ हैला पण्डित हञा ॥100॥

तबे-तत्पश्चात्; ताँरे–बलभद्र भट्टाचार्य को; कहे–कहा; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभ ने; चापड़ मारिया-थप्पड़ मारकर; मूर्खर वाक्ये-कुछ धूर्तों और मूर्खा के कहने से; मूर्ख हैला-तुम मूर्ख बन गये हो; पण्डित हञा-एक विद्वान पण्डित होते हुए भी।

अनुवाद

जब बलभद्र भट्टाचार्य ने कालीयदह में कृष्ण का दर्शन करने के लिए आज्ञा चाही, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कहकर दयापूर्वक उसको चपत लगाई, “तुम विद्वान होकर भी अन्य मूर्खा की बातों में आकर मूर्ख बन रहे हो।

तात्पर्य

माया इतनी प्रबल होती है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ निरन्तर रहने वाला बलभद्र भट्टाचार्य जैसा व्यक्ति भी मूर्खा की बातों में आ गया। वह कालीयदह जाकर कृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता था, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु आदि गुरु होने के नाते अपने सेवक को इस प्रकार मूर्खता में फँसने की अनुमति नहीं दे सकते थे। इसीलिए उन्होंने वास्तविक कृष्णभावनामृत समझाने के लिए उसे चपत लगाकर दण्डित किया।

कृष्ण केने दरशन दिबे कलि-काले? ।

निज-भ्रमे मूर्ख-लोक करे कोलाहले ॥ 101॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; केने-क्यों; दरशन-दर्शन; दिबे-देंगे; कलि-काले-इस कलियुग में; निज-भ्रमे-अपनी गलती से; मूर्ख-लोक-मूर्ख लोग; करे कोलाहले-शोर मचाते हैं।

अनुवाद

“भला कलियुग में कृष्ण क्यों प्रकट होने लगे? भ्रमित मूर्ख लोग ही उत्तेजना फैलाते हैं और कोलाहल मचाते हैं।”

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का पहला कथन (कृष्ण केने दर्शन दिबे कलिकाले) शास्त्रों का अनुमोदन करता है। शास्त्र के अनुसार कृष्ण द्वापर युग में प्रकट होते हैं। किन्तु वे अपने मूल रूप में कभी भी कलियुग में प्रकट नहीं होते। कलियुग में वे प्रच्छन्न रूप में ही प्रकट होते हैं। जैसाकि श्रीमद्भागवत (11.5.32) में कहा गया है-कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्। कलियुग में कृष्ण अपने एक भक्त, श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट होते हैं, जो सदैव अपने पार्षदों-श्री अद्वैत प्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु, श्रीवास प्रभु तथा गदाधर प्रभु-के साथ रहते हैं। यद्यपि बलभद्र भट्टाचार्य भक्त के रूप में कृष्ण (चैतन्य महाप्रभु) की प्रत्यक्ष सेवा में लगा था, किन्तु वह कृष्ण को एक सामान्य पुरुष समझ बैठा और सामान्य पुरुष को कृष्ण, क्योंकि उसने शास्त्र तथा गुरु द्वारा निर्धारित नियमों का पालन नहीं किया।

‘वातुल’ ना हइओ, घरे रहत वसिया।

‘कृष्ण’ दरशन करिह कालि रात्र्ये याञा” ॥102॥

वातुल–पागल; ना हइओ-मत बनो; घरे–घर पर; रहत-रहो; वसिया–बैठकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; दरशन-दर्शन; करिह-तुम करो; कालि–कल; रात्र्ये-रात को; याञा-जाकर।

अनुवाद

“पागल मत बनो। यहीं बैठे रहो और कल रात में तुम कृष्ण का दर्शन करने जाओगे।”

प्रातः-काले भव्य-लोक प्रभु-स्थाने आइला।

‘कृष्ण देखि’ आइला?’—प्रभु ताँहारे पुछिला ॥ 103॥

प्रातः-काले–अगले दिन प्रातः काल; भव्य-लोक-सम्मानित लोग; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; आइला–आये; कृष्ण देखि'–भगवान् कृष्ण को देखकर; आइला-क्या तुम आये हो; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँहारे पुछिला-उनसे पूछा।

अनुवाद

अगले दिन कुछ भद्र लोग श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने आये और महाप्रभु ने उनसे पूछा, "क्या आपने कृष्ण को देखा?"

लोक कहे,—रात्र्ये कैवर्त्य नौकाते चड़िया ।

कालीय-दहे मत्स्य मारे, देउटी ज्वालिया ॥ 104॥

लोक कहे-समझदार आदरणीय लोगों ने कहा; रात्र्ये-रात को; कैवर्त्य-एक मछुआरा; नौकाते-एक नौका पर; चड़िया-चढ़कर; कालीय-दहे–कलियदह में; मत्स्य मारे–मछलियाँ पकड़ता है; देउटी ज्वालिया-एक दीपक जलाकर।

अनुवाद

इन भद्र लोगों ने उत्तर दिया, "रात में कालीयदह में एक मछुआरा अपनी नाव में दीपक जलाकर मछलियाँ पकड़ता है।

दूर हैते ताहा देखि' लोकेर हय 'भ्रम' ।

'कालीयेर शरीरे कृष्ण करिछे नर्तन'! ॥ 105॥

दूर हैते-दूर से; ताहा देखि'–उसे देखकर; लोकेर–सामान्य लोगों को; हय होता है; भ्रम-भ्रम; कालीयेर–कालिय नाग के; शरीरे-शरीर पर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करिछे नर्तन-नृत्य करते हैं।

अनुवाद

"दूर से लोग भ्रमवश सोचते हैं कि वे कालीय नाग के शरीर पर कृष्ण को नाचते हुए देख रहे हैं।

नौकाते कालीय-ज्ञान, दीपे रन-ज्ञाने! ।

जालियारे मूढ़-लोक 'कृष्ण' करि' माने! ॥106॥

नौकाते-नौका पर; कालीय-ज्ञान-कालिय नाग का ज्ञान; दीपे-दीपक को; रत्न-जाने-मणि समझकर; जालियारे-मछुआरे को; मूढ़-लोक-मूर्ख लोग; कृष्ण करि' माने-कृष्ण मान लेते हैं।

अनुवाद

"ये मूर्ख सोचते हैं कि नाव कालीय नाग है और दीपक उसके फनों की मणियाँ हैं। लोग मछुआरे को भी कृष्ण मान बैठते हैं।

वृन्दावने 'कृष्ण' आइला,—सेइ 'सत्य' हय ।

कृष्णेरे देखिल लोक,—इहा 'मिथ्या' नय ॥ 107॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; आइला-लौट आये हैं; सेइ-वह; सत्य हय-सत्य है; कृष्णेरे-कृष्ण को; देखिल-देखा है; लोक-लोगों ने; इहा मिथ्या नय-यह असत्य नहीं है।

अनुवाद

"सचमुच ही भगवान् कृष्ण फिर से वृन्दावन में लौट आये हैं। यह सच है और यह भी सच है कि लोगों ने उन्हें देखा है।

किन्तु काहों 'कृष्ण' देखे, काहों 'भ्रम' माने ।

स्थाणु-पुरुषे यैछे विपरीत-ज्ञाने ॥ 108॥

किन्तु किन्तु; काहों-कहाँ; कृष्ण-कृष्ण; देखे-कोई देखता है; काहों-कहाँ; भ्रम माने-भ्रम होता है; स्थाणु-पुरुषे-सुखा वृक्ष और व्यक्ति; यैछे-जैसे; विपरीत-ज्ञाने-एक वस्तु को दूसरा समझना।

अनुवाद

"किन्तु वे कृष्ण को कहाँ देख रहे हैं, यह उनका भ्रम है। यह तो सूखे वृक्ष को पुरुष मानने जैसा है।"

तात्पर्य

स्थाणु का अर्थ है "बिना पत्तों का ठूँठ।" दूर से ऐसे ढूँठ वृक्ष से पुरुष का भ्रम हो सकता है। यह स्थाणु-पुरुष कहलाता है। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन में रह रहे थे, किन्तु वहाँ के निवासी उन्हें सामान्य पुरुष मान रहे थे और उन्होंने मछुआरे को कृष्ण मान लिया। इस तरह की गलतियाँ हर मनुष्य से होती रहती हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु को सामान्य संन्यासी माना जा रहा था और मछुआरे को कृष्ण; इसी तरह दीपक को कालीय के फलों के चमकीले रत्न माना जा रहा था।

प्रभु कहे,—'काहाँ पाइला कृष्ण दरशन?' ।

लोक कहे,—'सन्न्यासी तुमि जङ्गम-नारायण ॥109॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे पूछा; काहाँ पाइला-आपने कहाँ पाये; कृष्ण दरशन-कृष्ण के दर्शन; लोक कहे-सम्माननीय लोगों ने कहा; सन्न्यासी तुमि-आप संन्यासी हैं; जङ्गम-नारायण-चलते फिरते (साक्षात्) नारायण।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे पूछा, "तुमने कृष्ण को प्रत्यक्ष कहाँ देखा है?" लोगों ने उत्तर दिया, "आप संन्यासी हैं, अतएव आप चलते-फिरते नारायण (जङ्गम-नारायण) हैं।"

तात्पर्य

यह मायावाद दर्शन का मत है। मायावाद दर्शन इस निर्विशेषवादी दृष्टिबिन्दु का समर्थन नहीं करता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण को कोई रूप नहीं होता। व्यक्ति निर्विशेष ब्रह्म की कल्पना किसी भी रूप में कर सकता है-विष्णु, शिव, विवस्वान, गणेश या देवी दुर्गा। मायावाद दर्शन के अनुसार जब कोई व्यक्ति संन्यासी बन जाता है, तब वह चलता-फिरता नारायण माना जाता है। मायावाद दर्शन का विश्वास है कि असली नारायण चलते नहीं, क्योंकि निराकार होने के कारण उनके पाँव नहीं होते। इस प्रकार मायावाद दर्शन के अनुसार जो भी संन्यासी बनता है, वह अपने आपको नारायण कहने लगता है। मूर्ख लोग ऐसे सामान्य मनुष्यों को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मान लेते हैं। यह विवर्तवाद कहलाता है।

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि जङ्गम-नारायण का अर्थ यह होता है कि निर्विशेष ब्रह्म रूप धारण करके मायावादी संन्यासी के रूप में इधर-उधर घूमता फिरता है। मायावाद दर्शन इसकी पुष्टि करता है। दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्–"संन्यास आश्रम में केवल दण्ड ग्रहण करने से वह तुरन्त नारायण बन जाता है। इसीलिए मायावादी संन्यासी एक दूसरे से ॐ नमो नारायणाय कहकर सम्बोधन करते हैं और इस तरह एक नारायण दूसरे नारायण को पूजता है।

वास्तव में कोई सामान्य व्यक्ति नारायण नहीं बन सकता। यहाँ तक कि प्रमुख मायावादी संन्यासी श्री शंकराचार्य कहते हैं-नारायणः परोऽव्यक्तात्-नारायण इस भौतिक जगत् की उपज नहीं हैं। वे इस भौतिक सृष्टि से परे हैं।" अल्पज्ञान के कारण मायावादी संन्यासी सोचते हैं कि नारायण अर्थात् परम सत्य मनुष्य के रूप में जन्म लेते हैं और जब उसे इसका ज्ञान होता है, तो वह पुनः नारायण बन जाता है। वे कभी इस पर विचार नहीं करते कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण मनुष्य के निम्न पद को क्यों स्वीकार करने लगे और पूर्ण होने पर मनुष्य फिर से क्यों नारायण बन जाता है। नारायण अपूर्ण क्यों होने लगे ? उन्हें मनुष्य रूप में प्रकट होने की क्या आवश्यकता है? श्री चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन में रहते हुए इन सारी बातों को बड़े ही सुन्दर ढंग से समझाया।

वृन्दावने हइला तुमि कृष्ण-अवतार।

तोमा देखि' सर्व-लोक हइल निस्तार ॥ 110॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; हइला–हुए; तुमि-आप; कृष्ण-अवतार-कृष्ण के अवतार: तोमा देखि'–आपको देखकर; सर्व-लोक-सभी लोगों का; हइल निस्तार-उद्धार हो गया।

अनुवाद

तब लोगों ने कहा, "आप वृन्दावन में कृष्ण के अवतार के रूप में प्रकट हुए हैं। आपका दर्शन करने से ही हर व्यक्ति मुक्त हो गया है।"

प्रभु कहे,–'विष्णु' 'विष्णु' इहा ना कहिबा! ।

जीवाधमे 'कृष्ण'-ज्ञान कभु ना करिबा! ॥ 111॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; विष्णु विष्णु-'हे विष्णु, विष्णु''; इहा-यह; ना कहिबान कहो; जीव-अधर्म-पतित बद्धात्माओं; कृष्ण-ज्ञान-को भगवान् कृष्ण मानकर; कभु-कभी; ना करिबान करो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तुरन्त बोल पड़े, "विष्णु! विष्णु! मुझे भगवान् मत कहो। जीव कभी-भी कृष्ण नहीं बन सकता। ऐसी बात कभी मत कहना!"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त कहा कि जीव कितना ही महान् क्यों न हो जाए, उसकी तुलना भगवान् से कभी भी नहीं करनी चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे उपदेश मायावादियों के अद्वैतवादी दर्शन का विरोध करते हैं। कृष्णभावनामृत का केन्द्रबिन्दु यही है कि जीव को कभी कृष्ण या विष्णु नहीं माना जा सकता। इस बात को अगले श्लोकों में विस्तार से बतलाया गया है।

सन्न्यासी—चित्कण जीव, किरण-कण-सम ।

षड्-ऐश्वर्य-पूर्ण कृष्ण हय सूर्योपम ॥112॥

सन्न्यासी-संन्यासी; चित्-कण जीव-क्षुद्र आंशिक जीव; किरण-किरण का; कण-क्षुद्र कण; सम–के समान; षट्-ऐश्वर्य-पूर्ण छ: ऐश्वर्यों से पूर्ण; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; हय-हैं; सूर्य-उपम–सूर्य के समान।

अनुवाद

"संन्यासी निश्चित ही पूर्ण का अंश है, जिस तरह कि धूप का चमकता लघु कण सूर्य का अंश होता है। कृष्ण सूर्य के समान हैं, छः ऐश्वर्यों से पूर्ण; किन्तु जीव पूर्ण का केवल अंश मात्र है।

जीव, ईश्वर-तत्त्व—कभु नहे 'सम' ।

ज्वलदग्नि-राशि यैछे स्फुलिङ्गेर 'कण' ॥113॥

जीव-जीव; ईश्वर-तत्त्व-और पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान; कभु-कभी; नहे-नहीं; सम-समान; ज्वलत्-अग्नि-राशि-बड़ी अग्नि ज्वाला; यैछे-जैसे; स्फुलिङ्गेर–चिंगारी का; कण-एक कण।

अनुवाद

"जीव तथा परम भगवान् कभी भी समान नहीं माने जा सकते, जिस तरह कि स्फुलिंग का कण कभी मूल प्रज्वलित अग्नि नहीं माना जा सकता।

तात्पर्य

मायावादी संन्यासी अपने आपको ब्रह्म मानते हैं और ऊपर-ऊपर से अपने आपको नारायण कहते हैं। मायावाद सम्प्रदाय के अद्वैतवादी शिष्य (स्मार्त ब्राह्मण) सामान्यतया गृहस्थ ब्राह्मण होते हैं, जो मायावादी संन्यासियों को नारायण का अवतार मानते हैं, अतएव वे उन्हें नमस्कार करते हैं। श्री

चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त इस अवैध प्रणाली का विरोध किया और विशेष रूप से कहा कि संन्यासी परम पूर्ण (चित्कणजीव) का अंश मात्र है। दूसरे शब्दों में, वह सामान्य जीव से अधिक कुछ भी नहीं होता। वह कभी नारायण नहीं होता, जिस प्रकार सूर्य का परमाणुमय कण सूर्य के समान कभी भी नहीं हो सकता। जीव परम सत्य का अंश मात्र है, अतः सिद्धि की किसी भी अवस्था में जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नहीं बन सकता। वैष्णव सम्प्रदाय के लोग इस मायावाद दृष्टिकोण की सदैव भत्र्सना करते हैं। स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस विचारधारा का विरोध किया। जब मायावादी संन्यास ग्रहण करते हैं, तो वे अपने आपको नारायण समझकर इतने अहंकारी बन जाते हैं कि वे नमस्कार करने के लिए नारायण के मन्दिर में भी प्रवेश नहीं करते, क्योंकि वे भूल से अपने आपको साक्षात् नारायण समझते हैं। यद्यपि मायावादी संन्यासी अन्य संन्यासियों का आदर कर सकते हैं और उन्हें नारायण कहकर सम्बोधित कर सकते हैं, किन्तु वे नारायण के मन्दिर में जाकर नमस्कार भी नहीं करते। इन मायावादी संन्यासियों की सदैव भत्सना की जाती है और उन्हें असुर कहा जाता है। वेद स्पष्ट कहते हैं कि सारे जीव परम पूर्ण के आश्रित अंश मात्र हैं। एको बहूनां यो विदधाति कामान्–परम पुरुष कृष्ण सारे जीवों का पालन करते हैं।

ह्लादिन्या संविदाश्लिष्टः सच्चिदानन्द ईश्वरः ।

स्वाविद्या-संवृतो जीवः सङ्क्लेश-निकराकरः ॥ 114॥

ह्लादिन्या-ह्लादिनी शक्ति; संवित्-संवित् शक्ति; आश्लिष्टः-घिरे रहते हैं; सत्-चित्-आनन्दः-सत् चित् आनन्द; ईश्वरः-परम नियन्ता; स्व-अपना; अविद्या-अज्ञान द्वारा; संवृतः-घिरा हुआ; जीवः-जीव; सङ्क्ले श-जीवन के तीन तापों के; निकर-कई, असंख्य; आकरः-खान।

अनुवाद

“परम नियन्ता, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सदैव दिव्य आनन्द से पूर्ण रहते हैं और ह्लादिनी तथा सम्वित् शक्तियों से युक्त होते हैं। किन्तु बद्धजीव सदैव अज्ञान से आवृत रहता है और जीवन के तीन प्रकार के कष्टों से ग्रस्त रहता है। इस तरह वह सभी प्रकार के कष्टों की खान है।’

तात्पर्य

यह उद्धरण विष्णु स्वामी का है, जो श्रीमद्भागवत (1.7.6) के भाष्य श्रीधर स्वामी कृत भावार्थ-दीपिका में उदाहरण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

येइ मूढ़ कहे,—जीव ईश्वर हय 'सम' ।

सेइत 'पाषण्डी' हय, दण्डे तारे यम ॥115 ॥

येइ मूढ़-जो कोई मूर्ख; कहे-कहता है; जीव-जीव; ईश्वर-परम नियन्ता; हय-है। सम-समान; सेइत–वह; पाषण्डी हय-प्रथम श्रेणी का नास्तिक है; दण्डे-दण्ड देते हैं; तारे-उसको; यम-यमराज।

अनुवाद

"जो मूर्ख यह कहता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जीव के समान हैं, वह नास्तिक है। वह यमराज द्वारा दण्डित होने का पात्र बनता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि पाषण्डी शब्द उस व्यक्ति का सूचक है, जो माया के अधीन जीव को सारे भौतिक गुणों से अतीत पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समान मानता है। दूसरे प्रकार का पाषण्डी वह है, जो भगवान् की पराशक्ति आत्मा पर विश्वास नहीं करता और आत्मा तथा पदार्थ के बीच अन्तर नहीं कर पाता। श्री जीव गोस्वामी ने श्रुति-शास्त्र-निन्दन (वैदिक शास्त्रों की निन्दा) नामक अपराध का वर्णन करते हुए भक्ति सन्दर्भ में लिखा है- यथा पाषण्ड-मार्गेण दत्तात्रेयऋषभ-देवोपासकानां पाषण्डीनाम्। दत्तात्रेय जैसे निर्विशेषवादियों के उपासक भी पाषण्डी हैं।" अहं-मम-बुद्धि या देहात्म-बुद्धि (शरीर को स्वयं अर्थात् आत्मा मानना) अपराध के विषय में जीव गोस्वामी कहते हैं- देव-द्रविणादि-निमित्तक-'पाषण्ड' शब्देन च दशापराधा एवं लक्ष्यन्ते, पाषण्डमयत्वात् तेषाम्- "जो लोग

देहात्म-बुद्धि तथा शारीरिक आवश्यकताओं में अत्यधिक लिप्त रहते हैं, वे भी पाषण्डी कहलाते हैं।" भक्ति-सन्दर्भ में अन्यत्र भी कहा गया है:

उद्दिश्य देवता एव जुहोति च ददाति च ।

स पाषण्डीति विज्ञेयः स्वतन्त्रो वापि कर्मसु ॥

"पाषण्डी वह है, जो देवताओं तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को एक-सा मानता है; अत: पाषण्डी किसी भी देवता को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में पूजता है।" जो अपने गुरु के आदेशों का उल्लंघन करता है, वह भी पाषण्डी माना जाता है। श्रीमद्भागवत में पाषण्डी शब्द अनेक जगह पर आया है, जिनमें ये सम्मिलित हैं : 4.2.28, 30 तथा 32; 5.6.9 तथा 12.2.13 और 3.43।

कुल मिलाकर, पाषण्डी ऐसा अभक्त है, जो वैदिक निर्णयों को नहीं मानता। हरिभक्ति-विलास (1.117) में एक श्लोक पद्मपुराण से उद्धृत है, जिसमें पाषण्डी का वर्णन आया है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक को अगले श्लोक में उद्धृत किया है।

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्म-रुद्रादि-दैवतैः ।

समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेदध्रुवम् ॥ 116 ॥

यः-जो कोई व्यक्ति; तु–किन्तु; नारायणम्-नारायण अर्थात् ब्रह्मा तथा शिव आदि देवताओं के स्वामी; देवम्-भगवान् को; ब्रह्म-ब्रह्माजी; रुद्र-शिवजी; आदि–इत्यादि; दैवतैः–ऐसे देवताओं के साथ; समत्वेन–समान स्तर पर; एव-निस्सन्देह; वीक्षेत-देखता है; सः-ऐसा व्यक्ति; पाषण्डी–नास्तिक, पाखण्डी; भवेत् होता है; ध्रुवम्-निश्चित रूप से।

अनुवाद

"जो व्यक्ति ब्रह्मा तथा शिव जैसे देवताओं को नारायण के समकक्ष मानता है, उसे अपराधी अथवा पाषण्डी माना जाता है।"'

लोक कहे,—तोमाते कभु नहे 'जीव'–मति ।

कृष्णेर सदृश तोमार आकृति-प्रकृति ॥ 117॥

लोक कहे-लोगों ने कहा; तोमाते-आपको; कभु-कभी भी; नहे-नहीं; जीव-मति–एक सामान्य जीव नहीं माने जाते; कृष्णेर सदृश– भगवान् कृष्ण की तरह; तोमार-आपके; आकृति-शारीरिक अंग; प्रकृति-लक्षण।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु सामान्य जीव तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के बीच का अन्तर बतला चुके, तो लोगों ने कहा, "आपको कोई भी व्यक्ति सामान्य मनुष्य नहीं मानता। आप हर तरह से, शारीरिक लक्षणों तथा गुणों से, कृष्ण के तुल्य हैं।

'आकृत्ये' तोमारे देखि 'व्रजेन्द्र-नन्दन' ।

देह-कान्ति पीताम्बर कैल आच्छादन ॥ 118॥

आकृत्ये शारीरिक लक्षणों से; तोमारे-आपको; देखि–हम देखते हैं; व्रजेन्द्र-नन्दन–साक्षात् महाराज नन्द के पुत्र; देह-कान्ति-शरीर की कान्ति; पीत-अम्बर-पीताम्बर; कैल आच्छादन-ढकी हुई है।

अनुवाद

"हम आपके शारीरिक लक्षणों से देखते हैं कि आप नन्द महाराज के पुत्र के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हैं, यद्यपि आपके शरीर की सुनहरी कान्ति ने आपके मूल वर्ण को आच्छादित कर लिया है।

मृग-मद वस्त्रे बान्धे, तबु ना लुकाय ।

'ईश्वर-स्वभाव' तोमार टाका नाहि याय ॥ 119 ॥

मृग-मद-हिरण की कस्तूरी; वस्त्रे-वस्त्र में; बान्धे-बांध ले; तबु–फिर भी; ना-नहीं; लुकाय-छुपती; ईश्वर-स्वभाव-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के लक्षण; तोमार-आपके; टाका नाहि याय-छुपाए नहीं जा सकते।

अनुवाद

"जिस तरह कस्तूरी की महक कपड़े में बाँधने पर भी छिपाए नहीं छिपती, उसी तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में आपके गुणों को किसी भी प्रकार छिपाया नहीं जा सकता।

अलौकिक 'प्रकृति' तोमार—बुद्धि-अगोचर।

तोमा देखि' कृष्ण-प्रेमे जगत्पागल ॥ 120॥

अलौकिक-असाधारण; प्रकृति-लक्षण; तोमार-आपके; बुद्धि-अगोचर-हमारी बुद्धि से परे; तोमा देखि'–आपको देखकर; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम में; जगत्-सारा जगत्; पागल-पागल।

अनुवाद

"निस्सन्देह, आपके गुण असाधारण हैं और सामान्य जीव की कल्पना से परे हैं। आपको देख करके ही सारा ब्रह्माण्ड कृष्ण-प्रेम में पागल हो उठता है।

स्त्री-बाल-वृद्ध, आरचण्डाल' 'यवन'।

येइ तोमार एक-बार पाय दरशन ॥ 121॥

कृष्ण-नाम लय, नाचे हञा उन्मत्त।

आचार्य हइल सेइ, तारिल जगत ॥ 122॥

स्त्री-महिलाएँ; बाल–बच्चे; वृद्ध–वृद्ध पुरुष; आर-और; चण्डाल–चण्डाल; यवन-मांसाहारी; येइ-जो कोई; तोमार-आपका; एक-बार-एक बार; पाय दरशन-दर्शन कर लेता है; कृष्ण-नाम-कृष्ण का

पावन नाम; लय-जपता है; नाचे-नाचता है; हञा उन्मत्त-उन्मत्त होकर; आचार्य हइल-आध्यात्मिक गुरु बन जाता है; सेइ-वह व्यक्ति; तारिल जगत-सारे संसार का उद्धार कर देता है।

अनुवाद

"यहाँ तक कि स्त्रियाँ, बच्चे, बूढ़े व्यक्ति, मांसाहारी या अधम जाति वाले व्यक्ति भी आपका एक बार दर्शन करने से तुरन्त कृष्ण-नाम का कीर्तन करने लगते हैं, पागलों की भाँति नाचते हैं और सारे संसार का उद्धार करने में समर्थ गुरु बन जाते हैं।

दर्शनेर कार्य आछुक, ये तोमार 'नाम' शुने ।

सेइ कृष्ण-प्रेमे मत्त, तारे त्रिभुवने ॥123॥

दर्शनेर कार्य आछुक-आपके दर्शन की बात छोड़ो; ये-जो कोई; तोमार-आपका; नाम-पावन नाम; शुने-सुनता है; सेइ-वह व्यक्ति; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम में; मत्त-पागल; तारे-उद्धार कर देता है; त्रि-भुवने–तीनों भुवनों का।

अनुवाद

"आपके दर्शन के अतिरिक्त जो कोई भी आपका पावन नाम सुनता है, वह कृष्ण-प्रेम में पागल बन जाता है और तीनों लोकों का उद्धार करने में सक्षम हो जाता है।

तोमार नाम शुनि' हय श्वपच 'पावन' ।

अलौकिक शक्ति तोमार ना याय कथन ॥ 124॥

तोमार-आपका; नाम-पावन नाम; शुनि'–सुनकर; हय-हो जाते हैं; श्वपच-कुत्ता खाने वाला, नीच पुरुष; पावन–सन्त पुरुष; अलौकिक-आलौकिक शक्ति-शक्ति; तोमार-आपकी; ना-नहीं; याय कथन-वर्णन की जा सकती।

अनुवाद

“आपका पावन नाम सुनने से ही कुत्ते खाने वाले (चण्डाल) पवित्र सन्त बन जाते हैं। आपकी असाधारण शक्तियों का शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता।

यन्नामधेय-श्रवणानुकीर्तनाद् ।

यत्प्रङ्क्षणाद् यत्स्मरणादपि क्वचित् ।।

श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते

कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥ 125॥

यत्-जिसके; नामधेय-नाम को; श्रवण-सुनने से; अनुकीर्तनात्-और बाद में कीर्तन से; यत्-जिसका; प्रह्वणात्-आदर करने से; यत्-जिसका; स्मरणात्-मात्र स्मरण करने से; अपि-भी; क्वचित्-कभी-कभी; श्व-अदः–एक चण्डाल; अपि-भी; सद्यः-तत्क्षण; सवनायवैदिक यज्ञ करने के लिए; कल्पते योग्य हो जाता है; कुतः–तो उसका क्या कहना; पुनः–दोबारा; ते-आपका; भगवन्-हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; नु–निस्सन्देह; दर्शनात् दर्शन से।

अनुवाद

“परम भगवान् का साक्षात्कार करने वाले लोगों की आध्यात्मिक प्रगति की बात छोड़ दें, चण्डाल के परिवार में जन्मा व्यक्ति भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के नाम का एक बार भी उच्चारण करता है या उनका कीर्तन करता है, उनकी लीलाओं के विषय में सुनता है, उन्हें नमस्कार करता है या उनका स्मरण करता है, तो वह तुरन्त वैदिक यज्ञ करने का पात्र बन जाता है।’

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.33.6) का है। इसकी व्याख्या के लिए मध्य लीला, अध्याय 16, श्लोक 186 देखिए।

एइत' महिमा—तोमार 'तटस्थ'-लक्षण ।

'स्वरूप'-लक्षणे तुमि—'व्रजेन्द्र-नन्दन' ॥126॥

एइत'-ये सब; महिमा-महिमाएँ; तोमार-आपके; तटस्थ-लक्षण-तटस्थ लक्षण; स्वरूप-मूल; लक्षणे लक्षणों से; तुमि-आप; व्रजेन्द्र-नन्दन–महाराज नन्द के पुत्र।

अनुवाद

"आपकी ये महिमाएँ केवल तटस्थ लक्षण हैं। मूलतः आप महाराज नन्द के पुत्र हैं।"

तात्पर्य

किसी वस्तु के मूल लक्षण स्वरूप कहलाते हैं और गौण लक्षणों को तटस्थ-लक्षण कहते हैं। भगवान् के तटस्थ लक्षणों की महिमाएँ उन्हें आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, महाराज नन्द का पुत्र, सिद्ध करती हैं। इसे समझ लेने वाला श्री चैतन्य महाप्रभु को भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में स्वीकार कर लेता है।

सेइ सब लोके प्रभु प्रसाद करिल ।

कृष्ण-प्रेमे मत्त लोक निज-घरे गेल ॥127॥

सेइ सब लोके–इन सब लोगों को प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रसाद करिल-अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान की; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम में; मत्त-पागल होकर; लोक-लोग; निज-घरे गेल-अपने अपने घरों को लौट गये।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने वहाँ पर उपस्थित सभी लोगों को अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान की और हर व्यक्ति भगवत्प्रेम से मत्त हो उठा। अन्त में वे सब अपने-अपने घर चले गये।

एइ-मत कत-दिन 'अक्रूरे' रहिला ।

कृष्ण-नाम-प्रेम दिया लोक निस्तारिला ॥128॥

एइ-मत-इस प्रकार; कत-दिन-कुछ दिन; अक्रूरे रहिला-अक्रूर तीर्थ में रहे। कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम; प्रेम-प्रेम; दिया–वितरण करके; लोक-लोगों का; निस्तारिला-उद्धार किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कुछ दिनों तक अक्रूर तीर्थ में रहे। उन्होंने वहाँ कृष्ण-नाम तथा भगवत्प्रेम का वितरण करके हर एक का उद्धार किया।

माधव-पुरीर शिष्य सेइत ब्राह्मण ।

मथुरार घरे-घरे करा'न निमन्त्रण ॥129॥

माधव-पुरीर-माधवेन्द्र पुरी का; शिष्य-शिष्य; सेइत-वह; ब्राह्मण-ब्राह्मण मथुरार-मथुरा नगर के; घरे-घरे–घर घर जाकर; करा'न–करवाया; निमन्त्रण-निमन्त्रण।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी के ब्राह्मण शिष्य ने मथुरा में घर-घर जाकर अन्य ब्राह्मणों को प्रोत्साहित किया कि श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घरों में आमंत्रित करें।

मथुरार यत लोक ब्राह्मण सज्जन ।

भट्टाचार्य-स्थाने आसि' करे निमन्त्रण ॥ 130॥

मथुरार-मथुरा के; यत-सभी; लोक-लोग; ब्राह्मण सत्-जन-सज्जन पुरुष और ब्राह्मण; भट्टाचार्य-स्थाने-बलभद्र भट्टाचार्य के पास; आसि-आकर; करे निमन्त्रण-निमन्त्रण देने लगे।

अनुवाद

अतः मथुरा के सारे सम्मानित व्यक्ति, जिनमें ब्राह्मण अग्रणी थे, बलभद्र भट्टाचार्य के पास आये और महाप्रभु के लिए निमन्त्रण दिया।

एक-दिन 'दश' 'बिश' आइसे निमन्त्रण ।

भट्टाचार्य एकेर मात्र करेन ग्रहण ॥ 131॥

एक-दिन-एक दिन में; दश बिश-दस बीस; आइसे–आये; निमन्त्रण-निमन्त्रण; भट्टाचार्य-बलभद्र भट्टाचार्य; एकेर–उनमें से एक को; मात्र–मात्र; करेन ग्रहण-स्वीकार किया।

अनुवाद

प्रतिदिन दस से बीस निमन्त्रण प्राप्त होते, किन्तु बलभद्र भट्टाचार्य उनमें से केवल एक को स्वीकार करते।

अवसर ना पाय लोक निमन्त्रण दिते ।

सेइ विप्रे साधे लोक निमन्त्रण निते ॥ 132॥

अवसर ना पाय-अवसर न पाया; लोक-लोगों ने; निमन्त्रण दिते-निमन्त्रण देने का; सेइ विप्रे-उस ब्राह्मण को; साधे-अनुरोध किया; लोक-लोगों ने; निमन्त्रण निते-निमन्त्रण स्वीकार करने का।

अनुवाद

चूँकि हर एक को श्री चैतन्य महाप्रभु को आमन्त्रित करने का अवसर नहीं मिला, अतएव उन्होंने सनोड़िया ब्राह्मण से प्रार्थना की कि वे महाप्रभु से उनका निमन्त्रण स्वीकार करने के लिए कहें।

कान्यकुब्ज-दाक्षिणात्येर वैदिक ब्राह्मण ।

दैन्य करि, करे महाप्रभुर निमन्त्रण ॥ 133 ॥

कान्यकुब्ज–कान्यकुब्ज के ब्राह्मण; दाक्षिणात्येर–दक्षिण भारत के कुछ ब्राह्मण; वैदिक-वैदिक धर्म के अनुयायी; ब्राह्मण-ब्राह्मण; दैन्य करि–अति विनम्रता से; करे-किया; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण-निमन्त्रण।

अनुवाद

कान्यकुब्ज तथा दक्षिण भारत जैसे विभिन्न स्थानों के ब्राह्मणों ने, जो वैदिक धर्म के पक्के अनुयायी थे, परम दैन्य भाव से श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रण दिया।

प्रातः-काले अक्रूरे आसि' रन्धन करिया ।

प्रभुरे भिक्षा देन शालग्रामे समर्पिया ॥ 134॥

प्रातः काले-प्रात:काल; अक्रूरे-अक्रूर तीर्थ में; आसि-आकर; रन्धन करिया-भोजन पकाया; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; भिक्षा देन–भोजन दिया; शालग्रामे समर्पया–शालग्राम शिला को भोग लगाने के बाद।

अनुवाद

प्रात:काल वे अक्रूर तीर्थ आते और भोजन पकाते थे। फिर इसे शालग्राम शिला को अर्पित करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु को देते।

तात्पर्य

पञ्चगौड़ ब्राह्मण उत्तरी भारत के पाँच स्थानों से सम्बन्धित हैं। पञ्चदाक्षिणात्य ब्राह्मण भी होते हैं, जो दक्षिण भारत के पाँच स्थानों से सम्बन्धित होते हैं। उत्तर भारत के स्थान हैं—कान्यकुब्ज, सारस्वत, गौड़, मैथिल तथा उत्कल। दक्षिण भारत में ये स्थान हैं—आन्ध्र, कर्नाटक, गुजरात, द्राविड़ और महाराष्ट्र। इन स्थानों के ब्राह्मण वैदिक नियमों के अत्यन्त पक्के अनुयायी होते हैं और उन्हें शुद्ध ब्राह्मण माना जाता है। ये वैदिक नियमों का दृढ़ता से पालन करते हैं और तान्त्रिक कुकृत्यों से कलुषित नहीं होते। इन सारे ब्राह्मणों ने महाप्रभु को बड़े ही आदर के साथ भोजन के लिए आमन्त्रित किया।

एक-दिन सेइ अक्रूर-घाटेर उपरे ।

वसि' महाप्रभु किछु करेन विचारे ॥ 135॥

एक-दिन-एक बार; सेइ-उसी; अक्रूर-घाटेर-अक्रूर स्नान घाट के; उपरे-ऊपर; वसि'–बैठकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; किछु-कुछ; करेन-किया; विचारे-विचार।

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु अक्रूर-तीर्थ के स्नानघाट पर बैठ गये और इस तरह सोचने लगे।

तात्पर्य

अक्रूर-तीर्थ मथुरा तथा वृन्दावन के बीच की सड़क पर स्थित है। जब कृष्ण तथा बलराम को अक्रूर मथुरा ले जा रहे थे, तब भगवान् ने इस स्थान पर विश्राम किया था और यमुना नदी में स्नान किया था। जब कृष्ण तथा बलराम यमुना में स्नान कर रहे थे, तब अक्रूर को जल के भीतर पूरा वैकुण्ठ लोक दिखा। वृन्दावन के निवासियों को भी जल के भीतर वैकुण्ठ लोक दिखा।

एइ घाटे अक्रूर वैकुण्ठ देखिल ।

व्रजवासी लोक 'गोलोक' दर्शन कैल ॥ 136 ॥

एइ घाटे-इस घाट पर; अक्रूर-अक्रूर ने; वैकुण्ठ देखिल-वैकुण्ठ (आध्यात्मिक जगत्) देखा; व्रजवासी लोक-वृन्दावन के निवासियों ने; गोलोक दर्शन कैल-गोलोक वृन्दावन देखा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सोचा, "इस घाट पर अक्रूर को वैकुण्ठ लोक दिखा था और सारे व्रजवासियों ने गोलोक वृन्दावन देखा था।"

एत बलि' झाँप दिला जलेर उपरे ।

डुबिया रहिला प्रभु जलेर भितरे ॥ 137॥

एत बलि'-यह कहकर; झाँप दिला-कूद पड़े; जलेर उपरे–जल में; डुबिया-निमग्न; रहिला-रहे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जलेर भितरे-जल के भीतर।

अनुवाद

यह सोचते हुए कि अक्रूर किस तरह जल के भीतर रहे, श्री चैतन्य महाप्रभु तुरन्त जल में कूद पड़े और कुछ समय तक जल के भीतर रहे।

देखि' कृष्णदास कान्दि' फुकार करिल ।

भट्टाचार्य शीघ्र आसि' प्रभुरे उठाइल ॥ 138॥

देखि'–देखकर; कृष्णदास-कृष्णदास; कान्दि'-रोने लगा; फुकार करिल-जोर जोर से पुकारने लगा; भट्टाचार्य-बलभद्र भट्टाचार्य; शीघ्र-शीघ्र; आसि-आकर; प्रभुरे उठाइल-श्री चैतन्य महाप्रभु को उठाकर बाहर निकाला।

अनुवाद

जब कृष्णदास ने देखा कि चैतन्य महाप्रभु डूब रहे हैं, तो वह खूब जोर से चिल्लाया। तुरन्त ही बलभद्र भट्टाचार्य ने आकर महाप्रभु को जल से बाहर खींचा।

तबे भट्टाचार्य सेइ ब्राह्मणे लञा ।

युक्ति करिला किछु निभृते वसिया ॥139॥

तबे-तब; भट्टाचार्य–भट्टाचार्य; सेइ ब्राह्मणे-सनोड़िया ब्राह्मण को लेकर; लञा-लेकर; युक्ति करिला-विचार विमर्श किया; किछु-कुछ; निभृते वसिया-एकान्त में बैठकर।

अनुवाद

इसके बाद बलभद्र भट्टाचार्य सनोड़िया ब्राह्मण को एकान्त स्थान में ले गया और उससे विचार-विमर्श किया।

आजि आमि आछिलाङ उठाइलुँ प्रभुरे ।

वृन्दावने डुबेन यदि, के उठाबे ताँरे? ॥140॥

आजि-आज; आमि-मैं; आछिलाङ–उपस्थित था; उठाइलुँ-उठा लिया (बाहर निकाल लिया); प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; वृन्दावने-वृन्दावन में; डुबेन यदि यदि डूब जाते; के उठाबे ताँरे-तो उन्हें कौन उठाता (बाहर निकालता)।

अनुवाद

बलभद्र भट्टाचार्य ने कहा, "चूँकि मैं आज उपस्थित था, इसलिए महाप्रभु को ऊपर खींच पाना मेरे लिए सम्भव हो सका। किन्तु यदि वे वृन्दावन में डूबने लगें, तो कौन उनकी सहायता करेगा?

लोकेर सङ्घट्ट, आर निमन्त्रणेर जञ्जाल ।

निरन्तर आवेश प्रभुर ना देखिये भाल ॥141॥

लोकेर सङ्घट्ट-लोगों की भीड़; आर-और; निमन्त्रणेर जञ्जाल-निमन्त्रणों की परेशानी; निरन्तर लगातार; आवेश-प्रेमावेश; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; ना देखिये भाल–इसमें मुझे कोई अच्छी बात दिखाई नहीं देती।

अनुवाद

अब यहाँ पर लोगों की भीड़ होने लगी है और इन निमन्त्रणों से बहुत परेशानी होती है। साथ ही, महाप्रभु सदैव भावावेश में रहते हैं। मुझे यहाँ की स्थिति बहुत अच्छी नहीं लगती।

वृन्दावन हैते यदि प्रभुरे काड़िये ।

तबे मङ्गल हय,—एइ भाल युक्ति हये ॥142॥

वृन्दावन हैते–वृन्दावन से; यदि-यदि; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; काड़िये- मैं दूर ले जाऊँ; तबे-तब; मङ्गल हय-यह शुभ बात होगी; एइ–यह; भाल-अच्छी; युक्ति-योजना; हये-है।

अनुवाद

“अच्छा यही होगा, यदि हम श्री चैतन्य महाप्रभु को वृन्दावन से बाहर ले चलें । यही मेरा अन्तिम निर्णय है।”

विप्र कहे,—प्रयागे प्रभु लञा याइ ।

गङ्गा-तीर-पथे याइ, तबे सुख पाइ ॥ 143 ॥

विप्र कहे-ब्राह्मण ने कहा, प्रयागे-प्रयाग को; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा-लेकर; याइ-चलें; गङ्गा-तीर-पथे-गंगा के तट पर; याइ-चलें; तबे-तब; सुख पाइ-हमें हर्ष होगा।

अनुवाद

सनोडिया ब्राह्मण ने कहा, "चलो, हम उन्हें प्रयाग ले चलें और गंगा के किनारे-किनारे चलें। उस मार्ग से होकर जाना बहुत ही आनन्दप्रद होगा।

'सोरो-क्षेत्रे, आगे याञा करि' गङ्गा-स्नान ।

सेइ पथे प्रभु लञा करिये पयान ॥ 144॥

सोरो-क्षेत्रे सोरो क्षेत्र नामक पावन स्थान को; आगे-आगे; याञा-जाकर; करि' गङ्गा-स्नान-गंगा स्नान करने के बाद; सेइ पथे-उस रास्ते पर; प्रभु लञा-श्री चैतन्य महाप्रभु को लेकर; करिये पयान–चलें।

अनुवाद

"सोरोक्षेत्र नामक तीर्थस्थान जाकर तथा गंगास्नान करके हम श्री चैतन्य महाप्रभु को उसी मार्ग से होकर ले चलें।

माघ-मास लागिल, एबे यदि याइये ।

मकरे प्रयाग-स्नान कत दिन पाइये ॥145॥

माघ-मास लागल-माघ मास आरम्भ हो गया है; एबे–अब; यदि-यदि; याइये-हम जाएँ; मकरे-मकर संक्रान्ति के दौरान; प्रयाग-स्नान-प्रयाग स्नान; कत दिन-कुछ दिनों के लिए; पाइये-हमें मिलेगा।

अनुवाद

"अब माघ मास लग रहा है। यदि हम इस समय प्रयाग जाएँ, तो हमें मकर संक्रान्ति के अवसर पर कुछ दिन स्नान करने का अवसर मिल जायेगा।"

तात्पर्य

आज भी माघ मेला में माघ मास में स्नान किया जाता है। यह अनन्त काल से चला आने वाला अत्यन्त प्राचीन मेला है। कहा जाता है कि जब से भगवान् ने मोहिनी के रूप में अमृत का एक कलश लाकर प्रयाग में रख दिया, तब से वहाँ माघ मेला मनाया जाता रहा है और वहाँ प्रतिवर्ष धार्मिक लोगों का मेला लगता है। हर बारहवें वर्ष कुम्भ मेला लगता है, जिस अवसर पर भारत-भर के पवित्र लोग वहाँ एकत्र होते हैं। यह ब्राह्मण माघ मेला का लाभ उठाकर वहाँ स्नान करना चाहता था।

गंगा तथा यमुना के संगम में किले के निकट इलाहाबाद, प्रयाग में स्नान करने का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है :

माघे मासि गमिष्यन्ति गङ्गायमुनासङ्गमम् ।

गवां शतसहस्रस्य सम्यग् दत्तं च यत्फलम् ।

प्रयागे माघमासे वै त्र्यहं स्नातस्य तत्फलम् ॥

"यदि कोई प्रयाग जाकर गंगा तथा यमुना के संगम में माघ मास में स्नान करता है, तो उसे लाखों गौएँ दान देने का फल प्राप्त होता है। केवल तीन दिन स्नान करने से उसे ऐसे पुण्यकर्म का फल प्राप्त होता है। इसी कारण से सनोड़िया ब्राह्मण प्रयाग जाने और वहाँ स्नान करने के लिए अत्यन्त उत्सुक था। सामान्यतया कर्मीजन माघ-मास में वहाँ स्नान करने का लाभ उठाते हैं, क्योंकि उनका विचार है कि भविष्य में उन्हें फल मिलेगा। जो भक्तिमय सेवा में लगे हुए हैं, वे इस कर्मकाण्डीय विधि का दृढ़ता से पालन नहीं करते।

आपनार दुःख किछु करि' निवेदन ।

'मकर-पँचसि प्रयागे' करिह सूचन ॥146॥

आपना-अपना; दुःख-दुःख; किछु-कुछ; करि'-करके; निवेदन–निवेदन: मकर-पँचसि–माघ मास की पूर्णमासी; प्रयागे-प्रयाग को; करिह सूचन-कृपया सूचित करें।

अनुवाद

सनोड़िया ब्राह्मण ने आगे कहा, "तुम अपने मन के भीतर जिस दुःख का अनुभव कर रहे हो, उसे चैतन्य महाप्रभु के सामने निवेदन करो। तब यह प्रस्ताव रखो कि हम माघ मास की पूर्णिमा को प्रयाग जाना चाहते हैं।

गङ्गा-तीर-पथे सुख जानाइह तांरे ।

भट्टाचार्य आसि' तबे कहिल प्रभुरे ॥147॥

गङ्गा-तीर-गंगा के तट पर; पथे–पथ पर; सुख-सुख; जानाइह-कृपया बताएँ; तांरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; भट्टाचार्य–बलभद्र भट्टाचार्य ने; आसि'-आकर; तबे-तत्पश्चात्; कहिल प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को सूचित किया।

अनुवाद

"तुम महाप्रभु से जाकर उस सुख को बतलाओ, जो तुम गंगा नदी के किनारे-किनारे यात्रा करने में अनुभव करोगे।" अतः बलभद्र भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से यह प्रार्थना निवेदित की।

"सहिते ना पारि आमि लोकेर गड़बड़ि ।

निमन्त्रण लागि' लोक करे हुड़ाहुड़ि ॥148 ॥

सहिते ना पारि-सहन नहीं कर सकता; आमि-मैं; लोकेर-लोगों की; गड़बडि-गड़बड़ी; निमन्त्रण-निमन्त्रण देने; लागि'–के लिए; लोक-लोग; करे-करते हैं; हुड़ाहुड़ि-जल्दी।

अनुवाद

बलभद्र भट्टाचार्य ने महाप्रभु से बतलाया, "मैं अब भीड़ द्वारा किये जाने वाले उपद्रव को और नहीं सह सकता। लोग एक के बाद एक निमन्त्रण देने के लिए चले आते हैं।

प्रातःकाले आइसे लोक, तोमारे ना पाय।

तोमारे ना पाञा लोक मोर माथा खाय ॥149॥

प्रातः-काले–प्रातः काल; आइसे-आते हैं; लोक-लोग; तोमारे-आपको; ना पाय-नहीं देख सकते; तोमारे ना पाञा-आप नहीं मिलते; लोक-लोग; मोर माथा खाय-मेरा सिर खाते हैं, मुझे तंग करते हैं।

अनुवाद

"प्रातःकाल लोग यहाँ आते हैं और आपको उपस्थित न देखकर मेरा सिर खाते हैं।

तबे सुख हय यबे गङ्गा-पथे याइये।

एबे यदि याइ, 'मकरे' गङ्गा-स्नान पाइये ॥150॥

तबे-तब; सुख हय–मुझे बहुत हर्ष होगा; यबे-जब; गङ्गा-पथे-गंगा के पथ पर; याइये-हम जाएँ; एबे यदि साइ–यदि हम अभी जाएँ; मकरे-मकर संक्रान्ति के दौरान; गङ्गा-स्नान पाइये-हम गंगा में स्नान कर सकते हैं।

अनुवाद

"मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि हम सभी गंगा नदी के किनारे के मार्ग से यात्रा करें। तब हमें मकर संक्रान्ति के अवसर पर प्रयाग में स्नान करने का अवसर प्राप्त हो सकता है।

तात्पर्य

माघ मेला के अवसर पर गंगा में स्नान करने के दो बड़े अवसर होते हैं। एक तो माघ मास की अमावस्या और दूसरा पूर्णिमा।

उद्विग्न हइल प्राण, सहिते ना पारि ।

प्रभुर ये आज्ञा हय, सेइ शिरे धरि" ॥ 151॥

उद्विग्न–विचलित; हइल-हो गया है; प्राण-मेरा मन; सहिते-सहन करने में; ना पारि-मैं समर्थ नहीं हूँ; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; ये–जो; आज्ञा-आज्ञा; हय-हो; सेइ शिरे धरि-वह मैं सिर पर धारण करता हूँ।

अनुवाद

"मेरा मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठा है और मैं इस चिन्ता को सह नहीं सकता। अब तो आपकी अनुमति पर ही सब निर्भर करता है। आप जो करना चाहें वह मुझे स्वीकार्य होगा।"

यद्यपि वृन्दावन-त्यागे नाहि प्रभुर मन ।

भक्त-इच्छा पूरिते कहे मधुर वचन ॥ 152॥

यद्यपि-यद्यपि; वृन्दावन-त्यागे-वृन्दावन को छोड़ने की; नाहि प्रभुर मन–महाप्रभु की इच्छा नहीं थी; भक्त-भक्त की; इच्छा-इच्छा; पूरिते-पूरी करने के लिए; कहे-कहे; मधुर वचन–मधुर वचन।

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा नहीं थी कि वृन्दावन छोड़े, किन्तु अपने भक्त की इच्छा पूरी करने के लिए वे मीठे बचन बोले।

"तुमि आमाय आनि' देखाइला वृन्दावन ।

एइ 'ऋण' आमि नारिब करिते शोधन ॥ 153 ॥

तुमि-तुमने; आमाय-मुझे; आनि'–लाकर; देखाइला–दिखाया; वृन्दावन-वृन्दावन नामक पावन स्थान; एइ ऋण-यह ऋण; आमि नारिब–मैं नहीं कर सकेंगा; करिते शोधन-लौटाना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "तुम मुझे यहाँ वृन्दावन दिखलाने के लिए लाये हो। इसके लिए मैं तुम्हारा अत्यधिक ऋणी हूँ और मैं इस ऋण को चुका सकने में समर्थ नहीं हो सकेंगा।

ये तोमार इच्छा, आमि सेइत करिब ।

याहाँ लञा याह तुमि, ताहाञि याइब" ॥154॥

ये तोमार इच्छा-तुम्हारी जो इच्छा हो; आमि-मैं; सेइत करिब–वैसा अवश्य करूँगा; याहाँ–जहाँ कहीं; लञा याह-ले जाओगे; तुमि-तुम; ताहाञि याइब-मैं वहाँ जाऊँगा।

अनुवाद

"जो तुम्हारी इच्छा है, वही मैं करूँगा। तुम मुझे जहाँ भी ले जाओगे, वहीं जाऊँगा।"

प्रातः-काले महाप्रभु प्रातः-स्नान कैल ।

'वृन्दावन छाड़िब' जानि' प्रेमावेश हैल ॥ 155॥

प्रातःकाले–प्रातः काल; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रातः-स्नान कैल-स्नान किया; वृन्दावन छाड़िब–मुझे वृन्दावन छोड़ना पड़ेगा; जानि'–जानकर; प्रेम-आवेश हैल-प्रेमावेश में आ गये।

अनुवाद

अगले दिन श्री चैतन्य महाप्रभु जल्दी उठ गये। स्नान करने के बाद यह जानकर कि अब उन्हें वृन्दावन छोड़ना है, वे भावाविष्ट हो गये।

बाह्य विकार नाहि, प्रेमाविष्ट मन ।

भट्टाचार्य कहे,—चल, याइ महावन ॥ 156 ॥

बाह्य-बाहरी; विकार-लक्षण; नाहि-नहीं थे; प्रेम-आविष्ट मन-मन प्रेमावेश में आ गया; भट्टाचार्य कहे-भट्टाचार्य ने कहा; चल-चलें; याइ महावन–महावन में चलें।

अनुवाद

यद्यपि महाप्रभु के शरीर में बाह्य लक्षण प्रकट नहीं हुए, किन्तु उनका मन प्रेमाविष्ट था। उस समय बलभद्र भट्टाचार्य ने कहा, "चलिए महावन (गोकुल) चलें।"

एत बलि' महाप्रभुरे नौकाय वसाञा ।

पार करि' भट्टाचार्य चलिला लञा ॥ 157॥

एत बलि'-इतना कहकर; महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; नौकाय-नौका पर; वसाञा-बैठाकर; पार करि'-नदी पार करके; भट्टाचार्य-बलभद्र भट्टाचार्य; चलिला-चला गया; लञा–लेकर।

अनुवाद

यह कहकर बलभद्र भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु को नौका में चढ़ाया और नदी पार करने के बाद वह महाप्रभु को अपने साथ ले गया।

प्रेमी कृष्णदास, आर सेइत ब्राह्मण ।

गङ्गा-तीर-पथे याइबार विज्ञ दुइ-जन ॥ 158॥

प्रेमी कृष्णदास-राजपूत भक्त कृष्णदास; आर-और; सेइत ब्राह्मण-वह सनोड़िया ब्राह्मण; गङ्गा-तीर-पथे-गंगा तट से मार्ग पर; याइबार-जाने का; विज्ञ-अनुभवी; दुइ-जन-दोनों व्यक्ति।

अनुवाद

राजपूत कृष्णदास तथा सनोड़िया ब्राह्मण दोनों ही गंगा नदी के किनारे के रास्ते से भलीभाँति परिचित थे।

याइते एक वृक्ष-तले प्रभु सबा लञा ।

वसिला, सबार पथ-श्रान्ति देखिया ॥ 159॥

याइते-जाते समय; एक-एक; वृक्ष-तले वृक्ष के नीचे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सबा लञा-उन सबको लेकर; वसिला-बैठ गये; सबार-उन सबका; पथ-श्रान्ति-चलने की थकान; देखिया-समझकर।

अनुवाद

जाते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु समझ गये कि अन्य लोग थक गये हैं, अतः वे सबको एक वृक्ष के तले ले गये और बैठ गये।

सेइ वृक्ष-निकटे चरे बहु गाभी-गण ।

ताहा देखि' महाप्रभुर उल्लसित मन ॥ 160॥

सेइ-उस; वृक्ष-निकटे-वृक्ष के निकट; चरे–चर रही थी; बहु-अनेक; गाभी-गण-गाएँ; ताहा-वह; देखि'–देखकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; उल्लसित मन–मन बहुत आनन्दित हो गया।

अनुवाद

उस वृक्ष के पास बहुत-सी गाएँ चर रही थीं और महाप्रभु उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

आचम्बिते एक गोप वंशी बाजाइल ।

शुनि' महाप्रभुर महा-प्रेमावेश हैल ॥ 161॥

आचम्बिते-अचानक; एक गोप–एक ग्वाला; वंशी-वंशी; बाजाइल-बजाने लगा; शुनि'–सुनकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; महा-प्रेम-आवेश-अत्यन्त प्रेम में आवेश; हैल-हो गया।

अनुवाद

सहसा एक ग्वाले ने अपनी वंशी बजाई, तो महाप्रभु तुरन्त प्रेमाविष्ट हो गये।

अचेतन हञा प्रभु भूमिते पड़िला ।

मुखे फेना पड़े, नासाय श्वास रुद्ध हैला ॥ 162 ॥

अचेतन-अचेत; हञा–होकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भूमिते पड़िला-भूमि पर गिर गये; मुखे-मुख से; फेना पड़े-फेन (झाग) निकलने लगा; नासाय-नासिकाओं में; श्वास–सांस; रुद्ध हैला-बन्द हो गया।

अनुवाद

भावाविष्ट होने से महाप्रभु अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े। उनके मुख से फेन निकलने लगा और उनकी श्वास रुक गई।

हेन-काले ताहाँ आशयार दश आइला ।

म्लेच्छ-पाठान घोड़ा हैते उत्तरिला ॥ 163 ॥

हेन-काले-ठीक उस समय; ताहाँ-वहाँ; आशयार-सिपाही; दश–दस; आइला-आये; म्लेच्छ-मुस्लिम; पाठान-पठान; घोड़ा-घोड़ों; हैते–से; उत्तरिला-नीचे उतरे।

अनुवाद

जब महाप्रभु बेहोश थे, तब वहाँ दस अश्वारोही सिपाही, जो मुसलमान पठान सैनिक थे, आये और घोड़े से उतरे।

प्रभुरे देखिया म्लेच्छ करये विचार ।

एइ यति-पाश छिल सुवर्ण अपार ॥ 164॥

प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; देखिया-देखकर; म्लेच्छ-मुस्लिमों ने; करये विचार-विचार किया; एइ यति-पाश-इस संन्यासी के कब्जे में; छिल-था; सुवर्ण अपार-अपार स्वर्ण।

अनुवाद

महाप्रभु को बेहोश देखकर सिपाहियों ने सोचा, "इस संन्यासी के पास अवश्य ही काफी मात्रा में सोना होगा।

एइ चारि बाटोयार धुतुरा खाओयाञा ।

मारि' डारियाछे, यतिर सब धन लञा ॥ 165 ॥

एइ-ये; चारि-चार; बाटोयार-बदमाश; धुतुरा-धतूरा विष; खाओयाञा-खिलाकर; मारि' डारियाछे-मार दिया; यतिर–संन्यासी का; सब-सब; धन-धन; लञा ले लिया।

अनुवाद

"इन चारों धूर्तों ने धतूरा खिलाकर मारने के बाद अवश्य ही इस संन्यासी का धन ले लिया होगा।"

तबे सेइ पाठान चारि-जनेरे बाँधिल ।

काटिते चाहे, गौड़िया सब काँपिते लागिल ॥ 166॥

तबे-तब; सेइ पाठान-पठान सिपाहियों ने; चारि-जनेरे-चार व्यक्तियों को; बाँधिल-कैद कर लिया; काटिते चाहे-उनको मारना चाहा; गौड़िया-बंगाली; सब-सब; काँपिते लागिल-काँपने लगे।

अनुवाद

यह सोचकर पठान सैनिकों ने उन चारों जनों को बन्दी बना लिया और उनको मार डालने का निश्चय किया। इसके कारण दोनों बंगाली काँपने लगे।

तात्पर्य

चार व्यक्ति थे-बलभद्र भट्टाचार्य, उनका सहायक ब्राह्मण, राजपूत कृष्णदास तथा माधवेन्द्र पुरी का भक्त सनोड़िया ब्राह्मण।

कृष्णदास–राजपुत, निर्भय से बड़ ।

सेइ विप्र—निर्भय, से—मुखे बड़ दड़ ॥ 167॥

कृष्णदास-कृष्णदास; राजपुत–राजपूत; निर्भय–निडर; से—वह; बड़-बड़ा; सेइ विप्र-वह सनोड़िया ब्राह्मण भी; निर्भय-निडर; से-वह; मुखे-मुख में; बड़ दड़बड़ा वीर।

अनुवाद

भक्त कृष्णदास राजपूत जाति का था और बहुत निडर था। सनोड़िया ब्राह्मण भी निडर था, अतः वह बड़ी बहादुरी से बोला।

विप्र कहे,—पाठान, तोमार पात्सार दोहाइ ।

चल तुमि आमि सिक्दार-पाश याइ ॥ 168॥

विप्र कहे-ब्राह्मण ने कहा; पाठान-तुम पठान सिपाही; तोमार-तुम्हारे; पात्सार-राजा के; दोहाइ–संरक्षण में; चल-चलें; तुमि-तुम; आमि-हम; सिक्दार-पाश-सेनापति के पास; याइ–चलें।

अनुवाद

ब्राह्मण ने कहा, "तुम पाठान सिपाही अपने राजा के संरक्षण में हो। चलो हम तुम्हारे अधिकारी के पास चलते हैं और उनका निर्णय लेते हैं।

एइ यति–आमार गुरु, आमि–माथुर ब्राह्मण।

पात्सार आगे आछे मोर 'शत जन' ॥ 169॥

एइ यति-यह संन्यासी; आमार गुरु-मेरा गुरु; आमि-मैं; माथुर ब्राह्मण-मथुरा का एक ब्राह्मण; पात्सार आगे-मुस्लिम बादशाह की सेवा में; आछे-हैं; मोर-मेरे; शत जन–एक सौ लोग।

अनुवाद

"यह संन्यासी मेरे गुरु हैं और मैं मथुरा से आया हूँ। मैं ब्राह्मण हूँ और मैं ऐसे सैकड़ों व्यक्तियों को जानता हूँ, जो मुसलमान राजा की नौकरी में हैं।

एइ यति व्याधिते कभु हयेन मूर्च्छित।

अबँहि चेतन पाइबे, हडबे सम्वित ॥ 170॥

एइ यति-यह संन्यासी; व्याधिते-रोग से प्रभावित; कभु-कभी-कभी; हयेन मूर्च्छित–अचेतन हो जाते हैं; अबँहि-अति शीघ्र; चेतन-चेतन; पाइबे हो जायेंगे; हडले सम्वित-होश में आ जायेंगे।

अनुवाद

"ये संन्यासी रोग के कारण कभी-कभी बेहोश हो जाते हैं। कृपया बैठ जाएँ और आप देखेंगे कि शीघ्र ही उन्हें चेतना आ जायेगी और वे सामान्य हो जायेंगे।

क्षणेक इहाँ वैस, बान्थि' राखह सबारे।

इँहाके पुछिया, तबे मारिह सबारे ॥ 171॥

क्षणेक-कुछ समय के लिए; इहाँ वैस–यहाँ बैठो; बान्धि'–कैद में; राखह-रखो: सबारे–हम सबको; इँहाके पुछिया-उनको पूछने के बाद; तबे-तब; मारिह सबारे-तुम हम सबको मार सकते हो।

अनुवाद

“आप थोड़ी देर बैठे रहें और हम सबको बन्दी बनाये रखें। जब इन संन्यासी को होश आ जाए, तब आप इनसे पूछे। तब यदि आप चाहें तो हम सबको मार सकते हैं।”

पाठान कहे,—तुमि पश्चिमा माथुर दुइ-जन ।

‘गौड़िया’ ठक् एइ काँपे दुइ-जन ॥ 172॥

पाठान कहे-सिपाहियों ने कहा; तुमि-तुम; पश्चिमा-पश्चिमी भारतीय माथुर-मथुरा जिले में रहने वाले; दुइ-जन-तुमको; गौड़िया-बंगाली; ठक्-ठग; एइ-ये; काँपे–काँप रहे हैं; दुइ-जन-दो व्यक्ति।

अनुवाद

पठान सिपाहियों ने कहा, “तुम सभी धूर्त हो। तुम में से एक पश्चिम से है, एक मथुरा जिले से है और अन्य दो, जो काँप रहे हैं, बंगाल के हैं।”

कृष्णदास कहे,—आमार घर एइ ग्रामे ।

दुइ-शत तुर्की आछे, शतेक कामाने ॥ 173॥

कृष्णदास कहे-राजपूत कृष्णदास ने कहा; आमार घर–मेरा घर; एइ ग्रामे-इस गाँव में है; दुइ-शत तुर्की–200 तुर्की सिपाही; आछे-मेरे पास हैं; शतेक कामाने-एक सौ के लगभग तोपें।

अनुवाद

राजपूत कृष्णदास ने कहा, “मेरा घर यहीं है और मेरे पास लगभग दो सौ तुर्की सिपाही तथा एक सौ तोपें हैं।

एखनि आसिबे सब, आमि यदि फुकारि ।

घोड़ा-पिड़ा लुटि’ लबे तोमा-सबा मारि’ ॥ 174॥

एखनि–तत्क्षण; आसिबे सब–वे सब आ जायेंगे; आमि-मैं; यदि-यदि; फु-कारि-जोर से पुकारूं; घोड़ा-पिड़ा-घोड़े और उनकी काठियाँ; लुटि'-लूटकर; लबे-ले लेंगे; तोमा-सबा मारि'-तुम सबको मार देने के बाद।

अनुवाद

"यदि मैं पुकारूँ, तो वे तुरन्त आकर तुम्हारा वध कर देंगे और तुम्हारे घोड़े तथा काठी लूट लेंगे।

गौड़िया—'बाटपाड़' नहे, तुमि—'बाटपाड़' ।

तीर्थ-वासी लुठ', आर चाह' मारिबार ॥ 175 ॥

गौड़िया-बंगाली यात्री; बाटपाड़ नहे-लुटेरे नहीं हैं; तुमि-तुम; बाटपाड़-लुटेरे; तीर्थ-वासी–तीर्थयात्रियों को लुठ'-तुम लूटते हो; आर-और; चाह'तुम चाहते हो; मारिबार उन्हें मारना।

अनुवाद

"बंगाली यात्री धूर्त नहीं हैं। तुम्हीं धूर्त हो, जो यात्रियों को मारकर लूट लेना चाहते हो।"

शुनिया पाठान मने सङ्कोच हइल ।

हेन-काले महाप्रभु 'चैतन्य' पाइल ॥ 176 ॥

शुनिया-यह सुनकर; पाठान-मुस्लिम सिपाही; मने-मन में; सङ्कोच हइल-कुछ संकोच हो गया; हेन-काले-इस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चैतन्य पाइल-होश में आ गये।

अनुवाद

यह ललकार सुनकर पाठान सिपाही हिचकिचाये। तभी श्री चैतन्य महाप्रभु की सहसा चेतना लौट आयी।

हुङ्कार करिया उठे, बले 'हरि' 'हरि'।

प्रेमावेशे नृत्य करे ऊर्ध्व-बाहु करि' ॥ 177॥

हुँ-कार करिया-बड़े जोर से गूंज की; उठे-उठ खड़े हुए; बले हरि हरि-"हरि हरि" बोलने लगे; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में आकर; नृत्य करे–नृत्य किया; ऊर्ध्व-बाहु करि'–अपनी भुजाएँ ऊपर उठाकर।

अनुवाद

चेतना आने पर महाप्रभु जोर-जोर से "हरि! हरि!" का उच्चारण करने लगे। वे अपनी दोनों बाहें ऊपर उठाकर प्रेमावेश में नृत्य करने लगे।

प्रेमावेशे प्रभु यबे करेन चित्कार।

म्लेच्छेर हृदये येन लागे शेलधार ॥ 178 ॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; यबे–जब; करेन चित्कार-जोर से चिल्लाए; म्लेच्छेर हृदये-मुस्लिम सिपाहियों के दिल में; येन -जैसे; लागे-लगा हो; शेल-धार-वज्रघात।

अनुवाद

जब प्रेमावेश में महाप्रभु ने गर्जना की, तो मुसलमान सिपाहियों को लगा कि उनके हृदयों पर वज्रपात हो गया है।

भय पाञा म्लेच्छ छाड़ि' दिल चारि-जन।

प्रभु ना देखिल निज-गणेर बन्धन ॥ 179 ॥

भय पाञा–भयभीत होकर; म्लेच्छ-मुस्लिम सिपाहियों ने; छाड़ि' दिल–छोड़ दिया; चारि-जन-चारों लोगों को प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ना देखिल-नहीं देखा; निज-गणेर-अपने निजी साथियों को; बन्धन–कैदी बनते हुए।

अनुवाद

सभी पठान सिपाहियों ने भय के मारे चारों व्यक्तियों को छोड़ दिया। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने निजी संगियों को बन्दी रूप में नहीं देखा।

भट्टाचार्य आसि' प्रभुरे धरि' वसाइल ।

म्लेच्छ-गण देखि' महाप्रभुर ' बाह्य' हैल ॥ 180 ॥

भट्टाचार्य–भट्टाचार्य ने; आसि'–तत्क्षण निकट आकर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; धरि'-पकड़कर; वसाइल-बैठाया; म्लेच्छ-गण देखि'–मुस्लिम सिपाहियों को देखकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; बाह्य-बाहरी चेतना; हैल-आ गई।

अनुवाद

तभी बलभद्र भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु के पास जाकर उन्हें पकड़कर बैठाया। मुसलमान सिपाहियों को देखकर महाप्रभु को बाह्य चेतना हो गई।

म्लेच्छ-गण आसि' प्रभुर वन्दिल चरण ।

प्रभु-आगे कहे,—एइ ठक् चारि-जन ॥ 181॥

म्लेच्छ-गण-मुस्लिम सिपाहियों ने; आसि'-वहाँ आकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभ के; वन्दिल चरण-चरणकमलों की पूजा की; प्रभु-आगे कहे–महाप्रभु के समक्ष कहा; एइ ठक् चारि-जन-ये चारों व्यक्ति ठग हैं।

अनुवाद

तब सारे मुसलमान सिपाही महाप्रभु के समक्ष आये, उन्होंने उनके चरणकमलों की वन्दना की और कहा, "ये चारों धूर्त (ठग) हैं।

एइ चारि मिलि' तोमाय धुतुरा खाओयाञा ।

तोमार धन लैल तोमाय पागल करिया ॥ 182॥

एइ चारि मिलि'-ये चारों ठगों ने मिलकर; तोमाय-आपको; धुतुरा खाओयाञा-जहर पिलाया; तोमार-आपका; धन-धन; लैल-ले लिया; तोमाय-आपको; पागल-पागल; करिया बनाकर।

अनुवाद

"इन चारों ने मिलकर आपको धतूरा खिलाया और आपको पागल बनाकर आपका सारा धन ले लिया है।"

प्रभु कहेन,—ठक् नहे, मोर 'सङ्गी' जन ।

भिक्षुक सन्न्यासी, मोर नाहि किछु धन ॥ 183॥

प्रभु कहेन–श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, ठक् नहे-वे ठग नहीं हैं; मोर सङ्गी जन-मेरे साथी; भिक्षुक–भिक्षुक; सन्न्यासी-संन्यासी; मोर-मेरे पास; नाहि-नहीं है; किछु-कुछ भी; धन-धन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "ये चारों ठग नहीं हैं। ये मेरे साथी हैं। संन्यासी भिक्षुक होने के कारण मेरे पास कुछ भी नहीं है।"

मृगी-व्याधिते आमि कभु हइ अचेतन ।

एइ चारि दया करि' करेन पालन ॥184॥

मृगी-व्याधिते–मिरगी रोग के कारण; आमि-मैं; कभु-कभी-कभी; हइ हो जाता हूँ; अचेतन–बेहोश; एइ चारि-ये चारों व्यक्ति; दया करि'–दयालु होने के कारण; करेन पालन–मेरा पालन करते हैं।

अनुवाद

“मिरगी रोग के कारण मैं कभी-कभी बेहोश हो जाता हूँ। ये चारों दयावश मेरी देख-रेख करते हैं।”

सेइ म्लेच्छ-मध्ये एक परम गम्भीर।

काल वस्त्र परे सेइ,— लोके कहे ‘पीर’ ॥185॥

सेइ म्लेच्छ-मध्ये-उन मुस्लिमों के बीच; एक-एक; परम गम्भीर-अत्यन्त गम्भीर; काल वस्त्र-काले वस्त्रों वाला; परे सेइ-उसने पहने थे; लोके-लोग; कहे-कहते हैं; पीर-साधु पुरुष।

अनुवाद

उन मुसलमानों में से एक गम्भीर व्यक्ति था, जो काले वस्त्र पहने था। लोग उसे साधु पुरुष (पीर) कहते थे।

चित्त आर्द्र हैल ताँर प्रभुरे देखिया।

‘निर्विशेष-ब्रह्म’ स्थापे स्वशास्त्र उठाञा ॥186॥

चित्त-हृदय; आर्द्र-कोमल; हैल-हो गया; ताँर-उसका; प्रभुरे देखिया-श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर; निर्विशेष-ब्रह्म-निर्विशेष ब्रह्म; स्थापे-स्थापित करना चाहता था; स्व-शास्त्र उठाञा-अपने शास्त्र (कुरान) के आधार पर।

अनुवाद

उस पीर का मन श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर मृदु हो गया। उसने उनसे बात करनी चाही और अपने शास्त्र कुरान के आधार पर निर्विशेष ब्रह्म की स्थापना करनी चाही।

‘अद्वैत-ब्रह्म-वाद’ सेइ करिल स्थापन।

तार शास्त्र-युक्त्ये तारे प्रभु कैला खण्डन ॥187॥

अद्वैत-ब्रह्म-वाद-निर्विशेष ब्रह्मवाद; सेइ-उस साधु पुरुष ने; करिल स्थापन-स्थापित किया; तार शास्त्र-युक्त्ये-अपने शास्त्र के तर्क के आधार पर; तारे—उसको; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला–किया; खण्डन-उसका खण्डन।

अनुवाद

जब उस पीर ने कुरान के आधार पर परम सत्य की निर्विशेष ब्रह्मवाद के रूप में स्थापना करने का प्रयास किया, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसके तर्कों का खण्डन किया।

येइ येइ कहिल, प्रभु सकलि खण्डिल ।

उत्तर ना आइसे मुखे, महा-स्तब्ध हैल ॥ 188॥

येइ येइ कहिल-उसने जो कुछ कहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सकलि खण्डिल-हर बात का खण्डन कर दिया; उत्तर–उत्तर; ना आइसे-न आया; मुखे-उसके मुख में; महा-स्तब्ध हैल-वह अत्यन्त स्तब्ध हो गया।

अनुवाद

वह जो भी तर्क प्रस्तुत करता, महाप्रभु उन सबका खण्डन कर देते। अन्त में वह व्यक्ति स्तम्भित रह गया और कुछ भी बोल न सका।

प्रभु कहे,—तोमार शास्त्र स्थापे 'निर्विशेषे' ।

ताहा खण्डि' 'सविशेष' स्थापियाछे शेषे ॥189॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तोमार शास्त्र-तुम्हारा शास्त्र (कुरान); स्थापे-स्थापित करता है; निर्विशेषे–निर्विशेष मत (निर्गुण); ताहा खण्डि'–उसका खण्डन करके; स-विशेष-सगुण भगवान्; स्थापियाछे-स्थापित किया; शेषे-अन्त में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "कुरान द्वारा निश्चय ही निर्विशेषवाद स्थापित होता है, किन्तु अन्त में यह निर्विशेषवाद का खण्डन करके साकार ईश्वर की स्थापना करता है।

तोमार शास्त्रे कहे शेषे 'एक-इ ईश्वर' ।

'सर्वैश्वर्य-पूर्ण तेंहो–श्याम-कलेवर ॥ 190॥

तोमार शास्त्रे-तुम्हारे शास्त्र में; कहे–कहा गया है; शेषे–अन्त में; एक-इ ईश्वर-ईश्वर एक हैं; सर्व-ऐश्वर्य-पूर्ण-सभी ऐश्वर्य से पूर्ण; तेंहो–वे, उसका; श्याम-कलेवर-शारीरिक वर्ण काला है।

अनुवाद

कुरान इस तथ्य का स्वीकार करता है कि अन्ततोगत्वा ईश्वर केवल एक हैं। वे ऐश्वर्य से पूर्ण हैं और उनका शारीरिक वर्ण श्याम (काला) है।

तात्पर्य

मुसलमानों का प्रामाणिक शास्त्र कुरान है। मुसलमानों का एक सम्प्रदाय सूफी सम्प्रदाय है। सूफी निर्विशेषवाद को मानते हैं और जीव तथा परम ब्रह्म के एकत्व पर विश्वास करते हैं। उनका श्रेष्ठ नारा है अनलहक।सूफी सम्प्रदाय का उदय जरूर शंकराचार्य के निर्विशेषवादियों से हुआ।

सच्चिदानन्द-देह, पूर्ण-ब्रह्म-स्वरूप ।

'सर्वात्मा', 'सर्वज्ञ', नित्य सर्वादि-स्वरूप ॥191॥

सत्-चित्-आनन्द-देह दिव्य, आनन्दमय, आध्यात्मिक शरीर; पूर्ण-ब्रह्म-स्वरूप-पूर्ण ब्रह्म स्वरूप; सर्व-आत्मा-सर्वव्यापक; सर्व-ज्ञ-सर्वज्ञ; नित्य-नित्य; सर्व-आदि-सबके आदि (मूल); स्वरूप-भगवान् का वास्तविक रूप।

अनुवाद

"कुरान के अनुसार भगवान् का स्वरूप सनातन, आनन्दमय तथा दिव्य है। वे परम सत्य, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा शाश्वत व्यक्ति हैं। वे सभी वस्तुओं के उद्गम हैं।

सृष्टि, स्थिति, प्रलय ताँहा हैते हय ।

स्थूल-सूक्ष्म-जगतेर तेंहो समाश्रय ॥ 192॥

सृष्टि-सृष्टि; स्थिति-स्थिति; प्रलय-प्रलय; ताँहा-उन; हैते-से; हय होती है; स्थल-स्थूल; सूक्ष्म-सूक्ष्म; जगतेर-ब्राह्माण्डों का; तेंहो-वे; समाश्रय-एक मात्र आश्रय है।

अनुवाद

"सृष्टि, पालन और संहार उन्हीं से होते हैं। वे समस्त स्थूल तथा सूक्ष्म प्राकट्यों के मूल आश्रय हैं।

सर्व-श्रेष्ठ, सर्वाराध्य, कारणेर कारण ।

ताँर भक्त्ये हय जीवेर संसार-तारण ॥193॥

सर्व-श्रेष्ठ-परम सत्य; सर्व-आराध्य–सर्व द्वारा आराध्य; कारणेर कारण-सभी कारणों के कारण; ताँर उनकी; भक्त्ये-भक्ति से; हय होता है; जीवेर-जीव का; संसार-तारण-भौतिक जीवन से उद्धार।

अनुवाद

"भगवान् सबके द्वारा आराध्य परम सत्य हैं। वे समस्त कारणों के कारण हैं। उनकी भक्ति करने से जीव भवबन्धन से छूट जाता है।

ताँर सेवा विना जीवेर ना याय 'संसार' ।

ताँहार चरणे प्रीति—'पुरुषार्थ-सार' ॥ 194॥

ताँर–उनकी; सेवा–सेवा; विना-के बिना; जीवेर-बद्धात्मा का; ना-नहीं; याय-समाप्त होता; संसार–भौतिक बन्धन; ताँहार-उनके; चरणे-चरणकमलों पर; प्रीति–प्रेम; पुरुषार्थ-सार-जीवन का अन्तिम ध्येय।

अनुवाद

"कोई भी बद्धजीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा किये बिना भवबन्धन से छूट नहीं सकता। जीवन का चरम उद्देश्य उनके चरणों के प्रति प्रेम है।

तात्पर्य

मुस्लिम शास्त्र के अनुसार, मस्जिद में या अन्य कहीं और दिन में हररोज पाँच बार नमाज के बिना, मनुष्य जीवन में सफल नहीं हो सकता। श्री चैतन्य महाप्रभु ने संकेत किया कि मुस्लमानों के शास्त्र में, भगवत्-प्रेम अन्तिम लक्ष्य है। कर्मयोग तथा ज्ञानयोग का वर्णन भी निश्चय ही कुरान में हुआ है, किन्तु अन्ततोगत्वा कुरान कहता है कि चरम लक्ष्य परम पुरुष की इबादत करना अर्थात् प्रार्थना करना ही है।

मोक्षादि आनन्द यार नहे एक 'कण'।

पूर्णानन्द-प्राप्ति ताँर चरण-सेवन ॥195॥

मोक्ष-आदि–मुक्ति आदि; आनन्द–दिव्य आनन्द; यार-जिसका; नहे-नहीं; एक-एक भी; कण-कण; पूर्ण-आनन्द-प्राप्तिपूर्ण आनन्दमय जीवन की प्राप्ति; ताँर चरण-सेवन–उनके चरणकमलों की सेवा।

अनुवाद

"मुक्ति का सुख, जिसमें मनुष्य भगवान् से एकाकार हो जाता है, भगवान् के चरणकमलों की सेवा करने से प्राप्त होने वाले दिव्य आनन्द के एक अंश के भी बराबर नहीं है।

'कर्म', 'ज्ञान', 'योग' आगे करिया स्थापन।

सब खण्डि' स्थापे 'ईश्वर', 'ताँहार सेवन' ॥196॥

कर्म-सकाम कर्म; ज्ञान-ज्ञान; योग-योग; आगे-आरम्भ में; करिया स्थापन-स्थापित करके; सब खण्डि'–सब कुछ खण्डित करके; स्थापे-स्थापित करता है; ईश्वर-भगवान्; ताँहार सेवन–उनकी सेवा।

अनुवाद

"कुरान में सकाम कर्म, ज्ञान, योग तथा सर्वोपरि से मिलन का वर्णन मिलता है, किन्तु अन्ततः हर बात का खण्डन होता है, और भगवान् के साकार रूप तथा उनकी भक्ति की स्थापना होती है।

तोमार पण्डित-सबार नाहि शास्त्र-ज्ञान।

पूर्वापर-विधि-मध्ये 'पर'—बलवान्॥ 197॥

तोमार पण्डित-सबार-तुम्हारे सम्प्रदाय के विद्वान पुरुषों को; नाहि-नहीं है; शास्त्र-ज्ञान–शास्त्र ज्ञान; पूर्व-अपर-पहले और बाद के; विधि-विधि विधान; मध्ये-के मध्य; पर-अन्तिम निर्णय; बलवान्-अत्यन्त बलवान।

अनुवाद

"कुरान के विद्वान ज्ञान में अधिक उन्नत नहीं हैं। यद्यपि कई विधियों का वर्णन हुआ है, किन्तु वे यह नहीं जानते कि अन्तिम निर्णय को सबसे बलवान मानना चाहिए।

निज-शास्त्र देखि' तुमि विचार करिया।

कि लिखियाछे शेषे कह निर्णय करिया॥ 198॥

निज-शास्त्र-अपना निजी शास्त्र; देखि-देखकर; तुमि-तुम; विचार करिया-विचार करके; कि लिखियाछे–जो कुछ लिखा है; शेषे–अन्त में; कह-कहो; निर्णय करिया–निर्णय करके।

अनुवाद

"अपने कुरान को देखकर तथा उसमें जो कुछ लिखा है उस पर विचार करने के बाद तुम्हारा निर्णय क्या है?"

म्लेच्छ कहे,—येइ कह, सेइ 'सत्य' हय।

शास्त्रे लिखियाछे, केह लइते ना पारय ॥199॥

म्लेच्छ कहे-मुस्लिम ने कहा, प्रेइ कह–आज जो कहते हैं; सेइ-वह; सत्य हय-सत्य है; शास्त्रे-कुरान में; लिखियाछे-लिखा है; केह-कोई भी; लइते-समझने में ना पारय-सक्षम नहीं है।

अनुवाद

उस मुस्लिम सन्त ने उत्तर दिया, "आपने जो कुछ कहा है, वह सत्य है। यह कुरान में लिखा अवश्य है, किन्तु हमारे विद्वान न तो इसे समझते हैं, न स्वीकार करते हैं।

'निर्विशेष-गोसाञि' लञा करेन व्याख्यान।

'साकार-गोसाञि'–सेव्य, कारो नाहि ज्ञान ॥ 200॥

निर्विशेष-गोसाञि-निर्विशेष भगवान्; लञा-लेकर; करेन व्याख्यान-वे वर्णन करते हैं; स-आकार-गोसाञि-सगुण भगवान्; सेव्य-पूज्य; कारो नाहि ज्ञान-किसी को यह ज्ञान नहीं है।

अनुवाद

"सामान्यतया वे भगवान् के निर्विशेष पक्ष का वर्णन करते हैं, किन्तु उन्हें शायद ही इसका ज्ञान हो कि भगवान् का साकार रूप पूजनीय है। निस्सन्देह, उनमें इस ज्ञान का अभाव है।

तात्पर्य

उस मुस्लिम सन्त ने स्वीकार किया कि जो लोग कुरान की शिक्षा को अच्छी तरह जानते हैं, वे अन्ततः कुरान के सार को नहीं समझते। इसीलिए वे केवल भगवान् के निराकार पहलू को ही मानते हैं। सामान्यतया वे इसी अंश को सुनाते हैं तथा इसी की व्याख्या करते हैं। यद्यपि भगवान् का दिव्य शरीर पूजनीय है, किन्तु अधिकांश लोग इससे अनजान हैं।

सेइत 'गोसाञि' तुमि—साक्षात् 'ईश्वर'।

मोरे कृपा कर, मुञि–अयोग्य पामर॥ 201॥

सेइत-वह; गोसाञि-भगवान्; तुमि-आप; साक्षात्-साक्षात्; ईश्वर–भगवान्; मोरे–मुझ पर; कृपा कर-कृपा करो; मुञि-मैं; अयोग्य पामर-अत्यन्त पतित और अयोग्य।

अनुवाद

"चूँकि आप वही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, अतएव मुझ पर कृपा कीजिये। मैं पतित और अयोग्य हूँ।

अनेक देखिनु मुञि म्लेच्छ-शास्त्र हैते।

'साध्य-साधन-वस्तु' नारि निर्धारिते॥ 202॥

अनेक-अनेक; देखिनु-अध्ययन किया है; मुञि-मैंने; म्लेच्छ-शास्त्र-मुस्लिम शास्त्र; हैते-से; साध्य-जीवन का अन्तिम ध्येय; साधन-कैसे करें; वस्तु-विषय; नारि निर्धारिते-मैं अन्ततः निर्णित नहीं कर सकता।

अनुवाद

"मैंने मुसलमान शास्त्र का विस्तार से अध्ययन किया है, किन्तु मैं अन्तिम रूप से यह निश्चय नहीं कर सकता कि जीवन का चरम लक्ष्य क्या है अथवा उस तक मैं कैसे पहुँच सकता हूँ?

तोमा देखि' जिह्वा मोर बले 'कृष्ण-नाम' ।

'आमि—बड़ ज्ञानी'—एइ गेल अभिमान ॥203॥

तोमा देखि'–आपको देखकर; जिह्वा-जीभ, मोर-मेरी; बले कृष्ण-नाम-हरे कृष्ण मंत्र बोलती है; आमि-मैं; बड़ ज्ञानी-बहुत ज्ञानी; एइ–यह; गेल अभिमान-झूठा अभिमान चला गया है।

अनुवाद

"अब आपको देखकर मेरी जीभ हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर रही है। अब मेरा यह मिथ्या अभिमान दूर हो गया है कि मैं विद्वान हूँ।"

कृपा करि' बल मोरे 'साध्य-साधने' ।

एत बलि' पड़े महाप्रभुर चरणे ॥ 204॥

कृपा करि'-अपनी अहैतुकी कृपा से; बल-कहो; मोरे-मुझे; साध्य-साधने-जीवन का अन्तिम ध्येय और उसे पाने की प्रक्रिया; एत बलि'-इतना कहकर; पड़े-गिर पड़ा; महाप्रभुर चरणे–महाप्रभु के चरणकमलों पर।

अनुवाद

यह कहकर वह सन्त मुसलमान श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़ा और उनसे प्रार्थना की कि वे जीवन के चरम लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने की विधि के बारे में उससे कहें।

प्रभु कहे,—उठ, कृष्ण-नाम तुमि लइला ।

कोटि-जन्मेर पाप गेल, 'पवित्र' हइला ॥ 205॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; उठ-कृपया उठो; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पावन नाम; तुमि-तुमने; लइला लिया है; कोटि-जन्मेर-लाखों जन्मों के; पाप गेल-तुम्हारे पापों का फल नष्ट हो गया है; पवित्र हइला-तुम पवित्र हो गये हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "कृपया उठो। तुमने कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण किया है। अतः तुम्हारे करोड़ों जन्मों के पापों के फल चले गये। अब तुम शुद्ध हो गये हो।"

'कृष्ण' कह, 'कृष्ण' कह,— कैला उपदेश ।

सबे 'कृष्ण' कहे, सबार हैल प्रेमावेश ॥ 206॥

कृष्ण कह–मात्र "कृष्ण" का नाम जपो; कृष्ण कह–मात्र "कृष्ण" का जाप जपो; कैला उपदेश-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उपदेश दिया; सबे-सबको; कृष्ण कहे-कृष्ण के पावन नाम का कीर्तन करो; सबार-उन सबको; हैल-हो गया; प्रेम-आवेश-प्रेम का आवेश।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने वहाँ उपस्थित सारे मुसलमानों से कहा, "कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करो! कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करो!" जब वे सब कीर्तन करने लगे, तो वे सभी प्रेमाविष्ट हो गये।

'रामदास' बलि' प्रभु ताँर कैल नाम ।

आर एक पाठान, ताँर नाम–'विजुली-खाँन' ॥207॥

रामदास बलि'–रामदास का नामक देकर; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँर-उसको; कैल–दिया; नाम-नाम; आर एक पाठान-और एक दूसरे मुस्लिम पठान को; ताँर नाम-उसका नाम; विजुली-खाँन-विजुली खान।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रत्यक्ष रूप से उस सन्त मुसलमान को कृष्ण-नाम का कीर्तन करने का उपदेश देकर उसे दीक्षित कर दिया। उसका नाम बदलकर रामदास कर दिया गया। एक अन्य पठान भी वहाँ था, जिसका नाम विजुली खान रखा गया।

तात्पर्य

दीक्षा पाने के बाद कृष्णभावनामृत आन्दोलन में भक्तगण अपना नाम बदल लेते हैं। जब भी पाश्चात्य जगत् में कोई व्यक्ति कृष्णभावनामृत आन्दोलन में रुचि दिखाता है, तो उसको इसी विधि से दीक्षित किया जाता है। भारत में हम पर झूठा आरोप लगाया जाता है कि हम म्लेच्छों तथा यवनों का हिन्दू धर्म में परिवर्तन करते हैं। भारत में अनेक मायावादी संन्यासी हैं, जिन्हें जगद्गुरु कहा जाता है, यद्यपि उन्होंने पूरे विश्व का भ्रमण नहीं किया होता। उनमें से कुछ तो ठीक से शिक्षित भी नहीं होते, फिर भी वे हमारे आन्दोलन पर दोषारोपण करते हैं और हम पर आरोप लगाते हैं कि हम मुसलानों तथा यवनों को वैष्णव बनाकर हिन्दू धर्म को नष्ट कर रहे हैं। ऐसे लोग केवल ईर्ष्या करने वाले हैं। हम हिन्दू धर्म-प्रणाली को नष्ट नहीं कर रहे हैं, अपितु पूरे विश्व में भ्रमण करके और जो लोग कृष्ण को समझने में रुचि रखते हैं, उन्हें कृष्णदास या रामदास के रूप में स्वीकार करके केवल श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण कर रहे हैं। प्रामाणिक दीक्षा-विधि से उनके नाम बदल दिये जाते हैं।

अल्प वयस ताँर, राजार कुमार ।

‘रामदास’ आदि पाठान—चाकर ताँहार ॥208॥

अल्प वयस ताँर-उसकी आयु कम है; राजार कुमार राज का पुत्र; रामदास-रामदास; आदि-आदि; पाठान-मुस्लिम; चाकर ताँहार-उसके सेवक।

अनुवाद

विजुली खान नवयुवक था और राजा का पुत्र था। रामदास आदि अन्य सारे पठान उसके नौकर थे।

‘कृष्ण’ बलि’ पड़े सेइ महाप्रभुर पाय ।

प्रभु श्री-चरण दिल ताँहार माथाय ॥209॥

कृष्ण बलि’–कृष्ण का पावन नाम बोलकर; पड़े-गिर पड़ा; सेइ-वह विजुली खान; महाप्रभुर पाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; श्री-चरण दिल-अपना चरण रखा; ताँहार माथाय-उसके सिर पर।

अनुवाद

विजुली खान भी श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़ा और महाप्रभु ने उसके सिर पर अपना चरण रखा।

ताँ-सबारे कृपा करि’ प्रभु त’ चलिला ।

सेइत पाठान सब ‘वैरागी’ हइला ॥ 210॥

ताँ-सबारे उन सब पर; कृपा करि’–कृपा करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; त’–निस्सन्देह; चलिला–चले गये; सेइत–वे; पाठान-मुस्लिम पठान; सब-सब; वैरागी हइला-वैरागी हो गये।

अनुवाद

इस तरह उन सब पर कृपा करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु चल पड़े। तब सारे पठान मुस्लिम साधु (वैरागी) हो गये।

पाठान-वैष्णव बलि’ हैल ताँर ख्याति ।

सर्वत्र गाहिया बुले महाप्रभुर कीर्ति ॥ 211॥

पाठान-वैष्णव बलि'–पठान वैष्णव के नाम से जाने जाने वाले; हैल–हो गये; ताँर-उनकी; ख्याति-प्रसिद्धि; सर्वत्र-सब जगह; गाहिया बुले-गाकर यात्रा करते थे; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कीर्ति-यशस्वी गतिविधियाँ।

अनुवाद

ये ही पठान बाद में पठान वैष्णवों के नाम से विख्यात हुए। वे देश-भर धूम-घूमकर श्री चैतन्य महाप्रभु की कीर्ति का गुणगान करने लगे।

सेइ विजुली-खाँन हैल 'महा-भागवत' ।

सर्व-तीर्थे हैल ताँर परम-महत्त्व ॥ 212॥

सेइ-वह; विजुली-खाँन-विजुली खान; हैल–हो गया; महा-भागवत–महा उन्नत भक्त; सर्व-तीर्थे–सभी तीर्थों में; हैल-हो गया; ताँर-उसका; परम-बड़ा; महत्त्व-महत्त्व।

अनुवाद

विजुली खान बहुत बड़ा भक्त बन गया और उसका महत्त्व प्रत्येक तीर्थस्थान में विख्यात हो गया।

ऐछे लीला करे प्रभु श्री-कृष्ण-चैतन्य ।

'पश्चिमे' आसिया कैल यवनादि धन्य ॥213॥

ऐछे-इस प्रकार; लीला-लीलाएँ; करे-की; प्रभु-भगवान् श्रीकृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु; पश्चिमे–पश्चिमी भारत में; आसिया-आकर; कैल–किया; यवन-आदि-यवन आदि मांसाहारी और अन्यों को; धन्य-भाग्यशाली।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने लीलाएँ कीं। उन्होंने भारत के पश्चिमी भाग में आकर यवनों तथा म्लेच्छों को सौभाग्य प्रदान किया।

तात्पर्य

यवन शब्द का अर्थ है "मांसाहारी।" मांसाहार करने वाली जाति का कोई भी व्यक्ति यवन कहलाता है। जो वैदिक विधानों का कड़ाई से पालन नहीं करता, वह म्लेच्छ कहलाता है। ये शब्द किसी व्यक्तिविशेष के सूचक नहीं है। यहाँ तक कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र परिवार में जन्म लेने वाला व्यक्ति भी यदि वह विधि-विधानों का पालन नहीं करता या मांस खाता है, तो वह म्लेच्छ या यवन कहलाता है।

सोरो-क्षेत्रे आसि' प्रभु कैला गङ्गा-स्नान ।

गङ्गा-तीर-पथे कैला प्रयागे प्रयाण ॥ 214॥

सोरो-क्षेत्रे-सोरोक्षेत्र में; आसि-आकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला-किया; गङ्गा-स्नान-गंगा स्नान; गङ्गा-तीर-पथे-गंगा तट के मार्ग पर; कैला–किया; प्रयागे प्रयाण-प्रयाग के लिए प्रस्थान।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु सोरोक्षेत्र नामक तीर्थस्थान गये। उन्होंने वहाँ गंगा नदी में स्नान किया और फिर वे गंगा के किनारे-किनारे प्रयाग के लिए चल पड़े।

सेइ विप्रे, कृष्णदासे, प्रभु विदाय दिला ।

योड़-हाते दुइ-जन कहिते लागिला ॥215॥

सेइ विप्रेसनोड़िया ब्राह्मण को; कृष्णदासे-और राजपूत कृष्णदास को; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; विदाय दिला–विदा दी, लौट जाने को कहा; योड़-हाते-हाथ जोड़कर; दुइ-जन-दोनों व्यक्ति; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

सोरोक्षेत्र में महाप्रभु ने सनोड़िया ब्राह्मण तथा राजपूत कृष्णदास से घर लौट जाने के लिए कहा, किन्तु वे हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले।

प्रयाग-पर्यन्त दुँहे तोमा-सङ्गे याब ।

तोमार चरण-सङ्ग पुनः काहाँ पाब? ॥216॥

प्रयाग-पर्यन्त-प्रयाग तक; दुँहे-हम दोनों; तोमा-सड़े-आपके साथ; याब–जायेंगे; तोमार-आपके; चरण-सङ्ग-चरणकमलों का संग; पुनः–दोबारा; काहाँ–कहाँ; पाब-हमें मिलेगा।

अनुवाद

उन्होंने प्रार्थना की, "हमें अपने साथ प्रयाग तक चलने दें। यदि हम अभी नहीं जाते, तो हमें आपके चरणकमलों का संग फिर कब मिल पायेगा?

म्लेच्छ-देश, केह काहाँ करये उत्पात ।

भट्टाचार्य–पण्डित, कहिते ना जानेन बात् ॥ 217॥

म्लेच्छ-देश-यह मुस्लिमों का देश है; केह-कोई भी; काहाँ-कहीं भी; करये उत्पात-उत्पात कर सकता है; भट्टाचार्य-बलभद्र भट्टाचार्य; पण्डित–पण्डित विद्वान; कहिते-कहने को; ना जानेन–नहीं जानता; बात्-भाषा, स्थानीय भाषा।

अनुवाद

"यह देश मुख्यतया मुसलमानों से भरा पड़ा है। कोई किसी भी स्थान में उत्पात कर सकता है। यद्यपि आपका संगी बलभद्र भट्टाचार्य विद्वान है, किन्तु वह स्थानीय भाषा में बात करना नहीं जानता।"

शुनि' महाप्रभु ईषत् हासिते लागिला।

सेइ दुइ-जन प्रभुर सङ्गे चलि' आइला॥ 218॥

शुनि'-यह सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ईषत्-धीरे से; हासिते लागिला-मुस्कुराने लगे; सेइ-वे; दुइ-जन-दोनों व्यक्ति; प्रभुर सङ्गे–श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; चलि' आइला–चले आये।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने थोड़ा हँसते हुए उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस तरह वे दोनों उनके साथ चलते रहे।

येइ येइ जन प्रभुर पाइल दरशन।

सेइ प्रेमे मत्त हय, करे कृष्ण-सङ्कीर्तन॥219॥

येइ येइ-जिस किसी ने; जन-व्यक्ति; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; पाइल दरशन-दर्शन किया; सेइ-वह व्यक्ति; प्रेमे-प्रेम में; मत्त हय-उन्मत्त हो जाता; करे-और करता; कृष्ण-सङ्कीर्तन-कृष्ण के नाम का संकीर्तन।

अनुवाद

जो भी श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करता, वह भावाविष्ट हो जाता और हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने लगता।

ताँर सङ्गे अन्योन्ये, ताँर सङ्गे आन।

एइ-मत 'वैष्णव' कैला सब देश-ग्राम॥ 220॥

ताँर सड़े-उसके साथ; अन्योन्ये-अन्य; ताँर सड़े-और उसके साथ; आन–अन्य; एइ-मत-इस प्रकार; वैष्णव-वैष्णव; कैला–किया; सब-सब; देश-ग्राम-ग्राम तथा नगर।

अनुवाद

जो भी श्री चैतन्य महाप्रभु से मिला, वह वैष्णव बन गया और जो भी इस वैष्णव से मिला, वह भी वैष्णव बन गया। इस तरह एक के बाद एक सारे नगरवासी तथा ग्रामवासी वैष्णव बन गये।

दक्षिण याइते यैछे शक्ति प्रकाशिला ।

सेइ-मत पश्चिम देश, प्रेमे भासाइला ॥221॥

दक्षिण याइते-दक्षिण भारत में भ्रमण करते समय; यैछे-जैसे; शक्ति प्रकाशिला-अपनी आध्यात्मिक शक्ति प्रकट की; सेइ-मत-उस प्रकार; पश्चिम देश-पश्चिमी भारत, प्रेमे भासाइला-कृष्ण-प्रेम में डूबा दिये।

अनुवाद

जिस तरह महाप्रभु ने अपनी यात्रा से दक्षिण भारत को भगवत्प्रेम से आप्लावित कर दिया था, उसी तरह उन्होंने देश के पश्चिमी भाग को भी भगवत्प्रेम से आप्लावित किया।

तात्पर्य

कुछ लोगों का मत है कि वृन्दावन से प्रयाग जाते समय श्री चैतन्य महाप्रभु कुरुक्षेत्र गये थे। कुरुक्षेत्र में भद्रकाली का मन्दिर है, उसी मन्दिर के पास एक मन्दिर में श्री चैतन्य महाप्रभु का अर्चाविग्रह है।

एइ-मत चलि' प्रभु 'प्रयाग' आइला ।

दश-दिन त्रिवेणीते मकर-स्नान कैला ॥222॥

एइ-मत-इस प्रकार; चलि'–चलकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रयाग-प्रयाग; आइला–पहुँचे; दश-दिन-दस दिन; त्रिवेणीते-गंगा और यमुना नदी के संगम पर; मकर-स्नान कैला-मकर उत्सव का (माघ मेला) स्नान किया।

अनुवाद

अन्त में श्री चैतन्य महाप्रभु प्रयाग पहुँचे और मकर-संक्रान्ति (माघ मेला) के अवसर पर लगातार दस दिनों तक गंगा तथा यमुना नदियों के संगम में स्नान किया।

तात्पर्य

वास्तव में त्रिवेणी तीन नदियों-गंगा, यमुना तथा सरस्वती–के संगम का सूचक है। सम्प्रति सरस्वती नदी दृष्टिगोचर नहीं है, किन्तु गंगा तथा यमुना नदियाँ इलाहाबाद में मिलती हैं।

वृन्दावन-गमन, प्रभु-चरित्र अनन्त ।

'सहस्र-वदन' याँर नाहि पा'न अन्त ॥ 223॥

वृन्दावन-गमन-वृन्दावन गमन; प्रभु-चरित्र-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; अनन्त-अनन्त; सहस्र-वदन–सहस्र फणों वाले भगवान् शेष; याँर–जिसकी; नाहि-नहीं; पा'न–मिलती; अन्त-सीमा, अन्त।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का वृन्दावन गमन और वहाँ पर उनकी लीलाएँ अनन्त हैं। यहाँ तक कि सहस्र फनों वाले भगवान् शेष भी उनके कार्यकलापों का अन्त नहीं पा सकते।

ताहा के कहिते पारे क्षुद्र जीव हञा ।

दिग्दरशन कैलू मुञि सूत्र करिया ॥224॥

ताहा–वह; के कहिते पारे-कौन वर्णन कर सकता है; क्षुद्र-तुच्छ; जीव हञा-बद्धात्मा होने के कारण; दिक्-दरशन कैलुँ–मात्र एक संकेत किया है; मुञि-मैंने; सूत्र करिया-सार रूप में।

अनुवाद

भला कौन सामान्य जीव श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन कर सकता है? मैंने तो सार रूप में सामान्य दिशानिर्देशन ही किया है।

अलौकिक-लीला प्रभुर अलौकिक-रीति ।

शुनिलेओ भाग्यहीनेर ना हय प्रतीति ॥ 225॥

अलौकिक-लीला-अलौकिक लीलाएँ, प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; अलौकिक-रीति-अलौकिक रीति; शुनिलेओ-सुनने पर भी; भाग्य-हीनेर-भाग्यहीन को; ना हय प्रतीति-कोई विश्वास नहीं है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ तथा रीतियाँ असाधारण हैं। जो अभागा होगा वही इन बातों को सुनने के बाद भी उन पर विश्वास नहीं करेगा।

आद्योपान्त चैतन्य-लीला —'अलौकिक' जान' ।

श्रद्धा करि' शुन इहा, 'सत्य' करि' मान' ॥226॥

आद्य-उपान्त–आरम्भ से अन्त तक; चैतन्य-लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; अलौकिक जान'-अलौकिक जानकर; श्रद्धा करि'-श्रद्धापूर्वक; शुन इहा-इसे सुनो; सत्य करि' मान-सत्य और प्रामाणिक मानकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ शुरू से लेकर अन्त तक अलौकिक हैं। उन्हें श्रद्धापूर्वक सुनना चाहिए और सत्य के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

येइ तर्क करे इहाँ, सेइ–'मूर्ख-राज' ।

आपनार मुण्डे से आपनि पाड़े वाज ॥227॥

येइ तर्क करे-जो मात्र तर्क करता है; इहाँ-इस विषय में; सेइ-वह व्यक्ति; मूर्ख-राज–महामूर्ख; आपनार मुण्डे-अपने ही सिर पर; से-वह व्यक्ति; आपनि–स्वयं; पाड़े वाज-वज्रघात करता है।

अनुवाद

जो भी इनके विषय में तर्क करता है, वह महामूर्ख है। वह जान-बूझकर अपने ही सिर पर वज्रपात करता है।

चैतन्य-चरित्र एइ–'अमृतेर सिन्धु' ।

जगत् आनन्दे भासाय यार एक-बिन्दु ॥ 228॥

चैतन्य-चरित्र-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; एइ-ये; अमृतेर सिन्धु-अमृत का सागर; जगत्-संसार; आनन्दे-आनन्द से; भासाय-निमग्न कर सकता है; यार-जिसका; एक-बिन्दु-एक बिन्दु।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अमृत के सागर तुल्य हैं। इस समुद्र की एक बूंद भी सारे संसार को दिव्य आनन्द से आप्लावित कर सकती है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 229॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों पर; यार-जिसकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए और उनकी कृपा की सदैव आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस तरह श्री चैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के अठारहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें महाप्रभु की वृन्दावन यात्रा तथा प्रयाग जाते हुए मुसलमान सिपाहियों के धर्म परिवर्तन का वर्णन हुआ है।

अध्याय उन्नीस

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा श्रील रूप गोस्वामी को उपदेश

इस अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा अमृत-प्रवाह-भाष्य में दिया गया है। रामकेलि नामक गाँव में श्री चैतन्य महाप्रभु से रूप तथा सनातन दोनों भाई मिले और उसके बाद ही वे अपनी-अपनी सरकारी नौकरी से निकलने का उपाय सोचने लगे। दोनों भाइयों ने पुरश्चरण विधि कराने तथा कृष्ण-नाम का कीर्तन करने के लिए कुछ ब्राह्मण नियुक्त किये। श्रील रूप गोस्वामी ने एक बनिये के यहाँ दस हजार स्वर्ण मुद्राएँ जमा कर दीं और शेष धन अपने साथ दो नावों में भरकर बाक्ला चन्द्रद्वीप नामक स्थान पर लेते आये। वहाँ पर उन्होंने यह धन ब्राह्मणों, वैष्णवों तथा अपने सम्बन्धियों में बाँट दिया और कुछ अंश निजी आवश्यकता तथा आपात्काल के लिए रख लिया। उन्हें यह सूचित किया गया कि श्री चैतन्य महाप्रभु मध्य प्रदेश के जंगल से होकर जगन्नाथपुरी से वृन्दावन जा रहे हैं; अतएव उन्होंने यह पता लगाने के लिए दो व्यक्ति भेजे कि महाप्रभु जगन्नाथपुरी से वृन्दावन के लिए कब यात्रा शुरू कर रहे हैं। इस तरह रूप गोस्वामी तो सेवा-निवृत्त हो गये, किन्तु सनातन गोस्वामी ने नवाब से कहा कि मैं बीमार हूँ, अतएव कार्य नहीं कर सकता। यह बहाना बनाकर वे घर पर बैठ गये और विद्वान ब्राह्मणों के संग में श्रीमद्भागवत का अध्ययन करने लगे। नवाब हुसेन शाह ने पहले तो यह देखने के लिए कि असलियत क्या है, अपने निजी वैद्य को भेजा, किन्तु बाद में वह स्वयं सनातन गोस्वामी के पास यह देखने के लिए आया कि वे राज-कार्य पर क्यों नहीं जा रहे हैं। यह जानकर कि वे अपने पद से त्याग-पत्र देना चाहते हैं, नवाब ने उन्हें बन्दी बनाकर जेल में डाल दिया। इसके बाद नवाब उड़ीसा पर आक्रमण करने चला गया।

जब श्री चैतन्य महाप्रभु मध्य प्रदेश के जंगल (झारखण्ड) से होकर वृन्दावन के लिए चल पड़े, तब रूप गोस्वामी ने अपना घर छोड़ दिया और सनातन के पास समाचार भेजा कि वे घर छोड़कर अपने छोटे भाई (अनुपम मल्लिक) के साथ महाप्रभु से मिलने जा रहे हैं। अन्त में श्रील रूप गोस्वामी प्रयाग पहुँचे और श्री चैतन्य महाप्रभु से लगातार दस दिनों तक मिले। इसी बीच वल्लभ भट्ट ने बड़े ही आदर के साथ महाप्रभु को अपने यहाँ आमन्त्रित किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट से श्रील रूप गोस्वामी का परिचय कराया। इसके बाद रघुपति उपाध्याय नामक एक ब्राह्मण ने आकर महाप्रभ से कृष्णभावनामृत के विषय में विचार-विमर्श किया। इसके बाद कविराज गोस्वामी ने वृन्दावन में श्री रूप और सनातन के रहन-सहन का विस्तार से वर्णन किया है। प्रयाग में दस दिनों के दौरान महाप्रभु ने श्री रूप गोस्वामी को भक्तिरसामृतसिन्धु के मुख्य सिद्धान्तों की शिक्षा दी। इसके बाद महाप्रभु ने रूप गोस्वामी को वृन्दावन भेज दिया। महाप्रभु स्वयं वाराणसी लौट गये और चन्द्रशेखर के घर में रुके।

वृन्दावनीयां रस-केलि-वार्ता

कालेन लुप्तां निज-शक्तिमुत्कः ।

सञ्चार्य रूपे व्यतनोत्पुनः स

प्रभुर्विधौ प्रागिव लोक-सृष्टिम् ॥ 1॥

वृन्दावनीयाम्-वृन्दावन से सम्बन्धित; रस-केलि-वार्ताम्-श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन; कालेन–समय के साथ; लुप्ताम्-लुप्त; निज-शक्तिम्-अपनी निजी शक्ति; उत्कः-उत्सुक होकर; सञ्चार्य-संचारित करके; रूपे-रूप गोस्वामी को; व्यतनोत्-प्रकट की; पुनः–दोबारा; सः-वे; प्रभुः-श्री चैतन्य महाप्रभु; विधौ–ब्रह्माजी को प्राक इव-पहले की भाँति; लोक-सृष्टिम् ब्रह्माण्ड की सृष्टि।

अनुवाद

इस विराट् जगत् की सृष्टि करने के पूर्व भगवान् ने ब्रह्मा के हृदय में सृष्टि की विस्तृत जानकारी प्रकाशित की और वैदिक ज्ञान प्रकट किया। ठीक उसी तरह से महाप्रभु ने भगवान् कृष्ण की वृन्दावन-लीलाओं को पुनर्जीवित करने के लिए रूप गोस्वामी के हृदय को आध्यात्मिक शक्ति से संचारित किया। श्रील रूप गोस्वामी इस शक्ति से वृन्दावन में कृष्ण की उन लीलाओं को पुनरुज्जीवित कर सके, जो प्रायः विस्मृत हो चुकी थीं। इस तरह उन्होंने सारे विश्व में कृष्णभावनामृत का विस्तार किया।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ 2॥

जय जय श्री-चैतन्य–श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो; जय नित्यानन्द-श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो जय अद्वैत-चन्द्र-श्री अद्वैत प्रभु की जय हो; जय गौर-भक्त-वृन्द-महाप्रभु के सभी भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैतचन्द्र की जय हो तथा महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

श्री-रूप-सनातन रहे रामकेलि-ग्रामे ।

प्रभुरे मिलिया गेला आपन-भवने ॥ 3॥

श्री-रूप-सनातन-श्री रूप और सनातन दोनों भाई; रहे-रहते थे; रामकेलि-ग्रामे-रामकेलि गाँव में; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; मिलिया–मिलकर; गेला–लौट गये; आपन-भवने-अपने घरों को।

अनुवाद

रामकेलि गाँव में श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने के बाद रूप तथा सनातन दोनों भाई अपने अपने घर लौट गये।

दुइ–भाइ विषय-त्यागेर उपाय सृजिल ।

बहु-धन दिया दुइ ब्राह्मणे वरिल ॥4॥

दुइ–भाइ–दोनों भाइयों ने; विषय-त्यागेर–भौतिक कार्यकलापों का त्याग करने का; उपाय सृजिल-उपाय ढूंढा; बहु-धन-बहुत धन; दिया-देकर; दुइ ब्राह्मणे-दो ब्राह्मणों को; वरिल नियुक्त किया।

अनुवाद

दोनों भाइयों ने एक उपाय सोचा जिससे वे अपने भौतिक कार्यकलापों को त्याग सकें। इसके लिए उन्होंने दो ब्राह्मण नियुक्त किये और उन्हें प्रचुर धन दिया।

कृष्ण-मन्त्रे कराइल दुइ पुरश्चरण ।

अचिरात्पाइबारे चैतन्य-चरण ॥5॥

कृष्ण-मन्त्रे-हरे कृष्ण के पावन मन्त्र में; कराइल-करवाया; दुई–दो; पुरश्चरण-धार्मिक कर्म; अचिरात् बिना विलम्ब के; पाइबारे–पाने के लिए; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में शरण।

अनुवाद

ब्राह्मणों ने धार्मिक कृत्य सम्पन्न किया और कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण किया, जिससे दोनों भाइयों को शीघ्र ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में शरण प्राप्त हो सके।

तात्पर्य

पुरश्चरण एक कर्मकाण्ड है, जिसे दक्ष गुरु या ब्राह्मण के मार्गदर्शन में सम्पन्न किया जाता है। इसे किसी मनोकामना की पूर्ति के लिए सम्पन्न किया जाता है। इसमें मनुष्य प्रात:काल जल्दी उठता है, हरे

कृष्ण मन्त्र का जप करता है, आरती द्वारा अर्चन करता है और अर्चाविग्रहों की पूजा करता है। ये कार्य मध्य लीला के पंद्रहवें अध्याय के श्लोक 108 में वर्णित हैं।

श्री-रूप-गोसाञि तबे नौकाते भरिया ।

आपनार घरे आइला बहु-धन लञा ॥6॥

श्री-रूप-गोसाञि-श्री रूप गोस्वामी; तब-तब; नौकाते भरिया-नौकाओं में भरकर; आपनार घरे-अपने घर को; आइला–लौट गये; बहु-धन लञा-बहुत धन लेकर।

अनुवाद

इसी समय श्री रूप गोस्वामी अपने साथ नावों में प्रचुर मात्रा में धन लेकर घर लौटे।

ब्राह्मण-वैष्णवे दिला तार अर्ध-धने ।

एक चौठि धन दिला कुटुम्ब-भरणे ॥7॥

ब्राह्मण-वैष्णवे-ब्राह्मणों और वैष्णवों को; दिला-दान के रूप में दे दिया; तार-धन का; अर्ध-धने-आधा भाग; एक चौठि धन-एक चौथाई धन; दिला–दिया; कुटुम्ब-भरणे-रिश्तेदारों को सन्तुष्ट करने के लिए।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने घर लाये गये धन का बँटवारा कर दिया। उन्होंने पचास प्रतिशत धन ब्राह्मणों तथा वैष्णवों को दान में दे दिया और पच्चीस प्रतिशत अपने सम्बन्धियों को दिया।

तात्पर्य

यह व्यावहारिक उदाहरण है कि किस तरह मनुष्य को अपना धन बाँटकर गृहस्थ जीवन से विरक्त हो जाना चाहिए। अपने धन का पचास प्रतिशत योग्य तथा शुद्ध भगवद्भक्तों में वितरित कर देना चाहिए। पच्चीस प्रतिशत परिवार वालों को और शेष आवश्यकता पड़ने पर खर्च करने के लिए अपने पास रखना चाहिए।

दण्ड-बन्ध लागि' चौठि सञ्चय करिला ।

भाल-भाल विप्र-स्थाने स्थाप्य राखिला ॥8॥

दण्ड-बन्ध लागि'-कानूनी मामलों के लिए; चौठि–एक चौथाई; सञ्चय करिला-इकट्ठा किया; भाल-भाल-बहुत सम्मानित; विप्र-स्थाने–ब्राह्मण के पास; स्थाप्य राखिला-जमा करके रख दिया।

अनुवाद

उन्होंने अपनी चौथाई सम्पत्ति एक सम्मानित ब्राह्मण के पास रख दी। इसे उन्होंने अपनी निजी सुरक्षा के लिए रखा, क्योंकि उन्हें आशंका थी कि वे कहीं कोई कानूनी झंझट में न फँस जायें।

गौड़े राखिल मुद्रा दश-हाजारे ।

सनातन व्यय करे, राखे मुदि-घरे ॥9॥

गौड़े-बंगाल में; राखिल-रखीं; मुद्रा-मुद्राएँ; दश-हाजारे-दस हजार; सनातन-उनका बड़ा भाई; व्यय करे–खर्च कर दीं; राखे-रखीं; मुदि-घरे–स्थानीय दुकानदार के घर पर।

अनुवाद

उन्होंने दस हजार सिक्के एक स्थानीय बंगाली बनिये के यहाँ जमा कर दिये थे, जिनका खर्च बाद में श्री सनातन गोस्वामी ने किया।

श्री-रूप शुनिल प्रभुर नीलाद्रि-गमन ।

वन-पथे याबेन प्रभु श्री-वृन्दावन ॥10॥

श्री-रूप-श्री रूप गोस्वामी; शुनिल-सुना; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; नीलाद्रि-गमन–जगन्नाथ पुरी को प्रस्थान; वन-पथे-वन के मार्ग से; याबेन-जायेंगे; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; श्री-वृन्दावन-वृन्दावन।

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथपुरी लौट गये हैं और जंगल से होकर वृन्दावन जाने की तैयारी कर रहे हैं।

रूप-गोसाञि नीलाचले पाठाइल दुइ-जन ।

प्रभु यबे वृन्दावन करेन गमन ॥11॥

रूप-गोसाञि-रूप गोस्वामी ने; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; पाठाइल-भेजा; दुइ-जन-दो व्यक्तियों को प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; यबे–जब; वृन्दावन-वृन्दावन को; करेन-करेंगे; गमन प्रस्थान।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने यह पता करने के लिए दो व्यक्ति जगन्नाथपुरी भेजे कि श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन के लिए कब प्रस्थान करेंगे।

शीघ्र आसि' मोरे ताँर दिबा समाचार ।

शुनिया तदनुरूप करिब व्यवहार ॥12॥

शीघ्र आसि'–बहुत जल्दी लौटकर; मोरे-मुझे; ताँर-उनका; दिबा-दो; समाचार-समाचार; शुनिया-सुनकर; तत्-अनुरूप-तदनुसार; करिब–मैं करूँगा; व्यवहार-व्यवस्था।

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी ने दोनों व्यक्तियों से कहा, "तुम लोग जल्दी लौटकर मुझे बताओ कि वे कब प्रस्थान करेंगे। तब मैं समुचित व्यवस्था करूँगा।"

एथा सनातन-गोसाञि भावे मने मन ।

राजा मोरे प्रीति करे, से—मोर बन्धन ॥ 13 ॥

एथा-यहाँ (बंगाल में); सनातन-गोसाञि-बड़े भाई सनातन गोस्वामी; भावे-विचार करते थे; मने मन-मन में; राजा-नवाब; मोरे-मुझे; प्रीति करे-प्रेम करता है; से-वह; मोर-मेरे ऊपर; बन्धन–भारी कर्तव्य है।

अनुवाद

गौड़देश में रहते हुए सनातन गोस्वामी सोच रहे थे, "नवाब मुझसे अत्यन्त प्रसन्न है। मेरा निश्चित रूप से कर्तव्य बनता है।

कोन मते राजा यदि मोरे क्रुद्ध हय ।

तबे अव्याहत हय, करिलुँ निश्चय ॥14॥

कोन मते-किसी न किसी प्रकार; राजा-नवाब; यदि-यदि; मोरे-मुझ पर; क्रुद्ध हय-क्रुद्ध हो जाये; तबे-तब; अव्याहति–छुटकारा; हय-है; करिलुँ निश्चय–मैंने निश्चय किया है।

अनुवाद

यदि नवाब किसी तरह मुझसे नाराज हो जाए, तो मुझे मुक्ति मिल सकती है। यही मेरा निश्चय है।"

अस्वास्थ्येर छद्म करि' रहे निज-घरे ।

राज-कार्य छाड़िला, ना याय राज-द्वारे ॥15॥

अस्वास्थ्येर–अस्वस्थ होने का; छद्म-बहाना; करि'–करके; रहे-रहे; निज-घरे-अपने घर पर; राज-कार्य-सरकारी सेवा; छाड़िला–छोड़ दी; ना याय-नहीं गये; राज-द्वारे-नवाब के दरबार में।

अनुवाद

स्वास्थ्य खराब होने का बहाना करके सनातन गोस्वामी घर पर ही रहे। इस तरह उन्होंने अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी और राज-दरबार नहीं गये।

लोभी कायस्थ-गण राज-कार्य करे ।

आपने स्वगृहे करे शास्त्रेर विचारे ॥ 16॥

लोभी-लोभी; कायस्थ-गण-कायस्थ लोग; राज-कार्य करे-सरकारी सेवा करते; आपने–स्वयं; स्व-गृहे-अपने घर पर; करे-करते; शास्त्रेर विचारे-शास्त्रों की चर्चा।

अनुवाद

उनके लोभी क्लर्क तथा सचिवालय के कर्मचारी सरकारी कामकाज पूरा कर लेते, किन्तु सनातन घर पर रहते और शास्त्रों की चर्चा करते रहते।

तात्पर्य

सनातन गोस्वामी मन्त्री थे, जिनके अधीन सरकारी सचिवालय था तथा उनके अधीन सहायक–अनुसचिव और बाबू-सभी कायस्थ जाति के थे। पहले कायस्थ लोग ही सरकारी नौकरी और सचिवालय से सम्बन्धित होते थे और बाद में ऐसे पद पर काम करने वाले सभी लोग कायस्थ कहलाने लगे। इस तरह यदि कोई व्यक्ति अपनी पहचान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के रूप में नहीं कर पाता था, तो वह धनी तथा सम्मान्य पद पाने के लिए अपना परिचय कायस्थ के रूप में देता था। बंगाल में कहा जाता है कि जो व्यक्ति अपनी जाति नहीं बता पाता, वह अपने आपको कायस्थ कहता है। कुल मिलाकर, कायस्थ जाति सारी जातियों का मिश्रण है और इसमें वे लोग विशेष रूप से सम्मिलित हैं, जो

क्लर्क या सचिव का कार्य करते हैं। ऐसे लोग भौतिक दृष्टि से सदैव जिम्मेदार सरकारी पदों में लगे रहते हैं।

जब सनातन गोस्वामी आराम कर रहे थे और सरकारी नौकरी से पद-मुक्त होना चाहते थे, तब उनके सचिवालय के कर्मचारियों में अनेक कायस्थ उनका पद पाने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि जब सनातन गोस्वामी सरकारी मन्त्री थे और उनके सहायक कायस्थों ने देखा कि वे अब और आगे सेवा नहीं करना चाहते, तो वे अपने कार्यों में अत्यन्त दक्ष बन गये। सनातन गोस्वामी सारस्वत ब्राह्मण थे। कहा जाता है कि जब उन्होंने त्यागपत्र दिया, तो उनके नीचे काम करने वाला पुरन्दर खान, जो एक कायस्थ था, उनके पद पर बैठ गया।

भट्टाचार्य पण्डित बिश त्रिश लञा ।

भागवत विचार करेन सभाते वसिया ॥ 17॥

भट्टाचार्य पण्डित विद्वान पण्डित जो भट्टाचार्य कहलाते हैं; बिश त्रिश-बीस या तीस; लञा-अपने साथ लेकर; भागवत विचार–श्रीमद्भागवत की चर्चा; करेन-करते थे; सभाते वसिया–सभा में बैठकर।

अनुवाद

श्री सनातन गोस्वामी बीस-तीस विद्वान ब्राह्मणों की सभा में श्रीमद्भागवत पर चर्चा चलाते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने भागवत-विचार शब्दों की टीका निम्नलिखित प्रकार से की है। जैसाकि मुण्डक उपनिषद् (1.1.4-5) से पुष्टि होती है, शिक्षा की प्रणालियाँ दो प्रकार की हैं :

द्वे विद्ये वेदितव्य इति, ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति–परा चैवापरा च तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम् इति। अथ परा यया तदक्षरम् अधिगम्यते।

"शिक्षा प्रणालियाँ दो प्रकार की हैं। पहली दिव्य ज्ञान (परा विद्या) से सम्बन्धित है और दूसरी भौतिक ज्ञान (अपरा विद्या) से सम्बन्धित है। सारे वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद तथा उनके उपसिद्धान्त, यथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष—ये सभी भौतिक ज्ञान (अपरा विद्या) से सम्बन्धित हैं। परा विद्या से मनुष्य अक्षर अर्थात् ब्रह्म या परम सत्य को समझ सकता है।" जहाँ तक वैदिक साहित्य का सम्बन्ध है, वेदान्त-सूत्र को परा विद्या के रूप में स्वीकार किया जाता है। श्रीमद्भागवत इस परा विद्या का भाष्य है। जो मुक्ति या मोक्ष की कामना करने वाले हैं और अपने आपको वैदान्तिक कहते हैं, वे भी उन्हीं गुटों के तुल्य हैं, जो धर्म, अर्थ तथा काम में उन्नति की इच्छा करते हैं। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चतुर्वर्ग कहलाते हैं। ये सब निकृष्ट भौतिक ज्ञान के अन्तर्गत आते हैं। कोई भी साहित्य जो आध्यात्मिक जगत्, आध्यात्मिक जीवन, आध्यात्मिक पहचान तथा आत्मा के विषय में जानकारी देता है, वह परा विद्या कहलाता है। श्रीमद्भागवत का भौतिक जीवन से कोई सरोकार नहीं है। यह लोगों को परा विद्या की उच्चतर प्रणाली में प्रशिक्षित करने के लिए दिव्य ज्ञान प्रदान करता है। सनातन गोस्वामी भागवत-विद्या के विचार-विमर्श में लगे थे, जिसका अर्थ यह है कि वे केवल दिव्य आध्यात्मिक ज्ञान के विषय में विवेचना करते थे। कर्मी, ज्ञानी या योगी वास्तव में श्रीमद्भागवत के विषय में विचार-विमर्श करने के लिए सुपात्र नहीं हैं। केवल वैष्णव या शुद्ध भक्त ही इस ग्रन्थ की विवेचनाने के लिए सुपात्र हैं। जैसाकि स्वयं श्रीमद्भागवत (12.13.18) में कहा गया है :

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं

यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।

यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं

तच्छृण्वन् सुपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः

यद्यपि श्रीमद्भागवत की गणना पुराणों में की जाती है, किन्तु यह विशुद्ध (निर्मल) पुराण कहलाता है। चूँकि इसमें किसी भौतिक विषय की विवेचना नहीं की गई है, अतएव दिव्य वैष्णव भक्त इसे पसन्द करते हैं। श्रीमद्भागवत की विषय वस्तु परमहंसों के लिए है। कहा गया है- परमोनिर्मत्सराणां सतां वेद्यम्। परमहंस वह है, जो न तो भौतिक जगत् में रहता है, न किसी से ईर्ष्या-द्वेष रखता है। श्रीमद्भागवत में भक्ति की विवेचना की गई, जिससे जीव ज्ञान तथा वैराग्य के दिव्य पद तक ऊपर उठ सके। श्रीमद्भागवत (1.2.12) में कहा गया है :

तच्छ्रद्दधानाः मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया।

पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया॥

"परम सत्य का साक्षात्कार तो निष्ठावान जिज्ञासु या मुनि ही करते हैं, जो वेदान्त श्रुति सुनकर भक्ति करके ज्ञान और वैराग्य से अच्छी तरह युक्त होते हैं।"

यह भावुकता नहीं है। ज्ञान तथा वैराग्य भक्ति द्वारा, अर्थात् सुप्त भक्तिभाव या कृष्णभावना को जाग्रत करके प्राप्त किये जा सकते हैं (भक्त्या श्रुतगृहीतया)। जब कृष्णभावना जाग्रत हो जाती है, तब सकाम कर्म, अर्थ तथा भौतिक भोग से छुट्टी मिल जाती है। इसे नैष्कर्म्य कहा जाता है। छुट्टी मिल जाने पर इन्द्रियतृप्ति के लिए कठिन परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। श्रीमद्भागवत व्यासदेव की अन्तिम परिपक्व रचना है। इसे भक्तिपूर्वक स्वरूपसिद्ध आत्माओं की सभा में पढ़ना और सुनना चाहिए। ऐसे अवसर पर मनुष्य सारे भौतिक बन्धन से मुक्त हो सकता है। सनातन गोस्वामी ने यही मार्ग अपनाया, क्योंकि उन्होंने विद्वानों के साथ बैठकर श्रीमद्भागवत का अध्ययन करने के लिए सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लिया।

आर दिन गौड़ेश्वर, सङ्गे एक-जन।

आचम्बिते गोसाञि-सभाते कैल आगमन ॥18॥

आर दिन-एक दिन; गौड़ेश्वर–बंगाल का नवाब; सङ्गे–के साथ; एक-जन-एक अन्य व्यक्ति; आचम्बिते-अचानक; गोसाञि-सभाते-सनातन गोस्वामी की सभा में; कैल आगमन-आ गया।

अनुवाद

एक दिन जब सनातन गोस्वामी विद्वान ब्राह्मणों की सभा में श्रीमद्भागवत का अध्ययन कर रहे थे, तब बंगाल का नवाब तथा एक अन्य व्यक्ति सहसा वहाँ आ गये।

तात्पर्य

बंगाल के नवाब (हुसैन शाह) का पूरा नाम अलाउद्दीन सैयद हुसेन साह सेरिफ मक्का था, जिसने तेईस वर्षों तक, 1420-1443 शकाब्द (1498-1521 ई.) तक बंगाल में राज्य किया। सनातन गोस्वामी 1424 सम्वत् (1502 ई.) में श्रीमद्भागवत का अध्ययन विद्वानों के साथ बैठकर कर रहे थे।

पात्साह देखिया सबे सम्भ्रमे उठिला ।

सम्भ्रमे आसन दिया राजारे वसाइला ॥19॥

पात्साह देखिया-नवाब को देखकर; सबे–वे सब; सम्भ्रमे-अत्यन्त आदरपूर्वक; उठिला-उठ खड़े हुए; सम्भ्रमे-अत्यन्त आदर सहित; आसन दिया-आसन देकर; राजारे-नवाब को; वसाइला–बैठाया।

अनुवाद

ज्योंही सभी ब्राह्मणों तथा सनातन गोस्वामी ने नवाब को आते देखा, वे सभी खड़े हो गये और उन्होंने आदरपूर्वक उसे बैठने के लिए आसन दिया।

तात्पर्य

यद्यपि नवाब हुसेन शाह म्लेच्छ-यवन था, फिर भी वह देश का शासक था और विद्वानों तथा सनातन गोस्वामी ने राजा या शासक जैसा उसका सम्मान किया। जब कोई व्यक्ति किसी उच्च प्रशासक पद को प्राप्त कर लेता है, तब यह मान लेना चाहिए कि उसे भगवत्कृपा प्राप्त हुई है। भगवद्गीता (10.41) में भगवान् कृष्ण ने कहा है :

यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।

तद् तद् एवावगच्छत्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥

"जान लो कि सारी सुन्दर, भव्य तथा शक्तिशाली वस्तुएँ मेरे तेज के स्फुलिंग मात्र से उत्पन्न होती हैं।"

जब भी हम कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु देखते हैं, तब हमें उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति का अंश मान लेना चाहिए। विभूतिमत्-सत्त्वम् अर्थात् शक्तिशाली व्यक्ति वह है, जिसे भगवत्कृपा प्राप्त है या भगवान् से कुछ शक्ति प्राप्त हो चुकी हो। भगवद्गीता (7.10) में कृष्ण कहते हैं-तेजस्तेजस्विनामहम्– "मैं शक्तिमान की शक्ति हूँ।विद्वान ब्राह्मणों ने नवाब हुसैन शाह के प्रति आदर प्रदर्शित किया, क्योंकि वह कृष्ण की शक्ति के एक अंश का प्रतिनिधित्व करता था।

राजा कहे,—तोमार स्थाने वैद्य पाठाइलुँ ।

वैद्य कहे,—व्याधि नाहि, सुस्थ ये देखिलुँ ॥ 20॥

राजा कहे-नवाब ने कहा; तोमार स्थाने-तुम्हारे पास; वैद्य-एक वैद्य; पाठाइलुँ-मैंने भेजा; वैद्य कहे-वैद्य ने कहा; व्याधि नाहि-कोई रोग नहीं है; सुस्थपूर्णतया स्वस्थ; ये-यह; देखिलुँ–मैंने देखा है।

अनुवाद

नवाब ने कहा, "मैंने तुम्हारे पास मेरा वैद्य भेजा था। उसने सूचना दी है कि तुम्हें कोई रोग नहीं है। उसके विचार से तुम पूर्ण स्वस्थ हो।

आमार ये किछु कार्य, सब तोमा लञा ।

कार्य छाड़ि' रहिला तुमि घरेते वसिया ॥21॥

आमार-मेरा; ये किछु–जो कुछ; कार्य-कार्य; सब–प्रत्येक; तोमा-तुम; लञा-के साथ; कार्य छाड़ि'-अपना कर्तव्य छोड़कर; रहिला-रहे; तुमि-तुम; घरेते–घर पर; वसिया–बैठे।

अनुवाद

"मैं अनेकानेक कार्यों को पूरा करने के लिए तुम पर निर्भर हूँ, किन्तु तुम हो कि अपना सरकारी काम-काज छोड़कर घर पर बैठे रहते हो।

मोर यत कार्य-काम, सब कैला नाश ।

कि तोमार हृदये आछे, कह मोर पाश ॥22॥

मोर-मेरा; यत-सब; कार्य-काम-नियत कार्य; सब-सब; कैला नाश-तुमने बिगाड़ दिया है; कि-क्या; तोमार-तुम्हारे; हृदये हृदय में; आछे-है; कह-कृपया बताओ; मोर पाश–मुझे।

अनुवाद

"तुमने मेरा सारा कामकाज बिगाड़ दिया है। आखिर तुम चाहते क्या हो? कृपया मुझसे साफ साफ कहो।"

सनातन कहे,—नहे आमा हैते काम ।

आर एक-जन दिया कर समाधान ॥23॥

सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया; नहे-नहीं; आमा–मुझे; हैते-से; काम-कामकाज; आर एक-जन-कोई दूसरे; दिया–के द्वारा; कर समाधान-प्रबन्ध करो।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, "अब आप मुझसे किसी प्रकार के कार्य की आशा न करें। कृपा करके किसी दूसरे व्यक्ति को ढूंढ लें, जो आपकी व्यवस्था देख सके।" ।

तबे क्रुद्ध हञा राजा कहे आर-बार ।

तोमार 'बड़ भाइ' करे दस्यु-व्यवहार ॥ 24॥

तबे-उस समय; क्रुद्ध हञा-क्रुद्ध होकर; राजा कहे-नवाब ने कहा; आर-बार-दूसरी बार; तोमार बड़ भाइ–तुम्हारा बड़ा भाई; करे-करता है; दस्यु-व्यवहार-लुटेरे का काम।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी से नाराज होकर नवाब ने कहा, "तुम्हारा बड़ा भाई लुटेरे जैसा व्यवहार कर रहा है।

जीव-बहु मारि' कैल चाक्ला सब नाश ।

एथा तुमि कैला मोर सर्व कार्य नाश ॥ 25 ॥

जीव-जीव; बहु-बहुत; मारि'-मारकर; कैल–किया है; चाक्ला–बंगाल का राज्य (प्रान्त); सब-सब; नाश-नाश; एथा—यहाँ; तुमि-तुमने; कैला–किया; मोर-मेरा; सर्व-सब; कार्य-कार्य; नाश-नष्ट।

अनुवाद

"तुम्हारे बड़े भाई ने अनेक जीवों का वध करके समूचे बंगाल को नष्ट कर दिया है। अब तुम मेरी सारी योजनाओं को नष्ट कर रहे हो।"

सनातन कहे,—तुमि स्वतन्त्र गौड़ेश्वर ।

ये येइ दोष करे, देह' तार फल ॥ 26॥

सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने कहा; तुमि-आप; स्वतन्त्र–स्वतन्त्र; गौड़-ईश्वर–बंगाल के शासक; ये येइ-जो कुछ; दोष-दोष; करे-कोई करता है; देह'तुम देते हो; तार फल-उसका फल (उसकी सजा)।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा, "आप बंगाल के सर्वोच्च शासक हैं और पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। जब भी कोई व्यक्ति त्रुटि करता है, आप उसे उसी के हिसाब से दण्ड देते हैं।"

एत शुनि' गौड़ेश्वर उठि' घरे गेला।

पलाइब बलि' सनातनेरे बान्धिला॥ 27॥

एत शुनि'-यह सुनकर; गौड़-ईश्वर–बंगाल का नवाब; उठि'–उठकर; घरे गेला-घर लौट गया; पलाइब-मैं भाग जाऊँगा; बलि'-इस कारण; सनातनेरे बान्धिला-उसने सनातन को कैद कर लिया।

अनुवाद

यह सुनकर बंगाल का नवाब उठ खड़ा हुआ और वह अपने घर लौट गया। उसने सनातन गोस्वामी को बन्दी बनाये जाने का आदेश दिया, जिससे वे कहीं जा न सकें।

तात्पर्य

कहा जाता है कि बंगाल के नवाब तथा सनातन गोस्वामी के सम्बन्ध में बड़ी घनिष्ठता थी। नवाब सनातन गोस्वामी को अपना छोटा भाई मानता था; अतः जब सनातन गोस्वामी ने त्याग-पत्र देने की प्रबल इच्छा व्यक्त की, तो नवाब ने पारिवारिक स्नेह के कारण कहा, "मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ, किन्तु राज्य की व्यवस्था मैं नहीं देखता हूँ। मेरा एकमात्र कार्य है, अपने सैनिकों के साथ अन्य राज्यों पर आक्रमण करना तथा लुटेरे के समान सर्वत्र लड़ना। चूँकि मैं मांसाहारी (यवन) हूँ, इसलिए मैं सभी तरह के जीवों का शिकार करने का आदी हूँ। इस तरह मैं बंगाल के सभी प्रकार के जीवों का नाश कर रहा

हूँ। इस तरह मार-काट में लगे रहकर मैं आशा करता हूँ कि तुम राज्य का शासन चलाओगे। चूँकि मैं, तुम्हारा बड़ा भाई, ऐसे विध्वंसक कार्य में लगा हूँ, अत: तुम्हें मेरे छोटे भाई की तरह राज्य की व्यवस्था देखनी चाहिए। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे, तो फिर काम कैसे चलेगा?" यह बात पारिवारिक सम्बन्ध पर आधारित थी और सनातन गोस्वामी ने भी घनिष्ठता और हँसी में उत्तर दिया। उन्होंने नवाब से कहा, "मेरे प्रिय भाई, आप बंगाल के स्वतन्त्र शासक हैं। आप जैसा भी चाहें कर सकते हैं और यदि कोई गलती करता है, तो आप उसे इच्छानुसार दण्ड दे सकते हैं। दूसरे शब्दों में, सनातन गोस्वामी यह कह रहे थे कि चूँकि नवाब एक लुटेरे की तरह काम करने का आदी था, अत: उसके जो मन भावे, कार्यवाही करे। सनातन गोस्वामी अपना कर्तव्य निभाने में अधिक उत्साह नहीं दिखा रहे थे, अत: नवाब को उन्हें नौकरी से निकाल देना चाहिए। नवाब सनातन गोस्वामी के कथन के भावार्थ को समझ गया था, अतः वह क्रुद्ध होकर वहाँ से चला गया और उसने सनातन गोस्वामी को बन्दी बनाने का आदेश दे दिया।

हेन-काले गेल राजा उड़िया मारिते।

सनातने कहे,—तुमि चल मोर साथे ॥28॥

हेन-काले-इस समय; गेल-गया; राजा-नवाब; उड़िया मारिते-उड़ीसा राज्य (प्रान्त) पर आक्रमण करने के लिए; सनातने कहे-उसने सनातन गोस्वामी को कहा; तुमि चल-तुम आओ; मोर साथे-मेरे साथ।

अनुवाद

उस समय नवाब उड़ीसा प्रान्त पर आक्रमण करने जा रहा था और उसने सनातन गोस्वामी से कहा, "तुम मेरे साथ चलो।"

तात्पर्य

हुसेन शाह ने 1424 शकाब्द (1502 ई.) में उड़ीसा प्रान्त पर आक्रमण किया। उस समय उसने उड़ीसा के सामन्त राजकुमारों को जीत लिया।

तेंहो कहे,—याबे तुमि देवताय दुःख दिते ।

मोर शक्ति नाहि, तोमार सङ्गे याइते ॥29॥

तेंहो कहे-सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया; याबे-जाओगे; तुमि-आप; देवताय-पर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को; दुःख दिते-दुःख देने; मोर शक्ति-मेरी शक्ति; नाहि-नहीं है; तोमार सङ्गे-आपके साथ; याइते-जाने की।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, "आप तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को कष्ट देने उड़ीसा जा रहे हैं। इसीलिए मैं आपके साथ जाने में अशक्त हूँ।"

तबे ताँरे बान्धि' राखि' करिला गमन ।

एथा नीलाचल हैते प्रभु चलिला वृन्दावन ॥ 30॥

तबे–तत्पश्चात्; ताँरे–उनको; बान्धि'–कैद करके; राखि'–रखकर; करिला गमन-वह चला गया; एथा-इस समय; नीलाचल हैते–जगन्नाथ पुरी से; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; चलिला वृन्दावन-वृन्दावन के लिए रवाना हो गये।

अनुवाद

नवाब ने फिर से सनातन गोस्वामी को बन्दी बनाया और जेल में डाल दिया। उस समय श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी से वृन्दावन के लिए चल पड़े।

तबे सेइ दुइ चर रूप-ठाञि आइल ।

'वृन्दावन चलिला प्रभु'–आसिया कहिल ॥31॥

तबे-उस समय; सेइ-वे; दुइ-दोनों; चर-सन्देशवाहक; रूप-ठाञि-रूप गोस्वामी की उपस्थिति में; आइल-लौट आये; वृन्दावन चलिला प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन चले गये हैं; आसिया-आकर; कहिल-बताया।

अनुवाद

दो व्यक्तियों ने, जो महाप्रभु के प्रस्थान का पता लगाने जगन्नाथ पुरी गये थे, लौटकर रूप गोस्वामी को सूचित किया कि महाप्रभु पहले ही वृन्दावन के लिए चल चुके हैं।

शुनिया श्री-रूप लिखिल सनातन-ठाञि ।

'वृन्दावन चलिला श्री-चैतन्य-गोसाञि ॥ 32॥

शुनिया-यह सुनकर; श्री-रूप-श्री रूप गोस्वामी ने; लिखिल-लिखा; सनातन-ठाञि-सनातन गोस्वामी को; वृन्दावन-वृन्दावन; चलिला–चले गये हैं; श्री-चैतन्य-गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

इन दोनों सन्देशवाहकों से यह सन्देश पाकर रूप गोस्वामी ने तुरन्त सनातन गोस्वामी को यह पत्र लिखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन के लिए चल चुके हैं।

आमि-दुइ–भाइ चलिलाङ्ताँहारे मिलिते ।

तुमि यैछे तैछे छुटि' आइस ताहाँ हैते ॥ 33॥

आमि-दुइ–भाइ-हम दोनों भाई; चलिलाङ–चले गये हैं; ताँहारे मिलिते-उन्हें मिलने के लिए; तुमि-आप; यैछे तैछे-जैसे तैसे; छुटि'–छूटकर; आइस-आओ; ताहाँ हैते-वहाँ से।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने सनातन गोस्वामी को अपने पत्र में लिखा, "हम दोनों भाई श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के लिए प्रस्थान करने वाले हैं। तुम भी किसी तरह छूटकर हमसे मिलो।"

तात्पर्य

यहाँ पर जिन दो भाइयों का उल्लेख है, वे श्री रूप गोस्वामी स्वयं तथा उनका छोटा भाई अनुपम मल्लिक हैं। रूप गोस्वामी सनातन गोस्वामी को यह सूचना दे रहे थे कि वे उन दोनों के साथ आकर मिलें।

दश-सहस्र मुद्रा तथा आछे मुदि-स्थाने ।

ताहा दिया कर शीघ्र आत्म-विमोचने ॥ 34॥

दश-सहस्र मुद्रा-दस हजार मुद्राएँ; तथा-वहाँ; आछे-हैं; मुदि-स्थाने-दुकानदार के पास; ताहा दिया-इस राशि से; कर-करो; शीघ्र-शीघ्र; आत्म-विमोचने-अपनी कैद से छूट जाओ।

अनुवाद

रूप गोस्वामी ने श्रील सनातन गोस्वामी को यह भी सूचित किया, "मैं वहाँ एक बनिये के पास दस हजार मुद्राएँ छोड़ आया हूँ। तुम उस धन का उपयोग अपने आपको जेल से छुड़ाने में करो।

यैछे तैछे छुटि' तुमि आइस वृन्दावन' ।

एत लिखि' दुइ–भाइ करिला गमन ॥ 35॥

यैछे तैछे-जैसे तैसे; छुटि'–छूटकर; तुमि-तुम; आइस-आओ; वृन्दावन-वृन्दावन; एत लिखि'–यह लिखकर; दुइ-भाइ–दोनों भाई रूप गोस्वामी और उनका छोटा भाई अनुपम; करिला गमन–चले गये।

अनुवाद

"किसी तरह से छूटकर वृन्दावन आओ।" यह लिखकर दोनों भाई (रूप गोस्वामी तथा अनुपम) श्री चैतन्य महाप्रभु को मिलने चले गये।

अनुपम मल्लिक, ताँर नाम–'श्री-वल्लभ'।

रूप-गोसाञि छोट-भाइ–परम-वैष्णव॥ 36॥

अनुपम मल्लिक–अनुपम मल्लिक; ताँर नाम उनका नाम; श्री-वल्लभ-श्री वल्लभ; रूप-गोसाञि-रूप गोस्वामी का; छोट-भाइ–छोटा भाई; परम-वैष्णव-महान् भक्त।

अनुवाद

रूप गोस्वामी का छोटा भाई महान् भक्त था, जिसका सच्चा नाम श्री वल्लभ था; किन्तु उसका नाम अनुपम मल्लिक रख दिया गया था।

ताँहा लञा रूप-गोसाञि प्रयागे आइला।

महाप्रभु ताहाँ शुनि' आनन्दित हैला॥ 37॥

ताँहा लञा-उनको साथ लेकर; रूप-गोसाञि-श्री रूप गोस्वामी, प्रयागे-प्रयाग में; आइला–आये; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताहाँ-वहाँ; शुनि'–सुनकर; आनन्दित हैला-बहुत प्रसन्न हुए।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी तथा अनुपम मल्लिक प्रयाग गये और यह समाचार सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुए कि श्री चैतन्य महाप्रभु वहीं पर हैं।

प्रभु चलियाछेन बिन्दु-माधव-दरशने।

लक्ष लक्ष लोक आइसे प्रभुर मिलने॥ 38॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चलियाछेन-जा रहे थे; बिन्दु-माधव-दरशने–भगवान् बिन्दुमाधव के दर्शन करने; लक्ष लक्ष लोक-कई लाख लोग; आइसे–आये; प्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; मिलने-मिलने के लिए।

अनुवाद

प्रयाग में श्री चैतन्य महाप्रभु बिन्दुमाधव मन्दिर में दर्शन करने गये और लाखों लोग उनसे मिलने मात्र के लिए उनके पीछे पीछे चल रहे थे।

केह कान्दे, केह हासे, केह नाचे, गाय ।

'कृष्ण' 'कृष्ण' बलि' केह गड़ागड़ि याय ॥ 39॥

केह कान्दे-कुछ रो रहे थे; केह हासे-कुछ हँस रहे थे; केह नाचे-कुछ नाच रहे थे; गाय-कुछ कीर्तन कर रहे थे; कृष्ण कृष्ण बलि'–"कृष्ण कृष्ण" कहकर; केह-कुछ; गड़ागड़ि याय-धरती पर लोट रहे थे।

अनुवाद

महाप्रभु के पीछे चलने वालों में से कुछ लोग रो रहे थे, कुछ हँस रहे थे, कुछ नाच और गा रहे थे। उनमें से कुछ "कृष्ण! कृष्ण!" पुकारकर भूमि पर लोट रहे थे।

गङ्गा-यमुना प्रयाग नारिल डुबाइते ।

प्रभु डुबाइल कृष्ण-प्रेमेर वन्याते ॥40॥

गङ्गा-यमुना-गंगा यमुना नदियाँ; प्रयाग-प्रयाग; नारिल-सक्षम नहीं थे; डुबाइते-बाढ़ लाने के लिए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; डुबाइल-डूबा दिया; कृष्ण-प्रेमेर-कृष्ण के प्रेमावेश की; वन्याते-बाढ़ में।

अनुवाद

प्रयाग, गंगा तथा यमुना-इन दो नदियों के संगम पर स्थित है। यद्यपि ये नदियाँ अपने जल से प्रयाग को जलमग्न नहीं कर सकी थीं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण-प्रेम की लहरों से पूरे भूभाग को आप्लावित कर दिया।

भिड़ देखि' दुइ भाइ रहिला निर्जने ।

प्रभुर आवेश हैल माधव-दरशने ॥41॥

भिड़ देखि'–भीड़ देखकर; दुई भाइ-दोनों भाई; रहिला-रह गये; निर्जने-एकान्त स्थान में प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; आवेश-आवेश; हैल-हो आया; माधव-दरशने-बिन्दु माधव विग्रह के दर्शन करने से।

अनुवाद

बड़ी भीड़ देखकर दोनों भाई एकान्त स्थान पर खड़े रहे। उन्होंने देखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु बिन्दु माधव का दर्शन पाकर प्रेमाविष्ट हो गये।

प्रेमावेशे नाचे प्रभु हरि-ध्वनि करि' ।

ऊर्ध्व-बाहु करि' बले—बल 'हरि' 'हरि' ॥42॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; नाचे-नृत्य किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; हरि-ध्वनि करि'- भगवान् हरि का पावन नाम बोलकर; ऊर्ध्व-ऊपर; बाहु-दोनों बाजू; करि'-करके; बले-बोले; बल हरि हरि–"हरि, हरि" बोलो।

अनुवाद

महाप्रभु हरि नाम का उच्च स्वर से कीतर्न कर रहे थे। प्रेमावेश में नाचते हुए और अपनी भुजाएँ उठाते हुए उन्होंने हर एक से "हरि! हरि!" बोलने के लिए कहा।

प्रभुर महिमा देखि' लोके चमत्कार ।

प्रयागे प्रभुर लीला नारि वर्णिबार ॥43॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; महिमा-महिमा; देखि'–देखकर; लोके-सब लोगों में; चमत्कार–विस्मय, प्रयागे-प्रयाग में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; लीला-लीलाएँ, नारि-मैं सक्षम नहीं हूँ; वर्णिबार-वर्णन करने में।

अनुवाद

हर व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु की महानता देखकर अत्यन्त विस्मित था। मैं महाप्रभु की प्रयाग-लीलाओं का ठीक-ठीक वर्णन नहीं कर सकता।

दाक्षिणात्य-विप्र-सने आछे परिचय ।

सेइ विप्र निमन्त्रिया निल निजालय ॥44॥

दाक्षिणात्य-दक्षिण के; विप्र-सने–एक ब्राह्मण के साथ; आछे-था; परिचय-परिचय; सेइ-वह; विप्र-ब्राह्मण; निमन्त्रिया-निमन्त्रण देकर; निल-लाया; निज-आलय-अपने घर पर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की दक्षिण भारत के एक ब्राह्मण से जान-पहचान हो गई थी और उस ब्राह्मण ने उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रित किया। वह उन्हें अपने घर ले गया।

विप्र-गृहे आसि' प्रभु निभृते वसिला ।

श्री-रूप-वल्लभ दुँहे आसिया मिलिला ॥ 45 ॥

विप्र-गृहे-उस ब्राह्मण के घर पर; आसि'–आकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; निभृते-एक एकान्त स्थान पर; वसिला-बैठ गये; श्री-रूप-वल्लभ-रूप गोस्वामी और श्री वल्लभ दोनों भाई; दुँहे वे दोनों; आसिया-आकर; मिलिला–उनको मिले।

अनुवाद

जब महाप्रभु उस दाक्षिणात्य ब्राह्मण के घर एकान्त में बैठे थे, तब रूप गोस्वामी तथा श्री वल्लभ (अनुपम मल्लिक) उनसे भेंट करने वहाँ आये।

दुइ-गुच्छ तृण दुँहे दशने धरिया ।

प्रभु देखि' दूरे पड़े दण्डवत् हञा ॥ 46 ॥

दुइ-गुच्छ-दो गुच्छे; तृण-तिनके; हे वे दोनों; दशने धरिया-दांतों में दबाकर; प्रभु देखि'–महाप्रभु को देखकर; दूरे-दूर से; पड़े-गिर गये; दण्ड-वत्-दण्डवत्; हञा–होकर।

अनुवाद

दूर से महाप्रभु को देखकर दोनों भाइयों ने अपने दाँतों में तिनकों के दो गुच्छे दबा लिए और उन्हें नमस्कार करने के लिए भूमि पर दण्ड के समान गिर पड़े।

नाना श्लोक पड़ि' उठे, पड़े बार बार ।

प्रभु देखि' प्रेमावेश हइल दुँहार ॥47॥

नाना-अनेक; श्लोक-श्लोक; पड़ि'–पढ़कर; उठे-उठते; पड़े-गिरते; बार बार-बारम्बार; प्रभु देखि'–महाप्रभु को देखकर; प्रेम-आवेश-प्रेमावेश; हइल-हो आया; हार–उन दोनों में।

अनुवाद

दोनों भाई प्रेमाविष्ट हो गये और अनेक संस्कृत श्लोक पढ़ते हुए बारम्बार उठते और गिरते।

श्री-रूपे देखिया प्रभुर प्रसन्न हैल मन ।

'उठ, उठ, रूप, आइस', बलिला वचन ॥48॥

श्री-रूपे देखिया-श्रील रूप गोस्वामी को देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; प्रसन्न-अत्यन्त प्रसन्न; हैल-हो उठा; मन–मन; उठ–कृपया खड़े हो जाओ; उठ–कृपया खड़े हो जाओ; रूप–मेरे प्रिय रूप; आइस-आओ; बलिला–उन्होंने कहे; वचन-ये शब्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु श्रील रूप गोस्वामी को देखकर अत्यधिक प्रसन्न थे। उन्होंने उनसे कहा, "उठो! उठो! हे प्रिय रूप! मेरे पास आओ।"

कृष्णेर करुणा किछु ना याय वर्णने ।

विषय-कूप हैते काड़िल तोमा दुइजने ॥49॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; करुणा-दया का; किछु–कोई भी; ना-नहीं; याय-सम्भव है; वर्णने-वर्णन करना; विषय-कूप हैते–भौतिक भोग के कूप से निकालकर; काड़िल-उद्धार किया; तोमा-तुम; दुइ-जने दोनों का।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "कृष्ण की कृपा का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है, क्योंकि उन्होंने तुम दोनों को भौतिक भोग के कुएँ से बाहर निकाल लिया है।"

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्व-पचः प्रियः ।

तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥50॥

न–नहीं; मे–मेरे; अभक्तः–शुद्ध भक्ति रहित; चतुः-वेदी-चारों वेदों का ज्ञाता; मत्-भक्तः–मेरा भक्त; श्व-पचः-चण्डाल (कुत्ता खाने वाला) कुल से भी; प्रियः-अत्यन्त प्रिय है; तस्मै–उसको (शुद्ध भक्त, भले ही नीच कुल में जन्मा हो); देयम्-दिया जाना चाहिए; ततः-उसके; ग्राह्यम्-स्वीकार किया जाना चाहिए (भोजन का शेष); सः-वह व्यक्ति; च-भी; पूज्यः-पूज्य; यथा-उतना ही जितना; हि-निस्सन्देह; अहम्-मैं।

अनुवाद

"(भगवान् कृष्ण ने कहा :) 'कोई भले ही संस्कृत वैदिक साहित्य का बहुत बड़ा विद्वान क्यों न हो, यदि उसकी भक्ति शुद्ध नहीं है, तो वह मेरा भक्त नहीं माना जा सकता। भले ही कोई व्यक्ति चण्डाल परिवार में जन्मा हो, वह भी मुझे अत्यन्त प्रिय है, यदि वह मेरा शुद्ध भक्त है, जिसमें सकाम कर्म या मानसिक तर्कवितर्क को भोगने की कोई इच्छा नहीं है। उसे सभी प्रकार से सम्मान दिया जाना चाहिए और वह जो कुछ भी दे, उसे स्वीकार करना चाहिए। ऐसा भक्त मेरे ही समान पूजनीय है।"

तात्पर्य

यह श्लोक सनातन गोस्वामी कृत हरिभक्ति-विलास (10.127) से लिया गया है।

एइ श्लोक पड़ि' दुँहारे कैला आलिङ्गन ।

कृपाते दुँहार माथाय धरिला चरण ॥51॥

एइ श्लोक-यह श्लोक; पड़ि'–पढ़कर; दुँहारे दोनों भाइयों का; कैला आलिङ्गन-आलिंगन किया; कृपाते-अद्वैतकी कृपा से; वँहार–उन दोनों के; माथाय-मस्तकों पर; धरिला-रखे; चरण-अपने चरण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह श्लोक पढ़कर दोनों भाइयों का आलिंगन किया और अहैतुकी कृपा करके उनके सिरों पर अपने पाँव रखे।

प्रभु-कृपा पाञा दुँहे दुइ हात युड़ि' ।

दीन हञा स्तुति करे विनय आचरि' ॥52॥

प्रभु-कृपा-महाप्रभु की कृपा; पाञा-पाकर; दुँहे-वे दोनों; दुइ-दोनों; हात-हाथ; युड़ि'-जोड़कर; दीन हञा–अति विनम्रता से; स्तुति करे-प्रार्थना की; विनय आचरि'–नम्रतापूर्वक।

अनुवाद

महाप्रभु की अहैतुकी कृपा पाकर दोनों भाइयों ने हाथ जोड़े और अत्यन्त दीन-भाव से महाप्रभु की निम्नलिखित स्तुति की।

नमो महा-वदान्याय कृष्ण-प्रेम-प्रदाय ते ।

कृष्णाय कृष्ण-चैतन्य-नाम्ने गौर-त्विषे नमः ॥53॥

नमः-नमस्कार; महा-वदान्याय-अत्यन्त दयालु और कृपामय; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; प्रदाय-प्रदान करने वाले; ते-आपको; कृष्णाय-मूल भगवान्; कृष्ण-चैतन्य-नाम्ने-कृष्ण चैतन्य नाम वाले; गौर-त्विषे–जिनका वर्ण श्रीमती राधारानी के सुनहरे रंग जैसा है; नमः-नमस्कार।

अनुवाद

"हे परम दयालु अवतार! आप स्वयं कृष्ण हैं, जो श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए हैं। आपने श्रीमती राधारानी का गौरवर्ण धारण किया है और आप कृष्ण के शुद्ध प्रेम का उदारता से वितरण कर रहे हैं। हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।

योऽज्ञान-मत्तं भुवनं दयालुर्

उल्लाघयन्नप्यकरोत्प्रमत्तम् ।

स्व-प्रेम-सम्पत्सुधयाद्भुतेहं

श्री कृष्ण-चैतन्यममुं प्रपद्ये ॥54॥

यः-वे भगवान् जो; अज्ञान-मत्तम्-अज्ञान से उन्मत्त अथवा मूर्खा की तरह कर्म, जान योग और मायावादी दर्शन में समय आँवाना; भुवनम्-सभी तीन भुवन; दयालुः-इतने दयाल उल्लाघयन्क र्म, ज्ञान और योग जैसी प्रक्रियाओं का तिरस्कार करते हुए; अपि-बावजूद अकरोत्-बनाया; प्रमत्तम्-उन्मत्त; स्व-प्रेम-सम्पत्-सुधया-अपनी निजी भक्ति सेवा के अमृत से, जो आनन्द की अमूल्य निधि है; अद्भुत-ईहम् जिनकी लीलाएँ अद्भुत हैं; श्री कृष्ण-चैतन्यम्-श्री चैतन्य महाप्रभु को; अमुम्-उन; प्रपद्ये—मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

अनुवाद

"हम उन दयालु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं, जिन्होंने अज्ञान से मदोन्मत्त तीनों लोकों को बदल डाला है और उन्हें भगवत्प्रेम के कोष के अमृत से उन्मत्त बनाकर रुग्ण अवस्था से उनकी रक्षा की है। हम उन भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य की शरण ग्रहण करते हैं, जिनके कार्यकलाप अद्भुत हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक गोविन्द-लीलामृत (1.2) से लिया गया है।

तबे महाप्रभु ताँरे निकटे वसाइला ।

'सनातनेर वार्ता कह'—ताँहारे पुछिला ॥55॥

तबे-तत्पश्चात्; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको; निकटे-अपने निकट; वसाइला–बैठाकर; सनातनेर वार्ता–सब सनातन गोस्वामी का समाचार; कह-कृपया कहो; ताँहारे–उनको; पुछिला–पूछा।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें अपनी बगल में बैठाया और उनसे पूछा, "सनातन का क्या समाचार है?"

रूप कहेन,—तेंहो बन्दी हय राज-घरे ।

तुमि यदि उद्धार', तबे हइबे उद्धारे ॥56॥

रूप कहेन–रूप गोस्वामी ने कहा; तेंहो-वह; बन्दी बन्दी बना लिया गया है; हय-है; राज-घरे–सरकार की कचहरी में; तुमि-आप; यदि-यदि; उद्धार'–कृपा करके बचाते हो; तबे-तब; हइबे-उसका होगा; उद्धारे-बन्धन से छूट जायेगा।

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया, "सनातन को हुसेन शाह की सरकार ने अब बन्दी बना लिया है। यदि आप कृपा करके उसे बचायें, तो वह उस बन्धन से छूट सकता है।"

प्रभु कहे,—सनातनेर हाञाछे मोचन ।

अचिरात् आमा-सह हइबे मिलन ॥57॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; सनातनेर-सनातन गोस्वामी की; हञाछे-हो गई है; मोचन–मुक्ति (कैद से छूट गया है); अचिरात्-अति शीघ्र; आमा-सह-मेरे साथ; हइबे मिलन-मिलन होगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त कहा, "सनातन उसके कारागार से छूट चुका है और वह शीघ्र ही आकर मुझसे मिलेगा।"

मध्याह्न करिते विप्र प्रभुरे कहिला ।

रूप-गोसाञि से-दिवस तथाञि रहिला ॥58॥

मध्याह्न करिते-मध्याह्न का भोजन लेने के लिए; विप्र-दक्षिण के ब्राह्मण ने; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कहिला–निवेदन किया; रूप-गोसाञि-रूप गोस्वामी; से-दिवस-उस दिन; तथाञि-वहीं; रहिला-रहे।

अनुवाद

तब ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे भोजन ग्रहण करें। उस दिन रूप गोस्वामी भी वहीं रहे।

भट्टाचार्य दुइ भाइये निमन्त्रण कैल ।

प्रभुर शेष प्रसाद-पात्र दुइ-भाइ पाइल ॥ 59॥

भट्टाचार्य-बलभद्र भट्टाचार्य ने; दुइ भाइये दोनों भाइयों को निमन्त्रण कैल-मध्याह्न का भोजन लेने के लिए निमन्त्रण दिया; प्रभुर शेष प्रसाद-पात्र-श्री चैतन्य महाप्रभ के भोजन का शेष; दुइ-भाइ पाइल-दोनों भाइयों को मिला।

अनुवाद

बलभद्र भट्टाचार्य ने दोनों भाइयों को भी भोजन करने को कहा। उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु की थाल से बचा हुआ भोजन प्रदान किया गया।

त्रिवेणी-उपर प्रभुर वासा-घर स्थान ।

दुइ भाइ वासा कैल प्रभु-सन्निधान ॥ 60॥

त्रिवेणी-उपर-यमुना और गंगा के संगम के तट पर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; वासा-घर–निवासस्थान; स्थान-स्थान; दुइ भाइ-दोनों भाइयों ने; वासा कैल-निवास किया; प्रभु-सन्निधान-श्री चैतन्य महाप्रभु के निकट।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने गंगा तथा यमुना के संगम के निकट त्रिवेणी नामक स्थान में अपना निवासस्थान चुना। रूप गोस्वामी तथा श्री वल्लभ दोनों भाइयों ने महाप्रभु के निकट ही अपना निवासस्थान चुना।

से-काले वल्लभ-भट्ट रहे आड़ाइल-ग्रामे ।

महाप्रभु आइला शुनि' आइल ताँर स्थाने ॥ 61॥

से-काले-उस समय; वल्लभ-भट्ट-वल्लभ भट; रहे-रहते थे; आड़ाइल-ग्रामे-आडाइल नामक गाँव में; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला-आये हैं; शुनि'-यह सुनकर; आइल-पहुँच गये; ताँर स्थाने–उनके स्थान पर।

अनुवाद

उस समय श्री वल्लभ भट्ट आड़ाइल ग्राम में रह रहे थे। जब उन्होंने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु आये हैं, तो वे उनका दर्शन करने उनके स्थान पर गये।

तात्पर्य

वल्लभ भट्ट वैष्णव-दर्शन के महान् विद्वान थे। प्रारम्भ में वे श्री चैतन्य महाप्रभु को बहुत समर्पित थे, किन्तु जब उन्होंने देखा कि महाप्रभु से उन्हें समुचित सम्मान नहीं मिल रहा, तो बाद में वे विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये और उस सम्प्रदाय के आचार्य बन गये। उनका सम्प्रदाय वल्लभाचार्य

सम्प्रदाय के नाम से विख्यात है। इस सम्प्रदाय का गोकुल के निकट वृन्दावन तथा बम्बई में काफी प्रभाव था। वल्लभ भट्ट ने अनेक पुस्तकें लिखीं, जिनमें श्रीमद्भागवत की टीका सुबोधिनी टीका और वेदान्त-सूत्र पर टिप्पणियाँ अनुभाष्य के रूप में सम्मिलित हैं। उन्होंने षोडश-ग्रन्थ भी लिखा, जिसमें सोलह ग्रन्थों का संकलन है। आड़ाइल ग्राम या अडेली ग्राम, जहाँ वे रह रहे थे, गंगा तथा यमुना नदी के संगम के निकट ही यमुना के उस पार प्रयाग से लगभग एक मील दूर था। आज भी वहाँ भगवान् विष्णु का एक मन्दिर है, जो वल्लभ सम्प्रदाय का है।

वल्लभ भट्ट का मूल स्थान दक्षिण भारत में था, जिसे त्रैलंग कहते थे। निडाडाभलु नाम का एक रेलवे स्टेशन है, जिससे सोलह मील दूरी पर कांकडबाड या काकुंरपाढु नामक एक गाँव है। वहाँ पर लक्ष्मण दीक्षित नाम का एक विद्वान ब्राह्मण रहता था। वल्लभ भट्ट उसी के पुत्र थे। आन्ध्र प्रदेश में ब्राह्मण जाति के पाँच अनुभाग हैं-बेल्लनाटी, वेगीनाटी, मुरकिनाटी, तेलगुनाटी तथा काशलनाटी। इन पाँचों ब्राह्मण जातियों में से वल्लभाचार्य का जन्म 1400 शकाब्द (1478 ई.) में बेल्लनाटी जाति में हुआ। कुछ लोगों के मतानुसार वल्लभ भट्टाचार्य के पिता ने वल्लभ के जन्म के पहले ही संन्यास ले लिया था, किन्तु वल्लभाचार्य को अपना पुत्र स्वीकारने के लिए घर लौट आये। अन्य लोगों के मतानुसार, वल्लभाचार्य चैत्र मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन सम्वत् 1400 शकाब्द में उत्पन्न हुए थे। उनका जन्म खंभंपाटिबारु नामक ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इस मत के अनुसार उनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट दीक्षित था और वे चम्पकारण्य में उत्पन्न हुए थे। एक अन्य मत है कि वल्लभाचार्य का जन्म चांपाझारग्राम में हुआ, जो मध्य प्रदेश के राजिम रेलवे स्टेशन के पास है।

वाराणसी में 11 वर्षों तक अध्ययन करने के बाद वल्लभाचार्य अपने घर लौट गये। लौटने पर उन्हें पता चला कि उनके पिता भौतिक जगत् से सिधार चुके हैं। उन्होंने अपने भाई तथा अपनी माता को घर पर ही छोड़ दिया और स्वयं तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित विद्यानगर नामक गाँव चले गये। यहीं पर इन्होंने राजा बुक्कराज के पौत्र कृष्णदेव को ज्ञान दिया। इसके बाद प्रत्येक बार छह वर्षों तक उन्होंने भारत का तीन बार भ्रमण किया। इस तरह उन्होंने अठारह वर्ष बिताये और शास्त्रार्थ में विजयी हुए। जब

वे 30 वर्ष के थे, तब उन्होंने महालक्ष्मी के साथ विवाह किया, जो उसी ब्राह्मण जाति की थी, जिससे वे स्वयं थे। उन्होंने गोवर्धन पर्वत के निकट घाटी में एक अर्चाविग्रह की स्थापना की। अन्त में वे आड़ाइल आये, जो प्रयाग से यमुना के उस पार स्थित है।

वल्लभाचार्य के दो पुत्र थे-गोपीनाथ तथा विट्ठलेश्वर। वृद्धावस्था में उन्होंने संन्यास ग्रहण किया। 1452 शकाब्द (1530 ई.) में वाराणसी में उन्होंने भौतिक जगत् का त्याग किया। षोडशग्रन्थ, वेदान्त-सूत्र की टीकाएँ (अनुभाष्य) तथा श्रीमद्भागवत की टीका (सुबोधिनी) उनके अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य पुस्तकें भी लिखी हैं।

तेंहो दण्डवत्कैल, प्रभु कैला आलिङ्गन।

दुइ जने कृष्ण-कथा हैल कत-क्षण ॥62॥

तेंहो-उन्होंने; दण्डवत्-दण्डवत् प्रणाम; कैल-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला–किया; आलिङ्गन-आलिंगन; दुइ जने–उन दोनों के मध्य; कृष्ण-कथा-कृष्ण कथाएँ; हैल–हुई; कत-क्षण-कुछ समय के लिए।

अनुवाद

वल्लभ भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार किया और महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया। इसके बाद कुछ समय तक वे कृष्ण-कथाओं के विषय में विचार-विमर्श करते रहे।

कृष्ण-कथाय प्रभुर महा-प्रेम उथलिल।

भट्टेर सङ्कोचे प्रभु सम्वरण कैल ॥ 63॥

कृष्ण-कथाय-कृष्ण कथाओं की चर्चा में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; महा-प्रेम-महाप्रेम; उथलिल-जागृत हो गया; भट्टेर–भट्टाचार्य के; सङ्कोचे-संकोच के कारण; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सम्वरण कैल-अपने आपको संभाला।

अनुवाद

जब वे कृष्ण-कथा के विषय में बातें कर रहे थे, तब श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यधिक प्रेमावेश का अनुभव हुआ, किन्तु उन्होंने अपना भाव रोका, क्योंकि वल्लभ भट्ट के समक्ष उन्हें संकोच हो रहा था।

अन्तरे गर-गर प्रेम, नहे सम्वरण ।

देखि' चमत्कार हैल वल्लभ-भट्टेर मन ॥ 64॥

अन्तरे-अन्दर; गर-गर-जोर मारने लगा; प्रेम-प्रेम; नहे-नहीं; सम्वरण-रूक रहा था; देखि'–यह देखकर; चमत्कार–चकित; हैल–हो गया; वल्लभ-भट्टेर मन-वल्लभ भट्ट का मन।

अनुवाद

यद्यपि महाप्रभु ने बाहर से अपने आपको रोका, किन्तु उनके भीतर ही भीतर प्रेमावेश उमड़ने लगा। उसको रोक पाना सम्भव नहीं था। वल्लभ भट्ट यह पहचानकर आश्चर्यचकित थे।

तबे भट्ट महाप्रभुरे निमन्त्रण कैला ।

महाप्रभु दुइ-भाइ ताँहारे मिलाइला ॥65॥

तबे-तब; भट्ट-वल्लभ भट्ट ने; महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण कैला-निमन्त्रण दिया; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; दुइ-भाइ-दोनों भाई रूप तथा वल्लभ. ताँहारे-उनको; मिलाइला–परिचय करवाया।

अनुवाद

इसके बाद वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन पर बुलाया और महाप्रभु ने रूप तथा वल्लभ दोनों भाइयों का उनसे परिचय करवाया।

दुइ–भाइ दूर हैते भूमिते पड़िया।

भट्टे दण्डवत्केला अति दीन हञा ॥66॥

दुइ–भाइ–दोनों भाई; दूर हैते-दूर से; भूमिते-भूमि पर; पड़िया-गिरकर; भट्टे-वल्लभ भट्ट को; दण्डवत् कैला-दण्डवत् प्रणाम किया; अति दीन हञा–अत्यन्त विनम्र होकर।

अनुवाद

रूप गोस्वामी तथा श्री वल्लभ दोनों भाइयों ने अत्यधिक दीनतावश दूर से ही भूमि पर गिरकर वल्लभ भट्ट को प्रणाम किया।

भट्ट मिलिबारे याय, दुँहे पलाय दूरे।

'अस्पृश्य पामर मुञि, ना छुँइह मोरे' ॥67॥

भट्ट-वल्लभ भट्ट; मिलिबारे–मिलने के लिए; याय-गये; हे दोनों भाई; पलाय-भाग गये; दूरे-दूस स्थान पर; अस्पृश्य-अछूत; पामर–पतित; मुञि-मैं; ना छुँइह-मत छुओ; मोरे-मुझे।

अनुवाद

जब वल्लभ भट्टाचार्य उनकी ओर बढ़े, तो वे और दूर चले गये। रूप गोस्वामी ने कहा, "मैं अछूत और अत्यन्त पापी हूँ। कृपा करके मुझे न छुएँ।"

भट्टेर विस्मय हैल, प्रभुर हर्ष मन।

भट्टेरे कहिला प्रभु ताँर विवरण ॥ 68 ॥

भट्टेर-वल्लभ भट्टचार्य को; विस्मय हैल-आश्चर्य हुआ; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; हर्ष-हर्ष; मन–मन; भट्टेरे कहिला-वल्लभ भट्टाचार्य को कहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर विवरण-उनका (रूप गोस्वामी) वर्णन दिया।

अनुवाद

इस पर वल्लभ भट्टाचार्य को अत्यधिक आश्चर्य हुआ। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न थे; अतएव उन्होंने रूप गोस्वामी का यह विवरण उन्हें दिया।

'इँहो ना स्पर्शह, इँहो जाति अति-हीन! ।

वैदिक, याज्ञिक तुमि कुलीन प्रवीण!' ॥69॥

इँहो–उसको; ना स्पर्शह–छुओ नहीं; इँहो-वह; जाति-जाति; अति-हीन–बहुत नीची; वैदिक-वैदिक सिद्धान्तों का अनुयायी; याज्ञिक-कई यज्ञों को करने वाला; तुमि-आप; कुलीन-उच्च जाति के ब्राह्मण; प्रवीण-एक अनुभवी व्यक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "उसे मत छुएँ, क्योंकि वह अत्यन्त निम्न जाति का है। आप तो वैदिक नियमों के अनुयायी हैं और अनेक यज्ञों को सम्पन्न करने में अत्यन्त अनुभवी हैं। आप तो कुलीन भी हैं।"

तात्पर्य

सामान्यतया ब्राह्मणों को इसका मिथ्या गर्व रहता है कि वे कुलीन होते हैं और अनेक वैदिक यज्ञ करते हैं। दक्षिण भारत में विशेषतया यह गर्वित स्थिति अत्यधिक मुखर है। जो भी हो, 500 वर्ष पूर्व ऐसी दशा थी। श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन का शुभारम्भ करके इस ब्राह्मण-पद्धति के विरुद्ध विद्रोह शुरू किया। इस कीर्तन से जाति, पाँति, रंग या सामाजिक स्थिति के भेदभाव के बिना मनुष्य का उद्धार किया जा सकता है। जो भी हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करता है, वह भक्ति की दिव्य स्थिति के कारण तुरन्त शुद्ध हो जाता है। यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु वल्लभ भट्टाचार्य को यह इंगित

कर रहे हैं कि यज्ञ करने वाले तथा वैदिक नियमों का पालन करने वाले कुलीन ब्राह्मण को भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन द्वारा भक्ति में लगे व्यक्ति की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

वास्तव में रूप गोस्वामी निम्न जाति के नहीं थे। वे अत्यन्त कुलीन ब्राह्मण परिवार के थे, किन्तु मुसलमान नवाब की संगति के कारण वे पतित तथा ब्राह्मण समाज से निष्कासित माने जाते थे। किन्तु फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनकी उन्नत भक्ति के कारण उन्हें गोस्वामी के रूप में स्वीकार किया। वल्लभ भट्टाचार्य यह बात जानते थे। भक्त की जाति-पाँति नहीं होती, फिर भी वल्लभ भट्टाचार्य अपने आपको प्रतिष्ठित अनुभव करते थे। बम्बई के वल्लभ भट्टाचार्य सम्प्रदाय के वर्तमान अध्यक्ष दीक्षित महाराज हैं। वे हमारे आन्दोलन के प्रति अच्छा मित्रभाव रखते हैं और जब भी हमारी उनसे भेंट होती है, वे ब्राह्मण विद्वान हरे कृष्ण आन्दोलन के कार्यों की खूब प्रशंसा करते हैं। वे हमारे संघ के आजीवन सदस्य हैं और जात ब्राह्मण परम्परा के विद्वान होते हुए भी हमारे संघ को स्वीकार करते हैं और इसके सदस्यों को भगवान् विष्णु के प्रामाणिक भक्त समझते हैं।

दुँहार मुखे निरन्तर कृष्ण-नाम शुनि’ ।

भट्ट कहे, प्रभुर किछु इङ्गित-भङ्गी जानि’ ॥ 70 ॥

दुँहार मुखे-रूप गोस्वामी तथा उसके भाई वल्लभ दोनों के मुख में; निरन्तर–निरन्तर; कष्ण-नाम शुनि’–कृष्ण के पावन नाम के जप को सुनकर; भट्ट कहे-वल्लभ भट्टाचार्य ने कहा: प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; किछु-कुछ; इङ्गित–संकेत; भङ्गी-संकेत; जानि’-समझ गये।

अनुवाद

दोनों भाइयों को कृष्ण-नाम का निरन्तर जप करते सुनकर वल्लभ भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के संकेतों को समझ सके।

‘दुँहार मुखे कृष्ण-नाम करिछे नर्तन ।

एइ-दुइ 'अधम' नहे, हय 'सर्वोत्तम' ॥71॥

हार मुखे-दोनों के मुख में; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम; करिछे-करता है; नर्तन-नृत्य; एइ-दुइ-वे दोनों; अधम नहे-पतित नहीं; हय हैं; सर्व-उत्तम-सर्वोत्तम।

अनुवाद

वल्लभ भट्टाचार्य ने कहा, "जब ये दोनों निरन्तर कृष्ण-नाम का कीर्तन जप रहते हैं, तो फिर ये अस्पृश्य कैसे हो सकते हैं? उल्टे, ये सर्वोत्तम हैं।"

तात्पर्य

वल्लभ भट्टाचार्य द्वारा दोनों भाइयों के उच्च पद को स्वीकार किया जाना उन लोगों के लिए शिक्षा देने वाला है, जो अपने ब्राह्मण-पद पर मिथ्या गर्व करते हैं। कभी-कभी तथाकथित ब्राह्मण हमारे यूरोपीय तथा अमरीकी शिष्यों को भक्त या ब्राह्मण नहीं मानते और कुछ ब्राह्मण तो इतने अहंकारी होते हैं। कि वे उन्हें मन्दिरों में नहीं प्रवेश करने देते। यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु एक बहुत बड़ी शिक्षा दे रहे हैं। यद्यपि वल्लभ भट्टाचार्य ब्राह्मणवाद के धुरन्धर पंडित थे और विद्वान थे, फिर भी उन्होंने स्वीकार किया कि जो भगवान् के नाम का कीर्तन करते हैं, वे प्रामाणिक ब्राह्मण तथा वैष्णव हैं, अतएव सर्वोच्च हैं।

अहो बत श्व-पचोऽतो गरीयान्

यजिह्वाये वर्तते नाम तुभ्यम् ।

तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरा

ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥72॥

अहो बत-यह कितना आश्चर्यजनक है; श्व-पचः-चण्डाल (कुत्ता-भक्षी); अतः-दीक्षित ब्राह्मण की अपेक्षा; गरीयान्-अधिक महिमायुक्त; यत्-जिसकी; जिह्वा-अये–जिह्वा पर; वर्तते-रहता है; नाम-

पावन नाम; तुभ्यम्-मेरे प्रभु, आपका; तेपुः-की है; तपः-तपस्या; ते—उन्होंने; जुहुवुः-यज्ञ किये हैं; सस्नुः-सारे तीर्थ स्थानों में स्नान किये हैं; आर्याः–आर्य जाति के; ब्रह्म-सारे वेद; अनूचुः–पढ़े हैं; नाम-पावन नाम का; गृणन्ति-जप करते हैं; ये-जो; ते–वे।

अनुवाद

तब वल्लभ भट्टाचार्य ने यह श्लोक सुनाया, "हे प्रभु, जिस व्यक्ति की जीभ पर आपका पवित्र नाम सदा रहता है, वह दीक्षित ब्राह्मण से भी बढ़कर होता है। भले ही वह चण्डाल कुल में क्यों न उत्पन्न हुआ हो और भौतिक दृष्टि से अत्यन्त नीच व्यक्ति हो, फिर भी वह यशस्वी है। यह भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन का अद्भुत प्रभाव है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि जो भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता है, उसे वेदोक्त सारे तप तथा यज्ञ सम्पन्न किया हुआ मान लेना चाहिए। वह पहले से सारे तीर्थों में स्नान कर चुका होता है। वह सारे वेदों का अध्ययन कर चुका होता है और वास्तव में आर्य होता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (3.33.7) से उधृत है।

शुनि' महाप्रभु ताँरे बहु प्रशंसिला ।

प्रेमाविष्ट हञा श्लोक पड़िते लागिला ॥73॥

शनि'–सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उसकी; बहु-बहुत अधिक; पशुसिला–प्रशंसा की; प्रेम-आविष्ट हञा–प्रेमाविष्ट होकर; श्लोक-श्लोक; पड़िते लागिला-पढ़ने लगे।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट को भक्त के विषय में शास्त्र से उद्धरण देते सुनकर महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न थे। महाप्रभु ने स्वयं उनकी प्रशंसा की और वे भगवत्प्रेम से आविष्ट होकर शास्त्रों से अनेक श्लोक सुनाने लगे।

शुचिः सद्भक्ति-दीप्ताग्नि-दग्ध-दुर्जाति-कल्मषः ।

श्व-पाकोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न वेद-ज्ञोऽपि नास्तिकः ॥74॥

शुचिः–बाहर तथा अन्दर से शुद्ध ब्राह्मण; सत्-भक्ति–निष्काम भक्ति; दीप्त-अग्नि-जलती अग्नि से; दग्ध-जलकर राख हुई; दुर्जाति-जैसे कि निम्न वंश में जन्म; कल्मषः-जिसके पापों का फल; श्व-पाकः अपि-चण्डाल कुल में जन्मे होने पर भी; बुधैः-विद्वानों द्वारा; श्लाघ्यः-प्रशंसित; न—नहीं; वेद-ज्ञः अपि वैदिक ज्ञान में पूर्णरूपेण निपुण; नास्तिकः-एक नास्तिक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "भक्ति प्रज्वलित अग्नि की तरह विगत जीवन के सारे पापों के फलों को जला देती है। जो व्यक्ति उस भक्ति के कारण ब्राह्मण के शुद्ध गुणों से युक्त है, वह निम्न-कुल में जन्म लेने जैसे पापकर्मों के परिणामों से निश्चित रूप से बच जाता है। भले ही वह चण्डाल के परिवार में क्यों न जन्मा हो, विद्वान उसे मान्यता प्रदान करते हैं। किन्तु वैदिक ज्ञान में पंडित व्यक्ति, यदि वह नास्तिक हो, तो उसे मान्यता नहीं मिलती।

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगला श्लोक हरिभक्ति-सुधोदय (3.11, 12) से उद्धृत हैं, जो पुराणों से उधृत दिव्य साहित्य है।

भगवद्भक्ति-हीनस्य जातिः शास्त्रं जपस्तपः ।

अप्राणस्येव देहस्य मण्डनं लोक-रञ्जनम् ॥75 ॥

भगवत्-भक्ति-हीनस्य-भगवद् भक्ति से रहित व्यक्ति का; जातिः-उच्च जाति में जन्म; शास्त्रम्-शास्त्रों में ज्ञान; जपः-मंत्रोच्चारण; तपः-तपस्या; अप्राणस्य-जो मृत है। इव-की तरह; देहस्य-शरीर की; मण्डनम्-सजावट; लोक-सामान्य लोगों की भावनाओं को; रञ्जनम् मात्र प्रसन्न करने वाली।

अनुवाद

"भक्तिहीन व्यक्ति के लिए उच्च कुल या राष्ट्र में जन्म लेना, शास्त्र-ज्ञान, व्रत-तप तथा वैदिक मन्त्रोच्चार वैसे ही हैं, जैसे मृत शरीर को गहने पहनाना। ऐसे गहने केवल सामान्य जनता के मनोकल्पित आनन्द की ही तुष्टि करने वाले होते हैं।"'

प्रभुर प्रेमावेश, आर प्रभाव भक्ति-सार।

सौन्दर्यादि देखि' भट्टेर हैल चमत्कार॥ 76॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; प्रेम-आवेश-प्रेमावेश; आर-और; प्रभाव-प्रभाव; भक्ति-सार–भक्ति का सार; सौन्दर्य-आदि-सुन्दरता आदि गुण; देखि-देखकर; भट्टेर-वल्लभ भट्टाचार्य; हैल–था; चमत्कार–चकित।

अनुवाद

महाप्रभु के प्रेमावेश को देखकर वल्लभ भट्टाचार्य अत्यधिक आश्चर्यचकित थे। वे महाप्रभु के भक्ति विषयक ज्ञान तथा उनके शारीरिक सौन्दर्य और प्रभाव से भी आश्चर्यचकित थे।

सगणे प्रभुरे भट्ट नौकाते चड़ाञा।

भिक्षा दिते निज-घरे चलिला लञा॥77॥

स-गणे-अपने साथियों के साथ; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; भट्ट-वल्लभ भट्टाचार्य; नौकाते-नौका पर; चड़ाञा-चढ़ाकर; भिक्षा दिते-भोजन देने के लिए; निज-घरे-अपने घर में; चलिला–चले; लञा–लेकर।

अनुवाद

तब वल्लभ भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों को नाव में चढ़ाया और उन्हें भोजन कराने के लिए अपने स्थान पर ले गये।

यमुनार जल देखि' चिक्कण श्यामल ।

प्रेमावेशे महाप्रभु हइला विह्वल ॥78 ॥

यमुनार-यमुना नदी का जल-जल; देखि'–देखकर; चिक्कण-चिकना; श्यामल-श्यामल; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; हइला-हो गये; विह्वल-विचलित।

अनुवाद

यमुना नदी पार करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने चिकना श्यामल जल देखा, तो वे तुरन्त ही प्रेमावेश में विह्वल हो गये।

हुङ्कार करि' यमुनार जले दिला झाँप ।

प्रभु देखि' सबार मने हैल भय-काँप ॥ 79 ॥

हुङ्कार करि'-ऊँची आवाज करते हुए; यमुनार जले-यमुना नदी के जल में; दिला-दिया; झाँप-कूद गये; प्रभु देखि'-श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर; सबार-हर एक के; मने-मन में; हैल–हुआ; भय-काँप-भय और कम्पन।

अनुवाद

यमुना नदी को देखते ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने हुंकार की और पानी में कूद पड़े। यह देखकर सारे लोग भयभीत होकर काँपने लगे।

आस्ते-व्यस्ते सबे धरि' प्रभुरे उठाइल ।

नौकार उपरे प्रभु नाचिते लागिल ॥80॥

आस्ते-व्यस्ते–अत्यन्त जल्दी में; सबे-सबने; धरि'-पकड़कर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; उठाइल-उठाया; नौकार-नौका के; उपरे ऊपर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः नाचिते लागिल नृत्य करने लगे।

अनुवाद

उन्होंने शीघ्रतिशीघ्र श्री चैतन्य महाप्रभु को पकड़ा और जल से बाहर निकाला। नाव के ऊपर आकर महाप्रभु नृत्य करने लगे।

महाप्रभुर भरे नौका करे टलमल ।

डुबिते लागिल नौका, झलके भरे जल ॥81॥

महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भरे-वजन के कारण; नौका-नौका; करे–हुई; टलमल-डगमगाने; डुबिते-डूबने के लिए; लागिल-लगी; नौका-नौका; झलके-जोरदार लहरों में; भरे-भर गया; जल-जल।

अनुवाद

महाप्रभु के भार से नाव हिलने-डुलने लगी। उसमें जल भरने लगा और डूबने को हो गई।

यद्यपि भट्टेर आगे प्रभुर धैर्य हैल मन ।

दुर्वार उद्धट प्रेम नहे सम्वरण ॥82॥

यद्यपि यद्यपि; भट्टेर-वल्लभाचार्य के आगे-समक्ष; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; धैर्य-धैर्य; हैल–था; मन–मन; दुर्वार-रोकने में कठिन; उद्भट-अद्भुत; प्रेम-प्रेम; नहे-नहीं है; सम्वरण-रोकना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभाचार्य के समक्ष अपने आपको यथासम्भव संभालने का प्रयास किया और अपने आपको शान्त रखना चाहा, किन्तु उनका प्रेमभाव रोके न रुका।

देश-पात्र देखि' महाप्रभु धैर्य हइल ।

आड़ाइलेर घाटे नौका आसि' उत्तरिल ॥83॥

देश-पात्र देखि'–परिस्थितियाँ देखकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु: धैर्य हडल-शान्त हो गये; आड़ाइलेर घाटे-आड़ाइला गाँव के किनारे पर; नौका-नौका; आसि'-आकर; उत्तरिल-लगी।

अनुवाद

परिस्थिति देखकर महाप्रभु शान्त हो गये, जिससे नाव आड़ाइल के किनारे पहुँचकर लग सकी।

भये भट्ट सङ्गे रहे, मध्याह्न कराञा ।

निज-गृहे आनिला प्रभुरे सङ्गेते लञा ॥84॥

भये-भय सहित; भट्ट-वल्लभ भट्टाचार्य; सङ्गे–श्री चैतन्य महाप्रभु की संगति में; रहे-रहे; मध्याह्न कराञा-उनके स्नान की व्यवस्था करने के बाद; निज-गृहे-अपने घर पर; आनिलाले आये; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; सङ्गेते-साथ में; लञा–लेकर।

अनुवाद

महाप्रभु की कुशलता के लिए भयभीत वल्लभ भट्टाचार्य उनके साथ रहे। महाप्रभु के स्नान का प्रबन्ध करने के बाद भट्टाचार्य उन्हें अपने घर ले गये।

आनन्दित हञा भट्ट दिल दिव्यासन ।

आपने करिल प्रभुर पाद-प्रक्षालन ॥85॥

आनन्दित हञा–प्रसन्न होकर; भट्ट-वल्लभ भट्टाचार्य ने; दिल-दिया; दिव्य-आसन-एक सुन्दर आसन; आपने–स्वयं; करिल–किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; पाद-प्रक्षालन-चरणों को धोना।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वल्लभ भट्टाचार्य के घर पहुँचे, तब अत्यन्त प्रसन्न होने के कारण, उन्होंने महाप्रभु को सुन्दर आसन प्रदान किया और स्वयं उनके चरणों को धोया।

सवंशे सेइ जल मस्तके धरिल ।

नूतन कौपीन-बहिर्वास पराइल ॥86॥

स-वंशे–परिवार के सभी सदस्यों सहित; सेइ-वह; जल-जल; मस्तके सिर पर; धरिल–छिड़का; नूतन-नया; कौपीन-कौपीन; बहिर्वास–बाह्य वस्त्र; पराइल–पहनाया।

अनुवाद

तब वल्लभ भट्टाचार्य तथा उनके पूरे परिवार ने वह जल अपने सिरों के ऊपर छिड़का। फिर उन्होंने महाप्रभु को नया कौपीन तथा बाह्य वस्त्र दिये।

गन्ध-पुष्प-धूप-दीपे महा-पूजा कैल ।

भट्टाचार्ये मान्य करि' पाक कराइल ॥87॥

गन्ध–सुगन्धियाँ; पुष्प-पुष्प; धूप-धूप, दीपे-दीपों से; महा-पूजा कैल–महाप्रभु की बड़े ऐश्वर्य के साथ पूजा की; भट्टाचार्ये-बलभद्र भट्टाचार्य को; मान्य करि'–सम्मान देकर; पाक कराइल-पकाने में लगाकर।

अनुवाद

वल्लभाचार्य ने सुगन्ध, अगुरु, फूल तथा दीप के द्वारा बड़ी सजधज से महाप्रभु की पूजा की और बड़े ही आदर के साथ (महाप्रभु के रसोइये) बलभद्र भट्टाचार्य को भोजन पकाने के लिए राजी किया।

भिक्षा कराइल प्रभुरे सस्नेह यतने ।

रूप-गोसाञि दुइ-भाइये कराइल भोजने ॥ 88॥

भिक्षा कराइल-भोजन खिलाया; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; सस्नेह-स्नेहपूर्वक; यतने–बहुत सावधानी से; रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी; दुइ–भाइये दोनों भाइयों को; कराइल भोजने–भोजन कराया।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु को बड़ी ही सावधानी से तथा स्नेह से भोजन परोसा गया। रूप गोस्वामी तथा श्री वल्लभ दोनों भाइयों को भी भोजन दिया गया।

भट्टाचार्य श्री-रूपे देओयाइल 'अवशेष' ।

तबे सेइ प्रसाद कृष्णदास पाइल शेष ॥89॥

भट्टाचार्य-वल्लभ भट्टाचार्य ने; श्री-रूपे-श्रील रूप गोस्वामी को; देओयाइल-दिया; अवशेष-शेष; तबे-तब; सेइ-वे; प्रसाद शेष बचा प्रसाद; कृष्णदास-कृष्णदास को; पाइल-मिला; शेष-शेष।

अनुवाद

वल्लभ भट्टाचार्य ने सबसे पहले श्रील रूप गोस्वामी को महाप्रभु के भोजन का शेष दिया और फिर कृष्णदास को दिया।

मुख-वास दिया प्रभुरे कराइल शयन ।

आपने भट्ट करेन प्रभुर पाद-सम्वाहन ॥90 ॥

मुख-वास-मसाले; दिया-देकर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; कराइल-करवाया; शयन-विश्राम; आपने–स्वयं; भट्ट–श्रील वल्लभ भट्ट; करेन-किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभुः पाद-सम्वाहन-चरण सेवा।

अनुवाद

तब महाप्रभु को मुख-शुद्धि के लिए मसाला दिया गया। इसके बाद उन्हें शयन कराया गया और वल्लभ भट्टाचार्य ने अपने हाथों से उनके पाँव दबाये।

प्रभु पाठाइल ताँरे करिते भोजने ।

भोजन करि' आइला तेंहो प्रभुर चरणे ॥11॥

प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; पाठाइल-भेजा; ताँरे-उनको (वल्लभ भट्टाचार्य को); करिते भोजने–भोजन करने के लिए; भोजन करि'- भोजन करने के बाद; आइला-आये; तेंहो-वे; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर।

अनुवाद

जब वल्लभ भट्टाचार्य उनके पाँव दबा रहे थे, तब महाप्रभु ने उनसे जाकर प्रसाद ग्रहण करने के लिए कहा। वे प्रसाद ग्रहण करके पुनः महाप्रभु के चरणकमलों पर लौट आये।

हेन-काले आइला रघुपति उपाध्याय ।

तिरुहिता पण्डित, बड़ वैष्णव, महाशय ॥92॥

हेन-कालेइस समय; आइला–आ पहुँचा; रघुपति उपाध्याय-रघुपति उपाध्याय नामक एक ब्राह्मण; तिरुहिता–तिरुहिता जिले का रहने वाला; पण्डित–एक बहुत विद्वान पण्डित; बड़-बड़ा; वैष्णव-भक्त; महाशय-महाशय।

अनुवाद

उस समय रघुपति उपाध्याय आया जो तिरुहिता जिले का था। वह बहुत बड़ा विद्वान, महान् भक्त तथा सम्मानित व्यक्ति था।

तात्पर्य

तिरुहिता या तिहुँतिया बिहार के चार जिलों-सारन, चम्पारण, मुजफ्फरपुर तथा द्वारभांगा को मिलाकर बना है। इस राज्य के लोग तिरुटिया कहलाते हैं।

आसि' तेंहो कैल प्रभुर चरण वन्दन ।

'कृष्ण मति रहु' बलि' प्रभुर वचन ॥ 93 ॥

आसि'–आकर; तेंहो–उसने; कैल–किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण वन्दन–चरणकमलों की पूजा; कृष्णे मति रहु-सदा कृष्णभावनामृत में बने रहो; बलि'-यह कहकर; प्रभुर वचन–श्री चैतन्य महाप्रभु का आशीर्वाद।

अनुवाद

रघुपति उपाध्याय ने सर्वप्रथम श्री चैतन्य महाप्रभु की वन्दना की और महाप्रभु ने यह कहते हुए आशीर्वाद दिया, "सदैव कृष्णभावनामय बने रहो।"

शुनि' आनन्दित हैल उपाध्यायेर मन ।

प्रभु ताँरे कहिल,—'कह कृष्णेर वर्णन' ॥ 94॥

शुनि'–सुनकर; आनन्दित-अत्यन्त प्रसन्न; हैल–हो गया; उपाध्यायेर मन-उपाध्याय का मन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उसको; कहिल–कहा; कह कष्णेर वर्णन-कृष्ण कथा करने का प्रयास करो।

अनुवाद

रघुपति उपाध्याय महाप्रभु का आशीर्वाद सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुआ। इसके बाद महाप्रभु ने उससे कृष्ण का वर्णन करने के लिए कहा।

निज-कृत कृष्ण-लीला-श्लोक पड़िल ।

शुनि' महाप्रभुर महा प्रेमावेश हैल ॥95॥

निज-कृत-स्वरचित; कृष्ण-लीला-कृष्ण लीला पर; श्लोक-श्लोक; पड़िल-पढ़े; शुनि'–सुनकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; महा—महान्; प्रेम-आवेश-प्रेमावेश; हैल-हुआ।

अनुवाद

जब रघुपति उपाध्याय से कृष्ण का वर्णन करने के लिए कहा गया, तो उसने कुछ श्लोक सुनाये, जो उसने कृष्ण-लीला के विषय में स्वयं लिखे थे। उन श्लोकों को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेम से विह्वल हो गये।

श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे

भारतमन्ये भजन्तु भव-भीताः ।

अहमिह नन्दं वन्दे

यस्यालिन्दे परं ब्रह्म ॥ 96 ॥

श्रुतिम् वैदिक साहित्य; अपरे–कोई; स्मृतिम् वैदिक साहित्य की पूरक; इतरे-अन्य; भारतम्-महाभारत; अन्ये-अन्य; भजन्तु–पूजा करें; भव-भीताः–भौतिक जीवन से भयभीत; अहम्-मैं; इह-यहाँ; नन्दम्-महाराज नन्द; वन्दे पूजा करता हूँ; यस्य-जिनके; अलिन्दे-आँगन में; परम् ब्रह्म-परम ब्रह्म, परम सत्य।

अनुवाद

रघुपति उपाध्याय ने सुनाया, "इस भौतिक अस्तित्व से भयभीत लोग वैदिक साहित्य की पूजा करते हैं। कुछ स्मृति की पूजा करते हैं, जो वैदिक साहित्य के उपसिद्धान्त हैं, तो कुछ महाभारत की। किन्तु मैं तो कृष्ण के पिता महाराज नन्द की पूजा करता हूँ, जिनके आँगन में परम सत्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् खेल रहे हैं।"

तात्पर्य

रघुपति उपाध्याय द्वारा सुनाया गया यह श्लोक बाद में श्री रूप गोस्वामी कृत पद्यावली (126) में सम्मिलित कर लिया गया।

'आगे कह'—प्रभु-वाक्ये उपाध्याय कहिल।

रघुपति उपाध्याय नमस्कार कैल॥ 97॥

आगे कह-कृपया आगे कहो; प्रभु-वाक्ये-श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुरोध पर; उपाध्याय-रघुपति उपाध्याय; कहिल–कहा; रघुपति उपाध्याय-रघुपति उपाध्याय; नमस्कार कैल-श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार किया।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने रघुपति उपाध्याय से और अधिक सुनाने के लिए कहा, तो उसने तुरन्त ही महाप्रभु को नमस्कार किया और उनके आग्रह को स्वीकार कर लिया।

कं प्रति कथयितुमीशे

सम्प्रति को वा प्रतीतिमायातु ।

गो-पति-तनया-कुञ्ज

गोप-वधूटी-विटं ब्रह्म ॥98॥

कम् प्रति-किसको; कथयितुम्-बोलने के लिए; ईशे–मैं समर्थ हूँ; सम्प्रति—अब कः-कौन; वा-अथवा; प्रतीतिम्-विश्वास; आयातु-करेगा; गो-पति–सूर्यदेव की; तनया-पुत्री (यमुना); कुल्ले-तट के कुंजों में; गोप-वधूटी-गोपियों के; विटम्–शिकारी: ब्रह्म–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"मैं किससे कहूँ और कौन मेरी बातों में विश्वास करेगा, यदि मैं कहूँ कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण यमुना नदी के तट पर गोपियों के साथ कुंजों में विहार कर रहे हैं? भगवान् इस तरह से अपनी लीलाओं को प्रदर्शित करते हैं।"

तात्पर्य

बाद में यह श्लोक पद्यावली (99) में सम्मिलित कर लिया गया।

प्रभु कहेन,—कह, तेंहो पड़े कृष्ण-लीला ।

प्रेमावेशे प्रभुर देह-मन आयुयाइला ॥ 99 ॥

प्रभु कहेन–श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; कह-कृपया कहते रहो; तेंहो–उसने; पड़े-पढ़ा; कृष्ण-लीला-भगवान् कृष्ण की लीलाएँ; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में आकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; देह-मन-तन मन; आयुयाइला–शिथिल हो गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुपति उपाध्याय से अनुरोध किया कि वह श्रीकृष्ण की लीलाओं के विषय में कहता रहे। इस तरह महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो गये और उनका मन तथा शरीर शिथिल पड़ गये।

तात्पर्य

हमारे मन तथा शरीर सदैव भौतिक कार्यों में लगे रहते हैं। जब उन्हें आध्यात्मिक स्तर पर सक्रिय बनाया जाता है, तब वे भौतिक स्तर पर शिथिल पड़ जाते हैं।

प्रेम देखि' उपाध्यायेर हैल चमत्कार।

'मनुष्य नहे, इँहो—कृष्ण'—करिल निर्धार ॥100॥

प्रेम देखि'–प्रेम देखकर; उपाध्यायेर–रघुपति उपाध्याय को; हैल-हो गया; चमत्कार-आश्चर्य; मनुष्य नहे-मनुष्य नहीं; इँहो-वे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण स्वयं; करिल निर्धार-अनुमान लगाया।

अनुवाद

जब रघुपति उपाध्याय ने श्री चैतन्य महाप्रभु के भाव-लक्षण देखे, तो उसे यह निश्चित हो गया कि महाप्रभु मनुष्य नहीं, अपितु साक्षात् कृष्ण हैं।

प्रभु कहे,—उपाध्याय, श्रेष्ठ मान' काय?।

'श्याममेव परं रूपं'—कहे उपाध्याय ॥ 101॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा; उपाध्याय-मेरे प्रिय उपाध्याय; श्रेष्ठ-श्रेष्ठ; मान'-तुम समझते हो; काय-क्या; श्यामम्-श्यामसुन्दर भगवान् कृष्ण; एव–निस्सन्देह; परम् रूपम्-परम सुन्दर; कहे-उत्तर दिया; उपाध्याय-रघुपति उपाध्याय ने।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुपति उपाध्याय से पूछा, "तुम्हारे मत के अनुसार सर्वश्रेष्ठ हस्ती कौन है?" रघुपति उपाध्याय ने उत्तर दिया, "भगवान् श्यामसुन्दर ही सर्वश्रेष्ठ स्वरूप हैं।"

श्याम-रूपेर वास-स्थान श्रेष्ठ मान' काय? ।

'पुरी मधु-पुरी वरा'—कहे उपाध्याय ॥102॥

श्याम-रूपेर-सर्वोपरि रूप श्यामसुन्दर का; वासस्थान–निवासस्थान; श्रेष्ठ-श्रेष; मान'-तुम मानते हो; काय-कौन सा; पुरी-नगर; मधु-पुरी-मथुरा; वरा-सर्वश्रेष्ठ; कहे-कहा; उपाध्याय-रघुपति उपाध्याय ने।

अनुवाद

"कृष्ण के समस्त धामों में से तुम किसे सर्वश्रेष्ठ मानते हो?" इसके उत्तर में रघुपति उपाध्याय ने कहा, "मधुपुरी अर्थात् मथुरा धाम निश्चित रूप से सर्वश्रेष्ठ है।"

तात्पर्य

जैसाकि ब्रह्म-संहिता (5.33) में कहा गया है, भगवान् कृष्ण के अनेक रूप हैं- अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम् । श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुपति उपाध्याय से पूछा कि भगवान् कृष्ण के लाखों रूपों में से कौन-सा सर्वश्रेष्ठ रूप है, तो उसने तुरन्त उत्तर दिया कि श्यामसुन्दर रूप सर्वश्रेष्ठ है। इस रूप में कृष्ण तीन तीन स्थानों से टेढ़े बनकर खड़े होते हैं और अपनी मुरली लिये रहते हैं। ब्रह्म-संहिता (5.38) में भी श्यामसुन्दर रूप का वर्णन हुआ है :

प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्तिविलोचनेन

सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति ।

यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो उन भक्तों को सदैव दर्शन देते हैं, जिनकी आँखों में प्रेम का अंजन लगा रहता है। वे भक्त के हृदय में स्थित श्यामसुन्दर के सनातन रूप में दर्शन देते हैं।”

जो कृष्ण-प्रेम से पूरित हैं, वे अपने हृदयों में निरन्तर श्यामसुन्दर स्वरूप का दर्शन करते हैं। रघुपति उपाध्याय पुष्टि करते हैं कि परम सत्य के अनेक अवतार होते हैं–नारायण, नृसिंह, वराह आदि–किन्तु इनमें कृष्ण सर्वोपरि हैं। श्रीमद्भागवत (1.3.28) के अनुसार- कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्-“कृष्ण आदि भगवान् हैं।” कृष्ण का अर्थ है श्यामसुन्दर, जो वृन्दावन में मुरली बजाते हैं। समस्त रूपों में यह रूप सर्वश्रेष्ठ है। कृष्ण कभी मथुरा में रहते हैं तो कभी द्वारका में, किन्तु इनमें से मथुरा श्रेष्ठतर स्थान है। इसकी पुष्टि रूप गोस्वामी ने अपनी पुस्तक उपदेशामृत (9) में भी की है-वैकुण्ठाजनितो वरा मधुपरी-मधुपुरी या मथुरा वैकुण्ठ लोकों से कहीं अच्छी है।

बाल्य, पौगण्ड, कैशोरे, श्रेष्ठ मान’ काय? ।

‘वयः कैशोरकं ध्येयं—कहे उपाध्याय ॥ 103 ॥

बाल्य–बाल्यावस्था; पौगण्ड-किशोरावस्था से पूर्व की अवस्था; कैशोरे-युवावस्था का आरम्भ; श्रेष्ठ–सर्वश्रेष्ठ; मान’–तुम्हारे विचार में; काय-कौन सी है; वयः-आयु; कैशोरकम्-किशोरावस्था अथवा युवावस्था; ध्येयम्-सर्वाधिक पूज्य; कहे-कहा; उपाध्याय-रघुपति उपाध्याय ने।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रश्न किया, “कृष्ण की बाल्यावस्था, पौगण्डावस्था तथा कैशोरावस्था-इन तीनों में से तुम किसे सर्वश्रेष्ठ मानते हो?” रघुपति उपाध्याय ने उत्तर दिया, “कैशोर अवस्था सर्वश्रेष्ठ हैं।”

रस-गण-मध्ये तुमि श्रेष्ठ मान’ काय? ।

‘आद्य एव परो रसः’ कहे उपाध्याय ॥104॥

रस-गण-मध्ये—सभी रसों के मध्य; तुमि-तुम; श्रेष्ठ-श्रेष्ठ; मान’–मानते हो; काय–किसे; आद्यः-माधुर्य प्रेम; एव–निस्सन्देह; परः रसः-सभी रसों में सर्वश्रेष्ठ; कहे-उत्तर दिया; उपाध्याय-रघुपति उपाध्याय ने।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, “समस्त रसों में तुम किस रस को सर्वश्रेष्ठ मानते हो?” तो रघुपति उपाध्याय ने उत्तर दिया, “माधुर्य रस ही सर्वोपरि है।”

प्रभु कहे,—भाल तत्त्व शिखाइला मोरे ।

एत बलि’ श्लोक पड़े गद्गद-स्वरे ॥105॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कहे-कहा; भाल–अच्छा; तत्त्व-निष्कर्ष; शिखाइला मोरे-तुमने मुझे सिखाया है; एत बलि’—यह कहकर; श्लोक पड़े-श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूरा श्लोक पढ़ा; गद्गद-स्वरे-लड़खड़ाती आवाज में।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “तुमने निश्चित रूप से उच्च कोटि के निर्णय दिये हैं।” यह कहकर वे लड़खड़ाते स्वर में पूरा श्लोक सुनाने लगे।

श्याममेव परं रूपं पुरी मधु-पुरी वरा ।

वयः कैशोरकं ध्येयमाद्य एव परो रसः ॥ 106॥

श्यामम्-श्यामसुन्दर का रूप; एव–निस्सन्देह; परम्-परम; रूपम्-स्वरूप; पुरी-स्थान; मधु-पुरी--मथुरा; वरा-सर्वश्रेष्ठ; वयः-आयु; कैशोरकम्-किशोरावस्था (युवावस्था का आरम्भ); ध्येयम्-हमेशा ध्यान योग्य; आद्यः-मूल दिव्य रस अथवा माधुर्य रस; एव–ही; परः-सर्वश्रेष्ठ; रसः–रस है।

अनुवाद

"श्यासुन्दर रूप सर्वश्रेष्ठ रूप है, मथुरापुरी सर्वश्रेष्ठ धाम है, कृष्ण की कैशोरावस्था सदा ध्यान करने योग्य है और माधुर्य रस ही सर्वश्रेष्ठ रस है।"'

तात्पर्य

यह श्लोक पद्यावली (82) में पाया जाता है।

प्रेमावेशे प्रभु तारे कैला आलिङ्गन।

प्रेम मत्त हा तेंहो करेन नर्तन॥ 107॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे-उसको; कैला–किया; आलिङ्गन-आलिंगन; प्रेम मत्त हजा–प्रेम में उन्मत्त होकर; तेंहो-वह; करेन नर्तन-नृत्य करने लगा।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रेमावेश में रघुपति उपाध्याय का आलिंगन किया। रघुपति उपाध्याय भी प्रेम में विभोर होकर नाचने लगे।

देखि' वल्लभ-भट्ट मने चमत्कार हैल।

दुइ पुत्र आनि' प्रभुर चरणे पाड़िल॥ 108॥

देखि-देखकर; वल्लभ-भट्ट-वल्लभ भट्टाचार्य के; मने-मन में; चमत्कार हैल-आश्चर्य हुआ; दुइ पुत्र आनि'-अपने दोनों पुत्रों को लाकर; प्रभुर चरणे पाड़िल-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में डाल दिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रघुपति उपाध्याय को नाचते देखकर वल्लभ भट्टाचार्य आश्चर्यचकित हो गये। वे अपने दोनों पुत्रों को ले आये और उन्हें महाप्रभु के चरणकमलों में डाल दिया।

तात्पर्य

वल्लभाचार्य के दो पुत्र थे-गोपीनाथ तथा विट्ठलेश्वर। जब श्री चैतन्य महाप्रभु 1434 या 1435 शकाब्द (1512 या 1513 ई.) में प्रयाग आये थे, तब उस समय तक विट्ठलेश्वर का जन्म नहीं हुआ था। इस सम्बन्ध में मध्यलीला 18.47 देखना चाहिए।

प्रभु देखिबारे ग्रामेर सब-लोक आइल ।

प्रभु-दरशने सबे 'कृष्ण-भक्त' हइल ॥ 109॥

प्रभु देखिबारे-श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के लिए; ग्रामेर-गाँव के; सब-लोक-सभी लोग; आइल-आये; प्रभु-दरशने-मात्र श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करने से; सबे–वे सभी; कृष्ण-भक्त हइल-कृष्ण भक्त हो गये।

अनुवाद

यह सुनकर कि श्री चैतन्य महाप्रभु आये हुए हैं, सारे ग्रामवासी उनका दर्शन करने के लिए आये। उनका दर्शन करने मात्र से वे सभी कृष्ण-भक्त बन गये।

ब्राह्मण-सकल करेन प्रभुर निमन्त्रण ।

वल्लभ-भट्ट ताँसबारे करेन निवारण ॥ 110॥

ब्राह्मण-सकल-उस गाँव के सभी ब्राह्मण; करेन-करने लगे; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण-निमन्त्रण; वल्लभ-भट्ट-वल्लभ भट्टाचार्य ने; ताँ-सबारे–उन सबको; करेन-किया; निवारण-मना।

अनुवाद

गाँव के सारे ब्राह्मण महाप्रभु को निमन्त्रण देने के लिए उत्सुक थे, किन्तु वल्लभ भट्टाचार्य ने उन सबको ऐसा करने से मना कर दिया।

'प्रेमोन्मादे पड़े गोसाञि मध्य-यमुनाते ।

प्रयागे चालाइब, इहाँ ना दिब रहिते ॥111॥

प्रेम-उन्मादे-प्रेमावेश के उन्माद में; पड़े-गिर पड़े; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु; मध्य-यमुनाते-यमुना नदी में प्रयागे चालाइब-मैं उन्हें फिर प्रयाग ले जाऊँगा; इहाँ-यहाँ; ना-नहीं; दिब-दूँगा; रहिते-रहने।

अनुवाद

तब वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु को आड़ाइल में न रखने का निश्चय किया, क्योंकि महाप्रभु प्रेमावेश में यमुना नदी में कूद पड़े थे। इसलिए उन्होंने महाप्रभु को प्रयाग ले जाने का निश्चय किया।

याँर इच्छा, प्रयागे ग्राज करिबे निमन्त्रण' ।

एत बलि' प्रभु लञा करिल गमन ॥112॥

याँर-जिसकी; इच्छा-इच्छा हो; प्रयागे याञा-प्रयाग जाकर; करिबे कर ले; निमन्त्रण-निमन्त्रण; एत बलि'—यह कहकर; प्रभु लञा-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; करिल गमन-वे प्रयाग के लिए निकल पड़े।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट ने कहा, "जिसकी इच्छा हो वह प्रयाग जा सकता है। और महाप्रभु को निमन्त्रण दे सकता है। इस तरह वे महाप्रभु को अपने साथ लेकर प्रयाग के लिए चल पड़े।

गङ्गा-पथे महाप्रभुरे नौकाते वसाञा ।

प्रयागे आइला भट्ट गोसाञिरे लञा ॥ 113॥

गङ्गा-पथे-गंगा के रास्ते; महाप्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; नौकाते वसाञा–नौका में बैठाकर; प्रयागे आइला–प्रयाग चले गये; भट्ट-वल्लभ भट्ट; गोसाञिरे लञा-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ।

अनुवाद

वल्लभ भट्टाचार्य, यमुना नदी से बचने के लिए, महाप्रभु को नाव में चढ़ाकर गंगा नदी से उनके साथ-साथ प्रयाग गये।

लोक-भिड़-भये प्रभु 'दशाश्वमेधे' याञा ।

रूप-गोसाञिरे शिक्षा करा'न शक्ति सञ्चारिया ॥114॥

लोक-भिड-भये-लोगों की भीड़ के डर से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; दशाश्वमेधे दशाश्वमेध घाट में; याञा-जाकर; रूप-गोसाञिरे-रूप गोस्वामी को; शिक्षा करान शिक्षा दी; शक्ति सञ्चारिया-उसे शक्ति से आवेशित करके।

अनुवाद

प्रयाग में भारी भीड़ होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु दशाश्वमेध घाट गये। यहीं पर उन्होंने श्री रूप गोस्वामी को शिक्षा दी और भक्तियोग-दर्शन में उनमें शक्ति का संचार किया।

तात्पर्य

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते। भगवान् की अनन्त शक्तियाँ हैं, जिन्हें वे अपने भाग्यशाली भक्तों को प्रदान करते हैं। भगवान् के पास विशेष शक्ति होती है, जिससे वे कृष्णभावनामृत आन्दोलन का विस्तार करते हैं। चैतन्य-चरितामृत (अन्त्य 7.11) में इसकी विवेचना की गई है : कलिकालेर धर्म-कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन / कृष्णशक्ति विना नहे तार प्रवर्तन" भगवान् कृष्ण से विशेष शक्ति प्राप्त किये बिना कृष्ण-नाम का प्रसार कोई नहीं कर सकता।" जिस भक्त को भगवान् से यह शक्ति प्राप्त होती है, उसे अत्यन्त भाग्यशाली समझना चाहिए। कृष्णभावनामृत आन्दोलन लोगों को उनकी असली स्थिति समझाने-भगवान् कृष्ण के साथ अपने मूल सम्बन्ध को समझाने के लिए विस्तार कर रहा है। ऐसा करने के लिए मनुष्य को कृष्ण से विशेष शक्ति प्राप्त करने की आवश्यकता है। लोग कृष्ण से अपने सम्बन्ध को भूल जाते हैं और जन्म-जन्मांतर माया के पाश में बँधकर कार्य करते हैं और एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रविष्ट होते रहते हैं। यही भौतिक अस्तित्व की रीति है। परम भगवान् श्रीकृष्ण लोगों को यह शिक्षा देने के लिए अवतरित होते हैं कि भौतिक जगत् में उनकी स्थिति भ्रान्त है। भगवान् पुनः श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में लोगों को कृष्णभावना अपनाने के लिए प्रेरित करने हेतु आते हैं। वे विशेष भक्त को शक्ति भी प्रदान करते हैं, जिससे वह लोगों को उनकी वैधानिक स्थिति बतला सके।

कृष्णतत्त्व-भक्तितत्त्व-रसतत्त्व-प्रान्त।

सब शिखाइल प्रभु भागवत-सिद्धान्त ॥115॥

कृष्ण-तत्त्व-भगवान् कृष्ण के तत्त्व के बारे में; भक्ति-तत्त्व-भक्ति तत्त्व के बारे में; रस-तत्त्व-दिव्य रसों के बारे में, प्रान्त-अन्तिम सीमा; सब-सब; शिखाइल-सिखाया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भागवत-सिद्धान्त-श्रीमद्भागवत के सिद्धान्त।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी को कृष्णतत्त्व, भक्तितत्त्व तथा रसतत्त्व की चरम सीमा की शिक्षा दी, जिसकी चरम परिणति राधा तथा कृष्ण के माधुर्य प्रेम में होती है। अन्त में उन्होंने रूप गोस्वामी से श्रीमद्भागवत् के चरम सिद्धान्त कहे।

रामानन्द-पाशे यत सिद्धान्त शुनिला ।

रूपे कृपा करि' ताहा सब सञ्चारिला ॥ 116 ॥

रामानन्द-पाशे-रामानन्द राय से; व्रत-सब; सिद्धान्त-आखरी सिद्धान्त; शुनिला-उन्होंने सुने; रूपे-श्री रूप गोस्वामी को; कृपा करि'-अपनी अहैतुकी कृपा दिखाकर; ताहा सब-वे सब; सञ्चारिला-संचारित किये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से जितने भी सिद्धान्त सुने थे, उन सबको रूप गोस्वामी को सिखलाया और उन्हें भलीभाँति शक्ति प्रदान की, जिससे वे उन्हें समझ सकें।

श्री-रूप-हृदये प्रभु शक्ति सञ्चारिला ।

सर्व-तत्त्व-निरूपणे 'प्रवीण' करिला ॥117॥

श्री-रूप-हृदये-श्रील रूप गोस्वामी के हृदय में; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; शक्ति सञ्चारिला-आध्यात्मिक शक्ति संचारित की; सर्व-तत्त्व-सभी सिद्धान्त; निरूपणे-जानने के लिए; प्रवीण करिला-उन्हें पूर्णरूपेण अनुभवी बनाया।

अनुवाद

रूप गोस्वामी के हृदय में प्रवेश करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें समस्त सत्यों के सिद्धान्तों के तत्त्व से समझने की शक्ति प्रदान की। महाप्रभु ने उन्हें अनुभवी भक्त बना दिया, जिनके निर्णय गुरु-शिष्य परम्परा के निर्णयों से अनुरूप थे। इस प्रकार श्री रूप गोस्वामी को स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु ने शक्ति प्रदान की।

तात्पर्य

भक्ति के सिद्धान्त केवल बाह्य रूप से भौतिक कर्म के अन्तर्गत आते हैं। ठीक से मार्गदर्शन के लिए मनुष्य को श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण लेनी चाहिए। श्रील रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी तथा अन्य आचार्यों के साथ ऐसा ही हुआ।

शिवानन्द-सेनेर पुत्र 'कवि-कर्णपूर' ।

'रूपेर मिलन' स्व-ग्रन्थे लिखियाछेन प्रचुर ॥ 118॥

शिवानन्द-सेनेर-शिवानन्द सेन के; पुत्र-पुत्र; कवि-कर्णपूर-कवि कर्णपूर; रूपेर मिलन-रूप गोस्वामी के साथ मिलन के बारे में; स्व-ग्रन्थे-अपने ग्रन्थ में; लिखियाछेन प्रचुर-बहुत विस्तार से लिखा है।

अनुवाद

शिवानन्द सेन के पुत्र कवि कर्णपूर ने अपनी पुस्तक चैतन्य-चन्द्रोदय में श्री रूप गोस्वामी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के मिलन का विस्तार से वर्णन किया है।

कालेन वृन्दावन-केलि-वार्ता

लुप्तेति तां ख्यापयितुं विशिष्य ।

कृपामृतेनाभिषिषेच देवस्

तत्रैव रूपं च सनातनं च ॥ 119॥

कालेन–समय के बीतने पर; वृन्दावन-केलिवार्ता-वृन्दावन में भगवान् कृष्ण की लीलाओं के दिव्य रस से सम्बन्धित विषय; लुप्ता–लुप्त प्रायः हो गये; इति–इस प्रकार; ताम्-उन सबको; ख्यापयितुम् स्पष्ट रूप से बताना; विशिष्य–विशेष रूप से; कृपा-अमृतेन-दया रूपी अमृत के साथ; अभिषिषेच–सिंचित करके; देवः–महाप्रभु ने; तत्र-वहाँ, वृन्दावन में; एव–निस्सन्देह; रूपम्-श्रील रूप गोस्वामी; च-और; सनातनम्-सनातन गोस्वामी; च-और।

अनुवाद

"कालक्रम में वृन्दावन में कृष्ण की लीलाओं के दिव्य सन्देश लुप्तप्राय हो गये थे। इन दिव्य लीलाओं की स्पष्ट रूप से स्थापना करने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रयाग में श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी को अपनी कृपा का अमृत प्रदान किया, जिससे वे वृन्दावन में यह कार्य सम्पन्न कर सकें।"

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगले दो श्लोक श्री कविकर्णपूर कृत चैतन्य-चन्द्रोदय के नवें अंक (38, 29, 30) से लिये गये हैं।

यः प्रागेव प्रिय-गुण-गणैर्गाढ़-बद्धोऽपि मुक्तो

गेहाध्यासाद्रस इव परो मूर्त एवाप्यमूर्तः ।

प्रेमालापैर्हढ़तर-परिष्वङ्ग-रङ्गैः प्रयागे

तं श्री-रूपं सममनुपमेनानुजग्राह देवः ॥120॥

यः-जो; प्राक् एव-पहले ही; प्रिय-गुण-गणैः- श्री चैतन्य महाप्रभु के वांछनीय दिव्य गुणों से; गाढ़-गहरे रूप में; बद्धः-आसक्त; अपि-यद्यपि; मुक्तः-मुक्त; गेह-अध्यासात्-पारिवारिक जीवन के बन्धन

से; रसः-दिव्य रस; इव-के समान; परः-दिव्य; मूर्तः–निजी रूप; एव–निश्चय ही; अपि-यद्यपि; अमूर्तः–भौतिक रूप के बिना; प्रेम-आलापैः–भगवान् के दिव्य प्रेम की चर्चाओं द्वारा; दृढ़-तर–दृढ़; परिष्वङ्ग-आलिंगन का; रङ्गैः-बड़े आनन्द के साथ; प्रयागे-प्रयाग में; तम्-उनको; श्री-रूपम्-श्री रूप गोस्वामी के; समम् के साथ; अनुपमेन–अनुपम; अनुजग्राह-कृपा दिखाई; देवः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने।

अनुवाद

"श्रील रूप गोस्वामी प्रारम्भ से ही श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य गुणों के प्रति अत्यन्त आकृष्ट थे। इस तरह उन्होंने गृहस्थ जीवन से स्थायी रूप से वैराग्य ले लिया। श्रील रूप गोस्वामी तथा उनके छोटे भाई वल्लभ को श्री चैतन्य महाप्रभु का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। यद्यपि महाप्रभु अपने दिव्य शाश्वत रूप में दिव्य पद को प्राप्त थे, किन्तु प्रयाग में उन्होंने रूप गोस्वामी को कृष्ण के दिव्य भावमय प्रेम के विषय में बतलाया। फिर महाप्रभु ने बड़े प्रेम से उनका आलिंगन किया और उन्हें अपनी पूर्ण कृपा प्रदान की।"

प्रिय-स्वरूपे दयित-स्वरूपे

प्रेम-स्वरूपे सहजाभिरूपे।

निजानुरूपे प्रभुरेक-रूपे

ततान रूपे स्व-विलास-रूपे॥ 121॥

प्रिय-स्वरूपे–जिसके प्रिय मित्र श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी थे, उसका; दयित-स्वरूपे–जो श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे; प्रेम-स्वरूपे-उनके निजी प्रेम के स्वरूप को; सहज-अभिरूपे-जो स्वाभाविक रूप से बहुत सुन्दर थे; निज-अनुरूपे–जो पुरी तरह से श्री चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तों का अनुसरण करने वाले थे; प्रभुः- श्री चैतन्य महाप्रभु; एक-रूपे–एकरूप; ततान-बताया; रूपे-रूप गोस्वामी को; स्व-विलास-रूपे-जो भगवान् कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हैं।

अनुवाद

"श्रील स्वरूप दामोदर के प्रिय मित्र, श्रील रूप गोस्वामी, श्री चैतन्य महाप्रभु की हूबहू अनुकृति थे और वे महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे। श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेम की साक्षात् मूर्ति होने के कारण रूप गोस्वामी स्वाभाविक रूप से अत्यन्त सुन्दर थे। उन्होंने महाप्रभु द्वारा स्थापित सिद्धान्तों का सावधानी से पालन किया और वे भगवान् कृष्ण की लीलाओं की सही व्याख्या करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति थे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन पर इसीलिए अपनी कृपादृष्टि डाली, ताकि वे दिव्य साहित्य की रचना करके सेवा कर सकें।"

एइ-मत कर्णपूर लिखे स्थाने-स्थाने ।

प्रभु कृपा कैला यैछे रूप-सनातने ॥ 122॥

एइ-मत-इस प्रकार; कर्णपूर-कवि कर्णपूर ने; लिखे-लिखा है; स्थाने-स्थाने-कई स्थानों पर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कृपा कैला-आपनी कृपा दिखाई; यैछे-कैसे; रूप-सनातने-श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी पर।

अनुवाद

इस तरह कवि कर्णपूर ने जगह-जगह श्रील रूप गोस्वामी के गुणों का वर्णन किया है। उन्होंने इसका भी वर्णन किया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने किस तरह श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी को अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान की।

महाप्रभुर यत बड़े बड़े भक्त मात्र ।

रूप-सनातन—सबार कृपा-गौरव-पात्र ॥123॥

महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; व्रत-सब; बड़ बड़-बड़े बड़े; भक्त-भक्त; मात्र-मात्र; रूप-सनातन-श्रील रूप गोस्वामी एवं श्रील सनातन गोस्वामी; सबार–प्रत्येक की; कृपा-कृपा; गौरव-सम्मान; पात्र–पात्र।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के बड़े-बड़े भक्तों के प्रेम तथा सम्मान के पात्र थे।

केह यदि देशे याय देखि' वृन्दावन।

ताँरे प्रश्न करेन प्रभुर पारिषद-गण॥ 124॥

केह-कोई; यदि-यदि; देशे-अपने देश को; याय-जाता है; देखि'–दर्शन करने के बाद; वृन्दावन-वृन्दावन; ताँरे–उस व्यक्ति को; प्रश्न करेन-प्रश्न पूछते; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; पारिषद-गण-पार्षदगण।

अनुवाद

यदि कोई वृन्दावन देखने के बाद अपने देश लौट आता, तो महाप्रभु के पार्षद उस व्यक्ति से प्रश्न करते।

"कह,—ताहाँ कैछे रहे रूप-सनातन?।

कैछे रहे, कैछे वैराग्य, कैछे भोजन? ॥125॥

कह–कृपया वर्णन करो; ताहाँ-वहाँ; कैछे–कैसे; रहे-रहते हैं; रूप-रूप गोस्वामी; सनातन-सनातन गोस्वामी; कैछे रहे-वे कैसे रहते हैं; कैछे वैराग्य-वैराग्य का पालन कैसे करते हैं; कैछे भोजन-वे भोजन कैसे करते हैं।

अनुवाद

वृन्दावन से लौटने वाले से वे पूछते, "वृन्दावन में रूप और सनातन कैसे हैं? संन्यास आश्रम में उनके कार्य कैसे हैं? वे किस तरह भोजन की व्यवस्था करते हैं?" वे इस प्रकार से पूछते थे।

कैछे अष्ट-प्रहर करेन श्रीकृष्ण-भजन?" ।

तबे प्रशंसिया कहे सेइ भक्त-गण ॥126 ॥

कैछे-कैसे; अष्ट-प्रहर–चौबीसों घण्टे (आठों पहर); करेन-करते हैं; श्री-कृष्ण-भजन–श्रीकृष्ण का भजन; तबे—उस समय; प्रशंसिया–प्रशंसा करके; कहे-वर्णन करते; सेइ भक्त-गण-वे भक्त गण।

अनुवाद

महाप्रभु के पार्षद यह भी पूछते, "रूप तथा सनातन किस तरह चौबीसों घण्टे भक्ति में लगे रहते हैं ?" उस समय वृन्दावन से होकर आने वाला व्यक्ति श्री रूप तथा सनातन गोस्वामी की प्रशंसा करता।

"अनिकेत दुँहे, वने यत वृक्ष-गण ।

एक एक वृक्षेर तले एक एक रात्रि शयन ॥ 127॥

अनिकेत–बिना घर के; दुँहे-वे दोनों; वने-वन में; यत वृक्ष-गण-जितने वृक्ष हैं; एक एक वृक्षेर-एक एक वृक्ष के; तले-नीचे; एक एक रात्रि–एक एक रात; शयन-सोते हुए।

अनुवाद

उन दोनों भाइयों का कोई स्थायी निवासस्थान नहीं है। वे वृक्षों के नीचे निवास करते हैं-एक रात एक वृक्ष के नीचे तो दूसरी रात दूसरे वृक्ष के नीचे।

‘विप्र-गृहे’ स्थूल-भिक्षा, काहाँ माधु-करी ।

शुष्क रुटी-चाना चिवाय भोग परिहरि’ ॥128॥

विप्र-गृहे ब्राह्मण के घर में; स्थूल-भिक्षा-पूरा भोजन; काहाँ–कभी-कभी; माधु-करी-थोड़ा-थोड़ा भिक्षाटन करके, मधुमक्खियों की तरह; शुष्क-सूखी; रुटी-रोटी; चाना–चना; चिवाय-चबाते हैं; भोग परिहरि’-भौतिक सुख की सब प्रकार की वस्तुएँ त्यागकर।

अनुवाद

“श्रील रूप तथा सनातन गोस्वामी ब्राह्मणों के घरों से कुछ भोजन माँग लाते हैं। वे सारे भौतिक भोग का परित्याग करके सूखी रोटी तथा भुने चने ही ग्रहण करते हैं।

करोंया-मात्र हाते, काँथा छिंड़ा, बहिर्वास ।

कृष्ण-कथा, कृष्ण-नाम, नर्तन-उल्लास ॥129॥

करोंया-संन्यासी का जल पात्र; मात्र केवल; हाते-हाथ में; काँथा छिंड़ा-फटी हुई रजाई; बहिर्वास–बाहरी कपड़े; कृष्ण-कथा-कृष्ण कथाओं की चर्चा; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पावन नाम का जप करते हुए; नर्तन-उल्लास-हर्ष में नृत्य करते हुए।

अनुवाद

‘वे एकमात्र कमंडल लिये रहते हैं और फटी गुदड़ी ओढ़ते हैं। वे सदैव कृष्ण के पवित्र नाम का जप करते हैं और उनकी लीलाओं की चर्चा करते हैं। वे अति उल्लास से नृत्य भी करते हैं।

अष्ट-प्रहर कृष्ण-भजन, चारि दण्ड शयने ।

नाम-सङ्कीर्तने सेह नहे कोन दिने ॥ 130॥

अष्ट-प्रहर–आठों प्रहर (चौबीसों घण्टे); कृष्ण-भजन-भगवान् कृष्ण का भजन करते हुए; चारि दण्ड–चार दण्ड (एक दण्ड चौबीस मिनट के बराबर); शयने-सोने के लिए; नाम-सङ्कीर्तने- भगवान् का नाम-संकीर्तन करने के कारण; सेह-उतना भी समय; नहे-नहीं; कोन दिने-कभी-कभी।

अनुवाद

"वे लगभग चौबीसों घण्टे भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं। वे केवल डेढ़ घंटा सोते हैं और कुछ दिनों तो, जब वे निरन्तर पवित्र नाम का कीर्तन करते हैं, तब बिल्कुल नहीं सोते।"

कभु भक्ति-रस-शास्त्र करये लिखन ।

चैतन्य-कथा शुने, करे चैतन्य-चिन्तन" ॥ 131॥

कभु-कभी-कभी; भक्ति-रस-शास्त्र- भक्ति रस से सम्बन्धित दिव्य साहित्य; करये लिखन-लिखते हैं; चैतन्य-कथा-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के बारे में; शुने-वे सुनते हैं; करे-करते हैं; चैतन्य-चिन्तन–चैतन्य महाप्रभु का चिन्तन।

अनुवाद

"कभी वे भक्ति सम्बन्धी दिव्य साहित्य की रचना करते हैं, तो कभी वे श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में सुनते हैं और उन्हीं के विषय में चिन्तन करने में अपना सारा समय लगाते हैं।"

एइ-कथा शुनि' महान्तेर महा-सुख हय ।

चैतन्येर कृपा याँहे, ताँहे कि विस्मय? ॥ 132॥

एइ-कथा शुनि'-यह समाचार सुनकर; महान्तेर-सभी भक्तों को; महा-सुख-अत्यन्त आनन्द; हय-हुआ; चैतन्येर–श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-कृपा; याँहे जिस पर; ताँहे-उसमें; कि-क्या; विस्मय-आश्चर्य।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु के पार्षदगण रूप तथा सनातन गोस्वामियों के कार्यों के विषय में सुनते तो वे कहते, "उस व्यक्ति के लिए कौन-सी विस्मय की बात है, जिसे महाप्रभु की कृपा प्राप्त हो चुकी है?"

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी का कोई स्थायी निवासस्थान नहीं था। वे किसी एक वृक्ष के नीचे केवल एक दिन रहते और प्रचुर दिव्य साहित्य की रचना करते। वे न केवल पुस्तकों की रचना करते, अपितु जप करते, नृत्य करते, कृष्ण के विषय में चर्चा करते और श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का स्मरण करते। इस तरह वे भक्तिमयी सेवा सम्पन्न करते थे।

वृन्दावन में प्राकृत सहजिये हैं, जो यह कहते हैं कि पुस्तकें लिखना तो दूर, पुस्तकें छूना भी निषिद्ध है। उनके लिए भक्ति का अर्थ है इन कार्यों से मुक्ति पा जाना। जब उनसे वैदिक साहित्य का पाठ सुनने को कहा जाता है, तो वह यह कहकर मना करते हैं, "हमें दिव्य साहित्य के पढ़ने या सुनने से क्या प्रयोजन? यह तो नौसिखियों के लिए हैं।" वे अपने आपको इतना उच्च समझते हैं कि पढ़ने, लिखने तथा सुनने में वे शक्ति व्यय करना नहीं चाहते। किन्तु श्रील रूप गोस्वामी के मार्गनिर्देशन में शुद्ध भक्तगण इस सहजिया दर्शन को रद्द करते हैं। यह निश्चित रूप से सही बात है कि धन या यश के लिए ग्रन्थ की रचना नहीं करनी चाहिए, किन्तु जनता को ज्ञान देने के लिए पुस्तकें लिखना तथा छापना भगवान् की वास्तविक सेवा है। यही मत श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का था और उन्होंने अपने शिष्यों से पुस्तक लिखने के लिए विशेष रूप से कहा है। वे मन्दिरों की स्थापना करने के स्थान पर पुस्तकें प्रकाशित करना अधिक पसन्द करते थे। मन्दिर तो जनता तथा नौसिखिये भक्तों के लिए बनवाये जाते हैं, किन्तु महान् तथा शक्तिप्रदत्त भक्तों का काम पुस्तकें लिखना, उन्हें छापना तथा उनका व्यापक रूप से वितरण करना है। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार पुस्तक वितरण बड़े मृदंग को बजाने के समान है। इसीलिए

हम अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के सदस्यों से अधिकाधिक पुस्तकें छापने और संसार-भर में वितरित करने के लिए अनुरोध करते हैं। इस तरह श्रील रूप गोस्वामी के पदचिह्नों पर चलकर मनुष्य रूपानुग भक्त बन सकता है।

चैतन्येर कृपा रूप लिखियाछेन आपने ।

रसामृत-सिन्धु-ग्रन्थेर मङ्गलाचरणे ॥ 133 ॥

चैतन्येर– श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-कृपा; रूप-श्रील रूप गोस्वामी; लिखियाछेन–लिखा है; आपने–स्वयं; रसामृत-सिन्धु-ग्रन्थेर- भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थ के; मङ्गल-आचरणे शुभ मंगलाचरण में।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने स्वयं ही अपनी पुस्तक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.1.2) के मंगलाचरण में श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा के विषय में लिखा है।

हृदि यस्य प्रेरणया

प्रवर्तितोऽहं वराक-रूपोऽपि ।

तस्य हरेः पद-कमलं

वन्दे चैतन्य-देवस्य ॥ 134॥

हृदि-हृदय में; यस्य–जिसके (पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जो अपने शुद्ध भक्तों को बुद्धि प्रदान करते हैं, ताकि वे कृष्णभावनामृत का प्रसार कर सकें); प्रेरणया-प्रेरणा से; प्रवर्तितः-लगा हूँ; अहम्-मैं; वराक-तुच्छ और निम्न; रूपः-रूप गोस्वामी; अपि-यद्यपि; तस्य-उनका; हरेः-जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि हैं; पद-कमलम्-चरणकमलों की; वन्दे-मैं प्रार्थना करता हूँ; चैतन्य-देवस्य–श्री चैतन्य महाप्रभु के।

अनुवाद

“यद्यपि मैं मनुष्यों में सबसे नीच हूँ और मुझे कोई ज्ञान नहीं है, किन्तु मुझे भक्ति विषयक दिव्य ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा कृपापूर्वक दी गई है। अतएव मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर नमस्कार करता हूँ, क्योंकि उन्होंने ही मुझे इन ग्रन्थों की रचना करने का अवसर प्रदान किया है।”

एइ-मत दश-दिन प्रयागे रहिया ।

श्री-रूपे शिक्षा दिल शक्ति सञ्चारिया ॥ 135॥

एइ-मत-इस प्रकार; दश-दिन-दस दिन तक; प्रयागे-प्रयाग में; रहिया-रहकर; श्री-रूपे-श्रील रूप गोस्वामी को; शिक्षा-शिक्षा; दिल–दी; शक्ति सञ्चारिया-उन्हें आवश्यक शक्ति प्रदान करके।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रयाग में दस दिन रहे और उन्होंने रूप गोस्वामी को आवश्यक शक्ति प्रदान करते हुए शिक्षा दी।

तात्पर्य

यह तो कृष्णशक्ति विना नहे तार प्रवर्तन–इस कथन की पुष्टि स्वरूप है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से विशेष शक्ति प्राप्त किये बिना कृष्णभावनामृत आन्दोलन का विस्तार नहीं किया जा सकता। शक्ति प्राप्त भक्त अपने आपको अत्यन्त दीन व्यक्ति अनुभव करता है, क्योंकि वह यह जानता है कि वह जो कुछ भी करता है, वह भगवान् द्वारा हृदय में दी जाने वाली प्रेरणा से कर रहा है। भगवान् कृष्ण द्वारा भगवद्गीता (10.10) में भी इसकी पुष्टि हुई है :

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

"जो लोग निरन्तर प्रेमपूर्वक मेरी पूजा में लगे रहते हैं, उन्हें मैं ऐसी बुद्धि प्रदान करता हूँ, जिससे वे मेरे पास आ सकते हैं।"

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा शक्ति-प्रदत्त होने के लिए मनुष्य को योग्य बनना होता है। इसका अर्थ यह होता है कि मनुष्य चौबीसों घण्टे भगवान् की प्रेमाभक्ति में लगा रहे। भक्त की भौतिक स्थिति से भक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि भक्ति किसी भौतिक दृष्टिकोण पर आश्रित नहीं होती। श्रील रूप गोस्वामी अपने पूर्ववर्ती जीवन में सरकारी अफसर तथा गृहस्थ थे। वे ब्रह्मचारी या संन्यासी भी नहीं थे। वे यवनों तथा म्लेच्छों से सम्बन्धित थे, किन्तु वे सेवा करने के लिए सदैव उत्सुक रहते थे, इसलिए वे भगवत्कृपा प्राप्त करने के पात्र थे। अतः निष्ठावान भक्त को उसकी स्थिति पर विचार किए बिना भगवान् द्वारा शक्ति प्रदान की जाती है। भक्तिरसामृतसिन्धु के पिछले श्लोक में श्रील रूपगोस्वामी ने बतलाया है कि स्वयं महाप्रभु ने किस प्रकार उन्हें शक्ति प्रदान की। भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.187) में ही वे आगे कहते हैं :

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा ।

निखिलाष्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥

"अपने शरीर, मन तथा वाणी से कृष्ण की सेवा करने वाला व्यक्ति इस भौतिक जगत् में रहते हुए भी मुक्त होता है, भले ही वह अनेकानेक तथाकथित भौतिक कार्यों में क्यों न लगा हो।"

भौतिक कल्मष से अपने आपको मुक्त रखने तथा भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए मनुष्य को भगवान् की सेवा करने के लिए निष्ठापूर्वक उत्सुक रहना चाहिए। यही एक मात्र आवश्यक योग्यता है। ज्योंही उसे गुरु तथा भगवान् की कृपा प्राप्त होती है, उसे भौतिक परिस्थितियों से अवरुद्ध हुए बिना, पुस्तकें लिखने तथा कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करने के लिए आवश्यक शक्ति प्रदान की जाती है।

प्रभु कहे,—शुन, रूप, भक्ति-रसेर लक्षण ।

सूत्र-रूपे कहि, विस्तार ना याय वर्णन ॥136॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; शुन-कृपया सुनो; रूप–मेरे प्यारे रूप; भक्ति-रसेर-भक्ति में दिव्य रस के लक्षण-लक्षण; सूत्र-रूपे-सार रूप में; कहि-मैं बताऊँगा विस्तार–सारा विस्तार; ना-नहीं; याय-सम्भव है; वर्णन-वर्णन करना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, 'हे प्रिय रूप, कृपया मेरी बात सुनो। भक्ति का पूरी तरह वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है; अतएव मैं तुम्हें भक्ति के लक्षणों का सारांश बताने का प्रयास कर रहा हूँ।

पारापार-शून्य गभीर भक्ति-रस-सिन्धु ।

तोमाय चाखाइते तार कहि एक 'बिन्दु' ॥ 137॥

पार-अपार-लम्बाई चौड़ाई; शून्य-रहित; गभीर-गहरी; भक्ति-रस-भक्ति के रसों का; सिन्धु–सागर; तोमाय-तुम्हें; चाखाइते-चखाने के लिए; तार-इस सागर का; कहि-मैं कहूँगा; एक-एक; बिन्दु-बिन्दु।

अनुवाद

"भक्तिरस का सागर इतना विस्तृत है कि कोई इसकी लम्बाई-चौड़ाई का अनुमान नहीं लगा सकता। फिर भी तुम्हें इसका आस्वादन कराने के लिए मैं उसकी एक बूंद का वर्णन कर रहा हूँ।

एइत ब्रह्माण्ड भरि' अनन्त जीव-गण ।

चौराशी-लक्ष योनिते करये भ्रमण ॥ 138 ॥

एइ-त-इस प्रकार; ब्रह्माण्ड–सारा ब्रह्माण्ड; भरि'–भरकर; अनन्त-अनन्त; जीव-गण-जीव; चौराशी-लक्ष–चौरासी लाख; योनिते–योनियों में; करये-करते हैं; भ्रमण-भ्रमण।

अनुवाद

"इस ब्रह्माण्ड में 84,00,000 योनियों में असंख्य जीव हैं और वे सारे के सारे इस ब्रह्माण्ड के भीतर भ्रमण करते रहते हैं।

तात्पर्य

यह उन तथाकथित विज्ञानियों तथा दार्शनिकों के लिए चुनौती है, जो यह मानकर चलते हैं कि केवल इसी लोक में जीव हैं। तथाकथित विज्ञानी चन्द्रलोक जा रहे हैं और वे यह कहते हैं कि वहाँ जीवन नहीं हैं। यह विचार श्री चैतन्य महाप्रभु के विचारों से मेल नहीं खाता। महाप्रभु कहते हैं कि ब्रह्माण्ड के भीतर सर्वत्र असंख्य जीव हैं, जो चौरासी लाख विभिन्न योनियों में भ्रमण करते रहते हैं। भगवद्गीता (2.24) में हम पाते हैं कि जीव सर्वगत हैं—अर्थात् वे कहीं भी जा सकते हैं। इससे सूचित होता है कि जीव सर्वत्र हैं। वे स्थल में, जल में, वायु में, अग्नि में और आकाश में विद्यमान हैं। इस तरह समस्त प्रकार के भौतिक तत्त्वों में जीव रहते हैं। चूँकि समूचा भौतिक ब्रह्माण्ड पाँच तत्त्वों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश-से बना है, तो फिर ऐसा कैसे हो सकता है कि एक लोक में जीव हों और दूसरे में न हों ? वैदिक विद्वान ऐसी मूखर्तापूर्ण बात को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकते। वैदिक ग्रन्थों से हमें ज्ञात होता है कि प्रत्येक ग्रह में, चाहे वह पृथ्वी, जल, अग्नि या आकाश से बना हो, जीव होते हैं। हो सकता है कि ये जीव उन्हीं रूपों में न हों, जिनमें वे इस ग्रह में पाये जाते हैं, किन्तु वे विभिन्न तत्त्वों से बने हुए भिन्न रूपों में पाये जाते हैं। यहाँ तक कि इसी पृथ्वी पर हमें स्थलचारी पशुओं तथा जलचरों में अन्तर मिलता है। परिस्थिति के अनुसार जीवन-दशाएँ बदलती रहती हैं, किन्तु फिर भी जीव तो सर्वत्र विद्यमान होते हैं। तो फिर हमें इस या उस ग्रह में जीव के अस्तित्व का निषेध क्यों करना चाहिए? जो लोग दावा करते

हैं। कि वे चन्द्रलोक गये हैं या तो वे वहाँ गये ही नहीं या अपनी अपूर्ण दृष्टि के कारण वहाँ के विशेष प्रकार के जीवों को देख ही नहीं पाये।

जीवों को अनन्त कहा गया है, फिर भी वे 84,00,000 योनियों से सम्बन्धित बतलाये गये हैं। विष्णु पुराण में कहा गया है :

जलजा-नव-लक्षाणि स्थावरा लक्ष विंशति ।

क्रमयो रुद्र सङ्ख्यकाः पक्षिणां दश लक्षणम् ।

त्रिंशल्लक्षाणि पशवः चतुर्लक्षाणि मानुषाः ॥

"जल में रहने वाली योनियाँ 9,00,000 हैं। स्थावरों (वृक्षों तथा पौधों) की संख्या 20,00,000 है। कीड़ों तथा सरीसृपों की योनियाँ 11,00,000 हैं। और पक्षियों की 10,00,000 । चौपायों की योनियाँ 30,00,000 तथा मनुष्यों की 4,00,000 हैं। इनमें से कुछ योनियाँ एक ग्रह में हो सकती हैं तो दूसरे में नहीं, किन्तु हर हालत में ब्रह्माण्ड के सारे ग्रहों में यहाँ तक कि सूर्य पर भी जीव विद्यमान होते हैं। यह वैदिक ग्रन्थों का निर्णय है। भगवद्गीता (2.20) से इसकी पुष्टि होती है :

न जायते म्रियते वा कदाचि-

न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो

न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

"आत्मा का न तो कभी जन्म होता है न मरण। वह न तो कभी जन्मा है, न जन्म लेता है और न ही जन्म लेगा। वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर आत्मा मारा नहीं जाता।"

चूँकि जीवों का कभी संहार नहीं होता, अतः वे एक रूप से दूसरे में देहान्तरण करते रहते हैं। इस तरह विकसित चेतना के अनुसार उनके रूपों का विकास होता रहता है। यह देखा जा सकता है कि विभिन्न रूपों में चेतना की भिन्न-भिन्न मात्राओं का अनुभव होता है। कुत्ते की चेतना मनुष्य की चेतना से भिन्न होती है। यहाँ तक कि एक ही योनि में हम देख सकते हैं कि पिता की चेतना अपने पुत्र से और बच्चे की चेतना युवक से भिन्न होती है। जिस तरह हमें भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं, उसी तरह चेतना की दशाएँ भी भिन्न होती हैं। जहाँ हमें चेतना की विभिन्न दशाएँ दिखाई पड़े, तो समझ लेना चाहिए कि शरीर भिन्न-भिन्न हैं। दूसरे शब्दों में, विभिन्न शरीर चेतना की विभिन्न दशाओं पर आश्रित होते हैं। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (8.6) में भी हुई है :

यं यं वापि स्मरन् भावम् त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।

तं तं एवेति कौन्तेय सदा तद् भावभावितः ॥

"मृत्यु के समय जीव की जैसी चेतना होती है, उसी के अनुसार उसे अगला शरीर मिलता है।" आत्मा के देहान्तरण की यही विधि है। शरीर के नाना प्रकार पहले से हैं; हम अपनी चेतना के अनुसार एक शरीर से दूसरे में जाते हैं।

केशाग्र-शतेक-भाग पुनः शतांश करि ।

तार सम सूक्ष्म जीवेर 'स्वरूप' विचारि ॥139॥

केश-अग्र–बाल की नोक से; शत-एक-एक सौ; भाग-भाग; पुनः–दोबारा; शत-अंश-एक सौ भाग; करि–करके; तार सम-उसके बराबर; सूक्ष्म-बहुत सूक्ष्म; जीवेर-जीव का; स्वरूप-वास्तविक स्वरूप; विचारि-मैं मानता हूँ।

अनुवाद

“जीव की लम्बाई तथा चौड़ाई बाल के अगले भाग के एक दस-हजारवें भाग के बराबर बतलाई जाती है। यह जीव की मूल सूक्ष्म प्रकृति है।

केशाग्र-शत-भागस्य शतांश-सदृशात्मकः ।

जीवः सूक्ष्म-स्वरूपोऽयं सङ्ख्यातीतो हि चित्कणः ॥ 140॥

केश-अग्र–बाल की नोक का; शत-भागस्य–एक सौंवा भाग; शत-अंश-उसका भी सौंवा भाग; सदृश–के बराबर; आत्मकः–जिसकी प्रकृति; जीवः-जीव; सूक्ष्म-सूक्ष्म; स्वरूपः-स्वरूप; अयम्-यह; सङ्ख्य-अतीतः-गिनने में असम्भव; हि-निस्सन्देह; चित्-कणः-चित् कण।

अनुवाद

“यदि हम बाल के अगले भाग के सौ खण्ड करें और इनमें से एक खण्ड लेकर फिर से उसके सौ भाग करें, तो वह सूक्ष्म भाग असंख्य जीवों में से एक के आकार के तुल्य होगा। वे सब चित्कण अर्थात् आत्मा के कण होते हैं, पदार्थ के नहीं।’

तात्पर्य

यह श्रीमद्भागवत के उस भाग की टीका से उधृत है जहाँ मूर्तिमान वेद पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति करते हैं। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (15.7) से भगवान् कृष्ण द्वारा होती है। ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः–”इस बद्ध जगत् में जीव मेरे सनातन अंश हैं।”

भगवान् कृष्ण स्वयं अपने आपको सूक्ष्म जीव से अभिन्न बताते हैं। भगवान कृष्ण सर्वोपरि आत्मा अर्थात् परमात्मा हैं और सारे जीव उनके सूक्ष्म अंश हैं। निस्सन्देह, हम बाल के अग्रभाग को इतने सूक्ष्म कणों में विभाजित नहीं कर सकते, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से इतने सूक्ष्म कणों का अस्तित्व हो सकता है। आध्यात्मिक शक्ति इतनी प्रबल होती है कि आत्मा का एक परमाणु मात्र भी भौतिक जगत् का सबसे बड़ा मस्तिष्क बन सकता है। वही आध्यात्मिक स्फुलिंग एक चींटी के भीतर होता है

और वही ब्रह्मा के शरीर के भीतर भी रहता है। यह आध्यात्मिक स्फुलिंग अपने कर्म अर्थात् भौतिक कार्यकलाप के अनुसार विशेष प्रकार का शरीर प्राप्त करता है। सारे भौतिक कार्य सतो, रजो तथा तमो गुणों से या उनके मिश्रण से सम्पन्न होते हैं। भौतिक प्रकृति के गुणों के मिश्रण के अनुसार ही जीव को विशेष प्रकार का शरीर प्रदान किया जाता है। यही निष्कर्ष है।

बालाग्र-शत-भागस्य शतधा कल्पितस्य च ।

भागो जीवः स विज्ञेय इति चाह परा श्रुतिः ॥141॥

बाल-अग्र–बाल की नोक; शत-भागस्य-एक सौवें भाग का; शतधा-एक सौ भागों में; कल्पितस्य–बाँटकर; च-और; भागः-एक सूक्ष्म भाग; जीवः-जीव; सः-वह; विज्ञेयः-समझना चाहिए; इति–इस प्रकार; च-और; आह–कहा है; परा-प्रधान; श्रुतिः-वैदिक मंत्रों ने।

अनुवाद

"यदि हम बाल की नोक को सौ भागों में विभाजित करें और इनमें से एक भाग को लेकर पुनः उसके सौ भाग करें, तो वह दस हजारवाँ भाग ही जीव की माप है। यह मुख्य वैदिक मन्त्रों का निर्णय है।'

तात्पर्य

यह श्लोक पंचदशी चित्रदीप (81) से है और उसके प्रथम तीन पद श्वेताश्वतर उपनिषद् (5.9) से लिये गये हैं।

सूक्ष्माणामप्यहं जीवः ॥ 142॥

सूक्ष्माणाम्-सूक्ष्म भागों का; अपि-निस्सन्देह; अहम्-मैं; जीवः-जीव।

अनुवाद

“(भगवान् कृष्ण कहते हैं :) “इन सूक्ष्मकणों में मैं जीव हूँ।’

तात्पर्य

जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अभिन्न तथा भिन्न है। आत्मा के रूप में जीव भगवान् से गुण में अभिन्न है, किन्तु भगवान् महानतम से महान् हैं और जीव सूक्ष्म में सब से अधिक सूक्ष्म है। यह उद्धरण श्रीमद्भागवत के श्लोक (11.16.11) का तृतीय पद है।

अपरिमिता ध्रुवास्तनु-भृतो यदि सर्व-गतास्

तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा ।

अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्

सममनुजानतां ग़दमतं मत-दुष्टतया ॥ 143॥

अपरिमिताः-संख्या में असीम; ध्रुवाः-शाश्वत; तनु-भृतः-जिन्होंने भौतिक शरीरों को स्वीकार किया है; यदि-यदि; सर्व-गताः-सर्वव्यापक; तर्हि-तब; न-नहीं; शास्यता–नियन्त्रित; इति–इस प्रकार; नियमः–नियम; ध्रुव-हे परम सत्य; न-नहीं; इतरथा-किसी और प्रकार से; अजनि-उत्पन्न हुए हैं; च-और; यत्-मयम्-जिससे निर्मित; तत्व ह; अविमुच्य-त्यागे बिना; नियन्तृ-नियन्ता; भवेत्-हो जाए; समम्-सभी दृष्टियों से समान; अनुजानताम्-जो इस दार्शनिक गणना का अनुसरण करते हैं; यत्-वह; अमतम्-अनिर्णायक; मत-दुष्टतया—गलत विचार से।

अनुवाद

“हे प्रभु, यद्यपि भौतिक देह धारण करने वाले सारे जीव आध्यात्मिक हैं तथा संख्या में अनन्त हैं, किन्तु यदि वे सर्वव्यापक होते तो उनका आपके अधीन होने का प्रश्न ही न उठता। किन्तु, यदि उन्हें सनातन रूप से अस्तित्व में रहने वाले आध्यात्मिक पुरुष के कणों के रूप में अर्थात् आप सर्वोपरि आत्मा के अंश रूप में स्वीकार किया जाए, तो हम इस निष्कर्ष पर

पहुँचते हैं कि वे सदैव आपके नियन्त्रण के अधीन हैं। यदि सारे जीव इतने से ही सन्तुष्ट हो जाएँ कि आध्यात्मिक कणों के रूप में वे आपके समान हैं, तो वे अनेक वस्तुओं के नियन्ता के रूप में सुखी हो जायें। यह निर्णय दोषपूर्ण है कि जीव तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् एक हैं। यह तथ्य नहीं है।'

तात्पर्य

यह श्लोक भी श्रीमद्भागवत (10.87.30) से लिया गया है, जिसे मूर्तिमान वेदों ने कहा था।

तार मध्ये स्थावर', 'जङ्गम'–दुइ भेद।

जङ्गमे तिर्यक्जल-स्थलचर-विभेद॥ 144॥

तार मध्ये भौतिक संसार में बद्ध जीवों के बीच; स्थावर-अचर; जङ्गम-चर; दुइ भेद-दो भेद; जङ्गमे-चलने-फिरने में सक्षम जीवों में; तिर्यक्-हवा में घूम सकने वाले जीव (पक्षी); जल-या जल में चल सकने वाले जीवों में; स्थल-चर-पृथ्वी पर घूम सकने वाले जीव; विभेद-तीन श्रेणियाँ।

अनुवाद

"असंख्य जीवों के दो विभाग किये जा सकते हैं-चर तथा अचर। चर जीवों में पक्षी, जलचर तथा पशु आते हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु स्पष्ट शिक्षा दे रहे हैं कि जीव विभिन्न अवस्थाओं में किस तरह रहते हैं। वृक्ष, पौधे तथा पत्थर चल नहीं सकते, फिर भी उन्हें जीव या आध्यात्मिक स्फुलिंग समझना होगा। वृक्षों, पौधों तथा पत्थरों जैसे शरीरों में भी आत्मा विद्यमान होता है। ये सभी जीव हैं। चलने-फिरने वाले जीवों में—यथा पक्षियों, जलचरों तथा पशुओं में भी वही आध्यात्मिक स्फुलिंग होता है। जैसाकि यहाँ पर बताया गया है, ऐसे जीव होते हैं, जो उड़, तैर तथा चल सकते हैं। हमें यह भी निष्कर्ष निकालना चाहिए

कि ऐसे भी जीव होते हैं, जो अग्नि तथा आकाश के भीतर चल सकते हैं। जीवों के विभिन्न भौतिक शरीर होते हैं, जो पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश से बने होते हैं। तार मध्ये शब्दों का अर्थ है, "इस ब्रह्माण्ड के भीतरका।" सारा भौतिक ब्रह्माण्ड इन्हीं पाँच भौतिक तत्त्वों से बना है। यह सच नहीं है कि जीव एकमात्र इसी ग्रह पर रहते हैं, अन्य ग्रहों पर नहीं। ऐसा निष्कर्ष वेदों के सर्वथा विरुद्ध है। भगवद्गीता (2.24) में कहा गया है :

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

"यह आत्मा अटूट तथा अविनश्वर है और इसे न तो जलाया जा सकता है, न सुखाया जा सकता है। यह नित्य, सर्वव्यापी, अपरिवर्तनशील, अचल तथा सनातन है।"

आत्मा को भौतिक तत्त्वों से कोई प्रयोजन नहीं होता। कोई भी भौतिक तत्त्व खण्ड-खण्ड किया जा सकता है, विशेषतया पृथ्वी। किन्तु जीव को न तो खण्ड-खण्ड किया जा सकता है, न जलाया जा सकता है। इसलिए यह अग्नि के भीतर रह सकता है। हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि सूर्य के अन्दर भी जीव विद्यमान होते हैं। जीवों को इस ग्रह में या किसी और ग्रह में होने से क्यों नकारना चाहिए? वेदों के अनुसार जीव कहीं भी और हर जगह रह सकते हैं-स्थल पर, जल में, हवा में और अग्नि में। चाहे जैसी परिस्थिति रहे, जीव तो अपरिवर्तनीय (स्थाणु) होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा भगवद्गीता के कथनों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जीव ब्रह्माण्ड में सर्वत्र रहते हैं। वे वृक्ष, पौधे, जलचर, पक्षी, मनुष्य इत्यादि के रूप में बँटे हुए हैं।

तार मध्ये मनुष्य-जाति अति अल्पतर ।

तार मध्ये म्लेच्छ, पुलिन्द, बौद्ध, शबर ॥ 145 ॥

तार मध्ये-इन सभी जीवों में से; मनुष्य-जाति-मनुष्य जातियाँ; अति-अत्यन्त 'अल्पतर–संख्या में कम; तार मध्ये-मनुष्यों की अल्पसंख्या में से; म्लेच्छ-वैदिक सिद्धान्तों का पालन करने में अक्षम असभ्य लोग; पुलिन्द-अनियन्त्रित, पुलिन्द; बौद्ध–बौद्ध धर्म को मानने वाले; शबर–मनुष्यों में निम्नतम (शिकारी वर्ग)।

अनुवाद

"यद्यपि जीवों में से मनुष्यों की संख्या अत्यल्प है, किन्तु इस विभाग को और आगे विभाजित किया जा सकता है, क्योंकि म्लेच्छ, पुलिन्द, बौद्ध तथा शबर जैसे अनेक असभ्य मानव हैं।

वेद-निष्ठ-मध्ये अर्धेक वेद 'मुखे' माने।

वेद-निषिद्ध पाप करे, धर्म नाहि गणे ॥ 146 ॥

वेद-निष्ठ-मध्ये-वेदों के अनुयायिओं के मध्य; अर्धेक-लगभग आधे; वेद-वैदिक शास्त्र; मुखे-मुख में; माने–स्वीकार करते हैं; वेद-निषिद्ध-वेदों में निषिद्ध; पाप-पाप; करे-करते हैं; धर्म-धार्मिक सिद्धान्त; नाहि-नहीं; गणे-गिनते।

अनुवाद

"मनुष्यों में जो लोग वैदिक नियमों का पालन करने वाले हैं, उन्हें सभ्य माना जाता है। इनमें से आधे लोग दिखावा करते हैं और इन सिद्धान्तों के विरुद्ध सभी तरह के पापकर्म करते हैं। ऐसे लोग विधि-विधानों की परवाह नहीं करते।

तात्पर्य

वेद शब्द का अर्थ है "ज्ञान का।" पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके साथ अपने सम्बन्ध को समझकर उस सम्बन्ध के अनुसार कार्य करना, वही परम ज्ञान है। वैदिक नियमों के अनुसार कर्म करना

धर्म कहलाता है। धर्म का अर्थ है पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेशों का पालन करना। वैदिक नियम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा दिये हुए आदेश हैं। आर्य सभ्य मानव हैं, क्योंकि वे वैदिक नियमों का अनादिकाल से पालन करते आ रहे हैं। जिससे मनुष्य परम परुष को समझ सकता है, ऐसे वैदिक नियमों के इतिहास का प्रारम्भ कब हुआ था, इसका पता लगाना कठिन है। जो साहित्य या ज्ञान परम पुरुष की खोज करता है, उसका प्रामाणिक धर्म के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु देश, शिष्यों तथा लोगों के समझने की क्षमता के अनुसार धर्म अनेक प्रकार के होते हैं।

श्रीमद्भागवत (1.2.6) में सर्वश्रेष्ठ धर्म का वर्णन इस प्रकार हुआ है-स वै पुंसां परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे। सबसे बड़ा धर्म वह है, जिससे मनुष्य ईश्वर के अस्तित्व, उनके रूप, नाम, गुण, लीला, धाम तथा सर्वव्यापी लक्षणों से अवगत हो सके। जब सारी वस्तुएँ ठीक से ज्ञात हो जाती हैं, तो उसे वैदिक ज्ञान की पूर्णता समझना चाहिए। वैदिक ज्ञान की पूर्णता भगवान् के गुणों का क्रमबद्ध ज्ञान है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (15.15) में भगवान् कृष्ण द्वारा की गई है-वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः । वैदिक ज्ञान का उद्देश्य ईश्वर को समझना है। अतः जो लोग वास्तव में वैदिक ज्ञान का पालन करते हैं और ईश्वर की खोज करते हैं, वे भगवान् के आदेश के विरुद्ध कोई पापकर्म नहीं कर सकते। यद्यपि इस कलियुग में लोग नाना प्रकार के धर्मों का पालन करने का दावा करते हैं, फिर भी अधिकांश लोग वेदों के आदेशों के विरुद्ध पाप कर्म करते हैं। इसीलिए यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं- वेदनिषिद्ध पाप करे, धर्म नाहि गणे। इस युग में अनेक लोग धर्म तो मानते हैं, किन्तु वास्तव में वे नियमों का पालन नहीं करते। उल्टे वे सभी तरह के पाप करते हैं।

धर्माचारि-मध्ये बहुत 'कर्म-निष्ठ' ।

कोटि-कर्म-निष्ठ-मध्ये एक 'ज्ञानी' श्रेष्ठ ॥ 147॥

धर्म-आचारि-मध्ये-वेदों के सिद्धान्त अथवा वेद प्रणाली को वास्तव में मानने वालों में से; बहुत-उनमें से बहुत से; कर्म-निष्ठ-सकाम कर्मों से आकृष्ट; कोटि-कर्म-निष्ठ-मध्ये-वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार सकाम कर्म करने वाले ऐसे करोड़ों लोगों में से; एक-एक; ज्ञानी–ज्ञानी, बुद्धिमान; श्रेष्ठ-श्रेष्ठ।

अनुवाद

"वैदिक ज्ञान के अनुयायियों में से अधिकांश सकाम कर्म की विधि का अनुसरण करते हैं और अच्छे तथा बुरे काम में अन्तर करते हैं। ऐसे अनेक निष्ठावान सकाम कर्मियों में ऐसा कोई एक हो सकता है, जो वास्तव में ज्ञानी हो।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार कर्मनिष्ठ शब्द ऐसे व्यक्ति का द्योतक है, जो अपने सत्कर्म तथा पुण्य कर्म के फल का भोग करने की इच्छा रखता है। वैदिक नियमों का पालन करने वालों में से कुछ परम सत्य को सर्वस्व अर्पित कर देते हैं और अपने पुण्यकर्मों के फलों को भोगने की आकांक्षा नहीं रखते। इनकी भी गणना कर्मनिष्ठों में की जाती है। कभी-कभी हम देखते हैं कि धार्मिक लोग बहुत कष्ट सहकर धन कमाते हैं और फिर उस धन को किसी पुण्य कार्य के लिए धार्मिक संस्थाएँ, स्कूल तथा अस्पताल खोलने के लिए-दान में दे डालते हैं। कोई चाहे अपने लिए धन कमाये या जनता के लाभ के लिए, वह कर्मनिष्ठ ही कहा जाता है। लाखों कर्मनिष्ठों में से कोई एक ज्ञानी होता है। जो लोग सकाम कर्म से बचना चाहते हैं और परम सत्य से एकाकार होने के लिए मौन की साधना करते हैं, वे सामान्यतया ज्ञानी कहलाते हैं। उनकी रुचि सकाम कर्म में नहीं, अपितु ब्रह्म में समाहित होने में रहती है। ये दोनों तरह के लोग, कर्मनिष्ठ एवं ज्ञानी, इस जगत् के भीतर निजी लाभ में रुचि रखते हैं। कर्मियों की रुचि इस भौतिक जगत् में प्रत्यक्ष निजी-लाभ में होती है और ज्ञानियों की रुचि परम ब्रह्म से तादात्म्य प्राप्त करने में होती है। ज्ञानियों का विश्वास है कि सकाम कर्म अपूर्ण है। उनके लिए पूर्णता कर्म न करने तथा ब्रह्म में लीन होने में है। यही उनके जीवन का लक्ष्य होता है। ज्ञानी लोग ज्ञान, ज्ञाता तथा ज्ञेय के

अन्तर को समाप्त कर देना चाहते हैं। यह दर्शन अद्वैतवाद कहलाता है और इसका लक्षण है आध्यात्मिक मौन।

कोटि-ज्ञानि-मध्ये हय एक-जन 'मुक्त' ।

कोटि-मुक्त-मध्ये 'दुर्लभ' एक कृष्ण-भक्त ॥148 ॥

कोटि-ज्ञानि-मध्ये-ऐसे करोड़ों बुद्धिमानों में से; हय–होता है; एक-जन-एक व्यक्ति; मुक्त–वस्तुतः मुक्त; कोटि-मुक्त-मध्ये-ऐसे करोड़ों मुक्त लोगों में से; दुर्लभ-दुर्लभ; एक-एक; कृष्ण-भक्त-भगवान् कृष्ण का शुद्ध भक्त।

अनुवाद

"ऐसे लाखों ज्ञानियों में से कोई एक वास्तव में मुक्त होता है और ऐसे लाखों मुक्त लोगों में से कृष्ण का शुद्ध भक्त ढूंढ पाना अत्यन्त दुर्लभ है।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (10.2.32) में कहा गया है कि ज्ञानी लोग अपने अल्प ज्ञान के कारण वास्तव में मुक्त नहीं होते। वे केवल सोचते हैं कि वे मुक्त हैं। ज्ञान की पूर्णता तब प्राप्त होती है, जब कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जान लेता है। बह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते । परम सत्य (सत्य वस्तु) का वर्णन ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् के नाम से किया जाता है। निराकार ब्रह्म तथा परमात्मा विषयक ज्ञान तब तक अपूर्ण माना जाता है, जब तक मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के ज्ञान के स्तर पर नहीं आता। इसीलिए इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है- कोटि-मुक्त-मध्ये 'दुर्लभ' एक कृष्ण-भक्त। जो लोग निराकार ब्रह्म या अन्तर्यामी परमात्मा के ज्ञान की खोज करते हैं, वे निश्चित रूप से मुक्त माने जाते हैं; किन्तु अपने अपूर्ण ज्ञान के कारण श्रीमद्भागवत में उन्हें विमुक्त मानिन: कहा गया है। चूँकि उनका ज्ञान

अधूरा होता है, इसलिए उनकी मुक्ति-धारणा अपूर्ण होती है। पूर्ण ज्ञान तभी सम्भव है, जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जान लिया जाता है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (5.29) में भगवान् कृष्ण द्वारा होती हैं।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

"पूर्णतया मेरी चेतना में स्थित व्यक्ति मुझे ही समस्त यज्ञों तथा तपों का चरम भोक्ता, समस्त लोकों तथा देवताओं का परमेश्वर तथा समस्त जीवों का शुभचिन्तक जानकर भौतिक कष्टों से शान्ति प्राप्त करता है।"

कर्मियों, ज्ञानियों तथा योगियों में खोज चल रही है, किन्तु अब जब तक यह खोज पूरी नहीं हो जाती, तब तक किसी को शान्ति नहीं मिल सकती। इसीलिए भगवद्गीता का कहना है- ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति–मनुष्य को वास्तविक शान्ति केवल तभी प्राप्त होती है, जब वह कृष्ण को जान लेता है। इसका वर्णन अगले श्लोक में हुआ है।

कृष्ण-भक्त–निष्काम, अतएव 'शान्त'।

भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-कामी—सकलि 'अशान्त' ॥ 149॥।

कृष्ण-भक्त-भगवान् कृष्ण का भक्त; निष्काम-वास्तव में इच्छा रहित; अतएव- इसलिए; शान्त-शान्त; भुक्ति-भौतिक सुख की; मुक्ति-भौतिक गतिविधियों से मुक्ति की; सिद्धि योगाभ्यास में सिद्धि की कामी–कामना रखने वाले; सकलि-वे सब; अशान्त–अशान्त होते हैं।

अनुवाद

"चूँकि भगवान् कृष्ण का भक्त निष्काम होता है, इसलिए वह शान्त होता है। सकाम कर्मी भौतिक भोग चाहते हैं, ज्ञानी मुक्ति चाहते हैं और योगी भौतिक ऐश्वर्य चाहते हैं; अतः वे सभी कामी हैं और शान्त नहीं हो सकते।

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण के भक्त को कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई इच्छा नहीं रहती। यहाँ तक कि तथाकथित मुक्त लोग भी इच्छाओं से भरे होते हैं। सकाम कर्मी रहने की अच्छी सुविधाएँ चाहते हैं और ज्ञानी ब्रह्म से एकाकार होना चाहते हैं। योगी भौतिक ऐश्वर्य, योग-सिद्धियाँ तथा जादू चाहते हैं। ये सभी अभक्त कामी हैं। इन्हें किसी-न-किसी वस्तु की इच्छा रहती है, अतः ये शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते।

कृष्ण ने भगवद्गीता (5.29) में शान्ति का उपाय बतलाया है :

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

जो यह जानता है कि सारे ब्रह्माण्ड में कृष्ण ही सभी प्रकार के यज्ञ, व्रत तथा तप के सर्वोपरि भोक्ता हैं (जो कि सब केवल उनकी भक्ति प्राप्त करने के लिए ही सम्पन्न किये जाने चाहिए); जो यह जानता है कि कृष्ण ही परम पुरुष हैं और इस प्रकार सारे भौतिक लोकों के मालिक हैं, और कृष्ण ही जीव के एकमात्र मित्र हैं, जो वास्तव में सारे जीवों का कल्याण कर सकते हैं (सुहृदं सर्वभूतानाम्)-जो कृष्ण के बारे में इन तीन सिद्धान्तों को जानता है, वह तुरन्त निष्काम बन जाता है और इस प्रकार शान्त हो जाता है। कृष्ण-भक्त जानता है कि कृष्ण सभी प्रकार से उसके मित्र तथा रक्षक हैं, जो अपने भक्त के लिए कुछ भी कर सकने में समर्थ हैं। कृष्ण कहते हैं- कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति–'हे कुन्तीपुत्र, तुम निडर होकर घोषित कर दो कि मेरा भक्त कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता।" चूँकि यह आश्वासन कृष्ण दे रहे हैं, अतः भक्त कृष्ण में वास करता है और उसे अपने निजी लाभ की कोई इच्छा नहीं रहती। भक्त के लिए कल्याणकारी भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं आधार हैं। भला भक्त अपने लिए किसी अच्छी वस्तु की कामना क्यों करने लगा? उसका एकमात्र कार्य होता है यथासम्भव भगवान् की सेवा करना और उन्हें प्रसन्न करना। कृष्ण-भक्त को अपने खुद के लाभ की कोई इच्छा नहीं रहती। वह भगवान् द्वारा पूरी तरह रक्षित होता है। अवश्य रखिबे कृष्ण विश्वास पालन। भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि वह

निष्काम है, क्योंकि कृष्ण हर अवस्था में उसकी रक्षा करेंगे। ऐसा नहीं है कि वह कृष्ण से किसी प्रकार की सहायता की आशा करता है। वह तो कृष्ण पर उसी तरह आश्रित रहता है, जिस तरह एक शिशु अपने माता-पिता पर आश्रित रहता है। शिशु यह नहीं जानता कि वह अपने माता-पिता से किस तरह से सेवा प्राप्त करे, किन्तु तो भी उसकी सभी प्रकार से रक्षा की जाती है। इसे ही निष्काम कहते हैं।

यद्यपि सारे कर्मी, ज्ञानी तथा योगी विविध कार्यों द्वारा अपनी इच्छाएँ पूरी करते हैं, फिर भी वे कभी तुष्ट नहीं होते। एक कर्मी दस लाख डालर कमाने के लिए कठोर परिश्रम कर सकता है, किन्तु ज्योंही उसे दस लाख डालर मिल जाते हैं, वह दूसरे दस लाख डालर की इच्छा करने लगता है। कर्मियों की इच्छा का कोई अन्त नहीं होता। उसे जितना ही मिलता जाता है, उसकी इच्छा उतनी ही बढ़ती जाती है। ज्ञानी कभी निष्काम नहीं हो सकते, क्योंकि उनकी बुद्धि अपूर्ण होती है। वे ब्रह्म-ज्योति में समा जाना चाहते हैं और उन्हें वह पद मिल भी जाए तो भी वे सन्तुष्ट नहीं होते। ऐसे अनेक ज्ञानी या संन्यासी हैं, जो इस संसार को मिथ्या कहकर त्याग देते हैं; किन्तु संन्यास लेने के बाद वे पुनः राजनीति या लोक-कल्याण में अपने आपको व्यस्त रखने के लिए संसार में लौट आते हैं-स्कूल तथा अस्पताल खोलते हैं। इसका अर्थ यही है। कि वे असली ब्रह्म (ब्रह्म सत्यम्) को प्राप्त नहीं कर सके थे। उन्हें लोककल्याण के कार्यों में लगने के लिए नीचे भौतिक स्तर पर उतरना पड़ता है। इस तरह वे पुनः इच्छाओं को पालते हैं और जब ये इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं, तो वे कुछ और चाहने लगते हैं। अतः ज्ञानी निष्काम नहीं हो सकते, न ही योगी, क्योंकि वे योगसिद्धि इसलिए चाहते हैं कि वे कुछ जादूगरी दिखाकर लोकप्रिय बन सकें। लोग ऐसे योगियों के चारों ओर मँडराने लगते हैं और योगी अधिकाधिक चाटुकारिता पसन्द करने लगते हैं। वे अपनी योग-शक्ति का दुरुपयोग करते हैं, अत: वे भौतिक स्तर पर पुनः आ गिरते हैं। निष्काम बन पाना उनके वश की बात नहीं रह जाती।

निष्कर्ष यही निकलता है कि भगवान् की सेवा-मात्र से सन्तुष्ट रहने वाले भक्त ही वास्तव में निष्काम हो सकते हैं। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु यहाँ कहते हैं-कृष्ण-भक्त निष्काम।चूँकि कृष्ण-भक्त कृष्ण से सन्तुष्ट रहता है, अतएव उसके नीचे गिरने की कोई सम्भावना नहीं रहती।

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण-परायणः ।

सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महा-मुने ॥ 150॥

मुक्तानाम्-अज्ञान के बन्धन से मुक्त लोगों का; अपि-भी; सिद्धानाम्-सिद्धि प्राप्त व्यक्तियों में से; नारायण भगवान् नारायण; परायणः–भक्त; सु-दुर्लभः-अत्यन्त दुर्लभ प्रशान्त-आत्मा-पूर्णरूपेण शान्त, निष्काम; कोटिषु-करोड़ों में से; अपि-भी; महा-मुने-हे महामुनि।

अनुवाद

“हे महामुनि, अज्ञान से मुक्त लाखों पुरुषों में तथा सिद्धि प्राप्त लाखों सिद्धों में से कदाचित् कोई एक नारायण का शुद्ध भक्त होता है। केवल ऐसा भक्त ही वास्तव में पूर्णतया तुष्ट तथा शान्त होता है।’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (6.14.5) से लिया गया है। नारायण-परायण अर्थात् भगवान् नारायण का भक्त ही एक मात्र प्रसन्नचित्त व्यक्ति है। नारायण-परायण पहले से भवबन्धन से मुक्त होता है। उसके पास पहले से सारी योग सिद्धियाँ रहती हैं। जब तक मनुष्य भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि स्तर को पार करके नारायण-परायण पद को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक वह पूर्णतया तुष्ट नहीं हो सकता। यही शुद्ध भक्ति की अवस्था है।

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम् ।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

जो कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई इच्छा नहीं रखता और ज्ञान-मार्ग से प्रभावित नहीं होता, वह वास्तव में अज्ञान से मुक्त हो जाता है। उच्च कोटि का व्यक्ति वही होता है, जो कर्म या योग से प्रभावित नहीं होता। वह एक मात्र कृष्ण पर निर्भर रहता है और अपनी भक्ति से सन्तुष्ट रहता है। श्रीमद्भागवत

(6.17.28) के अनुसार नारायण-पराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति । ऐसा व्यक्ति किसी बात से नहीं डरता। ऐसे व्यक्ति के लिए स्वर्ग और नरक एक समान होते हैं। नारायण-परायण की स्थिति को न जानने के कारण ये धूर्त ईर्ष्यालु हो जाते हैं। नारायण की कृपा से भक्त इस भौतिक संसार में सर्वोत्तम ऐश्वर्यपूर्ण स्थिति में होता है। धूर्त लोग नारायण तथा उनके भक्त से ईर्ष्या करते हैं, किन्तु भक्त नारायण के अन्य भक्त को प्रसन्न करने का प्रयास करता है, क्योंकि वह जानता है कि नारायण के प्रतिनिधि को प्रसन्न कर पाने पर वह सीधे भगवान् नारायण को प्रसन्न करता है। अतः भक्त अपने गुरु को सर्वोत्तम सुविधाएँ प्रदान करता है। बाहरी व्यक्ति जो नारायण के विषय में कोई जानकारी नहीं रखते, वे नारायण तथा उनके भक्त से ईर्ष्या करने लगते हैं। फलस्वरूप जब वे देखते हैं कि नारायण का भक्त ऐश्वर्ययुक्त स्थिति में है, तब वे और भी अधिक ईर्ष्यालु हो जाते हैं। किन्तु जब नारायण का भक्त ऐसे मूर्खा से यह कहता है कि मेरे पास आओ और मेरे ही जैसी सुविधाजनक स्थिति में रहो, तो वे मना कर देते हैं, क्योंकि वे अवैध सम्बन्ध, माँसाहार, नशा तथा जुआ खेलना नहीं छोड़ सकते। अतः भौतिकतावादी व्यक्ति नारायण-परायण का संग नहीं अपनाता, यद्यपि वह भक्त की भौतिक स्थिति से ईर्ष्या करता रहता है। पाश्चात्य देशों में जब जन-साधारण–दुकानदार तथा श्रमिक-हमारे भक्तों को काम न करने पर भी, भरपेट भोजन का आनन्द लेते हुए जीवन बिताते देखते हैं, तो वे यह जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो उठते हैं कि ये लोग पैसा कहाँ से लाते हैं। ऐसे लोग ई-सहित यह पूछते हैं कि, “काम किए बिना इतनी सुविधाओं में रहना कैसे सम्भव है ? आपके पास इतनी मोटरकारें कहाँ से आईं; आपके चेहरों पर चमक कैसे रहती है और आपके पास इतने बढ़िया कपड़े कहाँ से आये?” वे नहीं जानते कि कृष्ण अपने भक्तों की देखभाल करते हैं, इसलिए ऐसे लोग चकित हो जाते हैं और कुछ तो ईर्ष्या करने लगते हैं।

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव ।

गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज ॥151॥

ब्रह्माण्ड भ्रमिते-ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते हुए; कोन-कुछ; भाग्यवान्– भाग्यवान्; जीव-जीव; गुरु-गुरु की; कृष्ण-कृष्ण की; प्रसादे कृपा से; पाय-पाता है; भक्ति-लता-भक्ति लता का; बीज-बीज।

अनुवाद

"सारे जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार समूचे ब्रह्माण्ड में घूम रहे। हैं। इनमें से कुछ उच्च ग्रह-मण्डलों को जाते हैं और कुछ निम्न ग्रह-मण्डलों को। ऐसे करोड़ों भटक रहे जीवों में से कोई एक अत्यन्त भाग्यशाली होता है, जिसे कृष्ण की कृपा से अधिकृत गुरु का सान्निध्य प्राप्त करने का अवसर मिलता है। कृष्ण तथा गुरु दोनों की कृपा से ऐसा व्यक्ति भक्ति रूपी लता के बीज को प्राप्त करता है।

तात्पर्य

जब हम ब्रह्माण्ड कहते हैं, तो हमारा आशय समूचे ब्रह्माण्ड से या करोड़ों ब्रह्माण्डों के समूह से होता है। सारे ब्रह्माण्डों में असंख्य ग्रह होते हैं और इन ग्रहों में जल, स्थल तथा वायु में असंख्य जीव बसते हैं। करोड़ों तथा अरबों जीव सभी जगह हैं और ये सभी माया द्वारा जन्म-जन्मांतर अपने सकाम कर्मों के फलों को भोगते रहते हैं। यह तो भौतिक रूप से बद्ध जीवों की स्थिति है। यदि इन असंख्य जीवों में से कोई वास्तव में भाग्यवान् होता है, तो वह कृष्ण की कृपा से प्रामाणिक गुरु के सम्पर्क में आता है।

कृष्ण हर एक के हृदय में स्थित हैं और यदि मनुष्य कुछ चाहता है, तो कृष्ण उसकी इच्छा की पूर्ति करते हैं। यदि कोई जीव संयोगवश या भाग्यवश कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सम्पर्क में आता है और इस आन्दोलन से सम्बन्ध बनाना चाहता है, तो हर एक के हृदय में विराजमान कृष्ण उसे प्रामाणिक गुरु से मिलने का अवसर प्रदान करते हैं। यह गुरु-कृष्ण प्रसाद कहलाता है। कृष्ण सारे जीवों पर अपनी कृपा प्रदान करना चाहते हैं और ज्योंही जीव भगवत्कृपा की कामना करता है, त्योंही भगवान् तुरन्त ही उसे प्रामाणिक गुरु से मिलने का अवसर प्रदान करते हैं। ऐसा भाग्यशाली व्यक्ति कृष्ण तथा गुरु दोनों

का संरक्षण पाता है। उसे भीतर से कृष्ण सहायता देते हैं और बाहर से गुरु। दोनों ही निष्ठावान जीव को इस भवबन्धन से मुक्त होने में सहायता करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं।

कोई किस तरह इतना भाग्यवान बन सकता है, इसे हम श्रील नारद मुनि के जीवन में देख सकते हैं। वे अपने पूर्व जन्म में दासी के पुत्र थे। यद्यपि वे प्रतिष्ठित कुल में नहीं जन्मे थे, किन्तु सौभाग्यवश उनकी माता कुछ वैष्णवों की सेवा करती थीं। जब ये वैष्णव चातुर्मास्य में विश्राम कर रहे थे, तब बालक नारद को इनकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ये वैष्णव दयावश इस बालक को अपना शेष बचा भोजन दे दिया करते थे। उनकी सेवा करने तथा उनकी आज्ञा का पालन करने से बालक उन वैष्णवों का कृपापात्र बन गया और वैष्णवों की अज्ञात कृपा से वह धीरे-धीरे शुद्ध भक्त बन गया। अगले जन्म में वह बालक नारद मुनि बना, जो वैष्णवों में सर्वोच्च तथा सबसे महत्त्वपूर्ण गरु एवं वैष्णवों के आचार्य थे।

नारद मुनि के पद-चिह्नों पर चलकर यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन हर व्यक्ति को कृष्ण के सम्पर्क में आने का अवसर प्रदान करके मानवता की सेवा कर रहा है। जो कोई भाग्यशाली होता है, वह इस आन्दोलन से तुरन्त जुड जाता है। तब कृष्ण की कृपा से उसका जीवन सफल हो जाता है। हर व्यक्ति में सुप्त कृष्णभक्ति होती है-कृष्ण के लिए प्रेम होता है। और अच्छे भक्तों की संगति में वह प्रेम प्रकट हो जाता है। चैतन्य-चरितामृत (मध्य 22.107) में कहा गया है ।

नित्य सिद्ध कृष्णप्रेम ‘साध्य’ कभु नय ।

श्रवणादि शुद्ध-चित्ते करये उदय ॥

हर एक के भीतर कृष्ण के प्रति सुप्त भक्ति होती है। केवल भक्तों की संगति करने से, उनके सदुपदेश सुनने से तथा हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन मात्र से कृष्ण का सुप्त प्रेम जाग्रत हो उठता है। इस तरह मनुष्य को भक्ति का बीज प्राप्त होता है। गुरु-कृष्ण प्रसादे पाय भक्ति लता बीज।

माली हञा करे सेइ बीज आरोपण ।

श्रवण-कीर्तन-जले करये सेचन ॥ 152॥

माली हञा–माली होकर; करे-करता है; सेइ-वह; बीज-भक्ति बीज का; आरोपण-बोना; श्रवण-श्रवण के; कीर्तन-कीर्तन के; जले-जल से; करये-करता है; सेचन-सिंचन।

अनुवाद

"जब किसी व्यक्ति को भक्ति का बीज प्राप्त हो जाता है, तब उसे माली बनकर उस बीज को अपने हृदय में बोकर उसका ध्यान रखना चाहिए। यदि वह बीज को क्रमशः श्रवण तथा कीर्तन की विधि से सींचता है, तो वह बीज अंकुरित होने लगेगा।

तात्पर्य

भक्तों के साथ या मन्दिर में रहने का अर्थ है श्रवण कीर्तन विधि से जुड़ना। कभी-कभी नये भक्त सोचते हैं कि वे अर्चाविग्रह की पूजा किये बिना श्रवण-कीर्तन विधि चालू रख सकते हैं, किन्तु श्रवण कीर्तन की ऐसी विधि हरिदास ठाकुर जैसे अत्यन्त विकसित भक्तों के लिए है, जो अर्चाविग्रह की पूजा किये बिना श्रवण-कीर्तन में लगे रहते थे। किन्तु हमें हरिदास ठाकुर का झूठा अनुकरण नहीं करना चाहिए और श्रवण-कीर्तन में लगे रहने के प्रयास में अर्चाविग्रह की पूजा को त्यागना नहीं चाहिए। कनिष्ठ भक्तों के लिए यह सम्भव नहीं है।

गुरु-प्रसाद शब्द इस बात का सूचक है कि गुरु शिष्य को भक्ति का वरदान देने में अत्यन्त दयालु होता है। गुरु के पास शिष्य को देने के लिए यही सबसे बड़ा उपहार होता है। जिन्होंने पहले पुण्य कर्म किये हुए हैं, वे जीवन के परम लाभ को प्राप्त करने के पात्र होते हैं। और इस लाभ को प्रदान करने के लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपना प्रतिनिधि भेजते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा प्राप्त करके गुरु पवित्र तथा उन्नत लोगों को इस कृपा का वितरण करता है। इस प्रकार गुरु अपने शिष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्तिमय सेवा करने का प्रशिक्षण देता है। यही गुरु-कृपा कहलाती है। यह कृष्ण प्रसाद या

कृष्ण की कृपा है कि वे योग्य शिष्य के लिए प्रामाणिक प्रामाणिक गुरु भेजते हैं। कृष्ण-कृपा से ही गुरु से भेंट होती है और गुरु की कृपा से शिष्य भगवान् की भक्तिमय सेवा में पूर्णत: प्रशिक्षित हो पाता है।

भक्ति-लता-बीज का अर्थ है "भक्ति का बीजका।" हर वस्तु का मूल कारण या बीज होता है। किसी विचार, कार्यक्रम, योजना या युक्ति के लिए सर्वप्रथम योजना की संकल्पना चाहिए, जिसे बीज कहते हैं। जिन विधियों, विधि-विधानों से मनुष्य भक्ति में प्रशिक्षित होता है, वह भक्ति-लता-बीज है। वह भक्ति-लता बीज कृष्ण-कृपा से गुरु से प्राप्त होता है। दूसरे बीज, जिन्हें अन्य अभिलाष बीज कहते हैं, उनमें कर्म-बीज तथा ज्ञान-बीज सम्मिलित हैं। यदि किसी को गुरु से भक्ति-लता-बीज प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो पाता, तो वह कर्म-बीज, ज्ञान-बीज या राजनीतिक, सामाजिक अथवा लोक-कल्याण-बीज का अनुशीलन करता है। किन्तु भक्ति-लता-बीज इन अन्य बीजों से भिन्न होता है। भक्ति-लता-बीज केवल गुरु की कृपा से प्राप्त हो सकता है। अतः भक्ति-लता-बीज प्राप्त करने के लिए गुरु को प्रसन्न करना आवश्यक है (यस्य प्रसादाद् भगवत् प्रसादः)। भक्ति-लता-बीज भक्ति का उद्गम है। गुरु को प्रसन्न किये बिना मनुष्य को कर्म, ज्ञान या योग का बीज हाथ लगता है, जिससे भक्ति का लाभ नहीं मिल सकता। किन्तु जो गुरु को समर्पित होता है, उसे भक्ति-लता-बीज प्राप्त होता है। यह भक्ति-लता-बीज गुरु से दीक्षा प्राप्त करने पर मिल पाता है। गुरु की कृपा प्राप्त हो जाने के बाद, उसे गुरु के उपदेशों को दुहराते रहना चाहिए। इसे श्रवण-कीर्तन कहते हैं। जिसने गुरु से ठीक से नहीं सुना अथवा जो विधानों का ठीक से पालन नहीं करता वह कीर्तन करने के योग्य नहीं होता। भगवद्गीता (2.41) में इसकी व्याख्या की गई है-व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।जो गुरु के उपदेशों को ध्यानपूर्वक नहीं सुनता, वह कीर्तन करने या भक्ति-सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए उपयुक्त नहीं है। भक्ति-लता-बीज को गुरु से प्राप्त उपदेश के जल से सींचना पड़ता है।

उपजिया बाड़े लता 'ब्रह्माण्ड' भेदि' याय।

'विरजा', 'ब्रह्म-लोक' भेदि' 'पर-व्योम' पाय॥ 153॥

उपजिया-सींचे जाने पर; बाड़े-बढ़ती है; लता-भक्ति की लता; ब्रह्माण्ड–सारा ब्रह्माण्ड; भेदि'-भेदकर; याय-जाती है; विरजा–आध्यात्मिक जगत् एवं भौतिक जगत् के बीच की नदी, विरजा नदी; ब्रह्म-लोक-ब्रह्मलोक, ब्रह्मज्योति; भेदि'–छेदकर; पर-व्योम-आध्यात्मिक आकाश; पाय–पहुँच जाती है।

अनुवाद

"भक्ति-लता-बीज को सींचने पर बीज अंकुरित होता है और लता धीरे-धीरे इस ब्राह्मण्ड की दीवारों को भेदकर वैकुण्ठ तथा भौतिक जगत् के बीच स्थित विरजा नदी के पार चली जाती है। यह ब्रह्मलोक या ब्रह्मज्योति पहुँचती है। ब्रह्मलोक की परत को भी भेदकर भक्ति लता परव्योम तथा गोलोक वृन्दावन पहुँच जाती है।

तात्पर्य

सामान्यतया लता किसी बड़े वृक्ष का सहारा लेती है, किन्तु भक्ति-लता आध्यात्मिक शक्ति की लता होने के कारण किसी भौतिक लोक का आश्रय नहीं लेती, क्योंकि भौतिक लोक में ऐसा कोई वृक्ष नहीं होता, जिसका उपयोग भक्ति-लता आश्रय के लिए कर सके। दूसरे शब्दों में, भक्ति को किसी भौतिक उद्देश्य के लिए प्रयुक्त नहीं की जा सकती। भक्ति तो केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के लिए होती है। कभी-कभी अल्पज्ञ लोग यह मान बैठते हैं कि भक्ति का उपयोग भौतिक वस्तुओं के लिए भी किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, उनका कहना है कि अपने देश की या देवताओं की भक्ति की जा सकती है, किन्तु यह सत्य नहीं है। भक्ति तो विशेष रूप से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के निमित्त होती है और यह इस भौतिक परिधि से परे होती है। आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों के बीच में एक नदी या कारण सागर है, और यह नदी भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के प्रभाव से मुक्त होते हैं। इसलिए यह विरजा कहलाती है। वि उपसर्ग का अर्थ है विगत (अर्थात् "वह जिसका पूर्णतया उन्मूलन हो गया है") तथा रज: का अर्थ है " भौतिक जगत् का प्रभावक।" इस स्तर पर जीव भौतिक बन्धन से पूर्णरूपेण मुक्त रहता है। ज्ञानियों के

लिए, जो ब्रह्मज्योति में समा जाना चाहते हैं, ब्रह्मलोक है। किन्तु भक्ति लता का न तो इस भौतिक जगत् में आश्रय है, न ही ब्रह्मलोक में कोई आश्रय होता है, भले ही ब्रह्मलोक भौतिक जगत् से परे है। यह भक्ति-लता बढ़ती हुई परव्योम तक पहुँच जाती है, जहाँ गोलोक वृन्दावन स्थित है।

तबे याय तदुपरि 'गोलोक-वृन्दावन' ।

'कृष्ण-चरण'-कल्प-वृक्षे करे आरोहण ॥154॥

तबे–तत्पश्चात्; याय-जाती है; तत्-उपरि-उसके (परव्योम के) ऊपर; गोलोक-वृन्दावन-गोलोक वृन्दावन की ओर, जहाँ कृष्ण रहते हैं; कृष्ण-चरण-भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर; कल्प-वृक्षे–कल्पवृक्ष पर; करे आरोहण-चढ़ जाती है।

अनुवाद

"हृदय में स्थित होने से तथा श्रवण-कीर्तन द्वारा सींचे जाने से भक्ति लता अधिकाधिक बढ़ती जाती है। इस तरह इसे कृष्ण के चरणकमल रूपी कल्पवृक्ष का आश्रय प्राप्त हो जाता है, जो परव्योम के सर्वोच्च क्षेत्र गोलोक वृन्दावन में निरन्तर वास करते हैं।

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता (5.37) में कहा गया है :

आनन्द चिन्मय रसप्रतिभाविताभि-

स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः ।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“मैं आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ। वे अपने लोक गोलोक में श्रीमती राधारानी के साथ रहते हैं, जो उनकी आध्यात्मिक प्रतिमूर्ति तथा उनकी ह्लादिनी शक्ति स्वरूपा हैं। उनकी सखियाँ राधारानी की विश्वासपात्र हैं, जो उन्हीं की अंश-रूपा हैं और आनन्दमय आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत रहती हैं।” वैकुण्ठ जगत् में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा अपना विस्तार कर रखा है। उनका सनातन स्वरूप आनन्दमय तथा ज्ञानमय (सच्चिदानन्द विग्रह) है। गोलोक वृन्दावन ग्रह की हर वस्तु सच्चिदानन्द का आध्यात्मिक विस्तार है। वहाँ का हर व्यक्ति वही शक्ति आनन्द चिन्मय रस से पूर्ण है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके सेवकों का सम्बन्ध चिन्मय रस है। कृष्ण तथा उनके पार्षदगण एवं उनका साज-सामान एक ही चिन्मय शक्ति से बने हैं। इस प्रकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सारे आध्यात्मिक जगत् में व्याप्त हैं। जब वह चिन्मय रस शक्ति भौतिक शक्ति के माध्यम से विस्तारित होती है, तब वह सर्वव्यापक बन जाती है। आशय यह है कि यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने ही धाम गोलोक वृन्दावन में रहते हैं, किन्तु वे सर्वत्र उपस्थित रहते हैं। अण्डान्तरस्थ परमाणु चयान्तरस्थम् । वे अनन्त ब्रह्माण्डों के भीतर उपस्थित रहने वाले हैं और वे परमाणु के भीतर भी उपस्थित रहते हैं। ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति–वे समस्त जीवों के हृदय के भीतर भी उपस्थित रहते हैं। यही है उनकी सर्वव्यापक शक्ति।

गोलोक वृन्दावन आध्यात्मिक जगत् में सर्वोच्च ग्रह है। आध्यात्मिक जगत् को जाने के लिए भौतिक ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर ब्रह्मलोक अर्थात् आध्यात्मिक तेज में से होकर जाना पड़ता है। तभी गोलोक वृन्दावन पहुँचा जा सकता है। आध्यात्मिक जगत् में अन्य लोक भी हैं, जो वैकुण्ठ ग्रह कहलाते हैं और इन वैकुण्ठ ग्रहों में भगवान् नारायण की पूजा-अर्चना आदर सहित की जाती है। इन सारे लोकों में शान्त रस व्याप्त रहता है। यहाँ पर कुछ भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से दास्य रस के सम्बन्ध में भी होते हैं। जहाँ तक सख्य रस का सम्बन्ध है, वैकुण्ठ में गौरव-सख्य (सम्मान की भावना से पूर्ण) से इस रस का प्रतिनिधित्व होता है। अन्य सख्य रस विश्रम्भ (समकक्ष भावना से पूर्ण) है, जो गोलोक वृन्दावन ग्रह में पाया जाता है। इसके ऊपर वात्सल्य रस (माता-पिता का प्रेम) भी है और इन सबसे

बढ़कर है माधुर्य-रस (दाम्पत्य प्रेम) है। ये पाँचों रस आध्यात्मिक जगत् में जीव के भगवान् के साथ के सम्बन्ध में पूर्णतया प्रकट होते हैं। अतः भक्ति-लता को वैकुण्ठ में कृष्ण के चरणकमलों का आश्रय प्राप्त होता है।

ताहाँ विस्तारित हञा फले प्रेम-फल ।

इहाँ माली सेचे नित्य श्रवणादि जल ॥ 155॥

ताहाँ–गोलोक वृन्दावन में; विस्तारित–विस्तारित; हञा–होकर; फले-उत्पन्न करती है; प्रेम-फल-प्रेम फल (ईश्वर प्रेम); इहाँ–भौतिक संसार में, जहाँ भक्त अभी भी उपस्थित है; माली–माली की भाँति; सेचे-सींचता है; नित्य-नित्य; श्रवण-आदि जल-श्रवण, कीर्तन आदि का जल।

अनुवाद

"यह लता गोलोक वृन्दावन ग्रह में खूब बढ़ती है और यहीं इसमें कृष्ण-प्रेम रूपी फल लगता है। यद्यपि माली भौतिक जगत् में रहता है, किन्तु वह नियमित रूप से श्रवण तथा कीर्तन रूपी जल से उसे सींचता है।

तात्पर्य

गोलोक वृन्दावन में भक्तों का पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। भक्त बड़े ही प्रेम से भगवान् की सेवा में लगा रहता है। ऐसा प्रेम श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस जगत् के लोगों को अपने उपदेशों में प्रदर्शित किया है। भक्ति-लता का फल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा तथा उनकी इन्द्रियों की तुष्टि करने की शुद्ध कामना है। कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे 'प्रेम' नाम (चैतन्य चरितामृत, आदि 4.165) । आध्यात्मिक जगत् में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की इन्द्रियों को तुष्ट करने के अतिरिक्त भक्त की कोई दूसरी इच्छा ही नहीं रहती। भौतिक जगत् में रहते हुए बद्धात्मा न तो समझ सकता है, न ही सराह सकता है कि भौतिक जगत् में भक्त किस तरह प्रेमवश भगवान् की सेवा कर सकता है और

उनकी इन्द्रियों को तुष्ट करने में सदैव लगा रह सकता है। यद्यपि शुद्ध भक्त भौतिक जगत् में दिखता है, किन्तु वह भगवान् की अन्तरंग सेवा में सदा लगा रहता है। सामान्य कनिष्ठ भक्त इसका अनुमान नहीं लगा सकता है। इसीलिए कहा जाता है-वैष्णवेर क्रिया-मुद्रा विज्ञेह ना बुझय। शुद्ध वैष्णव के कार्यकलापों को इस जगत् के बड़े-बड़े विद्वान भी नहीं समझ पाते।

प्रत्येक जीव अपने कर्मों के अनुसार इस ब्रह्माण्ड में तथा विभिन्न लोकों में नाना प्रकार की योनियों में भ्रमण करता रहता है। लाखों जीवों में से कोई एक भाग्यशाली जीव भक्ति-लता के बीज को प्राप्त कर पाता है। वह गुरु तथा कृष्ण की कृपा से इस भक्ति-लता को श्रवण-कीर्तन के जल से सींचता है। इस तरह भक्ति-लता का बीज अंकुरित होता है और लता बढ़कर सारे ब्रह्माण्ड को पार करती हुई ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर वैकुण्ठ लोक पहुँच जाती है। यह भक्ति-लता तब तक बढ़ती जाती है, जब तक वह सर्वोच्च ग्रह मण्डल गोलोक वृन्दावन नहीं पहुँच जाती, जहाँ कृष्ण निवास करते हैं। वहाँ यह लता भगवान् के चरणकमलों का आश्रय ग्रहण करती है और यही उसका अन्तिम गन्तव्य है। तब इस लता में भगवत्प्रेम रूपी फल लगने लगते हैं। जो भक्त इस लता का पालन-पोषण करता है, उसका यह कर्तव्य है कि वह बहुत सावधान रहे। कहा गया है कि इस लता को सींचते रहना चाहिए-इहाँ माली सेचे नित्य श्रवणादि जल। ऐसा नहीं है कि एक अवस्था में आकर मनुष्य श्रवण-कीर्तन बन्द कर सकता है और परिपक्व भक्त बन जाता है। जो बन्द कर देता है, वह अवश्य ही भक्ति से गिर जाता है। भले ही कोई भक्ति में कितना ही उन्नत क्यों न हो, उसे श्रवण-कीर्तन द्वारा सिंचन की प्रक्रिया को बन्द नहीं करना चाहिए। यदि कोई इस विधि को बन्द कर देता है, तो वह अपराध वश ही ऐसा करता है। इसका वर्णन अगले श्लोक में हुआ है।

यदि वैष्णव-अपराध उठे हाती माता।

उपाड़े वा छिण्डे, तार शुखि' याय पाता॥ 156॥

यदि-यदि; वैष्णव-अपराध-वैष्णव के चरणों में अपराध; उठे-उठता है; हाती-एक हाथी; माता-उन्मत्त; उपाड़े-उखाड़ देता है; वा-अथवा; छिण्डे-तोड़ देता है; तार–लता का; शुखि'–सूख; याय—जाता है; पाता–पत्ता।

अनुवाद

"यदि कोई भक्त भौतिक जगत् में भक्ति-लता का विकास करते हुए किसी वैष्णव के चरणों में अपराध करता है, तो उसके अपराध की तुलना उस पागल हाथी से की जाती है, जो लता को उखाड़कर उसे छिन्न-भिन्न कर देता है। इस तरह लता की पत्तियाँ सूख जाती हैं।

तात्पर्य

वैष्णव की संगति से मनुष्य की भक्ति-भावना बढ़ती है :

ताँदेर चरण सेवि भक्त-सने वास ।

जनमे जनमे हय, एइ अभिलाष ॥

नरोत्तम दास ठाकुर अपना व्यक्तिगत दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए बल देकर कहते हैं कि भक्त को अपने पूर्ववर्ती आचार्य को प्रसन्न रखना सदैव स्मरण में रखना चाहिए। गोस्वामियों का प्रतिनिधित्व गुरु द्वारा होता है। कोई भी व्यक्ति आचार्य-परम्परा का दृढ़तापूर्वक पालन किये बिना आचार्य नहीं बन सकता। जो सचमुच भक्ति में प्रगति करने का इच्छुक हो, उसे केवल अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की इच्छाओं को तुष्ट करने की इच्छा करनी चाहिए। एइ छय गोसाञि यार, मुइ तार दास। उसे अपने आपको आचार्यों के दास का दास समझना चाहिए और इस भाव से वैष्णवों के समाज में रहना चाहिए। किन्तु यदि कोई यह सोचने लगे कि वह परिपक्व हो गया है और वैष्णवों की संगति से अलग रह सकता है और इस तरह वह वैष्णव के प्रति अपराध करके सभी विधि-विधानों का त्याग कर देता है, तो उसकी स्थिति बड़ी खतरनाक बन जाती है। पवित्र नाम के विरुद्ध अपराधों की व्याख्या आदि लीला (8.24)

में की जा चुकी है। विधि-विधानों का परित्याग करके मनमाने ढंग से रहने की तुलना उस प्रमत्त हाथी से की गई है, जो बलपूर्वक भक्ति-लता को उखाड़कर खंड-खंड कर देता है। इस तरह भक्ति-लता मुरझा जाती है। ऐसी स्थिति तब विशेष रूप से उत्पन्न होती है, जब कोई अपने गुरु के आदेशों का उल्लंघन करता है। यह गुरु-अवज्ञा कहलाती है। अतः भक्त को सतर्क रहना चाहिए कि गुरु के आदेशों का उल्लंघन करके उनके विरुद्ध कोई अपराध न कर बैठे। गुरु के आदेशों का उल्लंघन होते ही भक्ति-लता उखड़नी शुरू हो जाती है और उसकी सारी पत्तियाँ धीरे-धीरे सूख जाती हैं।

ताते माली यत्न करि' करे आवरण ।

अपराध-हस्तीर यैछे ना हय उद्गम ॥ 157॥

ताते–अतः; माली–माली भक्त; यत्न करि'–ध्यानपूर्वक ; करे-लगाता है; आवरण-रक्षात्मक बाड़; अपराध-अपराधों के; हस्तीर-हाथी की; यैछे–ताकि; ना-न; हय-हो; उद्गम-उत्पत्ति।

अनुवाद

"माली को चारों और बाड़ बनाकर लता की रक्षा करनी चाहिए, जिससे अपराधों का शक्तिशाली हाथी भीतर न प्रवेश कर पाए।

तात्पर्य

जब भक्ति-लता बढ़ रही हो, तब भक्त को उसके चारों ओर बाड़ बनाकर उसकी रक्षा करनी चाहिए। कनिष्ठ भक्त की रक्षा शुद्ध भक्तों का घेरा बनाकर करनी चाहिए। इससे प्रमत्त हाथी को भक्ति-लता को उखाड़ फेंकने का अवसर नहीं मिल पायेगा। जब कोई अभक्तों की संगति करता है, तो प्रमत्त हाथी खुला छूट जाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है-असत-सङ्ग-त्याग–एइ वैष्णव-आचार।वैष्णव का पहला कर्तव्य यह है कि वह अभक्तों की संगति त्याग दे। किन्तु तथाकथित परिपक्व भक्त शुद्ध भक्तों की संगति छोड़कर बहुत बड़ा अपराध करता है। जीव सामाजिक प्राणी है, अतः यदि कोई शुद्ध भक्तों

की संगति त्याग देता है, तो वह अभक्तों की संगति करेगा (असत-सङ्ग)। अभक्तों के सम्पर्क में आने से तथा अभक्तिमय कार्यों में व्यस्त रहने से तथाकथित परिपक्व भक्त प्रमत्त हाथी रूपी अपराध के प्रभाव में आ जाता है। ऐसे अपराध से भक्ति-लता में जो भी वृद्धि होती है, वह तुरन्त उन्मूलित हो जाती है। अतः लता के चारों ओर बाड़ लगाकर अर्थात् विधि-विधानों का पालन करके तथा शुद्ध भक्तों की संगति करके उसकी रक्षा करनी चाहिए।

यदि कोई यह सोचता है कि कृष्णभावनामृत संघ में अनेकानेक झूठे भक्त या अभक्त हैं, फिर भी उसे संघ से जुड़े रहना चाहिए। यदि कोई यह सोचता है कि संघ के सदस्य शुद्ध भक्त नहीं हैं, तो वह सीधे गुरु की संगति कर सकता है और यदि कोई सन्देह हो, तो उसका निवारण गुरु से करवाना चाहिए। किन्तु भगवान् के पवित्र नाम का श्रवण-कीर्तन तथा विधि-विधानों सम्बन्धी गुरु के आदेशों का पालन किये बिना कोई शुद्ध भक्त नहीं बन सकता। केवल मनोकल्पना से उसका पतन होगा। अभक्तों की संगति करने से वह नियमों का उल्लंघन करता है, जिससे उसका विनाश हो जाता है। श्रील रूप गोस्वामी ने उपदेशामृत (2) में कहा है :

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः ।

जनसङ्गश्च लौल्यं च षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति ॥

“जब कोई व्यक्ति निम्नलिखित छः कार्यों में अत्यधिक लग जाता है, तब उसकी भक्ति विनष्ट हो जाती है (1) आवश्यकता से अधिक भोजन करना या आवश्यकता से अधिक धन संग्रह करना, (2) जिन संसारी वस्तुओं को प्राप्त कर सकना अत्यन्त कठिन हो, उनके लिए अत्यधिक प्रयास करना, (3) सांसारिक विषयों के बारे में व्यर्थ बातें करना, (4) शास्त्रों के विधि-विधानों का पालन किसी आध्यात्मिक प्रगति के लिए नहीं, अपितु नाम के लिए करना या शास्त्रीय नियमों का निषेध करके मनमाने ढंग से कार्य करना, (5) कृष्णभावनामृत में रुचि न रखने वाले संसारी प्रवृत्ति वाले लोगों की संगति करना तथा (6) भौतिक उपलब्धियों के लिए लोभ रखना।”

किन्तु यदि लतार सङ्गे उठे 'उपशाखा' ।

भुक्ति-मुक्ति-वाञ्छा, यत असङ्ख्य तार लेखा ॥ 158॥

किन्तु किन्तु; यदि-यदि; लतार-भक्ति लता; सङ्गे–के साथ; उठे-उठ जाती है। उपशाखा-अवांछित उपशाखा; भुक्ति-भौतिक तृप्ति के लिए; मुक्ति-भौतिक संसार से मुक्ति के लिए; वाञ्छा-इच्छाएँ, कामनाएँ; यत–जितनी भी हों; असङ्ख्य-असंख्य; तार-अवांछित लताओं का; लेखा-वर्णन।

अनुवाद

"कभी-कभी भक्ति-लता के साथ-साथ भौतिक भोग की इच्छाओं तथा भौतिक जगत् से मुक्ति की लालसा की अवांछित लताएँ भी बढ़ने लगती हैं। ऐसी अवांछित लताओं की किस्में असंख्य हैं।

'निषिद्धाचार', 'कुटीनाटी', 'जीव-हिंसन' ।

'लाभ', 'पूजा', 'प्रतिष्ठादि' यत उपशाखा-गण ॥ 159॥

निषिद्ध-आचार-ऐसा व्यवहार जो सिद्धि प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति को नहीं करना चाहिए; कुटीनाटी-कूटनीति; जीव-हिंसन-पशुओं या आत्मा की अनावश्यक हत्या; लाभ-भौतिक दृष्टि के अनुसार लाभ; पूजा–भौतिक लोगों को सन्तुष्ट करके प्रतिष्ठा पाना; पति-आदि-भौतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बनना; यत-ये सब; उपशाखा-गण-अनावश्यक उपशाखा।

अनुवाद

"भक्ति-लता के साथ बढ़ने वाली कुछ अवांछित लताएँ हैं-सिद्धि प्राप्त करने के प्रयास में लगे लोगों के लिए निषिद्ध आचरण, कूटनीति, जीव-हिंसा, सांसारिक लाभ, संसारी पूजा तथा प्रतिष्ठा। ये सभी अवांछित लताएँ हैं।

तात्पर्य

जो लोग पूर्ण बनने के लिए वास्तव में प्रयत्नशील हैं, उनके लिए निश्चित आचार-संहिता होती है। हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अपने अनुयायियों को परामर्श देते हैं कि वे मांसाहार, जुआ, अवैध सम्बन्ध तथा नशा न करें। जो इन कार्यों में लगे रहते हैं, वे कभी पूर्ण नहीं बन सकते। अतः ये नियम उन लोगों के लिए हैं, जो पूर्ण बनना और भगवधाम लौट जाना चाहते हैं। कूटीनाटी या कूटनीति कभी भी आत्मा को तुष्ट नहीं कर सकती। यह शरीर या मन को भी तुष्ट नहीं कर सकती। दुष्ट मन सदैव शंकित रहता है। अतः हमारे व्यवहार हमेशा सीधे-सादे तथा वैदिक महाजनों द्वारा स्वीकृत होने चाहिए। यदि हम कूटनीति द्वारा या द्वैतभाव से लोगों के साथ आचरण करते हैं, तो हमारी आध्यात्मिक प्रगति में बाधा आती है। जीव-हिंसन शब्द अर्थ है पशु-वध करना या अन्य जीवों से ईर्ष्या करना। निरीह पशुओं का वध निस्सन्देह उन पशुओं से ईर्ष्या के कारण किया जाता है। यह मनुष्य शरीर कृष्णभावना को समझने (अथातो ब्रह्म जिज्ञासा), परम ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा करने के लिए मिला है। इस मनुष्य रूप में परम ब्रह्म को समझने का अवसर हर एक को मिलता है। मानव समाज के तथाकथित नेता मानव जीवन के असली उद्देश्य से अनजान होने के कारण आर्थिक विकास में लगे रहते हैं। यह पथभ्रष्ट करने वाला है। हर राज्य तथा हर समाज आहार, निद्रा, स्वरक्षण तथा मैथुन के साधनों में सुधार लाने पर तुला हुआ है। किन्तु यह मानव-जीवन इन चार पाशविक सिद्धान्तों के लिए ही नहीं है। आहार, निद्रा, स्वरक्षण तथा मैथुन तो पशु-जगत् की समस्याएँ हैं, जिनका हल पशुओं ने बिना किसी कठिनाई के कर लिया है। तो फिर मानव-समाज को इन समस्याओं को हल करने में इतना व्यस्त क्यों रहना चाहिए? कठिनाई तो यह है कि लोग इस सीधे-सादे दर्शन को समझने के लिए प्रशिक्षित नहीं हैं। वे सोचते हैं कि सभ्यता के विकास का अर्थ है अधिकाधिक इन्द्रियतृप्ति।

ऐसे कई धार्मिक प्रचारक हैं, जिन्हें इसका पता नहीं है कि जीवन की आखरी समस्याओं का किस तरह समाधान किया जाए। वे भी लोगों को इन्द्रियतृप्ति के रूप में ही शिक्षा देने का प्रयास करते हैं। यह भी जीव-हिंसा ही है। धर्म के प्रचारक असली ज्ञान न देकर जनता को भ्रमित करते हैं। जहाँ तक भौतिक लाभों का सम्बन्ध है, हर व्यक्ति को समझना चाहिए कि मृत्यु के समय सारे लाभों से हाथ धोना

होगा। दुर्भाग्यवश लोग यह नहीं जानते कि मृत्यु के बाद भी जीवन है; अत: संसारी लोग भौतिक धन संग्रह करने में जुटे रहकर समय बरबाद करते रहते हैं, जिसे मृत्यु के समय छोड़ जाना पड़ेगा। ऐसे लाभ का कोई शाश्वत मूल्य नहीं होता। इसी तरह संसारी लोगों द्वारा पूजित होना भी व्यर्थ है, क्योंकि मृत्यु के बाद मनुष्य को दूसरा शरीर ग्रहण करना होता है। भौतिक पूजा तथा उपाधियाँ ऐसे अलंकरण हैं, जिन्हें अगले शरीर तक नहीं ले जाया जा सकता। अगले जीवन में सब कुछ भूल जाना पड़ता है।

इस श्लोक में इन अवरोधों को अवांछित लताओं के रूप में वर्णित किया गया है। ये लताएँ असली लता, भक्ति-लता-बीज के लिए अवरोध मात्र बनती हैं। अतएव इन अवांछित वस्तुओं से बचने का सावधानी से प्रयास करना चाहिए। कभी-कभी जब ये अवांछित लताएँ भक्ति-लता से लिपटी हुई होती हैं, तो ये बिल्कुल भक्ति-लता जैसी प्रतीत होती हैं-उसी आकार की तथा उसी जाति की—किन्तु ऐसा होने पर भी वे उपशाखाएँ कहलाती हैं। शुद्ध भक्त भक्ति-लता तथा भौतिक-लता में अन्तर कर सकता है, अतएव वह उनकीर पहचान करने में और उन्हें एक दूसरे से अलग रखने में सदैव सतर्क रहता है।

सेक-जल पाञा उपशाखा बाड़ि' याय।

स्तब्ध हञा मूल-शाखा बाड़िते ना पाय ॥ 160॥

सेक-जल-सींचने का जल; पाञा-पाकर; उपशाखा-उपशाखाएँ; बाड़ि' याय-बढ़ जाती हैं; स्तब्ध हञा–अवरूद्ध होकर; मूल-शाखा-मूल शाखा; बाड़िते-बढ़ने में; ना पाय-सक्षम नहीं होती।

अनुवाद

"यदि भक्ति-लता तथा अन्य लताओं में ठीक से भेद नहीं किया जाता, तो जल सींचने की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो जाता है, क्योंकि भक्ति-लता बढ़ नहीं पाती है, जबकि अन्य लताएँ हरी-भरी होती जाती हैं।

तात्पर्य

यदि अपराध करते हुए कोई हरे कृष्ण मन्त्र का जप करता है, तो ये अवांछित लताएँ बढ़ जायेंगी। किसी को हरे कृष्ण मन्त्र का दुरुपयोग किसी भौतिक लाभ के लिए नहीं करना चाहिए। जैसाकि श्लोक 159 में कहा गया है :

'निषिद्दाचार' 'कुटीनाटी,' 'जीव हिंसन'।

'लाभ,' 'पूजा,' 'प्रतिष्ठादि' यत उपशाखा गण ॥

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अवांछित लताओं का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि यदि कोई अपराधों के परित्याग का प्रयास किये बिना श्रवण-कीर्तन करता है, तो वह इन्द्रियतृप्ति में आसक्त हो जाता है। वह मायावादियों की तरह भौतिक बन्धन से मुक्त भी होना चाहेगा अथवा योग-सिद्धियों से आकृष्ट होकर आश्चर्यजनक योग शक्तियाँ प्राप्त करना चाहेगा। यदि वह अद्भुत भौतिक कार्यों में आसक्त होता है, तो वह सिद्धि-लोभी कहलाता है। उसे कूटनीति अथवा दुराचार के कारण कष्ट भोगना पड़ सकता है या फिर वह स्त्रियों के साथ अवैध सम्बन्ध बना सकता है। अन्य लोग भक्ति का दिखावा कर सकते हैं जैसे कि प्राकृत सहजिये करते हैं; अथवा वह किसी जाति या वंश के साथ जुड़कर आध्यात्मिक क्षेत्र में अपने वर्चस्व का दावा करके अपने विचारों को बढ़ावा देने का प्रयास कर सकता है। इस तरह कुल-रीति के बल पर वह छद्म गुरु बन सकता है। वह चार पापकर्मों में अवैध सम्बन्ध, नशा, जुआ तथा मांसाहार में लिप्त हो सकता है या फिर वह वैष्णव को किसी संसारी जाति-पाँति का मानने लग सकता है। वह सोच सकता है, "यह हिन्द वैष्णव है, यह यूरोपीय वैष्णव है। यूरोपीय वैष्णव को मन्दिर में नहीं घुसने दिया जा सकता।" दूसरे शब्दों में, वह वैष्णवों को जन्म के आधार पर ब्राह्मण वैष्णव, शूद्र वैष्णव, म्लेच्छ वैष्णव इत्यादि समझने लगता है। वह व्यवसाय के तौर पर हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन या श्रीमद्भागवत का प्रवचन करने का प्रयास कर सकता है या अवैध उपायों से अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने का प्रयत्न कर सकता है। वह स्वयं भौतिक सम्मान पाने के लिए किसी एकान्त

स्थान में जप करके सस्ता वैष्णव बनने या अभक्तों के साथ अपने दर्शन या आध्यात्मिक जीवन सम्बन्धी समझौता करके भौतिक यश कमाने का इच्छुक या वंशानुक्रम से चली आ रही जाति-प्रथा का समर्थक बन सकता है। ये सब निजी इन्द्रियतृप्ति की कमियाँ हैं। अबोध लोगों को धोखा देने मात्र के लिए वह उच्च आध्यात्मिक जीवन का स्वांग करता है और साधु, महात्मा या धार्मिक व्यक्ति माना जाने लगता है। इसका अर्थ यही होता है कि तथाकथित भक्त इन सारी अवांछित लताओं का शिकार हो जाता है और भक्ति-लता-बीज का विकास रुक जाता है।

प्रथमेइ उपशाखार करये छेदन ।

तबे मूल-शाखा बाड़ि' याय वृन्दावन ॥ 161॥

प्रथमेइ-आरम्भ से ही; उपशाखार–उपशाखाओं की; करये-करता है; छेदन-कटाई; तबे-तभी; मूल-शाखा-मूल शाखा; बाड़ि'–बढ़ती; याय-जाती है; वृन्दावन-वृन्दावन में श्रीकृष्ण के चरणकमलों की ओर।

अनुवाद

"जैसे ही कोई बुद्धिमान भक्त मूल लता के पास अवांछित लता को बढ़ते देखे, उस लता को उसे तुरन्त काट देना चाहिए। तब भक्ति-लता रूपी असली लता ठीक से बढ़ती है और वह भगवद्धाम लौटकर कृष्ण के चरणकमलों में आश्रय पाती है।

तात्पर्य

यदि कोई अवांछित लता के फेर में पड़ता है और उसका शिकार हो जाता है, तो वह भगवद्धाम वापस नहीं जा पाता, अपितु इस भौतिक जगत् में रह जाता है और ऐसे कार्यों में लगा रहता है, जिनका शुद्ध भक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं होता। ऐसा व्यक्ति भले ही स्वर्ग क्यों न प्राप्त कर ले, किन्तु इस जगत् में रहने के कारण वह तीन प्रकार के भौतिक ताप भोगता रहता है।

‘प्रेम-फल’ पाकि’ पड़े, माली आस्वादय।

लता अवलम्बि’ माली ‘कल्प-वृक्ष’ पाय॥ 162॥

प्रेम-फल-भगवत्-प्रेम का फल; पाकि’–पककर; पड़े-गिर जाता है; माली-माली; आस्वादय-रस का आस्वादन करता है; लता अवलम्बि’–उगती हुई भक्ति लता का लाभ उठाकर; माली–माली; कल्प-वृक्ष पाय-गोलोक वृन्दावन में कल्पवृक्ष तक पहुँचता है।

अनुवाद

“जब भक्ति का फल पककर नीचे गिर जाता है, तब माली उस फल को चखता है। इस तरह वह लता का लाभ उठाकर गोलोक वृन्दावन में कृष्ण के चरणकमल रूपी कल्पवृक्ष तक पहुँच जाता है।

ताहाँ सेइ कल्प-वृक्षेर करये सेवन।

सुखे प्रेम-फल-रस करे आस्वादन॥163॥

ताहाँ-वहाँ गोलोक वृन्दावन में; सेइ कल्प-वृक्षेर–कल्पवृक्ष रूपी श्रीकृष्ण के चरणकमलों की; करये सेवन–सेवा में लग जाता है; सुखे-दिव्य आनन्द में, प्रेम-फल-रस-भक्ति फल के रस का; करे-करता है; आस्वादन–आस्वादन।

अनुवाद

“वहाँ पर भक्त भगवान् के कल्पवृक्ष तुल्य चरणकमलों की सेवा करता है। वह बड़े ही आनन्दपूर्वक प्रेम रूपी फल का स्वाद लेता है और शाश्वत रूप से सुखी बन जाता है।

तात्पर्य

ताहाँ शब्द सूचित करता है कि वैकुण्ठ में मनुष्य भक्ति रूपी फल के रस का स्वाद चखकर आनन्दपूर्ण हो सकता है।

एइत परम-फल 'परम-पुरुषार्थ' ।

याँर आगे तृण-तुल्य चारि पुरुषार्थ ॥ 164॥

एइत-यह; परम-फल-जीवन का परम लक्ष्य; परम-परम; पुरुष-अर्थ-जीव का हित; याँर आगे-जिसकी उपस्थिति में; तृण-तुल्य-बहुत तुच्छ (तृण के समान); चारि-चार; पुरुष-अर्थ-मनुष्य जीवन की विभिन्न उपलब्धियाँ।

अनुवाद

"गोलोक वृन्दावन में भक्ति रूपी फल का आस्वादन ही जीवन की परम सिद्धि है। इस सिद्धि के आगे चार प्रकार की भौतिक सिद्धियाँ-धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-तृण के समान हैं।

तात्पर्य

ज्ञानियों की सर्वोच्च उपलब्धि मोक्ष अर्थात् भगवान् से एक हो जाना होती है। योगियों की सर्वोच्च उपलब्धि अष्ट सिद्धियाँ होती हैं—यथा अणिमा, लघिमा तथा प्राप्ति इत्यादि। किन्तु भगवधाम वापस जाकर भक्त वहाँ भगवान् के चरणकमलों की भक्ति रूपी फल का जो आस्वादन करता है और शाश्वत आनन्द प्राप्त करता है, उसकी तुलना में ये सब तृण तुल्य हैं। भौतिक सिद्धियाँ, यहाँ तक कि मोक्ष तक पाना नगण्य है, अत: शुद्ध भक्त इनमें कोई रुचि नहीं लेता। उसकी एकमात्र रुचि भगवद्भक्ति को पूर्ण बनाने में रहती हैं। अगले श्लोक में निर्विशेषवादी अद्वैतवादी दार्शनिकों के आनन्द की निन्दा की गई है। यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत ललित-माधव में भी प्राप्य है।

ऋद्धा सिद्धि-व्रज-विजयिता सत्य-धर्मा समाधिर्

ब्रह्मानन्दो गुरुरपि चमत्कारयत्येव तावत् ।

यावत्प्रेम्णां मधु-रिपु-वशी-कार-सिद्धौषधीनां

गन्धोऽप्यन्तः-करण-सरणी-पान्थतां न प्रयाति ॥ 165॥

ऋद्धा-सर्वोत्तम; सिद्धि-व्रज-योगियों की भौतिक सिद्धियों का समूह (अणिमा, लघिमा, प्राप्ति इत्यादि); विजयिता–विजय; सत्य-धर्मा–सिद्धि के धार्मिक नियम (सत्य, शम, तितिक्षा इत्यादि); समाधिः-ध्यान की योगिक सिद्धि; ब्रह्म-आनन्दः-अद्वैत का आध्यात्मिक आनन्द का जीवन; गुरुः–भौतिक विचार से अति उच्च; अपि-यद्यपि; चमत्कारयति-महत्त्वपूर्ण लगते हैं; एव-मात्र; तावत्-तब तक; यावत्-जब तक; प्रेम्णाम्-कृष्ण-प्रेम का; मधु-रिपु-मधु दैत्य के शत्रु, कृष्ण; वशी-कार-वश में करके; सिद्ध-औषधीनाम्-सिद्ध औषधियों की; गन्धः-गन्ध; अपि-भी; अन्तःकरण-सरणी-पान्थताम् हृदय पथ का यात्री; न प्रयाति–नहीं होता।

अनुवाद

“जब तक कृष्ण के उस शुद्ध प्रेम की रंचमात्र भी सुगंध नहीं होती, जो हृदय के भीतर कृष्ण को वश में लाने की पूर्ण औषधि है, तब तक भौतिक सिद्धियाँ, ब्राह्मण की पूर्णता (सत्य, शम, तितिक्षा इत्यादि), योगियों की समाधि तथा ब्रह्मानन्द-ये सभी मनुष्य को अद्भुत लगते हैं।’

तात्पर्य

सिद्धिव्रज, ब्राह्मण-योग्यता, योग-समाधि तथा ब्रह्म में एकाकार होने जैसी विविध भौतिक सिद्धियाँ होती हैं। ये सारी भौतिक सिद्धियाँ संसारी व्यक्तियों के लिए अत्यन्त मोहक हैं, किन्तु इनकी चमक तभी तक रहती है, जब तक कोई भक्ति की शरण ग्रहण नहीं करता। भक्ति तो समस्त ब्रह्माण्ड के नियन्ता पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को भी वश में करने वाली है। गोलोक वृन्दावन के निवासी पाँच दिव्य रसों-शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य-का अभ्यास करते हैं। ये सभी भगवान् को इस तरह प्रसन्न कर लेते हैं कि वे भक्तों के वशीभूत हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, माता यशोदा की भक्ति इतनी उन्नत

थीं कि कृष्ण ने उनकी छड़ी के वश में रहना स्वीकार कर लिया था। दूसरे शब्दों में, ये पाँचों रस इतने महान् तथा भव्य हैं कि उनसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान वशीभूत हो जाते हैं। किन्तु भौतिक जगत् में तथाकथित सिद्धियाँ अपना तेज तभी तक दिखलाती हैं, जब तक मनुष्य भक्ति में रुचि नहीं दिखलाता। दूसरे शब्दों में, भक्ति इतनी महान् तथा प्रभावशाली होती है कि यह परम नियन्ता कृष्ण को भी वश में कर सकती है। कर्मियों, ज्ञानियों तथा योगियों की सिद्धियाँ तभी तक आकर्षक प्रतीत होती हैं, जब तक कोई भक्ति को प्राप्त नहीं कर लेता।

'शुद्ध-भक्ति' हैते हय 'प्रेमा' उत्पन्न।

अतएव शुद्ध-भक्तिर कहिये 'लक्षण' ॥ 166॥

शुद्ध-भक्ति-भौतिक कल्मष से रहित शुद्ध भक्ति; हैते–से; हय होता है; प्रेमा-भगवत्प्रेम; उत्पन्न-उत्पन्न; अतएव–इसलिए; शुद्ध-भक्तिर–शुद्ध भक्ति के; कहिये-मैं कहता हूँ; लक्षण-लक्षण।

अनुवाद

"शुद्ध भक्ति प्राप्त होने पर मनुष्य में भगवत्प्रेम उत्पन्न होता है; अतएव मैं शुद्ध भक्ति के कुछ लक्षणों का वर्णन करता हूँ।

तात्पर्य

भगवद्गीता (18.55) में कहा गया है- भक्त्या मामभिजानाति यावान् यथास्मि तत्त्वतः। भक्ति को अपनाये बिना मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को उनके यथार्थ रूप में नहीं समझ सकता।

अन्याभिलाषिता-शून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतम्।

आनुकूल्येन कृष्णानु-शीलनं भक्तिरुत्तमा ॥167॥

अन्य-अभिलाषिता-शून्यम्-भगवान् कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी भी इच्छा से रहित अथवा भौतिक कामनाओं के बिना (जैसे मांसाहार, अवैध सम्बन्ध, जुए के लिए); ज्ञान-अद्वैत

मायावादियों का दर्शन ज्ञान; कर्म–सकाम कर्मों से; आदि-वैराग्य के कृत्रिम अभ्यास से, योग के यांत्रिक अभ्यास से, सांख्य दर्शन के अध्ययन से आदि; अनावृतम्-न ढका हुआ; आनुकूल्येन–अनुकूल; कृष्ण-अनुशीलनम्-कृष्ण की सेवा का विकास; भक्तिः उत्तमा-प्रथम श्रेणी की भक्ति।

अनुवाद

"जब प्रथम श्रेणी की भक्ति विकसित होती है, तब मनुष्य को समस्त भौतिक इच्छाओं, अद्वैत-दर्शन से प्राप्त ज्ञान तथा सकाम कर्म से रहित हो जाना चाहिए। भक्त को कृष्ण की इच्छानुसार अनुकूल भाव से उनकी निरन्तर सेवा करनी चाहिए।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृतसिन्धु (1.1.11) में भी पाया जाता है। भगवद्गीता (9.34 तथा 18.65) से हम जानते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की इच्छा है कि हम सदैव उनका चिन्तन करें (मन्मनाभव मद्भक्तो)। हर व्यक्ति को उनका भक्त बनना चाहिए, किसी देवता का नहीं। हर व्यक्ति को मन्दिर में अर्चन के साथ उनकी भक्ति में लग जाना चाहिए। मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। हर व्यक्ति को सर्वदा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्रणाम करना चाहिए। ये भगवान् की इच्छाएँ हैं, अतएव जो उनकी इच्छाओं को अनुकूल भाव से पूरा करता है, वही वास्तव में शुद्ध भक्त है। कृष्ण चाहते हैं कि हर व्यक्ति उनकी शरण में आये और भक्ति का अर्थ है इस उपदेश का सारे विश्व में प्रचार करना। भगवद्गीता (18.69) में भगवान् स्पष्ट कहते हैं—न च तस्मान् मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः-जो सबके लाभ के लिए भगवद्गीता के उपदेश का प्रचार करता है, वह भगवान् कृष्ण को सबसे अधिक प्रिय है। भगवान् ने भगवद्गीता का प्रवचन इसलिए किया, जिससे मानव समाज सभी दृष्टियों से राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, दार्शनिक तथा धार्मिक दृष्टियों से भलीभाँति व्यवस्थित हो सके। मानव-समाज का सुधार कृष्णभावनामृत आन्दोलन द्वारा किसी भी दृष्टि से किया जा सकता है. अतः जो भी व्यक्ति ब्रह्माण्ड

के समस्त बद्धजीवों के लाभ हेतु कृष्णभावनामृत के इस दर्शन का प्रसार करता है, वह पूर्णरूपेण शुद्ध भक्त है।

इसकी कसौटी यही है कि भक्त को यह जानना चाहिए कि कृष्ण उससे क्या चाहते हैं। यह समझ कृष्ण के प्रामाणिक प्रतिनिधि स्वरूप गुरु के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। श्रील रूप गोस्वामी का उपदेश है-आदौ गुर्वाश्रयम्। जो सचमुच भगवान् की भक्तिमय सेवा करना चाहता है, उसे कृष्ण से प्रारम्भ होने वाली गुरु-परम्परा में आध्यात्मिक गुरु की शरण लेनी चाहिए। एवं परम्परा प्राप्तम् इमं राजर्षयो विदुः। गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत प्रामाणिक गुरु को स्वीकार किये बिना मनुष्य भक्ति का असली प्रयोजन नहीं जान सकता। अतः मनुष्य को प्रामाणिक गुरु की शरण स्वीकार करनी होगी और उनके निर्देशन में चलना होगा। शुद्ध भक्त का पहला कार्य यह है कि वह अपने गुरु को तुष्ट करे, जिसका एक मात्र कार्य कृष्णभावनामृत का प्रसार करना है। यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादः—यदि गुरु को तुष्ट कर लिया जाए, तो कृष्ण स्वत: तुष्ट हो जाते हैं। यही भक्ति की सफलता है। अनुकूल्येन शब्द का यही अर्थ है- 'भगवान् की अनुकूल भक्ति।' शुद्ध भक्त के लिए भगवान् की सेवा के अतिरिक्त और कोई योजना नहीं होती। उसे भौतिक कार्यों में सफलता पाने में कोई रुचि नहीं होती। उसे केवल भक्ति की प्रगति में सफलता चाहिए। भक्त के लिए अन्य किसी की या देवता की पूजा सम्भव नहीं हो सकती। शुद्ध भक्त इस तरह की छद्म भक्ति में अपने आपको नहीं लगाता। वह तो एकमात्र कृष्ण को तुष्ट करने में रुचि लेता है। यदि कोई कृष्ण की तुष्टि के लिए जीवित रहता है, तो इस से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वह किस आश्रम में स्थित है। उसका एक मात्र कार्य कृष्ण को तुष्ट करना होना चाहिए। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के कार्यों में यह विधि पूरी तरह से प्रकट है। यह सिद्ध करके दिखला दिया गया है कि सारा विश्व भक्ति को सफलतापूर्वक स्वीकार कर सकता है। बस, मनुष्य को केवल कृष्ण के प्रतिनिधि के आदेशों का पालन करना होगा।

अन्य-वाञ्छा, अन्य-पूजा छाड़ि' 'ज्ञान', 'कर्म' ।

आनुकूल्ये सर्वेन्द्रिये कृष्णानुशीलन ॥ 168॥

अन्य-वाञ्छा-अन्य कामनाएँ; अन्य-पूजा-अन्य प्रकार की पूजा; छाड़ि'-त्यागकर; ज्ञान-भौतिक ज्ञान; कर्म–भौतिक कर्म; आनुकूल्ये–अनुकूल रूप में; सर्व-इन्द्रिये-सभी इन्द्रियों से; कृष्ण-अनुशीलन–कृष्ण चेतना का अनुशीलन।

अनुवाद

"शुद्ध भक्त को कृष्ण की सेवा करने के अतिरिक्त अन्य कोई कामना नहीं करनी चाहिए। उसे न तो देवताओं की, न ही संसारी व्यक्तियों की पूजा करनी चाहिए। उसे कृष्णभावनामृत से रहित किसी कृत्रिम ज्ञान का अनुशीलन नहीं करना चाहिए और कृष्णभावानाभावित कार्यों के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में नहीं लगना चाहिए। उसे अपनी सारी विशुद्ध इन्द्रियाँ भगवान् की सेवा में लगानी चाहिए। कृष्णभावनाभावित कार्यों को अनुकूल रीति से सम्पन्न करने की यही विधि है।

एइ 'शुद्ध-भक्ति'—इहा हैते 'प्रेमा' हय ।

पञ्चरात्रे, भागवते एइ लक्षण कय ॥ 169॥

एइ–यह; शुद्ध-भक्ति-शुद्ध भक्ति; इहा हैते–जिससे; प्रेमा-कृष्ण का शुद्ध प्रेम; हय–होता है; पञ्चरात्रे- पञ्चरात्र नामक वैदिक साहित्य में; भागवते–श्रीमद्भागवत में भी; एइ-ये; लक्षण-लक्षण; कय–वर्णित हैं।

अनुवाद

"ये कार्य शुद्ध भक्ति कहलाते हैं। जो व्यक्ति ऐसी शुद्ध भक्ति करता है, वह उचित समय आने पर कृष्ण के प्रति अपना मूल प्रेम विकसित कर लेता है। पंचरात्र तथा श्रीमद्भागवत जैसे वैदिक ग्रन्थों में इन लक्षणों का वर्णन हुआ है।

तात्पर्य

मनुष्य को शुद्ध भक्त गुरु के निर्देशन के अन्तर्गत तथा पंचरात्र एवं भागवत पद्धतियों में दिये हुए वैदिक निर्देशों के अनुसार भक्ति विकसित करनी चाहिए। पंचरात्र पद्धति में अर्चाविग्रह की पूजा की विधियाँ आती हैं और भागवत पद्धति में श्रीमद्भागवत के प्रवचन तथा रुचि रखने वाले लोगों के साथ दर्शन की चर्चा द्वारा कृष्णभावनामृत के दर्शन का प्रसार करना सम्मिलित है। विचार-विमर्श द्वारा पंचरात्र तथा भागवत पद्धतियों में रुचि तथा ज्ञान उत्पन्न किया जा सकता है।

सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् ।

हृषीकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिरुच्यते ॥ 170॥

सर्व-उपाधि-विनिर्मुक्तम्-सभी प्रकार की भौतिक उपाधियों से रहित अथवा भगवत् सेवा के अतिरिक्त सभी इच्छाओं से रहित; तत्परत्वेन–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा के एकमात्र लक्ष्य द्वारा; निर्मलम्-शुष्क दार्शनिक अनुसंधान अथवा सकाम कर्म से अप्रभावित हृषीकेण–सभी उपाधियों से रहित शुद्ध इन्द्रियों से; हृषीक-ईश–इन्द्रियों के स्वामी की; सेवनम्-इन्द्रिय तुष्टि के लिए सेवा; भक्तिः–भक्ति; उच्यते-कही जाती है।

अनुवाद

“‘भक्ति का अर्थ है समस्त इन्द्रियों के स्वामी, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा में अपनी सारी इन्द्रियों को लगाना। जब आत्मा भगवान् की सेवा करता है, तो उसके दो गौण प्रभाव होते हैं। मनुष्य सारी भौतिक उपाधियों से मुक्त हो जाता है और भगवान् की सेवा में लगे रहने मात्र से उसकी इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती हैं।’

तात्पर्य

यह श्लोक नारद पंचरात्र से उधृत है और भक्तिरसामृतसिन्धु (1.1.12) में पाया जाता है।

मद्गुण-श्रुति-मात्रेण मयि सर्व-गुहाशये ।

मनो-गतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥171॥

मत्-मेरे; गुण-गुणों के; श्रुति-मात्रेण-श्रवण मात्र से; मयि–मुझे; सर्व-गुहा-सभी हृदयों में; आशये-मैं जो स्थित हूँ; मनः-गतिः-मन की गति; अविच्छिन्ना-अबाधित; यथा-जैसे; गङ्गा-अम्भसः-गंगा का जल; अम्बुधौ–समुद्र को।

अनुवाद

"जिस तरह गंगा को स्वर्गीय जल अबाध गति से समुद्र में जाकर मिल जाता है, उसी तरह जब मेरे भक्त मेरा श्रवण मात्र करते हैं, तो उनके मन मेरे पास आते हैं। मैं सबके हृदयों में वास करता हूँ।

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगले तीन श्लोक श्रीमद्भागवत (3.29.11-14) से उद्धृत हैं, जिन्हें कपिलदेव के रूप में कृष्ण ने कहा था।

लक्षणं भक्ति-योगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।

अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ 172॥

लक्षणम्-लक्षण; भक्ति-योगस्य-भक्ति योग का; निर्गुणस्य-प्रकृति के तीन गुणों से परे; हि–अवश्य; उदाहृतम्–कहा गया है; अहैतुकी-अकारण; अव्यवहिता–अवरोध रहित; या–जो; भक्तिः-भक्ति; पुरुष-उत्तमे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को।

अनुवाद

"ये पुरुषोत्तम अर्थात् पम भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति के लक्षण हैं; यह अहैतुकी होती है और किसी तरह रोके नहीं रुकती।

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥ 173॥

सालोक्य-मेरे लोक में निवास; सार्ष्टि–मेरे जैसा ऐश्वर्य होना; सामीप्य–मेरा प्रत्यक्ष संग करना; सारूप्य–मेरे जैसा रूप होना; एकत्वम्-मुझसे एकाकार होना; अपि-भी; उत-अथवा; दीयमानम्-दिये जाने पर; न-नहीं; गृह्णन्ति–स्वीकार करता; विना-बिना-मत्-सेवनम्-मेरी सेवा के; जनाः-भक्त गण।

अनुवाद

"मेरे भक्त मेरी सेवा करने की तुलना में सालोक्य, सार्टि, सामीप्य तथा सारूप्य इन मुक्तियों को मेरे देने पर भी स्वीकार नहीं करते।

स एव भक्ति-योगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः ।

येनातिव्रज्य त्रि-गुणं मद्भावायोपपद्यते ॥ 174॥

सः–वह (ऊपर सूचित लक्षणों से युक्त); एव–निस्सन्देह; भक्ति-योग-आख्यः-भक्तियोग नामक; आत्यन्तिकः-जीवन का चरम लक्ष्य; उदाहृतः-वर्णन किया हुआ; लेन-जिससे; अतिव्रज्य-पार कर जाता है; त्रि-गुणम्-भौतिक प्रकृति के तीन गुण; मत्-भावाय-मेरे साथ सीधे सम्पर्क के लिए (परम भगवान् और उनकी प्रकृति); उपपद्यते योग्य बन जाता है।

अनुवाद

"ऊपर बतलाया गया भक्तियोग जीवन का चरम लक्ष्य है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्ति करने से मनुष्य भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों को पार कर जाता है और प्रत्यक्ष भक्ति के स्तर पर आध्यात्मिक पद को प्राप्त करता है।'

भुक्ति-मुक्ति आदि-वाञ्छा यदि मने हय ।

साधन करिले प्रेम उत्पन्न ना हय ॥ 175 ॥

भुक्ति-भौतिक भोग; मुक्ति-भौतिक बन्धन से मुक्त होना, मुक्ति; आदि-आदि; वाञ्छा-इच्छाएँ; यदि यदि; मने-मन में; हय-हों; साधन करिले–नियमों के अनुसार भक्ति करने पर भी; प्रेम-कृष्ण का वास्तविक प्रेम; उत्पन्न-उत्पन्न; ना-नहीं; हय होता है।

अनुवाद

"यदि कोई भौतिक भोग या भौतिक मुक्ति की कामना से पीड़ित है, तो वह शुद्ध प्रेमाभक्ति के स्तर तक ऊपर नहीं उठ सकता, भले ही वह साधारण विधि-विधानों के अनुसार ऊपरी तौर पर भक्ति क्यों न कर रहा हो।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि जो व्यक्ति मन में अच्छे कार्य का फल भोगने अथवा संसार द्वारा सताये जाने के कारण भवबन्धन से छूटने की इच्छा रखता है, वह कभी-भी भक्ति रस को प्राप्त नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, भक्ति करते समय भौतिक लाभ की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। यहाँ तक कि 64 विधिविधानों का पालन करते हुए भी कलुषित हृदय होने पर उसे शुद्ध भक्ति नहीं मिल पाती।

भुक्ति-मुक्ति-स्पृहा यावत्पिशाची हृदि वर्तते ।

तावद्भक्ति-सुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत् ॥ 176॥

भुक्ति-भौतिक भोग के लिए; मुक्ति-भौतिक आस्तित्व से मुक्ति की; स्पृहा-इच्छाएँ; यावत्-जब तक; पिशाची-डायनें; हृदि-हृदय में; वर्तते-रहती हैं; तावत्-तब तक; भक्ति-भक्ति का; सुखस्य-सुख का; अत्र-यहाँ; कथम्-कैसे; अभ्युदयः-उत्थान; भवेत् हो सकता है।

अनुवाद

“भौतिक जगत् को भोगने की इच्छा तथा भौतिक बन्धन से मुक्त होने की इच्छा-ये दो पिशाचिनियाँ हैं, जो भूतप्रेतों की तरह मँडराती रहती हैं। जब तक ये पिशाचिनियाँ हृदय में रहती हैं, तब तक भला दिव्य आनन्द का अनुभव कैसे हो सकता है? जब तक ये दोनों डायने हृदय में रहती हैं, तब तक भक्ति का दिव्य आनन्द अनुभव करने की सम्भावना नहीं रहती।’

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिंधु (1.2.22) में पाया जाता है।

साधन-भक्ति हैते हय ‘रति’र उदय ।

रति गाढ़ हैले तार ‘प्रेम’ नाम कय ॥ 177॥

साधन-भक्ति-साधना भक्ति; हैते-से; हय होता है; रतिर-आसक्ति की; उदय-जागृति; रति-ऐसी आसक्ति; गाढ़ हैले–प्रगाढ़ होकर; तार–इसका; प्रेम-भगवत्प्रेम; नाम-नाम; कय–कहा जाता है।

अनुवाद

“नियमित भक्ति करते रहने से मनुष्य क्रमशः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति अनुरक्त होता है। जब यह अनुरक्ति प्रगाढ़ हो जाती है, तब यही भगवत्प्रेम कहलाती है।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.2) से साधन-भक्ति के विषय में निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होती है:

कृति-साध्या भवेत् साध्य-भावा सा साधनाभिधा ।

नित्य-सिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता ॥

श्रवण-कीर्तन से प्रारम्भ होने वाली भक्ति की प्रक्रिया साधन-भक्ति कहलाती है। इसमें वे विधान सम्मिलित हैं, जिनका उद्देश्य मनुष्य को भक्ति की ओर उन्मुख करना होता है। भक्ति प्रत्येक के हृदय में

सदैव सुप्त रहती है। और निरपराध भाव से भगवन्नाम का कीर्तन करने से मनुष्य की मूल सुप्त कृष्ण चेतना जाग्रत हो उठती है। कृष्ण चेतना की जागृति ही साधन-भक्ति का प्रारम्भ है। इसके कई अंग हो सकते हैं- यथा श्रद्धा, भक्तों की संगति, गुरु द्वारा दीक्षा, गुरु के आदेशानुसार भक्तिमय सेवा में प्रवृत्त होना; भक्ति में स्थिरता तथा भक्ति के लिए रुचि का उदय होना। इस तरह मनुष्य कृष्ण तथा उनकी सेवा में अनुरक्त हो सकता है और यही अनुरक्ति प्रगाढ़ होने पर कृष्ण-प्रेम बन जाती है। रति शब्द की व्याख्या भक्तिरसामृतसिन्धु (1.3.41) में इस प्रकार की गई है:

व्यक्तं मसृणतेवान्तर्लक्ष्यते रति लक्षणम् ।

मुमुक्षुप्रभृतीनां चेद् भवेदेषा रतिर्न हि ॥

"जब हृदय की कोमलता प्रकट हो, तो उसे रति कहते हैं। किन्तु जो लोग भवबन्धन से छूटने में रुचि रखते हैं, वे यह कोमलता प्रकट नहीं करतेक।" यह रति अर्थात् अनुरक्ति भौतिक आसक्ति जैसी नहीं है। जब मनुष्य भौतिक कल्मष से छूट जाता है, तब कृष्ण-सेवा के लिए जो अनुरक्ति जाग्रत होती है, वही रति कहलाती है। भौतिक जगत् में भौतिक भोग के लिए आसक्ति होती है, किन्तु यह रति नहीं है। दिव्य रति केवल आध्यात्मिक स्तर पर ही जाग्रत हो सकती है। भक्तिरसामृतसिन्धु (1.41) में कृष्ण-प्रेम का वर्णन इस प्रकार हुआ है:

सम्यङ् मसृणित स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः ।

भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥

"जब हृदय पूरी तरह कोमल हो जाता है और सारी भौतिक इच्छाओं से रहित हो जाता है तथा जब मनुष्य के भाव अत्यन्त प्रखर हो उठते हैं, तब वह कृष्ण के प्रति अत्यधिक अनुरक्त हो जाता है। ऐसा शुद्ध भाव शुद्ध प्रेम कहलाता है।"

प्रेम वृद्धि-क्रमे नाम—स्नेह, मान, प्रणय ।

राग, अनुराग, भाव, महाभाव हये ॥ 178॥

प्रेम-भगवत्-प्रेम; वृद्धि-क्रमे-क्रमिक वृद्धि में; नाम-नामक; स्नेह-स्नेह; मान-मान; प्रणय-प्रेम; राग-आसक्ति; अनुराग-प्रगाढ़ अनुराग; भाव-भाव; महा-भाव-महाभाव; हय-है।

अनुवाद

"प्रेम के आधारभूत पक्ष धीरे धीरे बढ़कर स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव तथा महाभाव बन जाते हैं।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (3.2.84) में स्नेह का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

सान्द्रश्चित्त द्रवं कुर्वन् प्रेमा 'स्नेह' इतीर्यते ।

क्षणिकस्यापि नेह स्याद् विश्लेषस्य सहिष्णुता ॥

"प्रेम का वह पक्ष जिसमें प्रेमी के लिए हृदय गाढ़ रूप से द्रवित हो उठे, स्नेह कहलाता है। ऐसे स्नेह का लक्षण यह है कि प्रेमी प्रेमिका के संग के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता।" मान का वर्णन मध्यलीला (2.66) में मिलता है। इसी तरह प्रणय का भी वर्णन प्राप्त है। जहाँ तक राग का सम्बन्ध है, भक्तिरसामृतसिन्धु (3.2.87) में कहा गया है :

स्नेह स रागो येन स्यात् सुखं दुःखमपि स्फुटम् ।

तत्सम्बन्ध लवेऽप्यत्र प्रीतिः प्राणव्ययैरपि ॥

"जिस अवस्था में प्रियतमा के प्रति स्नेह के कारण दु:ख सुख में बदल जाता है, वह राग कहलाता है। जब ऐसा राग कृष्ण के प्रति होता है, तब मनुष्य अपने प्रियतम कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए अपना

जीवन भी दे सकता है।" अनुराग, भाव तथा महाभाव का वर्णन मध्यलीला (6.13) में पाया जाता है। उस श्लोक के तात्पर्य में अधिरूढ़-महाभाव की व्याख्या मिलती है।"

यैछे बीज, इक्ष, रस, गुड़, खण्ड-सार।

शर्करा, सिता, मिछरि, उत्तम-मिछरि आर ॥ 179॥

यैछे-जैसे; बीज-बीज; इक्षु-गन्ने का पौधा, ईख; रस-गन्ने का रस; गुड़-गुड़; खण्ड-सार–चीनी; शर्करा–मिश्री; सिता–कठोर मिश्री; मिछरि—चूसने की मिश्री; उत्तम-मिछरि–मिठाई; आर-और।

अनुवाद

"प्रेम के क्रमिक विकास की तुलना चीनी की विभिन्न अवस्थाओं से की जा सकती है। पहले गन्ने का बीज, फिर गन्ना, तब गन्ने का रस होता है। जब इस रस को उबाला जाता है, तो प्रवाही शीरा बनता है, जो ठोस बनकर गुड़, फिर चीनी, फिर मिश्री, कठोर मिश्री तथा चूसने की मिश्री प्रदान करता है।

एइ सब कृष्ण-भक्ति-रसेर स्थायिभाव।

स्थायिभावे मिले यदि विभाव, अनुभाव ॥ 180॥

एइ सब-ये सब; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण भक्ति के; रसेर–रसों के; स्थायि-भाव-स्थायी भाव; स्थायि-भावे-इस स्थायी भाव में; मिले-मिलता है; यदि-यदि; विभाव-विशेष भाव; अनुभाव–अनुभाव।

अनुवाद

"ये सारी अवस्थाएँ मिलकर स्थायी भाव–अर्थात् भक्ति में सतत भगवत्प्रेम-कहलाती हैं। इन अवस्थाओं के अतिरिक्त विभाव तथा अनुभाव भी होते हैं।

तात्पर्य

कृष्ण के प्रति राग कभी घटता नहीं। विभिन्न अवस्थाएँ प्राप्त करने पर यह बढ़ता जाता है। ये सारी अवस्थाएँ स्थायी भाव कहलाती हैं। भक्ति के नौ प्रकार हैं- श्रवणं, कीर्तनं, विष्णोः स्मरणं, पादसेवनम्, अर्चनं, वन्दनं, दास्यं, सख्यमात्मनिवेदनम्। जब सतत भगवत्प्रेम (स्थायी भाव) भक्ति की विधियों में मिला दिया जाता है, तो उसे विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी कहते हैं। इस तरह भक्त को अनेक प्रकार का दिव्य आनन्द प्राप्त होता है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृतप्रवाह-भाष्य में लिखा है कि अनुभाव की तेरह कोटियाँ हो सकती हैं (1) नृत्य, (2) जमीन पर लोटना, (3) गाना, (4) चिल्लाना, (5) कूदना, (6) उच्च स्वर से शब्द करना, (7) जम्हाई लेना, (8) दीर्घश्वास लेना, (9) जनमत की परवाह न करना, (10) लार गिरना, (11) अट्टहास, (12) अस्थिरता तथा (13) हिचकियाँ। ये अनुभाव के लक्षण हैं। इस तरह दिव्य रसानुभूति विभिन्न स्तरों पर होती है। इसी प्रकार गोस्वामियों ने अभिव्यक्ति के अनेक अन्य रूपों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। रूप गोस्वामी ने भक्तिरसामृतसिन्धु में प्रत्येक लक्षण को अलग अलग नाम दिया है।

सात्त्विक-व्यभिचारि-भावेर मिलने।

कृष्ण-भक्ति-रस हय अमृत आस्वादने॥ 181॥

सात्त्विक-व्यभिचारि-भावेर-स्थायी भाव के साथ सात्त्विक और व्यभिचारी; मिलने-मिलने से; कृष्ण-भक्ति-रस-कृष्ण भक्ति का दिव्य रस; हय हो जाता है। अमृत-अमृतमय; आस्वादने-आस्वादन में।

अनुवाद

"जब सात्त्विक तथा व्यभिचारी भावों के लक्षणों को उच्चस्तरीय प्रेमभाव से मिला दिया जाता है, तब भक्त नाना प्रकार के अमृतमय स्वादों में कृष्ण-प्रेम के दिव्य आनन्द का आस्वादन करता है।

यैछे दधि, सिता, घृत, मरीच, कर्पूर।

मिलने, 'रसाला' हय अमृत मधुर ॥ 182॥

यैछे-जैसे; दधि-दही; सिता–मिश्री; घृत-घी; मरीच–काली मिर्च; कर्पूर-कपूर; मिलने-इकट्ठे मिलाने से; रसाला-बहुत स्वादिष्ट; हय–हो जाते हैं; अमृत-अमृतमय; मधुर-और मीठे।

अनुवाद

"इनके स्वाद दही, मिश्री, घी, काली मिर्च तथा कपूर के मिश्रण के स्वाद के तुल्य हैं और मधुर अमृत की भाँति स्वादिष्ट होते हैं।

भक्त-भेदे रति-भेद पञ्च परकार ।

शान्त-रति, दास्य-रति, सख्य-रति आर ॥183 ॥

वात्सल्य रति, मधुर-रति,—ए पञ्च विभेद ।

रति-भेदे कृष्ण-भक्ति-रसे पञ्च भेद ॥ 184॥

भक्त-भेद-भक्तों की श्रेणियों के अनुसार; रति-भेद-विभिन्न आसक्तियाँ; पञ्च परकार–पाँच प्रकार; शान्ति-रति-शान्त रति, तटस्थ भाव; दास्य-रति दास्य रति, दासता भाव; सख्य-रति-सख्य रति, मित्र भाव; आर-और; वात्सल्य-रति-वात्सल्य रति, स्नेह भाव; मधुर-रति-माधुर्य प्रेम भाव; एइ-इन्हीं; पञ्च–पाँच; विभेद-विभाग; रति-भेदे-विभिन्न स्तरों पर आसक्ति से; कृष्ण-भक्ति-रसे—कृष्ण भक्ति से प्राप्त रसों में; पञ्च–पाँच; भेद-प्रकार।

अनुवाद

"भक्त के अनुसार रति पाँच प्रकार की होती है-शान्त रति, दास्य रति, सख्य रति, वात्सल्य रति तथा मधुर रति। ये पाँचों प्रकार की रति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति भक्त की विभिन्न अनुरक्तियों से उत्पन्न होती हैं। भक्ति से प्राप्त होने वाले दिव्य रस भी पाँच प्रकार के होते हैं।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (2.5.16-18) में शान्त रति का वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है :

मानसे निर्विकल्पत्वं शम इत्यभिधीयते ।

"जब मनुष्य सारे संशयों तथा भौतिक आसक्तियों से पूर्णतया मुक्त हो जाता है, तब उसे शान्त अवस्था प्राप्त होती है।"

विहाय विषयोन्मुख्यं निजानन्द स्थितिर्यतः ।

आत्मनः कथ्यते सोऽत्र स्वभावः शम इत्यसौ ॥

प्रायः शमप्रधानानां ममता गन्ध वर्जिता ।

परमात्मतया कृष्णे जाता शान्त रतिर्मता ॥

"कृष्ण की शान्त-रति की अनुभूति निर्विशेषवाद तथा साकारवाद की धारणा के मध्य तटस्थ अवस्था में है। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य भगवान् के साकार रूप के प्रति प्रगाढ़तापूर्वक अनुरक्त नहीं रहता। भगवान् की महानता के लिए सराहना का भाव होना शान्त-रति है। यह अनुरक्ति साकार रूप से नहीं अपितु निर्विशेष पहलू से होती है। सामान्यतया इस अवस्था में मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के परमात्मा रूप से अनुरक्त रहता है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारुढानि मायया ॥

"हे अर्जुन, भगवान् सबके हृदय में स्थित हैं और उन सभी जीवों के आवागमन को नियन्त्रित करते हैं, जो मानो माया रूपी यंत्र पर आरूढ़ हैं।" (भगवद्गीता 18.61) भगवद्गीता के इस कथन के आधार पर हम समझ सकते हैं कि शान्त रस में भक्त सर्वत्र भगवान् का प्रतिनिधित्व देखता है।

भक्तिरसामृतसिन्धु (2.5.27) में दास्य रति की व्याख्या इस प्रकार मिलती है:

स्वस्माद्भवन्ति ये न्यूनास्तेऽनुग्राह्या हरेर्मताः ।

आराध्यत्वात्मिका तेषां रतिः प्रीतिरितीरिता ।

तत्रासक्तिकृदन्यत्र प्रीतिसंहारिणी ह्यसौ ॥

जब भगवान् के अन्तर्यामी रूप को समझ लिया जाता है और महान् भक्त अपनी अधीनता को समझ लेता है, तो वह न केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण ग्रहण करता है, अपितु वह अपनी अधीन अवस्था के कारण वह सेवा करना चाहता है और इस तरह भगवान् की कृपा का पात्र बनना चाहता है। शान्त रति में भक्त भगवान् की सेवा करने के लिए अधिक उत्सुक नहीं रहता, किन्तु दास्य रति में वह स्वेच्छा से सेवा करना चाहता है। इस मनोवृत्ति के कारण दास्य रति में भक्त शान्त रति की अपेक्षा भगवान् की अधिक पूर्णता से अनुभूति करता है। वह भगवान् को पूजनीय व्यक्ति मानता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि भगवान् के प्रति उसकी अनुरक्ति बढ़ती जाती है। इस प्रकार दास्य रति की विशेषता है- भक्तिः परेशानुभवोविरक्तिरन्यत्र च।(श्रीमद्भागवत 11.2.42) दूसरे शब्दों में, दास्य रति में भक्त भगवान् की सेवा करने में अनुरक्त रहता है और वह भौतिक कार्यकलापों से विरक्त रहता है। शान्त रति न तो भौतिक होती है न आध्यात्मिक, किन्तु दास्य रति अवश्य आध्यात्मिक स्तर पर होती है। इस आध्यात्मिक अवस्था में भौतिक वस्तुओं के लिए कोई आसक्ति नहीं रहती (विरक्तिरन्यत्र च) । दास्य रति में भक्त को कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की आसक्ति नहीं रहती।

भक्तिरसामृतसिन्धु (2.5.30) में सख्य रति का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

ये स्युस्तुल्या मुकुन्दस्य ते सखायः सतां मताः ।

साम्याद् विश्रम्भरूपैषां रतिः सख्यमिहोच्यते ॥

उन्नत भक्तों तथा विद्वानों के मतानुसार सख्य रति में भक्त अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समकक्ष अनुभव करता है। यह सख्य भाव है। भगवान् के साथ सख्य भाव होने के कारण भक्त न केवल भौतिक आसक्ति से मुक्त हो जाता है, अपितु वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ समानता का व्यवहार करने में विश्वास करता है। यह सख्यरति कहलाती है। सख्य रति में भक्त इतना ऊपर उठ जाता है कि वह भगवान् को समान स्तर पर मानकर उनसे हास-परिहास करता है। यद्यपि जीव कभी भी भगवान् के समान नहीं होता, फिर भी सख्य रति में भक्त अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समान मानता है और इसके लिए वह अपने आपको किसी भी प्रकार से दोषी नहीं समझता। आमतौर पर अपने आपको भगवान् के समान मानना अपराध है। मायावादी, उदाहरण के तौर पर, अपने आपको भगवान् के तुल्य मानते हैं, किन्तु ऐसे विचारों से दुःख ही मिलता है, क्योंकि वे भौतिक हैं। किन्तु सख्य रति शुद्ध भक्त द्वारा मन में अनुभव किया गया भाव है और भक्त इसी भाव में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से नित्य जुड़ा होता है।

भक्तिरसामृतसिन्धु (2.5.33) में वात्सल्य रति का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

गुरवो ये हरेरस्य ते पूज्या इति विश्रुताः

अनुग्रहमयी तेषां रतिर्वात्सल्यमुच्यते

इदं लालन भव्याशीश्चिबुकस्पर्शनादिकृत् ॥

वात्सल्य रति में स्थित जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के बालस्वरूप का ध्यान करता है। शिशु-स्वरूप में भगवान् की रक्षा भक्त द्वारा की जानी होती है और ऐसी स्थिति में भक्त ऐसी स्थिति ग्रहण करता है, जिसमें वह भगवान् द्वारा पूजनीय होता है। माता-पिता के प्रेम का यह भाव वात्सल्य रति कहलाता है। जब भक्त इस अवस्था में स्थित होता है, तब वह भगवान् का पालन-पोषण पुत्र रूप में करना चाहता है और सर्वथा भगवान् के सौभाग्य की कामना करता है। वह भगवान् के पाँव तथा सिर छूकर उन्हें आशीर्वाद देता है।

मधुर-रति का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

मिथो हरेर्मृनूंगाक्ष्याश्च सम्भोगस्यादिकारणम् ।

मधुरापर-पर्याया प्रियताख्योदिता रतिः।

अस्यां कटाक्ष-भ्रू-क्षेप-प्रिय-वाणी स्मितादयः ।।

मधुर रति की अनुभूति जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा व्रजभूमि की तरुणी गोपिकाओं के बीच होती है, निरन्तर आठ प्रकार की स्मृतियों में बनी रहती है। माधुर्य प्रेम के कारण होने वाले इस घनिष्ठ सम्बन्ध में भौहें मटकाना, बाँकी चितवन, मधुर शब्द तथा परिहास चलता है।

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर-रस नाम ।

कृष्ण-भक्ति-रस-मध्ये ए पञ्च प्रधान ॥185॥

शान्त-तटस्थता; दास्य-दासता; सख्य-मित्रता; वात्सल्य-माता पिता का स्नेह; मधुर-रस-माधुर्य प्रेम; नाम–विभिन्न नाम; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण भक्ति के; रस-रस; मध्ये-के मध्य; ए-ये; पञ्च–पाँच; प्रधान मुख्य।

अनुवाद

“भगवान् के साथ अनुभव किये जाने वाले प्रमुख रस पाँच हैं- शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर।

हास्योऽद्भुतस्तथा वीरः करुणो रौद्र इत्यपि ।

भयानकः स-बीभत्स इति गौणश्च सप्तधा ॥186॥

हास्यः-हास्य; अद्भुतः-अद्भुत; तथा-तथा; वीरः-वीर; करुणः-करुण; रौद्रः–रौद्र; इति–इस प्रकार; अपि-भी; भयानकः–भयानक; सः–के साथ; बीभत्सः-बीभत्स; इति-इस प्रकार; गौणः-गौण; च-भी; सप्तधा-सात प्रकार।

अनुवाद

"पाँच प्रत्यक्ष रसों के अतिरिक्त सात अप्रत्यक्ष या गौण रस होते हैं, जिन्हें हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक तथा बीभत्स नाम से जाना जाता है।

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (2.5.116) में पाया जाता है।

हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, बीभत्स, भय ।

पञ्च-विध-भक्ते गौण सप्त-रस हय ॥ 187॥

हास्य-हास्य; अद्भुत-अद्भुत; वीर–वीर; करुण-करुण, सहानुभूति; रौद्र-क्रोध; बीभत्स–बीभत्स; भय-भय; पञ्च-विध-भक्ते-पाँच प्रकार के भक्तों में; गौण-गौण; सप्त-रस-सात रस; हय-हैं।

अनुवाद

"पाँच प्रत्यक्ष रसों के अतिरिक्त सात अप्रत्यक्ष रस हैं, जिन्हें हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, बीभत्स तथा भयानक कहा जाता है।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (3.1.4-6) में शान्त भक्ति रस का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः शमिनां स्वाद्यतां गतः।

स्थायी शान्तिरतिर्धीरैः शान्तभक्तिरस स्मृतः ॥

प्रायः स्वसुखजातीयं सुखं स्यादत्र योगिनाम्

किन्त्वात्मसौख्यमघनं घनं त्विशमयं सुखम् ।

तत्रापीश स्वरूपानुभवस्यैवोरुहेतुता ।

दासादि वन्मनोज्ञात्व लीलादेर न तथा मता ॥

जब शान्त रति लगातार बनी रहे और आनन्द भाव से मिल जाय और जब भक्त को शान्त स्थिति का आस्वादन होने लगे, तो उसे शान्तभक्तिरस कहते हैं। शान्त भक्तिरस में भक्त सामान्यतया पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के निर्विशेष पहलू का आस्वादन करते हैं। चूँकि उनके दिव्य आनन्द का आस्वादन अधूरा रहता है, इसलिए यह अघन कहलाता है, जिसका अर्थ है, "जो गाढ़ा नहीं है वह।" सामान्य तथा औटाये दूध की तुलना की गई है। जब वही भक्त निर्विशेष से परे जाकर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदि रूप सच्चिदानन्द-विग्रह की सेवा का आस्वादन करता है, तब वह स्वाद घन (गाढ़ा) आनन्द कहलाता है। कभी-कभी शान्त रस में भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से मिलने के बाद दिव्य आनन्द का आस्वादन करता है, किन्तु दास्य रस में स्थित भक्त द्वारा अनुभव किये गये दिव्य आनन्द से इसकी तुलना नहीं की जा सकती, जिसमें वह भगवान् की सेवा करता है।

दास्य रस या दास्य-भक्ति-रस का वर्णन भक्तिरसामृतसिन्धु (3.2.3-4) में इस प्रकार हुआ है :

आत्मोचितैर्विभावाद्यैः प्रीतिरास्वादनीयताम् ।

नीता चेतसि भक्तानां प्रीति भक्तिरसोमतः ॥

अनुग्राह्यस्य दासत्वाल्लाल्या त्वादप्ययं द्विधा ।

भिद्यते सम्भ्रमप्रीतो गौरव प्रीत इत्यपि ॥

जब जीव अपनी इच्छानुसार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के लिए प्रेम उत्पन्न कर लेता है, तब प्रेम का यह शुभारम्भ दास्यभक्ति रस कहलाता है। दास्य-भक्ति-रस के दो विभाग किये जाते हैं- सम्भ्रम-

दास्य और गौरव-दास्य। सम्भ्रम दास्य में भक्त भगवान् की सादर सेवा करता है, किन्तु अधिकतर उन्नत गौरव दास्य अवस्था में भक्त की सेवा भगवान् को सरंक्षण प्रदान करती है।

सख्य भक्तिरस का वर्णन भक्तिरसामृतसिन्धु (3.3.1) में इस प्रकार दिया गया है :

स्थायीभावो विभावाद्यैः सख्यम् आत्मोचितैर् इह ।

नीतश्चित्ते सताम् पुष्टिमं रसः प्रेयानुदिर्यते ॥

"मनुष्य की मूल चेतना के अनुसार उसमें आनन्द की भावना शाश्वत रूप में सख्य में विद्यमान रहती हुई प्रदर्शित हो सकती है। जब कृष्ण चेतना का यह स्तर परिपक्व होता है, तब उसे प्रेयो-रस या सख्य-भक्ति-रस कहते हैं।"

वात्सल्य-भक्ति-रस का वर्णन भक्तिरसामृतसिन्धु (3.4.1) में इस प्रकार मिलता है ।

विभावाद्यैस्तु वात्सल्यं स्थायी पुष्टिं उपागतः।

एष वत्सलनामात्र प्रोक्तो भक्तिरसो बुद्यैः ॥

"जब नित्य विद्यमान भगवत्प्रेम माता-पिता के प्रेम में परिणत हो जाता है और अनुरूप भावों से मिल जाता है, तो उस दिव्य अवस्था को विद्वान भक्त वात्सल्य-भक्ति-रस कहते हैं।"

मधुर-भक्ति-रस का वर्णन भक्तिरसामृतसिन्धु (3.5.1) में इस प्रकार हुआ है :

आत्मोचितैर्विभावाद्यैः पुष्टिं नीता सतांहदि ।

मधुराख्यो भवेद् भक्तिरसोऽसौ मधुरा रतिः ॥

"यदि मनुष्य अपने में कृष्णभावना के सहज विकास के अनुसार हृदय में माधुर्य प्रेम की ओर आकृष्ट होता है, तो वह आकर्षण मधुर-रस कहलाता है।"

इसी तरह हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भय तथा बीभत्स इन सात गौण रसों की भी व्याख्या भक्तिरसामृतसिन्धु में की गई है। हास्य-भक्ति-रस की व्याख्या इस प्रकार हुई है (भक्तिरसामृतसिन्धु 4.1.6) :

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः पुष्टिं हासरतिर्गता ।

हास्यभक्ति रसोनाम बुधैरेष निगद्यते ॥

"जब भक्ति के माध्यम से कृष्ण के प्रति हास्य अनुरक्ति उत्पन्न होती है, तब

विद्वान लोग उसे हास्य-भक्ति-रस कहते हैं।

इसी प्रकार अद्भुत-रस का वर्णन भक्तिरसामृतसिन्धु (4.2.1) में हुआ है :

आत्मोचितैर्विभावाद्यैः स्वाद्यत्वं भक्त चेतसि ।

सा विस्मयरतिर्नीताद्भुतो भक्ति रसो भवेत् ॥

"जब आश्चर्य में किसी की सामान्य अनुरक्ति स्थिर हो जाती है, तो उसे अद्भुत-भक्ति-रस कहते हैं।"

इसी तरह वीर भक्ति-रस का वर्णन हुआ है (भक्तिरसामृतसिन्धु 4.3.1)

सैवोत्साहरतिः स्थायी विभावाद्यैर्निजोचितः

आनीयमाना स्वाद्यत्वं वीर भक्ति रसो भवेत् ।

युद्धदान दया धर्मैश्चतुर्धावीर उच्यते ।

"जब भक्त के हृदय में कृष्ण के प्रति अनुरक्ति युद्ध भाव, दान भाव या दया भाव से मिल जाती है, तो ऐसी भक्ति वीर-भक्ति-रस कहलाती है।"

करुण भक्ति-रस का वर्णन इस प्रकार हुआ है (भक्तिरसामृतसिन्धु 4.4.1)

आत्मोचितैर्विभावाद्यैर्नीता पुष्टिं सतां हृदि।

भवेच्छोकरतिर्भक्तिरसो हि करुणाभिदः ॥

“जब किसी का भक्तिभाव तथा कृष्ण के प्रति आकर्षण शोक से मिल जाते हैं, तो वह करुण-भक्ति-रस कहलाता है।”

इसी तरह रौद्र-भक्ति-रस का भी वर्णन हुआ है (भक्तिरसामृतसिन्धु 4.5.1)

नीता क्रोध-रतिः पुष्टिं विभावाद्यैर्निजोचितैः।

हृदि भक्तजनस्यासौ रौद्रभक्ति रसो भवेत् ॥

“जब भक्त के हृदय में भक्ति और क्रोध मिलते हैं, तो उस आस्वादन को रौद्र-भक्ति-रस कहते हैं।”

भयानक-भक्तिरस का वर्णन इस प्रकार है (भक्तिरसामृतसिन्धु 4.6.1) :

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः पुष्टिं भयरतिर्गता।

भयानकाभिधो भक्तिरसो धीरैरु-दीर्यते ॥

“जब भय के साथ भक्ति मिल जाती है, तब यह भयानक-भक्ति-रस कहलाता है।”

बीभत्स-भक्ति-रस का वर्णन इस प्रकार है (भक्तिरसामृतसिन्धु4.7.1) :

पुष्टिं निजविभावाद्यैर्जुगुप्सारतिरागता।

असौ भक्तिरसोधीरैर्बीभत्साख्य इतीर्यते ॥

“जब घृणित ढंग से कृष्ण के साथ अनुरक्ति उत्पन्न होती है और भक्त उसका आस्वादन करता है, तो उसे बीभत्स भक्ति-रस कहते हैं।”

निष्कर्ष यह है कि जब भक्त पाँच प्रमुख रसों (शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर) में से किसी एक में स्थित होता है और वह रस सात गौण भक्ति रसों (हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक तथा बीभत्स) में से किसी एक या अधिक रसों के साथ मिलता है, तब गौण रस प्रमुख बन जाता है।

पञ्च-रस 'स्थायी' व्यापी रहे भक्त-मने ।

सप्त गौण 'आगन्तुक' पाइये कारणे ॥ 188॥

पञ्च-रस-पाँच प्रत्यक्ष दिव्य रस; स्थायी-स्थायी; व्यापी-व्यापक; रहे-बने रहते हैं; भक्त-मने-भक्त के मन में; सप्त गौण-सात गौण रस; आगन्तुक–अचानक; पाइये-प्रकट होते हैं; कारणे-विशेष परिस्थितियों में।

अनुवाद

"भक्ति के पाँच प्रत्यक्ष दिव्य रस भक्त के हृदय में स्थायी रूप से स्थित रहते हैं, जबकि सात गौण भाव किन्हीं विशेष परिस्थितियों में सहसा प्रकट होते हैं और अधिक प्रबल प्रतीत होते हैं।

शान्त-भक्त—नव-योगेन्द्र, सनकादि आर ।

दास्य-भाव-भक्त—सर्वत्र सेवक अपार ॥189॥

शान्त-भक्त-शान्त भक्त; नव–नौ; योगेन्द्र–साधु पुरुष; सनक-आदि आर-और सनक आदि चार कुमार; दास्य-भाव-भक्त–दास्य भाव में भक्त; सर्वत्र सेवक अपार-सब जगह ऐसे असंख्य दास।

अनुवाद

"शान्त भक्तों के उदाहरणों में नव योगेन्द्र तथा चार कुमार आते हैं। दास्य भक्ति के भक्तों के उदाहरण असंख्य हैं, क्योंकि ऐसे भक्त सर्वत्र हैं।

तात्पर्य

नौ योगेन्द्रों के नाम हैं-कवि, हवि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रविड (द्रुमिल), चमस तथा करभाजन। चार कुमार हैं-सनक, सनन्दन, सनत्कुमार तथा सनातन। गोकुल के दास भक्तों में रक्तक, चित्रक, पत्रक आदि के नाम आते हैं। द्वारका में दारुक तथा भौतिक जगत् में भगवान् की लीलाओं में हनुमान जैसे दास हैं।

सख्य-भक्त–श्रीदामादि, पुरे भीमार्जुन ।

वात्सल्य-भक्त माता पिता, यत गुरु-जन ॥ 190॥

सख्य-भक्त–सख्य भाव के भक्त; श्रीदामा-आदि-श्रीदामा आदि; पुरे-द्वारका में; भीम-अर्जुन-भीम एवं अर्जुन; वात्सल्य-भक्त–वात्सल्य प्रेम के भक्त; माता पिता-माता पिता; यत गुरु-जन-अन्य सभी ऐसे गुरुजन।

अनुवाद

“वृन्दावन में सख्य भक्तों में श्रीदामा तथा सुदामा, द्वारका में भीम तथा अर्जुन, वृन्दावन में वात्सल्य प्रेमी भक्त माता यशोदा तथा पिता नन्द महाराज और द्वारका में भगवान् के माता-पिता वसुदेव तथा देवकी हैं। अन्य गुरुजन भी वात्सल्य प्रेमी भक्त हैं।

मधुर-रसे भक्त-मुख्य—व्रजे गोपी-गण ।

महिषी-गण, लक्ष्मी-गण, असङ्ख्य गणन ॥ 191॥

मधुर-रसे–माधुर्य रस के; भक्त-मुख्य–मुख्य भक्त; व्रजे-वृन्दावन में; गोपी-गण-गोपियाँ; महिषी-गण-द्वारका की रानियाँ; लक्ष्मी-गण-वैकुण्ठ की लक्ष्मियाँ; असङ्ख्य गणन-असंख्य गणना।

अनुवाद

“माधुर्य प्रेम में प्रमुख भक्त हैं-वृन्दावन की गोपियाँ, द्वारका की पटरानियाँ तथा वैकुण्ठ की लक्ष्मियाँ। इन भक्तों की संख्या अनन्त है।

पुनः कृष्ण-रति हय दुइत प्रकार ।

ऐश्वर्य-ज्ञान-मिश्रा, केवला-भेद आर ॥192॥

पुनः पुनः; कृष्ण-रति-कृष्ण के लिए अनुरक्ति; हय होती है; दुइत–दो; प्रकार-प्रकार; ऐश्वर्य-ज्ञान-मिश्रा-ऐश्वर्य (पूजा भाव) से मिश्रित कृष्ण का ज्ञान; केवला-शुद्ध आसक्ति; भेद-भेद; आर-अन्य।

अनुवाद

“कृष्ण रति दो प्रकार की है—पहली ऐश्वर्य-ज्ञान-मिश्रित रति तथा दूसरी ऐश्वर्य-ज्ञान-रहित शुद्ध रति (केवला)।

गोकुले ‘केवला’ रति—ऐश्वर्य-ज्ञान-हीन ।

पुरी-द्वये, वैकुण्ठाद्ये—ऐश्वर्य-प्रवीण ॥ 193॥

गोकुले-गोकुल वृन्दावन में; केवला रति-विशुद्ध आसक्ति; ऐश्वर्य-ज्ञान-हीन-ऐश्वर्य (आदर के भाव से रहित; पुरी-द्वये-मथुरापुरी तथा द्वारकापुरी, दो पुरियों में; वैकुण्ठ-आद्ये-वैकुण्ठ आदि में; ऐश्वर्य-प्रवीण-ऐश्वर्य प्रधान।

अनुवाद

“ऐश्वर्य-ज्ञान-विहीन शुद्ध रति गोलोक वृन्दावन में पाई जाती है। ऐश्वर्य तथा ज्ञान से युक्त रति मथुरा तथा द्वारका इन दो पुरियों तथा वैकुण्ठ में पाई जाती है।

ऐश्वर्य-ज्ञान-प्राधान्ये सङ्कचित प्रीति ।

देखिया ना माने ऐश्वर्य—केवलार रीति ॥ 194॥

ऐश्वर्य-ज्ञान-प्राधान्ये-भय तथा आदर की प्रधानता के होते हुए; सङ्कचित-अपंग; प्रीति–प्रेम; देखिया-देखकर; ना माने–नहीं मानता; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; केवलार रीति-शुद्ध भक्ति का लक्षण।

अनुवाद

"ऐश्वर्य प्रधान होने पर भगवत्प्रेम कुछ संकुचित हो जाता है। किन्तु केवला भक्ति में भक्त कृष्ण की असीम शक्ति को देखते हुए भी अपने आपको उनके समान मानता है।

शान्त-दास्य-रसे ऐश्वर्य काहाँ उद्दीपन ।

वात्सल्य-सख्य-मधुरे त' करे सङ्कोचन ॥ 195॥

शान्त-दास्य-रसे-शान्त, दास्य के दिव्य रसों में; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; काहाँ-कहीं कहीं; उद्दीपन-प्रकट होता है; वात्सल्य-सख्य-मधुरे–वात्सल्य, सख्य तथा माधुर्य रसों में; त'-निस्सन्देह; करे-हो जाती है; सङ्कोचन–कम।

अनुवाद

"शान्त तथा दास्य रस के स्तर पर कभी-कभी भगवान् का ऐश्वर्य प्रमुख होता है। किन्तु वात्सल्य, सख्य तथा माधुर्य रसों में ऐश्वर्य संकुचित हो जाता है।

वसुदेव-देवकीर कृष्ण चरण वन्दिल ।

ऐश्वर्य-ज्ञाने दुँहार मने भय हैल ॥196 ॥

वसदेव-देवकीर-वसुदेव और देवकी के; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; चरण-चरणकमलों पर; वन्दिल-वन्दन किया; ऐश्वर्य-ज्ञाने-ऐश्वर्य के ज्ञान के कारण; दुँहार-उन दोनों के; मने-मनों में; भय हैल-डर था।

अनुवाद

“जब कृष्ण ने अपने माता-पिता वसुदेव-देवकी के चरणकमलों की वन्दना की, तो दोनों के मन में उनके ऐश्वर्य के ज्ञान के कारण भय तथा आदर उत्पन्न हुआ।

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ।

कृत-संवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥ 197॥

देवकी-देवकी, वसुदेवः-वसुदेव; च-और; विज्ञाय-समझकर; जगत्-ईश्वरी-जगत् के दो भगवान्; कृत-संवन्दनौ-नमस्कार करने पर; पुत्रौ–कृष्ण और बलराम दोनों पुत्र; सस्वजाते-आलिंगन किया; न-नहीं; शङ्कितौ–भय (शंका) होने के कारण।

अनुवाद

“जब देवकी तथा वसुदेव ने यह समझ लिया कि उन्हें प्रणाम करने वाले उनके दोनों पुत्र कृष्ण तथा बलराम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, तो वे भयभीत हो उठे और उन्होंने उनका आलिंगन नहीं किया।’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.44.51) का है और कृष्ण तथा बलराम द्वारा कंस-वध के बाद की घटना का वर्णन करता है। वसुदेव तथा देवकी ने अपने पुत्र द्वारा बलशाली असुर कंस का वध होते देखा और इसके तुरन्त बाद उन्हें बन्धन-मुक्त कर दिया गया। तब बलराम और कृष्ण ने देवकी तथा वसुदेव को नमस्कार किया। माता तथा पिता दोनों अपने पुत्रों का आलिंगन करना चाहते थे, किन्तु वे जान गये कि कृष्ण तथा बलराम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं; अतएव वे उनका आलिंगन करने में संकोच का अनुभव कर रहे थे। इस तरह कृष्ण तथा बलराम के प्रति उनके वात्सल्य प्रेम में बाधा उत्पन्न हुई और ऐश्वर्य के कारण संकुचित हुआ।

कृष्णेर विश्व-रूप देखि’ अर्जुनेर हैल भय ।

सख्य-भावे धायै धाष्टर्य क्षमापय करिया विनय ॥ 198॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; विश्व-रूप-विराट् रूप; देखि'-देखकर; अर्जनेर अर्जुन को; हैल भय-भय हो गया; सख्य-भावे-मित्र के रूप में; **धाष्टर्य**-धृष्टता क्षमापय के लिए क्षमा माँगी; करिया-करके; विनय-विनय।

अनुवाद

"जब कृष्ण ने अपना विराट् रूप दिखलाया, तो अर्जुन भयभीत हो उठा और उसने मित्र रूप के में कृष्ण के प्रति दिखलाई गई धृष्टता के लिए उनसे क्षमा माँगी।"

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं

हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।

अजानता महिमानं तवेदं

मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ 199॥

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि

विहार-शय्यासन-भोजनेषु ।

एकोऽथ वाप्यच्युत तत्समक्षम्

तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ 200॥

सखा-मित्र; इति—इस प्रकार; मत्वा-मानकर; प्रसभम्-जबरदस्ती; यत्-वह जो; उक्तम्-कहा गया; हे कृष्ण-हे कृष्ण; हे यादव-हे यादव; हे सखा-हे प्रिय सखा; ति-इस प्रकार; अजानता-अनजाने में; महिमानम्-महिमा; तव-आपकी; इदम्-यह; अया-मेरे द्वारा प्रमादात्-अज्ञान में; प्रणयेन-स्नेह में; वा-अथवा; अपि-निश्चित रूप ये; यत-जो कुछ; च-और; अवहास-अर्थम्-हँसी विनोद में, परिहास में;

असत्-कतः-अपमान किया गया; असि-आप हैं; विहार-परिहास में; शय्या-आसन-बैठे अथवा सोते समय; भोजनेषु-साथ में भोजन करते समय; एकः-अकेले; अथ वा-अथवाः अपि-निस्सन्देह; अच्युत-हे प्रिय कृष्ण; तत्-समक्षम्-दूसरों की उपस्थिति में; तत-वे सब; क्षामये-क्षमा माँगता हूँ; त्वाम्-आप से; अहम्-मैं; अप्रमेयम्-जो असीम हैं।

अनुवाद

"मैंने आपकी महिमा न जानने के कारण और आपको मित्र समझकर 'हे कृष्ण," 'हे यादव," 'हे मित्र," कहकर सम्बोधित किया है। मैंने पागलपन या प्रेम में जो कुछ भी किया है, कृपा करके उसके लिए क्षमा कर दें। मैंने एक ही बिस्तर में लेटे हुए परिहास में, साथ-साथ बैठे या खाते हुए, कभी अकेले में तो कभी अपने मित्रों के सामने कई बार आपका अनादर किया है। हे अच्युत, कृपया मेरे उन सारे अपराधों को क्षमा कर दें।'

तात्पर्य

यह उद्धरण भगवद्गीता (11.41-42) से है। यह वचन अर्जुन ने कृष्ण से कहे, जब कृष्ण कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में अपना विराट् रूप प्रदर्शित कर रहे थे।

कृष्ण यदि रुक्मिणीरे कैला परिहास ।

'कृष्ण छाड़िबेन'—जानि' रुक्मिणीर हैल त्रास ॥201॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यदि यद्यपि; रुक्मिणीरे–महारानी रुक्मिणी से; कैला-किया; परिहास-परिहास; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; छाड़िबेन-मुझे त्याग देंगे; जानि'–यह सोचकर; रुक्मिणीर-रुक्मिणी को; हैल–हुआ; त्रास-आघात।

अनुवाद

“यद्यपि कृष्ण महारानी रुक्मिणी से परिहास कर रहे थे, किन्तु वे सोच रही थीं कि कृष्ण उनका साथ छोड़ने वाले हैं, जिससे उन्हें भय लगा।

तस्याः सु-दुःख-भय-शोक-विनष्ट-बुद्धेर्

हस्ताच्छलथद्वलयतो व्यजनं पपात ।

देहश्च विक्लव-धियः सहसैव मुह्यन्

रम्भेव वात-विहता प्रविकीर्य केशान् ॥ 202॥

तस्याः -उनकी; सु-दुःख-भय-महान् दु:ख और भय के कारण; शोक-और शोक; विनष्ट-नष्ट; बुद्धेः–जिनकी बुद्धि; हस्तात्-हाथ से; श्लथत्–ढीली होने के कारण; वलयतः-चूड़ियाँ; व्यजनम्-पंखा; पपात–गिर गये; देहः–शरीर; च-और; विक्लव-भय से शक्तिहीन; धियः-जिनकी बुद्धि; सहसा एव–अचानक; मुह्यन्–अचेत हो गई; रम्भा इव–केले के पेड़ की तरह; वात-विहता-तुफान से गिराई गई; प्रविकीर्य–बिखरे; केशान्–बाल।

अनुवाद

“‘जब कृष्ण द्वारका में रुक्मिणी से परिहास कर रहे थे, तब वे दुःख, भय तथा शोक से संतप्त हो गई। उनकी बुद्धि भी नष्ट हो गई थी। उन्होंने अपने हाथ की चूड़ियाँ गिरा दीं और जिस पंखे से भगवान् को पंखा झल रही थीं वह भी गिर गया। उनके बाल बिखर गये और वे सहसा बेहोश होकर गिर पड़ीं, मानों तेज हवा से केले का कोई वृक्ष गिर गया हो।’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.60.24) का है और जब जो कृष्ण अपने शयन-कक्ष में रुक्मिणी के साथ बात कर रहे थे, उसका निर्देश करता है। उनकी निष्ठा की परीक्षा करने के लिए कृष्ण उनसे परिहास करने लगे कि मैं दीन हूँ और तुम्हारा प्रेमी बनने के योग्य नहीं हूँ। रुक्मिणी यह नहीं समझ पाईं

कि वे परिहास कर रहे हैं; अत: उन्होंने सोचा कि कृष्ण उनका परित्याग करने वाले हैं। इस गलतफहमी से वे अत्यन्त दु:खी हो गईं और उनका सारा शरीर प्रभावित हो गया। उनके हाथ की चूड़ियाँ तथा हाथ में लिया हुआ पंखा भूमि पर गिर पड़े और वे भी तेज हवा के झोंके से प्रताड़ित केले के वृक्ष के समान भूमि पर गिर पड़ीं।

'केवला'र शुद्ध-प्रेम 'ऐश्वर्य' ना जाने ।

ऐश्वर्य देखिलेओ निज-सम्बन्ध से माने ॥ 203॥

केवलार कृष्ण के लिए अमिश्रित प्रेम का; शुद्ध-प्रेम-शुद्ध प्रेम; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; ना जाने-नहीं जानता; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; देखिलेओ-देखने के बावजूद; निज-सम्बन्ध-कृष्ण के साथ अपना निजी सम्बन्ध; से माने-वह गम्भीरता से लेता है।

अनुवाद

"केवला (शुद्ध भक्ति) की अवस्था में भक्त अनुभव करते हुए भी कृष्ण के असीम ऐश्वर्य को नहीं मानता। वह कृष्ण से अपने सम्बन्ध के विषय में ही गम्भीरता से विचार करता है।

तात्पर्य

जब भक्त कृष्ण के साथ, विशेषतया सख्य भाव में, अनन्य भक्ति की अवस्था को प्राप्त करता है, तब वह भगवान् के ऐश्वर्यों को देखते हुए भी उन्हें भूल जाता है और अपने आपको कृष्ण के समकक्ष मानने लगता है। कृष्ण से समता करने का वस्तुत: प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु भक्त कृष्णभावना में इतना उन्नत हो जाता है कि वह कृष्ण के साथ सामान्य व्यक्ति के समान व्यवहार कर सकता है।

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च साङ्ख्य-योगैश्च सात्वतैः ।

उपगीयमान-माहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम् ॥ 204॥

त्रय्या-तीन वेदों के अनुयायी जो महान् यज्ञ करते हैं, जैसे इन्द्र देव के लिए किये जाने वाले यज्ञ; च-और; उपनिषद्भिः-वेदों के उच्च भागों उपनिषदों के अनुयायी (जैसे ब्राह्मणों) से; च-और; साङ्ख्य–उन दार्शनिकों से जो ब्रह्माण्ड का (पुरुष की भाँति) विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हैं; योगैः–योगियों से (सर्वत्र विद्यमान परमात्मा के रूप में); च-और-सात्वतैः–उन भक्तों द्वारा (भगवान् के रूप में), जो पंचरात्र और अन्य वैदिक साहित्य द्वारा वर्णित पूजा विधि का पालन करते हैं; उपगीयमान–गाई जाती है; माहात्म्यम्-जिनकी महिमाएँ; हरिम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को; सा-वे (माता यशोदा); अमन्यत–मानती थीं; आत्म-जम्-अपने ही शरीर से जन्मा पुत्र।

अनुवाद

"जब माता यशोदा ने कृष्ण के मुँह के भीतर सारे ब्रह्माण्डों को देखा, तो क्षण-भर के लिए वे आश्चर्यचकित हो गईं। तीनों वेदों के अनुयायियों द्वारा भगवान्, इन्द्र देव तथा अन्य देवताओं की तरह पूजे जाते हैं। ऐसे अनुयायी भगवान् के लिए यज्ञ करते हैं। उपनिषदों के अध्ययन द्वारा उनकी महानता को जानकर ऋषिगण भगवान् की पूजा निर्विशेष ब्रह्म के रूप में करते हैं। बड़े-बड़े दार्शनिक जो ब्रह्माण्ड का विश्लेषात्मक अध्ययन करते हैं, उनको पुरुष के रूप में पूजते हैं। बड़े-बड़े योगी उन्हें सर्वव्यापक परमात्मा के रूप में तथा भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में पूजते हैं। फिर भी माता यशोदा उन्हें अपने पुत्र के रूप में मानती थीं।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.8.45) से उधृत है। भक्ति में उन्नत लोग योगमाया की कृपा से कृष्ण के ऐश्वर्य को भूल जाते हैं। उदाहरणार्थ माता यशोदा कृष्ण को सामान्य शिशु मानती थीं।

तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्य-लिङ्गमधोक्षजम् ।

गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥ 205॥

तम्-उनको (कृष्ण को); मत्वा-मानकर; आत्मजम्-अपना पुत्र; अव्यक्तम्-अप्रकट; मर्त्य-लिङ्गम्-नाशवान् जैसा प्रकट किया; अधोक्षजम्-इन्द्रियों के अनुभव से परे; गोपिका-माता यशोदा; उलूखले-ऊखल के साथ; दाम्ना-रस्सी से; बबन्ध–बाँध दिया; प्राकृतम्-एक सामान्य शिशु; यथा-की तरह।

अनुवाद

"यद्यपि कृष्ण इन्द्रिय अनुभूति से परे तथा मनुष्यों के लिए अप्रकट हैं, किन्तु वे भौतिक शरीरधारी मनुष्य का वेश धारण करते हैं। इस तरह माता यशोदा ने उन्हें अपना पुत्र माना और ओखली से एक रस्सी द्वारा भगवान् कृष्ण के बाँध दिया, मानो वे सामान्य बालक हों।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.9.14) से लिया गया है, जिसमें भगवान् कृष्ण माता यशोदा के समक्ष अपने आपको सामान्य बालक के रूप में प्रकट करते हैं। वे नटखट बालक के समान खेलते थे, मक्खन चुराते तथा मटकियाँ तोड़ते थे। इस पर माता यशोदा उद्विग्न हो उठीं और उन्होंने कृष्ण को ओखली से बाँधना चाहा। दूसरे शब्दों में, उन्होंने भगवान् को सामान्य बालक मान रखा था।

उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः ।

वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणी-सुतम् ॥ 206॥

उवाह-उठाया; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; श्रीदामानम्-श्रीदामा को; पराजितः–पराजित होने पर; वृषभम्-वृषभ; भद्रसेनः-भद्रसेन; तु-और; प्रलम्बः–प्रलम्ब; रोहिणी-सुतम्-रोहिणी के पुत्र बलराम।

अनुवाद

“जब कृष्ण श्रीदामा से हार गये, तो उन्हें श्रीदामा को अपने कंधों पर ले जाना पड़ा। इसी तरह भद्रसेन ने वृषभ को तथा प्रलम्ब ने रोहिणी सुत बलराम को उठाया था।’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.18.24) से लिया गया है। जब सारे ग्वालबाल वृन्दावन के जंगल में खेल रहे थे, तब कृष्ण तथा बलराम का हरण करने के लिए प्रलम्बासुर राक्षस आया। यह असुर एक ग्वालबाल के रूप में प्रकट हुआ था, किन्तु कृष्ण उसकी चाल समझ गये। अतः उन्होंने ग्वालों के दो दल बना लिए। एक दल बलराम का था और दूसरा स्वयं कृष्ण का था। इस खेल में कृष्ण हार गये; और खेल की शर्त के अनुसार, पराजित दल द्वारा विजयी दल को अपने कन्धों पर उठाया जाना था। कृष्ण ने अपने कन्धों पर श्रीदामा को और भद्रसेन ने वृषभ को उठाया। प्रलम्बासुर ने बलराम को उठाया, किन्तु जब बलराम उसके कंधे पर चढ़ गये, तो वह असुर दूर भाग चला। अन्त में वह अपना शरीर बढ़ाने लगा, जिससे बलराम समझ गये कि वह उन्हें मारना चाहता है। अतः बलराम ने तुरन्त ही असुर के सिर पर अपनी मजबूत मुट्ठी से आघात किया। इससे वह असुर भूमि पर गिरकर मर गया, मानो किसी सर्प के फन को कुचल दिया गया हो।

सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठां सर्व-योषिताम् ।

हित्वा गोपीः काम-याना मामसौ भजते प्रियः ॥ 207॥

ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ।

न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥ 208॥

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्धमारुह्यतामिति ।

ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥ 209॥

सा–श्रीमती राधारानी; च-और; मेने सोचा; तदा-उस समय; आत्मानम्-स्वयं; वरिष्ठाम्-सबसे श्रेष्ठ; सर्व-योषिताम्-सभी गोपियों में से; हित्वा–छोड़कर; गोपीः-सभी गोपियों को; काम-यानाः-जो कृष्ण की संगति चाहती थीं; माम्-मुझे; असौ-श्रीकृष्ण; भजते-पूजते हैं; प्रियः-सर्वाधिक प्रिय; ततः-तब; गत्वा-जाकर; वन-उद्देशम्-घने वन में; दृप्ता-अति अभिमानित होकर; केशवम्-कृष्ण को; अब्रवीत्-कहने लगी; न पारये-सक्षम नहीं हूँ; अहम्-मैं; चलितुम्-चलने के लिए; नय-उठा लो; पाप-मुझे; यत्र-जहाँ भी; ते-आपका; मनः-मन; एवम् उक्तः–श्रीमती राधारानी से इस प्रकार कहा गया; प्रियाम्-सर्वप्रिय गोपी को; आह–कहा; स्कन्धम्-मेरे कन्धे; आरुह्यताम्-पर चढ़ जाओ; इति—इस प्रकार; ततः-तब; च-भी; अन्तर्दधे-अन्तर्धान हो गयेः कृष्णः- भगवान् कृष्ण; सा-श्रीमती राधारानी; वधूः-गोपी; अन्वतप्यत-शोक करने लगीं।

अनुवाद

““‘हे प्रियतम कृष्ण, आप तुम मेरी पूजा कर रहे हो और उन सारी गोपियों का साथ छोड़ रहे हो, जो आपके साथ आनन्द भोगना चाहती हैं।” ऐसा सोचती हुई श्रीमती राधारानी ने अपने आपको कृष्ण की सर्वाधिक प्रिय गोपी मान लिया। उन्हें गर्व हो गया था और कृष्ण के साथ उन्होंने रासलीला छोड़ दी थी। उन्होंने गहन वन में कहा, ‘हे प्रिय कृष्ण, अब मैं और अधिक नहीं चल सकती। आप जहाँ चाहो मुझे ले चलो।” जब श्रीमती राधारानी ने इस प्रकार से कृष्ण से याचना की तो कृष्ण ने कहा, “तुम मेरे कंधों पर चढ़ जाओ।” ज्योंही राधारानी ऐसा करने लगीं कि वे अदृश्य हो गये। तब श्रीमती राधारानी अपनी प्रार्थना तथा कृष्ण के अदृश्य होने पर शोक करने लगीं।’

तात्पर्य

ये तीनों श्लोक श्रीमद्भागवत (10.30.36-38) से उधृत हैं।

पति-सुतान्वय-भ्रातृ-बान्धवान्

अतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।

गति-विदस्तवोद्गीत-मोहिताः

कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ 210॥

पति-पति; सुत–पुत्र; अन्वय-परिवार; भ्रातृ-भाई; बान्धवान् मित्र; अतिविलङ्घ्य-बिना परवाह किये; ते-आपके; अन्ति–प्रिय आश्रय; अच्युत-हे अच्युत; आगताः-आ गई हैं; गति-विदः-जो हमारी गतिविधियाँ जानते हैं; तव-आपका; उद्गीत-बांसुरी की ध्वनी द्वारा; मोहिताः-मोहित होकर; कितव-हे महान् छलिये; योषितः-सुन्दर स्त्रियाँ; कः-कौन; त्यजेत्-त्यागेगा; निशि-अर्धरात्रि को।

अनुवाद

"हे कृष्ण, हम सब अपने पतियों, पुत्रों, परिवार, भाइयों तथा मित्रों के आदेश की अवहेलना करके उनका साथ छोड़कर आपके पास आई हैं। आप हमारी इच्छाओं के विषय में सब कुछ जानते हैं। हम तो आपकी परम संगीतमयी बाँसुरी से आकृष्ट होकर आई हैं। तो भी, आप बहुत बड़े ठग हो। भला ऐसा कौन होगा जो इस तरह रात्रि के अंधकार में हम जैसी तरुणियों का साथ त्यागना चाहेगा?'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.31.16) से उद्धृत है, जिसमें यह बतलाया गया है कि किस तरह गोपियों ने रात्रि के अंधकार में अपने आपको कृष्ण की आनन्द-क्रीड़ा के लिए प्रस्तुत किया। गोपियाँ रास नृत्य में उनके साथ आनन्द लूटने के लिए कृष्ण के पास पहुँची थीं। कृष्ण इसे अच्छी तरह जानते थे, किन्तु वे ऊपर से उनसे दूर रहना चाह रहे थे। इसीलिए गोपियाँ उन्हें कितव अर्थात् बहुत बड़ा ठग कहकर सम्बोधित करती हैं, क्योंकि कृष्ण ने पहले तो उन्हें अपने साथ नृत्य करने के लिए आकृष्ट किया, किन्तु जब गोपियाँ अपनी सखियों तथा परिवारों के आदेशों की परवाह न करते हुए वहाँ वास्तव में

आईं, तो वे उन्हें तथाकथित अच्छा उपदेश देकर उन्हें टालना चाह रहे थे। गोपियों के लिए ये चालाकी भरे उपदेश असह्य थे; इसीलिए वे कृष्ण को कितव (बहुत बड़ा-ठग) कहने की अधिकारिणी थीं। वे सभी युवतियाँ थीं और वे उनके साथ आनन्द-क्रीड़ा करने आई थीं। भला कृष्ण उनसे कैसे आँख चुरा सकते थे? इसीलिए इस श्लोक में गोपियाँ अपनी घोर निराशा व्यक्त करती हैं। वे आईं तो स्वेच्छा से थीं, किन्तु कृष्ण इतने चालाक निकले कि वे उनका साथ देने से कतरा रहे थे। गोपियों का शोक निश्चित रूप से उपयुक्त था और इस प्रकार कृष्ण ने उनकी निष्ठा की परीक्षा ली।

शान्त-रसे—'स्वरूप-बुद्ध्ये कृष्णैक-निष्ठता' ।

"शमो मन्निष्ठता बुद्धेः" इति श्री-मुख-गाथा ॥ 211॥

शान्त-रसे-शान्त रस की स्थिति में; स्वरूप-बुद्ध्ये-आत्म-साक्षात्कार द्वारा; कृष्ण-एक-निष्ठता-कृष्ण के चरणकमलों की पूर्ण भक्ति; शमः-समता; मत्-मेरे प्रति; निष्ठता-आसक्ति का गुण; बुद्धेः-मन का; इति–इस प्रकार; श्री-मुख-भगवान् के मुख से; गाथा-एक श्लोक।

अनुवाद

जब कोई कृष्ण के चरणकमलों में पूरी तरह लगा रहता है, तब उसे शमता अवस्था प्राप्त होती है। 'शमता' शब्द 'शम' से निकला है। अतः शान्त रस (तटस्थ अवस्था) का अर्थ है, भगवान् कृष्ण के चरणों में पूरी तरह लगे रहना। यह साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के मुख से निकला निर्णय है। यह अवस्था आत्म-साक्षात्कार कहलाती है।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में भक्तिरसामृतसिन्धु (3.1.47) का श्लोक आगे दिया गया है।

शमो मन्निष्ठता बुद्धेरिति श्री-भगवद्वचः ।

तन्निष्ठा दुर्घटा बुद्धेरेतां शान्त-रतिं विना ॥ 212॥

शमः-समता अथवा शान्त रस; मत्-निष्ठता-मेरे चरणकमलों में स्थित होने पर; बुद्धेः-बुद्धि के; इति–इस प्रकार; श्री-भगवत्-वचः–भगवान् के वचन; तत्-निष्ठा-उनके लिए आसक्ति अथवा आकर्षण; दुर्घटा–दुर्लभ; बुद्धेः-बुद्धि का; एताम्-इस प्रकार; शान्त-रतिम्-शान्त रस के स्तर पर आकर्षण; विना-के बिना।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वचन हैं : "जब किसी की बुद्धि मेरे चरणकमलों में पूरी तरह संलग्न रहती है, किन्तु वह व्यक्ति किसी तरह की व्यावहारिक सेवा नहीं करता, तो उसे शान्त-रति या शम अवस्था प्राप्त हुई रहती है।" शान्त रति के बिना कृष्ण के प्रति अनुरक्ति प्राप्त कर पाना अत्यन्त कठिन है।'

शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रिय-संयमः ।

तितिक्षा दुःख-सम्मर्षो जिह्वोपस्थ-जयो धृतिः ॥213॥

शमः-समता; मत्-निष्ठता-मेरी ओर आसक्ति; बुद्धेः-बुद्धि की; दमः-आत्म नियन्त्रण; इन्द्रिय-संयमः–इन्द्रिय संयम; तितिक्षा-सहिष्णुता; दुःख–दुःख की; सम्मर्षः-सहनशीलता; जिह्वा-जीभ; उपस्थ-जननेन्द्रियों का वेग; जयः-विजय; धृतिः-धृति, नियन्त्रण।

अनुवाद

"शम या शान्त-रस शब्द इसका सूचक है कि मनुष्य कृष्ण के चरणकमलों के प्रति अनुरक्त है। दम का अर्थ है इन्द्रियों को वश में रखना और भगवान् की सेवा से तनिक भी विचलित न होना। दुःख का सहना तितिक्षा है और धृति का अर्थ है जीभ तथा उपस्थ (जननेंद्रियों) को वश में रखना।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.19.36) का है। बद्धजीव भौतिक शक्ति माया के वशीभूत होकर जीभ तथा उपस्थ के वेगों से अत्यधिक चलायमान होता रहता है। जीभ, उदर तथा उपस्थ-ये तीनों एक ही पंक्ति में हैं और इन के वेगों पर संयम रखने का नाम धृति है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं, तार मध्ये जिह्वा अति, लोभमय सुदुर्मति । इन्द्रियों में से जीभ बद्धजीव की सबसे विकट शत्रु है। जीभ के आवेग से मनुष्य अनेक पापकर्म करता है। यद्यपि कृष्ण ने मनुष्यों को एक से एक उत्तम भोज्य पदार्थ दिये हैं, फिर भी लोग अपनी जीभ की तुष्टि के लिए बेचारे दीन पशुओं का वध करते हैं। जीभ को वश में न रख पाने से बद्धजीव आवश्यकता से अधिक खाता है। निस्सन्देह, हर व्यक्ति को उतना तो खाना चाहिए, जितने से शरीर भगवान् की सेवा के लिए समर्थ रहे, किन्तु जब व्यक्ति इन्द्रियों पर संयम नहीं रख पाता है, तब वह जीभ तथा उदर के आदेशों का शिकार होने लगता है। इस कारण स्वाभाविक रूप से जननेन्द्रियाँ उत्तेजित हो जाती हैं और मनुष्य अवैध सम्बन्ध की खोज करता है। किन्तु कृष्ण के चरणकमलों पर स्थित होकर मनुष्य अपनी जीभ को वश में कर सकता है। भक्तिविनोद ठाकुर आगे भी कहते हैं-कृष्ण बड़ दयामय, करिबारे जिह्वा जय, स्व-प्रसाद-अन्न दिला भाइ-जीभ को वश में करने के लिए कृष्ण ने दया करके हमें उत्तम भोजन प्रदान किया है, जो उनको अर्पित किया जा चुका है। जब मनुष्य कृष्ण के चरणकमलों पर अनुरक्त होता है, तब वह ऐसी कोई चीज नहीं खाता, जो कृष्ण को अर्पित न की गई हो। सेइ अन्नामृत खाओ, राधा-कृष्ण-गुण गाओ, प्रेमे डाक चैतन्य-निताई। चूँकि भक्त केवल प्रसाद खाता है, अत: वह जीभ, उदर तथा उपस्थ के आदेशों पर विजय प्राप्त करता है। शान्त रस की स्थिति में रहकर मनुष्य इन्द्रियों के आदेशों पर नियन्त्रण पा सकता है। तब कृष्णभावना में मनुष्य की प्रगति सुनिश्चित हो जाती है।

कृष्ण विना तृष्णा-त्याग—तार कार्य मानि ।

अतएव 'शान्त' कृष्ण-भक्त एक जानि ॥214॥

कृष्ण विना-कृष्ण के बिना; तृष्णा-त्याग–सारी कामनाओं त्याग; तार–शान्त रस का; कार्य-कार्य; मानि–मैं स्वीकार करता हूँ; अतएव–अतएव; शान्त-शान्त; कृष्ण-भक्त-कृष्ण भक्त; एक–मात्र; जानि–मैं जानता हूँ।

अनुवाद

"जो शान्त रस को प्राप्त होता है, उसका कार्य है कि उन इच्छाओं का परित्याग करे, जो कृष्ण से सम्बन्धित नहीं हैं। केवल कृष्ण-भक्त ही इस पद को प्राप्त कर सकता है। इस तरह वह शान्त रस भक्त कहलाता है।

तात्पर्य

इस पद पर मनुष्य सारे भौतिक भोग से मुक्त हो जाता है। जब मनुष्य विचलित या उद्विग्न नहीं होता है, तब वह तुरन्त ही कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को समझ सकता है। अतएव शान्त रस भक्त सदैव आत्मस्थ होता है। यह उपदेश स्वयं भगवान् ने उद्धव को दिया था। शुद्ध भक्ति के आरम्भ को अन्याभिलाषिता शून्य कहते हैं। शान्त पद को प्राप्त व्यक्ति भौतिकता से मुक्त होकर आध्यात्मिक पद में स्थित हो जाता है। श्लोक 213 में आये दम शब्द का अर्थ है इन्द्रिय-संयम। दम का अर्थ शत्रुओं का दमन भी हो सकता है। राजा को अपनी जनता के अपराधपूर्ण कार्यों का दमन करना पड़ता है। बड़े-बड़े राजर्षि अपने राज्य के अवांछित तत्त्वों को नियन्त्रित करते रहते थे। इसे भी दम कह सकते हैं। किन्तु यहाँ पर दम उस बद्धजीव का निर्देश करता है, जिसे अपनी इन्द्रियों को वश में करना चाहिए। असली दम का अर्थ है इन्द्रियों की अवांछित कार्यवाहियों को वश में करना।

स्वर्ग, मोक्ष कृष्ण-भक्त 'नरक' करि' माने ।

कृष्ण-निष्ठा, तृष्णा-त्याग—शान्तेर दुइ' गुणे ॥ 215॥

स्वर्ग–स्वर्ग; मोक्ष-मुक्ति; कृष्ण-भक्त-कृष्ण भक्त; नरक करि' माने-नरक जैसा समझता है; कृष्ण-निष्ठा-कृष्ण के चरणकमलों पर स्थित रहना; तृष्णा-त्याग–सभी भौतिक कामनाओं का त्याग; शान्तेरशान्त पुरुष के; दुइ गुणे-दो दिव्य गुण हैं।

अनुवाद

"जब भक्त शान्त रस की भूमिका पर अवस्थित होता है, तब वह न तो स्वर्ग जाने की इच्छा करता है, न मोक्ष की। ये तो कर्म तथा ज्ञान के फल हैं और भक्त इन्हें नरक के समान मानता है। शान्त रस को प्राप्त व्यक्ति में दो दिव्य गुण प्रकट होते हैं—एक तो समस्त भौतिक इच्छाओं से विरक्ति तथा दूसरा कृष्ण के प्रति पूर्ण अनुरक्ति।

नारायण-पराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ।

स्वर्गापवर्ग-नरकेष्वपि तुल्यार्थ-दर्शिनः ॥216॥

नारायण-पराः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति अनुरक्त भक्त; सर्वे-सभी; न-नहीं; कुतश्चन-किसी से भी; बिभ्यति डरते हैं; स्वर्ग–स्वार्गिक लोकों में; अपवर्ग–मुक्ति में; नरकेषु-अथवा नरक में; अपि-यद्यपि; तुल्य-अर्थ-एक समान परिणाम; दर्शिनः–जो देखते हैं।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण के प्रति पूरी तरह समर्पित व्यक्ति किसी वस्तु से नहीं डरता। भक्त के लिए स्वर्ग जाना, नरक में पहुँचना तथा भवबन्धन से मुक्ति—ये सभी एक जैसे होते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (6.17.28) से उधृत है। भक्त के लिए स्वर्ग, नरक तथा भौतिक बन्धन से मुक्ति-ये सभी एक समान हैं। भक्त की एकमात्र इच्छा कृष्ण के चरणकमलों में अनुरक्त रहने की और उनकी दिव्य प्रेममयी सेवा में लगे रहने की होती है।

एइ दुइ गुण व्यापे सब भक्त-जने ।

आकाशेर 'शब्द'-गुण येन भूत-गणे ॥ 217॥

एइ दुइ–ये दो; गुण-दिव्य गुण; व्यापे–व्याप्त होते हैं; सब भक्त-जने-सभी भक्तों के जीवन में; आकाशेर-आकाश के; शब्द-गुण-शब्द गुण; येन-की तरह; भूत-गणे-अन्य भौतिक तत्त्व।

अनुवाद

"शान्त-रस के ये दोनों गुण सभी भक्तों के जीवन में व्याप्त रहते हैं। ये आकाश में शब्द के गुण के समान हैं। शब्द ध्वनि समस्त भौतिक तत्त्वों में पाई जाती है।

तात्पर्य

श्लोक 215 में वर्णित शान्त-रस के दो गुण सभी प्रकार के भक्तों में पाये जाते हैं, चाहे वे दास्य-रस, सख्य-रस, वात्सल्य-रस या मधुर-रस में क्यों न स्थित हों। यहाँ पर शब्द का उदाहरण दिया गया है। शब्द न केवल आकाश में विद्यमान रहता है, अपितु वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी में भी रहता है। यह भक्ति की वैज्ञानिक व्याख्या है। जिस तरह शब्द सारे भौतिक तत्त्वों में उपस्थित रहता है, उसी तरह शान्त-रस सभी भक्तों में पाया जाता है, चाहे वे दास्य-रस के पद पर हों अथवा सख्य-रस, वात्सल्य रस या मधुर-रस के पद पर हों।

शान्तेर स्वभाव —कृष्णे ममता-गन्ध-हीन ।

'परं-ब्रह्म'-'परमात्मा'-ज्ञान प्रवीण ॥ 218॥

शान्तेर स्वभाव-शान्त रस का स्वभाव; कृष्णे-कृष्ण में; ममता-गन्ध-हीन-लेशमात्र ममता के बिना; परम्-ब्रह्म-निर्गुण ब्रह्म; परमात्मा-परमात्मा; ज्ञान-ज्ञान; प्रवीण-प्रधानता।

अनुवाद

"यह शान्त-रस का स्वभाव है कि उसमें रंचमात्र भी ममता नहीं रहती। प्रत्युत निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा का ज्ञान प्रमुख होता है।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की निर्विशेष धारणा के कारण शान्त-रस भक्त निर्विशेष ब्रह्म या परम सत्य के स्थानीय पहलू-अन्तर्यामी परमात्मा की पूजा करता है। वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाता।

केवल 'स्वरूप-ज्ञान' हय शान्त-रसे ।

'पूर्णैश्वर्य-प्रभु-ज्ञान' अधिक हय दास्ये ॥ 219॥

केवल–केवल; स्वरूप-ज्ञान-स्वरूप ज्ञान; हय–होता है; शान्त-रसे-शान्त रस में; पूर्ण-ऐश्वर्य-प्रभु-ज्ञान–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पूर्ण ऐश्वर्य का ज्ञान; अधिक–अधिक; हय-हो जाता है; दास्ये-दास्य रस में।

अनुवाद

"शान्त-रस के पद पर मनुष्य को केवल अपनी वैधानिक स्थिति का ही पता चल पाता है। किन्तु जब वह दास्य-रस के पद पर उन्नति करता है, तब वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पूर्ण ऐश्वर्य को अच्छी तरह से समझ पाता है।

ईश्वर-ज्ञान, सम्भ्रम-गौरव प्रचुर ।

‘सेवा’ करि’ कृष्णे सुख देन निरन्तर ॥ 220 ॥

ईश्वर-ज्ञान-परम नियन्ता का ज्ञान; सम्भ्रम-गौरव-भय और पूजा; प्रचुर–अधिक; सेवा–सेवा; करि’-करके; कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; सुख–सुख; देन-देता है; निरन्तर–निरन्तर।

अनुवाद

“दास्य-रस पद पर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ज्ञान सम्भ्रम तथा गौरव समेत प्रकट होता है। भगवान् कृष्ण की सेवा करके दास्य-रस भक्त भगवान् को निरन्तर सुख प्रदान करता है।

शान्तेर गुण दास्ये आछे, अधिक—‘सेवन’ ।

अतएव दास्य-रसेर एइ ‘दुइ’ गुण ॥221॥

शान्तेर–शान्त रस के स्तर पर; गुण-गुण; दास्ये-दास्य रस में; आछे हैं; अधिक–अधिक; सेवन–सेवा; अतएव–इसलिए; दास्य-रसेर-दास्य रस के स्तर के; एइ दुइ गुण-ये दो गुण (शान्त और दास्य)।

अनुवाद

“शान्त-रस के गुण दास्य-रस में भी पाये जाते हैं, किन्तु इसमें सेवा जुड़ जाती है। इस तरह दास्य-रस पद में शान्त-रस तथा दास्य-रस-दोनों के ही गुण रहते हैं।

शान्तेर गुण, दास्येर सेवन—सख्ये दुइ हय ।

दास्येर ‘सम्भ्रम-गौरव’-सेवा, सख्ये ‘विश्वास’-मय ॥222॥

शान्तेर गुण–शान्त रस के गुण; दास्येर सेवन–दास्य रस की सेवा; सख्ये-सखा के स्तर पर; दुइ-दोनों रसों के गुण; हय-होते हैं; दास्येर–दास्य रस के स्तर के; सम्भ्रम-गौरव-भय और सम्मान से; सेवा–सेवा; सख्ये-सख्य रस के स्तर पर; विश्वास-मय-विश्वास से मिश्रित ।

अनुवाद

“सख्य-रस पद में शान्त-रस के गुण तथा दास्य-रस की सेवा दोनों ही विद्यमान रहते हैं। सख्य पद पर दास्य-रस के गुणों के साथ आदरयुक्त भय के स्थान पर सख्य का विश्वास मिला रहता है।

कान्धे चड़े, कान्धे चड़ाय, करे क्रीड़ा-रण।

कृष्णे सेवे, कृष्णे कराय आपन-सेवन! ॥223॥

कान्धे-कन्धों पर; चड़े-चढ़ता है; कान्धे चड़ाय-कभी-कभी अपने कन्धों पर चढ़ाता है; करे-करता है; क्रीड़ा-रण-क्रीड़ा युद्ध; कृष्ण सेवे-कृष्ण की सेवा करता है; कृष्णे-कृष्ण से; कराय-करवाता है; आपन-सेवन–अपनी सेवा।

अनुवाद

“सख्य-रस पद पर कभी भक्त भगवान् की सेवा करता है, तो कभी बदले में कृष्ण से अपनी सेवा करवाता है। क्रीड़ा-युद्ध में ग्वालबाल कभी कृष्ण के कन्धों पर चढ़ जाते थे और कभी वे कृष्ण को अपने कन्धों पर चढ़ा लेते थे।

विश्रम्भ-प्रधान सख्य—गौरव-सम्भ्रम-हीन।

अतएव सख्य-रसेर ‘तिन’ गुण—चिह्न ॥224॥

विश्रम्भ-प्रधान सख्य–सख्य रस में, जिसमें आत्मीयता प्रधान है; गौरव-सम्भ्रम-भय और सम्मान; हीन-रहित; अतएव इसलिए; सख्य-रसेर-सख्य रस के स्तर का; तिन गुण-तीन रसों (शान्त, दास्य और सख्य) के गुण; चिह्न चिह्न (लक्षण)।

अनुवाद

“चूँकि सख्य भाव में आत्मीयता प्रधान होती है, अतएव इसमें संभ्रम तथा गौरव (आदरयुक्त भय) अनुपस्थित रहते हैं। अतएव सख्य-रस में तीन रसों के गुण विद्यमान होते हैं।

‘ममता’ अधिक, कृष्णे आत्म-सम ज्ञान ।

अतएव सख्य-रसेर वश भगवान् ॥ 225॥

ममता-आत्मीयता; अधिक-अधिक; कृष्णे-कृष्ण के साथ; आत्म-सम ज्ञान-समानता का ज्ञान; अतएव-इसलिए; सख्य-रसेर-साख्य रस से; वश-वशीभूत; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

“सख्य-रस के पद पर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने भक्तों के वश में रहते हैं, क्योंकि वे भक्त कृष्ण के घनिष्ठ होते हैं और अपने आपको उन्हीं के समान मानते हैं।

वात्सल्ये शान्तेर गुण, दास्येर सेवन ।

सेइ सेइ सेवनेर इहाँ नाम —‘पालन’ ॥226 ॥

वात्सल्ये वात्सल्य रस में; शान्तेर गुण–शान्त रस के गुण; दास्येर सेवन–दास्य रस की सेवा; सेइ सेइ सेवनेर-शान्त रस, दास्य रस तथा सख्य रस की सेवा; इहाँ-इस स्तर पर; नाम-नामक; पालन-पालन।

अनुवाद

“वात्सल्य प्रेम के पद पर शान्त-रस, दास्य-रस तथा सख्य-रस के गुण पालन’ नामक सेवा में परिणत हो जाते हैं।

सख्येर गुण–‘असङ्कोच’, ‘अगौरव’ सार ।

ममताधिक्ये ताड़न-भर्सन-व्यवहार ॥ 227॥

सख्येर गुण-साख्य रस का गुण; असङ्कोच-औपचारिकता रहित; अगौरव बिना किसी सम्मान के; सार–सार; ममता-अधिक्ये-और अधिक आत्मीयता के कारण; ताड़न-सजा; भर्सन–डाँट-डपट का; व्यवहार-व्यवहार।

अनुवाद

“सख्य प्रेम का सार है ममता (घनिष्ठता) जिसमें दास्य-रस की औपचारिकता तथा आदर का अभाव रहता है। अधिक घनिष्ठता का भाव होने से भक्त वात्सल्य रस में कार्य करते हुए भगवान् को सामान्य रूप से दंड देता है और फटकारता है।

आपनारे ‘पालक’ ज्ञान, कृष्णे ‘पाल्य’-ज्ञान ।

‘चारि’ गुणे वात्सल्य रस—अमृत-समान ॥ 228॥

आपनारे-अपने आपको; पालक ज्ञान-पालक का भाव; कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; पाल्य-पालन पोषण के पात्र; ज्ञान-ज्ञान, भाव; चारि–चार; गुणे-गुणों में; वात्सल्य रसवात्सल्य रस; अमृत-समान-अमृत समान।

अनुवाद

“वात्सल्य रस में भक्त अपने आपको भगवान् का पालक समझता है। इस तरह भगवान् पालन के पात्र रहते हैं, जैसाकि पुत्र होता है। अतएव यह रस शान्त, दास्य, सख्य तथा वात्सल्य रस के चार गुणों से ओतप्रोत रहता है। यह अधिक दिव्य अमृत है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में विभिन्न रसों के इस जटिल विवरण का संक्षिप्त सारांश दिया है। वे कहते हैं कि भगवान् की सेवा में स्थिर हो जाने पर भक्त सारी भौतिक इच्छाओं से रहित हो जाता है। शान्त-रस के स्तर पर ये दो दिव्य गुण हैं। जिस तरह सारे भौतिक तत्त्वों में शब्द ध्वनि पाई जाती है, उसी तरह शान्त-रस के ये दो गुण अन्य सारे रसों-दास्य-रस, सख्य-रस, वात्सल्य रस तथा मधुर-रस में व्याप्त हैं। यद्यपि शान्त रस में कृष्ण के प्रति आदरयुक्त भय के साथ अनुरक्ति होती है, क्योंकि इस रस के दो महत्त्वपूर्ण दिव्य गुण-कृष्ण से अनुरक्ति तथा भौतिक इच्छाओं से विरक्ति

विद्यमान रहते हैं, फिर भी इसमें घनिष्ठता (ममता) के गुण का अभाव रहता है। इसका कारण यह है कि शान्त रस में निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा के लिए आसक्ति की प्रधानता रहती है। दूसरे शब्दों में, शान्त रस में उस घनिष्ठता का अभाव रहता है, जिसके कारण मनुष्य कृष्ण को अपने एकमात्र आश्रय तथा मित्र मानता है, क्योंकि शान्त-रस में मनुष्य कृष्ण को निर्विशेष परब्रह्म या अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में मानता है। यह समझ ज्ञानी के चिन्तनयुक्त ज्ञान पर आधारित होती है। किन्तु जब इस ज्ञान का और अधिक विकास होता है, तब मनुष्य आश्वस्त हो जाता है कि परमात्मा उसके स्वामी हैं और जीव उनका सनातन सेवक है। तब उसे दास्य-रस का पद प्राप्त होता है। दास्य-रस में भगवान् को आदरयुक्त भय के साथ स्वीकार किया जाता है। शान्त-रस में यद्यपि कोई सक्रिय सेवा नहीं रहती, किन्तु दास्य-रस में सक्रिय सेवा प्रधान बन जाती है। दूसरे शब्दों में, दास्य-रस में शान्त रस के गुण तथा सेवा प्रधान रूप में लक्षित होते हैं। इसी प्रकार जब यही रस सख्य-रस में विकसित हो जाता है, तब उसमें मैत्रीपूर्ण घनिष्ठता जुड़ जाती है। इसलिए सख्य-रस में आदरयुक्त भय नहीं रह जाता। इसलिए सख्य-रस में तीन रसों के गुण निहित रहते हैं-शान्त, दास्य तथा सख्य। इसी तरह वात्सल्य प्रेम में शान्त रस, सख्य रस तथा दास्य रस के गुण दूसरे रूप में पूरी तरह विकसित होते हैं- भगवान् के पालक के रूप में। अतः वात्सल्य रस में चार रसों के गुणों का मेल रहता है-शान्त, दास्य, सख्य तथा वात्सल्य, जिससे भक्त पालक के पद पर आसीन हो जाता है। निस्सन्देह, भक्त बिना किसी औपचारिकता के पालक का पद ले लेता है और भगवान् को पालन के पात्र समझने लगता है। इस तरह वात्सल्य रस के स्तर पर कृष्ण-प्रेम के चार दिव्य रसों के गुण उपस्थित रहते हैं।

से अमृतानन्दे भक्त सह डुबेन आपने।

'कृष्ण—भक्त-वश' गुण कहे ऐश्वर्य-ज्ञानि-गणे ॥229॥

से-वही भगवान् कृष्ण; अमृत-आनन्दे-आध्यात्मिक आनन्द में; भक्त-भक्त; सह-के साथ; डुबेन-डूब जाते हैं; आपने-स्वयं; कृष्ण-कृष्ण; भक्त-वश-भक्त के वश में होकर; गुण-गुण; कहे-कहते हैं; ऐश्वर्य-ज्ञानि-गणे-कृष्ण के ऐश्वर्य को जानने वाले विद्वान पण्डित।

अनुवाद

"कृष्ण तथा उनके भक्त के बीच आध्यात्मिक आनन्द के आदान-प्रदान की तुलना, जिसमें कृष्ण अपने भक्त के वश में रहते हैं, उस अमृत के सागर से की जाती है, जिसमें भक्त तथा कृष्ण डुबकी लगाते हैं। यह उन विद्वानों का मत है, जो कृष्ण के ऐश्वर्य का गुणगान करते हैं।

इतीदृक्स्व-लीलाभिरानन्द-कुण्डे

स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम् ।

तदीयेशितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं

पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे ॥ 230॥

इति–इस प्रकार; ईदृक्-स्व-लीलाभिः-अपनी दिव्य लीलाओं में इन 'दामोदर' द्वारा; आनन्द-कुण्डे-दिव्य आनन्द के सागर में; स्व-घोषम्-अपने निजी साथी; निमज्जन्तम्-डूबकर; आख्यापयन्तम्-घोषित करके; तदीय–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की; ईशित-ज्ञेषु-ऐश्वर्य ज्ञान में निपुण विद्वानों में से; भक्तैः–भक्तों से; जितत्वम्-वशीभूत; पुनः–दोबारा; प्रेमतः-प्रेम से; तम्-उनको; शत-आवृत्ति-सैंकड़ो गुना; वन्दे-मैं सादर प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

"मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को फिर से सादर नमस्कार करता हूँ। "हे प्रभु, मैं आपको सम्पूर्ण स्नेह के साथ सैकड़ों-हजारों बार नमस्कार करता हूँ, क्योंकि आप अपनी निजी

लीलाओं से गोपियों को अमृतसागर में निमग्न कर देते हैं। आपके ऐश्वर्य के कारण भक्तगण सामान्यतया घोषित करते हैं कि आप उनकी भावनाओं द्वारा सदैव वशीभूत होते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक पद्म पुराण के दामोदराष्टक में से है।

मधुर-रसे—कृष्ण-निष्ठा, सेवा अतिशय।

सख्येर असङ्कोच, लालन-ममताधिक्य हय॥ 231॥

मधुर-रसे–माधुर्य रस के स्तर पर; कृष्ण-निष्ठा-कृष्ण से निष्ठा; सेवा अतिशय-उन्नत सेवा; सख्येर–सख्य स्तर पर; असङ्कोच-असंकोच; लालन-पालन-पोषण; ममता-अधिक्य-आत्मीयता में वृद्धि; हय-होती है।

अनुवाद

"माधुर्य रस में कृष्ण के प्रति निष्ठा, उनकी सेवा, सख्य का असंकोच भाव तथा पालन की भावना-इन सबकी घनिष्ठता की वृद्धि हो जाती है।

कान्त-भावे निजाङ्ग दिया करेन सेवन।

अतएव मधुर-रसेर हय 'पञ्च' गुण॥ 232॥

कान्त-भावे-माधुर्य प्रेम के स्तर पर; निज-अङ्ग–अपना शरीर; दिया-देकर; करेन-करता है; सेवन–सेवा; अतएव–अतएव; मधुर-रसेर-माधुर्य रस के; हय-होते हैं; पञ्च गुण–पाँच प्रकार के दिव्य गुण।

अनुवाद

“माधुर्य रस में भक्त भगवान् की सेवा में अपना शरीर अर्पित कर देता है। अतः इस रस में पाँचों रसों के दिव्य गुण उपस्थित रहते हैं।

तात्पर्य

शान्त रस में कृष्ण के लिए अनुरक्ति, दास्य रस में भगवान् की सेवा करना, सख्य रस में नि:संकोच भाव से सेवा करना तथा वात्सल्य रस में पालनकर्ता के भाव के साथ भगवान् की सेवा करना—ये सभी माधुर्य प्रेम के स्तर पर सम्मिलित हो जाते हैं, जब भक्त अपना देह समर्पित करके भगवान् की सेवा करना चाहता है। इस तरह अन्य रसों के गुण माधुर्य प्रेम के अमृत की रचना करने के लिए एकत्रित होती हैं। इस स्तर पर भक्त की सारी विभिन्न भावनाएँ एकरूप हो जाती हैं।

आकाशादि गुण येन पर पर भूते ।

एक-दुइ-तिन-चारि क्रमे पञ्च पृथिवीते ॥ 233 ॥

आकाश-आदि-आकाश आदि; गुण-गुण; येन-जैसे; पर पर-एक के बाद एक; भूते-भौतिक तत्त्वों में; एक-एक; दुड़-दो; तिन–तीन; चारि-चार; क्रमे-इस क्रम में; पञ्च–सभी पाँच गुण; पृथिवीते-पृथ्वी में।

अनुवाद

“आकाश आदि भौतिक तत्त्वों में सारे गुण एक के बाद एक विकसित होते जाते हैं। क्रमिक विकास द्वारा सर्वप्रथम एक गुण उत्पन्न होता है, फिर दो भौतिक गुण, तब तीन और चार गुण विकसित होते हैं। और अन्त में पृथ्वी में पाँचों गुण पाये जाते हैं।

एइ-मत मधुरे सब भाव-समाहार ।

अतएव आस्वादाधिक्ये करे चमत्कार ॥ 234॥

एइ-मत-इस प्रकार; मधुरे–माधुर्य रस में; सब-सब; भाव-समाहार-भावों का मिलना; अतएव–अतएव; आस्वाद-अधिक्ये-भक्तों के आस्वादन के बढ़ जाने से; करे चमत्कार-निश्चित रूप से अद्भुत है।

अनुवाद

"इसी तरह माधुर्य रस में भक्तों के सारे भाव घुलमिल जाते हैं। इसका गाढ़ा स्वाद निश्चित रूप से अद्भुत होता है।"

एइ भक्ति-रसेर करिलाङ दिग्दरशन ।

इहार विस्तार मने करिह भावन ॥235॥

एइ-यह; भक्ति-रसेर-भक्ति रस का; करिलाङ–मैंने वर्णन किया है; दिक्-दरशन-सामान्य अवलोकन; इहार-इसका; विस्तार विस्तार; मने-मन के भीतर; करिह-तुम्हें करना चाहिए; भावन–विचार।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कहकर समाप्त किया, "मैंने भक्ति रसों का सामान्य सर्वेक्षण ही प्रस्तुत किया है। इसे किस तरह समंजित किया जाए तथा विस्तारित किया जाए, इसके विषय में आप विचार कर सकते हैं।

भाविते भाविते कृष्ण स्फुरये अन्तरे ।

कृष्ण-कृपाय अज्ञ पाय रस-सिन्धु-पारे ॥ 236॥

भाविते भाविते-इस प्रकार गहराई से चिन्तन करते करते; कृष्ण-भगवान् कृष्ण स्फुरये अन्तरे-भीतर प्रकट होते हैं; कृष्ण-कृपाय-कृष्ण की कृपा से; अज्ञ-जिसको अधिक ज्ञान नहीं है; पाय-पाता है; रस-सिन्धु-पारे-दिव्य रस के सागर के दूसरे पार।

अनुवाद

"जब कोई निरन्तर कृष्ण का चिन्तन करता है, तब उनका प्रेम हृदय के भीतर प्रकट होता है। अनजान होते हुए भी कृष्ण की कृपा से मनुष्य दिव्य प्रेम के सागर के बहुत दूर वाले तट तक पहुँच सकता है।"

एत बलि' प्रभु ताँरे कैला आलिङ्गन ।

वाराणसी चलिबारे प्रभुर हैल मन ॥ 237॥

एत बलि'-यह कहकर; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे-रूप गोस्वामी को; कैला-किया; आलिङ्गन-आलिंगन; वाराणसी-बनारस की ओर; चलिबारे जाने के लिए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; हैल–हो गया; मन-मन।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी का आलिंगन किया। तब महाप्रभु ने बनारस शहर जाने का निश्चय किया।

प्रभाते उठिया यबे करिला गमन ।

तबे ताँर पदे रूप करे निवेदन ॥ 238॥

प्रभाते-प्रात: काल; उठिया-उठकर; यबे-जब; करिला-किया; गमन प्रस्थान; तबे-तब; ताँर–उनके; पदे-चरणकमलों पर; रूप-श्रील रूप गोस्वामी; करे-किया; निवेदन-निवेदन।

अनुवाद

अगले दिन प्रातःकाल जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगे और वाराणसी (बनारस) के लिए प्रस्थान करने वाले थे, तब श्रील रूप गोस्वामी ने महाप्रभु के चरणकमलों में यह निवेदन किया।

‘आज्ञा हय, आसि मुञि श्री-चरण-सङ्गे ।

सहिते ना पारि मुञि विरह-तरङ्गे’ ॥ 239॥

आज्ञा हय–यदि आज्ञा हो तो; आसि-आऊँ; मुञि-मैं; श्री-चरण-सङ्गे-आपके साथः सहिते-सहन करने के लिए; ना पारि-असमर्थ हूँ; मुञि-मैं; विरह-तरङ्गे–विरह की तरंगें।

अनुवाद

“यदि आप मुझे आज्ञा दें, तो मैं भी आपके साथ चलुँ। विरह की तरंगों को सहन कर पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है।”

प्रभु कहे,—तोमार कर्तव्य, आमार वचन ।

निकटे आसियाछ तुमि, याह वृन्दावन ॥ 240 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तोमार कर्तव्य-तुम्हारा कर्तव्य; आमार वचन–मेरी आज्ञा; निकटे आसियाछ-तुम आ गये हो निकट; तुमि-तुम; याह-जाओ; वृन्दावन-वृन्दावन को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम मेरे आदेश का पालन करो। तुम वृन्दावन के निकट आ चुके हो। अब तुम वहीं जाओ।

वृन्दावन हैते तुमि गौड़-देश दिया ।

आमारे मिलिबा नीलाचलेते आसिया ॥ 241॥

वृन्दावन हैते-वृन्दावन से; तुमि-तुम; गौड़-देश दिया-बंगाल के रास्ते से; आमारे-मुझे; मिलिबा–मिलोगे; नीलाचलेते-जगन्नाथ पुरी में; आसिया-आकर।

अनुवाद

"बाद में तुम वृन्दावन से बंगाल (गौड़देश) होते हुए जगन्नाथपुरी जा सकते हो। वहाँ तुम पुनः मुझसे मिलोगे।"

तौरे आलिङ्गिया प्रभु नौकाते चड़िला ।

मूर्च्छित हञा तेंहो ताहाञि पड़िला ॥ 242॥

तौरे–उनको; आलिङ्गिया-आलिंगन करके; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; नौकाते-नौका में; चड़िला-चढ़ गये; मूच्छित हञा–मूर्छित होकर; तेंहो-वे (श्रील रूप गोस्वामी); ताहाञि-उसी स्थान पर; पड़िला–गिर गये।

अनुवाद

रूप गोस्वामी का आलिंगन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु एक नाव में सवार हो गये। रूप गोस्वामी मूर्च्छित होकर उसी स्थान पर गिर पड़े।

दाक्षिणात्य-विप्र तौरे घरे लाञा गेला ।

तबे दुइ भाइ वृन्दावनेरे चलिला ॥ 243॥

दाक्षिणात्य-विप्र-दक्षिण का ब्राह्मण; तौरे-उनको (रूप गोस्वामी को); घरे लञा-अपने घर ले जाकर; गेला–गया; तबे-तत्पश्चात् ; दुइ भाइ–दोनों भाई; वृन्दावनेरे-वृन्दावन की ओर; चलिला–चल पड़े।

अनुवाद

एक दाक्षिणात्य ब्राह्मण रूप गोस्वामी को अपने घर ले गया। तत्पश्चात् दोनों भाई वृन्दावन के लिए चल पड़े।

महाप्रभु चलि' चलि' आइला वाराणसी ।

चन्द्रशेखर मिलिला ग्रामेर बाहिरे आसि' ॥ 244॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चलि' चलि'-चलते चलते; आइला–आ पहुँचे; वाराणसी-वाराणसी; चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर; मिलिला–वे मिले; ग्रामेर-गाँव के; बाहिरे-बाहर; आसि-आकर।

अनुवाद

चलते चलते श्री चैतन्य महाप्रभु अन्ततः वाराणसी आ पहुँचे, जहाँ शहर से बाहर आ रहे चन्द्रशेखर से उनकी भेंट हुई।

रात्रे तेंहो स्वप्न देखे,—प्रभु आइला घरे ।

प्रातःकाले आसि' रहे ग्रामेर बाहिरे ॥ 245॥

रात्रे-रात को; तेंहो–उन्होंने (चन्द्रशेखर ने); स्वप्न-एक स्वप्न; देखे-देखा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला–आये हैं; घरे—उनके घर पर प्रातःकाले-प्रातः काल; आसि'-आकर; रहे-वह रहा; ग्रामेर बाहिरे–नगर के बाहर।

अनुवाद

चन्द्रशेखर ने स्वप्न में देखा था कि श्री चैतन्य महाप्रभु उसके घर आये हुए हैं; अतः प्रातःकाल वे महाप्रभु का स्वागत करने के लिए शहर के बाहर चले आये थे।

आचम्बिते प्रभु देखि' चरणे पड़िला ।

आनन्दित हञा निज-गृहे लञा गेला ॥ 246॥

आचम्बिते-अचानक; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; देखि'–देखकर; चरणे-उनके चरणों पर; पड़िला-वह गिर पड़ा; आनन्दित हञा–अत्यन्त आनन्दित होकर; निज-गृहे-अपने घर को; लञा–लेकर; गेला-गया।

अनुवाद

जब चन्द्रशेखर शहर के बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे, तब उन्होंने महाप्रभु को सहसा आते देखा। वे उनके चरणों पर गिर पड़े और परम आनन्दित होकर उन्हें अपने घर ले गये।

तपन-मिश्र शुनि' आसि' प्रभुरे मिलिला ।

इष्ट-गोष्ठी करि' प्रभुर निमन्त्रण कैला ॥247॥

तपन-मिश्र–तपन मिश्र; शुनि'–सुनकर; आसि'–आकर; प्रभुरे मिलिला–महाप्रभु से मिले; इष्ट-गोष्ठी करि'–बातचीत करके; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण-निमन्त्रण; कैला-दिया।

अनुवाद

तपन मिश्र ने भी वाराणसी में महाप्रभु के आगमन का समाचार सुना, तो वे चन्द्रशेखर के घर उनसे मिलने गये। बातचीत के बाद उन्होंने महाप्रभु को अपने यहाँ भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया।

निज घरे लञा प्रभुरे भिक्षा कराइल ।

भट्टाचार्ये चन्द्रशेखर निमन्त्रण कैल ॥ 248॥

निज घरे-अपने घर; लञा-लाकर; प्रभुरे–महाप्रभु को; भिक्षा कराइल-भोजन करवाया; भट्टाचार्ये-बलभद्र भट्टाचार्य को; चन्द्रशेखर–चन्द्रशेखर ने; निमन्त्रण-निमन्त्रण; कैल-दिया।

अनुवाद

तपन मिश्र चैतन्य महाप्रभु को अपने घर ले गये और उन्हें भोजन कराया। चन्द्रशेखर ने बलभद्र भट्टाचार्य को अपने घर भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया।

भिक्षा कराञा मिश्र कहे प्रभु-पाय धरि' ।

एक भिक्षा मागि, मोरे देह' कृपा करि' ॥249॥

भिक्षा कराञा–भोजन करवाने के बाद; मिश्र-तपन मिश्र ने; कहे-कहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु के; पाय-चरणकमल; धरि छूकर; एक भिक्षा-एक अनुग्रह; मागि-मैं माँगता हूँ; मोरे-मुझे; देह'–कृपया दो; कृपा करि'-आपकी अहैतुकी कृपा से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन कराने के बाद तपन मिश्र ने महाप्रभु से एक अनुग्रह करने के लिए कहा और प्रार्थना की कि वे उन पर कृपा करें।

यावत्तोमार हय काशी-पुरे स्थिति ।

मोर घर विना भिक्षा ना करिबा कति ॥ 250॥

यावत्-जब तक; तोमार-आपका; हय-है; काशी-पुरे-वाराणसी में; स्थिति-रहना; मोर घर–मेरे घर; विना-बिना; भिक्षा–भोजन; ना करिबा-कृपया न करना; कति–कहीं भी।

अनुवाद

तपन मिश्र ने कहा, "आप जब तक वाराणसी में रुकें, तब तक कृपा करके मेरे अतिरिक्त किसी अन्य का निमन्त्रण न स्वीकार करें।"

प्रभु जानेन—दिन पाँच-सात से रहिब ।

सन्न्यासीर सङ्गे भिक्षा काहाँ ना करिब ॥ 251॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जानेन-जानते हैं; दिन–दिन; पाँच-सात-पाँच सात; से-वह; रहिब-मैं रहूँगा; सन्न्यासीर सङ्गे–मायावादी संन्यासियों के साथ; भिक्षा–भोजन; काहाँ–किसी समय; ना करिब–मैं नहीं करूँगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जानते थे कि उन्हें वहाँ पाँच-सात दिन रुकना है। अतः वे कोई ऐसा निमन्त्रण स्वीकार नहीं करेंगे, जिसमें मायावादी संन्यासी का हाथ हो।

एत जानि' ताँर भिक्षा कैला अङ्गीकार ।

वासा-निष्ठा कैला चन्द्रशेखरेर घर ॥ 252॥

एत जानि'–इस विचार से; ताँर–उनका; भिक्षा–भोजन; कैला अङ्गीकार–स्वीकार किया; वासा-निष्ठा-निवास; कैला-बनाया; चन्द्रशेखरेर घर–चन्द्रशेखर के घर।

अनुवाद

यह जानकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने तपन मिश्र के घर पर भोजन करना स्वीकार कर लिया। महाप्रभु ने चन्द्रशेखर के घर को अपना निवासस्थान बना लिया।

महाराष्ट्रीय विप्र आसि' ताँहारे मिलिला ।

प्रभु ताँरे स्नेह करि' कृपा प्रकाशिला ॥ 253 ॥

महाराष्ट्रीय विप्र-महाराष्ट्र का ब्राह्मण; आसि-आकर; ताँहारे–उनको; मिलिला-मिला; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे–उसको; स्नेह करि'–स्नेहपूर्वक; कृपा प्रकाशिला-अपनी कृपा प्रदान की।

अनुवाद

महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने आकर महाप्रभु से भेंट की। महाप्रभु ने स्नेहवश उसे कृपा प्रदान की।

महाप्रभु आइला शुनि' शिष्ट शिष्ट जन ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय आसि' करेन दरशन ॥ 254॥

महाप्रभु आइला-श्री चैतन्य महाप्रभु आये हैं; शुनि'–सुनकर; शिष्ट शिष्ट जन-सभी सम्मानित पुरुषों ने; ब्राह्मण-ब्राह्मण जाति के; क्षत्रिय-क्षत्रिय जाति के; आसि-आकर; करेन दरशन-दर्शन किए।

अनुवाद

यह सुनकर कि श्री चैतन्य महाप्रभु पधारे हैं, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जातियों के सारे सम्मानित व्यक्ति उनके दर्शन के लिए आये।

श्री-रूप-उपरे प्रभुर यत कृपा हैल ।

अत्यन्त विस्तार-कथा सङ्क्षेपे कहिल ॥ 255॥

श्री-रूप-उपरे–श्री रूप गोस्वामी पर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; यत–जितनी; कृपा-कृपा; हैल-हुई; अत्यन्त–अत्यन्त; विस्तार-कथा–विस्तृत कथा; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिल-मैंने वर्णन की है।

अनुवाद

इस तरह श्री रूप गोस्वामी पर अत्यधिक कृपावृष्टि हुई। मैंने इन सारी कथाओं का संक्षेप में वर्णन किया है।

श्रद्धा करि' एइ कथा शुने येइ जने ।

प्रेम-भक्ति पाय सेइ चैतन्य-चरणे ॥ 256 ॥

श्रद्धा करि'–श्रद्धापूर्वक; एइ कथा-यह वर्णन; शुने-सुनता है; येइ जने-जो व्यक्ति; प्रेम-भक्ति-प्रेम भक्ति; पाय-पाता है; सेइ-वह व्यक्ति; चैतन्य-चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में।

अनुवाद

जो भी इस कथा को श्रद्धा तथा प्रेम से सुनता है, वह अवश्य ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में भगवत्प्रेम विकसित करता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 257॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ–श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों में; यार-जिनकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत- चैतन्य चरितामृत ग्रन्थ; कहे वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए और उनकी कृपा की सदैव आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करता हुआ श्री चैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस तरह श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के उन्नीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें महाप्रभु द्वारा प्रयाग में श्रील रूप गोस्वामी को भक्तियोग विषयक उपदेश का वर्णन हुआ है।

अध्याय बीस

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा सनातन गोस्वामी को परम सत्य के विज्ञान की शिक्षा

भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में इस अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है : जब श्रील सनातन गोस्वामी नवाब हुसेन शाह द्वारा बन्दी बना लिये गये थे, तब उन्हें रूप गोस्वामी से समाचार मिला कि श्री चैतन्य महाप्रभु मथुरा चले गये हैं। तत्पश्चात् सनातन गोस्वामी ने जेल अधीक्षक को मीठी वाणी में अनुनय-विनय करके तथा घूस देकर प्रसन्न किया। जेलर को सात हजार स्वर्ण मुद्राएँ देकर सनातन गोस्वामी रिहा हो गये। इसके बाद उन्होंने गंगा नदी पार की और भाग गये। उनका एक सेवक, जिसका नाम ईशान था, उनके साथ रहा; उसके पास आठ स्वर्ण मुद्राएँ थीं। सनातन गोस्वामी तथा उनके सेवक ने बनारस जाते हुए मार्ग में एक छोटे से होटल में रात बिताई । होटल वाले को पता चल गया था कि उनके पास आठ स्वर्ण मुद्राएँ हैं; इसलिए उसने इन्हें मारकर यह धन ले लेना चाहा। इस प्रकार की योजनाएँ बनाकर उसने आदर के साथ मेहमानों जैसा स्वागत किया। सनातन गोस्वामी ने अपने सेवक से पूछा कि उसके पास कितना धन था और उससे सात स्वर्ण-मुद्राएं लेकर उन्होंने होटल वाले को दे दिया। फलतः उस होटल वाले ने उन्हें पर्वतीय प्रदेश को पार करके वाराणसी की ओर तक पहुँचने में सहायता की। रास्ते में सनातन गोस्वामी अपने बहनोई श्रीकान्त से हाजीपुर में मिले, जिसने उनके कष्टों की कहानी सुनकर उनकी सहायता की। इस तरह सनातन गोस्वामी अन्ततः वाराणसी पहुँच गये और चन्द्रशेखर के द्वार पर जा खड़े हुए। चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें भीतर बुलाया और वस्त्र बदलने के लिए कहा, जिससे वे भद्र व्यक्ति लग सकें। वे तपन मिश्र का पुराना वस्त्र पहनने लगे। बाद में उन्होंने

अपना कीमती कम्बल देकर एक फटी रजाई ले ली। इस समय चैतन्य महाप्रभु उनसे अत्यन्त प्रसन्न हुए और सनातन गोस्वामी ने महाप्रभु से परम सत्य विषयक ज्ञान प्राप्त किया।

सर्वप्रथम उन्होंने जीवों की वैधानिक स्थिति पर विचार-विमर्श किया और श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बतलाया कि किस तरह जीव भगवान् कृष्ण की शक्तियों में से एक है। इसके बाद महाप्रभु ने भक्ति की विधि बतलाई। परम सत्य श्रीकृष्ण के विषय में व्याख्या करते हुए महाप्रभु ने ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् का विश्लेषण करने के साथ ही स्वयंरूप, तदेकात्म तथा आवेश नामक भगवान् के विस्तारों का विवेचन वैभव तथा प्राभव जैसी शाखाओं के अन्तर्गत किया। इस तरह महाप्रभु ने पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर के अनेक स्वरूपों का वर्णन किया। उन्होंने इस जगत् में भगवान् के अवतारों- पुरुष अवतार, मन्वन्तर अवतार, गुणावतार तथा शक्त्यावेश अवतार का भी वर्णन किया। महाप्रभु ने कृष्ण की विभिन्न अवस्थाओं-बाल्य, पौगण्ड आदि–तथा इन अवस्थाओं की विभिन्न लीलाओं का भी वर्णन किया। उन्होंने यह भी बतलाया कि किस तरह युवावस्था प्राप्त होने पर कृष्ण को स्थायी स्वरूप प्राप्त हुआ। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को सारी बातें विस्तार से बतलाईं।

वन्देऽनन्ताद्भुतैश्वर्यं श्री-चैतन्य महाप्रभुम् ।

नीचोऽपि यत्प्रसादात्स्याद्भक्ति-शास्त्र-प्रवर्तकः ॥1॥

वन्दे मैं सादर नमस्कार करता हूँ; अनन्त–अनन्त; अद्भुत-अद्भुत; ऐश्वर्यम्-ऐश्वर्य युक्त; श्री-चैतन्य महाप्रभुम्–श्री चैतन्य महाप्रभु को; नीचः अपि–एक नीच व्यक्ति भी; यत्-प्रसादात्-जिनकी कृपा से; स्यात्-हो जाए; भक्ति-शास्त्र-भक्ति शास्त्र का; प्रवर्तकः–प्रचारक।

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनके पास अनन्त अद्भुत ऐश्वर्य है। उनकी कृपा से नीच से नीच व्यक्ति भी भक्ति के विज्ञान का प्रसार कर सकता है।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैत आचार्य की जय हो तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

एथा गौड़े सनातन आछे बन्दि-शाले ।

श्री-रूप-गोसाजीर पत्री आइल हेन-काले ॥3॥

एथा-यहाँ; गौड़े-बंगाल में; सनातन-सनातन गोस्वामी; आछे-थे; बन्दि-शाले-जेल में; श्री-रूप-गोसाजीर-श्रील रूप गोस्वामी का; पत्री-पत्र; आइल-आया; हेन-काले-उस समय।

अनुवाद

जब सनातन गोस्वामी बंगाल में बन्दी थे, तब उन्हें श्रील रूप गोस्वामी का पत्र मिला।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर हमें बताते हैं कि सनातन गोस्वामी के नाम रूप गोस्वामी के इस पत्र का उल्लेख उद्भट-चन्द्रिका के भाष्यकार ने किया है। श्रील रूप गोस्वामी ने बाकला से सनातन गोस्वामी को एक चिट्ठी लिखकर भेजी थी। इसमें यह संकेत था कि श्री चैतन्य महाप्रभु मथुरा आ रहे हैं। इसमें लिखा था :

यदुपतेः क्व गता मथुरापुरी

रघुपतेः क्व गतोत्तरकोशला

इति विचिन्त्य कुरुष्व मनः स्थिरं

न सदिदं जगदित्यवधारय ॥

“यदुपति की मथुरा पुरी कहाँ गई? रघुपति की उत्तरी कोशला कहाँ गई? यह सोचकर कि यह ब्रह्माण्ड शाश्वत नहीं है, तुम अपने मन को स्थिर करो।”

पत्री पाञा सनातन आनन्दित हैला ।

यवन-रक्षक-पाश कहिते लागिला ॥4॥

पत्री पाञा–पत्र पाकर; सनातन-सनातन गोस्वामी; आनन्दित हैला–प्रसन्न हो गये; यवन-मांसाहारी; रक्षक-जेल अधीक्षक के; पाश-पास; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

जब सनातन गोस्वामी को रूप गोस्वामी की यह चिट्ठी मिली, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे तुरन्त मांसाहारी (यवन) जेल अधीक्षक के पास गये और उससे इस तरह बोले।

“तुमि एक जिन्दा-पीर महा-भाग्यवान् ।

केताब-कोराण-शास्त्रे आछे तोमार ज्ञान ॥5॥

तुमि-आप; एक जिन्दा-पीर–एक सन्त पुरुष; महा-भाग्यवान्-अत्यन्त भाग्यशाली; केताब-शास्त्र; कोराण-कुरान; शास्त्रे-शास्त्र में; आछे-है; तोमार-तुम्हारा; ज्ञान-ज्ञान।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने मुस्लिम जेलर से कहा-'हे महोदय, आप सन्त पुरुष हैं और बड़े ही भाग्यशाली हैं। आप कुरान तथा अन्य शास्त्रों के ज्ञान से पूर्णतया अवगत हैं।

एक बन्दी छाड़े यदि निज-धर्म देखिया ।

संसार हइते तारे मुक्त करेन गोसाञा ॥ 6 ॥

एक बन्दी–एक बन्दी; छाड़े-मुक्त करता है; यदि-यदि; निज-धर्म-अपने निजी धर्म को; देखिया-देखते हुए; संसार हइते-संसार के बन्धन से; तारे-उसको; मुक्त करेन-मुक्त करते हैं; गोसाञा-भगवान्।

अनुवाद

"यदि कोई व्यक्ति बद्धजीव या बन्दी व्यक्ति को धार्मिक नियमों के अनुसार मुक्त कर देता है, तो भगवान् उसे भी भवबन्धन से मुक्त कर देते हैं।"

तात्पर्य

इस कथन से प्रतीत होता है कि सनातन गोस्वामी, जो पहले नवाब के मन्त्री थे, उस मुसलमान अधीक्षक को धोखा देने का प्रयास कर रहे थे। वह जेल अधीक्षक या तो सामान्य शिक्षा प्राप्त था या बिल्कुल ही निरक्षर था। उसके पास निश्चित रूप से आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत होने की आशा नहीं की जाती थी। किन्तु उसे प्रसन्न करने के लिए ही सनातन गोस्वामी ने उसे शास्त्रों का पण्डित कहकर उसकी प्रशंसा की थी। वह जेल अधीक्षक इससे मना नहीं कर सका कि वह पण्डित था, क्योंकि जब किसी को उच्च पद प्रदान किया जाता है, तब वह अपने आपको उस पद के योग्य समझने लगता है। सनातन गोस्वामी आध्यात्मिक कर्म के प्रभावों की ठीक व्याख्या कर रहे थे और वह जेल-अधीक्षक उनके कथन को उनकी जेल-रिहाई से जोड़ रहा था।

ऐसे असंख्य बद्धजीव हैं, जो इन्द्रियतृप्ति के पाश में माया द्वारा बन्दी बनकर संसार में सड़ रहे हैं। जीव माया के पाश द्वारा इतना मोहित हो जाता है कि सुअर भी बद्ध अवस्था में अपने आपको तुष्ट

मानता है। माया द्वारा दो प्रकार की आच्छादक शक्तियाँ प्रदर्शित की जाती हैं। पहली है प्रक्षेपात्मिका तथा दूसरी है आवरणात्मिका। जो व्यक्ति भवबन्धन से छूटने के लिए दृढ़ संकल्प लेता है, तब उसे प्रक्षेपात्मिका शक्ति अर्थात् भटकाने वाली माया बद्ध जीवन में बने रहने के लिए और इन्द्रियतृप्ति द्वारा सन्तुष्ट रहने के लिए बाध्य करती है। दूसरी शक्ति, आवरणात्मिका द्वारा बद्धजीव सुअर के शरीर में या मल के कीड़े के रूप में सड़ते रहकर भी सन्तुष्ट रहता है। बद्धजीव को भवबन्धन से छुड़ा पाना बहुत कठिन होता है, क्योंकि माया का पाश बहुत प्रबल होता है। यहाँ तक कि जब स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अवतरित होकर बद्धजीव को उनकी शरण में आने का आदेश देकर उसका उद्धार करना चाहते हैं, तब भी बद्धजीव इसके लिए तैयार नहीं होता। इसलिए श्रील सनातन गोस्वामी ने कहा है कि, "यदि कोई व्यक्ति अन्य व्यक्ति को माया के बन्धन से छुड़ाने में सहायक होता है, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तुरन्त ही उसे मान्यता प्रदान करते हैं।" भगवद्गीता (18.69) में भगवान् कृष्ण ने कहा है :

न च तस्मान् मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।

भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥

यदि भगवान् की कोई सबसे बड़ी सेवा की जा सकती है, तो वह है। बद्धजीव के हृदय में भक्ति का संचार करना, जिससे वह बद्ध जीवन से छूट सके। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है कि वैष्णव को उसके प्रचार कार्य द्वारा पहचाना जाता है। प्रचार कार्य का अर्थ है बद्धजीव को उसकी शाश्वत स्थिति के प्रति अवगत करना, जिसे यहाँ निजधर्म कहा गया है। जीव की शाश्वत स्थिति है भगवान् की सेवा करना। इसलिए भवबन्धन से छूटने के लिए सहायता करने का अर्थ है-जीव के इस सुप्त ज्ञान को जाग्रत करना है कि वह कृष्ण का सनातन सेवक है। जीवेर 'स्वरूप' हय–कृष्णेर 'नित्यदास'। महाप्रभु सनातन गोस्वामी को आगे इसकी और व्याख्या करेंगे।

पूर्वे आमि तोमार करियाछि उपकार।

तुमि आमा छाड़ि' कर प्रत्युपकार ॥7॥

पूर्वे-पहले समय में; आमि-मैंने; तोमार-तुम्हारा; करियाछि–किया है; उपकार-उपकार; तुमि-तुम; आमा–मुझे; छाड़ि'–छोड़कर; कर-करो; प्रति-उपकार–प्रति उपकार।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने आगे कहा, "इसके पूर्व मैंने आपके लिए बहुत कुछ किया है। अब मैं संकट में हैं। कृपया मुझे बन्धनमुक्त करके उस उपकार का बदला चुकायें।

पाँच सहस्र मुद्रा तुमि कर अङ्गीकार ।

पुण्य, अर्थ,— दुइ लाभ हइबे तोमार" ॥8॥

पाँच सहस्र–पाँच हजार; मुद्रा-मुद्राएँ; तुमि-तुम; कर अङ्गीकार-स्वीकार करो; पुण्य-पुण्यकर्म; अर्थ-भौतिक लाभ; दुइ लाभ-दो प्रकार के कर्म; ह-इबे-होंगे; तोमार-तुम्हारे।

अनुवाद

"ये रही पाँच हजार स्वर्ण मुद्राएँ। कृपया इन्हें स्वीकार करें। मुझे मुक्त करने से आपको पुण्य मिलेगा और भौतिक लाभ भी होगा। इस तरह आपको एक साथ दोहरा लाभ होगा।"

तबे सेइ यवन कहे,–"शुन, महाशय ।

तोमारे छाड़िब, किन्तु करि राज-भय" ॥9॥

तबे-इसके बाद; सेइ-वह; यवन-यवन; कहे-कहने लगा; शुन-सुनो; महाशय-हे महोदय; तोमारे-तुम्हें; छाड़िब-मैं छोड़ दें; किन्तु किन्तु; करि राज-भय-मैं सरकार के भय से डरता हूँ।

अनुवाद

इस प्रकार सनातन गोस्वामी ने जेल अधीक्षक को विश्वास दिलाया। उसने उत्तर दिया, "हे महोदय, कृपया मेरी बात सुनें। मैं आपको छोड़ने के लिए तैयार हूँ, किन्तु मुझे सरकार का डर लग रहा है।"

सनातन कहे,— "तुमि ना कर राज-भय ।

दक्षिण गियाछे यदि लेउटि' आओयय ॥10॥

ताँहारे कहिओ— सेइ बाह्य-कृत्ये गेल ।

गङ्गार निकट गङ्गा देखि' झाँप दिल ॥11॥

सनातन कहे-सनातन ने उत्तर दिया; तुमि-तुम; ना-न; कर-करो; राज-भय-सरकार का भय; दक्षिण-दक्षिण को; गियाछे-गया है; यदि यदि; लेउटि'–लौटकर; आओयय-आता है; ताँहारे-उसको; कहिओ-आप कहना; सेइ-वह; बाह्य-कृत्ये-शौच करने; गेल-गया; गङ्गार निकट-गंगा तट के पास; गङ्गा देखि'–गंगा को देखकर; झाँप दिल-वह उसमें कूद गया।

अनुवाद

सनातन ने कहा, "कोई भय नहीं है। नवाब दक्षिण गया हुआ है। यदि वह लौटकर आता है, तो उससे कहना कि सनातन गंगा नदी के तट पर शौच के लिए गया और गंगा को देखते ही वह उसमें कूद पड़ा।

अनेक देखिल, तार लाग् ना पाइल ।

दाडुका-सहित डुबि काहाँ वहि' गेल ॥12॥

अनेक-लम्बे समय तक; देखिल-मैंने ढूंढा; तार-उसकी; लाग्-खबर; ना पाइल-नहीं मिली; दाडुका-सहित-बेड़ियों सहित; डुबि-डूबकर; काहाँ-कहीं; वहि' गेल–बह गया।

अनुवाद

“उससे कहना कि, ‘मैं काफी देर तक उसे ढूंढता रहा, किन्तु उसका तनिक भी पता न चला। वह अपनी हथकड़ियों समेत कूद पड़ा, अतएव वह डूब गया और लहरों में बह गया।’

किछु भय नाहि, आमि ए-देशे ना रब ।

दरवेश हञा आमि मक्काके याइब” ॥13॥

किछु-कोई; भय-भय; नाहि-नहीं; आमि-मैं; ए-देशे-इस देश में; ना रब-नहीं रहूँगा; दरवेश हञा–साधु होकर; आमि-मैं; मक्काके याइब-मक्का चला जाऊँगा।

अनुवाद

“आपको डरने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मैं इस देश में नहीं रहूँगा। मैं साधु बनकर पवित्र नगरी मक्का जाऊँगा।”

तथापि यवन-मन प्रसन्न ना देखिला ।

सात-हाजार मुद्रा तार आगे राशि कैला ॥ 14॥

तथापि-फिर भी; यवन-मन-यवन का मन; प्रसन्न-सन्तुष्ट; ना-नहीं; देखिला-देखकर; सात-हाजार-सात हजार; मुद्रा-स्वर्ण मुद्राएँ; तार-उसके; आगे-आगे; राशि कैला-रख दी।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने देखा कि उस मांसभक्षक का मन अभी भी प्रसन्न नहीं था। तब उन्होंने उसके आगे सात हजार वर्ण मुद्राओं की राशि लगा दी।

लोभ हइल यवनेर मुद्रा देखिया ।

रात्रे गङ्गा-पार कैल दाडुका काटिया ॥15॥

लोभ हइल-धन का लालच हुआ; यवनेर-यवन को; मुद्रा देखिया-स्वर्ण मुद्राएँ देखकर; रात्रे-रात को; गङ्गा-पार कैल-वह उन्हें गंगा पार ले गया; दाडुका-बेड़ियाँ; काटिया-काटकर।

अनुवाद

जब मांसभक्षक ने मुद्राएँ देखीं, तो वह उनके प्रति आकृष्ट हो गया। वह सहमत हो गया और उस रात उसने सनातन की बेड़ियाँ काट दीं और उन्हें गंगा पार करने दिया।

गड़-द्वार-पथ छाड़िला, नारे ताहाँ याइते ।

रात्रि-दिन चलि' आइला पातड़ा-पर्वते ॥ 16 ॥

गड़-द्वार-पथ-किले का मार्ग; छाड़िला–छोड़ दिया; नारे-न सके; ताहाँ-वहाँ; याइते-जाने के लिए; रात्रि-दिन-रात दिन; चलि'-चलते रहकर; आइला-आ पहुँचे; पातड़ा-पर्वते-पातड़ा पहाड़ी इलाके में।

अनुवाद

इस तरह सनातन गोस्वामी छूट तो गये, किन्तु वे किले के रास्ते से होकर नहीं जा पाये। वे रात-दिन चलकर अन्त में पातड़ा पहाड़ी-क्षेत्र में पहुंचे।

तथा एक भौमिक हय, तार ठाञि गेला ।

'पर्वत पार कर आमा'—विनति करिला ॥ 17॥

तथा-वहाँ; एक भौमिक–एक जमींदार; हय-है; तार ठाञि-उसके पास; गेला-गये; पर्वत–पहाड़ी इलाका; पार कर-पार कराओ; आमा–मुझे; विनति-प्रार्थना; करिला-उन्होंने की।

अनुवाद

पातड़ा पहुँचकर वे एक जमींदार से मिले और उन्होंने उससे विनती की कि वह उन्हें इस पहाड़ी इलाके को पार करा दे।

सेइ भूञार सङ्गे हय हात-गणिता ।

भूञार काणे कहे सेइ जानि' एइ कथा ॥18॥

सेइ भूञार-उस जमींदार; सङ्गे–के साथ; हय-रहता था; हात-गणिता-हस्त रेखा का एक ज्योतिषी; भूञार-जमींदार के; काणे-कान में; कहे-कही; सेइ–उस व्यक्ति; जानि'–जानकर; एइ कथा-यह कथन।

अनुवाद

उस समय उस जमींदार के यहाँ एक ज्योतिषी टिका हुआ था। सनातन के बारे में जानकर जमींदार के कान में वह इस प्रकार फुसफुसाया।

'दुँहार ठाञि सुवर्णेर अष्ट मोहर हय' ।

शुनि' आनन्दित भूञा सनातने कय ॥19॥

दुँहार ठाञि-इस व्यक्ति के पास; सुवर्णेर-सोने की; अष्ट-आठ; मोहर-मुद्राएँ; हय-हैं; शुनि'-यह सुनकर; आनन्दित–प्रसन्न हो गया; भूञा-जमींदार; सनातने-सनातन को; कय–कहा।

अनुवाद

उस ज्योतिषी ने कहा, "इस व्यक्ति सनातन के पास आठ स्वर्ण मुद्राएँ (मोहरें) हैं।" यह सुनकर वह जमींदार बहुत प्रसन्न हुआ और सनातन से इस प्रकार बोला।

"रात्र्ये पर्वत पार करिब निज-लोक दिया ।

भोजन करह तुमि रन्धन करिया" ॥ 20॥

रात्र्ये-रात को; पर्वत–पर्वत; पार करिब–मैं पार करूँगा; निज-लोक दिया–मेरे लोगों के साथ; भोजन करह-अपना भोजन करें; तुमि-आप; रन्धन करिया-पकाकर।

अनुवाद

जमींदार ने कहा, "मैं मेरे लोगों के साथ आपको रात में पर्वत के उस पार भिजवा दूँगा। अभी आप अपना भोजन पकायें और खायें।"

एत बलि' अन्न दिल करिया सम्मान ।

सनातन आसि' तबे कैल नदी-स्नान ॥21॥

एत बलि'-यह कहकर; अन्न दिल–अन्न दिया; करिया सम्मान–उनका सम्मान करके; सनातन-सनातन गोस्वामी; आसि'-आकर; तबे-तब; कैल–किया; नदी-स्नान-नदी में स्नान।

अनुवाद

यह कहकर जमींदार ने सनातन गोस्वामी को पकाने के लिए अन्न दिया। तब सनातन नदी के किनारे गये और उन्होंने वहाँ स्नान किया।

दुइ उपवासे कैला रन्धन-भोजने ।

राज-मन्त्री सनातन विचारिला मने ॥22॥

दुई उपवासे-दो दिन उपवास करके; कैला–किया; रन्धन-भोजने–भोजन पकाकर और खाकर; राज-मन्त्री–नवाब के पूर्व मंत्री; सनातन-सनातन ने; विचारिला–विचार किया; मने-मन में।

अनुवाद

चूँकि सनातन दो दिनों से उपवास कर रहे थे, अतः उन्होंने भोजन पकाया और खाया। किन्तु नवाब का मन्त्री रह चुकने के कारण वे स्थिति पर विचार करने लगे।

‘एइ भूञा केने मोरे सम्मान करिल?’ ।

अनुवाद एत चिन्ति’ सनातन ईशाने पुछिल ॥ 23 ॥

एइ भूञा-इस जमींदार ने; केने-क्यों; मोरे–मुझे; सम्मान करिल-इतना सम्मान दिया; एत चिन्ति’-यह सोचकर; सनातन-सनातन ने; ईशाने-अपने सेवक ईशान से; पुछिल-पूछा।

नवाब का मन्त्री रहने के कारण सनातन सारी कूटनीति समझते थे। अतः उन्होंने सोचा, “यह जमींदार मेरा इतना सम्मान क्यों कर रहा है?” यह सोचकर उन्होंने अपने सेवक ईशान से पूछा।

‘तोमार ठाञि जानि किछु द्रव्य आछय’ ।

ईशान कहे,—‘मोर ठाञि सात मोहर हय’ ॥24॥

तोमार ठाञि-तुम्हारे पास; जानि–मैं जानता हूँ; किछु-कुछ; द्रव्य-मूल्यवान वस्तु; आछय-है; ईशान कहे-ईशान ने उत्तर दिया; मोर ठाञि-मेरे पास; सात मोहर-सात सुवर्ण मुद्राएँ; हय-हैं।

अनुवाद

सनातन ने अपने सेवक से पूछा, “ईशान, मेरी समझ में तुम्हारे पास कुछ बहुमूल्य वस्तुएँ हैं।” ईशान ने कहा, “हाँ, मेरे पास सात स्वर्ण मुद्राएँ (मोहरें) हैं।”

शुनि’ सनातन तारे करिला भर्सन ।

‘सङ्गे केने आनियाछ एइ काल-यम?’ ॥ 25 ॥

शुनि’-यह सुनकर; सनातन-सनातन गोस्वामी ने; तारे-उसको; करिला भर्सन-डाँटा; सङ्गे-अपने साथ; केने-क्यों; आनियाछ–लाये हो; एइ–यह; काल-यम-मृत्यु की घण्टी।

अनुवाद

यह सुनकर सनातन गोस्वामी ने अपने सेवक की भर्सना यह कहते हुए की, "तुम यह मृत्यु की घण्टी क्यों अपने साथ लाये हो?"

तबे सेइ सात मोहर हस्तेते करिया ।

भूञार काछे याञा कहे मोहर धरिया ॥ 26 ॥

तबे-तत्पश्चात्; सेइ सात मोहर-वे सात सुवर्ण मुद्राएँ; हस्तेते करिया-हाथ में लेकर; भूञार काछे-जमींदार को; यात्रा-जाकर; कहे-कहा; मोहर धरिया-मुद्राओं को पकड़कर।

अनुवाद

तत्पश्चात् सनातन गोस्वामी सातों स्वर्ण मुद्राएँ अपने हाथ में लेकर जमींदार के पास गये और उसके समक्ष मुद्राएँ रखकर इस प्रकार बोले।

"एइ सात सुवर्ण मोहर आछिल आमार ।

इहा लञा धर्म देखि' पर्वत कर पार ॥27॥

एइ सात-ये सात; सुवर्ण मोहर–सोने की मुद्राएँ; आछिल–थी; आमार-मेरी; इहा लञा-उन्हें स्वीकार करके; धर्म देखि'-धर्म की दृष्टि से; पर्वत–पर्वत; कर पार-कृपया मुझे पार कराओ।

अनुवाद

"मेरे पास ये सात स्वर्ण मुद्राएँ हैं। कृपया इन्हें लीजिये और धर्म समझकर मुझे यह पर्वतीय प्रदेश पार कर दीजिये।

राज-बन्दी आमि, गड़-द्वार याइते ना पारि ।

पुण्य हबे, पर्वत आमा देह' पार करि" ॥28॥

राज-बन्दी–सरकार का एक कैदी; आमि-मैं; गड़-द्वार याइते-चहरदारी से खुली सड़क पर; ना पारि-नहीं जा सकता; पुण्य-पुण्य कर्म; हबे-होगा; पर्वत–पर्वतीय क्षेत्र; आमा–मुझे; देह'-सहायता करोगे; पार करि-पार करने में।

अनुवाद

"मैं सरकारी बन्दी हूँ और मैं किले के परकोटे के रास्ते से नहीं जा सकता। यदि आप यह धन ले लें और मुझे यह पर्वतीय प्रदेश पार करा दें, तो आपको बड़ा पुण्य होगा।"

भूञा हासि' कहे,–"आमि जानियाछि पहिले ।

अष्ट मोहर हय तोमार सेवक-आँचले ॥ 29॥

भूञा-जमींदार ने; हासि'–मुस्कुराकर; कहे-कहा; आमि-मैं; जानियाछि-जानता था; पहिले-पहले से; अष्ट मोहर-आठ स्वर्ण मुद्राएँ; हय-हैं; तोमार-तुम्हारे; सेवक-आँचले-सेवक की जेब में।

अनुवाद

जमींदार ने हँसते हुए कहा, "तुम्हारे देने के पूर्व ही मैं जानता था कि तुम्हारे सेवक के पास आठ स्वर्ण मुद्राएँ हैं।

तोमा मारि' मोहर लड़ताम आजिकार रात्र्ये ।

भाल हैल, कहिला तुमि, छुटिलाङपाप हैते ॥ 30॥

तोमा मारि'-तुम्हें मारकर; मोहर-स्वर्ण मुद्राएँ; लइताम–मैं ले लेता; आजिकार रात्र्ये-इसी रात को; भाल हैल–यह बहुत अच्छा हुआ; कहिला तुमि-तुमने कहा है; छुटिलाङ–मुझे राहत मिली है; पाप हैते-ऐसे पाप से।

अनुवाद

आज रात को ही मैं तुम्हें जान से मारकर तुम्हारी मुद्राएँ ले लेता। यह तो अच्छा हुआ कि तुमने स्वेच्छा से उन्हें लाकर मुझे सौंप दिया। अब मैं इस पापकर्म से बच गया।

सन्तुष्ट हुइलाङआमि, मोहर ना लइब ।

पुण्य लागि' पर्वत तोमा पार करि' दिब" ॥ 31॥

सन्तुष्ट-सन्तुष्ट; हइलाङ–हो गया हूँ; आमि-मैं; मोहर-स्वर्ण मुद्राएँ; ना लइब-मैं नहीं लूँगा; पुण्य लागि'–मात्र पुण्य कर्म के लिए; पर्वत–पर्वतीय क्षेत्र; तोमा'-तुम्हें; पार करि' दिब-मैं पार करा दूँगा।

अनुवाद

"मैं तुम्हारे आचरण से अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। मैं ये स्वर्ण मुद्राएँ नहीं लूँगा, परन्तु मैं केवल पुण्य-लाभ हेतु तुम्हें यह पर्वतीय प्रदेश पार करा दूँगा।"

गोसाञि कहे,—"केह द्रव्य लइबे आमा मारि' ।

आमार प्राण रक्षा कर द्रव्य अङ्गीकरि" ॥ 32॥

गोसाञि कहे-सनातन गोस्वामी ने कहा; केह-कोई अन्य; द्रव्य–अमूल्य मुद्राएँ, लइबे-ले लेगा; आमा मारि'–मुझे मारकर; आमार-मेरे; प्राण-प्राण; रक्षा कर-की रक्षा करो; द्रव्य अङ्गीकरि'-इन मुद्राओं को लेकर।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा, "यदि आप इन मुद्राओं को स्वीकार नहीं करेंगे, तो इनके लिए मुझे कोई दूसरा मार डालेगा। अतः अच्छा यही होगा कि आप इन मुद्राओं को स्वीकार करके मेरी प्राण-रक्षा करें।"

तबे भूत्रा गोसाञिर सङ्गे चारि पाइक दिल ।

रात्र्ये रात्र्ये वन-पथे पर्वत पार कैल ॥ 33॥

तबे-इस पर; भूञा-जमींदार ने; गोसाञि सङ्गे–सनातन गोस्वामी के साथ; चारि पाइक-चार चौकीदार; दिल-दिये; रात्र्ये रात्र्ये-सारी रात; वन-पथे-वन के मार्ग से; पर्वत-पर्वतीय क्षेत्र; पार कैल-पार करवा दिया।

अनुवाद

इस समझौते के बाद जमींदार ने सनातन गोस्वामी को चार रक्षक दिये जो उनके साथ जा सकें। वे सभी रात-भर जंगल के रास्ते से होकर चलते रहे और उन्हें पर्वतीय क्षेत्र के पार ले गये।

तबे पार हञा गोसाञि पुछिला ईशाने ।

"जानि,—शेष द्रव्य किछु आछे तोमा स्थाने" ॥ 34॥

तबे-तत्पश्चात्; पार हञा–पार करने के बाद; गोसाञि-सनातन गोस्वामी ने; पुछिला-कहा; ईशाने-ईशान से; जानि–मैं जानता हूँ; शेष द्रव्य-कुछ मूल्यवान अभी भी है; किछु-कुछ; आछे-है; तोमा स्थाने तुम्हारे पास।

अनुवाद

पर्वत पार करने के बाद सनातन गोस्वामी ने अपने सेवक से कहा, "ईशान, मेरी समझ में तुम्हारे पास अब भी कुछ स्वर्ण मुद्राएँ होंगी।"

ईशान कहे, —"एक मोहर आछे अवशेष" ।

गोसाञि कहे,—"मोहर लञा याह' तुमि देश" ॥ 35॥

ईशान कहे-ईशान ने उत्तर दिया; एक-एक; मोहर-स्वर्ण मुद्रा; आछे-है; अवशेष-बाकी; गोसाञि-सनातन गोस्वामी; कहे-ने कहा; मोहर लञा-यह मुद्रा लेकर; याह-लौट जाओ; तुमि-तुम; देश-अपने देश को।

अनुवाद

ईशान ने उत्तर दिया, "अब भी एक स्वर्ण मुद्रा मेरे पास है।" तब सनातन गोस्वामी ने कहा, "यह मुद्रा लेकर तुम अपने घर लौट जाओ।"

तारे विदाय दिया गोसाञि चलिला एकला ।

हाते करोंया, छिंड़ा कान्था, निर्भय हइला ॥ 36॥

तारे विदाय दिया-उसे विदा करके; गोसाञि-सनातन गोस्वामी; चलिला एकला-अकेले चलने लगे; हाते-हाथ में; करोंया–भिखारी का पात्र लेकर; छिंड़ा कान्था-एक फटी रजाई; निर्भय हइला–वे चिन्ता मुक्त हो गये।

अनुवाद

ईशान को विदा करने के बाद सनातन गोस्वामी हाथ में जलपात्र लेकर अकेले ही चल पड़े। फटी-पुरानी रजाई ओढ़े वे अपनी सारी चिन्ताओं से मुक्त हो गये।

चलि' चलि' गोसाञि तबे आइला हाजिपुरे ।

सन्ध्या-काले वसिला एक उद्यान-भितरे ॥ 37॥

चलि' चलि'-चलते चलते; गोसाञि-सनातन गोस्वामी; तब-तब; आइला–आ गये; हाजिपुरे-हाजीपुर में; सन्ध्या-काले-सायंकाल में; वसिला-बैठ गये; एक–एक; उद्यान-भितरे-बगीचे में।

अनुवाद

चलते चलते सनातन गोस्वामी अन्ततः हाजीपुर नामक स्थान पर पहुँचे। उन्होंने वह सन्ध्या एक बगीचे के भीतर बैठकर बिताई।

सेइ हाजिपुरे रहे—श्रीकान्त तार नाम ।

गोसाञिर भगिनी-पति, करे राज-काम ॥ 38॥

सेइ-वह; हाजिपुरे-हाजीपुर में; रहे-रहता था; श्रीकान्त-श्रीकान्त; तार-उसका; नाम-नाम; गोसाञिर-सनातन गोस्वामी की; भगिनी-पति-बहन का पति; करे-करता था; राज-काम-सरकारी नौकरी।

अनुवाद

हाजीपुर में श्रीकान्त नाम का एक व्यक्ति रहता था, जो सनातन गोस्वामी का बहनोई था। वह वहाँ सरकारी नौकरी करता था।

तिन लक्ष मुद्रा राजा दियाछे तार स्थाने ।

घोड़ा मूल्य लञा पाठाय पात्सार स्थाने ॥ 39॥

तिन लक्ष–तीन लाख; मुद्रा-स्वर्ण मुद्राएँ; राजा-नवाब या राजा; दियाछे–दी थीं; तार स्थाने-उसको; घोड़ा-घोड़े को; मूल्य लञा-कीमत लेकर; पाठाय-भेजता था; पात्सार स्थाने-बादशाह को।

अनुवाद

श्रीकान्त के पास तीन लाख स्वर्ण मुद्राएँ थीं, जो उसे राजा से घोड़े खरीदने के लिए मिली थीं। इस तरह श्रीकान्त घोड़े खरीद-खरीदकर राजा के पास भेजता रहता था।

टुङ्गि उपर वसि' सेइ गोसाञिरे देखिल ।

रात्र्ये एक-जन-सङ्गे गोसाञि-पाश आइल ॥40॥

टुङ्गि उपर वसि'–एक उच्च स्थान पर बैठकर; सेइ-उस श्रीकान्त ने; गोसाञिरे-सनातन गोस्वामी को; देखिल-देखा; रात्रे-उस रात; एक-जन-सङ्गे–एक सेवक के साथ; गोसाञि-पाश-सनातन गोस्वामी के पास; आइल-वह आया।

अनुवाद

ऊँचे चबूतरे पर बैठे हुए श्रीकान्त ने सनातन गोस्वामी को देखा। अतः उस रात वे वहाँ अपने साथ एक सेवक को लेकर सनातन गोस्वामी से मिलने गया।

दुइ-जन मिलि' तथा इष्ट-गोष्ठी कैल ।

बन्धन-मोक्षण-कथा गोसाञि सकलि कहिल ॥41॥

दुइ-जन मिलि'–दोनों व्यक्तियों ने मिलकर; तथा-वहाँ; इष्ट-गोष्ठी-कई प्रकार की चर्चाएँ; कैल-कीं; बन्धन-मोक्षण-अपनी कैद और रिहाई की; कथा-कहानी; गोसाञि-सनातन गोस्वामी ने; सकलि-सब; कहिल–सुनाई।

अनुवाद

जब वे दोनों मिले तो बहुत बातें हुईं। सनातन गोस्वामी ने विस्तार से अपने बन्दी होने और मुक्ति की बातें बताईं।

तेंहो कहे,—"दिन-दुइ रह एइ-स्थाने ।

भद्र हओ, छाड़' एइ मलिन वसने" ॥42॥

तेंहो कहे-उसने कहा; दिन-दुइ–कम से कम दो दिन के लिए; रह-रहो; एइ-स्थाने-इस स्थान पर; भद्र हओ-एक भद्र पुरुष की भाँति बनकर; छाड़'-त्याग दो; एइ-यह; मलिन–गन्दी; वसने-पोशाक।

अनुवाद

तब श्रीकान्त ने सनातन गोस्वामी से कहा, "यहाँ पर कम-से-कम दो दिन रुकिये और भद्र पुरुषों की तरह वस्त्र पहनिये। इन गन्दे वस्त्रों को त्याग दीजिये।"

गोसाञि कहे,—'एक-क्षण इहा ना रहिब ।

गङ्गा पार करि' देह' ए-क्षणे चलिब" ॥43॥

गोसाञि कहे-सनातन गोस्वामी ने कहा; एक-क्षण-एक क्षण के लिए भी; इहा-यहाँ; ना रहिब-मैं नहीं ठहरूंगा; गङ्गा पार करि' देह'-गंगा नदी पार करने में सहायता करो; ए-क्षणे-इसी क्षण; चलिब-मैं जाऊँगा।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, "मैं यहाँ पर एक क्षण भी नहीं रुकुँगा। कृपया मुझे गंगा पार करा दें। मैं तुरन्त चला जाऊँगा।"

यत्न करि' तेंहो एक भोट-कम्बल दिल ।

गङ्गा पार करि' दिल—गोसाञि चलिल ॥44॥

यत्न करि'-बहुत सावधानी से; तेंहो–उसने (श्रीकान्त ने); एक-एक; भोट-कम्बल–ऊनी कम्बल; दिल-दिया; गङ्गा पार करि' दिल-उन्हें गंगा पार करवा दी; गोसाञि चलिल–सनातन गोस्वामी चल पड़े।

अनुवाद

श्रीकान्त ने बड़ी सावधानी से उन्हें एक ऊनी कम्बल दिया और गंगा पार जाने में उनकी सहायता की। इस तरह सनातन गोस्वामी फिर चल पड़े।

तबे वाराणसी गोसाञि आइला कत-दिने ।

शुनि आनन्दित हइला प्रभुर आगमने ॥ 45 ॥

तबे-इस प्रकार; वाराणसी-वाराणसी; गोसाञि-सनातन गोस्वामी; आइला-आ गये; कत-दिने कुछ दिनों के बाद; शुनि–सुनकर; आनन्दित-अत्यन्त प्रसन्न; हइला-वे हो गये; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; आगमने-आगमन के बारे में।

अनुवाद

कुछ दिनों बाद सनातन गोस्वामी वाराणसी आ पहुँचे। वहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु के आगमन के विषय में सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

चन्द्रशेखरेर घरे आसि' द्वारेते वसिला ।

महाप्रभु जानि' चन्द्रशेखरे कहिला ॥46॥

चन्द्रशेखरेर घरे–चन्द्रशेखर के घर पर; आसि'–जाकर; द्वारेते-द्वार पर; वसिला-बैठ गये; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जानि'-यह जानकर; चन्द्रशेखरे–चन्द्रशेखर को; कहिला-कहा।

अनुवाद

तब सनातन गोस्वामी चन्द्रशेखर के घर गये और उनके दरवाजे के पास बैठ गये। श्री चैतन्य महाप्रभु जान गये कि क्या हो रहा है, अतः वे चन्द्रशेखर से बोले।

'द्वारे एक 'वैष्णव' हय, बोलाह ताँहारे ।

चन्द्रशेखर देखे—'वैष्णव' नाहिक द्वारे ॥47॥

द्वारे-तुम्हारे द्वार पर; एक वैष्णव-एक वैष्णव भक्त; हय-है; बोलाह ताँहाइ-ए-कृपया उसे बुलाओ; चन्द्रशेखर–चन्द्रशेखर ने; देखे-देखा; वैष्णव-कोई भक्त; नाहिक-वहाँ नहीं है; द्वारे द्वार पर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "तुम्हारे दरवाजे पर एक भक्त है। कृपया उसे अन्दर बुला लाओ।" बाहर जाने पर चन्द्रशेखर को अपने दरवाजे पर कोई वैष्णव नहीं दिखा।

'द्वारेते वैष्णव नाहि'—प्रभुरे कहिल ।

'केह हय' करि' प्रभु ताहारे पुछिल ॥48॥

द्वारेते-मेरे द्वार पर; वैष्णव नाहि-कोई वैष्णव नहीं है; प्रभुरे कहिल-उसने श्री चैतन्य महाप्रभु को सूचित किया; केह हय-क्या वहाँ कोई भी है?; करि'-इस प्रकार; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताहारे पुछिल-उससे पूछा।

अनुवाद

जब चन्द्रशेखर ने महाप्रभु को बतलाया कि उनके दरवाजे पर कोई वैष्णव नहीं है, तो महाप्रभु ने पूछा, "क्या तुम्हारे दरवाजे पर कोई भी है?"

तेंहो कहे,—एक 'दरवेश' आछे द्वारे ।

'तारै आन' प्रभुर वाक्ये कहिल ताँहारे ॥49॥

तेंहो कहे-उसने उत्तर दिया; एक दरवेश-एक मुस्लिम फकीर; आछे-वहाँ है; द्वारे द्वार पर; तारै आन-उसे ले आओ; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; वाक्ये-आदेश; कहिल–कहा; ताँहारे-उनको।

अनुवाद

चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "वहाँ एक मुसलमान फकीर है।" महाप्रभु ने तुरन्त कहा, "कृपया उसे यहाँ ले आओ।" तब चन्द्रशेखर ने अपने द्वार पर अभी तक बैठे हुए सनातन गोस्वामी से कहा।

'प्रभु तोमाय बोलाय, आइस, दरवेश!' ।

शुनि' आनन्दे सनातन करिला प्रवेश ॥50॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तोमाय-तुम्हें; बोलाय-बुलाया है; आइस-यहाँ आओ; दरवेश-हे मुस्लिम दरवेश (फकीर); शुनि'–सुनकर; आनन्दे-बड़ी प्रसन्नता में; सनातन-सनातन गोस्वामी ने; करिला प्रवेश-प्रवेश किया।

अनुवाद

"हे मुसलमान फकीर, कृपया अन्दर आइये। महाप्रभु आपको बुला रहे हैं।" यह आदेश सुनकर सनातन गोस्वामी अत्यन्त आनन्दित हुए और चन्द्रशेखर के घर में प्रविष्ट हुए।

ताँहारे अङ्गने देखि' प्रभु धाञा आइला ।

ताँरे आलिङ्गन करि' प्रेमाविष्ट हैला ॥51॥

ताँहारे–उनको; अङ्गने-आंगन में; देखि'–देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; धाञा आइला-जल्दी से उनको मिलने आये; ताँरे–उनका; आलिङ्गन करि'-आलिंगन करके प्रेम-आविष्ट हैला-अत्यन्त प्रेमावेश में आ गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सनातन गोस्वामी को आँगन में आये हुए देखते ही तेजी से उनके पास गये और उनका आलिंगन किया और स्वयं प्रेमावेश से भावविभोर हो गये।

प्रभु-स्पर्शे प्रेमाविष्ट हइला सनातन ।

'मोरे ना छुडिह'— कहे गद्गद-वचन ॥52॥

प्रभु-स्पर्शे-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्पर्श से; प्रेम-आविष्ट-प्रेमावेश से अभिभूत; हइला–हो गये; सनातन-सनातन गोस्वामी ने; मोरे-मुझे; ना-ना; छुडिह–छुओ; कहे-कहा; गद्गद-वचन-रूद्ध वाणी में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का द्वारा स्पर्श पाते ही सनातन गोस्वामी भी प्रेमाविष्ट हो गये। उन्होंने रुद्ध वाणी में कहा, "हे प्रभु, आप मेरा स्पर्श न करें।"

दुइ-जने गलागलि रोदन अपार ।

देखि' चन्द्रशेखरेर हुइल चमत्कार ॥53॥

दुइ-जने-दोनों व्यक्ति; गलागलि–गले लगकर; रोदन-रोने लगे; अपार-असीम; देखि'–देखकर; चन्द्रशेखरेर–चन्द्रशेखर को; हइल-हो गया; चमत्कार-आश्चर्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा सनातन गोस्वामी गले लगकर अत्यधिक रोने लगे। यह देखकर चन्द्रशेखर अत्यधिक चकित हुए।

तबे प्रभु ताँर हात धरि' लञा गेला ।

पिण्डार उपरे आपन-पाशे वसाइला ॥54॥

तबे–तत्पश्चात्; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर-सनातन गोस्वामी का; हात धरि'-हाथ पकड़कर; लञा गेला–अन्दर ले गये; पिण्डार उपरे–एक ऊँचे स्थान पर; आपन-पाशे-अपने पास; वसाइला–बैठा लिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु चन्द्रशेखर का हाथ पकड़कर भीतर ले गये और उन्हें अपनी बगल में एक ऊँचे आसन पर बिठाया।

श्री-हस्ते करेन ताँर अङ्ग सम्मार्जन ।

तेंहो कहे,–'मोरे, प्रभु, ना कर स्पर्शन' ॥55॥

श्री-हस्ते–दिव्य हाथ से; करेन-किया; ताँर अङ्ग-उनका शरीर; सम्मार्जन-साफ; तेंहो कहे-उन्होंने कहा; मोरे–मुझे; प्रभु–मेरे प्रभु; ना कर स्पर्शन–न करें स्पर्श।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने दिव्य हाथों से सनातन गोस्वामी का शरीर साफ करने लगे, तो सनातन गोस्वामी ने कहा, "हे प्रभु, कृपया मेरा स्पर्श न करें।"

प्रभु कहे,–"तोमा स्पर्शि आत्म पवित्रते ।

भक्ति-बले पार तुमि ब्रह्माण्ड शोधिते ॥56॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तोमा स्पर्शि-मैं तुम्हारा स्पर्श करता हूँ; आत्म पवित्रते-स्वयं को पवित्र करने हेतु; भक्ति-बले-तुम्हारी भक्ति के बल पर; पार–सकते हो; तुमि-तुम; ब्रह्माण्ड–सारा ब्रह्माण्ड; शोधिते–पवित्र।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं अपने आपको पवित्र बनाने के लिए ही तुम्हारा स्पर्श कर रहा हूँ, क्योंकि तुम अपनी भक्ति के बल से सारे ब्रह्माण्ड को शुद्ध कर सकते हो।

भवद्विधा भागवतास्तीर्थ-भूताः स्वयं प्रभो ।

तीर्थी-कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः-स्थेन गदा-भृता ॥57॥

भवत्-विधाः-आप जैसे; भागवताः-उन्नत भक्त; तीर्थ-भूताः–मूर्तिमान तीर्थस्थान; स्वयम्-स्वयं; प्रभो–मेरे प्रभु; तीर्थी-कुर्वन्ति–उन्हें पावन तीर्थ बना देते हैं; तीर्थानि-सभी तीर्थ स्थान; स्व-अन्तः-स्थेन-उनके हृदयों में स्थित; गदा-भृता-भगवान् विष्णु द्वारा (जो गदाधारी हैं)।

अनुवाद

“आप जैसे सन्त स्वयं तीर्थस्थान होते हैं। अपनी पवित्रता के कारण वे भगवान् के नित्य पार्षद होते हैं; अतः वे तीर्थस्थलों को भी पवित्र कर सकते हैं।’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.13.10) का है, जिसे महाराज युधिष्ठिर ने विदुर से कहा था। विदुर तीर्थस्थानों की यात्रा करके घर लौट रहे थे और महाराज युधिष्ठिर अपने इस सन्त चाचा की अगवानी कर रहे थे। महाराज युधिष्ठिर के कहने का भाव था, ‘हे चाचा विदुर, आप स्वयं तीर्थस्थल हैं, क्योंकि आप उन्नत भक्त हैं। आप जैसे भक्त भगवान् विष्णु को सदा अपने हृदयों में धारण करते हैं। आप उन समस्त तीर्थस्थलों को पवित्र बना सकते हैं, जो पापियों द्वारा तीर्थयात्रा करने से प्रदूषित हो चुके होते हैं।”

पापी व्यक्ति शुद्ध बनने के लिए तीर्थस्थान जाता है। पवित्र स्थान में अनेक सन्त पुरुष तथा विष्णु मन्दिर होते हैं, फिर भी अनेक यात्रियों के पापों से पवित्र स्थान दूषित हो जाता है। किन्तु जब कोई बड़ा भक्त किसी तीर्थस्थान में जाता है, तो वह यात्रियों के सारे पापों को नष्ट कर देता है। इसीलिए महाराज युधिष्ठिर ने विदुर से इस तरह कहा।

चूँकि एक महान् भक्त अपने हृदय में भगवान् विष्णु को धारण करता है, अत: वह चलता-फिरता मन्दिर तथा चलते-फिरते विष्णु समान होता है। उन्नत भक्त को किसी पवित्र स्थान में जाने की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि वह जहाँ भी रुकता है, वह पवित्र स्थान बन जाता है। इस सम्बन्ध में नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं, तीर्थयात्रा परिश्रम, केवल मनेर भ्रम तीर्थयात्रा करना एक दूसरे प्रकार का मोह ही है। चूँकि उच्च भक्त को किसी पवित्र स्थान में जाने की आवश्यकता नहीं रहती, तो फिर वह वहाँ क्यों जाये? इसका उत्तर यही है कि वह उस स्थान को पवित्र करने मात्र के लिए जाता है।

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्व-पचः प्रियः ।

तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥58॥

न–नहीं; मे-मेरे; अभक्तः–शुद्ध भक्ति से रहित; चतुः-वेदी-चारों वेदों का ज्ञाता; मत्-भक्तः–मेरे भक्त; श्व-पचः-चण्डाल कुल से भी हो; प्रियः-अत्यन्त प्रिय; तस्मै-उसको (शुद्ध भक्त, चाहे वह निम्न कुल में ही क्यों न जन्मा हो); देयम्-देना चाहिए; ततः-उससे; ग्राह्यम्-ग्रहण कर लेना चाहिए (उच्छिष्ठ); सः-वह व्यक्ति; च-भी; पूज्यः-पूज्य; यथा-उतना ही; हि–जितना; अहम्-मैं।

अनुवाद

"[भगवान् कृष्ण ने कहा :]' भले ही कोई व्यक्ति संस्कृत वैदिक साहित्य का कितना ही प्रकाण्ड पण्डित क्यों न हो, जब तक वह भक्ति में शुद्ध न हो, वह तब तक मेरा भक्त नहीं माना जाता। किन्तु भले ही कोई व्यक्ति चण्डाल परिवार में जन्मा हो, वह भी मुझे अत्यन्त प्रिय है, यदि वह शुद्ध भक्त है और सकाम कर्म या मानसिक तर्क को भोगने की इच्छा से रहित है। निस्सन्देह, उसका सभी तरह से आदर होना चाहिए और वह जो भी भेंट करे उसे स्वीकार करना चाहिए। ऐसे भक्त मेरे समान ही पूज्य हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक सनातन गोस्वामी द्वारा संकलित हरिभक्ति-विलास (10.127) में आया है।

विप्रादिद्व-षड्-गुण-युतादरविन्द-नाभ-

पादारविन्द-विमुखात्-श्वपचं वरिष्ठम् ।

मन्ये तदर्पत-मनो-वचनेहितार्थ-

प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरि-मानः ॥ 59॥

विप्रात्-ब्राह्मण की अपेक्षा; द्वि-षट्-गुण-युतात्-जो ब्राह्मणों के बारह गुणों से युक्त है; अरविन्द-नाभ-भगवान् विष्णु का, जो कमल जैसी नाभि वाले हैं; पाद-अरविन्द-चरणकमलों को; विमुखात्-भक्ति

से विमुख व्यक्ति की अपेक्षा; श्व-पचम्-चण्डाल; वरिष्ठम्-श्रेष्ठ; मन्ये—मैं मानता हूँ; तत्-अर्पित-उनको अर्पित; मनः—मन; वचन-वचन; ईहित-कर्म; अर्थ-धन; प्राणम्-प्राण; पुनाति—पवित्र कर देता है; सः-वह; कुलम्-अपने कुल को; न तु किन्तु नहीं; भूरि-मानः-ऐसे गुण से युक्त अहंकारी ब्राह्मण।

अनुवाद

"भले ही ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर कोई बारहों ब्राह्मण-गुणों से युक्त क्यों न हो, किन्तु यदि वह कमल समान नाभि वाले भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में भक्ति नहीं रखता, तो वह उस चण्डाल के भी तुल्य नहीं है, जिसने भगवान् की सेवा में अपना मन, वचन, कर्म, सम्पत्ति तथा जीवन समर्पित कर दिया है। केवल ब्राह्मण परिवार में जन्म लेना या ब्राह्मण गुणों से सम्पन्न होना पर्याप्त नहीं है। उसे भगवान् का शुद्ध भक्त होना चाहिए। यदि श्वपच या चण्डाल भक्त होता है, तो वह न केवल अपना, अपितु अपने पूरे परिवार का उद्धार करता है, जबकि कोई ब्राह्मण यदि भक्त न होकर केवल ब्राह्मण-गुणों से सम्पन्न होता है, तो वह अपने आपको भी शुद्ध नहीं कर पाता, अपने परिवार को शुद्ध करना तो दूर रहा।"'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (7.9.10) में आया है और महाराज प्रह्लाद द्वारा कहा गया है। ब्राह्मण में बारह गुण होने चाहिए, जैसाकि महाभारत में कहा गया है :

धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च

अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षानसूया ।

यज्ञश्च दानं च धृतिः श्रुतं च

व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य ॥

“ब्राह्मण को पूर्णतया धार्मिक होना चाहिए। उसे सत्यवादी तथा इन्द्रियों को वश में करने में समर्थ होना चाहिए। उसे कठोर तपस्या करनी चाहिए। उसे विरक्त, विनीत तथा सहिष्णु होना चाहिए। उसे किसी से द्वेष नहीं करना चाहिए। उसे यज्ञ करने में पटु होना चाहिए और उसके पास जो भी हो उसे दान में देना चाहिए। उसे भक्ति में दृढ़ तथा वैदिक ज्ञान में निपुण होना चाहिए। ब्राह्मण के ये बारह गुण हैं।”

भगवद्गीता (18.42) में ब्राह्मण-गुण इस प्रकार बतलाये गये हैं :

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

“शान्तिप्रियता, आत्मनिग्रह, तपस्या, पवित्रता, सहिष्णुता, ईमानदारी, ज्ञान, विज्ञान तथा धार्मिकता-ये ब्राह्मण के स्वाभाविक गुण हैं।”

मुक्ताफल-टीका में कहा गया है :

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्त्यार्जवविरक्तयः।

ज्ञानविज्ञानसन्तोषाः सत्यास्तिक्ये द्विषड् गुणाः ॥

“मानसिक सन्तुलन, इन्द्रियनिग्रह, तपस्या, पवित्रता, सहिष्णुता, सरलता, विरक्ति, सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक ज्ञान, सन्तोष, सच्चाई तथा वेदों में दृढ़ विश्वास-ये ब्राह्मण के बारह गुण हैं।”

तोमा देखि, तोमा स्पर्शि, गाइ तोमार गुण ।

सर्वेन्द्रिय-फल, एइ शास्त्र-निरूपण ॥ 60 ॥

तोमा देखि-तुम्हें देखकर; तोमा स्पर्शि—तुम्हें स्पर्श करके; गाइ तोमार गुण-तुम्हारे दिव्य गुणों की प्रशंसा करके; सर्व-इन्द्रिय-फल-सभी इन्द्रियों के कार्यों की सिद्धि; एइ-यह; शास्त्र-निरूपण-शास्त्रों का आदेश।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कहते गये, "तुम्हें देखकर, तुम्हें स्पर्श करके तथा तुम्हारे दिव्य गुणों का गान करके कोई भी व्यक्ति इन्द्रिय के सारे कार्यों के उद्देश्य को पूर्ण बना सकता है। यह प्रामाणिक शास्त्रों का निर्णय है।

तात्पर्य

इसकी पुष्टि अगले श्लोक में की गई है, जो हरिभक्ति-सुधोदय (13.2) से उद्धृत है।

अक्ष्णोः फलं त्वादृश-दर्शनं हि

तनोः फलं त्वादृश-गात्र-सङ्गः ।

जिह्वा-फलं त्वादृश-कीर्तनं हि

सु-दुर्लभा भागवता हि लोके ॥ 61॥

अक्ष्णोः–नेत्रों का; फलम्-फल; त्वादृश-तुम्हारे जैसे व्यक्ति; दर्शनम् के दर्शन से; हि-अवश्य; तनोः–शरीर का; फलम्-फल; त्वादृश–तुम्हारे जैसे व्यक्ति के; गात्र-सङ्गः–शरीर को छूने से; जिह्वा-फलम्-जिह्वा की पूर्णता; त्वादृश-तुम्हारे जैसे व्यक्ति का; कीर्तनम्-महिमागान; हि–निश्चित रूप से; सु-दुर्लभाः-बहुत दुर्लभ; भागवताः-भगवान् के शुद्ध भक्त; हि-अवश्य; लोके–इस लोक में।

अनुवाद

"हे वैष्णव, आप जैसे व्यक्ति का दर्शन करना दृष्टि की पूर्णता है। आपके चरणकमलों का स्पर्श करना स्पर्शेन्द्रिय की पूर्णता है। आपके सद्गुणों का गान करना जीभ का वास्तविक कार्य है, क्योंकि भौतिक जगत् में भगवान् का शुद्ध भक्त खोज पाना अतीव कठिन है।"'

एत कहि कहे प्रभु,—"शुन, सनातन ।

कृष्ण—बड़ दयामय, पतित-पावन ।। 62 ॥

एत कहि-यह कहकर; कहे-बोलते रहे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; शुन-कृपया सुनो; सनातन-मेरे प्रिय सनातन; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; बड़-बहुत; दया-मय-कृपालु; पतित-पावन-पतित पावन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "हे सनातन, कृपया मुझसे सुनो। कृष्ण अत्यन्त दयालु हैं और सभी पतितात्माओं के उद्धारक हैं।

महा-रौरव हैते तोमा करिला उद्धार ।

कृपार समुद्र कृष्ण गम्भीर अपार" ॥63॥

महा-रौरव हैते–अत्यन्त नारकीय परिस्थितियों से; तोमा-तुम्हारा; करिला उद्धार-उद्धार किया है; कृपार समुद्र-वे कृपा सागर हैं; कृष्ण-कृष्ण; गम्भीर-गम्भीर; अपार-अपार।

अनुवाद

"हे सनातन, कृष्ण ने तुम्हें जीवन के सबसे गहरे नरक, महारौरव से बचा लिया है। वे दया के सागर हैं और उनकी लीलाएँ अत्यन्त गम्भीर हैं।"

तात्पर्य

भगवद्गीता (18.61) में कहा गया है-- ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। हर एक के हृदय में रहते हुए भगवान् कृष्ण अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक कार्य करते हैं। कोई यह नहीं समझ सकता कि वे किस तरह कार्य कर रहे हैं, किन्तु जैसे ही भगवान् किसी भक्त के निष्ठावान कार्य को समझ जाते हैं तो वे उस भक्त की इस तरह सहायता करते हैं कि वह समझ ही नहीं पाता कि सारी बातें कैसे घटित हो रही हैं। यदि भक्त भगवान् की सेवा के लिए कृतसंकल्प है, तो भगवान् उसकी सहायता करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं (ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते)। श्री चैतन्य महाप्रभु सनातन गोस्वामी को समझा

रहे हैं कि कृष्ण कितने दयालु हैं। सनातन गोस्वामी नवाब हुसेन शाह के मन्त्री थे। वे भौतिक प्रवृत्ति वाले लोगों, विशेषतया मांसभक्षक मुसलमानों के घनिष्ठ सम्पर्क में रहते थे। यद्यपि वे ऐसे लोगों के घनिष्ठ सम्पर्क में थे, किन्तु कृष्ण की कृपा से उन्हें ऐसा सम्पर्क कभी भाता नहीं था। अतएव उन्होंने उनका साथ छोड़ दिया। श्रीनिवास आचार्य ने ठीक ही कहा है-त्यक्त्वा तूर्णं अशेषमण्डलपति श्रेणीं सदा तुच्छवत्। कृष्ण ने सनातन गोस्वामी को इस तरह ज्ञानालोक प्रदान किया कि वे अपना मन्त्री का उच्च पद छोड़ सके। सनातन अपने भौतिक पद को तुच्छ समझकर साधु बनने के लिए प्रस्तुत थे। सनातन गोस्वामी के कार्यों को समझकर ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके कर्म की प्रशंसा की और कृष्ण को उनके ऊपर कृपा करने के लिए धन्यवाद दिया।

सनातन कहे,—'कृष्ण आमि नाहि जानि।

आमार उद्धार हेतु तोमार कृपा मानि' ॥64॥

सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया; कृष्ण-भगवान् कृष्ण को; आमि-मैं; नाहि जानि-नहीं जानता; आमार-मेरे; उद्धार-हेतु-उद्धार का कारण; तोमार-आपकी; कृपा-दया; मानि–मानता हूँ।

अनुवाद

सनातन ने उत्तर दिया, "मैं कृष्ण को नहीं जानता। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं तो एकमात्र आपकी कृपा से बन्दी-गृह से मुक्त किया जा सका हूँ।"

'केमने छुटिला' बलि प्रभु प्रश्न कैला।

आद्योपान्त सब कथा तेंहो शुनाइला ॥65॥

केमने छुटिला-तुम कैसे छूटे; बलि-यह कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; प्रश्न कैला–प्रश्न किया; आद्य-उपान्त-शुरू से आखिर तक; सब-सब; कथा-कथा; तेंहो- उन्होंने; शुनाइला-वर्णन की।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से पूछा, "तुम बन्दी-गृह से किस तरह छूटे?" अतः सनातन ने आदि से लेकर अन्त तक सारी कथा कह सुनाई।

प्रभु कहे,— "तोमार दुइ-भाइ प्रयागे मिलिला ।

रूप, अनुपम—दुँहे वृन्दावन गेला" ॥ 66 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तोमार-तुम्हारे; दुइ–भाइ–दोनों भाई, प्रयागे मिलिला–मुझे प्रयाग में मिले थे; रूप-रूप गोस्वामी; अनुपम–उनका भाई अनुपम; दुँहे-दोनों; वृन्दावन गेला-वृन्दावन चले गये हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं तुम्हारे दो भाइयों, रूप तथा अनुपम से प्रयाग में मिला था। अब वे वृन्दावन चले गये हैं।"

तपन-मिश्रेरे आर चन्द्रशेखरेरे ।

प्रभु-आज्ञाय सनातन मिलिला दोंहारे ॥ 67॥

तपन-मिश्रेरे–तपन मिश्र को; आर-और; चन्द्रशेखरेरे-चन्द्रशेखर को; प्रभु-आज्ञाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश से; सनातन-सनातन; मिलिला–मिले; दोंहारे-उन दोनों को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश से सनातन गोस्वामी तपन मिश्र तथा चन्द्रशेखर दोनों से मिले।

तपन-मिश्र तबे ताँरे कैला निमन्त्रण ।

प्रभु कहे,— 'क्षौर कराह, याह, सनातन' ॥ 68॥

तपन-मिश्र-तपन मिश्र ने; तबे-तब; ताँरे–उनको (सनातन गोस्वामी को); कैला-किया; निमन्त्रण निमन्त्रण; प्रभु कहे-चैतन्य महाप्रभु ने कहा; क्षौर कराह-हजामत बना लो; याह-जाओ; सनातन–मेरे प्रिय सनातन।

अनुवाद

तब तपन मिश्र ने सनातन गोस्वामी को निमन्त्रण दिया और श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन से कहा कि वे अपने बाल कटवा दें।

चन्द्रशेखरेरे प्रभु कहे बोलाञा ।

‘एइ वेष दूर कर, याह इँहारे लञा’ ॥ 69॥

चन्द्रशेखरेरे–चन्द्रशेखर को; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; बोलाञा-बुलाकर; एइ वेष-इस प्रकार की वेशभूषा; दूर कर-उतार दो; याह-जाओ; इँहारे लञा-उसे अपने साथ लेकर।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने चन्द्रशेखर को बुलाकर उनसे कहा कि सनातन गोस्वामी को अपने साथ ले जाएँ। उन्होंने उनसे यह भी कहा कि सनातन की यह वेशभूषा भी उतार दें।

भद्र कराञा ताँरे गङ्गा-स्नान कराइल ।

शेखर आनिया ताँरे नूतन वस्त्र दिल ॥ 70 ॥

भद्र कराञा–भद्र बनाकर; ताँरे–उन्हें; गङ्गा-स्नान-गंगा स्नान; कराइल-करवाया; शेखर–चन्द्रशेखर ने; आनिया-लाकर; ताँरे–उनको; नूतन-नये; वस्त्र-वस्त्र; दिल-दिये।

अनुवाद

तब चन्द्रशेखर ने सनातन गोस्वामी को भद्र पुरुष की तरह बना दिया। उन्होंने उन्हें गंगास्नान कराया और बाद में उन्हें नये कपड़े दिये।

तात्पर्य

इस श्लोक में भद्र कराना शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। लम्बे बाल, मूच्छे तथा दाढ़ी के कारण सनातन गोस्वामी दरवेश या हिप्पी जैसे लग रहे थे। चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु को सनातन के यह हिप्पी जैसे लक्षण अच्छे नहीं लगे, इसीलिए उन्होंने तुरन्त चन्द्रशेखर से कहा कि उनके बाल कटवा दें। इसलिए जो भी लम्बे बालों या दाढ़ी वाला व्यक्ति इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन में जुड़ना और हमारे साथ रहना चाहता है, उसे अपने बाल कटाकर स्वच्छ हो जाना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी लम्बे बालों को आपत्तिजनक मानते हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृपावश सनातन गोस्वामी को महारौरव से बचाया था। महारौरव वह नरक है, जहाँ कसाइयों को रखा जाता है। इस सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत (5.26.10-12) देखना चाहिए।

सेइ वस्त्र सनातन ना कैल अङ्गीकार।

शुनिया प्रभुर मने आनन्द अपार॥ 71॥

सेइ वस्त्र-वह नई पोशाक; सनातन-सनातन गोस्वामी; ना कैल-नहीं की; अङ्गीकार–स्वीकार; शुनिया-सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; मने-मन में; आनन्द अपार-अपार आनन्द हुआ।

अनुवाद

चन्द्रशेखर ने सनातन गोस्वामी को नये वस्त्र दिये, किन्तु सनातन ने उन्हें स्वीकार नहीं किया। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह समाचार सुना, तो उन्हें अपार आनन्द हुआ।

मध्याह्न करिया प्रभु गेला भिक्षा करिबारे।

सनातने लञा गेला तपन-मिश्रेर घरे ॥72॥

मध्याह्न करिया-दोपहर का स्नान करके; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला–गये; भिक्षा करिबारे–भोजन करने; सनातने–सनातन गोस्वामी को; लञा–लेकर; गेला-गये; तपन-मिश्रेर घरे-तपन मिश्र के घर।

अनुवाद

दोपहर में स्नान करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु तपन मिश्र के घर भोजन करने गये। वे अपने साथ सनातन गोस्वामी को भी लेते गये।

पाद-प्रक्षालन करि' भिक्षाते वसिला ।

'सनातने भिक्षा देह'–मिश्रेरे कहिला ॥73॥

पाद-प्रक्षालन-पाँव धोने के बाद; करि'-करके; भिक्षाते–भोजने के लिए; वसिला-बैठे; सनातने भिक्षा देह-सनातन गोस्वामी को भोजन दो; मिश्रेरे कहिला–तपन मिश्रा को कहा।

अनुवाद

अपने पाँव धोने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु भोजन करने बैठ गये। उन्होंने तपन मिश्र से कहा कि सनातन गोस्वामी को भी भोजन प्रदान करें।

मिश्र कहे,— 'सनातनेर किछु कृत्य आछे ।

तुमि भिक्षा कर, प्रसाद ताँरे दिब पाछे' ॥74॥

मिश्र कहे-तपन मिश्र ने कहा; सनातनेर-सनातन गोस्वामी का; किछु-कुछ; कृत्य-कार्य; आछे-है; तुमि भिक्षा कर-आप अपना प्रसाद ग्रहण कीजिये; प्रसाद-आपका शेष; ताँरे–उन्हें; दिब–मैं दूँगा; पाछे-बाद में।

अनुवाद

तब तपन मिश्र ने कहा, "सनातन को अभी कुछ कार्य करने हैं, अतः वे अभी भोजन नहीं कर सकते। भोजन समाप्त हो लेने पर मैं सनातन को शेष प्रसाद दूँगा।"

भिक्षा करि' महाप्रभु विश्राम करिल ।

मिश्र प्रभुर शेष-पात्र सनातने दिल ॥75 ॥

भिक्षा करि'-अपना भोजन ग्रहण करके; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; विश्राम करिल-विश्राम किया; मिश्र तपन मिश्र ने; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; शेष-पात्र-शेष प्रसाद का पात्र; सनातने दिल-सनातन को दे दिया।

अनुवाद

भोजन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने थोड़ा आराम किया। तपन मिश्र ने चैतन्य महाप्रभु द्वारा छोड़ा गया भोजन सनातन गोस्वामी को दिया।

मिश्र सनातने दिला नूतन वसन ।

वस्त्र नाहि निला, तेंहो कैल निवेदन ॥76 ॥

मिश्र-तपन मिश्र ने; सनातने–सनातन को; दिला–दिया; नूतन वसन–नया वस्त्र; वस्त्र-वस्त्र; नाहि निला–उन्होंने नहीं लिये; तेंहो–उन्होंने; कैल-की; निवेदन–विनति ।

अनुवाद

जब तपन मिश्र ने सनातन को नया वस्त्र दिया, तो उन्होंने नहीं लिया। अपितु उन्होंने इस प्रकार कहा।

"मोरे वस्त्र दिते यदि तोमार हय मन ।

निज परिधान एक देह' पुरातन" ॥77॥

मोरे-मुझे; वस्त्र दिते-वस्त्र देने की; यदि-यदि; तोमार-आपकी; हय-है; मन-इच्छा; निज-अपना; परिधान-वस्त्र; एक-एक; देह'-दीजिये; पुरातन-पुराना।

अनुवाद

"यदि आप मुझे कोई वस्त्र देना ही चाहते हैं, तो कृपया मुझे अपना पहना हुआ कोई पुराना वस्त्र दे दें।"

तबे मिश्र पुरातन एक धुति दिल ।

तेंहो दुइ बहिर्वास-कौपीन करिल ॥ 78 ॥

तबे-इसके बाद; मिश्र–तपन मिश्र ने पुरातन-पुरानी; एक-एक; धुति-धोती; दिल-दी; तेंहो–उन्होंने (सनातन गोस्वामी ने); दुइ-दो; बहिर्वास–बहिर्वास; कौपीन-कौपीन; करिल-बनाये।

अनुवाद

जब तपन मिश्र ने सनातन को एक पुरानी धोती दी, तो सनातन ने उसे फाड़कर दो अंगोछे तथा एक कौपीन बना लिया।

महाराष्ट्रीय द्विजे प्रभु मिलाइला सनातने ।

सेइ विप्र तौरे कैल महा-निमन्त्रणे ॥79॥

महाराष्ट्रीय-महाराष्ट्र के; द्विजे–ब्राह्मण को; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; मिलाइला-मिलवाया; सनातने–सनातन गोस्वामी से; सेइ-उस; विप्र-ब्राह्मण ने; तौरे-उन्हें; कैल-दिया; महा–पूर्ण; निमन्त्रणे निमन्त्रण।

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु ने महाराष्ट्रीय ब्राह्मण का सनातन से परिचय कराया, तो उस ब्राह्मण ने तुरन्त ही सनातन गोस्वामी को पूर्ण भोजन का निमन्त्रण दिया।

"सनातन, तुमि यावत् काशीते रहिबा ।

तावत् आमार घरे भिक्षा ये करिबा" ॥80 ॥

सनातन-हे सनातन; तुमि-आप; यावत्-जब तक; काशीते-बनारस में; रहिबा-रहेंगे; तावत्-तब तक; आमार-मेरे; घरे–घर में; भिक्षा–भोजन; ये-वह; करिबा-कृपया लीजिये।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने कहा, "हे प्रिय सनातन, तुम जब तक काशी में रहो, तब तक मेरे ही घर पर भोजन करो।"

सनातन कहे,— "आमि माधुकरी करिब ।

ब्राह्मणेर घरे केने एकत्र भिक्षा लब?" ॥ 81॥

सनातन कहे-सनातन ने उत्तर दिया; आमि-मैं; माधुकरी करिब–माधुकरी करके भोजन ग्रहण करूँगा; ब्राह्मणेर घरे–एक ब्राह्मण के घर में; केने-क्यों; एकत्र एक ही स्थान पर; भिक्षा लब-मैं भोजन ग्रहण करूँ।

अनुवाद

सनातन ने उत्तर दिया, "मैं माधुकरी की विधि अपनाऊँगा। मैं किसी ब्राह्मण के घर में पूरा भोजन क्यों स्वीकार करूँ?"

तात्पर्य

माधुकरी शब्द मधुकर से बना है, जो फूलों से मधु (शहद) एकत्र करने वाली मधुमक्खियों का द्योतक है। माधुकरी वह साधु है, जो किसी एक घर से पूरा भोजन ग्रहण करने के बदले द्वार-द्वार जाकर प्रत्येक गृहस्थ के घर से थोड़ा थोड़ा भोजन एकत्र करता है। इस तरह वह आवश्यकता से अधिक नहीं खाता और न ही गृहस्थों को वृथा तंग करता है। संन्यास आश्रम में व्यक्ति माँग तो सकता है, किन्तु वह भोजन नहीं पकाता है। उसका भिक्षाटन गृहस्थों के लिए बोझ नहीं बनना चाहिए। माधुकरी विधि का पालन विशेष रूप से बाबाजी लोगों को दृढ़ता से करना चाहिए, जिन्होंने परमहंस अवस्था प्राप्त कर ली है। वृन्दावन में आज भी यह प्रथा प्रचलित है और ऐसे अनेक स्थान हैं, जहाँ भिक्षा दी जाती है। दुर्भाग्यवश वृन्दावन में ऐसे अनेक भिखारी आ गये हैं, जो भिक्षा तो माँगते हैं, किन्तु सनातन गोस्वामी के नियमों का पालन नहीं करते। लोग उनकी नकल करके माधुकरी वृत्ति द्वारा आलसी जीवन बिताते हैं। सनातन गोस्वामी या रूप गोस्वामी का कठोरतापूर्वक अनुसरण करना लगभग असम्भव जैसा है। इससे अच्छा तो यही होगा कि मन्दिर में कृष्ण को अर्पित किया जाने वाला भोजन स्वीकार किया जाए और सनातन गोस्वामी और रूप गोस्वामी की नकल करने का प्रयास न किया जाए।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

“जो व्यक्ति नियमित रूप से भोजन, निद्रा, कार्य तथा आमोद-प्रमोद करता है, वह योगाभ्यास द्वारा भौतिक कष्टों को कम कर सकता है।” (भगवद्गीता 6.17)

आदर्श संन्यासी गोस्वामियों द्वारा निर्धारित विधियों का कठोरता से पालन करता है।

सनातनेर वैराग्ये प्रभुर आनन्द अपार ।

भोट-कम्बल पाने प्रभु चाहे बारे बार ॥82॥

सनातनेर-सनातन गोस्वामी के; वैराग्ये-वैराग्य द्वारा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; आनन्द–प्रसन्नता; अपार-असीमित; भोट-कम्बल-ऊनी कंबल; पाने-की ओर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चाहे-देखते हैं; बारे बार-बारम्बार।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी को संन्यास के सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन करते देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु को अपार आनन्द हुआ। किन्तु वे बारम्बार उस ऊनी कम्बल को देख रहे थे, जिसे सनातन गोस्वामी ने ओढ़ रखा था।

सनातन जानिल एइ प्रभुरे ना भाय ।

भोट त्याग करिबारे चिन्तिला उपाय ॥ 83 ॥

सनातन जानिल-सनातन गोस्वामी समझ गये; एई-यह; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; ना भाय–पसन्द नहीं है; भोट-ऊनी कंबल; त्याग-त्याग; करिबारे-करने का; चिन्तिला विचार किया; उपाय-उपाय।

अनुवाद

चूँकि श्री चैतन्य चैतन्य महाप्रभु इस कीमती ऊनी कम्बल को बारम्बार देख रहे थे, अतः सनातन गोस्वामी समझ गये कि यह महाप्रभु को पसन्द नहीं आ रहा है, अतएव वे इसे त्यागने के उपाय पर विचार करने लगे।

एत चिन्ति' गेला गङ्गाय मध्याह्न करिते ।

एक गौड़िया कान्था धुञा दियाछे शुकाइते ॥84॥

एत चिन्ति'-यह सोचकर; गेला–गये; गङ्गाय-गंगा के किनारे; मध्याह्न दोपहर का स्नान; करिते-करने के लिए; एक-एक; गौड़िया-बंगाली वैष्णव ने; कान्था-गुदड़ी; धुञा-धोकर; दियाछे–बिछायी थी; शुकाइते-सुखाने के लिए।

अनुवाद

यह सोचते हुए सनातन स्नान करने गंगा नदी के किनारे गये। वहाँ उन्होंने देखा कि बंगाल के एक साधु ने अपनी गुदड़ी धोकर सूखाने के लिए फैला रखी है।

तारे कहे,–"ओरे भाइ, कर उपकारे ।

एइ भोट लञा एइ काँथा देह' मोरे" ॥85॥

तारे कहे-उन्होंने उससे कहा; ओरे भाइ-हे मेरे भाई; कर उपकारे–कृपया एक उपकार करो; एइ भोट-एक ऊनी कंबल; लञा–लेकर; एइ–यह; काँथा-चादर; देह'–दे दो; मोरे-मुझे।

अनुवाद

तब सनातन ने उस बंगाली साधु से कहा, "अरे भाई, मुझ पर एक उपकार करो। इस ऊनी कम्बल के बदले अपनी गुदड़ी मुझे दे दो।"

सेइ कहे,— "रहस्य कर प्रामाणिक हञा? ।

बहु-मूल्य भोट दिबा केन काँथा लञा?" ॥86॥

सेइ कहे-उसने कहा; रहस्य-मजाक; कर-आप कर रहे हैं; प्रामाणिक हञा-एक प्रामाणिक व्यक्ति होकर भी; बहु-मूल्य-अत्यन्त कीमती; भोट-ऊनी कंबल; दिबा-आप देंगे; केन–क्यों; काँथा लञा-यह गुदड़ी लेकर।

अनुवाद

साधु ने उत्तर दिया, 'हे महाशय, आप तो सम्मानित भद्र व्यक्ति हैं। आप मुझसे परिहास क्यों कर रहे हैं? मेरी फटी गुदड़ी से आप अपना कीमती कंबल क्यों बदलना चाहेंगे?"

तेंहो कहे,–"रहस्य नहे, कहि सत्य-वाणी ।

भोट लह, तुमि देह' मोरे काँथा-खानि" ॥ 87॥

तेंहो कहे-उन्होंने कहा; रहस्य नहे-यह कोई मजाक नहीं है; कहि सत्य-वाणी-मैं सच कह रहा हूँ; भोट लह—यह कंबल लेकर; तुमि-तुम; देह'–दे दो; मोरे-मुझे; काँथा-खानि-गुदड़ी।

अनुवाद

सनातन ने कहा, "मैं परिहास नहीं कर रहा हूँ; मैं सच कह रहा हूँ। कृपया अपनी फटी गुदड़ी के बदले यह कम्बल ले लें।"

एत बलि' काँथा लइल, भोट ताँरे दिया ।

गोसाञि ठाञिआइला काँथा गले दिया ॥88॥

एत बलि'–ऐसा कहकर; काँथा लइल-उन्होंने गुदड़ी ले ली; भोट-कंबल; ताँरे-उसे; दिया-देकर; गोसाञि ठाञिन्-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; आइला-वापस आये; काँथा-गुदड़ी; गले-कँधे पर; दिया-रखकर।

अनुवाद

यह कहकर सनातन गोस्वामी ने कम्बल को गुदड़ी से बदल लिया। फिर वे अपने कन्धे में वह गुदड़ी डाले श्री चैतन्य महाप्रभु के पास लौट आये।

प्रभु कहे,— 'तोमार भोट-कम्बल कोथा गेल?' ।

प्रभु-पदे सब कथा गोसाञि कहिल ॥89॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तोमार-तुम्हारा; भोट-कम्बल-ऊनी कंबल; कोथा गेल–कहाँ चला गया; प्रभु-पदे-चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में; सब-सारी; कथा-घटना; गोसाञि-सनातन गोस्वामी ने; कहिल–कह दी।

अनुवाद

जब सनातन गोस्वामी लौटे तो महाप्रभु ने पूछा, "तुम्हारा ऊनी कम्बल कहाँ है?" तब सनातन ने महाप्रभु से सारी कहानी कह सुनाई।

प्रभु कहे,— "इहा आमि करियाछि विचार।

विषय-रोग खण्डाइल कृष्ण ये तोमार ॥90॥

से केने राखिबे तोमार शेष विषय-भोग?।

रोग खण्डि' सद्-वैद्य ना राखे शेष रोग ॥11॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; इहा-यह; आमि-मैंने; करियाछि विचार-गम्भीरतापूर्वक विचार किया; विषय-रोग-भौतिक आकर्षण का रोग; खण्डाइल-अब नष्ट हो गया है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; ये-क्योंकि; तोमार—तुम्हारा; से-भगवान् कृष्ण; केने-क्यों; राखिबे-तुम्हें रखने देंगे; तोमार-तुम्हारा; शेष-अन्तिम; विषय-भोग-भौतिक वस्तुओं के प्रति आकर्षण; रोग खण्डि'–रोग को नष्ट करके; सत्-वैद्य-एक अच्छा वैद्य; ना राखे-नहीं रखता; शेष-अन्तिम भाग; रोग–बीमारी।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं पहले ही इस विषय पर विचार कर चुका हूँ। चूँकि भगवान् कृष्ण अत्यन्त दयालु हैं, अतएव उन्होंने भौतिक वस्तुओं के प्रति तुम्हारी आसक्ति को खण्डित कर दिया है। भला कृष्ण तुम्हें भौतिक आसक्ति का अन्तिम चिह्न भी क्यों रखने देते? रोग को नष्ट करने के बाद अच्छा वैद्य रोग के किसी भाग को बचा रहने नहीं देता।

तिन मुद्रार भोट गाय, माधुकरी ग्रास।

धर्म-हानि हय, लोक करे उपहास" ॥92॥

तिन मुद्रार भोट-तीन सोने की मुद्रा के मूल्य वाला ऊनी कंबल; गाय-शरीर पर; माधुकरी ग्रास-तथा माधुकरी करना; धर्म-हानि हय-धर्म की हानि होगी; लोक करे उपहास-लोग मजाक उड़ायेंगे।

अनुवाद

"माधुकरी का अभ्यास तथा बहुमूल्य कम्बल ओढ़ना पारस्परिक विरोधी हैं। ऐसा करने से मनुष्य अपनी आध्यात्मिक शक्ति खो देता है और वह हँसी का पात्र बन जाता है।"

गोसाञि कहे,— "ये खण्डिल कुविषय-भोग ।

ताँर इच्छाय गेल मोर शेष विषय-रोग" ॥93 ॥

गोसाञि कहे-सनातन गोस्वामी ने कहा; ये खण्डिल-जिस व्यक्ति ने नष्ट किया; कु-विषय-भोग-पापमय भौतिक जीवन का भोग; ताँर इच्छाय-उन्हीं की कृपा द्वारा; गेल-चला गया; मोर-मेरा; शेष-अन्तिम अंश; विषय-रोग-भौतिक विषय भोग का रोग।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने मुझे इस भौतिक संसार के पापमय जीवन से बचा लिया है। उनकी इच्छानुसार भौतिक आकर्षण का मेरा अन्तिम चिह्न भी अब चला गया है।"

प्रसन्न हञा प्रभु ताँरे कृपा कैल ।

ताँर कृपाय प्रश्न करिते ताँर शक्ति हैल ॥ 94॥

प्रसन्न हञा–अत्यन्त प्रसन्न होकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे-उन्हें; कृपा कैल-अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान की; ताँर कृपाय-उनकी कृपा द्वारा; प्रश्न करिते-प्रश्न करने की; ताँर-उन्हें; शक्ति हैल-शक्ति प्राप्त हुई।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी से प्रसन्न होकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान की। भगवान् की कृपा से सनातन गोस्वामी ने उनसे प्रश्न करने की आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त की।

पूर्वे यैछे राय-पाशे प्रभु प्रश्न कैला ।

ताँर शक्त्ये रामानन्द ताँर उत्तर दिला ॥ 95॥

इहाँ प्रभुर शक्त्ये प्रश्न करे सनातन ।

आपने महाप्रभु करे 'तत्त्व'-निरूपण ॥ 96 ॥

पूर्वे-पहले; यैछे-जिस प्रकार; राय-पाशे-रामानन्द राय से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रश्न कैला–प्रश्न किया; ताँर शक्त्ये—उन्हीं की कृपा से; रामानन्द-रामानन्द राय; ताँर–उनके; उत्तर-उत्तर; दिला–दे पाये; इहाँ–यहाँ; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; शक्त्ये-शक्ति द्वारा; प्रश्न-प्रश्न; करे-करते हैं; सनातन-सनातन गोस्वामी; आपने-स्वयं; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करे-करते हैं; तत्त्व-तथ्य; निरूपण-वर्णन।

अनुवाद

इसके पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से आध्यात्मिक प्रश्न पूछे थे, जिनका रामानन्द राय ने महाप्रभु की अहैतुकी कृपा से सही-सही उत्तर दिया था। अब श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से सनातन गोस्वामी महाप्रभु से प्रश्न पूछ रहे थे और स्वयं महाप्रभु ने सत्य का प्रतिपादन किया।

कृष्ण-स्वरूप-माधुर्यैश्वर्य-भक्ति-रसाश्रयम् ।

तत्त्वं सनातनायेशः कृपयोपदिदेश सः ॥ 97 ॥

कृष्ण-स्वरूप-श्रीकृष्ण के वास्तविक स्वरूप के; माधुर्य-माधुर्य प्रेम के; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य के; भक्ति–प्रेमभक्ति के; रस-दिव्य रसों के; आश्रयम्-आश्रय; तत्त्वम्-तत्त्व को; सनातनाय-श्री सनातन को; ईशः–परम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कृपया-अपनी अहैतुकी कृपा से; उपदिदेश-उपदेश दिया; सः–उन्होंने।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं सनातन गोस्वामी को भगवान् कृष्ण के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में बताया। उन्होंने भगवान् के माधुर्य प्रेम, उनके निजी ऐश्वर्य तथा भक्ति-रस के विषय में भी बतलाया। महाप्रभु ने ये सारे तत्त्व अपनी अहैतुकी कृपावश सनातन गोस्वामी को बतलाये।

तबे सनातन प्रभुर चरणे धरिया ।

दैन्य विनति करे दन्ते तृण लञा ॥98॥

तबे-फिर; सनातन-सनातन गोस्वामी; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणे-चरणकमलों को; धरिया-पकड़कर; दैन्य-विनम्र; विनति–प्रार्थना; करे-करते हैं; दन्ते-दाँतों में; तृण-एक तिनका; लञा-रखकर।

अनुवाद

अपने मुँह में एक तिनका रखकर तथा शीश झुकाकर सनातन गोस्वामी ने महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिए और विनीत होकर इस प्रकार कहा।

“नीच जाति, नीच-सङ्गी, पतित अधम ।

कुविषय-कूपे पड़ि’ गोडाइनु जनमः ॥ 99 ॥

नीच जाति–एक नीच कुल में जन्मा; नीच-सङ्गी-नीच लोगों के संग में रहा; पतित-पतित; अधम-अधम; कु-विषय-कूपे–विषय भोग के कुएँ में; पड़ि'-गिरकर; गोङगइनु-मैंने गवाँ दिया; जनम-अपना जीवन।

अनुवाद

"मैं निम्न परिवार में जन्मा था और मेरे संगी भी निम्नवर्ग के लोग हैं। मैं स्वयं पतित और अधम हूँ। निस्सन्देह, मैंने अपना सारा जीवन पापमय भौतिकता के कुएँ में गिरकर बिताया है।

तात्पर्य

वास्तव में श्री सनातन गोस्वामी सारस्वत ब्राह्मण कुल के थे और अत्यन्त सुसंस्कृत तथा सुशिक्षित थे। किसी न किसी तरह उन्होंने मुस्लिम सरकार में मन्त्री पद स्वीकार कर लिया था; अतएव उनकी संगति मांसाहारियों, शराबियों तथा निपट भौतिकतावादियों से रहती थी। सनातन गोस्वामी अपने आपको पतित मानते थे, क्योंकि ऐसे लोगों की संगति में वे भी भौतिक भोग के शिकार बन चुके थे। उस दशा में जीवन बिताते हुए उन्होंने सोचा कि उन्होंने अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ ही आँवा दिया था। कोई व्यक्ति किस तरह इस भौतिक जगत् में पतित हो जाता है, इसका कथन यहाँ गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के सबसे बड़े अधिकारी द्वारा किया जा रहा है। वस्तुतः आज सारा जगत् भौतिक अस्तित्व में गिरा हुआ है। हर व्यक्ति मांसाहारी, शराबी, जुआरी, स्त्रियों के पीछे भागने वाला है। लोग चार मूल पाप करके भौतिक जीवन भोग रहे हैं। पतित होते हुए भी यदि वे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर आत्म-समर्पण करें, तो वे पापकर्मों के फलों से बच सकते हैं।

आपनार हिताहित किछुइ ना जानि! ।

ग्राम्य-व्यवहारे पण्डित, ताइ सत्य मानि ॥100॥

आपनार-अपना; हित-भला; अहित-बुरा; किछुइ-कुछ भी; ना जानि-मैं नहीं जानता; ग्राम्य-व्यवहारे-सामान्य व्यवहार में; पण्डित–एक विद्वान; ताइ सत्य मानि–मैंने उसे सत्य मान लिया।

अनुवाद

"मैं नहीं जानता कि मेरे लिए क्या लाभप्रद है और क्या हानिप्रद है। फिर भी सामान्य व्यवहार में लोग मुझे विद्वान पंडित मानते हैं और मैं भी अपने आपको ऐसा ही सोचता हूँ।

कृपा करि' यदि मोरे करियाछ उद्धार ।

आपन-कृपाते कह कर्तव्य' आमार ॥101॥

कृपा करि'-अपनी अहैतुकी कृपा द्वारा; यदि-यदि; मोरे-मेरा; करियाछ–आपने किया है; उद्धार-उद्धार; आपन-कृपाते-अपनी ही कृपा द्वारा; कह-कृपया कहिये; कर्तव्य आमार-मेरा कर्तव्य।

अनुवाद

आपने अपनी अहैतुकी कृपा द्वारा भौतिकतावादी मार्ग से मेरा उद्धार कर दिया है। अब उसी अहैतुकी कृपा से आप मुझे मेरे कर्तव्य के विषय में बतलायें।

'के आमि', 'केने आमाय जारे ताप-त्रय' ।

इहा नाहि जानि—'केमने हित हय' ॥102॥

के आमि-मैं कौन हूँ; केने-क्यों; आमाय-मुझे; जारे-कष्ट देते हैं; ताप-त्रय-तीन प्रकार की दुःखदायक स्थितियाँ; इहा-यह; नाहि जानि–मैं नहीं जानता; केमने-किस प्रकार; हित-मेरा भला; हय-हो।

अनुवाद

'मैं कौन हूँ? तीनों ताप मुझे निरन्तर कष्ट क्यों देते हैं? यदि मैं यह नहीं जानता, तो फिर मैं किस प्रकार लाभान्वित हो सकता हूँ?

तात्पर्य

तीन प्रकार के भौतिक दु:ख शरीर तथा मन से, अन्य जीवों के प्रति किये जाने वाले व्यवहारों से तथा प्राकृतिक उत्पातों से उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी हमें शारीरिक कष्ट होता है, जब हम ज्वर से पीड़ित होते हैं। हमें मानसिक कष्ट तब होता है, जब हमारे कोई निकट सम्बन्धी की मृत्यु होती है। अन्य जीव भी हमें कष्ट पहुँचाते हैं। ये जीव मानवभ्रूण, अण्डों, पसीने तथा वनस्पति से उत्पन्न होते हैं। प्राकृतिक विपदाओं द्वारा उत्पन्न कष्टदायक परिस्थितियाँ देवताओं द्वारा नियन्त्रित होती हैं। घोर शीत, वज्रपात या प्रेतों द्वारा मनुष्य सताया जा सकता है। ये तीनों प्रकार के कष्ट सदैव हमारे समक्ष रहते हैं और वे हमें गम्भीर स्थिति में जकड़ लेते हैं। पदं पदं यद् विपदाम् । जीवन में पग-पग पर विपदा आती है।

'साध्य'-'साधन'-तत्त्व पुछिते ना जानि ।

कृपा करि' सब तत्त्व कह त' आपनि" ॥103 ॥

साध्य-आध्यात्मिक जीवन के लक्ष्य का; साधन–उस लक्ष्य को प्राप्त करने की विधि का; तत्त्व-रहस्य; पुछिते-पूछने की विधि; ना जानि–मैं नहीं जानता; कृपा करि'–अपनी अहुतकी कृपा द्वारा; सब तत्त्व-ऐसे सभी तथ्य; कह त' आपनि–कृपया स्वयं मुझे बताइये।

अनुवाद

"वास्तविकता तो यह है कि मैं नहीं जानता कि जीवन के लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने की विधि के विषय में किस तरह पूछू। आप मुझ पर कृपा करके इन तत्त्वों को मुझे बतलायें।"

प्रभु कहे,— "कृष्ण-कृपा तोमाते पूर्ण हय ।

सब तत्त्व जान, तोमार नाहि ताप-त्रय ॥ 104॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कहे-कहा; कृष्ण-कृपा-कृष्ण की कृपा; तोमाते-तुम पर; पूर्ण–पूरी; हय-है; सब तत्त्व-सारे तथ्य; जान-तुम जानते हो; तोमार-तुम्हें; नाहि-नहीं है; ताप-त्रय–तीन प्रकार के दुःख।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "तुम पर भगवान् कृष्ण की पूरी कृपा है, जिसके कारण तुम्हें ये सारी बातें ज्ञात हैं। तुम्हारे लिए तीनों तापों का अस्तित्व नहीं है।

कृष्ण-शक्ति धर तुमि, जान तत्त्व-भाव ।

जानि' दार्ढ्य लागि' पुछे,—साधुर स्वभाव ॥105॥

कृष्ण-शक्ति-भगवान् कृष्ण की शक्ति; धर-धारण करते हो; तुमि-तुम; जान-जानते हो; तत्त्व-भाव-वास्तविक सत्य; जानि'–ये सब जानते हुए भी; दार्ढ्य लागि'-दृढ़ता के लिए; पुछे-पूछता है; साधुर–एक साधु का; स्वभाव-स्वभाव।

अनुवाद

"चूँकि तुम्हें कृष्ण की शक्ति प्राप्त है, अतएव तुम इन बातों को जानते हो। किन्तु प्रश्न करना तो साधु का स्वभाव है। यद्यपि साधु इन बातों को जानता है, किन्तु अपने में दृढ़ता लाने के लिए वह प्रश्न करता है।

अचिरादेव सर्वार्थः सिध्यत्येषामभीप्सितः ।

सद्धर्मस्यावबोधाय येषां निर्बन्धिनी मतिः ॥106 ॥

अचिरात्-बहुत जल्दी; एव-निश्चित रूप से; सर्व-अर्थः-जीवन का लक्ष्य सिध्यति–सिद्ध हो जाता है; एषाम्-इन लोगों का; अभीप्सितः–इच्छित; सत्-धर्मस्य-प्रेमभक्ति के पथ को; अवबोधाय-समझने के लिए; येषाम्-जिनकी; निर्बन्धिनी–एकनिष्ठ; मतिः–बुद्धि।

अनुवाद

"जो लोग अपनी आध्यात्मिक चेतना जगाने के लिए उत्सुक हैं, जिन लोगों के पास अविचल बुद्धि है और जो विचलित नहीं होते, वे अवश्य ही अति शीघ्र जीवन का इच्छित लक्ष्य प्राप्त करते हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक नारदीय पुराण का है और भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.103) में आया है।

स्रोग्य-पात्र हओ तुमि भक्ति प्रवर्ताइते ।

क्रमे सब तत्त्व शुन, कहिये तोमाते ॥107॥

योग्य-पात्र-योग्य व्यक्ति; हओ-हो; तुमि-तुम; भक्ति-प्रेमभक्ति के प्रवर्ताइते-प्रसारण के लिए; क्रमे क्रमपूर्वक; सब-सभी; तत्त्व-तथ्य; शुन–कृपया सुनो; कहिये-मैं कहूँगा; तोमाते-तुम्हें।

अनुवाद

"तुम भक्ति सम्प्रदाय का प्रसार करने के लिए योग्य हो। अतएव एक-एक करके मुझसे सारे तत्त्वों के विषय में सुनो। मैं तुम्हें उनके बारे में बतलाऊँगा।

जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर 'नित्य-दास' ।

कृष्णेर 'तटस्था-शक्ति' 'भेदाभेद-प्रकाश' ॥ 108॥

सूर्यांश-किरण, यैछे अग्नि-ज्वाला-चय ।

स्वाभाविक कृष्णेर तिन-प्रकार 'शक्ति' हय ॥ 109॥

जीवेर-जीवात्मा की; स्वरूप-वैधानिक अवस्था; हय-है; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; नित्य-दास–नित्य सेवक; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; तटस्था-तटस्था; शक्ति-शक्ति; भेद-अभेद-एक समान तथा

भिन्न; प्रकाश-अभिव्यक्त; सूर्य-अंश-सूर्य का अंश; किरण-सूर्य प्रकाश की किरण; यैछे-जिस प्रकार; अग्नि-ज्वाला-चय-अग्नि का अणु अंश; स्वाभाविक-स्वाभाविक रूप से; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; तिन-प्रकार-तीन प्रकार की; शक्ति–शक्तियाँ; हय-हैं।

अनुवाद

"कृष्ण का सनातन सेवक होना जीव की वैधानिक स्थिति है, क्योंकि जीव कृष्ण की तटस्था शक्ति है और वह भगवान् से एक ही समय उसी तरह अभिन्न और भिन्न है, जिस तरह सूर्य-प्रकाश या अग्नि का एक कण। कृष्ण की शक्ति के तीन प्रकार हैं।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इन श्लोकों का अर्थ इस प्रकार दिया है : श्री सनातन गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से पूछा, "मैं कौन हूँ?" इसके उत्तर में महाप्रभु ने कहा, "तुम शुद्ध जीव हो। तुम न तो भौतिक शरीर हो, न ही मन तथा बुद्धि से निर्मित सूक्ष्म शरीर हो। वस्तुतः तुम आत्मा हो–सर्वोपरि आत्मा कृष्ण के शाश्वत अंश हो। अतएव तुम कृष्ण के नित्य दास हो। तुम कृष्ण की तटस्था शक्ति हो। जगत् दो प्रकार के हैं-भौतिक जगत् तथा आध्यात्मिक जगत्-और तुम भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के बीच स्थित हो। तुम्हारा सम्बन्ध भौतिक तथा आध्यात्मिक-दोनों जगतों से है, इसलिए तुम तटस्था शक्ति कहलाते हो। तुम कृष्ण से एक होकर भी भिन्न रूप से सम्बन्धित हो। आत्मा होने के कारण तुम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समान गुण वाले हो, किन्तु आत्मा का एक सूक्ष्म कण होने के कारण तुम सर्वोपरि आत्मा से भिन्न हो। अतएव तुम्हारी स्थिति परमात्मा से अभिन्न होकर भी भिन्न है। जो उदाहरण दिये गये हैं, वे सूर्य तथा सूर्य प्रकाश के सूक्ष्म कणों के एवं प्रज्वलित अग्नि तथा उसके सूक्ष्म कणों के हैं। इन श्लोकों की अन्य व्याख्या आदिलीला, अध्याय 2, श्लोक 96 में दी हुई है।

एक-देश-स्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा ।

परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत् ॥ 110॥

एक-देश-एक स्थान पर; स्थितस्य–स्थित; अग्नेः-अग्नि की; ज्योत्स्ना-चमक; विस्तारिणी-सब जगह फैलती है; यथा-जिस प्रकार; परस्य–परम की; ब्रह्मणः-परम सत्य की; शक्तिः–शक्ति; तथा-उसी प्रकार; इदम्-यह; अखिलम्-सम्पूर्ण; जगत्-सृष्टि।

अनुवाद

"जिस तरह एक स्थान पर रखी अग्नि का प्रकाश सर्वत्र फैलता है, उसी तरह परब्रह्म अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्तियाँ इस ब्रह्माण्ड-भर में फैली हुई हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण विष्णु पुराण (1.22.53) का है।

कृष्णेर स्वाभाविक तिन-शक्ति-परिणति ।

चिच्छक्ति, जीव-शक्ति, आर माया-शक्ति ॥111॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; स्वाभाविक-स्वाभाविक; तिन–तीन; शक्ति-शक्तियों का; परिणति-रूपांतरण; चित्-शक्ति-आध्यात्मिक शक्ति; जीव-शक्ति-आध्यात्मिक स्फुलिंग, जीवात्मा; आर-तथा; माया-शक्ति-मायाशक्ति।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण के स्वभावतः तीन शक्ति-रूपान्तर हैं। इनके नाम हैं-आध्यात्मिक शक्ति, जीव शक्ति तथा माया शक्ति।

विष्णु-शक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथा परा ।

अविद्या-कर्म-संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥112॥

विष्णु-शक्तिः–भगवान् विष्णु की शक्ति; परा–आध्यात्मिक; प्रोक्ता–कहलाती है; क्षेत्र-ज्ञ-आख्या-क्षेत्रज्ञ नामक शक्ति; तथा-और साथ ही; परा-आध्यात्मिक; अविद्या-अज्ञान; कर्म-सकाम कर्म; संज्ञा–नामक; अन्या-अन्य; तृतीया-तीसरी; शक्तिः–शक्ति; इष्यते-कहलाती है।

अनुवाद

"मूल रूप से कृष्ण की शक्ति आध्यात्मिक है और जीव शक्ति भी आध्यात्मिक है। किन्तु एक शक्ति और भी है, जिसे माया कहते हैं, जो सकाम कर्मों से बनी होती है। यही भगवान् की तीसरी शक्ति है।'

तात्पर्य

यह श्लोक भी विष्णु पुराण (6.7.61) से उधृत है। इस श्लोक की अधिक व्याख्या के लिए आदिलीला, अध्याय 7, श्लोक 119 देखें।

शक्तयः सर्व-भावानामचिन्त्य-ज्ञान-गोचराः

यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भाव-शक्तयः ।

भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता ॥ 113॥

शक्तयः–शक्तियाँ; सर्व-भावानाम्-सब प्रकार की सृष्टि की; अचिन्त्य–अद्भुत; ज्ञान-गोचराः-मनुष्य के ज्ञान की सीमा द्वारा; यतः-जिसके द्वारा; अतः-इसलिए; ब्रह्मणः-परम सत्य की; ताः-वे; तु-परन्तु; सर्ग-आद्याः-सृष्टि, पालन तथा प्रलय करने वाली; भाव-शक्तयः-सृजनात्मक शक्तियाँ; भवन्ति-हैं; तपताम्-सभी तपस्वियों में; श्रेष्ठ-हे श्रेष्ठ; पावकस्य-अग्नि की; यथा-जिस प्रकार; उष्णता–गर्मी।

अनुवाद

"सारी सृजनात्मक शक्तियाँ परम अद्वय सत्य में विद्यमान रहती हैं। सामान्य व्यक्ति के लिये यह अचिन्त्य होती है। ये अचिन्त्य शक्तियाँ सृजन, पालन तथा संहार की विधि में कार्य

करती हैं। हे श्रेष्ठ तपस्वी, जिस तरह अग्नि में दो शक्तियाँ-ऊष्मा तथा प्रकाश-होती हैं, उसी तरह यह अचिन्त्य शक्तियाँ परम सत्य के स्वाभाविक गुण हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण भी विष्ण-पराण (1.3.2) का है।

यया क्षेत्र-ज्ञ-शक्तिः सा वेष्टिता नृप सर्व-गा ।

संसार-तापानखिलानवाप्नोत्यत्र सन्ततान् ॥ 114॥

यया–जिसके द्वारा; क्षेत्र-ज्ञ-शक्तिः -श्रेत्रज्ञ शक्ति नामक जीवात्मा; सा-वह शक्ति; वेष्टिता-आवृत; नृप-हे राजन्; सर्व-गा–भौतिक तथा आध्यात्मिक जगत् में कही भी जाने में समर्थ; संसार-तापान्–बारम्बार जन्म-मृत्यु के चक्र के कारण उत्पन्न कष्ट; अखिलान्–सभी प्रकार के; अवाप्नोति-प्राप्त करता है; अत्र-इस भौतिक जगत् में; सन्ततान्–सकाम कर्मों के विभिन्न परिणामों को भोगने द्वारा उत्पन्न।

अनुवाद

"'हे राजन, क्षेत्रज्ञ शक्ति तो जीव है। यद्यपि उसे भौतिक जगत् अथवा आध्यात्मिक जगत् में रहने की सुविधा प्राप्त है, किन्तु वह भौतिक अस्तित्व के तीन तापों को भोगता है, क्योंकि उसे अविद्या शक्ति प्रभावित करती रहती है, जो उसकी वैधानिक स्थिति को आच्छादित कर देती है।

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगला श्लोक भी विष्णु पुराण (6.7.62-63) से लिये गये हैं।

तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः क्षेत्र-ज्ञ-संज्ञिता ।

सर्व-भूतेषु भू-पाल तारतम्येन वर्तते ॥115॥

तया-उसके (अविद्या) द्वारा; तिरोहितत्वात्-प्रभावित होने के कारण; च-तथा; शक्तिः–शक्ति; क्षेत्र-ज्ञ-संज्ञिता-श्रेत्रज्ञ नामक; सर्व-भूतेषु विभिन्न प्रकार के शरीरों में; भू-पाल–हे राजन्; तारतम्येन-विभिन्न मात्राओं में; वर्तते-रहती है।

अनुवाद

"अविद्या के प्रभाव से आच्छादित यह जीव विभिन्न भौतिक स्थिति में विविध रूपों में विद्यमान रहता है। हे राजा, इस तरह वह कम या अधिक मात्रा में भौतिक शक्ति के प्रभाव से मुक्त होता रहता है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि में पराम् ।

जीव-भूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ 116 ॥

अपरा-निकृष्ट शक्ति; इयम्-यह भौतिक जगत्; इतः-इससे परे; तु-परन्तु; अन्याम्-एक अन्य; प्रकृतिम्-शक्ति; विद्धि-तुम जान लो; मे-मेरी; पराम्-उत्कृष्ट (शक्ति); जीव-भूताम्-जीवात्मा; महा-बाहो-हे महाबाहु (अर्जुन); यया–जिसके द्वारा; इदम्-यह भौतिक जगत्; धार्यते-संचालित किया जाता है; जगत्-भौतिक जगत् ।

अनुवाद

"'हे महाबाहु अर्जुन, इस अपरा शक्ति के अतिरिक्त मेरी एक परा शक्ति भी है, जो जीवों से बनी है, जो कि निःकृष्ट भौतिक शक्ति के स्रोतों का शोषण कर रहे हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक भगवद्गीता (7.5) का है। यह आदिलीला, अध्याय 7, श्लोक 118 में भी आया है।

कृष्ण भुलि' सेइ जीव अनादि-बहिर्मुख ।

अतएव माया तारे देय संसार-दुःख ॥ 117॥

कृष्ण भुलि'–कृष्ण को भूलकर; सेइ जीव-वह जीवात्मा; अनादि-अनादि काल से; बहिर्-मुख-बाह्य रूप द्वारा आकर्षित; अतएव-इसलिए; माया-मायाशक्ति; तारे-उसे; देय-देती है; संसार-दुःख-भौतिक जगत् के कष्ट।

अनुवाद

"जीव अनन्त काल से कृष्ण को भूलकर बाह्य रूप द्वारा आकृष्ट होता रहा है, अतः माया उसे इस भौतिक संसार में सभी प्रकार के दुःख देती रहती है।

तात्पर्य

जब जीव कृष्ण के सनातन सेवक के रूप में अपनी वैधानिक स्थिति को भुला देता है, तब वह तुरन्त माया के पाश में फँस जाता है। जीव मूलतः कृष्ण का अंश है, अतः कृष्ण की परा शक्ति है। उसे सूक्ष्म मात्रा में अचिन्त्य शक्ति प्राप्त है, जो उसके शरीर के भीतर अचिन्त्य रीति से कार्य करती है। किन्तु जीव अपनी स्थिति भूलकर भौतिक शक्ति में स्थित रहता है। जीव तटस्था शक्ति कहलाता है, क्योंकि स्वभाव से वह आध्यात्मिक है, किन्तु विस्मृति के कारण भौतिक शक्ति में स्थित रहता है। अतएव वह या तो भौतिक शक्ति या फिर आध्यात्मिक शक्ति में रहने में समर्थ है और इसीलिए वह तटस्था शक्ति कहलाता है। इस तटस्था स्थिति में रहते हुए कभी-कभी वह बाह्य शक्ति माया से आकृष्ट होता है, तो यह उसके भौतिक जीवन का प्रारम्भ है। जब यह भौतिक शक्ति में प्रवेश करता है, तब उसे काल की तिहरी माप-भूत, वर्तमान तथा भविष्य-प्रभावित करती है। भूत, वर्तमान तथा भविष्य केवल भौतिक जगत् में होते हैं, आध्यात्मिक जगत् में ये नहीं होते। जीव शाश्वत है और वह इस भौतिक जगत् की सृष्टि के पूर्व से विद्यमान है। दुर्भाग्यवश वह कृष्ण से अपने सम्बन्ध को भूल चुका है। यहाँ पर जीव की विस्मृति को अनादि कहा गया है, जो यह सूचित करता है कि यह अनन्त काल से चला आ रहा है। मनुष्य को

यह समझना चाहिए कि कृष्ण स्पर्धा करके भोग करने की अपनी इच्छा के फलस्वरूप ही वह इस भौतिक जगत् में आता है।

कभु स्वर्गे उठाय, कभु नरके डुबाय ।

दण्ड्य-जने राजा येन नदीते चुबाय ॥118॥

कभु-कभी; स्वर्गे-उच्च लोकों में; उठाय-उठाया जाता है; कभु-कभी; नरके-नारकीय जीवन की स्थिति में; डुबाय-वह डुबाया जाता है; दण्ड्य-जने–एक अपराधी को; राजा-एक राजा; येन-जिस प्रकार; नदीते-नदी में; चुबाय-डुबाता और निकालता है।

अनुवाद

"भौतिक अवस्था में जीव कभी उच्चतर ग्रह-मण्डलों में तथा भौतिक समृद्धि तक ऊपर उठा दिया जाता है, तो कभी नरक में डुबो दिया जाता है। उसकी अवस्था ठीक उस अपराधी जैसी है, जिसे राजा पानी में बारम्बार डुबोये और निकाले जाने का दण्ड देता है।

तात्पर्य

बृहदारण्यक उपनिषद् (4.3.16) में कहा गया है-असङ्गो हि अयं पुरुषः-जीव सदा भौतिक जगत् के कल्मष से मुक्त होता है। जो व्यक्ति भौतिक जगत् द्वारा दूषित नहीं होता और कृष्ण को अपने स्वामी के रूप में नहीं भूलता, वह नित्य-मुक्त कहलाता है। दूसरे शब्दों में, जो भौतिक कल्मष से सदा मुक्त है, वह नित्यमुक्त कहलाता है। नित्यमुक्त जीव सनातन काल से कृष्ण का भक्त रहा है और उसका एकमात्र प्रयास कृष्ण की सेवा करना होता है। इस तरह वह कृष्ण की नित्य दासता को कभी नहीं भूलता। जो भी जीव कृष्ण से अपने नित्य सम्बन्ध को भूल जाता है, वह भौतिकता में लिप्त होता है। भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति से विहीन होकर वह सकाम कर्मों के फलों के अधीन हो जाता है। जब वह सांसारिक पुण्य कार्यों के कारण स्वर्गलोक जाता है, तो वह अपने आपको उचित स्थान पर पाता है, किन्तु जब

उसे दण्डित किया जाता है, तो वह सोचता है कि वह ठीक स्थान पर नहीं आया। इस प्रकार भौतिक प्रकृति जीव को पुरस्कृत करती है और दण्डित भी करती है। जब जीव भौतिक रूप से ऐश्वर्यवान होता है, तब प्रकृति उसे पुरस्कृत कर रही है और जब वह भौतिक दृष्टि से चिन्ताग्रस्त रहता है, तब भौतिक प्रकृति उसे दण्ड दे रही है।

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्याद् ।

ईशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ।

तन्माययातो बुध आभजेत्तं

भक्त्यैकयेशं गुरु-देवतात्मा ॥119॥

भयम्-डर; द्वितीय-अभिनिवेशतः–स्वयं को भौतिक शक्ति से उत्पन्न समझने की भ्रांत धारणा द्वारा; स्यात् उत्पन्न होता है; ईशात्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण से; अपेतस्य-जो (बद्धजीव) विमुख हो गया; विपर्ययः–विपरीत परिस्थिति; अस्मृतिः-परम भगवान् से अपने सम्बन्ध की धारणा से रहित; तत्-मायया--परम भगवान् की माया शक्ति के कारण; अतः-इसलिए; बुधः-जो बुद्धिमान है; आभजेत्-उपासना करें; तम्-उनकी; भक्त्या–प्रेम भक्ति द्वारा; एकया-कर्म तथा ज्ञान से अबाधित; ईशम्पू र्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को; गुरु-आध्यात्मिक गुरु की तरह; देवता–आराध्य भगवान्; आत्मा-परमात्मा।

अनुवाद

“जब जीव कृष्ण से भिन्न ऐसी भौतिक शक्ति द्वारा आकृष्ट होता है, तब वह भय द्वारा ग्रस्त हो जाता है। भौतिक शक्ति द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अलग होने के कारण जीवन के प्रति उनकी दृष्टि बदल जाती है। दूसरे शब्दों में, वह कृष्ण का नित्य दास होने के बदले कृष्ण का प्रतियोगी बन जाता है। इसे विपर्ययोऽस्मृतिः कहते हैं। इस भूल को निरस्त करने के लिए वास्तव में विद्वान तथा उन्नत व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा अपने गुरु, आराध्य देवता

तथा जीवन के स्रोत के रूप में करता है। इस तरह वह अनन्य भक्ति की विधि से भगवान् की पूजा करता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.2.37) का है। यह नौ योगेन्द्रों में से एक, कवि ऋषि द्वारा दिया गया उपदेश है। जब द्वारका में कृष्ण के पिता वसुदेव ने देवर्षि नारद से भक्ति के विषय में पूछा, तो यह बताया गया कि विदेह के राजा निमि को नौ योगेन्द्रों ने पहले उपदेश दिया था। जब श्री नारद मुनि ने भागवत धर्म अर्थात् भक्तिमय सेवा पर प्रवचन दिया, तब उन्होंने बताया कि किस तरह बद्धजीव भगवान् की दिव्य सेवा में संलग्न रहकर मुक्त हो सकता है। भगवान् समस्त बद्ध आत्माओं के परमात्मा, गुरु तथा पूज्य देव हैं। कृष्ण समस्त जीवों के न केवल परम पूज्य देव ही हैं, अपितु वे गुरु अथवा चैत्यगुरु-परमात्मा भी हैं, जो जीव को सदैव अच्छा उपदेश देते हैं। दुर्भाग्यवश जीव परम भगवान् के उपदेशों की उपेक्षा करता है। इस तरह वह अपने आपको भौतिक शक्ति मान बैठता है, जिसके फलस्वरूप वह अपने आपको शरीर मानने तथा शरीर से सम्बन्धित सामग्री को अपनी सम्पत्ति मानने से उत्पन्न भय का शिकार बन जाता है। वस्तुतः सकाम कर्म के समस्त फल आत्मा से आते हैं, किन्तु जीव अपने वास्तविक कर्तव्य को भुला देने के कारण ऐसे भय तथा आसक्ति के अनेक भौतिक परिणामों से चिन्तित रहता है। भगवान् की सेवा में दोबारा लग जाना, वही इसका एकमात्र उपाय है, जिससे भौतिक प्रकृति के अवांछित उत्पीड़न से बचा जा सकता है।

साधु-शास्त्र-कृपाय यदि कृष्णोन्मुख हय ।

सेइ जीव निस्तरे, माया ताहारे छाड़य ॥120॥

साधु-साधुओं की; शास्त्र-शास्त्रों की; कृपाय-कृपा द्वारा; यदि यदि; कृष्ण-उन्मुख हय-कोई कृष्णभावनाभावित हो जाता है; सेइ-वह; जीव-जीवात्मा; निस्तरे-मुक्त हो जाता है; माया–माया शक्ति; ताहारे-उसे; छाड़य–छोड़ देती है।

अनुवाद

"यदि कोई बद्धजीव किसी ऐसे साधु पुरुष की कृपा से कृष्णभावनाभावित हो जाता है, जो उसे शास्त्रों का उपदेश देता रहता है। और उसे कृष्णभावनाभावित होने में सहायता देता है, तो वह बद्धजीव माया के पाश से मुक्त हो जाता है, क्योंकि माया उसे छोड़ देती है।

तात्पर्य

बद्धजीव वह है, जो कृष्ण को अपने सनातन स्वामी के रूप में भुला चुका है। बद्धजीव यह सोचकर कि वह भौतिक जगत् का उपभोग कर रहा है, इस भौतिक जगत् के तीनों कष्टों को सहन करता है। साधुगण, अर्थात् भगवान् के वैष्णव भक्त वैदिक साहित्य के आधार पर कृष्णभावना का प्रचार करते हैं। उन्हीं की कृपा से बद्धजीव में कृष्णभावना जाग्रत होती है। एक बार जाग्रत हो जाने पर वह भौतिक जीवन शैली बिताने के लिए उत्सुक नहीं रह जाता। इसके बदले वह भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में लग जाता है। जब जीव भगवान् की भक्तिमयी सेवा में लग जाता है, तब वह भौतिक भोग से विरक्त हो जाता है।

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति-

रन्यत्र चैष त्रिक एककालः ।

(भागवत 11.2.42)

मनुष्य भक्ति में अग्रसर हो रहा है या नहीं, यह जानने की यही परीक्षा है। मनुष्य को भौतिक भोग से अनासक्त हो जाना चाहिए। ऐसी अनासक्ति का अर्थ यह है कि माया ने बद्धजीव को मायावी भोग से मुक्ति दे दी है। जब मनुष्य कृष्णभावना में उन्नत हो जाता है, तब वह अपने आपको कृष्ण के समान नहीं समझता। वह जब भी अपने आपको भौतिक ऐश्वर्यों का भोक्ता मानता है, तो वह देहात्म बुद्धि से बँध जाता है। किन्तु देहात्म बुद्धि से छूटने पर वह भक्तिमय सेवा में लग सकता है, जो माया के पाश से

स्वतन्त्र होने की वास्तविक स्थिति है। इसकी व्याख्या अगले श्लोक में दी गई है, जो भगवद्गीता (7.14) से लिया गया है।

दैवी ह्येषा गुण-मयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥121॥

दैवी-परम भगवान् से सम्बन्धित; हि-निश्चित रूप से; एषा-यह; गुण-मयी-तीन गुणों से निर्मित; मम–मेरी; माया-बहिरंगा शक्ति; दुरत्यया-लाँघने में अत्यन्त कठिन; माम्-मेरे प्रति; एव–निश्चित रूप से; ये-जो; प्रपद्यन्ते-पूर्ण शरणागत हो जाते हैं; मायाम् माया शक्ति को; एताम्-इस; तरन्ति–पार कर लेते हैं; ते–वे।

अनुवाद

"भौतिक प्रकृति के तीन गुणों से युक्त मेरी इस दैवी शक्ति का अतिक्रमण करना कठिन है। किन्तु जिन्होंने मेरी शरण ले रखी है, वे इसे आसानी से पार कर सकते हैं।'

माया-मुग्ध जीवेर नाहि स्वतः कृष्ण-ज्ञान ।

जीवेरे कृपाय कैला कृष्ण वेद-पुराण ॥ 122॥

माया-मुग्ध-माया-शक्ति द्वारा मोहित; जीवेर-बद्धजीव को; नाहि-नहीं है; स्वतः-स्वाभाविक रूप से; कृष्ण-ज्ञान-भगवान् कृष्ण का ज्ञान; जीवेरे-बद्ध जीव के प्रति; कृपाय-कृपा करके; कैला–प्रदान किये; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; वेद-पुराण-वैदिक शास्त्र तथा पुराण (वैदिक ग्रन्थों के पूरक ग्रन्थ)।

अनुवाद

"बद्धजीव अपने खुद के प्रयत्न से अपनी कृष्णभावना को जाग्रत नहीं कर सकता। किन्तु भगवान् कृष्ण ने अहैतुकी कृपावश वैदिक साहित्य तथा इसके पूरक पुराणों का सृजन किया।

तात्पर्य

बद्धजीव भगवान् की भ्रामक शक्ति माया द्वारा मोहग्रस्त हो जाता है। माया का कार्य ही बद्धजीव को कृष्ण के साथ उसके सम्बन्ध को भुलाये रखना है। इस तरह जीव ब्रह्मरूपी अपने वास्तविक परिचय को भूल जाता है और अपनी वास्तविक स्थिति को अनुभव न करके अपने आपको भौतिक शक्ति की उपज मानता है। श्रीमद्भागवत (1.7.5) के अनुसार :

यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् ।

परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥

"इस बाह्य शक्ति माया के कारण, भौतिक प्रकृति के तीन गुणों से परे होने पर भी जीव अपने आपको भौतिक उपज मानता है और भौतिक दुःखों की प्रतिक्रिया को सहता है।"

यह विवरण है बद्धजीव पर माया के कार्य का। अपने आपको भौतिक शक्ति की उपज मानकर बद्धजीव भौतिक शक्ति की सेवा में कई प्रकार से लगा रहता है। वह काम, क्रोध, लोभ तथा द्वेष का दास बन जाता है। इस तरह वह माया का पूर्ण रूप से दास बन जाता है। बाद में मोहग्रस्त जीव मानसिक तर्कवितर्क का दास बन जाता है, किन्तु प्रत्येक दशा में वह माया द्वारा आच्छादित ही रहता है। कृष्ण ने व्यासदेव के अवतार में अपनी अहैतुकी कृपा तथा दयावश विविध वैदिक ग्रन्थों का संकलन किया। व्यासदेव कृष्ण के शक्त्यावेश अवतार हैं। उन्होंने कृपा करके बद्धजीवों को जाग्रत करने के लिए इन ग्रन्थों को प्रस्तुत किया है। दुर्भाग्यवश, आजकल असुर सारे बद्धजीवों का मार्गदर्शन करते हैं, जो वैदिक ग्रन्थों को पढ़ने की परवाह नहीं करते । यद्यपि ज्ञान का विशाल खजाना विद्यमान है, किन्तु लोग व्यर्थ का साहित्य पढ़ने में लगे हुए हैं, जो माया के पाश से छूटने का कोई उपाय नहीं बताता। वैदिक ग्रन्थों का उद्देश्य निम्नलिखित श्लोकों में समझाया गया है।

'शास्त्र-गुरु-आत्म'-रूपे आपनारे जानान ।

‘कृष्ण मोर प्रभु, त्राता’—जीवेर हय ज्ञान ॥ 123॥

शास्त्र-गुरु-आत्म-रूपे-वैदिक शास्त्र, आध्यात्मिक गुरु तथा परमात्मा के रूप में; आपनारे जानान–अपनी जानकारी देते हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मोर–मेरे; प्रभु-स्वामी; त्राता-उद्धारकर्ता; जीवेर-बद्ध जीव को; हय होता है; ज्ञान-ज्ञान।

अनुवाद

“कृष्ण आत्मविस्मृत बद्धजीव को वैदिक ग्रन्थों, स्वरूपसिद्ध गुरु तथा परमात्मा के माध्यम से शिक्षा देते हैं। जीव इनके द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को उनके यथार्थ रूप में समझ सकता है और यह समझ सकता है कि भगवान् कृष्ण उसके सनातन स्वामी तथा माया के पाश से उद्धार करने वाले हैं। इस तरह वह अपने बद्ध जीवन का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकता है और मुक्ति प्राप्त करने का उपाय जान सकता है।

तात्पर्य

अपनी वास्तविक स्थिति भूल जाने के कारण बद्धजीव शास्त्र, गुरु तथा अपने हृदय के भीतर स्थित परमात्मा की सहायता ले सकता है। कृष्ण हर एक के हृदय में परमात्मा के रूप में उपस्थित रहते हैं। जैसाकि भगवद्गीता (18.61) में कहा गया है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

“हे अर्जुन, भगवान् हर एक के हृदय में स्थित हैं और भौतिक शक्ति माया से निर्मित यन्त्र पर सवार हुए सारे जीवों की गतिविधियों का निर्देशन करते हैं।”

कृष्ण शक्त्यावेश अवतार व्यासदेव के रूप में बद्धजीव को वैदिक ग्रन्थों के माध्यम से शिक्षा देते हैं। बाह्य रूप से कृष्ण गुरु के रूप में आविर्भूत होते हैं और बद्धजीव को कृष्णभावनामृत प्राप्त करने

का प्रशिक्षण देते हैं। जब बद्धजीव की मूल कृष्णभावना पुनर्जाग्रत हो जाती है, तब वह भौतिक पाश से मुक्त हो जाता है। इस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् बद्धजीव की तीन प्रकार से सहायता करते हैं-शास्त्र, गुरु तथा हृदय के भीतर स्थित परमात्मा के द्वारा। भगवान् बद्धजीव के उद्धारक हैं और सारे जीवों के परमेश्वर माने जाते हैं। भगवद्गीता (18.66) में कृष्ण कहते हैं :

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

"सभी प्रकार के धर्मों को त्यागकर मात्र मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सभी पापकर्मों से मुक्त कर दूँगा। डरो मत क।" यही उपदेश सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में पाया जाता है। साधु, शास्त्र तथा गुरु, कृष्ण के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं और कृष्णभावनामृत आन्दोलन भी सारे विश्व में फैल रहा है। जो भी इस अवसर का लाभ उठाता है, वह मुक्त हो जाता है।

वेद-शास्त्र कहे— 'सम्बन्ध', 'अभिधेय', 'प्रयोजन' ।

'कृष्ण'—प्राप्य सम्बन्ध, 'भक्ति'—प्राप्त्येर साधन ॥ 124॥

वेद-शास्त्र कहे-वैदिक शास्त्र सिखाते हैं; सम्बन्ध–बद्धजीव का भगवान् से सम्बन्ध; अभिधेय-बद्धजीव द्वारा उस सम्बन्ध का पुनर्जागरण करने के लिए नियतकर्म; प्रयोजन-तथा बद्धजीव द्वारा प्राप्त करने योग्य चरम लक्ष्य; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; प्राप्य-जागृत करने के लिए; सम्बन्ध-मूल सम्बन्ध; भक्ति-भक्तिमय सेवा प्राप्त्येर साधन-कृष्ण को प्राप्त करने का साधन।

अनुवाद

"वैदिक ग्रन्थ कृष्ण के साथ जीव के सनातन सम्बन्ध के विषय में जानकारी देते हैं। यही सम्बन्ध कहलाता है। जीव द्वारा इस सम्बन्ध की जानकारी तथा तदनुसार कर्म करना अभिधेय कहलाता है। भगवद्धाम लौट जाना जीवन का चरम लक्ष्य है, जिसे प्रयोजन कहते हैं।

अभिधेय-नाम' भक्ति', 'प्रेम'—प्रयोजन।

पुरुषार्थ-शिरोमणि प्रेम महा-धन ॥ 125 ॥

अभिधेय-अपना सम्बन्ध पुनर्जागृत करने की क्रियाएं; नाम-नामक; भक्ति-प्रेममयी सेवा; प्रेम-भगवत्प्रेम; प्रयोजन-जीवन का चरम लक्ष्य; पुरुष-अर्थ-शिरोमणि-जीवात्मा का सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन; प्रेम-भगवत्प्रेम; महा-धन-सर्वश्रेष्ठ धन।

अनुवाद

"भक्ति अथवा भगवान् की तुष्टि के लिए इन्द्रियों से काम करना अभिधेय कहलाता है, क्योंकि इससे मनुष्य का मूल भगवत्प्रेम विकसित हो सकता है, जो जीवन का लक्ष्य है। यह लक्ष्य जीव का सर्वोच्च हित है और सबसे बड़ा धन है। इस तरह भगवान् के प्रति दिव्य प्रेमाभक्ति प्राप्त होती है।

तात्पर्य

बद्धजीव बाह्य भौतिक शक्ति माया द्वारा मोहग्रस्त रहता है, जो उसे नाना प्रकार की इन्द्रियतृप्ति में लगाये रखती है। भौतिक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण जीव की मूल कृष्णभावना आच्छादित हो जाती है। किन्तु सारे जीवों के परम पिता के रूप में कृष्ण चाहते हैं कि उनके सारे पुत्र भगवधाम वापस आयें; इसीलिए वे भगवद्गीता जैसा वैदिक ग्रन्थ प्रदान करने के लिए स्वयं आते हैं। वे गुरु के रूप में कार्य करने वाले अपने विश्वस्त सेवकों को नियुक्त करते हैं और इस तरह बद्धजीवों को ज्ञान प्रदान करते हैं। प्रत्येक जीव के हृदय में उपस्थित रहने के कारण भगवान् जीवों को विवेक (अन्त:करण में कर्तव्य बोध) प्रदान करते हैं, जिससे वे वेदों तथा गुरु को अंगीकार करते हैं। इस तरह जीव अपनी वैधानिक स्थिति एवं भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को समझ सकता है। जैसाकि भगवान् ने स्वयं भगवद्गीता (15.15) में स्थापना की है-वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः–वेदान्त के अध्ययन से मनुष्य परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्ध को भलीभाँति जान सकता है और फिर तदनुसार कर्म कर सकता है। इस तरह अन्ततः भगवान् की

प्रेमाभक्ति प्राप्त की जा सकती है। भगवान् को समझना जीव के हित में है। दुर्भाग्यवश, जीवों ने भुला दिया है। कि यह उनके सर्वोच्च हित में है; इसीलिए श्रीमद्भागवत (7.5.31) का कथन है न ते विदुः स्वार्थ गतिं हि विष्णुम्।

प्रत्येक व्यक्ति जीवन का आखरी लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है, किन्तु भौतिक शक्ति माया में लिप्त रहने के कारण हम इन्द्रियतृप्ति में अपना समय गॅवाते हैं। वैदिक साहित्य के अध्ययन से, जिनमें से भगवद्गीता सार-रूप है, मनुष्य कृष्णभावना को प्राप्त करता है। इस तरह वह भक्ति में लगता है, जो अभिधेय कहलाती है। जब जीव भगवत्प्रेम वास्तव में विकसित कर लेता है, तब यह प्रयोजन कहलाता है, जो जीव का चरम लक्ष्य है। दूसरे शब्दों में, जब मनुष्य पूरी तरह कृष्णभावनाभावित हो जाता है, तब कहा जा सकता है कि उसने जीवन की पूर्णता प्राप्त कर ली है।

कृष्ण-माधुर्य-सेवानन्द-प्राप्तिर कारण ।

कृष्ण-सेवा करे, आर कृष्ण-रस-आस्वादन ॥ 126॥

कृष्ण-माधुर्य-कृष्ण से अन्तरंग प्रेम सम्बन्ध की; सेवा-आनन्द–उनकी सेवा करने के आनन्द की प्राप्तिर–प्राप्ति; कारण कारणवश; कृष्ण-सेवा करे–कोई कृष्ण की सेवा करता है; आर-तथा; कृष्ण-रस-ऐसी सेवा के रस का; आस्वादन–आस्वादन।

अनुवाद

“जब किसी को कृष्ण के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने का दिव्य आनन्द प्राप्त हो जाता है, तो वह उनकी सेवा करता है और कृष्णभावनामृत-रस का आस्वादन करता है।

इहाते दृष्टान्त—यैछे दरिद्रेर घरे ।

‘सर्वज्ञ’ आसि’ दुःख देखि’ पुछये ताहारे ॥ 127॥

इहाते-इस सम्बन्ध में; दृष्टान्त-एक उदाहरण; यैछे-जिस प्रकार; दरिद्रेर घरे-एक गरीब व्यक्ति के घर में; सर्व-ज्ञ-एक ज्योतिषी; आसि-आकर; दुःख-दुःखमय स्थिति; देखि'–देखकर; पुछये ताहारे-उससे पूछता है।

अनुवाद

"निम्नलिखित दृष्टान्त प्रस्तुत किया जा सकता है। एक बार एक निर्धन व्यक्ति के घर एक विद्वान ज्योतिषी आया और उसकी दुःखी दशा देखकर उसने पूछा।

तात्पर्य

कभी-कभी जब हम दुःखी अवस्था में होते हैं या भविष्य जानना चाहते हैं, तो ज्योतिषी या हस्तरेखाविद के पास जाते हैं। जीव बद्ध अवस्था में भौतिक अस्तित्व के तीन तापों से सदैव पीड़ित रहता है। ऐसी दशा में वह अपनी स्थिति जानने के लिए उत्सुक रहता है। उदाहरणार्थ, सनातन गोस्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के पास यह पूछने के लिए गये कि वे कष्ट में क्यों हैं। सारे बद्धजीवों की ऐसी ही दशा है। हम सब सदैव दुःखी दशा में रहते हैं और जो बुद्धिमान है, उसका जिज्ञासु होना स्वाभाविक है। यह दशा ब्रह्मजिज्ञासा कहलाती है। अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (वेदान्त-सूत्र 1.1.1)। यहाँ पर ब्रह्म सूचक है वैदिक साहित्य का। बद्धजीव के निरन्तर दुःखी होने का कारण जानने के लिए मनुष्य को वैदिक साहित्य से परामर्श लेना चाहिए। वैदिक साहित्य बद्धजीव को भौतिक अस्तित्व की दुःखमयी अवस्था से उद्धार करने के ही निमित्त हैं। इस अध्याय में ज्योतिषी सर्वज्ञ तथा एक निर्धन व्यक्ति की कहानी अत्यन्त शिक्षाप्रद है।

'तुमि केने दुःखी, तोमार आछे पितृ-धन।

तोमारे ना कहिल, अन्यत्र छाड़िल जीवन" ॥128॥

तुमि-तुम; केने-क्यों; दुःखी-दुःखी; तोमार-तुम्हारी; आछे-है; पितृ-धन-पिता की सम्पत्ति; तोमारे-तुम्हें; ना कहिल-उसने नहीं बताया; अन्यत्र-कहीं ओर; छाड़िल-त्याग दिया; जीवन-अपना जीवन।

अनुवाद

"ज्योतिषी ने पूछा, 'तुम दुःखी क्यों हो? तुम्हारा पिता अत्यन्त धनवान था, किन्तु अन्यत्र मरने के कारण उसने अपनी सम्पत्ति के बारे में तुम्हें नहीं बताया।'

सर्वज्ञेर वाक्ये करे धनेर उद्देशे ।

ऐछे वेद-पुराण जीवे 'कृष्ण' उपदेशे ॥129॥

सर्वज्ञेर-ज्योतिषी के; वाक्ये-वचन; करे-देते हैं; धनेर-सम्पत्ति की; उद्देशे-सूचना; ऐछे-उसी प्रकार; वेद-पुराण-वैदिक ग्रन्थ; जीवे-बद्ध जीवात्माओं के प्रति; कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; उपदेशे-बोध।

अनुवाद

जिस तरह सर्वज्ञ ज्योतिषी के शब्दों से निर्धन व्यक्ति के खजाने का पता चला, उसी तरह जब कोई यह जिज्ञासा करता है कि वह दुःखी अवस्था में क्यों है, तो वैदिक ग्रन्थ उसे कृष्णभावनामृत के विषय में उपदेश देते हैं।

सर्वज्ञेर वाक्ये मूल-धन अनुबन्ध ।

सर्व-शास्त्रे उपदेशे, 'श्री-कृष्ण'—सम्बन्ध ॥ 130॥

सर्वज्ञेर-ज्योतिषी के; वाक्ये वचनों द्वारा; मूल-धन-सम्पत्ति से; अनुबन्ध-सम्बन्ध; सर्व-शास्त्रे-सभी वैदिक शास्त्र; उपदेशे–निर्देशित करते हैं; श्री-कृष्ण–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण से; सम्बन्ध–सम्बन्ध।

अनुवाद

“ज्योतिषी के शब्दों से उस खजाने से निर्धन व्यक्ति का सम्बन्ध स्थापित हुआ। उसी तरह वैदिक साहित्य हमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के साथ अपने वास्तविक सम्बन्ध के विषय में उपदेश देता है।

तात्पर्य

भगवद्गीता (7.26) में श्रीकृष्ण कहते हैं :

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।

भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥

“हे अर्जुन, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में मैं वह सब जानता हूँ, जो भूतकाल में घटित हो चुका है, वर्तमान में घटित हो रहा है और आगे होगा। मैं सारे जीवों को भी जानता हूँ, किन्तु मुझे कोई नहीं जानता।”

इस तरह कृष्ण बद्धजीव की दुःखमय स्थिति का कारण जानते हैं। इसीलिए वे अपने परम धाम से अवतरित होकर बद्धजीव को उपदेश देने और अपने साथ उसके सम्बन्ध की विस्मृति के विषय में बताने के लिए आते हैं। कृष्ण अपने सम्बन्धों में वृन्दावन में तथा कुरुक्षेत्र के युद्ध में अपने आपको दिखलाते हैं, जिससे लोग उनके प्रति आकृष्ट होकर भगवद्धाम वापस जा सकें। कृष्ण ने भगवद्गीता में यह भी कहा है कि वे समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी, हर वस्तु के भोक्ता तथा हर एक के मित्र हैं। भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरं । सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति (भगवद्गीता 5.29) । यदि हम कृष्ण के साथ अपने मूल सम्बन्ध को जाग्रत कर लें, तो इस संसार में हमारी दुःखी दशा समाप्त हो जायेगी। हर व्यक्ति भौतिक संसार की दुःखी दशा के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास कर रहा है, किन्तु कृष्ण से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किये बिना मूल समस्याएँ हल नहीं की जा सकतीं।

‘बापेर धन आछे’—ज्ञाने धन नाहि पाय ।

तबे सर्वज्ञ कहे तारे प्राप्तिर उपाय ॥131॥

बापेर धन आछे-पिता के पास कुछ सम्पत्ति है; ज्ञाने-इस ज्ञान द्वारा; धन-सम्पत्ति; नाहि पाय-कोई प्राप्त नहीं कर सकता; तबे-तब; सर्वज्ञ-ज्योतिषी; कहे-बताता है; तारे-उस गरीब व्यक्ति को प्राप्तिर उपाय-उस सम्पत्ति को प्राप्त करने का उपाय।

अनुवाद

“वह निर्धन व्यक्ति अपने पिता के धन के प्रति आश्वस्त होकर भी उसे केवल ऐसे ज्ञान के बल पर प्राप्त नहीं कर सकता था। इसीलिए ज्योतिषी को वह साधन बताना पड़ा, जिससे वह उस खजाने को वास्तव में पा सके।

‘एइ स्थाने आछे धन’—यदि दक्षिणे खुदिबे ।

‘भीमरुल-बरुली’ उठिबे, धन ना पाइबे ॥132॥

एइ स्थाने-इस स्थान पर; आछे-है; धन-खजाना; यदि यदि; दक्षिणे-दक्षिण दिशा में; खुदिबे-तुम खोदोगे; भीमरुल-बरुली-बर्रे तथा मधुमक्खियाँ; उठिबे-निकलेंगी; धन-खजाना; ना पाइबे-तुम्हें नहीं प्राप्त होगा।

अनुवाद

“ज्योतिषी ने कहा, ‘खजाना इस स्थान में है, किन्तु यदि तुम दक्षिण दिशा में खोदोगे, तो बर्र तथा मधुमक्खियाँ निकलेंगी और तुम अपना खजाना नहीं पा सकोगे।

‘पश्चिमे’ खुदिबे, ताहा ‘यक्ष’ एक हय ।

से विघ्न करिबे,—धने हात ना पड़य ॥ 133॥

पश्चिमे–पश्चिम दिशा में; खुदिबे-यदि तुम खोदते हो; ताहा-वहाँ; यक्ष-प्रेत; एक-एक; हय-है; से-वह; विघ्न करिबे-बाधाएँ उत्पन्न करेगा; धने-खजाने पर; हात–हाथ; ना-न; पड़य-स्पर्श कर सकें।

अनुवाद

"यदि तुम पश्चिम दिशा में खोदोगे, तो वहाँ एक प्रेत है। वह ऐसा विघ्न उत्पन्न करेगा कि तुम उस खजाने को हाथ भी नहीं लगा सकोगे।

'उत्तरे' खुदिले आछे कृष्ण 'अजगरे'।

धन नाहि पाबे, खुदिते गिलिबे सबारे ॥134॥

उत्तरे-उत्तर दिशा में; खुदिले–यदि तुम खोदते हो; आछे-है; कृष्ण-काला; अजगरे–साँप; धन-खजाना; नाहि-नहीं; पाबे-तुम प्राप्त करोगे; खुदिते-खोदने पर; गिलिबे-निगल जायेगा; सबारे-सबको।

अनुवाद

"यदि तुम उत्तर दिशा में खोदोगे, तो वहाँ एक विशाल काला साँप है। यदि तुमने खजाना खोदने का प्रयास किया, तो वह तुम्हें निगल जायेगा।

पूर्व-दिके ताते माटी अल्प खुदिते।

धनेर झारि पड़िबेक तोमार हातेते ॥ 135॥

पूर्व-दिके-पूर्व दिशा में; ताते-वहाँ; माटी–मिट्टी; अल्प-अल्प मात्रा में; खुदिते-खोदने पर; धनेर-खजाने का; झारि–पात्र; पड़िबेक तुम्हें मिलेगा; तोमार-तुम्हारे; हातेते-हाथों में।

अनुवाद

"किन्तु यदि तुम पूर्व की ओर थोड़ी-सी भी मिट्टी खोदोगे, तो तुरन्त ही खजाने का पात्र तुम्हारे हाथों में आ जायेगा।'

तात्पर्य

पुराणों समेत सारे वैदिक ग्रन्थों का कहना है कि बद्धजीव की स्थिति के अनुसार विभिन्न विधियाँ हैं यथा कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, योग तथा भक्तियोग। कर्मकाण्ड की तुलना बरों तथा मधुमक्खियों से की गई है, जो उनकी शरण में जाने वालों को केवल काटती हैं। ज्ञानकाण्ड अर्थात् तर्कवितर्क की प्रक्रिया प्रेत के समान है, जो मानसिक उत्पात मचाता है। योग की उपमा काले साँप से की गई है, जो कैवल्य के निर्विशेष अनुशीलन से लोगों को निगल जाता है। किन्तु जो कोई भक्तियोग को ग्रहण करता है, वह तुरन्त सफल होता है। दूसरे शब्दों में, भक्तियोग के द्वारा मनुष्य छिपे खजाने को बिना कठिनाई के प्राप्त कर सकता है।

सभी प्रामाणिक शास्त्रों और वैदिक आदेशों के लक्ष्य कृष्ण हैं, जैसाकि उन्होंने स्वयं भगवद्गीता (15.15) में कहा है-वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। चूँकि वेद कृष्ण की खोज करने और उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करने का आदेश देते हैं और भक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी वैदिक विधि से यह सम्भव नहीं है, इसलिए व्यक्ति को भक्तिमय सेवा अपनानी चाहिए। भगवद्गीता (18.55) के अनुसार केवल भक्तियोग द्वारा निश्चित रूप से ऐसा होगा। भक्त्या मामभिजानाति ।यही वेदों का निष्कर्ष है और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की खोज में सच्चे मन से लगे हुए व्यक्ति को यही विधि स्वीकार करनी होगी। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का निम्नलिखित कथन दृष्टव्य है। पूर्व दिशा भगवान् कृष्ण की भक्ति को बतलाती है। दक्षिण दिशा कर्मकाण्ड का निर्देश करती है, जिसका अन्त भौतिक लाभ में होता है। पश्चिम दिशा ज्ञानकाण्ड अर्थात् मानसिक तर्कवितर्क की सूचक है, जिसे कभी-कभी सिद्धिकाण्ड कहा जाता है। उत्तर दिशा तार्किक विधि की सूचक है, जिसे कभी-कभी योग पद्धति कहा जाता है। केवल पूर्व दिशा, जो भक्ति रूप है, मनुष्य को जीवन का वास्तविक लक्ष्य प्राप्त कराने में समर्थ है। दक्षिण दिशा में सकाम कर्म हैं, जिनसे जीव को यमराज का दण्ड मिलता है। जब कोई व्यक्ति कर्मकाण्ड का पालन करता है, तब उसकी भौतिक इच्छाएँ प्रबल रहती हैं। इसीलिए इस विधि के फलों की तुलना बर्से तथा मधुमक्खियों से की गई है। जीव सकाम कर्म रूपी इन बरों तथा मधुमक्खियों द्वारा

डसा जाता है, जिससे वह जन्म-जन्मांतर तक इस भौतिक संसार में कष्ट भोगता है। इस विधि का पालन करने से भौतिक इच्छाओं से कभी मुक्त नहीं हुआ जा सकता। भौतिक भोग की लालसा कभी समाप्त नहीं होती। इसलिए जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है और आत्मा निरन्तर कष्ट भोगता है।

योग-विधि की तुलना उस काले सर्प से की गई है, जो जीव को निगलकर उसके भीतर विष प्रविष्ट कर देता है। योग पद्धति का चरम उद्देश्य ब्रह्म से तदाकार होना अर्थात् अपने अस्तित्व को मिटा देना है। किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आध्यात्मिक अंश का शाश्वत और व्यक्तिगत अस्तित्व होता है। भगवद्गीता से पुष्टि होती है कि व्यक्तिगत आत्मा का अस्तित्व भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में भी एक व्यक्तिगत आत्मा के रूप में बना रहेगा। कृत्रिम रूप से परम पूर्ण से तदाकार होने का प्रयत्न आत्महत्या के समान है। अपनी प्राकृतिक अवस्था का विनाश नहीं किया जा सकता।

धन की रक्षा करने वाला यक्ष किसी को भी भोग के लिए धन नहीं ले जाने देता। ऐसा असुर केवल उत्पात मचाता है। दूसरे शब्दों में, भक्त अपने भौतिक साधनों पर निर्भर न रहकर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दया पर निर्भर रहेगा, क्योंकि वे वास्तविक संरक्षण प्रदान करने वाले हैं। यही रक्षिष्यतीति विश्वास है, अथवा भक्तिविनोद ठाकुर की बाँग्ला कविता 'शरणागति' का अवश्य रक्षिबे कृष्ण विश्वास-पालन है। शरणागत व्यक्ति को यह तथ्य स्वीकार करना होगा कि उसके वास्तविक रक्षक कृष्ण हैं, उसकी भौतिक उपलब्धियाँ नहीं।

इन सब बातों पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि कृष्ण-भक्ति ही जीव के लिए वास्तविक खजाना है। भक्ति-पद प्राप्त कर लेने पर मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की संगति में सदैव ऐश्वर्यवान बना रहता है। जो भक्ति से विहीन है, उसे योग पद्धति रूपी काला सर्प निगल जाता है और कर्मकाण्ड रूपी बर्रे तथा मधुमक्खियाँ काटते रहते हैं तथा उसे भौतिक कष्ट उठाने पड़ते हैं। कभी-कभी जीव को ब्रह्म में तदाकार होने की भ्रांति उत्पन्न हो जाती है। और वह अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम

भगवान् के तुल्य मान लेता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब वह आध्यात्मिक पद पर पहुँचता है, तो वह विचलित होकर पुनः भौतिक पद पर लौट आयेगा। श्रीमद्भागवत (10.2.32) के अनुसार :

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-

स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥

भले ही ऐसे लोग संन्यासी क्यों न हो जाएँ, किन्तु जब तक वे कृष्ण के चरणकमलों की शरण में नहीं जाते, तब तक वे परोपकारी कार्य करने के लिए भौतिक पद पर लौटते रहेंगे। इस तरह उनका आध्यात्मिक जीवन विनष्ट हो जाता है। यह तो वैसा ही है जैसे कि किसी को काला सर्प निगल ले।

ऐछ शास्त्र कहे— कर्म, ज्ञान, योग त्यजी'

'भक्त्ये' कृष्ण वश हय, भक्त्ये ताँरे भजि ॥ 136 ॥

ऐछे-इस प्रकार; शास्त्र कहे-वैदिक शास्त्र घोषित करते हैं; कर्म-सकाम कर्म; ज्ञान–मनोकल्पित ज्ञान; योग–योग पद्धति; त्यजि-त्यागकर; भक्त्ये-प्रेममयी सेवा द्वारा; कृष्ण–परम भगवान् श्रीकृष्ण; वश हय–सन्तुष्ट होते हैं, भक्त्ये-प्रेम-भक्ति द्वारा; ताँरे-उनकी; भजि-हम सेवा करें।

अनुवाद

"प्रामाणिक शास्त्रों का निर्णय है कि मनुष्य को कर्म, ज्ञान तथा योग का परित्याग करके भक्ति को ग्रहण करना चाहिए, जिससे कृष्ण पूर्णतया तुष्ट हो सकें।

न साधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म उद्धव ।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ 137॥

न–कभी नहीं; साधयति-सन्तुष्ट होने का कारण बनता है; माम्-मुझे; योगः-संयम की प्रक्रिया; न-नहीं; साख्यम्-परम सत्य के विषय में दार्शनिक ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया; धर्मः-इस प्रकार के कार्यकलाप; उद्धव-मेरे प्रिय उद्धव; न-न ही; स्वाध्यायः-वेदों का अध्ययन; तपः–तपस्याएँ; त्यागः-त्याग, संन्यास ग्रहण करना या दान देना; यथा—जितनी; भक्तिः–प्रेममयी सेवा; मम–मेरे प्रति; ऊर्जिता-विकसित।

अनुवाद

"[पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ने कहा :]'हे उद्धव, न तो अष्टांग योग से, न निर्विशेष अद्वैतवाद से, न परम सत्य के विश्लेषणात्मक अध्ययन से, न वेदों के अध्ययन से, न तपस्या से, न दान से, न संन्यास ग्रहण करने से कोई व्यक्ति मुझे उतना ही तुष्ट कर सकता है, जितना कि वह मेरी अनन्य भक्ति करके कर सकता है।

तात्पर्य

यह तथा अगला उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.14.20-21) का है। इस श्लोक की व्याख्या आदिलीला 17.76 में दी जा चुकी है।

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ।

भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्व-पाकानपि सम्भवात् ॥ 138॥

भक्त्या -प्रेममयी सेवा द्वारा; अहम्-मैं, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; एकया-एकनिष्ठ; ग्राह्यः-प्राप्त करने योग्य; श्रद्धया-श्रद्धा द्वारा; आत्मा-सर्वाधिक प्रिय; प्रियः-प्रेममयी सेवा; सताम्-भक्तों द्वारा; भक्तिः-भक्ति; पुनाति–शुद्ध करती है; मत्-निष्ठा–मुझ पर समर्पित; श्व-पाकान्-मनुष्यों में सबसे अधम, कुत्ता खाने वाला; अपि-भी; सम्भवात्-जन्म तथा अन्य परिस्थितियों की कमी से।

अनुवाद

“भक्तों तथा साधुओं को अत्यन्त प्रिय होने के कारण मुझे अविचल श्रद्धा तथा भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। यह भक्तियोग, जो मेरे प्रति अनुरक्ति को क्रमशः बढ़ाता है, चंडाल तक को शुद्ध करने वाला है। अर्थात् भक्तियोग के माध्यम से हर व्यक्ति आध्यात्मिक पद तक ऊपर उठ सकता है।’

अतएव ‘भक्ति’— कृष्ण-प्राप्त्येर उपाय ।

‘अभिधेय’ बलि’ तारे सर्व-शास्त्रे गाय ॥ 139॥

अतएव–इसलिए; भक्ति-प्रेम-भक्ति; कृष्ण-प्राप्त्येर–भगवान् कृष्ण के चरणकमलों को प्राप्त करने का; उपाय-एक मात्र उपाय; अभिधेय-अभिधेय; बलि’ नामक; तारे-इसे; सर्व-शास्त्रे-सभी वैदिक ग्रन्थों में; गाय-वर्णन किया है।

अनुवाद

“निष्कर्ष यह है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तक पहुँचने का एकमात्र उपाय भक्ति है। इसीलिए इस विधि को अभिधेय कहते हैं। यही सभी प्रामाणिक शास्त्रों का निर्णय है।

तात्पर्य

भगवद्गीता (18.55) में भगवान् कृष्ण द्वारा कहा गया है :

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यथास्मि तत्त्वतः ।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

“मुझे यथारूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में केवल भक्ति द्वारा समझा जा सकता है और जब मनुष्य ऐसी भक्ति द्वारा मेरी चेतना में पूर्ण रूप से स्थित होता है, तब वह भगवान् के धाम में प्रवेश कर सकता है।”

जीवन का उद्देश्य भौतिक बन्धन से छूटकर आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करना है। यद्यपि विभिन्न लोगों के लिए शास्त्रों में विभिन्न विधियाँ बतलाई गई हैं, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का कहना है कि आध्यात्मिक प्रगति के विश्वस्त मार्ग के लिए अन्तत: भक्ति-मार्ग को ही स्वीकार करना होगा। भगवान् की भक्तिमय सेवा वही ऐसा एकमात्र मार्ग है, जिसे वास्तव में भगवान् द्वारा प्रमाणित किया गया है। सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज (भगवद्गीता 18.66) । यदि कोई भगवद्धाम वापस लौटने का इच्छुक है और शाश्वत रूप से सुखी होना चाहता है, तो उसे उसके लिए भक्त बनना आवश्यक है।

धन पाइले यैछे सुख-भोग फल पाय ।

सुख-भोग हैते दु:ख आपनि पलाय ॥ 140 ॥

धन पाइले-जब कोई धनी बन जाता है; यैछे-जिस प्रकार; सुख-भोग-सुख का आनन्द; फल-परिणाम; पाय-प्राप्त करता है; सुख-भोग-सुख का वास्तविक आनन्द; हैते-होने पर; दु:ख–समस्त दु:ख; आपनि–स्वत:; पलाय-दूर हो जाते हैं।

अनुवाद

"जब मनुष्य सचमुच धनी बन जाता है, तब वह स्वभावत: सारे सुखों का भोग करने लगता है। जब वह सुखी मुद्रा में होता है, तो सारी दु:खद दशाएँ स्वत: दूर हो जाती हैं। इसके लिए किसी बाह्य प्रयास की आवश्यकता नहीं पड़ती।

तैछे भक्ति-फले कृष्णे प्रेम उपजय ।

प्रेमे कृष्णास्वाद हैले भव नाश पाय ॥ 141॥

तैछे-इसी प्रकार; भक्ति-फले-प्रेम भक्ति के परिणाम स्वरूप; कृष्णे-भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेम-प्रेम; उपजय-जाग जाता है; प्रेमे-प्रेम भाव में; कृष्ण-आस्वाद–भगवान् कृष्ण के संग का आस्वादन; हैले–जब हो जाये; भव-जन्म-मृत्यु के चक्र का कष्ट; नाश-विनाश; पाय-प्राप्त करता है।

अनुवाद

"इसी तरह भक्ति के फलस्वरूप मनुष्य का सुप्त कृष्ण-प्रेम जाग्रत हो उठता है। जब मनुष्य भगवान् कृष्ण की संगति का आस्वादन कर सकने के योग्य हो जाता है, तब यह भौतिक संसार, जन्म तथा मृत्यु का चक्र, समाप्त हो जाता है।

दारिद्र्य-नाश, भव-क्षय,—प्रेमेर 'फल' नय ।

प्रेम-सुख-भोग–मुख्य प्रयोजन हय ॥ 142॥

दारिद्र्य-नाश-निर्धन जीवन का अन्त; भव-क्षय-भौतिक अस्तित्व का विनाश; प्रेमेर-भगवत्प्रेम का; फल-परिणाम; नय-नहीं है; प्रेम-सुख-भोग-भगवत्प्रेम के सुख का आस्वादन; मुख्य–मुख्य प्रयोजन-जीवन का लक्ष्य; हय है।

अनुवाद

"भगवत्प्रेम का लक्ष्य न तो भौतिक दृष्टि से धनी बनना है, न ही भवबन्धन से मुक्त होना है। वास्तविक लक्ष्य तो भगवान् की भक्तिमय सेवा में स्थित होकर दिव्य आनन्द भोगना है।

तात्पर्य

भक्ति के परिणाम न तो भौतिक लाभ हैं, न ही भवबन्धन से मुक्ति हैं। भक्ति का लक्ष्य तो भगवान् की प्रेममयी सेवा में निरन्तर स्थित रहकर उस सेवा का आध्यात्मिक आनन्द उठाना है। जब कोई मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को भूल जाता है, तो वह दरिद्र कहलाता है। उसे भौतिक संसार की इस दु:खद स्थिति को स्वत: समाप्त करने के लिए ऐसे दरिद्र जीवन को समाप्त करना होगा। जब वह कृष्ण की सेवा का आस्वादन कर लेता है, तो वह स्वतः भौतिक भोग से छुटकारा पा लेता है। ऐश्वर्य के लिए उसे अलग से प्रयास नहीं करना पड़ता। ऐश्वर्य तो शुद्ध भक्त के पास अपने आप आता है, यद्यपि भक्त ऐसे भौतिक सुख की कामना नहीं करता।

वेद-शास्त्रे कहे सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन ।

कृष्ण, कृष्ण-भक्ति, प्रेम,—तिन महा-धन ॥143॥

वेद-शास्त्रे-वैदिक ग्रन्थों में; कहे-ऐसा कहा जाता है; सम्बन्ध–सम्बन्ध; अभिधेय-क्रिया; प्रयोजन-लक्ष्य; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कृष्ण-भक्ति-भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा; प्रेम-भगवत्प्रेम; तिन-ये तीनों; महा-धन–महा खजाने (हैं)।

अनुवाद

"वैदिक ग्रन्थों में कृष्ण आकर्षण के केन्द्रबिन्दु हैं और उनकी सेवा करना हमारा कर्म है। हमारे जीवन का चरम लक्ष्य कृष्ण-प्रेम प्राप्त करना वही है। अतएव कृष्ण, कृष्ण की सेवा तथा कृष्ण-प्रेम-ये जीवन के तीन महाधन हैं।

वेदादि सकल शास्त्रे कृष्ण— मुख्य सम्बन्ध ।

ताँर ज्ञाने आनुषङ्गे याय माया-बन्ध ॥144॥

वेद-आदि-वेदों आदि; सकल-सभी; शास्त्रे प्रामाणिक शास्त्रों में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मुख्य-प्रधान; सम्बन्ध–केन्द्र बिन्दु या आकर्षण के केन्द्र; ताँर ज्ञाने-उनके ज्ञान द्वारा; आनुषङ्गे–साथ ही साथ; याय-दूर हो जाता है; माया-बन्ध–भौतिक अस्तित्व का बन्धन।

अनुवाद

"वेद इत्यादि सारे प्रामाणिक शास्त्रों के आकर्षण के केन्द्रीय बिन्दु कृष्ण हैं। जब कृष्ण विषयक पूर्ण ज्ञान की अनुभूति हो जाती है, तो माया का बन्धन स्वतः टूट जाता है।

व्यामोहाय चराचरस्य जगतस्ते ते पुराणागमास्

तां तामेव हि देवतां परमिकां जल्पन्तु कल्पावधि ।

सिद्धान्ते पुनरेक एव भगवान् विष्णुः समस्तागम-

व्यापारेषु विवेचन-व्यतिकरं नीतेषु निश्चीयते ॥ 145 ॥

व्यामोहाय-भ्रम तथा अज्ञान को बढ़ाने के लिए; चर-अचरस्य-चर तथा अचर, सभी जीवात्माओं के; जगतः-संसार के; ते ते-वे क्रमशः; पुराण-पुराण नामक पूरक वैदिक ग्रन्थ; आगमाः–तथा वेद; ताम् ताम्-उस विशिष्ट का; एव हि निश्चित रूप में; देवताम्-देवता को; परमिकाम्-परम के रूप में; जल्पन्तु-उन्हें कहने दो; कल्प-अवधि–कल्प के अन्त तक; सिद्धान्ते निष्कर्ष में; पुनः–परन्तु; एकः-एक; एवं-केवल; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुः- भगवान् विष्णु; समस्त-सभी; आगम-वेदों के व्यापारेषु-व्यवहारों में; विवेचन-व्यतिकरम्-सामूहिक विचार; नीतेषु-जब बलपूर्वक लाया जाता है; निश्चीयते-निश्चित किया जाता है।

अनुवाद

“वैदिक शास्त्र तथा पुराण अनेक प्रकार के हैं। उनमें से प्रत्येक में विशेष देवताओं का वर्णन प्रमुख देवताओं के रूप में पाया जाता है। यह समस्त चर तथा अचर प्राणियों में मोह उत्पन्न करने के लिए है। उन्हें निरन्तर ऐसी ही कल्पनाओं में लगे रहने दो। किन्तु जब इन सारे वैदिक शास्त्रों का सामूहिक विश्लेषण किया जाता है, तब निष्कर्ष यही निकलता है कि भगवान् विष्णु ही एकमात्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।’

तात्पर्य

यह श्लोक पद्म-पुराण का है।

मुख्य-गौण-वृत्ति, किंवा अन्वय-व्यतिरेके ।

वेदेर प्रतिज्ञा केवल कहये कृष्णके ॥146 ॥

मुख्य-प्रमुख; गौण-गौण; वृत्ति-अर्थ; किंवा–या; अन्वय-व्यतिरेके-प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष; वेदेर प्रतिज्ञा–वेदों का अन्तिम निष्कर्ष; केवल–केवल; कहये-कहता है; कृष्णके–कृष्ण के विषय में।

अनुवाद

"जब कोई व्यक्ति व्याख्या द्वारा, अथवा शाब्दिक अर्थ के द्वारा वैदिक शास्त्रों को स्वीकार करता है, तब वैदिक ज्ञान की अन्तिम घोषणा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भगवान् कृष्ण को ही इंगित करती है।

किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत्

इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन

मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते ह्यहम्

एतावान्सर्व-वेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम्

माया-मात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति

किम्-क्या; विधत्ते-प्रत्यक्ष; किम्-क्या; आचष्टे-निर्देश करते हैं; किम्-क्या; अनूद्य–विषय रूप में; विकल्पयेत्-अनुमान लगा सकते हैं; इति–इसलिए; अस्याः-वैदिक शास्त्रों का; हृदयम्-आशय; लोके-इस जगत् में; न-नहीं; अन्यः-दूसरा; मत्-मेरी अपेक्षा; वेद-जानते हैं; कश्चन-कोई; माम्-मुझे; विधत्ते-वे निर्देशित करते हैं; अभिधत्ते–लक्ष्य करते हैं; माम्-मुझे; विकल्प्य–कल्पना करके; अपोह्यते-स्थित हूँ; हि निश्चित रूप से; अहम्-मैं; एतावान् इतना; सर्व-वेद-अर्थः-वेदों के अर्थ; शब्दः-वेद; आस्थाय-शरण लेकर; माम्-मेरी; भिदाम्-भिन्न; माया-माया; मात्रम्-केवल; अनूद्य–कहकर; अन्ते-अन्त में प्रतिषिध्य-दूर कर देती है; प्रसीदति-सन्तुष्ट होते हैं।

अनुवाद

"[भगवान् कृष्ण ने कहा :] 'सारे वैदिक शास्त्रों का प्रयोजन क्या है? उनका लक्ष्य किस पर केन्द्रित होता है? सारे चिन्तन का लक्ष्य कौन है? इन बातों को मेरे अतिरिक्त कोई नहीं जानता। अब तुम यह जान लो कि ये सारे कार्य मेरा ही वर्णन करने के लिए एवं मुझे प्राप्त करने के लिए हैं। वैदिक साहित्य का उद्देश्य विभिन्न मानसिक चिन्तनों द्वारा मुझे जानना है, चाहे वह अप्रत्यक्ष ज्ञान हो या शाब्दिक अर्थ द्वारा हो। हर व्यक्ति मेरे विषय में तर्क करता है। मुझमें और माया में अन्तर करना यही सारे वैदिक ग्रन्थों का सार है। मनुष्य माया पर विचार करने पर मुझे समझ पाता है। इस तरह वह वेदों के विषय में तर्क करने से मुक्त हो जाता है और अन्तिम निष्कर्ष के रूप में मेरे पास आता है और तब तुष्ट होता है।'

तात्पर्य

ये दोनों श्लोक श्रीमद्भागवत (11.21.42-43) से उधृत हैं। जब उद्धव ने कृष्ण से वैदिक चिन्तन का उद्देश्य पूछा, तो भगवान् ने उन्हें वैदिक साहित्य समझने की विधि बतलाई । वेदों में कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड तथा उपासनाकाण्ड निहित हैं। यदि वेदों के उद्देश्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाए, तो यह पता चलेगा कि कर्मकाण्ड के द्वारा ज्ञानकाण्ड या तार्किक ज्ञान के निष्कर्ष की प्राप्ति होती है और तार्किक ज्ञान के फलस्वरूप व्यक्ति इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा ही सर्वोच्च है। इस निष्कर्ष को प्राप्त कर लेने पर मनुष्य पूर्णरूपेण तुष्ट हो जाता है।"

कृष्णेर स्वरूप— अनन्त, वैभव— अपार ।

चिच्छक्ति, माया-शक्ति, जीव-शक्ति आर ॥149॥

कृष्णेर स्वरूप-कृष्ण का दिव्य स्वरूप; अनन्त-असीमित रूप से फैला हुआ; वैभव-ऐश्वर्य; अपार-असीमित; चित्-शक्ति-अन्तरंगा शक्ति; माया-शक्ति-बहिरंगा शक्ति; जीव-शक्ति-जीवशक्ति; आर-तथा।

अनुवाद

“कृष्ण का दिव्य स्वरूप अनन्त है और उनका ऐश्वर्य अपार है। वे अन्तरंगा, बहिरंगा तथा तटस्था शक्तियों के स्वामी हैं।

वैकुण्ठ, ब्रह्माण्ड-गण—शक्ति-कार्य हय ।

स्वरूप-शक्ति शक्ति-कार्येर—कृष्ण समाश्रय ॥ 150॥

वैकुण्ठ–आध्यात्मिक जगत्; ब्रह्माण्ड-गण-भौतिक सृष्टि के ब्रह्माण्ड; शक्ति-कार्य हय–वे सभी कृष्ण की शक्तियों के कार्य हैं; स्वरूप-शक्ति-अन्तरंगा शक्ति का; शक्ति-कार–बहिरंगा शक्ति के कार्यों के; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; समाश्रय-मूल स्रोत ।

अनुवाद

“भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही जगत् कृष्ण की क्रमशः बहिरंगा तथा अन्तरंगा शक्तियों के रूपान्तर हैं। अतएव भौतिक तथा आध्यात्मिक सृष्टियों के मूल स्रोत कृष्ण ही हैं।

दशमे दशमं लक्ष्यमाश्रिताश्रय-विग्रहम् ।

श्री कृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत् ॥ 151॥

दशमे-दसवें स्कन्ध में; दशमम्-दसवाँ विषय; लक्ष्यम्-देखने योग्य; आश्रित-शरणागत का; आश्रय-आश्रय; विग्रहम्-जो स्वरूप हैं; श्री-कृष्ण-आख्यम्-भगवान् श्रीकृष्ण नामक; परम्-सर्वश्रेष्ठ; धाम-निवास; जगत्-धाम-ब्रह्माण्डों के आश्रय; नमामि-मैं प्रणाम करता हूँ; तत्-उन्हें।

अनुवाद

“श्रीमद्भागवत का दसवाँ स्कन्ध दसवें लक्ष्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को बतलाने वाला है, जो समस्त शरणागतों के आश्रय हैं। वे श्रीकृष्ण नाम से विख्यात हैं और समस्त ब्रह्माण्डों के परम स्रोत हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।’

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत पर लिखी गई श्रीधर स्वामी की टीका भावार्थ-दीपिका (10.1.1) से है। श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध में आश्रय तत्त्व श्रीकृष्ण का वर्णन है। तत्त्व दो प्रकार के हैं- आश्रय तत्त्व तथा आश्रित तत्त्व। आश्रय तत्त्व वस्तु (विधेय) परक (आबजेक्टीव) है और आश्रित तत्त्व उद्देश्य परक (सबजेक्टीव) है। चूँकि भगवान् कृष्ण के चरणकमल सारे भक्तों के आश्रय हैं, अतः श्रीकृष्ण परं धाम कहलाते हैं। भगवद्गीता (10.12) में कहा गया है- परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्। हर वस्तु कृष्ण के चरणकमलों पर आश्रित है। श्रीमद्भागवत (10.14.58) में कहा गया है :

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं

महत्पदं पुण्ययशोमुरारे:।

सम्पूर्ण महत् तत्त्व श्रीकृष्ण के चरणकमलों के तले है। चूँकि हर वस्तु कृष्ण के संरक्षण में है, इसलिए श्रीकृष्ण आश्रय तत्त्व कहलाते हैं। अन्य सारी वस्तुएँ आश्रित तत्त्व हैं। यह भौतिक सृष्टि भी आश्रित तत्त्व कहलाती है। भवबन्धन से मोक्ष तथा आध्यात्मिक पद की प्राप्ति भी आश्रित तत्त्व हैं। कृष्ण ही एकमात्र आश्रय तत्त्व हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में महाविष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु रहते हैं। वे भी आश्रय तत्त्व हैं। कृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं (सर्वकारणकारणम्) । कृष्ण को भलीभाँति समझने के लिए आश्रय तत्त्व तथा आश्रित तत्त्व का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना आवश्यक है।

कृष्णेर स्वरूप-विचार शुन, सनातन ।

अद्वय-ज्ञान-तत्त्व, व्रजे व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ 152॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; स्वरूप-विचार-नित्य स्वरूप का विचार; शुन-कृपया सुनो; सनातन-मेरे प्रिय सनातन; अद्वय-ज्ञान-तत्त्व-द्वैत रहित परम सत्य; व्रजे-वृन्दावन में; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज का पुत्र।

अनुवाद

"हे सनातन, अब मुझसे भगवान् कृष्ण के सनातन स्वरूप के विषय में सुनो। वे द्वैत भाव से रहित परम अद्वय सत्य हैं, किन्तु वे वृन्दावन में नन्द महाराज के पुत्र रूप में रहते हैं।

सर्व-आदि, सर्व-अंशी, किशोर-शेखर ।

चिदानन्द-देह, सर्वाश्रय, सर्वेश्वर ॥ 153॥

सर्व-आदि-सब वस्तुओं के आदि; सर्व-अंशी–सभी अंशों के पूरक; किशोर-शेखर–सर्वोत्कृष्ट किशोर; चित्-आनन्द-देह-दिव्य आनन्द की देह; सर्व-आश्रय-सबके आश्रय; सर्व-ईश्वर–सभी के स्वामी।

अनुवाद

"कृष्ण प्रत्येक वस्तु के आदि स्रोत हैं और हर वस्तु के सर्वांश हैं। वे सर्वोत्कृष्ट किशोर रूप में प्रकट होते हैं और उनका सारा शरीर आध्यात्मिक आनन्द से बना हुआ है। वे हर वस्तु के आश्रय तथा हर एक के स्वामी हैं।

तात्पर्य

कृष्ण समस्त विष्णु तत्त्वों के स्रोत हैं, जिनमें महाविष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु सम्मिलित हैं। वे वैष्णव दर्शन के चरम लक्ष्य हैं। उन्हीं से सब कुछ उद्भूत है। उनका शरीर नितान्त आध्यात्मिक है और वही समस्त आध्यात्मिक जीवों का उद्गम है। यद्यपि वे सारी वस्तुओं के उद्गम हैं,

किन्तु उनका कोई उद्गम नहीं है। अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपं । आद्यं पुराण-पुरुषं नवयौवनं च। सारी वस्तुओं के परम उद्गम होते हुए भी वे नवयुवक (किशोर) बने रहते हैं।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द-विग्रहः ।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्व-कारण-कारणम् ॥ 154॥

ईश्वरः–नियन्ता; परमः-सर्वश्रेष्ठ; कृष्णः- भगवान् कृष्ण; सत्-सनातन अस्तित्व; चित्-परम ज्ञान; आनन्द-परम आनन्द; विग्रहः–जिनका रूप; अनादिः–आरम्भ रहित; आदिः-मूल; गोविन्दः–भगवान् गोविन्द; सर्व-कारण-कारणम्-सभी कारणों के कारण।

अनुवाद

"गोविन्द नाम से विख्यात कृष्ण परम नियन्ता हैं। उनका शरीर सनातन, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबके उद्गम हैं। उनका अन्य कोई उद्गम नहीं है, क्योंकि वे समस्त कारणों के मुख्य कारण हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक ब्रह्म-संहिता के पाँचवें अध्याय का प्रथम श्लोक है।

स्वयं भगवान् कृष्ण, 'गोविन्द' पर नाम ।

सर्वैश्वर्य-पूर्ण याँर गोलोक—नित्य-धाम ॥ 155॥

स्वयम्-स्वयं ही; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कृष्ण-कृष्ण; गोविन्द-गोविन्द; पर नाम-दूसरा नाम; सर्व-ऐश्वर्य-पूर्ण–सभी ऐश्वर्यों से परिपूर्ण; याँर–जिनका; गोलोक-गोलोक वृन्दावन; नित्य-धाम–नित्य धाम।

अनुवाद

“आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तो श्रीकृष्ण हैं। उनका मूल नाम गोविन्द है। वे समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं और उनका सनातन धाम गोलोक वृन्दावन कहलाता है।

एते चांश-कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।

इन्द्रारि-व्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे ॥156॥

एते-ये; च–तथा; अंश-पूर्ण अंश; कलाः–पूर्ण अंशों के अंश; पुंसः-पुरुष अवतारों के; कृष्णः–भगवान् कृष्ण; तु-परन्तु; भगवान्–परम भगवान्; स्वयम्-स्वयं; इन्द्र-अरि–इन्द्र देव के शत्रु; व्याकुलम्-परेशान; लोकम् संसार को; मृड़यन्ति–प्रसन्न करते हैं; युगे युगे—प्रत्येक युग में उचित समय पर।

अनुवाद

“ईश्वर के ये सारे अवतार पुरुष-अवतार के या तो पूर्ण अंश हैं या पूर्ण अंश के अंश हैं। किन्तु कृष्ण स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। जब संसार इन्द्र के शत्रुओं द्वारा पीड़ित होता है, तब प्रत्येक युग में वे अपने इन विभिन्न रूपों द्वारा संसार की रक्षा करते हैं।’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.3.28) से उद्धृत है। इसके लिए आदिलीला अध्याय 2, श्लोक 67 भी देखें।

ज्ञान, योग, भक्ति,—तिन साधनेर वशे ।

ब्रह्म, आत्मा, भगवान्—त्रिविध प्रकाशे ॥ 157॥

ज्ञान-ज्ञान; योग–योग शक्ति; भक्ति-भक्तिमय सेवा; तिन-तीनों; साधनेर-आध्यात्मिक जीवन की प्रक्रियाओं के; वशे-वश में; ब्रह्म-निराकार ब्रह्म; आत्मा-परमात्मा; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; त्रि-विध प्रकाशे–तीन प्रकार की अभिव्यक्तियाँ।

अनुवाद

"परम अद्वय सत्य को समझने की तीन प्रकार की आध्यात्मिक विधियाँ हैं-ज्ञान, योग तथा भक्ति। परम सत्य इन तीनों विधियों से क्रमशः ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् रूप में प्रकट होते हैं।

वदन्ति तत्तत्त्व-विदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ 158॥

वदन्ति–वे कहते हैं; तत्-उसे; तत्त्व-विदः–विद्वान; तत्त्वम्-परम सत्य; यत्-जो; ज्ञानम्-ज्ञान; अद्वयम्-अद्वितीय; ब्रह्म-ब्रह्म; इति-यह; परमात्मा-परमात्मा; इति-यह; भगवान्-भगवान्; इति-यह; शब्द्यते-कहलाता है।

अनुवाद

"परम सत्य को जानने वाले विद्वान अध्यात्मवेत्ता इस अद्वय वस्तु को ब्रह्म, परमात्मा या भगवान् कहते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.2.11) का है।

जो निर्विशेष ब्रह्मज्योति में रुचि रखते हैं, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अभिन्न है, वे ज्ञान द्वारा इस लक्ष्य की पूर्ति कर सकते हैं। जो लोग योगाभ्यास में रुचि रखते हैं, वे अन्तर्यामी परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं। जैसाकि भगवद्गीता (18.61) में कहा गया है, ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् परमात्मा रूप में सभी प्राणियों के हृदय के भीतर स्थित हैं। वे जीवों के कार्यों के साक्षी रहते हैं और उन्हें कार्य करने की अनुमति देते हैं।

इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला (2.11)।

ब्रह्म—अङ्ग-कान्ति ताँर, निर्विशेष प्रकाशे ।

सूर्य येन चर्म-चक्षे ज्योतिर्मय भासे ॥ 159॥

ब्रह्म-निराकार ब्रह्मज्योति; अङ्ग-कान्ति–अंगों की चमक; ताँर-उनके; निर्विशेष-विविधता से रहित; प्रकाशे-अभिव्यक्ति; सूर्य येन -सूर्य के समान; चर्म-चक्षे–हमारी साधारण भौतिक आँखों द्वारा; ज्योतिः-मय-केवल प्रकाशयुक्त; भासे–प्रतीत होता है।

अनुवाद

“निर्विशेष ब्रह्मज्योति की अभिव्यक्ति, जिसमें विविधता नहीं होती, कृष्ण के शारीरिक तेज की किरणें हैं। यह सूर्य के समान है। जब सूर्य को सामान्य आँखों से देखा जाता है, तो इसमें एकमात्र प्रकाश ही दिखता है।

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्ड-कोटि-

कोटिष्वशेष-वसुधादि-विभूति-भिन्नम् ।

तद् ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेष-भूतं

गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥160॥

यस्य–जिसकी; प्रभा–कांति; प्रभवतः-जो शक्ति में सबसे श्रेष्ठ हैं; जगत्-अण्ड-ब्रह्माण्डों के; कोटि-कोटिषु-करोड़ों-करोड़ों में; अशेष-असीमित; वसुधा-आदि-ग्रहों तथा अन्य अभिव्यक्तियों के साथ; विभूति-ऐश्वर्यों के साथ; भिन्नम् विभिन्नताओं से युक्त होकर; तत्व ह; ब्रह्म-ब्रह्म; निष्कलम्-अंशों से रहित; अनन्तम्-अनन्त; अशेष-भूतम्-पूर्ण; गोविन्दम्-भगवान् गोविन्द को; आदि-पुरुषम्-आदि पुरुष को; तम्-उनकी; अहम्-मैं; भजामि-वन्दना करता हूँ।

अनुवाद

“मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो महान् शक्ति से सम्पन्न हैं। उनके दिव्य स्वरूप का देदीप्यमान तेज निर्विशेष ब्रह्म है, जो परम, पूर्ण तथा असीम है और जो करोड़ों ब्रह्माण्डों में असंख्य विविध लोकों को उनके विभिन्न ऐश्वर्यों समेत प्रदर्शित करते हैं।’

तात्पर्य

यह श्लोक ब्रह्म-संहिता (5.40) से उद्धृत किया गया है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला 2.14।

परमात्मा येंहो, तेंहो कृष्णेर एक अंश।

आत्मार ‘आत्मा’ हय कृष्ण सर्व-अवतंस॥ 161॥

परमात्मा–हृदय में स्थित परमात्मा; येंहो–जो; तेंहो-वे; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; एक-एक; अंश-पूर्ण अंश; आत्मार-आत्मा के; आत्मा-आत्मा; हय-हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; सर्व-प्रत्येक वस्तु के अवतंस–स्रोत।

अनुवाद

“परमात्मा उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पूर्ण अंश हैं, जो समस्त जीवों के आदि आत्मा हैं। कृष्ण ही परमात्मा के आदि स्रोत हैं।

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।

जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥ 162॥

कृष्णम्पू र्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण को; एनम्-इन; अवेहि-समझने का प्रयास करो; त्वम्-तुम; आत्मानम्-आत्मा को; अखिल-आत्मनाम्-सभी जीवात्माओं के; जगत्-हिताय–समस्त संसार के कल्याण के लिए; सः-वे; अपि निश्चित रूप से; अत्र-यहाँ; देही–एक मनुष्य; इव-की तरह; आभाति-प्रतीत होते हैं; मायया-अपनी अन्तरंगा शक्ति द्वारा।

अनुवाद

“तुम कृष्ण को समस्त आत्माओं (जीवों) के आदि आत्मा जानो। वे अपनी अहैतुकी कृपावश सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लाभ हेतु सामान्य मानव के रूप में प्रकट हुए हैं। उन्होंने अपनी अन्तरंगा शक्ति के बल पर ही ऐसा किया है।’

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.14.55) का है। परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा कि कृष्ण वृन्दावनवासियों को इतने प्रिय क्यों थे कि वे उन्हें अपनी सन्तानों या अपने जीवन से भी अधिक प्रेम करते थे। उस समय शुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया कि हर भौतिक देह धारण करने वाले जीव को अपना आत्मा अत्यन्त प्रिय होता है। लेकिन वह आत्मा कृष्ण का अंश है, इसीलिए कृष्ण प्रत्येक जीव को अत्यन्त प्रिय हैं। हर जीव को अपना शरीर अत्यन्त प्रिय है और वह सभी प्रकार से शरीर की रक्षा करना चाहता है, क्योंकि शरीर के भीतर आत्मा निवास करता है। आत्मा तथा शरीर में घनिष्ठ सम्बन्ध होने के ही कारण शरीर इतना महत्त्वपूर्ण तथा हर एक को प्रिय है। इसी तरह आत्मा कृष्ण का अंश होने के कारण सारे जीवों को अत्यन्त प्रिय है। दुर्भाग्यवश, आत्मा (जीव) अपनी वैधानिक स्थिति भूल जाता है और सोचता है कि मैं केवल शरीर हूँ (देहात्म बुद्धि) । इस प्रकार आत्मा प्रकृति के विधि-विधानों के अधीन आ जाता है। जब जीव अपनी बुद्धि से कृष्ण के प्रति अपने आकर्षण को पुनः जाग्रत करता है, तब वह समझ सकता है कि वह शरीर नहीं, अपितु कृष्ण का अंश है। इस तरह ज्ञान से पूरित होने पर वह शरीर एवं शरीर से सम्बन्धित हर वस्तु के प्रति आसक्त होकर श्रम नहीं करता। जनस्य मोहोऽयम्अहं ममेति ।वह भौतिक संसार भी, जिसमें रहते हुए मनुष्य सोचता है कि, “मैं शरीर हूँ और यह मेरा है,” माया है। मनुष्य को अपने आकर्षण को कृष्ण के प्रति मोड़ना चाहिए। श्रीमद्भागवत (1.2.7) में कहा गया है :

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।

जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहेतुकम् ॥

“भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करने से मनुष्य तुरन्त ही अहैतुक ज्ञान तथा जगत् से वैराग्य प्राप्त कर लेता है।”

अथ वा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ 163 ॥

अथ वा-या; बहुना-अधिक; एतेन–इससे; किम्-क्या लाभ है; ज्ञातेन-जानने से; तव तुम्हारे द्वारा; अर्जुन-हे अर्जुन; विष्टभ्य-प्रवेश करके; अहम्-मैं; इदम्-इस; कृत्स्नम् सम्पूर्ण; एक-अंशेन–एक अंश से; स्थितः स्थित हैं; जगत्-विश्व।

अनुवाद

“किन्तु हे अर्जुन, इस विस्तृत ज्ञान की आवश्यकता ही क्या है? मैं तो अपने एक अंश से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हूँ और इसको धारण करता हूँ।’

तात्पर्य

यह उद्धरण भगवद्गीता (10.42) का है।

‘भक्त्ये’ भगवानेर अनुभव—पूर्ण-रूप ।

एक-इ विग्रहे ताँर अनन्त स्वरूप ॥ 164॥

भक्त्ये-प्रेममयी सेवा द्वारा; भगवानेर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का; अनुभव–अनुभव; पूर्ण-रूप-पूर्ण रूप से; एक-इ-एक; विग्रहे-दिव्य स्वरूप में; ताँर–उनके; अनन्त-असीमित; स्वरूप–पूर्ण अंशों के विस्तार।

अनुवाद

“एकमात्र भक्ति द्वारा मनुष्य भगवान् के उस दिव्य रूप को समझ सकता है, जो सभी प्रकार से पूर्ण है। यद्यपि उनका स्वरूप एक है, किन्तु अपनी परम इच्छा से वे इसका विस्तार असंख्य रूपों में कर सकते हैं।

स्वयं-रूप, तदेकात्म-रूप, आवेश—नाम ।

प्रथमेइ तिन-रूपे रहेन भगवान् ॥165॥

स्वयम्-रूप-वास्तविक रूप; तत्-एकात्म-रूप-स्वयं रूप से अभिन्न, समान रूप; आवेश–विशेष शक्ति युक्त; नाम-नामक; प्रथमेइ-प्रारम्भ में; तिन-रूपे–तीन रूपों में; रहेन-रहते हैं; भगवान्–परम भगवान्।

अनुवाद

“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तीन प्रधान रूपों में विद्यमान रहते हैं-स्वयं-रूप, तदेकात्म-रूप तथा आवेश-रूप।

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ लघु भागवतामृत (पूर्वखण्ड, श्लोक 12) में स्वयंरूप का वर्णन किया है-अनन्यापेक्षी यद् रूपं स्वयंरूपः स उच्यते-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का जो रूप अन्य रूपों पर निर्भर नहीं करता, वह स्वयंरूप या मूल रूप कहलाता है। यह रूप श्रीमद्भागवत (1.3.28) में भी वर्णित है : कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्का।”कृष्ण आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।” वृन्दावन में ग्वालबाल के रूप में कृष्ण का रूप भगवान् का मूल रूप या स्वयं-रूप कहलाता है। इसकी पुष्टि ब्रह्म-संहिता (5.1) द्वारा होती है:

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

गोविन्द से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। वे ही चरम स्रोत तथा समस्त कारणों के कारण हैं। भगवद्गीता (7.7) में भी इसकी पुष्टि होती है, जहाँ भगवान् कहते है-मत्तः परतरं नान्यत्–"मुझसे श्रेष्ठ अन्य सत्य नहीं है।

तदेकात्म-रूपों का भी वर्णन लघु भागवतामृत (पूर्वखण्ड, श्लोक 14) में मिलता है :

यद् रूपं तदभेदेन स्वरूपेण विराजते ।

आकृत्यादिभिरन्यादृक् स तदेकात्मरूपकः ॥

तदेकात्म-रूप का अस्तित्व स्वयं-रूप के साथ-साथ रहता है और वे दोनों अभिन्न होते हैं। फिर भी उनके शारीरिक लक्षण तथा विशिष्ट कर्म अलग प्रतीत होते हैं। तदेकात्म-रूप के दो विभाग भी हैं-स्वांश तथा विलास।

भगवान् कृष्ण के आवेश रूपों की भी व्याख्या लघु भागवतामृत (श्लोक 18) में पाई जाती है :

ज्ञान शक्त्यादिकलया यत्राविष्टो जनार्दनः ।

त आवेशा निगद्यन्ते जीवा एव महत्तमाः ॥

"जिस जीव को भगवान् ज्ञान अथवा शक्ति प्रदान करते हैं, वह आवेश-रूप कहलाता है।" जैसाकि चैतन्य-चरितामृत (अन्त्य 7.11) में कहा गया है-कृष्ण-शक्ति विना नहे तार प्रवर्तन–जब तक भक्त को भगवान् से विशेष शक्ति प्राप्त नहीं होती, तब तक वह सारे विश्व में भगवान् के पवित्र नाम का प्रचार नहीं कर सकता। आवेश-रूप शब्द की यही व्याख्या है।

'स्वयं-रूप' 'स्वयं-प्रकाश'—दुइ रूपे स्फूर्ति ।

स्वयं-रूपे—एक 'कृष्ण' व्रजे गोप-मूर्ति ॥ 166 ॥

स्वयम्-रूप-भगवान् का मूल रूप; स्वयम्-प्रकाश-व्यक्तिगत अभिव्यक्ति; दुइ रूपे-दो रूपों में; स्फूर्ति–प्राकट्य; स्वयम्-रूपे–मूल रूप में; एक–एक; कृष्ण–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, श्रीकृष्ण; व्रजे-वृन्दावन में; गोप-मूर्ति-ग्वालबाल रूप।

अनुवाद

"भगवान् का आदि रूप (स्वयं-रूप) दो रूपों में प्रदर्शित होता है—स्वयं-रूप तथा स्वयं-प्रकाश। अपने आदि स्वयं-रूप में कृष्ण वृन्दावन में ग्वालबाल के रूप में देखे जाते हैं।

'प्राभव-वैभव'-रूपे द्विविध प्रकाशे ।

एक-वपु बहु रूप यैछे हैल रासे ॥ 167॥

प्राभव-प्रभाव; वैभव-वैभव; रूपे-रूपों में; द्वि-विध प्रकाशे-दो प्रकार की अभिव्यक्तियाँ; एक-वपु-समान वास्तविक रूप; बहु रूप-असंख्य रूपों में विस्तारित; यैछे-जिस प्रकार; हैल–हुआ; रासे-गोपियों के साथ रास नृत्यों में नृत्य करते हुए।

अनुवाद

"अपने आदि रूप में कृष्ण प्राभव तथा वैभव इन दो स्वरूपों में प्रकट होते हैं। वे अपने एक आदि रूप का अनेक रूपों में विस्तार कर लेते हैं, जैसाकि उन्होंने रासलीला नृत्य के अवसर पर किया था।

महिषी-विवाहे हैल बहु-विध मूर्ति ।

'प्राभव प्रकाश'–एइ शास्त्र-परसिद्धि ॥ 168॥

महिषी-विवाहे-द्वारका में 16,108 रानियों से विवाह करते समय; हैल–हुए; बहु-विध मूर्ति–अनेक रूप; प्राभव प्रकाश-प्राभव-प्रकाश नामक; एइ-इस; शास्त्र-परसिद्धि प्रामाणिक शास्त्रों द्वारा निर्णित।

अनुवाद

"जब भगवान् ने द्वारका में 16,108 पत्नियों से विवाह किया, तब उन्होंने अपने आपका अनेक रूपों में विस्तार किया। ये विस्तार तथा रासनृत्य के अवसर पर हुए विस्तार शास्त्रों के निर्देशानुसार प्राभव-प्रकाश कहलाते हैं।

सौभर्यादि-प्राय सेइ काय-व्यूह नय ।

काय-व्यूह हैले नारदेर विस्मय ना हय ॥ 169॥

सौभरि-आदि-सौभरि मुनि आदि; प्राय-जैसा; सेइ-वह; काय-व्यूह-अपने शरीर का विस्तार; नय-नहीं है; काय-व्यूह-शरीर का विस्तार; हैले–यदि हो; नारदेर-नारद मुनि को; विस्मय-आश्चर्य; ना हय-नहीं हो सकता।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण के ये प्राभव-प्रकाश सौभरि मुनि के विस्तारों जैसे नहीं हैं। यदि ऐसा होता, तो नारद उन्हें देखकर विस्मित न हुए होते।

चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत्पृथक् ।

गृहेषु द्वि-अष्ट-साहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ 170॥

चित्रम्-आश्चर्यजनक; बत–अरे; एतत्-यह; एकेन–एक; वपुषा–रूप द्वारा; युगपत् एक ही समय में; पृथक्-अलग-अलग; गृहेषु–घरों में; द्वि-अष्ट-साहस्रम्-16,000; स्त्रियः–सभी रानियों से; एकः-एक श्रीकृष्ण ने; उदावहत्–विवाह किया।

अनुवाद

“यह विचित्र बात है कि अद्वय कृष्ण ने सोलह हजार रानियों से विवाह करने के लिए उन्हीं के घरों में अपना विस्तार एक जैसे सोलह हजार रूपों में कर लिया।’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.69.2) का है, जिसे नारद मुनि ने कहा था।

सेइ वपु, सेइ आकृति पृथक् यदि भासे ।

भावावेश-भेदे नाम ‘वैभव-प्रकाशे’ ॥ 171 ॥

सेइ वपु-वही रूप; सेइ आकृति-वही आकृति; पृथक्-भिन्न; यदि-यदि; भासे-प्रतीत होती है; भाव-आवेश-दिव्य भाव के; भेदे-भेद से; नाम-नामक; वैभव-प्रकाशे-वैभव प्रकाश।

अनुवाद

“यदि एक रूप या शरीर विभिन्न भावों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकट हो, तो यह वैभव-प्रकाश कहलाता है।

अनन्त प्रकाशे कृष्णेर नाहि मूर्ति-भेद ।

आकार-वर्ण-अस्त्र-भेदे नाम-विभेद ॥ 172॥

अनन्त प्रकाशे-असंख्य अभिव्यक्तियों में; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; नाहि-नहीं है; मूर्ति-भेद-स्वरूप का भेद; आकार-आकार के; वर्ण-रंग के; अस्त्र-अस्त्रों के; भेदे-भेद के कारण; नाम-विभेद नामों का भेद।

अनुवाद

“जब भगवान् अपना विस्तार असंख्य रूपों में करते हैं, तब इन रूपों में कोई भेद नहीं होता, किन्तु विभिन्न लक्षणों, वर्ण तथा अस्त्रों में भिन्नता के कारण उनके नाम भिन्न-भिन्न होते हैं।

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते ।

यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहु-मूक-मूर्तिकम् ॥ 173 ॥

अन्ये-अन्य लोग; च–तथा; संस्कृत-आत्मानः-जो लोग शुद्ध हैं; विधिना-नियमों द्वारा; अभिहितेन–प्रामाणिक शास्त्रों द्वारा निर्देशित; ते-ऐसे व्यक्ति; यजन्ति-उपासना करते हैं; त्वत्-मयाः-आपमें आविष्ट होकर; त्वाम्-आपको; वै–निश्चय ही; बहु-मूर्ति–अनेक स्वरूपों वाले; एक-मूर्तिकम्-यद्यपि एक ही।

अनुवाद

“विभिन्न वैदिक शास्त्रों में इन विभिन्न रूपों की पूजा करने के विधि-विधान नियत किये गये हैं। जब मनुष्य इन विधि-विधानों से शुद्ध हो जाता है, तब वह आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा करता है। यद्यपि आप अनेक रूपों में प्रकट होते हैं, किन्तु आप एक हैं।’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.40.7) से लिया गया है। वेदों में कहा गया है कि एक अनेक हो जाता है (एको बहु स्याम्) । पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपना विस्तार अनेक रूपों में-विष्णु तत्त्व, जीव तत्त्व तथा शक्ति तत्त्व में-करते हैं।

वैदिक ग्रन्थों के अनुसार इन रूपों में से हर एक की पूजा करने के विधि-विधान भिन्न-भिन्न हैं। यदि कोई व्यक्ति वैदिक ग्रन्थों का लाभ उठाकर इन विधि-विधानों द्वारा अपने आपको शुद्ध कर लेता है, तो अन्ततः उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की पूजा करने का अवसर प्राप्त होता है। भगवद्गीता

(4.11) में कृष्ण कहते हैं-मम वत्र्मानु वर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः। देवताओं की पूजा एक प्रकार से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की ही पूजा है, किन्तु ऐसी पूजा अविधिपूर्वकम् अर्थात् अनुचित कहलाती है। वस्तुतः देवता-पूजा अल्पज्ञों के लिए है। जो बुद्धिमान है, वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के इन शब्दों-सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज-को समझता है। जो देवताओं की पूजा करता है, वह अप्रत्यक्ष रूप में भगवान् की ही पूजा करता है, किन्तु प्रामाणिक शास्त्रों के अनुसार ऐसी अप्रत्यक्ष पूजा की आवश्यकता नहीं है। भगवान् की पूजा प्रत्यक्ष रूप से की जा सकती है।

वैभव-प्रकाश कृष्णेर—श्री-बलराम ।

वर्ण-मात्र-भेद, सब—कृष्णेर समान ॥ 174॥

वैभव-प्रकाश-वैभव रूप की अभिव्यक्ति; कृष्णेर- भगवान् कृष्ण की; श्री-बलराम-श्री बलराम; वर्ण-मात्र केवल रंग; भेद-अन्तर; सब-सब कुछ; कृष्णेर समान–कृष्ण के समान।

अनुवाद

"कृष्ण के वैभव-रूप का प्रथम प्राकट्य श्री बलरामजी हैं। श्री बलराम तथा कृष्ण के शरीरों के रंग भिन्न हैं, अन्यथा बलराम सभी प्रकार से कृष्ण के समान ही हैं।

तात्पर्य

स्वयं-रूप, तदेकात्म-रूप, आवेश, प्राभव तथा वैभव का अन्तर समझने के लिए श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने निम्नलिखित विवरण दिया है। प्रारम्भ में कृष्ण के तीन स्वरूप होते हैं : (1) वृन्दावन में ग्वालबाल के रूप में स्वयं-रूप; (2) तदेकात्म-रूप जो स्वांशक तथा विलास में विभाजित है तथा (3) आवेश-रूप। स्वांशक अर्थात् अन्तरंगा शक्ति के विस्तारों के अन्तर्गत (1) कारणोदकशायी, गर्भोदकशायी तथा क्षीरोदकशायी एवं (2) मत्स्य, कूर्म, वराह तथा नृसिंह अवतार आते हैं। विलास-

रूप के अन्तर्गत प्राभव आता है, जिसमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध सम्मिलित हैं। एक अन्य विभाग वैभव है, जिसमें द्वितीय वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध समेत 24 रूप हैं। इनमें से प्रत्येक के तीन-तीन रूप हैं—इस तरह कुल मिलाकर 12 रूप हैं। ये बारहों रूप वर्ष के बारहों महीनों तथा शरीर में लगाये जाने वाले द्वादश तिलकों के मुख्य नाम हैं। इन चारों रूपों के अन्य दो दो रूप हैं—इस तरह आठ रूप हुए—यथा पुरुषोत्तम, अच्युत आदि। चारों रूप (वासुदेव इत्यादि), बारह (केशव आदि) तथा आठ (पुरुषोत्तम आदि) मिलाकर 24 रूप हो जाते हैं। इन सारे रूपों के नाम उनके द्वारा अपने चारों हाथों में धारण किये गये अस्त्रों के अनुसार होते हैं।

वैभव-प्रकाश यैछे देवकी-तनुज ।

द्विभुज-स्वरूप कभु, कभु हय चतुर्भुज ॥175॥

वैभव-प्रकाश-वैभव प्रकाश का स्वरूप; यैछे-जिस प्रकार; देवकी-तनुज-देवकी के पुत्र; द्वि-भुज-दो भुजाओं वाला; स्वरूप-रूप; कभु-कभी; कभु-कभी; हय-है; चतुर्-भुज-चार भुजाओं वाला।

अनुवाद

“वैभव-प्रकाश का एक उदाहरण है देवकी के पुत्र। उनके कभी दो हाथ होते हैं तो कभी चार हाथ।

तात्पर्य

जब भगवान् कृष्ण ने जन्म लिया, तब गर्भ से बाहर आने पर वे चतुर्भुज विष्णु के रूप में प्रकट हुए। तब देवकी तथा वसुदेव ने उनकी स्तुति की और उनसे कहा कि वे अपना द्विभुज रूप धारण करें। भगवान् ने तुरन्त द्विभुज रूप धारण कर लिया और आदेश दिया कि उन्हें यमुना के उस पार गोकुल पहुँचा दिया जाये।

ये-काले द्विभुज, नाम—वैभव-प्रकाश ।

चतुर्भुज हैले, नाम—प्राभव-प्रकाश ॥ 176 ॥

ये-काले द्वि-भुज-जब भगवान् द्विभुज रूप में प्रकट होते हैं; नाम-नामक; वैभव-प्रकाश-वैभव प्रकाश; चतुर्भु ज हैले–जब वे चतुर्भुज बनते हैं; नाम-नामक; प्राभव-प्रकाश-प्राभव प्रकाश।

अनुवाद

"जब भगवान् द्विभुज रहते हैं, तो वे वैभव-प्रकाश कहलाते हैं और जब वे चतुर्भुज होते हैं तो प्राभव-प्रकाश कहलाते हैं।

स्वयं-रूपेर गोप-वेश, गोप-अभिमान ।

वासुदेवेर क्षत्रिय-वेश, 'आमि—क्षत्रिय'-ज्ञान ॥ 177॥

स्वयम्-रूपेर-स्वयं रूप का; गोप-वेश-ग्वाल बाल की वेशभूषा; गोप-अभिमान-स्वयं को ग्वाल बालक मानकर; वासुदेवेर-वसुदेव देवकी के पुत्र, वासुदेव का; क्षत्रिय-वेश-एक क्षत्रिय जैसा वेश; आमि-मैं हूँ; क्षत्रिय-एक क्षत्रिय; ज्ञान-जानकर।

अनुवाद

"स्वयं-रूप (अपने मूल रूप) में भगवान् ग्वालबाल के वेश में रहते हैं और अपने आपको ग्वालबाल मानते हैं। जब वे वसुदेव तथा देवकी के पुत्र के रूप में प्रकट होते हैं, तब उनका वेश तथा उनकी चेतना एक क्षत्रिय अर्थात् योद्धा जैसे होते हैं।

सौन्दर्य, ऐश्वर्य, माधुर्य, वैदग्ध्य-विलास ।

व्रजेन्द्र-नन्दने इहा अधिक उल्लास ॥ 178॥

सौन्दर्य-सुन्दरता; ऐश्वर्य–ऐश्वर्य; माधुर्य–मधुरता; वैदग्ध्य-विलास-बौद्धिक लीलाएँ; व्रजेन्द्र-नन्दने-नन्द महाराज तथा यशोदा के पुत्र के; इहा-ये सभी; अधिक उल्लास-और अधिक विलास हैं।

अनुवाद

"जब योद्धा-वासुदेव के सौन्दर्य, ऐश्वर्य, माधुर्य तथा बौद्धिक लीलाओं की तुलना नन्द महाराज के पुत्र ग्वालबाल कृष्ण से की जाती है, तब देखा जाता है कि कृष्ण के लक्षण अधिक सुहावने लगते हैं।

गोविन्देर माधुरी देखि' वासुदेवेर क्षोभ ।

से माधुरी आस्वादिते उपजय लोभ ॥ 179॥

गोविन्देर-भगवान् गोविन्द की; माधुरी-मधुरता; देखि'–देखकर; वासुदेवेर-वासुदेव का; क्षोभ–विचलित होना; से-वह; माधुरी-मधुरता; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; उपजय-जाग जाता है; लोभ-लालच।

अनुवाद

"निस्सन्देह, गोविन्द की माधुरी देखकर वासुदेव में क्षोभ उत्पन्न होता है और तब उस माधुरी का आस्वादन करने के लिए उनमें दिव्य लोभ उत्पन्न होता है।

उद्गीर्णाद्भुत-माधुरी-परिमलस्याभीर-लीलस्य मे

द्वैतं हन्त समीक्षयन्मुहरसौ चित्रीयते चारणः ।

चेतः केलि-कुतूहलोत्तरलितं सत्यं सखे मामकं

यस्य प्रेक्ष्य स्वरूपतां व्रज-वधू-सारूप्यमन्विच्छति ॥ 180॥

उद्गीर्ण–सराबोर; अद्भुत-अद्भुत; माधुरी–मधुरता; परिमलस्य–जिसकी सुगन्ध; आभीर–एक ग्वालबाल की; लीलस्य–जिनकी लीलाएँ हैं; मे–मेरा; द्वैतम्-दूसरा रूप; हन्त–हाय; समीक्षयन्–दिखाकर; मुहुः–बारम्बार; असौ-वह; चित्रीयते-एक चित्र की भाँति नाटक करते हैं; चारणः-एक नाटक

का नायक; चेतः-हृदय; केलि-कुतूहल-लीलाओं के लिए उत्सुकता द्वारा; उत्तरलितम्-अत्यन्त उत्साहित; सत्यम्-वास्तव में; सखे-हे प्रिय मित्र; मामकम्-मेरे; यस्य–जिसको; प्रेक्ष्य-देखने से; स्वरूपताम्-मेरे स्वरूप के समान; व्रज-वधू-व्रजभूमि की गोपियों के; सारूप्यम्-समान एक स्वरूप; अन्विच्छति–चाहता है।

अनुवाद

"'हे मित्र, यह अभिनेता मेरे द्वितीय रूप जैसा लगता है। यह चित्र की भाँति आश्चर्यजनक आकर्षक माधुरी तथा सुगन्धि से ओतप्रोत ग्वालबाल की तरह मेरी लीलाएँ प्रदर्शित करता है, जो व्रजबालाओं को अत्यन्त प्रिय हैं। जब मैं इस प्रदर्शन को देखता हूँ, तो मेरा मन उत्तेजित हो उठता है। ऐसी लीलाओं के लिए मेरी भी इच्छा होने लगती है और इच्छा होती है। कि मुझे भी व्रजबालाओं जैसा ही रूप प्राप्त हो जाए।'

तात्पर्य

यह श्लोक ललितमाधव (4.19) से है और द्वारका में वासुदेव द्वारा कहा गया था।

मथुराय यैछे गन्धर्व-नृत्य-दरशने ।

पुनः द्वारकाते यैछे चित्र-विलोकने ॥ 181॥

मथुराय-मथुरा में; यैछे-जिस प्रकार; गन्धर्व-नृत्य-गन्धर्वो का नृत्य; दरशने-देखकर; पुनः–फिर; द्वारकाते-द्वारका में; यैछे-जिस प्रकार; चित्र-विलोकने-कृष्ण का एक चित्र देखकर।।

अनुवाद

"एक बार जब वासुदेव ने मथुरा में गन्धर्व-नृत्य देखा, तो कृष्ण के प्रति वासुदेव को आकर्षण का अनुभव हुआ। दूसरी बार द्वारका में हुआ, जब वासुदेव कृष्ण का चित्र देखकर चकित हो गये थे।

अपरिकलित-पूर्वः कश्चमत्कार-कारी

स्फुरतु मम गरीयानेष माधुर्य-पूरः ।

अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्ध-चेताः

सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव ॥182॥

अपरिकलित-अनुभव न किया हुआ; पूर्वः–पहले; कः-कौन; चमत्कार-कारी-चमत्कार करने वाला; स्फुरतु-प्रकट करता है; मम–मुझसे; गरीयान्–और श्रेष्ठ; एषः-यह; माधुर्य-पूरः-माधुर्य का भण्डार; अयम्-यह; अहम् मैं; अपि-भी; हन्त–हाय; प्रेक्ष्य-देखकर; यम्-जिसे; लुब्ध-चेताः-मेरा मन भ्रमित होकर; सरभसम्-आग्रहपूर्वक; उपभोक्तुम्-आनन्द लेने के लिए; कामये-इच्छा करता है; राधिका इव-श्रीमती राधारानी की भाँति।

अनुवाद

"वह कौन है, जो मुझसे भी बढ़कर ऐसी प्रभूत माधुरी प्रकट कर रहा है, जिसका अनुभव इसके पूर्व कभी नहीं किया गया और जो सबको चकित करने वाली है? हाय! इस सौन्दर्य को देखकर मेरा मन भी मोहित हो रहा है और मैं स्वयं श्रीमती राधारानी के समान इसका आनन्द उठाने के लिए इच्छुक हूँ।'

तात्पर्य

यह श्लोक वासुदेव द्वारा द्वारका में कहा गया है, जो श्रील रूप गोस्वामी कृत ललितमाधव (8.34) में अंकित है।

सेइ वपु भिन्नाभासे किछु भिन्नाकार ।

भावावेशाकृति-भेदे 'तदेकात्म' नाम ताँर ॥183॥

सेइ वपु-वह शरीर; भिन्न-आभासे-भिन्न रूप में प्रकट; किछु-कुछ; भिन्न-आकार–शरीर की भिन्नता; भाव-आवेश-आकृति-रूप तथा दिव्य भावनाएँ; भेद-भेद द्वारा; तत्-एकात्म नाम–तदेकात्म नाम के; ताँर-कृष्ण के।

अनुवाद

"जब वह शरीर किंचित् भिन्न रूप में प्रकट होता है और इसके स्वरूप भाव तथा रूप में किंचित् भिन्न होते हैं, तो वह तदेकात्म कहलाता है।

तदेकात्म-रूपे 'विलास', 'स्वांश—दुइ भेद।

विलास, स्वांशेर भेदे विविध विभेद॥ 184॥

तत्-एकात्म-रूपे-तदेकात्म रूप में; विलास-लीला; स्वांश-स्वांश, निजी विस्तार; दुइ भेद-दो भेद; विलास-लीला विस्तार के; स्वांशेर-निजी विस्तार के; भेदे-भेदों द्वारा; विविध-अनेक; विभेद-भेद।

अनुवाद

"तदेकात्म-रूप के अन्तर्गत विलास (लीला-विस्तार) तथा स्वांश (व्यक्तिगत विस्तार) दो भेद हैं। लीला (विलास) तथा स्वांश के अनुसार विविध विभेद हैं।

तात्पर्य

भगवान् के विलास विस्तारों का वर्णन लघु भागवतामृत (1.15) के निम्नलिखित श्लोक में किया गया है :

स्वरूपमन्याकारं यत्तस्य भाति विलासतः।

प्रायेणात्मसमं शक्त्या स विलासो निगद्यते॥

“जब भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्ति के द्वारा भिन्न आकारों से युक्त अपने विविध रूप प्रदर्शित करते हैं, तब ये रूप विलास-विग्रह कहलाते हैं।”

लघु भागवतामृत (पूर्वखण्ड, श्लोक 17) में भगवान् के स्वांश विस्तारों का भी वर्णन किया गया है :

तादृशो न्यून शक्तिं यो व्यक्ति स्वांश ईरितः ।

संकर्षणादिर्मत्स्यादिर्यथा तत्तत्स्वधामसु ॥

जब कृष्ण का कोई रूप आदि रूप से अभिन्न होकर कम महत्त्वपूर्ण होता है तथा कम शक्ति दिखलाता है, तब वह स्वांश कहलाता है। अपने-अपने धाम में निवास कर रहे भगवान के चतुर्युह अवतारों-संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध से लेकर पुरुष अवतार, लीलावतार, मन्वन्तर अवतार एवं युगावतार स्वांश के उदाहरण हैं।

प्राभव-वैभव-भेदे विलास—द्विधाकार।

विलासेर विलास-भेद—अनन्त प्रकार ॥ 185॥

प्राभव-वैभव-भेदे-प्राभव तथा वैभव के बीच भेद द्वारा; विलास-लीला विस्तार; द्विधा-आकार-दो प्रकार के; विलासेर-लीला रूपों के; विलास-भेद-विभिन्न लीलाओं द्वारा; अनन्त प्रकार-असीमित प्रकार के।

अनुवाद

“पुनः विलास रूपों को दो श्रेणियों में बाँटा गया है-प्राभव तथा वैभव। इन रूपों के विलासों के भी अंसख्य भेद हैं।

प्राभव-विलास—वासुदेव, सङ्कर्षण ।

प्रद्युम्न, अनिरुद्ध,—मुख्य चारि-जन ॥186 ॥

प्राभव-विलास-प्राभव विलास रूप; वासुदेव-वासुदेव; सङ्कर्षण-संकर्षण; प्रद्युम्न–प्रद्युम्न; अनिरुद्ध-अनिरूद्ध; मुख्य चारि-जन-चार मुख्य विस्तार।

अनुवाद

"मुख्य चतुर्दूहों के नाम हैं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध। ये प्राभव-विलास कहलाते हैं।

व्रजे गोप-भाव रामेर, पूरे क्षत्रिय-भावन ।

वर्ण-वेश-भेद, ताते 'विलास' ताँर नाम ॥ 187॥

व्रजे-वृन्दावन में; गोप-भाव-एक ग्वाल बालक का भाव; रामेर-बलराम का; पुरे-द्वारका में; क्षत्रिय-भावन–एक क्षत्रिय का भाव; वर्ण-वेश-भेद-रंग तथा वेश के भेदों द्वारा; ताते—इसलिए; विलास-लीला विस्तार; ताँर नाम-उनका नाम।

अनुवाद

"कृष्ण के आदि रूप जैसे ही रूप वाले बलराम वृन्दावन में एक ग्वालबाल हैं और वे अपने आपको द्वारका के क्षत्रिय वंश के एक सदस्य भी मानते हैं। इस तरह उनका रंग तथा वेश भिन्न है और वे कृष्ण के लीला-रूप कहलाते हैं।

वैभव-प्रकाशे आर प्राभव-विलासे ।

एक-इ मूर्ये बलदेव भाव-भेदे भासे ॥ 188॥

वैभव-प्रकाशे-वैभव प्राकट्य में; आर-तथा; प्राभव-विलासे–प्राभव लीला रूप में; एक-इ मूर्ये-एक रूप में; बलदेव-भगवान् बलराम; भाव-भेदे विभिन्न भावों के अनुसार; भासे-रहते हैं।

अनुवाद

"श्री बलराम कृष्ण के वैभव-प्रकाश रूप हैं। वे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के मूल चतुर्व्यूह में भी प्रकट होते हैं। ये भिन्न भावों वाले प्राभव-विलास विस्तार हैं।

आदि-चतुर्व्यह—इँहार केह नाहि सम ।

अनन्त चतुर्व्यह-गणेर प्राकट्य-कारण ॥189॥

आदि-चतुर्-व्यूह मूल चतुर्व्यूह का समूह; इँहार-इसके; केह नाहि कोई नहीं; सम-समान; अनन्त-असीमित; चतुर्-व्यूह-गणेर-चतुर्व्यूह विस्तारों की प्राकट्य-अभिव्यक्ति के; कारण-कारण।

अनुवाद

"चतुर्व्यूह का प्रथम विस्तार अद्वितीय है। उनकी कोई तुलना ही नहीं है। ये चतुर्व्यह-रूप अनन्त चतुर्दूह-रूपों के स्रोत हैं।

कृष्णेर एइ चारि प्राभव-विलास ।

द्वारका-मथुरा-पुरे नित्य इँहार वास ॥ 190॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; एइये; चारि–चार; प्राभव-विलास-प्राभव लीला रूप; द्वारका-मथुरा-पुरे द्वारका तथा मथुरा में; नित्य-नित्य रूप से; इँहार–इनका; वास-निवास।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण के ये चार प्राभव-विलास रूप द्वारका तथा मथुरा में शाश्वत निवास करते हैं।"

एइ चारि हैते चब्बिश मूर्ति परकाश ।

अस्त्र-भेदे नाम-भेद—वैभव-विलास ॥191॥

एइ चारि हैते–इन चारों से; चब्बिश-चौबीस; मूर्ति-रूप; परकाश-प्रकट; अस्त्र-भेदे-अस्त्रों के भेदानुसार; नाम-भेद-नामों का भेद; वैभव-विलास-वैभव लीला विस्तार।

अनुवाद

"एक मूल चतुयूँह से चौबीस रूप प्रकट होते हैं। वे अपने चारों हाथों में धारण किये जाने वाले अस्त्रों कि स्थिति के अनुसार भिन्न होते हैं। वे वैभव-विलास कहलाते हैं।

पुनः कृष्ण चतुर्व्यूह लञा पूर्व-रूपे ।

परव्योम-मध्ये वैसे नारायण-रूपे ॥192॥

पुनः-फिर; कृष्ण-कृष्ण; चतुर्-व्यूह–चार व्यूह; लञा–लेकर; पूर्व-रूपे-पहले की तरह; परव्योम-मध्ये-परव्योम क्षेत्र में; वैसे-रहते हैं; नारायण-रूपे-चतुर्भुज नारायण रूप में।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण पुनः विस्तार करते हैं और परव्योम अर्थात् आध्यात्मिक आकाश में वे अपने मूल चतुर्व्यह रूपों के विस्तार के साथ अपने चतुर्भुजी नारायण रूप में पूर्णरूपेण स्थित हैं।

तात्पर्य

परव्योम अर्थात् आध्यात्मिक आकाश के ऊपर गोलोक वृन्दावन है, जिसके तीन अंग हैं। दो अंग मथुरा तथा द्वारका हैं, जिनमें कृष्ण अपने प्राभव-विलास रूपों में निवास करते हैं। कृष्ण के वैभव-प्रकाश विस्तार बलराम गोकुल में नित्य वास करते हैं। प्राभव-विलास चतुर्व्यूह से वैभव-विलास के चौबीस रूपों का विस्तार होता है। इनमें से प्रत्येक चतुर्भुजी रूप हैं, जो विभिन्न अवस्थाओं में अस्त्र धारण किये हुए रहते हैं। आध्यात्मिक आकाश में सर्वोच्च लोक गोलोक वृन्दावन है और उसके नीचे

स्वयं आध्यात्मिक आकाश है। उस आध्यात्मिक आकाश में स्वयं कृष्ण चतुर्भुजी हैं और नारायण रूप में स्थित है।

ताँहा हैते पुनः चतुर्व्यूह-परकाश ।

आवरण-रूपे चारि-दिके याँर वास ॥193॥

ताँहा हैते–मूल चतुर्व्यूह से; पुनः–दोबारा; चतुर्-व्यूह-परकाश-चतुर्व्यूह विस्तार का प्राकट्य; आवरण-रूपे-एक आवरण के रूप में; चारि-दिके-चार दिशाओं में; याँर-जिनका; वास–निवास।

अनुवाद

"इस तरह मूल चतुर्व्यूह रूप पुनः द्वितीय चतुर्व्यूह रूप में प्रकट होते हैं। इन द्वितीय चतुर्दूहों के आवास चारों दिशाओं को आच्छादित करते हैं।

चारि-जनेर पुनः पृथक तिन तिन मूर्ति ।

केशवादि याहा हैते विलासेर पूर्ति ॥ 194॥

चारि-जनेर-चारों विस्तार के मूल के; पुनः-फिर; पृथक्-अलग; तिन तिन-तीन-तीन; मूर्ति-रूप; केशव-आदि-भगवान् केशव आदि; याहा हैते–जिनसे; विलासेर पूर्ति-विलास विस्तारों की पूर्ति होती है।

अनुवाद

"इन चतुर्व्यहों का पुनः तीन बार विस्तार होता है, जिनमें केशव आदि आते हैं। यह विलास-रूपों की पूर्ति है।

चक्रादि-धारण-भेदे नाम-भेद सब ।

वासुदेवेर मूर्ति—केशव, नारायण, माधव ॥ 195॥

चक्र-आदि-चक्र तथा अन्य अस्त्रों को; धारण-धारण करने के; भेदे-भेद द्वारा; नाम-नामों के; भेद-भेद; सब–सभी; वासुदेवेर मूर्ति–वासुदेव के विस्तार; केशव-केशव; नारायण-नारायण; माधव-माधव।

अनुवाद

"चतुर्व्यूह में से प्रत्येक रूप के तीन विस्तार होते हैं और वे अस्त्र धारण करने की स्थिति के अनुसार विभिन्न नाम वाले होते हैं। वासुदेव के विस्तार हैं केशव, नारायण तथा माधव।

सङ्कर्षणेर मूर्ति—गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन ।

ए अन्य गोविन्द—नहे व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ 196॥

सङ्कर्षणेर मूर्ति–संकर्षण के विस्तार; गोविन्द गोविन्द; विष्णु-विष्णु; मधुसूदन-मधुसूदन; ए-यह; अन्य-अलग; गोविन्द-गोविन्द; नहे व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र नहीं हैं।

अनुवाद

"संकर्षण के विस्तार हैं गोविन्द, विष्णु तथा मधुसूदन। ये गोविन्द मूल गोविन्द से भिन्न हैं, क्योंकि ये महाराज नन्द के पुत्र नहीं हैं।

प्रद्युम्नेर मूर्ति—त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर ।

अनिरुद्धेर मूर्ति—हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर ॥197॥

प्रद्युम्नेर मूर्ति–प्रद्युम्न के रूप के विस्तार; त्रिविक्रम-त्रिविक्रम; वामन-वामन; श्रीधर-श्रीधर; अनिरुद्धेर मूर्ति-अनिरूद्ध के विस्तार; हृषीकेश-हृषिकेश; पद्मनाभ-पद्मनाभ; दामोदर दामोदर।

अनुवाद

“प्रद्युम्न के विस्तार हैं त्रिविक्रम, वामन तथा श्रीधर। इसी तरह अनिरुद्ध के विस्तार हृषीकेश, पद्मनाभ तथा दामोदर हैं।

द्वादश-मासेर देवता—एइ-बार जन ।

मार्गशीर्षे—केशव, पौषे—नारायण ॥198॥

द्वादश-मासेर-बारह महीनों के देवता-देवता; एइ-ये; बार जन-बारह भगवान्; मार्गशीर्षे-अग्रहायन (नवम्बर-दिसम्बर) का महीना; केशव-केशव; पौषे–पौष (दिसम्बर-जनवरी) मास; नारायण-नारायण।

अनुवाद

“ये बारहों बारह महीनों के प्रधान देवता हैं। केशव अग्रहायण मास के और नारायण पौष मास के प्रधान देवता हैं।

माघेर देवता—माधव, गोविन्द–फाल्गुने ।

चैत्रे—विष्णु, वैशाखे—श्री-मधुसूदन ॥ 199॥

माघेर देवता-माघ (जनवरी-फरवरी) मास के देवता; माधव-माधव; गोविन्द-गोविन्द; फाल्गुने–फाल्गुन (फरवरी-मार्च) मास के; चैत्रे-चैत्र (मार्च-अप्रैल) मास में; विष्णु-भगवान् विष्णु; वैशाखे वैशाख (अप्रैल-मई) मास में; श्री-मधुसूदन–श्री मधुसूदन।

अनुवाद

“माघ मास के प्रधान देवता माधव हैं और फाल्गुन के गोविन्द हैं। विष्णु चैत्र मास के और मधुसूदन वैशाख मास के प्रधान देवता हैं।

ज्यैष्ठे—त्रिविक्रम, आषाढ़े—वामन देवेश ।

श्रावणे—श्रीधर, भाद्रे—देव हृषीकेश ॥200॥

ज्यैष्ठे–ज्येष्ठ (मई-जून) मास में; त्रिविक्रम-त्रिविक्रम; आषाढ़े-आषाढ़ (जून-जुलाई) मास में; वामन देव-ईश-भगवान् वामन; श्रावणे-श्रावण (जुलाई-अगस्त) मास में; श्रीधर-श्रीधर; भाद्रे- भाद्र (अगस्त-सितम्बर) मास में; देव हृषीकेश– भगवान् हृषिकेश।

अनुवाद

"ज्येष्ठ मास के प्रधान देवता त्रिविक्रम हैं, आषाढ़ के देवता वामन हैं, श्रावण मास के श्रीधर तथा भाद्र मास के हृषीकेश हैं।

आश्विने—पद्मनाभ, कार्तिके दामोदर।

'राधा-दामोदर' अन्य व्रजेन्द्र-कोङर ॥201॥

आश्विने-आश्विन (सितम्बर-अक्तूबर) मास में; पद्मनाभ-पद्मनाभ; कार्तिके-कार्तिक (अक्तूबर-नवम्बर) मास में; दामोदर-दामोदर; राधा-दामोदर–श्रीमती राधारानी के दामोदर; अन्य दूसरे हैं; व्रजेन्द्र-कोङर-नन्द महाराज के पुत्र।

अनुवाद

"आश्विन मास के प्रधान देवता पद्मनाभ हैं और कार्तिक मास के दामोदर हैं। ये दामोदर वृन्दावन के नन्द महाराज के पुत्र राधा-दामोदर से भिन्न हैं।

द्वादश-तिलक-मन्त्र एइ द्वादश नाम।

आचमने एइ नामे स्पर्शि तत्तत्स्थान ॥ 202॥

द्वादश-तिलक-तिलक के बारह चिह्नों के; मन्त्र-मंत्र; एइ-ये; द्वादश नाम-बारह नाम; आचमने-जल से आचमन करने में; एइ नामे-इन्हीं नामों के साथ; स्पर्शि-हम स्पर्श करते हैं; तत्-तत्-स्थान-विशिष्ट स्थानों को।

अनुवाद

"शरीर के बारह स्थानों पर तिलक लगाते समय विष्णु के इन बारह नामों वाले मन्त्र का उच्चारण करना होता है। नित्य पूजा के बाद जल से आचमन करते समय इन नामों का उच्चारण करते हुए शरीर के प्रत्येक अंग का स्पर्श करना चाहिए।

तात्पर्य

शरीर में तिलक लगाते समय निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए, जिसमें विष्णु के बारह नाम आते हैं :

ललाटे केशवं ध्यायेन नारायणमथोदरे ।

वक्षःस्थले माधवं तु गोविन्दं कण्ठकूपके ॥

विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम् ।

त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वाम पार्श्वके ॥

श्रीधरं वामबाहौ तु हृषीकेशं तु कन्धरे ।

पृष्ठे च पद्मनाभं च कट्यां दामोदरं न्यसेत् ॥

"मस्तक पर तिलक लगाते समय केशव का स्मरण करें। उदर में तिलक लगाते समय नारायण का, वक्षस्थल पर तिलक लगाते समय माधव का, गले के गड्ढे में तिलक लगाते समय गोविन्द का स्मरण करें। दाहिनी कोख में तिलक लगाते समय विष्णु का तथा दाहिनी भुजा में तिलक लगाते समय मधुसूदन

का स्मरण करें। दाहिने कन्धे में तिलक लगाते समय त्रिविक्रम का, उदर के बाईं ओर तिलक लगाते समय वामन का, बाईं भुजा में तिलक लगाते समय श्रीधर का तथा बाएँ कन्धे में तिलक लगाते समय हृषीकेश का स्मरण करें। पीठ पर तिलक लगाते समय पद्मनाभ तथा दामोदर का स्मरण करें।"

एइ चारि-जनेर विलास-मूर्ति आर अष्ट जन ।

ताँ सबार नाम कहि, शुन सनातन ॥203॥

एइ चारि-जनेर-इस चार पुरुषों के; विलास-मूर्ति-लीला स्वरूप; आर-और अधिक; अष्ट जन-आठ पुरुष; ताँ सबार-उन सभी के नाम-पवित्र नाम; कहि-मैं बताऊँगा; शुन-सुनो; सनातन हे सनातन।

अनुवाद

"वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध से आठ और विलास-रूप आते हैं। हे सनातन, मैं उनके नामों का उल्लेख करता हूँ। उन्हें सुनो।

पुरुषोत्तम, अच्युत, नृसिंह, जनार्दन ।

हरि, कृष्ण, अधोक्षज, उपेन्द्र,—अष्ट-जन ॥ 204॥

पुरुषोत्तम पुरुषोत्तम; अच्युत-अच्युत; नृसिंह-नृसिंह; जनार्दन-जनार्दन; हरि-हरि; कृष्ण-कृष्ण; अधोक्षज–अधोक्षज; उपेन्द्र–उपेन्द्र; अष्ट-जन-आठ पुरुष।

अनुवाद

"ये आठ विलास (लीला-विस्तार) हैं–पुरुषोत्तम, अच्युत, नृसिंह, जनार्दन, हरि, कृष्ण, अधोक्षज तथा उपेन्द्र।

वासुदेवेर विलास दुई–अधोक्षज, पुरुषोत्तम ।

सङ्कर्षणेर विलास—उपेन्द्र, अच्युत दुइ-जन ॥205॥

वासुदेवेर विलास-वासुदेव के लीला विस्तार; दुइ-दो; अधोक्षज-अधोक्षज; पुरुषोत्तम पुरुषोत्तम; सङ्कर्षणेर विलास-संकर्षण के लीला विस्तार; उपेन्द्र–उपेन्द्र; अच्युत-अच्युत; दुइ-जन-दो व्यक्ति।

अनुवाद

"इन आठ विस्तारों में से दो तो वासुदेव के विलास हैं। उनके नाम हैं। अधोक्षज तथा पुरुषोत्तम। संकर्षण के दो विलास हैं उपेन्द्र तथा अच्युत।

प्रद्युम्नेर विलास–नृसिंह, जनार्दन ।

अनिरुद्धेर विलास—हरि, कृष्ण दुइ-जन ॥ 206॥

प्रद्युम्नेर विलास-प्रद्युम्न के लीला स्वरूप; नृसिंह-नृसिंह; जनार्दन-जनार्दन; अनिरुद्धेर विलास-अनिरुद्ध के लीला स्वरूप; हरि-हरि; कृष्ण-कृष्ण; दुइ-जन-दोनों।

अनुवाद

"प्रद्युम्न के विलास (लीला-विस्तार) हैं नृसिंह तथा जनार्दन एवं अनिरुद्ध के विलास हैं हरि तथा कृष्ण।

एइ चब्बिश मूर्ति—प्राभव-विलास प्रधान ।

अस्त्र-धारण-भेदे धरे भिन्न भिन्न नाम ॥207॥

एइ चब्लिश मूर्ति–इन चौबीस रूपों में से; प्राभव-विलास-प्राभव विस्तार के लीला स्वरूप; प्रधान-मुख्य; अस्त्र-धारण-अस्त्रों को धारण करने के; भेदे-भेद से; धरे-रखते हैं; भिन्न भिन्न-एक दूसरे से अलग; नाम-नाम्।

अनुवाद

“ये चौबीसों रूप भगवान् के मुख्य प्राभव-विलास हैं। इनके नाम हाथों में धारण किये गये अस्त्रों की स्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं।

इँहार मध्ये याहार हय आकार-वेश-भेद ।

सेइ सेइ हय विलास-वैभव-विभेद ॥ 208॥

इँहार मध्ये-इन सबमें से; याहार–जिसका; हय–होता है; आकार–शारीरिक रूपों का; वेश-वेश का; भेद-भेद; सेइ सेइ हय–वे हैं; विलास-वैभव-वैभव विलास के; विभेद-भेद।

अनुवाद

“इन समस्त रूपों में जो रूप वेश तथा आकार में भिन्न होते हैं, वे वैभव-विलास कहलाते हैं।

पद्मनाभ, त्रिविक्रम, नृसिंह, वामन ।

हरि, कृष्ण आदि हय ‘आकार’ विलक्षण ॥ 209॥

पद्मनाभ-पद्मनाभ; त्रिविक्रम-त्रिविक्रम; नृसिंह-नृसिंह; वामन-वामन; हरि-हरि; कृष्ण-कृष्ण; आदि–इत्यादि; हय-हैं; आकारे विलक्षण शारीरिक आकारों में भिन्न।

अनुवाद

“इनमें से पद्मनाभ, त्रिविक्रम, नृसिंह, वामन, हरि, कृष्ण इत्यादि के शारीरिक रूप भिन्न-भिन्न हैं।

कृष्णेर प्राभव-विलास—वासुदेवादि चारि जन ।

सेइ चारि-जनार विलास—विंशति गणन ॥ 210॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के प्राभव-विलास-प्राभव लीला रूप; वासुदेव-आदि-वासुदेव तथा अन्य; चारि जन-चार विस्तार; सेइ-उन; चारि-जनार-चार पुरुषों के; विलास-लीला स्वरूप; विंशति गणन–20 गिने जाते हैं।

अनुवाद

"वासुदेव तथा अन्य तीन विस्तार भगवान् कृष्ण के प्रत्यक्ष प्राभव-विलास हैं। इन चतुर्व्यूह रूपों के बीस विलास विस्तार हैं।

इँहा-सबार पृथक् वैकुण्ठ–परव्योम-धामे ।

पूर्वादि अष्ट–दिके तिन तिन क्रमे ॥211॥

इँहा-उनका; सबार-सभी का; पृथक्-अलग; वैकुण्ठ–एक वैकुण्ठ लोक; परव्योम-धामे-आध्यात्मिक जगत् में; पूर्व-आदि-पूर्व से प्रारम्भ होकर; अष्ट-दिके–आठ दिशाओं में; तिन तिन–प्रत्येक में तीन; क्रमे क्रमपूर्वक।

अनुवाद

"ये सारे रूप आध्यात्मिक आकाश धाम में भिन्न-भिन्न वैकुण्ठ लोकों के अधिष्ठाता हैं, जो पूर्व दिशा से क्रमशः प्रारम्भ होते हैं। आठों दिशाओं में प्रत्येक में तीन भिन्न रूप होते हैं।

यद्यपि परव्योम सबाकार नित्य-धाम ।

तथापि ब्रह्माण्डे कारो काँहो सन्निधान ॥212॥

यद्यपि-यद्यपि; परव्योम-आध्यात्मिक आकाश; सबाकार–उन सभी का; नित्य-धाम–नित्य निवास है; तथापि फिर भी; ब्रह्माण्डे–भौतिक ब्रह्माण्डों में; कारो-उनमें से कुछ का; काँहो–कहीं; सन्निधान–निवासस्थान।

अनुवाद

"यद्यपि इन सबका परव्योम में सनातन निवासस्थान है, किन्तु इनमें से कुछ भौतिक ब्रह्माण्डों में स्थित हैं।

परव्योम-मध्ये नारायणेर नित्य-स्थिति ।

परव्योम-उपरि कृष्णलोकेर विभूति ॥213॥

परव्योम-मध्ये-आध्यात्मिक आकाश में; नारायणेर-नारायण का; नित्य-स्थिति-नित्य निवास; परव्योम-उपरि–आध्यात्मिक आकाश के ऊपरी भाग में; कृष्ण-लोकेर विभूति-कृष्णलोक का ऐश्वर्य।

अनुवाद

"परव्योम में नारायण का नित्य निवासस्थान है। इस परव्योम के ऊपरी भाग में कृष्णलोक है, जो समस्त ऐश्वर्यों से परिपूर्ण है।

एक 'कृष्णलोक' हय त्रिविध-प्रकार ।

गोकुलाख्य, मथुराख्य, द्वारकाख्य आर ॥214॥

एक-एक; कृष्ण-लोक-कृष्णलोक नामक स्थान; हय-है; त्रि-विध-प्रकार तीन विभागों में विभक्त; गोकुल-आख्य–गोकुल; मथुरा-आख्य-मथुरा; द्वारका-आख्य-द्वारका; आर-तथा।

अनुवाद

"कृष्णलोक तीन विभागों में बँटा है–गोकुल, मथुरा तथा द्वारका।"

मथुराते केशवेर नित्य सन्निधान ।

नीलाचले पुरुषोत्तम— 'जगन्नाथ' नाम ॥ 215 ॥

मथुराते-मथुरा में; केशवेर-भगवान् केशव का; नित्य-नित्य; सन्निधान–निवास; नीलाचले-नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) में; पुरुषोत्तम-पुरुषोत्तम; जगन्नाथ नाम-जगन्नाथ नाम से भी प्रसिद्ध।

अनुवाद

"भगवान् केशव का नित्य निवास मथुरा में है और भगवान् पुरुषोत्तम, जो जगन्नाथ नाम से विख्यात हैं, नीलाचल में नित्य निवास करते हैं।

प्रयागे माधव, मन्दारे श्री-मधुसूदन।

आनन्दारण्ये वासुदेव, पद्मनाभ जनार्दन ॥216॥

प्रयागे-प्रयाग में; माधव-बिन्दु माधव; मन्दारे–मन्दार पर्वत पर; श्री-मधुसूदन-श्रीमधुसूदन; आनन्द-अरण्ये-आनन्दारण्य नामक स्थान पर; वासुदेव-भगवान् वासुदेव; पद्मनाभ-भगवान् पद्मनाभ; जनार्दन-भगवान् जनार्दन।

अनुवाद

प्रयाग में भगवान् बिन्दु माधव के रूप में स्थित हैं और मन्दार पर्वत में मधुसूदन रूप में। वासुदेव, पद्मनाभ तथा जनार्दन ये तीनों आनन्दारण्य में निवास करते हैं।

विष्णु-काञ्चीते विष्णु, हरि रहे, मायापुरे।

ऐछे आर नाना मूर्ति ब्रह्माण्ड-भितरे ॥ 217॥

विष्णु-काञ्चीते-विष्णु कांची में; विष्णु-भगवान् विष्णु; हरि-भगवान् हरि; रहे-रहते हैं; मायापुरे–मायापुर में; ऐछे-इसी प्रकार; आर-और भी; नाना-अनेक; मूर्ति-रूप; ब्रह्माण्ड-भितरे-समस्त ब्रह्माण्ड में।

अनुवाद

“विष्णुकांची में भगवान् विष्णु हैं, मायापुर में भगवान् हरि हैं तथा सारे ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के अनेक रूप हैं।

तात्पर्य

ये सारे रूप मूर्तिरूप हैं और उनकी पूजा मन्दिरों में की जाती है। उनके नाम हैं-मथुरा में केशव, नीलाचल में पुरुषोत्तम या जगन्नाथ, प्रयाग में बिन्दु माधव, मन्दार में मधुसूदन तथा दक्षिण भारत में केरल स्थित आनन्दारण्य में वासुदेव, पद्मनाभ तथा जनार्दन। विष्णुकांची में, भगवान् वरदराज हैं और श्री चैतन्य महाप्रभु की जन्मभूमि मायापुर में हरि स्थित हैं। इस तरह पूरे ब्रह्माण्ड में अनेक स्थलों में मन्दिरों में विविध अर्चाविग्रह हैं, जो भक्तों पर अहैतुकी कृपा करते हैं। ये सारे अर्चाविग्रह वैकुण्ठ लोक के मूर्ति-रूपों से अभिन्न हैं। यद्यपि अर्चामूर्ति अर्थात् भगवान् का पूजनीय अर्चाविग्रह भौतिक तत्त्वों की बना हुआ दिखता है, किन्तु यह दिव्य वैकुण्ठ लोकों के आध्यात्मिक रूपों के ही समकक्ष है। फिर भी मन्दिर में अर्चाविग्रह भक्त को प्रत्यक्ष दिखता है। भौतिक बद्धावस्था में भगवान् का आध्यात्मिक रूप देख पाना सम्भव नहीं है। इसलिए भगवान् हम सब पर अहैतुकी कृपा करने के लिए ही अर्चामूर्ति रूप में प्रकट होते हैं, जिससे हम उनका दर्शन कर सकें। अर्चामूर्ति को पत्थर या काठ की बनी समझना वर्जित है। पद्मपुराण में कहा गया है :

अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवेजातिबुद्धि :

र्विष्णोर्वा वैष्णवानां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः ।

श्रीविष्णोर्नाम्नि मन्त्रे सकल-कलुषहे शब्दसामान्यबुद्धि

र्विष्णौ सर्वेश्वरेशे तदितर समधीर्यस्य वा नारकी सः॥

“मन्दिर के अर्चाविग्रह को पत्थर या काठ का बना हुआ नहीं मानना चाहिए, न ही गुरु को सामान्य मनुष्य मानना चाहिए। वैष्णव को किसी विशेष जाति या नस्ल का नहीं मानना चाहिए और चरणामृत

या गंगाजल को सामान्य जल नहीं मानना चाहिए। हरे कृष्ण महामन्त्र को भौतिक ध्वनि नहीं मानना चाहिए। भौतिक जगत् में कृष्ण के ये सारे विस्तार भगवान् की कृपा तथा इस भौतिक जगत् में भक्ति में लगे अपने भक्तों को सुविधा देने की इच्छा को प्रदर्शित करने वाले हैं।

एइ-मत ब्रह्माण्ड-मध्ये सबार 'परकाश' ।

सप्त-द्वीपे नव-खण्डे याँहार विलास ॥218॥

एइ-मत-इस प्रकार; ब्रह्माण्ड-मध्ये ब्रह्माण्ड में; सबार-उन सब का; परकाश-आविर्भाव; सप्त-द्वीपे-सात द्वीपों पर; नव-खण्डे–नौं खंडों में; याँहार विलास-जिनकी लीलाएँ।

अनुवाद

"इस ब्रह्माण्ड के भीतर भगवान् विभिन्न आध्यात्मिक स्वरूपों में स्थित हैं। ये सात द्वीपों के नव खण्डों में विद्यमान हैं। इस तरह उनकी लीलाएँ चलती रहती हैं।

तात्पर्य

सिद्धान्त शिरोमणि में सात द्वीपों का उल्लेख हुआ है :

भूमेरधं क्षीरसिन्धोरुदकस्थं

जम्बुद्वीपं प्राहुराचार्यवर्याः ।

अर्धेऽन्यस्मिन् द्वीपषटकस्य याम्ये

क्षारक्षीराद्यम्बुधीनां निवेशः ॥

शाकं ततः शाल्मलमत्र कौशं

क्रौञ्चम् च गोमेदकपुष्करे च ।

द्वयोर्द्वयोरन्तरमेकमेकं

समुद्रयोर्द्वीपमुदाहरन्ति ॥

सात द्वीप हैं (1) जम्बु, (2) शाक, (3) शाल्मली, (4) कुश, (5) क्रौञ्च, (6) गोमेद या प्लक्ष तथा (7) पुष्कर। ग्रहों (लोकों) को द्वीप कहा जाता है। बाह्य आकाश (अन्तरिक्ष) वायु के सागर जैसा है। जिस तरह जलयुक्त सागर में द्वीप होते हैं, उसी तरह ये ग्रह (लोक) आकाश तत्त्व के बने सागर में स्थित द्वीप कहलाते हैं। नौ खण्डों के नाम हैं (1) भारत, (2) किन्नर, (3) हरि, (4) कुरु, (5) हिरण्मय, (6) रम्यक, (7) इलावृत, (8) भद्राश्व तथा (9) केतुमाल। ये सब जम्बु द्वीप के विभिन्न भाग हैं। दो पर्वतों के बीच की घाटी खण्ड या वर्ष कहलाती है।

सर्वत्र प्रकाश ताँर—भक्ते सुख दिते ।

जगतेर अधर्म नाशि' धर्म स्थापिते ॥ 219॥

सर्वत्र-सब जगह; प्रकाश-अभिव्यक्ति; ताँर-उनकी; भक्ते-भक्तों को; सुख दिते-आनन्द देने के लिए; जगतेर–भौतिक जगत् के; अधर्म-अधर्म कार्यों का; नाशि'-नाश करने के लिए; धर्म-धर्म के सिद्धान्तो की; स्थापिते-स्थापना करने के लिए।

अनुवाद

"भगवान् अपने भक्तों को प्रसन्न करने के लिए ही सारे ब्रह्माण्डों में विभिन्न रूपों में स्थित हैं। इस तरह भगवान् अधर्म का विनाश करते हैं और धर्म की स्थापना करते हैं।

तात्पर्य

भौतिक जगत् में भगवान् बद्धजीवों के भौतिक कार्यकलापों को घटाने तथा उनकी आध्यात्मिक गतिविधियों को बढ़ाने के लिए मन्दिरों में विभिन्न अर्चामूर्तियों के रूप में स्थित हैं। विशेषतया भारत-भर में अनेक मन्दिर हैं। भक्त इनका लाभ उठा सकते हैं और जगन्नाथपुरी, वृन्दावन, प्रयाग, मथुरा,

हरिद्वार तथा विष्णुकांची जाकर भगवान् का दर्शन कर सकते हैं। जब भक्तगण इन स्थानों में जाकर भगवान् का दर्शन करते हैं, तो वे भक्ति में अत्यन्त सुखी होते हैं।

इँहार मध्ये कारो हय अवतारे' गणन ।

यैछे विष्णु, त्रिविक्रम, नृसिंह, वामन ॥ 220 ॥

इँहार मध्ये-उनमें से; कारो-कुछ की; हय–होती है; अवतारे–अवतार रूप में; गणन-गिनती; यैछे-जैसे; विष्णु-भगवान् विष्णु; त्रिविक्रम- भगवान् त्रिविक्रम; नृसिंह-भगवान् नृसिंह; वामन–भगवान् वामन।

अनुवाद

"इन रूपों में से कुछ को अवतार माना जाता है। उदाहरणार्थ भगवान् विष्णु, भगवान् त्रिविक्रम, भगवान् नृसिंह तथा भगवान् वामन।

अस्त्र-धृति-भेद-नाम-भेदेर कारण ।

चक्रादि-धारण-भेद शुन, सनातन ॥ 221॥

अस्त्र-धृति-अस्त्रों को धारण करने से; भेद-भिन्नता; नाम-भेदेर विभिन्न नामों के; कारण–कारण; चक्र-आदि-चक्र आदि अस्त्र; धारण-धारण करने से; भेद-भिन्नता; शुन–कृपया सुनो; सनातन-हे सनातन।

अनुवाद

"हे सनातन, अब मुझसे सुनो कि किस तरह विभिन्न विष्णु-मूर्तियाँ अपने-अपने अस्त्र यथा चक्र इत्यादि धारण करती हैं, एवं किस तरह अपने हाथों में धारण किए गये अस्त्रों के अनुसार उनके नाम पड़ते हैं।

दक्षिणाधो हस्त हैते वामाधः पर्यन्त ।

चक्रादि अस्त्र-धारण-गणनार अन्त ॥ 222॥

दक्षिण-अधः-नीचे के दाहिने; हस्त-हाथ; हैते–से; वाम-अधः-नीचे के बायें हाथ; पर्यन्त–तक; चक्र-आदि-चक्र आदि; अस्त्र-धारण-अस्त्र धारण किये; गणनार-गिनती; अन्त–समाप्त।

अनुवाद

"गणना करने की विधि यह है कि निचले दायें हाथ से प्रारम्भ करके क्रमशः ऊपरी दाहिने हाथ, ऊपरी बाएँ हाथ तथा निचले बाएँ हाथ तक बढ़े। भगवान् विष्णु का नाम उनके हाथों में धारण किये गये अस्त्रों के क्रम के अनुसार होता है।

सिद्धार्थ-संहिता करे चब्बिश मूर्ति गणन ।

तार मते कहि आगे चक्रादि-धारण ॥223॥

सिद्धार्थ-संहिता-सिद्धार्थ संहिता नामक शास्त्र; करे-करता है; चविश–चौबीस; मूर्ति-रूपों की; गणन-गिनती; तार मते-सिद्धार्थ संहिता के विचारानुसार; कहि-मैं वर्णन करूँगा; आगे-पहले; चक्र-आदि-धारण-चक्र धारण करने से प्रारम्भ।

अनुवाद

"सिद्धार्थ-संहिता के अनुसार भगवान् विष्णु के चौबीस रूप हैं। सर्वप्रथम मैं उसी ग्रन्थ के अनुसार चक्र से आरम्भ करके उन अस्त्रों की स्थिति का वर्णन करूँगा।

तात्पर्य

चौबीस रूप हैं (1) वासुदेव, (2) संकर्षण, (3) प्रद्युम्न, (4) अनिरुद्ध, (5) केशव, (6) नारायण, (7) माधव, (8) गोविन्द, (9) विष्णु, (10) मधुसूदन, (11) त्रिविक्रम, (12) वामन, (13) श्रीधर, (14) हृषीकेश, (15) पद्मनाभ, (16) दामोदर, (17) पुरुषोत्तम, (18) अच्युत, (19) नृसिंह, (20) जनार्दन, (21) हरि, (22) कृष्ण, (23) अधोक्षज तथा (24) उपेन्द्र।

वासुदेव—गदा-शङ्ख-चक्र-पद्म-धर।

सङ्कर्षण—गदा-शङ्ख-पद्म-चक्र-कर ॥224॥

वासुदेव-वासुदेव; गदागदा; शङ्ख-शंख, चक्र-चक्र; पद्म-कमल पुष्प; धर-धारण करते हैं; सङ्कर्षण-संकर्षण; गदागदा; शङ्ख-शंख; पद्म-कमल पुष्प; चक्र-कर-हाथ में चक्र।

अनुवाद

"भगवान् वासुदेव अपने निचले दाहिने हाथ में गदा, ऊपरी दाएँ हाथ में शङ्ख, ऊपरी बाएँ हाथ में चक्र तथा निचले बाएँ हाथ में कमल का फूल धारण करते हैं। संकर्षण अपने निचले दाहिने हाथ में गदा, ऊपरी दाएँ हाथ में शंख, ऊपरी बाएँ हाथ में कमल का फूल तथा निचले बाएँ हाथ में चक्र धारण करते हैं।

प्रद्युम्न—चक्र-शङ्ख-गदा-पद्म-धर।

अनिरुद्ध—चक्र-गदा-शङ्ख-पद्म-कर ॥225॥

प्रद्युम्न-भगवान् प्रद्युम्न; चक्र-चक्र; शङ्ख-शंख; गदागदा; पद्म–कमल पुष्प; धर-धारण करते हैं; अनिरुद्ध-भगवान् अनिरुद्ध; चक्र-चक्र, गदागदा; शङ्ख-शंख; पद्म-कर-हाथों में कमल पुष्प।

अनुवाद

"प्रद्युम्न चक्र, शंख, गदा तथा कमल धारण करते हैं और अनिरुद्ध चक्र, गदा, शंख तथा कमल धारण करते हैं।

परव्योमे वासुदेवादि—निज निज अस्त्र-धर।

ताँर मत कहि, ये-सब अस्त्र-कर ॥226॥

पर-व्योमे-आध्यात्मिक आकाश में; वासुदेव-आदि-भगवान् वासुदेव आदि; निज निज-अपने-अपने; अस्त्र-धर–विभिन्न अस्त्र धारण करते हैं; ताँर मत कहि-मैं सिद्धार्थ संहिता का विचार कह रहा हूँ; ये-सब-जो सभी; अस्त्र-कर-भिन्न हाथों में अस्त्र।

अनुवाद

"परव्योम में वासुदेव आदि अंश अपने-अपने क्रम से अस्त्रों को धारण करते हैं। उनका वर्णन करने के लिए मैं सिद्धार्थ-संहिता के मत को दुहरा रहा हूँ।

श्री-केशव—पद्म-शङ्ख-चक्र-गदा-धर।

नारायण—शङ्ख पद्म-गदा-चक्र-धर ॥ 227॥

श्री-केशव-भगवान् केशव; पद्म–कमल; शङ्ख-शंख, चक्र-चक्र, गदागदा; धर-धारण करते हैं; नारायण-भगवान् नारायण; शङ्ख-शंख; पद्म-कमल; गदागदा; चक्र-चक्र; धर-धारण करते हैं।

अनुवाद

"भगवान् केशव पद्म, शंख, चक्र तथा गदा धारण करते हैं। भगवान् नारायण शंख, पद्म, गदा तथा चक्र धारण करते हैं।

श्री-माधव—गदा-चक्र-शङ्ख-पद्म-कर।

श्री गोविन्द—चक्र-गदा-पद्म-शङ्ख-धर ॥228॥

श्री-माधव-श्री माधव; गदागदा; चक्र-चक्र; शङ्ख–शंख; पद्म–कमल; कर-हाथों में; श्री गोविन्द-भगवान् गोविन्द; चक्र-चक्र, गदागदा; पद्म-कमल; शङ्ख-शंख; धर–धारण करते हैं।

अनुवाद

“भगवान् माधव अपने हाथों में गदा, चक्र, शंख तथा कमल धारण करते हैं। भगवान् गोविन्द चक्र, गदा, पद्म तथा शंख धारण करते हैं।

विष्णु-मूर्ति—गदा-पद्य-शङ्ख-चक्र-कर।

मधुसूदन—चक्र-शङ्ख-पद्म-गदा-धर ॥229॥

विष्णु-मूर्ति-भगवान् विष्णु; गदागदा; पद्म-कमल; शङ्ख-शंख, चक्र-चक्र; कर-हाथों में; मधुसूदन-भगवान् मधुसूदन; चक्र-चक्र; शङ्ख-शंख; पद्म-कमल; गदा–गदा; धर-धारण करते हैं।

अनुवाद

“भगवान् विष्णु अपने हाथों में गदा, पद्म, शंख तथा चक्र लिये रहते हैं। भगवान् मधुसूदन चक्र, शंख, पद्म तथा गदा धारण करते हैं।

त्रिविक्रम—पद्म-गदा-चक्र-शङ्ख- कर।

श्री-वामन—शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धर ॥ 230॥

त्रिविक्रम-भगवान् त्रिविक्रम; पद्म-कमल; गदागदा; चक्र-चक्र; शङ्ख-शंख; कर-हाथों में; श्री-वामन–भगवान् वामन; शङ्ख–शंख; चक्र-चक्र, गदागदा; पद्म-कमल; धर–धारण करते हैं।

अनुवाद

“भगवान् त्रिविक्रम अपने हाथों में कमल, गदा, चक्र तथा शंख लिये रहते हैं। भगवान् वामन शंख, चक्र, गदा तथा कमल धारण करते हैं।

श्रीधर—पद्म-चक्र-गदा-शङ्ख-कर।

हृषीकेश—गदा-चक्र-पद्म-शङ्ख-धर ॥ 231॥

श्रीधर-भगवान् श्रीधर; पद्म–कमल; चक्र-चक्र, गदागदा; शङ्–शंख; कर-हाथों में; हृषीकेश-भगवान् हृषिकेश; गदागदा; चक्र-चक्र; पद्म-कमल; शङ्ख-शंख; धर-धारण करते हैं।

अनुवाद

"भगवान् श्रीधर के हाथों में कमल, चक्र, गदा तथा शंख रहते हैं। भगवान् हृषीकेश अपने हाथों में गदा, चक्र, कमल तथा शंख धारण करते हैं।

पद्मनाभ—शङ्ख-पद्म-चक्र-गदा-कर ।

दामोदर—पद्म-चक्र-गदा-शङ्ख-धर ॥ 232॥

पद्मनाभ-भगवान् पद्मनाभ; शङ्ख-शंख; पद्म-कमल; चक्र-चक्र, गदागदा; कर-हाथों में; दामोदर-भगवान् दामोदर; पद्म-कमल; चक्र—चक्र, गदागदा; शङ्ख-शंख; धर-धारण करते हैं।

अनुवाद

"भगवान् पद्मनाभ शंख, कमल, चक्र तथा गदा लिये रहते हैं। भगवान् दामोदर कमल, चक्र, गदा तथा शंख धारण करते हैं।

पुरुषोत्तम—चक्र-पद्म-शङ्ख-गदा-धर ।

श्री-अच्युत—गदा-पद्म-चक्र-शङ्ख-धर ॥ 233॥

पुरुषोत्तम भगवान् पुरुषोत्तम; चक्र—चक्र; पद्म–कमल; शङ्ख-शंख; गदागदा; धर-धारण करते हैं; श्री-अच्युत-भगवान् अच्युत; गदागदा; पद्म-कमल; चक्र-चक्र; शङ्ख-शंख; धर-धारण करते हैं।

अनुवाद

"भगवान् पुरुषोत्तम चक्र, पद्म, शंख तथा गदा धारण करते हैं। भगवान् अच्युत गदा, कमल, चक्र तथा शंख धारण करते हैं।

श्री-नृसिंह—चक्र-पद्म-गदा-शङ्ख-धर ।

जनार्दन—पद्म-चक्र-शङ्ख-गदा-कर ॥234॥

श्री-नृसिंह भगवान् नृसिंह; चक्र-चक्र; पा–कमल; गदागदा; शङ्ख–शंख; धर-धारण करते हैं; जनार्दन–भगवान् जनार्दन; पद्म–कमल; चक्र-चक्र; शङ्ख-शंख; गदा–गदा; कर-हाथों में।

अनुवाद

"भगवान् नृसिंह चक्र, पद्म, गदा तथा शंख धारण करते हैं। भगवान् जनार्दन अपने हाथों में कमल, चक्र, शंख तथा गदा लिये रहते हैं।

श्री-हरि—शङ्ख-चक्र-पद्म-गदा-कर ।

श्री-कृष्ण—शङ्ख-गदा-पद्म-चक्र-कर ।। 235॥

श्री-हरि-भगवान् हरि; शङ्ख–शंख, चक्र—चक्र; पद्म–कमल; गदागदा; कर-हाथों में; श्री कृष्ण भगवान् कृष्ण; शङ्ख-शंख; गदागदा; पद्म-कमल; चक्र-चक्र; कर-हाथों में।

अनुवाद

"श्री हरि अपने हाथों में शंख, चक्र, पद्म तथा गदा लिये रहते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अपने हाथों में शंख, गदा, कमल तथा चक्र धारण करते हैं।

अधोक्षज—पद्म-गदा-शङ्ख-चक्र-कर ।

उपेन्द्र—शङ्ख-गदा-चक्र-पद्म-कर ॥236॥

अधोक्षज-भगवान् अधोक्षज; पद्म-कमल; गदागदा; शङ्ख–शंख, चक्र-चक्र; कर-हाथों में; उपेन्द्र-भगवान् उपेन्द्र; शङ्ख-शंख; गदागदा; चक्र-चक्र; पद्म-कमल; कर हाथों में।

अनुवाद

“भगवान् अधोक्षज अपने हाथों में कमल, गदा, शंख तथा चक्र लिये रहते हैं। भगवान् उपेन्द्र अपने हाथों में शंख, गदा, चक्र तथा कमल धारण करते हैं।

हयशीर्ष-पञ्चरात्रे कहे षोल-जन ।

तार मते कहि एबे चक्रादि-धारण ॥ 237॥

हयशीर्ष-पञ्चरात्रे-हयशीर्ष पंचरात्र नामक वैदिक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करता है; षोल-जन-सोलह पुरुषों का; तार मते-इस विचार के अनुसार; कहि-मैं बताऊँगा; एबे-अब; चक्र-आदि-धारण-चक्र आदि अस्त्रों का धारण करना।

अनुवाद

“हयशीर्ष पंचरात्र के अनुसार सोलह पुरुष हैं। मैं अब उस मत का वर्णन करूँगा कि वे किस तरह अस्त्रों को धारण किये रहते हैं।

तात्पर्य

सोलह पुरुष इस प्रकार हैं-(1) वासुदेव, (2) संकर्षण, (3) प्रद्युम्न, (4) अनिरुद्ध, (5) केशव, (6) नारायण, (7) माधव, (8) गोविन्द, (9) विष्णु, (10) मधुसूदन, (11) त्रिविक्रम, (12) वामन, (13) श्रीधर, (14) हृषीकेश, (15) पद्मनाभ तथा (16) दामोदर।

केशव-भेदे पद्म-शङ्ख-गदा-चक्र-धर ।

माधव-भेदे चक्र-गदा-शङ्ख-पद्म-कर ॥ 238॥

केशव-भेदे-भगवान् केशव के बारे में विभिन्न मतों के अनुसार; पद्म–कमल; शङ्ख-शंख; गदागदा; चक्र-तथा चक्र; धर–धारण करते हैं; माधव-भेदे-भगवान् माधव के शारीरिक लक्षणों के विषय में विभिन्न मतों के अनुसार; चक्र-चक्र, गदागदा; शङ्ख-शंख; पद्म-कमल; कर-हाथों में।

अनुवाद

"केशव को कमल, शंख, गदा तथा चक्र धारण किये भिन्न बतलाया जाता है और माधव को हाथों में चक्र, गदा, शंख तथा कमल धारण करने वाले अस्त्रों के अनुसार प्रस्तुत किया जाता है।

नारायण-भेदे नाना अस्त्र-भेद-धर ।

इत्यादिक भेद एइ सब अस्त्र-कर ॥ 239॥

नारायण-भेद-भगवान् नारायण की शारीरिक भंगिमाओं के बारे में विभिन्न मतों के अनुसार; नाना-विभिन्न; अस्त्र-अस्त्रों के; भेद-धर-धारण करने के भेद; इति-आदिक-इस प्रकार; भेद-भिन्न; एइ सब-ये सभी; अस्त्र-कर-हाथों में अस्त्र।

अनुवाद

हयशीर्ष पंचरात्र के अनुसार नारायण तथा अन्यों को भी विभिन्न हाथों में धारण करने वाले अस्त्रों के अनुसार प्रस्तुत किया जाता है।

'स्वयं भगवान्', आर 'लीला-पुरुषोत्तम' ।

एइ दुइ नाम धरे व्रजेन्द्र-नन्दन ॥240॥

स्वयम् भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; आर—तथा; लीला-पुरुषोत्तम-लीला-पुरुषोत्तम भगवान्; एइ दुइ-ये दोनों; नाम-नाम; धरे-रखते हैं; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र, कृष्ण।

अनुवाद

"आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण, जो महाराज नन्द के पुत्र हैं, उनके दो नाम हैं। एक है स्वयं भगवान् तथा दूसरा है लीला पुरुषोत्तम।

पुरीर आवरण-रूपे पुरीर नव-देशे ।

नव-व्यूह-रूपे नव-मूर्ति परकाशे ॥ 241॥

पुरीर-द्वारकापुरी के; आवरण-रूपे-चारों दिशाओं के लिए आवरण की तरह; पुरीर नव-देशे–शहर के नौ भिन्न भागों में; नव-व्यूह-रूपे–नौ विग्रहों के रूप में; नव-मूर्ति-नौ रूप; परकाशे-प्रकाशित करते हैं।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण द्वारका पुरी को उसके रक्षक के रूप में घेरे रहते हैं। वे पुरी के नौ विभिन्न स्थानों में नौ भिन्न-भिन्न रूपों में अपना विस्तार करते हैं।

चत्वारो वासुदेवाद्या नारायण-नृसिंहकौ ।

हयग्रीवो महाक्रोड़ो ब्रह्मा चेति नवोदिताः ॥242॥

चत्वारः–चार मुख्य रक्षक, वासुदेव-आद्याः-वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध; नारायण भगवान् नारायण सहित; नृसिंहकौ–तथा भगवान् नृसिंह; हयग्रीवः–भगवान् हयग्रीव; महाक्रोड़ः–भगवान् वराह; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; च–तथा; इति–इस प्रकार; नव-उदिताः–नौ पुरुष।

अनुवाद

"जिन नौ पुरुषों का उल्लेख हुआ है वे हैं-वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, नृसिंह, हयग्रीव, वराह तथा ब्रह्मा।'

तात्पर्य

यह श्लोक लघु भागवतामृत (1.451) में पाया जाता है। यहाँ पर उल्लिखित ब्रह्मा जीव नहीं हैं। कभी-कभी जब ब्रह्मा का पद ग्रहण करने के लिए जीवों का अभाव हो जाता है, तब महाविष्णु स्वयं ब्रह्मा के रूप में विस्तार करते हैं। इस ब्रह्मा को जीव नहीं माने जाते। वे विष्णु के अंश होते हैं।

प्रकाश-विलासेर एइ कैलुँ विवरण।

स्वांशेर भेद एबे शुन, सनातन॥ 243॥

प्रकाश-विलासेर-लीलारूपों तथा अभिव्यक्तियों का; एइ–यह; कैलैं-मैंने कियाहै; विवरण-वर्णन; स्वांशेर-निजी अंश विस्तारों के; भेद-भेद; एबे–अब; शुन-कृपयासुनो; सनातन-हे सनातन गोस्वामी।

अनुवाद

"मैं विलासों तथा प्रकाशों का वर्णन कर चुका हूँ। अब मुझसे विभिन्न स्वांशों के विषय में सुनो।

सङ्कर्षण, मत्स्यादिक,—दुइ भेद ताँर।

सङ्कर्षण—पुरुषावतार, लीलावतार आर॥ 244॥

सङ्कर्षण-संकर्षण; मत्स्य-आदिक-मत्स्य आदि अवतार; दुइ-दो; भेद-भेद हैं; ताँर–उनके; सङ्कर्षण-संकर्षण; पुरुष-अवतार विष्णु के अवतार हैं; लीला-अवतार-लीला अवतार; आर-दूसरा।

अनुवाद

"प्रथम स्वांश (व्यक्तिगत विस्तार) संकर्षण हैं और अन्य सभी अवतार हैं, मत्स्य इत्यादि। संकर्षण पुरुष अथवा विष्णु के विस्तार हैं। मत्स्य जैसे अवतार विभिन्न युगों में विशिष्ट लीलाओं के लिए प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

पुरुष अवतार सृष्टि के स्वामी होते हैं। ये हैं-कारणोदकशायी विष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु। कुछ लीलावतार भी हैं जिनमें ये सब सम्मिलित हैं : (1) चतु:सन-अर्थात् चारों कुमार, (2) नारद, (3) वराह, (4) मत्स्य, (5) यज्ञ, (6) नर-नारायण, (7) कार्दमि कपिल, (8) दत्तात्रेय, (9) हयशीर्ष, (10) हंस, (11) ध्रुवप्रिय या पृश्निगर्भ, (12) ऋषभ, (13) पृथु, (14) नृसिंह, (15) कूर्म, (16) धन्वन्तरि, (17) मोहिनी, (18) वामन, (19) भार्गव परशुराम, (20) राघवेन्द्र, (21) व्यास, (22) प्रलम्बारि बलराम, (23) कृष्ण, (24) बुद्ध तथा (25) कल्कि।

ये 25 पुरुष लीलावतार कहलाते हैं। चूँकि ये ब्रह्मा के प्रत्येक दिन या प्रत्येक कल्प में प्रकट होते हैं, इसलिए कभी-कभी इन्हें कल्पावतार भी कहा जाता है। इन अवतारों में से हंस तथा मोहिनी अत्यधिक स्थायी या विख्यात नहीं हैं, किन्तु वे प्राभव-अवतारों में गिने जाते हैं। कपिल, दत्तात्रेय, ऋषभ, धन्वन्तरि तथा व्यास नित्य विद्यमान हैं और अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी गणना प्राभव-अवतारों में भी की जाती है। कूर्म, मत्स्य, नारायण, वराह, हयग्रीव, पृश्निगर्भ तथा प्रलम्बासुर का वध करने वाले बलराम वैभव-अवतारों में गिने जाते हैं।

अवतार हय कृष्णेर षड्-विध प्रकार ।

पुरुषावतार एक, लीलावतार आर ॥245 ॥

अवतार–अवतार; हय हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; षट्-विध प्रकार-छ: प्रकार के; पुरुष-अवतार–विष्णु के अवतार; एक–एक; लीला-अवतार–लीला करने वाले अवतार; आर-दूसरे।

अनुवाद

"कृष्ण के छह तरह के अवतार होते हैं। एक तो विष्णु के अवतार (पुरुषावतार) हैं और दूसरे अवतार विभिन्न लीलाओं को सम्पन्न करने के लिए (लीलावतार) हैं।

गुणावतार, आर मन्वन्तरावतार।

युगावतार, आर शक्त्यावेशावतार॥ 246॥

गुण-अवतार-भौतिक गुणों को नियन्त्रित करने वाले अवतार; आर—तथा; मनु-अन्तर-अवतार–प्रत्येक मनु के राज में प्रकट होने वाले अवतार; मुंग-अवतार–विभिन्न युगों के अनुसार अवतार; आर-तथा; शक्ति-आवेश-अवतार–शक्ति प्रदत्त अवतार।

अनुवाद

"फिर गुण-अवतार (जो भौतिक गुणों का नियन्त्रण करते हैं), मन्वन्तर-अवतार (जो प्रत्येक मनु के शासन में प्रकट होते हैं), युग-अवतार (विभिन्न युगों में अवतार लेने वाले) तथा शक्त्यावेश अवतार (शक्ति संचारित जीवों के अवतार) हैं।

तात्पर्य

गुणावतार तीन हैं—ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु (भागवत 10.88.3)। श्रीमद्भागवत (8.1.5, 13) में मन्वन्तर-अवतारों की सूची इस प्रकार दी गई है-(1) यज्ञ, (2) विभु, (3) सत्यसेन, (4) हरि, (5) वैकुण्ठ, (6) अजित, (7) वामन, (8) सार्वभौम, (9) ऋषभ, (10) विष्वक्सेन, (11) धर्मसेतु, (12) सुधामा, (13) योगेश्वर तथा (14) बृहद्भानु। कुल मिलाकर 14 अवतार हैं, जिनमें से यज्ञ तथा वामन की गणना लीलावतारों में भी की जाती है। ये सारे मन्वन्तर अवतार कभी-कभी वैभव-अवतार कहलाते हैं।

चार युगावतार हैं (1) सत्ययुग में शुक्ल (श्वेत) (भागवत 11.5.21), (2) त्रेतायुग में रक्त (भागवत 11.5.24), (3) द्वापर युग में श्याम (भागवत 11.5.27) तथा (4) कलियुग में सामान्यतया कृष्ण (काला), किन्तु विशेष दशाओं में पीतवर्ण, यथा चैतन्य महाप्रभु (भागवत 11.5.32 तथा 10.8.13)।

शक्त्यावेश अवतारों की दो श्रेणियाँ हैं (1) दैवी तल्लीनता के स्वरूप (भगवद्-आवेश) यथा कपिलदेव या ऋषभदेव तथा (2) दैवी शक्ति-सम्पन्न रूप (शक्त्यावेश), जिनमें से सात प्रमुख हैं-(1) वैकुण्ठ लोक में शेषनाग, जिन्हें भगवान् की निजी सेवा करने के लिए शक्ति दी गई है (स्वसेवनशक्ति) (2) अनन्तदेव, जिन्हें ब्रह्माण्ड के समस्त लोकों को धारण करने की शक्ति दी गई है (भूधारण-शक्ति) (3) ब्रह्मा, जिन्हें सृष्टि रचने की शक्ति प्रदान की गई है (सृष्टि-शक्ति), (4) चतुःसन या चारों कुमार, जिन्हें दिव्य ज्ञान वितरण करने की विशेष शक्ति दी गई है (ज्ञान-शक्ति), (5) नारद मुनि, जिन्हें भक्ति वितरित करने की शक्ति दी गई है (भक्ति-शक्ति), (6) महाराज पृथु, जिन्हें जीवों पर शासन करने तथा उनका पालन करने की शक्ति दी गई है (पालन-शक्ति) तथा (7) परशुराम, जिन्हें धूर्ती तथा असुरों का दमन करने की शक्ति दी गई है (दुष्टदमनशक्ति)।

बाल्य, पौगण्ड हय विग्रहेर धर्म ।

एत-रूपे लीला करेन व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ 247॥

बाल्य-बचपन; पौगण्ड-युवावस्था; हय-हैं; विग्रहेर-श्रीविग्रह के; धर्म-लक्षण; एत-रूपे-कई रूपों में; लीला-लीलाएँ; करेन-करते हैं; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र, कृष्ण।

अनुवाद

“अर्चाविग्रह की विशिष्ट अवस्थाएँ हैं-बाल्य तथा पौगण्ड। महाराज नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण ने शिशु तथा बालक के रूप में अपनी लीलाएँ सम्पन्न कीं।

अनन्त अवतार कृष्णेर, नाहिक गणन ।

शाखा-चन्द्र-न्याय करि दिग्दरशन ॥248॥

अनन्त-असंख्य; अवतार–अवतार; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; नाहिक गणन-गिनती करने की कोई सम्भावना नहीं है; शाखा-चन्द्र-न्याय--चन्द्रमा तथा वृक्ष की शाखा के दृष्टान्त द्वारा; करि-मैं करता हूँ; दिक्-दरशन-एक झलक मात्र।

अनुवाद

"कृष्ण के अवतार असंख्य हैं और उनकी गणना कर पाना सम्भव नहीं है। हम चन्द्रमा तथा वृक्ष की शाखाओं का उदाहरण देकर केवल उनका संकेत कर सकते हैं।

तात्पर्य

यद्यपि चन्द्रमा वृक्ष की शाखाओं में स्थित प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में वह बहुत दूर होता है। इसी तरह भगवान् कृष्ण का कोई भी अवतार इस भौतिक जगत् के भीतर नहीं होता है, किन्तु भगवान् की अहैतुकी कृपा से वह यहाँ दिखलाई पड़ता है। हमें उन्हें इस जगत् से सम्बन्धित नहीं मानना चाहिए। जैसाकि भगवान् कृष्ण द्वारा भगवद्गीता (9.11) में कहा गया है।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।

परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

"जब मैं मनुष्य रूप में अवतरित होता हूँ, तब मूर्ख लोग मेरा उपहास करते हैं। वे परम ईश्वर के रूप में मेरी दिव्य प्रकृति को नहीं जानते।"

अवतार अपनी खुद की इच्छा से अवतरित होते हैं और यद्यपि वे सामान्य मनुष्यों की तरह कर्म करते हैं, किन्तु वे इस भौतिक जगत् के नहीं होते हैं। भगवान् कृष्ण तथा उनके अवतारों को भगवत्कृपा से ही समझा जा सकता है :

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो

न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-

स्तस्यैष आत्माविवृणुते तनूं स्वाम् ।

(कठ उपनिषद् 1.2.23)

"निपुण व्याख्याओं से परम भगवान् को नहीं पाये जा सकते; न ही उन्हें तीक्ष्ण बुद्धि अथवा अत्यधिक श्रवण से पाये जा सकते हैं। उन्हें तो वही पा सकता है, जिसे वे स्वयं चुनते हैं। ऐसे व्यक्ति के समक्ष वे अपने स्वरूप को स्वयं प्रकट करते हैं।

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय

प्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।

जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो

न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥

(भागवत 10.14.29)

"हे प्रभु, यदि किसी को आपके चरणकमलों की लेशमात्र भी दया मिल जाती है, तो वह आपकी महानता को समझ सकता है। किन्तु जो आप भगवान् को समझने के लिए तर्कवितर्क में लगे रहते हैं, वे आपको जान नहीं पाते, भले ही वे वेदों का अध्ययन सालों भर करते रहें।"

अवतारा ह्यसङ्ख्येया हरेः सत्त्व-निधेर्द्विजाः ।

यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ 249॥

अवताराः-अवतार; हि-निश्चित रूप से; असङ्ख्ये याः–गणना से परे; हरेः- पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; सत्त्व-निधेः-जो दिव्य शक्ति के भण्डार हैं; द्विजाः-हे ब्राह्मणों; यथा-जिस प्रकार;

अविदासिनः-जल के एक विशाल भण्डार से; कुल्याः -छोटे प्रवाह; सरसः–एक सरोवर से; स्युः-होते हैं; सहस्रशः-सैंकड़ों-हजारों गुना।

अनुवाद

"'हे विद्वान ब्राह्मणों, जिस प्रकार विशाल जलाशयों से लाखों छोटे-छोटे झरने नीकलते हैं, उसी तरह से समस्त शक्तियों के आगार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री हरि से असंख्य अवतार प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत् (1.3.26) से उधृत है।

प्रथमेइ करे कृष्ण 'पुरुषावतार'।

सेइत पुरुष हय त्रिविध प्रकार॥ 250॥

प्रथमेइ–प्रारम्भ में; करे-करते हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; पुरुष-अवतार-तीन विष्णुओं (महाविष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु) का अवतार; सेइत-वही; पुरुष-विष्णु; हय-बन जाते हैं; त्रि-विध प्रकार–तीन विभिन्न अभिव्यक्तियाँ।

अनुवाद

"प्रारम्भ में कृष्ण स्वयं पुरुष-अवतारों अर्थात् विष्णु-अवतारों के रूप में अवतरित होते हैं। ये तीन प्रकार के हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक तक अनेक प्रकार के विस्तारों का वर्णन हुआ है। अब भगवान् की विभिन्न शक्तियों के प्राकट्यों का वर्णन किया जायेगा।

विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि

पुरुषाख्यान्यथो विदुः

एकं तु महतः स्रष्ट्र

द्वितीयं त्वण्ड-संस्थितम्

तृतीयं सर्व-भूत-स्थं

तानि ज्ञात्वा विमुच्यते

विष्णोः-भगवान् विष्णु के; तु–लेकिन; त्रीणि-तीन; रूपाणि-रूप; पुरुष-आख्यानि-पुरुष नाम से विख्यात; अथो-किस प्रकार; विदुः–वे जानते हैं; एकम्-उनमें से एक; तु-परन्तु; महतः स्रष्ट्र–सम्पूर्ण भौतिक शक्ति के रचनाकार; द्वितीयम्-दूसरा; तु-परन्तु; अण्ड-संस्थितम् ब्रह्माण्ड के भीतर स्थित; तृतीयम्-तीसरा; सर्व-भूत-स्थम्-सभी जीवों के हृदयों में; तानि-इन तीनों को; ज्ञात्वा-जानकर; विमुच्यते-मनुष्य मुक्त हो जाता है।

अनुवाद

“विष्णु के तीन रूप हैं, जो पुरुष कहलाते हैं। प्रथम महाविष्णु हैं, जो सम्पूर्ण भौतिक शक्ति (महत्) के स्रष्टा हैं, द्वितीय गर्भोदकशायी विष्णु हैं, जो प्रत्येक ब्रह्माण्ड में स्थित हैं तथा तृतीय क्षीरोदकशायी विष्णु हैं, जो प्रत्येक प्राणी के हृदय में रहते हैं। जो इन तीनों को जान लेता है, वह माया के बन्धन से छूट जाता है।’

तात्पर्य

यह श्लोक लघु भागवतामृत (पूर्वखण्ड 33) में आया है, जिसमें इसे सात्वत-तंत्र से उधृत किया गया है।

अनन्त-शक्ति-मध्ये कृष्णेर तिन शक्ति प्रधान ।

‘इच्छा-शक्ति’, ‘ज्ञान-शक्ति’, ‘क्रिया-शक्ति’ नाम ॥252॥

अनन्त-शक्ति-असंख्य शक्तियों; मध्ये-के मध्य; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; तिन-तीन; शक्ति-शक्तियाँ; प्रधान–मुख्य हैं; इच्छा-शक्ति-इच्छा शक्ति; ज्ञान-शक्ति-ज्ञान की शक्ति; क्रिया-शक्ति-सृजनात्मक शक्ति; नाम-नामक।

अनुवाद

“कृष्ण की शक्तियाँ अनन्त हैं, जिनमें से तीन प्रमुख हैं-ये हैं। इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति।

इच्छा-शक्ति-प्रधान कृष्ण—इच्छाय सर्व-कर्ता ।

ज्ञान-शक्ति-प्रधान वासुदेव अधिष्ठाता ॥ 253 ॥

इच्छा-शक्ति-इच्छाशक्ति के प्रधान-स्वामी; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; इच्छाय-केवल इच्छा मात्र द्वारा; सर्व-कर्ता-सब वस्तुओं के सृष्टिकर्ता; ज्ञान-शक्ति-प्रधान-ज्ञान की शक्ति के स्वामी; वासुदेव-भगवान् वासुदेव; अधिष्ठाता-आधार।

अनुवाद

“इच्छाशक्ति के प्रधान भगवान् कृष्ण हैं, क्योंकि उनकी परम इच्छा से ही हर वस्तु का अस्तित्व है। इच्छा के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। और वह ज्ञान वासुदेव के माध्यम से व्यक्त होता है।

इच्छा-ज्ञान-क्रिया विना ना हय सृजन ।

तिनेर तिन-शक्ति मेलि’ प्रपञ्च-रचन ॥254॥

इच्छा-ज्ञान-क्रिया-सोचना, अनुभव करना, इच्छा करना, ज्ञान तथा क्रिया; विना-बिना; ना-नहीं; हय–होती है; सृजन-सृष्टि; तिनेर–तीनों की; तिन-शक्ति–तीन शक्तियाँ; मेलि'–मिलने पर; प्रपञ्च-रचन–भौतिक जगत् की सृष्टि होती है।

अनुवाद

"विचार, अनुभव, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया के बिना सृजन सम्भव नहीं है। परम इच्छा, ज्ञान और क्रिया के मेल से विराट् जगत् की रचना होती है।

क्रिया-शक्ति-प्रधान सङ्कर्षण बलराम ।

प्राकृताप्राकृत-सृष्टि करेन निर्माण ॥ 255 ॥

क्रिया-शक्ति-प्रधान–क्रियाशक्ति के स्वामी; सङ्कर्षण–भगवान् संकर्षण; बलराम-भगवान् बलराम; प्राकृत-भौतिक; अप्राकृत-आध्यात्मिक; सृष्टि-जगतों की; करेन-करते हैं; निर्माण-सृष्टि।

अनुवाद

"भगवान् संकर्षण बलराम हैं। वे क्रियाशक्ति के अधिष्ठाता होने के कारण भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों जगतों की सृष्टि करते हैं।

अहङ्कारेर अधिष्ठाता कृष्णेर इच्छाय ।

गोलोक, वैकुण्ठ सृजे चिच्छक्ति-द्वाराय ॥ 256 ॥

अहङ्कारेर–अहंकार के; अधिष्ठाता–स्रोत या स्वामी; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; इच्छाय-इच्छा द्वारा; गोलोक-गोलोक नामक सर्वोपरि दिव्य आध्यात्मिक लोक; वैकुण्ठ-वैकुण्ठ नामक अन्य निम्न लोक; सृजे-रचना करते हैं; चित्-शक्ति-द्वाराय-आध्यात्मिक शक्ति द्वारा।

अनुवाद

“आदि संकर्षण (भगवान् बलराम) भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही सृष्टियों के कारण हैं। वे अहंकार के अधिष्ठाता हैं। वे कृष्ण की इच्छा से तथा आध्यात्मिक शक्ति के बल पर आध्यात्मिक जगत् का सृजन करते हैं जिसमें गोलोक वृन्दावन तथा वैकुण्ठ लोक सम्मिलित हैं।

यद्यपि असृज्य नित्य चिच्छक्ति-विलास ।

तथापि सङ्कर्षण-इच्छाय ताहार प्रकाश ॥ 257॥

यद्यपि यद्यपि; असृज्य-रचना करने का कोई प्रश्न नहीं है; नित्य-शाश्वत; चित्-शक्ति-विलास– नित्य आध्यात्मिक शक्ति की लीलाएँ; तथापि–फिर भी; सङ्कर्षण-इच्छाय-संकर्षण की इच्छा द्वारा; ताहार-आध्यात्मिक संसार का; प्रकाश-प्राकट्य।

अनुवाद

“यद्यपि आध्यात्मिक जगत् के सृजन का प्रश्न नहीं उठता, तो भी आध्यात्मिक जगत् संकर्षण की परम इच्छा से ही प्रकट होता है। यह आध्यात्मिक जगत् नित्य आध्यात्मिक शक्ति के विलास का धाम है।

सहस्र-पत्रं कमलं गोकुलाख्यं महत्पदम् ।

तत्कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांश-सम्भवम् ॥ 258॥

सहस्र-पत्रम्-हजारों पंखुड़ियों के साथ; कमलम्-एक कमल पुष्प के समान; गोकुल-आख्यम्-गोकुल नामक; महत् पदम्-परम लोक; तत्-कर्णिकारम्-उस कमल पुष्प की कर्णिका; तत्-धाम-भगवत्-धाम; तत्व ह; अनन्त-अंश-अनन्त की शक्ति के विस्तार से; सम्भवम्-सृष्टि।

अनुवाद

“परम धाम तथा लोक गोकुल एक हजार पंखुड़ियों वाले कमल के फूल जैसा लगता है। इस कमल की कर्णिका भगवान् कृष्ण का धाम है। यह कमल जैसे आकार वाला परम धाम भगवान् अनन्त की इच्छा से उत्पन्न होता है।’

तात्पर्य

यह श्लोक ब्रह्म-संहिता (5.2) से लिया गया है।

माया-द्वारे सृजे तेंहो ब्रह्माण्डेर गण ।

जड़-रूपा प्रकृति नहे ब्रह्माण्ड-कारण ॥ 259॥

माया-द्वारे–बहिरंगा शक्ति के द्वारा; सृजे-रचना करते हैं; तेंहो– भगवान् संकर्षण; ब्रह्माण्डेर गण–सभी ब्रह्माण्डों की; जड़-रूपा-जड़ रूप; प्रकृति-भौतिक प्रकृति; नहे-नहीं है; ब्रह्माण्ड-कारण-ब्रह्माण्ड की कारण।

अनुवाद

“वे ही भगवान् संकर्षण भौतिक शक्ति (माया) के द्वारा सारे ब्रह्माण्डों का सृजन करते हैं। जड़ रूप भौतिक शक्ति, जिसे आधुनिक भाषा में प्रकृति कहा जाता है, भौतिक ब्रह्माण्ड का कारण नहीं है।

जड़ हैते सृष्टि नहे ईश्वर-शक्ति विने ।

ताहातेइ सङ्कर्षण करे शक्तिर आधाने ॥ 260॥

जड़ हैते-जड़ भौतिक प्रकृति से; सृष्टि नहे-सृष्टि नहीं हो सकती; ईश्वर-शक्ति विने–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सहायता के बिना; ताहातेइ–भौतिक शक्ति में; सङ्कर्षण-भगवान् संकर्षण; करे-करते हैं; शक्तिर–आध्यात्मिक शक्ति; आधाने-संचारित।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति के बिना जड़ पदार्थ विराट् जगत् का सृजन नहीं कर सकता। इसकी शक्ति भौतिक शक्ति से उत्पन्न नहीं होती, किन्तु संकर्षण द्वारा प्रदत्त होती है।

ईश्वरेर शक्त्ये सृष्टि करये प्रकृति ।

लौह येन अग्नि-शक्त्ये पाय दाह-शक्ति ॥ 261॥

ईश्वरेर शक्त्ये-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति द्वारा; सृष्टि-सृष्टि; करये-करती है; प्रकृति-भौतिक प्रकृति; लौह-लोहा; येन-जिस प्रकार; अग्नि-शक्त्ये-अग्नि की शक्ति द्वारा; पाय-प्राप्त करता है; दाह-शक्ति–जलाने की शक्ति।

अनुवाद

"अकेला जड़ पदार्थ किसी वस्तु का सृजन नहीं कर सकता। भौतिक शक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के बल पर सृष्टि करती है। लोहे में खुद में जलाने की कोई शक्ति नहीं होती, किन्तु जब इसी लोहे को अग्नि में रखा जाता है, तब यह जलाने की शक्ति प्राप्त कर लेता है।

एतौ हि विश्वस्य च बीज-योनी

रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम् ।

अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य

ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥ 262॥

एतौ-राम तथा कृष्ण नामक, ये दोनों; हि–निश्चित रूप से; विश्वस्य–संसार के; च-तथा; बीज-योनी–कारण तथा सामग्री दोनों; रामः-बलराम; मुकुन्दः–कृष्ण; पुरुषः-मूल महाविष्णु; प्रधानम्-भौतिक शक्ति; अन्वीय-प्रवेश करने के बाद; भूतेषु-भौतिक तत्त्वों में; विलक्षणस्य–विभिन्न प्रकार की

अभिव्यक्तियों के; ज्ञानस्य ज्ञान के च-तथा; ईशाते-नियन्त्रण करने वाली शक्ति हैं; इमौ–ये दोनों; पुराणौ-मूल कारण हैं।

अनुवाद

"बलराम तथा कृष्ण इस भौतिक जगत् के मूल, निमित्त एवं भौतिक कारण हैं। वे महाविष्णु तथा भौतिक शक्ति के रूप में भौतिक तत्त्वों में प्रविष्ट होते हैं और नाना शक्तियों द्वारा विविधता उत्पन्न करते हैं। इस तरह वे समस्त कारणों के कारण हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.46.31) से लिया गया है।

सृष्टि-हेतु येइ मूर्ति प्रपञ्चे अवतरे।

सेइ ईश्वर-मूर्ति 'अवतार' नाम धरे॥ 263॥

सृष्टि-हेतु-सृष्टि करने के उद्देश्य से; येइ मूर्ति-भगवान् का जो रूप; प्रपञ्चे-भौतिक जगत् में; अवतरे-अवतरित होता है; सेइ--वही; ईश्वर-मूर्ति-भगवान् का रूप; अवतार-अवतार; नाम धरे–नाम प्राप्त करता है।

अनुवाद

"भगवान् का वह रूप, जो सृष्टि करने के हेतु भौतिक जगत् में अवतरित होता है, अवतार कहलाता है।

मायातीत परव्योमे सबार अवस्थान।

विश्वे अवतरि' धरे 'अवतार' नाम॥ 264॥

माया-अतीत-भौतिक प्रकृति के परे; पर-व्योमे-आध्यात्मिक आकाश में; सबार-उन सब का; अवस्थान–निवास; विश्वे-भौतिक ब्रह्माण्ड में; अवतरि'–अवतरित होकर; धरे-लेते हैं; अवतार नाम-अवतार नाम।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण के सारे विस्तार वास्तव में आध्यात्मिक आकाश के निवासी हैं। किन्तु जब वे भौतिक जगत् में अवतरित होते हैं, तो अवतार कहे जाते हैं।

सेइ माया अवलोकिते श्री-सङ्कर्षण ।

पुरुष-रूपे अवतीर्ण हुइला प्रथम ॥ 265॥

सेइ माया-वह भौतिक शक्ति; अवलोकिते-थोड़ा दृष्टिपात करने के लिए; श्री-सङ्कर्षण-संकर्षण; पुरुष-रूपे–महाविष्णु के मूल रूप में; अवतीर्ण-अवतरित; हइला-हुए: प्रथम-सबसे पहले।

अनुवाद

"भौतिक शक्ति (माया) पर दृष्टिपात करने तथा उसे शक्ति प्रदान करने के लिए भगवान् संकर्षण सर्वप्रथम भगवान् महाविष्णु के रूप में अवतरित होते हैं।

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ।

सम्भूतं षोड़श-कलमादौ लोक-सिसृक्षया ॥ 266 ॥

जगृहे-स्वीकार किया; पौरुषम् रूपम्-पुरुष अवतार का रूप; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने; महत्-आदिभिः–भौतिक शक्ति आदि के साथ; सम्भूतम्-रचना की; षोड़श-सोलह; कलम्-तत्त्व; आदौ-सबसे पहले; लोक–भौतिक संसारों में; सिसृक्षया-सृष्टि की इच्छा के साथ।

अनुवाद

“सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् ने भौतिक सृष्टि की समस्त सामग्री के साथ अपना विस्तार पुरुष अवतार के रूप में किया। सर्वप्रथम उन्होंने सृष्टि करने के लिए सोलह प्रमुख शक्तियाँ उत्पन्न कीं। ऐसा उन्होंने भौतिक ब्रह्माण्डों को प्रकट करने के लिए किया।’

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.3.1) से है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला 5.84 ।

आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य

कालः स्वभावः सदसन्मनश्च ।

द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि

विराट्स्वराट्स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥ 267॥

आद्यः अवतारः-मूल अवतार; पुरुषः–कारणाब्धिशायी विष्णु; परस्य–परम भगवान् के; कालः–समय; स्वभावः-आकाश; सत्-असत्-कार्य तथा कारण; मनः च–तथा मन; द्रव्यम्-पाँच तत्त्व; विकारः-परिवर्तन या मिथ्या अहंकार; गुणः-प्रकृति के गुण; इन्द्रियाणि-इन्द्रियाँ; विराट्-विराट् (सृष्टि) रूप; स्वरा-गर्भोदकशायी विष्णु; स्थास्तु-अचर; चरिष्णु-चर; भूम्नः-भगवान् का।

अनुवाद

“भगवान् के प्रथम अवतार हैं कारणाब्धिशायी विष्णु (महाविष्णु), जो सनातन काल, आकाश, कारण तथा कार्य, मन, तत्त्व, भौतिक अहंकार, प्रकृति के गुण, इन्द्रिय-समूह, भगवान् का विराट् रूप, गर्भोदकशायी विष्णु तथा सारे चर एवं अचर जीवों के स्वामी हैं।’

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.6.42) का है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला 5.83 ।

सेइ पुरुष विरजाते करेन शयन ।

‘कारणाब्धिशायी’ नाम जगत्कारण ॥ 268॥

सेइ पुरुष-वही परम भगवान्; विरजाते-विरजा नामक सीमा पर; करेन शयन-शयन करते हैं; कारण-अब्धि-शायी–कारणाब्धिशायी; नाम-नामक; जगत्-कारण-भौतिक सृष्टि के मूल कारण।

अनुवाद

“वे आदि भगवान्, जिनका नाम संकर्षण है, सर्वप्रथम उस विरजा नदी में शयन करते हैं, जो भौतिक जगत् तथा आध्यात्मिक जगत् के बीच में सीमा का कार्य करती है। कारणाब्धिशायी विष्णु के रूप में वे भौतिक सृष्टि के आदि कारण हैं।

कारणाब्धि-पारे मायार नित्य अवस्थिति ।

विरजार पारे परव्योमे नाहि गति ॥ 269॥

कारण-अब्धि-पारे–कारण समुद्र के किनारे पर; मायार-भौतिक शक्ति की; नित्य-शाश्वत; अवस्थिति–स्थिति; विरजार पारे–कारण समुद्र या विरजा के दूसरे छोर पर; पर-व्योमे-आध्यात्मिक आकाश में; नाहि-नहीं है; गति-प्रवेश।

अनुवाद

“विरजा अर्थात् कारण सागर आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों के बीच की सीमा है। इस सागर के एक तट पर भौतिक शक्ति (माया) स्थित है, किन्तु यह दूसरे किनारे पर प्रवेश नहीं कर सकती, जहाँ आध्यात्मिक आकाश है।

प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः ।

सत्त्वं च मिश्रं न च काल-विक्रमः ॥

न यत्र माया किमुतापरे हरेर् ।

अनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥ 270॥

प्रवर्तते-रहते हैं; यत्र-जहाँ; रजः-रजोगुण; तमः-तमोगुण; तयोः–उन दोनों का; सत्त्वम् च-तथा सत्त्वगुण का; मिश्रम्-मिश्रण; न-नहीं; च–तथा; काल-विक्रमः-समय या प्रलय का प्रभाव; न—नहीं; यत्र-जहाँ; माया-बहिरंगा शक्ति; किम्-क्या; उत-कहना; अपरे-दूसरे; हरेः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; अनुव्रताः-दृढ़ अनुयायी; यत्र-जहाँ; सुर-देवताओं द्वारा; असुर-तथा असुरों द्वारा; अर्चिताः-पूजे जाते हैं।

अनुवाद

“आध्यात्मिक जगत् में न तो रजोगुण है, न तमोगुण, न ही इन दोनों का मिश्रण है। न ही वहाँ मिश्रित सत्त्व है, न काल या स्वयं माया का प्रभाव है। यहाँ केवल भगवान् के शुद्ध भक्त भगवान् के संगी बनकर रहते हैं, जिनकी पूजा देवता तथा असुर दोनों करते हैं।’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (2.9.10) का है, जिसे श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा है। वे महाराज परीक्षित के इस प्रश्न का उत्तर दे रहे थे कि जीव किस तरह भौतिक जगत् में आ गिरता है। शुकदेव गोस्वामी ने श्रीमद्भागवत का सार चार श्लोकों में कह सुनाया, जिसे ब्रह्मा को एक हजार दैवी वर्षों तक कठोर तपस्या करने के बाद बतलाया गया था। उस समय ब्रह्मा को आध्यात्मिक जगत् तथा उसकी दिव्य प्रकृति का दर्शन कराया गया था।

मायार ये दुइ वृत्ति—‘माया’ आर ‘प्रधान’ ।

‘माया’ निमित्त-हेतु, विश्वेर उपादान ‘प्रधान’ ॥ 271॥

मायार-भौतिक प्रकृति की; ये-जो; दुइ-दो; वृत्ति-क्रियाएँ, माया-माया नामक; आर-तथा; प्रधान–प्रधान; माया-माया शब्द; निमित्त-हेतु-निमित्त कारण; विश्वेर-भौतिक संसार का; उपादान-पदार्थ; प्रधान–प्रधान कहलाती हैं।

अनुवाद

"माया के दो कार्य हैं। इनमें से एक माया कहलाता है और दूसरा प्रधान। माया सूचक है निमित्त कारण की और प्रधान उन उपादानों (सामग्री) का सूचक है, जिनसे विराट् जगत् की सृष्टि होती है।

तात्पर्य

इसकी अतिरिक्त व्याख्या के लिए देखें आदिलीला 5.58 ।

सेइ पुरुष माया-पाने करे अवधान ।

प्रकृति क्षोभित करि' करे वीर्येर आधान ॥ 272॥

सेइ पुरुष-वही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; माया-पाने-माया की ओर; करे अवधान-दृष्टिपात करके; प्रकृति-भौतिक प्रकृति को; क्षोभित करि'–विचलित करके; करे-करते हैं; वीर्येर–वीर्य का; आधान-संचार।

अनुवाद

"जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भौतिक शक्ति पर दृष्टि डालते हैं, तो वह क्षुब्ध हो जाती है। उस समय भगवान् उसमें जीव रूपी अपना मूल वीर्य प्रविष्ट कर देते हैं।

तात्पर्य

भगवद्गीता (7.10) में कृष्ण कहते हैं- बीजं मां सर्वभूतानाम्– "मैं समस्त जीवों का मूल बीज हूँ।" इसकी पुष्टि एक अन्य श्लोक (14.4) द्वारा भी हुई है :

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।

तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥

"हे कुन्ती-पुत्र, यह समझ लो कि इस भौतिक प्रकृति में सारी योनियाँ जन्म लेने के कारण ही सम्भव हुई हैं और मैं वीर्य देने वाला पिता हूँ।"

अधिक व्याख्या के लिए देखें ब्रह्म-संहिता 5.10-13। ब्रह्म-संहिता (5.51) में यह भी कहा गया है कि :

अग्निर्महीं गगनमम्बु मरुद्दिशश्च

कालस्तथात्ममनसीति जगत् त्रयाणि ।

यस्माद् भवन्ति विभवन्ति विशन्ति यं च

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सारे भौतिक तत्त्व तथा आध्यात्मिक स्फुलिंग (आत्मा) उद्भूत हो रहे हैं। इसकी पुष्टि वेदान्त-सूत्र (1.1) से भी होती है-जन्माद्यस्य यतः–"परम सत्य वे हैं, जिनसे हर वस्तु उद्भूत होती है।" वे परम सत्य है- सत्यं परं धीमहि (भागवत 1.1.1)। परम सत्य तो कृष्ण हैं। ओम् नमो भगवते वासुदेवाय / जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्- "परम सत्य एक पुरुष है, जो सम्पूर्ण जगत् से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अवगत है। (भागवत 1.1.1)

परम सत्य या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने ब्रह्मा को हृदय से शिक्षा दी। (भागवत 1.1.1)-तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये। अतएव परम सत्य जड़ पदार्थ नहीं हो सकता। परम सत्य को साक्षात् परम पुरुष होना चाहिए। सेइ पुरुष माया-पाने करे अवधान ।उनके दृष्टिपात से ही भौतिक प्रकृति सारे जीवों से गर्भित

हो जाती है। वे अपने अपने कर्म के अनुसार विभिन्न शरीरों में उत्पन्न होते हैं। भगवद्गीता (2.13) ने यही व्याख्या दी है :

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

"जिस तरह देहधारी आत्मा इस शरीर में बालपन से युवावस्था और फिर बुढ़ापे को प्राप्त होता है, उसी तरह आत्मा मृत्यु के समय दूसरे शरीर में चला जाता है। आत्मज्ञानी व्यक्ति ऐसे परिवर्तन से मोहित नहीं होता।"

स्वाङ्ग-विशेषाभास-रूपे प्रकृति-स्पर्शन ।

जीव-रूप 'बीज' ताते कैला समर्पण ॥ 273 ॥

स्व-अङ्ग-विशेष-आभास-रूपे-अपने शरीर से एक विशिष्ट परछाई के रूप में; प्रकृति-स्पर्शन-भगवान् भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात् करते हैं; जीव-रूप-अंशभूत स्फुलिंग जैसे जीवात्माओं के रूप में; बीज-वीर्य; ताते-भौतिक प्रकृति में; कैला समर्पण-गर्भाधान कर देते हैं।

अनुवाद

"जीवरूपी बीजों से गर्भित करने के लिए भगवान् भौतिक शक्ति का प्रत्यक्ष स्पर्श नहीं करते, अपितु वे अपने विशेष कार्यकारी विस्तार द्वारा भौतिक प्रकृति का स्पर्श करते हैं। इस तरह सारे जीव, जो उनके अंश रूप हैं, भौतिक प्रकृति में गर्भित हो जाते हैं।

तात्पर्य

भगवद्गीता (15.7) में भगवान् कृष्ण के अनुसार :

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

“इस भौतिक जगत् में सारे जीव मेरे सनातन सूक्ष्म अंश हैं। बद्ध होने के कारण वे मन समेत छहों इन्द्रियों द्वारा अत्यधिक संघर्ष कर रहे हैं।”

चैतन्य-चरितामृत में प्रकृति-स्पर्शन शब्द की व्याख्या जड़ पदार्थ के साथ जीवों के सम्पर्क के प्रसंग में की गई है। यह दृष्टिपात महाविष्णु द्वारा होता है-स ऐक्षत लोकान्नु सृजा इति। (ऐतरेय उपनिषद् 1.1.1) बद्ध अवस्था में हम देह रचना के अनुसार मैथुन द्वारा गर्भ स्थापित करते हैं, किन्तु परमेश्वर को ऐसे मैथुन की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे तो केवल दृष्टिपात द्वारा गर्भ स्थापित करते हैं। ब्रह्म-संहिता (5.32) में भी यही बात कही गई है :

अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति

पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति ।

आनन्द-चिन्मयसदुज्वल विग्रहस्य

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

गोविन्द मात्र दृष्टिपात द्वारा गर्भाधान कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, उनकी आँखें जननेन्द्रिय का काम कर सकती हैं। उन्हें सन्तान उत्पन्न करने के लिए जननेन्द्रियों की आवश्यकता नहीं पड़ती। निस्सन्देह, कृष्ण अपने शरीर के किसी भी अंग से किसी भी जीव को उत्पन्न कर सकते हैं।

यहाँ स्वांग-विशेषाभास-रूपे अर्थात् जिस रूप से भगवान् इस भौतिक जगत् में जीवों को उत्पन्न करते हैं, उसकी व्याख्या की गई है। उनका यह रूप शिवजी का है। ब्रह्म-संहिता में कहा गया है कि महाविष्णु का अन्य रूप शिवजी दही के समान है। दही दूध ही है, फिर भी दूध नहीं है। इसी तरह शिवजी इस ब्रह्माण्ड के पिता माने जाते हैं और भौतिक प्रकृति माता मानी जाती है। शिव तथा दुर्गा पिता तथा माता माने जाते हैं। शिव तथा दुर्गा की जननेन्द्रियाँ एकसाथ शिवलिंग के रूप में पूजी जाती हैं। यह

भौतिक सृष्टि का उद्गम है। इस तरह शिवजी की स्थिति यह है कि वे जीव तथा परमेश्वर के बीच स्थित हैं। दूसरे शब्दों में, शिवजी न तो जीव हैं, न परमेश्वर। वे वह रूप हैं, जिसके माध्यम से परमेश्वर इस भौतिक जगत् में जीवों को उत्पन्न करते हैं। जिस तरह दूध में जामन मिलाने पर दही बनता है, उसी तरह जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भौतिक प्रकृति के सम्पर्क में आते हैं, तब वे शिव के रूप का विस्तार करते हैं। पिता शिवजी द्वारा भौतिक प्रकृति का गर्भित होना अद्भुत है, क्योंकि एकसाथ असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते (श्वेताश्वतर उपनिषद् 5.9)। ये जीव अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं:

केशाग्र-शत-भागस्य शतांशसदृशात्मकः ।

जीवः सूक्ष्मस्वरूपोऽयं सङ्ख्यातीतो हि चित्कणः ॥

“यदि हम एक बाल के सिरे को सौ भागों में बाँटें और फिर पुनः एक भाग के सौ भाग करें, तो जो अति सूक्ष्म आकार होगा, वही आकार असंख्य जीवों में से एक जीव का होगा। वे सभी चित्कण, अर्थात् आत्मा के कण हैं, पदार्थ नहीं हैं।”

असंख्य ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति भगवान् के शरीर के रोमकूपों से होती है। और असंख्य जीव भी उन्हीं भगवान् के दिव्य शरीर के कूपों से निकलते हैं। यही भौतिक सृजन की प्रक्रिया है। जीव के बिना यह भौतिक प्रकृति मूल्यहीन है। दोनों ही महाविष्णु के दिव्य शरीर के रोमकूपों से निकलते हैं। वे विभिन्न शक्तियाँ हैं। इसे भगवद्गीता (7.4) में कृष्ण द्वारा इस प्रकार बतलाया गया है :

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

“भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार—ये आठ मिलकर मेरी भिन्न भौतिक शक्तियों का निर्माण करते हैं। इस तरह भौतिक तत्त्व भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर से उत्पन्न होते

हैं, किन्तु वे जीवों से भिन्न प्रकार की शक्ति हैं। यद्यपि जीव भी भगवान् के शरीर से उत्पन्न होते हैं, किन्तु उन्हें श्रेष्ठ (परा) शक्ति के रूप में परिगणित किया जाता है :

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि में पराम् ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

"हे महाबाहु अर्जुन, इस कनिष्ठ (अपरा) प्रकृति के अतिरिक्त मेरी एक उत्कृष्ट परा शक्ति भी है, जो भौतिक प्रकृति के संसाधनों को दोहन करने वाले जीवों से बनी है।" (भगवद्गीता 7.5) निकृष्ट शक्ति (पदार्थ) उत्कृष्ट परा शक्ति के बिना कार्य नहीं कर सकती। इन सबका वेदों में स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। यह भौतिकतावादी सिद्धान्त कि जीवन पदार्थ से उत्पन्न होता है, गलत है। जीवन तथा पदार्थ दोनों ही परम पुरुष से उत्पन्न हुए हैं, इसीलिए इन दोनों का उद्गम होने के कारण उन परम पुरुष कृष्ण को वेदान्त-सूत्र (1.1) में जन्माद्यस्य यत: अथवा सर्वकारणकारणं कहा गया है। अगले श्लोक में इसकी अधिक व्याख्या की गई है।

दैवात्क्षुभित-धर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् ।

आधत्त वीर्यं सासूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥ 274॥

दैवात्-स्मरण से परे के समय में; क्षुभित-धर्मिण्याम्-क्षुब्ध होने वाली भौतिक प्रकृति; स्वस्याम्-जो परम भगवान् की शक्तियों में से एक है; योनौ-योनि में, जिससे सभी जीवात्माएँ जन्म लेते हैं; परः पुमान्–परम ब्रह्म, परम भगवान्; आधत्त-गर्भस्थ किया; वीर्यम्-वीर्य; सा-उस भौतिक प्रकृति ने; असूत–उत्पन्न किया; महत्-तत्त्वम् सम्पूर्ण भौतिक शक्ति; हिरण्मयम्-विविध रूप के भौतिक पदार्थों के प्राकट्य का मूल स्रोत।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने अनन्तकाल में तीन गुणों वाली भौतिक प्रकृति को उत्तेजित करके उसके गर्भ में असंख्य जीवों के रूप में अपना वीर्य स्थापित किया। इस तरह भौतिक प्रकृति ने सम्पूर्ण भौतिक शक्ति को जन्म दिया, जो हिरण्मय महत् तत्त्व के नाम से जानी जाती है, जिसका अर्थ है, विश्व-सृष्टि का मूल प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व।'

तात्पर्य ।

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.26.19) से है। इसमें भगवान् कपिल अपनी माता को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा भौतिक प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में बतला रहे हैं। वे बता रहे हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् किस तरह उन जीवों के मूल कारण हैं, जो भौतिक प्रकृति द्वारा बद्ध हैं। भौतिक सृष्टि के 28 तत्त्वों के भी ऊपर समस्त कारणों के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। जीवन का उदय पदार्थ से नहीं, अपितु जीवन से होता है। वेदों में (कठ उपनिषद् 2.2.13 में) बतलाया गया है-नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्। भगवान् जीवन के मूल उद्गम हैं।

काल-वृत्त्या तु मायायां गुण-मय्यामधोक्षजः ।

पुरुषेणात्म-भूतेन वीर्घमाधत्त वीर्यवान् ॥ 275 ॥

काल-वृत्त्या-कुछ समय के बाद, सृष्टि के निमित्त कारण रूप में; तु–किन्तु; मायायाम्-भौतिक प्रकृति में; गुण-मय्याम्-भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों (सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण) से पूर्ण; अधोक्षजः–पूर्ण पुरुषोत्तम पुरूषोत्तम भगवान् द्वारा, जो भौतिक अवधारणाओं से परे हैं; पुरुषेण–भौतिक प्रकृति के भोक्ता द्वारा; आत्म-भूतेन-जो उनके स्वांश विस्तार हैं; वीर्यम्-वीर्य; आधत्त-स्थापित किया; वीर्यवान्–वीर्यवान।

अनुवाद

“कालक्रम में पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् (महावैकुण्ठनाथ) ने अपने स्वांश विस्तार (महाविष्णु) द्वारा भौतिक प्रकृति के गर्भ के भीतर जीवरूपी वीर्य स्थापित किया।’

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.5.26) का है। इस श्लोक में बतलाया गया है कि जीव किस तरह भौतिक प्रकृति के सम्पर्क में आते हैं। जिस प्रकार स्त्री पुरुष के संसर्ग के बिना सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकती, उसी तरह भौतिक प्रकृति भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से संयोग किये बिना जीवों को जन्म नहीं दे सकती। भगवान् किस तरह सारे जीवों के पिता हैं, इसका भी इतिहास है। प्रत्येक धर्म में ईश्वर को सारे जीवों के परम पिता माने जाते हैं। ईसाई धर्मानुसार परम पिता ईश्वर जीवों को सारी आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करते हैं। इसीलिए वे प्रार्थना करते हैं, “हमें हमारी आज की रोटी दें।” जो धर्म परमेश्वर को परम पिता नहीं मानता, वह कैतव धर्म अर्थात् ठगने वाला धर्म कहलाता है। श्रीमद्भागवत (1.1.2) में ऐसे धर्मों को अस्वीकार किया गया है- धर्म प्रोज्झित कैतवोऽत्र। केवल नास्तिक ही सर्वशक्तिमान परम पिता को नहीं मानता। जो सर्वशक्तिमान परम पिता को स्वीकार करता है, वह उनके आदेशों का पालन करता है और धार्मिक व्यक्ति बन जाता है।

तबे महत्तत्त्व हैते त्रिविध अहङ्कार।

याहा हैते देवतेन्द्रिय-भूतेर प्रचार ॥ 276 ॥

तबे-फिर; महत्-तत्त्व हैते–सम्पूर्ण भौतिक शक्ति (महत् तत्त्व) से; त्रि-विध-तीन प्रकार के; अहङ्कार-अहंकार; याहा हैते–जिससे; देवता-अधिष्ठाता देव; इन्द्रिय-इन्द्रियों के; भूतेर–तथा भौतिक तत्त्वों के प्रचार-विस्तार।

अनुवाद

“सर्वप्रथम समग्र भौतिक शक्ति (महत् तत्त्व) प्रकट होती है, जिससे तीन प्रकार के अहंकार प्रकट होते हैं और ये ही वे मूल स्रोत हैं, जिनसे सभी देवता (नियन्त्रण करने वाले अधिष्ठाता), इन्द्रियाँ तथा भौतिक तत्त्व विस्तार करते हैं।

तात्पर्य

अहंकार तीन प्रकार के हैं-वैकारिक, तैजस तथा तामस।महत् तत्त्व तो हृदय अथवा चित्त के भीतर स्थित है-और महत् तत्त्व के अधिष्ठाता हैं भगवान् वासुदेव (भागवत 3.26.21)। महत् तत्त्व के तीन विभाग हो जाते हैं (1) वैकारिक (सात्त्विक अहङ्कार), जिससे ग्यारहवीं इन्द्रिय अर्थात् मन प्रकट होता है और जिसके अधिष्ठाता अनिरुद्ध हैं (भागवत 3.26.27-28); (2) तैजस (राजस अहङ्कार) जिससे इन्द्रियाँ तथा बुद्धि प्रकट होते हैं और जिसके अधिष्ठाता प्रद्युम्न हैं (भागवत 3.26.29-31); तथा (3) तामस जिससे शब्द ध्वनि (शब्द तन्मात्र) का विस्तार होता है। इस शब्द ध्वनि से आकाश प्रकट होता है और कान आदि इन्द्रियाँ भी प्रकट होती हैं (भागवत 3.26-32) । इन तीनों अहंकारों के अधिष्ठाता भगवान् संकर्षण हैं। तत्त्वज्ञान विषयक चर्चा सांख्यकारिका में बतलाया गया है- सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृताद् अहङ्कारात्-भूतादेस्तन्मात्रं तामस तैजसाद्युभयम् ।

सर्व तत्त्व मिलि’ सृजिल ब्रह्माण्डेर गण ।

अनन्त ब्रह्माण्ड, तार नाहिक गणन ॥ 277॥

सर्व तत्त्व-सभी भिन्न तत्त्व; मिलि’–मिलकर; सृजिल–रचना करते हैं; ब्रह्माण्डेर गण-सभी ब्रह्माण्ड; अनन्त ब्रह्माण्ड–वे ब्रह्माण्ड असंख्य हैं; तार नाहिक गणन-उनकी गिनती करना सम्भव नहीं है।

अनुवाद

“विभिन्न तत्त्वों को मिलाकर भगवान् ने सारे ब्रह्माण्डों का सृजन किया। इन ब्रह्माण्डों की संख्या अनन्त है, उन्हें गिन पाना सम्भव नहीं है।

इँहो महत्स्रष्टा पुरुष—‘महा-विष्णु’ नाम ।

अनन्त ब्रह्माण्ड ताँर लोम-कूपे धाम ॥ 278 ॥

अनुवाद

“महाविष्णु सारे ब्रह्माण्डों के परमात्मा हैं। कारण सागर में शयन करने वाले वे सारे भौतिक जगतों के स्वामी हैं।

एइत कहिलुँ प्रथम पुरुषेर तत्त्व ।

द्वितीय पुरुषेर एबे शुनह महत्त्व ॥ 283॥

एइत-इस प्रकार; कहिलुँ–मैंने वर्णन किया है; प्रथम पुरुषेर- भगवान् के प्रथम अवतार का; तत्त्व-तत्त्व; द्वितीय पुरुषेर-भगवान् के दूसरे अवतार का; एबे-अब; शुनह-सुनो; महत्त्व-महिमा।

अनुवाद

“इस प्रकार मैंने प्रथम पुरुष, महाविष्णु की व्याख्या की है। अब मैं द्वितीय पुरुष की महिमा का वर्णन करूँगा।

सेइ पुरुष अनन्त-कोटि ब्रह्माण्ड सृजिया ।

एकैक-मूर्त्येप्रवेशिला बहु मूर्ति हञा ॥ 284॥

सेइ पुरुष-वही परम भगवान्, महाविष्णु; अनन्त-कोटि ब्रह्माण्ड-लाखों-करोड़ों ब्रह्माण्डों की; सृजिया-रचना करके; एक-एक-उनमें से प्रत्येक में; मूर्त्ये-एक रूप में; प्रवेशिला-प्रवेश कर गये; बहु मूर्ति हञा–अनेक रूप होकर।

अनुवाद

"अनन्त ब्रह्माण्डों की सृष्टि करने के बाद महाविष्णु ने अपना विस्तार असंख्य रूपों में कर लिया और उनमें से हर एक में प्रवेश किया।

प्रवेश करिया देखे, सब–अन्धकार ।

रहिते नाहिक स्थान, करिला विचार ॥285॥

प्रवेश करिया-प्रवेश करके; देखे-उन्होंने देखा; सब-सब जगह; अन्धकार-पूरा अँधेरा; रहिते-वहाँ रहने के लिए; नाहिक स्थान-कोई स्थान नहीं था; करिला विचार-तब उन्होंने विचार किया।

अनुवाद

"जब महाविष्णु अनन्त ब्रह्माण्डों में से हर एक में प्रविष्ट हो गये, तो उन्होंने देखा कि वहाँ चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा है और रहने के लिए कोई स्थान नहीं है। अतः वे इस स्थिति पर विचार करने लगे।

निजाङ्ग-स्वेद-जले ब्रह्माण्डार्ध भरिल ।

सेइ जले शेष-शय्याय शयन करिल ॥ 286 ॥

निज-अङ्ग–अपने शरीर से; स्वेद-जले-पसीने का जल निकालकर; ब्रह्माण्ड-अर्ध-आधे ब्रह्माण्ड को; भरिल-भर दिया; से जले-उस जल से; शेष-शय्याय-भगवान् शेष की शय्या पर; शयन करिल-लेट गये।

अनुवाद

"तब भगवान् ने अपने शरीर से पसीना उत्पन्न किया, जिसके जल से आधे ब्रह्माण्ड को भर दिया। तब वे उस जल में भगवान् शेष की शय्या पर लेट गये।

ताँर नाभि-पद्म हैते उठिल एक पद्म ।

सेइ पद्मे हइल ब्रह्मार जन्म-सद्म ॥ 287॥

ताँर नाभि-पद्म हैते-उनके नाभिकमल से; उठिल-उत्पन्न हुआ; एक–एक; पद्म-कमल पुष्प; सेइ पद्मे–उस कमल पुष्प पर; हइल-हुआ; ब्रह्मार–ब्रह्माजी का जन्म-सद्म-जन्म स्थान।

अनुवाद

"तब उन गर्भोदकशायी विष्णु की नाभि से एक कमल का फूल निकल आया और वही फूल ब्रह्मा का जन्मस्थान बना।

सेइ पद्म-नाले हइल चौह भुवन ।

तेंहो 'ब्रह्मा' हञा सृष्टि करिल सृजन ॥ 288॥

से पद्म-नाले-उस कमल के डंठल में; हड़ल-उत्पन्न हुए; चौह-चौदह; भुवन-लोक; तेंहो–उन; ब्रह्मा-ब्रह्माजी ने; हञा–होकर; सृष्टि-भौतिक सृष्टि; करिल सृजन-रचना की।

अनुवाद

"उस कमल फूल के डंठल से चौदह लोक उत्पन्न हुए। तब वे ब्रह्मा बने और उन्होंने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की।

'विष्णु'-रूप हञा करे जगत्पालने ।

गुणातीत विष्णु–स्पर्श नाहि माया-सने ॥ 289॥

विष्णु-रूप-विष्णु रूप में भगवान् कृष्ण; हञा–होकर; करे-करते हैं; जगत् पालने–भौतिक जगत् का पालन; गुण-अतीत- भौतिक गुणों से परे, दिव्य; विष्णु-भगवान् विष्णु; स्पर्श-स्पर्श करते; नाहि-नहीं; माया-सने–बब शक्ति माया के साथ।

अनुवाद

"इस प्रकार अपने विष्णु रूप से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सम्पूर्ण भौतिक जगत् का पालन करते हैं। चूँकि वे सदैव भौतिक गुणों से परे हैं, अतः भौतिक प्रकृति (माया) कभी-भी उनका स्पर्श नहीं कर सकती।

तात्पर्य

जिस तरह माया ब्रह्मा तथा शिव का स्पर्श करती है, उस तरह वह विष्णु का स्पर्श नहीं कर सकती। इसीलिए कहा गया है कि भगवान् विष्णु भौतिक गुणों से परे हैं। भौतिक गुणों के अवतार– ब्रह्माजी तथा शिवजी–बहिरंगा शक्ति (माया) के अन्तर्गत आते हैं। किन्तु भगवान् विष्णु अलग हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों में कहा गया है-ॐ तद् विष्णोः परमं पदम् (ऋग्वेद संहिता 1.22.20)। परमं पदम् शब्द सूचित करते हैं कि वे भौतिक गुणों से परे हैं। चूँकि भगवान् विष्णु भौतिक गुणों के अधिकार क्षेत्र के भीतर नहीं आते, अतएव वे उन जीवों से सदैव श्रेष्ठ हैं, जो भौतिक शक्ति (माया) द्वारा नियन्त्रित होते हैं। परम भगवान् तथा जीवों के बीच के अन्तरों में से यह एक है। ब्रह्माजी अत्यन्त शक्तिमान जीव हैं और शिवजी उनसे भी बढ़कर शक्तिशाली हैं। इसलिए शिवजी को जीव नहीं माना जाता, किन्तु साथ ही साथ उन्हें विष्णु के समान पद पर भी नहीं माना जाता।

'रुद्र'-रूप धरि करे जगत्संहार।

सृष्टि, स्थिति, प्रलय हय इच्छाय याँहार॥ 290॥

रुद्र-रूप धरि–शिवजी का रूप स्वीकार करके; करे-करते हैं; जगत् संहार-ब्रह्माण्डों की सृष्टि का नाश; सृष्टि-सृजन; स्थिति–पालन; प्रलयतथा विनाश; हय-होते हैं; इच्छाय-इच्छा से; याँहार–जिनकी।

अनुवाद

“वे अपने रुद्र (शिव) रूप में इस भौतिक जगत् का संहार करते हैं। दूसरे शब्दों में, उनकी इच्छा से ही सम्पूर्ण जगत् का सृजन, पालन और संहार होता है।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव—ताँर गुण-अवतार।

सृष्टि-स्थिति-प्रलयेर तिनेर अधिकार ॥291॥

ब्रह्मा–ब्रह्माजी; विष्णु भगवान् विष्णु, शिव-शिवजी; ताँर–गर्भोदकशायी विष्णु के; गुण-अवतार–भौतिक गुणों के अवतार; सृष्टि-स्थिति-प्रलयेर-सृष्टि, पालन, तथा प्रलय नामक तीनों कार्यों का; तिनेर अधिकार–तीनों देवों (ब्रह्माजी, भगवान् विष्णु तथा शिवजी) द्वारा नियंत्रण होता है।

अनुवाद

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव-ये तीनों उनके भौतिक गुणों के अवतार हैं। क्रमशः सृष्टि, पालन और संहार इन तीनों पुरुषों के अधिकार में है।

हिरण्यगर्भ-अन्तर्यामी–गर्भोदकशायी।

‘सहस्र-शीर्षादि’ करि’ वेदे याँरे गाइ ॥292॥

हिरण्यगर्भ-हिरण्यगर्भ नामक; अन्तर्यामी-परमात्मा; गर्भ-उदक-शायी-भगवान् गर्भोदकशायी विष्णु; सहस्र-शीर्षा-आदि करि’-सहस्र शीर्षा (ऋगवेद संहिता 10.90.1) आदि वैदिक छंदों द्वारा; वेदे याँरे गाइ-वेद जिनकी स्तुति करते हैं।

अनुवाद

“गर्भोदकशायी विष्णु, जो कि इस ब्रह्माण्ड में हिरण्यगर्भ तथा अन्तर्यामी-अर्थात् परमात्मा के नाम से जाने जाते हैं, उनकी महिमा का गायन वेदों में ‘सहस्रशीर्षा' शब्द से प्रारम्भ होने वाले स्तोत्र द्वारा किया जाता है।

एइ त' द्वितीय-पुरुष—ब्रह्माण्डेर ईश्वर ।

मायार 'आश्रय' हय, तबु माया-पार ॥293 ॥

एइ त'-इस प्रकार; द्वितीय-पुरुष-द्वितीय भगवान्; ब्रह्माण्डेर ईश्वर–ब्रह्माण्डों के स्वामी; मायार-भौतिक बहिरंगा शक्ति के; आश्रय हय-आश्रय बनकर; तबु-फिर भी; माया-पार-भौतिक शक्ति के स्पर्श से परे हैं।

अनुवाद

"द्वितीय पुरुष गर्भोदकशायी विष्णु प्रत्येक ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं। और बहिरंगा शक्ति (माया) के आश्रय हैं। तो भी वे माया के स्पर्श से परे रहते हैं।

तृतीय-पुरुष विष्णु— 'गुण-अवतार' ।

दुइ अवतार-भितर गणना ताँहार ॥294॥

तृतीय-पुरुष-तीसरे पुरुष; विष्णु-भगवान् विष्णु; गुण-अवतार–सतोगुण के अवतार; दुइ अवतार-भितर–दो अवतारों के बीच; गणना ताँहार-उनकी गिनती।

अनुवाद

विष्णु के तृतीय अंश क्षीरोदकशायी विष्णु हैं, जो सत्त्वगुण के अवतार हैं। इनकी गणना दो प्रकार के अवतारों (पुरुष-अवतार तथा गुणावतार) में की जाती है।

विराट्यष्टि-जीवेर तेंहो अन्तर्यामी ।

क्षीरोदकशायी तेंहो—पालन-कर्ता, स्वामी ॥ 295 ॥

विराट्-विराट् रूप; व्यष्टि-जीवेर–अन्य जीवात्माओं के; तेंहो-वे; अन्तर्यामी-परमात्मा; क्षीर-उदक-शायी-दूध के सागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु; तेंहो-वे; पालन-कर्ता-पालन करने वाले; स्वामी–स्वामी।

अनुवाद

"ये क्षीरोदकशायी विष्णु भगवान् के विराट् रूप हैं और प्रत्येक जीव के भीतर के परमात्मा हैं। वे क्षीरोदकशायी कहलाते हैं, क्योंकि वे क्षीरसागर में शयन करते हैं। वे ब्रह्माण्ड के पालक तथा स्वामी हैं।

पुरुषावतारेर एइ कैलुँ निरूपण ।

लीलावतार एबे शुन, सनातन ॥296 ॥

पुरुष-अवतारेर–सभी पुरुष अवतारों का; एइ–यह; कैलुँ निरूपण-मैंने वर्णन किया है; लीला-अवतार–लीला अवतारों का; एबे-अब; शुन-सुनो; सनातन-हे सनातन।

अनुवाद

"हे सनातन, मैं विष्णु के तीन पुरुष अवतारों का स्पष्ट वर्णन कर चुका हूँ। अब मुझसे लीलावतारों के विषय में सुनो।

लीलावतार कृष्णेर ना याय गणन ।

प्रधान करिया कहि दिग्दरशन ॥297॥

लीला-अवतार–लीला अवतारों की; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; ना याय गणन-गिनती नहीं की जा सकती; प्रधान करिया–मुख्यतः; कहि-मैं वर्णन करता हूँ; दिक्-दरशन-एक झलक द्वारा।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण के असंख्य लीलावतारों की गणना कोई भी नहीं कर सकता, किन्तु मैं मुख्य-मुख्य अवतारों का वर्णन करूँगा।

मत्स्य, कूर्म, रघुनाथ, नृसिंह, वामन ।

वराहादि–लेखा याँर ना याय गणन ॥298॥

मत्स्य-मत्स्य अवतार; कूर्म-कच्छप अवतार; रघुनाथ–भगवान् रामचन्द्र; नृसिंह-नृसिंह अवतार; वामन-वामन अवतार; वराह-आदि-वराह अवतार तथा अन्य; लेखा-वर्णन करते हुए; याँर–जिन अवतारों की; ना याय गणन-गिनती नहीं की जा सकती।

अनुवाद

“कुछ लीलावतार इस प्रकार हैं-मत्स्यावतार, कूर्मावतार, भगवान् रामचन्द्र, भगवान् नृसिंह, भगवान् वामन तथा भगवान् वराह। इनका कोई अन्त नहीं है।

मत्स्याश्व-कच्छप-नृसिंह-वराह-हंस-

राजन्य-विप्र-विबुधेषु कृतावतारः ।

त्वं पासि नस्त्रि-भुवनं च तथाधुनेश

भारं भुवो हर युदूत्तम वन्दनं ते ॥ 299॥

मत्स्य–एक मछली के रूप में; अश्व-एक अश्व के रूप में; कच्छप-एक कछुए के रूप में; नृसिंह-भगवान् नृसिंह के रूप में; वराह-एक वराह के रूप में; हंस-एक हंस के रूप में; राजन्य-भगवान् रामचन्द्र के रूप में; विप्र-भगवान् परशुराम के रूप में; विबुधेषु–तथा भगवान् वामदेव के रूप में; कृत-अवतारः-जिन्होंने अवतार लिया है; त्वम्-आप; पासि-कृपया रक्षा करें; नः-हम देवताओं की; त्रिभुवनम् च-तथा तीनों लोकों की; तथा-तथा; अधुना–अब; ईश–हे भगवान्; भारम्-भार; भुवः-सृष्टि के; हर-कृपया हर लीजिये; यदु-उत्तम-हे यदुकुल के श्रेष्ठ; वन्दनम् ते–हम आपकी वन्दना करते हैं।

अनुवाद

"'हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, हे यदुकुल श्रेष्ठ, हम आपसे ब्रह्माण्ड के भारी भार को कम करने के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। आपने पूर्वकाल में मत्स्य, अश्व (हयग्रीव), कच्छप, सिंह (नृसिंह), शूकर (वराह) तथा हंस के रूप में भी अवतरित होकर इस भार को कम किया है। आप भगवान् रामचन्द्र, परशुराम तथा वामन के रूप में भी अवतरित हुए हैं। आपने सदैव इस तरह से हम देवताओं तथा ब्रह्माण्ड की रक्षा की है। कृपया अब भी वैसा ही करते रहें।'

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.2.40) का है।

लीलावतारेर कैलुँ दिग्दरशन ।

गुणावतारेर एबे शुन विवरण ॥ 300॥

लीला-अवतारेर–लीला अवतारों का कैलें-मैंने किया है; दिक्-दरशन-संकेत मात्र; गुण-अवतारेर–भौतिक गुणों के अवतारों का; एबेअब; शुन विवरण-वर्णन सुनो।

अनुवाद

"मैंने लीलावतारों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। अब मैं गुणावतारों का वर्णन करूँगा। कृपया सुनें।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव,—तिन गुण अवतार ।

त्रि-गुण अङ्गीकरि' करे सृष्ट्यादि-व्यवहार ॥ 301॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव-ब्रह्माजी, विष्णु तथा शिव; तिन–तीनों; गुण अवतार–भौतिक गुणों के अवतार; त्रि-गुण-भौतिक प्रकृति के तीन गुण; अङ्गीकरि'–स्वीकार; करे-करते हैं; सृष्टि-आदि-व्यवहार–सृष्टि, पालन तथा विनाश कार्यों के लिए।

अनुवाद

"इस भौतिक जगत् में तीन प्रकार के कार्य हैं। इसमें हर वस्तु उत्पन्न होती है, वह कुछ काल तक रहती है और अन्त में नष्ट हो जाती है। अतएव भगवान् तीनों गुणों-सतो, रजो तथा तमो गुणों के नियन्ता के रूप में अवतरित होते हैं और इस तरह इस भौतिक जगत् का व्यवहार चलता रहता।

भक्ति-मिश्र-कृत-पुण्ये कोन जीवोत्तम ।

रजो-गुणे विभावित करि' ताँर मन ॥ 302 ॥

भक्ति-मिश्र-कृत-पुण्ये- भक्ति से मिश्रित पुण्य कर्मों के कारण; कोन-कोई; जीव-उत्तम–उत्तम जीव; रजः-गुणे-रजोगुण द्वारा; विभावित--प्रभावित; करि'-करता है; ताँर-उसका; मन–मन॥

अनुवाद

"भक्ति-मिश्रित पूर्व पुण्यकर्मों के फलस्वरूप उत्तम जीव अपने चित्त में रजोगुण से प्रभावित होता है।

गर्भोदकशायि-द्वारा शक्ति सञ्चारि' ।

व्यष्टि सृष्टि करे कृष्ण ब्रह्मा-रूप धरि' ॥ 303 ॥

गर्भ-उदक-शायि-द्वारा–भगवान् गर्भोदकशायी विष्णु द्वारा; शक्ति सञ्चारि'-उसे विशेष शक्ति देकर; व्यष्टि-सम्पूर्ण; सृष्टि-सृष्टि; करे-करते हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ब्रह्मा-रूप धरि–ब्रह्माजी का रूप लेकर।

अनुवाद

"ऐसे भक्त को गर्भोदकशायी विष्णु शक्ति प्रदान करते हैं। इस तरह ब्रह्मा के रूप में कृष्ण का अवतार, पूरे ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण रचना करता है।

तात्पर्य

भगवान् विष्णु के पुरुष अवतार, गर्भोदकशायी विष्णु, भौतिक गुणों-सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण का स्वीकार करते हैं और भगवान् विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव के रूप में अवतार लेते हैं। ये भौतिक गुणों के अवतार हैं। पुण्यकर्मों से तथा भक्ति से युक्त अनेक उत्तम जीवों में से ब्रह्मा कहलाने वाला एक जीव गर्भोदकशायी विष्णु की इच्छा से रजोगुण से प्रभावित होता है। इस तरह ब्रह्माजी भगवान् की सर्जक शक्ति के अवतार बनते हैं।

भास्वान् यथाश्म-सकलेषु निजेषु तेजः

स्वीयं कियत्प्रकटयत्यपि तद्वदत्र ।

ब्रह्मा य एष जगदण्ड-विधान-कर्ता

गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥ 304॥

भास्वान्-प्रज्ज्वलित सूर्य; यथा-जिस प्रकार; अश्म-सकलेषु विभिन्न मूल्यवान रत्नों में; निजेषु-अपने; तेजः-तेज; स्वीयम्-अपना; कियत्-कुछ मात्रा में; प्रकटयति-प्रकट करता है; अपि-भी; तद्वत्-इसी प्रकार; अत्र-यहाँ; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; यः-जो हैं; एषः- भगवान्; जगत्-अण्ड-विधान-कर्ता-ब्रह्माण्ड के प्रधान बन जाते हैं; गोविन्दम् आदि-पुरुषम्-गोविन्द, आदि पुरुष की; तम्-उनकी; अहम्-मैं; भजामि-भक्ति करता हूँ।

अनुवाद

“सूर्य अपना तेज रत्न में प्रकट करता है, यद्यपि रत्न पत्थर होता है। इसी प्रकार भगवान् गोविन्द पुण्यात्मा जीव में अपनी विशेष शक्ति प्रकट करते हैं। इस तरह वह जीव ब्रह्मा बनता है और ब्रह्माण्ड के कार्य को सँभालता है। मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ।’

तात्पर्य

यह उद्धरण ब्रह्म-संहिता (5.49) का है।

कोन कल्पे यदि योग्य जीव नाहि पाय ।

आपने ईश्वर तबे अंशे ‘ब्रह्मा’ हय ॥ 305॥

कोन कल्पे-किसी ब्रह्मा के जीवन काल में; यदि-यदि; योग्य-उचित; जीव-जीवात्मा; नाहिं-नहीं; पाय–मिलता; आपने–स्वयं; ईश्वर-परम भगवान्; तबे-तब; अंशे-अपने पूर्ण अंश द्वारा; ब्रह्मा हय–ब्रह्मा बन जाते हैं।

अनुवाद

“यदि किसी एक कल्प में उपयुक्त जीव ब्रह्मा का पदभार सँभालने के लिए उपलब्ध नहीं होता, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वयं अपना विस्तार करके ब्रह्मा बन जाते हैं।

तात्पर्य

ब्रह्मा के एक दिन में एक हजार चतुर्युग अर्थात् 4,32,00,00,000 सौर वर्ष होते हैं और इतने ही वर्षों की रात होती है। ब्रह्मा के जीवन का एक वर्ष 360 ऐसे दिनों तथा रातों का होता है और ब्रह्मा ऐसे 100 वर्षों तक जीवित रहते हैं। ब्रह्मा का जीवन ऐसा होता है।

यस्याघ्रि-पङ्कज-रजोऽखिल-लोक-पालैर्

मौल्युत्तमैर्धृतमुपासित-तीर्थ-तीर्थम् ।

ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः

श्रीश्नोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥ 306 ॥

यस्य–जिनके; अघ्रि-पङ्कज-चरणकमलों की; रजः-धूलि; अखिल-लोक-ब्रह्माण्ड के समस्त लोकों के; पालैः-पालकों द्वारा; मौलि-उत्तमैः-जिनके सिरों पर मूल्यवान मुकुट होते हैं; धृतम्-स्वीकार की जाती हैं; उपासित-पूजित होती है; तीर्थ-तीर्थम्-तीर्थस्थानों को पवित्र करने वाली; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; भवः-शिवजी; अहम् अपि-मैं भी; यस्य–जिनकी; कलाः-अंश; कलायाः-अंश का; श्रीः-लक्ष्मी देवी; च-भी; उद्वहेम-हम धारण करते हैं; चिरम्-नित्य; अस्य-इनके; नृप-आसनम्-सिंहासन को; क्व–कहाँ।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण के लिए सिंहासन का क्या मूल्य है? उनके चरणकमलों की धूलि को विभिन्न लोकों के स्वामी अपने मुकुट-युक्त सिरों पर धारण करते हैं। वह धूलि तीर्थस्थानों को पवित्र बनाती है और कृष्ण के स्वांश के अंशरूप, ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी तथा मैं स्वयं, उस धूलि को नित्य अपने सिरों पर धारण करते हैं।’

शिवः शक्ति-युक्तः शश्वत् त्रि -लिङ्गो गुण-संवृतः ।

वैकारिकस्तैजसश्च तामैसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ 312॥

शिवः-शिवजी; शक्ति-युक्तः–भौतिक प्रकृति से युक्त; शश्वत्-नित्य रूप से; त्रि-लिङ्गः-तीन रूपों में; गुण-संवृतः-प्रकृति के गुणों द्वारा आवृत; वैकारिकः-वैकारिक नामक; तैजसः च-तैजस नामक; तामसः च-तथा तामस नामक; इति-ये; अहम्-अहंकार; त्रि-धा–तीन प्रकार के।

अनुवाद

“शिवजी के विषय में सच बात तो यह है कि वे सदैव तीन भौतिक आवरणों-वैकारिक, तैजस तथा तामस–से आवृत रहते हैं। भौतिक प्रकृति के इन तीनों गुणों के कारण वे बहिरंगा शक्ति माया तथा अहंकार का सदैव संग करते हैं।’

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.88.3) का है।

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ।

स सर्व-दृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत् ॥ 313 ॥

हरिः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु; हि निश्चित रूप से; निर्गुणः–सभी भौतिक गुणों से परे; साक्षात्-प्रत्यक्ष; पुरुषः-परम भोक्ता; प्रकृतेः- भौतिक प्रकृति; परः–परे; सः-वे; सर्व-दृक्-सब कुछ देखने वाले; उपद्रष्टा-सबको देखने वाले; तम्-उनकी; भजन्–सेवा द्वारा; निर्गुणः- भौतिक गुणों से परे; भवेत्-बन जाता है।

अनुवाद

“श्री हरि अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भौतिक प्रकृति की पहुँच के बाहर स्थित हैं, अतएव वे दिव्य परम पुरुष हैं। वे सारी वस्तुओं के बाहर और भीतर देख सकते हैं, अतएव वे सभी जीवों के परम दृष्टा हैं। जो व्यक्ति उनके चरणकमलों की शरण में जाता है और उनकी पूजा करता है, उसे भी दिव्य पद प्राप्त होता है।

तात्पर्य

यह उद्धरण भी श्रीमद्भागवत (10.88.5) का है।

पालनार्थ स्वांश विष्णु-रूपे अवतार ।

सत्त्व-गुण द्रष्टा, ताते गुण-माया-पार ॥ 314॥

पालन-अर्थ-पालन करने के लिए; स्वांश-अपने पूर्ण विस्तार; विष्णु-रूपे-भगवान् विष्णु के रूप में; अवतार–अवतार; सत्त्व-गुण-सत्त्वगुण के; द्रष्टा-निर्देशक; ताते-इसलिए; गुण-माया-पार–भौतिक प्रकृति के गुणों से परे।

अनुवाद

"ब्रह्माण्ड का पालन करने हेतु भगवान् कृष्ण अपने स्वांश विष्णु रूप में अवतरित होते हैं। वे सतोगुण के निर्देशक हैं, अतएव वे भौतिक शक्ति से परे हैं।

स्वरूप—ऐश्वर्य-पूर्ण, कृष्ण-सम प्राय ।

कृष्ण अंशी, तेंहो अंश, वेदे हेन गाय ॥ 315 ॥

स्वरूप-स्वरूप; ऐश्वर्य-पूर्ण–सर्व ऐश्वर्यों से पूर्ण; कृष्ण-सम-कृष्ण के समान; प्राय-लगभग; कृष्ण अंशी–कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं; तेंहो-वे, भगवान् विष्णु; अंश-अंश विस्तार; वेद-वेद; हेन-ऐसा; गाय-गाते हैं।

अनुवाद

"भगवान् विष्णु स्वांश श्रेणी में आते हैं, क्योंकि उनमें कृष्ण जैसे ही ऐश्वर्य होते हैं। कृष्ण आदि पुरुष हैं और भगवान् विष्णु उनके स्वांश हैं। समस्त वेदों का यही मत है।

तात्पर्य

भौतिक शक्ति के अवतार होने पर भी ब्रह्माजी रजोगुण के अधीक्षक हैं। इसी प्रकार यद्यपि शिवजी भगवान् कृष्ण से अभिन्न तथा भिन्न हैं, फिर भी वे तमोगुण के अवतार हैं। किन्तु भगवान् विष्णु कृष्ण के स्वांश (निजी विस्तार) हैं, अतएव वे सत्त्वगुण के अधीक्षक हैं और सदैव दिव्य रूप से अवस्थित रहते हैं और भौतिक प्रकृति के गुणों के अधिकार क्षेत्र के बाहर रहते हैं। भगवान् विष्णु कृष्ण के आदि

स्वांश विस्तार हैं और कृष्ण समस्त अवतारों के मूल स्रोत हैं। जहाँ तक शक्ति का सम्बन्ध है, भगवान् विष्णु भगवान् कृष्ण के ही समान शक्तिशाली हैं, क्योंकि उनमें सारे ऐश्वर्य होते हैं।

दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य

दीपायते विवृत-हेतु-समान-धर्मा ।

यस्तादृगेव हि च विष्णुतया विभाति

गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥ 316 ॥

दीप-अर्चिः–दीपक की लौ; एव-जैसे; हि–अवश्य; दशा-अन्तरम्-दूसरा दीप; अभ्युपेत्य–विस्तार करके; दीपायते-आलोकित करता है; विवृत-हेतु-अपने विस्तारित कारण के साथ; समान-धर्मा-उतना ही प्रभावशाली; ग्रः-जो; तादृक्-उसी प्रकार; एव-अवश्य; हि-ही; च-भी; विष्णुतया-भगवान् विष्णु के रूप द्वारा; विभाति-आलोकित करते हैं; गोविन्दम्-भगवान् कृष्ण को; आदि-पुरुषम्-आदि पुरुष को; तम्-उन; अहम्-मैं; भजामि-भजता हूँ।

अनुवाद

"जब एक दीपक अपनी लौ का विस्तार दूसरे दीपक में करता है, और फिर उसे भिन्न स्थान में रख दिया जाता है, तब वह अलग से जलता है और इसका प्रकाश मूल दीपक जैसा ही शक्तिमान होता है। इसी तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गोविन्द अपना विस्तार विभिन्न विष्णु रूपों में करते हैं, जो समान रूप से प्रकाशमान, शक्तिमान तथा ऐश्वर्यवान होते हैं। मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ।'

तात्पर्य

यह उद्धरण ब्रह्म-संहिता (5.46) से लिया गया है।

ब्रह्मा, शिव—आज्ञाकारी भक्त-अवतार ।

पालनार्थं विष्णु—कृष्णेर स्वरूप-आकार ॥ 317॥

ब्रह्मा-ब्रह्माजी; शिव-शिवजी; आज्ञाकारी-आदेश पालन करने वाले; भक्त-अवतार–भक्तों के अवतार; पालन-अर्थे–पालन करने के लिए; विष्णु-भगवान् विष्णु; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; स्वरूप-आकार–स्वरूप के ही प्रतिरूप हैं।

अनुवाद

“निष्कर्ष यह है कि ब्रह्माजी तथा शिवजी भक्त अवतार हैं, जो आदेशों का पालन करते हैं। किन्तु भगवान् विष्णु पालक हैं और वे भगवान् कृष्ण के निजी स्वरूप हैं।

सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः ।

विश्वं पुरुष-रूपेण परिपाति त्रि-शक्ति-धृक् ॥ 318॥

सृजामि-रचना करता हूँ; तत्-नियुक्तः–उनके द्वारा नियुक्त किया हुआ; अहम्-मैं; हरः-शिवजी; हरति-विनाश करते हैं; तत्-वशः–उनके नियन्त्रण में; विश्वम्-सम्पूर्ण विश्व को; पुरुष-रूपेण-भगवान् विष्णु के रूप में; परिपाति-पालन करते हैं; त्रि-शक्ति-धृक्-भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के स्वामी।

अनुवाद

“[ब्रह्माजी ने कहा :]‘पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने मुझे सृजन करने के लिए नियुक्त किया है। शिवजी उनके आदेशों का पालन करते हुए हर वस्तु का संहार करते हैं। क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् प्रकृति के सारे कार्यों को चलाते हैं। इस तरह भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के अधीक्षक भगवान् विष्णु हैं।’

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.6.32) का है। यह जानकारी ब्रह्मा ने देवर्षि नारद को तब दी थी, जब वे ब्रह्माजी से परमात्मा के विषय में ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। भगवान् के विराट् रूप का वर्णन करने के बाद ब्रह्माजी ने बतलाया कि उनका पद तथा शिवजी का पद भगवान् विष्णु के नियन्त्रण में है।

मन्वन्तरावतार एबे शुन, सनातन ।

असङ्ख्य गणन ताँर, शुनह कारण ॥ 319॥

मनु-अन्तर-अवतार–प्रत्येक मनु के राज में प्रकट होने वाले अवतार; एबे–अब; शुन-सुनो; सनातन-हे सनातन गोस्वामी; असङ्ख्य –अनन्त; गणन-गिनती; ताँर-उनकी; शुनह-जरा सुनो; कारण–कारण।

अनुवाद

"हे सनातन, अब मन्वन्तर अवतारों के बारे में सुनो। वे असंख्य हैं और उनकी गणना कोई नहीं कर सकता। जरा, उनके स्रोत के विषय में सुनो।

ब्रह्मार एक-दिने हय चौद्द मन्वन्तर ।

चौह अवतार ताहाँ करेन ईश्वर ॥ 320॥

ब्रह्मार एक-दिने-ब्रह्मा के एक दिन में; हय-होते हैं; चौह-चौदह; मनु-अन्तर-मनु परिवर्तन; चौद्द-चौदह; अवतार–अवतार; ताहाँ–उस समय; करेन-लेते हैं; ईश्वर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु बदलते हैं और इनमें से प्रत्येक मनु के शासनकाल में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का एक अवतार प्रकट होता है।

तात्पर्य

इस श्लोक से यह गणना की जा सकती है कि ब्रह्मा के एक मास (30 दिनों) में 420 मन्वन्तर-अवतार होते हैं। ब्रह्मा की आयु के एक वर्ष (360 दिनों) में 5,040 मन्वन्तर अवतार होते हैं। इस तरह ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु में कुल 5,04,000 मन्वन्तर अवतार होते हैं। इसके अतिरिक्त, मनुओं को भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अंश-अवतार माना जाता है।

चौद्द एक दिने, मासे चारि-शत बिश ।

ब्रह्मार वत्सरे पञ्च-सहस्र चल्लिश ॥ 321॥

चौद्द-14; एक दिने–एक दिन में; मासे-एक महीने में; चारि-शत बिश–420; ब्रह्मार वत्सरे–ब्रह्मा के एक वर्ष में; पञ्च-सहस्र चल्लिश–5,040 अवतार।

अनुवाद

ब्रह्मा के एक दिन में 14 मन्वन्तर अवतार होते हैं, अर्थात् एक मास में 420 और एक वर्ष में 5040 अवतार होते हैं।

शतेक वत्सर हय 'जीवन' ब्रह्मार ।

पञ्च-लक्ष चारि-सहस्र मन्वन्तरावतार ॥ 322॥

शतेक वत्सर हय-100 साल होती है; जीवन-जीवन की अवधि; ब्रह्मार-ब्रह्मा की; पञ्च-लक्ष–5,00,000; चारि-सहस्र-4,000; मनु-अन्तर-अवतार–प्रत्येक मनु के जीवन काल में अवतार।

अनुवाद

"ब्रह्मा के एक सौ वर्ष के जीवन में कुल 5,04,000 मन्वन्तर-अवतार होते हैं।

अनन्त ब्रह्माण्डे ऐछे करह गणन ।

महा-विष्णु एक-श्वासे ब्रह्मार जीवन ॥ 323॥

अनन्त ब्रह्माण्डे-भगवान् महाविष्णु के; ऐछे-इस प्रकार; करह गणन-गिनने का प्रयास करो; महा-विष्णु-भगवान् महाविष्णु; एक-श्वासे-एक श्वास में; ब्रह्मार जीवन-एक ब्रह्मा की आयु।

अनुवाद

"यहाँ पर केवल एक ब्रह्माण्ड के मन्वन्तर अवतारों की संख्या दी गई है। अतः असंख्य ब्रह्माण्डों में कितने मन्वन्तर अवतार होंगे, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। इतने सारे ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्मा महाविष्णु के एक श्वास-काल तक ही विद्यमान रहते हैं।

महा-विष्णुर निश्वासेर नाहिक पर्यन्त ।

एक मन्वन्तरावतारेर देख लेखार अन्त ॥ 324॥

महा-विष्णुर-भगवान् महाविष्णु के; निश्वासेर-नि:श्वास की; नाहिक पर्यन्त–सीमा नहीं है; एक मन्वन्तर-अवतारेर-मन्वन्तर अवतार नामक भगवान् के केवल एक ही लक्षण का; देख–जरा देखो; लेखार अन्त–लिखने की शक्ति से परे है।

अनुवाद

"महाविष्णु के निश्वासों की कोई सीमा नहीं है। जरा देखो न, केवल मन्वन्तर अवतारों को बतलाना या लिखना कितना दुष्कर है!

स्वायंभुवे 'यज्ञ', स्वारोचिषे 'विभु' नाम ।

औत्तमे 'सत्यसेन', तामसे 'हरि' अभिधान ॥ 325॥

स्वायंभुवे-स्वायंभुव मन्वन्तर में; यज्ञ-यज्ञ नामक अवतार; स्वारोचिषे–स्वारोचिष मनवन्तर में; विभु-विभु अवतार; नाम-नामक; औत्तमे-औत्तम मन्वन्तर में; सत्यसेन-सत्यसेन नामक अवतार; तामसे–तामस मन्वन्तर में; हरि-हरि; अभिधान-नामक।

अनुवाद

"स्वायंभुव मन्वन्तर में अवतार का नाम यज्ञ है। स्वारोचिष मन्वन्तर में उनका नाम विभु है। औत्तम मन्वन्तर में उनका नाम सत्यसेन है तथा तामस मन्वन्तर में उनका नाम हरि है।

रैवते 'वैकुण्ठ', चाक्षुषे 'अजित', वैवस्वते 'वामन' ।

सावर्ये 'सार्वभौम', दक्ष-सावर्ये 'ऋषभ' गणन ॥ 326॥

रैवते-रैवत मन्वन्तर में; वैकुण्ठ–वैकुण्ठ नामक अवतार; चाक्षुषे–चाक्षुष मन्वन्तर में; अजित-अजित नामक अवतार; वैवस्वते-वैवस्वत मन्वन्तर में; वामन-वामन नामक अवतार; सावर्ये-सावर्ण्य मन्वन्तर में; सार्वभौम-सार्वभौम नामक अवतार; दक्ष-सावर्ये-दक्षसावर्णय मन्वन्तर में; ऋषभ-ऋषभ नामक अवतार; गणन–नामक।

अनुवाद

"रैवत मन्वन्तर में अवतार का नाम वैकुण्ठ है और चाक्षुष मन्वन्तर में उनका नाम अजित है। वैवस्वत मन्वन्तर में उसका नाम वामन है और सावर्ण्य मन्वन्तर में उनका नाम सार्वभौम तथा दक्षसावर्ण्य मन्वन्तर में उनका नाम ऋषभ है।

ब्रह्म-सावर्ण्ये 'विष्वक्सेन', 'धर्मसेतु' धर्म-सावर्ण्ये ।

रुद्र-सावर्ये 'सुधामा', 'योगेश्वर' देव-सावर्ण्ये ॥327॥

ब्रह्म-सावर्ण्ये- ब्रह्म सावर्ण्य मन्वन्तर में; विष्वक्सेन–विष्वक्सेन नामक अवतार; धर्मसेतु-धर्मसेतु नामक अवतार; धर्म-सावर्ये-धर्मसावर्य मन्वन्तर में; रुद्र-सावर्ण्ये-रूद्रसावर्ण्य मन्वन्तर में सुधामा-सुधामा नामक अवतार; योगेश्वर-योगेश्वर नामक अवतार; देव-सावर्ण्ये-देवसावर्ण्य मन्वन्तर में।

अनुवाद

“ब्रह्म सावर्ण्य मन्वन्तर में अवतार का नाम विष्वक्सेन है, धर्म सावर्य मन्वन्तर में धर्मसेतु, रुद्रसावर्ण्य मन्वन्तर में सुधामा तथा देवसावर्य में उनका नाम योगेश्वर है।

इन्द्र-सावर्ये ‘बृहद्भानु’ अभिधान।

एइ चौद्द मन्वन्तरे चौद्द ‘अवतार’ नाम ॥ 328॥

इन्द्र-सावर्ये-इन्द्र सावर्ण्य मन्वन्तर में; बृहद्भानु-बृहद्भानु नामक अवतार; अभिधान-नाम के; एइ चौद्द मन्वन्तरे-इन चौदह मन्वन्तरो में; चौद्द-चौदह; अवतार-अवतारों के नाम विभिन्न नाम।

अनुवाद

“इन्द्रसावर्ण्य मन्वन्तर में अवतार का नाम बृहद्भानु है। इन चौदह मन्वन्तरों में चौदह अवतारों के ये ही नाम हैं।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में मनुओं तथा उनके पिताओं के नामों की सूची दी है—(1) ब्रह्मापुत्र स्वायम्भुव मनु; (2) स्वरोचिष अर्थात् अग्नि का पुत्र स्वारोचिष; (3) राजा प्रियव्रत का पुत्र उत्तम; (4) उत्तम का भाई तामस; (5) तामस का जुड़वा भाई रैवत; (6) चक्षुष देवता का पुत्र चाक्षुष; (7) विवस्वान अर्थात् सूर्य का पुत्र वैवस्वत (इसका उल्लेख भगवद्गीता 4.1 में भी हुआ है); (8) सूर्यदेव तथा उनकी पत्नी छाया का पुत्र सावर्णि; (9) वरुण-पुत्र दक्ष सावर्णि; (10) उपश्लोक पुत्र ब्रह्म सावर्णि; (11-14) रुद्र, रुचि, सत्यसहा तथा भूति के पुत्र क्रमशः रुद्रसावर्णि, धर्मसावर्णि, देवसावणिं तथा इन्द्रसावर्णि।

युगावतार एबे शुन, सनातन।

सत्य-त्रेता-द्वापर-कलि-युगेर गणन ॥ 329॥

युग-अवतार-युगों के अवतार; एबे-अब; शुन-सुनो; सनातन-हे सनातन गोस्वामी; सत्य-त्रेता-द्वापर-कलि-युगेर-सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग के; गणन–क्रमपूर्वक।

अनुवाद

"हे सनातन, अब मुझसे युग-अवतारों के विषय में सुनो। सर्वप्रथम युग चार हैं-सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग।

शुक्ल-रक्त-कृष्ण-पीत—क्रमे चारि वर्ण ।

चारि वर्ण धरि' कृष्ण करेन मुग-धर्म ॥ 330॥

शुक्ल-श्वेत; रक्त-लाल; कृष्ण-काला; पीत–पीला; क्रमे–एक के बाद दूसरा; चारि वर्ण–चार रंग; चारि वर्ण धरि'-ये चार रंग धारण करके; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करेन युग-धर्म–विभिन्न युगों में अपनी लीलाएँ करते हैं।

अनुवाद

"चारों युगों-सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग में भगवान् चार रंगों में अवतरित होते हैं। ये रंग क्रमशः श्वेत, लाल, काले तथा पीले हैं। ये रंग विभिन्न युगों में अवतारों के हैं।

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनु-युगं तनूः ।

शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ 331॥

आसन्–थे; वर्णाः-रंग; त्रयः–तीन; हि-निश्चित रूप से; अस्य-आपके पुत्र के; गृह्णतः-स्वीकार करके; अनु-युगम्-युग के अनुसार; तनूः–शरीर; शुक्लः -श्वेत; रक्तः-लाल; तथा—तथा; पीतः-पीला; इदानीम्-अब; कृष्णताम् गतः–इन्होंने काला रूप स्वीकार किया है।

अनुवाद

“इस बालक के पहले तीन रंग रह चुके हैं, जो विभिन्न युगों के लिए संस्तुत रंगों के अनुसार थे। पहले वह श्वेत, लाल तथा पीला था, किन्तु अब उसने श्याम रंग धारण किया है।’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.8.13) का है, जिसे गर्गमुनि ने नन्द महाराज के घर में कृष्ण के नामकरण संस्कार के अवसर पर कहा था। अगले दो श्लोक भी श्रीमद्भागवत (11.5.21, 24) से लिये गये हैं।

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः ।

कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बिभ्रद्दण्ड-कमण्डलू ॥ 332॥

कृते-सत्ययुग में; शुक्लः -श्वेत रंग से युक्त तथा शुक्ल नाम के; चतुः-बाहुः-चार भुजाओं वाले, जटिलः–जटाओं से युक्त; वल्कल-अम्बरः-वृक्ष की छाल के वस्त्र पहनकर; कृष्ण-अजिन-काले रंग के हिरण की चर्म; उपवीत-जनेऊ; अक्षान्-जप के मनकों की माला; बिभ्रत्-धारण करके; दण्ड-कमण्डलू-दण्ड तथा कमंडल।

अनुवाद

“सत्ययुग में भगवान् का शरीर श्वेत रंग का था, उनके चार हाथ थे तथा सिर पर जटाजूट था। वे वृक्ष की छाल पहने थे और काला मृगचर्म धारण किये थे। वे उपवीत (जनेऊ) पहने थे और गले में रुद्राक्ष की माला धारण किये थे। वे दण्ड तथा कमण्डलु लिये थे और ब्रह्मचारी थे।’

त्रेतायां रक्त-वर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रि-मेखलः ।

हिरण्य-केशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥ 333॥

त्रेतायाम्-त्रेतायुग में; रक्त-वर्णः-लाल रंग के; असौ-वे; चतुः-बाहुः–चार भुजाओं वाले; त्रि-मेखलः-उदर में तीन वृताकर रेखाओं से युक्त; हिरण्य-केशः-सुनहरे बालों से युक्त; त्रयी-आत्मा-जिनके स्वरूप से वेद प्रकट होते हैं; स्रुक्-स्रुव-आदि-उपलक्षणः-स्रुक् तथा स्रुवा नामक यज्ञ के चम्मच।

अनुवाद

"त्रेतायुग में भगवान् का शरीर रक्त-वर्ण का था और उनकी चार भुजाएँ थीं। उनके उदर में तीन विशिष्ट रेखाएँ थीं और उनके केश सुनहरे थे। उनका स्वरूप वैदिक ज्ञान को प्रकट करने वाला था और वे यज्ञ के चम्मच चुक्-वुवा आदि चिह्नों को धारण किये हुए थे।'

सत्य-युगे धर्म-ध्यान कराय 'शुक्ल'-मूर्ति धरि' ।

कर्दमके वर दिला येंहो कृपा करि' ॥ 334॥

सत्य-युगे-सत्ययुग में; धर्म-ध्यान-धार्मिक नियम तथा ध्यान; कराय-करवाते हैं; शुक्ल-श्वेत; मूर्ति-रूप; धरि'–स्वीकार करके; कर्दमके-कर्दम मुनि को; वर दिला-वरदान दिया; येंहो–जिन्होंने; कृपा करि'-अहैतुकी कृपापूर्वक।

अनुवाद

"शुक्ल अवतार के रूप में भगवान् ने धर्म तथा ध्यान की शिक्षा दी। उन्होंने कर्दम मुनि को आशीर्वाद दिया और इस तरह उन्होंने अपनी अहैतुकी कृपा प्रदर्शित की।

तात्पर्य

कर्दम मुनि प्रजापतियों में से एक थे। उन्होंने मनु की पुत्री देवहूति के साथ विवाह किया और उनके पुत्र कपिलदेव हुए। कर्दम मुनि की तपस्या से भगवान् अत्यधिक प्रसन्न हुए और वे उनके समक्ष श्वेत रूप में प्रकट हुए। यह घटना सत्ययुग की है, जब लोग ध्यान करने के अभ्यस्त थे।

कृष्ण-'ध्यान' करे लोक ज्ञान-अधिकारी ।

त्रेतार धर्म 'यज्ञ' कराय 'रक्त'-वर्ण धरि' ॥ 335॥

कृष्ण-ध्यान-कृष्ण का ध्यान; करे-करते हैं; लोक-लोग; ज्ञान-अधिकारी-जो आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत हैं; त्रेतार-त्रेतायुग में; धर्म-नियत कर्म; यज्ञ-यज्ञों का अनुष्ठान; कराय-करवाते हैं; रक्त-वर्ण धरि'-लाल रंग धारण करके।

अनुवाद

"सत्ययुग में लोग सामान्यतया आध्यात्मिक ज्ञान में अग्रसर होते थे और कृष्ण का सहज ही ध्यान कर सकते थे। त्रेतायुग में लोगों का वृत्तिपरक कार्य बड़े-बड़े यज्ञ को सम्पन्न करना था। भगवान् ने रक्त-वर्ण धारण करके इसे प्रोत्साहित किया।

'कृष्ण-पदार्चन' हय द्वापरेर धर्म ।

'कृष्ण'-वर्णे कराय लोके कृष्णार्चन-कर्म ॥ 336 ॥

कृष्ण-पद-अर्चन-कृष्ण के चरणकमलों की उपासना; हय-है; द्वापरेर-द्वापरयुग का; धर्म–निर्धारित कर्तव्य; कृष्ण-वर्णे-काले रंग में; कराय-करवाते हैं; लोके-लोगों को; कृष्ण-अर्चन-कर्म-भगवान् कृष्ण की पूजा के कार्य।

अनुवाद

"द्वापर युग में लोगों का वृत्तिपरक कार्य कृष्ण के चरणकमलों का पूजन करना था। अतएव भगवान् कृष्ण ने श्याम वर्ण धारण करके लोगों को प्रोत्साहित किया कि वे उनकी पूजा करें।

द्वापरे भगवान्श्यामः पीत-वासा निजायुधः ।

श्री-वत्सादिभिरकैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ 337॥

द्वापरे द्वापर युग में; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; श्यामः-काला; पीत-वासाः-पीले वस्त्र धारण करके; निज-अपने; आयुधः-अस्त्र लेकर; श्री-वत्स-आदिभिः–श्रीवत्स आदि; अङ्कः-चिह्नों से; च–तथा; लक्षणैः-कौस्तुभ मणि जैसे बाहरी लक्षणों द्वारा; उपलक्षितः-सुशोभित।

अनुवाद

"द्वापर युग में भगवान् श्याम-वर्ण के साथ प्रकट होते हैं। वे पीताम्बर धारण किये रहते हैं। वे अपने आयुध लिये रहते हैं तथा कौस्तुभ मणि एवं श्रीवत्स चिह्न से सुशोभित रहते हैं। उनके लक्षणों का वर्णन इस रूप में किया जाता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.5.27) का है। श्याम रंग एकदम काला नहीं होता। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इसकी तुलना अतसी फूल से करते हैं। ऐसा नहीं है कि समस्त द्वापर युगों में भगवान् कृष्ण श्याम रंग में ही प्रकट होते हों। कृष्ण के आविर्भाव के पूर्व अन्य द्वापर युगों में भगवान् अपने निजी विस्तारों के रूप में हरित वर्ष में प्रकट हुए। इसका उल्लेख विष्णु पुराण, हरिवंश तथा महाभारत में हुआ है।

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ।

प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ 338॥

नमः-मैं प्रणाम करता हूँ; ते-आपको; वासुदेवाय-भगवान् वासुदेव को; नमः-सादर प्रणाम; सङ्कर्षणाय च तथा भगवान् संकर्षण को प्रद्युम्नाय-भगवान् प्रद्युम्न को; अनिरुद्धाय-अनिरुद्ध को; तुभ्यम्-आपको; भगवते पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को; नमः-मैं प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

“मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध रूप में अपना विस्तार किया।’

तात्पर्य

यह स्तुति श्रीमद्भागवत (11.5.29) से ली गई है, जिसे करभाजन मुनि ने तब की थी, जब विदेहराज महाराज निमि ने उनसे विशिष्ट युगों के अवतारों तथा उनकी पूजा विधि के बारे में पूछा था। करभाजन मुनि नौ योगेन्द्रों में से एक थे और उन्होंने राजा से मिलकर उसे भावी अवतारों के विषय में बतलाया था।

एइ मन्त्रे द्वापरे करे कृष्णार्चन ।

‘कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन’—कलि-मुंगेर धर्म ॥ 339॥

एइ मन्त्रे-इस मंत्र द्वारा; द्वापरे द्वापर युग में; करे-करते हैं; कृष्ण-अर्चन–भगवान् कृष्ण की पूजा; कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन; कलि-युगेर धर्म-कलियुग का धर्म है।

अनुवाद

“इस मन्त्र से लोग द्वापर युग में कृष्ण की पूजा करते हैं। कलियुग में लोगों का वृत्तिपरक कर्म है कृष्ण के पवित्र नाम का सामूहिक कीर्तन करना।

तात्पर्य

जैसाकि श्रीमद्भागवत में कहा गया है (12.3.51) :

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत् ॥

हे राजन्, यद्यपि कलियुग दोषों से भरा पड़ा है, फिर भी इस युग में एक सद्गुण है। वह यह है कि मात्र हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने से मनुष्य भौतिक बन्धन से छूट सकता है और आध्यात्मिक जगत् तक उन्नत हो सकता है।" इस तरह कलियुग में हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन द्वारा भगवान् कृष्ण की पूजा की जाती है : हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे। इस आन्दोलन का प्रसार करने के लिए भगवान् कृष्ण साक्षात् चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए। इसका वर्णन अगले श्लोक में हुआ है।

'पीत'-वर्ण धरि' तबे कैला प्रवर्तन ।

प्रेम-भक्ति दिला लोके लञा भक्त-गण ॥ 340॥

पीत-वर्ण धरि'-पीला रंग धारण करके; तबे-फिर; कैला प्रवर्तन-संकीर्तन आन्दोलन का प्रारम्भ किया; प्रेम-भक्ति दिला–उन्होंने कृष्ण-प्रेम दिया; लोके-सामान्य लोगों को; लञा भक्त-गण-अपने भक्तों को साथ लेकर।

अनुवाद

"अपने निजी भक्तों के साथ पीत (सुनहला) वर्ण धारण करके भगवान् कृष्ण कलियुग में हरिनाम संकीर्तन अर्थात् हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन का प्रचार करते हैं। इस तरह वे सामान्य जनता को कृष्ण-प्रेम लाकर देते हैं।

धर्म प्रवर्तन करे व्रजेन्द्र-नन्दन ।

प्रेमे गाय नाचे लोक करे सङ्कीर्तन ॥ 341॥

धर्म प्रवर्तन करे–एक विशिष्ट प्रकार के धर्मकृत्य का प्रचार करते हैं; व्रजेन्द्र-नन्दन-स्वयं कृष्ण; प्रेमे-प्रेम में; गाय-गाते हैं; नाचे-नाचते हैं; लोक-सभी लोग; करे-करते हैं; सङ्कीर्तन-संकीर्तन।

अनुवाद

“नन्द महाराज के पुत्र भगवान् कृष्ण ने कलियुग के वृत्तिपरक कार्य (धर्म) का स्वयं प्रवर्तन किया। वे कीर्तन करते हैं, भावावेश में नाचते हैं और इस तरह समस्त जगत् सामूहिक संकीर्तन करता है।

कृष्ण-वर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र-पार्षदम् ।

यज्ञैः सङ्कीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥ 342 ॥

कृष्ण-वर्णम्-कृष्ण वर्गों का उच्चारण करते हुए; त्विषा-कांति से युक्त; अकृष्णम्-जो काली नहीं है (सुनहरी); स-अङ्ग-संगियों के साथ; उप-अङ्ग-सेवक; अस्त्र-अस्त्र; पार्षदम्-अन्तरंग संगी; यज्ञैः-यज्ञ द्वारा; सङ्कीर्तन-प्रायैः-मुख्यत: संकीर्तन; यजन्ति-वे उपासना करते हैं; हि-निश्चित रूप से; सु-मेधसः-बुद्धिमान लोग।

अनुवाद

“कलियुग में बुद्धिमान व्यक्ति कृष्ण-नाम का निरन्तर गान करने वाले भगवान् के अवतार की पूजा करने के लिए संकीर्तन करते हैं। यद्यपि उनका वर्ण श्याम नहीं है, किन्तु वे साक्षात् कृष्ण हैं। उनके साथ उनके पार्षद, सेवक, अस्त्र तथा विश्वस्त संगी रहते हैं।’

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.5.32) का है। देखें आदिलीला 3.52।

आर तिन-युगे ध्यानादिते येइ फल हय ।

कलि-युगे कृष्ण-नामे सेइ फल पाय ॥ 343 ॥

आर तिन-युगे-अन्य तीन युगों में; ध्यान-आदिते-ध्यान आदि प्रक्रियाओं द्वारा; येइ-जो भी; फल-परिणाम; हय होता है; कलि-युगे-इस कलियुग में; कृष्ण-नामे-हरे कृष्ण महामन्त्र के जप द्वारा; सेइ फल पाय-समान लाभ मिलता है।

अनुवाद

“अन्य तीन युगों में सत्य, त्रेता तथा द्वापर में लोग विभिन्न प्रकार के आध्यात्मिक कार्य करते हैं। इस प्रकार से उन्हें जो फल मिलता है, उसे कलियुग में वे केवल हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करके प्राप्त कर सकते हैं।

कलेर्दोष-निधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्त-बन्धः परं व्रजेत् ॥ 344॥

कलेः–कलियुग के; दोष-निधे-दोषों के समुद्र में; राजन्हे राजन्; अस्ति-है; हि-निश्चित रूप से; एकः-एक; महान्–महान्; गुणः-गुण; कीर्तनात्-कीर्तन द्वारा; एव–निश्चित ही; कृष्णस्य- भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम के; मुक्त-बन्धः-भौतिक बन्धन से मुक्त; परम्-आध्यात्मिक जगत् में; व्रजेत्-जा सकता है।

अनुवाद

“‘हे राजन्, यद्यपि कलियुग दोषों से भरा है, किन्तु फिर भी इस युग में एक उत्तम गुण है। वह यह है कि हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन मात्र से मनुष्य भवबन्धन से मुक्त हो सकता है और दिव्य धाम को प्राप्त कर सकता है।’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (12.3.51) का है।

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।

द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि-कीर्तनात् ॥ 345 ॥

कृते-सत्ययुग में; यत्-जो; ध्यायतः-ध्यान करके; विष्णुम्-भगवान् विष्णु पर; त्रेतायाम् त्रेतायुग में; यजतः-पूजा करके; मखैः–यज्ञों द्वारा; द्वापरे–द्वापर युग में; परिचर्यायाम्-कृष्ण के चरणकमल की पूजा

करके; कलौ–कलियुग में; तत्-वहीं समान फल (प्राप्त किया जा सकता है); हरि-कीर्तनात्-केवल हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन द्वारा।

अनुवाद

"सत्ययुग में विष्णु का ध्यान करने से, त्रेतायुग में यज्ञ करने से तथा द्वापर युग में भगवान् के चरणकमलों की सेवा करने से जो फल प्राप्त होता है, उसे कलियुग में हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (12.3.52) से लिया गया है। आजकल कलियुग में अनेक छद्म ध्यानी हैं, जो कुछ काल्पनिक रूप बना लेते हैं और उसका ध्यान करने का प्रयास करते हैं। अब तो ध्यान करना फैशन बन चुका है, किन्तु लोगों को ध्यान के उद्देश्य के बारे में कुछ भी पता नहीं है। इसीकी व्याख्या यहाँ की गई है। यद् ध्यायतो विष्णुम्। मनुष्य को भगवान् विष्णु या भगवान् कृष्ण का ध्यान करना होता है। किन्तु तथाकथित ध्यानी शास्त्रों का सन्दर्भ लिये बिना निर्विशेष वस्तुओं को लक्ष्य बनाते हैं। भगवान् कृष्ण ने भगवद्गीता (12.5) में ऐसे लोगों की भर्त्सना की है :

क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम्।

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

"जिनके मन भगवान् के अव्यक्त निर्विशेष पहलू के प्रति आसक्त हैं, उनके लिए प्रगति कर पाना अत्यन्त दुःखदायी है। देहधारियों के लिए उस स्थिति में प्रगति करना सदैव कठिन है।" ध्यान करना न जानने के कारण मूर्ख लोग दुःख उठाते हैं और उनके आध्यात्मिक कार्यों से उन्हें कोई लाभ नहीं मिल पाता।

विष्णु पुराण (6.2.17), पद्म पुराण (उत्तर खण्ड 72.25) तथा बृहन्नारदीय पुराण (38.97) में प्राप्त निम्नलिखित श्लोक में यही निर्देश प्राप्त होता है।

ध्यायन्कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।

यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सङ्कीर्त्य केशवम् ॥ 346 ॥

ध्यायन्-ध्यान करके; कृते-सत्ययुग में; यजन्–पूजा करके; यज्ञैः-बड़े यज्ञों के अनुष्ठान द्वारा; त्रेतायाम् त्रेतायुग में; द्वापरे-द्वापरयुग में; अर्चयन्-चरणकमलों की पूजा करके; यत्-जो; आप्नोति–प्राप्त होता है; तत्व ह; आप्नोति-प्राप्त होता है; कलौ-कलियुग में; सङ्कीर्त्य–मात्र कीर्तन द्वारा; केशवम्-भगवान् केशव की लीलाओं तथा गुणों के।

अनुवाद

"सत्ययुग में ध्यान करने से, त्रेतायुग में यज्ञ करने से या द्वापर युग में कृष्ण के चरणकमलों की पूजा करने से जो फल प्राप्त होता है, उसे कलियुग में केवल केशव के गुणगान द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।'

कलि सभाजयन्त्यार्या गुण-ज्ञाः सार-भागिनः ।

यत्र सङ्कीर्तनेनैव सर्व-स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ 347॥

कलिम्-कलियुग का; संभाजयन्ति-पूजते हैं; आर्याः-उन्नत लोग; गुण-ज्ञाः-कलियुग के इस सद्गुण को जानने वाले; सार-भागिनः-जो लोग सार तत्त्व को ग्रहण करते हैं; यत्र-जिस युग में; सङ्कीर्तनेन-मात्र हरे कृष्ण महामन्त्र के जप रूपी संकीर्तन यज्ञ द्वारा; एव–निश्चित रूप से; सर्व-स्व-अर्थः-जीवन के सभी स्वार्थ; अभिलभ्यते-प्राप्त हो जाते हैं।

अनुवाद

"जो लोग उन्नत और अत्यन्त योग्य हैं तथा जीवन के सार में रुचि रखते हैं, वे कलियुग के सद्गुणों को जानते हैं। ऐसे लोग कलियुग की पूजा करते हैं, क्योंकि इस युग में हरे कृष्ण

महामन्त्र के कीर्तन मात्र से मनुष्य आत्म-ज्ञान में प्रगति कर सकता है और जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर सकता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.5.36) से है, जिसे नौ योगेन्द्रों में से एक ऐसे करभाजन ऋषि ने कहा था। वे महाराज निमि को विभिन्न युगों में विभिन्न विधियों द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा करने के लिए मनुष्यों का धर्म बतला रहे थे।

पूर्ववत् लिखि यबे गुणावतार-गण ।

असङ्ख्य सङ्ख्या ताँर, ना हय गणन ॥ 348॥

पूर्व-वत्-पहले ही; लिखि-मैंने लिखा; यबेजब; गुण-अवतार-गण-भौतिक प्रकृति के गुणों के अवतार; असङ्ख्य-असंख्य; सङ्ख्य-गणना; ताँर–उनकी; ना हय गणन-गिनती नहीं की जा सकती।

अनुवाद

"जैसाकि मैंने गुणावतारों का वर्णन करते हुए बतलाया था, उसी तरह इन अवतारों को भी असंख्य समझना चाहिए, क्योंकि किसी के भी द्वारा इनकी गणना नहीं की जा सकती।

चारि-युगावतारे एइ त' गणन ।

शुनि' भङ्गि करि' ताँरे पुछे सनातन ॥ 349॥

चारि-युग-अवतारे–चार भिन्न युगों में अवतारों की; एइ त' गणन-ऐसी गिनती; शुनि'–सुनकर; भङ्गि करि'–बहाने से; ताँरे–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को; पुछे-पूछा; सनातन-सनातन गोस्वामी।

अनुवाद

"इस तरह मैंने चारों युगों के अवतारों का विवरण प्रस्तुत किया है।" यह सब सुनकर सनातन गोस्वामी ने महाप्रभु को अप्रत्यक्ष रूप से इंगित किया।

राज-मन्त्री सनातन—बुद्ध्ये बृहस्पति ।

प्रभुर कृपाते पुछे असङ्कोच-मति ॥ 350॥

राज-मन्त्री सनातन-पहले सनातन गोस्वामी नवाब हुसेन शाह के एक बुद्धिमान मन्त्री थे; बुद्ध्ये-बुद्धि में; बृहस्पति–देव लोकों के पुरोहित बृहस्पति के समान; प्रभुर कृपाते-भगवान् की असीम कृपा के कारण; पुछे-पूछते हैं; असङ्कोच-मति–बिना संकोच किये।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी नवाब हुसेन शाह के अधीन एक मन्त्री थे और वे निस्सन्देह स्वर्ग के प्रमुख पुरोहित बृहस्पति जैसे ही बुद्धिमान थे। भगवान् की असीम कृपा के फलस्वरूप सनातन गोस्वामी ने बिना किसी संकोच के महाप्रभु से पूछा।

'अति क्षुद्र जीव मुञि नीच, नीचाचार ।

केमने जानिब कलिते कोनवतार?' ॥ 351॥

अति-बहुत; क्षुद्र-तुच्छ; जीव-जीव; मुञि-मैं; नीच-नीच; नीच-आचार-अति दुराचारी; केमने-किस प्रकार; जानिब मैं जानूंगा; कलिते-इस युग में; कोन् अवतार-कौन अवतार है।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा : "मैं अत्यन्त क्षुद्र जीव हूँ। मैं नीच हूँ और मेरा आचरण नीच है। भला मैं कैसे जान सकता हूँ कि कलियुग में कौन अवतार है?"

तात्पर्य

ईश्वर के अवतारों के सन्दर्भ में यह श्लोक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आजकल भारत में ऐसे अनेक धूर्त हैं, जो अपने आपको ईश्वर या देवी का अवतार बतलाते हैं। इस तरह वे मूर्ख जनता को धोखा दे रहे हैं। सनातन गोस्वामी ने सामान्य जनता की ओर से अपने आपको मूर्ख एवं नीच आचरण वाले व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया, यद्यपि वे अत्यन्त उन्नत व्यक्ति थे। निम्न लोग वास्तविक ईश्वर को नहीं मानते, फिर भी वे मूर्ख लोगों को धोखा देने वाले बनावटी ईश्वर को मानने के लिए उत्सुक रहते हैं। इस कलियुग में यही सब चल रहा है। ऐसे मूर्ख लोगों का मार्गदर्शन करने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु प्रश्न का निम्नलिखित उत्तर दे रहे हैं।

प्रभु कहे,— "अन्यावतार शास्त्र-द्वारे जानि ।।

कलिते अवतार तैछे शास्त्र-वाक्ये मानि ॥ 352॥

प्रभु कहे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; अन्य-अवतार–अन्य युगों में अवतार; शास्त्र-द्वारे जानि-शास्त्रों के निर्देशानुसार स्वीकार किये जाते हैं; कलिते-इस कलियुग में; अवतार–अवतार; तैछे-उसी प्रकार ही; शास्त्र-वाक्ये मानि–प्रामाणिक शास्त्रों के वर्णन के अनुसार स्वीकार करने होंगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "जिस तरह अन्य युगों के अवतार को शास्त्रों के आदेशानुसार स्वीकार किया जाता है, इस कलियुग में ईश्वर के अवतार को उसी तरह स्वीकार किया जाना चाहिए।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुसार अवतार को स्वीकार करने की यही विधि है। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं- साधु-शास्त्र-गुरु-वाक्य, चित्तेते करिया ऐक्य । मनुष्य को साधु पुरुषों, गुरु तथा शास्त्र के वचनों का अध्ययन करके ही किसी वस्तु की यथार्थता का स्वीकार करना चाहिए। वास्तविक केन्द्रबिन्दु

प्रामाणिक शास्त्र हैं। यदि गुरु प्रामाणिक शास्त्र के अनुसार प्रवचन नहीं करता, तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। इसी तरह, यदि कोई साधु शास्त्र के अनुसार नहीं कहता, तो वह साधु पुरुष नहीं है। शास्त्र सबके लिए केन्द्रबिन्दु है। दुर्भाग्यवश, इस समय लोग शास्त्रों का सन्दर्भ नहीं लेते, इसलिए वे धूर्ती को अवतार मान लेते हैं। यही कारण है कि अवतार इतने सस्ते हो गये हैं। जो बुद्धिमान लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों तथा प्रामाणिक आचार्य के उपदेशों का पालन करते हैं, वे ढोंगी व्यक्ति को अवतार नहीं मानते। कलियुग में श्री चैतन्य महाप्रभु ही एकमात्र अवतार हैं। नकली अवतार श्री चैतन्य महाप्रभु का लाभ उठाते हैं। महाप्रभु गत 500 वर्ष पूर्व प्रकट हुए, वे नदिया के ब्राह्मण के पुत्र थे और उन्होंने संकीर्तन-आन्दोलन का प्रवर्तन किया था। धूर्त लोग श्री चैतन्य महाप्रभु की नकल करके तथा शास्त्रों की उपेक्षा करते हुए अपने आपको अवतार बतलाते हैं और अपनी मूर्खतापूर्ण विधि को धार्मिक विधि के रूप में दाखिल करते हैं। जैसाकि हम बारम्बार कह चुके हैं, धर्म का प्रवर्तन तो केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा ही किया जा सकता है। चैतन्य चरितामृत की चर्चा से हम समझ सकते हैं कि विभिन्न युगों में भगवान् विभिन्न प्रणालियों तथा विभिन्न धर्मों का प्रवर्तन करते हैं। इस कलियुग में, कृष्ण के एकमात्र अवतार श्री चैतन्य महाप्रभु हैं, जिन्होंने कलियुग के धर्म–हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन का प्रवर्तन किया: हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।

सर्वज्ञ मुनिर वाक्य—शास्त्र- 'परमाण'।

आमा-सबा जीवेर हय शास्त्र द्वारा 'ज्ञान' ॥ 353॥

सर्व-ज्ञ मुनिर वाक्य-सर्वज्ञ मुनि (व्यासदेव) के वचन; शास्त्र-परमाण–प्रामाणिक शास्त्रों के प्रमाण हैं; आमा-सबा-हम सभी; जीवेर-बद्ध जीवों का; हय होता है; शास्त्र-द्वारा प्रामाणिक शास्त्रों के माध्यम से; ज्ञान-ज्ञान।

अनुवाद

"सर्वज्ञ महामुनि व्यासदेव द्वारा रचित वैदिक ग्रन्थ सारे आध्यात्मिक अस्तित्व के प्रमाण हैं। इन्हीं प्रामाणिक शास्त्रों के द्वारा सारे बद्धजीव ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

तात्पर्य

मूर्ख लोग उनके दिमाग में कुछ गढ़ करके ज्ञान की कल्पना करने का प्रयास करते हैं। किन्तु यह ज्ञान की सही विधि नहीं है। ज्ञान तो शब्द प्रमाण होता है-वैदिक साहित्य से प्राप्त प्रमाण होता है। श्रील व्यासदेव महामुनि कहलाते हैं। वे वेदव्यास भी कहलाते हैं, क्योंकि उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की है। उन्होंने वेदों के चार विभाग किये-साम, ऋग्, यजुर् तथा अथर्व। उन्होंने वेदों का विस्तार अठारह पुराणों में किया है और वैदिक ज्ञान का सार वेदान्त-सूत्र में दिया है। उन्होंने महाभारत की भी रचना की, जिसे पंचम वेद कहा जाता है। महाभारत में ही भगवद्गीता निहित है। इसलिए भगवद्गीता भी वैदिक ग्रन्थ (स्मृति) है। कुछ वैदिक ग्रन्थ श्रुति कहलाते हैं और कुछ स्मृतियाँ कहलाते हैं। श्रील रूप गोस्वामी ने भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.101) में संस्तुति की है :

श्रुति-स्मृति-पुराणादिपञ्चरात्रविधिं विना ।

ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते ॥

शास्त्रों (श्रुति, स्मृति तथा पुराणादि) का निर्देश किये बिना मनुष्य का आध्यात्मिक कार्य समाज को केवल विचलित करने वाला है। चूँकि लोगों को रोकने वाला न कोई राजा है, न सरकार, इसलिए आध्यात्मिक ज्ञान के मामले में समाज में विषम स्थिति उत्पन्न हो चुकी है। इस विषम स्थिति का लाभ उठाते हुए अनेक धूर्त प्रकट हो गये हैं, जो अपने आपको ईश्वर का अवतार घोषित करते हैं। फलस्वरूप सारे लोग पापमय कार्यों में यथा अवैध सम्बन्ध, नशा, जुआ खेलने तथा मांसाहार में लिप्त रहते हैं। ऐसे अनेक पापियों में से अनेक तथाकथित ईश्वर के अवतार प्रकट हो रहे हैं। यह अत्यन्त शोचनीय स्थिति है, विशेषतया भारत में।

अवतार नाहि कहे—'आमि अवतार' ।

मुनि सब जानि' करे लक्षण-विचार ॥ 354॥

अवतार–भगवान् का वास्तविक अवतार; नाहि-कभी नहीं; कहे-कहता है; आमि अवतार-मैं अवतार हूँ; मुनि-महान् सन्त महामुनि व्यासदेव; सब जानि'–सब (भूत, वर्तमान, तथा भविष्य) जानकर; करे लक्षण-विचार-अवतारों के लक्षण बताते हैं।

अनुवाद

"ईश्वर का वास्तविक अवतार यह कभी नहीं कहता कि, 'मैं ईश्वर हूँ या 'मैं ईश्वर का अवतार हूँ।' महामुनि व्यासदेव ने यह सब जानते हुए पहले से शास्त्रों में अवतारों के लक्षण अंकित कर दिये हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि ईश्वर का सच्चा अवतार अपने आपको वास्तविक अवतार कभी नहीं कहता। शास्त्र में वर्णित लक्षणों के अनुसार ही यह जाना जा सकता है कि कौन अवतार है और कौन नहीं है।

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः ।

तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसङ्गतैः ॥ 355 ॥

यस्य–जिनके; अवतारा:–अवतार; ज्ञायन्ते-जाने जा सकते हैं; शरीरिषु-जीवों के बीच; अशरीरिणः-भौतिक देह रहित परम भगवान् के; तैः तैः-उन सभी; अतुल्य-अतुलनीय; अतिशयैः-असाधारण; वीर्यैः-तेज द्वारा; देहिषु-जीवों के बीच; असङ्गतैः-असम्भव।

अनुवाद

"भगवान् का शरीर भौतिक नहीं होता, फिर भी वे अपने दिव्य शरीर में अवतार के रूप में मनुष्यों के बीच आते हैं। अतः यह समझना अत्यन्त कठिन है कि कौन अवतार है। वे कुछ

तो अपने अद्वितीय शौर्य से तथा कुछ उन असाधारण कार्यों से, जो देहधारी जीवों के लिए असम्भव हैं, जाने जाते हैं कि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अवतार हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.10.34) का है।

'स्वरूप'-लक्षण, आर 'तटस्थ-लक्षण'।

एइ दुइ लक्षणे 'वस्तु' जाने मुनि-गण ॥ 356 ॥

स्वरूप-लक्षण-स्वरूप लक्षण; आर-तथा; तटस्थ-लक्षण-तटस्थ लक्षण; एइ दुइ लक्षणे-इन दो लक्षणों द्वारा; वस्तु-वस्तु; जाने-एक वस्तु को जानते हैं; मुनि-गण-मुनिजन।

अनुवाद

"बड़े-बड़े मुनि किसी वस्तु को दो लक्षणों से जान पाते हैं-स्वरूप-लक्षणों तथा तटस्थ लक्षणों से।

आकृति, प्रकृति, स्वरूप,—स्वरूप-लक्षण।

कार्य-द्वारा ज्ञान,—एइ तटस्थ-लक्षण ॥ 357॥

आकृति-शरीर का आकार; प्रकृति-स्वभाव; स्वरूप-रूप; स्वरूप-लक्षण-स्वरूप लक्षण; कार्य-द्वारा–कार्यों द्वारा; ज्ञान-ज्ञान होता है; एइ-यह; तटस्थ-लक्षण-तटस्थ लक्षण है।

अनुवाद

"आकृति (शारीरिक लक्षण), प्रकृति (स्वभाव) तथा रूप-ये निजी लक्षण हैं। प्रभु के कार्यकलापों का ज्ञान तटस्थ लक्षण प्रस्तुत करता है।

भागवतारम्भे व्यास मङ्गलाचरणे।

‘परमेश्वर’ निरूपिल एइ दुइ लक्षणे ॥ 358॥

भागवत-आरम्भे- श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में; व्यास-महान् लेखक व्यासदेव ने; मङ्गल-आचरणे-मंगलाचरण में; परम-ईश्वर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का; निरूपिल-वर्णन किया है; एइ दुइ लक्षणे-स्वरूप तथा तटस्थ नामक दो लक्षणों द्वारा।

अनुवाद

“श्रीमद्भागवत के मंगलाचरण में श्रील वेदव्यास ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का वर्णन इन्हीं लक्षणों द्वारा किया है।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्

तेने ब्रह्म हुदा य आदि-कवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।

तेजो-वारि-मृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा

धाम्ना स्वेन सदा निरस्त-कुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ 359॥

जन्म-आदि-सृष्टि, पालन तथा विनाश; अस्य-इसके (जगत् के); यतः-जिनसे; अन्वयात्-आध्यात्मिक सम्बन्ध द्वारा प्रत्यक्ष रूप से; इतरतः-अप्रत्यक्ष रूप से, भौतिक सम्पर्क के अभाव से; च–तथा; अर्थेषु-सभी उद्देश्यों में; अभिज्ञः–पूर्ण रूप से अवगत; स्व-राट्-पूर्ण रूप से स्वतन्त्र; तेने–प्रदान किया; ब्रह्म-परम सत्य; हृदा–हृदय के माध्यम से; यः-जो; आदि-कवये ब्रह्माजी को; मुह्यन्ति–मोहित होते हैं; यत्-जिनके विषय में; सूरयः-ब्रह्मा जैसे महापुरुष तथा अन्य देवता या महान् ब्राह्मण; तेजः-वारि-मृदाम्-अग्नि, जल, पृथ्वी; यथा—जिस प्रकार; विनिमयः–क्रिया-प्रतिक्रिया; यत्र-जहाँ पर; त्रिसर्गः-सृष्टि के तीन गुण, सृष्टिकारी शक्तियाँ; अमृषा-वास्तविक; धाम्ना-समस्त दिव्य सामग्री के साथ; स्वेन–स्वयं से; सदा-सदैव; निरस्त-कुहकम्-समस्त मोह से रहित; सत्यम्-सत्य को; परम्-परम; धीमहि-मैं ध्यान करता हूँ।

अनुवाद

“हे प्रभु, हे वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण, हे सर्वव्यापी भगवान्, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। मैं भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ, क्योंकि वे परम सत्य हैं और व्यक्त ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, पालन तथा संहार के समस्त कारणों के आदि कारण हैं। वे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सारे प्राकट्यों से अवगत रहते हैं और वे परम स्वतन्त्र हैं, क्योंकि उनसे परे अन्य कोई कारण है ही नहीं। उन्होंने ही सर्वप्रथम आदि जीव ब्रह्माजी के हृदय में वैदिक ज्ञान प्रदान किया। उन्हीं के कारण बड़े-बड़े मुनि तथा देवता उसी तरह मोह में पड़ जाते हैं, जिस प्रकार अग्नि में जल या जल में स्थल देखकर कोई माया के द्वारा मोहग्रस्त हो जाता है। उन्हीं के कारण ये सारे भौतिक ब्रह्माण्ड, जो प्रकृति के तीन गुणों की प्रतिक्रिया के कारण अस्थायी रूप से प्रकट होते हैं, वास्तविक लगते हैं जबकि ये अवास्तविक होते हैं। अतः मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ, जो भौतिक जगत के भ्रामक रूपों से सर्वथा मुक्त अपने दिव्य धाम में निरन्तर वास करते हैं। मैं उनका ध्यान करता हूँ, क्योंकि वे ही परम सत्य हैं।’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.1.1) से लिया गया है। यह श्रीमद्भागवत को जन्माद्यस्य यतः शब्दों के द्वारा वेदान्त-सूत्र से जोड़ने वाला है। इसमें बतलाया गया है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव भौतिक सृष्टि से परे परम सत्य हैं। इसे सारे आचार्यों ने स्वीकार किया है। यहाँ तक कि सर्वोच्च निर्विशेषवादी शंकराचार्य ने भगवद्गीता के भाष्य में कहा है : नारायणः परोऽव्यक्तात्। जब यह भौतिक सृष्टि महत् तत्त्व से प्रकट नहीं हुई रहती, तब अव्यक्त कहलाती है और जब यह समग्र शक्ति से प्रदर्शित होती है, तो व्यक्त कहलाती है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण इस व्यक्त-अव्यक्त से परे हैं। जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कोई विशेष अवतार धारण करते हैं, तो यही उनका प्रधान गुण होता है। कृष्ण अर्जुन को बतलाते हैं कि यद्यपि वे दोनों इसके पूर्व अनेक बार जन्म ले चुके हैं, किन्तु कृष्ण को अपने पूर्वजन्मों का स्मरण है,

जबकि अर्जुन को कुछ भी स्मरण नहीं है। चूँकि कृष्ण इस विराट् सृष्टि से परे हैं, अतएव उन्हें भूतकाल की सारी बातें स्मरण हैं। इस विराट् सृष्टि में हर एक को भौतिक शरीर मिला होता है, किन्तु कृष्ण भौतिक सृष्टि से पर होने के कारण उनका शरीर सदैव आध्यात्मिक होता है। उन्होंने ब्रह्मा के हृदय में वैदिक ज्ञान प्रदान किया। यद्यपि ब्रह्मा इस ब्रह्माण्ड के भीतर सबसे महत्त्वपूर्ण और उन्नत पुरुष हैं, किन्तु उन्हें इसका स्मरण नहीं था कि अपने विगत जीवन में उन्होंने क्या-क्या किया। अत: कृष्ण को उनके हृदय के भीतर से स्मरण दिलाना पड़ा। इस तरह प्रेरित होकर ब्रह्मा ने अखिल ब्रह्माण्ड की रचना की। भूतकाल के विषय में हर बात स्मरण रखना तथा सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा को प्रेरित करना ये स्वरूप-लक्षण तथा तटस्थ-लक्षण के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

एइ श्लोके 'परं'-शब्दे 'कृष्ण'-निरूपण।

'सत्यं' शब्दे कहे ताँर स्वरूप-लक्षण॥ 360॥

एइ श्लोके-इस श्लोक में; परम्-शब्दे-परम शब्द द्वारा; कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; निरूपण-वर्णन किया गया है; सत्यम् शब्दे-सत्यम् शब्द द्वारा; कहे-प्रदर्शित है; ताँर-उनका; स्वरूप-लक्षण-स्वरूप लक्षण।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत के इस मंगलाचरण में 'परम्' शब्द पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का सूचक है और 'सत्यम्' शब्द उनके स्वरूप-लक्षण को बतलाता है।

विश्व-सृष्ट्यादि कैल, वेद ब्रह्माके पड़ाइल।

अर्थाभिज्ञता, स्वरूप-शक्त्ये माया दूर कैल॥ 361॥

विश्व-सृष्टि-आदि-भौतिक दृश्यजगत् की सृष्टि, पालन तथा विनाश; कैल–किये; वेद-वैदिक ज्ञान; ब्रह्माके–ब्रह्माजी को; पड़ाइल–सिखाया; अर्थ-अभिज्ञता-भूत, वर्तमान तथा भविष्य का सम्पूर्ण ज्ञान; स्वरूप-शक्त्ये-अपनी स्वरूप शक्ति द्वारा; माया-माया शक्ति से; दूर कैल-दूर किया।

अनुवाद

"इसी श्लोक में यह भी कहा गया है कि भगवान् इस विराट् जगत् के स्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं और उन्होंने ब्रह्मा को वेदों का ज्ञान प्रदान करके ब्रह्माण्ड की रचना करने के लिए प्रेरित किया। यह भी कहा गया है कि भगवान् को पूर्ण प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष ज्ञान है, वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जानने वाले हैं और उनकी निजी शक्ति माया से अलग है।

एइ सब कार्य—ताँर तटस्थ-लक्षण ।

अन्य अवतार ऐछे जाने मुनि-गण ॥ 362॥

एइ सब कार्य-ये सारे कार्यकलाप; ताँर-उनके; तटस्थ-लक्षण-तटस्थ लक्षण; अन्य अवतार-अन्य अवतार; ऐछे-इसी प्रकार; जाने-जानते हैं; मुनि-गण-व्यासदेव जैसे महान् साधु।

अनुवाद

"ये सारे कार्यकलाप ही उनके तटस्थ-लक्षण हैं। महान् मुनि लोग स्वरूप तथा तटस्थ लक्षणों के संकेतों से ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अवतारों को जान पाते हैं। कृष्ण के सारे अवतारों को इसी तरह से समझना होगा।

अवतार-काले हय जगते गोचर ।

एइ दुइ लक्षणे केह जानये ईश्वर" ॥ 363 ॥

अवतार-काले–अवतार के समय; हय-होते हैं; जगते-संसार में; गोचर-प्रकट; एइ दुइ लक्षणे-इन्हीं दो लक्षणों द्वारा; केह-कुछ लोग; जानये-जानते हैं; ईश्वर-परम भगवान् के अवतार को।

अनुवाद

"भगवान् के अवतार प्रकट होने के समय जगत-भर में विख्यात हो जाते हैं, क्योंकि लोग अवतार के मुख्य लक्षण, जिन्हें स्वरूप तथा तटस्थ कहा जाता है, जानने के लिए शास्त्रों को देखते हैं। इस तरह ये अवतार मुनियों द्वारा जाने जाते हैं।"

सनातन कहे, — "याते ईश्वर-लक्षण ।

पीत-वर्ण, कार्य—प्रेम-दान-सङ्कीर्तन ॥ 364॥

सनातन कहे-सनातन ने कहा; ग्राते-जिसमें; ईश्वर-लक्षण-भगवान् के लक्षण प्रकट होते हैं; पीत-वर्ण-पीला रंग; कार्य-कार्यकलाप; प्रेम-दान-भगवत्प्रेम का दान करना; सङ्कीर्तन–तथा भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन करते हैं।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा, "जिस पुरुष में भगवान् के लक्षण पाये जाते हैं, उसका रंग पीला है। उसके कार्यकलापों में भगवत्प्रेम वितरण तथा भगवन्नाम का कीर्तन सम्मिलित हैं।

कलि-काले सेइ 'कृष्णावतार' निश्चय ।

सुदृढ़ करिया कह, याउक संशय" ॥ 365 ॥

कलि-काले-कलियुग में; सेइ-वही; कृष्ण-अवतार-कृष्ण के अवतार; निश्चय-अवश्य; सु-दृढ़ करिया-भलीभाँति; कह-कृपया मुझे बताइये; याउक संशय-ताकि सभी संशय समाप्त हो जायें।

अनुवाद

"इस युग में कृष्ण के अवतार का संकेत इन्हीं लक्षणों से मिलता है। कृपया इसकी पुष्टि अवश्य करें, जिससे मेरे सारे सन्देह दूर हो सकें।"

तात्पर्य

सनातन गोस्वामी इस तथ्य की पुष्टि चाहते थे कि इस युग में श्री चैतन्य महाप्रभु ही कृष्ण के अवतार हैं। शास्त्र के अनुसार कलियुग में भगवान् सुनहरा या पीत वर्ण धारण करेंगे और वे कृष्ण-प्रेम तथा संकीर्तन-आन्दोलन का वितरण करेंगे। शास्त्र तथा सन्त जनों के अनुसार ये गुण श्री चैतन्य महाप्रभु में सुस्पष्ट थे। अत: यह स्पष्ट था कि श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के अवतार थे। इसकी पुष्टि शास्त्रों द्वारा की गई है और उनके लक्षणों को मुनियों ने स्वीकार किया है। चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु सनातन गोस्वामी के तर्कों से बच नहीं सके, इसलिए वे इस बात पर मौन रह गये, जिसका अर्थ यह हुआ कि उन्होंने अप्रत्यक्ष रीति से सनातन के कथन को स्वीकार कर लिया। इससे हम यह स्पष्ट जान पाते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण के प्रत्यक्ष अवतार थे।

प्रभु कहे,—चतुरालि छाड़, सनातन ।

शक्त्यावेशावतारेर शुन विवरण ॥ 366 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; चतुरालि–अति चतुराईपूर्ण तर्क; छाड़ छोड़ दो; सनातन-हे सनातन; शक्ति-आवेश-अवतारेर–विशेष रूप से शक्ति प्राप्त अवतारों के बारे में; शुन-सुनो; विवरण-वर्णन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, 'हे सनातन, तुम अपनी चतुराई छोड़ो। अब तुम शक्त्यावेश अवतार का विवरण समझने का प्रयत्न करो।

शक्त्यावेशावतार कृष्णेर असङ्ख्य गणन ।

दिग्दरशन करि मुख्य मुख्य जन ॥ 367॥

शक्ति-आवेश-अवतार-भगवान् के द्वारा शक्ति से आवेशित किये गये अवतार; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; असङ्ख्य गणन–अनन्त तथा असंख्य; दिक्-दरशन करि-उनमें से कुछ का वर्णन करता हूँ; मुख्य मुख्य जन-उनमें से मुख्य।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण के शक्त्यावेश अवतार असंख्य हैं। मैं उनमें से मुख्य-मुख्य अवतारों का वर्णन करता हूँ।

शक्त्यावेश दुइ-रूप—'मुख्य', 'गौण' देखि ।

साक्षात्शक्त्ये 'अवतार', आभासे विभूति' लिखि ॥ 368॥

शक्ति-आवेश-शक्त्यावेश अवतार; दुइ-रूप-दो श्रेणी के; मुख्य–मुख्य; गौण-गौण; देखि-मैं देखता हूँ; साक्षात्-शक्त्ये-जब साक्षात् शक्ति हो; अवतार–वे अवतार कहलाते हैं; आभासे-जब आभास होता है; विभूति लिखि-वे विभूति कहलाते हैं, या विशेष कृपाप्राप्त कहलाते हैं।

अनुवाद

"शक्त्यावेश अवतार दो प्रकार के हैं—मुख्य तथा गौण। मुख्य वे हैं, जिन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सीधे शक्ति प्रदान करते हैं और वे अवतार कहलाते हैं। गौण वे हैं, जिन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अप्रत्यक्ष रूप से शक्ति प्रदान करते हैं और तब वे विभूति कहलाते हैं।

'सनकादि', 'नारद', 'पृथु' 'परशुराम' ।

जीव-रूप 'ब्रह्मार' आवेशावतार-नाम ॥ 369॥

सनक-आदि-चार कुमार; नारद-नारद; पृथु-पृथु महाराज; परशुराम-परशुराम; जीव-रूप-जीवात्मा के रूप में; ब्रह्मार-ब्रह्माजी के; आवेश-अवतार-नाम-ये सभी आवेशावतार कहलाते हैं।

अनुवाद

"कुछ शक्त्यावेश अवतार इस प्रकार हैं-चार कुमार, नारद, महाराज पृथु तथा परशुराम। जब किसी जीव को ब्रह्मा जैसा कार्य करने के लिए शक्ति प्रदान की जाती है, तब वह भी शक्त्यावेश अवतार माना जाता है।

वैकुण्ठे 'शेष'—धरा धरये 'अनन्त' ।

एइ मुख्यावेशावतार—विस्तारे नाहि अन्त ॥ 370 ॥

वैकुण्ठे-आध्यात्मिक जगत् में; शेष-भगवान् शेष; धरा धरये-असंख्य लोकों को धारण करते हैं; अनन्त-अनन्त; एइ-ये; मुख्य-आवेश-अवतार–मुख्य साक्षात् शक्त्यावेश अवतार हैं; विस्तारे–उनका विस्तार करने की; नाहिं-नहीं है; अन्त–सीमा।

अनुवाद

"वैकुण्ठ लोक में भगवान् शेष तथा भौतिक जगत् में अपने फनों पर असंख्य लोकों को धारण करने वाले भगवान् अनन्त-ये दोनों मुख्य शक्त्यावेश अवतार हैं। अन्यों को गिनने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनकी संख्या अनन्त है।

सनकाद्ये 'ज्ञान'–शक्ति, नारदे शक्ति' भक्ति' ।

ब्रह्माय 'सृष्टि'-शक्ति, अनन्ते 'भू-धारण'-शक्ति ॥ 371॥

सनक-आद्ये-चार कुमारों में ज्ञान-शक्ति-ज्ञान की शक्ति; नारदे-नारद मुनि में; शक्ति-शक्ति; भक्ति-भक्ति की; ब्रह्माय-ब्रह्माजी में; सृष्टि-शक्ति-सृष्टि रचना की शक्ति; अनन्ते-भगवान् अनन्त में; भू-धारण-शक्ति-लोकों को धारण करने की शक्ति।

अनुवाद

"चारों कुमारों में ज्ञानशक्ति निहित की गई थी और नारद में भक्ति की शक्ति निहित की गई थी। सृजन करने की शक्ति ब्रह्माजी में निहित की गई थी तथा असंख्य लोकों को धारण करने की शक्ति भगवान् अनन्त में निहित की गई थी।

शेषे 'स्व-सेवन'-शक्ति, पृथुते 'पालन'।

परशुरामे 'दुष्ट-नाशक-वीर्य-सञ्चारण' ॥ 372 ॥

शेषे–भगवान् शेष में; स्व-सेवन शक्ति-स्वयं भगवान् की सेवा करने की शक्ति; पृथुते-महाराज पृथु में; पालन-शासन करने की शक्ति; परशुरामे-परशुराम में; दुष्ट-नाशक-वीर्य-दुष्टों तथा दुराचारियों का नाश करने की असाधारण शक्ति; सञ्चारण-संचारित करते हैं।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने व्यक्तिगत सेवा करने की शक्ति भगवान् शेष को प्रदान की और पृथ्वी पर शासन करने की शक्ति राजा पृथु को। भगवान् परशुराम को सारे दुष्टों तथा धूर्तों का वध करने की शक्ति प्राप्त हुई थी।

तात्पर्य

भगवद्गीता (4.8) में कृष्ण कहते हैं- परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम। कभी-कभी भगवान् शासन करने के लिए अपनी शक्ति पृथु जैसे राजा में निहित करते हैं और ऐसे राजा को सक्षम बनाते हैं कि वह दुष्टों तथा धूर्तों का वध करे। वे परशुराम जैसे अवतारों में भी अपनी शक्ति निहित करते हैं।

ज्ञान-शक्त्यादि-कलया यत्राविष्टो जनार्दनः।

त आवेशा निगद्यन्ते जीवा एव महत्तमाः ॥ 373॥

ज्ञान-शक्ति-आदि-कलया-ज्ञान, प्रेमभक्ति, सृष्टि, सेवा, भौतिक जगत् का शासन, विभिन्न लोकों को धारण करना, दुष्टों का संहार आदि शक्ति की कला द्वारा; त्र-जहाँ; आविष्टः-प्रवेश करते हैं; जनार्दनः-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, विष्णु; ते–वे; आवेशाः-शक्ति प्राप्त; निगद्यन्ते-कहलाते हैं; जीवाः-जीवात्माएँ; एव-यद्यपि; महत्-तमाः-अत्यन्त महान् भक्त होते हैं।

अनुवाद

"जब-जब भगवान् अपनी विविध शक्तियों के अंश रूप में किसी में विद्यमान रहते हैं, तब वह जीव शक्त्यावेश अवतार कहलाता है।

तात्पर्य

यह श्लोक लघु भागवतामृत (1.18) में पाया जाता है।

'विभूति' कहिये यैछे गीता-एकादशे।

जगत्व्यापिल कृष्ण-शक्त्याभासावेशे ॥ 374॥

विभूति-विशेष शक्ति; कहिये-हम कहते हैं; यैछे-जिस प्रकार, गीता- भगवद्गीता के; एकादशे–ग्यारहवें अध्याय में; जगत्-सम्पूर्ण विश्व में; व्यापिल-वे व्याप्त हो गये; कृष्ण-शक्ति-आभास-आवेशे-अपनी शक्ति के आभास द्वारा।

अनुवाद

"जैसाकि भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय में बताया गया है, कृष्ण ने सारे ब्रह्माण्ड में अपना विस्तार विभूति नामक अपनी विशिष्ट शक्तियों के माध्यम से अनेक पुरुषों में किया है।

तात्पर्य

विशेष माया शक्तियों के विस्तार की व्याख्या श्रीमद्भागवत (2.7.39) में हुई है।

यद् यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽश-सम्भवम् ॥ 375॥

यत् यत्-जो भी और जहाँ भी; विभूति-मत्-असाधारण ऐश्वर्य; सत्त्वम्-जीवात्मा; श्री-मत्-सम्पत्ति से पूर्ण; ऊर्जितम्-शक्ति से पूर्ण; एव–निश्चित ही; वा-अथवा; तत् तत्-वहाँ; एव–अवश्य; अवगच्छ-जान लो; त्वम्-तुम; मम–मेरी; तेजः-शक्ति के; अंश-अंश का; सम्भवम्-प्रदर्शन।

अनुवाद

"यह जान लो कि समस्त ऐश्वर्यशाली सुन्दर, यशस्वी तथा महिमायुक्त सृष्टियाँ मेरे तेज के स्फुलिंग मात्र से प्रकट होती हैं।

तात्पर्य

यह भगवद्गीता (10.41) में श्रीकृष्ण का कथन है।

अथ वा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ 376 ॥

अथ वा–अथवा; बहुना-अधिक; एतेन-इससे; किम्-क्या लाभ है; ज्ञातेन-जानकर; तव तुम्हारे द्वारा; अर्जुन–हे अर्जुन; विष्टभ्य-व्याप्त; अहम्-मैं; इदम्-इस; कृत्स्नम् सम्पूर्ण; एक-अंशेन–एक अंश के साथ; स्थितः-स्थित; जगत्-विश्व।

अनुवाद

"किन्तु हे अर्जुन, इस समस्त विस्तृत ज्ञान की क्या आवश्यकता है? मैं तो अपने एक अंश-मात्र से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हूँ और इसको आश्रय देता हूँ।"

तात्पर्य

एइत कहिलुँ शक्त्यावेश-अवतार।

बाल्य-पौगण्ड-धर्मेर शुनह विचार॥ 377॥

एइत-इस प्रकार; कहिलैं-मैंने वर्णन किया है; शक्ति-आवेश-अवतार–शक्ति आविष्ट अवतारों का; बाल्य-बाल्यकाल में; पौगण्ड-पौगण्ड अवस्था; धर्मेर-लक्षणों का; शुनह–अब सुनो; विचार-विचार।

अनुवाद

"इस तरह मैं विशेष रूप से शक्त्याविष्ट अवतारों का वर्णन कर चुका हूँ। अब मुझसे कृष्ण के बाल्यकाल, पौगण्ड तथा युवावस्था (किशोर) के लक्षणों को सुनो।"

किशोर-शेखर-धर्मी व्रजेन्द्र-नन्दन।

प्रकट-लीला करिबारे यबे करे मन॥ 378॥

किशोर-शेखर-युवावस्था का चरम; धर्मी-जिनकी स्वाभाविक स्थिति; व्रजेन्द्र-नन्दन-महाराज नन्द के पुत्र; प्रकट-लीला-प्रकट लीलाएँ; करिबारे-करने के लिए; यबे-जब; करे-करते हैं; मन-इच्छा।

अनुवाद

"महाराज नन्द के पुत्र के रूप में भगवान् कृष्ण स्वभावतः आदर्श किशोर (युवक) हैं। वे इस अवस्था में अपनी लीलाएँ प्रकट करना चाहते हैं।

आदौ प्रकट कराय माता-पिता—भक्त-गणे।

पाछे प्रकट हय जन्मादिक-लीला-क्रमे॥ 379॥

आदौ-पहले; प्रकट-प्रकट; कराय-वे करते हैं; माता-पिता-अपने माता तथा पिता को; भक्त-गणे-भक्तों को; पाछे-उसके बाद; प्रकट हय-प्रकट होते हैं; जन्म-आदिक-लीला-क्रमे क्रमपूर्वक जन्म आदि लीलाएँ करके।

अनुवाद

"स्वयं प्रकट होने के पूर्व भगवान् अपने कुछ भक्तों को अपने माता, पिता तथा घनिष्ठ संगियों के रूप में प्रकट होने देते हैं। इसके बाद वे इस तरह प्रकट होते हैं, मानो जन्म ले रहे हों और फिर बढ़कर क्रमशः शिशु तथा किशोर बनते हैं।"

वयसो विविधत्वेऽपि सर्व-भक्ति-रसाश्रयः ।

धर्मी किशोर एवात्र नित्य-लीला-विलासवान् ॥ 380 ॥

वयसः-आयु; विविधत्वे-विभिन्न; अपि-यद्यपि; सर्व-सब प्रकार के; भक्ति-रस-आश्रयः-भक्ति रस के आश्रय; धर्मी-जिनका स्वरूप स्वभाव; किशोर–किशोर अवस्था; एव–निश्चित रूप से; अत्र-इसमें; नित्य-लीला-नित्य लीलाएँ; विलास-वान्-परम भोक्ता।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नित्य लीला-विलास करते हैं और वे सभी प्रकार की भक्ति के आश्रय हैं। यद्यपि उनकी अवस्थाएँ विविध हैं, किन्तु इनमें किशोर अवस्था (युवा-पूर्व) सर्वोत्तम है।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.63) में आया है।

पूतना-वधादि यत लीला क्षणे क्षणे ।

सब लीला नित्य प्रकट करे अनुक्रमे ॥ 381॥

पूतना-वध-आदि-पूतना जैसे असुरों का वध आदि; यत-सभी; लीला-लीलाएँ; क्षणे क्षणे-एक के बाद दूसरे क्षण में; सब लीला-ये सभी लीलाएँ; नित्य-नित्य रूप से; प्रकट–प्रदर्शित; करे-करते हैं; अनुक्रमे क्रमपूर्वक।

अनुवाद

"जब भगवान् कृष्ण प्रकट होते हैं, तो वे क्षण क्षण अपनी लीलाएँ प्रकट करते हैं-यथा पूतना-वध इत्यादि। ये सारी लीलाएँ एक के बाद एक शाश्वत रूप से प्रदर्शित की जाती हैं।"

अनन्त ब्रह्माण्ड, तार नाहिक गणन ।

कोन लीला कोन ब्रह्माण्डे हय प्रकटन ॥ 382॥

अनन्त ब्रह्माण्ड–असंख्य ब्रह्माण्ड; तार–जिनकी; नाहिक गणन-कोई गिनती नहीं; कोन लीला-कुछ लीलाएँ; कोन ब्रह्माण्डे–किसी ब्रह्माण्ड में; हय होती हैं; प्रकटन-प्रकट।

अनुवाद

"कृष्ण की क्रमिक लीलाएँ क्षणानुक्षण अनन्त ब्रह्माण्डों में से किसी-न-किसी में प्रकट होती रहती हैं। इन ब्रह्माण्डों को गिन पाना सम्भव नहीं है, किन्तु तो भी इनमें से किसी-न-किसी ब्रह्माण्ड में भगवान् की कोई-न-कोई लीला प्रकट होती रहती है।"

एइ-मत सब लीला—येन गङ्गा-धार ।

से-से लीला प्रकट करे व्रजेन्द्र कुमार ॥ 383 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; सब लीला-सभी लीलाएँ; येन -जैसे; गङ्गा-धार-गंगा के जल का प्रवाह; से-से-वे; लीला-लीलाएँ; प्रकट करे- प्रदर्शित करते हैं; व्रजेन्द्र-कुमार-महाराज नन्द के पुत्र।

अनुवाद

“इस तरह भगवान् की लीलाएँ बहते गंगाजल के समान हैं। ये नन्द महाराज के पुत्र द्वारा इस प्रकार प्रकट की जाती हैं।”

क्रमे बाल्य-पौगण्ड-कैशोरता-प्राप्ति ।

रास-आदि लीला करे, कैशोरे नित्य-स्थिति ॥ 384॥

क्रमे क्रमपूर्वक; बाल्य–बाल्यकाल; पौगण्ड-पौगण्ड; कैशोरता–किशोर अवस्था; प्राप्ति-विकास; रास-गोपियों के साथ नृत्य करना; आदि-आदि; लीला-लीलाएँ; करे-करते हैं; कैशोर–किशोर अवस्था में; नित्य-स्थिति–नित्य रहकर।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण बाल्यकाल, पौगण्ड तथा किशोरावस्था की लीलाएँ प्रकट करते हैं। जब वे किशोर हो जाते हैं, तो वे अपना रासनृत्य तथा अन्य लीलाएँ करने के लिए शाश्वत रूप से विद्यमान रहते हैं।”

तात्पर्य

यहाँ पर दी गई उपमा अत्यन्त रोचक है। कृष्ण सामान्य व्यक्ति की तरह नहीं बढ़ते, यद्यपि वे बाल्यकाल, पौगण्ड तथा किशोरावस्था की लीलाएँ प्रदर्शित करते हैं। जब वे किशोरावस्था (कैशोर) को प्राप्त हो जाते हैं, तो फिर वे और नहीं बढ़ते । वे अपनी किशोरावस्था में ही बने रहते हैं। इसलिए ब्रह्म-संहिता (5.33) में उन्हें नव-यौवन कहा गया है :

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम्

आद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च ।

वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ

गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥

यह नवयौवन या कैशोर ही कृष्ण का सनातन दिव्य रूप है। कृष्ण नवयौवन से आगे कभी नहीं बढ़ते।

'नित्य-लीला' कृष्णेर सर्व-शास्त्रे कय ।

बुझिते ना पारे लीला केमने 'नित्य' हय ॥ 385॥

नित्य-लीला-नित्य लीलाएँ; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; सर्व-शास्त्रे कय–सभी शास्त्रों में वर्णित हैं; बुझिते ना पारे-समझ नहीं सकते; लीला-लीलाएँ; केमने-किस प्रकार; नित्य हय–नित्य हैं।

अनुवाद

"समस्त प्रामाणिक शास्त्रों में कृष्ण की नित्य लीलाओं का वर्णन मिलता है। किन्तु कोई यह नहीं समझ सकता कि ये लीलाएँ किस तरह से सनातन रूप से चली आती हैं।"

दृष्टान्त दिया कहि तबे लोक यदि जाने ।

कृष्ण-लीला—नित्य, ज्योतिश्चक्र-प्रमाणे ॥ 386॥

दृष्टान्त दिया–एक उदाहरण देकर; कहि-मैं कहता हूँ; तबे-तब; लोक-लोग; यदि-यदि; जाने-समझ सकते हैं; कृष्ण-लीला-भगवान् कृष्ण की लीलाएँ; नित्य-नित्य; ज्योतिः-चक्र-राशि चक्र के प्रमाणे-प्रमाण द्वारा।

अनुवाद

"मैं एक दृष्टान्त देता हूँ, जिससे लोग भगवान् कृष्ण की सनातन लीलाओं को समझ सकें। इसका एक उदाहरण राशिचक्र में देखा जा सकता है।"

ज्योतिश्चक्रे सूर्य येन फिरे रात्रि-दिने ।

सप्त-द्वीपाम्बुधि लङ्घि' फिरे क्रमे क्रमे ॥ 387॥

ज्योतिः-चक्रे–राशिचक्र में; सूर्य-सूर्य; येन-जिस प्रकार; फिरे-घूमता है; रात्रि-दिने–दिन रात; सप्त-द्वीप-अम्बुधि-सात द्वीपों के समुद्र; लङ्घि'–पार करके; फिरे-घूमता है; क्रमे क्रमे-क्रमपूर्वक।

अनुवाद

"सूर्य रात-दिन राशिचक्र से होकर घूमता है और सात द्वीपों के मध्य के सागरों को बारी-बारी से पार करता है।"

रात्रि-दिने हय षष्टि-दण्ड-परिमाण ।

तिन-सहस्र छय-शत 'पल' तार मान ॥ 388॥

रात्रि-दिने-सारे दिन और रात के दौरान; हय–होता है; षष्टि-दण्ड–छः दण्ड (समय का माप); परिमाण–अवधि; तिन-सहस्र-तीन हजार; छय-शत-छह सौ; पल-पल; तार-उसका; मान-माप।

अनुवाद

"वैदिक ज्योतिष गणना के अनुसार सूर्य साठ दण्डों में चक्कर पूरा करता है, और यह तीन हजार छह सौ पलों में विभाजित है।"

सूर्योदय हैते षष्टि-पल-क्रमोदय ।

सेइ एक दण्ड, अष्ट दण्डे 'प्रहर' हय ॥ 389॥

सूर्य-उदय हैते–सूर्योदय होने पर; षष्टि-पल-साठ पल; क्रम-उदय-क्रमशः उठते जाते हैं; सेइ-वह; एक दण्ड–एक दण्ड; अष्ट दण्डे-आठ दण्ड में; प्रहर हय-एक प्रहर होता है।

अनुवाद

"सूर्य क्रमशः साठ पलों में उदय होता है। साठ पल एक दण्ड के बराबर होते हैं और आठ दण्ड का एक प्रहर होता है।

एक-दुइ-तिन-चारि प्रहरे अस्त हय ।

चारि-प्रहर रात्रि गेले पुनः सूर्योदय ॥ 390 ॥

एक-दुइ-तिन-चारि-एक, दो, तीन, चार; प्रहरे-प्रहरों में; अस्त हय–सूर्य शाम को ढल जाता है; चारि-प्रहर–सामान्यतया चार प्रहरों के बाद; रात्रि-रात; गेले-जब बीत जाती है; पुनः-फिर; सूर्योदय–सूर्य उगता है।

अनुवाद

"रात और दिन आठ प्रहरों में विभाजित हैं। चार प्रहर दिन के हैं तो चार प्रहर रात के। आठ प्रहर के बाद सूर्य पुनः उदय होता है।"

ऐछे कृष्णेर लीला-मण्डल चौद्द-मन्वन्तरे ।

ब्रह्माण्ड-मण्डल व्यापि' क्रमे क्रमे फिरे ॥ 391 ॥

ऐछे-इसी प्रकार; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; लीला-मण्डल-लीलाओं के भण्डार; चौद-मन्वन्तरे-चौदह मनुओं के काल में; ब्रह्माण्ड-मण्डल-सारे ब्रह्माण्डों में; व्यापि'–व्याप्त होकर; क्रमे क्रमे क्रमपूर्वक; फिरे-वापस आती है।

अनुवाद

"सूर्य की ही तरह कृष्ण की लीलाओं का कक्ष है। ये लीलाएँ एक के बाद एक प्रकट होती हैं। चौदह मन्वन्तरों में यह कक्ष समस्त ब्रह्माण्ड तक विस्तार करता है और क्रमशः फिर से लौट आता है। इस तरह कृष्ण अपनी लीलाओं के माध्यम से एक एक करके सारे ब्रह्माण्डों में विचरण करते हैं।"

सओयाशत वत्सर कृष्णेर प्रकट-प्रकाश ।

ताहा यैछे व्रज-पुरे करिला विलास ॥ 392 ॥

सओयाशत-125; वत्सर-साल; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; प्रकट-प्रकाश-प्राकट्य के प्रकाश; ताहा-वह; यैछे-जैसे; व्रज-पुरे-वृन्दावन तथा द्वारका में; करिला विलास-लीलाओं का आनन्द लेते हैं।

अनुवाद

"कृष्ण किसी एक ब्रह्माण्ड में 125 वर्षों तक रहते हैं और अपनी लीलाओं का आनन्द वृन्दावन तथा द्वारका दोनों में लेते हैं।"

अलात-चक्र-प्राय सेइ लीला-चक्र फिरे ।

सब लीला सब ब्रह्माण्डे क्रमे उदय करे ॥ 393 ॥

अलात-चक्र-प्राय-अग्नि के एक चक्र के समान; सेइ-वह; लीला-चक्र-कृष्ण की लीलाओं का चक्र; फिरे-घूमता है; सब लीला-ये सारी लीलाएँ; सब ब्रह्माण्डे–सारे ब्रह्माण्डों में; क्रमे क्रमपूर्वक; उदय करे-प्रकट होती हैं।

अनुवाद

"उनकी लीलाओं का चक्र अग्निचक्र के समान है। इस तरह से कृष्ण एक एक करके अपनी लीलाएँ हर ब्रह्माण्ड में प्रकट करते हैं।"

जन्म, बाल्य, पौगण्ड, कैशोर प्रकाश ।

पूतना-वधादि करि' मौषलान्त विलास ॥ 394॥

जन्म-जन्म; बाल्य-बचपन; पौगण्ड-पौगण्ड; कैशोर–किशोर अवस्था; प्रकाश-प्रदर्शन; पूतना-वध-आदि-पूतना आदि असुरों का वध; करि'–प्रकट करके; मौषल-अन्त-मौषल लीला की समाप्ति तक; विलास-लीलाएँ।

अनुवाद

"कृष्ण के जन्म, बाल्यकाल, पौगण्ड तथा किशोरावस्था की लीलाएँ पूतना-वध से लेकर मौषल-लीला, अर्थात् यदु-वंश के नाश तक प्रकट होती हैं। ये सारी लीलाएँ प्रत्येक ब्रह्माण्ड में चक्कर लगाती रहती हैं।"

कोन ब्रह्माण्डे कोन लीलार हय अवस्थान ।

ताते लीला 'नित्य' कहे आगम-पुराण ॥ 395॥

कोन ब्रह्माण्डे-कुछ ब्रह्माण्डों में; कोन लीलार-कुछ लीलाएँ; हय–होती हैं; अवस्थान–प्रकट; ताते-अतः; लीला-लीलाएँ; नित्य-नित्य; कहे-कहते हैं; आगम-पुराण-वेद और पुराण।

अनुवाद

"चूँकि कृष्ण की सारी लीलाएँ लगातार घटित होती रहती हैं, अतएव प्रत्येक क्षण कोई लीला किसी-न-किसी ब्रह्माण्ड में विद्यमान रहती है। फलतः वेद तथा पुराण इन्हें नित्य लीला कहते हैं।"

गोलोक, गोकुल-धाम– 'विभु' कृष्ण-सम ।

कृष्णेच्छाय ब्रह्माण्ड-गणे ताहार सङ्क्रम ॥ 396॥

गोलोक-गोलोक नामक लोक; गोकुल-धाम–सुरभि गायों के चरने का स्थान, आध्यात्मिक जगत्; विभु–ऐश्वर्यपूर्ण तथा शक्तिमान; कृष्ण-सम-कृष्ण के समान ही; कृष्ण-इच्छाय-कृष्ण की परम इच्छा द्वारा; ब्रह्माण्ड-गणे-प्रत्येक ब्रह्माण्ड में; ताहार-गोलोक तथा गोकुल धामों का; सङ्क्रम-प्राकट्य।

अनुवाद

"गोलोक नामक आध्यात्मिक धाम, जो सुरभि गौवों की चारण भूमि है, कृष्ण के ही समान शक्तिशाली तथा ऐश्वर्यमय है। कृष्ण की इच्छा से मूल गोलोक तथा गोकुल धाम उनके साथ-साथ सारे ब्रह्माण्डों में प्रकट होते हैं।"

अतएव गोलोक-स्थाने नित्य विहार।

ब्रह्माण्ड-गणे क्रमे प्राकट्य ताहार॥ 397॥

अतएव–इसलिए; गोलोक-स्थाने-मूल गोलोक-वृन्दावन ग्रह में; नित्य विहार-नित्य लीलाएँ; ब्रह्माण्ड-गणे-भौतिक ब्रह्माण्डों में; क्रमे-क्रमपूर्वक; प्राकट्य-प्रदर्शन; ताहार–उनका।

अनुवाद

"कृष्ण की नित्य लीलाएँ मूल गोलोक-वृन्दावन ग्रह में निरन्तर चलती रहती हैं। यही लीलाएँ भौतिक जगत् में प्रत्येक ब्रह्माण्ड में क्रमशः प्रकट होती हैं।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कृष्ण-लीलाओं की इस जटिल व्याख्या को स्पष्ट करते हैं। कृष्ण की लीलाएँ भौतिक जगत् में अनेक ब्रह्माण्डों में से किसी एक ब्रह्माण्ड में सदैव चलती रहती हैं। ये लीलाएँ क्रम से विविध ब्रह्माण्डों में एक के बाद दूसरी प्रकट होती हैं, जिस तरह सूर्य आकाश से होकर गति करता हुआ समय की माप करता है। इस ब्रह्माण्ड में कृष्ण का जन्म किसी क्षण हो सकता है, किन्तु उनके जन्म के तुरन्त बाद यही लीला दूसरे ब्रह्माण्ड में प्रकट हो सकती है। इस ब्रह्माण्ड में पूतना-वध की लीला प्रदर्शित किए जाने के बाद वही लीला किसी दूसरे ब्रह्माण्ड में प्रदर्शित होती है। इस तरह कृष्ण की सारी लीलाएँ आदि गोलोक-वृन्दावन ग्रह पर तथा समस्त भौतिक ब्रह्माण्डों में शाश्वत रूप से दिखती हैं। हमारी सौर गणना के 125 वर्ष कृष्ण के जीवन के एक क्षण के तुल्य हैं। ये लीलाएँ

एक क्षण एक ब्रह्माण्ड में प्रकट होती हैं तो दूसरे क्षण उसके आगे वाले ब्रह्माण्ड में। ब्रह्माण्ड अनन्त हैं और कृष्ण की लीलाएँ हर क्षण उनमें प्रकट होती रहती हैं। लीलाओं का यह चक्र आकाश-मार्ग में सूर्य के विचरण के माध्यम से बतलाया जाता है। कृष्ण इन असंख्य ब्रह्माण्डों में प्रकट तथा अप्रकट होते रहते हैं, जिस तरह सूर्य दिन में उदय और अस्त होता रहता है। यद्यपि सूर्य उदय और अस्त होता हुआ प्रतीत होता है, किन्तु वह पृथ्वी में कहीं-न-कहीं चमकता रहता है। इसी तरह यद्यपि कृष्ण की लीलाएँ प्रकट तथा अप्रकट होती प्रतीत होती हैं, किन्तु वे किसी-न-किसी ब्रह्माण्ड में निरन्तर विद्यमान रहती हैं। इस तरह कृष्ण की समस्त लीलाएँ एकसाथ अनन्त ब्रह्माण्डों में चलती रहती हैं। हम अपनी सीमित इन्द्रियों से इन्हें जान नहीं पाते; इसलिए कृष्ण की सनातन लीलाओं को समझ पाना हमारे लिए अत्यन्त कठिन है। सूर्य के दृष्टान्त द्वारा उन्हें समझने का प्रयास किया जाना चाहिए। यद्यपि भगवान् निरन्तर भौतिक ब्रह्माण्डों में प्रकट होते रहते हैं, किन्तु उनकी लीलाएँ आदि गोलोक वृन्दावन में सदैव चलती रहती हैं। इसीलिए इन्हें नित्य लीला (शाश्वत रूप से चलने वाली) कहा जाता है। चूँकि हम यह नहीं देख पाते कि अन्य ब्रह्माण्डों में क्या हो रहा है, अतएव हमारे लिए यह समझ पाना थोड़ा कठिन है कि कृष्ण किस तरह अपनी लीलाओं को नित्य प्रकट करते हैं। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं और यही काल गणना अन्य ब्रह्माण्डों में भी चलती है। कृष्ण की लीलाएँ चौदह मनुओं की मृत्यु के पूर्व प्रकट हो लेती हैं। यद्यपि इस प्रकार से कृष्ण की सनातन लीलाओं को समझना कुछ कठिन है, किन्तु हमें वैदिक ग्रन्थों के निर्णय को स्वीकार करना होगा।

भक्त दो प्रकार के होते हैं- साधक तथा सिद्ध। साधक वे हैं, जो पूर्णता के लिए तैयारी करते हैं और सिद्ध वे हैं, जिन्हें पहले ही पूर्णता प्राप्त हो चुकी है। जहाँ तक सिद्धों का सम्बन्ध है भगवद्गीता (4.9) में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि-त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन–"ऐसा भक्त इस भौतिक शरीर को त्यागकर मेरे पास आता है।" इस शरीर को त्यागने के बाद सिद्ध भक्त उस लोक में गोपी के गर्भ से जन्म लेता है, जहाँ कृष्ण लीलाएँ चलती होती हैं। यह इसी ब्रह्माण्ड में हो सकता है या फिर किसी अन्य ब्रह्माण्ड में। यह कथन उज्वल नीलमणि में पाया जाता है, जिसकी टीका विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने

की है। जब भक्त पूर्ण हो जाता है, तब उसे उस ब्रह्माण्ड में स्थानांतरित किया जाता है, जहाँ कृष्ण की लीलाएँ चलती होती हैं। जहाँ कहीं कृष्ण की लीलाएँ प्रकट होती हैं, वहीं कृष्ण के नित्य संगी जाते हैं। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, सर्वप्रथम कृष्ण के माता-पिता प्रकट होते हैं, तब उनके अन्य संगी। इस भौतिक शरीर को त्यागने के बाद पूर्ण भक्त भी कृष्ण तथा उनके अन्य संगियों से जा मिलता है।

व्रजे कृष्ण—सर्वैश्वर्य-प्रकाशे 'पूर्णतम'।

पुरी-द्वये, परव्योमे— 'पूर्णतर', 'पूर्ण' ॥ 398॥

व्रजे-वृन्दावन में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; सर्व-ऐश्वर्य-प्रकाशे-अपने सम्पूर्ण ऐश्वयों का प्रकाश; पूर्ण-तम-सम्पूर्ण रूप से; पुरी-द्वये-द्वारका तथा मथुरा में; पर-व्योमे–तथा आध्यात्मिक जगत् में; पूर्ण-तर-और अधिक पूर्ण; पूर्ण–सम्पूर्ण।

अनुवाद

"आध्यात्मिक आकाश (वैकुण्ठ) में कृष्ण पूर्ण होते हैं। मथुरा तथा द्वारका में वे और अधिक पूर्ण (पूर्णतर) होते हैं, किन्तु अपना सारा ऐश्वर्य प्रकट करने के कारण वे वृन्दावन, व्रज में सर्वाधिक पूर्ण पूर्णतम) होते हैं।

तात्पर्य

इसकी पुष्टि भक्तिरसामृतसिन्धु के निम्नलिखित तीन श्लोकों (2.1.221-223) द्वारा होती है।

हरिः पूर्णतमः पूर्ण-तरः पूर्ण इति त्रिधा ।

श्रेष्ठ-मध्यादिभिः शब्दैर्नाट्ये यः परिपठ्यते ॥ 399॥

हरिः-भगवान् कृष्ण; पूर्ण-तमः–सर्वाधिक सम्पूर्ण; पूर्ण-तरः-अधिक पूर्ण; पूर्णः-पूर्ण; इति–इस तरह; त्रिधा–तीन अवस्थाओं से; श्रेष्ठ-श्रेष्ठ; मध्य-आदिभिः-मध्य आदि; शब्दैः-शब्दों द्वारा; नाट्ये-नाटक की पुस्तकों में; यः-जो; परिपठ्यते-सूचित होता है।

अनुवाद

"नाट्य ग्रन्थों में इसे पूर्ण, पूर्णतर तथा पूर्णतम कहा गया है। इस तरह भगवान् कृष्ण अपने आपको पूर्ण, पूर्णतर तथा पूर्णतम-इन तीन प्रकारों से प्रकट करते हैं।"

प्रकाशिताखिल-गुणः स्मृतः पूर्णतमो बुधैः ।

असर्व-व्यञ्जकः पूर्ण-तरः पूर्णोऽल्प-दर्शकः ॥ 400 ॥

प्रकाशित-अखिल-गुणः-सभी दिव्य गुणों का प्रदर्शन करके; स्मृतः-जाने जाते हैं; पूर्ण-तमः-सर्वाधिक सम्पूर्ण; बुधैः–विद्वानों द्वारा; असर्व-व्यञ्जकः-सभी गुणों का प्राकट्य न करके; पूर्ण-तरः-अधिक पूर्ण; पूर्णः–पूर्ण; अल्प-दर्शकः-और भी कम प्रकट करके।

अनुवाद

"जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने समस्त गुणों को प्रदर्शित नहीं करते होते, तब वे पूर्ण कहलाते हैं। जब वे सारे गुणों को अपूर्ण रूप से प्रकट करते हैं, तब वे पूर्णतर कहलाते हैं। जब वे सारे गुणों को पूरी तरह से प्रकट करते हैं, तब वे पूर्णतम कहलाते हैं। भक्तियोग के समस्त विद्वानों का यह कथन है।"

कृष्णस्य पूर्णतमता व्यक्तीभूगोकुलान्तरे ।

पूर्णता पूर्णतरता द्वारका-मथुरादिषु ॥401॥

कृष्णस्य-भगवान् कृष्ण की; पूर्ण-तमता-सर्वाधिक सम्पूर्णता; व्यक्ता-प्रकट होती है; अभूत्-हो गये; गोकुल-अन्तरे-गोकुल में; पूर्णता–पूर्णता; पूर्ण-तरता-अधिक पूर्णता; द्वारका-द्वारका में; मथुरा-आदिषु तथा मथुरा आदि में।

अनुवाद

"कृष्ण के पूर्णतम गुण वृन्दावन में और उनके पूर्ण तथा पूर्णतर गुण द्वारका तथा मथुरा में प्रकट होते हैं।"

एइ कृष्ण—व्रजे 'पूर्णतम' भगवान् ।

आर सब स्वरूप— 'पूर्णतर' 'पूर्ण' नाम ॥402॥

एइ कृष्ण-वही कृष्ण; व्रजे-वृन्दावन में; पूर्ण-तम भगवान् सर्वाधिक सम्पूर्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का प्राकट्य; आर-अन्य; सब-सभी; स्वरूप-स्वरूप; पूर्ण-तर-अधिक पूर्ण; पूर्ण–पूर्ण; नाम-नामक।

अनुवाद

"वृन्दावन में भगवान् कृष्ण, पूर्णतम भगवान् हैं। अन्यत्र उनके विस्तार या तो पूर्ण हैं या पूर्णतर हैं।

सङ्क्षेपे कहिलुँ कृष्णेर स्वरूप-विचार ।

'अनन्त' कहिते नारे इहार विस्तार ॥403॥

सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; कृष्णेर-भगवान कृष्ण के; स्वरूप-विचार–स्वरूप तथा आकृतियों के विचार; अनन्त-भगवान् अनन्त; कहिते नारे-वर्णन नहीं कर सकते; इहार-इसका; विस्तार विस्तार।

अनुवाद

"इस तरह मैंने कृष्ण के दिव्य स्वरूपों के प्राकट्य का संक्षिप्त वर्णन किया है। यह विषय इतना विस्तृत है कि भगवान् अनन्त भी पूर्णरूप से इसका वर्णन नहीं कर सकते।"

अनन्त स्वरूप कृष्णेर नाहिक गणन ।

शाखा-चन्द्र-न्याये करि दिग्दरशन ॥404॥

अनन्त-असंख्य; स्वरूप-स्वरूप; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; नाहिक गणन-कोई गिनती नहीं है; शाखा-चन्द्र-न्याये-एक वृक्ष की शाखाओं के बीच में से चन्द्रमा दिखाने के न्याय द्वारा; करि-मैं कराता हूँ; दिक्-दरशन-केवल आँशिक दर्शन।

अनुवाद

"इस प्रकार कृष्ण के दिव्य रूपों का अनन्त विस्तार हुआ है। कोई भी उनकी गणना नहीं कर सकता। मैंने जो कुछ बतलाया है, वह मात्र एक झलक है। यह उसी तरह है, जैसाकि किसी वृक्ष की शाखाओं में से होकर चाँद को दिखलाना।"

इहा येइ शुने, पड़े, सेइ भाग्यवान् ।

कृष्णेर स्वरूप-तत्त्वेर हय किछु ज्ञान ॥405॥

इहा-यह वर्णन; येइ शुने–जो कोई सुनता है; पड़े-या पढ़ता है; सेइ-ऐसा व्यक्ति; भाग्यवान्-सर्वाधिक सौभाग्यशाली है; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; स्वरूप-तत्त्वेर-शारीरिक स्वरूपों का; हय हो जाता है; किछु-कुछ; ज्ञान-ज्ञान।

अनुवाद

"जो भी कृष्ण के शरीर के विस्तारों के इन विवरणों को सुनता है। या सुनाता है, वह निश्चित रूप से अत्यन्त भाग्यवान है। यद्यपि इसे समझ पाना बहुत कठिन है, किन्तु इससे कृष्ण के शरीर के विभिन्न स्वरूपों का कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाता है।"

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥406 ॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों में; यार-जिनकी; आश–आशा है; चैतन्य-चरितामृत- चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए, सदैव उनकी कृपा का इच्छुक, मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के बीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें बनारस में सनातन गोस्वामी द्वारा महाप्रभु से भेंट करने और परम सत्य विषयक ज्ञान प्राप्त करने का वर्णन हुआ है।

परिशिष्ट

श्रीचैतन्य-चरितामृत

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।

जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत

श्रीचैतन्य-चरितामृत

मध्य लीला, पंचम खण्ड

अध्याय 21-25

मूल बंगला श्लोक, श्लोक का हिन्दी लिप्यन्तरण,

शब्दार्थ, अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य सहित

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

विषय-सूची

भूमिका

अध्याय इक्कीस

भगवान् श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य तथा माधुर्य

अध्याय बाईस

भक्ति की विधि

अध्याय तेईस

जीवन का चरम लक्ष्य-भगवत्प्रेम

अध्याय चौबीस

आत्माराम श्लोक की 61 व्याख्याएँ

अध्याय पच्चीस

वाराणसी के सारे निवासियों का वैष्णव बनना

परिशिष्ट

लेखक परिचय

विशेष शब्दावली

श्लोकानुक्रमणिका

उद्धृत श्लोकों की अनुक्रमणिका

बांग्ला वर्णमाला

बांग्ला उच्चारण सम्बन्धी निर्देश

भूमिका

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा उपदेशों का मुख्य ग्रन्थ है। श्री चैतन्य महाप्रभु उस महान् सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, जो भारत में 500 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जिसने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरी धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधाराओं को न केवल भारत में अपितु समग्र विश्व में प्रभावित किया है। उन श्रीकृष्ण चैतन्य के प्रभाव को प्रसारित करने में कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भतिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के प्रयासों का मुख्य योगदान रहा है, जो इस ग्रन्थ के अनुवादक तथा भाष्यकार होने के साथ-साथ अन्तराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) के संस्थापक-आचार्य भी हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु को अतीव ऐतिहासिक महत्व का पुरुष माना जाता है। किन्तु ऐतिहासिक विश्लेषण की हमारी पारम्परिक विधि, जो व्यक्ति को उनके समय की उपज के रूप में देखती है, यहाँ पर विफल हो जाती है, क्योंकि श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसे पुरुष हैं, जो ऐतिहासिक व्यवस्था के सीमित क्षेत्र से परे हैं।

जिस समय पश्चिम में मानव भौतिक ब्रह्माण्ड की संरचना का अध्ययन करने तथा नवीन सागरों और महाद्वीपों की खोज में समुद्री यात्राएँ करने में अपनी अनुसन्धानात्मक शक्ति लगा रहा था, तभी पूर्व में श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसी क्रान्ति का प्रवर्तन एवं कुशल नेतृत्व कर रहे थे, जो मनुष्य के आध्यात्मिक स्वभाव के सर्वोच्च विज्ञान सम्मत ज्ञान की दिशा में निर्दिष्ट था।

श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवनचरित के मुख्य ऐतिहासिक स्रोत मुरारि गुप्त तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा लिखे गये कड़चा (दैनन्दिनियाँ) हैं। मुरारि गुप्त एक वैद्य तथा श्रीकृष्ण चैतन्य के अन्तरंग पार्षद थे, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास ग्रहण करने तक के प्रारम्भिक चौबीस वर्षों के विषय में विस्तृत टिप्पणियाँ लिखीं। श्री चैतन्य महाप्रभु के अड़तालीस वर्षों के जीवन की शेष घटनाएँ श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्य अन्तरंग पार्षद स्वरूप दामोदर गोस्वामी के कड़चा में अंकित हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृत के तीन खण्ड हैं, जिन्हें लीला कहा जाता है। ये हैंआदि लीला, मध्य लीला तथा अन्त्य लीला/मुरारि गुप्त का कडुचा ही आदि लीला का आधार है और स्वरूप दामोदर का कड़चा मध्य तथा अन्त्य लीलाओं के लिए विस्तृत विवरण प्रदान करता है।

आदिलीला के सत्रह अध्यायों में से प्रथम बारह अध्याय सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रस्तावना स्वरूप हैं। वैदिक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा कृष्णदास कविराज यह स्थापित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु कलियुग (जो पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जो भौतिकता, दम्भ तथा कलह का प्रतीक है) के लिए कृष्ण के अवतार हैं। लेखक यह भी प्रमाणित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण से अभिन्न हैं और अधम युग के पतितात्माओं को महामन्त्र के संकीर्तन का प्रचार करके शुद्ध भगवत्प्रेम उदारतापूर्ण वितरित करने के लिए अवतरित होते हैं। यह संकीर्तन महामन्त्र का बृहद् सार्वजनिक कीर्तन है। इसके उपरान्त कृष्णदास कविराज ने इस ग्रन्थ के बारहवें अध्याय में इस जगत् में श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का गुह्य प्रयोजन, उनके सह-अवतारों तथा प्रमुख भक्तों का वर्णन किया है और उनकी शिक्षाओं को सार रूप में प्रस्तुत की हैं। आदि लीला के शेष अध्यायों (13 से 17 तक) में लेखक ने चैतन्य महाप्रभु के दिव्य जन्म तथा संन्यास ग्रहण करने तक के जीवन का संक्षिप्त विवरण दिया है। इसमें उनके बचपन के चमत्कारों, अध्ययन, विवाह तथा प्रारम्भिक दार्शनिक शास्त्रार्थों के साथ-साथ उनके व्यापक संकीर्तन-आन्दोलन के संगठन तथा मुस्लिम सरकार द्वारा दमन के विरुद्ध उनके कानून अवज्ञा आन्दोलन का वर्णन है।

तीनों लीलाओं में सबसे लम्बी मध्यलीला की विषय वस्तु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा एक संन्यासी, शिक्षक, दार्शनिक तथा गुरु एवं योगी के रूप में सारे भारत की विस्तृत एवं घटनापूर्ण यात्राओं का विशद् वर्णन है। छह वर्षों की इस अवधि में श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्रमुख शिष्यों को शिक्षाएँ देते हैं। वे अपने समकालीन सुविख्यात दार्शनिकों तथा धर्मज्ञों से, जिनमें शंकराचार्य के अनुयायी, बौद्ध तथा मुसलमान सम्मिलित हैं, शास्त्रार्थ करते हैं और उन्हें तथा उनके शिष्य तथा अनुयायी वर्गों को अपने दल में सम्मिलित करते हैं। इस खण्ड में उड़ीसा में होने वाले विशाल

जगन्नाथ रथयात्रा उत्सव के अवसर पर चैतन्य महाप्रभु की चमत्कार-पूर्ण लीलाओं का विस्तृत विवरण सम्मिलित है।

अन्त्यलीला में श्री चैतन्य की प्रकट उपस्थिति के अन्तिम अठारह वर्षों का विवरण है, जिसे उन्होंने जगन्नाथ पुरी के सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर के निकट लगभग एकान्त में बिताये। इन अन्तिम वर्षों में श्रीकृष्ण चैतन्य भावसमाधि में गहरे उतरते गये, जो समस्त पूर्वी अथवा पाश्चात्य धार्मिक तथा साहित्यिक इतिहास में अद्वितीय है। उनके नित्य संगी स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा दिये गये प्रत्यक्षदर्शी विवरण, जिनसे श्री चैतन्य की शाश्वत तथा नित्य वर्धमान धार्मिक परमानन्द की अवस्था प्रकट होती है, आधुनिक मनोविज्ञानियों तथा प्रत्यक्षवादियों के धार्मिक अनुभवों की अनुसन्धानात्मक तथा विवरणात्मक क्षमताओं को स्पष्ट रूप से चुनौती देने वाले हैं।

इस महान् ग्रन्थ के रचयिता कृष्णदास कविराज गोस्वामी का जन्म 1507 ई. में हुआ था। वे चैतन्य महाप्रभु के विश्वस्त अनुयायी रघुनाथ दास गोस्वामी के शिष्य थे। रघुनाथ दास विख्यात वैरागी सन्त थे, जिन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा बतलाई गई चैतन्य महाप्रभु की समस्त लीलाओं को सुना था और स्मरण कर रखा था। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के निधन के बाद रघुनाथ दास ने अपने इन आराध्यों की विरह वेदना सहन न कर सकने के कारण गोवर्धन पर्वत से कूदकर आत्म-हत्या करने के उद्देश्य से वृन्दावन की यात्रा की। किन्तु वृन्दावन में उनकी भेंट चैतन्य महाप्रभु के दो सर्वाधिक अन्तरंग शिष्यों-रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से हुई, जिन्होंने उनसे आत्महत्या की योजना का परित्याग करने तथा चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम जीवन की प्रेरक घटनाओं को प्रकट करने के लिए प्रेरित किया। उस समय कृष्णदास कविराज गोस्वामी भी वृन्दावन में रह रहे थे, जिन्हें रघुनाथ दास गोस्वामी ने श्री चैतन्य के दिव्य जीवन का पूर्ण विवरण प्रदान किया।

उस समय तक श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवन पर अनेक समसामयिक विद्वान तथा भक्तों द्वारा कई जीवन-चरित विषयक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। इनमें मुरारि गुप्त कृत श्रीचैतन्य–चरित, लोचन दास ठाकुर कृत चैतन्य–मंगल तथा वृन्दावन दास कृत चैतन्य-भागवत सम्मिलित हैं, जिनमें से चैतन्य

भागवत के लेखक वृन्दावन दास ठाकुर को उस समय श्री चैतन्य के जीवन के विशेषज्ञ माने जाते थे। जब वृन्दावन दास इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना कर रहे थे, तब उन्होंने इस भय से श्री चैतन्य के जीवन की अनेक घटनाओं को, विशेषतया परवर्ती घटनाओं को सम्मिलित नहीं किया कि इससे ग्रन्थ का आकार बढ़ जायेगा। इस अन्तिम लीलाओं को सुनने के इच्छुक वृन्दावन के भक्तों ने कृष्णदास कविराज गोस्वामी से, जिन्हें वे महान् सन्त और विद्वान के रूप में सम्मान देते थे, यह अनुरोध किया कि इन घटनाओं का विस्तार से वर्णन करने वाले ग्रन्थ की रचना करें। इस अनुरोध पर तथा वृन्दावन के मदन मोहन अर्चाविग्रह की अनुमति तथा आशीर्वाद से उन्होंने श्रीचैतन्य चरितामृत की रचना प्रारम्भ की, जिसे चैतन्य महाप्रभु के गहन दर्शन तथा शिक्षाओं के सम्यक्र प्रस्तुतीकरण, एवं जीवन-चरित विषयक श्रेष्ठता के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा गूढ़ शिक्षा के सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में आज सारे विश्व में मान्यता दी जा रही है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने वृद्धावस्था में इस ग्रंथ पर कार्य प्रारम्भ किया, जब उनका स्वास्थ्य गिर चुका था। जैसाकि उन्होंने स्वयं लिखा है, "अब मैं अति वृद्ध एवं अक्षमता से विक्षुब्ध हूँ। लिखते समय मेरे हाथ काँपते हैं, मुझे ठीक से किसी बात का स्मरण नहीं हो पाता, न ही मैं ठीक से देख या सुन सकता हूँ फिर भी मैं लिखता हूँ जो कि अपने आप में एक महान् आश्चर्य है।" तो भी उन्होंने इस अक्षम अवस्था में मध्यकालीन भारत के इस महान्तम साहित्यिक मणि को पूरा किया, जो साहित्यिक इतिहास के आश्चर्यों में एक है।

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, इसका औग्रेजी अनुवाद कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा सम्पन्न किया गया, जो समग्र विश्व में भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा के सर्वाधिक विख्यात शिक्षक हैं। श्रील प्रभुपाद का भाष्य दो बँगला भाष्यों पर आधारित है-एक तो उनके गुरु, महान् वैदिक विद्वान, उपदेशक और संत श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, जिन्होंने भविष्यवाणी की थी कि, "एक समय ऐसा आयेगा, जब श्रीचैतन्य चरितामृत पढ़ने के लिए विश्वभर के लोग बँगला सीखेंगे" और दूसरा भाष्य श्रील भतिसिद्धान्त के पिता भक्तिविनोद

ठाकुर का जिन्होंने आधुनिक युग में श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के प्रचार में अग्रदूत का काम किया।

श्रील प्रभुपाद स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा में आते हैं और वे पहले विद्वान हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य के अनुयायियों के प्रमुख ग्रन्थों का आँग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। उनकी बँगला तथा संस्कृत में विद्वता और श्रीकृष्ण चैतन्य के उपदेशों से उनका अन्तरंग परिचय ऐसा उपयुक्त मेल है, जो उन्हें इस महत्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ को अंग्रेजी भाषी संसार के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए सर्वाधिक योग्य बनाता है। वे जिस सहजता तथा स्पष्टता से से पूर्णतया अपरिचित पाठक को भी इन गहन तथा स्मरणीय ग्रन्थ को समझने तथा उसकी प्रशंसा करने के लिए समर्थ बनाता है।

तात्पर्य समेत सम्पूर्ण मूल पाठ को नौ सचित्र खण्डों में भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो समकालीन मनुष्य के बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रमुख महत्वपूर्ण योगदान का प्रतिनिधित्व करता है।

श्रील प्रभुपाद के द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत का हिन्दी अनुवाद उनके शताब्दी उत्सव के अवसर पर प्रकाशित किया जा रहा है, जो भारत के भक्तों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

-प्रकाशक

अध्याय इक्कीस

भगवान् श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य तथा माधुर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इक्कीसवें अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है : इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्णलोक, आध्यात्मिक आकाश, कारण सागर तथा असंख्य ब्रह्माण्डों से युक्त भौतिक जगत् का पूर्ण वर्णन करते हैं। इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारका में कृष्ण के साथ ब्रह्माजी की भेंट तथा भगवान् द्वारा ब्रह्मा के गर्व को दूर किये जाने का वर्णन करते हैं। इसमें ब्रह्मा के साथ कृष्ण की एक लीला का भी वर्णन हुआ है। इसी अध्याय में चैतन्य-चरितामृत के लेखक ने कृष्ण की लीलाओं एवं कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य के विषय में कुछ सुन्दर पद्य प्रस्तुत किये हैं। शेष अध्याय में कृष्ण के साथ हमारे अन्तरंग सम्बन्धों का वर्णन है।

अगत्येक-गतिं नत्वा हीनाधिक-साधकम् ।

श्री-चैतन्यं लिखाम्यस्य माधुर्यैश्वर्य-शीकरम् ॥ 1॥

अगति-एक-गतिम्-जीवन के लक्ष्य के प्रति अज्ञानी बद्धजीवों के एकमात्र आश्रय को; नत्वा-प्रणाम करते हुए; हीन-अर्थ-आध्यात्मिक ज्ञान से विहीन बद्धजीवों की आवश्यकतों को; अधिक-बढ़कर; साधकम्-प्रदान करने वाले; श्री-चैतन्यम्-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को; लिखामि-मैं लिख रहा हूँ; अस्य-उनके; माधुर्य-ऐश्वर्य-माधुर्य तथा ऐश्वर्य का; शीकरम्-एक अल्प अंश।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करते हुए मैं उनके ऐश्वर्य तथा माधुर्य के एक कणमात्र का वर्णन करता हूँ। वे आध्यात्मिक ज्ञान से रहित पतित बद्धात्माओं के लिए

अत्यन्त हितकारी हैं और वे उन लोगों के लिए एकमात्र आश्रय हैं, जो जीवन के वास्तविक लक्ष्य को नहीं जानते।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय-जय हो; जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैत आचार्य की जय हो! श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

सर्व स्वरूपेर धाम—परव्योम-धामे ।

पृथक्-पृथक् वैकुण्ठ सब, नाहिक गणने ॥ 3॥

सर्व-सभी; स्वरूपेर-स्वरूपों के; धाम-आश्रय; पर-व्योम-धामे-आध्यात्मिक आकाश में; पृथक्-पृथक्-अलग-अलग; वैकुण्ठ–वैकुण्ठ लोक; सब–सभी; नाहिक गणने-जिनकी गिनती नहीं की जा सकती।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "भगवान् के सारे दिव्य रूप आध्यात्मिक आकाश में पाये जाते हैं। वे उस धाम में वैकुण्ठ लोकों की अध्यक्षता करते हैं, किन्तु उन वैकुण्ठ लोकों की कोई गणना नहीं है।"

शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, कोटी-योजन ।

एक एक वैकुण्ठेर विस्तार वर्णन ॥4॥

शत-सौ; सहस्र-हजार; अयुत-दस हजार; लक्ष-लाख; कोटी-करोड़; योजन-योजन (8 मील); एक एक प्रत्येक; वैकुण्ठेर–वैकुण्ठ लोक के; विस्तार-फैलाव का; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

प्रत्येक वैकुण्ठ लोक की चौड़ाई आठ सौ, आठ हजार, अस्सी हजार, आठ लाख, आठ करोड़ मील है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक वैकुण्ठ लोक का विस्तार हमारी मापने की शक्ति के परे है।

सब वैकुण्ठ–व्यापक, आनन्द-चिन्मय ।

पारिषद-षडैश्वर्य-पूर्ण सब हय ॥5॥

सब-सभी; वैकुण्ठ-आध्यात्मिक लोक; व्यापक–विस्तृत; आनन्द-चित्-मय-आध्यात्मिक आनन्द से भरे हुए; पारिषद-पार्षद; षट्-ऐश्वर्य-छः प्रकार के ऐश्वर्य से; पूर्ण–पूरे; सब–सभी; हय-हैं।

अनुवाद

"प्रत्येक वैकुण्ठ लोक विस्तृत है और आध्यात्मिक आनन्द से निर्मित है। इसके सारे निवासी भगवान् के पार्षद हैं और उनमें स्वयं भगवान् जैसा ही पूर्ण ऐश्वर्य पाया जाता है। वैकुण्ठलोक इस तरह स्थित हैं।"

अनन्त वैकुण्ठ एक एक देशे यार ।

सेइ परव्योम-धामेर के करु विस्तार ॥ 6 ॥

अनन्त वैकुण्ठ-असंख्य वैकुण्ठ लोक; एक एक विशिष्ट; देशे–स्थान में; यार-जिसके; सेइ-उस; पर-व्योम-आध्यात्मिक आकाश के; धामेर-धाम का; के करु विस्तार–विस्तार कौन समझ सकता है।

अनुवाद

"चूँकि सारे वैकुण्ठ लोक परव्योम के किसी एक एक कोने में स्थित हैं, अतः उस परव्योम को कौन माप सकता है?"

अनन्त वैकुण्ठ-परव्योम यार दल-श्रेणी ।

सर्वोपरि कृष्णलोक 'कर्णिकार' गणि ॥7॥

अनन्त-असंख्य; वैकुण्ठ-वैकुण्ठ लोक; पर-व्योम-आध्यात्मिक आकाश; यार-जिसके; दल-श्रेणी-पंखुड़ियों के ढेर; सर्व-उपरि–आध्यात्मिक आकाश के सर्वश्रेष्ठ भाग में; कृष्ण-लोक-भगवान् कृष्ण का लोक; कर्णिकार गणि-हम कमल पुष्प की कर्णिका मानते हैं।

अनुवाद

"परव्योम के आकार की तुलना कमल के फूल से की जाती है। इस फूल का सबसे ऊपरी भाग कर्णिका कहलाता है और उसी कर्णिका के भीतर कृष्ण का धाम है। इस आध्यात्मिक कमल फूल की पंखुड़ियाँ ही अनेक वैकुण्ठ लोक हैं।"

एइ-मत षड्-ऐश्वर्य, स्थान, अवतार ।

ब्रह्मा, शिव अन्त ना पाय—जीव कोन् छार ॥8॥

एइ-मत-ऐसे; षट्-ऐश्वर्य-छः ऐश्वर्य; स्थान-निवास; अवतार-अवतार; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; शिव-शिवजी; अन्त ना पाय-सीमा नहीं जान सके; जीव-जीवात्मा; कोन्-क्या है; छार-तुच्छ।

अनुवाद

“प्रत्येक वैकुण्ठ लोक दिव्य आनन्द, पूर्ण ऐश्वर्य तथा स्थान से पूर्ण है और हर एक में अवतारों का निवास है। यदि ब्रह्माजी तथा शिवजी आध्यात्मिक आकाश तथा वैकुण्ठ लोकों की लम्बाई तथा चौड़ाई नहीं माप सकते, तो भला सामान्य जीव किस तरह उनकी कल्पना कर सकता है?”

को वेत्ति भूमन्भगवन्परात्मन्

योगेश्वरोतीर्भवतत्रि-लोक्याम् ।

क्व वा कथं वा कति वा कदेति

विस्तारयन्क्रीड़सि योग-मायाम् ॥9॥

कः-कौन; वेत्ति-जानता है; भूमन्-हे परम महान्; भगवन्-हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; पर-आत्मन्-हे परमात्मा; योग-ईश्वर-हे योग शक्तियों के स्वामी; ऊतीः-लीलाएँ; भवतः-आपकी; त्रि-लोक्याम्-तीनों लोकों में; क्व–कहाँ; वा-किस प्रकार; कथम्-कैसे; वा-या; कति-कितने; वा-या; कदा-कब; इति-ऐसे; विस्तारयन्-विस्तार करके; क्रीड़सि-आप खेलते हैं; योग-मायाम्-आध्यात्मिक शक्ति।

अनुवाद

“हे परम पूर्ण! हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्! हे परमात्मा, समस्त योगशक्तियों के स्वामी! आपकी लीलाएँ इन संसारों में लगातार चलती रहती हैं, किन्तु इसका अनुमान कौन लगा सकता है कि आप कहाँ, कैसे, और कब अपनी आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग कर रहे हैं और अपनी लीलाएँ प्रकट कर रहे हैं? इन कार्यों के रहस्य को कोई नहीं समझ सकता।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.14.21) से लिया गया है।

एइ-मत कृष्णेर दिव्य सद्गुण अनन्त ।

ब्रह्मा-शिव-सनकादि ना पाय याँर अन्त ॥10॥

एइ-मत-इस प्रकार; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; दिव्य-दिव्य गुण; सत्-गुण-आध्यात्मिक गुण; अनन्त-असीमित; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; शिव-शिवजी; सनक-आदि-चार कुमार आदि; ना-नहीं; पाय-प्राप्त करते; याँर-जिनकी; अन्त-सीमा।

अनुवाद

"कृष्ण के आध्यात्मिक गुण भी अनन्त हैं। ब्रह्माजी, शिवजी तथा चारों कुमार जैसे महापुरुष भी भगवान् के इन दिव्य गुणों का पार नहीं पा सकते।"

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं

हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ।

कालेन चैव विमिताः सु-कल्पैर्

भू-पांशवः खे मिहिका द्यु-भासः ॥11॥

गुण-आत्मनः-तीन गुणों के उपदृष्टा; ते-आपके; अपि-अवश्य; गुणान्-गुणों की; विमातुम् गिनती के लिए; हित-अवतीर्णस्य-जो सभी जीवों के कल्याण के लिए प्रकट हुए हैं; के-कौन; ईशिरे-समर्थ थे; अस्य-ब्रह्माण्ड के; कालेन-समय आने पर; यैः–जिसके द्वारा; वा-या; विमिताः-गिने जायें; सु-कल्यैः-महान् विज्ञानियों द्वारा; भू-पांशवः–ब्रह्माण्ड के परमाणु; खे-आकाश में; मिहिकाः-बर्फ के कण; द्यु-भासः-चमकते सितारे तथा ग्रह।

अनुवाद

"भले ही समय आने पर बड़े बड़े वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड के सारे परमाणुओं, आकाश के सारे नक्षत्रों तथा ग्रहों तथा बर्फ के सारे कणों की गणना कर लें, किन्तु उनमें से ऐसा कौन है,

जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अनन्त दिव्य गुणों की गणना कर सके? वे समस्त जीवों के लाभ के लिए इस धरातल पर अवतरित होते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक भी श्रीमद्भागवत (10.14.7) से लिया गया है।

ब्रह्मादि रहु—सहस्र-वदने 'अनन्त'।

निरन्तर गाय मुखे, ना पाय गुणेर अन्त ॥12॥

ब्रह्मा-आदि रहु-ब्रह्माजी आदि को छोड़िये; सहस्र-वदने-हजारों मुखों से; अनन्त-भगवान् अनन्त; निरन्तर-लगातार; गाय-गाते हैं; मुखे-मुखों से; ना पाय-नहीं पाते; गुणेर-भगवान् के गुणों का; अन्त–अन्त।

अनुवाद

"ब्रह्माजी की तो कोई बात ही नहीं, हजार सिर वाले भगवान् अनन्त भी भगवान् के दिव्य गुणों का पार नहीं पा सकते, यद्यपि वे निरन्तर उनका महिमागान करते रहते हैं।"

नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते

माया-बलस्य पुरुषस्य कुतोऽवरा ये।

गायन् गुणान् दश-शतानन आदि-देवः।

शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥ 13 ॥

न अन्तम्-कोई सीमा नहीं; विदामि-जानता; अहम्-मैं; अमी-उन; मुनयः-महान् सन्त; अग्रजाः-बड़े भाई; ते-आपके; माया-बलस्य–जिनकी विविध शक्तियाँ हैं; पुरुषस्य–परम भगवान् की; कुतः-किस प्रकार; अवराः–कम बुद्धि वाले; ये-जो; गायन्-गाते हैं; गुणान्–गुणों को; दश-शत-आननः-

जिनके हजार फन हैं; आदि-देवः-परम भगवान्; शेषः-अनन्त शेष; अधुना अपि-अब तक भी; समवस्यति–पहुँचते; न–नहीं; अस्य-भगवान् की; पारम्-सीमा।

अनुवाद

"यदि मैं, ब्रह्मा तथा तुम्हारे बड़े भाई, महान् ऋषि तथा मुनि विविध शक्तियों से युक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का पार नहीं पा सकते, तो फिर उन्हें और कौन समझ सकता है? यद्यपि हजार फनों वाले भगवान् शेष निरन्तर उनके दिव्य गुणों का कीर्तन करते हैं, फिर भी वे भगवान् के कार्यकलापों का अभी तक पार नहीं पा सके हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक नारद मुनि को कही गई ब्रह्माजी की उक्ति है और यह श्रीमद्भागवत (2.7.41) से लिया गया है।

सेहो रहु—सर्वज्ञ-शिरोमणि श्री कृष्ण।

निज-गुणेर अन्त ना पाञा हयेन सतृष्ण ॥14॥

सेहो रहु-उन्हें (अनन्त को) छोड़ो; सर्व-ज्ञ-सब जानने वाले; शिरोमणि-सर्वश्रेष्ठ; श्री-कृष्ण-भगवान् कृष्ण; निज-गुणेर-अपने व्यक्तिगत गुणों की; अन्त-सीमा; ना-नहीं; पाञा-पाकर; हयेन हो जाते हैं; स-तृष्ण-अत्यन्त उत्सुक।

अनुवाद

"अनन्तदेव को भी जाने दें, स्वयं भगवान् कृष्ण भी अपने दिव्य गुणों का अन्त नहीं पा सकते। निश्चय ही, वे स्वयं उन्हें जानने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं।"

द्यु-पतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया

त्वमपि यदन्तराण्ड-निचया ननु सावरणाः ।

ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छतयस्

त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥ 15॥

द्यु-पतयः-उच्च लोकों के अधिष्ठाता देवता (ब्रह्माजी तथा अन्य); एव-भी; ते-आपके; न ययुः–नहीं पहुँच सकते; अन्तम्-दिव्य गुणों की सीमा; अनन्ततया-असीमित होने के कारण; त्वम् अपि-आप भी; यत्-क्योंकि; अन्तर–आपके भीतर; अण्ड-निचयाः-ब्रह्माण्डों के समूह; ननु-हे महाशय; स-अवरणाः-विभिन्न आवरणों से युक्त; खे-आकाश में; इव-जैसे; रजांसि-परमाणुओं को; वान्ति-घुमाता है; वयसा-समय के; सह-साथ; यत्-जो; श्रुतयः-वेदों को समझने वाले महात्मा; त्वयि-आप में; हि-निश्चित रूप से; फलन्ति-अन्त होता है; अतन् निरसनेन–निकृष्ट तत्त्वों का तिरस्कार करके; भवत्-निधनाः-जिनका निष्कर्ष आपमें है।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप अनन्त हैं। ब्रह्माजी समेत उच्चतर ग्रह-मण्डलों के प्रमुख आधिष्ठाता देवता भी आपका पार नहीं पा सकते। न ही स्वयं आप अपने गुणों की सीमा पा सकते हैं। आकाश में परमाणुओं की तरह सात आवरणों से युक्त असंख्य ब्रह्माण्ड हैं और वे सब कालक्रमानुसार घूम रहे हैं। वेदविद्या में निपुण सारे लोग भौतिक तत्त्वों का हटाते हुए आपको खोज रहे हैं। इस तरह लगातार खोज करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आपमें हर वस्तु पूर्ण है। इस तरह आप हर वस्तु के आश्रय हैं। यह समस्त वैदिक पण्डितों का निष्कर्ष है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.87.41) का है, जो मूर्तिमान् वेदों द्वारा कहा गया था और जिसकी पुष्टि भगवान् कृष्ण द्वारा भगवद्गीता (7.19) में की गई है :

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

"जो वास्तव में ज्ञानी है, वह अनेक जन्म-जन्मांतरों के बाद मुझे समस्त कारणों का कारण जानकर मेरी शरण में आता है। ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ होता है।" ब्रह्माण्ड-भर में परम सत्य की खोज करने के बाद भी विद्वान तथा वैदिक पण्डित चरम लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाते। अतः वे कृष्ण के पास आते हैं।

परम सत्य विषयक विवेचना करते समय हमेशा अनेक तर्क-वितर्क सामने आते हैं। ऐसे तर्कों का उद्देश्य सही निष्कर्ष तक पहुँचना होता है। ऐसा तर्क प्रायः नेति नेति कहलाता है ("यह नहीं; वह नहीं")। सही निष्कर्ष पर पहुँचने तक सोचने की यह प्रक्रिया–"यह परम सत्य नहीं है, वह परम सत्य नहीं है," चलती रहती है। किन्तु सही निष्कर्ष पर पहुँचते ही हम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को परम सत्य के रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

सेह रहु—व्रजे यबे कृष्ण अवतार ।

ताँर चरित्र विचारिते मन ना पाय पार ॥ 16॥

सेह रहु-ऐसे नकारात्मक तर्क छोड़ो; व्रजे-वृन्दावन में; यबे-जब; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतार–अवतरित होते हैं; ताँर-उनके; चरित्र-चरित्र; विचारिते-विचार करने का; मन–मन; ना-नहीं; पाय-पाता; पार-सीमा।

अनुवाद

"इन सारे तर्कों, न्याय, नकारात्मक अथवा सकारात्मक प्रक्रियाओं से अलग जब वृन्दावन में कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में विद्यमान थे, तब उनके लक्षणों तथा कार्यकलापों का अध्ययन करके कोई उनकी शक्तियों का पार नहीं पा सका।"

प्राकृताप्राकृत सृष्टि कैला एक-क्षणे ।

अशेष-वैकुण्ठाजाण्ड स्व-स्व-नाथ–सने ॥ 17॥

प्राकृत-अप्राकृत-भौतिक तथा आध्यात्मिक; सृष्टि-रचना; कैला–किये; एक-क्षणे-एक क्षण में; अशेष-असंख्य; वैकुण्ठ-वैकुण्ठ लोक; अज-अण्ड-भौतिक लोग; स्व-स्व-नाथ-सने–उनके अपने-अपने अधिष्ठाता देवताओं के साथ।

अनुवाद

"भगवान् ने वृन्दावन में समस्त भौतिक तथा आध्यात्मिक लोकों की रचना क्षण-भर में कर दी। उन सबकी सृष्टि उनके अधिष्ठाताओं समेत की गई।"

ए-मत अन्यत्र नाहि शुनिये अद्भुत ।

याहार श्रवणे चित्त हय अवधूत ॥18॥

ए-मत-इस तरह; अन्यत्र-कहीं और; नाहिं-नहीं; शुनिये-मैं सुनता हूँ; अद्भुत-अद्भुत कार्यकलाप; याहार–जिनका; श्रवणे-श्रवण करके; चित्त-चेतना; हय-हो जाती है; अवधूत-उत्तेजित तथा शुद्ध।

अनुवाद

"हमें ऐसी अद्भुत बातें अन्यत्र सुनाई नहीं पड़तीं। उन घटनाओं के श्रवण मात्र से मनुष्य का चित्त उत्तेजित होकर विमल हो जाता है।"

तात्पर्य

जब भगवान् कृष्ण इस धरा पर वृन्दावन में विद्यमान थे, तब बह्माजी ने उन्हें सामान्य ग्वालबाल समझकर उनकी शक्ति की परीक्षा लेनी चाही। इसलिए उन्होंने कृष्ण के सारे बछड़ों और ग्वालबालों को चुरा लिया और अपनी माया से उन्हें छिपा दिया। जब कृष्ण ने देखा कि ब्रह्मा ने उनके सारे बछड़े तथा ग्वालबाल चुरा लिए हैं, तो उन्होंने तुरन्त ही ब्रह्मा के सामने ही अनेक भौतिक तथा आध्यात्मिक लोक उत्पन्न कर दिये। क्षण-भर में बछड़े, ग्वालबाल तथा अनन्त वैकुण्ठ भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति के विस्तार रूप में प्रकट हो गये। जैसाकि ब्रह्म-संहिता में कहा गया है- आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिः कृष्ण ने न केवल अपनी आध्यात्मिक शक्ति के समस्त साज-सामान ही उत्पन्न किये, अपितु उन्होंने असंख्य ब्रह्माओं सहित अनन्त भौतिक ब्रह्माण्डों की भी रचना कर दी। श्रीमद्भागवत में वर्णित इन सारी लीलाओं से मनुष्य का चित्त विमल होगा। इस तरह वह परम सत्य को वास्तव में समझ सकता है। आध्यात्मिक आकाश में आध्यात्मिक लोक वैकुण्ठ कहलाते हैं और इन सबके अपने-अपने विशिष्ट अधिष्ठाता (नारायण) अपने विशिष्ट नाम के साथ होते हैं। इसी तरह भौतिक आकाश में असंख्य ब्रह्माण्ड हैं और उनमें से प्रत्येक के अधिष्ठाता देव, ब्रह्मा होते हैं। क्षण-भर बाद जब ब्रह्मा लौटे, तो कृष्ण ने इन सारे वैकुण्ठों तथा ब्रह्माण्डों की सृष्टि एक ही साथ कर दी।

अवधूत शब्द का अर्थ है क्षुब्ध, गतिमान, मग्न, पराजित। श्रीचैतन्य-चरितामृत के कुछ संस्करणों में याहार श्रवणे चित्तमल हय धूत मिलता है। अवधूत के स्थान पर हय धूत शब्द आये हैं, जिनका अर्थ यह है कि हृदय या चेतना स्वच्छ हो जाती है। चेतना स्वच्छ हो जाने पर मनुष्य समझ सकता है। कि कृष्ण क्या हैं और कौन हैं। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (7.28) में कृष्ण द्वारा भी होती है :

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

“जिन लोगों ने पूर्वजन्मों में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये हैं और जिनके पापमय कृत्य पूरी तरह नष्ट हो चुके हैं, वे मोह के द्वैत से मुक्त हो जाते हैं और वे दृढ़ संकल्प के साथ मेरी सेवा में लग जाते हैं।” पापमय कृत्यों के फल से मुक्त हुए बिना कोई भी व्यक्ति न तो कृष्ण को समझ सकता है न उनकी दिव्य प्रेमाभक्ति में लग सकता है।

“कृष्ण-वत्सैरसङ्ख्यातैः”—शुकदेव-वाणी ।

कृष्ण-सङ्गे कत गोप—सङ्ख्या नाहि जानि ॥19॥

कृष्ण-वत्सैः असङ्ख्यातैः-कृष्ण असंख्य बछड़ों तथा ग्वालबालों के साथ रहते थे; शुकदेव-वाणी-शुकदेव गोस्वामी के वचन; कृष्ण-सङ्गे-भगवान् कृष्ण के साथ; कत गोप–कितने गोप सखा होते हैं; सङ्ख्या-गिनती; नाहि जानि-हम नहीं जानते।

अनुवाद

“शुकदेव गोस्वामी के अनुसार कृष्ण के पास अनन्त बछड़े तथा ग्वालबाल थे। उनकी सही-सही संख्या कोई नहीं गिन सकता था।”

एक एक गोप करे ये वत्स चारण ।

कोटि, अर्बुद, शङ्ख, पद्म, ताहार गणन ॥20॥

एक एक-एक के बाद एक; गोप-ग्वालबाल; करे-करता है; ग्रेजितने; वत्स-बछड़ों का; चारण-चराना; कोटि–1 करोड़; अर्बुद–10 करोड़; शङ्ख-100 करोड़; पद्म–10 खरब; ताहार गणन-उनकी गणना।

अनुवाद

हर ग्वालबाल करोड़, अर्बुद, शंख तथा पद्म तक की गिनती में बछड़े चरा रहा था। उनकी गणना की यही विधि है।

तात्पर्य

वैदिक गणित के अनुसार निम्नलिखित संख्या-पद्धति काम में लाई जाती है-इकाई, दहाई (दश), सैकड़ा (शत), हजार (सहस्र), दस हजार (अयुत), तथा लाख (लक्ष) । दस लाख बराबर एक नियुत, दस नियुत बराबर एक कोटि, तथा दस कोटि बराबर एक अर्बुद होता है। दस अर्बुद बराबर एक वृन्द, दस वृन्द बराबर एक खर्व, दस खर्व बराबर एक निखर्व, दस निखर्व बराबर एक शंख, दस शंख बराबर एक पद्म तथा दस पद्म बराबर एक सागर होता है। दस सागर बराबर एक अन्त्य और दस अन्त्य बराबर एक मध्य और दस मध्य बराबर एक परार्ध होता है। हर संख्या पिछली संख्या का दस गुना है। इस तरह कृष्ण के संगी सारे ग्वालबालों के पास चराने के लिए अनेक बछड़े थे।

वेत्र, वेणु, दल, शृङ्ग, वस्त्र, अलङ्कार ।

गोप-गणेर यत, तार नाहि लेखा-पार ॥21॥

वेत्र-छड़ी; वेणु–बाँसुरियाँ; दल-कमलपुष्प; शृङ्ग-सींग का बाजा; वस्त्र-वस्त्र; अलङ्कार-आभूषण; गोप-गणेर यत-ग्वालबालों के पास जितने हैं; तार–उनकी; नाहि-नहीं है; लेखा-पार-लिखने की सीमा।

अनुवाद

“सारे ग्वालबालों के पास असंख्य बछड़े थे। इसी तरह उनकी छड़ियाँ, बाँसुरियाँ, कमल के फूल, सींग के बाजे, वस्त्र तथा आभूषण भी असंख्य थे। उनके विषय में लिखकर उनकी संख्या सीमित नहीं की जा सकती।”

सबे हैला चतुर्भुज वैकुण्ठेर पति ।

पृथक्-पृथक् ब्रह्माण्डेर ब्रह्मा करे स्तुति ॥ 22 ॥

सबे–वे सभी; हैला-हो गये; चतुर्भुज-चार भुजाओं से युक्त; वैकुण्ठेर पति-वैकुण्ठ लोकों के स्वामी; पृथक्-पृथक्-अलग-अलग; ब्रह्माण्डेर-ब्रह्माण्डों के; ब्रह्मा-ब्रह्मा नामक अधिष्ठाता देवता; करे स्तुति-प्रार्थनाएँ करते हैं।

अनुवाद

"तब सारे ग्वालबाल वैकुण्ठपति चतुर्भुज नारायण बन गये, और विभिन्न ब्रह्माण्डों के पृथक्-पृथक् ब्रह्मा उन भगवानों की स्तुति करने लगे।"

एक कृष्ण-देह हैते सबार प्रकाशे ।

क्षणेके सबाइ सेइ शरीरे प्रवेशे ॥23॥

एक–एक; कृष्ण-देह-कृष्ण के दिव्य शरीर; हैते–से; सबार-सभी का; प्रकाशे-प्राकट्य; क्षणेके-एक क्षण में; सजाइ-वे सभी; सेइ शरीरे-कृष्ण के शरीर में प्रवेशे-प्रवेश कर जाते हैं।

अनुवाद

"ये सारे दिव्य शरीर कृष्ण के ही शरीर से उद्भूत हुए और क्षण-भर में ही वे सभी पुनः उनके शरीर में प्रवेश कर गये।"

इहा देखि' ब्रह्मा हैला मोहित, विस्मित ।

स्तुति करि' एइ पाछे करिला निश्चित ॥ 24॥

इहा देखि'–यह देखकर; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; हैला-हो गये; मोहित-चकित; विस्मित-आश्चर्य से स्तब्ध; स्तुति करि'-प्रार्थनाएँ करके; एइ-यह; पाछे-अन्त में; करिला–किया; निश्चित-निष्कर्ष।

अनुवाद

“जब इस ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा ने यह लीला देखी, तो वे आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने स्तुति करने के बाद यह निर्णय किया।”

ये कहे—‘कृष्णेर वैभव मुञि सब जानों’ ।

से जानुक,—काय-मने मुञि एइ मानों ॥25॥

ये कहे-यदि कोई कहता है; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; वैभव-ऐश्वर्य; मुञि-मैं; सब-सब; जानों-जानता हूँ; से जानुक-उसे जानने दो; काय-मने-अपने शरीर और मन से; मुञि-मैं; एइ–यह; मानों-स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

“ब्रह्मा ने कहा, ‘यदि कोई कहता है कि वह कृष्ण के ऐश्वर्यों के विषय में सब कुछ जानता है, तो वह भले ही ऐसा सोचता रहे। किन्तु जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो अपने शरीर तथा मन से इस तरह मानता हूँ।”

एइ ये तोमार अनन्त वैभवामृत-सिन्धु ।

मोर वाङ्-मनो-गम्य नहे एक बिन्दु ॥ 26 ॥

एइ ये-ये सब; तोमार-आपके; अनन्त-असीमित; वैभव-अमृत-सिन्धु–आपके ऐश्वर्य के अमृत का सागर की; मोर-मेरे; वाक्-मनः-गम्य-शब्दों तथा मन की पहुँच के भीतर; नहे–नहीं; एक बिन्दु-एक बूँद भी।

अनुवाद

“हे प्रभु, आपका वैभव असीम अमृत सागर के समान है। मैं मौखिक रूप से या मानसिक रूप से इस सागर की एक बूँद का भी अनुभव नहीं कर सकता हूँ।”

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न में प्रभो ।

मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ 27॥

जानन्तः–जो लोग सोचते हैं कि वे आपके अनन्त वैभवों को जानते हैं; एव-अवश्य; जानन्तु-उन्हें ऐसा सोचने दीजिये; किम्-क्या लाभ है; बहु-उक्त्या-अनेक बातों से; न–नहीं; मे-मेरा; प्रभो-हे प्रभु, मनसः-मन की; वपुषः–शरीर की; वाचः-वचनों की; वैभवम्-ऐश्वर्यों का; तव-आपकी; गोचरः-सीमा के भीतर।

अनुवाद

"ऐसे लोग भी हैं, जो यह कहते हैं कि, "मैं कृष्ण के विषय में सब जानता हूँ।" उन्हें ऐसा सोचने दें। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं इस विषय में अधिक नहीं कहना चाहता। हे प्रभु, मुझे इतना ही कहने दें। जहाँ तक आपके वैभव का सम्बन्ध है, वे मेरे मन, शरीर तथा शब्दों की पहुँच के बाहर हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.14.38) का है, जिसे ब्रह्मा ने कृष्ण के बछड़ों तथा ग्वालबालों को चुरा लाने और कृष्ण द्वारा अपने वैभव के बल से उन चुराए बछड़ों तथा ग्वालबालों को अपने विष्णुमूर्ति विस्तारों द्वारा पुनः उत्पन्न किये जाने पर, प्रार्थना रूप में कहा था। इसे देखने के बाद ब्रह्मा ने उपर्युक्त प्रार्थना की।

कृष्णेर महिमा रहु—केबा तार ज्ञाता ।

वृन्दावन-स्थानेर देख आश्चर्य विभुता ॥ 28॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; महिमा-महिमा; रह-होने दो; केबा-जो; तार-उनको; ज्ञाता-जानने वाला; वृन्दावन-स्थानेर-कृष्ण के निवास, वृन्दावन का; देख–जरा देखो; आश्चर्य-अद्भुत; विभुता-ऐश्वर्य।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण की महिमा बनी रहे! भला उन सबसे अवगत कौन हो सकता है? उनके धाम वृन्दावन में अनेक अद्भुत वैभव हैं। कृपया उन्हें देखने का प्रयत्न तो करें।"

षोल-क्रोश वृन्दावन,—शास्त्रेर प्रकाशे ।

तार एक-देशे वैकुण्ठाजाण्ड-गण भासे ॥ 29॥

षोल-क्रोश-16 कोस (32 मील); वृन्दावन-वृन्दावन धाम; शास्त्रेर प्रकाशे-शास्त्रों के वचनानुसार; तार-वृन्दावन के; एक-देशे–एक कोने में; वैकुण्ठ–सभी वैकुण्ठ लोक; अजाण्ड-गण-असंख्य ब्रह्माण्ड; भासे–स्थित हैं।

अनुवाद

"प्रामाणिक शास्त्रों के कथन के अनुसार वृन्दावन सोलह कोस तक (32 मील) फैला हुआ है। फिर भी सारे वैकुण्ठ लोक तथा असंख्य ब्रह्माण्ड इस क्षेत्र के एक कोने में ही स्थित हैं।"

तात्पर्य

व्रज की भूमि विभिन्न वनों में विभाजित है। ऐसे वनों की पूरी संख्या 12 है और इनका विस्तार 84 कोस बतलाया जाता है। इनमें से विशेष वृन्दावन नामक वन वर्तमान वृन्दावन शहर से नन्दग्राम तक विस्तृत है। यह पूरा सोलह कोस या बत्तीस मील है।

अपार ऐश्वर्य कृष्णेर—नाहिक गणन ।

शाखा-चन्द्र-न्याये करि दिग्दरशन ॥30॥

अपार-असीमित; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; नाहिक गणन-कोई अनुमान नहीं है; शाखा-चन्द्र-न्याये-पेड़ की शाखाओं के माध्यम से चन्द्र को देखने के न्याय द्वारा; करि-मैं करवाता हूँ; दिक्-दरशन-एक झलक मात्र।

अनुवाद

"कृष्ण के ऐश्वर्य का अनुमान लगा पाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। वह असीम है। फिर भी जिस तरह वृक्ष की शाखाओं से होकर चन्द्रमा दिखता है, उसी तरह मैं संकेत मात्र करना चाहता हूँ।"

तात्पर्य

सबसे पहले बालक को वृक्ष की शाखाएँ दिखलाई जाती हैं, फिर उसे उन शाखाओं से होकर झाँकता चन्द्रमा दिखलाया जाता है। यह शाखा-चन्द्र-न्याय कहलाता है। भाव यह है कि पहले सरल उदाहरण प्रस्तुत करके तब कठिनतर पृष्ठभूमि की विवेचना की जाती है।

ऐश्वर्य कहिते स्फुरिल ऐश्वर्य-सागर ।

मनेन्द्रिय डुबिला, प्रभु हइला फाँपर ॥ 31॥

ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; कहिते-वर्णन करते हुए; स्फुरिल-उत्पन्न हो गया; ऐश्वर्य-सागर-ऐश्वर्य का सागर; मन-इन्द्रिय-मन नामक मुख्य इन्द्रिय; डुबिला-निमग्न हो गई; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हइला–हो गये; फाँपर-विस्मित।

अनुवाद

“कृष्ण के दिव्य ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु के मन में ऐश्वर्य का सागर लहराने लगा और उनका मन तथा उनकी इन्द्रियाँ उसी सागर में निमग्न हो गईं। इस तरह वे विक्षुब्ध हो उठे।”

भागवतेर एइ श्लोक पड़िला आपने ।

अर्थ आस्वादिते सुखे करेन व्याख्याने ॥ 32॥

भागवतेर-श्रीमद्भागवत का; एइ–यह; श्लोक-श्लोक; पड़िला-उच्चारण किया; आपने स्वयं; अर्थ-अर्थ; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; सुखे-सुख में; करेन व्याख्याने-अर्थ वर्णन करने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत का निम्नलिखित श्लोक स्वयं सुनाया और इसके अर्थ के आस्वादन के लिए वे स्वयं ही इसकी व्याख्या करने लगे।

स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः

स्वाराज्य-लक्ष्म्याप्त-समस्त-कामः ।

बलिं हरद्भिश्चिर-लोक-पालैः

किरीट-कोटीड़ित-पाद-पीठः ॥ 33॥

स्वयम्-स्वयं परम भगवान्; तु–लेकिन; असाम्य-अतिशयः-जिनके समान तथा उनसे बढ़कर कोई नहीं है; त्रि-अधीशः-गोलोक वृन्दावन, वैकुण्ठ लोक तथा भौतिक जगत् नामक तीनों स्थानों के स्वामी, अथवा महाविष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा कारणोदकशायी विष्णु के स्वामी अथवा ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर के स्वामी, अथवा तीनों लोगों (उच्च, अधो तथा मध्य लोक) के स्वामी; स्वाराज्य-लक्ष्मी-अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा; आप्त-पहले से ही प्राप्त; समस्त-कामः-सभी इच्छित वस्तुएँ;

बलिम्-उपहार या कर; हरद्भिः-जो दे रहे हैं; चिर-लोक-पालैः–विभिन्न लोकों के देवताओं द्वारा; किरीट-कोटि-करोड़ों मुकुटों द्वारा; ईड़ित-पूजित; पाद-पीठः-जिनके चरणकमल।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण तीनों लोकों तथा तीन प्रमुख देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) के स्वामी हैं। कोई न तो उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर है। उनकी सारी इच्छाएँ उनकी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा जो स्वराज्य लक्ष्मी के नाम से जानी जाती है, पूरी होती हैं। सारे लोकों के अधिष्ठाता देव पूजा के समय अपना अपना कर चुकाते हैं तथा भेटें प्रदान करते समय अपने मुकुटों से भगवान् के चरणकमलों का स्पर्श करते हैं। इस प्रकार वे उन भगवान् की स्तुति करते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.2.21) का है।

परम ईश्वर कृष्ण स्वयं भगवान् ।

ताते बड़, ताँर सम केह नाहि आन ॥ 34॥

परम-परम; ईश्वर–नियन्ता; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; स्वयम्-स्वयं ही; भगवान् वास्तविक भगवान्; ताते—इसलिए; बड़-सर्वश्रेष्ठ; ताँर–उनके; सम-समान; केह-कोई; नाहि-नहीं; आन–अन्य।

अनुवाद

"कृष्ण आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं; अतएव वे सबसे महान् हैं। न तो कोई उनके बराबर है, न कोई उनसे बढ़कर है।"

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द-विग्रहः ।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्व-कारण-कारणम् ॥ 35॥

ईश्वरः-नियन्ता; परमः-सर्वश्रेष्ठ; कृष्णः- भगवान् कृष्ण; सत्-शाश्वत अस्तित्व; चित्-परम ज्ञान; आनन्द–परम आनन्द; विग्रहः-जिनका स्वरूप; अनादिः–आरम्भ रहित; आदिः-सबके स्रोत; गोविन्दः-भगवान् गोविन्द; सर्व-कारण-कारणम्-सभी कारणों के कारण।

अनुवाद

"गोविन्द नाम से विख्यात कृष्ण परम नियन्ता हैं। उनका शरीर शाश्वत, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबके उद्गम हैं। समस्त कारणों के कारण होने से उनका कोई अन्य उद्गम नहीं है।"

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य-अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

वाराणसी में विश्वेश्वर का मन्दिर, जहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु को देखने के लिए असंख्य हजारो लोग पंक्ति में खड़े रहे और हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करके उन्होंने महाप्रभु का स्वागत किया।

जब बछड़े और ग्वालबाल चतुर्भुज नारायण बने, उसके बाद अलग अलग ब्रह्मांडों के विभिन्न ब्रह्मा, भगवान् को अपनी प्रार्थना अर्पण करने लगे।

ब्रह्मा ने कहा, "भगवान् की इच्छानुसार मैं सृजन करता हूँ, शिवजी विनाश करते हैं और भगवान् स्वयं क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में भौतिक प्रकृति के कार्यकलापों का पालन करते हैं।"

श्री कृष्ण मुस्कुराये फिर उन्होंने ध्यान किया और तुरन्त असंख्य ब्रह्मा अपने विविध संख्याओं वाले मस्तक लेकर उपस्थित हुए।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से कहा, "कृष्ण की अनेक लीलाएँ हैं जिनमें मनुष्य रूप में उनकी लीलाएँ सर्वोत्तम हैं। मनुष्य रूप परम दिव्य रूप है। इस रूप में वे ग्वालबाल हैं। वे हाथ में वंशी लिए रहते हैं और उनकी कैशोरावस्था नित नूतन बनी रहती है। वे एक दक्ष नर्तक भी हैं। यह सब मनुष्य रूप में उनकी लीलाओं के सर्वथा अनुरूप है। हे सनातन! कृष्ण का मधुर आकर्षक दिव्य रूप इतना सुन्दर है। जरा समझने का प्रयास तो करो। कृष्ण के सौन्दर्य के एक अंश का भी ज्ञान तीनों जगतों को प्रेम के समुद्र में डुबो सकता है। वे तीनों जगतों के सारे जीवों को आकर्षित करने वाले हैं।'"

कृष्ण का शरीर आकर्षक रूपों की नगरी है और यह मधुर से मधुरतर है। उनका चन्द्रमा जैसा मुख और भी मधुर है।

भक्तियोग के सबसे महत्त्वपूर्ण अभ्यासों में से एक है महान श्रद्धा और भक्ति के साथ मन्दिर में विग्रह की पूजा करना।

गोलोक वृन्दावन की नित्य, दिव्य लीलाओं में श्रीकृष्ण परम नायक हैं और श्रीमती राधाराणी परम नायिका हैं।

सनातन गोस्वामी ने कहा, “हे प्रभु ! मैं नीच जाति में उत्पन्न व्यक्ति हूँ। वस्तुतः मैं तो नीच जाति में उत्पन्न लोगों का सेवक हूँ; अतः मैं अत्यन्त नीच हूँ। तो भी आपने मुझे वे सिद्धान्त सिखलाये हैं जो ब्रह्मा तक को ज्ञात नहीं हैं। आपने जो सिद्धान्त मुझसे कहे हैं वे सत्यरूपी अमृत के सागर हैं। मेरा मन उस सागर की एक बूँद को भी छू नहीं पा सकता। यदि आप मुझ जैसे लंगड़े व्यक्ति को नचाना चाहते हैं तो फिर आप मेरे सिर पर अपने चरणकमल रख कर मुझे अपना दिव्य आशीर्वाद दें। क्या अब आप मुझसे कहेंगे कि, “जो कुछ मैंने तुमसे कहा है वह सब तुम्हें पूरी तरह से प्रकट हो जाय?’ मुझे ऐसा वरदान देकर आप मुझे वह शक्ति प्रदान करेंगे जिससे मैं इसका वर्णन कर सकू।” तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी के सिर पर अपना हाथ रख दिया और यह वर दिया, "ये सारे उपदेश तुम्हें प्रकट हो जाएँ।”

अपने बड़े भ्राता बलराम के संग में भगवान् कृष्ण वृन्दावन की भूमि का, उसके निवासियों का तथा स्वयं श्री बलराम का गुणगान करने में आनन्द लेते हैं।

जो देवताओं में ऋषि हैं, उन नारद मुनि की भेंट मृगारि शिकारी से हुई जो पशुओं को आधा मारकर उन्हें यातना दे रहा था।

एक दिन नारद मुनि ने अपने मित्र पर्वत मुनि को विनंती की कि वे अपने शिष्य मृगारि शिकारी से मिलने के लिए उनके साथ चले। जैसे ही संत ऋषिद्वय शिकारी के स्थान पर पहुँचे, वैसे ही मृगारि ने उन्हें देखा और तुरन्त ही वह अपने आध्यात्मिक गुरु की ओर दौड़ने लगा। परन्तु वह नीचे गिरकर प्रणाम नहीं कर सका क्योंकि चीटियाँ यहाँ वहाँ उसके पैरों के चारों ओर दौड़ रहीं थी। एक कपड़े से चीटियों को धीरे से दूर हटाने के बाद ही मृगारि ने उन्हें दण्डवत प्रणाम किया।

बिन्दु माधव मन्दिर पहुँच कर श्री चैतन्य महाप्रभु बिन्दु माधव भगवान् का सौन्दर्य देख कर भावमय प्रेम में विभोर हो उठे। फिर वे मन्दिर के आँगन में नाचने लगे। श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ चार जन थे- ये थे चन्द्रशेखर, परमानन्द पुरी, तपन मिश्र तथा सनातन गोस्वामी। वे "हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः, गोपाल गोविन्द राम श्री मधुसूदन" बोल कर कीर्तन कर रहे थे। चारों दिशाओं में लाखों लोग "हरि हरि" बोल उठे। इस तरह तुमुल तथा मंगल ध्वनि से सारा ब्रह्माण्ड भर गया।

प्रकाशानन्द सरस्वती ने आगे बढ़कर श्री चैतन्य महाप्रभु के चरण पकड़ लिए।

जैसे ही नन्द महाराज ने पुकारा, "कृष्ण ! बचाओ!"', वैसे ही कृष्ण तुरन्त घटनास्थल पर पहुँचे, सर्प को लत्ताप्रहार किया, गन्धर्व को उसके शाप से मुक्त किया और अपने पिता की रक्षा की।

तात्पर्य

यह श्लोक ब्रह्म-संहिता (5.1) का है।

ब्रह्मा, विष्णु, हर,—एइ सृष्ट्यादि-ईश्वर ।

तिने आज्ञाकारी कृष्णेर, कृष्ण—अधीश्वर ॥ 36॥

ब्रह्मा-ब्रह्माजी; विष्णु भगवान् विष्णु; हर-तथा शिवजी; एइये; सृष्टि-आदि-ईश्वर-भौतिक सृष्टि, पालन, तथा विनाश के स्वामी; तिने-ये तीनों; आज्ञाकारी-आज्ञापालक; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अधीश्वर-उनके स्वामी।

अनुवाद

"इस भौतिक सृष्टि के मुख्य अधिष्ठाता देव ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव हैं। फिर भी वे केवल भगवान् कृष्ण के आदेशों का पालन करते हैं, क्योंकि कृष्ण उन सबके स्वामी हैं।"

सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः ।

विश्व पुरुष-रूपेण परिपाति त्रि-शक्ति-धृक् ॥ 37॥

सृजामि-रचना करता हूँ; तत्-नियुक्तः—उनके द्वारा नियुक्त; अहम्-मैं; हरः-शिवजी; हरति-नाश करते हैं; तत्-वशः-उनके नियन्त्रण में; विश्वम्-सम्पूर्ण जगत्; पुरुष-रूपेण-भगवान् विष्णु के रूप में; परिपाति-पालन करते हैं; त्रि-शक्ति-धृक्-भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के स्वामी।

अनुवाद

"[ब्रह्माजी ने कहा :] 'पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की इच्छानुसार मैं सृजन करता हूँ, शिवजी विनाश करते हैं और वे स्वयं क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में भौतिक प्रकृति के सारे कार्यकलापों का पालन करते हैं। इस तरह भगवान् विष्णु भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के परम नियन्ता हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.6.32) से है।

ए सामान्य, त्र्यधीश्वरेर शुन अर्थ आर।

जगत्कारण तिन पुरुषावतार॥ 38॥

ए सामान्य-यह सामान्य वर्णन है; त्रि-अधीश्वरेर तीनों लोकों के स्वामी का; शुन-कृपया सुनो; अर्थ-अर्थ; आर-दूसरा; जगत्-कारण-भौतिक संसार के कारण; तिन-तीन; पुरुष-अवतार-विष्णु के पुरुषावतार।

अनुवाद

"यह तो एक सामान्य विवरण मात्र है। अब कृपया त्र्यधीश का दूसरा अर्थ समझने का प्रयास करें। विष्णु के तीन पुरुष अवतार भौतिक सृष्टि के मूल कारण हैं।"

महा-विष्णु, पद्मनाभ, क्षीरोदक-स्वामी।

एइ तिन—स्थूल-सूक्ष्म-सर्व-अन्तर्यामी॥ 39॥

महा-विष्णु-महाविष्णु; पद्मनाभ-पद्मनाभ (गर्भोदकशायी विष्णु); क्षीर-उदक-स्वामी-क्षीरोदकशायी विष्णु; एइ तिन-ये तीनों; स्थूल-सूक्ष्म-स्थूल तथा सूक्ष्म; सर्व-सभी के; अन्तर्यामी-परमात्मा।

अनुवाद

"महाविष्णु, पद्मनाभ तथा क्षीरोदकशायी विष्णु, ये तीनों ही समस्त स्थूल तथा सूक्ष्म अस्तित्व के परमात्मा हैं।"

तात्पर्य

भगवान् महाविष्णु सबके परमात्मा हैं और कारणोदकशायी विष्णु कहलाते हैं। गर्भादकशायी विष्णु, जिनके नाभिपद्म से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, हिरण्यगर्भ भी कहलाते हैं और वे पूर्ण परमात्मा तथा सूक्ष्म परमात्मा हैं। क्षीरोदकशायी विष्णु ही विराट् रूप तथा स्थूल परमात्मा हैं।

एइ तिन—सर्वाश्रय, जगतीश्वर ।

एहो सब कला-अंश, कृष्ण–अधीश्वर ॥ 40 ॥

एइ तिन-ये तीनों; सर्व-आश्रय-समस्त भौतिक सृष्टि के आश्रय; जगत्-ईश्वर-विश्व के परम नियन्ता; एहो सब-ये सभी; कला-अंश-अंश या अंश के अंश, कला; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अधीश्वर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"यद्यपि महाविष्णु, पद्मनाभ तथा क्षीरोदकशायी विष्णु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आश्रय तथा अधीश्वर (नियन्ता) हैं, फिर भी वे कृष्ण के पूर्ण अंश या पूर्ण अंश के भी अंश हैं। अतएव वे आदि भगवान् हैं।"

यस्यैक-निश्वसित-कालमथावलम्ब्य

जीवन्ति लोम-विल-जा जगदण्ड-नाथाः ।

विष्णुर्महान्स इह यस्य कला-विशेषो

गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥41॥

यस्य–जिनकी; एक-एक; निश्वसित-श्वास का; कालम्-समय; अथ-इस प्रकार; अवलम्ब्य-की शरण लेकर; जीवन्ति-जीते हैं; लोम-विल-जाः–बालों के छिद्रों से उत्पन्न; जगत्-अण्ड-नाथाः-ब्रह्माण्डों के स्वामी (ब्रह्माओं); विष्णुः महान्-परम भगवान् महाविष्णु; सः-वे; इह-यहाँ; यस्य–जिनके;

कला-विशेषः-विशेष विस्तार या कला; गोविन्दम्-भगवान् गोविन्द को; आदि-पुरुषम्-आदि पुरुष को; तम्-उनको; अहम्-मैं; भजामि-भजता हूँ।

अनुवाद

"ब्रह्मा तथा संसारों के अन्य स्वामी महाविष्णु के रोमकूपों से प्रकट होते हैं और उनके एक निश्वास की अवधि तक जीवित रहते हैं। मैं आदि भगवान् गोविन्द की वन्दना करता हूँ, क्योंकि महाविष्णु इनके पूर्ण अंश के अंश हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण ब्रह्म-संहिता (5.48) का है। देखें आदिलीला 5.71 भी।

एइ अर्थ—मध्यम, शुन 'गूढ़' अर्थ आर।

तिन आवास-स्थान कृष्णेर शास्त्रे ख्याति यार ॥42॥

एइ अर्थ-यह व्याख्या; मध्यम-माध्यमिक; शुन-कृपया सुनो; गूढ़-गुह्य; अर्थ-अर्थ; आर-दूसरा; तिन-तीन; आवास-स्थान–निवासस्थान; कृष्णेर- भगवान् कृष्ण के; शास्त्रे-प्रामाणिक शास्त्रों में; ख्याति–प्रसिद्धि; यार-जिनकी।

अनुवाद

"यह तो मध्यम अर्थ है। अब इसका गुह्य अर्थ सुनो। भगवान् कृष्ण के तीन निवासस्थान हैं, जो प्रामाणिक शास्त्रों से भलीभाँति जाने जाते हैं।"

तात्पर्य

कृष्ण के तीन धाम हैं-उनका अन्तरंग धाम (गोलोक वृन्दावन), उनका मध्यम आवास (परव्योम) तथा उनका बाह्य आवास (यह भौतिक जगत्)।

‘अन्तःपुर’—गोलोक-श्री-वृन्दावन।

याहाँ नित्य-स्थिति माता-पिता-बन्धु-गण ॥43॥

अन्तः-पुर-आन्तरिक निवास; गोलोक-श्री-वृन्दावन-गोलोक वृन्दावन; याहाँ-जहाँ; नित्य-स्थिति–नित्य निवास करते हैं; माता-पिता-माता तथा पिता; बन्धु-गण-तथा मित्रगण।

अनुवाद

“अन्तरंग आवास (अन्तःपुर) गोलोक वृन्दावन कहलाता है। यहीं पर कृष्ण के अपने सखा, पार्षद, पिता तथा माता रहते हैं।”

मधुरैश्वर्य-माधुर्य-कृपादि-भाण्डार।

योगमाया दासी याहाँ रासादि लीला-सार ॥44॥

मधुर-ऐश्वर्य-माधुर्य तथा ऐश्वर्य का; माधुर्य-माधुर्य प्रेम का; कृपा-आदि-तथा कृपा आदि का; भाण्डार-भण्डार गृह; योग-माया-आध्यात्मिक शक्ति; दासी-सेविका; याहाँ-जहाँ; रास-आदि-रास नृत्य तथा अन्य लीलाएँ; लीला-सार–सभी लीलाओं का सार।

अनुवाद

वृन्दावन कृष्ण की कृपा का एवं माधुर्य-प्रेम के मधुर वैभव का भण्डार है। यहीं पर आध्यात्मिक शक्ति दासी बनकर समस्त लीलाओं के सार रासनृत्य का प्रदर्शन करती है।

करुणा-निकुरम्ब-कोमले

मधुरैश्वर्य-विशेष-शालिनि।

जयति व्रज-राज-नन्दने

न हि चिन्ता-कणिकाभ्युदेति नः ॥45॥

करुणा-निकुरम्ब-कोमले–महान् करुणा के कारण जो बहुत कोमल हैं; मधुर-ऐश्वर्य-विशेष-शालिनि–विशेष रूप से माधुर्य प्रेम के ऐश्वर्य द्वारा; जयति जय हो; व्रज-राज-नन्दने-महाराज नन्द के पुत्र की; न-नहीं; हि-अवश्य; चिन्ता–चिन्ता; कणिका-एक कण मात्र भी; अभ्युदेति-जागृत; नः-हमें।

अनुवाद

"परमेश्वर की कृपा के कारण वृन्दावन धाम अत्यन्त कोमल है और माधुर्य-प्रेम के कारण यह विशेष रूप से ऐश्वर्ययुक्त है। यहाँ पर महाराज नन्द के पुत्र की दिव्य महिमाओं का प्रदर्शन होता है। ऐसी दशा में हमारे भीतर थोड़ी-सी भी चिन्ता उत्पन्न नहीं होती।"

तार तले परव्योम—विष्णुलोक'-नाम ।

नारायण-आदि अनन्त स्वरूपेर धाम ॥ 46॥

तार तले-वृन्दावन धाम के नीचे; पर-व्योम-आध्यात्मिक आकाश; विष्णु-लोक-नाम-विष्णुलोक नामक; नारायण-आदि-नारायण आदि; अनन्त-असंख्य; स्वरूपेर-स्वरूप विस्तार के; धाम–निवासस्थान।

अनुवाद

"वृन्दावन लोक के नीचे परव्योम है, जो विष्णु-लोक कहलाता है। यहाँ पर असंख्य वैकुण्ठ लोक हैं, जिनका नियन्त्रण नारायण तथा कृष्ण के अन्य असंख्य विस्तारों द्वारा किया जाता है।"

'मध्यम-आवास' कृष्णेर—षड्-ऐश्वर्य-भाण्डार ।

अनन्त स्वरूपे याहाँ करेन विहार ॥47॥

मध्यम-आवास-मध्यम निवास; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; षट्-ऐश्वर्य-भाण्डार-छः ऐश्वर्यों का भण्डार गृह; अनन्त स्वरूपे-असंख्य रूपों में; याहाँ-जहाँ; करेन विहार-अपनी लीलाओं का आस्वादन करते हैं।

अनुवाद

"परव्योम जो कि छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण है, भगवान् कृष्ण का मध्यम आवास है। यहीं पर कृष्ण के अनन्त रूप अपनी लीला का विलास करते हैं।"

अनन्त वैकुण्ठ याहाँ भाण्डार-कोठरि ।

पारिषद-गणे षड्-ऐश्वर्ये आछे भरि' ॥48॥

अनन्त-असंख्य; वैकुण्ठ-वैकुण्ठ लोक; याहाँ-जहाँ; भाण्डार-कोठरि-एक खजाने के घर के कमरों जैसे; पारिषद-गणे-नित्य संगी; षट्-ऐश्वर्ये-छः ऐश्वर्यों पूर्ण; आछे-हैं; भरि'-भरकर।

अनुवाद

"यहाँ पर असंख्य वैकुण्ठ लोक हैं, जो कोषागार की विभिन्न कोठरियों के समान हैं और समस्त ऐश्वर्यों से पूरित हैं। इन असंख्य लोकों में छः ऐश्वर्यों से समृद्ध कृष्ण के नित्य संगी बसते हैं।"

गोलोक-नाम्नि निज-धाम्नि तले च तस्य

देवी-महेश-हरि-धामसु तेषु तेषु ।

ते ते प्रभाव-निचया विहिताश्च येन

गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥49॥

गोलोक-नाम्नि निज-धाम्नि–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अपने निवास गोलोक वृन्दावन नामक लोक में; तले-नीचे; च-भी; तस्य-उसके; देवी-दुर्गा देवी का; महेश-शिवजी का; हरिनारायण का; धामसु-लोकों में; तेषु तेषु-उनमें से प्रत्येक में; ते ते-वे सभी; प्रभाव-निचयाः-ऐश्वर्य; विहिताः-स्थित; च-तथा; येन-जिनके द्वारा; गोविन्दम्-उन गोविन्द को; आदि-पुरुषम्-आदि पुरुष को; तम्-उनको; अहम्-मैं; भजामि-भजता हूँ।

अनुवाद

"गोलोक वृन्दावन धाम के नीचे देवी-धाम, महेश-धाम तथा हरि-धाम नामक लोक हैं। वे विभिन्न प्रकार से ऐश्वर्यपूर्ण हैं। उनकी व्यवस्था आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गोविन्द द्वारा की जाती है। मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ।"

तात्पर्य

यह उद्धरण ब्रह्म-संहिता (5.43) का है।

प्रधान-परम-व्योम्नोरन्तरे विरजा नदी ।

वेदाङ्ग-स्वेद-जनितैस्तोयैः प्रस्राविता शुभा ॥50॥

प्रधान-परम-व्योम्नोः अन्तरे-भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों के मध्य; विरजा नदी-विरजा नामक नदी; वेद-अङ्ग–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य शरीर के; स्वेद-जनितैः-पसीने द्वारा उत्पन्न; तोयैः-जल द्वारा; प्रस्राविता-बहती है; शुभा-शुभकारी।

अनुवाद

"आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों के बीच विरजा नदी है। यह जल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वेदाङ्ग के शरीर से निकले पसीने से उत्पन्न है। इस प्रकार यह नदी प्रवाहित होती है।"

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगला श्लोक पद्मपुराण से हैं।

तस्याः पारे पर-व्योम त्रि-पाद्भूतं सनातनम् ।

अमृतं शाश्वतं नित्यमनन्तं परमं पदम् ॥51॥

तस्याः पारे-विरजा नदी के दूसरे किनारे पर; पर-व्योम-आध्यात्मिक आकाश; त्रि-पात्-भूतम्-परम भगवान् के ऐश्वर्यों का तीन चौथाई भाग; सनातनम्-नित्य; अमृतम्-क्षय से रहित; शाश्वतम्-काल के प्रभाव से मुक्त; नित्यम्-सर्वदा रहने वाला; अनन्तम्-असीमित; परमम्-सर्वश्रेष्ठ; पदम्-धाम।

अनुवाद

"विरजा नदी से आगे आध्यात्मिक प्रकृति है, जो अखंड, नित्य, अव्यय तथा असीम है। यह परम धाम है, जहाँ भगवान् का तीन चौथाई ऐश्वर्य विद्यमान है। यह परव्योम अर्थात् आध्यात्मिक आकाश कहलाता है।"

तात्पर्य

आध्यात्मिक आकाश में न तो चिन्ता है, न भय है। यह शाश्वत है और भगवान् की तीन चौथाई शक्ति से बना है। भौतिक जगत् भगवान् की केवल एक चौथाई शक्ति का प्राकट्य है। इसीलिए यह एकपादविभूति कहलाता है।

तार तले 'बाह्यावास' विरजार पार ।

अनन्त ब्रह्माण्ड याहाँ कोठरि अपार ॥52॥

तार तले-आध्यात्मिक जगत् के नीचे; बाह्य-आवास–बाहरी निवास; विरजार पार-विरजा नदी के दूसरे किनारे पर; अनन्त ब्रह्माण्ड-असंख्य ब्रह्माण्ड; याहाँ-जहाँ; कोठरि-कक्ष; अपार-असीमित।

अनुवाद

विरजा नदी के उस पार बाह्य आवास है, जो अनन्त ब्रह्माण्डों से पूर्ण है और प्रत्येक ब्रह्माण्ड में असंख्य प्रकार के आवास हैं।

'देवी-धाम' नाम तार, जीव यार वासी ।

जगल्लक्ष्मी राखि' रहे याहाँ माया दासी ॥53॥

देवी-धाम–बहिरंगा शक्ति का स्थान; नाम-नामक; तार-उसका; जीव-जीवात्मायें; यार–जिसके; वासी-निवासी; जगत्-लक्ष्मी–भौतिक शक्ति; राखि'–रखकर; रहे-रहती है; याहाँ–जिसमें; माया–बहिरंगा शक्ति; दासी-सेविका।

अनुवाद

"बहिरंगा शक्ति का आवास देवी-धाम कहलाता है और इसके निवासी बद्धात्माएँ हैं। यहीं पर भौतिक शक्ति दुर्गा अनेक ऐश्वर्यशाली दासियों के साथ निवास करती हैं।"

तात्पर्य

चूँकि बद्धात्मा भौतिक शक्ति (माया) का भोग करना चाहता है, इसलिए उसे देवी-धाम में रहने दिया जाता है, जहाँ दुर्गा देवी भगवान् की दासी बनकर उनके आदेशों का पालन करती हैं। भौतिक शक्ति जगल्लक्ष्मी कहलाती है, क्योंकि वह मोहग्रस्त बद्ध आत्माओं की रक्षा करती है। इसीलिए देवी दुर्गा भौतिक माता कहलाती हैं और उनके पति शिवजी भौतिक पिता कहलाते हैं। देवी दुर्गा का यह नाम इसलिए पड़ा, क्योंकि यह भौतिक जगत् एक महान् दुर्ग या किले की तरह है, जहाँ बद्ध आत्मा उनकी देखरेख में रखा गया है। बद्ध आत्मा भौतिक सुविधाओं के लिए देवी दुर्गा को प्रसन्न करना चाहता है। और माता दुर्गा उसे सारी सुविधाएँ प्रदान करती हैं। इसलिए बद्ध आत्मा मोहित रहते हैं

और बहिरंगा शक्ति को छोड़ना नहीं चाहते। फलस्वरूप वे यहाँ शान्ति तथा सुखपूर्वक रहने के लिए योजनाएँ बनाते हैं। ऐसा है यह भौतिक जगत्।

एइ तिन धामेर हय कृष्ण अधीश्वर।

गोलोक-परव्योम—प्रकृतिर पर ॥54॥

एइ तिन धामेर–इन तीन धामों या निवासस्थानों के–गोलोक वृन्दावन, वैकुण्ठ धाम (हरि धाम) तथा देवी धाम (भौतिक जगत्)); हय-हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अधीश्वर-परम स्वामी; गोलोक-परव्योम-गोलोक नामक आध्यात्मिक लोक तथा आध्यात्मिक आकाश; प्रकृतिर पर इस भौतिक प्रकृति से परे।

अनुवाद

"कृष्ण सारे धामों के परम स्वामी हैं, जिनमें गोलोक-धाम, वैकुण्ठ-धाम तथा देवी-धाम सम्मिलित हैं। परव्योम तथा गोलोक-धाम इस भौतिक जगत् देवी-धाम से परे हैं।"

तात्पर्य

जब कोई जीव देवी-धाम से मुक्त हो जाता है, किन्तु हरि-धाम के वैभव को नहीं जानता तो उसे महेश-धाम में रखा जाता है, जो इन दोनों धामों के बीच में है। वहाँ पर मुक्त आत्मा को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा करने का अवसर प्राप्त नहीं होता; अत: महेश-धाम शिवजी का धाम होते हुए भी तथा देवी-धाम के ऊपर होते हुए भी आध्यात्मिक जगत् नहीं होता। आध्यात्मिक जगत् का आरम्भ हरि-धाम या वैकुण्ठ लोक से होता है।

चिच्छक्ति-विभूति-धाम—त्रिपादैश्वर्य-नाम।

मायिक विभूति—एक-पाद अभिधान ॥55॥

चित्-शक्ति-आध्यात्मिक शक्ति का; विभूति-धाम-ऐश्वर्यपूर्ण धाम; त्रि-पाद्-तीन-चौथाई; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; नाम-नामक; मायिक विभूति-भौतिक ऐश्वर्य; एक-पाद-एक चौथाई; अभिधान-जाना जाता है।

अनुवाद

"आध्यात्मिक जगत् को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति तथा ऐश्वर्य का तीन चौथाई भाग त्रिपाद) माना जाता है, जबकि यह भौतिक जगत् केवल एक चौथाई (एक पाद) शक्ति होता है। यही हमारी जानकारी है।"

तात्पर्य

हरि-धाम (परव्योम) तथा गोलोक वृन्दावन भौतिक जगत् से परे हैं। इन्हें भगवान् की तीन चौथाई शक्ति माना जाता है। भौतिक जगत्, जिसका संचालन भगवान् की बहिरंगा शक्ति द्वारा होता है, देवी-धाम कहलाता है और यह भगवान् की एक चौथाई शक्ति का प्राकट्य है।

त्रि-पाद्विभूतेर्धामत्वात्रि-पाद्भूतं हि तत्पदम् ।

विभूतिमयिकी सर्वा प्रोक्ता पादात्मिका यतः ॥56॥

त्रि-पात्-विभूतेः-शक्ति के तीन चौथाई हिस्से का; धामत्वात्-धाम होने के कारण; त्रि-पात्-भूतम्-तीन चौथाई शक्ति से युक्त; हि-निश्चित रूप से; तत् पदम्-वह धाम; विभूतिः-शक्ति; मायिकी-भौतिक; सर्वा–सारी; प्रोक्ता–कही जाती है; पाद-आत्मिका-एक चौथाई; यतः-इसलिए।

अनुवाद

"चूँकि आध्यात्मिक जगत् भगवान् की तीन चौथाई शक्ति से बना है, इसलिए यह त्रिपादभूत कहलाता है। भौतिक जगत् भगवान् की एक चौथाई शक्ति से बना होने के कारण एकपाद कहलाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक लघु भागवतामृत (1.5.563) का है।

त्रिपाद-विभूति कृष्णेर—वाक्य-अगोचर।

एक-पाद विभूतिर शुनह विस्तार ॥57॥

त्रि-पाद-विभूति कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की शक्ति का तीन चौथाई; वाक्य-अगोचर-शब्दों द्वारा अवर्णनीय; एक-पाद विभूतिर–एक चौथाई विभूति का; शुनह-सुनो; विस्तार–विस्तार।

अनुवाद

"भगवान् की तीन चौथाई शक्ति हमारी वर्णन शक्ति के परे है। अतः उनकी शेष एक चौथाई शक्ति के विषय में विस्तार से सुनें।"

अनन्त ब्रह्माण्डेर यत ब्रह्मा-रुद्र-गण।

चिर-लोक-पाल-शब्दे ताहार गणन ॥58॥

अनन्त-असीमित; ब्रह्माण्डेर-ब्रह्माण्डों के; यत-सभी; ब्रह्मा-ब्रह्माओं; रुद्र-गण-तथा शिवजी; चिर-लोक-पाल-जगतों के स्थाई नियन्त्रक; शब्द-शब्दों से; ताहार-उनकी; गणन-गिनती।

अनुवाद

"वास्तव में ब्रह्माण्डों की वास्तविक संख्या का पता लगा पाना बहुत कठिन है। प्रत्येक ब्रह्माण्ड के अपने-अपने ब्रह्मा तथा शिव होते हैं, जो चिर लोकपाल कहलाते हैं। इसलिए इनकी भी कोई गिनती नहीं है।"

तात्पर्य

ब्रह्मा तथा शिव को चिरलोकपाल अर्थात् स्थायी राज्यपाल कहा गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि वे सृष्टि के आदि से अन्त तक ब्रह्माण्ड के कार्यकलापों का निरीक्षण करते हैं। हो सकता है कि अगली सृष्टि में ये ही जीव विद्यमान न हों, किन्तु ब्रह्मा तथा शिव आदि से अन्त तक रहते हैं, इसलिए वे चिरलोकपाल अर्थात् स्थायी शासनकर्ता कहलाते हैं। लोकपाल का अर्थ है। "अधिष्ठाता देव।" प्रमुख स्वर्गलोकों के आठ लोकपाल हैं, जिनके नाम हैं इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण, निऋति, वायु, कुवेर तथा शिव।

एक-दिन द्वारकाते कृष्ण देखिबारे।

ब्रह्मा आइला,—द्वार-पाल जानाइल कृष्णरे ॥59॥

एक-दिन-एक दिन; द्वारकाते-द्वारका में; कृष्ण देखिबारे-कृष्ण के दर्शन करने के लिए; ब्रह्मा आइला-ब्रह्माजी आये; द्वार-पाल-द्वारपाल; जानाइल-जानकारी दी; कृष्णेरे-भगवान् कृष्ण को।

अनुवाद

"एक बार जब कृष्ण द्वारका में राज्य कर रहे थे, तब ब्रह्माजी उन्हें मिलने आये और द्वारपाल ने तुरन्त ही कृष्ण को ब्रह्माजी के आगमन की जानकारी दी।"

कृष्ण कहेन—'कोन् ब्रह्मा, कि नाम ताहार?'।

द्वारी आसि' ब्रह्मारे पुछे आर बार ॥60॥

कृष्ण कहेन-कृष्ण ने कहा; कोन् ब्रह्मा-कौन से ब्रह्मा; कि नाम ताहार-उसका नाम क्या है; द्वारी आसि'-द्वारपाल वापस आकर; ब्रह्मारे–ब्रह्माजी से; पुछे-पूछता है; आर बार-फिर।

अनुवाद

"जब कृष्ण को यह बताया गया, तो उन्होंने तुरन्त ही द्वारपाल से पूछा, 'कौन से ब्रह्मा? उनका नाम क्या है?' अतः द्वारपाल लौट गया और उसने ब्रह्मा से पूछा।"

तात्पर्य

इस श्लोक से हमें पता चलता है कि ब्रह्मा एक पद का नाम है और उस पद पर प्रतिष्ठित व्यक्ति का भी एक नाम होता है। भगवद्गीता में कहा गया है-इमं विवस्वते योगम् ।विवस्वान् नाम है सूर्य ग्रह के वर्तमान अधिष्ठाता देव का। सामान्यतया वह सूर्य या सूर्यदेव कहलाता है, लेकिन उसका अपना विशिष्ट नाम भी होता है। किसी राज्य का गवर्नर सामान्यतः राजपाल कहलाता है, किन्तु उसका अपना व्यक्तिगत नाम भी होता है। चूँकि विभिन्न नामों वाले लाखों ब्रह्मा हैं, अतः कृष्ण ने जानना चाहा कि उनमें से कौन-सा ब्रह्मा उनसे मिलने आया है।

विस्मित हञा ब्रह्मा द्वारीके कहिला ।

‘कह गिया सनक-पिता चतुर्मुख आइला’ ॥ 61॥

विस्मित हञा–आश्चर्यचकित होकर; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; द्वारीके-द्वारपाल से; कहिला-बोले; कह-बताओ; गिया-जाकर; सनक-पिता--चार कुमारों के पिता; चतुर्-मुख-चार मुख वाले; आइला–आये हैं।

अनुवाद

“जब द्वारपाल ने पूछा, ‘कौन से ब्रह्मा?’ तो ब्रह्मा को आश्चर्य हुआ। उन्होंने द्वारपाल से कहा, ‘जाकर भगवान् कृष्ण को सूचित करो कि चारों कुमारों के पिता चतुर्मुख ब्रह्मा आये हैं।”

कृष्णे जानाञा द्वारी ब्रह्मारे लञा गेला ।

कृष्णेर चरणे ब्रह्मा दण्डवत् कैला ॥62॥

कृष्णे जानाञा-भगवान् कृष्ण को सूचित करके; द्वारी-द्वारपाल; ब्रह्मारे–ब्रह्माजी को; लञा–लेकर; गेला-गया; कृष्णेर चरणे-भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में; ब्रह्मा-ब्रह्माजी ने; दण्डवत् कैला–प्रणाम किया।

अनुवाद

"तब द्वारपाल ने भगवान् कृष्ण से ब्रह्मा का विवरण बतलाया और भगवान् कृष्ण ने उसे आज्ञा दी कि उन्हें भीतर आने दिया जाए। द्वारपाल ब्रह्मा को भीतर ले गया और ज्योंही ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण को देखा, उन्होंने उनके चरणकमलों में नमस्कार किया।"

कृष्ण मान्य-पूजा करि' ताँरे प्रश्न कैले ।

'कि लागि' तोमार इहाँ आगमन हैल?' ॥ 63 ॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मान्य-पूजा–आदर तथा पूजा; करि'–करके; ताँरे-उनसे; प्रश्न केल–प्रश्न किया; कि लागि'-किस कारण; तोमार-आपका; इहाँ–यहाँ; आगमन हैल-आना हुआ।

अनुवाद

"ब्रह्मा द्वारा पूजा किये जाने के बाद भगवान् कृष्ण ने भी उपयुक्त शब्दों से उनका सम्मान किया। तब भगवान् कृष्ण ने उनसे पूछा, 'आप यहाँ किस लिए आये हैं?"

ब्रह्मा कहे,—'ताहा पाछे करिब निवेदन' ।

एक संशय मने हय, करह छेदन ॥ 64॥

ब्रह्मा कहे-ब्रह्माजी ने कहा; ताहा-वह; पाछे-बाद में; करिब निवेदन-मैं आपको निवेदन करूँगा; एक-एक; संशय-सन्देह; मने-मन में; हय-है; करह छेदन-कृपया इसे दूर कीजिये।

अनुवाद

"पूछे जाने पर ब्रह्माजी ने तुरन्त उत्तर दिया, 'यह तो मैं बाद में बतलाऊँगा कि मैं किस लिए आया हूँ। पहले तो मेरे मन में एक सन्देह है, जिसे मैं चाहता हूँ कि आप कृपया दूर कर दें।"

'कोन् ब्रह्मा?' पुछिले तुमि कोन् अभिप्राये? ।

आमा बइ जगते आर को ब्रह्मा हये?' ॥65॥

कोन् ब्रह्मा-कौन सा ब्रह्मा; पुछिले तुमि-आपने पूछा; कोन् अभिप्राये-किस अभिप्राय से; आमा बइ-मेरे अलावा; जगते-इस ब्रह्माण्ड में; आर-दूसरा; को-कौन; ब्रह्मा-ब्रह्मा; हये-है।

अनुवाद

"आपने यह क्यों पूछा कि कौन-सा ब्रह्मा आपको मिलने आया है? ऐसे प्रश्न का क्या अभिप्राय है? क्या इस ब्रह्माण्ड के भीतर मेरे अतिरिक्त कोई अन्य ब्रह्मा भी है?"

शुनि' हासि' कृष्ण तबे करिलेन ध्याने ।

असङ्ख्य ब्रह्मार गण आइला तत-क्षणे ॥66॥

शुनि'–सुनकर; हासि'-हँसकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तबे-तब; करिलेन-किया; ध्याने-ध्यान; असङ्ख्य-असंख्य; ब्रह्मार-ब्रह्माओं के; गण-समूह; आइला-आ गये; तत-क्षणे-उसी समय।

अनुवाद

"यह सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कुराये और तुरन्त ध्यानमग्न हो गये। देखते ही देखते वहाँ असंख्य ब्रह्मा आ गये।"

दश-बिश-शत-सहस्र-अयुत-लक्ष-वदन ।

कोट्यर्बुद मुख कारो, ना याय गणन ॥ 67॥

दश–दस; बिश-बीस; शत-सौ; सहस्त्र-हजार; अयुत-10 हजार; लक्ष–एक लाख; वदन-मुख; कोटि-करोड़; अर्बुद-अरब; मुख-मुख; कारो-उनमें से कुछ की; ना याय गणन-गिनती सम्भव नहीं।

अनुवाद

"इन ब्रह्माओं के शिरों की संख्या भिन्न-भिन्न थी। किसी के दस शिर थे, तो किसी के बीस, किसी के सौ शिर थे तो किसी के हजार, किसी के दस हजार तो किसी के एक लाख, किसी के एक करोड़ तथा किसी के एक अर्बुद शिर थे। उनके मुखों की संख्या की गणना कोई नहीं कर सकता।"

रुद्र-गण आइला लक्ष कोटि-वदन ।

इन्द्र-गण आइला लक्ष कोटि-नयन ॥ 68 ॥

रुद्र-गण-शिव; आइला-आये; लक्ष कोटि-वदन-लाखों और करोड़ों मुखों से युक्त; इन्द्र-गण-इन्द्र; आइला–आये; लक्ष-लाखों; कोटि-करोड़ो; नयन-आँखों वाले।

अनुवाद

"उस समय वहाँ अनेक शिव भी आये, जिनके लाखों तथा करोड़ों विविध शिर थे। अनेक इन्द्र भी आये और इनके भी सारे शरीरों में लाखों-करोड़ों आँखें थीं।"

तात्पर्य

कहा जाता है कि स्वर्ग का राजा इन्द्र बड़ा कामी है। एक बार उसने एक महर्षि की पत्नी के साथ संभोग किया, किन्तु जब महर्षि को इसका पता चला, तो उन्होंने कामी इन्द्र को शाप दिया कि उसके शरीर-भर में योनियाँ हो जाएँ। इन्द्र अत्यन्त लज्जित होकर उस महर्षि के चरणकमलों पर गिर पड़ा और उनकी क्षमा माँगी। दयार्द्र होकर महर्षि ने योनियों को आँखों में परिणत कर दिया। इसलिए

इन्द्र के सारे शरीर में लाखों-करोड़ों आँखें हैं। जिस तरह ब्रह्मा तथा शिव के अनेक शिर हैं, उसी प्रकार इन्द्र की अनेक आँखें हैं।

देखि' चतुर्मुख ब्रह्मा फाँपर हइला।

हस्ति-गण-मध्ये येन शशक रहिला ॥ 69॥

देखि'–देखकर; चतुर्-मुख ब्रह्मा-इस ब्रह्माण्ड के चार मुख वाले ब्रह्माजी; फाँपर हइला-हैरान रह गये; हस्ति-गण-मध्ये अनेक हाथियों के बीच; येन-जिस प्रकार; शशक-एक खरगोश; रहिला-रहता है।

अनुवाद

"जब इस ब्रह्माण्ड के चतुर्मुख ब्रह्मा ने कृष्ण का इतना सारा वैभव देखा, तो वे हैरान रह गये और उन्होंने अपने आपको अनेक हाथियों के बीच एक खरगोश के समान समझा।"

आसि' सब ब्रह्मा कृष्ण-पाद-पीठ-आगे।

दण्डवत् करिते मुकुट पाद-पीठे लागे ॥ 70 ॥

आसि'-आकर; सब ब्रह्मा-सभी ब्रह्मा; कृष्ण-पाद-पीठ-आगे-कृष्ण के चरणकमलों के सामने; दण्डवत् करिते-प्रणाम करते हुए; मुकुट–उनके मुकुट; पाद-पीठे-चरणकमलों पर; लागे-स्पर्श हुए।

अनुवाद

"जितने भी ब्रह्मा कृष्ण को मिलने आये, उन सबने उनके चरणकमलों में नमस्कार किया और जब उन्होंने ऐसा किया, तो उनके मुकुटों ने भगवान् के चरणकमलों का स्पर्श किया।"

कृष्णेर अचिन्त्य-शक्ति लखिते केह नारे।

यत ब्रह्मा, तत मूर्ति एक-इ शरीरे ॥71॥

कृष्णेर-भगवान कृष्ण की; अचिन्त्य-शक्ति-अचिन्तय शक्तियाँ; लखिते-अनुमान करने में; केह-कोई भी; नारे-समर्थ नहीं है; यत ब्रह्मा-सभी ब्रह्मा; तत मूर्ति-अनेक रूपों में; एक-इ शरीरे-एक ही शरीर में।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति का अनुमान कोई भी नहीं लगा सकता। वहाँ जितने ब्रह्मा थे, वे सभी कृष्ण के एक ही शरीर में स्थित थे।"

पाद-पीट-मुकुटाग्र-सङ्घट्टे उठे ध्वनि ।

पाद-पीठे स्तुति करे मुकुट हेन जानि' ॥72॥

पाद-पीट-कृष्ण के चरणकमलों में, मुकुट-अग्र-मुकुटों के अग्रभागों की; सङ्घट्टे-एक साथ; उठे ध्वनि-ध्वनि निकली; पाद-पीठे स्तुति-चरणकमलों में प्रार्थनाएँ; करे-करते; मुकुट–मुकुट स्वयं; हेन जानि'-ऐसा प्रतीत हो रहा था।

अनुवाद

"जब सारे मुकुट कृष्ण के चरणकमलों पर एकसाथ टकराए, तो तुमुल ध्वनि उत्पन्न हुई। ऐसा लग रहा था, मानों स्वयं मुकुट कृष्ण के चरणकमलों की स्तुति कर रहे हों।"

योड़-हाते ब्रह्मा-रुद्रादि करये स्तवन ।

बड़ कृपा करिला प्रभु, देखाइला चरण ॥73॥

योड़-हाते-हाथ जोड़कर; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; रुद्र-आदि-शिवजी तथा अन्य; करये स्तवन-स्तुतियाँ कर रहे थे; बड़ कृपा-अति कृपा; करिला-आपने की है; प्रभु-हे प्रभु; देखाइला चरण-आपने अपने चरणकमलों के दर्शन करवाये हैं।

अनुवाद

"हाथ जोड़े सारे ब्रह्मा तथा शिव कृष्ण की स्तुति करने लगे, 'हे प्रभु, आपने हम पर बड़ी कृपा की है। हम आपके चरणकमलों का दर्शन पाने में समर्थ हो सके।"

भाग्य, मोरे बोलाइला' दास' अङ्गीकरि' ।

कोनाज्ञा हय, ताहा करि शिरे धरि ॥74॥

भाग्य-महान् सौभाग्य; मोरे-मेरा; बोलाइला-आपने बुलाया; दास-एक सेवक; अङ्गीकरि-मानकर; कोन् आज्ञा हय-आपका क्या आदेश है; ताहा-वह; करि-स्वीकार करता हूँ; शिरे धरि'-उसे अपने मस्तक पर धारण कर।

अनुवाद

"तब सबने कहा, 'यह मेरा परम सौभाग्य है कि आपने मुझे अपना दास समझकर बुलाया है। अब बतायें कि आपकी क्या आज्ञा है, जिसे मैं शिरोधार्य करूँ।"

कृष्ण कहे,—तोमा-सबा देखिते चित्त हैल ।

ताहा लागि' एक ठाञि सबा बोलाइल ॥75 ॥

कृष्ण कहे-भगवान् कृष्ण ने कहा; तोमा-सबा-आप सबको; देखिते-देखने की; चित्त हैल-इच्छा हुई; ताहा लागि'-इस कारण; एक ठाञि-एक स्थान में; सबा-आप सबको; बोलाइल-मैंने बुलाया।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण ने उत्तर दिया, ‘चूँकि मैं तुम सबको एक साथ देखना चाहता था, इसलिए मैंने तुम सबको यहाँ बुलाया है।”

सुखी हओ सबे, किछु नाहि दैत्य-भय? ।

तारा कहे,—‘तोमार प्रसादे सर्वत्र-इ जय’ ॥ 76 ॥

सुखी हओ-सुखी रहिये; सबे-आप सभी; किछ-कोई; नाहि-नहीं है; दैत्य-भय-असुरों का डर; तारा कहे-सबने उत्तर दिया; तोमार प्रसादे-आपकी कृपा से; सर्वत्र-इ-सब जगह; जय-विजयी हैं।

अनुवाद

“तुम सभी सुखी हो। क्या असुरों से तुमको कोई डर है?” “उन्होंने उत्तर दिया, ‘आपकी कृपा से हम सर्वत्र विजयी होते हैं।”

सम्प्रति पृथिवीते येबा हैयाछिल भार ।

अवतीर्ण हञा ताहा करिला संहार’ ॥77॥

सम्प्रति-वर्तमान में; पृथिवीते-पृथ्वी पर; येबा-जो भी; हैयाछिल-हुआ था; भार-बोझ; अवतीर्ण हञा–अवतार लेकर; ताहा-वह; करिला संहार-आपने समाप्त कर दिया है।

अनुवाद

“पृथ्वी पर जो कुछ भार था, उसे आपने उसी ग्रह पर अवतरित होकर दूर कर दिया है।”

द्वारकादि—विभु, तार एइ त प्रमाण ।

‘आमार-इ ब्रह्माण्डे कृष्ण’ सबार हैल ज्ञान ॥ 78॥

द्वारका-आदि-द्वारका धाम तथा अन्य धाम; विभु दिव्य स्थान; तार एइ त प्रमाण-यह उसका प्रमाण है; आमार-इ ब्रह्माण्डे-मेरे ब्रह्माण्ड में; कृष्ण-अभी कृष्ण उपस्थित हैं; सबार-उन सभी को हैल ज्ञान-यह ज्ञान था।

अनुवाद

"यह द्वारका के वैभव का प्रमाण है : सारे ब्रह्माओं ने सोचा, 'अभी कृष्ण मेरे क्षेत्र में विराजमान हैं।"

कृष्ण-सह द्वारका-वैभव अनुभव हैल ।

एकत्र मिलने केह काहो ना देखिल ॥79॥

कृष्ण-सह-कृष्ण के साथ; द्वारका-वैभव-द्वारका का ऐश्वर्य; अनुभव हैल-अनुभव हुआ; एकत्र मिलने–यद्यपि एक साथ आये थे; केह-कोई भी; काहो-किसी दूसरे और को; ना देखिल-नहीं देख पाया।

अनुवाद

"इस तरह हर एक ने द्वारका के वैभव को देखा। यद्यपि वे सभी वहाँ एकत्र थे, किन्तु किसी ने अपने सिवा अन्य किसी को नहीं देखा।"

तात्पर्य

चतुर्मुख ब्रह्मा ने द्वारकाधाम का वैभव देखा, जहाँ कृष्ण रह रहे थे। यद्यपि वहाँ पर दस से लेकर करोड़ शिरों वाले ब्रह्मा उपस्थित थे और यद्यपि अनेक शिवजी भी उपस्थित थे, किन्तु इस ब्रह्माण्ड के चतुर्मुख ब्रह्मा ही उन सबको देख सकते थे। कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति के कारण अन्य सभी एक दूसरे को नहीं देख सके। यद्यपि सारे ब्रह्मा तथा शिव वहाँ साथ में एकत्र थे, किन्तु कृष्ण की शक्ति के कारण वे परस्पर न तो मिल सके, न एक दूसरे से बातें कर सके।

तबे कृष्ण सर्व-ब्रह्मा-गणे विदाय दिला।

दण्डवत् हञा सबै निज घरे गेला ॥80॥

तबे-उसके बाद; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; सर्व-ब्रह्मा-गणे-सभी ब्रह्माओं को; विदाय दिला–विदा दी; दण्डवत् हञा-प्रणाम करके; सबे–वे सभी; निज घरे गेला-अपने-अपने घर लौट गये।

अनुवाद

"तब कृष्ण ने सभी ब्रह्माओं को विदा किया और वे सब नमस्कार करके अपने-अपने घर चले गये।"

देखि' चतुर्मुख ब्रह्मार हैल चमत्कार।

कृष्णेर चरणे आसि' कैला नमस्कार ॥ 81॥

देखि'–देखकर; चतुर्-मुख ब्रह्मार-इस ब्रह्माण्ड के चार सिर वाले ब्रह्मा को; हैल-हो गया; चमत्कार-आश्चर्य; कृष्णेर चरणे आसि'- भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में आकर; कैला नमस्कार–प्रणाम किया।

अनुवाद

"इतना सारा वैभव देखकर इस ब्रह्माण्ड के चार शिरों वाले ब्रह्मा आश्चर्यचकित रह गये। पुनः कृष्ण के चरणकमलों के पास आकर उन्होंने नमस्कार किया।"

ब्रह्मा बले,—पूर्वे आमि ये निश्चय करिलुँ।

तार उदाहरण आमि आजि त' देखिलुँ ॥82 ॥

ब्रह्मा बले-ब्रह्माजी ने कहा; पूर्वे-पहले; आमि-मैंने; ये-जो कुछ भी; निश्चय करिलुँ–निश्चय किया था; तार-उसका; उदाहरण उदाहरण; आमि-मैंने; आजि-आज; त'–निश्चित रूप से; देखिलुँ–देखा है।

अनुवाद

"तब ब्रह्मा ने कहा, 'इसके पूर्व मैंने अपने ज्ञान के विषय में जो निश्चय किया था, उसकी सम्पुष्टि मैंने आज स्वयं कर ली है।"

जानन्त एव जानन्तु किं बहुक्त्या न मे प्रभो ।

मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ 83 ॥

जानन्तः-जो लोग सोचते हैं कि वे आपकी अनन्त शक्तियों को जानते हैं; एव-निश्चित् रूप से; जानन्तु उन्हें ऐसा सोचने दो; किम्-क्या लाभ है; बहु-उक्त्या अनेक बातों से; न-नहीं; मे-मेरे; प्रभो-हे मेरे प्रभु; मनसः-मन की; वपुषः-शरीर की; वाचः-शब्दों की; वैभवम् ऐश्वर्य; तव-आपके; गोचरः-सीमा के भीतर।

अनुवाद

"ऐसे लोग भी हैं, जो यह कहते हैं कि, "मैं कृष्ण के विषय में सब जानता हूँ।" वे भले ही ऐसा सोचते रहें। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं इस विषय में अधिक नहीं कहना चाहता। हे प्रभु, मुझे इतना ही कहने दें। जहाँ तक आपके ऐश्वर्यों का सम्बन्ध है, वे सब मेरे मन, शरीर तथा वाणी की पहुँच से बाहर हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.14.38) में ब्रह्मा के कथन के रूप में आया है।

कृष्ण कहे, "एइ ब्रह्माण्ड पञ्चाशत्कोटि योजन ।

अति क्षुद्र, ताते तोमार चारि वदन” ॥84॥

कृष्ण कहे-कृष्ण ने कहा; एइ ब्रह्माण्ड-यह ब्रह्माण्ड; पञ्चाशत् कोटि योजन-4 अरब मील; अति क्षुद्र-अत्यन्त छोटे; ताते-इसलिए; तोमार-आपके; चारि वदन-चार सिर।

अनुवाद

“कृष्ण ने कहा, ‘तुम्हारे ब्रह्माण्ड का व्यास 4 अरब मील तक का है, अतएव यह सारे ब्रह्माण्डों में सबसे छोटा है। इसलिए तुम्हारे केवल चार सिर हैं।”

तात्पर्य

अपने काल के सबसे बड़े ज्योतिर्विद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने सिद्धान्त-शिरोमणि के आधार पर यह जानकारी दी है कि इस ब्रह्माण्ड का माप 18,712,069,200,000,000 X 8 मील है। यह इस ब्रह्माण्ड की परिधि है। कुछ लोगों के अनुसार यह केवल आधी परिधि है।

कोन ब्रह्माण्ड शत-कोटि, कोन लक्ष-कोटि ।

कोन नियुत-कोटि, कोन कोटि-कोटि ॥85॥

कोन ब्रह्माण्ड-कुछ ब्रह्माण्ड; शत-कोटि-1 अरब योजन; कोन-कुछ; लक्ष-कोटि-100 अरब (1 खरब) योजन; कोन-कोई; नियुत-कोटि-10 खरब; कोन-कोई; कोटि-कोटि-100 खरब।

अनुवाद

“कुछ ब्रह्माण्ड व्यास (डायमीटर) में सौ करोड़ (1 बिलियन) योजन, कोई एक लाख करोड़ योजन, तो कोई दस लाख करोड़ योजन, तो कोई-कोई करोड़-करोड़ योजन के हैं। इस तरह उनका क्षेत्रफल लगभग अनन्त है।”

तात्पर्य

एक योजन आठ मील के बराबर होता है।

ब्रह्माण्डानुरूप ब्रह्मार शरीर-वदन ।

एइ-रूपे पालि आमि ब्रह्माण्डेर गण ॥86॥

ब्रह्माण्ड-अनुरूप-एक ब्रह्माण्ड के आकार के अनुसार; ब्रह्मार-ब्रह्माजी के; शरीर-वदन–शरीर पर मस्तक हैं; एई-रूपे-इस प्रकार; पालि आमि-मैं पालन करता हूँ; ब्रह्माण्डेर गण-ब्रह्माण्डों के सभी असंख्य समूहों का।

अनुवाद

"ब्रह्माण्ड के आकार के अनुसार ही ब्रह्मा के शरीर में इतने सिर होते हैं। इस तरह मैं असंख्य ब्रह्माण्डों का पालन करता हूँ।"

'एक-पाद विभूति' इहार नाहि परिमाण ।

'त्रि-पाद विभूति'र केबा करे परिमाण" ॥ 87॥

एक-पाद विभूति-मेरे ऐश्वर्य के 1/4 प्राकट्य; इहार-इसकी; नाहि-नहीं है; परिमाण-गणना; त्रि-पाद विभूतिर–मेरी शक्ति के 3/4, आध्यात्मिक जगत् का; केबा-कौन; करे-कर सकता है; परिमाण-माप।

अनुवाद

"जब इस भौतिक जगत् में व्याप्त मेरी एक चौथाई शक्ति की लम्बाई तथा चौड़ाई को ही कोई नहीं माप सकता, तो भला आध्यात्मिक जगत् में प्रकट होने वाली मेरी तीन चौथाई शक्ति को कौन माप सकता है?"

तस्याः पारे पर-व्योम त्रिपाद्भूतं सनातनम् ।

अमृतं शाश्वतं नित्यमनन्तं परमं पदम् ॥88॥

तस्याः पारे–विरजा नदी के दूसरे किनारे; पर-व्योम-आध्यात्मिक आकाश; त्रि-पात्-भूतम्-परम भगवान् के ऐश्वर्य के 3/4 भाग रूप में स्थित; सनातनम्-नित्य; अमृतम्-अक्षय; शाश्वतम्-काल के प्रभाव से रहित; नित्यम्-सदैव रहने वाला; अनन्तम्-असीमित; परमम्-सर्वश्रेष्ठ; पदम्-धाम।

अनुवाद

"विरजा नदी के उस पार आध्यात्मिक प्रकृति है, जो अविनाशी, शाश्वत, अव्यय तथा असीम है। यह वह परम धाम है, जिसमें भगवान् का तीन चौथाई वैभव स्थित है। यह परव्योम अर्थात् आध्यात्मिक आकाश कहलाता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण पद्म-पुराण का है, जिसे यहाँ कृष्ण ने सुनाया है।

तबे कृष्ण ब्रह्मारे दिलेन विदाय ।

कृष्णेर विभूति-स्वरूप जानान ना याय ॥89॥

तबे-फिर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; ब्रह्मा-इस ब्रह्माण्ड के ब्रह्माजी को; दिलेन विदाय–विदा किया; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; विभूति-स्वरूप-दिव्य ऐश्वर्य की गणना; जानान ना याय-जानना सम्भव नहीं है।

अनुवाद

"इस तरह कृष्ण ने इस ब्रह्माण्ड के चतुर्मुख ब्रह्मा को विदा किया। इस तरह हम समझ सकते हैं कि कृष्ण की शक्ति के परिमाण की कोई भी गणना नहीं कर सकता।"

'त्र्यधीश्वर'-शब्देर अर्थ 'गूढ़' आर हय ।

‘त्रि’-शब्दे कृष्णेर तिन लोक कय ॥90॥

त्रि-अधीश्वर शब्देर-त्रयधीश्वर शब्द का अर्थ-अर्थ; गूढ़-गुह्य; आर-दूसरा; हय-है; त्रि-शब्दे-‘त्रि’ शब्द द्वारा; कृष्णेर-कृष्ण के; तिन लोक कय-भगवान् कृष्ण के तीन स्थान या ऐश्वर्य।

अनुवाद

‘त्र्यधीश्वर’ शब्द का अर्थ अत्यन्त गूढ़ है, जो यह बतलाता है कि कृष्ण के अधिकार में तीन विभिन्न लोक या प्रकृतियाँ हैं।

तात्पर्य

त्र्यधीश्वर शब्द का अर्थ है “तीन लोकों के स्वामी।” लोक तीन हैं और कृष्ण इन सबके परम स्वामी हैं। भगवद्गीता (5.29) में कृष्ण द्वारा इसकी व्याख्या की गई है :

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

“पूर्ण रूप से मेरी चेतना में अवस्थित व्यक्ति मुझे सारे यज्ञों तथा तपस्याओं का चरम लक्ष्य, समस्त लोकों तथा देवताओं का परमेश्वर और सारे जीवों का उपकारी तथा शुभचिन्तक जानकर सारे भौतिक कष्टों की पीड़ा से शान्ति प्राप्त करता है।”

सर्वलोक शब्द का अर्थ है “तीनों जगत् तथा महेश्वर शब्द का अर्थ है। परम स्वामी।” कृष्ण भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों जगत् के स्वामी हैं। आध्यात्मिक जगत् के दो विभाग हैं-गोलोक वृन्दावन तथा वैकुण्ठ। यह भौतिक जगत् अनन्त ब्रह्माण्डों का संयोग है।

गोलोकाख्य गोकुल, मथुरा, द्वारावती ।

एइ तिन लोके कृष्णेर सहजे नित्य-स्थिति ॥ 91॥

गोलोक-आख्य-गोलोक नामक; गोकुल–गोकुल; मथुरा-मथुरा; द्वारावती-द्वारका; एइ तिन लोके-ये तीनों स्थान; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; सहजे–स्वाभाविक नित्य-स्थिति–नित्य निवासस्थान हैं।

अनुवाद

"लोक तीन हैं-गोकुल (गोलोक), मथुरा तथा द्वारका। कृष्ण इन्हीं तीनों स्थानों में शाश्वत निवास करते हैं।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि गोलोक ग्रह के तीन विभाग हैं-गोकुल, मथुरा तथा द्वारका। कृष्ण अपने श्री चैतन्य महाप्रभु या गौरसुन्दर अवतार में जिन तीन क्षेत्रों में लीलाएँ करते हैं, वे हैं नवद्वीप, जगन्नाथ पुरी (तथा दक्षिण भारत) एवं व्रजमण्डल (वृन्दावन धाम का क्षेत्र)।

अन्तरङ्ग-पूर्णैश्वर्य-पूर्ण तिन धाम ।

तिनेर अधीश्वर—कृष्ण स्वयं भगवान् ॥ 92॥

अन्तरङ्ग-आन्तरिक; पूर्ण-ऐश्वर्य-पूर्ण-सभी ऐश्वर्यों से पूर्ण; तिन धाम–तीनों धाम; तिनेर अधीश्वर-इन तीनों के स्वामी; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; स्वयम् भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"ये तीनों स्थान अन्तरंगा शक्तियों से पूर्ण हैं और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण उनके सर्वेसर्वा हैं।"

पूर्व-उक्त ब्रह्माण्डेर यत दिक्पाल ।

अनन्त वैकुण्ठावरण, चिर-लोक-पाल ॥ 93 ॥

ताँ-सबार मुकुट कृष्ण-पाद-पीठ-आगे।

दण्डवत् काले तार मणि पीठे लागे ॥ 94॥

पूर्व-उक्त-जैसा पहले वर्णन किया गया; ब्रह्माण्डेर-सभी ब्रह्माण्डों के; यत–सभी; दिक्-पाल-दिशाओं के निर्देशक; अनन्त वैकुण्ठ-आवरण-असंख्य वैकुण्ठों को घेरे हुए विस्तार; चिर-लोक-पाल–ब्रह्माण्ड के स्थाई नियन्त्रक; ताँ-सबार-उन सभी के; मुकुट-मुकुट; कृष्ण-पाद-पीठ-आगे-कृष्ण के चरणकमलों के सामने; दण्डवत्-काले-प्रणाम करते समय; तार-उनके; मणि-रत्न; पीठे-चरणों पर; लागे–स्पर्श होते हैं।

अनुवाद

"जैसाकि पहले कहा जा चुका है, सारे ब्रह्माण्डों तथा वैकुण्ठ लोकों के समस्त अधिष्ठाता देवों के मुकुटों की मणियों ने भगवान् को नमस्कार करते समय उनके सिंहासन तथा चरणकमलों का स्पर्श किया है।"

मणि-पीठे ठेकाठेकि, उठे झन्झनि।

पीठेर स्तुति करे मुकुट—हेन अनुमानि ॥95॥

मणि-पीठे-मणियों तथा चरणकमलों अथवा सिंहासन के बीच; ठेकाठेकि-टकराव; उठे-उठती है; झन्झनि-झनझन की ध्वनि; पीठेर-चरणकमलों या सिंहासन में; स्तुति-प्रार्थनाएँ; करे-करते; मुकुट–सभी मुकुट; हेन-ऐसा; अनुमानि–प्रतीत हो रहा था।

अनुवाद

"जब सारे अधिष्ठाता देवों के मुकुटों की मणियाँ भगवान् के सिंहासन तथा उनके चरणकमलों के साथ टकराईं, तो झनझन की आवाज उत्पन्न हुई और ऐसा लगता था, मानो सारे मुकुट कृष्ण के चरणकमलों की स्तुति कर रहे हों।"

निज-चिच्छक्के कृष्ण नित्य विराजमान।

चिच्छक्ति-सम्पत्तिर 'षड्-ऐश्वर्य' नाम ॥ 96 ॥

निज-अपनी; चित्-शक्ते-आध्यात्मिक शक्ति में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; नित्य-नित्य रूप से; विराजमान-स्थित रहते हैं; चित्-शक्ति-आध्यात्मिक शक्ति के; सम्पत्तिर-ऐश्वर्य का; षट्-ऐश्वर्य-छ: ऐश्वर्य; नाम-नाम है।

अनुवाद

"इस तरह कृष्ण सदैव अपनी आध्यात्मिक शक्ति में स्थित रहते हैं और इस शक्ति का वैभव षडैश्वर्य कहलाता है।"

सेइ स्वाराज्य-लक्ष्मी करे नित्य पूर्ण काम।

अतएव वेदे कहे 'स्वयं भगवान्' ॥ 97॥

सेइ स्वाराज्य-लक्ष्मी-वह निजी ऐश्वर्य; करे-करते हैं; नित्य-सदैव; पूर्ण–पूर्ति; काम-सभी इच्छाओं की; अतएव इसलिए; वेदे-वेदों में; कहे-ऐसा कहा गया है; स्वयम् भगवान् कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

अनुवाद

"चूँकि उनके पास आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं, जो उनकी सारी इच्छाओं की पूर्ति करती हैं, अतएव कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् माने जाते हैं। यह वेदों का कथन है।"

कृष्णेर ऐश्वर्य–अपार अमृतेर सिन्धु।

अवगाहिते नारि, तार छुइलँ एक बिन्दु ॥98॥

कृष्णेर ऐश्वर्य कृष्ण के ऐश्वर्य; अपार-असीमित; अमृतेर सिन्धु-अमृत के समुद्र; अवगाहिते-स्नान करने में नारि-मैं असमर्थ हूँ; तार-उसकी; छुइलँ-मैंने स्पर्श किया है; एक बिन्दु-मात्र एक बूँद।

अनुवाद

"कृष्ण की असीम शक्तियाँ अमृत के सागर के समान हैं। चूँकि उस सागर में कोई स्नान नहीं कर सकता, इसलिए मैंने उसकी एक बूँद का स्पर्श मात्र किया है।"

ऐश्वर्य कहिते प्रभुर कृष्ण-स्फूर्ति हैल ।

माधुर्ये मजिल मन, एक श्लोक पड़िल ॥99॥

ऐश्वर्य कहिते-ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; कृष्ण-स्फूर्ति-कृष्ण-प्रेम की जागृति; हैल-हो गई; माधुर्ये-माधुर्य प्रेम की मधुरता में; मजिल मन-मन निमग्न हो गया; एक-एक; श्लोक-श्लोक; पड़िल-पढ़ा।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस तरह से कृष्ण के ऐश्वर्य तथा उनकी आध्यात्मिक शक्तियों का वर्णन किया, तब उनके भीतर कृष्ण-प्रेम जाग उठा। उनका मन माधुर्य-प्रेम की माधुरी में निमग्न हो गया और उन्होंने श्रीमद्भागवत का निम्नलिखित श्लोक सुनाया।

यन्मर्त्य-लीलौपयिकं स्व-योग-

माया-बलं दर्शयता गृहीतम् ।

विस्मापनं स्वस्य च सौभगधैः

परं पदं भूषण-भूषणाङ्गम् ॥100॥

यत्-जो; मर्त्य-लीला-भौतिक जगत् में लीलाएँ, औपयिकम्-के लिए उपयुक्त; स्व-उनकी अपनी; योग-माया-आध्यात्मिक शक्ति का; बलम्-बल; दर्शयता दिखाकर; गृहीतम्-स्वीकृत; विस्मापनम्-आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली; स्वस्य–स्वयं उनके लिए; च-तथा; सौभग-ऋधेः-सौभाग्य के खजाने के; परम्-सर्वश्रेष्ठ; पदम्-धाम; भूषण-आभूषणों के; भूषण-अङ्गम्-जिनके अंग आभूषण हैं।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए इस भौतिक जगत् में अपनी लीलाओं के उपयुक्त एक रूप प्रकट किया। यह रूप उनके लिए भी अद्भुत था और सौभाग्य-सम्पदा का परम धाम था। उसके अंग इतने सुन्दर थे कि वे उनके शरीर में धारण किये हुए आभूषणों के सौन्दर्य को बढ़ा रहे थे।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (3.2.12) का है और उद्धव तथा विदुर की वार्ता के प्रसंग में आया है। उद्धव श्रीकृष्ण द्वारा उस रूप में की गई लीलाओं का वर्णन कर रहे हैं, जिन्हें योगमाया ने प्रकट किया था।

कृष्णेर यतेक खेला, सर्वोत्तम नर-लीला,

नर-वपु ताहार स्वरूप ।

गोप-वेश, वेणु-कर, नव-किशोर, नट-वर,

नर-लीलार हय अनुरूप ॥101॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; यतेक-सभी; खेला–लीलाएँ; सर्व-उत्तम-सबसे अधिक आकर्षक; नर-लीला-मनुष्य रूप में की गई लीलाएँ; नर-वपु–एक मनुष्य जैसा शरीर; ताहार–जिनका; स्वरूप-रूप; गोप-वेश-एक ग्वाल बालक का वेश; वेणु-कर-हाथों में एक बाँसुरी के साथ; नव-किशोर-

नवयुवक; नट-वर-एक दक्ष नर्तक; नर-लीलार–एक मनुष्य के रूप में लीलाएँ करने के लिए; हय-है; अनुरूप-उपयुक्त।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण की अनेक लीलाएँ हैं, जिनमें मनुष्य रूप में उनकी लीलाएँ सर्वोत्तम हैं। उसका मनुष्य रूप सर्वोत्कृष्ट दिव्य रूप है। इस रूप में वे ग्वालबाल हैं। वे अपने हाथ में वंशी लिये रहते हैं और उनकी कैशोरावस्था नित्य नूतन बनी रहती है। वे एक दक्ष नर्तक भी हैं। यह सब मनुष्य रूप में उनकी लीलाओं के सर्वथा अनुरूप है।"

कृष्णेर मधुर रूप, शुन, सनातन

ये रूपेर एक कण, डुबाय सब त्रिभुवन, ।

सर्व प्राणी करे आकर्षण ॥ 102॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; मधुर-मधुर; रूप-रूप; शुन-कृपया सुनो; सनातन-हे मेरे प्रिय सनातन; ये रूपेर-जिस रूप का; एक कण-एक कण मात्र भी; डुबाय-डुबा देता है; सब–समस्त; त्रिभुवन-तीन लोक; सर्व प्राणी-सभी जीव; करे-करता है; आकर्षण-आकर्षित।

अनुवाद

"हे प्रिय सनातन, कृष्ण का मधुर आकर्षक दिव्य रूप इतना सुन्दर है। जरा इसे समझने का प्रयास करो। कृष्ण के सौन्दर्य के ज्ञान का एक अंश भी तीनों जगतों को प्रेम के समुद्र में डुबो सकता है। वे तीनों जगतों के सारे जीवों को आकर्षित करने वाले हैं।"

योगमाया चिच्छक्ति, विशुद्ध-सत्त्व-परिणति,

तार शक्ति लोके देखाइते ।

एइ रूप-रतन, भक्त-गणेर गूढ़-धन,

प्रकट कैला नित्य-लीला हैते ॥ 103॥

योग-माया–अन्तरंगा शक्ति; चित्-शक्ति-आध्यात्मिक शक्ति; विशुद्ध-सत्त्व-विशुद्ध सत्त्वगुण का; परिणति-एक परिवर्तित रूप; तार शक्ति-उस शक्ति का प्रभाव; लोके देखाइते-भौतिक जगत् में प्रदर्शित करने के लिए; एइ रूप-रतन-यह रत्न के समान सुन्दर, दिव्य रूप; भक्त-गणेर गूढ़-धन-भक्तों का गुप्त खजाना; प्रकट–प्रदर्शित; कैला-किया; नित्य-लीला हैते–भगवान् की नित्य लीलाओं से।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण का दिव्य रूप जगत् को उनकी अन्तरंगा शक्ति द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। यह शक्ति शुद्ध सत्त्व का रूपान्तर है। रत्न जैसा यह रूप भक्तों का अत्यन्त गुप्त धन है। यह रूप कृष्ण की सनातन लीलाओं से प्रकट होता है।"

रूप देखि' आपनार, कृष्णेर हैल चमत्कार,

आस्वादिते मने उठे काम ।

'स्व-सौभाग्य' याँर नाम, सौन्दर्यादि-गुण-ग्राम,

एई-रूप नित्य तार धाम ॥ 104॥

रूप देखि'-रूप को देखकर; आपनार-स्वयं अपना; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण को; हैल-हो गया; चमत्कार-आश्चर्य; आस्वादिते-आस्वादन करने की; मने-मन में; उठे-जागती है; काम-लालसा; स्व-सौभाग्य-स्वयं अपना सौभाग्य; याँर-जिनका; नाम-नाम; सौन्दर्य-आदि-गुण-ग्राम-सुन्दरता आदि गुणों का भण्डार; एई रूप-यह रूप; नित्य-शाश्वत; तार–उनका; धाम–निवासस्थान।

अनुवाद

"कृष्ण का अपना अद्भुत स्वरूप इतना महान् है कि वह कृष्ण को भी अपनी खुद की संगति का आस्वादन करने के लिए आकृष्ट करता है। इस तरह कृष्ण उसका आस्वादन करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो उठते हैं। सम्पूर्ण सौन्दर्य, ज्ञान, सम्पत्ति, बल, यश तथा त्याग–ये कृष्ण के छह ऐश्वर्य हैं। वे अपने इन ऐश्वर्यों में सदा स्थित रहते हैं।"

तात्पर्य

कृष्ण की अनेक लीलाएँ हैं, जिनमें गोलोक वृन्दावन की लीलाएँ (गोकुल-लीला) सर्वोच्च हैं। वे वैकुण्ठ लोकों में भी वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के रूप में लीलाएँ करते हैं। आध्यात्मिक आकाश की लीलाओं में वे कारण सागर में कारणार्णवशायी अथवा पुरुष-अवतार के रूप में शयन करते हैं। मत्स्य, कूर्म आदि उनके अवतार उनके नैमित्तिक अवतार कहलाते हैं। वे ब्रह्माजी, शिवजी तथा भगवान् विष्णु के रूप में प्रकृति के गुणों में अवतरित होते हैं। वे पृथु तथा व्यास जैसे शक्तिप्रदत्त जीवों (शक्त्यावेश अवतार) के रूप में भी अवतरित होते हैं। परमात्मा तो उनके अन्तर्यामी (साकार) अवतार हैं और उनका सर्वव्यापक पहलू निर्विशेष ब्रह्म है।

जब हम निष्पक्ष होकर भगवान् की अनन्त लीलाओं पर विचार करते हैं, तो पाते हैं कि इस ग्रह की मनुष्य रूप में उनकी लीलाओं-जिनमें वे अपने हाथ में वंशी लिए गोपवेश में क्रीड़ा करते हैं और नाटक के नर्तक की तरह किशोर तथा नवीन लगते हैं-उन पर भौतिक नियम लागू नहीं होते और साथ ही वे लीलाएँ भौतिक जगत् के उन्माद से परे हैं। कृष्ण का अद्भुत सौन्दर्य गोकुल (गोलोक वृन्दावन) नामक सर्वश्रेष्ठ लोक में प्रकट होता है। परव्योम में उनका सौन्दर्य उससे घटकर रहता है और देवी-धाम में प्रकट होने वाला उनका सौन्दर्य उससे भी घटकर होता है। कृष्ण की माधुरी की एक बूँद भी इन तीनों लोकों-गोलोक वृन्दावन, हरि-धाम (वैकुण्ठ लोक) तथा देवी-धाम (भौतिक जगत्) को आप्लावित कर सकती है। कृष्ण का सौन्दर्य सर्वत्र सबको दिव्य आनन्द-भाव में निमग्न करने वाला है। वास्तव में परव्योम तथा वैकुण्ठ लोकों में योगमाया के कार्यकलाप अनुपस्थित रहते हैं। वह केवल

परम धाम गोलोक वृन्दावन में कार्य करती है और जब कृष्ण अपने असंख्य भक्तों को प्रसन्न करने के लिए इस भौतिक जगत् में अवतरित होते हैं, तब वह कृष्ण के कार्यों को प्रकट करने के लिए कार्य करती है। इस तरह गोलोक वृन्दावन धाम तथा वहाँ की लीलाओं की प्रतिकृति अर्थात् उसका एक नमूना इस लोक के एक विशेष भूभाग-भौम वृन्दावन या वृन्दावन-धाम में प्रकट होता है।

भूषणेर भूषण अङ्ग, ताहें ललित त्रि-भङ्ग,

ताहार उपर भूधनु-नर्तन ।

तेरछे नेत्रान्त बाण, तार दृढ़ सन्धान,

विन्धे राधा-गोपी-गण-मन ॥ 105॥

भूषणेर-आभूषणों के; भूषण-आभूषण; अङ्ग–शरीर के अंग; ताहें-वह लक्षण; ललित-आकर्षक; त्रि-भङ्ग-तीन स्थानों पर तिरछे; ताहार उपर-उस पर; भू-धनु-नर्तन-भौहों का नृत्य; तेरछे-तिरछे; नेत्र-अन्त-आँखों के किनारों के; बाण-तीर; तार-उस तीर का; दृढ़-कठोर; सन्धान-निशाना; विन्धे-बींध देता है; राधा-श्रीमती राधारानी के; गोपी-गण-तथा गोपियों के; मन–मनों को।

अनुवाद

“उस शरीर को आभूषण सहलाते हैं, किन्तु कृष्ण का दिव्य शरीर इतना सुन्दर है कि यह उनके द्वारा पहने गये आभूषणों को सुन्दर बना देता है। इसलिए कृष्ण का शरीर आभूषणों का आभूषण कहलाता है। उनके खड़े होने का त्रिभंगी ढंग उस स्वरूप को भी चार चाँद लगा देता है। इन समस्त सुन्दर लक्षणों के भी ऊपर कृष्ण की आँखें नृत्य करती है और कटाक्ष करती हैं, जो श्रीमती राधारानी तथा गोपियों के मनों को भेदने वाले बाणों का काम करती हैं। जब बाण लक्ष्यभेद कर लेता है, तो उनके मन विचलित हो उठते हैं।”

ब्रह्माण्डोपरि परव्योम, ताहाँ ये स्वरूप-गण,

ताँ-सबार बले हरे मन ।

पति-व्रता-शिरोमणि, याँरे कहे वेद-वाणी,

आकर्षये सेइ लक्ष्मी-गण ॥ 106 ॥

ब्रह्माण्ड-उपरि–सभी ब्रह्माण्डों के ऊपर; पर-व्योम-आध्यात्मिक आकाश; ताहाँ-वहाँ; ये-वे सभी; स्वरूप-गण-दिव्य स्वरूप के विस्तार; ताँ-सबार-उन सभी के; बले-बलपूर्वक; हरे मन-मनों को हर लेता है; पति-व्रता-पतिव्रता स्त्रियों में; शिरोमणि-सर्वश्रेष्ठ; याँरे-जिसे; कहे-कहते हैं; वेद-वाणी-वेदों के छन्द; आकर्षये-यह आकर्षित करता है; सेइ–उन; लक्ष्मी-गण-सभी लक्ष्मियों को।

अनुवाद

"कृष्ण के शरीर का सौन्दर्य इतना आकर्षक है कि वह न केवल इस भौतिक जगत् के देवताओं तथा जीवों को आकृष्ट करता है, अपितु नारायण समेत परव्योम के उन समस्त पुरुषों को भी आकृष्ट करने वाला है, जो कृष्ण के विस्तार हैं। इस तरह समस्त नारायणों के मन कृष्ण के शारीरिक सौन्दर्य द्वारा आकृष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त, इन नारायणों की पत्नियाँ, लक्ष्मियाँ, जिन्हें वेदों में सवाधिक पतिव्रता कहा गया है, कृष्ण के अद्भुत सौन्दर्य द्वारा आकृष्ट हो जाती हैं।"

चड़ि' गोपी-मनोरथे, मन्मथेर मन मथे,

नाम धरे 'मदन-मोहन' ।

जिनि' पञ्चशर-दर्प, स्वयं नव-कन्दर्प,

रास करे लञा गोपी-गण ॥ 107॥

चड़ि'–सवार होकर; गोपी-मनः-रथे-गोपियों के मन रूपी रथों पर; मन्मथेर-कामदेव के; मन-मन का; मथे-मंथन करते हैं; नाम-नाम; धरे-स्वीकार करते हैं; मदन-मोहन-मदनमोहन, कामदेव को

मोहित करने वाले; जिनि'-जीतकर; पञ्च-शर-इन्द्रियों के पाँच तीरों के स्वामी, कामदेव के दर्प-घमंड को; स्वयम्-खुद; नव-नये; कन्दर्प-कामदेव; रास-रासनृत्य; करे-करते हैं; लञा–साथ; गोपी-गण-गोपियाँ।

अनुवाद

"गोपियों पर कृपा करते हुए उनके मनरूपी रथों पर चढ़कर तथा उनसे प्रेममयी सेवा प्राप्त करने के लिए कृष्ण कामदेव की भाँति उनके मनों को आकृष्ट करते हैं। इसलिए वे मदनमोहन अर्थात् कामदेव को आकृष्ट करने वाले भी कहलाते हैं। कामदेव के पाँच बाण हैं, जो रूप, स्वाद, गन्ध, शब्द तथा स्पर्श के द्योतक होते हैं। कृष्ण इन पाँचों बाणों के स्वामी हैं और वे कामदेव जैसे सौन्दर्य द्वारा गोपियों के मनों को जीतते हैं, यद्यपि उन्हें अपने अपूर्व सौन्दर्य का बड़ा गुमान है। कृष्ण नवीन कामदेव बनकर उनके मनों को आकृष्ट करते हैं और रासलीला करते हैं।"

निज-सम सखा-सङ्गे, गो-गण-चारण रङ्गे,

वृन्दावने स्वच्छन्द विहार।

याँर वेणु-ध्वनि शुनि', स्थावर-जङ्गम प्राणी,

पुलक, कम्प, अश्रु वहे धार॥ 108॥

निज-सम-अपने समान; सखा-सङ्गे-मित्रों के साथ; गो-गण-असंख्य गायें; चारण-चराने की; रङ्गे-ऐसी लीलाएँ; वृन्दावने-वृन्दावन में; स्वच्छन्द-स्वत:स्फूर्त; विहार-आनन्दमय विलास; याँर–जिनकी; वेणु-ध्वनि शुनि'-वंशी की ध्वनि सुनकर; स्थावर-जङ्गम प्राणी-चर तथा अचर सभी प्राणी; पुलक-आनन्दित होना; कम्प-काँपते हुए; अश्रु–आँसुओं की; वहे-बहती हैं; धार-धाराएँ।

अनुवाद

“जब भगवान् कृष्ण अपने ही समान अपने मित्रों के साथ वृन्दावन में विचरण करते हैं, तब असंख्य गौवें चरती रहती हैं। यह भगवान् का एक अन्य अनन्दमय विहार है। जब वे अपनी बाँसुरी बजाते हैं, तो सारे जीव-जिसमें वृक्ष, पौधे, पशु तथा मनुष्य सम्मिलित हैं,—काँपने लगते हैं और हर्ष से पूरित हो उठते हैं। उनकी आँखों से निरन्तर अश्रुधारा बहने लगती है।”

मुक्ता-हार—बक-पाँति, इन्द्र-धनु-पिञ्छ तति,

पीताम्बर—विजुरी-सञ्चार।

कृष्ण नव-जलधर, जगत्-शस्य-उपर,

वरिषये लीलामृत-धार ॥109॥

मुक्ता-हार-हीरों का एक हार; बक-पाँति-श्वेत बगुलों की एक पंक्ति के समान; इन्द्र-धनु-एक इन्द्रधनुष के समान; पिञ्छ–मोर की पंख; तति-वहाँ; पीत-अम्बर-पीले वस्त्र; विजुरी-सञ्चार-आकाश में चमकती बिजली के समान; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; नव-नये; जल-धर-जलयुक्त बादल; जगत्-ब्रह्माण्ड; शस्य-गेहूं की फसल के समान; उपर-ऊपर; वरिषये-वर्षा करते हैं; लीला-अमृत-भगवान् कृष्ण की लीलाएँ; धार-धारा।

अनुवाद

“कृष्ण द्वारा गले में पहनी मोती की माला श्वेत बगुलों की पंक्ति जैसी लगती है। उनके बालों में लगा मोरपंख इन्द्रधनुष जैसा और उनके पीले वस्त्र आकाश में बिजली जैसे लगते हैं। कृष्ण नये उठे हुए बादल जैसे लगते हैं और गोपियाँ खेत में खिले नये गेहूँ जैसी लगती हैं। इन नई खिली फसलों पर पर अमृतमयी लीलाओं की निरन्तर वर्षा होती है और ऐसा लगता

है कि गोपियाँ कृष्ण से उसी तरह जीवन रश्मियाँ प्राप्त कर रही हैं, जिस तरह वर्षा से विविध प्रकार की फसलें जीवन प्राप्त करती हैं।"

माधुर्य भगवत्ता-सार, व्रजे कैल परचार,

ताहा शुक—व्यासेर नन्दन ।

स्थाने स्थाने भागवते, वर्णियाछे जानाइते,

ताहा शुनि' माते भक्त-गण ॥ 110॥

माधुर्य-मधुरता; भगवत्ता-सार–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के ऐश्वर्यों का सार; व्रजे-वृन्दावन में; कैल–किया; परचार–प्रचार; ताहा–वह; शुकशुकदेव गोस्वामी; व्यासेर नन्दन-व्यासदेव के पुत्र; स्थाने स्थाने–विभिन्न स्थानों पर; भागवते- श्रीमद्भागवत में; वर्णियाछे-वर्णित किया है; जानाइते-बताने के लिए; ताहा शुनि'–उन वचनों को सुनकर; माते-पागल हो जाते हैं; भक्त-गण-सभी भक्त।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण अपने आकर्षक सौन्दर्य समेत छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं, जिसके कारण वे गोपियों के साथ माधुर्य-प्रेम में रत होते हैं। ऐसी माधुरी उनके गुणों का सार है। व्यासदेव के पुत्र शुकदेव गोस्वामी ने श्रीमद्भागवत में स्थान-स्थान पर कृष्ण की इन लीलाओं का वर्णन किया है, जिन्हें सुनकर भक्तगण भगवत्प्रेम में उन्मत्त हो उठते हैं।"

कहिते कृष्णेर रसे, श्लोक पड़े प्रेमावेशे,

प्रेमे सनातन-हात धरि' ।

गोपी-भाग्य, कृष्ण गुण, ये करिल वर्णन,

भावावेशे मथुरा-नागरी ॥111॥

कहिते-वर्णन करने के लिए; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; रसे-विभिन्न प्रकार के रस; श्लोक-एक श्लोक; पड़े-पढ़ते हैं; प्रेम-आवेशे-प्रेमभाव से विभोर होकर; प्रेमे-प्रेम से; सनातन-हात धरि'–सनातन गोस्वामी के हाथ थामकर; गोपी-भाग्य-गोपियों के सौभाग्य; कृष्ण गुण-भगवान् कृष्ण के दिव्य गुण; ये-जो; करिल वर्णन-वर्णन किया; भाव-आवेशे-प्रेमभाव में; मथुरा-नागरी-मथुरा की स्त्रियों ने।

अनुवाद

जिस तरह मथुरा की स्त्रियों ने वृन्दावन की गोपियों के भाग्य तथा कृष्ण के दिव्य गुणों का भावमय वर्णन किया है, उसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण के विभिन्न रसों का वर्णन किया और वे प्रेमभाव से अभिभूत हो गये। उन्होंने सनातन गोस्वामी का हाथ थामकर निम्नलिखित श्लोक पढ़ा।

गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं

लावण्य-सारमसमोर्ध्वमनन्य-सिद्धम् ।

दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुरापम्

एकान्त-धाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥112॥

गोप्यः-गोपियों ने; तपः-तपस्याएँ; किम्-कौन सी; अचरन्-की; यत्-जिनके द्वारा; अमुष्य-ऐसे (भगवान् कृष्ण); रूपम्-स्वरूप; लावण्य-सारम्-सुन्दरता का सार; असम-ऊर्ध्वम्-जिसके समान या उससे बढ़कर कुछ नहीं है; अनन्य-सिद्धम्-जो किसी अन्य आभूषण द्वारा शोभित नहीं है (स्वयं सिद्ध); दृग्भिः-आँखों द्वारा; पिबन्ति–वे पान करती हैं; अनुसव-अभिनवम्-निरन्तर नवीन; दुरापम्-कठिनाई से मिलने वाले; एकान्त-धाम–एकमात्र धाम; यशसः-यश के; श्रियः-सुन्दरता के; ऐश्वरस्य-ऐश्वर्य के।

अनुवाद

“गोपियों ने कौन-सी तपस्या की होगी? वे कृष्ण के रूप के उस अमृत को अपनी आँखों से सदा पीती हैं, जो लावण्य का सार है और जिसकी न तो समानता हो सकती है, न जिसको लाँघा जा सकता है। वह लावण्य सौन्दर्य, यश तथा ऐश्वर्य का एकमात्र धाम है। वह स्वयं-सिद्ध, चिर-नवीन तथा अद्वितीय है।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.44.14) का है, जिसे मथुरा की स्त्रियों ने कृष्ण को मल्लभूमि में देखकर कहा था।

तारुण्यामृत—पारावार, तरङ्ग—लावण्य-सार,

ताते से आवर्त भावोद्गम ।

वंशी-ध्वनि—चक्रवात, नारीर मन—तृण-पात,

ताहा डुबाय, ना हय उद्गम ॥113॥

तारुण्य-अमृत-नित्य यौवन; पारावार-एक विशाल समुद्र के समान; तरङ्ग-लहरें; लावण्य-सार–शरीर की सुन्दरता का सार; ताते-उस समुद्र में; से-वह; आवर्त-एक भंवर के समान; भाव-उद्गम-विभिन्न प्रेम भावनाओं का जागरण; वंशी-ध्वनि-बाँसुरी की ध्वनि; चक्रवात-एक चक्रवात के समान; नारीर-स्त्रियों के; मन–मनों को; तृण-पात-घास के तिनके; ताहा–उन्हें; डुबाय-डुबा देती है; ना हय उद्गम-फिर कभी बाहर नहीं आ पाते।

अनुवाद

“श्रीकृष्ण के शरीर का सौन्दर्य चिर यौवन के सागर की एक तरंग की भाँति है। उस महासागर में प्रेमभाव का उदय भंवर के समान है। कृष्ण की वंशी की ध्वनि चक्रवात की तरह है और गोपियों के चंचल मन सूखे पत्तों और तिनकों की तरह हैं। जब वे चक्रवात में गिर

जाते हैं, तो फिर ऊपर कभी नहीं उठते, अपितु कृष्ण के चरणकमलों में ही निरन्तर पड़े रहते हैं।"

सखि हे, कोन् तप कैल गोपी-गण

कृष्ण-रूप-सुमाधुरी, पिबि' पिबि' नेत्र भरि', ।

श्लाघ्य करे जन्म-तनु-मन ॥ 114॥

सखि हे-मेरी प्रिय सखी; कोन्-क्या; तप-तपस्याएँ; कैल-की हैं; गोपी-गण-सभी गोपियों ने; कृष्ण-रूप-भगवान् कृष्ण की सुन्दरता का; सु-माधुरी-समस्त मधुरता का सार; पिबि' पिबि'–पी-पीकर; नेत्र भरि'–नेत्र भरकर; श्लाघ्य करे-वे गुणगान करते हैं; जन्म-तनु-मन-उनके जन्म, शरीर तथा मनों का।

अनुवाद

"हे प्रिय सखी, गोपियों ने कौन-सी कठिन तपस्या की है कि वे उनकी दिव्य सुन्दरता तथा माधुरी को अपनी आँखों से जी भरकर पी रही हैं? इस तरह वे अपने जन्म, शरीर तथा मन को सफल बनाती हैं।"

ये माधुरीर ऊर्ध्व आन, नाहि यार समान,

परव्योमे स्वरूपेर गणे ।

येंहो सब-अवतारी, परव्योम-अधिकारी,

ए माधुर्य नाहि नारायणे ॥115॥

ये माधुरीर-जिस मधुरता से; ऊर्ध्व-उच्चतर; आन–दूसरा; नाहि-नहीं है; यार समान-उसके समान; पर-व्योमे-आध्यात्मिक आकाश में; स्वरूपेर गणे-कृष्ण के स्वरूप के विस्तारों में; येंहो-जो;

सब-अवतारि-सभी अवतारों के मूल स्रोत हैं; पर-व्योम-अधिकारी-वैकुण्ठ लोकों के अधिष्ठाता देव; ए माधुर्य–यह दिव्य मधुरता; नाहि-नहीं है; नारायणे-भगवान् नारायण में भी।

अनुवाद

"गोपियों द्वारा कृष्ण के सौन्दर्य की जिस माधुरी का आस्वादन किया जाता है, वह अद्वितीय है। उस भावमयी माधुरी के समान या उससे बढ़कर कुछ भी नहीं है। यहाँ तक कि वैकुण्ठ लोकों के अधिष्ठाता नारायणों में भी वह माधुरी नहीं है। निस्सन्देह, नारायण-पर्यन्त कृष्ण के सारे अवतारों में से किसी में भी ऐसा दिव्य सौन्दर्य नहीं है।"

ताते साक्षी सेइ रमा, नारायणेर प्रियतमा,

पतिव्रता-गणेर उपास्या ।

तिंहो ये माधुर्य-लोभे, छाड़ि' सब काम-भोगे,

व्रत करि' करिला तपस्या ॥116॥

ताते-इस सन्दर्भ में; साक्षी-प्रमाण; सेइ रमा-वह लक्ष्मी देवी; नारायणेर प्रिय-तमा–नारायण की सर्वप्रिया संगिनी; पति-व्रता-गणेर-सभी पतिव्रता स्त्रियों में; उपास्या-पूज्य; तिंहो–उसने; ये-उस; माधुर्य-लोभे–मधुरता से आकर्षित होकर; छाड़ि-छोड़कर; सब-सब कुछ; काम-भोगे–कृष्ण के साथ रमण करने के लिए; व्रत करि'-व्रत करके; करिला तपस्या-तपस्याएँ की।

अनुवाद

"नारायण की प्रियतमा लक्ष्मी इस सम्बन्ध में स्पष्ट प्रमाण हैं। लक्ष्मी की पूजा सारी पतिव्रता स्त्रियाँ करती हैं। उन्हीं लक्ष्मी ने कृष्ण की अद्वितीय माधुरी द्वारा मुग्ध होकर उनके साथ भोग करने की इच्छा से ही सब कुछ त्याग दिया, इस प्रकार उन्होंने कठोर व्रत लिया और कठिन तपस्या की।"

सेइ त' माधुर्य-सार, अन्य-सिद्धि नाहि तार,

तिंहो—माधुर्यादि-गुण-खनि ।

आर सब प्रकाशे, ताँर दत्त गुण भासे,

याहाँ यत प्रकाशे कार्य जानि ॥117॥

सेइ त' माधुर्य-सार-वही मधुरता का सार है; अन्य-सिद्धि-किसी अन्य प्रकार से सिद्धि; नाहि-नहीं है; तार-उसकी; तिंहो- भगवान् कृष्ण; माधुर्य-आदि-गुण-खनि-माधुर्य आदि दिव्य रसों की खान; आर सब-अन्य सभी; प्रकाशे-प्राकट्यों में; तॉर–उनके; दत्त-दिये हुए; गुण-दिव्य गुण; भासे-दर्शाते हैं; याहाँ–जहाँ; यत-जितना; प्रकाशे-उस अवतार में; कार्य-कार्य करना है; जानि-मैं मानता हूँ।

अनुवाद

"कृष्ण के शरीर की मधुर कान्ति का सार इतना पूर्ण है कि उससे बढ़कर कोई पूर्णता नहीं है। वे दिव्य गुणों की नित्य खान हैं। उनके अन्य रूपों तथा व्यक्तिगत विस्तारों में ऐसे गुणों का केवल आंशिक प्रदर्शन ही होता है। इस तरह हम उनके समस्त निजी व्यक्तिगत विस्तारों को समझ पाते हैं।"

गोपी-भाव-दरपण, नव नव क्षणे क्षण,

तार आगे कृष्णेर माधुर्य ।

दोंहे करे हुड़ाहुड़ि, बाड़े, मुख नाहि मुड़ि,

नव नव दोंहार प्राचुर्य ॥118॥

गोपी-भाव-दरपण-गोपीयों का भाव एक दर्पण के समान है; नव नव क्षणे क्षण-प्रत्येक क्षण नया नया; तार आगे-उसके समान; कृष्णेर माधुर्य-कृष्ण की सुन्दरता का माधुर्य; दोहे-दोनों; करे-करते

हैं; हुड़ाहुड़ि-आपसी होड़; बाड़े-बढ़ती है; मुख नाहि मुड़ि-मुख नहीं मोड़ते; नव नव-नये नये; दोंहार-उन दोनों की प्राचुर्य-प्रचूरता।

अनुवाद

"गोपियाँ तथा कृष्ण दोनों ही पूर्ण हैं। गोपियों का प्रेमभाव उस दर्पण के समान है, जो प्रतिक्षण नूतन होता जाता है और कृष्ण की शारीरिक कान्ति तथा माधुरी को प्रतिबिम्बित करता है। इस तरह एक होड़ सी लग जाती है। चूँकि दोनों पक्षों में से कोई हार नहीं मानता, इसलिए उनकी लीलाएँ नवीनतर होती जाती हैं और दोनों पक्षों में निरन्तर वृद्धि होती जाती है।"

कर्म, तप, योग, ज्ञान, विधि-भक्ति, जप, ध्यान,

इहा हैते माधुर्य दुर्लभ ।

केवल ये राग-मार्गे, भजे कृष्णे अनुरागे,

तारे कृष्ण-माधुर्य सुलभ ॥ 119॥

कर्म-सकाम कर्म; तप-तपस्याएँ; योग-योगाभ्यास; ज्ञान-तार्किक ज्ञानार्जन; विधि-भक्ति-भक्ति की विधियों का पालन; जप-जप; ध्यान-ध्यान; इहा हैते–इन सबसे; माधुर्य-कृष्ण की मधुरता; दुर्लभ-अनुभव करना अत्यन्त कठिन है; केवल–केवल; ये-जो; राग-मार्गे–रागानुग प्रेमभाव के मार्ग द्वारा; भजे-उपासना करता है; कृष्णे-भगवान् कृष्ण की; अनुरागे-दिव्य भावनाओं के साथ; तारे—उसे; कृष्ण-माधुर्य-कृष्ण की मधुरता; सुलभ–बहुत सरलता से प्राप्त हो जाती है।

अनुवाद

"कृष्ण तथा गोपियों के पारस्परिक व्यवहार से उत्पन्न दिव्य रसों का आस्वादन कर्म, तप, योग, ज्ञान, विधि-भक्ति, मन्त्र योग या ध्यान द्वारा नहीं किया जा सकता। इस माधुरी का

आस्वादन केवल मुक्त पुरुषों के स्वतःस्फूर्त रागानुग प्रेम द्वारा किया जा सकता है, जो परम अनुराग के साथ कृष्ण-नाम का कीर्तन करते हैं।"

सेइ-रूप व्रजाश्रय, ऐश्वर्य-माधुर्यमय,

दिव्य-गुण-गण-रत्नालय ।

आनेर वैभव-सत्ता, कृष्ण-दत्त भगवत्ता,

कृष्ण-सर्व-अंशी, सर्वाश्रय ॥120॥

सेइ-रूप-वह दिव्य सुन्दरता; व्रज-आश्रय-जिसका वास वृन्दावन में है; ऐश्वर्य-माधुर्य-मय-ऐश्वर्य तथा प्रेम के माधुर्य से पूर्ण है; दिव्य-गुण-गण-दिव्य गुणों के; रत्न-आलय–सभी रत्नों का स्रोत; आनेर-दूसरों के; वैभव-सत्ता-ऐश्वर्यों की उपस्थिति; कृष्ण-दत्त-सभी कृष्ण द्वारा दिये गये; भगवत्तापूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के गुण; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; सर्व-अंशी-उन सभी के मूल स्रोत; सर्व-आश्रय-उन सभी के आश्रय।

अनुवाद

"कृष्ण तथा गोपियों के बीच ऐसा भावमय आदान-प्रदान केवल वृन्दावन में सम्भव है, जो दिव्य प्रेम के ऐश्वर्य से ओतप्रोत है। कृष्ण का स्वरूप समस्त दिव्य गुणों का मूल स्रोत है। यह रत्नों की खान के समान है। कृष्ण के व्यक्तिगत विस्तारों के पास जितना ऐश्वर्य होता है, उसे कृष्ण द्वारा प्रदत्त समझा जाना चाहिए। अतः कृष्ण आदि स्रोत हैं तथा सबके आश्रय हैं।"

श्री, लज्जा, दया, कीर्ति, धैर्य, वैशारदी मति,

एइ सब कृष्णे प्रतिष्ठित ।

सुशील, मृदु, वदान्य, कृष्ण-सम नाहि अन्य,

कृष्ण करे जगतेर हित ॥121॥

श्री–सुन्दरता; लज्जा–विनम्रता; दया-दया; कीर्ति-यश; धैर्य-धीरता; वैशारदी-दक्षता; मति–बुद्धिमानी; एइ सब-ये सब; कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; प्रतिष्ठित उपस्थित हैं; सुशील–भद्र; मृदु-कोमल; वदान्य-उदार; कृष्ण-सम-कृष्ण के समान; नाहि-कोई नहीं है; अन्य--दूसरा; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करे-करते हैं; जगतेर-संसार का; हित-कल्याण।

अनुवाद

"सौन्दर्य, विनम्रता, दया, कीर्ति, धैर्य तथा दक्ष बुद्धि-ये सभी कृष्ण में प्रकट होते हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त भी उनमें सदाचार, मृदुता तथा उदारता के अन्य गुण पाये जाते हैं। वे सारे जगत् के लिए कल्याण-कार्य भी करते हैं। ये सारे गुण नारायण जैसे अंशों में दृष्टिगोचर नहीं होते।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है कि सौन्दर्य, विनम्रता, दया, कीर्ति, धैर्य तथा दक्ष बुद्धि अत्यन्त सुन्दर गुण हैं और जब ये नारायण के व्यक्तित्व में प्रकट होते हैं, तब यह समझना चाहिए कि ये कृष्ण द्वारा नारायण को प्रदान किये गये हैं। सदाचार, मृदुता तथा उदारता के गुण केवल कृष्ण में मिलते हैं। केवल कृष्ण सारे जगत् के लिए कल्याण-कार्य करते हैं।

कृष्ण देखि' नाना जन, कैल निमिषे निन्दन,

व्रजे विधि निन्दे गोपी-गण ।

सेइ सब श्लोक पड़ि', महाप्रभु अर्थ करि',

सुखे माधुर्य करे आस्वादन ॥ 122 ॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; देखि-देखकर; नाना जन–अनेक लोगों ने; कैल-की; निमिषे–नेत्रों की पलकें झपकाने के कारण; निन्दन-निन्दा; व्रजे-वृन्दावन में; विधि-ब्रह्माजी की; निन्दे-निन्दा करती हैं; गोपी-गण-सभी गोपियाँ; सेइ सब-वे सभी; श्लोक-श्लोक; पड़ि'–पढ़कर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; अर्थ करि–व्याख्या करके; सुखे-आनन्द में; माधुर्य-दिव्य मधुरता; करे-करते हैं; आस्वादन-आस्वादन।

अनुवाद

"कृष्ण को देखकर विविध लोग अपनी पलकों के झपकने की निन्दा करते हैं। विशेषतया वृन्दावन में सारी गोपियाँ आँखों के इस दोष के लिए ब्रह्मा की निन्दा करती हैं। इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत के कुछ श्लोक सुनाये और उनकी विस्तृत व्याख्या की। इस तरह उन्होंने बहुत ही सुख के साथ दिव्य माधुरी का आस्वादन किया।"

यस्याननं मकर-कुण्डल-चारु-कर्ण-

भ्राजत्कपोल-सुभगं स-विलास-हासम् ।

नित्योत्सवं न ततृपुर्हशिभिः पिबन्त्यो

नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ॥ 123 ॥

यस्य-भगवान् कृष्ण के; आननम्-मुख के; मकर-कुण्डल-मछली जैसे कुण्डलों द्वारा; चारु–सुशोभित; कर्ण-कान; भ्राजत्-चमकते हुए; कपोल-गाल; सु-भगम्-कोमल; स-विलास-हासम्-आनन्द भाव की मुस्कान के साथ; नित्य-उत्सवम्-आनन्द के दिव्य उत्सव से युक्त; न-नहीं; ततृपुः–सन्तुष्ट; दृशिभिः-आँखों द्वारा; पिबन्त्यः-पीते; नार्यः-सभी स्त्रियाँ; नराः-पुरुष; च-तथा; मुदिताः-अत्यन्त प्रसन्न; कुपिताः-अत्यन्त क्रोधित; निमेः-पलकों के झपकने के कारण, ब्रह्माजी पर; च–तथा।

अनुवाद

“सारे पुरुष तथा स्त्रियाँ भगवान् कृष्ण के चमकते मुख तथा उनके कानों से लटकते मकराकृति कुण्डलों की शोभा देखने के अभ्यस्त थे। उनका सुन्दर स्वरूप, उनके गाल तथा खिलवाड़ करती हँसी-ये सब मिलकर नेत्रों के लिए निरन्तर उत्सव बने रहते हैं, किन्तु आँखों का झपकना ऐसा अवरोध बन जाता है, जिससे वे उस शोभा को देख नहीं पाते। इसी कारण से पुरुष तथा स्त्रियाँ स्रष्टा (ब्रह्माजी) के ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध थीं।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (9.24.65) का है।

अटति यद्भवानह्नि काननं

त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।

कुटिल-कुन्तलं श्री-मुखं च ते

जड़ उदीक्षतां पक्ष्म-कृशाम् ॥ 124॥

अटति-जाते हैं; यत्-जब; भवान्–आप; अह्नि-दिन के समय; काननम्-वन में; त्रुटि:-आधा क्षण; युगायते-एक युग की भाँति प्रतीत होता है; त्वाम्-आपको; अपश्यताम्-उनको जो नहीं देख पाते; कुटिल-कुन्तलम्-धुंघराले बालों से सुशोभित; श्री-मुखम् सुन्दर मुख को; च–तथा; ते-आपके; जड़:-मूर्ख; उदीक्षताम्-देखकर; पक्ष्म-कृत्-पलकों के रचयिता; दृशाम्-आँखों की।

अनुवाद

“हे कृष्ण, जब आप दिन में जंगल चले जाते हो और हम आपके सुन्दर मुख को, जो सुन्दर सुंघराले केशों से घिरा हुआ है, नहीं देखतीं तब आधे क्षण का समय हमारे लिए एक युग के बराबर लगता है। तब हम उस स्रष्टा को, जिसने आपको देखने वाली आँखों के ऊपर पलकें लगा दी हैं, मात्र मूर्ख समझती हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक गोपियों की उक्ति है, जो श्रीमद्भागवत (10.31.15) में आई है।

काम-गायत्री-मन्त्र-रूप, हय कृष्णेर स्वरूप,

सार्ध-चब्बिश अक्षर तार हय ।

से अक्षर 'चन्द्र' हय, कृष्णे करि' उदय,

त्रिजगत् कैला काममय ॥ 125॥

काम-गायत्री-मन्त्र-रूप-काम गायत्री नामक मन्त्र; हय-है; कृष्णेर स्वरूप-कृष्ण के साथ एकरूप; सार्ध-चब्बिश-24 1/2; अक्षर-अक्षर; तार-उसके; हय-हैं; से अक्षर-ये अक्षर; चन्द्र हय-चन्द्रमा के समान हैं; कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; करि' उदय-जागते हैं; त्रि-जगत्-तीनों लोक; कैला-कर दिये; काम-मय-इच्छाओं से पूर्ण।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण वैदिक मन्त्र काम-गायत्री से अभिन्न हैं, जो साढ़े चौबीस अक्षरों से रचित है। वे अक्षर उन चन्द्रमाओं के सदृश हैं, जो कृष्ण में उदित होते हैं। इस तरह तीनों जगत् काममय हो जाते हैं।"

सखि हे, कृष्ण-मुख—द्विज-राज-राज

कृष्ण-वपु-सिंहासने, वसि' राज्य-शासने, ।

करे सङ्गे चन्द्रेर समाज ॥126॥

सखि हे-हे प्रिय सखी; कृष्ण-मुख-भगवान् कृष्ण का मुख; द्विज-राज-राज-चन्द्रमाओं का राजा; कृष्ण-वपु-कृष्ण के दिव्य शरीर के सिंहासने-सिंहासन पर; वसि'-बैठकर; राज्य-शासने-राज्य का शासन; करे-करता है; सङ्गे-संग में; चन्द्रेर समाज-चन्द्रमाओं का समाज।

अनुवाद

"कृष्ण का मुख समस्त चन्द्रमाओं का राजा है और कृष्ण का शरीर सिंहासन है। इस तरह राजा चन्द्रमाओं के समाज पर शासन करता है।"

तात्पर्य

कृष्ण के मुख को चन्द्रमाओं का राजा कहा गया है और उनके शरीर को सिंहासन मना जाता है। अन्य सारे चन्द्रमा गौण माने गये हैं। बायाँ गाल एक चन्द्रमा है और दायाँ गाल दूसरा चन्द्रमा है। उनका ललाट आधा चन्द्रमा माना गया है, कृष्ण के ललाट पर चन्दन का चिह्न भी एक चन्द्रमा माना गया है। उनके हाथों तथा पाँवों के नाखून भी विभिन्न चन्द्रमा हैं।

दुइ गण्ड सुचिक्कण, जिनि' मणि-सुदर्पण,

सेइ दुइ पूर्ण-चन्द्र जानि ।

ललाटे अष्टमी-इन्दु, ताहाते चन्दन-बिन्दु,

सेइ एक पूर्ण-चन्द्र मानि ॥ 127॥

दुइ-दोनों; गण्ड–गाल; सु-चिक्कण-अत्यन्त चमकदार; जिनि'-जीत लेते हैं; मणि-सु-दर्पण-चमकते हीरों को; सेइ दुइ-वे दोनों; पूर्ण-चन्द्र–पूर्ण चन्द्रमा; जानि-मैं मानता हूँ; ललाटे-माथे पर; अष्टमी-इन्दु-अष्टमी का अर्ध चन्द्रमा; ताहाते-उस पर; चन्दन-बिन्दु-चन्दन के लेप की बिन्दु; सेइ-वह; एक-एक; पूर्ण-चन्द्र–पूर्ण चन्द्रमा; मानि–मैं मानता हूँ।

अनुवाद

“कृष्ण के दोनों गाल चमकीले मणियों जैसे हैं। दोनों पूर्ण चन्द्रमा माने जाते हैं। उनका ललाट अर्धचन्द्रमा माना गया है और वहाँ लगे चन्दन के बिन्दु को पूर्ण चन्द्रमा माना गया है।”

कर-नख-चान्देर हाट, वंशी-उपर करे नाट,

तार गीत मुरलीर तान ।

पद-नख-चन्द्र-गण, तले करे नर्तन,

नूपुरेर ध्वनि यार गान ॥ 128॥

कर-नख-हाथों के नाखूनों का; चान्देर–पूर्ण चन्द्रमाओं का; हाट-बाजार; वंशी-बाँसुरी; उपर-पर; करे-करते हैं; नाट-नृत्य; तार-उनके; गीत-गीत; मुरलीर तान-बांसुरी के सुर; पद-नख-चरणों के नाखूनों के; चन्द्र-गण-अनेक पूर्ण चन्द्रमा; तले-भूमि पर; करे-करते हैं; नर्तन-नृत्य; नूपुरेर–मुँघरूओं की; ध्वनि-ध्वनि; यार–जिनका; गान-गीत।

अनुवाद

“उनके हाथ के नाखून अनेक पूर्ण चन्द्रमा हैं और वे उनके हाथ की वंशी पर नृत्य करते हैं। उनका गीत उस वंशी की तान है। उनके पाँवों के नाखून भी अनेक पूर्ण चन्द्रमा हैं, जो भूमि पर नृत्य करते हैं। उनका गीत उनके नूपुरों की झंकार है।”

नाचे मकर-कुण्डल, नेत्र—लीला-कमल,

विलासी राजा सतत नाचाय ।

भू—धनु, नेत्र—बाण, धनुर्गुण—दुइ काण,

नारी-मन-लक्ष्य विन्धे ताय ॥129॥

नाचे-नाचते हैं; मकर-कुण्डल-मछली के आकार के कुण्डल; नेत्र-आँखे; लीला-लीला के लिए; कमल-कमल के समान; विलासी-आनन्द लेने वाले; राजा-राजा; सतत नाचाय-हमेशा नचाते हैं; भू-दोनों भौहों को; धनु-धनुष की तरह; नेत्र-आँखों के; बाण-तीरों के समान; धनुर्-गुण-धनुष की प्रत्यंचा; दुइ काण-दोनों कान; नारी-मन-गोपियों के मनों कों; लक्ष्य-निशाना बनाकर; विन्धे-चीरते हैं; ताय-वहाँ।

अनुवाद

"कृष्ण का मुख विलासी राजा है। उनका वह पूर्ण चन्द्रमा रूप मुख उनके मकराकृति कुण्डलों तथा कमलनेत्रों को नचाने वाला है। उनकी भौहें धनुष के समान हैं और उनकी आँखें बाणों जैसी हैं। उनके कान उस धनुष की डोरी पर स्थित हैं और जब उनकी आँखें उनके कानों तक फैलती हैं, तब कृष्ण गोपियों के हृदयों को बींध देते हैं।"

एइ चान्देर बड़ नाट, पसारि' चान्देर हाट,

विनिमूले विलाय निजामृत ।

काहों स्मित-ज्योत्स्नामृते, काँहारे अधरामृते,

सब लोक करे आप्यायित ॥130॥

एइ चान्देर-इस चन्द्रमुख का; बड़-बड़ा; नाट-नृत्य; पसारि'–फैलाकर; चान्देर हाट–पूर्ण चन्द्रमाओं का बाजार; विनिमूले-बिना मूल्य के; विलाय-बाँटते हैं; निज-अमृत-इसका निजी अमृत; काहों-कुछ लोगों को; स्मित-ज्योत्स्ना-अमृते-मधुर मुस्कान की चन्द्रकिरणों के अमृत द्वारा; काँहारे-कुछ को; अधर-अमृते-होठों के अमृत द्वारा; सब लोक-सभी लोगों को; करे आप्यायित–प्रसन्न करते हैं।

अनुवाद

“उनके मुख का नृत्य करता स्वरूप अन्य सभी पूर्ण चन्द्रमाओं से बाजी मार ले जाता है और पूर्ण चन्द्रमाओं के बाजार (हाट) को विस्तृत करता है। कृष्ण के मुख का अमृत अमूल्य होते हुए भी सबमें वितरित किया जाता है। कुछ उनकी मृदु हँसी की चन्द्र-किरणों को खरीदते हैं, तो कुछ उनके होठों के अमृत को। इस तरह वे सबको तुष्ट करते हैं।”

विपुलायतारुण, मदन-मद-घूर्णन,

मन्त्री यार ए दुइ नयन ।

लावण्य-केलि-सदन, जन-नेत्र-रसायन,

सुखमय गोविन्द-वदन ॥ 131॥

विपुल-आयत-विशाल तथा फैली हुई; अरुण–लालिमायुक्त; मदन-मद-कामदेव का गर्व; घूर्णन-चूर करती हुई; मन्त्री–मन्त्री; यार—जिसके; ए-ये; दुइ-दोनों; नयन-नेत्र; लावण्य-केलि–सुन्दरता की लीलाओं के; सदन–निवास; जन-नेत्र-रस-आयन-सभी की आँखों को आनन्द देने वाला; सुख-मय-सुख से पूर्ण; गोविन्द-वदन-भगवान् कृष्ण का मुख।

अनुवाद

“कृष्ण के दो विस्फारित लाल लाल नेत्र हैं। ये राजा के दो मन्त्री हैं और सुन्दर नेत्रों वाले कामदेव के गर्व का दमन करने वाले हैं। सुख से पूर्ण गोविन्द का वह मुख सौन्दर्य विलास का घर है और यह सबके नेत्रों को अत्यन्त सुहावना लगता है।”

याँर पुण्य-पुञ्ज-फले, से-मुख-दर्शन मिले,

दुइ आर्छि कि करिबे पाने? ।

द्विगुण बाड़े तृष्णा-लोभ, पिते नारे—मन:-क्षोभ,

दुःखे करे विधिर निन्दने ॥132॥

याँर–जिसके; पुण्य-पुञ्ज-फले–अनेक पुण्यकर्मों के फलस्वरूप; से-मुख-उस चेहरे का; दर्शन-दर्शन; मिले–यदि किसी को मिलता है; दुइ आङ्खि–दो आँखें; कि-कैसे; करिबे-करेंगी; पाने-पान; द्वि-गुण-दो गुना; बाड़े-बढ़ जाती है; तृष्णा-लोभ-लोभ तथा प्यास; पिते-पीने की; नारे-असमर्थ; मनः-क्षोभ-मन की अधीरता; दुःखे-अत्यन्त दुःख में; करे-करता है; विधिर-सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की; निन्दने-निन्दा।

अनुवाद

यदि किसी को भक्ति द्वारा पुण्यकर्मों का फल प्राप्त होता है और वह कृष्ण के मुख का दर्शन पा लेता है, तो वह अपनी केवल दो आँखों से क्या आस्वादन कर सकता है? तब कृष्ण के अमृतमय मुख को देखने से उसका लोभ तथा उसकी तृष्णा दोनों दुगुने बढ़ जाते हैं। उस अमृत को ठीक से पी न सकने के कारण मनुष्य दुःखी होता है और स्रष्टा की आलोचना इसलिए करने लगता है कि उसने दो से अधिक आँखें क्यों नहीं दीं।

ना दिलेक लक्ष-कोटि, सबे दिला आङ्घि दुटि,

ताते दिला निमिष-आच्छादन।

विधि—जड़ तपोधन, रस-शून्य तार मन,

नाहि जाने योग्य सृजन ॥ 133॥

ना दिलेक–नहीं प्रदान की; लक्ष-कोटि-लाखों करोड़ों; सबे–केवल; दिला-दीं; आङ्घि दुटि-दो आँखे; ताते-उनमें; दिला–दीं; निमिष-आच्छादन–पलकें; विधि-ब्रह्माजी; जड़-मूर्ख; तपः-धन-तपस्याओं की पूँजी; रस-शून्य-रस से रहित; तार–उनका; मन-मन; नाहि जाने-नहीं जानते; योग्य-उचित प्रकार से; सृजन-सृष्टि करना।

अनुवाद

“जब कृष्ण का मुख देखने वाला इस तरह असन्तुष्ट हो जाता है, तो वह सोचने लगता है, ‘विधाता ने मुझे लाखों-करोड़ों आँखें क्यों नहीं दीं? उसने मुझे केवल दो ही आँखें क्यों दीं? यहाँ तक कि ये दोनों आँखें भी पलक झपकने के कारण विचलित हो उठती हैं, जिससे मैं कृष्ण के मुख को लगातार देख नहीं पाता।’ इस तरह मनुष्य विधाता को कोसता है कि वह कठिन तपस्या में लगे रहने के कारण शुष्क तथा रसविहीन है। ‘विधाता केवल एक शुष्क (रसशून्य) स्रष्टा है। वह यह भी नहीं जानता कि किस तरह वस्तुओं का सृजन किया जाए और उन्हें उचित स्थानों पर रखा जाए।”

ये देखिबे कृष्णानन, तार करे द्वि-नयन,

विधि हञा हेन अविचार।

मोर यदि बोल धरे, कोटि आङ्‌खि तार करे,

तबे जानि योग्य सृष्टि तार ॥134॥

ये-जो कोई भी; देखिबे-देखेगा; कृष्ण-आनन-कृष्ण का मुख; तार-उसकी; करे-बनाते हैं; द्वि-नयन-दो आँखें; विधि-सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी; हञा–होकर; हेन-ऐसे; अविचार-विचार रहित; मोर-मेरी; यदि-अगर; बोल-बात; धरे–मानते हैं; कोटि आङ्‌खि-करोड़ आँखें; तार-उसकी; करे–बना दें; तबे जानि-जब मैं समझेंगा; योग्य-उचित; सृष्टि-रचना; तार-उसकी।

अनुवाद

‘स्रष्टा कहता है, “जो कृष्ण के सुन्दर मुख का दर्शन करना चाहते हैं, उनकी दो ही आँखें हों।” जरा इस स्रष्टा कहलाने वाले व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित अविचार को तो देखो। यदि

वह मेरा परामर्श मानता, तो वह कृष्ण का मुख देखने वाले को करोड़ों आँखें देता। यदि वह मेरे इस परामर्श को मान ले, तो मैं कहूँगा कि वह अपने कार्य में पटु है।"

कृष्णाङ्ग-माधुर्य—सिन्धु, सुमधुर मुख—इन्दु,

अति-मधु स्मित—सुकिरणे ।

ए-तिने लागिल मन, लोभे करे आस्वादन,

श्लोक पड़े स्वहस्त-चालने ॥135॥

कृष्ण-अङ्ग-कृष्ण के दिव्य शरीर की; माधुर्य-मधुरता का; सिन्धु-समुद्र; सु-मधुर-अत्यन्त मधुर; मुख-चेहरा; इन्दु-पूर्ण चन्द्रमा के समान; अति-मधु-असीमित रूप से मधुर; स्मित-मुस्कान; सु-किरणे-चन्द्र किरणों का प्रकाश; ए-तिने-ये तीनों; लागिल मन-मन को आकर्षित करते हैं; लोभे–अधिक लालच के साथ; करे आस्वादन-आस्वादन करते हैं; श्लोक पड़े-श्लोक पढ़कर; स्व-हस्त-चालने-अपना हाथ हिलाते हुए।

अनुवाद

"भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य रूप की उपमा सागर से दी गई है। उस सागर के ऊपर श्रीकृष्ण का मुख रूपी चन्द्रमा विशेष रूप से अद्भुत दृश्य है और इससे भी अधिक अद्वितीय दूसरा दृश्य उनकी मुस्कान है, जो अत्यन्त मधुर है और चन्द्रमा की चमकीली किरणों जैसी है।" सनातन गोस्वामी से ये बातें बतलाते-बतलाते श्री चैतन्य महाप्रभु एक-एक करके सारी बातें स्मरण करने लगे। उन्होंने भावावेश में अपने हाथ हिलाते हुए एक श्लोक सुनाया।"

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोर्

मधुरं मधुरं वदनं मधुरम् ।

मधु-गन्धि मृदु-स्मितमेतदहो

मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम् ॥ 136॥

मधुरम् मधुर; मधुरम्-मधुर; वपुः-दिव्य स्वरूप; अस्य-उनका; विभोः–भगवान् का; मधुरम् मधुर; मधुरम्-मधुर; वदनम्-चेहरा; मधुरम् और अधिक मधुर; मधु-गन्धि-शहद की खुशबु; मृदु-स्मितम्-मंद हास्य; एतत्-यह; अहो-हे मेरे प्रभु; मधुरम्-मधुर; मधुरम्-मधुर; मधुरम्-मधुर; मधुरम् और भी मधुर।

अनुवाद

"हे प्रभु, कृष्ण का दिव्य शरीर अत्यन्त मधुर है और उनका मुख उनके शरीर से भी अधिक मधुर है। उनके मुख पर मृदु हँसी, जो मधु-गन्ध की तरह है, और भी मधुर है।"

तात्पर्य

यह श्लोक बिल्वमंगल ठाकुर कृत कृष्णकर्णामृत (92) से उधृत है।

सनातन, कृष्ण-माधुर्य—अमृतेर सिन्धु

मोर मन—सन्निपाति, सब पिते करे मति, ।

दुर्दैव-वैद्य ना देय एक बिन्दु ॥ 137॥

सनातन-मेरे प्रिय सनातन; कृष्ण-माधुर्य-भगवान् कृष्ण की मधुरता; अमृतेर सिन्धु-अमृत का समुद्र; मोर मन-मेरा मन; सन्निपाति-सन्निपात का रोग; सब-समस्त; पिते-पीने के लिए; करे-करता है; मति–इच्छा; दुर्दैव-वैद्य-निषेध करने वाला वैद्य; ना-नहीं; देय-देता; एक-एक; बिन्दु-बूँद।

अनुवाद

“हे सनातन, कृष्ण की मधुरता अमृत के सिन्धु जैसी है। यद्यपि मेरा मन इस समय सन्निपात से ग्रस्त है और मैं उस समूचे समुद्र को पी लेना चाहता हूँ, किन्तु दुर्दैव वैद्य मुझे उसकी एक बूँद भी पीने की अनुमति नहीं दे रहा।”

तात्पर्य

जब शरीर में तीन तत्त्वों-कफ, पित्त तथा वायु तीनों दोषों का मेल होता है, तो सन्निपात हो जाता है। चैतन्य महाप्रभु ने कहा-’’मेरा यह रोग भगवान् कृष्ण के निजी स्वरूप से उत्पन्न होता है। तीन तत्त्व हैं-कृष्ण का शारीरिक सौन्दर्य, उनके मुख का सौन्दर्य तथा उनकी हँसी का सौन्दर्य। इन तीनों सौन्दर्यों से आहत होकर मेरे मन को सन्निपात हो जाता है। यह कृष्ण के सौन्दर्य रूपी सागर को पी जाना चाहता है, किन्तु चूँकि मैं सन्निपात से पीड़ित हूँ, अतः मेरे वैद्य, जो कि साक्षात् श्रीकृष्ण हैं, इस सागर की एक बूँद भी नहीं पीने देते।’’ इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में थे, क्योंकि वे अपने आपको गोपी-भाव में प्रस्तुत कर रहे थे। गोपियाँ कृष्ण के शरीर से निकलने वाले माधुर्य रूपी सागर को पी जाना चाहती थीं, लेकिन कृष्ण ने उन्हें निकट नहीं आने दिया। फलतः कृष्ण से मिलने की उनकी इच्छा बढ़ गई, किन्तु कृष्ण के स्वरूप का अमृत न पी पाने के कारण वे अत्यन्त दु:खी हो गईं।

कृष्णाङ्ग—लावण्य-पूर, मधुर हैते सुमधुर,

ताते येइ मुख सुधाकर ।

मधुर हैते सुमधुर, ताहा हइते सुमधुर,

तार येइ स्मित ज्योत्स्ना-भर ॥ 138॥

कृष्ण-अङ्ग-कृष्ण के अँग; लावण्य-पूर-आकर्षक सुन्दरता का नगर; मधुर-मधुरता; हैते–की अपेक्षा; सु-मधुर-और अधिक मधुर; ताते-उस देह में; येइ-जो; मुख-चेहरा; सुधाकर-चन्द्रमा जैसा;

मधुर हैते सु-मधुर-मधुरता से अधिक मधुर; ताहा हइते-उसकी अपेक्षा; सु-मधुर-और अधिक मधुर; तार–उनकी; येइ-वह; स्मित-मुस्कान; ज्योत्स्ना-भर-चन्द्र प्रकाश के समान।

अनुवाद

"कृष्ण का शरीर आकर्षक रूपों की नगरी है और यह मधुर से मधुरतर है। उनका चन्द्रमा जैसा मुख और भी मधुर है और उस चन्द्रमा जैसे मुख पर परम मन्द हँसी चाँदनी की किरणों जैसी है।"

तात्पर्य

"कृष्ण के मुख पर हँसी चन्द्रमा की हँसी जैसी है, जो गोपियों के लिए अधिकाधिक सुख उत्पन्न करने वाली है।"

मधुर हैते सुमधुर, ताहा हैते सुमधुर,

ताहा हैते अति सुमधुर।

आपनार एक कणे, व्यापे सब त्रिभुवने,

दश-दिक् व्यापे यार पूर॥ 139॥

मधुर हैते सु-मधुर-मधुर से अधिक मधुर; ताहा हैते-उसकी अपेक्षा; सु-मधुर-और भी मधुर; ताहा हैते-उसकी अपेक्षा; अति सु-मधुर-और भी अधिक मधुर; आपनार-अपने; एक कणे-एक कण द्वारा; व्यापे–फैलाते हैं; सब-सभी; त्रि-भुवने-तीनों लोकों में; दश-दिक्-दस दिशाओं में; व्यापे–फैलता है; यार–जिनका; पूर–नगर (कृष्ण की सुन्दरता का)।

अनुवाद

“कृष्ण की हँसी सर्वाधिक मधुर है। उनकी हँसी उस पूर्ण चन्द्रमा की तरह है, जो अपनी किरणों को तीनों लोकों में-गोलोक वृन्दावन, वैकुण्ठ तथा देवी-धाम अर्थात् भौतिक जगत् में–बिखेरता है। इस तरह कृष्ण की उज्वल सुन्दरता दशों दिशाओं में फैल जाती है।”

स्मित-किरण-सुकपूर, पैशे अधर-मधुरे,

सेइ मधु माताय त्रिभुवने ।

वंशी-छिद्र आकाशे, तार गुण शब्दे पैशे,

ध्वनि-रूपे पाञा परिणामे ॥ 140॥

स्मित-किरण-कृष्ण की मुस्कान की चमक; सु-कर्पूर-कपूर के समान; पैशे-प्रवेश करती है; अधर-मधुरे होठों की मधुरता में; सेइ मधु-वह शहद; ऐमाताय-उन्मत्त करता है; त्रि-भुवने–तीनों लोकों को; वंशी-छिद्र–बाँसुरी के छेदों के; आकाशे-खाली स्थान में; तार गुण-उस मधुरता का गुण; शब्दे-ध्वनि में; पैशे-प्रवेश करता है; ध्वनि-रूपे-ध्वनि का रूप; पाञा–प्राप्त करके; परिणामे-परिणाम स्वरूप।

अनुवाद

“उनकी मन्द मुस्कान तथा सुगन्धित प्रकाश की तुलना कपूर से की जा सकती है, जो उनके ओठों की मधुरता में प्रविष्ट हो जाता है। वही मधुरता ध्वनि बनकर उनकी बाँसुरी के छेदों से आकाश में व्याप्त हो जाती है।”

से ध्वनि चौदिके धाय, अण्ड भेदि’ वैकुण्ठे याय,

बले पैशे जगतेर काणे ।

सबा मातोयाल करि’, बलात्कारे आने धरि’,

विशेषतः युवतीर गणे ॥141॥

से ध्वनि-वह ध्वनि; चौ-दिके–चारों दिशाओं में; धाय-दौड़कर; अण्ड भेदि'-ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर; वैकुण्ठे याय-आध्यात्मिक लोक में जाती है; बले-बलपूर्वक; पैशे-प्रवेश करती है; जगतेर–तीनों लोकों के; काणे-कानों में; सबा-सभी को; मातोयाल करि' नशे में उन्मत्त बनकर; बलात्कारे-जबरदस्ती; आने-लाती है; धरि'-पकड़कर; विशेषतः–विशेष रूप से; युवतीर गणे-व्रजभूमि की युवतियों को।

अनुवाद

"कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि चारों दिशाओं में व्याप्त हो जाती है। यद्यपि कृष्ण अपनी बाँसुरी इस ब्रह्माण्ड के भीतर बजाते हैं, किन्तु इसकी ध्वनि ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर वैकुण्ठ लोक तक जाती है। इस तरह यह ध्वनि सारे निवासियों के कानों में प्रवेश करती है। यह विशेष रूप से गोलोक वृन्दावन धाम में प्रवेश करती है और व्रजभूमि की युवतियों के मनों को आकृष्ट करके उन्हें बलपूर्वक वहाँ ले जाती है, जहाँ कृष्ण उपस्थित होते हैं।"

ध्वनि—बड़ उद्धत, पतिव्रतार भाङ्गे व्रत,

पति-कोल हैते टानि' आने।

वैकुण्ठेर लक्ष्मी-गणे, येइ करे आकर्षणे,

तार आगे केबा गोपी-गणे ॥142॥

ध्वनि-ध्वनि; बड़-अत्यन्त; उद्धत-बलशाली ; पति-व्रतार–पतिव्रता पत्नियों के; भाङ्गे-तोड़ देती है; व्रत-व्रत; पति-पति की; कोल-गोद; हैते-से; टानि'–लेकर; आने-आ जाती है; वैकुण्ठेर-वैकुण्ठ लोकों की; लक्ष्मी-गणे-सभी लक्ष्मियों को; येइ-जो; करे आकर्षणे-आकर्षित करती है; तार-उसके; आगे-सामने; केबा-क्या कहना; गोपी-गणे-वृन्दावन की गोपियों का।

अनुवाद

“कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि बड़ी उद्धत है और यह समस्त पतिव्रताओं के व्रतों को भंग करती है। इसकी ध्वनि उन्हें बलात् उनके पतियों की गोदों से निकाल लेती है। उनकी बाँसुरी की ध्वनि वैकुण्ठ लोकों की लक्ष्मियों तक को आकृष्ट करती है, तो भला वृन्दावन की असहाय युवतियों के विषय में क्या कहा जाए?”

नीवि खसाय पति-आगे, गृह-धर्म कराय त्यागे,

बले धरि’ आने कृष्ण-स्थाने ।

लोक-धर्म, लज्जा, भय, सब ज्ञान लुप्त हय,

ऐछे नाचाय सब नारी-गणे ॥ 143॥

नीवि-अधोवस्त्र की गाँठ; खसाय–ढीली करती है; पति-आगे-पति के सामने भी; गृह-धर्म–घर के कर्तव्यों का; कराय त्यागे-त्याग करवा देती है; बले-बलपूर्वक; धरि’-पकड़कर; आने-लाती है; कृष्ण-स्थाने-कृष्ण के सामने; लोक-धर्म-सामाजिक शिष्टाचार; लज्जा–शर्म; भय-डर; सब-सभी; ज्ञान-ऐसा ज्ञान; लुप्त हय-छुप जाता है; ऐछे-इस प्रकार; नाचाय-नचाती है; सब-सभी; नारी-गणे-स्त्रियों को।

अनुवाद

“उनकी बाँसुरी की ध्वनि उनके पतियों के समक्ष उनके अधोवस्त्र की गाँठों को ढीला कर देती है। इस तरह गोपियाँ अपने घर का कामकाज त्यागकर कृष्ण के समक्ष आने के लिए बाध्य हो जाती हैं। इस तरह उनका सारा सामाजिक शिष्टाचार, लज्जा तथ भय भाग जाते हैं। उनकी बाँसुरी की ध्वनि सारी स्त्रियों को नचा देती है।”

काणेर भितर वासा करे, आपने ताँहा सदा स्फुरे,

अन्य शब्द ना देय प्रवेशिते ।

आन कथा ना शुने काण, आन बलिते बोलय आन,

एइ कृष्णेर वंशीर चरिते ॥ 144॥

काणेर-कान के छिद्रों के; भितर–अन्दर; वासा करे–निवास करती है; आपने-स्वयं; ताँहा-वहाँ; सदा-सदैव; स्फुरे-प्रकट रहती है; अन्य-अन्य; शब्द-ध्वनियों को; ना-नहीं; देय-अनुमति देती; प्रवेशिते-प्रवेश करने की; आन कथा–दूसरी बातें; ना-नहीं; शुने-सुनती; काण-कान; आन-कुछ और; बलिते-कहने के लिए; बोलय-कहते हैं; आन-अन्य बातें; एइ कृष्णेर-यही कृष्ण की; वंशीर-बाँसुरी के; चरिते-लक्षण है।

अनुवाद

"उनकी बाँसुरी की ध्वनि उस पक्षी के समान है, जो गोपियों के कानों के भीतर अपना घोंसला बनाता है और वहीं पर सदा बना रहता है। वह उनके कानों में किसी अन्य ध्वनि को प्रविष्ट नहीं होने देती। निस्सन्देह, गोपियाँ न तो और कुछ सुन पाती हैं, न ही किसी और बात पर ध्यान एकाग्र कर पाती हैं, न ही वे समुचित उत्तर दे पाती हैं। कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि के प्रभाव ऐसे ऐसे हैं।"

तात्पर्य

गोपियों के कानों में कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि सदैव प्रधान बनी रहती है। इसलिए वे अन्य कुछ नहीं सुन पातीं। कृष्ण की बाँसुरी की पवित्र ध्वनि की सतत स्मृति उन्हें प्रबुद्ध एवं जीवन्त बनाये रखती है और वे अपने कानों में किसी अन्य ध्वनि को प्रवेश करने नहीं देतीं। चूँकि उनका ध्यान कृष्ण की बाँसुरी पर स्थिर रहता है, इसलिए वे अपने मनों को अन्य किसी विषय की ओर मोड़ नहीं पातीं। दूसरे शब्दों में, जिस भक्त ने कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि सुन ली है, वह अन्य विषय के बारे में बात करना या सुनना भूल जाता है। कृष्ण की बाँसुरी की यह ध्वनि हरे कृष्ण महामन्त्र द्वारा प्रस्तुत की जाती है। भगवान् का एक निष्ठावान भक्त, जो इस दिव्य ध्वनि का उच्चारण करता है और इसे सुनता है, वह

इसका इतना अभ्यस्त हो जाता है कि उसका ध्यान किसी अन्य ऐसे विषय की ओर नहीं जाता, जो कृष्ण के आनन्दमय गुणों तथा साज-सामग्री से जुड़ा नहीं होता।

पुनः कहे बाह्य-ज्ञाने, आन कहिते कहिलुँ आने,

कृष्ण-कृपा तोमार उपरे ।

मोर चित्त-भ्रम करि', निजैश्वर्य-माधुरी,

मोर मुखे शुनाय तोमारे ॥ 145॥

पुनः-फिर; कहे-वे कहते हैं; बाह्य-ज्ञाने-बाहरी चेतना में; आन-कुछ और; कहिते-कहने के लिए; कहिलुँ-मैंने कहा है; आने-कुछ और; कृष्ण-कृपा-भगवान् कृष्ण की कृपा; तोमार-आपके; उपरे-ऊपर; मोर-मेरे; चित्त-भ्रम-मन को भ्रमित; करि'–करके; निज-ऐश्वर्य-अपने निजी ऐश्वर्य की; माधुरी-मधुरता; मोर मुखे-मेरे मुख द्वारा; शुनाय–सुनवाई; तोमारे तुम्हें।

अनुवाद

पुनः अपनी बाह्य चेतना में आकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से कहा, "मैं जो चाहता था वह नहीं कह पाया। भगवान् कृष्ण तुम पर अत्यन्त कृपालु हैं, क्योंकि मेरे मन को भ्रमित करके उन्होंने अपना निजी ऐश्वर्य तथा माधुरी प्रकट की है। उन्होंने ये सारी बातें तुम्हारी जानकारी के लिए मुझसे सुनवा दी हैं।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वीकार किया कि वे उन्मत्त व्यक्ति की तरह बोल रहे थे और ऊपरी स्तर पर अवस्थित लोगों की समझ के लिए उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। संसारी व्यक्ति को कृष्ण के शरीर, उनके गुणों तथा उनकी बाँसुरी के विषय में तरह-तरह के कथन किसी उन्मक्त पुरुष के कथन जैसे लगेंगे। यह हकीकत है कि कृष्ण सनातन गोस्वामी के समक्ष अपनी विशेष कृपा के कारण प्रकट

होना चाहते थे। अतः कृष्ण ने किसी न किसी तरह से श्री चैतन्य महाप्रभु, जो पागल जैसे प्रतीत होते थे, उनके मुख से सनातन गोस्वामी को अपने तथा अपनी बाँसुरी के विषय में बतला दिया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वीकार किया कि वे सनातन गोस्वामी से और कुछ कहना चाहते थे, किन्तु भावावेश के कारण वे भिन्न विषय के बारे में बोल गये।

आमि त' बाउल, आन कहिते आन कहि ।

कृष्णेर माधुर्यामृत-स्रोते याइ वहि' ॥ 146॥

आमि त' बाउल-मैं एक पागल हूँ; आन कहिते-कुछ कहने की अपेक्षा; आन कहि-मैं कुछ और कह रहा हूँ; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; माधुर्य-अमृत-मधुरता के अमृत की; स्रोते-लहरों में; याइ-मैं जाता हूँ; वहि'-बह।

अनुवाद

"चूँकि मैं उन्मत्त हो चुका हूँ, इसलिए मैं कुछ का कुछ कह रहा हूँ। इसका कारण यह है कि मैं भगवान् कृष्ण की दिव्य माधुरी के अमृतसागर की तरंगों द्वारा बहाये लिए जा रहा हूँ।"

तबे महाप्रभु क्षणेक मौन करि' रहे ।

मने एक करि' पुनः सनातने कहे ॥147॥

तबे-फिर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; क्षणेक-एक क्षण के लिए; मौन-शाँत; करि'-होकर; रहे-रह गये; मने-अपने मन में; एक करि'-एकाग्र करके; पुनः–फिर; सनातने–सनातन गोस्वामी को; कहे-उपदेश देते हैं।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु एक क्षण तक मौन रहे। अन्त में अपने मन को सन्तुलित करते हुए वे पुनः सनातन गोस्वामी से बोले।

कृष्णेर माधुरी आर महाप्रभुर मुखे ।

इहा येइ शुने, सेइ भासे प्रेम-सुखे ॥ 148॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; माधुरी-मधुरता; आर-तथा; महाप्रभुर मुखे-श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से; इहा-यह; येइ-जो कोई भी; शुने-सुनता है; सेइ-वह व्यक्ति; भासे-तैरता है; प्रेम-सुखे–भगवत्प्रेम के दिव्य आनन्द में।

अनुवाद

यदि किसी को श्रीचैतन्य-चरितामृत के इस अध्याय में कृष्ण की माधुरी के विषय में सुनने का अवसर प्राप्त होता है, तो वह निश्चित रूप से भगवत्प्रेम के दिव्य आनन्दसागर में तैरने का पात्र होगा।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥149॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों में; यार–जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत- चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-लिखता है; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए एवं उनकी कृपा की सदैव कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस तरह श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के इक्कीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें कृष्ण के आनन्दमय गुणों का वर्णन हुआ है।

अध्याय बाईस

भक्ति की विधि

इस बाइसवें अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति की विधि का वर्णन किया है। प्रारम्भ में वे जीव विषयक सत्य तथा भक्ति की सर्वश्रेष्ठता का वर्णन करते हैं। इसके बाद वे ज्ञान तथा योग की व्यर्थता बतलाते हैं। सभी परिस्थितियों में जीव के लिए भक्ति-मार्ग स्वीकार करने की संस्तुति की गई है, जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं स्पष्ट किया है। तथाकथित ज्ञानियों की ज्ञान-विधि को समय का अपव्यय कहा गया है और इस अध्याय में इसे सिद्ध किया गया है। बुद्धिमान मनुष्य को कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड तथा योग की विधियों का परित्याग कर देना चाहिए। मनुष्य को इन व्यर्थ की विधियों का परित्याग करके कृष्णभावनामृत के मार्ग को निष्ठा के साथ ग्रहण करना चाहिए। इस तरह उसका जीवन सफल हो सकेगा। यदि वह पूर्णरूपेण कृष्णभावना को अपनाता है, तो भले ही बीच-बीच में वह ज्ञान तथा योग के पूर्वाभ्यास के कारण उत्तेजित होता रहे, किन्तु स्वयं कृष्ण उसकी रक्षा करेंगे। सच तो यह है कि शुद्ध भक्त के आशीर्वाद से ही भक्ति का वरदान मिलता है (स महात्मा सुदुर्लभः)। शुद्ध भक्त सर्वोत्तम अध्यात्मवादी होता है और मनुष्य को अपनी सुप्त कृष्णभावना को जाग्रत करने के लिए उस भक्त की कृपा प्राप्त करनी होती है। मनुष्य को शुद्ध भक्तों की संगति करनी होती है। यदि मनुष्य को किसी महात्मा के शब्दो में दृढ़ आस्था होती है, तो उसमें शुद्ध भक्ति जाग्रत होगी।

इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु ने शुद्ध भक्त तथा अन्यों में भेद किया है। उन्होंने शुद्ध भक्त के लक्षण भी बतलाये हैं। भक्त का सबसे दुर्जेय शत्रु भोग विलास हेतु स्त्री-संग है। अभक्तों की संगति की भी निन्दा की गई है, क्योंकि भक्ति-मार्ग में वह भी भयावह शत्रु है। मनुष्य को कृष्ण के चरणकमलों में पूर्णतया समर्पण करना होता है और स्त्रियों तथा अभक्तों के प्रति आकर्षण का परित्याग करना होता है।

पूर्णतया शरणागत भक्तों के छह लक्षण भी इसी अध्याय में वर्णित हैं। भक्ति की दो श्रेणियाँ की गई हैं—वैधी भक्ति तथा रागानुगा भक्ति। वैधी भक्ति में 64 बातें हैं, जिनमें से अन्तिम पाँच सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। भक्ति की नौ विधियों में से एक का भी अभ्यास करने से मनुष्य सफल हो सकता है। ज्ञान तथा योग कभी भी भक्ति में सहायक नहीं बनते। पुण्यकर्म, अहिंसा, इन्द्रिय संयम तथा नियमन शुद्ध भक्ति से भिन्न नहीं हैं। यदि कोई भक्ति में लग जाता है, तो सारे सद्गुण पीछे-पीछे चलते हैं। उनका अलग से अनुशीलन करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। स्वतःस्फूर्त (रागानुगा) भक्ति का उदय तब होता है जब कोई ऐसे शुद्ध भक्त का अनुयायी बनता है, जिसे ईश्वर का रागानुग प्रेम प्राप्त हो। श्री चैतन्य महाप्रभु ने रागानुग अवस्था में स्थित भक्तों के लक्षणों का वर्णन किया है। उन्होंने उन भक्तों का भी वर्णन किया है, जो शुद्ध भक्तों के पदचिह्नों पर चलने का प्रयास कर रहे हैं।

वन्दे श्री-कृष्ण-चैतन्य-देवं तं करुणार्णवम् ।

कलावण्यति-गूढ़ेयं भक्तिर्येन प्रकाशिता ॥1॥

वन्दे-मैं प्रणाम करता हूँ; श्री-कृष्ण-चैतन्य-देवम्-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को; तम्-उनको; करुणा-अर्णवम्-जो कृपा के सागर हैं; कलौ–इस कलियुग में; अपि-भी; अति-अत्यन्त; गूढ़ा-गुह्य; इयम्-यह; भक्तिः -प्रेमभक्ति; येन-जिनके द्वारा; प्रकाशिता-प्रकाशित की गई।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ। वे दिव्य करुणा के सागर हैं। यद्यपि भक्ति का विषय अत्यन्त गुह्य है, फिर भी उन्होंने इस कलह के युग कलियुग में भी उसे इतनी सुन्दरता से प्रकट किया है।

जय जय श्री कृष्ण-चैतन्य नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री कृष्ण-चैतन्य नित्यानन्द-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत प्रभु की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैतचन्द्र की जय हो! श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

एइत कहिलुँ सम्बन्ध-तत्त्वेर विचार।

वेद-शास्त्रे उपदेशे, कृष्ण—एक सार ॥ 3 ॥

एइत–इस प्रकार; कहिलुँ-मैंने बताया है; सम्बन्ध-तत्त्वेर विचार-कृष्ण से अपने सम्बन्ध का विचार; वेद-शास्त्रे-सभी वैदिक शास्त्र; उपदेशे–उपदेश देते हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; एक सार-एकमात्र आवश्यक वस्तु हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैंने अनेक प्रकार से कृष्ण के साथ मनुष्य के सम्बन्ध का वर्णन किया है। यही समस्त वेदों का विषय है। कृष्ण सारे कार्यकलापों के केन्द्र हैं।"

एबे कहि, शुन, अभिधेय-लक्षण।

याहा हैते पाइ—कृष्ण, कृष्ण-प्रेम-धन ॥4॥

एबे-अब; कहि-मैं बताऊँगा; शुन-सुनो; अभिधेय-लक्षण-मुख्य कर्तव्य (भगवत्सेवा); याहा हैते–जिसके द्वारा; पाइ–प्राप्त किये जा सकते हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कृष्ण-प्रेम-धन-तथा कृष्ण-प्रेम की दिव्य सम्पत्ति।

अनुवाद

"अब मैं भक्ति के लक्षणों के विषय में कहूँगा, जिसके द्वारा मनुष्य कृष्ण का आश्रय तथा उनकी दिव्य प्रेममयी सेवा को प्राप्त कर सकता है।"

कृष्ण-भक्ति—अभिधेय, सर्व-शास्त्रे कय ।

अतएव मुनि-गण करियाछे निश्चय ॥5॥

कृष्ण-भक्ति-भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा; अभिधेय-जीवन का वास्तविक कार्य; सर्व-शास्त्रे-सभी वैदिक शास्त्र; कय–कहते हैं; अतएव-इसलिए; मुनि-गण-सभी साधुजनों ने; करियाछे–निकाला है; निश्चय-निष्कर्ष।

अनुवाद

"मनुष्य के सारे कार्यकलाप केवल भगवान् कृष्ण की भक्ति पर केन्द्रित होने चाहिए। यही सारे शास्त्रों का निर्णय है और सारे सन्त पुरुषों ने यही निष्कर्ष निकाला है।"

श्रुतिर्माता पृष्टा दिशति भवदाराधन-विधिं

यथा मातुर्वाणी स्मृतिरपि तथा वक्ति भगिनी ।

पुराणाद्या ये वा सहज-निवहास्ते तदनुगा

अतः सत्यं ज्ञातं मुर-हर भवानेव शरणम् ॥ 6 ॥

श्रुतिः-वैदिक ज्ञान; माता–सन्तान के प्रति स्नेहशील माता के समान; पृष्टा–जिज्ञासा करने पर; दिशति-वह निर्देशित करती है; भवत्-आपकी; आराधन-पूजा; विधिम्-विधि; यथा-जिस प्रकार; मातुः वाणी-माता के उपदेश; स्मृतिः-स्मृति शास्त्र, जो वैदिक शास्त्रों की व्याख्या करते हैं; अपि-भी; तथा-इसी प्रकार; वक्ति–व्यक्त करते हैं; भगिनी-एक बहन के समान; पुराण-आद्याः-पुराण आदि; ये-जो;

वा–अथवा; सहज-निवहाः-भाइयों के समान; ते–वे सभी; तत्-माता के; अनुगाः-आज्ञाकारी; अतः-इसलिए; सत्यम्-सच; ज्ञातम्-ज्ञात; मुर-हर-हे मुर असुर के वधकर्ता; भवान्-आप; एव-एकमात्र; शरणम्-आश्रय हैं।

अनुवाद

"जब वेदमाता (श्रुति) से प्रश्न किया गया कि किसकी पूजा की जाए, तो उसने कहा कि आप ही एकमात्र आराध्य प्रभु हैं। इसी तरह श्रुति शास्त्रों के उपसिद्धान्त स्मृतिशास्त्र भी बहिन-तुल्य वही आदेश देते हैं। भ्रातृतुल्य पुराण अपनी माता के पदचिह्नों पर चलते हैं। हे मुर असुर के शत्रु, निष्कर्ष यह है कि आप ही एकमात्र आश्रय हैं। मैंने इसे तत्त्वतः समझ लिया है।"

तात्पर्य

वैदिक साहित्य का यह उद्धरण मुनियों का भगवान् के प्रति कथन है।

अद्वय-ज्ञान-तत्त्व कृष्ण—स्वयं भगवान् ।

'स्वरूप-शक्ति' रूपे ताँर हय अवस्थान ॥7॥

अद्वय-ज्ञान-अद्वैत ज्ञान का; तत्त्व-सिद्धान्त; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; स्वयम् भगवान्–स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; स्वरूप-अपने विस्तार की; शक्ति-शक्ति के रूपे-रूप में; ताँर-उनकी; हय-है; अवस्थान-उपस्थिति।

अनुवाद

"कृष्ण अद्वय परम सत्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। यद्यपि वे एक हैं, किन्तु अपनी लीलाओं के लिए उनके विभिन्न स्वांश तथा शक्तियाँ हैं।"

तात्पर्य

भगवान् की अनेक शक्तियाँ हैं और वे इन शक्तियों से अभिन्न हैं। चूँकि शक्तियाँ तथा शक्तिमान अलग नहीं हो सकते, अतः वे अभिन्न हैं। कृष्ण को समस्त शक्तियों का उद्गम कहा जाता है और उनकी पहचान बहिरंगा शक्ति अर्थात् भौतिक शक्ति से भी की जाती है। कृष्ण की अन्तरंगा या आध्यात्मिक शक्तियाँ भी हैं, जो उनकी सेवा में सदैव लगी रहती हैं। उनकी अन्तरंगा शक्ति बहिरंगा शक्ति से भिन्न है। कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति तथा कृष्ण, जो कि शक्तिमान हैं, सदैव अभिन्न हैं।

स्वांश-विभिन्नांश-रूपे हञा विस्तार।

अनन्त वैकुण्ठ-ब्रह्माण्डे करेन विहार ॥8॥

स्व-अंश-अपने निजी विस्तार, विभिन्न-अंश-पृथक् विस्तार, रूपे–रूप में; हञा-होकर; विस्तार–विस्तारित; अनन्त-असंख्य; वैकुण्ठ–वैकुण्ठ नामक आध्यात्मिक लोकों में; ब्रह्माण्डे–भौतिक ब्रह्माण्डों में; करेन विहार-अपनी लीलाएँ करते हैं।

अनुवाद

"कृष्ण अपना विस्तार अनेक रूपों में करते हैं। इनमें से कुछ स्वांश हैं और कुछ विभिन्नांश हैं। इस तरह वे आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों जगतों में लीलाएँ करते हैं। आध्यात्मिक जगत् तो वैकुण्ठ लोक हैं और भौतिक जगत् विशाल ब्रह्माण्ड समूह हैं, जिनकी अध्यक्षता ब्रह्मा करते हैं।"

स्वांश-विस्तार—चतुर्व्यूह, अवतार-गण।

विभिन्नांश जीव—ताँर शक्तिते गणन ॥9॥

स्व-अंश-विस्तार-उनके स्वरूप के निजी अंश रूप; चतुर्-व्यूह-उनके चार विस्तार; अवतार-गण-अवतार; विभिन्न-अंश-उनके पृथक् अंश रूप; जीव-जीवात्मा; ताँर-उनकी; शक्तिते-शक्ति की श्रेणी में; गणन-गिनती।

अनुवाद

"उनके स्वांश विस्तार वैकुण्ठ लोक से इस भौतिक जगत् में अवतरित होते हैं-यथा चतुर्यूह, जिसमें संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा वासुदेव आते हैं। सारे जीव विभिन्नांश हैं। यद्यपि वे कृष्ण के अंश हैं, किन्तु उनकी गणना उनकी भिन्न शक्तियों में की जाती है।"

तात्पर्य

स्वांश विस्तारों को विष्णु-तत्त्व कहा जाता है और विभिन्नांशों को जीव तत्त्व। यद्यपि सारे जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अंश हैं, फिर भी उनकी गिनती भगवान् की नाना शक्तियों में की जाती है। इसका पूरा वर्णन भगवान् कृष्ण द्वारा भगवद्गीता (7.5) में किया गया है :

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि में पराम् ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

"इस निकृष्ट अपरा प्रकृति के अतिरिक्त, हे महाबाहु अर्जुन, मेरी एक उत्कृष्ट परा प्रकृति भी है, जो उन जीवों से बनी है, जो इस निकृष्ट भौतिक प्रकृति के साधनों का विदोहन कर रहे हैं।"

यद्यपि सारे जीव कृष्ण के अंश हैं, किन्तु वे प्रकृति हैं, पुरुष नहीं। कभी-कभी प्रकृति (जीव) पुरुष के कार्यों का अनुकरण करना चाहती है। अल्पज्ञान के कारण इस भौतिक जगत् के बद्धजीव अपने आपको ईश्वर बतलाते हैं। वे इस तरह मोहग्रस्त होते हैं। जीव किसी भी अवस्था में विष्णु तत्त्व या भगवान् नहीं बन सकता। अतएव अपने आपको ईश्वर बतलाना जीव के लिए हास्यास्पद है। उन्नत अध्यात्मवादी ऐसी बात कभी स्वीकार नहीं करेंगे। ऐसे दावे तो सामान्य तथा मूर्ख लोगों को ठगने के लिए किये जाते हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन ऐसे छद्म अवतारों के प्रति युद्ध की घोषणा करता है। अपने आपको ईश्वर बतलाने वाले लोगों द्वारा किये जा रहे ऐसे झूठे प्रचार ने सारे विश्व में कृष्णभावनामृत की हत्या कर दी है। अतः कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को इन धूर्तों तथा

पाखण्डियों को ललकारने के लिए अत्यन्त सावधान रहना चाहिए, जो इस समय सारे संसार को दिग्भ्रमित कर रहे हैं। ऐसा ही एक पाखण्डी, जिसका नाम पौण्ड्रक था, भगवान् कृष्ण के समक्ष आया, जिसका वध भगवान् ने तुरन्त कर दिया। निस्सन्देह, कृष्ण के सेवक ऐसे छद्म ईश्वरों का वध नहीं कर सकते, किन्तु उन्हें परम्परा द्वारा प्राप्त शास्त्र के प्रमाण द्वारा ऐसे पाखंडियों को परास्त करने की भरसक चेष्टा करनी चाहिए।

सेइ विभिन्नांश जीव—दुइ त' प्रकार।

एक—'नित्य-मुक्त', एक—'नित्य-संसार' ॥10॥

सेइ विभिन्न-अंश-कृष्ण का वह विभिन्न अंश; जीव-जीवात्मा; दुइ त' प्रकार-दो प्रकार का हैं; एक-एक; नित्य-मुक्त-नित्य रूप से मुक्त; एक-एक; नित्य-संसार-अनादिकाल से बद्ध।

अनुवाद

"जीवों की दी कोटियाँ हैं। कुछ नित्यमुक्त हैं और कुछ नित्यबद्ध हैं।"

'नित्य-मुक्त'—नित्य कृष्ण-चरणे उन्मुख।

'कृष्ण-पारिषद' नाम, भुञ्जे सेवा-सुख ॥11॥

नित्य-मुक्त-नित्य मुक्त; नित्य-सदैव; कृष्ण-चरणे-कृष्ण के चरणकमलों में; उन्मुख–जुड़ा हुआ; कृष्ण-पारिषद-भगवान् कृष्ण के पार्षद; नाम-नामक; भुञ्जे-भोगता है; सेवा-सुख-सेवा का आनन्द।

अनुवाद

"जो नित्यमुक्त हैं, वे कृष्णभावनामृत के प्रति सदैव सचेष्ट रहते हैं और वे भगवान् कृष्ण के चरणों की प्रेममयी दिव्य सेवा करते हैं। उन्हें कृष्ण के नित्य संगी मानने चाहिए। वे कृष्ण-सेवा का दिव्य आनन्द लगातार प्राप्त करते रहते हैं।"

‘नित्य-बद्ध’—कृष्ण हैते नित्य-बहिर्मुख ।

‘नित्य-संसार’, भुञ्जे नरकादि दुःख ॥12॥

नित्य-बद्ध–सदैव बद्ध; कृष्ण हैते–कृष्ण से; नित्य-नित्य रूप से; बहिर्मुख-विमुख; नित्य-संसार–भौतिक संसार में अनादिकाल से बद्ध; भुजेभोगता है; नरक-आदि दुःख–नारकीय जीवन के कष्ट।

अनुवाद

“नित्यमुक्त भक्तों से भिन्न ऐसे बद्धजीव हैं, जो भगवान् की सेवा से सदैव विमुख रहते हैं। वे इस भौतिक जगत् में निरन्तर बद्ध रहते हैं और उन्हें विभिन्न शरीर धारण करने के कारण नारकीय अवस्था में दुःख भोगना पड़ता है।”

सेइ दोषे माया-पिशाची दण्ड करे तारे ।

आध्यात्मिकादि ताप-त्रय तारे जारि’ मारे ॥13॥

सेइ दोषे-इस दोष के कारण; माया-पिशाची–माया नामक पिशाचिनी; दण्ड करे-दण्ड देती है; तारे-उसे; आध्यात्मिक-आदि-देह तथा मन से सम्बन्धित इत्यादि; ताप-त्रय–तीन प्रकार के कष्ट; तारे-उसे; जारि’–जलाकर; मारे-कष्ट देती है।

अनुवाद

“कृष्णभावनामृत का विरोध करने के कारण बद्धजीव को बाह्य शक्ति, मायारूपी पिशाचिनी दण्ड देती है। इस तरह वह तीन प्रकार के कष्ट भोगने के लिए तैयार रहता है-शरीर तथा मन द्वारा दिये गये कष्ट, अन्य जीवों के शत्रुभाव से उत्पन्न कष्ट तथा देवताओं द्वारा उत्पन्न प्राकृतिक उत्पात।”

काम-क्रोधेर दास हञा तार लाथि खाय ।

भ्रमिते भ्रमिते यदि साधु-वैद्य पाय ॥14॥

ताँर उपदेश-मन्त्रे पिशाची पलाय ।

कृष्ण-भक्ति पाय, तबे कृष्ण-निकट याय ॥15॥

काम-कामवासनाओं का; क्रोधेर–तथा क्रोध का; दास-सेवक; हञा-बनकर; तार–उनकी; लाथि खाय-लात खाता है; भ्रमिते भ्रमिते-घूमते-घूमते; यदि-यदि; साधु-एक भक्त; वैद्य-चिकित्सक; पाय-वह प्राप्त करता है; ताँर-उसके; उपदेश-मन्त्रे-उपदेशों तथा मन्त्रों द्वारा; पिशाची–पिशाचिनी (बहिरंगा शक्ति); पलाय-भाग जाती है; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण की प्रेममयी सेवा; पाय-प्राप्त करता है; तबे-इस प्रकार; कृष्ण-निकट याय-वह कृष्ण के पास जाता है।

अनुवाद

"इस तरह बद्धजीव कामवासनाओं का दास बन जाता है और जब वे वासनाएँ पूरी नहीं होतीं तो वह क्रोध का दास बन जाता है और माया की लात खाता रहता है। वह इस ब्रह्माण्ड में घूमते-घूमते दैववश यदि किसी भक्तवैद्य की संगति पा लेता है, तो उसके निर्देशों तथा मन्त्रों से मायारूपी डायन भाग जाती है। इस तरह बद्धजीव भगवान् कृष्ण की भक्ति के सम्पर्क में आता है, जिससे वह भगवान् के और निकट पहुँच सकता है।"

तात्पर्य

8 से 15 संख्या तक के श्लोकों की व्याख्या श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में की है। भगवान् अपने चतुर्यूह विस्तारों तथा अवतारों द्वारा पूरी सृष्टि में व्याप्त हैं। प्रत्येक स्वांश विस्तार द्वारा कृष्ण का सम्यक् प्रतिनिधित्व होता है, किन्तु सारे जीव विभिन्नांश होते हुए भी भगवान् की ही शक्ति माने जाते हैं। जीव की दो कोटियाँ हैं–नित्यमुक्त तथा नित्यबद्ध। जो नित्यमुक्त हैं, वे

बहिरंगा शक्ति माया के सम्पर्क में कभी नहीं आते। किन्तु नित्य बद्धजीव सदैव माया के चंगुल में रहते हैं। भगवद्गीता (7.14) में भगवान् कृष्ण द्वारा कहा गया है कि :

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

"भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों वाली मेरी इस दैवी शक्ति को जीत पाना कठिन है।"

नित्यबद्ध सदैव माया द्वारा बद्ध रहते हैं और नित्यमुक्त कभी भी माया के सम्पर्क में नहीं आते। कभी-कभी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का नित्यमुक्त पार्षद भगवान् की ही तरह इस ब्रह्माण्ड में आता है। भगवान् का सन्देशवाहक (दूत) बद्धजीवों की मुक्ति के लिए कार्य तो करता है, किन्तु माया उसका स्पर्श नहीं कर पाती। सामान्यतया नित्यमुक्त पुरुष भगवान् कृष्ण के संगियों के रूप में वैकुण्ठ में रहते हैं और वे कृष्ण-पारिषद अर्थात् भगवान् के साथी कहलाते हैं। उनका एकमात्र कार्य होता है भगवान् कृष्ण की संगति का आनन्द उठाना और यद्यपि ऐसे नित्यमुक्त पुरुष भौतिक जगत् में भगवान् का कार्य पूरा करने आते हैं, किन्तु वे बिना अवरोध के कृष्ण की संगति का आनन्द उठाते रहते हैं। नित्यमुक्त पुरुष, जो कृष्ण की ओर से कार्य करता है, अपने कार्य के माध्यम से भगवान् कृष्ण के सान्निध्य का उपभोग करता है। नित्य बद्धजीव भौतिक जगत् का भोग करने की कामवासनाओं से उत्तेजित होकर एक शरीर से दूसरे में बलात् विचरण करता रहता है। कभी वह उच्चतर ग्रह-मण्डलों को प्राप्त करता है, तो कभी नरक जाता है और बहिरंगा शक्ति के कष्टों को भोगता है।

माया द्वारा बद्ध होने के कारण बद्धजीव को इस भौतिक जगत् में दो प्रकार के शरीर प्राप्त होते हैं-स्थूल भौतिक शरीर तथा मन, बुद्धि एवं अहंकार से निर्मित सूक्ष्म भौतिक शरीर। स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों के कारण उसे तीन प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं—(आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक) मन तथा शरीर से उत्पन्न कष्ट, अन्य प्राणियों से प्राप्त कष्ट, उच्चलोक के देवताओं द्वारा दिये जाने वाले प्राकृतिक उत्पात से प्राप्त कष्ट। तीन प्रकार के भौतिक कष्टों को भोगने वाला बद्धजीव अहर्निश माया की लातें खाता है और यही उसका रोग है। यदि संयोगवश उसे कृष्ण की ओर से

बद्धजीवों का उद्धार करने वाला कोई सन्त पुरुष मिल जाता है और यदि वह उसके आदेश के अनुसार चलता है, तो वह धीरे-धीरे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के पास पहुँच सकता है।

कामादीनां कति न कतिधा पालिता दुर्निदेशास्

तेषां जाता मयि न करुणा न त्रपा नोपशान्तिः ।

उत्सृज्यैतानथ यदु-पते साम्प्रतं लब्ध-बुद्धिस्

त्वामायातः शरणमभयं मां नियुङ्क्ष्वात्म-दास्ये ॥16॥

काम-आदीनाम्-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य जैसे अपने स्वामियों का; कति-कितने; न-नहीं; कतिधा-कितने प्रकार से; पालिताः-आज्ञा पालन किया; दुः-निदेशाः-बुरे आदेशों का; तेषाम् उनकी; जाता-उत्पन्न हुई; मयि–मेरे प्रति; न-नहीं; करुणा-दया; न-न; त्रपा–शर्म; न-नहीं; उपशान्तिः-त्यागने की इच्छा; उत्सृज्य-त्यागकर; एतान्-इन सबको; अथ–अतः; यदु-पते-हे यदुकुल शिरोमणि; साम्प्रतम्-अब; लब्ध-बुद्धिः-जागृत बुद्धि प्राप्त कर; त्वाम्-आपको; आयातः-आकर; शरणम्-जो आश्रय हैं; अभयम्-भय से मुक्त; माम्-मुझे; नियुङ्क्ष्व -कृपया लगाएँ, आत्म-दास्ये-अपनी सेवा में।

अनुवाद

“हे प्रभु, कामवासनाओं के अवांछित आदेशों की कोई सीमा नहीं है। यद्यपि मैंने इन इच्छाओं की इतनी सेवा की है, किन्तु उन्होंने मुझ पर रंच-भर भी दया नहीं दिखलाई। उनकी सेवा करने में न तो मुझे लज्जा आई, न ही मैंने कभी उन्हें त्यागने की इच्छा की। किन्तु हे प्रभु, हे यदुवंश के शिरोमणि, हाल ही में मेरी बुद्धि जाग्रत हुई है और अब मैं उनका परित्याग कर रहा हूँ। अपनी दिव्य बुद्धि के कारण मैं अब इन अवांछित इच्छाओं का पालन करने से

मना करता हूँ और अब आपके अभय चरणकमलों में शरण लेने के लिए आया हूँ। कृपया मुझे अपनी निजी सेवा में लगा लीजिये और मेरी रक्षा कीजिये।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (3.2.35) में भी आया है। जब हम हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करते हैं, तब हम यह कह रहे हैं, "हरे ! अर्थात् हे भगवान् की शक्ति, हे कृष्ण!" इस तरह हम भगवान् को तथा उनकी आध्यात्मिक शक्ति को राधा-कृष्ण, सीता-राम या लक्ष्मी-नारायण के रूप में सम्बोधित करते हैं। भक्त सदैव भगवान् तथा उनकी अन्तरंगा शक्ति (प्रेयसी) से प्रार्थना करता है, जिससे वह उनकी दिव्य प्रेमाभक्ति में लग सके। जब बद्धजीव अपनी वास्तविक आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कर लेता है और भगवान् के चरणकमलों में अपने आपको पूर्णतया समर्पित कर देता है, तब वह भगवान् की सेवा में लगना चाहता है। यही जीव की वास्तविक वैधानिक स्थिति है।

कृष्ण-भक्ति हय अभिधेय-प्रधान ।

भक्ति-मुख-निरीक्षक कर्म-योग-ज्ञान ॥ 17॥

कृष्ण-भक्ति-भगवान् कृष्ण की प्रेमभक्ति; हय-है; अभिधेय-प्रधान-जीवात्मा का मुख्य कार्य; भक्ति-मुख-भक्ति का मुख; निरीक्षक–निरीक्षण करने वाले; कर्म-योग-ज्ञान-सकाम कर्म, योग तथा तार्किक ज्ञान।

अनुवाद

"कृष्ण की भक्ति ही जीव का मुख्य कार्य है। यद्यपि बद्धजीव की मुक्ति के विविध साधन हैं, यथा कर्म, ज्ञान, योग तथा भक्ति, किन्तु ये सब भक्ति पर आश्रित हैं।"

एइ सब साधनेर अति तुच्छ बल ।

कृष्ण-भक्ति विना ताहा दिते नारे फल ॥18॥

एइ सब–इन सभी; साधनेर-आध्यात्मिक कार्यकलापों की; अति-अत्यन्त; तुच्छ-तुच्छ; बल-शक्ति; कृष्ण-भक्ति-भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा; विना-बिना; ताहा-ये सब; दिते-देने में; नारे-समर्थ नहीं हैं; फल-वांछित परिणाम।

अनुवाद

"भक्ति के बिना आत्म-साक्षात्कार के अन्य सारे साधन दुर्बल तथा तुच्छ हैं। कृष्ण की भक्ति किये बिना, ज्ञान तथा योग से वांछित फल प्राप्त नहीं हो सकता।"

तात्पर्य

शास्त्रों में कभी-कभी सकाम कर्म, तार्किक ज्ञान तथा योग पर बल दिया जाता है। यद्यपि लोग इन विधियों का अभ्यास करने की प्रवृत्ति रखते हैं, किन्तु कृष्ण-भक्ति का स्पर्श पाये बिना उन्हें वांछित फल प्राप्त नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में, वास्तविक वांछित फल तो कृष्ण के प्रति सुप्त प्रेम को जगाना है। श्रीमद्भागवत (1.2.6) में कहा गया है :

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

"मानव धर्म वह है, जिससे दिव्य भगवान् की प्रेमाभक्ति मिल सके। ऐसी प्रेमाभक्ति निस्वार्थ और रुकावट रहित होनी चाहिए, जिससे आत्मा की पूर्ण तुष्टि हो सके।" वस्तुतः कर्म, ज्ञान तथा योग भगवत्प्रेम को जाग्रत नहीं कर सकते। इसके लिए भगवद्भक्ति स्वीकार करनी होगी और जो जितना ही भक्ति के प्रति उन्मुख होता है, वह अन्य तथाकथित उपलब्धियों के प्रति उतना ही उदासीन होता जाता है। ध्रुव महाराज ने भगवान् का साक्षात्कार करने के उद्देश्य से योगाभ्यास किया, किन्तु जब उन्हें भक्ति में रुचि उत्पन्न हो गई, तो उन्होंने देखा कि कर्म, ज्ञान तथा योग से उन्हें कोई लाभ नहीं हो रहा है।

नैष्कर्म्यमप्यच्युत-भाव-वर्जितं

न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।

कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे

न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥19॥

नैष्कर्म्यम्-जो कर्म का भोग उत्पन्न नहीं करते; अपि-तथापि; अच्युत-भाव-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अच्युत की प्रेममयी सेवा से; वर्जितम्-रहित; न-नहीं; शोभते–शोभा देते हैं; ज्ञानम्-मनोकल्पित ज्ञान; अलम्-पर्याप्त; निरञ्जनम्-जो भौतिक कल्मष से रहित है; कुतः–कितना कम; पुनः–दोबारा; शश्वत्-सदैव (अभ्यास करते समय तथा लक्ष्य प्राप्ति के समय); अभद्रम्-अशुभ है; ईश्वरे-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति; न-नहीं; च-तथा; अर्पितम्-अर्पित; कर्म–कार्य; यत्-जो; अपि-यद्यपि; अकारणम्-कामना से रहित हों।

अनुवाद

"जब शुद्ध ज्ञान समस्त भौतिक आकर्षण से परे होता है, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् (कृष्ण) को समर्पित नहीं होता, तो यह भौतिक मल से रहित होते हुए भी अधिक सुन्दर नहीं लगता। तो फिर सकाम कर्मों का क्या लाभ, जो प्रारम्भ से कष्टप्रद और क्षणिक हैं, यदि वे भगवान् की भक्तिमयी सेवा में काम नहीं आते ? भला वे किस तरह अत्यन्त आकर्षक हो सकते हैं?"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.5.12) का है। अनेक वैदिक ग्रन्थों की रचना करने के बाद भी व्यासदेव अत्यन्त खिन्न थे। अतएव उनके गुरु नारद देव ने उनसे कहा कि वे तभी सुखी हो सकते हैं, यदि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के कार्यकलापों के विषय में लिखें। तब तक श्रील व्यासदेव ने वेदों के कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड अनुभागों की ही रचना की थी; उन्होंने उपासना-काण्ड या भक्ति के विषय

में नहीं लिखा था। इस तरह उनके गुरु नारद ने उनकी गलती को सुधारा और उन्हें उपदेश दिया कि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के कार्यकलापों के विषय में लिखें। इसलिए व्यासदेव ने श्रीमद्भागवत लिखना प्रारम्भ किया।

तपस्विनो दान-परा यशस्विनो

मनस्विनो मन्त्र-विदः सु-मङ्गलाः ।

क्षेमं न विन्दन्ति विना प्रदर्पणं

तस्मै सुभद्र-श्रवसे नमो नमः ॥20॥

तपस्विनः–कठोर तपस्याओं में लगे हुए; दान-पराः-अपनी सम्पत्तियों को दान में देने वाले; यशस्विनः-समाज में विख्यात; मनस्विनः–तर्कवितर्क या ध्यान में प्रवीण; मन्त्र-विदः-वैदिक मन्त्रोच्चारण में दक्ष; सु-मङ्गलाः-अत्यन्त शुभ; क्षेमम्-वास्तविक, नित्य कल्याणकारी; न कभी नहीं; विन्दन्ति–प्राप्त करते हैं; विना-बिना; यत्-अर्पणम्-जिन्हें अर्पित करके (पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्); तस्मै–उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को; सु-भद्र श्रवसे–जिनकी कीर्ति अत्यन्त शुभ है; नमः नमः-मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

“जो लोग कठोर तपस्या करते हैं, जो दान में अपना सर्वस्व दे डालते हैं, जो अपने पुण्यकर्म के लिए प्रसिद्ध हैं, जो ध्यान तथा ज्ञान में लगे हैं। और जो वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करने में अत्यन्त पटु हैं, वे यदि अपने कर्मों को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा में समर्पित नहीं करते, तो वे कोई शुभ फल नहीं प्राप्त कर पाते, भले ही वे पुण्यकर्मों में क्यों न लगे हों। अतएव मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को बारम्बार सादर नमस्कार करता हूँ, जिनकी महिमा सदैव कल्याणप्रद है।”

तात्पर्य

यह उद्धरण भी श्रीमद्भागवत (2.4.17) से है।

केवल ज्ञान 'मुक्ति' दिते नारे भक्ति विने ।

कृष्णोन्मुखे सेइ मुक्ति हय विना ज्ञाने ॥ 21॥

केवल–केवल; ज्ञान-तार्किक ज्ञान; मुक्ति-मुक्ति; दिते-प्रदान करने में; नारे-समर्थ नहीं है; भक्ति विने-प्रेममयी सेवा के बिना; कृष्ण-उन्मुखे-यदि कोई भगवान् कृष्ण की सेवा से आसक्त है; सेइ मुक्ति-वह मुक्ति; हय-प्राप्त होती है; विना-बिना; ज्ञाने-ज्ञान के।

अनुवाद

"भक्ति के बिना कोरा ज्ञान मुक्ति दिलाने में समर्थ नहीं है। दूसरी ओर यदि कोई भगवद्भक्ति में लगता है, तो वह ज्ञान के बिना भी मुक्ति प्राप्त कर सकता है।"

तात्पर्य

केवल ज्ञान से मुक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। भले ही कोई ब्रह्म तथा पदार्थ में अन्तर बताने में सक्षम हो जाये, किन्तु यदि कोई भूल से यह सोचे कि जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समकक्ष है, तो उसकी मुक्ति में अवरोध आ जायेगा। चूँकि अपने आपको परम पुरुष या परम सत्य मानना अपराध है, अत: इसके कारण मनुष्य पुनः भौतिक जगत् में आ गिरता है। जब ऐसा व्यक्ति शुद्ध भक्त के सम्पर्क में आता है, तब वह भवबन्धन से वास्तव में मुक्त हो सकता है और भगवान् की सेवा में लग सकता है। बिल्वमंगल ठाकुर की एक प्रार्थना यहाँ प्रासंगिक होगी :

भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा भगवान् यदि स्याद्

दैवेन नः फलति दिव्यकिशोरमूर्तिः ।

मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलिः सेवतेऽस्मान्

धर्मार्थकामगतयः समयप्रतीक्षाः ॥

“हे प्रभु, यदि कोई संकल्प के साथ आपकी शुद्ध भक्ति में लगता है, तो आप अपने आदि दिव्य किशोर रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के तौर पर दृष्टिगोचर होते हैं। जहाँ तक मुक्ति का सवाल है, वह तो भक्त के समक्ष उसकी सेवा करने के लिए हाथ जोड़े खड़ी रहती है। धर्म, अर्थ तथा इन्द्रियतृप्ति बिना अलग प्रयास के स्वतः प्राप्त हो जाते हैं।” (कृष्णकर्णामृत 107)

श्रेयः-सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो

क्लिश्यन्ति ये केवल-बोध-लब्धये ।

तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते

नान्यद् यथा स्थूल-तुषावघातिनाम् ॥22॥

श्रेयः-सृतिम्-मुक्ति का शुभ मार्ग; भक्तिम्-प्रेमभक्ति को; उदस्य-त्यागकर; ते-आपकी; विभो-हे मेरे प्रभु; क्लिश्यन्ति-क्लेश प्राप्त करते हैं; ये-जो लोग; केवल-केवल; बोध-लब्धये-ज्ञान प्राप्त करने के लिए; तेषाम्-उनके लिए; असौ-वह; क्लेशलः–कष्ट; एव-केवल; शिष्यते-रहता है; न-नहीं; अन्यत्-कुछ और; यथा-जिस प्रकार; स्थूल-खाली; तुष-चावल की भूसी को; अवघातिनाम्-कूटने वालों के।

अनुवाद

“हे प्रभु, आपकी भक्ति एकमात्र शुभ मार्ग है। यदि कोई केवल ज्ञान के लिए या यह समझकर कि ये सारे जीव आत्माएँ हैं और यह जगत् मिथ्या है, इसका परित्याग कर देता है, तो उसे बहुत कष्ट भोगना पड़ता है। मात्र कष्टप्रद तथा अशुभ कर्म ही उसके हाथ लगते हैं। उसका प्रयास चावल से रहित भूसी को पीटने जैसा है। उसका प्रयास निष्फल हो जाता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.14.4) से है।

दैवी ह्येषा गुण-मयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ 23 ॥

दैवी–भगवान् से सम्बन्धित; हि–निश्चित रूप से; एषा–यह; गुण-मयी–तीनों गुणों से बनी हुई; मम–मेरी; माया-बहिरंगा शक्ति; दुरत्यया-पार करने में अत्यन्त कठिन; माम्-मेरी; एव–अवश्य; ये-जो; प्रपद्यन्ते–पूर्ण शरण ले लेते हैं; मायाम्-माया को; एताम्-इस; तरन्ति–पार कर लेते हैं; ते–वे।

अनवाद

"भौतिक प्रकृति के तीन गुणों वाली मेरी इस दैवी शक्ति का अतिक्रमण कर पाना कठिन है। किन्तु जो मेरी शरण में आ चुके हैं, वे इसे आसानी से पार कर सकते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण भगवद्गीता (7.14) का है।

'कृष्ण-नित्य-दास'—जीव ताहा भुलि' गेल ।

एइ दोषे माया तार गलाय बान्धिल ॥ 24॥

कृष्ण-नित्य-दास-कृष्ण का सनातन सेवक; जीव-जीवात्मा; ताहा-वह; भुलि'-भूल; गेल-गया; एइ दोषे-इस दोष के कारण; माया- भौतिक शक्ति; तार-उसके; गलाय-गले में; बान्धिल-बाँध दिया।

अनुवाद

"जीव माया की जंजीर द्वारा गले से बँधा हुआ है, क्योंकि वह यह भूल गया है कि वह कृष्ण का नित्य दास है।"

ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन ।

माया-जाल छुटे, पाय कृष्णेर चरण ॥25॥

ताते-इसलिए; कृष्ण भजे–यदि कोई भगवान् कृष्ण की आराधना करता है; करे-करता है; गुरुर सेवन–अपने आध्यात्मिक गुरु की सेवा; माया-जाल छुटे-माया के जाल से मुक्त हो जाता है; पाय-प्राप्त करता है; कृष्णेर चरण-कृष्ण के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

"यदि बद्धजीव भगवान् की सेवा में लगता है और साथ ही अपने गुरु की आज्ञा का पालन करता है और उनकी सेवा करता है, तो वह माया के जाल से छूट सकता है और कृष्ण के चरणकमलों में शरण पाने के योग्य हो सकता है।"

तात्पर्य

यह सच है कि प्रत्येक जीव कृष्ण का सनातन सेवक है। किन्तु माया के प्रभाव से यह बात भुला दी जाती है, जिससे मनुष्य भौतिक सुख में विश्वास करने के लिए प्रेरित होता है। माया से भ्रमित होकर मनुष्य सोचता है कि भौतिक सुख ही एकमात्र वांछित लक्ष्य है। यह भौतिक चेतना बद्धजीव के गले के चारों ओर पड़ी जंजीर के समान है। जब तक वह इस विचार से बँधा रहता है, तब तक वह माया के पाश से छूट नहीं सकता। किन्तु यदि कृष्ण की दया से वह प्रामाणिक गुरु के सम्पर्क में आ जाता है, उनके आदेश का पालन करता है तथा उसकी सेवा करता है, अन्य बद्धजीवों को भगवान् की सेवा में लगाता है, तो वह मुक्त हो जाता है एवं श्रीकृष्ण की शरण प्राप्त करता है।

चारि वर्णाश्रमी यदि कृष्ण नाहि भजे ।

स्वकर्म करिते से रौरवे पड़ि' मजे ॥26॥

चारि वर्ण-आश्रमी–चार वर्षों तथा आश्रमों के अनुयायी; यदि-यदि; कृष्ण-भगवान् कृष्ण की; नाहि-नहीं; भजे-सेवा करते; स्व-कर्म करिते-जीवन में अपने कर्म करते हुए; से-वह; रौरवे-नारकीय अवस्था में; पड़ि'-गिरकर; मजे-डूब जाता है।

अनुवाद

"वर्णाश्रम संस्था के अनुयायी चारों वर्षों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) तथा चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) के विधि-विधानों को मानते हैं। यदि वे इन विधानों का पलन करते हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण की भक्तिमयी सेवा नहीं करते, तो वे भौतिक जीवन की नारकीय अवस्था में जा गिरते हैं।"

तात्पर्य

भले ही कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र हो, अथवा वह ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास धर्म का ठीक से पालन करता हो, किन्तु यदि वह भक्त नहीं बनता, तो वह अन्ततः नरक में जा गिरता है। अपनी सुप्त कृष्ण-चेतना को विकसित किये बिना मनुष्य वास्तविक उन्नति नहीं कर सकता। सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करने के लिए वर्णाश्रम धर्म के विधि-विधान अपने आप में अपर्याप्त हैं। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत के अगले दो श्लोकों (11.5.2-3) से होती है।

मुख-बाहूरु-पादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह।

चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥ 27॥

मुख-मुख; बाहु–भुजाएँ; ऊरु–कमर; पादेभ्यः-चरणों से; पुरुषस्य-भगवान् के; आश्रमैः-भिन्न भिन्न आध्यात्मिक आश्रम; सह-साथ; चत्वारः-चार; जज्ञिरे-उत्पन्न हुए; वर्णाः-समाज के विभाग; गुणैः-विशिष्ट गुणों के साथ; विप्र-आदयः-ब्राह्मण आदि; पृथक्-अलग-अलग।

अनुवाद

“ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण प्रकट हुए। इसी तरह उनकी बाँहों से क्षत्रिय उत्पन्न हुए, उनकी कमर से वैश्य निकले और उनके पाँवों से शूद्र निकले। ये चारों वर्ण तथा इनके चार आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) मिलकर मानव समाज को पूर्ण बनाते हैं।”

य एषां पुरुषं साक्षादात्म-प्रभवमीश्वरम् ।

न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥28॥

य-जो; एषाम्-इन वर्णाश्रम विभागों का; पुरुषम्-परम भगवान् का; साक्षात्-साक्षात्; आत्म-प्रभवम् सभी के स्रोत को; ईश्वरम्-परम नियन्ता को; न-नहीं; भजन्ति-सेवा करते; अवजानन्ति-या जो नहीं जानते; स्थानात्-अपनी स्थिति से; भ्रष्टाः- भ्रष्ट होकर; पतन्ति–गिर जाते हैं; अधः-नारकीय स्थानों में।

अनुवाद

“यदि कोई व्यक्ति चारों वर्षों तथा आश्रमों में अपना औपचारिक स्थान बनाये रखता है, किन्तु भगवान् विष्णु की पूजा नहीं करता, तो वह अपने अहंकारपूर्ण उच्च स्थान से गिर जाता है और नारकीय स्थिति को प्राप्त होता है।”

ज्ञानी जीवन्मुक्त-दशा पाइनु करि’ माने ।

वस्तुतः बुद्धि ‘शुद्ध’ नहे कृष्ण-भक्ति विने ॥ 29॥

ज्ञानी–तार्किक दार्शनिक; जीवन्-मुक्त-दशा-इस शरीर में रहते हुए ही मोक्ष की अवस्था; पाइनु-मैंने प्राप्त कर ली है; करि’-ऐसा; माने-मानता है; वस्तुतः-वास्तव में; बुद्धि-बुद्धि; शुद्ध-निर्मल; नहे-नहीं; कृष्ण-भक्ति विने-कृष्ण की प्रेमभक्ति के बिना।

अनुवाद

"मायावादी सम्प्रदाय के ऐसे अनेक तर्कवादी ज्ञानी हैं, जो अपने आपको मुक्त मानते हैं और अपने आपको नारायण कहते हैं। किन्तु जब तक वे कृष्ण-भक्ति में नहीं लगते, तब तक उनकी बुद्धि निर्मल नहीं होती।"

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्त-मानिनस्

त्वय्यस्त-भावादविशुद्ध-बुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनादृत-युष्मदङ्घ्रयः ॥ 30॥

ये-वे सभी जो; अन्ये-दूसरे (अभक्त); अरविन्द-अक्ष-हे कमलनयन वाले; विमुक्त-मानिनः-जो स्वयं को मुक्त मानते हैं; त्वयि-आप में; अस्त-भावात्-भक्ति भाव से रहित; अविशुद्ध-बुद्धयः-जिनकी बुद्धि शुद्ध नहीं है; आरुह्य-चढ़कर; कृच्छ्रेण-कठोर तपस्याओं द्वारा; परम् पदम्-परम अवस्था को; ततः-वहाँ से; पतन्ति–गिर जाते हैं; अधः-नीचे; अनादृत-तिरस्कृत करके; युष्मत्-आपके; अङ्घ्रयः-चरणकमल।

अनुवाद

"हे कमलनेत्र, जो अपने आपको इस जीवन में मुक्त मानते हैं, किन्तु आपकी भक्ति नहीं करते, वे अवश्य ही अशुद्ध बुद्धि वाले हैं। यद्यपि वे कठिन तपस्या करते हैं और उच्च आध्यात्मिक पद अर्थात् निराकार ब्रह्म-साक्षात्कार का पद प्राप्त करते हैं, किन्तु वे पुनः नीचे गिरते जाते हैं, क्योंकि वे आपके चरणकमलों की पूजा करने की उपेक्षा करते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.2.32) से उधृत है।

कृष्ण—सूर्य-सम; माया हय अन्धकार ।

याहाँ कृष्ण, ताहाँ नाहि मायार अधिकार ॥ 31॥

कृष्ण–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण; सूर्य-सम-सूर्य लोक के समान; माया-माया शक्ति; हय-है; अन्धकार-अन्धकार; याहाँ कृष्ण-जहाँ भी कृष्ण हैं; ताहाँ-वहाँ; नाहि नहीं; मायार-माया या अज्ञान के अन्धकार का; अधिकार-आधिपत्य।

अनुवाद

"कृष्ण सूर्य के समान हैं और माया अन्धकार के समान है। जहाँ कहीं सूर्य-प्रकाश है, वहाँ अन्धकार नहीं हो सकता। ज्योंही भक्त कृष्णभावनामृत अपनाता है, त्योंही माया का अन्धकार (बहिरंगा शक्ति का प्रभाव) तुरन्त नष्ट हो जाता है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (2.9.34) में कहा गया है :

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।

तद् विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः ॥

"जो कुछ मेरे बिना सत्य प्रतीत होता है, वह निश्चय ही मेरी माया है, क्योंकि मेरे बिना कुछ भी विद्यमान नहीं रह सकता। यह तो छाया में वास्तविक प्रकाश के प्रतिबिम्ब के समान है, क्योंकि प्रकाश में न तो छाया है, न ही प्रतिबिम्ब।"

जहाँ कहीं भी प्रकाश है, वहाँ अन्धकार नहीं रह सकता। जब जीव कृष्णभावनाभावित हो जाता है, तो उसकी सारी भौतिक कामवासनाएँ तुरन्त जाती रहती हैं। कामवासनाएँ तथा लोभ रजस् तथा तमस् से सम्बन्धित हैं। कृष्णभावनाभावित होने पर रजो तथा तमोगुण तुरन्त लुप्त हो जाते हैं और सत्वगुण बचा रहता है। सत्त्वगुण में स्थित होने पर मनुष्य आध्यात्मिक प्रगति कर सकता है और सारी बातों को स्पष्ट रूप से समझ सकता है। यह स्थिति हर एक के लिए सम्भव नहीं है। जब व्यक्ति

कृष्णभावनाभावित हो जाता है, तो वह निरन्तर कृष्ण के विषय में सुनता है, उन्हीं के बारे में सोचता है, उन्हें ही पूजता है और भक्त के रूप में उनकी सेवा करता है। यदि वह इसी तरह कृष्णभावनाभावित बना रहता है, तो माया का अन्धकार उसको कभी छू नहीं पाता।

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षा-पथेऽमुया ।

विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ॥ 32॥

विलज्जमानया-लज्जित होकर; यस्य–जिससे; स्थातुम्-खड़ी रहने में; ईक्षा-पथे-नजरों के सामने; अमुया-उसके (माया के) द्वारा; विमोहिताः-मोहित; विकत्थन्ते-शेखी मारते हैं; मम-मेरा; अहम्-मैं; इति–इस प्रकार; दुर्धियः-अल्प ज्ञान के कारण।

अनुवाद

"कृष्ण की बहिरंगा मोहक शक्ति, जो माया कहलाती है, कृष्ण के समक्ष खड़े होने में हमेशा उसी तरह लज्जित होती है, जिस तरह अन्धकार सूर्य-प्रकाश के समक्ष रहने में लज्जित होता है। किन्तु माया उन अभागे व्यक्तियों को मोहग्रस्त कर लेती है, जिनमें बुद्धि नहीं होती। बस वे केवल यही शेखी मारते हैं कि यह भौतिक संसार उनका है और वे इसके भोक्ता हैं।"

तात्पर्य

समूचा संसार मोहग्रस्त है, क्योंकि लोग सोचते हैं कि, "यह मेरा देश है," "अमरीका मेरा है," "भारत मेरा है।" लोग जीवन के वास्तविक महत्त्व को न जानने के कारण सोचते हैं कि उनके भौतिक शरीर तथा जिस देश में वे उत्पन्न हुए हैं, वे ही सर्वोपरि हैं। राष्ट्रवाद, समाजवाद तथा साम्यवाद के पीछे यही मूल सिद्धान्त है। ऐसी विचारधारा, जो जीवों को केवल मोहग्रस्त करती है, पाखण्डवाद के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यह माया के अन्धकार के कारण है। किन्तु ज्योंही मनुष्य कृष्णभावनाभावित हो जाता है, वह इस भ्रामक विचार से तुरन्त मुक्त हो जाता है। यह श्लोक

श्रीमद्भागवत (2.5.13) से उद्धृत किया गया है। श्रीमद्भागवत (2.7.47) में एक अन्य श्लोक भी उपयुक्त है :

शश्वत् प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं

शुद्धं समं सदसतः परमात्म-तत्त्वम् ।

शब्दो न यत्र पुरु-कारकवान् क्रियार्थो

माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ।

तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो

ब्रह्मेति यद् विदुरजस्रसुखं विशोकम् ॥

"जिनकी अनुभूति परम ब्रह्म के रूप में होती है, वे शोकरहित असीम आनन्द से पूर्ण हैं। यह निश्चय ही परम भोक्ता भगवान् की चरम अवस्था है। वे समस्त उत्पातों से रहित, निर्भय, पदार्थ से विपरीत पूर्ण चेतन, कल्मषरहित तथा उपाधिरहित हैं। वे समस्त कारणों तथा प्रभावों के प्रमुख आदि कारण हैं। उनमें न तो सकाम कर्मों के लिए कोई यज्ञ है और न उनमें माया ठहर पाती है।"

यह श्लोक ब्रह्माजी ने तब कहा था, जब महर्षि नारद ने उनसे प्रश्न पूछा था। नारद को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ध्यानमग्न हैं, और इससे नारद को सन्देह हुआ कि ब्रह्मा से बढ़कर और कोई भी हो सकता है। क्या? नारद को उत्तर देते हुए ब्रह्माजी ने माया तथा मोहग्रस्त जीवों की स्थिति का वर्णन किया। यह श्लोक उसी प्रसंग में कहा गया था।

'कृष्ण, तोमार हऊ' यदि बले एक-बार ।

माया-बन्ध हैते कृष्ण तारे करे पार ॥ 33 ॥

कृष्ण-हे मेरे प्रभु कृष्ण; तोमार हङ–मैं आपका हूँ; यदि-यदि; बले-कोई कहता है; एक-बार-एक बार; माया-बन्ध हैते–बद्ध जीवन के बन्धन से; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तारे-उसे; करे पार–छुड़ा देते हैं।

अनुवाद

"यदि कोई गम्भीरता तथा निष्ठा के साथ यह कहता है कि, 'हे कृष्ण! यद्यपि इस भौतिक संसार में मैंने आपको इतने वर्षों से भुला दिया था, किन्तु आज मैं आपकी शरण ग्रहण कर रहा हूँ। मैं आपका निष्ठावान दास हूँ। कृपया मुझे अपनी सेवा में लगा लें, तो वह तुरन्त माया के पाश से मुक्त हो जाता है।"

सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति च याचते ।

अभयं सर्वदा तस्मै ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ 34॥

सकृत्-केवल एक बार; एव–अवश्य; प्रपन्नः-शरणागत; यः-जो कोई भी; तव-आपका; अस्मि-मैं हूँ; इति-ऐसी; च-तथा; याचते-प्रार्थना करता है; अभयम्-भय से मुक्ति; सर्वदा-सदैव; तस्मै–उसे; ददामि-मैं देता हूँ; एतत्-यह; व्रतम्-प्रतिज्ञा; मम-मेरी।

अनुवाद

"यह मेरा व्रत है कि यदि कोई यह कहकर एक बार भी मेरे शरणागत होता है कि, "हे प्रभु! आज से मैं आपका हूँ" और अभय के लिए मुझसे प्रार्थना करता है, तो मैं उस व्यक्ति को तुरन्त अभय प्रदान करता हूँ और वह उस समय से सदैव सुरक्षित रहता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण रामायण (युद्ध काण्ड 18.33) का है और भगवान् रामचन्द्र द्वारा कहा गया है।

भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-कामी 'सुबुद्धि' यदि हय ।

गाढ़-भक्ति-योगे तबे कृष्णेरे भजय ॥ 35॥

भुक्ति-भौतिक भोग का; मुक्ति–निराकार मोक्ष का; सिद्धि-योगसिद्धि का; कामी-इच्छुक; सु-बुद्धि–वास्तव में बुद्धिमान; यदि यदि; हय-वह; गाढ़-गहरे; भक्ति-योगे-भक्तियोग द्वारा; तबे-तब; कृष्णेरे भजयभगवान् कृष्ण की आराधना करता है।

अनुवाद

"जीव कुसंगति के कारण भौतिक सुख, मोक्ष अथवा भगवान् के निर्विशेष पहलू से तादात्म्य चाहता है या भौतिक शक्ति के लिए योग-साधना में लग जाता है। यदि ऐसा व्यक्ति वास्तव में बुद्धिमान बन जाता है, तो वह भगवान् श्रीकृष्ण की गहन भक्ति में लगकर कृष्णभावनामृत को अंगीकार करता है।"

अकामः सर्व-कामो वा मोक्ष-काम उदार-धीः ।

तीव्रण भक्ति-योगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ 36॥

अकामः-भौतिक भोग की इच्छा से रहित शुद्ध भक्त; सर्व-कामः-भौतिक भोग की असीमित इच्छाओं वाला व्यक्ति; वा-अथवा; मोक्ष-कामः-निराकार ब्रह्मज्योति में लीन होने की इच्छा रखनेवाला; उदार-धीः-अत्यन्त बुद्धिमान बनकर; तीव्रण–तीव्र; भक्ति-योगेन-भगवत्सेवा द्वारा; यजेत-उपासना करे; पुरुषम्-पुरुष की; परम्-परम।

अनुवाद

"चाहे कोई सब कुछ चाहता हो या कुछ न चाहता हो, अथवा भगवान् से तादात्म्य चाहता हो, वह तभी बुद्धिमान होता है, जब वह दिव्य प्रेमाभक्ति द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की पूजा करता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (2.3.10) से लिया गया है।

अन्य-कामी यदि करे कृष्णेर भजन ।

ना मागितेह कृष्ण तारे देन स्व-चरण ॥ 37॥

अन्य-कामी–जो अन्य अनेक वस्तुएँ चाहता है; यदि-यदि; करे-करता है; कृष्णेर भजन-भगवान् कृष्ण की प्रेमभक्ति; ना मागितेह-यद्यपि नहीं माँगता; कृष्ण भगवान् कृष्ण; तारे-उसे; देन-देते हैं; स्व-चरण-अपने चरणों का आश्रय।

अनुवाद

"जो लोग भौतिक सुख चाहते हैं या परम सत्य में समा जाना चाहते हैं, यदि वे भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में अपने आपको लगाते हैं, तो उन्हें तुरन्त कृष्ण के चरणकमलों में शरण प्राप्त हो जाती है, भले ही वे इसकी याचना न करें। अतः कृष्ण अत्यन्त दयामय हैं।"

कृष्ण कहे,—'आमा भजे, मागे विषय-सुख ।

अमृत छाड़ि' विष मागे,——एइ बड़ मूर्ख ॥ 38॥

कृष्ण कहे-कृष्ण कहते हैं; आमा भजे-यह मेरी उपासना कर रहा है; मागे-परंतु माँगता है; विषय-सुख-भौतिक सुख; अमृत छाड़ि'-अमृत को छोड़कर; विष मागे-वह विष माँगता है; एइ बड़ मूर्ख-यह बहुत मूर्ख है।

अनुवाद

"कृष्ण कहते हैं, 'यदि कोई मेरी दिव्य प्रेमाभक्ति में लगता है, किन्तु साथ ही भौतिक भोग या ऐश्वर्य चाहता है, तो वह महामूर्ख है। निस्सन्देह, वह उस व्यक्ति के समान है, जो अमृत छोड़कर विष पीता है।"

आमि—विज्ञ, एइ मूर्ख ‘विषय’ केने दिब? ।

स्व-चरणामृत दिया ‘विषय’ भुलाइब ॥ 39॥

आमि-मैं हूँ; विज्ञ-सबसे बुद्धिमान; एइ मूर्खे-इस मूर्ख व्यक्ति को; विषय-भौतिक सुख; केने दिब–मैं क्यों दूँगा; स्व-चरण-अमृत-मेरे चरणकमलों की शरण रूपी अमृत; दिया-देकर; विषय-भौतिक सुखभोग का विचार; भुलाइब-उसे भुलवा दूँगा।

अनुवाद

“चूँकि मैं अत्यन्त बुद्धिमान हूँ, अतः मैं इस मूर्ख को भौतिक सम्पन्नता क्यों हूँ? इसके बदले में मैं इसे अपने चरणकमलों की शरण का अमृत लेने के लिए प्रेरित करूँगा और इसके भ्रामक भौतिक भोग की कामना को भुलवा दूँगा।”

तात्पर्य

जो लोग भौतिक भोग में रुचि रखते हैं, वे भुक्ति-कामी कहलाते हैं। जो व्यक्ति ब्रह्मतेज में समाना चाहता है या योग-पद्धति में पूर्णता प्राप्त करना चाहता है, वह भक्त है ही नहीं। भक्तों में ऐसी इच्छाएँ नहीं पाई जातीं। किन्तु यदि किसी तरह कर्मी, ज्ञानी या योगी किसी भक्त के सम्पर्क में आकर कृष्ण की भक्ति करता है, तो कृष्ण तुरन्त उसे भगवत्प्रेम प्रदान करते हैं और अपने चरणकमलों में शरण देते हैं, भले ही उसे इसका कोई अनुमान न हो कि कृष्ण-प्रेम किस तरह विकसित किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति भक्ति के द्वारा भौतिक लाभ चाहता है, तो कृष्ण ऐसी भौतिकतावादी इच्छाओं की निन्दा करते हैं। भक्ति में लगे रहकर भौतिक ऐश्वर्य की कामना करना मूर्खता है। कोई व्यक्ति कितना ही मूर्ख क्यों न हो, कृष्ण सर्वाधिक बुद्धिमान होने के कारण उसे अपनी भक्तिमयी सेवा में इस तरह लगाते हैं, जिससे वह धीरे-धीरे भौतिक ऐश्वर्य को भूल जाता है। बात यह है कि हमें प्रेममयी सेवा के बदले भौतिक समृद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। यदि हम सचमुच कृष्ण के चरणकमलों में शरणागत हैं, तो हमारी एकमात्र इच्छा कृष्ण को प्रसन्न रखने की होनी चाहिए। यही शुद्ध कृष्णभावना

है। शरणागति का अर्थ यह नहीं है। कि हम भगवान् से कुछ माँग करें, अपितु यह कि हम उनकी कृपा पर पूर्णतया आश्रित रहें। कृष्ण चाहे अपने भक्त को दीनावस्था में रखें या उसे ऐश्वर्य-पूर्ण स्थिति में रखें, भक्त को किसी भी स्थिति में चिन्ता नहीं करनी चाहिए; उसे तो केवल भगवान् को सेवा द्वारा तुष्ट रखने के प्रयास के बारे में अत्यन्त गम्भीर रहना चाहिए।

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां

नैवार्थ-दो यत्पुनरर्थिता यतः ।

स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छताम्

इच्छा-पिधानं निज-पाद-पल्लवम् ॥40॥

सत्यम्-यह सत्य है; दिशति-वे प्रदान करते हैं; अर्थितम्-जो इच्छित है; अर्थितः-माँगा गया; नृणाम्-मनुष्यों द्वारा; न-नहीं; एव–अवश्य; अर्थ-दः–इच्छित वस्तुएँ देकर; यत्-जो; पुनः-फिर; अथिता-माँगी गई; यतः-जिससे; स्वयम्-स्वयं; विधत्ते-वे देते हैं; भजताम्-जो प्रेमभक्ति में लगे रहते हैं; अनिच्छताम्-न चाहते हुए भी; इच्छा-पिधानम्-अन्य इच्छाओं को आवृत करके; निज-पाद-पल्लवम्-उनके अपने चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

"जब भी कृष्ण से किसी इच्छा को पूरी करने की विनती की जाती है, तो वे उसे अवश्य पूरी करते हैं, किन्तु वे ऐसा वर नहीं देते, जिसका भोग करने के बाद भी पुनः पुनः माँगने की आवश्यकता पड़े। जब किसी की अन्य इच्छाएँ रहती हैं, किन्तु साथ ही वह भगवान् की सेवा में लगा रहता है, तो कृष्ण उसे बलपूर्वक अपने चरणकमलों में शरण देते हैं, जहाँ वह अन्य सारी इच्छाओं को भूल जाता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (5.19.27) से है।

काम लागि' कृष्ण भजे, पाय कृष्ण-रसे ।

काम छाड़ि' 'दास' हैते हय अभिलाषे ॥41॥

काम लागि'-अपनी भौतिक इच्छओं की पूर्ति के लिए; कृष्ण भजे–जो कृष्ण की दिव्य सेवा में लगता है; पाय-वह प्राप्त करता है; कृष्ण-से-भगवान् कृष्ण के चरणकमलों का रस; काम छाड़ि'–भौतिक भोग की सभी इच्छाओं को छोड़कर; दास हैते–भगवान् का एक नित्य सेवक बनने की; हय–होती है; अभिलाषे–इच्छा।

अनुवाद

"जब कोई अपनी इन्द्रियों की तुष्टि हेतु भगवान् कृष्ण की भक्ति में लगता है, किन्तु उसके विपरीत उसे कृष्ण की सेवा करने का स्वाद मिल जाता है, तो वह अपनी भौतिक इच्छाओं को छोड़कर स्वेच्छा से कृष्ण का सनातन सेवक बन जाता है।"

स्थानाभिलाषी तपसि स्थितोऽहं

त्वां प्राप्तवान्देव-मुनीन्द्र-गुह्यम् ।

काचं विचिन्वन्नपि दिव्य-रत्नं

स्वामिन्कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे ॥42॥

स्थान-अभिलाषी–भौतिक जगत् में अत्यन्त ऊँची स्थिति प्राप्त करने का इच्छुक; तपसि-कठोर तपस्याओं में स्थितः-लगा रहकर; अहम्-मैं; त्वाम्-आपको; प्राप्तवान्–प्राप्त कर लिया; देव-मुनि-इन्द्र-गुह्यम्-महान् देवताओं, मुनियों तथा राजाओं द्वारा प्राप्त करने में कठिन; काचम्-एक काँच का टुकड़ा; विचिन्वन्-ढूँढते हुए; अपि-यद्यपि; दिव्य-रत्नम्-एक दिव्य रत्न; स्वामिन्–हे मेरे प्रभु; कृत-अर्थः अस्मि-मैं पूर्ण सन्तुष्ट हूँ; वरम्-कोई वरदान; न ग्नाचे-मैं नहीं माँगता।

अनुवाद

“[जब ध्रुव महाराज को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वर दे रहे थे, तब उन्होंने कहा था :], ‘हे प्रभु, चूँकि मैं ऐश्वर्ययुक्त भौतिक पद की खोज में था, इसलिए मैं कठिन तपस्या कर रहा था। अब तो मैंने आपको पा लिया है, जिन्हें बड़े-बड़े देवता, मुनि तथा राजा भी बड़ी कठिनाई से प्राप्त कर पाते हैं। मैं तो एक काँच का टुकड़ा ढूँढ रहा था, किन्तु इसके बदले मुझे बहुमूल्य रत्न मिल गया है। अतएव मैं इतना सन्तुष्ट हूँ कि अब मैं आपसे कोई वर नहीं चाहता।”

तात्पर्य

यह श्लोक हरिभक्ति-सुधोदय (7.28) का है।

संसार भ्रमिते कोन भाग्ये केह तरे ।

नदीर प्रवाहे येन काष्ठ लागे तीरे ॥43॥

संसार भ्रमिते-सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भटकते हुए; कोन भाग्ये-कुछ सौभाग्य द्वारा; केह तरे-कोई भवसागर पार करता है; नदीर प्रवाहे-नदी के प्रवाह में; येन-जिस प्रकार; काष्ठ-लकड़ी; लागे-लग जाती है; तीरे-किनारे पर।

अनुवाद

“बद्धजीव ब्रह्माण्ड के विभिन्न लोकों में भ्रमण करते हुए कई योनियों में प्रवेश करते रहते हैं। सौभाग्यवश इनमें से कोई एक किसी न किसी प्रकार अज्ञान के सागर से मुक्त हो सकता है, जैसे किसी बहती नदी में अनेक बड़ी लकड़ियों में से सहसा कोई एक किनारे तक पहुँच जाए।”

तात्पर्य

"ऐसे असंख्य बद्धजीव हैं, जो भगवान् कृष्ण की सेवा से रहित हैं। यह न जानते हुए कि किस तरह अज्ञान-सागर को पार किया जाता है, वे समय के तरंगों द्वारा, इधर-उधर बिखर जाते हैं। किन्तु इनमें से कुछ भाग्यशाली भक्तों की संगति प्राप्त कर पाते हैं और इस संसर्ग के फलस्वरूप अज्ञान सागर से उनका उद्धार हो जाता है, जिस तरह कि नदी की धारा में बहने वाला लकड़ी का टुकड़ा संयोगवश किनारे लग जाता है।"

मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युत-दर्शनम् ।

ह्रियमाणः काल-नद्या क्वचित्तरति कश्चन ॥44॥

मा-नहीं; एवम्-इस प्रकार; मम–मुझ; अधमस्य–सबसे पतित का; अपि-यद्यपि; स्यात् हो सकता; एव–अवश्य; अच्युत-दर्शनम् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अच्युत के दर्शन करना; ह्रियमाणः-खींचा गया; काल-नद्या-काल की नदी द्वारा; क्वचित्-कभी-कभी; तरति-पार कर जाता है; कश्चन-कोई।

अनुवाद

"यह सोचना मेरा भ्रम था कि, "चूँकि मैं इतना पतित हूँ, इसलिए मुझे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दर्शन का कभी अवसर नहीं मिल सकेगा।" प्रत्युत संयोगवश मुझ जैसा पतित व्यक्ति भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दर्शन कर सकता है। यद्यपि मनुष्य कालरूपी नदी की तरंगों में बहता रहता है, किन्तु अन्ततः वह किनारे तक पहुँच सकता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.38.5) का है और अक्रूर द्वारा कहा गया था।

कोन भाग्ये कारो संसार क्षयोन्मुख हय ।

साधु-सङ्गे तबे कृष्णे रति उपजय ॥ 45 ॥

कोन भाग्ये-किस सौभाग्य द्वारा; कारो-किसी का; संसार-बद्ध जीवन; क्षय-उन्मुख–समाप्ति के नजदीक; हय-होता है; साधु-सङ्गे–साधु संग द्वारा; तबे-तब; कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; रति-अनुराग; उपजय-जाग जाता है।

अनुवाद

"भाग्यवश ही मनुष्य अज्ञान के सागर को पार करने के योग्य बनता है और जब उसके भौतिक अस्तित्व की अवधि घटती है, तो उसे शुद्ध भक्तों की संगति करने का अवसर प्राप्त हो सकता है। ऐसी संगति से कृष्ण के प्रति उसका आकर्षण जाग्रत हो जाता है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इसकी व्याख्या दी है। क्या यह भाग्य संयोग का फल है या कुछ और? शास्त्रों में भक्ति तथा पुण्यकर्म को भाग्यशाली माना गया है। पुण्यकर्म तीन प्रकार के हो सकते हैं- भक्त्युन्मुखी सुकृति अर्थात् ऐसे पुण्यकर्म जो सुप्त कृष्ण-चेतना को जाग्रत करने वाले हैं, भोगोन्मुखी सुकृति-जो भौतिक ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं तथा मोक्षोन्मुखी सुकृति–जो जीव को ब्रह्म में तदाकार कराते हैं। अन्तिम दो पुण्यकर्म वास्तव में भाग्यशाली नहीं होते। पुण्यकर्म तभी भाग्यशाली होते हैं, जब वे किसी को कृष्णभावनाभावित होने में सहायक बनते हैं। भक्त्युन्मुखी का सौभाग्य तभी प्राप्त होता है, जब कोई किसी भक्त के सम्पर्क में आता है। चाहे या अनचाहे रूप से भक्त की संगति से भक्ति में प्रगति होती है और मनुष्य की सुप्त कृष्ण-चेतना जाग्रत हो उठती है।

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्

जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।

सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ

परावरेशे त्वयि जायते रतिः ॥ 46॥

भव-अपवर्गः–भौतिक अस्तित्व से मोक्ष; भ्रमतः-भ्रमण करते हुए; यदा-जब; भवेत्-होना चाहिए; जनस्य–एक व्यक्ति का; तर्हि-उस समय; अच्युत-हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; सत्-समागमः-भक्तों के साथ संग; सत्-सङ्गमः-भक्तों के साथ संग; यर्हि-जब; तदा-उस समय; एव–केवल; सत्-गतौ-जीवन का परम लक्ष्य; पर-अवर-ईशे–विश्व के स्वामी; त्वयि-आप में; जायते-जागता है; रतिः-अनुराग।

अनुवाद

"हे प्रभु! हे अच्युत परम पुरुष! जब पूरे ब्रह्माण्ड में भ्रमण करने वाला व्यक्ति भौतिक संसार से मुक्ति पाने का पात्र बनता है, तो उसे भक्तों की संगति करने का अवसर प्राप्त होता है। जब वह भक्तों की संगति करता है, तो आपके प्रति उसका आकर्षण जाग्रत होता है। आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, सर्वोत्तम भक्तों के चरम गन्तव्य हैं और ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.51.53) से उद्धृत है।

कृष्ण यदि कृपा करे कोन भाग्यवाने ।

गुरु-अन्तर्यामि-रूपे शिखाय आपने ॥ 47॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यदि यदि; कृपा करे-अपनी कृपा करते हैं; कोन भाग्यवाने–किसी भाग्यशाली व्यक्ति पर; गुरु-आध्यात्मिक गुरु के अन्तर्यामि-परमात्मा के; रूपे–रूप में; शिखाय-सिखाते हैं; आपने-स्वयं।

अनुवाद

"कृष्ण प्रत्येक जीव के हृदय में चैत्य गुरु अर्थात् अन्तःकरण में स्थित गुरु के रूप में स्थित हैं। जब वे किसी भाग्यशाली बद्धजीव पर दयालु होते हैं, तो वे उसे भीतर से परमात्मा के रूप में और बाहर से गुरु के रूप में भक्ति में प्रगति करने का उपदेश देते हैं।"

नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश

ब्रह्मायुषापि कृतमृद्ध-मुदः स्मरन्तः ।

योऽन्तर्बहिस्तनु-भृतामशुभं विधुन्वन्

आचार्य-चैत्य-वपुषा स्व-गतिं व्यनक्ति ॥48॥

न एव–बिलकुल नहीं; उपयन्ति–व्यक्त करने में समर्थ; अपचितिम्-अपनी कृतज्ञता; कवयः-ज्ञानी भक्त; तव-आपके; ईश-हे प्रभु; ब्रह्म-आयुषा–ब्रह्माजी जितनी जीवन अवधि होने पर; अपि-भी; कृतम्-उदारता का कार्य; ऋद्ध-बढ़ा हुआ; मुदः-आनन्द; स्मरन्तःस्मरण करके; यः-जो; अन्तः–अन्दर; बहिः-बाहर; तनु-भृताम्-देहधारियों का; अशुभम् दुर्भाग्य; विधुन्वन्–दूर करने के लिए; आचार्य-सद्गुरु के; चैत्य-परमात्मा के; वपुषा–रूपों द्वारा; स्व-अपना; गतिम्-मार्ग; व्यनक्ति–दिखाते हैं।

अनुवाद

"हे प्रभु, दिव्य कवि तथा अध्यात्म विज्ञान में पटु व्यक्ति भी आपसे पूरी तरह अपनी कृतज्ञता व्यक्त नहीं कर पाये, यद्यपि उन्हें ब्रह्मा जितनी दीर्घायु दी गई थी, क्योंकि आप दो रूपों में-बाह्य रूप में आचार्य की तरह और अन्तःकरण में परमात्मा की तरह-देहधारी जीव को अपने पास आने के निमित्त निर्देश देकर उनका उद्धार करने के लिए प्रकट होते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.29.6) का है। जब श्रीकृष्ण उद्धव को योग की शिक्षा दे चुके, तब उद्धव ने यह श्लोक कहा था।

साधु-सङ्गे कृष्ण-भक्त्ये श्रद्धा यदि हय ।

भक्ति-फल 'प्रेम' हय, संसार याय क्षय ॥49॥

साधु-सङ्गे-भक्तों के संग द्वारा; कृष्ण-भक्त्ये-कृष्ण की प्रेमभक्ति में; श्रद्धा-विश्वास; यदि-यदि; हय–होता है; भक्ति-फल-कृष्ण की प्रेमभक्ति का परिणाम; प्रेम-भगवत्प्रेम; हय-जाग जाता है; संसार–भौतिक अस्तित्व का बद्ध जीवन; याय क्षय-नष्ट हो जाता है।

अनुवाद

"भक्त की संगति करने से कृष्ण-भक्ति में श्रद्धा जाग्रत होती है। भक्ति के कारण मनुष्य का सुप्त कृष्ण-प्रेम जाग्रत होता है और इस तरह उसका भौतिक बद्ध जीवन समाप्त हो जाता है।"

यदृच्छया मत्कथादौ जात-श्रद्धस्तु यः पुमान् ।

न निर्विण्णो नाति-सक्तो भक्ति-योगोऽस्य सिद्धि-दः ॥50॥

यदृच्छया-सौभाग्यवशात्; मत्-कथा-आदौ-मेरी कथाओं में; जात-श्रद्धः-आकर्षण उत्पन्न हो गया; तु-परन्तु; यः पुमान्-जो व्यक्ति; न निर्विण्णः-झूठा वैराग्य नहीं; न अति-सक्तः–भौतिक वस्तुओं से बहुत आसक्त नहीं; भक्ति-योगः- भगवत्सेवा की प्रक्रिया; अस्य-ऐसे व्यक्ति को; सिद्धि-दः-सिद्धि प्रदान करती है।

अनुवाद

"यदि कोई किसी तरह से मेरी कथा के प्रति आकृष्ट होता है और भगवद्गीता में दी गई मेरी शिक्षाओं में श्रद्धा रखता है और यदि मनुष्य में भौतिक वस्तुओं के प्रति झूठी आसक्ति नहीं है और साथ ही वह भौतिक जगत् में अधिक आसक्त नहीं होता है, तो मेरे प्रति उसका सुप्त प्रेम भक्ति द्वारा जाग्रत हो उठेगा।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.20.8) से लिया गया है। यह उस समय की उक्ति है, जब कृष्ण इस भौतिक जगत् से विदा ले रहे थे। इसे कृष्ण ने उद्धव को कहा था।

महत्कृपा विना कोन कर्मे 'भक्ति' नय ।

कृष्ण-भक्ति दूरे रहु, संसार नहे क्षय ॥51॥

महत्-कृपा-महान् भक्तों की कृपा; विना-बिना; कोन कर्मे किसी अन्य कर्म द्वारा; भक्ति नय-प्रेम भक्ति नहीं होती; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण-प्रेम अथवा कृष्ण की भक्तिमयी सेवा; दूरे रहु-दूर की बात है; संसार-भवबन्धन; नहे-नहीं होता; क्षय-नष्ट।

अनुवाद

"शुद्ध भक्त की कृपा बिना किसी को भक्ति-पद प्राप्त नहीं हो सकता। कृष्ण-भक्ति की बात जाने दें, मनुष्य भवबन्धन तक से नहीं छूट सकता।"

तात्पर्य

पुण्यकर्मों से भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त होता है, किन्तु कोई कितना ही भौतिक पुण्यकर्म क्यों न करे—वह कितना ही दान क्यों न दे या बड़े बड़े अस्पताल या स्कूल खोले या परोपकार के काम करे—वह भक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। भक्ति केवल शुद्ध भक्त की कृपा से प्राप्त की जा सकती है। शुद्ध भक्त की कृपा के बिना भौतिक अस्तित्व तक से छुटकारा नहीं मिल सकता। इस श्लोक में महत् शब्द "शुद्ध भक्" का सूचक है। भगवद्गीता (9.13) में भगवान् कृष्ण द्वारा इसकी पुष्टि की गई है :

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।

भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥

“हे पृथापुत्र, महात्मा, जो मोहग्रस्त नहीं होते, वे दैवी प्रकृति के संरक्षण में रहते हैं। वे पूरी तरह से भक्ति में लगे रहते हैं, क्योंकि वे मुझे आदि तथा अव्यय पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में जानते हैं।”

मनुष्य को ऐसे महात्मा की संगति करनी होती है, जिसने कृष्ण को सम्पूर्ण सृष्टि के परम स्रोत के रूप में स्वीकार कर लिया हो। महात्मा हुए बिना मनुष्य कृष्ण की परम स्थिति को नहीं समझ सकता। महात्मा दुर्लभ तथा दिव्य होता है और वही भगवान् कृष्ण का शुद्ध भक्त होता है। मूर्ख लोग कृष्ण को मनुष्य मानते हैं और वे कृष्ण के शुद्ध भक्त को भी एक सामान्य व्यक्ति ही मानते हैं। व्यक्ति की भौतिक स्थिति चाहे जो भी हो, उसे भक्त महात्मा के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए और उसे समस्त मानव समाज का सर्वश्रेष्ठ शुभचिन्तक मानना चाहिए। हमें ऐसे महात्मा की शरण में जाना चाहिए और उसकी अहैतुकी कृपा की याचना करनी चाहिए। केवल उसके आशीर्वाद से ही मनुष्य भौतिक जीवन के प्रति आसक्ति से मुक्त हो सकता है। इस प्रकार मुक्त होने के बाद मनुष्य महात्मा की कृपा से भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में लग सकता है।

रहूगणैतत्तपसा न याति

न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा ।

न च्छन्दसा नैव जलाग्नि-सूर्यैर्

विना महत्पाद-रजोऽभिषेकम् ॥52॥

रहूगण-हे राजा रहूगण; एतत्-यह; तपसा-कठोर तपस्याओं द्वारा; न याति–नहीं प्राप्त किया जाता; न-नही; च–तथा; इज्यया-महँगे पूजा अनुष्ठानों द्वारा; निर्वपणात्-संन्यास आश्रम ग्रहण करके; गृहात्-घर में रहते हुए दान करने के द्वारा; वा–अथवा; न छन्दसा-न ही वेदों के विद्वत्तापूर्ण अध्ययन द्वारा; न-न; एव–अवश्य; जल-अग्नि-सूर्यैः-जल, आग या सूर्य की उपासना करके; विना—बिना; महत्-पाद-रजः-एक महात्मा के चरणकमलों की धूलि के; अभिषेकम्-अभिषेक।

अनुवाद

“हे राजा रहूगण, शुद्ध भक्त (महाजन या महात्मा) के चरणकमलों की धूल अपने सिर पर धारण किये बिना मनुष्य भक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। केवल कठिन तपस्या करने से, अर्चाविग्रह की भव्य पूजा करने से या संन्यास अथवा गृहस्थाश्रम के नियमों का कठोरता से पालन करने से अथवा वेदों का अध्ययन करने से, जल में डूबे रहने या आग अथवा कड़ी धूप में खुला बैठने से भक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (5.12-12) में आया है। यहाँ पर जड़ भरत राजा रहूगण को बतलाते हैं कि उन्होंने किस तरह परमहंस अवस्था प्राप्त की। सिंधु सौवीर के राजा महाराज रहूगण ने जड़ भरत से पूछा था कि उन्होंने किस तरह परमहंस अवस्था प्राप्त की। राजा ने उन्हें अपनी पालकी ढोने के लिए कहा था, किन्तु जब राजा ने परमहंस जड़ भरत से श्रेष्ठ दर्शन सुना, तो उसे आश्चर्य हुआ और उसने जड़ भरत से पूछा कि उन्हें किस तरह ऐसी महान् मुक्ति प्राप्त हो सकी। उस समय जड़ भरत ने राजा को बतलाया कि किस तरह भौतिक आकर्षण से विरक्त हुआ जा सकता है।

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रि

स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।

महीयसां पाद-रजोऽभिषेकं

निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥53॥

न-नहीं; एषाम्-गृहस्थ जीवन में आसक्त लोगों की; मतिः-रुचि; तावत्-तब तक; उरुक्रम-अङ्घ्रिम्-असाधारण कर्म करने वाले भगवान् के चरणकमलों को; स्पृशति-स्पर्श करते; अनर्थ-अवांछित वस्तुओं का; अपगमः-विनाश; यत्-जिसका; अर्थः-परिणाम; महीयसाम्-महान् लोगों का,

भक्तों का; पाद-रजः-चरणकमलों की धूलि का; अभिषेकम्-मस्तक पर छिड़कना; निष्किञ्चनानाम्-जो भौतिक सम्पत्तियों से पूर्णरूप से विरक्त हैं; न वृणीत–नहीं करता; यावत्-जब तक।

अनुवाद

"जब तक मानवं-समाज महात्माओं के–वे भक्त जिनका भौतिक सम्पत्ति से कोई लगाव नहीं होता-उनके चरणकमलों की धूल को स्वीकार नहीं करता, तब तक मानव जाति भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की ओर अपना ध्यान नहीं ले जा सकती। वे चरणकमल भौतिक जीवन के समस्त अवांछित कष्टों को दूर करने वाले हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (7.5.32) में आया है। महामुनि नारद ने महाराज युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए प्रह्लाद महाराज के कार्यों का वर्णन किया। यह श्लोक प्रह्लाद महाराज ने अपने पिता असुरराज हिरण्यकशिपु से कहा था। उन्होंने अपने पिता को भक्तियोग की नौ आधारभूत विधियाँ बतलाईं और कहा कि जो भी इन विधियों का पालन करता है, उसे अत्यन्त विद्वान पण्डित समझना चाहिए। किन्तु हिरण्यकशिपु को अपने पुत्र द्वारा भक्ति के विषय में ऐसी बातें करना अच्छा नहीं लगा। अतएव उसने तुरन्त ही प्रह्लाद के शिक्षक षण्ड को बुलवाया। शिक्षक ने बतलाया कि उसने प्रह्लाद को भक्ति की शिक्षा नहीं दी, अपितु उस बालक में उस तरफ सहज ही झुकाव था। उस समय हिरण्यकशिपु अत्यधिक क्रुद्ध हुआ और उसने प्रह्लाद से पूछा कि वह वैष्णव क्यों बना। इसके उत्तर में प्रह्लाद महाराज ने यह श्लोक सुनाया, जिसका भावार्थ यह है। कि कोई भी व्यक्ति अन्य भक्त का आशीर्वाद तथा कृपा पाये बिना भगवद्भक्त नहीं बन सकता।

'साधु-सङ्ग', 'साधु-सङ्ग'—सर्व-शास्त्रे कय ।

लव-मात्र साधु-सङ्गे सर्व-सिद्धि हय ॥54॥

साधु-सङ्ग साधु-सङ्ग-शुद्ध भक्तों का संग; सर्व-शास्त्रे-सभी प्रामाणिक शास्त्र; कय-कहते हैं; लव-मात्र–एक क्षण के लिए भी; साधु-सङ्गे–एक भक्त के संग द्वारा; सर्व-सिद्धि-सब सिद्धि; हय–हो जाती है।

अनुवाद

"सारे शास्त्रों का निर्णय है कि शुद्ध भक्त के साथ क्षण-भर की संगति से ही मनुष्य सारी सफलता प्राप्त कर सकता है।"

तात्पर्य

ज्योतिष गणना के अनुसार लव एक सेकंड के 1/11 वें भाग के बराबर होता है।

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।

भगवत्सङ्गि-सङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥55॥

तुलयाम-हम तुलना करते हैं; लवेन–क्षणभर में; अपि-भी; न-नहीं; स्वर्गम्-स्वर्गलोक; न-नहीं; अपुनः-भवम्-ब्रह्मज्योति में लीन होने के; भगवत्-सङ्गि-सङ्गस्य-उन भक्तों की संगति की, जो सदैव भगवान् के संग में रहते हैं; मर्त्यानाम्-मरणशील व्यक्तियों का; किम् उत-क्या कहना; आशिषः-आशीर्वाद।

अनुवाद

"भगवद्भक्त के साथ क्षण-भर की संगति के मूल्य की तुलना जब स्वर्ग-प्राप्ति या भौतिक बन्धन से मुक्ति से नहीं की जा सकती, तो भौतिक सम्पति के रूप में सांसारिक वरदान के विषय में क्या कहा जाए, जो उन लोगों के लिए है जिन्हें एक न एक दिन मरना ही है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.18.13) का है। यह श्लोक शौनक ऋषि आदि नैमिषारण्य के मुनियों द्वारा सम्पन्न वैदिक अनुष्ठानों एवं यज्ञों के सम्बन्ध में है। मुनियों ने यह इंगित किया कि क्षण-भर से भी कम भक्त की संगति हजार वैदिक अनुष्ठानों एवं यज्ञों, स्वर्ग-प्राप्ति अथवा ब्रह्म में तादात्म्य से बढ़कर है।

कृष्ण कृपालु अर्जुनेरे लक्ष्य करिया ।

जगतेरे राखियाछेन उपदेश दिया ॥56॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कृपालु-कृपालु; अर्जुनेरे–अर्जुन को; लक्ष्य करिया-लक्ष्य करके; जगतेरे-सम्पूर्ण संसार की; राखियाछेन-रक्षा कर दी; उपदेश दिया-उपदेश देकर।

अनुवाद

"कृष्ण इतने दयालु हैं कि अर्जुन को लक्षित करते हुए अपने उपदेशों के द्वारा उन्होंने सारे जगत् को संरक्षण प्रदान किया है।"

सर्व-गुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।

इष्टोऽसि मे दृढ़मिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥57॥

मन्मना भव मद्भक्तो मयाजी मां नमस्कुरु ।

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥58 ॥

सर्व-गुह्य-तमम्-सबसे अधिक गुप्त; भूयः-फिर; शृणु–सुनो; मे-मेरे; परमम् वचः-सर्वोपरि उपदेश; इष्टः–प्रिय; असि-तुम हो; मे-मेरे; दृढम् इति–दृढ़तापूर्वक; ततः-इसलिए; वक्ष्यामि-मैं कहूँगा; ते-तुमसे; हितम्-हितकारी वचन; मत्-मनाः-मन को सदैव मुझमें लगाए रखने वाला; भव-बनो; मत्-भक्तः–मेरे भक्त; मत्-याजी-मेरे उपासक; माम्-मुझे; नमस्कुरु-प्रणाम करो; माम् एव–केवल मेरे पास

ही; एष्यसि तुम आओगे; सत्यम्-सच में; ते तुम्हें; प्रतिजाने-मैं वचन देता हूँ; प्रियः असि-तुम प्रिय हो; मे-मेरे।

अनुवाद

"चूँकि तुम मेरे अत्यन्त प्रिय मित्र हो, इसलिए मैं तुम्हें मेरे सर्वोत्कृष्ट उपदेश के रूप में ज्ञान के सर्वाधिक गुह्य अंश को बतला रहा हूँ। इसे मुझसे सुनो, क्योंकि यह तुम्हारे लाभ के लिए है। सदैव मेरा चिन्तन करो और मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस तरह तुम निश्चित रूप से मेरे पास आओगे। मैं तुम्हें यह वचन देता हूँ, क्योंकि तुम मेरे प्रिय मित्र हो।"

तात्पर्य

ये दोनों श्लोक भगवद्गीता (18.64-65) से उधृत हैं।

पूर्व आज्ञा,—वेद-धर्म, कर्म, योग, ज्ञान।

सब साधि' शेषे एइ आज्ञा—बलवान् ॥59॥

पूर्व आज्ञा-पिछले आदेश; वेद-धर्म-वैदिक कर्मकांड करना; कर्म-सकाम कर्म; योग-योगाभ्यास; ज्ञान-तार्किक ज्ञान; सब साधि'-इन सभी प्रक्रियाओं का वर्णन करके; शेषे–अन्त में; एइ आज्ञा-यह आदेश; बलवान्–शक्तिशाली।

अनुवाद

"यद्यपि कृष्ण पहले ही वैदिक अनुष्ठान करने, वेदों में वर्णित सकाम कर्म करने, योगाभ्यास करने तथा ज्ञान का अनुशीलन करने की क्षमता बतला चुके थे, किन्तु ये अन्तिम उपदेश अत्यन्त बलवान हैं और अन्य सबसे ऊपर हैं।"

एइ आज्ञा-बले भक्तेर 'श्रद्धा' यदि हय।

सर्व-कर्म त्याग करि' से कृष्ण भजय ॥60॥

एइ आज्ञा-बले–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के इस आखरी आदेश के बल पर; भक्तेर-भक्त की; श्रद्धा-श्रद्धा; यदि-यदि; हय–हो जाती है; सर्व-कर्म-अन्य सभी भौतिक तथा आध्यात्मिक कर्मों का; त्याग करि'-त्याग करके; से-वह; कृष्ण भजय-भगवान् कृष्ण की सेवा करता है।

अनुवाद

"यदि भक्त को इस आदेश की शक्ति में श्रद्धा है, तो वह अपने सारे कार्यकलापों को त्यागकर भगवान् कृष्ण की पूजा करता है।"

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ।

मत्कथा-श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ 61॥

तावत्-उस काल तक; कर्माणि-सकाम कर्म; कुर्वीत-करने चाहिए; न निर्विद्येत-उत्पन्न नहीं हुए है; यावता–जब तक; मत्-कथा-मेरी कथाओं के; श्रवण-आदौ-श्रवण, कीर्तन आदि में; वा–अथवा; श्रद्धा-श्रद्धा; यावत्-जब तक; न-नहीं; जायते-जागती है।

अनुवाद

"जब तक मनुष्य सकाम कर्म से तृप्त नहीं हो जाता और श्रवणं कीर्तनं विष्णोः द्वारा भक्ति के प्रति रुचि जाग्रत नहीं कर लेता, तब तक उसे वेदोक्त विधानों के अनुसार कर्म करना पड़ता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.20.9) से है।

'श्रद्धा'-शब्दे—विश्वास कहे सुदृढ़ निश्चय ।

कृष्ण भक्ति कैले सर्व-कर्म कृत हय ॥ 62॥

श्रद्धा-शब्दे-'श्रद्धा' शब्द द्वारा; विश्वास–विश्वास; कहे–कहा जाता है; सुदृढ़-दृढ़; निश्चय-संकल्प; कृष्णे-भगवान् कृष्ण की भक्ति–प्रेममयी सेवा; कैले–करने से; सर्व-कर्म–सभी कर्म; कृत–सम्पूर्ण; हय-हो जाते हैं।

अनुवाद

"कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति करने पर मनुष्य स्वतः सारे गौण कर्म सम्पन्न कर लेता है, ऐसा सुदृढ़ निश्चयश्रद्धा कहलाता है। ऐसी श्रद्धा भक्तिमय सेवा को सम्पन्न करने के लिए अनुकूल सिद्ध होती है।"

तात्पर्य

दृढ़ निश्चय तथा विश्वास श्रद्धा कहलाते हैं। जब कोई मनुष्य भगवान् की भक्तिमय सेवा में तत्पर होता है, तो यह समझा जाता है कि उसने भौतिक जगत् की अपनी सारी जिम्मेदारियाँ पूरी कर ली हैं। उसने अपने पितरों, सामान्य जीवों तथा देवताओं को तुष्ट कर लिया है और वह सारी जिम्मेदारियों से मुक्त है। ऐसे व्यक्ति को अलग से अपनी जिम्मेदारियाँ पूरी करने की आवश्यकता नहीं होती। वे अपने आप पूरी हो जाती हैं। सकाम कर्म तो बद्धजीव की इन्द्रियों को तुष्ट करने के निमित्त किया जाता है। किन्तु कृष्णभावनामृत जाग्रत हो जाने पर उसे पुण्यकर्म के लिए अलग से कार्य नहीं करना होता। समस्त कर्म की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है भौतिक जीवन से विरक्ति और जो भक्त भगवान् की सेवा में दृढ़तापूर्वक लगा है, वह इस विरक्ति को सहज रूप से प्राप्त करता है।

यथा तरोर्मूल-निषेचनेन

तृप्यन्ति तत्स्कन्ध-भुजोपशाखाः ।

प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां

तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥ 63 ॥

यथा-जिस प्रकार; तरोः-वृक्ष की; मूल-जड़ में; निषेचनेन–पानी डालने से; तृप्यन्ति–सन्तुष्ट हो जाते हैं; तत्-वृक्ष के; स्कन्ध-तना; भुज-शाखाएँ; उपशाखाः-उपशाखाएँ; प्राण-प्राण शक्ति को; उपहारात्-भोजन प्रदान करके; च-तथा; यथा-जैसे; इन्द्रियाणाम्-सर्व इन्द्रियों का; तथा-इसी प्रकार; एव-निश्चय ही; सर्व-सभी की; अर्हणम्-पूजा; अच्युत-भगवान् अच्युत की; इज्या-उपासना द्वारा।

अनुवाद

"वृक्ष की जड़ में पानी डालने से तना, डालियाँ तथा टहनियाँ स्वतः तुष्ट हो जाते हैं। इसी तरह उदर को भोजन देने से प्राण का पोषण होता है, जिससे सारी इन्द्रियाँ तुष्ट हो जाती हैं। इसी प्रकार कृष्ण की पूजा करने से तथा उनकी सेवा करने से सारे देवता तुष्ट हो जाते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (4.31.14) का है।

श्रद्धावान् जन हय भक्ति-अधिकारी।

'उत्तम', 'मध्यम', 'कनिष्ठ'–श्रद्धा-अनुसारी ॥ 64॥

श्रद्धावान् जन-श्रद्धायुक्त व्यक्ति; हय-है; भक्ति-अधिकारी-भगवान् की दिव्य प्रेमभक्ति करने का पात्र; उत्तम-उत्तम अधिकारी; मध्यम-मध्यम अधिकारी; कनिष्ठ-कनिष्ठ अधिकारी; श्रद्धा-अनुसारी–श्रद्धा की मात्रा के अनुसार।

अनुवाद

श्रद्धावान भक्त सचमुच ही भगवान् की प्रेममयी सेवा के लिए सुपात्र है। भक्त की श्रद्धा के अनुसार ही उसकी गणना सर्वोच भक्त, मध्यम भक्त या कनिष्ठ भक्त के रूप में की जाती है।

तात्पर्य

श्रद्धावान् शब्द का अर्थ है कृष्ण को ही सर्वस्व अर्थात् शाश्वत सत्य तथा परम दिव्य समझना। यदि मनुष्य को कृष्ण में पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास है, तो वह गुह्य भक्ति करने का पात्र बन जाता है। उसकी श्रद्धा के अनुसार ही वह उत्तम, मध्यम या कनिष्ठ भक्त बनता है।

शास्त्र-युक्त्ये सुनिपुण, दृढ़-श्रद्धा याँर।

'उत्तम-अधिकारी' सेइ तारये संसार ॥65॥

शास्त्र-युक्त्ये–तर्क तथा शास्त्र-ज्ञान में; सु-निपुण-अत्यन्त दक्ष; दृढ़-श्रद्धा-कृष्ण में दृढ़ श्रद्धा तथा विश्वास; याँर-जिसका; उत्तम-अधिकारी–सर्वोच्च भक्त; सेइ-वह; तारये संसार-सम्पूर्ण विश्व का उद्धार कर सकता है।

अनुवाद

जो व्यक्ति तर्क तथा प्रामाणिक शास्त्रों में निपुण है और जिसे कृष्ण में दृढ़ श्रद्धा है, उसकी गणना सर्वोच्च भक्त के रूप में की जाती है। वह सारे संसार का उद्धार कर सकता है।

शास्त्रे युक्तौ च निपुणः सर्वथा दृढ़-निश्चयः ।

प्रौढ़-श्रद्धोऽधिकारी यः स भक्तावुत्तमो मतः ॥ 66 ॥

शास्त्रे-प्रामाणिक शास्त्रों में; युक्ती-तर्क में; च-तथा; निपुणः-दक्ष; सर्वथा-सब प्रकार से; दृढ़-निश्चयः-जो दृढ़ निश्चयवान है; प्रौढ़-गहरा; श्रद्धः-जिसे विश्वास है; अधिकारी-पात्र; यः-जो; सः-वह; भक्तौ-भक्ति में; उत्तमः-सर्वोत्तम; मतः-माना जाता है।

अनुवाद

"जो तर्क तथा प्रामाणिक शास्त्रों को समझने में निपुण है और जिसका निश्चय दृढ़ होता है तथा जिसकी अगाध श्रद्धा होती है, जो अंधी नहीं होती, उसे उत्तम भक्त माना जाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.17) में आया है।

शास्त्र-युक्ति नाहि जाने दृढ़, श्रद्धावान् ।

'मध्यम-अधिकारी' सेइ महा-भाग्यवान् ॥ 67॥

शास्त्र-युक्ति प्रामाणिक शास्त्रों के आधार पर युक्तिपूर्ण तर्क; नाहि-नहीं; जाने-जानता; दृढ़-दृढ़; श्रद्धावान्–श्रद्धायुक्त; मध्यम-अधिकारी-द्वितीय श्रेणी का भक्त; सेइ-वह; महा-भाग्यवान्-अत्यन्त भाग्यशाली।

अनुवाद

"जो प्रामाणिक शास्त्रों पर आधारित तर्क में अधिक दक्ष नहीं है, किन्तु दृढ़ श्रद्धा से युक्त है, वह द्वितीय श्रेणी का (मध्यम) भक्त माना जाता है। उसे भी अत्यन्त भाग्यशाली मानना चाहिए।"

यः शास्त्रादिष्वनिपुणः श्रद्धावान्स तु मध्यमः ॥ 68 ॥

यः-जो; शास्त्र-आदिषु-प्रामाणिक शास्त्रों में; अनिपुणः-अत्यन्त दक्ष नहीं है; श्रद्धावान्-श्रद्धावान; सः-वह; तु-अवश्य; मध्यमः-द्वितीय श्रेणी का भक्त।

अनुवाद

“जो शास्त्रीय तर्क को भलीभाँति नहीं जानता, किन्तु जिसमें दृढ़ श्रद्धा होती है, वह मध्यम या द्वितीय श्रेणी का भक्त कहलाता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.18) में पाया जाता है।

याहार कोमल श्रद्धा, से ‘कनिष्ठ’ जन।

क्रमे क्रमे तेंहो भक्त हड़बे ‘उत्तम’ ॥ 69॥

याहार–जिसका; कोमल श्रद्धा-कोमल विश्वास; से-ऐसा व्यक्ति; कनिष्ठ जन-एक कनिष्ठ भक्त; क़मे क़मे-क्रमपूर्वक प्रगति करते हुए; तेंहो-वह; भक्त-भक्त; हइबे-बन जायेगा; उत्तम-प्रथम श्रेणी।

अनुवाद

जिसकी श्रद्धा कोमल एवं लचकदार होती है, वह कनिष्ठ भक्त कहलाता है। किन्तु विधि का क्रमशः पालन करने से वह प्रथम कोटि (उत्तम) के भक्त-पद को प्राप्त कर लेता है।

यो भवेत्कोमल-श्रद्धः स कनिष्ठो निगद्यते ॥ 70 ॥

यः-जो; भवेत्-होता है; कोमल-कोमल; श्रद्धः-श्रद्धा वाला; सः-ऐसा व्यक्ति; कनिष्ठः-कनिष्ठ भक्त; निगद्यते-कहा जाता है।

अनुवाद

“जिसकी श्रद्धा अत्यन्त प्रबल नहीं होती, और जिसने अभी शुरूआत की है, उसे नया (कनिष्ठ) भक्त समझना चाहिए।”

तात्पर्य

यह श्लोक भी भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.19) में आया है।

रति-प्रेम-तारतम्ये भक्त—तर-तम ।

एकादश स्कन्धे तार करियाछे लक्षण ॥71॥

रति–रति का; प्रेम तथा प्रेम; तारतम्ये-तुलना द्वारा; भक्त-भक्त; तर-तम-मध्यम या उत्तम; एकादश स्कन्धे-श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में; तार–इसका; करियाछे-किया है; लक्षण-लक्षण।

अनुवाद

"भक्त को उसकी अनुरक्ति तथा प्रेम के अनुसार श्रेष्ठतर अथवा श्रेष्ठतम माना जाता है। श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में निम्नलिखित लक्षण निश्चित किये गये हैं।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है कि यदि किसी ने कृष्णभावनामृत में श्रद्धा उत्पन्न कर ली है, तो उसे कृष्णभावनामृत में आगे प्रगति करने के लिए सुपात्र मान लिया जाना चाहिए। श्रद्धावानों की तीन कोटियाँ हैं- उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ (प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी तथा नया भक्त)। प्रथम श्रेणी के भक्त की प्रामाणिक शास्त्रों में दृढ़ निष्ठा होती है और वह शास्त्रों के अनुसार तर्क करने में दक्ष होता है। उसे कृष्णभावनामृत के विज्ञान में दृढ़ विश्वास होता है। द्वितीय श्रेणी का भक्त अर्थात् मध्यम अधिकारी कृष्णभावनामृत में दृढ़ विश्वास रखता है, किन्तु वह शास्त्रों के उद्धरण देकर अपने विचारों की पुष्टि नहीं कर सकता। नये भक्त में अभी श्रद्धा दृढ़ नहीं होती। इस तरह से भक्तों की तीन श्रेणियाँ बनी हैं।

इसी तरह भक्ति के स्तर का भी वर्गीकरण किया जाता है। नये भक्त को विश्वास होता है कि कृष्ण-प्रेम या कृष्णभावना ही अत्युत्तम है, किन्तु वह नहीं जानता कि शुद्ध कृष्णभावना का क्या आधार है, अथवा कोई किस तरह पूर्ण भक्त बन सकता है। कभी-कभी नये भक्त के हृदय में कर्म, ज्ञान अथवा योग के प्रति आकर्षण रहता है। जब वह ऐसे मिश्रित भक्ति-कार्यों से मुक्त हो जाता है तथा इनसे परे चला जाता है, तब वह द्वितीय श्रेणी का भक्त बन जाता है। जब वह तर्क में पटु हो जाता है

और शास्त्रों का प्रमाण दे सकता है, तब वह प्रथम श्रेणी का भक्त बन जाता है। कृष्ण के प्रति प्रेम तथा अनुरक्ति के अनुसार भी भक्तों को श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर तथा श्रेष्ठतम कहा जाता है।

यह जान लेना चाहिए कि मध्यम अधिकारी या द्वितीय श्रेणी का भक्त कृष्णभावना के विषय में दृढव्रत होता है, किन्तु वह अपने विचारों की पुष्टि शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर नहीं कर पाता। नया भक्त अभक्तों की संगति से नीचे गिर सकता है, क्योंकि वह दृढ़ निश्चय वाला नहीं होता। मध्यम अधिकारी यद्यपि वह अपने तर्क को शास्त्रों के प्रमाण द्वारा स्थापित नहीं कर सकता, किन्तु वह शास्त्रों का अध्ययन करके तथा उत्तम श्रेणी के भक्त की संगति से क्रमशः प्रथम श्रेणी का भक्त बन सकता है। किन्तु यदि मध्यम श्रेणी का भक्त उत्तम श्रेणी के भक्त की संगति करके आगे नहीं बढ़ता, तो वह उन्नति नहीं कर सकता। प्रथम श्रेणी के भक्त के नीचे गिरने की कोई सम्भावना नहीं रहती, भले ही वह प्रचार करते समय अभक्तों से क्यों न मिलता-जुलता हो। दृढ़ संकल्प तथा श्रद्धा क्रमशः बढ़कर भक्त को उत्तम अधिकारी बनाने वाले हैं।

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥72॥

सर्व-भूतेषु-सभी पदार्थों में (पदार्थ, आत्मा तथा पदार्थ और आत्मा का मिश्रण); यः-जो कोई; पश्येत्-देखता है; भगवत्-भावम्-भगवान् की सेवा में लगने की क्षमता; आत्मनः-परमात्मा या भौतिकतावादी जीवन से परे दिव्य तत्त्व; भूतानि-सभी जीवों को; भगवति-भगवान् में; आत्मनि–समग्र अस्तित्व के मूल आधार; एषः-यह; भागवत-उत्तमः- भक्ति में उन्नत व्यक्ति।

अनुवाद

“भक्ति में उन्नत व्यक्ति हर वस्तु के भीतर आत्माओं के आत्मा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण को देखता है। फलस्वरूप वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप को समस्त कारणों का कारण के रूप में देखता है और यह समझता है कि सारी वस्तुएँ उन्हीं में स्थित हैं।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.2.45) से है।

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।

प्रेम-मैत्री-कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥73॥

ईश्वरे-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में; तत्-अधीनेषु-उनके पूर्ण रूप से शरणागत लोगों में; बालिशेषु-नये या अज्ञानियों के प्रति; द्विषत्सु–कृष्ण तथा उनके भक्तों से द्वेषी लोगों से; च-तथा; प्रेम-प्रेम; मैत्री–मित्रता; कृपा-दया; उपेक्षा–अवहेलना; यः-जो; करोति-करता है; सः-वह; मध्यमः-द्वितीय श्रेणी का भक्त।

अनुवाद

"मध्यम भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति प्रेम प्रदर्शित करता है, सभी भक्तों के प्रति मैत्रीभाव रखता है और नये भक्तों तथा अज्ञानी व्यक्तियों पर अत्यन्त कृपालु रहता है। जो लोग भक्ति से ईर्ष्या रखते हैं, उनकी वह उपेक्षा करता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण भी श्रीमद्भागवत (11.2.46) से लिया गया है। यह महर्षि नारद का कथन है, जब वे वसुदेवजी से भक्ति के विषय में उपदेश दे रहे थे। इस विषय की चर्चा मूल रूप से विदेह के राजा निमि तथा नौ योगेन्द्रों के बीच हुई थी।

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।

न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ 74॥

अर्चायाम्-मन्दिर की पूजा में; एव-निश्चित रूप से; हरये-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि की प्रसन्नता के लिए; पूजाम्-पूजा; यः-जो कोई; श्रद्धया-श्रद्धा तथा प्रेम के साथ; ईहते-करता है; न-नहीं; तत्-भक्तेषु-भगवान् के भक्तों में; च अन्येषु-तथा अन्यों में; सः-वह; भक्तः–भक्त; प्राकृतः-भौतिकतावादी; स्मृतः–माना जाता है।

अनुवाद

"प्राकृत अथवा भौतिकतावादी भक्त शास्त्रों का जानबुझकर अध्ययन नहीं करता और न शुद्ध भक्ति के वास्तविक स्तर को समझने का प्रयास करता है। फलतः वह उन्नत भक्तों के प्रति समुचित आदर प्रदर्शित नहीं करता। किन्तु वह चाहे तो अपने गुरु से या परिवार से सीखी हुई पूजा की विधि विधान का पालन कर सकता है। उसे भौतिक स्तर पर ही माना जाना चाहिए, यद्यपि वह भक्ति में प्रगति करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। ऐसा व्यक्ति भक्तप्राय (नया भक्त) या भक्ताभास होता है, क्योंकि उसे वैष्णव दर्शन से थोड़ा ज्ञान प्राप्त हो जाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.2.47) से है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि जिसमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति पूर्ण प्रेम है और जो भगवान् के भक्तों के साथ अच्छी मित्रता रखता है, वह हमेशा उन लोगों की परवाह नहीं करता, जो कृष्ण तथा कृष्ण-भक्तों से द्वेष करते हैं। ऐसे व्यक्ति को मध्यम स्तर के भक्त मानना चाहिए। जब भक्ति में प्रगति करते हुए वह सारे जीवों के साथ घनिष्ठता का अनुभव करने लगे तथा उन्हें परम पुरुष के अंश के रूप में देखने लगे, तब वह प्रथम कोटि का भक्त बन जाता है।

सर्व महा-गुण-गण वैष्णव-शरीरे ।

कृष्ण-भक्ते कृष्णेर गुण सकलि सञ्चारे ॥75 ॥

सर्व-सभी; महा-महान्; गुण-गण-दिव्य गुण; वैष्णव-शरीरे-वैष्णवों के शरीरों में; कृष्ण-भक्ते-भगवान् कृष्ण के भक्तों में; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; गुण-गुण; सकलि-सभी; सञ्चारे-प्रकट हो जाते हैं।

अनुवाद

"वैष्णव वह है, जिसने समस्त उत्तम दिव्य गुण विकसित कर लिए हों। कृष्ण-भक्त में कृष्ण के सारे सद्गुण क्रमशः विकसित होते हैं।"

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना

सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।

हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा

मनो-रथेनासति धावतो बहिः ॥76 ॥

यस्य–जिसकी; अस्ति–होती है; भक्तिः–प्रेम भक्ति; भगवति–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में; अकिञ्चना-भौतिक इच्छाओं से रहित; सर्वैः-सभी; गुणैः-सद्गुणों के साथ; तत्र-वहाँ; समासते-रहते हैं; सुराः-देवताओं के; हरी-भगवान् के; अभक्तस्य-अभक्त के; कुतः–कहाँ; महत्-गुणाः-महान् गुण; मनः-रथेन-मानसिक कल्पना द्वारा; असति-क्षणिक सांसारिक खुशी के लिए; धावतः-भागते हुए; बहिः-बाहरी।

अनुवाद

"कृष्ण में जिस व्यक्ति की अविचल भक्तिमयी श्रद्धा होती है, उस व्यक्ति में कृष्ण तथा देवताओं के समस्त सद्गुण सदा प्रकट होते हैं। किन्तु जिसमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति भक्ति नहीं होती, उसमें कोई सद्गुण नहीं होते, क्योंकि वह उस भौतिक जगत् में मानसिक कल्पना में लगा रहता है, जो भगवान् का बाह्य लक्षण है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (5.18.12) का है। इसे प्रह्लाद महाराज तथा उनके अनुयायियों ने नृसिंहदेव की स्तुति करते हुए कहा था।

सेइ सब गुण हय वैष्णव-लक्षण ।

सब कहा ना द्याय, करि दिग्दरशन ॥ 77॥

सेइ सब गुण-वे सभी दिव्य गुण; हय-हैं; वैष्णव-लक्षण-वैष्णव के लक्षण; सब-सभी; कहा ना याय-वर्णन नहीं किये जा सकते; करि-मैं करूँगा; दिक्-दरशन-संक्षिप्त वर्णन।

अनुवाद

"ये सारे दिव्य गुण शुद्ध वैष्णवों के लक्षण हैं और इनकी पूरी व्याख्या नहीं की जा सकती, किन्तु मैं इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण गुणों को इंगित करने का प्रयास करूँगा।"

कृपालु, अकृत-द्रोह, सत्य-सार सम ।

निदोष, वदान्य, मृदु, शुचि, अकिञ्चन ॥78 ॥

सर्वोपकारक, शान्त, कृष्णैक-शरण ।

अकाम, अनीह, स्थिर, विजित-षड्-गुण ॥79॥

मित-भुक्, अप्रमत्त, मानद, अमानी ।

गम्भीर, करुण, मैत्र, कवि, दक्ष, मौनी ॥80 ॥

कृपालु दयालु; अकृत-द्रोह-बदला न लेने वाला; सत्य-सार–पूर्ण रूप से सच्चा; सम-समभाव; निदोष-दोषरहित; वदान्य-उदार; मृदु-कोमल; शुचि-स्वच्छ; अकिञ्चन–भौतिक सम्पत्तियों से रहित; सर्व-उपकारक-सभी के कल्याण के लिए कर्म करने वाले; शान्त-शान्त; कृष्ण-एक-शरण–पूर्ण रूप से

कृष्ण का शरणागत; अकाम-इच्छा रहित; अनीह-भौतिक संग्रह के प्रति अनासक्त; स्थिर–दृढ़; विजित-षट्-गुण-छः दुर्गुणों को पूर्ण रूप से वश में करने वाले (काम, क्रोध, लोभ इत्यादि); मित-भुक्-जितना आवश्यक हो उतना ही खाने वाले; अप्रमत्त-उन्मत्तता से रहित; मान-द-सबको सम्मान देने वाले; अमानी-मिथ्या गर्व से रहित; गम्भीर-गम्भीर; करुण-करुणाशील; मैत्र-मित्र; कवि-कवि; दक्ष-निपुण; मौनी-मौन।

अनुवाद

"भक्तगण सदैव कृपालु, विनीत, सत्यवादी, सबके प्रति समभाव रखने वाले, निर्दोष, उदार, मृदु तथा स्वच्छ होते हैं। उनके पास भौतिक सम्पत्ति नहीं होती और वे हर एक के लिए उपकार का कार्य करते हैं। वे शान्त, कृष्ण के शरणागत तथा इच्छारहित होते हैं। वे भौतिक उपलब्धियों के प्रति उदासीन रहते हैं और भक्ति में स्थिर रहते हैं। वे छः दुर्गुणों-काम, क्रोध, लोभ इत्यादि-पर पूरा नियन्त्रण रखते हैं। वे आवश्यकता अनुसार खाते हैं और उन्मत्तता से अप्रभावित होते हैं। वे दूसरों का आदर करने वाले, गम्भीर, दयालु तथा झूठी प्रतिष्ठा से रहित होते हैं। वे मैत्रीपूर्ण, कवि, दक्ष तथा मौन होते हैं।"

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्व-देहिनाम् ।

अजात-शत्रवः शान्ताः साधवः साधु-भूषणाः ॥81॥

तितिक्षवः-अत्यन्त सहनशील; कारुणिकाः-करुणावान; सुहृदः-भला चाहने वाला; सर्व-देहिनाम्-सभी जीवों का; अजातशत्रवः-शत्रु से रहित; शान्ताः-शान्त; साधवः-शास्त्रों के निर्देश मानने वाले; साधु-भूषणाः-सदाचार से शोभित।

अनुवाद

“भक्तगण सदैव सहिष्णु तथा दयालु होते हैं। वे प्रत्येक जीव के शुभचिन्तक होते हैं। वे शास्त्रों के आदेशों का पालन करते हैं और उनका कोई शत्रु नहीं होता, इसलिए वे अत्यन्त शान्त होते हैं। ये भक्तों के आभूषण हैं।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.25.21) का है। जब शौनकादि मुनियों ने सर्वश्रेष्ठ भगवद्भक्त सूत गोस्वामी से भगवान् के अवतार कपिलदेव के विषय में जिज्ञासा व्यक्त की, तब उन्होंने व्यासदेव के मित्र मैत्रेय तथा विदुर के बीच आत्म-साक्षात्कार विषयक वार्ताएँ प्रस्तुत कीं। उसी प्रसंग में मैत्रेय ने कपिलदेव और उनकी माता के बीच हुई चर्चा को दोहराया, जिसमें भगवान् कहते हैं कि भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति ही बद्ध जीवन का कारण है। जब मनुष्य आध्यात्मिक वस्तुओं के प्रति अनुरक्त होता है, तब वह मुक्ति-मार्ग पर आरूढ़ होता है।

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्

तमो-द्वारं योषितां सङ्गि-सङ्गम् ।

महान्तस्ते सम-चित्ताः प्रशान्ता

विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥82॥

महत्-सेवाम्-शुद्ध भक्त सद्गुरु की सेवा; द्वारम्-द्वार; आहुः-उन्होंने कहा; विमुक्तेः-मोक्ष का; तमः-द्वारम्-अन्धकार का द्वार; योषिताम्-स्त्रियों तथा धन के; सङ्गि-सङ्गम्-संग का आनन्द लेने वालों का संग; महान्तः–महात्मा जन; ते–वे; सम-चित्ताः-सबके प्रति समभाव वाले; प्रशान्ताः-अत्यन्त शान्त; विमन्यवः-क्रोध से रहित; सुहृदः-सभी का भला चाहने वाले; साधवः-जो सभी सद्गुणों से युक्त हैं अथवा जो दूसरों में दोष नहीं ढूँढते; ये-जो।

अनुवाद

"समस्त शास्त्रों तथा महापुरुषों का यह निर्णय है कि शुद्ध भक्त की सेवा करने से मुक्ति-पथ प्राप्त होता है। किन्तु भौतिक भोग तथा स्त्रियों पर आसक्त रहने वाले भौतिकतावादी लोगों की संगति करने से अन्धकार का पथ प्राप्त होता है। जो वास्तव में भक्त हैं, वे विशाल-हृदय वाले, सबके प्रति समभाव रखने वाले तथा अत्यन्त शान्त होते हैं। वे कभी क्रोधित नहीं होते और सारे जीवों से मैत्री-भाव रखते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (5.5.2) से लिया गया है।

कृष्ण-भक्ति-जन्म-मूल हय 'साधु-सङ्ग' ।

कृष्ण-प्रेम जन्मे, तेंहो पुनः मुख्य अङ्ग ॥83 ॥

कृष्ण-भक्ति-कृष्ण की प्रेमभक्ति का; जन्म-मूल-मूल कारण; हय-है; साधु-सङ्ग-उन्नत भक्तों का संग; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; जन्मे-जागृत होता है; तेंहो– भक्तों के साथ वही संग; पुनः–फिर; मुख्य अङ्ग–मुख्य नियम।

अनुवाद

"कृष्ण-भक्ति का मूल कारण महान् भक्तों की संगति है। कृष्ण के प्रति सुप्त प्रेम के जाग्रत हो जाने पर भी भक्तों की संगति अत्यावश्यक है।"

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज

जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।

सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ

परावरेशे त्वयि जायते रतिः ॥84॥

भव-अपवर्गः–भौतिक बन्धन से मुक्ति; भ्रमतः-भ्रमण करते हुए; यदा-जब; भवेत् हो; जनस्य-एक व्यक्ति की; तर्हि-उस समय; अच्युत-हे भगवान् अच्युत; सत्-समागमः-भक्तों का संग; सत्-सङ्गमः- भक्तों का संग; यहि-जब; तदा-तब; एव–ही; सत्-गतौ-जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य; पर-अवर-ईशे–जगत् के स्वामी; त्वयि-आप में; जायते-जागृत होता है; रतिः-आकर्षण।

अनुवाद

"हे प्रभु! हे अच्युत परम पुरुष! जब कोई व्यक्ति ब्रह्माण्डों में घूमते घूमते भौतिक संसार से मोक्ष पाने के योग्य बनता है, तब उसे भक्तों की संगति करने का अवसर प्राप्त होता है। जब वह भक्तों की संगति करता है, तब आपके प्रति उसका आकर्षण जाग्रत होता है। आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, सर्वोत्कृष्ट भक्तों के सर्वोच्च लक्ष्य तथा ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.51.53) का है।

अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः ।

संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः सेवधिर्नृणाम् ॥ 85 ॥

अतः-इसलिए (शुद्ध भक्तों के दर्शन की दुर्लभता के कारण); आत्यन्तिकम्-परम; क्षेमम्-सौभाग्य; पृच्छामः-हम पूछ रहे हैं; भवतः-आपसे; अनघाः-हे निष्पाप; संसारे–भौतिक संसार में; अस्मिन्-इस; क्षण-अर्धः-आधे क्षण के लिए; अपि- भी; सत्-सङ्गः– भक्तों का संग; सेवधिः-खजाना; नृणाम् मानव समाज के लिए।

अनुवाद

"हे भक्तों! समस्त पापों से मुक्त तुम सब लोगों! मैं तुम सबसे उसके विषय में पूछता हूँ, जो सारे जीवों के लिए परम कल्याणकारी है। इस भौतिक जगत् में शुद्ध भक्त के साथ आधे क्षण की संगति भी मानव समाज के लिए सबसे बड़ा खजाना है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.2.30) का है।

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्य-संविदो

भवन्ति हृत्कर्ण-रसायनाः कथाः ।

तज्जोषणादाश्वपवर्ग-वर्त्मनि

श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥86॥

सताम्-भक्तों के; प्रसङ्गात्-अन्तरंग संग द्वारा; मम-मेरे; वीर्य-संविदः-दिव्य शक्ति से भरपूर चर्चाएँ; भवन्ति होती हैं; हृत्-हृदय के लिए; कर्ण–कानों के लिए; रस-आयनाः-मधुरता का स्रोत; कथाः-कथाएँ; तत्-उनके; जोषणात्-उचित अभ्यास से; आशु-शीघ्र ही; अपवर्ग–मुक्ति के; वर्मनि–मार्ग पर; श्रद्धा-श्रद्धा; रतिः-आकर्षण; भक्तिः-प्रेम; अनुक्रमिष्यति–एक के बाद एक विकसित हो जायेंगे।

अनुवाद

"आध्यात्मिक रूप से बलशाली भगवत्-सन्देश की समुचित चर्चा केवल भक्तों के समाज में हो सकती है और उनके संग में श्रवण करना अत्यन्त प्रिय लगता है। यदि भक्तों से सुना जाता है, तो दिव्य अनुभव का मार्ग तुरन्त खुल जाता है और क्रमशः दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न होती है, जो कालान्तर में आकर्षण तथा भक्ति में बदल जाती है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.25.25) से है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला 1.60।

असत्सङ्ग-त्याग,—एइ वैष्णव-आचार।

'स्त्री-सङ्गी'—एक असाधु, 'कृष्णाभक्त' आर॥ 87॥

असत्-सङ्ग-त्याग–अभक्तों के संग का त्याग; एइ-यह; वैष्णव-आचार-एक वैष्णव का आचरण है; स्त्री-सङ्गी–इन्द्रियतृप्ति के लिए स्त्रियों का संग करने वाला; एक-एक; असाधु-असाधु व्यक्ति; कृष्ण-अभक्त–जो कृष्ण का भक्त नहीं है; आर-दूसरा।

अनुवाद

"वैष्णव को सामान्य लोगों की संगति से हमेशा बचना चाहिए। सामान्य लोग बुरी तरह से भौतिकता में, विशेषतया स्त्रियों में आसक्त रहते हैं। वैष्णवों को उन लोगों की भी संगति से बचना चाहिए, जो कृष्ण-भक्त नहीं हैं।"

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिर्हिः श्रीर्यशः क्षमा।

शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद् याति सङ्क्षयम् ॥88॥

तेष्वशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु।

सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीड़ा-मृगेषु च ॥89॥

न तथास्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्य-प्रसङ्गतः।

स्त्रोषित्सङ्गाद् यथा पुंसो यथा तत्सङ्गि-सङ्गतः॥ 90॥

सत्यम्-सत्यता; शौचम्-स्वच्छता; दया-दया; मौनम्-मौन; बुद्धिः-बुद्धि; ह्रीः-लज्जा; श्रीः-सुन्दरता; यशः-कीर्ति; क्षमा-क्षमा; शमः-मन को नियन्त्रित करना; दमः-इन्द्रियों को वश में करना; भगः-ऐश्वर्य; च-तथा; इति इस प्रकार; यत् जिनके; सङ्गात्-संग द्वारा; याति–जाता है; सङ्क्षयम्पू र्ण

विनाश; तेषु-उनमें; अशान्तेषु-जो अशान्त हैं; मूढेषु मूर्खा के बीच; खण्डित-आत्मसु–जिनका आत्म-साक्षात्कार नष्ट हो गया है; असाधुषु--जो सज्जन नहीं हैं; सङ्गम्-संगति; न-नहीं; कुर्यात्-करनी चाहिए; शोच्येषु-जो शोक करते हैं; योषित्-स्त्रियों के; क्रीड़ा-मृगेषु-खिलौने पशु के समान है; च–तथा; न-नहीं; तथा-तथा; अस्य-उसका; भवेत्-होगा; मोहः-मोह; बन्धः-बन्धन; च-तथा; अन्य-दूसरे प्रकार के; प्रसङ्गतः-संग से; ग्रोषित्-सङ्गात्-स्त्रियों के संग द्वारा; यथा-जिस प्रकार; पुंसः–एक मनुष्य का; यथा-साथ ही; तत्-सङ्गि-सङ्गतः-स्त्रियों में आसक्त व्यक्तियों के संग द्वारा।

अनुवाद

“संसारी लोगों की संगति से मनुष्य सत्य, शौच, दया, गम्भीरता, आध्यात्मिक बुद्धि, लज्जा, तपस्या, यश, क्षमा, मन का संयम, इन्द्रिय निग्रह, ऐश्वर्य तथा समस्त अवसरों से विहीन हो जाता है। मनुष्य को कभी भी ऐसे निरे मूर्ख की संगति नहीं करनी चाहिए, जो आत्म-साक्षात्कार के ज्ञान से रहित हो और जो स्त्रियों के हाथ का पशु के समान खिलौना बना हुआ हो। अन्य किसी वस्तु से आसक्ति के फलस्वरूप उत्पन्न मोह तथा बन्धन उतना खतरनाक नहीं होता, जितना कि स्त्री या स्त्रियों पर अत्यन्त अनुरक्त रहने वाले पुरुषों की संगति करने से होता है।”

तात्पर्य

ये श्लोक श्रीमद्भागवत (3.31.33-35) से उधृत हैं। इन्हें भगवान् के अवतार कपिलदेव ने अपनी माता से कहा था। इन श्लोकों में कपिलदेव पुण्यकर्मों तथा पापकर्मों की व्याख्या करते हैं और कृष्ण-भक्ति से विहीन व्यक्तियों के लक्षण बतलाते हैं। सामान्यतया लोग किसी भी योनि में माता के गर्भ के भीतर की कष्टप्रद दशाओं के विषय में नहीं जानते। बुरी संगति के कारण मनुष्य क्रमशः निम्नतर योनियों में जा गिरता है। इस प्रसंग में स्त्रियों की संगति पर विशेष बल दिया गया है। जब कोई

व्यक्ति स्त्रियों पर आसक्त होता है या स्त्रियों पर आसक्त रहने वाले व्यक्तियों से जुड़ा होता है, तो वह निम्नतर योनियों में जा गिरता है। भगवद्गीता (13.22) में कहा गया है :

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।

कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥

"भौतिक प्रकृति में प्रकृति के तीनों गुणों का भोग करते हुए जीव अपना जीवन बिताता है। ऐसा भौतिक प्रकृति के साथ उसकी संगति के कारण होता है। इस तरह उसे विभिन्न योनियों में भले-बुरे का सामना करना पड़ता है।"

वैदिक सभ्यता के अनुसार मनुष्य की स्त्री के साथ संगति बहुत सीमित होनी चाहिए। आध्यात्मिक जीवन के चार आश्रम हैं-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासी के लिए स्त्रियों की संगति पूरी तरह से वर्जित है। केवल गृहस्थों को बहुत सीमित अवस्थाओं में स्त्री-संग करने की अनुमति है-अर्थात् उत्तम सन्तान के लिए ही स्त्रियों की संगति की जाती है। संगति के अन्य कारणों की निन्दा की गई है।

वरं हुत-वह-ज्वाला-पञ्जरान्तर्व्यवस्थितिः ।

न शौरि-चिन्ता-विमुख-जन-संवास-वैशसम् ॥ 91॥

वरम्-अच्छा है; हुत-वह-आग की; ज्वाला-ज्वालाओं में; पञ्जर-अन्तः-एक पिंजरे में; व्यवस्थितिः-रहना; न-नहीं; शौरि-चिन्ता-कृष्णभावना या कृष्ण के विचार के; विमुख-रहित; जन-लोगों के; संवास-संग की; वैशसम्-विपदा।

अनुवाद

“पिंजरे के भीतर बन्दी होने तथा जलती अग्नि के द्वारा घिर जाने जैसे कष्टों को सहन कर लेना कृष्णभावना से विहीन लोगों की संगति करने से श्रेयस्कर है। ऐसी संगति महान् विपदापूर्ण है।”

तात्पर्य

यह उद्धरण कात्यायन-संहिता से है।

मा द्राक्षीः क्षीण-पुण्यान् क्वचिदपि भगवद्भक्ति-हीनान् मनुष्यान् ॥92॥

मा-न; द्राक्षीः-देखो; क्षीण-पुण्यान्-पुण्य से रहित लोगों को; क्वचित् अपि-किसी भी समय; भगवत्-भक्ति-हीनान्-जो कृष्णभावना तथा भक्तिमय सेवा से रहित हैं; मनुष्यान्–लोग।

अनुवाद

“जो लोग कृष्णभावनामृत से विहीन होने के कारण पुण्यकर्मों से रहित हैं, उनको देखना तक नहीं चाहिए।”

एत सब छाड़ि’ आर वर्णाश्रम-धर्म ।

अकिञ्चन हञा लय कृष्णैक-शरण ॥ 93 ॥

एत सब-ये सभी; छाड़ि’–छोड़कर; आर-तथा; वर्ण-आश्रम-धर्म-चार वर्षों और चार आश्रमों के नियम; अकिञ्चन-किसी भी भौतिक आसक्ति से रहित; हञा-होकर; लय-वह लेता है; कृष्ण-एक-शरण-कृष्ण के चरणकमलों की एकांतिक शरण।

अनुवाद

“मनुष्य को बुरी संगति त्यागकर तथा चारों वर्गों और चारों आश्रमों के विधानों की भी उपेक्षा करके बिना किसी द्विधा के पूर्ण विश्वास के साथ भगवान् कृष्ण की एकमात्र शरण

ग्रहण करनी चाहिए। कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य को सभी भौतिक आसक्ति का त्याग करना चाहिए।"

सर्व-धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वां सर्व-पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ 94॥

सर्व-धर्मान्–सभी प्रकार के नियत कर्मों का; परित्यज्य-त्याग करके; माम् एकम्-केवल मेरी; शरणम् शरण में; व्रज-आ जाओ; अहम्-मैं; त्वाम्-तुम्हें; सर्व-पापेभ्यः-पापमय जीवन के सभी प्रतिफलों से; मोक्षयिष्यामि–मुक्ति प्रदान करूँगा; मा–मत; शुचः–चिन्ता करो।

अनुवाद

"यदि तुम सारे धार्मिक तथा वृत्तिपरक कर्तव्यों को त्यागकर मुझ, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण ग्रहण करते हो, तो मैं तुम्हें जीवन के सारे पापमय फलों से सुरक्षा प्रदान करूँगा। तुम चिन्ता मत करो।"

तात्पर्य

यह उद्धरण भगवद्गीता (18.66) से है, जिसे भगवान् कृष्ण ने कहा है। इसकी व्याख्या के लिए देखें मध्यलीला 8.63 ।

भक्त-वत्सल, कृतज्ञ, समर्थ, वदान्य ।

हेन कृष्ण छाड़ि' पण्डित नाहि भजे अन्य ॥95॥

भक्त-वत्सल-भक्तों के प्रति अत्यन्त दयालु; कृत-ज्ञ-कृतज्ञ; समर्थ-योग्यता से पूर्ण; वदान्य-उदार; हेन-ऐसे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण को; छाड़ि'–छोड़कर; पण्डित-एक विद्वान व्यक्ति; नाहि-नहीं; भजे-उपासना करता; अन्य किसी अन्य की।

अनुवाद

“कृष्ण अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त कृपालु हैं। वे सदैव अत्यधिक कृतज्ञ तथा उदार हैं और समस्त क्षमताओं से युक्त हैं। विद्वान व्यक्ति अन्य किसी की पूजा करने के लिए कृष्ण को नहीं छोड़ते।”

तात्पर्य

बुद्धिमान व्यक्ति स्त्रियों के प्रति आसक्त तथा कृष्ण-चेतना से विहिन व्यक्तियों का साथ छोड़ देते हैं। मनुष्य को सभी प्रकार की भौतिक आसक्ति से मुक्त होना चाहिए और कृष्ण के चरणकमलों की पूर्ण शरण ग्रहण करनी चाहिए। कृष्ण अपने भक्तों पर अत्यन्त कृपालु हैं। वे सदैव कृतज्ञ रहने वाले हैं और अपने भक्तों की सेवा को कभी नहीं भूलते। वे पूर्णतया ऐश्वर्यवान तथा सर्वशक्तिमान हैं। तो फिर अन्य किसी देवता की शरण क्यों ग्रहण की जाए तथा कृष्ण की शरण का परित्याग किया जाये ? यदि कोई देवता को पूजता है और कृष्ण को छोड़ देता है, तो वह अधम मूर्ख है।

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्

भक्त-प्रियादृत-गिरः सुहृदः कृतज्ञात् ।

सर्वान्ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामान्

आत्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ 96 ॥

कः-कौन सा; पण्डितः–विद्वान व्यक्ति; त्वत्-अपरम्-आपके अलावा किसी और की; शरणम्-शरण; समीयात्-लेगा; भक्त-प्रियात्-जो अपने भक्तों के प्रति स्नेहशील हैं; ऋत-गिरः-जो भक्तों के प्रति सच्चे हैं; सुहृदः-जो भक्तों के मित्र हैं; कृत-ज्ञात्-जो भक्तों के कृतज्ञ हैं; सर्वान्–सभी; ददाति-देते हैं; सुहृदः-अपने मित्रों को; भजतः-जो प्रेमभक्ति से आपकी उपासना करते हैं; अभिकामान्–इच्छाएँ; आत्मानम्-स्वयं को; अपि-भी; उपचय–वृद्धि; अपचयौ–तथा हास; न-नहीं होता; यस्य–जिनका।

अनुवाद

“हे प्रभु, आप अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त वत्सल हैं। आप सत्यनिष्ठ तथा कृतज्ञ मित्र भी हैं। भला ऐसा कौन विद्वान व्यक्ति होगा, जो आपको त्यागकर अन्य किसी की शरण ग्रहण करेगा? आप अपने भक्तों की सारी इच्छाएँ पूर्ण करते हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी आप उन्हें अपने आपको भी दे देते हैं। फिर भी ऐसे कार्य से न आप में वृद्धि होती है, न कमी आती है।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.48.26) से लिया गया है।

विज्ञ-जनेर हय यदि कृष्ण-गुण-ज्ञान ।

अन्य त्यजि’, भजे, ताते उद्धव—प्रमाण ॥ 97॥

विज्ञ-जनेर-एक अनुभव वाले व्यक्ति को; हय होता है; यदि यदि; कृष्ण-गुण-ज्ञान-कृष्ण के दिव्य गुणों का ज्ञान; अन्य-अन्यों को; त्यजि-त्यागकर; भजे-वह भक्तिमयी सेवा में लग जाता है; ताते-इस सन्दर्भ में; उद्धव-उद्धव; प्रमाण-प्रमाण हैं।

अनुवाद

“जब कोई अनुभवी व्यक्ति कृष्ण तथा उनके दिव्य गुणों कावास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तो वह स्वाभाविक रूप से अन्य कार्यों को त्याग देता है और भगवान् की सेवा करने लगता है। उद्धव इसका प्रमाण देते हैं।”

अहो बकी यं स्तन-काल-कूटं

जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।

लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं

कं वा दयालु शरणं व्रजेम ॥98॥

अहो–कितना अद्भुत है; बकी–पूतना, बकासुर की बहन; यम्-जिसे; स्तन-दोनों स्तनों पर; काल-कूटम्-भयंकर विष; जिघांसया-मारने की इच्छा के साथ; अपाययत्-बलपूर्वक पिलाया; अपि-यद्यपि; असाध्वीकृष्ण के प्रति अत्यन्त द्वेषी; लेभे–प्राप्त की; गतिम्-गति; धात्री-माता की; उचिताम्-उचित; ततः-उनसे; अन्यम्-दूसरा; कम्-किसकी; वा-या; दयालुम्-महादयालु की; शरणम्-शरण; व्रजेम-लेगा।

अनुवाद

"यह कैसा अद्भुत है कि बकासुर की बहन पूतना अपने स्तनों में घातक विष का लेप करके और स्तनपान कराकर कृष्ण को मारना चाहती थी। फिर भी भगवान् कृष्ण ने उसे अपनी माता के रूप में स्वीकार किया और इस तरह उसने कृष्ण की माता के योग्य गति प्राप्त की। तो मैं उन कृष्ण के अतिरिक्त और किसकी शरण ग्रहण करूँ, जो सर्वाधिक दयालु हैं?"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.2.23) से लिया गया है।

शरणागतेर, अकिञ्चनेर—एकइ लक्षण ।

तार मध्ये प्रवेशये 'आत्म-समर्पण' ॥ 99 ॥

शरणागतेर-कृष्ण के प्रति पूर्ण रूप से शरणागत व्यक्ति के; अकिञ्चनेर-सभी भौतिक इच्छाओं से रहित व्यक्ति के; एकइ लक्षण-समान ही लक्षण हैं; तार मध्ये-उन सब में से; प्रवेशये प्रवेश करता है; आत्म-समर्पण–पूर्ण शरणागति।

अनुवाद

"भक्त दो प्रकार के होते हैं-अकिंचन, जो पूर्णतया सन्तुष्ट और समस्त भौतिक कामनाओं से मुक्त होते हैं और वे जो भगवान् के चरणकमलों में पूर्णतया शरणागत होते हैं। उनके गुण एक-से होते हैं, किन्तु जो कृष्ण के चरणकमलों में शरणागत हैं, उनमें एक दिव्य गुण और पाया जाता है-वह है आत्मसमर्पण का गुण।"

आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।

रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा ।

आत्म-निक्षेप-कार्पण्ये षड्-विधा शरणागतिः ॥100॥

आनुकूल्यस्य-भगवान् की सेवा के लिए जो भी सहायक है उसे; सङ्कल्पः-स्वीकार करना; प्रातिकूल्यस्य-जो भगवत्सेवा में बाधा डालने वाली है; वर्जनम्-पूर्ण त्याग; रक्षिष्यति–वे रक्षा करेंगे; इति-ऐसा; विश्वासः-दृढ़ विश्वास; गोप्तृत्वे-संरक्षक की तरह जैसे पिता, पति, स्वामी या पालक; वरणम्-स्वीकार करना; तथा-साथ ही; आत्म-निक्षेप–पूर्ण समर्पण; कार्पण्ये–तथा विनम्रता; षट्-विधा-छः प्रकार की; शरण-आगतिः-समर्पण की प्रक्रिया।

अनुवाद

"शरणागति के छह विभाग ये हैं- भक्ति के अनुकूल बातों को स्वीकार करना, प्रतिकूल बातों का बहिष्कार करना, कृष्ण द्वारा संरक्षण पर पूर्ण विश्वास होना, भगवान् को संरक्षक या स्वामी के रूप में स्वीकार करना, पूर्ण आत्मसमर्पण तथा दीनता।"

तात्पर्य

पूर्ण शरणागत व्यक्ति में निम्नलिखित छः लक्षण पाये जाते हैं-(1) भक्त भगवान् की सेवा के अनुकूल हर बात को स्वीकार करता है। (2) उसे भगवान् की सेवा के प्रतिकूल हर बात का बहिष्कार करना चाहिए। यह भी त्याग कहलाता है। (3) भक्त को दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि कृष्ण उसकी पूरी

तरह से रक्षा करेंगे। उनके अतिरिक्त वास्तव में अन्य कोई सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकता। इस तरह से आश्वस्त होना श्रद्धा कहलाता है। यह श्रद्धा उस निर्विशेषवादी की श्रद्धा से भिन्न है, जो जन्म-मृत्यु के चक्र से छूटने के लिए ब्रह्मतेज में लीन होना चाहता है। भक्त तो सदैव भगवान् की सेवा करना चाहता है। इस तरह कृष्ण अपने भक्तों पर दयालु होते हैं और भक्ति के मार्ग पर आने वाली बाधाओं से उनकी रक्षा करते हैं। (4) भक्त को चाहिए कि कृष्ण को अपने परम पालक तथा स्वामी के रूप में स्वीकार करे। उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि उसकी रक्षा किसी देवता द्वारा की जा रही है। उसे कृष्ण को अपने एकमात्र रक्षक मानते हुए उन्हीं पर आश्रित रहना चाहिए। भक्त को यह दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि तीनों लोकों में कृष्ण के अतिरिक्त उसका अन्य रक्षक या पालक नहीं है। (5) आत्मसमर्पण का अर्थ है यह स्मरण रखना कि मनुष्य के कर्म तथा इच्छाएँ स्वतन्त्र नहीं हैं। भक्त पूर्णतया कृष्ण पर आश्रित होता है और जैसा कृष्ण चाहते हैं, उसी तरह वह कर्म करता है तथा सोचता है। (6) भक्त विनीत तथा दीन होता है।

भगवान् कृष्ण भगवद्गीता (15.15) में कहते हैं :

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो

मत्तः स्मृतिज्ञनमपोहनं च।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो

वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम् ॥

“मैं हर एक के हृदय में आसीन हूँ और मुझ से ही स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होती है। सारे वेदों के द्वारा मुझे ही जाना जाता है। मैं ही वेदान्त का रचयिता हूँ और मैं ही वेदों का ज्ञाता हूँ।” हर एक के हृदय में स्थित रहकर कृष्ण जीव की स्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न आचरण करते हैं। जीव की स्थिति यह है कि उसे या तो माया के संरक्षण में रहना होता है या कृष्ण के निजी संरक्षण के अन्तर्गत रहना होता है। जब जीव पूर्णतया शरणागत होता है, तब वह कृष्ण के प्रत्यक्ष संरक्षण में रहता है और कृष्ण

उसे सारी बुद्धि प्रदान करते हैं जिससे वह आत्म-साक्षात्कार की दिशा में प्रगति कर सके। किन्तु अभक्त माया के संरक्षण में होने के कारण कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को अधिकाधिक भूलता जाता है। कभी-कभी पूछा जाता है कि कृष्ण किस तरह विस्मरण कराते हैं ? कृष्ण अपने भक्त के भौतिक कार्यों को भुलवा देते हैं और माया के माध्यम द्वारा अभक्तों की भगवद्भक्ति को भुलवा देते हैं। यही अपोहन कहलाता है।

तवास्मीति वदन्वाचा तथैव मनसा विदन् ।

तत्स्थानमाश्रितस्तन्वा मोदते शरणागतः ॥ 101॥

तव-आपका; अस्मि-मैं हूँ; इति-ऐसा; वदन्–कहकर; वाचा-वचनों द्वारा; तथा इसलिये; एव-ही; मनसा-मन से; विदन्-जानकर; तत्-स्थानम्-उनके स्थान का; आश्रितः-आश्रय लिया हुआ; तन्वा-शरीर द्वारा; मोदते-वह आनन्दित होता है; शरण-आगतः–पूर्ण शरणागत।

अनुवाद

"जिसका शरीर पूर्णतया समर्पित है, वह उस पवित्र स्थान की शरण लेता है, जहाँ कृष्ण ने उनकी लीलाएँ की थीं। वह भगवान् से प्रार्थना करता है, "हे प्रभु, मैं आपका हूँ।" वह इसे मन से जानकर आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव करता है।"

तात्पर्य

अन्तिम दो श्लोक हरिभक्ति-विलास (11.417-418) में आये हैं।

शरण लञा करे कृष्णे आत्म-समर्पण ।

कृष्ण तारे करे तत्काले आत्म-सम ॥102॥

शरण लञा–शरण लेकर; करे-करता है; कृष्णे-कृष्ण को; आत्म-समर्पण–पूर्ण समर्पण; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तारे-उसे; करे–बना लेते हैं; तत्-काले-उसी समय; आत्म-सम-अपने अन्तरंग पार्षदों में से एक।

अनुवाद

"जब इस तरह भक्त कृष्ण के चरणकमलों में पूरी तरह आत्मसमर्पण कर देता है, तो कृष्ण उसे अपने अन्तरंग पार्षदों में से एक के रूप में स्वीकार कर लेते हैं।"

मर्त्यो यदा त्यक्त-समस्त-कर्मा

निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।

तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो

मयात्म-भूयाय च कल्पते वै ॥ 103 ॥

मर्त्यः-जन्म और मृत्यु के चक्र में बद्ध जीव; यदा-जैसे ही; त्यक्त-त्यागकर; समस्त–सभी; कर्मा–सकाम कर्म; निवेदित-आत्मा-पूर्ण शरणागत जीव; विचिकीर्षितः–कार्य करने का इच्छुक; मे-मेरे द्वारा; तदा-उस समय; अमृतत्वम्-अमरता; प्रतिपद्यमानः-प्राप्त करके; मया-मेरे साथ; आत्म-भूयाय–समान (स्वभाव) प्रकृति वाला बनने के लिए; च-तथा; कल्पते-योग्य होता है; वै-अवश्य।

अनुवाद

"जन्म तथा मृत्यु का शिकार बनने वाला जीव जब सारे भौतिक कार्यों को त्याग देता है, मेरे आदेश का पालन करने में अपना जीवन अर्पित कर देता है और मेरे आदेशों के अनुसार कर्म करता है, तो वह अमरत्व को प्राप्त करता है। इस तरह वह मेरे साथ प्रेम-रस का विनिमय करने से प्राप्त आध्यात्मिक आनन्द को भोगने के लिए उपयुक्त बन जाता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.29.34) का है। कृष्ण अपने सर्वाधिक विश्वासपात्र सेवक उद्धव को सम्बन्ध, अभिधेय तथा प्रयोजन के विषय में उपदेश दे रहे थे। ये विषय मनुष्य के पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सम्बन्ध, उस सम्बन्ध के अन्तर्गत कार्यकलाप तथा जीवन की पूर्णता के बारे में है। भगवान् ने उनसे अन्तरंग भक्तों के लक्षणों का भी वर्णन किया।

एबे साधन-भक्ति-लक्षण शुन, सनातन ।

याहा हैते पाइ कृष्ण-प्रेम-महा-धन ॥ 104॥

एबे-अब; साधन-भक्ति-भक्तिमयी सेवा में साधना के नियमों के लक्षण-लक्षण; शुन-कृपया सुनो; सनातन-मेरे प्रिय सनातन; याहा हैते–जिससे; पाइ–प्राप्त किया जा सकता है; कृष्ण-प्रेम-महा-धन-कृष्ण प्रेम का सबसे अनमोल खजाना।

अनुवाद

"हे सनातन, अब कृपया भक्ति सम्पन्न करने के विधानों के विषय में सुनो। इस विधि से मनुष्य भगवत्प्रेम की सर्वोच्च पूर्णता प्राप्त कर सकता है, जो सर्वाधिक वांछित महाधन है।"

कृति-साध्या भवेत्साध्य-भावा सा साधनाभिधा ।

नित्य-सिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता ॥105 ॥

कृति-साध्या-जिसे इन्द्रियों द्वारा किया जाता है; भवेत् हो; साध्य-भावा-जिसके द्वारा भगवत्प्रेम प्राप्त किया जाता है; सा-वह; साधन-अभिधा-साधना भक्ति कही जाती है; नित्य-सिद्धस्य-जो नित्य रूप से उपस्थित है; भावस्य-भगवत्प्रेम की; प्राकट्यम्-जागृति; हृदि हृदय में; साध्यता-सामर्थ्य।

अनुवाद

“जिस दिव्य भक्ति से कृष्ण-प्रेम प्राप्त किया जाता है, यदि उसे इन्द्रियों से सम्पन्न किया जाता है, तो वह साधन भक्ति कहलाती है। ऐसी भक्ति हर जीव के हृदय के भीतर निरन्तर स्थित रहती है। इस सनातन भक्ति का उदय ही साधन भक्ति द्वारा साध्य होने वाला फल है।”

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.2) में पाया जाता है। चूँकि सारे जीव भगवान् के सूक्ष्म अंश हैं, इसलिए उनमें पहले से ही भक्ति सुप्तावस्था में विद्यमान रहती है। भक्ति का शुभारम्भ श्रवणं-कीर्तनं से होता है। जब मनुष्य सोता रहता है, तो उसे ध्वनि द्वारा जगाया जा सकता है। इसलिए हर बद्धजीव को शुद्ध वैष्णव के मुख से हरे कृष्ण मन्त्र सुनने का अवसर दिया जाना चाहिए। जो व्यक्ति इस तरह हरे कृष्ण मन्त्र को ध्वनित होते सुनता है, उसकी कृष्ण-चेतना जाग्रत हो जाती है। इस तरह धीरे-धीरे उसका मन निर्मल हो जाता है, जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है (चेतोदर्पणमार्जनम्) मन के शुद्ध हो जाने पर इन्द्रियाँ भी शुद्ध हो जाती हैं। इस तरह से जाग्रत भक्त इन इन्द्रियों का उपयोग इन्द्रियतृप्ति के लिए करने के बदले उन्हें भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में लगाता है। इस विधि द्वारा सुप्त कृष्ण-प्रेम को जाग्रत किया जा सकता है।

श्रवणादि-क्रिया—तार ‘स्वरूप’-लक्षण ।

‘तटस्थ’-लक्षणे उपजाय प्रेम-धन ॥ 106 ॥

श्रवण-आदि-क्रिया-श्रवण, कीर्तन इत्यादि की प्रक्रिया; तार-उसका; स्वरूप-लक्षण-स्वाभाविक लक्षण; तटस्थ-लक्षणे-तटस्थ लक्षण; उपजाय-जगाता है; प्रेम-धन-भगवत्प्रेम।

अनुवाद

“श्रवण, कीर्तन, स्मरण इत्यादि आध्यात्मिक कार्यकलाप भक्ति के स्वाभाविक लक्षण हैं। इसका तटस्थ लक्षण यह है कि इससे कृष्ण के प्रति शुद्ध प्रेम उत्पन्न होता है।”

नित्य-सिद्ध कृष्ण-प्रेम ‘साध्य’ कभु नय ।

श्रवणादि-शुद्ध-चित्ते करये उदय ॥107॥

नित्य-सिद्ध–नित्य रूप से उपस्थित; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; साध्य-प्राप्त करने योग्य; कभु-कभी भी; नयनहीं; श्रवण-आदि-श्रवण आदि द्वारा; शुद्ध-शुद्ध; चित्ते-हृदय में; करये उदय-जाग जाता है।

अनुवाद

“कृष्ण के प्रति शुद्ध प्रेम जीवों के हृदयों में नित्य स्थापित रहता है। यह ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे किसी अन्य स्रोत से प्राप्त किया जाए। जब श्रवण तथा कीर्तन से हृदय शुद्ध हो जाता है, तब यह प्रेम स्वाभाविक रूप से जाग्रत हो उठता है।”

एइ त साधन-भक्ति—दुइ त’ प्रकार ।

एक ‘वैधी भक्ति’, ‘रागानुगा-भक्ति’ आर ॥ 108॥

एइ त-यही; साधन-भक्ति-साधन भक्ति; दुइ त’ प्रकार-दो प्रकार की है; एक-एक; वैधी भक्ति-विधि नियमों से युक्त भक्ति साधना; रागानुगा-भक्ति-रागानुगा भक्ति; आर-तथा।

अनुवाद

“साधन भक्ति की दो विधियाँ हैं। एक है वैधी भक्ति तथा दूसरी रागानुगा भक्ति।”

राग-हीन जन भजे शास्त्रेर आज्ञाय ।

‘वैधी भक्ति’ बलि’ तारे सर्व-शास्त्रे गाय ॥109॥

राग-हीन–कृष्ण में स्वाभाविक आसक्ति से रहित; जन-लोग; भजे-भगवत्सेवा करते हैं; शास्त्रेर आज्ञाय-शास्त्रों में दिये गये सिद्धान्तों तथा निर्देशों के अनुसार; वैधी भक्ति–वैधी भक्ति; बलि' कहकर; तारे-उसका; सर्व-शास्त्रे-सभी शास्त्र; गाय-वर्णन करते हैं।

अनुवाद

जिन्हें रागानुगा भक्ति प्राप्त नहीं हुई, वे शास्त्रों में वर्णित विधानों के अनुसार प्रामाणिक गुरु के मार्गदर्शन में भक्ति करते हैं। शास्त्रों के अनुसार ऐसी भक्ति वैधी भक्ति कहलाती है।

तात्पर्य

प्रारम्भ में मनुष्य को प्रामाणिक गुरु से श्रवण करना आवश्यक है। भक्ति में प्रगति करने के लिए यह अनुकूल है। इस विधि के अनुसार भक्त गुरु के निर्देशन में सुनता है, कीर्तन करता है, स्मरण करता है और अर्चाविग्रह-पूजा करता है। ये भक्ति के अनिवार्य प्रारम्भिक कृत्य हैं। भक्ति किसी भौतिक उद्देश्य से नहीं की जानी चाहिए। मनुष्य को परम सत्य में तदाकार होने की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए। उसे प्रेमवश ही ऐसी सेवा करनी चाहिए। अहेतुकी, अप्रतिहता। भक्ति को बिना किसी स्वार्थ के होना चाहिए। तब भौतिक परिस्थितियाँ इसे रोक नहीं सकतीं। धीरे-धीरे मनुष्य स्वत:स्फूर्त रागानुगा भक्ति-पद को प्राप्त कर सकता है। बच्चे को शिक्षा प्राप्त करने के लिए बलपूर्वक पाठशाला को भेजा जाता है; किन्तु उम्र बढ़ने पर जब उसे शिक्षा का थोड़ा स्वाद मिलने लगता है, तो वह स्वतः पढ़ने लगता है और विद्वान बन जाता है। कोई किसी को बलपूर्वक विद्वान नहीं बना सकता, किन्तु कभी-कभी प्रारम्भ में बल-प्रयोग किया जाता है। बालक को अपने शिक्षक के आदेशों के अनुसार पढ़ने तथा लिखने के लिए बलपूर्वक पाठशाला भेजा जाता है। वैधी भक्ति तथा रागानुगा भक्ति में यही अन्तर है। हर एक के हृदय में कृष्ण के लिए सुप्त प्रेम रहता है, जिसे वैधी भक्ति द्वारा जाग्रत भर करना होता है। मनुष्य को टंकण पुस्तिका में दिये गये नियमों के अनुसार टंकन-मशीन (टाइप राइटर) को चलाना होता है। उसे कुँजी पटल पर अपनी उँगलियाँ एक विधि के अनुसार रखकर अभ्यास करना

पड़ता है, किन्तु जब वह दक्ष हो जाता है, तो कुंजीपटल को देखे बिना ही तेजी से तथा त्रुटि-रहित ढंग से टंकण कर सकता है। इसी तरह मनुष्य को गुरु द्वारा नियमबद्ध किये गये भक्ति-विधानों का पालन करना होता है; तब वह रागानुगा भक्ति प्राप्त कर सकता है। यह प्रेम हर एक के हृदय में पहले से ही विद्यमान है (नित्यसिद्ध कृष्ण-प्रेम)।

रागानुगा भक्ति कृत्रिम नहीं है। मात्र वैधी भक्ति करते रहने पर रागानुगा भक्ति-पद तक पहुँचा जा सकता है। इस तरह श्रवण तथा कीर्तन का अभ्यास करना आवश्यक है तथा मन्दिर की सफाई, अपनी सफाई, प्रात:काल उठना, मंगल आरती करना इत्यादि विधान करने आवश्यक हैं। यदि वह प्रारम्भ में रागानुगा भक्ति नहीं कर पाता, तो उसे गुरु के आदेशानुसार वैधी भक्ति ग्रहण करनी चाहिए। इन विधि-विधानों का पालन करना ही वैधी भक्ति कहलाता है।

तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ।

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम् ॥110॥

तस्मात् इस कारण से; भारत-हे भरतवंशी; सर्व-आत्मा-सबके हृदय में स्थित, सर्वव्यापी परमात्मा; भगवान्-परम भगवान्; हरिः- भगवान् हरि, जो अपने भक्तों के बद्ध जीवन के सभी कष्टों को हर लेते हैं; ईश्वरः-परम नियन्ता; श्रोतव्यः-सुनने योग्य (प्रामाणिक अधिकारियों से); कीर्तितव्यः-गुणगान करने योग्य; च-तथा; स्मर्तव्यः-स्मरण करने योग्य; च-तथा; इच्छता-जो व्यक्ति चाहता है; अभयम्-भौतिक जीवन के भय से मुक्ति।

अनुवाद

"हे भरतवंशी, महाराज परीक्षित! जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मनुष्य के हृदय में परमात्मा रूप में स्थित हैं, जो परम नियन्ता हैं और जो सारे जीवों के कष्टों को सदा दूर करने वाले हैं, उनका प्रामाणिक स्रोत से श्रवण, उनकी महिमा का गायन तथा उनका स्मरण उन लोगों द्वारा सदैव किया जाना चाहिए, जो निर्भय बनना चाहते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.1.5) से है। श्रवण-विधि द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझना हर एक का कर्तव्य है। यह क्रिया श्रोतव्यः कहलाती है। यदि किसी ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ठीक से श्रवण किया है, तो उसका कर्तव्य हो जाता है कि वह भगवान् की महिमा का गायन करे और उनके यश का प्रचार करे। यह कीर्तितव्य: कहलाता है। जब भगवान् का श्रवण और महिमा-गायन किया जाता है, तो स्वाभाविक है कि उनका चिन्तन भी होगा। यह स्मर्तव्यः कहलाता है। यदि कोई वास्तव में निर्भय बनना चाहता है, तो उसे यह सब करना चाहिए।

मुख-बाहूरु-पादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ।

चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥ 111॥

मुख–मुख; बाहु-बाजू; ऊरु-कमर; पादेभ्यः-पाँवों से; पुरुषस्य–परम पुरुष के; आश्रमैः-विभिन्न आध्यात्मिक विभाग; सह-साथ; चत्वारः-चार; जज्ञिरे-प्रकट हुए; वर्णाः-सामाजिक विभाग; गुणैः-विशिष्ट गुणों के साथ; विप्र-आदयः–ब्राह्मण आदि; पृथक्-अलग से।

अनुवाद

"ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण-वर्ण प्रकट हुए। इसी तरह उनकी बाहुओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुए, उनकी कमर से वैश्य प्रकट हुए और उनके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। ये चारों वर्ण तथा उनके आध्यात्मिक आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) मिलकर मानव-समाज को पूर्ण बनाते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक तथा इसका अगला श्लोक श्रीमद्भागवत (11.5.2-3) से है।

य एषां पुरुषं साक्षादात्म-प्रभवमीश्वरम् ।

न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाभ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥ 112॥

ये-जो; एषाम्-इन वर्ण तथा आश्रम के विभागों के; पुरुषम्पू र्ण पुरुषोत्तम भगवान्; साक्षात् साक्षात्; आत्म-प्रभवम्-सबके स्रोत को; ईश्वरम्-परम नियन्ता को; न-नहीं; भजन्ति-पूजते; अवजानन्ति-या जो उपेक्षा करते हैं; स्थानात्-अपनी स्थिति से; भ्रष्टाः-भ्रष्ट होकर; पतन्ति–गिरते हैं; अधः-नारकीय स्थितियों में।

अनुवाद

"यदि कोई व्यक्ति चारों वर्षों तथा आश्रमों में केवल औपचारिक स्थिति बनाये रखता है, किन्तु परम भगवान् विष्णु की पूजा नहीं करता, तो वह अपने गर्वित स्थान से गिरकर नरक में जा पहुँचता है।"

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित् ।

सर्वे विधि-निषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः ॥113॥

स्मर्तव्यः-स्मरण करना चाहिए; सततम्-सदैव; विष्णुः- भगवान् विष्णु; विस्मर्तव्यः-भूलना; न-नहीं; जातुचित्-किसी भी समय; सर्वे सभी; विधि-निषेधाः-शास्त्रों में वर्णित या गुरु द्वारा निर्दिष्ट विधि-निषेध; स्युः-होने चाहिए; एतयोः-इन दो सिद्धान्तो के (सदैव कृष्ण या विष्णु का स्मरण करना तथा उन्हें कभी नहीं भूलना); एव-निश्चित रूप से; किङ्कराः-दास।

अनुवाद

"कृष्ण ही भगवान् विष्णु के उद्गम हैं। उनका सतत स्मरण करना चाहिए और किसी भी समय उन्हें भूलना नहीं चाहिए। शास्त्रों में उल्लिखित सारे नियम तथा निषेध इन्हीं दोनों नियमों के अधीन होने चाहिए।"

तात्पर्य

यह श्लोक पद्मपुराण से उधृत है। शास्त्रों में अनेक विधान और गुरु द्वारा दिये गये अनेक निर्देश हैं। ये सभी नियम मूल सिद्धान्त-कृष्ण का सदैव स्मरण तथा उनको न भूलना-के अधीन हैं। ऐसा तभी सम्भव है, जब कोई हरे कृष्ण मन्त्र का जप करता है। इसलिए मनुष्य को सदैव चौबीसों घण्टे हरे कृष्ण महामन्त्र का दृढ़ता से जप करना चाहिए। भले ही उसके पास करने के लिए गुरु द्वारा निर्दिष्ट अन्य कार्य हों, किन्तु सर्वप्रथम उसे जपमाला में गुरु द्वारा निर्दिष्ट जप करने चाहिए। हमने अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में नवदीक्षित के लिए कम से कम सोलह माला का जप करने की संस्तुति की है। यह सोलह माला का जप नितान्त आवश्यक है, यदि कोई कृष्ण का स्मरण करना चाहता है और उन्हें भुलाना नहीं चाहता। सारे विधानों में गुरु द्वारा दिया गया सोलह माला जप करने का आदेश अत्यावश्यक है। कोई चाहे पुस्तक बेचे, या आजीवन सदस्य बनाये या कोई अन्य सेवा-कार्य करे– इनमें से कोई भी कार्य सामान्य नहीं है। ये कार्य कृष्ण का स्मरण करने में प्रेरक बनते हैं। जब कोई संकीर्तन-टोली में जाता है या पुस्तकें बेचता है, तो उसे सहज ही स्मरण होता है कि वह कृष्ण की पुस्तकें बेचने जा रहा है। इस तरह वह कृष्ण का स्मरण करता है। जब कोई सदस्य बनाने जाता है, तो वह कृष्ण के विषय में बातें करता है और इस तरह कृष्ण का स्मरण करता है। स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित् । निष्कर्ष यही है कि मनुष्य को ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे वह सदैव कृष्ण का स्मरण करे। वह ऐसे कार्य करने से दूर रहे, जो कृष्ण को भुलाने वाले हों। कृष्णभावनामृत के लिए ये दो सिद्धान्त आधारभूत हैं।

विविधाङ्ग साधन-भक्तिर बहुत विस्तार ।

सङ्क्षेपे कहिये किछु साधनाङ्ग-सार ॥ 114॥

विविध-अङ्ग–अनेक अंग; साधन-भक्तिर–साधन भक्ति के; बहुत-अनेक; विस्तार विस्तार; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिये-मैं कहूँगा; किछु-कुछ; साधन-अङ्ग-सार–साधन भक्ति के आवश्यक अंग।

अनुवाद

मैं भक्ति के विविध साधनांगों के विषय में कुछ कहूँगा, जिनका विस्तार अनेक प्रकार से हुआ है। मैं मुख्य साधनांगों के विषय में संक्षेप में कहना चाहता हूँ।

गुरु-पादाश्रय, दीक्षा, गुरुर सेवन ।

सद्धर्म-शिक्षा-पृच्छा, साधु-मार्गानुगमन ॥115॥

गुरु-पाद-आश्रय-एक प्रामाणिक गुरु के चरणकमलों की शरण; दीक्षा-आध्यात्मिक गुरु द्वारा दीक्षा; गुरुर सेवन-सद्गुरु की सेवा; सत्-धर्म-शिक्षा–भगवत्सेवा की दिव्य प्रक्रिया के उपदेश; पृच्छा–जिज्ञासा; साधु-मार्ग-भगवत्सेवा का मार्ग; अनुगमन-दृढ़ता से पालन करना।

अनुवाद

"साधन भक्ति के मार्ग में निम्नलिखित अंगों का पालन करना चाहिए-(1) एक प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए। (2) उसी से दीक्षा ली जाए।(3) उसी की सेवा की जाए।(4) गुरु से शिक्षा ग्रहण की जाए और भक्ति की शिक्षा के लिए प्रश्न किये जाएँ। (5) पूर्ववर्ती आचार्यों के पदचिह्नों का अनुगमन किया जाए तथा गुरु द्वारा दिये गये निर्देशों का पालन किया जाए।"

कृष्ण-प्रीत्ये भोग-त्याग, कृष्ण-तीर्थे वास ।

यावन्निर्वाह-प्रतिग्रह, एकादश्युपवास ॥116॥

कृष्ण-प्रीत्ये-कृष्ण की प्रसन्नता के लिए; भोग-त्याग-किसी वस्तु को स्वीकार करना तथा त्यागना; कृष्ण-तीर्थे वास-कृष्ण के धाम में निवास करना; यावत्-निर्वाह-शरीर तथा आत्मा को एक साथ रखने के लिए जितना आवश्यक है; प्रतिग्रह-स्वीकार करना; एकादशी-उपवास-एकादशी का व्रत।

अनुवाद

“अगले अंग इस प्रकार हैं-(6) कृष्ण की तुष्टि के लिए सर्वस्व परित्याग करने के लिए प्रस्तुत रहना तथा कृष्ण की तुष्टि के लिए ही प्रत्येक वस्तु को स्वीकार करना। (7) जहाँ कृष्ण हों-यथा वृन्दावन, मथुरा या कृष्ण मन्दिर में—वहीं रहना। (8) जीविका-निर्वाह के लिए आवश्यक हो उतना ही धन कमाना (9) एकादशी के दिन उपवास रखना।”

धात्र्यश्वत्थ-गो-विप्र-वैष्णव-पूजन ।

सेवा-नामापराधादि दूरे विसर्जन ॥ 117॥

धात्री-एक प्रकार का वृक्ष; अश्वत्थ-बरगद का वृक्ष; गो-गायों की; विप्र-ब्राह्मणों की; वैष्णव-भगवान् विष्णु के भक्तों की; पूजन-पूजा; सेवा-सेवा भाव में; नाम-पवित्र नाम का जप; अपराध-आदि-अपराध; दूरे-दूर; विसर्जन-त्याग दें।

अनुवाद

“(10) मनुष्य को चाहिए कि वह धात्री वृक्षों, बरगद वृक्षों, गौवों, ब्राह्मणों तथा भगवान् विष्णु के भक्तों की पूजा करे।(11) उसे भक्ति तथा पवित्र नाम के विरुद्ध अपराधों से बचना चाहिए।”

तात्पर्य

धात्री वृक्ष, बरगद वृक्ष, गाय, ब्राह्मण तथा विष्णु-भक्तों की पूजा करने तक भक्ति के प्रारम्भ में ये दस बातें हैं। ग्यारहवीं बात है भक्ति करने तथा पवित्र नामों का जप करते समय अपराधों से बचना।

अवैष्णव-सङ्ग-त्याग, बहु-शिष्य ना करिब ।

बहु-ग्रन्थ-कलाभ्यास-व्याख्यान वर्जिब ॥118॥

अवैष्णव-जो भगवान् का भक्त नहीं है उसका; सङ्ग-संग; त्याग-त्यागना; बहु-शिष्य-असंख्य शिष्य; ना करिब–स्वीकार नहीं करने चाहिए; बहु-ग्रन्थ-अनेक प्रकार के शास्त्रों के; कला-अभ्यास-एक भाग का अध्ययन; व्याख्यान-तथा वर्णन; वर्जिब-हमें त्याग देना चाहिए।

अनुवाद

"बारहवाँ अंग है अभक्तों की संगति त्याग देना। (13) मनुष्य को असंख्य शिष्य नहीं बनाने चाहिए। (14) मात्र प्रमाण देने तथा टीका करने के उद्देश्य से अनेक शास्त्रों का अधूरा अध्ययन नहीं करना चाहिए।"

तात्पर्य

जो प्रचारक नहीं है, उसके लिए अनेक शिष्य बनाना अत्यन्त जोखिम-भरा है। श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार प्रचारक को श्री चैतन्य महाप्रभु-सम्प्रदाय का विस्तार करने के लिए अनेक शिष्य बनाने पड़ते हैं। यह अत्यन्त जोखिम वाला है, क्योंकि कोई गुरु किसी शिष्य को स्वीकार करता है, तो वह स्वाभाविक रूप से शिष्य के पापमय कार्यों तथा फलों को भी स्वीकार करता है। अतः यदि वह शक्तिशाली नहीं है, तो वह इसके अपने शिष्यों के सारे पापों के फलों को आत्मसात् नहीं कर सकता और उसे परिणाम भोगने पड़ते हैं, इसलिए अनेक शिष्य बनाना मना है।

शास्त्रों का उदाहरण देकर अपने आपको एक महान् विद्वान के रूप में प्रदर्शित करने के लिए व्यक्ति को किसी पुस्तक का आंशिक अध्ययन नहीं करना चाहिए। इसलिए हमने अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, चैतन्य-चरितामृत तथा भक्तिरसामृतसिन्धु जैसे वैदिक ग्रन्थों के ही अध्ययन तक शास्त्र-अध्ययन को सीमित कर रखा है। प्रचार-कार्य के लिए ये चार ग्रन्थ पर्याप्त हैं। दर्शन को समझने तथा सारे विश्व में प्रचार-कार्य करने के लिए ये पर्याप्त हैं। जो जिस पुस्तक को पढ़े, उसे वह पूरी तरह से पढ़े। यही सिद्धान्त है। कुछ ही पुस्तकों का गहन अध्ययन करके दर्शन को समझा जा सकता है।

हानि-लाभे सम, शोकादिर वश ना हइब ।

अन्य-देव, अन्य-शास्त्र निन्दा ना करिब ॥ 119॥

हानि-हानि में; लाभे-लाभ में; सम-समान; शोक-आदिर-शोक आदि के; वश-वश में; ना हइब-हमें नहीं रहना चाहिए; अन्य-देव-दूसरे देवताओं की; अन्य-शास्त्र-दूसरे शास्त्रों की; निन्दा-निन्दा; ना करिब–हमें नहीं करनी चाहिए।

अनुवाद

"(15) भक्त को चाहिए कि वह हानि तथा लाभ को समान माने। (16) भक्त को शोक से अभिभूत नहीं होना चाहिए।(17) भक्त को न तो देवताओं की पूजा करनी चाहिए, न ही उनका अनादर करना चाहिए। इसी तरह भक्त को चाहिए कि वह न तो अन्य शास्त्रों का अध्ययन करे, न उनकी आलोचना करे।"

विष्णु-वैष्णव-निन्दा, ग्राम्य-वार्ता ना शुनिब ।

प्राणि-मात्रे मनो-वाक्ये उद्वेग ना दिब ॥ 120॥

विष्ण-वैष्णव-निन्दा- भगवान् विष्णु या उनके भक्त की निन्दा; ग्राम्य-वार्ता-साधारण बातें; ना शुनिब-हमें नहीं सुननी चाहिए; प्राणि-मात्रे-सभी जीवों को; मनः-वाक्ये-मन या वचनों द्वारा; उद्वेग-परेशानी; ना दिब-हमें नहीं देनी चाहिए।

अनुवाद

"(18) भक्त को भगवान् विष्णु या उनके भक्तों की निन्दा कभी नहीं सुननी चाहिए। (19) भक्त को समाचार-पत्र अथवा स्त्री-पुरुषों की प्रेम-कथाओं वाली पुस्तकें या इन्द्रियों को अच्छे लगने वाले विषयों को पढ़ने या सुनने से बचना चाहिए।(20) भक्त को चाहिए कि मन या वचन से किसी जीव को न सताये, भले ही वह कितना ही तुच्छ क्यों न हो।"

तात्पर्य

प्रथम दस अंग करणीय हैं और अगले दस अंग निषेधात्मक हैं। इस तरह प्रथम दस अंग प्रत्यक्ष कर्म हैं, तो अगले दस अंग अप्रत्यक्ष कर्म हैं।

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पूजन, वन्दन ।

परिचर्या, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन ॥ 121॥

श्रवण-सुनना; कीर्तन-कीर्तन करना; स्मरण-स्मरण करना; पूजन-पूजा करना; वन्दन-प्रार्थना करना; परिचर्या-सेवा करना; दास्य-दासभाव स्वीकार करना; सख्य-सखाभाव; आत्म-निवेदन–सम्पूर्ण रूप से समर्पण करना।

अनुवाद

“भक्ति में प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए करणीय कर्म इस प्रकार हैं- (1) श्रवण, (2) कीर्तन, (3) स्मरण, (4) पूजन, (5) वन्दन, (6) सेवा, (7) दास्य-भाव को स्वीकार करना, (8) मित्र बनना तथा (9) पूर्णतया समर्पण करना।”

अग्रे नृत्य, गीत, विज्ञप्ति, दण्डवन्नति ।

अभ्युत्थान, अनुव्रज्या, तीर्थ-गृहे गति ॥ 122॥

अग्रे नृत्य-श्रीविग्रह के समान नाचना; गीत–गीत गाना; विज्ञप्ति-मनोभाव प्रकट करना; दण्डवत्-नति–प्रणाम करना; अभ्युत्थान-खड़े हो जाना; अनुव्रज्या–अनुसरण करना; तीर्थ-गृहे गति–मन्दिरों तथा तीर्थस्थानों में जाना।

अनुवाद

“भक्त को चाहिए कि वह (10) अर्चाविग्रह के समक्ष नृत्य करे, (11) उनके समक्ष गाये, (12) उनसे मन की बात कहे, (13) उनको नमस्कार करे, (14) उनके तथा गुरु के समक्ष खड़ा होकर सम्मान जताये, (15) उनका अथवा गुरु का अनुगमन करे तथा (16) विभिन्न तीर्थस्थानों में जाये या मन्दिर में अर्चाविग्रह का दर्शन करने जाये।”

परिक्रमा, स्तव-पाठ, जप, सङ्कीर्तन।

धूप-माल्य-गन्ध-महाप्रसाद-भोजन ॥123॥

परिक्रमा-परिक्रमा करना; स्तव-पाठ-विभिन्न प्रार्थनाएँ करना; जप-मन्द स्वर में जप करना; सङ्कीर्तन-समूह में कीर्तन करना; धूप-अगरबत्ती; माल्य–फूलों की मालाएँ; गन्ध–सुगन्ध; महा-प्रसाद-विष्णु को अर्पित भोजन के शेष; भोजन-खाना या आस्वादन करना।

अनुवाद

“भक्त को चाहिए कि वह (17) मन्दिर की परिक्रमा करे, (18) स्तव-पाठ करे, (19) मन्द स्वर में जप करे, (20) सामूहिक कीर्तन करे, (21) अर्चाविग्रह पर चढ़ी धूप तथा फूलों की माला को सँघे तथा (22) अर्चाविग्रह पर चढ़ाये गये भोजन का शेष ग्रहण करे।”

आरात्रिक-महोत्सव-श्रीमूर्ति-दर्शन।

निज-प्रिय-दान, ध्यान, तदीय-सेवन ॥124॥

आरात्रिक–आरती; महोत्सव-उत्सव; श्रीमूर्ति-दर्शन-श्रीविग्रह के दर्शन करना; निज-प्रिय-दान-जो स्वयं को अत्यधिक प्रिय है, वह भगवान् को अर्पित करना; ध्यान-ध्यान करना; तदीय-सेवन-भगवान् के निजजनों (सम्बन्धित वस्तुओं) की सेवा करना।

अनुवाद

“उसे चाहिए कि (23) आरती तथा उत्सवों में सम्मिलित हो, (24) अर्चाविग्रह का दर्शन करे, (25) अपनी प्रिय वस्तु अर्चाविग्रह पर चढ़ाये, (26) अर्चाविग्रह का ध्यान करे तथा (27-30) भगवान् से सम्बन्धित लोगों की सेवा करे।”

‘तदीय’—तुलसी, वैष्णव, मथुरा, भागवत।

एइ चारिर सेवा हय कृष्णेर अभिमत ॥125॥

तदीय-भगवान् से सम्बन्धित; तुलसी–तुलसी-पत्र; वैष्णव-भक्तजन; मथुरा-कृष्ण का जन्म स्थान; भागवत-श्रीमद्भागवत; एइ चारिर-इन चारों की सेवा–सेवा; हय-है; कृष्णेर अभिमत-कृष्ण की इच्छा।

अनुवाद

“तदीय का अर्थ है, तुलसी-दल, कृष्ण के भक्त, कृष्ण का जन्मस्थान (मथुरा) तथा वैदिक ग्रन्थ श्रीमद्भागवत। कृष्ण यह देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहते हैं कि उनका भक्त तुलसी, वैष्णव, मथुरा तथा भागवत की सेवा करे।”

तात्पर्य

छब्बीसवाँ अंग (ध्यान) के बाद सत्ताइसवाँ नम्बर तुलसी की सेवा, अट्ठाइसवाँ वैष्णव की सेवा, उन्तीसवाँ कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा में वास तथा तीसवाँ नम्बर श्रीमद्भागवत का नियमित अध्ययन करना है।

कृष्णार्थे अखिल-चेष्टा, तत्कृपावलोकन।

जन्म-दिनादि-महोत्सव लञा भक्त-गण ॥ 126 ॥

कृष्ण-अर्थे–कृष्ण के लिए; अखिल-चेष्टा-सभी कार्य; तत्-कृपा-अवलोकन-उनकी कृपा की कामना करते हुए; जन्म-दिन-आदि-जन्मदिन आदि; महोत्सव-उत्सव; लञा भक्त-गण-भक्तों के संग में।

अनुवाद

"(31) भक्त को चाहिए कि वह कृष्ण के लिए सारी चेष्टाएँ करे। (32) उनकी कृपा के लिए लालायित रहे। (33) भक्तों के साथ मिलकर विभिन्न उत्सवों में-यथा कृष्ण जन्माष्टमी या रामचन्द्र के जन्मोत्सव में भाग ले।"

सर्वथा शरणापत्ति, कार्तिकादि-व्रत ।

'चतुःषष्टि अङ्ग' एइ परम-महत्त्व ॥127॥

सर्वथा-सभी तरह से; शरण-आपत्ति-समर्पण; कार्तिक-आदि-व्रत-कार्तिक मास में विशेष व्रत करना; चतुःषष्टि अङ्ग-चौंसठ अंग; एइ-ये; परम-महत्त्व-अत्यन्त महत्त्वपूर्ण।

अनुवाद

"(34) भक्त को चाहिए कि सभी प्रकार से कृष्ण की शरण में जाये। (35) कार्तिक व्रत जैसे विशेष व्रत रखे। भक्ति के चौंसठ कार्यों में से ये कुछ महत्त्वपूर्ण बातें हैं।"

साधु-सङ्ग, नाम-कीर्तन, भागवत-श्रवण ।

मथुरा-वास, श्री-मूर्तिर श्रद्धाय सेवन ॥128॥

साधु-सङ्ग–भक्तों का संग; नाम-कीर्तन-पवित्र नाम का कीर्तन; भागवत-श्रवण-श्रीमद्भागवत सुनना; मथुरा-वास-मथुरा में रहना; श्री-मूर्तिर श्रद्धाय सेवन–श्रद्धापूर्वक श्रीविग्रह की उपासना करना।

अनुवाद

"मनुष्य को चाहिए कि वह भक्तों की संगति करे, भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करे, श्रीमद्भागवत सुने, मथुरा में वास करे तथा श्रद्धा-सम्मानपूर्वक अर्चाविग्रह की पूजा करे।"

सकल-साधन-श्रेष्ठ एइ पञ्च अङ्ग ।

कृष्ण-प्रेम जन्माय एइ पाँचेर अल्प सङ्ग ॥ 129॥

सकल-साधन–भगवत्सेवा करने के सभी साधनों में से; श्रेष्ठ-सर्वश्रेष्ठ; एइ पञ्च अङ्ग-ये पाँच अँग; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण के प्रति प्रेम; जन्माय-जगाता है; एइ–इन; पाँचेर–पाँचों का; अल्प सङ्ग-थोड़ा सा भी संग या अनुष्ठान।

अनुवाद

"भक्ति के ये पाँच अंग सर्व अंगों में श्रेष्ठ हैं। यदि इन पाँचों को थोड़ा सा भी सम्पन्न किया जाए, तो कृष्ण-प्रेम जाग्रत होता है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इंगित किया है कि कार्तिक मास में विशिष्ट व्रत रखने तक पैंतीस बातें हैं। इन पैंतीस में चार अंग और जोड़ दिये जाते हैं। ये हैं—शरीर के विभिन्न अंगों में तिलक लगाना, सारे शरीर में भगवान् के नाम लिखना, अर्चाविग्रह की मालाएँ स्वीकार करना तथा चरणामृत लेना। कविराज गोस्वामी इन चारों अंगों को पहले से ही अर्चन अर्थात् अर्चाविग्रह की पूजा में निहित मानते हैं । यद्यपि ये अंग यहाँ उल्लिखित नहीं हैं, किन्तु इन्हें पिछले 35 अंगों में जोड़ देना चाहिए। इस तरह कुल संख्या 39 हो जाती है। इनमें 5 अंग और जोड़ दिये जाने चाहिए-भक्तों का संग, हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन, श्रीमद्भागवत का नियमित पाठ, भगवान् कृष्ण के जन्मस्थान मथुरा में निवास करना तथा अत्यन्त श्रद्धा एवं सम्मानपूर्वक अर्चाविग्रह का पूजन करना। इस तरह कुल 44 अंग हो

जाते हैं। यदि हम इनमें पिछले 20 अंग जोड़ दें, तो कुल संख्या 64 हो जाती हैं। उपर्युक्त पाँच अंगों की पुनरावृत्ति हो जाती है। भक्तिरसामृतसिन्धु में श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं :

अङ्गानं पञ्चकस्यास्य पूर्वविलिखितस्य च ।

निखिलश्रेष्ठ्यबोधाय पुनरप्यत्र शंसनम् ॥

"इन अंगों (भक्त-संग, नाम-कीर्तन आदि) की महिमा का गायन भक्ति की इन पाँच विधियों की पूर्ण श्रेष्ठता को बताने के लिए किया जाता है।"

भक्ति के इन 64 अंग में शरीर, मन तथा इन्द्रियों के सारे कार्यकलाप निहित हैं। इस तरह ये 64 अंग किसी को भी भक्ति में सभी प्रकार से लगाने वाले हैं।

श्रद्धा विशेषतः प्रीतिः श्री-मूर्तेरघ्रि-सेवने ॥130॥

श्रद्धा-श्रद्धा; विशेषतः–मुख्य रूप से; प्रीतिः-प्रेम; श्री-मूर्तेः-भगवान् के श्रीविग्रह के; अघ्रि-सेवने-चरणकमलों की सेवा में।

अनुवाद

"अर्चाविग्रह के चरणकमलों की पूजा पूर्ण श्रद्धा तथा प्रेम सहित करनी चाहिए।"

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगले दो श्लोक भी भक्तिरसामृतसिन्धु में पाये जाते हैं। (1.2.90-92)।

श्रीमद्भागवतार्थानामास्वादो रसिकैः सह ।

सजातीयाशये स्निग्धे साधौ सङ्गः स्वतो वरे ॥131॥

श्रीमद्भागवत- श्रीमद्भागवत के; अर्थानाम्-अर्थों का; आस्वादः–आस्वादन करना; रसिकैः सह-भक्तों के साथ; स-जातीय–समान; आशये इच्छा से युक्त; स्निग्धे-भक्तिमय स्नेह में उन्नत स्तर पर; साधौ–भक्त के साथ; सङ्गः–संगति; स्वतः-अपने; वरे-भले के लिए।

अनुवाद

"शुद्ध भक्तों की संगति में श्रीमद्भागवत के अर्थ का आस्वादन करना चाहिए। उसे अपने से अधिक उन्नत तथा अपने ही जैसे भगवत्प्रेमी भक्तों की संगति करनी चाहिए।"

तात्पर्य

सजातीयाशये स्निग्धेसाधौ सङ्गः स्वतो वरे-शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। भक्त को पेशेवर भागवत वाचकों की संगति नहीं करनी चाहिए। भागवत का पेशेवर वाचक वह है, जो न तो गुरु-शिष्य परम्परा से सम्बन्धित होता है, न ही उसमें भक्ति के प्रति कोई रुचि होती है। मात्र वाक्जाल तथा व्याकरण के ज्ञान के बल पर ये पेशेवर वाचक श्रीमद्भागवत का वाचन अपनी इन्द्रियतृप्ति और जीवन के निर्वाह के लिए करते हैं। भगवान् विष्णु तथा उनके भक्तों के प्रतिकुल व्यक्तियों, मायावादियों, हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन के प्रति अपराध करने वालों, मात्र वैष्णव-वेश बनाने वालों से या तथाकथित गोस्वामियों से तथा वैदिक मन्त्रों को बेचने का धन्धा चलाने वालों से एवं अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए श्रीमद्भागवत बाँचने वालों से दूर रहना चाहिए। ऐसे भौतिकतावादी व्यक्तियों से श्रीमद्भागवत नहीं समझना चाहिए। वैदिक आदेश है-यस्य देवे परा भक्तिः। श्रीमद्भागवत का प्रवचन वही कर सकता है, जिसकी अटूट श्रद्धा कृष्ण तथा उनके भक्त, गुरु के चरणकमलों में होती है। भक्त को गुरु से श्रीमद्भागवत समझने का प्रयास करना चाहिए। वैदिक आदेश है- भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया । श्रीमद्भागवत को भक्तिमयी सेवा द्वारा तथा शुद्ध भक्तों के प्रवचन को सुनकर ही समझना चाहिए। ये श्रुति तथा स्मृति के आदेश हैं। जो गुरु-शिष्य परम्परा से सम्बन्धित नहीं हैं। और

जो शुद्ध भक्त नहीं हैं, वे श्रीमद्भागवत तथा श्रीमद्भगवद्गीता के वास्तविक गुह्य आशय को नहीं समझ सकते।

नाम-सङ्कीर्तनं श्रीमन्मथुरा-मण्डले स्थितिः ॥ 132॥

नाम-सङ्कीर्तनम्-हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन; श्रीमन्-मथुरा-मण्डले–मथुरा में, जहाँ कृष्ण विशिष्ट रूप से अपनी लीलाएँ करते हैं; स्थितिः–वास करना चाहिए।

अनुवाद

"भक्त को भगवान् के पवित्र नाम का सामूहिक कीर्तन करना चाहिए और वृन्दावन में निवास करना चाहिए।"

तात्पर्य

श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने गाया है : श्री गौड़ मण्डलभूमि, येब जाने चिन्तामणि, तार हय ब्रजभूमि वास "जो नवद्वीप और इसके आसपास के क्षेत्र की दिव्य प्रकृति को समझता है, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी लीलाएँ प्रदर्शित कीं, वह सदैव वृन्दावन में रहता है। इसी प्रकार जगन्नाथ पुरी में रहना वृन्दावन में रहने के समान है। निष्कर्ष यह है कि नवद्वीप धाम, जगन्नाथ पुरी धाम तथा वृन्दावन धाम अभिन्न हैं।

यदि कोई व्यक्ति इन्द्रियतुष्टि के लिए या जीविका कमाने के लिए मथुरामण्डल में जाता है, तो वह अपराध करता है और वह निन्दनीय है। जो भी ऐसा करता है, उसे अगले जन्म में वृन्दावन धाम में शूकर या बन्दर का जन्म लेकर दण्ड भोगना पड़ता है। ऐसा शरीर धारण करने पर अपराधी को अगले जन्म में मुक्ति मिल जाती है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि इन्द्रियतृप्ति की दृष्टि से वृन्दावन में निवास करने से तथाकथित भक्त को निम्न योनि में जन्म लेना पड़ता है।

दुरूहाद्भुत-वीर्येऽस्मिन्श्रद्धा दूरेऽस्तु पञ्चके।

यत्र स्वल्पोऽपि सम्बन्धः सद्धियां भाव-जन्मने ॥ 133॥

दुर्-ऊह-समझने में कठिन; अद्भुत-आश्चर्यजनक; वीर्ये-शक्ति में; अस्मिन्-इसमें; श्रद्धा-विश्वास; दूरे-दूर; अस्तु-रहे; पञ्चके-ऊपर बताये गये पाँच सिद्धान्त; यत्र–जिसमें; सु-अल्पः-थोड़ा सा; अपि-भी; सम्बन्धः-सम्बन्ध; सत्-धियाम्-जो बुद्धिमान और निरपराध हैं; भाव-जन्मने-अपने प्रसुप्त कृष्ण-प्रेम को जागृत करने के लिए।

अनुवाद

"इन पाँचों सिद्धान्तों की शक्ति अद्भुत और समझ पानी कठिन है। अपराधरहित श्रद्धाविहीन व्यक्ति भी उनसे थोड़ा भी सम्बन्धित होने पर कृष्ण के प्रति सुप्त प्रेम को जाग्रत कर सकता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.238) में आया है।

'एक' अङ्ग साधे, केह साधे 'बहु' अङ्ग।

'निष्ठा' हैले उपजय प्रेमेर तरङ्ग ॥ 134॥

एक-एक; अङ्ग–भाग; साधे-पालन करता है; केह-कोई; साधे-पालन करता है; बहु-अनेक; अङ्ग–भाग; निष्ठा-दृढ़ विश्वास, हैले–यदि हो; उपजय-जाग जाती है; प्रेमेर-भगवत्प्रेम की; तरङ्ग–लहरें।

अनुवाद

"जब कोई व्यक्ति भक्ति में स्थिर हो जाता है, तो चाहे वह भक्ति की एक विधि को सम्पन्न करे या अनेक विधियों को, उसमें भगवत्प्रेम की तरंगें जाग्रत हो ही जाती हैं।"

तात्पर्य

भक्ति की नौ विधियाँ हैं-श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम्। (इस अध्याय का श्लोक 121 भी देखें।)

'एक' अङ्गे सिद्धि पाइल बहु भक्तगण।

अम्बरीषादि भक्तेर 'बहु' अङ्ग-साधन॥ 135॥

एक अड़े-एक अंग द्वारा; सिद्धि-सिद्धि; पाइल-प्राप्त की; बहु-अनेक; भक्त-गण-भक्तों ने; अम्बरीष-आदि-महाराज अम्बरीष आदि; भक्तेर-भक्तों का; बहु अङ्ग-साधन–भगवत्सेवा की अनेक विधियों का पालन।

अनुवाद

"ऐसे अनेक भक्त हैं, जो भक्ति की नौ विधियों में से केवल एक का पालन करते हैं, तो भी उन्हें चरम सफलता प्राप्त होती है। महाराज अम्बरीष जैसे भक्तगण नवों विधियों का सदैव पालन करते हैं और वे भी चरम सफलता प्राप्त करते हैं।"

श्री-विष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद्वैयासकिः कीर्तने

प्रह्लादः स्मरणे तदघ्रि-भजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।

अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपि-पतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः

सर्व-स्वात्म-निवेदने बलिरभूत्कृष्णाप्तिरेषां परा॥ 136॥

श्री-विष्णोः-भगवान् श्रीविष्णु का; श्रवणे-श्रवण करने में; परीक्षित्-महाराज परीक्षित, जो 'विष्णुरात' अर्थात् जो भगवान् विष्णु द्वारा रक्षित है, नाम से भी जाने जाते हैं; अभवत्-हुए; वैयासकिः-शुकदेव गोस्वामी; कीर्तने- श्रीमद्भागवत का उच्चारण करने में; प्रह्लादः-प्रह्लाद महाराज; स्मरणे-स्मरण करने में; तत्-अघ्रि-भगवान् विष्णु के चरणकमलों की; भजने-सेवा में; लक्ष्मीः -सौभाग्य की देवी; पृथुः-पृथु महाराज; पूजने-भगवान् के विग्रह की सेवा में; अक्रूरः-अक्रूर; तु–लेकिन;

अभिवन्दने-प्रार्थनाएँ अर्पित करने में; कपि-पतिः-हनुमानजी या वज्राँगजी; दास्ये-भगवान् रामचन्द्र की दासता में; अथ और भी; सख्ये-मैत्री में; अर्जुनः-अर्जुन; सर्व-स्व-आत्म-निवेदने स्वयं को पूर्णतः समर्पित करके; बलिः–महाराज बलि; अभूत्-हो गई; कृष्ण-आप्तिः–भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की प्राप्ति; एषाम्-इन सबको; परा-दिव्य।

अनुवाद

"महाराज परीक्षित ने भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की शरण केवल विष्णु के विषय में सुनकर प्राप्त की। यही उनकी चरम सिद्धि थी। शुकदेव गोस्वामी ने केवल श्रीमद्भागवत सुनाकर पूर्णता प्राप्त की। प्रह्लाद महाराज ने भगवान् का स्मरण करके पूर्णता प्राप्त की। लक्ष्मी ने महाविष्णु के दिव्य चरण दबाकर पूर्णता प्राप्त की। महाराज पृथु ने अर्चाविग्रह की पूजा करके तथा अक्रूर ने भगवान् की स्तुति करके पूर्णता प्राप्त की। वज्राँगजी (हनुमान) ने भगवान् रामचन्द्र की सेवा करके तथा अर्जुन ने कृष्ण का सखा बनकर पूर्णता प्राप्त की। बलि महाराज ने कृष्ण के चरणकमलों पर अपना सर्वस्व अर्पित करके पूर्णता प्राप्त की।"

तात्पर्य

यह श्लोक पद्यावली (53) में तथा भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.265) में आया है।

स वै मनः कृष्ण-पदारविन्दयोर्

वचांसि वैकुण्ठ-गुणानुवर्णने ।

करौ हरेर्मन्दिर-मार्जनादिषु

श्रुतिं चकाराच्युत-सत्कथोदये ॥ 137॥

मुकुन्द-लिङ्गालय-दर्शने दृशौ

तद्भृत्य-गात्र-स्परशेऽङ्ग-सङ्गमम् ।

घ्राणं च तत्पाद-सरोज-सौरभे

श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥ 138॥

पादौ हरेः क्षेत्र-पदानुसर्पणे

शिरो हृषीकेश-पदाभिवन्दने ।

कामं च दास्ये न तु काम-काम्यया

यथोत्तमःश्लोक-जनाश्रया रतिः ॥ 139॥

सः-उन्होंने (महाराज परीक्षित ने); वै—निश्चित रूप से; मनः-मन को; कृष्ण-पद-अरविन्दयोः-कृष्ण के चरणकमलों में; वचांसि-वचनों को; वैकुण्ठ-गुण-अनुवर्णने-कृष्ण के दिव्य-चरित्र का वर्णन करने में; करौ-दोनों हाथों को; हरेः-भगवान् कृष्ण या विष्णु के; मन्दिर-मार्जन-आदिषु-हरि के मन्दिर की सफाई आदि सेवाओं में; श्रुतिम्-कानों को; चकार-नियुक्त किया; अच्युत-भगवान् अच्युत के; सत्-कथा-उदये दिव्य विषयों की चर्चा में; मुकुन्द-लिङ्ग-भगवान् के श्रीविग्रह के; आलय-मन्दिरों में; दर्शने-दर्शन में; दृशौ-दोनों नेत्रों को; तत्-भृत्य-भगवान् के सेवकों के; गात्र-शरीरों के; स्परशे-स्पर्श में; अङ्ग-सङ्गमम्-देह के स्पर्श यथा चरणकमलों के स्पर्श या आलिंगन में; घ्राणम्-सूंघने की इन्द्रियों को; च–तथा; तत्-पाद-सरोज-भगवान् के चरणकमलों के; सौरभे–सुगन्ध के; श्रीमत्-सबसे शुभ; तुलस्याः-तुलसी पत्तों के; रसनाम्-जीभ को; तत्-अर्पिते-भगवान् को अर्पित भोजन में; पादौ-दोनों चरणों को; हरेः-भगवान् हरि के; क्षेत्र तीर्थ स्थान में; पद-अनुसर्पणे-चलने में; शिरः–सिर को; हृषीकेश-परम भगवान्, इन्द्रियों के स्वामी के; पद-अभिवन्दने-चरणकमलों में प्रार्थनाएँ अर्पित करने में; कामम्-सभी इच्छाएँ; च-तथा; दास्ये-भगवान् की सेवा में; न-नहीं; तु–लेकिन; काम-काम्यया-इन्द्रियतृप्ति की इच्छा से; यथाजितना; उत्तमः-श्लोक-उत्तम श्लोकों से पूजित भगवान् को; जन-भक्तों में; आश्रया–शरण लेकर; रतिः-आसक्ति।

अनुवाद

“महाराज अम्बरीष सदैव अपने मन को कृष्ण के चरणकमलों में, अपनी वाणी को आध्यात्मिक जगत् तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का वर्णन करने में, अपने हाथों को भगवान् का मन्दिर बुहारने तथा धोने में, अपने कानों को परमेश्वर की कथाएँ सुनने में, अपनी आँखों को मन्दिर में स्थापित भगवान् कृष्ण के अर्चाविग्रह का दर्शन करने में, अपने शरीर को वैष्णवों के चरणकमलों का स्पर्श करने में तथा उनका आलिंगन करने में, अपने नथुनों को कृष्ण के चरणकमलों पर चढ़ी तुलसी की पत्तियों की गन्ध सँघने में, अपनी जीभ को कृष्ण को अर्पित भोजन का आस्वादन करने में, अपने पाँवों को वृन्दावन या मथुरा जैसे तीर्थस्थानों तक या भगवान् के मन्दिर तक जाने में और अपने सिर को भगवान् के चरणकमलों का स्पर्श में करने तथा उनकी स्तुति करने में और अपनी इच्छाओं को भगवान् की निष्ठापूर्ण सेवा करने में लगाया। इस तरह महाराज अम्बरीष ने अपनी सारी इन्द्रियों को भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगाया। फलस्वरूप उन्होंने अपनी सुप्त भगवत्सेवा लालसा को जाग्रत किया।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (9.4.18-20) से लिया गया है।

काम त्यजि’ कृष्ण भजे शास्त्र-आज्ञा मानि’ ।

देव-ऋषि-पित्रादिकेर कभु नहे ऋणी ॥ 140 ॥

काम-भौतिक इच्छाएँ; त्यजि-त्यागकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण की; भजे–सेवा करता है; शास्त्र-आज्ञा–प्रामाणिक शास्त्रों का निर्देश; मानि’-मानकर; देव-देवता; ऋषि-महान् सन्त; पितृ-आदिकेर–पितरों आदि की; कभु-किसी भी समय; नहे-नहीं; ऋणी-ऋणी।

अनुवाद

“यदि कोई व्यक्ति प्रामाणिक शास्त्रों के आदेशानुसार समस्त भौतिक इच्छाओं को त्यागकर कृष्ण की प्रेमाभक्ति में पूरी तरह लग जाता है, तो वह देवताओं, ऋषियों, मुनियों या पूर्वजों से उऋण हो जाता है।”

तात्पर्य

जन्म के बाद हर व्यक्ति अनेक प्रकार से ऋणी रहता है। वह देवताओं का ऋणी होता है, क्योंकि वे वायु, प्रकाश तथा जल जैसी आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करते हैं। जब व्यक्ति वैदिक ग्रन्थों का लाभ उठाता है, तो वह व्यासदेव, नारद, देवल तथा असित जैसे ऋषियों-मुनियों का ऋणी बन जाता है। जब वह किसी विशेष परिवार में जन्म लेता है, तो वह अपने पूर्वजों का ऋणी होता है; यहाँ तक कि हम सामान्य जीवों के भी ऋणी होते हैं। उदाहरणार्थ हम उन गायों के ऋणी हैं, जिनका हम दूध पीते हैं। चूँकि हम अनेक पशुओं से सेवा लेते हैं, इसलिए हम उनके ऋणी हो जाते हैं। किन्तु यदि कोई व्यक्ति पूर्णरूपेण भगवद्भक्ति में लगा रहता है, तो वह समस्त ऋणों से मुक्त हो जाता है। इसकी पुष्टि अगले श्लोक द्वारा होती है, जो श्रीमद्भागवत (11.5.41) से उद्धृत है।

देवर्षि-भूताप्त-नृणां पितृणां

न किङ्करो नायमृणी च राजन्।

सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं

गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥141॥

देव-देवताओं का; ऋषि-ऋषिओं का; भूत-सामान्य जीवों का; आप्त-मित्रों तथा सम्बन्धियों का; नृणाम्-सामान्य लोगों का; पितृणाम् पितरों का; न-नहीं; किङ्करः-सेवक; न-नहीं; अयम्-यह; ऋणी-ऋणी; च–तथा; राजन्हे राजा; सर्व-आत्मना-पूर्ण रूप से; यः-जो व्यक्ति; शरणम्-शरण में;

शरण्यम्-सबको शरण देने वाले परम भगवान् की; गतः-जाता है; मुकुन्दम्-मुकुन्द की; परिहत्य-त्यागकर; कर्तम्-कर्तव्य।

अनुवाद

"जिस व्यक्ति ने सारे भौतिक कर्तव्यों का परित्याग करके सबको शरण देने वाले मुकुन्द के चरणकमलों में शरण ग्रहण कर ली है, वह देवताओं, ऋषियों, सामान्य जीवों, सम्बन्धियों, मित्रों, मनुष्यों या दिवंगत पूर्वजों का ऋणी नहीं रह जाता।"

तात्पर्य

कहा गया है :

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।

होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम् ॥

"घी की आहुति डालने से देवता प्रसन्न होते हैं। वेदाध्ययन से ब्रह्मयज्ञ सम्पन्न होता है, जिससे बड़े-बड़े मुनि सन्तुष्ट होते हैं। अपने पितरों को जल का तर्पण करना पितृ-यज्ञ कहलाता है। बलि अर्पण करने से भूत-यज्ञ सम्पन्न होता है। अतिथि सत्कार से नृयज्ञ सम्पन्न होता है।" इस प्रकार पाँच यज्ञ हैं, जो पाँच प्रकार के ऋणों से मुक्ति दिलाते हैं-देवताओं, ऋषियों, पितरों, जीवों तथा सामान्य व्यक्तियों के प्रति ऋणी होना। इसलिए हर एक को पाँच प्रकार के यज्ञ करने होते हैं। किन्तु जब कोई संकीर्तन-यज्ञ अपनाता है, तो उसे कोई अन्य यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं रहती। श्रीमद्भागवत में नारद मुनि ने महाराज निमि के समक्ष नौ योगेन्द्रों द्वारा किये गये कथनों के प्रसंग में भागवत धर्म सम्पन्न करने की विधि बतलाई है। करभाजन ऋषि ने चारों युगों के चार अवतार बतलाये और अन्त में इस श्लोक (141) में उन्होंने कृष्ण के शुद्ध भक्त की स्थिति बतलाई है कि किस तरह वह सारे ऋणों से मुक्त हो जाता है।

विधि-धर्म छाड़ि’ भजे कृष्णेर चरण।

निषिद्ध पापाचारे तार कभु नहे मन ॥ 142॥

विधि-धर्म छाड़ि’-वर्णाश्रम व्यवस्था के सभी विधि-निषेधों को त्यागकर; भजे–पूजा करता है; कृष्णेर चरण-भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की; निषिद्ध-मना; पाप-आचारे-पापकर्मों में; तार-उसका; कभु–किसी भी समय; नहे-नहीं; मन–मन।

अनुवाद

“यद्यपि शुद्ध भक्त वर्णाश्रम के सारे नियमों का पालन नहीं करता, किन्तु वह कृष्ण के चरणकमलों की पूजा करता है। इसलिए उसमें स्वाभाविक रूप से पाप करने की प्रवृत्ति नहीं होती।”

तात्पर्य

वर्णाश्रम प्रणाली ऐसी बनाई गई है कि मनुष्य पापकर्म न करे। पापकर्मों के कारण वह भौतिक जगत् में बना रहता है। जब कोई इस जीवन में पापकर्म करता है, तो उसे अगले जन्म में उसी के अनुरूप शरीर मिलता है। जब वह पुनः पाप करता है, तो उसे अन्य भौतिक शरीर मिलता है। इस तरह वह निरन्तर भौतिक प्रकृति के वशीभूत बना रहता है।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।

कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसदयोनिजन्मसु ॥

“इस तरह भौतिक प्रकृति में जीव भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों का भोग करते हुए जीवन-धारा का अनुसरण करता है। यह उस भौतिक प्रकृति के साथ उसकी संगति के कारण होता है। इस तरह उसका सामना विविध योनियों में अच्छे और बुरे से होता है।” (भगवद्गीता 13.22)

भौतिक प्रकृति के गुणों की संगति के फलस्वरूप ही हमें अच्छे या बुरे शरीर प्राप्त होते हैं। जन्म तथा मृत्यु के चक्र से, जो आत्मा का देहान्तरण कहलाता है, मनुष्य तब तक नहीं छूट सकता, जब

तक वह समस्त पापकर्मों से मुक्त न हो चुका हो। इसलिए सर्वोत्तम उपाय यह है कि कृष्णभावनामृत को स्वीकार किया जाए। पापकर्मों से मुक्त हुए बिना कृष्णभावनामृत ग्रहण नहीं किया जा सकता। स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत के विषय में गम्भीर होता है, वह सभी पापकर्मों से मुक्त होता है। फलस्वरूप भक्त कभी-भी पाप करने में प्रवृत्त नहीं होता। यदि किसी को कानून द्वारा या जबरदस्ती पापकर्म छोड़ने पड़े, तो वह ऐसा नहीं कर सकता। किन्तु यदि वह कृष्णभावनामृत ग्रहण करता है, तो वह सारे पापकर्मों को सरलता से त्याग सकता है। यहाँ इसकी पुष्टि हुई है।

अज्ञाने वा हय यदि 'पाप' उपस्थित।

कृष्ण ताँरे शुद्ध करे, ना कराय प्रायश्चित्त ॥143॥

अज्ञाने-अज्ञान द्वारा; वा–अथवा; हय हो जाते हैं; यदि-यदि; पाप-पापकर्म; उपस्थित–उपस्थित; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ताँरे–उसे (भक्त को); शुद्ध करे–शुद्ध कर देते हैं; ना कराय-नहीं करवाते; प्रायश्चित्त-प्रायश्चित्त।

अनुवाद

"किन्तु यदि संयोगवश कोई भक्त पापकर्म में लिप्त हो जाता है, तो कृष्ण उसे शुद्ध कर लेते हैं। उसे विधिवत् प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता।"

तात्पर्य

कृष्ण चैत्य गुरु अर्थात् हृदय में स्थित गुरु के रूप में भीतर से शुद्ध कर देते हैं। इसका वर्णन अगले श्लोक में किया गया है, जो श्रीमद्भागवत (11.5.42) से लिया गया है।

स्व-पाद-मूलं भजतः प्रियस्य

त्यक्तान्य-भावस्य हरिः परेशः।

विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद्

धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥144॥

स्व-पाद-मूलम्-कृष्ण की चरणकमलों की, जो भक्तों के आश्रय हैं; भजतः-जो सेवा में लगा हुआ है; प्रियस्य-जो कृष्ण को अत्यन्त प्रिय है; त्यक्त–त्यागा हुआ; अन्य दूसरों के लिए; भावस्य–जिसकी भावना; हरिः-परम भगवान् हरि; पर-ईशः-परमेश्वर; विकर्म–पापकर्म; यत्-जो भी; च–तथा; उत्पतितम्-हो गये; कथञ्चित्-किसी प्रकार; धुनोति-नष्ट कर देते हैं; सर्वम्-सब कुछ; हृदि हृदय में; सन्निविष्टः-प्रविष्ट।

अनुवाद

"जिसने सब कुछ त्यागकर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि के चरणकमलों में शरण ले ली है, वह कृष्ण को अत्यन्त प्रिय होता है। यदि संयोगवश वह किसी पापकर्म में लिप्त हो जाता है, तो प्रत्येक हृदय में स्थित पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उसके पापों को सरलता से दूर कर देते हैं।"

ज्ञान-वैराग्यादि—भक्तिर कभु नहे 'अङ' ।

अहिंसा-यम-नियमादि बुले कृष्ण-भक्त-सङ्ग ॥145 ॥

ज्ञान-ज्ञान का मार्ग; वैराग्य-आदि-वैराग्य का मार्ग आदि; भक्तिर- भक्ति के; कभु-कभी भी; नहे–नहीं हैं; अङ्ग-भाग; अहिंसा-अहिंसा; यम-इन्द्रियों और मन को नियन्त्रित करना; नियम-आदि–नियम इत्यादि; बुले-घूमते हैं; कृष्ण-भक्त-सङ्ग-भगवान् कृष्ण के भक्त के संग में।

अनुवाद

"भक्ति के लिए ज्ञान तथा त्याग का मार्ग आवश्यक नहीं है। हाँ, कुछ सद्गुण-यथा अहिंसा तथा मन और इन्द्रिय का नियन्त्रण-भगवान् कृष्ण के भक्त में स्वतः आ जाते हैं।"

तात्पर्य

कभी-कभी एक कनिष्ठ भक्त या सामान्य व्यक्ति ज्ञान, तपस्या तथा त्याग को भक्ति की प्रगति के लिए एकमात्र मार्ग समझते हुए इनके विषय में उच्च विचार रखता है। किन्तु यह सच्चाई नहीं है। ज्ञान, योग तथा त्याग के मार्ग को शुद्ध आत्मा से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। भौतिक जगत् में क्षणिक रूप से रहते हुए भले ही ऐसी विधियाँ कुछ सहायक प्रतीत हों, किन्तु कृष्ण के शुद्ध भक्त के लिए ये आवश्यक नहीं हैं। भौतिक जगत् में ऐसे कार्यों की परिणति भौतिक भोग में या ब्रह्मतेज में तदाकार होने में होती है। उन्हें भगवान् की नित्य प्रेमाभक्ति से कोई सरोकार नहीं होता। यदि मनुष्य तार्किक ज्ञान का परित्याग करके केवल भक्ति में लग जाता है, तो समझिये उसे सिद्धि मिल गई। भक्त को तार्किक ज्ञान, पुण्यकर्म या योग की आवश्यकता नहीं रहती। जब कोई भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति करता है, तो ये सब स्वतः विद्यमान रहते हैं।

तस्मान्मद्भक्ति-युक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ।

न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ 146॥

तस्मात् इसलिए; मत्-भक्ति-मेरी भक्तिमय सेवा में; युक्तस्य-जो लगा हुआ है। उसका; योगिनः-प्रथम श्रेणी के योगी के; वै-निश्चित रूप से; मत्-आत्मनः-जिसका मन सदैव मुझमें लगा हुआ है; न-नहीं; ज्ञानम्-मनोकल्पित ज्ञान; न-नहीं; च-और; वैराग्यम्-शुष्क वैराग्य; प्रायः–प्रायः; श्रेयः-लाभकारी; भवेत् होता; इह-इस संसार में।

अनुवाद

“जो मेरी भक्ति में पूरी तरह से लगा हुआ है, जिसका मन मेरे भक्तियोग में स्थिर है, उसके लिए तार्किक ज्ञान तथा शुष्क वैराग्य का मार्ग अधिक लाभप्रद नहीं होता।”

तात्पर्य

भक्ति-मार्ग सदैव अन्य कर्मों से स्वतन्त्र होता है। भले ही ज्ञान या योग का मार्ग प्रारम्भ में लाभप्रद प्रतीत हो, किन्तु इसे भक्ति का अंग नहीं माना जा सकता। यह श्लोक (श्रीमद्भागवत 11.20.31) कृष्ण द्वारा इस भौतिक जगत् से अपने प्रयाण के पूर्व उद्धव से कहा गया था। ये महत्त्वपूर्ण उपदेश स्वयं भगवान् कृष्ण द्वारा दिये गये हैं। श्री उद्धव ने भगवान् से वेदों में दिये गये दो प्रकार के उपदेशों के विषय में पूछा था। पहला उपदेश प्रवृत्ति मार्ग कहलाता है और दूसरा निवृत्ति मार्ग। ये आदेश विधानों के अनुसार भौतिक जगत् का भोग करने तथा उच्चतर आध्यात्मिक ज्ञान हेतु भौतिक जगत् का परित्याग करने के विषय में हैं। कभी-कभी मनुष्य यह नहीं जान पाता कि आध्यात्मिक ज्ञान की प्रगति के लिए ज्ञान का अभ्यास किया जाए या योग का। कृष्ण उद्धव को बतलाते हैं कि भक्ति में प्रगति करने के लिए ज्ञान तथा योग की यान्त्रिक विधि आवश्यक नहीं है। भक्ति पूर्णतया आध्यात्मिक होती है, उसे भौतिक विषयों से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। भक्तों की संगति में रहकर श्रवण तथा कीर्तन से यह जाग्रत होती है। चूँकि भक्ति सदैव दिव्य होती है, इसलिए भौतिक कर्म से इसका कोई प्रयोजन नहीं रहता।

एते न ह्यद्भता व्याध तवाहिंसादयो गुणाः ।

हरि-भक्तौ प्रवृत्ता ये न ते स्युः पर-तापिनः ॥147॥

एते-ये सभी; न-नहीं; हि निश्चित रूप से; अद्भुताः-अद्भुत; व्याध-हे शिकारी; तव-तुम्हारे; अहिंसा-आदयः-अहिंसा आदि; गुणाः-गुण; हरि-भक्ती-भगवान् हरि की भक्ति में; प्रवृत्ताः-लगे हुए हैं; ये-जो लोग; न-नहीं; ते–वे; स्युः-होते; परतापिनः-दूसरों को ईर्ष्यावश कष्ट देने वाले।

अनुवाद

“हे व्याध, तुमने जो अहिंसा जैसा सद्गुण अपना रखा है, वह आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि जो भगवान् की भक्ति में लगे हुए हैं, वे ईष्यवश अन्यों को कष्ट नहीं देना चाहते।”

तात्पर्य

यह उद्धरण स्कन्द-पुराण से है और नारद मुनि द्वारा सुधरे हुए शिकारी मृगारि से कहा गया था।

वैधी-भक्ति-साधनेर कहिलुँ विवरण ।

रागानुगा-भक्तिर लक्षण शुन, सनातन ॥148॥

वैधी-भक्ति-विधि निषेधों के अनुसार भक्ति; साधनेर-साधना का; कहिलुँ-मैंने किया है; विवरण-वर्णन; रागानुगा-भक्तिर-रागानुग भगवत्सेवा के लक्षण-लक्षण; शुन–कृपया सुनो; सनातन-हे सनातन।

अनुवाद

"हे सनातन, मैं वैधी भक्ति के विषय में विस्तार से बतला चुका हूँ। अब मुझसे स्वतःस्फूर्त रागानुगा भक्ति तथा उसके लक्षणों के विषय में सुनो।"

रागात्मिका-भक्ति—'मुख्या' व्रज-वासि-जने ।

तार अनुगत भक्तिर 'रागानुगा'-नामे ॥149॥

रागात्मिका-भक्ति-स्वाभाविक भगवत्सेवा; मुख्या–प्रमुख; व्रज-वासि-जने-व्रज या वृन्दावन के निवासियों में; तार–उनके; अनुगत–अधीन रहकर; भक्तिर-भक्ति का; रागानुगा-नामे–रागानुग नामक या स्वाभाविक प्रेम में अनुसरण करना।

अनुवाद

"वृन्दावन के मूल निवासी कृष्ण से रागात्मिका भक्ति द्वारा जुड़े हुए हैं। ऐसी रागात्मिका भक्ति की कोई बराबरी नहीं कर सकता। जब कोई भक्त वृन्दावन के भक्तों के चरणचिह्नों का अनुसरण करता है, तो उसकी भक्ति रागानुगा (स्वतःस्फूर्त) भक्ति कहलाती है।"

तात्पर्य

जीव गोस्वामी ने भक्ति सन्दर्भ में कहा है :

तदेवं तत्तदभिमानलक्षणभावविशेषेण स्वाभाविकरागस्य वैशिष्ट्ये सति तत्तद्रागप्रयुक्ता श्रवणकीर्तनस्मरणपादसेवनवन्दनात्मनिवेदनप्राया भक्तिस्तेषां रागात्मिका भक्तिरित्युच्यते... ततस्तदीयं रागं रुच्यानुगच्छन्ति सा रागानुगा।

जब शुद्ध भक्त वृन्दावन के भक्त के चरणचिह्नों का अनुगमन करता है, तो उसमें रागानुगा भक्ति उत्पन्न होती है।

इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत् ।

तन्मयी या भवेद्भक्तिः सात्र रागात्मिकोदिता ॥150॥

इष्टे-जीवन के इच्छित विषय में; स्वा-रसिकी-अपने मूल प्रेमभाव के अनुरूप; रागः-आसक्ति; परम-आविष्टता-भगवान् की सेवा में आवेश; भवेत् होती है; तत्-मयी-उस दिव्य आसक्ति से युक्त; या-जो; भवेत्-होती है; भक्तिः-भक्ति; सा-वह; अत्र-यहाँ; रागात्मिका-उदिता–रागात्मिका या स्वाभाविक प्रेममयी सेवा कही जाती है।

अनुवाद

“जब भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में अनुरक्त हो जाता है, तब उसकी प्रेम करने की सहज प्रवृत्ति भगवान् के चिन्तन में पूर्ण रूप से निमग्न हो जाती है। यह दिव्य अनुराग कहलाता है और इस अनुराग के अनुसार की गई भक्ति रागात्मिका भक्ति अर्थात् स्वतःस्फूर्त भक्तिमयी सेवा कहलाती है।”

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.272) में आया है।

इष्टे ‘गाढ़-तृष्णा’—रागेर स्वरूप-लक्षण ।

इष्टे आविष्टता’—एइ तटस्थ-लक्षण ॥151॥

इष्टे वांछित विषय, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में; गाढ़-तृष्णा–प्रगाढ़ आसक्ति; रागेर-स्वाभाविक प्रेम का; स्वरूप-लक्षण–मुख्य लक्षण; इष्टे-भगवान् में; आविष्टता-आवेश; एइ-यह; तटस्थ-लक्षण-तटस्थ लक्षण।

अनुवाद

“रागात्मिका प्रेम का मूल लक्षण है पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति प्रगाढ़ अनुराग। भगवान् में तल्लीनता तटस्थ लक्षण है।”

रागमयी-भक्तिर हय ‘रागात्मिका’ नाम ।

ताहा शुनि’ लुब्ध हय कोन भाग्यवान् ॥152॥

राग-मयी–आसक्ति से युक्त; भक्तिर-भक्ति का; हय-है; रागात्मिका-रागात्मिका; नाम-नाम; ताहा शुनि’-यह सुनकर; लुब्ध-लालायित; हय-हो जाता है; कोन भाग्यवान् कोई भाग्यवान् व्यक्ति।

अनुवाद

“इस तरह जो भक्ति राग (प्रगाढ़ आसक्ति) से युक्त होती है, वह रागात्मिका कहलाती है। यदि कोई भक्त ऐसी स्थिति को प्राप्त होता है, तो वह परम भाग्यशाली माना जाता है।”

लोभे व्रज-वासीर भावे करे अनुगति ।

शास्त्र-युक्ति नाहि माने—रागानुगार प्रकृति ॥153॥

लोभे-ऐसी लालसा में; व्रज-वासीर भावे-वृन्दावन के निवासियों के भाव में; करे अनुगति–अनुसरण करता है; शास्त्र-युक्ति-शास्त्रों के तर्कों का; नाहि माने-पालन नहीं करता; रागानुगार–स्वाभाविक प्रेम का; प्रकृति-स्वभाव।

अनुवाद

"यदि कोई व्यक्ति ऐसी दिव्य चेतना के वशीभूत होकर वृन्दावनवासियों के चरणचिह्नों का अनुसरण करता है, तो वह शास्त्रों के आदेशों या तर्कों की परवाह नहीं करता। यही राग का मार्ग है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि भक्त तो वृन्दावनवासियों-ग्वालों, महाराज नन्द, माता यशोदा, राधारानी, गोपियों तथा गौवों-बछड़ों की सेवा से आकृष्ट होता है। उन्नत भक्त भगवान् के नित्य सेवक द्वारा की गई सेवा से आकृष्ट होता है। यह आकर्षण स्वत:स्फूर्त आकर्षण कहलाता है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे स्वरूप-उपलब्धि कहते हैं। यह अवस्था प्रारम्भ में प्राप्त नहीं हो पाती। प्रारम्भ में शास्त्रों तथा गुरु द्वारा नियत विधानों के अनुसार दृढ़तापूर्वक सेवा करनी होती है। वैधी-भक्ति की विधि से निरन्तर सेवा करते रहने से धीरे-धीरे सहज आकर्षण जागृत होता है। यह रागानुग आकर्षण या रागानुगा भक्ति कहलाती है।

रागानुग पद में स्थित भक्त पहले से ही शास्त्रीय आदेश तथा तर्क में दक्ष होता है। जब वह कृष्ण से सनातन प्रेम करने के स्तर पर आ जाता है, तो न तो तर्क, न ही शास्त्रीय प्रमाण उसे अपने पद से विचलित कर सकते हैं। उन्नत भक्त को भगवान् के साथ अपने सनातन सम्बन्ध की अनुभूति हो जाती है, इसलिए वह अन्यों के तर्क को नहीं मानता। ऐसे उन्नत भक्त को उन सहजियों से कुछ भी लेना-देना नहीं होता, जो मनगढंत तरीका बनाकर अवैध सम्बन्ध, नशा, जुआ आदि में लिप्त होकर पाप करते हैं, भले ही वे मांसाहार न करें या न करें। कभी-कभी सहजिये लोग उन्नत भक्तों का अनुकरण करते हैं और शास्त्रीय नियमों से बचकर अपने मनमाने ढंग से रहते हैं। मनुष्य छ: गोस्वामियों-श्री रूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, श्री जीव, गोपाल भट्ट तथा रघुनाथ दास-का अनुगमन किये बिना कृष्ण का प्रामाणिक रागानुगा भक्त नहीं बन सकता। इस सम्बन्ध में श्रील नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं- रूपरघुनाथपदे हैबे आकुति कबे हाम बुझब से युगल पिरीति। राधा-कृष्ण के प्रेमालाप के

विषय में सहजियों की धारणा प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि वे छः गोस्वामियों द्वारा निर्धारित नियमों का पालन नहीं करते। उनका अवैध सम्बन्ध तथा उनके द्वारा रूप गोस्वामी के वेश की नकल तथा शास्त्रों के संस्तुत नियमों का उल्लंघन उन्हें नरक के गर्त में ले जायेगा। ये नकलची सहजिये ठगे गये तथा अभागे हैं। वे परमहंसों के समान नहीं हो सकते। लम्पट तथा परमहंस समान स्तर पर नहीं हो सकते।

विराजन्तीमभिव्यक्तां व्रज-वासि-जनादिषु ।

रागात्मिकामनुसृता य़ा सा रागानुगोच्यते ॥ 154॥

विराजन्तीम् तीव्रतापूर्वक दीप्तिमान; अभिव्यक्ताम्-पूर्ण रूप से प्रकाशित; व्रज-वासि-जन-आदिषु-वृन्दावन के सनातन निवासियों में; राग-आत्मिकाम्-रागानुग प्रेम से युक्त भक्ति; अनुसृता-अनुसरण करके; या-जो; सा-वह; राग–अनुगा–स्वाभाविक प्रेम युक्त भक्ति; उच्यते-कहलाती है।

अनुवाद

"वृन्दावन के निवासियों में स्वतःस्फूर्त प्रेम में की जाने वाली भक्ति की जीवन्त अभिव्यक्ति तथा प्राकट्य देखा जाता है। जो भक्ति वृन्दावनवासियों की भक्ति के अनुरूप होती है, वह रागानुगा भक्ति अर्थात् स्वतःस्फूर्त प्रेम जाग्रत होने पर सम्पन्न होने वाली भक्ति कहलाती है।"

तात्पर्य

यह श्लोक भी भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.270) में आया है।

तत्तद्भावादि-माधुर्ये श्रुते धीर्घदपेक्षते ।

नात्र शास्त्रं न युक्तिं च तल्लोभोत्पत्ति-लक्षणम् ॥155 ॥

तत्-तत्-उन; भाव-आदि-माधु-वृन्दावन के निवासियों के प्रेमभावों की मधुरता (शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस); श्रुते-जब सुनी जाये; धीः-बुद्धि; यत्-जो; अपेक्षते–निर्भर करती है;

न-नहीं; अत्र-यहाँ; शास्त्रम्-शास्त्रों पर; न-नहीं; युक्तिम्-तर्कवितर्क; च–तथा; तत्व ह; लोभ-चरणचिह्नों का अनुसरण करने का लोभ; उत्पत्ति-लक्षणम्-जागृत होने का लक्षण।

अनुवाद

"जब कोई स्वरूपसिद्ध उन्नत भक्त वृन्दावन के भक्तों के कार्यो-शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रसों-के विषय में सुनता है, तो वह इनमें से किसी एक की ओर उन्मुख हो जाता है और उसकी बुद्धि उसी ओर आकृष्ट हो जाती है। निस्सन्देह, वह उस विशेष भक्ति की ओर लुब्ध हो जाता है। जब ऐसा लोभ उत्पन्न हो जाता है, तो उसकी बुद्धि शास्त्र के आदेश, या तर्क पर आश्रित नहीं रहती।"

तात्पर्य

यह श्लोक भी भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.292) में पाया जाता है।

बाह्य, अन्तर,—इहार दुइ त' साधन।

'बाह्ये' साधक-देहे करे श्रवण-कीर्तन॥ 156॥

'मने' निज-सिद्ध-देह करिया भावन।

रात्रि-दिने करे व्रजे कृष्णेर सेवन॥ 157॥

बाह्य-बाहरी रूप से; अन्तर–आन्तरिक रूप से; इहार-इस रागानुग प्रेम का; दुइ-दो; त'–वास्तव में; साधन-साधन; बाह्ये-बाहरी रूप से; साधक-देहे-एक उन्नत भक्त के शरीर में; करे-करता है; श्रवण-कीर्तन-श्रवण और कीर्तन; मने-मन में; निज-अपने; सिद्ध-देह-नित्य शरीर या आत्म-साक्षात्कार की स्थिति का; करिया भावन-विचार करके; रात्रि-दिने-रात और दिन; करे-करता है; व्रजे-वृन्दावन में; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; सेवन–सेवा।

अनुवाद

“रागानुगा भक्ति बाह्य तथा आन्तरिक, इन दो विधियों से सम्पन्न की जा सकती है। जब उन्नत भक्त स्वरूपसिद्ध होता है, तो वह बाहर से कनिष्ठ जैसा बना रहता है और श्रवण तथा कीर्तन जैसे समस्त शास्त्रीय आदेशों का पालन करता रहता है। किन्तु वह अपनी मूल शुद्ध स्वरूपसिद्ध स्थिति में, अपने मन में विशिष्ट विधि से वृन्दावन में कृष्ण की सेवा करता है। वह चौबीसों घण्टे कृष्ण की सेवा में लगा रहता है।”

सेवा साधक-रूपेण सिद्ध-रूपेण चात्र हि ।

तद्भाव-लिप्सुना कार्या व्रज-लोकानुसारतः ॥158॥

सेवा–सेवा; साधक-रूपेण-साधना भक्ति करने वाले भक्त के बाह्य शरीर के साथ; सिद्ध-रूपेण-नित्य आत्म-साक्षात्कार में की जाने वाली सेवा के लिए उपयुक्त शरीर के साथ; च-तथा; अत्र-इस सन्दर्भ में; हि-निश्चित रूप से; तत्-उस; भाव-भाव को; लिप्सुना–प्राप्त करने की इच्छा वाले के द्वारा; कार्या–किया जाना चाहिए; व्रज-लोक-वृन्दावन में कृष्ण के एक विशिष्ट सेवक के; अनुसारतः-चरणचिह्नों का अनुसरण।

अनुवाद

“रागानुगा भक्ति की ओर उन्मुख उन्नत भक्त (साधक) को वृन्दावन में कृष्ण के पार्षद-विशेष के कार्यों का अनुगमन करना चाहिए। उसे बाहर से वैधी भक्त की तरह भक्ति करने के साथ-साथ अपनी स्वरूपसिद्ध अवस्था में अन्दर ही अन्दर सेवा करनी चाहिए। इस तरह उसे बाहर तथा भीतर दोनों ही रूप में भक्ति करनी चाहिए।”

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.295) में आया है।

निजाभीष्ट कृष्ण-प्रेष्ठ पाछेत’ लागिया ।

निरन्तर सेवा करे अन्तर्मना हञा ॥159॥

निज-अभीष्ट-स्वयं द्वारा इच्छित; कृष्ण-प्रेष्ठ-कृष्ण के सेवक का; पाछेत' लागिया-अनुसरण करना; निरन्तर–निरन्तर; सेवा–सेवा; करे-करनी चाहिए; अन्तर्मना-अपने मन में; हञा-होकर।

अनुवाद

"वस्तुतः कृष्ण को वृन्दावनवासी अत्यन्त प्रिय हैं। यदि कोई रागानुगा भक्ति करना चाहता है, तो उसे वृन्दावनवासियों का अनुसरण करना चाहिए और अपने मन में निरन्तर कृष्ण-सेवा करनी चाहिए।"

कृष्णं स्मरन् जनं चास्य प्रेष्ठं निज-समीहितम् ।

तत्तत्कथा-रतश्चासौ कुर्याद्वासं व्रजे सदा ॥ 160॥

कृष्णम्-भगवान् कृष्ण का; स्मरन्-स्मरण; जनम्-एक भक्त; च तथा; अस्य-उनके; प्रेष्ठम्-अत्यन्त प्रिय; निज-समीहितम्-स्वयं चुने गये; तत्-तत्-कथा-उन विषयों में; रतः-आसक्ति; च–तथा; असौ-वह; कुर्यात् करना चाहिए; वासम्-निवास; व्रजे-वृन्दावन में; सदा-सदैव।

अनुवाद

"भक्त को चाहिए कि वह अपने अन्तर में सदैव कृष्ण का चिन्तन करे और ऐसे प्रिय भक्त को चुने जो वृन्दावन में कृष्ण का सेवक हो। उसे उस सेवक की कथाओं के विषय में तथा कृष्ण के साथ उसके प्रेममय सम्बन्ध के विषयों का सदैव चिन्तन करना चाहिए और उसे वृन्दावन में निवास करना चाहिए। हाँ, यदि कोई शरीर से वृन्दावन नहीं जा सकता, तो उसे मानसिक रूप से वहाँ रहना चाहिए।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.294) में आया है।

दास-सखा-पित्रादि-प्रेयसीर गण ।

राग-मार्गे निज-निज-भावेर गणन ॥ 161॥

दास-सेवक; सखा-मित्र; पितृ-आदि-माता-पिता; प्रेयसीर गण-माधुर्य प्रेमिकाएँ; राग-मार्गे–रागानुग प्रेम सेवा के मार्ग पर; निज-निज-अपनी इच्छा के; भावेर-भाव की; गणन-गिनती।

अनुवाद

"कृष्ण-भक्त अनेक प्रकार के होते हैं कुछ दास, कुछ मित्र, कुछ माता-पिता तथा कुछ प्रेयसी रूप में। जो भक्त इनमें से अपनी इच्छानुसार किसी भी रागवृत्ति में स्थित होते हैं, उन्हें रागमार्ग में प्रवृत्त माना जाता है।"

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्त-रूपे

नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढ़ि हेतिः ।

येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च

सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥ 162॥

न-नहीं; कर्हिचित्-किसी भी समय; मत्-पराः-मेरे भक्त; शान्त-रूपे-शान्ति की प्रतीक, हे माता; नक्ष्यन्ति–नष्ट होंगे; न उ-न ही; मे-मेरा; अनिमिषः-काल; लेढ़ि-नष्ट करता है; हेतिः-हथियार; येषाम् जिनका; अहम्-मैं; प्रियः-प्रिय; आत्मा-परमात्मा; सुतः-पुत्र; च–तथा; सखा–मित्र; गुरुः–गुरु; सुहृदः-शुभचिन्तक; दैवम्-विग्रह; इष्टम्-इष्ट।

अनुवाद

"हे माता देवहूति! हे शान्ति की प्रतीक! मेरा कालचक्र रूपी शस्त्र उन लोगों का विनाश नहीं करता, जिन्हें मैं अत्यन्त प्रिय हैं, जिनके लिए मैं परमात्मा, पुत्र, मित्र, गुरु, हितचिन्तक, पूज्य देव तथा

इच्छित लक्ष्य हूँ। चूँकि भक्तगण सदैव मुझ में अनुरक्त रहते हैं, अतः वे काल के दूतों द्वारा कभी विनष्ट नहीं होते।"

तात्पर्य

ये वचन कपिलदेव ने अपनी माता देवहूति से कहे थे, जो श्रीमद्भागवत (3.25.38) में लिपिबद्ध हैं। कपिलदेव ने अपनी माता को सांख्ययोग की शिक्षा दी, किन्तु उसमें भक्तियोग की महत्ता का ही उल्लेख हुआ है। नास्तिकों द्वारा सांख्ययोग का अनुकरण किया गया, जिनकी प्रणाली एक भिन्न कपिलदेव, ऋषि कपिलदेव के द्वारा स्थापित हुई।

पति-पुत्र-सुहृद्भ्रातृ-पितृवन्मित्रवद्धरिम् ।

ये ध्यायन्ति सदोद्युक्तास्तेभ्योऽपीह नमो नमः ॥163॥

पति-पति; पुत्र-पुत्र; सुहृत्-सखा; भ्रातृ-भाई; पितृ-पिता; वत्-(के) रूप में; मित्र-अन्तरंग मित्र; वत्-(के) रूप में; हरिम् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि का; ये-जो सभी; ध्यायन्ति-ध्यान करते हैं; सदा-सदैव; उद्युक्ताः-उत्सुकता से पूर्ण; तेभ्यः-उनके प्रति; अपि-भी; इह-यहाँ; नमः नमः–बारम्बार प्रणाम।

अनुवाद

"मैं उन लोगों को बारम्बार नमस्कार करता हूँ, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ध्यान उत्सुकतापूर्वक पति, पुत्र, सखा, भाई, पिता या घनिष्ठ मित्र के रूप में करते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.308) में आया है।

एइ मत करे येबा रागानुगा-भक्ति ।

कृष्णेर चरणे ताँर उपजय 'प्रीति' ॥ 164॥

एइ मत-इस प्रकार; करे-करता है; येबा-जो कोई भी; रागानुगा-भक्ति-रागानुगा भक्ति; कृष्णेर चरणे-कृष्ण के चरणकमलों में; ताँर-उसका; उपजय-जाग जाता है; प्रीति-स्नेह।

अनुवाद

"यदि कोई भगवान् की रागानुगा भक्ति में प्रवृत्त होता है, तो भगवान् कृष्ण के चरणकमलों के लिए उसका स्नेह बढ़ जाता है।"

प्रीत्यङ्कुरे 'रति', 'भाव'—हय दुइ नाम ।

याहा हैते वश हन श्री-भगवान् ॥165॥

प्रीति-अङ्करे-स्नेह के बीज में; रति-आसक्ति; भाव-भावना; हय–होती है; दुइ नाम-दो नाम की; याहा हैते–जिससे; वश-वशीभूत; हन–हो जाते हैं; श्री-भगवान्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"स्नेह के बीज में आसक्ति होती है, जिसके दो नाम हैं-रति तथा भाव। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ऐसी आसक्ति के वशीभूत हो जाते हैं।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इस श्लोक पर भाष्य दिया है। भक्त बाह्य रूप से भक्ति की नवों विधियों-श्रवण, कीर्तन आदि को सम्पन्न करता है, किन्तु अपने मन के भीतर वह सदैव कृष्ण के साथ अपने सनातन सम्बन्ध का चिन्तन करता है और वृन्दावन के भक्तों के चरणचिह्नों का अनुसरण करता है। यदि कोई व्यक्ति इस तरह राधा-कृष्ण की सेवा में लगा रहता है, तो वह शास्त्रों में दिये गये विधानों के ऊपर उठ सकता है और अपने गुरु के माध्यम से कृष्ण की रागानुगा भक्ति में पूर्णतया लग सकता है। इस तरह वह कृष्ण के चरणकमलों में स्नेह प्राप्त करता है। कृष्ण वास्तव में ऐसे स्वतःस्फूर्त भावों के वशीभूत हो जाते हैं और अन्ततः मनुष्य को भगवान् की संगति प्राप्त हो सकती है।

याहा हैते पाइ कृष्णेर प्रेम-सेवन।

एइत' कहिलुँ 'अभिधेय'-विवरण॥ 166॥

याहा हैते–जिसके द्वारा; पाइ-मैं प्राप्त कर सकता हूँ; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; प्रेम-सेवन–प्रेमपूर्ण सेवा; एइत'-यह; कहिलुँ-मैंने कहा है; अभिधेय-विवरण-अभिधेय का विस्तार से वर्णन।

अनुवाद

"जिस विधि से भगवान् की प्रेमाभक्ति प्राप्त की जा सकती है, उसका विस्तृत वर्णन मैंने अभिधेय नामक भक्ति के सम्पन्न करने के रूप में किया है।"

अभिधेय, साधन-भक्ति एबे कहिलुँ सनातन।

सङ्क्षेपे कहिलुँ, विस्तार ना याय वर्णन॥ 167॥

अभिधेय-इच्छित विषय प्राप्त करने का साधन; साधन-भक्ति-देह तथा इन्द्रियों द्वारा की जाने वाली प्रेममयी सेवा; एबे-अब; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया; सनातन-मेरे प्रिय सनातन; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिलुँ-मैंने कहा है; विस्तार–विस्तार; ना याय-सम्भव नहीं है; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

"हे सनातन, मैंने साधन-भक्ति का संक्षिप्त वर्णन किया है, जो कृष्ण-प्रेम प्राप्त करने का साधन है। इसका विस्तार से वर्णन नहीं किया जा सकता।"

अभिधेय साधन-भक्ति शुने येइ जन।

अचिरात्याय सेइ कृष्ण-प्रेम-धन॥ 168॥

अभिधेय-अनिवार्य कर्तव्य; साधन-भक्ति-साधना भक्ति के; शुने-सुनता है; येइ जन-जो व्यक्ति; अचिरात् शीघ्र ही; पाय-प्राप्त करता है; सेइ-वह व्यक्ति; कृष्ण-प्रेम-धन-कृष्ण-प्रेम का खजाना।

अनुवाद

जो भी साधन-भक्ति की विधि को सुनता है, वह शीघ्र ही कृष्ण के चरणकमलों में प्रेमपूर्वक शरण प्राप्त करता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥169॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों में; यार-जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

“श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा उनकी कृपा की सदैव कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।”

इस तरह श्रीचैतन्य-चरितामृत की मध्यलीला के बाइसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें भक्ति करने का वर्णन हुआ है।

अध्याय तेईस

जीवन का चरम लक्ष्य-भगवत्प्रेम

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में तेईसवें अध्याय का सारांश दिया है, जो इस प्रकार है। इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भाव तथा प्रेम के लक्षणों, भगवान् के साथ मूल प्रेम-सम्बन्ध के प्रादुर्भाव तथा इस अवस्था को प्राप्त भक्त के गुणों का वर्णन किया है। इसके बाद वे भगवत्प्रेम के महाभाव दशा तक क्रमशः वर्धित होने का वर्णन करते हैं। इसके बाद वे आकर्षण (रति) के पाँच प्रकारों का तथा उनके व्यवहारों का वर्णन करते हैं। वे माधुर्य-प्रेम से प्राप्त होने वाले रस का भी वर्णन करते हैं, जो सर्वोपरि भाव है। माधुर्य-प्रेम की दो श्रेणियाँ हैं- स्वकीय तथा परकीय/पति तथा पत्नी के बीच का प्रेम-व्यवहार स्वकीय कहलाता है, जबकि किन्हीं दो प्रेमियों के बीच का प्रेम-व्यवहार परकीय कहलाता है। इस सन्दर्भ में अनेक विवरण दिये गये हैं। कृष्ण के 64 दिव्य गुणों और श्रीमती राधारानी के 25 दिव्य गुणों का भी वर्णन हुआ है।

तब श्री चैतन्य महाप्रभु भक्ति-रस के योग्य पात्रों का वर्णन करते हैं। उनके मूल स्वभावों तथा भेदों का भी वर्णन हुआ है। महाप्रभु सनातन गोस्वामी को भक्ति के सभी गुह्य सिद्धान्तों के विषय में भी बतलाते हैं। वे गोलोक वृन्दावन का विवरण प्रस्तुत करते हैं, जहाँ भगवान् हरिवंश में वर्णित अपनी

सनातन लीलाओं में संलग्न रहते हैं। केश अवतार के पक्ष तथा विपक्ष का विवरण भी दिया गया है। सारे उपदेश इस अध्याय में हैं।

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपना हाथ सनातन गोस्वामी के सिर पर रखकर उन्हें आशीर्वाद दिया। इससे सनातन को हरिभक्ति-विलास आदि पुस्तकों में इन विषयों को वर्णन करने की शक्ति प्राप्त हुई।

चिराददत्तं निज-गुप्त-वित्तं

स्व-प्रेम-नामामृतमत्युदारः ।

आ-पामरं यो वितताार गौरः

कृष्णो जनेभ्यस्तमहं प्रपद्ये ॥1॥

चिरात्-चिर काल से; अदत्तम्-न दी हुई; निज-गुप्त-वित्तम्-अपनी निजी गुह्य सम्पत्ति; स्व-प्रेम-अपने प्रेम की; नाम-पवित्र नाम के; अमृतम्-अमृत; अति-उदारः-सर्वाधिक उदार; आ-पामरम्-सर्वाधिक अधम लोगों तक भी; यः-जिन्होंने; वितताार-बाँटा; गौरः-श्री गौर सुन्दर; कृष्णः-स्वयं भगवान् कृष्ण; जनेभ्यः-सामान्य लोगों को; तम्-उन्हें; अहम्-मैं; प्रपद्ये-प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

गौरकृष्ण नाम से विख्यात सर्वाधिक वदान्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने हर एक को–यहाँ तक कि अधम से अधम व्यक्तियों को भी-अपने प्रेम तथा अपने पवित्र नाम के अमृत-रूप गुह्य खजाना बाँटा। यह इसके पहले कभी भी लोगों को नहीं दिया गया था। अतएव मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ 2॥

जय जय-जय हो; गौरचन्द्र-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैत आचार्य की जय हो! श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

एबे शुन भक्ति-फल 'प्रेम'-प्रयोजन।

याहार श्रवणे हय भक्ति-रस-ज्ञान ॥ 3 ॥

एबे शुन-अब सुनो; भक्ति-फल-प्रेममयी सेवा के अभ्यास का परिणाम; प्रेम-भगवत्प्रेम; प्रयोजन-जीवन का परम लक्ष्य; याहार श्रवणे-जिसका श्रवण करने से; हय-होता है; भक्ति-रस-ज्ञान-भक्ति के रसों का दिव्य ज्ञान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "हे सनातन, अब भक्ति के फल के बारे में सुनो, जो जीवन का चरम लक्ष्य, भगवत्प्रेम है। यदि कोई व्यक्ति इस विवरण को सुनता है, तो उसे दिव्य भक्ति-रस का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

कृष्णे रति गाढ़ हैले 'प्रेम'-अभिधान।

कृष्ण-भक्ति-रसेर एइ 'स्थायि-भाव'-नाम ॥4॥

कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; रति-रति, स्नेह; गाढ़-गहरा; हैले–जब हो जाता है; प्रेम-अभिधान-भगवत्प्रेम कहा जाता है; कृष्ण-भक्ति-रसेर-कृष्ण के प्रति प्रेममयी सेवा के रसों का; एइ–यह; स्थायि-भाव-नाम-स्थाई भाव कहा जाता है।

अनुवाद

“जब कृष्ण के प्रति स्नेह प्रगाढ़ हो जाता है, तो भक्ति में भगवत्प्रेम की प्राप्ति होती है। ऐसी दशा स्थायी भाव कहलाती है, जिसमें कृष्णभक्ति-रस का स्थायी आस्वादन होता है।”

शुद्ध-सत्त्व-विशेषात्मा प्रेम-सूर्यांशु-साम्य-भाक् ।

रुचिभिश्चित्त-मसृण्य-कृदसौ भाव उच्यते ॥5॥

शुद्ध-सत्त्व विशुद्ध सत्त्वगुण द्वारा; विशेष-विशिष्ट; आत्मा–जिसका स्वभाव; प्रेम-भगवत्प्रेम; सूर्य-सूर्य के समान; अंशु-एक किरण; साम्य-भाक्-जो समान है; रुचिभिः–विभिन्न स्वादों द्वारा; चित्त-हृदय को; मसृण्य-कोमल; कृत्-जो करता है; असौ-वह कोमलता; भावः-भाव; उच्यते-कहलाती है।

अनुवाद

“जब भक्ति शुद्ध सत्त्व के दिव्य पद पर की जाती है, तो यह कृष्ण-प्रेम रूपी सूर्य की किरण जैसी होती है। उस समय भक्ति विविध आस्वादनों के द्वारा हृदय को मृदु बनाती है। तब मनुष्य भाव में स्थित होता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.3.1) में आया है।

ए दुइ,—भावेर ‘स्वरूप’, ‘तटस्थ’ लक्षण ।

प्रेमेर लक्षण एबे शुन, सनातन ॥ 6 ॥

एइ दुई-ये दोनों; भावेर-भाव के; स्वरूप-स्वरूप; तटस्थ-तटस्थ; लक्षण-लक्षण; प्रेमेर-प्रेम के लक्षण-लक्षण; एबे-अब; शुन-सुनो; सनातन-हे सनातन।

अनुवाद

“भाव के दो विविध लक्षण होते हैं-वैधानिक (स्वाभाविक) तथा तटस्थ। हे सनातन, अब तुम मुझसे प्रेम के लक्षण सुनो।”

तात्पर्य

शुद्धसत्त्वविशेषात्मा का अर्थ है, “शुद्ध सत्त्व के दिव्य पद पर आसीन”। इस तरह आत्मा समस्त भौतिक कल्मष से शुद्ध हो जाता है और यह पद स्वरूप-लक्षण अर्थात् भाव का वैधानिक लक्षण कहलाता है। मनुष्य का हृदय विविध आस्वादनों से कोमल होता है और उसमें भगवान की रागानुगा भक्ति करने की लालसा जाग्रत होती है। इसे तटस्थ लक्षण कहते हैं।

सम्यँ-मसृणित-स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः ।

भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥7॥

सम्यक–पूर्ण रूप से; मसृणित-स्व-अन्तः–जो हृदय को कोमल बनाता है; ममत्व-स्वामित्व की भावना का; अतिशय-अङ्कितः-अत्यन्त प्रगाढ़; भावः-भाव; सः-वह; एव-अवश्य; सान्द्र-आत्मा–जिसकी प्रकृति अत्यन्त प्रगाढ़ है; बुधैः-विद्वानों द्वारा; प्रेमा-भगवत्प्रेम; निगद्यते-कहा जाता है।

अनुवाद

“जब वह भाव हृदय को पूर्णरूपेण कोमल बना देता है, भगवान् के प्रति अपनत्व की महान् भावना से समन्वित और अत्यन्त प्रगाढ़ तथा घनीभूत हो जाता है, तो विद्वानों द्वारा वह प्रेम (भगवत्प्रेम) कहलाता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.4.1) में आया है।

अनन्य-ममता विष्णौ ममता प्रेम-सङ्गता ।

भक्तिरित्युच्यते भीष्म-प्रह्लादोद्धव-नारदैः ॥8॥

अनन्य-ममता-अन्य किसी में भी सम्बन्ध का भाव न होकर; विष्णौ–भगवान् विष्णु या कृष्ण में; ममता-अपनेपन की भावना; प्रेम-सङ्गता–प्रेम से युक्त; भक्तिः -प्रेममयी सेवा; इति-अतः; उच्यते-कहलाती है; भीष्म-भीष्म द्वारा; प्रह्लाद-प्रह्लाद महाराज द्वारा; उद्धव-उद्धव द्वारा; नारदैः–तथा नारद द्वारा।

अनुवाद

"जब कोई व्यक्ति भगवान् विष्णु के प्रति गूढ़ अपनत्व का भाव उत्पन्न कर लेता है, अथवा जब कोई विष्णु को ही प्रेम के एकमात्र लक्ष्य मानता है, तो ऐसी जागृति भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव तथा नारद जैसे महापुरुषों द्वारा भक्ति कहलाती है।"

तात्पर्य

यह श्लोक नारद-पञ्चरात्र से उधृत है और भक्तिरसामृतसिन्धु (1.4.2) में आया है।

कोन भाग्ये कोन जीवेर 'श्रद्धा' यदि हय ।

तबे सेइ जीव 'साधु-सङ्ग' ये करय ॥9॥

कोन भाग्ये-सौभाग्यवश; कोन जीवेर-किसी जीव को; श्रद्धा यदि हय–यदि विश्वास हो जाता है; तबे-तब; सेइ जीव-वह जीवात्मा; साधु-सङ्ग–भक्तों का संग; ये-अवश्य; करय-करता है।

अनुवाद

"यदि सौभाग्यवश कोई जीव कृष्ण में श्रद्धा उत्पन्न कर लेता है, तो वह भक्तों की संगति करना प्रारम्भ कर देता है।"

साधु-सङ्ग हैते हय 'श्रवण-कीर्तन' ।

साधन-भक्त्ये हय ‘सर्वानर्थ-निवर्तन’ ॥10॥

साधु-सङ्ग हैते–भक्तों के संग से; हय होता है; श्रवण-कीर्तन-श्रवण तथा कीर्तन; साधन-भक्त्ये–साधन भक्ति द्वारा; हय–होता है; सर्व-सभी; अनर्थ-निवर्तन–अनर्थों का विनाश।

अनुवाद

“जब भक्तों की संगति से कोई व्यक्ति भक्ति की ओर उन्मुख होता है, तो वह विधि-विधानों का पालन करने से और कीर्तन तथा श्रवण द्वारा सारे अवांछित कल्मष से मुक्त हो जाता है।”

अनर्थ-निवृत्ति हैले भक्त्ये ‘निष्ठा’ हय।

निष्ठा हैते श्रवणाद्ये ‘रुचि’ उपजय ॥11॥

अनर्थ-निवृत्ति-सभी अनर्थों का निवारण, हैले–जब हो जाता है; भक्त्ये-भक्ति में; निष्ठा-दृढ़ विश्वास; हय-हो जाता है; निष्ठा हैते-ऐसे दृढ़ विश्वास से; श्रवण-आद्ये-श्रवण, कीर्तन आदि में; रुचि-रुचि; उपजय-उत्पन्न हो जाती है।

अनुवाद

“जब मनुष्य सारे अवांछित कल्मष से मुक्त हो जाता है, तो वह दृढ़ निष्ठा के साथ अग्रसर होता है। जब भक्ति में दृढ़ निष्ठा जाग्रत हो जाती है, तो श्रवण तथा कीर्तन का आस्वादन भी जाग्रत होता है।”

रुचि हैते भक्त्ये हय ‘आसक्ति’ प्रचुर।

आसक्ति हैते चित्ते जन्मे कृष्णे प्रीत्यङ्कुर ॥12॥

रुचि हैते-ऐसी रुचि से; भक्त्ये- भक्ति में; हय–होती है; आसक्ति-आसक्ति; प्रचुर–गहरी; आसक्ति हैते–आसक्ति से; चित्ते-हृदय में; जन्मे-उत्पन्न होता है; कृष्णे-कृष्ण के प्रति; प्रीति-अङ्कर-स्नेह का बीज।

अनुवाद

"रुचि जाग्रत होने पर गहरी आसक्ति उत्पन्न होती है और उस आसक्ति से हृदय में कृष्ण-प्रेम का बीज अंकुरित होता है।"

सेइ 'भाव' गाढ़ हैले धरे 'प्रेम'-नाम।

सेइ प्रेमा 'प्रयोजन' सर्वानन्द-धाम ॥13॥

सेइ भाव-वह भाव की दशा; गाढ़ हैले–जब प्रगाढ़ हो जाती है; धरे-लेती है; प्रेम-नाम-भगवत्प्रेम नाम; सेइ प्रेमा-वह भगवत्प्रेम; प्रयोजन-जीवन का परम लक्ष्य; सर्व-आनन्द-धाम-समस्त आनन्द का स्रोत।

अनुवाद

"जब ऐसी भावदशा प्रगाढ़ होती है, तो उसे भगवत्प्रेम कहा जाता है। ऐसा प्रेम जीवन का चरम लक्ष्य है तथा समस्त आनन्द का आगार है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर भगवत्प्रेम के इस अंकुरण को एक क्रमिक विधि मानते हैं। बड़े भाग्य से किसी व्यक्ति की भक्ति में रुचि जागती है। अन्ततः उसकी भौतिक कल्मष से रहित शुद्ध भक्ति में रुचि उत्पन्न होने लगती है। ऐसी दशा में वह व्यक्ति भक्तों की संगति करना चाहता है। ऐसी संगति के फलस्वरूप वह भक्ति करने तथा श्रवण एवं कीर्तन में अधिक रुचि दिखाने लगता है। श्रवण तथा कीर्तन में वह जितना ही अधिक आग्रह दिखाता है, उतना ही अधिक वह भौतिक कल्मष से शुद्ध

होता जाता है। भौतिक कल्मष से मुक्ति को अनर्थ-निवृत्ति कहते हैं अर्थात् अवांछित बातें घटती जाती हैं। भक्ति में विकास की यही परीक्षा है। भक्ति की प्रवृत्ति वास्तव में विकसित कर लेने पर वह अवैध सम्बन्ध, नशा, जुआ खेलना तथा मांसाहार के भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाता है। ये प्रारम्भिक लक्षण हैं। जब उसके सारे भौतिक कल्मष दूर हो जाते हैं, तब भक्ति में उसकी दृढ़ निष्ठा जाग्रत होती है। निष्ठा उत्पन्न होने पर रुचि उत्पन्न होती है और उस रुचि से वह भक्ति के प्रति आसक्त होता है। इस आसक्ति के प्रगाढ़ होने पर कृष्ण-प्रेम का बीज फलित होता है। यह अवस्था प्रीति या रति या भाव कहलाती है। जब रति प्रगाढ़ होती है, तब वह भगवत्प्रेम कहलाती है। यह भगवत्प्रेम वस्तुतः जीवन की सर्वोच्च पूर्णता है और समस्त आनन्द का आगार है।

इस तरह भक्तिमय जीवन की दो अवस्थाएँ हैं- साधन भक्ति तथा भावभक्ति। साधनभक्ति विधि-विधानों के पालन द्वारा भक्ति का विकास है। भक्ति सम्पन्न करने के लिए मूल सिद्धान्त श्रद्धा है। इसके अतिरिक्त भक्तों की संगति है और इसके बाद प्रमाणित गुरु द्वारा दीक्षा है। दीक्षा लेने के बाद जब कोई व्यक्ति भक्ति के विधानों का पालन करता है, तो वह समस्त अवांछित वस्तुओं से मुक्त हो जाता है। इस तरह वह दृढ़ता से स्थिर हो जाता है और क्रमशः भक्ति के प्रति रुचि उत्पन्न कर लेता है। यह रुचि जितनी ही अधिक बढ़ती जाती है, वह भगवान् की उतनी ही अधिक सेवा करना चाहता है। इस तरह वह भगवान् की सेवा में किसी विशिष्ट रस में लग जाता है—ये रस हैं। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर। ऐसी आसक्ति के फलस्वरूप भाव विकसित होता है। भावभक्ति शुद्ध सत्त्व का पद है। ऐसे शुद्ध सत्त्व से मनुष्य का हृदय भक्ति से द्रवित हो उठता है। भावभक्ति भगवत्प्रेम का प्रथम बीज है। शुद्ध प्रेम प्राप्त करने के पूर्व यह भाव स्थिति रहती है। इस भावस्थिति के गहन होने पर इसे प्रेम-भक्ति कहते हैं। यह क्रमिक विधि निम्नांकित दो श्लोकों में भी वर्णित है, जो भक्तिरसामृतसिन्धु (1.4.15-16) में पाये जाते हैं।

आदौ श्रद्धा ततः साधु-सङ्गोऽथ भजन-क्रिया।

ततोऽनर्थ-निवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः ॥14॥

अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।

साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत्क्रमः ॥15॥

आदौ-प्रारम्भ में; श्रद्धा-दृढ़ विश्वास, अथवा भौतिक कार्यों से अनासक्ति और आध्यात्मिक प्रगति में रुचि; ततः-उसके बाद; साधु-सङ्गः-शुद्ध भक्तों का संग; अथ-फिर; भजन-क्रिया-कृष्ण की प्रेममयी सेवा करना (आध्यात्मिक गुरु का संग तथा भक्तों द्वारा प्रोत्साहित होना ताकि दीक्षा हो सके); ततः-फिर; अनर्थ-निवृत्तिः–सभी अनावश्यक आदतों का नाश; स्यात्-होना चाहिए; ततः-तब; निष्ठा–दृढ़ निष्ठा; रुचिः-रुचि; ततः-फिर; अथ-तब; आसक्तिः–आसक्ति; ततः-फिर; भावः-भाव या स्नेह; ततः–तत्पश्चात्; प्रेम-भगवत्प्रेम; अभ्युदञ्चति-उत्पन्न होता है; साधकानाम्-कृष्णभक्ति का अभ्यास करने वाले भक्तों का; अयम्-इस; प्रेम्णः-भगवत्प्रेम का; प्रादुर्भावे-उदय; भवेत् होता है; क्रमः-क्रमपूर्वक।

अनुवाद

“सर्वप्रथम श्रद्धा होनी चाहिए। तब मनुष्य शुद्ध भक्तों की संगति करने में रुचि दिखाने लगता है। तत्पश्चात् वह गुरु द्वारा दीक्षित होता है और उसके आदेशानुसार विधि-विधानों का पालन करता है। इस तरह वह समस्त अवांछित आदतों से मुक्त हो जाता है और भक्ति में स्थिर हो जाता है। इसके बाद रुचि तथा आसक्ति उत्पन्न होती है। यह साधन-भक्ति का मार्ग है। धीरे-धीरे भाव गहन होते जाते हैं और अन्त में प्रेम जाग्रत होता है। कृष्णभावनामृत में रुचि रखने वाले भक्त के लिए यही भगवत्प्रेम के क्रमिक विकास की प्रक्रिया है।”

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्य-संविदो

भवन्ति हृत्कर्ण-रसायनाः कथाः।

तज्जोषणादाश्वपवर्ग-वर्मनि

श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥ 16 ॥

सताम्-भक्तों के; प्रसङ्गात्-अन्तरंग संग द्वारा; मम–मेरे; वीर्य-संविदः-दिव्य गुणों की वार्ताएँ; भवन्ति–होती हैं; हृत्-हृदय के लिए; कर्ण–तथा कानों के लिए; रस-आयनाः–मधुरता का स्रोत; कथाः-वार्ताएँ; तत्-उनके; जोषणात्-उचित विकास द्वारा; आशु-शीघ्र ही; अपवर्ग–मुक्ति के; वर्मनि–मार्ग पर; श्रद्धा-श्रद्धा; रतिः-आकर्षण; भक्तिः–प्रेम; अनुक्रमिष्यति-क्रमपूर्वक आ जायेंगे।

अनुवाद

“आध्यात्मिक रूप से ईश्वर के सशक्त सन्देश की सटीक चर्चा केवल भक्त-समाज में ही हो सकती है और उस संगति में उसे सुनना बहुत ही आनन्ददायक होता है। भक्तों से सुनने पर उसके लिए दिव्य अनुभव का मार्ग शीघ्र खुल जाता है और धीरे-धीरे उसे दृढ़ श्रद्धा (निष्ठा) प्राप्त होती है, जो कालक्रम से आकर्षण (रति) तथा भक्ति में विकसित होती है।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.25.25) का है।

याँहार हृदये एइ भावाङ्कुर हय ।

ताँहाते एतेक चिह्न सर्व-शास्त्रे कय ॥ 17॥

याँहार–जिसके; हृदये-हृदय में; एइ–यह; भाव-अङ्कर-भाव का बीज; हय-होता है; ताँहाते-उसमें; एतेक-ये; चिह्न–लक्षण; सर्व-शास्त्रे-सभी प्रामाणिक शास्त्र; कय–कहते हैं।

अनुवाद

“यदि किसी के हृदय में वास्तव में दिव्य भाव का बीज रहता है, तो वह उसके कर्मों में परिलक्षित होगा। सभी शास्त्रों का यही निर्णय है।”

क्षान्तिरव्यर्थ-कालत्वं विरक्तिर्मान-शून्यता।

आशा-बन्धः समुत्कण्ठा नाम-गाने सदा रुचिः ॥18॥

आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसति-स्थले।

इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जात-भावारे जने ॥19॥

क्षान्तिः–क्षमाशीलता; अव्यर्थ-कालत्वम्-समय व्यर्थ न गंवाना; विरक्तिः–वैराग्य; मान-शून्यता–मिथ्या अभिमान का अभाव; आशा-बन्धः-आशा; समुत्कण्ठा-उत्साह; नाम-गाने-पवित्र नामों के गान में; सदा-सदैव; रुचिः-रुचि; आसक्तिः–आसक्ति; तत्-भगवान् कृष्ण के; गुण-आख्याने-दिव्य गुणों का वर्णन करने में; प्रीतिः-प्रीति; तत्-उनके; वसति-स्थले–निवासस्थान के प्रति (मन्दिर या तीर्थस्थान); इति–इस प्रकार; आदयः-आदि; अनुभावाः-लक्षण; स्युः–होता है; जात–विकसित; भाव-अङ्करे-दिव्य भाव का बीज; जने–व्यक्ति में।

अनुवाद

“जब कृष्ण के लिए भावरूपी बीज का अंकुरण होता है, तब मनुष्य के स्वभाव में नौ लक्षण प्रकट होते हैं। ये हैं- क्षमाशीलता, समय को व्यर्थ न गॅवाने के प्रति सतर्कता, विरक्ति, मिथ्या मान का अभाव, आशा, उत्सुकता, भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने के लिए रुचि, भगवान् के दिव्य गुणों के वर्णन के प्रति अनुरक्ति, भगवान् के निवासस्थानों यथा मन्दिर या वृन्दावन जैसे तीर्थस्थान के प्रति स्नेह। ये अनुभाव अर्थात् उत्कट भाव के गौण लक्षण कहलाते हैं। ये सब अनुभाव उस व्यक्ति के हृदय में दृष्टिगोचर होते हैं, जिसमें भगवत्प्रेम अंकुरित होना शुरू हो गया होता है।”

तात्पर्य

ये दोनों श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.3.25-26) में प्राप्त हैं।

एइ नव प्रीत्यङ्कुर याँर चित्ते हय ।

प्राकृत-क्षोभे ताँर क्षोभ नाहि हय ॥20॥

एइ–यह; नव-नौ; प्रीति-अङ्कर-प्रेम के बीज के फल; याँर-जिसके; चित्ते–मन में; हय-होते हैं, प्राकृत-भौतिक; क्षोभे–क्षोभ में; ताँर-वह; क्षोभ–विचलित; नाहि हय-नहीं होता।

अनुवाद

"यदि किसी के हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम अंकुरित हो जाता है, तो वह भौतिक वस्तुओं से क्षुब्ध नहीं होता।"

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा

गङ्गा च देवी धृत-चित्तमीशे ।

द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा

दशत्वलं गायत विष्णु-गाथाः ॥21॥

तम्-उसे; मा–मुझे; उपयातम्-समर्पित; प्रतियन्तु-आप समझिये; विप्राः-हे ब्राह्मणों; गङ्गा-गंगा माता; च–तथा; देवी–देवी को; धृत-अर्पित; चित्तम्-जिसका मन; ईशे-परम भगवान् में; द्विज-उपसृष्टः-ब्राह्मण द्वारा रचित; कुहकः-कुछ मायावी; तक्षकः-नागपक्षी; वा–अथवा; दशतु-काटने दीजिये; अलम्-चिन्ता न करें; गायत-गाइये; विष्णु-गाथाः–भगवान् विष्णु के पवित्र नाम।

अनुवाद

"हे ब्राह्मणों, मुझे पूर्णतया शरणागत जीव मानो और भगवान् की प्रतिनिधि, माता गंगा भी मुझे ऐसा ही मानें, क्योंकि मैं पहले ही भगवान् के चरणकमलों को अपने हृदय में आसीन कर चुका हूँ। इस

तक्षक को, अथवा ब्राह्मण ने जो कुछ भी इन्द्रजाल रचा है, मुझे तुरन्त काटने दें। मेरी एकमात्र इच्छा यह है कि आप लोग भगवान् विष्णु के कार्यों का गायन करते रहें।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.19.15) का है, जिसे महाराज परीक्षित ने तब कहा था, जब वे शमीक ऋषि के पुत्र श्रृंगी नामक ब्राह्मण बालक के शाप से बुलाये गये तक्षक से दंशित होने की आशा लगाये गंगा नदी के तट पर बैठे हुए थे। इस शाप का समाचार राजा को सुनाया गया, जो अपनी आसन्न मृत्यु के लिए उद्यत हो गये। अन्त समय में उन्हें देखने के लिए अनेक सन्त, साधु, ब्राह्मण, राजा तथा देवतागण आये। किन्तु महाराज परीक्षित इस तक्षक से डसे जाने से बिल्कुल भयभीत नहीं थे। उन्होंने वहाँ पर एकत्र समस्त महापुरुषों से प्रार्थना की कि वे भगवान् विष्णु के नाम का कीर्तन चालू रखें।

कृष्ण-सम्बन्ध विना काल व्यर्थ नाहि याय ॥ 22 ॥

कृष्ण-सम्बन्ध विना-कृष्ण के सम्बन्ध के बिना; काल-समय; व्यर्थ-व्यर्थ; नाहि याय-नहीं जाना चाहिए।

अनुवाद

"एक क्षण भी नहीं नष्ट करना चाहिए। प्रत्येक क्षण का उपयोग कृष्ण या उनसे सम्बन्धित बातों के लिए करना चाहिए।"

तात्पर्य

इस श्लोक में महाराज परीक्षित की व्यग्रता व्यक्त हुई है। वे कहते हैं, जो होना है सो हो। इसकी परवाह नहीं है। मुझे तो यह देखना है कि मेरे समय का एक भी क्षण कृष्ण-सम्बन्ध के बिना व्यर्थ न

हो।" कृष्णभावनामृत के मार्ग में मनुष्य को सभी प्रकार के अवरोध झेलने पड़ते हैं और यह देखना पड़ता है कि कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त जीवन का एक भी क्षण व्यर्थ न जाने पाये।

वाग्भिः स्तुवन्तो मनसा स्मरन्तस्

तन्वा नमन्तोऽप्यनिशं न तृप्ताः ॥

भक्ताः श्रवन्नेत्र-जलाः समग्रम्

आयुर्हरेरेव समर्पयन्ति ॥ 23 ॥

वाग्भिः –वाणी द्वारा; स्तुवन्तः–परम भगवान् की स्तुति करते हुए; मनसा-मन के द्वारा; स्मरन्तः-स्मरण करते हुए; तन्वा-शरीर द्वारा; नमन्तः–प्रणाम करते हुए; अपि-यद्यपि; अनिशम्-सब समय; न तृप्ताः-सन्तुष्ट नहीं होते; भक्ताः-भक्तजन; श्रवत्-बहाते हुए; नेत्र-जलाः-आँखों से आँसु; समग्रम् सम्पूर्ण; आयुः-जीवन; हरेः-कृष्ण को; एव–मात्र; समर्पयन्ति–समर्पित कर देते हैं।

अनुवाद

"वे शब्दों से भगवान् की स्तुति करते हैं। वे मन से नित्य भगवान् का स्मरण करते हैं। वे अपने शरीरों से भगवान् को नमस्कार करते हैं। इतने पर भी वे तुष्ट नहीं होते। ऐसा है शुद्ध भक्तों का स्वभाव। वे अपने नेत्रों से अश्रु बहाते हुए अपना सारा जीवन भगवान् की सेवा में अर्पित कर देते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक हरिभक्ति-सुधोदय का है और भक्तिरसामृतसिन्धु (1.3.29) में आया है।

भुक्ति, सिद्धि, इन्द्रियार्थ तारे नाहि भाय ॥24॥

भक्ति-भौतिक सुख; सिद्धि योग सिद्धि; इन्द्रिय-अर्थ-इन्द्रियों के विषय; तारे-उसे; नाहि भाय-अच्छे नहीं लगते।

अनुवाद

“भौतिक क्षेत्र में लोग भौतिक भोग, योग-सिद्धि तथा इन्द्रियतृप्ति में रुचि दिखाते हैं। किन्तु भक्तों को ये बातें कदापि रुचिकर नहीं लगतीं।”

यो दुस्त्यजान् दार-सुतान् सुहृद् राज्यं हृदि-स्पृशः ।

जहौ युवैव मल-वदुत्तमःश्लोक-लालसः ॥25॥

यः-जिन्होंने (भरत महाराज); दुस्त्यजान्-त्यागने में कठिन; दार-सुतान्-पत्नी तथा सन्तान; सुहृत्-मित्र; राज्यम्-राजपाट; हृदि-स्पृशः-हृदय की गहाराईयों को प्रिय; जहौ-त्याग दिया; युवा–युवावस्था में; एव–ही; मल-वत्-मल की भाँति; उत्तमः-श्लोक-लालसः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य गुणों, लीलाओं तथा संग से आकर्षित।

अनुवाद

“राजा भरत उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे, जो उत्तमश्लोक कहे जाते हैं, क्योंकि उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए स्तुतियाँ की जाती हैं। राजा भरत ने अपनी युवावस्था में अपनी आकर्षक पत्नी तथा पुत्रों एवं अपने प्रिय मित्रों तथा वैभवशाली साम्राज्य को उसी तरह छोड़ दिया, जिस तरह मल का विसर्जन करने के बाद उसे त्याग दिया जाता है।”

तात्पर्य

ये विरक्ति के लक्षण हैं, जो उस व्यक्ति में पाये जाते हैं, जिसमें भाव उत्पन्न हो चुका हो। यह श्लोक श्रीमद्भागवत (5.14.43) से उधृत है।

‘सर्वोत्तम’ आपनाके ‘हीन’ करि माने ॥ 26 ॥

सर्व-उत्तम-यद्यपि सबसे आगे होते हुए भी; आपनाके–स्वयं को; हीन करि-सबसे नीचा; माने-मानता है।

अनुवाद

“यद्यपि शुद्ध भक्त का स्तर सर्वोपरि होता है, फिर भी वह अपने आपको सबसे हीन (तुच्छ) मानता है।”

हरौ रतिं वहन्नेष नरेन्द्राणां शिखा-मणिः ।

भिक्षामटन्नरि-पुरे श्व-पाकमपि वन्दते ॥27॥

हरौ-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि में; रतिम्-स्नेह; वहन्-धारण करके; एषः-यह; नर-इन्द्राणाम् सभी राजाओं में; शिखा-मणिः-शिरोमणि; भिक्षाम्-भीख माँगते; अटन्-विचरण करते; अरि-पुरे शत्रुओं के राज्य में भी; श्व-पाकम्-पंचम श्रेणी के चाण्डाल; अपि-भी; वन्दते-वन्दना करते थे।

अनुवाद

“भरत महाराज सदैव अपने हृदय में कृष्ण के प्रति स्नेह वहन करते थे। यद्यपि भरत महाराज राजाओं के मुकुटमणि थे, फिर भी अपने शत्रुओं की नगरी में घूम-घूमकर भिक्षा माँगते थे। यहाँ तक कि वे तुच्छ जाति के चण्डालों को भी नमस्कार करते थे, जो कुत्तों का मांस भक्षण करते हैं।”

तात्पर्य

यह उद्धरण पद्मपुराण का है।

‘कृष्ण कृपा करिबेन’–दृढ़ करि’ जाने ॥28॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कृपा करिबेन-अपनी कृपा करेंगे; दृढ़ करि’-दृढ़तापूर्वक; जाने-वह मानता है।

अनुवाद

“एक पूर्णतया शरणागत भक्त को सर्वदा आशा रहती है कि भगवान् कृष्ण उस पर कृपालु होंगे। उसमें यह आशा दृढ़ रहती है।”

न प्रेमा श्रवणादि-भक्तिरपि वा योगोऽथ वा वैष्णवो

ज्ञानं वा शुभ-कर्म वा कियदहो सजातिरप्यस्ति वा ।

हीनाधिक-साधके त्वयि तथाप्यच्छेद्य-मूला सती

हे गोपी-जन-वल्लभ व्यथयते हा हा मदाशैव माम् ॥ 29॥

न–नहीं है; प्रेमा-भगवत्प्रेम; श्रवण-आदि-श्रवण कीर्तन आदि; भक्तिः -भक्ति; अपि-तथा; वा-अथवा; योगः-योगसिद्धि की शक्ति; अथ वा–अथवा; वैष्णवः-भक्त के लिए उपयुक्त; ज्ञानम्-ज्ञान; वा–अथवा; शुभ-कर्म-पुण्यकर्म; वा–अथवा; कियत्-थोड़ा भी; अहो-हे मेरे प्रभु; सत्-जातिः-- एक अच्छे कुल में जन्म; अपि-भी; अस्ति-है; वा-या; हीन-अर्थ-अधिक-साधके-जो पतित तथा गुणविहीन पर अधिक कृपा दर्शाते हैं; त्वयि-आपके प्रति; तथा-अपि-फिर भी; अच्छेद्य-मूला–जिसका मूल काटा नहीं जा सकता; सती-है; हे–हे; गोपी-जन-वल्लभ-गोपियों के प्रिय; व्यथयते-कष्ट देती है; हा हा-हाय; मत्-मेरी; आशा-आशा; एव-अवश्य; माम्-मुझे।

अनुवाद

“हे प्रभु, न तो मुझमें आपके लिए प्रेम है, न ही मुझमें कीर्तन तथा श्रवण द्वारा भक्ति करने की योग्यता है। न ही मुझमें वैष्णव की योगशक्ति, ज्ञान या पुण्यकर्म है। न ही मैं उच्च कुल से सम्बन्धित हूँ। इस तरह मुझमें कुछ भी नहीं है। फिर भी हे गोपियों के प्रिय, मेरे हृदय में निरन्तर एक अटूट आशा है, क्योंकि आप अधम से अधम पर दया करने वाले हैं। वही आशा मुझे निरन्तर पीड़ा दे रही है।”

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.3.35) में आया है।

समुत्कण्ठा हय सदा लालसा-प्रधान ॥ 30॥

समुत्कण्ठा-उत्सुकता; हय–होती है; सदा-हमेशा; लालसा-तीव्र लालसा; प्रधान-प्रधान।

अनुवाद

“यह उत्सुकता भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए प्रगाढ़ इच्छा से युक्त है।”

त्वच्छैशवं त्रि-भुवनाद्भुतमित्यवेहि

मच्चापलं च तव वा मम वाधिगम्यम् ।

तत्किं करोमि विरलं मुरली-विलासि

मुग्धं मुखाम्बुजमुदीक्षितुमीक्षणाभ्याम् ॥ 31॥

त्वत्-आपकी; शैशवम्-शिशु अवस्था; त्रि-भुवन–तीन लोकों में; अद्भुतम्-अद्भुत; इति-ऐसे; अवेहि-जानते हैं; मत्-चापलम्-मेरी अधीरता; च–तथा; तव-आपकी; वा-या; मम-मेरी; वा-या; अधिगम्यम्-समझनी होगी; तत्-वह; किम्-क्या; करोमि-मैं करूँ; विरलम्-एकान्त में; मुरली-विलासि-हे बंसी बजाने वाले; मुग्धम्-आकर्षक; मुख-अम्बुजम्-कमल समान मुख; उदीक्षितुम्–सन्तोषपूर्वक देखने के लिए; ईक्षणाभ्याम्-आँखों द्वारा।

अनुवाद

“हे कृष्ण, हे वंशीवादक, आपके शैशव की माधुरी तीनों लोकों में अद्भुत है। मैं आपकी चपलता जानता हूँ और आप मेरी। इसे अन्य कोई नहीं जानता। मैं किसी एकान्त में आपका सुन्दर आकर्षक मुख देखना चाहता हूँ, किन्तु यह हो तो कैसे?”

तात्पर्य

यह श्लोक कृष्णकर्णामृत (32) का है।

नाम-गाने सदा रुचि, लय कृष्ण-नाम ॥ 32॥

नाम-गाने-पवित्र नामों का गान करने में; सदा-निरन्तर; रुचि-रुचि, आस्वादन; लय-लेते हैं; कृष्ण-नाम-हरे कृष्ण महामन्त्र।

अनुवाद

"नाम के प्रति गहरी रुचि होने से मनुष्य हरे कृष्ण महामन्त्र का निरन्तर जप करना चाहता है।"

रोदन-बिन्दु-मरन्द-स्यन्दि-

दृगिन्दीवराद्य गोविन्द ।

तव मधुर-स्वर-कण्ठी

गायति नामावली बाला ॥ 33॥

रोदन-बिन्दु-आँसु; मरन्द–अमृत या फूलों के मकरंद जैसे; स्यन्दि-बहा रहे हैं; दृक्-इन्दीवरा-जिनके कमलनयन; अद्य-आज; गोविन्द–हे मेरे प्रभु गोविन्द; तव-आपके; मधुर-स्वर-कण्ठी-जिनकी वाणी अत्यन्त मधुर है; गायति–गाती है; नाम-आवलीम्-पवित्र नाम; बाला-यह युवती (श्री राधिका)।

अनुवाद

"हे गोविन्द, यह युवती जिसका नाम राधिका है, मधुर स्वर में आपके पवित्र नाम का गायन करती हुई निरन्तर अश्रु बरसा रही है, मानो फूलों से मधु गिर रहा हो।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.3.38) में पाया जाता है।

कृष्ण-गुणाख्याने हय सर्वदा आसक्ति ॥ 34॥

कृष्ण-गुण-आख्याने–कृष्ण के दिव्य गुणों का वर्णन करने में; हय-होती है; सर्वदा-सदैव; आसक्ति-आसक्ति।

अनुवाद

"इस भावदशा में भक्त में भगवान् के दिव्य गुणों का कीर्तन और वर्णन करने की प्रवृत्ति जाग उठती है। उसे इस विधि में आसक्ति हो जाती है।"

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोर्

मधुरं मधुरं वदनं मधुरम् ।

मधु-गन्धि मृदु-स्मितमेतदहो

मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम् ॥ 35॥

मधुरम् मधुर; मधुरम्-मधुर; वपुः-दिव्य स्वरूप; अस्य-उनका; विभोः-भगवान् का; मधुरम् मधुर; मधुरम्-मधुर; वदनम्-मुख; मधुरम्-और अधिक मधुर; मधु-गन्धि-शहद की सुगन्ध; मृदु-स्मितम्-मन्द मुस्कान; एतत् यह; अहो-हे प्रभु; मधुरम्-मधुर; मधुरम्-मधुर; मधुरम्-मधुर; मधुरम्-और भी अधिक मधुर।

अनुवाद

"हे प्रभु, कृष्ण का दिव्य शरीर मधुर है और उनका मुख तो उनके शरीर से भी अधिक मधुर है। किन्तु मधु (शहद) की गन्ध के समान उनके मुख की मृदु हँसी और भी मधुर है।"

तात्पर्य

यह श्लोक बिल्वमंगल ठाकुर कृत कृष्णकर्णामृत (92) से है।

कृष्ण-लीला-स्थाने करे सर्वदा वसति ॥ 36॥

कृष्ण-लीला-स्थाने-उस स्थान पर जहाँ कृष्ण ने लीलाएँ की; करे-करता है; सर्वदा-सदैव; वसति-निवास।

अनुवाद

"कृष्ण के भाव में मग्न भक्त सदैव ऐसे स्थान में निवास करता है, जहाँ कृष्ण ने लीलाएँ की थीं।"

कदाहं यमुना-तीरे नामानि तव कीर्तयन् ।

उद्बाष्पः पुण्डरीकाक्ष रचयिष्यामि ताण्डवम् ॥ 37॥

कदा-कब; अहम्-मैं; यमुना-तीरे-यमुना के किनारे; नामानि-पवित्र नामों का; तव-आपके; कीर्तयन्-कीर्तन करके; उद्बाष्पः-अश्रु युक्त; पुण्डरीक-अक्ष-हे कमलनयन; रचयिष्यामि-मैं रचना करूँगा; ताण्डवम्-एक उन्मत्त व्यक्ति की तरह नाचकर।

अनुवाद

"हे पुण्डरीकाक्ष भगवान्, कब मैं अपनी आँखों में आँसू भरकर यमुना के तट पर आपके नाम का कीर्तन करते हुए भाव में नृत्य करूँगा?"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.156) में आया है।

कृष्णे 'रतिर' चिह्न एइ कैलुँ विवरण ।

'कृष्ण-प्रेमेर' चिह्न एबे शुन सनातन ॥ 38 ॥

कृष्णे-कृष्ण के प्रति; रतिर-आकर्षण के; चिह्न-लक्षण; एइ-सभी; कैलुँ विवरण-मैंने वर्णन किये; कृष्ण-प्रेमेर-भगवान् कृष्ण के लिए प्रेम के; चिह्न-चिह्न; एबे–अब; शुन सनातन–सुनो, हे सनातन।

अनुवाद

"जिस व्यक्ति ने कृष्ण के लिए आकर्षण (भाव) उत्पन्न कर लिया है, ये उसके लक्षण हैं। अब मुझे उस व्यक्ति के लक्षण बताने दो, जिसने सचमुच कृष्ण-प्रेम प्राप्त कर लिया है। हे सनातन, इसे मुझसे सुनो।"

याँर चित्ते कृष्ण-प्रेमा करये उदय ।

ताँर वाक्य, क्रिया, मुद्रा विज्ञेह ना बुझय ॥ 39॥

याँर चित्ते-जिसके हृदय में; कृष्ण-प्रेमा-कृष्ण-प्रेम; करये उदय-जाग जाता है; ताँर-उसके; वाक्य-वचनों को; क्रिया-कार्यों को; मुद्रा-लक्षणों को; विज्ञेह-एक विद्वान भी; ना बुझय-नहीं समझ सकता।

अनुवाद

जो व्यक्ति भगवत्प्रेम को प्राप्त कर चुका है, उसके शब्दों, कार्यों तथा लक्षणों को बड़े से बड़ा विद्वान भी नहीं समझ सकता।

धन्यस्यायं नव-प्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि ।

अन्तर्वाणिभिरप्यस्य मुद्रा सुष्ठ सु-दुर्गमा ॥40॥

धन्यस्य–एक महा भाग्यवान व्यक्ति के; अयम्-यह; नवः–नया; प्रेमा-भगवत्प्रेम; यस्य–जिसका; उन्मीलति-प्रकट हो जाता है; चेतसि-हृदय में; अन्तर्-वाणिभिः-शास्त्रज्ञ व्यक्तियों द्वारा; अपि-भी; अस्य-उसके; मुद्रा–लक्षण; सुष्ठ-अत्यधिक; सु-दुर्गमा-समझना कठिन है।

अनुवाद

“जिस महापुरुष के हृदय में भगवत्प्रेम जाग्रत हो चुका है, उसके कार्यों तथा लक्षणों को बड़े से बड़ा विद्वान भी नहीं समझ सकता।”

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.4.17) में पाया जाता है।

एवं-व्रतः स्व-प्रिय-नाम-कीर्यो

जातानुरागो द्रुत-चित्त उच्चैः ।

हसत्यथो रोदिति रौति गायत्य

उन्माद-वन्नृत्यति लोक-बाह्यः ॥41॥

एवम्-व्रतः-जब कोई इस प्रकार नाम कीर्तन तथा नृत्य के व्रत में लग जाता है; स्व-अपने; प्रिय–अति प्रिय; नाम-पवित्र नाम के; कीर्त्या-कीर्तन द्वारा; जात-इस प्रकार विकसित करता है; अनुरागः-अनुराग; द्रुत-चित्तः-अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक; उच्चैः-ऊँचे स्वर में; हसति-हँसता है; अथो-तथा; रोदिति-रोता है; रौति–विचलित हो जाता है; गायति–गाता है; उन्माद-वत्-एक पागल की तरह; नृत्यति-नाचता है; लोक-बाह्यः-बाहरी लोगों की परवाह किये बिना।

अनुवाद

“जब मनुष्य वास्तव में उन्नत होता है और अपने प्रिय भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने में आनन्द का अनुभव करता है, तब वह संक्षोभित होकर उच्च स्वर से भगवन्नाम का कीर्तन करता है। वह बाहरी लोगों की परवाह न करते हुए पागल की तरह हँसता है, रोता है, उत्तेजित होता है और कीर्तन करता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.2.40) से उधृत है।

प्रेमा क्रमे बाड़ि' हय—स्नेह, मान, प्रणय।

राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय ॥42॥

प्रेमा-भगवत्प्रेम; क्रमे-क्रमपूर्वक; बाड़ि-बढ़कर; हय हो जाता है; स्नेह-स्नेह; मान-स्नेह के कारण मान; प्रणय-प्रणय; राग-राग या आसक्ति; अनुराग–अनुराग; भाव-भाव; महा-भाव-महाभाव; हय हो जाता है।

अनुवाद

"इस तरह भगवत्प्रेम बढ़ता जाता है और वह स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव तथा महाभाव के रूप में प्रकट होता है।"

बीज, इक्षु, रस, गुड़ तबे खण्ड-सार।

शर्करा, सिता-मिछरि, शुद्ध-मिछरि आर ॥43॥

बीज-बीज; इक्षु-गन्ने के पौधे; रस-रस; गुड़-गुड़; तबे-फिर; खण्ड-सार-चीनी; शर्करा-साफ चीनी; सिता-मिछरि–मिश्री; शुद्ध-मिछरि-शुद्ध मिश्री; आर-तथा।

अनुवाद

"इस तरह के विकास की उपमा गन्ने के बीज, गन्ने के पौधे, गन्ने के रस, गुड़, खांड, साफ चीनी, मिश्री और शुद्ध मिश्री से दी जाती है।"

इहा यैछे क्रमे निर्मल, क्रमे बाड़े स्वाद।

रति-प्रेमादिर तैछे बाड़ये आस्वाद ॥44॥

इहा-यह; यैछे-जैसे; क्रमे क्रमपूर्वक; निर्मल-शुद्ध; क्रमे क्रमपूर्वक; बाड़े-बढ़ता है; स्वाद-स्वाद; रति-रति से; प्रेम-आदिर-भगवत्प्रेम आदि का; तैछे-इस प्रकार; बाड़ये-बढ़ता है; आस्वाद-स्वाद।

अनुवाद

"जिस प्रकार चीनी को धीरे-धीरे शुद्ध करते रहने पर उसका स्वाद बढ़ता जाता है, उसी तरह यह समझना चाहिए कि जब भगवत्प्रेम जिसकी उपमा बीज से दी जाती है, रति के स्तर से आगे बढ़ता है, तो उसका स्वाद बढ़ता जाता है।"

अधिकारि-भेदे रति—पञ्च परकार।

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर आर ॥45॥

अधिकारि-अधिकारी के; भेदे-भेद के अनुसार; रति-रति; पञ्च परकार–पाँच प्रकार की है; शान्त-शान्त; दास्य-दास्य; सख्य-सख्य; वात्सल्य-वात्सल्य; मधुर-माधुर्य प्रेम; आर-तथा।

अनुवाद

"इन (स्नेह, मान आदि) दिव्य गुणों से युक्त पात्र के अनुसार रस पाँच प्रकार के हैं-शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य।"

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु में रति का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

व्यक्तं मसृणितेवान्तर लक्ष्यते रतिलक्षणम्।

मुमुक्षुप्रभृतीनां चेद् भवेद् एषा रतिर्न हि ॥

किन्तु बालचमत्कारकारी तच्चिह्नवीक्षया।

अभिज्ञेन सुबोधोऽयं रत्याभासः प्रकीर्तितः ॥

प्रेम-बीज के अंकुरण के वास्तविक लक्षण (रति) इसलिए प्रकट होते हैं, क्योंकि हृदय द्रवित रहता है। जब ऐसे लक्षण ज्ञानी तथा कर्मी में प्रकट हों, तब उन्हें रति के वास्तविक लक्षण नहीं माने जा सकते। भक्ति के ज्ञान से रहित मूर्ख लोग रति के ऐसे लक्षणों की तब भी प्रशंसा करते हैं, जब वे कृष्ण की सेवा करने की आकांक्षा के स्थान पर अन्य किसी वस्तु पर आश्रित होते हैं। किन्तु भक्ति में दक्ष व्यक्ति ऐसे लक्षणों को रति-आभास कहता है।

एइ पञ्च स्थायी भाव हय पञ्च 'रस' ।

ये-रसे भक्त 'सुखी', कृष्ण हय 'वश' ॥46॥

एइ पञ्च-ये पाँच प्रकार के दिव्य रस; स्थायी भाव-स्थाई दिव्य भाव; हय-हो जाते हैं; पञ्च रस-पाँच प्रकार के दिव्य रस; ग्रे-से-एक विशिष्ट रस में; भक्त सुखी-भक्त सुखी होता है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; हय-हो जाते हैं; वश–वश में।

अनुवाद

"ये पाँचों दिव्य रस स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं। भक्त इनमें से किसी एक के प्रति आकृष्ट हो सकता है और इस तरह वह सुखी हो जाता है। कृष्ण भी ऐसे भक्त की ओर उन्मुख होते हैं और उसके वश में हो जाते हैं।"

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (2.5.1) में स्थायी भाव का वर्णन इस प्रकार मिलता है :

अविरुद्धान् विरुद्धांश्च भावान् यो वशतां नयन् ।

सुराजेव विराजेत स स्थायी भाव उच्यते ॥

स्थायी भावोऽत्र स प्रोक्तः श्रीकृष्णविषया रतिः ॥

“ये भाव अनुकूल (हँसना आदि) तथा प्रतिकूल (क्रोध आदि) भावों को वश में करने वाले हैं। जब ये भाव राजा के समान बने रहते हैं, तब ये स्थायी भाव कहलाते हैं। कृष्ण के प्रति निरन्तर भावात्मक प्रेम स्थायी भाव कहलाता है।”

प्रेमादिक स्थायि-भाव सामग्री-मिलने ।

कृष्ण-भक्ति रस-रूपे पाय परिणामे ॥47॥

प्रेम-आदिक-शान्त, दास्य आदि से प्रारम्भ होने वाला भगवत्प्रेम; स्थायि-भाव-स्थाई भाव; सामग्री-मिलने-अन्य सामग्रियों से मिलकर; कृष्ण-भक्ति-भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा; रस-रूपे-दिव्य रसों के रूप में; पाय-हो जाते हैं; परिणामे–परिवर्तन द्वारा।

अनुवाद

“जब स्थायी भावों (शान्त, दास्य आदि) को अन्य सामग्री के साथ मिला दिया जाता है, तब भगवद्भक्ति रूपान्तरित होकर रसों से युक्त हो जाती है।”

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.4-5) में निम्नलिखित परिभाषा दी हुई है :

अथास्याः केशवरतेर्लक्षिताया निगद्यते ।

सामग्रीपरिपोषेण परमा रसरूपता ॥

विभावैरनुभावश्च सात्त्विकैयभिचारिभिः ।

स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानाम् आनीता श्रवणादिभिः ।

एषा कृष्णरतिः स्थायी भावो भक्तिरसो भवेत् ॥

“जैसाकि पहले कहा जा चुका है, कृष्ण या केशव के प्रति प्रेम रसों से युक्त होकर सर्वोच्च अवस्था को तब प्राप्त होता है, जब इसकी सामग्रियों की पूर्ति हो जाती है। विभाव, अनुभाव, सात्त्विक तथा व्यभिचारी के द्वारा श्रवण तथा कीर्तन में गति आती है और भक्त कृष्ण-प्रेम का आस्वादन कर सकता है। तब कृष्ण के प्रति अनुरक्ति या स्थायी भाव भक्ति-रस बन जाता है।”

विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी।

स्थायि-भाव ‘रस’ हय एइ चारि मिलि’ ॥48॥

विभाव-विशेष भाव; अनुभाव-अनुभाव; सात्त्विक-सात्त्विक भाव; व्यभिचारी-व्याभिचारी भाव; स्थायि-भाव-स्थायी भाव; रस-रस; हय-बन जाते हैं; एइ चारि-ये चारों; मिलि’–मिलकर।

अनुवाद

“विभाव (विशेष भाव), अनुभाव (अधीनस्थ भाव), सात्त्विक (स्वाभाविक भाव) तथा व्यभिचारी भाव के मिश्रण से स्थायी भाव अधिकाधिक स्वादयुक्त दिव्य रस बन जाता है।”

दधि येन खण्ड-मरिच-कर्पूर-मिलने।

‘रसालाख्य’ रस हय अपूर्वास्वादने ॥49॥

दधि-दही; येन-जिस प्रकार; खण्ड-चीनी; मरिच-काली मिर्च; कर्पूर-कपूर से; मिलने-मिलकर; रसाल-आख्य–स्वादिष्ट लगती है; रस–रस; हय-बन जाते हैं; अपूर्व-आस्वादने-अपूर्व रूप से आस्वादन द्वारा।

अनुवाद

“जब दही में खांड, काली मिर्च तथा कपूर मिला दिये जाते हैं, तो वह अत्यन्त स्वादिष्ट बन जाता है। ठीक वैसे ही जब स्थायी भाव अन्य भाव-लक्षणों से मिलता है, तो वह अपूर्व स्वादिष्ट बन जाता है।”

द्विविध विभाव',—आलम्बन, उद्दीपन।

वंशी-स्वरादि—'उद्दीपन', कृष्णादि—'आलम्बन' ॥50॥

द्वि-विध-दो प्रकार के; विभाव-विभाव (विशिष्ट भाव); आलम्बन-सहारा; उद्दीपन-जागरण; वंशी-स्वर-आदि-वंशी के स्वर आदि; उद्दीपन-उद्दीपन; कृष्ण-आदि-कृष्ण आदि; आलम्बन-आलंबन्।

अनुवाद

"विभाव के दो प्रकार हैं-एक आलम्बन तथा दूसरा उद्दीपन। कृष्ण की वंशी-ध्वनि उद्दीपन का उदाहरण है और साक्षात् कृष्ण आलम्बन के उदाहरण हैं।"

'अनुभाव'—स्मित, नृत्य, गीतादि उद्भास्वर।

स्तम्भादि—'सात्त्विक' अनुभावेर भितर ॥51॥

अनुभाव-अधीनस्थ भाव; स्मित-मुस्कान; नृत्य-नृत्य; गीत-आदि-गीत आदि; उद्भास्वर-शारीरिक भावों के लक्षण; स्तम्भ-आदि-स्तब्ध होना आदि; सात्त्विक-स्वाभाविक; अनुभावेर भितर–अनुभाव की श्रेणी में।

अनुवाद

"हँसना, नाचना, गाना तथा शरीर के विभिन्न प्रकट लक्षण अनुभाव (अधीनस्थ भाव) के अन्तर्गत आते हैं। स्तम्भ इत्यादि सात्त्विक भावों को अनुभावों के अन्तर्गत माना जाता है।"

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.14) में विभाव की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :

तत्र ज्ञेया विभावास्तु रत्यास्वादनहेतवः।

ते द्विधालम्बना एके तथैवोद्दीपनाः परे ॥

“कृष्ण-प्रेम का आस्वादन कराने वाला कारण विभाव कहलाता है। विभाव की दो कोटियाँ हैं- आलम्बन तथा उद्दीपन।”

अग्निपुराण में कहा गया है कि :

विभाव्यते हि रत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते ।

विभावो नाम स द्वैधालम्बनोद्दीपनात्मकः ॥

“जिससे कृष्ण-प्रेम प्रकट हो वह विभाव कहलाता है। इसके दो विभाग होते हैं-आलम्बन (जिसमें प्रेम प्रकट होता है) तथा उद्दीपन (जिससे प्रेम प्रकट होता है)।”

भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.16) में आलम्बन के विषय में कहा गया है :

कृष्णश्च कृष्णभक्ताश्च बुधैरालम्बना मताः ।

रत्यादेर्वीषयत्वेन तथाधारतयापि च ॥

“प्रेम का लक्ष्य कृष्ण है और उस प्रेम को धारण करने वाला पात्र कृष्ण का भक्त है। विद्वान लोग दोनों ही को आलम्बन या आधार कहते हैं।” इसी प्रकार उद्दीपन का विवरण इस प्रकार दिया गया है :

उद्दीपनास्तु ते प्रोक्ता भावमुद्दीपयन्ति ये ।

ते तु श्रीकृष्णचन्द्रस्य गुणाश्चेष्टाः प्रसाधनम् ।

“जो वस्तुएँ भावमय प्रेम को उद्दीपित (जागृत) करें, वे उद्दीपन कहलाती हैं। यह उद्दीपन कृष्ण के गुणों तथा कार्यों के साथ-साथ उनकी श्रृंगार-शैली तथा केशसज्जा द्वारा सम्भव होता है।” (भक्तिरसामृतसिन्धु 2.1.301) भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.302) भी उद्दीपन के निम्नलिखित अतिरिक्त उदाहण देता है :

स्मिताङ्गसौरभे वंशशृंगनूपुरकम्बवः ।

पदाङक्षेत्रतुलसी भक्ततद्वासरादयः ॥

“कृष्ण की हँसी, उनके दिव्य शरीर की सुगन्धि, उनकी बांसुरी, बिगुल, नूपुर, शंख, चरणों में बने चिह्न, उनका आवास, उनका प्रिय पौधा (तुलसी), उनके भक्त तथा उनकी भक्ति से सम्बन्धित व्रत-उपवास- ये भावमय प्रेम के लक्षणों को उद्दीपित करने वाले हैं।”

भक्तिरसामृतसिन्धु (2.2.1) में अनुभाव का वर्णन इस प्रकार दिया गया है :

अनुभावास्तु चित्तस्थभावानामवबोधकाः ।

ते बहिर्विक्रिया प्रायाः प्रोक्ता उद्भास्वराख्यया ॥

“वे अनेक बाह्य भाव लक्षण या शारीरिक विकृतियाँ जो मन के भावों को सूचित करती हैं और जो उद्भास्वर भी कहलाती हैं, अनुभाव अर्थात् प्रेम की अधीनस्थ भावमय अभिव्यक्तियाँ हैं। इनमें से कुछ लक्षण हैं-नृत्य करना, गिर जाना, भूमि पर लोटना, जोर-जोर से गाना तथा रोना, शरीर में विकार, जोर-जोर से शब्द करना, अंगड़ाना, दीर्घ निःश्वास, अन्यों की परवाह न करना, लार टपकाना (लालास्त्राव), उन्मत्त हँसी (अट्टहास), थूकना, हिक्का इत्यादि। ये सभी लक्षण दो विभागों में रखे जाते हैं-शीत तथा क्षेपण। गाना, अँगड़ाना आदि शीत कहलाते हैं एवं नाचना, शारीरिक विकार क्षेपण कहलाते हैं।”

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में उद्भास्वर का वर्णन वैदिक शास्त्रों के आधार पर इस प्रकार करते हैं :

उद्भासन्ते स्वधाम्निति प्रोक्ता उद्भास्वरा बुधैः

नीव्युत्तरीयधम्मिल्लस्रंसनं गात्रमोटनम्

जृम्भा घ्राणस्य फुल्लत्वं निश्वासाद्याश्वते मताः

“भावमय प्रेम में किसी व्यक्ति के बाह्य शरीर में प्रकट होने वाले लक्षणों को विद्वज्जन उद्भास्वर कहते हैं। इनमें से अधोवस्त्र की गांठ ढीली होना तथा उत्तरीय वस्त्र एवं केश का बिखरना कुछेक लक्षण हैं। अन्य लक्षण हैं-शारीरिक विकार, अंगड़ाना, नथुनों के अगले भाग का फूलना, तेजी से श्वास चलना, हिचकी आना, गिर जाना तथा भूमि पर लोटना। भावात्मक प्रेम के ये बाह्य प्रदर्शन हैं।” स्तम्भ तथा अन्य लक्षणों का वर्णन मध्यलीला 14.167 में हुआ है।”

निर्वेद-हर्षादि—तेत्रिश ‘व्यभिचारी’ ।

सब मिलि’ ‘रस’ हय चमत्कार-कारी ॥52॥

निर्वेद-हर्ष-आदि–निर्वेद, हर्ष आदि; तेत्रिश-33; व्यभिचारी-व्यभिचारी; सब मिलि’-सब मिलकर; रस-रस; हय-बन जाते हैं; चमत्कार-कारी-आश्चर्य के कारण।

अनुवाद

“निर्वेद, हर्ष इत्यादि अन्य अवयव भी हैं। सब मिलाकर 33 प्रकार हैं और जब ये सब एकजुट होते हैं, तो रस अत्यन्त चमत्कारी बन जाता है।”

तात्पर्य

निर्वेद, हर्ष आदि लक्षणों की व्याख्या मध्यलीला 14.167 में हुई है। भक्तिरसामृतसिन्धु में व्यभिचारी भावों का वर्णन इस प्रकार दिया गया है :

अथोच्यन्ते त्रयस्त्रिंशद्भावा ये व्यभिचारिणः ।

विशेषेणाभिमुख्येन चरन्ति स्थायिनं प्रति ।

वागंगसत्त्वसूच्या ये ज्ञेयास्ते व्यभिचारिणः ॥

सञ्चारयन्ति भावस्य गतिं सञ्चारिणोऽपि ते ।

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति स्तायिन्यमृतवारिधौ।

ऊर्मिवद्वर्धयन्त्येनं यान्ति तदूपतां च ते॥

संचारी तत्त्व लैंतिस हैं, जिन्हें व्यभिचारी भाव कहा जाता है। ये स्थायी भावों के सहायकों के रूप में आसपास रहते हैं। ये शब्दों द्वारा, शरीर के विभिन्न अंगों में दिख रहे लक्षणों द्वारा तथा हृदय की विशेष दशाओं द्वारा जाने जाते हैं। चूँकि ये स्थायी भावों को गति प्रदान करते हैं, अतएव ये सञ्चारी कहलाते हैं। ये संचारी भाव स्थायी भावों में से उठते तथा गिरते रहते हैं, मानों भाव के समुद्र में लहरे हों। फलस्वरूप ये व्यभिचारी कहलाते हैं।

पञ्च-विध रस—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य।

मधुर-नाम शृङ्गार-रस—सबाते प्राबल्य॥53॥

पञ्च-विध रस-पाँच प्रकार के रस; शान्त-शान्त; दास्य-सेवा; सख्य–मैत्री; वात्सल्य-माता-पिता का स्नेह; मधुर-माधुर्य; नाम-नामक; शृङ्गार-रस-शृंगार रस; सबाते-उन सबमें से; प्राबल्य प्रमुख।

अनुवाद

“दिव्य रस पाँच हैं-शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस, जिसे श्रृंगार रस भी कहा जाता है। रसों में माधुर्य रस सर्वोपरि है।”

शान्त-रसे शान्ति-रति ‘प्रेम’ पर्यन्त हय।

दास्य-रति ‘राग’ पर्यन्त क्रमेत बाड़य॥54॥

शान्त-से-शान्त रस में; शान्ति-रति-शान्ति में दिव्य आसक्ति; प्रेम पर्यन्त-भगवत्प्रेम तक; हय–होती है; दास्य-रति-दास्य में रति; राग-स्वाभाविक प्रेम; पर्यन्त-तक; क्रमेत–क्रमपूर्वक; बाड़य-बढ़ता जाता है।

अनुवाद

“शान्त रस की स्थिति उस बिन्दु तक बढ़ती जाती है, जहाँ मनुष्य को भगवत्प्रेम में अभिरुचि होने लगती है। दास्य रस क्रमशः भगवान् के रागमय प्रेम (राग) तक बढ़ता जाता है।”

सख्य-वात्सल्य-रति पाय ‘अनुराग’-सीमा।

सुबलाद्येर ‘भाव’ पर्यन्त प्रेमेर महिमा ॥55॥

सख्य-सख्य में; वात्सल्य-वात्सल्य में; रति-रति; पाय-प्राप्त करती है; अनुराग-सीमा-अनुराग की सीमा तक; सुबल-आद्यैर-सुबल आदि मित्रों के; भाव-भाव; पर्यन्त–तक; प्रेमेर महिमा-भगवत्प्रेम की महिमा।

अनुवाद

‘दास्य रस के बाद सख्य रस तथा वात्सल्य रस आते हैं, जो बढ़ते-बढ़ते अनुराग की सीमा तक पहुँच जाते हैं। सुबल इत्यादि मित्रों में पाये जाने वाले प्रेम की महानता भगवान् के भावमय प्रेम के स्तर तक विस्तृत होती है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि शान्त रस भगवान् के साधारण प्रेम तक बढ़ता है। दास्य रस में भगवत्प्रेम उससे आगे बढ़कर स्नेह, मान (प्रेमाश्रित क्रोध), प्रणय तथा राग तक पहुँच जाता है। इसी प्रकार सख्य रस स्नेह, मान, प्रणय, राग तथा अनुराग तक बढ़ता है। इसी प्रकार वात्सल्य रस में होता है। सुबल जैसे व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित सख्य रस की विशेषता यह है कि यह भ्रातृप्रेम से मान, राग, अनुराग तथा अन्त में उस भाव को प्राप्त होता है, जहाँ सारे भावों के लक्षण निरन्तर विद्यमान रहते हैं।

शान्तादि रसेर ‘योग’, ‘वियोग’—दुइ भेद।

सख्य-वात्सल्ये योगादिर अनेक विभेद ॥56॥

शान्त-आदि रसेर-शान्त आदि रसों के; योग–योग; वियोग-वियोग; दुइ भेद-दो भेद; सख्य-सख्य रस में; वात्सल्ये-वात्सल्य स्नेह में; योग-आदिर-योग और वियोग के; अनेक विभेद-अनेक विभेद हैं।

अनुवाद

"इन पाँचों रसों के दो-दो विभेद होते हैं-योग (मिलन) तथा वियोग (विछोह)। सख्य तथा वात्सल्य रस में योग तथा वियोग इन दोनों के भी अनेकानेक विभेद हैं।"

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (3.2.93) में ये विभेद इस प्रकार हैं :

अयोगयोगावेतस्य प्रभेदौ कथितावुभौ

भक्तियोग के रसों में दो अवस्थाएँ होती हैं-अयोग तथा योग। अयोग (वियोग) का वर्णन भक्तिरसामृतसिन्धु (3.2.94) में इस प्रकार हुआ है :

सङ्गाभावो हरेरैरयोग इति कथ्यते ।

अयोगे त्वन्मनस्कत्वं तदुणाद्यनुसन्धयः ।

तत्प्राप्त्युपायचिन्ताद्याः सर्वेषां कथिताः क्रियाः ॥

भक्तियोग के विज्ञान में निपुण पण्डितों का कहना है कि जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की संगति का अभाव होता है, तब अयोग होता है। अयोग (वियोग) की स्थिति में मन कृष्णभावना से पूरित रहता है और कृष्ण के ही विचारों में पूर्णतया मग्न रहता है। इस अवस्था में भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्

के दिव्य गुणों की खोज करता है। कहा जाता है कि अयोग की इस स्थिति में विभिन्न रसों में सारे भक्तगण सदैव यही सोचते रहते हैं कि किस प्रकार कृष्ण की संगति प्राप्त की जाए।

'योग' (मिलन) शब्द का वर्णन भक्तिरसामृतसिन्धु (3.2.129) में इस प्रकार किया गया है :

कृष्णेन सङ्गमो यस्तु स योग इति कीर्त्यते ।

"जब कृष्ण से साक्षात् भेंट हो जाय तो उसे योग कहते हैं।"

शान्त तथा दास्य के दिव्य रसों में भी योग तथा वियोग के विभाग पाये जाते हैं, किन्तु उनमें विविधता नहीं होती। योग तथा वियोग–ऐसे ही दो विभेद पाँचों रसों में सदैव विद्यमान रहते हैं। किन्तु सख्य तथा वात्सल्य के दिव्य रसों में योग तथा वियोग के अनेक प्रकार पाये जाते हैं। योग के प्रकारों का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

योगोऽपि कथितः सिद्धिस्तुष्टिः स्थितिरिति त्रिधा

"योग (मिलन) तीन प्रकार का होता है-सिद्धि, तुष्टि तथा स्थायित्व।" (भक्तिरसामृतसिन्धु 3.2.129)
अयोग (वियोग) के विभेद इस प्रकार वर्णित है :

उत्कण्ठितं वियोगश्चेत्ययोगोऽपि द्विधोच्यते

"अयोग के दो विभाग हैं-उत्कण्ठा तथा वियोग।" (भक्तिरसामृतसिन्धु 3.2.95)

'रूढ़', 'अधिरूढ़' भाव—केवल 'मधुरे' ।

महिषी-गणेर 'रूढ़', 'अधिरूढ़' गोपिका-निकरे ॥57॥

रूढ़-उन्नत; अधिरूढ़-अत्यन्त उन्नात; भाव-भाव; केवल–केवल; मधुरे–माधुर्य प्रेम के दिव्य रस में; महिषी-गणेर-द्वारका की रानियों का; रूढ़-उन्नत; अधिरूढ़-अत्यन्त उन्नत; गोपिका-निकरे-गोपियों में।

अनुवाद

“केवल श्रृंगार (मधुर) रस में ही दो भाव-लक्षण मिलते हैं, जिन्हें रूढ़ (उन्नत) तथा अधिरूढ़ (अत्यधिक उन्नत) कहा जाता है। रूढ़ भाव द्वारका की पटरानियों में पाया जाता है और अधिरूढ़ भाव गोपियों में पाया जाता है।”

तात्पर्य

अधिरूढ़ भावों की व्याख्या उज्वल-नीलमणि (स्थायी भाव प्रकरण 170) में दी गई है :

रूढोक्तेभ्योऽनुभावेभ्यः कामप्याप्ता विशिष्टताम् ।

यत्रानुभावा दृश्यन्ते सोऽधिरूढो निगद्यते ॥

माधुर्य प्रेम का अत्यन्त मधुर आकर्षण स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग भाव तथा महाभाव से होता हुआ वर्धित होता है। महाभाव दशा के अन्तर्गत रूढ़ तथा अधिरूढ़ निहित हैं। ये स्तर केवल माधुर्य प्रेम में ही सम्भव हैं। रूढ़ भाव द्वारका में पाया जाता है, जब कि अधिरूढ़ भाव गोपियों में पाया जाता है।

अधिरूढ़-महाभाव—दुइ त’ प्रकार ।

सम्भोगे ‘मादन’, विरहे ‘मोहन’ नाम तार ॥58॥

अधिरूढ़-महाभाव-उत्यधिक उन्नत महाभाव; दुइ त’ प्रकार-दो प्रकार के हैं; सम्भोगे-मिलन में; मादन-मादन; विरहे-विरह में; मोहन–मोहन; नाम-नाम; तार-उनका।

अनुवाद

“अधिरूढ़ महाभाव के दो प्रकार होते हैं-मादन तथा मोहन। परस्पर मिलन मादन कहलाता है और विरह मोहन कहलाता है।”

‘मादने’—चुम्बनादि हय अनन्त विभेद।

‘उद्घूर्णा’, ‘चित्र-जल्प’–‘मोहने’ दुई भेद ॥59॥

मादने-मादन दशा में; चुम्बन-आदि-चूमना आदि क्रियाओं के; हय-होते हैं; अनन्त विभेद-असीमित विभेद; उद्घूर्णा-अस्थिरता; चित्र-जल्प–अनेक उन्मत्त वार्ताएँ; मोहने-मोहन दशा में; दुइ भेद-दो भेद।

अनुवाद

“मादन भाव के अन्तर्गत चुम्बन तथा अन्य अनेक लक्षण आते हैं, जिनकी कोई गिनती नहीं है। मोहन अवस्था के दो विभेद हैं-उद्घूर्णा (अस्थायित्व) तथा चित्र-जल्प (पागलों का-सा प्रलाप)।”

तात्पर्य

अधिक जानकारी के लिए मध्यलीला 1.87 देखें।

चित्र-जल्पेर दश अङ्ग—प्रजल्पादि-नाम।

‘भ्रमर-गीता’र दश श्लोक ताहाते प्रमाण ॥ 60॥

चित्र-जल्पेर-उन्मत्त वार्ताओं के; दश–दस; अङ्ग-भाग; प्रजल्प-आदि-नाम-प्रजल्प इत्यादि नामक; भ्रमर-गीतार-राधारानी की भौंरे के साथ वार्ता (श्रीमद्भागवत, दसवाँ स्कन्ध, अध्याय 47) का; दश श्लोक-दस श्लोक; ताहाते-उस विषय में; प्रमाण-प्रमाण।

अनुवाद

“चित्रजल्प के अन्तर्गत दस विभाग हैं, जिन्हें प्रजल्प तथा अन्य नामों से पुकारा जाता है। इसका प्रमाण है श्रीमती राधारानी द्वारा कहे गये दस श्लोक, जो 'भ्रमर-गीत’ के नाम से विख्यात हैं।”

तात्पर्य

काल्पनिक प्रलाप चित्रजल्प कहलाता है, जिसके दस विभेद हैं-प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, संजल्प, अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प, प्रतिजल्प तथा सुजल्प।

उद्घूर्णा, विवश-चेष्टा—दिव्योन्माद-नाम।

विरहे कृष्ण-स्फूर्ति, आपनाके 'कृष्ण'-ज्ञान॥ 61॥

उद्घूर्णा-अस्थिरता; विवश-चेष्टा-गर्वपूर्ण चेष्टा; दिव्य-उन्माद-नाम-दिव्य उन्माद नामक; विरहे-विरह में; कृष्ण-स्फूर्ति-कृष्ण की स्फूर्ति; आपनाके–स्वयं को; कृष्ण-ज्ञान-कृष्ण मानकर।

अनुवाद

"उद्घूर्णा (अस्थायित्व) तथा विवश-चेष्टा (गर्वपूर्ण कार्य) दिव्य उन्मत्तता के अंग हैं। कृष्ण के विरह में भक्त को कृष्ण के प्राकट्य की अनुभूति होती है और वह अपने आपको कृष्ण सोचने लगता है।"

'सम्भोग'-'विप्रलम्भ'-भेदे द्विविध शृङ्गार।

सम्भोगेर अनन्त अङ्ग, नाहि अन्त तार॥ 62॥

सम्भोग-मिलन के; विप्रलम्भ-विरह के; भेदे-दो भेदों में; द्वि-विध शृङ्गार-दो प्रकार के श्रृंगार हैं; सम्भोगेर-संभोग या मिलन की अवस्था के; अनन्त अङ्ग-असीमित भाग; नाहि-नहीं; अन्त–अन्त; तार–उनका।

अनुवाद

"श्रृंगार के दो विभाग हैं-सम्भोग (मिलन) तथा विप्रलम्भ (वियोग)। सम्भोग स्तर पर अनेक विभेद हैं, जिनका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।"

तात्पर्य

उज्ज्वल नीलमणि (विप्रलम्भ प्रकरण 3-4) में विप्रलम्भ का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

यूनोरयुक्तयोर्भावो युक्तयोर्वाथ यो मिथः

अभिष्टलिंगनादीनाम् अनवाप्तौ प्रकृष्यते

स विप्रलम्भो विज्ञेयः सम्भोगोन्नतिकारकः ॥

न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।

"जब प्रेमी तथा प्रेमिका मिलते हैं, तो वे युक्त कहलाते हैं। इस मिलन के पूर्व वे अयुक्त कहलाते हैं। चाहे युक्त हों या अयुक्त, उनमें एक-दूसरे का आलिंगन तथा चुम्बन न कर सकने के कारण उठने वाला प्रेम भाव विप्रलम्भ कहलाता है। यह विप्रलम्भ मिलन के समय भावों का पोषण करता है।" इसी तरह सम्भोग का वर्णन निम्नलिखित श्लोक में किया गया है, जिसे श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में वैदिक साहित्य से उद्धत किया है :

दर्शनालिङ्गनादीनाम् आनुकूल्यान्निषेवया।

यूनोरुल्लासमारोहन भावः सम्भोग ईर्यते।

"एक दूसरे से मिलने तथा आलिंगन करने का उद्देश्य प्रेमी तथा प्रेमिका दोनों को सुख देना होता है। जब यह अवस्था अधिकाधिक उल्लासमयी हो जाती है, तो इससे उत्पन्न भाव सम्भोग कहलाता है।" जाग्रत हो जाने पर सम्भोग की चार कोटियाँ हो जाती हैं :

(1) पूर्व-राग-अनन्तर-पूर्व-राग (मिलन के पूर्व की आसक्ति) के बाद सम्भोग को संक्षिप्त कहा जाता है।

(2) मान-अनन्तर—मान (प्रेमयुक्त क्रोध) के बाद सम्भोग को संकीर्ण कहा जाता है।

(3) किञ्चिद्-दूरप्रवास-अनन्तर-कुछ काल तक थोड़ी दूरी पर रहने के बाद सम्भोग सम्पन्न कहलाता है।

(4) सुदूर-प्रवास-अनन्तर—बहुत दूर रहने के बाद सम्भोग समृद्धिमान (पूर्ण) कहलाता है।

जब प्रेमी-प्रेमिका का मिलन स्वप्न में होता है, तो उसके भी यही चार विभाग होते हैं।

'विप्रलम्भ' चतुर्विध—पूर्व-राग, मान।

प्रवासाख्य, आर प्रेम-वैचित्य-आख्यान॥ 63॥

विप्रलम्भ-विरह; चतुर्-विध–चार प्रकार का; पूर्व-राग-पूर्वराग; मान-मान; प्रवास-आख्य-प्रवास नामक; आर-तथा; प्रेम-वैचित्त्य-प्रेम वैचित्त्य; आख्यान-नामक।

अनुवाद

"विप्रलम्भ के चार विभाग होते हैं-पूर्व-राग, मान, प्रवास तथा प्रेमवैचित्त्य।"

तात्पर्य

उज्ज्वल नीलमणि (विप्रलम्भ प्रकरण 5) में पूर्व-राग का वर्णन हुआ है :

रतिर्या संगमात् पूर्वं दर्शनश्रवणादिजा।

तयोरुन्मीलति प्राज्ञैः पूर्वरागः स उच्यते॥

"जब प्रेमी तथा प्रेमिका में मिलने के पूर्व देखने, सुनने इत्यादि से उत्पन्न आसक्ति विभाव तथा अनुभाव जैसे चार घटकों के मिश्रण से अत्यन्त आस्वाद्य बन जाती है, तो उसे पूर्वराग कहते हैं।"

मान का वर्णन उज्जवल नीलमणि (विप्रलम्भ प्रकरण 68) में भी मिलता है :

दम्पतयोर्भाव एकत्र सतोरप्यनुरक्तयोः।

स्वाभिष्टाश्लेषवीक्षादि निरोधी मान उच्यते ॥

“मान शब्द प्रेमी तथा प्रेमिकाओं द्वारा अनुभव किये गये भाव का सूचक है, चाहे वे एक स्थान में हों या अलग-अलग। यह भाव उन्हें एक दूसरे को देखने तथा आलिंगन करने से रोकता है, यद्यपि वे एक दूसरे के प्रति अनुरक्त रहते हैं।”

प्रवास की व्याख्या उज्जवल नीलमणि (विप्रलम्भ प्रकरण 139) में भी निम्न प्रकार से हुई है :

पूर्वसङ्गतयोयूनोर्भवेद् देशान्तरादिभिः ।

व्यवधानं तु यत् प्राज्ञैः स प्रवास इतीर्यते ॥

“प्रवास उन दो प्रेमियों के वियोग का सूचक है, जो पहले घनिष्ठतापूर्वक सम्बन्धित थे। यह वियोग उनके भिन्न-भिन्न स्थानों में रहने के कारण होता है।”

इसी प्रकार प्रेमवैचित्य की व्याख्या उज्जवल नीलमणि (विप्रलम्भ प्रकरण 134) में की गई है:

प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्षस्वभावतः ।

या विशेषधियार्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्यमुच्यते ॥

“प्रेमवैचित्य उस प्रचुर प्रेम का सूचक है, जो प्रेमी के उपस्थित होते हुए भी वियोग के भय से दु:ख लाता है।”

राधिकाद्ये ‘पूर्व-राग’ प्रसिद्ध ‘प्रवास’, ‘माने’ ।

‘प्रेम-वैचित्त्य’ श्री-दशमे महिषी-गणे ॥ 64॥

राधिकाद्य–श्रीमती राधारानी तथा अन्य गोपियों में; पूर्व-राग-मिलन से पूर्व की भावनाएँ, प्रसिद्ध–प्रसिद्ध; प्रवास माने-प्रवास तथा मान भी; प्रेम-वैचित्य-वियोग के भय की भावनाएँ; श्री-दशमे-दसवें स्कन्ध में; महिषी-गणे-रानियों में।

अनुवाद

"चार प्रकार के वियोग में से तीन (पूर्वराग, प्रवास तथा मान) श्रीमती राधारानी तथा गोपियों में प्रसिद्ध हैं। द्वारका में पटरानियों में प्रेमवैचित्य का भाव अत्यन्त प्रमुख है।"

कुररि विलपसि त्वं वीत-निद्रा न शेषे

स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्त-बोधः ।

वयमिव सखि कच्चिद्गाढ़-निर्विद्ध-चेता

नलिन-नयन-हासोदार-लीलेक्षितेन ॥ 65 ॥

कुररि-हे सखी कुररी; विलपसि–रो रही हो; त्वम्-तुम; वीत-निद्रा-निद्रा रहित; न–नहीं; शेषे-विश्राम; स्वपिति–सोते हैं; जगति-संसार में; रात्र्याम्-रात को; ईश्वरः-भगवान् कृष्ण; गुप्त-बोधः-जिनकी चेतना गुप्त है; वयम्-हम; इव-जैसे; सखि–हे सखी; कच्चित्-क्या; गाढ़-गहरे; निर्विद्ध-चेताः-हृदय में भेदन; नलिन-नयन–कमल सदृश नेत्रों वाले की; हास-मुस्कान; उदार-उदार; लीला-ईक्षितेन-आमोदपूर्ण दृष्टि द्वारा।

अनुवाद

"हे सखी कुररी, अब तो रात्रि हो गई है और श्रीकृष्ण सोये हुए हैं। तुम न तो सोयी हो, न विश्राम कर रही हो, अपितु विलाप कर रही हो। क्या मैं यह मान लें कि तुम भी हमारी ही तरह कमलनेत्रों वाले कृष्ण की हासयुक्त उदार चंचल चितवन से प्रभावित हो ? यदि ऐसा है, तो तुम्हारा हृदय बुरी तरह से बिंध चुका है। क्या इसीलिए तुम निद्राविहीन विलाप के चिह्न प्रकट कर रही हो?"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.90.15) का है और कृष्ण की रानियों द्वारा बोला गया है। यद्यपि रानियाँ कृष्ण के साथ थीं, किन्तु फिर भी वे सोच रही थीं कि कहीं उनका संग छूट न जाए।

व्रजेन्द्र-नन्दन कृष्ण—नायक-शिरोमणि ।

नायिकार शिरोमणि-राधा-ठाकुराणी ॥66॥

व्रजेन्द्र-नन्दन कृष्ण-महाराज नन्द के पुत्र, भगवान् कृष्ण; नायक-शिरोमणि-सभी नायकों में सर्वश्रेष्ठ; नायिकार शिरोमणि-सभी नायिकाओं में सर्वश्रेष्ठ; राधा-ठाकुराणी-श्रीमती राधारानी।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण, जो कि नन्द महाराज के पुत्र के रूप में प्रकट हुए, अपने सारे व्यवहारों में श्रेष्ठ नायक हैं। इसी प्रकार श्रीमती राधारानी अपने व्यवहारों में सर्वोपरि नायिका हैं।"

नायकानां शिरो-रत्नं कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।

यत्र नित्यतया सर्वे विराजन्ते महा-गुणाः ॥ 67॥

नायकानाम्-सभी नायकों के; शिरः-रत्नम्-शिरोमणिः कृष्णः- भगवान् कृष्ण; तु-परन्तु; भगवान् स्वयम्-स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; यत्र-जिनमें; नित्यतया नित्य रूप से; सर्वे-सभी; विराजन्ते-रहते हैं; महा-गुणाः-दिव्य गुण।

अनुवाद

"कृष्ण तो स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और समस्त नायकों के शिरोमणि हैं। कृष्ण में सारे दिव्य उत्तम गुण स्थायी रूप से विराजते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.17) में भी आया है।

देवी कृष्ण-मयी प्रोक्ता राधिका पर-देवता ।

सर्व-लक्ष्मी-मयी सर्व-कान्तिः सम्मोहिनी परा ॥ 68 ॥

देवी-जो तीव्रता से दीप्तिमान होती है; कृष्ण-मयी-भगवान् कृष्ण से अभिन्न; प्रोक्ता–कहलाती है; राधिका–श्रीमती राधारानी; पर-देवता-सर्वाधिक पूजनीया; सर्व-लक्ष्मी-मयी-सभी लक्ष्मियों में सर्वोपरि; सर्व-कान्तिः–जिनमें समस्त कान्ति विद्यमान है; सम्मोहिनी–जिनका चरित्र भगवान् कृष्ण को पूर्ण रूप से मोहित कर देता है; परा-पराशक्ति।

अनुवाद

"दिव्य देवी श्रीमती राधारानी तो भगवान् कृष्ण की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। वे समस्त लक्ष्मियों की केन्द्रबिन्दु हैं। वे सर्वाकर्षक भगवान् को आकृष्ट करने के लिए समस्त आकर्षण से युक्त हैं। वे भगवान् की आदि अन्तरंगा शक्ति हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक बृहद्-गौतमीय-तन्त्र में पाया जाता है। इसकी व्याख्या के लिए आदिलीला 4.83-95 देखें।

अनन्त कृष्णेर गुण, चौषट्टि—प्रधान ।

एक एक गुण शुनि' जुड़ाय भक्त-काण ॥ 69॥

अनन्त-असीमित; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; गुण-गुण; चौषट्टि–64; प्रधान-मुख्य; एक एक-एक-एक करके; गुण-गुण; शुनि'–सुनकर; जुड़ाय–सन्तुष्ट होते हैं; भक्त-काण-भक्तों के कान।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण के दिव्य गुण अनन्त हैं, जिनमें से चौंसठ प्रधान माने जाते हैं। इन गुणों का क्रमशः श्रवण करने मात्र से भक्तों के कान तृप्त हो जाते हैं।”

अयं नेता सु-रम्याङ्गः सर्व-सल्लक्षणान्वितः ।

रुचिरस्तेजसा युक्तो बलीयान् वयसान्वितः ॥ 70 ॥

अयम्-यह (कृष्ण); नेता–परम नायक; सु-रम्य-अङ्गः–सर्वाधिक सुन्दर दिव्य शरीर से युक्त; सर्व-सत्-लक्षण-सभी शुभ देहचिह्नों से; अन्वितः–युक्त; रुचिरः-आँखों को आनन्द देने वाली कान्ति से युक्त; तेजसा-समस्त शक्ति के साथ; युक्तः–युक्त; बलीयान्-अत्यन्त शक्तिशाली; वयस-अन्वितः-यौवन से युक्त।

अनुवाद

“नायक शिरोमणि कृष्ण का दिव्य शरीर अत्यन्त सुन्दर है। उनका शरीर सभी शुभ लक्षणों से युक्त है। यह शरीर अत्यन्त तेजयुक्त है और आँखों को अत्यन्त सुहावना लगता है। उनका शरीर बलवान तथा यौवन से पूर्ण (किशोर) है।”

तात्पर्य

यह श्लोक तथा इसके आगे के छह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.23-29) में भी आये हैं।

विविधाद्भुत-भाषा-वित् सत्य-वाक्यः प्रियं-वदः ।

वावदूकः सु-पाण्डित्यो बुद्धिमान्प्रतिभान्वितः ॥71॥

विविध-अनेक; अद्भुत-अद्भुत; भाषा-वित्-भाषाओं के ज्ञाता; सत्य-वाक्यः-जिनके वचन सत्य होते हैं; प्रियम्-वदः-जो अत्यन्त प्रिय वचन बोलते हैं; वावदूकः-बोलने में वाक्पटु; सु-पाण्डित्यः-अत्यन्त विद्वान; बुद्धि-मान्-बुद्धिमान; प्रतिभा-अन्वितः–प्रतिभावान।

अनुवाद

“कृष्ण सारी अद्भुत भाषाओं के वेत्ता हैं। वे सत्यवादी तथा मधुरभाषी हैं। वे बोलने में चतुर (वाक्पटु) हैं और अत्यन्त बुद्धिमान, विद्वान तथा प्रतिभावान हैं।”

विदग्धश्चतुरो दक्षः कृत-ज्ञः सु-दृढ़-व्रतः ।

देश-काल-सुपात्र-ज्ञः शास्त्र-चक्षुः शुचिर्वशी ॥72॥

विदग्धः-कलात्मक आनन्द आस्वादन में दक्ष; चतुरः-चतुर; दक्षः–निपुण; कृत-ज्ञः–कृतज्ञ; सु-दृढ़-व्रतः-दृढ़ संकल्प; देश–स्थान के; काल-समय; सुपात्र–पात्र के; ज्ञः–ज्ञाता; शास्त्र-चक्षुः-शास्त्रों में दक्ष; शुचिः-अत्यन्त साफ-सुथरे; वशी–संयमी।

अनुवाद

“कृष्ण कलात्मक भोग में अत्यन्त पटु हैं। वे अत्यन्त चतुर, दक्ष, कृतज्ञ तथा अपने व्रत पर दृढ़ रहने वाले हैं। वे देश, काल तथा पात्र के अनुसार आचरण करना जानते हैं और शास्त्रों तथा प्रामाणिक ग्रन्थों के माध्यम से देखते हैं। वे अत्यन्त पवित्र तथा आत्मसंयमी हैं।”

स्थिरो दान्तः क्षमा-शीलो गम्भीरो धृतिमान्समः ।

वदान्यो धार्मिकः शूरः करुणो मान्य-मान-कृत् ॥73॥

स्थिरः-स्थिर; दान्तः–संयमित इन्द्रियों वाले; क्षमा-शीलः–क्षमाशील; गम्भीरः-गम्भीर; धृति-मान्–शान्त, जो कभी बुद्धिहीन नहीं होते; समः-समान; वदान्यः-उदार; धार्मिकः-धार्मिक; शूरः–वीर; करुणः-दयालु; मान्य-मान-कृत्-आदरणीय लोगों के प्रति सम्मान का भाव रखने वाले।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण स्थिर, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, क्षमाशील, गम्भीर तथा शान्त हैं। वे सब पर समदृष्टि रखने वाले भी हैं। साथ ही वे वदान्य, धार्मिक, शूर तथा दयालु हैं। वे सम्मानित व्यक्तियों के प्रति सदैव आदरयुक्त हैं।”

दक्षिणो विनयी ह्रीमान्शरणागत-पालकः ।

सुखी भक्त-सुहृत्प्रेम-वश्यः सर्व-शुभँ-करः ॥ 74॥

दक्षिणः-सरल और उदार; विनयी-विनम्र; ही-मान्-महिमागान करने पर लज्जाशील; शरण-आगत-पालकः-शरणागत जीवों के रक्षक; सुखी-सदैव प्रसन्न; भक्त-सुहृत्-भक्तों के शुभचिन्तक; प्रेम-वश्यः-प्रेम के वशीभूत; सर्व-शुभम्-करः-सर्व शुभकारी।

अनुवाद

“कृष्ण अत्यन्त सरल तथा उदार हैं, वे विनीत तथा लज्जाशील हैं और शरणागतों के रक्षक हैं। वे परम सुखी, अपने भक्तों के शुभचिन्तक, परम कल्याणप्रद तथा प्रेम के वशीभूत होने वाले हैं।”

प्रतापी कीर्तिमान् रक्त-लोकः साधु-समाश्रयः ।

नारी-गण-मनोहारी सर्वाराध्यः समृद्धिमान् ॥ 75 ॥

प्रतापी-अत्यन्त प्रभावशाली; कीर्ति-मान्–सत्कार्यों के लिए प्रसिद्ध; रक्त-लोकः-सभी लोगों की आसक्ति के पात्र; साधु-समाश्रयः-सज्जनों के आश्रय; नारी-गण-स्त्रियों के; मनः-हारी-मन को हरने वाले; सर्व-आराध्यः-सभी के द्वारा आराधनीय; समृद्धि-मान्-अत्यन्त धनवान।

अनुवाद

“कृष्ण अत्यन्त प्रतापी तथा विख्यात हैं और वे हर एक की अनुरक्ति के लक्ष्य हैं। वे अच्छे तथा गुणी लोगों के आश्रय हैं। वे स्त्रियों के मन को आकृष्ट करने वाले और सबके आराध्य हैं। वे अत्यन्त समृद्धिशाली हैं।”

वरीयानीश्वरश्चेति गुणास्तस्यानुकीर्तिताः ।

समुद्रा इव पञ्चाशहुर्विगाहा हरेरमी ॥ 76 ॥

वरीयान् सर्वश्रेष्ठ; ईश्वरः-परम नियन्ता; च–तथा; इति–इस प्रकार; गुणाः-दिव्य गुण; तस्य-उनके; अनुकीर्तिताः-वर्णन किये; समुद्राः-समुद्र; इव-जैसे; पञ्चाशत्-50; दुर्विगाहाः–पूर्ण रूप से वर्णन करने में कठिन; हरेः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि के; अमी-ये सभी।

अनुवाद

“कृष्ण सर्वोपरि हैं और सदैव परमेश्वर तथा नियन्ता के रूप में महिमामंडित किये जाते हैं। इस तरह उपर्युक्त सारे दिव्य गुण उनमें पाये जाते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के उपर्युक्त पचास गुण समुद्र के समान गम्भीर हैं। तात्पर्य यह है कि उन्हें पूर्णरूपेण समझ पाना कठिन है।”

जीवेष्वेते वसन्तोऽपि बिन्दु-बिन्दुतया क्वचित् ।

परिपूर्णतया भान्ति तत्रैव पुरुषोत्तमे ॥ 77॥

जीवेषु-जीवों में; एते-ये; वसन्तः-रहते हैं; अपि-यद्यपि; बिन्दु-बिन्दुतया-अत्यन्त निम्न मात्रा में; क्वचित्-कभी-कभी; परिपूर्णतया–पूर्णता के साथ; भान्ति-प्रकट होते हैं; तत्र–उनमें; एव–अवश्य; पुरुष-उत्तमे–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में।

अनुवाद

“जीवों में ये गुण कभी-कभी सूक्ष्म मात्रा में प्रकट होते हैं, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में तो ये पूरी तरह से प्रकट होते हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.30) में आया है। सारे जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अंश हैं। जैसाकि भगवद्गीता (15.7) में भगवान् कृष्ण द्वारा कहा गया है :

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

"इस भौतिक जगत् में सारे जीव मेरे सनातन विभिन्न अंश हैं। बद्ध होने के कारण वे मन समेत अपनी छहों इन्द्रियों से अत्यन्त कठिन संघर्ष करते रहते हैं।"

जीव में कृष्ण के गुणों का अत्यन्त सूक्ष्म अंश विद्यमान रहता है। स्वर्ण का एक कण भी स्वर्ण होता है, किन्तु वह स्वर्ण की खान के बराबर नहीं हो सकता। इसी तरह जीवों में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सभी गुणों की सूक्ष्म मात्रा पाई जाती है, किन्तु जीव कभी भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समान नहीं हो सकता। इसीलिए ईश्वर को परम पुरुष और जीवात्मा को जीव कहा गया है। ईश्वर समस्त जीवों में प्रधान हैं, क्योंकि वे अन्य सबकी आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं—एको बहूनां यो विदधाति कामान्। मायावादी मानते हैं कि हर प्राणी ईश्वर है, किन्तु यदि हम इस दर्शन को मान भी लें, तो कोई यह नहीं कह सकता कि प्रत्येक प्राणी प्रत्येक बात में भगवान् के समान है। केवल अज्ञानी ही मानते हैं कि हर प्राणी ईश्वर के समान है या हर प्राणी ईश्वर है।

अथ पञ्च-गुणा ये स्युरंशेन गिरिशादिषु ॥78 ॥

अथ-अब (इनके अतिरिक्त); पञ्च-गुणाः-पाँच गुण; ये-जो; स्युः-हो सकते हैं; अंशेन–अंश द्वारा; गिरिश-आदिषु-शिवजी जैसे देवताओं में।

अनुवाद

"इन पचास गुणों के अतिरिक्त भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में पाँच गुण और पाये जाते हैं, जो शिवजी जैसे देवताओं में आंशिक रूप से पाये जाते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगले सात श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.37-44) में भी आये हैं।

सदा स्वरूप-सम्प्राप्तः सर्वज्ञो नित्य-नूतनः ।

सच्चिदानन्द-सान्द्राङ्गः सर्व-सिद्धि-निषेवितः ॥79॥

अथोच्यन्ते गुणाः पञ्च ये लक्ष्मीशादि-वर्तिनः ।

अविचिन्त्य-महा-शक्तिः कोटि-ब्रह्माण्ड-विग्रहः ॥80॥

अवतारावली-बीजं हतारि-गति-दायकः ।

आत्माराम-गणाकर्षीत्यमी कृष्णे किलाद्भुताः ॥81॥

सदा-सदैव; स्वरूप-सम्प्राप्तः-अपने नित्य स्वरूप में स्थित; सर्वज्ञः-सब जानने वाले; नित्य-नूतनः-सदा नवीन; सत्-चित्-आनन्द-सान्द्र-अङ्गः-शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द के प्रगाढ़ रूप; सर्व-सिद्धि-निषेवितः–सभी योगसिद्धियों से परिपूर्ण; अथ-अब; उच्यन्ते-कहते हैं; गुणाः-गुण; पञ्च–पाँच; ये-जो; लक्ष्मी-ईश-लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु में; आदि–इत्यादि; वर्तिनः-प्रकट; अविचिन्त्य-अकल्पनीय; महा-शक्तिः–परम शक्ति से युक्त; कोटि-ब्रह्माण्ड–असंख्य ब्रह्माण्ड; विग्रहः-साकार; अवतार–अवतारों के; आवली-समूहों के; बीजम्-स्रोत; हत-अरि—उनके द्वारा मारे गये शत्रुओं को; गति-दायकः–मुक्ति देने वाले; आत्माराम-गण-जो आत्मतुष्ट हैं, उनको; आकर्षी–आकर्षित करने वाले; इति–इस प्रकार; अमी-ये; कृष्णे-कृष्ण में; किल–अवश्य; अद्भुताः-अत्यन्त अद्भुत।

अनुवाद

“ये गुण हैं (1) भगवान् सदैव अपनी मूल स्थिति में रहते हैं, (2) वे सर्वज्ञ हैं, (3) वे नित्यनूतन तथा युवा हैं, (4) वे शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द के घनीभूत रूप हैं तथा (5) वे समस्त योगसिद्धियों से युक्त हैं। इसके अतिरिक्त पाँच गुण और हैं, जो लक्ष्मीपति नारायण में वैकुण्ठ लोकों में पाये जाते हैं।

ये गुण कृष्ण में भी पाये जाते हैं, किन्तु ये गुण शिवजी इत्यादि देवताओं अथवा अन्य जीवों में नहीं पाये जाते। ये गुण हैं (1) भगवान् अचिंत्य सर्वोपरि शक्ति से युक्त हैं, (2) वे अपने शरीर से अनन्त ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति करते हैं, (3) वे समस्त अवतारों के मूल स्रोत हैं, (4) वे उनके द्वारा मारे गये शत्रुओं को मुक्ति देते हैं तथा (5) वे स्वयं-सन्तुष्ट आत्मारामों को भी आकृष्ट करते हैं। यद्यपि ये गुण वैकुण्ठ लोक के प्रधान विग्रह नारायण में पाये जाते हैं, किन्तु कृष्ण में तो ये और भी अद्भुत रूप में मिलते हैं।"

सर्वाद्भुत-चमत्कार-लीला-कल्लोल-वारिधिः ।

अतुल्य-मधुर-प्रेम-मण्डित-प्रिय-मण्डलः ॥82॥

त्रि-जगन्मानसाकर्षि-मुरली-कल-कूजितः ।

असमानोर्ध्व-रूप-श्री-विस्मापित-चराचरः ॥83॥

सर्व-अद्भुत-चमत्कार-सबको आश्चर्यचकित करने वाले; लीला-लीलाओं की; कल्लोल-लहरों से परिपूर्ण; वारिधिः-समुद्र; अतुल्य-मधुर-प्रेम-अतुलनीय माधुर्य प्रेम के साथ; मण्डित–सुसज्जित; प्रिय-मण्डलः–प्रियजनों के समूह के साथ; त्रि-जगत्-तीनों लोकों के; मानस-आकर्षि–मनों को आकर्षित करने वाली; मुरली-मुरली की; कल-कृजितः-मधुर ध्वनि; असमान-ऊर्ध्व-अद्वितीय तथा सबसे श्रेष्ठ; रूप-सौंदर्य द्वारा; श्री–तथा ऐश्वर्य; विस्मापित-चर-अचरः-चर तथा अचर जीवों को विस्मित करने वाला।

अनुवाद

"इन साठ दिव्य गुणों के अतिरिक्त कृष्ण में चार अन्य दिव्य गुण पाये जाते हैं, जो नारायण में भी नहीं पाये जाते। ये हैं-(1) कृष्ण लीलाओं की तरंगों से पूरित सागर के समान हैं, जो तीनों लोकों में हर प्राणी के भीतर आश्चर्य उत्पन्न करने वाली हैं। (2) वे अपने माधुर्य-प्रेम के कार्यकलापों में सदा

अपने प्रिय भक्तों से घिरे रहते हैं, जो उनके प्रति अप्रतिम प्रेम रखते हैं।(3) वे अपनी वंशी की मधुर ध्वनि से तीनों लोकों के मनों को आकृष्ट करने वाले हैं।(4) उनका सौन्दर्य तथा उनका ऐश्वर्य अद्वितीय है। न तो कोई उनके समान है और न उनसे बढ़कर है। इस तरह तीनों लोकों में भगवान् सारे चर एवं अचर जीवों को चमत्कृत करते हैं। वे इतने सुन्दर हैं कि वे कृष्ण कहलाते हैं।"

तात्पर्य

कम बुद्धि वाले मायावादी दार्शनिक इस विषय को यह कहकर छोड़ देते हैं कि कृष्ण का अर्थ काला होता है। कृष्ण के गुणों को न जानने के कारण ये नास्तिक मूढ़ उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार नहीं करते। यद्यपि महापुरुषों, आचार्यों तथा ऋषियों ने भगवान् को स्वीकार करते हुए उनका वर्णन किया है, किन्तु मायावादी लोग फिर भी उनकी प्रशंसा नहीं करते। दुर्भाग्यवश आज के मानव-समाज की स्थिति इतनी दयनीय है कि लोग अपने जीवन की दैनिक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते । फिर भी वे इन मायावादी दार्शनिकों द्वारा मोहित होकर सही रास्ते से भटक रहे हैं। भगवद्गीता के अनुसार, केवल कृष्ण को समझने से ही मनुष्य जन्म-मृत्य के चक्र से छूट सकता है। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।दुर्भाग्यवश कृष्णभावना का यह महान् विज्ञान कृष्ण-विरोधी इन मायावादी दार्शनिकों के कारण अवरुद्ध हो गया है। जो लोग इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रचार कर रहे हैं, उन्हें भक्तिरसामृतसिन्धु में दिये हुए कथनों से कृष्ण को समझने का प्रयास करना चाहिए।

लीला प्रेम्णा प्रियाधिक्यं माधुर्यं वेणु-रूपयोः ।

इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम् ॥84॥

एवं गुणाश्चतुर्भेदाश्चतुः-षष्टिरुदाहृताः ॥85॥

लीला-लीलाएँ; प्रेम्णा-दिव्य प्रेम के साथ; प्रिय-आधिक्यम्-अत्यन्त उन्नत भक्तों की प्रचूरता; माधुर्यम्-मधुरता; वेणु-रूपयोः-कृष्ण की वेणु तथा सुन्दरता की; इति–इस प्रकार; असाधारणम्-

असामान्य; प्रोक्तम्-कही गई हैं; गोविन्दस्य-भगवान् गोविन्द के; चतुष्टयम्-चार विशेष लक्षण; एवम्-इस प्रकार; गुणाः-दिव्य गुण; चतुः-भेदाः-चार विभागों से युक्त; चतुःषष्टिः-64; उदाहृताः-वर्णित।

अनुवाद

"कृष्ण में नारायण से बढ़कर चार विशेष दिव्य गुण हैं-उनकी अद्भुत लीलाएँ, अद्भुत संगियों की प्रचुरता (यथा गोपियाँ) जो उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं, उनका अद्भुत सौन्दर्य तथा उनकी बाँसुरी की अद्भुत ध्वनि। भगवान् कृष्ण सामान्य जीवों तथा शिवजी समान देवताओं से भी श्रेष्ठ हैं। यहाँ तक कि वे स्वांश नारायण से भी श्रेष्ठ हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में कुल मिलाकर 64 दिव्य गुण पूर्ण रूप से होते हैं।"

अनन्त गुण श्री-राधिकार, पँचिश—प्रधान।

येइ गुणेर 'वश' हय कृष्ण भगवान् ॥86॥

अनन्त गुण-असीमित गुण; श्री-राधिकार–श्रीमती राधारानी के; पँचिश–25; प्रधान मुख्य; येइ गुणेर-जिन गुणों द्वारा; वश–वश में; हय हो जाते हैं; कृष्ण-कृष्ण; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"इसी प्रकार श्रीमती राधारानी में अनन्त दिव्य गुण हैं, जिनमें से पच्चीस प्रमुख हैं। श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानी के इन्हीं दिव्य गुणों के वश में रहते हैं।"

अथ वृन्दावनेश्वर्याः कीर्त्यन्ते प्रवरा गुणाः

मधुरेयं नव-वयाश्चलापाङ्गोज्वल-स्मिता।

चारु-सौभाग्य-रेखाढूया गन्धोन्मादित-माधवा ॥87॥

सङ्गीत-प्रसराभिज्ञा रम्य-वाँ नर्म-पण्डिता।

विनीता करुणा-पूर्णा विदग्धा पाटवान्विता ॥88॥

लज्जा-शीला सु-मर्यादा धैर्य-गाम्भीर्य-शालिनी ।

सु-विलासा महाभाव-परमोत्कर्ष-तर्षिणी ॥ 89॥

गोकुल-प्रेम-वसतिर्जगच्छेणी-लस-प्रशाः ।

गुर्वर्पित-गुरु-स्नेहा सखी-प्रणयिता-वशा ॥90॥

कृष्ण-प्रियावली-मुख्या सन्तताश्रव-केशवा ।

बहुना किं गुणास्तस्याः सङ्ख्यातीता हरेरिव ॥ 91॥

अथ-अब; वृन्दावन-ईश्वर्याः-वृन्दावन की रानी (श्री राधिका) के; कीर्त्यन्ते-वर्णित किये जाते हैं; प्रवराः–मुख्य; गुणाः-गुण; मधुरा–मधुर; इयम्-यह (राधिका); नव-वयाः–युवती; चल-अपाङ्ग–अधीर नेत्रों वाली; उज्वल-स्मिता-उज्जवल मुस्कान से युक्त; चारु-सौभाग्य-रेख-आढूया-देह पर सुन्दर, शुभ रेखाओं से युक्त; गन्ध-अपने देह की अद्भुत सुगन्ध द्वारा; उन्मादित-माधवा-कृष्ण को अधीर करने वाली; सङ्गीत-गीतों के प्रसर-अभिज्ञा-विस्तार का ज्ञान रखने वाली; रम्य-वाक्-आकर्षक वाणी वाली; नर्म-पण्डिता-हास्य विनोद में निपुण; विनीता–विनम्र; करुणा-पूर्णा-कृपा से पूर्ण; विदग्धा-दक्ष; पाटव-अन्विता-अपने कर्तव्य करने में निपुण; लज्जा-शीला–शर्मीली; सु-मर्यादा-सम्मान करने वाली; धैर्य-धीर; गाम्भीर्य-शालिनी-और गम्भीर; सु-विलासा-विलास करने वाली; महा-भाव-उन्नत भावों की; परम-उत्कर्ष-सर्वोच्च सीमा पर; तर्षिणी-इच्छुक; गोकुल-प्रेम–गोकुल के (निवासियों के) प्रेम की; वसतिः-आश्रय; जगत्-श्रेणी-कृष्ण-प्रेम के आश्रय रूपी शरणागत भक्तों में; लसत्-दीप्तिमान; यशाः- जिनका यश; गुरु-बड़ों के प्रति; अर्पित-अर्पित; गुरु-स्नेहा–जिनका महान् स्नेह; सखी-प्रणयिता-वशा-अपनी गोपी सखियों के प्रेम द्वारा वशीभूत; कृष्ण-प्रिय-आवली-कृष्ण के प्रियजनों में; मुख्या-सर्वप्रमुख; सन्तत-सदैव; आश्रव-केशवाः-जिनके प्रति भगवान् केशव समर्पित हैं;

बहुना किम्-संक्षेप में; गुणाः-गुण; तस्याः–उनके; सङ्ख्यातीताः-गिनती से परे; हरेः- भगवान् कृष्ण की; इव-भाँति।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के पच्चीस दिव्य गुण इस प्रकार हैं-(1) वे अत्यन्त मधुरा हैं।(2) वे नित्य नवयौवना हैं।(3) उनकी आँखें चंचल हैं। (4) वे उज्वल हँसी हँसती हैं। (5) उनकी रेखाएँ सुन्दर तथा शुभ हैं।(6) वे कृष्ण को अपनी शारीरिक सुगन्ध से सुखी बनाती हैं।(7) वे गायन में निपुणा हैं।(8) उनकी वाणी मोहक है।(9) वे परिहास करने तथा मधुर बोलने में पटु हैं। (10) वे अत्यन्त विनीता हैं। (11) वे करुणा से पूर्ण हैं। (12) वे चतुरा हैं। (13) वे अपना कार्य करने में पटु हैं। (14) वे लज्जाशीला हैं। (15) वे सदैव आदर देवे वाली हैं। (16) वे सदैव शान्त हैं।(17) वे सदा गम्भीर रहने वाली हैं।(18) वे जीवन का आनन्द उठाने में पटु हैं।(19) वे महाभाव में स्थित रहती हैं। (20) वे गोकुल में प्रेमालापों की आगार हैं। (21) वे विनीत भक्तों में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। (22) वे गुरुजनों के प्रति स्नेह रखने वाली हैं। (23) वे अपनी सखियों के प्रेम के वश में हैं। (24) वे प्रमुख गोपी हैं। (25) वे कृष्ण को निरन्तर अपने वश में रखती हैं। संक्षेप में, वे कृष्ण की ही तरह असीम दिव्य गुणों से युक्त हैं।"

तात्पर्य

ये श्लोक उज्वल-नीलमणि के श्रीराधाप्रकरण (11-15) में प्राप्य हैं।

नायक, नायिका,—दुई रसेर 'आलम्बन' ।

सेइ दुइ श्रेष्ठ, राधा, व्रजेन्द्र-नन्दन ॥92॥

नायक-नायक; नायिका–नायिका; दुइ-दो; रसेर-रसों का; आलम्बन-आधार; सेइ-वे; दुइ-दोनों; श्रेष्ठ-श्रेष्ठ; राधा-श्रीमती राधारानी; व्रजेन्द्र-नन्दन–तथा महाराज नन्द के पुत्र, कृष्ण।

अनुवाद

"नायक तथा नायिका समस्त रसों का आधार होते हैं और श्रीमती राधारानी तथा महाराज नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ नायिका-नायक हैं।"

एइ-मत दास्ये दास, सख्ये सखा-गण ।

वात्सल्ये माता पिता आश्रयालम्बन ॥93॥

एइ-मत-इस प्रकार; दास्ये-दास्य के दिव्य भाव में; दास-सेवक; सख्ये-मित्रता के दिव्य रस में; सखा-गण-सखागण; वात्सल्ये-वात्सल्य के दिव्य रस में; माता पिता-माता तथा पिता; आश्रय-आलम्बन–प्रेम के आधार या आश्रय।

अनुवाद

"जिस तरह भगवान् कृष्ण तथा श्रीमती राधारानी माधुर्य-प्रेम के आलम्बन तथा आश्रय हैं, उसी तरह दास्य रस में महाराज नन्द के पुत्र आलम्बन तथा चित्रक, रक्तक तथा पत्रक जैसे दास आश्रय हैं। इसी प्रकार दिव्य सख्य रस में कृष्ण आलम्बन हैं और श्रीदामा, सुदामा तथा सुबल जैसे मित्र आश्रय हैं। दिव्य वात्सल्य रस में कृष्ण आलम्बन हैं और माता यशोदा तथा महाराज नन्द आश्रय हैं।"

एइ रस अनुभवे यैछे भक्त-गण ।

यैछे रस हय, शुन ताहार लक्षण ॥14॥

एइ–यह; रस-रस; अनुभवे-अनुभव में; यैछे-कैसा; भक्त-गण-भक्तों द्वारा; यैछे-कैसे; रस-रस; हय-प्रकट होता है; शुन-सुनो; ताहार-उनके; लक्षण-लक्षण।

अनुवाद

"अब यह सुनें कि रस किस तरह प्रकट होते हैं और विभिन्न पदों पर स्थित भक्तों द्वारा वे किस तरह अनुभव किये जाते हैं।"

भक्ति-निर्भूत-दोषाणां प्रसन्नोज्वल-चेतसाम् ।

श्री-भागवत-रक्तानां रसिकासङ्ग-रङ्गिणाम् ॥95॥

जीवनी-भूत-गोविन्द-पाद-भक्ति-सुख-श्रियाम् ।

प्रेमान्तरङ्ग-भूतानि कृत्यान्येवानुतिष्ठताम् ॥ 96 ॥

भक्तानां हृदि राजन्ती संस्कार-युगलोज्वला ।

रतिरानन्द-रूपैव नीयमाना तु रस्यताम् ॥ 97॥

कृष्णादिभिर्विभावाद्यैर्गतैरनुभवाध्वनि ।

प्रौढ़ानन्दश्चमत्कार-काष्ठामापद्यते पराम् ॥98॥

भक्ति-भक्ति द्वारा; निर्भूत-दोषाणाम्-जिनकी भौतिक अशुद्धताएँ धुल गई हैं; प्रसन्न-उज्वल-चेतसाम्-जिसके हृदय सन्तुष्ट तथा शुद्ध हैं; श्री-भागवत-रक्तानाम्-जो श्रीमद्भागवत के दिव्य अर्थों को समझने के इच्छुक हैं; रसिक-आसङ्ग-रङ्गिणाम्-जो भक्तों के साथ रहते हैं और उनके दिव्य संग का आनन्द लेते हैं; जीवनी-भूत-जीवन बन गया है; गोविन्द-पाद-गोविन्द के चरणकमलों के; भक्ति-सुख-श्रियाम्-जिनका एकमात्र ऐश्वर्य भक्ति का आनन्द है; प्रेम-अन्तरङ्ग-भूतानि-कृष्ण और भक्तों के प्रेम सम्बन्धों के गुह्य रूप के; कृत्यानि–कार्यकलाप; एव–निश्चित रूप से; अनुतिष्ठताम्-करने वाले; भक्तानाम्-भक्तों के; हृदि–हृदयों में; राजन्ती–स्थित; संस्कार-मुगल-पूर्व तथा वर्तमान शुद्धीकरण की प्रक्रियाओं द्वारा; उज्वला–विस्तृत; रतिः-प्रेम; आनन्द-रूपा–जिसका स्वरूप दिव्य आनन्द है; एव-निश्चित रूप से; नीयमाना-लाये गये; तु-परन्तु; रस्यताम्-स्वाद को; कृष्ण-आदिभिः-कृष्ण तथा अन्यों द्वारा; विभाव-आद्यैः–विभाव आदि द्वारा; गतैः–गये; अनुभव-अध्वनि-अनुभव के मार्ग की ओर; प्रौढ़-आनन्दः–विकसित आनन्द; चमत्कार-काष्ठाम्-आश्चर्य की स्थिति; आपद्यते-प्राप्त करते हैं; पराम्-सर्वोच्च।

अनुवाद

“जो भक्ति द्वारा समस्त भौतिक कल्मष से पूरी तरह मुक्त हो चुके हैं, जो सदैव सन्तुष्ट रहते हैं और जिनके हृदय ज्ञान से पूरी तरह से प्रकाशित हो चुके हैं, जो सदैव श्रीमद्भागवत का दिव्य अर्थ समझने के प्रति अनुरक्त रहते हैं, जो सदैव उन्नत भक्तों का संग करने के लिए उत्सुक रहते हैं, जिनका जीवन मात्र गोविन्द के चरणकमलों की सेवा से प्राप्त आनन्द में है, जो प्रेम के गुह्य कार्यों को सदैव सम्पन्न करते हैं-ऐसे उन्नत भक्तों के लिए, जो सहज ही आनन्द में स्थिते रहते हैं, प्रेम का बीज (रति) पूर्व तथा वर्तमान संस्कारों से हृदय में विस्तार करता है। इस तरह भावों के अवयवों का मिश्रण स्वादिष्ट बन जाता है और वह भक्त की अनुभूति के अन्तर्गत होने से चमत्कार तथा गहरे आनन्द के सर्वोच्च पद तक पहुँच जाता है।”

तात्पर्य

ये श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.7-10) में पाये जाते हैं।

एइ रस-आस्वाद नाहि अभक्तेर गणे ।

कृष्ण-भक्त-गण करे रस आस्वादने ॥ 99॥

एइ–यह; रस-आस्वाद-दिव्य रसों का आस्वादन; नाहि-नहीं; अभक्तेर गणे-अभक्तों के बीच; कृष्ण-भक्त-गणे-भगवान् कृष्ण के शुद्ध भक्त; करे-करते हैं; रस-इन दिव्य रसों का; आस्वादने-आस्वादन।

अनुवाद

“कृष्ण तथा विभिन्न दिव्य रसों में स्थित भिन्न-भिन्न भक्तों के बीच जो आदान-प्रदान होता है, उसका अनुभव अभक्तों को नहीं होता। भक्ति में उन्नत भक्त ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ विभिन्न प्रकार की भक्ति के आदान-प्रदान को अच्छी तरह समझ सकते हैं।”

सर्वथैव दुरूहोऽयमभक्तैर्भगवद्रसः ।

तत्पादाम्बुज-सर्वस्वैर्भक्तैरेवानुरस्यते ॥100॥

सर्वथा-सब प्रकार से; एव–निश्चित रूप से; दुरूहः-समझने में कठिन; अयम्-यह; अभक्तैः-अभक्तों द्वारा; भगवत्-रसः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ आदान-प्रदान करने वाले दिव्य रेस; तत्व ह; पाद-अम्बुज-सर्व-स्वैः-जिसके सब कुछ वे चरणकमल हैं; भक्तैः–भक्तों द्वारा; एव–अवश्य; अनुरस्यते-आस्वादन किये जाते हैं।

अनुवाद

"भक्त तथा भगवान् के बीच जिस दिव्य रस का आदान-प्रदान किया जाता है, उसे अभक्त लोग नहीं समझ सकते। इन्हें समझना सभी तरह से अत्यन्त कठिन है, किन्तु जिसने भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में सर्वस्व अर्पित कर दिया है, वह इन दिव्य रसों का आस्वादन कर सकता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (2.5.131) में पाया जाता है।

सङ्क्षेपे कहिलुँ एइ 'प्रयोजन'-विवरण ।

पञ्चम-पुरुषार्थ–एइ 'कृष्ण-प्रेम'-धन ॥ 101॥

सङ्क्षेपे कहिलुँ-मैंने संक्षेप में बताया है; एइ–यह; प्रयोजन-विवरण–परम लक्ष्य का वर्णन; पञ्चम-पुरुष-अर्थ-जीवन का पंचम तथा परम लक्ष्य; एइ–यह; कृष्ण-प्रेम-धन-कृष्ण-प्रेम का खजाना।

अनुवाद

"यह संक्षिप्त विवरण जीवन के चरम लक्ष्य का विस्तार है। निस्सन्देह, यह पाँचवा तथा अन्तिम लक्ष्य है, जो कि मोक्ष-पद से परे है। यह कृष्ण-प्रेमधन कहलाता है।"

पूर्वे प्रयागे आमि रसेर विचारे।

तोमार भाइ रूपे कैलुँ शक्ति-सञ्चारे॥ 102॥

पूर्वे-पहले; प्रयागे-प्रयाग में; आमि-मैंने; रसेर विचारे-विभिन्न रसों के विचार में; तोमार भाइ–तुम्हारे भाई; रूपे-रूप गोस्वामी को; कैलुँ–मैंने किया; शक्ति-सञ्चारे-सम्पूर्ण शक्ति का संचार।

अनुवाद

इसके पूर्व मैं तुम्हारे भाई रूप गोस्वामी को इन रसों को समझने की शक्ति प्रदान कर चुका हूँ। प्रयाग में दशाश्वमेध घाट पर उसे शिक्षा देते हुए मैंने ऐसा किया है।

तुमिह करिह भक्ति-शास्त्रेर प्रचार।

मथुराय लुप्त-तीर्थेर करिह उद्धार॥ 103॥

तुमिह-तुम भी; करिह-करो; भक्ति-शास्त्रेर प्रचार–भक्ति के प्रामाणिक शास्त्रों का प्रचार; मथुराय-मथुरा में; लुप्त-तीर्थेर-खोये हुए तीर्थस्थलों की; करिह–करो; उद्धार-खोज।

अनुवाद

“हे सनातन, तुम भक्ति के प्रामाणिक शास्त्रों का प्रचार करना और मथुरा जिले के लुप्त तीर्थस्थलों का पुनरुद्धार करना।”

वृन्दावने कृष्ण-सेवा, वैष्णव-आचार।

भक्ति-स्मृति-शास्त्र करि करिह प्रचार॥ 104॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; कृष्ण-सेवा-भगवान् कृष्ण की सेवा; वैष्णव-आचार-वैष्णवों का आचरण; भक्ति-स्मृति-शास्त्र-भक्ति के प्रामाणिक ग्रन्थ; करि’-संकलित करके; करिह-करो; प्रचार–प्रचार।

अनुवाद

“वृन्दावन में भगवान् कृष्ण तथा राधारानी की सेवा स्थापित करना। भक्तिशास्त्रों का भी संकलन करना और वृन्दावन से भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करना।”

तात्पर्य

सनातन गोस्वामी को आदेश हुआ कि (1) भक्ति-शास्त्रों का प्रचार करें और भक्ति के सिद्धान्तों की स्थापना करें, (2) वृन्दावन तथा राधाकुण्ड जैसे लुप्त तीर्थस्थलों की पुनः स्थापना करें, (3) मन्दिर-पूजा की वृन्दावन शैली की स्थापना करें और मन्दिरों में अर्चाविग्रहों की स्थापना करें (श्री सनातन गोस्वामी ने मदनमोहन मन्दिर की तथा रूप गोस्वामी ने गोविन्दजी मन्दिर की स्थापना की) तथा (4) वैष्णव आचरण की व्याख्या करें (जैसाकि श्रील सनातन गोस्वामी ने हरिभक्ति-विलास में किया)। इस प्रकार श्रील सनातन गोस्वामी को वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना करने की शक्ति प्रदान की गई। इस सम्बन्ध में श्रीनिवास आचार्य ने अपने षड्-गोस्वामी-अष्टक (2) में कहा है :

नानाशास्त्रविचारणैकनिपुणौ सद्धर्मसंस्थापकौ

लोकानां हितकारिणौ त्रिभुवने मान्यौ शरण्याकरौ ।

राधाकृष्णपदारविन्दभजनानन्देन मत्तालिकौ

वन्दे रूपसनातनौ रघुयुगौ श्रीजीवगोपालकौ ॥

“मैं छः गोस्वामियों को अर्थात् श्री सनातन गोस्वामी, श्री रूप गोस्वामी, श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्री रघुनाथ दास गोस्वामी, श्री जीव गोस्वामी तथा श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी की सादर वन्दना करता हूँ, जो समस्त मानवों के लाभार्थ शाश्वत धार्मिक सिद्धान्तों की स्थापना करने के उद्देश्य से समस्त शास्त्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने में अत्यन्त निपुण हैं। इस प्रकार वे तीनों लोकों में सम्मानित हैं और

शरण में जाने योग्य (शरण्य) हैं, क्योंकि वे गोपी-भाव में निमग्न रहते हैं और राधा तथा कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति करने में लगे रहते हैं।"

यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन छः गोस्वामियों की, विशेषतया श्रील सनातन गोस्वामी तथा श्रील रूप गोस्वामी की परम्परा को आगे बढ़ाने वाला है। इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन के निष्ठावान् अनुयायियों को वृन्दावन-सम्प्रदाय (भगवान् की भक्तिमयी सेवा) का सारे विश्व में प्रचार करने के अपने महान् दायित्व को समझना चाहिए। अब तो वृन्दावन में हमारा एक सुन्दर मन्दिर है। अतः गम्भीर जिज्ञासुओं को इसका लाभ उठाना चाहिए। मैं आशान्वित हूँ कि हमारे अनुयायियों में से कोई न कोई अनुयायी इस दायित्व को ग्रहण करके लोगों को कृष्णभावनामृत की शिक्षा देकर मानवता की सर्वश्रेष्ठ सेवा कर सकता है।

युक्त-वैराग्य-स्थिति सब शिखाइल ।

शुष्क-वैराग्य-ज्ञान सब निषेधिल ॥ 105॥

युक्त-वैराग्य–युक्त वैराग्य की; स्थिति-स्थिति; सब–सम्पूर्ण; शिखाइल-सिखाई; शुष्क-वैराग्य-शुष्क वैराग्य; ज्ञान-तार्किक ज्ञान; सब–सम्पूर्ण; निषेधिल–निषेध किया।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को विशेष स्थिति के अनुसार उचित वैराग्य के विषय में बतलाया और सभी प्रकार से शुष्क वैराग्य तथा शुष्क ज्ञान का निषेध किया।

तात्पर्य

शुष्क वैराग्य तथा युक्त वैराग्य समझने की यही विधि है। भगवद्गीता (6.17) में कहा गया है :

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

“जो खाने, सोने, काम करने तथा आमोद-प्रमोद के मामले में संयमित है, वह योग-पद्धति के अभ्यास से सारे भौतिक दुःखों को दूर कर सकता है।” कृष्णभावनामृत-सम्प्रदाय का प्रसार करने के लिए देश, काल तथा पात्र के अनुसार वैराग्य की सम्भावना सीखनी होगी। पाश्चात्य देशों में कृष्णभावनामृत के इच्छुक पात्र को भौतिक स्थिति से वैराग्य के विषय में बतलाया जाना चाहिए, किन्तु भारत जैसे देश के लोगों को भिन्न ढंग से सिखाना चाहिए। आचार्य (गुरु) को देश, काल तथा पात्र पर विचार करना होगा। उसे नियमाग्रह सिद्धान्त से बचना होगा अर्थात् असम्भव कार्य करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। हो सकता है कि जो एक देश में सम्भव हो वह दूसरे देश में सम्भव न हो। आचार्य का कर्तव्य है कि वह भक्ति के सार को ग्रहण करे। जहाँ तक युक्त वैराग्य का प्रश्न है, उसमें यत्रतत्र थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने शुष्क वैराग्य का निषेध किया है और हमने भी अपने गुरु श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर गोस्वामी से यही सीखा है। भक्ति के सार को ही ग्रहण करना चाहिए, बाह्य साज-सामग्री को नहीं।

सनातन गोस्वामी ने वैष्णव स्मृति, हरिभक्ति-विलास की रचना की जो विशेष रूप से भारत के निमित्त थी। उन दिनों भारत में स्मार्त-विधि का अनुपालन कुछ हद तक किया जा रहा था। श्रील सनातन गोस्वामी को इसे ध्यान में रखना था और उन्होंने हरिभक्ति-विलास की रचना इसे ध्यान में रखकर की। स्मार्त ब्राह्मणों के अनुसार जो व्यक्ति ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न नहीं होता, वह ब्राह्मण नहीं हो सकता। किन्तु सनातन गोस्वामी हरिभक्ति-विलास (2.12) में कहते हैं कि दीक्षा के द्वारा कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण बन सकता है :

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः ।

तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥

“जिस प्रकार काँस्य धातु में रासायनिक प्रक्रिया से पारा मिलाया जाता है, तो वह धातु सोना बन जाती है, इसी प्रकार यदि किसी को समुचित प्रशिक्षण के द्वारा किसी प्रामाणिक गुरु से दीक्षा दी जाए, तो वह तुरन्त ब्राह्मण बन जाता स्मार्त-विधि तथा गोस्वामी-विधि में अन्तर होता है।”

स्मार्त-विधि के अनुसार ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए बिना कोई ब्राह्मण नहीं स्वीकार किया जा सकता। गोस्वामी-विधि, हरिभक्ति-विलास तथा नारद-पञ्चरात्र के अनुसार कोई भी व्यक्ति प्रामाणिक गुरु से दीक्षा प्राप्त करके ब्राह्मण बन सकता है। श्रीमद्भागवत (2.4.18) में शुकदेव गोस्वामी का भी यही निर्णय है :

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कषा

आभीरशुम्भा यवना खसादयः ।

येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः

शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥

किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कश, आभीर, शुम्भ, यवन तथा खस जातियों के सदस्य और वे लोग भी जो पापमय कार्य करते हैं, परम शक्तिमान भगवान् के भक्तों की शरण लेने से शुद्ध हो सकते हैं। मैं उन भगवान् को सादर प्रणाम करता हूँ।

यदि वैष्णव अपने प्रामाणिक गुरु द्वारा बताये गये विधि-विधानों का पालन करता है, तो वह तुरन्त शुद्ध हो जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि भारत में जिन विधि-विधानों का पालन किया जा रहा हो, वे उसी रूप में यूरोप, अमरीका या अन्य पाश्चात्य देशों में हो। बिना प्रभाव के कोरा अनुकरण करना नियमाग्रह कहलाता है। विधि-विधानों का पालन न करके विलासितापूर्ण ढंग से जीवन बिताना भी नियमाग्रह कहलाता है। नियमों का अर्थ है “विधि-विधान’ और ‘आग्रह’ का अर्थ है “उत्सुकता।” अग्रह का अर्थ है “स्वीकार न करना।” न तो हमें विधि-विधानों का बिना प्रभाव पालन करना चाहिए,

न ही उन्हें स्वीकार करने से बचना चाहिए। देश, काल तथा पात्र के अनुसार विशेष विधि की आवश्यकता होती है। हमें प्रामाणिक गुरु का आदेश प्राप्त किये बिना अनुकरण नहीं करना चाहिए। यहाँ जिस सिद्धान्त की संस्तुति की गई है, वह है-शुष्क-वैराग्य-ज्ञान सब निषेधिल।यह श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा भक्ति-समप्रदाय का उदार प्रदर्शन है। हमें प्रामाणिक गुरु का आदेश प्राप्त किये बिना कोई भी नई बात मनमाने ढंग से चालू नहीं करनी चाहिए। इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील रूप गोस्वामी के दो श्लोक (भक्तिरसामृतसिन्धु 1.2.255-256) उद्धृत करते हुए संकेत किया है :

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः ।

निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते ॥

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः ।

मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते ॥

“जब मनुष्य किसी वस्तु के प्रति आसक्त नहीं रहता, किन्तु हर वस्तु को कृष्ण से सम्बन्धित स्वीकार करता है, तब वह कब्जे की भावना से परे भलीभाँति स्थित होता है। दूसरी ओर जो व्यक्ति कृष्ण से वस्तु का सम्बन्ध जाने बिना हर वस्तु का परित्याग करता है, उसका वैराग्य पूर्ण नहीं होता।”भक्ति का प्रचार करते समय मनुष्य को इन श्लोकों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।”

अद्वेष्टा सर्व-भूतानां मैत्रः करुण एव च ।

निर्ममो निरहङ्कारः सम-दुःख-सुखः क्षमी ॥ 106 ॥

सन्तुष्टः सततं योगी व्रतात्मा दृढ़-निश्चयः ।

मय्यर्पित-मनो-बुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ 107॥

अद्वेष्टा-द्वेष न करनेवाला; सर्व-भूतानाम्-संसार के सभी प्राणियों को; मैत्रः-मित्र; करुणः-दयालु; एव–निश्चित रूप से; च-तथा; निर्ममः-स्वामित्व के भाव से रहित; निरहङ्कारः-गर्व से रहित (स्वयं को एक महान् प्रचारक न समझने वाला); सम-दुःख-सुखः-दुःख और सुख में समान; क्षमी-अन्यों द्वारा किये जाने वाले अपराधों को सहन करने वाला; सन्तुष्टः–सन्तुष्ट; सततम्-निरन्तर; योगी-भक्तियोग में लगा हुआ; यत-आत्मा-इन्द्रियों और मन को वश में करके; दृढ़-निश्चयः-दृढ़ विश्वास तथा निश्चय युक्त; मयि–मुझ में; अर्पित-समर्पित; मनः-बुद्धिः -मन तथा बुद्धि; यः-जो; मत्-भक्तः–मेरा भक्त; सः-वह व्यक्ति; मे-मुझे; प्रियः–प्रिय।

अनुवाद

"जो ईर्ष्यालु नहीं है अपितु सारे जीवों का दयालु मित्र है, जो अपने आपको स्वामी नहीं मानता, जो मिथ्या अहंकार से रहित है, जो सुख तथा दुःख दोनों में समभाव रखता है, जो सदैव सन्तुष्ट रहता है, जो क्षमावान तथा आत्मसंयमी है, जो संकल्प के साथ भक्ति में संलग्न रहता है और जिसका मन तथा बुद्धि मुझमें समर्पित है-ऐसा भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है।

तात्पर्य

मनुष्य को अन्य जाति या राष्ट्र के लोगों से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। ऐसा नहीं है कि केवल भारतीय या केवल ब्राह्मण ही वैष्णव बन सकते हैं। कोई भी व्यक्ति वैष्णव बन सकता है। इसलिए हमें स्वीकार करना होगा कि भक्ति सम्प्रदाय विश्वभर में फैले। यही असली अद्वेष्टा है। साथ ही मैत्र: शब्द सूचित करता है कि जो व्यक्ति विश्वभर में भक्ति-सम्प्रदाय का प्रचार कर सकता है, उसे तो हर एक का समान रूप से मित्र होना चाहिए। ये दो श्लोक तथा अगले छह श्लोक भगवद्गीता (12.13-20) में श्रीकृष्ण के वचन हैं।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते तु यः ।

हर्षामर्ष-भयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥108॥

यस्मात् जिससे; न-नहीं; उद्विजते-भय या शोक द्वारा उत्तेजित है; लोकः-सामान्य लोग; लोकात्-लोगों से; न-नहीं; उद्विजते-विचलित; तु-परन्तु; यः-जो; हर्ष-प्रसन्नता; अमर्ष-क्रोध; भय-भय; उद्वेगैः–तथा चिन्ता से; मुक्तः–मुक्त; यः-जो; सः-वह; च-तथा; मे प्रियः-मेरा प्रिय भक्त।

अनुवाद

"जिससे किसी को कोई कष्ट नहीं पहुँचता और जो किसी से विचलित नहीं होता, जो हर्ष, क्रोध, भय तथा चिन्ता से मुक्त है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।"

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गत-व्यथः ।

सर्वारम्भ-परित्यागी यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥109॥

अनपेक्षः-उदासीन; शुचिः-स्वच्छ; दक्षः-भगवत् सेवा सम्पन्न करने में दक्ष; उदासीनः-किसी भौतिक वस्तु में आसक्ति से रहित; गत-व्यथः-समस्त भौतिक कष्टों से मुक्त; सर्व-आरम्भ-सब प्रकार के प्रयास; परित्यागी–पूर्णतया त्याग करके; यः-जो; मे-मेरा; भक्तः–भक्त; सः-वह; मे प्रियः–मुझे अत्यन्त प्रिय।

अनुवाद

"जो भक्त किसी अन्य पर आश्रित न रहकर केवल मुझ पर आश्रित रहता है, जो भीतर तथा बाहर से शुद्ध है, जो दक्ष है, जो भौतिक वस्तुओं के प्रति उदासीन है, जो निश्चिन्त है, जो समस्त कष्टों से रहित है और जो सारे पुण्य तथा पाप कार्यों को त्याग देता है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।"

तात्पर्य

अनपेक्ष: शब्द का अर्थ यह है कि भक्त को न तो संसारी लोगों की परवाह करनी चाहिए, न ही उन पर आश्रित रहना चाहिए। उसे केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पर आश्रित रहना चाहिए तथा भौतिक इच्छाओं से रहित होना चाहिए। उसे भीतर और बाहर से शुद्ध होना चाहिए। बाहर से शुद्ध रहने के

लिए नित्य ही साबुन तथा तेल लगाकर नहाना चाहिए और भीतर से शुद्ध रहने के लिए उसे सदैव कृष्ण के विचारों में निमग्न रहना चाहिए। सर्वारम्भ-परित्यागी शब्द बतलाता है कि भक्त को पुण्य तथा पापकर्मों की स्मार्त-विधि में रुचि नहीं लेनी चाहिए।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।

शुभाशुभ-परित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥ 110॥

यः-(वह) जो; न हृष्यति-न हर्षित होता है (कुछ अनुकूल प्राप्त कर); न द्वेष्टि-न द्वेष करता है (अप्राकृत रूप से किसी प्रतिकूल स्थिति से प्रभावित होकर); न-नहीं; शोचति-शोक करता है; न-नहीं; काङ्क्षति–इच्छा करता है; शुभ-अशुभ-भौतिक शुभ तथा अशुभ; परित्यागी–पूर्णतया त्यागकर; भक्ति-मान्-भक्ति से युक्त; यः-जो; सः-वह व्यक्ति; में प्रियः–मुझे अत्यन्त प्रिय।

अनुवाद

“जो न तो भौतिक बातों से हर्षित होता है न द्वेष रखता है, जो न तो शोक करता है न इच्छा करता है, जो शुभ तथा अशुभ भौतिक वस्तुओं का समान रूप से परित्याग करता है और जो मेरी भक्ति में स्थिर रहता है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।”

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।

शीतोष्ण-सुख-दुःखेषु समः सङ्ग-विवर्जितः ॥ 111॥

तुल्य-निन्दा-स्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।

अनिकेतः स्थिर-मतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥112॥

समः-समभाव; शत्रौ-शत्रु के प्रति; च-तथा; मित्रे-मित्र के प्रति; च-और; तथा-तथा; मान-अपमानयोः–मान तथा अपमान में; शीत-सर्दी में; उष्ण-तथा तीव्र गर्मी में; सुख-सुख में; दुःखेषु तथा दु:ख में; समः-समभाव; सङ्ग-विवर्जितः-आसक्ति से रहित; तुल्य-समान; निन्दा-निन्दा; स्तुतिः–तथा

स्तुति; मौनी-गम्भीर; सन्तुष्टः-सदैव सन्तुष्ट; येन केनचित्-जो कुछ भी मिल जाये; अनिकेतः-निवास के लिए आसक्ति से रहित; स्थिर–स्थिर; मतिः-मन वाला; भक्ति-मान्-प्रेममयी सेवा में लगा हुआ; मे-मुझे; प्रियः–प्रिय; नरः–व्यक्ति।

अनुवाद

"जो मित्रों तथा शत्रुओं के प्रति समभाव रखता है, जो मान तथा अपमान, गर्मी तथा सर्दी, सुख तथा दुःख, यश तथा अपयश में एक समान रहता है, जो भौतिक वस्तुओं से सदैव कल्मषरहित, गम्भीर तथा सन्तुष्ट रहता है, जो किसी प्रकार के घर-बार की परवाह नहीं करता तथा जो भक्ति में सदैव स्थिर रहता है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।"

ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।

श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ 113॥

ये-जो भक्त; तु-परन्तु; धर्म-अमृतम्-कृष्णभावनामृत के सनातन धार्मिक नियम; इदम्-ये; यथा-उक्तम्-जैसे बताये गये हैं; पर्युपासते-उपासना करते हैं; श्रद्दधानाः-विश्वास और निष्ठा के साथ; मत्-परमाः–मुझे जीवन का परम लक्ष्य मानकर; भक्ताः-ऐसे भक्त; ते–वे; अतीव-अत्यन्त; मे-मुझे; प्रियाः–प्रिय।

अनुवाद

"इस तरह से जो व्यक्ति मुझे परम लक्ष्य मानकर अत्यन्त श्रद्धा तथा भक्ति के साथ कृष्णभावनामृत के इन अमर धार्मिक सिद्धान्तों का पालन करता है, वह मुझे अतीव प्रिय है।"

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां

नैवाघ्रि-पाः पर-भृतः सरितोऽप्यशुष्यन्।

रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्

कस्माद्भजन्ति कवयो धन-दुर्मदान्धान् ॥ 114॥

चीराणि-फटे पुराने वस्त्र; किम्-क्या; पथि–मार्ग में; न-नहीं; सन्ति हैं; दिशन्ति–देते; भिक्षाम्-भिक्षा; न-नहीं; एव–अवश्य; अघ्रि-पाः-वृक्ष; पर-भृतः-दूसरों के पालक; सरितः-नदियाँ; अपि-भी; अशुष्यन्-सूख गई हैं; रुद्धाः–बन्द; गुहाः-गुफाएँ; किम्-क्या; अजितः-परम भगवान्, जिन्हें जीते नहीं जा सकते; अवति-रक्षा करते हैं; न-नहीं; उपसन्नान्–शरणागतों की; कस्मात्-किस कारण से; भजन्ति-चापलूसी करते हैं; कवयः-भक्त; धन-दुर्मद-अन्धान्–जो लोग भौतिक सम्पत्तियों द्वारा गर्वित हैं।

अनुवाद

"क्या आम रास्ते में चिथड़े पड़े नहीं मिलते हैं? क्या दूसरों का पालन करने के लिए जीवित रहने वाले वृक्ष अब भिक्षा-दान नहीं करते? क्या नदियाँ सूख जाने के कारण अब प्यासे को जल नहीं देतीं ? क्या पर्वत की गुफाएँ अब बन्द हो चुकी हैं अथवा क्या अजेय भगवान् पूर्ण शरणागतों की रक्षा नहीं करते? तो फिर भक्तों जैसे विद्वान पुरुष उन लोगों की चाटुकारिता करने क्यों जाएँ, जो अपने कठिन परिश्रम से अर्जित किये हुए धन के कारण अन्धे हो रहे हैं?"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.2.5) का है। इस श्लोक में शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित को उपदेश देते हैं कि भक्त को हर स्थिति में स्वतन्त्र रहना चाहिए। यदि इस श्लोक में दिये गये उपदेशों का पालन किया जाए, तो शरीर का निर्वाह बिना किसी समस्या के किया जा सकता है। शरीर-निर्वाह के लिए हमें आश्रय, भोजन, जल तथा वस्त्र की आवश्यकता पड़ती है और ये सभी आवश्यकताएँ गर्वित धनी पुरुषों के पास गये बिना भी पूरी हो सकती हैं। मनुष्य चाहे तो सड़क पर फेंके गये पुराने वस्त्र एकत्र कर सकता है, वृक्षों के फल खा सकता है, नदियों का पानी पीकर रह सकता है और पर्वत की गुफाओं में निवास कर सकता है। प्रकृति की व्यवस्था से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण में पूर्णरूपेण गये हुए भक्त को आश्रय, वस्त्र तथा भोजन प्राप्त हो सकते हैं। ऐसे भक्त को अपने जीवन-निर्वाह के लिए धन-

मद से चूर व्यक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरे शब्दों में, भक्ति किसी भी अवस्था में सम्पन्न की जा सकती है। यह श्रीमद्भागवत के निम्नलिखित श्लोक (1.2.6) का कथन है :

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

"सारी मानवता का परम कर्तव्य (धर्म) वह है, जिससे सारे मनुष्य दिव्य परमेश्वर की प्रेमाभक्ति प्राप्त कर सकें। ऐसी भक्ति को निस्वार्थ और अवरोध-रहित होना चाहिए, जिससे पूर्ण आत्मतुष्टि हो सके।" यह श्लोक बतलाता है। कि भक्ति को किसी भी भौतिक दशा द्वारा रोका नहीं जा सकता।

तबे सनातन सब सिद्धान्त पुछिला ।

भागवत-सिद्धान्त गूढ़ सकलि कहिला ॥ 115॥

तबे-तत्पश्चात्; सनातन-सनातन गोस्वामी ने; सब-सभी; सिद्धान्त-सिद्धान्त; पुछिला–पूछे; भागवत-सिद्धान्त- श्रीमद्भागवत में प्रेममयी सेवा के विषय में निष्कर्षपूर्ण सिद्धान्त; गूढ़-अत्यन्त रहस्यपूर्ण; सकलि-सभी; कहिला-श्री चैतन्य महाप्रभु ने बताए।

अनुवाद

इस के बाद सनातन गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से भक्ति विषयक सारे सिद्धान्तों के विषय में पूछा और महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत के गुह्य अर्थों को बहुत अच्छी तरह से बतलाया।

हरि-वंशे कहियाछे गोलोके नित्य-स्थिति ।

इन्द्र आसि' करिल यबे श्रीकृष्णेरे स्तुति ॥ 116॥

हरिवंशे-हरिवंश नामक ग्रन्थ में; कहियाछे-बताई गई है; गोलोके–गोलोक नामक लोक में; नित्य-स्थिति–नित्य स्थिति; इन्द्र-स्वार्गिक लोकों के राजा इन्द्र; आसि'-आकर; करिल-करते हैं; यबे-जब; श्री कृष्णेरे स्तुति-भगवान् कृष्ण की स्तुति।

अनुवाद

हरिवंश पुराण में गोलोक वृन्दावन का विवरण मिलता है, जहाँ भगवान् कृष्ण शाश्वत रूप से निवास करते हैं। यह जानकारी इन्द्र ने तब दी, जब कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठा लिया था और उसने कृष्ण की शरण स्वीकार करके उनकी स्तुति की थी।

तात्पर्य

हरिवंश (विष्णु पर्व, अध्याय 19) में गोलोक वृन्दावन का वर्णन इस प्रकार मिलता है :

मनुष्यलोकाद् ऊर्ध्वं तु खगानां गतिरुच्यते

आकाशस्योपरि रविर्द्वारं स्वर्गस्य भानुमान्

स्वर्गादूर्ध्वं ब्रह्मलोको ब्रह्मर्षिगणसेवितः ॥

तत्र सोमगतिश्चैव ज्योतिषां च महात्मनाम्

तस्योपरि गवां लोकः साध्यास्तं पालयन्ति हि

स हि सर्वगतः कृष्णः महाकाशगतो महान् ॥

उपर्युपरि तत्रापि गतिस्तव तपोमयी

यां न विद्मो वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि पितामहम् ॥

गतिः शमदमाट्यानां स्वर्गः सुकृतकर्मणाम्

ब्राह्मे तपसि युक्तानां ब्रह्मलोकः परा गतिः ।

गवामेव तु गोलोको दुरारोहा हि सा गतिः ।

स तु लोकस्त्वया कृष्ण सीदमानः कृतात्मना ।

धृतो धृतिमता वीर निघ्नतोपद्रवान् गवाम् ।

जब कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठा लिया, तो स्वर्ग का राजा इन्द्र उनकी शरण में आ गया और उसने बतलाया कि जिस लोक में मनुष्य निवास करते हैं। उसके ऊपर तो आकाश है, जिसमें पक्षी उड़ते हैं। आकाश के ऊपर सूर्य तथा उसकी कक्षा है। यही स्वर्गलोक का प्रवेशद्वार है। स्वर्गलोक के ऊपर ब्रह्मलोक तक अन्य लोक हैं, जिनमें आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत लोग रहते हैं। ब्रह्मलोक तक के लोक भौतिक जगत् (देवीधाम) के भाग हैं। चूँकि भौतिक जगत् देवी दुर्गा के अधीन है, अत: यह देवीधाम कहलाता है। देवीधाम के ऊपर वह स्थान है, जहाँ शिवजी अपनी पत्नी उमा के साथ निवास करते हैं। इस शिवलोक में आध्यात्मिक ज्ञान से युक्त तथा भौतिक कल्मष से मुक्त लोग निवास करते हैं। इस लोक से आगे आध्यात्मिक जगत् है, जिसमें वैकुण्ठ लोक स्थित हैं। गोलोक वृन्दावन इन समस्त वैकुण्ठ लोकों के ऊपर स्थित है। गोलोक वृन्दावन श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण के माता-पिता यशोदा तथा महाराज नन्द का राज्य है। इस तरह अनेक ग्रह-मण्डल हैं और इन सबकी सृष्टि भगवान् द्वारा हुई है। ब्रह्म-संहिता (5.43) में कहा गया है :

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य

देवीमहेशहरिधामसु तेषु तेषु ।

ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन ।

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“गोलोक वृन्दावन के नीचे देवीधाम, महेशधाम तथा हरिधाम नामक लोक हैं। ये विविध प्रकार से ऐश्वर्ययुक्त हैं। ये पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, आदि पुरुष गोविन्द से नियन्त्रित हैं। मैं उन भगवान् को सादर प्रणाम करता हूँ।”

इस तरह गोलोक वृन्दावन धाम वैकुण्ठ लोकों के ऊपर स्थित है। इस गोलोक वृन्दावन धाम की तुलना में वैकुण्ठ लोकों वाला आध्यात्मिक आकाश अत्यन्त छोटा है। गोलोक वृन्दावन धाम द्वारा घेरा हुआ स्थान महाकाश कहलाता है। इन्द्र ने कहा, “हमने ब्रह्माजी से आपके सनातन लोक के बारे में पूछा, किन्तु हम उसे समझ नहीं पाये। वे सकाम कर्मी जिन्होंने अपने पुण्य कर्मों द्वारा अपनी इन्द्रियों तथा मन को वश में कर रखा है, स्वर्गलोक को जा सकते हैं। जो शुद्ध भक्त सदैव भगवान् नारायण की सेवा में लगे रहते हैं, वे वैकुण्ठ लोकों को प्राप्त करते हैं। किन्तु हे कृष्ण, आपके गोलोक वृन्दावन धाम को प्राप्त कर सकना अत्यन्त कठिन है। तो भी आप तथा वह सर्वोच्च लोक इस धरा पर अवतरित हुए हैं। दुर्भाग्यवश मैंने अपने दुष्कर्मों से आपको विचलित किया है, जो कि मेरी मूर्खता के कारण ही था। अतएव मैं अपनी स्तुतियों से आपको प्रसन्न करने का प्रयास कर रहा हूँ।”

श्री नीलकंठ ने ऋग् संहिता (ऋग्वेद 1.154.6) से उद्धरण देते हुए गोलोक वृन्दावन धाम के अस्तित्व की पुष्टि की है :

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै

यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।

अत्राह तद् उरुगायस्य कृष्णः

परमं पदं अवभाति भूरि ॥

“हम आपके (राधा तथा कृष्ण के) सुन्दर आवासों में जाना चाहते हैं, जिसके आसपास बड़े-बड़े सुन्दर सींगों वाली गौवें विचरण करती हैं। हे उरुगाय (अत्यन्त प्रशंसित कृष्ण), हम सब पर आनन्द की वर्षा करने वाला आपका परम धाम इस पृथ्वी पर अलग से प्रकाशमान है।”

मौषल-लीला, आर कृष्ण-अन्तर्धान।

केशावतार, आर यत विरुद्ध व्याख्यान ॥ 117॥

महिषी-हरण आदि, सब—मायामय ॥

व्याख्या शिखाइल यैछे सुसिद्धान्त हय ॥118॥

मौषल-लीला-यदुवंश के विनाश की लीला; आर-तथा; कृष्ण-अन्तर्धान-कृष्ण को अप्राकट्य; केश-अवतार–केशों का अवतार; आर-तथा; व्रत-सभी; विरुद्ध व्याख्यान-कृष्णभावना के विरुद्ध व्याख्यान; महिषी-हरण–रानियों का अपहरण; आदि-आदि; सब-सभी; माया-मय-बहिरंगा शक्ति से निर्मित; व्याख्या-व्याख्याएँ; शिखाइल-सिखाई; यैछे–जो; सु-सिद्धान्त-सिद्धान्त; हय-हैं।

अनुवाद

कृष्णभावनामृत के निष्कर्षों के विरुद्ध जो काल्पनिक कथाएँ हैं, उनका सम्बन्ध यदुवंश के विनाश, कृष्ण के अन्तर्धान होने, क्षीरोदकशायी विष्णु के श्याम तथा श्वेत बालों से कृष्ण तथा बलराम की उत्पत्ति और रानियों के अपहरण से है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन कथाओं के सही-सही निष्कर्षों की व्याख्या सनातन गोस्वामी से की।

तात्पर्य

अनेक असुर द्वेषवश कृष्ण को काले कौवा जैसा या बाल का अवतार बतलाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बतलाया कि कृष्ण के सम्बन्ध में ऐसी आसुरी व्याख्याओं का विरोध कैसे करना चाहिए। काक शब्द का अर्थ है कौवा और केश का अर्थ है बाल। असुरगण कृष्ण को कौवे

का अवतार, शूद्र (काली जाति) का अवतार तथा बाल का अवतार बतलाते हैं, क्योंकि उन्हें इसका ज्ञान नहीं है कि केश शब्द क+ईश से व्युत्पन्न है, क का अर्थ है ब्रह्मा और ईश् का अर्थ है भगवान्। इस तरह केश शब्द बतलाता है। कि कृष्ण ब्रह्मा के भी ईश्वर हैं।

कृष्ण की कुछ लीलाएँ महाभारत में मौषल लीला के नाम से वर्णित हैं। इन कथाओं में यदुवंश का विनाश, कृष्ण का अन्तर्धान होना, बहेलिये द्वारा उनका बेधा जाना, कृष्ण का केश अवतार होना तथा महिषी-हरण (कृष्ण की रानियों का अपहरण) सम्मिलित हैं। वास्तव में ये यथार्थ नहीं हैं, अपितु उन असुरों को मोहग्रस्त बनाने के लिए हैं, जो यह सिद्ध करना चाहते हैं कि कृष्ण सामान्य पुरुष हैं। ये सब इसलिए झूठे हैं, क्योंकि ये लीलाएँ न तो शाश्वत हैं, न दिव्य या आध्यात्मिक। ऐसे अनेक लोग हैं, जो स्वभाव से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की सर्वोच्चता का विरोध करते हैं। ऐसे लोग असुर कहलाते हैं। उन्हें कृष्ण के विषय में भ्रान्तियाँ हैं। जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, असुरों को जन्म-जन्मांतर कृष्ण को विस्मृत करने का अवसर दिया जाता है। इस तरह वे असुरों के परिवार में प्रकट होते हैं और यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है और कृष्ण के विषय में उन्हें मोहग्रस्त रखा जाता है। संन्यासियों के वेश में ये असुरगण अपनी खुद की कल्पनाओं के अनुसार भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत की व्याख्या तक करते हैं। इस तरह वे जन्म-जन्मांतर असुर बने रहते हैं।

जहाँ तक केश अवतार की बात है, श्रीमद्भागवत (2.7.26) में इसका उल्लेख हुआ है। विष्णु पुराण में भी उल्लेख है- उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महाबल।

इसी तरह महाभारत (आदिपर्व 189.31-32) में कहा गया है :

स चापि केशौ हरिरुच्चकर्त

एकं शुक्लमपरम् चापि कृष्णम् ।

तौ चापि केशावाविशतां यदूनां

कुले स्त्रियौ रोहिणी देवकी च ॥

तयोरेको बलभद्रो बभूव

योऽसौ श्वेतस्तस्य देवस्य केशः

कृष्णो द्वितीयः केशवः सम्बभूव

केश: योऽसौ वर्णत: कृष्ण उक्तः ॥

इस तरह श्रीमद्भागवत, विष्णु पुराण तथा महाभारत में कृष्ण एवं बलराम के क्रमशः काले बाल तथा श्वेत बाल के अवतार होने के निर्देश मिलते हैं। कहा जाता है कि भगवान् विष्णु ने अपने सिर से दो बाल तोड़े-एक श्वेत तथा दूसरा श्याम। ये दोनों बाल यदुवंशी रोहिणी तथा देवकी के गर्भो में प्रविष्ट हुए। रोहिणी से बलराम तथा देवकी से कृष्ण प्रकट हुए। इस प्रकार बलराम पहले बाल से और कृष्ण दूसरे बाल से प्रकट हुए। इसकी भी भविष्यवाणी की गई थी कि देवताओं के शत्रु सभी असुरों का विनाश भगवान् विष्णु के श्वेत तथा श्याम स्वांशों के द्वारा होगा तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् प्रकट होकर अद्भुत कार्य करेंगे। इस सन्दर्भ में लघु भागवतामृत के कृष्णामृत अध्याय (श्लोक 156-164) को देखना चाहिए। श्रील रूप गोस्वामी ने केश अवतार के इस तर्क का खंडन किया है, जिसकी पुष्टि श्री बलदेव विद्याभूषण की टीका में हुई है। इस विषय की अधिक व्याख्या कृष्ण-सन्दर्भ (अनुच्छेद 29) तथा श्रील जीव गोस्वामी की टीका सर्व-संवादिनि में प्राप्त होती है।

तबे सनातन प्रभुर चरणे धरिया।

निवेदन करे दन्ते तृण-गुच्छ लञा ॥ 119॥

तबे-उस समय; सनातन-सनातन गोस्वामी; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे धरिया-चरणकमल पकड़कर; निवेदन करे–निवेदन करने लगे; दन्ते-दाँत में; तृण-गुच्छ–तिनकों का गुच्छा; लञा-रखकर।

अनुवाद

तब सनातन गोस्वामी अपने आपको तिनके से भी तुच्छ मानकर प्रतीकात्मक रूप से अपने मुँह में कुछ तिनके दबाकर श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और उनके चरण पकड़कर उनसे निम्नलिखित निवेदन किया।

नीच-जाति, नीच-सेवी, मुञि—सुपामर।

सिद्धान्त शिखाइला,—येइ ब्रह्मार अगोचर ॥120॥

नीच-जाति-नीच जाति; नीच-सेवी-नीच लोगों का सेवक; मुञि-मैं; सुपामर-अत्यन्त पापी; सिद्धान्त शिखाइला–आपने सर्वोत्तम सिद्धान्त विस्तारपूर्वक सिखाये; येइ-जो; ब्रह्मार-ब्रह्मा की; अगोचर-पहुँच से परे हैं।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा, "हे प्रभु, मैं अत्यन्त नीच जाति में उत्पन्न व्यक्ति हूँ। वस्तुतः मैं तो नीच जाति में उत्पन्न लोगों का सेवक हूँ; अतः मैं अत्यन्त नीच हूँ। तो भी आपने मुझे वे सिद्धान्त सिखलाये हैं, जो ब्रह्मा तक को ज्ञात नहीं हैं।"

तुमि ये कहिला, एइ सिद्धान्तामृत-सिन्धु।

मोर मन छुइँते नारे इहार एक-बिन्दु ॥121॥

तुमि ये-आपने जो; कहिला–बताए हैं; एइये; सिद्धान्त-अमृत-सिन्धु–सिद्धान्तों के अमृत का समुद्र; मोर मन-मेरा मन; छुडिते-स्पर्श करने में नारे-समर्थ नहीं है; इहार-इसकी; एक-बिन्दु-एक बूंद भी।

अनुवाद

“आपने जो सिद्धान्त मुझसे कहे हैं, वे सत्यरूपी अमृत के सागर हैं। मेरा मन उस सागर की एक बूंद को भी छू पाने में समर्थ नहीं है।”

पङ्गु नाचाइते यदि हय तोमार मन ।

वर देह’ मोर माथे धरिया चरण ॥122॥

पङ्गु-लँगड़े व्यक्ति को; नाचाइते-नचाने की; यदि-यदि; हय-है; तोमार मन-आपकी इच्छा; वर-एक वरदान; देह’–कृपया दीजिये; मोर माथे-मेरे सिर पर; धरिया-रखकर; चरण-अपने चरणकमल।

अनुवाद

“यदि आप मुझ जैसे लंगड़े व्यक्ति को नचाना चाहते हैं, तो फिर आप मेरे सिर पर अपने चरणकमल रखकर मुझे अपना दिव्य आशीर्वाद दें।

‘मुञि ये शिखालँ तोरे स्फुरुक सकल’ ॥

एइ तोमार वर हैते हबे मोर बल ॥123॥

मुञि-मैंने; ये-जो कुछ; शिखालँ-सिखाया है; तोरे-तुमको; स्फुरुक सकल-इसे स्फुरित होने दो; एइ–यह; तोमार वर-आपके वरदान; हैते–से; हबे-होगी; मोर बल–मेरी क्षमता।

अनुवाद

“क्या अब आप कृपा करके मुझसे कहेंगे कि, ‘जो कुछ मैंने तुमसे कहा है, वह सब तुम में पूरी तरह से प्रकट हो जाए।’ मुझे ऐसा वरदान देकर आप मुझे वह शक्ति प्रदान करेंगे, जिससे मैं इसका वर्णन कर सकें।”

तबे महाप्रभु ताँर शिरे धरि’ करे।

वर दिला—‘एइ सब स्फुरुक तोमारे’ ॥ 124॥

तबे-इसके बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँर-सनातन गोस्वामी के; शिरे-सिर पर; धरि'-रखकर; करे-हाथ द्वारा; वर दिला–वरदान किया; एइ सब-ये सभी; स्फुरुक तोमारे-तुम्हें स्फुरित हो जाये।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी के सिर पर अपना हाथ रखा और यह वर दिया, "ये सारे उपदेश तुम में प्रकट हो जाएँ।"

सङ्क्षेपे कहिलुँ—'प्रेम'-प्रयोजन-संवाद।

विस्तारि' कहन ना याय प्रभुर प्रसाद ॥125॥

सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिलुँ-मैंने बताया है; प्रेम-प्रयोजन-संवाद-जीवन के परम लक्ष्य, भगवत्प्रेम का संवाद; विस्तारि'–विस्तारपूर्वक; कहन-वर्णन; ना याय–सम्भव नहीं; प्रभुर प्रसाद-श्री चैतन्य महाप्रभु का वरदान।

अनुवाद

इस तरह मैंने जीवन के चरम लक्ष्य, भगवत्प्रेम के संवाद का संक्षिप्त वर्णन किया है। श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा का वर्णन विस्तार से नहीं किया जा सकता।

प्रभुर उपदेशामृत शुने येइ जन।

अचिरात्मिलये ताँरे कृष्ण-प्रेम-धन ॥126॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; उपदेश-अमृत-उपदेशों का अमृत; शुने-सुनता है; येइ जन-जो भी व्यक्ति; अचिरात्-शीघ्र ही; मिलये-मिलता है; ताँरे–उसे; कृष्ण-प्रेम-धन-कृष्ण-प्रेम का खजाना।

अनुवाद

जो कोई भी महाप्रभु द्वारा सनातन गोस्वामी को दिये गये इन उपदेशों को सुनता है, वह शीघ्र ही कृष्ण-प्रेम का अनुभव करने लगता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥127॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ–श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों में; यार–जिनकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए और उनकी कृपा की सदैव आकांक्षा करते हुए, मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत की मध्यलीला के भगवत्प्रेम शीर्षक तेईसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय चौबीस

आत्माराम श्लोक की 61 व्याख्याएँ

इस अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में इस प्रकार दिया है। श्री सनातन गोस्वामी के अनुरोध पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत के सुविख्यात श्लोक आत्मारामाश्च मुनयः की व्याख्या की। उन्होंने 61 भिन्न प्रकारों से इस श्लोक की व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने सभी शब्दों का विश्लेषण किया और प्रत्येक शब्द की विभिन्न अर्थों के साथ व्याख्या की। उन्होंने च तथा अपि शब्द जोड़कर श्लोक के विभिन्न अर्थों का वर्णन किया। इसके बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी वर्गों के अध्यात्मवादी (ज्ञानी, कर्मी तथा योगी) इस श्लोक की व्याख्या अपने-

अपने अनुसार करते हैं, किन्तु यदि वे इन विधियों को त्यागकर कृष्ण की शरण ग्रहण कर लें, जैसा इस श्लोक से ही संकेत मिलता है, तो वे इस श्लोक के वास्तविक अर्थ को समझ सकते हैं। इस सम्बन्ध में श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक कहानी सुनाई कि किस तरह महर्षि नारद ने एक शिकारी को महान् वैष्णव बनाया, और इसकी प्रशंसा नारद के मित्र पर्वत मुनि ने किस तरह की। इसके बाद सनातन गोस्वामी ने चैतन्य महाप्रभु की स्तुति की और श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत की कीर्ति का वर्णन किया। इसके बाद महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को हरिभक्ति-विलास की रूपरेखा बतलाई, जिसे बाद में सनातन गोस्वामी ने सभी वैष्णवों के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त का रूप प्रदान किया।

आत्मारामेति पद्यार्कस्यार्थांशून् यः प्रकाशयन् ।

जगत्तमो जहाराव्यात्स चैतन्योदयाचलः ॥1॥

आत्माराम इति-आत्माराम शब्द से प्रारम्भ; पद्य-श्लोक; अर्कस्य–सूर्य के समान; अर्थ-अंशुन्–विभिन्न अर्थों की चमकती किरणे; यः-जिन्होंने; प्रकाशयन्-प्रकाशित करके; जगत्-तमः-भौतिक जगत् के अन्धकार को; जहार-नष्ट कर दिया; अव्यात्-रक्षा करें; सः-वे; चैतन्य-उदय-अचलः-श्री चैतन्य महाप्रभु, जो सूर्योदय की पूर्व दिशा के समान हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो, जिन्होंने पूर्व दिशा के क्षितिज की तरह व्यवहार किया, जहाँ आत्माराम श्लोक का सूर्य उदित हुआ। उन्होंने विभिन्न अर्थों के रूप में इसकी किरणें बिखेरीं और इस तरह उन्होंने भौतिक जगत् के अन्धकार को दूर किया। वे ब्रह्माण्ड की रक्षा करें।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्यश्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-भगवान् चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो तथा श्री चैतन्य के समस्त भक्तों की जय हो!

तबे सनातन प्रभुर चरणे धरिया।

पुनरपि कहे किछु विनय करिया ॥3॥

तबे-फिर; सनातन-सनातन गोस्वामी; प्रभुर चरणे धरिया-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल पकड़कर; पुनरपि-दोबारा; कहे-कहते हैं; किछु-कुछ; विनय करिया-अत्यन्त विनम्रता के साथ।

अनुवाद

इसके बाद सनातन गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिए और विनीत भाव से इस प्रकार याचना की।

'पूर्वे शुनियाछों, तुमि सार्वभौम-स्थाने।

एक श्लोके आठार अर्थ कैराछ व्याख्याने' ॥4॥

पूर्वे-पहले; शुनियाछों-मैंने सुना; तुमि-आपने; सार्वभौम-स्थाने-सार्वभौम भट्टाचार्य के स्थान पर; एक श्लोके-एक श्लोक में; आठार अर्थ–18 अर्थ; कैराछ व्याख्याने व्याख्यान किये।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा, "हे प्रभु, मैंने सुना है कि आप इससे पहले सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर आत्माराम श्लोक की अठारह प्रकार से विविध व्याख्याएँ कर चुके हैं।"

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।

कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत-गुणो हरिः ॥5॥

आत्म-आरामाः-जो लोग भगवान् की सेवा में दिव्य रूप से लगे रहने में आनन्द लेते हैं; च-तथा; मुनयः-ऐसे महान् साधु, जिन्होंने भौतिक इच्छाओं, सकाम कर्मों इत्यादि का पूर्णतया त्याग कर दिया है; निर्ग्रन्थाः-जिन्हें किसी भी भौतिक इच्छा में रुचि नहीं है; अपि-भी; उरुक्रमे-अद्भुत कार्यकलाप करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति; कुर्वन्ति-करते हैं; अहैतुकीम्-निःस्वार्थ या भौतिक इच्छाओं से रहित; भक्तिम्-प्रेममयी सेवा; इत्थम्-भूत-इस प्रकार के (आत्म-तुष्ट लोगों के भी ध्यान को आकृष्ट करने वाले); गुणः-जिनके दिव्य गुण हैं; हरिः-परम भगवान्।

अनुवाद

"जो लोग आत्म सन्तुष्ट (आत्माराम) हैं तथा बाह्य भौतिक इच्छाओं द्वारा आकृष्ट नहीं होते, वे भी श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति द्वारा आकृष्ट हो जाते हैं, क्योंकि उनके गुण दिव्य और कार्यकलाप अद्भुत हैं। भगवान् हरि इसीलिए कृष्ण कहलाते हैं, क्योंकि उनके लक्षण इतने दिव्य और आकर्षक हैं।"

तात्पर्य

यह श्रीमद्भागवत (1.7.10) का सुप्रसिद्ध आत्माराम श्लोक है।

आश्चर्य शुनिया मोर उत्कण्ठित मन ।

कृपा करि' कह यदि, जुड़ाय श्रवण ॥ 6 ॥

आश्चर्य-अद्भुत; शुनिया–सुनकर; मोर-मेरा; उत्कण्ठित-आतुर; मन–मन; कृपा करि'-अपनी कृपा करके; कह यदि-यदि आप कहें; जुड़ाय-आनन्द देगा; श्रवण-कानों को।

अनुवाद

“मैंने यह अद्भुत कथा सुनी है, इसीलिए मैं आपकी व्याख्या पुनः सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ। यदि आप इसे फिर से कहें, तो मैं इसे सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हूँगा।”

प्रभु कहे,—“आमि वातुल, आमार वचने ।

सार्वभौम वातुल ताहा सत्य करि’ माने” ॥7॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; आमि-मैं; वातुल–एक उन्मत्त व्यक्ति; आमार वचने-मेरे वचनों को; सार्वभौम–सार्वभौम भट्टाचार्य; वातुल-एक अन्य उन्मत्त व्यक्ति; ताहा–उन्हें (मेरी व्याख्या को); सत्य करि’ माने-सत्य समझ बैठे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु बोले, “मैं एक पागल व्यक्ति हूँ और सार्वभौम भट्टाचार्य दूसरे पागल व्यक्ति हैं। अतएव उन्होंने मेरे शब्दों को सच मान लिया।”

किबा प्रलापिलाङ, किछु नाहिक स्मरणे ।

तोमार सङ्ग–बले यदि किछु हय मने ॥8॥

किबा-क्या; प्रलापिलाङ–मैंने कह दिया; किछु-कुछ भी; नाहिक-नहीं है; स्मरणे-याद; तोमार-तुम्हारे; सङ्ग-बले-संग के बल द्वारा; यदि-अगर; किछु-कुछ; हय-आता है; मने-मेरे मन में।

अनुवाद

“मुझे स्मरण नहीं है कि मैंने उस सम्बन्ध में क्या कहा था, किन्तु यदि तुम्हारी संगति से मेरे मन में कुछ आता है, तो मैं उसे बतलाऊँगा।”

सहजे आमार किछु अर्थ नाहि भासे ।

तोमा-सबार सङ्ग-बले ये किछु प्रकाशे ॥9॥

सहजे-सामान्यतया; आमार-मेरा; किछु-कोई; अर्थ-अर्थ; नाहि भासे–नहीं निकलता; तोमा-सबार सङ्ग-बले-तुम सबके संग के बल पर; ये-जो; किछु-कुछ; प्रकाशे-प्रकट हो सकता है।

अनुवाद

"सामान्यतया मैं अपने आप कोई व्याख्या नहीं कर सकता, किन्तु भले ही तुम्हारी संगति से कुछ अपने आप प्रकट हो जाये।"

एकादश पद एइ श्लोके सुनिर्मल।

पृथक् नाना अर्थ पदे करे झलमल ॥10॥

एकादश पद-ग्यारह शब्द; एइ–इस; श्लोके–श्लोक में; सु-निर्मल–अत्यन्त स्पष्ट; पृथक्-अलग से; नाना-अनेक; अर्थ-अर्थ; पदे-प्रत्येक शब्द में; करे झलमल-प्रकाशित होते हैं।

अनुवाद

"इस श्लोक में ग्यारह स्पष्ट शब्द हैं, किन्तु जब उनका अलग-अलग अध्ययन किया जाता है, तो प्रत्येक शब्द से विविध अर्थ झलकते हैं।"

तात्पर्य

ग्यारह अलग-अलग शब्द हैं-(1) आत्मारामाः, (2) च, (3) मुनयः, (4) निग्रन्थाः, (5) अपि, (6) उरुक्रमे, (7) कुर्वन्ति, (8) अहैतुकीम्, (9) भक्तिम्, (10) इत्थम्-भूत-गुण: तथा (11) हरिः। श्री चैतन्य महाप्रभु इन ग्यारहों शब्दों के अलग-अलग अर्थ तथा व्याख्यायें बतलायेंगे।

'आत्मा'-शब्दे ब्रह्म, देह, मन, यत्न, धृति।

बुद्धि, स्वभाव,—एइ सात अर्थ-प्राप्ति ॥11॥

आत्मा-शब्दे-आत्मा शब्द द्वारा; ब्रह्म-परम सत्य; देह-शरीर; मन–मन; यत्न-प्रयास; धृति–दृढ़ता; बुद्धि-बुद्धि; स्वभाव-स्वभाव; एइ सात-ये सात; अर्थ-प्राप्ति अर्थ प्राप्त होते हैं।

अनुवाद

"आत्मा शब्द के सात विभिन्न अर्थ हैं : परम सत्य, शरीर, मन, प्रयत्न, दृढ़ता, बुद्धि तथा स्वभाव।"

"आत्मा देह-मनो-ब्रह्म-स्वभाव-धृति-बुद्धिषु, प्रयत्ने च" इति ॥12॥

आत्मा-आत्मा शब्द; देह-शरीर; मनः-मन; ब्रह्म-परम सत्य; स्वभाव-स्वभाव; धृति–दृढ़ता; बुद्धिषु-बुद्धि के अर्थ में; प्रयत्ने प्रयत्न में; च-तथा; इति–इस प्रकार।

अनुवाद

"आत्मा के पर्याय हैं-शरीर, मन, परम सत्य, स्वभाव, धृति, बुद्धि तथा प्रयत्न।"

तात्पर्य

यह उद्धरण विश्व-प्रकाश कोश का है।

एइ साते रमे येइ, सेइ आत्माराम-गण ।

आत्माराम-गणेर आगे करिब गणन ॥13॥

एइ साते-इन सात में; रमे-आनन्द लेते हैं; येइ-जो; सेइ-वे; आत्माराम-गण-आत्माराम लोग; आत्माराम-गणेर-आत्माराम व्यक्तियों की; आगे-आगे; करिब गणन-गिनती करेंगे।

अनुवाद

"आत्माराम' शब्द उसका द्योतक है, जो इन सातों (परम सत्य, शरीर, मन इत्यादि) में आनन्द लेता है। बाद में मैं आत्मारामों के नाम गिनाऊँगा।"

‘मुनि’-आदि शब्देर अर्थ शुन, सनातन।

पृथक्पृथकर्थ पाछे करिब मिलन ॥14॥

मुनि-मुनि शब्द; आदि-आदि; शब्देर-शब्दों का; अर्थ-अर्थ; शुन-सुनो; सनातन-मेरे प्रिय सनातन; पृथक्-पृथक्-अलग-अलग; अर्थ-अर्थ; पाछे-बाद में; करिब मिलन-मैं मिलाऊँगा।

अनुवाद

“हे सनातन, पहले 'मुनि’ इत्यादि अन्य शब्दों के अर्थ सुनो। सर्वप्रथम मैं उनके अलग-अलग अर्थ बतलाऊँगा और बाद में उन्हें जोड़ूँगा।”

‘मुनि’-शब्दे मनन-शील, आर कहे मौनी।

तपस्वी, व्रती, यति, आर ऋषि, मुनि ॥15॥

मुनि-शब्दे-मुनि शब्द द्वारा; मनन-शील-जो विचारवान है; आर-तथा; कहे-इसका अर्थ; मौनी-जो मौन है; तपस्वी–एक तपस्वी; व्रती–महान् व्रत करने वाला; यति-संन्यासी; आर–तथा; ऋषि–साधु; मुनि-ये मुनि कहलाते हैं।

अनुवाद

“मुनि’ शब्द उसका सूचक है, जो मननशील है, जो गम्भीर या मौन रहता है, तपस्वी है, जो बड़े व्रत रखता है, जो संन्यासी है और जो सन्त है। ये ‘मुनि’ शब्द के विविध अर्थ हैं।”

‘निर्ग्रन्थ’-शब्दे कहे, अविद्या-ग्रन्थि-हीन।

विधि-निषेध-वेद-शास्त्र-ज्ञानादि-विहीन ॥ 16 ॥

निर्ग्रन्थ-शब्दे-निर्ग्रन्थ शब्द द्वारा; कहे-अर्थ है; अविद्या-अज्ञान के; ग्रन्थि-हीन-बन्धन से रहित; विधि-निषेध-विधि और निषेध के नियमों के; वेद-शास्त्र-वैदिक शास्त्र; ज्ञान-आदि-ज्ञान आदि; विहीन-रहित।

अनुवाद

"निर्ग्रन्थ' शब्द उसका सूचक है, जो अज्ञान की भौतिक गाँठ से छूट चुका है। यह उसका भी सूचक है, जो वैदिक साहित्य में दिये गये समस्त विधि-विधानों से विहीन है। यह ज्ञान से शून्य का भी सूचक है।"

मूर्ख, नीच, म्लेच्छ आदि शास्त्र-रिक्त-गण।

धन-सञ्चयी—निर्ग्रन्थ, आर ये निर्धन ॥17॥

मूर्ख-मूर्ख, अनपढ़ लोग; नीच–अधम कुल के; म्लेच्छ-धर्मविहीन अशुद्ध लोग; आदि-आदि; शास्त्र-रिक्त-गण-शास्त्रों में बताये गये सभी नियमों से रहित; धन-सञ्चयी-एक पूँजीपति (जो सम्पत्ति इकट्ठी करता है); निर्ग्रन्थ-निग्रन्थ कहे जाते हैं; आर-तथा; ये-जो; निर्धन-धन रहित।

अनुवाद

"निर्ग्रन्थ' उनका भी सूचक है, जो अशिक्षित हैं, नीच हैं, दुराचारी हैं, असंयमित हैं और जो वैदिक साहित्य के प्रति आदर से रहित हैं। यह शब्द पूँजीपति तथा निर्धन का भी सूचक है।"

निर्निश्चये निष्क्रमार्थे निर्निर्माण-निषेधयोः।

ग्रन्थो धनेऽथ सन्दर्भे वर्ण-सङ्ग्रथनेऽपि च ॥18॥

निः-निः उपसर्ग; निश्चये-निश्चय के भाव में; निः-निः उपसर्ग; क्रम-अर्थे–क्रम के अर्थ में; निः-निः उपसर्ग; निर्माण-निर्माण के अर्थ में; निषेधयोः-निषेध के अर्थ में; ग्रन्थः-ग्रन्थ शब्द; धने-सम्पत्ति के

अर्थ में; अथ–तथा; सन्दर्भ-संकलित ग्रन्थ; वर्ण-सङ्ग्रथने-शब्दों को जोड़ने के अर्थ में; अपि तथा; च-और।

अनुवाद

"उपसर्ग "निः" का प्रयोग निश्चय, वर्गीकरण, निर्माण या निषेध के अर्थ में किया जाता है। "ग्रन्थ" शब्द का अर्थ धन, निबन्ध तथा शब्दों को जोड़ना है।"

तात्पर्य

यह भी विश्व-प्रकाश कोश का एक अन्य उद्धरण है।

'उरुक्रम'-शब्दे कहे, बड़ याँर क्रम ।

'क्रम'-शब्दे कहे एइ पाद-विक्षेपण ॥19॥

उरुक्रम-शब्दे-ऊरुक्रम शब्द द्वारा; कहे-अर्थ होता है; बड़-विराट्; याँर–जिसके; क्रम-कदम; क्रम-शब्दे-क्रम शब्द द्वारा; कहे-अर्थ होता है; एइ–यह; पाद-विक्षेपण-पैर को आगे बढ़ाना।

अनुवाद

"उरुक्रम' शब्द का अर्थ है, जिसका क्रम अर्थात् कदम बड़ा हो। 'क्रम' शब्द का अर्थ है "पाँव को आगे रखना" अर्थात् कदम, डग।

शक्ति, कम्प, परिपाटी, युक्ति, शक्त्ये आक्रमण ।

चरण-चालने काँपाइल त्रिभुवन ॥20॥

शक्ति-शक्ति; कम्प-कम्पन; परिपाटी–विधि; युक्ति–तर्क; शक्त्ये-बलपूर्वक; आक्रमण-आक्रमण; चरण-चालने-चरण को हिलाकर; काँपाइल-कॅपा दिया; त्रि-भुवन–तीनों लोकों को।

अनुवाद

“क्रम’ के अन्य अर्थ भी हैं-शक्ति, काँपना, विधि, तर्क तथा आगे बढ़कर बलपूर्वक आक्रमण करना। इस तरह वामन ने तीनों लोकों को कँपा दिया था।”

तात्पर्य

उरु का अर्थ है अतीव विशाल तथा क्रम का अर्थ है डग, पदचाप या कदम। जब भगवान् वामनदेव को तीन पग भूमि दे दी गई, तो उन्होंने तीनों कदमों को इतना बढ़ाया कि उन्हीं में सारा ब्रह्माण्ड समेट लिया। इस तरह तीनों लोक काँपने लगे और इसीलिए भगवान् विष्णु के अवतार श्री वामनदेव उरुक्रम कहे जाते हैं।

विष्णोर्नु वीर्य-गणनां कतमोऽर्हतीह

यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ।

चस्कम्भ यः स्व-रंहसास्खलता त्रि-पृष्ठं

यस्मात्त्रि-साम्य-सदनादुरु कम्पयानम् ॥21॥

विष्णोः–भगवान् विष्णु की; नु–निश्चित रूप से; वीर्य-गणनाम्-विभिन्न शक्तियों की गिनती; कतमः-कौन; अर्हति-करने में समर्थ है; इह-इस संसार में; यः–जिसने; पार्थिवानि–पृथ्वी के; अपि-यद्यपि; कविः-एक विद्वान; विममे-गणना कर ली है; रजांसि-परमाणुओं की; चस्कम्भ-वश में कर लिया; यः-जिन्होंने; स्व-अपनी; रंहसा-शक्ति द्वारा; अस्खलता-बिना रूकावट के; त्रि-पृष्ठम्-सर्वोपरि लोक (सत्यलोक); यस्मात्-कुछ कारण से; त्रि-साम्य-जहाँ तीन गुणों की समता है; सदनात्-स्थान से (भौतिक स्थान के मूल से); उरु कम्पयानम्-जोर से काँपने लगे।

अनुवाद

“भले ही विद्वान व्यक्ति इस भौतिक जगत् के सूक्ष्म परमाणुओं की गणना कर ले, फिर भी वह भगवान् विष्णु की शक्तियों की गणना नहीं कर सकता। भगवान् विष्णु ने वामन अवतार के रूप में

भौतिक जगत् के मूल से लेकर सत्यलोक तक के सारे लोकों को बिना किसी बाधा के वश में कर लिया। निस्सन्देह, उन्होंने अपने कदमों के बल से प्रत्येक लोक को कँपा दिया।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.7.40) से है। ऋग्वेद मन्त्र (1.2.154.1) में कहा गया है :

ॐ विष्णोर्नु वीर्याणि कं प्रावोचं

यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।

योऽस्कम्भयद् उत्तरं सधस्थं

विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥

इस श्लोक का अर्थ लगभग श्रीमद्भागवत के उपरि-लिखित श्लोक के समान ही है।

विभु-रूपे व्यापे, शक्त्ये धारण-पोषण ।

माधुर्य-शक्त्ये गोलोक, ऐश्वर्ये परव्योम ॥22॥

विभु-रूपे-अपने सर्वव्यापक रूप में; व्यापे–व्याप्त हो जाते हैं; शक्त्ये-अपनी शक्ति द्वारा; धारण-पोषण-पालन तथा पोषण करते हैं; माधुर्य-शक्त्ये-अपनी माधुर्य शक्ति द्वारा; गोलोक-गोलोक वृन्दावन; ऐश्वर्ये-तथा ऐश्वर्य द्वारा; पर-व्योम-आध्यात्मिक जगत्।

अनुवाद

"अपने सर्वव्यापी रूप के माध्यम से पूर्ण पुरुषोत्तम पुरुषोत्तम भगवान् ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विस्तार किया है। वे अपनी असाधारण शक्ति से इस सृष्टि का धारण और पोषण करते हैं। वे अपनी माधुर्य शक्ति से गोलोक वृन्दावन का पालन करते हैं। वे अपने छः ऐश्वर्यों से अनेक वैकुण्ठ लोकों का पालन करते हैं।"

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण अपने विराट् रूप से सृष्टि को आच्छादित करते हैं। वे सारे लोकों को धारण करके अपनी अचिन्त्य शक्तियों से उनका पालन करते हैं। इसी तरह वे अपने माधुर्य-प्रेम से अपने निजी धाम गोलोक वृन्दावन का पालन करते हैं और अपने ऐश्वर्यों से वैकुण्ठ लोकों से युक्त आध्यात्मिक जगत् का पालन करते हैं।

माया-शक्त्ये ब्रह्माण्डादि-परिपाटी-सृजन।

'उरुक्रम'-शब्देर एइ अर्थ निरूपण ॥23॥

माया-शक्त्ये-अपनी बहिरंगा शक्ति द्वारा; ब्रह्माण्ड-आदि-भौतिक ब्रह्माण्डों की; परिपाटी–एक क्रमबद्ध व्यवस्था; सृजन-सृष्टि; उरुक्रम-शब्देर-उरुक्रम शब्द का; एइ-यही; अर्थ-अर्थ; निरूपण-निश्चित किया गया है।

अनुवाद

"उरुक्रम' शब्द पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का द्योतक है, जिन्होंने अपनी बहिरंगा शक्ति से असंख्य ब्रह्माण्डों की सम्यक् रचना की है।"

"क्रमः शक्तौ परिपाट्यां क्रमश्चालन-कम्पयोः" ॥24॥

क्रमः-क्रम शब्द; शक्ती-शक्ति के अर्थ में; परिपाट्याम्-सुव्यवस्थित करने के अर्थ में; क्रमः-क्रम शब्द; चालन-गति में; कम्पयोः–काँपने में।

अनुवाद

"क्रम" शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। यह शक्ति, क्रमबद्ध योजना, डग (पग), चालन या कम्पन के लिए प्रयुक्त होता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण विश्व-प्रकाश कोश का है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सर्वव्यापक हैं। वे न केवल तीनों लोकों को अपनी अचिन्त्य शक्ति से धारण करते हैं, अपितु उनका पालन भी करते हैं। वे अपने माधुर्य-प्रेम से अपने आध्यात्मिक लोक, गोलोक वृन्दावन का भी पालन करते हैं और अपने ऐश्वर्यों से वैकुण्ठ लोकों का पालन करते हैं। वे भौतिक ब्रह्माण्डों का पालन अपनी बहिरंगा शक्ति द्वारा करते हैं। भौतिक ब्रह्माण्ड इसीलिए सम्यक् व्यवस्थित ढंग से स्थित हैं, क्योंकि उनकी रचना पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा की गई है।

'कुर्वन्ति'-पद एइ परस्मैपद हय।

कृष्ण-सुख-निमित्त भजने तात्पर्य कहय ॥25॥

कुर्वन्ति-पद-कुर्वन्ति शब्द; एइ–यह; परस्मैपद-दूसरों के लिए कुछ करने को व्यक्त करती क्रिया; हय-है; कृष्ण-सुख-निमित्त-कृष्ण को सन्तुष्ट करने के लिए; भजने-प्रेममयी सेवा में; तात्पर्य–तात्पर्य; कहय–कहा जाता है।

अनुवाद

"कुर्वन्ति' शब्द का अर्थ है, वे दूसरों के लिए कुछ करते हैं, 'चूँकि यह करना' क्रिया का एक रूप है, अतः यह 'अन्यों के लिए किये गये कार्य' को सूचित करता है। यह उस भक्ति के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता है, जिसे कृष्ण की तुष्टि के लिए की जाती है। 'कुर्वन्ति' शब्द का यही तात्पर्य है।"

तात्पर्य

संस्कृत में "करना" क्रिया के दो रूप होते हैं- परस्मैपद तथा आत्मनेपद। जब अपनी तुष्टि के लिए कुछ किया जाता है, तो उसे आत्मनेपद कहते हैं। अंग्रेजी में "करना" शब्द संस्कृत में कुर्वते है। जब कोई काम दूसरों के लिए किया जाता है, तब क्रिया का रूप बदलकर कुर्वन्ति हो जाता है। इस

तरह चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बतलाया कि आत्माराम श्लोक में कुर्वन्ति क्रिया का अर्थ यह है कि कृष्ण की तुष्टि के लिए ही काम किया जाए। इसकी पुष्टि व्याकरणवेत्ता पाणिनि द्वारा होती है। जब कोई कार्य अपने लाभ के लिए किया जाता है, तो आत्मनेपद क्रिया-रूप प्रयुक्त किया जाता है, किन्तु जब वही कार्य दूसरों के लिए किया जाता है, तो वह परस्मैपद कहलाता है। इस तरह अपनी तुष्टि या दूसरे की तुष्टि के लिए किये जाने वाले कार्य के अनुसार क्रिया का प्रयोग होता है।

"स्वरित-ञितः कर्त्रभिप्राये क्रिया-फले" ॥ 26॥

स्वरित-इतः–ज या अ स्वर संकेत करती क्रियाओं के; कर्तृ-अभिप्राये-कर्तृ के अभिप्राय से; क्रिया-फले-क्रिया के फल में।

अनुवाद

"आत्मनेपद के अन्त्य तभी प्रयुक्त होते हैं, जब कर्म का फल क्रियाओं के कर्ता को मिलता है, जिसका सूचक ञ या स्वरित स्वर होता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण पाणिनि-सूत्र (1.3.72) का है।

'हेतु'-शब्दे कहे—भुक्ति-आदि वाञ्छान्तरे ।

भुक्ति, सिद्धि, मुक्ति—मुख्य एइ तिन प्रकारे ॥27॥

हेतु-शब्दे हेतु शब्द द्वारा; कहे–कहा जाता है; भुक्ति-कर्म के फलों को स्वयं भोगना; आदि-आदि; वाञ्छा-अन्तरे–एक अन्य उद्देश्य के कारण; भुक्ति-कर्म के फल को भोगना; सिद्धि-कुछ करने की सिद्धि; मुक्ति–मुक्ति; मुख्य-प्रमुख; एइ–इन; तिन प्रकारे–तीन प्रकार से।

अनुवाद

"हेतु शब्द का अर्थ यह है कि किसी उद्देश्य से कोई कार्य किया जाता है। उद्देश्य तीन हो सकते हैं: चाहे कोई उस फल को स्वयं भोगना चाहता हो, चाहे कोई भौतिक सिद्धि प्राप्त करना चाहता हो या मुक्ति प्राप्त करना चाहता हो।"

एक भुक्ति कहे, भोग—अनन्त-प्रकार।

सिद्धि—अष्टादश, मुक्ति—पञ्च-विधाकार ॥28॥

एक–पहला; भुक्ति-कुछ करके भौतिक भोग; कहे-जाना जाता है; भोग-भोग; अनन्त-प्रकार-असंख्य प्रकार के; सिद्धि-योग सिद्धियाँ; अष्टादश-अठारह; मुक्ति-मुक्ति; पञ्च-विधा-आकार–पाँच प्रकार की।

अनुवाद

"सर्वप्रथम हम 'भुक्ति' (भौतिक भोग) शब्द लेते हैं। यह भुक्ति अनन्त प्रकार की होती है। हम 'सिद्धि' शब्द को भी ले सकते हैं, जो अठारह प्रकार की होती है। इसी तरह 'मुक्ति' शब्द के पाँच प्रकार हैं।"

एइ याँहा नाहि, ताहा भक्ति—'अहैतुकी'।

याहा हैते वश हय श्री कृष्ण कौतुकी ॥29॥

एइ-ये; याँहा-जहाँ; नाहि-नहीं रहते; ताहा-वहाँ; भक्ति-प्रेममयी सेवा; अहैतुकी–निष्काम; याहा हैते–जिसके द्वारा; वश हय-वश में आ जाते हैं; श्री-कृष्ण-भगवान् श्रीकृष्ण; कौतुकी–सर्वाधिक मनोविनोदी।

अनुवाद

"अहैतुकी भक्ति भोग, सिद्धि या मुक्ति द्वारा प्रेरित नहीं होती। जब मनुष्य इन सारे कल्मषों से मुक्त हो जाता है, तब वह अत्यन्त कौतुकी कृष्ण को अपने वश में कर सकता है।"

‘भक्ति’-शब्देर अर्थ हय दश-विधाकार।

एक—‘साधन’, ‘प्रेम-भक्ति’—नव प्रकार॥ 30॥

भक्ति-शब्देर-भक्ति शब्द के; अर्थ-अर्थ; हय-हैं; दश-विध-आकार–दस प्रकार के; एक-एक; साधन-साधना भक्ति के नियमों का पालन; प्रेम-भक्ति-प्रेम भक्ति; नव प्रकार-नौ प्रकार की।

अनुवाद

“भक्ति शब्द के दस अर्थ हैं। इनमें से एक है विधि-विधानों के अनुसार भक्ति करना (साधन भक्ति) और दूसरी भक्ति, जिसे प्रेमभक्ति कहते हैं, नौ प्रकार की है।”

तात्पर्य

प्रेमभक्ति के नौ प्रकार हैं-रति (आकर्षण), प्रेम, स्नेह, मान (प्रतिकूल भाव), प्रणय (घनिष्ठता), राग, अनुराग, भाव तथा महाभाव। साधन भक्ति का केवल एक अर्थ है ‘विधि-विधानों के अनुसार भक्ति करना।

‘रति’-लक्षणा, ‘प्रेम’-लक्षणा, इत्यादि प्रचार।

भाव-रूपा, महाभाव-लक्षण-रूपा आर॥ 31॥

रति-रति के; लक्षणा–लक्षण; प्रेम-प्रेम के; लक्षणा–लक्षण; इति-आदि-इत्यादि; प्रचार-जाने जाते हैं; भाव-रूपा-प्रेमभाव के रूप में; महा-भाव-महाभाव के; लक्षण-रूपा–अनेक लक्षण; आर-अन्य।

अनुवाद

इसके बाद भगवत्प्रेम के लक्षणों की व्याख्या की गई है, जो नौ प्रकार के हैं-रति से लेकर भाव और अन्त में महाभाव तक।

शान्त-भक्तेर रति बाड़े ‘प्रेम’-पर्यन्त।

दास्य-भक्तेर रति हय ‘राग’-दशा-अन्त॥ 32॥

शान्त-भक्तेर-शान्तभाव में स्थित भक्तों की; रति-रति (आकर्षण); बाड़े-बढ़ती है; प्रेम-पर्यन्त-भगवत्प्रेम के स्तर तक; दास्य-भक्तेर-दास्यभाव के भक्तों की; रति-रति; हय-बढ़ती है; राग-दशा-अन्त–रागानुग आसक्ति के स्तर तक।

अनुवाद

“शान्त भाव के भक्तों का कृष्ण के प्रति आकर्षण भगवत्प्रेम तक बढ़ता जाता है और दास्य भाव के भक्तों का आकर्षण राग तक बढ़ता है।”

सखा-गणेर रति हय ‘अनुराग’ पर्यन्त।

पितृ-मातृ-स्नेह आदि ‘अनुराग’-अन्त॥ 33॥

सखा-गणेर-सखाओं की; रति-रति; हय-हो जाती है; अनुराग पन्त-अनुराग तक; पितृ-मातृ-स्नेह-वात्सल्य स्नेह; आदि-आदि; अनुराग-अन्त–अनुराग के अन्त तक।

अनुवाद

“वृन्दावन के भक्तगण, जो कि भगवान् के मित्र हैं, वे अपने प्रेम को अनुराग तक वर्धित कर सकते हैं। कृष्ण के माता-पिता का वात्सल्य-स्नेह अनुराग-दशा के अन्त को प्राप्त हो सकता है।”

कान्ता-गणेर रति पाय ‘महाभाव’-सीमा।

‘भक्ति’-शब्देर एइ सब अर्थेर महिमा॥ 34॥

कान्ता-गणेर-माधुर्यप्रेम के भक्तों का; रति-आकर्षण; पाय–प्राप्त करता है; महा-भाव-सीमा-महाभाव की सीमा; भक्ति-शब्देर-भक्ति शब्द के; एइ सब-इन सभी; अर-अर्थों की; महिमा-महिमा।

अनुवाद

“वृन्दावन की गोपियाँ, जो कृष्ण से माधुर्य-प्रेम द्वारा युक्त हैं, वे अपने प्रेम को महाभाव दशा तक ले जा सकती हैं। ‘भक्ति’ शब्द के ये कुछ महिमायुक्त अर्थ हैं।”

‘इत्थम्भूत-गुणः’-शब्देर शुनह व्याख्यान ।

‘इत्थं’-शब्देर भिन्न अर्थ, ‘गुण’-शब्देर आन ॥ 35॥

इत्थम्-भूत-गुणः-शब्देर-इत्थम्भूतगुणः शब्द की; शुनह–सुनो; व्याख्यान-व्याख्या; इत्थम्-शब्देर-इत्थम् शब्द के; भिन्न अर्थ-भिन्न अर्थ; गुण-शब्देर-गुण शब्द के; आन-अन्य।

अनुवाद

“अब आत्माराम श्लोक में आये ‘इत्थम्भूतगुण’ शब्द का अर्थ सुनो। ‘इत्थम्भूत’ के विभिन्न अर्थ होते हैं और ‘गुण’ के उससे भिन्न अर्थ होते हैं।”

‘इत्थम्भूत’-शब्देर अर्थ—पूर्णानन्दमय ।

याँर आगे ब्रह्मानन्द तृण-प्राय हय ॥ 36॥

इत्थम्-भूत-शब्देर-इत्थम्भूत शब्द का अर्थ-अर्थ; पूर्ण-आनन्द-मय-दिव्य आनन्द से पूर्ण; याँर आगे-जिसके सामने; ब्रह्म-आनन्द–निराकार ब्रह्म से उत्पन्न दिव्य आनन्द; तृण-प्राय–तिनके के समान; हय है।

अनुवाद

“इत्थम्भूत’ शब्द दिव्य रूप से बहुत ही उन्नत है, क्योंकि इसका अर्थ है ‘दिव्य आनन्द से पूर्ण।’ इस दिव्य आनन्द के समक्ष ब्रह्म-तादात्म्य से प्राप्त आनन्द (ब्रह्मानन्द) तिनके के समान तुच्छ प्रतीत होता है।”

त्वत्साक्षात्करणाह्लाद-विशुद्धाब्धि-स्थितस्य मे ।

सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्माण्यपि जगद्गुरो ॥ 37॥

त्वत्-आपके; साक्षात्-दर्शन; करण–इस कारण; आह्लाद-आनन्द; विशुद्ध-दिव्य रूप से शुद्ध; अब्धि-समुद्र; स्थितस्य–स्थित; मे-मेरे; सुखानि–सुख; गोष्-पदायन्ते-एक बछड़े खुरों द्वारा किए गये गड्ढे के समान हो जाते हैं; ब्राह्माणि-निराकार ब्रह्मज्ञान द्वारा प्राप्त आनन्द; अपि-भी; जगत्-गुरो-हे जगत् के स्वामी।

अनुवाद

"हे प्रभु, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, चूँकि मैंने आपका प्रत्यक्ष दर्शन किया है, इसलिए मेरे आनन्द ने महासमुद्र का रूप धारण कर लिया है। अब इस समुद्र में स्थित होने के कारण मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि अन्य सारे तथाकथित आनन्द बछड़े के खुर की छाप में भरे जल के समान हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक हरिभक्ति-सुधोदय (14.36) से है।

सर्वाकर्षक, सर्वाह्लादक, महा-रसायन ।

आपनार बले करे सर्व-विस्मारण ॥ 38॥

सर्व-आकर्षक-सर्वाकर्षक; सर्व-आह्लादक-सर्वाधिक आनन्ददायक; महा-रस-अयन-दिव्य रसों के सम्पूर्ण धाम; आपनार बले-अपने बल द्वारा; करे–करवाते हैं; सर्व-विस्मारण-अन्य सुखों का विस्मरण।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण इतने महान् हैं कि वे अन्य किसी से भी अधिक आकर्षक तथा प्रसन्न करने वाले हैं। वे आनन्द के सर्वोत्तम धाम हैं। वे अपने बल से अन्य सारे आनन्दों को भुलवा देने वाले हैं।"

भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-सुख छाड़य यार गन्धे ।

अलौकिक शक्ति-गुणे कृष्ण-कृपाय बान्धे ॥ 39॥

भुक्ति-भौतिक आनन्द भोग; मुक्ति-भौतिक कष्टों से मुक्ति; सिद्धि योग सिद्धि; सुख-इन सबसे प्राप्त सुख; छाड़य–छोड़ देता है; यार-जिसकी; गन्धे-अल्प सुगन्ध द्वारा; अलौकिक-असामान्य, दिव्य; शक्ति-गुणे-शक्ति और गुण द्वारा; कृष्ण-कृपाय-भगवान् कृष्ण की कृपा द्वारा; बान्धे-बँध जाता है।

अनुवाद

"शुद्ध भक्ति इतनी उत्कृष्ट होती है कि व्यक्ति इसके आगे भौतिक सुख, भौतिक मुक्ति तथा योगसिद्धि का सुख आसानी से भूल जाता है। इसलिए भक्त कृष्ण की कृपा तथा उनकी असामान्य शक्ति तथा गुणों से बँध जाता है।"

शास्त्र-युक्ति नाहि इहाँ सिद्धान्त-विचार ।

एइ स्वभाव-गुणे, याते माधुर्येर सार ॥40॥

शास्त्र-युक्ति-प्रामाणिक शास्त्रों के आधार पर तर्क; नाहि-नहीं; इहाँ–यहाँ; सिद्धान्त-विचार-तार्किक निष्कर्षों का विचार; एइ–यह; स्वभाव-गुणे-एक स्वाभाविक गुण; याते-जिसमें; माधुर्येर सार-समस्त दिव्य आनन्द का सार।

अनुवाद

"जब मनुष्य दिव्य पद पर कृष्ण के प्रति आकृष्ट हो जाता है, तब न शास्त्र के आधार पर कोई तर्क काम करता है, न ही ऐसे सिद्धान्तों पर कोई विचार हो पाता है। यही उनका दिव्य गुण है, जो समस्त दिव्य माधुर्य का सार है।"

‘गुण’ शब्देर अर्थ—कृष्णेर गुण अनन्त।

सच्चिद्-रूप-गुण सर्व पूर्णानन्द ॥41॥

गुण शब्देर अर्थ–गुण शब्द का अर्थ; कृष्णेर गुण अनन्त-कृष्ण के अनन्त गुण हैं; सत्-चित्-रूप-गुण-ये गुण दिव्य तथा नित्य हैं; सर्व पूर्ण-आनन्द–समस्त दिव्य आनन्द से परिपूर्ण।

अनुवाद

“कृष्ण के गुण दिव्य और अनन्त हैं। समस्त आध्यात्मिक गुण दिव्य आनन्द से पूर्ण हैं।”

ऐश्वर्य-माधुर्य-कारुण्ये स्वरूप-पूर्णता।

भक्त-वात्सल्य, आत्म-पर्यन्त वदान्यता ॥42॥

ऐश्वर्य–ऐश्वर्य; माधुर्य-दिव्य माधुर्य; कारुण्ये-करुणा; स्वरूप-पूर्णता-दिव्य स्वरूप की पूर्णता; भक्त-वात्सल्य-भक्त के प्रति स्नेह; आत्म-पर्यन्त-अपने आप की सीमा तक; वदान्यता-उदारता।

अनुवाद

“ऐश्वर्य, माधुर्य तथा करुणा जैसे कृष्ण के दिव्य गुण सब तरह से पूर्ण हैं। जहाँ तक अपने भक्तों के प्रति कृष्ण की वत्सलता का प्रश्न है, वे इतने वदान्य हैं कि वे अपने भक्तों को अपने आप तक को दे देते हैं।”

अलौकिक रूप, रस, सौरभादि गुण।

कारो मन कोन गुणे करे आकर्षण ॥43॥

अलौकिक रूप-दिव्य रूप; रस-रस; सौरभ-आदि गुण-दिव्य सुगन्ध आदि गुण; कारो मन–एक भक्त के मन को; कोन गुणे-किसी विशिष्ट गुण द्वारा; करे-करते हैं; आकर्षण-आकर्षण।

अनुवाद

“कृष्ण के गुणों की कोई सीमा नहीं है। भक्तगण उनके असाधारण सौन्दर्य, रसों तथा सुगन्धि से आकृष्ट होते हैं। इस तरह वे विभिन्न दिव्य रसों में विभिन्न रूप से स्थित होते हैं। इसीलिए कृष्ण को सर्व-आकर्षक कहा जाता है।”

सनकादिर मन हरिल सौरभादि गुणे ॥44॥

सनक-आदिर मन-सनक तथा सनातन जैसे साधुओं के मन; हरिल-हर लिए; सौरभ-आदि-अपने चरणकमलों की दिव्य सुगन्ध आदि; गुणे-गुणों द्वारा।

अनुवाद

“चारों कुमार-मुनियों (सनक, सनातन, सनन्दन तथा सनत्कुमार) के मन भगवान् को अर्पित तुलसी की सुगन्ध के कारण भगवान् के चरणकमलों के प्रति आकृष्ट हो गये।”

तस्यारविन्द-नयनस्य पदारविन्द-

किञ्जल्क-मिश्र-तुलसी-मकरन्द-वायुः ।

अन्तर्गतः स्व-विवरेण चकार तेषां

सङ्क्षोभमक्षर-जुषामपि चित्त-तन्वोः ॥ 45 ॥

तस्य-उनके; अरविन्द-नयनस्य-कमल की पंखुड़ियों के समान नेत्रों वाले परम भगवान् के; पद-अरविन्द-चरणकमलों के; किञ्जल्क-केसर के साथ; मिश्र-मिले हुए; तुलसी–तुलसी पत्तों की; मकरन्द–सुगन्ध के साथ; वायुः-वायु; अन्तः-गतः-प्रवेश की; स्व-विवरेण-नासिका के द्वारा; चकार उत्पन्न कर दिया; तेषाम्-उनका; सक्षोभम्-महान् उत्तेजना; अक्षर-जुषाम्-निराकार साक्षात्कार प्राप्त कुमारों के; अपि- भी; चित्त-तन्वोः-मन तथा शरीर का।

अनुवाद

“जब कमलनयन भगवान् के चरणकमलों से तुलसी-दल तथा केसर की सुगन्धि ले जाने वाली वायु उन कुमारों के नासारन्ध्रों से होकर हृदयों में प्रविष्ट हुई, तो उन्हें शरीर तथा मन दोनों में परिवर्तन का अनुभव हुआ, यद्यपि वे निराकार ब्रह्म धारणा के प्रति आसक्त थे।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (3.15.43) का है। इसकी व्याख्या के लिए देखें मध्यलीला 17.142 ।

शुकदेवेर मन हरिल लीला-श्रवणे ॥ 46॥

शुकदेवेर-शुकदेव गोस्वामी का; मन–मन; हरिल-हर लिया; लीला-श्रवणे-भगवान् की लीलाएँ सुनकर।

अनुवाद

“शुकदेव का मन भगवान् की लीलाओं के श्रवण में खो गया था।”

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमःश्लोक-लीलया ।

गृहीत-चेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥ 47॥

परिनिष्ठितः–स्थित; अपि-यद्यपि, नैर्गुण्ये-प्रकृति के भौतिक गुणों से मुक्त दिव्य स्थिति में; उत्तमः-श्लोक-लीलया-उत्तम श्लोक, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की लीलाओं द्वारा; गृहीत-चेताः-मन पूरी तरह वश में हो गया; राजा-ऋषे-हे महान् राजा; आख्यानम्-वर्णन; यत्-जो; अधीतवान्–पढ़ा।

अनुवाद

"[शुकदेव गोस्वामी ने परीक्षित महाराज से कहा :] 'हे राजन, यद्यपि मैं पूर्णतया दिव्य पद को प्राप्त था, किन्तु फिर भी मैं भगवान् कृष्ण की लीलाओं के प्रति आकृष्ट हो गया। इसीलिए मैंने अपने पिता से श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.1.9) का है।

स्व-सुख-निभृत-चेतास्तव्युदस्तान्य-भावो

ऽप्यजित-रुचिर-लीलाकृष्ट-सारस्तदीयम् ।

व्यतनुत कृपया यस्तत्त्व-दीपं पुराणं

तमखिल-वृजिन-घ्नं व्यास-सूनुं नतोऽस्मि ॥48॥

स्व-सुख-निभृत-चेताः-जिनका मन सदैव आत्म-साक्षात्कार के आनन्द में पूर्णतया निमग्न था; तत्-उसके द्वारा; व्युदस्त-अन्य-भावः-अन्य सभी आकर्षणों से मुक्त; अपि-यद्यपि; अजित-रुचिर-लीला-भगवान् अजित की सर्वाधिक आकर्षक लीलाओं द्वारा; आकृष्ट-आकर्षित; सारः-जिनका हृदय; तदीयम्-भगवान् सम्बन्धित; व्यतनुत-वर्णन तथा प्रचार किया; कृपया-कृपा द्वारा; यः-जिन्होंने; तत्त्व-दीपम्-परम सत्य का दीपक; पुराणम्-पूरक वैदिक ग्रन्थ, श्रीमद्भागवत; तम्-उनको; अखिल-वृजिन-घ्नम्-जो सब प्रकार के भौतिक दुःखों का नाश कर सकते हैं; व्यास-सूनुम् व्यासदेव के पुत्र, शुकदेव गोस्वामी को; नतः अस्मि-मैं प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

"मैं समस्त पापफलों को नष्ट करने वाले व्यासपुत्र श्रील शुकदेव गोस्वामी को सादर नमस्कार करता हूँ। आत्म-साक्षात्कार एवं आनन्द से पूर्ण होने के कारण उनकी कोई भौतिक इच्छा नहीं थी। फिर भी वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य लीलाओं के प्रति आकृष्ट हुए और लोगों पर दया करके

उन्होंने श्रीमद्भागवत नामक दिव्य ऐतिहासिक ग्रन्थ का वर्णन किया। यह ग्रन्थ परम सत्य के दीपक के समान है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (12.12.69) से है।

श्री-अङ्ग-रूपे हरे गोपिकार मन ॥49॥

श्री-अङ्ग–अपने दिव्य शरीर के; रूपे–सौंदर्य द्वारा; हरे-हर लेते हैं; गोपिकार मन-गोपियों के मन।

अनुवाद

"भगवान् श्रीकृष्ण अपने सुन्दर दिव्य स्वरूप द्वारा समस्त गोपियों के मन को हर लेते हैं।"

वीक्ष्यालकावृत-मुखं तव कुण्डल-श्री-

गण्ड-स्थलाधर-सुधं हसितावलोकम् ।

दत्ताभयं च भुज-दण्ड-युगं विलोक्य

वक्षः श्रियैक-रमणं च भवाम दास्यः ॥50॥

वीक्ष्य-देखकर; अलक-आवृत-मुखम्-चुंघराले बालों की लटों से सुशोभित मुख को; तव-आपके; कुण्डल-श्री-कुण्डलों की सुन्दरता; गण्ड-स्थल-आपके गालों पर लगते हुए; अधर-सुधम्-तथा आपके होठों से निकलता अमृत; हसित-अवलोकम्-आपकी मुस्कानयुक्त चितवन; दत्त-अभयम्-जो अभय प्रदान करती है; च-तथा; भुज-दण्ड-युगम्-दो भुजाएँ; विलोक्य-देखकर; वक्षः-छाती; श्रिया-सुन्दरता द्वारा; एक-रमणम्-प्रमुख रूप से संगम का आकर्षण उत्पन्न करते; च-तथा; भवाम-हम हो गई; दास्यः-आपकी सेविकाएँ।

अनुवाद

“हे कृष्ण, हम तो आपकी दासियों के रूप में आत्मसमर्पण कर चुकी हैं, क्योंकि हमने बालों की लटों से अलंकृत आपके सुन्दर मुख को, आपके गालों पर लटकते आपके कुण्डलों को, आपके होठों के अमृत को तथा आपके मृदुहास्य की सुन्दरता को देखा है और साहस प्रदान करने वाली आपकी भुजाओं द्वारा हम आलिंगित भी हुई हैं। चूँकि हमने आपके सुन्दर तथा प्रशस्त वक्षस्थल को देखा है, अतएव हम आपकी शरण में हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.29.39) का है और गोपियों ने इसे तब कहा था, जब वे पूर्णिमा की रात में रासनृत्य के लिए कृष्ण के पास पहुँची थीं। सारी की सारी मुग्ध गोपियाँ आश्चर्यचकित थीं और वे कृष्ण को बताने लगीं कि वे किस तरह रासनृत्य का आनन्द लूटने आई हैं।

रूप-गुण-श्रवणे रुक्मिण्यादिर आकर्षण ॥51॥

रूप-सुन्दरता; गुण-गुण; श्रवणे-सुनने से; रुक्मिणी-आदिर-रुक्मिणी आदि; आकर्षण-आकर्षित हो जाती हैं।

अनुवाद

“रुक्मिणी आदि द्वारका की रानियाँ भी कृष्ण के दिव्य सौन्दर्य तथा गुणों को सुनकर उनकी और आकृष्ट हो जाती हैं।”

श्रुत्वा गुणान्भुवन-सुन्दर शृण्वतां ते

निर्विश्य कर्ण-विवरैर्हरतोऽङ्ग-तापम् ।

रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थ-लाभं

त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥52॥

श्रुत्वा-सुनकर; गुणान्-दिव्य गुण; भुवन-सुन्दर–हे सम्पूर्ण सृष्टि में सबसे सुन्दर; शृण्वताम्-सुनने वालों के; ते-आपके; निर्विश्य–प्रवेश करके; कर्ण-विवरैः–कानों के छिद्रों द्वारा; हरतः अङ्ग-तापम्-शरीर की समस्त प्रकार की कष्टदायक स्थिति को हर लेते हैं; रूपम्-सुन्दरता; दृशाम्-आँखों की; दृशिमताम्-जो देख सकते हैं, उनके; अखिल-अर्थ-लाभम्-सब प्रकार के लाभों की प्राप्ति; त्वयि-आपके प्रति; अच्युत-हे अच्युत; आविशति–प्रवेश करता है; चित्तम्-चित्त; अपत्रपम्-लज्जारहित होकर; मे—मेरा।

अनुवाद

“हे अतीव सुन्दर कृष्ण, मैंने दूसरों से आपके दिव्य गुणों के विषय में सुना है, जिसके कारण मेरे शरीर के सारे दुःख जाते रहे हैं। यदि कोई आपके दिव्य सौन्दर्य का दर्शन कर लेता है, तो उसके नेत्रों को जीवन का सारा लाभ प्राप्त हो जाता है। हे अच्युत, आपके गुणों के विषय में सुनकर मैं लज्जाविहीन हो गई हैं और मैं आपके प्रति आकृष्ट हो चुकी हूँ।”

तात्पर्य

यह श्लोक (श्रीमद्भागवत 10.52.37) रुक्मिणीदेवी ने श्रीकृष्ण को अपने पत्र में लिखा था, जिसमें उन्होंने अपने आपको हरण करके ले जाने के लिए बुलावा भेजा था। जब महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा कि रुक्मिणी का हरण किस प्रकार हुआ, तो उन्होंने यह श्लोक बतलाया। रुक्मिणी ने विभिन्न लोगों से कृष्ण के गुणों के विषय में सुन रखा था, अत: सुनने के बाद उन्होंने उन्हें ही पति रूप में स्वीकार करने का निश्चय किया। शिशुपाल से उनके विवाह की सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं; अतः उन्होंने एक पत्र लिखकर एक ब्राह्मण के हाथों उसे कृष्ण के पास भेजा और उन्हें आमन्त्रित किया कि वे उसका हरण कर लें जाएँ।

वंशी-गीते हरे कृष्ण लक्ष्म्यादिर मन ॥53॥

वंशी-गीते-अपनी वंशी की ध्वनि से; हरे–आकर्षित करते हैं; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; लक्ष्मी-आदिर-लक्ष्मी देवी आदि के; मन–मन।

Missing page 308-309

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.29.40) का है।

गुरु-तुल्य स्त्री-गणेर वात्सल्ये आकर्षण ।

दास्य-सख्यादि-भावे पुरुषादि गण ॥57॥

गुरु-तुल्य-वरिष्ठ लोगों के स्तर की; स्त्री-गणेर-वृन्दावन की स्त्रियों का; वात्सल्ये-वात्सल्य स्नेह में; आकर्षण-आकर्षण; दास्य-सख्य-आदि-दास्य, सख्य आदि; भावे-के भाव में; पुरुष-आदि गण-वृन्दावन के सभी पुरुष।

अनुवाद

“वृन्दावन की स्त्रियाँ, जो वयोवृद्धा हैं, कृष्ण के प्रति मातृ-स्नेह से आकृष्ट होती हैं। वृन्दावन के पुरुष कृष्ण के प्रति सेवक, मित्र तथा पिता के रूप में आकृष्ट होते हैं।”

पक्षी, मृग, वृक्ष, लता, चेतनाचेतन ।

प्रेमे मत्त करि’ आकर्षये कृष्ण-गुण ॥58 ॥

पक्षी-पक्षी; मृग-पशु; वृक्ष-पेड़; लता-लता; चेतन-अचेतन-सारे जीव तथा पत्थर और लकड़ी को भी; प्रेमे-प्रेमभाव में; मत्त-उन्मत्त; करि’-करके; आकर्षये-आकर्षित करते हैं; कृष्ण-गुण-कृष्ण के गुण।

अनुवाद

“कृष्ण के गुण जड़ तथा चेतन को समान रूप से मोहने वाले हैं। यहाँ तक कि पक्षी, पशु तथा वृक्ष भी कृष्ण के गुणों से आकृष्ट हो जाते हैं।”

‘हरिः’-शब्दे नानार्थ, दुइ मुख्यतम ।

सर्व अमङ्गल हरे, प्रेम दिया हरे मन ॥ 59॥

हरिः-शब्दे-हरि शब्द द्वारा; नाना-अर्थ-विभिन्न अर्थ; दुइ-दो; मुख्य-तम-सबसे प्रमुख; सर्व-सभी; अमङ्गल-अशुभ; हरे-हर लेते हैं; प्रेम दिया-प्रेमभाव देकर; हरे-हर लेते हैं; मन-मन।

अनुवाद

“यद्यपि हरि शब्द के अनेक अर्थ हैं, किन्तु उनमें से दो मुख्य हैं। एक अर्थ यह है कि भगवान् अपने भक्त का सारा अमंगल हर लेते हैं और दूसरा अर्थ यह है कि वे भगवत्प्रेम द्वारा मन को आकृष्ट करते हैं।”

यैछे तैछे योहि कोहि करये स्मरण ।

चारि-विध ताप तार करे संहरण ॥60॥

यैछे तैछे-जैसे तैसे; योहि कोहि-कहीं भी-कभी भी; करये स्मरण-याद करता है; चारि-विध-चार प्रकार के; ताप-जीवन के कष्ट; तार-उस भक्त के; करे संहरण-वे हर लेते हैं।

अनुवाद

“जब भक्त जहाँ कहीं भी और जैसे कैसे भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सदैव स्मरण करता है, तो भगवान् हरि जीवन के चार प्रकार के तापों को हर लेते हैं।”

तात्पर्य

चार प्रकार के ताप चार प्रकार के पापकर्मों के फल हैं। ये हैं (1) पातक, (2) उरुपातक, (3) महापातक तथा (4) अतिपातक-प्रारम्भिक पाप, महान् पाप, उच्चतर पाप तथा उच्चतम पाप। किन्तु कृष्ण अपने भक्त को आश्वासन देते हैं- अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः–"मैं सारे पापों के फलों से तुम्हारी रक्षा करूँगा। डरो मत।" सर्वपापेभ्यः शब्द चार प्रकार के पापकृत्यों (पातकों) का सूचक है। ज्योंही भक्त भगवान् के चरणकमलों में अपने आपको समर्पित कर देता है, त्योंही वह अपने सारे पापकर्मों और उनके फलों से मुक्त हो जाता है। ये चारों आधारभूत पापकृत्य हैं-अवैध सम्बन्ध, नशा, जुआ खेलना तथा मांसाहार।

यथाग्निः सु-समृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्म-सात् ।

तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ 61॥

यथा-जिस प्रकार; अग्निः-आग; सु-समृद्ध-अर्चिः-पूरी तरह से प्रज्वलित; करोति-कर देती है; एधांसि-ईंधन को; भस्म-सात्-भस्म; तथा-उसी प्रकार; मत्-विषया भक्तिः–मुझसे सम्बन्धित प्रेममयी सेवा; उद्धव-हे उद्धव; एनांसि–सभी प्रकार के पापकर्मो को; कृत्स्नशः–पूर्ण रूप से।

अनुवाद

"जिस प्रकार पूरी तरह प्रज्वलित अग्नि द्वारा सारा ईंधन जलकर राख हो जाता है, उसी तरह मेरी सेवा में लगने पर मनुष्य के सारे पापकृत्य पूर्णतया दूर हो जाते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.14.19) का है और कृष्ण द्वारा कहा गया है।

तबे करे भक्ति-बाधक कर्म, अविद्या नाश ।

श्रवणाचेर फल 'प्रेमा' करये प्रकाश ॥ 62॥

तबे-फिर; करे-करती है; भक्ति-बाधक-प्रेममयी सेवा के मार्ग के बाधक; कर्म-कर्मों का; अविद्या-अविद्या का; नाश-विनाश; श्रवण-आद्येर-श्रवण कीर्तन आदि का; फल-परिणाम; प्रेमा–भगवत्प्रेम; करये प्रकाश-प्रकट करवाता है।

अनुवाद

"इस तरह जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा से सारे पापकर्म दूर हो जाते हैं, तो धीरे-धीरे भक्ति के मार्ग के सारे अवरोध एवं उसी के साथ इन अवरोधों से उत्पन्न अज्ञान भी दूर हो जाते हैं। इसके बाद मनुष्य श्रवण, कीर्तन आदि नौ प्रकार की भक्ति के माध्यम से अपने मूल भगवत्प्रेम को पूरी तरह से प्रकट करता है।"

निज-गुणे तबे हरे देहेन्द्रिय-मन ।

ऐछे कृपालु कृष्ण, ऐछे ताँर गुण ॥ 63 ॥

निज-गुणे-दिव्य गुणों द्वारा; तबे-फिर; हरे–आकर्षित करते हैं; देह-इन्द्रिय-मन-देह, इन्द्रियों तथा मन को; ऐछे-इस प्रकार; कृपालु कृष्ण-कृपालु कृष्ण; ऐछे-ऐसे; ताँर-उनके; गुण-दिव्य गुण।

अनुवाद

"जब भक्त सारे भौतिक पापकर्मों से मुक्त हो जाता है, तो कृष्ण उसके शरीर, मन तथा इन्द्रियों को अपनी सेवा में लगा लेते हैं। इस तरह कृष्ण अत्यन्त कृपालु हैं और उनके दिव्य गुण अत्यन्त आकर्षक हैं।"

चारि पुरुषार्थ छाड़ाय, गुणे हरे सबार मन ।

'हरि'-शब्देर एइ मुख्य कहिलुँ लक्षण ॥ 64॥

चारि पुरुष-अर्थ-चार प्रकार के तथाकथित पुरुषार्थ; छाड़ाय-छुड़वाकर; गुणे-दिव्य गुणों द्वारा; हरे-हर लेते हैं; सबार मन-सबके मन; हरि-शब्देर-हरि शब्द के; एइये; मुख्य–मुख्य; कहिलुँ-मैंने वर्णित किए; लक्षण-लक्षण।

अनुवाद

"जब मनुष्य का मन, इन्द्रियाँ तथा शरीर हरि के दिव्य गुणों के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं, तो वह भौतिक सफलता के चारों सिद्धान्तों का परित्याग कर देता है। इस तरह मैंने 'हरि' शब्द के मुख्य अर्थों की व्याख्या कर दी है।"

तात्पर्य

भौतिक सफलता के चार सिद्धान्त हैं-(1) धार्मिक कृत्य (धर्म) (2) आर्थिक विकास (अर्थ), (3) इन्द्रियतृप्ति (काम) तथा (4) मोक्ष या ब्रह्म की निर्विशेष ज्योति से तादात्म्य। भक्तों को इनमें कोई रुचि नहीं होती।

'च' 'अपि', दुई शब्द ताते 'अव्यय' हय।

येइ अर्थ लागाइये, सेइ अर्थ हय ॥65॥

च-च; अपि-अपि; दुइ-दो; शब्द-शब्द; ताते-इस प्रकार; अव्यय-अव्यय शब्द; हय-हैं; येइ-जो भी; अर्थ-अर्थ; लागाइये-वे प्रयोग करना चाहें; सेइ-वही; अर्थ-अर्थ; हय–किया जा सकता है।

अनुवाद

"जब समुच्चय-बोधक च तथा क्रियाविशेषण अपि ये दो शब्द इस श्लोक में जोड़ दिये जाते हैं, तो इस श्लोक से जैसा भी अर्थ चाहें, प्राप्त किया जा सकता है।"

तथापि च-कारेर कहे मुख्य अर्थ सात ॥66॥

तथापि-फिर भी; च-कारेर–च शब्द के; कहे-कहे जाते हैं; मुख्य–मुख्य; अर्थ-अर्थ; सात-सात।

अनुवाद

“च’ शब्द की व्याख्या सात प्रकार से की जा सकती है।”

चान्वाचये समाहारेऽन्योन्यार्थे च समुच्चये।

यत्नान्तरे तथा पाद-पूरणेऽप्यवधारणे ॥ 67॥

च-यह च शब्द; अन्वाचये-एक को दूसरे से जोड़ने में; समाहारे-समूह के अर्थ में; अन्योन्य-अर्थे–अर्थ को सहायता करने में; च-यह च शब्द; समुच्चये-सामूहिक विचार में; सल-अन्तरे-दूसरे प्रयास में; तथा-साथ ही; पाद-पूरणे-श्लोक को पूर्ण करने में; अपि-तथा; अवधारणे-निश्चितता के अर्थ में।

अनुवाद

“यह शब्द “च” (तथा) का प्रयोग किसी शब्द या वाक्य को पिछले शब्द या वाक्य से जोड़ने, समाहार करने, अर्थ में सहायता करने, सामूहिक जानकारी देने, अन्य विकल्प सुझाने या श्लोक के चरण की पूर्ति करने के लिए किया जाता है। इसका प्रयोग निश्चय के अर्थ में भी होता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक विश्वप्रकाश शब्दकोश से उद्धृत है।

अपि-शब्दे मुख्य अर्थ सात विख्यात ॥ 68 ॥

अपि-शब्दे-अपि शब्द के; मुख्य–मुख्य; अर्थ-अर्थ; सात-सात; विख्यात-प्रसिद्ध।

अनुवाद

“अपि’ शब्द के सात मुख्य अर्थ होते हैं। वे इस प्रकार हैं।”

अपि सम्भावना-प्रश्न-शङ्का-गह-समुच्चये ।

तथा युक्त-पदार्थेषु काम-चार-क्रियासु च ॥ 69॥

अपि-अपिशब्द; सम्भावना–सम्भावना; प्रश्न-प्रश्न; शङ्का-सन्देह; गह-भर्सना करना या गाली देना; समुच्चये-समूह; तथा-तथा; मुक्त-पद-अर्थेषु-अर्थों के समुचित प्रयोग; काम-चार-क्रियासु-अतिशियोक्ति के लिए; च-तथा।

अनुवाद

"यह शब्द "अपि" का प्रयोग सम्भावना, प्रश्न, सन्देह, निन्दा, समुच्चय, वस्तुओं का सही ढंग से सम्प्रयोग तथा अतिशियोक्ति के अर्थ में किया जाता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण भी विश्व-प्रकाश का है।

एइ त' एकादश पदेर अर्थ-निर्णय ।

एबे श्लोकार्थ करि, यथा ये लागय ॥ 70 ॥

एइ त'-यह है; एकादश-ग्यारह; पदेर शब्दों के; अर्थ-निर्णय–अर्थों का विचार; एबे-अब; श्लोक-अर्थ-श्लोक का पूर्ण अर्थ; करि–करता हूँ; यथा-जितनी; ये-जो; लागय–उपयुक्त है।

अनुवाद

"मैं अब ग्यारह अलग-अलग शब्दों के विभिन्न अर्थ बतला चुका हूँ। अब मैं इस श्लोक का पूरा अर्थ कहूँगा, जैसाकि यह विभिन्न स्थलों पर उपयुक्त है।"

'ब्रह्म' शब्देर अर्थतत्त्व सर्व-बृहत्तम ।

स्वरूप ऐश्वर्य करि' नाहि याँर सम ॥71॥

ब्रह्म-ब्रह्म; शब्देर अर्थ-शब्द का अर्थ; तत्त्व-सत्य; सर्व-बृहत्-तम-सर्वश्रेष्ठ परम सत्य; स्व-रूप-वास्तविक स्वरूप; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; करि' मानने से; नाहि-नहीं; याँर–जिसके; सम-समान।

अनुवाद

"ब्रह्म' शब्द परम सत्य का सूचक है, जो अन्य सभी सत्यों से श्रेष्ठ है। यह मूल स्वरूप है और इस परम सत्य के तुल्य अन्य कोई सत्य नहीं है।"

बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्म परमं विदुः ।

तस्मै नमस्ते सर्वात्मन् योगि-चिन्त्याविकारवत् ॥72॥

बृहत्त्वात् सर्वव्यापी होने के कारण; बृंहणत्वात्-असीमित रूप से विस्तार करने के कारण; च–तथा; तत्व ह; ब्रह्म-परम सत्य, ब्रह्म; परमम्-परम; विदुः–वे जानते हैं; तस्मै–उन्हें; नमः-प्रणाम है; ते-आपको; सर्व-आत्मन्-परमात्मा; योगि-चिन्त्य–महान् योगियों द्वारा ध्यान किये जाने वाले; अविकार-वत्-परिवर्तन रहित्।

अनुवाद

"मैं उन परम सत्य को सादर नमस्कार करता हूँ। वे सर्वव्यापक तथा : महान् योगियों के लिए सर्वोच्च विषय हैं। वे अपरिवर्तनशील हैं और सबके आत्मा हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण विष्णु पुराण (1.12.57) का है।

सेइ ब्रह्म-शब्दे कहे स्वयं-भगवान् ।

अद्वितीय-ज्ञान, याँहा विना नाहि आन ॥73॥

सेइ-उस; ब्रह्म-शब्दे–ब्रह्म शब्द द्वारा; कहे–कहा जाता है; स्वयम्-भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; अद्वितीय-ज्ञान-द्वैत रहित, परम पुरुष; याँहा-जिनके; विना-बिना; नाहि आन-अन्य कुछ नहीं है।

अनुवाद

"ब्रह्म' शब्द का वास्तविक अर्थ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् है, जो अद्वितीय हैं और जिनके बिना अन्य किसी भी वस्तु का अस्तित्व सम्भव नहीं है।"

वदन्ति तत्तत्त्व-विदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥74॥

वदन्ति-वे कहते हैं; तत्-उनको; तत्त्व-विदः-ज्ञानीजन; तत्त्वम्-परम सत्य को; यत्-जो; ज्ञानम्-ज्ञान; अद्वयम्-द्वैत रहित; ब्रह्म-ब्रह्म; इति–इस प्रकार; परमात्मा-परमात्मा; इति–इस प्रकार; भगवान्-भगवान्; इति–इस प्रकार; शब्द्यते-कहे जाते हैं।

अनुवाद

"विद्वान अध्यात्मवादी, जो परम सत्य को जानते हैं, कहते हैं कि वे ही अद्वय ज्ञान हैं और वे ही निराकार ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा भगवान् कहलाते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.2.11) का है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला 2.11 ।

सेइ अद्वय-तत्त्व कृष्ण—स्वयं-भगवान् ।

तिन-काले सत्य तिंहो—शास्त्र-प्रमाण ॥ 75 ॥

सेइ-वही; अद्वय-तत्त्व-द्वैत रहित परम पुरुष; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; स्वयम्-भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम पुरुषोत्तम भगवान्; तिन-काले–तीनों कालों (भूत, वर्तमान तथा भविष्य) में; सत्य-सत्य; तिंहो-वे; शास्त्र-प्रमाण–सभी वैदिक शास्त्रों का प्रमाण।

अनुवाद

"वे अद्वय परम सत्य कृष्ण हैं, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य के परम सत्य हैं। यही समस्त प्रामाणिक शास्त्रों का प्रमाण है।"

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत्सदसत्परम् ।

पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥76 ॥

अहम्-मैं, परम भगवान्; एव-निश्चित रूप से; आसम्-उपस्थित था; एव-केवल; अग्रे-सृष्टि से पूर्व; न-नहीं; अन्यत्-और कुछ भी; यत्-जो; सत्-परिणाम; असत्-कारण; परम्-परम; पश्चात्-बाद में; अहम्-मैं, परम भगवान्; यत्-जो; एतत्-यह सृष्टि; च-तथा; यः-जो; अवशिष्येत-बचता है; सः-वह; अस्मि-हूँ; अहम्-मैं, परम भगवान्।

अनुवाद

"सृष्टि के पूर्व केवल मैं विद्यमान रहता हूँ, कोई स्थूल, सूक्ष्म या आदि तत्त्व कुछ भी नहीं रहता। सृष्टि के बाद मैं ही प्रत्येक वस्तु में विद्यमान रहता हूँ और संहार के बाद केवल मैं ही शाश्वत रूप से रह जाता हूँ।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.9.33) का है, जो भगवान् कृष्ण द्वारा कहा गया है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला 1.53 ।

'आत्म'-शब्दे कहे कृष्ण बृहत्त्व-स्वरूप ।

सर्व-व्यापक, सर्व-साक्षी, परम-स्वरूप ॥ 77॥

आत्म-शब्दे-आत्मा शब्द द्वारा; कहे-कहा जाता है; कृष्ण-परम भगवान् कृष्ण; बृहत्त्व-सबसे श्रेष्ठ; स्वरूप-स्वरूप; सर्व-व्यापक-सर्वव्यापक; सर्व-साक्षी-सबके साक्षी; परम-स्वरूप-परम स्वरूप।

अनुवाद

"आत्मा' शब्द सर्वोच्च सत्य, कृष्ण का सूचक है। वे सबके सर्वव्यापी साक्षी हैं और परम स्वरूप हैं।"

आततत्वाच्च मातृत्वादात्मा हि परमो हरिः ॥ 78 ॥

आततत्वात्स र्वव्यापक होने के कारण; च–तथा; मातृत्वात्-जन्म देने के कारण; आत्मा-आत्मा; हि–अवश्य; परमः-परम; हरिः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, हरि।

अनुवाद

"भगवान् हरि प्रत्येक वस्तु के सर्वव्यापक आदि उद्गम हैं। इसलिए वे सबके परमात्मा हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीधर स्वामी कृत श्रीमद्भागवत की टीका भावार्थ-दीपिका से उद्धृत है।

सेइ कृष्ण-प्राप्ति-हेतु त्रिविध 'साधन' ।

ज्ञान, योग, भक्ति,—तिनेर पृथक्लक्षण ॥ 79 ॥

सेइ-वे; कृष्ण-प्राप्ति-कृष्ण के चरणकमल प्राप्त करने के; हेतु-हेतु; त्रि-विध साधन-तीन प्रकार के साधन; ज्ञान-ज्ञान; योग-योगाभ्यास; भक्ति-भक्ति, प्रेममयी सेवा; तिनेर-इन तीनों के; पृथक् लक्षण-भिन्न लक्षण हैं।

अनुवाद

"परम सत्य कृष्ण के चरणकमलों को प्राप्त करने के तीन साधन हैं। ये हैं-दार्शनिक चिन्तन, योगाभ्यास तथा भक्तिमय सेवा। इन तीनों के लक्षण अलग-अलग हैं।"

तिन साधने भगवान् तिन स्वरूपे भासे ।

ब्रह्म, परमात्मा, भगवत्ता,—त्रिविध प्रकाशे ॥80 ॥

तिन साधने-इन तीन भिन्न प्रक्रियाओं द्वारा; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; तिन-तीन; स्वरूपे-स्वरूपों में; भासे प्रकट होते हैं; ब्रह्म-निराकार पहलू; परमात्मा-परमात्मा; भगवत्ता तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; त्रिविध प्रकाशे–तीन प्रकार के प्राकट्य।

अनुवाद

"परम सत्य तो एक ही हैं, किन्तु उन्हें समझने के प्रक्रिया के अनुसार वे-ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् ये तीन रूपों में प्रकट होते हैं।"

वदन्ति तत्तत्त्व-विदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥81॥

वदन्ति-वे कहते हैं; तत्-उसको; तत्त्व-विदः-विद्वान; तत्त्वम्-परम सत्य को; यत्-जो; ज्ञानम्-ज्ञान; अद्वयम्-द्वैत रहित; ब्रह्म-ब्रह्म; इति-इस प्रकार; परमात्मा-परमात्मा; इति-इस प्रकार; भगवान्-भगवान्; इति-इस प्रकार; शब्द्यते-कहा जाता है।

अनुवाद

"परम सत्य को जानने वाले विद्वान अध्यात्मवादी कहते हैं कि यह अद्वय ज्ञान है और निर्विशेष ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा भगवान् कहलाता है।"

'ब्रह्म-आत्मा'-शब्दे यदि कृष्णेरे कहय ।

‘रूढ़ि-वृत्त्ये’ निर्विशेष अन्तर्यामी कय ॥82॥

ब्रह्म-आत्मा-शब्दे–ब्रह्मा तथा आत्मा शब्द द्वारा; यदि-यदि; कृष्णेरे कहय-कृष्ण लक्षित होते हैं; रूढ़ि-वृत्त्ये-प्रत्यक्ष अर्थ द्वारा; निर्विशेष-निराकार; अन्तर्यामी परमात्मा; कय–कहा जाता है।

अनुवाद

“यद्यपि ‘ब्रह्म’ तथा ‘आत्मा’ शब्द कृष्ण के सूचक हैं, किन्तु उनके प्रत्यक्ष अर्थ क्रमशः निर्विशेष ब्रह्म तथा परमात्मा के ही सूचक हैं।”

ज्ञान-मार्गे—निर्विशेष-ब्रह्म प्रकाशे ।

योग-मार्गे—अन्तर्यामि-स्वरूपेते भासे ॥ 83 ॥

ज्ञान-मार्गे-दार्शनिक चिन्तन की प्रक्रिया; निर्विशेष-ब्रह्म-निराकार ब्रह्मज्योति; प्रकाशे-प्रकट होती है; योग-मार्गे–योगाभ्यास द्वारा; अन्तर्यामि-स्वरूपेते-परमात्मा रूप में; भासे-प्रकट होते हैं।

अनुवाद

“यदि कोई दार्शनिक चिन्तन के मार्ग का अनुसरण करता है, तो परम सत्य अपने आपको निर्विशेष ब्रह्म के रूप में प्रकट करते हैं, किन्तु यदि वह योग को अनुगामी है, तो परम सत्य (भगवान्) स्वयं को परमात्मा के रूप में प्रकट करते हैं।”

राग-भक्ति-विधि-भक्ति हय दुइ-रूप ।

‘स्वयं-भगवत्त्वे’, भगवत्त्वे—प्रकाश द्वि-रूप ॥84॥

राग-भक्ति-रागानुग भक्ति; विधि-भक्ति-साधना भक्ति; हय-है; दुइ-रूप-दो प्रकार की भक्ति; स्वयम्-भगवत्त्वे-परम भगवान् में; भगवत्त्वे तथा उनके निजी विस्तार में; प्रकाश द्वि-रूप-दो प्रकार के प्राकट्य।

अनुवाद

“भक्ति-कर्म दो प्रकार का है-रागानुग (स्वतःस्फूर्त) तथा विधि-विधानपरक (साधन भक्ति)। रागानुगा भक्ति से मनुष्य को मूल भगवान् अर्थात् कृष्ण की प्राप्ति होती है और विधि-विधानों (वैधी भक्ति) से मनुष्य को भगवान् का विस्तार रूप प्राप्त होता है।”

राग-भक्त्ये व्रजे स्वयं-भगवाने पाय ॥85॥

राग-भक्त्ये-रागानुग भक्ति सम्पन्न करने के द्वारा; व्रजे-वृन्दावन में; स्वयम्-स्वयं; भगवाने-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को; पाय-प्राप्त करता है।

अनुवाद

“वृन्दावन में रागानुगा भक्ति सम्पन्न करने से मनुष्य को मूल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण प्राप्त होते हैं।”

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिका-सुतः ।

ज्ञानिनां चात्म-भूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥86॥

न–नहीं; अयम्-ये भगवान् कृष्ण; सुख-आपः-सरलता से प्राप्त; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; देहिनाम्-उन भौतिकतावादी लोगों के लिए जिन्होंने शरीर को ही आत्मा मान लिया है; गोपिका-सुतः-माता यशोदा का पुत्र; ज्ञानिनाम्-मानसिक तर्क में रत लोगों के लिए; च-तथा; आत्म-भूतानाम्-कठोर तपस्याएँ करने वाले लोगों के लिए; यथा-जिस प्रकार; भक्ति-मताम्-भक्ति (प्रेममयी सेवा) में लगे हुए लोगों के लिए; इह-इस संसार में।

अनुवाद

“माता यशोदा के पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण रागानुगा प्रेमा-भक्ति में लगे भक्तों के लिए उपलब्ध हैं, किन्तु वे ज्ञानियों, कठिन तपस्या द्वारा आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करने वालों या शरीर को आत्मा के तुल्य मानने वालों के लिए उतनी सरलता से सुलभ नहीं होते।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.9.21) का है, जिसे श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा था। व्याख्या के लिए देखें मध्य लीला 8.227 ।

विधि-भक्त्ये पार्षद-देहे वैकुण्ठेते याय ॥ 87॥

विधि-भक्त्ये-वैधी साधना भक्ति द्वारा; पार्षद-देहे-भगवान् के एक पार्षद के रूप में; वैकुण्ठेते याय-वैकुण्ठ लोक प्राप्त करता है।

अनुवाद

“वैधी भक्ति करने से मनुष्य नारायण का पार्षद बनता है और आध्यात्मिक आकाश में वैकुण्ठ लोक प्राप्त करता है।”

यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या

दूरे-यमा ह्युपरि नः स्पृहणीय-शीलाः ।

भर्तुर्मथः सु-यशसः कथनानुराग-

वैक्लव्य-बाष्प-कलया पुलकी-कृताङ्गाः ॥88॥

यत्-जो; च–तथा; व्रजन्ति–जाता है; अनिमिषाम्-देवताओं के; ऋषभ-अनुवृत्त्या-आध्यात्मिक जीवन के श्रेष्ठ अभ्यास द्वारा; दूरे-दूर से ही; यमाः–यम; हि-अवश्य; उपरि-ऊपर; नः-हमारे; स्पृहणीय-शीलाः-इच्छित गुणों से सुशोभित; भर्तुः-स्वामी के; मिथः-साथ मिलकर; सु-यशसः–जिसके सभी

दिव्य गुण हैं; कथन-अनुराग-चर्चा के प्रति आकर्षित; वैक्लव्य-रूपान्तर; बाष्प-कलया-आँखों में आंसुओं के साथ; पुलकी-कृत-आनन्दित; अङ्गाः-शरीर के अंग।

अनुवाद

"जो भगवान् कृष्ण के कार्यों की चर्चा करते हैं, वे भक्ति के चरम पद को प्राप्त रहते हैं और उनके नेत्रों से अश्रु तथा शारीरिक पुलक के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे लोग योग-पद्धति के विधि-विधानों का अभ्यास किये बिना ही कृष्ण की भक्ति करते हैं। उनमें सारे आध्यात्मिक गुण पाये जाते हैं और वे वैकुण्ठ लोकों को जाते हैं, जो हमारे ऊपर स्थित हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (3.15.25) से उधृत है। इस श्लोक में ब्रह्माजी दिति के गर्भ में स्थित दो असुरों से भयभीत सभी देवताओं को बता रहे हैं कि किस प्रकार चार कुमार वैकुण्ठ गये। बाद में व्यासदेव के मित्र मैत्रेय ने इसी की व्याख्या विदुर को उपदेश देते समय की।

सेइ उपासक हय त्रिविध प्रकार।

अकाम, मोक्ष-काम, सर्व-काम आर॥ 89॥

सेइ उपासक-वे भक्त; हय-होते हैं; त्रि-विध प्रकार–तीन प्रकार के; अकाम-भौतिक इच्छाओं से रहित; मोक्ष-काम-मुक्त होने के इच्छुक; सर्व-काम-सभी भौतिक इच्छाओं से पूर्ण; आर-तथा।

अनुवाद

"भक्तगण तीन वर्गों में विभाजित हैं-अकाम (निष्काम), मोक्षकाम (मोक्ष के इच्छुक) तथा सर्वकाम (भौतिक सिद्धि के इच्छुक)।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।

तीव्रण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ 90॥

अकामः-भौतिक इच्छाओं से रहित; सर्व-कामः-सभी भौतिक इच्छाओं से पूर्ण; वा-या; मोक्ष-कामः-मुक्ति का इच्छुक; उदार-धीः- भक्ति में उन्नत एवं सन्निष्ठ; तीव्रण-दृढ़ तथा उत्साहपूर्ण; भक्ति-योगेन-भक्तियोग के अभ्यास द्वारा; यजेत-उपासना करनी चाहिए; पुरुषम् परम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की।

अनुवाद

"जो वास्तव में बुद्धिमान है, वह भले ही भौतिक इच्छाओं से मुक्त भक्त हो, या सारी भौतिक सुविधाएँ चाहने वाला कर्मी हो अथवा मोक्ष की कामना करने वाला ज्ञानी हो, उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की तुष्टि के लिए गम्भीरतापूर्वक भक्तियोग का पालन करना चाहिए।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.3.10) का है।

बुद्धिमान्-अर्थे—यदि 'विचार-ज्ञ' हय।

निज-काम लागिह तबे कृष्णेरे भजय ॥ 91॥

बुद्धिमान्-अर्थ-बुद्धिमान के अर्थ द्वारा; यदि-यदि; विचार-ज्ञ-विचार करने में दक्ष; हय-हो; निज-काम लागिह-अपनी भौतिक भोग की इच्छा के लिए; तबे-तब; कृष्णेरे भजन-भगवान् कृष्ण की सेवा करता है।

अनुवाद

"उदारधीः' शब्द का अर्थ बुद्धिमान या विचारवान है। इसीलिए मनुष्य अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए भी कृष्ण की भक्ति में संलग्न होता है।"

भक्ति विनु कोन साधन दिते नारे फल ।

सब फल देय भक्ति स्वतन्त्र प्रबल ॥92॥

भक्ति विनु-भक्ति के बिना; कोन-कोई; साधन-साधन; दिते-देने में; नारे-समर्थ नहीं; फल-परिणाम; सब फल-विभिन्न प्रक्रियाओं के फल; देय-देती है; भक्ति-भक्ति; स्व-तन्त्र–स्वतन्त्र; प्रबल–तथा शक्तिशाली।

अनुवाद

"अन्य विधियाँ तब तक कोई फल प्रदान नहीं कर सकतीं, जब तक उनकी संगति भक्ति से नहीं हो जाती। किन्तु भक्ति इतनी प्रबल तथा स्वतन्त्र है कि यह मनुष्य को सारे वांछित फल दे सकती है।"

अजा-गल-स्तन-न्याय अन्य साधन ।

अतएव हरि भजे बुद्धिमान् जन ॥ 93 ॥

अजा-गल-स्तन-न्याय-बकरी के गले के स्तन के समान; अन्य-अन्य; साधन-साधन; अतएव-इसलिए; हरि-भगवान् हरि की; भजे-उपासना करता है; बुद्धिमान् जन-बुद्धिमान व्यक्ति।

अनुवाद

"भक्ति को छोड़कर आत्म-साक्षात्कार की सारी विधियाँ बकरी के गले के स्तन के समान हैं। अतः बुद्धिमान मनुष्य आत्म-साक्षात्कार की अन्य सारी विधियों को त्यागकर एकमात्र भक्ति को अपनाता है।"

तात्पर्य

भक्ति के बिना आत्म-साक्षात्कार तथा आध्यात्मिक जीवन की अन्य सारी विधियाँ व्यर्थ हैं। अन्य विधियों से कभी-भी अच्छे फल प्राप्त नहीं हो सकते, इसीलिए उनकी तुलना बकरी के गले से लटकने वाले स्तनों से की गई है। देखने से लगता है कि इन स्तनों से दूध निकल सकता है, किन्तु इनसे दूध नहीं निकलता। अज्ञानी व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि भक्ति ही मनुष्य को दिव्य स्तर पर ऊपर उठा सकती है।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥94॥

चतुः-विधाः–चार प्रकार के; भजन्ते-उपासना करते हैं; माम्-मुझे; जनाः-लोग; सुकृतिनः–जिन्होंने वर्णाश्रम के नियमों का पालन किया है; अर्जुन-हे अर्जुन; आर्तः–दुःखी; जिज्ञासुः-जिज्ञासु; अर्थ-अर्थी-धन का इच्छुक; ज्ञानी-ज्ञान का अनुशीलन करने वाला; च-तथा; भरत-ऋषभ-हे भरतवासियों में श्रेष्ठ।

अनुवाद

“हे भरत-श्रेष्ठ (अर्जुन), चार प्रकार के पुण्यात्मा मेरी भक्ति करते हैं-आर्त (दुःखी), धन का इच्छुक, जिज्ञासु तथा परम पूर्ण के ज्ञान की खोज करने वाला।”

तात्पर्य

यह उद्धरण भगवद्गीता (7.16) से लिया गया है। इस श्लोक में सुकृतिनः शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सु का अर्थ है “शुभ और कृती का अर्थ है “प्रतिभाशाली”अथवा “संयमी।” जब तक मनुष्य धार्मिक जीवन के विधि-विधानों का पालन नहीं करता, तब तक मानव-जीवन पशु-जीवन से भिन्न नहीं होता। धार्मिक जीवन का अर्थ है वर्ण तथा आश्रम के सिद्धान्तों का पालन करना। विष्णु पुराण में कहा गया है:

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् ।

विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत् तत्तोषकारणम् ॥

धार्मिक जीवन के अनुसार, समाज चार सामाजिक विभागों (वर्णो)-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र एवं चार आध्यात्मिक विभागों (आश्रमों)-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास-में विभाजित किया गया है। जिस तरह मनुष्य को इंजीनियर, डाक्टर या वकील बनने के लिए प्रशिक्षित होना पड़ता है, उसी तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बनने के लिए प्रशिक्षित होना आवश्यक होता है। जिन्हें समुचित प्रशिक्षण मिला रहता है, वे तो मानव माने जा सकते हैं; किन्तु जिसे सामाजिक तथा आध्यात्मिक रीति से प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ रहता–अर्थात् जो अशिक्षित एवं असंयमित है--वह पशु स्तर पर रहता है। पशुओं में आध्यात्मिक उन्नति का प्रश्न ही नहीं उठता। आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति उपयुक्त प्रशिक्षण द्वारा ही हो सकती है, चाहे यह वर्ण तथा आश्रम के सिद्धान्तों के अनुपालन करने से हो या श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं/ अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् की विधियों द्वारा भक्तियोग में प्रत्यक्ष प्रशिक्षण द्वारा हो। प्रशिक्षण के बिना कोई सुकृती नहीं हो सकता। इस श्लोक में कृष्ण बतलाते हैं कि लोग उनके पास या तो संकट में पड़ने पर या धन की आवश्यकता पड़ने पर या भगवान् को जानने की वास्तविक जिज्ञासा होने पर अथवा उन्हें सबका मूल स्रोत समझकर आते हैं। कुछ लोग परम सत्य विषयक ज्ञान की खोज में उन तक पहुँचते हैं और कुछ कष्ट में पड़ने पर पहुँचते हैं, यथा गजेन्द्र जैसे भक्त। कुछ लोग सनक आदि कुमारों की तरह जिज्ञासु होते हैं और कुछ को धन की आवश्यकता होती है। यथा ध्रुव महाराज । शुकदेव गोस्वामी भगवान् के पास तब गये, जब उन्हें ज्ञान की आवश्यकता हुई। इस तरह ये सारे महापुरुष पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की भक्ति करने लगे।

आर्त, अर्थार्थी,—दुइ सकाम-भितरे गणि ।

जिज्ञासु, ज्ञानी,—दुई मोक्ष-काम मानि ॥ 95 ॥

आर्त–दुःखी; अर्थ-अर्थी-धन का इच्छुक; दुइ-दोनों; सकाम-भितरे-भौतिक इच्छाओं से युक्त लोगों की श्रेणी में; गणि-हम मानते हैं; जिज्ञासु-जिज्ञासु; ज्ञानी–ज्ञानी; दुइ-दोनों; मोक्ष-काम-मुक्ति के लिए आध्यात्मिक ज्ञान अर्जित करने वाले लोग; मानि-मैं मानता हूँ।

अनुवाद

"भौतिकतावादी भक्तगण भक्ति तथा कृष्ण की पूजा तब करते हैं, जब वे संकट में होते हैं या उन्हें धन की आवश्यकता होती है। जो लोग हर वस्तु के परम स्रोत को जानने के लिए वास्तव में उत्सुक रहते हैं, तथा जो लोग ज्ञान की खोज में रहते हैं, वे अध्यात्मवादी कहलाते हैं, क्योंकि वे समस्त भौतिक कल्मष से मुक्ति चाहते हैं।"

एइ चारि सुकृति हय महा-भाग्यवान् ।

तत्तत्कामादि छाड़ि' हय शुद्ध-भक्तिमान् ॥ 96 ॥

एइ चारि-ये चारों लोग; सुकृति-पुण्यवान लोग; हय-हैं; महा-भाग्यवान्–महा भाग्यवान; तत्-तत्-वे अपनी-अपनी; काम-आदि-इच्छाएँ, छाड़ि-छोड़कर; हय-बन जाते हैं; शुद्ध-भक्तिमान्–शुद्ध भक्त।

अनुवाद

"पवित्र पृष्ठभूमि होने के कारण इन चारों प्रकार के लोगों को अत्यन्त भाग्यवान मानना चाहिए। ऐसे लोग धीरे-धीरे भौतिक इच्छाओं का परित्याग कर देते हैं और शुद्ध भक्त बन जाते हैं।"

साधु-सङ्ग-कृपा किम्वा कृष्णेर कृपाय ।

कामादि 'दुःसङ्ग' छाड़ि' शुद्ध-भक्ति पाय ॥ 97॥

साधु-सङ्ग-कृपा- भक्तों के संग की कृपा द्वारा; किम्वा-या; कृष्णेर कृपाय-कृष्ण की कृपा द्वारा; काम-आदि-भौतिक इच्छाएँ आदि; दुःसङ्ग-कुसंग; छाड़ि-छोड़कर; शुद्ध-भक्ति पाय-शुद्ध प्रेममयी सेवा का पद प्राप्त करता है।

अनुवाद

"वैष्णव, प्रामाणिक गुरु तथा कृष्ण की विशेष कृपा से ही मनुष्य भक्ति-पद को प्राप्त होता है। इस पद पर मनुष्य सारी भौतिक इच्छाओं तथा अवांछित लोगों की संगति को त्याग देता है। इस तरह मनुष्य शुद्ध भक्ति के पद को प्राप्त करता है।"

सत्सङ्गान्मुक्त-दुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः ।

कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकण्यं रोचनम् ॥98॥

सत्-सङ्गात्-शुद्ध भक्तों के संग द्वारा; मुक्त-मुक्त; दुःसङ्गः- भौतिकतावादी लोगों का संग; हातुम्-त्यागने के लिए; न-नहीं; उत्सहते-समर्थ; बुधः-जो ज्ञानी है; कीर्यमानम्-गुणगान किये जाते हुए; यशः–यश; यस्य–जिनका (भगवान्); सकृत्-एक बार; आकण्र्य-सुनकर; रोचनम्-अत्यन्त रुचिकर।

अनुवाद

"बुद्धिमान लोग, जिन्होंने शुद्ध भक्तों की संगति में रहकर परमेश्वर को समझ लिया है और जो भौतिक कुसंगति से मुक्त हो चुके हैं, पहले केवल एक बार सुनने पर भी भगवान् की महिमा के श्रवण की उपेक्षा नहीं कर सकते।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.10.11) का है। कुरुक्षेत्र के युद्ध के बाद जब कृष्ण हस्तिनापुर छोड़कर जा रहे थे, तब सभी कुरुवंशियों ने कृष्ण को प्रणाम किया। चूँकि कृष्ण अपने राज्य को जा रहे

थे, इसलिए सभी कुरुवंशी उनकी विदाई से विह्वल हो गये थे। इसी सन्दर्भ में यह श्लोक शुकदेव गोस्वामी ने कहा था।

शुद्ध भक्त भगवान् की महिमा सुनकर कृष्ण के प्रति आसक्त हो जाता है। भगवान् की महिमा तथा स्वयं भगवान् अभिन्न हैं। इस परम सत्य को समझने के लिए योग्यता चाहिए, इसलिए हर एक को शुद्ध भक्तों की संगति करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी उद्देश्य के निमित्त है। हम शुद्ध भक्त उत्पन्न करना चाहते हैं, जिससे अन्य लोग उनकी संगति से लाभ उठा सकें। इस तरह से शुद्ध भक्तों की संख्या बढ़ेगी। पेशेवर प्रचारक शुद्ध भक्त उत्पन्न नहीं कर सकते। श्रीमद्भागवत के ऐसे अनेक पेशेवर प्रचारक हैं, जो अपने जीविकोपार्जन के लिए इसका प्रवचन करते हैं। किन्तु वे लोग भौतिकतावादियों को भक्ति की ओर उन्मुख नहीं कर सकते। केवल शुद्ध भक्त ही दूसरों को शुद्ध भक्ति की ओर मोड़ सकता है। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सभी प्रचारक पहले शुद्ध भक्त बनें और अवैध यौन सम्बन्ध, मांसाहार, मादक द्रव्यों तथा जुए से दूर रहने के विधि-विद्यानों का पालन करें। उन्हें चाहिए कि नियमित रूप में अपनी जपमाला में हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करें, भक्ति-प्रक्रिया का पालन करें, प्रात:काल जल्दी उठे, मंगल आरती में सम्मिलित हों और नियमित रूप से श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीता का पाठ करें। इस तरह से मनुष्य शुद्ध तथा सारे भौतिक कल्मष से मुक्त हो सकता है।

सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् ।

हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते ॥

“भक्ति का अर्थ है अपनी सभी इन्द्रियों को इन्द्रियों के स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा में लगाना। जब आत्मा भगवान् की सेवा करता है, तो उसके दो अतिरिक्त परिणाम होते हैं। एक यह है कि मनुष्य सभी भौतिक उपाधियों से मुक्त हो जाता है और दूसरा यह कि मात्र भगवान् की सेवा में लगे रहने से उसकी इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती हैं।” (नारद पञ्चरात्र)

भक्ति का दिखावा करने से काम नहीं चलने वाला। मनुष्य को भक्तियोग का पालन करके शुद्ध भक्त बनना चाहिए, तभी वह दूसरों को भक्ति की ओर मोड़ सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु भक्ति का पालन करते थे और प्रचार भी करते थे (आपनि आचरि भक्ति करिल प्रचार) । यदि प्रचारक भक्ति में रहकर समुचित आचरण करता है, तो वह दूसरों को बदल सकेगा, अन्यथा उसका प्रचार-कार्य व्यर्थ होगा।

'दुःसङ्ग' कहिये—'कैतव', 'आत्म-वञ्चना' ।

कृष्ण, कृष्ण-भक्ति विनु अन्य कामना ॥ 99॥

दुःसङ्ग–बुरी संगति; कहिये-मैं कहता हूँ; कैतव-कपट; आत्म-वञ्चना–स्वयं को छलना; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण की प्रेममयी सेवा; विनु–बिना; अन्य-अन्य; कामना-इच्छाएँ।

अनुवाद

"अपने आपको और दूसरों को ठगना कैतव कहा जाता है। इस तरह ठगने वाले ठगों की संगति करना दुःसंग कहलाता है, जिसका अर्थ है बुरी संगति। जो लोग कृष्ण की सेवा करने के अतिरिक्त अन्य बातें चाहते हैं, वे भी दुःसंग कहलाते हैं।"

धर्मः प्रोज्झित-कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां

वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिव-दं ताप-त्रयोन्मूलनम् ।

श्रीमद्भागवते महा-मुनि-कृते किं वा परैरीश्वरः

सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ 100॥

धर्म;-धार्मिकता; प्रोज्झित–पूर्णतया तिरस्कृत; कैतवः-जिसमें सकाम इच्छाएँ हैं; अत्र-इसमें; परमः-परम; निर्मत्सराणाम्पू र्ण शुद्ध हृदय वालों के; सताम्-भक्तों के; वेद्यम्-समझने के लिए; वास्तवम्-वास्तविक; अत्र-यहाँ; वस्तु-वस्तु; शिव-दम्-सौभाग्य प्रदान करने वाली; ताप-त्रय-तीनों

तापों का; उन्मूलनम्-नाश करने वाली; श्रीमत्-सुन्दर; भागवते-भागवत पुराण में; महा-मुनि-महामुनी व्यासदेव द्वारा; कृते-संकलित; किम्-क्या; वा-वास्तव में; परैः-दूसरों के साथ; ईश्वरः-परम भगवान्; सद्यः-तुरन्त; हृदि-हृदय में; अवरुध्यते-बस जाते हैं; अत्र-यहाँ; कृतिभिः-पुण्यवान लोगों द्वारा; शुश्रुषुभिः–जो सुनने के इच्छुक हैं; तत्-क्षणात् बिना विलम्ब के।

अनुवाद

"महामुनि व्यासदेव द्वारा चार प्रारम्भिक श्लोकों से विरचित महान् शास्त्र श्रीमद्भागवत में अत्यन्त दयालु-हृदय वाले उन्नत भक्तों का वर्णन हुआ है और इसमें भौतिकता से प्रेरित धार्मिकता के वंचना-मार्गों का पूरा बहिष्कार हुआ है। वह शाश्वत धर्म के सर्वोच्च सिद्धान्तों की स्थापना करता है, जिनसे जीव के तीन प्रकार के कष्ट वास्तविक रूप से दूर हो सकते हैं और वह सम्पन्नता तथा ज्ञान का सर्वोच्च वर प्रदान कर सकता है। जो लोग विनीत होकर सेवाभाव से इस शास्त्र का सन्देश ग्रहण करना चाहते हैं, वे तुरन्त ही भगवान् को अपने हृदयों में बन्दी बना सकते हैं। अतएव श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्य किसी शास्त्र की आवश्यकता नहीं है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.1.2) का है। इसी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला (1.91)।

'प्र'-शब्दे—मोक्ष-वाञ्छा कैतव-प्रधान।

एइ श्लोके श्रीधर-स्वामी करियाछेन व्याख्यान॥ 101॥

प्र-शब्दे- प्र उपसर्ग द्वारा; मोक्ष-वाञ्छा-मुक्त होने की इच्छा; कैतव-प्रधान–प्रथम श्रेणी का छल; एइ श्लोके-इस श्लोक में; श्रीधर स्वामी–महान् टीकाकार श्रीधर स्वामी ने; करियाछेन–किया है; व्याख्यान-व्याख्यान।

अनुवाद

“प्रोज्झित’ शब्द के प्रारम्भ में ‘प्र’ उपसर्ग विशेष रूप से मोक्षकामी या ब्रह्म में लीन होने के इच्छुक लोगों की ओर संकेत करता है। ऐसी इच्छा को ठग-प्रवृत्ति में प्रमुख माननी चाहिए। महान् भाष्यकार श्रीधर स्वामी ने इस श्लोक की व्याख्या इसी रूप में की है।”

सकाम-भक्ते ‘अज्ञ’ जानि’ दयालु भगवान् ।

स्व-चरण दिया करे इच्छार पिधान ॥102 ॥

सकाम-भक्ते-भौतिक इच्छाओं से युक्त भक्तों को; अज्ञ-अज्ञानी; जानि’–जानकर; दयालु–दयालु; भगवान् श्रीकृष्ण; स्व-चरण-अपने चरणकमल; दिया-देकर; करे-करते हैं; इच्छार पिधान-अन्य इच्छाओं का अन्त।

अनुवाद

“जब दयालु भगवान् यह समझ लेते हैं कि मूर्ख भक्त भौतिक सम्पन्नता चाहता है, तो वे उसे अपने चरणकमलों में कृपा करके शरण देते हैं। इस तरह भगवान् उसकी अवांछित इच्छाओं को ढक देते हैं।”

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां

नैवार्थ-दो यत्पुनरर्थिता यतः ।

स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छताम्

इच्छा-पिधानं निज-पाद-पल्लवम् ॥103 ॥

सत्यम्-यह सत्य है; दिशति-वे प्रदान करते हैं; अर्थितम्-जो इच्छित है; अर्थितः-माँगा गया; नृणाम्-मनुष्यों द्वारा; न-नहीं; एव–अवश्य; अर्थ-दः-इच्छित वस्तुएँ देते हुए; यत्-जो; पुनः-दोबारा ; अर्थिता-माँगे; यतः-जिसके द्वारा; स्वयम्-स्वयं को; विधत्ते-वे देते हैं; भजताम्-भक्ति में लगे लोगों को;

अनिच्छताम्-इच्छा न होने पर भी ; इच्छा-पिधानम्-अन्य सभी इच्छाओं को आवृत करके; निज-पाद-पल्लवम्-अपने चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

"जब भी कोई कृष्ण से अपनी इच्छापूर्ति के लिए प्रार्थना करता है, तो वे उसे अवश्य ही पूरी कर देते हैं, किन्तु वे कोई ऐसी वस्तु प्रदान नहीं करते जिससे उसे बारम्बार अपनी और इच्छाएँ पूरी करने के लिए याचना करनी पड़े। जब मनुष्य अन्य इच्छाएँ होने पर भी भगवान् की सेवा में लगा रहता है, तो कृष्ण उसे बलात् अपने चरणकमलों में शरण प्रदान करते हैं, जहाँ व्यक्ति अन्य सारी इच्छाएँ इच्छाओं को भूल जाता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (5.19.27) से है।

साधु-सङ्ग, कृष्ण-कृपा, भक्तिर स्वभाव ।

ए तिने सब छाड़ाय, करे कृष्णे 'भाव' ॥ 104॥

साधु-सङ्ग-भक्तों का संग; कृष्ण-कृपा-भगवान् कृष्ण की कृपा; भक्तिर–प्रेममयी सेवा का; स्वभाव-स्वभाव; ए तिने ये तीनों; सब छाड़ाय-अन्य सब कुछ छुड़वा देते हैं; करे-करते हैं; कृष्णे-भगवान् कृष्ण के प्रति; भाव-प्रेमभाव।

अनुवाद

"साधु-संग, कृष्ण-कृपा तथा भक्ति की प्रकृति-ये तीनों समस्त अवांछित संगति को त्यागने तथा क्रमशः भगवत्प्रेम का पद प्राप्त करने में सहायक होते हैं।"

तात्पर्य

इस श्लोक में शुद्ध भक्तों की संगति, कृष्ण-कृपा तथा भक्ति सम्पन्न करने का उल्लेख हुआ है। इन सबसे अभक्तों की संगति तथा बहिरंगा शक्ति, माया द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्य को छोड़ने में सहायता मिलती है। शुद्ध भक्त कभी भी भौतिक ऐश्वर्य के द्वारा आकृष्ट नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त करने में जो समय नष्ट होता है, वह मानव जीवन रूपी उपहार का दुरुपयोग है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है- श्रम एव हि केवलम्। भक्त की दृष्टि में जितने भी राजनीतिज्ञ, सामाजिक कार्यकर्ता, परोपकारी, दार्शनिक तथा मानवतावादी हैं, वे मात्र अपना समय आँवा रहे हैं, क्योंकि उनकी भागदौड़ तथा विज्ञापन से मानव समाज जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त नहीं हो सकता। इन तथाकथित उपकारियों, राजनीतिज्ञों तथा दार्शनिकों को कोई ज्ञान नहीं होता, क्योंकि वे यह नहीं जानते कि मृत्यु के बाद जीवन होता है। मृत्यु के बाद जीवन होता है, ऐसा ज्ञान होना आध्यात्मिक ज्ञान का शुभारम्भ है। मनुष्य भगवद्गीता (2.13) की प्रारम्भिक शिक्षाओं को समझ लेने पर अपने आपको समझ सकता है और यह जान सकता है कि वह क्या है।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तर-प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

“जिस प्रकार देहधारी आत्मा निरन्तर इस शरीर में बचपन से युवावस्था और युवावस्था से वृद्धावस्था को प्राप्त होता रहता है, उसी प्रकार मृत्यु के समय आत्मा दूसरे शरीर में प्रवेश करता है। इस परिवर्तन से धीर पुरुष मोहित नहीं होता।”

मूर्ख मनुष्य इस जीवन के वास्तविक विज्ञान को न जानकर क्षणिक कार्यकलापों में लगा रहता है और इस तरह जन्म-मृत्यु के चक्र में और अधिक बद्ध हो जाता है। वह सदा भौतिक ऐश्वर्य की कामना करता है, जिसे कर्म, ज्ञान तथा योग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु जब मनुष्य वास्तव में भक्ति- पद पर उन्नत हो जाता है, तब वह इन समस्त कामनाओं का परित्याग कर देता है। इसे अन्याभिलाषिता शून्य कहते हैं। तब वह शुद्ध भक्त बन जाता है।

आगे यत यत अर्थ व्याख्यान करिब ।

कृष्ण-गुणास्वादेर एइ हेतु जानिब ॥ 105॥

आगे-आगे; यत यत–जितने भी; अर्थ-अर्थ; व्याख्यान करिब–'मैं बताऊँगा; कृष्ण-गुण-आस्वादेर-कृष्ण के दिव्य गुणों के आस्वादन का; एइ-यही; हेतु-कारण; जानिब-हमे समझना चाहिए।

अनुवाद

"इस तरह मैं आत्माराम श्लोक के सारे शब्दों की व्याख्या करता चलूँगा। यह स्मरण रहे कि ये सारे शब्द कृष्ण के दिव्य गुणों का आस्वादन कराने के निमित्त हैं।"

श्लोक-व्याख्या लागि' एइ करिलुँ आभास ।

एबे करि श्लोकेर मूलार्थ प्रकाश ॥106॥

श्लोक-व्याख्या-श्लोक की व्याख्या के; लागि'–लिए; एइ-यह; करिलुँ-मैंने किया; आभास-संकेत; एबे-अब; करि-मैं करता हूँ; श्लोकेर-श्लोक का; मूल-अर्थ-वास्तविक अर्थ; प्रकाश-प्रकाशित।

अनुवाद

"मैंने इस श्लोक का अर्थ इंगित करने के लिए ही इतनी सारी व्याख्याएँ की हैं। अब मैं इस श्लोक का वास्तविक अर्थ कहने जा रहा हैं।"

ज्ञान-मार्गे उपासक—दुइत' प्रकार ॥

केवल ब्रह्मोपासक, मोक्षाकाङ्क्षी आर ॥ 107॥

ज्ञान-मार्गे–ज्ञान मार्ग पर; उपासक-उपासक; दुइत' प्रकार-दो प्रकार के; केवल-केवल; ब्रह्म-उपासक-निराकार ब्रह्म के उपासक; मोक्ष-आकाङ्क्षी-मोक्ष के इच्छुक; आर-तथा।

अनुवाद

“ज्ञान-मार्ग के उपासक दो प्रकार के होते हैं-एक तो ब्रह्म उपासक, जो निर्विशेष ब्रह्म के उपासक होते हैं तथा दूसरे मोक्षाकांक्षी, जो मोक्ष की आकांक्षा करते हैं।”

केवल ब्रह्मोपासक तिन भेद हय।

साधक, ब्रह्ममय, आर प्राप्त-ब्रह्म-लय ॥ 108॥

केवल ब्रह्म-उपासक-केवल निराकार ब्रह्म के उपासक; तिन भेद हय–तीन प्रकार के हैं; साधक-प्रारम्भिक अवस्था के साधक; ब्रह्म-मय-ब्रह्म के विचार में लीन; आर-तथा; प्राप्त-ब्रह्म-लय-ब्रह्मज्योति में वास्तव में लीन हो चुके।

अनुवाद

“निर्विशेष ब्रह्म के उपासकों के तीन प्रकार हैं-साधक, ब्रह्म के ध्यान में मग्न रहने वाले तथा निर्विशेष ब्रह्म को वस्तुतः प्राप्त।”

भक्ति विना केवल ज्ञाने ‘मुक्ति’ नाहि हय।

भक्ति साधन करे येइ ‘प्राप्त-ब्रह्म-लय’ ॥109॥

भक्ति-भक्तिमयी सेवा; विना-बिना; केवल–केवल; ज्ञाने-ज्ञान द्वारा; मुक्ति-मुक्ति; नाहि हय-नहीं होती; भक्ति-भक्तिमयी सेवा; साधन-आभ्यास; करे-करता है; येइ-जो; प्राप्त-ब्रह्म-लय-निराकार ब्रह्म में लीन होने के समान।

अनुवाद

“भक्ति से रहित मानसिक चिन्तन के माध्यम से ही मुक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। किन्तु यदि भक्ति सम्पन्न की जाती है, तो स्वतः ब्रह्म-पद प्राप्त हो जाता है।”

भक्तिर स्वभाव,—ब्रह्म हैते करे आकर्षण।

दिव्य देह दिया कराय कृष्णेर भजन ॥110॥

भक्तिर-प्रेममयी सेवा; स्वभाव-स्वभाव; ब्रह्म-निराकार ब्रह्म अनुभूति; हैते-से; करे-करती है; आकर्षण-आकर्षित; दिव्य-दिव्य; देह-देह; दिया-देकर; कराय-करवाती है; कृष्णेर भजन-भगवान् कृष्ण की सेवा।

अनुवाद

"विचित्र बात है कि जो भक्ति करता है, वह निर्विशेष ब्रह्म-पद से दूर हटता जाता है। उसे कृष्ण की सेवा में लगने के लिए दिव्य शरीर प्रदान किया जाता है।"

भक्त-देह पाइले हय गुणेर स्मरण ।

गुणाकृष्ट हञा करे निर्मल भजन ॥ 111॥

भक्त-देह-एक भक्त का शरीर; पाइले-जब कोई प्राप्त करता है; हय-होता है; गुणेर स्मरण-दिव्य गुणों का स्मरण; गुण-आकृष्ट हञा-दिव्य गुणों से आकर्षित होकर; करे-करता है; निर्मल भजन-शुद्ध भक्ति।

अनुवाद

"भक्त का आध्यात्मिक शरीर प्राप्त होने पर मनुष्य कृष्ण के दिव्य गुणों का स्मरण कर सकता है। कृष्ण के दिव्य गुणों के प्रति आकृष्ट होने मात्र से मनुष्य उनकी सेवा में लगकर शुद्ध भक्त बन जाता है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने श्लोक 107 से 111 तक का जो सारांश दिया है, वह इस प्रकार है। ज्ञान-मार्ग के अध्यात्मवादियों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है-निर्विशेष ब्रह्म के शुद्ध उपासक तथा निर्विशेष ब्रह्म में तदाकार होने के इच्छुक। जब मनुष्य इस विचार में पूरी तरह मग्न रहता है कि

वह परब्रह्म से भिन्न नहीं है, तो वह निर्विशेष ब्रह्म का उपासक माना जाता है। ब्रह्म के निर्विशेष उपासकों की तीन श्रेणियाँ हैं-(1) साधक अर्थात् वे जिन्हें ब्रह्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया में सिद्धि प्राप्त होने ही वाली है; (2) वे जो ब्रह्म के ध्यान में पूरी तरह मग्न रहते हैं; तथा (3) वे जो ब्रह्मभूत पद पर होते हैं और जिनका भौतिक अस्तित्व से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। भले ही कोई निर्विशेष ब्रह्म का कितना ही उच्च उपासक क्यों न हो, वह भक्ति के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। जिस किसी ने अपने आपको आत्मा के रूप में समझ लिया है, वह भक्ति कर सकता है। यही भगवद्गीता (18.54) का निर्णय है :

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥

“जो परम पद को प्राप्त होता है, उसे तुरन्त ही परम ब्रह्म की अनुभूति हो जाती है और वह पूर्णतया प्रसन्न हो जाता है। वह न तो शोक करता है, न ही किसी वस्तु की कामना करता है। वह हर जीव के प्रति समभाव रखता है। उस स्थिति में वह मेरी शुद्ध भक्ति को प्राप्त करता है।”

शुद्ध भक्ति प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक रूप से शुद्ध होकर ब्रह्मभूत पद प्राप्त करना आवश्यक है, जो भौतिक चिन्ता तथा भौतिक भेदभाव से परे है। जब मनुष्य ब्रह्म की अनुभूति होने के बाद शुद्ध भक्ति का अभ्यास करता है, तो वह शुद्ध भक्ति द्वारा आकृष्ट होता है। उस समय, भक्ति करने से शुद्ध इन्द्रियों से युक्त आध्यात्मिक शरीर प्राप्त होता है :

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् ।

हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते ॥

इन्द्रियों के शुद्ध होने पर मनुष्य कृष्ण की प्रेमाभक्ति कर सकता है। शुद्ध भक्त केवल कृष्ण के दिव्य गुणों का स्मरण कर सकता है। उनका स्मरण करने से वह कृष्ण की प्रेमाभक्ति में पूरी तरह लग जाता है।

"मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते" ॥ 112॥

मुक्ताः-मुक्त; अपि-यद्यपि; लीलया-लीलाओं द्वारा; विग्रहम्-भगवान् का श्रीविग्रह; कृत्वा–प्रतिष्ठापित करके; भगवन्तम्-भगवान् की; भजन्ते-उपासना करता है।

अनुवाद

"निर्विशेष ब्रह्म में मग्न रहने वाला मुक्तात्मा भी कृष्ण की लीलाओं के प्रति आकृष्ट होता है। तब वह अर्चाविग्रह स्थापित करके भगवान् की सेवा करता है।"

तात्पर्य

कभी-कभी बड़े-बड़े मायावादी संन्यासी राधा-कृष्ण के अर्चाविग्रह की पूजा करते हैं और भगवान् की लीलाओं की चर्चा चलाते हैं। किन्तु उनका उद्देश्य गोलोक वृन्दावन प्राप्त करना नहीं होता। वे तो भगवान् के तेज में तदाकार होना चाहते हैं। यह कथन नृसिंह तापनी नामक उपनिषद् पर शंकराचार्य के भाष्य से उधृत है।

जन्म हैते शुक-सनकादि 'ब्रह्ममय' ।

कृष्ण-गुणाकृष्ट हञा कृष्णेरे भजय ॥ 113॥

जन्म हैते-जन्म से ही; शुक-शुकदेव गोस्वामी ने; सनक-आदि-चार कुमारों ने; ब्रह्म-मय-निराकार ब्रह्म के विचार में लीन; कृष्ण-गुण-आकृष्ट-भगवान् की दिव्य लीलाओं द्वारा आकर्षित; हञा–होकर; कृष्णेरे भजय-भगवान् कृष्ण की आराधना की।

अनुवाद

"यद्यपि शुकदेव गोस्वामी तथा चारों कुमार सदैव निर्विशेष ब्रह्म के विचार में डूबे रहते थे और इस तरह ब्रह्मवादी थे, फिर भी वे कृष्ण की। दिव्य लीलाओं तथा गुणों के द्वारा आकृष्ट हुए थे। इसीलिए बाद में वे कृष्ण-भक्त बन गये।"

सनकार कृष्ण-कृपाय सौरभे हरे मन ।

गुणाकृष्ट हञा करे निर्मल भजन ॥ 114॥

सनक-आद्येर–सनक आदि चार कुमारों का; कृष्ण-कृपाय-कृष्ण की कृपा द्वारा; सौरभे-सुगन्ध ने; हरे-हर लिया; मन–मनों को; गुण-आकृष्ट हा-इस प्रकार कृष्ण के दिव्य गुणों द्वारा आकर्षित होकर; करे-करते हैं; निर्मल भजन-शुद्ध भक्ति।

अनुवाद

"चारों कुमारों के मन कृष्ण के चरणकमलों पर चढ़ाये गये फूलों की सुगन्ध से आकृष्ट हो गये। इस तरह कृष्ण के दिव्य गुणों से आकृष्ट होकर वे शुद्ध भक्ति में लग गये।"

तस्यारविन्द-नयनस्य पदारविन्द-

किञ्जल्क-मिश्र-तुलसी-मकरन्द-वायुः ।

अन्तर्गतः स्व-विवरेण चकार तेषां

सङ्क्षोभमक्षर-जुषामपि चित्त-तन्वोः ॥ 115॥

तस्य-उनके; अरविन्द-नयनस्य-कमल के समान नेत्रों वाले के; पद-अरविन्द-चरणकमलों की; किञ्जल्क–अंगुलियों के साथ; मिश्र-मिश्रित; तुलसी–तुलसी के पत्तों की; मकरन्द-सुगन्ध; वायुः–वायु; अन्तः-गतः-अन्दर प्रवेशकर; स्व-विवरेण-उनके नाक द्वारा; चकार कर दिया; तेषाम्-कुमारों का; सङ्क्षोभम्-बदलने के लिए विचलित; अक्षर-जुषाम् निराकार ब्रह्म साक्षात्कार से आसक्त; अपि-यद्यपि; चित्त-तन्वोः–मने तथा शरीर में।

अनुवाद

“जब कमल जैसे नेत्रों वाले भगवान् के चरणकमलों पर चढ़े। तुलसी-दल तथा केसर की सुगन्धि को ले जाने वाली वायु उन ऋषियों (कुमारों) के नासारन्ध्रों से होकर उनके हृदयों में पहुँची, तो निर्विशेष ब्रह्म में आसक्त होते हुए भी उन्होंने अपने शरीर तथा मन दोनों में परिवर्तन का अनुभव किया।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (3.15.43) से लिया गया है।

व्यास-कृपाय शुकदेवेर लीलादि-स्मरण ।

कृष्ण-गुणाकृष्ट हञा करेन भजन ॥ 116॥

व्यास-कृपाय-श्रील व्यासदेव की कृपा द्वारा; शुकदेवेर-शुकदेव गोस्वामी को; लीला-आदि-स्मरण-कृष्ण की दिव्य लीलाओं का स्मरण; कृष्ण-गुण-आकृष्ट-कृष्ण के दिव्य गुणों द्वारा आकर्षित; हञा-होकर; करेन-की; भजन-प्रेममयी सेवा।

अनुवाद

“श्रील व्यासदेव की कृपा से शुकदेव गोस्वामी भगवान् कृष्ण की लीलाओं के प्रति आकृष्ट हुए। इस तरह कृष्ण के दिव्य गुणों के प्रति आकृष्ट होने पर वे भी भक्त बन गये और उनकी सेवा करने लगे।”

हरेर्गुणाक्षिप्त-मतिर्भगवान्बादरायणिः ।

अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णु-जन-प्रियः ॥ 117॥

हरेः-भगवान् कृष्ण के; गुण-आक्षिप्त-मतिः-गुणों द्वारा उत्तेजित मन वाले; भगवान् सर्वश्रेष्ठ अध्यात्मवादी; बादरायणिः-व्यासदेव के पुत्र, शुकदेव गोस्वामी; अध्यगात्-अध्ययन किया; महत्-आख्यानम्-महाकाव्य; नित्यम्-नित्य; विष्णु-जन-प्रियः-जो भगवान् विष्णु के भक्तों, वैष्णवों को अत्यन्त प्रिय हैं।

अनुवाद

"भगवान् की दिव्य लीलाओं द्वारा अत्यधिक आकृष्ट होने पर श्रील शुकदेव गोस्वामी का मन कृष्णभावना से उत्तेजित हुआ। अतः वे अपने पिता की कृपा से श्रीमद्भागवत का अध्ययन करने लगे।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.7.11) का है।

नव-योगीश्वर जन्म हैते 'साधक' ज्ञानी।

विधि-शिव-नारद-मुखे कृष्ण-गुण शुनि' ॥118॥

नव-नौ; योगी-ईश्वर–महान् योगी; जन्म हैते–जन्म से; साधक-साधक; ज्ञानी-दिव्य ज्ञान में निपुण; विधि-ब्रह्माजी; शिव-शिवजी; नारद–महामुनि नारद; मुखे-उनके मुखों से; कृष्ण-गुण शुनि'-कृष्ण के दिव्य गुणों को सुनकर।

अनुवाद

"नौ योगीश्वर (योगेन्द्र) जन्म से ही परम सत्य के निर्विशेष दार्शनिक थे। किन्तु उन्होंने ब्रह्माजी, शिवजी तथा महर्षि नारद से कृष्ण के गुणों के विषय में सुना, तो वे भी कृष्ण-भक्त बन गये।"

गुणाकृष्ट हञा करे कृष्णेर भजन।

एकादश-स्कन्धे ताँर भक्ति-विवरण ॥119॥

गुण-आकृष्ट हञा-दिव्य गुणों से आकर्षित होकर; करे-करने लगे; कृष्णेर भजन-कृष्ण की सेवा; एकादश-स्कन्धे-श्रीमद्भागवत ग्यारहवें स्कन्ध में; ताँर–उनकी; भक्ति-विवरण-भक्ति का विवरण है।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में उन नवों योगेन्द्रों की भक्ति का पूरा वर्णन मिलता है, जिन्होंने भगवान् के दिव्य गुणों के द्वारा आकृष्ट होकर भक्ति की।"

अक्लेशां कमल-भुवः प्रविश्य गोष्ठीं

कुर्वन्तः श्रुति-शिरसां श्रुतिं श्रुत-ज्ञाः ।

उत्तुङ्गं यदु-पुर-सङ्गमाय रङ्गं

योगीन्द्राः पुलक-भृतो नवाप्यवापुः ॥120॥

अक्लेशाम्-भौतिक कष्ट के बिना; कमल-भुवः–कमल पुष्प से जन्मे ब्रह्माजी के; प्रविश्य-प्रवेश कर; गोष्ठीमु-संग में; कुर्वन्तः–निरन्तर करते हुए; श्रुति-शिरसाम्-सर्वश्रेष्ठ वैदिक ज्ञान; श्रुतिम्-सुनकर; श्रुत-ज्ञाः-जो वैदिक ज्ञान में दक्ष हैं; उत्तुङ्गम्-अति उच्च; यदु-पुर-सङ्गमाय-द्वारका धाम जाने के लिए; रङ्गम्-रंगक्षेत्र में; योगी-इन्द्राः-महान् सन्त; पुलक-भृतः-आध्यात्मिक रूप से प्रसन्न होकर; नव–नौ; अपि-यद्यपि; अवापुः-प्राप्त किये।

अनुवाद

"नवों योगेन्द्र ब्रह्माजी के सान्निध्य में गये और उनसे उन्होंने उपनिषदों का वास्तविक अर्थ सुना। यद्यपि वे पहले से वैदिक ज्ञान के जानकार थे, किन्तु ब्रह्मा के मुख से कृष्णभावना के विषय में सुनकर वे अत्यन्त पुलकित हुए। इस प्रकार उन्होंने भगवान् कृष्ण के निवासस्थान द्वारका में प्रविष्ट होना चाहा। इस तरह अन्त में वे रंगक्षेत्र नामक स्थान को प्राप्त कर सके।"

तात्पर्य

यह उद्धरण महा उपनिषद से है।

मोक्षाकाङ्क्षी ज्ञानी हय तिन-प्रकार।

मुमुक्षु, जीवन्मुक्त, प्राप्त-स्वरूप आर॥ 121॥

मोक्ष-आकाक्षी–निराकार ब्रह्म में लीन होने के इच्छुक; ज्ञानी–ज्ञान में उन्नत; हय-हैं; तिन-प्रकार–तीन प्रकार के; मुमुक्षु-मोक्ष की इच्छा रखने वाले; जीवन्-मुक्त-इसी जीवन में मुक्त; प्राप्त-स्वरूप-स्वरूप-सिद्ध; आर-तथा।

अनुवाद

"निर्विशेष ब्रह्म में लीन होने के इच्छुक लोग भी तीन प्रकार के होते हैं-वे जो मुक्त होना चाहते हैं, वे जो पहले से मुक्त हैं तथा वे जो ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुके हैं।"

'मुमुक्षु' जगते अनेक संसारी जन।

'मुक्ति' लागि' भक्त्ये करे कृष्णेर भजन॥122॥

मुमुक्षु-मोक्ष के इच्छुक; जगते-इस संसार में; अनेक–अनेक; संसारी जन-भौतिक कार्यों में लगे लोग; मुक्ति लागि'-मुक्ति के लिए; भक्त्ये-भक्ति में; करे-करते हैं; कृष्णेर भजन-कृष्ण की उपासना।

अनुवाद

"इस भौतिक जगत् में अनेक लोग हैं, जो मुक्ति की कामना करते हैं और इसके लिए वे भगवान् कृष्ण की भक्ति करते हैं।"

मुमुक्षवो घोर-रूपान्हित्वा भूत-पतीनथ।

नारायण-कलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः॥ 123॥

मुमुक्षवः-जो ज्ञानी हैं, जो परम गति प्राप्त करना चाहते हैं, तथा जो असुरों और अभक्तों की भाँति किसी से ईर्ष्या नहीं करते; घोर-रूपान्–भयानक रूपों वाले देवताओं को; हित्वा-त्यागकर; भूत-पतीन्-प्रजापतियों; अथ-इसलिए; नारायण-कलाः-भगवान् नारायण के कला विस्तार; शान्ताः-अत्यन्त शान्त; भजन्ति–वे उपासना करते हैं; हि-अवश्य; अनसूयवः-जो ईर्ष्या रहित हैं।

अनुवाद

"जो लोग भवबन्धन से छूटना चाहते हैं, वे भयानक रूप वाले देवताओं की पूजा करना बन्द कर देते हैं। ऐसे शान्त भक्त, जो देवताओं से ईर्ष्या नहीं करते, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण के विविध रूपों की पूजा करते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.2.26) का है। जो वास्तव में सर्वोच्च सिद्धि चाहते हैं, वे भगवान् विष्णु के विविध अवतारों को पूजते हैं। किन्तु जो लोग भौतिक जीवन बिताने के लिए व्याकुल और उत्तेजित रहते हैं, वे भयानक दिखने वाले देवताओं की पूजा करते हैं-यथा देवी काली तथा काल भैरव (रुद्र)। किन्तु कृष्ण के भक्त न तो देवताओं से द्वेष रखते हैं, न उनके उपासकों से। वे तो नारायण के विविध अवतारों की शान्तिपूर्वक भक्ति करते हैं।

सेइ सबेर साधु-सङ्गे गुण स्फुराय।

कृष्ण-भजन कराय, 'मुमुक्षा' छाड़ाय॥ 124॥

सेइ सबेर–उन विभिन्न देवताओं के उपासकों की; साधु-सङ्गे-भक्तों के संग में; गुण स्फुराय-दिव्य गुणों की प्रशंसा जाग जाती है; कृष्ण-भजन कराय-भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा में लगकर; मुमुक्षा छाड़ाय-मुक्त होने की या भगवान् के निराकार पहलू में लीन होने की इच्छा छुड़वा देती है।

अनुवाद

"देवपूजा से आसक्त लोग यदि सौभाग्यवश भक्तों की संगति पा जाते हैं, तो उनकी सुप्त भक्ति तथा भगवान् के गुणों के प्रति उनका अनुराग धीरे-धीरे जाग्रत हो उठता है। इस तरह वे भी कृष्ण की भक्ति करने लगते हैं और मुक्ति तथा निर्विशेष ब्रह्म में लीन होने की इच्छा का परित्याग कर देते हैं।"

तात्पर्य

चारों कुमार (चतु:सन), शुकदेव गोस्वामी तथा नवों योगेन्द्र ब्रह्म के साक्षात्कार में मग्न रहते थे, और वे किस प्रकार भक्त बने उसका वर्णन इसमें किया गया है। निर्विशेषवादी तीन प्रकार के होते हैं-मुमुक्षु (मुक्ति की इच्छा रखने वाले), जीवन्मुक्त (इस जीवन में मुक्ति को प्राप्त करने वाले) तथा प्राप्तस्वरूप (जो ब्रह्म साक्षात्कार में लीन हो गये हैं वे)। ज्ञानियों के ये तीनों प्रकार मोक्षाकांक्षी कहलाते हैं। ऐसे लोग भक्तों की संगति में रहने पर मुमुक्षु सिद्धान्त छोड़ देते हैं और भक्ति करने लगते हैं। ऐसे परिवर्तन का वास्तविक कारण भक्तों की संगति है। यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन सभी प्रकार के लोगों को आकृष्ट करने के लिए है, यहाँ तक कि उन लोगों को भी जो भगवान् की भक्ति के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ चाहते हैं। ऐसे लोग भक्तों की संगति से धीरे-धीरे भक्ति करने लगते हैं।

अहो महात्मन्बहु-दोष-दुष्टो

ऽप्येकेन भात्येष भवो गुणेन ।

सत्सङ्गमाख्येन सुखावहेन

कृताद्य नो येन कृशा मुमुक्षा ॥ 125॥

अहो महा-आत्मन्-हे महान् भक्त; बहु-दोष-दुष्टः–अनेक प्रकार के भौतिक रोगों या आसक्तियों से दूषित; अपि-यद्यपि; एकेन–एक के साथ; भाति-प्रकाशित होता है; एषः–यह; भवः-इस भौतिक जगत् में जन्म; गुणेन-सद्गुण द्वारा; सत्-सङ्गम-आख्येन-भक्तों के संग नामक; सुख-आवहेन-जो सुख लाता है; कृता-कर दी; अद्य-अब; नः-हमारी; येन–जिसके द्वारा; कृशा-तुच्छ; मुमुक्षा–मुक्ति की इच्छा।

अनुवाद

“हे महा विद्वान भक्त, यद्यपि इस भौतिक जगत् में अनेक दोष हैं, किन्तु एक सुअवसर है और वह है भक्तों की संगति। ऐसी संगति से अत्यधिक सुख प्राप्त होता है। इसी सद्गुण के कारण ब्रह्मज्योति से तादात्म्य द्वारा मोक्ष प्राप्त करने की हमारी प्रबल इच्छा निर्बल पड़ गई है।”

तात्पर्य

यह उद्धरण हरिभक्ति विलास का है।

नारदेर सङ्गे शौनकादि मुनि-गण।

मुमुक्षा छाड़िया कैला कृष्णेर भजन॥ 126॥

नारदेर सङ्गे–महामुनि नारद के संग के कारण; शौनक-आदि मुनि-गण-शौनक मुनि आदि मुनि; मुमुक्षा छाड़िया–मुक्ति की इच्छा छोड़कर; कैला-सम्पन्न की; कृष्णेर भजन-कृष्ण की प्रेममयी सेवा।

अनुवाद

“नारद जैसे महामुनि की संगति से शौनक तथा अन्य बड़े-बड़े ऋषियों ने मोक्ष की इच्छा त्याग दी और कृष्ण की भक्तिमय सेवा में लग गये।”

कृष्णेर दर्शने, कारो कृष्णेर कृपाय।

मुमुक्षा छाड़िया गुणे भजे ताँर पा’य॥127॥

कृष्णेर दर्शने-मात्र कृष्ण के दर्शन द्वारा; कारो-कोई; कृष्णेर कृपाय-कृष्ण की कृपा द्वारा; मुमुक्षा छाड़िया-मोक्ष की इच्छा छोड़कर; गुणे-कृष्ण के दिव्य गुणों से आकर्षित होकर; भजे-सेवा में लग जाता है; ताँर पा’य-कृष्ण के चरणकमलों की।

अनुवाद

“कृष्ण के दर्शन या कृष्ण की विशेष कृपा पाने मात्र से मनुष्य मोक्ष की इच्छा छोड़ सकता है। कृष्ण के दिव्य गुणों के द्वारा आकर्षित होने पर मनुष्य उनकी सेवा में लग सकता है।”

अस्मिन्सुख-घन-मूर्ती

परमात्मनि वृष्णि-पत्तने स्फुरति।

आत्मारामतया मे

वृथा गतो बत चिरं कालः ॥ 128॥

अस्मिन्-जब यह; सुख-घन-मूर्ती–सम्पूर्ण सुख के स्वरूप; परम-आत्मनि-परम पुरुष; वृष्णि-पत्तने-द्वारका धाम में; स्फुरति-प्रकट होते हैं; आत्मारामतया–ब्रह्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया द्वारा; मे-मेरा; वृथा-व्यर्थ; गतः-गया; बत-हाय, मैं क्या कहूँ; चिरम्-बहुत अधिक; कालः–समय।

अनुवाद

“इस द्वारका धाम में मैं आध्यात्मिक आनन्द के मूर्तिमान रूप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण द्वारा आकृष्ट हो रहा हूँ। केवल उनका दर्शन करके मैं परम सुख का अनुभव कर रहा हूँ। ओह, निर्विशेष-अनुशीलन द्वारा स्वरूपसिद्ध बनने के प्रयास में मैंने कितना समय गंवा दिया है। यही मेरे सन्ताप का कारण है।”

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (3.1.34) में पाया जाता है।

‘जीवन्मुक्त’ अनेक, सेइ दुइ भेद जानि।

‘भक्त्ये जीवन्मुक्त’, ‘ज्ञाने जीवन्मुक्त’ मानि ॥129॥

जीवन्-मुक्त-इसी जीवन में मुक्त; अनेक-अनेक; सेइ-वे सभी; दुइ भेद-दो भेद; जानि-हम मानते हैं; भक्त्ये जीवन्-मुक्त-भक्ति का अभ्यास करने के कारण इसी जीवन में मुक्त; ज्ञाने जीवन्-मुक्त-ज्ञान के मार्ग (दार्शनिक चिन्तन) का अनुशीलन करके इसी जीवन में मुक्त व्यक्ति; मानि-हम समझ सकते हैं।

अनुवाद

"ऐसे अनेक लोग हैं, जो इसी जीवन में मुक्त हो चुके होते हैं। कुछ तो भक्ति करके और कुछ ज्ञान की विधि द्वारा मुक्त बनते हैं।"

'भक्त्ये जीवन्मुक्त' गुणाकृष्ट हञा कृष्ण भजे ।

शुष्क-ज्ञाने जीवन्मुक्त अपराधे अधो मजे ॥130॥

भक्त्ये जीवन्-मुक्त-भक्ति करके इस जीवन में मुक्त हुए लोग; गुण-आकृष्ट हञा-कृष्ण के दिव्य गुणों से आकर्षित होकर; कृष्ण भजे-कृष्ण की प्रेममयी सेवा में लग जाते हैं; शुष्क-ज्ञाने जीवन्-मुक्त-शुष्क ज्ञान के अनुशीलन द्वारा इस जीवन में तथाकथित मुक्त; अपराधे-अपराधों द्वारा; अधो मजे– पतित हो जाते हैं।

अनुवाद

"जो लोग भक्ति द्वारा मुक्त बनते हैं, वे कृष्ण के दिव्य गुणों द्वारा अधिकाधिक आकृष्ट होते जाते हैं। इस प्रकार वे उनकी सेवा में लग जाते हैं। जो लोग शुष्क ज्ञान द्वारा मुक्त बनते हैं, वे अन्त में अपने अपराधी कृत्य द्वारा पुनः नीचे गिर जाते है।"

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्त-मानिनस्

त्वय्यस्त-भावादविशुद्ध-बुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनादृत-युष्पदङ्घ्रयः ॥ 131॥

ये-जो; अन्ये-अन्य (अभक्त); अरविन्द-अक्ष-हे कमलनयन; विमुक्त-मानिनः-जो स्वयं को मुक्त मानते हैं; त्वयि–आपके प्रति; अस्त-भावात्-भक्ति से रहित; अविशुद्ध-बुद्धयः-जिनकी बुद्धि शुद्ध नहीं है; आरुह्य-ऊपर पहुँचकर; कृच्छ्रेण-कठोर तपस्याओं द्वारा; परम् पदम्-परम अवस्था तक; ततः-वहाँ से; पतन्ति–गिर जाते हैं; अधः-नीचे; अनादृत-तिरस्कार करके; युष्मत्-आपके; अङ्घ्यः -चरणकमल।

अनुवाद

"हे कमलनयन, जो लोग आपकी भक्ति के बिना ही इस जीवन में अपने आपको मुक्त मानते हैं, उनकी बुद्धि अशुद्ध रहती है। यद्यपि वे विविध कठोर तपस्याएँ करते हैं और निर्विशेष ब्रह्म साक्षात्कार रूपी आध्यात्मिक पद प्राप्त कर लेते हैं, फिर भी आपके चरणकमलों की पूजा की उपेक्षा करने के कारण वे पुनः नीचे गिर जाते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.2.32) का है।

ब्रह्म-भूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ 132॥

ब्रह्म-भूतः-परम के साथ एक होने के कारण; प्रसन्न-आत्मा-पूर्णतया प्रसन्न; न-कभी नहीं; शोचति-शोक करता; न-न; काङ्क्षति–इच्छा करता है; समः-समभाव; सर्वेषु-सभी; भूतेषु-जीवों के प्रति; मत्-भक्तिम्-मेरी प्रेममयी सेवा को; लभते-प्राप्त करता है; पराम्-दिव्य।

अनुवाद

“जो दिव्य पद को प्राप्त है, उसे तुरन्त ही परम ब्रह्म की अनुभूति होती है और वह पूर्णतया प्रसन्न हो जाता है। वह न तो कभी शोक करता है, न किसी वस्तु की कामना करता है। वह प्रत्येक जीव के प्रति समभाव रखता है। उस स्थिति में वह मेरी शुद्ध भक्ति को प्राप्त करता है।”

तात्पर्य

यह उद्धरण भगवद्गीता (18.54) का है।

अद्वैत-वीथी-पथिकैरुपास्याः

स्वानन्द-सिंहासन-लब्ध-दीक्षाः ।

शठेन केनापि वयं हठेन

दासी-कृता गोप-वधू-विटेन ॥ 133॥

अद्वैत-वीथी-अद्वैत के पथ पर; पथिकैः-चलने वालों द्वारा; उपास्याः -पूजनीय; स्व-आनन्द–आत्म-साक्षात्कार के; सिंह-आसन-सिंहासन पर; लब्ध-दीक्षाः-दीक्षित; शठेन-ठग द्वारा; केन अपि-कुछ; वयम्-मैं; हठेन-बलपूर्वक; दासी-कृता-एक दासी बना दी गई; गोप-वधू-विटेन-जो गोपियों के साथ परिहास में रत है।

अनुवाद

“यद्यपि मैं अद्वैत पथ पर चलने वालों द्वारा पूजित था तथा योग-पद्धति द्वारा आत्म-साक्षात्कार में दीक्षित था, तो भी मैं बलपूर्वक किसी नटखट बालक द्वारा, जो सदैव गोपियों के साथ परिहास करता रहता है, दासी बना दिया गया हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक बिल्वमंगल ठाकुर द्वारा रचित है।

भक्ति-बले ‘प्राप्त-स्वरूप’ दिव्य-देह पाय।

कृष्ण-गुणाकृष्ट हञा भजे कृष्ण-पा’य ॥ 134॥

भक्ति-बले-भक्ति के बल द्वारा; प्राप्त-स्वरूप-अपना वास्तविक स्वरूप प्राप्त कर; दिव्य-देह-एक दिव्य शरीर; पाय-प्राप्त करता है; कृष्ण-गुण-आकृष्ट-कृष्ण के दिव्य गुणों से आकर्षित; हञा-होकर; भजे-भक्ति करता है; कृष्ण-पा’य-कृष्ण के चरणकमलों की।

अनुवाद

“जिसने भक्ति द्वारा अपना वैधानिक पद प्राप्त कर लिया है, उसे इसी जीवन में ही दिव्य देह प्राप्त हो जाता है। वह कृष्ण के दिव्य गुणों के द्वारा आकर्षित होने पर उनके चरणकमल की सेवा में पूर्णरूपेण लग जाता है।”

निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः।

मुक्तिर्हित्वान्यथा-रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥ 135॥

निरोधः-समेटकर; अस्य-इसके; अनु-बाद में; शयनम्-शयन करते हैं; आत्मनः-परम भगवान् का; सह–साथ; शक्तिभिः-शक्तियाँ (तटस्था तथा बहिरंगा); मुक्तिः–मुक्ति; हित्वा-त्यागकर; अन्यथा-अन्य; रूपम्-रूप; स्वरूपेण-अपने सनातन स्वरूप में; व्यवस्थितिः–स्थापित होना।

अनुवाद

“जब महाविष्णु विश्राम करते हैं और विराट् जगत् को समेट लेते हैं (विनष्ट कर देते हैं), तब सारे जीव तथा अन्य शक्तियाँ उन्हीं में समा जाती हैं। मुक्ति का अर्थ है परिवर्तनशील स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों को त्याग करने के बाद अपने सनातन मूल स्वरूप में स्थित रहना।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.10.6) का है।

कृष्ण-बहिर्मुख-दोषे माया हैते भय ।

कृष्णोन्मुख भक्ति हैते माया-मुक्त हय ॥ 136 ॥

कृष्ण-बहिर्-मुख-कृष्णभावना के विरुद्ध होकर; दोषे-दोष द्वारा; माया हैते-बहिरंगा माया शक्ति द्वारा; भय-डर; कृष्ण-उन्मुख-कृष्णभावना के उन्मुख होकर; भक्ति-भक्ति; हैते–द्वारा; माया-मुक्त-माया से मुक्त; हय-हो जाता है।

अनुवाद

"कृष्णभावनामृत का विरोध करके मनुष्य पुनः माया के प्रभाव द्वारा बद्ध तथा भयभीत हो जाता है। श्रद्धापूर्वक भक्तिमयी सेवा सम्पन्न करने से मनुष्य माया से मुक्त हो जाता है।"

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्याद्

ईशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ।

तन्माययातो बुध आभजेत्तं

भक्त्यैकयेशं गुरु-देवतात्मा ॥ 137॥

भयम्-भय; द्वितीय-अभिनिवेशतः- भौतिक शक्ति के उत्पाद होने के भ्रम द्वारा; स्यात्-उत्पन्न होता है; ईशात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से; अपेतस्य-जो विमुख हो गया है (बद्धजीव); विपर्ययः–विपरीत स्थिति; अस्मृतिः-परम भगवान् से अपने सम्बन्ध की धारणा से रहित; तत्-मायया-परम भगवान् की माया शक्ति के कारण; अतः-इसलिए; बुधः-जो बुद्धिमान है उसे; आभजेत्-उपासना करनी चाहिए; तम्-उनकी; भक्त्या-भक्ति से; एकया-कर्म तथा ज्ञान से विचलित हुए बिना; ईशम्पू र्ण पुरुषोत्तम भगवान्; गुरु-आध्यात्मिक गुरु के रूप में; देवता-पूज्य देव; आत्मा-परमात्मा।

अनुवाद

"जब जीव कृष्ण से पृथक् भौतिक शक्ति द्वारा आकृष्ट होता है, तो वह भयाक्रान्त हो जाता है। चूँकि वह भौतिक शक्ति द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अलग कर दिया जाता है, उसकी जीवन-धारणा विपरीत हो जाती है। दूसरे शब्दों में, वह कृष्ण का नित्य दास बनने के बजाय कृष्ण का प्रतियोगी बन जाता है। इसे विपर्ययः अस्मृतिः कहते हैं। इस भूल का निराकरण करने के लिए जो मनुष्य वास्तव में विद्वान एवं उन्नत होता है, वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा अपने गुरु, पूज्य अर्चाविग्रह तथा जीवन के उद्गम के रूप में करता है। इस तरह वह अनन्य भक्ति की विधि द्वारा भगवान् की पूजा करता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.2.37) का है।

दैवी ह्येषा गुण-मयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥138॥

दैवी-भगवान् के सम्बन्धित; हि-निश्चित रूप से; एषा–यह; गुण-मयी-तीन गुणों से निर्मित; मम-मेरी; माया-बहिरंगा शक्ति; दुरत्यया-लाँघने में अत्यन्त कठिन; माम्-मुझे; एव–निश्चय ही; ये–जो; प्रपद्यन्ते–पूर्ण शरणागत होते हैं; मायाम्-माया शक्ति को; एताम्-इस; तरन्ति–पार कर जाते हैं; ते–वे।

अनुवाद

"तीन गुणों से युक्त मेरी इस दैवी शक्ति को जीत पाना कठिन है। किन्तु जिन्होंने मेरी शरण ग्रहण कर ली है, वे इसको सरलता से पार कर सकते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण भगवद्गीता (7.14) का है।

भक्ति विनु मुक्ति नाहि, भक्त्ये मुक्ति हय ॥ 139॥

भक्ति-भक्ति; विनु–बिना; मुक्ति-मोक्ष; नाहि-नहीं होता; भक्त्ये-भक्ति द्वारा ही; मुक्ति हय–मोक्ष होता है।

अनुवाद

“भक्ति के बिना किसी को मुक्ति प्राप्त नहीं होती। मुक्ति तो एकमात्र भक्ति द्वारा ही प्राप्त की जाती है।”

यः-सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो

क्लिश्यन्ति ने केवल-बोध-लब्धये ।

तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते

नान्यद् यथा स्थूल-तुषावघातिनाम् ॥ 140॥

श्रेयः-सूतिम्-मुक्ति का शुभ मार्ग; भक्तिम्-भक्ति; उदस्य-त्यागकर; ते-आपके; विभो-हे मेरे प्रभु; क्लिश्यन्ति–कष्ट स्वीकार करते हैं; ये-जो लोग; केवल–केवल; बोध-लब्धये-ज्ञान प्राप्त करने के लिए; तेषाम्-उनके लिए; असौ-वह; क्लेशलः–कष्ट; एव-मात्र; शिष्यते-रहता है; न-नहीं; अन्यत्-कुछ अन्य; यथा-जितना; स्थूल-भारी; तुष-चावल की भूसी को; अवघातिनाम्-पीटने वालों को।

अनुवाद

“हे प्रभु, आपकी भक्ति ही एकमात्र शुभ मार्ग है। यदि कोई इसे केवल शुष्क ज्ञान के लिए या इस विचार से त्याग देता है कि ये सारे जीव आत्माएँ हैं और भौतिक जगत् मिथ्या है, तो उसे बहुत कष्ट मिलता है। केवल कष्टप्रद तथा अशुभ कार्यकलाप ही उसके हाथ लगते हैं। उसके कार्य उसी तरह हैं, जैसे धान से रहित भूसे को पीटना। उसका सारा श्रम व्यर्थ जाता है।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.14.4) का है।

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्त-मानिनस्

त्वय्यस्त-भावादविशुद्ध-बुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनादृत-युष्मदङ्घ्रयः ॥ 141॥

ये-जो; अन्ये-अन्य (अभक्त); अरविन्द-अक्ष-हे कमलनयन; विमुक्त मानिनः-जो स्वयं को मुक्त मानते हैं; त्वयि-आपके प्रति; अस्त-भावात्-भक्ति से रहित; अविशुद्ध-बुद्धयः-जिनकी बुद्धि शुद्ध नहीं हैं; आरुह्य-उन्नत होकर; कृच्छ्रेण–कठिन तपस्याओं द्वारा; परम् पदम्-परम अवस्था तक; ततः-वहाँ से; पतन्ति–गिर जाते हैं; अधः-नीचे; अनादृत-आदर किये बिना; युष्मत्-आपके; अङ्घ्रयः - चरणकमल।

अनुवाद

“हे कमलनेत्रों वाले, जो लोग आपकी भक्ति के बिना ही इस जीवन में अपने आपको मुक्त मानते हैं, उनकी बुद्धि अशुद्ध रहती है। यद्यपि वे कठोर तपस्याएँ करते हैं और निर्विशेष ब्रह्म-साक्षात्कार रूपी आध्यात्मिक पद को प्राप्त कर लेते हैं, फिर भी आपके चरणकमलों की पूजा की उपेक्षा करने के कारण वे पुनः नीचे गिर जाते हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.2.32) का है।

य एषां पुरुषं साक्षादात्म-प्रभवमीश्वरम् ।

न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥ 142 ॥

ये-जो; एषाम्-वर्णाश्रम विभाग के; पुरुषम्पू र्ण पुरुषोत्तम भगवान् को; साक्षात्-साक्षात्; आत्म-प्रभवम्-सबके स्रोत को; ईश्वरम्-परम नियन्ता को; न-नहीं; भजन्ति-उपासना करता; अवजानन्ति-या अवहेलना करता है; स्थानात्-अपनी स्थिति से; भ्रष्टाः-भ्रष्ट होकर; पतन्ति–गिर जाता है; अधः-नारकीय स्थितियों में।

अनुवाद

"यदि कोई चारों वर्षों तथा आश्रमों में ही अपनी स्थिति बनाये रखता है, किन्तु भगवान् विष्णु की पूजा नहीं करता, तो वह अपने गर्वित स्थान से गिरकर नरक में जाता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण भी श्रीमद्भागवत (11.5.3) का है।

भक्त्ये मुक्ति पाइलेह अवश्य कृष्णेरे भजय ॥ 143॥

भक्त्ये-भक्ति द्वारा; मुक्ति-मुक्ति; पाइलेह-यदि कोई प्राप्त करता है; अवश्य-अवश्य; कृष्णेरे-भगवान् कृष्ण की; भजय-सेवा करता है।

अनुवाद

"जब कोई भक्ति करने से सचमुच मुक्ति पा लेता है, तो वह भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में सदैव लगा रहता है।"

"मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते" ॥144॥

मुक्ताः-मुक्त; अपि-भी; लीलया-लीलाओं द्वारा; विग्रहम्-भगवान् का स्वरूप; कृत्वा–प्रतिष्ठित करके; भगवन्तम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; भजन्ते-उपासना करते हैं।

अनुवाद

"निर्विशेष ब्रह्मतेज में निमग्न मुक्तात्मा भी कृष्ण की लीलाओं के प्रति आकर्षित होता है। इस तरह वह अर्चाविग्रह स्थापित करके भगवान् की सेवा करता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण नृसिंह-तापनी उपनिषद पर शंकराचार्य के भाष्य से लिया गया है।

एइ छय आत्माराम कृष्णेरे भजय।

पृथक्-पृथक् च-कारे इहा 'अपि'र अर्थ कय ॥145॥

एइ छय-ये छः; आत्माराम-आत्माराम (अध्यात्मवादी); कृष्णेरे भजय-कृष्ण की सेवा करते हैं; पृथक्-पृथक्-अलग-अलग; च-कारे–च शब्द के प्रयोग में; इहा-यहाँ; अपिर-अपि शब्द का अर्थ-अर्थ; कय–कहते हैं।

अनुवाद

"ये छह प्रकार के आत्माराम कृष्ण की प्रेमाभक्ति में लगे रहते हैं। विभिन्न प्रकार की सेवाएँ'च' लगाकर सूचित की जाती हैं और वे 'अपि (निस्सन्देह) का भी अर्थ वहन करते हैं।"

तात्पर्य

आत्माराम छह प्रकार के होते हैं- साधक अर्थात् नौसिखिया छात्र, (ब्रह्ममय) जो ब्रह्म-साक्षात्कार में मग्न रहता है, प्राप्तब्रह्मलय–जिसने पहले से ब्रह्म-पद प्राप्त कर रखा है, मुमुक्षु-जो मुक्ति का इच्छुक होता है; जीवन्मुक्त-जो इस जीवन में भी मुक्त होता है तथा प्राप्तस्वरूप-जो स्वरूपसिद्ध है।

"आत्मारामाश्च अपि" करे कृष्णे अहैतुकी भक्ति।

"मुनयः सन्तः" इति कृष्ण-मनने आसक्ति ॥146॥

आत्मारामाः च अपि-आत्म-साक्षात्कार प्राप्त लोग भी; करे-करते हैं; कृष्णे-कृष्ण की; अहैतुकी भक्ति-निष्काम प्रेममयी सेवा; मुनयः सन्तः–महान् साधुओं और मुनियों को; इति–इस प्रकार; कृष्ण-मनने-कृष्ण का मनन करने में; आसक्ति-आसक्ति।

अनुवाद

"छहों प्रकार के आत्माराम बिना किसी अन्य अभिलाषा के कृष्ण की भक्ति करते हैं। मुनयः तथा सन्तः शब्द उन लोगों के सूचक हैं, जो कृष्ण का ध्यान करने में अत्यन्त अनुरक्त हैं।"

"निर्ग्रन्थाः"–अविद्या-हीन, केह—विधि-हीन।

याहाँ येइ युक्त, सेइ अर्थेर अधीन ॥147॥

निर्ग्रन्थाः-निग्रन्थाः शब्द; अविद्या-हीन-अज्ञान से रहित; केह-कहीं; विधि-हीन-कोई विधि-निषेधों का पालन किये बिना; याहाँ-कहीं भी; येइ-जो; युक्त–उपयुक्त; सेइ अर्थेर अधीन-उसी अर्थ के अधीन।

अनुवाद

"निर्ग्रन्थाः' शब्द का अर्थ है 'बिना अज्ञान के' तथा 'विधि-विधान से रहित।' इनमें से जो भी अर्थ उपयुक्त हो, उसे लिया जा सकता है।"

च-शब्दे करि यदि 'इतरेतर' अर्थ।

आर एक अर्थ कहे परम समर्थ ॥ 148॥

च-शब्दे-च शब्द द्वारा; करि-मैं करता हूँ; यदि-यदि; इतर-इतर अर्थ-अलग तथा भिन्न अर्थ; आर-दूसरा; एक-एक; अर्थ-अर्थ; कहे–कहा जाता है; परम समर्थ-सर्वाधिक योग्य।

अनुवाद

“च’ शब्द का प्रयोग विभिन्न स्थलों में करने से भिन्न-भिन्न अर्थ निकलते हैं। इनके अतिरिक्त, एक अन्य भी अर्थ है, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।”

“आत्मारामाश्च आत्मारामाश्च” करि बार छय ।

पञ्च आत्माराम छय च-कारे लुप्त हय ॥ 149॥

आत्मारामाः च आत्मारामाः च- आत्माराम तथा च शब्द को दोहराने से; करि’-करते हैं; बार छय-छ: बार; पञ्च आत्माराम-पाँच प्रकार के आत्माराम; छय-छः; च-कारे-च शब्द द्वारा; लुप्त हय-अनुच्चरित हो जाता है।

अनुवाद

“यद्यपि ‘आत्मारामाश्च’ शब्द की छह पुनरावृतियाँ की जा सकती हैं, किन्तु केवल ‘च’ शब्द जोड़ने से पाँच आत्माराम लुप्त हो जाते हैं।”

एक ‘आत्माराम’-शब्द अवशेष रहे ।

एक ‘आत्माराम’-शब्दे छय-जन कहे ॥150॥

एक-एक; आत्माराम-आत्माराम; शब्द-शब्द; अवशेष रहे-अन्त में बचता है; एक आत्माराम–एक आत्माराम; शब्दे-उच्चारण द्वारा; छय-जन-छः लोग; कहे-लक्षित होते हैं।

अनुवाद

“इसलिए आत्माराम शब्द की पुनरावृति करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। केवल एक पर्याप्त है और यही एक शब्द छह व्यक्तियों का सूचित करता है।”

“सरूपाणामेक-शेष एक-विभक्तौ” ।

उक्तार्थानामप्रयोगः ।

रामश्च रामश्च रामश्च रामा इतिवत् ॥ 151॥

स-रूपाणाम् समान रूप के शब्दों का; एक-शेषः-केवल अन्तिम; एक-विभक्तौ–एक समान विभक्ति में; उक्त-अर्थानाम्-पहले कहे गये अर्थों का; अप्रयोगः-अप्रयोग; रामः च तथा राम; रामः च तथा राम; रामः च तथा राम; रामाः इति-वत्-इस प्रकार, एक राम द्वारा, अनेक राम इंगित होते हैं।

अनुवाद

"एक ही रूप तथा विभक्ति होने पर केवल अन्तिम शब्द को रखा जाता है। उदाहरणार्थ, रामश्च, रामश्च, रामश्च इत्यादि के लिए रामाः शब्द प्रयुक्त किया जाता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण पाणिनि सूत्र (1.2.64) से है।

तबे ये च-कार, सेइ 'समुच्चय' कय।

"आत्मारामाश्च मुनयश्च" कृष्णेरे भजय ॥152॥

तबे-तब; ये-वह; च-कार-चं वर्ण; सेइ-वह; समुच्चय-समूह; कय-कहा जाता है; आत्मारामाः च–वे सभी जो आत्मा में रमण करते हैं; मुनयः च-सभी मुनिजन; कृष्णेरे भजय-कृष्ण की उपासना करते हैं।

अनुवाद

"समुच्चयबोधक शब्द च' के प्रयोग से यह इंगित किया जाता है कि सारे आत्माराम तथा सन्त कृष्ण की सेवा करते हैं और उन्हें पूजते हैं।"

"निर्ग्रन्था अपि" र एइ 'अपि'—सम्भावने।

एइ सात अर्थ प्रथमे करिलुँ व्याख्याने ॥ 153 ॥

निर्ग्रन्थाः अपिर-निर्गन्था अपि शब्दों का; एइ–यह; अपि-अपि शब्द का; सम्भावने–सम्भावना की स्थिति में; एइ सात अर्थ-ये सात भिन्न अर्थ; प्रथमे-प्रारम्भ में ही; करिलुँ–मैंने की है; व्याख्याने व्याख्या।

अनुवाद

"निर्ग्रन्थाः' के साथ 'अपि' जुड़ने से सम्भावना व्यक्त होती है। इस तरह मैंने (आत्माराम श्लोक के) सात प्रकार के अर्थ समझाने की चेष्टा की है।"

अन्तर्यामि-उपासक 'आत्माराम' कय।

सेइ आत्माराम योगीर दुइ भेद हय ॥ 154॥

अन्तर्यामि-परमात्मा का; उपासक-पूजारी; आत्माराम कय-आत्माराम कहलाता है; सेइ आत्माराम-उस आत्माराम; योगीर-योगी के; दुइ भेद हय-दो भेद हैं।

अनुवाद

"जो योगी अपने अन्तर में परमात्मा की पूजा करता है, वह भी आत्माराम कहलाता है। आत्माराम-योगियों के दो प्रकार हैं।"

सगर्भ, निगर्भ,—एइ हय दुइ भेद।

एक एक तिन भेदे छय विभेद ॥ 155 ॥

सगर्भ-सगर्भ; निगर्भ-निगर्भ; एइ-ये; हय-हैं; दुइ-दो; भेद-भेद; एक एक-प्रत्येक; तिन भेदे–तीन प्रकार में; छय विभेद-इस प्रकार छ: भेद हैं।

अनुवाद

“आत्माराम-योगियों के दो प्रकार-सगर्भ तथा निगर्भ कहलाते हैं। इनमें से प्रत्येक के तीन-तीन भेद हैं, अतः परमात्मा के उपासकों के छह प्रकार हुए।”

तात्पर्य

सगर्भ योगी शब्द उस योगी का द्योतक है, जो परमात्मा की पूजा विष्णु-रूप में करता है। निगर्भ योगी परमात्मा की पूजा निर्गुण-रूप में करता है। सगर्भ तथा निगर्भ योगियों के आगे भी विभेद हैं-(1) सगर्भ योगारुरुक्षु, (2) निगर्भ योगारुरुक्षु, (3) सगर्भ योगारूढ़, (4) निगर्भ योगारूढ़, (5) सगर्भ-प्राप्तसिद्धि तथा (6) निगर्भ-प्राप्तसिद्धि।

केचित्स्व-देहान्तर्हृदयावकाशे

प्रादेश-मात्रं पुरुषं वसन्तम् ।

चतुर्भुजं कञ्ज-रथाङ्ग-शङ्ख-

गदा-धरं धारणया स्मरन्ति ॥ 156॥

केचित् उनमें से कुछ; स्व-देह-अन्तः-अपनी देह में ही; हृदय-अवकाशे-हृदय के स्थान में; प्रादेश-मात्रम्-छः इंच के माप से; पुरुषम्-परम पुरुष को; वसन्तम्-रहने वाले; चतुः-भुजम्-चार भुजाओं वाले; कञ्ज–कमलपुष्प; रथ-अङ्ग–एक रथ के पहिए। के समान एक चक्र; शङ्ख-शंख; गदा-धरम्-गदा धारण किये हुए; धारणया-ऐसी धारणा से; स्मरन्ति–वे स्मरण करते हैं।

अनुवाद

“कुछ योगी भगवान् का चिन्तन अपने हृदयों के भीतर छह इंच माप वाले भगवान् के रूप में करते हैं। भगवान् के चार हाथ हैं, जिनमें वे शंख, गदा, चक्र तथा पद्म धारण किये रहते हैं। जो योगी अपने हृदय में विष्णु के इस रूप की पूजा करते हैं, वे सगर्भ योगी कहलाते हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (2.2.8) का है।

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्ध-भावो

भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ।

औत्कण्ठ्य-बाष्प-कलया मुहुरर्द्यमानस्

तच्चापि चित्त-बड़िशं शनकैर्वियुङ्क्ते ॥ 157॥

एवम्-इस प्रकार; हरी-भगवान् हरि में; भगवति- भगवान् में; प्रतिलब्ध-भावः-जिसका प्रेमभाव जाग गया है; भक्त्या–प्रेममयी सेवा द्वारा; द्रवत्-पिघलते हुए; हृदयः-हृदय; उत्पुलकः-अत्यन्त आनन्दित; प्रमोदात्-प्रसन्नता के कारण; औत्कण्ठ्य-उत्कण्ठा के साथ; बाष्प-कलया-आँखों में आँसुओं के साथ; मुहुः-सदैव; अर्द्यमानः-आध्यात्मिक आनन्द में लीन; तत् च अपि-वह भी; चित्त-बड़िशम्-एक मछली को पकड़ने के काँटे के समान हृदय से; शनकैः-क्रमशः; वियुङ्क्ते-अलग हो जाता है।

अनुवाद

“जब किसी को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से प्रेम होता है, तो उसका हृदय भक्तियोग से द्रवित हो उठता है और उसे दिव्य आनन्द का अनुभव होता है। उसके शरीर में लक्षण प्रकट होते हैं और उत्सुकतावश उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। इस तरह उसे आध्यात्मिक आनन्द मिलता है। जब हृदय अत्यधिक व्यथित होता है, तो चिन्तनमग्न मन ध्यान के लक्ष्य से उसी तरह धीरे-धीरे विलग होने लगता है, जिस तरह मछली पकड़ने का काँटा।”

तात्पर्य

यह उद्धरण भी श्रीमद्भागवत (3.28.34) का है।

‘योगारुरुक्षु’, ‘योगारूढ़’ ‘प्राप्त-सिद्धि’ आर ।

एइ तिन भेदे हय छय प्रकार ॥158 ॥

योग-आरुरुक्ष-योग-सिद्धि में उन्नति करने के इच्छुक लोग; योग-आरूढ़-जो लोग इस स्तर पर पहले से ही स्थित हैं; प्राप्त-सिद्धि-जिन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई है; आर-तथा; एइ तिन-ये तीन; भेदे-भेदों द्वारा; हय-होते हैं; छय प्रकार-छ: प्रकार।

अनुवाद

"योग की प्रगति के इन तीन विभागों-योगारुरुक्षु, योगारुढ़ तथा प्राप्त-सिद्धि के द्वारा योगियों के छह भेद हो जाते हैं।"

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।

योगारूढ़स्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ 159॥

आरुरुक्षोः-योगसिद्धि के स्तर तक उठने के इच्छुक व्यक्ति का; मुनेः-मुनि का; योगम्-आध्यात्मिक ज्ञान; कर्म-कर्म; कारणम्-कारण; उच्यते-कहा जाता है; योग-आरूढ़स्य–जिस व्यक्ति ने वह श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर लिया है; तस्य-उसके लिए; एव–निश्चय ही; शमः-मन को विचलित किये बिना वश में करना; कारणम्-कारण; उच्यते-कहा जाता है।

अनुवाद

"जो सन्त लोग योग-सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं, वे योगाभ्यास करते हैं और उसके नियमों का दृढ़ता से पालन करते हैं। वे आसन तथा प्राणायाम करते हैं। जो लोग पहले से इस पद को प्राप्त हुए रहते हैं, वे ध्यान करते हैं और अपने मन को भगवान् पर केन्द्रित करते हैं। वे समस्त भौतिक कार्यों को त्यागकर अपने मन को सन्तुलित (शम) रखते हैं।"

तात्पर्य

क्रमांक 159 तथा 160 दोनों ही श्लोक भगवद्गीता (6.3-4) के हैं।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।

सर्व-सङ्कल्प-सन्यासी योगारूढ़स्तदोच्यते॥ 160॥

यदा-जब; हि-निश्चित रूप से; न-नहीं; इन्द्रिय-अर्थेषु-इन्द्रिय भोगों में; न-नहीं; कर्मसु-कर्मों में; अनुषजते-प्रवृत होता है; सर्व-सब प्रकार की; सङ्कल्प–इच्छाओं का; सन्यासी-त्याग करने वाला; योग-आरूढ़ः–योग पद्धति में सिद्धि प्राप्त; तदा उस समय; उच्यते-कहा जाता है।

अनुवाद

"जब मनुष्य इन्द्रियतृप्ति के लिए कर्म करने में कोई रुचि नहीं लेता और समस्त भौतिक इच्छाओं को त्याग देता है, तो उसे योगारूढ़ कहा जाता है।"

एइ छय योगी साधु-सङ्गादि-हेतु पाञा।

कृष्ण भजे कृष्ण-गुणे आकृष्ट हञा॥ 161॥

एइये; छय-छः; योगी-योगी; साधु-भक्तों के; सङ्ग-आदि-संग आदि; हेतु-कारण; पाञा–प्राप्त कर; कृष्ण भजे–कृष्ण की सेवा करते हैं; कृष्ण-गुणे-कृष्ण के दिव्य गुणों द्वारा; आकृष्ट-आकर्षित; हञा-होकर।

अनुवाद

"जब शुद्ध योगी भक्तों की संगति करता है, तो वह भगवान् के दिव्य गुणों से आकृष्ट होने के फलस्वरूप कृष्ण की भक्ति में लग जाता है।"

च-शब्दे 'अपि'र अर्थ इहाञो कहय।

'मुनि', 'निर्ग्रन्थ'-शब्देर पूर्ववतर्थ हय॥ 162॥

च-शब्दे-च शब्द द्वारा; 'अपि'र-अपि शब्द का भी; अर्थ-अर्थ; इहाङो–यहाँ भी; कहय–उपयुक्त है; मुनि-मुनि; निर्ग्रन्थ-निग्रन्थ; शब्देर-शब्दों का; पूर्व-वत्-पहले जैसे ही; अर्थ हय–अर्थ हैं।

अनुवाद

"यहाँ पर 'च' तथा 'अपि' शब्दों के अर्थों का प्रयोग किया जा सकता है। 'मुनि' तथा 'निर्ग्रन्थ' शब्दों के अर्थ पहले जैसे ही हैं।"

उरुक्रमे अहैतुकी काहाँ कोन अर्थ।

एइ तेर अर्थ कहिलुँ परम समर्थ ॥163॥

उरुक्रमे-अद्वितीय कार्य करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति; अहैतुकी-अहैतुकी शब्द; काहाँ-कहीं भी; कोन-कुछ; अर्थ-अर्थ; एइ-इस प्रकार; तेर अर्थ-तेरह अर्थ; कहिलुँ-मैंने बताए; परम–पूर्णतया; समर्थ–सम्पूर्ण।

अनुवाद

"अहैतुकी' शब्द सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उरुक्रम के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इस तरह मैंने आत्माराम श्लोक के अर्थ तेरह प्रकारों से बताये हैं।"

तात्पर्य

आत्माराम श्लोक के जिन तेरह प्रकार के अर्थों का उल्लेख हुआ है, वे आत्माराम शब्द के निम्नलिखित अर्थों पर आधारित हैं : (1) साधक, नया अभ्यासी; (2) ब्रह्ममय, जो निराकार ब्रह्म के विचार में मग्न है वह; (3) प्राप्तब्रह्मलय, जिसने वास्तव में ब्रह्म-पद प्राप्त कर लिया है वह; (4) मुमुक्षु, जो मोक्ष का इच्छुक है वह; (5) जीवन्मुक्त, जो इस जीवन में मुक्त है वह; (6) प्राप्तस्वरूप, जिसने अपनी मूल वैधानिक स्थिति प्राप्त कर ली है वह; (7) निर्ग्रन्थ मुनि, पूर्णतया मुक्त सन्त; (8) सगर्भ योगारुरुक्षु, चतुर्भुज विष्णु-रूप पर ध्यान करने वाला तथा यौगिक सिद्धि की आकांक्षा रखने वाला

योगी; (9) निगर्भ योगारुरुक्षु, वह जो निराकार ध्यान में पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है; (10) सगर्भ योगारूढ़, जो विष्णु-रूप पर ध्यान करने से योग-सिद्धि के स्तर पर उन्नत हो चुका है वह; (11) निगर्भ योगारूढ़, योग-सिद्धि के स्तर पर स्थित निराकारवादी योगी; (12) सगर्भ प्राप्तसिद्धि, जिसने विष्णु-रूप पर ध्यान करके पूर्णता का स्तर प्राप्त कर लिया है वह; (13) निगर्भ प्राप्तसिद्धि, जिसने निराकार ध्यान द्वारा सिद्धि प्राप्त कर ली है वह।

एइ सब शान्त यबे भजे भगवान् ।

‘शान्त’ भक्त करि’ तबे कहि ताँर नाम ॥164॥

एइ सब-ये सब; शान्त-शान्त भाव के; यबे-जब; भजे-उपासना करते हैं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की; शान्त भक्त-भक्ति में शान्त अवस्था के भक्त; करि’-मानकर; तबे-उस समय; कहि-मैं कहता हूँ; ताँर-उनका; नाम-नाम्।

अनुवाद

ये तेरह प्रकार के योगी तथा मुनि शान्त भक्त कहलाते हैं, क्योंकि ये पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति शान्त अवस्था में करते हैं।

‘आत्मा’ शब्दे ‘मन’ कह—मने येइ रमे ।

साधु-सङ्गे सेह भजे श्री-कृष्ण-चरणे ॥ 165 ॥

आत्मा-शब्दे-आत्मा शब्द द्वारा; मन–मन; कह–यदि कहें; मने-मन में; येइ रमे-जो चिन्तन द्वारा सन्तुष्ट है; साधु-सङ्गे-भक्तों के संग द्वारा; सेह-वह भी; भजे–प्रेममयी सेवा करता है; श्री-कृष्ण-चरणे-भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की।

अनुवाद

“कभी-कभी ‘आत्मा’ शब्द का अर्थ ‘मन’ होता है। उस दशा में ‘आत्माराम’ शब्द का अर्थ होगा, वह व्यक्ति जो मानसिक चिन्तन द्वारा तुष्ट रहता है। जब ऐसा व्यक्ति किसी शुद्ध भक्त की संगति करता है, तो वह कृष्ण के चरणकमलों की भक्ति शुरू कर देता है।”

उदरमुपासते य ऋषि-वर्त्मसु कूर्प-दृशः

परिसर-पद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ।

तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं

पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्त-मुखे ॥ 166 ॥

उदरम्-पेट की*; उपासते-उपासना करते हैं; ये-जो; ऋषि-वर्मुसु-महान् ऋषियों द्वारा निर्देशित पथ पर; कूर्प-दृशः–जिसकी दृष्टि देहात्म बुद्धि के स्तर पर स्थित है; परिसर-पद्धतिम्-जहाँ से नाड़ियाँ निकलती हैं; हृदयम्-हृदय को; आरुणयः-आरुण ऋषि आदि के; दहरम्-हृदय के भीतर आकाश, हृदय में स्थित परमात्मा की सूक्ष्म धारणा; ततः-उससे; उदगात्-ऊपर गये; अनन्त-हे अनन्त; तव-आपका; धाम-निवास; शिरः-सिर; परमम्-परम, सर्वश्रेष्ठ; पुनः–फिर; इह-इस भौतिक जगत् में; यत्-जो; समेत्य-प्राप्त करके; न-नहीं; पतन्ति-गिरते; कृत-अन्त-मुखे-जन्म-मृत्यु के चक्र में।

अनुवाद

“जो लोग महान् सन्त योगियों का अनुसरण करते हैं, वे योग-आसन विधि अपनाते हैं और अपने उदर से पूजा शुरू कर देते हैं, जहाँ पर ब्रह्म को स्थित बतलाया जाता है। ऐसे लोग शार्कराक्ष कहलाते हैं, जिसका अर्थ यह है कि वे स्थूल देहात्मबुद्धि में स्थित हैं। कुछ लोग आरुण ऋषि के भी अनुयायी हैं। इस पथ का अनुसरण करते हुए ये लोग नाड़ियों की क्रिया का निरीक्षण करते हैं। इस तरह वे धीरे-धीरे हृदय तक पहुँचते हैं, जहाँ सूक्ष्म ब्रह्म अर्थात् परमात्मा स्थित रहते हैं। तब वे उनकी उपासना करते हैं। हे असीम अनन्त! इन लोगों से बेहतर तो वे योगी हैं, जो अपने शिरोभाग से आपकी

पूजा करते हैं। वे उदर से प्रारम्भ करके हृदय से होकर सिर के ऊपरी भाग तक पहुँच जाते हैं और ब्रह्मरन्ध्र से होकर निकल जाते हैं, जो खोपड़ी के ऊपर एक छिद्र है। इस तरह ये योगी सिद्धि-पद को प्राप्त होते हैं और जन्म-मृत्यु के चक्र में दुबारा प्रवेश नहीं करते।"

*योगी के लिए पेट का अर्थ होता है मुनि-पुरस्थ-ब्रह्मन् अर्थात् शरीर को स्वस्थ रखने के लिए भोजन का पाचन करने वाला हृदय में स्थित ब्रह्मन्।

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.87.18) का है।

एहो कृष्ण-गुणाकृष्ट महा-मुनि हञा।

अहैतुकी भक्ति करे निर्ग्रन्थ हञा॥ 167॥

एहो-ऐसे योगी; कृष्ण गुण-आकृष्ट-कृष्ण के दिव्य गुणों से आकर्षित होकर; महा-मुनि हञा–महान् मुनि होकर; अहैतुकी भक्ति करे-वे निष्काम प्रेममयी सेवा करते हैं; निर्ग्रन्थ हञा–योग प्रक्रिया से उदासीन बनकर।

अनुवाद

"योगीगण कृष्ण के दिव्य गुणों से आकर्षित होकर महान् मुनि बन जाते हैं। तब वे योग-विधि से बाधित नहीं होते और वे अनन्य भक्ति करने लगते हैं।"

'आत्मा'-शब्दे 'यत्न' कहे—यत्न करिया।

"मुनयोऽपि" कृष्ण भजे गुणाकृष्ट हञा॥168॥

आत्मा-शब्दे-आत्मा शब्द द्वारा; यत्न–प्रयत्न; कहे-एक अर्थ होता है; यत्न करिया–महान् प्रयत्न द्वारा; मुनयः अपि-महान् सन्त भी; कृष्ण भजे–कृष्ण की सेवा करने लग जाते हैं; गुण-आकृष्ट हञा-उनके दिव्य गुणों से आकृष्ट होकर।

अनुवाद

"आत्मा' शब्द का एक अर्थ 'प्रयत्न' भी है। कुछ सन्त कृष्ण के दिव्य गुणों द्वारा आकर्षित होकर उनकी सेवा करने योग्य बनने के लिए महान् प्रयत्न करते हैं।"

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो

न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ।

तल्लभ्यते दुःख-वदन्यतः सुखं

कालेन सर्वत्र गभीर-रंहसा ॥ 169॥

तस्य एव-उसके ही; हेतोः–कारण; प्रयतेत-प्रयत्न करना चाहिए; कोविदः-जो बुद्धिमान तथा विद्वान है; न-नहीं; लभ्यते-प्राप्त होते; यत्-जो; भ्रमताम्-उन्हें जो भ्रमण करते हैं; उपरि अधः-ऊपर नीचे; तत्-वह; लभ्यते-प्राप्त होता है; दुःख-वत्-दुःख की तरह; अन्यतः-अन्य कारण से (अपने पूर्व कर्म); सुखम्-सुख; कालेन–समय से; सर्वत्र-सब जगह; गभीर-जिसका पार नहीं पाया जा सकता; रंहसा-प्रभाव द्वारा।

अनुवाद

"ब्रह्मलोक तथा सत्यलोक से पाताललोक तक ऊपर नीचे घूमने पर भी दिव्य पद की प्राप्ति नहीं की जा सकती। यदि कोई सचमुच बुद्धिमान तथा विद्वान है, तो उसे उस दुर्लभ दिव्य पद को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। चौदहों लोकों में जो भौतिक सुख उपलब्ध हो सकता है, उसे काल के प्रभाव से उसी तरह प्राप्त किया जा सकता है, जिस प्रकार कालक्रम में दुःख प्राप्त होता है। किन्तु चूँकि

आध्यात्मिक चेतना को इस प्रकार प्राप्त नहीं की जा सकती, अतएव इसके लिए प्रयास करना चाहिए।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.5.18) में नारद मुनि का कथन है। नारद मुनि ने इसे व्यासदेव से तब कहा, जब वे समस्त वेदों की रचना के बाद भी खिन्न-मन थे। इस सन्दर्भ में नारद मुनि ने श्रील व्यासदेव को केवल भक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयास करने का उपदेश दिया।

सद्धर्मस्यावबोधाय येषां निर्बन्धिनी मतिः ।

अचिरादेव सर्वार्थः सिध्यत्येषामभीप्सितः ॥ 170॥

सत्-धर्मस्य-भक्ति के मार्ग के; अवबोधाय-ज्ञान के लिए; येषाम्-जिनकी; निर्बन्धिनी-अबाध; मतिः-बुद्धि; अचिरात् शीघ्र ही; एव–अवश्य; सर्व-अर्थः-जीवन का लक्ष्य; सिध्यति–पूर्ण हो जाता है; एषाम् इन लोगों का; अभीप्सितः–इच्छित।

अनुवाद

"जो अपनी आध्यात्मिक चेतना जाग्रत करने के लिए उत्सुक हैं, जिनकी बुद्धि अचल है और विचलित नहीं होती, वे निश्चय ही वांछित जीवन लक्ष्य प्राप्त करते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण नारदीय पुराण का है।

च-शब्द अपि-अर्थे, 'अपि'—अवधारणे ।

यत्नाग्रह विना भक्ति ना जन्माय प्रेमे ॥ 171॥

च-शब्द-च शब्द; अपि-अपिशब्द के; अर्थे–अर्थ में; अपि अवधारणे-अपि बल देने के लिए प्रयोग होता है; यत्न-आग्रह विना-प्रयास और आग्रह के बिना; भक्ति-भक्ति; ना-नहीं; जन्माय-उत्पन्न करती; प्रेमे-भगवत्प्रेम।

अनुवाद

"च' शब्द का प्रयोग अपि' के स्थान में किया जा सकता है, जो किसी बात पर बल देने वाला है। इस तरह इसका अर्थ यह हुआ कि भक्ति में निष्ठावान प्रयत्न के बिना भगवत्प्रेम प्राप्त नहीं किया जा सकता।"

साधनौधैरनासङ्गैरलभ्या सु-चिरादपि ।

हरिणा चाश्वदेयेति द्विधा सा स्यात्सु-दुर्लभा ॥ 172॥

साधन-भक्ति के कार्यकलाप; ओधैः–अधिकता द्वारा; अनासङ्गैः-आसक्ति के बिना; अलभ्या–प्राप्त करना कठिन है; सु-चिरात् अपि-यद्यपि अधिक समय तक किया जाए; हरिणा-परम भगवान् द्वारा; च–तथा; आशु-अति शीघ्र; अदेयान देने योग्य; इति-इसलिये; द्विधा-दो प्रकार; सा-वह; स्यात् है; सु-दुर्लभा–प्राप्त करने में अत्यन्त कठिन।

अनुवाद

"भक्ति की पूर्णता प्राप्त करना दो कारणों से अतीव कठिन है। पहला यह कि जब तक कोई कृष्ण के प्रति अनुरक्त नहीं होता, तब तक उसे भक्ति की पूर्णता प्राप्त नहीं होती, भले ही वह दीर्घकाल तब भक्ति क्यों न करता रहे। दूसरा यह कि कृष्ण सरलता से भक्ति की पूर्णता प्रदान नहीं करते।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (5.6.18) में कहा गया है-मुक्तिं ददाति कर्हिचित्। श्रील शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को बतलाया कि कृष्ण मुक्ति तो प्रदान कर देते हैं, किन्तु सरलता से भक्ति की पूर्णता

प्रदान नहीं करते। इसका अर्थ यह हुआ कि कृष्ण यह देखना चाहते हैं कि भक्त सचमुच निष्ठावान् तथा गम्भीर है और उसका कोई निकृष्ट प्रयोजन नहीं है। यदि ऐसा हो तो भक्ति आसानी से सफल होती है, अन्यथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से इसे प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.1.35) में आया है।

तेषां सतत-युक्तानां भजतां प्रीति-पूर्वकम् ।

ददामि बुद्धि-योगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ 173 ॥

तेषाम्-उनके लिए; सतत-युक्तानाम्-जो सदैव लगे रहते हैं; भजताम्-भक्तिमयी सेवा में; प्रीति–पूर्वकम्-प्रेमभाव से; ददामि–मैं देता हूँ; बुद्धि-योगम्-वास्तविक बुद्धि; तम्-वह; येन-जिसके द्वारा; माम्-मुझ तक; उपयान्ति-आते हैं; ते–वे।

अनुवाद

"जो लोग निरन्तर मेरी भक्ति में लगे रहते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी सेवा करते हैं, उन्हें मैं बुद्धि प्रदान करता हूँ जिसके द्वारा वे मुझ तक आ सकते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण भगवद्गीता (10.10) का है। व्याख्या के लिए देखें आदिलीला 1.49 ।

'आत्मा'-शब्दे 'धृति' कहे,—धैर्ये येइ रमे ।

धैर्यवन्त एव हञा करय भजने ॥ 174॥

आत्मा-शब्दे-आत्मा शब्द द्वारा; धृति-धृति; कहे-कहा जाता है; धैर्ये-धैर्य के साथ; येइ रमे-जो प्रयास करता है; धैर्य-वन्त-ऐसा धीर व्यक्ति; एव–अवश्य; हञा-होकर; करय-करता है; भजने-प्रेममयी सेवा।

अनुवाद

“आत्मा का दूसरा अर्थ धृति या धैर्य है। जो व्यक्ति धैर्यपूर्वक प्रयास करता है, वह आत्माराम है। ऐसा व्यक्ति धैर्यपूर्वक भक्ति में लगता है।”

‘मुनि’-शब्दे—पक्षी, भृङ्गः ‘निर्ग्रन्थे’–मूर्ख-जन।

कृष्ण-कृपाय साधु-कृपाय दोंहार भजन ॥ 175 ॥

मुनि-शब्दे-मुनि शब्द द्वारा; पक्षी-पक्षी; भृङ्ग-भौंरा; निर्ग्रन्थे-निग्रन्थ शब्द द्वारा; मूर्ख-जन-मूर्ख लोग; कृष्ण-कृपाय-भगवान् कृष्ण की कृपा द्वारा; साधु-कृपाय-भक्त की कृपा द्वारा; दोंहार भजन-दोनों (कृष्ण तथा गुरु या साधु) की प्रेममयी सेवा में लग जाता है।

अनुवाद

“मुनि’ शब्द के अर्थ ‘पक्षी’ तथा ‘भौंरा’ भी हैं। ‘निर्ग्रन्थ’ शब्द मूर्ख लोगों का सूचक है। कृष्ण की कृपा से ऐसे जीव जब किसी साधु (गुरु) के सम्पर्क में आते हैं, तो वे भक्ति में लग जाते हैं।”

प्रायो बताम्ब मुनयो विहगा वनेऽस्मिन

कृष्णेक्षितं तदुदितं कल-वेणु-गीतम्।

आरुह्य ये द्रुम-भुजान् रुचिर-प्रवालान्

शृण्वन्ति मीलित-दृशो विगतान्य-वाचः ॥ 176 ॥

प्रायः-लगभग; बत-अवश्य; अम्ब-हे माता; मुनयः-महान् मुनि; विहगाः-पक्षी; वने-वन में; अस्मिन्-इस; कृष्ण-ईक्षितम्-कृष्ण के चरणकमलों को देखकर; तत्-उदितम्-उनके द्वारा बनाये गये; कल-वेणु-गीतम्-वेणु बजाने से उत्पन्न मधुर धुनें; आरुह्य-चढ़कर; ये वे सभी; द्रुम-भुजान्-वृक्षों की

शाखाओं पर; रुचिर-प्रवालान्-सुन्दर लताओं और उपशाखाओं वाले; शृण्वन्ति–सुनते हैं; मीलित-दृशः-आँखें बन्द करके; विगत-अन्य-वाचः-अन्य सभी ध्वनियाँ बन्द करके।

अनुवाद

"हे माता, इस जंगल में सारे पक्षी वृक्षों की सुन्दर शाखाओं पर बैठने के बाद अपनी आँखें बन्द किये हैं और किसी अन्य ध्वनि से आकृष्ट हुए बिना केवल कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि सुन रहे हैं। ऐसे पक्षी जरूर मुनियों जैसे पद पर ही होंगे।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.21.14) से है। यह कथन उन गोपियों का है, जो कृष्ण के विरह में शोकसन्तप्त थीं और यह अनुभव कर रही थीं कि वृन्दावन के निवासी किस प्रकार मुनियों जैसा जीवन बिता रहे हैं।

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिल-लोक-तीर्थं

गायन्त आदि-पुरुषानुपथं भजन्ते।

प्रायो अमी मुनि-गणा भवदीय-मुख्या

गूढ़म् वनेऽपि न जहत्यनघात्म-दैवम्॥ 177॥

एते-ये सभी; अलिनः-भौंरे; तव-आपके; यशः–यश; अखिल–समस्त; लोक-तीर्थम्-लोकों के लिए शुभ; गायन्ते-गा रहे हैं; आदि-पुरुष-हे आदि पुरुष; अनु-पथम्-मार्ग के साथ; भजन्ते-वे दिव्य प्रेममयी सेवा में लगे हुए हैं; प्रायः-लगभग; अमी-ये; मुनि-गणाः-महान् सन्त; भवदीय-आपसे सम्बन्धित; मुख्याः -अति महान् भक्त; गूढ़म्-गुप्त; वने-वन में; अपि-यद्यपि; न-नहीं; जहति-त्यागते; अनघ-हे दिव्य गुणों के स्वरूप; आत्म-दैवम्-अपने आराध्य भगवान् को।

अनुवाद

“हे मूर्तिमन्त सौभाग्य! हे आदि पुरुष, ये सारे भौंरे आपके दिव्य यश का गान कर रहे हैं, जिससे समग्र ब्रह्माण्ड शुद्ध हो जायेगा। निस्सन्देह, ये जंगल में आपके पथ का अनुसरण कर रहे हैं और आपकी पूजा कर रहे हैं। वस्तुतः ये सभी साधु पुरुष हैं, किन्तु अब इन्होंने भ्रमरों का रूप धारण कर रखा है। यद्यपि आप मनुष्य की तरह क्रीड़ा कर रहे हैं, किन्तु वे भूल नहीं पाये कि आप उनके आराध्य देव हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.15.6) से लिया गया है। अभी कृष्ण तथा बलराम किशोरावस्था प्राप्त करने वाले थे और वृन्दावन के जंगल में प्रवेश कर रहे थे, तभी कृष्ण ने बलराम को प्रसन्न करने के लिए यह स्तुति की।

सरसि सारस-हंस-विहङ्गाश्

चारु-गीत-हृत-चेतस एत्य ।

हरिमुपासत ते यत-चित्ता

हन्त मीलित-दृशो धृत-मौनाः ॥ 178॥

सरसि-जल में; सारस-सारस; हंस-हंस; विहङ्गाः-पक्षी; चारु-गीत-कृष्ण की वेणु के मधुर गीतों द्वारा; हृत-चेतसः–भौतिक चेतना से रहित; एत्य-पास आकर; हरिम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; उपासत-पूजा की; ते–वे सभी; यत-चित्ताः–पूर्ण ध्यानपूर्वक; हन्त–हाय; मीलित-दृशः-अपनी आँखे बन्द करके; धृत-मौनाः–पूर्णतया मौन।

अनुवाद

“जल में सारे सारस तथा हंस कृष्ण की बाँसुरी के मधुर गीत से मोहित हो रहे हैं। वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के निकट पहुँचकर पूरे मनोयोग से उनकी पूजा कर रहे हैं। अरे, वे तो अपनी आँखें बन्द किये हैं और पूर्णतया शान्त हो गये हैं।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.35.11) का है। दिन में कृष्ण वृन्दावन के जंगल में गये हुए थे, उस समय गोपियाँ उनके विरहवश इस प्रकार सन्ताप कर रही थीं।

किरात-हूनान्ध्र-पुलिन्द-पुक्कशा

आभीर-शुम्भा यवनाः खशादयः ।

येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः

शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ 179॥

किरात-किरात नामक आदिवासी; हून-हूण; आन्ध्र-आन्ध्र; पुलिन्द-पुलिन्द; पुक्कशाः-पुक्कश; आभीर-आभीर; शुम्भाः-शुम्भ; यवनाः-जो लोग वैदिक नियम पालन नहीं करते और जो गाय का मांस खाते हैं; खश-आदयः-खश आदि; ये-जो; अन्ये-ऐसे अन्य; च-भी; पापाः-पापी लोग; यत्-जिनके, परम भगवान् के; उपाश्रय-भक्तों का; आश्रयाः-आश्रय लेकर; शुध्यन्ति-शुद्ध हो जाते हैं; तस्मै–उनको (भगवान् विष्णु को); प्रभविष्णवे-सर्वशक्तिमान भगवान् विष्णु को; नमः-प्रणाम।

अनुवाद

“मैं परम शक्तिमान उन भगवान् को नमस्कार करता हूँ, जिनके भक्तों की शरण ग्रहण करने से किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कश, आभीर, शुम्भ, यवन और खश तथा अन्य जातियाँ भी, जो पापकर्म में निरत रहती हैं, शुद्ध हो सकती हैं।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.4.18) से है। जब परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से सृष्टि का वर्णन करने के लिए कहा, तब उन्होंने यह श्लोक कहा था। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नमस्कार करते हुए शुकदेव गोस्वामी ने उन भगवान् विष्णु की असीम शक्तियों का वर्णन किया, जो यहाँ पर वर्णित अधम प्राणियों को शुद्ध करने वाले हैं।

किंवा 'धृति'-शब्दे निज-पूर्णतादि-ज्ञान कय।

दुःखाभावे उत्तम-प्राप्त्ये महा-पूर्ण हय ॥180॥

किंवा-अथवा; धृति-शब्दे-धृति शब्द द्वारा; निज-अपनी; पूर्णता-आदि-पूर्णता आदि; ज्ञान-ज्ञान; कय–कहते हैं; दुःख-अभावे-सभी भौतिक कष्टों के अभाव में; उत्तम-सर्वश्रेष्ठ; प्राप्त्ये-प्राप्त कर; महा-पूर्ण हय-पूर्णतया पूर्ण हो जाता है।

अनुवाद

"धृति' शब्द का प्रयोग तब भी किया जाता है, जब कोई ज्ञान में परिपूर्ण होता है। जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों को प्राप्त कर लेने के बाद भक्त के सारे भौतिक कष्ट दूर हो जाते हैं, तब वह पूर्णता के उच्चतम पद 'महापूर्ण' को प्राप्त करता है।"

धृतिः स्यात्पूर्णता-ज्ञान-दुःखाभावोत्तमाप्तिभिः।

अप्राप्तातीत-नष्टार्था-नभिसंशोचनादि-कृत् ॥181॥

धृतिः-सहनशक्ति; स्यात् हो सकती है; पूर्णता–पूर्णता; ज्ञान–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ज्ञान; दुःख-अभाव-दु:ख का अभाव; उत्तम-आप्तिभिः–पूर्णता का सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त करके; अप्राप्त प्राप्त नहीं; अतीत-बीता हुआ; नष्ट-नष्ट; अर्थ-वस्तु, लक्ष्य; अनभिसंशोचन–शोक का अभाव; आदि-आदि; कृत्-करते हुए।

अनुवाद

"धृति वह पूर्णता है, जो दुःख की अनुपस्थिति में और भगवज्ञान प्राप्त होने तथा शुद्ध भगवत्प्रेम प्राप्त होने पर अनुभव की जाती है। लक्ष्य प्राप्त न कर सकने अथवा किसी प्राप्त की हुई वस्तु की क्षति से उत्पन्न सन्ताप इस पूर्णता को प्रभावित नहीं करते।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (2.4.144) में पाया जाता है।

कृष्ण-भक्त—दुःख-हीन, वाञ्छान्तर-हीन ।

कृष्ण-प्रेम-सेवा-पूर्णानन्द-प्रवीण ॥182॥

कृष्ण-भक्त-भगवान् कृष्ण का भक्त; दुःख-हीन-भौतिक स्थितियों के कष्ट से मुक्त; वाञ्छा-अन्तर-हीन-कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त उसकी कोई इच्छा नहीं होती; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; सेवा–सेवा; पूर्ण-आनन्द–दिव्य आनन्द से पूर्ण; प्रवीण-तथा अत्यन्त निपुण।

अनुवाद

"कृष्ण का भक्त कभी दुःखी अवस्था में नहीं रहता, न ही उसे कृष्ण की सेवा करने के अतिरिक्त कोई अन्य इच्छा होती है। वह अनुभवी तथा उन्नत होता है। वह कृष्ण-प्रेम के दिव्य आनन्द का अनुभव करता है और उन्हीं की सेवा में पूर्णता के साथ लगा रहता है।"

मत्सेवया प्रतीतं ते सालोक्यादि-चतुष्टयम् ।

नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्काल-विप्लुतम् ॥ 183॥

मत्-मेरी; सेवया-सेवा द्वारा; प्रतीतम्-प्राप्त; ते–वे; सालोक्य-आदि-सालोक्य आदि मुक्ति; चतुष्टयम्-चार प्रकार की; न इच्छन्ति–नहीं चाहते; सेवया-सेवा द्वारा; पूर्णाः–पूर्ण; कुतः–कहाँ; अन्यत्-अन्य वस्तुएँ; काल-विप्लुतम्-जो समय के साथ लुप्त हो जाती हैं।

अनुवाद

“मेरी सेवा करने से अपनी इच्छाएँ पूरी कर लेने के बाद मेरे भक्त चार प्रकार की मुक्तियों को स्वीकार नहीं करते, जो ऐसी सेवा से सरलता से प्राप्त की जा सकती हैं। तो फिर वे ऐसे आनन्दों को क्यों स्वीकार करेंगे, जो समय के साथ विलुप्त हो जाते हैं?”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (9.4.67) से उधृत है।

हृषीकेशे हृषीकाणि यस्य स्थैर्य-गतानि हि ।

स एव धैर्यमाप्नोति संसारे जीव-चञ्चले ॥184॥

हृषीकेशे-इन्द्रियों के स्वामी को; हृषीकाणि-सभी इन्द्रियाँ; मस्य–जिसकी; स्थैर्य-गतानि-स्थिर; हि-अवश्य; सः-वह व्यक्ति; एव–अवश्य; धैर्यम् आप्नोति-धैर्य की स्थिति प्राप्त करता है; संसारे–भौतिक जगत् में; जीव-चञ्चले–जहाँ सभी विचलित है।

अनुवाद

“इस भौतिक जगत् में सारे जीव अपने चंचल स्वभाव के कारण विचलित रहते हैं। किन्तु भक्त इन्द्रियों के स्वामी भगवान् के चरणकमलों की सेवा में स्थिर रहता है। ऐसा व्यक्ति धैर्य तथा सहिष्णुता में स्थित माना जाता है।”

‘च’—अवधारणे, इहा ‘अपि’—समुच्चये ।

धृतिमन्त हञा भजे पक्षि-मूर्ख-चये ॥185॥

च-च शब्द; अवधारणे-बल देने के अर्थ में; इहा-यहाँ; अपि-अपि शब्द भी; समुच्चये-सम्मुच्चय के भाव में; धृतिमन्त–पूर्ण; हञा-होकर; भजे-उपासना करता है; पक्षि-मूर्ख-चये-पक्षी जैसे सर्वाधिक मूर्ख जीव।

अनुवाद

"च' शब्द बल देने के लिए है और 'अपि' शब्द समुच्चय के रूप में प्रयुक्त है। इस प्रकार यह समझना होगा कि मन्द प्राणी भी (पक्षी तथा निरक्षर) सहनशील हो सकते हैं और कृष्ण-भक्ति में लग सकते हैं।"

'आत्मा'-शब्दे 'बुद्धि' कहे बुद्धि-विशेष।

सामान्य-बुद्धि-युक्त यत जीव अवशेष ॥186॥

आत्मा-शब्दे-आत्मा शब्द द्वारा; बुद्धि-बुद्धि; कहे-कही जाती है; बुद्धि-विशेष-एक विशेष प्रकार की बुद्धि; सामान्य-बुद्धि-युक्त–सामान्य बुद्धि से युक्त; यत-सभी; जीव-जीवात्मा; अवशेष-बचे हुए।

अनुवाद

"आत्मा' शब्द विशेष प्रकार की बुद्धि के लिए भी प्रयुक्त होता है। चूँकि सामान्यतया समस्त जीवों में थोड़ी-बहुत बुद्धि होती है, अतः वे इसमें आ जाते हैं।"

बुद्ध्ये रमे आत्माराम—दुइ त' प्रकार।

'पण्डित' मुनि-गण, निर्ग्रन्थ 'मूर्ख' आर ॥187॥

बुद्ध्ये-बुद्धि में; रमे-जो आनन्द लेता है; आत्माराम-वह आत्माराम है; दुइ त' प्रकार-दो प्रकार के; पण्डित–विद्वान; मुनि-गण-दार्शनिक; निर्ग्रन्थ-ज्ञान रहित; मूर्ख-मूर्ख; आर-तथा।

अनुवाद

“हर जीव में किसी न किसी तरह की बुद्धि रहती है और जो अपनी बुद्धि का उपयोग करता है, वह आत्माराम कहलाता है। आत्माराम के दो प्रकार हैं-एक तो विद्वान तथा दार्शनिक और दूसरा अशिक्षित तथा मूर्ख व्यक्ति।”

कृष्ण-कृपाय साधु-सङ्गे रति-बुद्धि पाय ।

सब छाड़ि’ शुद्ध-भक्ति करे कृष्ण-पाय ॥ 188॥

कृष्ण-कृपाय-कृष्ण की कृपा द्वारा; साधु-सङ्गे-भक्तों के संग में; रति-बुद्धि-भक्तिमय आकर्षण तथा बुद्धि; पाय-प्राप्त करता है; सब छाड़ि’-सब कुछ त्यागकर; शुद्ध-भक्ति-शुद्ध प्रेममयी सेवा; करे-करता है; कृष्ण-पाय-कृष्ण के चरणों में।

अनुवाद

“कृष्ण की कृपा एवं भक्तों की संगति से शुद्ध भक्ति के प्रति व्यक्ति का आकर्षण और बुद्धि बढ़ती है, अतः वह सब कुछ त्यागकर कृष्ण एवं उनके शुद्ध भक्तों के चरणकमलों में अपने आपको नियुक्त कर देता है।”

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।

इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भाव-समन्विताः ॥ 189॥

अहम्-मैं, भगवान् कृष्ण; सर्वस्य-सबका; प्रभवः-मूल स्रोत; मत्तः-मुझसे; सर्वम्-सब कुछ; प्रवर्तते-प्रकट होता है; इति-ऐसा; मत्वा-समझकर; भजन्ते-प्रेममयी सेवा करते हैं; माम्-मेरी; बुधाः–जो बुद्धिमान हैं; भाव-समन्विताः-प्रेम और भक्तिभाव से युक्त।

अनुवाद

“मैं (कृष्ण) हर वस्तु का उद्गम हूँ। हर वस्तु मुझ से ही उद्भूत होती है। जो बुद्धिमान इसे भलीभाँति जान लेते हैं, वे प्रेम तथा भक्ति के साथ मेरी सेवा में लग जाते हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक भगवद्गीता (10.8) का है।

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देव-मायां

स्त्री-शूद्र-हुण-शबरा अपि पाप-जीवाः ।

यद्यद्भुत-क्रम-परायण-शील-शिक्षास्

तिर्यग्जना अपि किमु श्रुत-धारणा ये ॥190॥

ते-वे सभी; वै-निश्चित रूप से; विदन्ति–जानते हैं; अतितरन्ति–पार करते हैं; च-तथा; देव-मायाम्-बहिरंगा माया शक्ति का प्रभाव; स्त्री-स्त्री; शूद्र-शूद्र; हून-आदीवासी; शबराः–शिकारी; अपि-भी; पाप-जीवाः-पापी जीव; यदि यदि; अद्भुत-क्रम-अद्भुत कार्य करने वाले के; परायण-भक्तों का; शील-शिक्षाः-चरित्र तथा शिक्षा; तिर्यक्-जनाः-पक्षी तथा पशु; अपि-भी; किम् उ-क्या कहा जाए; श्रुत-धारणाः ये-जो लोग वैदिक ज्ञान में उन्नत हैं।

अनुवाद

“स्त्रियाँ, शूद्र, असभ्य पहाड़ी जातियाँ, शिकारी तथा अन्य अनेक निम्न कुल में उत्पन्न लोगों के साथ ही पक्षी तथा पशु भी अद्भुत प्रकार से कार्य करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा कर सकते हैं और भक्तों के पथ का अनुसरण करते हुए उनसे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। यद्यपि अज्ञान का सागर विस्तृत है, फिर भी वे इसे पार कर सकते हैं। तो फिर जो लोग वैदिक ज्ञान में उन्नत हैं, उनके लिए कौन-सी कठिनाई है?”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.7.46) से है। भगवान् विष्णु के अद्भुत गुणों का वर्णन करते हुए ब्रह्मा ने ये शब्द अपने शिष्य नारद से कहे थे। भगवान् विष्णु का महिमागान करने मात्र से मनुष्य अज्ञान-सागर को पार कर सकता है, भले ही वह निम्नकुल में क्यों न जन्मा हो।

विचार करिया यबे भजे कृष्ण-पाय ।

सेइ बुद्धि देन ताँरे, याते कृष्ण पाय ॥ 191॥

विचार-विचार; करिया-करके; यबे-जब; भजे-कोई उपासना करता है; कृष्ण-पाय-कृष्ण के चरणकमलों की; सेइ बुद्धि–वह बुद्धि; देन-देते हैं, ताँरे-उसे; माते-जिसके द्वारा; कृष्ण पाय-वह कृष्ण के चरणकमल प्राप्त करता है।

अनुवाद

"इन सब बातों पर विचार करते हुए जब कोई कृष्ण के चरणकमलों की सेवा में संलग्न होता है, तो कृष्ण उसे ऐसी बुद्धि प्रदान करते हैं, जिससे वह धीरे-धीरे भगवत्सेवा में पूर्णता की ओर आगे बढ़ सकता है।"

तेषां सतत-युक्तानां भजतां प्रीति–पूर्वकम् ।

ददामि बुद्धि-योगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ 192॥

तेषाम्-उनको; सतत-युक्तानाम्-जो सदैव रत रहते हैं; भजताम्-भक्तिमयी सेवा में; प्रीति–पूर्वकम्-प्रेमभाव से; ददामि–मैं देता हूँ; बुद्धि-योगम्-वास्तविक बुद्धि; तम्-वह; येन-जिसके द्वारा; माम्-मेरे पास; उपयान्ति-आ जाते हैं; ते–वे।

अनुवाद

"जो लोग निरन्तर भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी सेवा करते हैं, उन्हें मैं ऐसा ज्ञान प्रदान करता हूँ, जिससे वे मेरे पास आ सकते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण भगवद्गीता (10.10) से है।

सत्सङ्ग, कृष्ण-सेवा, भागवत, नाम।

व्रजे वास,—एइ पञ्च साधन प्रधान॥ 193॥

सत्-सङ्ग-भक्तों का संग; कृष्ण-सेवा-कृष्ण की सेवा में लगना; भागवत-भक्त-भागवत तथा ग्रन्थ भागवत; नाम-पवित्र नाम का कीर्तन; व्रजे वास-वृन्दावन या मथुरा में निवास; एइ-ये; पञ्च–पाँच; साधन प्रधान-भक्ति के मुख्य साधन।

अनुवाद

"भक्ति-पद तक ऊपर उठने के लिए निम्नलिखित पाँच बातों का ध्यान रखना चाहिए-भक्तों की संगति करना, भगवान् कृष्ण की सेवा में लगना, श्रीमद्भागवत का पाठ करना, भगवान के पवित्र नाम का कीर्तन करना तथा वृन्दावन या मथुरा में निवास करना।"

एइ-पञ्च-मध्ये एक 'स्वल्प' यदि हय।

सुबुद्धि जनेर हय कृष्ण-प्रेमोदय॥ 194॥

एइ–इन; पञ्च-मध्ये-पाँचों में से; एक–केवल एक की; स्वल्प-थोड़ी मात्रा यदि-यदि; हय होती है; सु-बुद्धि-बुद्धिमान; जनेर-व्यक्ति का; हय हो जाता है। कृष्ण-प्रेम-उदय-सुप्त कृष्ण-प्रेम का उदय।

अनुवाद

"यदि कोई इन पाँचों बातों में से किसी एक में थोड़ा भी अग्रसर होता है और बुद्धिमान होता है, तो कृष्ण के प्रति उसका सुप्त प्रेम क्रमशः जाग्रत हो उठता है।"

दुरूहाद्भुत-वीर्येऽस्मिन्श्रद्धा दूरेऽस्तु पञ्चके।

यत्र स्वल्पोऽपि सम्बन्धः सद्धियां भाव-जन्मने ॥195॥

दुर्-ऊह-समझने में कठिन; अद्भुत-अद्भुत; वीर्ये-शक्ति में; अस्मिन्-उसमें श्रद्धा-विश्वास; दूर-दूर; अस्तु हो; पञ्चके–इन पाँच नियमों में; यत्र-जिसमें; सु-अल्पः-थोड़ा सा; अपि-भी; सम्बन्धः-सम्बन्ध; सत्-धियाम्-उनका जो बुद्धिमान और निरपराध है; भाव-जन्मने-कृष्ण के प्रति प्रेम जागृत करने में।

अनुवाद

"इन पाँचों सिद्धान्तों की शक्ति अतीव अद्भुत है और समझनी मुश्किल है। उनमें श्रद्धा के बिना ही निरपराध व्यक्ति उनके साथ रंचमा सम्बन्ध होने पर अपने सुप्त कृष्ण-प्रेम को जाग्रत कर सकता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.238) में प्राप्त है।

उदार महती याँर सर्वोत्तमा बुद्धि ।

नाना कामे भजे, तबु पाय भक्ति-सिद्धि ॥ 196 ॥

उदार-उदार; महती-अत्यन्त; याँर-जिसकी; सर्व-उत्तमा–सर्वोत्तम; बुद्धि-बुद्धि नाना-अनेक; कामे-इच्छाओं के साथ; भजे-भक्ति में प्रवृत्त होता है; तबु-फिर भी; पाय-प्राप्त करता है; भक्ति-सिद्धि-भक्ति में पूर्णता।

अनुवाद

"यदि मनुष्य वास्तव में उदार तथा बुद्धिमान है, तो वह आगे बढ़ सकता है और भक्ति में पूर्ण बन सकता है, भले ही उसमें भौतिक इच्छाएँ क्यों न हों और चाहे वह किसी स्वार्थ से भगवान् की सेवा क्यों न करता हो।"

अकामः सर्व-कामो वा मोक्ष-काम उदार-धीः ।

तीव्रण भक्ति-योगेन यजेत पुरुषं परम् ॥197॥

अकामः-भौतिक इच्छाओं से रहित; सर्व-कामः-सभी भौतिक इच्छाओं से भरा; वा-या; मोक्ष-कामः-मुक्ति का इच्छुक; उदार-धीः- भक्ति में उन्नत तथा गम्भीर; तीव्रण-दृढ़; भक्ति-योगेन-भक्तियोग के अभ्यास द्वारा; यजेत-उपासना करनी चाहिए; पुरुषम् परम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की।

अनुवाद

"कोई चाहे सकाम हो या अकाम अथवा भगवान् से तादात्म्य का इच्छुक हो, वह तभी बुद्धिमान है जब वह दिव्य प्रेमाभक्ति द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की पूजा करता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.3.10) का है।

भक्ति-प्रभाव,—सेइ काम छाड़ाञा ।

कृष्ण-पदे भक्ति कराय गुणे आकर्षिया ॥ 198॥

भक्ति-प्रभाव-प्रेममयी सेवा का प्रभाव; सेइ-वह; काम-भौतिक इच्छाएँ; छाड़ाञा-छुड़वाकर; कृष्ण-पदे-कृष्ण के चरणकमलों में; भक्ति कराय-सेवा करवाती है; गुणे-दिव्य गुणों द्वारा; आकर्षिया-आकर्षित करके।

अनुवाद

"भक्ति इतनी प्रबल है कि जब कोई इसमें लग जाता है, तो वह क्रमशः समस्त भौतिक इच्छाओं का परित्याग कर देता है और पूरी तरह से कृष्ण के चरणकमलों के प्रति अनुरक्त हो जाता है। यह सब भगवान् के दिव्य गुणों के प्रति आकर्षण से ही सम्भव होता है।"

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां

नैवार्थ-दो यत्पुनरर्थिता यतः ।

स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छताम्

इच्छा-पिधानं निज-पाद-पल्लवम् ॥199॥

सत्यम्-यह सत्य है; दिशति-वे प्रदान करते हैं; अर्थितम्-जो भी इच्छित है; अथितः-माँगे जाने पर; नृणाम्-मनुष्यों द्वारा; न-नहीं; एव-निश्चय ही; अर्थ-दः-इच्छित वस्तुएँ देकर; यत्-जो; पुनः–फिर; अथिता-माँगे; यतः-जिसके कारण से; स्वयम्-स्वयं को; विधत्ते-वे दे देते हैं; भजताम्-जो प्रेममयी सेवा में रत हैं; अनिच्छताम्-न चाहते हुए भी; इच्छा-पिधानम्-अन्य सभी इच्छाएँ ढककर; निज-पाद-पल्लवम्-अपने चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

"जब भी कृष्ण से किसी इच्छा को पूरा करने के लिए प्रार्थना की। जाती है, तो वे अवश्य ही वैसा करते हैं, किन्तु वे ऐसी कोई वस्तु नहीं प्रदान करते, जिसका उपभोग किये जाने के बाद अधिकाधिक इच्छाओं को पूरा करने के लिए बारम्बार याचना करनी पड़े। जब किसी की अन्य इच्छाएँ होती हैं, किन्तु वह भगवान् की सेवा में लगता है, तो कृष्ण उसे बलात् अपने चरणकमलों में शरण देते हैं, जहाँ वह अन्य सारी इच्छाओं को भूल जाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (5.19.27) का है।

'आत्मा'-शब्दे 'स्वभाव' कहे, ताते येइ रमे ।

आत्माराम जीव यत स्थावर-जङ्गमे ॥ 200॥

आत्मा-शब्दे-आत्मा शब्द द्वारा; स्वभाव-स्वभाव; कहे-कभी-कभी कहा जाता है; ताते-उसमें; येइ रमे-जो आनन्द लेता है; आत्माराम-आत्माराम नामक; जीव-जीवात्मा; यत-वे सभी; स्थावरजङ्गमे-चर तथा अचर।

अनुवाद

"आत्मा' शब्द का अन्य अर्थ मनुष्य का लाक्षणिक स्वभाव' है। जो भी अपने विशिष्ट प्रकार के स्वभाव का भोग करता है, वह आत्माराम कहलाता है। अतः सारे जीव भी, चाहे चर हों या अचर, आत्माराम कहलाते हैं।"

जीवेर स्वभाव—कृष्ण-'दास'-अभिमान।

देहे आत्म-ज्ञाने आच्छादित सेइ 'ज्ञान' ॥ 201॥

जीवेर स्वभाव-सारे जीवात्माओं का वास्तविक स्वभाव; कृष्ण-दास-कृष्ण के सेवक; अभिमान-अभिमान; देहे-भौतिक शरीर में; आत्म-ज्ञाने-आत्मा के ज्ञान द्वारा; आच्छादित ढका हुआ होता है; सेइ ज्ञान-वह वास्तविक ज्ञान।

अनुवाद

"हर जीव का मूल स्वभाव अपने आपको कृष्ण का सनातन सेवक समझना है। फिर भी माया के वशीभूत होकर वह अपने आपको शरीर समझता है और इस तरह उसकी मूल चेतना ढक जाती है।"

च-शब्दे 'एव', 'अपि'-शब्द समुच्चये।

'आत्मारामा एव' हञा श्री-कृष्ण भजये ॥202॥

च-शब्दे-च शब्द द्वारा; एव-एव शब्द; अपि-शब्द-अपि शब्द; समुच्चये-समुच्चय के अर्थ में; आत्मारामाः एव-सभी आत्माराम (सभी प्रकार के जीवात्मा); हञा-होकर; श्री कृष्ण भजये-भगवान् कृष्ण की सेवा में लग जाते हैं।

अनुवाद

"उस दशा में 'च' शब्द का अर्थ 'एव' होता है। 'अपि' शब्द को समुच्चय के अर्थ में लिया जा सकता है। इस तरह श्लोक का पाठ होगा 'आत्मारामा एव' अर्थात् 'सभी तरह के जीव भी कृष्ण की पूजा करते हैं।"

तात्पर्य

यहाँ इसका उल्लेख हुआ है कि हर जीव आत्माराम है। अस्थायी रूप से माया के प्रभाव से आच्छादित जीव अपनी इन्द्रियों की सेवा करता है, जिनका प्रतिनिधित्व काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य द्वारा प्रदर्शित होता है। भौतिक अवस्था में सारे जीव इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते हैं, किन्तु जब वे विधि-विधानों का पालन करने वाले भक्तों की संगति करते हैं, तो वे शुद्ध हो जाते हैं और उनकी मूल चेतना जाग्रत हो उठती है। तब वे भगवान् कृष्ण की इन्द्रियों को तुष्ट करने का प्रयास करते हैं और उनकी भक्ति करते हैं।

एइ जीव—सनकादि सब मुनि-जन।

'निर्ग्रन्थ'—मूर्ख, नीच, स्थावर-पशु-गण॥ 203॥

एइ जीव-ये जीव; सनक-आदि सब मुनि-जन-सनक तथा सनातन आदि जैसे महान् मुनिजन; निर्ग्रन्थ-अनपढ़ व्यक्ति तक; मूर्ख-मूर्ख व्यक्ति; नीच-नीच; स्थावर-वृक्ष और पौधे; पशु-गण-पशु तथा पक्षी।

अनुवाद

“इन जीवों में चार कुमारों जैसे महापुरुष, निम्न जाति के मूर्खजन, वृक्ष, पौधे, पक्षी तथा पशु भी सम्मिलित हैं।”

व्यास-शुक-सनकादिर प्रसिद्ध भजन।

‘निर्ग्रन्थ’ स्थावरादिर शुन विवरण ॥ 204॥

व्यास–व्यासदेव की; शुकशुकेद्व गोस्वामी की; सनक-आदिर-सनक आदि चार कुमारों की प्रसिद्ध भजन-प्रेममयी सेवा प्रसिद्ध है; निर्ग्रन्थ-मूर्ख, निरक्षर; स्थावर-आदिर-अचर जीवों का; शुन विवरण-वर्णन सुनो।

अनुवाद

“व्यास, शुक तथा चारों कुमारों की भक्ति पहले से विख्यात रही है। अब मैं बताऊँगा कि किस प्रकार वृक्ष एवं पौधे जैसे अचर जीव भी भगवान् की भक्ति करते हैं।”

कृष्ण-कृपादि-हेतु हैते सबार उदय।

कृष्ण-गुणाकृष्ट हञा ताँहारे भजय ॥205॥

कृष्ण-कृपा-आदि-हेतु-कृष्ण की कृपा के कारण; हैते–से; सबार उदय-कोई भी भक्त बन जाता है; कृष्ण-गुण-आकृष्ट हजा-कृष्ण के दिव्य गुणों से आकर्षित होकर; ताँहारे-उनकी; भजय-सेवा करते हैं।

अनुवाद

“हर व्यक्ति कृष्ण की कृपा का पात्र है, जिसमें व्यासदेव, चारों कुमार, शुकदेव गोस्वामी, निम्न योनि के प्राणी, वृक्ष, पौधे तथा पशु सम्मिलित हैं। कृष्ण की कृपा से वे ऊपर उठते हैं और उनकी सेवा में लगते हैं।”

तात्पर्य

इसकी पुष्टि भगवद्गीता (9.32) में भी हुई है, जहाँ भगवान् कहते हैं :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।

“हे पृथापुत्र जो लोग मेरी शरण में आते हैं, वे चाहे निम्नजन्मा–स्त्रियाँ, वैश्य तथा शूद्र क्यों न हों वे सर्वोपरि गन्तव्य प्राप्त कर सकते हैं।”

हर व्यक्ति कृष्ण का भक्त बनने का अधिकारी है। बस, उसे प्रामाणिक विधि के अनुसार प्रशिक्षित होने की आवश्यकता है। यह तो कृष्ण के अन्तरंग भक्तों का कार्य है कि वे हर एक को कृष्ण-भक्त बनायें। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो फिर कौन करेगा? जो लोग अपने आपको भक्त होने का दावा करते हैं, किन्तु सारे जीवों को कृष्णभावनामृत तक ऊपर उठाने का कार्य नहीं करते, उन्हें कनिष्ठ अधिकारी (भक्ति के निम्नतम स्तर पर स्थित व्यक्ति) मानना चाहिए। जब मनुष्य भक्ति के द्वितीय स्तर तक ऊपर उठ जाता है, तो उसका कार्य सारे जगत् में कृष्णभावनामृत का प्रसार करना हो जाता है। जो लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सक्रिय हैं, उन्हें प्रारम्भिक स्तर में ही नहीं बने रहना चाहिए, अपितु भक्ति के द्वितीय स्तर तक-उपदेशकों (प्रचारकों) के स्तर तक उन्नति करनी चाहिए। भक्ति इतनी मोहक होती है कि उत्तम अधिकारी भी प्रचार करने के लिए द्वितीय स्तर में उतरकर सारे जगत् के कल्याण हेतु भगवान् की सेवा करते हैं।

धन्येयमद्य धरणी तृण-वीरुधस्त्वत्

पाद-स्पृशो द्रुम-लताः करजाभिमृष्टाः ।

नद्योऽद्रयः खग-मृगाः सदयावलोकैर्

गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥ 206॥

धन्या-धन्य; इयम्-यह; अद्य-आज; धरणी-भूमि; तृण-वीरुधः-घास तथा औषधियाँ; त्वत्-आपके; पाद-स्पृशः-चरणकमलों के स्पर्श से; द्रुम-लताः-वृक्ष तथा लताएँ; करज-अभिमृष्टाः–आपके पदनखों से स्पर्श प्राप्त; नद्यः-नदियाँ; अद्रयः-पर्वत; खग-मृगाः-पक्षी तथा पशु; सदय-अवलोकैः-आपकी दयापूर्ण दृष्टि के कारण; गोप्यः-व्रज की गोपियाँ; अन्तरेण-भीतर; भुजयोः-आपकी भुजाओं के; अपि-भी; यत्-जिसके लिए; स्पृहा-इच्छुक; श्रीः-लक्ष्मीदेवी।

अनुवाद

“वृन्दावन की यह भूमि (व्रजभूमि) आज धन्य है, क्योंकि आपके चरणकमलों ने इसकी मिट्टी तथा घास का स्पर्श किया है। आपकी अंगुलियों के नखों ने वृक्षों तथा लताओं का स्पर्श किया है तथा आपकी कृपामयी आँखों ने नदियों, पर्वतों, पक्षियों तथा पशुओं पर दृष्टि डाली है। आपके भुजाओं ने गोपियों का आलिंगन किया है और लक्ष्मी तक यही चाहती हैं। अब ये सभी धन्य हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.15.8) का है, जिसे भगवान् कृष्ण ने श्री बलराम से कहा है।

गा गोपकैरनु-वनं नयतोरुदार-

वेणु-स्वनैः कल-पदैस्तनु-भृत्सु सख्यः ।

अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां

निर्योग-पाश-कृत-लक्षणयोर्विचित्रम् ॥ 207॥

गाः-गायें; गोपकैः-ग्वालों के साथ; अनु-वनम्-प्रत्येक वन में; नयतोः-ले जाकर; उदार-उदार; वेणु-स्वनैः-वेणु की ध्वनि द्वारा; कल-पदैः-मधुर धुनों द्वारा; तनु-भृत्सु-जीवों के बीच; सख्यः-हे सखियों; अस्पन्दनम्-गति का अभाव; गति-मताम्-चर जीवों का; पुलकः-आनन्दित होना; तरूणाम्-

वृक्षों का; निर्योग-पाश-गायों के पैर बाँधने की रस्सियाँ; कृत-लक्षणयोः–उन दोनों (कृष्ण और बलराम) के, जो इन लक्षणों से युक्त हैं; विचित्रम्-अद्भुत।

अनुवाद

"हे सखी, कृष्ण तथा बलराम दोनों ही अपनी गौवों के आगे आगे अपने ग्वालमित्रों के साथ जंगल से होकर जा रहे हैं। उन दोनों के पास रस्सियाँ हैं, जिनसे गौवें दुहते समय वे उनके पिछले पाँव बाँध देते हैं। जब वे अपनी बाँसुरियाँ बजाते हैं, तो सारे चर प्राणी चकित रह जाते हैं और अचर प्राणी उनके मधुर संगीत से अतीव हर्ष का अनुभव करते हैं। ये सारी बातें निश्चय ही अत्यन्त आश्चर्यजनक हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.21.19) का है। जब गोपियों ने कृष्ण को बलदेव के साथ जंगल में विचरण करते और अद्भुत ढंग से अपनी बाँसुरियों को बजाते देखा, तो वे सभी कृष्ण के प्रति अत्यधिक आकृष्ट हो गईं। इस तरह वे भगवान् के कार्यों की प्रशंसा करने लगीं कि वे किस तरह सभी पौधों, पक्षियों, पहाड़ियों तथा जल अर्थात् प्रत्येक वस्तु को प्रोत्साहित कर रहे थे।

वन-लतास्तरव आत्मनि विष्णुं

व्यञ्जयन्त्य इव पुष्प-फलाढयाः ।

प्रणत-भार-विटपा मधु-धाराः।

प्रेम-हृष्ट-तनवो ववृषुः स्म ॥208॥

वन-लताः-औषधियाँ और पौधे; तरवः–वृक्ष; आत्मनि-परमात्मा में; विष्णुम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; व्यञ्जयन्त्यः-प्रकट करते हुए; इव-जैसे; पुष्प-फल-आढयाः-फलों तथा फूलों से लदे; प्रणत-

भार–भार से झुके हुए; विटपाः-वृक्ष; मधु-धाराः-शहद की धाराएँ; प्रेम-हृष्ट-भगवत्प्रेम से प्रेरित; तनवः-जिनके शरीर; ववृषुः-निरन्तर बरसे; स्म-निश्चित रूप से।

अनुवाद

"सारे पौधे, लताएँ तथा वृक्ष कृष्ण-प्रेम के कारण फूल-फलों से लदे थे। इससे वे झुके जा रहे थे। वे इस प्रकार के अगाध कृष्ण-प्रेम से इतने प्रेरित थे कि वे निरन्तर मधु की वर्षा कर रहे थे। गोपियों ने वृन्दावन के सारे जंगलों को इसी प्रकार देखे।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.35.9) का है। व्याख्या के लिए मध्य-लीला (8.276) देखें।

किरात-हूणान्ध्र-पुलिन्द-पुल्कशा

आभीर-शुम्भा यवनाः खसादयः ।

येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः

शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ 209॥

किरात-किरात नामक आदीवासी; हून-हूण; आन्ध्र-आन्ध्र; पुलिन्द-पुलिन्द; पुक्कशाः-पुक्कश; आभीर-आभीर; शुम्भाः-शुम्भ; यवनाः-जो लोग वैदिक नियम पालन नहीं करते और गाय का मांस खाते हैं; खश-आदयः-खश आदि; ये-जो; अन्ये-ऐसे ही अन्य; च–तथा; पापाः-पापी लोग; यत्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; उपाश्रय-भक्तों की; आश्रयाः-शरण लेकर; शुध्यन्ति-शुद्ध हो जाते हैं; तस्मै–उन भगवान् विष्णु को जिनके कारण वे शुद्ध हो जाते हैं; प्रभविष्णवे-सर्वशक्तिमान भगवान् विष्णु को; नमः-सादर प्रणाम।

अनुवाद

“किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कश, आभीर, शुम्भ, यवन तथा खश जातियाँ तथा वे भी जो पापकर्म करने के अभ्यस्त हैं, भगवान् के भक्तों की शरण ग्रहण करने से शुद्ध हो सकते हैं, क्योंकि भगवान् परम शक्तिमान हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।”

आगे ‘तेर’ अर्थ करिलुँ, आर ‘छय’ एइ।

ऊनविंशति अर्थ हइल मिलि’ एइ दुइ॥ 210॥

आगे-पहले; तेर-तेरह; अर्थ-अर्थ; करिलुँ-मैंने किये; आर-दूसरे; छय-छह; एइ-यह; ऊनविंशति-कुल उन्नीस; अर्थ-अर्थ; हइल-हो गये; मिलि'–मिलकर; एइ दुइ-ये दोनों।

अनुवाद

मैंने पहले ही (आत्माराम श्लोक के) तेरह अर्थ बतला दिये हैं। अब ये छह और हैं। इन्हें मिलाकर कुल उन्नीस हो जाते हैं।

तात्पर्य

आत्माराम शब्द के निम्नलिखित अर्थों पर आधारित छः भिन्न-भिन्न अर्थ इस प्रकार हैं : (1) ज्ञानी (श्लोक 165), (2) जो विभिन्न प्रकार के प्रयत्नों में लगे हैं (श्लोक 168), (3) जो धैर्यवान तथा गम्भीर हैं (श्लोक 174), (4) जो बुद्धिमान तथा विद्वान हैं (श्लोक 187), (5) जो बुद्धिमान तो हैं, किन्तु निरक्षर तथा मूर्ख हैं (श्लोक 187) तथा (6) वे जो कृष्ण के प्रति अपनी नित्य दासता से अवगत हैं (श्लोक 201)।

एइ ऊनिश अर्थ करिलु, आगे शुन आर।

‘आत्म’-शब्दे ‘देह’ कहे,—चारि अर्थ तार॥211॥

एइ-ये; ऊनिश-उन्नीस; अर्थ-अर्थ; करिलु-मैंने किये; आगे-आगे; शुन-सुनो; आर-और; आत्म-शब्दे-आत्मा शब्द द्वारा; देह-शरीर; कहे-माना जाता है; चारि अर्थ-चार अर्थ; तार-उसके।

अनुवाद

“मैं अभी तक उन्नीस भिन्न-भिन्न अर्थ कर चुका हूँ। अब अन्य अर्थ सुनो। ‘आत्म’ शब्द शरीर का भी द्योतक है और इसे चार प्रकार से ग्रहण किया जा सकता है।”

तात्पर्य

देह शब्द के अर्थों के चार प्रकार ये हैं (1) औपाधिक ब्रह्मदेह-उपाधियों समेत ब्रह्म के रूप में माना जाने वाला भौतिक शरीर (श्लोक 212), (2) कर्मनिष्ठ याज्ञिकेर कर्मदेह-वैदिक आदेशों के अनुष्ठानों में संलग्न शरीर (श्लोक 214), (3) तपोदेह—तपस्या में संलग्न शरीर (श्लोक 216) तथा (4) सर्वकामदेह-सभी प्रकार की भौतिक इच्छाओं की तुष्टि में संलग्न शरीर (श्लोक 218)।

देहारामी देहे भजे ‘देहोपाधि ब्रह्म’ ।

सत्सङ्गे सेह करे कृष्णेर भजन ॥212॥

देहारामी-जिन लोगों ने शरीर को आत्मा मान लिया है तथा केवल इन्द्रियतृप्ति में व्यस्त हैं; देहे-देह में; भजे-उपासना करते हैं; देह-उपाधि ब्रह्म-देह रूपी उपाधि से युक्त ब्रह्मन्; सत्-सङ्गे–भक्तों के संग में; सेह-ऐसा व्यक्ति; करे-करता है; कृष्णेर भजन-भगवान् कृष्ण की सेवा।

अनुवाद

“देहात्म-बुद्धि वाला व्यक्ति अपने ही शरीर को ब्रह्म समझकर पूजता है, किन्तु जब वह भक्त के सम्पर्क में आता है, तो वह इस गलत खयाल को त्याग देता है और कृष्ण की भक्ति में लग जाता है।”

उदरमुपासते य ऋषि-वर्मसु कूर्प-दृशः

परिसर-पद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ।

तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं

पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्त-मुखे ॥213॥

उदरम्-उदर की; उपासते-उपासना करते हैं; ये-जो; ऋषि-वर्मुसु-महान् ऋषियों द्वारा निर्देशित पथ पर; कूर्प-दृशः–जिसकी दृष्टि देहात्म बुद्धि के स्तर पर स्थित है; परिसर-पद्धतिम्-जहाँ से नाड़ियाँ निकलती हैं; हृदयम्-हृदय; आरुणयः-आरूण ऋषि आदि साधु; दहरम् हृदय के भीतर आकाश, हृदय में स्थित परमात्मा का सूक्ष्म सिद्धान्त; ततः-उससे; उदगात्-ऊपर चले गये; अनन्त-हे अनन्त; तव-आपका; धाम-धाम; शिरः-सिर; परमम्-परम; पुनः-फिर; इह-इस भौतिक जगत् में; यत्-जिन्हें; समेत्य-प्राप्त करके; न-नहीं; पतन्ति-गिरते; कृत-अन्त-मुखे-जन्म और मृत्यु के चक्र में।

अनुवाद

“जो लोग महान् सन्त योगियों के मार्ग का अनुसरण करते हैं, वे यौगिक आसन करते हैं और उदर से पूजा करना प्रारम्भ करते हैं, जहाँ ब्रह्म का वास बताया जाता है। ऐसे लोग शार्कराक्ष कहलाते हैं, जिसका अर्थ यह होता है कि वे स्थूल देहात्म-बुद्धि में स्थित हैं। कुछ आरुण ऋषि के भी अनुयायी होते हैं। वे उनके मार्ग का अनुसरण करते हुए नाड़ियों के कार्य का अवलोकन करते हैं। इस तरह वे क्रमशः हृदय तक पहुँचते हैं, जहाँ सूक्ष्म ब्रह्म या परमात्मा स्थित हैं। तब वे उनकी उपासना करते हैं। हे अनन्त! इनसे अच्छे तो वे योगीजन हैं, जो अपने शिरोभाग से आपकी पूजा करते हैं। उदर से चल करके हृदय होते हुए वे सिर के ऊपरी भाग तक पहुँचते हैं, जहाँ से वे ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचते हैं, जो खोपड़ी की चोटी पर स्थित छिद्र है। इस तरह ये योगी सिद्धि प्राप्त करते हैं और जन्म-मृत्यु के चक्र में फिर से नहीं पड़ते।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.87.18) का है।

देहारामी कर्म-निष्ठ—याज्ञिकादि जन।

सत्सङ्गे 'कर्म' त्यजि' करय भजन॥ 214॥

देहारामी-जो देहात्म बुद्धि में हैं; कर्म-निष्ठ-सकाम कर्मों में आसक्त; ग्राज्ञिक-आदि जन-जो लोग जीवन की उच्च सुविधाओं के लिए यज्ञ आदि करते हैं; सत्-सङ्गे-भक्तों के संग में; कर्म त्यजि'-ऐसे सकाम कर्म त्यागकर; करय भजन-भगवान् की सेवा में लग जाते हैं।

अनुवाद

"जो लोग देहात्म-बुद्धि में स्थित रहते हैं, वे मुख्यतः सकाम कर्म में संलग्न होते हैं। जो लोग यज्ञ तथा अनुष्ठान करते हैं, वे भी इसी श्रेणी में आते हैं। किन्तु किसी तरह जब वे शुद्ध भक्त के सम्पर्क में आते हैं, तब वे अपना सकाम कर्म त्यागकर भगवान् की सेवा में पूरी तरह लग जाते हैं।"

कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूम-धूम्रात्मनां भवान्।

आपाययति गोविन्द-पाद-पद्मासवं मधु॥ 215॥

कर्मणि-सकाम कर्मों में; अस्मिन्-इसमें; अनाश्वासे--यद्यपि परिणाम के बारे में विश्वस्त नहीं हैं; धूम-धूम्र-आत्मनाम्-जिनके शरीर धुंए के कारण काले हो रहे हैं; भवान्-आप; आपाययति-पीने का अवसर देते हैं; गोविन्द-पाद-पद्म-आसवम्-भगवान् गोविन्द के चरणकमलों से बहता अमृत; मधु-मधुर।

अनुवाद

"हमने अभी-अभी यह सकाम कर्म-अग्निहोम-शुरू किया है, किन्तु अपने कर्म में अनेक त्रुटियों के कारण हम इसके फल के विषय में निश्चित नहीं हैं। धुएँ से हमारे शरीर काले

पड़ गये हैं, किन्तु हम भगवान् गोविन्द के चरणकमलों के उस अमृत से सचमुच प्रसन्न हैं, जिसे आप वितरित कर रहे हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.18.12) का है, जो सूत गोस्वामी को नैमिषारण्य में मुनियों की सभा में कहा गया था। इस सभा में ऋषियों की अध्यक्षता शौनक ऋषि कर रहे थे और सूत गोस्वामी उस सभा में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के यशस्वी कार्यों का वर्णन कर रहे थे। उस समय वहाँ पर उपस्थित सारे ऋषियों ने अनुष्ठान बन्द कर दिये थे, क्योंकि उन्हें इन अनुष्ठानों के निश्चित फल का कोई आश्वासन प्राप्त नहीं था। सभी यज्ञ करने वाले अग्नि से निकलने वाले प्रचुर धुएँ की कालिख से ढक गये थे।

'तपस्वी' प्रभृति यत देहारामी हय ।

साधु-सङ्गे तप छाड़ि' श्री कृष्ण भजय ॥216॥

तपस्वी–जो लोग कठोर तपस्याएँ करते हैं; प्रभृति-इस प्रकार के; यत–सभी; देहारामी हय-देहात्मबुद्धि की श्रेणी में; साधु-सङ्गे-भक्तों के संग में; तप छाड़ि'-ऐसी तपस्याएँ छोड़कर; श्री कृष्ण भजय-भगवान् कृष्ण की सेवा में लग जाते।

अनुवाद

"उच्च लोक जाने के लिए कठोर तपस्या करने वाले तपस्वी भी इसी श्रेणी में आते हैं। जब ऐसे व्यक्ति किसी भक्त के सम्पर्क में आते हैं, तो वे सारे ऐसे अभ्यास को त्यागकर भगवान् कृष्ण की सेवा में लग जाते हैं।"

यत्पाद-सेवाभिरुचिस्तपस्विनाम्

अशेष-जन्मोपचितं मलं धियः ।

सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती

यथा पदाङ्गुष्ठ-विनिःसृता सरित् ॥ 217॥

यत्-पाद-सेवा-अभिरुचिः- भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की सेवा की रुचि; तपस्विनाम्-कठोर तपस्याओं में लगे लोगों के; अशेष-असीमित; जन्म-उपचितम्-जन्म जन्मांतर से संचित; मलम्-मल; धियः-बुद्धि के; सद्यः-तुरन्त; क्षिणोति-नष्ट कर देती है; अनु-अहम्-प्रतिदिन; एधती-बढ़ा देती है; सती–सत्त्वगुण में स्थित; यथा-जैसे; पद-अङ्गुष्ठ-विनिःसृता-भगवान् के चरणों से निकलने वाली; सरित्-गंगा नदी।

अनुवाद

"प्रेमाभक्ति का आस्वाद गंगा नदी के जल के समान है, जो भगवान् कृष्ण के पैरों से निकलती है। जो लोग तपस्या करते हैं, उनके द्वारा अनेक जन्मों के संचित पापकर्मों का फल इस आस्वाद से नित्य प्रति घटता जाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (4.21.31) से उद्धृत है।

देहारामी, सर्व-काम—सब आत्माराम ।

कृष्ण-कृपाय कृष्ण भजे छाड़ि' सब काम ॥ 218॥

देहारामी–देहात्म-बुद्धि में स्थित लोग; सर्व-काम-सभी भौतिक इच्छाओं से पूर्ण; सब-सव; आत्माराम-आत्मसन्तुष्टि का अनुभव करते हुए; कृष्ण-कृपाय-कृष्ण की कृपा द्वारा; कृष्ण भजे-भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा में लग जाते हैं; छाड़ि' सब काम-सभी प्रकार की भौतिक इच्छाएँ त्यागकर।

अनुवाद

"जब तक मनुष्य देहात्म-बुद्धि के अधीन श्रम करता है, तब तक उसे अनेकानेक भौतिक इच्छाओं की पूर्ति करनी पड़ती है। ऐसा व्यक्ति आत्माराम कहलाता है। जब ऐसे आत्माराम पर कृष्ण

की कृपा होती है, तो वह अपनी तथाकथित आत्मतुष्टि त्याग देता है और भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लग जाता है।"

स्थानाभिलाषी तपसि स्थितोऽहं

त्वां प्राप्तवान्देव-मुनीन्द्र-गुह्यम् ।

काचं विचिन्वन्नपि दिव्य-रत्नं

स्वामिन्कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे ॥219॥

स्थान-अभिलाषी-भौतिक संसार में उच्च अवस्था प्राप्त करने की इच्छा से; तपसि-कठोर तपस्याओं में; स्थितः-स्थित; अहम्-मैंने; त्वाम्-आपको; प्राप्तवान्–प्राप्त कर लिया; देव-मुनि-इन्द्र-गुह्यम्-महान् देवताओं, साधुओं और राजाओं के लिए भी प्राप्त करने कठिन; काचम्-काँच का एक टुकड़ा; विचिन्वन्-ढूँढते हुए; अपि-भी; दिव्य-रत्नम्-एक दिव्य रत्न; स्वामिन्–हे मेरे प्रभु; कृत-अर्थः अस्मि-मैं पूर्णतया सन्तुष्ट हो गया; वरम्-कोई वरदान; न याचे-नहीं माँगता।

अनुवाद

"[पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से आशिर्वाद प्राप्त करते समय ध्रुव महाराज ने कहा :] 'हे प्रभु, चूँकि मैं ऐश्वर्य से युक्त भौतिक पद की खोज में था, इसलिए मैं कठोर तपस्या कर रहा था। अब मैंने आपको पा लिये हैं, जो देवताओं, सन्तों तथा राजाओं को भी कठिनाई से प्राप्त हो पाते हैं। मैं तो काँच के टुकड़े की खोज कर रहा था, किन्तु बदले में मुझे अमूल्य रत्न मिल गया है। अतः मैं इतना सन्तुष्ट हूँ कि अब मैं आपसे कोई भी वर नहीं माँगना चाहता।"

तात्पर्य

यह श्लोक हरिभक्ति सुधोदय (7.28) से है।

एइ चारि अर्थ सह हइल 'तेइश' अर्थ ।

आर तिन अर्थ शुन परम समर्थ ॥ 220॥

एइ-इन; चारि-चार; अर्थ-अर्थों के; सह-साथ; हइल-हो गये; तेईश अर्थ-तेईस भिन्न प्रकार के अर्थ; आर तिन अर्थ-अन्य तीन अर्थ; शुन-सुनो; परम समर्थ-अत्यन्त दृढ़।

अनुवाद

"पहले बताए गये श्लोक के अन्य उन्नीस अर्थों के साथ यह 'आत्माराम' शब्द चार और अर्थ देता है, जब इसका अर्थ 'देहात्मबुद्धि के अधीन श्रम करता हुआ' लिया जाता है। इससे कुल मिलाकर तेईस अर्थ हो जाते हैं। अब अन्य तीन अर्थ सुनो जो अत्यन्त उपयुक्त हैं।"

तात्पर्य

ये तीन और अर्थ समझे जाते हैं जब (1) च का अर्थ "कालान्तर में" लिया जाता है, (2) च का अर्थ एव लिया जाता है तथा अपि का अर्थ "निन्दा" लिया जाता है तथा (3) निर्ग्रन्थ का अर्थ "जो अत्यन्त निर्धन है" लिया जाता है।

च-शब्दे 'समुच्चये', आर अर्थ कय।

'आत्मारामाश्च मुनयश्च' कृष्णेरे भजय ॥221॥

च-शब्दे-च शब्द द्वारा; समुच्चये-समुच्चय में; आर-दूसरा; अर्थ–अर्थ; कय-होता है; आत्मारामाः च मुनयः च–सभी आत्माराम और मुनि; कृष्णेरे भजय-कृष्ण की उपासना करते हैं।

अनुवाद

"जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, 'च' का प्रयोग 'समुच्चय' के अर्थ में भी किया जा सकता है। इस अर्थ के अनुसार सारे आत्माराम तथा मुनि कृष्ण की सेवा में लगे रहते हैं।'समुच्चय' के अतिरिक्त भी 'च' शब्द का एक अन्य अर्थ होता है।"

‘निर्ग्रन्थाः’ हञा इहाँ ‘अपि’—निर्धारणे।

‘रामश्च कृष्णश्च’ यथा विहरये वने॥ 222॥

निर्ग्रन्थाः हञा-मुक्त साधु होकर; इहाँ–यहाँ; अपि-अपिशब्द; निर्धारणे-निश्चितता के अर्थ में; रामः च कृष्णः च-राम तथा कृष्ण दोनों; यथा-जैसे; विहरये-विहार करते हैं; वने-वन में।

अनुवाद

“निर्ग्रन्थाः’ शब्द विशेषण की तरह प्रयुक्त हो सकता है और ‘अपि शब्द निश्चयात्मकता के लिए। उदाहरणार्थ रामश्च कृष्णश्च का अर्थ यह है कि राम तथा कृष्ण दोनों जंगल में विचरण करना पसन्द करते हैं।”

तात्पर्य

क्योंकि यह कहा गया है कि राम और कृष्ण दोनों वन में भ्रमण का आनन्द उठा रहे हैं, इससे यही समझा जाता है कि दोनों वन में भ्रमण का आस्वादन कर रहे हैं।

च-शब्दे ‘अन्वाचये’ अर्थ कहे आर।

‘बटो, भिक्षामट, गां चानय’ यैछे प्रकार॥ 223॥

च-शब्दे-च शब्द द्वारा; अन्वाचये-गौण क्रियाओं को प्रस्तुत करने में; अर्थ–अर्थ; कहे-कहता है; आर-दूसरा; बटो-हे ब्रह्मचारी; भिक्षाम् अट–कुछ भिक्षा लाओ; गाम् च आनय–तथा साथ ही गायों को लाओ; यैछे-प्रकार इस प्रकार।

अनुवाद

“च’ शब्द का अर्थ और भी है, जिसका अभिप्राय है एक ही समय एक गौण कार्य का सम्पन्न होना। च के इस अर्थ को समझना अन्वाचय कहलाता है। एक उदाहरण है, ‘हे ब्रह्मचारी, भिक्षा माँगने जाओ और साथ ही गौवों को ले आओ।”

कृष्ण-मनने मुनि कृष्णे सर्वदा भजय ।

‘आत्मारामा अपि’ भजे,—गौण अर्थ कय ॥ 224॥

कृष्ण-मनने-कृष्ण का मनन करने में; मुनि-साधु जन; कृष्णे-भगवान् कृष्ण के प्रति; सर्वदा-सदैव; भजय-प्रेम भक्ति करते हैं; आत्मारामाः अपि तथा आत्माराम भी; भजे-स्वयं को प्रेममयी सेवा में लगाते हैं; गौण अर्थ कय-यह भी दूसरा गौण अर्थ है।

अनुवाद

“वे सन्त पुरुष, जो सदैव कृष्ण का ध्यान करते हैं, भगवद्भक्ति में लगे रहते हैं। आत्माराम भी भगवान् की सेवा में व्यस्त रहते हैं। यही गौण अर्थ है।”

तात्पर्य

च शब्द का अन्वाचये अर्थ सूचित करता है कि जब च दो शब्दों के बीच में आता है, तो इनमें से एक अधिक महत्त्वपूर्ण होता है और दूसरे को गौण माना जाता है। उदाहरणार्थ, “हे ब्रह्मचारी, बाहर जाकर भिक्षा माँगो और साथ ही गौवें लेते आओ।” इसमें भिक्षा माँगना प्रमुख है, जबकि गौवें लाना गौण है। इसी तरह जो व्यक्ति सदैव कृष्ण का ध्यान करता है, वह मुख्य रूप से उनकी सेवा में लगा रहने वाला कृष्ण-भक्त है। अन्य आत्माराम भक्ति में गौण हैं।

‘च’ एवार्थे—‘मुनयः एव’ कृष्णेरे भजय ।

“आत्मारामा अपि”—‘अपि’ ‘गर्हा’-अर्थ कय ॥225॥

च-च शब्द; एव-अर्थे–एव के अर्थ में; मुनयः एव-साधु ही; कृष्णेरे भजय-भगवान् कृष्ण की भक्ति में लगते हैं; आत्मारामाः अपि–इस सन्धि में भी; अपि-अपिशब्द: गह-अर्थ कय-निन्दा के भाव में।

अनुवाद

"च' शब्द इस निश्चयात्मकता का भी सूचक है कि सन्त पुरुष ही कृष्ण-भक्ति करने में व्यस्त रहते हैं। आत्माराम अपि सन्धि में 'अपि' का प्रयोग दोषारोपण (निन्दा) करने में होता है।"

'निर्ग्रन्थ हञा'—एइ दुँहार 'विशेषण' ।

आर अर्थ शुन, यैछे साधुर सङ्गम ॥ 226॥

निर्ग्रन्थ हञा-निर्ग्रन्थ होकर; एइ–यह; दुँहार-दोनों का; विशेषण-विशेषण; आर अर्थ-अन्य अर्थ; शुन–कृपया सुनो; यैछे-जिसमें; साधुर सङ्गम-साधुओं का,संग होता है।

अनुवाद

"निर्ग्रन्थ' शब्द मुनि तथा आत्माराम दोनों की विशेषता बताने वाला विशेषण है। इसका एक अन्य अर्थ भी है, जो तुम मुझसे सुन सकते हो। यह भक्त की संगति का सूचक है। अब मैं बतलाऊँगा कि किस तरह भक्त की संगति से निर्ग्रन्थ भी भक्त बन सकता है।"

निर्ग्रन्थ-शब्दे कहे तबे 'व्याध', 'निर्धन' ।

साधु-सङ्गे सेह करे श्री-कृष्ण-भजन ॥227॥

निर्ग्रन्थ-शब्दे-निग्रन्थ शब्द द्वारा; कहे-कहते हैं; तबे-इसलिए; व्याध-एक शिकारी; निर्धन-गरीब; साधु-सङ्गे–एक साधु के संग द्वारा; सेह-वह भी; करे-करता है; श्री-कृष्ण-भजन-भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा में।

अनुवाद

"निर्ग्रन्थ' शब्द जो 'अपि' के साथ मिलकर निश्चयात्मकता का सूचक है, ऐसे व्यक्ति को बताता है, जो पेशे से या तो शिकारी हो या अत्यन्त निर्धन हो। तो भी जब ऐसा व्यक्ति नारद जैसे महान् सन्त की संगति करता है, तो वह कृष्ण-भक्ति में संलग्न हो जाता है।"

'कृष्णारामाश्च' एव हय—कृष्ण-मनन ।

व्याध हञा हय पूज्य भागवतोत्तम ॥ 228॥

कृष्ण-आरामाः च-जो कृष्ण में आनन्द लेता है; एव-निश्चित रूप से; हय-होता है; कृष्ण-मनन-कृष्ण का ध्यान; व्याध हञा–एक शिकारी होकर; हय-हो जाता है; पूज्य-पूजनीय; भागवत-उत्तम-भक्तों में श्रेष्ठ।

अनुवाद

"कृष्णारामाश्च' शब्द उसका सूचक है, जो कृष्ण के चिन्तन में आनन्द पाता है। भले ही ऐसा व्यक्ति शिकारी क्यों न हो, फिर भी वह पूजनीय है और भक्तों में श्रेष्ठ है।"

एक भक्त-व्याधेर कथा शुन सावधाने ।

याहा हैते हय सत्सङ्ग-महिमार ज्ञाने ॥229॥

एक भक्त-व्याधेर-एक भक्त जो एक शिकारी था उसकी; कथा-कथा; शुन-कृपया सुनो; सावधाने-सावधानीपूर्वक; याहा हैते–जिससे; हय-हो जाता है; सत्-सङ्ग-महिमार ज्ञाने-एक महान् भक्त के संग की महानता का ज्ञान।

अनुवाद

“अब मैं एक कथा सुनाऊँगा कि एक शिकारी किस तरह नारद मुनि जैसे महापुरुष की संगति से महान् भक्त बना। इस कथा से शुद्ध भक्त की संगति की महानता को समझा जा सकता है।”

एक दिन श्री-नारद देखि’ नारायण ।

त्रिवेणी-स्नाने प्रयाग करिला गमन ॥ 230॥

एक दिन-एक दिन; श्री-नारद-महान् सन्त नारद मुनि; देखि’ नारायण-भगवान् नारायण के दर्शन के बाद; त्रिवेणी-स्नाने–गंगा, यमुना और सरस्वती नदियों के संगम स्थान पर स्नान करने के लिए प्रयाग-प्रयाग में; करिला गमन-गये।

अनुवाद

“एक बार महान् सन्त नारद मुनि भगवान् नारायण से वैकुण्ठ में भेंट करने के बाद गंगा, यमुना तथा सरस्वती-इन तीन नदियों के संगम में स्नान करने प्रयाग गये।”

तात्पर्य

महान् सन्त नारद मुनि इतने मुक्त हैं कि वे नारायण का दर्शन करने वैकुण्ठ जा सकते हैं और तुरन्त ही भौतिक जगत् में इस लोक में आकर तीन नदियों के संगम पर स्नान करने प्रयाग जा सकते हैं। त्रिवेणी तीन नदियों के संगम का सूचक है। अब भी इस संगम में लाखों लोग स्नान करने के लिए जनवरी माह में (विशेषत: माघ मेला में) जाते हैं। मुक्त व्यक्ति, जिसका भौतिक शरीर नहीं है, कहीं भी जा सकता है। इसलिए जीव सर्वग कहलाता है-अर्थात् वह सर्वत्र जा सकता है। आजकल विज्ञानी अन्य ग्रहों पर जाने का प्रयास कर रहे हैं, किन्तु वे अपने भौतिक शरीरों के कारण मुक्त रूप से गति करने के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं। किन्तु यदि कोई अपने मूल आध्यात्मिक शरीर में स्थित होता है, तो वह बिना कठिनाई के सर्वत्र घूम सकता है। इस भौतिक जगत् के भीतर सिद्धलोक नामक एक ग्रह है,

जिसके निवासी किसी यन्त्र या अन्तरिक्ष-राकेट की सहायता लिए बिना ही एक ग्ह से दूसरे ग्रह पर जा सकते हैं। भौतिक जगत् में प्रत्येक ग्रह का अपना विशिष्ट लाभ (विभूति भिन्न) होता है। किन्तु आध्यात्मिक जगत् में सारे ग्रह तथा उनके निवासी आध्यात्मिक शक्ति से बने होते हैं। चूँकि आध्यात्मिक जगत् में कोई भौतिक अवरोध नहीं होता, इसलिए उसमें हर वस्तु एक-सी होती है।

वन-पथे देखे मृग आछे भूमे पड़ि' ।

बाण-विद्ध भग्न-पाद करे धड्-फड़ि ॥ 231॥

वन-पथे-वन के मार्ग पर; देखे-देखा; मृग-हिरन; आछे–था; भूमे पड़ि'-भूमि पर गिरा हुआ; बाण-विद्ध-एक तीर द्वारा बिंधा हुआ; भग्न-पाद टूटी टाँगे; करे धड् फड़ि-दर्द से तड़प रहा था।

अनुवाद

"जंगल से जाते हुए नारद मुनि ने रास्ते में एक हिरन पड़ा देखा, जो एक तीर से बिंधा हुआ था। उसके पाँव टूट चुके थे और वह तीव्र पीड़ा के कारण तड़प रहा था।"

आर कत-दूरे एक देखेन शूकर ।

तैछे विद्ध भग्न-पाद करे धड्-फड़ ॥ 232॥

आर कत-दुरे-थोड़ा और दूर; एक-एक; देखेन-देखते हैं; शूकर-एक सुअर; तैछे-वैसी ही; विद्ध-बिंधा हुआ; भग्न-पाद-टूटी टांगो वाला; करे धड्-फड़-दर्द में तड़पता।

अनुवाद

"कुछ ही दूरी पर नारद मुनि ने तीर से बिंधा एक सुअर देखा। उसके भी पाँव टूटे थे और वह पीड़ा से तड़प रहा था।"

ऐछे एक शशक देखे आर कत-दूरे ।

जीवेर दुःख देखि' नारद व्याकुल-अन्तरे ॥ 233॥

ऐछे-इसी प्रकार; एक शशक–एक खरगोश; देखे-उन्होंने देखा; आर कत-दूरे-थोड़ा आगे; जीवेर-जीव का; दुःख देखि'–ऐसे भयानक कष्ट देखकर; नारद–महामुनि नारद; व्याकुल-अन्तरे-मन में अत्यन्त दुःखी हो गये।

अनुवाद

"जब वे आगे बढ़े, तो उन्होंने एक खरगोश को भी तड़पते देखा। नारद मुनि इन जीवों को इस तरह कष्ट भोगते देखकर हृदय में अत्यधिक दुःखी हुए।"

कत-दूरे देखे व्याध वृक्षे ओंत हञा ।

मृग मारिबारे आछे बाण युड़िया ॥ 234॥

कत-दूरे-कुछ और दूरी पर; देखे–नारद मुनि ने देखा; व्याध-एक शिकारी; वृक्षे ओत हञा–एक वृक्ष के पीछे छुपकर; मृग मारिबारे–पशुओं को मारने के लिए; आछे-वहाँ था; बाण युड़िया-हाथ में तीर पकड़कर।

अनुवाद

जब नारद मुनि और आगे बढ़े, तो उन्होंने एक वृक्ष के पीछे एक शिकारी को देखा। यह शिकारी तीर लिये था और अन्य पशुओं को मारने के लिए तैयार था।

श्याम-वर्ण रक्त-नेत्र महा-भयङ्कर ।

धनुर्बाण हस्ते,—येन यम दण्ड-धर ॥ 235॥

श्याम-वर्ण-काले रंग का; रक्त-नेत्र-लाल आँखें; महा-भयङ्कर-अत्यन्त भयानक रूप वाला; धनुर्बाण हस्ते-हाथ में धनुष और बाण के साथ; येन यम दण्ड-धर-बिलकुल मृत्यु के देवता यमराज के समान।

अनुवाद

"इस शिकारी का शरीर काला था। उसकी आँखें लाल-लाल थीं और वह अत्यन्त भयानक लग रहा था। वह ऐसा दिख रहा था, मानो वह यमराज हो, जो वहाँ पर अपने हाथों में धनुष-बाण लिए खड़े हो।"

पथ छाडि' नारद तार निकटे चलिल ।

नारदे देखि' मृग सब पलाञा गेल ॥ 236॥

पथ छाड़ि'–मार्ग छोड़कर; नारद-नारद मुनि; तार निकटे-उसके पास; चलिल-गये; नारदे देखि'–नारद को देखकर; मृग-पशु; सब-सभी; पलाञा गेल-भाग गये।

अनुवाद

"जब नारद मुनि जंगल का मार्ग छोड़कर शिकारी के पास गये, तो सारे पशुओं ने तुरन्त उन्हें देखा और वहाँ से भाग गये।"

क्रुद्ध हञा व्याध ताँरे गालि दिते चाय ।

नारद-प्रभावे मुखे गालि नाहि आय ॥ 237॥

क्रुद्ध हञा–अत्यन्त क्रोधित होकर; व्याध–शिकारी; ताँरे–उन्हें; गालि दिते चाय-गाली देना चाहता था; नारद-प्रभावे-नारद के प्रभाव द्वारा; मुखे-मुँह में; गालि–गाली; नाहि आय-नहीं आई।

अनुवाद

“जब सारे पशु भाग गये, तो शिकारी ने गाली देकर नारद को दण्डित करना चाहा, किन्तु नारद के समक्ष वह एक भी बुरा शब्द उच्चारित न कर सका।”

“गोसाञि, प्रयाण-पथ छाड़ि’ केने आइला।

तोमा देखि’ मोर लक्ष्य मृग पलाइला” ॥ 238॥

गोसाञि-हे महान् साधु; प्रयाण-पथ छाड़ि’–सामान्य मार्ग छोड़कर; केने-क्यों; आइला-आप आये हैं; तोमा देखि’–आपको देखकर; मोर लक्ष्य-मेरे लक्ष्य; मृग-पशु; पलाइला–भाग गये।

अनुवाद

“शिकारी ने नारद मुनि से कहा, ‘हे गोस्वामी! हे महामुनि! आपने मेरे पास आने के लिए जंगल में से होकर जाने वाले सामान्य मार्ग को क्यों छोड़ा? आपको देखते ही मेरे शिकार के सारे पशु भाग गये।”

नारद कहे,—“पथ भुलि’ आइलाङ पुछिते।

मने एक संशय हय, ताहा खण्डाइते” ॥ 239॥

नारद कहे-नारद मुनि ने उत्तर दिया; पथ भुलि’–सामान्य मार्ग छोड़कर; आइलाङ-मैं आया हूँ; पुछिते-तुमसे पूछने के लिए; मने-मेरे मन में; एक-एक; संशय हय-संशय है; ताहा-वह; खण्डाइते-दूर करने के लिए।

अनुवाद

“नारद मुनि ने उत्तर दिया, ‘मार्ग छोड़कर मैं तुम्हारे पास अपना एक सन्देह दूर करने आया हूँ।”

“पथे ये शूकर-मृग, जानि तोमार हय”।

व्याध कहे,—“येइ कह, सेइ त’ निश्चय” ॥ 240॥

पथे-मार्ग में; ये-जो; शूकर-मृग-सुअर और अन्य पशु; जानि-मैं समझ सकता हूँ; तोमार हय-सभी तुम्हारे हैं; व्याध कहे–शिकारी ने कहा; येइ कह-आप जो भी कह रहे हैं; सेइ त’ निश्चय-यह सत्य है।

अनुवाद

“मैं संशय में था कि ये सारे अधमरे सुअर तथा अन्य पशु क्या तुम्हारे हैं।’ शिकारी ने उत्तर दिया, ‘हाँ, आप जो कह रहे हैं, सही है।”

नारद कहे,—“यदि जीवे मार’ तुमि बाण।

अर्ध-मारा कर केने, ना लओ पराण?” ॥ 241॥

नारद कहे-नारद मुनि ने कहा; यदि-यदि; जीवे-पशुओं को; मार-मारते हो; तुमि-तुम; बाण-बाण; अर्ध-मारा कर-तुम अधमरा करते हो; केने-क्यों; ना लओ पराण-उनके प्राण पूरी तरह क्यों नहीं लेते।

अनुवाद

“तब नारद मुनि ने पूछा, ‘तुमने इन पशुओं को पूरी तरह से क्यों नहीं मारा? तुमने उनके शरीरों में अपने तीर बेधकर उन्हें अधमरा क्यों रखा?”

व्याध कहे,—“शुन, गोसाञि, ‘मृगारि’ मोर नाम।

पितार शिक्षाते आमि करि ऐछे काम” ॥ 242॥

व्याध कहे–शिकारी ने उत्तर दिया; शुन-कृपया सुनो; गोसाञि-हे महान् साधु; मृग-अरि-पशुओं का शत्रु; मोर नाम-मेरा नाम; पितार शिक्षाते-अपने पिता की शिक्षा के अनुसार; आमि-मैं; करि–करता हूँ; ऐछे काम-ऐसे कार्य।

अनुवाद

"शिकारी ने उत्तर दिया, 'हे साधु पुरुष, मेरा नाम मृगारि अर्थात् पशुओं का शत्रु है। मेरे पिता ने इन्हें इसी प्रकार मारे जाने की शिक्षा मुझे दी है।"

अर्ध-मारा जीव यदि धड्-फड़ करे ।

तबे त' आनन्द मोर बाड़ये अन्तरे ॥ 243॥

अर्ध-मारा जीव-अधमरा जीव; यदि-यदि; धड्-फड़ करे–कष्ट के कारण तड़पता है; तबे-तब; त'–ही; आनन्द-आनन्द; मोर-मेरा; बाड़ये अन्तरे–अन्दर बढ़ता है।

अनुवाद

"जब मैं अधमरे पशुओं को तड़पते देखता हूँ, तो मुझे बड़े आनन्द का अनुभव होता है।"

नारद कहे,—'एक-वस्तु मागि तोमार स्थाने' ।

व्याध कहे,—"मृगादि लह, येइ तोमार मने" ॥244॥

नारद कहे-नारद मुनि ने कहा; एक-वस्तु मागि-मैं एक वस्तु माँगना चाहता हूँ, तोमार स्थाने-तुमसे; व्याध कहे–शिकारी ने उत्तर दिया; मृग-आदि लह–शिकार किए हुए पशुओं में से कुछ ले लो; येइ तोमार मने-जो आप पसन्द करें।

अनुवाद

“तब नारद मुनि ने शिकारी से कहा, ‘मुझे तुमसे एक वस्तु माँगनी है।’ शिकारी ने उत्तर दिया, ‘आप जो भी पशु या अन्य वस्तु चाहें उसे ले सकते हैं।”

मृग-छाल चाह यदि, आइस मोर घरे।

येइ चाह ताहा दिब मृग-व्याघ्राम्बरे ॥ 245॥

मृग-छाल-हिरण की चमडी; चाह यदि-यदि आप चाहते हैं; आइस मोर घरे-में निवास पर आइये; येइ चाह-आप जो भी चाहें; ताहा-वह; दिब-मैं दूँगा; मृग-व्याघ्र अम्बरे-हिरण या एक शेर की खाल।

अनुवाद

“यदि आपको मृगछाला चाहिए तो मेरे पास अनेक हैं। मैं आपको मृगछाला या व्याघ्र की खाल दे दूँगा।”

नारद कहे,—“इहा आमि किछु नाहि चाहि।

आर एक-दान आमि मागि तोमा-ठाञि” ॥ 246 ॥

नारद कहे-नारद मुनि ने कहा; इहा-यह; आमि किछु नाहि चाहि-मैं नहीं चाहता आर-दूसरा; एक-दान-एक दान; आमि-मैं; मागि–माँगता हूँ; तोमा-ठाञि-तुमसे।

अनुवाद

“नारद मुनि ने कहा, मैं कोई छाल नहीं चाहता। मैं तुमसे दान में केवल एक वस्तु चाहता हूँ।”

कालि हैते तुमि येइ मृगादि मारिबा।

प्रथमेइ मारिबा, अर्ध-मारा ना करिबा ॥247॥

कालि हैते–कल से; तुमि-तुम; येइ-जिन; मृग-आदि-पशुओं को; मारिबा-मारोगे; प्रथमेइ मारिबा-उन्हें प्रारम्भ में ही मार दो; अर्ध-मारा-अधमरा; ना करिबा-मत करना।

अनुवाद

"मैं तुमसे याचना करता हूँ कि आज से आगे तुम पशुओं को पूरी तरह मारोगे और उन्हें अधमरा नहीं छोड़ोगे।"

व्याध कहे,—"किबा दान मागिला आमारे।

अर्ध मारिले किबा हय, ताहा कह मोरे" ॥248॥

व्याध कहे–शिकारी ने उत्तर दिया; किबा दान-ये किस प्रकार का दान; मागिला आमारे-आपने मुझसे माँग लिया है; अर्ध मारिले-आधा मारने में; किबा-क्या; हय-है; ताहा-वह; कह मोरे-मुझे समझाइये।

अनुवाद

"शिकारी ने उत्तर दिया, 'हे महाशय, आप मुझसे यह क्या माँग रहे हैं? इन पड़े हुए अधमरे पशुओं में क्या बुराई है? क्या आप मुझे बतला सकेंगे?"

नारद कहे, "अर्ध मारिले जीव पाय व्यथा।

जीवे दुःख दितेछ, तोमार हइबे ऐछे अवस्था" ॥ 249॥

नारद कहे-नारद मुनि ने उत्तर दिया; अर्ध मारिले–पशुओं को आधा मारकर; जीव पाय व्यथा-जीव अत्यन्त कष्ट पाता है; जीवे दुःख दितेछ-तुम जीवों को कष्ट दे रहे हो; तोमार-तुम्हारा; हइबे-होगा; ऐछे अवस्था-बदले में इसी समान कष्ट।

अनुवाद

“नारद मुनि ने उत्तर दिया, ‘यदि तुम पशुओं को अधमरा छोड़ते हो, तो तुम जान-बूझकर उन्हें पीड़ा पहुँचाते हो। अतः बदले में तुम्हें दुःख भोगना होगा।”

तात्पर्य

यह एक महाजन नारद मुनि का प्रामाणिक कथन है। यदि कोई किसी जीव को व्यर्थ ही कष्ट पहुँचाता है, तो प्रकृति के नियमों द्वारा उसे वैसा ही कष्ट पहुँचाया जायेगा। यद्यपि मृगारि असभ्य था, फिर भी उसे अपने पापकर्मों का फल भोगना पड़ता। किन्तु यदि कोई सभ्य मनुष्य अपनी तथाकथित सभ्यता को बनाये रखने के लिए कसाई-घरों में नियमित रूप से पशुओं की हत्या वैज्ञानिक विधियों तथा यन्त्रों का प्रयोग करते हुए करता है, तो उसे मिलने वाले कष्ट का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। तथाकथित सभ्य व्यक्ति अपने आपको बहुत शिक्षित मानते हैं, किन्तु वे प्रकृति के कठोर नियमों के विषय में नहीं जानते । प्रकृति के नियमानुसार जीवन का बदला जीवन से लिया जाता हैं। कसाई-घर चलाने वाले व्यक्ति के कष्ट का हम अनुमान भी नहीं लगा सकते। वह न केवल इस जीवन में, अपितु अगले जीवन में भी कष्ट पाता है। कहा जाता है कि शिकारी, हत्यारे या बधिक को न तो जीने का और न मरने का परामर्श दिया जाता है। यदि वह जीवित रहता है, तो और अधिक पाप एकत्र करता है, जिससे अगले जन्म में उसे अधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं। उसे मरने का भी उपदेश नहीं दिया जाता, क्योंकि उसके मरने का अर्थ यह है कि तुरन्त ही उसे अधिक कष्ट उठाना पड़ता है। इसीलिए उसे न जीने तथा न मरने का उपदेश दिया जाता है।

वैदिक सिद्धान्तों के अनुयायी होने के नाते हम नारद मुनि के इन कथनों को स्वीकार करते हैं। हमारा यह कर्तव्य है कि हम देखें कि कोई भी व्यक्ति पापकर्मों के फलस्वरूप कष्ट न उठाये। भगवद्गीता में मूर्ख धूर्ती (मूढ़ों) को माययापहृतज्ञानाः कहा गया है, जिसका अर्थ यह है कि उनका ज्ञान सतही होते हुए भी माया उनके वास्तविक ज्ञान को हर लेती है। ऐसे ही लोग वर्तमान समय में मानव समाज की अगुवाई कर रहे हैं। श्रीमद्भागवत में ऐसे लोगों को अन्धा यथान्धैरुपनीयमानाः कहा गया है। ये धूर्त

स्वयं तो अन्धे होते ही हैं, फिर भी वे दूसरे अन्धे लोगों का मार्गदर्शन करते हैं। जब लोग ऐसे नेताओं का अनुसरण करते हैं, तो भविष्य में उन्हें अपार कष्ट मिलता है। तथाकथित प्रगति या उन्नति के बावजूद यह सब घटित हो रहा है। तो कौन सुरक्षित है? कौन सुखी है? कौन चिन्तारहित है?

व्याध तुमि, जीव मार—'अल्प' अपराध तोमार।

कदर्थना दिया मार'—ए पाप 'अपार' ॥ 250॥

व्याध तुमि-तुम एक शिकारी हो; जीव मार-तुम्हारा कार्य पशुओं को मारना है; अल्प-तुच्छ; अपराध-अपराध; तोमार-तुम्हारा; कदर्थना दिया-उन्हें अनावश्यक रूप से कष्ट देकर; मार'-जब तुम मारते हो; ए पाप अपार-यह पाप बहुत असीमित है।

अनुवाद

"नारद मुनि ने आगे कहा, 'हे शिकारी, तुम्हारा कार्य पशुओं का वध करना है। यह तो तुम्हारा अल्प अपराध है। किन्तु जब तुम जान-बूझकर उन्हें अधमरा छोड़कर व्यर्थ तड़पाते हो, तो तुम बहुत भारी पाप करते हो।"

तात्पर्य

पशु-हत्यारों के लिए यह अन्य उत्तम आदेश है। मानव समाज में सदैव से पशु-हत्यारे तथा पशु-भक्षक रहे हैं, क्योंकि कम सभ्य लोग मांसाहार के आदी हैं। वैदिक सभ्यता में मांसाहारियों को देवी काली या अन्य किसी ऐसे ही देवता के लिए पशु-वध करने का उपदेश है। यह उपदेश पशुओं को व्यर्थ पीड़ा न पहुँचाने के लिए दिया गया है, जैसाकि कसाई-घरों में होता है। देवता के लिए बलिदान-यज्ञ में एक ही वार में पशु का गला काटने की संस्तुति की गई है। इसे कृष्णपक्ष की रात में करना चाहिए और उस समय वध किये जा रहे पशु की पीड़ा-ध्वनि किसी को सुनाई नहीं पड़नी चाहिए। अन्य भी अनेक निषेध हैं। माह में केवल एक बार पशु-हत्या की अनुमति दी जाती है और पशु के

हत्यारे को अगले जीवन में ऐसा ही कष्ट भोगमीं पड़ता है। इस समय तथाकथित सभ्य व्यक्ति किसी भी धार्मिक उत्सव या अनुष्ठान में मूर्ति को पशुओं की बलि नहीं देते। वे खुलेआम केवल अपनी जीभ के स्वाद के लिए नित्य हजारों पशुओं का व्यर्थ ही वध करते हैं। इसी कारण सम्पूर्ण जगत् नाना प्रकार से पीड़ित है। राजनीतिज्ञ व्यर्थ ही युद्ध की घोषणा करते हैं और भौतिक प्रकृति के कठोर नियमों के अनुसार राष्ट्रों के सामूहिक रूप से हत्याएँ हो रही हैं :

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।

अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥

"मोहग्रस्त जीवात्मा भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के अधीन अपने आपको कर्मों का कर्ता मानता है, जबकि वस्तुतः वे प्रकृति द्वारा सम्पन्न होते हैं"। (भगवद्गीता 3.27) प्रकृति के नियम बड़े कठोर हैं। किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि उसे पशुओं का वध करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है और उसे इसका परिणाम नहीं भोगना होगा। ऐसा करके कोई बच नहीं सकता। यहाँ नारद मुनि कहते हैं कि पशु-वध अपराध है, विशेषतया जब पशुओं को व्यर्थ ही कष्ट पहुँचाया जाता है। मांसाहारियों तथा पशु-बधिकों को परामर्श दिया जाता है कि वे कसाई-घरों से मांस न खरीदें। वे चाहें तो मास में एक बार काली की पूजा करके किसी क्षुद्र पशु को मारकर खा सकते हैं। किन्तु इस विधि का पालन करने पर भी वह अपराधी तो रहता ही है।

कदर्थिया तुमि यत मारिला जीवेरे ।

तारा तैछे तोमा मारिबे जन्म-जन्मान्तरे ॥ 251॥

कर्थिया-अनावश्यक कष्ट देकर; तुमि-तुमने; यत-सभी; मारिला-मार दिया; जीवेरे-जीव; तारा-वे सभी; तैछे-उसी प्रकार; तोमा-तुम्हें; मारिबे–मारेंगे; जन्म-जन्म-अन्तरे-जन्मजन्मांतर।

अनुवाद

“नारद मुनि ने कहा : ‘तुमने जिन पशुओं को मारा है और व्यर्थ ही जिन्हें पीड़ा पहुँचाई है, वे सब एक-एक करके अगले जन्मों में तुम्हें मारते रहेंगे।”

तात्पर्य

यह महान सन्त नारद मुनि का एक अन्य प्रामाणिक कथन है। जो लोग पशुओं का वध करते हैं और उन्हें व्यर्थ पीड़ा पहुँचाते हैं—जैसाकि कसाई-घरों में होता है-वे अगले जीवन में तथा उससे भी आगे के अनेक जीवन में इसी तरह वध किये जायेंगे। ऐसे अपराध से किसी को क्षमा नहीं मिल सकती। यदि कोई व्यक्ति पेशे के रूप में हजारों पशुओं का इसलिए वध करता है कि लोग खाने के लिए मांस खरीदें, तो उसे अगले जीवन में तथा उससे भी आगे के अनेक जीवन में इसी तरह से मारे जाने के लिए तैयार रहना होगा। ऐसे अनेक धूर्त हैं, जो अपने ही धर्म के नियमों का अतिक्रमण करते हैं। जूडियो-क्रिश्चियन शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है, “तुम हत्या मत करो।” इतने पर भी कई तरह के बहाने बनाकर धर्मध्वजी लोग अपने आपको सन्त बतलाते हुए पशुओं का वध करते हैं। मानव समाज में इस तरह की विडम्बना और दिखावा असीम कष्टों को लाने वाला है, इसीलिए रह-रहकर महान् युद्ध छिड़ते रहते हैं। लोगों के झुंडों के झुंड युद्धस्थलों में जाकर एक दूसरे का वध करते हैं। अब तो लोगों ने परमाणु बम का आविष्कार कर लिया है, जो बड़े पैमाने पर विनाश के लिए उपयोग की प्रतीक्षा में है। यदि लोग चाहते हैं कि वे जन्म-जन्मांतर इस हत्या-कार्य से छुटकारा पा लें, तो उन्हें कृष्णभावनामृत का आश्रय ग्रहण करना होगा और पापकर्म बन्द कर देना होगा। अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ हर व्यक्ति से मांसाहार, अवैध सम्बन्ध, नशा तथा जुआ खेलना छोड़ने की प्रार्थना करता है। जब मनुष्य इन पापकृत्यों का परित्याग कर देता है, तब वह कृष्ण को समझ सकता है और इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन को ग्रहण कर सकता है। इसीलिए हम हर एक से पापकर्म का परित्याग करने और हरे कृष्ण मन्त्र का जप करने का अनुरोध करते हैं। इस तरह से लोग अपने आपको जन्म-मृत्यु की पुनरावृत्ति से तथा कसाई-घरों में पशुओं की तरह मारे जाने से बचा सकते हैं।

नारद-सड़े व्याधेर मन परसन्न हइल ।

ताँर वाक्य शुनि' मने भय उपजिल ॥ 252॥

नारद-सङ्गे–महान् साधु नारद मुनि के संग में; व्याधेर–शिकारी का; मन–मन; परसन्न हइल-शुद्ध और सन्तुष्ट हो गया; ताँर उनके; वाक्य-वचन; शुनि'–सुनकर; मने-मन में; भय उपजिल-कुछ भय उत्पन्न हुआ।

अनुवाद

"इस तरह नारद मुनि की संगति से वह शिकारी अपने पापकृत्यों को थोड़ा-बहुत स्वीकार करने लगा। अतः वह अपने अपराधों के कारण कुछ भयभीत हो उठा।"

तात्पर्य

यह शुद्ध भक्तों की संगति का प्रभाव है। सारे विश्व में कृष्णभावनामृत का प्रचार करने वाले हमारे प्रचारकों को नारद मुनि के चरणचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए और चार नियमों का पालन करके तथा हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करके शुद्ध बनना चाहिए। इससे वे वैष्णव बनने के योग्य बन सकेंगे। तब जब वे पापी लोगों से इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन की शिक्षाओं के विषय में कहेंगे, तो लोगों पर प्रभाव पड़ेगा और वे इन उपदेशों को ग्रहण करेंगे। हमें गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा भक्ति विषयक शिक्षा प्राप्त होती है। नारद मुनि हमारे आदि गुरु हैं, क्योंकि वे व्यासदेव के गुरु हैं। व्यासदेव हमारी गुरु-शिष्य परम्परा के गुरु हैं, अतः हमें नारद मुनि के चरणचिह्नों पर चलकर शुद्ध वैष्णव बनना चाहिए। शुद्ध वैष्णव वह है, जिसका कोई स्वार्थ न हो। वह भगवान् की सेवा में अपने आपको पूर्णतया समर्पित कर देता है। वह भौतिक इच्छाओं से रहित होता है और तथाकथित विद्या तथा परोपकारी कार्यों में रुचि नहीं दिखाता। तथाकथित विद्वान तथा परोपकारी वस्तुतः कर्मी तथा ज्ञानी हैं और कुछ तो कृपण हैं, जो पापकृत्य में लगे हुए हैं। ये सभी निन्दनीय हैं, क्योंकि वे कृष्णभक्त नहीं हैं।

हर एक के पास इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन से जुड़कर तथा विधि-विधानों का कठोरता से पालन करते हुए शुद्ध बनने का अवसर है। हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने से मनुष्य सभी प्रकार के कल्मषों से, विशेषतया पशु-हत्या से उत्पन्न कलुष से छूट सकता है। स्वयं भगवान् कृष्ण ने कहा है :

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

"तुम सारे धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्ति दिला दूँगा। तुम डरो मत।" (भगवद्गीता 18.66)

हमें कृष्ण की यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और गुरु-शिष्य परम्परा में नारद मुनि के चरण-चिह्नों का अनुसरण करना चाहिए। यदि हम केवल कृष्ण के चरणकमलों की शरण लें और इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन को गम्भीरतापूर्वक स्वीकार करें, तो हम पाप से होने वाले कर्म से मुक्त हो सकते हैं। यदि हम पर्याप्त बुद्धिमान होंगे, तो भगवान् की प्रेममयी सेवा में अवश्य लग जायेंगे। तभी हमारा जीवन सफल होगा और हमें उस शिकारी की तरह जन्म-जन्मांतर कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा। पशुओं की हत्या करने से हम न केवल मानव योनि से विहीन होंगे, अपितु हमें पशु-योनि ग्रहण करनी होगी और किसी-न-किसी प्रकार वैसे ही पशु द्वारा हमें मारा जायेगा। यह प्रकृति का नियम है। मांस संस्कृत शब्द है मां सः खादति इति मांसः अर्थात् "मैं अभी एक पशु का मांस खा रहा हूँ, जो किसी दिन भविष्य में मेरे मांस को खायेगा।"

व्याध कहे,—"बाल्य हैते एइ आमार कर्म ।

केमने तरिमु मुञि पामर अधम?" ॥ 253॥

व्याध कहे–शिकारी ने कहा; बाल्य हैते–बचपन से ही; एइ आमार कर्म–मुझे यही कर्म सिखाया गया (पशुओं को आधा मारना); केमने-कैसे; तरिमु-इन पापकर्मों से मुक्त हो पाऊँगा; मुञि-मैं; पामर अधम-पापी और अधम।

अनुवाद

"शिकारी ने स्वीकार किया कि उसके द्वारा पापकर्म हुए हैं। तब उसने कहा, 'मुझे बचपन से ही इस पेशे की शिक्षा दी गई है। अब मैं सोच रहा हूँ कि मैं किस तरह अपने अनगिनत पापकर्मों से मुक्त हो सकता हूँ।"

तात्पर्य

इस प्रकार की स्वीकारोक्ति तब तक लाभप्रद है, जब तक कोई फिर से पाप न करे। धोखा और दिखावा उच्च महापुरुष सहन नहीं करते। यदि कोई समझ लेता है कि पाप क्या है, तो उसे निष्ठापूर्वक इन पापों को त्यागकर पश्चाताप करना चाहिए और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रतिनिधि, शुद्ध भक्त के माध्यम से भगवान के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए। इस तरह वह पाप के फल से छुटकारा पा सकता है और भक्ति में प्रगति कर सकता है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति प्रायश्चित्त करने के बाद पाप करता रहता है, तो उसे नहीं बचाया जा सकता है। शास्त्रों में ऐसे प्रायश्चित्त की उपमा गज-स्नान से दी गई है। हाथी अच्छी तरह से स्नान करता है और अपना शरीर भलीभाँति साफ करता है, किन्तु जैसे ही वह पानी के बाहर आता है, किनारे से कुछ धूल उठाकर अपने सारे शरीर पर छिड़क लेता है। प्रायश्चित्त कितने ही उत्तम ढंग से क्यों न किया जाए, किन्तु यर्पि कोई पाप करता रहे तो इससे उस मनुष्य को कोई सहायता नहीं मिलेगी। इसीलिए उस शिकारी ने पहले सन्त पुरुष नारद के समक्ष अपने पापकर्म को स्वीकार किया और तबै पूछा कि वह किस तरह इससे बच सकता है।

एइ पाप याय मोर, केमन उपाये? ।

निस्तार करह मोरे, पड़ों तोमार पाये ॥ 254॥

एइ–यह; पाप याय मोर-मेरे पापकर्मों का परिणाम नष्ट हों; केमन उपाये-किस उपाय द्वारा; निस्तार करह मोरे–कृपया मेरा उद्धार कीजिए; पड़ों-मैं गिरता हूँ; तोमार पाये-आपके चरणकमलों में।

अनुवाद

"शिकारी ने आगे कहा, 'हे महानुभाव, कृपया मुझे बतायें कि मैं अपने पापी जीवन के कर्मफलों से किस प्रकार छुटकारा पा सकता हूँ। अब मैं पूरी तरह से आपकी शरण में हैं और आपके चरणकमलों पर पड़ता हूँ। कृपया मेरे पापकर्म के फलों से मेरा उद्धार करें।"

तात्पर्य

नारद मुनि की कृपा से उस शिकारी में सद्बुद्धि जाग्रत हुई और तुरन्त ही वह उनकी शरण में आ गया। यही विधि है। सन्त पुरुष की संगति से मुनष्य अपने पापी जीवन के कर्मफलों को समझ सकता है। जब कोई स्वेच्छा से ऐसे सन्त पुरुष की शरण में आता है, जो कृष्ण का प्रतिनिधि होता है और उसके आदेशों का पालन करता है, तो वह पापफलों से मुक्त हो सकता है। कृष्ण पापी व्यक्ति द्वारा समर्पण चाहते हैं और कृष्ण का प्रतिनिधि भी यही उपदेश देता है। कृष्ण का प्रतिनिधि कभी भी अपने शिष्य से यह नहीं कहता, "मेरी शरण में आओ;" प्रत्युत वह कहता है कि, "कृष्ण की शरण में जाओ।" यदि शिष्य इस नियम को स्वीकार करता है और कृष्ण के प्रतिनिधि के माध्यम से शरणागत बनता है, तो उसका जीवन पापों से बच जाता है।

नारद कहे,—'यदि धरे आमार वचन ।

तबे से करिते पारि तोमार मोचन' ॥ 255॥

नारद कहे-नारद मुनि ने उत्तर दिया; यदि धर-यदि तुम मानते हो; आमार वचन-मेरे उपदेश; तबे-तब; से-यह; करिते पारि-मैं कर सकता हूँ; तोमार-तुम्हारी; मोचन-मुक्ति।

अनुवाद

"नारद मुनि ने शिकारी को आश्वस्त किया, 'यदि तुम मेरे उपदेशों को सुनोगे, तो मैं तुम्हारी मुक्ति का उपाय ढूँढ निकालूँगा।"

तात्पर्य

गौराङ्गर भक्तगणे जने जने शक्ति धरे—इस गीत का सार यह है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तगण बड़े शक्तिशाली होते हैं और इनमें से एक एक भक्त सारे संसार का उद्धार कर सकता है। तो फिर नारद मुनि के विषय में क्या कहा जाए? जो कोई नारद मुनि के उपदेशों का पालन करता है, तो वह कितने भी पापकर्मों के फलों से मुक्त किया जा सकता है। यही विधि है। व्यक्ति को गुरु के उपदेशों का पालन करना चाहिए; तब वह अवश्य ही सारे पापकर्मों के फलों से मुक्त हो जायेगा। सफलता का यही रहस्य है। यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। यदि किसी को कृष्ण तथा गुरु पर अटल विश्वास है, तो इसका परिणाम तस्यैते कथिता ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मनः होगा-अर्थात् ऐसे व्यक्ति के समक्ष सारे शास्त्रों के निष्कर्ष प्रकट हो जायेंगे। कृष्ण का शुद्ध भक्त भी नारद मुनि जैसी ही अपेक्षा रख सकता है। वह कहता है, "यदि तुम मेरे आदेशों को मानोगे, तो मैं तुम्हारी मुक्ति का दायित्व वहन करूँगा।" नारद जैसा शुद्ध भक्त किसी भी पापी व्यक्ति को आश्वासन दे सकता है, क्योंकि भगवत्कृपा उसके पास इतनी शक्ति होती है कि वह ऐसे पापी व्यक्ति का उद्धार कर सकता है। बशर्ते कि वह निर्दिष्ट नियमों का पालन करे।

व्याध कहे,—'येइ कह, सेइ त' करिब' ।

नारद कहे,—'धनुक भाङ्ग, तबे से कहिब' ॥ 256॥

व्याध कहे–शिकारी ने कहा; येइ कह-आप जो कहते हैं; सेइ त करिब–मैं वही करूँगा; नारद कहे-नारद मुनि ने उत्तर दिया; धनुक भाङ्ग–अपना धनुष तोड़ दो; तबे-तब; से कहिब-मैं तुम्हें बताऊँगा।

अनुवाद

“तब शिकारी ने कहा, ‘हे मान्यवर, आप जो कहते हैं वही मैं करूँगा।’ नारद ने उसे तुरन्त आदेश दिया, ‘पहले तुम अपना धनुष तोड़ डालो। तब मैं तुम्हें बतलाऊँगा कि तुम्हें क्या करना है।”

तात्पर्य

दीक्षा देने की विधि यही है। शिष्य को प्रण करना चाहिए कि अब वह पापमय कृत्य-यथा अवैध सम्बन्ध, मांसाहार, जुआ खेलना तथा नशा नहीं करेगा। वह गुरु के आदेशों को पूरा करने का वचन देता है। तब गुरु उसकी देखभाल करता है और उसे आध्यात्मिक उच्च पद तक उन्नत करता है।

व्याध कहे,—‘धनुक भाङ्गिले वर्तिब केमने?’ ।

नारद कहे,—‘आमि अन्न दिब प्रति-दिने’ ॥ 257॥

व्याध कहे–शिकारी ने उत्तर दिया; धनुक भाङ्गिले–यदि मैं अपना धनुष तोड़ दें; वर्तिब केमने-मेरा जीवन यापन कैसे होगा; नारद कहे-नारद मुनि ने कहा; आमि-मैं; अन्न-अन्न; दिब-हूँगा; प्रति-दिने प्रतिदिन।

अनुवाद

“शिकारी ने उत्तर दिया, ‘यदि मैं अपना धनुष तोड़ता हूँ, तो फिर मैं अपना भरण-पोषण कैसे करूँगा?’ नारद मुनि ने उत्तर दिया, चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें प्रतिदिन भोजन दिया करूँगा।”

तात्पर्य

हमारी आय का स्रोत वास्तव में हमारे उदर-पोषण का स्रोत नहीं होता। महान् ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक सारे जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा पालित होते हैं। एको बहूनां यो विदधाति कामान्। एक परमेश्वर कृष्ण ही हर एक का पालन करने वाले हैं। हमारी आय का तथाकथित स्रोत तो

हमारी अपनी रुचि है। यदि मैं शिकारी बनना चाहता हूँ, तो ऐसा लगेगा कि शिकार करना ही मेरी आय का स्रोत है। यदि मैं ब्राह्मण बनकर कृष्ण पर पूरी तरह निर्भर रहता हूँ, तो मैं कोई कार्य नहीं करता, किन्तु फिर भी मेरा उदर-पोषण करने वाले कृष्ण हैं। शिकारी अपने धनुष को तोड़ने को लेकर विचलित था, क्योंकि वह अपनी आय के विषय में चिन्तित था। किन्तु नारद मुनि ने शिकारी को आश्वासन दिया, क्योंकि वे जानते थे कि शिकारी का उदर-पोषण धनुष के कारण नहीं, अपितु कृष्ण द्वारा हो रहा था। कृष्ण के प्रतिनिधि होने के कारण नारद मुनि भलीभाँति जानते थे कि धनुष तोड़ने से शिकारी को कष्ट नहीं पहुँचेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं था कि कृष्ण उसे भोजन प्रदान करेंगे।

धनुक भाङ्गि' व्याध ताँर चरणे पड़िल ।

तारे उठाञा नारद उपदेश कैल ॥ 258॥

धनुक भाङ्गि'-धनुष तोड़कर; व्याध–शिकारी; ताँर–उनके (नारद मुनि के); चरणे-चरणकमलों में; पड़िल-शरणागत हो गया; तारे-उसे ; उठाञा-उठाकर; नारद-नारद मुनि ने; उपदेश कैल-उपदेश दिया।

अनुवाद

"नारद मुनि द्वारा इस प्रकार आश्वस्त किये जाने पर शिकारी ने अपना धनुष तोड़ डाला, तुरन्त ही सन्त के चरणकमलों पर गिर पड़ा और अपने आपको पूर्ण समर्पित कर दिया। बाद में नारद मुनि ने अपने हाथ से उसे उठाया और आध्यात्मिक उन्नति का उपदेश दिया।"

तात्पर्य

यही है दीक्षा देने की विधि। शिष्य को कृष्ण के प्रतिनिधि रूप गुरु के समक्ष आत्मसमर्पण करना चाहिए। नारद से चलने वाली गुरु-शिष्य परम्परा से सम्बन्धित होने से गुरु नारद मुनि की ही

श्रेणी में होता है। मनुष्य अपने पापकर्म से छुटकारा पा सकता है, यदि वह ऐसे व्यक्ति के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, जो वास्तव में नारद मुनि का प्रतिनिधित्व करता हो। नारद मुनि ने उस शिकारी को शरणागत होने पर उपदेश दिया।

घरे गिया ब्राह्मणे देह' यत आछे धन ।

एक एक वस्त्र परि' बाहिर हओ दुइ-जन ॥ 259॥

घरे गिया-घर लौटकर; ब्राह्मणे-ब्राह्मणों को; देह'–दे दो; यत-जो भी; आछे-तुम्हारे पास है; धन-सम्पत्ति; एक एक-एक; वस्त्र परि'-वस्त्र पहनकर; बाहिर हओ-घर त्याग दो; दुइ-जन-तुम दोनों (शिकारी और उसकी पत्नी)।

अनुवाद

"तब नारद मुनि ने शिकारी को उपदेश दिया, 'तुम घर लौट जाओ और तुम्हारे पास जितना धन है उसे उन शुद्ध ब्राह्मणों में बाँट दो, जो परम सत्य को जानने वाले हैं। ब्राह्मणों को अपना धन बाँटने के बाद तुम तथा तुम्हारी पत्नी दोनों ही अपने पहनने के लिए एक एक वस्त्र लेकर गृह-त्याग कर दो।"

तात्पर्य

वानप्रस्थ की अवस्था में वैराग्य की यही विधि है। कुछ काल तक गृहस्थ जीवन भोगने के बाद पति-पत्नी को घर त्याग देना चाहिए और अपने धन को ब्राह्मणों तथा वैष्णवों में बाँट देना चाहिए। वानप्रस्थ अवस्था में पत्नी को सहायक रूप में रखा जा सकता है। भाव यह है कि पत्नी अपने पति को आध्यात्मिक उन्नति में सहायता देगी। इसीलिए नारद मुनि ने शिकारी को घर छोड़ने तथा वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने का उपदेश दिया। ऐसा नहीं है कि गृहस्थ मृत्यु-पर्यन्त घर पर ही रहता रहे। वानप्रस्थ संन्यास की तैयारी है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अनेक युवा दम्पति भगवान् की सेवा में

लगे हुए हैं। अन्ततः उन्हें वानप्रस्थ ग्रहण करना होगा, जिसके बाद पति को प्रचार या उपदेश-कार्य के लिए संन्यास ग्रहण करना चाहिए। तब पत्नी अकेले रहकर चाहे विग्रह-सेवा में या कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अन्तर्गत अन्य सेवाओं में लग सकती है।

नदी-तीरे एक-खानि कुटीर करिया ।

तार आगे एक-पिण्डि तुलसी रोपिया ॥ 260 ॥

नदी-तीरे-नदी के किनारे पर; एक-खानि–केवल एक; कुटीर-कुटिया; करिया-बनाओ; तार आगे-उसके सामने; एक-पिण्डि–एक चबूतरे पर; तुलसी-तुलसी का पौधा; रोपिया-उगाओ।

अनुवाद

"नारद मुनि ने कहा, 'तुम अपना घर छोड़कर नदी किनारे जाओ। वहाँ तुम एक छोटी-सी कुटिया बनाओ और उस कुटिया के सामने एक चबूतरे में तुलसी का एक पौधा लगाओ।"

तुलसी-परिक्रमा कर, तुलसी-सेवन ।

निरन्तर कृष्ण-नाम करिह कीर्तन ॥ 261॥

तुलसी-परिक्रमा कर-तुलसी की परिक्रमा करो; तुलसी-सेवन-तुलसी की जल देकर सेवा करो; निरन्तर–निरन्तर; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पवित्र नाम; करिह-करो; कीर्तन-कीर्तन।

अनुवाद

"अपने घर के सामने तुलसी रोपने के बाद नित्य प्रति उस तुलसी वृक्ष की परिक्रमा करना, उसे जल देकर सेवा देना और निरन्तर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करना।"

तात्पर्य

आध्यात्मिक जीवन का शुभारम्भ यहीं से है। गृहस्थ जीवन का परित्याग करके मनुष्य किसी पवित्र स्थान, यथा गंगा या यमुना के तट पर जाये और वहाँ एक छोटी-सी कुटिया बनाये। ऐसी छोटी कुटिया किसी खर्च के बिना ही बनाई जा सकती है। इसके चार खम्भों के लिए लकड़ी को जगंल से प्राप्त किया जा सकता है। छत को पत्तियों से ढका जा सकता है। इसके भीतरी भाग को बुहारा जा सकता है और उसमें शान्तिपूर्वक रहा जा सकता है। मनुष्य प्रत्येक अवस्था में छोटी-सी कुटिया में रह सकता है, एक तुलसी का पौधा लगाकर प्रात:काल उसे सींच सकता है, इसकी स्तुति कर सकता है और हरे कृष्ण महामन्त्र का निरन्तर जप कर सकता है। इस तरह से मनुष्य तेजी से आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। यह तनिक भी कठिन नहीं है। बस, गुरु के आदेशों का कठोरता से पालन करना होता है। तब समय के साथ हर बात सफल होगी। जहाँ तक भोजन का प्रश्न है, उसमें कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती। यदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हर एक को खाद्य प्रदान करते हैं, तो भला वे अपने भक्त को क्यों नहीं देंगे? कभी-कभी तो भक्त कुटी बनाने की भी झंझट मोल नहीं लेता। वह पर्वत की गुफा में ही जाकर रहता है। वह गुफा में, नदी के तट पर बनी झोपड़ी में, महल में या न्यूयार्क या लन्दन जैसे विशाल नगर में निवास कर सकता है। हर अवस्था में वह भक्त अपने गुरु के उपदेशों का पालन कर सकता है और तुलसी के पौधे को सींचकर तथा हरे कृष्ण मन्त्र का जप करके भक्ति में लग सकता है। वह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा हमारे गुरु भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज के उपदेशानुसार विश्व के किसी भी भाग में जाकर लोगों को विधि-विधानों का पालन करके, तुलसी के पौधे की पूजा करके और निरन्तर हरे-कृष्ण महामन्त्र का जप करके भगवद्भक्त बनने का उपदेश दे सकता है।

आमि तोमाय बहु अन्न पाठाइमु दिने ।

सेइ अन्न लबे, यत खाओ दुइ-जने ॥ 262 ॥

आमि–मैं; तोमाय तुम्हारे लिए; बहु-बहुत; अन्न-अन्न; पाठाइमु-भेजूँगा; दिने-प्रतिदिन; सेइ-वह; अन्न-अन्न; लबे-तुम लोगे; यत–जो कुछ भी; खाओ-खा सकते हो; दुइ-जने-दोनों।

अनुवाद

"नारद मुनि ने आगे कहा, 'मैं तुम दोनों को नित्य प्रति पर्याप्त भोजन भेज दिया करूँगा, जिससे तुम इच्छानुसार भोजन कर सकोगे।"

तात्पर्य

जब मनुष्य कृष्णभावनामृत स्वीकार करता है, तब उसे भौतिक आवश्यकताओं की परवाह नहीं करनी चाहिए। कृष्ण कहते हैं कि वे अपने भक्तों की सारी आवश्यकताओं को स्वयं वहन करते हैं- योगक्षेम वहाम्यहम्। आखिर मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं के प्रति चिन्तित क्यों हो? सिद्धान्त यह होना चाहिए कि जितने की नितान्त आवश्यकता हो, उससे अधिक की इच्छा वह न करे। नारद मुनि शिकारी को उपदेश देते हैं कि जो उसे तथा उसकी पत्नी के लिए नितान्त आवश्यक हो उतना ही वह स्वीकार करे। भक्त को चाहिए कि खाने के लिए जो नितान्त आवश्यक वस्तुएँ हों, उन्हीं का उपयोग करे और अनावश्यक आवश्यकताओं को जन्म न दे।

तबे सेइ मृगादि तिने नारद सुस्थ कैल।

सुस्थ हञा मृगादि तिने धाञा पलाइल॥ 263॥

तबे-फिर; सेइ-उन; मृग-आदि-हिरण आदि पशु; तिने–तीनों को; नारद-नारद मुनि ने; सुस्थ कैल-स्वस्थ कर दिया; सुस्थ हञा-स्वस्थ होकर; मृग-आदि-हिरण आदि पशु; तिने–तीनों; धाञा पलाइल-शीघ्र उस स्थान से भाग गये।

अनुवाद

“तत्पश्चात् वे तीनों पशु जो अधमरे थे, नारद मुनि द्वारा पुनः जीवित कर दिये गये। वे पशु उठकर तेजी से भाग गये।”

देखिया व्याधेर मने हैल चमत्कार ।

घरे गेल व्याध, गुरुके करि’ नमस्कार ॥ 264॥

देखिया-देखकर; व्याधेर–शिकारी के; मने-मन में; हैल–हो गया; चमत्कार-आश्चर्य; घरे–घर पर; गेल-गया; व्याध–शिकारी; गुरुके–गुरु को; करि’ नमस्कार-प्रणाम करके।

अनुवाद

“जब शिकारी ने अधमरे पशुओं को भागते देखा, तो वह आश्चर्यचकित रह गया। तब उसने नारद मुनि को सादर नमस्कार किया और वह अपने घर लौट आया।”

यथा-स्थाने नारद गेला, व्याध घरे आइल ।

नारदेर उपदेशे सकल करिल ॥ 265॥

यथा-स्थाने-उचित स्थान पर; नारद-नारद; गेला-गये; व्याध–शिकारी; घरे आइल-अपने घर वापस आ गया; नारकेर उपदेशे–नारद मुनि के उपदेशानुसार; सकल करिल-उसने सब कुछ किया।

अनुवाद

“इसके बाद नारद मुनि अपने गन्तव्य को चले गये। वह शिकारी घर लौटकर अपने गुरु नारद के उपदेशों का अक्षरशः पालन करने लगा।

तात्पर्य

आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रामाणिक गुरु होना आवश्यक है और उन्नति के प्रति आश्वस्त रहने के लिए उनके उपदेशों का पालन करना चाहिए।

ग्रामे ध्वनि हैल,—व्याध वैष्णव' हइल ।

ग्रामेर लोक सब अन्न आनिते लागिल ॥ 266 ॥

ग्रामे-गाँव में; ध्वनि हैल-खबर फैल गई; व्याध–शिकारी; वैष्णव हुइल-एक वैष्णव (भगवान् विष्णु का एक भक्त तथा सेवक) बन गया है; ग्रामेर लोक-गाँव के लोग; सब-सभी प्रकार के; अन्न–अन्न; आनिते लागिल-लाने लगे।

अनुवाद

"यह समाचार सारे गाँव में फैल गया कि शिकारी वैष्णव बन गया है। सारे ग्रामवासी भिक्षा लाकर उस वैष्णव को देने लगे जो पहले एक शिकारी था।"

तात्पर्य

जनता का कर्तव्य है कि जब किसी सन्त पुरुष, वैष्णव या ब्राह्मण का दर्शन करने जाए, तो उसे कोई भेट प्रदान करे। हर वैष्णव कृष्ण पर आश्रित है और कृष्ण जीवन की सारी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं, यदि कोई वैष्णव अपने गुरु द्वारा निर्दिष्ट नियमों का पालन करता हो। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अनेक गृहस्थ हैं। वे आन्दोलन में सम्मिलित होकर संघ के केन्द्रों में रहते हैं, किन्तु यदि वे इस अवसर का लाभ उठाते हैं, परन्तु कोई काम नहीं करते और आन्दोलन के खर्च पर प्रसाद खाकर सोते रहते हैं, तो वे अपने आपको खतरनाक स्थिति में डाल देते हैं। इसलिए उपदेश दिया जाता है कि गृहस्थों को मन्दिर में नहीं रहना चाहिए। उन्हें मन्दिर से बाहर रहकर अपना भरण-पोषण करना चाहिए। किन्तु यदि गृहस्थ लोग अधिकारियों के आदेशानुसार भगवान् की सेवा में पूरी तरह लगे रहते हैं, तो मन्दिर में उनके निवास करने में कोई हानि नहीं है। किसी भी स्थिति में मन्दिर को खाने तथा सोने का स्थान नहीं बनना चाहिए। मन्दिर के प्रबन्धक को इन बातों के विषय में विशेष रूप से सतर्क रहना चाहिए।

एक-दिन अन्न आने दश-बिश जने।

दिने तत लय, यत खाय दुइ जने॥ 267॥

एक-दिन-एक दिन में; अन्न-अन्न; आने-लाते; दश-बिश जने-दस बीस लोगों के लिए पर्याप्त; दिने–दिन में; तत लय-उतना ही स्वीकार करते; यत–जितना; खाय दुइ जने-दोनों खा सकते थे।

अनुवाद

"एक दिन में दस या बीस लोगों के लिए पर्याप्त भोजन आता, किन्तु शिकारी तथा उसकी पत्नी उतना ही स्वीकार करते, जितना वे दोनों खा सकते थे।"

एक-दिन नारद कहे,—"शुनह, पर्वते।

आमार एक शिष्य आछे, चलह देखिते" ॥ 268॥

एक-दिन-एक दिन; नारद कहे-नारद मुनि ने कहा; शुनह–कृपया सुनो; पर्वते-मेरे प्रिय पर्वत; आमार-मेरा; एक-एक; शिष्य-शिष्य; आछे-है; चलह देखिते-चलो, उसे देखने चलें।

अनुवाद

"एक दिन अपने मित्र पर्वत मुनि से बातें करते हुए नारद मुनि ने उनसे कहा कि चलो, चलकर उनके शिकारी शिष्य को देख आयें।"

तबे दुइ ऋषि आइला सेइ व्याध-स्थाने।

दूर हैते व्याध पाइल गुरुर दरशने॥ 269॥

तबे-फिर; दुइ ऋषि-दोनों ऋषि; आइला–आये; सेइ व्याध-स्थाने-उस शिकारी के स्थान पर; दूर हैते-कुछ दूरी से; व्याध–शिकारी को; पाइल-हो गये; गुरुर दरशने-अपने गुरु के दर्शन।

अनुवाद

“जब दोनों ऋषि शिकारी के स्थान के निकट पहुँचे, तो शिकारी ने दूर से ही उन्हें आते देखा।”

आस्ते-व्यस्ते धाञा आसे, पथ नाहि पाय ।

पथेर पिपीलिका इति-उति धरे पाय ॥ 270 ॥

आस्ते-व्यस्ते-अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक; धाञा–भागकर; आसे-आ रहा था; पथ नाहि पाय-मार्ग नहीं पा रहा था; पथेर-मार्ग में; पिपीलिका-चींटियाँ; इति-उति–इधर-उधर; धरे पाय-पैर रख रहा था।

अनुवाद

“वह शिकारी बड़ी तेजी से अपने गुरु की ओर दौड़ पड़ा, किन्तु वह पृथ्वी पर गिरकर प्रणाम नहीं कर सका, क्योंकि वहाँ चीटियाँ पाँवों के चारों ओर इधर-उधर दौड़ रही थीं।”

दण्डवत्स्थाने पिपीलिकारे देखिया ।

वस्त्रे स्थान झाड़ि’ पड़े दण्डवत् हञा ॥ 271॥

दण्डवत्-स्थाने-जिस स्थान पर वह प्रणाम करना चाहता था, वहाँ; पिपीलिकारे देखिया-चींटियों को देखकर; वस्त्रे-कपड़े द्वारा; स्थान झाड़ि’–स्थान को झाड़कर; पड़े दण्ड-वत् हञा–दण्डवत प्रणाम करने लगा।

अनुवाद

“चींटियों को देखकर शिकारी ने उन्हें एक वस्त्र से हटाया। भूमि को इस तरह चीटियों से साफ करके वह नमस्कार करने के लिए दण्डवत् गिर पड़ा।”

तात्पर्य

दण्ड शब्द का अर्थ है "डण्डा" और वत् शब्द का अर्थ है "की तरह।" गुरु को नमस्कार करने के लिए शिष्य को भूमि पर डण्डे की तरह गिरना चाहिए। यही दण्डवत् है।

नारद कहे,—"व्याध, एइ ना हय आश्चर्य।

हरि-भक्त्ये हिंसा शून्य हय साधु-वर्य ॥ 272॥

नारद कहे-नारद मुनि ने कहा; व्याध-मेरे प्रिय शिकारी; एइ ना हय आश्चर्य-यह तुम्हारे लिए कोई आश्चर्य नहीं है; हरि-भक्त्ये-हरि-भक्ति में प्रगति द्वारा; हिंसा-शून्य हय-व्यक्ति हिंसा रहित तथा ईष्या मुक्त होकर; साधु-वर्य-ईमानदार सज्जनों में श्रेष्ठ व्यक्ति बन जाता है।

अनुवाद

"नारद मुनि ने कहा, 'हे शिकारी, ऐसा आचरण तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है। भक्ति में मनुष्य स्वतः अहिंसक बन जाता है। वह साधु-पुरुषों में सर्वोत्तम होता है।"

तात्पर्य

इस श्लोक में आये साधुवर्य शब्द का अर्थ है "साधु पुरुषों में श्रेष्ठ।" आजकल ऐसे अनेक तथाकथित साधु पुरुष हैं, जो पशु-पक्षियों को मारने में दक्ष हैं। तो भी वे ऐसे धर्मावलम्बी होते हैं, जिसमें हिंसा सर्वथा वर्जित है। नारद मुनि तथा वैदिक संस्कृति के अनुसार पशु-हिंसक साधु पुरुष भी नहीं हैं, धार्मिक कहना तो दूर रहा। एक धार्मिक पुरुष या भगवद्भक्त को अहिंसक होना चाहिए। धार्मिक व्यक्ति का स्वभाव ही ऐसा होता है। हिंसक होते हुए अपने आपको धार्मिक व्यक्ति घोषित करना विरोधाभास है। ऐसा दिखावा नारद मुनि तथा गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा मान्य नहीं है।

एते न ह्यद्धता व्याध तवाहिंसादयो गुणाः।

हरि-भक्तौ प्रवृत्ता ये न ते स्युः पर-तापिनः ॥ 273॥

एते-ये सभी; न-नहीं; हि-निश्चित रूप से अद्भुताः-अद्भुत; व्याध-हे शिकारी; तव-तुम्हारे; अहिंसा-आदयः-अहिंसा आदि; गुणाः-गुण; हरि-भक्तौ-हरि भक्ति में; प्रवृत्ताः-लगे हुए; ये-जो ; न-नहीं; ते-वे; स्युः-हैं; पर-तापिनः-दूसरे जीवों को कष्ट देने वाले।

अनुवाद

"हे शिकारी, तुमने अहिंसा जैसे जिन सद्गुणों को विकसित कर रखा है, वे बहुत आश्चर्यजनक नहीं हैं, क्योंकि भगवद्भक्ति में लगे व्यक्ति कभी भी अन्यों को ईष्यवश पीड़ा पहुँचाने की मनोवृत्ति नहीं रखते।"

तात्पर्य

यह स्कन्द पुराण से उद्धृत श्लोक है।

तबे सेइ व्याध दोंहारे अङ्गने आनिल ।

कुशासन आनि' दोंहारे भक्त्ये वसाइल ॥ 274॥

तबे-फिर; सेइ-वह; व्याध–शिकारी; दोंहारे–नारद मुनि तथा पर्वत मुनि दोनों को; अङ्गने आनिल-अपने घर के आँगन में ले आया; कुश-आसन आनि'-कुशा के आसन लाकर; दोंहारे–उन दोनों को; भक्त्ये-भक्तिभाव के साथ; वसाइल-बिठाया।

अनुवाद

"तब उस शिकारी ने दोनों ऋषियों का अपने आँगन में स्वागत किया। उसने उनके बैठने के लिए कुश की चटाई बिछा दी और बड़ी ही भक्ति के साथ उनसे बैठने की प्रार्थना की।"

जल आनि' भक्त्ये दोंहार पाद प्रक्षालिल ।

सेइ जल स्त्री-पुरुषे पिया शिरे लइल ॥ 275॥

जल आनि'–जल लाकर; भक्त्ये-भक्ति के साथ; दोंहार-दोनों के; पाद प्रक्षालिल–चरण धोये; सेइ जल-वह जल; स्त्री-पुरुषे–पति पत्नी ने; पिया-पिया; शिरे लइल-अपने सिरों पर छिड़का।

अनुवाद

"तब वह जल ले आया और बड़ी ही भक्ति के साथ उसने जल से ऋषियों का पाद-प्रक्षालन किया। तब पति-पत्नी दोनों ने उस जल को पिया और अपने सिरों पर छिड़का।"

तात्पर्य

गुरु या गुरु के समकक्ष अन्य किसी का स्वागत करते हुए इसी विधि का पालन करना चाहिए। जब गुरु अपने शिष्यों के घर जाता है, तो शिष्यों को इस शिकारी के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि दीक्षा के पूर्व कौन कैसा था। दीक्षा के बाद उसे यहाँ पर उल्लिखित शिष्टाचार को सीखना चाहिए।

कम्प-पुलकाश्रु हैल कृष्ण-नाम गाञा ।

ऊर्ध्व बाहु नृत्य करे वस्त्र उड़ाञा ॥ 276 ॥

कम्प-कँपन; पुलक-अश्रु–आँसु और आनन्द; हैल–हो गये; कृष्ण-नाम गाञा-हरे कृष्ण महामन्त्र गाकर; ऊर्ध्व बाहु-भुजाओं को उठाकर; नृत्य करे-नाचने लगा; वस्त्र उड़ाञा-अपने वस्त्र ऊपर नीचे फहराने लगा।

अनुवाद

"जब उस शिकारी ने अपने गुरु के समक्ष हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन किया, तो उसका शरीर काँपने लगा और नेत्रों से अश्रुओं की धारा बह चली। भावविभोर होकर वह अपने हाथ उठाकर अपने वस्त्रों को ऊपर-नीचे लहराता हुआ नृत्य करने लगा।"

देखिया व्याधेर प्रेम पर्वत-महामुनि ।

नारदेरे कहे,—तुमि हओ स्पर्श-मणि ॥ 277॥

देखिया-देखकर; व्याधेर–शिकारी का; प्रेम-प्रेमभाव; पर्वत-महा-मुनि–महामुनि पर्वत ने; नारदेरे कहे-नारद मुनि से कहा; तुमि हओ स्पर्श-मणि-आप एक पारसमणि के समान हैं।

अनुवाद

"जब पर्वत मुनि ने शिकारी के भावमय प्रेम के लक्षणों को देखा तो वे नारद से बोले, 'निश्चय ही आप स्पर्शमणि हो।"

तात्पर्य

जब स्पर्शमणि लोहे का स्पर्श करता है, तो वह लोहे को सोने में बदल देता है। पर्वत मुनि ने नारद मुनि को स्पर्शमणि इसीलिए कहा, क्योंकि उनके स्पर्श से वह अधम शिकारी उच्च पद को प्राप्त होकर पूर्ण वैष्णव बन गया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है कि वैष्णव के पद की परीक्षा यह देखकर की जा सकती है कि वह कितना उत्तम स्पर्शमणि है-अर्थात् यह देखकर कि उसने अपने जीवन में कितने वैष्णव बनाये हैं। वैष्णव को स्पर्शमणि होना चाहिए, जिससे वह अपने उपदेश द्वारा दूसरों को वैष्णव बना सके, भले ही लोग उस शिकारी जैसे पतित क्यों न हों। ऐसे अनेकानेक तथाकथित उन्नत भक्त हैं, जो अपने निजी लाभ के लिए एकान्त स्थान में बैठे रहते हैं। वे प्रचार करने और दूसरों को वैष्णव बनाने के लिए बाहर नहीं जाते, अतएव वे स्पर्शमणि नहीं कहे जा सकते। कनिष्ठ अधिकारी भक्त दूसरों को वैष्णव नहीं बना सकते, किन्तु मध्यन अधिकारी वैष्णव उपदेश द्वारा ऐसा कर सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने अनुयायियों को वैष्णवों की संख्या बढ़ाने का उपदेश दिया है।

यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'–उपदेश ।

आमार आज्ञाय गुरु हञा तार 'एइ देश ।

(चैतन्य-चरितामृत, मध्य 7.128)

यह श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा है कि हर व्यक्ति वैष्णव तथा गुरु बने। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनकी गुरु-शिष्य परम्परा के आदेशों का पालन करते हुए मनुष्य गुरु बन सकता है, क्योंकि इसकी विधि अत्यन्त सरल है। मनुष्य कृष्ण के उपदेशों के प्रचारार्थ कहीं भी जा सकता है। भगवद्गीता कृष्ण के उपदेश ही हैं; अतएव प्रत्येक वैष्णव का कर्तव्य है कि अपने देश में या विदेश में भ्रमण करके भगवद्गीता का प्रचार करे। नारद मुनि के पदचिह्नों पर चलते हुए यही स्पर्शमणि की परीक्षा है।

“अहो धन्योऽसि देवर्षे कृपया यस्य तत्क्षणात् ।

नीचोऽप्युत्पुलको लेभे लुब्धको रतिमच्युते” ॥ 278 ॥

अहो-ओह; धन्यः-धन्य हैं; असि-आप; देव-ऋषे-हे देवर्षि; कृपया-कृपा द्वारा; यस्य–जिनकी; तत्-क्षणात्-तुरन्त; नीचः अपि-नीच व्यक्ति भी; उत्पुलकः-प्रेमभाव में आनन्दित होकर; लेभे–प्राप्त करता है; लुब्धकः-एक शिकारी; तिम्-आकर्षण; अच्युते-भगवान् अच्युत में।

अनुवाद

“पर्वत मुनि ने आगे कहा, हे मित्र नारद, आप तुम देवताओं में ऋषि के रूप में विख्यात हैं। आपकी कृपा से इस शिकारी जैसा निम्न-जन्मा व्यक्ति भी तुरन्त कृष्ण के प्रति अनुरक्त हो सकता है।”

तात्पर्य

शुद्ध वैष्णव शास्त्रों के वचनों पर विश्वास करता है। यह श्लोक वैदिक साहित्य स्कन्द-पुराण से उद्धृत है।

नारद कहे,—‘वैष्णव, तोमार अन्न किछु आय?’ ।

व्याध कहे, “यारे पाठाओ, सेइ दिया याय” ॥ 279॥

नारद कहे-नारद मुनि ने कहा; वैष्णव-हे वैष्णव; तोमार-तुम्हारा; अन्न–अन्न; किछु आय-कुछ आता है; व्याध कहे–शिकारी ने उत्तर दिया; यारे पाठाओ-आप जिसे भी भेजते हैं; सेइ-वह व्यक्ति; दिया-कुछ देकर; याय-जाता है।

अनुवाद

"तब नारद मुनि ने शिकारी से पूछा, 'हे वैष्णव, क्या तुम्हारे पास अपने जीवन-निर्वाह के लिए कोई आय है?' शिकारी ने उत्तर दिया, "हे गुरु, आप जिसे भी भेजते हैं, वह जब मुझसे मिलने आता है, कुछ न कुछ मुझे देता है।"

तात्पर्य

इससे भगवद्गीता के उस कथन (9.22) की पुष्टि होती है कि भगवान्। अपने वैष्णव भक्त की सारी आवश्यकताओं को वहन करते हैं। नारद मुनि ने पूर्व-शिकारी से पूछा कि वह किस तरह उदर-पोषण करता है, तो उसने उत्तर दिया कि जो भी उससे मिलने आता है, उसके उदर-पोषण के लिए कुछ न कुछ ले आता है। प्रत्येक के हृदय में स्थित कृष्ण कहते हैं, "मैं वैष्णव की सारी आवश्यकताओं को स्वयं वहन करता हूँ।" वे किसी को भी इसे सम्पन्न करने का आदेश दे सकते हैं। हर व्यक्ति वैष्णव को कुछ न कुछ देने को तैयार रहता है और यदि वैष्णव पूर्णतया भक्ति में लगा हो, तो उसे अपने उदर-पोषण के लिए कदापि चिन्तित नहीं होना चाहिए।

एत अन्न ना पाठाओ, किछु कार्य नाइ ।

सबे दुइ-जनार योग्य भक्ष्य-मात्र चाइ ॥280॥

एत अन्न-इतना अन्न; ना पाठाओ-आप मत भिजवाइये; किछु कार्य नाइ-ऐसी आवश्यकता नहीं है; सबे-केवल; दुइ-जनार-दो लोगों के लिए; योग्य-आवश्यक; भक्ष्य-मात्र–खाने के लिए; चाइ-हम चाहते हैं।

अनुवाद

“उस पूर्व-शिकारी ने कहा, ‘कृपया इतना अन्न मत भेजें। केवल उतना ही भेजें जितना हम दोनों के लिए पर्याप्त हो, अधिक नहीं।”

तात्पर्य

पूर्व–शिकारी केवल दो व्यक्तियों के लिए पर्याप्त भोजन चाहता था, अधिक नहीं। वैष्णव के लिए अगले दिन के लिए भोजन का संग्रह करना आवश्यक नहीं है। उसे केवल एक दिन तक पर्याप्त भोजन स्वीकार करना चाहिए। अगले दिन उसे पुनः भगवत्कृपा पर आश्रित रहना चाहिए। यही श्री चैतन्य महाप्रभु का आदेश है। जब उनका निजी सेवक गोविन्द कभी-कभी हरीतकी का संग्रह करता, तो श्री चैतन्य महाप्रभु उसे यह कहकर भत्र्सना करते, “तुमने अगले दिन के लिए यह संग्रह क्यों किया?”श्रील रूप गोस्वामी तथा अन्य भक्त अपने उदर-पोषण के लिए हररोज द्वार-द्वार जाकर भिक्षा माँगा करते थे और वे अपने आश्रम में अगले दिन के लिए भोजन-संग्रह नहीं होने देते थे। हमे यह सोचकर भौतिक दृष्टि से गणना नहीं करना चाहिए कि, “एक सप्ताह के लिए भोजन का संग्रह करना श्रेयस्कर होगा। हम भगवान् को क्यों कष्ट दें कि वे नित्य भोजन लायें ?”भक्त को आश्वस्त रहना चाहिए कि भगवान् नित्य ही भोजन देंगे। अगले दिन के लिए भोजन संग्रह करने की आवश्यकता नहीं है।

नारद कहे,—‘ऐछे रह, तुमि भाग्यवान्’ ।

एत बलि’ दुइ-जन हइला अन्तर्धान ॥281॥

नारद कहे-नारद मुनि ने कहा; ऐछे रह-ऐसे ही जीवन यापन करो; तुमि भाग्यवान्-निश्चित रूप से तुम अत्यन्त भाग्यवान हो; एत बलि’-यह कहकर; दुइ-जन-नारद मुनि और पर्वत मुनि; होइला अन्तर्धान–अन्तर्धान हो गये।

अनुवाद

"नारद मुनि ने एक दिन से अधिक भोजन की आपूर्ति की इच्छा न करने के प्रति सहमति व्यक्त की और उसे यह कहते हुए आशीर्वाद दिया कि, 'तुम भाग्यशाली हो।' तत्पश्चात् नारद मुनि तथा पर्वत मुनि उस स्थान से अन्तर्धान हो गये।"

एइ त कहिलुँ तोमाय व्याधेर आख्यान ।

या शुनिले हय साधु-सङ्ग-प्रभाव-ज्ञान ॥282॥

एइ त कहिलुँ–इस प्रकार मैंने बताई; तोमाय-तुम्हें; व्याधेर आख्यान–शिकारी की कहानी; या शुनिले-जिसे सुनकर; हय-होता है; साधु-सङ्ग–भक्तों के संग के प्रभाव-प्रभाव का; ज्ञान–ज्ञान।

अनुवाद

इस प्रकार मैंने शिकारी की घटना का वर्णन किया। इस कथा को सुनकर भक्तों की संगति के प्रभाव को समझा जा सकता है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु इस बात पर बल देना चाह रहे थे कि पुरुषों में अधम, एक शिकारी तक नारद मुनि अथवा उनकी प्रामाणिक गुरु-शिष्य परम्परा के भक्त की संगति करने से सर्वोच्च वैष्णव बन गया।

एइ आर तिन अर्थ गणनाते पाइल ।

एइ दुइ अर्थ मिलि' 'छाब्बिश' अर्थ हैल ॥ 283॥

एइ–यह उदाहरण; आर-अन्य; तिन अर्थ-तीन अर्थ; गणनाते-गिनने से; पाइल-हमें प्राप्त हो गये; एइ दुइ अर्थ मिलि'-इन दो अर्थों को जोड़कर; छाब्बिश-छब्बीस; अर्थ-अर्थ; हैल-हो गये।

अनुवाद

"इस तरह हमें (आत्माराम श्लोक के) तीन अर्थ और मिल गये हैं। अन्य अर्थों के साथ इन्हें मिलाने पर अर्थों की कुल संख्या छब्बीस हो जाती है।"

आर अर्थ शुन, याहा–अर्थेर भाण्डार ।

स्थूले 'दुइ' अर्थ, सूक्ष्मे 'बत्रिश' प्रकार ॥ 284॥

आर-अन्य; अर्थ–अर्थ; शुन-सुनो; याहा–जो; अर्थेर भाण्डार–ज्ञान के भण्डार हैं; स्थूले-स्थूल रूप से; दुइ अर्थ-दो अर्थ; सूक्ष्मे–सूक्ष्म अर्थ द्वारा; बत्रिश-बत्तीस; प्रकार-प्रकार के।

अनुवाद

एक अन्य अर्थ भी है, जो नाना प्रकार के अर्थों से पूर्ण है। वस्तुतः दो स्थूल अर्थ हैं और बत्तीस सूक्ष्म अर्थ हैं।

तात्पर्य

जिन दो स्थूल अर्थों का प्रसंग आया है वे वैधी भक्ति तथा रागानुगा भक्ति हैं। इसके अतिरिक्त बत्तीस सूक्ष्म अर्थ भी हैं। वैधी भक्ति के अन्तर्गत आत्माराम के अर्थ के आधार पर सोलह अर्थ हैं (1) भगवान् के निजी पार्षद के रूप में भगवान् का दास, (2) निजी मित्र, (3) माता-पिता या उसी प्रकार के गुरुजन, (4) प्रेयसी (कान्ता), (5) आध्यात्मिक अनुशीलन द्वारा उन्नत पद को प्राप्त (साधनसिद्ध) दास, (6) साधन-सिद्ध मित्र, (7) साधन-सिद्ध माता-पिता तथा ज्येष्ठ भक्तगण, (8) साधन-सिद्ध कान्ता या सखी, (9) दास के रूप में प्रौढ़ भक्त, (10) मित्र के रूप में उन्नत भक्त, (11) माता-पिता तथा गुरुजन के रूप में उन्नत भक्त, (12) पत्नी तथा कान्ता के रूप में उन्नत भक्त, (13) दास के रूप में अपरिपक्व भक्त, (14) मित्र के रूप में अपरिपक्व भक्त, (15) पिता तथा गुरुजन के रूप में कनिष्ठ भक्त तथा (16) प्रियतमा के रूप में कनिष्ठ भक्त। इसी प्रकार रागानुगा भक्ति के अन्तर्गत भी सोलह प्रकार के

पार्षद होते हैं। इस तरह वैधी भक्ति तथा रागानुगा भक्ति शीर्षक के अन्तर्गत कुल भक्तों की संख्या बत्तीस हो जाती है।

'आत्मा'-शब्दे कहे—सर्व-विध भगवान् ।

एक 'स्वयं भगवान्', आर 'भगवान्'-आख्यान ।। 285॥

आत्मा-शब्दे-आत्मा शब्द द्वारा; कहे-कहा जाता है; सर्व-विध भगवान्–सब प्रकार के भगवान्; एक-एक; स्वयम् भगवान्-मूल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण; आर-दूसरे; भगवान्-आख्यान-भगवान् के अंश विस्तार।

अनुवाद

"आत्मा' शब्द पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समस्त विभिन्न अंशों का द्योतक है। इनमें से एक स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं और शेष कृष्ण के विभिन्न अवतार या अंश हैं।"

तात्पर्य

आत्मा शब्द के अन्तर्गत पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सभी प्रकार आ जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कृष्ण के अनन्त विस्तार हैं। इसका वर्णन ब्रह्म-संहिता (5.46) में हुआ है :

दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य

दीपायते विवृतहेतुसमानधर्मा ।

यस्तादृगेव हि च विष्णुतया विभाति

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

कृष्ण के विस्तारों की उपमा दीपकों से दी गई है, जो एक मूल दीपक से जलाये जाते हैं। सारे गौण दीपक समान रूप में शक्तिशाली होते हैं, किन्तु मूल दीपक वह होता है, जिससे अन्य सारे दीपक

जलाये जाते हैं। कृष्ण आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और उन्होंने अपना विस्तार बलराम, संकर्षण, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा वासुदेव के रूप में किया है। इस तरह असंख्य अवतार एवं विस्तार हैं, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के नाम से भी जाने जाते हैं।

भगवान् के विविध रूपों के सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि कृष्ण तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं ही, उनके विस्तार भी भगवान् कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण अन्य सारे अवतारों के मूल स्रोत हैं। ज्ञानी तथा योगी भी कृष्ण के स्वरूप का ध्यान करते हैं, किन्तु यह स्वरूप आदि भगवान् का नहीं होता। ऐसे भगवान् तो भगवान् की पूर्ण शक्ति की आंशिक अभिव्यक्ति होते हैं। फिर भी उन्हें भगवान् ही समझना होगा। इस बात को स्पष्ट करने के लिए मनुष्य को इतना ही जानना चाहिए कि वृन्दावन में नन्द महाराज के पुत्र, ग्वालों के मित्र तथा गोपियों के प्रियतम कृष्ण ही वास्तव में आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। उन्हें रागानुग प्रेम द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। यद्यपि उनके विस्तार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कहलाते हैं, किन्तु उन्हें वैधी भक्ति सम्पन्न करके ही प्राप्त किये जा सकते हैं।

ताँते रमे येइ, सेइ सब—'आत्माराम'।

'विधि-भक्त', 'राग-भक्त',—दुइ-विध नाम ॥286॥

ताँते–उन सभी भगवान् में; रमे-सेवा का आनन्द लेते हैं; येइ-जो; सेइ सब-वे सभी; आत्माराम-आत्माराम कहलाते हैं; विधि-भक्त-विधि नियमों का पालन करने वाले भक्त; राग-भक्त–रागानुगा प्रेम का अनुसरण करने वाले भक्त; दुइ-विध नाम-दो प्रकार के।

अनुवाद

"जो व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा में सदैव लगा रहता है, वह आत्माराम कहलाता है। आत्माराम के दो प्रकार होते हैं। पहला आत्माराम वह है जो वैधी भक्ति में लगा रहता है (वैधी भक्त) तथा दूसरा वह है जो रागानुगा भक्ति में लगा रहता है (राग भक्त)।"

दुइ-विध भक्त हय चारि चारि प्रकार।

पारिषद, साधन-सिद्ध, साधक-गण आर ॥287॥

दुइ-विध भक्त-ये दो प्रकार के आत्माराम भक्त; हय-हैं; चारि चारि प्रकार–चार-चार भिन्न प्रकार के; पारिषद-पार्षद; साधन-सिद्ध–साधना भक्ति के नियमों के पालन द्वारा पार्षदों की स्थिति तक मुक्त; साधक-गण आर-तथा वे भक्त जो पहले से ही भगवान् की प्रेममयी सेवा में लगे हुए हैं।

अनुवाद

"वैधी तथा रागानुगा भक्ति में लगे आत्मारामों के चार-चार प्रकार हैं। ये हैं–नित्य पार्षद, भक्ति द्वारा सिद्धिप्राप्त पार्षद (साधन-सिद्ध) तथा भक्ति में लगे हुए साधक जिनके दो प्रकार हैं।"

जात-अजात-रति-भेदे साधक दुइ भेद।

विधि-राग-मार्गे चारि चारि—अष्ट भेद ॥ 288॥

जात-अजात-रति-भेदे-परिपक्व और अपरिपक्व प्रेम के भेद द्वारा; साधक दुइ भेद-साधक भक्तों के दो भेद हैं; विधि-विधि निषेध से युक्त साधना भक्ति; राग-रागानुग भक्ति; मार्गे–दोनों मार्गों पर; चारि चारि–चार प्रकार हैं; अष्ट भेद-आठ प्रकार के।

अनुवाद

"भक्ति का अभ्यास करने वाले (साधक) या तो परिपक्व होते हैं। (जात) अथवा अपरिपक्व (अजात) होते हैं। अतः साधक दो प्रकार के होते हैं। चूँकि भक्तगण या तो वैधी भक्ति करते हैं या रागानुगा भक्ति और चूँकि इन दोनों के अन्तर्गत चार-चार प्रकार होते हैं, अतः कुल मिलाकर आठ भेद हो जाते हैं।"

विधि-भक्त्ये नित्य-सिद्ध पारिषद—'दास'।

‘सखा’ गुरु’, ‘कान्ता-गण’,—चारि-विध प्रकाश ॥ 289॥

विधि-भक्त्ये-विधी भक्ति द्वारा; नित्य-सिद्ध पारिषद–नित्यसिद्ध पार्षद; दास-सेवक; सखा गुरु कान्ता-गण-सखा, वरिष्ठ तथा प्रेयसी; चारि-विध प्रकाश-ये चार प्रकार से प्रकट होते हैं।

अनुवाद

“वैधी भक्ति करने से मनुष्य नित्यसिद्ध पार्षद के पद को प्राप्त होता है। यथा दास, सखा, गुरुजन या प्रियतमा। इनमें से प्रत्येक के चार प्रकार हैं।”

साधन-सिद्ध—दास, सखा, गुरु, कान्ता-गण ।

जात-रति साधक-भक्त—चारि-विध जन ॥290॥

साधन-सिद्ध-जो साधना द्वारा सिद्ध हो गये हैं; दास-सेवक; सखा-मित्र: गुरु- अग्रज; कान्ता-गण-प्रिय गोपियाँ; जात-रति साधक-भक्त-जो भक्त सेवा द्वारा परिपक्व हो जाते हैं; चारि-विध जन-वे भी चार प्रकार के हैं।

अनुवाद

“जिन्होंने भक्ति के द्वारा सिद्धि प्राप्त की है (धन्य-सिद्ध) उनमें दास, सखा, गुरुजन तथा प्रेमिकाएँ (गोपियाँ)—ये चार आते हैं। इसी प्रकार परिपक्व भक्तों (जातरति साधक भक्तों) के चार प्रकार हैं।”

अजात-रति साधक-भक्त,—ए चार प्रकार ।

विधि-मार्गे भक्ते षोड़श भेद प्रचार ॥ 291॥

अजात-रति साधक-भक्त-भक्ति में लगा हुआ अपरिपक्व भक्त जिसको आकर्षण उत्पन्न नहीं हुआ है; ए चार प्रकार ये भी चार प्रकार हैं; विधि-मार्गे-वैधी साधना भक्ति के मार्ग पर; भक्ते-भक्तों के; षोड़श भेद प्रचार–सोलह प्रकार के भेद हैं।

अनुवाद

"वैधी भक्ति के अन्तर्गत अपरिपक्व भक्त (अजातरति साधक भक्त) भी हैं। ये भी चार प्रकार के होते हैं। इस तरह वैधी भक्ति के अन्तर्गत कुल सोलह प्रकार हैं।"

राग-आर्गे ऐछे भक्ते षोड़श विभेद ।

दुइ मार्गे आत्मारामेर बत्रिश विभेद ॥ 292॥

राग-मार्गे–रागानुगा प्रेममयी सेवा के मार्ग पर; ऐछे-समान रूप से; भक्ते-सभी भक्तों के; षोड़श विभेद-सोलह प्रकार के; दुई भार्गे–साधना तथा रागानुग भक्ति के रूप में; आत्मारामेर-आत्मारामों के; बत्रिश विभेद-बत्तीस प्रकार के भक्त॥

अनुवाद

"रागानुगा भक्ति के अन्तर्गत भी सोलह प्रकार के भक्त हैं। इस प्रकार इन दोनों मार्गों का आनन्द लेने वाले आत्मारामों के बत्तीस प्रकार हैं।"

'मुनि', 'निर्ग्रन्थ', 'च' 'अपि',—चारि शब्देर अर्थ ।

याहाँ येइ लागे, ताहा करिये समर्थ ॥ 293 ॥

मुनि-मुनि; निर्ग्रन्थ-निग्रन्थ; च-च; अपि-अपि; चारि शब्देर अर्थ–इन चार शब्दों के अर्थ; याहाँ–कहाँ; येइ लागे-वे पालन करते हैं; ताहा करिये समर्थ-उन्हें समर्थ बना देता है।

अनुवाद

"जब इन बत्तीस प्रकार के भक्तों की विशेषता 'भुनि,' 'निन्थ,' 'च,' तथा 'अपि' शब्दों द्वारा बताई जाती है, तब उन्हें विभिन्न प्रकारों से बढ़ाया जा सकता है और उनकी भलीभाँति व्याख्या की जा सकती है।"

बत्रिशे छाब्बिशे मिलि, अष्ट-पञ्चाश ।

आर एक भेद शुन अर्थेर प्रकाश ॥294॥

बत्रिशे-ये बत्तीस प्रकार के; छाब्बिशे-पहले बताएँ छब्बीस गुण; मिलि'–मिलाकर; अष्ट-पञ्चाश-ये अट्ठावन व्यक्ति; आर-अन्य; एक-एक; भेद-भेद; शुन-कृपया सुनो; अर्थेर प्रकाश अर्थ के प्रकाश।

अनुवाद

"जब हम भक्तों के छब्बीस प्रकारों को इन बत्तीस प्रकारों में जोड़ देते हैं, तो कुल संख्या अट्ठावन हो जाती है। अब तुम मुझसे अर्थों की और अभिव्यक्तियाँ सुन सकते हो।"

इतरेतर 'च' दिया समास करिये ।

'आटान्न'-बार आत्माराम नाम लइये ॥ 295॥

इतरेतर–भिन्न प्रकार से; च-च शब्द; दिया-मिलाकर; समास करिये-समास करके; आटान्न-बार-अट्ठावन बार; आत्माराम-आत्माराम भक्त; नाम लइये-मैं इन्हें नामों से बुलाता हूँ।

अनुवाद

"इस तरह मैं हर शब्द के बाद 'च' शब्द जोड़ता हूँ, तो समास बनता है। इस तरह विभिन्न आत्मारामों के नाम अट्ठावन बार लिये जा सकते हैं।"

'आत्मारामाश्च आत्मारामाश्च' आटान्न-बार ।

शेषे सब लोप करि' राखि एक-बार ॥ 296 ॥

आत्मारामाः च आत्मारामाः च-आत्मारामाः शब्द को दोहराकर; आटान्न-बार-अट्ठावन बार; शेषे–अन्त में; सब लोप करि'-सबको हटाकर; राखि-हम रखते हैं; एक-बार-केवल एक।

अनुवाद

"इस तरह अट्ठावन अर्थों में से प्रत्येक के लिए 'आत्मारामाः' शब्द की 'च' के साथ पुनरावृत्ति की जा सकती है। इस पूर्वकथित विधि का पालन करते हुए तथा अन्तिम के अतिरिक्त अन्य सभी अर्थों का निषेध करते हुए हमारे पास जो बचेगा, वह समस्त अर्थों का प्रतिनिधित्व करता है।"

सरूपाणामेक-शेष एक-विभक्तौ, उक्तार्थानामप्रयोग इति ॥ 297॥

स-रूपाणाम्-समान रूप वाले शब्दों का; एक-शेषः–केवल अन्तिम; एक-विभक्ती-समान विभक्ति में; उक्त-अर्थानाम्-पूर्वोक्त अर्थों का; अप्रयोगः-अप्रयोग; इति-इति।

अनुवाद

"एक ही रूप तथा एक ही विभक्ति वाले सारे शब्दों में से केवल अन्तिम को रहने दिया जाता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण पाणिनि-सूत्र (1.2.64) से है।

आटान्न च-कारेर सब लोप हय ।

एक आत्माराम-शब्दे आटान्न अर्थ कय ॥298॥

आटान्न-अट्ठावन; च-कारेर–च शब्द के; सब लोप हय-उन सभी का लोप हो जाता है; एक-एक; आत्माराम-आत्माराम; शब्दे-शब्द द्वारा; आटान्न अर्थ कय-स्वयं अट्ठावन अर्थ प्रकट हो जाते हैं।

अनुवाद

"सारे च-कार अर्थात् 'च' से युक्त शब्द हटा लिए जाने पर भी केवल एक शब्द 'आत्माराम' से अट्ठावन विभिन्न अर्थ प्राप्त किये जा सकते हैं।"

अश्वत्थ-वृक्षाश्च बट-वृक्षाश्च कपित्थ-वृक्षाश्च आम्र-वृक्षाश्च वृक्षाः ॥299॥

अश्वत्थ-वृक्षाः-अश्वत्थ वृक्ष; च-तथा; बट-वृक्षाः–वटवृक्ष; च-तथा; कपित्थ-वृक्षाः-कपित्थ वृक्ष; च-तथा; आम्र-वृक्षाः-आम का वृक्ष; च-तथा; वृक्षाः-'वृक्ष' शब्द से सभी वृक्षों का संकेत है।

अनुवाद

"इस बहुवचन शब्द 'वृक्षाः' से सारे वृक्ष यथा बरगद, पीपल, कैथा तथा आम के वृक्षों का संकेत होता है।"

"अस्मिन्वने वृक्षाः फलन्ति" यैछे हय ।

तैछे सब आत्माराम कृष्णे भक्ति करय ॥ 300॥

अस्मिन् वने-इस वन में; वृक्षाः फलन्ति–विभिन्न प्रकार के वृक्ष फल देते हैं; यैछे हय-जिस प्रकार इस वाक्य में; तैछे-उसी प्रकार; सब-सभी; आत्माराम-आत्माराम जीव; कृष्णे भक्ति करय-स्वयं को भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा में लगाते हैं।

अनुवाद

"आत्माराम श्लोक वैसा ही है जैसाकि यह वाक्य, इस जंगल में अनेक विभिन्न वृक्षों में फल लगते हैं। सारे आत्माराम भगवान् कृष्ण की सेवा करते हैं।"

'आत्मारामाश्च' समुच्चये कहिये च-कार।

'मुनयश्च' भक्ति करे,—एइ अर्थ तार॥ 301॥

आत्मारामाः च-इसी प्रकार च शब्द से संयुक्त आत्मारामाः शब्द; समुच्चये-संयुक्त रूप में; कहिये-अर्थ करता है; 'च-कार-च शब्द; मुनयः च-च शब्द से संयुक्त मुनय शब्द; भक्ति करे-वे सभी भक्ति करते हैं; एइ अर्थ तार-यही श्लोक का उचित अर्थ है।

अनुवाद

"आत्मारामाः' शब्द को अट्ठावन बार उच्चरित करके तथा 'च' को समुच्चयवाचक मानकर इसके साथ 'मुनयः' शब्द जोड़ा जा सकता है। तब इसका अर्थ यह होगा कि मुनिगण भी भगवान् कृष्ण की भक्ति करते हैं। इस तरह कुल उनसठ अर्थ हो जाते हैं।"

'निर्ग्रन्था एव' हञा, 'अपि'—निर्धारणे।

एइ 'ऊनषष्टि' प्रकार अर्थ करिलुँ व्याख्याने॥ 302॥

निग्रन्थाः-निग्रन्थाः शब्द; एव–तथा एव शब्द; हञा-होकर; अघि-अपि शब्द; निर्धारणे-निर्धारण करने में; एइ ऊनषष्टि प्रकार अर्थ-इस प्रकार उनसठ प्रकार के अर्थ; करिलुँ व्याख्याने-मैंने वर्णित कर दिये।

अनुवाद

"तत्पश्चात् 'निर्ग्रन्थाः' शब्द को लेते हुए तथा 'अणि' को पुष्ट करने के अर्थ में लेते हुए मैंने इस शब्द के उनसठवे अर्थ की व्याख्या करने का प्रयास किया है।"

सर्व-समुच्चये आर एक अर्थ हय।

'आत्मारामाश्च मुनयश्च निर्ग्रन्थाश्च' भजय॥ 303।

सर्व-समुच्चये-उन सबको एक साथ लेकर; आर-दूसरा; एक-एक; अर्थ-अर्थ; हय–होता है; आत्मारामाः च मुनयः च निर्ग्रन्थाः च भजय-आत्माराम, महामुनिजन, तथा निग्रन्थ (विद्वान तथा मूर्ख) भगवान् की दिव्य सेवा करने के योग्य हैं।

अनुवाद

"सारे शब्दों को एकसाथ लेने पर एक अन्य अर्थ होता है। चाहे कोई आत्माराम हो, मुनि हो या निर्ग्रन्थ, हर व्यक्ति को भगवान् की सेवा करनी चाहिए।"

तात्पर्य

यहाँ पर सर्वसमुच्चये शब्द महत्त्वपूर्ण है। इसमें सभी वर्ग के मनुष्य आ जाते हैं-आत्माराम, मुनि तथा निर्ग्रन्थ। हर व्यक्ति को भगवान् की सेवा करनी चाहिए। अपिशब्द का निर्णय' अर्थ लगाने पर कुल मिलाकर साठ भिन्न अर्थ हो जाते हैं।

'अपि'-शब्द—अवधारणे, सेह चार बार।

चारि-शब्द-सड़े एवेर करिबे उच्चार॥ 304॥

अपि-शब्द-अपिशब्द; अवधारणे-निर्धारण करने के अर्थ में; सेह चारि बार-चार बार; चारि-शब्द-चार शब्दों के; सङ्गे-साथ; एवेर-एव शब्द का; करिबे-कर सकते हैं; उच्चार–उच्चारण।

अनुवाद

"जब 'अपि' शब्द निर्णय के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है, तो चार शब्दों के साथ 'एव' शब्द चार बार उच्चरित हो सकता है।"

“उरुक्रमे एव भक्तिमेव अहैतुकीमेव कुर्वन्त्येव” ॥305॥

उरुक्रमे-सर्वशक्तिमान की; एव–केवल; भक्तिम्-प्रेममयी सेवा; एव–ही; अहैतुकीम् निष्काम; एव-ही; कुर्वन्ति–वे करते हैं; एव–केवल।

अनुवाद

“उरुक्रम,’ ‘भक्ति,’ ‘अहैतुकी’ तथा ‘कुर्वन्ति’ शब्दों को ‘एव’ के साथ बारम्बार मिलाते हैं। इस तरह अन्य अर्थ निकलता है।”

एइ त कहिलुँ श्लोकेर ‘षष्टि’ सङ्ख्यक अर्थ ।

आर एक अर्थ शुन प्रमाणे समर्थ ॥ 306॥

एइ त’-इस प्रकार; कहिलुँ-मैंने बताया है; श्लोकेर-श्लोक के; षष्टि–साठ; सङ्ख्य क-गिनती के; अर्थ-अर्थ; आर-अन्य; एक-एक; अर्थ-अर्थ; शुन-कृपया सुनो; प्रमाणे समर्थ-प्रमाण देने में समर्थ।

अनुवाद

“अब तक मैं इस श्लोक के साठ भिन्न-भिन्न अर्थ दे चुका हूँ, तो भी एक अन्य अर्थ है, जो अत्यधिक स्पष्ट है।”

‘आत्मा’-शब्दे कहे ‘क्षेत्रज्ञ जीव’-लक्षण ।

ब्रह्मादि कीट-पर्यन्त—ताँर शक्तिते गणन ॥ 307॥

आत्मा-शब्दे-आत्मा शब्द द्वारा; कहे-कहा जाता है; क्षेत्र-ज्ञ जीव-जीवात्मा जो अपने शरीर के विषय में जानता है; लक्षण-लक्षण; ब्रह्मा-आदि–ब्रह्माजी से लेकर; कीट-पर्यन्त–तुच्छ चींटी तक; ताँर–उनकी; शक्तिते-तटस्थ शक्ति के रूप में; गणन-गिनती।

अनुवाद

"आत्मा' शब्द उस जीव का भी सूचक है, जो अपने शरीर के विषय में जानता है। यह अन्य लक्षण है। ब्रह्माजी से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक हर एक को भगवान् की तटस्था शक्ति के रूप में गिना जाता है।"

विष्णु-शक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथा परा ।

अविद्या-कर्म-संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥ 308॥

विष्णु-शक्तिः–भगवान् विष्णु की शक्ति; परा-आध्यात्मिक; प्रोक्ता–कही जाती है; क्षेत्र-ज्ञ-आख्या-क्षेत्रज्ञ नामक शक्ति; तथा-साथ ही; परा-आध्यात्मिक; अविद्या-अज्ञान; कर्म-सकाम कर्म; संज्ञा–नामक; अन्या-अन्य; तृतीया-तीसरी; शक्तिः–शक्ति; इष्यते-कही जाती है।

अनुवाद

"भगवान् विष्णु की शक्ति की तीन श्रेणियाँ हैं-आध्यात्मिक शक्ति, जीव तथा अविद्या। आध्यात्मिक शक्ति ज्ञान से पूर्ण होती है। जीव यद्यपि आध्यात्मिक शक्ति से सम्बन्धित होते हैं, किन्तु वे मोहग्रस्त होते रहते हैं; और तीसरी शक्ति, जो अविद्या से भरी होती है, सदैव सकाम कर्मों में देखने में आती है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण विष्णु-पुराण का है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला (7.119)।

"क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः प्रधानं प्रकृतिः स्त्रियाम्" ॥ 309॥

क्षेत्र-ज्ञः-क्षेत्रज्ञ शब्द; आत्मा–जीवात्मा; पुरुषः-भोक्ता; प्रधानम्-प्रधान; प्रकृतिः–भौतिक प्रकृति; स्त्रियाम्-स्त्रीलिंग में।

अनुवाद

“क्षेत्रज्ञ’ शब्द जीव, भोक्ता, प्रधान तथा भौतिक प्रकृति का द्योतक है।”

तात्पर्य

यह उद्धरण अमरकोश (7) के स्वर्गवर्ग से है।

भ्रमिते भ्रमिते यदि साधु-सङ्ग पाय ।

सब त्यजि’ तबे सिंहो कृष्णेरे भजय ॥ 310॥

भ्रमिते भ्रमिते-विभिन्न रूपों में विभिन्न प्रकार से भ्रमण करते करते; यदि-यदि; साधु-सङ्ग पाय-कोई भक्तों का संग प्राप्त करता है; सब त्यजि’-सब कुछ त्यागकर; तबे-फिर; तिंहो-वह; कृष्णेरे भजय-भगवान् कृष्ण की सेवा में लग जाता है।

अनुवाद

“विभिन्न योनियों में जीव विभिन्न लोकों में विचरण करते हैं, किन्तु यदि कदाचित् उन्हें शुद्ध भक्त (साधु) की संगति प्राप्त हो जाती है, तो वे सारे कार्य त्यागकर भगवान् कृष्ण की सेवा में लग जाते हैं।”

षाटि अर्थ कहिलुँ, सब—कृष्णेर भजने ।

सेइ अर्थ हय एइ सब उदाहरणे ॥ 311॥

षाटि–साठ; अर्थ-अर्थ; कहिलुँ-मैंने बताये; सब-सब; कृष्णेर भजने-कृष्ण की दिव्य प्रेममयी सेवा को लक्ष्य करके; सेइ अर्थ हय–केवल यही अर्थ है; एइ सब–इन सभी; उदाहरणे-उदाहरणों का।

अनुवाद

“इस तरह मैंने साठ भिन्न-भिन्न अर्थ बतलाये और वे सबके सब कृष्ण की सेवा को ही लक्षित करते हैं। इतने सारे उदाहरण देने के बाद यही एकमात्र अर्थ है।”

‘एक-षष्टि’ अर्थ एबे स्फुरिल तोमा-सङ्गे।

तोमार भक्ति-वशे उठे अर्थेर तरङ्गे॥ 312॥

एक-षष्टि-इकसठवाँ; अर्थ-अर्थ; एबे-अब; स्फुरिल-जागृत हो गया; तोमा-सङ्गे–तुम्हारे संग के कारण; तोमार-तुम्हारी; भक्ति-वशे-भक्ति के प्रभाव से; उठे-उत्पन्न हो रही हैं; अर्थेर-अर्थों की; तरङ्गे–लहरें।

अनुवाद

“अब तुम्हारी संगति से एक अन्य अर्थ स्फुरित हुआ है। तुम्हारी भक्ति के कारण ही अर्थों की तरंगें उठ रही हैं।”

तात्पर्य

आत्मा शब्द जीव का द्योतक है। ब्रह्माजी से लेकर क्षुद्र चींटी तक सारे प्राणी जीव माने जाते हैं। जीवों को भगवान् की तटस्था शक्ति का अंश माना जाता है। वे सभी क्षेत्रज्ञ हैं अर्थात् शरीर के ज्ञाता हैं। जब वे निर्ग्रन्थ या मुक्त साधु पुरुष हो जाते हैं, तो वे भगवान् कृष्ण की सेवा में लग जाते हैं। यह श्लोक का इकसठवाँ अर्थ है।

अहं वेद्मि शुको वेत्ति व्यासो वेत्ति न वेत्ति वा।

भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया॥ 313॥

अहम्-मैं (शिवजी); वेद्मि-जानता हूँ; शुकः-शुकदेव गोस्वामी; वेत्ति-जानते हैं; व्यासः-व्यासदेव; वेत्ति-जानते हैं; न वेत्ति वा-या नहीं जानते; भक्त्या -नौ प्रकार की भक्ति द्वारा; भागवतम्-भागवत पुराण (परमहंस संहिता नामक दिव्य ग्रन्थ, जो सर्वश्रेष्ठ अध्यात्मवादियों द्वारा पढ़ा जाता है; ग्राह्यम्-ग्रहण की जा सकती है; न-न; बुद्ध्या-तथाकथित बुद्धि या प्रायोगिक ज्ञान से; न-न ही; च-तथा; टीकया-मनोकल्पित टीका द्वारा।

अनुवाद

"[शिवजी ने कहा :] 'श्रीमद्भागवत को या तो मैं जानता हूँ या व्यासपुत्र शुकदेव गोस्वामी जानते हैं, तथा व्यासदेव जानते हैं अथवा नहीं जानते। इस निष्कलंक पुराण श्रीमद्भागवत को केवल भक्ति से सीखा जा सकता है-भौतिक बुद्धि, चिन्तन विधियों या काल्पनिक टीकाओं द्वारा नहीं।"

तात्पर्य

भक्ति में नौ विधियाँ सम्मिलित हैं-यथा श्रवण, कीर्तन, भगवान् विष्णु की लीलाओं का स्मरण इत्यादि। जिसने भक्ति को अंगीकार किया है, वही श्रीमद्भागवत को समझ सकता है, क्योंकि अध्यात्मवादी (परमहंस) के लिए यह एक निष्कलंक पुराण है। इस कार्य के लिए तथाकथित टीकाएँ व्यर्थ हैं। वैदिक आदेशानुसार- यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। सारे वैदिक ग्रन्थों का मत है कि श्रीमद्भागवत को किसी भागवत से सीखना चाहिए और इसे समझने के लिए शुद्ध भक्ति करनी आवश्यक है। श्रीमद्भागवत को तथाकथित विद्वान पण्डित या वैयाकरण नहीं समझ सकते। जिसने शुद्ध कृष्णभावना विकसित कर ली है और शुद्ध भक्त या गुरु की सेवा की है, वही श्रीमद्भागवत को समझ सकता है, अन्य कोई नहीं।

अर्थ शुनि' सनातन विस्मित हञा।

स्तुति करे महाप्रभुर चरणे धरिया॥ 314॥

अर्थ शुनि'-(आत्माराम श्लोक के) अर्थों को सुनकर; सनातन-सनातन गोस्वामी; विस्मित हञा–आश्चर्यचकित होकर; स्तुति करे-स्तुति करते हैं; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे धरिया-चरणकमलों को पकड़कर।

अनुवाद

आत्माराम श्लोक के विभिन्न अर्थों की व्याख्या सुनकर सनातन गोस्वामी आश्चर्यचकित हो गये। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और स्तुति करने लगे।

साक्षात् ईश्वर तुमि व्रजेन्द्र-नन्दन ।

तोमार निश्वासे सर्व-वेद-प्रवर्तन ॥ 315॥

साक्षात् ईश्वर तुमि-आप साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं; व्रजेन्द्र-नन्दन-महाराज नन्द के पुत्र; तोमार निश्वासे-आपके श्वास द्वारा; सर्व-वेद-सारे वैदिक ग्रन्थ; प्रवर्तन-प्रकट हुए हैं।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा, "हे प्रभु, आप महाराज नन्द के पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। सारे वैदिक ग्रन्थ आपके श्वास के माध्यम से ध्वनित होते हैं।"

तुमि—वक्ता भागवतेर, तुमि जान अर्थ ।

तोमा विना अन्य जानिते नाहिक समर्थ ॥ 316॥

तुमि-आप ही; वक्ता-वक्ता; भागवतेर-श्रीमद्भागवत के; तुमि-आप; जान-जानते हैं; अर्थ-अर्थ; तोमा विना-आपके सिवा; अन्य-कोई और; जानिते-जानने में; नाहिक-नहीं है; समर्थ-समर्थ।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप भागवत के आदि वक्ता हैं। अतः आप ही इसके वास्तविक अर्थ को जानते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी श्रीमद्भागवत के गुह्य अर्थ को नहीं समझ सकता।"

तात्पर्य

श्रील सनातन गोस्वामी के इस कथन के आधार पर हमने हमारी श्रीमद्भागवत की भूमिका (प्रथम स्कन्ध, पृष्ठ 1-41) लिखी है।

प्रभु कहे,—"केने कर आमार स्तवन।

भागवतेर स्वरूप केने ना कर विचारण?" ॥ 317॥

प्रभु कहे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; केने कर-तुम क्यों कर रहे हो; आमार स्तवन– मेरा गुणगान; भागवतेर स्वरूप- श्रीमद्भागवत का वास्तविक स्वरूप; केने-क्यों; ना कर नहीं करते; विचारण-विचार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "तुम मेरा स्तवन क्यों कर रहे हो? तुम्हें श्रीमद्भागवत की दिव्य स्थिति को समझना चाहिए। तुम इस महत्त्वपूर्ण बात पर क्यों नहीं विचार करते?"

कृष्ण-तुल्य भागवत—विभु, सर्वाश्रय।

प्रति-श्लोके प्रति-अक्षरे नाना अर्थ कय ॥ 318॥

कृष्ण-तुल्य भागवत-श्रीमद्भागवत कृष्ण से अभिन्न है; विभु-परम; सर्व-आश्रय-सबके आदि स्रोत या सर्वनियन्ता; प्रति-श्लोके-प्रत्येक श्लोक में; प्रति-अक्षरे-प्रत्येक अक्षर में; नाना अर्थ कय– विभिन्न अर्थ हैं।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत कृष्णा के तुल्य महान् है, जोकि परमेश्वर तथा सबके आश्रय हैं। श्रीमद्भागवत के प्रत्येक श्लोक में तथा प्रत्येक अक्षर में अनेक अर्थ निहित हैं।"

प्रश्नोत्तरे भागवते करियाले निर्धार।

याँहार श्रवणे लोके लागे चमत्कार ॥ 319॥

प्रश्न-उत्तरे-प्रश्न-उत्तर के रूप में; भागवते- श्रीमद्भागवत में; करियाछे-किया है; निर्धार-निष्कर्ष; याँहार श्रवणे-जिसे सुनकर; लोके–सभी लोगों में; लागे-हो जाता है; चमत्कार-अत्यधिक विस्मय।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत का रूप प्रश्नों तथा उत्तरों में दिया हुआ है। इस तरह निष्कर्ष स्थापित किया जाता है। इन प्रश्नों तथा उत्तरों को सुनकर मनुष्य को अत्यधिक आश्चर्य होता है।"

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्म-वर्मणि ।

स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥ 320॥

ब्रूहि-कृपया बताइए; योग-ईश्वरे-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, सब योग शक्तियों के स्वामी; कृष्णे-भगवान् कृष्ण; ब्रह्मण्ये ब्राह्मण संस्कृति के रक्षक; धर्म-वर्मणि-धर्म के नियमों की बलवान भुजाएँ; स्वाम्-अपने; काष्ठाम्-निजी धाम को; अधुना-अब; उपेते-लौट जाने पर; धर्मः-धर्म के सिद्धान्त; कम्-किसकी; शरणम् शरण; गतः-चले गये।

अनुवाद

"अब जबकि परम सत्य, योगेश्वर श्रीकृष्ण अपने धाम प्रस्थान कर चुके हैं, तो कृपया हमें बताइये कि इस समय धर्म की रक्षा किसके द्वारा की जा रही है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.1.23) का है। इसमें शौनक आदि ऋषियों ने एक प्रश्न उठाया था। महाभागवत सूत गोस्वामी से पूछे छह प्रश्नों में से यह सर्वप्रमुख है। इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर अगले श्लोक में दिया गया है, जो श्रीमद्भागवत (1.3.43) का है।

कृष्णे स्व-धामोपगते धर्म-ज्ञानादिभिः सह ।

कलौ नष्ट-दृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥ 321॥

कृष्णे-भगवान् कृष्ण के; स्व-धाम-अपने धाम में; उपगते-लौट जाने के बाद; धर्म-ज्ञान-आदिभिः सह-धर्म, दिव्य ज्ञान आदि के साथ; कलौ–कलियुग में; नष्ट-दृशाम्-उन लोगों के लिए, जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक दृष्टि खो दी है; एषः–यह; पुराण-अर्कः-सूर्य के समान प्रकाशित होने वाला पुराण या वैदिक ग्रन्थ; अधुना–वर्तमान समय में; उदितः–उदय हुआ है।

अनुवाद

"जब कृष्ण धर्म तथा दिव्य ज्ञान समेत अपने धाम के लिए प्रस्थान कर गये, तो श्रीमद्भागवत नामक यह पुराण इस कलियुग में सूर्य के समान उन लोगों को आलोक देने के लिए उदित हुआ है, जो आध्यात्मिक दृष्टि से विहीन हैं।"

एइ मत कहिलुँ एक श्लोकेर व्याख्यान ।

बातुलेर प्रलाप करि' के करे प्रमाण? ॥ 322॥

एइ मत-इस प्रकार; कहिलुँ-मैंने कहा है; एक-एक; श्लोकेर-श्लोक की; व्याख्यान-व्याख्या; बातुलेर प्रलाप–एक पागल की बातें; करि'-करता हूँ; के करे प्रमाण-कौन इसे प्रमाण के रूप में स्वीकार करेगा।

अनुवाद

"इस तरह मैंने एक पागल की तरह केवल एक श्लोक के अर्थ की व्याख्या की है। मैं नहीं जानता कि इसे प्रमाण के रूप में कौन ग्रहण करेगा।"

आमा-हेन येबा केह 'बातुल' हय ।

एइ-दृष्टे भागवतेर अर्थ जानय ॥ 323॥

आमा-हेन–मेरे ही समान; येबा-जो; केह-कोई व्यक्ति; बातुल हय-पागल बन जाता है; एइ-दृष्टे-इस प्रक्रिया के अनुसार; भागवतेर- श्रीमद्भागवत के; अर्थ-अर्थों को; जानय-वह समझ सकता है।

अनुवाद

"यदि कोई मेरे ही समान पागल बनता है, तो इस विधि से वह भी श्रीमद्भागवत के अर्थ को समझ सकता है।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु स्पष्ट बतलाते हैं कि जो लोग भौतिकतावादी हैं, वे श्रीमद्भागवत को नहीं समझ सकते। दूसरे शब्दों में, मनुष्य को श्री चैतन्य महाप्रभु के ही समान पागल बनना होगा। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के अतिरिक्त श्री चैतन्य महाप्रभु एक आचार्य भी हैं, जिन्होंने पागल के समान भगवत्प्रेम प्रदर्शित किया। अपने ही द्वारा लिखित श्लोक के अनुसार युगायितं निमेषेण। वे कहते हैं कि उन्हें "एक क्षण बारह वर्षों के समान लगता है।" चक्षुषा प्रावृषायितम्–"मेरे अश्रु वर्षा की धारा के समान बह रहे हैं।" शून्यायितं जगत् सर्वम्-"मुझे लगता है कि सारा ब्रह्माण्ड शून्य है।" क्यों ? गोविन्दविरहेण मे–"गोविन्द अर्थात् श्रीकृष्ण से बिछुड़ जाने से।"

कृष्ण के लिए पागल श्री चैतन्य महाप्रभु के पदचिह्नों पर चलकर ही श्रीमद्भागवत को समझा जा सकता है। किन्तु हम श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुकरण नहीं कर सकते। यह सम्भव नहीं है। जब तक कोई व्यक्ति कृष्ण को समझने के लिए निष्ठावान न हो, तब तक वह श्रीमद्भागवत को नहीं समझ सकता। श्रीमद्भागवत में कृष्ण की दिव्य लीलाओं का पूर्ण विवरण दिया हुआ है। प्रथम नौ स्कन्ध बतलाते हैं कि कृष्ण कौन हैं और दसवें स्कन्ध में भगवान् के जन्म तथा कार्यों का वर्णन हुआ है। भगवद्गीता में कहा गया है-जन्म कर्म च मे दिव्यम् । कृष्ण के आविर्भाव तथा तिरोधान दिव्य हैं, लौकिक नहीं। जो व्यक्ति कृष्ण को तथा उनके आविर्भाव एवं तिरोधान को पूरी तरह समझ लेता है,

वह भगवधाम जाने का पात्र बन जाता है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (4.9) में स्वयं कृष्ण द्वारा की गई है- त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन से हो जाती है।

अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीता से कृष्ण के विषय में सीखना चाहिए और श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए। जो लोग श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुसरण नहीं करते, वे भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत को नहीं समझ सकते।

पुनः सनातन कहे युड़ि' दुइ करे ।

प्रभु आज्ञा दिला 'वैष्णव-स्मृति' करिबारे ॥ 324॥

पुनः-फिर; सनातन-सनातन गोस्वामी; कहे-कहते हैं; युड़ि' दुइ करे-अपने दोनों हाथ जोड़कर; प्रभु आज्ञा दिला-आपने मुझे आदेश दिया है; वैष्णव-स्मृति करिबारे-वैष्णव कार्यकलापों का स्मृति ग्रन्थ लिखने का।

अनुवाद

हाथ जोड़कर सनातन गोस्वामी ने कहा, "हे प्रभु, आपने मुझे वैष्णवों के कार्यकलापों के विषय में एक निर्देशिका (स्मृति) लिखने का आदेश दिया है।"

मुञि—नीच-जाति, किछु ना जानों आचार ।

मो-हैते कैछे हय स्मृति-परचार ॥ 325॥

मुञि-मैं; नीच-जाति-नीच जाति का; किछुकुछ; ना-नहीं; जानों-जानता; आचार-उचित आचरण के विषय में; मो-हैते–मुझसे; कैछे-कैसे; हय-हो सकता है; स्मृति-परचार–वैष्णव आचरण के निर्देशों का प्रचार।

अनुवाद

“मैं अत्यन्त नीच व्यक्ति हूँ। मुझे अच्छे आचरण का तनिक भी ज्ञान नहीं है। मेरे लिए वैष्णवों के कार्यकलापों के विषय में प्रामाणिक निर्देश लिखना कैसे सम्भव हो सकता है?”

तात्पर्य

वास्तविकता तो यह है कि सनातन गोस्वामी अत्यन्त सम्मान्य ब्राह्मण परिवार के थे। तो भी उन्होंने अपने आपको पतित, निम्न जाति का माना, क्योंकि वे मुसलमान सरकार में नौकर रह चुके थे। ब्राह्मण से कभी यह आशा नहीं की जाती कि वह किसी की नौकरी करेगा। जीविका के लिए नौकरी करना तो शूद्रों का पेशा है (परिचर्यात्मकं कर्म)। ब्राह्मण तो सदैव स्वतन्त्र रहता है। और शास्त्रों का अध्ययन करने तथा क्षत्रियों एवं वैश्यों जैसे समाज के निम्न कोटि के सदस्यों को शास्त्रों का उपदेश देने में व्यस्त रहता है। सनातन गोस्वामी वैष्णवों के आचरण के विषय में वैष्णव स्मृति लिखने के लिए अपने आपको भयोग्य मानते थे, क्योंकि वे ब्राह्मण-पद से नीचे गिर चुके थे। इस तरह नातन गोस्वामी स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि ब्राह्मण-संस्कृति का मानकीकरण होना चाहिए। आजकल भारत में तथाकथित ब्राह्मण अधिकांशतया कसी न किसी संसारी सेवा में लगे हैं और वे वैदिक शास्त्रों के अर्थ को नहीं रमझते। तो भी वे जन्म के आधार पर अपने आपको ब्राह्मण मानते आ रहे हैं। इस सम्बन्ध में सनातन गोस्वामी कहते हैं कि यदि ब्राह्मण को समाज में अग्रणी भूमिका निभानी है, तो उसे किसी की नौकरी नहीं करनी चाहिए। श्रीमद्भागवत में नारद मुनि कहते हैं कि चाहे कोई ब्राह्मण कितने ही कष्ट में क्यों न हो, उसे शूद्र की वृत्ति ग्रहण नहीं करनी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि उसे किसी अन्य की सेवा में नहीं लगना चाहिए, क्योंकि यह तो कुत्तों का कार्य है। इस परिस्थिति में सनातन गोस्वामी अपने आपको अत्यन्त नीच मान रहे थे, क्योंकि उन्होंने मुसलमान सरकार की नौकरी स्वीकार की थी। निष्कर्ष यह है कि किसी अन्य की सेवा करते हुए कोई व्यक्ति केवल जन्म के कारण अपने आपको ब्राह्मण न कहे।

सूत्र करि’ दिशा यदि करह उपदेश ।

आपने करह यदि हृदये प्रवेश ॥ 326॥

सूत्र करि'-संक्षेप में; दिशा-दिशा का; यदि-यदि; करह उपदेश-आप उपदेश करें; आपने–स्वयं; करह-आप करें; यदि-यदि; हृदये प्रवेश-मुझमें प्रवेश करके या मेरे हृदय में प्रकट होकर।

अनुवाद

तब सनातन गोस्वामी ने महाप्रभु से निवेदन किया, "कृपया आप स्वयं मुझे बतायें कि मैं वैष्णव आचरण के विषय में इस कठिन ग्रन्थ को कैसे लिखें। कृपया आप मेरे हृदय में प्रकट हों।"

तात्पर्य

वैष्णव साहित्य का लेखन सामान्य व्यक्तियों का कार्य नहीं है। वैष्णव साहित्य मानसिक कल्पना नहीं है। वे सब प्रामाणिक साहित्य हैं, जो वैष्णव बनने वालों के मार्गदर्शन हेतु होते हैं। ऐसी परिस्थिति में कोई सामान्य व्यक्ति अपना मत नहीं दे सकता। उसके मत को सदैव वेदों के निर्णय के अनुरूप होना चाहिए। जब तक कोई व्यक्ति वैष्णव आचरण में पूर्ण दक्ष न हो और श्रेष्ठ अधिकारी (पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्) द्वारा अधिकार-प्राप्त न हो, तब तक वह श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीता पर न तो टीकाएँ लिखे, न वैष्णव ग्रन्थ लिखे।

तबे तार दिशा स्फुरे मो-नीचेर हृदय ।

ईश्वर तुमि,—ये कराह, सेइ सिद्ध हय ॥ 327॥

तबे-यदि आप ऐसा करें; तार-उसकी; दिशा-लिखने की क्रिया में; स्फुरे–प्रकट हुए; मो-नीचेर-मुझ जैसे नीच के; हृदय-हृदय में; ईश्वर तुमि-आप परम ईश्वर हैं; से कराह-आप जो भी करवाएँ; सेइ सिद्ध हय–वह हो जाता है।

अनुवाद

"यदि आप मेरे हृदय में प्रकट हों और इस पुस्तक को लिखने के लिए स्वयं निर्देश दें, तब मैं निम्न जन्मा होते हुए भी आशा कर सकता हूँ कि इसे लिख पाऊँगा। आप ऐसा कर सकते हैं, क्योंकि आप स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और आप जो आदेश देंगे वही पूर्ण है।"

प्रभु कहे,—"ये करिते करिबा तुमि मन ।

कृष्ण सेइ सेइ तोमा कराबे स्फुरण" ॥ 328॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; से-जो; करिते-करने का; करिबा तुमि मन-तुम चाहते हो; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; सेइ सेइ-वह; तोमा-तुम्हें; कराबे स्फुरण-स्फुरित कर देंगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "तुम जो भी करना चाहते हो, उसे कृष्ण-कृपा के बल पर सही-सही कर सकोगे। वे वास्तविक तात्पर्य प्रकट कर देंगे।"

तात्पर्य

सनातन गोस्वामी कृष्ण के शुद्ध भक्त थे। शुद्ध भक्त के पास कृष्ण की सेवा करने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं रहता। फलतः कृष्ण उसकी सहायता करने के लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं। यह वर श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को दिया था, जो कि वैष्णव स्मृति लिखने के अधिकारी थे। सनातन गोस्वामी भगवान् के शुद्ध भक्त थे और श्री चैतन्य महाप्रभु के आशीर्वाद से वे इस ग्रन्थ को पूर्ण रूप से लिख सके।

तथापि एइ सूत्रेर शुन दिग्दरशन ।

सकारण लिखि आदौ गुरु-आश्रयण ॥ 329॥

तथापि-फिर भी; एइ सूत्रेर–इस ग्रन्थ के सूत्रों का; शुन-सुनो; दिक्-दरशन-संकेत; सकारण-कारण; लिखि-हमें लिखना चाहिए; आदौ-प्रारम्भ में; गुरु-आश्रयण–प्रामाणिक गुरु के निर्देश में।

अनुवाद

"चूँकि तुमने मुझसे संक्षेप रूपरेखा प्रदान करने के लिए कहा है, अतः इन कुछ संकेतों को सुनो। प्रारम्भ में यह बताओ कि प्रामाणिक गुरु की शरण किस तरह ग्रहण करनी चाहिए।"

गुरु-लक्षण, शिष्य-लक्षण, दोंहार परीक्षण।

सेव्य—भगवान्, सर्व-मन्त्र-विचारण॥ 330॥

गुरु-लक्षण-एक प्रामाणिक गुरु के लक्षण; शिष्य-लक्षण--एक प्रामाणिक शिष्य के लक्षण; दोंहार-दोनों की परीक्षण–परीक्षा; सेव्य-भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पूजनीय हैं; सर्व-मन्त्र-विचारण–विभिन्न मन्त्रों के विचार के अनुसार।

अनुवाद

"तुम्हारी पुस्तक में प्रामाणिक गुरु तथा प्रामाणिक शिष्य दोनों के लक्षण दिये जाने चाहिए। तब गुरु स्वीकार करने के पूर्व मनुष्य गुरु की स्थिति के विषय में आश्वस्त हो सकता है। इसी तरह गुरु शिष्य की स्थिति के बारे में आश्वस्त हो सकता है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को आराध्य या सेव्य के रूप में वर्णित किये जाने चाहिए और तुम्हें कृष्ण, राम या भगवान् के अन्य किसी अंश की पूजा के बीजमन्त्र पर विचार करना चाहिए।"

तात्पर्य

पद्म पुराण में प्रामाणिक गुरु के लक्षणों का वर्णन हुआ है :

महाभागवतश्रेष्ठो ब्राह्मणो वै गुरुर्नृणाम्।

सर्वेषामेव लोकानाम् असौ पूज्यो यथा हरिः ॥

महाकुलप्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।

सहस्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः ॥

गुरु को भक्ति के सर्वोच्च पद पर स्थित होना चाहिए। भक्तों की तीन कोटियाँ होती हैं और गुरु को सर्वोच्च कोटि से स्वीकार करना चाहिए। उच्च कोटि का भक्त सभी तरह के लोगों का गुरु होता है। कहा गया है-गुरुनृणाम्। नृणाम् का अर्थ है 'सारे मनुष्यों का।' गुरु किसी समूह विशेष तक ही सीमित नहीं होता है। रूप गोस्वामी कृत उपदेशामृत में कहा गया है कि गुरु गोस्वामी होता है-अर्थात् इन्द्रियों तथा मन का नियन्त्रक होता है। ऐसा गुरु विश्वभर में शिष्य बना सकता है। पृथिवीं स शिष्यात्। यही गुरु की परीक्षा है।

भारत में ऐसे अनेक तथाकथित गुरु हैं, जो किसी जनपद या प्रान्त तक ही सीमित हैं। वे भारत तक का भ्रमण नहीं करते, फिर भी वे अपने आपको जगद्गुरु घोषित करते हैं। ऐसे प्रवंचक गुरुओं को स्वीकार नहीं करना चाहिए। प्रामाणिक गुरु जिस तरह विश्वभर में शिष्य बनाता है इसे कोई भी देख सकता है। गुरु योग्य ब्राह्मण होता है, अत: वह ब्रह्म तथा परब्रह्म को जानता है। इस तरह वह परब्रह्म की सेवा में अपना जीवन लगा देता है। जो प्रामाणिक गुरु विश्वभर में शिष्य बनाता है, वह अपने गुणों के कारण विश्वभर में पूजा जाता है। लोकानामसौ पूज्यो यथा हरिः-संसार के लोग उसको भगवान् के समान पूजते हैं। उसे ये सारे सम्मान इसीलिए दिये जाते हैं, क्योंकि वह ब्राह्मण-नियमों का पूरी तरह पालन करता है और अपने शिष्यों को इन नियमों की शिक्षा देता है। ऐसा व्यक्ति आचार्य कहलाता है, क्योंकि वह भक्ति के नियमों को जानता है, स्वयं उन्हीं के अनुसार आचरण करता है और अपने शिष्यों को अपने पदचिह्नों का अनुसरण करने की शिक्षा देता है। इस तरह वह आचार्य या जगद्गुरु होता है। कोई भले ही ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ हो और यज्ञ करने में अत्यन्त दक्ष हो, किन्तु यदि वह दृढ़ वैष्णव नहीं है, तो उसे गुरु नहीं स्वीकार किया जा सकता। गुरु योग्यता के बल पर ब्राह्मण होता है और

वह अन्यों को शास्त्रीय सिद्धान्तों तथा ब्राह्मण-गुणों के आधार पर ब्राह्मण बना सकता है। ब्राह्मणत्व वंशानुगत नहीं होता है। श्रीमद्भागवत (7.11.35) में श्री नारद मुनि महाराज युधिष्ठिर को बतलाते हैं कि ब्राह्मण क्या है। वे बतलाते हैं कि यदि क्षत्रियों, वैश्यों या शूद्रों में ब्राह्मण गुण पाये जाएँ, तो उन्हें ब्राह्मण के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। इस प्रसंग में श्रील श्रीधर स्वामी की टिप्पणी है- शमादिभिरेव ब्राह्मणादि-व्यवहारो मुख्यः न जातिमात्रादीत्याह-यस्येति। यद् यदि अन्यत्र वर्णान्तरेऽपि दृश्येत, तद्वर्णान्तरं तेनैव लक्षणनिमित्तेनैव वर्णेन विनिर्दिशेत्, न तु जाति निमित्तेनेत्यर्थः। "यह निर्णय करने के लिए कि किसी के साथ ब्राह्मण या किसी अन्य वर्ण जैसा व्यवहार किया जाए, सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसमें आत्म-संयम या ऐसे ही ब्राह्मण के गुण उपस्थित हैं या नहीं। हमें जन्म जैसे बाहरी लक्षणों के अनुसार निर्णय नहीं करना चाहिए। यह भागवत (7.11.35) के यस्य से प्रारम्भ होने वाले श्लोक में वर्णित है। यदि एक वर्ण के गुण किसी दूसरे वर्ण में उत्पन्न व्यक्ति में दिखते हैं, तो उसका पद उसके गुणों के वर्ण पर माना जाना चाहिए न कि उसके जन्म के वर्ण पर।"

महाभारत के भाष्यकार नीलकण्ठ ने भी ऐसा ही वक्तव्य दिया है :

शूद्रोऽपि शमाद्युपेतो ब्राह्मण एव ।

ब्राह्मणोऽपि कामाद्युपेतः शूद्र एव ॥

"कोई भले ही शूद्र-कुल में क्यों न उत्पन्न हो, किन्तु यदि उसमें शम (मन का संयम) इत्यादि ब्राह्मण-गुण पाये जाते हैं, तो उसे ब्राह्मण के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इसी तरह ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न व्यक्ति यदि काम इत्यादि गुणों से युक्त है, तो उसे शूद्र मानना चाहिए।" ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होने के आधार पर ही किसी को अपने आपको ब्राह्मण के रूप में प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। उसे शास्त्रों में, विशेषतया भगवद्गीता (18.42) में उल्लिखित ब्राह्मण-गुणों से मण्डित होना चाहिए।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

“शान्तिप्रियता, आत्मसंयम, तपस्या, शुद्धता, सहनशीलता, सत्यनिष्ठा, ज्ञान, विज्ञान तथा धार्मिकता- ये स्वाभाविक गुण हैं, जिनके द्वारा ब्राह्मण कार्य करते हैं।”

जब तक कोई व्यक्ति इन सारे गुणों से मण्डित नहीं हो, तब तक उसे ब्राह्मण के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह केवल ब्राह्मण-कुल में जन्म लेने की बात नहीं है। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि यद्यपि नरोत्तम दास ठाकुर तथा श्यामानन्द गोस्वामी ब्राह्मण-कुलों में नहीं जन्मे थे, किन्तु उन्हें प्रामाणिक गुरु के रूप में स्वीकार किया जाता है, क्योंकि वे अपने गुणों से ब्राह्मण थे। ब्राह्मण-कुलों में जन्में महापुरुषों यथा श्री गंगानारायण, रामकृष्ण तथा अनेक अन्य लोगों ने इन दोनों को-नरोत्तम दास ठाकुर तथा श्यामानन्द गोस्वामी को अपने गुरु रूप में स्वीकार किया।

महाभागवत वह है, जो अपने शरीर पर तिलक लगाता है और जिसके नाम के साथ लगा ‘दास’ शब्द कृष्ण का दास लगा होना सूचित करता है। वह प्रामाणिक गुरु से दीक्षित होता है और श्रीविग्रह का अर्चन करने, मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण करने, यज्ञ करने, भगवान् की स्तुति करने तथा संकीर्तन करने में दक्ष होता है। वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा करना तथा वैष्णव का सम्मान करना जानता है। जिसने महाभागवत का सर्वोच्च पद प्राप्त किया हो, उसे गुरु के रूप में स्वीकार करके उसकी पूजा हरि के ही समान करनी चाहिए। केवल ऐसा व्यक्ति ही गुरु का स्थान ग्रहण करने के लिए योग्य होता है। यदि कोई अत्यन्त योग्य है, किन्तु वैष्णव नहीं है, तो वह गुरु नहीं बन सकता। जब तक कोई वैष्णव न हो, तब तक वह ब्राह्मण नहीं हो सकता। यदि कोई वैष्णव है, तो वह पहले से ब्राह्मण है। यदि गुरु वैष्णव होने के लिए पूर्णरूपेण योग्य है, तो उसे ब्राह्मण के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए, भले ही उसका जन्म ब्राह्मण कुल में न हुआ हो। प्रामाणिक गुरु पर जन्म के आधार पर ब्राह्मण होने की जाति प्रथा लागू नहीं होती। गुरु योग्य ब्राह्मण तथा आचार्य होता है। यदि कोई योग्य ब्राह्मण नहीं है, तो वह वैदिक साहित्य का अध्ययन करने में दक्ष नहीं होगा। नानाशास्त्रविचारणैकनिपुणौ।

प्रत्येक वैष्णव गुरु होता है और प्रत्येक गुरु स्वतः ब्राह्मण आचरण में दक्ष होता है। वह वैदिक शास्त्रों को भी समझता है।

इसी तरह गुरु को चाहिए कि शिष्य बनाने के पूर्व शिष्य के गुणों की जाँच करे। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में शिष्य को पापी जीवन के चार स्तम्भ स्वरूप मुख्य बातों को त्यागने के लिए प्रस्तुत रहना होता है-अवैध सम्बन्ध, मांसाहार, नशा तथा जुआ खेलना। पाश्चात्य देशों में हम विशेष ध्यान रखते हैं। कि शिष्य नियमों का पालन करने के लिए तैयार है कि नहीं। तब वैष्णवदास के रूप में उसका नामकरण किया जाता है और प्रतिदिन कम से कम सोलह माला हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने के लिए उसे दीक्षित किया जाता है। इस तरह शिष्य को अपने गुरु या उसके प्रतिनिधि की देखरेख में छह मास से लेकर एक वर्ष तक भक्ति करनी होती है। इसके बाद गुरु द्वितीय दीक्षा की संस्तुति करता है, जिसमें शिष्य को यज्ञोपवीत प्रदान किया जाता है और उसे प्रामाणिक ब्राह्मण के रूप में स्वीकार किया जाता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने प्रामाणिक वैष्णव को यज्ञोपवीत प्रदान करने का सूत्रपात किया और हम भी उन्हीं के चरणचिह्नों का अनुसरण कर रहे हैं। श्रीमद्भागवत् (11.10.6) में प्रामाणिक शिष्य के गुणों का वर्णन हुआ है :

अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ।

असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥

शिष्य में निम्नलिखित गुण होने चाहिए : उसे भौतिक देहात्मबुद्धि के प्रति रुचि का परित्याग कर देना चाहिए। उसे भौतिक काम, क्रोध, लोभ, मोह, पागलपन तथा ईर्ष्या का परित्याग कर देना चाहिए। उसे भगवत् विज्ञान को समझने में ही रुचि लेनी चाहिए और इससे सम्बन्धित हर बात पर विचार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि, "मैं यह शरीर हूँ" या "यह वस्तु मेरी है।" उसे गुरु में अटूट श्रद्धा के साथ प्रेम होना चाहिए और उसे स्थिर-चित्त होना चाहिए। प्रामाणिक शिष्य को दिव्य विषयों को समझने के प्रति जिज्ञासु होना चाहिए। उसे सद्गुणों में त्रुटियाँ नहीं

निकालनी चाहिए और उसे भौतिक विषयों में रुचि नहीं लेनी चाहिए। उसकी एकमात्र रुचि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण में होनी चाहिए।

जहाँ तक गुरु तथा शिष्य के पारस्परिक परीक्षण का प्रश्न है, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने बताया है कि प्रामाणिक शिष्य को दिव्य विषयों को समझने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहना चाहिए। जैसाकि श्रीमद्भागवत (11.3.21) में कहा गया है :

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।

"जो जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य तथा लाभ को जानने के लिए उत्सुक होता है, उसे गुरु के पास जाकर शरण लेनी चाहिए।" गुरु का चुनाव करते समय गम्भीर शिष्य को सतर्क रहना चाहिए। उसे यह निश्चित कर लेना चाहिए कि वह गुरु उसकी समस्त आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगा। गुरु को देखना चाहिए कि शिष्य कितना जिज्ञासु है और दिव्य विषय को समझने के लिए कितना उत्सुक है। गुरु को शिष्य की उत्सुकता को कम से कम छह मास या एक वर्ष तक परखना चाहिए। गुरु को शिष्य का भौतिक ऐश्वर्य देखकर उसे शिष्य बनाने के लिए उत्सुक नहीं होना चाहिए। कभी-कभी बहुत बड़ा व्यापारी या जमींदार गुरु से दीक्षा लेने पहुँचता है। जिनकी रुचि भौतिकता में होती है, वे विषयी (कर्मी) कहलाते हैं, जो यह सूचित करता है कि वे इन्द्रियतृप्ति के प्रति अत्यन्त आसक्त हैं। ऐसे विषयी कभी-कभी प्रसिद्ध गुरु के पास जाकर फैशन के लिए उनका शिष्य बनना चाहते हैं। कभी-कभी ये विषयी अपने दुष्कर्मों को छिपाने तथा अपने आपको आध्यात्मिक ज्ञान में अग्रणी घोषित करने के लिए विख्यात गुरु का शिष्य बनने का दिखावा करते हैं। दूसरे शब्दों में, वे भौतिक सफलता अर्जित करना चाहते हैं। गुरु को इससे काफी सावधान रहना चाहिए। ऐसा व्यापार विश्वभर में चल रहा है। गुरु किसी समृद्ध शिष्य को यह प्रचारित करने के लिए स्वीकार नहीं करता है कि उसके पास इतना समृद्ध शिष्य है। वह जानता है कि ऐसे विषयी शिष्यों से सम्पर्क रखने से वह नीचे गिर सकता है। जो व्यक्ति किसी विषयी शिष्य को स्वीकार करता है, वह प्रामाणिक गुरु नहीं है। यदि हो भी, तो ऐसे दिखावटी विषयी

शिष्य की संगति से उसकी प्रतिष्ठा को हानि पहुँच सकती है। यदि तथाकथित गुरु अपने निजी लाभ या भौतिक लाभ के लिए शिष्य बनाता है, तो गुरु तथा शिष्य का सम्बन्ध भौतिक व्यापार बन जाता है और गुरु स्मार्तगुरु बनकर रह जाता है। ऐसे अनेक जात-गोस्वामी हैं, जो पेशेवर ढंग से ऐसे शिष्य बनाते हैं, जो न तो उनकी परवाह करते हैं न ही उनके उपदेशों की। ऐसे गुरु अपने शिष्यों से कुछ भौतिक लाभ प्राप्त करके ही सन्तुष्ट रहते हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने ऐसे सम्बन्ध की निन्दा की है और ऐसे गुरुओं तथा शिष्यों को वंचकों तथा वंचितों का समाज कहा है। वे बाउल या प्राकृत सहजिया भी कहलाते हैं। उनका उद्देश्य गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को अत्यन्त सस्ता (बाजारू) बनाना है। उनमें आध्यात्मिक जीवन को समझने के लिए कोई रुचि नहीं रहती।

इस श्लोक में चैतन्य-चरितामृत के शब्द सेव्य भगवान् शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। भगवान् शब्द भगवान् विष्णु का द्योतक है। भगवान् विष्णु ही एकमात्र पूज्य हैं। किसी अन्य देवताओं की पूजा करने की आवश्यकता नहीं है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (7.20) द्वारा होती है।

कामैस्तैस्तैर्हतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।

तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥

"जिनकी बुद्धि भौतिक इच्छाओं के द्वारा चुरा ली गई है, वे देवताओं की शरण में जाते हैं और अपने-अपने स्वभाव के अनुसार पूजा के विशेष विधि-विधानों का पालन करते हैं।"

स्कन्द पुराण में भी कहा गया है :

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते ।

स्वमातरं परित्यज्य स्वपचीं वन्दते हि सः ॥

"जो व्यक्ति देवताओं की पूजा करता है और भगवान् वासुदेव को त्याग देता है, वह उस व्यक्ति के समान है, जो एक डाकिनी की शरण पाने के लिए अपनी माता के संरक्षण को त्याग देता है।"

भगवद्गीता (9.23) में भगवान् कृष्ण द्वारा यह भी कहा गया है :

येऽप्यन्यदेवता-भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

"हे कुन्ती-पुत्र, जो लोग अन्य देवताओं के भक्त हैं और उनकी श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं, वास्तव में वे भी मेरी ही पूजा करते हैं, किन्तु वे इसे त्रुटिपूर्ण ढंग से करते हैं।"

देवता भी जीव हैं और कृष्ण के अंश हैं। अतः जब कोई व्यक्ति देवताओं की पूजा करता है, तो एक प्रकार से वह कृष्ण की ही पूजा करता है, किन्तु सही ढंग से नहीं करता। वृक्ष को जल सिंचने की एक उचित विधि होती है-यह विधि है, वृक्ष की जड़ में पानी डालना। किन्तु यदि कोई इसके बदले पत्तियों तथा शाखाओं को सींचता है, तो वह व्यर्थ में अपना समय ही नष्ट करता है। यदि कोई व्यक्ति भगवान् विष्णु को छोड़कर देवताओं की पूजा करता है, तो उसे जो फल प्राप्त होगा वह केवल भौतिक होगा। भगवद्गीता (7.23) में भगवान् कृष्ण द्वारा पुष्टि हुई है कि :

अन्तवत्तु फलं तेषां तद् भवत्यल्पमेधसाम् ।

देवान् देव यजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥

"अल्पबुद्धि वाले व्यक्ति देवताओं की पूजा करते हैं और उन्हें प्राप्त होने वाले फल सीमित तथा क्षणिक होते हैं। देवताओं की पूजा करने वाले देवलोक को जाते हैं, किन्तु मेरे भक्त अन्ततः मेरे परम धाम को प्राप्त होते हैं।"

देवताओं की पूजा अज्ञानियों के लिए है, क्योंकि देव-पूजा से मिलने वाले लाभ भौतिक, क्षणिक तथा परिवर्तनशील होते हैं। पद्मपुराण में यह भी कहा गया है कि :

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः ।

समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम् ॥

“जो भी भगवान् विष्णु तथा देवताओं को समकक्ष मानता है, आध्यात्मिक ज्ञान के आधार पर उसको धूर्त ही मानना चाहिए।”

भौतिक जगत् में प्रकृति के तीन गुण हैं, किन्तु जब कोई अध्यात्म को प्राप्त होता है, तो वह इस भौतिक जगत् में रहते हुए भी तीनों गुणों से ऊपर होता है। जैसाकि भगवान् कृष्ण ने भगवद्गीता (14.26) में कहा है :

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।

स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

“जो समस्त परिस्थितियों में ऐकान्तिक भाव से पूर्ण भक्ति में प्रवृत्त होता है, वह तुरन्त ही भौतिक प्रकृति के गुणों को लाँघ जाता है और इस प्रकार ब्रह्म पद तक पहुँच जाता है।” भौतिक चेतना में कोई चाहे सत्त्वगुण के पद पर ही स्थित क्यों न हो, उसके रजो तथा तमो गुणों द्वारा कलुषित होने की सम्भावना बनी रहती है। जब सत्त्वगुण रजोगुण से मिला रहता है, तब मनुष्य सूर्यदेव विवस्वान की पूजा करता है। जब सत्त्वगुण तमोगुण से मिला रहता है, तब वह गणपति अथवा गणेश की पूजा करता है। जब रजोगुण तमोगुण से मिल जाता है, तब वह दुर्गा या काली की पूजा करता है, जो भगवान् की बहिरंगाशक्ति है। जब कोई तमोगुण को प्राप्त होता है, तब वह शिवजी का भक्त बन जाता है, क्योंकि शिवजी इस भौतिक जगत् में तमोगुण के अधिष्ठाता हैं। किन्तु जब कोई व्यक्ति भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के प्रभाव से सर्वथा मुक्त रहता है, तब वह भक्ति के स्तर पर शुद्ध वैष्णव बन जाता है। जैसाकि श्रील रूप गोस्वामी ने भक्तिरसामृतसिन्धु (1.1.11) में कहा है :

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम् ।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

“मनुष्य को भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति अनुकूल भाव से और सकाम कर्मों या दार्शनिक चिन्तन द्वारा भौतिक लाभ प्राप्त करने की इच्छा के बिना करनी चाहिए। यह शुद्ध भक्ति कहलाती है।”

विशुद्ध सत्त्व की स्थिति अकलुषित सत्त्वगुण की स्थिति है। उस पद पर रहकर मनुष्य समझ सकता है कि-आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनम्–“नन्द महाराज के पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को उनके दिव्य धाम वृन्दावन समेत पूजना चाहिए।”

इस श्लोक में आये शब्दों सर्वमन्त्र विचारण का अर्थ है, “विभिन्न प्रकार के मन्त्रों पर विचार करके।” विभिन्न प्रकार के भक्तों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के मन्त्र होते हैं। ऐसा मन्त्र भी होता है, जो द्वादशाक्षर कहलाता है और यह बारह अक्षरों का होता है। इसी प्रकार 18 अक्षरों वाला मन्त्र भी है। इसी तरह नृसिंह मन्त्र, राम मन्त्र, गोपाल मन्त्र आदि भी हैं। इनमें से प्रत्येक मन्त्र की अपनी अपनी आध्यात्मिक महत्ता है। गुरु अपने शिष्य की विभिन्न मन्त्र जपने की क्षमता के अनुसार कोई एक मन्त्र चुनता है।

मन्त्र-अधिकारी, मन्त्र-सिद्ध्यादि-शोधन।

दीक्षा, प्रातः-स्मृति-कृत्य, शौच, आचमन॥ 331॥

मन्त्र-अधिकारी-मन्त्र दीक्षा प्राप्त करने का अधिकारी; मन्त्र-सिद्धि-आदि-मन्त्र की सिद्धि आदि; शोधन–शुद्धीकरण; दीक्षा-दीक्षा; प्रातः-स्मृति-कृत्य-प्रातः कृत्य तथा भगवान् का स्मरण; शौच-शुचि; आचमन-आचमन (मुख तथा अन्य अंगों को धोना)।

अनुवाद

“तुम्हें मन्त्र प्राप्त करने के लिए आवश्यक योग्यताएँ, मन्त्र की सिद्धि, मन्त्र की शुद्धि, दीक्षा, प्रातःकालीन कर्म, भगवान् का स्मरण, शुद्धता तथा मुख एवं शरीर के अन्य भागों की शुद्धता के विषय में चर्चा करनी चाहिए।”

तात्पर्य

हरिभक्ति-विलास (1.194) में मन्त्र अधिकारी के विषय में निम्नलिखित आदेश प्राप्त है :

तान्त्रिकेषु च मन्त्रेषु दीक्षायां योषितामपि ।

साध्वीनामधिकारोऽस्ति शूद्रादीनां च सद्धियाम् ॥

"शूद्र तथा परम सत्य को जानने के लिए गम्भीर साध्वी स्त्रियाँ पांचरात्रिक मन्त्रों द्वारा दीक्षा प्राप्त करने के योग्य हैं।" इसकी पुष्टि भगवद्गीता (9.32) में भगवान् कृष्ण द्वारा हुई है :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिं ।

"हे पार्थ, जो लोग मेरी शरण ग्रहण करते हैं, वे भले ही निम्न जन्मा-स्त्री, वैश्य तथा शूद्र-क्यों न हों, वे भी परम गन्तव्य को प्राप्त कर सकते हैं।"

यदि कोई सचमुच ही कृष्ण की सेवा करना चाहता है, तो उसके लिए शूद्र, वैश्य या स्त्री होने से कोई व्यवधान नहीं पड़ता। यदि कोई निष्ठापूर्वक हरे कृष्ण मन्त्र या दीक्षा मन्त्र का जप करना चाहता है, तो पाञ्चरात्रिक विधि के अनुसार वह दीक्षा प्राप्त करने के योग्य है। किन्तु वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार, केवल ब्राह्मण जो वृत्तिपरक कर्म में पूरी तरह लगा रहता है, दीक्षित किया जा सकता है। शूद्रों तथा स्त्रियों को वैदिक दीक्षा में प्रवेश नहीं दिया जाता। जब तक गुरु की दृष्टि में कोई योग्य नहीं होता, तब तक वह पांचरात्रिक विधि या वैदिक विधि से मन्त्र स्वीकार नहीं कर सकता। जब वह मन्त्र ग्रहण करने के योग्य बनता है, तो उसे पाञ्चरात्रिक विधि या वैदिक विधि से दीक्षा दी जाती है। प्रत्येक दशा में परिणाम वही निकलता है।

मन्त्र-सिद्धि आदि शोधन अर्थात् मन्त्र की शक्ति के विषय में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने सोलह विभाग दिये हैं, जिनकी पुष्टि हरिभक्ति-विलास में (1.204 से प्रारम्भ होकर) की गई है।

सिद्धसाध्यसुसिद्धारिक्रमाज्ज्ञेयो विचक्षणैः

ये सोलह विभाग चार सिद्धान्तों के अनुसार विभाजित किए गये हैं : (1) सिद्ध, (2) साध्य, (3) सुसिद्ध तथा (4) अरि। इन चारों को पुनः विभाजित किया जा सकता है : (1) सिद्ध-सिद्ध, (2) सिद्ध-साध्य, (3) सिद्ध-सुसिद्ध, (4) सिद्ध-अरि, (5) साध्य-सिद्ध, (6) साध्य-साध्य, (7) साध्य-सुसिद्ध, (8) साध्य-अरि, (9) सुसिद्ध-सिद्ध, (10) सुसिद्ध-साध्य, (11) सुसिद्ध-सुसिद्ध, (12) सुसिद्ध-अरि, (13) अरि-सिद्ध, (14) अरि-साध्य, (15) अरि-सुसिद्ध तथा (16) अरि-अरि।

जो लोग अठारह अक्षरों वाले मन्त्र से दीक्षित किये जाते हैं, उन्हें उपर्युक्त सोलह विभाजनों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जैसाकि हरिभक्ति-विलास (1.215, 219, 220) में कहा गया है :

न चात्र शात्रवा दोषा नर्णस्वादिविचारणा ।

ऋक्षराशिविचारो वा न कर्तव्यो मनौ प्रिये ॥

नात्र चिन्त्योऽरिशुद्धयादिर्नारिमित्रादिलक्षणम् ।

सिद्धसाध्यसुसिद्धारिरूपा नात्र विचारणा ॥

मन्त्र का शोधन अर्थात् शुद्धीकरण होता है, किन्तु कृष्ण-मन्त्र में ऐसा आवश्यक नहीं है। बलित्वात् कृष्णमन्त्राणां संस्कारापेक्षणं न हि—"कृष्ण-मन्त्र इतना प्रबल है कि उसके शोधन का प्रश्न ही नहीं उठता।" (1.235)

दीक्षा के लिए मध्यलीला (15.108) देखनी चाहिए। जब मनुष्य पाञ्चरात्रिक विधि से दीक्षित हो जाता है, तो वह पहले ही ब्राह्मण-पद को प्राप्त हो चुका होता है। इसका आदेश हरिभक्ति-विलास (2.12) में दिया हुआ है :

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः ।

तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥

"जिस तरह काँसे को पारे के उपचार से सोने में बदला जा सकता है, उसी तरह प्रामाणिक गुरु द्वारा दीक्षित शिष्य तुरन्त ही ब्राह्मण-पद को प्राप्त कर लेता है।"

दीक्षा का समय गुरु पर आश्रित है। ज्योंही संयोगवश या योजना के अधीन गुरु से भेंट हो, व्यक्ति को तुरन्त दीक्षा ग्रहण कर लेनी चाहिए। तत्त्वसागर नामक पुस्तक में कहा गया है कि :

दुर्लभे सद्गुरूणां च सकृत्संग उपस्थिते।

तदनुज्ञा यदा लब्धा स दीक्षावसरो महान्।

ग्रामे वा यदि वारण्ये क्षेत्रे वा दिवसे निशि

आगच्छति गुरुर्दैवाद् यथा दीक्षा तदाज्ञया।

यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः

न तीर्थं न व्रतं हेमो न स्नानं न जपक्रिया।

दीक्षायाः करणं किन्तु स्वेच्छाप्राप्ते तु सद्गुरौ॥

"यदि संयोगवश किसी को सद्गुरु मिल जाता है, तो चाहे वह मन्दिर में हो या जंगल में इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि सद्गुरु अर्थात् प्रामाणिक गुरु मान जाए तो व्यक्ति को उपयुक्त समय या स्थान की प्रतीक्षा किये बिना तुरन्त ही दीक्षा ले लेनी चाहिए।"

प्रातः-स्मृति के लिए प्रात:काल (ब्राह्ममुहूर्त) में उठना चाहिए और तुरन्त हरे कृष्ण-मन्त्र या कम से कम "कृष्ण कृष्ण कृष्ण" का उच्चारण करना चाहिए। इस तरह कृष्ण का स्मरण करना चाहिए। कुछ श्लोक या स्तुतियाँ भी उच्चारण की जानी चाहिए। कीर्तन करने से मनुष्य तुरन्त पवित्र हो जाता है और भौतिक गुणों के दोष से ऊपर उठ जाता है। वस्तुतः मनुष्य को चौबीसों घण्टे या जितना अधिक से अधिक सम्भव हो, कृष्ण का कीर्तन और स्मरण करना चाहिए :

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मतव्यो न जातुचित्।

सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः॥

“कृष्ण भगवान् विष्णु के उद्गम हैं। उनका सदैव स्मरण करना चाहिए और उन्हें क्षण-भर के लिए भी नहीं भुलाना चाहिए। शास्त्रों में उल्लिखित सारे नियम तथा निषेध इन दोनों नियमों के अधीन होने चाहिए।” यह उद्धरण पद्मपुराण के बृहत्-सहस्रनामस्तोत्र नामक खण्ड में से है।

चैतन्य-चरितामृत के इस श्लोक में आये शब्द प्रात:कृत्य का अर्थ यह है। कि प्रातः नित्य शौच के बाद स्नान करना चाहिए। मनुष्य को कुल्ला करना (आचमन) तथा दाँत साफ करना (दन्त-धावन) चाहिए। चाहे इसे दातुन से या ब्रश से करें-जो भी उपलब्ध हो। इससे मुँह साफ होगा। फिर स्नान करना चाहिए। वास्तव में गृहस्थों तथा वानप्रस्थों को दिन में दो बार स्नान करना चाहिए (प्रातर्मध्याह्नयोः स्नानां वानप्रस्थगृहस्थयोः)। संन्यासी को हररोज तीन बार स्नान करना चाहिए और ब्रह्मचारी केवल एक बार स्नान कर सकता है। जब कोई जल से स्नान न कर सके तो वह हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन द्वारा स्नान कर सकता है। उसे सन्ध्यादि वन्दन भी करना चाहिए-अर्थात् दिन में तीन बार-प्रातः, दोपहर तथा शाम को गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिए।

दन्त-धावन, स्नान, सन्ध्यादि वन्दन ।

गुरु-सेवा, ऊर्ध्व-पुण्ड्-चक्रादि-धारण ॥ 332॥

दन्त-धावन–दाँत धोना; स्नान-स्नान करना; सन्ध्या-आदि वन्दन-सन्ध्या वन्दन (मन्त्रों का नियमित जप); गुरु-सेवा-गुरु की सेवा; ऊर्ध्व-पुण्ड्-ऊर्ध्व दिशा में सीधा तिलक लगाना; चक्र-आदि-धारण-शरीर पर भगवान् के नाम तथा चिह्न बनाना।

अनुवाद

“तुम्हें यह वर्णन करना चाहिए कि प्रात:काल नियमित रूप से भक्त किसी तरह अपने दाँत साफ करे, स्नान करे, भगवान् की स्तुति करे और गुरु को नमस्कार करे। तुम्हें इसका भी वर्णन करना चाहिए कि वह गुरु की सेवा कैसे करे और अपने शरीर के बारह स्थानों पर

ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) लगाये और वह अपने शरीर पर भगवान् के पवित्र नामों को या भगवान् के चिह्नों—चक्र, गदा आदि—को कैसे अंकित करे।"

गोपीचन्दन-माल्य-धृति, तुलसी-आहरण ।

वस्त्र-पीठ-गृह-संस्कार, कृष्ण-प्रबोधन ॥ 333॥

गोपी-चन्दन-गोपीचन्दन (वृन्दावन तथा द्वारका में उपलब्ध); माल्य-गले में कंठीमाला; धृति-धारण करके; तुलसी-आहरण-तुलसी पत्र एकत्रित करना; वस्त्र-वस्त्र; पीठ–मन्दिर; गृह-घर; संस्कार–साफ करना; कृष्ण-प्रबोधन-भगवान् कृष्ण के विग्रह को जगाना।

अनुवाद

"इसके बाद तुम्हें यह वर्णन करना चाहिए कि भक्त को किस तरह शरीर को गोपीचन्दन से सजाना चाहिए, गले में कंठीमाला पहनना, तुलसी के पौधे से तुलसी दल एकत्र करना, अपने वस्त्र तथा वेदी को स्वच्छ करना, अपना घर साफ करना, मन्दिर जाना तथा किस तरह भगवान् कृष्ण का ध्यान आकृष्ट करने के लिए घंटा बजाना चाहिए।"

पञ्च, षोड़श, पञ्चाशत् उपचारे अर्चन ।

पञ्च-काल पूजा आरति, कृष्णेर भोजन-शयन ॥ 334॥

पञ्च–पाँच; षोड़श-सोलह; पञ्चाशत्-पचास; उपचारे-सामग्रियों के साथ; अर्चन-अर्चना; पञ्च-काल-पाँच समय; पूजा-पूजा; आरति-आरती; कृष्णेर भोजन-शयन-कृष्ण को भोजन अर्पित करना तथा विश्राम करवाना।

अनुवाद

"इसके उपरान्त तुम श्रीविग्रह की पूजा का भी वर्णन करना, जिसमें दिन में कम से कम पाँच बार कृष्ण को भोजन अर्पित किया जाए; कृष्ण को निश्चित समय में सुलाया जाए।

तुम पाँच, सोलह या पचास वस्तुओं की सूची के अनुसार भगवान् की पूजा तथा आरती करने की विधि का भी वर्णन करना।"

तात्पर्य

अर्चाविग्रह की पूजा के लिए पाँच वस्तुएँ ये हैं (1) सुगन्ध, (2) उत्तम फूल, (3) अगुरु (अगरबत्ती), (4) दीपक तथा (5) कोई खाद्य वस्तु षोडशोपचार में सोलह वस्तुएँ होती हैं (1) आसन अर्पण करना, (2) कृष्ण को बैठने के लिए कहना, (3) अर्घ्य अर्पण करना, (4) पादप्रक्षालन के लिए जल देना, (5) मुख धोना, (6) मधुपर्क अर्पण करना, (7) मुँह धोने के लिए पानी देना (आचमन), (8) स्नान कराना, (9) वस्त्र अर्पित करना, (10) भगवान् के शरीर को आभूषणों से सजाना, (11) सुगन्ध अर्पित करना, (12) सुगन्धित पुष्प-यथा गुलाब या चम्पक के फूल अर्पण करना, (13) अगुरु (अगरबत्ती) भेंट करना, (14) दीपक भेंट करना, (15) अच्छा भोजन भेंट करना तथा (16) स्तुति करना।

हरिभक्ति-विलास (ग्यारहवाँ विलास, श्लोक 127-140) में श्रीविग्रह की पूजा के लिए जो-जो सामग्री चाहिए, उसका विस्तृत वर्णन किया गया है। उसमें चौंसठ वस्तुओं का वर्णन मिलता है। मन्दिर में पूजा इतनी भव्य होनी चाहिए कि भगवान् की तुष्टि के लिए चौसठों वस्तुएँ उपलब्ध हों। कभी-कभी चौसठों वस्तुएँ जुटा पाना कठिन हो जाता है, अतः हम यह संस्तुति करते हैं कि कम से कम स्थापना के प्रथम दिवस ये सभी वस्तुएँ उपलब्ध कराई जाएँ। भगवान् की स्थापना हो जाने के बाद जहाँ तक सम्भव हो सके, पूजा में इन चौंसठों वस्तुओं का प्रयोग चालू रखा जाए। ये चौंसठ वस्तुएँ हैं। (1) मन्दिर कक्ष के सम्मुख एक बड़ा-सा घंटा लगाना चाहिए, जिससे आने वाला हर व्यक्ति उस घंटे को बजा सके। यह प्रबोधन अर्थात् भगवान् के समक्ष अपने आपको विनयपूर्वक अर्पण करना कहलाता है। यह पहली वस्तु है। (2) दर्शक घंटा बजाते समय "जय श्री राधागोविन्द!" या "जय श्री राधामाधव!" कहे। प्रत्येक दशा में वह जय अवश्य कहे। (3) दर्शक तुरन्त दण्डवत् प्रणाम करे। (4)

प्रात:काल, सूर्योदय से डेढ़ घंटा पूर्व मन्दिर में नियम से मंगल-आरती हो। (5) वेदी के समक्ष आसन हो। यह आसन गुरु के लिए होता है। शिष्य सारी वस्तुएँ गुरु के समक्ष लाता है और गुरु सारी वस्तुएँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को अर्पित करता है। (6) मंगल आरती के बाद, अर्चाविग्रह को दाँत साफ करना होता है, इसलिए दातुन भेंट की जाए। (7) अर्चाविग्रह के चरण धोने के लिए जल दिया जाए। (8) अर्घ्य दिया जाए। (9) आचमन के लिए जल दिया जाए। (10) मधुपर्क (एक कटोरे में शहद, थोड़ा घी, थोड़ा जल, थोड़ी चीनी, दही तथा दूध) दिया जाए। इसे मधुपर्क आचमन कहते हैं। (11) भगवान् के समक्ष खड़ाऊँ रखे जाएँ। (12) भगवान् के शरीर की मालिश की जाए। (13) भगवान् के शरीर पर तेल मला जाए। (14) मुलायम गीले स्पंज से भगवान् के शरीर से तेल को पोंछा जाए। (15) सुगन्धित जल से भगवान् को स्नान कराया जाए (जिसमें सुगन्धित पुष्पों को लम्बे समय तक डूबाये गये हों)। (16) जल से स्नान कराने के बाद दुग्ध से स्नान कराया जाए। (17) इसके बाद दही से स्नान कराया जाए। (18) तब घी से स्नान कराया जाए। (19) तब शहद से स्नान कराया जाए। (20) तब चीनी घुले जल से स्नान कराया जाए। (21) तब अर्चाविग्रह को जल से धोकर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण किया जाए :

चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष

लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।

लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(22) भगवान् के सारे शरीर को तौलिए से पोंछकर सुखायें। (23) भगवान् के शरीर में नया वस्त्र पहनायें। (24) जनेऊ पहनायें। (25) मुँह साफ करने के लिए जल दिया जाए (आचमन)। (26) सुगन्धित तेल यथा चन्दन के गीले लेप को सारे शरीर पर मला जाए। (27) शरीर में तरह तरह के आभूषण तथा मुकुट पहनाये जाएँ। (28) तब फूल मालाएँ तथा अलंकरण के लिए फूल चढ़ाये जाएँ।

(29) अगुरु (अगरबत्ती) जलायें। (30) दीपक भेंट करें। (31) भगवान् के शरीर को असुर और नास्तिक लोग हानि न पहुँचायें, इसका ध्यान रखा जाए। (32) भगवान् के समक्ष भोजन की भेंट रखी जाए। (33) चबाने के लिए सुवासित मसाला प्रदान किया जाए। (34) पान (ताम्बूल) दिया जाए। (35) उचित समय पर भगवान् के शयन करने का प्रबन्ध हो। (36) भगवान् के बालों को साजा-सँवारा जाए। (37) सुन्दर वस्त्र प्रदान किये जाएँ। (38) सुन्दर मुकुट दिया जाए। (39) वस्त्रों को सुगन्धित बनाया जाए। (40) कौस्तुभ मणि तथा अन्य आभूषण दिये जाएँ। (41) तरह तरह के फूल दिये जाएँ। (42) दूसरी मंगल आरती की जाए। (43) दर्पण दिखाया जाए। (44) सुन्दर पालकी में रखकर भगवान् को वेदी पर लाये जाए। (45) भगवान् को सिंहासन पर बिठाये जाए। (46) पादप्रक्षालन के लिए पुनः जल दिया जाए। (47) खाने के लिए पुनः कुछ दिया जाए। (48) संध्या आरती की जाए। (49) चामर डुलाई जाए और भगवान् के सिर के ऊपर छाता ताना जाए। (50) हरे कृष्ण मन्त्र तथा नियत भजन गाये जाएँ। (51) वाद्ययन्त्र बजाये जाएँ। (52) अर्चाविग्रह के समक्ष नृत्य किया जाए। (53) अर्चाविग्रह की प्रदक्षिणा की जाए। (54) पुनः नमस्कार किया जाए। (55) भगवान् के चरणकमलों पर तरह तरह की स्तुतियाँ की जाएँ। (56) सिर से भगवान् के चरणकमलों का स्पर्श किया जाए-यह प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जाना सम्भव न हो, तो पुजारी इसे अवश्य करे। (57) पिछले दिन अर्पित किये गये पुष्पों का सिर पर स्पर्श किया जाए। (58) भगवान् के शेष प्रसाद को ग्रहण करें। (59) भगवान् के समक्ष बैठे और सोचे कि वह भगवान् के पैर दबा रहा है। (60) भगवान् के शयन के पूर्व उनके बिस्तर को फूलों से सजायें। (61) भगवान् को अपना हाथ अर्पण करें। (62) अर्चाविग्रह को शय्या तक ले जायें। (63) भगवान् के पाँव धोकर शय्या पर बिठायें। (64) शय्या पर लिटाकर उनके पाँव दबायें।

प्रतिदिन अर्चाविग्रह की पाँच बार आरती की जाए–सूर्योदय के पूर्व, प्रात:काल, दोपहर में, संध्या-समय तथा रात्रि में। इसका अर्थ यह है कि पूजा होनी चाहिए तथा वस्त्रों एवं फूलों को बदलते रहना चाहिए। जहाँ तक खाद्य वस्तुओं का सम्बन्ध है, व्यंजन उत्तमोत्तम होने चाहिए। इसमें उत्कृष्ट

चावल, दाल, फल, खीर, तरकारियाँ, लेह्य, पेय तथा चबाने वाले पदार्थ होने चाहिए। अर्चाविग्रह को अर्पित होने वाले खाद्य अद्वितीय होने चाहिए। इस समय यूरोप तथा अमरीका में आर्थिक अभाव नहीं है। लोग निर्धन नहीं हैं, अत: यदि वे अर्चाविग्रह पूजा की इन विधियों का पालन करें, तो वे आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ सकते हैं। जहाँ तक विग्रह को बिस्तर पर रखने का प्रश्न है, यदि अर्चाविग्रह विशाल और भारी हों, तो प्रतिदिन उन्हें हिलाना-डुलाना कठिन होगा। अच्छा यही होगा कि छोटा सा अर्चाविग्रह जिसकी भी पूजा की जाती है, उन्हें सुलाया जाए। जिस मन्त्र का उच्चारण किया जाए वह है-आगच्छ शयनस्थानं प्रियाभिः सह केशव–"हे केशव, श्रीमती राधारानी समेत अपनी शय्या में कृपा करके आइये।" (हरिभक्ति-विलास 11.40)।

अर्चाविग्रह को श्रीमती राधारानी समेत शय्या में सुलाना चाहिए। इसका संकेत वेदी से खड़ाओं को शय्या के पास लाकर दिया जाता है। जब अर्चाविग्रह को लिटा दिया जाता है; तो उनके पाँव दबाये जाने चाहिए। सुलाने के पूर्व अर्चाविग्रह को एक गिलास दूध तथा चीनी पीने को दिया जाना चाहिए। इस गाढे दूध को ग्रहण करने के बाद अर्चाविग्रह को लिटा देना चाहिए और तब पान-सुपारी तथा मसाला खाने को देना चाहिए।

श्री-मूर्ति-लक्षण, आर शालग्राम-लक्षण।

कृष्ण-क्षेत्र-यात्रा, कृष्ण-मूर्ति-दरशन॥ 335॥

श्री-मूर्ति-लक्षण-श्रीविग्रह के लक्षण; आर-तथा; शालग्राम-लक्षण–शालग्राम शिला के लक्षण; कृष्ण-क्षेत्र-यात्रा-वृन्दावन, द्वारका तथा मथुरा जैसे तीर्थों की यात्रा; कृष्ण-मूर्ति-दरशन–मन्दिर के विग्रह के दर्शन।

अनुवाद

"उसमें अर्चाविग्रह तथा शालग्राम शिला के लक्षणों की विवेचन हो। मन्दिर में अर्चाविग्रहों के दर्शन तथा वृन्दावन, मथुरा तथा द्वारक पवित्र स्थानों की यात्रा करने की भी व्याख्या हो।"

नाम-महिमा, नामापराध दूरे वर्जन ।

वैष्णव-लक्षण, सेवापराध-खण्डन ॥ 336॥

नाम-महिमा-हरिनाम की महिमा; नाम-अपराध-पवित्र नामजप में अपराध; दूरे वर्जन-सावधानीपूर्वक त्याग करना; वैष्णव-लक्षण-एक वैष्णव के लक्षण; सेवा-अपराध-खण्डन–श्रीविग्रह की आराधना में अपराध त्यागना।

अनुवाद

"तुम भगवन्नाम की महिमा का वर्णन करना और यह भी लिखना कि भगवन्नाम जपते समय होने वाले अपराधों का सावधानीपूर्वक त्याग करना चाहिए। तुम्हें वैष्णव के लक्षणों का वर्णन करना चाहिए। अर्चाविग्रह की पूजा करते समय होने वाले सभी प्रकार के अपराधों (सेवापराध) को त्याग देने या उन्हें निष्प्रभावित करने की भी विवेचना होनी चाहिए।"

तात्पर्य

भक्त को हरे कृष्ण मन्त्र का जप करते समय होने वाले दस अपराधों से बचने के लिए अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। यदि भक्त अर्चाविग्रह-पूजा की विधियों का दृढ़ता से पालन करता है, तो वह शीघ्र ही शुद्ध वैष्णव बन जाता है। शुद्ध वैष्णव को भगवान् पर अचल श्रद्धा होती है और वह रंचमात्र भी विचलित नहीं होता। वह सदैव अर्चाविग्रह पूजन में पूर्णत: लगा रहता है।

अर्चाविग्रह पूजा के विरुद्ध विशिष्ट अपराधों का भी उल्लेख करना चाहिए। इनका उल्लेख स्वयं व्यासदेव ने स्कंद पुराण (अवन्ती खण्ड) में किया है। मनुष्य को सभी प्रकार के अपराधों को समाप्त कर देना चाहिए।

जहाँ पर्याप्त मात्रा में तुलसी दल उपलब्ध हों, वहाँ शालग्राम शिला की पूजा तुलसी दल से की जानी चाहिए। इस्कान के सारे मन्दिरों में शालग्राम शिला के पूजन का सूत्रपात होना चाहिए। शालग्राम शिला भगवान् की कृपा का रूप है। ऊपर बताई गई 64 सामग्रियों से अर्चाविग्रह की पूजा करना कठिन कार्य हो सकता है, किन्तु भगवान् इतने लघु हो गये हैं कि कोई भी व्यक्ति किसी भी मन्दिर में शालग्राम शिला का पूजन करके वही कार्यकलाप सम्पन्न कर सकता है।

श्रीविग्रह की सेवा में बत्तीस अपराध इस प्रकार हैं, जिनसे बचना चाहिए-(1) सवारी पर चढ़कर मन्दिर में प्रवेश न करें। मन्दिर में प्रवेश करने के पूर्व जूते-चप्पल उतार दें। (2) अर्चाविग्रह को देखते ही नमस्कार करें। (3) स्नान करके मन्दिर में प्रवेश करें, अर्थात् मनुष्य को अत्यधिक स्वच्छ रहना चाहिए। (4) एक हाथ से भगवान् को नमस्कार न करें। (5) अर्चाविग्रह के सामने अन्य देवी-देवताओं की परिक्रमा न करें। (6) अर्चाविग्रह के समक्ष पाँव न पसारें। (7) अपने पाँवों को हाथ से न छुएँ। (8) अर्चाविग्रह के समक्ष लेटें नहीं। (9) अर्चाविग्रह के समक्ष खाये नहीं। (10) अर्चाविग्रह के समक्ष झूठ न बोलें। (11) अर्चाविग्रह के समक्ष जोर से न बोलें। (12) अर्चाविग्रह के समक्ष व्यर्थ की बातें न करें। (13) अर्चाविग्रह के समक्ष रोये नहीं। (14) अर्चाविग्रह के समक्ष अन्यों के साथ व्यवहार न करें। (15) अर्चाविग्रह के समक्ष कटुवचन न बोलें। (16) विग्रह के सामने कंबल न ओढ़े। (17) विग्रह के सामने अन्यों से ईर्ष्यालु होकर बातें न करें। (18) विग्रह के सामने अन्यों की प्रशंसा न करें। (19) विग्रह के सामने गाली-गलौज न करें। (20) अर्चाविग्रह के सामने वायुत्याग न करें। (21) अर्चाविग्रह की पूजा की चौंसठ वस्तुओं की उपेक्षा न करें। (22) अर्चाविग्रह को भोग लगाये बिना कुछ न खायें। (23) मौसमी फल उपलब्ध होने पर तुरन्त उन्हें भोग लगाने से न चूकें। (24) अर्चाविग्रह को ताजे, अछूते फल अर्पित करें। (25) अर्चाविग्रह की ओर पीठ करके न बैठे। (26) अर्चाविग्रह के

समक्ष अन्यों को नमस्कार न करें। (27) अपने गुरु की अनुमति के बिना अर्चाविग्रह के निकट न बैठे। (28) विग्रह के सामने आत्म-प्रशंसा सुनकर गर्वित न हों। (29) देवताओं की निन्दा न करें। (30) अर्चाविग्रहों के समक्ष अन्यों के प्रति निष्ठुर न बनें। (31) मन्दिर के सारे उत्सव मनायें। (32) अर्चाविग्रह के समक्ष कलह न करें।

शङ्ख-जल-गन्ध-पुष्प-धूपादि-लक्षण ।

जप, स्तुति, परिक्रमा, दण्डवत् वन्दन ॥ 337॥

शङ्ख-शंख को; जल-जल के; गन्ध-गन्ध या (अगरबत्ती); पुष्प-फूलों के; धूप-आदि-धूप आदि के; लक्षण-लक्षण; जप-जप; स्तुति-प्रार्थनाएँ; परिक्रमा-परिक्रमा; दण्डवत्-प्रणाम; वन्दन-वन्दनाएँ।

अनुवाद

"पूजा सामग्री-यथा जल, शंख, फूल, धूप (अगरबत्ती) तथा दीपक का वर्णन किया जाए। तुम धीरे धीरे जप करने, स्तुति करने, प्रदक्षिणा करने तथा नमस्कार करने का भी उल्लेख करना। इन सबका ठीक से वर्णन करना।"

तात्पर्य

ये सारी बातें हरिभक्ति-विलास में वर्णित हैं। सम्भव हो तो इस ग्रन्थ के अष्टम विलास को देखना चाहिए।

पुरश्चरण-विधि, कृष्णप्रसाद-भोजन ।

अनिवेदित-त्याग, वैष्णव-निन्दादि-वर्जन ॥ 338॥

पुरश्चरण-विधि-पुरश्चरण की विधियाँ; कृष्णप्रसाद-भोजन-कृष्ण को अर्पित भोजन का शेष खाना; अनिवेदित-त्याग-भगवान् को अर्पित न किए गये खाद्य का त्याग; वैष्णव-निन्दा-आदि-वर्जन-वैष्णव की निन्दा का पूर्णतया त्याग।

अनुवाद

"अन्य उल्लेखनीय बातें हैं–पुरश्चरण करने की विधि, कृष्णप्रसाद ग्रहण करना, अनिवेदित भोजन का त्याग तथा भगवद्भक्तों की निन्दा न करना।"

तात्पर्य

वैष्णव-निन्दा के लिए मध्यलीला (15.261) देखें।

साधु-लक्षण, साधु-सङ्ग साधु-सेवन ।

असत्सङ्ग-त्याग, श्री-भागवत-श्रवण ॥ 339॥

साधु-लक्षण-एक भक्त के लक्षण; साधु-सङ्ग-भक्तों का संग; साधु-सेवन-भक्तों की सेवा; असत्-सङ्ग-त्याग–अभक्तों के संग का त्याग; श्री-भागवत-श्रवण-नियमित रूप से श्रीमद्भागवत का श्रवण।

अनुवाद

तुम्हें भक्त के लक्षण, भक्तों की संगति करने की विधि, सेवा द्वारा भक्त को प्रसन्न करने की विधि तथा अभक्तों के संग का त्याग करने की विधि का वर्णन करना चाहिए। इसके उपरान्त नियमित रूप में श्रीमद्भागवत्-पाठ श्रवण के महत्त्व की भी व्याख्या होनी चाहिए।

दिन-कृत्य, पक्ष-कृत्य, एकादश्यादि-विवरण ।

मास-कृत्य, जन्माष्टम्यादि-विधि-विचारण ॥ 340॥

दिन-कृत्य-दैनिक कृत्य; पक्ष-कृत्य-पक्ष कृत्य; एकादशी-आदि-विवरण-एकादशी आदि का विवरण; मास-कृत्य-प्रति मास के कर्तव्य; जन्माष्टमी-आदि-जन्माष्टमी आदि का पालन; विधि-विधि का; विचारण-विचार।

अनुवाद

"नित्य कर्तव्यों का वर्णन करना चाहिए और पाक्षिक कृत्य का भी–विशेषतया एकादशी व्रत रखने की विधि का भी वर्णन करना चाहिए। तुम्हें मासिक कृत्यों का, विशेषतया जन्माष्टमी, रामनवमी तथा नृसिंह-चतुर्दशी जैसे उत्सवों को मनाने का भी वर्णन करना चाहिए।"

एकादशी, जन्माष्टमी, वामन-द्वादशी ।

श्री-राम-नवमी, आर नृसिंह-चतुर्दशी ॥ 341॥

एकादशी-एकादशी व्रत; जन्माष्टमी-भगवान् कृष्ण का जन्मोत्सव; वामन-द्वादशी-भगवान् वामन का आविर्भाव दिवस; श्री-राम-नवमी-भगवान् रामचन्द्र का जन्मोत्सव; आर-तथा; नृसिंह-चतुर्दशी-भगवान् नृसिंह का आविर्भाव दिवस।

अनुवाद

"एकादशी, जन्माष्टमी, वामनद्वादशी, रामनवमी तथा नृसिंह-चतुर्दशी-इन सबका वर्णन करना चाहिए।"

एइ सबे विद्धा-त्याग, अविद्धा-करण ।

अकरणे दोष, कैले भक्तिर लम्भन ॥ 342॥

एइ सबे-ये सभी; विद्धा-त्याग–विद्धा या मिश्रित एकादशी का त्याग; अविद्धा-करण-शुद्ध एकादशी का पालन; अकरणे दोष-उन्हें न पालन करने के दोष; कैले–यदि किये जाएँ; भक्तिर लम्भन-भक्ति में कमियाँ आ जायेगीं।

अनुवाद

"तुम्हें संस्तुति करनी चाहिए कि मिश्रित एकादशी से बचा जाए और शुद्ध एकादशी मनाई जाए। तुम्हें इसके न मनाने से होने वाले दोष का भी वर्णन करना चाहिए। इन बातों के विषय में सतर्कता की आवश्यकता है। यदि सतर्क नहीं रहा जायेगा, तो भक्ति की उपेक्षा होगी।"

सर्वत्र प्रमाण दिबे पुराण-वचन।

श्री-मूर्ति-विष्णु-मन्दिर-करण-लक्षण ॥ 343॥

सर्वत्र-सभी जगह; प्रमाण-प्रमाण; दिबे-तुम दो; पुराण-वचन-पुराणों से प्रमाण लेकर; श्री-मूर्ति-श्रीविग्रह; विष्णु-मन्दिर–विष्णु मन्दिर के; करण-लक्षण–निर्माण के लक्षण।

अनुवाद

"तुम वैष्णव-आचरण, वैष्णव-मन्दिरों तथा अर्चाविग्रहों की स्थापना के विषय में या अन्य बातों के विषय में जो भी कहो, उसकी पुष्टि पुराणों के प्रमाण से होनी चाहिए।"

'सामान्य' सदाचार, आर 'वैष्णव'-आचार।

कर्तव्याकर्तव्य सब 'स्मार्त' व्यवहार ॥ 344॥

सामान्य-सामान्य; सत्-आचार-सदाचार; आर-तथा; वैष्णव-भगवान् विष्णु के भक्तों का; आचार-आचरण; कर्तव्य-अकर्तव्य-कर्तव्य और अकर्तव्य; सब-सब; स्मार्त–विधि-निषेध से युक्त; व्यवहार-व्यवहार।

अनुवाद

"तुम्हें वैष्णव के आचरण एवं कार्यों का सामान्य तथा विशिष्ट वर्णन प्रस्तुत करना चाहिए। तुम करणीय तथा अकरणीय बातों की भी रूपरेखा प्रस्तुत करो। इन सबका वर्णन विधि एवं शिष्टाचार के रूप में होना चाहिए।"

एइ सङ्क्षेपे सूत्र कहिलुँ दिग्दरशन ।

यबे तुमि लिखिबा, कृष्ण कराबे स्फुरण ॥ 345॥

एइ-इस प्रकार; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; सूत्र-संकेत; कहिलुँ-मैंने कहा है; दिक्-दरशन-थोड़ा सा निर्देशन; यबे-जब; तुमि-तुम; लिखिबा-लिखोगे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कराबे-करेंगे; स्फुरण-प्रकट।

अनुवाद

"इस प्रकार मैंने वैष्णव विधि-विधानों की संक्षिप्त रूपरेखा दी है। मैंने यह सब संक्षेप में कहा है, जिससे तुम्हें कुछ निर्देश मिल सके। जब तुम इस विषय में लिखोगे, तो कृष्ण तुम्हें आध्यात्मिक रूप से जाग्रत करके तुम्हारी सहायता करेंगे।"

तात्पर्य

कृष्ण तथा गुरु-शिष्य परम्परा के आशीर्वाद के बिना आध्यात्मिक विषयों पर लिखना सम्भव नहीं है। महाजनों के आशीर्वाद ही व्यक्ति के अधिकार-पत्र हैं। श्रेष्ठ जनों द्वारा अधिकृत किये बिना वैष्णव-आचरण तथा कार्यकलापों के विषय में लिखने का प्रयास नहीं करना चाहिए। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (4.2) द्वारा होती है- एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।

एइ त' कहिलु प्रभुर सनातने प्रसाद ।

याहार श्रवणे चित्तेर खण्डे अवसाद ॥ 346 ॥

एइ त'-इस प्रकार; कहिलु-मैंने वर्णन किया है; प्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; सनातने–सनातन गोस्वामी पर; प्रसाद कृपा; याहार श्रवणे-जिसे सुनकर; चित्तेर-मन का; खण्डे-नष्ट हो जाता है; अवसाद-दुःख।

अनुवाद

इस प्रकार मैंने सनातन गोस्वामी पर श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा का वर्णन किया है। जब कोई इन कथाओं को सुनेगा, तो उसके हृदय के सारे कलुष धुल जायेंगे।

निज-ग्रन्थे कर्णपूर विस्तार करिया ।

सनातने प्रभुर प्रसाद राखियाछे लिखिया ॥ 347॥

निज-ग्रन्थे-अपने ग्रन्थ में; कर्णपूर-कवि कर्णपूर ने; विस्तार करिया–विस्तारपूर्वक वर्णन करके; सनातने–सनातन गोस्वामी के प्रति प्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; प्रसाद-कृपा; राखियाछे-रखी है; लिखिया-लिखकर।

अनुवाद

प्रामाणिक कवि कवि-कर्णपूर ने चैतन्य-चन्द्रोदय-नाटक नामक एक ग्रन्थ लिखा है। इसमें बताया गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने किस तरह अपनी विशेष कृपा से सनातन गोस्वामी को आशीर्वाद दिया।

गौड़ेन्द्रस्य सभा-विभूषण-मणिस्त्यक्त्वा य ऋद्धां श्रियं

रूपस्याग्रज एष एव तरुणीं वैराग्य-लक्ष्मीं दधे ।

अन्तर्भक्ति-रसेन पूर्ण-हृदयो बाह्येऽवधूताकृतिः

शैवालैः पिहितं महा-सर इव प्रीति-प्रदस्तद्विदाम् ॥ 348॥

गौड़-इन्द्रस्य-गौड़ देश (बंगाल) के राजा की; सभा–सभा के; विभूषण-आधारभूत; मणिः-हीरे को; त्यक्त्वा -त्यागकर; यः–जो; ऋद्धाम्-ऐश्वर्यपूर्ण; श्रियम्-राजसिक सुखभोग; रूपस्य अग्रजः-श्रील रूप गोस्वामी के बड़े भाई; एषःयह; एव–अवश्य; तरुणीम्-युवती को; वैराग्य-लक्ष्मीम्-वैराग्य के धन को; दधे-स्वीकार किया; अन्तः-भक्ति-रसेन–कृष्ण-प्रेम के आन्तरिक रस से; पूर्ण-हृदयः–पूर्ण रूप से सन्तुष्ट; बाछे-बाहरी रूप से; अवधूत-आकृतिः-एक वैरागी का वेश; शैवालैः–काई से; पिहितम्-आवृत; महा-सरः–विशाल सरोवर या गहरा सरोवर; इव-जैसे; प्रीति–प्रदः-बहुत प्रसन्नता देने वाले; तत्-विदाम्-उनको जो लोग प्रेममयी सेवा के विज्ञान को जानते हैं।

अनुवाद

“श्रील रूप गोस्वामी के बड़े भाई श्रील सनातन गोस्वामी बंगाल के शासक हुसेन शाह की सरकार में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मन्त्री थे और वे उस सभा के अत्यन्त उज्वल मणि माने जाते थे। उनके पास राजकीय पद का सारा ऐश्वर्य था, किन्तु उन्होंने वैराग्य की तरुणी देवी को अंगीकार करने के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया। यद्यपि बाहर से वे ऐसे साधु लगते थे जिसने सर्वस्व त्याग दिया हो, किन्तु उनका हृदय भक्ति के आनन्द से ओतप्रोत था। इस तरह वे काई से आच्छादित गहरे सरोवर के समान थे। वे उन समस्त भक्तों के लिए आनन्द के विषय थे, जो भक्ति के विज्ञान को जानते थे।”

तात्पर्य

यह श्लोक और आगे के दोनों श्लोक चैतन्य-चन्द्रोदय-नाटक (9.34, 35, 38) से लिये गये हैं।

तं सनातनमुपागतमक्ष्णोर्

दृष्ट-मात्रमतिमात्र-दयार्द्रः ।

आलिलिङ्ग परिघायत-दोभ्य

सानुकम्पमथ चम्पक-गौरः ॥ 349॥

तम्-उनको; सनातनम्-सनातन गोस्वामी को; उपागतम्-आकर; अक्ष्णोः–आँखों से; दृष्ट-मात्रम्-मात्र देखकर; अति-मात्र-अत्यन्त; दया-आर्द्रः-दयावान; आलिलिङ्ग-गले लगा लिए; परिघायत-दोभ्यम्-अपनी दोनों भुजाओं से; स-अनुकम्पम्-अत्यन्त स्नेहवश; अथ-इसलिए; चम्पक-गौरः-चंपक फूल के समान रंग वाले श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

"जैसे ही सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष आये, वैसे ही वे उन्हें देखते ही दयार्द्र हो उठे। सुनहले चम्पक फूल के वर्ण वाले महाप्रभु ने अपनी बाँहों में भरकर उनका आलिंगन किया और अत्यधिक स्नेह व्यक्त किया।"

कालेन वृन्दावन-केलि-वार्ता

लुप्तेति तां ख्यापयितुं विशिष्य ।

कृपामृतेनाभिषिषेच देवस्

तत्रैव रूपं च सनातनं च ॥ 350॥

कालेन-कालक्रम में; वृन्दावन-केलि-वार्ता-वृन्दावन में भगवान् कृष्ण की लीलाओं के दिव्य रसों की वार्ता; लुप्ता-लुप्त प्राय; इति–इस प्रकार; ताम्-उन सबको; ख्यापयितुम् वर्णित करने के लिए; विशिष्य–विशिष्ट करके; कृपा-अमृतेन–कृपा के अमृत से; अभिषिषेच–छिड़क दिया; देवः- भगवान्; तत्र-वहाँ; एव–वास्तव में; रूपम्-श्रील रूप गोस्वामी को; च–तथा; सनातनम् सनातन गोस्वामी को; च-साथ ही।

अनुवाद

“काल के प्रभाव से वृन्दावन में कृष्ण-लीलाओं का दिव्य समाचार प्रायः विलुप्त हो चुका था। उन दिव्य लीलाओं प्रस्थापित करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी को अपनी कृपारूपी अमृत से शक्ति प्रदान की, जिससे वे वृन्दावन में यह कार्य पूरा कर सकें।”

एइ त’ कहिलुँ सनातने प्रभुर प्रसाद ।

याहार श्रवणे चित्तेर खण्डे अवसाद ॥ 351॥

एइ त’-इस प्रकार; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया; सनातने-सनातन गोस्वामी के प्रति; प्रभुर प्रसाद भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा; याहार श्रवणे-जिसे सुनकर; चित्तेर-हृदय का; खण्डे-दूर हो जाता है; अवसाद-दुःख।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा सनातन गोस्वामी पर कृपा प्रदान करने का वर्णन किया है। यदि कोई इसे सुनेगा, तो उसके हृदय का सारा विषाद लुप्त हो जायेगा।

कृष्णेर स्वरूप-गणेर सकल हय ‘ज्ञान’ ।

विधि-राग-मार्गे ‘साधन-भक्ति’र विधान ॥ 352॥

कृष्णेर स्वरूप-गणेर-भगवान् कृष्ण का उनके विभिन्न विस्तारों में; सकल-समस्त; हय-होता है; ज्ञान-ज्ञान; विधि-राग-मार्गे–विधि साधना भक्ति या रागानुग प्रेम में; साधन भक्तिर विधान-भक्ति करने का प्रामाणिक उपाय।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी को दिये गये इन उपदेशों को पढ़कर कृष्ण के विविध अंशों तथा वैधी एवं रागानुगा भक्ति की विधियों से पूरी तरह अवगत हुआ जा सकेगा। इस तरह प्रत्येक वस्तु पूरी तरह से जानी जा सकती है।

'कृष्ण-प्रेम', 'भक्ति-रस', 'भक्तिर सिद्धान्त'।

इहार श्रवणे भक्त जानेन सब अन्त ॥ 353॥

कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; भक्ति-रस-भगवत् सेवा के रस; भक्तिर सिद्धान्त-भक्ति के सिद्धान्त; इहार श्रवणे-यह अध्याय सुनकर; भक्त-भक्त; जानेन-जान जाता है; सब-सबकी; अन्त-सीमा।

अनुवाद

इन उपदेशों को पढ़कर शुद्ध भक्त कृष्ण-प्रेम, भक्ति-रस तथा भक्ति के निष्कर्ष को समझ सकता है। इन उपदेशों का अध्ययन करके हर व्यक्ति इन बातों के अन्तिम निष्कर्ष को अच्छी तरह समझ सकता है।

श्री-चैतन्य-नित्यानन्द-अद्वैत-चरण।

याँर प्राण-धन, सेइ पाय एइ धन ॥ 354॥

श्री-चैतन्य-नित्यानन्द-अद्वैत-चरण-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु के चरणकमल; याँर प्राण-धन-जिसके प्राण धन हैं; सेइ-ऐसा व्यक्ति; पाय-प्राप्त करता है; एइ धन-यह प्रेममयी सेवा के धन का भण्डार।

अनुवाद

इन उपदेशों के निष्कर्ष को वही जान सकता है, जिसके लिए श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु के चरणकमल ही जीवन तथा प्राण हैं।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 355॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों में; यार-जिनकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए एवं सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत की मध्यलीला के चौबीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें आत्माराम श्लोक तथा सनातन गोस्वामी पर महाप्रभु की कृपा का वर्णन हुआ है।

अध्याय पच्चीस

वाराणसी के सारे निवासियों का वैष्णव बनना

पच्चीसवें अध्याय का सारांश इस प्रकार है। बनारस में रह रहा एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण श्री चैतन्य महाप्रभु का महान् भक्त था। वह महाप्रभु की महिमा को सुनकर परम सुखी रहता था और उसी की योजना से वाराणसी के सारे संन्यासी श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त बन गये। उसने सारे संन्यासियों को श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने के लिए अपने घर में बुलाया। इस घटना का वर्णन आदिलीला के सातवें अध्याय में किया जा चुका है। उस दिन से श्री चैतन्य महाप्रभु वाराणसी नगरी में प्रसिद्ध हो गये और वहाँ के अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति उनके अनुयायी बन गये। धीरे-धीरे महान् संन्यासी प्रकाशानन्द सरस्वती का एक शिष्य श्री चैतन्य महाप्रभु का भक्त बन गया। उसने ही प्रकाशानन्द सरस्वती से महाप्रभु के विषय में बताया और अनेक तर्कों द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु के विचारों का समर्थन किया।

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु पंचनद में स्नान करने गये और उसके बाद उनके सारे भक्त बिन्दु माधव मन्दिर के समक्ष हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने लगे। उसी समय प्रकाशानन्द सरस्वती तथा उनके सारे भक्त महाप्रभु के पास पहुँचे। प्रकाशानन्द सरस्वती तुरन्त ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़े और उनके साथ किये गये विगत व्यवहार के लिए बड़ा खेद व्यक्त किया। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु से वेदान्त-सूत्र के परिप्रेक्ष्य में भक्ति के विषय में जिज्ञासा की और महाप्रभु ने उन्हें वेदान्त-सूत्र जानने वाले महान् आचार्यों द्वारा प्रमाणित भक्ति के विषय में बतलाया। इसके बाद उन्होंने इंगित किया कि श्रीमद्भागवत ही वेदान्त-सूत्र की सही टीका है। फिर उन्होंने श्रीमद्भागवत के चतुःश्लोकी श्लोकों की व्याख्या की, जो कि उस ग्रन्थ के सार हैं।

उस दिन से वाराणसी के सारे संन्यासी श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त बन गये। अपने मुख्यालय जगन्नाथ पुरी लौटने के पूर्व महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को वृन्दावन जाने का उपदेश दिया। तत्पश्चात्

महाप्रभु जगन्नाथ पुरी के लिए चल पड़े। इसके बाद कविराज गोस्वामी श्रील रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी तथा सुबुद्धि राय के विषय में कुछ बातें बतलाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु मध्यभारत के झारिखंड वन से होकर जगन्नाथ पुरी लौट आये। इस अध्याय के अन्त में कविराज गोस्वामी मध्यलीला की घटनाओं का सारांश देते हैं और हर जीव को उपदेश देते हैं कि वह श्रीचैतन्य-चरितामृत नामक इस भव्य ग्रन्थ को पढ़े।

वैष्णवी-कृत्य सन्न्यासि-मुखान्काशी-निवासिनः ।

सनातनं सु-संस्कृत्य प्रभुर्नीलाद्रिमागमत् ॥1॥

वैष्णवी-कृत्य-वैष्णव बनाकर; सन्न्यासि-मुखान्-मुख्यतः संन्यासियों आदि को भी; काशी-निवासिनः-वाराणसी के निवासियों को; सनातनम्-सनातन गोस्वामी को; सु-संस्कृत्य-पूर्णतया शुद्ध करके; प्रभुः-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; नीलाद्रिम्-जगन्नाथ पुरी; आगमत्-लौट आये।

अनुवाद

वाराणसी के समस्त निवासियों को, जिनमें संन्यासी मुख्य थे, वैष्णव बना लेने के बाद तथा वाराणसी में सनातन गोस्वामी को पूरी तरह शिक्षा और उपदेश देने के बाद, श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी लौट गये।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैतचन्द्र की जय हो तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

एइ मत महाप्रभु दुइ मास पर्यन्त ।

शिखाइला ताँरे भक्ति-सिद्धान्तेर अन्त ॥ 3॥

एइ मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; दुइ मास पर्यन्त-दो महीने के लिए; शिखाइला–उपदेश दिया; ताँरे–उन्हें; भक्ति-सिद्धान्तेर अन्त-भक्ति के सभी सिद्धान्तों का सार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने लगातार दो मास तक श्री सनातन गोस्वामी को भक्ति के सारे सिद्धान्तों की शिक्षा प्रदान की।

'परमानन्द कीर्तनीया'—शेखरेर सङ्गी ।

प्रभुरे कीर्तन शुनाय, अति बड़ रङ्गी ॥4॥

परमानन्द कीर्तनीया–परमानन्द कीर्तनीया; शेखरेर सङ्गी-चन्द्रशेखर का एक मित्र; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कीर्तन शुनाय-कीर्तन गाकर सुनाता था; अति बड़ रङ्गी-अत्यन्त विनोदी।

अनुवाद

जब तक श्री चैतन्य महाप्रभु वाराणसी में रहे, चन्द्रशेखर के मित्र परमानन्द कीर्तनिया हरे कृष्ण महामन्त्र तथा अन्य गीतों का कीर्तन बड़े ही विनोदपूर्ण ढंग से श्री चैतन्य महाप्रभु को सुनाया करते थे।

सन्न्यासीर गण प्रभुरे यदि उपेक्षिल ।

भक्त-दुःख खण्डाइते तारे कृपा कैल ॥5॥

सन्न्यासीर गण-सभी संन्यासियों ने प्रभुरे–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; यदि-जब; उपेक्षिल-निन्दा की; भक्त-दुःख-भक्तों का दुःख; खण्डाइते-दूर करने के लिए; तारे-उन पर; कृपा कैल-अपनी कृपा की।

अनुवाद

जब वाराणसी में मायावादी संन्यासियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु की आलोचना की, तो महाप्रभु के भक्त अत्यन्त दुखित हुए। अतः श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें तुष्ट करने के लिए उन संन्यासियों पर अपनी कृपा प्रदर्शित की।

सन्यासीरे कृपा पूर्वे लिखियाछों विस्तारिया।

उद्देशे कहिये इहाँ सङ्क्षेप करिया ॥6॥

सन्यासीरे कृपा-संन्यासियों पर कृपा; पूर्वे-इससे पहले; लिखियाछों-मैंने वर्णित की है; विस्तारिया–विस्तारपूर्वक; उद्देशे-इस सन्दर्भ में; कहिये-मैं कहता हूँ; इहाँ–यहाँ; सङ्क्षेप करिया-संक्षेप में।

अनुवाद

आदिलीला के सातवें अध्याय में वाराणसी में श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यासियों के उद्धार का विस्तृत वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ, किन्तु इस अध्याय में मैं उसको संक्षेप में दुहराऊँगा।

याहाँ ताहाँ प्रभुर निन्दा करे सन्न्यासीर गण।

शुनि' दुःखे महाराष्ट्रीय विप्र करये चिन्तन ॥7॥

याहाँ ताहाँ-हर जगह; प्रभुर निन्दा-श्री चैतन्य महाप्रभु की निन्दा; करे-करते; सन्न्यासीर गण-मायावादी संन्यासी; शुनि'–सुनकर; दुःखे-अत्यन्त दुःख में; महाराष्ट्रीय विप्र-महाराष्ट्र का ब्राह्मण; करये चिन्तन–विचार करने लगा।

अनुवाद

जब वाराणसी में मायावादी संन्यासी जगह-जगह श्री चैतन्य महाप्रभु की निन्दा कर रहे थे, तो एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण इस निन्दा को सुनकर अत्यन्त दुखित होकर सोचने लगा।

प्रभुर स्वभाव,—येबा देखे सन्निधाने ।

'स्वरूप' अनुभवि' ताँरे 'ईश्वर' करि' माने ॥8॥

प्रभुर स्वभाव-श्री चैतन्य महाप्रभु का स्वभाव; येबा-जो; देखे-देखता है; सन्निधाने–निकट से; स्वरूप-उनका स्वरूप; अनुभवि'-अनुभव करके; ताँरे–उन्हें; ईश्वर करि'-परम भगवान्; माने-स्वीकार कर लेता है।

अनुवाद

उस महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने सोचा, "जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु के स्वभाव को ध्यान से देखता है, वह तुरन्त ही उनके व्यक्तित्व का अनुभव करके उन्हें परम ईश्वर रूप में स्वीकार कर लेता है।"

कोन प्रकारे पारों यदि एकत्र करते ।

इहा देखि' सन्न्यासि-गण हबे इँहार भक्ते ॥9॥

कोन प्रकारे-किसी प्रकार; पारों-मैं समर्थ हो सकें; यदि यदि; एकत्र करते-एकत्र करने में; इहा देखि'-यह देखकर (श्री चैतन्य महाप्रभु के व्यक्तिगत लक्षण); सन्न्यासि-गण-वाराणसी के मायावादी संन्यासी; हबे-बन जायेंगे; इँहार भक्ते-उनके भक्त।

अनुवाद

“यदि मैं किसी तरह सारे संन्यासियों को एक साथ इकट्ठे कर सकें, तो वे निश्चय ही महाप्रभु के व्यक्तिगत गुणों को देखकर उनके भक्त बन जायेंगे।”

तात्पर्य

यदि श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी गुणों तथा कार्यों को देखा जाए, तो यह निश्चित हो जायेगा कि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् थे। इसकी पुष्टि शास्त्रीय आदेशों का अनुसरण करने पर हो सकती है। श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में यह गम्भीर अध्ययन और विवेचन उनके प्रामाणिक भक्तों पर भी लागू होता है। श्रीचैतन्य-चरितामृत (अन्त्यलीला 7.11) में स्पष्ट रूप से इसका वर्णन हुआ है :

कलिकालेर धर्म—कृष्णनाम-सङ्कीर्तन ।

कृष्णशक्ति विना नाहे तार प्रवर्तन ॥

इस कलियुग में वास्तविक धार्मिक प्रचार से लोगों को हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। यह कार्य उस व्यक्ति के लिए सम्भव है, जो कृष्ण द्वारा विशेष रूप से शक्तिप्रदत्त हो। विशिष्ट कृष्ण-कृपा के बिना इस कार्य को कोई भी नहीं कर सकता। इस प्रसंग में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में नारायण संहिता से निम्नलिखित उद्धरण दिया है :

द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पञ्चरात्रैस्तु केवलैः ।

कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः ॥

“द्वापर युग में भगवान् विष्णु तथा कृष्ण के भक्त पांचरात्रिक सिद्धान्तों के अनुसार भक्ति करते थे। इस कलियुग में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा केवल उनके नाम-कीर्तन द्वारा की जाती है।” तत्पश्चात् श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर टीका करते हैं, “भगवान् कृष्ण की इच्छा पूरी करने के लिए उनकी प्रत्यक्ष शक्ति एवं उनकी कृपा प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति जगद्गुरु नहीं बन सकता। वह मानसिक

चिन्तन द्वारा तो सफल हो ही नहीं सकता, क्योंकि ऐसा चिन्तन भक्तों तथा धार्मिक लोगों के लिए नहीं है। केवल शक्तिप्रदत्त पुरुष ही भगवान् के पवित्र नाम का वितरण कर सकता है और समस्त पतितात्माओं को कृष्ण की पूजा करने का आदेश दे सकता है। भगवान् के पवित्र नाम के वितरण द्वारा वह अधम से अधम लोगों के हृदयों को शुद्ध कर सकता है और भौतिक जगत् की प्रज्वलित अग्नि को शान्त कर सकता है। यही नहीं, वह पूरे विश्व में कृष्ण के तेज की प्रखरता का प्रसारण कर सकता है। ऐसे आचार्य को कृष्ण से अभिन्न मानना चाहिए-अर्थात् उसे कृष्ण का शक्त्यावेश अवतार मानना चाहिए। ऐसा व्यक्ति कृष्णालिङ्गित-विग्रह कहलाता है-अर्थात् वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण द्वारा सर्वदा आलिंगित होता है। ऐसा व्यक्ति वर्णाश्रम व्यवस्था से ऊपर होता है। वह सारे जगत् का गुरु, महाभागवत होता है। वह परमहंस ठाकुर अर्थात् परमहंस या ठाकुर कहलाने के योग्य है।"

तो भी कुछ लोग उल्लुओं जैसे हैं, जो सूर्य का प्रकाश देखने के लिए अपनी आँखें कभी नहीं खोलते। ये उल्लू जैसे व्यक्ति, जो उन मायावादी संन्यासियों से भी गिरे हुए हैं, महाभागवत भक्त पर कृष्ण-कृपा के तेज को नहीं देख पाते। ऐसे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छानुसार विश्व के प्रत्येक नगर तथा गाँव में कृष्णभावनामृत का प्रचार करने वाले भक्तों की आलोचना करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

वाराणसी-वास आमार हय सर्व-काले ।

सर्व-काल दुःख पाब, इहा ना करिले ॥ 10॥

वाराणसी-वास-वाराणसी में निवास; आमार-मेरा; हय-है; सर्व-काले-सदैव; सर्व-काल-सदैव; दुःख पाब-मैं दुःख पाऊँगा; इहा-यह; ना करिले-यदि मैं नहीं करता।

अनुवाद

"मुझे अपने शेष जीवन-भर वाराणसी में निवास करना होगा। यदि मैं इस योजना को पूरा न कर सका, तो मैं निश्चय ही मानसिक क्लेश उठाता रहूँगा।"

एत चिन्ति' निमन्त्रिल सन्न्यासीर गणे ।

तबे सेइ विप्र आइल महाप्रभुर स्थाने ॥11॥

एत चिन्ति'-यह सोचकर; निमन्त्रिल-उसने निमन्त्रण दिया; सन्न्यासीर गणे-सभी सन्न्यासियों को; तबे-तब; सेइ विप्र-वह ब्राह्मण; आइल-आया; महाप्रभुर स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर।

अनुवाद

इस तरह सोचते हुए उस महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने वाराणसी के समस्त संन्यासियों को आमन्त्रित किया। ऐसा करने के बाद अन्त में वह श्री चैतन्य महाप्रभु को आमन्त्रित करने पहुँचा।

हेन-काले निन्दा शुनि' शेखर, तपन ।

दुःख पाञा प्रभु-पदे कैला निवेदन ॥12॥

हेन-काले-उसी समय; निन्दा शुनि'–निन्दा सुनकर (मायावादी सन्न्यासियों द्वारा चैतन्य महाप्रभु की); शेखर तपन–चन्द्रशेखर तथा तपन मिश्र; दुःख पाञा-अत्यन्त दुःखी होकर; प्रभु-पदे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में; कैला निवेदन-निवेदन करते हैं।

अनुवाद

तभी चन्द्रशेखर तथा तपन मिश्र दोनों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में निन्दनीय आलोचना सुनी, तो वे अत्यन्त दुःखी हुए। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में एक निवेदन करने आये।

भक्त-दुःख देखि' प्रभु मनेते चिन्तिल ।

सन्न्यासीर मन फिराइते मन हइल ॥13॥

भक्त-दुःख देखि'–भक्तों का दुःख देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; मनेते चिन्तिल-अपने मन में विचार किया; सन्न्यासीर मन-मायावादी सन्न्यासियों के मन; फिराइते-बदलने का; मन हइल-निश्चय किया।

अनुवाद

उन्होंने विनती की और श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों का दुःख देखकर मायावादी संन्यासियों का मन फिराने का निश्चय किया।

हेन-काले विप्र आसि' करिल निमन्त्रण।

अनेक दैन्यादि करि' धरिल चरण ॥14॥

हेन-काले-उस समय; विप्र-महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने; आसि'–आकर; करिल निमन्त्रण-श्री चैतन्य महाप्रभु को निमंत्रित किया; अनेक-अनेक; दैन्य-आदि-विनम्र भाव से निवेदन; करि'-करके; धरिल चरण-उनके चरणकमलों का स्पर्श किया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु मायावादी संन्यासियों से मिलने के विषय में गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहे थे तभी वह महाराष्ट्रीय ब्राह्मण उनके पास पहुँचा। उसने अत्यन्त विनयपूर्वक निमन्त्रण दिया और श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का स्पर्श किया।

तबे महाप्रभु ताँर निमन्त्रण मानिला।

आर दिन मध्याह्न करि' ताँर घरे गेला ॥15॥

तबे-इसके बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँर-उसका; निमन्त्रण-निमन्त्रण; मानिला–स्वीकार किया; आर दिन-अगले दिन; मध्याह्न करि'-अपने मध्याह्न कार्य समाप्त करके (स्नान तथा मन्त्रोच्चारण करके); ताँर घरे गेला–महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के घर गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और अगले दिन अपने दोपहर के कार्यों से निवृत्त होकर वे उस ब्राह्मण के घर गये।

ताहाँ यैछे कैला प्रभु सन्न्यासीर निस्तार।

पञ्च-तत्त्वाख्याने ताहा करियाछि विस्तार ॥16॥

ताहाँ-वहाँ; यैछे-किस प्रकार; कैला–किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सन्न्यासीर-मायावादी सन्न्यासियों का निस्तार-उद्धार; पञ्च-तत्त्व-आख्याने-पंचतत्त्व (श्रीकृष्ण चैतन्य, नित्यानन्द प्रभु, श्री अद्वैत आचार्य, गदाधर तथा श्रीवास) की महिमा के वर्णन में; ताहा-वह विषय; करियाछि विस्तार विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

अनुवाद

मैं पंचतत्त्व-श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत प्रभु, गदाधर प्रभु तथा श्रीवास-के यश का वर्णन करते समय आदिलीला के सातवें अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा मायावादी संन्यासियों के उद्धार का पहले ही वर्णन कर चुका हूँ।

ग्रन्थ बाड़े, पुनरुक्ति हय त' कथन ।

ताहाँ ये ना लिखिलुँ, ताहा करिये लिखन ॥17॥

ग्रन्थ-ग्रन्थ का आकार; बाड़े-बढ़ जायेगा; पुनर्-उक्ति–दोहराना; हय-करके; त' कथन-एक बार वर्णित विषयों का; ताहाँ-वहाँ (सातवें अध्याय में); ये-जो; ना लिखिलुँ-वहीं लिखा; ताहा-वह; करिये लिखन-मैं लिख रहा हूँ।

अनुवाद

चूँकि आदिलीला के सातवें अध्याय में मैं इस घटना का विस्तार से वर्णन कर चुका हूँ, अतः दुबारा वर्णन करके इस पुस्तक के आकार को बढ़ाना नहीं चाहता। फिर भी जो कुछ वहाँ वर्णन करने से रह गया था, उसका समावेश मैं इस अध्याय में करने का प्रयास करूँगा।

ये दिवस प्रभु सन्यासीरे कृपा कैल ।

से दिवस हैते ग्रामे कोलाहल हैल ॥18॥

ये दिवस-जिस दिन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सन्यासीरे-मायावादी सन्न्यासियों पर; कृपा कैल-कृपा की; से दिवस हैते-उसी दिन से; ग्रामे-गाँव में; कोलाहल हैल-इस घटना के विषय में अनेक चर्चाएँ होने लगी।

अनुवाद

जिस दिन से श्री चैतन्य महाप्रभु ने मायावादी संन्यासियों पर कृपा प्रदर्शित की, तब से वाराणसी के निवासियों के बीच इस घटना के विषय में प्रचुर चर्चाएँ होने लगीं।

लोकेर सङ्घट्ट आइसे प्रभुरे देखते ।

नाना शास्त्रे पण्डित आइसे शास्त्र विचारिते ॥19॥

लोकेर सङ्खट्ट–लोगों की भीड़; आइसे-आती; प्रभुरे देखिते-श्री चैतन्य महाप्रभु को देखने के लिए; नाना शास्त्रे पण्डित–अनेक शास्त्रों के विद्वान; आइसे-आते थे; शास्त्र विचारिते-अनेक शास्त्रों की चर्चा करने के लिए।

अनुवाद

उस दिन से लोगों के दल के दल श्री चैतन्य महाप्रभु को देखने के लिए आने लगे और विविध शास्त्रों के पण्डित महाप्रभु से विविध विषयों पर चर्चा करने लगे।

सर्व-शास्त्र खण्डि' प्रभु' भक्ति' करे सार।

सयुक्तिक वाक्ये मन फिराय सबार ॥20॥

सर्व-शास्त्र खण्डि'–विभिन्न शास्त्रों के सभी मिथ्या तर्कों का खंडन करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; भक्ति करे सार–भक्ति की श्रेष्ठता स्थापित की; स-मुक्तिक वाक्ये-प्रसन्नता देने वाले तर्क से पूर्ण वाक्यों द्वारा; मन फिराय-मन बदल दिये; सबार-सभी के।

अनुवाद

जब लोग विविध शास्त्रों के सिद्धान्तों की चर्चा करने श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आने लगे, तो महाप्रभु ने उनके मिथ्या निष्कर्षों को खण्डित करके भगवद्भक्ति की प्रधानता स्थापित की। उन्होंने विनम्रतापूर्वक तर्क द्वारा उनके मनों को बदल दिया।

तात्पर्य

हम इस संकीर्तन आन्दोलन को पाश्चात्य देशों में प्रसारित करते रहे हैं। रोम, जेनेवा, पेरिस तथा फ्रैंकफर्ट जैसे यूरोपियन शहरों में हमारे द्वारा किये गये हाल ही के भ्रमणों में अनेक ईसाई विद्वान, पादरी, दार्शनिक तथा योगी हमसे भेंट करने आये और कृष्ण की कृपा से इन सबने यह स्वीकार किया कि यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन या भक्ति-सम्प्रदाय सर्वोच्च निष्कर्ष प्रदान करने वाला है। हम श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों पर चलकर हर एक को आश्वस्त करना चाहते हैं कि हर शास्त्र में भक्ति का आदेश मिलता है। जो धार्मिक है, उसे भगवान् की परम सत्ता स्वीकार करते हुए उनका भक्त बनकर उनसे प्रेम करना चाहिए। धर्म का यही वास्तविक सिद्धान्त है। कोई चाहे ईसाई हो या मुसलमान या अन्य कोई, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। उसे केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य पद को स्वीकार करना चाहिए और उनकी सेवा करनी चाहिए। यह ईसाई, मुसलमान या हिन्दू होने का प्रश्न नहीं है। व्यक्ति को धार्मिक तथा इन सारी भौतिक उपाधियों से मुक्त होना चाहिए। इस तरह भक्ति की विधि सीखी जा सकती है। यह तर्क समस्त बुद्धिमान व्यक्तियों को भाने वाला है। अत: यह

कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे विश्व में जड़े जमा रहा है। हमारे ठोस तर्क तथा वैज्ञानिक प्रस्तुतिकरण के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु की यह भविष्यवाणी कि कृष्णभावनामृत गाँव-गाँव तथा नगर-नगर में परिव्याप्त होगा, धीरे-धीरे विश्वभर में चरितार्थ हो रही है।

उपदेश लञा करे कृष्ण-सङ्कीर्तन ।

सर्व-लोक हासे, गाय, करये नर्तन ॥21॥

उपदेश लञा-श्री चैतन्य महाप्रभु से उपदेश लेकर; करे-शामिल हो गये; कृष्ण-सङ्कीर्तन-संकीर्तन आन्दोलन में; सर्व-लोक हासे-सभी प्रसन्नता में हँसने लगे; गाय-गाने लगे; करये नर्तन-नाचने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से उपदेश पाकर लोग हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने लगे। इस तरह सारे व्यक्ति महाप्रभु के साथ साथ हँसने, कीतर्न करने तथा नृत्य करने लगे।

प्रभुरे प्रणत हैल सन्न्यासीर गण ।

आत्म-मध्ये गोष्ठी करे छाड़ि' अध्ययन ॥22॥

प्रभुरे–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति प्रणत हैल-प्रणाम किया; सन्न्यासीर गण-सभी मायावादी संन्यासियों ने; आत्म-मध्ये-अपने बीच; गोष्ठी करे-चर्चा की; छाड़ि' अध्ययन-वेदान्त का तथाकथित अध्ययन छोड़कर।

अनुवाद

सभी मायावादी संन्यासियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार किया और तब वेदान्त तथा मायावाद दर्शन विषयक अपने अध्ययनों को त्यागकर वे उनके आन्दोलन की चर्चा करने लगे।

प्रकाशानन्देर शिष्य एक ताँहार समान ।

सभा-मध्ये कहे प्रभुर करिया सम्मान ॥23॥

प्रकाशानन्देर शिष्य एक-प्रकाशानन्द सरस्वती के एक शिष्य; ताँहार समान-ज्ञान में उनके ही समान; सभा-मध्ये-सन्न्यासियों की सभा में; कहे-कहते हैं; प्रभुर करिया सम्मान–श्री चैतन्य महाप्रभु का सम्मान करके।

अनुवाद

श्री प्रकाशानन्द सरस्वती का एक शिष्य जो अपने गुरु के ही समान विद्वान था, उस सभा में श्री चैतन्य महाप्रभु का सम्मान करते हुए बोला।

श्री-कृष्ण-चैतन्य हय 'साक्षात्नारायण' ।

'व्यास-सूत्रेर' अर्थ करेन अति-मनोरम ॥ 24॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु; हय-हैं; साक्षात् नारायण-साक्षात् भगवान् नारायण; व्यास-सूत्रेर–व्यासदेव के सूत्रों (वेदान्त-सूत्र) का; अर्थ करेन-वे अर्थ कहते हैं; अति-मनोरम-अत्यन्त आकर्षक रूप से।

अनुवाद

उसने कहा, "श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् भगवान् नारायण हैं। जब वे वेदान्त-सूत्र की व्याख्या करते हैं, तो वह बहुत ही सुन्दर होती है।"

उपनिषदेर करेन मुख्यार्थ व्याख्यान ।

शुनिया पण्डित-लोकेर जुड़ाय मन-काण ॥25॥

उपनिषदेर-उपनिषदों का; करेन-वे करते हैं; मुख्य-अर्थ-वास्तविक अर्थ; व्याख्यान-वर्णन; शुनिया-सुनकर; पण्डित-लोकेर-विद्वानों के; जुड़ाय-सन्तुष्ट हो जाते हैं; मन-काण-मन तथा कान।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु उपनिषदों का सीधा अर्थ बतलाते हैं। जब सारे विद्वान इसे सुनते हैं, तो उनके मन तथा कान सुनकर सन्तुष्ट हो जाते हैं।"

सूत्र-उपनिषदेर मुख्यार्थ छाड़िया ।

आचार्य 'कल्पना' करे आग्रह करिया ॥ 26 ॥

सूत्र-उपनिषदेर-वेदान्त-सूत्र तथा उपनिषदों का; मुख्य-अर्थ-मुख्य अर्थ; छाड़िया-छोड़कर; आचार्य-शंकराचार्य; कल्पना-कल्पना; करे-करते हैं; आग्रह करिया-अत्यन्त उत्सुकता से।

अनुवाद

"शंकराचार्य तो वेदान्त-सूत्र तथा उपनिषदों के मुख्यार्थ को छोड़कर किसी और अर्थ की कल्पना करते हैं।"

आचार्य-कल्पित अर्थ ये पण्डित शुने ।

मुखे 'हय' 'हय' करे, हृदय ना माने ॥ 27॥

आचार्य-कल्पित-शंकराचार्य द्वारा कल्पित; अर्थ-अर्थ; ये पण्डित शुने-जो विद्वान सुनता है; मुखे-केवल मुँह में; हय हय-हाँ, हाँ; करे-करता है; हृदय-हृदय में; ना माने–स्वीकार नहीं करता।

अनुवाद

"शंकराचार्य की सारी व्याख्याएँ काल्पनिक हैं। ऐसी काल्पनिक व्याख्याओं को पण्डित मौखिक रूप से स्वीकार तो कर लेते हैं, किन्तु वे उनके हृदय को नहीं भातीं।"

श्री-कृष्ण-चैतन्य-वाक्य दृढ़ सत्य मानि ।

कलि-काले सन्यासे 'संसार' नाहि जिनि ॥ 28 ॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-वाक्य-श्री चैतन्य महाप्रभु के वचन; दृढ़-दृढ़; सत्य मानि-मैं सत्य मानता हूँ; कलि-काले-इस कलियुग में; सन्यासे-केवल संन्यास ग्रहण करने से; संसार नाहि जिनि-कोई भौतिक बन्धनों से मुक्त नहीं हो सकता।

अनुवाद

"श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के शब्द दृढ़ तथा विश्वसनीय हैं और मैं उन्हें सत्य मानता हूँ। इस कलियुग में मात्र औपचारिक रूप से संन्यास ग्रहण करने से कोई व्यक्ति भवबन्धन से छूट नहीं सकता।"

हरेर्नाम-श्लोकेर येइ करिला व्याख्यान ।

सेइ सत्य सुखदार्थ परम प्रमाण ॥29॥

हरेर् नाम-श्लोकेर नाम नाम शब्द से चालु होने वाले श्लोक का; येइ-जो; करिला-किया; व्याख्यान-व्याख्यान; सेइ-वह; सत्य--सत्य; सुख-द-अर्थ–सुख प्रदान करने वाला अर्थ; परम प्रमाण-परम श्रेष्ठ प्रमाण।

अनुवाद

"हरेर्नाम हरेर्नाम' से प्रारम्भ होने वाले श्लोक की जो व्याख्या श्री चैतन्य महाप्रभु ने की है, वह न केवल कानों को सुख देने वाली है, अपितु प्रबल वास्तविक प्रमाण है।"

भक्ति विना मुक्ति नहे, भागवते कय ।

कलि-काले नामाभासे सुखे मुक्ति हय ॥ 30॥

भक्ति विना-प्रेममयी सेवा के सेवा बिना; मुक्ति नहे-मुक्ति का कोई प्रश्न ही नहीं है; भागवते कय–श्रीमद्भागवत में कहा गया है; कलि-काले-इस कलियुग में; नाम-आभासे-हरे कृष्ण महामन्त्र के आभास मात्र द्वारा; सुखे-बिना कठिनाई के; मुक्ति हय-मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

अनुवाद

"इस कलियुग में भगवद्भक्ति किये बिना कोई व्यक्ति मुक्ति नहीं पा सकता। इस युग में यदि कोई कृष्ण के नाम का ठीक से कीर्तन नहीं करता, तो भी उसे आसानी से मुक्ति मिल जाती है।"

यः-सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो

क्लिश्यन्ति ये केवल-बोध-लब्धये ।

तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते

नान्यद् यथा स्थूल-तुषावघातिनाम् ॥ 31॥

श्रेयः-सृतिम्-मुक्ति का शुभ मार्ग; भक्तिम्-प्रेममयी सेवा; उदस्य-त्यागकर; ते-आपकी; विभो-हे मेरे प्रभु; क्लिश्यन्ति-अत्यन्त कठिनाईयाँ स्वीकार करते हैं; ये-जो लोग; केवल–केवल; बोध-लब्धये-ज्ञान अर्जित करने के लिए; तेषाम्-उनके लिए; असौ-वह; क्लेशलः–कष्ट; एव–एकमात्र; शिष्यते-रहता है; न-नहीं; अन्यत्-और कुछ भी; यथा-जिस प्रकार; स्थूल-भारी; तुष-चावल की भूसी को; अवघातिनाम्-पीटने वालों का।

अनुवाद

"हे प्रभु, आपकी भक्ति ही एकमात्र शुभ मार्ग है। यदि कोई इसका परित्याग केवल शुष्क ज्ञान के लिए अथवा सारे जीव आत्मा हैं और भौतिक जगत् मिथ्या है-इस धारणा के लिए कर देता है, तो उसे बहुत कष्ट मिलता है। उसे केवल कष्टप्रद तथा अशुभ कर्म ही मिलते

हैं। उसके कार्य उस पुआल को पीटने के समान है, जो धान से रहित है। उसका सारा श्रम निष्फल जाता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.14.4) का है।

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्त-मानिनस्

त्वय्यस्त-भावादविशुद्ध-बुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनादृत-युष्मदङ्घ्रयः ॥ 32॥

ये-जो; अन्ये-अन्य (अभक्त); अरविन्द-अक्ष-हे कमलनयन; विमुक्त-मानिनः-जो स्वयं को मुक्त मानते हैं; त्वयि-आप में; अस्त-भावात्-भक्ति से रहित; अविशुद्ध-बुद्धयः-अशुद्ध बुद्धि वाले; आरुह्य-चढ़कर; कृच्छ्रेण–कठिन तपस्याओं द्वारा; परम् पदम्-परम अवस्था तक; ततः-वहाँ से; पतन्ति–गिर जाते है; अधः-नीचे; अनादृत-तिरस्कार करने के कारण; युष्मत्-आपके; अङ्घ्रयः-चरणकमल।

अनुवाद

"हे कमलसमान नेत्रों वाले, जो लोग यह सोचते हैं कि वे इस जीवन में मुक्त हो चुके हैं, किन्तु जो आपकी भक्ति से रहित हैं, वे शुद्ध बुद्धि से हीन हैं। यद्यपि वे कठोर तपस्या करके आध्यात्मिक पद अर्थात् निर्विशेष ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु वे पुनः नीचे गिर जाते हैं, क्योंकि वे आपके चरणकमलों की पूजा की उपेक्षा करते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.2.32) से लिया गया है।

‘ब्रह्म’-शब्दे कहे ‘षड्-ऐश्वर्य-पूर्ण भगवान्’ ।

ताँरे ‘निर्विशेष’ स्थापि, ‘पूर्णता’ हय हान ॥ 33 ॥

ब्रह्म-शब्दे–ब्रह्म शब्द द्वारा; कहे-माने जाते हैं; षट्-ऐश्वर्य-पूर्ण भगवान्-छः ऐश्वर्यों से परिपूर्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; ताँरे-उन्हें; निविशेष स्थापि-यदि हम निराकार बना दें; पूर्णता हय हान-उनकी पूर्णता की हानि हो जाती है।

अनुवाद

“ब्रह्म’ (महानतम) शब्द पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को सूचित करता है, जो छहों ऐश्वर्यों से युक्त हैं। किन्तु यदि हम एक पक्षीय निर्विशेष मत स्वीकार करें, तो उनकी पूर्णता घट जाती है।”

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मूलतः परम पुरुष हैं और वे अपनी शक्ति से निर्विशेष विस्तार करते हैं। जैसाकि भगवद्गीता (9.4) में भगवान् कहते हैं :

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥

“यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरे अप्रकट रूप में व्याप्त है। सारे जीव मुझमें हैं, किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ।” कृष्ण की वह शक्ति जो सर्वत्र व्याप्त है, वह निर्विशेष है, जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश सूर्य के गोले तथा सूर्य देव का निर्विशेष विस्तार है। यदि हम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के केवल एक पक्ष-उनके निर्विशेष तेज–को लें, तो इस एक पक्ष से परम सत्य की व्याख्या नहीं हो पाती। परम सत्य की निर्विशेष व्याख्या एक पक्षीय तथा अपूर्ण है। मनुष्य को दूसरा पक्ष-व्यक्तिविशेष या साकार पक्ष अर्थात् भगवान् को भी स्वीकार करना चाहिए। ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते । मनुष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के

केवल ब्रह्म पहलू के ज्ञान से तुष्ट नहीं हो लेना चाहिए। उसे भगवान् के साकार रूप को भी जानना चाहिए। यही परम सत्य का पूर्ण ज्ञान है।

श्रुति-पुराण कहे—कृष्णेर चिच्छक्ति-विलास ।

ताहा नाहि मानि, पण्डित करे उपहास ॥ 34॥

श्रुति-पुराण कहे-वेद, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र तथा पुराण कहते हैं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; चित्-शक्ति-विलास-दिव्य शक्तियों के कार्यकलाप; ताहा नाहि मानि-वह न मानकर; पण्डित करे उपहास-तथाकथित विद्वान पूर्ण ज्ञान के अभाव में उपहास करते हैं।

अनुवाद

"वैदिक साहित्य, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र तथा सारे पुराण भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति के कार्यकलापों का वर्णन करते हैं। यदि मनुष्य भगवान् के व्यक्तिगत कार्यकलापों को स्वीकार नहीं कर सकता, तो वह मूर्खतावश उनका उपहास करता है और निर्विशेष विवरण प्रस्तुत करता है।"

तात्पर्य

पुराणों सहित वैदिक साहित्य कृष्ण की आध्यात्मिक शक्ति के वर्णनों से पूर्ण है। भगवान् की सारी लीलाएँ साक्षात् कृष्ण की ही तरह शाश्वत, आनन्दमय तथा ज्ञान से युक्त हैं (सच्चिदानन्द विग्रह)। मूर्ख लोग अपने अल्प ज्ञान के कारण अपने नश्वर शरीरों की तुलना कृष्ण के आध्यात्मिक शरीर से करते हैं और ऐसी मूर्खता करके वे कृष्ण को अपने जैसे एक के रूप में समझने का प्रयत्न करते हैं। अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। भगवद्गीता (9.11) में बतलाया गया है कि मूर्ख लोग कृष्ण को अपने समान मानते हैं। वे उनकी आध्यात्मिक शक्ति को न जानने के कारण परम सत्य के साकार रूप की निन्दा करते हैं और अपने आपको मूर्खतावश पूर्ण सत्य का ज्ञाता मान बैठते हैं। वे

यह नहीं समझ पाते कि जिस तरह भगवान् की भौतिक शक्ति के नाना कार्यकलाप हैं, उसी तरह आध्यात्मिक शक्ति के भी हैं। वे भक्ति के कार्यकलापों को भौतिक चेतना में सम्पन्न कार्यकलापों जैसा मानते हैं। इस गलत धारणा के कारण कभी-कभी वे भगवान् के आध्यात्मिक कार्यकलापों एवं उनकी भक्ति का उपहास करने का दुस्साहस कर बैठते हैं।

चिदानन्द कृष्ण-विग्रह 'मायिक' करि' मानि ।

एइ बड़ 'पाप',—सत्य चैतन्येर वाणी ॥ 35॥

चित्-आनन्द कृष्ण-विग्रह-कृष्ण का दिव्य स्वरूप, जो पूर्णतया आध्यात्मिक है; मायिक करि' मानि–बहिरंगा शक्ति से निर्मित मानते हैं; एइ बड़ पाप-यह महापाप है; सत्य-सत्य है; चैतन्येर वाणी-श्री चैतन्य महाप्रभु के वचन।

अनुवाद

"मायावादी भगवान् के साकार रूप को आध्यात्मिक तथा आनन्दमय नहीं मानते। यह एक बड़ा पाप है। श्री चैतन्य महाप्रभु के कथन वास्तव में प्रामाणिक हैं।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के आन्दोलन का लक्ष्य परम सत्य के विषय में मायावाद निर्णय को परास्त करना है। चूँकि मायावाद सम्प्रदाय के सदस्य भगवान् के आध्यात्मिक स्वरूप को नहीं समझ पाते, अतः वे त्रुटिवश यह सोचते हैं कि भगवान् का स्वरूप भी भौतिक शक्ति से बना हुआ है। वे सोचते हैं कि भगवान् भी अन्य जीवों के समान भौतिक देह से आच्छादित हैं। इस अपराधमय समझ के कारण वे यह नहीं पहचान पाते कि श्रीकृष्ण का व्यक्तिगत साकार रूप भौतिक नहीं बल्कि आध्यात्मिक है। उनका यह निर्णय भगवान् के चरणकमलों पर महान् अपराध है। जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने

बतलाया है, श्रीकृष्ण का रूप सनातन, ज्ञानमय तथा आनन्दमय है और सारे वैष्णव आचार्य इसे स्वीकार करते हैं। परम सत्य के विषय में यही सही ज्ञान है।

नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपम्

आनन्द-मात्रमविकल्पमविद्ध-वर्चः ।

पश्यामि विश्व-सृजमेकमविश्वमात्मन्

भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥ 36॥

न-नहीं है; अतः-इसकी अपेक्षा; परम्-अधिक श्रेष्ठ; परम-हे परम भगवान्; यत्-जो; भवतः-आपका; स्वरूपम्-स्वरूप; आनन्द-दिव्य आनन्द का; मात्रम्-केवल; अविकल्पम्-जहाँ कोई सृष्टि नहीं है; अविद्ध–बिना अशुद्धता के; वर्चः–कान्ति युक्त; पश्यामि-मैं देख रहा हूँ; विश्व-सृजम् एकम्-जिन्होंने अकेले ही यह ब्रह्माण्ड रचा है; अविश्वम्-नाशवान् भौतिक जगत् से सम्बन्धित नहीं हैं; आत्मन्-हे परमात्मा; भूत-इन्द्रिय-आत्मकम्-इन्द्रियों तथा जीवात्माओं के वास्तविक कारण; अदः-दिव्य; ते-आपकी; उपाश्रितः अस्मि-मैं पूर्ण शरण लेता हूँ।

अनुवाद

"हे परम पूर्ण, मैं इस समय जिस दिव्य रूप का दर्शन कर रहा हूँ, वह दिव्य आनन्द से परिपूर्ण है। यह बहिरंगा शक्ति से कलुषित नहीं है। यह तेज से पूर्ण है। हे प्रभु, इससे बढ़कर आपके विषय में दूसरी कोई समझ नहीं है। आप परमात्मा तथा इस भौतिक जगत् के स्रष्टा हैं, किन्तु आप इस भौतिक जगत् से सम्बन्धित नहीं हैं। आप सृजित रूप तथा विविधता से सर्वथा भिन्न हैं। मैं इस समय आपके जिस रूप का दर्शन कर रहा हूँ, उसी की शरण ग्रहण करता हूँ। यह स्वरूप समस्त जीवों तथा उनकी इन्द्रियों का आदि उद्गम है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.9.3) का है। यह श्लोक ब्रह्माजी द्वारा कहा गया, जब उन्होंने गर्भोदक सागर के जल के भीतर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ध्यान करने के बाद भगवान् की अनुभूति की थी। ब्रह्मा को अनुभूति हुई कि भगवान् का स्वरूप पूर्णरूपेण आध्यात्मिक है। परम सत्य विषयक यह ज्ञान निर्विशेष ज्ञान से बेहतर है।

दृष्टं श्रुतं भूत-भवद्भविष्यत्

स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं वा ।

विनाच्युताद्वस्तु-तरां न वाच्यं

स एव सर्वं परमात्म-भूतः ॥ 37॥

दृष्टम्-प्रत्यक्ष अनुभव; श्रुतम्-सुनकर अनुभव; भूत-भूतकाल; भवत्-वर्तमान; भविष्यत्-जो भविष्य में होगा; स्थास्नुः-अचर; चरिष्णुः-चर; महत्-महानतम; अल्पकम्-सबसे छोटा; वा-या; विना-बिना; अच्युतात्-भगवान् अच्युत के; वस्तु-तराम्-कुछ अन्य; न वाच्यम्-नहीं कहने योग्य; सः-वे परम भगवान्; एव–अवश्य; सर्वम्-सभी के वास्तविक कारण; परमात्म-भूतः-सभी कारणों के स्रोत।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं। वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य हैं एवं वे चर तथा अचर हैं। वे महानतम तथा लघुतम हैं और वे दृश्य तथा प्रत्यक्ष अनुभवगम्य हैं। वे वैदिक साहित्य में विख्यात हैं। हर वस्तु कृष्ण है और उनके बिना कहीं कोई अस्तित्व नहीं है। वे समस्त ज्ञान के मूल हैं और वे समस्त शब्दों द्वारा ज्ञेय हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.46.43) से उधृत है, जिसे उद्धव ने तब कहा था, जब वे कृष्ण की अनुपस्थिति में वृन्दावनवासियों को सान्त्वना देने आये थे।

तद्वा इदं भुवन-मङ्गल मङ्गलाय

ध्याने स्म नो दरशितं त उपासकानाम् ।

तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं

योऽनादृतो नरक-भाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥ 38॥

तत्-वह; वा-या; इदम्-यह; भुवन-मङ्गल-हे समस्त जगत् के सर्वश्रेष्ठ मंगलकारी; मङ्गलाय-लाभ के लिए; ध्याने-ध्यान में; स्म-अवश्य; नः-हमारे; दरशितम्-प्रकट हुए; ते-आपके द्वारा; उपासकानाम्-भक्ति में लगे हुए भक्तों का; तस्मै-उनको; नमः-प्रणाम; भगवते-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को; अनुविधेम-हम पूर्ववर्ती आचार्यों के चरणकमलों का अनुसरण करते हुए प्रणाम करते हैं; तुभ्यम्-आपको; यः-जो हैं; अनादृतः-अधिक प्रशंसा नहीं की जाती; नरक-भाग्भिः -जो व्यक्ति नारकीय स्थिति में जाने योग्य हैं उनके द्वारा; असत्-प्रसङ्गैः-जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का अतर्कसंगत वर्णन करते हैं।

अनुवाद

"हे सर्व-मंगलमय! हमारे कल्याण के लिए आप हमारे ध्यान में प्रकट होते हैं। इस प्रकार आप अपने दिव्य रूप को प्रकट करके हमारी पूजा सम्भव बनाते हैं। हम आप परम पुरुष को सादर नमस्कार करते हैं। और आपकी पूजा करते हैं, जिसे निर्विशेषवादी अल्पज्ञान के कारण नहीं मानते। इस तरह वे नरक को जाने योग्य हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.9.4) का है।

अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।

परं भावमजानन्तो मम भूत-महेश्वरम् ॥ 39॥

अवजानन्ति–नहीं जानते; माम्-मुझे; मूढ़ाः-मूर्ख; मानुषीम्-एक मनुष्य के समान; तनुम्-शरीर; आश्रितम्-स्वीकार किया; परम्-परम; भावम्-स्थिति; अजानन्तः–न जानकर; मम–मेरी; भूत-महा-ईश्वरम्-भौतिक जगत् की सृष्टि करनेवाले परम पुरुष के रूप में सर्वश्रेष्ठ स्थिति।

अनुवाद

"मूर्ख लोग मेरा अनादर करते हैं, क्योंकि मैं मनुष्य की तरह प्रकट होता हूँ। वे समस्त कारणों के कारण, भौतिक शक्ति के स्रष्टा के रूप में मेरी परम स्थिति को नहीं जानते।"

तात्पर्य

यह श्लोक भगवद्गीता (9.11) से है।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।

क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥40॥

तान्–उन सब को; अहम्-मैं; द्विषतः-जो द्वेषी हैं; क्रूरान्–सदैव बुरा करने की इच्छा वाले; संसारेषु इस भौतिक संसार में; नर-अधमान्–मनुष्यों में अधम लोगों को; क्षिपामि-गिराता हूँ; अजस्रम्-बारम्बार; अशुभान्-अशुभ कार्यों में लगे हुए लोगों को; आसुरीषु–आसुरिक; एव–निश्चित रूप से; योनिषु–योनियों में।

अनुवाद

"जो लोग मेरे स्वरूप से ईर्ष्या करते हैं, जो क्रूर तथा दुष्ट हैं और मनुष्यों में अधम हैं, उन्हें मैं निरन्तर नारकीय स्थिति में विविध आसुरी योनियों में डाल देता हूँ।"

तात्पर्य

यह उद्धरण भी भगवद्गीता (16.19) का है।

सूत्रेर परिणाम-वाद, ताहा ना मानिया ।

‘विवर्त-वाद’ स्थापे, ‘व्यास भ्रान्त’ बलिया ॥41॥

सूत्रेर–वेदान्त-सूत्र के सूत्रों का; परिणाम-वाद-परिणामवाद (शक्ति का परिवर्तन); ताहा ना मानिया-यह तथ्य स्वीकार न करके; विवर्त-वाद-विवर्तवाद (भ्रम का सिद्धान्त); स्थापे-स्थापित किया; व्यास भ्रान्त बलिया-व्यासदेव पर गलत होने का दोषारोपण करके।

अनुवाद

“परिणामवाद (शक्ति का रूपान्तर) को न मानकर श्रीपाद शंकराचार्य ने इसके बहाने कि व्यासदेव ने त्रुटि की है, मोह के सिद्धान्त (विवर्तवाद) को स्थापित करना चाहा है।”

तात्पर्य

इस श्लोक की अधिक व्याख्या के लिए आदिलीला के सातवें अध्याय, श्लोक 121-126 को देखना चाहिए।

एइ त’ कल्पित अर्थ मने नाहि भाय ।

शास्त्र छाड़ि’ कुकल्पना पाषण्डे बुझाय ॥ 42 ॥

एइ त’-यह; कल्पित-काल्पनिक; अर्थ-अर्थ; मने-मन को; नाहि-नहीं; भाय-पसन्द आता; शास्त्र-प्रामाणिक शास्त्र; छाड़ि’–छोड़कर; कु-कल्पना-काल्पनिक सिद्धान्त; पाषण्डे-नास्तिक श्रेणी के लोगों को; बुझाय–सिखाई।

अनुवाद

"श्रीपाद शंकराचार्य ने अपनी व्याख्या तथा कल्पित अर्थ दिये हैं। यह किसी भी विवेकवान व्यक्ति के मन को पसन्द नहीं आता। उन्होंने नास्तिकों को विश्वास दिलाने तथा उन्हें अपने वश में करने के लिए ऐसा किया है।"

तात्पर्य

श्रीपाद शंकराचार्य के प्रचार ने बौद्ध नास्तिक दर्शन का विरोध किया। भगवान् बुद्ध का इरादा नास्तिकों को पशु-हत्या का पाप करने से रोकना था। नास्तिक लोग ईश्वर को नहीं समझ सकते, इसलिए भगवान् बुद्ध प्रकट हुए और उन्होंने नास्तिकों को पशु-हत्या से रोकने के लिए अहिंसा-दर्शन का प्रचार किया। जब तक मनुष्य पशु-हत्या के पाप से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक वह धर्म या ईश्वर को नहीं समझ सकता। यद्यपि भगवान् बुद्ध भगवान् कृष्ण के अवतार थे, किन्तु वे ईश्वर के विषय में कुछ नहीं बोले, क्योंकि लोग ईश्वर को समझने के लिए सक्षम नहीं थे। वे केवल पशु-हिंसा रोकना चाहते थे। श्रीपाद शंकराचार्य मनुष्य की आध्यात्मिक पहचान को प्रधानता देना चाहते थे, अतः वे वैदिक साहित्य की काल्पनिक विवेचना द्वारा नास्तिकों को बदलना चाहते थे। ये आचार्यों के रहस्य हैं। कभी-कभी वे वेदों के असली उद्देश्य को छिपाकर उनकी व्याख्या भिन्न ढंग से करते हैं। कभी-कभी वे नास्तिकों को अपने वश में करने के लिए सर्वथा भिन्न वाद की स्थापना करते हैं। इस तरह यह कहा जाता है कि शंकर-दर्शन पाषण्डियों अर्थात् नास्तिकों के लिए है।

परमार्थ-विचार गेल, करि मात्र 'वाद' ।

काहाँ मुक्ति पाब, काहाँ कृष्णेर प्रसाद ॥43॥

परम-अर्थ-विचार-आध्यात्मिक विषयों पर विचार; गेल-चला गया; करि-करते हैं; मात्र वाद-केवल तर्क और वाक्चातुरी; काहाँ–कहाँ, मुक्ति-मुक्ति; पाब–मिलेगी; काहाँ–कहाँ; कृष्णेर प्रसाद–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की कृपा।

अनुवाद

"मायावादी इत्यादि नास्तिक दार्शनिक मुक्ति या कृष्ण-कृपा की परवाह नहीं करते। वे तो केवल नास्तिकवाद के पक्ष में गलत तर्क करते रहते हैं तथा झूठे वाद फैलाते रहते हैं। वे न तो आध्यात्मिक विषयों पर विचार करते हैं, न उनमें व्यस्त रहते हैं।"

व्यास-सूत्रेर अर्थ आचार्य करियाछे आच्छादन।

एइ हय सत्य श्री कृष्ण-चैतन्य-वचन ॥44॥

व्यास-सूत्रेर-व्यास-सूत्र नाम से प्रसिद्ध वेदान्त के सूत्रों के; अर्थ-अर्थ; आचार्य शंकराचार्य ने; करियाछे आच्छादन-उद्देश्यपूर्वक आच्छादित कर दिये; एइ–यही; हय-है; सत्य-सत्य; श्री-कृष्ण-चैतन्य-वचन- भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के वचन और व्याख्या।

अनुवाद

"निष्कर्ष तो यह है कि शंकराचार्य की काल्पनिक व्याख्या से वेदान्त-सूत्र का अर्थ आच्छादित हो जाता है। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने जो कुछ कहा है, वह पूर्णतया सत्य है।"

चैतन्य गोसाञि येइ कहे, सेइ मत सार।

आर यत मत, सेइ सब छारखार ॥ 45 ॥

चैतन्य-गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; येइ कहे जो कुछ भी कहा है; सेइ मत सार-वह व्याख्या ही वास्तव में वैदिक ज्ञान का सार है; आर यत मत-श्री चैतन्य महाप्रभु की व्याख्या से अलग कोई भी मत; सेइ-वे; सब छारखार–सारी विकृतियाँ।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु जो भी अर्थ लगाते हैं वही पूर्ण है। अन्य कोई व्याख्या विकृति मात्र है।"

एत कहि' सेइ करे कृष्ण-सङ्कीर्तन ।

शुनि' प्रकाशानन्द किछु कहेन वचन ॥ 46॥

एत कहि'-इतना सब कहकर; सेइ-प्रकाशानन्द सरस्वती के शिष्य ने; करे-किया; कृष्ण-सङ्कीर्तन-कृष्ण के पवित्र नाम का संकीर्तन; शुनि'–सुनकर; प्रकाशानन्द-गुरु, प्रकाशानन्द सरस्वती; किछु-कुछ; कहेन–कहते हैं; वचन-वचन।

अनुवाद

यह कहकर प्रकाशानन्द सरस्वती का शिष्य कृष्ण-नाम का कीर्तन करने लगा। उसे सुनकर प्रकाशानन्द सरस्वती ने निम्नलिखित बात कही।

आचार्येर आग्रह—'अद्वैत-वाद' स्थापिते ।

ताते सूत्रार्थ व्याख्या करे अन्य रीते ॥47॥

आचार-शंकराचार्य का; आग्रह-उत्साह; अद्वैत-वाद-अद्वैतवाद का सिद्धान्त; स्थापिते-स्थापित करना; ताते-उसी कारण से; सूत्र-अर्थ- ब्रह्मसूत्र या वेदान्त दर्शन का अर्थ; व्याख्या-व्याख्या; करे-करते हैं; अन्य रीते-अन्य प्रकार से।

अनुवाद

"प्रकाशानन्द सरस्वती ने कहा 'शंकराचार्य अद्वैतवाद दर्शन की स्थापना करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। अतः उन्होंने अद्वैत दर्शन के समर्थन हेतु वेदान्त-सूत्र या वेदान्त-दर्शन की व्याख्या भिन्न ढंग से की।"

'भगवत्ता' मानिले 'अद्वैत' ना याय स्थापन ।

अतएव सब शास्त्र करये खण्डन ॥48॥

भगवत्ता–पुरुषोत्तम भगवान् ; मानिले यदि कोई स्वीकार करता है; अद्वैत-अद्वैत; ना–नहीं; याय–सम्भव; स्थापन-स्थापित करना; अतएव इसलिए; सब-सभी; शास्त्र-शास्त्र; करये-करते हैं; खण्डन-खंडन।

अनुवाद

"यदि हम भगवान् के व्यक्तित्व को स्वीकार कर लें, तो उस दर्शन की स्थापना नहीं हो सकती, जो यह मानता है कि भगवान् तथा जीव एक हैं। इसलिए शंकराचार्य ने सभी प्रकार के शास्त्रों के विरुद्ध तर्क रखा और उनका खण्डन किया।"

येइ ग्रन्थ-कर्ता चाहे स्व-मत स्थापिते ।

शास्त्रेर सहज अर्थ नहे ताँहा हैते ॥49॥

येइ-जो; ग्रन्थ-कर्ता-लेखक; चाहे-चाहता है; स्व-मत स्थापिते-अपना मत स्थापित करना; शास्त्रेर–प्रामाणिक शास्त्रों का; सहज-प्रत्यक्ष; अर्थ-अर्थ; नहे-नहीं; ताँहा हैते-उस लेखक का।

अनुवाद

जो भी व्यक्ति अपना मत या दर्शन स्थापित करना चाहता है, वह प्रत्यक्ष व्याख्या के सिद्धान्तानुसार किसी शास्त्र की विवेचना नहीं कर सकता।

'मीमांसक' कहे,—'ईश्वर हय कर्मेर अङ्ग' ।

'साङ्ख्य' कहे,—जगतेर प्रकृति कारण-प्रसङ्ग' ॥50॥

मीमांसक-मीमांसक दार्शनिक; कहे-कहते हैं, ईश्वर-परम भगवान्; हय-हैं; कर्मेर अङ्ग-सकाम कर्मों के अधीन; साङ्ख्य कहे-नास्तिक सांख्यवादी कहते हैं; जगतेर-प्रकट जगत् का; प्रकृति-स्वभाव; कारण-कारण; प्रसङ्ग-तथा प्रसंग।

अनुवाद

"मीमांसावादी दार्शनिकों का मत है कि यदि ईश्वर हैं, तो वे हमारे सकाम कर्मों के अधीन हैं। इसी तरह सांख्य दार्शनिक जो प्रकट जगत् का विश्लेषण करते हैं, कहते हैं कि प्रकट जगत् का कारण भौतिक प्रकृति है।"

'न्याय' कहे,—'परमाणु हैते विश्व हय'।

'मायावादी' निर्विशेष-ब्रह्मे 'हेतु' कय ॥51॥

न्याय कहे-न्याय दर्शन के लोग कहते हैं; परमाणु-परमाणु; हैते-से; विश्व हय-भौतिक दृश्य जगत् आया है; मायावादी–मायावादी दार्शनिक, निराकारवादी; निर्विशेष-ब्रह्म-निराकार ब्रह्मज्योति को; हेतु-कारण; कय–कहते हैं।

अनुवाद

"न्याय के अनुयायी (नैयायिक) मानते हैं कि परमाणु ही विश्व के प्राकट्य का कारण है और मायावादी चिन्तक मानते हैं कि निर्विशेष ब्रह्मतेज ही विश्व का कारण है।"

'पातञ्जल' कहे,—'ईश्वर हय स्वरूप-ज्ञान'।

वेद-मते कहे ताँरे 'स्वयं-भगवान्' ॥52॥

पातञ्जल कहे-पातंजल दार्शनिक कहते हैं; ईश्वर हय-भगवान् हैं; स्वरूप-ज्ञान-आत्म-साक्षात्कार; वेद-मते-वैदिक मतानुसार; कहे-वे कहते हैं; ताँरे–उनको; स्वयम्-भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"पातंजल दार्शनिकों का कहना है कि जब कोई स्वरूपसिद्ध हो जाता है, वह भगवान् को समझता है। इसी प्रकार वेदों तथा वेद मत के अनुसार भगवान् आदि कारण हैं।"

छयेर छय मत व्यास कैला आवर्तन ।

सेइ सब सूत्र लञा 'वेदान्त'-वर्णन ॥53॥

छयेर-छ: दार्शनिकों के; छय मत-छ: भिन्न मत; व्यास-व्यासदेव ने; कैला आवर्तन-विश्लेषण किया; सेइ-वे; सब-सभी; सूत्र-सूत्र; लञालेकर; वेदान्त-वर्णन-वेदान्त दर्शन की व्याख्या का वर्णन किया।

अनुवाद

"इन छहों दार्शनिक मतों का अध्ययन करने के बाद व्यासदेव ने इन सबको वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत सारभूत कर दिया।"

'वेदान्त'-मते,—ब्रह्म 'साकार' निरूपण ।

'निर्गुण' व्यतिरेके तिंहो हय त' 'सगुण' ॥54॥

वेदान्त-मते-वेदान्त दर्शन के अनुसार, ब्रह्म-परम सत्य; स-आकार निरूपण-एक व्यक्ति, स्वरूप युक्त व्यक्ति के रूप में वर्णित हैं; निर्गुण-भौतिक गुणों से रहित; व्यतिरेके-अप्रत्यक्ष व्याख्या द्वारा; तिंहो–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; हय-हैं; त'–वास्तव में; स-गुण-दिव्य गुणों से परिपूर्ण।

अनुवाद

"वेदान्त दर्शन के अनुसार परम सत्य एक पुरुष हैं। जब 'निर्गुण' शब्द का प्रयोग होता है, तो यह समझना चाहिए कि भगवान् के गुण पूर्णतया आध्यात्मिक हैं।"

परम कारण ईश्वर केह नाहि माने ।

स्व-स्व-मत स्थापे पर-मतेर खण्डने ॥55॥

परम कारण–परम कारण, सर्व कारणों के कारण; ईश्वर-ईश्वर; केह नाहि माने-इन दार्शनिकों में से कोई एक भी नहीं मानता; स्व-स्व-मत-अपने व्यक्तिगत मत को; स्थापे–वे स्थापित करते हैं; पर-मतेर खण्डने-अन्यों के मतों का खंडन करते में व्यस्त।

अनुवाद

"उपर्युक्त दार्शनिकों में से कोई भी दार्शनिक समस्त कारणों के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की परवाह नहीं करता। वे अन्यों के दार्शनिक मतों का खण्डन करने और अपने मत को स्थापित करने में ही सदैव लगे रहते हैं।"

ताते छय दर्शन हैते 'तत्त्व' नाहि जानि ।

'महाजन' येइ कहे, सेइ 'सत्य' मानि ॥56॥

ताते-इसलिए; छय दर्शन हैते–छः दर्शनों से; तत्त्व नाहि जानि-हम वास्तविक सत्य नहीं समझ सकते; महाजन-महाजन; येइ कहे-जो कहते हैं; सेइ-वही; सत्य मानि–हम सत्य के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

अनुवाद

"छहों दार्शनिक मतों के अध्ययन से परम सत्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि महाजनों के मार्ग का अनुसरण करें। वे जो भी कहते हैं, उसे ही परम सत्य के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में इन छहों दार्शनिक मतों का सारांश दिया है, जो इस प्रकार है : प्रकाशानन्द ने स्वीकार किया कि श्रीपाद शंकराचार्य अपना अद्वैत दर्शन

स्थापित करना चाहते थे, अतएव उन्होंने वेदान्त दर्शन का आश्रय लेते हुए उसकी व्याख्या अपने खुद के ढंग से की। किन्तु तथ्य यह है कि यदि कोई भगवान् के अस्तित्व को स्वीकार कर ले, तो वह अद्वैतवाद की स्थापना बिल्कुल भी नहीं कर सकता। इस कारण से शंकराचार्य ने उस समस्त वैदिक साहित्य का खण्डन किया जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सर्वोच्चता स्थापित करने वाला है। शंकराचार्य ने अनेक प्रकार से वैदिक साहित्य का खण्डन करना चाहा। विश्वभर में शंकराचार्य के अनुयायियों में से 99% दार्शनिक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को अस्वीकार करते हैं। इसके बदले वे अपना खुद का मत प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। संसारी दार्शनिकों की यह विचित्रता है कि वे अपना मत स्थापित करके अन्यों के मतों का खण्डन करना चाहते हैं। अतः (1) मीमांसक दार्शनिक जैमिनि के सिद्धान्तों का पालन करते हुए सकाम कर्म पर बल देते हैं और कहते हैं कि यदि ईश्वर हैं, तो वे भी सकाम कर्म के नियमों के अधीन हैं। दूसरे शब्दों में, यदि कोई व्यक्ति इस भौतिक जगत् में अपने कर्तव्यों का सुचारु रूप से संपादन करता है, तो ईश्वर उसे वांछित फल प्रदान करने के लिए बाध्य हैं। इन दार्शनिकों के अनुसार ईश्वर का भक्त बनने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि कोई नैतिक सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन करता है, तो ईश्वर उसे सम्मान देंगे और उसे वांछित फल देंगे। ऐसे दार्शनिक वेदों के भक्ति-योग के सिद्धान्त को मान्यता नहीं देते। इसके बदले वे अपने नियत कर्तव्य का पालन करने पर बल देते हैं। (2) कपिल जैसे नास्तिक सांख्य दार्शनिक भौतिक तत्त्वों की बारीकी से छानबीन करते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भौतिक प्रकृति ही हर वस्तु का कारण है। वे परमेश्वर को समस्त कारणों का कारण के रूप में स्वीकार नहीं करते। (3) गौतम तथा कणाद जैसे नैयायिक दार्शनिक परमाणुओं के समूह को सृष्टि का मूल कारण मानते हैं। (4) मायावादी दार्शनिकों का कहना है कि हर वस्तु माया (भ्रम) है। अष्टावक्र इत्यादि दार्शनिक निर्विशेष ब्रह्म तेज को हर वस्तु का कारण मानते हैं। (5) पतंजलि के अनुयायी राज-योग का अभ्यास करते हैं। वे अनेक रूपों में से परम सत्य के एक रूप की कल्पना करते हैं। उनके आत्म-साक्षात्कार की यही विधि है।

ये पाँचों दर्शन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की प्रधानता का पूर्णरूपेण खण्डन करते हैं और अपने-अपने दार्शनिक मतों की स्थापना करना चाहते हैं। किन्तु श्रील व्यासदेव ने वेदान्त-सूत्र की रचना की और समस्त वैदिक साहित्य का सार ग्रहण करके उन्होंने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की प्रधानता स्थापित की। उपर्युक्त पाँचों प्रकार के दार्शनिक निर्विशेष ब्रह्म को भौतिक गुणों से रहित मानते हैं और उनका विश्वास है कि जब भगवान् प्रकट होते हैं, तो वे भौतिक गुणों से आच्छादित होकर कल्मषग्रस्त हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द 'सगुण' है। वे सगुण ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म जैसे शब्दों का व्यवहार करते हैं। उनके लिए निर्गुण ब्रह्म का अर्थ है "भौतिक गुणों से रहित निर्विशेष परम सत्य" तथा सगुण का अर्थ है "वह परम सत्य जो भौतिक गुणों का कल्मष स्वीकार करता है।" इस तरह का दार्शनिक चिन्तन मायावाद दर्शन कहलाता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि परम सत्य को कभी भी भौतिक गुणों से कोई सरोकार नहीं होता, क्योंकि वे दिव्य हैं। वे पूर्ण आध्यात्मिक गुणों के समेत सदैव पूर्ण हैं। उपर्युक्त पाँचों प्रकार के दार्शनिक भगवान् विष्णु को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार नहीं करते, अपितु वे अन्य दार्शनिक मतों के खण्डन में लगे रहते हैं। भारत में छह प्रकार के दार्शनिक मत हैं। चूँकि व्यासदेव वैदिक-सत्ता हैं, इसलिए वे वेदव्यास कहलाते हैं। उनकी वेदान्त-सूत्र की दार्शनिक व्याख्या भक्तों द्वारा स्वीकार की जाती है। भगवद्गीता (15.15) में कृष्ण ने इसकी पुष्टि की है :

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो

मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो

वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम् ॥

"मैं सबके हृदयों में स्थित हूँ और मुझ से ही स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होते हैं। सारे वेदों द्वारा जानने योग्य मैं ही हूँ। वस्तुतः मैं ही वेदान्त का संकलनकर्ता हूँ और मैं ही वेदों का ज्ञाता हूँ।"

समस्त वेदाध्ययन का चरम लक्ष्य कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार करना है। यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन श्रील व्यासदेव के दार्शनिक निर्णय का प्रसार करने वाला और रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्क तथा स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु जैसे अन्य महान् आचार्यों का अनुसरण करने वाला है।

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना

नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम् ।

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां

महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥57॥

तर्कः-शुष्क तर्क; अप्रतिष्ठः-अस्थिर; श्रुतयः-वेद; विभिन्नाः-विभिन्न विभागों से युक्त; न-नहीं; असौ-वह; ऋषिः-महान् साधु; यस्य–जिसके; मतम्-विचार; न-नहीं होते; भिन्नम्-अलग; धर्मस्य-धर्म के; तत्त्वम्-तथ्य; निहितम्-स्थापित; गुहायाम्-एक अनुभूत व्यक्ति के हृदय में; महा-जनः-आत्म-साक्षात्कार प्राप्त पूर्ववर्ती आचार्यों ने; येन-जिस मार्ग पर; गतः-चले; सः-वही; पन्थाः-शुद्ध मार्ग है।

अनुवाद

"शुष्क तर्क अनिर्णीत होते हैं। जिस महापुरुष का मत अन्यों से भिन्न नहीं होता, वह महान् ऋषि नहीं माना जाता। नाना प्रकार के वेदों के अध्ययन-मात्र से कोई उस सही मार्ग पर नहीं आ सकता, जिससे धार्मिक सिद्धान्त समझे जाते हैं। इन धार्मिक सिद्धान्तों का वास्तविक सत्य तो शुद्ध स्वरूपसिद्ध व्यक्ति के हृदय में छिपा रहता है। फलतः जैसाकि शास्त्रों द्वारा पुष्टि होती है, मनुष्य को महाजनों के द्वारा बताये गये प्रगतिशील मार्ग को स्वीकार करना चाहिए।"

तात्पर्य

यह श्लोक महाभारत के वनपर्व (313.117) में युधिष्ठिर महाराज ने कहा है।

श्री-कृष्ण-चैतन्य-वाणी—अमृतेर धार।

तिंहो ये कहये वस्तु, सेइ 'तत्त्व'—सार ॥58॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-वाणी-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के वचन; अमृतेर धार-अमृत का निरन्तर प्रवाह; तिंहो-वे; ये कहये वस्तु-जिसे भी परम सत्य कहते हैं; सेइ तत्त्व सार–वही समस्त दिव्य ज्ञान का सार है।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु के शब्द अमृत की धारा हैं। वे जिसे परम सत्य कहते हैं, वास्तव में वही समस्त आध्यात्मिक ज्ञान का सार है।"

ए सब वृत्तान्त शुनि' महाराष्ट्रीय ब्राह्मण।

प्रभुरे कहिते सुखे करिला गमन ॥59॥

ए सब वृत्तान्त ये सारे वृतान्त; शुनि'–सुनकर; महाराष्ट्रीय ब्राह्मण-महाराष्ट्रीय ब्राह्मण; प्रभुरे–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को; कहिते-बताने के लिए; सुखे-अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक; करिला गमन-गया।

अनुवाद

इन सारे कथनों को सुनकर वह महाराष्ट्रीय ब्राह्मण खुशी-खुशी श्री चैतन्य महाप्रभु को बताने गया।

हेन-काले महाप्रभु पञ्च-नदे स्नान करि'।

देखिते चलियाछेन 'बिन्दु-माधव हरि' ॥60॥

हेन-काले-इसी समय; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; पञ्च-नदे स्नान करि'-पंचनद के नाम से विख्यात्, गंगा नदी में स्नान करके; देखिते चलियाछेन-देखने जा रहे थे; बिन्दु-माधव हरि-बिन्दु-माधव नामक भगवान् के विग्रह को।

अनुवाद

जब वह महाराष्ट्रीय ब्राह्मण चैतन्य महाप्रभु को मिलने गया, तब महाप्रभु पंचनद में स्नान करके बिन्दु माधव मन्दिर जा रहे थे।

पथे सेइ विप्र सब वृत्तान्त कहिल ।

शुनि' महाप्रभु सुखे ईषत् हासिल ॥ 61॥

पथे-मार्ग में; सेइ विप्र-उस ब्राह्मण ने; सब वृत्तान्त कहिल–समस्त घटना बताई; शुनि'–सुनकर; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; सुखे-प्रसन्नता में; ईषत्-मंद; हासिल-मुस्कुराए।

अनुवाद

जब महाप्रभु रास्ते में जा रहे थे, तब उस महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने उन्हें वह घटना सुनाई जो प्रकाशानन्द सरस्वती के दल में घटी थी। यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु सुखी होकर हँसने लगे।

माधव-सौन्दर्य देखि' आविष्ट हइला ।

अङ्गनेते आसि' प्रेमे नाचिते लागिला ॥ 62॥

माधव-सौन्दर्य देखि'–भगवान् बिन्दु माधव की सुन्दरता देखकर; आविष्ट हइला-प्रेमभाव में आविष्ट हो गये; अङ्गनेते आसि'–आँगन में आकर; प्रेमे-प्रेमभाव में; नाचिते लागिला-नाचने लगे।

अनुवाद

बिन्दु माधव मन्दिर पहुँचकर श्री चैतन्य महाप्रभु बिन्दु माधव भगवान् का सौन्दर्य देखकर भावमय प्रेम में विभोर हो उठे। फिर वे मन्दिर के आँगन में नृत्य करने लगे।

शेखर, परमानन्द, तपन, सनातन ।

चारि-जन मिलि' करे नाम-सङ्कीर्तन ॥ 63 ॥

शेखर-चन्द्रशेखर; परमानन्द-परमानन्द पुरी; तपन-तपन मिश्र; सनातन-सनातन गोस्वामी; चारि-जन मिलि'चारों मिलकर; करे-करने लगे; नाम-सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ चार जन थे-चन्द्रशेखर, परमानन्द पुरी, तपन मिश्र तथा सनातन गोस्वामी। वे सब हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन इस प्रकार कर रहे थे।

"हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः ।

गोपाल गोविन्द राम श्री-मधुसूदन" ॥ 64॥

हरये-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि को; नमः-प्रणाम; कृष्ण-भगवान् कृष्ण को; यादवाय-यदुकुल के वंशज को; नमः-प्रणाम; गोपाल-गोपाल; गोविन्द-गोविन्द; राम-राम; श्री-मधुसूदन-श्री मधुसूदन।

अनुवाद

वे "हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः, गोपाल गोविन्द राम श्री मधुसूदन" बोलकर कीर्तन कर रहे थे।

तात्पर्य

हरे कृष्ण महामन्त्र कीर्तन का यह दूसरा ढंग है। इसका अर्थ इस प्रकार है, "मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को सादर नमस्कार करता हूँ। वे यदु कुल के वंशज हैं। मैं गोपाल, गोविन्द, राम तथा श्री मधुसूदन को सादर नमस्कार करता हूँ।"

चौदिकेते लक्ष लोक बले 'हरि' 'हरि'।

उठिल मङ्गल-ध्वनि स्वर्ग-मर्त्य भरि' ॥65॥

चौ-दिकेते-चारों दिशाओं में; लक्ष-लाखों; लोक-लोग; बले-गाते हैं; हरि हरि-हरि हरि; उठिल-वहाँ गूंज उठी; मङ्गल-ध्वनि-शुभ ध्वनि; स्वर्ग-मर्त्य भरि'-सभी लोकों में फैलती हुई।

अनुवाद

चारों दिशाओं में लाखों लोग "हरि! हरि!" बोल उठे। इस तरह तुमुल तथा मंगल ध्वनि से सारा ब्रह्माण्ड भर गया।

निकटे हरि-ध्वनि शुनि' परकाशानन्द।

देखिते कौतुके आइला लळा शिष्य-वृन्द ॥66॥

निकटे-पास में ही; हरि-ध्वनि शुनि'–हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन सुनकर; परकाशानन्द-प्रकाशानन्द सरस्वती; देखिते-देखने के लिए; कौतुके-उत्सुकतापूर्वक; आइला-आ गये; लञा-लेकर; शिष्य-वृन्द-सभी शिष्य गण।

अनुवाद

जब पास ही रह रहे प्रकाशानन्द सरस्वती ने हरे कृष्ण महामन्त्र की तुमुल ध्वनि सुनी, तो वे तथा उनके शिष्य तुरन्त ही महाप्रभु को देखने आये।

देखिया प्रभुर नृत्य, प्रेम, देहेर माधुरी।

शिष्य-गण-सङ्गे सेइ बले 'हरि' 'हरि' ॥ 67॥

देखिया-देखकर; प्रभुर नृत्य-श्री चैतन्य महाप्रभु का नृत्य; प्रेम-प्रेमभाव; देहेर माधुरी-उनके शरीर की दिव्य सुन्दरता; शिष्य-गण-सङ्गे-अपने शिष्यों के साथ; सेइ-प्रकाशानन्द सरस्वती; बले-बोलने लगे; हरि हरि-भगवान् हरि का नाम।

अनुवाद

जब प्रकाशानन्द सरस्वती ने महाप्रभु का दर्शन किया, तो वे स्वयं तथा उनके शिष्य भी श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ कीर्तन करने लगे। प्रकाशानन्द सरस्वती महाप्रभु के नृत्य तथा उनके भावमय प्रेम एवं उनके शारीरिक सौन्दर्य से मुग्ध हो गये।

कम्प, स्वर-भङ्ग, स्वेद, वैवर्य, स्तम्भ ।

अश्रु-धाराय भिजे लोक, पुलक-कदम्ब ॥ 68 ॥

कम्प-कंपन; स्वर-भङ्ग-स्वर गद्गद् होना; स्वेद-पसीना; वैव-देह का रंग फीका हो जाना; स्तम्भ-स्तम्भित हो जाना; अश्रु-धाराय-नेत्रों से आँसुओं की धाराओं द्वारा; भिजे-भीग गये; लोक-सभी लोग; पुलक-कदम्ब-देह में कदंब फूलों की तरह रोमांच होना।

अनुवाद

महाप्रभु के शरीर में भावमय आध्यात्मिक रूपान्तर (विकार) होने लगे। उनका शरीर काँपने लगा और उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई। उन्हें पसीना आ गया, वे पीले पड़ गये और उनके आँसुओं की निरन्तर धारा से वहाँ पर खड़े सारे लोग भीग गये। महाप्रभु के शरीर में जो रोमांच (पुलक) हुआ, वह कदम्ब पुष्पों जैसा प्रतीत हो रहा था।

हर्ष, दैन्य, चापल्यादि 'सञ्चारी' विकार ।

देखि' काशी-वासी लोकेर हैल चमत्कार ॥69॥

हर्ष-प्रसन्नता; दैन्य-विनम्रता; चापल्य-आदि-चपलता आदि; सञ्चारी विकार-संचारी विकार; देखि-देखकर; काशी-वासी-बनारस के निवासी; लोकेर-लोगों को; हैल चमत्कार-आश्चर्य हुआ।

अनुवाद

महाप्रभु के हर्ष तथा दैन्य को देखकर तथा उनकी भावविभोर बातें करते सुनकर सारे लोग चकित हुए। निस्सन्देह, बनारस (काशी) के सारे निवासियों ने महाप्रभु के शारीरिक विकारों को देखा और वे आश्चर्यचकित हो गये।

लोक-सङ्घट्ट देखि' प्रभुर' बाह्य' यबे हैल ।

सन्न्यासीर गण देखि' नृत्य संवरिल ॥ 70 ॥

लोक-सङ्घट्ट देखि'–लोगों की अत्यधिक भीड़ देखकर; प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु को; बाह्य-बाह्य चेतना; यबे हैल-जब आ गई; सन्न्यासीर गण–प्रकाशानन्द सरस्वती आदि मायावादी सन्न्यासियों को; देखि'–देखकर; नृत्य संवरिल-अपना नृत्य रोक दिया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु को बाह्य चेतना आई, तो उन्होंने देखा कि अनेक मायावादी संन्यासी तथा अन्य लोग वहाँ एकत्रित हो गये हैं। अतः उन्होंने उस समय अपना नृत्य रोक दिया।

प्रकाशानन्देर प्रभु वन्दिला चरण ।

प्रकाशानन्द आसि' ताँर धरिल चरण ॥71॥

प्रकाशानन्देर-प्रकाशानन्द सरस्वती को; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; वन्दिला-वन्दना की; चरण-चरणों में; प्रकाशानन्द-प्रकाशानन्द सरस्वती; आसि'-आकर; ताँर-उनके; धरिल चरण-चरणकमल तुरन्त पकड़ लिए।

अनुवाद

कीतर्न बन्द करने के बाद दैन्य के महान् उदारहण श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रकाशानन्द सरस्वती के चरणों की वन्दना की। इस पर प्रकाशानन्द सरस्वती तुरन्त आगे आये और उन्होंने महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिये।

प्रभु कहे,—'तुमि जगद्गुरु पूज्यतम ।

आमि तोमार ना हइ 'शिष्येर शिष्य' सम ॥72॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तुमि-आप; जगत्-गुरु-जगद्गुरु; पूज्य-तम–सर्वाधिक पूजनीय; आमि-मैं; तोमार-आपके; ना हइ-नहीं हूँ; शिष्येर शिष्य सम-शिष्य के शिष्य के भी समान।

अनुवाद

जब प्रकाशानन्द सरस्वती ने महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिए, तो महाप्रभु ने कहा, "हे महोदय, आप जगद्गुरु हैं, अतः आप परम पूज्य हैं। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं तो आपके शिष्यों के शिष्य के भी समान नहीं हूँ।"

तात्पर्य

मायावादी संन्यासी सामान्यतया अपने आपको जगद्गुरु कहते हैं। उनमें से अनेक अपने आपको सर्वाराध्य मानते हैं, यद्यपि वे अपने जनपद के या भारत के बाहर भी नहीं जाते। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यन्त वदान्यता तथा विनयशीलतावश अपने आपको प्रकाशानन्द सरस्वती के अधीन शिष्य के रूप में प्रस्तुत किया।

छ हञा केने कर हीनेर वन्दन ।

आमार सर्व-नाश हय, तुमि ब्रह्म-सम ॥73॥

श्रेष्ठ हञा-अधिक सम्माननीय व्यक्ति होकर; केने-क्यों; कर-आप करते हैं; हीनेर-एक हीन व्यक्ति की; वन्दन-वन्दना; आमार सर्वनाश हय–मेरा विनाश हो जायेगा; तुमि ब्रह्म-सम-आप निर्विशेष ब्रह्म के समान हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आप महान् आध्यात्मिक पुरुष हैं, अतः आपको मुझ जैसे व्यक्ति की पूजा नहीं करनी चाहिए। मैं तो बहुत ही तुच्छ हूँ। यदि आप ऐसा करेंगे, तो मेरी आध्यात्मिक शक्ति का ह्रास हो जायेगा, क्योंकि आप निर्विशेष ब्रह्म के तुल्य हैं।

यद्यपि तोमारे सब ब्रह्म-सम भासे ।

लोक-शिक्षा लागि' ऐछे करिते ना आइसे' ॥74॥

यद्यपि-यद्यपि; तोमारे-आपके लिए; सब-सब; ब्रह्म-सम-निराकार ब्रह्म के समान; भासे-प्रतीत होता है; लोक-शिक्षा लागि'-जन सामान्य को सिखाने के लिए; ऐछे-इस प्रकार; करिते ना आइसे-आपको स्वयं को नहीं दिखाना चाहिए।

अनुवाद

"हे महोदय, आपके लिए हर व्यक्ति निर्विशेष ब्रह्म के पद पर है, किन्तु सामान्य जनों को प्रबुद्ध करने के लिए आपको ऐसा नहीं करना चाहिए।"

तेंहो कहे, 'तोमार पूर्वे निन्दा-अपराध ये करिल ।

तोमार चरण-स्पर्शे, सब क्षय गेल ॥75॥

तेंहो कहे-उन्होंने उत्तर दिया; तोमार-आपकी; पूर्वे-पहले; निन्दा-अपराध-निन्दा और अपराध; ग्रे करिल-जो मैंने किये हैं; तोमार चरण-स्पर्शे-आपके चरणकमलों का स्पर्श करके; सब क्षय गेल-उन सभी अपराधों को प्रभाव नष्ट हो गये।

अनुवाद

प्रकाशानन्द सरस्वती ने उत्तर दिया, "इसके पूर्व मैंने आपकी निन्दा करके आपके प्रति अनेक अपराध किये हैं, किन्तु अब आपके चरणों का स्पर्श करने से मेरे सारे अपराध नष्ट हो गये हैं।"

जीवन्मुक्ता अपि पुनन्ति संसार-वासनाम् ।

यद्यचिन्त्य-महा-शक्तौ भगवत्यपराधिनः ॥76 ॥

जीवत्-मुक्ताः-जीवन मुक्त व्यक्ति; अपि-भी; पुनः–फिर; यान्ति-जाते हैं; संसार-वासनाम्-भौतिक सुखों की इच्छा के लिए; यदि-यदि; अचिन्त्य-महा-शक्ती-अचिन्त्य शक्ति के स्वामी के; भगवति–परम भगवान् के; अपराधिनः-अपराधी।

अनुवाद

"यदि मुक्त कहलाने वाला व्यक्ति इस जीवन में अचिन्त्य शक्तियों के आगार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति अपराध करता है, तो वह पुनः नीचे गिर जायेगा और भौतिक भोग के लिए भौतिक वातावरण की इच्छा करेगा।

स वै भगवतः श्रीमत्पाद-स्पर्श-हताशुभः ।

भेजे सर्प-वपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥77॥

सः-वह (साँप); वै-वास्तव में, भगवतः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के; श्रीमत्-पाद-स्पर्श-चरणकमलों के स्पर्श द्वारा; हत-अशुभः-पापमय जीवन के सभी फलों से मुक्त होकर; भेजे–प्राप्त किया; सर्प-वपुः–साँप का शरीर; हित्वा-त्यागकर; रूपम्-रूप; विद्याधर-अर्चितम्-विद्याधर लोक के निवासी व्यक्ति जैसा।

अनुवाद

“श्रीकृष्ण के चरणकमलों का स्पर्श पाकर वह सर्प तुरन्त ही अपने पापमय जीवन के कर्मफलों से मुक्त हो गया। इस तरह उस सर्प ने अपना शरीर त्याग दिया और सुन्दर विद्याधर देवता का शरीर धारण कर लिया।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.34.9) से है। एक बार वृन्दावनवासी नन्द महाराज के नेतृत्व में तीर्थयात्रा के लिए सरस्वती-तट पर गये। नन्द महाराज उपवास कर रहे थे और जंगल के निकट लेटे थे। उस समय वहाँ एक सर्प प्रकट हुआ, जो पहले आंगिरस ऋषि द्वारा शापग्रस्त था। इस सर्प का पहले का नाम सुदर्शन था और वह गन्धर्वलोक का निवासी था। चूँकि उसने ऋषि का मजाक उड़ाया था, इसलिए उसे विशाल सर्प का शरीर धारण करना पड़ा। जब इस सर्प ने महराज नन्द पर आक्रमण कर दिया तो वे “कृष्ण! मेरी रक्षा करो” कहकर पुकारने लगे। कृष्ण तुरन्त ही प्रकट हो गये और उस सर्प पर अपने चरणकमलों से पाद-प्रहार करने लगे। भगवान् के चरणकमलों का स्पर्श पाकर वह सर्प अपने पापमय जीवन के कर्मफलों से तुरन्त मुक्त हो गया। मुक्त होकर उसने पुनः सुदर्शन गन्धर्व का मूल रूप धारण कर लिया।

प्रभु कहे,—‘विष्णु’ ‘विष्णु’, आमि क्षुद्र जीव हीन ।

जीवे ‘विष्णु’ मानि–एइ अपराध-चिह्न ॥78॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; विष्णु विष्णु-विष्णु ! विष्णु !; आमि-मैं; क्षुद्र-तुच्छ; जीव–एक जीव; हीन–सभी सद्गुणों से रहित; जीवे-ऐसे तुच्छ श्रेणी के जीव को; विष्णु मानि–भगवान् विष्णु मानकर; एइ अपराध-चिह्न-यह महा अपराध है।

अनुवाद

जब प्रकाशानन्द सरस्वती ने श्रीमद्भागवत का श्लोक उधृत करते हुए अपनी बात सिद्ध करनी चाही, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त भगवान् विष्णु का नाम लेते हुए प्रतिरोध किया। तत्पश्चात् महाप्रभु ने अपने आपको महापतित जीव के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा, "यदि कोई पतित बद्ध जीवात्मा को विष्णु, भगवान् या अवतार के रूप में स्वीकार करता है, तो वह महान् अपराध करता है।"

तात्पर्य

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ही थे, फिर भी हमें शिक्षा देने के लिए उन्होंने अपने आपको विष्णु कोटि का होने से मना किया। दुर्भाग्यवश इस कलियुग में तथाकथित विष्णु अवतारों की संख्या बहुत है। लोग यह नहीं जानते कि अपने आपको अवतार बतलाना सबसे बड़ा अपराध है। लोगों को चाहिए कि किसी सामान्य व्यक्ति को ईश्वर का अवतार नहीं मानें, क्योंकि ऐसा करना भी महान् अपराध है।

जीवे 'विष्णु' बुद्धि दूरे—येइ ब्रह्म-रुद्र-सम ।

नारायणे माने तारे 'पाषण्डीते' गणन ॥79॥

जीवे एक साधारण जीव का; विष्णु-भगवान् विष्णु के रूप में; बुद्धि-स्वीकार करना; दूर-दूर रहे; येइ-जो कोई भी; ब्रह्म-रुद्र-सम-ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसी विभूतियों के समान; नारायणे-भगवान् नारायण, विष्णु; माने-मानता है; तारे-ऐसा व्यक्ति; पाषण्डीते गणन-पाषंडीयों (नास्तिक अपराधी) में गिना जाता है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "सामान्य जीव की क्या बात है, ब्रह्माजी तथा शिवजी को भी विष्णु या नारायण के समान नहीं माना जा सकता। यदि कोई ऐसा करता है, तो उसे अपराधी तथा नास्तिक समझा जाना चाहिए।"

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्म-रुद्रादि-दैवतैः ।

समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद्ध्रुवम् ॥80॥

यः-जो व्यक्ति; तु–लेकिन; नारायणम्-ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं के स्वामी, भगवान् नारायण की; देवम्-भगवान् को; ब्रह्म-ब्रह्माजी; रुद्र-शिवजी; आदि-आदि; दैवतैः-ऐसे देवताओं के साथ; समत्वेन-समान स्तर पर; एव-ही; वीक्षेत-देखता है; सः-ऐसा व्यक्ति; पाषण्डी-पाषंडी; भवेत् बनेगा; ध्रुवम्-अवश्य।

अनुवाद

"जो व्यक्ति ब्रह्मा तथा शिव जैसे देवताओं को नारायण के समकक्ष मानता है, उसे पाषण्डी या अपराधी माना जाना चाहिए।"

प्रकाशानन्द कहे,–"तुमि साक्षात्भगवान् ।

तबु यदि कर ताँर 'दास'-अभिमान" ॥81॥

प्रकाशानन्द कहे-प्रकाशानन्द सरस्वती ने उत्तर दिया; तुमि-आप; साक्षात्-साक्षात्; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण; तबु-फिर भी; यदि यदि; कर-आप कर रहे हैं; ताँर दास-अभिमान-स्वयं को उनके दास के रूप में प्रस्तुत।।

अनुवाद

प्रकाशानन्द ने उत्तर दिया, "आप साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। फिर भी आप अपने आपको उनका सनातन सेवक मान रहे हैं।"

तबु पूज्य हओ, तुमि बड़ आमा हैते ।

सर्व-नाश हय मोर तोमार निन्दाते ॥82॥

तबु-तब भी; पूज्य हओ-आप पूजनीय हैं; तुमि बड़-आप अत्यन्त महान् हैं; आमा हैते–मुझसे; सर्व-नाश हय-सब विनाश हो गया; मोर-मेरा; तोमार निन्दाते-आपकी निन्दा करने के कारण।

अनुवाद

“हे प्रभु, आप परमेश्वर हैं और यद्यपि आप अपने आपको भगवान् का दास मानते हैं, तो भी आप पूज्य हैं। आप मुझसे श्रेष्ठ हैं। चूँकि मैंने आपकी निन्दा की है, अतएव मेरी सारी आध्यात्मिक उपलब्धियाँ नष्ट हो चुकी हैं।

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण-परायणः ।

सु-दुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महा-मुने ॥83॥

मुक्तानाम्-अज्ञान के बन्धन से मुक्त लोगों में; अपि-भी; सिद्धानाम्-सिद्ध लोगों में; नारायण–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण के; परायणः-भक्त; सु-दुर्लभः-अत्यन्त दुर्लभ; प्रशान्त-आत्मा-पूर्णतया सन्तुष्ट, इच्छा रहित; कोटिषु-करोड़ों में; अपि-भी; महा-मुने–हे महामुनि।

अनुवाद

“हे महर्षि, अज्ञान से मुक्त करोडों मुक्त पुरुषों में से तथा लगभग सिद्धि प्राप्त कर चुके करोड़ों सिद्धों में से शायद ही कोई एक नारायण का शुद्ध भक्त होता है। केवल ऐसा ही भक्त वास्तव में पूर्णतया तुष्ट तथा शान्त होता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (6.14.5) से उधृत है।

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।

हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥84॥

आयुः-जीवन अवधि; श्रियम्-ऐश्वर्य; यशः–यश; धर्मम्-धर्म; लोकान्-सम्पत्तियाँ; आशिषः-वरदान; एव-ही; च-तथा; हन्ति–नष्ट हो जाते हैं; श्रेयांसि-सौभाग्य; सर्वाणि-सभी; पुंसः–व्यक्ति के; महत्-महात्माओं के प्रति; अतिक्रमः-अपराध के कारण।

अनुवाद

"जब कोई व्यक्ति महात्माओं से दुर्व्यवहार करता है, तो उसकी आयु, ऐश्वर्य, यश, धर्म, सम्पत्ति तथा सौभाग्य सभी नष्ट हो जाते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.4.46) से लिया गया है, जो महाराज परीक्षित के प्रति शुकदेव गोस्वामी का कथन है।

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रि

स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।

महीयसां पाद-रजोऽभिषेकं

निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥ 85॥

न–नहीं; एषाम्-गृह-जीवन में आसक्त व्यक्ति की; मतिः–रुचि; तावत्-तब तक; उरुक्रम-अङ्घ्रिम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उरुक्रम (जो असाधारण कार्यकलाप करते हैं) के चरणकमलों में; स्पृशति-स्पर्श करते हैं; अनर्थ-अनर्थ; अपगमः-नष्ट; यत्-जिसका; अर्थः-परिणाम; महीयसाम्-

महात्माओं (भक्तों) के; पाद-रजः-चरणकमलों की धूल; अभिषेकम्-सिर पर छिड़कना; निष्किञ्चनानाम्-जो भौतिक सम्पत्तियों से पूर्णतया मुक्त हैं; न वृणीत–नहीं करता; यावत्-जब तक।

अनुवाद

"जब तक मानव समाज उन महात्माओं अर्थात् भक्तों के चरणकमलों की धूल को धारण नहीं करता, जिन्हें भौतिक सम्पत्ति से कुछ लेना-देना नहीं होता, तब तक मनुष्य अपना ध्यान कृष्ण के चरणकमलों की ओर नहीं ले जा सकता। वे चरणकमल भौतिक जीवन की समस्त अवांछित कष्टप्रद स्थितियों का विनाश कर देते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (7.5.32) में आया है। इसकी व्याख्या के लिए मध्यलीला (22.53) देखें।

एबे तोमार पादाब्जे उपजिबे भक्ति ।

तथि लागि' करि तोमार चरणे प्रणति ॥86॥

एबे-अब; तोमार-आपके; पाद-अब्जे-चरणकमलों में; उपजिबे-विकसित होगी; भक्ति-भक्ति; तथि लागि'–उस कारण से; करि-मैं करता हूँ; तोमार चरणे प्रणति-आपको चरणकमलों में विनम्र प्रणाम।

अनुवाद

"आज से मैं आपके चरणकमलों में भक्ति विकसित करूँगा। इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ और आपके चरणकमलों पर गिरा हूँ।"

एत बलि' प्रभुरे लञा तथाय वसिल ।

प्रभुरे प्रकाशानन्द पुछिते लागिल ॥87॥

एत बलि'-इस प्रकार कहकर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; लञा-लेकर; तथाय वसिल-वहाँ बैठ गये; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रकाशानन्द-प्रकाशानन्द सरस्वती; पुछिते लागिल–पूछने लगे।

अनुवाद

यह कहकर प्रकाशानन्द सरस्वती श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ बैठ गये और महाप्रभु से इस प्रकार प्रश्न करने लगे।

मायावादे करिला यत दोषेर आख्यान।

सबे एइ जानि' आचार्येर कल्पित व्याख्यान ॥ 88॥

मायावादे-मायावाद दर्शन में; करिला-आपने किया है; यत-सब; दोषेर आख्यान-दोषों का वर्णन; सबे-सब; एइये; जानि'–जानकर; आचार्येर–शंकराचार्य की; कल्पित व्याख्यान-कल्पित व्याख्याएँ।

अनुवाद

प्रकाशानन्द सरस्वती ने कहा, "आपने मायावाद दर्शन में जिन दोषों को इंगित किया है, उन्हें हम समझ सकते हैं। शंकराचार्य द्वारा दी गई सारी व्याख्याएँ काल्पनिक हैं।"

सूत्रेर करिला तुमि मुख्यार्थ-विवरण।

ताहा शुनि' सबार हैल चमत्कार मन ॥89॥

सूत्रेर- ब्रह्मसूत्रका; करिला-किया है; तुमि-आपने; मुख्य-अर्थ-विवरण-प्रत्यक्ष अर्थ का वर्णन; ताहा शुनि'–उसे सुनकर; सबार-सबका; हैल-हो गया; चमत्कार-विस्मित; मन-मन।

अनुवाद

हे प्रभु, आपने ब्रह्मसूत्र की व्याख्या करते हुए जो भी प्रत्यक्ष अर्थ दिये हैं, वे हम सबके लिए निश्चय ही अत्यन्त चकित करने वाले हैं।

तुमि त' ईश्वर, तोमार आछे सर्व-शक्ति।

सङ्क्षेप-रूपे कह तुमि शुनिते हय मति ॥90॥

तुमि त'–निस्सन्देह आप हो; ईश्वर-परम भगवान्; तोमार-आपकी; आछे-हैं; सर्व-शक्ति-सर्व शक्तियाँ; सङ्क्षेप-रूपे-संक्षेप में; कह-कृपया कहें; तुमि-आप; शुनिते हय मति–मैं सुनना चाहता हूँ।

अनुवाद

"आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, अतएव आपमें अचिन्त्य शक्तियाँ हैं। मैं आपसे ब्रह्मसूत्र के विषय में संक्षेप में सुनना चाहता हूँ।"

तात्पर्य

प्रकाशानन्द सरस्वती ने कहा कि वे श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा ब्रह्मसूत्र के प्रत्यक्ष अर्थ की दी गई व्याख्या को समझ चुके हैं। फिर भी वे ब्रह्मसूत्र या वेदान्त-सूत्र के सारांश तथा उद्देश्य को संक्षेप में सुनना चाहते हैं।

प्रभु कहे,—"आमि 'जीव', अति तुच्छ-ज्ञान!।

व्यास-सूत्रेर गम्भीर अर्थ, व्यास–भगवान्" ॥91॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; आमि जीव-मैं एक सामान्य जीव हुँ; अति तुच्छ-ज्ञान-मेरा ज्ञान तुच्छ है; व्यास-सूत्रेर–व्यासदेव के वेदान्त-सूत्र की; गम्भीर अर्थ-गम्भीर व्याख्या; व्यास–व्यासदेव; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं एक सामान्य जीव हूँ, अतएव मेरा ज्ञान अत्यन्त तुच्छ है। किन्तु ब्रह्मसूत्र का अर्थ अत्यन्त गहन है, क्योंकि इसके लेखक व्यासदेव तो स्वयं भगवान् हैं।"

तात्पर्य

सामान्य जीव वेदान्त-सूत्र के अर्थ को वास्तव में समझ नहीं सकता। यदि कोई व्यक्ति इसके अधिकारी, स्वयं व्यासदेव से इसे सुने, तभी वह उसे समझ सकता है। इसीलिए व्यासदेव ने ब्रह्मसूत्र का भाष्य श्रीमद्भागवत के रूप में दिया। उन्हें ऐसा करने का आदेश उनके गुरु नारद ने दिया था। निस्सन्देह, शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के उद्देश्य को जान-बूझकर विकृत कर दिया, क्योंकि उनके समक्ष कोई प्रयोजन था। वे भगवान् बुद्ध द्वारा फैलाये गये नास्तिक ज्ञान के स्थान पर वैदिक ज्ञान की स्थापना करना चाहते थे। काल तथा परिस्थिति के अनुसार ऐसी आवश्यकताएँ उठती रहती हैं। इसके लिए न तो भगवान् बुद्ध को, न ही शंकराचार्य को दोषी ठहराये जा सकते हैं। समय की माँग थी कि विभिन्न प्रकार के नास्तिकों के लिए ऐसी व्याख्या की जाती। निष्कर्ष यह है कि श्रीमद्भागवत पढ़े बिना और भक्तिमय सेवा किये बिना वेदान्त-सूत्र के उद्देश्य को नहीं समझा जा सकता। इसलिए इसकी और आगे व्याख्या श्री चैतन्य महाप्रभु ने निम्नलिखित श्लोकों में की।

ताँर सूत्रेर अर्थ कोन जीव नाहि जाने ।

अतएव आपने सूत्रार्थ करियाछे व्याख्याने ॥92॥

ताँर सूत्रेर अर्थ-व्यासदेव के वेदान्त-सूत्र का अर्थ; कोन-कोई भी; जीव-जीव; नाहि जाने-नहीं जानता; अतएव–अतः; आपने-स्वयं; सूत्र-अर्थ-सूत्र का अर्थ; करियाछे व्याख्याने-वर्णन किया है।

अनुवाद

सामान्य व्यक्ति के लिए वेदान्त-सूत्र का अर्थ समझ पाना कठिन है, किन्तु व्यासदेव ने अहैतुकी कृपावश स्वयं इसका अर्थ बतलाया है।

येइ सूत्र-कर्ता, से यदि करये व्याख्यान।

तबे सूत्रेर मूल अर्थ लोकेर हय ज्ञान॥ 93॥

येइ सूत्र-कर्ता-जिस व्यक्ति ने वेदान्त-सूत्र की रचना की; से-वह व्यक्ति; यदि-यदि; करये व्याख्यान-अर्थ समझाते हैं; तबे-तब; सूत्रेर-वेदान्त-सूत्र के श्लोक; मूल-मूल; अर्थ-अर्थ; लोकेर-लोगों का; हय ज्ञान–समझ में आता है।

अनुवाद

यदि वेदान्त-सूत्र की व्याख्या इसके लेखक स्वयं व्यासदेव द्वारा की जाए, तो सामान्य लोग इसके मूल अर्थ को समझ सकते हैं।

प्रणवेर येइ अर्थ, गायत्रीते सेइ हय।

सेइ अर्थ चतुःश्लोकीते विवरिया कय॥ 94॥

प्रणवेर-ॐकार का; येइ-जो; अर्थ-अर्थ; गायत्रीते-गायत्री मन्त्र में; सेइ-वह; हय-है; सेइ अर्थ-वही अर्थ; चतुःश्लोकीते-चतुः श्लोकी भागवत में; विवरिया-विस्तार से वर्णन करके; कय-कहा है।

अनुवाद

“ॐकार ध्वनि का अर्थ गायत्री मन्त्र में निहित है। उसी की विस्तृत व्याख्या श्रीमद्भागवत के चार श्लोकों (चतुःश्लोकी) में हुई है।”

ब्रह्मारे ईश्वर चतुःश्लोकी ये कहिला।

ब्रह्मा नारदे सेइ उपदेश कैला॥ 95॥

ब्रह्मारे–ब्रह्माजी को; ईश्वर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; चतुःश्लोकी-चतु:श्लोकी नामक भागवत के चार विख्यात श्लोक; ये कहिला-जो समझाया गया था; ब्रह्मा-ब्रह्माजी; नारदे-नारद मुनि को; सेइ-वह; उपदेश कैला-उपदेश दिया।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने श्रीमद्भागवत के उन चार श्लोकों में ब्रह्माजी से जो भी कहा था, उसकी व्याख्या ब्रह्माजी ने नारद से भी की।"

नारद सेइ अर्थ व्यासेरे कहिला ।

शुनि' वेद-व्यास मने विचार करिला ॥ 96 ॥

नारद-महर्षि नारद; सेइ अर्थ-वही अर्थ; व्यासेरे कहिला-व्यासदेव को कहा; शुनि'–सुनकर; वेद-व्यास-वेदव्यास; मने-मन में; विचार करिला-सावधानी से विचार किया।

अनुवाद

"ब्रह्माजी ने नारद मुनि से जो भी कहा था, उसे ही नारद मुनि ने पुनः व्यासदेव से कहा। इसके बाद व्यासदेव ने अपने मन में इन उपदेशों पर विचार किया।"

एइ अर्थ–आमार सूत्रेर व्याख्यानुरूप ।

'भागवत' करिब सूत्रेर भाष्य-स्वरूप ॥97॥

एइ अर्थ-यह अर्थ; आमार-मेरा; सूत्रेर-ब्रह्मसूत्र का; व्याख्या-अनुरूप-उपयुक्त व्याख्या; भागवत-श्रीमद्भागवत पुराण; करिब–मैं करूँगा; सूत्रेर- ब्रह्मसूत्र का; भाष्य-स्वरूप-मूल भाष्य।

अनुवाद

“श्रील व्यासदेव ने विचार किया कि उन्हें नारद मुनि से ॐकार की जो भी व्याख्या मिली है, उसे वे अपने ग्रन्थ श्रीमद्भागवत में ब्रह्मसूत्र की टीका के रूप में विस्तार से बतलायेंगे।”

तात्पर्य

ॐकार ध्वनि वैदिक ज्ञान का मूल है। यह ॐकार महावाक्य अर्थात् सर्वोपरि ध्वनि कहलाता है। इस महावाक्य में जो भी अर्थ है, उसे आगे गायत्री मन्त्र में अच्छी तरह समझा जाता है। पुनः, यही अर्थ श्रीमद्भागवत में चार श्लोकों में-चतुःश्लोकी–में बतलाया गया है, जिनका शुभारम्भ अहं एवासमेवाग्रे शब्दों से होता है। भगवान् कहते हैं कि, “सृष्टि के पूर्व केवल मैं ही था।” इसी श्लोक से चारों श्लोकों की रचना हुई है और ये चतुःश्लोकी कहलाते हैं। इस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने ब्रह्माजी को चतुःश्लोकी का अर्थ समझाया। तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने इसे नारद मुनि को और नारद मुनि ने श्रील व्यासदेव को बतलाया। यह परम्परा प्रणाली है। आदि शब्द प्रणव, जो कि वैदिक ज्ञान का सार है, उसका अर्थ श्रीमद्भागवत में बतलाया गया है। निष्कर्ष यह है कि ब्रह्मसूत्र की व्याख्या श्रीमद्भागवत में हुई है।

चारि-वेद-उपनिषदे व्रत किछु हय ।

तार अर्थ लञा व्यास करिला सञ्चय ॥98॥

चारि-वेद-चार वेद (साम, यजुर, ऋक् तथा अथर्व); उपनिषदे-तथा एक सौ आठ उपनिषदों में; व्रत-जो भी; किछु हय-है; तार अर्थ–उन शास्त्रों का अर्थ; लञा–लेकर; व्यास–व्यासदेव; करिला सञ्चय-संकलन किया।

अनुवाद

“चारों वेदों तथा 108 उपनिषदों में जितने वैदिक सिद्धान्त थे, उन्हें व्यासदेव ने संचित करके वेदान्त सूत्र के रूप में प्रस्तुत किया।”

येइ सूत्रे येइ ऋक्—विषय-वचन।

भागवते सेइ ऋक्श्लोके निबन्धन ॥ 99 ॥

येइ सूत्रे-वेदान्त-सूत्र के श्लोकों में; येइ-जो भी; ऋक्-वैदिक मन्त्र; विषय-वचन–समझाया जाने वाला विषय; भागवते- श्रीमद्भागवत; सेइ ऋक्-वही वैदिक मन्त्र; श्लोके-18000 श्लोक; निबन्धन-संकलन करके।

अनुवाद

"वेदान्त-सूत्र में समस्त वैदिक ज्ञान का अर्थ बतलाया गया है और श्रीमद्भागवत में वही अर्थ अठारह हजार श्लोकों में वर्णित हुआ है।"

अतएव ब्रह्म-सूत्रेर भाष्य-श्री-भागवत।

भागवत-श्लोक, उपनिषत्कहे 'एक' मत ॥ 100॥

अतएव–अतएव; ब्रह्म-सूत्रेर भाष्य-ब्रह्मसूत्र के श्लोकों का भाष्य; श्री-भागवत-श्रीमद्भागवत; भागवत-श्लोक- श्रीमद्भागवत के श्लोको में; उपनिषत्-उपनिषदों की व्याख्या; कहे-कहा; एक मत-एक मत।

अनुवाद

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि ब्रह्मसूत्र की व्याख्या श्रीमद्भागवत में विस्तृत रूप से की गई है और श्रीमद्भागवत के श्लोकों में जो कुछ कहा गया है, उनसे उसी उद्देश्य (अर्थ) की पूर्ति होती है, जो उपनिषदों में दी गई व्याख्या से होती है।

आत्मावास्यमिदं विश्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥101॥

आत्म-आवास्यम्-परम भगवान् परमात्मा की शक्ति का विस्तार; इदम्-यह; विश्वम्--ब्रह्माण्ड; यत्-जो; किञ्चित्-कुछ; जगत्याम्-सृष्टि में; जगत्-जड़ तथा चेतन; तेन-उनके द्वारा; त्यक्तेन–प्रत्येक मनुष्य को प्रदान की गई वस्तुओं द्वारा; भुञ्जीथाः-तुम्हें अपना निर्वाह करना चाहिए; मा–कभी नहीं; गृधः-छीनो; कस्य स्वित्-किसी दूसरे की; धनम् सम्पत्ति।

अनुवाद

"इस ब्रह्माण्ड के भीतर जड़ तथा चेतन सब कुछ भगवान् द्वारा संचालित है और वह उसी भगवान् का है। अतः मनुष्य को केवल वे ही वस्तुएँ स्वीकार करनी चाहिए, जो उसके लिए नियत कर दी गई हैं। उसे यह जानते हुए कि अन्य वस्तुएँ किसकी हैं, उन्हें स्वीकार नहीं करनी चाहिए।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (8.1.10) से है। साम्यवादी तथा समाजवादी यह विचारधारा प्रचारित करना चाहते हैं कि हर वस्तु जनता की या राज्य की है। ऐसी विचारधारा पूर्ण नहीं है। यदि इस विचारधारा का विस्तार किया जाए, तो हम देख सकते हैं कि हर वस्तु ईश्वर की है। साम्यवादी विचारधारा की पूर्णता यही होगी। यहाँ पर श्रीमद्भागवत का उद्देश्य अच्छी तरह बतलाया गया है। हममें से हर एक को उन्हीं वस्तुओं से सन्तुष्ट रहना चाहिए, जिन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने हमारे लिए नियत कर रखा है। हमें दूसरों की सम्पत्ति को हड़पना नहीं चाहिए। इसी सहज विचार को हमें अपने दैनिक जीवन पर लागू करना चाहिए। हर एक के पास सरकार द्वारा प्रदत्त खेत या भूखण्ड होना चाहिए और हर एक के पास कुछ गौवें होनी चाहिए। इन दोनों का उपयोग जीवन निर्वाह के लिए किया जाना चाहिए। इसके अलावा यदि कोई वस्तु फैक्टरी में उत्पन्न की जाती है, तो उसे भगवान् की सम्पत्ति माननी चाहिए, क्योंकि इसकी कच्ची सामग्री भगवान् की मालिकी की है। वास्तव में ऐसी वस्तुओं को कृत्रिम ढंग से बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है; किन्तु यदि ऐसी वस्तुएँ बनाई जाती हैं, तो यह

समझना चाहिए कि ये वस्तुएँ परम भगवान् की मालिकी की हैं। आध्यात्मिक साम्यवाद भगवान् के चरम स्वामित्व को मान्यता प्रदान करता है। जैसाकि भगवद्गीता (5.29) में कृष्ण द्वारा कहा गया है :

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

"मेरी पूर्ण चेतना में स्थित व्यक्ति मुझे समस्त यज्ञों तथा तपस्याओं का चरम लक्ष्य, समस्त लोकों तथा देवताओं का अधीश्वर तथा समस्त जीवों का शुभचिन्तक जानकर भौतिक कष्टों से शान्ति प्राप्त करता है।"

श्रीमद्भागवत में यह भी बतलाया गया है कि किसी को किसी भी वस्तु को अपनी सम्पत्ति नहीं माननी चाहिए। वह जो भी सम्पत्ति अपनी बतलाता है, वह वास्तव में कृष्ण की है। मनुष्य को उतने से ही सन्तुष्ट रहना चाहिए, जितना भगवान् ने उसके लिए नियत कर दिया है। उसे दूसरों की सम्पत्ति नहीं हड़पनी चाहिए। इस तरह सारे विश्व में शान्ति स्थापित हो सकेगी।

भागवतेर सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन ।

चतुःश्लोकीते प्रकट तार करियाछे लक्षण ॥102॥

भागवतेर- श्रीमद्भागवत के; सम्बन्ध-भगवान् के साथ एक व्यक्तिगत सम्बन्ध; अभिधेय-उस सम्बन्ध में कार्यकलाप करना; प्रयोजन-जीवन का चरम लक्ष्य; चतुः-श्लोकीते- श्रीमद्भागवत के चार प्रसिद्ध श्लोकों में; प्रकट-प्रदर्शित; तार–उनके; करियाछे-किये हैं; लक्षण-लक्षण।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत का सार-भगवान् से हमारा सम्बन्ध, उस सम्बन्ध में हमारे कार्य तथा जीवन का लक्ष्य-श्रीमद्भागवत के चार श्लोकों में, जिन्हें चतुःश्लोकी कहते हैं, दिया हुआ है। इन्हीं चार श्लोकों में हर बात की व्याख्या की गई है।

आमि-‘सम्बन्ध’-तत्त्व, आमार ज्ञान-विज्ञान।

आमा पाइते साधन-भक्ति’ अभिधेय’-नाम ॥ 103 ॥

आमि-मैं; सम्बन्ध-तत्त्व-सभी सम्बन्धों का केन्द्र बिन्दु; आमार-मेरा; ज्ञान-ज्ञान; विज्ञान-उस ज्ञान का व्यावहारिक प्रयोग; आमा पाइते-मुझे प्राप्त करने के लिए; साधन-भक्ति-प्रेममयी सेवा का अभ्यास; अभिधेय-नाम-उस सम्बन्ध में कार्यकलाप कहलाता है।

अनुवाद

“(भगवान् कृष्ण कहते हैं :) ‘मैं सारे सम्बन्धों का केन्द्र हूँ। मेरे सम्बन्ध में ज्ञान तथा उस ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग ही वास्तविक ज्ञान है। भक्ति के लिए मेरे पास आना अभिधेय कहलाता है।”

तात्पर्य

आध्यात्मिक ज्ञान का अर्थ है परम सत्य को तीन रूपों में निर्विशेष ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा सर्वशक्तिमान पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में पूरी तरह से जान लेना। अन्त में जब कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है और उनकी सेवा करता है, तो उस ज्ञान को विज्ञान या विशेष ज्ञान या आध्यात्मिक ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग कहते हैं। मनुष्य को जीवन का लक्ष्य, प्रयोजन प्राप्त करने के लिए भगवान् की भक्ति करनी चाहिए। इस प्रयोजन को प्राप्त करने के लिए भक्ति करना अभिधेय कहलाता है।

साधनेर फल–‘प्रेम’ मूल-प्रयोजन।

सेइ प्रेमे पाय जीव आमार ‘सेवन’ ॥ 104॥

साधनेर फल-प्रेममयी सेवा का फल; प्रेम-भगवत्प्रेम; मूल-प्रयोजन-मुख्य लक्ष्य; सेइ प्रेमे-उस भगवत्प्रेम द्वारा; पाय-प्राप्त करता है; जीव-जीव; आमार-मेरी; सेवन-सेवा।

अनुवाद

"सेवा करने से मनुष्य क्रमशः भगवत्प्रेम के पद तक ऊपर उठता है। यही जीवन का मुख्य लक्ष्य है। भगवत्प्रेम के पद पर मनुष्य भगवान् की सेवा में शाश्वत रूप से लगा रहता है।"

ज्ञानं परम-गुह्यं मे यद्विज्ञान-समन्वितम् ।

स-रहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥105॥

ज्ञानम्-ज्ञान; परम-सर्वाधिक; गुह्यम्-गुप्त; मे–मेरा; यत्-जो; विज्ञान–अनुभूति; समन्वितम्-से युक्त; स-रहस्यम्-रहस्य के साथ; तत्-उसके; अङ्गम्-भागों को; च-तथा; गृहाण ग्रहण करने का प्रयास करो; गदितम्-वर्णित किये गये; मया-मेरे द्वारा।

अनुवाद

"मैं जो कुछ तुमसे कह रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो, क्योंकि मेरे विषय में दिव्य ज्ञान न केवल वैज्ञानिक है अपितु रहस्यों से पूर्ण है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.9.31) का है। इसकी व्याख्या के लिए आदिलीला, अध्याय 1, श्लोक 51 देखें।

एइ 'तिन' तत्त्व आमि कहिनु तोमारे ।

'जीव' तुमि एइ तिन नारिबे जानिबारे ॥106॥

एइ तिन तत्त्व-परम सत्य के ये तीनों पहलू; आमि-मैं; कहिनु-कहूँगा; तोमारे-तुमसे; जीव–एक जीवात्मा; तुमि-तुम; एइ तिन-ये तीन; नारिबे–स्वयं समर्थ नहीं हो पाओगे; जानिबारे-समझने में।

अनुवाद

“हे ब्रह्मा, मैं तुम्हें यह सारा सत्य बतलाऊँगा। क्योंकि तुम जीव हो, अतः मेरे बताये बिना तुम मेरे साथ अपने सम्बन्ध, भक्ति-कार्य तथा जीवन के आखरी प्रयोजन को नहीं समझ सकोगे।

यैछे आमार ‘स्वरूप’, यैछे आमार स्थिति’ ।

यैछे आमार गुण, कर्म, षड्-ऐश्वर्य-शक्ति ॥107॥

यैछे–जितना; आमार-मेरा; स्वरूप-वास्तविक स्वरूप; यैछे–जितनी; आमार-मेरी; स्थिति-स्थिति; यैछे–जितने; आमार-मेरे; गुण-गुण; कर्म-कर्म; षट्-ऐश्वर्य-शक्ति-छः प्रकार के ऐश्वर्य।

अनुवाद

“मैं तुम्हें अपने वास्तविक स्वरूप तथा अपनी स्थिति, अपने गुण, कर्म तथा छह ऐश्वर्य बतलाऊँगा।”

आमार कृपाय एइ सब स्फुरुक तोमारे” ।

एत बलि’ तिन तत्त्व कहिला ताँहारे ॥108॥

आमार-मेरी; कृपाय-कृपा द्वारा; एइ सब-ये सब; स्फुरुक तोमारे-तुम्हारे भीतर जागृत हो; एत बलि’-यह कहकर; तिन तत्त्व-तीनों तत्त्व; कहिला ताँहारे-उन्हें वर्णित किये।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण ने ब्रह्माजी को आश्वासन दिया, ‘मेरी कृपा से ये बातें तुम में जागृत होंगी।’ यह कहकर भगवान् ब्रह्माजी को तीनों तत्त्व (सत्य) बतलाने लगे।”

यावानहं यथा-भावो यदूप-गुण-कर्मकः ।

तथैव तत्त्व-विज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥109॥

यावान्-(मैं) अपने दिव्य स्वरूप में जैसा हूँ; अहम्-मैं; यथा-जिस प्रकार; भावः-दिव्य स्थिति; यत्-जो; रूप-विभिन्न रूप तथा रंग; गुण-गुण; कर्मकः-कार्यकलाप; तथा एव–बिल्कुल उसी प्रकार; तत्त्व-विज्ञानम्-वास्तविक अनुभूति; अस्तु-हो जाये; ते तुम्हें; मत्-मेरी; अनुग्रहात्-अहैतुकी कृपा द्वारा।

अनुवाद

"मेरी अहैतुकी कृपा से मेरा व्यक्तित्व, विविध रस, गुण तथा लीला ये सभी तुममें प्रकाशित हों।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.9.32) का है। इसकी व्याख्या के लिए आदिलीला, अध्याय 1, श्लोक 52 देखें।

सृष्टिर पूर्वे षड्-ऐश्वर्य-पूर्ण आमि त' हइये।

'प्रपञ्च', 'प्रकृति', 'पुरुष' आमातेइ लये ॥110॥

सृष्टिर पूर्वे-इस दृश्य जगत् की सृष्टि से पहले; षट्-ऐश्वर्य-पूर्ण–छः ऐश्वर्यों से पूर्ण; आमि-मैं; त' हइये-केवल उपस्थित था; प्रपञ्च-सम्पूर्ण भौतिक शक्ति; प्रकृति-भौतिक प्रकृति; पुरुष-जीवात्मा; आमातेइ लये मुझमें ही स्थित थे।

अनुवाद

"भगवान् ने कहा, 'इस सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व मैं विद्यमान था और समग्र भौतिक शक्ति, भौतिक प्रकृति तथा सारे जीव मुझमें स्थित थे।"

सृष्टि करि' तार मध्ये आमि प्रवेशिये।

प्रपञ्च ये देख सब, सेह आमि हइये ॥ 111॥

सृष्टि करि'-सृष्टि करने के बाद; तार मध्ये-सृष्टि में; आमि प्रवेशिये-मैंने भगवान् विष्णु के रूप में प्रवेश किया; प्रपञ्च-दृश्य जगत्; ये-जो कुछ भी; देख-तुम देखते हो; सब-समस्त; सेह-वह; आमि हइये-मैं हूँ।

अनुवाद

"इस सृष्टि की रचना के बाद मैंने इसमें प्रवेश किया। तुम इस सृष्टि में जो कुछ देखते हो, वह मेरी शक्ति का विस्तार मात्र है।"

प्रलये अवशिष्ट आमि 'पूर्ण' हइये।

प्राकृत प्रपञ्च पाय आमातेइ लये ॥ 112॥

प्रलये-प्रलय के समय; अवशिष्ट–जो बचा रहता है; आमि-मैं; पूर्ण–पूर्ण; हइये-हूँ; प्राकृत प्रपञ्च–भौतिक दृश्य जगत्; पाय-प्राप्त करता है; आमातेइ-मुझमें; लये-लय।

अनुवाद

"जब सारे ब्रह्माण्ड का लय होता है, तब मैं पूर्णरूपेण बचा रहता हूँ और दिखने वाली हर वस्तु पुनः मुझमें सुरक्षित हो जाती है।"

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् ग्रसदसत्परम्।

पश्चादहं ग़देतच्च ग्रोऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥113॥

अहम्-मैं, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; एव–निश्चित रूप से; आसम्-उपस्थित था; एव–केवल; अग्ने–सृष्टि से पूर्व; न-नहीं; अन्यत्-कुछ और; यत्-जो; सत्-कार्य; असत्-कारण; परम्-परम; पश्चात्-बाद में; अहम्-मैं, परम भगवान्; यत्-जो; एतत्-यह सृष्टि; च-भी; यः-जो; अवशिष्येत-बचा रहता है; सः-वह; अस्मि-हूँ; अहम्-मैं, परम भगवान्।

अनुवाद

“सृष्टि के पूर्व केवल मैं रहता हूँ और कोई अन्य-चाहे स्थूल हो या सूक्ष्म या आदि-नहीं रहता। सृष्टि के बाद मैं ही हर वस्तु में रहता हूँ और प्रलय के बाद मैं ही शाश्वत बना रहता हूँ।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.9.33) से है। यह चतुःश्लोकी का पहला श्लोक है। व्याख्या के लिए आदिलीला (1.53) देंखे।

“अहमेव”-श्लोके ‘अहम्’–तिन-बार।

पूर्णैश्वर्य श्री-विग्रह-स्थितिर निर्धार ॥114॥

अहम् एव-केवल मैं; श्लोके–इस श्लोक में; अहम्-अहम् शब्द; तिन-बार-तीन बार; पूर्ण-ऐश्वर्य-समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण; श्री-विग्रह-भगवान् के दिव्य स्वरूप की; स्थितिर–स्थिति का; निर्धार निर्धारण करता है।

अनुवाद

“अहमेव’ से प्रारम्भ होने वाले श्लोक में ‘अहम्’ शब्द तीन बार आया है। प्रारम्भ में ‘अहमेव’ शब्द हैं। दूसरी पंक्ति में ‘पश्चाद् अहम्’ शब्द हैं और इसके अन्त में 'सोऽस्म्यहम्’ शब्द आये हैं। यह ‘अहम्’ परम पुरुष का सूचक है।’अहम्’ की पुनरावृत्ति से छह ऐश्वर्यों से युक्त दिव्य पुरुष की पुष्टि होती है।”

ये ‘विग्रह’ नाहि माने, “निराकार’ माने।

तारे तिरस्करिबारे करिला निर्धारणे ॥ 115॥

ये–जो; विग्रह-भगवान् का स्वरूप; नाहि माने-नहीं मानता; निराकार माने-निराकार मानता है; तारे-उसे; तिरस्करिबारे–तिरस्कृत करने के लिए; करिला–किया है; निर्धारणे-निर्धारण।

अनुवाद

"निर्विशेषवादी परमेश्वर के व्यक्तिगत लक्षणों से युक्त साकार रूप को नहीं मानते। इस श्लोक में परम पुरुष पर इसलिए बल दिया गया है, जिससे वे इसे स्वीकार करने की आवश्यकता को समझें। इसीलिए 'अहम्' शब्द तीन बार आया है। किसी बात पर बल देने के लिए तीन बार कहना पड़ता है।"

एइ सब शब्दे हय-ज्ञान-विज्ञान'-विवेक।

माया-कार्य, माया हैते आमि–व्यतिरेक ॥ 116 ॥

एइ सब-इन सभी; शब्द-शब्दों में; हय-है; ज्ञान-यथार्थ आध्यात्मिक ज्ञान की; विज्ञान-यथार्थ अनुभूति; विवेक-विवेक; माया-कार्य-बहिरंगा शक्ति के कार्य; माया हैते-भौतिक शक्ति के कार्यों से; आमि-मैं; व्यतिरेक-अलग।

अनुवाद

"[भगवान् कृष्ण ने आगे कहा :] 'इन सारे शब्दों में वास्तविक आध्यात्मिक ज्ञान तथा उसके व्यावहारिक उपयोग पर विचार किया गया है। यद्यपि बहिरंगा शक्ति मुझ से ही उत्पन्न है, किन्तु मैं उससे अलग हूँ।"

यैछे सूर्येर स्थाने भासये 'आभास'।

सूर्य विना स्वतन्त्र तार ना हय प्रकाश ॥117॥

यैछे-जिस प्रकार; सूर्येर–सूर्य का; स्थाने-एक स्थान में; भासये-प्रकट होता है; आभास-प्रकाश; सूर्य विना-सूर्य के बिना; स्वतन्त्र–स्वतन्त्र रूप से; तार-उसका; ना हय-नहीं है; प्रकाश-प्राकट्य।

अनुवाद

कभी-कभी सूर्य के बदले सूर्य के प्रतिबिम्ब का अनुभव किया जाता है, किन्तु सूर्य का प्रकाश कभी-भी सूर्य से स्वतन्त्र होकर सम्भव नहीं हो सकता।

मायातीत हैले हय आमार 'अनुभव'।

एइ 'सम्बन्ध'-तत्त्व कहिलुँ, शुन आर सब ॥118॥

माया-अतीत हैले-जब कोई इस भौतिक बहिरंगा शक्ति से परे दिव्य स्थिति में स्थित हो जाता है; हय–होता है; आमार अनुभव-मेरा अनुभव; एइ सम्बन्ध-तत्त्व कहिलुँ-मेरे प्रति सम्बन्ध के सिद्धान्त के रूप में इसी का वर्णन है; शुन-कृपया सुनो; आर सब-शेष सब कुछ।

अनुवाद

दिव्य पद प्राप्त करने वाला व्यक्ति मेरा अनुभव कर सकता है। यह अनुभव परमेश्वर के साथ सम्बन्ध का आधार है। मैं इस विषय को और आगे बतलाता हूँ।

तात्पर्य

वास्तविक आध्यात्मिक ज्ञान तो प्रामाणिक शास्त्रों से प्राप्त होता है। इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद अपने वास्तविक आध्यात्मिक जीवन का अनुभव किया जा सकता है। तर्क द्वारा प्राप्त कोई भी ज्ञान अधूरा होता है। मनुष्य को चाहिए कि वह परम्परा पद्धति से तथा गुरु से ज्ञान प्राप्त करे, अन्यथा वह मोहग्रस्त होकर अन्त में निर्विशेषवादी बन जायेगा। जब मनुष्य अत्यन्त बारीकी से छानबीन करता है, तब वह परम सत्य के व्यक्तिगत लक्षणों की अनुभूति कर सकता है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् इस भौतिक सृष्टि से सदैव परे रहते हैं। नारायणः परोऽव्यक्तात्–"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण सदैव दिव्य होते हैं।" वे इस भौतिक जगत् की उपज नहीं हैं। आध्यात्मिक ज्ञान की अनुभूति के बिना यह नहीं समझा जा सकता कि भगवान् का दिव्य स्वरूप सदैव सृजनात्मक शक्ति के परे होता है। यहाँ पर सूर्य

तथा सूर्य-प्रकाश का उदाहरण दिया गया है। सूर्य प्रकाश सूर्य नहीं है, फिर भी सूर्यप्रकाश सूर्य से भिन्न नहीं है। जो बहिरंगा शक्ति के पूर्णतया वशीभूत होता है, वह अचिन्त्यभेदाभेद दर्शन को नहीं समझ सकता। अतः भौतिक शक्ति के वशीभूत व्यक्ति परम सत्य के स्वभाव तथा स्वरूप को नहीं समझ सकता।

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।

तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः ॥ 119॥

ऋते-बिना; अर्थम्-अर्थ; यत्-जो; प्रतीयेत–प्रतीत होता है; न-नहीं; प्रतीयेत-प्रतीत होता; च-तथा; आत्मनि-मुझसे सम्बन्धित; तत्व ह; विद्यात्-तुम समझो; आत्मनः-मेरी; मायाम्-माया शक्ति; यथा-जिस प्रकार; आभासः-परछाई; यथा-जिस प्रकार; तमः-अन्धकार।

अनुवाद

"मेरे बिना जो सत्य प्रतीत होता है, वह निश्चित रूप से मेरी भ्रामक शक्ति (माया) है, क्योंकि मेरे बिना किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं रह सकता। यह छाया में वास्तविक प्रकाश के प्रतिबिम्ब के समान है, क्योंकि प्रकाश में न तो छाया होती है न प्रतिबिम्ब होता है।

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.9.34) से है। यह चतुःश्लोकी का द्वितीय श्लोक है। इस श्लोक की व्याख्या के लिए आदिलीला (1.54) देखें।

'अभिधेय' साधन-भक्तिर शुनह विचार ।

सर्व-जन-देश-काल-दशाते व्याप्ति यार ॥ 120॥

अभिधेय-भगवत्प्राप्ति का उपाय; साधन-भक्तिर-भगवतुसेवा करने की विधि की; शुनह विचार–प्रक्रिया सुनो; सर्व-सभी; जन-लोग; देश-स्थान; काल-समय; दशाते-तथा सभी परिस्थितियों में; व्याप्ति यार-जो सर्वव्यापक है।

अनुवाद

अब मुझसे भक्ति की विधि के विषय में सुनो, जो किसी भी देश, व्यक्ति, काल तथा परिस्थिति में लागू होती है।

तात्पर्य

भागवत धर्म का प्रचार सभी परिस्थितियों में, सभी लोगों में तथा सभी देशों में किया जा सकता है। अनेक ईर्ष्यालु लोग इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन पर आरोप लगाते हैं कि यह तथाकथित हिन्दुत्व की शुद्धता को नष्ट-भ्रष्ट कर रहा है, किन्तु यह सही नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु पुष्टि करते हैं कि भगवान् की भक्ति-भागवत धर्म-जो अब हरे कृष्ण आन्दोलन के रूप में प्रचारित की जा रही है, हर देश में, हर व्यक्ति के लिए, जीवन की किसी भी दशा में तथा सभी परिस्थितियों में प्रचारित की जा सकती है। भागवत धर्म हिन्दू समाज के शुद्ध भक्तों तक ही सीमित नहीं हो सकता। शुद्ध भक्त ब्राह्मण से बढ़कर होता है। अत: यूरोप, अमरीका, आस्ट्रेलिया, जापान, कनाडा आदि देशों में भक्तों को जनेऊ प्रदान करना असंगत नहीं है। कभी-कभी इन शुद्ध भक्तों को, जिन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वीकार कर लिया है, भारत के कुछ मन्दिरों में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी जाती। कुछ कुलीन ब्राह्मण तथा गोस्वामी अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के मन्दिरों में प्रसाद ग्रहण करने से मना करते हैं। वास्तव में यह श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के विरुद्ध है। भक्त किसी भी जाति और देश के हो सकते हैं। इस श्लोक के बल पर जो श्री चैतन्य महाप्रभु के वास्तविक भक्त तथा अनुयायी हैं, उन्हें विश्व के सारे देशों के भक्तों द्वारा शुद्ध वैष्णव के रूप में स्वीकार करना चाहिए। उन्हें बनावटी रूप से नहीं, बल्कि वास्तविक रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए। हमें यह देखना चाहिए कि वे कृष्णभावनामृत में

कितने उन्नत हैं और वे किस तरह विग्रह-पूजा, संकीर्तन तथा रथयात्रा करते हैं। इन सब बातों पर विचार करते हुए ईर्ष्यालु व्यक्ति को द्वेषपूर्ण अत्याचारों से अपने आपको दूर रखना चाहिए।

‘धर्मादि’ विषये यैछे ए ‘चारि’ विचार।

साधन-भक्ति–एइ चारि विचारेर पार ॥121॥

धर्म-आदि-धर्म आदि के; विषये विषय में; यैछे-जिस प्रकार; ए चारि विचार-चार सिद्धान्तों (पात्र, काल, स्थान तथा परिस्थिति) का विचार है; साधन-भक्ति-साधन भक्ति; एइ–इन; चारि–चारों; विचारेर विचारों से; पार–परे।

अनुवाद

“जहाँ तक धार्मिक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, उसमें व्यक्ति, देश, काल तथा दशा का विचार किया जाता है। किन्तु भक्ति में ऐसा विचार नहीं किया जाता है। भक्ति इन समस्त विचारों के परे है।

तात्पर्य

जब हम भौतिक स्तर पर होते हैं, तो अनेक प्रकार के धर्म–हिन्दू, ईसाई, इस्लाम, बौद्ध इत्यादि धर्म होते हैं। ये काल-विशेष, देश-विशेष या व्यक्ति-विशेष के लिए बनाये जाते हैं। अतः इनमें अन्तर पाये जाते हैं। ईसाइयों के सिद्धान्त हिन्दू सिद्धान्तों से भिन्न हैं और हिन्दू सिद्धान्त इस्लामी तथा बौद्ध सिद्धान्तों से भिन्न हैं। इन पर भौतिक स्तर पर विचार किया जा सकता है, किन्तु जब हम दिव्य भक्ति के स्तर पर आते हैं, तब ऐसा कोई विचार नहीं किया जाता। भगवान् की दिव्य सेवा (साधन-भक्ति) इन सिद्धान्तों से परे है। धार्मिक एकता के लिए विश्व उत्सुक है और यह सर्वमान्य स्तर दिव्य सेवा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यह श्री चैतन्य महाप्रभु का निर्णय है। जब कोई व्यक्ति वैष्णव बन जाता है, तब वह इन संकुचित विचारों से परे हो जाता है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (14.26) में भगवान् कृष्ण द्वारा की गई है :

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।

स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

“जो पूर्ण भक्ति में लगा रहता है, जो किसी भी दशा में विचलित नहीं होता, वह तुरन्त भौतिक प्रकृति के गुणों को लाँघकर ब्रह्म-पद को प्राप्त करता है।”

कृष्णभावनामृत आन्दोलन के भक्ति-कार्य भौतिक विचारों से सर्वथा परे हैं। जहाँ तक विभिन्न विश्वासों का सम्बन्ध है, धर्म भिन्न-भिन्न प्रकार के हो सकते हैं; किन्तु आध्यात्मिक स्तर पर भक्ति करने का सबको समान अधिकार है। यह एकता का स्तर है और वर्णविहीन समाज की आधारशिला है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में पुष्टि की है कि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के विषय में प्रामाणिक गुरु से सीखना आवश्यक है। नियमित जीवन के ये चार विभाग हैं, किन्तु वे भौतिक स्तर के अधीन हैं। आध्यात्मिक स्तर पर चार सिद्धान्त हैं-ज्ञान, विज्ञान, तद्-अंग तथा तद्-रहस्यासारे विधि-विधान तथा प्रतिबन्ध भौतिक स्तर पर होते हैं, किन्तु आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य को आध्यात्मिक ज्ञान से युक्त होना आवश्यक है, जो धार्मिक अनुष्ठानों से परे है। भौतिक धार्मिक कृत्य स्मार्त-विधि कहलाते हैं, किन्तु दिव्य भक्ति गोस्वामी-विधि कहलाती है। दुर्भाग्यवश अनेक तथाकथित गोस्वामी स्मार्त- विधि के स्तर पर हैं, किन्तु वे गोस्वामी-विधि के स्तर पर होने का ढोंग करने का प्रयास करते हैं और इस तरह लोग ठगे जाते हैं। गोस्वामी-विधि की व्याख्या सनातन गोस्वामी कृत हरिभक्ति-विलास में की गई है, जिसमें बतलाया गया है कि :

यथा काञ्चनतां याति कांस्यां रसविधानतः ।

तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥

“रासायनिक क्रिया से काँसा सोने में परिवर्तित हो जाता है, जब उसका पारे से स्पर्श किया जाता है। इसी प्रकार, जब किसी व्यक्ति को सुचारु रूप से दीक्षित किया जाता है, तब वह ब्राह्मण के गुण ग्रहण कर सकता है।”

निष्कर्ष यह है कि भक्ति हर एक के लिए खुली है, चाहे वह जिस जाति, काल तथा देश का हो। यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी सिद्धान्त के अनुसार कार्य कर रहा है।

सर्व-देश-काल-दशाय जनेर कर्तव्य ।

गुरु-पाशे सेइ भक्ति प्रष्टव्य, श्रोतव्य ॥ 122॥

सर्व-समस्त; देश-स्थानों में; काल-समय; दशाय-परिस्थितियों में; जनेर-प्रत्येक व्यक्ति का; कर्तव्य-कर्तव्य; गुरु-पाशे–एक आध्यात्मिक गुरु के सरंक्षण में; सेइ-वह; भक्ति-भगवत् सेवा; प्रष्टव्य-पूछनी चाहिए; श्रोतव्य-सुननी चाहिए।

अनुवाद

"अतः हर देश में, हर परिस्थिति में तथा सभी कालों में यह हर एक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह प्रामाणिक गुरु के पास जाए, भक्ति के विषय में उससे प्रश्न करे और भक्ति की व्याख्या को सुने।"

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्व-जिज्ञासुनात्मनः ।

अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥123 ॥

एतावत्-यहाँ तक; एव–अवश्य; जिज्ञास्यम्-जिज्ञासा करनी चाहिए; तत्त्व-परम सत्य की; जिज्ञासुना–विद्यार्थी द्वारा; आत्मनः-आत्मा की; अन्वय-प्रत्यक्ष; व्यतिरेकाभ्याम्-अप्रत्यक्ष रूप से; यत्-जो भी; स्यात्-हो; सर्वत्र-सब जगह; सर्वदा-सदैव।

अनुवाद

"अतः दिव्य ज्ञान में रुचि रखने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह सर्वव्यापक सत्य के विषय में जानने के लिए सदैव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रश्न करे।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.9.36) का है। यह चतुःश्लोकी का चौथा श्लोक है। इसकी व्याख्या के लिए आदिलीला (1.56) देखें।

आमाते ये 'प्रीति', सेइ 'प्रेम'–'प्रयोजन'।

कार्य-द्वारे कहि तार 'स्वरूप'-लक्षण ॥ 124॥

आमाते-मेरे प्रति; ये-जो; प्रीति-स्नेह; सेइ-वह; प्रेम-भगवत्प्रेम; प्रयोजन-जीवन का परम लक्ष्य; कार्य-द्वारे-व्यावहारिक उदाहरण द्वारा; कहि-मैं बताता हूँ; तार-उसका; स्वरूप-लक्षण-स्वरूप लक्षण।

अनुवाद

"मेरे लिए परम स्नेह (प्रीति) भगवत्प्रेम कहलाता है और यही जीवन का चरम लक्ष्य (प्रयोजन) है। मैं ऐसे प्रेम के प्राकृतिक लक्षणों की व्याख्या एक व्यावहारिक उदाहरण द्वारा करूँगा।"

पञ्च-भूत शैछे भूतेर भितरे-बाहिरे।

भक्त-गणे स्फुरि आमि बाहिरे-अन्तरे ॥125॥

पञ्च-भूत-पाँच भौतिक तत्त्व; यैछे-जिस प्रकार; भूतेर-जीवात्माओं के; भितरे-भीतर; बाहिरे-बाहर; भक्त-गणे-भक्तों को; स्फुरि-प्रकट हो जाता हूँ; आमि-मैं; बाहिरे-अन्तरे-बाहर तथा भीतर।

अनुवाद

"प्रत्येक जीव के भीतर तथा बाहर पाँच भौतिक तत्त्व विद्यमान हैं। इसी प्रकार मैं, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भक्त के हृदय में तथा उसके शरीर के बाहर भी प्रकट रहता हूँ।

तात्पर्य

शुद्ध भक्त जानता है कि वह कृष्ण का शाश्वत दास है। वह यह भी जानता है कि हर वस्तु का उपयोग भगवान् की सेवा में किया जा सकता है।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।

प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥126॥

यथा-जिस प्रकार; महान्ति-ब्रह्माण्ड के; भूतानि-तत्त्व; भूतेषु-जीवात्माओं में; उच्च-अवचेषु-विराट् तथा सूक्ष्म; अनु-बाद में; प्रविष्टानि-अन्तरिक रूप से स्थित हैं; अप्रविष्टानि-बाहर स्थित हैं; तथा-इसी प्रकार; तेषु-उनमें; न-नहीं; तेषु-उनमें; अहम्-मैं।

अनुवाद

"जिस प्रकार भौतिक तत्त्व सारे जीवों के शरीर में प्रवेश करते हैं और उन सबके बाहर भी बने रहते हैं, उसी तरह मैं सारी भौतिक सृष्टियों के भीतर विद्यमान रहकर भी उनके भीतर नहीं रहता।

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.9.35) से है। यह चतुःश्लोकी का तीसरा श्लोक है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला (1.55)।

भक्त आमा प्रेमे बान्धियाछे हृदय-भितरे।

याहाँ नेत्र पड़े ताहाँ देखये आमारे ॥ 127॥

भक्त–एक भक्त; आमा–मुझे; प्रेमे-प्रेम द्वारा; बान्दियाछे-बाँध लेता है; हृदय-भितरे-हृदय में; याहाँ–जहाँ भी; नेत्र–दृष्टि; पड़े-पड़ती है; ताहाँ-वहाँ; देखये-वह देखता है; आमारे-मुझे।

अनुवाद

"अति उन्नत भक्त मुझ भगवान् को प्रेम द्वारा अपने हृदय में बाँध सकता है। वह जहाँ भी देखता है, मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता।

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्

धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघ-नाशः ।

प्रणय-रसनया धृताघ्रि-पद्मः

स भवति भागवत-प्रधान उक्तः ॥ 128॥

विसृजति–त्यागते हैं; हृदयम्-हृदय; न-नहीं; यस्य–जिसका; साक्षात्-साक्षात्; हरिः-भगवान् हरि; अवश-अभिहितः-जिनका स्वतः या असावधानीपूर्वक गुणगान किये जाए; अपि-यद्यपि; अघ-ओघ-नाशः-जो एक भक्त के सभी प्रकार के अशुभ अपराध समाप्त कर देते हैं; प्रणय-रसनया-प्रेम की रस्सी से; धृत-अघ्रि-पद्मः-जिनके चरणकमल बंधे हैं; सः-ऐसा भक्त; भवति–है; भागवत-प्रधानः-सर्वश्रेष्ठ भक्त; उक्तः-कहा जाता है।

अनुवाद

“अपने भक्तों के हर अमंगल को नष्ट करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि अपने भक्तों के हृदयों को तब भी नहीं छोड़ते, जब वे उनका स्मरण तथा कीर्तन मन लगाकर न करते हों। इसका कारण यह है कि प्रेम की डोरी भक्तों के हृदयों में भगवान् को सदैव बाँधे रखती है। ऐसे भक्तों को अत्यन्त उच्च (भागवत-प्रधान) माना जाना चाहिए।

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.2.55) का है।

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥129॥

सर्व-भूतेषु-सभी पदार्थों में (जड़ में, चेतन में या जड़ तथा चेतन के सम्मिश्रण में); यः-जो कोई भी; पश्येत्-देखता है; भगवत्-भावम्-भगवान् की सेवा में प्रयुक्त होने की क्षमता; आत्मनः-परमात्मा

या भौतिक अवधारणा से परे स्थित दिव्य पुरुष का; भूतानि-सभी जीवों को; भगवति–परम भगवान् में; आत्मनि–समस्त अस्तित्व के आधारभूत सिद्धान्त; एषः-वह; भागवत-उत्तमः-भगवद् भक्ति में उन्नत।

अनुवाद

"भक्ति में उन्नत व्यक्ति (भागवत) आत्माओं के आत्मा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को हर वस्तु के भीतर देखता है। फलतः वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के स्वरूप को समस्त कारणों के कारण के रूप में देखता है और यह समझता है कि सारी वस्तुएँ उनमें स्थित हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.2.45) का है।

गायन्त उच्चैरमुमेव संहताः

विचिक्युरुन्मत्तक-वद्वनाद्वनम् ।

पप्रच्छुराकाश-वदन्तरं बहिर्

भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥130॥

गायन्तः–निरन्तर गाते हुए; उच्चैः-अत्यन्त उच्च स्वर में; अमुम्-उनको (भगवान् श्रीकृष्ण को); एव-मात्र; संहताः-एक साथ मिलकर; विचिक्युः–खोजने लगी; उन्मत्तक-वत्-पागल व्यक्ति की भाँति; वनात्-एक जंगल में; वनम्-दूसरे जंगल में; पप्रच्छुः-पूछने लगी; आकाश-वत्-आकाश की भाँति; अन्तरम्-अन्तर में; बहिः-बाहर; भूतेषु-सभी जीवों में; सन्तम्-स्थित; पुरुषम्-परम पुरुष; वनस्पतीन्–सभी वृक्षों और पौधों से भी।

अनुवाद

“सारी गोपियाँ कृष्ण के दिव्य गुणों का जोर-जोर से कीर्तन करने के लिए एकत्र हो गईं और वे पागल स्त्रियों की तरह एक जंगल से दूसरे जंगल में घूमने लगीं। वे सारे जीवों के भीतर तथा बाहर स्थित भगवान् के विषय में जिज्ञासा करने लगीं। निस्सन्देह, वे उन परम पुरुष के विषय में सारे पौधों तथा वनस्पतियों से भी पूछ रही थीं।

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.30.4) का है। श्रीकृष्ण द्वारा सहसा रासनृत्य छोड़कर चले जाने से गोपियाँ पागल सी हो गईं। चूँकि गोपियाँ कृष्ण के विचारों में डूबी हुई थीं, अतएव वे उनकी विविध भंगिमाओं तथा लीलाओं का अनुकरण कर रही थीं। वे उनकी अनुपस्थिति से अतीव खिन्न हो उठीं। शुकदेव गोस्वामी इसी घटना का वर्णन महाराज परीक्षित से कर रहे हैं।

अतएव भागवते एई 'तिन’ कय ।

सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन-मय ॥131॥

अतएव इस प्रकार; भागवते- श्रीमद्भागवत में; एइ तिन-ये तीनों सिद्धान्त; कय- वर्णित हैं; सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन-मय-पहले जीव का सम्बन्ध, फिर भगवत् सेवा में कार्यकलाप, तथा फिर जीवन का परम लक्ष्य, भगवत्प्रेम प्राप्त करना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे बतलाया, “भगवान् से मनुष्य का सम्बन्ध, भक्तिमय कार्यकलाप तथा भक्ति और जीवन के चरम लक्ष्य भगवत्प्रेम की प्राप्ति-ये तीन श्रीमद्भागवत के विषय हैं।

वदन्ति तत्तत्त्व-विदस्तत्त्वं व्रज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥132॥

वदन्ति–वे कहते हैं; तत्-उसे; तत्त्व-विदः-जो परम सत्य को जानते हैं; तत्त्वम्-परम लक्ष्य; यत्-जो; ज्ञानम् अद्वयम्-अद्वय ज्ञान; ब्रह्म इति-निराकार ब्रह्म; परमात्मा इति–परमात्मा; भगवान् इति–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; शब्द्यते-कहे जाते हैं।

अनुवाद

"स्वरूपसिद्ध व्यक्ति परम सत्य की एकीकृत पहचान विभिन्न नामों से करते हैं। ये हैं–निर्विशेष ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.2.11) से है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला, अध्याय 2, श्लोक 11।

भगवानेक आसेदमग्र आत्मात्मनां विभुः।

आत्मेच्छानुगतावात्मा अनाना-मत्युपलक्षणः ॥133॥

भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; एकः-केवल; आस-थे; इदम्-इस (सृष्टि) से; अग्रे–(विश्व के प्राकट्य के) पहले; आत्मा-जीवन शक्ति; आत्मनाम्-सभी जीवात्माओं के; विभुः-परम भगवान्; आत्म-परम की; इच्छा-इच्छा; अनुगतौ–अनुसार; आत्मा-परमात्मा; अनाना-मति-उपलक्षणः-अनेक दृष्टिकोणों से युक्त व्यक्तियों द्वारा अनुभव नहीं किये जाते।

अनुवाद

"ब्रह्माण्ड की सृष्टि के पूर्व सृजनशीलता भगवान् के स्वरूप में समा गई। उस समय सारी शक्तियाँ तथा अभिव्यक्तियाँ भगवान् के शरीर में संरक्षित हो गईं। भगवान् समस्त कारणों के कारण हैं। वे सर्वव्यापी तथा आत्मनिर्भर पुरुष हैं। सृष्टि के पूर्व वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति समेत आध्यात्मिक जगत् में विद्यमान थे, जहाँ विविध वैकुण्ठ लोक प्रकट हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.5.23) का है।

एते चांश-कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ।

इन्द्रारि-व्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे ॥134॥

एते-ये सभी; च-तथा; अंश-अंश; कलाः-अंशों के अंश; पुंसः-पुरुष अवतारों के; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; तु-परन्तु; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; स्वयम्-स्वयं; इन्द्र-अरि–इन्द्रदेव के शत्रु; व्याकुलम्-सन्तप्त; लोकम्-संसार को; मृड़यन्ति–प्रसन्न करते हैं; युगे युगे प्रत्येक युग में उचित समय पर।

अनुवाद

"ईश्वर के ये सारे अवतार पुरुष अवतारों के या तो पूर्ण विस्तार हैं या पूर्ण विस्तारों के अंश (कलाएँ) हैं। किन्तु कृष्ण स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। वे प्रत्येक युग में अपने विभिन्न स्वरूपों से संसार की रक्षा करते हैं, जब यह संसार इन्द्र के शत्रुओं द्वारा उपद्रवग्रस्त रहता है।

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.3.28) से है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला (2.67) ।

एइत' 'सम्बन्ध', शुन 'अभिधेय' भक्ति ।

भागवते प्रति-श्लोके व्यापे झार स्थिति ॥ 135॥

एइत'–यह; सम्बन्ध–सम्बन्ध; शुन-सुनो; अभिधेय-अभिधेय; भक्ति-भक्ति; भागवते-श्रीमद्भागवत में; प्रति-श्लोके–प्रत्येक श्लोक में; व्यापे–व्याप्त है; यार-जिसकी; स्थिति-स्थिति।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से मनुष्य का यही सनातन सम्बन्ध है। अब भक्ति सम्पन्न करने के विषय में सुनो। यह सिद्धान्त श्रीमद्भागवत के प्रत्येक श्लोक में व्याप्त है।

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ।

भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्व-पाकानपि सम्भवात् ॥ 136॥

भक्त्या –प्रेममयी सेवा द्वारा; अहम्-मैं, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; एकया-अविचलित; ग्राह्यः-प्राप्त करने योग्य; श्रद्धया-श्रद्धा द्वारा; आत्मा भगवान् के; प्रियः-प्रिय; सताम्-भक्तों को; भक्तिः-प्रेममयी सेवा; पुनाति-शुद्ध करती है; मत्-निष्ठा–मुझमें पूर्ण विश्वास से समर्पित; श्व-पाकान्–कुत्ते का माँस खाने वाले निम्न श्रेणी के लोगों को; अपि-भी; सम्भवात्-जन्म आदि के कारण उत्पन्न सभी दोषों से।

अनुवाद

"[भगवान् कृष्ण ने कहा :]'भक्तों तथा साधुओं को अत्यन्त प्रिय होने से मैं अविचल श्रद्धा तथा भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता हूँ। यह भक्तियोग, जिससे मेरे प्रति क्रमशः अनुरक्ति बढ़ती जाती है, चण्डालों में भी जन्में मनुष्य को शुद्ध कर देती है। अर्थात् भक्तियोग के द्वारा हर व्यक्ति आध्यात्मिक स्तर तक पहुँच सकता है।

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.14.21) से है।

न साधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म उद्धव ।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोजिता ॥137॥

न-कभी नहीं; साधयति–सन्तोष प्रदान करती है; माम्-मुझे; योगः–योग प्रक्रिया; न–न; साङ्ख्यम्-परम सत्य का ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया; धर्मः-ऐसे कार्यकलाप; उद्धव-मेरे प्रिय उद्धव; न-

नहीं; स्वाध्यायः-वेदों का अध्ययन; तपः-तपस्याएँ; त्यागः-त्याग, संन्यास ग्रहण करना या दान देना; यथा-जितनी; भक्तिः-प्रेममयी सेवा; मम-मेरे प्रति; ऊर्जिता-विकसित।

अनुवाद

"[पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ने कहा :] 'हे उद्धव, कोई न तो अष्टांग योग द्वारा, न निर्विशेषवाद द्वारा या परम सत्य के वैश्लेषिक अध्ययन द्वारा, न वेदाध्ययन द्वारा, न तपस्या द्वारा, न दान द्वारा, न ही संन्यास द्वारा मुझे उतना प्रसन्न कर सकता है, जितना कि मेरे प्रति अनन्य भक्ति उत्पन्न करके कर सकता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.14.20) का है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला (17.76)।

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्याद्

ईशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ।

तन्माययातो बुध आभजेत्तं ।

भक्त्यैकयेशं गुरु-देवतात्मा ॥138॥

भयम्-भय; द्वितीय-अभिनिवेशतः–भौतिक शक्ति के उत्पाद होने की मिथ्या धारणा से; स्यात्-जागृत होता है; ईशात्पू र्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से; अपेतस्य-दूर किये हुए (बद्ध आत्मा); विपर्ययः–विपरीत स्थिति; अस्मृतिः- भगवान् से अपने सम्बन्ध का विस्मरण; तत्-मायया-उनकी माया के कारण; अतः-इसलिए; बुधः-जो बुद्धिमान है; आभजेत्-उसे सेवा करनी चाहिए; तम्-उनकी; भक्त्या -प्रेमभाव से; एकया-कर्म तथा ज्ञान से अविचलित; ईशम्पू र्ण पुरुषोत्तम भगवान्; गुरु-आध्यात्मिक गुरु के रूप में; देवता-आराध्य देवता; आत्मा-तथा परमात्मा के रूप में।

अनुवाद

जब जीव कृष्ण से भिन्न माया द्वारा आकृष्ट होता है, तब वह भय से आक्रान्त रहता है। भौतिक शक्ति माया द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अलग हो जाने के कारण उसका जीवन-बोध पलट जाता है। दूसरे शब्दों में, वह कृष्ण का सनातन सेवक होने के स्थान पर कृष्ण का प्रतियोगी बन जाता है। इसे विपर्ययोऽस्मृतिः कहते हैं। इस भूल को सुधारने के लिए विद्वान तथा उन्नत व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को अपने गुरु, पूज्य देव तथा जीवन के स्रोत के रूप में पूजता है। इस तरह वह अनन्य भक्तियोग द्वारा भगवान् की पूजा करता है।

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भगवत (11.2.37) से है।

एबे शुन, प्रेम, येइ–मूल ‘प्रयोजन’ ।

पुलकाश्रु-नृत्य-गीत—याहार लक्षण ॥ 139॥

एबे शुन-अब सुनो; प्रेम-भगवत्प्रेम; येइ-जो; मूल प्रयोजन-मुख्य लक्ष्य; पुलक-अश्रु-नृत्य-गीत-शरीर का कंपन, आँखों में अश्रु, नृत्य तथा गान; याहार लक्षण–जिसके लक्षण।

अनुवाद

अब तुम मुझसे सुनो कि वास्तविक भगवत्प्रेम क्या होता है। यह जीवन का मूल लक्ष्य है। शरीर का कम्पन, आँखों में अश्रु, कीर्तन तथा नृत्य इसके लक्षण हैं।

स्मरन्तः स्मारयन्त्यश्च मिथोऽघौघ-हरं हरिम् ।

भक्त्या सञ्जातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ 140॥

स्मरन्तः-स्मरण करते; स्मारयन्त्यः च-तथा स्मरण करवाते; मिथः-एक दूसरे को; अघ-ओघ-हरम्-जो भक्तों के सर्व अशुभ हर लेते हैं; हरिम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; भक्त्या-भक्ति द्वारा; सञ्जातया-जागृत; भक्त्या-भक्ति द्वारा; बिभ्रति प्राप्त करते हैं; उत्पुलकाम्-भाव विभोरता द्वारा विचलित; तनुम्-देह।

अनुवाद

"भक्तों के प्रत्येक अमंगल को दूर करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि का मात्र स्मरण करके तथा अन्यों को उनका स्मरण कराते हुए शुद्ध भक्तजन प्रेमानन्द के आध्यात्मिक शरीरिक लक्षण व्यक्त करते हैं। यह पद विधिपूर्वक भक्ति करके और तब रागानुग प्रेम करने के स्तर पर उठने से प्राप्त होता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.3.31) का है।

एवं-व्रतः स्व-प्रिय-नाम-कीर्त्या

जातानुरागो द्रुत-चित्त उच्चैः ।

हसत्यथो रोदिति रौति गायत्य्

उन्माद-वन्नृत्यति लोक-बाह्यः ॥ 141॥

एवम्-व्रतः-जब कोई इस प्रकार कीर्तन तथा नृत्य के व्रत में लग जाता है; स्व-अपने; प्रिय-प्रिय; नाम-पवित्र नाम; कीर्त्या-कीर्तन द्वारा; जात-इस प्रकार विकसित करता है; अनुरागः-आसक्ति; द्रुत-चित्तः–अत्यन्त उत्कंठापूर्वक; उच्चैः-उच्च स्वर में; हसति-हँसता है; अथो-तथा; रोदिति-रोता है; रौति-विचलित होता है; गायति-गाता है; उन्माद-वत्-एक पागल की तरह; नृत्यति-नाचता है; लोक-बाह्यः-बाहरी लोगों की परवाह किये बिना।

अनुवाद

“जब मनुष्य सचमुच भक्ति में उन्नत होता है और अपने प्रिय भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने में आनन्द का अनुभव करता है, तो वह उत्तेजित हो उठता है और जोर-जोर से नाम कीर्तन करता है। वह आसपास वालों की परवाह किये बिना हँसता है, रोता है, चंचल हो उठता है और पागल की तरह कीर्तन भी करता है।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.2.40) का है।।

अतएव भागवत–सूत्रेर ‘अर्थ’-रूप ।

निज-कृत सूत्रेर निज-‘भाष्य'-स्वरूप ॥ 142॥

अतएव–इस कारण; भागवत-श्रीमद्भागवत; सूत्रेर- ब्रह्मसूत्र के; अर्थ-अर्थ का; रूप-रूप; निज-कृत-स्वयं द्वारा रचित; सूत्रेर-वेदान्त-सूत्र के; निज-भाष्य-अपने स्वयं के भाष्य का; स्वरूप-वास्तविक रूप।

अनुवाद

“श्रीमद्भागवत वेदान्त-सूत्र का सही सही अर्थ बताता है। वेदान्त-सूत्र के लेखक व्यासदेव हैं और स्वयं उन्होंने ही उन सूत्रों की व्याख्या श्रीमद्भागवत के रूप में की है।”

अर्थोऽयं ब्रह्म-सूत्राणां

भारतार्थ-विनिर्णयः

गायत्री-भाष्य-रूपोऽसौ

वेदार्थ-परिबृहितः

पुराणानां साम-रूपः ।

साक्षाद्भगवतोदितः

द्वादश-स्कन्ध-युक्तोऽयं

शत-विच्छेद-संयुतः

ग्रन्थोऽष्टादश-साहस्रः

श्रीमद्भागवताभिधः

अर्थः अयम्-यह अर्थ है; ब्रह्म-सूत्राणाम्- वेदान्त-सूत्रों का; भारत-अर्थ-विनिर्णयः-महाभारत के अर्थ का निर्णय; गायत्री-भाष्य-रूपः-वैदिक ग्रन्थों की जननी, गायत्री की व्याख्या; असौ-वह; वेद-अर्थ-परिबंहितः-सभी वेदों के अर्थों द्वारा विस्तारित; पुराणानाम्-पुराणों में; साम-रूपः-सर्वश्रेष्ठ (वेदों में सामवेद भाँति); साक्षात्-साक्षात्; भगवता उदितः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अवतार व्यासदेव द्वारा बोला गया; द्वादश-स्कन्द-युक्तः-बारह स्कन्धों से युक्त; अयम्-यह; शत-विच्छेद-संयुतः-335 अध्यायों से युक्त; ग्रन्थः—यह महान् ग्रन्थ; अष्टादशसाहस्रः-18000 श्लोकों से युक्त; श्रीमद्भागवत-अभिधः- श्रीमद्भागवत नामक।

अनुवाद

“वेदान्त-सूत्र का अर्थ श्रीमद्भागवत में पाया जाता है। महाभारत का पूरा सारांश भी इसमें है। ब्रह्म-गायत्री की टीका भी इसी में है और समस्त वैदिक ज्ञान के सहित इसे विस्तृत रूप दिया गया है। श्रीमद्भागवत सर्वश्रेष्ठ पुराण है और इसकी रचना पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने अपने व्यासदेव अवतार के रूप में की। इसमें बारह स्कन्ध हैं, 335 अध्याय हैं। और अठारह हजार श्लोक हैं।’

तात्पर्य

यह उद्धरण गरुड़ पुराण का है।

सर्व-वेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् ॥ 145॥

सर्व-वेद-सभी वैदिक शास्त्रों के; इतिहासानाम्-ऐतिहासिक ग्रन्थों के; सारम् सारम्-सार का सार; समुदधृतम्-संकलित है (श्रीमद्भागवत में)।

अनुवाद

"सारे वैदिक साहित्य तथा समस्त इतिहासों के सार को श्रीमद्भागवत में संकलित कर दिया गया है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत का संकलन भगवान् के अवतार व्यासदेव द्वारा किया गया और बाद में इसे उनके पुत्र शुकदेव गोस्वामी को पढ़ाया गया। यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.3.41) से है।

सर्व-वेदान्त-सारं हि श्रीमद्भागवतमिष्यते ।

तद्रसामृत-तृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥ 146 ॥

सर्व-वेदान्त-सारमू-सभी वेदान्तों का सार; हि निश्चित रूप से; श्रीमद्भागवतम्-भगवान् के विषय में महान् साहित्य; इष्यते-कहा जाता है; तत्-रस-अमृत-उस महान् ग्रन्थ द्वारा प्राप्त दिव्य रस द्वारा; तृप्तस्य-जो तृप्त हो गया है; न—कभी नहीं; अन्यत्र-कहीं और; स्यात्-होता; रतिः-आकर्षण; क्वचित्-कभी भी।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत को समस्त वैदिक साहित्य तथा वेदान्त दर्शन का सार माना जाता है। जो भी श्रीमद्भागवत के दिव्य रस का आस्वादन करता है, वह किसी अन्य साहित्य की ओर कभी आकृष्ट नहीं होता।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (12.13.15) का है।

गायत्रीर अर्थे एइ ग्रन्थ-आरम्भन ।

सत्यं परं"–सम्बन्ध, "धीमहि –साधन-प्रयोजन ॥147॥

गायत्रीर अर्थे–ब्रह्म गायत्री के अर्थ के साथ; ए-इस; ग्रन्थ-महान् ग्रन्थ का; आरम्भन—प्रारम्भ; सत्यम् परम्प रम सत्य; सम्बन्ध–सम्बन्ध दर्शाता है; धीमहि-हम ध्यान करते हैं (गायत्री मन्त्र का अन्त); साधन-प्रयोजन-भक्ति सम्पन्न करना तथा परम लक्षण की प्राप्ति होना।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में ब्रह्म-गायत्री मन्त्र की व्याख्या दी हुई है। 'सत्यं परं' अर्थात् परम सत्य सम्बन्ध को सूचित करता है और धीमहि अर्थात् 'हम उनका ध्यान करते हैं' भक्ति के सम्पादन का तथा जीवन के चरम लक्ष्य (प्रयोजन) का सूचक है।

जन्माद्यस्य व्रतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्

तेने ब्रह्म हृदा य आदि-कवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।

तेजो-वारि-मृदां यथा विनिमयो यत्र त्रि-सर्गोऽमृषा

धाम्ना स्वेन सदा निरस्त-कुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ 148 ॥

जन्म-आदि-सृष्टि, पालन तथा संहार; अस्य-इसका (ब्रह्माण्ड का); यतः-जिनसे; अन्वयात्-प्रत्यक्ष आध्यात्मिक सम्बन्ध से; इतरतः-अप्रत्यक्ष रूप में भौतिक सम्बन्ध के अभाव से; च-तथा; अर्थेषु–सभी अर्थों में; अभिज्ञः–पूरी तरह जानने वाले; स्व-राट्-स्वतन्त्र; तेने–दिया; ब्रह्म-परम सत्य; हृदा-हृदय द्वारा; यः-जो; आदि-कवये–ब्रह्माजी को; मुह्यन्ति–मोहित होते हैं; सत्जिसमें; सूरयः–

ब्रह्माजी तथा अन्य देवता या महान् ब्राह्मण; तेजः-वारि-मृदाम्-अग्नि, जल तथा पृथ्वी के; यथा-जैसे; विनिमयः-आदान-प्रदान; मत्र-जिसमें; त्रि-सर्गः–तीन गुणों की भौतिक सृष्टि; अमृषा-वास्तविक; धाम्ना-धाम से; स्वेन-अपने निजी; सदा-सदैव; निरस्त-कुहकम्-समस्त भ्रम से मुक्त; सत्यम्-सत्य का; परम्-परम; धीमहि ध्यान करें।

अनुवाद

"हे वसुदेव के पुत्र मेरे प्रभु श्रीकृष्ण, हे सर्वव्यापी भगवान्, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ, जो परम सत्य हैं और प्रकट ब्रह्माण्डों की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के समस्त कारणों के मूल कारण हैं। वे समस्त प्राकट्यों से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से अवगत रहते हैं तथा वे स्वतन्त्र हैं, क्योंकि उनके परे अन्य कोई कारण नहीं है। उन्होंने ही सब से पहले प्रथम जीव ब्रह्मा के हृदय में वैदिक ज्ञान प्रदान किया। उनके द्वारा बड़े-बड़े ऋषि और देवता भी मोहग्रस्त हो जाते हैं, जिस प्रकार कोई अग्नि में जल अथवा जल में भूमि की भ्रमपूर्ण अवस्थिति को देखकर मोहित होता है। उन्हीं के कारण सारे भौतिक ब्रह्माण्ड, जो प्रकृति के तीन गुणों की प्रतिक्रिया द्वारा अस्थायी तौर पर अभिव्यक्त हैं, अवास्तविक होते हुए भी वास्तविक प्रतीत होते हैं। अतः मैं उन परम सत्य भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ, जो अपने उस दिव्य धाम में सदैव विद्यमान रहते हैं, जो कि भौतिक जगत् के मोह से सदैव मुक्त रहता है। मैं उन्हीं का ध्यान करता हूँ, क्योंकि वे परम सत्य हैं।

तात्पर्य

यह श्रीमद्भागवत का प्रारम्भिक श्लोक (1.1.1) है।

धर्मः प्रोज्झित-कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां

वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिव-दं ताप-त्रयोन्मूलनम् ।

श्रीमद्भागवते महा-मुनि-कृते किं वा परैरीश्वरः

सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ 149 ॥

धर्मः-धार्मिकता; प्रोज्झित–पूर्णतया तिरस्कृत; कैतवः--जिसमें फल की इच्छा है; अत्र–इसमें; परमः-सर्वश्रेष्ठ; निर्मत्सराणाम्-शतप्रतिशत शुद्ध हृदय वाले; सताम्-भक्तों द्वारा; वेद्यम्-समझे जाने योग्य; वास्तवम्-वास्तविक; अत्र-यहाँ; वस्तु-वस्तु; शिव-दम्-मंगलकारी; ताप-त्रय–तीनों ताप; उन्मूलनम्-नष्ट करने वाले; श्रीमत्-सुन्दर; भागवते-भागवत पुराण में; महा-मुनि-महामुनि (व्यासदेव) द्वारा; कृते-संकलित; किम्-क्या; वा-वास्तव में; परैः-अन्यों द्वारा; ईश्वरः-परम भगवान्; सद्यः–तुरन्त; हृदि हृदय में; अवरुध्यते-स्थापित हो जाते हैं; अत्र-यहाँ; कृतिभिः-पुण्यवान लोगों द्वारा; शुश्रूषुभिः-सुनने के इच्छुक; तत्-क्षणात्-बिना विलम्ब के।

अनुवाद

यह भागवत पुराण भौतिक दृष्टि से प्रेरित होने वाले समस्त धार्मिक कृत्यों को पूर्णतया बहिष्कृत करते हुए सर्वोच्च सत्य का प्रतिपादन करता है, जो पूर्णतया शुद्ध हृदय वाले भक्तों के द्वारा समझा जा सकता है। यह सर्वोच्च सत्य ऐसी वास्तविकता है, जो माया से पृथक् होते हुए सबके कल्याण के लिए है। ऐसा सत्य तीनों प्रकार के सन्तापों को समूल नष्ट करने वाला है। महामुनि व्यासदेव द्वारा (अपनी परिपक्व अवस्था में) संकलित यह सुन्दर भागवत भगवत्-साक्षात्कार के लिए अपने आप में पर्याप्त है। और किसी शास्त्र की क्या आवश्यकता है? ज्योंही कोई ध्यानपूर्वक तथा विनीत भाव से भागवत के सन्देश को सुनता है, वैसे ही ज्ञान के इस अनुशीलन से परमेश्वर उसके हृदय में स्थापित हो जाते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.1.2) का है। देखें आदिलीला (1.91) भी।

‘कृष्ण-भक्ति-रस-स्वरूप’ श्री-भागवत ।

ताते वेद-शास्त्र हैते परम महत्त्व ॥ 150॥

कृष्ण-भक्ति-कृष्ण की प्रेममयी सेवा के; रस-दिव्य रस का; स्वरूप-स्वरूप; श्री-भागवत-श्रीमद्भागवत; ताते-इस कारण; वेद-शास्त्र-वैदिक शास्त्रों; हैते–से; परम महत्त्व-सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण।

अनुवाद

“श्रीमद्भागवत कृष्ण-भक्ति से उत्पन्न रस की सीधी सूचना देता है। अतः यह अन्य सारे वैदिक ग्रन्थों से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

निगम-कल्प-तरोर्गलितं फलं

शुक-मुखादमृत-द्रव-संयुतम् ।

पिबत भागवतं रसमालयं

मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ 151॥

निगम-कल्प-तरोः-कल्पवृक्ष के समान वैदिक शास्त्र का; गलितम्-पूर्णतया पका हुआ; फलम्-फल; शुक-मुखात्-शुकदेव गोस्वामी के मुख से; अमृत-अमृत के समान; द्रव-संयुतम्-रस से मिश्रित; पिबत-पिओ; भागवतम्-श्रीमद्भागवत; रसम् आलयम्-सभी रसों का भण्डार; मुहः–निरन्तर; अहो–हे; रसिकाः-दिव्य रसों का आस्वादन करने वाले भक्तों; भुवि-इस पृथ्वी में; भावुकाः-विचारवान।

अनुवाद

“श्रीमद्भागवत समस्त वैदिक ग्रन्थों का सार है और यह वैदिक ज्ञानरूपी कल्पतरु का परिपक्व फल माना जाता है। शुकदेव गोस्वामी के मुख से निकलने के कारण यह मीठा बन गया है। आप में से जो विचारवान हैं और रसों का आस्वादन करना चाहते हैं, उन्हें इस पक्व फल का आस्वादन करने का

सदैव प्रयत्न करना चाहिए। हे विचारवान भक्तों, जब तक आप दिव्य आनन्द में निमग्न नहीं होते, तब तक आपको इस श्रीमद्भागवत का आस्वादन करना चालु रखना चाहिए और जब आप इस आनन्द में पूरी तरह मग्न हो जाओ, तो इसके रसों का सदा सदा आस्वादन करते रहना चाहिए।'

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.1.3) का है।

वयं तु न वितृप्याम उत्तमःश्लोक-विक्रमे ।

यच्छृण्वतां रस-ज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥ 152॥

वयम् तु-हम तो; न-कभी नहीं; वितृष्यामः-तृप्त होते; उत्तमः-श्लोक-विक्रमे-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के कार्यकलापों तथा लीलाओं में; यत्-जो; शृण्वताम्-सुनने वालों का; रस-ज्ञानाम्-जो रसों का स्वाद जानते हैं; स्वादु स्वादु-और अधिक स्वादिष्ट; पदे पदे-प्रत्येक पद पर।

अनुवाद

"हम स्तोत्रों तथा स्तुतियों से यशोगान किये जाने वाले भगवान् की दिव्य लीलाओं को सुनते हुए कभी नहीं थकते। जो उनकी संगति का आनन्द उठाते हैं, वे प्रति क्षण उनकी लीलाओं के श्रवण का आस्वादन करते हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.1.19) का है।

अतएव भागवत करह विचार ।

इहा हैते पाबे सूत्र-श्रुतिर अर्थ-सार ॥ 153 ॥

अतएव इसलिए; भागवत-श्रीमद्भागवत; करह विचार-गम्भीरतापूर्वक समझने का प्रयास करो; इहा हैते–इससे; पाबे-तुम प्राप्त करोगे; सूत्र-श्रुतिर–ब्रह्मसूत्र का; अर्थ-सार-वास्तविक अर्थ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रकाशानन्द सरस्वती को उपदेश दिया, अत्यधिक छानबीन करके श्रीमद्भागवत का अध्ययन करो। तब आप ब्रह्मसूत्र के वास्तविक अर्थ को समझ सकोगे।"

निरन्तर कर कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन ।

हेलाय मुक्ति पाबे, पाबे प्रेम-धन ॥ 154॥

निरन्तर कर-निरन्तर करो; कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन-कृष्ण के पवित्र नाम का जप; हेलाय-अत्यन्त सरलतापूर्वक; मुक्ति पाबे-आप मुक्ति प्राप्त कर लोगे; पाबे प्रेम-धन-आप परम लक्ष्य, कृष्ण-प्रेम प्राप्त कर लोगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "सदैव श्रीमद्भागवत की चर्चा करो और भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का निरन्तर जप करो। इस तरह आप आसानी से मुक्ति प्राप्त कर सकोगे और भगवत्प्रेम का आनन्द प्राप्त करने के लिए उन्नत बनोगे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि श्रीमद्भागवत का अध्ययन किये बिना ब्रह्मसूत्र (वेदान्त-सूत्र) या उपनिषदों का आशय नहीं समझा जा सकता। यदि कोई श्रीमद्भागवत का अध्ययन किये बिना वेदान्त-दर्शन तथा उपनिषदों को समझने का प्रयास करता है, तो वह भ्रमित हो जायेगा और भिन्न अर्थ निकालकर क्रमशः नास्तिक या मायावादी बन जायेगा।

ब्रह्म-भूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ 155॥

ब्रह्म-भूतः-जीवन की भौतिक धारणा से मुक्त किन्तु निराकार पद में आसक्त; प्रसन्न-आत्मा-पूर्णतया प्रसन्न; न शोचति-वह शोक नहीं करता; न काङ्क्षति-वह कामना नहीं करता; समः-समभाव; सर्वेषु-सब; भूतेषु-जीवात्माओं के प्रति; मत्-भक्तिम्-मेरी भक्ति; लभते-प्राप्त करता है; पराम्-दिव्य।

अनुवाद

"जो इस तरह दिव्य अवस्था में स्थित है, उसे तुरन्त परम ब्रह्म की अनुभूति होती है और वह पूर्णतया प्रसन्न हो जाता है। वह न कभी शोक करता है न किसी वस्तु की कामना करता है। वह हर जीव के प्रति समभाव रखता है। उस अवस्था में वह मेरी शुद्ध भक्ति प्राप्त करता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक भगवद्गीता (18.54) का है।

मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते" ॥ 156 ॥

मुक्ताः-मुक्त; अपि-यद्यपि; लीलया-लीलाओं द्वारा; विग्रहम्-भगवान् का विग्रह; कृत्वा-स्थापित करके; भगवन्तम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की; भजन्ते-पूजा करते हैं।

अनुवाद

"निर्विशेष ब्रह्म तेज में लीन मुक्तात्मा भी कृष्ण की लीलाओं के प्रति आकृष्ट होता है। इस तरह वह अर्चाविग्रह स्थापित करके भगवान् की पूजा करता है।

तात्पर्य

यह उद्धरण नृसिंह-तापनी उपनिषद् पर शंकराचार्य की टीका से उद्धृत है।

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तम:श्लोक-लीलया ।

गृहीत-चेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥157॥

परिनिष्ठितः—स्थित; अपि-यद्यपि, नैर्गुण्ये-प्रकृति के भौतिक गुणों से मुक्त, दिव्य अवस्था में; उत्तमः-श्लोक-लीलया–उत्तम श्लोक भगवान् की लीलाओं द्वारा; गृहीत-चेताः-वशीभूत मन वाले; राजा-ऋषे-हे महान् राजा; आख्यानम्-व्याख्यान; यत्-जो; अधीतवान्–अध्ययन किया।

अनुवाद

"[शुकदेव गोस्वामी ने परीक्षित महाराज को सम्बोधित किया :]'हे राजन्, यद्यपि मैं दिव्य पद पर पूर्णतया स्थित था, फिर भी मैं भगवान् कृष्ण की लीलाओं के प्रति आकृष्ट हुआ। इसलिए मैंने अपने पिता से श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया।

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (2.1.9) से है।

तस्यारविन्द-नयनस्य पदारविन्द-

किञ्जल्क-मिश्र-तुलसी-मकरन्द-वायुः ।

अन्तर्गतः स्व-विवरेण चकार तेषां

सङ्क्षोभमक्षर-जुषामपि चित्त-तन्वोः ॥ 158॥

तस्य-उनके; अरविन्द-नयनस्य–कमल पुष्प की पंखुड़ियों के समान नेत्रों वाले भगवान् के; पद-अरविन्द-चरणकमलों के; किञ्जल्क-केसर के साथ; मिश्र-मिश्रित; तुलसी–तुलसी दल की; मकरन्द-सुगन्ध से; वायुः–वायु; अन्तः-गतः-अन्दर गई; स्व-विवरेण-नाक द्वारा; चकार-उत्पन्न किया; तेषाम् उनको; सङ्क्षोभम्-अत्यन्त उत्तेजना; अक्षर-जुषाम् निराकार आत्म-साक्षात्कार प्राप्त (कुमारों) के; अपि-भी; चित्त-तन्वोः –मनों तथा देहों में।

अनुवाद

“जब भगवान् के चरणकमलों से तुलसी दलों तथा केसर की सुगन्ध ले जाने वाली वायु उन मुनियों (कुमारों) के नासारन्ध्रों से होकर हृदय में प्रविष्ट हुई, तो उन्हें अपने शरीर तथा मन दोनों में ही विकार का अनुभव हुआ, यद्यपि वे निर्विशेष ब्रह्म के उपासक थे।

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.15.43) से है। व्याख्या के लिए मध्य लीला (17.142) देखें।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।

कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत-गुणो हरिः ॥159॥

आत्म-आरामाः–भगवान् की दिव्य सेवा में स्थित होने में आनन्द का अनुभव करने वाले लोग; च-भी; मुनयः-महान् सन्त जिन्होंने भौतिक आकांक्षाओं, सकाम कर्मों इत्यादि को पूर्णतया त्याग दिया है; निर्ग्रन्थाः-किसी भी भौतिक इच्छा में रुचि से रहित; अपि-निश्चय ही; उरुक्रमे-अद्भुत कार्यकलाप करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के प्रति; कुर्वन्ति-करते हैं; अहैतुकीम्-निष्काम या भौतिक इच्छाओं से रहित; भक्तिम्-प्रेममयी सेवा; इत्थम्-भूत-इतने अद्भुत कि जो आत्म-तुष्ट व्यक्तियों को भी आकर्षित करते हैं; गुणः–जिनके गुण दिव्य हैं; हरिः–परम भगवान् हरि।

अनुवाद

जो स्वयं सन्तुष्ट आत्माराम हैं और बाह्य भौतिक इच्छाओं के प्रति आकृष्ट नहीं होते हैं, वे भी उन श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति के प्रति आकृष्ट होते हैं जिनके गुण दिव्य हैं और जिनके कार्यकलाप अद्भुत हैं। भगवान् हरि को कृष्ण कहा जाता है, क्योंकि उनमें ऐसे दिव्य आकर्षक गुण हैं।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.7.10) से है। व्याख्या के लिए मध्यलीला, अध्याय 24 देखें।

हेन-काले सेइ महाराष्ट्रीय ब्राह्मण।

सभाते कहिल सेइ श्लोक-विवरण॥ 160॥

हेन-काले-इस समय; सेइ-वह; महाराष्ट्रीय ब्राह्मण-महाराष्ट्र के ब्राह्मण ने; सभाते-सभा में; कहिल-वर्णित की; सेइ-उस; श्लोक-विवरण–चैतन्य महाप्रभु द्वारा वर्णित आत्माराम श्लोक की व्याख्या।

अनुवाद

उसी समय उस महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने आत्माराम श्लोक की श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा की गई व्याख्या का उल्लेख किया।

एइ श्लोकेर अर्थ प्रभु 'एकषष्टि' प्रकार।

करियाछेन, याहा शुनि' लोके चमत्कार॥ 161॥

एइ श्लोकेर अर्थ-इस श्लोक का अर्थ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; एक-पष्टि प्रकार-61 प्रकार से; करियाछेन-किया है; याहा शुनि'-जिसे सुनकर; लोके चमत्कार-सभी चकित हो गये।

अनुवाद

महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने बतलाया कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक के 61 प्रकार से अर्थ किये हैं। यह सुनकर सभी लोग चकित हो गये।

तबे सब लोक शुनिते आग्रह करिल।

'एकषष्टि' अर्थ प्रभु विवरि' कहिल॥ 162॥

तबे-तब; सब लोक-वहाँ एकत्रित सभी लोगों ने; शुनिते-सुनने के लिए; आग्रह करिल-अपनी उत्सुकता व्यक्त की; एक-षष्टि अर्थ-श्लोक के 61 विभिन्न अर्थ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; विवरि'–विस्तारपूर्वक; कहिल-वर्णित किये।

अनुवाद

जब वहाँ पर एकत्र सारे लोगों ने आत्माराम श्लोक के 61 अर्थों को फिर से सुनने की इच्छा व्यक्त की, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुनः उनकी व्याख्या की।

शुनिया लोकेर बड़ चमत्कार हैल।

चैतन्य-गोसाञि—'श्री-कृष्ण', निर्धारिल ॥163॥

शुनिया-सुनकर; लोकेर-सभी लोगों को; बड़-अत्यन्त; चमत्कार-आश्चर्य; हैल–हुआ; चैतन्य गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु; श्री-कृष्ण-स्वयं भगवान् कृष्ण हैं; निर्धारिल-उन्होंने निष्कर्ष निकाला।

अनुवाद

जब सबने श्री चैतन्य महाप्रभु से आत्माराम श्लोक की व्याख्या सुनी, तो वे आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि श्री चैतन्य महाप्रभु और कोई नहीं, अपितु साक्षात् भगवान् कृष्ण हैं।

एत कहि' उठिया चलिला गौरहरि।

नमस्कार करे लोक हरि-ध्वनि करि॥ 164॥

एत कहि-यह कहकर; उठिया-उठकर; चलिला-चल पड़े; गौरहरि-श्री गौरसुन्दर, श्री चैतन्य महाप्रभु; नमस्कार करे लोक-सभी लोगों ने प्रणाम किये; हरि-ध्वनि करि-उच्च स्वर में हरे कृष्ण महामन्त्र का उच्चारण करते हुए।

अनुवाद

इन व्याख्याओं को दोबारा देने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु उठे और उन्होंने वहाँ से विदा ली। सभी लोगों ने उन्हें नमस्कार किया तथा महामन्त्र का कीर्तन किया।

सब काशी-वासी करे नाम-सङ्कीर्तन ।

प्रेमे हासे, काँदे, गाय, करये नर्तन ॥ 165॥

सब काशी-वासी-काशी (वाराणसी) के सारे निवासी; करे-करने लगे; नाम-सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन; प्रेमे-भगवत्प्रेम में; हासे-वे हँसने लगे; काँदे-रोने लगे; गाय-गाने लगे; करये नर्तन–तथा नाचने लगे।

अनुवाद

काशी (वाराणसी) के सारे निवासी प्रेम में भावविभोर होकर हरे। कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने लगे। कभी वे हँसते, कभी रोते, कभी कीर्तन करते और कभी नाचते।।

सन्यासी पण्डित करे भागवत विचार ।

वाराणसी-पुर प्रभु करिला निस्तार ॥ 166 ॥

सन्यासी-मायावादी संन्यासी; पण्डित–विद्वान; करे-करते हैं; भागवत विचार-श्रीमद्भागवत पर चर्चा; वाराणसी-पुर-वाराणसी नामक स्थान का प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करिला निस्तार-उद्धार कर दिया।

अनुवाद

इसके बाद वाराणसी के सारे मायावादी संन्यासी तथा पण्डित श्रीमद्भागवत के विषय में विचार-विमर्श करने लगे। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका उद्धार किया।

निज-लोक लञा प्रभु आइला वासाघर ।

वाराणसी हैल द्वितीय नदीया-नगर ॥ 167॥

निज-लोक लञा-अपने अन्तरंग संगियों के साथ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला वास-अधर-अपने निवासस्थान पर आये; वाराणसी-वाराणसी; हैल–बन गया; द्वितीय-दूसरा; नदीया-नगर-नवद्वीप (नदिया)।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु अपने पार्षदों समेत अपने निवासस्थान पर लौट आये। इस प्रकार उन्होंने सारे वाराणसी नगर को दूसरे नवद्वीप (नदिया नगर) में परिणत कर दिया।

तात्पर्य

नवद्वीप तथा वाराणसी दोनों ही अपने उच्च शैक्षिक कार्यकलापों के लिए विख्यात थे। आज भी ये दोनों नगर बड़े-बड़े विद्वानों से आवासित हैं, किन्तु वाराणसी विशेषतया मायावादी संन्यासियों का केन्द्र है। नवद्वीप से इसकी भिन्नता यह है कि वाराणसी में विरले ही कोई भक्तजन हैं। फलतः वाराणसी में श्रीमद्भागवत पर विचार-विमर्श दुर्लभ था। किन्तु नवद्वीप में ऐसा विचार- विमर्श बड़ी सामान्य बात थी। श्री चैतन्य महाप्रभु के वाराणसी आने तथा प्रकाशानन्द सरस्वती एवं उनके शिष्यों को वैष्णव बना लेने के बाद वाराणसी भी नवद्वीप जैसा बन गया, क्योंकि बहुत से भक्त श्रीमद्भागवत की चर्चा करने लगे। यहाँ तक कि आज भी गंगा नदी के तट पर श्रीमद्भागवत पर होने वाली चर्चाएँ सुनी जा सकती हैं। अनेक पण्डित तथा संन्यासी श्रीमद्भागवत सुनने तथा संकीर्तन करने के लिए वहाँ एकत्र होते हैं।

निज-गण लञा प्रभु कहे हास्य करि’ ।

काशीते आमि आइलाङ वेचिते भावकालि ॥ 168॥

निज-गण लञा-अपने निजी संगीयों के साथ; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; हास्य करि'-हँसकर; काशीते-काशी में; आमि आइलाङ–मैं आया; वेचिते-बेचने के लिए; भावकालि-प्रेमभाव।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने पार्षदों के बीच हँसी करते हुए कहा, "मैं यहाँ अपना भावमय प्रेम बेचने के लिए आया था।

काशीते ग्राहक नाहि, वस्तु ना विकाय।

पुनरपि देशे वहि' लओया नाहि याय ॥ 169॥

काशीते-काशी (बनारस) में; ग्राहक नाहि-कोई ग्राहक नहीं थे; वस्तु ना विकाय-यह बिक नहीं रहा था; पुनरपि-दुबारा; देशे-अपने प्रदेश में; वहि'-उठाकर; लओया-ले जाना; नाहि याय–सम्भव नहीं था।

अनुवाद

"यद्यपि मैं वाराणसी में अपना सामान बेचने आया था, किन्तु यहाँ कोई ग्राहक नहीं थे। अतः मेरे लिए आवश्यक हो गया कि उस सामान को मैं अपने देश वापस ले जाऊँ।

आमि बोझा वहिमु, तोमा-सबार दुःख हैल।

तोमा-सबार इच्छाय विना-मूल्ये बिलाइल ॥ 170॥

आमि-मैं; बोझा-बोझ; वहिमु-उठाऊँगा; तोमा-सबार दुःख हैल-तुम सभी दुःखी हो गये; तोमा-सबार इच्छाय-केवल तुम सबकी इच्छा से; विना-मूल्ये बिलाइल-मैंने बिना मूल्य के बाँट दिया।

अनुवाद

"तुम सभी दुःखी थे कि मेरे सामान को कोई खरीद नहीं रहा और मुझे उसे लौटकर ले जाना होगा। अतः तुम सबकी इच्छा से ही मैंने उसे बिना मूल्य ही बाँट दिया।"

तात्पर्य

जब हम पाश्चात्य देशों में श्री चैतन्य महाप्रभु का सन्देश बाँटने लगे, तो हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ। प्रारम्भ में लगभग एक वर्ष तक हम अत्यधिक निराश थे, क्योंकि इस आन्दोलन में सहायता देने के लिए कोई आगे नहीं आया, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से कुछ नौजवान लड़के 1966 में इस आन्दोलन में आकर सम्मिलित हो गये। निस्सन्देह, हमने बिना मोलतोल या विक्रय के श्री चैतन्य महाप्रभु के हरे कृष्ण महामन्त्र सन्देश का वितरण किया। फलस्वरूप, यह आन्दोलन यूरोपियन तथा अमरीकी बालकों तथा बालिकाओं के सहयोग से सारे विश्व में प्रसारित हो चुका है। अतः हम पाश्चात्य जगत् में इस आन्दोलन को प्रसारित करने वाले उन समस्त भक्तों पर श्री चैतन्य महाप्रभु से आशीर्वाद देने के लिए प्रार्थना करते हैं।

सबे कहे,—लोक तारिते तोमार अवतार ।

'पूर्व' 'दक्षिण' 'पश्चिम' करिला निस्तार ॥171॥

सबे कहे-सभी ने कहा; लोक तारिते-पतित जीवों का उद्धार करने के लिए; तोमार अवतार–आपका अवतार; पूर्व–पूर्व; दक्षिण-दक्षिण; पश्चिम–पश्चिम; करिला निस्तार-आपने उद्धार कर दिया।

अनुवाद

तब महाप्रभु के सारे भक्तों ने कहा, "आप पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए अवतरित हुए हैं। आपने पूर्व तथा दक्षिण में उनका उद्धार किया है और अब आप पश्चिम में उनका उद्धार कर रहे हैं।

'एक' वाराणसी छिल तोमाते विमुख ।

ताहा निस्तारिया कैला आमा-सबार सुख ॥ 172॥

एक–एक; वाराणसी-वाराणसी; छिल-बच गया था; तोमाते विमुख-आपके आन्दोलन के विरुद्ध; ताहा–उसका; निस्तारिया-उद्धार; कैला-कर दिया; आमा-सबार हम सभी को; सुख-आनन्द उत्पन्न हो गया।

अनुवाद

केवल वाराणसी बच गया था, क्योंकि वहाँ के लोग आपके प्रचार-कार्य के विरुद्ध थे। अब आपने उनका उद्धार कर दिया, जिससे हम सभी अत्यन्त सुखी हुए हैं।"

वाराणसी-ग्रामे यदि कोलाहल हैल ।

शुनि' ग्रामी देशी लोक आसिते लागिल ॥ 173 ॥

वाराणसी-ग्रामे-वाराणसी स्थान में; यदि-यदि; कोलाहल हैल-इस समाचार का प्रसार हो गया; शुनि'–सुनकर; ग्रामी–गाँवों से; देशी-कस्बों से; लोक आसिते लागिल-लोग आने लगे।

अनुवाद

जब इन घटनाओं का समाचार प्रसारित हुआ, तो आसपास के सारे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने आने लगे।

लक्ष कोटि लोक आइसे, नाहिक गणन ।

सङ्कीर्ण-स्थाने प्रभुर ना पाय दरशन ॥ 174॥

लक्ष कोटि-लाखों करोड़ों; लोक-लोग; आइसे–आये; नाहिक गणन-कोई गिनती नहीं थी; सङ्कीर्ण-स्थाने–एक छोटे स्थान में प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; ना पाय दरशन-दर्शन नहीं कर पाये।

अनुवाद

करोड़ों लोग श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने आये, जिनकी कोई गिनती नहीं थी। चूँकि महाप्रभु का आवास छोटा था, इसलिए हर कोई उनका दर्शन नहीं कर सका।

प्रभु यबे स्नाने ग्रान विश्वेश्वर-दरशने ।

दुइ-दिके लोक करे प्रभु-विलोकने ॥ 175॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यबे-जब; स्नाने ग्रान-स्नान करने जाते; विश्वेश्वर-दरशने-अथवा भगवान् विश्वेश्वर के दर्शन करने जाते; दुइ-दिके दोनों दिशाओं में; लोक-सभी लोग; करे-करते; प्रभु-विलोकने-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु गंगा-स्नान करने तथा विश्वेश्वर मन्दिर में दर्शन करने जाते, तो लोग महाप्रभु को देखने के लिए दोनों ओर पंक्तिबद्ध हो जाते।

बाहु तुलि' प्रभु कहे—बल 'कृष्ण' 'हरि' ।

दण्डवत्करे लोके हरि-ध्वनि करि' ॥ 176 ॥

बाहु तुलि'-अपनी दोनों भुजाओं को उठाकर; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु कहते; बल-कृपया कहो; कृष्ण हरि-"कृष्ण," "हरि"; दण्डवत् करे-प्रणाम करके; लोके-सभी लोग; हरि-ध्वनि करि'–उच्च स्वर में हरि नाम लेते हुए।

अनुवाद

जब महाप्रभु लोगों के पास से निकलते, तो वे अपनी भुजाएँ उठाकर कहते, "कृष्ण बोल! हरि बोल!" सारे लोग हरे कृष्ण कीर्तन द्वारा उनका स्वागत करते और इसी कीर्तन द्वारा उनको नमस्कार करते।

एइ-मत दिन पञ्च लोक निस्तारिया।

आर दिन चलिला प्रभु उद्विग्न हञा॥ 177॥

एइ-मत-इस प्रकार; दिन पञ्च–पाँच दिन तक; लोक-लोगों का; निस्तारिया-उद्धार किया; आर दिन–अगले दिन; चलिला–चल पड़े; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; उद्विग्न हञा–अत्यन्त उत्सुक होकर।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु पाँच दिनों तक लोगों का उद्धार करते रहे। अन्त में अगले दिन वे वहाँ से प्रस्थान करने के लिए उत्सुक हो उठे।

रात्रे उठि' प्रभु यदि करिला गमन।

पाछे लाग्-लइला तबे भक्त पञ्च जन॥ 178॥

रात्रे उठि'–रात में उठकर; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; यदि-जब; करिला गमन-जाने लगे; पाछे-उनके पीछे; लाग् लइला–लग गये; तबे-तब; भक्त पञ्च जन–पाँच भक्त।

अनुवाद

छठे दिन जल्दी उठकर जब श्री चैतन्य महाप्रभु प्रस्थान करने लगे, तो पाँच भक्त उनके पीछे-पीछे लग गये।

तपन मिश्र, रघुनाथ, महाराष्ट्रीय ब्राह्मण।

चन्द्रशेखर, कीर्तनीया-परमानन्द,—पञ्च जन॥ 179॥

तपन मिश्र-तपन मिश्र; रघुनाथ–रघुनाथ; महाराष्ट्रीय ब्राह्मण-महाराष्ट्रीय ब्राह्मण; चन्द्रशेखर-चन्द्रशेखर; कीर्तनीया-परमानन्द-परमानन्द, जो कीर्तन करते थे; पञ्च जन-ये पाँच लोग।

अनुवाद

ये पाँच भक्त थे-तपन मिश्र, रघुनाथ, महाराष्ट्रीय ब्राह्मण, चन्द्रशेखर तथा परमानन्द कीर्तनिया।

सबे चाहे प्रभु-सङ्गे नीलाचल याइते।

सबारे विदाय दिला प्रभु यत्न-सहिते॥ 180॥

सबे चाहे वे सभी चाहते थे; प्रभु-सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; नीलाचल याइते-जगन्नाथ पुरी जाना; सबारे उन सब को; विदाय दिला–विदा किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; यत्न-सहिते-बड़े ही यत्न से।

अनुवाद

ये पाँचों श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ जगन्नाथ पुरी जाना चाहते थे, किन्तु महाप्रभु ने बड़े ही यत्न से इन सबको विदा किया।

याँर इच्छा, पाछे आइस आमारे देखिते।

एबे आमि एका यामु झारिखण्ड-पथे॥181॥

याँर–जिसकी; इच्छा-इच्छा है; पाछे-बाद में; आइस-आ सकते हो; आमारे देखिते-मुझे मिलने के लिए; एबे-परन्तु इस समय; आमि-मैं; एका-अकेला; यामु-जाऊँगा; झारिखण्ड-पथे-झारिखंड नामक वन के मार्ग से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यदि तुम मुझे मिलना चाहते हो, तो बाद में आ सकते हो, किन्तु इस समय मैं अकेले ही झारखंड जंगल से होता हुआ जाऊँगा।"

सनातने कहिला,—तुमि याह' वृन्दावन।

तोमार दुइ भाइ तथा करियाछे गमन॥182॥

सनातने कहिला-उन्होंने सनातन गोस्वामी से कहा; तुमि-तुम; याह' वृन्दावन-वृन्दावन जाओ; तोमार-तुम्हारे; दुइ भाइ–दोनों भाई; तथा-वहाँ; करियाछे गमने-पहले ही जा चुके हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को आदेश दिया कि वे वृन्दावन जाएँ और उन्हें यह बतलाया कि उनके दो भाई पहले ही वहाँ जा चुके हैं।

काँथा-करङ्गिया मोर काङ्गाल भक्तगण।

वृन्दावने आइले ताँदेर करिह पालन॥ 183॥

काँथा-फटा कंबल; करङ्गिया—एक छोटा जलपात्र; मोर-मेरे; काङ्गाल-गरीब; भक्त-गण-भक्त; वृन्दावने आइले-जब वृन्दावन आयेंगे; ताँदेर-उन सबका; करिह पालन-ध्यान रखना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से कहा, "मेरे जितने भी भक्त वृन्दावन जाते हैं, वे सामान्यतया बहुत निर्धन होते हैं। उनके पास केवल एक फटी रजाई तथा एक छोटा कमंडलु रहता है। अतः हे सनातन, तुम उन्हें शरण देकर उनका पालन करना।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों पर चलकर हमने वृन्दावन तथा नवद्वीप, मायापुर में यूरोप तथा अमरीका से आने वाले विदेशी भक्तों को आश्रय देने के लिए मन्दिरों का निर्माण कराया है। जब से हरे कृष्ण आन्दोलन प्रारम्भ हुआ है, अनेक यूरोपियन तथा अमरीकी वृन्दावन का भ्रमण करने आते रहे हैं, किन्तु वहाँ किसी भी आश्रम या मन्दिर ने उनका उचित स्वागत नहीं किया। अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ का उद्देश्य ही है कि उन्हें आश्रय देना तथा उन्हें भक्ति में प्रशिक्षित करना। भारत के आध्यात्मिक जीवन को समझने के इच्छुक अनेक पर्यटक भी भारत आना चाहते हैं। वृन्दावन तथा

नवद्वीप इन दोनों के हमारे मन्दिरों के भक्तों को चाहिए कि यथाशक्ति वे उन्हें स्थान प्रदान करने का यत्न करें।

एत बलि' चलिला प्रभु सबा आलिङ्गिया।

सबेइ पड़िला तथा मूर्च्छित हञा ॥184॥

एत बलि'-यह कहकर; चलिला-चलने लगे; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; सबा-उन सभी को; आलिङ्गिया—गले लगाकर; सबेइ-वे सभी; पड़िला–गिर गये; तथा-वहाँ; मूर्च्छित हञा–बेहोश होकर।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबका आलिंगन किया और जब वे अपने मार्ग पर चलने लगे, तो वे सबके सब मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

कत-क्षणे उठि' सबे दुःखे घरे आइला।

सनातन-गोसाञि वृन्दावनेरे चलिला ॥ 185॥

कत-क्षणे-कुछ समय के बाद; उठि'–उठकर; सबे–वे सभी; दुःखे-अत्यन्त दुःख में; घरे आइला-अपने घरों में लौट गये; सनातन-गोसाञि-सनातन गोस्वामी; वृन्दावनेरे चलिला-वृन्दावन चल दिये।

अनुवाद

कुछ समय के बाद सारे भक्त उठे और अत्यन्त दुःखी मन से अपने- अपने घर लौट गये। सनातन गोस्वामी अकेले ही वृन्दावन के लिए चल पड़े।

एथा रूप-गोसाञि यबे मथुरा आइला।

ध्रुव-घाटे ताँरे सुबुद्धि-राय मिलिला ॥186॥

एथा-वहाँ; रूप-गोसाञि-रूप गोस्वामी; यबे-जब; मथुरा आइला-मथुरा आये; ध्रुव-घाटे-यमुना के किनारे ध्रुव घाट पर; ताँरे–उन्हें; सुबुद्धि-राय-सुबुद्धि राय नामक चैतन्य महाप्रभु का एक भक्त; मिलिला–मिले।

अनुवाद

जब रूप गोस्वामी मथुरा पहुँचे, तो उनकी भेंट सुबुद्धि राय से यमुना के तट पर ध्रुवघाट नामक स्थान पर हुई।

पूर्वे यबे सुबुद्धि-राय छिला गौड़े अधिकारी ।

हुसेन-खाँ 'सैयद' करे ताहार चाकरी ॥187॥

पूर्वे-पहले; यबे-जब; सुबुद्धि-राय-सुबुद्धि राय; छिला-रहते थे; गौड़े-बंगाल में; अधिकारी-एक सम्मानित व्यक्ति; हुसेन-खाँ–नवाब हुसैन खान; सैयद सैयद नामक; करे-करता था; ताहार चाकरी-उसकी नौकरी।

अनुवाद

पहले सुबुद्धि राय गौड़देश (बंगाल) में एक बहुत बड़े जमींदार थे। तब सैयद हुसेन खान उनका नौकर था।

दीघि खोदाइते तारे 'मुन्सीफ' कैला ।

छिद्र पात्रा राय तारे चाबुक मारिला ॥ 188॥

दीघि खोदाइते-एक बड़ी झील खोदने के लिए; तारे-उसे (हुसैन शाह को); मुन्सीफ कैला–नियुक्त किया; छिद्र पाञा-कुछ दोष पाकर; राय–सुबुद्धि राय ने; तारे-उसे; चाबुक मारिला-चाबुक से मारा।

अनुवाद

सुबुद्धि राय ने हुसेन खान को एक बड़ी झील खुदवाने का काम सौंपा, किन्तु एक बार उसके काम में त्रुटि पाकर उन्होंने उसे कोड़े से मारा।

पाछे यबे हुसेन-खाँ गौड़े 'राजा' हइल।

सुबुद्धि-रायेरे तिंहो बहु बाड़ाइल ॥189॥

पाछे-बाद में; यबे-जब; हसेन-खाँ-हुसेन खान; गौड़े-बंगाल में; राजा हइल-नवाब बना दिया गया (मुस्लिम सरकार द्वारा); सुबुद्धि-रायेरे-सुबुद्धि राय का; तिंहो-उसने; बहु बाड़ाइल-ऐश्वर्य बढ़ा दिया।

अनुवाद

बाद में हुसेन खान केन्द्रीय मुसलमानी सरकार द्वारा नवाब नियुक्त किया गया। उसने कृतज्ञतावश सुबुद्धि राय के ऐश्वर्य में वृद्धि की।

तार स्त्री तार अङ्गे देखे मारणेर चिह्न।

सुबुद्धि-रायेरे मारिते कहे राजा-स्थाने ॥ 190॥

तार स्त्री-उसकी पत्नी; तार अङ्गे-उसके शरीर पर; देखे-देखकर; मारणेर चिह्न मार के निशान; सुबुद्धि-रायेरे-सुबुद्धि राय को; मारिते-मार डालने को; कहे-कहती है; राजा-स्थाने-राजा की उपस्थिति में।

अनुवाद

बाद में जब नवाब सैयद हुसेन खान की पत्नी ने उसके शरीर पर चाबुक के निशान देखे, तो उसने उससे सुबुद्धि राय की हत्या कर देने का आग्रह किया।

राजा कहे,—आमार पोष्टा राय हय 'पिता' ।

ताहारे मारिमु आमि,—भाल नहे कथा ॥ 191॥

राजा कहे-राजा ने कहा; आमार-मेरे; पोष्टा-पालक; राय–सुबुद्धि राय; हय-हैं; पिता-मेरे पिता के समान; ताहारे मारिमु-उन्हें मारूंगा; आमि-मैं; भाल नहे कथा-यह अच्छा प्रस्ताव नहीं है।

अनुवाद

हुसेन खान ने उत्तर दिया, "सुबुद्धि राय ने बड़ी ही सावधानी से मेरा पालन-पोषण किया है। वे मेरे पिता तुल्य ही थे। अब तुम उन्हें मारने के लिए मुझसे कह रही हो। यह अच्छा प्रस्ताव नहीं है।"

स्त्री कहे,—जाति लह', यदि प्राणे ना मारिने ।

राजा कहे,—जाति निले इँहो नाहि जीबे ॥192॥

स्त्री कहे-पत्नी ने उत्तर दिया; जाति लह'–तो उसकी जाति ले लो; यदि-यदि; प्राणे ना मारिबे-आप उसको मारेंगे नहीं; राजा कहे-राजा ने उत्तर दिया; जाति निले–यदि मैं उसकी जाति ले लूँगा; इँहो नाहि जीबे-तो वे जीवित नहीं रहेंगे।

अनुवाद

अन्तिम विकल्प के रूप में नवाब की पत्नी ने उपदेश दिया कि वह सुबुद्धि राय को अपनी जाति से भ्रष्ट करके उसे मुसलमान बना ले। किन्तु हुसेन खान ने कहा कि यदि वह ऐसा करेगा, तो सुबुद्धि राय जीवित नहीं रहेगा।

स्त्री मरिते चाहे, राजा सङ्कटे पड़िल।

करोयार पानि तार मुखे देओयाइल ॥ 193॥

स्त्री-पत्नी; मरिते चाहे-मारना चाहती है (सुबुद्धि राय को); राजा-राजा; सङ्कटे पड़िल-दुविधा में पड़ गया; करोंयार पानि-मुस्लिमों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले पात्र से पानी; तार मुखे उसके सिर पर; देओयाइल-जबदस्ती छिड़कवा दिया।

अनुवाद

उसके लिए यह संकट आ खड़ा हुआ, क्योंकि उसकी पत्नी सुबुद्धि राय को मार डालने के लिए आग्रह करती रही। अन्त में नवाब ने किसी मुसलमान के जल पीने के घड़े से सुबुद्धि राय के सिर के ऊपर थोड़ा-सा जल छिड़क दिया।

तात्पर्य

500 वर्ष पूर्व भारत में हिन्दू लोग इतने कट्टर थे कि यदि कोई मुसलमान अपने घड़े से थोड़ा जल किसी हिन्दू के ऊपर छिड़क दे, तो उस हिन्दू का तुरन्त ही समाज से बहिष्कार कर दिया जाता था। हाल ही में, 1947 में बँटवारे के समय विशेष रूप से बंगाल में हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच बड़ा दंगा हुआ। हिन्दुओं को जबरन गोमांस खिलाया गया, फलतः वे यह सोचकर रोने लगे कि वे मुसलमान हो गये हैं। वास्तव में भारत में मुसलमान किसी मुस्लिम देश से नहीं आये, किन्तु हिन्दुओं ने यह प्रथा बना ली थी कि यदि कोई किसी भी तरह मुसलमान से छू जाए, तो वह मुसलमान हो जाता है। रूप तथा सनातन गोस्वामी उच्च ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे, किन्तु चूँकि उन्होंने मुसलमान सरकार में नौकरी करना स्वीकार किया था, इसलिए उन्हें मुसलमान माना जाता था। सुबुद्धि राय पर एक मुसलमान के घड़े से पानी छिड़का गया था, इसलिए उन्हें मुसलमान मान लिया गया। बाद में मुसलमान सम्राट औरंगजेब ने हिन्दुओं पर एक विशेष कर लगाया। हिन्दू समाज में पीड़ित होकर अनेक निम्न जाति के हिन्दुओं ने मुसलमान बनना श्रेयस्कर समझा। इस तरह मुसलमान जनसंख्या

बढ़ती गई। बाद में ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों को विभाजित करने की नीति बनाई और इस तरह इन दोनों के बीच दुर्भावना बनाये रखी। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत दो टुकड़ों में हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान में बँट गया। प्रारम्भिक इतिहास से ऐसा प्रतीत होता है कि सारी पृथ्वी एक ही संस्कृति-वैदिक संस्कृति-के अधीन थी। किन्तु धीरे-धीरे धार्मिक तथा सांस्कृतिक विभाजनों से साम्राज्य के खंड-खंड हो गये। अब यह पृथ्वी अनेक देशों, धर्मों तथा राजनैतिक दलों में विभाजित है। इन राजनैतिक तथा धार्मिक विभाजनों के होते हुए भी हम एक संस्कृति-कृष्णभावनामृत-के, तले पुनः सबको एकत्रित होने का अनुमोदन करते हैं। लोगों को चाहिए कि एक ईश्वर कृष्ण को, एक शास्त्र भगवद्गीता को तथा एक ही कर्म भगवान् की भक्तिमयी सेवा को स्वीकार करें। इस तरह लोग पृथ्वी पर सुखपूर्वक रह सकेंगे और पर्याप्त अन्न उत्पन्न कर सकेंगे। ऐसे समाज में अभाव, दुर्भिक्ष या सांस्कृतिक अथवा धार्मिक ह्रास का प्रश्न ही नहीं रह जायेगा। तथाकथित जाति प्रणाली तथा राष्ट्रीय विभाजन बनावटी हैं। हमारे वैष्णव दर्शन के अनुसार ये सभी बाह्य शारीरिक उपाधियाँ हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन शारीरिक उपाधियों पर आधारित नहीं है। यह तो आध्यात्मिक ज्ञान के स्तर पर एक दिव्य आन्दोलन है। यदि विश्व के लोग यह समझ लें कि जीवन का मुख्य सिद्धान्त आध्यात्मिक पहचान है, तो वे समझ सकेंगे कि आत्मा का कार्य सर्वोपरि आत्मा कृष्ण की सेवा करना है। जैसाकि भगवान् कृष्ण ने भगवद्गीता (15.7) में कहा है- ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातन:-"इस बद्ध जगत् में सारे जीव मेरे शाश्वत अंश हैं।" विभिन्न योनियों के सारे जीव कृष्ण की सन्तानें हैं। इसलिए वे सभी अपने आदि परम पिता कृष्ण की सेवा करने के निमित्त हैं। यदि इस दर्शन को स्वीकार कर लिया जाए, तो संयुक्त राष्ट्र द्वारा समस्त राष्ट्रों को एक सूत्र में जोड़ने में जो विफलता मिल रही है, उसकी क्षतिपूर्ति कृष्णभावनामृत आन्दोलन के द्वारा विश्वभर में हो जाए। हाल ही में हमने आस्ट्रेलिया के ईसाई नेताओं से, जिनमें मेलबोर्न का कैथोलिक बिशप भी सम्मिलित थे, बात की और वहाँ हर व्यक्ति धार्मिक चेतना की एकता के मामले में हमारे दर्शन से प्रसन्न था।

तबे सुबुद्धि-राय सेइ 'छद्म' पात्रा।

वाराणसी आइला, सब विषय छाड़िया ॥194॥

तबे-तब; सुबुद्धि-राय–सुबुद्धि राय; सेइ-उस; छद्म-बहाने; पाञा-मौका पाकर; वाराणसी आइला-वाराणसी आ गये; सब-सभी; विषय छाड़िया- भौतिक कार्यों की जिम्मेदारीयाँ त्यागकर।

अनुवाद

अपने ऊपर नवाब द्वारा जल छिड़के जाने को एक सुअवसर मानकर सुबुद्धि राय ने अपना परिवार तथा व्यापार छोड़ दिया और वाराणसी चले आये।

तात्पर्य

ऐसा प्रतीत होता है कि सुबुद्धि राय एक बड़े जमींदार तथा सम्मानित व्यक्ति थे। किन्तु वे इस सामाजिक भ्रान्ति से नहीं बच सके कि यदि कोई मुसलमान अपने घड़े से किसी के मुँह पर जल छिड़क दे तो वह मुसलमान बन जाता है। वास्तव में वे अपना भौतिक जीवन त्यागकर अपने परिवार को छोड़ना चाह रहे थे। हिन्दु संस्कृति में चार आश्रम हैं-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। सुबुद्धि राय संन्यास ग्रहण करने की सोच रहे थे और कृष्ण की कृपा से उन्हें यह सुअवसर मिल गया। इसलिए वे अपना परिवार त्यागकर वाराणसी चले गये। वर्णाश्रम धर्म की प्रणाली अत्यन्त वैज्ञानिक है। यदि कोई वर्णाश्रम धर्म के अनुसार निर्देशित हो, तो अपने जीवन के अन्त में वह गृहस्थ जीवन से अवकाश प्राप्त करने के लिए सोचेगा। अतः 50 वर्ष की आयु में संन्यास अनिवार्य है।

प्रायश्चित्त पुछिलो तिंहो पण्डितेर गणे ।

ताँरा कहे,—तप्त-घृत खाजा छाड़’ प्राणे ॥195॥

प्रायश्चित्त-प्रायश्चित्त; पुछिला-पूछा; तिंहो-उन्होंने; पण्डितेर गणे-वाराणसी के ब्राह्मण पण्डितों से; ताँरा कहे-उन्होंने सुझाव दिया; तप्त-घृत-गर्म घी; खाजा-पीकर; छाड़’-त्याग दो; प्राणे-अपने प्राण।

अनुवाद

जब सुबुद्धि राय ने वाराणसी के विद्वान ब्राह्मणों से पूछा कि किस तरह मुसलमान बनने का प्रायश्चित्त किया जाए, तो उन्होंने उपदेश दिया कि वे गर्म घी पीकर अपना प्राण छोड़ दें।

केह कहे,—एइ नहे, 'अल्प' दोष हय।

शुनिया रहिला राय करिया संशय॥ 196॥

केह कहे-कुछ विद्वान ब्राह्मणों ने कहा; एइ-यह; नहे-नहीं; अल्प-छोटा; दोष-दोष; हय-है; शुनिया-सुनकर; रहिला-रह गये; राय–सुबुद्धि राय; करिया-करके; संशय-सन्देह।

अनुवाद

जब सुबुद्धि राय ने कुछ अन्य ब्राह्मणों से पूछा, तो उन्होंने कहा कि उन्होंने कोई गर्हित दोष (अपराध) नहीं किया, अतः उसे गरम घी पीकर प्राण नहीं त्यागना चाहिए। फलस्वरूप सुबुद्धि राय संशय में थे कि वे क्या करें?

तात्पर्य

हिन्दू प्रथा का यह अन्य दृष्टान्त है। किसी एक दोष के प्रायश्चित्त के लिए एक ब्राह्मण कुछ उपदेश देगा, तो दूसरा उसके विपरीत बतायेगा। इसी तरह वकील और डाक्टर एकमत नहीं होते, कभी एक उपदेश देते हैं, तो कभी दूसरा। ब्राह्मणों के मतभेद के कारण सुबुद्धि राय और भी उद्विग्न हो गये। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें।

तबे यदि महाप्रभु वाराणसी आइला।

ताँरे मिलि' राय आपन-वृत्तान्त कहिला॥ 197॥

तबे-उस समय; यदि-जब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; वाराणसी आइला-वाराणसी आये; ताँरे मिलि'–उन्हें मिलकर; राय–सुबुद्धि राय ने; आपन-वृत्तान्त कहिला-अपनी स्थिति बताई।

अनुवाद

इसी उलझन में सुबुद्धि राय श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले, जब वे वाराणसी में ठहरे थे। सुबुद्धि राय ने सारी स्थिति बतलाई और महाप्रभु से पूछा कि वे क्या करें।

प्रभु कहे,—इहाँ हैते याह' वृन्दावन।

निरन्तर कर कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन॥ 198॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने सुझाव दिया; इहाँ हैते-इस स्थान से; याह' वृन्दावन-वृन्दावन जाओ; निरन्तर-निरन्तर; कर-करो; कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन-कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन।

अनुवाद

महाप्रभु ने उन्हें उपदेश दिया, "तुम वृन्दावन जाओ और वहाँ हरे कृष्ण मन्त्र का निरन्तर कीर्तन करो।"

तात्पर्य

समस्त पापकर्मों का यही समाधान है। इस कलियुग में हर व्यक्ति अनेकानेक सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक असुविधाओं से कष्ट में है और स्वाभाविक है कि कोई भी सुखी नहीं है। इस युग के कल्मष के कारण हर व्यक्ति अल्पायु है। ऐसे अनेक मूर्ख तथा धूर्त हैं, जो लोगों को उपदेश देते रहते हैं कि ऐसा करो, वैसा करो। किन्तु जीवन के कष्टों से वास्तविक मुक्ति का अर्थ है, अगले जीवन की तैयारी। तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति। मनुष्य को अपने आध्यात्मिक स्वरूप को प्राप्त करके भगवधाम लौट जाना चाहिए। इसकी सबसे सरल विधि वही है, जिसकी संस्तुति श्री चैतन्य महाप्रभु यहाँ कर रहे हैं। हमें भगवान् के पवित्र नाम का-हरे कृष्ण महामन्त्र का-निरन्तर कीर्तन करना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों पर चलते हुए यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन इस विधि की संस्तुति सारे विश्व के लिए कर रहा है। हम कह रहे हैं, "हरे कृष्ण महामन्त्र का कीतर्न करो, जीवन की सारी

जटिलताओं से मुक्त बनो और भगवान् कृष्ण की अनुभूति करो। उनकी भक्तिमयी सेवा करो और अपने जीवन को पूर्ण बनाओ, जिससे भगवद्धाम लौट सको।"

एक 'नामाभासे' तोमार पाप-दोष ग्राबे ।

आर 'नाम' लइते कृष्ण-चरण पाइबे ॥ 199॥

एक-एक; नाम-आभासे–हरे कृष्ण महामन्त्र के शुद्ध जप के आभास द्वारा; तोमार-तुम्हारे; पाप-दोष ग्राबे-सभी पापों के प्रभाव दूर हो जायेंगे; आर-और फिर; नाम लइते-भगवान् का शुद्ध नाम जपकर; कृष्ण-चरण पाइबे-तुम्हें कृष्ण के चरणकमलों की शरण मिल जायेगी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सुबुद्धि राय को यह भी उपदेश दिया "हरे कृष्ण मन्त्र का जप प्रारम्भ करो और जब तुम्हारा जप प्रायः शुद्ध हो जायेगा, तब तुम्हारे सब पापकर्म के फल जाते रहेंगे। भलीभाँति जप करने के बाद तुम्हें कृष्ण के चरणकमलों में शरण मिल सकेगी।

तात्पर्य

दस प्रकार के अपराधों को ध्यान में रखना होगा। प्रारम्भ में जब मनुष्य हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने की दीक्षा लेता है, तो अनेक अपराध होना स्वाभाविक है। अतः भक्त को इन अपराधों से बचने के लिए अत्यन्त सावधान रहना चाहिए और शुद्ध ढंग से जप करना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि हरे कृष्ण महामन्त्र कभी शुद्ध होता है, तो कभी अशुद्ध। प्रत्युत भौतिक कल्मष के कारण जप करने वाला व्यक्ति अशुद्ध होता है। उसे अपने आपको शुद्ध करना होता है, जिससे पवित्र नाम का पूरा प्रभाव हो। निरपराध होकर भगवान् के पवित्र नाम का जप करने से मनुष्य को कृष्ण के चरणकमलों में तुरन्त शरण मिल जायेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि शुद्ध रूप से जप करने से मनुष्य तुरन्त दिव्य पद को प्राप्त होता है। किन्तु हमें ध्यान देना होगा कि श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों के

अनुसार हरे कृष्ण मन्त्र के जप को आरम्भ करने के पूर्व मनुष्य को अपनी शुद्धि के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। हम चाहे जिस दशा में हों, हमें तुरन्त जप करना प्रारम्भ कर देना चाहिए। हरे कृष्ण मन्त्र की शक्ति से हम क्रमशः समस्त भौतिक कल्मष से छुटकारा पा लेंगे और जीवन के चरम लक्ष्य, कृष्ण के चरणकमलों की शरण प्राप्त कर सकेंगे।

आर कृष्ण-नाम लेते कृष्ण-स्थाने स्थिति ।

महा-पातकेर हय एइ प्रायश्चित्त ॥ 200॥

आर-आगे; कृष्ण-नाम-हरे कृष्ण महामन्त्र; लैते–निरन्तर जप करते हुए; कृष्ण-स्थाने स्थिति-भगवान् कृष्ण के संग में स्थित होकर; महा-पातकेर-सभी प्रकार के पापों का; हय–होता है; एइ-यह; प्रायश्चित्त-प्रायश्चित्त।

अनुवाद

"जब तुम कृष्ण के चरणकमलों में स्थित होते हो, तो तुम्हें कोई पापमय कर्मफल छू नहीं सकता। सारे पापमय कार्यों का यही सबसे अच्छा समाधान है।"

पाञा आज्ञा राय वृन्दावनेरे चलिला ।

प्रयाग, अयोध्या दिया नैमिषारण्ये आइला ॥ 201॥

पाना आज्ञा-आज्ञा पाकर; राय–सुबुद्धि राय; वृन्दावनेरे चलिला-वृन्दावन की ओर चल पड़े; प्रयाग-इलाहाबाद; अयोध्या-अयोध्या (भगवान् रामचन्द्र की राजधानी); दिया–मार्ग से; नैमिषारण्ये आइला-नैमिषारण्य (लखनऊ के निकट एक स्थान) आ गये।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु से वृन्दावन जाने की आज्ञा पाकर सुबुद्धि राय वाराणसी से चल पड़े और प्रयाग, अयोध्या तथा नैमिषारण्य होते हुए वृन्दावन की ओर गये।

कतक दिवस राय नैमिषारण्ये रहिला ।

प्रभु वृन्दावन हैते प्रयाग याइला ॥ 202॥

कतक दिवस-कुछ दिनों तक; राय–सुबुद्धि राय; नैमिषारण्ये रहिला-नैमिषारण्य में रहे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; वृन्दावन हैते–वृन्दावन से; प्रयाग-इलाहाबाद; याइला-गये।

अनुवाद

सुबुद्धि राय कुछ काल तक नैमिषारण्य में रहे। उसी बीच श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन भ्रमण करने के बाद प्रयाग गये।

मथुरा आसिया राय प्रभु-वार्ता पाइल ।

प्रभुर लाग ना पाञा मने बड़ दुःख हैल ॥ 203॥

मथुरा आसिया-मथुरा पहुँचकर; राय–सुबुद्धि राय; प्रभु-वार्ता पाइल-महाप्रभु की सूचना प्राप्त की; प्रभुर– भगवान् चैतन्य महाप्रभु की; लाग–सूचना; ना पाञा-न प्राप्त कर; मने-मन में; बड़-बहुत अधिक; दुःख–दुःखी; हैल-हुआ।

अनुवाद

मथुरा पहुँचने पर सुबुद्धि राय को महाप्रभु के कार्यक्रम की जानकारी मिली। वे अत्यन्त दुःखी हुए, क्योंकि वे महाप्रभु से सम्पर्क नहीं कर सके।

शुष्क-काष्ठ आनि' राय वेचे मथुराते ।

पाँच छय पैसा हय एक एक बोझाते ॥ 204॥

शुष्क-काष्ठ आनि'–जंगल से सूखी लकड़ी लाकर; राय-सुबुद्धि राय; वेचे-बेचते थे; मथुराते-मथुरा में; पाँच छय–पाँच छः; पैसा-पैसे; हय-होते; एक एक बोझाते-एक-एक बोझ के।

अनुवाद

सुबुद्धि राय जंगल से सूखी लकड़ी बीनते और मथुरा शहर में लाकर उसे बेचते। उसे हर बोझ के लिए पाँच या छह पैसे मिलते।

आपने रहे एक पैसार चाना चाबाइया ।

आर पैसा बाणिया-स्थाने राखेन धरिया ॥205॥

आपने-स्वयं; रहे-रहते; एक पैसार-एक पैसे का; चाना-चना; चाबाइया-चबाकर; आर-शेष; पैसा–चार या पाँच पैसे; बाणिया-स्थाने-एक व्यापारी के पास; राखेन-रखकर; धरिया-जमा करवाते।

अनुवाद

सूखी लकड़ी बेचकर जीविकोपार्जन करने वाले सुबुद्धि राय एक पैसे के भुने चने चबाकर रहते और शेष पैसों को वे किसी बनिये के यहाँ जमा कर देते।

तात्पर्य

उन दिनों बैंक-प्रणाली न थी जैसी कि आज पाश्चात्य देशों में पाई जाती है। यदि किसी के पास अधिक धन होता, तो वह उसे सामान्य रूप से किसी बनिये के यहाँ जमा कर देता था। यही बैंक प्रणाली थी। सुबुद्धि राय अपना अतिरिक्त धन बनिये के पास जमा कर देते और आवश्यकता के समय खर्च करते। संन्यास आश्रम में रहते हुए धन बचाने की संस्तुति नहीं की जाती। फिर भी यदि कोई भगवान् या वैष्णव की सेवा के लिए धन बचाता है, तो वह स्वीकार्य है। यह उस सुबुद्धि राय का व्यवहार है, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्तरंग भक्तों में से एक है। श्रील रूप गोस्वामी भी इसी सिद्धान्त का पालन किय था। उन्होंने अपना पचास प्रतिशत धन ब्राह्मणों तथा वैष्णवों के माध्यम से कृष्ण की सेवा करने में व्यय किया था। उन्होंने अपना पचीस प्रतिशत धन अपने सम्बन्धियों को दिया था और पचीस प्रतिशत धन एक बनिये के पास जमा कर दिया था। चैतन्य-चरितामृत में ये विधियाँ अनुमोदित

हैं। वैष्णव चाहे संन्यास आश्रम में हो या गृहस्थ आश्रम में, उसे पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निर्धारित इन सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए।

दु:खी वैष्णव देखि' ताँरे करान भोजन।

गौड़ीया आइले दधि, भात, तैल-मर्दन ॥ 206॥

दु:खी वैष्णव-एक दु:खी वैष्णव; देखि-देखकर; ताँरे-उसे; करान भोजन-भोजन करवाते थे; गौड़ीया आइले-जब कोई बंगाली वैष्णव मथुरा आते; दधि-दही; भात-भात; तैल-मर्दन–शरीर पर तेल की मालिश।

अनुवाद

सुबुद्धि राय अपनी बचत से मथुरा आने वाले बंगाली वैष्णवों को दही खरीदकर देते थे। वह उन्हें पका चावल (भात) तथा मालिश के लिए तेल देते। जब वह किसी दुखियारे वैष्णव को देखते, तो वे अपने धन का उपयोग उसे भोजन कराने में करते।

तात्पर्य

बंगाली वैष्णवों के पालन हेतु एक विशेष सन्दर्भ है। गौड़ीय वैष्णव बंगाली वैष्णव होता है। उस समय चैतन्य महाप्रभु के अधिकांश भक्त गौड़ीय तथा उड़िया थे, जो बंगाल और उड़ीसा के निवासी थे। आज भी बंगाल तथा उड़ीसा में उनके लाखों अनुयायी हैं। बंगाली मुख्य भोजन के रूप में भात खाने के आदी हैं। जब वे उत्तर में मथुरा गये, तो उन्होंने देखा कि वहाँ के लोग सामान्यतया रोटी खाते थे। बंगाली इस भोजन को पचा नहीं सकते थे, क्योंकि वे भात खाने के आदी थे। अत: जब सुबुद्धि राय किसी बंगाली वैष्णव को मथुरा में आया देखते, तो वे उसे भात देते। बंगाली लोग सरसों के तेल की मालिश भी करते हैं। हर हालत में सुबुद्धि राय वैष्णवों की सेवा उनकी आवश्यकताओं के

अनुसार करना चाहते थे। इसीलिए वे मथुरा में खाये जाने वाले भोजन को (रोटी को) जल्दी पचाने के लिए दही देते थे।

रूप-गोसाञि, आइले ताँरे बहु प्रीति कैला।

आपन-सङ्गे लञा 'द्वादश वन' देखाइला॥ 207॥

रूप-गोसाञि-रूप गोस्वामी; आइले-जब आये (मथुरा); ताँरे-उन्हें; बहु-अत्यन्त; प्रीति–प्रेम; कैला–दिखाया; आपन-सङ्गे लञा-रूप गोस्वामी को अपने साथ लेकर; द्वादश वन-वृन्दावन के बारह वन; देखाइला–दिखाये।

अनुवाद

जब रूप गोस्वामी मथुरा आये, तो सुबुद्धि राय प्रेम तथा स्नेहवश अनेक प्रकार से उनकी सेवा करना चाहते थे। वे स्वयं रूप गोस्वामी को वृन्दावन के बारहों वन दिखाने ले गये।

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी हुसेन शाह की सरकार में मन्त्री थे और हुसेन शाह सुबुद्धि राय को भी जानता था, क्योंकि बचपन में वह उसका नौकर था। ऐसा प्रतीत होता है कि सुबुद्धि राय वृद्ध थे, फिर भी मथुरा में रहते हुए उन्होंने रूप गोस्वामी को वृन्दावन के बारह वन दिखलाये।

मास-मात्र रूप-गोसाञि रहिला वृन्दावने।

शीघ्र चलि' आइला सनातनानुसन्धाने॥ 208॥

मास-मात्र मात्र एक महीना; रूप-गोसाञि-रूप गोस्वामी; रहिला-रहे; वृन्दावने-वृन्दावन में; शीघ्र-बहुत जल्दी; चलि' आइला-वापस लौट गये; सनातन-अनुसन्धाने-सनातन गोस्वामी को खोजने के लिए।

अनुवाद

रूप गोस्वामी मथुरा तथा वृन्दावन में सुबुद्धि राय के साथ एक मास तक रहे। इसके बाद वे अपने ज्येष्ठ भाई सनातन गोस्वामी की खोज करने के लिए वृन्दावन से चल पड़े।

गङ्गा-तीर-पथे प्रभु प्रयागेरे आइला।

ताहा शुनि' दुइ–भाइ से पथे चलिला॥ 209॥

गङ्गा-तीर-पथे-गंगा नदी के किनारे के मार्ग पर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रयागेरे आइलाप्रयाग आ गये; ताहा शुनि'-यह जानकारी पाकर; दुइ–भाइ-रूप तथा अनुपम दोनों भाई; से पथे चलिला-उस मार्ग पर चल पड़े।

अनुवाद

जब रूप गोस्वामी ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु गंगा नदी के तट के मार्ग से होकर प्रयाग चले गये हैं, तो रूप तथा उनका भाई अनुपम महाप्रभु से मिलने उसी मार्ग से होकर गये।

एथा सनातन गोसाञि प्रयागे आसिया।

मथुरा आइला सरान राज-पथ दिया॥ 210॥

एथा–यहाँ (दूसरी ओर); सनातन गोसाञि-सनातन गोस्वामी; प्रयागे आसिया-प्रयाग आकर; मथुरा आइला-वृन्दावन आ गये; सरान–सीधे; राज-पथ दिया–राजमार्ग से।

अनुवाद

प्रयाग पहुँचकर सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा का पालन करते हुए राज मार्ग से होकर वृन्दावन गये।

तात्पर्य

यह विशेष महत्त्वपूर्ण बात है, क्योंकि जब सनातन गोस्वामी बंगाल से बनारस गये थे, तो राजनैतिक कारणों से वे राजमार्ग से होकर नहीं गये थे। किन्तु बनारस में श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने के बाद उन्हें राजमार्ग से होकर मथुरा होते हुए वृन्दावन जाने का आदेश हुआ। दूसरे शब्दों में, उन्हें उपदेश दिया गया कि वे अपनी राजनैतिक स्थिति से न डरें।

मथुराते सुबुद्धि-राय ताहारे मिलिला।

रूप-अनुपम-कथा सकलि कहिला॥ 211॥

मथुराते–मथुरा में; सुबुद्धि-राय-सुबुद्धि राय; ताहारे मिलिला–उनसे मिले; रूप-अनुपम-कथा-रूप तथा अनुपम की खबर; सकलि-सारी; कहिला-बताई।

अनुवाद

जब सनातन गोस्वामी सुबुद्धि राय से मथुरा में मिले, तो उन्होंने उनके छोटे भाइयों रूप गोस्वामी तथा अनुपम के विषय में सब कुछ बतलाया।

गङ्गा-पथे दुइ-भाइ राज-पथे सनातन।

अतएव ताँहा सने ना हैल मिलन॥ 212॥

गङ्गा-पथे-गंगा के किनारे के मार्ग पर; दुइ–भाइ-रूप तथा अनुपम दोनों भाई; राज-पथे-राजमार्ग पर; सनातन-सनातन गोस्वामी; अतएव–इस कारण; ताँहा सने–उनके साथ; ना हैल मिलन-मिलाप नहीं हुआ।

अनुवाद

चूँकि सनातन गोस्वामी आम मार्ग से होकर वृन्दावन गये और रूप गोस्वामी तथा अनुपम गंगातट के मार्ग से होकर गये, अतः वे एक दूसरे से नहीं मिल पाये।

सुबुद्धि-राय बहु स्नेह करे सनातने ।

व्यवहार-स्नेह सनातन नाहि माने ॥ 213॥

सुबुद्धि-राय-सुबुद्धि राय; बहु-बहुत; स्नेह-स्नेह; करे–करने लगे; सनातने-सनातन गोस्वामी को; व्यवहार-स्नेहपूर्व सम्बन्ध के कारण प्रेम और स्नेह; सनातन-सनातन गोस्वामी; नाहि माने स्वीकार करने में संकोच कर रहे थे।

अनुवाद

सुबुद्धि राय तथा सनातन गोस्वामी संन्यास ग्रहण करने के पूर्व एक दूसरे को जानते थे। अतः सुबुद्धि राय ने सनातन गोस्वामी के साथ बहुत स्नेह प्रदर्शित किया, किन्तु सनातन गोस्वामी उसके भाव तथा स्नेह को स्वीकार करने में संकोच कर रहे थे।

महा-विरक्त सनातन भ्रमेन वने वने ।

प्रति-वृक्षे, प्रति-कुल्ले रहे रात्रि-दिने ॥ 214॥

महा-विरक्त-महान् वैरागी; सनातन-सनातन गोस्वामी; भ्रमेन-भ्रमण करते; वने वने–एक वन से दूसरे वन; प्रति-वृक्षे प्रत्येक वृक्ष के नीचे; प्रति-कुञ्ज–प्रत्येक कुंज में; रहे रात्रि-दिने–दिन-रात रहते।

अनुवाद

संन्यास आश्रम में अत्यन्त उन्नत होने के कारण सनातन गोस्वामी एक वन से दूसरे वन में घूमा करते और कभी-भी पत्थर के बने किसी भी निवासस्थान में आश्रय नहीं लेते थे। वे वृक्षों के नीचे, अथवा कुंजों के नीचे दिन-रात रहा करते।

मथुरा-माहात्म्य-शास्त्र सङ्ग्रह करिया ।

लुप्त-तीर्थ प्रकट कैला वनेते भ्रमिया ॥ 215॥

मथुरा-माहात्म्य-मथुरा की महिमा का वर्णन करने वाले; शास्त्र-ग्रन्थ; सङ्ग्रह करिया-संग्रह करके; लुप्त-तीर्थ-लुप्त तीर्थस्थान; प्रकट–खोजना; कैला–किया; वनेते भ्रमिया-वन में घूमकर।

अनुवाद

श्रील सनातन गोस्वामी ने मथुरा में पुरातत्व खनन के विषय में कुछ पुस्तकें एकत्र कीं और वन में भ्रमण करके उन सारे तीर्थस्थानों का पुनरुद्धार किया।

एइ-मत सनातन वृन्दावनेते रहिला ।

रूप-गोसाञि दुइ-भाइ काशीते आइला ॥ 216॥

एइ-मत-इस प्रकार; सनातन-सनातन गोस्वामी; वृन्दावनेते रहिला-वृन्दावन में रहे; रूप-गोसाञि-रूप गोस्वामी; दुइ–भाइ-दोनों भाई; काशीते आइला-वाराणसी आ गये।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी वृन्दावन में बने रहे और रूप गोस्वामी तथा अनुपम वाराणसी लौट आये।

महाराष्ट्रीय द्विज, शेखर, मिश्र-तपन ।

तिन-जन सह रूप करिला मिलन ॥217॥

महाराष्ट्रीय द्विज-महाराष्ट्र का ब्राह्मण; शेखर-चन्द्रशेखर; मिश्र-तपन-तपन मिश्र; तिन-जन-इन तीन लोगों के; सह–साथ; रूप-रूप गोस्वामी; करिला मिलन–मिले।

अनुवाद

जब रूप गोस्वामी बनारस आये, तो वे महाराष्ट्रीय ब्राह्मण, चन्द्रशेखर तथा तपन मिश्र से मिले।

शेखरेर घरे वासा, मिश्र-घरे भिक्षा ।

मिश्र-मुखे शुने सनातने प्रभुर ‘शिक्षा’ ॥ 218॥

शेखरेर घरे वासा–चन्द्रशेखर के घर में निवास; मिश्र-घरे भिक्षा-तपन मिश्र के घर में भिक्षा; मिश्र-मुखे-तपन मिश्र के मुख से; शुने-सुना; सनातने–सनातन गोस्वामी को; प्रभुर शिक्षा-श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेश।

अनुवाद

वाराणसी में रूप गोस्वामी चन्द्रशेखर के घर में रहे और तपन मिश्र के घर प्रसाद ग्रहण किया। इस तरह उन्होंने वाराणसी में श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा सनातन गोस्वामी को दी गई शिक्षाओं को सुना।

काशीते प्रभुर चरित्र शुनि’ तिनेर मुखे ।

सन्यासीरे कृपा शुनि’ पाइला बड़ सुखे ॥219॥

काशीते-वाराणसी (काशी) में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरित्र-कार्यकलाप; शुनि’–सुनकर; तिनेर मुखे–तीनों लोगों के मुख से; सन्यासीरे कृपा-मायावादी संन्यासियों के प्रति की गई कृपा; शुनि’–के विषय में सुनकर; पाइला–उन्हें प्राप्त हुआ; बड़ सुखे-अत्यन्त आनन्द।

अनुवाद

वाराणसी में रहते हुए रूप गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त कार्यकलापों के विषय में सुना। जब उन्होंने मायावादी संन्यासियों का उनके द्वारा किये गये उद्धार के विषय में सुना, तो वे बहुत सुखी हुए।

महाप्रभुर उपर लोकेर प्रणति देखिया ।

सुखी हैला लोक-मुखे कीर्तन शुनिया ॥ 220॥

महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; उपर-पर; लोकेर-लोगों का; प्रणति देखिया-समर्पण देखकर; सुखी हैला-अत्यन्त सुखी हुए; लोक-मुखे-जनसामान्य के मुख से; कीर्तन शुनिया-वर्णन सुनकर।

अनुवाद

जब रूप गोस्वामी ने देखा कि वाराणसी के सारे लोगों ने श्री चैतन्य महाप्रभु का आदर किया है, तो वे अत्यन्त सुखी हुए। यहाँ तक कि उन्होंने सामान्य लोगों से भी कहानियाँ सुनीं।

दिन दश रहि' रूप गौड़े यात्रा कैल ।

सनातन-रूपेर एइ चरित्र कहिल ॥ 221॥

दिन दश-लगभग दस दिन; रहि-रहकर; रूप-रूप गोस्वामी; गौड़े यात्रा कैल-बंगाल लौट गये; सनातन-रूपेर-श्री सनातन गोस्वामी और रूप गोस्वामी का; एइ–यह; चरित्र-चरित्र; कहिल-मैंने बताया।

अनुवाद

वाराणसी में लगभग दस दिन रुककर रूप गोस्वामी बंगाल लौट गये। इस तरह मैंने रूप तथा सनातन के कार्यकलापों का वर्णन किया है।

एथा महाप्रभु यदि नीलाद्रि चलिला ।

निर्जन वन-पथे याइते महा सुख पाइला ॥222॥

एथा दूसरी ओर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यदि-जब; नीलाद्रि चलिला-जगन्नाथ पुरी लौट गये; निर्जन वन-पथे-एकान्त वन में मार्ग पर; याइते-जाते हुए; महा सुख पाइला-अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव किया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी लौट रहे थे, तब वे एकान्त जंगल से होकर निकले और ऐसा करने में उन्हें परम सुख प्राप्त हुआ।

सुखे चलि' आइसे प्रभु बलभद्र-सङ्गे ।

पूर्ववत्मृगादि-सङ्गे कैला नाना-रङ्गे ॥ 223॥

सुखे-आनन्ददायक वातावरण में; चलि' आइसे–वापस लौटे; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; बलभद्र-सङ्गे–बलभद्र भट्टाचार्य नामक सेवक के साथ; पूर्व-वत्-पहले की तरह; मृग-आदि-सङ्गे–जंगल के पशुओं के साथ; कैला-की; नाना-रङ्गे–अनेक आनन्ददायक लीलाएँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रसन्नतापूर्वक अपने सेवक बलभद्र भट्टाचार्य के साथ जगन्नाथ पुरी लौट आये। महाप्रभु ने पहले की ही तरह जंगल के पशुओं के साथ अनेक मनोहर क्रीड़ाएँ कीं॥

आठारनालाते आसि' भट्टाचार्य ब्राह्मणे ।

पाठाञा बोलाइला निज-भक्त-गणे ॥ 224॥

आठारनालाते-जगन्नाथ पुरी के समीप आठारनाला नामक स्थान पर; आसि'-आकर; भट्टाचार्य ब्राह्मणे-बलभद्र भट्टाचार्य नामक ब्राह्मण को; पाठाञा–भेजकर; बोलाइला-बुलवाया; निज-भक्त-गणे-अपने अन्तरंग संगियों को।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी के निकट आठारनाला नामक स्थान पर पहुँचे, तो उन्होंने बलभद्र भट्टाचार्य को अपने भक्तों को बुला लाने के लिए भेजा।

शुनिया भक्तेर गण येन पुनरपि जीला ।

देहे प्राण आइले, येन इन्द्रिय उठिला ॥ 225॥

शुनिया-सुनकर; भक्तेर गण-भक्तों की भीड़; येन-जैसे; पुनरपि फिर; जीला-जी उठी; देहे-शरीर में प्राण आइले-प्राण लौट आये; येन-जैसे; इन्द्रिय-इन्द्रियाँ; उठिला–विचलित हो गईं।

अनुवाद

बलभद्र भट्टाचार्य से महाप्रभु के आगमन का समाचार सुनकर भक्तगण इतने सुखी हुए मानों उन्हें अपने प्राण वपास मिले हो। ऐसा लग रहा था मानों उनके शरीरों में पुनः चेतना लौट आई हो। उनकी इन्द्रियाँ भी चलायमान हो उठीं।

आनन्दे विह्वल भक्त-गण धाञा आइला ।

नरेन्द्रे आसिया सबे प्रभुरे मिलिला ॥226॥

आनन्दे-महान् आनन्द में; विह्वल-विभोर; भक्त-गण-सभी भक्त; धाञा आइला–भागकर आये; नरेन्द्रे आसिया–नरेन्द्र सरोवर के किनारे आकर; सबे–वे सब; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु से; मिलिला–मिले।

अनुवाद

परम आनन्द से विह्वल होकर सारे भक्त दौड़कर महाप्रभु से भेंट करने आये। वे उनसे विख्यात झील नरेन्द्र सरोवर के तट पर मिले।

पुरी-भारतीर प्रभु वन्दिलेन चरण ।

दोहे महाप्रभुरे कैला प्रेम-आलिङ्गन ॥ 227॥

पुरी-परमानन्द पुरी; भारतीर–तथा ब्रह्मानन्द भारती के प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; वन्दिलेन चरण-चरणों की वन्दना की; दोंहे-दोनों वरिष्ठ सन्न्यासियों ने; महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कैला–किया; प्रेम-आलिङ्गन-प्रेम में आलिंगन।

अनुवाद

जब परमानन्द पुरी तथा ब्रह्मानन्द भारती श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले, तो महाप्रभु ने अपने गुरु के इन गुरु-भाइयों को सादर नमस्कार किया। तब उन दोनों ने प्रेमपूर्वक महाप्रभु का आलिंगन किया।

दामोदर-स्वरूप, पण्डित-गदाधर।

जगदानन्द, काशीश्वर, गोविन्द, वक्रेश्वर ॥228॥

दामोदर-स्वरूप-स्वरूप दामोदर; पण्डित-गदाधर-गदाधर पण्डित; जगदानन्द-जगदानन्द; काशीश्वर-काशीश्वर; गोविन्द-गोविन्द; वक्रेश्वर–वक्रेश्वर।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर, गदाधर पण्डित, जगदानन्द, काशीश्वर, गोविन्द तथा वक्रेश्वर-ये सारे भक्त महाप्रभु से मिलने आये।

काशी-मिश्र, प्रद्युम्न-मिश्र, पण्डित-दामोदर।

हरिदास-ठाकुर, आर पण्डित-शङ्कर ॥229॥

काशी-मिश्र-काशी मिश्र; प्रद्युम्न-मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; पण्डित-दामोदर-दामोदर पण्डित; हरिदास-ठाकुर-हरिदास ठाकुर; आर-तथा; पण्डित-शङ्कर-शंकर पण्डित।

अनुवाद

काशी मिश्र, प्रद्युम्न मिश्र, दामोदर पण्डित, हरिदास ठाकुर तथा शंकर पण्डित भी महाप्रभु से मिलने वहाँ आये।

आर सब भक्त प्रभुर चरणे पड़िला ।

सबा आलिङ्गिया प्रभु प्रेमाविष्ट हैला ॥230॥

आर सब भक्त–अन्य सारे भक्त; प्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे पड़िला-चरणकमलों में गिर गये; सबा आलिङ्गिया-उन सब का आलिंगन करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रेम-आविष्ट-प्रेमभाव में विभोर, हैला-हो गये।

अनुवाद

अन्य सारे भक्त भी आये और महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े। बदले में श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यन्त प्रेमविभोर होकर उन सबका आलिंगन किया।

आनन्द-समुद्रे भासे सब भक्त-गणे ।

सबा लञा चले प्रभु जगन्नाथ-दरशने ॥ 231॥

आनन्द-समुद्रे-दिव्य आनन्द के समुद्र में; भासे-तैरने लगे; सब भक्त-गणे—सभी भक्तगण; सबा लञा-उन सबको लेकर; चले–चले; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जगन्नाथ-दरशने-जगन्नाथ भगवान् के दर्शन करने के लिए।

अनुवाद

इस तरह वे सब आनन्द सागर में मग्न हो गये। तत्पश्चात् महाप्रभु तथा उनके सारे भक्त अर्चाविग्रह-दर्शन के लिए जगन्नाथ मन्दिर की ओर बढ़े।

जगन्नाथ देखि’ प्रभु प्रेमाविष्ट हैला ।

भक्त-सङ्गे बहु-क्षण नृत्य-गीत कैला ॥ 232॥

जगन्नाथ देखि'–भगवान जगन्नाथ को देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रेम-आविष्ट हैला–प्रेम तथा स्नेह से भावविभोर हो गये; भक्त-सङ्गे–भक्तों के संग में; बहु-क्षण-लम्बे समय तक; नृत्य-गीत कैला-नृत्य तथा कीर्तन किया।

अनुवाद

ज्योंही श्री चैतन्य महाप्रभु ने मन्दिर में जगन्नाथ का दर्शन किया, वे तुरन्त प्रेमाविष्ट हो गये। वे लम्बे समय तक अपने भक्तों के साथ कीर्तन तथा नृत्य करते रहे।

जगन्नाथ-सेवक आनि माला-प्रसाद दिला ।

तुलसी पड़िछा आसि' चरण वन्दिला ॥ 233 ॥

जगन्नाथ-सेवक-भगवान् जगन्नाथ के पुजारी सेवकों ने; आनि'–लाकर; माला-प्रसाद दिला-फूलों की माला तथा प्रसाद दिया; तुलसी पड़िछातुलसी नामक मन्दिर के सेवक ने; आसि'-आकर; चरण वन्दिला-महाप्रभु के चरणों की वन्दना की।

अनुवाद

पुरोहितगण तुरन्त ही उन सबके लिए फूल-मालाएँ तथा प्रसाद ले आये। मन्दिर का तुलसी नामक चौकीदार भी आया और उसने श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार किया।

'महाप्रभु आइला'–ग्रामे कोलाहल हैल ।

सार्वभौम, रामानन्द, वाणीनाथ मिलिल ॥ 234॥

महाप्रभु आइला-श्री चैतन्य महाप्रभु आ गये; ग्रामे-गाँव में; कोलाहल हैल-खबर फैल गई; सार्वभौम-सार्वभौम; रामानन्द-रामानन्द; वाणीनाथ-वाणीनाथ; मिलिल-मिलने आये।

अनुवाद

जब यह समाचार प्रचारित हो गया कि श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में आ गये हैं, तो सार्वभौम भट्टाचार्य, रामानन्द राय तथा वाणीनाथ राय आदि भक्त उनसे मिलने आये।

सबा सङ्गे लञा प्रभु मिश्र-वासा आइला ।

सार्वभौम, पण्डित-गोसाञि निमन्त्रण कैला ॥ 235॥

सबा सङ्गे लञा-उन सबको साथ लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मिश्र-वासा आइला-काशी मिश्र के घर आ गये; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; पण्डित-गोसाञि-गदाधर पण्डित ने; निमन्त्रण कैला-महाप्रभु को प्रसाद के लिए निमंत्रित किया।

अनुवाद

तब महाप्रभु तथा उनके भक्त काशी मिश्र के निवासस्थान पर गये। सार्वभौम भट्टाचार्य तथा पण्डित गोसांई ने भी महाप्रभु को अपने घरों में भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया।

प्रभु कहे,—"महा-प्रसाद आन' एइ स्थाने ।

सबा-सङ्गे इहाँ आजि करिमु भोजने" ॥ 236॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; महा-प्रसाद आन'–महाप्रसाद लाओ; एइ स्थाने-इस स्थान पर; सबा-सड़े-सबके साथ; इहाँ–यहाँ; आजि-आज; करिमु भोजने-मैं भोजन करूँगा।

अनुवाद

उनका आमन्त्रण स्वीकार करके महाप्रभु ने उनसे कहा कि वे सारा प्रसाद वहीं ले आयें, जिससे वे अपने भक्तों के साथ भोजन कर सकें।

तबे दुँहे जगन्नाथ प्रसाद आनिल ।

सबा-सङ्गे महाप्रभु भोजन करिल ॥ 237॥

तबे-फिर; दुँहे–सार्वभौम तथा पण्डित गोसांई; जगन्नाथ-प्रसाद आनिल-जगन्नाथ का महाप्रसाद ले आये; सबा-सङ्गे–उन सबके साथ; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; भोजन करिल-भोजन किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का आदेश पाकर सार्वभौम भट्टाचार्य तथा पण्डित गोसांई दोनों जगन्नाथ मन्दिर से पर्याप्त प्रसाद ले आये। तब महाप्रभु ने अपने स्थान पर सबके साथ भोजन किया।

एइ त कहिलुँ,—प्रभु देखि' वृन्दावन ।

पुनः करिलेन यैछे नीलाद्रि गमन ॥ 238॥

एइ त कहिलुँ-इस प्रकार मैंने वर्णन किया; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; देखि वृन्दावन-वृन्दावन घूमकर; पुनः-फिर; करिलेन-की; यैछे-कैसे; नीलाद्रि गमन-जगन्नाथ पुरी वापसी।

अनुवाद

इस तरह मैंने इसका वर्णन किया कि श्री चैतन्य महाप्रभु किस तरह वृन्दावन से जगन्नाथ पुरी लौट आये।

इहा येइ श्रद्धा करि' करये श्रवण ।

अचिरात्पाय सेइ चैतन्य-चरण ॥ 239॥

इहा-यह; येइ-जो भी; श्रद्धा करि'–श्रद्धा तथा प्रेम के साथ; करये श्रवण-सुनता है; अचिरात्-अति शीघ्र ही; पाय-प्राप्त करता है; सेइ-वह; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

जो भी श्रद्धा तथा प्रेम के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को सुनता है, वह शीघ्र ही उनके चरणकमलों की शरण प्राप्त करता है।

मध्य-लीलार करिलुँ एइ दिग्दरशन ।

छय वत्सर कैला यैछे गमनागमन ॥ 240॥

मध्य-लीलार–इस मध्यलीला नामक खंड का; करिलुँ-मैंने किया है; एइ दिक्-दरशन-सार; छय वत्सर-लगातार छह वर्ष तक; कैला-किया; यैछे-कैसे; गमन-आगमन-आना और जाना।

अनुवाद

इस तरह मैंने मध्यलीला का सारांश दिया है, जोकि श्री चैतन्य महाप्रभु की जगन्नाथ पुरी आने-जाने की यात्राओं का वर्णन है। निस्सन्देह, महाप्रभु छह वर्षों तक निरन्तर इधर से उधर यात्रा करते रहे।

शेष अष्टादश वत्सर नीलाचले वास ।

भक्त-गण-सड़े करे कीर्तन-विलास ॥ 241॥

शेष अष्टादश वत्सर–शेष अठारह वर्ष; नीलाचले वास–जगन्नाथ पुरी में निवास; भक्त-गण-सङ्गे-भक्तों के साथ; करे-करते रहे; कीर्तन-विलास-हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन की लीलाएँ।

अनुवाद

चौबीस वर्ष की आयु में संन्यास ग्रहण करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु चौबीस वर्षों तक और जीवित रहे। इनमें से छह वर्षों तक वे भारत-भर में विस्तृत यात्राएँ करते रहे-कभी जगन्नाथ पुरी आते तो कभी वहाँ से बाहर जाते। छह वर्षों तक यात्रा करने के बाद महाप्रभु ने जगन्नाथ पुरी में निवास किया और अपने जीवन के शेष अठारह वर्षों तक वहीं रहे। इन अठारह वर्षों में वे मुख्यतया अपने भक्तों के साथ हरे कृष्ण कीर्तन करते रहे।

मध्य-लीलार क्रम एबे करि अनुवाद

अनुवाद कैले हय कथार आस्वाद ॥ 242॥

मध्य-लीलार क्रम-मध्यलीला में वर्णित लीलाओं का क्रमिक वर्णन; एबे-अब; करि-मैं करता हूँ; अनुवाद-अनुवाद; अनुवाद कैले–इस प्रकार अनुवाद करके; हय-होता है; कथार आस्वाद-सभी विषयों का आस्वादन।

अनुवाद

अब मैं मध्यलीला के सारे अध्यायों का क्रमवार पुनः अवलोकन करूँगा, जिससे इन विषयों के दिव्य गुणों का आस्वादन किया जा सके।

प्रथम परिच्छेदे—शेष-लीलार सूत्र-गण ।

तथि-मध्ये कोन भागेर विस्तार वर्णन ॥ 243॥

प्रथम परिच्छेदे-प्रथम अध्याय में; शेष-लीलार सूत्र-गण-श्री चैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाओं का संक्षेप में वर्णन; तथि-मध्ये—उसमें; कोन भागेर-ग्रन्थ के कुछ भाग का; विस्तार वर्णन–विस्तृत वर्णन।

अनुवाद

प्रथम अध्याय में मैंने अन्त्यलीला की रूपरेखा दी है। इस अध्याय में महाप्रभु की उन कुछ लीलाओं का विस्तृत वर्णन है, जो उनके जीवन के अन्तिम काल में घटीं।

द्वितीय परिच्छेदे—प्रभुर प्रलाप-वर्णन ।

तथि-मध्ये नाना-भावेर दिग्दरशन ॥244॥

द्वितीय परिच्छेदे-दूसरे अध्याय में प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; प्रलाप-वर्णन-एक पागल व्यक्ति की तरह व्यवहार का वर्णन; तथि-मध्ये-उसी में; नाना-भावेर-विभिन्न भावों का; दिक्-दरशन-संकेत।

अनुवाद

द्वितीय अध्याय में मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के द्वारा पागल व्यक्ति जैसी बातें करने का वर्णन किया है। इस अध्याय में यह इंगित किया गया है। कि श्री चैतन्य महाप्रभु किस तरह विभिन्न भावभंगिमाएँ प्रकट करते थे।

तृतीय परिच्छेदे—प्रभुर कहिलुँ सन्यास।

आचार्येर घरे यैछे करिला विलास॥ 245॥

तृतीय परिच्छेदे-तीसरे अध्याय में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; कहिलुँ–मैंने वर्णन किया; सन्यास-संन्यास ग्रहण; आचार घरे-अद्वैत आचार्य के घर पर; यैछे-किस प्रकार; करिला विलास-अपनी लीलाओं का आनन्द लिया।

अनुवाद

तीसरे अध्याय में मैंने महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने तथा अद्वैत आचार्य के घर पर उनके द्वारा अपनी लीलाओं का आस्वादन करने का वर्णन किया है।

चतुर्थे–माधव पुरीर चरित्र-आस्वादन।

गोपाल स्थापन, क्षीर-चुरिर वर्णन॥ 246॥

चतुर्थे–चोथे अध्याय में; माधव पुरीर-माधवेन्द्र पुरी के चरित्र-आस्वादन-चरित्र का आस्वादन; गोपाल स्थापन–गोपाल की स्थापना; क्षीर-चुरिर वर्णन–रेमुणा में गोपीनाथ के खीर चुराने का वर्णन।

अनुवाद

चौथे अध्याय में मैंने माधवेन्द्र पुरी द्वारा गोपाल अर्चाविग्रह की स्थापना का तथा गोपीनाथ द्वारा रेमुणा में खीरपात्र चुराने का वर्णन किया है।

पञ्चमे–साक्षि-गोपाल-चरित्र-वर्णन।

नित्यानन्द कहे, प्रभु करेन आस्वादन ॥247॥

पञ्चमे-पाँचवे अध्याय में; साक्षि-गोपाल–साक्षी गोपाल; चरित्र-वर्णन-चरित्र का वर्णन; नित्यानन्द कहे-भभ नित्यानन्द वर्णन करते हैं; प्रभु-चैतन्य महाप्रभु; करेन आस्वादन–आस्वादन करते हैं।

अनुवाद

पाँचवे अध्याय में मैंने साक्षीगोपाल की कथा कही है। इसे नित्यानन्द प्रभु ने सुनाया था और श्री चैतन्य महाप्रभु ने सुना था।

षष्ठे—सार्वभौमेर करिला उद्धार।

सप्तमे—तीर्थ-यात्रा, वासुदेव निस्तार ॥248॥

षष्ठे-छठे अध्याय में; सार्वभौमेर-सार्वभौम भट्टाचार्य का; करिला उद्धार-महाप्रभु ने उद्धार किया; सप्तमे-सातवें अध्याय में; तीर्थ-यात्रा–विभिन्न तीर्थों की यात्रा; वासुदेव निस्तार–वासुदेव का उद्धार।

अनुवाद

छठे अध्याय में मैंने बतलाया है कि सार्वभौम भट्टाचार्य का उद्धार कैसे हुआ और सातवें अध्याय में महाप्रभु द्वारा विभिन्न तीर्थस्थलों की यात्रा करने और उनके द्वारा वासुदेव के उद्धार का वर्णन किया है।

अष्टमे–रामानन्द-संवाद विस्तार।

आपने शुनिला 'सर्व-सिद्धान्तेर सार' ॥ 249॥

अष्टमे-आठवें अध्याय में; रामानन्द-संवाद विस्तार-श्री रामानन्द राय के साथ विस्तृत चर्चा; आपने-स्वयं; शुनिला सुना; सर्व-सब; सिद्धान्तेर-सिद्धान्तों का; सार-सार।

अनुवाद

आठवें अध्याय में मैंने रामानन्द राय के साथ महाप्रभु के विस्तृत संवाद का उल्लेख किया है। रामानन्द द्वारा दिये गये समस्त वैदिक साहित्य के सार को महाप्रभु ने स्वयं सुना।

नवमे–कहिलुँ दक्षिण-तीर्थ-भ्रमण।

दशमे–कहिलुँ सर्व-वैष्णव-मिलन ॥250॥

नवमे-नौंवे अध्याय में; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया; दक्षिण-तीर्थ-भ्रमण-दक्षिण भारत की तीर्थयात्रा; दशमे-दसवें अध्याय में; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया; सर्व-वैष्णव-मिलन-सभी भक्तों से मिलन।

अनुवाद

नौवें अध्याय में मैंने महाप्रभु की दक्षिण भारत एवं विविध तीर्थस्थानों की यात्रा का वर्णन किया है। दसवें अध्याय में मैंने महाप्रभु के सभी भक्तों से मिलन का वर्णन किया है।

एकादशे–श्री-मन्दिरे 'बेड़ा-सङ्कीर्तन'।

द्वादशे-गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जन-क्षालन ॥ 251॥

एकादशे-ग्यारहवें अध्याय में; श्री-मन्दिरे-जगन्नाथ मन्दिर में; बेड़ा-सङ्कीर्तन-सर्वत्र हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन; द्वादशे-बारहवें अध्याय में; गुण्डिचा-मन्दिर-गुंडीचा नामक मन्दिर की; मार्जन-क्षालन-सफाई और धुलाई।

अनुवाद

ग्यारहवें अध्याय में मैंने उस हरे कृष्ण महामन्त्र के महान् संकीर्तन का वर्णन किया है, जिससे महाप्रभु घिरे थे। बारहवें अध्याय में मैंने गुण्डिचा मन्दिर की सफाई और धुलाई का वर्णन किया है।

त्रयोदशे–रथ-आगे प्रभुर नर्तन ।

चतुर्दशे–'हेरा-पञ्चमी'-यात्रा-दरशन ॥ 252॥

त्रयोदशे-तेरहवें अध्याय में; रथ-आगे-जगन्नाथ रथ के सामने; प्रभुर नर्तन-भगवान् चैतन्य महाप्रभु का नृत्य; चतुर्दशे-चौदहवें अध्याय में; हेरा-पञ्चमी-हेरा पंचमी, जो रथ यात्रा के पाँचवे दिन आती है; यात्रा-उत्सव; दरशन-दर्शन।

अनुवाद

तेरहवें अध्याय में मैंने जगन्नाथजी के रथ के आगे-आगे श्री चैतन्य महाप्रभु के नृत्य का वर्णन किया है। चौदहवें अध्याय में हेरापंचमी उत्सव का विवरण दिया गया है।

तार मध्ये व्रज-देवीर भावेर श्रवण ॥

स्वरूप कहिला, प्रभु कैला आस्वादन ॥253 ॥

तार मध्ये-उसमें; व्रज-देवीर-गोपियों के; भावेर-भावों का; श्रवण- श्रवण; स्वरूप कहिला-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने वर्णन किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला आस्वादन-आस्वादन किया।

अनुवाद

चौदहवें अध्याय में ही स्वरूप दामोदर द्वारा गोपियों के भाव का वर्णन और श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उसका आस्वादन भी दिया गया है।

पञ्चदशे–भक्तेर गुण श्री-मुखे कहिल।

सार्वभौम-घरे भिक्षा, अमोघ तारिल ॥ 254॥

पञ्चदशे-पन्द्रहवें अध्याय में; भक्तेर-भक्तों के; गुण-गुणों का; श्री-मुखे कहिल-स्वयं चैतन्य महाप्रभु ने वर्णन किया; सार्वभौम-घरे–सार्वभौम के घर पर; भिक्षा–प्रसाद ग्रहण कर; अमोघ तारिल-उन्होंने अमोघ का उद्धार किया।

अनुवाद

पन्द्रहवें अध्याय में मैंने यह बतलाया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों के गुणों की अत्यधिक प्रशंसा कैसे की और सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर दोपहर का भोजन कैसे ग्रहण किया। उस समय उन्होंने अमोघ का उद्धार किया।

षोड़शे–वृन्दावन-यात्रा गौड़-देश-पथे।

पुनः नीलाचले आइला, नाटशाला हैते ॥ 255॥

षोड़शे-सोलहवें अध्याय में; वृन्दावन-यात्रा-वृन्दावन यात्रा के लिए चलकर; गौड़-देश-पथे-बंगाल राज्य के मार्ग से; पुनः–फिर; नीलाचले आइला-जगन्नाथ पुरी लौट आये; नाटशाला हैते–कानाइ नाटशाला से।

अनुवाद

सोलहवें अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु का वृन्दावन के लिए प्रस्थान और बंगाल होकर यात्रा करने का वर्णन है। बाद में महाप्रभु कानाइ नाटशाला से जगन्नाथ पुरी लौट आये।

सप्तदशे—वनपथे मथुरा-गमन।

अष्टादशे—वृन्दावन-विहार-वर्णन ॥256॥

सप्तदशे-सत्रहवें अध्याय में; वन-पथे-वन के मार्ग से; मथुरा-गमन-चैतन्य महाप्रभु का मथुरा गमन; अष्टादशे-अठारहवें अध्याय में; वृन्दावन-विहार-वर्णन-उनके वृन्दावन विहार का वर्णन।

अनुवाद

सत्रहवें अध्याय में मैंने झारखण्ड के विकट जंगल से होकर महाप्रभु की यात्रा और मथुरा में उनके आगमन का वर्णन किया है। अठारहवें अध्याय में मैंने वृन्दावन के जंगल में महाप्रभु के भ्रमण का वर्णन दिया हैं।

ऊनविंशे–मथुरा हैते प्रयाग-गमन।

तार मध्ये श्री-रूपेरे शक्ति-सञ्चारण॥ 257॥

ऊनविंशे-उन्नीसवें अध्याय में; मथुरा हैते–मथुरा से; प्रयाग-गमन-प्रयाग जाना; तार मध्ये-उसमें; श्री-रूपेरे-श्री रूप गोस्वामी को; शक्ति-सञ्चारण-भक्ति के प्रचार की शक्ति प्रदान करना।

अनुवाद

उन्नीसवें अध्याय में मैंने इस बात का वर्णन किया है कि महाप्रभु मथुरा से प्रयाग लौट आते हैं और श्री रूप गोस्वामी को भक्ति का प्रसार करने के लिए शक्ति प्रदान करते हैं।

विंशति परिच्छेदे—सनातनेर मिलन।

तार मध्ये भगवानेर स्वरूप-वर्णन॥ 258॥

विंशति परिच्छेदे–बीसवें अध्याय में; सनातनेर मिलन-सनातन गोस्वामी से मिलन; तार मध्ये-उसमें; भगवानेर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; स्वरूप-वर्णन-स्वरूप का वर्णन।

अनुवाद

बीसवें अध्याय में सनातन गोस्वामी से महाप्रभु की भेंट का वर्णन हुआ है। महाप्रभु ने विस्तार से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के स्वरूप का वर्णन किया है।

एकविंशे—कृष्णैश्वर्य-माधुर्य वर्णन ।

द्वाविंशे—द्विविध साधन-भक्तिर विवरण ॥ 259॥

एक-विंशे-इक्कीसवें अध्याय में; कृष्ण-ऐश्वर्य-कृष्ण के ऐश्वर्य की; माधुर्य–मधुरता का; वर्णन-वर्णन; द्वा-विंशे-बाइसवें अध्याय में; द्वि-विध-दो प्रकार की; साधन-भक्तिर–साधना भक्ति का; विवरण-वर्णन।

अनुवाद

इक्कीसवें अध्याय में कृष्ण के सौन्दर्य तथा ऐश्वर्य का वर्णन है और बाइसवें अध्याय में भक्ति सम्पन्न करने के दो प्रकारों का वर्णन है।

त्रयोविंशे—प्रेम-भक्ति-रसेर कथन ।

चतुर्विंशे–'आत्मारामाः'-श्लोकार्थ वर्णन ॥ 260॥

त्रयः-विंशे-तेईसवें अध्याय में; प्रेम-भक्ति-भगवत्प्रेम के; रसेर-रस का; कथन-वर्णन; चतुः-विंशे–चौबीसवें अध्याय में; आत्मारामाः-आत्माराम नामक; श्लोक-अर्थ-श्लोक के अर्थ का; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

तेईसवें अध्याय में दिव्य भक्ति के रसों का वर्णन हुआ है और चौबीसवें अध्याय में महाप्रभु द्वारा आत्माराम श्लोक की व्याख्या दी गई है।

पञ्चविंशे–काशी-वासीरे वैष्णव-करण ।

काशी हैते पुनः नीलाचले आगमन ॥ 261॥

पञ्च-विंशे-पच्चीसवें अध्याय में; काशी-वासीरे-वाराणसी (काशी) के निवासियों का; वैष्णव-करण-वैष्णव बनना; काशी हैते-काशी से; पुनः-फिर; नीलाचले आगमन–जगन्नाथ पुरी (नीलाचल) वापस लौटना।

अनुवाद

पच्चीसवें अध्याय में काशीवासियों के वैष्णव बनने तथा वाराणसी से महाप्रभु के पुनः नीलाचल चले जाने का वर्णन है।

पञ्चविंशति परिच्छेदे एइ कैलें अनुवाद

याहार श्रवणे हय ग्रन्थार्थ-आस्वाद ॥ 262॥

पञ्चविंशति परिच्छेदे-पच्चीसवें अध्याय में; एइ–यह; कैलुँ अनुवाद–मैंने फिर वर्णन किया; याहार श्रवणे-जिसे सुनकर; हय होता है; ग्रन्थ-अर्थ-आस्वाद-ग्रन्थ के विषयों का ज्ञान।

अनुवाद

इस तरह मैंने इन लीलाओं का सार पच्चीसवें अध्याय में दे दिया है। इन्हें सुनकर इस शास्त्र के सम्पूर्ण तात्पर्य को समझा जा सकता है।

सङ्क्षेपे कहिलुँ एइ मध्य-लीलार सार ।

कोटि-ग्रन्थे वर्णन ना याय इहार विस्तार ॥ 263॥

सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; एइ–यह; मध्य-लीलार सार-मध्यलीला का सार; कोटि-ग्रन्थे-करोड़ों ग्रन्थों में; वर्णन-वर्णन; ना याय–सम्भव नहीं है; इहार विस्तार-इसका विस्तार।

अनुवाद

मैंने अब मध्यलीला के सम्पूर्ण विषय का सारांश दे दिया है। इन लीलाओं का विस्तृत वर्णन करोड़ों पुस्तकों में भी नहीं किया जा सकता।

जीव निस्तारिते प्रभु भ्रमिला देशे-देशे ।

आपने आस्वादि' भक्ति करिला प्रकाशे ॥264॥

जीव निस्तारिते-सभी पतित जीवों का उद्धार करने के लिए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः भ्रमिला-भ्रमण किया; देशे-देशे–अनेक प्रदेशों में; आपने–स्वयं; आस्वादि'–आस्वादन करके; भक्ति-भक्ति का; करिला-किया; प्रकाशे-प्राकट्य।

अनुवाद

समस्त पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए महाप्रभु ने देश-प्रदेश में भ्रमण किया। उन्होंने भक्ति के दिव्य आनन्द का स्वयं आस्वादन किया और उसी के साथ-साथ भक्ति मत का सर्वत्र प्रसार किया।

तात्पर्य

देश-भर में भक्ति मत का प्रचार करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने भारत के विभिन्न भागों की स्वयं यात्रा की। उन्होंने स्वयं भी दिव्य कार्यकलापों का आस्वादन किया। उन्होंने अपने व्यक्तिगत आचरण से भक्तों के लिए आदर्श स्थापित किया। अर्थात् सबको भक्ति का प्रसार करना चाहिए। उन्होंने विशेष रूप से अपने भक्तों को शिक्षा दी कि विश्वभर में इस सन्देश के प्रचार के लिए सारे भारतीयों को निर्देश दें, क्योंकि उस समय महाप्रभु विश्व के अन्य भागों की यात्रा नहीं कर सकते थे। उन्होंने दो आदेश दे रखे हैं :

भारत-भूमिते हैल मनुष्य-जन्म यार ।

जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार ॥

“सारे भारतवासियों को श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय को गम्भीरता से लेना चाहिए और भक्ति अंगीकार करके अपने जीवन को सफल बनाना चाहिए। अपना जीवन सफल बनाने के बाद उन्हें समस्त मानव जाति के उपकार हेतु इस सन्देश को सारे विश्व में प्रचारित करना चाहिए।” (चैतन्य-चरितामृत, आदि 9.41) वैष्णव की रुचि सदैव पर-उपकार में रहती है। प्रह्लाद महाराज की भी इसी में रुचि थी। वे केवल अपना उद्धार नहीं चाहते थे, प्रत्युत वे उन समस्त पतितात्माओं का उद्धार करना चाहते थे, जो भक्ति के ज्ञान से रहित हैं। और अपनी बुद्धि का दुरुपयोग भौतिक शरीर के क्षणिक लाभ के लिए करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु यह भी चाहते थे कि उनका सन्देश सारे विश्व में प्रचारित हो।

पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम ।

सर्वत्र प्रचार हैबे मोर नाम ।

“हर नगर तथा हर ग्राम में मेरे नाम का कीर्तन सुनाई पड़ेगा।” (चैतन्य-भागवत, अन्त्य 4.126)

श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए हम सारे विश्व में उनका सन्देश प्रसारित करने का यत्न कर रहे हैं। उनकी कृपा से लोग इस आन्दोलन को गम्भीरतापूर्वक ले रहे हैं। निस्सन्देह, हमारी पुस्तकें पाश्चात्य देशों में, विशेषकर अमरीका तथा यूरोप में बड़ी संख्या में वितरित की जा रही हैं। यहाँ तक कि इन देशों के ईसाई भी इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन के महत्त्व की प्रशंसा कर रहे हैं और मानव समाज के सर्वोच्च लाभ के लिए एक हो जाना चाहते हैं। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों को चाहिए कि इस आन्दोलन को गम्भीरता से लें और इसे विश्व के गाँव-गाँव तथा नगर-नगर में उसी तरह प्रचारित करें, जिस तरह स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु ने किया था।

कृष्ण-तत्त्व, भक्ति-तत्त्व, प्रेम-तत्त्व सार ।

भाव-तत्त्व, रस-तत्त्व, लीला-तत्त्व आर ॥ 265 ॥

कृष्ण-तत्त्व-कृष्ण तत्त्व; भक्ति-तत्त्व-भक्ति का तत्त्व; प्रेम-तत्त्व-भगवत्प्रेम का तत्त्व; सार-सार; भाव-तत्त्व-भाव तत्त्व; रस-तत्त्व-दिव्य रसों का तत्त्व; लीला-तत्त्व-भगवान् की लीलाओं का रहस्य; आर-भी।

अनुवाद

कृष्णभावना का अर्थ है कृष्ण के सत्य को, भक्ति के सत्य को, भगवत्प्रेम के सत्य को, भावात्मक प्रेम के सत्य को, दिव्य रसों के सत्य को तथा भगवान् की लीलाओं के सत्य को समझना।

श्री-भागवत-तत्त्व-रस करिला प्रचारे।

कृष्ण-तुल्य भागवत, जानाइला संसारे॥ 266॥

श्री-भागवत-तत्त्व-रस- श्रीमद्भागवत के तत्त्व तथा दिव्य रस का; करिला प्रचारे-चैतन्य महाप्रभु ने विस्तृत प्रचार किया; कृष्ण-तुल्य-कृष्ण से अभिन्न; भागवत-श्रीमद्भागवत; जानाइला संसारे-समस्त संसार में प्रचार किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने दिव्य सत्यों का तथा श्रीमद्भागवत के रसों का स्वयं प्रचार किया है। श्रीमद्भागवत तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अभिन्न हैं, क्योंकि श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण का शब्द अवतार है।

भक्त लागि' विस्तारिला आपन-वदने।

काहाँ भक्त-मुखे कहाई शुनिला आपने॥ 267॥

भक्त लागि'-अपने भक्तों के लिए; विस्तारिला–विस्तारपूर्वक वर्णन किया; आपन-वदने–स्वयं अपने मुख से; काहाँ-कभी-कभी; भक्त-मुखे-भक्तों के मुख से; कहाइ-बुलवाकर; शुनिला आपने–स्वयं सुना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत के प्रयोजन का प्रचार किया। उन्होंने कभी अपने भक्तों के लाभ के लिए स्वयं उपदेश दिया और कभी अपने किसी भक्त को बोलने के लिए शक्ति प्रदान करके स्वयं सुना।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आदर्श शिक्षक या आचार्य की तरह श्रीमद्भागवत की विस्तृत व्याख्या स्वयं की। कभी-कभी वे अपने भक्तों को भी बोलने के लिए शक्ति प्रदान करते और स्वयं सुना करते। आचार्य को अपने शिष्यों को इसी विधि से शिक्षा देनी चाहिए। उसे न केवल स्वयं भागवत-सम्प्रदाय का वर्णन करना चाहिए, अपितु इस दिव्य विषय पर बोलने के लिए अपने शिष्यों को भी प्रशिक्षित करना चाहिए।

श्री चैतन्य-सम आर कृपालु वदान्य ।

भक्त-वत्सल ना देखि त्रिजगते अन्य ॥ 268॥

श्री-चैतन्य-सम-श्री चैतन्य महाप्रभु के समान; आर-कोई और; कृपालु–दयालु; वदान्य-उदार; भक्त-वत्सल-भक्तों के प्रति स्नेहशील; ना देखि-मैं नहीं देखता; त्रि-जगते–तीनों लोकों में; अन्य-कोई और।

अनुवाद

तीनों लोकों के भीतर सारे विवेकशील व्यक्ति इस प्रमाण को स्वीकार करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु से न तो कोई अधिक कृपालु तथा वदान्य है और न उनके समान अपने भक्तों पर अन्य कोई इतना वत्सल है।

श्रद्धा करि’ एइ लीला शुन, भक्त-गण ।

इहार प्रसादे पाइबा चैतन्य-चरण ॥ 269॥

श्रद्धा करि'–श्रद्धा रखकर; एइ लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की ये लीलाएँ; शुन-सुनो; भक्त-गण-हे भक्तों; इहार प्रसादे इस दिव्य श्रवण से; पाइबा–आप प्राप्त कर लोगे; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

सारे भक्तों को श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को श्रद्धापूर्वक तथा प्रेमपूर्वक सुनना चाहिए। इस तरह भगवत्कृपा से उनके चरणकमलों में शरण प्राप्त हो सकती है।

इहार प्रसादे पाइबा कृष्ण-तत्त्व-सार ।

सर्व-शास्त्र-सिद्धान्तेर इहाँ पाइबा पार ॥ 270 ॥

इहार प्रसादे-श्री चैतन्य महाप्रभु की ये शिक्षाएँ सुनकर; पाइबा-तुम प्राप्त करोगे; कृष्ण-तत्त्व-सार-कृष्ण तत्त्व का सार; सर्व-शास्त्र-सभी प्रामाणिक शास्त्रों के; सिद्धान्तेर-सिद्धान्तों की; इहाँ–यहाँ; पाइबा–प्राप्त करोगे; पार–परम सीमा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को समझने से मनुष्य कृष्ण के विषय में सत्य को समझ सकता है। और कृष्ण को समझने पर वह विविध प्रामाणिक शास्त्रों में वर्णित सारे ज्ञान की सीमा को समझ सकता है।

तात्पर्य

जैसाकि भगवद्गीता (7.3) में श्रीकृष्ण ने कहा है :

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

“हजारों मनुष्यों में से कोई एक मनुष्य पूर्णता के लिए प्रयत्न करता है और जिन लोगों ने पूर्णता प्राप्त कर ली है, उनमें से मुश्किल से कोई एक मुझे तत्त्व से जानता है।”

कृष्ण को समझ पाना बहुत कठिन है, किन्तु यदि कोई श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्ति सम्प्रदाय के माध्यम से श्रीमद्भागवत को समझने का प्रयास करता है, तो वह निस्सन्देह सहज ही कृष्ण को समझ सकता है। यदि कोई किसी तरह से कृष्ण को समझ लेता है, तो उसका जीवन सार्थक हो जाता है। पुनः, जैसाकि भगवद्गीता (4.9) में कृष्ण ने कहा है :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

“जो मेरे प्राकट्य तथा कर्मों की दिव्य प्रकृति को जानता है, वह शरीर का परित्याग करने के बाद पुनः इस भौतिक जगत् में जन्म नहीं लेता, अपितु हे अर्जुन, वह मेरे सनातन धाम को प्राप्त करता है।”

कृष्ण-लीला अमृत-सार, तार शत शत धार,

दश-दिके वहे याहा हैते ।

से चैतन्य-लीला हय, सरोवर अक्षय,

मनो-हंस चराह’ ताहाते ॥ 271॥

कृष्ण-लीला अमृत-सार–भगवान् कृष्ण की लीलाएँ नित्य आनन्द का सार हैं; तार शत शत धार–इस नित्य आनन्द की धारा सैंकड़ो प्रवाहों में; दश-दिके-दसों दिशाओं में; वहे-बहती हैं; याहा हैते–जिससे; से-वे; चैतन्य-लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; हय-हैं; सरोवर अक्षय-एक दिव्य नित्य सरोवर; मनः-हंस-मेरे हंस रूपी मन; चराह’-कृपया विचरण करें; ताहाते—उस सरोवर में।

अनुवाद

कृष्ण की लीलाएँ समस्त अमृत का सार हैं और वह अमृत सैकड़ों धाराओं में सभी दिशाओं में बहता है। श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ सनातन सरोवर हैं। मनुष्य को चाहिए कि इस दिव्य सरोवर में अपने मनरूपी हंस को तैरने दे।

तात्पर्य

आध्यात्मिक ज्ञान का सार श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं में पाया जाता है और वे भगवान् कृष्ण की लीलाओं से अभिन्न हैं। यही ज्ञान का सार है। जिस ज्ञान में श्री चैतन्य महाप्रभु तथा कृष्ण का ज्ञान सम्मिलित नहीं होता, वह व्यर्थ है। श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से भगवान् कृष्ण की लीलाओं का अमृत लाखों नदियों के रूप में विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित हो रहा है। किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ कृष्ण-लीलाओं से भिन्न हैं। कहा गया है- श्रीकृष्णचैतन्य, राधाकृष्ण नहे अन्य। "चैतन्य महाप्रभु राधा और कृष्ण के सम्मिश्रण रूप हैं।" इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को समझे बिना कोई व्यक्ति राधा-कृष्ण को नहीं समझ सकता। इसीलिए श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने गाया है— रूपरघुनाथपदे हैबे आकुति /कबे हाम बुझब से युगल पिरीति–"वह समय कब आयेगा, जब मैं छः गोस्वामियों द्वारा छोड़े गये ग्रन्थों का अध्ययन करने के लिए आकुल होऊँगा? तब मैं राधा तथा कृष्ण की माधुर्य लीलाओं को समझने के लिए सक्षम हो सकूँगा।" चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी को स्वयं शक्ति प्रदान की थी। उन्हीं का अनुसरण करते हुए अन्य छः गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके सन्देश को समझ सके। मनुष्य को परम्परा पद्धति में गोस्वामियों से श्रीकृष्ण चैतन्य तथा श्रीकृष्ण के विषय में समझना चाहिए। यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन गोस्वामियों के चरणचिह्नों पर चलने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं-एइ छय गोसाञि याँ, मुइ ताँर दास–"मैं छहों गोस्वामियों का दास हूँ।" कृष्णभावना का दर्शन है भगवान् के दास के दास का भी दास बनना। जो कोई भी कृष्ण-कथा के

जटिल विषय को समझना चाहता है, उसे गुरु-शिष्य परम्परा स्वीकार करनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति किसी भी प्रकार से कृष्ण को समझ लेता है, तो उसका जीवन सफल हो जाता है। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन। एक पूर्ण भक्त कृष्ण को गुरु-शिष्य परम्परा से समझ सकता है और इस तरह भगवधाम में उसका प्रवेश निश्चित रूप से सम्भव हो जाता है। जब कोई कृष्ण को समझ लेता है, तो फिर उसके वैकुण्ठ लोक जाने में कोई कठिनाई नहीं होती।

भक्त-गण, शुन मोर दैन्य-वचन

तोमा-सबार पद-धूलि, अङ्गे विभूषण करि', ।

किछु मुनि करों निवेदन ॥ 272॥

भक्त-गण-हे भक्तों; शुन-कृपया सुनो; मोर-मेरे; दैन्य-वचन-विनम्र वचन; तोमा-सबार-आप सभी के; पद-धूलि-चरणों की धूल; अङ्गे-अपनी देह पर; विभूषण करि'-आभूषण की तरह लगाकर; किछु-कुछ; मुञि-मैं; करों निवेदन निवेदन करता हूँ।

अनुवाद

हे समस्त भक्तों, मैं अत्यन्त विनयपूर्वक आपके चरणकमलों पर अपने आपको अर्पित करता हूँ और आपके चरणों की धूल को अपने शरीर पर आभूषण के समान धारण करता हूँ। हे भक्तों, कृपा करके मेरी एक बात और सुनो।

कृष्ण-भक्ति-सिद्धान्त-गण, याते प्रफुल्ल पद्म-वन,

तार मधु करि' आस्वादन ।

प्रेम-रस-कुमुद-वने, प्रफुल्लित रात्रि-दिने,

ताते चराओ मनो-भृङ्ग-गण ॥ 273 ॥

कृष्ण-भक्ति-सिद्धान्त-गण-कृष्ण भक्ति के सिद्धान्त; याते-जिसके द्वारा; प्रफुल्ल खिले हुए; पद्म-वन-कमल पुष्पों के वन; तार मधु-उनसे संचित शहद; करि आस्वादन–आस्वादन करके; प्रेम-रस-कृष्ण-प्रेम के रस का; कुमुद-वने-कुमुद फूल के वन में; प्रफुल्लित-खिले हुए; रात्रि-दिने–दिन रात; ताते-उस वन में; चराओ-विचरण कराओ; मनः-भृङ्ग-गण-अपने मन रूपी भौंरों को।

अनुवाद

कृष्ण-भक्ति कमल के फूलों के प्रफुल्लित जंगल के समान है, जिसमें प्रचुर मधु है। मैं हर एक से इस मधु को चखने की प्रार्थना करता हूँ। यदि सारे ज्ञानी अपने मन रूपी भौंरों को इस कमल के जंगल में ले आयें और हर्षित होकर दिन-रात कृष्ण के प्रेम का आनन्द लूटें, तो उनका ज्ञान पूरी तरह दिव्य रूप से तुष्ट हो जायेगा।

नाना-भावेर भक्त-जन, हंस-चक्रवाक-गण,

याते सबे' करेन विहार।

कृष्ण-केलि सुमृणाल, याहा पाई सर्व-काल,

भक्त-हंस करये आहार ॥274॥

नाना-भावेर भक्त-जन-कृष्ण के साथ भिन्न भिन्न प्रेम भावों से सम्बन्ध का आस्वादन करने वाले भक्त; हंस-चक्रवाक-गण-हंसों तथा चक्रवाक पक्षियों के समान; याते-उस स्थान पर; सबे-सब; करेन विहार-आनन्द भोगते हैं; कृष्ण-केलि-कृष्ण की लीलाओं की; सु-मृणाल-मधुर कलियाँ; याहा पाइ–जहाँ मिलती हैं; सर्व-काल-नित्य रूप से; भक्त-हंस-हंस जैसे भक्त; करये-करते हैं; आहार-भोजन।

अनुवाद

जिन भक्तों का कृष्ण से सम्बन्ध है, वे हंसों तथा चक्रवाकों (चकोर) के समान हैं, जो कमलों के वन में क्रीड़ा करते हैं। उन कमल की कलियाँ कृष्ण की लीलाएँ हैं और वे हंस-तुल्य भक्तों के लिए

पकवान हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सदैव अपनी दिव्य लीलाओं में लगे रहते हैं, अतः भक्तगण श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों पर चलकर उन कमल-कलियों को सदैव ग्रहण कर सकते हैं, क्योंकि वे कृष्ण की लीलाएँ हैं।

सेइ सरोवरे गिया, हंस-चक्रवाक हञा,

सदा ताहाँ करह विलास।

खण्डिबे सकल दुःख, पाइबा परम सुख,

अनायासे हबे प्रेमोल्लास ॥ 275 ॥

सेइ सरोवरे गिया-उस सरोवर में जाकर जहाँ कमल पुष्पों के गुच्छ विद्यमान हैं; हंस-चक्रवाक हञा–हंस या चक्रवाक पक्षी बनकर; सदा-सदैव; ताहाँ-वहाँ; करह विलास-जीवन का आनन्द लेना चाहिए; खण्डिबे-नष्ट हो जायेंगे; सकल दुःख-समस्त भौतिक दुःख और चिन्ताएँ; पाइबा-तुम्हें मिलेगा; परम सुख-परम सुख; अनायासे-आसानी से; हबे-होगा; प्रेम-उल्लास-भगवत्प्रेम में आनन्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महप्रभु के सारे भक्तों को उस सरोवर में जाना चाहिए और श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण में सदैव रहकर उस दिव्य जल में हंस तथा चक्रवाक पक्षी बनना चाहिए। उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करते रहना चाहिए और सदा जीवन का सुख भोगना चाहिए। इस तरह सारे दुःख कम हो जायेंगे, भक्तों को परम सुख मिलेगा तथा उल्लासपूर्ण भगवत्प्रेम का उदय होगा।

एइ अमृत अनुक्षण, साधु महान्त-मेघ-गण,

विश्वोद्याने करे वरिषण।

ताते फले अमृत-फल, भक्त खाय निरन्तर,

तार शेषे जीये जग-जन ॥ 276 ॥

एइ अमृत-यह अमृत; अनुक्षण-निरन्तर; साधु महान्त-मेघ-गण-बादल के समान शुद्ध भक्त तथा साधुजन; विश्व-उद्याने–संसार के बगीचे में; करे वरिषण-श्री चैतन्य महाप्रभु और भगवान् कृष्ण की इन अमृत तुल्य लीलाओं की वर्षा करते हैं; ताते-उस कारण से; फले-विकसित होता है; अमृत-फल-अमृत का फल; भक्त खाय निरन्तर–तथा भक्त इस फल को निरन्तर खाते हैं; तार शेषे–(इसको) खाने के बाद; जीये जग-जन-समस्त संसार में जीव शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

अनुवाद

जिन भक्तों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण ले रखी है, वे सारे विश्व में अमृतमय भक्ति के वितरण का उत्तरदायित्व लेते हैं। वे उन बादलों के समान हैं, जो इस जगत् में भगवत्प्रेम रूपी फल का पोषण करने वाली भूमि पर जल बरसाते हैं। भक्तगण फल को जी- भरकर खाते हैं और जो कुछ शेष बचता है, वह साधारण लोग ग्रहण करते हैं। इस तरह वे सुखपूर्वक रहते हैं।

चैतन्य-लीला—अमृत-पूर, कृष्ण-लीला—सुकर्पूर,

दुहे मिलि’ हय सुमाधुर्य ।

साधु-गुरु-प्रसादे, ताहा येइ आस्वादे,

सेइ जाने माधुर्य-प्राचुर्य ॥ 277॥

चैतन्य-लीला अमृत-पूर-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अमृत के समान हैं; कृष्ण-लीला सु-कर्पूर-कृष्ण की लीलाएँ कपूर के समान हैं; दुहे मिलि’–दोनों मिलकर; हय-हो जाती हैं; सु-माधुर्य-अत्यन्त मधुर; साधु-गुरु-प्रसादे-साधुओं तथा सद्गुरु की कृपा द्वारा; ताहा–उसका; येइ-जो कोई भी; आस्वादे-आस्वादन करता है; सेइ जाने-वह समझ सकता है; माधुर्य-प्राचुर्य-प्रेममयी सेवा (भक्ति) में मधुरता की प्रचूरता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अमृत से पूर्ण हैं और श्रीकृष्ण की लीलाएँ कपूर के समान हैं। जब इन दोनों को मिला दिया जाता है, तो इनका स्वाद अत्यन्त मधुर हो जाता है। शुद्ध भक्तों की कृपा से जो भी उनका आस्वादन करता है, वह उस मधुरता की गहराई को समझ सकता है।

ये लीला-अमृत विने, खाय यदि अन्न-पाने,

तबे भक्तेर दुर्बल जीवन।

यार एक-बिन्दु-पाने, उत्फुल्लित तनु-मने,

हासे, गाय, करये नर्तन॥ 278॥

ये-जो; लीला-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् कृष्ण की लीलाओं के; अमृत विने-अमृत के बिना; खाय यदि अन्न-पाने–यदि सामान्य अन्न खाता है; तबे-तो; भक्तेर-उस भक्त का; दुर्बल जीवन-जीवन कमजोर हो जाता है; यार–जिसका; एक-बिन्दु-पाने-एक बिन्दु पान करके; उत्फुल्लित तनु-मने-मन तथा शरीर आनन्दित हो जाते हैं; हासे-हँसता है; गाय-गाता है; करये नर्तन-नाचता है।

अनुवाद

लोग पर्याप्त अन्न खा-खाकर हृष्ट-पुष्ट बनते हैं, किन्तु जो भक्त केवल सामान्य अन्न खाता है और श्री चैतन्य महाप्रभु तथा कृष्ण की दिव्य लीलाओं का आस्वादन नहीं करता, वह धीरे-धीरे दुर्बल हो जाता है और दिव्य पद से नीचे गिर जाता है। किन्तु यदि कोई कृष्ण की लीलाओं के अमृत की एक बूंद भी पी लेता है, तो उसके शरीर तथा मन प्रफुल्लित हो उठते हैं और वह हँसने, गाने तथा नाचने लगता है।

तात्पर्य

इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन से सम्बन्धित सारे भक्तों को चाहिए कि जिन ग्रन्थों (चैतन्य-चरितामृत, श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता) का अनुवाद हो चुका है, वे उन सारे ग्रन्थों का अध्ययन करें; अन्यथा कुछ समय बाद वे केवल खायेंगे, सोयेंगे और अपने पद से नीचे गिर जायेंगे। इस तरह वे दिव्य आनन्दमय सनातन जीवन प्राप्त करने का सुनहरा अवसर हाथ से खो देंगे।

ए अमृत कर पान, यार सम नाहि आन,

चित्ते करि' सुदृढ़ विश्वास ।

ना पड़' कुतर्क-गर्ते, अमेध्य कर्कश आवर्ते,

याते पड़िले हय सर्व-नाश ॥ 279॥

ए अमृत कर पान-इस अमृत का पान करें; यार सम नाहि आन-इस अमृत के समान कुछ भी नहीं है; चित्ते-मन में; करि' सुदृढ़ विश्वास-इस निष्कर्ष में पूर्ण विश्वास रखकर; ना पड़' कुतर्क गर्ते-कुतर्क के खड्डे में मत गिरो; अमेध्य कर्कश आवर्ते–अस्पर्थ्य कठोर भंवर में; य़ाते-जिसमें; पड़िले-गिरने पर; हय सर्व-नाश-जीवन का उद्देश्य नष्ट हो जाता है।

अनुवाद

पाठकों को इस अद्भुत अमृत का पान करना चाहिए, क्योंकि इसके समान अन्य कुछ नहीं है। उन्हें अपने मनों के भीतर श्रद्धा को दृढ़ बनाये रखकर सावधान रहना चाहिए कि वे झूठे तर्कों या दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों के भंवर-जाल में न गिरें। यदि कोई ऐसी स्थिति में गिर जाता है, तो उसका सर्वनाश हो जाता है।

श्री-चैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैतादि भक्त-वृन्द,

आर व्रत श्रोता भक्त-गण ।

तोमा-सबार श्री-चरण, करि शिरे विभूषण,

याहा हैते अभीष्ट-पूरण ॥ 280॥

श्री-चैतन्य नित्यानन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु; अद्वैत-आदि भक्त-वृन्द-अद्वैत आचार्य आदि भक्तगण; आर-तथा; यत श्रोता भक्त-गण-जो भक्त श्रवण करते हैं; तोमा-सबार श्री-चरण-आप सभी के चरणकमल; करि शिरे विभूषण-मैं अपने सिर पर मुकुट की तरह रखता हूँ; याहा हैते–जिससे; अभीष्ट-पूरण-मेरी सभी इच्छाएँ पूरी हो जायेंगी।

अनुवाद

अन्त में मैं श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत प्रभु तथा अन्य समस्त भक्तों तथा पाठकों से निवेदन करता हूँ कि मैं आप सबके चरणकमलों को अपने सिर पर मुकुट की भाँति धारण करता हूँ। इस तरह मेरा अभीष्ट पूरा हो जायेगा।

श्री-रूप-सनातन-रघुनाथ-जीव-चरण,

शिरे धरि,—यार करों आश ।

कृष्ण-लीलामृतान्वित, चैतन्य-चरितामृत,

कहे किछु दीन कृष्णदास ॥281॥

श्री-रूप-सनातन-श्रील रूप गोस्वामी या सनातन गोस्वामी के; रघुनाथ-जीव-रघुनाथ दास, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी तथा श्रील जीव गोस्वामी के; चरण-चरणकमल; शिरे धरि मस्तक पर रखकर; यार–जिनकी; करों आश–मैं सदैव आशा करता हूँ; कृष्ण-लीला-अमृत-अन्वित-कृष्ण लीला के अमृत से मिश्रित; चैतन्य-चरितामृत-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; कहे-कहने का प्रयास कर रहा हूँ; किछु-कुछ; दीन-अत्यन्त दीन; कृष्णदास-कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी तथा जीव गोस्वामी के चरणों को अपने सिर पर रखकर मैं सदैव उनकी कृपा की इच्छा करता हूँ। इस तरह मैं कृष्णदास श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के अमृत का वर्णन करने का विनम्र प्रयास कर रहा हूँ, जोकि भगवान् कृष्ण की लीलाओं के साथ मिली-जुली हैं।

श्रीमन्मदन-गोपाल-गोविन्द-देव-तुष्टये।

चैतन्यार्पितमस्त्वेतच्चैतन्य-चरितामृतम् ॥ 282॥

श्रीमन्-मदन-गोपाल–श्रीमन् मदनगोपाल नामक विग्रह की; गोविन्द-देव-गोविन्द देव नामक विग्रह की; तुष्टये-सन्तुष्टि के लिए; चैतन्य-अर्पितम्-श्री चैतन्य महाप्रभु को अर्पित; अस्तु-हो; एतत्-यह; चैतन्य-चरितामृतम्-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ।

अनुवाद

श्री मदनगोपाल तथा गोविन्द देव की तुष्टि के लिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि चैतन्य-चरितामृत नामक यह ग्रन्थ श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को अर्पित की जाए।

तदिदमति-रहस्यं गौर-लीलामृतं यत्

खल-समुदय-कोलैर्नादृतं तैरलभ्यम्।

क्षतिरियमिह का मे स्वादितं यत्समन्तात्

सहृदय-सुमनोभिर्मोदमेषां तनोति ॥ 283 ॥

तत्-वह (श्री चैतन्य चरितामृत); इदम्-यह; अति-रहस्यम्-आध्यात्मिक रहस्य से भरपूर; गौर-लीला-अमृतम्-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का अमृत; यत् जिसकी; खल-समुदय-दुष्ट ईर्ष्यालु लोग; कोलैः-सुअर; न-नहीं; आदृतम्-प्रशंसा करते; तैः-उनके द्वारा; अलभ्यम्-अप्राप्य हैं; क्षतिः इयम्

इह का-इसमें क्या हानि है; मे–मेरी; स्वादितम्-आस्वादन किया; यत्-जो; समन्तात् पूर्णतया; सहृदय-सुमनोभिः-जो सुहृद तथा शुद्ध हृदय वाले हैं; मोदम्-आनन्द; एषाम्-उनका; तनोति बढ़ाता है।

अनुवाद

यह श्रीचैतन्य-चरितामृत, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ है, अत्यन्त रहस्यमय ग्रन्थ है। यह समस्त भक्तों का प्राणधन है। जो लोग इस ग्रन्थ का आस्वादन करने के अयोग्य हैं, जो शूकरों तथा कुकरों की तरह ईर्ष्यालु हैं, वे निश्चित रूप से इसकी प्रशंसा नहीं करेंगे। किन्तु इससे मेरे प्रयास को क्षति नहीं पहुँचेगी। श्री चैतन्य महाप्रभु की ये लीलाएँ अवश्य ही उन सारे साधु पुरुषों को अच्छी लगेंगी जिनके हृदय स्वच्छ हैं। वे अवश्य ही इसका आनन्द लूटेंगे। हम चाहते हैं कि इससे उनका आनन्द अधिकाधिक बढ़े।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के पच्चीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य समाप्त हुआ जिसमें इसका वर्णन हुआ है कि वाराणसीवासी किस तरह वैष्णव बने ।

टिप्पणी

श्री चैतन्य-चरितामृत के लेखक, श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने आपने सभी शत्रुओं की भर्सना ईर्ष्यालु शूकर-कूकरों से तुलना करके की है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन जो समस्त विश्व में प्रसार कर रहा है, सभी निष्कपट लोगों द्वारा सराहा जा रहा है, यद्यपि उन्होंने पहले कभी भी श्री चैतन्य महाप्रभु एवं कृष्ण-लीलाओं के बारे में नहीं सुना था। अब उच्च पुजारी-वर्ग भी इस आन्दोलन को सराह रहा है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह आन्दोलन बहुत अच्छा है और वे इससे कुछ न कुछ

सीख सकते हैं। फिर भी भारत में कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो यह कहते हैं कि वे इस सम्प्रदाय के तो हैं, किन्तु वास्तव में, आचार्य से ईर्ष्या करते हैं। उन्होंने हमारे कार्यकलापों की अनेक प्रकार से दबाने का प्रयास किया है, किन्तु जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हम कृष्णदास कविराज गोस्वामी के पदचिह्नों का अनुसरण करते हैं और उन लोगों को ईर्ष्यालु शूकर-कूकर ही समझते हैं। हम भगवान् कृष्ण तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को अपनी योग्यता के अनुसार सर्वोत्तम रूप से प्रदर्शित करना चाहते हैं, जिससे वे लोग जो वास्तव में सत्यनिष्ठ हैं, अपने हृदयों को निर्मल कर सकें। हम आशा करते हैं कि वे इस साहित्य का आस्वादन करें हैं और हमें अपना आशीर्वाद प्रदान करें। ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्णदास कविराज गोस्वामी जैसे महान् व्यक्ति को भी कुछ ईर्ष्यालु अवरोधों का सामना करना पड़ा था। तो फिर इस ब्रह्माण्ड के हमारे जैसे नगण्य जीवों का क्या कहना? हम तो अपनी सर्वोच्च योग्यता के अनुसार, अपने आध्यात्मिक गुरु के आदेशों का पालन मात्र कर रहे हैं।

मध्यलीला समाप्त

विषय-सूची

भूमिका

अध्याय एक

महाप्रभु से श्रील रूप गोस्वामी की द्वितीय भेट

अध्याय दो

छोटे हरिदास को दण्ड

अध्याय तीन

श्रील हरिदास ठाकुर की महिमा

आध्याय चार

जगन्नाथ पुरी में महाप्रभु से सनातन गोस्वामी की भेंट

अध्याय पाँच

प्रद्युम्न मिश्र का रामानन्द राय से उपदेश लेना

अध्याय छह

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रघुनाथ दास गोस्वामी की भेट

अध्याय सात

श्री चैतन्य महाप्रभु एवं वल्लभ भट्ट की भेंट

अध्याय आठ

रामचन्द्र पुरी द्वारा महाप्रभु की आलोचना

भूमिका

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा उपदेशों का मुख्य ग्रन्थ है। श्री चैतन्य महाप्रभु उस महान् सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, जो भारत में 500 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जिसने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरी धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधाराओं को न केवल भारत में अपितु समग्र विश्व में प्रभावित किया है। उन श्रीकृष्ण चैतन्य के प्रभाव को प्रसारित करने में कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भतिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के प्रयासों का मुख्य योगदान रहा है, जो इस ग्रन्थ के अनुवादक तथा भाष्यकार होने के साथ-साथ अन्तराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) के संस्थापक-आचार्य भी हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु को अतीव ऐतिहासिक महत्व का पुरुष माना जाता है। किन्तु ऐतिहासिक विश्लेषण की हमारी पारम्परिक विधि, जो व्यक्ति को उनके समय की उपज के रूप में देखती है, यहाँ पर विफल हो जाती है, क्योंकि श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसे पुरुष हैं, जो ऐतिहासिक व्यवस्था के सीमित क्षेत्र से परे हैं।

जिस समय पश्चिम में मानव भौतिक ब्रह्माण्ड की संरचना का अध्ययन करने तथा नवीन सागरों और महाद्वीपों की खोज में समुद्री यात्राएँ करने में अपनी अनुसन्धानात्मक शक्ति लगा रहा था, तभी पूर्व में श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसी क्रान्ति का प्रवर्तन एवं कुशल नेतृत्व कर रहे थे, जो मनुष्य के आध्यात्मिक स्वभाव के सर्वोच्च विज्ञान सम्मत ज्ञान की दिशा में निर्दिष्ट था।

श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवनचरित के मुख्य ऐतिहासिक स्रोत मुरारि गुप्त तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा लिखे गये कड़चा (दैनन्दिनियाँ) हैं। मुरारि गुप्त एक वैद्य तथा श्रीकृष्ण चैतन्य के अन्तरंग पार्षद थे, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास ग्रहण करने तक के प्रारम्भिक चौबीस वर्षों के विषय में विस्तृत टिप्पणियाँ लिखीं। श्री चैतन्य महाप्रभु के अड़तालीस वर्षों के जीवन की शेष घटनाएँ श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्य अन्तरंग पार्षद स्वरूप दामोदर गोस्वामी के कड़चा में अंकित हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृत के तीन खण्ड हैं, जिन्हें लीला कहा जाता है। ये हैंआदि लीला, मध्य लीला तथा अन्त्य लीला/मुरारि गुप्त का कडुचा ही आदि लीला का आधार है और स्वरूप दामोदर का कड़चा मध्य तथा अन्त्य लीलाओं के लिए विस्तृत विवरण प्रदान करता है।

आदिलीला के सत्रह अध्यायों में से प्रथम बारह अध्याय सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रस्तावना स्वरूप हैं। वैदिक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा कृष्णदास कविराज यह स्थापित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु कलियुग (जो पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जो भौतिकता, दम्भ तथा कलह का प्रतीक है) के लिए कृष्ण के अवतार हैं। लेखक यह भी प्रमाणित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण से अभिन्न हैं और अधम युग के पतितात्माओं को महामन्त्र के संकीर्तन का प्रचार करके शुद्ध भगवत्प्रेम उदारतापूर्ण वितरित करने के लिए अवतरित होते हैं। यह संकीर्तन महामन्त्र का बृहद् सार्वजनिक कीर्तन है। इसके उपरान्त कृष्णदास कविराज ने इस ग्रन्थ के बारहवें अध्याय में इस जगत् में श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का गुह्य प्रयोजन, उनके सह-अवतारों तथा प्रमुख भक्तों का वर्णन किया है और उनकी शिक्षाओं को सार रूप में प्रस्तुत की हैं। आदि लीला के शेष अध्यायों (13 से 17 तक) में लेखक ने चैतन्य महाप्रभु के दिव्य जन्म तथा संन्यास ग्रहण करने तक के जीवन का संक्षिप्त विवरण दिया है। इसमें उनके बचपन के चमत्कारों, अध्ययन, विवाह तथा प्रारम्भिक दार्शनिक शास्त्रार्थों के साथ-साथ उनके व्यापक संकीर्तन-आन्दोलन के संगठन तथा मुस्लिम सरकार द्वारा दमन के विरुद्ध उनके कानून अवज्ञा आन्दोलन का वर्णन है।

तीनों लीलाओं में सबसे लम्बी मध्यलीला की विषय वस्तु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा एक संन्यासी, शिक्षक, दार्शनिक तथा गुरु एवं योगी के रूप में सारे भारत की विस्तृत एवं घटनापूर्ण यात्राओं का विशद् वर्णन है। छह वर्षों की इस अवधि में श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्रमुख शिष्यों को शिक्षाएँ देते हैं। वे अपने समकालीन सुविख्यात दार्शनिकों तथा धर्मज्ञों से, जिनमें शंकराचार्य के अनुयायी, बौद्ध तथा मुसलमान सम्मिलित हैं, शास्त्रार्थ करते हैं और उन्हें तथा उनके शिष्य तथा अनुयायी वर्गों को अपने दल में सम्मिलित करते हैं। इस खण्ड में उड़ीसा में होने वाले विशाल जगन्नाथ रथयात्रा उत्सव के अवसर पर चैतन्य महाप्रभु की चमत्कार-पूर्ण लीलाओं का विस्तृत विवरण सम्मिलित है।

अन्त्यलीला में श्री चैतन्य की प्रकट उपस्थिति के अन्तिम अठारह वर्षों का विवरण है, जिसे उन्होंने जगन्नाथ पुरी के सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर के निकट लगभग एकान्त में बिताये। इन अन्तिम वर्षों में श्रीकृष्ण चैतन्य भावसमाधि में गहरे उतरते गये, जो समस्त पूर्वी अथवा पाश्चात्य धार्मिक तथा साहित्यिक इतिहास में अद्वितीय है। उनके नित्य संगी स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा दिये गये प्रत्यक्षदर्शी विवरण, जिनसे श्री चैतन्य की शाश्वत तथा नित्य वर्धमान धार्मिक परमानन्द की अवस्था प्रकट होती है, आधुनिक मनोविज्ञानियों तथा प्रत्यक्षवादियों के धार्मिक अनुभवों की अनुसन्धानात्मक तथा विवरणात्मक क्षमताओं को स्पष्ट रूप से चुनौती देने वाले हैं।

इस महान् ग्रन्थ के रचयिता कृष्णदास कविराज गोस्वामी का जन्म 1507 ई. में हुआ था। वे चैतन्य महाप्रभु के विश्वस्त अनुयायी रघुनाथ दास गोस्वामी के शिष्य थे। रघुनाथ दास विख्यात वैरागी सन्त थे, जिन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा बतलाई गई चैतन्य महाप्रभु की समस्त लीलाओं को सुना था और स्मरण कर रखा था। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के निधन के बाद रघुनाथ दास ने अपने इन आराध्यों की विरह वेदना सहन न कर सकने के कारण गोवर्धन पर्वत से कूदकर आत्म-हत्या करने के उद्देश्य से वृन्दावन की यात्रा की। किन्तु वृन्दावन में उनकी भेंट चैतन्य महाप्रभु के दो सर्वाधिक अन्तरंग शिष्यों-रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से हुई, जिन्होंने उनसे आत्महत्या की योजना का परित्याग करने तथा चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम जीवन की प्रेरक घटनाओं को प्रकट करने के लिए प्रेरित किया। उस समय कृष्णदास कविराज गोस्वामी भी वृन्दावन में रह रहे थे, जिन्हें रघुनाथ दास गोस्वामी ने श्री चैतन्य के दिव्य जीवन का पूर्ण विवरण प्रदान किया।

उस समय तक श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवन पर अनेक समसामयिक विद्वान तथा भक्तों द्वारा कई जीवन-चरित विषयक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। इनमें मुरारि गुप्त कृत श्रीचैतन्य–चरित, लोचन दास ठाकुर कृत चैतन्य–मंगल तथा वृन्दावन दास कृत चैतन्य-भागवत सम्मिलित हैं, जिनमें से चैतन्य भागवत के लेखक वृन्दावन दास ठाकुर को उस समय श्री चैतन्य के जीवन के विशेषज्ञ माने जाते थे। जब वृन्दावन दास इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना कर रहे थे, तब उन्होंने इस भय से श्री चैतन्य के जीवन की अनेक घटनाओं को, विशेषतया परवर्ती घटनाओं को सम्मिलित नहीं किया कि इससे ग्रन्थ का आकार बढ़ जायेगा। इस अन्तिम लीलाओं को सुनने के इच्छुक वृन्दावन के भक्तों ने कृष्णदास कविराज गोस्वामी से, जिन्हें वे महान् सन्त और विद्वान के रूप में सम्मान देते थे, यह अनुरोध किया कि इन घटनाओं का विस्तार से वर्णन करने वाले ग्रन्थ की रचना करें। इस अनुरोध पर तथा वृन्दावन के मदन मोहन अर्चाविग्रह की अनुमति तथा आशीर्वाद से उन्होंने श्रीचैतन्य चरितामृत की रचना प्रारम्भ की, जिसे चैतन्य महाप्रभु के गहन दर्शन तथा शिक्षाओं के सम्यक्र प्रस्तुतीकरण, एवं जीवन-चरित विषयक श्रेष्ठता के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा गूढ़ शिक्षा के सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में आज सारे विश्व में मान्यता दी जा रही है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने वृद्धावस्था में इस ग्रंथ पर कार्य प्रारम्भ किया, जब उनका स्वास्थ्य गिर चुका था। जैसाकि उन्होंने स्वयं लिखा है, "अब मैं अति वृद्ध एवं अक्षमता से विक्षुब्ध हूँ। लिखते समय मेरे हाथ काँपते हैं, मुझे ठीक से किसी बात का स्मरण नहीं हो पाता, न ही मैं ठीक से देख या सुन सकता हूँ फिर भी मैं लिखता हूँ जो कि

अपने आप में एक महान् आश्चर्य है।" तो भी उन्होंने इस अक्षम अवस्था में मध्यकालीन भारत के इस महान्तम साहित्यिक मणि को पूरा किया, जो साहित्यिक इतिहास के आश्चर्यों में एक है।

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, इसका औग्रेजी अनुवाद कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा सम्पन्न किया गया, जो समग्र विश्व में भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा के सर्वाधिक विख्यात शिक्षक हैं। श्रील प्रभुपाद का भाष्य दो बँगला भाष्यों पर आधारित है-एक तो उनके गुरु, महान् वैदिक विद्वान, उपदेशक और संत श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, जिन्होंने भविष्यवाणी की थी कि, "एक समय ऐसा आयेगा, जब श्रीचैतन्य चरितामृत पढ़ने के लिए विश्वभर के लोग बँगला सीखेंगे" और दूसरा भाष्य श्रील भतिसिद्धान्त के पिता भक्तिविनोद ठाकुर का जिन्होंने आधुनिक युग में श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के प्रचार में अग्रदूत का काम किया।

श्रील प्रभुपाद स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा में आते हैं और वे पहले विद्वान हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य के अनुयायियों के प्रमुख ग्रन्थों का आँग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। उनकी बँगला तथा संस्कृत में विद्वता और श्रीकृष्ण चैतन्य के उपदेशों से उनका अन्तरंग परिचय ऐसा उपयुक्त मेल है, जो उन्हें इस महत्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ को अंग्रेजी भाषी संसार के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए सर्वाधिक योग्य बनाता है। वे जिस सहजता तथा स्पष्टता से से पूर्णतया अपरिचित पाठक को भी इन गहन तथा स्मरणीय ग्रन्थ को समझने तथा उसकी प्रशंसा करने के लिए समर्थ बनाता है।

तात्पर्य समेत सम्पूर्ण मूल पाठ को नौ सचित्र खण्डों में भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो समकालीन मनुष्य के बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रमुख महत्वपूर्ण योगदान का प्रतिनिधित्व करता है।

श्रील प्रभुपाद के द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत का हिन्दी अनुवाद उनके शताब्दी उत्सव के अवसर पर प्रकाशित किया जा रहा है, जो भारत के भक्तों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

अध्याय एक

महाप्रभु से श्रील रूप गोस्वामी की द्वितीय भेट

प्रथम अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह भाष्य में इस प्रकार से दिया है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन से जगन्नाथ पुरी लौट आये, तो यह शुभ समाचार पाकर भारत के अन्य भागों से उनके सारे भक्त पुरुषोत्तम क्षेत्र अर्थात् जगन्नाथ पुरी आये। शिवानन्द सेन अपने साथ एक कुत्ता लाये थे और उसके लिए नदी को पार करने का शुल्क भी अदा किया था। किन्तु एक रात को उस कुत्ते को भोजन नहीं मिला और इसलिए वह सीधे जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु के पास पहुँच गया। अगले दिन जब शिवानन्द अपनी टोली के साथ जगन्नाथ पुरी पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि वह कुत्ता श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दी गई नारियल की गरी खा रहा है। इस घटना के बाद कुत्ते को मुक्ति प्राप्त हुई और वह भगवद्धाम चला गया।

इस बीच श्रील रूप गोस्वामी वृन्दावन से लौटकर बंगाल पहुँचे। यद्यपि वे बंगाली भक्तों के साथ साथ नहीं आ पाये, किन्तु कुछ समय बाद वे भी जगन्नाथ पुरी आये, जहाँ वे हरिदास ठाकुर के साथ ठहरे। श्रील रूप गोस्वामी ने एक महत्वपूर्ण श्लोक की रचना की, जो प्रिय: सोऽयम्। शब्दों से शुरू होता है, जिसका श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यधिक आस्वादन किया। एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु, रामानन्द राय, सार्वभौम भट्टाचार्य और अन्य हरिदास ठाकुर के स्थान पर गये और रूप गोस्वामी के ग्रन्थ ललित माधव और विदग्ध माधव के कुछ श्लोकों को सुना। इन दोनों पुस्तकों की हस्तलिपियों को देखने के बाद रामानन्द राय ने उसे स्वीकृती दी और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। चातुर्मास्य के बाद बंगाल से आये सारे भक्त अपने अपने घर लौट गये। किन्तु श्रील रूप गोस्वामी कुछ काल तक जगन्नाथ पुरी में ही रहे।

पङ्गुं लङ्घयते शैलं मूकमावर्तयेच्छ्रुतिम् ।

यत्कृपा तमहं वन्दे कृष्ण-चैतन्यमीश्वरम् ॥ 1 ॥

पङ्गम्-लँगड़े व्यक्ति को; लङ्कयते-पार करवा सकती है; शैलम्-पर्वत, मूकम्गुँगे को; आवर्तयेत्—उच्चारण करवा सकती है; श्रुतिम्-वैदिक साहित्य की; यत्-कृपाजिनकी कृपा; तम्-उनको, अहम्-मैं; वन्दे-सादर नमस्कार करता हूँ, कृष्ण-चैतन्यम्-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को जो साक्षात् कृष्ण हैं; ईश्वरम्–भगवान्।

अनुवाद

मैं श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनकी कृपा से लँगड़ा व्यक्ति भी पर्वत को लाँघ सकता है और गूँगा व्यक्ति वैदिक साहित्य का उच्चारण कर सकता है।

दुर्गमे पथि मेऽन्धस्य स्खलत्पाद-गतेर्मुहुः ।

स्व-कृपा-यष्टि-दानेन सन्तः सन्त्ववलम्बनम् ॥ 2॥

दुर्गमे-अत्यन्त कठिन; पथि-मार्ग में, मे-मेरे; अन्धस्य-अन्धे के; स्खलत् फिसलते हुए; पाद-पैर; गते:-चाल वाले; मुहुः-बारम्बार; स्व-कृपा-अपनी कृपा; यष्टि-लाठी, दानेन-दान देकर; सन्त:-वे सन्तजन, सन्तु-बन जाएँ, अवलम्बनम्-मेरा सहारा।

अनुवाद

मेरा मार्ग अत्यन्त कठिन है। मैं अन्धा हूँ और मेरे पैर बारम्बार फिसल रहे हैं। इसलिए सन्तजन कृपया मुझे अपनी कृपारूपी लाठी का सहारा दें।

श्री-रूप, सनातन भट्ट–रघुनाथ ।

श्री-जीव, गोपाल-भट्ट, दास-रघुनाथ ॥ 3॥

एइ छय गुरुर करों चरण वन्दन ।

याहा हैते विध्न-नाश, अभीष्ट-पूरण ॥ 4॥

शब्दार्थ

श्री-रूप–श्री रूप; सनातन-सनातन; भट्ट–रघुनाथ—रघुनाथ भट्टः श्री–जीव-श्री जीव; गोपाल-भट्ट-श्री गोपाल भट्ट; दास-रघुनाथ-रघुनाथ दास; एइ छय-इन छः गुरुर-गुरुओं के; करों-मैं करता हूँ, चरण वन्दन-चरणों की वन्दना; याहा हैते-जिसके द्वारा; विध्न-नाश-बाधाएँ नष्ट हो जायें, अभीष्ट-पूरण-मनोभिलाषा पूर्ण हो सके।

अनुवाद

मै श्री रूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ, श्री जीव, गोपाल भट्ट तथा दास रघुनाथ-इन छह गोस्वामियों के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जिससे मेरे इस ग्रन्थ के लेखन की सारी बाधाएँ नष्ट हो जाएँ और मेरी वास्तविक इच्छा पूरी हो सके।

तात्पर्य

यदि कोई व्यक्ति पूरे संसार को लाभ पहुँचाना चाहता है, तो निश्चय ही उसे कूकर-सूकर जैसे व्यक्ति मिलेंगे, जो अनेकानेक विघ्न उत्पन्न करेंगे। यह स्वाभाविक है। किन्तु यदि कोई भक्त छह गोस्वामियों के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, तो ये दयालु गोस्वामी निश्चय ही भगवान् के सेवक को संरक्षण प्रदान करेंगे। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सारे संसार में कृष्णभावनामृत का प्रचार करने वालों के मार्ग में विघ्न डाले जाते हैं। फिर भी, यदि हम छह गोस्वामियों के चरणकमलों में निष्ठावान रहें और उनकी कृपा की प्रार्थना करें, तो सारे विघ्न नष्ट हो जायेंगे और भगवान् की सेवा करने की दिव्य भक्तिमयी आकांक्षा पूरी हो जायेगी।

जयतां सुरतौ पङ्गोर्मम मन्द-मतेर्गती ।

मत्सर्वस्व-पदाम्भोजौ राधा-मदन-मोहनौ ॥5॥

शब्दार्थ

जयताम्-जय हो; सु-रतौ-परम करुणामय अथवा माधुर्य प्रेम में नियुक्त; पङ्गोः– लँगड़े के; मम-मेरे; मन्द-मते: - मूर्ख के; गती-आश्रय हैं; मत्-मेरे; सर्व-स्व-सर्वस्व; पद-अम्भोजौ-जिनके चरणकमल, राधा-मदन-मोहनौ-राधारानी तथा मदनमोहन के।

अनुवाद

परम कृपालु राधा तथा मदनमोहन की जय हो। मैं लैंगड़ा तथा मूर्ख हूँ, फिर भी वे मेरे निर्देशक हैं और उनके चरणकमल मेरे लिए सब कुछ हैं।

दीव्यद-वृन्दारण्य-कल्प-दुमाध:

श्रीमद्-रत्नागार-सिंहासन-स्थौ ।

श्रीमद्-राधा-श्रील-गोविन्द-देवौ

प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि ॥ 6 ॥

शब्दार्थ

दीव्यत्-प्रकाशमान; वृन्दा-अरण्य-वृन्दावन के जंगल में; कल्प-दुम-कल्पवृक्ष; अधः-के नीचे; श्रीमत्-परम सुन्दर, रत्न-आगार-रत्नों के मन्दिर में, सिंह-आसनस्थौ-एक आसन पर बैठकर; श्रीमत्-अत्यन्त सुन्दरी; राधा-श्रीमती राधारानी; श्रीलगोविन्द-देवी-तथा श्री गोविन्द देव; प्रेष्ठ-आलीभिः-अत्यन्त अन्तरंग पार्षदों द्वारा; सेव्यमानी-सेवित हैं; स्मरामि-मैं स्मरण करता हूँ।

अनुवाद

वृन्दावन में रत्नों के मन्दिर में, कल्पवृक्ष के नीचे, श्री श्री राधासिंहासन पर आसीन हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।

श्रीमान् रास-रसारम्भी वंशीवट-तट-स्थितः ।

कर्षन् वेणु-स्वनैर्गोपीर्गोपी-नाथः श्रियेऽस्तु नः ॥7॥

शब्दार्थ

श्रीमान्—सर्वाकर्षक; रास—रासलीला के; रस-दिव्य रस के; आरम्भी—प्रवर्तक; वंशी-वट-वंशीवट के; तट-तट पर; स्थितः-खड़े हुए, कर्षन्-आकृष्ट करनेवाले, वेणु-वंशी; स्वनैः-की ध्वनि से; गोपीः-गोप कन्याओं को, गोपी-नाथः-श्री गोपीनाथ, श्रिये-मंगल, अस्तु-करें; नः-हमारा।

अनुवाद

रासनृत्य के दिव्य रस के प्रवर्तक श्री श्रील गोपीनाथ वंशीवष्ट के किनारे खड़े हैं और अपनी सुविख्यात वंशी की ध्वनि से गोपियों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। वे सभी हमारा मंगल करें।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥8॥

शब्दार्थ

जय जय श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो; जय नित्यानन्द-श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत प्रभु की जय हो; जय गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

मध्य-लीला सङ्गाक्षेपेते करिलें वर्णन ।

अन्त्य-लीला-वर्णन किछु शुन, भक्त-गण ॥9॥

शब्दार्थ

मध्य-लीला-मध्य लीला; सङ्क्षेपेते-संक्षेप में; करिलँ वर्णन-मॅने वर्णन किया है; अन्त्य-लीला-अन्तिम लीलाओं का; वर्णन-वर्णन; किछु-कुछ; शुन-सुनिए; भक्तगण-हे भक्तों।

अनुवाद

मैंने मध्य-लीला के अन्तर्गत श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का संक्षेप में वर्णन किया है। अब मैं उनकी अन्तिम लीलाओं के विषय में वर्णन करने का प्रयास करूँगा, जो अन्त्य लीला कहलाती हैं।

मध्य-लीला-मध्ये अन्त्य-लीला-सूत्र-गण ।

पूर्व-ग्रन्थे सङ्क्षेपेते करियाछि वर्णन ॥ 10 ॥

शब्दार्थ

मध्य-लीला-मध्ये-मध्यलीला के अन्तर्गत; अन्त्य-लीला-सूत्र-गण-अन्त्य लीला की रूपरेखा; पूर्व-ग्रन्थे-पूर्व अध्यायों में, सङ्क्षेपेते-संक्षेप में, करियाछि वर्णन-मैंने वर्णन किया है।

अनुवाद

मैंने मध्य-लीला के अन्तर्गत अन्त्य-लीला का सूत्रों के रूप में संक्षिप्त वर्णन किया है।

आमि जरा-ग्रस्त, निकटे जानिया मरण ।

अन्त्य कोनो कोनो लीला करियाछि वर्णन ॥ 11 ॥

शब्दार्थ

आमि जरा-ग्रस्त-मैं वृद्धावस्था के कारण प्राय: अक्षम हूँ, निकटे-अत्यन्त निकट, जानिया–जानता हूँ, मरण—मृत्यु कीसम्भावना; अन्त्य–अन्तिम; कोनो कोनो-कुछ; लीला-लीलाओं का; करियाछि वर्णन-मैंने वर्णन कर दिया है।

अनुवाद

अब मैं वृद्धावस्था के कारण प्राय: अक्षम हूँ और जानता हूँकि किसी भी क्षण मेरी मृत्यु हो सकती है। इसलिए मैं अन्त्य-लीला के कुछ अंशों का पहले ही वर्णन कर चुका हूँ।

तात्पर्य

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी के पदचिह्नों पर चलते हुए मैं भी श्रीमद्/वत का जितनी जल्दी हो सके अनुवाद करने का प्रयास कर रहा हूँ। किन्तु अपने आपको वृद्ध तथा वातरोग से अक्षमप्राय जानते हुए मैंने समस्त ग्रन्थों के सार श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध का सारांश के रूप में पहले ही अंग्रेजी में अनुवाद कर दिया है। मैंने सत्तर वर्ष की आयु में कृष्णभावनामृत आन्दोलन प्रारम्भ किया। अब मैं अठहत्तर वर्ष का हूँ, अत: मेरी मृत्यु निकट है। मैं श्रीमद्भागवत का अनुवाद यथाशीघ्र समाप्त करने का प्रयास कर रहा हूँ किन्तु इसे समाप्त करने से पहले ही मैंने अपने पाठकों को लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण नामक पुस्तक भेंट कर दी है, जिससे यदि सम्पूर्ण कार्य समाप्त करने के पूर्व में मर जाऊँ, तो वे इस पुस्तक का आनन्द प्राप्त कर सकें, जो कि श्रीमद्भागवत का सार है।

पूर्व-लिखित ग्रन्थ-सूत्र-अनुसारे ।

येइ नाहि लिखि, ताहा लिखिये विस्तारे ॥ 12॥

शब्दार्थ

पूर्व-लिखित-इससे पहले लिखे हुए, ग्रन्थ-सूत्र-लीलाओं के सूत्र; अनुसारे-के अनुसार, येइ-जो कुछ, नाहि लिखि-मैंने उल्लेख नहीं किया; ताहा-वह सब, लिखिये मैं लिखूँगा (वर्णन करूँगा); विस्तारे-विस्तृत रूप से।

अनुवाद

इसके पूर्वलिखित सूत्रों के अनुसार मैंने जो कुछ उल्लेख नहीं किया, उसका विस्तार से वर्णन करूँगा।

वृन्दावन हैते प्रभु नीलाचले आइला ।

स्वरूप-गोसाञि गौडे वार्ता पाठाइला ॥ 13॥

शब्दार्थ

वृन्दावन हैते-वृन्दावन से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नीलाचले आइला-नीलाचले, जगन्नाथ पुरी वापस आये; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर, गौड़े-बंगाल में; वातां पाठाइला-खबर भेज दी।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन से जगन्नाथ पुरी लौटे, तो स्वरूप दामोदर गोसांडू ने तुरन्त ही महाप्रभु के आने का समाचार बंगाल के भक्तों को भेज दिया।

शुनि' शची आनन्दित, सब भक्त-गण ।

सत्रे मिलि' नीलाचले करिला गमन ॥ 14 ॥

शब्दार्थ

शुनि'-यह सुनकर; शची-माता शची; आनन्दित-अत्यन्त प्रसन्न, सब भक्त-गणतथा नवद्वीप के अन्य सारे भक्तगण, सबे मिलि'-सभी मिलकर, नीलाचले-जगन्नाथ पुरी, करिला गमन-प्रस्थान किया।

अनुवाद

यह समाचार सुनकर माता शची तथा नवद्वीप के अन्य सारे भक्त परम प्रसन्न थे और वे सभी मिलकर नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) के लिए चल पड़े।

कुलीन-ग्रामी भक्त आर यत खण्ड-वासी ।

आचार्य शिवानन्द साने मिलिला सबे आसि' ॥15॥

शब्दार्थ

कुलीन-ग्रामी-कुलीन ग्राम नामक गाँव के निवासी, भक्त-भत; आर-तथा; यत-सभी; खण्ड-वासी-श्रीखण्ड के सभी निवासी; आचार्य-अद्वैत आचार्य, शिवानन्दशिवानन्द सेन; सने-एक साथ; मिलिला-मिले; सबे आसि'-सभी आकर।

अनुवाद

इस तरह कुलीन ग्राम तथा श्रीखण्ड के सारे भक्त एवं अद्वैत आचार्य एकसाथ शिवानन्द सेन से मिलने आये।

शिवानन्द करे सबार घाटि समाधान ।

सबारे पालन करे, देय वासा-स्थान ॥16॥

शब्दार्थ

शिवानन्द-शिवानन्द; करे-करते हैं; सबार-सभी के; घाटि-यात्रा की; समाधान-व्यवस्था, सबारे-सभी का, पालन-पालन; करे-करते हैं; देय-देते हैं; वासा-स्थान-रिहायशी कमरे।

अनुवाद

शिवानन्द सेन ने यात्रा की व्यवस्था की। उन्होंने हर एक का भरण पोषण किया और हर एक को निवासस्थान दिया।

एक कुक्कुर चले शिवानन्द-सने ।

भक्ष्य दिया लञा चले करिया पालने ॥17॥

शब्दार्थ

एक-एक, कुक्कुर-कुता;चले-जाता है; शिवानन्द-सने-शिवानन्द सेन के साथ; भक्ष्य-भोजन; दिया-देते हुए; लञा-साथ लेकर; चले-जाते हैं; करिया पालने-उसका भरण-पोषण करते हैं।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी जाते समय शिवानन्द सेन ने अपने साथ एक कुत्ते को चलने दिया। वे उसे खाने को भोजन देते थे और उसका भरण-पोषण करते थे।

एक-दिन एक-स्थाने नदी पार हैते ।

उड़िया नाविक कुक्कुर ना चड़ाय नौकाते ॥ 18॥

शब्दार्थ

एक-दिन-एक दिन, एक-स्थाने-एक स्थान पर, नदी-एक नदी; पार-पार करने; हैते-के लिए, उड़िया नाविक-एक उड़िया (उड़िसा के) नाविक ने, कुक्कुर-कुत्ते को; ना चड़ाय-चढ़ने नहीं देता, नौकाते-नाव पर।

अनुवाद

एक दिन जब शिवानन्द को नदी पार करनी थी, तो एक उड़िया नाविक ने कुत्ते को नाव पर नहीं चढ़ने दिया।

कुक्कुर रहिला,-शिवानन्द दु:खी हैला ।

दश पण कड़ि दिया कुक्कुरे पार कैला ॥ 19॥

शब्दार्थ

कुक्कुर रहिला-कुत्ता पीछे रह गया; शिवानन्द दु:खी हैला-शिवानन्द अत्यन्त दु:खी हुए, दश पण-दस पण; कड़ि-छोटे शंख (कौड़ियाँ); दिया-देकर, कुक्कुरे-कुत्ते को; पार कैला-नदी पार करवाने के लिए।

अनुवाद

शिवानन्द दु:खी थे कि कुत्ता पीछे छूट रहा है, इसलिए उन्होंने कुत्ते को नदी पार ले जाने के लिए दस पण। कौड़ियाँ उस नाविक को दीं।

तात्पर्य

एक पण अस्सी कौड़ियों के बराबर होता है। पहले, यहाँ तक कि पचाससाठ वर्ष पूर्व भी, भारत में कागज की मुद्रा (नोट) नहीं थी। सिके प्राय: सोने, चाँदी तथा ताँबे के बनते थे, निम्न धातु के नहीं बनते थे। दूसरे शब्दों में, विनिमय का माध्यम सचमुच कोई कीमती वस्तु होती थी। चार कौड़ि का एक गंडा होता था और बीस गण्डे का एक पण होता था। यह कौड़ि विनिमय का भी माध्यम थी। इसलिए शिवानन्द सेन ने कुत्ते के लिए दश पण अर्थात् 800 कौड़ि दी। उन दिनों एक पैसे को भी छोटी-छोटी कौड़ियों में विभाजित किया जाता था। किन्तु आजकल वस्तुओं के मूल्य इतने बढ़ गये हैं कि एक पैसे के बदले में कुछ नहीं मिलता। किन्तु उन दिनों एक पैसे से एक परिवार के लिए पर्याप्त शाक-सब्जी खरीदी जा सकती थी। यहाँ तक कि तीस वर्ष पूर्व भी पूरे परिवार के एक दिन के लिए एक पैसे से पर्याप्त शाक-सब्जी खरीदी जा सकती थी।

एक-दिन शिवानन्दे घाटियाले राखिला ।

कुक्कुरके भात दिते सेवक पासरिला ॥20॥

शब्दार्थ

एक-दिन–एक दिन, शिवानन्दे-शिवानन्द सेन को, घाटियाले-एक शुल्क संग्राहक ने, राखिला-रोक लिया; कुक्कुरके-कुत्ते को, भात दिते-भात देना; सेवक-एक सेवक; पासरिला-भूल गया।

अनुवाद

एक दिन जब एक शुल्क संग्राहक ने शिवानन्द को रोक लिया, तो उनका नौकर उस कुत्ते को पकाया चावल (भात) देना भूल गया।

रात्रे आसि' शिवानन्द भोजनेर काले ।

'कुक्कुर पाञाछे भात?'-सेवके पुछिले ॥ 21॥

शब्दार्थ

रात्रे आसि'-रात में लौटकर, शिवानन्द-शिवानन्द सेन ने, भोजनेर काले-भोजन करते समय; कुक्कुर-कुत्ते को; पाञाछे-मिला या नहीं; भात-भोजन; सेवके-सेवक से; पुछिले-पूछा।

अनुवाद

रात में, जब शिवानन्द सेन लौटे और भोजन कर रहे थे, तो उन्होंने अपने नौकर से पूछा कि कुत्ते को भोजन मिला या नहीं।

कुक्कुर नाहि पाय भात शुनि' दु:खी हैला ।

कुक्कुर चाहिते दश-मनुष्य पाठाइला ॥22॥

शब्दार्थ

कुक्कुर-कुत्ते को, नाहि-नहीं; पाय-प्राप्त हुआ; भात-भात (चावल); शुनि'- यह सुनकर; दु:खी हैला-शिवानन्द सेन अत्यन्त दु:खी हुए, कुक्कुर चाहिते-कुत्ते को ढूँढने के लिए, दश-मनुष्य-दस लोग; पाठाइला-भेजे।

अनुवाद

जब उन्हें ज्ञात हुआ कि उनकी अनुपस्थिति में कुत्ते को भोजन नहीं दिया गया, तो वे अत्यन्त दु:खी हुए। तब उन्होंने तुरन्त उस कुत्ते को ढूँढने के लिए दस व्यक्ति भेजे।

चाहिया ना पाइल कुक्कुर, लोक सब आइला ।

दु:खी हञा शिवानन्द उपवास कैला ॥ 23॥

शब्दार्थ

चाहिया- ढूँढने पर; ना-नहीं, पाइल-खोज सके, कुक्कुर-कुत्ते को; लोक सब आइला-सभी लोग वापस आ गये; दु:खी हञा-दु:खी होकर, शिवानन्द-शिवानन्द सेन ने; उपवास-उपवास, कैला-किया।

अनुवाद

जब लोग असफल होकर लौट आये, तो शिवानन्द सेन अत्यन्त दु:खी हुए और उस रात उन्होंने उपवास किया।

प्रभाते कुक्कुर चाहि' काँहा ना पाइल ।

सकल वैष्णवेर मने चमत्कार हैल ॥ 24॥

शब्दार्थ

प्रभाते-प्रात: काल में, कुक्कुर-कुत्ते की; चाहि'-खोज की, काँहा-कहीं भी, ना पाइल-नहीं पाया, सकल वैष्णवेर-सभी उपस्थित वैष्णवों के; मने-मनों में, चमत्कार हैल-अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

अनुवाद

उन्होंने प्रात:काल कुत्ते की खोज की, किन्तु वह कहीं नहीं मिला। इससे सारे वैष्णव अत्यन्त चकित हुए।

तात्पर्य

कुत्ते के प्रति शिवानन्द सेन का लगाव उस पशु के लिए महान् वरदान सिद्ध हुआ। यह कुत्ता आवारा कुत्ता प्रतीत होता है। चूँकि जब शिवानन्द सेन अपनी टोली सहित जगन्नाथ पुरी जा रहे थे, तब यह उनके साथ चल पड़ा था; इसलिए उन्होंने इसे अपनी टोली में सम्मिलित करके उसका भी पालन उसी तरह से किया, जिस तरह वे अन्य भक्तों का कर रहे

थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि एक बार इस कुत्ते को नाव में नहीं चढ़ने दिया गया, किन्तु शिवानन्द ने इसे पीछे नहीं छोड़ा, अपितु नाविक को धन देकर उसे नदी पार कराने के लिए राजी किया था। फिर जब नौकर इस कुत्ते को खाना खिलाना भूल गया और वह अदृश्य हो गया, तो शिवानन्द ने अत्यन्त चिन्तित होने के कारण उसे ढूँढने के लिए दस व्यक्तियों को भेजा भी। जब वे उसे नहीं ढूँढ पाये, तो शिवानन्द ने उपवास किया। इस तरह ऐसा लगता है कि, हो न हो, शिवानन्द उस कुत्ते के प्रति अनुरत हो चुके थे।

जैसाकि अगले श्लोकों से विदित होगा, इस कुत्ते को श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त हुई और यह तुरन्त वैकुण्ठ को प्राप्त हुआ, जिससे वहाँ नित्य भक्त बन सका। इसीलिए श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने गाया है : तुमि त' ठाकुर, तोमार कुक्कुर, बलिया जानह मोरे (शरणगति 19)। इस प्रकार वे वैष्णव का कुत्ता बनना चाहते हैं। ऐसे अन्य अनेक उदाहरण हैं, जब वैष्णव का पालतू पशु वैकुण्ठ लोक को प्राप्त हुआ। वैष्णव का किसी भी प्रकार से प्रिय बनने का ऐसा ही लाभ मिलता है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने यह भी गाया हैकीट-जन्म हउ यथा तुया दास (शरणगति 11)। बारम्बार जन्म लेने में कोई हानि नहीं है। हाँ, हमारी एकमात्र इच्छा किसी वैष्णव की देखरेख में जन्म लेने की होनी चाहिए। सौभाग्यवश हमें ऐसे वैष्णव पिता से जन्म लेने का अवसर मिला, जिन्होंने बहुत ही अच्छे ढंग से हमारी देखरेख की। उन्होंने श्रीमती राधारानी से विनय की कि भविष्य में हम श्रीकृष्ण की नित्य संगिनी के दास बनें। इस तरह हम येनकेन प्रकारेण उस सेवा में लगे हुए हैं। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कुत्ते के रूप में भी हमें वैष्णव की शरण लेनी चाहिए। इससे जो लाभ होगा, वह किसी वैष्णव के संरक्षण में उच्च भक्त को मिलने वाले लाभ जैसा ही होगा।

उत्कण्ठाय चलि' सबे आइला नीलाचले ।

पूर्ववत् महाप्रभु मिलिला सकले ॥ 25 ॥

शब्दार्थ

उत्कण्ठाय-अत्यन्त चिन्तित होकर; चलि'-चलकर; सबे-सभी भक्त; आइला नीलाचले-नीलाचल, जगन्नाथ पुरी आ गये; पूर्ववत्-सदा की तरह, महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, मिलिला सकले-उन सब से मिले।

अनुवाद

इस प्रकार वे सभी अत्यन्त चिन्तित होकर जगन्नाथपुरी पैदल आये, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु सदा की तरह उनसे मिले।

सबा लञा कैला जगन्नाथ दरशन।

सबा लञा महाप्रभु करेन भोजन॥ 26॥

शब्दार्थ

सबा लञा-उन सबको लेकर; कैला-किया; जगन्नाथ दरशन-जगन्नाथ मन्दिर का दर्शन; सबा लञा-उन सबके साथ; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने, करेन भोजन-भोजन किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उनके साथ भगवान् का दर्शन करने मन्दिर में गये और उस दिन उन्होंने सभी भक्तों के साथ भोजन भी किया।

पूर्ववत् सबारे प्रभु पाठाइला वासा-स्थाने।

प्रभु-ठाञि प्रातः-काले आङ्ला आर दिने॥ 27॥

शब्दार्थ

पूर्ववत्-पहले की तरह ही; सबारे–सब को; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; पाठाइला-भेज दिया; वासा-स्थाने-उनके निवासस्थानों में, प्रभु-ठाञि-चैतन्य महाप्रभु के स्थान में, प्रातः-काले-प्रात: काल, आइला-वे आये, आर दिने-अगले दिन।

अनुवाद

पहले की ही तरह महाप्रभु ने उन सबको आवासीय कक्ष दिये और अगले दिन प्रात:काल सारे भक्त महाप्रभु को मिलने आये।

आसिया देखिल सबे सेइ त कुक्कुरे।

प्रभु-पाशे वसियाछे किछु अल्प-दूरे॥ 28॥

शब्दार्थ

आसिया-आकर; देखिल-उन्होंने देखा; सबे-सभी ने; सेइ त कुक्कुरे-वही कुत्ता; प्रभु-पाशे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के समीप; वसियाछे-बैठा हुआ था; किछु अल्पदूरे-महाप्रभु से कुछ ही दूरी पर।

अनुवाद

जब सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर आये, तो उन्होंने उसी कुत्ते को महाप्रभु से कुछ ही दूरी पर बैठा हुआ देखा।

प्रसाद नारिकेल-शस्य देन फेलाञा।

'राम' 'कृष्णा' 'हरि' कह'—बलेन हासिया॥ 29॥

शब्दार्थ

प्रसाद-प्रसाद, नारिकेल-शस्य-हरे नारियल का गूदा, देन-देते हैं; फेलाञा-फेंककर, राम–भगवान् रामचन्द्रः कृष्ण–श्रीकृष्ण, हरि–हरि का पवित्र नाम; कह'-का उच्चारण करो; बलेन-श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं; हासिया-हँसते हुए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उस कुत्ते के सामने हरे नारियल के गूदे का प्रसाद फेंक रहे थे। अपने ढंग से हँसते हुए, वे कुत्ते से कह रहे थे, "राम, 'कृष्ण' तथा 'हरि' नाम का उच्चारण करो।"

शस्य खाय कुक्कुर, 'कृष्ण' कहे बार बार।

देखिया लोकेर मने हैल चमत्कार॥ 30॥

शब्दार्थ

शस्य खाय-हरे नारियल का गूदा खाकर, कुक्कुर-कुत्ते को; कृष्ण-कृष्ण का पवित्र नाम; कहे-उच्चारण करते; बार बार-बारम्बार; देखिया-यह देखकर, लोकेर-सभी लोगों के; मने-मनों में, हैल-हुआ; चमत्कार-आश्चर्य।

अनुवाद

कुत्ते को हरे नारियल का शास्य खाते और बारम्बार "कृष्ण," "कृष्ण" का उच्चारण करते देखकर वहाँ उपस्थित सारे भक्त अत्यधिक आश्चर्यचकित हुए।

शिवानन्द कुक्कुर देखि' दण्डवत्कैला।

दैन्य करि' निज अपराध क्षमाइला॥ 31॥

शब्दार्थ

शिवानन्द-शिवानन्द सेन ने; कुक्कुर-कुत्ते को; देखि'-वहाँ देखकर, दण्डवत् कैला-नमस्कार किया; दैन्य करि'-सहज दीनता प्रदर्शित करते हुए; निज-अपने, अपराध-अपराधों के लिए; क्षमाइला-क्षमायाचना की।

अनुवाद

जब शिवानन्द ने कुत्ते को उस तरह बैठे तथा कृष्ण-नाम का उच्चारण करते देखा, तो उन्होंने अपनी सहज दीनतावश तुरन्त ही कुत्ते को दण्डवत प्रणाम किया, जिससे उसके प्रति किये गये अपराध क्षमा हो जाएँ।

आर दिन केह तार देखा ना पाइला ।

सिद्ध-देह पाञा कुक्कुर वैकुण्ठेते गेला ॥ 32॥

शब्दार्थ

आर दिन-अगले दिन, केह-उन सभी ने; तार-उस कुत्ते को; देखा ना पाइलानहीं देखा; सिद्ध-देह पाञा-आध्यात्मिक देह प्राप्त करके; कुक्कुर-वह कुत्ता, वैकुण्ठेते गेला-वैकुण्ठ लोक चला गया था।

अनुवाद

अगले दिन किसी ने उस कुत्ते को नहीं देखा, क्योंकि उसे आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हो चुका था और वह वैकुण्ठ चला गया था।

तात्पर्य

यह साधु-संग का फल है कि श्री चैतन्य महाप्रभु की संगति तथा भगवद्धाम की प्राप्ति हो सकी। वैष्णव की कृपा से यह फल कुत्ते के लिए भी सम्भव है। इसलिए मनुष्य जीवन में हर व्यक्ति को भक्तों की संगति करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। थोड़ी-सी सेवा करके-कीर्तन तथा नृत्य की बात जाने दें, यहाँ तक कि प्रसाद खाकर हर व्यक्ति वैकुण्ठ लोक को प्राप्त हो सकता है। इसलिए यह अनुरोध है कि इस्कॉन समुदाय के हमारे सारे भक्त शुद्ध वैष्णव बनें, जिससे उनकी कृपा से उनके बिना जाने ही विश्व के सारे लोग वैकुण्ठ लोक चले जाएँ। हर व्यक्ति को प्रसाद प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए और इस तरह हरे कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन तथा भाव में नृत्य करने के लिए भी प्रेरित

Formatted: Font: Bold, Font color: Text 1, Complex Script Font: Bold

Formatted: Font: Bold, Font color: Text 1, Complex Script Font: Bold

करना चाहिए। इन तीनों विधियों से, भले ही वे किसी ज्ञान या शिक्षा के बिना ही सम्पन्न क्यों न हों, एक पशु तक भगवद्धाम चला गया।

ऐछे दिव्य-लीला करे शचीर नन्दन ।

कुक्कुरके कृष्ण कहाञा करिला मोचन ॥ 33॥

शब्दार्थ

ऐछे-इस प्रकार की; दिव्य-लीला-दिव्य लीलाएँ करे-करते हैं; शचीर नन्दनशची माता के पुत्र, कुक्कुरके-एक कुते तक को; कृष्ण कहाञा-"कृष्ण" नाम का उच्चारण करने के लिए प्रेरित करके; करिला मोचन-उसका उद्धार कर दिया।

अनुवाद

शची माता के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु की दिव्य लीलाएँ ऐसी ही हैं। उन्होंने एक कुत्ते तक को हरे कृष्ण महामन्त्र का उच्चारण करने के लिए प्रेरित करके उसका उद्धार कर दिया।

एथा प्रभु-आज्ञाय रूप आइला वृन्दावन ।

कृष्ण-लीला-नाटक करिते हैल मन ॥ 34॥

शब्दार्थ

एथा-इसी बीच; प्रभु-आज्ञाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश पर; रूप-रूप गोस्वामी; आइला-आये; वृन्दावन-वृन्दावन; कृष्ण-लीला-नाटक-भगवान् कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित नाटक; करिते-लिखने का; हैल-हुआ; मन-मन।

अनुवाद

इस बीच श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार श्रील रूप गोस्वामी वृन्दावन लौट आये। उन्होंने भगवान् कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित नाटक लिखने की इच्छा की।

वृन्दावने नाटकेर आरम्भ करिला ।

मङ्गलाचरण 'नान्दी-श्लोक' तथाइ लिखिला ॥ 35॥

शब्दार्थ

वृन्दावने-वृन्दावन में, नाटकेर-नाटक का; आरम्भ-प्रारम्भ; करिला-लिखा; मङ्गलाचरण-मंगलाचरण; नान्दी-श्लोक–नान्दी श्लोक; तथाइ-वहाँ, लिखिला–उन्होंने लिखा।

अनुवाद

वृन्दावन में रूप गोस्वामी ने एक नाटक लिखना प्रारम्भ किया। विशेषतया उन्होंने मगंलाचरण सूचक नान्दी श्लोक की रचना की।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने नाटक चन्द्रिका से उद्धृत किया है, जहाँ लिखा गया हैः

प्रस्तावनायास्तु मुखे नान्दी कार्या शुभावहा ।

आशीर्नमस्क्रियावस्तु-निर्देशान्यतमान्विता ॥

अष्टाभिर्दशभिर्युक्ता किंवा द्वादशभिः पदैः ।

चन्द्रनामांकिता प्रायो मंगलार्थपदोज्ज्वला ।

मंगलं चक्रकमलचकोरकुमुदादिकम् ॥

इसी प्रकार साहित्य दर्पण (श्लोक 282) के छठे अध्याय में कहा गया है :

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।

देवद्विजनृपादीनां तस्मान् नान्दीति संज्ञिता ॥

नाटक का प्रारम्भिक अंश जो सौभाग्य का आवाहन करने के लिए लिखा जाता है, वह नान्दी श्लोक कहलाता है।

पथे चलि' आइसे नाटकेर घटना भाविते ।

कड़चा करिया किछु लागिला लिखिते ॥ 36॥

शब्दार्थ

पथे। चलि'-मार्ग में चलते; आइसे-जाते हुए; नाटकेर-नाटक की; घटनाघटनाओं को; भाविते-विचार करते हुए, कड़चा करिया-टिप्पणियाँ बना ली; किछुकुछ; लागिला लिखिते-लिखना भी प्रारम्भ कर दिया।

अनुवाद

गौड़देश जाते हुए रूप गोस्वामी सोच रहे थे कि नाटक की घटना को किस तरह लिखा जाए। इस तरह उन्होंने कुछ टिप्पणियाँ बना ली थीं और लिखना भी प्रारम्भ कर दिया।

एइ-मते दुइ भाइ गौड़-देशे आइला ।

गौडे आसि' अनुपमेर गङ्गा-प्राप्ति हैला ॥ 37॥

शब्दार्थ

एइ-मते-इस प्रकार; दुइ भाइ-रूप गोस्वामी तथा उनका छोटा भाई अनुपम, गौड़-देशे आइला-बंगाल पहुँचे, जो गौड़ देश के नाम से विख्यात है; गौड़े आसि'-गौड़ पहुँचकर; अनुपमेर-अनुपम को; गङ्गा–प्राप्ति हैला–माँ गंगा की शरण प्राप्त हो गई (देहान्त हो गया)।

अनुवाद

इस तरह रूप तथा अनुपम दोनों भाई बंगाल पहुँचे, किन्तु जब वे वहाँ पहुँच गये, तो अनुपम का देहान्त हो गया।

तात्पर्य

पूर्व काल में जब कोई व्यक्ति मरता था, तो साधारणतया यही कहा जाता था कि उसे माता गंगा की शरण प्राप्त हो गई, चाहे वह गंगा तट पर न भी मरा हो। हिन्दुओं में प्रथा है कि मरणासन्न व्यक्ति को पास के गंगा-तट पर ले जाया जाता है। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि यदि कोई व्यक्ति गंगा के तट पर मरता है, तो उसका आत्मा भगवान् विष्णु के चरणकमलों को प्राप्त करता है क्योंकि गंगाजी भगवान् के चरणकमलों से निकलती हैं।

रूप-गोसाञि प्रभु–पाशे करिला गमन ।

प्रभुरे देखिते ताँर उत्कण्ठित मन ॥ 38॥

शब्दार्थ

रूप-गोसाञि–रूप गोस्वामी; प्रभु–पाशे-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान में; करिला गमन-प्रस्थान किया, प्रभुरे देखिते-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन के लिए, ताँर-उनका; उत्कण्ठित-उत्सुक था; मन-मन।

अनुवाद

तब रूप गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के लिए प्रस्थान किया, क्योंकि वे उनके दर्शन के लिए अत्यन्त उत्सुक थे।

अनुपमेर लागि' ताँर किछु विलम्ब हइल ।

भक्त-गण-पाश आङ्ला, लाग्ना पाइल ॥ 39 ॥

शब्दार्थ

अनुपमेर लागि'-अनुपम के देहान्त के कारण; ताँर–रूप गोस्वामी को; किछु–कुछ; विलम्ब-देरी, हइल-हो गई थी; भक्त-गण-पाश-बंगाल के भक्तों के पास; आइला-आये, लाग ना पाइल-वे उनसे सम्पर्क नहीं कर पाये।

अनुवाद

अनुपम के देहान्त के कारण कुछ देरी हो गई थी, इसलिए जब रूप गोस्वामी भक्तों से मिलने बंगाल गये, तो वे उनसे सम्पर्क नहीं कर पाये, क्योंकि वे पहले ही चले गये थे।

उड़िया-देशे 'सत्यभामा-पुर'-नामे ग्राम ।

एक रात्रि सेइ ग्रामे करिला विश्राम ॥ 40 ॥

शब्दार्थ

उड़िया-देशे-उड़ीसा प्रान्त में, सत्यभामा-पुर-सत्यभामा पुर; नामे-नामक; ग्रामएक गाँव, एक रात्रि-एक रात, सेइ ग्रामे-उसी गाँव में, करिला विश्राम-उन्होंने विश्राम ।

अनुवाद

उड़ीसा प्रान्त में सत्यभामापुर नामक एक गाँव है। श्रील रूप गोस्वामी ने जगन्नाथ पुरी जाते समय उसी गाँव में एक रात विश्राम किया।

तात्पर्य

उड़ीसा के कटक जिले में सत्यभामापुर नामक एक स्थान है। यहजानकादेइपुर गाँव के निकट है।

रात्रे स्वप्ने देखे,— एक दिव्य-रूपा नारी ।

सम्मुखे आसिया आज्ञा दिला बहु कृपा करि' ॥ 41॥

रात्रे-रात में, स्वप्ने देखे-उन्होंने स्वप्न देखा; एक-एक, दिव्य-रूपा नारी-दिव्यसुन्दर स्त्री, सम्मुखे आसिया-उनके समक्ष आकर; आज्ञा दिला-आदेश दिया; बहु कृपा करि'-उन पर कृपा करके।

अनुवाद

सत्यभामापुर में विश्राम करते समय उन्होंने स्वप्न देखा कि एक दिव्य सुन्दरी स्त्री उनके समक्ष आई और कृपा करके उन्हें यह आदेश दिया।

~~अनुवाद~~

आमार कृपाते नाटक हैबे विलक्षण" ॥42॥

शब्दार्थ

आमार नाटक-मुझ पर नाटक; पृथक् करह रचन-अलग से लिखो; आमार कृपाते-मेरी कृपा से; नाटक-नाटक; हैबे-होगा; विलक्षण-अद्वितीय सुन्दर।

अनुवाद

उसने कहा, "तुम मेरे ऊपर एक अलग नाटक लिखी। मेरी कृपा से यह अद्वितीय सुन्दर होगा।"

स्वप्न देखि' **रूप-**गोसाञि **करिला विचार।**

सत्यभामार आज्ञा—पृथक् नाटक करिबार ॥ 43॥

शब्दार्थ

स्वप्न देखि'-स्वप्न देखने के बाद, रूप-गोसाञि-रूप गोस्वामी ने; करिला विचार-विचार किया; सत्यभामार आज्ञा-श्रीमती सत्यभामा का आदेश; पृथक् नाटक करिबार-एक अलग नाटक लिखने का।

अनुवाद

इस स्वप्न के बाद श्रील रूप गोस्वामी ने विचार किया, "यह तो सत्यभामा का आदेश है कि मैं उनके लिए एक अलग नाटक लिखें।

ब्रज-पुर-लीला एकत्र करियाछि घटना।

दुइ भाग करि' एबे करिमु रचना ॥44॥

शब्दार्थ

ब्रज-पुर-लीला-भगवान् कृष्ण के ब्रज तथा द्वारका की लीलाएँ, एकत्र-एक ही पुस्तक में, करियाछि-मैंने संकलित की हैं; घटना-सभी घटनाएँ दुइ भाग करि'-दो अलग नाटकों में विभाजित करके; एबे-अब; करिमु रचना-मैं लिखूँगा।

अनुवाद

"मैंने भगवान् कृष्ण द्वारा वृन्दावन तथा द्वारका में सम्पन्न सारी लीलाओं को एक ही पुस्तक में संकलित किया है। अब मुझे उन्हें दो नाटकों में विभाजित करना होगा।"

भाविते भाविते शीघ्र आइला नीलाचले।

आसि' उत्तरिला हरिदास-वासा-स्थले ॥ 45 ॥

शब्दार्थ

भाविते भाविते-सोचते हुए; शीघ्र-बहुत जल्दी; आइला नीलाचले-नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) पहुँच गये; आसि'-आकर, उत्तरिला-पहुँच गये; हरिदास-वासा-स्थलेवह स्थान जहाँ हरिदास ठाकुर रहते थे।

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

अनुवाद

अनुवाद

इस तरह विचारमग्न होकर वे शीघ्र ही जगन्नाथ पुरी पहुँच गये। वहाँ आकर वे हरिदास ठाकुर की कुटिया में जा पहुँचे।

हरिदास-ठाकुर तारे बहु-कृपा कैला ।

'तुमि आसिबे,–मोरे प्रभु ये कहिला' ॥ 46॥

शब्दार्थ

हरिदास-ठाकुर-हरिदास ठाकुर ने, तारे-उनके प्रति; बहु-कृपा कैला-अत्यन्त प्रेम तथा कृपावश अत्यधिक स्नेह दर्शाया; तुमि आसिबे-तुम आओगे; मोरे-मुझे; प्रभुश्री चैतन्य महाप्रभु ने; ये-यह; कहिला-सूचित कर दिया था।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने प्रेम तथा कृपावश श्रील रूप गोस्वामी को बतलाया, "श्री चैतन्य महाप्रभु ने पहले ही मुझे सूचित कर दिया है कि तुम यहाँ आओगे।"

'उपल-भोग' देखि' हरिदासेरे देखिते ।

प्रतिदिन आइसेन, प्रभु आइला आचम्बिते ॥ 47॥

शब्दार्थ

उपल-भोग-दोपहर के समय भगवान् जगन्नाथ को भोजन अर्पण; देखि'-देखकर, हरिदासेरे देखिते-हरिदास ठाकुर को मिलने, प्रतिदिन-प्रतिदिन; आइसेन-आते, प्रभुश्री चैतन्य महाप्रभु, आइला-वहाँ पहुँच गये; आचम्बिते-अचानक ही।

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

अनुवाद

जगन्नाथ मन्दिर में उपल भोग उत्सव देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु नियमित रूप से प्रतिदिन हरिदास को मिलने आते थे। अत: वे सहसा वहाँ आ पहुँचे।

'रूप दण्डवत् -करे',—**हरिदास कहिला ।**

हरिदासे मिलि' प्रभु रूपे आलिङ्गिला ॥48॥

शब्दार्थ

रूप-रूप गोस्वामी; दण्डवत् करे-आपको प्रणाम करता है; हरिदास कहिला-हरिदास ने श्री चैतन्य महाप्रभु को सूचित किया; हरिदासे मिलि'-हरिदास से मिलकर, प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; रूपे आलिङ्गिला–रूप गोस्वामी को आलिंगन किया।

अनुवाद

जब महाप्रभु वहाँ आये, तो रूप गोस्वामी ने तुरन्त उन्हें नमस्कार किया। हरिदास ने महाप्रभुको सूचित किया, "यह रूप गोस्वामी आपको नमस्कार कर रहा है," और महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया।

हरिदास-रूपे लञा **प्रभुवसिला एक-स्थाने ।**

कुशल-प्रश्न, इष्ट-गोष्ठी कैला कत-क्षणे ॥ 49 ॥

शब्दार्थ

हरिदास-रूपे-हरिदास ठाकुर तथा रूप गोस्वामी; लञा-के साथ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, वसिला-बैठ गये; एक-स्थाने-एक स्थान पर; कुशल-प्रश्न-कुशलता के समाचार; इष्ट-गोष्ठी-आपस में चर्चाएँ, कैला कत-क्षणे-कुछ समय तक परस्पर करते रहे।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य **महाप्रभु हरिदास तथा रूप गोस्वामी के पास बैठ गये। उन सबने एक-दूसरे से कुशल समाचार पूछे और तब कुछ समय तक परस्पर बातें करते रहे।**

सनातनेर वार्ता यबे गोसाञि **पुछिल ।**

रूप कहे,—'तार सङ्गे **देखा ना हइल ॥50॥**

शब्दार्थ

सनातनेर वार्ता-सनातन गोस्वामी के विषय में; यबे-जब; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु, पुछिल-ने पूछा, रूप कहे-रूप गोस्वामी ने कहा; तार सङ्गे-उनके साथ; देखा ना हइल-मेरी भेंट नहीं हुई।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य **महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी के विषय में पूछा, तो रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया, "उनसे मेरी भेंट नहीं हुई।"**

आमि गङ्गा-पथे आइलाङ तिंहो राज-पथे ।

अतएव आमार देखा नहिल ताँर साथे ॥ 51 ॥

शब्दार्थ

आमि-मैं, गङ्गा-पथे-गंगा के किनारे वाले मार्ग से, आइलाड-आया हूँ, तिंहो वे, राज-पथे-राजमार्ग से; अतएव-इस कारण से, आमार-मेरी; देखा-भेंट; नहिल-हो नहीं पाई, ताँर साथे-उनके साथ।

अनुवाद

"मैं गंगा-तट के मार्ग से आया हूँ, जबकि सनातन गोस्वामी सार्वजनिक मार्ग से आये हैं। इसलिए हम एक-दूसरे से मिल नहीं पाये।"

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold, (Complex) Sanskrit

प्रयागे शुनिलैं,-तेंही गेला वृन्दावने ।

अनुपमेर गङ्गा-प्राप्ति कैल निवेदने" ॥52॥

शब्दार्थ

प्रयागे-प्रयाग में, शुनिलैं-मैंने सुना; तेंहो-वे; गेला वृन्दावने-वृन्दावन चले गये हैं; अनुपमेर-अनुपम को; गङ्गा-प्राप्ति-गंगा की कृपा प्राप्त हो गई (देहान्त); कैल निवेदने-उन्होंने जानकारी दी।

अनुवाद

"मैंने प्रयाग में सुना कि वे पहले ही वृन्दावन चले गये हैं।" इसके बाद रूप गोस्वामी ने अनुपम के देहान्त के विषय में महाप्रभु को जानकारी दी।

रूपे ताहाँ वासा दिया गोसाञि **चलिला ।**

गोसाञिर सङ्गी भक्त रूपेरे मिलिला ॥ 53॥

शब्दार्थ

रूपे-रूप को; ताहाँ-वहाँ, वासा दिया-निवासस्थान प्रदान कर, गोसाञि चलिला-श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ से चले गये; गोसाञिर सङ्गी-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथी; भक्त-सभी भक्त, रूपेरे मिलिला-रूप गोस्वामी से मिले।

अनुवाद

वहाँ रूप **गोस्वामी को आवासीय कक्ष देकर श्री चैतन्य महाप्रभु चले गये। तब महाप्रभु के सारे भक्तों ने श्रील रूप गोस्वामी से भेंट की।**

आर **दिन महाप्रभु सब भक्त लञा ।**

रूपे मिलाइला सबाय कृपा त' **करिया ॥ 54॥**

आर दिन-अगले दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, सब-सभी; भक्त लञा-भक्तों को लेकर; रूपे मिलाइला-रूप गोस्वामी का परिचय करवाया; सबाय-उन सब पर; कृपा त' करिया-अपनीकृपा दर्शाकर।

अनुवाद

अगले दिन, **चैतन्य महाप्रभु रूप गोस्वामी से फिर मिले और कृपा करके अपने सारे भक्तों का उनसे परिचय कराया।**

सबार चरण रूप करिला वन्दन ।

कृपा करि' **रूपे सबे कैला आलिङ्गनः ॥55॥**

शब्दार्थ

सबार-सभी भक्तों के; चरण-चरणकमलों में, रूप-श्रील रूप गोस्वामी ने; करिलावन्दन-प्रणाम किये; कृपा करि'-अत्यन्त कृपा करके, रूपे-रूप गोस्वामी का, सबेसभी भक्तों ने, कैला-किया; आलिङ्गन-आलिंगन।

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी **ने उन सबके चरणकमलों पर सादर नमस्कार किया और सारे भक्तों ने अत्यन्त कृपा करके उनका आलिंगन किया।**

'अद्वैत नित्यानन्द, तोमरा दुइ-जने'।

प्रभु कहे-रूपे कृपा कर काय-मने ॥56॥

शब्दार्थ

अद्वैत-अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु; तोमरा दुइ-जने'-आप दोनों, प्रभु कहे–भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने कहा; रूपे-रूप गोस्वामी पर; कृपा-कृपा; कर-कीजिये, काय-मने-हार्दिक रूप से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु से कहा, "आप दोनों को पूरे हृदय से रूप गोस्वामी पर कृपा करनी चाहिए।

तोमा-दुँहार कृपाते इँहार हउ तैछे शक्ति।

याते **विवरिते पारेन कृष्ण-रस-भक्ति ॥57॥**

शब्दार्थ

तोमा-दुँहार कृपाते-आप दोनों की कृपा से; इँहार-रूप गोस्वामी को, हउ-प्राप्त हो जाए; तैछे-ऐसी; शक्ति-शक्ति; याते-जिसके द्वारा; विवरिते-वर्णन करने में, पारेनसमर्थ हो जाए; कृष्ण-रस-भक्ति-भक्ति के दिव्य रस का।

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

अनुवाद

"आप दोनों की कृपा से रूप गोस्वामी इतना शक्तिशाली हो जाये कि वह भक्ति के दिव्य रस का वर्णन कर सके।"

गौड़िया, उड़िया, यत प्रभुर भक्त-गण ।

सबार हइल रूप स्नेहेर भाजन ॥ 58 ॥

शब्दार्थ

गौड़िया-बंगाल के भक्त, उड़िया-उड़ीसा के भक्त; यत-सभी, प्रभुर भक्त-गणभगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के भत; सबार-उन सभी के; हइल-बन गये; रूप-रूप गोस्वामी; स्नेहेर भाजन-प्रेम तथा स्नेह के पात्र।

अनुवाद

~~इसलिए गौड़ीय वैष्णव प्रभु चैतन्य के भक्त के स्नेह और प्रेम के पात्र बन गए, जिसमें बंगाल के और उड़ीसा के भक्त भी शामिल थे।~~

प्रतिदिन आसि' रूपे करेन मिलने ।

मन्दिरे ये प्रसाद पान, देन दुइ जने ॥59॥

शब्दार्थ

प्रतिदिन-प्रतिदिन, आसि'-आकर, रूपे-रूप गोस्वामी से; करेन मिलने-चैतन्य महाप्रभु मिलते, मन्दिरे-जगन्नाथ मन्दिर में, ये-जो कुछ भी; प्रसाद पान-प्रसाद वे प्राप्त करते; देन-दे देते; दुइ जने-उन दोनों को, श्रील रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिदिन रूप गोस्वामी से मिलने जाते और मंदिर से जो भी प्रसाद पाते, उसे वे रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर को दे देते।

इष्ट-गोष्ठी दुँहा **सने** करि' **कत-क्षण ।**

मध्याह्न **करिते प्रभु करिला गमन ॥60॥**

शब्दार्थ

इष्ट-गोष्ठी-वार्तालाप; दुँहा सने-रूप गोस्वामी तथा हरिदास के साथ; करि'-करके; कत-क्षण-कुछ समय तक, मध्य-अह्न करिते-दोपहर के नित्यकर्म करने के लिए, प्रभुश्री चैतन्य महाप्रभु; करिला गमन-चले जाते।

अनुवाद

फिर महाप्रभु उन दोनों से कुछ देर तक बातें करते और तब दोपहर के नित्य कर्म करने के लिए चले जाते।

एइ-मत प्रतिदिन प्रभुर व्यवहार ।

प्रभु-कृपा पात्रा **रूपेर आनन्द अपार ॥ 61 ॥**

शब्दार्थ

एइ-मत-इस प्रकार; प्रतिदिन-प्रतिदिन; प्रभुर व्यवहार-श्री चैतन्य महाप्रभु का व्यवहार होता; प्रभु-कृपा-चैतन्य महाप्रभु की कृपा; पात्रा-प्राप्त करके; रूपेर-श्रील रूप गोस्वामी को, आनन्द अपार-असीम आनन्द की अनुभूति हुई।

अनुवाद

इस तरह प्रतिदिन उनके साथ चैतन्य महाप्रभु का व्यवहार चलता रहा। इस प्रकार महाप्रभु की दिव्य कृपा पाकर श्रील रूप गोस्वामी को अपार आनन्द हुआ।

भक्त-गणा लञा कैला गुण्डिचा मार्जन ।

आइटोटा आसि' कैला वन्य-भोजन ॥ 62 ॥

शब्दार्थ

भक्त-गण-सभी भक्तों को; लञा-लेकर, कैला-किया; गुण्डिचा मार्जनगुण्डिचा मन्दिर की सफाई तथा धुलाई, आइटोटा आसि'-निकटवर्ती आइटोटा नामक बगीचे में आकर, कैला-किया; वन्य-भोजन-बगीचे में वनभोज।

अनुवाद

अपने सारे भक्तों को साथ लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने गुण्डिचा मन्दिर की सफाई तथा धुलाई की और बाद में आइटोटा नामक बगीचे में गये और वहीं पर वन्य-भोजन के रूप में उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया।

प्रसाद खाय, 'हरि' बले सर्व-भक्त-जन ।

देखि' हरिदास-रूपेर हरषित मन ॥ 63 ॥

शब्दार्थ

प्रसाद खाय-प्रसाद ग्रहण करते हुए; हरि बले-हरि के पवित्र नाम का गान करते; सर्व-भक्त-जन-सभी भक्तों को; देखि'-यह देखकर, हरिदास-हरिदास, रूपेर-तथा रूप गोस्वामी के; हरषित-आनन्दित हो गये, मन-मन।

अनुवाद

जब हरिदास ठाकुर तथा रूप गोस्वामी ने देखा कि सारे भक्त प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं तथा हरि के पवित्र नाम का उच्चारण कर रहे हैं, तो वे दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुए।

गोविन्द-द्वारा प्रभुर शेष-प्रसाद पाइला ।

प्रेमे मत दुइ-जन नाचिते लागिला ॥64॥

शब्दार्थ

गोविन्द-द्वारा-गोविन्द द्वारा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; शेष-प्रसाद-शेष प्रसाद; पाइला-प्राप्त करके; प्रेमे मत-भावविभोर होकर, दुइ-जन-वे दोनों, नाचिते लागिलानाचने लगे।

अनुवाद

जब उन्होंने गोविन्द के हाथों से श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रसाद का अवशेष प्राप्त किया, तो उन्होंने उसको सादर ग्रहण किया और तब दोनों ही भावविभोर होकर नाचने लगे।

आर दिन प्रभु रूपे मिलिया वसिला ।

सर्वज्ञ-शिरोमणि प्रभु कहिते लागिला ॥ 65॥

शब्दार्थ

आर दिन-अगले दिन, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, रूपे-श्रील रूप गोस्वामी के साथ; मिलिया-मिलकर; वसिला-बैठे; सर्व-ज्ञ-शिरोमणि-सर्वज्ञों में सर्वश्रेष्ठ, श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, कहिते लागिला–कहने लगे।

अनुवाद अगले दिन जब श्री चैतन्य महाप्रभु श्रील रूप गोस्वामी को मिलने गये, तब सर्वज्ञ महाप्रभु इस प्रकार बोले।

‘कृष्णेरे बाहिर नाहि करिह व्रज हैते ।

व्रज छाड़ि’ कृष्ण कभुना यान काहाँते ॥ 66॥

शब्दार्थ

कृष्णेरे-कृष्ण को; बाहिर-बाहर; नाहि-मत, करिह-ले जाओ, व्रज हैते वृन्दावन से; व्रज छाड़ि’-वृन्दावन को छोड़कर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कभु-किसी भी समय; ना-नहीं, यान-जाते; काहाँते-कहीं भी।

अनुवाद

“कृष्ण को वृन्दावन से बाहर ले जाने का प्रयास मत करो, क्योंकि वे कभी भी अन्यत्र नहीं जाते।”

कृष्णोऽन्यो यदु-सम्भूतो यः पूर्णः सोऽस्त्यतः परः ।

वृन्दावनं परित्यज्य स क्वचित्रैव गच्छति ॥67॥

शब्दार्थ

कृष्णः-भगवान् कृष्ण; अन्यः-अन्य (भगवान् वासुदेव); यदु-सम्भूतः-यदुकुल में जन्मे; यः-जो; पूर्णः-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण; सः-वे; अस्ति-हैं; अतः-उनसे (वासुदेव से); पर:-भिन्न, वृन्दावनम्-वृन्दावन नामक स्थान; परित्यज्य-छोड़कर; सःवे; क्वचित्-कभी भी, न एव गच्छति-नहीं जाते।

अनुवाद

"यदुकुमार नाम से विख्यात कृष्ण वासुदेव कृष्ण हैं। वे उन कृष्ण से भिन्न हैं, जो नन्द महाराज के पुत्र हैं। यदुकुमार कृष्ण अपनी लीलाएँ मथुरा तथा द्वारका नगरों में प्रकट करते हैं, किन्तु नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण कभी भी वृन्दावन नहीं छोड़ते।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत लघुभागवतमृत (1.5.461) में पाया जाता है।

एत कहि' महाप्रभु मध्याहे चलिला ।

रूप-गोसाञि मने किछु विस्मय हइला ॥ 68 ॥

शब्दार्थ

एत कहि'-यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मध्य-अहेचलिला–मध्याह्न कृत्य करने के लिए चले गये; रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी के; मने-मन में, किछु-कुछ; विस्मय हइला-आश्चर्य हुआ।

अनुवाद

यह कहकर चैतन्य महाप्रभु दोपहर के कृत्य करने चले गये और श्रील रूप गोस्वामी आश्चर्यचकित से रह गये।

"पृथक् नाटक करिते सत्यभामा आज्ञा दिल ।

जानिलु, पृथक् नाटक करिते प्रभु-आज्ञा हैल ॥ 69 ॥

शब्दार्थ

पृथक् नाटक-भिन्न नाटक; करिते-लिखने का; सत्यभामा–सत्यभामा ने; आज्ञा दिल-आदेश दिया था; जानिलु-अब मैं समझ गया; पृथक् नाटक-पृथक् नाटक; करिते-लिखने का; प्रभु-आज्ञा-महाप्रभु का आदेश, हैल-हुआ।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने सोचा, "सत्याभामा ने मुझे अलग-अलग दो नाटक लिखने का आदेश दिया है। अब मैं समझा कि इस आदेश की पुष्टि श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा हो गई है।

पूर्वे दुइ नाटक छिल एकत्र रचना ।

दुहू-भाग करिएबे करिमु घटना ॥70॥

शब्दार्थ

पूर्वे-पहले, दुइ नाटक-दो नाटक; छिल-थे; एकत्र-एक साथ; रचना-लिखित; दुइ-भाग करि-दो भाग करके; एबे-अब, करिमु घटना-मैं घटनाएँ लिखूँगा।

अनुवाद

"पहले मैंने दो नाटकों को एक ही रचना के रूप में लिखा। अब मैं इसे विभाजित करूँगा और उन घटनाओं का वर्णन दो अलग ग्रन्थों में करूँगा।"

दुइ 'नान्दी' 'प्रस्तावना', दुइ 'संघटना' ।

पृथक्करिया लिखि करिया भावना ॥71॥

शब्दार्थ

दुइ नान्दी-दो नान्दी; प्रस्तावना-प्रस्तावनाएँ, दुइ-दो; संघटना-घटनाओं के क्रम; पृथक् करिया-पृथक् करके; लिखि-मैं लिखूँगा; करिया भावना-उन पर विचार करके।

अनुवाद

"मैं दो अलग-अलग नान्दी और दो अलग-अलग प्रस्तावनाएँ लिखूँगा। मैं इस विषय में गम्भीरता से विचार करके घटनाओं का दो अलग-अलग वर्गों में वर्णन करूँगा।"

तात्पर्य

दो ग्रन्थ हैं विदग्ध माधव तथा ललित माधवा विदग्ध माधव में वृन्दावन लीलाओं का और ललित माधव में द्वारका तथा मथुरा की लीलाओं का वर्णन हुआ है।

रथ-यात्राय जगन्नाथ दर्शन करिला ।

रथ-अग्रे प्रभुर नृत्य-कीर्तन देखिला ॥72॥

शब्दार्थ

रथ-यात्राय-रथयात्रा उत्सव के दौरान, जगन्नाथ-भगवान् जगन्नाथ के; दर्शन करिला-उन्होंने दर्शन किये, रथ-अग्रे-रथ के सामने; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; नृत्य-नृत्य, कीर्तन-कीर्तन; देखिला-देखा।

अनुवाद

रथयात्रा उत्सव के समय रूप गोस्वामी ने भगवान् जगन्नाथ के दर्शन किये। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को रथ के आगे नाचते और कीर्तन करते भी देखा।

प्रभुर नृत्य-श्लोक शुनि' श्री-रूप-गोसाञि ।

सेइ श्लोकार्थ लञा श्लोक करिला तथाइ ॥ 73 ॥

शब्दार्थ

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा; नृत्य-श्लोक–नृत्य करते हुए उच्चारित श्लोक; शुनि'-सुनते ही, श्री-रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी ने; सेइ श्लोक-अर्थ-उसी श्लोक का अर्थ, लञा-ग्रहण करके, श्लोक करिला-एक अन्य श्लोक की रचना कर दी; तथाइ-उसी समय।

अनुवाद

जब रूप गोस्वामी ने उस उत्सव में श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उच्चारित एक श्लोक सुना, तो उन्होंने तुरन्त ही उसी विषय से सम्बन्धित एक अन्य श्लोक रच दिया।

पूर्वे सेइ सब कथा करियाछि वर्णन ।

तथापि कहिये किछु सङ्क्षेपे कथन ॥74॥

शब्दार्थ

पूर्वे-पहले से; सेइ-इन, सब-सब; कथा-घटनाओं का; करियाछि वर्णन-मैं वर्णन कर चुका हूँ; तथापि-फिर भी; कहिये-करना चाहता हूँ किछु-कुछ; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कथन-वर्णन।

अनुवाद

मैं पहले ही इन घटनाओं का वर्णन कर चुका हूँ, तो भी मैं संक्षेप में कुछ और कहना चाहता हूँ।

सामान्य एक श्लोक प्रभु पड़ेन कीर्तने ।

केने श्लोक पड़े-इहा केह नाहि जाने ॥ 75॥

शब्दार्थ

सामान्य–सामान्यतया; एक–एक; श्लोक–श्लोक; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; पड़ेन-पाठ करते थे, कीर्तने-कीर्तन करते समय, केने-क्यों, श्लोक-उस श्लोक को, पड़े-पढ़ते थे; इहा-इसे; केह नाहि जाने-कोई नहीं जानता था।

अनुवाद

सामान्यतया रथ के सामने नृत्य तथा कीर्तन करते समय श्री चैतन्य महाप्रभु एक श्लोक का पाठ किया करते थे। किन्तु कोई यह नहीं जानता कि वे उस विशेष श्लोक को क्यों पढ़ते थे।

सबे एका स्वरूप गोसाञि श्लोकेर अर्थ जाने ।

श्लोकानुरूप पद प्रभुके करान आस्वादने ॥76॥

शब्दार्थ

सबे-केवल एका–एकमात्र; स्वरूप गोसाञि–स्वरूप दामोदर गोस्वामी श्लोकेर अर्थ-उस श्लोक का अर्थ, जाने-जानते थे, श्लोक-अनुरूप पद-उस विशिष्ट श्लोक के भाव के अनुरूप अन्य श्लोक उद्धृत करते; प्रभुके–श्री चैतन्य महाप्रभु की; करान-करवाने के लिए; आस्वादने-आस्वादन।

अनुवाद

एकमात्र स्वरूप दामोदर गोस्वामी उस अभिप्राय को जानते थे, जिसके हेतु महाप्रभु वह श्लोक सुनाया करते थे। महाप्रभु के मनोभाव के अनुसार स्वरूप दामोदर गोस्वामी अन्य श्लोक उद्धृत करते थे, जिससे महाप्रभु रस का आस्वादन कर सकें।

रूप-गोसाञि प्रभुर जानिया अभिप्राय ।

सेइ अर्थे श्लोक कैला प्रभुरे ये भाय ॥77॥

शब्दार्थ

रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी, प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; जानिया-जान गये; अभिप्राय-मन्तव्य को; सेइ अर्थे-उसी अर्थानुरूप; श्लोक-एक श्लोक की; कैला-रचना की; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; ये-जो; भाय-अच्छा लगा।

अनुवाद

किन्तु रूप गोस्वामी महाप्रभु के उद्देश्य को समझ गये और उन्होंने एक दूसरा श्लोक रचा, जो श्री चैतन्य महाप्रभु को अच्छा लगा।

यः कौमार-हरः स एव हि वरस्ता एव चैत्र-क्षपास् ते

चोन्मीलित-मालती-सुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बानिलाः ।

सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरत–व्यापार-लीला-विधौ।

रेवा-रोधसि वेतसी-तरु-तले चेतः समुत्कण्ठते ॥78॥

शब्दार्थ

य-वही व्यक्ति, कौमार-हरः-युवावस्था में मेरा हृदय चुरानेवाला, सः-वहीं, एव हि-निश्चित रूप से; वरः-प्रेमी; ताः-ये; एव-अवश्य ही; चैत्र-क्षपाः-चैत्र मास की चाँदनी रातें, ते-वे; च-तथा; उन्मीलित-खिले हुए मालती-मालती फूलों की; सुरभयः-सुगन्ध; प्रौढ़ाः-विकसितः; कदम्ब-कदम्ब पुष्पं की सुगन्ध से युक्त; अनिलाःवायु, सा-वह; च-तथा; एव-निश्चय ही; अस्मि-मैं हूँ, तथा अपि-फिर भी; तत्रवहाँ, सुरत-व्यापार-अन्तरंग सम्बन्ध में, लीला-लीलाओं के; विधौ-सम्बन्ध में, रेवा-रेवा नामक नदी के; रोधसि-किनारे; वेतसी-वेतसी नामक; तरु-तले-वृक्ष के नीचे; चेतः-मेरा मन; समुत्कण्ठते-उत्कण्ठा से व्याकुल है।

अनुवाद

“जिस व्यक्ति ने मेरी युवावस्था में मेरा हृदय चुराया था, अब पुनः वह मेरा स्वामी है। ये चैत्र मास की चाँदनी से पूर्ण वही रातें हैं। मालती फूलों की वही सुगन्ध है और कदम्ब के वन से वही मधुर मन्द वायु बह रही है। घनिष्ठ सम्बन्ध में, मैं भी वही प्रेमिका हूँ, फिर भी मेरा मन यहाँ प्रसन्न नहीं है। मैं रेवा के तट पर वेतसी वृक्ष के नीचे उसी स्थान पर लौट जाने केलिए उत्सुक हूँ। यही मेरी इच्छा है।”

तात्पर्य

इस श्लोक का उच्चारण श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा किया गया है।

प्रियः सोऽयं कृष्णः सह-चरि कुरु-क्षेत्र-मिलितस्

तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गम-सुखम् ।

तथाप्यन्तः-खेलन्मधुर-मुरली-पञ्चम-जुषे

मनो मे कालिन्दी-पुलिन-विपिनाय स्पृहयति ॥ 79 ॥

शब्दार्थ

प्रियः-अत्यन्त प्रिय; सः-वे; अयम्-यह; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; सह-चरि–हे मेरी प्रिय सखी, कुरु-क्षेत्र-मिलितः-जो सब कुरूक्षेत्र में मिले हैं; तथा-तथा; अहम्-मैं; सा-वही; राधा-राधारानी हूँ; तत्–वही; इदम्–यह; उभयोः–हम दोनों के; सङ्गमसुखम्-मिलन का आनन्द; तथा अपि-फिर भी; अन्तः-भीतर; खेलन्-विहार; मधुर-मधुर; मुरली-मुरली का; पञ्चम-पंचम स्वर; जुषे-आनन्द देने वाला; मनःमन; मे-मेरा; कालिन्दी-यमुना के; पुलिन-किनारे; विपिनाय-वृक्षों के नीचे; स्पृहयति-इच्छा कर रहा है।

अनुवाद

"हे प्रिय सखी, अब मैं इस कुरुक्षेत्र में अपने अत्यन्त पुराने तथा प्रिय मित्र कृष्ण से मिली हूँ। मैं वही राधारानी हूँ और हम अब मिल रहे हैं। यह अत्यन्त सुहावना है, किन्तु तो भी मैं यमुना-तट के वन के वृक्षों के नीचे जाना चाहती हूँ। मैं वृन्दावन के जंगल के भीतर उनकी मधुर वंशी से पंचम स्वर निकलते सुनना चाहती हूँ।"

तात्पर्य

यह श्रील रूप गोस्वामी द्वारा विरचित श्लोक है। यह उनकी पुस्तकपट्ट/वली (386) में सम्मिलित है।

ताल-पत्रे श्लोक लिखि' चालेते राखिला ।

समुद्र-स्नान करिबारे रूप-गोसाञि गेला ॥ 80॥

शब्दार्थ

ताल-पत्रे-ताल पत्र पर; श्लोक-वह श्लोक, लिखि'-लिखकर, चालेते-कुटिया की छत पर, राखिला-रख दिया; समुद्र-स्नान-समुद्र में स्नान; करिबारे-करने के लिए, रूप-गोसाञि-रूप गोस्वामी, गेला-चले गये।

अनुवाद

ताड़ के एक पत्ते पर इस श्लोक को लिखने के बाद रूप गोस्वामी ने इसे अपनी कुटिया की छत में कहीं रख दिया और वे समुद्र-स्नान करने चले गये।

हेन-काले प्रभु आइला ताँहारे मिलिते ।

चाले श्लोक देखि प्रभु लागिला पड़िते ॥ 81 ॥

शब्दार्थ

हेन-काले-उसी समय; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला-वहाँ पहुँचे; ताँहारे मिलिते-उनसे मिलने के लिए, चाले-कुटिया की छत पर; श्लोक-श्लोक; देखिदेखकर, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; लागिला-लगे; पड़िते-पढ़ने।

अनुवाद

उसी समय श्री चैतन्य महाप्रभु उनसे वहाँ मिलने आये और जब उन्होंने छत में रखे ताड़-पत्र को देखा और उन्हें श्लोक दिखाई दिया, तो वे उसे पढ़ने लगे।

श्लोक पड़ि' प्रभु सुखे प्रेमाविष्ट हैला ।

हेन-काले रूप-गोसाञि स्नान करि' आइला ॥ 82 ॥

शब्दार्थ

श्लोक पड़ि'-उस श्लोक को पढ़कर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, सुखे-अत्यन्त आनन्द से; प्रेम-आविष्ट हैला-प्रेम भावाभिभूत हो गये; हेन-काले-उसी समय, रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी; स्नान करि'-स्नान करके; आइला-वापस लौटे।

अनुवाद

यह श्लोक पढ़कर श्री चैतन्य महाप्रभु आनन्दमय प्रेम से अभिभूत हो गये। उसी समय समुद्र-स्नान करके रूप गोस्वामी लौटे।

प्रभु देखि' दण्डवत्प्राङ्गणे पड़िला ।

प्रभु ताँरे चापड़ मारि' कहते लागिला ॥ 83 ॥

शब्दार्थ

प्रभु देखि'-वहाँ महाप्रभु को देखकर, दण्डवत्-दण्डवत् प्रणाम; प्राङ्गणे–आँगन में, पड़िला-गिर गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ताँरे-रूप गोस्वामी को, चापड़ मारि'-एक हल्की चपत लगाकर, कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

महाप्रभु को देखकर श्री रूप गोस्वामी नमस्कार करने के लिए आँगन में दंड की तरह गिर पड़े। महाप्रभु ने प्रेम से उन्हें एक हल्की चपत लगाई और इस प्रकार बोले।

'गूढ़ मोर हृदय तुञि जानिला केमने?' ।

एत कहि' रूपे कैला दृढ़ आलिङ्गने ॥ 84॥

शब्दार्थ

गूढ़-अत्यन्त गोपनीय, मोर-मेरा; हृदय-हृदय, तुञि-तुमने, जानिला-जान लिया; केमने-कैसे; एत कहि'-ऐसा कहकर, रूपे-रूप गोस्वामी का; कैला-किया; दृढ़ आलिङ्गने-प्रगाढ़ आलिंगन।

अनुवाद

"मेरा हृदय अत्यन्त गोपनीय है। तुमने किस तरह मेरे मन को जान लिया?" यह कहकर उन्होंने रूप गोस्वामी का गाढ़ आलिंगन किया।

सेइ श्लोक लञा प्रभु स्वरूपे देखाइला ।

स्वरूपेर परीक्षा लागि' ताँहारे पुछिला ॥ 85॥

शब्दार्थ

सेइ श्लोक-वही श्लोक; लञा-लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; स्वरूपे देखाइला-स्वरूप दामोदर को दिखाया; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर को; परीक्षा लागि'- परीक्षा करने के उद्देश्य से, ताँहारे पुछिला-महाप्रभु ने उससे पूछा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वह श्लोक ले लिया और उसे स्वरूप दामोदर को परीक्षा करने के लिए दिखलाया। तब उन्होंने उनसे पूछा।

'मोर अन्तर-वार्ता रूप जानिल केमने?'।

स्वरूप कहे-जानि, कृपा करियाछ आपने ॥ 86॥

शब्दार्थ

मोर अन्तर-वार्ता-मेरे आन्तरिक मनोभावों को; रूप-रूप गोस्वामी; जानिल-जान गया; केमने-कैसे; स्वरूप कहे-स्वरूप ने उत्तर दिया; जानि-मैं यह समझ सकता हूँ, कृपा करियाछ-आपने अपनी कृपा प्रदान की है; आपने-स्वयं ही।

अनुवाद

"रूप गोस्वामी किस तरह मेरे मन को समझ सका?" महाप्रभु ने पूछा। स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया, "मेरी समझ में तो यही आता है कि आपने पहले ही उस पर अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान कर दी है।"

अन्यथा ए अर्थ कार नाहि हय ज्ञान।

तुमि पूर्वे कृपा कैला, करि अनुमान ॥87॥

शब्दार्थ

अन्यथा-अन्यथा; ए अर्थ-यह गूढ़ अर्थ, कार-किसी को, नाहि-नहीं, हय-होता; ज्ञान-ज्ञान; तुमि-आपने; पूर्व-पहले से ही, कृपा कैला-कृपा कर दी है; करि अनुमान-मेरा यह अनुमान है।

अनुवाद

"अन्यथा इस अर्थ को कोई नहीं समझ सकता था। इसलिए मेरा अनुमान है कि आपने इसके पूर्व उस पर अपनी अहैतुकी कृपा कर दी है।"

प्रभु कहे,—"इँहो आमाय प्रयागे मिलिल।

योग्य-पात्र जानि इँहाय मोर कृपा त' हइल" ॥ 88॥

शब्दार्थ

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; इँहो-रूप गोस्वामी; आमाय-मुझसे; प्रयागे-प्रयाग में, मिलिल-मिला था, योग्य-पात्र जानि-उसे एक योग्य पात्र जानकर; इँहाय-उस पर; मोर-मेरी, कृपा त' हइल-कृपा हो गई।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "रूप गोस्वामी मुझसे प्रयाग में मिला था। उसे उपयुक्त व्यक्ति जानकर मैंने स्वभावत: उस पर अपनी कृपा कर दी थी।"

तबे शक्ति सञ्चारि' आमि कैलुँ उपदेश ।

तुमिह कहिओ इहाँय रसेर विशेष" ॥ 89 ॥

शब्दार्थ

तबे-तब; शक्ति सञ्चारि'-अपनी दिव्य शक्ति से युक्त करके; आमि-मैंने, कैलुँ उपदेश-उपदेश दिया; तुमिह-तुम भी, कहिओ-उपदेश दो, इहाँय-उसे; रसेर विशेषदिव्य रसों के विषय में विशिष्ट जानकारी।

अनुवाद

"तब मैंने उसे अपनी दिव्य शक्ति भी प्रदान की। अब तुम भी उसे, विशेष करके दिव्य रसों के विषय में उपदेश दो।"

स्वरूप कहे-"याते एइ श्लोक देखिलुँ ।

तुमि करियाछ कृपा, तबँहि जानिलु" ॥ 90॥

शब्दार्थ

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहा; याते-क्योंकि, एइ श्लोक-यह श्लोक; देखिलुँ-मैंने देख लिया है; तुमि-आपने; करियाछ कृपा-अपनी कृपा प्रदान की है; तबँहि-तुरन्त ही; जानिलु-मैं समझ गया।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने कहा, "जैसे ही मैंने इस श्लोक की अद्वितीय रचना देखी, मैं तुरन्त समझ गया कि आपने उसे अपनी विशेष कृपा प्रदान की है।"

फलेन फल-कारणमनुष्मीयते ॥91॥

शब्दार्थ

फलेन-परिणाम द्वारा; फल-कारणम-परिणाम का कारण; अनुमीयते-अनुमान लगाया जा सकता है।

अनुवाद

"परिणाम देखकर उस परिणाम के कारण को समझा जा सकता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक न्याय सिद्धान्त से लिया गया है।

स्वर्गापगा-हेम-मृणालिनीनां

नाना-मृणालाग्र-भुजो भजामः ।

अन्नानुरूपां तनु-रूप-ऋद्धिं

कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते ॥92॥

शब्दार्थ

स्वर्ग-अपगा-देव लोकों में बहने वाली गंगा के जल का; हेम-स्वर्णिम; मृणालिनीनाम्-कमल पुष्पों के; नाना-अनेक प्रकार के; मृणाल-अग्र-भुज:-जो उन पुष्पों के डंठलों के अग्र भाग को खाते हैं (जिसे मखाना कहा जाता है); भजाम:-हमें प्राप्त है; अन्न-अनुरूपाम्-अन्न के ही अनुरूप; तनु-रूप-ऋद्धिम्-प्रचूर शारीरिक सुन्दरता; कार्यम्-प्रभाव अथवा परिणाम;; निदानात्-कारण से; हि-अवश्य ही; गुणान्-गुणों को; अधीते-प्राप्त करता है।

अनुवाद

"स्वर्ग में बहने वाली गंगा नदी सुनहरे कमल के फूलों से पूर्ण है और उस लोक के निवासी हम फूलों के डंठलों को खाते हैं। इसीलिए हम अन्य किसी लोक के निवासियों की अपेक्षा अधिक सुन्दर हैं। यह कार्य-कारण नियम के फलस्वरूप है, क्योंकि यदि सत्वगुणी भोजन किया जाता है, तो सत्वगुण उसके शरीर का सौन्दर्य बढ़ा देता है।"

तात्पर्य

मनुष्य की शारीरिक कान्ति तथा सौन्दर्य, उसका गठन, उसके कार्य तथा गुण कार्य-कारण नियम पर आधारित हैं। भौतिक प्रकृति में तीन गुण होते हैं और जैसाकि भगवद्गीता (13.22) में कहा गया है-कारण गुणसङ्गेऽस्य सदसद्योनिजन्मसु-मनुष्य भौतिक प्रकृति के गुणों के साथ अपने पूर्व संसर्ग के अनुसार अच्छे या बुरे परिवार में जन्म लेता है। इसलिए जो व्यक्ति दिव्य सिद्धि-कृष्णभावनामृत-प्राप्त करने का इच्छुक है, उसे कृष्ण-प्रसाद खाना चाहिए। ऐसा भोजन सात्विक होता है, किन्तु जब वह कृष्ण को अर्पित किया जाता है, तो वह दिव्य बन जाता है। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन कृष्णप्रसाद वितरित करता है और जो लोग ऐसा दिव्य भोजन खाते हैं, वे निश्चित रूप से भगवद्भक्त बन जाते हैं। यह अत्यन्त वैज्ञानिक विधि है, जैसाकि नलनैषध के इस श्लोक (3.17) में कहा गया है काय निदान/द्ध गुण/ अधीते/ यदि व्यक्ति अपने सारे कार्यों में सत्वगुण पर दृढ़ रहता है, तो वह निश्चित रूप से अपनी सुप्त कृष्ण-चेतना को विकसित कर लेगा और अन्ततः भगवान् कृष्ण का शुद्ध भक्त बन जायेगा। दुर्भाग्यवश आज समाज के नेताओं के, विशेषतया सरकारी नेताओं के, शारीरिक गठन दूषित हैं। श्रीमद्भागवत (12.1.40) में कहा गया है :

असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसावृताः ।

प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरुपिणः ॥

ऐसे नेताओं के पास अपने खान-पान को शुद्ध करने का कोई अवसर नहीं है। राजनीतिक लोग परस्पर मिलते हैं और मद्यपान करके शुभ कामनाओं का आदान-प्रदान करते हैं। यह इतना दूषित तथा पापमय वातावरण है कि शराबी तथा मांसाहारी लोग स्वभावतः तमोगुणी अधम मनोवृत्ति विकसित कर लेते हैं। विभिन्न गुणों में भोजन करने की विधियाँ भगवद्गीता में बतलाई गई हैं, जिनमें यह बताया गया है कि जो चावल, गेहूँ, सब्जी, दूध की वस्तुएँ, फल तथा चीनी खाते हैं, वे उच्च सत्वगुण में स्थित होते हैं। इसलिए यदि हम सुखी तथा शान्त राजनीतिक स्थिति चाहते हैं, तो हमें ऐसे नेता चुनने चाहिए, जो कृष्ण-प्रसाद खाते हों। अन्यथा नेतागण मांस खायेंगे और मदिरा पीयेंगे और इस तरह वे असस्कृत तथा क्रियाहीन होंगे अर्थात् आध्यात्मिक व्यवहार से हीन होंगे। दूसरे शब्दों में, वे म्लेच्छ तथा यवन होंगे अर्थात् वे जो आदतों में अपवित्र बिगड़े हुए होंगे। ऐसे लोग कर लगाकर यथासम्भव नागरिकों का शोषण करते हैं और इस तरह नागरिकों को लाभ दिलाने के स्थान पर उनका भक्षण करते हैं। इसलिए यदि ऐसे ही अशुद्ध म्लेच्छ तथा यवन सरकार को चलायेंगे, तो हम कुशल सरकार की आशा नहीं कर सकते।

चातुर्मास्य रहि' गौड़े वैष्णव चलिला ।

रूप-गोसाञि महाप्रभुर चरणे रहिला ॥93॥

शब्दार्थ

चातुर्मास्य रहि'–चातुर्मास्य के चार मास तक रहकर; गौडे-बंगाल; वैष्णव-सारे भक्त; चलिला-लौट गये; रूप–गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी, महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे-चरणों की शरण में, रहिला-रह गये।

अनुवाद

चातुर्मास्य के चार महीनों (श्रावण, भाद्र, आश्विन तथा कार्तिक) के बाद बंगाल के सारे वैष्णव अपने-अपने घर लौट गये, किन्तु श्रील रूप गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण में जगन्नाथ पुरी में ही रहे।

एक-दिन रूप करेन नाटक लिखन ।

आचम्बिते महाप्रभुर हैल आगमन ॥ 94॥

शब्दार्थ

एक-दिन-एक दिन; रूप-रूप गोस्वामी, करेन-कर रहे थे; नाटक-नाटक (अपनी पुस्तक); लिखन-रचना, आचम्बिते-अचानक ही; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का, हैल-हो गया; आगमन-आगमन।

अनुवाद

एक दिन जब रूप गोस्वामी अपनी पुस्तक लिख रहे थे, तब श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ सहसा प्रकट हुए।

सम्भ्रमे दुँहे उठि' दण्डवत् हैला ।

दुँहे आलिङ्गिया प्रभु आसने वसिला ॥95॥

शब्दार्थ

सम्भ्रमे-अत्यधिक सम्मानपूर्वक; दुँहे-हरिदास ठाकुर और रूप गोस्वामी, उठि'- उठकर, दण्डवत् हैला-प्रणाम करने के लिए भूमि पर दण्डवत् गिर गये; दुँहे-दोनों को; अङ्गिया–गले लगाकर, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, आसने वसिला-आसन पर बैठ

अनुवाद

जैसे ही हरिदास ठाकुर तथा रूप गोस्वामी ने महाप्रभु को आते देखा, वे दोनों खड़े हो गये और वे उन्हें सादर नमस्कार करने के लिए दण्डवत् भूमि पर गिर गये। श्री चैतन्य महाप्रभु ने दोनों का आलिंगन किया और बैठ गये।

'क्या पुंथि लिख?' बलि' एक-पत्र निला ।

अक्षर देखिया प्रभु मने सुखी हैला ॥ 96॥

शब्दार्थ

क्या-किस प्रकार की; पुंथि-पुस्तक; लिख-तुम लिख रहे हो; बलि'-यह कहकर, एक-पत्र निला-तालपत्र पर लिखा हुआ एक पत्र उठाया; अक्षर-सुन्दर लिखाई; देखियादेखकर, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, मने-मन में, सुखी हैला-अत्यन्त आनन्दित हुए।

अनुवाद

महाप्रभु ने पूछा, "तुम किस तरह की पुस्तक लिख रहे हो?" उन्होंने एक ताड़-पत्र उठाया, जो पाण्डुलिपि का पन्ना था और जब महाप्रभु ने सुन्दर हस्तलिपि देखी, तो उनका मन अतीव प्रसन्न हो गया।

श्री-रूपेर अक्षर-येन मुकुतार पाँति ।

प्रीत हञा करेन प्रभु अक्षरेर स्तुति ॥ 97॥

शब्दार्थ

श्री-रूपेर अक्षर-श्री रूप गोस्वामी की लिखावट; येन-की भाँति है; मुकुतार पाँति-मोतियों की पंक्ति; प्रीत हञा-प्रसन्न होकर, करेन-करने लगे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; अक्षरेर स्तुति-श्रील रूप गोस्वामी की लिखावट की प्रशंसा।

अनुवाद

इस तरह प्रसन्न होकर महाप्रभु ने यह कहते हुए लिखावट की प्रशंसा की, "रूप गोस्वामी की हस्तलिपि मोतियों की पंक्तियों की तरह है।"

सेइ पत्रे प्रभु एक श्लोक ये देखिला ।

पड़ितेइ श्लोक, प्रेमे आविष्ट हइला ॥ 98 ॥

शब्दार्थ

सेइ पत्रे-उस ताल पत्र पर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; एक श्लोक–एक श्लोक; ये-जो; देखिला-देखा, पड़ितेइ-पढ़कर; श्लोक-वह श्लोक, प्रेमे-भावमय प्रेम से; आविष्ट हइला-अभिभूत हो गये।

अनुवाद

उस हस्तलिपि को पढ़ते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस पृष्ठ पर एक श्लोक देखा और ज्योंही उन्होंने उसे पढ़ा, वे भावमय प्रेम से अभिभूत हो गये।

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावली-लब्धये

कर्ण-क्रोड़-कडुम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम् ।

चेतः-प्राङ्गण-सङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां

नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्ण-द्वयी ॥ 99 ॥

शब्दार्थ

तुण्डे-मुख में, ताण्डविनी-नृत्य करता है; रतिम्-इच्छा; वितनुते-बढ़ाता है; तुण्ड-आवली-लब्धये-अनेक मुख प्राप्त करने की; कर्ण-कान के; क्रोड़-छिद्र में, कड़म्बिनी-प्रस्फुटित होता है; घटयते-उत्पन्न करता है; कर्ण-अर्बुदेभ्यः स्पृहाम्-लाखों कान प्राप्त करने की इच्छा; चेतः-प्राङ्गण-हृदय के ऑगन में; सङ्गिनी-संगी बनकर; विजयते-जीत लेता है; सर्व-इन्द्रियाणाम्-सभी इन्द्रियों के; कृतिम्-कार्यकलापों को; न उ-नहीं, जाने-मैं जानता, जनिता-उत्पन्न करता है; कियद्भिः-कितनी मात्रा में, अमृतैः-अमृत द्वारा; कृष्ण-कृष्ण नाम; इति-ये; वर्ण-द्वयी-दो अक्षर।

अनुवाद

"मैं नहीं जानता हूँ कि 'कृष्-ण' के दो अक्षरों ने कितना अमृत उत्पन्न किया है। जब कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण किया जाता है, तो यह मुख के भीतर नृत्य करता प्रतीत होता है। तब हमें अनेकानेक मुखों की इच्छा होने लगती है। जब वही नाम कानों के छिद्रों में प्रविष्ट होता है, तो हमारी इच्छा करोड़ों कानों के लिए होने लगती है। और जब यह नाम हृदय के आँगन में नृत्य करता है, तब यह मन की गतिविधियों को जीत लेता है, जिससे सारी इन्द्रियाँ जड़ हो जाती हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (1.15) में सन्निहित है। इस सात अध्यायों वाले नाटक की रचना श्रील रूप गोस्वामी ने की है, जिसमें कृष्ण की वृन्दावन लीलाओं का वर्णन हुआ है।

श्लोक शुनि हरिदास हइला उल्लासी ।

नाचिते लागिला शलोकेर अर्थ प्रशंसि' ॥ 100 ॥

श्लोक शुनि'-यह श्लोक सुनकर, हरिदास-हरिदास ठाकुर, हइला उल्लासी–अत्यन्त आनन्दविभोर हो गये, नाचिते लागिला-वे नाचने लगे, श्लोकेर-श्लोक के; अर्थ प्रशंसि'-अर्थ की प्रशंसा करते हुए।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह श्लोक पढ़ा, तो हरिदास ठाकुर उस ध्वनि को सुनकर अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठे तथा इसके अर्थ की प्रशंसा करते हुए नाचने लगे।

कृष्ण-नामेर महिमा शास्त्र-साधु-मुखे जानि ।

नामेर माधुरी ऐछे काहाँ नाहि शुनि ॥ 101॥

कृष्ण–नामेर महिमा–भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम की महिमा; शास्त्र-प्रामाणिक शास्त्रों, साधु-साधुओं के; मुखे-मुख से; जानि-हम समझ सकते हैं; नामेर माधुरीपवित्र नाम की मधुरता, ऐछे-इस प्रकार से, काहाँ-और कहीं भी, नाहि शुनि-हम नहीं सुनते।

अनुवाद

भगवान् के नाम के सौन्दर्य तथा उसकी दिव्य स्थिति को भक्तों के मुख से प्रामाणिक शास्त्रों का श्रवण करके सीखना होता है। हम अन्यत्र कहीं भी भगवान् के पवित्र नाम की मधुरता को नहीं सुन सकते।

तात्पर्य

पद्मपुराण में कहा गया है—अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यम् इन्द्रियैः। भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन तथा श्रवण सामान्य इन्द्रियों द्वारा सम्पन्न नहीं किया जा सकता। भगवान् के पवित्र नाम की दिव्य ध्वनि पूर्णतया आध्यात्मिक है। अत: इसे आध्यात्मिक स्रोतों से ग्रहण किया जाना चाहिए और गुरु के मुख से सुनने के बाद ही उसका

उच्चारण किया जाना चाहिए। जो व्यक्ति हरे कृष्ण मन्त्र का उच्चारण सुनता है, उसे चाहिए कि उसे गुरु से कानों से सुनकर प्राप्त करे। श्रील सनातन गोस्वामी ने अवैष्णवों-यथा व्यवसायी अभिनेताओं तथा गायकों-द्वारा किये जाने वाले कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन को सुनने से मना किया है। यह सर्प के होठों से छुए हुए दूध के समान है, जैसाकि पद्मपुराण में कहा गया है :

अवैष्णवमुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतम् ।

श्रवणं नैव कर्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः ॥

इसलिए जहाँ तक सम्भव हो सके, कृष्णभावनामृत आन्दोलन के भक्तों को एकत्र होकर जनता के बीच कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए, जिससे कीर्तन करने वाले तथा श्रोता दोनों ही लाभान्वित हों।

तबे महाप्रभु दुँहे करि' आलिङ्गन ।

मध्याह्न करिते समुद्रे करिला गमन ॥102॥

शब्दार्थ

तबे-उसके बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; दुँहे-रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर दोनों को; करि'-करके; आलिङ्गन-आलिंगन, मध्य-अह्न करिते-अपने मध्याह्न कृत्यों के लिए; समुद्रे-समुद्र की ओर; करिला गमन-चले गये।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास तथा रूप गोस्वामी दोनो का आलिंगन किया और दोपहर के कृत्य करने के लिए समुद्र की ओर चले गये।

आर दिन महाप्रभु देखि' जगन्नाथ ।

सार्वभौम-रामानन्द-स्वरूपादि-साथ ॥ 103 ॥

सबे मिलि' चलि आइला श्री-रूपे मिलिते ।

पथे ताँर गुण सबारे लागिला कहिते ॥ 104॥

शब्दार्थ

आर दिन-अगले दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु देखि'-दर्शन करके; जगन्नाथ-मन्दिर में भगवान् जगन्नाथ के; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य, रामानन्दरामानन्द राय, स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी, साथ-के साथ, सबे मिलि'-मिलकर, चलि आइला-आ गये; श्री-रूपे मिलिते-श्रील रूप गोस्वामी से मिलने; पथे-मार्ग में, ताँर-रूप गोस्वामी के; गुण-सभी सद्गुण, सबारे-सभी अन्तरंग संगियों की; लागिला कहिते-बताने लगे।

अनुवाद

अगले दिन हमेशा की तरह भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर जाने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य, रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर से मिले। तब वे सभी मिलकर श्रील रूप गोस्वामी के पास गये और रास्ते में महाप्रभु ने उनके गुणों की अत्यधिक प्रशंसा की।

दुइ श्लोक कहि' प्रभुर हैल महा-सुख ।

निज-भक्तेर गुणा कहे हञा पञ्च-मुख ॥ 105॥

शब्दार्थ

दुइ श्लोक कहि'-दो श्लोक कहकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को, हैल-हुआ; महा-सुख-अत्यधिक आनन्द, निज-भक्तेर-अपने भत के; गुण-गुणों का; कहे-वर्णन करते हैं; हञा-मानो हो गये; पञ्च-मुख-पाँच मुख।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने दो महत्वपूर्ण श्लोक सुनाए, तो उन्हें परम सुख हुआ। इस तरह वे अपने भक्त की प्रशंसा करने लगे मानो उनके पाँच मुख हों।

तात्पर्य

जिन दो श्लोकों का उल्लेख हुआ है, वे हैं, प्रिय: सोऽयम् (79) तथा तुण्डे ताण्डविनी (99) से शुरू होने वाले श्लोक।

सार्वभौम-रामानन्दे परीक्षा करिते ।

श्री-रूपेर गुण दुँहारे लागिला कहिते ॥ 106॥

शब्दार्थ

सार्वभौम–रामानन्दे-सार्वभौम भट्टाचार्य तथा रामानन्द राय की; परीक्षा करिते-परीक्षा करने के लिए श्री-रूपेर गुण-श्रील रूप गोस्वामी के दिव्य गुणों का; दुँहारे-उन दोनों के समक्ष, लागिला कहिते-वर्णन करने लगे।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य तथा रामानन्द की परीक्षा लेने के लिए ही उनके समक्ष महाप्रभु श्री रूप गोस्वामी के दिव्य गुणों की प्रशंसा करने लगे।

'ईश्वर-स्वभावा'-भक्तेर ना लय अपराध ।

अल्प-सेवा बहुमाने आत्म-पर्यन्त प्रसाद ॥107॥

शब्दार्थ

ईश्वर-स्वभाव-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्वभाव है; भक्तेर-शुद्ध भक्त का; ना लय-गम्भीरतापूर्वक नहीं लेते; अपराध-कोई भी अपराध, अल्प-सेवा-अल्प मात्र सेवा की; बहु माने-भगवान् अत्यन्त महान् स्वीकार करते हैं; आत्म-पर्यन्त-स्वयं को देकर, प्रसाद-कृपा करते हैं।

अनुवाद

स्वभावतः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने शुद्ध भक्त के किसी अपराध को गम्भीरता से नहीं लेते। भक्त जो भी स्वल्प सेवा करता है, उसे भगवान् इतनी बड़ी सेवा के रूप में स्वीकार करते हैं कि वे अपने आपको भी अर्पित करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं, अन्य वरदानों के बारे में क्या कहा जाए।

भृत्यस्य पश्यति गुरूनपि नापराधान्

सेवां मनागपि कृतां बहुधाभ्युपैति ।

आविष्करोति पिशुनेष्वपि नाभ्यसूयां

शीलेन निर्मल-मतिः पुरुषोत्तमोऽयम् ॥ 108 ॥

शब्दार्थ

भृत्यस्य-सेवक के; पश्यति-वे देखते हैं; गुरून्-बड़े; अपि-भी; न-नहीं, अपराधान्-अपराधों को; सेवाम्-सेवा को; मनाक् अपि-कितनी ही तुच्छ; कृताम्-की गई; बहुधा-अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक; अभ्युपैति-स्वीकार करते हैं;

आविष्करोतिप्रकट करते हैं; पिशुनेषु-शत्रुओं पर भी, अपि-भी; न-नहीं; अभ्यसूयाम्-ईर्ष्यालुओं पर; शीलेन-भद्र व्यवहार द्वारा; निर्मल-मतिः-स्वभावतः शुद्ध मन वाले; पुरुष-उत्तमः-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, सर्वश्रेष्ठ पुरुष; अयम्-यह।

अनुवाद

"परम भगवान् पुरुषोत्तम के नाम से विख्यात हैं और सबसे महान् हैं। उनका मन निर्मल है। वे इतने दयालु हैं कि यदि उनका सेवक कोई बड़ा अपराध भी कर दे, तो वे उसे गम्भीरता से नहीं लेते। हाँ, यदि उनका सेवक छोटी-सी भी सेवा करता है, तो भगवान् उसे बहुत बड़ी सेवा के रूप में स्वीकार करते हैं। यदि कोई ईष्यालु व्यक्ति भगवान् की निन्दा भी करता है, तो वे उसके प्रति कभी क्रोध प्रकट नहीं करते। ऐसे हैं उनके महान् गुण।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृतासिन्धु (2.1.138) से लिया गया है।

भक्त-सङ्गे प्रभु आइला, देखि' दुइ जन ।

दण्डवत् हञा कैला चरण वन्दन ॥ 109 ॥

भक्त-सङ्ग-अन्य भक्त पार्षदों के साथ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, आइला-आये हैं; देखि'-यह देखकर; दुइ जन–रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर; दण्डवत् हञा-दण्ड की तरह भूमि पर गिरकर, कैला-किया; चरण वन्दन-उनके चरणों में वन्दन।

अनुवाद

जब हरिदास ठाकुर तथा रूप गोस्वामी ने देखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु अपने अन्तरंग भक्तों के साथ आये हैं, तो उन दोनों ने तुरन्त भूमि पर दण्ड की तरह गिरकर उनके चरणकमलों की वन्दना की।

भक्त–सङ्गे कैला प्रभु दुँहारे मिलन ।

पिण्डाते वसिला प्रभु लञा भक्त-गण ॥ 110 ॥

शब्दार्थ

भक्त-सड़े-अपने अन्तरंग पार्षदों के साथ; कैला-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; दुँहारे-दोनों (रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर) से; मिलन-मिलन, पिण्डाते-उच्च आसन पर; वसिला-बैठ गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, लञा भक्त-गण-अपने भक्तों के साथ।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके निजी भक्त रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर से मिले। तब महाप्रभु अपने भक्तों के साथ एक चबूतरे पर बैठ गये।

रूप हरिदास दुँहे वसिला पिण्डा–तले।

सब्बार आाग्रहे ना उठिला पिण्डार उपरे ॥ 111 ॥

शब्दार्थ

रूप हरिदास-रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर, दुँहे-दोनों, वसिला-बैठ गये; पिण्डा-तले-उस उच्च आसन से नीचे जिस पर श्री चैतन्य महाप्रभु बैठे थे; सबार-सभी भक्तों के; आग्रहे-आग्रह करने पर; ना उठिला-उठे नहीं, पिण्डार उपरे-उच्च आसन पर, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के साथ बैठे थे।

अनुवाद

रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर उस चबूतरे के नीचे बैठे, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु बैठे थे। यद्यपि सभी लोग उनसे महाप्रभु तथा उनके पार्षदों की बराबरी में बैठने का आग्रह कर रहे थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।

'पूर्व-श्लोक पड़, रूप,' प्रभु आज्ञा कैला।

लज्जाते ना पड़े रूप मौन धरिला ॥ 112 ॥

शब्दार्थ

पूर्व-श्लोक-पिछला श्लोक, पड़-पढ़ो, रूप-मेरे प्रिय रूप; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; आज्ञा कैला-आदेश दिया; लज्जाते-अत्यन्त शर्म के कारण; ना पड़े-नहीं पढ़ा; रूप-रूप गोस्वामी, मौन धरिला-मौन रहे।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रूप गोस्वामी को पहले वाला श्लोक पढ़ने का आदेश दिया, तो अत्यधिक लज्जावश रूप गोस्वामी ने इसे नहींपढ़ा, अपितु चुप रहे।

स्वरूप-गोसाञि तबे सेइ श्लोक पड़िल ।

शुनि' सबाकार चित्ते चमत्कार हैल ॥ 113॥

शब्दार्थ

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी, तबे-तब, सेइ-वह, श्लोक पड़िलश्लोक पढ़े, शुनि'-उसे सुनकर; सबाकार-उन सभी के, चित्ते-मनों में, चमत्कार हैलअत्यन्त आश्चर्य हुआ।

अनुवाद

तब स्वरूप गोस्वामी ने वह श्लोक सुनाया और जब सारे भक्तों ने इसे सुना, तो उनके मन आश्चर्यचकित हो उठे।

प्रियः सोऽयं कृष्णः सह-चरि कुरु-क्षेत्र-मिलितस्

तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गम-सुखम् ।

तथाप्यन्तः-खेलन्मधुर–मुरली-पञ्चम-जुषे

मनो मे कालिन्दी-पुलिन-विपिनाय स्पृहयति ॥ 114॥

शब्दार्थ

प्रियः-अति प्रिय; सः-वे; अयम्-यह; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; सह-चरि-हे मेरी प्रिय सखी, कुरु-क्षेत्र-मिलितः-जो अब कुरूक्षेत्र में मिले हैं; तथा-तथा; अहम्-मैं; सा-वही; राधा-राधारानी (हूँ); तत्-वही; इदम्-यह; उभयोः-हम दोनों के; सङ्गमसुखम्-मिलन का आनन्द (है); तथा-अपि-फिर भी; अन्तः-भीतर, खेलन्-बजाते हुए, मधुर-मधुर; मुरली-मुरली का; पञ्चम-पंचम स्वर, जुषे-जो आनन्द लेता है; नीचे; स्पृहयति-इच्छा उत्पन्न हो रही है।

अनुवाद

"हे सखी, अब मैं इस कुरुक्षेत्र में अपने पुराने तथा प्रिय मित्र कृष्ण से मिली हूँ। मैं वही राधारानी हूँ और अब हम मिल रहे हैं। यह अत्यन्त सुहावना है, किन्तु फिर भी मैं यमुना-तट के वन के वृक्षों के नीचे जाना चाहती हूँ। मैं वृन्दावन के जंगल के भीतर उनकी मधुर वंशी से पंचम स्वर निकलते सुनना चाहती हूँ।"

राय, भट्टाचार्य बले,-"तोमार प्रसाद विने।

तोमार हृदय एइ जानिल केमने॥ 115॥

शब्दार्थ

राय-रामानन्द राय; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; बले-बोले; तोमार प्रसाद विने-आपकी विशेष कृपा के बिना; तोमार हृदय-आपका मनोभाव, एइ-यह रूप गोस्वामी, जानिल-जान गया, केमने-कैसे।

अनुवाद

यह श्लोक सुनकर रामानन्द राय तथा सार्वभौम भट्टाचार्य दोनों ने चैतन्य महाप्रभु से कहा, "आपकी विशेष कृपा के बिना यह रूप गोस्वामी किस तरह आपके मन को समझ सकता था?"

आमाते सञ्चारि' पूर्वे कहिला सिद्धान्त।

ये सब्ष सिद्धान्ते ब्रह्मा नाहि पाय अन्त॥ 116॥

शब्दार्थ

आमाते-मेरे, सञ्चारि'-सभी सिद्धान्तों का संचार करके; पूर्वे-पहले ही; कहिलाआपने प्रकट कर दिये; सिद्धान्त-निष्कर्षात्मक तथ्य; ये-जिन; सब-सभी का; सिद्धान्तेनिष्कर्ष, ब्रह्मा-ब्रह्माजी तक; नाहि पाय अन्त-सीमा नहीं पा सकते।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ने स्वीकार किया कि इसके पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके हृदय को वह शक्ति प्रदान कर दी थी, जिससे कि वे उच्च तथा निर्णायक कथन को व्यक्त कर सकें, जिस तक ब्रह्माजी तक की पहुँच नहीं है।

ताते जानि—पूर्वे तोमार पाञाछे प्रसाद।

ताहा विना नहे तोमार हृदयानुवाद॥117॥

शब्दार्थ

ताते-ऐसी परिस्थितियों में, जानि-मैं समझ सकता हूँ, पूर्वे-पहले से ही; तोमार-आपकी; पाञाछे प्रसाद-विशेष कृपा उसने प्राप्त कर ली है; ताहा विना-इसके बिना; नहे-सम्भव नहीं है; तोमार-आपके; हृदय-अनुवाद-हृदय के भावों को व्यक्त करना।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "यदि आपने पहले उस पर कृपा न की होती, तो उसके लिए आपके आन्तरिक भावों को व्यक्त कर पाना सम्भव न हो पाता।"

तात्पर्य

भक्तगण श्रील रूप गोस्वामी पर श्री चैतन्य महाप्रभु की विशेष कृपा के लिए कृतज्ञता-ज्ञापन निम्नलिखित शब्दों में करते हैं :

श्रीचैतन्यमनोऽभीष्टं स्थापितं येन भूतले।

स्वयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम्॥

"कब श्रील रूप गोस्वामी प्रभुपाद, जिन्होंने इस भौतिक जगत् में चैतन्य महाप्रभु की इच्छापूर्ति हेतु आन्दोलन स्थापित किया है, अपने चरणकमलों में मुझे शरण देंगे?"

श्रील रूप गोस्वामी का विशेष कार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के भावों को स्थापित करना है। ये भाव उनकी इच्छाएँ हैं कि उनकी विशेष कृपा को इस कलियुग में विश्वभर में प्रसारित किया जाए।

पृथिवीते आछे यत नगरादि-ग्राम।

सर्वत्र प्रचार हैबे मोर नाम॥

श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा है कि सारे जगत् में, हर गाँव तथा हर नगर में हर व्यक्ति उनको तथा उनके संकीर्तन आन्दोलन को जाने। ये श्री चैतन्य महाप्रभु की आन्तरिक भावनाएँ हैं। श्री रूप गोस्वामी ने महाप्रभु की इन समस्त भावनाओं को लिपिबद्ध करने का बीड़ा उठाया। अब पुनः श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से वही भावनाएँ गोस्वामियों के सेवकों द्वारा सारे विश्व में प्रसारित की जा रही हैं। और वे भक्त जो शुद्ध तथा सरल हैं इस प्रयास की सराहना करेंगे। किन्तु जैसाकि श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने निष्कर्ष निकाला है कि जो लोग कूकर-सूकर के स्तर पर हैं, वे कभी भी

इस महत् प्रयास की सराहना नहीं करेंगे। फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय के प्रचारकों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि वे विश्वभर में अपना उत्तरदायित्व निभाते रहेंगे, भले ही कूकर-सूकर तुल्य पुरुष उनकी प्रशंसा न करें।

प्रभु कहे,—"कह रूप, नाटकेर श्लोक।

ये श्लोक शुनिले लोकेर याय दु:ख-शोक" ॥118॥

शब्दार्थ

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, कह-कृपया सुनाओ; रूप-मेरे प्रिय रूप; नाटकेर श्लोक-अपने नाटक का श्लोक; ये-जिस; श्लोक-श्लोक को, शुनिलेसुनकर; लोकेर-सभी लोगों के; याय-दूर हो जाये; दु:ख-शोक-दु:ख तथा शोक।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभुने कहा, "हे प्रिय रूप, तुम अपने नाटक का वह श्लोक सुनाओ, जिसे सुनने पर सारे लोगों के दु:ख तथा शोक भाग जाते हैं।"

बार बार प्रभु यदि तारे आज्ञा दिल।

तबे सेइ श्लोक रूप-गोसाञि कहिल ॥ 119 ॥

शब्दार्थ

बार बार-बारम्बार; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, यदि-जब, तारे-उन्हें; आज्ञा दिल-आदेश दिया; तबे-तब; सेइ श्लोक-वह श्लोक, रूप-गोसाञि-रूप गोस्वामी ने; कहिल-उच्चारण किया।

अनुवाद

जब महाप्रभु उसी के लिए बारम्बार आदेश देते रहे, तब रूप गोस्वामीने वह श्लोक, जो आगे आया है, सुनाया।

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावली-लब्धये

कर्ण-क्रोड़-कडुम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्य: स्पृहाम्।

चेत:-प्राङ्गण-सङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां

कृतिं नो जाने जनिता कियद्भिरमृतै: कृष्णेति वर्ण-द्वयी ॥ 120 ॥

शब्दार्थ

तुण्डे-मुख में, ताण्डविनी-नृत्य करता है; रतिम्-अभिलाषा; वितनुते-बढ़ाता है; तुण्ड-आवली-लब्धये-अनेक मुख प्राप्त करने की; कर्ण-कान के; क्रोड़-छिद्र में, कड़म्बिनी-प्रस्फुटित होता है; घटयते-उत्पन्न कराता है; कर्ण-अर्बुदेभ्यः स्पृहाम्लाखों कान प्राप्त करने की इच्छा, चेतः-प्राङ्गण-हृदय के आँगन में, सङ्गिनी-संगी बनकर; विजयते-जीत लेता है; सर्व-इन्द्रियाणाम्-सभी इन्द्रियों के; कृतिम्-कार्यकलापों को; न उ-नहीं, जाने-मैं जानता, जनिता-उत्पन्न करता है; कियद्भिः-कितनी मात्रा में, अमृतैः-अमृत द्वारा; कृष्ण-कृष्ण नाम; इति-ये; वर्ण-द्वयी-दो वर्ण।

अनुवाद

"मैं नहीं जानता हूँ कि "कृष्-ण" शब्द के दो अक्षरों ने कितना अमृत उत्पन्न किया है। जब कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण किया जाता है, तब यह मुख के भीतर नृत्य करता प्रतीत होता है। तब हमें अनेकानेक मुखों की इच्छा होने लगती है। जब वही नाम कानों के छिद्रों में प्रविष्ट होता है, तब हमारी इच्छा करोड़ों कानों के लिए होने लगती है और जब यह पवित्र नाम हृदय के आँगन में नृत्य करता है, तब यह मन की गतिविधियों को जीत लेता है, जिससे सारी इन्द्रियाँ जड़ हो जाती है"

यत भक्त-वृन्द आर रामानन्द राय।

श्लोक शुनि' सबार हइल आनन्द-विस्मय॥ 121॥

शब्दार्थ

यत भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी संगी भत; आर-तथा; रामानन्द रायरामानन्द राय; श्लोक शुनि'-इस श्लोक को सुनकर, सबार-सभी को; हइल-हो गया; आनन्द-विस्मय-दिव्य आनन्द तथा आश्चर्य।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों ने, विशेष रूप से श्री रामानन्द राय ने यह श्लोक सुना, तो वे दिव्य आनन्द से पूरित हो गये और आश्चर्यचकित रह गये।

सबे बले,-'नाम-महिमा शुनियाछि अपार।

एमन माधुर्य केह नाहि वर्ण आर' ॥122॥

शब्दार्थ

सबे बले-उन सभी ने कहा; नाम-महिमा-हरि नाम के कीर्तन की महिमा, शुनियाछि-हमने सुनी है; अपार-कई बार; एमन-इस प्रकार की; माधुर्य-मधुरता; केह-किसी, नाहि-नहीं, वर्ण-वर्णित की, आर-और ने।

अनुवाद

सबने स्वीकार किया कि यद्यपि उन्होंने भगवान् के पवित्र नाम की महिमा विषयक अनेक कथन सुन रखे हैं, किन्तु उन्होंने रूप गोस्वामी का जैसा मधुर वर्णन कभी नहीं सुना।

राय कहे,-"कोन् ग्रन्थ कर हेन जानि? ।

याहार भितरे एइ सिद्धान्तेर खनि?" ॥ 123।

शब्दार्थ

राय कहे-रामानन्द राय ने पूछा, कोन्-किस प्रकार का; ग्रन्थ-नाटय ग्रन्थ; करतुम लिख रहे हो; हेन-ऐसा; जानि-मैं समझ रहा हूँ, याहार भितरे-जिसमें, एइ-इन, सिद्धान्तेर खनि-सिद्धान्तों की खान है।

अनुवाद

रामानन्द राय ने पूछा, "तुम किस तरह का नाटक लिख रहे हो? हम समझ सकते हैं कि यह निष्कर्ष रूप सिद्धान्तों की खान है।"

स्वरूप कहे,-"कृष्ण-लीलार नाटक करिते ।

व्रज-लीला-पुर-लीला एकत्र वर्णिते" ॥124॥

शब्दार्थ

स्वरूप कहे-रूप गोस्वामी की ओर से स्वरूप दामोदर उत्तर दिये; कृष्णा-लीलारभगवान् कृष्ण की लीलाओं का, नाटक करिते-नाटक रचना कर रहे हैं; व्रज-लीला-पुर लीला-उनकी वृन्दावन में की गई लीलाएँ तथा मथुरा तथा द्वारका की लीलाएँ, एकत्रएक ही ग्रन्थ में, वर्णिते-वर्णन करने के लिए।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने श्रील रूप गोस्वामी की ओर से उत्तर दिया, "उसने भगवान् कृष्ण की लीलाओं पर नाटक लिखना चाहा था। उसने एक ही पुस्तक में वृन्दावन लीलाओं तथा द्वारका एवं मथुरा की लीलाओं का वर्णन करने की योजना बनाई थी।

आरम्भियाछिला, एबे प्रभु-आज्ञा पाञा ।

दुइ नाटक करितेछे विभाग करिया ॥ 125॥

शब्दार्थ

आरम्भियाछिला-श्रील रूप गोस्वामी ने आरम्भ किया; एबे-अब; प्रभु-आज्ञा पाञा-श्री चैतन्य महाप्रभु का आदेश पाकर; दुइ नाटक-दो भिन्न नाटक; करितेछे-वह रचना कर रहा है; विभाग करिया-मूल विचार को विभक्त करके।

अनुवाद

"उसने इस तरह से प्रारम्भ किया, किन्तु अब श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार वह इसे दो भागों में विभाजित करके दो नाटक लिख रहा है-एक मथुरा तथा द्वारका की लीलाओं से सम्बन्धित और दूसरा वृन्दावन लीलाओं से सम्बन्धित।"

विदग्ध-माधव आर ललित-माधव ।

दुइ नाटके प्रेम-रस अदभुत सब ॥ 126॥

शब्दार्थ

विदग्ध-माधव-विदग्ध माधव नामक, आर-तथा; ललित-माधव-ललित माधव नामक; दुइ नाटके-दोनो नाटकों में, प्रेम-रस-भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेमभाव रस, अदभुत-अद्भुत; सब-सभी।

अनुवाद

"ये नाटक विदग्ध माधव तथा ललित माधव कहलाते हैं। इन दोनों में भगवत्प्रेम-रस का अदभुत वर्णन हुआ है।"

तात्पर्य

श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इस सम्बन्ध में हमें सूचित करते हैं कि श्रील रूप गोस्वामी ने शकाब्द 1454 (1532 ई.) में विदग्ध माधव नामक नाटक की रचना समाप्त की और ललित-माधव को शकाब्द 1459 (1537 ई.) में समाप्त किया। रामानन्द राय तथा श्रील रूप गोस्वामी की यह वार्ता 1437 शकब्द (1515 ई.) में जगन्नाथ पुरी में हुई।

राय कहे,-"नान्दी-श्लोक पड़ देखि, शुनि?" ।

श्री-रूप श्लोक पड़े प्रभु-आज्ञा मानि' ॥ 127॥

शब्दार्थ

राय कहे-श्री रामानन्द राय ने कहा; नान्दी-श्लोक पड़-कृपया नान्दी (प्रस्तावना) श्लोक पढ़ो; देखि-ताकि मैं देख सकूँ, शुनि-ताकि मैं सुन सकूँ; श्री-रूप श्लोक पड़ेश्री रूप गोस्वामी ने श्लोक पढ़ा; प्रभु-आज्ञा मानि'-श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश को स्वीकार करके।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "कृपया तुम विदग्ध माधव का नान्दी श्लोक सुनाओ, जिससे मैं सुन सकूँ और परीक्षा कर सकूँ।" इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभुका आदेश होने पर श्री रूप गोस्वामी ने श्लोक सुनाया (1.1)।

सुधानां चान्द्रीणामपि मधुरिमोन्माद-दमनी

दधाना राधादि-प्रणय-घन-सारैः सुरभिताम् ।

समन्तात्सन्तापोद्गम-विषम-संसार-सरणी-

प्रणीतां ते तृष्णां हरतु हरि-लीला-शिखरिणी ॥128॥

शब्दार्थ

सुधानाम्-अमृत की; चान्द्रीणाम्–चन्द्रमा पर उत्पन्न; अपि-भी; मधुरिमा-मधुरता; उन्माद-दमनी-गर्व को नीचा दिखाने वाली; दधाना-वितरित करने वाली; राधा-आदिश्रीमती राधारानी तथा उनकी सखियों का; प्रणय-घन-सघन प्रेम व्यापार, सारे:-सार द्वारा, सुरभिताम्-सुगन्ध; समन्तात्-सर्वत्र; सन्ताप-कष्टी को; उद्गम-उत्पन्न होने वाले; विषम-अत्यन्त भयानक, संसार-सरणी-भौतिक जगत् में, प्रणीताम्-बनाया; ते-आप; तृष्णाम्-अनावश्यक इच्छाओं को, हरतु-समाप्त करें, हरि-लीला-श्रीकृष्ण की लीलाएँ, शिखरिणी-दही और मिश्री के मिश्रण के समान।

अनुवाद

"श्रीकृष्ण की लीलाएँ भौतिक जगत् में व्याप्त कष्टों को कम करें और अनावश्यक इच्छाओं को समाप्त करें। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की लीलाएँ शिखरिणी के समान हैं, जो दही तथा मिश्री का मिश्रण है। वे चन्द्रमा पर उत्पन्न अमृत के गर्व को भी नीचा दिखाने वाली हैं, क्योंकि वे श्रीमती राधारानी तथा गोपियों के सघन प्रेम-व्यवहार की मधुर सुगन्धि को व्याप्त करने वाली हैं।"

राय कहे,— 'कह इष्ट-देवेर वर्णन'।

प्रभुर सङ्कोचे रूप ना करे पठन ॥129॥

शब्दार्थ

राय कहे-रामानन्द राय कहते हैं; कह-अब सुनाओ; इष्ट-देवेर वर्णन-अपने आराध्य श्रीविग्रह की महिमा का वर्णन; प्रभुर सङ्कोचे-श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में संकोच का अनुभव करके; रूप-रूप गोस्वामी; ना करे-नहीं कर पाये; पठन-पाठ।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "अब कृपया अपने आराध्य श्रीविग्रह की महिमा का वर्णन सुनाओ।" किन्तु रूप गोस्वामी संकोच कर रहे थे, क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु उपस्थित थे।

प्रभु कहे,-"कह, केने कर सङ्कोचे-लाजे?।

ग्रन्थेर फल शुनाइबा वैष्णव-समाजे ?" ॥ 130 ॥

शब्दार्थ

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; कह-सुनाओ; केने-क्यों, कर-तुम करते हो; सङ्कोचे-लाजे-संकोच तथा लज्जा; ग्रन्थेर-ग्रन्थ का; फल-फल;शुनाइबा-सुनाओ; वैष्णव-समाजे-शुद्ध भक्तों के समाज में।

अनुवाद

किन्तु महाप्रभु ने यह कहते हुए रूप गोस्वामी को प्रोत्साहित किया, "तुम संकोच क्यों कर रहे हो? तुम इसे सुनाओ, जिससे भक्तगण तुम्हारे ग्रन्थ के शुभ फल को सुन सकें।"

तबे रूप-गोसाञि यदि श्लोक पड़िल ।

शुनि' प्रभु कहे,–'एइ अति स्तुति हैल' ॥ 131॥

शब्दार्थ

तबे-उस समय, रूप-गोसाञि-रूप गोस्वामी ने; यदि-जब, श्लोक पड़िलश्लोक पढ़ा, शुनि'-उसे सुनकर; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; एइ-यह; अति स्तुति-अतिश्योतिपूर्ण प्रार्थना, हैल-हो गई।

अनुवाद

जब रूप गोस्वामी ने उनका श्लोक सुनाया, तो चैतन्य महाप्रभु ने इसको अस्वीकृत कर दिया, क्योंकि इसमें उनकी निजी महिमा का वर्णन था। उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि यह अतिशयोक्तिपूर्ण कथन है।

अनर्पित-चरीं चिरात्करुणयावतीर्ण: कलौ

समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वल-रसां स्व-भक्ति-श्रियम् ।

हरि: पुरट-सुन्दर-द्युति-कदम्ब-सन्दीपित:

सदा हृदय-कन्दरे स्फुरतु व: शची-नन्दन: ॥ 132॥

शब्दार्थ

अनर्पित-न दिया गया; चरीम्-पहले, चिरात्-चिरकाल से; करुणया-अहैतुकी कृपा द्वारा, अवतीर्ण:-अवतरित, कलौ-कलियुग में, समर्पयितुम्-प्रदान करने के लिए, उन्नत–अत्यन्त उच्च स्तर का; उज्वल-रसाम्—माधुर्य रस; स्व–भक्ति–अपनी ही भक्ति का; श्रियम्-खजाना; हरि:-भगवान्, पुरट-सोने से भी; सुन्दर-अधिक सुन्दर, द्युति-कान्ति से; कदम्ब-समूह के साथ; सन्दीपित:-चमकते; सदा-सर्वदा, हृदय-कन्दरे-हृदय के अन्तरतम में, स्फुरतु-स्थित हो; व:-आपके; शची-नन्दन:-माता शची का पुत्र।

अनुवाद

"परम भगवान्, जो कि श्रीमती शचीदेवी के पुत्र के रूप में सुविख्यात हैं, आपके हृदय के अन्तरतम प्रदेश में स्थित हों। पिघले सोने की द्युति से देदीप्यमान, वे अपनी अहैतुकी कृपा से कलियुग में वह प्रदान

करने के लिए अवतरित हुए हैं, जो अन्य अवतारों ने कभी नहीं दियावे भक्ति का सर्वाधिक उच्च रस अर्थात् माधुर्य–प्रेम–रस प्रदान करने के लिए अवतरित हुए हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक (विदग्ध माधव 1.2) आदिलीला (1.4 तथा 3.4) में भी दृष्टिगत होता है। विदग्ध माधव की अपनी टीका में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर मन्तव्य देते हैं—महाप्रभोः स्फूर्ति बिना हरिलीला रसास्वादनानुपपत्तेरिति भावः—"श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा बिना व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की लीलाओं का वर्णन नहीं कर सकता।" अत: श्रील रूप गोस्वामी ने कहा—वो युष्माकं हृदय रूप गुहायां शचीनन्दनो हरिः सिःस्फुरतु—"श्री चैतन्य महाप्रभु, जो साक्षात् सिंह के समान हैं और जो कामनारूपी हाथी का वध करते हैं, प्रत्येक के हृदय में स्फुरित हों, क्योंकि उनके कृपापूर्ण आशीर्वाद से व्यक्ति कृष्ण की दिव्य लीलाओं को समझ सकता है।"

सब भक्त-गण कहे श्लोक शुनिया ।

कृतार्थ करिला सबाय श्लोक शुनाञा ॥ 133॥

शब्दार्थ

सब भक्त-गण-वहाँ उपस्थित सभी भक्तगण, कहे-कहने लगे; श्लोक शुनियायह श्लोक सुनकर; कृत-अर्थ करिला-आपने कृतार्थ कर दिया; सबाय-सब को; श्लोक शुनाञा-यह श्लोक सुनाकर।

अनुवाद

उपस्थित समस्त भक्तों ने इस श्लोक की इतनी अधिक प्रशंसा की कि उन्होंने उनके दिव्य उच्चारण के लिए रूप गोस्वामी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

राय कहे,—"कोन्आमुखे पात्र-सन्निधान?" ।

रूप कहे,–"काल-साम्ये 'प्रवर्तक' नाम" ॥134॥

शब्दार्थ

राय कहे–रामानन्द राय ने कहा; कोन्-किस प्रकार; आमुखे–परिचय; पात्र–सन्निधान-पात्रों की उपस्थिति का, रूप कहे-श्रील रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया; कालसाम्ये-उचित समय पर, प्रवर्तक नाम-प्रवर्तक शीर्षक के अन्तर्गत।

अनुवाद

रामानन्द राय ने पूछा, "तुमने पात्रों के समूह का परिचय किस तरह कराया है?" रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया, "सारे पात्र प्रवर्तक शीर्षक के अन्तर्गत उपयुक्त समय पर एकत्र होते हैं।"

तात्पर्य

नाटकों में सारे अभिनेता प/त्र कहलाते हैं। विश्वनाथ कविराज ने साहित्य दपण (6.283) में यही लिखा है :

दिव्यमर्त्ये स तद्रूपो मिश्रमन्यतरस्तयोः ।

सूचयेद् वस्तुबीजं वामुखं पात्रमथापि वा ॥

आमुख का अर्थ श्रील रूप गोस्वामी ने नाटक चन्द्रिका में दिया है :

सूत्रधारो नटी ब्रूते स्वकार्यं प्रतियुक्तितः ।

प्रस्तुताक्षेपिचित्रोक्त्या यत्तदामुखमीरितम् ॥

जब श्रील रामानन्द राय ने नाटक में पात्रों के समूह का परिचय कराने की योजना के विषय में पूछा, तो रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया कि जब सर्वप्रथम समय के अनुसार पात्र मंच पर प्रवेश करते हैं, तब इस प्रवेश को शास्त्रीय रूप से प्रवतक कहा जाता है। उदाहरण के लिए देखें निम्नलिखित श्लोक 136। श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि प्रस्तावना जिसे शास्त्रीय दृष्टि से अ/मुख कहते हैं, साहित्य दर्पण(6.288) के अनुसार पाँच प्रकार की हो सकती है :

उद्घात्यकः कठोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा ।

प्रवर्तकावलगिते पञ्च प्रस्तावना-भिदाः ॥

"प्रस्तावनाएँ पाँच प्रकार की हैं : (1) उद्घत्यक, (2) कथोद्धत, (3) प्रयो7/तिः/य, (4) प्रवतक तथा (5) अवलगित ।" ये पाँच प्रकार की प्रस्तावनाएँ आमुख कहलाती हैं। श्रील रामानन्द राय ने पूछा कि इन पाँच प्रस्तावनाओं में किसका प्रयोग हुआ है। श्रील रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया कि उन्होंने प्रवतक प्रस्तावना का प्रयोग किया है।

आक्षिप्तः काल-साम्येन प्रवेशः स्यात्प्रवर्तकः ॥ 135 ॥

आक्षिप्तः-क्रियान्वित होता है; काल-साम्येन-उपयुक्त समय आने पर; प्रवेशः- प्रवेश; स्यात्-हो; प्रवर्तकः-प्रवर्तकः।

अनुवाद

"जब उपयुक्त समय आने पर पात्रों का प्रवेश होता है, तो यह प्रवेश प्रवर्तक कहलाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत नाटक-चन्द्रिका (12) का है।

सोऽयं वसन्त-समयः समियाय यस्मिन्

पूर्ण तमीश्वरमुपोढ़-नवानुरागम् ।

गूढ़-ग्रहा रुचिरया सह राधयासौ

रङ्गाय सङ्गमयिता निशि पौर्णमासी ॥ 136॥

शब्दार्थ

सः-वही; अयम्-यह; वसन्त-समयः-वसन्तु ऋतुः समियाय-आ चुकी है; यस्मिन्-जिसमें; पूर्णम्-सम्पूर्ण; तम्-उनको; ईश्वरम्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, उपोढ़-प्राप्त किया हुआ, नव-अनुरागम्-नवीन आकर्षण; गूढ़-ग्रहा-जिसने तारों को ढक दिया; रुचिरया-अत्यन्त सुन्दर; सह-के साथ; राधया-श्रीमती राधारानी; असौ-उस पूर्णमासी की रात में, रङ्गाय-सौंदर्य बढ़ाने के लिए सङ्गमयिता-मिलने के लिए निशि-रात्रि के समय; पौर्णमासी-पूर्ण चन्द्रमा से युक्त रात।

अनुवाद

"वसन्त ऋतु आ चुकी थी तथा उस ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा ने सभी प्रकार से पूर्ण भगवान् को रात में सुन्दरी राधारानी से मिलने के नवीन आकर्षण से प्रेरित किया, जिससे उनकी लीलाओं का सौन्दर्य बढ़ सके।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इस श्लोक (विदग्ध माधव 1.10) की दो प्रकार से व्याख्या की है-एक भगवान् कृष्ण के लिए और दूसरी श्रीमती राधारानी के लिए। जब कृष्ण के पक्ष में व्याख्या की जाती है, तब रात से अमावस्या का अर्थ लिया जाता है और जब श्रीमती राधारानी के पक्ष में ली जाती है, तो पूर्णमासी के रूप में।

राय कहे,-"प्ररोचनादि कह देखि, शुनि?" ।

रूप कहे,–"महाप्रभुर श्रवणेच्छा जानि" ॥137॥

शब्दार्थ

राय कहे-श्रील रामानन्द राय ने कहा; प्ररोचनादि कह-कृपया प्ररोचना सुनाइये, देखि-मैं परीक्षा करूँगा; शुनि-और सुनुँगा, रूप कहे-श्रील रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में, श्रवण-इच्छा-सुनने की इच्छा; जानि-मुझे लगता है।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "कृपया तुम मुझे प्ररोचना भाग सुनाओ, जिससे मैं सुन सकूँ तथा परीक्षा कर सकूँ।" श्री रूप ने उत्तर दिया, "मैं सोचता हूँ कि श्री चैतन्य महाप्रभु की प्ररोचना सुनने की इच्छा है।"

तात्पर्य

काल तथा स्थान, नायक तथा दर्शक कफी प्रशंसा करके दर्शक को अधिकाधिक सुनने के लिए उन्मुख करने की विधि प्ररोचना कहलाती है। प्ररोचन के विषय में नाटक-चन्द्रिक का यह कथन है :

देशकालकथावस्तुसभ्यादीनां प्रशंसया ।

श्रोतृणां उन्मुखीकारः कथितेयं प्ररोचना ॥

इसी तरह साहित्य दर्पण (6.286) में कहा गया है :

तस्याः प्ररोचना वीथी तथा प्रहसनामुखे ।

अंगान्यत्रोमुखीकारः प्रशंसातः प्ररोचना ॥

संस्कृत में प्रस्तुत किये जाने वाले किसी भी साहित्य को प्रामाणिक सन्दर्भ ग्रन्थों में उल्लिखित नियमों का पालन करना चाहिए। श्रील रामानन्द राय द्वारा पूछे गये शास्त्रीय प्रश्न तथा श्रील रूप गोस्वामी के उत्तर सूचित करते हैं कि दोनों ही नाटक लिखने की विधियों से भलीभाँति अवगत थे तथा उनमें दक्ष थे।

भक्तानामुदगादनर्गल-धियां वर्गो निसर्गोज्ज्वलः शीलैः

पल्लवितः स बल्लव-वधू-बन्धोः प्रबन्धोऽप्यसौ ।

लेभे चत्वरतां च ताण्डव-विधेर्तृन्दाष्टवी-गर्भ-भूर्

मन्ये मद्विध-पुण्य-मण्डल-परीपाकोऽयमुन्मीलति ॥138॥

शब्दार्थ

भत्तानाम्-भक्तों के; उदगात्-प्रकट हुए हैं; अनर्गल-धियाम्-निरन्तर राधा कृष्ण का चिन्तन करना; वर्ग:-सभा; निसर्ग-उज्ज्वलः-स्वाभाविक रूप से अत्यन्त उन्नत; शीलै:-प्राकृतिक काव्यात्मक अलंकारों के साथ, पल्लवित:-एक वृक्ष के पत्तों की भाँति फ़ैले; सः-वह; बल्लव-वधू-बन्धोः–गोपियों के बन्धु, श्रीकृष्ण; प्रबन्धः-ग्रन्थ; अपिभी, असौ-उसने; लेभे-प्राप्त किया है; चत्वरताम्-समतल जमीन वाले चतुष्कोणीय स्थान के गुण, च-तथा; ताण्डव-विधे:-नृत्य करने के लिए, वृन्दा-अटवी-वृन्दावन के वन के लिए; गर्भ-भू-आन्तरिक मैदान, मन्ये-मैं मानता हूँ, मत्-विध-मुझ जैसे व्यक्तियों के; पुण्य-मण्डल-पुण्य कर्मो का समूहः; परीपाकः-पूर्ण विकसित; अयम्-यह; उन्मीलति-प्रतीत होता है।

अनुवाद

“इस समय उपस्थित भक्तगण निरन्तर भगवान् के विषय में सोचते रहते हैं, अतएव वे बहुत उच्च हैं। विदग्ध माधव नामक यह ग्रन्थ भगवान् कृष्ण की लीलाओं का काव्यात्मक अलंकारों के विभूषणों के साथ चित्रण करता है। वृन्दावन के भीतरी भूभाग गोपियों के साथ कृष्ण के नृत्य के लिए उपयुक्त मंच प्रस्तुत करते हैं। इसलिए मैं सोचता हूँ कि हम जैसे लोग, जिन्होंने भक्ति में आगे बढ़ने का प्रयास किया है, उनके पुण्यकर्म अब परिपक्व हो चुके हैं।

तात्पर्य

यह विदग्ध माधव के प्रथम अंक का आठवाँ श्लोक है।

अभिव्यक्ता मत्तः प्रकृति-लघु-रूपादपि बुधा

विधात्री सिद्धार्थान्हरि-गुण-मयी वः कृतिरियम् ।

पुलिन्देनाप्यग्निः किमुस मधमुन्मथ्य जनित

हिरण्य-श्रेणीनामपहरति नान्तः-कलुषताम् ॥ 139 ॥

शब्दार्थ

अभिव्यता-अभिव्यक्त हुआ है; मत:-मुझ से; प्रकृति-स्वभाव से, लघु-रूपात्दीन अवस्था में स्थित, अपि-यद्यपि, बुधा:-हे विद्वान भक्तों, विधात्री-जो शायद ला पाये; सिद्ध–अर्थान्-सिद्धि के सभी अनिवार्य तत्त्व; हरि-गुण-मयी-जिसकी विषय वस्तु श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन है; व:-आपके; कृति:- विदग्ध माधव नामक काव्य ग्रन्थ, इयम्-यह; पुलिन्देन-

निम्न श्रेणि के व्यक्तियों द्वारा, अपि-यद्यपि, अग्नि:-आग; किम्। उ-चाहे; समिधम्-लकड़ी; उन्मथ्य-को रगड़कर, जनितः-उत्पन्न की गई हो; हिरण्यसोने के; श्रेणीनाम्-के भण्डारों का; अपहरति-नष्ट कर देती है; न-नहीं, अन्त:-आन्तरिक; कलुषताम्–कल्मश।

अनुवाद

"हे विद्वान भक्तों, मैं स्वभाव से अज्ञान तथा दीन हूँ। फिर भी यद्यपि मुझसे यह विदग्ध माधव निकला है, तो भी यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य गुणों के वर्णन से भरा पड़ा है। इसलिए क्या ऐसा ग्रन्थ जीवन के उच्चतम लक्ष्य-प्राप्ति को पूरा नहीं करा सकेगा? यद्यपि इसके काठ को निम्न श्रेणी का व्यक्ति भी जला सकता है, तो भी यह अग्नि सोने को शुद्ध कर सकती है। इसी तरह यद्यपि मैं स्वभाव से अत्यन्त नीच हूँ, फिर भी यह ग्रन्थ स्वर्ण जैसे भक्तों के हृदयों के भीतर की धूल को स्वच्छ करने में सहायता कर सकता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक भी विदग्ध-माधव (1.6) का है।

राय कहे,—"कह देखि प्रेमोत्पत्ति-कारण ? ।

पूर्व-राग, विकार, चेष्टा, काम-लिखन?" ॥140॥

शब्दार्थ

राय कहे-श्रील रामानन्द राय ने आगे पूछा, कह-कृपया वर्णन कीजिये; देखि-ताकि मैं जान पाऊँ, प्रेम-उत्पति-कारण-प्रेम भाव जागृत करने का कारण, पूर्व-राग-पहले का अनुराग, विकार-प्रेम विकार, चेष्टा-प्रेम चेष्टा, काम-लिखन-गोपियों की कृष्ण के प्रति आसक्ति को प्रकट करने वाले पत्रों को लिखना।

अनुवाद

तब रामानन्द राय ने कृष्ण तथा गोपियों के मध्य प्रेम-व्यापार के कारणों के विषय में, यथा पूर्व-राग, प्रेम-विकार, प्रेम-चेष्टा तथा कृष्ण के लिए गोपियों के प्रेम के जागृत होने को प्रकट करने वाले पत्रों के आदान-प्रदान के विषय में पूछा।

क्रमे श्री-रूप-गोसाञि सकलि कहिल ।

शुनि' प्रभुर भक्त-गणेर चमत्कार हैल ॥ 141 ॥

शब्दार्थ

क्रमे-क्रमबद्ध तरीके से; श्री-रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी ने; सकलि कहिल-सब कुछ वर्णन किया; शुनि'-जिसे सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्तगणेर-भक्तों को; चमत्कार-आश्चर्य, हैल-हो गया।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने क्रमश: रामानन्द राय द्वारा पूछी गई हर बात बता दी। उनकी व्याख्या सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्त आश्चर्यचकित रह गये।

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ उज्ज्वला-नीलमणि (विप्रलम्भ प्रकरण 26) में काम-लिखन की विवेचना की है :

स लेखः कामलेखः स्यात् यः स्व-प्रेमप्रकाशकः ।

युवत्या यूनि यूना च युवत्यां सम्प्रहीयते ॥

"युवक तथा युवती के मध्य पत्रों का आदान-प्रदान, जिसका सम्बन्ध उनकी पारस्परिक अनुरक्ति को जागृत करने से होता है, काम-लेख कहलाता है।"

एकस्य श्रुतमेव लुम्पति मतिं कृष्णेति नामाक्षरं

सान्द्रोन्माद-परम्परामुपनयत्यन्यस्य वंशी-कलः ।

एष स्निग्ध-घन-द्युतिर्मनसि मे लग्नः पटे वीक्षणात्

कष्टं धिक्पुरुष-त्रये रतिरभून्मन्ये मृतिः श्रेयसी ॥ 142 ॥

शब्दार्थ

एकस्य-एक व्यक्ति के; श्रुतम्–सुन लिया है; एव-निश्चित रूप से; लुम्पति—हर लेता है; मतिम्-मन को; कृष्ण इति-कृष्ण; नाम-अक्षरम्-नाम के वर्ण; सान्द्र-उन्मादगहरी उन्मत्तता, परम्पराम्-एक झड़ी, उपनयति-उत्पन्न करता है; अन्यस्य-एक अन्य की, वंशी-कलः-वंशी की ध्वनि; एषः-यह तीसरा; स्निग्ध-प्रेम देने वाला; घन-द्युतिःबिजली के समान कान्तियुक्त; मनसि-मन में, मे-मेरे, लग्नः-आसक्ति; पटे-चित्र में, वीक्षणात्-देखने पर, कष्टम्। धिक्-अरे, मुझ पर धिकार

है; पुरुष-त्रये-तीन व्यक्तियों के प्रति; रतिः-आसक्ति; अभूत-जागृत हो गई है; मन्ये-मैं सोचती हूँ, मृतिः-मृत्यु; श्रेयसी-श्रेयस्कर है।

अनुवाद

"(कृष्ण के प्रति पहले के अनुराग-पूर्व-राग का अनुभव करते हुए राधारानी ने सोचा :) "चूंकि मैंने कृष्ण नामक व्यक्ति का नाम सुन रखा है, इसलिए मेरी सदबुद्धि नष्ट हो चुकी है। फिर, एक दूसरा व्यक्ति भी है, जो अपनी वंशी इस तरह बजाता है कि उसकी ध्वनि सुनकर मेरे हृदय में गहन उन्माद उत्पन्न होता है। यही नहीं, एक अन्य व्यक्ति भी है, जिसके प्रति मेरा मन अनुरत हो उठता है जब मैं उसके चित्र में उसका सुन्दर बिजली जैसा तेज देखती हूँ। इसलिए मैं सोचती हूँ कि मुझे धिकार है, क्योंकि मैं एकसाथ तीन व्यक्तियों पर आसक्त हूँ। इसके लिए मेरे लिए मर जाना ही श्रेयस्कर होगा।"

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (2.9) का है।

इयं सखि सु-दुःसाध्या राधा-हृदय-वेदना ।

कृता यत्र चिकित्सापि कुत्सायां पर्यवस्यति ॥ 143॥

शब्दार्थ

इयम्-यह; सखि-मेरी प्रिय सखी, सु-दु:साध्या-उपचार करने में कठिन; राधाश्रीमती राधारानी की; हृदय-वेदना-हृदय के दु:ख को; कृता-किया गया; यत्र-जिनमें, चिकित्सा-उपचार, अपि-यद्यपि, कुत्सायाम्-अपयश में ही; पर्यवस्यति-फलित होगा।

अनुवाद

"हे प्रिय सखी, श्रीमती राधारानी के हृदय की इन वेदनाओं को ठीक कर पाना अत्यन्त कठिन है। यदि इसका कोई उपचार भी किया जाए, तो अपयश ही हाथ लगेगा।"

तात्पर्य

यह श्लोक स्वयं श्रीमती राधारानी द्वारा कहा हुआ है (विदग्ध माधव 2.8)।

धरि-अ पड़िच्छन्द-गुणं

सुन्दर मह मन्दिरे तुमं वससि।

तह तह रुन्धसि बलि-अं

जह जह च-इदा पलाएम्हि ॥ 144 ॥

शब्दार्थ

धरि-अ-पकड़कर; पड़िच्छन्द-गुणम्-चित्र की कलात्मकता का गुण, सुन्दर-हे परम सुन्दर, मह-मेरे; मन्दिरे-हृदय के भीतर, तुमम्-तुम, वससि-वास करते हो; तह तह-उतना ही;रुन्धसि-रोक लेते हो; बलि–अम्-बलपूर्वक; जह जह-जितना ही; चइदा-विचलित होकर, पलाएम्हि-मैं भागने का प्रयास करती हूँ।

अनुवाद

"हे अतीव सुन्दर, तुम्हारे चित्र की कलात्मक सुन्दरता ने मेरे मन के भीतर छाप छोड़ दी है। चूँकि अब तुम मेरे मन के भीतर बसे हुए हो, इसलिए मैं तुम्हारी छाप के कारण उद्विग्न होकर जहाँ कहीं भी भागना चाहती हूँ, हे मित्र, मैं पाती हूँ कि तुम मेरा रास्ता रोक रहे हो।"

तात्पर्य

यह श्लोक (विदग्ध माधव 2.33) प्राकृत भाषा में है, संस्कृत में नहीं है। इसका संस्कृत रूपान्तर इस प्रकार होगा:

धृता प्रतिच्छन्दगुणं सुन्दर

मम मन्दिरे त्वं वससि।

तथा तथा रुणत्सि बलितं

यथा यथा चकिता पलाये ॥

इसका अर्थ एक ही है, किन्तु भाषा भिन्न है। यह श्लोक मधुमंगल ने श्रीकृष्ण से कहा था, जब उसने श्रीमती राधारानी का पत्र उन्हें पढ़कर सुनाया था।

अग्रे वीक्ष्य शिखण्ड-खण्डमचिरादुत्कम्पमालम्बते

गुञ्जानां च विलोकनान्मुहुरसौ सास्रं परिक्रोशति।

नो जाने जनयन्नपूर्व-नटन-क्रीड़ा-चमत्कारितां बालायाः

किल चित्त-भूमिमविशत्कोऽयं नवीन-ग्रहः ॥ 145॥

शब्दार्थ

अग्रे-समक्ष; वीक्ष्य-देखकर; शिखण्ड-खण्डम्--कुछ मोर पंख; अचिरात्अचानक; उत्कम्पम्–हृदय और देह का कम्पन; आलम्बते—ले जाती है; गुञ्जानाम्–गुज (छोटे शंख) की माला के; च-भी; विलोकनात्-देखकर, मुहुः-निरन्तर; असौ-वे; स-अस्रम्-आसुंओं से युक्त; परिक्रोशति-रोने लगती है; न उ-नहीं, जाने-मैं जानता हूँ जनयन्-जाग जाता है; अपूर्व-नटन-अपूर्व कलात्मक नर्तन, क्रीड़ा-क्रियाओं की; चमत्कारिताम्-उन्मत्तता; बालायाः-इस दीन बाला की; किल-अवश्य ही, चितभूमिम्-हृदय में, अविशत्-प्रवेश कर गई है; कः-कैसे, अयम्-यह; नवीन-ग्रहः- नवीन भावविभोर करने वाले लक्षण।

अनुवाद

"अपने समक्ष मोर-पंख को देखकर यह बाला एकाएक काँपने लगती है। जब कभी यह गुंजा की माला देखती है, तो अश्रुपात करती है और उच्च स्वर से क्रन्दन करती है। मैं नहीं जानती हूँकि इस बेचारी बाला के हृदय में किस तरह का नवीन भाव प्रवेश कर गया है। की नाचने की प्रवृत्ति से ओतप्रोत कर दिया है, जिससे रंगमंच पर अदभुत अद्वितीय नृत्य उत्पन्न होता रहता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक (विदग्ध माधव 2.15) भगवान् कृष्ण की मातामही की सखी मुखरा ने बात-बात में मधुमंगल की मातामही पौर्णमासी से कहा है।

अकारुण्यः कृष्णो यदि मयि तवागः कथमिदं मुधा

मा रोदीर्मे कुरु परमिमामुत्तर-कृतिम् ।

तमालस्य स्कन्थे विनिहित—भुज–वल्लरिरियं

यथा वृन्दारण्ये चिरमविचला तिष्ठति तनुः ॥146॥

शब्दार्थ

अकारुन्यः-अत्यन्त निर्दयी; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; यदि-यदि; मयि-मुझ पर; तव-तुम्हारा; आगः-दोष; कथम्-कैसे है; इदम्-यह; मुधा-व्यर्थ ही; मा रोदीः- मत रोओ; मे-मेरे लिए, कुरु-करो; परम्-लेकिन बाद में, इमाम्-यह; उत्तर-कृतिमुअन्तिम संस्कार; तमालस्य-एक तमाल वृक्ष के; स्कन्धे-तनों से; विनिहित-आलिंगन करती हुई, भुज-वल्लरिः-लताओं जैसी भुजाएँ, इयम्-यह; यथा-जहाँ तक सम्भव हो; वृन्दा-अरण्ये-वृन्दावन में, चिरम्-सदैव, अविचला-अविचल भाव से; तिष्ठति-रहे; तनुः-देह।

अनुवाद

"(श्रीमती राधारानी ने अपनी नित्य संगिनी विशाखा से कहा :) "हे प्रिय सखी, यदि कृष्ण मेरे प्रति क्रूर हैं, तो तुम्हे रोने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं होगा। तब मुझे मरना होगा, किन्तु बाद में तुम मेरे लिए एक काम करना-मेरे अन्तिम संस्कार में, मेरे शरीर तमाल वृक्ष पर उसी तरह रखना, जिस तरह मेरी भुजाएँ लताओं के समान तमाल वृक्ष का आलिंगन करती रहें, जिससे मैं अविचल भाव से वृन्दावन में सदा-सदा के लिए रह सकती हूँ। यही मेरी अन्तिम विनती है।"

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (2.47) का है।

राय कहे,—"कह देखि भावेर स्वभाव?" ।

रूप कहे,—"ऐछे हय कृष्णा-विषयक 'भाव" ॥147॥

शब्दार्थ

राय कहे-रामानान्द राय ने कहा; कह-कृपया वर्णन कीजिये; देखि-ताकि मैं जान सकुँ, भावेर स्वभाव-प्रेमभाव का लक्षण; रूप कहे-रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया; ऐछे-ऐसा, हय-है; कृष्ण-विषयक-कृष्ण सम्बन्धी, भाव-प्रेमभाव।

अनुवाद

रामानन्द राय ने पूछा, "भावात्मक प्रेम के क्या लक्षण हैं?" रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया, "कृष्ण विषयक भावात्मक प्रेम का यह स्वभाव है" :

पीड़ाभिर्नव-कालकूट-कटुता-गर्वस्य निर्वासनो

निस्यन्देन मुर्दा सुधा–मधुरिमाहङ्कार-सङ्कोचनः ।

प्रेमा सुन्दरि नन्द-नन्दन-परो जागर्ति यस्यान्तरे

ज्ञायन्ते स्फुटमस्य वक्र-मधुरास्तेनैव विक्रान्तयः ॥ 148 ॥

शब्दार्थ

पीड़ाभि:-कष्टों द्वारा; नव-नवीन; काल-कूट-विष के; कटुता-विषैलेपन का; गर्वस्य-गर्व का; निर्वासनः-निषेध; निस्यन्देन-बहाकर; मुदाम्-प्रसन्नता; सुधा-अमृत की; मधुरिमा–मधुरता का; अहङ्कार-अभिमान; सङ्कोचेनः-कम करता; प्रेमा-प्रेम; सुन्दरि-सुन्दर सखी, नन्द-नन्दन-पर:-नन्द महाराज के पुत्र में एकनिष्ठ; जागर्तिविकसित करता है; यस्य-जिसका; अन्तरे-हृदय में, ज्ञायन्ते-देखे जाते हैं, स्फुटम्-स्पष्ट रूप से, अस्य-उसका; वक्र-कुटिल, मथुरा:-तथा मधुर, तेन-उसके द्वारा; एव-अकेले ही; विक्रान्तयः-प्रभाव।

अनुवाद

“हे सुन्दरी, यदि कोई नन्द महाराज के पुत्र भगवान् कृष्ण के प्रति भगवत्प्रेम उत्पन्न कर लेता है, तो इस प्रेम के सारे कटु तथा मधुर प्रभाव उसके हृदय में प्रकट हो जायेंगे। ऐसा भगवत्प्रेम दो तरह से कार्य करता है। भगवत्प्रेम के विषैले प्रभाव सर्प के गहन तथा ताजे विष को परास्त कर देते हैं। फिर भी इसके साथ ही दिव्य आनन्द होता है, जो नीचे बहकर सर्प के विषैले प्रभावों को तथा अपने सिर पर अमृत डालने से प्राप्त सुख को भी परास्त कर देता है। यह दोहरा प्रभावशाली अनुभव होता हैएकसाथ विषैला तथा अमृतमय।”

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (2.18) का है। यह मध्य-लीला (2,52) में भी आया है। यह पौर्णमासी द्वारा कहा गया है।

राय कहे,—“कह सहज-प्रेमेर लक्षण” ।

रूप-गोसाञि कहे,—“साहजिक प्रेम-धर्म” ॥ 149 ॥

शब्दार्थ

राय कहे-श्रील रामानन्द राय ने पूछा; कह-कृपया मुझे बताओ, सहज-प्रेमेरस्वाभाविक प्रेम का; लक्षण–लक्षण; रूप–गोसाञि कहे–रूप गोस्वामी उत्तर देते हैं; साहजिक-स्वाभाविक; प्रेम–धर्म-भगवत्प्रेम के लक्षण।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे पूछा, "भगवत्प्रेम के उदय होने के स्वाभाविक लक्षण क्या हैं?" रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया, "ये भगवत्प्रेम के स्वाभाविक लक्षण हैं" :

स्तोत्रं यत्र तटस्थतां प्रकटयच्चित्तस्य धत्ते व्यथां

निन्दापि प्रमदं प्रयच्छति परीहास-श्रियं बिभ्रती ।

दोषेण क्षयितां गुणेन गुरुतां केनाप्यनातन्वती

प्रेम्ण: स्वारसिकस्य कस्यचिदियं विक्रीड़ति प्रक्रिया ॥ 150 ॥

शब्दार्थ

स्तोत्रम्-प्रशंसा; यत्र-जिसमें; तटस्थताम्–तटस्थता; प्रकटयत्-प्रदर्शित करता है; चित्तस्य-हृदय में, धत्ते-देता है; व्यथाम्-पीड़ा का अनुभव, निन्दा-दोषारोपण; अपितथा; प्रमदम—आनन्द को; प्रयच्छति—लाता है; परीहास-परिहास; श्रियम-सौंदर्य, बिभ्रती-लाता है; दोषेण-दोष दर्शन से; क्षयित म्-घटने का गुण; गुणेन-सद्गुणों द्वारा; गुरुताम्-बढ़ता है; केन अपि-किसी के द्वारा; अनातन्वती-बढ़ता नहीं; प्रेम्ण:- भगवत्प्रेम का; स्वारसिकस्य-स्वाभाविक; कस्यचित्-किसी का; इयम्-यह; विक्रीड़ति-हृदय में कार्य करता है; प्रक्रिया-प्रक्रिया।

अनुवाद

"जब कोई अपनी प्रिया से अपनी प्रशंसा सुनता है, तो वह बाहर से उदासीन बना रहता है, किन्तु अपने हृदय में पीड़ा का अनुभव करता है। जब वह अपनी प्रिया को अपने ऊपर दोषारोपण करते सुनता है, तो वह उन्हें परिहास मानता है और आनन्द लेता है। जब वह अपनी प्रेमिका में दोष देखता है, तो इससे उसका प्रेम घटता नहीं, न ही प्रेमिका के सदगुण उसके सहज स्नेह को बढ़ा पाते हैं। इस तरह स्वाभाविक प्रेम सभी परिस्थितियों में चलता रहता है। इसी तरह स्वाभाविक भगवत्प्रेम हृदय के भीतर कार्य करता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (5.4) का है। इसे मधुमंगल की पितामही पौर्णमासी तथा सान्दीपनि मुनि की माता ने कहा है।

श्रुत्वा निष्ठुरतां ममेन्दु-वदना प्रेमाङ्कुरं भिन्दती

स्वान्ते शान्ति-धुरां विधाय विधुरे प्राय: पराञ्चिष्यति ।

किं वा पामर-काम-कार्मुक–परित्रस्ता विमोक्ष्यत्यसून् हा

मौग्ध्यात्फलिनी मनोरथ-लता मृद्वी मयोन्मूलिता ॥151॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा–सुनने से; निष्ठुरताम्-कूरता;मम-मेरी; इन्दु-वदना-चन्द्र सदृश मुख वाली; प्रेम-अङ्करम्-प्रेम के अंकुर को, भिन्दती-भेद देती है; स्व-अन्ते-अपने हृदय में, शान्तिधुराम्-अत्यन्त सहनशीलता; विधाय-धारण करके; विधुरे-शोकाकुल; प्रायः-लगभग, पराक्छिष्यति-विरुद्ध हो सकती है; किं वा-अथवा, पामर-अति पतित, काम-काम भाव या कामदेव के; कार्मुक-बाण के; परित्रस्ता-भयभीत; विमोक्ष्यति-त्याग देगी; असून्-प्राण, हा-हाय; मौग्ध्यात्-मोह के कारण, फलिनी-लगभग फलित, मन:-रथलता-विकसित होते प्रेम की लता, मृद्वी-अति कोमल, मया-मेरे द्वारा, उन्मूलिता-जड़ से उखाड़ दी गई।

अनुवाद

"मेरी क्रूरता सुनकर चन्द्रमुखी राधारानी अपने दु:खी हृदय में किसी न किसी तरह का धैर्य धारण कर सकती है। किन्तु तब वह मेरे विरुद्ध हो सकती है अथवा उग्र कामदेव के धनुष द्वारा उत्पन्न वासनामयी इच्छाओं से भयभीत होकर वह अपना जीवन भी त्याग सकती है। हाय! मैंने उसकी इच्छारूपी कोमल लता को, जिसमें फल आने ही वाले थे, मूर्खतापूर्वक उखाड़ दिया है।"

तात्पर्य

श्रीमती राधारानी के प्रति अत्यन्त क्रूर होने के कारण कृष्ण इस तरह पश्चाताप कर रहे हैं (विदग्ध माधव 2.40)।

यस्योत्सङ्ग–सुखाशया शिथिलता गुर्वी गुरुभ्यस्त्रपा

प्राणेभ्योऽपि सुहृत्तमाः सखि तथा यूयं परिक्लेशिताः ।

धर्मः सोऽपि महान्मया न गणितः साध्वीभिरथ्यासितो

धिग्धैर्यं तदुपेक्षितापि यदहं जीवामि पापीयसी ॥152॥

शब्दार्थ

यस्य-जिसके; उत्सङ्ग-सुख-आशया-संग के आनन्द की इच्छा से; शिथिलिताशिथिलता; गुर्वी-अति महान्; गुरुभ्यः-गुरुजनों के प्रति; त्रपा-लज्जा को; प्राणेभ्यः-मेरे प्राणों से भी, अपि-यद्यपि; सुहृत्–तमाः-सबसे प्रिय; सखि-हे मेरी प्रिय सखी; तथा-उसी प्रकार, यूयम्-तुम्हें; परिक्लेशिताः-अत्यन्त कष्ट पहुँचाया; धर्मः-मेरे पति के प्रति कर्तव्य; सः-वह; अपि-भी; महान्-अति महान्; मया–मेरे प्रति; न-नहीं; गणितः-परवाह किये गये; साध्वीभिः-सती अथवा भद्र महिलाओं द्वारा, अध्यासितः- आचरित;धिक् धैर्यम्–तथाकथित धैर्य को धिक्कार है; तत्–उनके द्वारा;उपेक्षिता-उपेक्षित; अपि-यद्यपि; यत्-जो; अहम्-मैं; जीवामि-जी रही हूँ, पापीयसी-सबसे पापिन।

अनुवाद

"हे सखी, उनकी संगति तथा आलिंगन के सुख की इच्छा से मैंने अपने गुरुजनों तक की उपेक्षा की और उनके समक्ष अपनी लज्जा तथा गम्भीरता को शिथिल कर दिया। इसके अतिरिक्त, यद्यपि तुम मेरी सर्वोत्तम सखी हो और मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय हो, किन्तु मैंने तुम्हें इतना कष्ट पहुँचाया है। निस्सन्देह, मैंने अपने पतिव्रता व्रत को भी ताक पर रख दिया, जिसका सर्वोच्च भद्र महिलाएँ पालन करती हैं। हाय! यद्यपि वह इस समय मेरी उपेक्षा कर रहे हैं, मैं इतनी पापिन हूँ कि अभी भी जीवित हूँ। इसलिए मुझे अपने तथाकथित धैर्य को धिकारना चाहिए।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमती राधारानी अपनी घनिष्ठ सखी विशाखा देवी से कह रही हैं (विदग्ध माधव 2.41)।

गृहान्तः खेलन्त्यो निज-सहज-बाल्यस्य बलनाद्

अभद्र भद्र वा किमपि हि न जानीमहि मनाक् ।

वयं नेतुं युक्ताः कथमशरणां कामपि दशां कथं वा

न्याय्या ते प्रथयितुमुदासीन-पदवी ॥153॥

शब्दार्थ

गृह-अन्तः खेलन्त्यः-जो अपने घर में बाल्य क्रीड़ाओं में व्यस्त थीं, निज-अपनी; सहज-सरल; बाल्यस्य-बचपन के; बलनात्या-प्रभाव से; अभद्रम्-बुरा; भद्रम्-अच्छा; वा-या; किम् अपि-कुछ भी; हि-अवश्य ही; न-नहीं, जानीमहि-हम जान पाई, मनाक्-थोड़ा भी; वयम्-हम; नेतुम्-आकृष्ट करके; युक्ताः-उचित; कथम्-कैसे; अशरणाम्–समर्पण के

बिना; काम् अपि-इस प्रकार की; दशाम्–दशा को; कथम्–किस प्रकार, वा-या; न्याय्या-उचित; ते-आपके; प्रथयितुम्-प्रकट होने के लिए, उदासीन-उदासीनता की; पदवी-अवस्था।

अनुवाद

"मैं अपने घर में क्रीड़ाओं में व्यस्त थी और बचपन की अबोधता के कारण अच्छा-बुरा नहीं जानती थी। इसलिए क्या आपके लिए यह उचित है कि आपने पहले हमें अपनी ओर इस तरह आकृष्ट किया और फिर हमारी उपेक्षा की? अब आप हमसे उदासीन हो। क्या आप सोचते हो कि यह उचित है?"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमती राधारानी द्वारा कृष्ण से कहा गया है (विदग्ध माधव 2.46)।

अन्तः-क्लेश-कलङ्किताः किल वयं यामोऽद्य याम्यां पुरीं

नायं वञ्चन-सञ्चय-प्रणयिनं हासं तथाप्युज्झति।

अस्मिन्सम्पुटिते गभीर-कपटैराभीर-पल्ली-विटे

हा मेधाविनि राधिके तव कथं प्रेमा गरीयानभूत् ॥ 154 ॥

शब्दार्थ

अन्तः-क्लेश-कलङ्गिताः-मन की ऐसी कष्टदायक परिस्थितियों से दूषित जो मृत्यु के बाद भी चालु रहती हैं; किल-निश्चित रूप से, वयम्-हम सभी; यामः-जा रही हैं; अद्य-अब; याम्याम्-यमराज के; पुरीम्-लोक में, न-नहीं, अयम्-यह; वचन सञ्चय-कपटपूर्ण क्रियाएं; प्रणयिनम्–की ओर निर्देशित; हासम्-मुस्कान; तथापि-फिर भी, उज्झति-त्याग देती है; अस्मिन्-इसमें; सम्युटिते-परिपूर्ण; गभीर-गहरे; कपटैः- धोखे से; आभीर-पल्ली-ग्वालों के गाँव से; विटे-एक धोखेबाज में, हा-हाय; मेधाविनि-हे बुद्धिमति, राधिके-श्रीमती राधारानी; तव-तुमको; कथम्-कैसे; प्रेमाप्रेम; गरीयान्-अत्यन्त महान्; अभूत्-हो गया।

अनुवाद

"हमारे हृदय दुःखमय परिस्थितियों से इतने दूषित हैं कि हम निश्चित रूप से यमराज के लोक जा रही हैं। फिर भी, कृष्ण अपनी सुन्दर प्रेममयी मुस्कान नहीं त्यागते, जो ठगी की चालों से पूर्ण है। हे श्रीमती

राधारानी, तुम बड़ी बुद्धिमान हो। तुमने किस तरह पड़ोस के ग्वालों के धोखेबाज लम्पट के प्रति इतना अधिक प्रेम विकसित कर लिया ?"

तात्पर्य

यह श्लोक राधारानी से उनकी एक अन्य विश्वासपात्र सखी ललिता कहती है (विदग्ध माधव 2.37)।

हित्वा दूरे पथि धव-तरोरन्तिकं धर्म-सेतोर्

भङ्गोदग्रा गुरु-शिखरिणं रंहसा लङ्घयन्ती।

लेभे कृष्णार्णव नव-रसा राधिका-वाहिनी त्वां

वाग्वीचीभिः किमिव विमुखी-भावमस्यास्तनोषि ॥155॥

शब्दार्थ

हित्वा-त्यागकर; दूरे-दूर; पथि–मार्ग में; धव-तरोः-पति रूपी वृक्ष का; अन्तिकम् -निकटता, धर्म-सेतोः-धर्म रूपी सेतु को; भङ्ग-उदग्रा-तोड़ने के लिए अत्यन्त दृढ़ होकर, गुरु-शिखरिणम्-गुरुजनों (सम्बन्धियों) रूपी पर्वतों को, रंहसा-तीव्र वेग से; लङ्घयन्ती-पार करती हुई; लेभे-प्राप्त कर ली है; कृष्ण-अर्नव—कृष्ण रूपी समुद्र को; नव-रसा-नवीन प्रेमभावों से प्रभावित, राधिका-श्रीमती राधिका; वाहिनी-नदी की तरह, त्वाम्-तुमको; वाक्-वीचिभिः-केवल वाणि की लहरों द्वारा; किम्-कैसे; इव-इस प्रकार; विमुखी-भावम्-विमुखता, अस्याः-उसके प्रति; तनोषि-तुम फैला रही हो।

अनुवाद

"हे कृष्ण, तुम समुद्र के तुल्य हो। श्रीमती राधारानी रूपी नदी काफी दूर से-अपने पति रूपी वृक्ष को पीछे छोड़ती, सामाजिक बन्धन के पुल को तोड़ती और वरिष्ठ जनों रूपी शिखरों को बलपूर्वक पार करती हुईतुम तक पहुँची है। तुम्हारे प्रेम की नई उमंगों के कारण यहाँ आकर उस नदी ने अब तुम्हारी शरण प्राप्त की है, किन्तु तुम हो कि उसे प्रतिकूल शब्दों की लहरों से वापस करने का प्रयास कर रहे हो। यह कैसा है कि तुम ऐसा विमुख मनोभाव फैला रहे हो?"

तात्पर्य

यह श्लोक भगवान् कृष्ण से श्रीमती पौर्णमासी ने कहा है (विदग्ध माधव3.9)।

राय कहे,—"वृन्दावन, मुरली-नि:स्वन।

कृष्ण, राधिकार कैछे करियाछ वर्णन?" ॥ 156॥

शब्दार्थ

राय कहे-रामानन्द राय कहते हैं, वृन्दावन-वृन्दावन नामक स्थान; मुरली-नि:स्वनकृष्ण की मुरली की ध्वनि, कृष्ण-भगवान् कृष्ण, राधिकार-श्रीमती राधारानी के; कैछेकिस प्रकार; करियाछ वर्णन-तुमने वर्णन किया है।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ने आगे पूछा, "तुमने वृन्दावन, दिव्य वंशी की ध्वनि तथा कृष्ण एवं राधिका के सम्बन्ध का वर्णन किस तरह किया है?"

"कह, तोमार कवित्व शुनि' हय चमत्कार"।

क्रमे रूप-गोसाञि कहे करि' नमस्कार ॥ 157 ॥

शब्दार्थ

कह-कृपया मुझे बताओ; तोमार कवित्व शुनि'-तुम्हारी कवित्व की योग्यता सुनकर; हय-होता है; चमत्कार-अत्यन्त विस्मय; क्रमे-धीरे-धीरे; रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी, कहे-कहना प्रारम्भ करते हैं; करि' नमस्कार-प्रणाम करके।

अनुवाद

"कृपया मुझे यह सब बतलाओ, क्योंकि तुम्हारी कवित्व-शक्ति अदभुत है।" रूप गोस्वामी रामानन्द राय को नमस्कार करके उनके प्रश्नों का क्रमश: उत्तर देने लगे।

सु-गन्धौ माकन्द-प्रकर-मकरन्दस्य मथुरे

विनिस्यन्दे वन्दी-कृत-मधुप-वृन्दं मुहुरिदम्।

कृतान्दोलं मन्दोन्नतिभिरनिलैश्चन्दन-गिरेर् ममानन्दं

वृन्दा-विपिनमतुलं तुन्दिलयति ॥ 158 ॥

शब्दार्थ

सु-गन्धौ-सुगन्ध में, माकन्द-प्रकर-आम की मंजरियों के गुच्छों की; मकरन्दस्यशहद की; मधुरे-मधुर, विनिस्यन्दे-का टपकना; वन्दी-कृत-एकत्रित हुए; मधुपवृन्दम्-भौर; मुहु-बारम्बार; इदम्-यह; कृत–अन्दोलम्–हिलते हुए; मन्द-उन्नतिभिः-मन्द गति से हिलते; अनिलैः-वायु द्वारा, चन्दन-गिरेः-मलय पर्वत से; मम-मेरा; आनन्दम्-आनन्द, वृन्दा-विपिनम्-वृन्दावन; अतुलम्-अतुलनीय; तुन्दिलयति-और अधिक वर्धित करता है।

अनुवाद

"नव विकसित आम्र की मंजरियों से रिसती हुई मीठी सुगन्धित मधु पुनः पुनः भौरों के समूहों को आकृष्ट कर रही है और यह वन चन्दन-वृक्षों से पूर्ण मलय पर्वत से आने वाली मन्द गतिमान वायु से कम्पित हो रहा है। इस तरह यह वृन्दावन विपिन मेरे दिव्य आनन्द को वर्धित कर रहा है।"

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (1.23) का है, जिसे स्वयं कृष्ण ने कहा है।

वृन्दावनं दिव्य-लता-परीतं

लताश्च पुष्प-स्फुरिताग्र-भाजः ।

पुष्पाणि च स्फीत-मधु-व्रतानि

मधु-व्रताश्च श्रुति-हारि-गीताः ॥ 159 ॥

शब्दार्थ

वृन्दावनम्-वृन्दावन का जंगल, दिव्य-लता-परीतम्-दिव्य लताओं से घिरा हुआ; लता: च-और लताएँ, पुष्प-फूलों द्वारा; स्फुरित-लदे हुए; अग्र-भाजः-अग्र भाग से युक्त, पुष्पाणि-फूल; च-और; स्फीत-मधु-व्रतानि-अनेक उन्मत्त भौरों से युक्त; मधुव्रताः-तथा; च-और; श्रुति-हारि-गीताः-जिनके गीत वैदिक स्तोत्रों को पराजित करते हैं तथा कानों को आनन्द प्रदान करते हैं।

अनुवाद

"हे प्रिय मित्र, देखो तो, यह वृन्दावन का जंगल किस तरह दिव्य लताओं तथा वृक्षों से परिपूर्ण है। लताओं के सिरों पर फूल लदे हैं और उन्मत्त भौंरे उनके चारों ओर गुनगुना रहे हैं-ऐसे गुनगुनाते गीत कान को अच्छे लगते हैं और वैदिक स्तोत्रों को भी मात कर जाते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (1.24) का है, जिसे बलराम ने अपने मित्र श्रीदामा से कहा है।

क्वचिद्भङ्गी-गीतं क्वचिदनिल-भङ्गी-शिशिरता

क्वचिद्वल्ली-लास्यं क्वचिदमल-मल्ली-परिमल: ।

क्वचिद्धारा-शाली करक-फल-पाली-रस–भरो

हृषीकाणां वृन्दं प्रमदयति वृन्दावनमिदम् ॥ 160 ॥

शब्दार्थ

क्वचित्-कहीं, भूङ्गी-गीतम्-भौरों की गुंजन, क्वचित्-कहीं; अनिल-भङ्गीशिशिरता-मन्द पवन की लहरों की शीतलता, क्वचित्-कहीं; वल्ली-लास्यम्-लताओं का नृत्य; क्वचित्-कहीं, अमल-मल्ली-परिमल:-मल्लिका पुष्प की शुद्ध सुगन्ध, क्वचित्-कहीं, धारा-शाली-धारा प्रवाह; करक-फल-पाली-अनार के फलों के; रसभर:-रस से परिपूर्ण, हृषीकाणाम् -इन्द्रियों के, वृन्दम्-समूह को; प्रमदयति-आनन्द दे रहा है; वृन्दावनम्-वृन्दावन का जंगल; इदम्-यह।

अनुवाद

"हे प्रिय मित्र, यह वृन्दावन का वन हमारी इन्द्रियों को विविध रूपों से बड़ा आनन्द प्रदान करता है। कहीं भौंरों के झुण्ड गा रहे हैं, तो कहीं मन्द वायु सारे वातावरण को शीतल कर रही है। कहीं लताएँ एवं वृक्षों की टहनियाँ नाच रही हैं, मल्लिका पुष्प अपनी सुगन्ध बिखेर रहे हैं और अनार के फल निरन्तर प्रचुर रस की धार बहा रहे हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (1.31) का है, जिसे भगवान् कृष्ण ने अपने ग्वालमित्र मधुमंगल से कहा है।

परामृष्टाङ्गुष्ठ-त्रयमसित-रत्नैरुभयतो

वहन्ती सङ्कीर्णो मणिभिररुणौस्तत्परिसरौ ।

तयोर्मध्ये हीरोजवल-विमल-जाम्बूनद-मयी

करे कल्याणीयं विहरति हरे: केलि-मुरली ॥161॥

शब्दार्थ

परामृष्त-माप; अन्गुष्ठ-त्रयम्-तीन अंगुलियों की लम्बाई; असित-रत्नैः-अति मूल्यवान इन्द्रनील रत्नों से; उभयतः-दोनों किनारों से; वहन्ती-युक्त; सङ्गीर्णो-सुसज्जित; मणिभिः-रत्नों द्वारा; अरुणैः-अरुण; तत्-परिसरौ-वंशी के दोनों छोर; तयोः मध्ये-उनके बीच; हीर-हीरों से; उज्वल-चमकते; विमल-शुद्ध, जाम्बूनद-मयी-स्वर्ण की परत से ढकी; करे-हाथ में, कल्याणी-अति शुभ, इयम्-यह; विहरति-चमकती है; हरे:-कृष्ण की; केलि-मुरली-लीलाओं की वंशी।

अनुवाद

"कृष्ण की लीला वंशी तीन अंगुल लम्बी है और यह इन्द्रनील रत्नों से जटित है। वंशी के छोरों पर अरुण रत्न (पन्ना) लगे हैं, जो सुन्दर ढंग से चमचमा रहे हैं, दोनों छोरों के बीच वंशी सोने के पत्तर से मढ़ी है तथा हीरों से दमक रही है। यह शुभ वंशी, कृष्ण को सुहावनी लगती है तथा उनके हाथ में दिव्य आभा से दमक रही है।"

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (3.1) से है, जिसे पौर्णमासी ने ललितादेवी से कहा है।

सद्वंशतस्तव जनिः पुरुषोत्तमस्य

पाणी स्थितिर्मुरलिके सरलासि जात्या ।

कस्मात्त्वया सखि गुरोर्विषमा गृहीता

गोपाङ्गना-गण-विमोहन-मन्त्र-दीक्षा ॥ 162॥

शब्दार्थ

सत्-वंशतिः-अति सम्मानित कुल; तव-तुम्हारा; जनिः-जन्म; पुरुषोत्तमस्यभगवान् श्रीकृष्ण के; पाणौ-हाथों में, स्थिति:-निवास, मुरलिके-हे शुभ मुरली, सरलासरल; असि-तुम हो; जात्या—जन्म से; कस्मात्-क्यों; त्वया-तुम्हारे द्वारा; सखि-हे मेरी प्रिय सखी; गुरोः–गुरु से; विषमा-खतरनाक; गृहीता-ली है; गोप-अङ्गना-गणविमोहन-गोपियों के समूह को विमोहित करने के लिए, मन्त्र-दीक्षा-मन्त्र दीक्षा।

अनुवाद

"हे मेरी प्रिय सखी मुरली, ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अत्यन्त उत्तम परिवार में उत्पन्न हुई हो, क्योंकि तुम्हारा निवासस्थान श्रीकृष्ण के हाथों में है। जन्म से तुम सीधी-सादी हो और तनिक भी कुटिल नहीं हो। तो फिर तुमने इस खतरनाक मन्त्र में दीक्षा क्यों ली, जो एकत्र हुई गोपियों को मोहित करता है?"

तात्पर्य

यह श्लोक (विदग्ध माधव 5.17) श्रीमती राधारानी द्वारा कहा गया है।

सखि मुरलि विशाल-च्छिद्र-जालेन पूर्णा

लघुरति-कठिना त्वं ग्रन्थिला नीरसासि ।

तदपि भजसि शश्वच्चुम्बनानन्द-सान्द्रं

हरि-कर-परिरम्भं केन पुण्योदयेन ॥ 163॥

शब्दार्थ

सखि मुरलि-हे प्रिय सखि मुरली; विशाल-छिद्र-जालेन-तुम्हारे शरीर पर अनेक छिद्रों से (अन्य शब्दों में, छिद्रों से भरी हुई जिसका अर्थ "दोषों से भरी हुई" भी है); पूर्णापूर्ण, लघु-अति हल्की, अति-कठिना-बनावट में अत्यन्त कठोर; त्वम्-तुम, ग्रन्थिलागाँठों से भरी हुई, नीरसा-रस विहीन, असि-हो, तत् अपि-इसलिए, भजसि-तुम सेवा द्वारा प्राप्त करती हो; शश्वत्-निरन्तर; चुम्बन-आनन्द-भगवान् द्वारा निरन्तर चूमे जाने का दिव्य आनन्द, सान्द्रम्-प्रगाढ़; हरि-कर-परिरम्भम्-श्रीकृष्ण हाथों द्वारा आलिंगित, केनकौन से; पुण्य-उदयेन-पुण्यों के फलस्वरूप।

अनुवाद

"हे मेरी प्रिय सखी वंशी, तुम अनेक छिद्रों या दोषों से युक्त हो। तुम हल्की, कठोर, रसहीन तथा गाँठों से भरी हो। किन्तु किस तरह के पुण्यकर्मों ने तुम्हें भगवान् द्वारा चुम्बित होने तथा उनके हाथों द्वारा आलिंगित होने के लिए प्रवृत्त किया है?"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमती राधारानी की प्रतिद्वन्द्वी सखी चन्द्रावली द्वारा कहा गया ।

रुन्धन्नम्बु-भृतश्चमत्कृति-परं कुर्वन्मुहुस्तुम्बुरु

ध्यानादन्तरयन्सनन्दन-मुखान्विस्मापयन्वेधसम् ।

औत्सुक्यावलिभिर्बलिं। चटुलयन्भोगीन्द्रमाघूर्णयन्

भिन्दन्ब्रण्ड-कटाह-भित्तिमभितो बभ्राम वंशी-ध्वनिः ॥ 164 ॥

शब्दार्थ

रुन्धन्-रोक दी, अम्बु-भूत:-वर्षा के बादलों जैसे; चमत्कृति-परम्-आश्चर्य से पूर्ण, कुर्वन्–कर दिया; मुहु-प्रतिक्षण; तुम्बुरुम्-गन्धर्वो के राजा तुम्बरु को; ध्यानात्ध्यान की अवस्था से; अन्तरयन्-विचलित, सनन्दन-मुखान्–सनन्दन जैसे महान् सन्त पुरुषो को; विस्मापयन्-आश्चर्य उत्पन्न कर दिया; वेधसम्–ब्रह्माजी तक को भी; औत्सुक्यआवलिभिः-उत्सुकता के विचारों के साथ; बलिम्-राजा बलि को, चटुलयन्-चंचल कर दिया; भोगी-इन्द्रम्-नागों के राजा को; आघूर्णयन्-चकर कटवाये; भिन्दन्-भेदकर, अण्ड-कटाह-भित्तिम्-ब्रह्माण्ड की कठोर परतों को; अभितः-सर्वत्र; बभ्राम-फैल गई; वंशी-ध्वनिः-मुरली की दिव्य ध्वनि।

अनुवाद

“कृष्ण की वंशी की दिव्य ध्वनि ने वर्षा के बादलों की गति रोक दी, गन्धर्वो को आश्चर्यचकित कर दिया, और सनक तथा सनन्दन जैसे महान् सन्त पुरुषों के ध्यान को चलायमान कर दिया। इसने ब्रह्मा के भीतर आश्चर्य उत्पन्न कर दिया, इसने गहन उत्सुकता उत्पन्न कर दी जिससे बलि महाराज का मन चंचल हो उठा जो अन्यथा दृढ़ता से स्थित थे, लोकों को धारण करने वाले महाराज अनन्त को चारों ओर चक्कर लगवाया और यह ब्रह्माण्ड के कठिन आवरणों को भेद गई। इस तरह कृष्ण के हाथों की वंशी की ध्वनि ने अदभुत स्थिति उत्पन्न कर दी।”

तात्पर्य

यह श्लोक कृष्ण के ग्वालमित्र मधुमंगल द्वारा कहा गया है (विदग्ध माधव 1.27)।

अयं नयन-दण्डित-प्रवर-पुण्डरीक-प्रभः

प्रभाति नव-जागुड़-द्युति-विड़म्बि-पीताम्बरः ।

अरण्यज–परिष्क्रिया-दमित-दिव्य-वेशादरो

हरिन्मणि-मनोहर-द्युतिभिरुज्ज्वलाङ्गो हरिः ॥ 165 ॥

शब्दार्थ

अयम्-यह; नयन-जिसके सुन्दर नेत्रों द्वारा; दण्डित-पराजित; प्रवर-श्रेष्ठ; पुण्डरीक-प्रभः- श्वेत कमल की आभा; प्रभाति-शोभायमान प्रतीत होती है; नव-जागुड़द्युति-ताजे लगाये हुए कुंकुम की कान्ति; विड़म्बि-तिरस्कृत करती है; पीत-अम्बरः- जिनके पीत वस्त्र; अरण्य-ज-वन से चुने गये; परिष्क्रिया-जिसके अलंकारों से; दमित-दमित; दिव्य-वेश-आदरः-अति उत्कृष्ट वेश की इच्छा; हरिन्-मणि-मरकत मणि; मनः-हर-मन को आकर्षित करनेवाली; द्युतिभिः–चमक द्वारा; उज्ज्वल-अङ्गः–जिनका सुन्दर शरीर; हरिः-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"कृष्ण की आँखों की सुन्दरता श्वेत कमल की सुन्दरता को मात कर जाती है। उनका पीताम्बर कुंकुम के नवीन अलंकरणों की चमक को मात करता है तथा उनके चुने हुए जंगली फूलों के गहने सर्वश्रेष्ठ वस्त्रों की लालसा को दमित कर देते हैं। उनका शारीरिक सौन्दर्य मरकत मणि से भी अधिक मन को आकृष्ट करने वाली द्युति से युक्त है।"

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (1.17) से है, जिसे पौर्णमासी ने कहा है।

जङ्घाधस्तट-सङ्गि-दक्षिण-पदं किञ्चिद्विभुग्न-त्रिकं

साचि-स्तम्भित-कन्धरं सखि तिरः-सञ्चारि-नेत्राञ्चलम् ।

वंशीं कुट्मलिते दधानमधरे लोलाङ्गुली-सङ्गतां

रिङ्गद्भ्रू-भ्रमरं वराङ्गि परमानन्दं पुरः स्वी-कुरु ॥ 166 ॥

शब्दार्थ

जङ्गा-जांघ के; अधः-तट-घुटने के नीचे; सङ्गि-जोड़कर; दक्षिण-पदम्-दायें पैर को; किञ्चित्-थोड़ा; विभुग्न-त्रिकम्-तीन जगह से मुड़ा हुआ शरीर का मध्य भाग; साचि-स्तम्भित-कन्धरम्-जिनकी गर्दन मुड़ी हुई स्थिति में है; सखि-हे सखी, तिरः- सद्धारि-तिरछी घूमती हुई, नेत्र-अक्चलम्-जिनकी आँखों के किनारे; वंशीम्-बांसुरी; कुट्मलिते-पुष्प अंकुर के समान बन्द; दधानम-रखकर, अधरे-होठों पर; लोलअङ्कली-सङ्गताम्-इधर उधर घूमती हुई अँगुलियों से

युक्त; रिङ्गत्-भू-जिनकी धीमी घूमती भौंहें; भ्रमरम्-भौंरों की तरह, वर-अङ्गि-हे परम सुन्दरी; परम-आनन्दम्-आनन्द मूर्ति को; पुर-सामने स्थित; स्वी-कुरु-कृपया स्वीकार करो।

अनुवाद

"हे अतीव सुन्दर सखी, तुम अपने समक्ष खड़े दिव्य आनन्द से पूर्ण परम भगवान् को स्वीकार करो। उनकी आँखों की कोरें इधर-उधर घूमती हैं और उनकी भौंहें उनके कमल-मुख पर भौंरों के समान धीरे-धीरे गति करती हैं। वे अपने वामपद के घुटने के नीचे दक्षिण पद रखकर खड़े हैं, उनके शरीर का मध्य भाग तीन स्थानों से टेड़ा (त्रिभंगी) है। उनकी ग्रीवा शालीनतापूर्ण ढंग से एक ओर झुकी हुई है। वे अपनी वंशी को अपने कली जैसे बन्द होठों पर रखे हैं और उनकी अँगुलियाँ उन पर इधरउधर चल रही हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक ललित माधव नाटक (4,27) से है। यह श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित दस अंकों का नाटक है। इसे ललिता देवी ने राधारानी से कहा है।

कुल-वर-तनु-धर्म-ग्राव-वृन्दानि भिन्दन् सु-मुखि

निशित-दीर्घापाङ्ग-टङ्क-च्छटाभि: ।

युगपदयमपूर्व: क: पुरो विश्वकर्मा मरकत-

मणिा-लक्षेगॉष्ठ-कक्षां चिनोति ॥167॥

शब्दार्थ

कुल-वर-तनु-कुल की स्त्रियों का, धर्म-पति के प्रति समर्पण आदि रूपी; ग्रावव्रन्दानि–पत्थर; भिन्दन्—भेदते हुए; सु-मुखि-हे सुन्दर मुखवाली; निशित-तीक्ष्ण; दीर्घ-अपाङ्ग-आँखों के विशाल बाहरी किनारों के रूप में, टङ्क-छटाभिः-छेनियों द्वारा; युगपत्-एक साथ; अयम्-यह; अपूर्वः-अपूर्व; कः-कौन; पुरः-सामने; विश्वकर्मारचनाकार, मरकत-मणि-लक्षे:-अनगिनत मरकत मणियों के साथ; गोष्ठ-कक्षाम्-मिलने के एक गोपनीय कमरे में, चिनीति-वे निर्माण कर रहे हैं।

अनुवाद

“हे सुमुखी, हमारे समक्ष खड़ा यह कौन रचनाकार है? वह अपनी प्रेममयी चितवनों की तेज छेनियों से अनेक स्त्रियों के पतिव्रत धर्म रूपी कठोर पत्थरों को भेद रहा है और उसी के साथ वह अपने शरीर की कान्ति से, जो असंख्य मरकत मणियों की चमक का अतिक्रमण करने वाली है, अपनी लीलाओं के लिए गोपनीय मिलन-कक्ष का निर्माण कर रहा है।”

तात्पर्य

महेन्द्र-मणि-मण्डली-मद-विड़म्बि-देह-द्युतिर्

व्रजेन्द्र-कुल-चन्द्रमाः स्फुरति कोऽपि नव्यो युवा ।

सखि स्थिर-कुलाङ्गना-निकर-नीवि-बन्धार्गल

च्छिदा-करण-कौतुकी जयति यस्य वंशी-ध्वनिः ॥ 168 ॥

शब्दार्थ

महेन्द्र-मणि-महेन्द्र मणि नामक मणियों के; मण्डली-गुच्छों को, मद-विड़म्बिगर्व को भंग करनेवाली; देह-द्युतिः- जिसके शरीर की कान्ति; व्रजेन्द्र-कुल-चन्द्रमाः- व्रजराज (नन्द महाराज) के परिवार का चन्द्रमा; स्फुरति-प्रकट होता है; कः अपि-कुछ; नव्यः युवा-नव युवा व्यक्ति; सखि-हे मेरी प्रिय सखी; स्थिर-स्थिर; कुल-अङ्गना–कुल की स्त्रियों के; निकर-समूहों का; नीवि-बन्ध-अर्गल-कसे हुए वस्त्रों तथा कर धानियों जैसे बाधाओं का; छिदा-करण-काटने के निमित; कौतुकी-अति चतुराईपूर्वक, जयति-जय हो, यस्य-जिसकी; वंशी-ध्वनिः-वंशी की ध्वनि को।

अनुवाद

“हे प्रिय सखी, यह नवयुवक श्रीकृष्ण, जोकि नन्द महाराज के कुल का चन्द्रमा है, इतना सुन्दर है कि वह मूल्यवान मणियों के गुच्छे के सौन्दर्य को भी परास्त करने वाला है। उसकी वंशी की ध्वनि की जय हो, क्योंकि यह चतुराईपूर्वक साध्वी स्त्रियों के धैर्य का भंग करता है और जिससे उनके कटिबन्ध तथा कसे हुए वस्त्र ढीले हो जाते हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक ललित माधव (1.49) का है, जिसे ललितादेवी ने राधारानी से कहा है।

बलादक्ष्णोर्लक्ष्मीः कवलयति नव्यं कुवलयं

मुखोल्लासः पुल्लिं कमल-वनमुल्लङ्घयति च।

दशा कष्टामष्टापदमपि नयत्याङ्गिक–रुचिर्

विचित्रं राधायाः किमपि किल रूपं विलसति ॥ 169 ॥

शब्दार्थ

बलात्-बलपूर्वकः; अक्ष्णोः-दोनों नेत्रों का; लक्ष्मीः-सौन्दर्यः कवलयति-निगल जाता है; नव्यम्-नवीन जागृत, कुवलयम्-कमल पुष्प, मुख-उल्लासः-मुख की सुन्दरता; फुल्लम्-फलित, कमल-वनम्-कमल पुष्पों का वन; उल्लङ्घयति-पार करता है; च-भी; दशाम्-स्थिति को; कष्टाम्-कष्टदायक; अष्टा-पदम्-स्वर्ण; अपि-भी; नयतिलाता है; आङ्गिक-रुचिः-शरीर की कान्ति; विचित्रम्-आश्चर्यजनक; राधायाः-श्रीमती राधारानी का; किम् अपि-कुछ; किल-निश्चित रूप से; रूपम्-सौंदर्य, विलसति-प्रकट होता है।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी की आँखों का सौन्दर्य नये खिले नीले कमलों के सौन्दर्य को बलपूर्वक निगल जाता है और उनके मुख की सुन्दरता, पूरी तरह खिले कमलों के समूचे वनों का भी अतिक्रमण कर जाती है। उनके शरीर की कान्ति स्वर्ण को भी कष्टप्रद स्थिति में डालती प्रतीत होती है। इस तरह श्रीमती राधारानी का अदभुत, अद्वितीय सौन्दर्य वृन्दावन में उदित हो रहा है।"

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (1.32) का है। इसे पौर्णमासी ने कहा है।

विधुरेति दिवा विरूपतां

शत-पत्रं बत शर्वरी-मुखे।

इति केन सदा श्रियोज्वलं

तुलनामर्हति मत्प्रिययाननम् ॥ 170 ॥

शब्दार्थ

विधुः -चन्द्रमा; एति-हो जाता है; दिवा-दिन में, विरूपताम्-मन्द; शत-पत्रम्कमल पुष्प, बत-हाय; शर्वरी-मुखे-साँझ के आरम्भ में, इति-इस प्रकार, केन-किसके साथ; सदा-सदैव;श्रिया-उज्वलम्-सुन्दरता से कान्तिमान; तुलनाम्–तुलना; अर्हति-योग्य है; मत्-मेरा; प्रिया-अति प्रियतमा, आननम्-मुख।

अनुवाद

"यद्यपि चन्द्रमा का तेज रात्रि के प्रारम्भ में चमकीला रहता है, किन्तु दिन में वह मन्द पड़ जाता है। इसी तरह यद्यपि दिन के समय कमल सुन्दर लगता है, किन्तु रात्रि में वह बन्द हो जाता है। किन्तु हे मित्र, मेरी प्रियतमा श्रीमती राधारानी का मुख, चाहे दिन हो या रात, सदा सुन्दर तथा तेजयुक्त रहता है। इसलिए उसके मुख की तुलना किससे की जा सकती है?"

तात्पर्य

यह श्लोक (विदग्ध माधव 5.20) कृष्ण द्वारा मधुमंगल से कहा गया है।

प्रमद-रस-तरङ्ग-स्मेर-गण्ड-स्थलायाः

स्मर-धनुरनुबन्धि-भ्रू-लता-लास्य-भाजः ।

मद-कल-चल-भृङ्गी-भ्रान्ति-भङ्गीं दधानो

हृदयमिदमदाङ्क्षीत्पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षः ॥ 171 ॥

शब्दार्थ

प्रमद-प्रसन्नता का; रस-तरङ्ग-रस की निरन्तर लहरों के प्रवाह द्वारा; स्मेर-मन्द मुस्कुराती है; गण्ड-स्थलायाः-जिसके गाल; स्मर-धनुः-कामदेव का धनुष, अनुबन्धिसम्बन्धित; भ्रू-लता-तिरछी भौंहों का; लास्य-नृत्य, भाजः-जिसका है वह; मद-कलमदोन्मत्त; चल—अस्थिर, भृङ्गी–भ्रान्ति—भौरो का इधर उधर घूमना; भङ्गीम्—मुद्रा का; दधानः-प्रदान करती है; हृदयम्। इदम-इस हृदय को, अदाङ्क्षीत्-डस लिया है; पक्ष्मल-उत्कृष्ट पलकों वाली; अक्ष्याः-जिसकी दो आँखों का; कट-अक्षः-तिरछी चितवन।

अनुवाद

"जब श्रीमती राधारानी मुस्कुराती है, तो प्रसन्नता की लहरें उसके गालों पर बहने लगती हैं और उसकी तिरछी भौंहें कामदेव के धनुष के समान नृत्य करने लगती हैं। उसकी चितवन इतनी मोहक है कि यह मदोन्मत्त चंचल नृत्य करते भौंरे के तुल्य लगती है। उस भौंरे ने मेरे हृदय रूपी कोश को डस लिया है।"

तात्पर्य

यह श्लोक (विदग्ध माधव 2.51) भी भगवान् कृष्ण द्वारा कहा गया है।

राय कहे,-"तोमार कवित्व अमृतेर धार।

द्वितीय नाटकेर कह नान्दी-व्यवहार" ॥172॥

शब्दार्थ

राय कहे-रामानन्द राय कहते हैं; तोमार-आपकी; कवित्व-कवित्व प्रदर्शन की गुणवत्ता; अमृतेर धार-अमृत की निरन्तर वर्षा; द्वितीय नाटकेर-दूसरे नाटक का; कहकृपया कहो, नान्दी-व्यवहार-परिचायात्मक अंश।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी द्वारा सुनाए गये इन श्लोकों को सुनकर श्रील रामानन्द राय ने कहा, "तुम्हारी कविता की अभिव्यक्ति अमृत की निरन्तर वर्षा के तुल्य है। कृपया तुम मुझे अपने दूसरे नाटक का प्रस्तावनात्मक अंश सुनाओ।"

रूप कहे,—"काहाँ तुमि सूर्योपम भास।

मुञि कोन् क्षुद्र,–येन खद्योत-प्रकाश" ॥ 173॥

शब्दार्थ

रूप कहे-रूप गोस्वामी कहते हैं, काहाँ-कहाँ, तुमि-आप, सूर्य-उपम-सर्प के समान; भास-तेजस्वी; मुञि–मै; कोन्–कोई; क्षुद्र-तुच्छ; प्रेन-के समान; खद्योतप्रकाश-जुगनु के प्रकाश।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने कहा, "आपकी तेजस्वी सूर्य-प्रकाश के समान उपस्थिति में, मैं जुगनू के प्रकाश के समान नगण्य हूँ।"

“तोमार आगे धाष्टर्य एइ मुख-व्यादान”।

एत बलि’ नान्दी-श्लोक करिला व्याख्यान ॥174॥

शब्दार्थ

तोमार आगे-आपके सामने; धाऋष्य-धृष्टता, एइ-यह; मुख-व्यादान-मुख खोलना मात्र; एत बलि’-यह कहकर; नान्दी-श्लोक-प्रारम्भिक श्लोक; करिला व्याख्यान-सुनाया।

अनुवाद

“आपके समक्ष मुख खोलना तक मेरे लिए धृष्टता होगी।” यह कहकर उन्होंने ललित माधव का प्रारम्भिक श्लोक सुनाया।

सुर-रिपु-सुदृशामुरोज-कोकान्

मुख-कमलानि च खेदयन्नखण्डः।

चिरमखिल–सुहृच्चकोर-नन्दी

दिशतु मुकुन्द-यशः-शशी मुदं वः ॥ 175 ॥

शब्दार्थ

कोकान्-चक्रवाक नामक पक्षी की भाँति; मुख-चेहरे; कमलानि-कमलों के समान; च-और; खेदयन्-पीड़ा पहुँचाती है; अखण्डः-पूर्णतया बिना अवरोध के; चिरम्दीर्घकाल तक; अखिल–सभी के; सुहृत्-मित्र; चकोर-नन्दी—चकोर पक्षी को आनन्द देनेवाले; दिशतु-इसे देने दो; मुकुन्द-श्रीकृष्ण की; यशः-महिमा, शशी-चन्द्रमा के समान; मुदम्-आनन्द; वः-आप सबको।

अनुवाद

“मुकुन्द की सुन्दर चन्द्रमा तुल्य महिमा असुरों की पत्नियों के कमल समान मुखों को तथा ज्योतिर्मान चक्रवाक पक्षियों के तुल्य उनके उठे स्तनों को पीड़ा पहुँचाती है। किन्तु यही महिमा उनके भक्तों को, जोकि चकोर पक्षियों के तुल्य हैं, आनन्द प्रदान करने वाली है। वह महिमा आप सबको सदैव आनन्द प्रदान करे।”

तात्पर्य

यह श्लोक ललित H7धव नाटक के प्रथम अंक का प्रथम श्लोक है।

“द्वितीय नान्दी कह देखि?”—राय पुछिला।

सङ्कोच पाञा रूप पड़िते लागिला॥ 176॥

शब्दार्थ

द्वितीय नान्दी-द्वितीय नान्दी श्लोक, कह-कहिये; देखि-ताकि हम देख सकें; राय पुछिला-श्रील रामानन्द राय ने पुनः पूछा, सड़ोच पाञा-थोड़ा संकोच करके; रूप-श्रील रूप प स्वामी, पड़िते लागिला-पढ़ने लगे।

अनुवाद

जब श्रील रामानन्द राय ने द्वितीय नान्दी श्लोक के विषय में आगे पूछताछ की, तो श्रील रूप गोस्वामी थोड़ा हिचकिचाये, किन्तु तो भी उन्होंने पढ़ना शुरू किया।

निज-प्रणयितां सुधामुदयमाप्नुवन् यः क्षितौ

किरत्यलमुरी-कृत-द्विज-कुलाधिराज-स्थितिः।

स लुञ्छित-तमस्ततिर्मम शची-सुताख्यः शशी

वशी-कृत-जगन्मनाः किमपि शर्म विन्यस्यतु॥ 177॥

शब्दार्थ

निज-प्रणयिताम्-स्वयं अपनी प्रेम भक्ति; सुधाम्-अमृत; उदयम्-प्राकट्य; आप्नुवन्-प्राप्त करने के लिए; यः-जो; क्षितौ-पृथ्वी के तल पर; किरति-वर्धन करते हैं, अलम्-पर्याप्त रूप से, उरी-कृत-स्वीकृत; द्विज-कुल-अधिराज-स्थिति:-ब्राह्मण समुदाय के सर्वप्रमुख मुखिया की स्थिति; सः-वे; लुचित-दूर करते हैं; तमः-अन्धकार के; ततिः-समूह की; मम-मेरे; शची-सुत-आख्यः-शची सुत नाम से प्रसिद्ध, शती माता के पुत्र; शशी-चन्द्रमा, वशी-कृत-वश में किये हुए; जगत्-मना:-समस्त जगत् के मन; किम् अपि-किसी प्रकार, शर्म-सौभाग्य; विन्यस्यतु-इसे प्रदान करें।

अनुवाद

“चन्द्रमा सदृश पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, जोकि शचीनन्दन कहलाते हैं, अपना भक्तिमय प्रेम वितरित करने के लिए अब पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं। वे ब्राह्मण समुदाय के सम्राट हैं। वे अज्ञान के समस्त अन्धकार को

भगा सकते हैं और विश्व के हर एक व्यक्ति के मन को वश में कर सकते हैं। वह उदीयमान चन्द्रमा हम सबको सौभाग्य प्रदान करे।"

तात्पर्य

यह ललित माधव के प्रथम अंक का तीसरा श्लोक है।

शुनिया प्रभुर यदि अन्तरे उल्लास ।

बाहिरे कहेन किछु करि' रोषाभास ॥ 178॥

शब्दार्थ

शुनिया-यह सुनकर; प्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; यदि-यद्यपि, अन्तोरे-अन्तर्मन में, उल्लास-अत्यन्त आनन्द नुभूति; बाहिरे-बाहर से: कहेन-कहते हैं; किछुकुछ; करि'-करते हुए, रोष-आभास-क्रोधित जैसे।

अनुवाद

यद्यपि इस श्लोक को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु भीतर से अत्यन्त प्रसन्न थे, किन्तु बाहर से वे ऐसा बोले मानो कुद्ध हों।

"काँहा तोमार कृष्ण-रस-काव्य-सुधा-सिन्धु ।

तार मध्ये मिथ्या केने स्तुति-क्षार-बिन्दु" ॥179॥

शब्दार्थ

काँहा-कहाँ, तोमार-तुम्हारा; कृष्ण-रस-काव्य-भगवान् कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित उच्च कोटि का काव्यात्मक वर्णन; सुधा-सिन्धु-अमृत का समुद्र; तार मध्ये-उसके भीतर; मिथ्या-मिथ्या; केने-क्यों; स्तुति-प्रार्थना; क्षार-बिन्दु—अम्ल की एक बूँद के समान।

अनुवाद

"कृष्ण-लीला-रस विषयक तुम्हारे उच्च कोटि के काव्यात्मक वर्णन अमृत के सागर के समान हैं। किन्तु तुमने मेरे विषय में मिथ्या स्तुति क्यों रख दी है? यह अरुचिकर अम्ल की एक बूँद के समान है।"

राय कहे,—"रूपेर काव्य अमृतेर पूर ।

तार मध्ये एक बिन्दु दियाछे कपूर” ॥180॥

शब्दार्थ

102 श्रीचेतन्य-चरितामृत अन्त्य लीला, अध्याय 1 राय कहे-श्रील रामानन्द राय ने कहा; रूपेर काव्य-श्रील रूप गोस्वामी की काव्यात्मक अभिव्यक्ति; अमृतेर पूर-सम्पूर्ण अमृत से परिपूर्ण; तार मध्ये-जिसमें; एक बिन्दु-एक बूँद; दियाछे-उन्होंने डाली है; कर्पूर-कपूर की।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ने आपत्ति की, “यह तो अम्ल नहीं है। यह तो वह कपूर का कण है, जिसे उसने अपनी उच्च काव्याभिव्यक्ति के अमृत में रख दिया है।”

प्रभु कहे,-“राय, तोमार इहाते उल्लास ।

शुनितेइ लज्जा, लोके करे उपहास” ॥181॥

शब्दार्थ

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; राय-रामानन्द राय; तोमार-तुम्हारा; इहातेइसमें, उल्लास-हर्ष, शुनितेइ-सुनकर; लज्जा-लजित हूँ, लोके-जन साधारण; करे-करेंगे; उपहास-मजाक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “मेरे प्रिय रामानन्द राय, तुम इन काव्याभिव्यक्तियों को सुनकर हर्षित हो, किन्तु मैं इन्हें सुनकर लजित हूँ, क्योंकि सामान्य लोग इस श्लोक की विषय-वस्तु के बारे में हँसी उड़ायेंगे।”

राय कहे,-“लोकेर सुख इहार श्रवणे ।

अभीष्ट-देवेर स्मृति मङ्गलाचरणे” ॥182॥

शब्दार्थ

राय कहे-रामानन्द राय ने कहा; लोकेर-जन साधारण की; सुख-प्रसन्नता, इहार श्रवणे-ऐसी काव्यात्मक अभिव्यक्ति को सुनकर; अभीष्ट-देवेर-पूज्य देवविग्रह का; स्मृति-स्मरण, मङ्गल-आचरणे-आरम्भ में सौभाग्य प्रदान करती है।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "उपहास के स्थान पर सामान्य लोग ऐसी कविता सुनकर परम आनन्द का अनुभव करेंगे, क्योंकि आराध्य विग्रह की प्रारम्भिक स्मृति सौभाग्य प्रदान करती है।"

राय कहे,—"कोन् अङ्गे पात्रेर प्रवेश ?" ।

तबे रूप-गोसाञि कहे ताहार विशेष ॥183॥

शब्दार्थ

राय कहे-रामानन्द राय ने कहा; कोन्-किस; अङ्गे-उपविभाग शैली से; पात्रेर प्रवेश-पात्रों का प्रवेश, तबे-उस समय, रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी, कहेकहना प्रारम्भ किया; ताहार विशेष-विशिष्ट रूप से इस विषय पर।

अनुवाद

रामानन्द राय ने पूछा, "अभिनेता किस शैली उपविभाग (अंग) से प्रवेश करते हैं?" रूप गोस्वामी तब इसी विषय पर विशेष रूप से बोलने लगे।

नटता किरात-राजं

निहत्य रङ्ग-स्थले कला-निधिना ।

समये तेन विधेयं

गुणवति तारा-कर-ग्रहणम् ॥184॥

शब्दार्थ

नटता-रंगमंच पर नृत्य; किरात-राजम्-किरातों के राजा, कंस का; निहत्य-वध करके; रङ्ग-स्थले-मंच पर; कला-निधिना-सभी कलाओं के स्वामी द्वारा; समये-समय पर, तेन-उनके द्वारा; विधेयम्-किया जायेगा; गुण-वति-शुभ घड़ी में, तारा-करतारा (राधा) का हाथ; ग्रहणम्-ग्रहण किया जायेगा।

अनुवाद

"असभ्य लोगों के शासक (कंस) का वध करने के बाद मंच पर नृत्य करते हुए समस्त कलाओं के स्वामी भगवान् कृष्ण उपयुक्त समय पर श्रीमती राधारानी के साथ पाणिग्रहण स्वीकार करेंगे, जो सभी दिव्य गुणों से युक्त हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक ललित माधव (1.11) से उद्धृत है।

'उद्घात्यक' नाम एइ 'आमुख'—'वीथी' अङ्गः ।

तोमार आगे कहि–इहा धाष्टर्येर तरङ्ग ॥ 185 ॥

शब्दार्थ

'उद्घात्यक' नाम-अभिनेता का नृत्य करते हुए प्रकट होना जिसे शास्त्रीय रीति से 'उद्घात्यक' कहते हैं; एइ आमुख-यह प्रस्तावना; वीथी अङ्ग-वह अंग वीथी कहलाता है; तोमार आगे-आपके समक्ष, कहि-मैं कहता हूँ, इहा-यह; धाष्टर्गेर तरङ्ग-धृष्टता की एक लहर।

अनुवाद

"यह प्रस्तावना शास्त्रीय रीति से उद्घात्यक कहलाती है और सम्पूर्ण दृश्य वीथी कहलाता है। आप नाटकीय अभिव्यक्ति में इतने पटु हैं कि आपके समक्ष मेरा हर कथन धृष्टता के सागर से उठने वाली तरंग के समान है।"

तात्पर्य

इस प्रसंग में श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने साहित्य दपण का निम्नलिखित श्लोक (6.288) पुनः उद्धृत किया है :

उद्घात्यकः कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा ।

प्रवर्तकावलगिते पञ्च प्रस्तावनाभिदाः ॥

इस तरह नाटक के पाँच प्रकार के प्रस्तावना दृश्यों के पारिभाषिक नाम हैं-उद्घात्यक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक तथा अवलगित जब श्री रामानन्द राय ने यह पूछा कि श्रील रूप गोस्वामी ने इन पाँचों में से किसका प्रयोग अपने

ललित माधव नाटक की प्रस्तावना पूरी करने के लिए किया है, तो रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया कि उन्होंने उद्घात्यक प्रस्तावना का प्रयोग किया है। भारती वृति के अनुसार तीन शास्त्रीय शब्द प्रयोग में आते हैं- प्ररोचना, वीथी तथा प्रहसना। इस तरह रूप गोस्वामी ने वीथी का भी उल्लेख किया, जो एक प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त होने वाला पारिभाषिक शब्द है। साहित्या दर्पण (6.520) के अनुसार :

वीथ्यामेको भवेदंकः कश्चिदेकोऽत्र कल्प्यते ।

आकाशभाषितैरुक्तैश्चित्रां प्रत्युक्तिमाश्रितः ॥

वीथी से प्रारम्भ होने वाले नाटक में केवल एक अंक होता है। उस दृश्य में नायकों में से एक मंच में प्रवेश करता है और आकाश से आने वाली वाणी द्वारा उच्चरित विरोधी कथनों के माध्यम से वह पर्याप्त माधुर्य रस तथा अन्य रस का परिचय देता है। परिचय के दौरान नाटक के सारे बीजों का आरोपण हो जाता है। यह प्रस्तावना उद्घात्यक कहलाती है, क्योंकि अभिनेता मंच पर नृत्य करता है। यह शब्द यह भी बताता है कि मंच पर पूर्ण चन्द्रमा प्रवेश कर रहा है। इस प्रसंग में, जब नटता ("मंच पर नृत्य करना") शब्द को चन्द्रमा से जोड़ा जाता है, तो इसका अर्थ स्पष्ट नहीं रहता, किन्तु जब नटता शब्द को कृष्ण से जोड़ दिया जाता है, तब अर्थ पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है। इस तरह की प्रस्तावना उद्घात्यक कहलाती है।

श्रील रामानन्द राय ने श्रील रूप गोस्वामी से विचार-विमर्श करते समय अत्यन्त शास्त्रीय शब्दों का व्यवहार किया। रूप गोस्वामी ने स्वीकार किया कि श्रील रामानन्द राय प्रामाणिक नाटक रचना के प्रकाण्ड विद्वान हैं। इस तरह श्रील रामानन्द राय के प्रश्न का उत्तर देने के लिए सर्वथा सक्षम होने पर भी श्रील रूप गोस्वामी ने अपनी वैष्णव विनयशीलता के कारण स्वीकार किया कि उनके शब्द धृष्ट थे। वस्तुत: रूप गोस्वामी तथा रामानन्द राय दोनों ही काव्य रचना में परम कुशल थे और साहित्य दपंण तथा अन्य वैदिक ग्रन्थों के अनुसार ही उसे प्रस्तुत कर रहे थे।

पदानि त्वगतार्थानि तदर्थ-गतये नरा: ।

योजयन्ति पदैरन्यैः स उद्घात्यक उच्यते ॥ 186 ॥

शब्दार्थ

पदानि-शब्द; तु-परन्तु अगत-अर्थानि-अस्पष्ट अर्थ वाले; तत्-वह; अर्थगतये-अर्थ को समझने के लिए, नरा:-लोग; योजयन्ति-जोड़ते हैं; पदै:-शब्दों से, अन्यैः-दूसरे; सः-वह; उद्घात्यकः-उद्घात्यकः; उच्यते-कहलाता है।

अनुवाद

"किसी अस्पष्ट शब्द की व्याख्या करने के लिए लोग सामान्यतया इसे अन्य शब्दों से जोड़ते हैं। ऐसा प्रयास उद्घात्यक कहलाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक साहित्य दपण (6.289) से है।

राय कहे,—"कह आगे अङ्गेर विशेष"।

श्री-रूप कहेन किछु सङ्क्षेप-उद्देश ॥ 187॥

शब्दार्थ

राय कहे-श्रील रामानन्द राय ने कहा; कह-कृपया मुझे बताइये; आगे-आगे; अङ्गेर विशेष-विशिष्ट भाग; श्री-रूप कहेन-श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं; किछु-कुछ; सङ्क्षेप-संक्षेप में; उद्देश-उदाहरण।

अनुवाद

जब रामानन्द राय ने श्रील रूप गोस्वामी से नाटक के विभिन्न अंगों के विषय में और अधिक बोलने के लिए कहा, तो श्रील रूप गोस्वामी ने संक्षेप में ललित माधव से उद्धरण दिये।

हरिमुद्दिशते रजो-भरः

पुरतः सङ्गमयत्यमुं तमः।

व्रज-वाम-दृशां न पद्धतिः

प्रकटा सर्व-दृशः श्रुतेरपि ॥ 188॥

शब्दार्थ

हरिम्-कृष्ण; उद्दिशते-यह दर्शाता है; रजः-भरः-गौवों से उठी धूलि; पुरतः- समक्ष; सङ्गमयति-मिलने का कारण बनती है; अमुम्-कृष्ण से; तमः-अन्धकार; व्रजवाम-दृशाम्-वृन्दावन की गोपियों का, न-नहीं, पद्धतिः-कार्यों की विधि; प्रकटा-प्रकट हुई, सर्व-दृशः-जो सब कुछ जानते हैं; श्रुतेः-वेदों के; अपि-साथ ही साथ।

अनुवाद

"मार्ग पर गौवों तथा बछड़ों से उठी धूल एक तरह का अँधेरा उत्पन्न करती है, जो यह बताता है कि कृष्ण गोचारण-भूमि से घर लौट रहे हैं। यही नहीं, संध्याकालीन अँधेरा गोपियों को कृष्ण से मिलने के लिए उद्दीप्त करता है। इस तरह कृष्ण तथा गोपियों की लीलाएँ एक प्रकार के दिव्य औधेरे से ढक जाती हैं, इसलिए वेदों के सामान्य विद्वानों के लिए देख पाना असम्भव हो जाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक ललित माधव (1.23) का है, जिसे पौर्णमासी ने गार्गी से बातचीत के दौरान कहा।

भगवद्गीता (2.45) में श्रीकृष्ण ने कहा है- त्रेगुण्य-विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। इस तरह वे अर्जुन को भौतिक प्रकृति के तीन गुणों से ऊपर उठने को कहते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण वैदिक प्रणाली सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के वर्णनों से भरी पड़ी है। सामान्यतया लोग रजोगुण से आवृत रहते हैं, इसलिए वे व्रज की गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाएँ समझ पाने में असमर्थ रहते हैं। साथ ही तमोगुण उनके ज्ञान को और भी विचलित कर देता है। किन्तु वृन्दावन में यद्यपि कृष्ण धूल के धुंधले अन्धकार से आच्छादित रहते हैं, फिर भी गोपियाँ समझ सकती हैं कि धूल की आँधी के बीच कृष्ण हैं। चूँकि वे उनकी सर्वोच्च भक्त हैं, अत: वे हर बात में कृष्ण के हाथ होने का अनुभव करती हैं। इस तरह आँधेरे में या धूल की धुंधली आँधी में भी भक्त समझ सकते हैं कि कृष्ण क्या कर रहे हैं। इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि कृष्ण गोपियों जैसी उच्च भक्तों की दृष्टि से कभी भी अदृश्य नहीं होते।

ह्रियमवगृह्य गृहेभ्य: कर्षति

राधां वनाय या निपुणा ।

सा जयति निसृष्टार्था

वर-वंशज-काकली दूती ॥189॥

शब्दार्थ

ह्रियम्-लज्जा को; अवगृह्य-हरकर; गृहेभ्यः-अपने घर से; कर्षति-आकृष्ट करती है; राधाम-श्रीमती राधारानी को, वनाय-वन की ओर, या-जो; निपुणा-अत्यन्त निपुण; सा-उसकी; जयति-जय हो, निसृष्ट-अर्था-प्रामाणिक, वर-वंश-ज-बांस की बंशी की, काकली-मधुर ध्वनि, दूती-सन्देशवाहिनी।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण की प्रामाणिक दूती वंशी की मधुर ध्वनि की जय हो, क्योंकि वह कुशलतापूर्वक श्रीमती राधारानी की लज्जा को दूर करती है और उन्हें अपने घर से वन के लिए आकृष्ट करती है।”

तात्पर्य

यह श्लोक ललित माधव (1.24) से है, जिसे गर्गमुनि की कन्या गार्गी ने कहा है।

सह-चरि निरातङ्कः कोऽयं युवा मुदिर-द्युतिर्

व्रज-भुवि कुतः प्राप्तो माद्यन्मते-गज-विभ्रमः ।

अहह चटुलैरुत्सर्पद्भिईगञ्चल-तस्करैर्

मम धृति-धनं चेतः-कोषाद्विलुण्ठयतीह यः ॥ 190 ॥

शब्दार्थ

सह-चरि-हे मेरी प्रिय सखी; निरातङ्कः-निडर; कः-कौन; अयम्-यह; युवा— युवक, मुदिर-द्युतिः-चमकते हुए बादल के समान कान्तिमान; ब्रज-भुवि-व्रज भूमि, वृन्दावन में, कुतः-कहाँ से; प्राप्तः-प्राप्त किया है; माद्यन्-मदोन्मत्त होकर, मतम्गज-हाथी की तरह,; विभ्रमः-जिसकी लीलाएँ, अहह-हाय; चटुलैः-अत्यन्त अस्थिर, उत्सर्पद्भिः-सभी दिशाओं में विचरण करते; हक्-अश्चल-तस्करैः-चोर जैसी अपनी आँखों की चितवन से; मम-मेरे; धृति-धनम्-मेरे धैर्य के खजाने को; चेतः-हृदय की; कोषात्-तिजोरी से; विलुण्ठयति-चुरा रहा है; इह-इस वृन्दावन में, यः-वह व्यक्ति जो।

अनुवाद

“हे प्रिय सखी, यह निडर युवक कौन है? यह बिजली से युक्त बादल की तरह तेजवान है और अपनी लीलाओं में उन्मत्त हाथी की तरह विचरण करता है। यह वृन्दावन में कहाँ से आया है? हाय, यह अपने चंचल हावभावों तथा आकर्षक चितवनों से मेरे हृदय की तिजोरी से धैर्य रूपी खजाना लूट रहा है।”

तात्पर्य

यह श्लोक (ललित म78/व 2.11) श्रीमती राधारानी ने अपनी सखी ललिता देवी से कहा है।

विहार-सुर-दीर्घिका मम मनः-करीन्द्रस्य या

विलोचन–चकोरयोः शरदमन्द-चन्द्र-प्रभा ।

उरोऽम्बर-तटस्य चाभरण-चारु-तारावली

मयोन्नत-मनोरथैरियमलम्भि सा राधिका ॥ 191 ॥

शब्दार्थ

विहार-सुर-दीर्घिका-देव लोकों में बहने वाली गंगा, मम-मेरे; मन:-करिइन्द्रस्य-हाथी के समान मन का, या-वह (स्त्री); विलोचन-दृष्टिपात, चकोरयो:-मेरे दो नेत्रों की, जो चकोर पक्षी के समान हैं, शरत्-अमन्द-चन्द्र-प्रभा-शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्र की कान्ति के समान, उर:-मेर वक्ष स्थल के; अम्बर-आकाश जैसे; तटस्य-किनारे पर; च-भी; आभरण-आभूषण, चारु-सुन्दर, तारा-आवली-तारों के समान, मया-मेरे द्वारा; उन्नत-अत्यन्त उन्नत; मन:-रथै:-मन की इच्छाओं द्वारा; इयम्-यह; अलम्भि-प्राप्त कर लिया है; सा-सा, राधिका-श्रीमती राधारानी को।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी गंगा है, जिसमें मेरा मन रूपी हाथी विहार करता है। वह मेरे नेत्र रूपी चकोरों के लिए शरदकालीन पूर्ण चन्द्रमा है। वह चमचमाता आभूषण मेरे वक्षस्थल रूपी आकाश के किनारे तारों की चमकीली तथा सुन्दर सजावट है। आज मैंने श्रीमती राधारानी को अपने मन की उन्नत अवस्था के कारण प्राप्त कर लिया है।"

तात्पर्य

यह श्लोक ललित माधव (2.10) से है, जिसमें श्रीमती राधारानी के विषय में श्रीकृष्ण के विचार व्यक्त हुए हैं।

एत शुनि' राय कहे प्रभुर चरणे ।

रूपेर कवित्व प्रशंसि' सहस्र-वदने ॥ 19.2 ॥

शब्दार्थ

एत शुनि'-यह सुनकर, राय-रामानन्द राय, कहे-कहते हैं; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में, रूपेर-श्रील रूप गोस्वामी के, कवित्व-कवित्व कला की; प्रशंसि'-प्रशंसा करते हैं, सहस्र-वदने-मानो हजारों मुखों से।

अनुवाद

यह सुनकर श्रील रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों पर श्रील रूप गोस्वामी के कवित्व की अति श्रेष्ठता का निवेदन किया और उसकी इस तरह प्रशंसा करने लगे मानो उनके हजार मुख हों।

“कवित्व ना हय एइ अमृतेर धार ।

नाटक-लक्षणा सब सिद्धान्तेर सार” ॥ 193 ॥

शब्दार्थ

कवित्व-कवित्व कला; ना हय-नहीं है; एइ-यह; अमृतेर धार-अमृत की निरन्तर वर्षा है; नाटक-नाटक; लक्षण-प्रकट हो रहे हैं; सब-सभी; सिद्धान्तेरसार-सिद्धान्तों का सार ।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ने कहा, “यह काव्य-प्रस्तुति नहीं, यह तो अमृत की निरन्तर वर्षा है। निस्सन्देह, यह समस्त सिद्धान्तों का सार है, जो नाटकों के रूप में प्रकट हुआ है।”

प्रेम-परिपाटी एइ अद्भुत वर्णन ।

शुनि’ चित्त-कर्णेर हय आनन्द-घूर्णन ॥194॥

शब्दार्थ

प्रेम-परिपाटी-प्रेम व्यवहारों का वर्णन करने की प्रथम श्रेणी की व्यवस्था; एइ-यह; अद्भुत वर्णन-अद्भुत वर्णन, शुनि-सुनकर, चित्त-कर्णर-हृदय और कानों का, हयहोता है; आनन्द-घूर्णन-दिव्य आनन्द का भंवर।

अनुवाद

“रूप गोस्वामी द्वारा किये गये अदभुत वर्णन प्रेम-व्यवहारों को व्यक्त करने के लिए सर्वोत्तम व्यवस्था है। उन्हें सुनकर हर व्यक्ति के हृदय तथा कान दिव्य आनन्द के भेंवर में निमग्न हो जायेंगे।

किं काव्येन कवेस्तस्य किं काण्डेन धनुष्मतः ।

परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः ॥ 195॥

शब्दार्थ

किम्-क्या लाभ है; काव्येन-काव्य से; कवेः-कवि के; तस्य-उस; किम्-क्या लाभ है; काण्डेन-बाण का, धनुः-मतः-धनुधारी के; परस्य-दूसरे के; हृदये-हृदय में, लग्नम-भेदते हैं; न घूर्णयति-चकराने का कारण नहीं बनते; यत्-जो; शिरः-सिर को।

अनुवाद

"धनुर्धर के तीर अथवा कवि की कविता का क्या लाभ, यदि वे हृदय में प्रवेश तो करते हैं, किन्तु सिर को चकरा नहीं देते?"

"तोमार शक्ति विना जीवेर नहे एइ वाणी।

तुमि शक्ति दिया कहाओ,–हेन अनुमानि" ॥ 196॥

तोमार शक्ति विना-आपकी विशेष कृपा के बिना; जीवेर-सामान्य जीव के; नहेनहीं हो सकती; एइ वाणी-ये शब्द; तुमि-आप; शक्ति दिया-शक्ति देकर, कहाओइनसे कहलवा रहे हैं; हेन-ऐसा; अनुमानि-मेरा अनुमान है।

अनुवाद

"आपकी कृपा के बिना किसी सामान्य जीव के लिए इस तरह की काव्य रचना कर पाना असम्भव होगा। मेरा अनुमान है कि आपने उसे यह शक्ति प्रदान की है।"

प्रभु कहे,-"प्रयागे इहार हइल मिलन।

इहार गुणे इहाते आमार तुष्ट हैल मन" ॥ 197॥

प्रभु कहे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; प्रयागे-प्रयाग में, इहार-इसका; हइल-हुआ था; मिलन-मिलन, भेंट, इहार गुणे-इसके दिव्य गुणों द्वारा, इहाते-इसमें, आमार-मेरा; तुष्ट-सन्तुष्ट, हैल-हुआ; मन-मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मै श्रील रूप गोस्वामी से प्रयाग में मिला था। उसने अपने गुणों के कारण मुझे आकृष्ट और तुष्ट किया था।"

तात्पर्य

ऐसा नहीं है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् किसी का पक्ष लें और अन्यों से उदासीन रहें। वस्तुत: सेवा द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है। तब व्यक्ति को भगवान् द्वारा इस तरह से कार्य करने की शक्ति प्रदान की जाती है कि हर कोई उसकी सेवा की प्रशंसा करे। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (4.11) द्वारा होती है- ये यथा मां

प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भज/म्यहमू/ कृष्ण आदान-प्रदान करते हैं। यदि कोई भगवान् की सर्वोत्तम सेवा करने का प्रयास करता है, तो भगवान् उसे ऐसा करने की शक्ति प्रदान करते हैं। कृष्ण ने भगवद्गीता (10.10) में यह भी कहा है :

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

"जो लोग निरन्तर भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी सेवा के प्रति समर्पित हैं, उन्हें मैं वह बुद्धि देता हूँ जिससे वे मेरे पास आ सकें।" श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी पर विशेष कृपा की, क्योंकि श्रील रूप गोस्वामी अपनी शक्ति के अनुसार सर्वोत्तम रूप से भगवान् की सेवा करना चाहते थे। भक्तिमय कार्यों को सम्पन्न करने में भक्त और भगवान् में इस प्रकार का आदान-प्रदान होता है।

मधुर प्रसन्न इहार काव्य सालङ्कार ।

ऐछे कवित्व विनु नहे रसेर प्रचार ॥198॥

मधुर-मधुर, प्रसन्न-आनन्ददायक, इहार-इसका; काव्य-कवित्व, स-अलङ्काररूपक और अलंकारों से युक्त; ऐछे-ऐसे है कि, कवित्व-कवित्व गुण, विनु-विना; नहे-नहीं है; रसेर-रसों का; प्रचार-प्रचार। अनुवाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी की दिव्य कविता के रूपकों तथा अन्य साहित्यिक अलंकारों की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि ऐसे काव्य लक्षणों (कवित्व) के बिना दिव्य रसों का प्रचार करने की सम्भावना नहीं है।

सबे कृपा करि' इँहारे देह' एइ वर ।

व्रज-लीला-प्रेम-रस येन वर्णे निरन्तर ॥ 199 ॥

सबे-आप सभी; कृपा करि'-कृपा करके; हूँहारे-श्रील रूप गोस्वामी को; देह"- दीजिये; एइू वर-यह वरदान; व्रज-लीला-प्रेम-रस-वृन्दावन की लीलाओं के दिव्य रस; येन-ताकि, वर्ण-यह वर्णन कर सके; निरन्तर-बिना रूकावट के।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने समस्त निजी संगियों से रूप गोस्वामी को आशीर्वाद देने के लिए विनती की जिससे वे वृन्दावन-लीलाओं का निरन्तर वर्णन कर सकें, क्योंकि ये परम भगवान् के भावात्मक प्रेम से परिपूर्ण हैं।

इँहार ये ज्येष्ठ-भ्राता, नाम-'सनातन' ।

पृथिवीते विज्ञ-वर नाहि ताँर सम ॥ 200 ॥

इँहार-श्रील रूप गोस्वामी का, ये-जो, ज्येष्ठ-भ्राता-बड़ा भाई है; नाम-नाम का, सनातन-सनातन गोस्वामी; पृथिवीते-पृथ्वी पर; विज्ञ-वर-अत्यन्त ज्ञानी; नाहि-अन्य कोई नहीं है; ताँर सम-उसके समान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "श्रील रूप गोस्वामी का बड़ा भाई जिसका नाम सनातन गोस्वामी है, इतना विवेकी तथा विद्वान पण्डित है कि उसकी समता कोई नहीं कर सकता।"

तोमार यैछे विषय-त्याग, तैछे ताँर रीति ।

दैन्य-वैराग्य-पाण्डित्येर ताँहातेइ स्थिति ॥ 201 ॥

तोमार-तुम्हारी; यैछे-जैसा; विषय-त्याग-भौतिक सम्बन्धों से विरक्ति; तैछे-वैसा ही; ताँर रीति-उसकी कार्यविधि; दैन्य-विनम्रता; वैराग्य-वैराग्य भाव, पाण्डित्येरविद्वता की; ताँहातेइ-उसमें; स्थिति-स्थिति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभुने रामानन्द राय से कहा, "सनातन गोस्वामी का भौतिक सम्बन्धों से विच्छेद तुम्हारे ही जैसा है। दीनता, वैराग्य तथा पाण्डित्य उसमें एकसाथ पाये जाते हैं।"

एइ दुइ भाइये आमि पाठाइलुँ वृन्दावने ।

शक्ति दिया भक्ति-शास्त्र करिते प्रवर्तने ॥ 202 ॥

एइ-इन, दुइ-दोनों, भाइये-भाइयों को, आमि-मैंने; पाठाइलुँ-भेज दिया; वृन्दावने-वृन्दावन, शक्ति दिया-इन्हें शक्ति प्रदान करके; भक्ति-शास्त्र-भक्तिमयी सेवा से सम्बन्धित दिव्य साहित्य; करिते-करने के लिए, प्रवर्तने-प्रचार।

अनुवाद

"मैंने इन दोनों भाइयों को वृन्दावन जाकर भक्ति साहित्य का विस्तार करने के लिए शक्ति प्रदान की।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रामानन्द राय को बताया कि वे तथा सनातन गोस्वामी भौतिक कार्यकलाप से सम्बन्ध त्याग देने के बाद समान रूप से भक्ति में लग गये थे। ऐसा वैराग्य पूरी तरह भौतिक कल्मष रहित भगवद्भक्ति में संलग्न

शुद्ध भक्त का लक्षण है। श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुसार यह तृणादपि सुनीचन तरोरिव सहिष्णुना जैसा पद है। शुद्ध भक्त, भौतिक गुणों के परिणामों से मुक्त होकर वृक्ष के ही समान सहिष्णु बनकर भक्ति करता है। वह अपने आपको घास से भी नीच मानता है। ऐसा भक्त निष्किद्धन कहलाता है। वह सदैव ईश्वर के भावात्मक प्रेम में निमग्न रहता है। वह किसी भी तरह की इन्द्रियतृप्ति का भोग करने के लिए अनिच्छुक रहता है। दूसरे शब्दों में, ऐसा भत समस्त भौतिक बन्धन से मुक्त रहता है, किन्तु वह अपने आपको कृष्णभावनाभावित कार्यों में लगाता है। ऐसी दक्ष भक्ति कपटरहित होकर सम्पन्न की जाती है। दीनता, वैराग्य तथा पांडित्य-इन तीनों का संगम सनातन गोस्वामी में था, जो एक आदर्श शुद्ध भक्त थे और श्रील रामानन्द राय के समान ही ज्ञानवान थे। रामानन्द राय की ही तरह सनातन गोस्वामी भक्ति के सिद्धान्तों से पूर्णतया अवगत थे, अतएव ऐसे दिव्य ज्ञान का वर्णन करने में सक्षम थे।

राय कहे,-"ईश्वर तुमि ये चाह करिते ।

काष्ठेर पुतली तुमि पार नाचाइते" ॥203॥

राय कहे-श्रील रामानन्द राय ने कहा; ईश्वर तुमि-आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, ये-जो कुछ भी; चाह-आप चाहते हैं; करिते-करना; काछेर-लकड़ी के; पुतलीपुतले, तुमि-आप; पार-समर्थ हैं, नाचाइते-नचाने में।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु को उत्तर दिया, "हे प्रभु, आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। आप चाहें तो एक काठ की पुतली को भी नचा सकते हैं।"

मोर मुखे ये सब रस करिला प्रचारणे ।

सेइ रस देखि एइ इहार लिखने ॥ 204 ॥

मोर मुखे-मेरे मुख से, ये-जो कुछ; सब रस-वे सभी दिव्य रस; करिला-आपने करवाये; प्रचारणे-प्रचारित, सेइ रस-बिल्कुल वही दिव्य रस, देखि-मैं देख रहा हूँ, एइ-यह; इहार लिखने-श्रील रूप गोस्वामी की रचनाओं में।

अनुवाद

"मैं देख रहा हूँ कि आपने मेरे मुख के माध्यम से जिस दिव्य रस से सम्बन्धित सत्य की स्थापना की है, वह सब श्रील रूप गोस्वामी की रचनाओं में विवेचित है।"

भक्ते कृपा-हेतु प्रकाशिते चाह व्रज-रस ।

यारे कराओ, सेइ करिबे जगत् तोमार वश ॥ 205 ॥

भक्ते-भक्तों पर; कृपा-हेतु-कृपा के कारण; प्रकाशिते-प्रकट करवाना; चाहआप चाहते हैं; व्रज-रस-वृन्दावन के दिव्य रस, यारे-जिस किसी को भी; कराओ-आप शक्ति प्रदान करें; सेइ-वही; करिबे-करेगा; जगत्-सम्पूर्ण विश्व को; तोमार वशआपके वश में।

अनुवाद

"अपने भक्तों पर अहैतुकी कृपा के कारण आप वृन्दावन की दिव्य लीलाओं का वर्णन कराना चाहते हैं। जिस किसी को भी ऐसा करने की शक्ति प्राप्त हो जाए, वह सारे जगत् को आपके वश में ला सकता है।"

तात्पर्य

यह कथन कृष्णशकि विना नहे तार प्रवतन के ही समान है, जिसका अर्थ यह है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से शक्ति प्राप्त किये बिना कोई व्यक्ति सारे जगत् में भगवान् के पवित्र नाम का प्रसार नहीं कर सकता। (चैतन्यचरितामृत, अन्त्य 7,11)। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के संरक्षण में शुद्ध भक्त भगवान् के पवित्र नाम का प्रचार कर सकता है, जिससे हर व्यक्ति इस सुविधा का लाभ उठाकर कृष्णभावनाभावित बन सकता है।

तबे महाप्रभु कैला रूपे आलिङ्गन।

तौरे कराइला सबार चरण वन्दन ॥ 206 ॥

तबे-उस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुने; कैला-किया; रूपे-रूप गोस्वामी को; आलिङ्गन-आलिंगन; तौरे-उनसे; कराइला-करवाई; सबार-उन सभी के; चरण वन्दन-चरणकमलों की वन्दना।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रूप गोस्वामी का आलिंगन किया और उनसे वहाँ उपस्थित सारे भक्तों के चरणकमलों की वन्दना करने के लिए कहा।

अद्वैत-नित्यानन्दादि सब भक्त-गण।

कृपा करि' रूपे सबे कैला आलिङ्गन ॥ 207॥

अद्वैत-अद्वैत आचार्य; नित्यानन्द-आदि-श्री नित्यानन्द प्रभु और अन्य; सब-सभी, भक्त-गण-अन्तरंग भक्त; कृपा करि'-अति कृपा करके; रूपे-रूप गोस्वामी को; सबे-सभी ने; कैला आलिङ्गन-गले लगा लिया।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द प्रभु तथा अन्य सारे भक्तों ने रूप गोस्वामी का आलिंगन करके उन पर अपनी अहैतुकी कृपा प्रदर्शित की।

प्रभु-कृपा रूपे, आर रूपेर सदगुण ।

देखि' चमत्कार हैल सबाकार मन ॥ 208 ॥

प्रभु-कृपा-चैतन्य महाप्रभु की कृपा; रूपे-रूप गोस्वामी के प्रति; आर-और; रूपेर सत्-गुण-श्रील रूप गोस्वामी के दिव्य गुण; देखि'-देखकर, चमत्कार हैल-आश्चर्य हो गया; सबाकार-उन सभी के; मन-मनों में।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी पर श्री चैतन्य महाप्रभु की विशेष कृपा तथा उनके व्यक्तिगत गुणों को देखकर सारे भक्त आश्चर्यचकित रह गये।

तबे महाप्रभु सब भक्त गेला ।

हरिदास-ष्ठाकुर रूपे आलिङ्गन कैला ॥ 209 ॥

तबे-उस समय, महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, सब-सभी; भक्त-भक्तों के; लञा-साथ, गेला-उस स्थान से चले गये; हरिदास-ठाकुर-हरिदास ठाकुर, रूपे-रूप गोस्वामी की; आलिङ्गन कैला-आलिंगन किया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने सारे भक्तों सहित चले गये, तो हरिदास ठाकुर ने भी श्रील रूप गोस्वामी का आलिंगन किया।

हरिदास कहे,—"तोमार भाग्येर नाहि सीमा ।

ये सब्ब वर्णिला, इहार के जाने महिमा?" ॥ 210 ॥

हरिदास कहे-हरिदास ठाकुर ने कहा; तोमार-तुम्हारे; भाग्येर-भाग्य की; नाहि सीमा-सीमा नहीं है; ये-जो कुछ भी; सब-सब; वर्णिला-तुमने वर्णन किया है; इहारइसकी; के जाने-कौन समझ सकता है; महिमा-महिमा।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उनसे कहा, "तुम्हारे सौभाग्य की कोई सीमा नहीं है। तुमने जो वर्णन किया है उसकी महिमा कोई नहीं समझ सकता।"

श्री-रूप कहेन,—"आमि किछुइ ना जानि।

येह महाप्रभु कहान, सेह कहि वाणी" ॥ 211 ॥

श्री-रूप कहेन-श्रील रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया; आमि-मैं; किछुइ-कुछ भी, ना जानि-नहीं जानता; येइ-जो कुछ; महाप्रभु कहान-श्री चैतन्य महाप्रभु मुझसे बुलवाते या लिखवाते हैं; सेइ-वही; कहि-मैं कहता हूँ, वाणी-दिव्य शब्द।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने कहा, "मैं कुछ नहीं जानता। मैं केवल वे ही दिव्य शब्द बोल सकता हूँ, जिन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु मुझसे कहलवाते हैं।"

तात्पर्य

दिव्य विषयों का लेखक या कवि सामान्य लेखक या अनुवादक नहीं होता। चूँकि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा शक्तिप्रदत्त होता है, अत: वह जो कुछ लिखता है प्रभावशाली हो जाता है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा शक्तिप्रदत होने का नियम अनिवार्य है। जो भौतिकतावादी कवि अपनी कविता में स्त्री या पुरुष के भौतिक कार्यों का वर्णन करता है, वह भगवान् की दिव्य लीलाओं का या भक्ति के दिव्य सिद्धान्तों का वर्णन नहीं कर सकता। इसीलिए श्रील सनातन गोस्वामी ने सारे नये भक्तों को सावधान किया है कि वे अवैष्णवों के मुख से कुछ न सुनें।

अवैष्णवमुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतम्।

श्रवणं नैव कर्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः ॥

(पद्म पुराण)

"कृष्ण के बारे में किसी अवैष्णव से कुछ भी नहीं सुनना चाहिए। सर्प के मुख के स्पर्श से दूध विषैला हो जाता है; इसी प्रकार किसी अवैष्णव द्वारा कृष्ण-सम्बन्धी की गई चर्चा भी विषैली होती है।"

जब तक मनुष्य भगवान् का पूर्ण शुद्ध भक्त न बन जाए, तब तक उसे कृष्ण की लीलाओं को कविताबद्ध करने का प्रयास नहीं करना चाहिए, क्योंकि तब तो यह केवल संसारी होगी। कृष्ण की भगवद्गीता को लेकर अनेक ऐसे व्यक्तियों ने वर्णन लिखे हैं, जिनकी चेतना संसारी है और जो शुद्ध भक्ति में योग्य नहीं हैं। यद्यपि उन्होंने दिव्य साहित्य लिखने का प्रयास किया है, किन्तु वे एक भी भक्त को कृष्ण की सेवा में पूर्णत: नहीं लगा पाये। ऐसा साहित्य संसारी होता है, अतएव इसका स्पर्श भी नहीं करना चाहिए, जैसाकि श्री सनातन गोस्वामी ने आग्रह किया है।

हृदि यस्य प्रेरणया

प्रवर्त्तितोऽहं वराक-रूपोऽपि ।

तस्य हरेः पद-कमलं

वन्दे चैतन्य-देवस्य ॥ 212 ॥

हृदि-हृदय में, यस्य-जिनकी (पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की, जो अपने भक्तों को कृष्णभावनामृत आन्दोलन फैलाने की बुद्धि प्रदान करते हैं); प्रेरणया-प्रेरणा से; प्रवर्तित:- प्रवृत हुआ हूँ; अहम्-मैं; वराक-तुच्छ एवं दीन; रूप:-रूप गोस्वामी; अपि-यद्यपि; तस्य-उनके; हरे:-परम भगवान् हरि के; पद-कमलम्-चरणकमलों में; वन्दे-मुझे अपनी प्रार्थनायें अर्पित करने दो; चैतन्य-देवस्य-श्री चैतन्य महाप्रभु के।

अनुवाद

"यद्यपि मैं सब से नीच व्यक्ति हूँ और मुझमें कुछ ज्ञान नहीं है, किन्तु महाप्रभु ने कृपा करके मुझे भक्ति के विषय में दिव्य ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा दी है। इसलिए मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने मुझे इन ग्रन्थों को लिखने का अवसर प्रदान किया है।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.1.2) का है।

एइ-मत दुइ-जन कृष्ण-कथा-रङ्गे ।

सुखे काल गोडाय रूप हरिदास-सङ्गे ॥ 213 ॥

एह्न-मत-इस प्रकार; दुइ-जन-हरिदास ठाकुर और श्रील रूप गोस्वामी, कृष्णकथा-रङ्गे-कृष्ण के विषय में चर्चा करने के आनन्द में, सुखे-सुख में, काल-समय; गोडाय-व्यतीत करते हैं; रूप-श्रील रूप गोस्वामी, हरिदास-सङ्गे-हरिदास ठाकुर के संग में।

अनुवाद

इस तरह भगवान् कृष्ण की लीलाओं के विषय में विचार-विमर्श करते हुए श्रील रूप गोस्वामी ने हरिदास ठाकुर के संग परम सुख में अपना समय बिताया।

चारि मास रहि' सब प्रभुर भक्त-गण ।

गोसाञि विदाय दिला, गौडे करिला गमन ॥ 214 ॥

चारि मास-चार महिने; रहि'-रहकर; सब-सभी; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गण-भक्त जन; गोसाञि-चैतन्य महाप्रभुः विदाय दिला-विदाई देकर; गौडे-बंगाल की ओर; करिला गमन-वापस लौट गये।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों ने उनके साथ चार मास बिताये। तब महाप्रभु ने उन सबको विदा किया और वे बंगाल लौट गये।

श्री-रूप प्रभु-पदे नीलाचले रहिला ।

दोल-यात्रा प्रभु-सङ्गे आनन्दे देखिला ॥ 215॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी, प्रभु-पदे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों में, नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में, रहिला-रहे; दोल-यात्रा-दोल यात्रा उत्सव; प्रभु-सङ्गेश्री चैतन्य महाप्रभु के साथ, आनन्दे-अत्यन्त प्रसन्नता के साथ; देखिला-देखे।

अनुवाद

किन्तु श्रील रूप गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में रुके रहे और जब दोलयात्रा उत्सव मनाया गया, तो उन्होंने महाप्रभु के साथ इसे परम सुखपूर्वक देखा।

दोल अनन्तरे प्रभु रूपे विदाय दिला ।

अनेक प्रसाद करि' शक्ति सञ्चारिला ॥ 216 ॥

दोल अनन्तरे-दोल यात्रा के बाद; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; रूपे-रूप गोस्वामी को; विदाय दिला-विदाई देकर; अनेक प्रसाद करि'-सब प्रकार की कृपा से युक्त करके; शक्ति सञ्चारिला-शक्ति प्रदान की।

अनुवाद

जब दोलयात्रा उत्सव समाप्त हो गया, तो श्री चैतन्य महाप्रभुने रूप गोस्वामी को भी विदा कर दिया। महाप्रभु ने उन्हें शक्ति प्रदान की और उन पर सभी प्रकार की कृपा अर्पित की।

"वृन्दावने याह' तुमि, रहिह वृन्दावने ।

एकबार इहाँ पाठाइह सनातने" ॥217॥

वृन्दावने-वृन्दावन में, याह'-अब जाओ, तुमि-तुम, रहिह-रही; वृन्दावनेवृन्दावन में, एक-बार-एक बार, इहाँ-यहाँ, पाठाइह-भेजो, सनातने-तुम्हारे बड़े भाई, सनातन गोस्वामी को।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "अब तुम वृन्दावन जाओ और वहीं रुको। तुम अपने बड़े भाई सनातन को यहाँ भेज सकते हो।"

व्रजे याइ रस-शास्त्र करिह निरूपण ।

लुप्त-तीर्थ सब ताहाँ करिह प्रचारण ॥218॥

व्रजे याइ-वृन्दावन जाकर; रस-शास्त्र-भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं से सम्बन्धित सभी दिव्य ग्रन्थों की; करिह निरूपण-ध्यानपूर्वक रचना करो, लुप्त-तीर्थ-विलुप्त तीर्थ स्थल; सब-सभी; ताहाँ-वहाँ, करिह प्रचारण-प्रकाशित करो।

अनुवाद

"जब तुम वृन्दावन जाओ तो वहाँ रुकना, दिव्य साहित्य का प्रचार करना और विलुप्त पवित्र स्थलों को प्रकाशित करना।"

"कृष्ण-सेवा, रस-भक्ति करिह प्रचार ।

आमिह देखिते ताहाँ याइमु एकबार" ॥ 219 ॥

कृष्ण-सेवा-भगवान् कृष्ण की सेवा; रस-भक्ति-प्रेममयी सेवा; करिह प्रचारप्रचार करो; आमिह-मैं भी; देखिते-देखने के लिए; ताहाँ-वहाँ वृन्दावन में; याइमु-मैं जाऊँगा; एक-बार-एक बार।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण की सेवा स्थापित करना और भगवान् कृष्ण की भक्ति के रसों का प्रचार करना। मैं भी एक बार पुनः वृन्दावन जाऊँगा।"

एत बलि' प्रभु ताँरे कैला आलिङ्गन ।

रूप गोसाञि शिरे धरे प्रभुर चरण ॥ 220 ॥

एत बलि'-यह कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे-रूप गोस्वामी को; कैला आलिङ्गन-आलिंगन करते हैं; रूप गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी, शिरे-सिर पर, धरेधारण करते हैं; प्रभुर चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

इस तरह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रूप गोस्वामी का आलिंगन किया। तब उन्होंने अपने सिर पर महाप्रभु के चरणकमल रखे।

प्रभुर भक्त-गण-पाशे विदाय लइला ।

पुनरपि गौड़-पथे वृन्दावने आइला ॥ 221 ॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गण-पाशे-भक्तों से; विदाय लइला-विदाई लेकर; पुनरपि-फिर; गौड़-पथे-बंगाल के रास्ते से; वृन्दावने-वृन्दावन; आइला-लौट आये।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों से विदा ली और वे बंगाल के रास्ते होकर वृन्दावन लौट आये।

एइ त' कहिलाङ पुनः रूपेर मिलन ।

इहा येइ शुने, पाय चैतन्य-चरण ॥ 222॥

एइ त' कहिलाङ-इस प्रकार मैंने कहा, पुनः-दोबारा, रूपेर मिलन-श्रील रूप गोस्वामी से भेंट, इहा-यह संवाद; येह शुने-जो कोई भी सुनता है; पाय-प्राप्त करता है; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्रील रूप गोस्वामी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की द्वितीय भेंट का वर्णन किया है। जो भी इस घटना को सुनता है, वह निश्चय ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त करेगा।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥223॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के, रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे चरणकमलों में; यार-जिसकी; आश-आशा है; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णित कर रहे हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए और सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए, मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर, श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस तरह श्री चैतन्य–चरितामृत अन्त्य–लीला के "श्रील रूप गोस्वामी तथा चैतन्य महाप्रभु की द्वितीय भेंट" शीर्षक प्रथम अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय दो

छोटे हरिदास को दण्ड

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत प्रवाह भाष्य में इस अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है: श्री चैतन्य चरितामृत के लेखक कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रत्यक्ष भेटो, उनके द्वारा शक्त्याविष्ट लोगो

से भेंटों तथा उनके आविर्भाव की व्याख्या करनी चाही। इस तरह उन्होंने नृसिंहानन्द तथा अन्य भक्तों की महिमाओं का वर्णन किया। एक भक्त भगवान् आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में अत्यधिक श्रद्धा रखता था। तो भी उसके भाई गोपाल भट्ट आचार्य ने मायावाद भाष्य पर व्याख्यान दिये। श्री चैतन्य महाप्रभु के सचिव श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने भगवान् आचार्य को वह भाष्य सुनने से मना किया। बाद में जब भगवान् आचार्य के आदेश पर छोटा हरिदास माधवी देवी से भिक्षा माँगने गया, तो उसने संन्यासी होते हुए भी एक स्त्री से घुल-मिलकर बातें करने का अपराध किया। इसके कारण श्री चैतन्य महाप्रभु ने छोटे हरिदास का बहिष्कार किया और अपने बड़े से बड़े भक्तों के अनुरोध के बावजूद भी महाप्रभु ने उसे फिर से स्वीकार नहीं किया। इस घटना के एक वर्ष बाद छोटे हरिदास ने गंगा-यमुना के संगम में जाकर आत्महत्या कर ली। किन्तु वह अपने आध्यात्मिक देह में भक्ति-गीत गाता रहा और श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें सुना। जब बंगाल के वैष्णवजन श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने आये, तो यह घटना स्वरूप दामोदर तथा अन्यों को ज्ञात हुई।

वन्देऽहं श्री-गुरोः श्री-युत-पद-कमलं श्री-गुरून्वैष्णवांश्च

श्री-रूपं साग्रजातं सह-गण-रघुनाथान्वितं तं स-जीवम् ।

साद्वैतं सावधूतं परिजन-सहितं कृष्ण-चैतन्य-देवं श्री-राध्धा-

कृष्णा-पादान्सह-गण-ललिता-श्री-विशाखान्वितांश्च ॥ 1 ॥

वन्दे-सादर प्रणाम करता हूँ, अहम्-मैं; श्री-गुरोः-अपने दीक्षा गुरु एवं शिक्षा गुरु के; श्री-युत-पद-कमलम्-सौभाग्य से युक्त चरणकमलों को, श्री-गुरून्-गुरु परम्परा में, श्रील माधवेन्द्रपुरी से प्रारम्भ कर श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद तक सभी आध्यात्मिक गुरुजनों को, वैष्णवान्-सृष्टि के प्रारम्भ से ही आनेवाले, ब्रह्माजी से आरम्भ कर अन्य सभी वैष्णवों को; च-तथा; श्री-रूपम्-श्रील रूप गोस्वामी को, स-अग्रजातम्-उनके बड़े भाई, सनातन गोस्वामी सहित; सह-गण-रघुनाथ-अन्वितम्-रघुनाथ दास गोस्वामी और उनके परिकरों के साथ; तम्-उनको, स-जीवम्-जीव गोस्वामी सहित, स-अद्वैतम्-अद्वैत आचार्य सहित; स-अवधूतम्-नित्यानन्द प्रभु के साथ; परिजनसहितम्-तथा श्रीनिवास ठाकुर एवं अन्य सभी भक्तों से साथ; कृष्ण-चैतन्य-देवम्भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को; श्री-राधा-कृष्ण–पादान्—सर्वशुभ श्रीकृष्ण एवं श्रीमती राधारानी के चरणकमलों को, सह-गण-संगीगणों के साथ; ललिता-श्री-विशाखाअन्वितान्-श्री ललिता और श्री विशाखा के संग में, च-और।

अनुवाद

मैं अपने गुरु तथा भक्ति-मार्ग के अन्य सारे उपदेशकों के चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ। मैं सारे वैष्णवों को तथा श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी, जीव गोस्वामी तथा उनके साथियों ससेत छही गोस्वामियों को सादर नमस्कार करता हूँ। मैं श्री अद्वैत आचार्य प्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्रीवास ठाकुर आदि उनके सारे भक्तों को सादर नमस्कार करता हूँ। तत्पश्चात् मैं भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीमती राधारानी तथा ललिता, विशाखा आदि समस्त गोपियों को सादर नमस्कार करता हूँ।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ 2 ॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की, जय-जय हो; नित्यानन्दनित्यानन्द प्रभु की, जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय हो, जय-जय हो, गौरभक्त-वृन्द-चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

सर्व-लोक उद्धारिते गौर-अवतार ।

निस्तारेर हेतु तार त्रिविध प्रकार ॥ 3॥

सर्व-लोक-सभी लोकों का, उद्धारिते-उद्धार करने के लिए, गौर-अवतार-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतार, निस्तारेर हेतु-सभी लोगों के उद्धार के कारण; तारउनका; त्रि-विध प्रकार-तीन प्रकार का है।

अनुवाद

अपने श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतार में भगवान् श्रीकृष्ण तीनों लोक के-ब्रह्मलोक से लेकर पाताललोक तक के सारे जीवों का उद्धार करने के लिए अवतरित हुए। उन्होंने तीन प्रकार से उनका उद्धार किया।

साक्षात्दर्शन, आर योग्य-भक्त-जीवे ।

'आवेश' करये काहाँ, काहाँ 'आविर्भावे' ॥ 4॥

साक्षात्-दर्शन-प्रत्यक्ष मिलकर; आर-तथा; प्रोग्य-भक्त-शुद्ध भक्त; जीवे-जीवात्माओं को, आवेश करये-विशिष्ट आध्यात्मिक शक्तियों द्वारा समर्थ बनाकर, काहाँ-कहीं कहीं, काहाँ-कहीं अन्य; आविर्भावे-स्वयं प्रकट होकर।

अनुवाद

महाप्रभु ने कुछ स्थानों पर पतितात्माओं से प्रत्यक्ष मिलकर, अन्य स्थानों पर किसी शुद्ध भक्त में शक्ति संचार करके तथा और स्थानों पर उनके समक्ष प्रकट होकर उनका उद्धार किया।

'साक्षात्दर्शने' प्राय सब निस्तारिला ।

नकुल-ब्रह्मचारीर देहे 'आविष्ट' हइला ॥5॥

प्रद्युम्न-नृसिंहानन्द आगे कैला 'आविर्भाव' ।

'लोक निस्तारिब',—एइ ईश्वर-स्वभाव ॥ 6 ॥

साक्षात्-दर्शने-प्रत्यक्ष मिलकर; प्राय-लगभग; सब-सभी का; निस्तारिलाउद्धार किया, नकुल-ब्रह्मचारीर-नकुल नामक ब्रह्मचारी की; देहे-देह में, आविष्ट हइलाप्रवेश किये; प्रद्युम्न-नृसिंहानन्द-प्रद्युम्न नृसिंहानन्द; आगे-के समक्ष; कैला-किये; आविर्भाव-प्रकट, लोक निस्तारिब-मैं सभी पतित जीवों का उद्धार करूँगा ; एइ-यह; ईश्वर-स्वभाव-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्वभाव (है)।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्राय: समस्त पतितात्माओं का उद्धार उनसे प्रत्यक्ष भेंट करके किया। उन्होंने नकुल ब्रह्मचारी जैसे महान् भक्तों के शरीर में प्रवेश करके तथा नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी जैसों के समक्ष प्रकट होकर अन्यों का उद्धार किया। "मैं पतितात्माओं का उद्धार करूँगा"- यह कथन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के स्वभाव का सूचक है।

तात्पर्य

महाप्रभु ने निम्नांकित चार स्थानों पर सदा आविर्भाव रूप प्रकट किया- (1) श्रीमती शचीमाता के घर में, (2) जहाँ-जहाँ नित्यानन्द प्रभु भावावेश में नाचते थे, वहाँ पर, (3) श्रीवास के घर में (जब कीर्तन होता था) तथा (4) राघव पण्डित के घर में। श्री चैतन्य महाप्रभु इन चार स्थानों में स्वयं प्रकट हुए (इस सन्दर्भ में देखें श्लोक 34)।

साक्षात्दर्शने सब जगत् तारिला ।

एक-बार ये देखिला, से कृतार्थ हइला ॥ 7॥

साक्षात्-दर्शने-प्रत्यक्ष मिलन द्वारा; सब-समस्त; जगत्-संसार; तारिला-उन्होंने उद्धार किया; एक-बार-एक बार; ये-जो कोई भी; देखिला-देखा; से-वह; कृत-अर्थ-पूर्णतया सन्तुष्ट; हइला-हो गया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् विद्यमान थे, तब संसार का जो भी व्यक्ति उनसे एक बार भी मिलता था, वह पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाता था और आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत बन जाता था।

गौड़-देशेर भक्त-गण प्रत्यब्द आसिया ।

पुनः गौड़-देशे याय प्रभुरे मिलिया ॥ 8॥

गौड़-देशेर-बंगाल के; भक्त-गण-भक्त; प्रति-अब्द-प्रतिवर्ष, आसिया-आकर; पुनः-फिर; गौड़-देशे-बंगाल, याय-वापस जाते; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु से; मिलिया-मिलने के बाद।

अनुवाद

प्रतिवर्ष भक्तगण श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने के लिए बंगाल से जगन्नाथपुरी जाया करते थे और उनसे मिलने के बाद वे बंगाल लौट जाते थे।

आर नाना-देशेर लोक आसि' जगन्नाथ ।

चैतन्य-चरण देखि' हइल कृतार्थ ॥ 9॥

आर-फिर, नाना-देशेर-भिन्न भिन्न प्रान्तों के; लोक-लोग; आसि'-आकर; जगन्नाथ-जगन्नाथ पुरी में, चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल, देखि'- देखकर, हइल-हो गये; कृत-अर्थ-पूर्णतया सन्तुष्ट।

अनुवाद

इसी तरह भारत के विभिन्न प्रान्तों से जो लोग जगन्नाथ पुरी जाते, वे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलो का दर्शन करके पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाते।

सप्त-द्वीपेर लोक आर नव-खण्ड-वासी ।

देव, गन्धर्व, किन्नर मनुष्य-वेशे आसि' ॥ 10॥

सप्त-द्वीपेर लोक-ब्रह्माण्ड के समस्त सात द्वीपों के लोग, आर-तथा; नव-खण्डवासी-नौ खण्डों के निवासी; देव-देवतागण, गन्धर्व-गन्धर्व लोक के निवासी, किन्नरकिन्नर लोक के निवासी; मनुष्य-वेशे-मनुष्य के रूप में, आसि'-आते थे।

अनुवाद

ब्रह्माण्ड-भर से, जिसमें सातों द्वीप, नवों खण्ड, देव-लोक, गन्धर्व लोक तथा किन्नर लोक सम्मिलित हैं, लोग मनुष्यों के रूप में वहाँ जाते।

तात्पर्य

सप्तद्वीप की व्याख्या के लिए देखें मध्य-लीला (20,218) तथा श्रीमद्भागवत (5.16 तथा 5.20)। सिद्धान्त शिरोमणि के अध्याय एक (गोलाध्याय) तथा भुवन कोश में नौ खण्डों का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

ऐन्द्रं कशेरु सकलं किल ताम्रपर्णम्

अन्यद् गभास्तिमदतश्च कुमारिकाख्यम् ।

नागं च सौम्यम् इह वारुणम् अन्त्यखण्डं

गान्धर्वसंज्ञमिति भारतवर्षमध्ये ॥

"भारत-वर्ष के अन्तर्गत नौ खण्ड हैं। ये हैं (1) ऐन्द्र, (2) कशेरु, (3) ताम्रपर्ण, (4) गभस्तिमत्, (5) कुमारिका, (6) नाग, (7) सौम्य, (8) वारुण तथा (9) गान्धर्व।"

प्रभुरे देखिया याय 'वैष्णव' हञा ।

कृष्ण बलि' नाचे सब प्रेमाविष्ट हञा ॥11॥

प्रभुरे देखिया-महाप्रभु को देखकर, याय-वे लौट गये, वैष्णव हञा-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के भक्त बनकर; कृष्ण बलि'-'कृष्ण' उच्चारण करते, नाचे-नाचते, सबवे सब, प्रेम-आविष्ट हञा-प्रेमभाव में आविष्ट होकर।

अनुवाद

वे सभी महाप्रभु के दर्शन पाकर वैष्णव बन गये। इस तरह भगवत्प्रेम में उन लोगों ने हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन किया और नृत्य किया।

एइ-मत दर्शने त्रिजगत् निस्तारि ।

ये केह आसिते नारे अनेक संसारी ॥ 12॥

एइ-मत-इस प्रकार, दर्शने-साक्षात् दर्शन द्वारा; त्रि-जगत्-तीनों लोक; निस्तारिउद्धार; ये केह-जो कोई, आसिते नारे-नहीं आ सके; अनेक-अनेक; संसारी-भौतिक जगत् में व्यस्त लोग।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रत्यक्ष भेंट करके तीनों लोकों का उद्धार किया। किन्तु कुछ लोग नहीं जा सके क्योंकि वे भौतिक कार्यकलापों में फँसे हुए थे।

ता-सबा तारिते प्रभु सेइ सब देशे ।

.योग्य-भक्त जीव-देहे करेन 'आवेशे' ॥13॥

ता-सबा-उन सभी का, तारिते-उद्धार करने के लिए, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने, सेइ-उन, सब-सभी, देशे-देशों में, योग्य-भक्त-एक योग्य भक्त, जीव-देहे-ऐसे जीव की देह में; करेन-करते हैं, आवेशे-प्रवेश।

अनुवाद

ब्रह्माण्ड के उन भागों के लोगों का उद्धार करने के लिए, जो उनसे भेंट नहीं कर पाये, श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं शुद्ध भक्तों के शरीर में प्रवेश किया।

सेइ जीवे निज-भक्ति करेन प्रकाशे ।

ताहार दर्शने 'वैष्णव' हय सर्व-देशे ॥ 14॥

सेइ जीवे-उस जीव में, निज-भक्ति-स्वयं अपनी ही भक्ति; करेन प्रकाशे-सीधे ही प्रकट करते हैं; ताहार दर्शने-ऐसे कृपाप्राप्त भक्त को देखकर; वैष्णव-कृष्ण के भक्त; हय-हो गये; सर्व-देशे-अन्य सभी देशों में।

अनुवाद

इस तरह उन्होंने जीवों (अपने शुद्ध भक्तों) में अपनी इतनी भक्ति प्रकट करके उन्हें आविष्ट कर दिया कि अन्य सारे देशों के लोग उन्हें देखकर भक्त बन गये।

तात्पर्य

चैतन्य-चरितामृत (अन्त्य7.11) में ही कहा गया है :

कलि-कालेर धर्म-कृष्ण-नाम-संद्कित ।

कृष्ण-शक्ति विना नहे तार प्रवर्तन ॥

जब तक कोई व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा शक्ति प्राप्त नहीं करता, तब तक वह विश्वभर में हरे कृष्ण महामन्त्र के पवित्र नामों का विस्तार नहीं कर सकता। जो व्यक्ति ऐसा करते हैं, वे शक्त्याविष्ट हैं। इसलिए वे कभी-कभी आवेश अवतार कहलाते हैं, क्योंकि उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु से शक्ति मिली रहती है।

एइ-मत आवेशे तारिल त्रिभुवन ।

गौड़े यैछे आवेश, करि दिग्दरशन ॥ 15॥

एइ-मत-इस प्रकार, आवेशे-शक्ति प्रदान करके; तारिल त्रि-भुवन-तीनों लोकों का उद्धार किया; गौड़े-बंगाल में, यैछे-कैसे, आवेश-शक्ति प्रदान की; करि दिक्-दरशन-मैं संक्षेप में वर्णन करूँगा।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने न केवल अपनी निजी उपस्थिति से, अपितु अन्यों को शक्त्याविष्ट करके भी तीनों लोकों का उद्धार किया। मैं संक्षेप में वर्णन करूँगा कि किस तरह उन्होंने बंगाल में एक जीव को शक्त्याविष्ट किया।

आम्बुया-मुलुके हय नकुल-ब्रह्मचारी ।

परम-वैष्णव तेंहो बड़ अधिकारी ॥ 16 ॥

आम्बुया-मुलुके-आम्बुया नामक प्रदेश में, हय-हैं; नकुल-ब्रह्मचारी-नकुल ब्रह्मचारी नामक व्यक्ति; परम-वैष्णव-पूर्णतया शुद्ध भक्त, तेंहो-वे, बड़ अधिकारीप्रेममयी सेवा (भक्ति) में अत्यन्त उन्नत।

अनुवाद

आम्बुया प्रान्त में नकुल ब्रह्मचारी नाम के एक व्यक्ति थे, जो पूर्णतया शुद्ध भक्त थे और भक्ति में अत्यन्त उन्नत थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि आम्बुया-मुलुक वर्तमान अम्बिका नगर है, जो पश्चिमी बंगाल के वर्धमान जिले में है। पहले मुसलमान-शासन में यह आम्बुया मुलुक कहलाता था। इस नगर के पड़ोस में प्यारीगंज है, जहाँ नकुल ब्रह्मचारी रहते थे।

गौड़-देशेर लोक निस्तारिते मन हैल ।

नकुल-हृदये प्रभु 'आवेश' करिल ॥17॥

गौड़-देशेर लोक-बंगाल के लोगों का, निस्तारिते-उद्धार करने की; मन हैल-इच्छा हुई, नकुल-हृदये-नकुल ब्रह्मचारी के हृदय में, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, आवेश करिल-प्रवेश कर गए।

अनुवाद

बंगाल के सभी लोगों का उद्धार करने की इच्छा से श्री चैतन्य महाप्रभु ने नकुल ब्रह्मचारी के हृदय में प्रवेश किया।

ग्रह–ग्रस्त-प्राय नकुल प्रेमाविष्ट हञा ।

हासे, कान्दे, नाचे, गाय उन्मत्त हञा ॥ 18 ॥

ग्रह-ग्रस्त-प्राय-किसी प्रेत-ग्रस्त व्यक्ति के समान, नकुल-नकुल ब्रह्मचारी, प्रेमआविष्ट हञा-भगवान् के प्रेमभाव से अभिभूत होकर, हासे-हँसते, काण्दे-रोते; नाचेनाचते; गाय-गाते; उन्मत्त हञा-एक पागल व्यक्ति की तरह।

अनुवाद

नकुल ब्रह्मचारी भूतप्रेत से सताये हुए व्यक्ति के समान बन गये। इस तरह वे कभी हँसते, तो कभी रोते, कभी नाचते और कभी पागल व्यक्ति की तरह गाते।

अश्रु, कम्प, स्तम्भ, स्वेद, सात्त्विक विकार ।

निरन्तर प्रेमे नृत्य, सघन हुङ्कार ॥ 19 ॥

अश्रु-आँसु; कम्प-कम्पन; स्तम्भ-स्तब्ध होना, स्वेद-पसीना आना; सात्त्विक विकार-ऐसे सारे दिव्य विकार, निरन्तर-लगातार; प्रेमे नृत्य-प्रेमभाव में नाचना, स-घन हुङ्कार-एक बादल के समान गर्जन करना।

अनुवाद

वे निरन्तर दिव्य प्रेम के शारीरिक विकार प्रकट करते। इस तरह वे रोते, काँपते, स्तम्भित होते, पसीने से लथपथ होते, भगवत्प्रेम के वशीभूत होकर नाचते और बादल जैसी ध्वनि उत्पन्न करते।

तैछे गौर-कान्ति, तैछे सदा प्रेमावेश ।

ताहा देखिबारे आइसे सर्व गौड़-देश ॥ 20 ॥

तैछे-इस प्रकार, गौर-कान्ति-भगवान् चैतन्य महाप्रभु जैसी शारीरिक कान्ति;तैछे-ठीक वैसी ही, सदा-सदैव, प्रेम-आवेश-प्रेमभाव में आविष्ट, ताहा देखिबारे-वह देखने के लिए; आइसे-आते थे; सर्व-सभी, गौड़-देश-बंगाल प्रदेश के लोग।

अनुवाद

उनका शरीर श्री चैतन्य महाप्रभु जैसी कान्ति से चमकता था और वे भगवत्प्रेम में वैसी ही तल्लीनता प्रदर्शित करते थे। इन लक्षणों को देखने के लिए बंगाल के सारे प्रान्तों से लोग आते थे।

यारे देखे तारे कहे,— 'कह कृष्ण-नाम' ।

ताँहार दर्शने लोक हय प्रेमोद्दाम ॥ 21 ॥

प्यारे देखे-वे जिस किसी को भी देखते, तारे कहे-वे उसे कहते; कह कृष्ण-नाममेरे प्रिय मित्र, कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण करो, ताँहार दर्शने-उनको देखकर, लोक हय-लोग हो गये; प्रेम-उद्दाम-भगवत्प्रेम में अति उन्नत।

अनुवाद

जिससे भी वे मिलते, उससे हरे कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने को कहते। इस तरह लोग उन्हें देखकर भगवत्प्रेम से अभिभूत हो जाते।

चैतन्येर आवेश हय नकुलेर देहे ।

शुनि' शिवानन्द आइला करिया सन्देहे ॥ 22 ॥

चैतन्येर-श्री चैतन्य महाप्रभु, आवेश-प्रविष्ट हुए; हय-हुए हैं, नकुलेर देहे-नकुल ब्रह्मचारी की देह में, शुनि'-सुनकर, शिवानन्द आइला-शिवानन्द सेन आ गये; करिया सन्देहे-सन्देह करते हुए।

अनुवाद

जब शिवानन्द सेन ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु नकुल ब्रह्मचारी के शरीर में प्रविष्ट हुए हैं, तो वे अपने मन में शंकालु होकर वहाँ गये।

परीक्षा करिते ताँर यबे इच्छा हैल ।

बाहिरे रहिया तबे विचार करिल ॥23॥

परीक्षा करिते-परीक्षा करने के लिए; ताँर-शिवानन्द सेन की; यबे-जब; इच्छाइच्छा, हैल-हुई; बाहिरे रहिया-बाहर रहकर, तबे-उस समय, विचार करिल-विचार करने लगे।

अनुवाद

नकुल ब्रह्मचारी की प्रामाणिकता की परीक्षा करने की इच्छा से वे इस प्रकार सोचते हुए बाहर ही खड़े रहे।

'आपने बोलान मोरे, इहा यदि जानि ।

आमार इष्ट-मन्त्र जानि' कहेन आपनि ॥ 24 ॥

तबे जानि, इँहाते हय चैतन्य–आवेशे ।

एत चिन्ति' शिवानन्द रहिला दूर-देशे ॥ 25 ॥

आपने-स्वयं, बोलान-बुलाता है; मोरे-मुझे; इहा-यह; यदि-यदि; जानि-मुझको; आमार-मेरा; इष्ट-मन्त्र-पूजा का मन्त्र; जानि'-जानकर; कहेन आपनि-वह स्वयं बताता है; तबे जानि-तब मैं मानूँगा; इँहाते-इसमें, हय-हुआ है; चैतन्य-आवेशेचैतन्य महाप्रभु का आवेश;एत चिन्ति'-यह सोचकर; शिवानन्द–शिवानन्द सेन;रहिला-रह गये; दूर-देशे-थोड़ी दूरी पर।

अनुवाद

"यदि नकुल ब्रह्मचारी मुझे अपने आप बुलाता है और मेरा इष्ट मन्त्र जान लेता है, तो मैं समझंगा कि वह श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति से आवेशित है।" इस तरह सोचते हुए वे कुछ दूरी पर रुके रहे।

असङ्ख्य लोकेर घटा,-केह आइसे याय ।

लोकेर सहुद्धे केह दर्शन ना पाय ॥ 26॥

असङ्ख्य लोकेर घटा-लोगों की विशाल भीड़, केह-कुछ; आइसे-आते, याय-जाते; लोकेर सङ्कड़े-लोगों की बड़ी भीड़ में, केह-उनमें से कुछ; दर्शन ना पाय-नकुल ब्रह्मचारी को देख नहीं सके।

अनुवाद

वहाँ लोगों की बड़ी भीड़ थी। कुछ लोग आ रहे थे और कुछ जा रहे थे। निस्सन्देह, उस विशाल भीड़ में कुछ लोग नकुल ब्रह्मचारी का दर्शन तक नहीं कर सके।

आवेशे ब्रह्मचारी कहे,—"शिवानन्द आछे दूरे ।

जन दुइ चारि याह, बोलाह ताहारे" ॥ 27॥

आवेशे-उस आवेश की स्थिति में, ब्रह्मचारी कहे-नकुल ब्रह्मचारी बोले, शिवानन्द-शिवानन्द सेन, आछे दूरे-कुछ दूरी पर खड़ा है; जन-लोग; दुइ-दो;चारि-चार; याह-जाओ; बोलाह ताहारे-उसे बुलाओ।

अनुवाद

नकुल ब्रह्मचारी ने अपनी आवेशित अवस्था में कहा, "शिवानन्द कुछ दूरी पर रुका हुआ है। तुम में से दो-चार लोग जाकर उसे बुला लाओ।"

चारि-दिके धाय लोके 'शिवानन्द' बलि ।

शिवानन्द कोन्, तोमाय बोलाय ब्रह्मचारी ॥ 28 ॥

चारि-दिके-चारों दिशाओं में, धाय लोके-लोग भागने लगे; शिवानन्द बलिशिवानन्द का नाम उच्च स्वर में पुकारते; शिवानन्द कोन्-जो कोई भी शिवानन्द है; तोमायतुम्हें; बोलाय-बुला रहे हैं; ब्रह्मचारी-नकुल ब्रह्मचारी।

अनुवाद

इस तरह लोग चारों दिशाओं में इस तरह पुकारते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे, "शिवानन्द! जो भी शिवानन्द हो, कृपया आ जाओ। नकुल ब्रह्मचारी तुम्हें बुला रहे हैं।"

शुनि', शिवानन्द सेन ताँहा शीघ्र आइल ।

नमस्कार करि' ताँर निकटे वसिल ॥ 29 ॥

शुनि'-सुनकर, शिवानन्द सेन-शिवानन्द सेन, ताँहा-वहाँ पर; शीघ्र-जल्दी, आइल-आ गये; नमस्कार करि'-प्रणाम करके; ताँर निकटे-उनके समीप; वसिल- बैट गये।

अनुवाद

उनकी बुलाने की आवाज सुनकर शिवानन्द सेन तुरन्त वहाँ गये, उन्होंने नकुल ब्रह्मचारी को नमस्कार किया और वे उनके निकट बैठ गये।

ब्रह्मचारी बले,—"तुमि करिला संशय ।

एक-मना हञा शुन ताहार निश्चय" ॥ 30॥

ब्रह्मचारी बले-नकुल ब्रह्मचारी ने कहा; तुमि-तुमने; करिला संशय-संशय किया; एक-मना हञा-सावधानीपूर्वक, शुन-कृपया सुनो, ताहार-उसके लिए निश्चय-प्रमाण।

अनुवाद

नकुल ब्रह्मचारी ने कहा, "मैं जानता हूँ कि तुम्हें संशय है। अब इसका प्रमाण अत्यन्त ध्यान से सुनो।"

'गौर-गोपाल मन्त्र' तोमार चारि अक्षर ।

अविश्वास छाड़, येइ करियाछ अन्तर ॥ 31॥

गौर-गोपाल मन्त्र-गौर गोपाल मन्त्र; तोमार-तुम्हारा; चारि अक्षर-चार अक्षरों से बना है; अविश्वास छाड़-अपना सन्देह त्याग दो; येइ-जो; करियाछ अन्तर-तुमने अपने मन में रखा हुआ है।

अनुवाद

"तुम चार अक्षरों वाला गौर गोपाल मन्त्र का जप करते हो। अब तुम अपने मन के भीतर बसने वाले संशय को त्याग दो।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत प्रवाह भाष्य में गौर गोपाल मन्त्र की व्याख्या दी है। श्री गौरसुन्दर के उपासक गौ-र-अङ्-ग-इन चार अक्षरों को गौर मन्त्र मानते हैं, किन्तु राधा-कृष्ण के शुद्ध उपासक रा-धा-कृष्-ण- इन चार अक्षरों को गौर मन्त्र मानते हैं। किन्तु वैष्णवजन श्री चैतन्य महाप्रभु को राधा-कृष्ण से अभिन्न (श्रीकृष्ण चैतन्य राधाकृष्ण

नहे अन्य) मानते हैं। इसलिए जो गौराङ्ग मन्त्र का जप करता है और जो राधा-कृष्ण के नामों का जप करता है, वे एक ही स्तर पर होते हैं।

तबे शिवानन्देर मने प्रतीति हइल ।

अनेक सम्मान करि' बहु भक्ति कैल ॥ 32॥

तबे-उसके बाद; शिवानन्देर-शिवानन्द सेन के; मने-मन में, प्रतीति हइल-विश्वास हो गया; अनेक सम्मान करि'-उनका अत्यधिक सम्मान करके; बहु भक्ति कैल-उनकी प्रेममयी सेवा करने लगे।

अनुवाद

इस पर शिवानन्द सेन ने अपने मन में पूर्ण विश्वास उत्पन्न कर लिया कि नकुल ब्रह्मचारी श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा आविष्ट है। तब शिवानन्द सेन ने उसका आदर किया तथा भक्तिमयी सेवा की।

एइ—मत महाप्रभुर अचिन्त्य प्रभाव ।

एबे शुन प्रभुर यैछे हय 'आविर्भाव' ॥33॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; अचिन्त्य प्रभाव-अकल्पनीय प्रभाव; एबे-अब; शुन-सुनो; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; यैछे-किस प्रकार; हय-हुआ; आविर्भाव-प्राकट्य।

अनुवाद

इस तरह से श्री चैतन्य महाप्रभु की अचिन्त्य शक्तियों को समझना चाहिए। अब जिस तरह से उनका आविर्भाव होता है, उसे सुनिये।

शचीर मन्दिरे, आर नित्यानन्द-नर्तने ।

श्रीवास-कीर्तने, आर राघव-भवने ॥ 34॥

एइ चारि ठाञि प्रभुर सदा 'आविर्भाव' ।

प्रेमाकृष्ट हय,–प्रभुर सहज स्वभाव ॥ 35॥

शचीर मन्दिरे-माता शची के घर के मन्दिर में, आर-तथा; नित्यानन्द-नर्तने-श्री नित्यानन्द प्रभु के नृत्य के समय, श्रीवास-कीर्तने-श्रीवास पण्डित नेतृत्व में हो रहे संकीर्तन के समय, आर-और; राघव-भवने-राघव के घर में, एइ चारि

ठाञि-इन चार स्थानों में, प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का, सदा-सदैव, आविर्भाव-प्राकट्य; प्रेम-आकृष्ट हयप्रेम से आकृष्ट होते हैं; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का, सहज स्वभाव-स्वाभाविक लक्षण है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सदैव चार स्थानों में प्रकट हुए-ये हैं-माता शची के घरेलू मन्दिर में, श्री नित्यानन्द प्रभु के नृत्य करने के स्थानों में, सामूहिक कीर्तन के समय श्रीवास पण्डित के घर में तथा राघव पण्डित के घर में। वे अपने भक्तों के प्रेम के प्रति आकर्षित होने के कारण प्रकट हुए। यही उनका सहज स्वभाव है।

नृसिंहानन्देर आगे आविभूत हञा ।

भोजन करिला, ताहा शुन मन दिया ॥ 36॥

नृसिंहानन्देर-नृसिंहानन्द नामक ब्रह्मचारी के; आगे-समक्ष, आविभूत हञा-प्रकट हुए भोजन करिला-उन्होंने (भोजन का) भोग स्वीकार किया; ताहा-वह; शुन-सुनो, मन दिया-ध्यानपूर्वक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी के समक्ष प्रकट हुए और उन्होंने उसका दिया भोजन ग्रहण किया। कृपया इसके विषय में ध्यान लगाकर सुनें।

शिवानन्देर भागिना श्रीकान्त-सेन नाम ।

प्रभुर कृपाते तेंहो बड़ भाग्यवान् ॥ 37॥

शिवानन्देर-शिवानन्द सेन का; भागिना-भाँजा, श्रीकान्त-सेन नाम-श्रीकान्त सेन नामक; प्रभुर कृपाते-श्री चैतन्य महाप्रभु की अहैतुकी कृपा द्वारा; तेंहो-वह; बड़-बहुत, भाग्यवान्-सौभाग्यशाली।

अनुवाद

शिवानन्द सेन का एक भांजा था, जिसका नाम श्रीकान्त सेन था, जो श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से अत्यन्त भाग्यशाली था।

एक वत्सर तेंहो प्रथम एकेश्वर ।

प्रभु देखिबारे आइला उत्कण्ठा-अन्तर ॥ 38॥

एक वत्सर-एक वर्ष, तेंहो-श्रीकान्त सेन; प्रथम-पहले, एकेश्वर-अकेला; प्रभु देखिबारे-महाप्रभु के दर्शन के लिए; आइला-आया; उत्कण्ठा-अन्तर-मन में अत्यन्त उत्सुकता के साथ।

अनुवाद

एक वर्ष श्रीकान्त सेन महाप्रभु का दर्शन करने की अतीव उत्सुकता से अकेले ही जगन्नाथ पुरी आया।

महाप्रभु तारे देखि' बड़ कृपा कैला ।

मास-दुइ तेंहो प्रभुर निकटे रहिला ॥ 39 ॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तारे-उसे; देखि'-देखकर, बड़ कृपा कैलाअत्यन्त कृपा की; मास-दुइ-दो महीने के लिए तेंहो-श्रीकान्त सेन; प्रभुर निकटे-चैतन्य महाप्रभु के निकट; रहिला-रहा।

अनुवाद

श्रीकान्त सेन को देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस पर अहैतुकी कृपा की। श्रीकान्त सेन जगन्नाथपुरी में लगभग दो महीने तक श्री चैतन्य महाप्रभु के पास रहा।

तबे प्रभु ताँरे आज्ञा कैला गौड़े याइते।

भक्त-गणे निषेधिह एथाके आसिते ॥ 40 ॥

याइते-बंगाल लौटने का; भक्त-गणे-भक्तजनों को; निषेधिह-रोक दो; एथाके आसिते-इस स्थान पर आने से।

अनुवाद

जब वह बंगाल लौटने वाला था, तो महाप्रभु ने उससे कहा, "इस वर्ष बंगाल के भक्तों को जगन्नाथ पुरी आने से मना कर देना।"

ए-वत्सर ताँहा आमि याइमु आपने ।

ताहाइ मिलिमु सब अद्वैतादि सने ॥ 41॥

ए-वत्सर-इस वर्ष, ताँहा-वहाँ (बंगाल में); आमि-मैं; माइमु-जाऊँगा; आपने-स्वयं, ताहाइ-वहाँ, मिलिमु-मैं मिलेंगा; सब-सभी से; अद्वैत-आदि-अद्वैत आचार्य से लेकर, सने-साथ।

अनुवाद

“इस वर्ष मैं स्वयं बंगाल जाऊँगा और वहाँ अद्वैत आचार्य इत्यादि सारे भक्तों से मिलूँगा।”

शिवानन्दे कहिह,— आमि एइ पौष-मासे ।

आचम्बिते अवश्य आमि याइब ताँर पाशे ॥ 42।

शिवानन्दे कहिह-शिवानन्द सेन से कहो, आमि-मैं, एइ-यह; पौष-मासे-पौष (दिसम्बर-जनवरी) महीने में, आचम्बिते-अचानक ही, अवश्य-निश्चित रूप से, आमिमैं, याइब-जाऊँगा; ताँर पाशे-उसके स्थान पर।

अनुवाद

“तुम शिवानन्द सेन को यह बता देना कि इस पौष (दिसम्बर-जनवरी) मास में मैं अवश्य ही उसके घर जाऊँगा।”

जगदानन्द हय ताहाँ, तेंहो भिक्षा दिबे ।

सबारे कहिह,— ए वत्सर केह ना आसिबे ॥ 43 ॥

जगदानन्द-जगदानन्द, हय-है; ताहाँ-वहाँ, तेंहो-वे, भिक्षा दिबे-भोजन प्रदान करेंगे, सबारे कहिह-उन सभी को सूचित कर दो; ए वत्सर-इस वर्ष, केह ना आसिबे-कोई भी न आये।

अनुवाद

“वहाँ पर जगदानन्द हैं। वे मुझे भोजन की भिक्षा देंगे। उन सबसे कहना कि इस वर्ष कोई भी जगन्नाथ पुरी न आये।”

श्रीकान्त आसिया गौड़े सन्देश कहिल ।

शुनि’ भक्त-गण-मने आनन्द हइल ॥ 44॥

श्रीकान्त-श्रीकान्त सेन, आसिया-वापस लौटकर, गौड़े-बंगाल में, सन्देशसन्देश, कहिल-कहा; शुनि’-सुनकर; भक्त-गण-मने-भक्तों के मनों में, आनन्द हइल-अत्यन्त आनन्द हुआ।

अनुवाद

जब श्रीकान्त सेन ने बंगाल लौटकर यह सन्देश दिया, तो सारे भक्तों के मन अतीव प्रसन्न हो गये।

चलितेछिला आचार्य, रहिला स्थिर हञा ।

शिवानन्द, जगदानन्द रहे प्रत्याशा करिया ॥45॥

चलितेछिला-जाने के लिए तैयार, आचार्य-अद्वैत आचार्य, रहिला-रुक गये; स्थिर हञा-स्थिर होकर, शिवानन्द-शिवानन्द सेन, जगदानन्द-जगदानन्द; रहे-रह गये; प्रत्याशा करिया-उम्मीद करके।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य अन्य भक्तों के साथ जगन्नाथ पुरी जाने ही वाले थे, किन्तु यह सन्देश सुनकर वे रुक गये। शिवानन्द सेन तथा जगदानन्द भी श्री चैतन्य महाप्रभु के आगमन की प्रतीक्षा करते रुके रहे।

पौष-मासे आइल दुँहे सामग्री करिया ।

सन्ध्या-पर्यन्त रहे अपेक्षा करिया ॥46॥

पौष-मासे-पौष मास (दिसम्बर-जनवरी) में, आइल-आये, दुँहे-शिवानन्द सेन तथा जगदानन्द, सामग्री करिया-सब तैयारियाँ करके; सन्थ्या-पर्यन्त-सायंकाल तक, रहे-रुके रहे; अपेक्षा करिया-प्रतीक्षा करते।

अनुवाद

जब पौष मास आया, तो शिवानन्द तथा जगदानन्द दोनों ने महाप्रभु के स्वागत के लिए सभी प्रकार की सामग्री एकत्र की। वे प्रतिदिन सन्थ्या समय तक महाप्रभु के आने की प्रतीक्षा किया करते।

एइ-मत मास गेल, गोसाञि ना आइला ।

जगदानन्द, शिवानन्द दु:खित हइला ॥ 47॥

एइ-मत-इस प्रकार; मास गेल-महीना बीत गया; गोसाञि ना आइला-श्री चैतन्य महाप्रभु नहीं आये, जगदानन्द-जगदानन्द, शिवानन्द-शिवानन्द; दु:खित ह-इला-अत्यन्त दु:खी हुए।

अनुवाद

जब महीना बीत गया, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु नहीं आये, तो जगदानन्द तथा शिवानन्द अत्यधिक दु:खी हुए।

आचम्बिते नृसिंहानन्द ताहाडि आइला ।

दुँहे तौरे मिलि' तबे स्थाने वसाइला ॥ 48॥

दुँहे दु:खी देखि' तबे कहे नृसिंहानन्द।

'तोमा दुँहाकारे केने देखि निरानन्द?' ॥ 49॥

आचम्बिते-अचानक, नृसिंहानन्द-नृसिंहानन्द, ताहाडि आइला-वहाँ आ गये; दुँहे -शिवानन्द और जगदानन्द, ताँरै-उनसे; मिलि'-मिलकर, तबे-तब, स्थाने वसाइला-आसन पर बिठाया; दुँहे-दोनों को; दु:खी-अप्रसन्न; देखि'-देखकर, तबेतब, कहे नृसिंहानन्द-नृसिंहानन्द ने कहा; तोमा दुँहाकारे-आप दोनों को; केने-क्यों, देखि-मैं देख रहा हूँ, निरानन्द-दु:खी।

अनुवाद

एकाएक नृसिंहानन्द आये। जगदानन्द तथा शिवानन्द ने उन्हें अपने निकट बैठाने का प्रबन्ध किया। उन दोनों को इतने दु:खी देखकर नृसिंहानन्द ने पूछा, "मैं आप दोनों को निराश क्यों देख रहा हूँ?"

तबे शिवानन्द ताँरै सकल कहिला।

'आासिब आज्ञा दिला प्रभु केने ना आइला ?' ॥ 50 ॥

तबे-इस पर; शिवानन्द-शिवानन्द ने; ताँरै-नृसिंहानन्द को, सकल कहिला-सब कुछ बता दिया; आसिब-मैं आऊँगा; आज्ञा दिला-वचन दिया था; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने, केने-क्यों, ना आइला-वे नहीं आये।

अनुवाद

तब शिवानन्द सेन ने उनसे कहा, "श्री चैतन्य महाप्रभुने वचन दिया था कि वे आयेंगे। तो फिर वे क्यों नहीं आये?"

शुनि' ब्रह्मचारी कहे,-"करह सन्तोषे।

आमि त' आनिब ताँरै तृतीय दिवसे" ॥51॥

शुनि'-सुनकर; ब्रह्मचारी-नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी, कहे-बोले, करह सन्तोषे-प्रसन्न हो जाओ; आमि-मैं; त'—निश्चित रूप से; आनिब-लाऊँगा; ताँरै-उन्हें (श्री चैतन्य महाप्रभु को); तृतीय दिवसे-तीसरे दिन।

अनुवाद

यह सुनकर नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, "तुम लोग सन्तोष रखो। मैं तुम दोनों को विश्वास दिलाता हूँ कि आज से तीसरे दिन मैं उन्हें यहाँ ले आऊँगा।"

ताँहार प्रभाव-प्रेम जाने दुइ-जने ।

आनिबे प्रभुरे एबे निश्चय कैला मने ॥ 52॥

ताँहार-उनका; प्रभाव-प्रभाव; प्रेम-भगवत्प्रेम, जाने-जानते थे; दुइ-जने-वे दोनों, आनिबे प्रभुरे-ये श्री चैतन्य महाप्रभु को ले आयेंगे; एबे-अब, निश्चय कैला मने-उन्हें अपने मनों में गहरा विश्वास हो गया।

अनुवाद

शिवानन्द तथा जगदानन्द नृसिंहानन्द के प्रभाव तथा भगवत्प्रेम को जानते थे। इसलिए अब वे आश्वस्त हो गये कि वे निश्चय ही श्री चैतन्य महाप्रभु को ले आयेंगे।

"प्रद्युम्न ब्रह्मचारी"-ताँर निज-नाम ।

"नृसिंहानन्द" नाम ताँर कैला गौर-धाम ॥53॥

प्रद्युम्न ब्रह्मचारी-प्रद्युम्न ब्रह्मचारी; ताँर-उनका; निज-नाम-असली नाम था; नृसिंहानन्द-नृसिंहानन्द; नाम-नाम, ताँर-उनका; कैला गौर-धाम-श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दिया गया था।

अनुवाद

उनका असली नाम प्रद्युम्न ब्रह्मचारी था। उनका नृसिंहानन्द नाम स्वयं भगवान् गौरसुन्दर ने रखा था।

दुइ दिन ध्यान करि' शिवानन्देरे कहिल ।

"पाणिहाटि ग्रामे आमि प्रभुरे आनिल ॥54॥

दुइ दिन-दो दिन तक, ध्यान करि'-ध्यान करके; शिवानन्देरे कहिल-उन्होंने शिवानन्द सेन से कहा, पाणिहाटि ग्रामे-पाणिहाटि नामक गाँव में, आमि-मैं; प्रभुरे आनिल—श्री चैतन्य महाप्रभु को ले आया हूँ।

अनुवाद

दो दिनों तक ध्यान करने के बाद नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने शिवानन्द को बतलाया, "मै अब श्री चैतन्य महाप्रभुको पाणिहाटि नामक गाँव तक ले आया हूँ।

कालि मध्याह्ने तेंहो आसिबेन तोमार घरे।

पाक-सामग्री आनह, आमि भिक्षा दिमु तौंरे॥ 55॥

कालि मध्याह्ने-कल दोपहर को; तेंहो-वे; आसिबेन-आयेंगे; तोमार घरे-आपके घर, पाक-सामग्री आनह-कृपया भोजन पकाने की आवश्यक सामग्री ले आयें, आमि-मैं, भिक्षा दिमु-भोजन पकाऊँगा और भोग लगाऊँगा; तौंरे-उनको।

अनुवाद

"वे कल दोपहर में आपके घर आयेंगे। इसलिए भोजन बनाने की सारी सामग्री ले आयें। मैं स्वयं भोजन बनाऊँगा और उन्हें भोजन दूँगा।

तबे तौंरे एथा आमि आनिब सत्वर।

निश्चय कहिलाड, किछु सन्देह ना कर॥ 56॥

तबे-इस प्रकार; तौंरे-उन्हें, एथा-यहाँ, आमि-मैं; आनिब सत्वर-शीघ्र ही ले आऊँगा; निश्चय-निश्चित रूप से; कहिलाड-मैं कहता हूँ किछु सन्देह ना कर-सन्देह मत करो।

अनुवाद

"इस प्रकार से मैं उन्हें शीघ्र ही यहाँ ले आऊँगा। आप आश्वस्त रहो कि मैं सच कह रहा हूँ। आप सन्देह मत करो।

ये चाहिये, ताहा कर हञा तत्पर।

अति त्वराय करिब पाक, शुन अतःपर॥57॥

ये चाहिए-मैं जो भी चाहता हूँ, ताहा कर-वह सब व्यवस्था करो, हञा तत्पर-तत्पर होकर, अति त्वराय-शीघ्र ही; करिब पाक-मैं पकाना प्रारम्भ करूँगा; शुन अत:पर-आगे और सुनो।

अनुवाद

"आप तुरन्त सारी सामग्री लाओ, क्योंकि मैं तुरन्त रसोई पकाना शुरू करना चाहता हूँ। मैं जो कहता हूँ वह कृपया करें।"

पाक-सामग्री आनह, आमि याहा चाइ"।

ये मागिल, शिवानन्द आनि" दिला ताई ॥ 58 ॥

पाक-सामग्री आनह-सभी पाक सामग्रियाँ ले आयें, आमि याहा चाइ-जो भी मैं चाहता हूँ, ये मागिल-उन्होंने जो भी माँगा; शिवानन्द-शिवानन्द सेन ने, आनि"-लाकर, दिला ताइ-सब कुछ दे दिया।

अनुवाद

नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने शिवानन्द से कहा, "मैं जो भी भोजन-सामग्री चाहता हूँ, कृपया आप ले आयें।" इस तरह उन्होंने जो भी माँगा, शिवानन्द सेन तुरन्त ले आये।

प्रातः-काल हैते पाक करिला अपार ।

नाना व्यञ्जन, पिष्ठा, क्षीर नाना उपहार ॥ 59 ॥

प्रातः-काल हैते-सुबह से प्रारम्भ करके; पाक करिला अपार-अनेक प्रकार के व्यंजन पका दिये; नाना व्यञ्जन-अनेक प्रकार की सब्जियाँ, पिठा-मिठाईयाँ, क्षीर-खीर, नाना-अनेक, उपहार-व्यंजन थे।

अनुवाद

प्रातःकाल शीघ्र ही शुरू करके नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने अनेक प्रकार के भोजन तैयार किये, जिनमें सब्जियाँ, रोटियाँ, खीर तथा अन्य पकवान थे।

जगन्नाथेर भिन्न भोग पृथक्बाड़िल ।

चैतन्य प्रभुर लागि' आर भोग कैल ॥ 60 ॥

जगन्नाथेर—भगवान् जगन्नाथ के लिए; भिन्न-भिन्न; भोग-व्यंजन; पृथक्-अलग से, बाड़िल-तैयार किये, चैतन्य प्रभुर लागि'-श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए, आर-अलग; भोग-व्यंजन, कैल-बनाये।

अनुवाद

भोजन पकाने के बाद वे जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए अलग-अलग भोग ले आये।

इष्ट-देव नृसिंह लागि' पृथक्बाड़िल ।

तिन-जने समर्पिया बाहिरे ध्यान कैल ॥ 61 ॥

इष्ट-देव-आराध्य देव, नृसिंह-भगवान् नृसिंहदेव, लागि'-के लिए, पृथक्-अलग से, बाड़िल-व्यवस्था की, तिन-जने-तीन विग्रहों के लिए; समर्पिया-भोग अर्पित करके; बाहिरे-बाहर, ध्यान कैल-ध्यान करने लगे।

अनुवाद

उन्होंने अपने आराध्य देव नृसिंहदेव का भी अलग से भोग लगाया। इस तरह उन्होंने समस्त भोजन को तीन भोगों में बाँट दिया। तब मन्दिर के बाहर वे महाप्रभु का ध्यान करने लगे।

देखे, शीघ्र आसि' वसिला चैतन्य-गोसाञि।

तिन भोग खाइला, किछु अवशिष्ट नाइ ॥ 62॥

देखे-वे देखते हैं; शीघ्र आसि'-तुरन्त आकर, वसिला-बैठ गये, चैतन्य-गोसाञि—श्री चैतन्य महाप्रभु; तिन भोग—तीन भिन्न भिन्न भोग; खाइला-वे खा गये; किछु अवशिष्ट नाइ-वहाँ कुछ भी अवशिष्ट नहीं बचा।

अनुवाद

उन्होंने ध्यान में देखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु तेजी से आये, बैठ गये और तीनों भोग खा गये, कुछ भी शेष नहीं बचा।

आनन्दे विह्वल प्रद्युम्न, पड़े अश्रु-धार।

"हाहा किबा कर" बलि'करये फुत्कार ॥63॥

आनन्दे विह्वल-दिव्य आनन्द द्वारा भावविभोर होकर; प्रद्युम्न-प्रद्युम्न ब्रह्मचारी; पड़े अश्रु-धार-उनकी आँखों से आँसू बहने लगे; हाहा-हाय; किबा कर-आप क्या कर रहे हैं; बलि'-कहकर, करये फुत्-कार-खेद प्रकट करने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को सारा भोजन खाते देखकर प्रद्युम्न ब्रह्मचारी दिव्य आनन्द से विभोर हो गये। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। फिर भी उन्होंने यह कहकर व्याकुलता व्यक्त की, "हाय हाय! मेरे प्रिय प्रभु, आप यह क्या कर रहे हैं? आप तो सबका भोजन खाये जा रहे हैं!

"जगन्नाथे-तोमाय ऐक्य, खाओ ताँर भोग।

नृसिंहेर भोग केने कर उपयोग? ॥64॥

जगन्नाथे-भगवान् जगन्नाथ के साथ; तोमाय-आपका; ऐक्य-एकत्व, खाओ ताँर भोग-आप उनका भोग खा सकते हैं; नृसिंहेर भोग-नृसिंहदेव का भोग, केने कर उपयोग-आप क्यों खा रहे हैं।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप तथा जगन्नाथ एक हैं, इसलिए उनका भोग आप खायें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु आप भगवान् नृसिंहदेव के भोग को क्यों हाथ लगा रहे हैं?

नृसिंहेर हैल जानि आजि उपवास ।

ठाकुर उपवासी रहे, जिये कैछे दास?" ॥65॥

नृसिंहेर-भगवान् नृसिंह का, हैल-हो गया; जानि-मैं मानता हूँ, आजि-आज, उपवास-उपवास; ठाकुर उपवासी रहे-स्वामी उपवास करके रहें; जिये कैछेदास-एक सेवक अपने प्राण कैसे धारण रख सकता है।

अनुवाद

"मैं सोचता हूँ कि नृसिंहदेव आज कुछ भी नहीं खा सके, इसलिए वे उपवास कर रहे हैं। यदि स्वामी उपवास करें, तो सेवक कैसे जीवित रह सकता है?"

भोजन देखि' यद्यपि ताँर हृदये उल्लास ।

नृसिंह लक्ष्य करि' बाहो किछु करे दु:खाभास ॥ 66॥

भोजन देखि'-भोजन करते देखकर; यद्यपि-यद्यपि, ताँर हृदये-उनके हृदय में, उल्लास-आनन्द हुआ; नृसिंह-भगवान् नृसिंहदेव, लक्ष्य करि'-के लिए; बाहो-बाहरी रूप से; किछु-कुछ; करे-करते हैं; दु:ख-आभास-निराशा के भाव व्यक्त।

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु को सारी वस्तुएँ खाते देखकर नृसिंह ब्रह्मचारी को अपने हृदय में प्रसन्नता हुई, किन्तु भगवान् नृसिंहदेव के लिए उन्होंने ऊपर से निराशा व्यक्त की।

स्वयं भगवान् कृष्ण-चैतन्य-गोसाञि ।

जगन्नाथ-नृसिंह-सह किछु भेद नाइ ॥ 67॥

स्वयम्—स्वयं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कृष्ण-चैतन्य-गोसाञि–भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु, जगन्नाथ-नृसिंह-सह-भगवान् जगन्नाथ और नृसिंहदेव के साथ, किछु भेद-कोई भेद; नाइ-नहीं है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। अत: उनमें, भगवान् जगन्नाथ तथा भगवान् नृसिंहदेव में कोई अन्तर नहीं है।

इहा जानिबारे प्रद्युम्नेर गूढ़ हैत मन ।

ताहा देखाइला प्रभु करिया भोजन ॥ 68॥

इहा-यह सत्य; जानिबारे-जानने के लिए; प्रद्युम्नेर-प्रद्युम्न ब्रह्मचारी का, गूढ़-अत्यन्त, हैत मन-मन उत्सुक था; ताहा-वह; देखाइला-प्रकट किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करिया भोजन-भोजन करके।

अनुवाद

प्रद्युम्न ब्रह्मचारी इस बात को जान लेने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक प्रत्यक्ष निदर्शन द्वारा उनके समक्ष यह प्रकट किया।

भोजन करिया प्रभु गेला पाणिहाटि ।

सन्तोष पाड़ूला देखि' व्यञ्जन-परिपाटी ॥ 69 ॥

भोजन करिया-सारा भोग खाने के बाद; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला पाणिहाटि–पाणिहाटि जाने लगे; सन्तोष पाइला-वह अत्यन्त सन्तुष्ट हुए; देखि'-देखकर; व्यञ्जन-परिपाटी-व्यंजनों की तैयारी।

अनुवाद

सारा भोग खा लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु पाणिहाटि के लिए चल दिये। वहाँ पर राघव के घर में तैयार किये गये नाना प्रकार के व्यंजनों को देखकर वे अत्यधिक सन्तुष्ट हुए।

शिवानन्द कहे,-"केने करह फुत्कार?" ।

तेंह कहे,-"देख तोमार प्रभुर व्यवहार ॥ 70 ॥

शिवानन्द कहे-शिवानन्द सेन ने कहा; केने करह फुत्-कार-आप असन्तोष क्यों व्यक्त कर रहे हो, तेंह कहे-उन्होंने उत्तर दिया; देख-देखो; तोमार प्रभुर-आपके स्वामी का; व्ययहार-व्यवहार।

अनुवाद

शिवानन्द ने नृसिंहानन्द से कहा, "आप असन्तोष क्यों व्यक्त कर रहे हो ?" नृसिंहानन्द ने उत्तर दिया, "जरा अपने प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु का आचरण तो देखो!

तिन जनार भोग तेंहो एकेला खाइला।

जगन्नाथ-नृसिंह उपवासी हइला" ॥71॥

तिन जनार-तीनों विग्रहों के भोग, भोग-भोग, तेंहो-उन्होंने; एकेला-अकेले; खाइला-खा लिए, जगन्नाथ-नृसिंह-भगवान् जगन्नाथ और भगवान् नृसिंहदेव, उपवासी हइला-उपवास करके रह गये।

अनुवाद

"उन्होंने अकेले ही तीनों विग्रहों के भोग खा लिए। इसके कारण जगन्नाथजी तथा नृसिंहदेव दोनों भूखे रहे।"

शुनि शिवानन्देर चित्ते हइल संशय।

किबा प्रेमावेशे कहे, किबा सत्य हय ॥72॥

शुनि-सुनकर, शिवानन्देर-शिवानन्द के; चिते-मन में, हइल संशय-कुछ संशय हुआ; किबा-क्या; प्रेम-आवेशे कहे-कुछ प्रेमभाव में कह रहे थे; किबा-अथवा; सत्य हय-यह एक सत्य था।

अनुवाद

जब शिवानन्द सेन ने यह कथन सुना, तो उन्हें सन्देह हुआ कि नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी जो कह रहे हैं, वह प्रेमाविष्ट होने के कारण कह रहे हैं या वास्तव में यह सच है।

तबे शिवानन्दे किछु कहे ब्रह्मचारी।

"सामग्री आान नृसिंह लागि पुनः पाक करि' ॥73॥

तबे-इस पर; शिवानन्दे-शिवानन्द को; किछु-कुछ; कहे-कहते हैं; ब्रह्मचारी-नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी; सामग्री आन-और सामग्री लाओ; नृसिंह लागि'-भगवान् नृसिंहदेव के लिए, पुनः-दोबारा; पाक करि'-मुझे पकाने दो।

अनुवाद

जब शिवानन्द सेन इस तरह संशयग्रस्त थे, तो नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने उनसे कहा, "और भोजन-सामग्री लाओ। मुझे भगवान् नृसिंहदेव के लिए फिर से भोजन पकाने दो।"

तबे शिवानन्द भोग—सामग्री आनिला ।

पाक करि'नृसिंहेर भोग लागाइला ॥74॥

तबे-तब, शिवानन्द-शिवानन्द सेन; भोग-सामग्री-भोजन पकाने की सामग्रियाँ, आनिला-ले आये, पाक करि'-पकाकर; नृसिंहेर-भगवान् नृसिंहदेव को, भोग लागाइला-भोग अर्पित किया।

अनुवाद

तब शिवानन्द सेन पुनः भोजन बनाने की सामग्री ले आये और प्रद्युम्न ब्रह्मचारी ने पुनः भोजन पकाया तथा नृसिंहदेव को भोजन अर्पित किया।

वर्षान्तरे शिवानन्द लञा भक्त-गण ।

नीलाचले देखे याञा प्रभुर चरण ॥75॥

वर्ष-अन्तरे-अगले साल; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; लञा -लेकर, भक्त-गण-सारे भक्तों को, नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में, देखे-दर्शन के लिए, याञा-जाते हैं; प्रभुर चरण-महाप्रभु के चरणकमल ।

अनुवाद

अगले वर्ष शिवानन्द अन्य सारे भक्तों के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी गये।

एक-दिन सभाते प्रभु बात चालाइला ।

नृसिंहानन्देर गुणा कहिते लागिला ॥76॥

एक-दिन-एक दिन; सभाते-सभी भक्तों की उपस्थिति में, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; बात चालाइला-विषय में चर्चा उठाई (नृसिंहानन्द के घर में भोजन करने की); नृसिंहानन्देर-नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी के; गुण-दिव्य गुणों, कहिते लागिला-को कहना प्रारम्भ किया।

अनुवाद

एक दिन समस्त भक्तों के सामने महाप्रभु ने नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी से सम्बन्धित ये बातें चलाई और उनके दिव्य गुणों की वे प्रशंसा करने लगे।

"गत-वर्ष पौषे मोरे कराइल भोजन ।

कभु नाहि खाइ ऐछे मिष्टान्न-व्यञ्जन" ॥77॥

गत-वर्ष-पिछले साल; पौषे-पौष मास (दिसम्बर-जनवरी) में, मोरे-मुझे; कराइल भोजन-अनेक व्यंजन अर्पित किये थे; कभु नाहि खाइ-मैंने कभी नहीं आस्वादन किये; ऐछे-ऐसी; मिष्टान्न-मिठाइयाँ, व्यञ्जन-सब्जियाँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "पिछले साल पौष महीने में, जब नृसिंहानन्द ने मुझे खाने के लिए तरह-तरह की मिठाइयाँ तथा सब्जियाँ दीं, तो वे इतनी उत्तम थीं कि इसके पूर्व मैंने ऐसे व्यंजन कभी नहीं खाये थे।"

शुनि' भक्त–गण मने आश्चर्य मानिल ।

शिवानन्देर मने तबे प्रत्यय जन्मिल ॥ 78 ॥

शुनि'-सुनकर; भक्त-गण-सभी भक्त; मने-मन में, आश्चर्य मानिल-आश्चर्य अनुभव करने लगे; शिवानन्देर-शिवानन्द सेन के; मने-मन में; तबे-तब, प्रत्यय जन्मिल-विश्वास जाग गया।

अनुवाद

यह सुनकर सारे भक्त आश्चर्यचकित रह गये और शिवानन्द को विश्वास हो गया कि यह घटना सही थी।

एइ-मत शची-गृहे सतत भोजन ।

श्रीवासेर गृहे करेन कीर्तन-दर्शन ॥ 79 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; शची-गृहे-शचीमाता के घर में; सतत-सदैव; भोजनभोजन करते, श्रीवासेर गृहे-श्रीवास ठाकुर के घर में, करेन-करते, कीर्तन-दर्शन-जब भी वहाँ कीर्तन होता।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु शचीमाता के मन्दिर में प्रतिदिन भोजन करते थे और श्रीवास ठाकुर के घर भी जाते थे, जब कीर्तन होता था।

नित्यानन्देर नृत्य देखेन आसि' बारे बारे ।

"निरन्तर आविर्भाव" राघवेर घरे ॥ 80 ॥

नित्यानन्देर नृत्य-श्री नित्यानन्द प्रभु का नृत्य, देखेन-वे देखते हैं; आसि'-आकर; बारे बारे-बारम्बार, निरन्तर आविर्भाव-निरन्तर प्राकट्य; राघवेर घरे-राघव के घर में।

अनुवाद

इसी तरह जब नित्यानन्द प्रभु नृत्य करते थे, तब वे सदैव उपस्थित रहते थे और वे नियमित रूप से राघव के घर में प्रकट होते थे।

प्रेम-वश गौर-प्रभु, याहाँ प्रेमोत्तम ।

प्रेम-वश हञा ताहा देन दरशन ॥ 81 ॥

प्रेम-वश–प्रेममयी सेवा के वशीभूत होकर, गौर-प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, गौर सुन्दर, याहाँ प्रेम-उत्तम-जहाँ भी शुद्ध प्रेम हो; प्रेम-वश हञा-ऐसे प्रेम के वशीभूत होकर, ताहा-वहाँ, देन दरशन-स्वयं प्रकट होते हैं।

अनुवाद

महाप्रभु गौरसुन्दर अपने भक्तों के प्रेम से अत्यधिक प्रभावित रहते हैं। इसलिए जहाँ भी भगवान् की शुद्ध भक्ति होती है, वहाँ महाप्रभु ऐसे प्रेम के वशीभूत होकर स्वयं प्रकट होते हैं और उनके भक्त उनका दर्शन करते हैं।

शिवानन्देर प्रेम-सीमा के कहिते पारे? ।

याँर प्रेमे वश प्रभु आइसे बारे बारे ॥ 82॥

शिवानन्देर-शिवानन्द सेन के; प्रेम-सीमा-प्रेम की सीमा; के-कौन; कहिते पारेअनुमान लगा सकता है; याँर-जिनके; प्रेमे-प्रेम विनिमयों द्वारा; वश-प्रभावित होकर, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, आइसे-आते हैं; बारे बारे-बारम्बार।

अनुवाद

शिवानन्द सेन के प्रेम व्यवहार से प्रभावित होकर श्री चैतन्य महाप्रभु बारम्बार आये। इसलिए उनके प्रेम की सीमा का अनुमान भला कौन लगा सकता है?

एइ त' कहिलु गौरेर "आविर्भाव"।

इहा येइ शुने, जाने चैतन्य-प्रभाव ॥83॥

एइ त'-इस प्रकार; कहिलु-मैंने वर्णन किया है; गौरेर-श्री चैतन्य महाप्रभु के, आविर्भाव-प्राकट्य; इहा-यह घटना; येइ शुने-जो कोई सुनता है; जाने-जान जाता है; चैतन्य-प्रभाव-श्री चैतन्य महाप्रभु का ऐश्वर्य॥

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का वर्णन किया है। जो भी इन घटनाओं के विषय में सुनता है, वह महाप्रभु के दिव्य ऐश्वर्य को समझ सकता है।

पुरुषोत्तमे प्रभु-पाशे भगवानाचार्य।

परम वैष्णव तेंहो सुपण्डित आर्य ॥84॥

पुरुषोत्तमे-जगन्नाथ पुरी में, प्रभु-पाशे- श्री चैतन्य महाप्रभु के संग में, भगवान् आचार्य-भगवान् आचार्य; परम वैष्णव-शुद्ध भक्त; तेंहो-वह; सु-पण्डित-अत्यन्त विद्वान, आर्य-सज्जन।

अनुवाद

जगन्नाथपुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु की संगति में भगवान् आचार्य रहते थे, जो निश्चय ही भद्र, विद्वान तथा महान् भक्त थे।

तात्पर्य

भगवान् आचार्य के विवरण हेतु देखें आदि-लीला 10.136।

सख्य-भावाक्रान्त-चित्त, गोप-अवतार।

स्वरूप-गोसाञि-सह सख्य-व्यवहार ॥ 85 ॥

सख्य-भाव-मित्रता के प्रेम से, आक्रान्त-भावविभोर; चित्त-हृदय, गोपअवतार—एक गोप बालक का अवतार, स्वरूप-गोसाञि-सह-स्वरूप दामोदर गोस्वामी के साथ, सख्य-व्यवहार-मित्र जैसे आदान प्रदान।

अनुवाद

वे ईश्वर के साथ सख्य भाव में निमग्न रहते थे। वे ग्वालबाल के अवतार थे और स्वरूप दामोदर गोस्वामी के साथ उनका व्यवहार अत्यन्त मैत्रीपूर्ण था।

एकान्त–भावे आश्रियाछेन चैतन्य–चरण ।

मध्ये मध्ये प्रभुर तेंही करेन निमन्त्रण ॥86॥

एकान्त-भावे-पूर्ण एकाग्रता के साथ; आश्रियाछेन-शरण ले ली है; चैतन्यचरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों में, मध्ये मध्ये-कभी-कभी, प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; तेंहो-वे; करेन-करते; निमन्त्रण—निमन्त्रित ।

अनुवाद

उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की पूरी तरह से शरण ले रखी थी। कभी-कभी वे महाप्रभु को अपने घर पर भोजन करने के लिए निमन्त्रित करते थे।

घरे भात करि' करेन विविध व्यञ्जन ।

एकले गोसाञि लञा करान भोजन ॥ 87॥

घरे-घर पर, भात करि'-भात पकाकर, करेन-बनाते; विविध व्यञ्जन-विविध प्रकार की सब्जियाँ, एकले-अकेले, गोसाञि लञा-चैतन्य महाप्रभु को लेकर, करान भोजन-भोजन करवाते।

अनुवाद

भगवान् आचार्य अपने घर में नाना प्रकार के चावल तथा सब्जियाँ तैयार करते और महाप्रभु को अकेले खिलाने के लिए अपने घर पर ले आते।

तात्पर्य

सामान्यतया जो लोग श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन पर बुलाते, वे सर्वप्रथम भगवान् जगन्नाथ को भोजन अर्पित करते और उन्हें शेष प्रसाद खिलाते थे। किन्तु भगवान् आचार्य उन्हें जगन्नाथजी के भोजन का शेष प्रसाद देने के बदले अपने घर पर ही भोजन तैयार करते। उड़ीसा में भगवान् जगन्नाथ को अर्पित किया जाने वाला भोजन प्रसादी कहलाता है और जो भगवान् जगन्नाथ को अर्पित नहीं किया जाता, वह आमानी या घर-भात कहलाता है।

তাঁর পিতা 'বিষয়ী' বড় শতানন্দ-খাঁন।

'বিষয়-বিমুখ' আচার্য–'বৈরাগ্য-প্রধান' ॥88॥

তাঁর পিতা-उनके पिता, বিষয়ী-एक राजनीतिज्ञ, বড়-दक्ष, শতানন্দ-খাঁন-शतानन्द खान नामक; বিষয়-বিমুখ-राजनीति में रुचि नहीं रखते थे; আচার্য-भगवान् आचार्य; বৈরাগ্য-প্রধান-वे प्रायः वैरागी ही थे।

अनुवाद

भगवान् आचार्य के पिता का नाम शतानन्द खान था, जो दक्ष राजनीतिज्ञ थे; जबकि भगवान् आचार्य की राजप्रबन्ध में तनिक भी रुचि नहीं थी। निस्सन्देह, वे प्राय: वैरागी थे।

'গোপাল-ভট্টাচার্য' নাম তাঁর ছোট–ভাই।

কাশীতে বেদান্ত পড়ি' গেলা তাঁর ঠাঞি ॥ 89 ॥

গোপাল–ভট্টাচার্য-गोपाल भट्टाचार्य, নাম-नामक; তাঁর-उनका; ছোট–ভাইछोटा भाई था; কাশীতে-बनारस में, বেদান্ত পড়ি'-वेदान्त दर्शन पढ़कर; গেলা-गया; তাঁর ঠাঞি -उसके निवासस्थान में।

अनुवाद

भगवान् आचार्य के भाई ने, जिसका नाम गोपाल भट्टाचार्य था, बनारस में वेदान्त दर्शन का अध्ययन किया था और अब वह भगवान् आचार्य के घर लौट आया था।

तात्पर्य

उन दिनों और आज भी, वेदान्त दर्शन को शंकराचार्य के भाष्य से, जो शारीरक भाष्य कहलाता है, समझा जाता थे। इस तरह ऐसा लगता है कि भगवान् आचार्य के छोटे भाई गोपाल भट्टाचार्य ने वेदान्त का अध्ययन शारीरिक भाष्य के माध्यम से किया था, जो निर्विशेषवादियों के मायावादी दर्शन की स्थापना करता है।

आचार्य ताहारे प्रभु-पदे मिलाइला ।

अन्तर्यामी प्रभु चित्ते सुख ना पाइला ॥ 90 ॥

आचार्य–भगवान् आचार्य ने; ताहारे-उसे (अपने भाई को); प्रभु–पदे मिलाइला-श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलवाया; अन्तर्यामी प्रभु–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु, जो किसी का भी हृदय जान सकते थे; चित्ते-अन्तर्मन में, सुख-प्रसन्नता; ना पाइला-प्राप्त नहीं कर सके।

अनुवाद

भगवान् आचार्य अपने भाई को श्री महाप्रभु से भेंट कराने ले गये, किन्तु महाप्रभु यह जानकर कि गोपाल भट्टाचार्य मायावादी दार्शनिक है, उससे मिलकर अधिक प्रसन्न नहीं हुए।

आचार्य-सम्बन्धे बाहो करे प्रीत्याभास ।

कृष्ण-भक्ति विना प्रभुर ना हय उल्लास ॥ 91 ॥

आचार्य-सम्बन्धे—क्योंकि वह भगवान् आचार्य से सम्बन्धित था; बाह्ये—बाहरी रूप से; करे-करते; प्रीति-आभास-आनन्द का प्राकट्य ; कृष्ण-भक्ति-भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेमभक्ति के; विना—बिना; प्रभुर—श्री चैतन्य महाप्रभु को; ना हय—नहीं; उल्लास— आनन्दानुभूति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को ऐसे व्यक्ति से मिलकर कोई सुख नहीं मिलता है, जो कृष्ण का शुद्ध भक्त न हो। अतएव महाप्रभुको गोपाल भट्टाचार्य से मिलकर कोई प्रसन्नता नहीं हुई, क्योंकि वह मायावादी पण्डित था। तो भी वह भगवान् आचार्य से सम्बन्धित था, अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसे देखकर बाह्य रूप से प्रसन्नता व्यक्त की।

स्वरूप गोसाञिरे आचार्य कहे आर दिने ।

“वेदान्त पड़िया गोपाल आइसाछे एखाने” ॥ 92 ॥

स्वरूप गोसाञिरे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी से; आचार्य-भगवान् आचार्य, कहे-कहते हैं; आर दिने-अगले दिन; वेदान्त पड़िया-वेदान्त पढ़कर; गोपाल-गोपाल, आइसाछे-लौट आया है; एखाने-यहाँ।

अनुवाद

भगवान् आचार्य ने स्वरूप दामोदरसे कहा, "मेरा छोटा भाई गोपाल वेदान्त दर्शन का अध्ययन समाप्त करके मेरे घर लौट आया है।"

"सबे मेलि' आइस, शुनि 'भाष्य' इहार स्थाने"।

प्रेम-क्रोध करि' स्वरूप बलय वचने ॥ 93 ॥

सबे मेलि'-सब मिलकर; आइस-आओ, शुनि-हम सभी सुनते हैं; भाष्य-टीका; इहार स्थाने-उससे ही; प्रेम-क्रोध करि'-प्रेम के क्रोधित भाव में, स्वरूप-स्वरूप दामोदर ने, बलय वचने-ये वचन कहे।

अनुवाद

भगवान् आचार्य ने स्वरूप दामोदर से गोपाल से वेदान्त पर भाष्य सुनने के लिए अनुरोध किया। किन्तु स्वरूप दामोदर प्रेमवश कुछ क्रुद्ध होकर इस तरह बोले।

"बुद्धि भ्रष्ट हैल तोमार गोपालेर सङ्गे।

मायावाद शुनिबारे उपजिल रङ्गे" ॥94॥

बुद्धि-बुद्धि; भ्रष्ट-भ्रष्ट, दूषित; हैल-हो गई; तोमार-तुम्हारी; गोपालेर सङ्गे-गोपाल के संग में, मायावाद शुनिबारे-मायावादी टीका सुनने के लिए, उपजिल रङ्ग-प्रवृत्ति जागृत कर ली है।

अनुवाद

"तुमने गोपाल की संगति में अपनी बुद्धि खो दी है, अतएव तुम मायावाद दर्शन सुनने के लिए इच्छुक हो।"

वैष्णव हञा येबा शारीरक-भाष्य शुने।

सेव्य-सेवक-भाव छाड़ि' आपनारे 'ईश्वर' माने ॥ 95॥

वैष्णव हञा-एक वैष्णव होकर, येबा-जो कोई भी, शारीरक-भाष्य-मायावादी टीका, शारीरक भाष्य; शुने-सुनता है; सेव्य-सेवक-भाव-कृष्णभावनामय चेतना कि भगवान् ही स्वामी हैं और जीव उनके सेवक हैं; छाड़ि'-छोड़कर; आपनारे-स्वयं को, ईश्वर-परम भगवान्, माने-मानते हैं।

अनुवाद

"जब कोई वैष्णव वेदान्त-सूत्र पर शारीरक भाष्य नामक मायावादी टीका सुनता है, तो वह इस कृष्णभावनाभावित प्रवृत्ति को त्याग देता है कि भगवान् स्वामी हैं और जीव उनका सेवक है। इसके स्थान पर वह अपने आपको ही भगवान् मानने लगता है।"

तात्पर्य

केवलाद्वैतवादी नामक दार्शनिक एकमात्र शारीरक भाष्य सुनते हैं, जोकि शंकराचार्य द्वारा रचित टीका है और वह यह पक्ष प्रस्तुत करता है कि मनुष्य को स्वयं को परमेश्वर मानना चाहिए। वेदान्त पर ऐसी मायावाद दार्शनिक टीका केवल काल्पनिक हैं, किन्तु वेदान्त-सूत्र पर अन्य भाष्य भी हैं। श्रील रामानुजाचार्य का भाष्य श्री भाष्य कहलाता है, जो विशिष्टताद्वैतवाद दर्शन की स्थापना करने वाला है। इसी तरह ब्रह्म सम्प्रदाय में मध्वाचार्य कृत पूर्णप्रज्ञा भाष्य शुद्ध द्वैतवाद की स्थापना करता है। कुमार सम्प्रदाय या निम्बार्क सम्प्रदाय में श्री निम्बार्क कृत पारिजातसौरभ भाष्य में द्वैताद्वैतवाद की स्थापना हुई है और विष्णुस्वामी सम्प्रदाय या रुद्र सम्प्रदाय में, जो शिवजी से उद्भूत है, विष्णुस्वामी ने सवश भाष्य लिखा है, जो शुद्धाद्वैतवाद की स्थापना करता है।

वैष्णव को वेदान्त-सूत्र पर इन चारों सम्प्रदायों के आचार्यों अर्थात् श्री रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु-स्वामी तथा निम्बार्क द्वारा लिखित भाष्यो का अध्ययन करना चाहिए, क्योंकि ये भाष्य इस दर्शन पर आधारित हैं कि भगवान् स्वामी हैं और सारे जीव उनके सनातन सेवक हैं। जो वेदान्त दर्शन के समुचित अध्ययन में रुचि रखता है, विशेषकर यदि वह वैष्णव है, तो उसे इन भाष्यों का अध्ययन करना चाहिए। इन भाष्यों की वैष्णवों द्वारा सदा से पूजा होती आई है। श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती का भाष्य आदि-लीला (7,101) में विस्तार से दिया गया है। मायावादी भाष्य या शारीरक भाष्य तो वैष्णव के लिए विषतुल्य है। इसका स्पर्श तक नहीं करना चाहिए। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की टिप्पणी है कि महाभागवत तक, अर्थात् जिसने भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर आत्मसमर्पण कर रखा है, कभी-कभी शुद्ध भक्ति से नीचे गिर जाता है यदि वह शारीरक भाष्य के मायावाद दर्शन को सुनता है। इसलिए सारे वैष्णवों को इस भाष्य से दूर रहना चाहिए।

महा-भागवत येइ, कृष्ण प्राण-धन यार।

मायावाद-श्रवणे चित्त अवश्य फिरे ताँर" ॥96॥

महा-भागवत येइ-जो अत्यन्त उच्च रूप से उन्नत भक्त है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण, प्राण-धन ग्रार-जिसका प्राण और जीवन; मायावाद-श्रवणे-मायावाद दर्शन श्रवण करके; चित्त-हृदय, अवश्य-निश्चित रूप से; फिरे-बदल जाता है; ताँर-उसका।

अनुवाद

"मायावाद दर्शन ऐसा वाक्जाल प्रस्तुत करता है कि बड़े से बड़ा भत जिसने कृष्ण को अपना जीवन तथा आत्मा के रूप में स्वीकार कर लिया है, अपना निर्णय बदल देता है जब वह वेदान्त-सूत्र पर मायावाद भाष्य पढ़ता है।"

आचार्य कहे,-"आमा सबार कृष्ण-निष्ठ-चित्ते ।

आमा सबार मन भाष्य नारे फिराइते" ॥97॥

आचार्य कहे-भगवान् आचार्य ने उत्तर दिया; आमा सबार-हम सभी का; कृष्णनिष्ठ-कृष्ण को समर्पित, चिते-हृदय, आमा सबार-हम सभी के; मन-मन; भाष्य-शारीरक भाष्य; नारे फिराइते-बदल नहीं सकता।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर की आपत्ति के बावजूद भगवान् आचार्य कहते रहे, "हम सभी अपने तन तथा मन से भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर स्थिर हैं। अतएव शारीरक भाष्य हमारे मनों को नहीं बदल सकता।"

स्वरूप कहे, "तथापि मायावाद-श्रवणे ।

"चित्, ब्रह्म, माया, मिथ्या"—एइ-मात्र शुने ॥98॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया; तथापि-फिर भी, मायावाद-श्रवणेमायावादी टीका सुनकर; चित्-ज्ञान; ब्रह्म-परम सत्य, माया-बहिरंगा शक्ति; मिथ्या-मिथ्या; एइ-मात्र-केवल यहि; शुने-सुनते हैं।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया, "तो भी जब हम मायावाद दर्शन सुनते हैं, तो हम यही सुनते हैं कि ब्रह्म ज्ञान है और माया का ब्रह्माण्ड मिथ्या है, किन्तु हम कोई आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त नहीं करते।

जीवाज्ञान-कल्पित ईश्वरे, सकल-इ अज्ञान ।

याहार श्रवणे भक्तेर फाटे मन प्राण" ॥99॥

जीव-साधारण जीव; अज्ञान-अज्ञान द्वारा, कल्पित-कल्पना किया हुआ; ईश्वरे-परम भगवान् में, सकल-इ अज्ञान-समस्त अज्ञान; याहार श्रवणे-जिनका श्रवण करके; भक्तेर-भक्त का; फाटे-फटता है; मन प्राण-मन और प्राण।

अनुवाद

"मायावादी दार्शनिक यह स्थापना करने का प्रयास करता है कि जीव मात्र काल्पनिक है और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् माया के अधीन हैं। इस तरह की टीका सुनकर भक्त का हृदय तथा जीवन विदीर्ण हो जाता है।

तात्पर्य

श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी भगवान् आचार्य को यह बताना चाह रहे थे कि भले ही कृष्ण की भक्ति में दृढ़ होते हुए भी कोई मायावादी टीका सुनने से विचलित न हो, किन्तु फिर भी वह टीका, ज्ञान का प्रतिनिधित्व करने वाले ब्रह्म जैसे निविशेष शब्दों तथा भावों से भरा रहता है। मायावादियों का कहना है कि माया द्वारा उत्पन्न यह जगत् मिथ्या है और वास्तव में कोई भी जीव नहीं है, केवल एक आध्यात्मिक तेज रहता है। वे यह भी कहते हैं कि ईश्वर काल्पनिक हैं और लोग ईश्वर के बारे में अज्ञानवश ही सोचते हैं, तथा जब परब्रह्म माया द्वारा मोहित हो जाता है, तो वह जीव बनता है। अभक्तों से इन व्यर्थ के विचारों को सुनकर भक्त को अत्यन्त पीड़ा होती है, मानो उसका हृदय तथा आत्मा विदीर्ण हो चुके हों।

लज्जा-भय पाञा आचार्य मौन हइला।

आर दिन गोपालेरे देशे पाठाइला॥ 100॥

लज्जा–भय–भय तथा शर्म; पाञा—प्राप्त कर; आचार्य–भगवान् आचार्य, मौन हइला-मौन हो गये; आर दिन-अगले दिन, गोपालेरे-गोपाल भट्टाचार्य, देशे-अपने राज्य में, पाठाइला-भिजवा दिया।

अनुवाद

इस प्रकार अत्यन्त लजित तथा भयभीत भगवान् आचार्य मौन रहे। अगले दिन उन्होंने गोपाल भट्टाचार्य से अपने जिले में लौट जाने के लिए कहा।

एक-दिन आचार्य प्रभुरे कैला निमन्त्रण।

घरे भात करि' करे विविध व्यञ्जन॥ 101॥

एक-दिन–एक दिन; आचार्म—भगवान् आचार्य, प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कैला निमन्त्रण-भोजन के लिए आमन्त्रित करके, घरे-घर पर, भात करि'-भात पकाकर, करे-तैयार करते हैं; विविध व्यञ्जन-अनेक प्रकार के व्यंजन।

अनुवाद

एक दिन भगवान् आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर पर भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया। इस तरह वे चावल तथा विविध प्रकार की सब्जियाँ तैयार करने लगे।

"छोट–हरिदास" नाम प्रभुर कीर्तनीया ।

ताहारे कहेन आचार्य डाकिया आनिया ॥102॥

छोट–हरिदास नाम–छोटा हरिदास नामक एक भक्त; प्रभुर कीर्तनीया—श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए गीत गाने वाला, ताहारे-उससे; कहेन-कहते हैं; आचार्य-आचार्य, डाकिया आनिया-उसे अपने स्थान पर बुलाकर।

अनुवाद

"छोटा हरिदास" नामक एक भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए गाना गाता था। भगवान् आचार्य ने उसे अपने घर बुलाया और उससे इस प्रकार कहा ।

"मोर नामे शिखि-माहितिर भगिनी-स्थाने गिया ।

शुक्ल-चाउल एक मान आनह मागिया" ॥103॥

मोर नामे-मेरे नाम पर, शिखि-माहितिर-शिखिमाहिति की; भगिनी-स्थाने-बहन के घर; गिया-जाकर; शुक्ल-चाउल-सफेद चावल; एक मान-एक मान परिमाण के (लगभग एक किलो); आनह-कृपया ले आओ, मागिया-माँगकर।

अनुवाद

"तुम शिखि माहिति की बहन के पास जाओ। मेरे नाम पर उससे एक मान सफेद चावल माँगकर यहाँ ले आओ।"

तात्पर्य

भारत में शुक्ल-चाउल को आतप-चाउल या कूटने के पहले न उबाला जाने वाला चावल कहते हैं। दूसरे प्रकार का चावल सिद्ध-चाउल (भूरा चावल) कहलाता है, जो कूटने के पहले उबाला जाता है। सामान्यतया श्री विग्रह के लिए उत्तम कोटि के सफेद चावल की आवश्यकता पड़ती है। इस तरह भगवान् आचार्य ने छोटा हरिदास से, जो कि श्री चैतन्य

महाप्रभु की सभा में गायक था, शिखि माहिति की बहन के यहाँ से यह चावल लाने के लिए कहा। मान उड़ीसा में चावल तथा अन्य अनाजों के लिए प्रयुक्त प्रामाणिक माप है।

माहितिर भगिनी सेइ, नाम-माधवी-देवी ।

वृद्धा तपस्विनी आर परमा वैष्णवी ॥ 104॥

माहितिर भगिनी—शिखि माहिति की बहन; सेइ—वह; नाम—नामक; माधवी–देवी— माधवी देवी, वृद्धा-वह वृद्ध स्त्री, तपस्विनी-भगवद्सेवा के नियम पालन में अति दृढ़, आर-और; परमा वैष्णवी-प्रथम कोटि की भक्तिनि।

अनुवाद

शिखि माहिति की बहन का नाम माधवीदेवी था। वह वृद्धा थी जो सदैव तपस्या करती थी। वह भक्ति में बहुत उन्नत थी।

प्रभु लेखा करे यारे-राधिकार 'गण' ।

जगतेर मध्ये 'पात्र'—साड़े तिन जन ॥ 105 ॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; लेखा करे-स्वीकार करते हैं; यारे-जिसे; राधिकार गण-श्रीमती राधारानी की परिकरों में से एक, जगतेर मध्ये-सम्पूर्ण जगत् में, पात्र-सर्वाधिक अन्तरंग भक्त; साड़े तिन-तीन और आधा; जन-लोग।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका श्रीमती राधारानी की एक पूर्व संगिनी के रूप में स्वीकार किया था। सारे संसार में उनके कुल साढ़े तीन घनिष्ठ भक्त थे।

स्वरूप गोसाञि, आर राय रामानन्द ।

शिखि-माहिति—तिन, ताँर भगिनी-अर्ध-जन ॥ 106॥

स्वरूप गोसाञि-स्वरूप गोस्वामी; आर—तथा; राय रामानन्द-रामानन्द राय; शिखि-माहिति-शिखि माहिति; तिन-तीनों, ताँर भगिनी-उनकी बहन; अर्ध-जनआधां।

अनुवाद

ये तीन भक्त थे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी, रामानन्द राय तथा शिखि माहिति और आधा व्यक्ति था शिखिमाहिति की बहिन।

ताँर ठाञि तण्डुल मागि' आनिल हरिदास ।

तण्डुल देखि' आचार्येर अधिक उल्लास ॥107॥

ताँर ठाञि-उनसे; तण्डुल मागि'-चावल भिक्षा माँगकर; आनिल हरिदास-हरिदास लाया; तण्डुल देखि'-चावल को देखकर, आचार्येर-भगवान् आचार्य को, अधिक उल्लास-अत्यन्त सन्तुष्टि हुई।

अनुवाद

जब छोटा हरिदास उससे चावल माँगकर भगवान् आचार्य के पास ले आया, तो वे इसकी गुणवत्ता देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

स्नेहे रान्धिल प्रभुर प्रिय ये व्यञ्जन ।

देउल प्रसाद, आदा-चाकि, लेम्बु-सलवण ॥108॥

स्नेहे—अत्यन्त स्नेहपूर्वक; रान्धिल—पकाया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; प्रिय— प्रिय; ये-जो भी; व्यञ्जन-सब्जियाँ, देउल प्रसाद-जगन्नाथ के मन्दिर से प्रसाद, आदा-चाकि-पिसा हुआ अदरक, लेम्बु-नींबू, स-लवण-नमक के साथ।

अनुवाद

भगवान् आचार्य ने बड़े ही स्नेह के साथ तरह-तरह की सब्जियाँ तथा अन्य पकवान पकाए, जो श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रिय थे। उन्होंने जगन्नाथजी का प्रसाद तथा पिसी सोंठ तथा नींबू और नमक जैसे पाचक-व्यंजन भी प्राप्त किये।

मध्याह्ने आसिया प्रभु भोजने वसिला ।

शाल्यन्न देखि' प्रभु आचाये पुछिला ॥ 109॥

मध्याह्ने-दोपहर के समय; आसिया-आकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भोजने वसिला-भोजन करने बैठ गये; शालि-अन्न-उत्तम श्रेणि के चावल, देखि'-देखकर, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने, आचार्ये पुछिला-भगवान् आचार्य से पूछा।

अनुवाद

दोपहर में जब श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् आचार्य की भिक्षा पाने आये, तो उन्होंने सर्वप्रथम उत्तम चावल की प्रशंसा की और फलस्वरूप उनसे पूछा।

उत्तम अन्न एत तण्डुल काँहाते पाइला ? ।

आचार्य कहे,-माधवी-पाश मागिया आनिला ॥110॥

उत्तम अन्न-अच्छा चावल, एत-ऐसे; तण्डुल-चावल, काँहाते पाइला-तुम्हें कहाँ मिले; आचार्य कहे-भगवान् आचार्य ने उत्तर दिया; माधवी-पाश-माधवीदेवी से; मागिया—भिक्षा माँगकर; आनिला—लाया हूँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने पूछा, "तुमने ऐसा बढ़िया चावल कहाँ से प्राप्त किया?" भगवान आचार्य ने उत्तर दिया, "मैंने माधवीदेवी से माँगकर प्राप्त किया है।"

प्रभु कहे, —'कोन् याइ' मागिया आनिल?' ।

छोट-हरिदासेर नाम आचार्य कहिल ॥111॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, कोन् याइ'-कौन जाकर, मागिया-भिक्षा, आनिल-लेकर आया; छोट–हरिदासेर–छोटा हरिदास का; नाम-नाम; आचार्य कहिल-भगवान् आचार्य ने बताया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा कि चावल माँगकर कौन लाया है? तो भगवान् आचार्य ने छोटे हरिदास के नाम का उल्लेख किया।

अन्न प्रशंसिया प्रभु भोजन करिला ।

निज-गृहे आसि' गोविन्देरे आज्ञा दिला ॥112॥

अन्न प्रशंसिया-अन्न की प्रशंसा करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने, भोजन करिला-प्रसाद ग्रहण किया; निज-गृहे-अपने निवास पर, आसि'-लौटकर, गोविन्देरे-गोविन्द को, आज्ञा दिला-उन्होंने एक आदेश दिया।

अनुवाद

चावल के गुण की प्रशंसा करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रसाद ग्रहण किया। फिर अपने निवासस्थान लौटकर उन्होंने अपने निजी सहायक गोविन्द को यह आदेश दिया।

"आजि हैते एइ मोर आज्ञा पालिबा ।

छोट हरिदासे इहाँ आसिते ना दिबा" ॥ 113 ॥

आजि हैते-आज से; एइ-यह; मोर-मेरा; आज्ञा-आदेश, पालिबा-तुम्हें पालन करना चाहिए, छोट हरिदासे-छोटे हरिदास को; इहाँ-यहाँ, आसिते-आने की; ना दिबा-अनुमति मत दो।

अनुवाद

"आज के बाद छोटे हरिदास को यहाँ मत आने देना।"

द्वार माना हैल, हरिदास दु:खी हैल मने ।

कि लागिया द्वार-माना केह नाहि जाने ॥114॥

द्वार माना—प्रवेश निषेध, हैल—हो गया; हरिदास—छोटा हरिदास; दु:खी-अत्यन्त दु:खी, हैल मने-अपने मन में हो गया; कि लागिया-किस कारण से; द्वार-माना-द्वार बन्द हो गया; केह नाहि जाने-कोई भी नहीं जान पाया।

अनुवाद

जब छोटे हरिदास ने सुना कि उसे श्री चैतन्य महाप्रभु के पास न जाने का आदेश हुआ है, तो वह अत्यन्त दु:खी हुआ। कोई नहीं जान सका कि उसे न आने का आदेश क्यों दिया गया।

तिन-दिन हैल हरिदास करे उपवास ।

स्वरूपादि आसि, पुछिला महाप्रभुर पाश ॥ 115॥

तिन-दिन हैल-तीन दिन से; हरिदास-छोटा हरिदास, करे उपवास-उपवास कर रहा था; स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर और अन्य अन्तरंग भक्त, आसि-आकर; पुछिला-जिज्ञासा करने लगे; महाप्रभुर पाश-श्री चैतन्य महाप्रभु से।

अनुवाद

हरिदास ने लगातार तीन दिनों तक उपवास किया। तब स्वरूप दामोदरगोस्वामी तथा अन्य अन्तरंग भक्तगण श्री चैतन्य महाप्रभु के पास उनसे पूछने पहुँचे।

"कोनपराध, प्रभु, कैल हरिदास ? ।

कि लागिया द्वार-माना, करे उपवास?" ॥116॥

कोन् अपराध-कौन सा बड़ा अपराध; प्रभु-हे भगवान्, कैल हरिदास-हरिदास ने कर दिया; कि लागिया-किस कारण से; द्वार-माना-प्रवेश निषेध; करे उपवास-वह अब उपवास कर रहा है।

अनुवाद

"छोटे हरिदास ने कौन-सा महान् अपराध किया है? उसे आपके द्वार तक आने से मना क्यों किया गया है? अब वह तीन दिनों से उपवास कर रहा है।"

प्रभु कहे,—वैरागी करे प्रकृति सम्भाषण ।

देखिते ना पारों आमि ताहार वदन ॥ 117॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; वैरागी-वैरागी जीवन (आश्रम) में स्थित व्यक्ति; करे-करता है; प्रकृति सम्भाषण-एक स्त्री से अन्तरंग वार्ता; देखिते ना पारों-देख नहीं सकता; आमि-मैं; ताहार वदन-उसका मुँह।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं उस व्यक्ति का मुँह नहीं देख सकता, जो वैराग्य स्वीकार करने पर भी एक स्त्री से घुल-मिलकर बातें करता हो।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि वैष्णव का पहला गुण सरलता है, जबकि कपटता या धूर्तता भक्ति के सिद्धान्तों के विरुद्ध बहुत बड़ा अपराध है। मनुष्य को चाहिए कि ज्यों-ज्यों कृष्णभावनामृत में आगे बढ़े, त्यों-त्यों वह भौतिक आसक्ति से विमुख होता जाए और इस तरह भगवान् की सेवा में अधिकाधिक अनुरत हो। यदि वह

वास्तव में भौतिक कार्यों से विरत नहीं है, किन्तु तब भी अपने आपको भक्ति में उन्नत घोषित करता है, तो वह धोखा देता है। ऐसे व्यवहार को देखकर कोई भी प्रसन्न नहीं होगा।

दुर्वार इन्द्रिय करे विषय-ग्रहण ।

दारवी प्रकृति हरे मुनेरपि मन ॥118॥

दुर्वार–अनियन्त्रित; इन्द्रिय-इन्द्रियाँ, करे—करके; विषय-ग्रहण–विषय भोगों को ग्रहण, दारवी प्रकृति-एक स्त्री की लकड़ी से बनी मूर्ति; हरे-आकर्षित कर लेती है; मुनेरपि—एक महान् साधु को भी; मन—मन को।

अनुवाद

"इन्द्रियाँ अपनी भोग-वस्तुओं से इतनी दृढ़ता से आकर्षित होती हैं कि स्त्री की काठ की मूर्ति भी निश्चित रूप से बड़े से बड़े सन्त पुरुष के मन को भी आकृष्ट कर लेती है।

तात्पर्य

इन्द्रियों तथा इन्द्रिय-विषयों में ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि बड़े से बड़े सन्त पुरुष का मन भी काठ की पुतली के प्रति आकृष्ट हो जाता है, यदि इसे तरुण स्त्री का आकर्षक रूप प्रदान किया गया हो । इन्द्रिय-विषय यथा रूप, ध्वनि, गन्ध, स्वाद तथा स्पर्श सदा ही ऑखों, कानों, नाक, जीभ तथा त्वचा के लिए आकर्षक होते हैं। चूँकि इन्द्रियाँ तथा इन्द्रिय-विषय सहज रूप से घनिष्ठतापूर्वक सम्बन्धित हैं, इसलिए कभी-कभी इन्द्रियों पर वश रखने का दावा करने वाला व्यक्ति भी इन्द्रिय-विषयों के वशीभूत हो जाता है। इन्द्रियों को तब तक वश में करना कठिन है, जब तक वे शुद्ध न हो जाएँ तथा भगवान् की सेवा में न लगाई जाएँ। इस तरह भले ही सन्त पुरुष अपनी इन्द्रियों को वश में करने का व्रत ले, इन्द्रियाँ फिर भी इन्द्रिय-विषयों द्वारा विचलित हो जाती हैं।

मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा ना विविक्तासनो भवेत् ।

बलवानिन्द्रिय-ग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ 119 ॥

मात्रा-अपनी माता के साथ; स्वस्त्रा-अपनी बहन के साथ; दुहित्रा-अपनी पुत्री के साथ; वा-अथवा; ना-नहीं, विविक्त-आसन:-एक साथ बैठना; भवेत्-चाहिए; बलवान्-अति बलवान, इन्द्रिय-ग्राम:-इन्द्रियों का समूह; विद्वांसम्-मुक्ति के ज्ञान से युक्त व्यक्ति को ; अपि-भी, कर्षति-आकर्षित कर लेता है।

अनुवाद

"व्यक्ति को अपनी माता, बहन या पुत्री से सटकर नहीं बैठना चाहिए। क्योंकि इन्द्रियाँ इतनी बलवान होती हैं कि वे बड़े से बड़े ज्ञानी को भी आकृष्ट कर सकती हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक मनुसंहिता (2.215) तथा श्रीमद्भागवत (9.19.17) में आया है।

क्षुद्र-जीव सब मर्कट-वैराग्य करिया ।

इन्द्रिय चराञा बुले 'प्रकृति' सम्भाषिया ॥120॥

क्षुद्र-जीव-तुच्छ जीव; सब-सभी; मर्कट वैराग्य-एक बन्दर के समान वैरागी जीवन; करिया-स्वीकार करते हैं, इन्द्रिय चराञा-इन्द्रियों की सन्तुष्टि के लिए, बुले- इधर उधर भटकते हैं; प्रकृति सम्भाषिया-स्त्रियों से घनिष्ठ रूप से बात करते हैं।

अनुवाद

"ऐसे अनेक सम्पत्ति-रहित क्षुद्र व्यक्ति हैं, जो बन्दरों जैसा वैराग्य स्वीकार करते हैं। वे इन्द्रियतृप्ति में लगे रहने तथा स्त्रियों से घनिष्टतापूर्वक बातें करने के लिए इधर उधर घूमते हैं।"

तात्पर्य

मनुष्य को अवैध यौन, मांसाहार, नशा तथा जुए के निषेध के विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करना चाहिए और इस तरह आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करनी चाहिए। यदि अयोग्य व्यक्ति भावनावश वैराग्य या संन्यास ग्रहण करता है, किन्तु साथ ही स्त्रियों के प्रति आसक्त रहता है, तो उसकी स्थिति बहुत खतरनाक हो जाती है। उसका वैराग्य मर्कट-वैराग्य कहलाता है। बन्दर जंगल में रहता है, फल खाता है और कपड़े भी नहीं पहनता। इस तरह वह एक वैरागी के समान है, किन्तु बन्दर सदैव बन्दरिया के विषय में सोचता है और कभी-कभी अपने संभोग के लिए दर्जनों बन्दरियाँ रखता है। यह मर्कट-वैराग्य कहलाता है। इसलिए अयोग्य व्यक्ति को वैराग्य नहीं धारण करना चहिए। जो संन्यास ग्रहण कर लेता है, किन्तु फिर भी कामवासना से विचलित होता है और एकान्त में स्त्रियों से बातें करता है, वह धर्मध्वजी या धर्म- कलंक कहलाता है-अर्थात् वह धर्म पर कलंक लगाता है। इसलिए मनुष्य को इस तात्पर्य सम्बन्ध में अत्यधिक सावधान रहने की आवश्यकता है। श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर मर्कट शब्द का अर्थ "चंचल" करते हैं। चंचल व्यक्ति स्थिर नहीं रह सकता, इसलिए वह अपनी इन्द्रियों की तृप्ति करते हुए केवल इधर-उधर भटकता है। कभी-कभी

ऐसा व्यक्ति अन्यों से प्रशंसित होने के लिए अपने अनुयायियों अथवा जनता से सस्ती श्रद्धा पाने के लिए संन्यासी या बाबाजी का वेश धारण करता है, किन्तु वह इन्द्रियतृप्ति की, विशेषतया स्त्रियों की संगति की इच्छाओं को त्याग नहीं पाता। ऐसा व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन में प्रगति नहीं कर सकता। स्त्रियों के साथ आठ प्रकार का इन्द्रिय भोग होता है, जिनमें स्त्रियों के साथ बातें करना और उनके विषय में सोचना सम्मिलित हैं। इस तरह संन्यासी के लिए स्त्री से घुल-मिलकर बातें करना महान् अपराध है। श्री रामानन्द राय तथा श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने वास्तव में वैराग्य का सर्वोच्च पद प्राप्त अनुवाद किया था, किन्तु जो उन्हें सामान्य व्यक्ति मानकर उनकी नकल करते हैं, वे भौतिक शक्ति के वश में हो जाते हैं, क्योंकि यह एक बड़ी गलतफहमी है।

एत कहि' महाप्रभु अभ्यन्तरे गेला ।

गोसाञि आवेश देखि' सबे मौन हैला ॥ 121 ॥

एत कहि'—यह कहकर; महाप्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु; अभ्यन्तोरे गेला-अपने कमरे में चले गये; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु का, आवेश-क्रोध में आवेश; देखि'-देखकर, सबे-सारे भक्त; मौन हैला-मौन हो गये।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु अपने कमरे में चले गये। उन्हें इस तरह क्रोध की मुद्रा में देखकर सारे भक्त मौन हो गये।

आर दिने सबे मेलि' प्रभुर चरणे ।

हरिदास लागि, किछु कैला निवेदने ॥ 122॥

आर दिने-अगले दिन, सबे मेलि'-सभी भक्त एकत्रित होकर; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में, हरिदास लागि-छोटे हरिदास के लिए; किछु-कुछ; कैला निवेदने-निवेदन किया।

अनुवाद

अगले दिन सारे भक्त छोटे हरिदास की ओर से निवेदन करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में पहुँचे।

"अल्प अपराध, प्रभु करह प्रसाद ।

एबे शिक्षा हइल ना करिबे अपराध" ॥123॥

अल्प अपराध-अपराध बहुत बड़ा नहीं है; प्रभु-हे भगवन्, करह प्रसाद-कृपा कीजिये, एबे-अब, शिक्षा हइल-उसे पर्याप्त शिक्षा मिल गई है; ना करिबे-वह नहीं करेगा; अपराध-अपराध।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "हरिदास ने छोटा-सा अपराध किया है, इसलिए हे प्रभु, उस पर कृपालु हों। अब उसे पर्याप्त शिक्षा मिल चुकी है। भविष्य में वह ऐसा अपराध नहीं करेगा।"

प्रभु कहे,-मोर वश नहे मोर मन ।

प्रकृति-सम्भाषी वैरागी ना करे दर्शन ॥124॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; मोर वश-मेरे वश में, नहे-नहीं है; मोर-मेरा, मन-मन, प्रकृति-सम्भाषी-जो स्त्री से बात करता है; वैरागी-संन्यास आश्रम में स्थित व्यक्ति; ना करे दर्शन-नहीं देखता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मेरा मन मेरे वश में नहीं है। यह मन ऐसे व्यक्ति को संन्यास आश्रम में नहीं देखना चाहता, जो स्त्रियों से घुलमिलकर बातें करता हो।

निज कार्ये याह सबे, छाड़ वृथा कथा ।

पुनः यदि कह आमा ना देखिबे हेथा" ॥125॥

निज कार्ये-अपने कार्यों में, याह सबे-आप सभी जा सकते हैं; छाड़-छोड़कर, वृथा कथा-व्यर्थ की बातें; पुनः-फिर, यदि कह-यदि आप बोलेंगे; आमा-मुझे; ना देखिबे-आप नहीं देखेंगे; हेथा-यहाँ।

अनुवाद

"तुम सभी अपने-अपने कार्य पर जाओ। इस व्यर्थ की बात को छोड़ो। यदि तुम लोगों ने फिर से इस तरह बात की, तो मैं चला जाऊँगा और तुम लोग मुझे और यहाँ नहीं देख पाओगे।"

एत शुनि' सबे निज-कर्ण हस्त दिया ।

निज निज कार्ये सबे गेल त' उठिया ॥ 126 ॥

एत शुनि'-यह सुनकर; सबे-सभी भक्त; निज-कर्ण-अपने कानों पर; हस्त दिया-हाथ रखकर, निज निज कार्ये-अपने अपने कार्यों में, सबे-वे सभी; गेल-चले गये; त'-निश्चित रूप से; उठिया-उठकर।

अनुवाद

यह सुनकर सारे भक्तों ने अपने हाथों से अपने कान बन्द कर लिए और उठकर वे अपने-अपने कार्यों पर चले गये।

महाप्रभु मध्याह्न करिते चलि, गेला ।

बुझन ना याय एइ महाप्रभुर लीला ॥127॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, मध्याह्न करिते-अपनी मध्याह्न कालीन कृत्यों को करने के लिए, चलि-चले; गेला-गये, बुझन ना याय-कोई भी समझ नहीं पाया; एइ-यह; महाप्रभुर लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीला।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी अपना दोपहर का कृत्य करने के लिए वह स्थान छोड़ दिया। कोई उनकी लीलाओं को समझ नहीं सका।

आर दिन सबे परमानन्द-पुरी-स्थाने ।

'प्रभुके प्रसन्न कर'–कैला निवेदने ॥ 128 ॥

आर दिन-अगले दिन; सबे-सारे भक्तों ने, परमानन्द-पुरी-स्थाने-परमानन्द पुरी के स्थान पर; प्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु को; प्रसन्न कर-कृपया शान्त कीजिये; कैला निवेदने-निवेदन करने लगे।

अनुवाद

अगले दिन सारे भक्त श्री परमानन्द पुरी के पास गये और उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि वे महाप्रभु को शान्त करें।

तबे पुरी–गोसाञि एका प्रभु-स्थाने आइला ।

नमस्करि' प्रभु ताँरे सम्भ्रमे वसाइला ॥ 129॥

तबे-तब; पुरी-गोसाञि-परमानन्द पुरी, एका-अकेले; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; आइला—आये; नमस्करि'-प्रणाम करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे-उन्हें; सम्भ्रमे-अत्यन्त आदर के साथ; वसाइला-बैठाया।

अनुवाद

इसके बाद परमानन्द पुरी अकेले ही श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर गये। महाप्रभु ने नमस्कार करने के बाद उन्हें अपनी बगल में बड़े ही आदर से बैठाया।

पुछिला,-कि आज्ञा, केने हैल आगमन? ।

'हरिदासे प्रसाद लागि' कैला निवेदन ॥ 130 ॥

पुछिला-महाप्रभु ने पूछा, कि आज्ञा-आपका आदेश क्या है; केने हैल आगमन-आप किस उद्देश्य से आये हैं, हरिदासे प्रसाद लागि'-छोटा हरिदास पर कृपा करने के लिए, कैला निवेदन-उन्होंने निवेदन किया।

अनुवाद

महाप्रभु ने पूछा, "आपका क्या आदेश है? आप यहाँ किस कार्य से आये हैं?" तब परमानन्द पुरी ने अपनी विनती निवेदित की कि महाप्रभु छोटे हरिदास पर कृपा करें।

शुनिया कहेन प्रभु,—"शुनह, गोसाञि ।

सब वैष्णव लञा तुमि रह एइ ठाञि" ॥ 131 ॥

शुनिया-सुनकर, कहेन प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; शुनह-कृपया सुनिये, गोसाञि-मेरे प्रभु, सब वैष्णव-सभी वैष्णवों को; लञा-लेकर, तुमि-आप; रह-रहिये; एइ ठाञि-इस स्थान में।

अनुवाद

यह विनती सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, कृपया आप मेरी बात सुनें। आपके लिए अच्छा होगा कि आप सारे वैष्णवों समेत यहीं रहें।

मोरे आज्ञा हय, मुञि याइ आलालनाथ ।

एकले रहिब ताहाँ, गोविन्द-मात्र साथ" ॥ 132॥

मोरे-मुझे; आज्ञा हय-कृपया अनुमति दीजिये; मुञि -मैं; याइ-जाकर; आलालनाथ-आलालनाथ नामक स्थान में, एकले रहिब-मैं अकेला रहूँगा; ताहाँ-वहाँ; गोविन्द-मात्र साथ-केवल गोविन्द के साथ।

अनुवाद

"कृपया आप मुझे आलालनाथ जाने की अनुमति दें। मैं वहाँ अकेला रहूँगा, केवल गोविन्द मेरे साथ जायेगा।"

एत बलि' प्रभु यदि गोविन्दे बोलाइला ।

पुरीरे नमस्कार करि' उठिया चलिला ॥133॥

एत बलि'-ऐसा कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; यदि-जब; गोविन्दे बोलाइला-गोविन्द को बुलाया; पुरीरे-परमानन्द पुरी को; नमस्कार करि'-प्रणाम करके; उठिया चलिला-उठकर जाने लगे।

अनुवाद

यह कहकर महाप्रभु ने गोविन्द को बुलाया। परमानन्द पुरी को नमस्कार करके वे उठे और जाने लगे।

आस्ते-व्यस्ते पुरी-गोसाञि प्रभु आगे गेला ।

अनुनय करि' प्रभुरे घरे वसाइला ॥134॥

आस्ते-व्यस्ते-अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक; पुरी-गोसाञि-परमानन्द पुरी; प्रभु आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने, गेला-गये; अनुनय करि'-अत्यन्त विनम्रता के साथ; प्रभुरेश्री चैतन्य महाप्रभु को; घरे-कमरे में, वसाइला-बिठाया।

अनुवाद

परमानन्द पुरी अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक उनके सामने गये और अत्यन्त दीनतापूर्वक उन्हें अपने कमरे में बैठने के लिए मनाया।

"तोमार ये इच्छा, कर, स्वतन्त्र ईश्वर ।

केबा कि बलिते पारे तोमार उपर? ॥135॥

तोमार ये इच्छा-आपकी जो भी इच्छा है; कर-आप कर सकते हैं; स्वतन्त्र ईश्वर-स्वतन्त्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, केबा-कौन; कि बलिते पारे-बोल सकता है; तोमार उपर-आपके ऊपर।

अनुवाद

परमानन्द पुरी ने कहा, "हे चैतन्य महाप्रभु, आप स्वतन्त्र पुरुषोत्तम भगवान् हैं। आप जो चाहें सो कर सकते हैं। आपके ऊपर कौन कुछ कह सकता है?

लोक-हित लागि' तोमार सब व्यवहार ।

आमि सब ना जानि गम्भीर हृदय तोमार" ॥ 136 ॥

लोक-हित लागि'-जनसामान्य के कल्याण के लिए; तोमार-आपके; सब-सभी, व्यवहार-कार्यकलाप, आमि सब-हम सब, ना जानि-समझ नहीं सकते; गम्भीर-अत्यन्त गम्भीर और गहन, हृदय-हृदय; तोमार-आपका।

अनुवाद

"आपके सारे कार्य जनसमान्य के लाभ हेतु हैं। हम उन्हें नहीं समझ सकते, क्योंकि आपके मनोभाव अत्यन्त गहरे तथा गम्भीर हैं।"

एत बलि' पुरी–गोसाञि गेला निज-स्थाने ।

हरिदास-स्थाने गेला सब भक्त-गणे ॥ 137॥

एत बलि'-यह कहकर, पुरी-गोसाञि-परमानन्द गोस्वामी, गेला-चले गये; निज-स्थाने-अपने निवासस्थान की ओर, हरिदास-स्थाने-छोटे हरिदास के निवासस्थान पर, गेला-चले गये; सब भक्त-गणे-अन्य सभी भक्त।

अनुवाद

यह कहकर परमानन्द पुरी अपने घर चले गये। तब सारे भक्त छोटे हरिदास को मिलने गये।

स्वरूप-गोसाञि कहे,—"शुन, हरिदास ।

सबे तोमार हित वाञ्छि, करह विश्वास" ॥ 138 ॥

स्वरूप-गोसाञि कहे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा; शुन हरिदास-हरिदास, सुनो, सबे-हम सब, तोमार हित वाञ्छि-तुम्हारा भला चाहते हैं, करह विश्वास-यह विश्वास करो।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोसांइ ने कहा, "हरिदास, हमारी बात सुनो, क्योंकि हम सब तुम्हारा भला चाहते हैं। इस पर विश्वास करो।"

प्रभु हठे पड़ियाछे स्वतन्त्र ईश्वर ।

कभु कृपा करिबेन याते दयालु अन्तर ॥139॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, हठे पड़ियाछे-अत्यन्त हठपूर्व क्रोध के भाव में, स्वतन्त्र ईश्वर—स्वतन्त्र परम भगवान्; कभु-किसी समय; कृपा करिबेन-वे (तुम पर) कृपा करेंगे; याते-क्योंकि; दयालु-दयावान, अन्तर-हृदय से।

अनुवाद

"इस समय श्री चैतन्य महाप्रभु रुष्ट हैं। वे स्वतन्त्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। किन्तु कभी न कभी वे अवश्य कृपालु होंगे, क्योंकि वे हृदय से अत्यन्त दयालु हैं।"

तुमि हठ कैले ताँर हठ से बाड़िबे ।

स्नान भोजन कर, आपने क्रोध याबे" ॥ 140 ॥

तुमि हठ कैले-यदि तुम हठ करना जारी रखोगे; ताँर-(तो) उनका; हठ-हठ; से-वह; बाड़िबे-बढ़ता जायेगा; स्नान भोजन कर-स्नान करो और भोजन करो, आपने क्रोध याबे-उनका क्रोध स्वत: ही शान्त हो जायेगा।

अनुवाद

"महाप्रभु हठ कर रहे हैं और यदि तुम भी हठ करोगे, तो उनका हठ बढ़ेगा। तुम्हारे लिए अच्छा होगा कि तुम स्नान करो और प्रसाद पाओ। समय आने पर उनका क्रोध स्वत: दमित हो जायेगा।"

एत बलि तारे स्नान भोजन कराञा ।

आपन भवन आइला तारे आश्वासिया ॥ 141 ॥

एत बलि-यह कहकर, तारे-उसे; स्नान भोजन कराञा-स्नान करने एवं प्रसाद ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया; आपन भवन-अपने स्थान पर; आइला-वापस लौट गये, तारे आश्वासिया-उसे आश्वासन देकर।

अनुवाद

यह कहकर स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने हरिदास को स्नान करने तथा प्रसाद लेने के लिए राजी कर लिया। इस तरह उसे आश्वस्त करके वे अपने घर लौट आये।

प्रभु यदि यान जगन्नाथ-दरशने ।

दूरे रहि' हरिदास करेन दर्शने ॥142॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यदि-जब; यान-जाते; जगन्नाथ-दरशने-भगवान् जगन्नाथ के दर्शन करने; दूरे रहि'-दूर रहकर, हरिदास-छोटा हरिदास, करेन दर्शने-दर्शन करता।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु मन्दिर में भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने जाते, तो हरिदास दूर ही रहता और वहीं से उनका दर्शन करता।

महाप्रभु-कृपा-सिन्धु, के पारे बुझिते? ।

प्रिय भक्ते दण्ड करेन धर्म बुझाइते ॥143॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कृपा-सिन्धु-कृपा के सागर; के पारे बुझिते-कौन समझ सकता है; प्रिय भक्ते-अपने प्रिय भक्त को; दण्ड करेन-दण्डित करते हैं; धर्म बुझाइते-धर्म अथवा कर्तव्य के सिद्धान्त स्थापित करने के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कृपा के सागर हैं। उन्हें कौन समझ सकता है? जब वे अपने भक्तों को दण्ड देते हैं, तो वे ऐसा जान-बूझकर धर्म के सिद्धान्तों या कर्तव्य की पुनर्स्थापना करने के लिए करते हैं।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि छोटा हरिदास, कृपासिन्धु श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रिय भक्त था, फिर भी यह स्थापित करने के लिए महाप्रभु ने उसे दण्ड दिया कि शुद्ध भक्ति में लगे व्यक्ति को पाखण्डी नहीं होना चाहिए। भक्ति में लगे संन्यासी द्वारा स्त्रियों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखना निश्चित रूप से पाखण्ड है। छोटे हरिदास को यह दण्ड उन भावी सहजियों के लिए उदाहरणरूप था, जो रूप गोस्वामी तथा अन्य प्रामाणिक संन्यासियों की नकल करके संन्यासी का वेश धारण करेंगे, किन्तु भीतर ही भीतर स्त्रियों से अवैध सम्बन्ध रख सकते हैं। ऐसे लोगों को शिक्षा देने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने प्रिय भक्त हरिदास को नियमों से थोड़े-से विचलन के लिए दण्डित किया।

श्रीमती माधवीदेवी अत्यन्त उच्च कोटि की भक्त थीं, इसलिए उनके पास जाकर श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए थोड़ा-सा चावल माँगना निश्चय ही बहुत बड़ा अपराध नहीं था। फिर भी भविष्य में नियमों की रक्षा करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कठोर नियम स्थापित किया कि किसी भी संन्यासी को स्त्रियों से घनिष्ठ रूप से मिलना-जुलना नहीं चाहिए। यदि श्री चैतन्य महाप्रभु ने छोटे हरिदास को इस छोटे-से विचलन के लिए दण्ड न दिया होता, तो महाप्रभु के तथाकथित भक्त छोटे हरिदास के दृष्टान्त का लाभ उठाकर अनियन्त्रित रूप से स्त्रियों के साथ अवैध सम्बन्ध बनाने की आदत बनाये रखते। निस्सन्देह, वे अब भी प्रचार करते हैं कि वैष्णव के लिए ऐसे आचरण की अनुमति है। किन्तु इसकी बिलकुल अनुमति ही नहीं दी जाती। श्री चैतन्य महाप्रभु सारे जगत् के गुरु हैं, इसलिए उन्होंने इस उदाहरण रूप दण्ड-विधान को यह स्थापित करने के लिए लागू किया कि वैष्णव दर्शन में अवैध सम्बन्धों की अनुमति कभी नहीं दी जाती। छोटे हरिदास को दण्ड देने के पीछे उनका यही उद्देश्य था। श्री चैतन्य महाप्रभु वास्तव में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सर्वाधिक दयालु अवतार हैं, किन्तु उन्होंने अवैध सम्बन्ध का कड़ाई से निषेध किया।

देखि' त्रास उपजिल सब भक्त-गणे ।

स्वप्ने-ह छाड़िल सबे स्त्री-सम्भाषणे ॥ 144॥

देखि'-देखकर; त्रास-भय का वातावरण; उपजिल-उत्पन्न हो गया; सब भक्त-गणे-सारे भक्तों के बीच; स्वप्ने-ह-स्वप्न में भी; छाड़िल-छोड़ दिया; सबे-सब ने, स्त्री-सम्भाषणे-स्त्रियों से बात करना।

अनुवाद

जब सब भक्तों ने इस उदाहरण को देख लिया, तो उनके मन में भय उत्पन्न हो गया। इसलिए उन सबने स्वप्न में भी स्त्रियों से बातें करना त्याग दिया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर स्त्री-सम्भाषण अर्थात् स्त्रियों से बाते करने के विषय में कहते हैं कि स्त्रियों से इन्द्रियतृप्ति के लिए मेल-जोल बढ़ाने के लिए, चाहे वह सूक्ष्म हो या स्थूल, बातें करना निषिद्ध है। महान् नैतिक शिक्षक चाणक्य पण्डित कहते हैं-मातृवत् परदारेषु / इस तरह न केवल संन्यासी या भत अपितु हर व्यक्ति को स्त्रियों से मिलने-जुलने से बचना चाहिए। मनुष्य को दूसरे की पत्नी को अपनी माता मानना चाहिए।

एइ-मते हरिदासेर एक वत्सर गेल ।

तबु महाप्रभुर मने प्रसाद नहिल ॥145॥

एड़-मते—इस प्रकार; हरिदासेर–छोटे हरिदास का; एक वत्सर–एक वर्ष; गेल— बीत गया; तबु-फिर भी; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; मने-मन में; प्रसाद नहिल-कृपा के कोई लक्षण नहीं दिखे।

अनुवाद

इस तरह छोटे हरिदास का पूरा एक वर्ष बीत गया, फिर भी उसके प्रति श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा का कोई नामोनिशान न था।

रात्रि अवशेषे प्रभुरे दण्डवत् हञा ।

प्रयागेते गेल कारेह किछु ना बलिया ॥ 146॥

रात्रि अवशेषे-एक रात के अन्त में; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; दण्डवत् हञा-दण्डवत् प्रणाम करके; प्रयागेते-प्रयाग (अलाहाबाद) नामक तीर्थ स्थल को; गेल-गया; कारेह-किसी को; किछु-कुछ; ना बलिया-बताये बिना।

अनुवाद

इस तरह एक रात के अन्त में, छोटे हरिदास ने श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करके किसी से कुछ कहे बिना ही प्रयाग के लिए प्रस्थान किया।

प्रभु–पद-प्राप्ति लागि' सङ्कल्प करिल ।

त्रिवेणी प्रवेश करि' प्राण छाड़िल ॥ 147॥

प्रभु–पद-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; प्राप्ति लागि'-प्राप्ति की इच्छा से; सङ्कल्प करिल-अन्तत: संकल्प किया; त्रि-वेणी प्रवेश करि'-प्रयाग में गंगा और यमुना के संगम के जल में प्रवेश करके; प्राण छाड़िल-अपने प्राण त्याग दिये।

अनुवाद

छोटे हरिदास ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में शरण पाने के लिए संकल्प किया। इस तरह प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम त्रिवेणी में गहरे जल में प्रवेश करके उसने अपने प्राण त्याग दिये।

सेइ-क्षणे दिव्य-देहे प्रभु-स्थाने आइला ।

प्रभु-कृपा पाञा अन्तर्धानेइ रहिला ॥ 148॥

सेइ-क्षणे-तुरन्त उसी समय; दिव्य-देहे-दिव्य देह में; प्रभु-स्थाने आइला-श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आया; प्रभु-कृपा-श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा; पाञा-प्राप्त कर; अन्तर्धानेइ रहिला-अदृश्य ही रहा।

अनुवाद

इस तरह आत्महत्या करने के तुरन्त बाद वह अपने आध्यात्मिक शरीर में श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गया और उनकी कृपा प्राप्त की। किन्तु वह तब भी अदृश्य रहा।

गन्धर्व-देहे गान करेन अन्तर्धाने ।

रात्र्ये प्रभुरे शुनाय गीत, अन्ये नाहि जाने ॥149॥

गन्धर्व-देहे-एक गन्धर्व की देह में; गान करेन-वह गाता; अन्तर्धाने-अदृश्य रहकर; रात्र्ये -रात्रि के समय, प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए; शुनाय गीत-वह गीत सुनाता; अन्ये-अन्य कोई भी; नाहि जाने-जान नहीं पाते।

अनुवाद

गन्धर्व जैसी दिव्य देह में छोटा हरिदास अदृश्य होते हुए भी रात में श्री चैतन्य महाप्रभुको गीत गाकर सुनाता था, किन्तु महाप्रभु के अतिरिक्त अन्य कोई यह नहीं जानता था।

एक-दिन महाप्रभु पुछिला भक्त-गणे ।

'हरिदास काँहा? तारे आनह एखाने' ॥ 150 ॥

एक-दिन-एक दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; पुछिला भक्त-गणे-भक्तों से पूछा; हरिदास काँहा-हरिदास कहाँ है; तारे-उसे; आनह एखाने-यहाँ लाओ।

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्तों से पूछा, "हरिदास कहाँ है? अब तुम उसे यहाँ ला सकते हो।"

सबे कहे,—"हरिदास वर्ष-पूर्ण दिने ।

रात्रे उठि काँहा गेला, केह नाहि जाने" ॥151॥

सबे कहे-सभी ने कहा; हरिदास-हरिदास; वर्ष-पूर्ण दिने-एक वर्ष के अन्त में, रात्रे-रात की; उठि-उठकर, काँहा गेला-कहाँ चला गया; केह नाहि जाने-कोई नहीं जानता।

अनुवाद

सभी भक्तों ने उत्तर दिया, "एक वर्ष पूरा होने पर एक रात को छोटा हरिदास उठा और चला गया। कोई नहीं जानता कि वह कहाँ गया।"

शुनि' महाप्रभु ईषत् हासिया रहिला।

सब भक्त-गण मने विस्मय हइला॥ 152॥

शुनि'-सुनकर; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; ईषत्-कुछ; हासिया रहिला– मुस्कुराते रहे; सब भक्त-गण-सभी भक्त; मने-मनो में; विस्मय हइला-आश्चर्यचकित हुए।

अनुवाद

भक्तों को शोक करते हुए देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु मंद मंद मुस्कुरा रहे थे। इस तरह सारे भक्त अत्यन्त विस्मित थे।

एक-दिन जगदानन्द, स्वरूप, गोविन्द।

काशीश्वर, शङ्कर, दामोदर, मुकुन्द॥ 153॥

समुद्र-स्नाने गेला सबे, शुने कथो दूरे।

हरिदास गायेन, येन डाकि' कण्ठ-स्वरे॥154॥

एक-दिन-एक दिन; जगदानन्द-जगदानन्द; स्वरूप-स्वरूप; गोविन्द-गोविन्द; काशीश्वर-काशीश्वर; शङ्कर-शंकर; दामोदर-दामोदर; मुकुन्द-मुकुन्द; समुद्र-स्नाने-समुद्र में स्नान करने; गेला-गये; सबे-वे सब; शुने-सुन सके; कथो दूरे-कुछ दूरी से; हरिदास गायेन-छोटा हरिदास गा रहा था; येन-जैसे; डाकि'-बुला रहा हो; कण्ठ-स्वरे-अपनी मूल आवाज में।

अनुवाद

एक दिन जगदानन्द, स्वरूप, गोविन्द, काशीश्वर, शंकर, दामोदर तथा मुकुन्द-सभी समुद्र में स्नान करने गये। वे दूर से हरिदास को गाते हुए सुन सके, मानो वह उन्हें अपनी मूल आवाज से बुला रहा हो।

मनुष्य ना देखे-मधुर गीत-मात्र शुने ।

गोविन्दादि सबे मेलि' कैल अनुमाने ॥ 155॥

मनुष्य-व्यक्ति को; ना देखे-देख नहीं पाये; मधुर-अत्यन्त मधुर; गीत-गाना; मात्र-केवल; शुने-सुन पा रहे थे; गोविन्द-आदि सबे-गोविन्द आदि सभी भक्तगण, मेलि'-मिलकर, कैल अनुमाने-अनुमान करने लगे।

अनुवाद

कोई उसे देख नहीं सका, किन्तु वे सब उसे मधुर स्वर में गाते सुन सके। इसलिए गोविन्द इत्यादि सभी भक्तों ने यह अनुमान लगाया।

'विषादि खाञा हरिदास आत्म-घात कैल ।

सेइ पापे जानि 'ब्रह्म-राक्षस' हैल ॥ 156॥

विष-आदि खाञा-विष पीकर; हरिदास-छोटे हरिदास ने; आत्म-घात कैल-आत्महत्या कर ली; सेइ पापे-उस पापकृत्य के कारण; जानि-हम समझते हैं; ब्रह्म-राक्षस-एक ब्रह्म राक्षस; हैल-वह बन गया है।

अनुवाद

"हरिदास ने विष पीकर आत्महत्या कर ली होगी और इस पापकर्म के कारण ही अब वह ब्रह्म-राक्षस बन गया है।

आकार ना देखि, मात्र शुनि तार गान' ।

स्वरूप कहेन,—"एइ मिथ्या अनुमान ॥157॥

आकार-रूप; ना देखि-हम नहीं देख सकते; मात्र-केवल; शुनि-हम सुन रहे हैं; तार-उसका; गान-गायन; स्वरूप कहेन-स्वरूप दामोदर ने कहा; एइ-यह; मिथ्या-गलत, अनुमान-अनुमान है।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "हम उसका भौतिक रूप नहीं देख पा रहे हैं, किन्तु फिर भी उसका मधुर गाना सुन रहे हैं। अतएव वह प्रेत बन गया होगा।" किन्तु स्वरूप दामोदर ने आपत्ति की, "यह झूठा अनुमान है।

आजन्म कृष्ण-कीर्तन, प्रभुर सेवन ।

प्रभु-कृपा-पात्र, आर क्षेत्रेर मरण ॥158॥

आजन्म-सम्पूर्ण जीवन; कृष्ण-कीर्तन–हरे कृष्ण महामन्त्र का जप; प्रभुर सेवन-श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा; प्रभु-कृपा-पात्र—महाप्रभु को अति प्रिय; आर—और; क्षेत्रेर मरण-तीर्थस्थान में उसका देहान्त।

अनुवाद

"छोटे हरिदास ने आजीवन हरे कृष्ण मन्त्र का जप किया और परम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा की। इतना ही नहीं, वह महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय था और उसका तीर्थस्थान में देहान्त हुआ है।

दुर्गति ना हय तार, सद्गति से हय ।

प्रभु-भङ्गी एइ, पाछे जानिबा निश्चय ॥ 159 ॥

दुर्गति-बुरा परिणाम; ना हय तार-उसका नहीं हुआ है; सत्-गति से हय-उसे मुक्ति मिल गई होगी; प्रभु-भङ्गी-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीला है; एइ-यह; पाछे-बाद में; जानिबा-आपको समझ आयेगा; निश्चय-वास्तविक हकीकत।

अनुवाद

"हरिदास का पतन नहीं हुआ होगा। उसे अवश्य ही मुक्ति मिली होगी। यह तो श्री चैतन्य महाप्रभु की लीला है। इसे तुम सब बाद में समझोगे।"

प्रयाग हइते एक वैष्णव नवद्वीप आइल ।

हरिदासेर वार्ता तेंहो सबारे कहिल ॥ 16o ॥

प्रयाग हइते-प्रयाग से; एक-एक; वैष्णव-भगवान् कृष्ण का भक्त; नवद्वीप आइल-नवद्वीप आया; हरिदासेर वार्ता-हरिदास का समाचार; तेंहो-उसने; सबारे कहिल-सभी को बताया।

अनुवाद

एक भक्त प्रयाग से नवद्वीप लौटा और उसने हर एक को छोटे हरिदास की आत्महत्या का विस्तृत विवरण दिया।

यैछे सङ्कल्प, यैछे त्रिवेणी प्रवेशिल ।

शुनि', श्रीवासादिर मने विस्मय ह-ल ॥ 161 ॥

यैछे सङ्कल्प—किस प्रकार उसने संकल्प लिया; यैछे—किस प्रकार; त्रिवेणी प्रवेशिल-उसने त्रिवेणी में प्रवेश किया; शुनि'-सुनकर; श्रीवास-आदिर-श्रीवास ठाकुर और दूसरों के; मने-मनों में, विस्मय हइल-आश्चर्य हुआ।

अनुवाद

उसने बताया कि किस तरह हरिदास ने संकल्प किया और फिर वह गंगा-यमुना के संगम में जल में प्रविष्ट हुआ। ये बातें विस्तार से सुनकर श्रीवास ठाकुर तथा अन्य भक्त अत्यधिक चकित हुए।

वर्षान्तरे शिवानन्द सब भक्त लञा ।

प्रभुरे मिलिला आसि' आनन्दित हञा ॥ 162 ॥

वर्ष-अन्तरे-वर्ष के अन्त में; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; सब-सब; भक्त लञा-भक्तों को लेकर; प्रभुरे मिलिला-श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले; आसि'-आकर; आनन्दित हञा-अत्यन्त आनन्दित होकर।

अनुवाद

वर्ष के अन्त में शिवानन्द सेन पहले की तरह अन्य भक्तों के साथ जगन्नाथ पुरी आये और परम सुख का अनुभव करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले।

'हरिदास काँहा?' यदि श्रीवास पुछिला ।

"स्व-कर्म-फल-भुक्पुमान्"–प्रभु उत्तर दिला ॥ 163॥

हरिदास काँहा-छोटा हरिदास कहाँ है; यदि-जब, श्रीवास पुछिला-श्रीवास ठाकुर ने पूछा; स्व-कर्म-फल-भुक्-अपने कर्मों का प्रतिफल भोगना निश्चित है; पुमान्-व्यक्ति को; प्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; उत्तर दिला-उत्तर दिया।

अनुवाद

जब श्रीवास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु से पूछा, "छोटा हरिदास कहाँ है?" तो महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मनुष्य को अपने सकाम कर्मों का फल अवश्य मिलता है।"

तबे श्रीवास तार वृतान्त कहिल ।

यैछे सङ्कल्प, यैछे त्रिवेणी प्रवेशिल ॥ 164॥

तबे—उस समय; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर ने; तार–छोटा हरिदास का; वृत्तान्त-वृतान्त; कहिल-कहा; यैछे—किस प्रकार; सङ्कल्प-उसने निश्चय किया; यैछे—किस प्रकार; त्रिवेणी प्रवेशिल-वह गंगा और यमुना के मिलन स्थान पर जल में प्रवेश कर गया।

अनुवाद

तब श्रीवास ठाकुर ने हरिदास के निर्णय तथा गंगा-यमुना के संगम में उसके जल में प्रवेश करने का विस्तार से वर्णन किया।

शुनि' प्रभु हासि' कहे सुप्रसन्न चित्त ।

'प्रकृति दर्शन कैले एइ प्रायश्चित्त' ॥ 165 ॥

शुनि'-सुनकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हासि'-हँसकर; कहे—उत्तर दिया; सुप्रसन्न चित्त-प्रसन्न चित्त से; प्रकृति दर्शन कैले-यदि कोई इन्द्रिय भोग भावना से स्त्रियों को देखता है; एइ प्रायश्चित-यही प्रायश्चित है।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने विस्तारपूर्वक बातें सुनीं, तो वे प्रसन्न मुद्रा में हँसे और बोले, "यदि कोई स्त्रियों को वासनापूर्ण दृष्टि से देखता है, तो प्रायश्चित की यही एकमात्र विधि है।"

स्वरूपादि मिलि' तबे विचार करिला ।

त्रिवेणी-प्रभावे हरिदास प्रभु-पद पाइला ॥166॥

स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर आदि भक्तों ने; मिलि'-मिलकर; तबे-तब; विचार करिला-विचार किया, त्रिवेणी-प्रभावे-गंगा और यमुना के संगम के पवित्र स्थान के प्रभाव से; हरिदास-छोटे हरिदास ने; प्रभु–पद पाइला—श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल प्राप्त कर लिये।

अनुवाद

तब स्वरूप दामोदर गोस्वामी इत्यादि सारे भक्तों ने यह निष्कर्ष निकाला कि चूँकि हरिदास ने गंगा तथा यमुना नदियों के संगम पर आत्महत्या की है, अत: उसे अन्ततोगत्वा श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त हुई होगी।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की टिप्पणी है कि संन्यास धारण करने और संन्यासी या बाबाजी का वेश धारण करने के बाद यदि कोई अपने मन में इन्द्रियतृप्ति का भाव, विशेषतया स्त्री से सम्बन्ध करने का विचार लाता है, तो उसका एकमात्र प्रायश्चित गंगा-यमुना के संगम पर आत्महत्या करना है। केवल ऐसे प्रायश्चित से ही उसका पापी जीवन शुद्ध हो सकता है। यदि ऐसा व्यक्ति इस तरह दण्डित होता है, तो वह श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण पा सकता है। किन्तु ऐसे दण्ड के बिना श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण पुन: प्राप्त कर पाना बहुत कठिन है।

एइ-मत लीला करे शचीर नन्दन ।

याहा शुनि' भक्त-गणेर युड़ाय कर्ण-मन ॥167॥

एइ-मत-इस प्रकार; लीला करे-निरन्तर लीलाएँ करते हैं; शचीर नन्दन-माता शची के पुत्र, याहा शुनि'-जिन्हें सुनकर, भक्त-गणेर-भक्तों के; युड़ाय-सन्तुष्ट होते हैं, कर्ण-मन-कान और मन।

अनुवाद

इस तरह शचीनन्दन श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी लीलाएँ करते हैं, जो कि शुद्ध भक्तों के कर्णों और मनों को महान् सन्तोष देती हैं।

आपन कारुण्य, लोके वैराग्य-शिक्षण ।

स्व-भक्तेर गाढ़-अनुराग-प्रकटी-करण ॥168॥

आपन-अपनी; कारुण्य-करुणा; लोके-जनसाधारण के लिए; वैराग्य-शिक्षण-संन्यास आश्रम के विषय में शिक्षा देते; स्व-भक्तेर-अपने भक्तों की; गाढ़-गहरी; अनुराग-आसक्ति; प्रकटी-प्रकट; करण-करवाते हैं।

अनुवाद

यह घटना श्री चैतन्य महाप्रभु की करुणा, उनकी यह शिक्षा कि संन्यासी को अपने संन्यास आश्रम में ही रहना चाहिए तथा उनके श्रद्धालु भक्तों द्वारा उनके प्रति अनुभव किये जाने वाले अगाध अनुराग को प्रकट करती है।

तीर्थेर महिमा, निज भक्ते आत्मसात् ।

एक लीलाय करेन प्रभु कार्य पाँच-सात ॥169॥

तीर्थेर महिमा—तीर्थ स्थान की महिमा; निज भक्ते आत्मसात्—अपने भक्त को पुनः स्वीकार करना; एक लीलाय-एक लीला द्वारा; करेन-करते हैं; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, कार्य पाँच-सात-पाँच से सात विभिन्न उद्देश्य की पूर्ति।

अनुवाद

यह तीर्थस्थानों की महिमा को भी प्रदर्शित करती है तथा दिखलाती है कि किस तरह महाप्रभु अपने श्रद्धालु भक्त को स्वीकार करते हैं। इस तरह महाप्रभु ने एक लीला करके पाँच-सात उद्देश्यों को पूरा किया।

मधुर चैतन्य-लीला-समुद्र-गम्भीर।

लोके नाहि बुझे, बुझे येइ 'भक्त' 'धीर' ॥170॥

मधुर—मधुर; चैतन्य-लीला—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; समुद्र-गम्भीर-समुद्र के समान गम्भीर; लोके नाहि बुझे-सामान्य लोग नहीं समझ सकते; बुझे-समझ सकता है; येइ-जो; भक्त-भक्त, धीर-धीर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अमृत तुल्य हैं और समुद्र के समान गहरी हैं। सामान्य लोग उन्हें नहीं समझ सकते, किन्तु धीर भक्त इन्हें समझ सकता है।

विश्वास करिया शुन चैतन्य-चरित ।

तर्क ना करिह, तर्के हबे विपरीत ॥171॥

विश्वास करिया-श्रद्धा और निश्चय के साथ; शुन-सुनो; चैतन्य-चरित-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; तर्क ना करिह-व्यर्थ के तर्क मत करो; तर्के-तर्क द्वारा; हबे विपरीत-विपरीत फल प्राप्त होगा।

अनुवाद

कृपया श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को श्रद्धा तथा विश्वासपूर्वक सुनिये। तर्क मत कीजिये, क्योंकि तर्क से विपरीत फल प्राप्त होगा।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥172॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ- श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों में, यार-जिसकी; आश-आशा है; चैतन्य-चरितामृत- चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णित करते हैं; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके पदचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस अध्याय की शिक्षाएँ

इस अध्याय का सारांश देते हुए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि इससे निम्नलिखित शिक्षाएँ प्राप्त करनी चाहिए : (1) यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु कृपा के अवतार हैं, किन्तु उन्होंने अपने निजी संगियों में से एक, यथा छोटे हरिदास की संगति त्याग दी, क्योंकि यदि वे ऐसा न करते तो छद्म भक्त, भक्तों के रूप में रहने तथा साथ ही साथ अवैध यौन सम्बन्ध रखने के लिए छोटा हरिदास के दोष का लाभ उठाते। ऐसे कार्यों से श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का नैतिक पतन होता और इस तरह भक्तगण श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम पर नारकीय जीवन में चले जाते।

(2) छोटे हरिदास को दण्ड देकर महाप्रभु ने आचार्यों या चैतन्य सम्प्रदाय का प्रसार करने वाली संस्थाओं के मुखियाओं तथा समस्त भक्तों के लिए आदर्श स्थापित किया। श्री चैतन्य महाप्रभु सर्वोच्च आदर्श बनाये रखना चाहते थे।

(3) श्री चैतन्य महाप्रभु ने शिक्षा दी कि शुद्ध भक्त सरल हों तथा पापकर्मों से रहित हों, क्योंकि तभी कोई उनका प्रामाणिक दास हो सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने अनुयायियों को शिक्षा दी कि किस तरह संन्यास आश्रम का दृढ़ता से पालन किया जाए।

(4) श्री चैतन्य महाप्रभु यह बताना चाहते थे कि उनके भक्त उन्नत हैं तथा उनका चरित्र आदर्श है। वे अपने श्रद्धालु भक्तों को कृपापूर्वक स्वीकार करते हैं और उन्हें शिक्षा देते हैं कि भक्ति के कठोर नियमों से थोड़ा-सा भी विचलित होने से कितना कष्ट तथा उत्पात उत्पन्न हो सकता है।

(5) छोटे हरिदास को दण्ड देकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस पर कृपा प्रदर्शित की और इस तरह प्रदर्शित किया कि उनके प्रति हरिदास की भक्ति कितनी उच्च थी। इसी दिव्य सम्बन्ध के कारण उन्होंने अपने शुद्ध भक्त के तुच्छ अपराध को भी सुधारा। इसलिए जो कोई श्री चैतन्य महाप्रभु का शुद्ध भक्त बनना चाहता है, उसे समस्त भौतिक इन्द्रियतृप्ति का परित्याग कर देना चाहिए, अन्यथा श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को प्राप्त कर पाना दुष्कर होगा।

(6) यदि कोई प्रयाग, मथुरा अथवा वृन्दावन जैसे सुविख्यात तीर्थस्थान में शरीर त्यागता है, तो वह अपने पापकर्म के फलों से छुटकारा पा लेता है और तब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण प्राप्त करता है।

(7) यद्यपि शुद्ध भक्त का पतन हो सकता है, फिर भी महाप्रभु की कृपा से उसे भगवद्धाम लौट जाने का अवसर प्राप्त होता है।

इस प्रकार श्री चैतन्य–चरितामृत के अन्त्य–लीला के अन्तर्गत छोटे हरिदास को दण्ड शीर्षक वाले द्वितीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय तीन

श्रील हरिदास ठाकुर की महिमा

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अन्त्य-लीला के तृतीय अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है : जगन्नाथ पुरी में एक सुन्दर ब्राह्मण युवती का एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र था, जो प्रतिदिन श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आया करता था। यह दामोदर पण्डित को अच्छा नहीं लगता था, अतः उसने महाप्रभु से कहा, "यदि आप इस लड़के से इतना प्रेम प्रदर्शित करेंगे, तो लोग आपके चरित्र के बारे में सन्देह करेंगे।" दामोदर पण्डित के ये शब्द सुनकर महाप्रभु ने उसे अपनी माता शचीदेवी के कामकाज की देखभाल करने के लिए नवद्वीप भेज दिया। उन्होंने दामोदर पण्डित से अपनी माता से विशेष रूप से यह स्मरण दिलाने के लिए भी कहा कि वे कभी-कभी उनके घर उनका अर्पित किया हुआ भोग ग्रहण करने जाते हैं। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु का आदेश पाकर दामोदर पण्डित नवद्वीप गये और अपने साथ भगवान जगन्नाथ के कई प्रकार के प्रसाद लेते गये।

एक अन्य अवसर पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर से, जो कि ब्रह्म हरिदास कहलाते थे, यह पूछा कि वैदिक संस्कृति से विहीन व्यक्तियों अर्थात् यवनों का कलियुग में उद्धार किस तरह होगा। हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया

कि उनका उद्धार तो तभी सम्भव है, जब वे उच्च स्वर से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करें, क्योंकि उच्च स्वर से हो रहे हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन सुनकर वे लाभान्वित हो सकेंगे, चाहे वह अल्प अनुभूति (नामाभास) से ही क्यों न हो।

इस घटना का वर्णन करने के बाद चैतन्य-चरितामृत के रचियता ने शान्तिपुर के निकट के गाँव बेनापोल में हरिदास ठाकुर की परीक्षा का वर्णन किया है। हरिदास ठाकुर से ईर्ष्या रखने वाले एक व्यक्ति रामचन्द्र खान ने उन्हें बदनाम करने के लिए उनके पास एक पेशेवर वेश्या भेजी, किन्तु हरिदास ठाकुर की कृपा से उस वेश्या का भी उद्धार हो गया। शुद्ध वैष्णव का अपमान करने के कारण रामचन्द्र खान को बाद में नित्यानन्द प्रभु ने शाप दिया जिससे वह विनष्ट हो गया।

हरिदास ठाकुर बेनापोल से चाँदपुर नामक गाँव चले गये, जहाँ वे बलराम आचार्य के घर में रहने लगे। तत्पश्चात् हरिदास ठाकुर का स्वागत दो भाइयों ने किया, जिनके नाम हिरण्य तथा गोवर्धन मजुमदार थे, किन्तु वार्ता के दौरान गोपाल चक्रवर्ती नामक एक जात ब्राह्मण ने उनका अपमान किया। इस अपराध के कारण गोपाल चक्रवर्ती को कुष्ठ रोग से पीड़ित होने का दण्ड मिला।

बाद में हरिदास चाँदपुर छोड़कर अद्वैत आचार्य के घर चले गये, जहाँ मायादेवी ने उनकी परीक्षा ली, जो बहिरंगा शक्ति का प्रतीक थी। उसे भी उन्होंने हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने का आशीर्वाद दिया।

वन्देऽहं श्री-गुरोः श्री-युत-पद-कमलं श्री-गुरून्वैष्णवांश्च

श्री-रूपं साग्रजातं सह-गण-रघुनाथान्वितं तं स-जीवम् ।

साद्वैतं सावधूतं परिजन-सहितं कृष्ण-चैतन्य-देवं

श्री-राध्धा-कृष्ण-पादान्सह-गण-ललिता-श्री-विशाखान्वितांश्च ॥ 1 ॥

वन्दे-सादर प्रणाम करता हूँ; अहम्-मैं; श्री-गुरोः-अपने दीक्षा गुरु एवं शिक्षा गुरु के; श्री-युत-पद-कमलम्-सौभाग्य से युक्त चरणकमलों को; श्री-गुरून्-गुरु परम्परा में, श्रील माधवेन्द्रपुरी से प्रारम्भा करके श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद तक आने वाले सभी आध्यात्मिक गुरुजनों को; वैष्णवान्-सृष्टि के प्रारम्भ से ही आने वाले, ब्रह्माजी से आरम्भ करके अन्य सभी वैष्णवों को; च-तथा; श्री-रूपम्-श्रील रूप गोस्वामी को; स-अग्र-जातम्-उनके बड़े भाई, सनातन गोस्वामी सहित; सह-गण-रघुनाथ-अन्वितम्-रघुनाथ दास गोस्वामी और उनके परिकरों के साथ; तम्-उनको, स-जीवम्-जीव गोस्वामी सहित; स-अद्वैतम्-अद्वैत आचार्य सहित; स-अवधूतम्--नित्यानन्द प्रभु के साथ;

परिजनसहितम्-तथा श्रीनिवास ठाकुर एवं अन्य सभी भक्तों से साथ; कृष्ण-चैतन्य-देवम्भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को; श्री-राधा-कृष्ण–पादान्–सर्वशुभ श्रीकृष्ण एवं श्रीमती राधारानी के चरणकमलों को; सह-गण-पार्षदों के साथ; ललिता-श्री-विशाखाअन्वितान्-श्री ललिता और श्री विशाखा के संग में; च-और।

अनुवाद

मैं अपने गुरु तथा भक्ति-मार्ग के अन्य सारे उपदेशकों के चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ। मैं सारे वैष्णवों, श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, श्री रघुनाथ दास गोस्वामी, श्री जीव गोस्वामी समेत छहों गोस्वामियों तथा उनके संगियों को सादर नमस्कार करता हूँ। मैं श्री अद्वैत आचार्य प्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्रीवास ठाकुर आदि उनके सारे भक्तों को सादर नमस्कार करता हूँ। तत्पश्चात् मैं भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीमती राधारानी तथा ललिता, विशाखा आदि समस्त गोपियों को सादर नमस्कार करता हूँ।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द॥ 2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय हो; जय-जय हो; गौरभक्त-वृन्द-चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

पुरुषोत्तमे एक उड़िया-ब्राह्मण-कुमार।

पितृ-शून्य, महा-सुन्दर, मृदु-व्यवहार॥ 3॥

पुरुषोत्तमे-जगन्नाथ पुरी में; एक-एक; उड़िया-ब्राह्मण-कुमार-उड़ीसा के ब्राह्मण का युवा पुत्र; पितृ-शून्य-पितृ विहीन; महा-सुन्दर-अत्यन्त सुन्दर शरीर युक्त; मृदुव्यवहार-अति भद्र व्यवहार पूर्ण।

अनुवाद

जगन्नाथपुरी में एक बालक था, जो उड़ीसा के निवासी एक ब्राह्मण का पुत्र था, किन्तु बाद में उसका पिता नहीं रहा। इस बालक के शारीरिक लक्षण अत्यन्त सुन्दर थे और उसका आचरण अत्यन्त शालीन था।

प्रभु-स्थाने नित्य आइसे, करे नमस्कार।

प्रभु-सने बात् कहे प्रभु-'प्राण' तार ॥ 4॥

प्रभुते ताहार प्रीति, प्रभु दया करे।

दामोदर तार प्रीति सहिते ना पारे ॥5॥

प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान पर; नित्य-प्रतिदिन; आइसे-आता था; करे नमस्कार-सादर प्रणाम करता था; प्रभु-सने-महाप्रभु के साथ; बात् कहे-बात करता था; प्रभु-प्राण तार—श्री चैतन्य महाप्रभु उसके जीवन तथा प्राण थे; प्रभुते-महाप्रभु के प्रति; ताहार प्रीति-उसका स्नेह; प्रभु-महाप्रभु दया करे-अपनी कृपा दर्शाते; दामोदर-दामोदर पण्डित; तार-उसका; प्रीति-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रेम; सहिते ना पारे-सहन नहीं कर पा रहे थे।

अनुवाद

यह बालक नित्य ही श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आता और उन्हें सादर नमस्कार करता। वह श्री चैतन्य महाप्रभु से खुलकर बातें करता, क्योंकि महाप्रभु उसके प्राणस्वरूप थे, किन्तु महाप्रभु के साथ इस बालक की घनिष्ठता तथा उसके प्रति महाप्रभु की दया दामोदर पण्डित को असह्य हो रही थी।

बार बार निषेध करे ब्राह्मण-कुमारे।

प्रभुरे ना देखिले सेइ रहिते ना पारे ॥ 6॥

बार बार-बारम्बार; निषेध करे-मना करते; ब्राह्मण-कुमारे-ब्राह्मण के पुत्र को; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; ना देखिले-देखे बिना; सेइ-वह बालक; रहिते ना पारे-रह नहीं पाता था।

अनुवाद

दामोदर पण्डित इस ब्राह्मण बालक को महाप्रभु के पास जाने से बार-बार मना करते, किन्तु वह बालक श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन किये बिना घर पर रहना बरदाश्त नहीं कर सकता था।

नित्य आइसे, प्रभु तारे करे महा-प्रीत।

याँहा प्रीति ताँहा आइसे,-बालकेर रीत ॥ 7 ॥

नित्य आइसे-वह प्रतिदिन आता; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे-उसके प्रति; करे-करते; महा-प्रीत-अत्यन्त स्नेहपूर्ण व्यवहार; याँहा प्रीति-जहाँ भी प्रेम है; ताँहा आइसे-वहीं आता है; बालकेर रीत-एक छोटे बालक का स्वभाव है।

अनुवाद

यह बालक नित्य ही महाप्रभु के पास आता और वे उसके साथ बहुत स्नेह का व्यवहार करते। यह किसी भी बालक का स्वभाव है कि वह उस व्यक्ति से मिलने जाता है, जो उसे स्नेह करता है।

ताहा देखि' दामोदर दु:ख पाय मने ।

बलिते ना पारे, बालक निषेध ना माने ॥ 8 ॥

ताहा देखि'-वह देखकर; दामोदर-दामोदर पण्डित; दु:ख पाय-अप्रसन्न हो गये; मने-अपने मन में; बलिते ना पारे-कुछ भी कह नहीं सके; बालक-बालक; निषेध-निषेध; ना माने-परवाह नहीं करता था।

अनुवाद

यह दामोदर पण्डित के लिए असह्य था। वे अत्यधिक दु:खी हुए, किन्तु वे कुछ कह नहीं पा रहे थे, क्योंकि बालक उनके निषेधों की अनदेखी कर देता।

आर दिन सेइ बालक प्रभु-स्थाने आइला ।

गोसाञि तारे प्रीति करि' वार्ता पुछिला ॥ 9॥

आर दिन-एक दिन; सेइ बालक-वही बालक; प्रभु-स्थाने आइला-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर आया; गोसाञि-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु: तारे-उससे; प्रीति करि'-अत्यन्त प्रेमपूर्वक; वार्ता-समाचार; पुछिला-पूछे।

अनुवाद

एक दिन जब वह बालक श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आया, तो महाप्रभु ने बड़े ही स्नेह के साथ उससे सभी प्रकार के समाचार पूछे।

कत-क्षणे से बालक उठि' यबे गेला ।

सहिते ना पारे, दामोदर कहिते लागिला ॥ 10 ॥

कत-क्षणे-कुछ समय के बाद; से बालक-वह बालक, उठि'-उठकर; यबे-जब; गेला-चला गया; सहिते ना पारे-सहन न कर सके; दामोदर-दामोदर पण्डित, कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

कुछ समय बाद जब वह बालक उठकर चला गया, तो दामोदर पण्डित जो यह सह नहीं पा रहे थे, कहने लगे।

अन्योपदेशे पण्डित—कहे गोसाञिर ठाञि।

'गोसाञि' 'गोसाञि' एबे जानिमु 'गोसाञि' ॥ 11 ॥

अन्य-उपदेशे-अन्यों को उपदेश देकर; पण्डित-विद्वान शिक्षक; कहे-कहते हैं; गोसाञिर ठाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष; गोसाञि गोसाञि-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु, सर्वोपरि शिक्षक, एबे-अब; जानिमु-हम जानेंगे; गोसाञि-किस प्रकार के शिक्षक हैं।

अनुवाद

दामोदर पण्डित ने धृष्टतापूर्वक महाप्रभु से कहा, "सारे लोग आपको महान् शिक्षक कहते हैं, क्योंकि आप अन्यों को उपदेश देते हैं, किन्तु अब हम देखेंगे कि आप किस तरह के शिक्षक हैं।

तात्पर्य

दामोदर पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु के महान् भक्त थे। किन्तु कभी-कभी ऐसे पद पर स्थित व्यक्ति बहिरंगा शक्ति तथा भौतिक कारणों से धृष्ट बन जाता है। इस तरह एक भक्त भूल से अपने गुरु या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के कार्यों की आलोचना करने लगता है। किन्तु इस तर्क के बाद कि, "सीजर की पत्नी सन्देह से परे है," भक्त को अपने गुरु के कार्यों से उद्वेलित होकर उसकी बुराई नहीं करनी चाहिए। भक्त को यह दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि गुरु की आलोचना नहीं की जा सकती और उसे सामान्य व्यक्ति नहीं माना जा सकता। यदि किसी अपूर्ण भक्त के अनुमान के अनुसार कुछ त्रुटि भी दिखे, तो भी भक्त में यह दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि यदि गुरु शराब की दुकान पर भी जाता है, तो भी वह शराबी नहीं है, प्रत्युत वह किसी अन्य कार्य से वहाँ जाता होगा। एक बाँग्ला कविता में कहा गया है :

यद्यपि नित्यानन्द सुरा-बाड़ि याय।

तथापिओ हय नित्यानन्द राय ॥

“भले ही नित्यानन्द प्रभु किसी शराब की दुकान में प्रवेश करते दिखाई दिये हों, किन्तु मैं अपने इस विश्वास से विचलित नहीं हूँगा कि नित्यानन्द राय पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।”

एबे गोसाञिर गुण-यश सब लोके गाइबे ।

तबे गोसाञिर प्रतिष्ठा पुरुषोत्तमे हइबे ॥ 12॥

एबे-अब; गोसाञिर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; गुण-यश-गुणों और यश की; सब लोके-सब लोग; गाइबे-बात करेंगे; तबे-उस समय; गोसाञिर-भगवान् की; प्रतिष्ठा-स्थिति; पुरुषोत्तमे-पुरुषोत्तम (जगन्नाथ पुरी) में; हइबे-होगी।

अनुवाद

“आप गोसांइ (गुरु या आचार्य) के नाम से विख्यात हैं, किन्तु अब आपके गुण तथा यश की बात सारे पुरुषोत्तम नगर में व्याप्त होगी। आपके पद को कैसा धक्का लगेगा!”

शुनि’ प्रभु कहे,—‘क्या कह, दामोदर?’ ।

दामोदर कहे,—तुमि स्वतन्त्र ‘ईश्वर’ ॥ 13॥

शुनि’-सुनकर; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; क्या कह-तुम क्या व्यर्थ की बात कर रहे हो; दामोदर-मेरे प्रिय दामोदर; दामोदर कहे-दामोदर ने उत्तर दिया; तुमि-आपः; स्वतन्त्र-स्वतन्त्र; ईश्वर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु जानते थे कि दामोदर पण्डित शुद्ध तथा सरल भक्त थे, किन्तु यह प्रगल्भ बात सुनकर महाप्रभु ने कहा, “हे दामोदर, तुम यह क्या ऊटपटाँग बात कह रहे हो?” दामोदर पण्डित ने उत्तर दिया, “आप तो स्वतन्त्र परमेश्वर हैं, समस्त आलोचनाओं के परे हैं।

स्वच्छन्दे आचार कर, के पारे बलिते ? ।

मुखर जगतेर मुख पार आच्छादिते? ॥14॥

स्वच्छन्दे-बिना रोक-टोक; आचार कर-आप आचरण करते हैं; के पारे बलिते-कौन कह सकता है; मुखर-वाचाल; जगतेर-समस्त जगत् का; मुख-मुख, पार आच्छादिते-आप बन्द कर सकते हैं।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं। आपको रोकने के लिए कोई कुछ नहीं कर सकता। फिर भी सम्पूर्ण संसार बातूनी है। लोग कुछ भी कह सकते हैं। आप उन्हें कैसे रोक सकते हैं?

पण्डित हञा मने केने विचार ना कर? ।

राण्डी ब्राह्मणीर बालके प्रीति केने कर? ॥15॥

पण्डित हञा-एक विद्वान शिक्षक होते हुए; मने-मन में; केने-क्यों; विचार ना कर-आप विचार नहीं करते; राण्डी ब्राह्मणीर-एक ब्राह्मण की विधवा पत्नी के; बालके-पुत्र के प्रति; प्रीति-स्नेह; केने कर-आप क्यों बरसा रहे हैं ।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप विद्वान शिक्षक हैं। आप यह विचार क्यों नहीं करते कि यह बालक एक विधवा ब्राह्मणी का पुत्र है? आप इसके प्रति इतने स्नेहिल क्यों हैं?

यद्यपि ब्राह्मणी सेइ तपस्विनी सती ।

तथापि ताहार दोष-सुन्दरी युवती ॥16॥

यद्यपि-यद्यपि; ब्राह्मणी-ब्राह्मण की पत्नी; सेइ-वह; तपस्विनी-तपस्या करने वाली; सती-सती; तथापि—फिर भी; ताहार-उसका; दोष-दोष; सुन्दरी—अत्यन्त सुन्दर; युवती-युवा स्त्री है।

अनुवाद

"यद्यपि इस बालक की माता पूर्णतया तपस्विनी तथा सती है, किन्तु उसमें एक सहज दोष है कि वह अत्यन्त सुन्दर युवती है।

तुमि-ह—परम युवा, परम सुन्दर ।

लोकेर काणाकाणि-बाते देह अवसर" ॥17॥

तुमि-ह-आप भी; परम युवा–युवा पुरुष; परम सुन्दर-अत्यन्त सुन्दर; लोकेर— जन साधारण को; काणाकाणि-कानाफूसी; बाते-बातों के; देह अवसर-आप अवसर प्रदान कर रहे हैं।

अनुवाद

"और हे प्रभु, आप सुन्दर आकर्षक तरुण व्यक्ति हैं। अतएव निश्चित रूप से लोग आपके बारे में कानाफूसी करेंगे। आप उन्हें ऐसा अवसर क्यों प्रदान करें ?"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का सरल तथा पक्का भक्त होने के कारण दामोदर पण्डित महाप्रभु की आलोचना होते सह नहीं सकते थे, किन्तु दुर्भाग्यवश वे खुद ही श्री चैतन्य महाप्रभु की आलोचना कर रहे थे। महाप्रभु यह समझ गये कि यह दामोदर पण्डित की सरलता है, जिसके कारण वह उनकी आलोचना करने का दुस्साहस कर रहा है। फिर भी, भक्त का ऐसा आचरण बहुत अच्छा नहीं होता।

एत बलि' दामोदर मौन हइला।

अन्तरे सन्तोष प्रभु हासि' विचारिला॥ 18॥

एत बलि'-यह कहकर; दामोदर-दामोदर पण्डित; मौन हइला-मौन हो गया; अन्तरे-अपने मन में; सन्तोष-आनन्दित; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हासि'-हँसकर; विचारिला-विचार करने लगे।

अनुवाद

यह कहकर दामोदर पण्डित मौन हो गये। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने अन्तर में प्रसन्न होकर मुसकाये और दामोदर पण्डित की धृष्टता पर विचार करने लगे।

"इहारे कहिये शुद्ध–प्रेमेर तरङ्ग।

दामोदर-सम मोर नाहि "अन्तरङ्ग"॥ 19॥

इहारे-ऐसे व्यवहार की; कहिये-मैं कह सकता हूँ; शुद्ध-प्रेमेर तरङ्ग-शुद्ध प्रेममयी सेवा की लहरें; दामोदर-सम-दामोदर के समान; मोर-मेरा; नाहि-नहीं है; अन्तरङ्ग-अन्तरंग मित्र।

अनुवाद

(श्री चैतन्य महाप्रभु ने सोचा :) "यह धृष्टता मेरे प्रति शुद्ध प्रेम का संकेत भी है। दामोदर पण्डित जैसा मेरा कोई अन्य घनिष्ठ मित्र नहीं है।"

एतेक विचारि' प्रभु मध्याह्ने चलिला।

आर दिने दामोदरे निभृते बोलाइला ॥ 20 ॥

एतेक विचारि'-इस प्रकार विचार करके; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; मध्याह्ने चलिला-अपने दोपहर के कृत्य करने चले गये; आर दिने-अगले दिन; दामोदरे-दामोदर पण्डित को; निभृते-एक एकान्त स्थान में; बोलाइला-बुलाया।

अनुवाद

इस तरह सोचते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु दोपहर के कृत्य सम्पन्न करने चले गये। अगले दिन उन्होंने दामोदर पण्डित को एकान्त में बुलाया।

प्रभु कहे,-"दामोदर, चलह नदीया ।

मातार समीपे तुमि रह ताँहा याञा ॥ 21 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; दामोदर-मेरे प्रिय सखा दामोदर; चलह नदीया-अच्छा होगा कि तुम नदिया (नवद्वीप) चले जाओ; मातार समीपे-मेरी माता के पास; तुमि-तुम; रह-रही; ताँहा-वहाँ; याञा-जाकर।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "हे मित्र दामोदर, अच्छा होगा कि तुम नदिया जाओ और मेरी माता के साथ रहो।"

तोमा विना ताँहार रक्षक नाहि देखि आन ।

आमाके-ह याते तुमि कैला सावधान ॥ 22॥

तोमा विना-आपके सिवाय; ताँहार-माता शचीदेवी का; रक्षक-रक्षक; नाहि-नहीं; देखि-मैं देखता; आन-कोई अन्य; आमाके-ह-मुझे भी; याते-जिसके द्वारा; तुमि-तुमने; कैला-कर दिया; सावधान-सावधान।

अनुवाद

"मैं तुम्हारे अतिरिक्त उसका कोई दूसरा रक्षक नहीं देख रहा हूँ, क्योंकि तुम इतने सतर्क रहते हो कि तुम मुझे भी सावधान कर सकते हो।"

तोमा सम 'निरपेक्ष' नाहि मोर गणे ।

'निरपेक्ष' नहिले 'धर्म' ना याय रक्षणे ॥ 23 ॥

तोमा सम-तुम्हारे जैसा; निरपेक्ष-समभाव; नाहि-नहीं है; मोर गणे-मेरे अनुयायियों में; निरपेक्ष-निष्पक्ष; नहिले-हुए बिना; धर्म-धर्म के सिद्धान्त; ना याय रक्षणे-रक्षा नहीं किये जा सकते।

अनुवाद

"तुम मेरे संगियों में सर्वाधिक निष्पक्ष हो। यह बहुत अच्छी बात है, क्योंकि निष्पक्ष हुए बिना मनुष्य धर्म की रक्षा नहीं कर सकता।"

आमा हैते ये ना हय, से तोमा हैते हय ।

आमारे करिला दण्ड, आन केबा हय ॥ 24॥

आमा हैते-मेरे द्वारा; ये-जो; ना हय-नहीं हो सकता; से-वह; तोमा हैते-तुम्हारे द्वारा; हय-सम्भव होता है; आमारे-मुझे; करिला दण्ड-दण्ड देना; आन-अन्यों की; केबा हय-बात ही क्या करें।

अनुवाद

"जो मैं नहीं कर सकता, वह तुम कर सकते हो। निस्सन्देह, तुम मुझे भी दण्डित कर सकते हो, अन्यों की बात जाने दो।

मातार गृहे रह याइ मातार चरणे ।

तोमार आगे नहिबे कारो स्वच्छन्दाचरणे ॥ 25 ॥

मातार-मेरी माता के; गृहे-घर पर; रह-रही; याइ-जाकर; मातार चरणे-मेरी माता के चरणकमलों की शरण में; तोमार आगे-तुम्हारे सामने, नहिबे-नहीं होगी; कारोकिसी का भी, स्वच्छन्द-आचरणे-स्वेच्छापूर्ण आचरण।

अनुवाद

"तुम्हारे लिए सबसे अच्छी बात यही होगी कि तुम मेरी माता के चरणकमलों की शरण में जाओ, क्योंकि तुम्हारे सामने कोई भी स्वतन्त्रतापूर्वक आचरण नहीं कर सकेगा।

मध्ये मध्ये आसिबा कभु आमार दरशने ।

शीघ्र करि' पुनः ताहाँ करह गमने ॥ 26 ॥

मध्ये मध्ये-बीच-बीच में; आसिबा-तुम आ सकते हो; कभु-कभी; आमार दरशने-मेरे दर्शन करने; शीघ्र करि'-जल्दी ही; पुनः-फिर; ताहाँ-वहाँ; करह गमने-चले जाना।

अनुवाद

"बीच-बीच में तुम यहाँ मुझे देखने आ सकते हो और शीघ्र ही फिर से वहाँ जा सकते हो।

मातारे कहिह मोर कोटी नमस्कारे ।

मोर सुख-कथा कहि' सुख दिह' ताँरे ॥ 27॥

मातारे-मेरी माता को; कहिह-कहना; मोर-मेरे; कोटी-करोड़ों; नमस्कारे-नमस्कार; मोर-मेरी; सुख-प्रसन्नता की; कथा-कथा; कहि'-कहकर; सुख-सुख; दिह' ताँरे-उन्हें देना।

अनुवाद

"मेरी माता से मेरा कोटि-कोटि नमस्कार कहना। कृपा करके उनसे यहाँ के मेरे सुख के विषय में कहना और इस तरह उन्हें सुख पहुँचाना।

'निरन्तर निज-कथा तोमारे शुनाइते।

एइ लागि' प्रभु मोरे पाठाइला इहाँते' ॥28॥

निरन्तर-निरन्तर; निज-कथा-अपने कार्यकलाप; तोमारे शुनाइते-आपको सुनाने के लिए; एइ लागि'—इस कारण से; प्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; मोरे—मुझे; पाठाइला— भेजा है; इहाँते-यहाँ।

अनुवाद

"उनसे कहना कि मैंने अपने निजी कार्यकलापों की सूचना देने के लिए तुम्हें भेजा है, जिससे वे मेरे सुख में भाग ले सकें।

एत कहि' मातार मने सन्तोष जन्माइह।

आर गुह्य-कथा ताँरे स्मरण कराइह ॥ 29॥

एत कहि'-यह कहकर; मातार मने-मेरी माता के मन में; सन्तोष जन्माइह-सन्तोष जगाकर; आर-अन्य; गुह्य-कथा-अत्यन्त गुह्य सन्देश; तौंरे-उन्हें; स्मरण कराइह-स्मरण कराना।

अनुवाद

"इस तरह बोलकर माता शची के मन को तुष्ट करना। उन्हें मेरे इस सन्देश के साथ एक अत्यन्त गोपनीय घटना के सम्बन्ध में स्मरण दिलाना।

'बारे बारे आसि' आमि तोमार भवने ।

मिष्टान्न व्यञ्जन सब करिये भोजने ॥ 30 ॥

बारे बारे-बारम्बार; आसि'-आकर; आमि-मैं; तोमार भवने-आपके घर में; मिष्ठान्न-मिठाईयाँ; व्यञ्जन-सब्जियाँ; सब-सब; करिये-करता हूँ; भोजने-भोजन।

अनुवाद

"मैं आपके घर आपके द्वारा अर्पण की जाने वाली उन सारी मिठाइयों तथा तरकारियों को खाने के लिए बारम्बार आता हूँ।"

भोजन करिये आमि, तुमि ताहा जान ।

बाह्य विरहे ताहा स्वप्न करि मान ॥ 31॥

भोजन-भोजन; करिये-करता हूँ; आमि-मैं; तुमि-आप; ताहा-वह; जान-जानती हो; बाह्य-बाहरी रूप से; विरहे-विरह में; ताहा-वह; स्वप्न-स्वप्न; करि-जैसा; मान-आप मानती हो।

अनुवाद

"आप जानती हो कि मैं आता हूँ और भोजन करता हूँ, किन्तु बाह्य विरह के कारण आप इसे स्वप्न मानती हो।

तात्पर्य

शचीमाता श्री चैतन्य महाप्रभु से विरह का अनुभव करने के कारण सोचती थीं कि वे स्वप्न देख रही हैं कि उनका पुत्र आया हुआ है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें यह बताना चाहते थे कि वास्तव में यह स्वप्न नहीं है। वे सचमुच वहाँ आते थे और उनकी माँ उन्हें जो भी देतीं उसे वे खाते थे। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ उन्नत भक्तों के ऐसे ही व्यवहार होते हैं। ब्रह्म-सहिता (5.38) में कहा गया है :

प्रेमा प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन

सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति ।

यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जिनका वे भक्त सदैव दर्शन करते हैं, जिसकी आँखें प्रेम के अंजन से लेपित रहती हैं। वे भत के हृदय में स्थित अपने श्यामसुन्दर के सनातन रूप में देखे जाते हैं।" शुद्ध भक्त भगवान् के साथ इन व्यवहारों को दिव्य स्तर पर अनुभव करते हैं, किन्तु चूँकि भक्त भौतिक जगत् में होते हैं, अतएव वे इन्हें स्वप्न के रूप में समझते हैं। किन्तु भगवान् उन्नत भक्त से बातें करते हैं और ऐसे उन्नत भक्त भी उनका दर्शन करते हैं। यह सच्चाई है, स्वप्न नहीं।

एइ माघ-सङ्क्रान्त्ये तुमि रन्धन करिला ।

नाना व्यञ्जन, क्षीर, पिठा, पायस रान्धिला ॥ 32 ॥

एइ-इस; माघ-सङ्क्रान्त्ये-माघ संक्रान्ति उत्सव पर; तुमि-आपने; रन्धन करिला-पकाये; नाना व्यञ्जन-अनेक व्यंजन; क्षीर-(दुग्ध की) खीर; पिठा-मिठाई; पायस-मीठे भात; रान्धिला-पकाये।

अनुवाद

"पिछले माघ संक्रान्ति उत्सव के समय आपने मेरे लिए अनेक प्रकार की सब्जियाँ, गाढ़ा दूध, रोटियाँ तथा खीर बनाई थी।"

कृष्णे भोग लागाञा यबे कैला ध्यान ।

आमार स्फूर्ति हैल, अश्रु भरिल नयन ॥ 33 ॥

कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; भोग-भोग; लागाञा-लगाकर; यबे-जब; कैला ध्यान-आपने ध्यान किया; आमार-मेरा; स्फूर्ति-अचानक प्राकट्य; हैल-हो गया; अश्रु-आँसु; भरिल-भर गये, नयन-आपकी आँखों में।

अनुवाद

"आपने भगवान् कृष्ण को भोजन अर्पित किया और अभी तुम ध्यान में ही थीं कि मैं सहसा प्रकट हुआ और आपकी आँखें आँसूओं से भर गई।"

आस्ते-व्यस्ते आमि गिया सकलि खाइल ।

आमि खाइ,—देखि' तोमार सुख उपजिल ॥34॥

आस्ते-व्यस्ते-अत्यन्त शीघ्रता से; आमि-मैंने; गिया-जाकर; सकलि खाइल-सब कुछ खा लिया; आमि खाइ-मुझे खाता हुआ; देखि'-देखकर; तोमार-आपकी; सुख-प्रसन्नता; उपजिल-बढ़ गई।

अनुवाद

"मैं वहाँ अत्यन्त हड़बड़ी में गया और सब कुछ खा गया। जब आपने मुझे खाते देखा, तो आपको महान् सुख का अनुभव हुआ।"

क्षणेके अश्रु मुछिया शून्य देखि' पात ।

स्वपन देखिलुँ, 'येन निमाञि खाइल भात' ॥ 35॥

क्षणेके-एक क्षण में; अश्रु-आँसु; मुछिया-पोंछकर; शून्य-खाली; देखि'- देखकर, पात-थाली, स्वपन देखिलुँ-मैंने एक स्वप्न देखा; येन-जैसे; निमाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; खाइल भात-भोजन खाया।

अनुवाद

"जब आपने अपनी आँखें पोंछ डालीं, तो क्षण-भर में तुमने देखा कि तुमने जो कुछ मुझे पत्तल में दिया था, वह खाली है। तब तुमने सोचा, "मैंने सपना देखा कि मानो निमाइ सब कुछ खा रहा है।"

बाह्य-विरह-दशाय पुनः भ्रान्ति हैल ।

'भोग ना लागाइलुँ,-एइ ज्ञान हैल ॥ 36॥

बाह्य-विरह-बाहरी विरह की; दशाय-अवस्था द्वारा; पुनः-फिर; भ्रान्ति हैल-भ्रम हो गया; भोग-विग्रह को भोग, ना लागाइलुँ-मैंने नहीं अर्पित किया; एइ-यह; ज्ञान हैल-आपने सोचा।

अनुवाद

"बाह्य विरह की दशा में आप यह सोचकर पुनः भ्रम में थीं कि आपने वह भोजन भगवान् विष्णु को अर्पित नहीं किया है।

पाक-पात्रे देखिला सब अन्न आछे भरि' ।

पुनः भोग लागाइला स्थान-संस्कार करि' ॥ 37 ॥

पाक-पात्रे-भोजन पकाने के बर्तन; देखिला-आपने देखे; सब-सब; अन्न-अन्न, आछे भरि'-भरे हुए थे; पुनः-फिर; भोग लागाइला-भोग अर्पित किया; स्थान-भोग लगाने के स्थान को; संस्कार करि'-स्वच्छ करके।

अनुवाद

"तब आप भोजन पकाने के बर्तन देखने गई और देखा कि हर बर्तन भोजन से भरा है। अतएव आपने भोग लगाने के स्थान को साफ करके फिर से भोग लगाया।

एइ-मत बार बार करिये भोजन ।

तोमार शुद्ध-प्रेमे मोरे करे आकर्षण ॥ 38 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; बार बार-बारम्बार; करिये भोजन-मैं भोजन करता हूँ, तोमार-आपका; शुद्ध-प्रेमे-शुद्ध प्रेम; मोरे-मुझे; करे आकर्षण-आकर्षित करता है।

अनुवाद

"इस तरह आपके द्वारा भेंट की जाने वाली हर वस्तु मैं पुनः पुनः खाता हूँ, क्योंकि मैं आपके शुद्ध प्रेम द्वारा आकृष्ट होता हूँ।

तोमार आज्ञाते आमि आछि नीलाचले ।

निकटे लञा याओ आमा तोमार प्रेम-बले' ॥ 39 ॥

तोमार आज्ञाते-आपके आदेश पर; आमि-मैं; आछि-रह रहा हूँ; नीलाचले-नीलाचल (जगन्नाथ पुरी में); निकटे-समीप; लञा याओ-आप ले जाती हैं; आमा-मुझे; तोमार-आपके; प्रेम-दिव्य प्रेम; बले-के बल पर।

अनुवाद

"एकमात्र आपके आदेश से मैं नीलाचल (जगन्नाथपुरी) में रह रहा हूँ। फिर भी आप मेरे प्रति अपने गहन प्रेम के कारण मुझे अपने निकट खींचती रहती हो।"

एइ-मत बार बार कराइह स्मरण ।

मोर नाम लञा ताँर वन्दिह चरण" ॥ 40 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; बार बार-बारम्बार; कराइह-करवाते हुए; स्मरण-स्मरण; मोर-मेरा; नाम-नाम; लञा-लेकर; ताँर-उनकी; वन्दिह-वन्दना करना; चरण-चरण ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने दामोदर पण्डित से कहा, "मेरी माता को इस तरह से बारम्बार स्मरण कराना और मेरा नाम लेकर उनके चरणकमलों की पूजा करना।"

एत कहि' जगन्नाथेर प्रसाद आनाइल ।

माताके वैष्णवे दिते पृथक् पृथक् दिल ॥ 41 ॥

एत कहि'-यह कहकर; जगन्नाथेर-जगन्नाथ के; प्रसाद-भोजन का शेष, आनाइल-लाने का आदेश दिया; माताके-अपनी माता को; वैष्णवे-और सभी वैष्णवों को; दिते-देने के लिए; पृथक्-पृथक्-अलग अलग; दिल-उन्होंने दिया।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह आदेश दिया कि भगवान् जगन्नाथ को अर्पित किये जाने वाले तरह-तरह के प्रसाद लाये जाएँ। तब महाप्रभु ने उसे अलग-अलग बँधा प्रसाद विभिन्न वैष्णवों तथा अपनी माता को देने के लिए दिया।

तबे दामोदर चलि' नदीया आइला ।

मातारे मिलिया ताँर चरणे रहिला ॥42॥

तबे-तब; दामोदर-दामोदर पण्डित; चलि'-चलकर; नदीया आइला-नदिया (नवद्वीप) पहुँच गये; मातारे मिलिया-शचीमाता से मिलकर; ताँर चरणे-उनके चरणकमलों में; रहिला-रह गये।

अनुवाद

इस तरह दामोदर पण्डित नदिया (नवद्वीप) गये। माता शची से मिलने के बाद वे उनके चरणकमलों के संरक्षण में रहे।

आचार्यादि वैष्णवेरे महा-प्रसाद दिला ।

प्रभुर यैछे आज्ञा, पण्डित ताहा आचरिला ॥ 43॥

आचार्य-आदि-अद्वैत आचार्य आदि; वैष्णवेरे-सभी वैष्णवों को; महा-प्रसाद दिला-भगवान् जगन्नाथ का सारा प्रसाद दिया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; यैछे-जैसा; आज्ञा-आदेश था; पण्डित-दामोदर पण्डित ने; ताहा-वैसा ही; आचरिला-कार्य किया।

अनुवाद

उन्होंने सारा प्रसाद अद्वैत आचार्य जैसे महान् वैष्णवों को दे दिया। इस तरह वे वहाँ रहे और श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश के अनुसार व्यवहार करते रहे।

दामोदर आगे स्वातन्त्र्य ना हय काहार ।

तार भये सबे करे सङ्कोच **व्यवहार ॥44॥**

दामोदर आगे-दामोदर पण्डित के सामने; स्वातन्त्र्य-स्वतन्त्र व्यवहार; ना हय काहार-किसी का भी करने का साहस नहीं होता; तार भये-उनके भय से; सबे-वे सब; करे-करते; सङ्कोच व्यवहार-अत्यन्त सावधानीपूर्ण व्यवहार।

अनुवाद

सभी जानते थे कि दामोदर पण्डित व्यावहारिक बर्ताव में अत्यन्त कठोर हैं। अतएव सारे लोग उनसे भयभीत थे और स्वतन्त्र रूप से कुछ भी करने का साहस नहीं करते थे।

प्रभु-गणे याँर देखे अल्प-मर्यादा-लङ्घन ।

वाक्य-दण्ड करि' करे मर्यादा स्थापन ॥ 45 ॥

प्रभु-गणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों में; याँर-जिसका; देखे-देखते; अल्प-मर्यादा-लङ्घन-आदर्श आचरण तथा व्यवहार से अल्प मात्र भी भटकना; वाक्य-दण्ड करि'-शब्दों से डाँटकर; करे-करते; मर्यादा-सदाचार; स्थापन-स्थापित।

अनुवाद

दामोदर पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु के हर भक्त को जिसे वे उचित आचरण से थोड़ा भी विचलित हुआ पाते, मौखिक रूप से दण्ड देते। इस तरह उन्होंने आदर्श शिष्टाचार स्थापित किया।

एइ-त कहिल दामोदरेर वाक्य-दण्ड ।

याहार श्रवणे भागे 'अज्ञान पाषण्ड' ॥46॥

एइ-त-इस प्रकार; कहिल-मैंने वर्णन किया है; दामोदरेर-दामोदर पण्डित का; वाक्य-दण्ड-शब्दों द्वारा दण्ड देना; याहार श्रवणे-जिसे सुनकर; भागे-दूर हो जाता है; अज्ञान पाषण्ड -नास्तिक अज्ञान।

अनुवाद

इस तरह मैंने दामोदर पण्डित के शाब्दिक दण्ड का वर्णन किया है। जब कोई इसके विषय में सुनता है, तो नास्तिक सिद्धान्त तथा अज्ञान भाग जाते हैं।

चैतन्येर लीला-गम्भीर, कोटि-समुद्र हैते ।

कि लागि' कि करे, केह ना पारे बुझिते ॥ 47॥

चैतन्येर लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; गम्भीर—अत्यन्त गहरी; कोटि-समुद्र हैते-लाखों समुद्रों से भी अधिक; कि लागि'-किस कारण से; कि करे-वे क्या करते हैं; केह-कोई भी; ना-नहीं, पारे बुझिते-समझ सकता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ करोड़ों समुद्रों से भी अधिक गहरी हैं। अतएव कोई नहीं समझ सकता कि वे क्या करते हैं अथवा क्यों ऐसा करते हैं।

अतएव गूढ़ अर्थ किछुइ ना जानि।

बाह्य अर्थ करिबारे करि टानाटानि ॥ 48 ॥

अतएव-अत:; गूढ़ अर्थ-गहन अर्थ; किछुइ-कुछ भी; ना जानि-मैं नहीं जानता; बाह्य अर्थ करिबारे-बाहरी अर्थ करने का; करि-मैं करता हूँ; टानाटानि-दृढ़ प्रयास।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों का गहन अर्थ नहीं जानता। मैं यथासम्भव उनकी बाह्य व्याख्या करने का प्रयास करूँगा।

एक-दिन प्रभु हरिदासेरे मिलिला।

ताँहा लञा गोष्ठी करि' ताँहारे पुछिला ॥ 49॥

एक-दिन-एक दिन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, हरिदासेरे-हरिदास ठाकुर से; मिलिला-मिले; ताँहा लञा-उन्हें लेकर; गोष्ठी करि'-एक चर्चा करते हुए; ताँहारे पुछिला-महाप्रभु ने उनसे पूछा।

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु हमेशा की तरह हरिदास ठाकुर से मिले और विचार-विमर्श के दौरान उन्होंने यह पूछा।

"हरिदास, कलि-काले यवन अपार।

गो-ब्राह्मणे हिंसा करे महा दुराचार ॥50॥

हरिदास-मेरे प्रिय हरिदास; कलि-काले-इस कलियुग में; यवन-वैदिक सिद्धान्तों के विरोधी असुर; अपार-असंख्य; गो-ब्राह्मणे-गायों और ब्राह्मण संस्कृति; हिंसा करे-के विरूद्ध हिंसा करने वाले; महा दुराचार-अत्यन्त अधम हैं।

अनुवाद

“हे हरिदास ठाकुर, इस कलियुग में अधिकांश लोग वैदिक संस्कृति से विहीन हैं, अतएव वे यवन कहलाते हैं। वे केवल गौवों तथा ब्राह्मण संस्कृति की हत्या करने में ही लगे रहते हैं। इस तरह ये सभी यवन पापकर्मों में लगे रहते हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के इस कथन से हम स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि यवन शब्द किसी जातिविशेष के लोगों का सूचक नहीं है। जो भी व्यक्ति वैदिक सिद्धान्तों के आचरण के विरुद्ध है, वह यवन कहलाता है। ऐसा यवन भारतीय हो सकता है, अथवा भारत के बाहर का हो सकता है। जैसाकि यहाँ वर्णन हुआ है, यवनों का लक्षण यह है कि वे गौवों तथा ब्राह्मण संस्कृति की हिंसक रूप से हत्या करते हैं। हम भगवान् की स्तुति इस प्रकार करते हैं-नमो-ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च / भगवान् ब्राह्मण संस्कृति के पालक हैं। उनका पहला कार्य है गौवों तथा ब्राह्मणों का हित देखना। ज्योंही मानव सभ्यता ब्राह्मण संस्कृति के विरुद्ध हो जाती है और अनियन्त्रित गोवध की अनुमति देने लगती है, तो यह समझ लेना चाहिए कि लोग वैदिक संस्कृति के नियन्त्रण में नहीं हैं, अपितु वे सभी यवन तथा म्लेच्छ हैं। कहा गया है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन अगले दस हजार वर्षों के भीतर महत्वपूर्ण रहेगा, किन्तु इसके बाद सभी लोग म्लेच्छ तथा यवन बन जायेंगे। इस तरह इस युग के अन्त में कृष्ण कल्कि अवतार के रूप में प्रकट होंगे और बिना विचार उनका वध करेंगे।

इहा-सबार कोन् मते हइबे निस्तार? ।

ताहार हेतु ना देखिये,—ए दु:ख अपार” ॥51॥

इहा-सबार-इन सभी यवनों का; कोन् मते-किस विधि से; हइबे निस्तार-उद्धार होगा; ताहार हेतु-ऐसे उद्धार का कारण; ना देखिये-मैं नहीं देख पा रहा हूँ; ए दु:ख अपार-यह मेरा महान् दु:ख है।

अनुवाद

“इन यवनों का उद्धार किस तरह होगा? मुझे महान् दु:ख है कि मुझे इसका कोई रास्ता नहीं दिखाई देता।”

तात्पर्य

यह श्लोक पतित-पावन के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य की महत्ता को प्रकट करने वाला है। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर का गीत है-पतितपावन-हेतु तव अवतार-"हे प्रभु, आप सारे पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए प्रकट हुए हैं।" मो-सम पतित प्रभु ना पाइबे आर- "और इन समस्त पतितात्माओं में मैं सबसे अधम हूँ।" श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु किस तरह पतितात्माओं के उद्धार के बारे में सदैव चिन्तित रहते थे, यह इस कथन से प्रदर्शित होता है- ए दु:ख अपार ("यही मेरा महान् दु:ख है")। यह कथन बतलाता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु जो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं, किस तरह भौतिक जगत् में पतितात्माओं को देखकर सदैव दु:खी रहते हैं। इसलिए वे अपने मूल रूप में या श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में भक्त बनकर पतितात्माओं को प्रत्यक्ष रूप से कृष्ण-प्रेम प्रदान करने आते हैं। नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते / श्री चैतन्य महाप्रभु इतने कृपालु हैं कि वे न केवल कृष्ण का ज्ञान प्रदान करते हैं, अपितु अपने व्यावहारिक आचरण से हर एक को कृष्ण से प्रेम करना भी सिखाते हैं (कृष्णप्रेमप्रदाय ते)।

जो लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के चरण-चिह्नों का अनुगमन कर रहे हैं, उन्हें महाप्रभु के आन्दोलन को गम्भीरता से लेना चाहिए। इस कलियुग में लोग क्रमश: पशुओं से भी बदतर होते जा रहे हैं। यद्यपि वे गौवों का मांस खा रहे हैं तथा ब्राह्मण संस्कृति से द्वेष रखते हैं, फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु यह विचार कर रहे हैं कि उन्हें जीवन की भयावह स्थिति से किस प्रकार उबारा जाए। इस तरह वे सारे भारतीयों को अपने आन्दोलन को ग्रहण करने का आदेश देते हैं :

भारत-भूमिते हैल मनुष्य-जन्म यार।

जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार॥

"जिसने भारत-वर्ष में मनुष्य रूप में जन्म लिया है, उसे अपना जीवन सफल करना चाहिए और अन्य लोगों के लाभ हेतु कार्य करना चाहिए।"(चैतन्यचरितामृत, अदिलीला 9.41) इसलिए प्रत्येक उन्नत तथा सभ्य भारतीय का धर्म है कि वह इस कार्य को गम्भीरता से ले। सारे भारतीयों को कृष्णभावनामृत आन्दोलन की प्रगति में यथाशक्ति सहायता करनी चाहिए। तभी वे श्री चैतन्य महाप्रभु के सच्चे अनुयायी माने जायेंगे। दुर्भाग्यवश, कुछ तथाकथित वैष्णव तक ईष्यावश इस आन्दोलन के साथ सहयोग करने से मना तो करते ही हैं, साथ ही अनेक प्रकार से इसकी निन्दा भी करते हैं। हमें खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि ये लोग हममें दोष निकालते हैं, क्योंकि वे हमारे कार्यों से अनावश्यक ईष्या करते हैं, यद्यपि हम यवनों तथा म्लेच्छों के देशों में कृष्णभावनामृत आन्दोलन का सूत्रपात करने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे यवन तथा म्लेच्छ हमारे पास आते हैं और शुद्ध वैष्णव बनकर श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हैं। स्वयं को श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुयायी मानने वाले व्यक्ति को श्री चैतन्य महाप्रभु की तरह विचार करना चाहिए। महाप्रभु

ने कहा है- इहा-सबार कोन मते हडूबे निस्तार-"इन सारे यवनों का उद्धार किस तरह होगा?" श्री चैतन्य महाप्रभु पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए सदैव चिन्तित रहते थे, क्योंकि उनकी पतित अवस्था से उन्हें महान् दु:ख होता था। इसी स्तर पर श्री चैतन्य महाप्रभु के आन्दोलन का प्रचार किया जा सकता है।

हरिदास कहे,—"प्रभु, चिन्ता ना करिह ।

यवनेर संसार देखि' दु:ख ना भाविह ॥52॥

हरिदास कहे-हरिदास ने उत्तर दिया; प्रभु-मेरे प्रिय भगवान्; चिन्ता ना करिह-चिन्ता मत कीजिये; यवनेर संसार-यवनों की भौतिक अवस्था; देखि'-देखकर; दु:ख ना भाविह-दु:खी मत होइये।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, "हे प्रिय प्रभु, आप चिन्ता न करें। आप भौतिक संसार में यवनों की दशा देखकर दु:खी न हों।

तात्पर्य

हरिदास ठाकुर के ये शब्द उस भक्त के सर्वथा उपयुक्त हैं, जिसने भगवान् की सेवा में अपने जीवन और प्राण अर्पित कर दिये हो। जब भगवान् पतितात्माओं की दशा पर दु:खी होते हैं, तब भक्त यह कहकर उन्हें सान्त्वना देता है कि, "हे प्रभु, आप चिन्तित न हों।" यह सेवा है। श्री चैतन्य महाप्रभु को इस चिन्ता से छुटकारा दिलाने का प्रयास करने के लिए हर एक को उनके कार्य में लग जाना चाहिए। यही महाप्रभु की वास्तविक सेवा है। जो कोई श्री चैतन्य महाप्रभु की पतितात्माओं के प्रति चिन्ता को दूर करने का प्रयास करता है, वह निश्चित रूप से महाप्रभु का अत्यन्त प्रिय एवं विश्वसनीय भत है। ऐसे भक्त की निन्दा करना, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का विस्तार करने का भरसक प्रयत्न कर रहा हो, सबसे बड़ा अपराध है। जो ऐसा करता है, उसे उसके द्वेष का दण्ड अवश्य मिलेगा।

यवन-सकलेर 'मुक्ति' हबे अनायासे ।

'हा राम, हा राम' बलि' कहे नामाभासे ॥53॥

यवन-सकलेर-सभी यवनों की; मुक्ति-मुक्ति; हबे-हो जायेगी; अनायासे-बहुत सरलता से; हा राम हा राम-"हे भगवान् राम, हे भगवान् राम"; बलि'-कहकर, कहे-वे बोलते हैं, नाम-आभासे-भगवान् के पवित्र नाम का लगभग निरपराध जप।

अनुवाद

"चूँकि सारे यवन 'हा राम, हा राम' कहने के अभ्यस्त हैं, इसलिए वे इस नामाभास द्वारा सरलतापूर्वक उबार लिए जायेंगे।

महा-प्रेमे भक्त कहे,-'हा राम, हा राम' ।

यवनेर भाग्य देख, लय सेइ नाम ॥ 54॥

महा-प्रेमे-अत्यन्त प्रेम भाव में; भक्त कहे-एक भत कहता है; हा राम हा राम-"हे भगवान् रामचन्द्र, हे भगवान् रामचन्द्र"; यवनेर-यवनों का; भाग्य-सौभाग्य; देख-जरा देखिए; लय सेइ नाम-वे भी वही पवित्र नाम जप रहे हैं।

अनुवाद

"एक भक्त अत्यधिक प्रेमवश पुकारता है-'हे मेरे भगवान् रामचन्द्र! हे मेरे भगवान् रामचन्द्र!' किन्तु यवन भी जप करते हैं 'हा राम, हा राम!' जरा उनका सौभाग्य तो देखें!"

तात्पर्य

यदि छोटा-सा बालक आग को छू लेता है, तो आग उसे जला देती है और यदि कोई वयस्क व्यक्ति आग को छूता है, तो वह उसे भी जला देगी। हरिदास ठाकुर कहते हैं कि भगवान् का उन्नत भक्त पुकारता है, "हा राम, हा राम," यद्यपि यवन लोग 'हा राम, हा राम' का दिव्य अर्थ नहीं जानते, किन्तु सामान्य जीवन में वे भी इन शब्दों को बोलते हैं। यवनों के लिए 'हा राम' शब्द का अर्थ है, "निन्दनीय," जबकि भक्त 'हा राम' का उच्चारण प्रेमवश करता है। फिर भी चूँकि 'हा राम' शब्द आध्यात्मिक सार स्वरूप हैं, इसलिए बात तो वही रहती है चाहे वे शब्द यवनों द्वारा बोले जाएँ अथवा महान भक्तों द्वारा। यह बिल्कुल अग्नि की तरह है जो बच्चों तथा वयस्कों के लिए एक समान होती है। दूसरे शब्दों में, यदि भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण परमेश्वर के सन्दर्भ में न भी किया जाए, तो भी भगवान् का पवित्र नाम 'हा राम' सदैव प्रभाव दिखाता है। यवन लोग पवित्र नाम का उच्चारण भक्तों की अपेक्षा सर्वथा भिन्न भाव से करते हैं, किन्तु पवित्र नाम 'हा राम' आध्यात्मिकता की दृष्टि से इतना शक्तिशाली है कि यह सर्वत्र प्रभाव डालता है, चाहे कोई इसे जानता हो अथवा नहीं। इसकी व्याख्या आगे की गई है।

यद्यपि अन्य सङ्केते अन्य हय नामाभास ।

तथापि नामेर तेज ना हय विनाश ॥55॥

यद्यपि-यद्यपि; अन्य-अन्य; सङ्केते-संकेत से; अन्य-वह अन्य;हय–है; नाम–आभास-शुद्ध नाम के लगभग समान; तथापि-फिर भी; नामेर तेज-पवित्र नाम की दिव्य शक्ति का; ना हय विनाश-विनाश नहीं होता।

अनुवाद

नामाचार्य हरिदास ठाकुर ने, जो कि नाम-कीर्तन के प्रामाणिक आचार्य हैं, कहा, "भगवान् के पवित्र नाम के उच्चारण द्वारा भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का संकेत करना नामाभास का उदाहरण है। जब नाम का इस तरह से उच्चारण किया जाता है, तो भी उसकी दिव्य शक्ति विनष्ट नहीं होती।

दंष्ट्रि-दंष्ट्राहतो म्लेच्छो हा रामेति पुनः पुनः ।

उक्त्वापि मुक्तिमाप्नोति किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥56॥

दंष्ट्रि -एक सुअर के; दंष्ट्र-दांतो द्वारा; आहत:-मारा गया; म्लेच्छ:-एक माँसाहारी; हा राम—"हे मेरे प्रभु राम"; इति—ऐसा; पुनः पुनः—बारम्बार, उक्त्वा–कहकर; अपि— भी, मुक्तिम्-मुक्ति; आप्नोति-प्राप्त करता है; किम्-क्या; पुनः-फिर; श्रद्धया-विश्वास और आदर के साथ; गृणन्-जप करने वालों का।

अनुवाद

"सुअर के दाँत से मारा जा रहा और व्यथित होकर बारम्बार 'हा राम, हा राम' चिल्लाने वाला म्लेच्छ भी मुक्ति प्राप्त करता है। तो फिर उन लोगों के विषय में क्या कहा जाए, जो आदर तथा श्रद्धा से पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं?"

तात्पर्य

यह प्रसंग उस घटना का है, जिसमें सुअर द्वारा मारे जा रहे एक म्लेच्छ ने अपनी मृत्यु के समय बारम्बार 'हा राम, हा राम' शब्दों का उच्चारण किया। चूँकि यह उद्धरण नृसिंह पुराण का है, अतएव इससे सूचित होता है कि पौराणिक युग में भी म्लेच्छ तथा यवन रहे होंगे और "हा राम" शब्द जिसका अर्थ "निन्दनीय" था, उन दिनों भी बोले जाते थे। इस तरह हरिदास ठाकुर साक्ष्य देते हैं कि एक म्लेच्छ भी जो 'हा राम' शब्दों का उच्चारण करके किसी वस्तु की निन्दा करता है, एक भक्त द्वारा पवित्र नाम के उच्चारण का लाभ उठाता है, जिसका अर्थ है "हे मेरे भगवान् राम?"

अजामिल पुत्रे बोलाय बलि 'नारायण' ।

विष्णु-दूत आसि' छाड़ाय ताहार बन्धन ॥57॥

अजामिल-अजामिल ने; पुत्रे-अपने पुत्र को; बोलाय-पुकारा; बलि-कहकर; नारायण-नारायण का पवित्र नाम; विष्णु-दूत-भगवान् विष्णु के पार्षद; आसि'-आकर; छाड़ाय-छुड़ा देते हैं; ताहार-उसके; बन्धन-बन्धन।

अनुवाद

"अजामिल जीवन-भर महान् पापी था, किन्तु अपनी मृत्यु के समय उसने अचानक अपने सबसे छोटे पुत्र को पुकारा, जिसका नाम नारायण था, तो विष्णु के दूत यमराज के बन्धन से उसे छुड़ाने आ गये।

'राम' दुइ अक्षर इहा नहे व्यवहित ।

प्रेम-वाची 'हा'-शब्द ताहाते भूषित ॥58॥

राम-भगवान् के पवित्र नाम के; दुइ-दो; अक्षर-अक्षर; इहा-ये; नहे-नहीं हैं; व्यवहित-अलग; प्रेम-वाची-प्रेमवाचक एक शब्द; हा-हे; शब्द-शब्द; ताहाते-उसके द्वारा; भूषित-सुशोभित है।

अनुवाद

"राम' शब्द में दो अक्षर 'रा' तथा 'म' हैं। ये विलग नहीं किये जा सकते और प्रेमवाची शब्द 'हा' से अलंकृत हैं, जिसका अर्थ है 'हे'।

नामेर अक्षर-सबेर एइ त' स्वभाव ।

व्यवहित हैले ना छाड़े आपन-प्रभाव ॥ 59 ॥

नामेर-पवित्र नाम के; अक्षर-अक्षर; सबेर-सभी का; एइ-यह; त'-निश्चित रूप से; स्वभाव-लक्षण; व्यवहित हैले-त्रुटिपूर्वक पुकारे जाने पर भी; ना-नहीं; छाड़े-छोड़ते; आपन-प्रभाव-अपना आध्यात्मिक प्रभाव।

अनुवाद

"पवित्र नाम के अक्षरों की इतनी आध्यात्मिक शक्ति है कि अनुचित ढंग से बोले जाने पर भी अपना प्रभाव दिखाते हैं।

तात्पर्य

श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि व्यवहित शब्द यहाँ पर शब्द के अक्षरों की भौतिक ध्वनि के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है। भौतिकतावादी व्यक्तियों की इन्द्रियतृप्ति के लिए उपेक्षापूर्ण नाम उच्चारण दिव्य ध्वनि नहीं है।

इन्द्रियतृप्ति में लगे रहकर नामोच्चारण करना कृष्ण-प्रेम प्राप्त करने में अवरोधक है। दूसरी ओर, जो व्यक्ति भक्ति का इच्छुक होता है, यदि वह अनुचित रीति से या अधूरा ही नामोच्चारण करता है, तो पवित्र नाम, जो कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अभिन्न है, अपनी आध्यात्मिक शक्ति प्रकट करता है, क्योंकि यह उच्चारण अपराधरहित होता है। इस तरह मनुष्य को सारे अवांछनीय कार्यों से मुक्ति मिल जाती है और मनुष्य अपने सुप्त कृष्ण-प्रेम को क्रमश: जागृत कर लेता है।

नामैकं यस्य वाचि स्मरण-पथ-गतं श्रोत्र-मूलं गतं वा

शुद्धं वाशुद्ध-वर्णं व्यवहित-रहितं तारयत्येव सत्यम् ।

तच्चेद्देह-द्रविण-जनता-लोभ-पाषण्ड-मध्ये

निक्षिप्तं स्यान्न फल-जनकं शीघ्रमेवात्र विप्र ॥ 60॥

नाम-पवित्र नाम; एकम्-एक बार; यस्य–जिसके; वाचि-मुख में; स्मरण-पथ-गतम्-स्मरण के मार्ग में प्रवेश कर गया; श्रोत्र-मूलम् गतम्-कानों के मूल में चला गया; वा–या; शुद्धम् शुद्ध; वा-या; अशुद्ध-वर्णम्-अशुद्ध रूप से उच्चारित; व्यवहित-रहितम्-अपराध रहित या अलग किये बिना; तारयति–उद्धार कर देता है; एव–निश्चित रूप से; सत्यम्-सच में; तत्-वह नाम; चेत्-यदि; देह-भौतिक शरीर; द्रविण-भौतिक ऐश्वर्य; जनता-जन सहयोग; लोभ-लालच; पाषण्ड-नास्तिकता; मध्ये-की ओर; निक्षिप्तम्-निर्देशित; स्यात्-हो; न-नहीं; फल-जनकम्-परिणाम उत्पन्न करनेवाला; शीघ्रम्-शीघ्र; एव–अवश्य; अत्र–इस विषय में; विप्र-हे ब्राह्मण।

अनुवाद

“यदि भक्त एक बार भी भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करता है अथवा यह उसके मन में या श्रवण करने के माध्यम रूपी कान में प्रवेश करता है, तो यह पवित्र नाम निश्चय ही उसे भवबन्धन से उबार लेगा, चाहे नामोच्चारण व्याकरण के अनुसार सही ढंग से किया गया हो या गलत ढंग से किया गया हो, चाहे मिलाकर अथवा अलग-अलग खण्डों में किया गया हो। इसलिए हे ब्राह्मण, पवित्र नाम की शक्ति निश्चित रूप से महान् है। किन्तु यदि कोई पवित्र नाम के उच्चारण का उपयोग भौतिक शरीर, भौतिक सम्पत्ति तथा अनुयायियों के लिए अथवा लोभ या नास्तिकता के प्रभाव में आकर करता है-अर्थात् अपराधसहित

नामोच्चारण किया जाता है तो ऐसे उच्चारण से तुरन्त वांछित फल नहीं मिलेगा। अतएव भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करते समय सावधानीपूर्वक अपराधों से बचना चाहिए।"

तात्पर्य

यह श्लोक पद्म पुराण का है, जो सनातन गोस्वामी कृत हरिभक्तिविलास (11.289) में सम्मिलित है। उसमें सनातन गोस्वामी ने निम्नलिखित व्याख्या दी है :

वाचि गतं प्रसङ्गाद् वामध्ये प्रवृत्तम् अपि, स्मरणपथगतं कथञ्चिन् मन:स्पृष्टं अपि, श्रोत्र-मूलं गतं किञ्चित् श्रुतम् अपि; शुद्धवर्णं वा अशुद्धवर्णं अपि वा, व्यवहितं शब्दान्तरेण यद्व्यवधानं वक्ष्यमाणनारायणशब्दस्य किञ्चिद् उच्चारणानन्तरं प्रसङ्गाद् आपतितं शब्दान्तरं तेन रहितं सत् ।

इसका अर्थ यह है कि यदि कोई किसी तरह से पवित्र नाम सुनता, उच्चारण करता या स्मरण करता है या उसके कान के निकट आने पर वह उसके मन में प्रवेश कर जाता है, तो वह पवित्र नाम भले ही पृथक् शब्दों में क्यों न कहा गया हो, वह अपना प्रभाव दिखायेगा। ऐसे पृथक्करण का उदाहरण इस प्रकार दिया हुआ है :

यद्वा, यद्यपि 'हलं रिक्तम' इत्य् आद्युक्तौ हकार-रिकारयोः वृत्त्या हरीतिनामास्त्येव, तथा 'राजमहिषी' इत्यत्र रामनामापि, एवमन्यद्यप्यूह्यम्; तथापि तत्-तन्नाममध्ये व्यवधायकम् अक्षरान्तरम् अस्तीत्येतादृशव्यवधानरहितम् इत्यर्थः, यद्वा, व्यवहितं च तद्रहितं चापि वा, तत्र 'व्यवहितम्'–नाम्नः किञ्चिदुच्चरणानन्तरं कथञ्चिद् आपतितं शब्दान्तरं समाधाय पश्चान् नामावशिष्टा-क्षरग्रहणं इत्येवं रूपं, मध्ये शब्दान्तरेणान्तरितम् इत्यर्थः, 'रहितं', पश्चाद् अवशिष्टाक्षरग्रहणवर्जितम्, केनचिदंशेन हीनम् इत्यर्थः, तथापि तारयत्येव।

मान लीजिये कि कोई हलं रिक्तम् दो शब्दों का प्रयोग करता है। हलम् शब्द का ह अक्षर तथा रिक्तम् का रि अक्षर अलग-अलग उच्चरित होते हैं, किन्तु तो भी पवित्र नाम का प्रभाव होगा, क्योंकि मनुष्य किसी न किसी रूप में हरि शब्द का उच्चारण करता है। इसी तरह राज-महिषी शब्द में रा तथा म अक्षर अलग-अलग शब्दों में आते हैं, किन्तु वे किसी न किसी तरह एकसाथ प्रकट होते हैं, इसलिए पवित्र नाम राम अपना प्रभाव दिखायेगा, यदि वह अपराध रहित हो।

सर्वेभ्यः पापेभ्योऽपराधेभ्यश्च संसारादप्युद्धारयत्येवेति सत्यमेव; किन्तु नामसेवनस्य मुख्यं यत् फलं, तन्न सद्यः सम्पद्यते। तथा देहभरणाद्यर्थमपि नामसेवनेन मुख्यं फलमाशु न सिध्यतीत्याह-तच्चेद् इति॥

पवित्र नाम में इतनी आध्यात्मिक शक्ति होती है कि यह मनुष्य को सारे पापों के फलों तथा भौतिक बन्धनों से उबार सकता है, किन्तु पवित्र नाम का उच्चारण तुरन्त फलदायक नहीं होगा, यदि इसका उच्चारण पाप करने की सुविधा के लिए किया जाता है।

तन् नाम चेद्यदि देहादिमध्ये निक्षिप्तं-देहभरणाद्यर्थमेव विन्यस्तम्, तदापि फलजनकं न भवति किम् ? अपितु भवत्येव, किन्तु अत्र इह लोके शीघ्रं न भवति, किन्तु विलम्बेनैव भवतीत्यर्थः ।

पवित्र नाम इतना शक्तिशाली होता है कि यह प्रभाव दिखायेगा, किन्तु जब कोई व्यक्ति अपराध-सहित पवित्र नाम का उच्चारण करता है, तो इसका प्रभाव विलम्ब से होगा, तुरन्त नहीं, यद्यपि अनुकूल परिस्थितियों में पवित्र भगवन्नाम तुरन्त प्रभाव दिखाता है।

नामाभास हैते हय सर्व-पाप-क्षय ॥ 61॥

नाम-आभास हैते–नामाभास के उच्चारण से; हय-हो जाते हैं; सर्व-पाप-पापों के सारे फलों का; क्षय-विनाश।

अनुवाद

नामाचार्य हरिदास ठाकुर ने कहा, "यदि कोई अपराधरहित होकर अपूर्ण रीति से भी पवित्र नाम का उच्चारण करता है, तो वह पापमय जीवन के सारे फलों से मुक्त हो सकता है।

तं निर्व्याजं भज गुण-निधे पावनं पावनानां

श्रद्धा-रज्यन्मतिरतितरामुत्तमः-श्लोक-मौलिम् ।

प्रोद्यन्नन्तःकरण-कुहरे हन्त यन्नाम-भानोर्

आभासोऽपि क्षपयति महा-पातक-ध्वान्त-राशिम् ॥ 62 ॥

तम्-उन्हें; निर्व्याजम्-बिना कपट के; भज-भजो; गुण-निधे-हे सभी सद्गुणों के निधि; पावनम्-शुद्ध करने वाले; पावनानाम्-सभी शुद्ध करने वालों में श्रद्धा-विश्वास के साथ; रज्यन्-उत्साहित; मतिः-मन; अतितराम्-बहुत अधिक; उत्तमः-श्लोक-मौलिम्-वे परम पुरुष जिनकी उत्तम श्लोकों से उपासना की जाती है या जो सभी भौतिक अवस्थाओं से परे हैं; प्रोद्यन्-प्रकट करके; अन्तःकरण-कुहरे-हृदय की गहराई में; हन्त-हाय; यत्-नाम-जिनका पवित्र नाम; भानोः-सूर्य का; आभासः-मन्द प्राकट्य; अपि-भी; क्षपयति-नाश कर देता है; महा-पातक–महान् पापकर्मों के फलस्वरूप कर्मों के; ध्वान्त-अज्ञान के; राशिम्-भण्डार का।

अनुवाद

"हे सभी सद्गुणों की खान, आप समस्त पावन करने वालों को भी पावन करने वाले, उत्तमश्लोक शिरोमणि श्रीकृष्ण की पूजा करें। आप श्रद्धायुक्त, अविचलित मन से, निष्कपट होकर तथा अत्युच्च रीति से उनकी पूजा करें। इस प्रकार उन भगवान् की पूजा करें, जिनका नाम सूर्य के समान है, क्योंकि जिस तरह सूर्य के किंचित प्रकट होने पर भी रात्रि का अन्धकार दूर हो जाता है, उसी तरह कृष्ण के पवित्र नाम का थोड़ा-सा भी प्राकट्य अज्ञान के सारे अन्धकार को, जो विगत जन्मों में सम्पन्न बड़े-बड़े पापों के कारण हृदय में उत्पन्न होता है, दूर भगा सकता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.103) में आया है।

नामाभास हैते हय संसारेर क्षय ॥ 63 ॥

नाम-आभास हैते–मात्र नामाभास के बल पर ही; हय-हो जाता है; संसारेर क्षय-भौतिक बन्धन से उद्धार।

अनुवाद

भगवान् के पवित्र नाम का क्षीण प्रकाश भी पापमय जीवन के सारे फलों को दूर कर सकता है।

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् ।

अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन् ॥ 64॥

म्रियमाणः-मरते हुए; हरेः नाम-परम भगवान् के पवित्र नाम का; गृणन्-उच्चारण; पुत्र-उपचारितम्-यद्यपि अपने पुत्र के लिए कहा; अजामिलः-अजामिल ने; अपि- भी; अगात्-प्राप्त किया; धाम-आध्यात्मिक जगत्; किम् उत-तो क्या कहना; श्रद्धया-श्रद्धा और आदर के साथ; गृणन्-जपना।

अनुवाद

मरणासन्न अजामिल ने अपने पुत्र नारायण को बुलाने के उद्देश्य से भगवान् के नाम का उच्चारण किया, फिर भी उसे वैकुण्ठ प्राप्त हुआ। तो फिर उनके विषय में क्या कहा जाए, जो श्रद्धा तथा आदरपूर्वक पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं?'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (6.2.49) से लिया गया है।

नामाभासे 'मुक्ति' हय सर्व-शास्त्रे देखि ।

श्री-भागवते ताते अजामिल-साक्षी" ॥65॥

नाम-आभासे–पवित्र हरिनाम की किरणों की झलक मात्र से; मुक्ति-मुक्ति; हय-हो जाती है; सर्व-शास्त्रे-सभी शास्त्रों में; देखि-मैं देखता हूँ; श्री-भागवते- श्रीमद्भागवत; ताते इसका; अजामिल-अजामिल; साक्षी–साक्षी है।

अनुवाद

"भगवान् के पवित्र नाम के तेज की हल्की-सी किरणों से भी (नामाभास) मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इसे हम समस्त प्रामाणिक शास्त्रों में देख सकते हैं। इसका साक्ष्य श्रीमद्भागवत में अजामिल की कथा में मिलता है।"

शुनिया प्रभुर सुख बाड़ये अन्तरे ।

पुनरपि भङ्गी करि' पुछये ताँहारे ॥66॥

शुनिया–सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; सुख–प्रसन्नता; बाड़ये-बढ़ गई; अन्तरे हृदय के भीतर; पुनरपि फिर भी; भङ्गी करि'–स्वभावतः; पुछये ताँहारे हरिदास ठाकुर से पूछा।

अनुवाद

जब हरिदास ठाकुर से श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह सुना, तो उनके हृदय में सुख बढ़ गया, किन्तु स्वभावतः उन्होंने और आगे पूछा।

"पृथिवीते बहु-जीव—स्थावर-जङ्गम ।

इहा-सबार कि प्रकारे हइबे मोचन?" ॥ 67॥

पृथिवीते-इस पृथ्वी पर; बहु-जीव–अनेक जीव; स्थावर-अचल; जङ्गम-चल; इहा-सबार-इन सबका; कि प्रकारे-किस प्रकार; हइबे मोचन-उद्धार हो पाएगा।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "इस पृथ्वी पर अनेक जीव हैं-कुछ अचर हैं और कुछ चर। वृक्षों, लताओं, कीड़ों तथा अन्य जीवों का क्या होगा? वे कैसे भवबन्धन से छूट सकेंगे?"

हरिदास कहे,–"प्रभु, से कृपा तोमार।

स्थावर-जङ्गम आगे करियाछ निस्तार ॥68॥

हरिदास कहे-हरिदास ने उत्तर दिया; प्रभु-मेरे प्रिय प्रभु; से—उस; कृपा-कृपा से; तोमार-आपकी; स्थावर-जङ्गम-अचर और चर जीवों का; आगे-पहले से ही; करियाछ निस्तार–आपने उद्धार कर दिया है।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, "हे प्रिय प्रभु, सारे चर तथा अचर प्राणियों का उद्धार तो आपकी कृपा से होता है। आपने पहले ही यह कृपा करके उनका उद्धार किया है।

तुमि ये करियाछ एइ उच्च सङ्कीर्तन ।

स्थावर-जङ्गमेर सेइ हयत' श्रवण ॥ 69॥

तुमि-आपने; ये-जो; करियाछ–किया है; एइ–यह; उच्च-उच्च स्वर में; सङ्कीर्तन-हरिनाम संकीर्तन; स्थावर-जमेर-सभी जीवात्माओं का, अचर और चर; सेइ-वे; हयत'–हुए हैं; श्रवण-सुनकर।

अनुवाद

आपने उच्च स्वर से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन किया है और हर चर या अचर प्राणी ने उसे सुनकर लाभ उठाया है।

शुनिया जङ्गमेर हय संसार-क्षय ।

स्थावरे से शब्द लागे, प्रतिध्वनि हय ॥ 70 ॥

शुनिया-सुनकर; जङ्गमेर-उन जीवों का जो चल सकते हैं; हय-हुआ है; संसार-क्षय-भौतिक जगत् के बन्धन का नाश; स्थावरे-अचर जीवों का; से शब्द-उस दिव्य ध्वनि से; लागे-स्पर्श कर; प्रति-ध्वनि-प्रति ध्वनि; हय-हो गई।

अनुवाद

"हे प्रभु, जिन चर प्राणियों ने आपके उच्च संकीर्तन को सुना है, वे पहले ही भवबन्धन से छूट चुके हैं, और जब वृक्ष जैसे अचर जीव उसे सुनते हैं, तो एक प्रतिध्वनि होती है।

'प्रतिध्वनि' नहे, सेइ करये 'कीर्तन' ।

तोमार कृपार एइ अकथ्य कथन ॥79॥

प्रति-ध्वनि नहे-वह ध्वनि तरंग प्रतिध्वनि नहीं है; सेइ-वे; करये कीर्तन-कीर्तन गा रहे हैं; तोमार कृपार–आपकी कृपा की; एइ–यह; अकथ्य कथन-अचिन्त्य घटना है।

अनुवाद

किन्तु, वास्तव में यह प्रतिध्वनि नहीं, यह तो अचर जीवों का कीर्तन है। यद्यपि यह अचिन्त्य है, किन्तु आपकी कृपा से यह सब सम्भव है।

सकल जगते हय उच्च सङ्कीर्तन ।।

शुनिया प्रेमावेशे नाचे स्थावर-जङ्गम ॥72॥

सकल जगते-समस्त ब्रह्माण्ड में; हय-हो रहा है; उच्च सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण मन्त्र का उच्च संकीर्तन; शुनिया–सुनकर; प्रेम-आवेशे दिव्य प्रेमभाव में; नाचे-नाच रहे हैं; स्थावर-जङ्गम-अचर तथा चर, सभी जीव।

अनुवाद

जब आपके अनुयायियों द्वारा विश्वभर में हरे कृष्ण मन्त्र का उच्च स्वर से कीर्तन होता है, तो सारे अचर तथा चर जीव भक्तिमय प्रेम में नृत्य करते हैं।

यैछे कैला झारिखण्डे वृन्दावन याइते ।

बलभद्र-भट्टाचार्य कहियाछेन आमाते ॥73॥

यैछे-जैसे; कैला-आपने किया; झारिखण्डे-झारखण्ड नामक जंगल में; वृन्दावन याइते-वृन्दावन जाते हुए; बलभद्र-भट्टाचार्य-आपके सेवक बलभद्र भट्टाचार्य ने; कहियाछेन आमाते-मुझे बताया है।

अनुवाद

हे प्रभु, जब आप झारखंड जंगल से होते हुए वृन्दावन जा रहे थे, तब जितनी सारी घटनाएँ घटीं, उनका वर्णन आपके सेवक बलभद्र भट्टाचार्य ने मुझसे किया है।

वासुदेव जीव लागि' कैल निवेदन ।

तबे अङ्गीकार कैला जीवेर मोचन ॥74॥

वासुदेव-वासुदेव नामक भगवद्भक्त; जीव लागि'—सभी जीवों के लिए; कैल निवेदन-अपना निवेदन अर्पित किया; तबे-उस समय; अङ्गीकार कैला-आपने स्वीकार किया; जीवेर मोचन-सभी जीवों का उद्धार।

अनुवाद

“जब आपके भक्त वासुदेव दत्त ने आपके चरणकमलों पर सारे जीवों के उद्धार के लिए निवेदन किया, तो आपने वह प्रार्थना स्वीकार कर ली।

जगत् निस्तारिते एइ तोमार अवतार ।

भक्त-भाव आगे ताते कैला अङ्गीकार ॥75॥

जगत् निस्तारिते-समस्त जगत् का उद्धार करने के लिए; एइ–यह; तोमार अवतार-आपका अवतार; भक्त-भाव-एक भक्त का भाव; आगे-पहले से; ताते-अतः; कैला अङ्गीकार-आपने स्वीकार किया है।

अनुवाद

“हे प्रभु, आपने इस संसार के सारे पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए ही भक्त का रूप स्वीकार किया है।

उच्च सङ्कीर्तन ताते करिला प्रचार ।

स्थिर-चर जीवेर सब खण्डाइला संसार" ॥76 ॥

उच्च सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण मन्त्र का उच्च स्वर में कीर्तन; ताते-अतः; करिला प्रचार-आपने फैलाया है; स्थिर-चर-अचर और चर; जीवेर-जीवों का; सब-सब; खण्डाइला-आपने समाप्त कर दिया है; संसार-भौतिक अस्तित्व का बन्धन।

अनुवाद

“आपने हरे कृष्ण महामन्त्र के उच्च कीर्तन का प्रचार किया है और इस तरह से सारे चर तथा अचर प्राणियों को भव-बन्धन से मुक्त किया है।”

प्रभु कहे,–“सब जीव मुक्ति यबे पाबे ।

एइ त’ ब्रह्माण्ड तबे जीव-शून्य हबे!" ॥77॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; सब जीव-सभी जीव; मुक्ति-मुक्ति; यबे-जब; पाबे—प्राप्त करेंगे; एइ–यह; त’–निश्चय ही; ब्रह्माण्ड–ब्रह्माण्ड; तबे-तब; जीव-शून्य-जीवों से रहित; हबे-हो जायेगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "यदि सारे जीवों को मुक्ति मिल जाए, तो सारा ब्रह्माण्ड जीवों से विहीन हो जायेगा।"

हरिदास बले, तोमार यावत्मर्त्ये स्थिति ।

तावत् स्थावर-जङ्गम, सर्व जीव-जाति ॥ 78॥

सब मुक्त करि' तुमि वैकुण्ठे पाठाइबा ।

सूक्ष्म-जीवे पुनः कर्मे उद्बुद्ध करिबा ॥79॥

हरिदास बले-हरिदास ठाकुर ने कहा; तोमार-आपकी; यावत्-जब तक; मर्त्ये-इस भौतिक जगत् में; स्थिति-स्थिति है; तावत्-उस काल तक; स्थावर-जङ्गम-अचर और चर; सर्व-सभी; जीव-जाति-जीव प्रजातियों को; सब-सभी; मुक्त करि'-मुक्त करके; तुमि-आप; वैकुण्ठे-आध्यात्मिक जगत् में; पाठाइबा-भेज देंगे; सूक्ष्म-जीवे-अविकसित चेतना वाले जीवात्मा; पुनः–फिर; कर्मे-अपने कर्मों में; उद्बुद्ध करिबा-आप जागृत कर देंगे।

अनुवाद

हरिदास ने कहा, "हे प्रभु, जब तक आप इस भौतिक जगत् में स्थित हैं, तब तक आप विभिन्न योनियों के समस्त विकसित चर तथा अचर जीवों को वैकुण्ठ लोक भेजते रहेंगे। तब आप पुनः उन जीवों को जागृत करेंगे, जो अब भी विकसित नहीं हैं और उन्हें कार्यों में लगायेंगे।"

सेइ जीव हबे इहाँ स्थावर-जङ्गम ।

ताहाते भरिबे ब्रह्माण्ड येन पूर्व-सम ॥80॥

सेइ जीव-ऐसे जीवात्मा; हबे-हो जायेंगे; इहाँ-इस भौतिक जगत् में; स्थावर-जङ्गम-अचर और चर जीव; ताहाते-उस प्रकार; भरिबे-आप भर देंगे; ब्रह्माण्ड-सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को; येन-जैसे; पूर्व-सम-पहले के समान ही।

अनुवाद

"इस तरह सारे चर तथा अचर जीव अस्तित्व को प्राप्त होंगे और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पहले की तरह पूरित हो जायेगा।"

तात्पर्य

जब हम प्रचार कार्य करते हैं, तब कुछ विरोधी तत्त्व यह तर्क करते हैं, "यदि सारे जीवों का कृष्णभावनामृत आन्दोलन के द्वारा उद्धार हो गया, तो फिर क्या होगा? तब तो सारा ब्रह्माण्ड जीवों से विहीन हो जायेगा।" इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि जेल में बहुत से कैदी होते हैं, किन्तु यदि कोई यह सोचे कि यदि सारे कैदी अच्छा आचरण करने लगें, तो जेल खाली हो जायेगा, तो वह सही नहीं होगा। यदि जेल के सारे कैदी छोड़ दिये जाएँ, तो अन्य अपराधी आकर इसे भर देंगे। जेल कभी खाली नहीं होगा, क्योंकि ऐसे अनेक भावी अपराधी हैं, जो जेल की कोठरियों को भरते रहेंगे, चाहे सरकार सारे वर्तमान अपराधियों को भी छोड़ दे। जैसाकि भगवद्गीता (13.22) में पुष्टि हुई है—कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु–"भौतिक प्रकृति के साथ जीव की संगति होने से वह विभिन्न योनियों में अच्छी तथा बुरी योनियाँ पाता है।" ऐसे अनेक अप्रकट जीव हैं, जो तमोगुण से आच्छादित हैं। वे क्रमशः रजोगुण को प्राप्त होंगे। उनमें से अधिकांश अपने सकाम कर्मों के कारण अपराधी बनकर जेलों को फिर से भरेंगे।

पूर्वे येन रघुनाथ सब अयोध्या लाञा ।

वैकुण्ठके गेला, अन्य-जीवे अयोध्या भराञा ॥81॥

पूर्वे-पूर्व में; येन-जैसे; रघुनाथ–रामचन्द्र; सब-सभी; अयोध्या-अयोध्या के निवासियों को; लञा-अपने साथ लेकर; वैकुण्ठके गेला–वैकुण्ठ लोक लौट गये; अन्य-जीवे-अन्य जीवात्माओं से; अयोध्या-अयोध्या; भराञा-भरकर।

अनुवाद

"पूर्वकाल में जब भगवान् रामचन्द्र ने यह जगत् छोड़ा, तो वे अयोध्या के सारे जीवों को अपने साथ लेते गये। तत्पश्चात् उन्होंने अयोध्या को पुनः अन्य जीवों से भर दिया।"

अवतरि' तुमि ऐछे पातियाछ हाट ।

केह ना बुझिते पारे तोमार गूढ़ नाट ॥82॥

अवतरि'–अवतरित होकर; तुमि-आपने; ऐ-इस प्रकार; पातियाछ हाट-एक बाजार लगा दिया है; केह ना बुझिते पारे-कोई समझ नहीं सकता; तोमार-आपके; गूढ़ नाट-गहन कार्यकलाप।

अनुवाद

"हे प्रभु, आपने इस भौतिक जगत् में अवतरित होकर एक योजना प्रारम्भ कर दी है, किन्तु कोई यह नहीं जानता कि आप किस तरह कार्य करते हैं।"

पूर्वे येन व्रजे कृष्ण करि' अवतार ।

सकल ब्रह्माण्ड-जीवेर खण्डाइला संसार ॥83॥

पूर्वे-पहले; येन-जैसे; व्रजे-वृन्दावन में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करि' अवतार-अवतरित होकर; सकल-सभी; ब्रह्माण्ड-जीवेर–इस ब्रह्माण्ड जीवों का; खण्डाइला-नाश किया; संसार-भौतिक अस्तित्व।

अनुवाद

"पूर्वकाल में, जब भगवान् कृष्ण वृन्दावन में अवतरित हुए, तो उन्होंने ब्रह्माण्ड के सारे जीवों को भौतिक स्थिति से इसी तरह मुक्त कर दिया था।"

न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ।

योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते ॥84॥

न–नहीं; च-भी; एवम्-अतः; विस्मयः-आश्चर्य; कार्यः-करना चाहिए; भवता-आपके द्वारा; भगवति–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में; अजे–जो अजन्मा हैं; योग-ईश्वर-ईश्वरे–योग शक्तियों के स्वामियों के स्वामी; कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; यतः-जिनके द्वारा; एतत्-सारे जीव; विमुच्यते-मुक्त कर दिये गये।

अनुवाद

"अजन्मा, योगेश्वरों के भी ईश्वर, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण समस्त चर तथा अचर प्राणियों का उद्धार करते हैं। भगवान् के कार्यकलाप तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.29.16) से है।

“अयं हि भगवान्दृष्टः कीर्तितः संस्मृतश्च

द्वेषानुबन्धेनाप्यखिल-सुरासुरादि- दुर्लभं फलं

प्रयच्छति, किमुत सम्यग्भक्तिमताम्” इति ॥85॥

अयम्-यह; हि-निश्चित रूप से; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; दृष्टः-देखे जाएँ; कीर्तितः-गुणगान किये जाएँ; संस्मृतः-स्मरण किये जाएँ; च-और; द्वेष-द्वेष के; अनुबन्धेन-भाव से; अपि-यद्यपि; अखिल-सुर-असुर-आदि-सभी देवताओं और असुरों द्वारा; दुर्लभम्-दुर्लभतापूर्वक प्राप्त; फलम्-फल; प्रयच्छति–प्रदान करते हैं; किम् उत—क्या कहना; सम्यक् पूर्णतया; भक्ति-मताम्-जो प्रेममयी सेवा में लगे हुए हैं; इति-अतः ।

अनुवाद

“भले ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को ईर्ष्या की दृष्टि से देखा जाये, उनका महिमागान किया जाये या उनका स्मरण किया जाये, तो भी वे अत्यन्त गुह्य मुक्ति प्रदान करते हैं, जो देवताओं तथा असुरों को विरले ही प्राप्त हो पाती है। तो फिर उनके विषय में क्या कहा जाए, जो पहले से भगवान् की भक्तिमयी सेवा में पूरी तरह से लगे हुए हैं?”

तात्पर्य

यह उद्धरण विष्णु पुराण (4.15.17) से है।

तैछे तुमि नवद्वीपे करि’ अवतार ।

सकल-ब्रह्माण्ड-जीवेर करिला निस्तार ॥86॥

तैछे-उसी प्रकार; तुमि-आपने; नवद्वीपे–नवद्वीप में; करि’ अवतार–अवतार रूप में प्रकट होकर; सकल-सभी; ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्ड के; जीवेर-जीवों का; करिला निस्तार-उद्धार कर दिया है।

अनुवाद

"आपने नवद्वीप में अवतरित होकर, कृष्ण की ही तरह, ब्रह्माण्ड के सारे जीवों का पहले से ही उद्धार कर दिया है।

ये कहे,–'चैतन्य-महिमा मोर गोचर हय'।

से जानुक, मोर पुनः एइ त' निश्चय ॥87॥

ये कहे-जो भी कहता है; चैतन्य-महिमा-श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमा; मोर गोचर-मैं जानता हूँ; हय-होगा; से जानुक-वह जानता होगा; मोर-मेरा; पुनः–फिर से; एइ त निश्चय-यह निष्कर्ष है।

अनुवाद

"कोई कह सकता है कि वह श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमा को समझता है। वह जो भी जान सके जाने, किन्तु जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मेरा तो यही निर्णय है।

तोमार ये लीला महा-अमृतेर सिन्धु।

मोर मनो-गोचर नहे तार एक बिन्दु ॥88॥

तोमार-आपकी; ये-जो भी; लीला-लीलाएँ हैं; महा-अमृतेर सिन्धु-अमृत का एक विशाल समुद्र; मोर-मेरे लिए; मनः-गोचर नहे-समझना सम्भव नहीं है; तार-इसकी; एक बिन्दु-एक बूँद।

अनुवाद

"हे प्रिय प्रभु, आपकी लीलाएँ अमृत के सागर के समान हैं। मेरे लिए उस सागर की महिमा की कल्पना कर पाना या उसकी एक बूँद तकको समझ पाना भी सम्भव नहीं है।"

एत शुनि' प्रभुर मने चमत्कार हैल।

'मोर गूढ़-लीला हरिदास केमने जानिल?' ॥89॥

एत शुनि'-यह सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; मने-मन में; चमत्कार हैल-आश्चर्य हो गया; मोर-मेरी; गूढ़-लीला-गुह्य लीलाएँ; हरिदास-हरिदास; केमने-कैसे; जानिल-समझ गया।

अनुवाद

यह सब सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने सोचा, "ये तो वास्तव में मेरी गुह्य लीलाएँ हैं। हरिदास उन्हें कैसे समझ गया?"

मनेर सन्तोषे ताँरे कैला आलिङ्गन ।

बाह्ये प्रकाशिते ए-सब करिला वर्जन ॥90॥

मनेर सन्तोषे–मन के सम्पूर्ण सन्तोष के साथ; ताँरे–उन्हें; कैला आलिङ्गन-उन्होंने आलिंगन किया; बाह्य-बाहरी रूप से; प्रकाशिते-प्रकाशित करने को; ए-सब-यह सब; करिला वर्जन-उन्होंने वर्जन किया।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के कथनों से अत्यधिक सन्तुष्ट होकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया। किन्तु बाह्य रूप से इन विषयों पर उन्होंने अधिक विचार-विमर्श नहीं किया।

ईश्वर-स्वभाव, ऐश्वर्य चाहे आच्छादिते ।

भक्त-ठाञि लुकाइते नारे, हय त' विदिते ॥91॥

ईश्वर-स्वभाव–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्वभाव; ऐश्वर्य-महिमा; चाहे-चाहते हैं; आच्छादिते-छुपाना; भक्त-ठाञि-अपने भक्त के सामने; लुकाइते नारे-वे छुपा नहीं सकते; हय त' विदिते-यह सर्वविदित है।

अनुवाद

यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्वभाव है। यद्यपि वे अपने ऐश्वर्य को छिपाना चाहते हैं, किन्तु वे अपने भक्तों के समक्ष ऐसा नहीं कर पाते। यह सर्वविदित है।

उल्लङ्गित-त्रिविध-सीम-समातिशायि-

सम्भावनं तव परिब्रढ़िम-स्वभावम् ।

माया-बलेन भवतापि निगुह्यमानं

पश्यन्ति केचिदनिशं त्वदनन्य-भावाः ॥ 92॥

उल्लङ्घित-पार कर गया; त्रि-विध-तीन प्रकार की; सीम-सीमाएँ, सम-समान का; अतिशायि-और बढ़ने की सम्भावनम्-सम्भावना; तव-आपकी; परिव्रढ़िम-भगवत्ता का; स्वभावम्-वास्तविक स्वभाव; माया–बलेन-माया शक्ति के बल से; भवता-आपका; अपि-यद्यपि; निगुह्यमानम्-छुपा हुआ; पश्यन्ति–वे देखते हैं; केचित्-कुछ; अनिशम्-सदैव; त्वत्-आपके प्रति; अनन्य-भावाः-वे जो पूर्ण रूप से शरणागत हैं।

अनुवाद

"हे प्रभु, भौतिक प्रकृति में हर वस्तु काल, देश तथा विचार से सीमित होती है। किन्तु आपके गुण अतुलनीय तथा अद्वितीय होने के कारण सदैव ऐसी सीमाओं से परे होते हैं। आप कभी-कभी ऐसे गुणों को अपनी शक्ति से छिपा लेते हैं, किन्तु तो भी आपके अनन्य भक्त आपको सभी परिस्थितियों में देख सकने में सदा समर्थ होते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक यामुनाचार्य कृत स्तोत्र-रत्न (13) से है।

तबे महाप्रभु निज-भक्त-पाशे याञा ।

हरिदासेर गुण कहे शत-मुख हञा ॥93 ॥

तबे-इसके बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-भक्त-पाशे-अपने अन्तरंग भक्तों के पास; याञा-जाकर; हरिदासेर गुण-हरिदास के दिव्य गुण; कहे-वर्णित करते हैं; शत-मुख-जैसे सौ मुखों से युक्त; हञा–होकर।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी भक्तों के पास गये और उनसे हरिदास ठाकुर के दिव्य गुणों के बारे में इस प्रकार बतलाने लगे मानो उनके सैकड़ों मुख हों।

भक्तेर गुण कहिते प्रभुर बाड़ये उल्लास ।

भक्त-गण-श्रेष्ठ ताते श्री-हरिदास ॥ 94॥

भक्तेर-भक्तों के; गुण-गुणों को; कहिते-कहकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; बाड़ये-बढ़ जाता है; उल्लास-आनन्द; भक्त-गण-सभी भक्तों में; श्रेष्ठ–सर्वश्रेष्ठ; ताते-उनमें; श्री-हरिदास–हरिदास ठाकुर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने भक्तों का गुणगान करने में बड़ीप्रसन्नता होती है और इन भक्तों में हरिदास ठाकुर सर्वोपरि हैं।

हरिदासेर गुण-गण—असङ्ख्य, अपार।

केह कोन अंशे वर्णे, नाहि पाय पार॥ 95॥

हरिदासेर गुण-गण-हरिदास ठाकुर के दिव्य गुणों का भण्डार; असङ्ख्य-असंख्य; अपार–अगाध; केह-कोई; कोन अंशे-कुछ भाग; वर्ण-वर्णन करता है; नाहि पाय पार-सीमा तक नहीं पहुँच सकता।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के दिव्य गुण असंख्य तथा अगाध हैं। कोई उनके एक अंश का वर्णन भले कर ले, किन्तु उन सबकी गणना कर पाना असम्भव है।

चैतन्य-मङ्गले श्री-वृन्दावन-दास।

हरिदासेर गुण किछु करियाछेन प्रकाश॥ 96॥

चैतन्य-मङ्गले-चैतन्य मंगल (चैतन्य भागवत) नामक ग्रन्थ में; श्री-वृन्दावन-दास-श्री वृन्दावन दास ठाकुर ने; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; गुण-गुण; किछु-कुछ; करियाछेन प्रकाश-प्रकाशित किये हैं।

अनुवाद

चैतन्य मंगल में श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने कुछ सीमा तक हरिदास ठाकुर के गुणों का वर्णन किया है।

सब कहा ना याय हरिदासेर चरित्र।

केह किछु कहे करिते आपना पवित्र॥ 97॥

सब-सभी; कहा-कहना; ना याय–सम्भव नहीं है; हरिदासेर चरित्र-हरिदास ठाकुर का चरित्र; केह किछु कहे-कोई कुछ वहता है; करिते-केवल बनाने के लिए; आपना-स्वयं को; पवित्र-पवित्र, शुद्ध।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के सभी गुणों का वर्णन कोई नहीं कर सकता। अपने आप को पवित्र बनाने के लिए उनके विषय में कोई कुछ कह सकता है।

वृन्दावन-दास याहा ना कैल वर्णन ।

हरिदासेर गुण किछु शुन, भक्त-गण ॥98॥

वृन्दावन-दास-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर; याहा–जो कुछ; ना-नहीं; कैल वर्णन-वर्णन किया; हरिदासेर गुण-हरिदास ठाकुर के गुण; किछु-कुछ; शुन-सुनो; भक्त-गण-हे श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों॥

अनुवाद

हे श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों, अब हरिदास ठाकुर के उन गुणों के विषय में थोड़ा सुनो, जिनका वर्णन वृन्दावनदास ठाकुर ने विस्तार से नहीं किया है।

हरिदास यबे निज-गृह त्याग कैला ।

बेनापोलेर वन-मध्ये कत-दिन रहिला ॥ 99॥

हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; यबे-जब; निज-गृह-अपना घर; त्याग कैला-त्याग दिया; बेनापोलेर-बेनापोल नामक गाँव के; वन-मध्ये-वन में; कत-दिन-कुछ समय तक; रहिला-रहे, निवास किया।

अनुवाद

अपना घर छोड़ने के बाद हरिदास ठाकुर कुछ समय तक बेनापोल के जंगल में रहे।

निर्जन-वने कुटिर करि' तुलसी सेवन ।

रात्रि-दिने तिन लक्ष नाम-सङ्कीर्तन ॥100॥

निर्जन-वने-एकान्त जंगल में; कुटिर-एक कुटिया; करि'–बनाकर; तुलसी-तुलसी का पौधा; सेवन-पूजकर; रात्रि-दिने सम्पूर्ण दिन और रात; तिन-तीन; लक्ष-लाख; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का जप किया करते थे।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने एकान्त जंगल में एक कुटिया बनाई। वहाँ उन्होंने तुलसी का पौधा लगाया और तुलसी के समक्ष वे प्रतिदिन तीन लाख बार भगवान् के नाम का जप किया करते थे। वे दिन-रात निरन्तर जप किया करते थे।

तात्पर्य।

बेनापोल गाँव यशोहर (जेस्सोर) जिले में स्थित है, जो अब बाँग्लादेश में है। यह गाँव बनगाँव स्टेशन के पास है, जो कि बाँग्लादेश की सीमा पर है। और जहाँ कलकत्ता के सियालदह स्टेशन से पूर्वी रेलवे द्वारा पहुँचा जा सकता है। हरिदास ठाकुर हरे कृष्ण महामन्त्र के जप के आचार्य होने के कारण नामाचार्य हरिदास ठाकुर कहलाते हैं। उनके निजी दृष्टान्त से हम समझ सकते हैं कि हरे कृष्ण मन्त्र का जप तथा कृष्णभावनामृत में अत्यधिक प्रगति करना अत्यन्त सरल है। बिना कठिनाई के कोई कहीं भी बैठ सकता है, विशेष रूप से गंगा, यमुना या किसी अन्य पवित्र नदी के किनारे बैठने के लिए स्थान या कुटिया बनाकर, तुलसी का पौधा लगाकर तथा तुलसी के सामने अविचल भाव से हरे कृष्ण महामन्त्र का जप कर सकता है।

हरिदास ठाकुर नित्य प्रतिदिन अपनी माला में तीन लाख बार नाम जप करते थे। वे दिन-रात हरे कृष्ण महामन्त्र के सोलह नामों का जप किया करते थे। किन्तु किसी को हरिदास ठाकुर की नकल नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अन्य कोई भी एक दिन में तीन लाख नाम जप नहीं कर सकता। ऐसा जप मुक्त पुरुष के लिए है। हाँ, हम उनके दृष्टान्त का पालन नित्यप्रति सोलह माला हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करके तथा तुलसी के पौधे को आदर प्रदान करके कर सकते हैं। यह किसी के लिए कोई कठिन कार्य नहीं है और तुलसी के पौधे के समक्ष व्रत लेकर नाम जप करने में ऐसी आध्यात्मिक शक्ति होती है कि ऐसा करने से ही मनुष्य आध्यात्मिक रूप से सशक्त बन जाता है। इसलिए हम हरे कृष्ण आन्दोलन के सदस्यों से अनुरोध करते हैं कि वे हरिदास ठाकुर के दृष्टान्त का दृढ़ता से पालन करें। सोलह माला जप करने में अधिक समय नहीं लगता, न ही तुलसी को नमस्कार करना कठिन है। इस विधि में अत्यधिक आध्यात्मिक शक्ति है। इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए।

ब्राह्मणेर घरे करे भिक्षा निर्वाहण ।।

प्रभावे सकल लोक करये पूजन ॥101॥

ब्राह्मणेर घरे–एक ब्राह्मण के घर में; करे-करते; भिक्षा निर्वाहण-भिक्षा अन्न माँगते; प्रभावे-आध्यात्मिक बल द्वारा; सकल लोक-सभी लोग; करये पूजन-पूजा करते।

अनुवाद

शारीरिक पालन-पोषण के लिए वे एक ब्राह्मण के घर जाकर कुछ भोजन माँग लाते। वे आध्यात्मिक रूप से इतने प्रभावशाली थे कि आसपास के सारे लोग उनकी पूजा करते थे।

तात्पर्य

हरिदास ठाकुर के दिनों में सारे ब्राह्मण भगवान् नारायण की पूजा शालग्राम शिला के रूप में करते थे। इसलिए ब्राह्मण के घर से भिक्षा माँगने का अर्थ था कृष्ण प्रसाद लेना जो कि दिव्य (निर्गुण) होता है। यदि हम अन्यों के, यथा कर्मियों के घर से भोजन लें, तो हम जिनसे भिक्षा लेते हैं, उनके गुणों में भागीदार बनेंगे। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु वैष्णवों के घरों से प्रसाद लिया करते थे। यही सामान्य विधि है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को परामर्श दिया जाता है कि वे किसी अन्य स्थान से भोजन न माँगकर केवल वैष्णव या ब्राह्मण के घर से भिक्षा लें, जहाँ अर्चाविग्रह की पूजा की जाती है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है, विषयीर अन्न खाइले दुष्ट हय मन–यदि कोई भक्त किसी ऐसे कर्मी के घर से भिक्षा लेता है, जो केवल धन में रुचि रखता है, तो उसका मन अशुद्ध हो जायेगा। हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि भक्त का जीवन वैराग्यविद्या अर्थात् वैराग्य और ज्ञान का जीवन है। इसलिए सारे भक्तों को आगाह किया जाता है कि वे अन्यों के बल पर विलासमय जीवन न बितायें। विशेषकर मन्दिर के क्षेत्र में रहने वाले गृहस्थों को चाहिए कि वे मूल्यवान वस्त्र, भोजन तथा वाहन प्राप्त करके कर्मियों का अनुकरण न करें। जहाँ तक सम्भव हो, इनसे बचना चाहिए। मन्दिर के हर सदस्य को, चाहे वह गृहस्थ हो, ब्रह्मचारी या संन्यासी हो, उसे हरिदास ठाकुर तथा छः गोस्वामियों के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए वैराग्य से परिपूर्ण जीवन बिताना चाहिए। अन्यथा माया अतीव प्रबल है, जिससे कोई भी व्यक्ति किसी भी समय माया का शिकार बनकर अपने आध्यात्मिक जीवन से पतित हो सकता है।

सेइ देशाध्यक्ष नाम—रामचन्द्र खाँन ।

वैष्णव-विद्वेषी सेइ पाषण्ड-प्रधान ॥ 102॥

सेइ-उस; देश-अध्यक्ष-जमींदार; नाम-जिसका नाम; रामचन्द्र खाँन–रामचन्द्र खान; वैष्णव-विद्वेषी-वैष्णवों से द्वेष रखनेवाला; सेइ-वह; पाषण्ड-प्रधान-नास्तिकों में सर्वप्रमुख।

अनुवाद

रामचन्द्र खान नामक एक व्यक्ति उस जिले का जमींदार था। वह वैष्णवों से द्वेष रखता था, अतएव वह बहुत बड़ा नास्तिक था।

हरिदासे लोके पूजे, सहिते ना पारे ।

ताँर अपमान करिते नाना उपाय करे ॥ 103॥

हरिदासे-हरिदास ठाकुर का; लोके-लोग; पूजे-सम्मान करते; सहिते ना पारे-वह सहन नहीं कर पाता था; ताँर–उनका; अपमान-अपमान; करिते-करने का; नाना-अनेक; उपाय-उपाय; करे–रचने लगा।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर को जिस तरह से सम्मान प्रदान किया जाता था, उसे न सह सकने के कारण रामचन्द्र खान ने उनका अपमान करने के लिए नाना प्रकार की योजनाएँ बनाई।

कोन-प्रकारे हरिदासेर छिद्र नाहि पाय ।।

वेश्या-गणे आनि' करे छिद्रेर उपाय ॥ 104॥

कोन-प्रकारे-किसी भी तरह; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर का; छिद्र-दोष; नाहि-नहीं; पाय-पाकर; वेश्या-गणे–वेश्याओं को; आनि'–लाकर; करे-करता है; छिद्रेर उपाय-दोष ढूँढने का उपाय।

अनुवाद

किन्तु उसे किसी भी उपाय से हरिदास ठाकुर के चरित्र में कोई दोष नहीं मिल सका। अतएव उसने स्थानीय वेश्याएँ बुलाई और वह हरिदास की पवित्रता को श्रेयहीन करने की योजना बनाने लगा।

तात्पर्य

यह तो नास्तिक पुरुषों की विशेषता है, किन्तु तथाकथित धर्मविदों, साधुओं, फकीरों, संन्यासियों तथा ब्रह्मचारियों में भी कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अनेक शत्रु हैं, जो सदैव उसमें दोष निकालने का प्रयास करते रहते हैं। वे इस पर विचार नहीं करते कि श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से यह आन्दोलन स्वयमेव अग्रसर हो रहा है, क्योंकि महाप्रभु चाहते थे कि इसका प्रसार विश्व के नगर-नगर तथा गाँव-गाँव में हो। हम महाप्रभु की इच्छा को पूरा करने का प्रयास कर रहे हैं और हमारा प्रयास काफी सफल रहा है, किन्तु इस आन्दोलन के शत्रु इसमें उसी तरह दोष निकालने का व्यर्थ ही प्रयास कर रहे हैं, जिस तरह धूर्त रामचन्द्र खान ने हरिदास ठाकुर का विरोध किया था।

वेश्या-गणे कहे,_“एइ वैरागी हरिदास ।

तुमि-सब कर इहार वैराग्य-धर्म नाश" ॥105॥

वेश्या-गणे–वेश्याओं से; कहे-कहा; एइ-यह; वैरागी-संन्यासी है; हरिदास-हरिदास ठाकुर; तुमि-सब-तुम सब; कर-कारण बनो; इहार—उसका; वैराग्य-धर्म-संन्यास जीवन से; नाश-पतन।

अनुवाद

रामचन्द्र खान ने वेश्याओं से कहा, “हरिदास ठाकुर नाम का एक वैरागी है। तुम सब उसे तपस्या के व्रत से विचलित करने की कोई युक्ति निकालो।”

तात्पर्य

भक्ति तो वैराग्यविद्या (वैराग्य तथा ज्ञान) का मार्ग है। हरिदास ठाकुर इस मार्ग पर चल रहे थे, किन्तु रामचन्द्र खान ने उनके व्रत को खंडित करने की योजना बनाई । वैराग्य का अर्थ है, इन्द्रिय भोग, विशेष करके यौन सुख का परित्याग। इसलिए ब्रह्मचारी, संन्यासी या वानप्रस्थ को स्त्रियों से सम्बन्ध रखने का कड़ा निषेध है। हरिदास ठाकुर कठोर वैरागी थे। इसलिए रामचन्द्र खान ने वेश्याओं को बुलाया, क्योंकि वे अपने स्त्री सुलभ प्रभाव से ब्रह्मचर्य व्रत को भंग करने और भक्ति में लगे वैरागी या पुरुष को दूषित करने की विधि जानती हैं। रामचन्द्र खान द्वारा हरिदास ठाकुर का व्रत भंग कराने के लिए अन्य स्त्रियों को फुसला पाना असम्भव था। इसीलिए उसने वेश्याओं को बुलाया। भारत में स्त्रियों के साथ स्वतन्त्र रूप से मिल-जुल पाना कभी सम्भव नहीं रहा, किन्तु यदि कोई वेश्याओं से संगति करना चाहता था, तो उसके लिए वेश्याओं के क्षेत्र में वेश्याएँ मिलती थीं। भगवान् कृष्ण के काल में भी वेश्याएँ थीं, क्योंकि यह कहा जाता है कि भगवान् की अगवानी करने द्वारकापुरी की वेश्याएँ भी आई थीं। यद्यपि वे वेश्याएँ थीं, किन्तु वे भी कृष्ण-भक्त थीं।

वेश्या-गण-मध्ये एक सुन्दरी युवती ।

से कहे,–"तिन-दिने हरिब ताँर मति" ॥106॥

वेश्या-गण-मध्ये–वेश्याओं में; एक-एक; सुन्दरी–आकर्षक; युवती–युवती; से-वह; कहे-बोली; तिन-दिने–तीन दिनों में; हरिब–मैं आकर्षित कर लँगी; ता-उसका; मति–मन।

अनुवाद

इन वेश्याओं में से एक आकर्षक युवती को चुना गया। उसने वादा किया, "मैं तीन दिनों के भीतर हरिदास ठाकुर के मन को आकृष्ट कर लूंगी।"

खाँन कहे,— "मोर पाइक याउक तोमार सने ।

तोमार सहित एकत्र तारे धरि' येन आने" ॥ 107॥

खाँन कहे-रामचन्द्र खान ने कहा; मोर पाइक-मेरा सैनिक; याउक-उसे जाने दो; तोमार सने-तुम्हारे साथ; तोमार सहित-तुम्हारे संग; एकत्र-साथ मिलकर; तारे-उसे; धरि'–बन्दी बनाकर; येन-ताकि; आने-ला सकें।

अनुवाद

रामचन्द्र खान ने उस वेश्या से कहा, "मेरा सिपाही तुम्हारे साथ जायेगा, जिससे वह तुम्हें हरिदास ठाकुर के साथ देखते ही तुरन्त उसे बन्दी बना ले और तुम दोनों को मेरे पास ले आये।"

वेश्या कहे,— "मोर सङ्ग हउक एक-बार ।

द्वितीय-बारे धरिते पाइक लइमु तोमार" ॥ 108॥

वेश्या कहे–वेश्या ने कहा; मोर सङ्ग–मेरे साथ संगम; हउक-होने दो; एक-बार-एक बार; द्वितीय-बारे-दूसरी बार; धरिते-बन्दी बनाने के लिए; पाइक–सिपाही; लइमु-मैं ले जाऊँगी; तोमार-तुम्हारा।

अनुवाद

वेश्या ने उत्तर दिया, "पहले मुझे उससे एक बार उनके साथ संग कर लेने दीजिये, तब दूसरी बार मैं अपने साथ आपके सिपाही को उन्हें बन्दी बनाने के लिए ले जाऊँगी।"

रात्रि-काले सेइ वेश्या सुवेश धरिया।

हरिदासेर वासाय गेल उल्लसित हञा ॥109॥

रात्रि-काले-रात को; सेइ-वह; वेश्या--वेश्या; सु-वेश धरिया-आकर्षक वेश धारण करके; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; वासाय-निवासस्थान पर; गेल-गई; उल्लसित हञा–अत्यन्त आनन्दित होकर॥

अनुवाद

रात में वह वेश्या खूब सज-धजकर हरिदास ठाकुर की कुटिया में अत्यन्त हर्षपूर्वक गई।

तुलसी नमस्करि' हरिदासेर द्वारे याञा।

गोसाञिरे नमस्करि' रहिला दाण्डाञा ॥ 110॥

तुलसी नमस्करि'-तुलसी के पौधे को नमस्कार करके; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; द्वारे-द्वार पर; याञा-जाकर; गोसाञिरे-आचार्य को; नमस्करि'-प्रणाम करके; रहिला दाण्डाञा–खड़ी रही।

अनुवाद

तुलसी के पौधे को नमस्कार करने के बाद वह हरिदास ठाकुर के द्वार पर गई और उन्हें नमस्कार करके वहाँ खड़ी हो गई।

अङ्ग उघाड़िया देखाइ वसिला दुयारे।

कहिते लागिला किछु सुमधुर स्वरे ॥ 111॥

अङ्ग उघाड़िया-अपने शरीर के अंग प्रदर्शित करके; देखाइ–दिखाकर; वसिला-बैठ गई; दुयारे द्वार की देहली पर; कहिते लागिला-कहने लगी; किछु-कुछ; सु-मधुर स्वरे-अत्यन्त मधुर भाषा में।

अनुवाद

वह उनकी दृष्टि के सामने अपने शरीर को प्रदर्शित करते हुए दरवाजे की देहली पर बैठ गई और उनसे अत्यन्त मधुर शब्दों में बोली।

"ठाकुर, तुमि-परम-सुन्दर, प्रथम यौवन।

तोमा देखि' कोन् नारी धरिते पारे मन? ॥112॥

ठाकुर-हे महान् भक्त आचार्य; तुमि-आप; परम-सुन्दर–अति सुन्दर; प्रथम यौवन-युवावस्था का आरम्भ; तोमा देखि'–आपको देखकर; कोन् नारी-कौन स्त्री; धरिते पारे-संयम रख सकती है; मन–अपना मन।

अनुवाद

हे ठाकुर, हे महान् उपदेशक, महान् भक्त, आपका शरीर अतीव सुगठित है और आपके यौवन का शुभारम्भ अभी हो ही रहा है। आपको देखने के बाद ऐसी कौन-सी स्त्री होगी, जो अपने मन को वश में रख सके?

तोमार सङ्गम लागि' लुब्ध मोर मन।

तोमा ना पाइले प्राण ना याय धारण" ॥113॥

तोमार सङ्गम-आपके साथ संगम; लागि'–करने के लिए; लुब्ध-लोभित है; मोर मन-मेरा मन; तोमा-आपको; ना पाइले–यदि मैं प्राप्त नहीं करती; प्राण-मेरा जीवन; ना-नहीं; याय-रह सकता; धारण-धारण।

अनुवाद

"मैं आपके संग की इच्छुक हूँ। मेरा मन इसके लिए ललचाया हुआ है। यदि मैं आपको नहीं पाती, तो मैं अपने प्राण धारण नहीं कर सकेंगी।"

हरिदास कहे,—"तोमा करिमु अङ्गीकार।

सङ्ख्या -नाम-समाप्ति यावत् ना हय आमार॥ 114॥

तावत् तुमि वसि' शुन नाम-सङ्कीर्तन।

नाम-समाप्ति हैले करिमु ये तोमार मन" ॥ 115॥

हरिदास कहे-हरिदास ठाकुर ने कहा; तोमा-तुम्हें; करिमु अङ्गीकार-मैं स्वीकार करूँगा; सङ्ख्या-नाम-पवित्र नाम की संख्या; समाप्ति-समाप्त; यावत्-जब तक; ना-नहीं; हय होती; आमार-मेरा; तावत्-तब तक; तुमि-तुम; वसि'-

बैठकर; शुन-सुनो; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का जप; नाम-नाम जप की समाप्ति-समाप्ति; हैले–जब हो जायेगी; करिमु-मैं करूँगा; ये-जो; तोमार-तुम्हारे; मन-मन में है।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, "मैं तुम्हें अवश्य अपना लूँगा, किन्तु तुम्हें तब तक प्रतीक्षा करनी होगी, जब तक मैं अपनी जप माला में अपने निर्धारित जप समाप्त न कर लूँ। उस समय तक कृपया बैठो और पवित्र नाम के जप का श्रवण करो। ज्योंही मैं नाम जप समाप्त कर लूँगा, मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।"

एत शुनि' सेइ वेश्या वसिया रहिला ।

कीर्तन करे हरिदास प्रातः काल हैला ॥116॥

एत शुनि'-यह सुनकर; सेइ वेश्या-वह वेश्या; वसिया रहिला-वहीं बैठी रही; कीर्तन-जप; करे-करते हैं; हरिदास-हरिदास ठाकुर; प्रातः काल हैला–प्रातः का प्रकाश (उदय) हो गया।

अनुवाद

यह सुनकर वह वेश्या वहीं बैठी रही और हरिदास ठाकुर भोर होने तक जपमाला पर जप करते रहे।

प्रातःकाल देखि' वेश्या उठिया चलिला ।

सब समाचार याइ खाँनेरे कहिला ॥ 117॥

प्रातः काल देखि'-सवेरा देखकर; वेश्या-वेश्या; उठिया चलिला–खड़ी हो गई और चली गई; सब समाचार-सब समाचार; याइ-जाकर; खाँनेरे कहिला–रामचन्द्र खान को बताई।

अनुवाद

जब उस वेश्या ने देखा कि सुबह हो गई, तो वह उठी और चली गई। रामचन्द्र खान के पास आकर उसने सारे समाचार बतलाए।

'आजि आमा अङ्गीकार करियाछे वचने ।

कालि अवश्य ताहार सङ्गे हइबे सङ्गमे' ॥118॥

आजि-आज; आमा–मुझे; अङ्गीकार–स्वीकार; करियाछे-उन्होंने किया है; वचने-वचन देकर; कालि-कल; अवश्य-जरूर; ताहार सङ्गे–उनके साथ; हइबे-होगा; सङ्गमे-संगम।।

अनुवाद

"आज हरिदास ठाकुर ने मेरे साथ भोग करने का वचन दिया है। कल निश्चय ही मेरा उसके साथ संग होगा।"

आर दिन रात्रि हैले वेश्या आइल ।

हरिदास तारे बहु आश्वास करिल ॥ 119॥

आर दिन-अगले दिन; रात्रि-रात; हैले–जब हो गई; वेश्या-वेश्या; आइल-आई; हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; तारे-उसे; बहु-कई; आश्वास करिल-आश्वासन दिये।

अनुवाद

अगली रात को जब वह वेश्या फिर से आई, तो हरिदास ठाकुर ने उसे अनेक आश्वासन दिये।

'कालि दुःख पाइला, अपराध ना लइबा मोर ।

अवश्य करिमु आमि तोमाय अङ्गीकार ॥120॥

कालि-कल; दुःख पाइला-तुम निराश हुई; अपराध-अपराध; ना लइबा-कृपया मत मानना; मोर-मेरा; अवश्य निश्चित ही; करिमु–करूँगा; आमि-मैं; तोमाय-तुम्हें; अङ्गीकार–स्वीकार।

अनुवाद

कल रात को तुम्हें निराश होना पड़ा। कृपया मेरा अपराध क्षमा कर दो। मैं अवश्य ही तुम्हें स्वीकार करूँगा।

तावत् इहाँ वसि' शुन नाम-सङ्कीर्तन ।

नाम पूर्ण हैले, पूर्ण हबे तोमार मन' ॥121॥

तावत्-उस समय तक; इहाँ–यहाँ; वसि'–बैठकर; शुन-सुनो; नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नामों का जप; नाम पूर्ण हैले-जैसी ही नियमित नाम जप समाप्त हो जायेगा; पूर्ण–सन्तुष्ट; हबे हो जायेगा; तोमार मन तुम्हारा मन॥

अनुवाद

कृपया बैठो और तब तक हरे कृष्ण महामन्त्र का जप सुनो, जब तक मेरा नियमित जप पूरा नहीं हो जाता। तब तुम्हारी इच्छा अवश्यमेव पूरी हो जायेगी।"

तुलसीरे ताड़्के वेश्या नमस्कार करि' ।

द्वारे वसि' नाम शुने बले 'हरि' 'हरि' ॥122॥

तुलसीरे—तुलसी के पौधे को; ताड़्के-हरिदास ठाकुर को; वेश्या-वेश्या; नमस्कार करि'-प्रणाम करके; द्वारे वसि'-द्वार पर बैठकर; नाम-पवित्र नाम; शुने-सुनकर; बले–कहने लगी; हरि हरि-"हे मेरे प्रभु हरि, हे मेरे प्रभु हरि।"

अनुवाद

तुलसी के पौधे को तथा हरिदास ठाकुर को नमस्कार करके वह द्वार पर बैठ गई। हरिदास ठाकुर को हरे कृष्ण मन्त्र का जप करते सुनकर वह भी "हे मेरे प्रभु हरि, हे मेरे प्रभु हरि' का उच्चारण करने लगी।

तात्पर्य

यहाँ स्पष्ट देखा जा सकता है कि एक वैष्णव किस तरह दिव्य युक्ति से पतितात्मा का उद्धार करता है। यह वेश्या हरिदास ठाकुर को दूषित करने आई थी, किन्तु उन्होंने इस वेश्या का उद्धार करना अपना कर्तव्य समझा। जैसाकि स्पष्ट दिखलाया गया है, उद्धार की विधि अत्यन्त सरल है। वह वेश्या श्रद्धा तथा आदरपूर्वक हरिदास ठाकुर के सान्निध्य में आई, जिन्होंने स्वयं हरे कृष्ण महामन्त्र के जप द्वारा उसके भौतिक रोग को दूर कर दिया। यद्यपि उस वेश्या का कुछ और ही निकृष्ट उद्देश्य था, किन्तु वह किसी तरह वैष्णव के सान्निध्य में आई और "हरि हरि' उच्चारण का अनुकरण करके उसने उन्हें तुष्ट कर लिया। निष्कर्ष यह है कि वैष्णव की संगति, भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन तथा तुलसी अथवा वैष्णव को नमस्कार करने से मनुष्य दिव्य भक्त बन सकता है। इस तरह उसका भौतिक कल्मष पूर्णतया धुल जाता है।

रात्रि-शेष हैल, वेश्या उसिमिसि करे ।

तार रीति देखि' हरिदास कहेन ताहारे ॥123॥

रात्रि-रात; शेष हैल–समाप्त होने को आई; वेश्या-वेश्या; उसिमिसि-व्याकुल; करे-हो गई; तार-उसके; रीति-कार्यकलाप; देखि'-देखकर; हरिदास-हरिदास ठाकुर: कहेन–कहते हैं; ताहारे-उससे।

अनुवाद

जब रात समाप्त हो गई, तो वेश्या व्याकुल हो उठी। यह देखकर हरिदास ठाकुर उससे इस तरह बोले।

कोटि-नाम-ग्रहण-यज्ञ करि एक-मासे ।

एइ दीक्षा करियाछि, हैल आसि' शेषे ॥ 124॥

कोटि-नाम-ग्रहण-1 करोड़ नाम जप; यज्ञ-ऐसा यज्ञ; करि-मैं करता हूँ; एक-मासे-एक महीने में; एइ–यह; दीक्षा-प्रण; करियाछि-मैंने किया है; हैल-यह; आसि-पास है; शेषे–समाप्ति के।

अनुवाद

मैंने एक मास में एक करोड़ नाम जप करने का व्रत ले रखा है। किन्तु अब यह समाप्ति पर है।

तात्पर्य

यदि कोई नित्य प्रतिदिन एक मास तक 333,333 नाम नियमित रूप से जपे, तो उस संख्या में दस और मिलाकर 100 लाख बार जप हो जाये। भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा इसी प्रकार करता है। ऐसी पूजा यज्ञ कहलाती है। यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैः यजन्ति हि सुमेधसः–जिनकी बुद्धि तीव्र होती है, वे हरिनाम यज्ञ को स्वीकार करते हैं। इस यज्ञ को सम्पन्न करने से मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तुष्ट करता है और आध्यात्मिक जीवन में पूर्णता प्राप्त करता है। बाहरी दृष्टि से हरिदास ठाकुर मुसलमान परिवार के थे। फिर भी चूंकि वे हरे कृष्ण महामन्त्र कीर्तन के यज्ञ में लगे रहते थे, अतः वे नियमित रूप से दीक्षाप्राप्त ब्राह्मण बन गये। जैसाकि श्रीमद्भागवत (3.33.6) में कहा गया है :

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्

यत्प्रह्वणाद् यत्स्मरणादपि क्वचित् ।

श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते

कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥

भक्त चाहे चांडाल परिवार का क्यों न हो, यदि वह भगवान् की शरण ग्रहण कर लेता है, तो वह तुरन्त योग्य ब्राह्मण बन जाता है और यज्ञ करने के लिए उपयुक्त हो जाता है, किन्तु ब्राह्मण परिवार में जन्में व्यक्ति को संस्कार पूरा होने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। तब जाकर वह संस्कृत या शुद्ध कहलाता है। श्रीमद्भागवत (12.1.40) में यह भी कहा गया है :

असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसावृताः।

प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजान्यरूपिणः ॥

"कलियुग में निम्न जाति के लोग जिनका संस्कार नहीं होता, अर्थात् म्लेच्छगण, जो वास्तविक जीवन में संस्कार का प्रयोग नहीं जानते तथा जो रजो तथा तमो गुणों से आवृत रहते हैं, वे प्रशासकों के पदों पर होंगे। वे अपने नास्तिक कार्यों से नागरिकों का भक्षण करेंगे।" जो व्यक्ति संस्कार विधि से शुद्ध नहीं हुआ रहता, वह असंस्कृत कहलाता है, किन्तु यदि कोई दीक्षा द्वारा शुद्ध बनने के बाद भी क्रियाहीन बना रहता है-अर्थात् दूसरे शब्दों में, यदि कोई अपने जीवन में शुद्धता के सिद्धान्तों को लागू नहीं करता तो वह अशुद्ध म्लेच्छ या यवन ही बना रहता है। दूसरी ओर हम देखते हैं कि यद्यपि हरिदास ठाकुर म्लेच्छ या यवन परिवार में जन्मे थे, किन्तु प्रतिदिन कम-से-कम तीन लाख नाम जप करके नाम यज्ञ करने से वे नामाचार्य हरिदास ठाकुर बन गये।

यहाँ हम पाते हैं कि हरिदास ठाकुर कड़ाई से तीन लाख नाम जप करने के विधान का पालन करते रहे। अतएव जब वेश्या बेचैन होने लगी, तो उन्होंने उसे सूचित किया कि वे पहले अपना जप पूरा कर लें, बाद में वे उसे तुष्ट कर पायेंगे। वस्तुतः हरिदास ठाकुर ने लगातार तीन रात नाम जप किया और उस वेश्या को श्रवण करने का अवसर प्रदान किया। इस तरह वह शुद्ध बन गई, जैसाकि अगले श्लोकों से विदित होगा।

आजि समाप्त हइबे,—हेन ज्ञान छिल ।

समस्त रात्रि निलुँ नाम समाप्त ना हैल ॥125॥

आजि-आज; समाप्त हइबे–समाप्त हो जायेगा; हेन ज्ञान छिल-मैंने सोचा; समस्त रात्रि-सारी रात; निलुँ–मैंने लिया; नाम-भगवान् का पवित्र नाम; समाप्त-समाप्त; ना हैल-नहीं हुआ।

अनुवाद

"मैंने सोचा था कि मैं हरे कृष्ण मन्त्र जपने का अपना यज्ञ आज समाप्त कर सकूँगा। मैंने सारी रात नाम जप करने का भरसक प्रयास किया, किन्तु अब भी उसे समाप्त नहीं कर सका।"

"कालि समाप्त हबे, तबे हबे व्रत-भङ्ग ।

स्वच्छन्दे तोमार सङ्गे हइबेक सङ्ग" ॥ 126॥

कालि-कल; समाप्त हबे—यह पूरा हो जायेगा; तबे-उस समय; हबे-होगा; व्रत-भङ्ग–मेरे प्रण का अन्त; स्वच्छन्दे-पूर्ण स्वतन्त्रतापूर्वक; तोमार सड़े-तुम्हारे साथ; हइबेकहोगा; सङ्ग-संगम।

अनुवाद

"कल मैं अवश्य ही समाप्त कर लूँगा और मेरा व्रत पूरा हो जायेगा। तब मेरे लिए सम्भव हो सकेगा कि पूरी स्वतन्त्रता से तुम्हारे साथ रमण कर सकूँगा।"

तात्पर्य

हरिदास ठाकुर उस वेश्या के साथ कभी भी भोग करना नहीं चाहते थे, किन्तु उन्होंने युक्ति से उसको अपने द्वारा जप किये जा रहे भगवान् के पवित्र नाम सुनने का अवसर देकर उसका उद्धार किया। शुद्ध भक्त हरे कृष्ण मन्त्र का जप करते हैं और इस जप को शुद्ध दिव्य व्यक्ति से सुनकर ही मनुष्य सारे पापकर्मों से शुद्ध हो जाता है, चाहे वह कितना ही निम्न कुल का या पतित क्यों न हो। ज्योंही कोई इस प्रकार पापकर्मों के फल से पूरी तरह मुक्त हो जाता है, त्योंही वह भगवान् की भक्तिमय सेवा करने का पात्र बन जाता है। पतितात्माओं को भक्ति में लगाने की यही विधि है। भगवद्गीता (7.28) में भगवान् कृष्ण कहते हैं :

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

"जिन मनुष्यों ने पूर्वजन्मों में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये हैं और जिनके पापकर्म पूर्णतया नष्ट हो चुके हैं, वे मोह के द्वन्द्वों से मुक्त हो जाते हैं और वे संकल्पपूर्वक मेरी सेवा में तत्पर होते हैं।"

वेश्या गिया समाचार खाँनेरे कहिल ।

आर दिन सन्ध्या हइते ठाकुर-ठाञि आइल ॥127॥

वेश्या-वेश्या; गिया-लौटकर; समाचार-सूचना; खाँनेरे कहिल–रामचन्द्र खान से कही; आर दिन–अगले दिन; सन्ध्या हइते-साँय होने पर; ठाकुर-ठाञि आइल-वह आकर ठाकुर हरिदास के निवास पर रह गई।

अनुवाद

वह वेश्या रामचन्द्र खान के पास लौट गई और जो कुछ हुआ था, उसे बतलाया। अगले दिन वह शीघ्र ही, सन्ध्या होते आ गई और हरिदास ठाकुर के पास रुकी रही।

तुलसीके, ठाकुरके नमस्कार करि' ।

द्वारे वसि' नाम शुने, बले 'हरि' 'हरि' ॥ 128॥

तुलसीके-तुलसी को; ठाकुरके-और हरिदास ठाकुर को; नमस्कार करि'–प्रणाम करके; द्वारे वसि-द्वार पर बैठकर; नाम शुने पवित्र नाम सुनती है; बले-बोलती है; हरि हरि-भगवान् का पवित्र नाम।

अनुवाद

तुलसी वृक्ष को तथा हरिदास ठाकुर को नमस्कार करने के बाद वह कमरे की दहलीज पर बैठ गई। इस तरह वह हरिदास ठाकुर का कीर्तन सुनने लगी और स्वयं भी उसने 'हरि' 'हरि' अर्थात् भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण किया।

'नाम पूर्ण हबे आजि',—बले हरिदास ।।

'तबे पूर्ण करिमु आजि तोमार अभिलाष' ॥129॥

नाम-पवित्र नाम का जप; पूर्ण–पूर्ण; हबे-हो जायेगा; अजि-आज; बले हरिदास-हरिदास ठाकुर ने कहा; तबे-तब; पूर्ण करिमु-मैं सन्तुष्ट करूँगा; आजि-आज; तोमार अभिलाष—तुम्हारी इच्छाएँ।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उसे बतलाया, "आज मेरा नाम जप पूरा हो जायेगा। तब मैं तुम्हारी सारी इच्छाएँ तुष्ट करूँगा।"

कीर्तन करिते ऐछे रात्रि-शेष हैल ।

ठाकुरेर सने वेश्यार मन फिरि' गेल ॥ 130॥

कीर्तन करिते-जप करते हुए; ऐछे—उस प्रकार; रात्रि-शेष हैल-रात समाप्त हो गई; ठाकरेर सने-हरिदास ठाकुर के संग के कारण; वेश्यार–वेश्या का; मन–मन; फिरि' गेल-बदल गया।

अनुवाद

जप करते-करते रात बीत गई, किन्तु हरिदास ठाकुर की संगति के कारण वेश्या का मन बदल चुका था।

दण्डवत् हञा पड़े ठाकुर-चरणे ।।

रामचन्द्र-खाँनेर कथा कैल निवेदने ॥131॥

दण्डवत् हञा–प्रणाम करते हुए; पड़े-वह गिर पड़ी; ठाकुर-चरणे-हरिदास ठाकुर के चरणकमलों में; रामचन्द्र-खाँनेर-रामचन्द्र खान की; कथा–योजना; कैल-की; निवेदने-उद्घाटित ।

अनुवाद

वह वेश्या अब शुद्ध हो गई थी। वह हरिदास ठाकुर के चरणकमलों पर गिर पड़ी और उसने स्वीकार किया कि रामचन्द्र खान ने उन्हें दूषित करने के लिए उसे नियुक्त किया था।

"वेश्या हञा मुञि पाप करियाछों अपार ।।

कृपा करि' कर मो-अधमे निस्तार" ॥132॥

वेश्या हञा–वेश्या होकर; मुञि-मैंने; पाप-पाप कार्य; करियाछों-किये हैं; अपार-असीमित; कृपा करि'–कृपा करके; कर-कीजिए; मो-अधर्म–मुझ सबसे अधम का; निस्तार-उद्धार।

अनुवाद

उसने कहा, "चूँकि मैंने वेश्या का पेशा अपनाया है, अतएव मैंने असंख्य पापकर्म किये हैं। हे प्रभु, मुझ पर कृपालु हों। मुझ पतिता का उद्धार करें।"

ठाकुर कहे,—खाँनेर कथा सब आमि जानि ।

अज्ञ मूर्ख सेइ, तारे दुःख नाहि मानि ॥ 133 ॥

ठाकुर कहे-हरिदास ठाकुर ने कहा; खाँनेर कथा–रामचन्द्र खान की योजनाएँ; सब-सारी; आमि जानि–मैं जानता हूँ; अज्ञ मूर्ख सेइ-वह एक अज्ञानी मूर्ख है; तारे-उससे; दुःख नाहि मानि-मैं दुःखी नहीं हूँ।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, "मैं रामचन्द्र खान के षड्यंत्र के बारे में सब कुछ जानता हूँ। वह एक निपट अज्ञानी मूर्ख है। इसलिए उसके कार्यों से मैं दुःखी नहीं हूँ।

सेइ-दिन याइताम ए-स्थान छाड़िया ।।

तिन दिन रहिलाङ तोमा निस्तार लागिया ॥ 134॥

सेइ-दिन-उसी दिन; याइताम–मैं चला जाता; ए-स्थान-यह स्थान; छाड़िया-छोड़कर; तिन दिन-तीन दिन के लिए; रहिलाङ–मैं रहा; तोमा-तुम्हारे; निस्तार लागिया-उद्धार के लिए।

अनुवाद

"जिस दिन रामचन्द्र खान मेरे विरुद्ध षड्यंत्र रच रहा था, उसी दिन मैंने यह स्थान छोड़ दिया होता, किन्तु तुम मेरे पास आई, इसलिए मैं तुम्हारा उद्धार करने के लिए तीन दिनों तक यहाँ रुका रहा।"

वेश्या कहे, – "कृपा करि' करह उपदेश ।

कि मोर कर्तव्य, याते याय भव-क्लेश" ॥135॥

वेश्या कहे–वेश्या ने कहा; कृपा करि'–कृपा करके; करह उपदेश-कृपया उपदेश दीजिए; कि-क्या; मोर कर्तव्य-मेरा कर्तव्य है; याते-जिससे; याय-दूर हो जाएँ; भव-क्लेश-सारे सांसारिक दुःख॥

अनुवाद

वेश्या ने कहा, "कृपया मेरे आध्यात्मिक गुरु बनिये। मेरे कर्तव्य के बारे में उपदेश दीजिये, जिससे मुझे भौतिक अस्तित्व से छुटकारा मिल सके।"

ठाकुर कहे,–"घरेर द्रव्य ब्राह्मणे कर दान ।

एइ घरे आसि' तुमि करह विश्राम ॥136॥

ठाकुर कहे-श्री हरिदास ठाकुर ने कहा; घरेर–घर की; द्रव्य-वस्तुएँ; ब्राह्मणे-ब्राह्मणों को; कर दान-दान देकर; एइ घरे-इस घर में; आसि'-लौटकर; तुमि-तुम; करह विश्राम-रहो।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, "तुम तुरन्त अपने घर जाओ और तुम्हारी जितनी सम्पत्ति हो, उसे ब्राह्मणों में बाँट दो। तब इस कुटिया में लौट आओ और सदा के लिए कृष्णभावना में यहाँ रहो।

तात्पर्य

हरिदास ठाकुर का यह उपदेश कि वेश्या अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणों को बाँट दे, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हरिदास ठाकुर ने वेश्या को कभी यह उपदेश नहीं दिया कि वह तथाकथित दरिद्रनारायण को या अन्य ऐसे ही व्यक्तियों को दान दे। वैदिक सभ्यता के अनुसार दान केवल योग्य ब्राह्मणों को दिया जाना चाहिए, जैसाकि भगवद्गीता (18.42) में कहा गया है :

शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

ब्राह्मणों के गुण हैं-सत्यता, इन्द्रियों तथा मन पर संयम, सहिष्णुता, सरलता, ज्ञान, दिव्य ज्ञान का जीवन में व्यावहारिक उपयोग तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में पूर्ण श्रद्धा। जो व्यक्ति आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में लगे रहते हैं, उन्हें अपनी आजीविका कमाने के लिए समय नहीं मिलता। वे भगवान् की कृपा पर ही पूरी तरह आश्रित रहते हैं। भगवद्गीता (9.22) में भगवान् कहते हैं कि वे उन लोगों की सारी आवश्यकताओं का वहन स्वयं करते हैं (योगक्षेमं वहाम्यहम्) ।

वैदिक सभ्यता की संस्तुति है कि ब्राह्मणों तथा संन्यासियों को दान दिया जाए, तथाकथित दरिद्रनारायण को नहीं। नारायण कभी दरिद्र नहीं हो सकते न ही दरिद्र कभी नारायण हो सकता है, क्योंकि ये दोनों एक दूसरे के विरोधी शब्द हैं। नास्तिक लोग ऐसी मनगढंत बातों की खोज करते हैं और उन्हें मूर्खा को सिखाते हैं। किन्तु दान वस्तुतः ब्राह्मणों

तथा संन्यासियों को दिया जाना चाहिए, क्योंकि उन्हें जो भी धन इस तरह मिलता है, उसे वे कृष्ण के लिए खर्च करते हैं। ब्राह्मण को दिया जाने वाला दान कृष्ण के पास चला जाता है। भगवद्गीता (9.27) में कृष्ण कहते हैं :

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

"हे कुन्तीपुत्र, तुम जो कुछ करते हो, जो कुछ खाते हो, जो कुछ अर्पित करते हो या दान देते हो और जो भी तपस्या करते हो, उसे मुझे अर्पित करते हुए करो।" वास्तव में हर वस्तु कृष्ण की है, किन्तु तथाकथित सभ्य लोग दुर्भाग्यवश सोचते हैं कि हर वस्तु उनकी है। यही भौतिकतावादी सभ्यता की त्रुटि है। उस वेश्या ने गलत उपायों से धन कमाया था, इसलिए हरिदास ठाकुर ने उसे परामर्श दिया कि उसके पास जो भी हो, वह ब्राह्मणों में बाँट दे। जब श्रील रूप गोस्वामी ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लिया, तो उन्होंने अपनी पचास प्रतिशत आय ब्राह्मणों तथा वैष्णवों में बाँट दी। ब्राह्मण जानता है कि परम सत्य क्या है और एक वैष्णव परम सत्य को जानते हुए परम सत्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की ओर से कार्य करता है। सामान्यतया लोग अनेक गलत उपायों से धन कमाते हैं। इसलिए कभी न कभी मनुष्य को अवकाश ग्रहण करके अपने पास जो कुछ हो, उसे ब्राह्मणों तथा वैष्णवों में बाँट देना चाहिए, क्योंकि वे लोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की महिमा के प्रचार द्वारा भक्ति में लगे रहते हैं।

निरन्तर नाम लओ, कर तुलसी सेवन ।

अचिरात् पाबे तबे कृष्णेर चरण ॥137॥

निरन्तर–एक दिन में 24 घण्टे; नाम लओ-हरे कृष्ण मन्त्र जप करो; कर-करो; तुलसी सेवन—तुलसी के पौधे की पूजा; अचिरात्-बहुत शीघ्र; पाबे-तुम प्राप्त करोगी; तबे-तब; कृष्णेर चरण-भगवान् कृष्ण के चरणकमल।

अनुवाद

"निरन्तर हरे कृष्ण मन्त्र का जप करो और जल से सींचकर तथा स्तुति करके तुलसी की सेवा करो। इस तरह तुम तुरन्त ही कृष्ण के चरणकमलों की शरण पाने का अवसर प्राप्त कर सकोगी।"

तात्पर्य

कम-से-कम पाँच हजार वर्ष पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने इच्छा व्यक्त की थी कि हर व्यक्ति उनकी शरण में जाये। (सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज)। तो लोग ऐसा क्यों नहीं कर सकते ? कृष्ण आश्वस्त करते हैं- अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:-"मैं तुम्हें सारे पापकर्मों के फलों से मुक्त कर दूंगा। डरो मत।" हर व्यक्ति अपने पापकर्मों का फल भोग रहा है, किन्तु कृष्ण कहते हैं कि यदि आप उनकी शरण में जाते हैं, तो वे पापकर्मों के फलों से आपको सुरक्षा प्रदान करेंगे। किन्तु आधुनिक सभ्यता न तो कृष्ण में रुचि रखती है, न पापमय कर्मों से छुटकारा पाने में। इसीलिए लोग कष्ट भोग रहे हैं। शरणागति ही भगवद्गीता का आखरी उपदेश है, किन्तु जो व्यक्ति भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं कर सकता, उसके लिए श्रेयस्कर होगा कि हरिदास ठाकुर के उपदेशानुसार हरे कृष्ण मन्त्र का निरन्तर जप करे।

हम कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अपने अनुयायियों को माला पर हरे कृष्ण मन्त्र का लगातार जप करते रहने की शिक्षा देते हैं। जो लोग इसके अभ्यस्त नहीं हैं, उनको माला पर कम से कम सोलह माला जप करने का उपदेश दिया जाता है, जिससे वे प्रशिक्षित हो जाएँ। अन्यथा श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है कि :

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

"अपने आपको तिनके से भी क्षुद्र समझते हुए विनीत भाव से भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए। भक्त को वृक्ष से भी अधिक सहनशील, मिथ्या प्रतिष्ठा के भाव से रहित तथा अन्यों का आदर करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। ऐसी मनोदशा में मनुष्य भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन निरन्तर कर सकता है।" सदा का अर्थ है सर्वदा। हरिदास ठाकुर कहते हैं- निरन्तर नाम लओ—"हरे कृष्ण मन्त्र का जप बिना रूके करते रहो।"

यद्यपि कृष्ण चाहते हैं कि हर व्यक्ति उनके चरणकमलों में शरण ले, किन्तु लोग अपने पापकर्मों के कारण ऐसा नहीं कर पाते। न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमा:-पाप करने वाले धूर्त तथा मूर्ख, अधम जन अचानक कृष्ण के चरणकमलों पर आत्म-समर्पण नहीं कर सकते। तो भी यदि वे हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करना शुरू कर दें और तुलसी की सेवा करें, तो शीघ्र ही समर्पण करने में समर्थ हो सकते हैं। मनुष्य का वास्तविक कर्तव्य कृष्ण के चरणकमलों में आत्म-समर्पण करना है, किन्तु यदि वह ऐसा नहीं कर सके, तो उसे इसी विधि को अपनाना चाहिए जिसका सूत्रपात श्री

चैतन्य महाप्रभु तथा उनके परम विश्वस्त सेवक नामाचार्य हरिदास ठाकुर ने किया। कृष्णभावनामृत में सफलता पाने की यही विधि है।

एत बलि' तारे 'नाम' उपदेश करि' ।

उठिया चलिला ठाकुर बलि' 'हरि' 'हरि' ॥ 138॥

एत बलि'–ऐसा कहकर; तारे-उसे; नाम उपदेश करि'-हरे कृष्ण महामन्त्र के जप की विधि का उपदेश देकर; उठिया-उठकर; चलिला–चले गये; ठाकुर-हरिदास ठाकुर; बलि'–जपते हुए; हरि हरि-हरे कृष्ण महामन्त्र।

अनुवाद

इस तरह वेश्या को हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन की विधि के विषय में उपदेश देकर हरिदास ठाकुर उठे और लगातार हरि हरि कीर्तन करते हुए चले गये।

तबे सेइ वेश्या गुरुर आज्ञा लइल ।

गृह-वित्त येबा छिल, ब्राह्मणेरे दिल ॥139॥

तबे-उसके बाद; सेइ-वह; वेश्या-वेश्या; गुरुर–आध्यात्मिक गुरु का; आज्ञा-आदेश; लइल प्राप्त कर; गृह-वित्त-सभी घरेलु सम्पत्तियों को; येबा-जो भी; छिल-थीं; ब्राह्मणेरे–ब्राह्मणों को दिल दे आई।

अनुवाद

तत्पश्चात् उस वेश्या ने अपने पास जो भी घरेलू सम्पत्ति थी, उसे अपने गुरु की आज्ञानुसार ब्राह्मणों में वितरित कर दिया।

तात्पर्य

कहीं कहीं गृहवित्त के स्थान पर गृहवृत्ति शब्द पाया जाता है। वृत्ति का अर्थ "पेशा" है। वेश्या की गृहवृत्ति तो मूर्ख लोगों को मोहित करके उन्हें संभोग के लिए प्रवृत्त करना था। किन्तु यहाँ पर गृहवृत्ति शब्द उपयुक्त शब्द नहीं है। उचित शब्द तो गृहवित्त ही है, जिसका अर्थ है "उसके पास जो भी घर पर था। उसने जो कुछ भी वेश्यावृत्ति से कमाया था, वह पापमय जीवन की कमाई थी। जब ऐसी सम्पत्ति ब्राह्मणों तथा वैष्णवों को दी जाती है, जो उसे अपने आध्यात्मिक

जीवन में प्रगति के फलस्वरूप, भगवान् की सेवा में लगा सकते हैं, तो इससे दान देने वाले को अप्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुँचता है, क्योंकि वह इस प्रकार पापकर्मों के फल से छुटकारा पा लेता है। जैसाकि कृष्ण वचन देते हैं-अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि–"मैं तुम्हें सारे पापकर्मों के फलों से बचा लूँगा।" जब हमारे कृष्णभावनाभावित भक्त दान माँगने या सदस्यता शुल्क एकत्र करने जाते हैं, तो इस तरह से जो धन प्राप्त होता है, उसका उपयोग कृष्णभावनामृत को सारे संसार में प्रसारित करने के लिए ही किया जाता है। कृष्णभावनाभावित भक्त दूसरों का धन कृष्ण-सेवा के लिए एकत्र करते हैं और वे कृष्णप्रसाद खाकर तथा कृष्ण जो कुछ भी उनके जीवन-निर्वाह के लिए देते हैं, उसीसे तुष्ट होते हैं। वे भौतिक सुविधाओं की इच्छा नहीं करते। किन्तु वे वेश्याओं या इसी तरह के लोगों की सम्पत्ति को भगवान् की सेवा में लगाने के लिए कष्ट सहते हैं और इस तरह उन्हें पापों के फलों से मुक्त कराते हैं। एक वैष्णव-गुरु धन या अन्य भेटें स्वीकार करता है, किन्तु वह इनका उपयोग इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं करता। एक शुद्ध वैष्णव अपने आपको एक भी व्यक्ति को पाप के फल से छुड़ा पाने में असमर्थ मानता है, किन्तु किसी की गाढ़ी कमाई को भगवान् की सेवा में लगाकर वह उसे पाप के फलों से मुक्त कराता है। एक वैष्णव-गुरु कभी भी अपने शिष्यों के उपहारों पर आश्रित नहीं रहता। हरिदास ठाकुर के उपदेशों का पालन करके शुद्ध वैष्णव अपने लिए किसी से एक पैसा भी नहीं लेता, अपितु वह अपने अनुयायियों को प्रेरित करता है कि उनके पास जो भी हो, उसे भगवान् की सेवा में खर्च करें।

माथा मुड़ि' एक-वस्त्रे रहिल सेइ घरे।

रात्रि-दिने तिन-लक्ष नाम ग्रहण करे॥140॥

माथा मुड़ि'–सिर मुँडाकर; एक-वस्त्रे-एक वस्त्र पहनकर; रहिल-रहने लगी; सेइ घरे-उसी कक्ष में; रात्रि-दिने–दिन-रात; तिन-लक्ष–3,00,000; नाम-पवित्र नाम; ग्रहण करे-जपती थी।

अनुवाद

वैष्णव-नियमों के अनुसार उस वेश्या ने अपना सिर मुँडा लिया और केवल एक वस्त्र पहने उसी कमरे में रहने लगी। वह अपने गुरु के पदचिह्नों पर चलकर प्रतिदिन तीन लाख नाम का जप करने लगी। वह दिन-रात जप करती रहती थी।

तुलसी सेवन करे, चर्वण, उपवास।

इन्द्रिय-दमन हैल, प्रेमेर प्रकाश॥ 141॥

तुलसी–तुलसी के पौधे की; सेवन करे-वह पूजा करती थी; चर्वण-चबाकर; उपवास-उपवास; इन्द्रिय-दमन-इन्द्रियों को वश में करके; हैल–हुआ; प्रेमेर प्रकाश-भगवत्प्रेम के लक्षण का प्राकट्य।

अनुवाद

वह अपने गुरु के पदचिह्नों पर चलकर तुलसी की पूजा करने लगी। वह नियमित भोजन न खाकर, भिक्षा में जो मिलता उसे खाती और यदि कुछ न मिलता तो उपवास करती। इस तरह बहुत कम खाकर तथा उपवास करके उसने इन्द्रियों को वश में कर लिया और ज्योंही उसकी इन्द्रियाँ वश में हो गईं, त्योंही उसमें ईश्वर-प्रेम के लक्षण प्रकट होने लगे।

प्रसिद्धा वैष्णवी हैल परम-महान्ती ।

बड़ बड़ वैष्णव ताँर दर्शनेते यान्ति ॥142॥

प्रसिद्धा-विख्यात; वैष्णवी–भगवान् की भक्त; हैल-हो गई; परम-महान्ती-अत्यन्त उन्नत; बड़ बड़ वैष्णव-अनेक मान्य, उच्च भक्त; ताँर-उसको; दर्शनेते-मिलने; यान्ति-जाते थे।

अनुवाद

इस तरह वह वेश्या विख्यात भक्तिन बन गई। वह आध्यात्मिक जीवन में अत्यन्त उन्नत हो गई और अनेक बड़े-बड़े वैष्णव उसके दर्शन के लिए आने लगे।

तात्पर्य

बड़े-बड़े वैष्णव भक्त वेश्याओं को मिलने में रुचि नहीं रखते, किन्तु जब कोई वेश्या या अन्य पतितात्मा वैष्णव बन जाते हैं, तो बड़े-बड़े वैष्णव उसके दर्शन में रुचि लेते हैं। यदि वैष्णव सिद्धान्तों का पालन किया जाए, तो कोई भी व्यक्ति वैष्णव बन सकता है। जो भक्त इन सिद्धान्तों का पालन करता है, वह भौतिक स्तर पर नहीं रहता। इसलिए किसी के जन्मस्थान का नहीं, अपितु सिद्धान्तों का कड़ाई से पालन करने पर विचार करना चाहिए। अनेक भक्त यूरोप तथा अमरीका से आकर हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सम्मिलित होते हैं, किन्तु उन्हें यूरोपियन वैष्णव या अमेरिकी वैष्णव नहीं मानना चाहिए। वैष्णव तो वैष्णव होता है, इसलिए उसे वैष्णव को प्राप्त होने वाला समस्त सम्मान दिया जाना चाहिए।

वेश्यार चरित्र देखि' लोके चमत्कार ।

हरिदासेर महिमा कहे करि' नमस्कार ॥143॥

वेश्यार–वेश्या का; चरित्र-चरित्र; देखि'-देखकर; लोके–सभी लोग; चमत्कार-आश्चर्यचकित थे; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर की; महिमा-महिमा; कहे-कहते; करि' नमस्कार-प्रणाम करके।

अनुवाद

वेश्या का उन्नत चरित्र देखकर सारे लोग चकित थे। सारे लोगों ने हरिदास ठाकुर के प्रभाव का गुणगान किया और उन्हें नमस्कार किया।

तात्पर्य

कहा गया है कि फलेन परिचीयते—मनुष्य अपने कर्मों के फल से पहचाना जाता है। वैष्णव-समाज में कई प्रकार के वैष्णव हैं। उनमें से कुछ गोस्वामी कहलाते हैं, कुछ स्वामी, कुछ प्रभु तथा कुछ प्रभुपाद । किन्तु कोई भी मात्र ऐसे नाम से नहीं पहचाना जाता। जब कोई गुरु अपने शिष्यों के चरित्र को बदल देता है, तब उसे सच्चा गुरु माना जाता है। हरिदास ठाकुर ने सचमुच ही पेशेवर वेश्या के चरित्र को बदल दिया। लोगों ने इसकी बहुत प्रशंसा की और इसीलिए उन्होंने हरिदास ठाकुर को नमस्कार किया और उनकी महिमा का गुणगान किया।

रामचन्द्र खाँन अपराध-बीज कैल ।

सेइ बीज वृक्ष हञा आगेते फलिल ॥144॥

रामचन्द्र खाँन-रामचन्द्र खान ने; अपराध-अपराध का; बीज-बीज; कैल-बोया; सेइ बीज-वही बीज; वृक्ष ज्ञा-वृक्ष बनकर; आगेते-बाद में; फलिल–फलित हुआ।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर को विचलित करने के लिए वेश्या को प्रेरित करके रामचन्द्र खान ने उनके चरणों में अपराध के बीज को उगने दिया। बाद में यही बीज एक वृक्ष बन गया और जब यह फला, तो रामचन्द्र खान ने इसके फल खाये।

महदपराधेर फल अद्भुत कथन।

प्रस्ताव पाञा कहि, शुन, भक्त-गण ॥ 145 ॥

महत्-अपराधेर–महान् भक्त के चरणों में महान् अपराध का; फल-परिणाम; अद्भुत-उद्भूत; कथन-वर्णन के; प्रस्ताव–अवसर का; पाञा–लाभ उठाकर; कहि-मैं कहता हूँ; शुन-सुनो; भक्त-गण-हे भक्तों।

अनुवाद

उच्च भक्त के चरणों पर इस अपराध से एक अद्भुत कथा का जन्म हुआ। इन घटनाओं से प्राप्त अवसर का लाभ उठाकर मैं वह सब बतलाऊँगा, जो घटित हुआ। हे भक्तों, इसे सुनो।

सहजेइ अवैष्णव रामचन्द्र-खाँन।

हरिदासेर अपराधे हैल असुर-समान ॥146॥

सहजेइ-स्वाभाविक रूप से; अवैष्णव-अभक्त; रामचन्द्र-खाँन–रामचन्द्र खान; हरिदासेर-हरिदास के चरणकमलों में; अपराधे-अपराध द्वारा; हैल–हो गया; असुर-समान–एक असुर के समान।

अनुवाद

रामचन्द्र खान स्वभावतः अभक्त था। अब, हरिदास ठाकुर के चरणों पर अपराध करके वह पूरा आसुरी नास्तिक जैसा बन गया।

वैष्णव-धर्म निन्दा करे, वैष्णव-अपमान।

बहु-दिनेर अपराधे पाइल परिणाम ॥147॥

वैष्णव-धर्म-वैष्णव धर्म; निन्दा करे–निन्दा करके; वैष्णव अपमान-भक्तों का अपमान करके; बहु-दिनेर-चिर काल तक; अपराधे-अपराध कृत्यों द्वारा; पाइल-प्राप्त किया; परिणाम-परिणाम।

अनुवाद

वैष्णव धर्म की निन्दा करने तथा दीर्घकाल तक भक्तों का अपमान करने के कारण अब उसे अपने अपराध-कर्मों का फल मिला।

तात्पर्य

रामचन्द्र खान विष्णु तथा वैष्णवों के चरणों का बड़ा अपराधी था। जिस तरह ब्राह्मण पिता विश्वश्रवा से उत्पन्न होने पर भी रावण को असुर या राक्षस इसीलिए कहा गया, क्योंकि उसने भगवान् रामचन्द्र (विष्णु) तथा हनुमान (वैष्णव) के प्रति अपराध किये थे, उसी तरह रामचन्द्र खान भी ऐसा असुर बना, क्योंकि उसने हरिदास ठाकुर तथा अन्यों के प्रति अपराध किये थे।

नित्यानन्द-गोसाञि गौड़े यबे आइला ।

प्रेम प्रचारिते तबे भ्रमिते लागिला ॥ 148 ॥

नित्यानन्द-गोसाञि-नित्यानन्द प्रभु; गौड़े-बंगाल में; यबे-जब; आइला-वापस आये; प्रेम प्रचारिते-प्रेम भक्ति का प्रचार करने के लिए; तबे-उस समय; भ्रमिते लागिला–यात्रा करने लगे।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने बंगाल लौट आये, तो वे सारे देश में भ्रमण करने लगे।

प्रेम-प्रचारण आर पाषण्ड-दलन ।

दुइ-कार्ये अवधूत करेन भ्रमण ॥ 149॥

प्रेम-प्रचारण-भक्ति का प्रचार; आर-और; पाषण्ड-दलन–नास्तिक लोगों का दमन; दुइ-कार्ये-दो प्रकार के कार्यों करने के लिए; अवधूत-महान् भक्त और साधु; करेन-करते थे; भ्रमण-भ्रमण।

अनुवाद

भगवान् के सर्वाधिक समर्पित भक्त नित्यानन्द प्रभु दो कार्यों से-भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने तथा नास्तिकों को परास्त और दमन करने के उद्देश्य से-देश-भर में भ्रमण करने लगे।

तात्पर्य

भगवद्गीता (4.8) में कहा गया है कि :

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।

भगवान् कृष्ण दो कारणों से प्रत्येक युग में प्रकट होते हैं–भक्तों का उद्धार करने तथा अभक्तों का विनाश करने। उनके भक्तों के भी उसी तरह के दो कार्य होते हैं-कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करना तथा सभी प्रकार के नास्तिक असुरों को परास्त करना। नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश का इस तरह पालन कर रहे थे। जो लोग नित्यानन्द प्रभु का दृढ़ता से अनुगमन करते हैं, वे वैसा ही कार्य करते हैं। भक्तों की दो श्रेणियाँ हैं। एक गोठ्यानन्दी कहलाती है और दूसरी भजनानन्दी । जो भक्त प्रचार नहीं करता, किन्तु भक्ति-कार्यों में सदा लगा रहता है, वह भजनानन्दी कहलाता है; जबकि भक्ति में कुशल होने के साथ ही जो भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार भी करता है तथा सभी प्रकार के नास्तिकों को परास्त करता है, वह गोष्ठ्यानन्दी कहलाता है।

सर्वज्ञ नित्यानन्द आइला तार घरे ।

आसिया वसिला दुर्गा-मण्डप-उपरे ॥150 ॥

सर्व-ज्ञ-सब जानने वाले; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; आइला-आये; तार घरे-उसके घर; आसिया-आकर; वसिला-बैठ गये; दुर्गा-मण्डप-उपरे–दुर्गा मण्डप के ऊपर।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द, जो कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के कारण सर्वज्ञ हैं, रामचन्द्र खान के घर आये और दुर्गामण्डप की वेदी पर बैठ गये।

तात्पर्य ।

धनी हिन्दू भद्रजन अपने घरों में देवी दुर्गा की पूजा के लिए दुर्गामण्डप बनवाते थे। इस तरह प्रतिवर्ष वे आश्विन (सितम्बर-अक्टूबर) मास में देवी पूजा करते थे। रामचन्द्र खान के घर में भी ऐसा ही दुर्गामण्डप था।

अनेक लोक-जन सङ्गे अङ्गन भरिल ।

भितर हैते रामचन्द्र सेवक पाठाइल ॥151॥

अनेक-अनेक; लोक-जन-लोगों की भीड़; सङ्गे-साथ में; अङ्गन-आँगन; भरिल-भर गया; भितर हैते–अन्दर से; रामचन्द्र-रामचन्द्र खान ने; सेवक-सेवक; पाठाइल–भेजा।

अनुवाद

जब दुर्गामण्डप तथा आँगन लोगों की भीड़ से भर गया, तो रामचन्द्र खान ने घर के भीतर से अपने नौकर को नित्यानन्द प्रभु के पास भेजा।

तात्पर्य

उन दिनों और आज भी सम्मानित व्यक्तियों के महल समान मकान, विशेषतया बंगाल के गाँवों में, दो भागों में बँटे होते थे। भीतरी भाग विशेष रूप से परिवार के लिए होता था, जहाँ स्त्रियाँ पर्दे में रहती थीं। यह भाग भितर-बाड़ी कहलाता था। बाहरी भाग या बहिर-बाड़ी में सम्मानित व्यक्ति आगन्तुकों का सत्कार करते और अपना कार्यालय रखते थे। दुर्गामण्डप बहिर-बाड़ी का ही अंग होता था। इस तरह जब नित्यान्द प्रभु बहिर-बाड़ी में प्रविष्ट हुए, तो रामचन्द्र खान अपने पारिवारिक जनों के साथ भितर-बाड़ी में था। जब नित्यानन्द प्रभु आये, तो रामचन्द्र खान ने स्वयं उनका स्वागत नहीं किया, अपितु एक नौकर को अप्रत्यक्ष रूप से यह सूचित करने के लिए भेजा कि वे चले जाएँ।

सेवक बले–"गोसाञि, मोरे पाठाइल खाँन।

गृहस्थेर घरे तोमाय दिब वासा-स्थान" ॥152॥

सेवक बले-सेवक ने कहा; गोसाञि-मेरे प्रिय स्वामी; मोरे-मुझे; पाठाइल-भेजा है; खाँन–रामचन्द्र खान ने; गृहस्थेर घरे-किसी साधारण व्यक्ति के घर में; तोमाय-आपको; दिब-मैं हूँ; वासा-स्थान–वास स्थान।

अनुवाद

उस नौकर ने नित्यानन्द प्रभु को सूचित किया, "हे महाशय, रामचन्द्र खान ने मुझे भेजा है कि मैं आपको किसी सामान्य व्यक्ति के घर में रहने का स्थान दूँ।"

गोयालार गोशाला हय अत्यन्त विस्तार।

इहाँ सङ्कीर्ण-स्थल, तोमार मनुष्य अपार" ॥153॥

गोयालार–एक ग्वाले की; गो-शाला–गोशाला; हय-है; अत्यन्त-बहुत; विस्तार-विशाल; इहाँ–यहाँ; सङ्कीर्ण-स्थल-बहुत कम जगह; तोमार-आपके; मनुष्य-अनुयायी; अपार-असंख्य हैं।

अनुवाद

"आप किसी ग्वाले के घर जा सकते हैं, क्योंकि गोशाला विस्तृत होती है, जबकि यहाँ दुर्गामण्डप में स्थान अपर्याप्त है, क्योंकि आपके साथ अनेक अनुयायी हैं।"

भितरे आछिला, शुनि' क्रोधे बाहिरिला ।

अट्ट अट्ट हासि' गोसाञि कहिते लागिला ॥154॥

भितरे आछिला-अन्दर थे; शुनि'–सुनकर; क्रोधे-क्रोध में; बाहिरिला-बाहर आ गये; अट्ट अट्ट–अति उच्च स्वर में; हासि-हँसते हुए; गोसाञि-भगवान् नित्यानन्द प्रभु:कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु ने रामचन्द्र खान के नौकर का यह आदेश सुना, तो वे अत्यधिक क्रुद्ध हुए और बाहर आ गये। उच्च स्वर से हँसते हुए वे इस प्रकार बोले।

"सत्य कहे,—एइ घर मोर योग्य नय ।

म्लेच्छ गो-वध करे, तार योग्य हय" ॥ 155॥

सत्य कहे-रामचन्द्र खान ठीक कहता है; एइ घर-यह घर; मोर-मेरे; योग्य नय-योग्य नहीं है; म्लेच्छ-माँस खाने वाले; गो-वध करे–जो गो हत्या करते हैं; तार-उनके लिए; योग्य हय-योग्य है।

अनुवाद

"रामचन्द्र खान ने ठीक ही कहा है। यह स्थान मेरे लिए अनुपयुक्त है। यह गोवध करने वाले मांसाहारियों के लिए उपयुक्त है।"

एत बलि' क्रोधे गोसाञि उठिया चलिला ।

तारे दण्ड दिते से ग्रामे ना रहिला ॥156॥

एत बलि'—यह कहकर; क्रोधे-क्रोध में; गोसाञि-नित्यानन्द प्रभु; उठिया चलिला-उठकर चल दिये; तारे-उसे; दण्ड दिते-दण्ड देने के लिए; से—उस; ग्रामे-गाँव में; ना रहिला-नहीं रहे।

अनुवाद

यह कहकर नित्यानन्द प्रभु उठे और क्रुद्ध होकर चले गये। रामचन्द्र खान को दण्ड देने के लिए वे उस गाँव में भी नहीं रुके।

इहाँ रामचन्द्र खान सेवके आज्ञा दिल ।

गोसाञि याहाँ वसिला, तार माटी खोदाइल ॥157॥

इहाँ–यहाँ; रामचन्द्र खान–रामचन्द्र खान ने; सेवके–सेवक को; आज्ञा दिल-आज्ञा दी; गोसाञि- भगवान् नित्यानन्द प्रभु; याहाँ–जहाँ; वसिला-बैठे थे; तार-उस स्थान की; माटी-मिट्टी; खोदाइल-खोदने की।

अनुवाद

रामचन्द्र खान ने नौकर को आज्ञा दी कि जहाँ पर नित्यानन्द प्रभु बैठे थे, उस स्थान की मिट्टी खोद डाले।

गोमय-जले लेपिला सब मन्दिर-प्राङ्गण ।

तबु रामचन्द्रेर मन ना हैल परसन्न ॥158॥

गो-मय-जले-गोबर मिश्रित जल से; लेपिला–लेप किया; सब-सब; मन्दिर-दुर्गा मण्डप मन्दिर; प्राङ्गण-आँगन; तबु-फिर भी; रामचन्द्रेर मन–रामचन्द्र खान का मन; ना हैल परसन्न–प्रसन्न नहीं हुआ।

अनुवाद

दुर्गामंडप मन्दिर तथा आँगन को शुद्ध करने के लिए रामचन्द्र खान ने इन्हें गोबर मिले जल से छिड़काया और लिपवाया, फिर भी उसका मन प्रसन्न न था।

दस्यु-वृत्ति करे रामचन्द्र राजारे ना देय कर ।

क्रुद्ध हञा म्लेच्छ उजिर आइल तार घर ॥ 159॥

दस्यु-वृत्ति-एक चोर जैसा कार्य; करे-करता था; रामचन्द्र-रामचन्द्र; राजारे-सरकार को; ना-नहीं; देय-जमा करता था; कर-कर; क्रुद्ध हञा-क्रोधित होकर; म्लेच्छ-मुस्लिम; उजिर-मन्त्री; आइल-आ गये; तार घर-उसके घर।

अनुवाद

रामचन्द्र का पेशा आपत्तिजनक था, क्योंकि वह सरकार को कर देने से जी चुराता था। इसलिए सरकारी वित्त मन्त्री नाराज था और वह उसके घर आया।

आसि' सेइ दुर्गा-मण्डपे वासा कैल ।

अवध्य वध करि' मांस से-घरे रान्धाइल ॥160॥

आसि—आकर; सेइ दुर्गा-मण्डपे—उस दुर्गा मण्डप स्थान पर; वासा कैल-अपना निवास बनाया; अवध्य-एक गाय या बछड़ा, जो मारे जाने के योग्य नहीं है; वध करि'-मारकर; मांस-माँस; से-घरे—उस स्थान पर; रान्धाइल-पकाया।

अनुवाद

उस मुसलमान मन्त्री ने रामचन्द्र खान के दुर्गामण्डप को अपना निवासस्थान बनाया। उसने एक गाय मारी और वहाँ माँस पकाया।

स्त्री-पुत्र-सहित रामचन्द्रेरे बान्धिया ।

तार घर-ग्राम लुटे तिन-दिन रहिया ॥ 161॥

स्त्री-पुत्र—उसकी पत्नी और पुत्र के; सहित-साथ; रामचन्द्रेरे बान्धिया–रामचन्द्र खान को बाँधकर; तार-उसका; घर-ग्राम-घर और गाँव; लुटे-लूट लिया; तिन-दिन रहिया–तीन दिन रहकर।

अनुवाद

उसने रामचन्द्र खान को उसकी पत्नी तथा बच्चों समेत बन्दी बना लिया और फिर लगातार तीन दिनों तक उसके घर तथा गाँव को लूटा।

सेइ घरे तिन दिन करे अमेध्य रन्धन ।

आर दिन सबा लञा करिला गमन ॥ 162॥

सेइ घरे—उस कक्ष में; तिन दिन-तीन दिन तक; करे-करता रहा; अमेध्य रन्धन-गाय का माँस पकाना; आर दिन-अगले दिन; सबा लञा-अपने संगियों को लेकर; करिला गमन–चला गया।

अनुवाद

उसने उसी कमरे में लगातार तीन दिनों तक गोमांस पकाया। तब अगले दिन अपने अनुयायियों सहित वह चला गया।

जाति-धन-जन खानेर सकल लइल ।

बहु-दिन पर्यन्त ग्राम उजाड़ रहिल ॥163॥

जाति-उत्तराधिकार; धन-सम्पत्ति; जन-अनुयायी; खानेर-रामचन्द्र खान के; सकल-सब कुछ; लइल-उसने छीन लिया; बहु-दिन-लम्बे समय तक; पर्यन्त–के लिए; ग्राम–गाँव; उजाड़ रहिल-उजड़ गया।

अनुवाद

उस मुसलमान मन्त्री ने रामचन्द्र खान का पद, सम्पत्ति तथा अनुयायी छीन लिये। कई दिनों तक गाँव उजाड़ बना रहा।

महान्तेर अपमान ये देश-ग्रामे हय ।

एक जनार दोषे सब देश उजाड़य ॥164॥

महान्तेर-जो लोग आध्यात्मिक जीवन में अत्यन्त उन्नत हैं; अपमान-अपमान; ये देश-ग्रामे-जिस देश या गाँव में; हय-होता है; एक जनार-एक व्यक्ति के; दोषे-दोष से; सब देश-सम्पूर्ण देश; उजाड़य-नष्ट हो जाता है।

अनुवाद

जहाँ भी किसी महान् भक्त का अपमान किया जाता है, वहाँ एक व्यक्ति के दोष से सारा गाँव या नगर पीड़ित होता है।

हरिदास-ठाकुर चलि' आइला चान्दपुरे ।

आसिया रहिला बलराम-आचार्येर घरे ॥ 165॥

हरिदास-ठाकुर-हरिदास ठाकुर; चलि'-चलकर; आइला-आ गये; चान्दपुरे-चन्दनपुर नामक गाँव में; आसिया-आकर; रहिला-रह गये; बलराम- आचार्येर घरे-बलराम आचार्य के घर में।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर चलते-चलते चान्दपुर नामक गाँव में आये। वहाँ पर वे बलराम आचार्य के घर पर ठहरे।

तात्पर्य

चाँदपुर गाँव हुगली जिले के सप्तग्राम में गंगा तथा यमुना नदियों के संगम के निकट स्थित है। चाँदपुर गोवर्धन तथा हिरण्य-इन दो भाइयों के घर से ठीक पूर्व में पड़ता है। ये रघुनाथ दास गोस्वामी के क्रमशः पिता तथा चाचा थे। इसी गाँव में इन दोनों व्यक्तियों के पुरोहित बलराम आचार्य तथा यदुनन्दन आचार्य रहते थे। हरिदास ठाकुर जाकर इन्हीं आचार्यों के साथ रहे। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि बाद में इस गाँव का नाम बदलकर कृष्णपुर हो गया।

हिरण्य, गोवर्धन—दुइ मुलुकेर मजुमदार।

तार पुरोहित—'बलराम' नाम ताँर ॥ 166॥

हिरण्य-हिरण्य; गोवर्धन-गोवर्धन; दुइ-दोनों; मुलुकेर—उस प्रान्त के; मजुमदार-सरकार के खजांची थे; तार–उनके; पुरोहित-पुरोहित; बलराम-बलराम; नाम-नाम; ताँर उनका था।

अनुवाद

हिरण्य तथा गोवर्धन उस देश की उस तहसील के दो सरकारी कोषाध्यक्ष थे। उनके पुरोहित का नाम बलराम आचार्य था।

तात्पर्य

मजुमदार शब्द उस कोषाध्यक्ष (खजांची) का सूचक है, जो लगान का हिसाब रखता है।

हरिदासेर कृपा-पात्र, ताते भक्ति-माने।

यत्न करि' ठाकुरेरे राखिला सेइ ग्रामे ॥167॥

हरिदासेर कृपा-पात्र-हरिदास ठाकुर का कृपापात्र; ताते—इसलिए; भक्ति-माने-हरिदास ठाकुर के महान् भक्त; यत्न करि'-अत्यन्त सावधानी और एकाग्रतापूर्वक; ठाकुरेरे-हरिदास ठाकुर को; राखिला-रखा; सेइ ग्रामे-गाँव में।

अनुवाद

बलराम आचार्य पर हरिदास ठाकुर की कृपा के कारण वह हरिदास ठाकुर से अत्यधिक लगाव रखता था। इसीलिए उसने हरिदास ठाकुर को गाँव में अत्यन्त यत्नपूर्वक रखा।

निर्जन पर्ण-शालाय करेन कीर्तन ।

बलराम-आचार्य-गृहे भिक्षा-निर्वाहण ॥ 168॥

निर्जन-एकान्त; पर्ण-शालाय-फूस की कुटिया में; करेन-करते; कीर्तन-हरे कृष्ण मन्त्र का जप; बलराम-आचार्य-गृहे-बलराम आचार्य के घर पर; भिक्षा-निर्वाहण-भोजन करते थे।

अनुवाद

उस गाँव में हरिदास ठाकुर को एकान्त फूस की कुटिया दे दी गई थी, जहाँ वे हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करते रहते थे। वे बलराम आचार्य के घर पर प्रसाद लेते थे।

रघुनाथ-दास बालक करेन अध्ययन ।

हरिदास-ठाकुरेरे याइ' करेन दर्शन ॥ 169॥

रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास; बालक-एक बालक; करेन अध्ययन-अध्ययन करता था; हरिदास-ठाकुरेरे-हरिदास ठाकुर के; याइ'–पास जाकर; करेन दर्शन-दर्शन करता था।

अनुवाद

रघुनाथ दास, जो गोवर्धन मजुमदार का पुत्र था और बाद में रघुनाथ दास गोस्वामी बना, उस समय बालक अवस्था में पढ़ाई कर रहा था। वह नित्य ही हरिदास ठाकुर का दर्शन करने आता था।

हरिदास कृपा करे ताँहार उपरे ।

सेइ कृपा 'कारण' हैल चैतन्य पाइबारे ॥ 170॥

हरिदास-ठाकुर हरिदास; कृपा करे–कृपा करते हैं; ताँहार उपरे—उसके ऊपर; सेइ कृपा-वही कृपा; कारण-कारण; हैल–बनी; चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु को; पाइबारे-प्राप्त करने की।

अनुवाद

स्वाभाविक रूप से हरिदास ठाकुर उसके प्रति कृपालु थे और इस वैष्णव के कृपापूर्ण आशीर्वाद से ही वह बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त कर सका।

ताहाँ यैछे हैल हरिदासेर महिमा कथन ।

व्याख्यान, अद्भुत कथा शुन, भक्त-गण ॥ 171॥

ताहाँ-उस स्थान पर; यैछे-जैसे; हैल-हुआ; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; महिमा-गुणों का; कथन-वर्णन; व्याख्यान-प्रवचन; अद्भुत-अद्भुत; कथा-घटना; शुन-सुनो; भक्त-गण-हे भक्तों।

अनुवाद

हिरण्य तथा गोवर्धन के निवासस्थान पर व्याख्यान होते थे, जिनमें हरिदास ठाकुर की महिमा का गुणगान होता था। हे भक्तों, उस अद्भुत कथा को सुनो।

एक-दिन बलराम मिनति करिया ।

मजुमदारेर सभाय आइला ठाकुरे लाञा ॥172॥

एक-दिन-एक दिन; बलराम-बलराम आचार्य; मिनति करिया-अति विनम्र भाव से; मजुमदारेर–मजुमदारों की, हिरण्य तथा गोवर्धन; सभाय-सभा में; आइला-आये; ठाकुरे–हरिदास ठाकुर को; लञा-अपने साथ लेकर।

अनुवाद

एक दिन बलराम आचार्य ने अत्यन्त दीनतापूर्वक हरिदास ठाकुर से प्रार्थना की कि वे हिरण्य तथा गोवर्धन मजुमदारों की सभा में चलें। अतः बलराम आचार्य हरिदास ठाकुर के साथ वहाँ गये।

ठाकुर देखि' दुइ भाइ कैला अभ्युत्थान ।

पाय पड़ि' आसन दिला करिया सम्मान ॥ 173 ॥

ठाकुर देखि'-हरिदास ठाकुर को देखकर; दुइ भाइ–दोनों भाई; कैला अभ्युत्थान-खड़े हो गये; पाय पड़ि-चरणकमलों में गिरकर; आसन दिला-आसन अर्पित किया; करिया सम्मान-महान् आदर के साथ।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर को देखकर दोनों भाई तुरन्त उठ खड़े हुए और उनके चरणकमलों पर गिर पड़े। तत्पश्चात् उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक उन्हें बैठने के लिए आसन दिया।

अनेक पण्डित सभाय, ब्राह्मण, सज्जन ।

दुइ भाइ महा-पण्डित—हिरण्य, गोवर्धन ॥ 174॥

अनेक पण्डित–अनेक विद्वान; सभाय-उस सभा में; ब्राह्मण-ब्राह्मण; सत्-जन-सज्जन; दुइ भाइ–दोनों भाई; महा-पण्डित-अत्यन्त विद्वान; हिरण्य-हिरण्य; गोवर्धन-गोवर्धन।

अनुवाद

उस सभा में अनेक विद्वज्जन, ब्राह्मण तथा सम्माननीय भद्र पुरुष थे। हिरण्य तथा गोवर्धन, ये दोनों भाई भी महान् पण्डित (विद्वान) थे।

हरिदासेर गुण सबे कहे पञ्च-मुखे ।

शुनिया त' दुइ भाइ पाइला बड़ सुखे ॥ 175॥

हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के गुण-गुण; सबे–वे सब; कहे-कहने लगे; पञ्च-मुखे-जैसे पाँच मुखों से कह रहे हों; शुनिया–सुनकर; त'–निश्चय ही; दुइ भाइ–दोनों भाई; पाइला–प्राप्त किया; बड़ सुखे-अत्यन्त प्रसन्नता ।

अनुवाद

वहाँ सारे लोग हरिदास ठाकुर के महान् गुणों का बखान करने लगे, मानो उनके पाँच-पाँच मुख हों। यह सुनकर दोनों भाई परम सुखी हुए।

तिन-लक्ष नाम ठाकुर करेन कीर्तन ।

नामेर महिमा उठाइल पण्डित-गण ॥ 176 ॥

तिन-लक्ष-300,000; नाम-भगवान् के पवित्र नाम; ठाकुर-हरिदास ठाकुर; करेन कीर्तन-जप करते थे; नामेर-पवित्र नाम की महिमा-महिमा; उठाइल-उठाते हैं; पण्डित-गण-सभी पण्डित।

अनुवाद

सभा में इसका उल्लेख किया गया कि हरिदास ठाकुर प्रतिदिन तीन लाख कृष्ण-नाम का जप करते थे। इस तरह सारे विद्वान पवित्र नाम की महिमा के विषय में विचारविमर्श करने लगे।

केह बले,—'नाम हैते हय पाप-क्षय' ।

केह बले, — 'नाम हैते जीवेर मोक्ष हय' ॥ 177॥

केह बले-उनमें से कुछ ने कहा; नाम हैते-हरे कृष्ण मन्त्र का जप करने से; हय-होता है; पाप-क्षय-सभी पापकर्मों के फलों का विनाश; केह बले-उनमें से कुछ ने कहा; नाम हैते–नाम का जप करने से; जीवेर-जीवों को; मोक्ष हय–मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

अनुवाद

उनमें से कुछेक ने कहा, "भगवान् के पवित्र नाम का जप करने से मनुष्य सारे पापमय जीवन के फलों से मुक्त हो जाता है। अन्यों ने कहा, भगवान् के पवित्र नाम के जप मात्र से जीव भवबन्धन से छूट जाता है।"

हरिदास कहेन, — "नामेर एइ दुइ फल नय ।

नामेर फले कृष्ण-पदे प्रेम उपजय ॥ 178॥

हरिदास कहेन–हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया; नामेर- भगवान् के पवित्र नाम के जप के; एइ-ये; दुइ-दोनों; फल-परिणाम; नय-नहीं हैं; नामेर फले–पवित्र नाम के जप के फलस्वरूप; कृष्ण-पदे-कृष्ण के चरणकमलों में; प्रेम उपजय-प्रेमभाव जागृत हो जाता है।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने आपत्ति की, "ये दोनों वर पवित्र नाम के जप के सही फल नहीं हैं। वास्तव में अपराधरहित नाम-जप से कृष्ण के चरणकमलों के प्रति प्रेम जागृत होता है।

एवं-व्रतः स्व-प्रिय-नाम-कीर्त्या

जातानुरागो द्रुत-चित्त उच्चैः ।

हसत्यथो रोदिति रौति गायत्य्

उन्माद-वन्नृत्यति लोक-बाह्यः ॥ 179॥

एवम्-व्रतः-जब कोई कीर्तन और नृत्य का व्रत ले लेता है; स्व-अपने; प्रिय-अत्यन्त प्रिय; नाम-पवित्र नाम; कीर्या-कीर्तन द्वारा; जात-इस प्रकार विकसित करता है; अनुरागः-अनुराग; द्रुत-चित्तः-अत्यन्त उत्कण्ठापूर्वक; उच्चैः-जोर से; हसति-हँसता है; अथो-तथा; रोदिति-रोता है; रौति–विचलित हो जाता है; गायति–गाता है; उन्माद-वत्-एक पागल की तरह; नृत्यति-नाचता है; लोक-बाह्यः-बाहरी लोगों की परवाह किये बिना॥

अनुवाद

"जब कोई व्यक्ति वास्तव में उन्नत होता है और अपने प्रिय भगवान् के नाम-कीर्तन में आनन्द लेता है, तो वह उत्तेजित हो उठता है और उच्च स्वर से नाम-कीर्तन करता है। वह हँसता है, रोता है, चंचल होता है और उन्मत्त की तरह बाहरी लोगों की परवाह किये बिना कीर्तन करता है।'

तात्पर्य

इस श्लोक (भागवत् 11.2.40) की व्याख्या के लिए देखें आदि-लीला 7.94 ।

आनुषङ्गिक फल नामेर—'मुक्ति', 'पाप-नाश' ।

ताहार दृष्टान्त यैछे सूर्येर प्रकाश ॥ 180 ॥

आनुषङ्गिक-सहवर्ती; फल-परिणाम हैं; नामेर-पवित्र नाम के; मुक्ति-मुक्ति; पाप-नाश-पापमय जीवन के फलों का नाश; ताहार-उसका; दृष्टान्त-उदाहरण है; यैछे-जैसे; सूर्येर प्रकाश-सूर्य का प्रकाश॥

अनुवाद

"मुक्ति तथा पाप-फलों का क्षय-ये दो भगवन्नाम कीर्तन के साथ मिलने वाले गौण फल हैं। इसका उदाहरण प्रातःकालीन सूर्य-प्रकाश के चमकने में पाया जाता है।

अंहः संहरदखिलं सकृद्

उदयादेव सकल-लोकस्य ।

तरणिरिव तिमिर-जलधिं

जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम ॥ 181॥

अंहः-भौतिक बन्धन का कारण, पापकर्मों के फल; संहरत्-पूर्णतया नष्ट करने में; अखिलम्-सम्पूर्ण; सकृत्-मात्र एक बार; उदयात्-जागकर; एवं–निश्चय ही; सकल-समस्त; लोकस्य-संसार के लोगों का; तरणिः-सूर्य; इव-जैसे; तिमिर-अन्धकार के; जल-धिम् समुद्र को; जयति–जय हो; जगत्-मङ्गलम्-समस्त जगत् के लिए शुभ; हरेः नाम-भगवान् हरि का पवित्र नाम।

अनुवाद

जिस तरह उदय होता हुआ सूर्य तुरन्त ही समुद्र जैसे अगाध, जगत् के सारे अन्धकार को दूर कर देता है, उसी तरह भगवान् के पवित्र नाम यदि एक बार अपराधरहित होकर उच्चारण किया जाए, तो जीव के पापी जीवन के सारे पापफलों को दूर कर देता है। उस भगवान् के पवित्र नाम की जय हो, जो सारे जगत् के लिए मंगलकारी है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत पद्यावली (16) में प्राप्य है।

एइ श्लोकेर अर्थ कर पण्डितेर गण" ।

सबे कहे,—'तुमि कह अर्थ-विवरण' ॥182॥

एइ श्लोकेर-इस श्लोक का; अर्थ-अर्थ; कर–विस्तारित कीजिए; पण्डितेर गण-हे पण्डित जनों; सबे कहे-सभी ने कहा; तुमि कह-आप कहिए; अर्थ-विवरण-अर्थ तथा व्याख्या ।

अनुवाद

इस श्लोक को सुनाकर हरिदास ठाकुर ने कहा, "हे विद्वानों, जरा इस श्लोक का अर्थ बतलाओ।" किन्तु श्रोताओं ने हरिदास ठाकुर से अनुरोध किया, "अच्छा यही होगा कि आप ही इस महत्त्वपूर्ण श्लोक का अर्थ बतलाएँ।"

हरिदास कहेन,–"यैछे सूर उदय ।

उदय ना हैते आरम्भे तमेर हय क्षय" ॥183॥

हरिदास कहेन-हरिदास ठाकुर ने वर्णन करना प्रारम्भ किया; यैछे-जैसे; सूर्येर उदय-सूर्योदय; उदय ना हैते–यद्यपि अभी दिखाई नहीं देता; आरम्भे-आरम्भ; तमेर-अन्धकार का; हय क्षय-नाश हो जाता है।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, "जब सूर्यका उदय होने लगता है, तो उसके दृश्यमान होने के पूर्व ही वह रात के अन्धकार को दूर कर देता है।

चौर-प्रेत-राक्षसादिर भय हय नाश ।

उदय हैले धर्म-कर्म-आदि परकाश ॥184॥

चौर–चोरों; प्रेत-भूतों; राक्षस-राक्षसों; आदिर-उनका और अन्यों का; भय-भय; हय–हो जाता है; नाश-समाप्त; उदय हैले–जब सूर्योदय वास्तव में दिखाई देता है; धर्म-कर्म–सभी धार्मिक कार्य तथा नियम; आदि-सब कुछ; परकाश-प्रकाशित हो जाते हैं।

अनुवाद

"सूर्य-प्रकाश के प्रथम दर्शन होते ही चोरों, प्रेतों तथा असुरों का भय तुरन्त चला जाता है और जब सूर्य वास्तव में दिखता है, तो हर वस्तु प्रकट हो जाती है और हर व्यक्ति अपने धार्मिक कार्य तथा नियमित कर्तव्य करना प्रारम्भ कर देता है।

ऐछे नामोदयारम्भे पाप-आदिर क्षय ।

उदय कैले कृष्ण-पदे हय प्रेमोदय ॥ 185॥

ऐछे-इसी प्रकार; नाम-उदय-पवित्र नाम का उदय होने पर; आरम्भे-आरम्भ में ही; पाप-पापकर्मो के फल; आदिर-उनके और दूसरों के; क्षय-नाश; उदय कैले–जब वास्तव में निरपराध जप जागृत होता है; कृष्ण-पदे-कृष्ण के चरणकमलों में; हय प्रेम-उदय-प्रेमभाव का उदय होता है।

अनुवाद

"इसी तरह यह प्रथम संकेत कि भगवान् के पवित्र नाम का निरपराध जप जाग्रत हो चुका है, तुरन्त पापमय जीवन के फलों का क्षय कर देता है। और जब कोई निरपराध होकर नाम का जप करता है, तो उसमें कृष्ण के चरणकमलों पर प्रेमभाव युक्त सेवा जाग्रत हो जाती है।

'मुक्ति' तुच्छ-फल हय नामाभास हैते ॥ 186॥

मुक्ति-मुक्ति; तुच्छ-फल-तुच्छ परिणाम; हय-है; नाम-आभास हैते–पवित्र नाम के निरपराध जप के उदय की एक झलक से।

अनुवाद

"मुक्ति तो भगवान् के पवित्र नाम के अपराध रहित जप की जागृति के आभास से प्राप्त होने वाला एक नगण्य फल है।"

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् ।

अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन् ॥187॥

म्रियमाण:-मरते हुए; हरेः नाम-परम भगवान् के पवित्र नाम का; गृणन्–उच्चारण; पुत्र-उपचारितम्-यद्यपि अपने पुत्र के लिए कहा था; अजामिल:-अजामिल ने; अपि-और; अगात् प्राप्त किया; धाम-आध्यात्मिक जगत्; किम् उत–तो क्या कहना; श्रद्धया-श्रद्धा और आदर भाव से; गृणन्-कीर्तन करते हैं।

अनुवाद

"मृत्यु के समय अजामिल ने अपने पुत्र नारायण को बुलाने के उद्देश्य से भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण किया। फिर भी उसे वैकुण्ठ लोक प्राप्त हुआ। तो फिर उन लोगों के विषय में क्या कहा जा सकता है, जो श्रद्धा तथा आदरपूर्वक पवित्र नाम का कीर्तन करते हैं?"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (6.2.49) से है।

“ये मुक्ति भक्त ना लय, से कृष्ण चाहे दिते” ॥188॥

ये-जो; मुक्ति-मुक्ति; भक्त–एक भक्त; ना लय-नहीं लेता; से—वह; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; चाहे दिते-देना चाहते हैं।

अनुवाद

“जो मुक्ति शुद्ध भक्त को स्वीकार्य नहीं है, वह कृष्ण द्वारा सदा बिना किसी कठिनाई के प्रदान की जाती है।

सालोक्य-सार्ष्टि-सारूप्य-सामीप्यैकत्वमप्युत ।

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥189॥

सालोक्य-समान लोक में रहना; सार्ष्टि-समान ऐश्वर्य प्राप्त करना; सारूप्य–समान शारीरिक स्वरूप प्राप्त करना; सामीप्य–सदैव परम भगवान् के साथ रहना; एकत्वम्-भगवान् के अस्तित्व में विलीन हो जाना; अपि-तथा; उत–निश्चय ही; दीयमानम्-दिये जाने पर; न गृह्णन्ति–नहीं स्वीकार करते; विना-बिना; मत्-सेवनम्-मेरी सेवा; जनाः-भक्त।

अनुवाद

“यदि मैं सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य या एकत्व-इन मुक्तियों को अपने भक्तों को प्रदान भी करूँ, तो वे मेरी सेवा की तुलना में इन्हें स्वीकार नहीं करते।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (3.29.13) से लिया गया है, जिसे भगवान् के अवतार कपिल ने कहा है।

‘गोपाल चक्रवर्ती' नाम एक-जन ।

मजुमदारेर घरे सेइ आरिन्दा प्रधान ॥190॥

गोपाल चक्रवर्ती–गोपाल चक्रवर्ती; नाम-नामक; एक-जन-एक व्यक्ति; मजुमदारेर घरे-हिरण्य और गोवर्धन मजमुदार के घर पर; सेइ-वह; आरिन्दा प्रधान-मुख्य कर-अधिकारी।

अनुवाद

हिरण्य तथा गोवर्धन मजुमदार के घर पर गोपाल चक्रवर्ती नामक एक व्यक्ति सरकारी मुख्य कर संग्राहक था।

गौड़े रहि' पात्साहा-आगे आरिन्दा-गिरि करे ।

बार-लक्ष मुद्रा सेइ पात्सार ठाञि भरे ॥191॥

गौड़े रहि'-बंगाल में रहकर; पात्साहा-आगे-राजा के नाम पर; आरिन्दा-गिरि करे—मुख्य कर-अधिकारी के रूप में कार्य करते हैं; बार-लक्ष–12,00,000; मुद्रा-सिक्के; सेइ-वह; पात्सार ठाञि-राजा के लिए; भरे-एकत्रित करता।

अनुवाद

यह गोपाल चक्रवर्ती बंगाल में रहता था। कर संग्राहक के रूप में उसका काम था, बारह लाख मुद्राएँ एकत्र करके शाही खजाने में जमा करना।

परम-सुन्दर, पण्डित, नूतन-यौवन ।

नामाभासे 'मुक्ति' 'शुनि' ना हइल सहन ॥ 192॥

परम-सुन्दर-अत्यन्त सुन्दर; पण्डित-पण्डित; नूतन-नये; यौवन-युवावस्था; नाम-आभासे–पवित्र नाम के जप के शुद्ध उच्चारण की झलक मात्र द्वारा; मुक्ति-मुक्ति; शुनि'–सुनकर; ना हइल सहन-सहन नहीं कर सका।

अनुवाद

उसका शरीर सुन्दर था और वह पण्डित तथा युवावस्था को प्राप्त था, किन्तु वह इस कथन को सहन नहीं कर पाया कि मात्र नामाभास से (भगवान् के पवित्र नाम के शुद्ध उच्चारण की झलक मात्र से) कोई मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

तात्पर्य

वैष्णवजन नामाभास द्वारा मनुष्य के मुक्त होने के विषय में शास्त्रों के आदेशों का दृढ़ता से पालन करते हैं। मुक्ति कितनी आसानी से प्राप्त की जा सकती है इसके सम्बन्ध में शास्त्रों में जो कथन हैं, उन्हें मायावादी सहन नहीं कर पाते, क्योंकि भगवद्गीता (12.5) में कहा गया है-क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम्-निर्विशेषवादी अनेकानेक जन्मों तक कठिन श्रम करने के बाद शायद मुक्ति प्राप्त करता है। वैष्णव जानते हैं। कि भगवान् के पवित्र नाम का अपराधरहित उच्चारण करने मात्र से ही मुक्ति एक गौण फल के रूप में प्राप्त की जा सकती है। इसलिए मुक्ति के लिए अलग से प्रयास करने की कोई आवश्यकता नहीं है। श्रील बिल्वमंगल ठाकुर ने कहा है, मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान्–यदि कोई दृढ़ श्रद्धा तथा आदर से युक्त शुद्ध भक्त है, तो मुक्ति उसके द्वार पर किसी भी तरह की सेवा करने के लिए हाथ जोड़े खड़ी रहती है। मायावादी इसे सहन नहीं कर सकते। इसीलिए यद्यपि आस्न्दिा प्रधान या कर संग्राहक विद्वान, सुन्दर तथा युवा था, किन्तु वह हरिदास ठाकुर के कथनों को सहन नहीं कर सका।

क्रुद्ध हञा बले सेइ सरोष वचन।

"भावुकेर सिद्धान्त शुन, पण्डितेर गण ॥193॥

क्रुद्ध हञा–अत्यन्त क्रोधित होकर; बले–कहा; सेइ-उसने; स-रोष वचन-क्रोधित शब्द; भावुकेर-एक भावुक व्यक्ति के सिद्धान्त-निष्कर्ष; शुन-सुनो; पण्डितेर गण-हे पण्डित गणों।

अनुवाद

यह युवक गोपाल चक्रवर्ती हरिदास ठाकुर के कथन सुनकर अत्यधिक कुपित हुआ। उसने तुरन्त उनकी आलोचना की, "हे विद्वज्जनों, जरा इस भावुक भक्त का निष्कर्ष तो सुनो।

कोटि-जन्मे ब्रह्म-ज्ञाने येइ 'मुक्ति' नय।

एइ कहे,—नामाभासे सेइ 'मुक्ति' हय" ॥194॥

कोटि-जन्मे-करोड़ों जन्मों के बाद; ब्रह्म-ज्ञाने–ब्रह्मज्ञान द्वारा; येइ-जो; मुक्ति नय–मुक्ति सम्भव नहीं है; एइ-यह व्यक्ति; कहे-कहता है; नाम-आभासे–पवित्र नाम के शुद्ध जप की झलक के जागृत होने से; सेइ-वही; मुक्ति-मुक्ति; हय–सम्भव है।

अनुवाद

"करोड़ों जन्मों के बाद जब कोई मनुष्य परम ज्ञान में पूर्ण हो जाता है, तब भी उसे मुक्ति नहीं मिल पाती; फिर भी यह व्यक्ति कहता है कि उस मुक्ति को केवल नामाभास से प्राप्त की जा सकती है।"

हरिदास कहेन,—केने करह संशय? ।

शास्त्रे कहे,—नामाभास-मात्रे 'मुक्ति' हय ॥195॥

हरिदास कहेन-हरिदास ठाकुर ने कहा; केने-क्यों; करह संशय-सन्देह करते हो; शास्त्रे कहे-यह प्रामाणिक शास्त्रों में वर्णित है; नाम-आभास मात्रे–पवित्र नाम की झलक मात्र से; मुक्ति हय–मुक्ति हो जाती है।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, "तुम सन्देह क्यों कर रहे हो? प्रामाणिक शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य मात्र नामाभास से, पवित्र नाम की झलक मात्र से मुक्ति पा सकता है।

भक्ति-सुख-आगे 'मुक्ति' अति-तुच्छ हय ।

अतएव भक्त-गण 'मुक्ति' नाहि लय ॥196॥

भक्ति-सुख-प्रेममयी सेवा द्वारा प्राप्त दिव्य आनन्द; आगे-के सामने; मुक्ति-मुक्ति; अति-तुच्छ—अत्यन्त तुच्छ; हय-है; अतएव–अतएव; भक्त-गण-शुद्ध भक्त; मुक्ति-मुक्ति; नाहि लय-नहीं स्वीकार करते॥

अनुवाद

"जो भक्त भक्ति के दिव्य आनन्द का भोग करता है, उसके लिए मुक्ति अतीव नगण्य है। इसलिए शुद्ध भक्त कभी भी मुक्ति पाने की अभिलाषा नहीं रखते।

त्वत्साक्षात्करणाह्लाद-विशुद्धाब्धि-स्थितस्य मे ।

सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्माण्यपि जगद्गुरो ॥ 197॥

त्वत्-आपसे; साक्षात्-करण-मिलकर; आह्लाद-आनन्द; विशुद्ध-आध्यात्मिक रूप से शुद्ध; अब्धि-एक समुद्र में; स्थितस्य–स्थित; मे–मेरा; सुखानि-आनन्द; गोष्-पदायन्ते–एक बछड़े के खुर के निशान के बराबर; ब्राह्माणि-निराकार ब्रह्म-ज्ञान से प्राप्त; अपि-भी; जगत्-गुरो-हे जगत् के स्वामी॥

अनुवाद

"हे प्रिय प्रभु, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, चूंकि मैंने आपका प्रत्यक्ष दर्शन किया है, इसलिए मेरे दिव्य आनन्द ने महासागर का रूप धारण कर लिया है। अब उस सागर में स्थित होने से मैं अनुभव करता हूँ कि ब्रह्मानन्द समेत अन्य समस्त तथाकथित सुख गाय के खुर के चिह्न में भरे हुए जल के समान हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक हरिभक्ति सुधोदय (14.36) से उद्धृत है।

विप्र कहे,— "नामाभासे यदि 'मुक्ति' नय।

तबे तोमार नाक काटि' करह निश्चय ॥198॥

विप्र कहे-ब्राह्मण ने कहा; नाम-आभासे–पवित्र नाम के निरपराध जप के आभास मात्र से; यदि-यदि; मुक्ति नय-मुक्ति प्राप्त नहीं होती; तबे-तो; तोमार-आपका; नाक-नाक; काटि'-मैं काट लँगा; करह निश्चय-यह जान लो।

अनुवाद

गोपाल चक्रवर्ती ने कहा, "यदि कोई मात्र नामाभास से मुक्त न हो सके, तो आप इसे निश्चय ही जान लें कि मैं आपकी नाक काट लूँगा।"

हरिदास कहेन,— "यदि नामाभासे 'मुक्ति' नये।

तबे आमार नाक काटिमु,—एइ सुनिश्चय" ॥199॥

हरिदास कहेन-हरिदास ठाकुर ने कहा; यदि-यदि; नाम-आभासे- भगवान् के पवित्र नाम के आभास मात्र से मुक्ति नय–मुक्ति प्राप्त नहीं होती; तबे-तो; आमार-अपना; नाक-नाक; काटिमु-मैं काट लूँगा; एइ–यह; सुनिश्चय-जान लो।

अनुवाद

तब हरिदास ठाकुर ने गोपाल चक्रवर्ती की चुनौती स्वीकार कर ली। उन्होंने कहा, "यदि नामाभास से मुक्ति प्राप्त न हो सके, तो निश्चित रूप से मैं अपनी नाक काट दूँगा।"।

शुनि' सभासद् उठे करि' हाहाकार।

मजुमदार सेइ विप्रे करिल धिक्कार ॥200॥

शुनि'–सुनकर; सभा-सत्-सभा के सभी लोग; उठे-उठ खड़े हुए; करि' हाहा-कार-हाहाकार करते हुए; मजुमदार-हिरण्य और गोवर्धन मजुमदार; सेइ विप्रे-उस ब्राह्मण को जो उनका सेवक था; करिल-करने लगे; धिक्-कार-धिक्कार।

अनुवाद

सभा के सारे सदस्य जिन्होंने चुनौती सुनी, वे अत्यधिक क्षुब्ध हो गये। वे हाहाकार करते हुए उठ खड़े हुए। हिरण्य तथा गोवर्धन मजुमदार दोनों ने ही उस ब्राह्मण कर संग्राहक को तुरन्त डाँटा।

बलाइ-पुरोहित तारे करिला भर्त्सन ।

"घट-पटिया मूर्ख तुञि भक्ति काँहा जान?" ॥201॥

बलाइ-पुरोहित-बलराम आचार्य नामक पुरोहित; तारे-गोपाल चक्रवर्ती की; करिला–किये; भर्सन-निन्दा; घट-पटिया-घड़े और मिट्टी में आसक्त; मूर्ख-मूर्ख; तुञि-तुम; भक्ति-प्रेममयी सेवा; काँहा–कहाँ; जान-जानते हो।

अनुवाद

बलराम आचार्य नामक पुरोहित ने भी गोपाल चक्रवर्ती को डाँटा। उसने कहा, "तुम मूर्ख तर्कवादी हो। तुम भगवद्भक्ति के बारे में क्या जानो?"

तात्पर्य

मायावादियों द्वारा स्थापित दर्शन घट-पटिया ("घड़ा और मिट्टी") दर्शन कहलाता है। इस दर्शन के अनुसार सारी वस्तुएँ एक हैं। ऐसे दार्शनिक मिट्टी से बने घड़े और मिट्टी में कोई अन्तर नहीं देखते। वे तर्क देते हैं कि मिट्टी की बनी कोई भी वस्तु यथा विविध घड़े भी वही मिट्टी हैं। चूँकि गोपाल चक्रवर्ती घटपटिया तार्किक था, निपट भौतिकतावादी था, अत: वह दिव्य भगवद्भक्ति के विषय में क्या समझ पाता?

हरिदास-ठाकुरे तुञि कैलि अपमान! ।

सर्व-नाश हबे तोर, ना हबे कल्याण ॥ 202॥

हरिदास-ठाकुरे–हरिदास ठाकुर का; तुञि-तुमने; कैलि–किया है; अपमान-अपमान; सर्व-नाश-सब कुछ विनष्ट; हबे-हो जायेगा; तोर-तुम्हारा; ना-नहीं; हबे-होगा; कल्याण-शुभ परिणाम।

अनुवाद

"तुमने हरिदास ठाकुर का अपमान किया है। इसलिए तुम्हारे लिए भयावह स्थिति उत्पन्न होगी। तुम्हें किसी शुभ फल की आशा नहीं करनी चाहिए।"

शुनि' हरिदास तबे उठिया चलिला ।

मजुमदार सेइ विप्रे त्याग करिला ॥ 203॥

शुनि'–सुनकर; हरिदास–हरिदास ठाकुर; तबे-तब; उठिया चलिला-उठे और जाने लगे; मजुमदार-हिरण्य और गोवर्धन मजूमदार ने; सेइ विप्रे-इस ब्राह्मण का; त्याग करिला-त्याग कर दिया।

अनुवाद

तब हरिदास ठाकुर जाने के लिए उठे और गोपाल चक्रवर्ती के स्वामी दोनों मजुमदारों ने तुरन्त ही गोपाल चक्रवर्ती को अपनी नौकरी से हटा दिया।

सभा-सहिते हरिदासेर पड़िला चरणे ।

हरिदास हासि' कहे मधुर-वचने ॥204॥

सभा-सहिते-सभा के सारे सदस्यों के साथ; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; पड़िला चरणे-चरणकमलों में गिर पड़े; हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; हासि-हँसकर; कहे-कहा; मधुर-वचने-मधुर वाणी में।

अनुवाद

दोनों मजुमदार सभा के सारे सदस्यों सहित हरिदास ठाकुर के चरणकमलों पर गिर पड़े। किन्तु हरिदास ठाकुर मुस्कुरा रहे थे। उन्होंने मीठी वाणी में कहा।

तोमा-सबार दोष नाहि, एइ अज्ञ ब्राह्मण ।

तार दोष नाहि, तार तर्क-निष्ठ मन ॥205॥

तोमा-सबार-आप सबकी; दोष-गलती; नाहिं-नहीं है; एइ–यह; अज्ञ-अज्ञानी; ब्राह्मण-तथाकथित ब्राह्मण; तार दोष नाहि-इसका भी दोष नहीं है; तार-इसका; तर्क-निष्ठ-तर्क का अभ्यस्त; मन-मन है।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "तुम सबका कोई दोष नहीं है। निस्सन्देह, इस अज्ञानी तथाकथित ब्राह्मण का भी दोष नहीं है, क्योंकि वह शुष्क चिन्तन तथा तर्क का अभ्यस्त है।

तर्केर गोचर नहे नामेर महत्त्व ।

कोथा हैते जानिबे से एड सब तत्त्व? ॥ 206॥

तर्केर-तर्कवितर्क से; गोचर-प्रकट; नहे-नहीं है; नामेर-पवित्र नाम की; महत्त्व-महिमा; कोथा हैते–कहाँ से; जानिबे-जानेगा; से—वह; एइ–यह; सब-सब; तत्त्व-सत्य।

अनुवाद

"कोई व्यक्ति मात्र तर्कवितर्क से पवित्र नाम की महिमा को नहीं समझ सकता। इसलिए यह व्यक्ति सम्भवतः नाम की महिमा को नहीं समझ सका।

याह घर, कृष्ण करुन कुशल सबार ।

आमार सम्बन्धे दुःख ना हउक काहार" ॥ 207॥

याह घर-अपने घर जाइये; कृष्ण करुन–भगवान् कृष्ण करें; कुशल सबार-सबका कल्याण; आमार सम्बन्धे-मेरे कारण; दुःख-अप्रसन्नता; ना हउक-न हो; काहार-किसी को।

अनुवाद

"अब आप सभी अपने-अपने घर जायें। भगवान् कृष्ण आप सबको आशीर्वाद दें। मेरे अपमानित होने के कारण आप दुःखी न हों।"

तात्पर्य

हरिदास ठाकुर के इस कथन से यह पता चलता है कि शुद्ध वैष्णव कभी भी किसी द्वारा किये गये अपमान को गम्भीरता से नहीं लेता। यही श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है :

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीय: सदा हरिः ॥

"भक्त को अपने आपको मार्ग में पड़े तिनके से भी क्षुद्र मानकर दीनतापूर्वक भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए। भक्त को वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु, मिथ्या प्रतिष्ठा के भाव से रहित तथा अन्यों को आदर देने के लिए तत्पर रहना चाहिए। ऐसी मनोदशा में वह भगवान् के पवित्र नाम का जप निरन्तर कर सकता है।" वैष्णव सदैव वृक्ष तथा घास की तरह सहिष्णु एवं विनीत होता है। वह अन्यों द्वारा किये गये अपमान को सहता है, क्योंकि वह विचलित हुए बिना केवल भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने में रुचि रखता है।

तबे से हिरण्य-दास निज घरे आइल ।

सेइ ब्राह्मणे निज द्वार-माना कैल ॥ 208॥

तबे-तब; से-वह; हिरण्य-दास-हिरण्य मजुमदार; निज-अपने; घरे–घर; आइल-वापस लौट गया; सेइ-वह; ब्राह्मणे-गोपाल चक्रवर्ती का; निज-अपने; द्वार-द्वार से; माना-निषेध; कैल–घोषित कर दिया।

अनुवाद

तब हिरण्य दास मजुमदार अपने घर लौट आया और उसने आदेश दिया कि गोपाल चक्रवर्ती घर के भीतर नहीं जा सकता।

तिन दिन भितरे सेइ विप्रेर 'कुष्ठ' हैल ।

अति उच्च नासा तार गलिया पड़िल ॥ 209॥

तिन दिन-तीन दिन; भितरे–के अन्दर; सेइ-उस; विप्रेर–ब्राह्मण को; कुष्ठ-कुष्ठ रोग; हैल-हो गया; अति-अत्यन्त; उच्च-ऊँची; नासा–नाक; तार—उसकी; गलिया-गलकर; पड़िल-गिर गई।

अनुवाद

तीन दिनों के भीतर उस ब्राह्मण को कोढ़ हो गया, जिसके फलस्वरूप उसकी उठी हुई नाक गलकर गिर पड़ी।

चम्पक-कलि-सम हस्त-पदाङ्गुलि ।

कोङ्कड़ हइल सब, कुष्ठे गेल गलि' ॥210॥

चम्पक-एक सुनहरे रंग के फूल की; कलि-कलि; सम-जैसे; हस्त-पद-अङ्गुलि--हाथ और पैर की अँगुलियाँ; कोङ्कड़ हइल-विकृत हो गईं; सब-सभी; कुष्ठे-कुष्ठ के कारण; गेल गलि'–गल गईं।

अनुवाद

उस ब्राह्मण के हाथ तथा पाँव की अँगुलियाँ सुनहरे रंग के चम्पक की कलियों के समान सुन्दर थीं, किन्तु कोढ़ के कारण वे सब मुरझा गईं और धीरे-धीरे गल गईं।

देखिया सकल लोक हैल चमत्कार ।

हरिदासे प्रशंसि' ताँरे करे नमस्कार ॥211॥

देखिया-देखकर; सकल लोक-सभी लोग; हैल-हो गये; चमत्कार–विस्मित; हरिदासे–हरिदास ठाकुर की; प्रशंसि'-प्रशंसा करके; ताँरे-उनको; करे-करते हैं; नमस्कार–प्रणाम।

अनुवाद

गोपाल चक्रवर्ती की दशा देखकर सारे लोग चकित थे। सबने हरिदास ठाकुर के प्रभाव की प्रशंसा की और उन्हें नमस्कार किया।

यद्यपि हरिदास विप्रेर दोष ना लइला ।

तथापि ईश्वर तारे फल भुञ्जाइला ॥212॥

यद्यपि-यद्यपि; हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; विप्रेर-ब्राह्मण के; दोष-अपराध को; ना–नहीं; लइला-गम्भीरता से लिया; तथापि-फिर भी; ईश्वर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; तारे-उसे; फल-एक वैष्णव का अपमान करने का परिणाम; भुञ्जाइला–भोग करवाते हैं।

अनुवाद

यद्यपि वैष्णव के रूप में हरिदास ठाकुर ने ब्राह्मण के अपराध को गम्भीरता के साथ नहीं लिया, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् इसे सहन नहीं कर सके, अतः उन्होंने ब्राह्मण को यह फल भोगने के लिए बाध्य किया।

भक्त-स्वभाव,—अज्ञ-दोष क्षमा करे।

कृष्ण-स्वभाव,–भक्त-निन्दा सहिते ना पारे ॥213॥

भक्त-स्वभाव-एक शुद्ध भक्त का स्वभाव; अज्ञ-दोष-एक अज्ञानी मूर्ख द्वारा किये अपराध को; क्षमा करे–क्षमा कर देते हैं; कृष्ण-स्वभाव-कृष्ण का स्वभाव है; भक्त-निन्दा-भक्तों की निन्दा; सहिते ना पारे-सहन नहीं कर सकते।

अनुवाद

यह शुद्ध भक्त का गुण है कि वह अज्ञानी धूर्त द्वारा किये गये किसी भी अपराध को क्षमा कर देता है। किन्तु कृष्ण का गुण यह है कि वे अपने भक्तों की निन्दा नहीं सहन कर पाते।

तात्पर्य

वैष्णव और भगवान् के गुण जो इस श्लोक में वर्णित हैं, बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। अपने शिक्षाष्टक (3) में, श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक वैष्णव के गुणों की शिक्षा दी है :

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

एक वैष्णव घास से अधिक विनीत तथा वृक्ष से भी अधिक सहनशील होने के सिद्धान्त का दृढ़ता से पालन करता है; वह अन्यों से सम्मान की इच्छा नहीं करता, किन्तु हर एक को सम्मान देता है। इस तरह एक वैष्णव एकमात्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का कीर्तन करने तथा उनकी महिमा का गायन करने में रुचि रखता है। हरिदास ठाकुर वैष्णव मत के इस सर्वोच्च आदेश के प्रतीक थे।

कृष्ण किसी वैष्णव के विरुद्ध अपमान या निन्दा को नहीं सह सकते। उदाहरणार्थ, प्रह्लाद महाराज अपने पिता हिरण्यकशिपु द्वारा अनेक प्रकार से सताये जा रहे थे और प्रह्लाद ने तो इसे सह लिया, किन्तु कृष्ण ने नहीं सहा। इसलिए

वे हिरण्यकशिपु का वध करने के लिए नृसिंहदेव के रूप में आये। इसी तरह यद्यपि श्रील हरिदास ठाकुर ने गोपाल चक्रवर्ती द्वारा किया गया अपमान सह लिया, किन्तु कृष्ण नहीं सह सके। भगवान् ने तुरन्त ही गोपाल चक्रवर्ती को कोढ़ी बनाकर उसे दण्ड दिया। श्रील रूप गोस्वामी को वैष्णवों के विधि-विधानों का उपदेश देते समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने वैष्णव के चरणकमलों पर किये गये अपराधों के प्रभावों का विशद वर्णन किया है। यदि वैष्णव-अपराध उठे हाती माता (मध्य 19.156)। वैष्णव का अपमान करना या निन्दा करना सबसे बड़ा अपराध बताया गया है और इसकी तुलना मत्त हाथी से की गई है। जब मत्त हाथी किसी बगीचे में प्रवेश करता है, तो वह सारी लताएँ, फूल तथा वृक्ष को नष्ट कर देता है। इसी तरह उचित रीति से भक्ति करने वाला भक्त यदि अपने गुरु अथवा किसी अन्य वैष्णव के चरणकमलों पर अपराधी बन जाता है, तो उसकी भक्ति नष्ट हो जाती है।

विप्रेर कुष्ठ शुनि' हरिदास मने दुःखी हैला।

बलाइ-पुरोहिते कहि' शान्तिपुर आइला ॥214॥

विप्रेर–ब्राह्मण का; कुष्ठ-कुष्ठ रोग; शुनि'–सुनकर; हरिदास-हरिदास ठाकुर; मने-मन में; दुःखी हैला-दुःखी हुए; बलाइ-पुरोहिते-बलराम आचार्य से; कहि'–कहकर; शान्तिपुर आइला–शान्तिपुर आ गये।

अनुवाद

जब हरिदास ठाकुर ने सुना कि ब्राह्मण गोपाल चक्रवर्ती को कोढ़ हो गया है, तो वे दुःखी हुए। तत्पश्चात् हिरण्य मजुमदार के पुरोहित बलराम आचार्य को बतलाकर वे अद्वैत आचार्य के घर शान्तिपुर चले गये।

आचार्ये मिलिया कैला दण्डवत्प्रणाम।

अद्वैत आलिङ्गन करि' करिला सम्मान ॥215॥

आचार्ये मिलिया-अद्वैत आचार्य से मिलकर; कैला–किया; दण्डवत् प्रणाम-प्रणाम; अद्वैत-अद्वैत आचार्य ने; आलिङ्गन करि'-गले लगाकर; करिला सम्मान-सम्मान प्रदर्शित किया।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य से मिलकर हरिदास ठाकुर ने सादर दण्डवत् प्रणाम किया। अद्वैत आचार्य ने बदले में उनका आलिंगन किया और सम्मान दिखलाया।

गङ्गा-तीरे गोंफा करि' निर्जने ताँरे दिला।

भागवत-गीतार भक्ति-अर्थ शुनाइला ॥216॥

गङ्गा-तीरे-गंगा के किनारे; गोंफा करि'–एक गुफा जैसा निवास बनाकर; निर्जने-एकान्त स्थान में; ताँरे–उनको; दिला–दिया; भागवत- श्रीमद्भागवत का; गीतार-भगवद्गीता का; भक्ति-अर्थ-प्रेममयी सेवा का वास्तविक अर्थ; शुनाइला–उनसे कहे।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने हरिदास ठाकुर के लिए गंगा के तट पर एकान्त स्थान में एक गुफा जैसा घर बनवा दिया और भक्ति के सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीता का वास्तविक अर्थ उन्हें बताया।

आचार्येर घरे नित्य भिक्षा-निर्वाहण।

दुइ जना मिलि' कृष्ण-कथा-आस्वादन ॥217॥

आचार्येर घरे-अद्वैत आचार्य के घर पर; नित्य-प्रतिदिन; भिक्षा-निर्वाहण-भिक्षा के रूप में अन्न ग्रहण करके; दुइ जना-दोनों; मिलि'–मिलकर; कृष्ण-कथा-कृष्ण के विषय में चर्चा; आस्वादन-आस्वादन।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर नित्यप्रति अद्वैत आचार्य के घर पर भोजन करते। वे दोनों मिलकर कृष्ण विषयक चर्चाओं का अमृत-आस्वादन करते।

हरिदास कहे,— "गोसाञि, करि निवेदने।

मोरे प्रत्यह अन्न देह' को प्रयोजने?" ॥218॥

हरिदास कहे-हरिदास ठाकुर ने कहा; गोसाञि-मेरे प्रिय अद्वैत आचार्य; करि निवेदने मुझे एक प्रार्थना करने दो; मोरे-मुझे; प्रति-अह-प्रतिदिन; अन्न देह'-आप अन्न देते हैं; को प्रयोजने-क्या आवश्यकता है।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, "हे अद्वैत आचार्य, मैं आपके समक्ष कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। आप प्रतिदिन मुझे खाने के लिए भोजन की भिक्षा देते हैं। इसकी क्या आवश्यकता है?"

महा-महा-विप्र एथा कुलीन-समाज ।

नीचे आदर कर, ना वासह भय लाज!! ॥219॥

महा-महा-विप्र-बड़े बड़े ब्राह्मण; एथा-यहाँ; कुलीन-समाज-उच्च समाज में; नीचे-एक नीच जाति के व्यक्ति को; आदर कर-आप आदर करके; ना वासह–आप परवाह नहीं करते; भय लाज-भय या शर्म ।

अनुवाद

हे महोदय, आप बड़े-बड़े ब्राह्मणों तथा कुलीनों के समाज में रह रहे हैं, किन्तु बिना भय या लज्जा के आप मुझ जैसे निम्न जाति के व्यक्ति का आदर करते हैं।

अलौकिक आचार तोमार कहिते पाइ भय ।

सेइ कृपा करिबा,—याते मोर रक्षा हय ॥220॥

अलौकिक आचार-असामान्य आचरण; तोमार-आपका; कहिते-कहते हुए; पाइ भय–मैं भयभीत हूँ; सेइ कृपा-वह कृपा; करिबा-कृपया कीजिए; याते-जिसके द्वारा; मोर-मेरी; रक्षा रक्षा; हय-हो।

अनुवाद

"हे महाशय, आपका आचरण असामान्य है। निस्सन्देह, कभी-कभी तो मैं आपसे बोलते हुए डरता हूँ। किन्तु समाज के आचरण से मेरी रक्षा करके मेरे ऊपर कृपा करें।"

तात्पर्य

जब हरिदास ठाकुर अद्वैत आचार्य के संरक्षण में ठहरे थे, तब वे नवद्वीप के शान्तिपुर स्थान में वहाँ के समाज के आचरण से भयभीत थे, क्योंकि वह कुलीन ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों से पूर्ण था। हरिदास ठाकुर मुस्लिम परिवार में जन्में थे और बाद में महान् वैष्णव के रूप में विख्यात हुए, तो भी ब्राह्मण लोग उनकी आलोचना करते थे। इस तरह हरिदास ठाकुर को भय लगा रहता था कि उनसे अत्यधिक घनिष्ठता होने के कारण अद्वैत आचार्य कहीं कठिनाई में न

पड़ जाएँ। श्री अद्वैत आचार्य हरिदास ठाकुर को सर्वोच्च वैष्णव के रूप में आदर देते थे, किन्तु रामचन्द्र खान जैसे अन्य लोग उनसे ईर्ष्या करते थे। निस्सन्देह, हमें तो अद्वैत आचार्य के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए और रामचन्द्र खान जैसे लोगों की परवाह नहीं करनी चाहिए। आजकल अनेक यूरोपियन तथा अमेरिकन लोग वैष्णव रूप में हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में आ रहे हैं और यद्यपि रामचन्द्र खान जैसे व्यक्ति सदैव ऐसे वैष्णवों से ईर्ष्या करते हैं, किन्तु मनुष्य को इन सबके साथ वैष्णवों जैसा व्यवहार करके श्री अद्वैत आचार्य के पदचिह्नों का अनुगमन करना चाहिए। भले ही वे हरिदास ठाकुर जैसे उच्च न हों, किन्तु जिन अमेरिकियों तथा यूरोपवासियों ने वैष्णव दर्शन तथा आचार संहिता को स्वीकार कर लिया है, उन्हें कभी भी वैष्णव-समाज से विलग नहीं किया जाना चाहिए।

आचार्य कहेन,–"तुमि ना करिह भय ।

सेइ आचरिब, येइ शास्त्र-मत हय" ॥221॥

आचार्य कहेन-अद्वैत आचार्य ने कहा; तुमि-आप; ना-नहीं; करिह-करो; भय-भय; सेइ आचरिब–मैं ऐसा ही आचरण करूँगा; येइ-जो कुछ भी; शास्त्र-मत-प्रामाणिक ग्रन्थों द्वारा अनुमोदित; हय-है।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया, "हे प्रिय हरिदास, तुम भयभीत मत होओ। मैं प्रामाणिक शास्त्रों द्वारा अनुमोदित सिद्धान्तों के अनुसार ही कड़ाई से व्यवहार करूँगा।"

तात्पर्य

श्रील अद्वैत आचार्य कठोर ब्राह्मण संस्कृति तथा सामाजिक परम्परा से तनिक भी भयभीत न थे। जैसाकि शास्त्रों में, जो प्रमाण माने जाते हैं, आदेश है-कोई भी व्यक्ति, चाहे वह निम्न कुल में ही क्यों न उत्पन्न हो, भगवद्धाम लौट सकता है। भगवद्गीता (9.32) में श्रीकृष्ण कहते हैं :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

"हे पार्थ, जो लोग मेरी शरण ग्रहण करते हैं, वे भले ही निम्नजन्मा-स्त्री, वैश्य तथा शूद्र-क्यों न हों, वे परम धाम को प्राप्त कर सकते हैं। भले ही कोई मानव समाज में निम्नजन्मा हो, किन्तु जिसने कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में

स्वीकार कर लिया है, वह भगवधाम जाने के लिए सुपात्र है और जो भगवद्धाम जाने के लिए प्रामाणिक पात्र है, उसे निम्नजन्मा या चण्डाल नहीं मानना चाहिए। शास्त्रों का भी यही आदेश है। जैसाकि श्रीमद्भागवत (2.4.18) में कहा गया है :

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कशा

आभीरशुम्भा यवनाः खसादयः ।

येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः

शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥

न केवल यवन तथा खसादि ही, अपितु उनसे भी निम्न परिवारों में जन्मे लोग भी भगवान् कृष्ण के भक्त की कृपा से शुद्ध किये जा सकते हैं (शुध्यन्ति), क्योंकि कृष्ण ऐसे भक्तों को शुद्ध करने की शक्ति प्रदान करते हैं। अद्वैत आचार्य का शास्त्रों के प्रमाण पर विश्वास था और वे सामाजिक रीति-रिवाजों की परवाह नहीं करते थे। अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन ऐसा सांस्कृतिक आन्दोलन है, जो स्थानीय सामाजिक रीति-रिवाजों की परवाह नहीं करता। हम श्री चैतन्य महाप्रभु तथा अद्वैत आचार्य के पदचिह्नों पर चलते हुए विश्व के किसी भी भाग से आये भक्त को स्वीकार कर सकते हैं और ज्योंही वह वैष्णव आचार संहिता का पालन करके योग्य बन जाता है, उसे ब्राह्मण मान सकते हैं।

“तुमि खाइले हय कोटि-ब्राह्मण-भोजन” ।

एत बलि, श्राद्ध-पात्र कराइला भोजन ॥222॥

तुमि खाइले–यदि आप खाते हैं; हय-होता है; कोटि-ब्राह्मण-भोजन-1 करोड़ ब्राह्मणों को खिलाना; एत बलि-यह कहकर; श्राद्ध-पात्र–पूर्वजों को अर्पित भोजन; कराइला भोजन-खिलाया।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, “आपको खिलाना एक करोड़ ब्राह्मणों को खिलाने के समान है। अतएव आप यह श्राद्धपात्र स्वीकार करें। इस तरह अद्वैत आचार्य ने उन्हें खिलाया।”

तात्पर्य

श्राद्ध वह प्रसाद है, जो वर्ष या मास की किसी विशेष तिथि को पितरों को दिया जाता है। तब पितरों को भेंट किया गया श्राद्धपात्र वह थाली है, जो समाज के सर्वोत्तम ब्राह्मण को दी जाती है। अद्वैत आचार्य ने किसी अन्य ब्राह्मण को वह श्राद्धपात्र देने के बदले हरिदास ठाकुर को ही सर्वोच्च ब्राह्मण से भी बड़े मानकर उन्हें वह दे दिया। श्री अद्वैत आचार्य का यह कार्य सिद्ध करता है कि हरिदास ठाकुर सदैव दिव्य पद को प्राप्त रहते थे, अतएव वे सदैव सर्वोच्च ब्राह्मण से भी उच्च थे, क्योंकि वे भौतिक जगत् के सत्त्वगुण से भी परे स्थित थे। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती भक्तिसन्दर्भ के श्लोक 177 का उद्धरण देते हुए इस सन्दर्भ में गरुड़ पुराण का निम्नलिखित कथन उद्धृत करते हैं।

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते ।

सत्रयाजीसहस्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः ॥

सर्ववेदान्तविकोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते ।

वैष्णवानां सहस्रेभ्य एकान्त्येको विशिष्यते ॥

“यज्ञ करने के लिए योग्य ब्राह्मण सामान्य ब्राह्मण से बढ़कर है और ऐसे ब्राह्मण से भी बढ़कर वह है, जिसने सारे वैदिक शास्त्रों का अध्ययन किया हो। ऐसे अनेक बाह्मणों में से जो भगवान् विष्णु का भक्त होता है, वह श्रेष्ठ है और ऐसे अनेक वैष्णवों में से जो भगवान् की सेवा में पूर्णतया लगा रहता है, वही सर्वोत्तम है।”

भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते ।

स विप्रेन्द्रो मुनिश्रेष्ठाः स ज्ञानी स च पण्डितः ।

तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा हरिः ॥

“भक्त अनेक प्रकार के होते हैं, किन्तु म्लेच्छों या यवनों के परिवार तक में जन्मे वैष्णव को विद्वान पण्डित माना जाता है, यदि वह वैष्णव दर्शन जानता है। अत: उसे दान दिया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा वैष्णव भगवान् के ही सदृश पूज्य होता है।”

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपच: प्रियः ।

तस्मै देयं ततो ग्राह्य स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥

भगवान् कृष्ण कहते हैं, "अभक्त चाहे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न क्यों न हो और वेदाध्ययन में दक्ष क्यों न हो, वह मुझे अति प्रिय नहीं होता, जबकि मांसाहारी निम्न कुल में जन्मा भक्त यदि निष्ठावान हो, तो मुझे अत्यन्त प्रिय है। ऐसे निष्ठावान शुद्ध भक्त को दान दिया जाना चाहिए, क्योंकि वह मेरे ही समान पूज्य है।"

जगत् निस्तार लागि' करेन चिन्तन ।

अवैष्णव-जगत् केमने हइबे मोचन? ॥223॥

जगत्-निस्तार–समस्त जगत् के लोगों के उद्धार; लागि'-के लिए; करेन चिन्तन-सदैव विचार करते थे; अवैष्णव-अभक्तों से भरे हुए; जगत्-समस्त संसार का; केमने-कैसे; हइबे मोचन-उद्धार होगा।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य सदैव इन विचारों में मग्न रहते थे कि सम्पूर्ण जगत् के पतितात्माओं का किस तरह उद्धार किया जाए। उन्होंने सोचा, "सारा जगत् अभक्तों से भरा पड़ा है। उनका उद्धार किस तरह हो सकेगा?"

तात्पर्य

श्रील अद्वैत आचार्य वैष्णव सम्प्रदाय में आचार्यों के लिए आदर्श प्रस्तुत करने वाले हैं। आचार्य को पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए सदैव उत्सुक रहना चाहिए। जो व्यक्ति लोगों द्वारा विग्रह सेवा के लिए चढ़ाये गये धन को अपनी जीविका के लिए प्रयुक्त करके लोगों की भावनाओं का लाभ उठाने के लिए मन्दिर या मठ स्थापित करता है, उसे गोस्वामी या आचार्य नहीं कहा जा सकता। जो व्यक्ति शास्त्रों के निर्णय को जानता है, अपने पूर्ववर्तियों के पदचिह्नों पर चलता है और विश्वभर में भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने का प्रयास करता है, उसे ही आचार्य माना जायेगा। आचार्य की भूमिका मन्दिर की आय द्वारा जीविकोपार्जन करने में नहीं है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहा करते थे कि यदि कोई व्यक्ति मन्दिर में अर्चाविग्रह दिखलाकर जीविका चलाता है, तो वह आचार्य या गोस्वामी नहीं है। उसके लिए इससे अच्छा तो यह होगा कि वह सड़क पर झाड़ लगाने का काम करे, क्योंकि जीविकोपार्जन का यह अधिक सम्मानित साधन है।

कृष्णे अवतारिते अद्वैत प्रतिज्ञा करिला ।

जल-तुलसी दिया पूजा करिते लागिला ॥ 224॥

कृष्णे-भगवान् कृष्ण का; अवतारिते-अवतार करवाने का; अद्वैत-अद्वैत आचार्य; प्रतिज्ञा–प्रण; करिला-किया; जल-तुलसी-गंगाजल तथा तुलसी पत्र; दिया-अर्पित करके; पूजा-पूजा; करिते-करना; लागिला-प्रारम्भ किया।

अनुवाद

समस्त पतितात्माओं का उद्धार करने का दृढ़ संकल्प लेकर अद्वैत आचार्य ने कृष्ण को अवतरित करवाने का निश्चय किया। इस व्रत के साथ भगवान् की पूजा करने के लिए वे गंगाजल तथा तुलसी दल अर्पित करने लगे।

हरिदास करे गोंफाय नाम-सङ्कीर्तन ।

कृष्ण अवतीर्ण हइबेन,—एइ ताँर मन ॥225॥

हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; करे-किया; गोंफाय-गुफा में; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का कीर्तन; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतीर्ण हइबेन–अवतरित होंगे; एइ–यह; ताँर मन-उनका मन था।

अनुवाद

इसी तरह हरिदास ठाकुर गंगा के किनारे अपनी गुफा में कृष्ण का अवतरण कराने की दृष्टि से जप करते रहे।

दुइ-जनेर भक्त्ये चैतन्य कैला अवतार ।

नाम-प्रेम प्रचारि' कैला जगत् उद्धार ॥226॥

दुइ-जनेर-इन दोनों व्यक्ति की; भक्त्ये-भक्ति के कारण; चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला-लिया; अवतार–अवतार; नाम-प्रेम-पवित्र नाम और कृष्ण-प्रेम; प्रचार–प्रचार करके; कैला–किया; जगत् उद्धार-समस्त जगत् का उद्धार।

अनुवाद

इन दोनों व्यक्ति की भक्ति के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु अवतार के रूप में आये। इस तरह सारे जगत् का उद्धार करने के लिए उन्होंने भगवान् के पवित्र नाम तथा कृष्ण-प्रेम का प्रचार किया।

आर अलौकिक एक चरित्र ताँहार ।

याहार श्रवणे लोके हय चमत्कार ॥227॥

आर-एक ओर; अलौकिक-असाधारण; एक-एक; चरित्र–चरित्र; ताँहार-हरिदास ठाकुर का; याहार श्रवणे-जिसे सुनकर; लोके–मानव समाज में; हय-होगा; चमत्कार-आश्चर्य।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के असामान्य व्यवहार से सम्बन्धित एक अन्य घटना है। इसको सुनकर कोई भी आश्चर्यचकित हो जायेगा।

तर्क ना करिह, तर्कागोचर ताँर रीति ।

विश्वास करिया शुन करिया प्रतीति ॥ 228 ॥

तर्क ना करिह-तर्क मत करो; तर्क-अगोचर-तर्क से परे; ताँर–उनका; रीति-व्यवहार; विश्वास करिया–विश्वास करके; शुन-सुनो; करिया प्रतीति-भरोसा रखकर।

अनुवाद

ऐसी घटनाओं को शुष्क तर्क किये बिना सुनो, क्योंकि ये घटनाएँ हमारे भौतिक तर्क से परे हैं। मनुष्य को इन पर श्रद्धापूर्वक विश्वास करना चाहिए।

एक-दिन हरिदास गोंफाते वसिया ।

नाम-सङ्कीर्तन करेन उच्च करिया ॥ 229॥

एक-दिन-एक दिन; हरिदास-हरिदास ठाकुर; गोंफाते वसिया-अपनी गुफा में बैठकर; नाम-सङ्कीर्तन करेन-भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन कर रहे थे; उच्च करिया-अत्यन्त उच्च स्वर में।

अनुवाद

एक दिन हरिदास ठाकुर अपनी गुफा में बैठे थे और अत्यधिक उच्च स्वर से पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन कर रहे थे।

ज्योत्स्नावती रात्रि, दश दिक्सुनिर्मल ।

गङ्गार लहरी ज्योत्स्नाय करे झल-मल ॥ 230॥

ज्योत्स्नावती–चाँदनी से पूर्ण; रात्रि-रात; दश दिक्-दसों दिशाओं में; सु-निर्मल-अत्यन्त स्पष्ट और चमकदार; गङ्गार लहरी-गंगा की लहरें; ज्योत्स्नाय–चाँदनी में; करे झल-मल-झिलमिला रही थीं।

अनुवाद

पूर्णिमा की रात्रि थी, जिससे गंगा की लहरें झिलमिला रही थीं। सारी दिशाएँ निर्मल तथा प्रकाशमान थीं।

द्वारे तुलसी लेपा-पिण्डिर उपर ।

गोंफार शोभा देखि' लोकेर जुड़ाय अन्तर ॥231॥

द्वारे-द्वार पर; तुलसी–तुलसी का पौधा; लेपा–अति स्वच्छ; पिण्डिर उपर-वेदी के ऊपर; गोंफार शोभा–गुफा की सुन्दरता; देखि-देखकर; लोकेर-सभी का; जुड़ाय-सन्तुष्ट था; अन्तर–हृदय।

अनुवाद

स्वच्छ वेदी पर तुलसी के पौधे से युक्त गुफा की शोभा को जो भी देखता, वह चकित रह जाता और हृदय में तुष्ट होता।

हेन-काले एक नारी अङ्गने आइल ।

ताँर अङ्ग-कान्त्ये स्थान पीत-वर्ण हइल ॥232॥

हेन-काले—उस समय; एक-एक; नारी-स्त्री; अङ्गने आइल-आँगन में आ गई; ताँर-उसके; अङ्ग-कान्त्ये-शरीर की सुन्दरता से; स्थान-वह स्थान; पीत-वर्ण हइल-पीले वर्ण का हो गया।

अनुवाद

उसी समय उस सुन्दर परिदृश्य में एक स्त्री आँगन में प्रकट हुई। उसके शरीर का सौन्दर्य इतना प्रकाशमान था कि सारा स्थान पीली आभा से भर गया।

ताँर अङ्ग-गन्धे दश दिक् आमोदित ।

भूषण-ध्वनिते कर्ण हय चमकित ॥ 233॥

ताँर-उसके; अङ्ग-गन्धे-शरीर की सुगन्ध; दश दिक्-दसों दिशाएँ; आमोदित-महकने लगीं; भूषण-ध्वनितेउसके आभूषणों की ध्वनि से; कर्ण–कान; हय-होते; चमकित-गुंजित।

अनुवाद

उसके शरीर की सुगन्ध से सारी दिशाएँ महकने लगीं और उसके गहनों की झंकार से कान झंकरित हो गये।

आसिया तुलसीरे सेइ कैला नमस्कार ।

तुलसी परिक्रमा करि' गेला गोंफा-द्वार ॥ 234॥

आसिया-आकर; तुलसीरे-तुलसी के पौधे के पास; सेइ-उस स्त्री ने; कैला-किया; नमस्कार-प्रणाम; तुलसी–तुलसी के पौधे की परिक्रमा-परिक्रमा; करि'-करके; गेला–गई; गोंफा-द्वार-गुफा के द्वार पर।

अनुवाद

वहाँ आकर उस स्त्री ने तुलसी को नमस्कार किया और तुलसी की परिक्रमा करके वह उस गुफा के दरवाजे पर आई, जहाँ हरिदास ठाकुर बैठे थे।

योड़-हाते हरिदासेर वन्दिला चरण ।

द्वारे वसि' कहे किछु मधुर वचन ॥235॥

योड़-हाते-हाथ जोड़कर; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; वन्दिला चरण-चरणकमलों में प्रणाम किया; द्वारे वसि'-द्वार पर बैठकर; कहे-कहती है; किछु-कुछ; मधुर वचन–मधुर वचन।

अनुवाद

उसने हाथ जोड़कर हरिदास ठाकुर के चरणकमलों पर नमस्कार किया। फिर द्वार पर बैठकर वह अत्यन्त मधुर वाणी में बोली।

जगतेर बन्धु तुमि रूप-गुणवान् ।

तव सङ्ग लागि' मोर एथाके प्रयाण ॥236॥

जगतेर-समस्त जगत् के; बन्धु-मित्र; तुमि-आप; रूप-गुण-वान्-अत्यन्त सुन्दर तथा गुणवान; तव सङ्ग-आपके संग; लागि'–के लिए; मोर-मैं; एथाके प्रयाण–यहाँ आई हूँ।

अनुवाद

"हे प्रिय मित्र, आप तो सारे जगत् के मित्र हैं। आप इतने सुन्दर तथा योग्य हैं। मैं यहाँ आपके साथ संग-सुख लाभ के लिए आई हूँ।

"मोरे अङ्गीकार कर हाञा सदय ।

दीने दया करे,—एइ साधु-स्वभाव हय" ॥ 237॥

मोरे- मुझे; अङ्गीकार कर–स्वीकार करें; हञा स-दय-दयालु होकर; दीने–पतित जीवों पर; दया करे—दया करना; एइ-यह; साधु-स्वभाव-साधुओं का स्वभाव; हय-है ।

अनुवाद

"हे महोदय, आप कृपया मुझे स्वीकार करें और मेरे प्रति कृपालु हों, क्योंकि समस्त साधुजनों का स्वभाव है कि वे दीन तथा पतितों के प्रति कृपालु होते हैं।"

एत बलि' नाना-भाव करये प्रकाश ।

याहार दर्शने मुनिर हय धैर्य-नाश ॥ 238॥

एत बलि'—यह कहकर; नाना-भाव-अनेक मुद्राएँ; करये प्रकाश-प्रदर्शित करने लगी; याहार दर्शने-जिसे देखकर; मुनिर–महान् दार्शनिकों का भी; हय-हो जाए; धैर्य-नाश-धैर्य का नाश।

अनुवाद

यह कहकर वह विविध हावभाव प्रकट करने लगी, जिसे देखकर बड़े-से-बड़े दार्शनिक का भी धैर्य छूट जाता।

निर्विकार हरिदास गम्भीर-आशय।

बलिते लागिला तारे हञा सदय ॥ 239॥

निर्विकार-अविचलित; हरिदास-हरिदास ठाकुर; गम्भीर-अत्यन्त गम्भीर; आशय-संकल्प; बलिते लागिला-कहने लगे; तारे–उस पर; हञा सदय-कृपा करके।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर अविचलित थे, क्योंकि उनका संकल्प दृढ़ था। वे उस पर कृपालु होकर उससे बोले।

सङ्ख्या-नाम-सङ्कीर्तन–एइ 'महा-यज्ञ' मन्ये।

ताहाते दीक्षित आमि हइ प्रति-दिने ॥ 240॥

सङ्ख्या -नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का संख्यापूर्वक जप; एइ-यह; महा-यज्ञ-महान् यज्ञ है; मन्ये-मैंने प्रण किया है; ताहाते दीक्षित-उसमें दीक्षित; आमि-मैं; हइ-हूँ; प्रति-दिने-प्रतिदिन।

अनुवाद

"मैंने प्रतिदिन निश्चित संख्या में नाम-कीर्तन करने के महान् यज्ञ-व्रत की दीक्षा ले रखी है।"

यावत्कीर्तन समाप्त नहे, ना करि अन्य काम।

कीर्तन समाप्त हैले, हय दीक्षार विश्राम ॥ 241॥

यावत्-जब तक; कीर्तन-जप; समाप्त-समाप्त; नहे-नहीं होता; ना-नहीं; करि-मैं करता; अन्य-अन्य; काम–कार्य; कीर्तन-कीर्तन; समाप्त-समाप्त; हैले–होने पर; हय-है; दीक्षार-दीक्षा का; विश्राम-विश्राम।

अनुवाद

"जब तक जप करने का व्रत अधूरा है, तब तक मैं किसी अन्य वस्तु की कामना नहीं करता। जब मैं अपना जप समाप्त कर लेता हूँ, तब मुझे दूसरा कुछ करने का अवसर मिलता है।

द्वारे वसि' शुन तुमि नाम-सङ्कीर्तन।

नाम समाप्त हैले करिमु तव प्रीति-आचरण ॥ 242॥

द्वारे वसि'–द्वार पर बैठकर; शुन-सुनो; तुमि-तुम; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नामों का जप; नाम-पवित्र नाम; समाप्त हैले–जब समाप्त हो जाए; करिमु-मैं करूँगा; तव-तुम्हारे; प्रीति-आनन्ददायक; आचरण-कार्य।

अनुवाद

तुम द्वार पर बैठ जाओ और हरे कृष्ण महामन्त्र का जप सुनो। जप समाप्त होते ही मैं तुम्हारी मनोकामना पूरी करूँगा।"

एत बलि' करेन तेंहो नाम-सङ्कीर्तन ।

सेइ नारी वसि' करे श्री-नाम-श्रवण ॥ 243॥

एत बलि'—यह कहकर; करेन-करते हैं; तेंहो-वे; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का जप; सेइ नारी-वह स्त्री; वसि'–बैठकर; करे-करती है; श्री-नाम-श्रवण-पवित्र नाम का श्रवण।

अनुवाद

यह कहकर हरिदास ठाकुर ने भगवान् के पवित्र नाम का जप जारी रखा। इस तरह उनके समक्ष बैठी वह स्त्री पवित्र नाम का जप सुनने लगी।

कीर्तन करिते आसि' प्रातः काल हैल ।

प्रातः काल देखि' नारी उठिया चलिल ॥244॥

कीर्तन करिते-जप करते करते; आसि-आकर; प्रातः-काल-प्रातः काल; हैल-हो गया; प्रातः काल देखि'–प्रातः काल देखकर; नारी-वह स्त्री; उठिया चलिल-उठकर चली गई।

अनुवाद

इस तरह उनके जप करते-करते सुबह हो गई और जब उस स्त्री ने देखा कि सुबह हो गई, तो वह उठी और चली गई।

एइ-मत तिन-दिन करे आगमन ।

नाना भाव देखाय, याते ब्रह्मार हरे मन ॥245॥

एइ-मत-इस प्रकार; तिन-दिन-तीन दिन; करे-वह करती है; आगमन–आना; नाना भाव-सब प्रकार के स्त्री सुलभ भाव; देखाय–दिखाकर; याते-जिससे; ब्रह्मार-ब्रह्माजी का भी; हरे-आकर्षित हो जाए; मन–मन।

अनुवाद

इस तरह वह तीन दिनों तक हरिदास ठाकुर के पास आती रही और विविध स्त्री-भंगिमाएँ दिखलाती रही, जो ब्रह्मा के भी मन को विमोहित कर लें।

कृष्णे नामाविष्ट-मना सदा हरिदास ।

अरण्ये रोदित हैल स्त्री-भाव-प्रकाश ॥246॥

कृष्णे-भगवान् कृष्ण के नाम-आविष्ट–पवित्र नाम जप में मग्न; मना-मन; सदा-सदैव; हरिदास-हरिदास ठाकुर; अरण्ये-वन में; रोदित-रोने जैसे; हैल–हो गये; स्त्री-भाव-प्रकाश-स्त्री के भाव प्रदर्शन।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर सदैव कृष्ण के विचारों में तथा कृष्ण के पवित्र नाम में मग्न रहते थे। इसलिए स्त्री ने जो भंगिमाएँ प्रकट कीं, वे जंगल में रोने के समान थीं।

तृतीय दिवसेर रात्रि-शेष यबे हैल ।

ठाकुरेर स्थाने नारी कहिते लागिल ॥ 247॥

तृतीय दिवसेर तीसरे दिन की; रात्रि-शेष-रात का अन्त; यबे-जब; हैल-हो गया; ठाकुरेर-हरिदास ठाकुर के; स्थाने स्थान पर; नारी-स्त्री; कहिते लागिल-कहने लगी।

अनुवाद

तीसरे दिन की रात के समाप्त होने पर वह स्त्री हरिदास से इस प्रकार बोली।

“तिन दिन वञ्चिला आमा करि’ आश्वासन ।

रात्रि-दिने नहे तोमार नाम-समापन” ॥ 248॥

तिन दिन-तीन दिन; वञ्चिला-आपने छल किया; आमा–मुझे; करि' आश्वासन-भरोसा देकर; रात्रि-दिने-सम्पूर्ण दिन और रात को; नहे-नहीं; तोमार-आपका; नाम-समापन–पवित्र नाम का जप समाप्त।

अनुवाद

"हे महोदय, आपने तीन दिनों तक झूठा आश्वासन देकर मुझे धोखा दिया है, क्योंकि मैं देखती हूँ कि आपका दिन-रात चलने वाला यह नाम-जप कभी समाप्त नहीं होने वाला है।"

हरिदास ठाकुर कहेन,–"आमि कि करिमु? ।

नियम करियाछि, ताहा केमने छाड़िमु?" ॥249॥

हरिदास ठाकुर-हरिदास ठाकुर ने; कहेन–कहा; आमि कि करिमु-मैं क्या करूँ; नियम करियाछि—मैंने एक प्रतिज्ञा की है; ताहा-वह; केमने-कैसे; छाड़िमु-मैं छोड़ दूँ।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, "मेरी प्रिय मित्र, मैं कर ही क्या सकता हूँ? मैंने व्रत ले रखा है। तो फिर मैं उसे कैसे त्याग सकता हूँ?

तबे नारी कहे तौरे करि' नमस्कार ।

'आमि—माया' करिते आइलाङ परीक्षा तोमार ॥ 250 ॥

तबे-उस समय; नारी-स्त्री; कहे-बोली; तौरे-हरिदास ठाकुर को; करि' नमस्कार–प्रणाम करके; आमि-मैं; माया-माया हूँ; करिते-करने के लिए; आइलाङ-मैं आई थी; परीक्षा-परीक्षा; तोमार-आपकी।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर को नमस्कार करके वह स्त्री बोली, "मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की मोहिनी शक्ति, माया हूँ। मैं यहाँ आपकी परीक्षा लेने आई थी।

तात्पर्य

भगवद्गीता (7.14) में भगवान् कृष्ण कहते हैं :

दैवी ह्येषागुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

"भौतिक प्रकृति के तीन गुणों वाली इस मेरी दैवी शक्ति को पार कर पाना कठिन है। किन्तु जो मेरे शरणागत हो जाते हैं, वे इसे सरलता से पार कर जाते हैं।' हरिदास ठाकुर के चरित्र से यह सचमुच सिद्ध हो गया था। माया सारे जगत् को विमोहित करती है। लोग जीवन के चरम लक्ष्य को भूल चुके हैं, क्योंकि वे तो भौतिक जगत् की चकाचौंध से आकृष्ट हैं। किन्तु यह चकाचौंध का आकर्षण, विशेषतया स्त्री का आकर्षक सौन्दर्य, उन लोगों के लिए है। जिन्होंने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण नहीं ली है। भगवान् कहते हैं-मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते–"जो मेरी शरण में आ चुका है, उसे माया जीत नहीं सकती।" माया स्वयं ही हरिदास की परीक्षा लेने आई, किन्तु यहाँ वह अपनी पराजय स्वीकार करती है, क्योंकि वह उन्हें विमोहित नहीं कर पाई। यह कैसे सम्भव हुआ? इसलिए कि हरिदास ठाकुर भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में पूरी तरह समर्पित थे और प्रतिदिन व्रत के रूप में तीन लाख भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करके कृष्ण के विचारों में सदैव डूबे रहते थे।

ब्रह्मादि जीव, आमि सबारे मोहिलुँ।

एकेला तोमारे आमि मोहिते नारिलुँ॥ 251॥

ब्रह्म-आदि जीव-ब्रह्माजी से लेकर सभी जीवों को; आमि-मैंने; सबारे मोहिलुँ-सबको मोहित कर दिया; एकेला-एकमात्र; तोमारे-आपको; आमि-मैं; मोहिते नारिलुँ-मोहित नहीं कर पाई।

अनुवाद

मैंने पहले ब्रह्मा तक के मन को मोहित किया है, अन्यों की बात जाने दें। केवल आपके मन को ही मैं आकृष्ट नहीं कर सकी।

तात्पर्य

ब्रह्माजी से लेकर क्षुद्र चींटी तक सारे जीव, बिना किसी अपवाद के पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की माया द्वारा आकृष्ट होते हैं। देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े, पेड़, पौधे सभी संभोग-इच्छा द्वारा आकृष्ट होते हैं। यही माया का मोह है। पुरुष हो या स्त्री, हर व्यक्ति यही सोचता है कि वह माया का भोक्ता है। इस तरह हर व्यक्ति मोहित होता है और भौतिक कार्यों

में लगता है। किन्तु हरिदास ठाकुर सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का चिन्तन करते रहते थे और सदैव भगवान् की इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने में लगे रहते थे। उन्हें इसी विधि ने माया के बन्धन से बचाया। यह भक्ति की शक्ति का ज्वलन्त प्रमाण है। भगवान् की सेवा में पूरी तरह लगे रहने के कारण ही उनको माया के साथ भोग करने के लिए प्रेरित नहीं किया जा सका। शास्त्रों का निर्णय है कि शुद्ध वैष्णव कभी भी भौतिक जगत् का भोग करने की नहीं सोचता, जिसकी चरम परिणति संभोग है। वह कभी भी अपने आपको भोक्ता नहीं मानता। प्रत्युत वह भगवान् द्वारा भोग्य होता है। इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सनातन, दिव्य हैं तथा इन्द्रियतृप्ति की अनुभूति से एवं भौतिक गुणों से परे हैं। यदि जीव इस भ्रान्त धारणा को त्याग देता है कि शरीर ही आत्मा है और यदि वह अपने आपको कृष्ण तथा वैष्णवों का नित्य दास समझता है, तो वह माया के प्रभाव को लाँघ सकता है (मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते) । इस तरह जो शुद्ध जीव अनर्थ-निवृत्ति का पद प्राप्त कर लेता है, उसके लिए इस भौतिक जगत् में भोग करने के लिए कुछ नहीं बचता। इस स्थिति को भक्ति-कार्यों को सही ढंग से सम्पन्न करके ही प्राप्त किया जा सकता है। श्रील रूप गोस्वामी ने लिखा है।

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया ।

ततोऽनर्थ-निवृत्ति: स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः ॥

“प्रारम्भ में आत्म-साक्षात्कार की इच्छा होनी चाहिए। इससे व्यक्ति आध्यात्मिकता में उन्नत व्यक्तियों का संग करने का प्रयास करेगा। अगली अवस्था में वह उन्नत गुरु से दीक्षा लेगा और उसके निर्देशन में कनिष्ठ भक्त भक्तियोग प्रारम्भ करेगा। गुरु के निर्देशन में भक्ति सम्पन्न करने से वह सारी भौतिक आसक्तियों से मुक्त हो जाता है, आत्म-साक्षात्कार में स्थिरता प्राप्त करता है तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में सुनने के लिए रुचि उत्पन्न करता है।” (भक्तिरसामृतसिन्धु 1.4.15) यदि कोई सचमुच भक्ति करता है, तो अनर्थ (भौतिक भोग से सम्बन्धित अवांछित वस्तुएँ) स्वत: ही लुप्त हो जायेंगे।

महा-भागवत तुमि,—तोमार दर्शने ।

तोमार कृष्ण-नाम-कीर्तन-श्रवणे ॥ 252॥

चित्त शुद्ध हैल, चाहे कृष्ण-नाम लैते ।

कृष्ण-नाम उपदेशि' कृपा कर मोते ॥ 253॥

महा-भागवत–महान् भक्त; तुमि-आप हैं; तोमार दर्शने-आपके दर्शन से; तोमार-आपके; कृष्ण-नाम-कृष्ण के पवित्र नाम के; कीर्तन-कीर्तन; श्रवणे-श्रवण द्वारा; चित्त-चेतना; शुद्ध हैल-शुद्ध हो गई; चाहे-चाहती हूँ; कृष्ण-नाम लैते–भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम जप करना; कृष्ण-नाम उपदेशि'–हरे कृष्ण महामन्त्र के जप के विषय में शिक्षा दें; कृपा कर-कृपा करके; मोते-मुझे।

अनुवाद

"हे महोदय, आप सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं। आपके दर्शन मात्र से तथा आपको कृष्ण के पवित्र नाम का जप करते सुनकर मेरी चेतना शुद्ध हो गई है। अब मैं भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहती हूँ। कृपया हरे कृष्ण महामन्त्र जप के आनन्द के विषय में उपदेश देने की मुझ पर कृपा करें।

चैतन्यावतारे वहे प्रेमामृत-वन्या ।

सब जीव प्रेमे भासे, पृथिवी हैल धन्या ॥254॥

चैतन्य-अवतारे-श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतार द्वारा; वहे–बह रही है; प्रेम-अमृत-भगवत्प्रेम के नित्य अमृत की; वन्या-बाढ़; सब जीव-सारे जीव; प्रेमे-प्रेमभाव में; भासे-तैर रहे हैं; पृथिवी-सम्पूर्ण विश्व; हैल-हो गया है; धन्या-धन्य।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतार होने से भगवत्प्रेम रूपी सनातन अमृत की बाढ़ आ गई है। सारे जीव उस बाढ़ में बह रहे हैं। अब सारा जगत् महाप्रभु का कृतज्ञ है।

ए-वन्याय ये ना भासे, सेइ जीव छार ।

कोटि-कल्पे कभु तार नाहिक निस्तार ॥ 255 ॥

ए-वन्याय-इस बाढ़ में; ये-जो कोई भी; ना भासे–नहीं डूबता; सेइ-वह; जीव-जीवात्मा; छार–सर्वाधिक निन्दनीय; कोटि-कल्पे-करोड़ों कल्पों में; कभु-किसी भी समय; तार-उसका; नाहिक-नहीं हो सकता; निस्तार-उद्धार ।

अनुवाद

“जो इस बाढ़ में नहीं बहता, उसे धिक्कार है। ऐसे व्यक्ति को करोड़ों कल्पों तक उद्धार नहीं किया जा सकता।

तात्पर्य

कल्प की व्याख्या भगवद्गीता (8.17) में दी गई है। सहस्रयुग-पर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः । ब्रह्मा का एक दिन कल्प कहलाता है। एक युग या महायुग में 43,20,000 वर्ष होते हैं और इस तरह के एक हजार महायुगों से एक कल्प बनता है। श्रीचैतन्य-चरितामृत के रचियता का कहना है कि यदि कोई श्री चैतन्य महाप्रभु के कृष्णभावनामृत आन्दोलन का लाभ नहीं उठाता, तो उसका उद्धार ऐसे करोड़ों कल्पों में भी नहीं हो सकता।

पूर्वे आमि राम-नाम पाञाछि ‘शिव’ हैते ।

तोमार सङ्गे लोभ हैल कृष्ण-नाम लैते ॥ 256॥

पूर्वे-इससे पहले; आमि-मैंने; राम-नाम-भगवान् राम का पवित्र नाम; पाञाछि-प्राप्त किया था; शिव हैते–शिवजी से; तोमार सङ्गे-आपके संग से; लोभ हैल-मुझे लोभ हो गया है; कृष्ण-नाम लेते-हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने का।

अनुवाद

“पहले मुझे शिवजी से भगवान् राम का पवित्र नाम प्राप्त हुआ था, किन्तु अब आपकी संगति के फलस्वरूप मैं भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का जप करने के लिए अत्यधिक उत्सुक हूँ।”

मुक्ति-हेतुक तारक हय ‘राम-नाम’ ।

‘कृष्ण-नाम’ पारक हञा करे प्रेम-दान ॥ 257॥

मुक्ति-हेतुक-मुक्ति का कारण; तारक-उद्धारकारी; हय-है; राम-नाम-भगवान् राम का पवित्र नाम; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; पारक-जो किसी (प्राणी) को भवसागर के दूसरे पार ले जाकर; हञा-इस प्रकार; करे-देता है; प्रेम-दान-कृष्ण-प्रेम रूपी उपहार।

अनुवाद

“भगवान् राम का पवित्र नाम निश्चय ही मुक्ति को देने वाला है, किन्तु कृष्ण का पवित्र नाम भवसागर को पार कराने वाला तथा अन्त में कृष्ण-प्रेम प्रदान कराने वाला है।”

तात्पर्य

इस श्लोक में अप्रत्यक्ष रूप से हरे कृष्ण महामन्त्र के जप की व्याख्या हुई है। हरे कृष्ण महामन्त्र में-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे-कृष्ण तथा राम दोनों के पवित्र नाम आते हैं। भगवान् राम मुक्ति का अवसर प्रदान करते हैं, किन्तु केवल मुक्ति लाभ से वास्तविक आध्यात्मिक लाभ नहीं मिल पाता। कभी-कभी कोई व्यक्ति भौतिक जगत् से मुक्त तो हो जाता है, किन्तु यदि उसे कृष्ण के चरणकमलों में शरण नहीं मिलती, तो वह पुनः भौतिक जगत् में आ गिरता है। मुक्ति तो उस स्वास्थ्य लाभ की-सी अवस्था है, जिसमें रोगी ज्वर से मुक्त तो रहता है, किन्तु स्वस्थ नहीं रहता। यदि वह इस अवस्था में अत्यन्त सतर्क नहीं रहता, तो पुन: बीमार पड़ सकता है। इसी तरह मुक्ति से कृष्ण के चरणकमलों में शरण मिलने जैसा अभयदान नहीं रहता। शास्त्र में कहा गया है :

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-

स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घयः ॥

“हे प्रभु, जो लोग अपने आपको मुक्त मानते हैं, किन्तु जिनमें भक्ति नहीं है, उनकी बुद्धि अशुद्ध है। यद्यपि वे कठिन तपस्या के बल पर मुक्ति की चरमावस्था को प्राप्त होते हैं, किन्तु इस भौतिक संसार में फिर से उनका पतन निश्चित है, क्योंकि वे आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं करते ।” (श्रीमद्भागवत 10.2.32)। युष्मद्-अङ्य: कृष्ण के चरणकमलों का सूचक है। यदि मनुष्य कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं करता, तो वह मुक्ति प्राप्त करके भी नीचे गिर जाता है (पतन्त्यधः), किन्तु हरे कृष्ण महामन्त्र मुक्ति के साथ कृष्ण के चरणकमलों में शरण भी देता है। यदि कोई व्यक्ति मुक्ति के बाद कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, तो उसका सुप्त कृष्ण-प्रेम विकसित होता है। यही जीवन की सर्वोच्च पूर्णता है।

कृष्ण-नाम देह’ तुमि मोरे कर धन्या ।

आमारे भासाय यैछे एइ प्रेम-वन्या ॥ 258॥

कृष्ण नाम-भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; देह'–कृपया देकर; तुमि-आप; मोरे-मुझे; कर धन्या-भाग्यवती बनाइये; आमारे-मुझे; भासाय-डूबने दीजिए; यैछे-ताकि; एइ–इस; प्रेम-वन्या-भगवान् कृष्ण के प्रेम-भाव की बाढ़ में।

अनुवाद

"कृपा करके मुझे कृष्ण-नाम दीजिये और मुझे भाग्यशालिनी बनाइये, जिससे मैं भी श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित भगवत्-प्रेम रूपी बाढ़ में बह सकें।"

एत बलि' वन्दिला हरिदासेर चरण।

हरिदास कहे,–"कर कृष्ण-सङ्कीर्तन" ॥ 259॥

एत बलि'-यह कहकर; वन्दिला-पूजा की; हरिदासेर चरण-हरिदास ठाकुर के चरणकमलों की; हरिदास कहे-हरिदास ने कहा; कर-कीजिए; कृष्ण-सङ्कीर्तन-कृष्ण के पवित्र नामों का जप।

अनुवाद

इस तरह कहकर माया ने हरिदास ठाकुर के चरणकमलों की पूजा की और उन्होंने "तुम हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करो" यह कहकर उसे दीक्षा दी।

तात्पर्य

अब माया भी हरिदास ठाकुर की कृपा की इच्छुक थी। अतः हरिदास ठाकुर ने यह कहकर उसे दीक्षा दी कि हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करते रहना।

उपदेश पाञा माया चलिला हञा प्रीत।

ए-सब कथाते कारो ना जन्मे प्रतीत ॥ 260॥

उपदेश पाञा-यह उपदेश प्राप्त करके; माया-मायादेवी; चलिला–चली गई; हञा प्रीत-अत्यन्त प्रसन्न होकर; ए-सब कथाते-इन सभी कथाओं में; कारो-कुछ लोगों को; ना-नहीं; जन्मे–है; प्रतीत–विश्वास।

अनुवाद

इस तरह हरिदास ठाकुर से उपदेश पाकर माया अत्यन्त प्रसन्न होकर चली गई। दुर्भाग्यवश कुछ लोगों को इन कथाओं में श्रद्धा नहीं होती।

प्रतीत करिते कहि कारण इहार ।

याहार श्रवणे हय विश्वास सबार ॥ 261॥

प्रतीत करिते-सबका विश्वास उत्पन्न करने के लिए; कहि-मैं कहता हूँ; कारण इहार–इसका कारण; याहार श्रवणे-जिसे सुनकर; हय-हो जायेगा; विश्वास–विश्वास; सबार-सब को।

अनुवाद

इसलिए मैं उन कारणों को बतलाऊँगा कि लोगों को क्यों श्रद्धा करनी चाहिए। जो भी इसे सुनेगा वह श्रद्धालु बन जायेगा।

चैतन्यावतारे कृष्ण-प्रेमे लुब्ध हञा ।

ब्रह्म-शिव-सनकादि पृथिवीते जन्मिया ॥ 262॥

चैतन्य-अवतारे-श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतार में; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण के प्रेमभाव को प्राप्त करने के लिए; लुब्ध हञा–अत्यन्त लोभी होकर; ब्रह्म–ब्रह्माजी; शिव-शिवजी; सनक-आदि-चारों कुमार और अन्य; पृथिवीते-इस पृथ्वी पर; जन्मिया-जन्म लिया।

अनुवाद

कृष्णभावनामृत आन्दोलन आरम्भ करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतार के समय ब्रह्माजी, शिवजी तथा चारों कुमारों ने कृष्ण-प्रेम द्वारा मुग्ध होकर इस पृथ्वी पर जन्म लिया।

कृष्ण-नाम लञा नाचे, प्रेम-वन्याय भासे ।

नारद-प्रह्लादादि आसे मनुष्य-प्रकाशे ॥ 263॥

कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; लञा-कीर्तन करके; नाचे-नाचते; प्रेम-वन्याय-भगवत्प्रेम की बाढ़ में; भासे-डूबते; नारद-नारद मुनि; प्रह्लाद-आदि-तथा प्रह्लाद जैसे भक्तगण; आसे-आकर; मनुष्य-प्रकाशे—मनुष्य के रूप में प्रछन्न रूप से।

अनुवाद

महर्षि नारद तथा प्रह्लाद जैसे सारे भक्त मनुष्य के रूप में कृष्ण-नाम का संकीर्तन करते, नाचते तथा भगवत्प्रेम की बाढ़ में बहते हुए वहाँ आये।

लक्ष्मी-आदि करि' कृष्ण-प्रेमे लुब्ध हञा ।

नाम-प्रेम आस्वादिला मनुष्ये जन्मिया ॥ 264॥

लक्ष्मी-आदि–लक्ष्मी देवी तथा अन्यों ने; करि'-इस प्रकार; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम के लिए; लुब्ध हञा–लालायित होकर; नाम-प्रेम-प्रेमपूर्वक कृष्ण के पवित्र नाम का; आस्वादिला–आस्वादन किया; मनुष्ये जन्मिया-मानव समाज में जन्म लेकर।

अनुवाद

कृष्ण-प्रेम से मुग्ध होकर देवी लक्ष्मी इत्यादि मनुष्य रूप में वहाँ आईं। और उन्होंने नाम-प्रेम का आस्वादन किया।

अन्येर का कथा, आपने व्रजेन्द्र-नन्दन ।

अवतरि' करेन प्रेम-रस आस्वादन ॥ 265॥

अन्येर का कथा-दूसरों की क्या बात करें; आपने-स्वयं; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र, कृष्ण; अवतरि'–अवतरित होकर; करेन-करते हैं; प्रेम-रस आस्वादन-कृष्ण-प्रेम के अमृत का आस्वादन।

अनुवाद

औरों की बात जाने दें, नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण तक हरे कृष्ण कीर्तन के रूप में भगवत्प्रेम का अमृत चखने के लिए स्वयं अवतरित होते हैं।

माया-दासी 'प्रेम' मागे,—इथे कि विस्मय? ।

'साधु-कृपा'-'नाम' विना 'प्रेम' ना जन्मय ॥266॥

माया-दासी–बहिरंगा शक्ति एक दासी है; प्रेम मागे-वह भगवत्प्रेम माँगती है; इथे-इसमें; कि विस्मय–क्या आश्चर्य है; साधु-कृपा-भक्त की कृपा; नाम-पवित्र नाम के कीर्तन; विना-बिना; प्रेम-भगवत्प्रेम; ना जन्मय–सम्भव नहीं है।

अनुवाद

तो इसमें क्या आश्चर्य है यदि कृष्ण की दासी, बहिरंगा शक्ति माया भगवत्प्रेम की याचना करती है? भक्त की कृपा के बिना तथा भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन के बिना भगवत्प्रेम सम्भव नहीं है।

चैतन्य-गोसाञि लीलार एइ त' स्वभाव ।

त्रिभुवन नाचे, गाय, पाञा प्रेम-भाव ॥ 267॥

चैतन्य-गोसाञि-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; लीलार–लीलाओं का; एइ–यह; त'–निश्चित रूप से; स्वभाव-स्वभाव है; त्रि-भुवन नाचे–तीनों लोक नाचते हैं; गाय-गाते हैं; पाञा–प्राप्त करके; प्रेम-भाव-कृष्ण-प्रेम।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं में तीनों लोक भगवत्प्रेम के सम्पर्क में आकर नाचते तथा कीर्तन करते हैं। यह उनकी लीलाओं का स्वभाव है ।

कृष्ण-आदि, आर यत स्थावर-जङ्गमे ।

कृष्ण-प्रेमे मत्त करे कृष्ण-सङ्कीर्तने ॥ 268॥

कृष्ण-आदि-कृष्ण से लेकर; आर-और; यत–जितने भी; स्थावर-जङ्गमे-चर और अचर जीव हैं; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम में; मत्त-उन्मत्त होकर; करे-करते हैं; कृष्ण-सङ्कीर्तने-कृष्ण के पवित्र नामों का संकीर्तन।

अनुवाद

कृष्ण का पवित्र नाम इतना आकर्षक है कि सारे चर तथा अचर जीव एवं स्वयं भगवान् कृष्ण तक जो-जो इसका कीर्तन करता है, वह कृष्ण-प्रेम से पूरित हो उठता है। हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन का यह प्रभाव है।

स्वरूप-गोसाञि कड़चाय ये-लीला लिखिल ।

रघुनाथ-दास-मुखे ये सब शुनिल ॥ 269॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; कड़चाय-अपने लेख में; ये-जो कुछ; लीला-लीलाएँ; लिखिल-लिखी हैं; रघुनाथ-दास-मुखे-रघुनाथदास गोस्वामी के मुख से; ये-वह; सब-सब; शुनिल-मैंने सुना है।

अनुवाद

मैंने रघुनाथ दास गोस्वामी के मुख से वह सब कुछ सुना है, जो स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के बारे में अपनी टिप्पणियों में अंकित किया है।

सेइ सब लीला कहि सङ्क्षेप करिया ।

चैतन्य-कृपाते लिखि क्षुद्र-जीव हञा ॥ 270॥

सेइ सब-वे सभी; लीला-लीलाएँ, कहि-मैं कहता हूँ; सङ्क्षेप करिया-संक्षेप में; चैतन्य-कृपाते-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा द्वारा; लिखि–मैं लिखता हूँ; क्षुद्र-जीव हञा–अत्यन्त तुच्छ जीव होकर।

अनुवाद

मैंने उन लीलाओं का संक्षिप्त वर्णन किया है। मैंने जो कुछ लिखा है, वह श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से लिखा है, क्योंकि मैं एक तुच्छ जीव हूँ।

हरिदास ठाकुरेर कहिलुँ महिमार कण ।

याहार श्रवणे भक्तेर जुड़ाय श्रवण ॥ 271॥

हरिदास ठाकुरेर-हरिदास ठाकुर की; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया; महिमार-महिमा का; कण-एक अंश; याहार–जिसे; श्रवणे-सुनकर; भक्तेर-भक्तों की; जुड़ाय–सन्तुष्ट होती है; श्रवण-श्रवण क्रिया।

अनुवाद

मैंने हरिदास ठाकुर की महिमा के कणमात्र का वर्णन किया है। इसे सुनकर हर भक्त के कान तुष्ट हो जाते हैं।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 272॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों में; यार–जिसकी; आश-आशा है; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए, सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्य-लीला के अन्र्तगत "श्रील हरिदास ठाकुर की महिमा शीर्षक तृतीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।"

अध्याय चार

जगन्नाथ पुरी में महाप्रभु से सनातन गोस्वामी की भेंट

भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत प्रवाह भाष्य में अन्त्य-लीला के चतुर्थ अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। श्रील सनातन गोस्वामी मथुरा से अकेले ही श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने जगन्नाथ पुरी आये। गन्दे जल में स्नान करने तथा झारिखंड जंगल में यात्रा करते समय रास्ते में हररोज पर्याप्त भोजन न मिलने के कारण उनके शरीर में खुजली

हो गई। इस खुजली से तंग आने के कारण उन्होंने संकल्प किया कि वे श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में जगन्नाथजी के रथ के नीचे गिरकर आत्महत्या कर लेंगे।

जब सनातन गोस्वामी जगन्नाथ पुरी आये, तो वे कुछ काल तक हरिदास ठाकुर के संरक्षण में रुके रहे। श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे। महाप्रभु ने उनसे उनके छोटे भाई अनुपम की मृत्यु के विषय में बतलाया,भगवान् रामचन्द्र के चरणकमलों में जिनकी बड़ी श्रद्धा थी। एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से कहा, "आत्महत्या करने का तुम्हारा निर्णय तमोगुण का फल है। आत्महत्या करने से किसी को भगवत्प्रेम प्राप्त नहीं हो सकता। तुमने तो पहले से मेरी सेवा में अपना देह तथा प्राण समर्पित कर रखा है, इसलिए तुम्हारा शरीर तुम्हारा नहीं रहा, न ही तुम्हें आत्महत्या करने का कोई अधिकार है। मुझे तुम्हारे शरीर के माध्यम से अनेक भक्ति-कार्य सम्पन्न करने हैं। मैं तुम्हारे द्वारा भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार कराना चाहता हूँ और वृन्दावन भेजकर विलुप्त तीर्थस्थलों का पुनरोद्धार कराना चाहता हूँ।" इस तरह कहने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ से चले गये और हरिदास ठाकुर तथा सनातन गोस्वामी में इस विषय को लेकर अनेक बातें हुई।

एक दिन सनातन गोस्वामी को श्री महाप्रभु ने यमेश्वर टोटा नामक स्थान पर बुलवाया। सनातन गोस्वामी समुद्र-तट से होकर महाप्रभु के पास पहुँचे। जब महाप्रभु ने उनसे पूछा कि वे किस रास्ते से होकर आये हैं, तो सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, "जगन्नाथजी के अनेक सेवक जगन्नाथ मन्दिर के सिंह-द्वार से होकर आते-जाते रहते हैं, इसलिए मैं उस मार्ग से नहीं आया। मैं समुद्र-तट से चलकर आया हूँ।" सनातन गोस्वामी को पता नहीं चला कि बालू की तपन से उनके पैरों में फफोले पड़ गये हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु सनातन गोस्वामी के मुख से जगन्नाथजी के मन्दिर के प्रति उनके आदरभाव को सुनकर अतीव प्रसन्न हुए।

चूँकि सनातन गोस्वामी की खाज से पीब बहती थी, इसलिए वे श्री चैतन्य महाप्रभु का आलिंगन करने से बचते रहते; तो भी महाप्रभु बलपूर्वक उनका आलिंगन कर लेते। इसलिए सनातन गोस्वामी अत्यन्त दु:खी हो जाते । फलत: उन्होंने जगदानन्द पण्डित से पूछा कि वे क्या करें। जगदानन्द ने परामर्श दिया कि वे रथयात्रा के बाद वृन्दावन लौट जायें, किन्तु जब श्री चैतन्य महाप्रभु को इसका पता चला, तो उन्होंने जगदानन्द पण्डित को डाँटा-फटकारा और स्मरण दिलाया कि सनातन गोस्वामी उससे बड़े हैं और अधिक विद्वान भी हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बतलाया कि शुद्ध भक्त होने के कारण उनकी शारीरिक दशा से महाप्रभु को कोई असुविधा नहीं होती। संन्यासी होने के कारण महाप्रभु

एक शरीर को दूसरे से अच्छा नहीं समझते थे। महाप्रभु ने सनातन को यह भी बतलाया कि वे सनातन गोस्वामी तथा अन्य भक्तों का पालन-पोषण पिता की तरह कर रहे हैं। इसलिए सनातन की खाज से निकलने वाली पीब से महाप्रभु को किसी तरह की समस्या नहीं थी। ऐसा कहकर महाप्रभु ने फिर से सनातन गोस्वामी का आलिंगन किया, और इस आलिंगन के बाद सनातन गोस्वामी रोगमुक्त हो गये। महाप्रभु ने उन्हें उस वर्ष अपने साथ रुकने का आदेश दिया। अगले वर्ष रथयात्रा देखने के बाद सनातन गोस्वामी पुरुषोत्तम क्षेत्र छोड़कर वृन्दावन लौट गये।

रूप गोस्वामी भी श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने के बाद बंगाल लौट गये, जहाँ वे एक वर्ष तक रहे। उनके पास जो भी धन था, उसे उन्होंने अपने सम्बन्धियों, ब्राह्मणों तथा मन्दिरों में बाँट दिया। इस तरह वे पूर्णतया विरक्त होकर सनातन गोस्वामी से मिलने वृन्दावन गये।

इन घटनाओं का वर्णन करने के बाद कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी तथा जीव गोस्वामी की प्रमुख पुस्तकों की सूची दी है।

वृन्दावनात्पुनः प्राप्तं श्री-गौरः श्री-सनातनम् ।

देह-पातादवन्स्नेहाशुद्धं चक्रे परीक्षया ॥1॥

वृन्दावनात्-वृन्दावन से; पुनः–फिर से; प्राप्तम्-प्राप्त किया; श्री-गौरः-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; श्री-सनातनम्-श्री सनातन गोस्वामी को; देह-पातात्-आत्महत्या से; अवन्-बचाकर; स्नेहात्-स्नेह द्वारा; शुद्धम् शुद्ध; चक्रे–किया; परीक्षया-परीक्षा करके।

अनुवाद

जब सनातन गोस्वामी वृन्दावन से लौटे, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें आत्महत्या करने के संकल्प से स्नेहपूर्वक बचाया। तत्पश्चात् उनकी परीक्षा लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके शरीर को शुद्ध बना दिया।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-श्री अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो! तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

नीलाचल हैते रूप गौड़े यबे गेला ।

मथुरा हैते सनातन नीलाचल आइला ॥3॥

नीलाचल हैते–नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) से; रूप-श्रील रूप गोस्वामी; गौड़े-बंगाल को; यबे-जब; गेला–गये; मथुरा हैते–मथुरा से; सनातन-सनातन गोस्वामी;नीलाचल आइला-जगन्नाथ पुरी आ गये।

अनुवाद

जब श्रील रूप गोस्वामी जगन्नाथ पुरी से बंगाल लौट गये, तो सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने के लिए मथुरा से जगन्नाथ पुरी आये।

झारिखण्ड-वनपथे आइला एकेला चलिया ।

कभु उपवास, कभु चर्वण करिया ॥4॥

झारिखण्ड-झारखण्ड नामक; वन-पथे-मध्य भारत के वन के मार्ग से; आइला-आये; एकेला-अकेले; चलिया-चलकर; कभु-कभी-कभी; उपवास-उपवास करके;कभु-कभी-कभी; चर्वण करिया-चबाकर (खाकर)।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने अकेले ही मध्य भारत के झारखण्ड के जंगली रास्ते से होकर यात्रा की। कभी वे उपवास करते तो कभी भोजन करते।

झारिखण्डेर जलेर दोषे, उपवास हैते ।

गात्रे कण्डु हैल, रसा पड़े खाजुयाइते ॥5॥

झारिखण्डेर-झारखण्ड नामक स्थान पर; जलेर-जल के; दोषे–दूषित होने के कारण; उपवास हैते-उपवास के कारण; गात्रे-शरीर पर; कण्डु–खुजली; हैल-हो गई; रसा-फोड़े; पड़े-निकल आये; खाजुयाइते-खुजली के कारण।

अनुवाद

झारखण्ड जंगल में खराब पानी मिलने तथा उपवास करने के कारण सनातन गोस्वामी को एक रोग हो गया, जिससे उनका सारा शरीर खुजलाता रहता। इस तरह वे खुजली के घावों से पीड़ित थे, जिनसे तरल पदार्थ (पीब) निकलता था।

निर्वेद हइल पथे, करेन विचार ।

'नीच-जाति, देह मोर—अत्यन्त असार ॥6॥

निर्वेद हइल-निराश होकर; पथे—मार्ग में; करेन विचार-उन्होंने सोचा; नीच-जाति-नीच जाति का हूँ; देह मोर-मेरा शरीर; अत्यन्त–पूर्ण रूप से; असार–सेवा (भक्ति) के लिए अयोग्य है।

अनुवाद

निराशा में सनातन गोस्वामी ने विचार किया, "मैं नीच जाति का हूँ और मेरा यह शरीर भक्तिमय सेवा के लिए व्यर्थ है।

जगन्नाथे गेले ताँर दर्शन ना पाइमु ।

प्रभुर दर्शन सदा करिते नारिमु ॥ 7॥

जगन्नाथे–जगन्नाथ पुरी; गेले—जब मैं जाऊँगा; ताँर-उनका; दर्शन-दर्शन; ना पाइमु-मैं प्राप्त नहीं करूँगा; प्रभुर दर्शन-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन; सदा-हमेशा; करिते-करने के लिए; नारिमु-मैं योग्य नहीं हो सकूँगा।

अनुवाद

"जब मैं जगन्नाथ पुरी जाऊँगा, तो मैं न तो जगन्नाथजी के दर्शन कर सकेंगा, न ही श्री चैतन्य महाप्रभु का सर्वदा दर्शन कर पाऊँगा।"

मन्दिर-निकटे शुनि ताँर वासा-स्थिति ।

मन्दिर-निकटे याइते मोर नाहि शक्ति ॥8॥

मन्दिर-निकटे-मन्दिर के पास; शुनि–मैंने सुना है; ताँर-उनका; वासा-स्थिति-निवासस्थान; मन्दिर-निकटे–मन्दिर के पास; याइते-जाने की; मोर-मेरी; नाहि शक्ति-शक्ति नहीं है।

अनुवाद

"मैंने सुना है कि श्री चैतन्य महाप्रभु का निवासस्थान जगन्नाथजी के मन्दिर के समीप है। किन्तु मन्दिर के समीप तक जाने की मुझमें शक्ति नहीं होगी।"

जगन्नाथेर सेवक फेरे कार्य-अनुरोधे ।

ताँर स्पर्श हैले मोर हबे अपराधे ॥9॥

जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ के; सेवक-अनेक सेवक; फेरे-घूमते हैं; कार्य-अनुरोधे–अनेक कार्यों के लिए; ताँर-उनका; स्पर्श-स्पर्श; हैले–यदि हो गया; मोर-मेरा; हबे हो जायेगा; अपराधे-अपराध।

अनुवाद

"सामान्यतया भगवान् जगन्नाथ के सेवक अपना-अपना कार्य करने के लिए इधर-उधर घूमते फिरते हैं, किन्तु यदि वे मुझे छू लेंगे, तो मैं अपराधी बनूँगा।"

ताते यदि एइ देह भाल-स्थाने दिये ।

दुःख-शान्ति हय आर सद्गति पाइये ॥10॥

ताते-अतः; यदि-यदि; एइ–यह; देह-शरीर; भाल-स्थाने-एक अच्छे स्थान पर; दिये-मैं त्याग देता हूँ; दुःख-शान्ति-दुःख का शमन; हय-होगा; आर-और; सत्-गति-अच्छी गति; पाइये-मैं प्राप्त करूँगा।

अनुवाद

"इसलिए यदि मैं यह शरीर किसी अच्छे स्थान में उत्सर्ग कर दें, तो मेरा दुःख दूर हो जायेगा और मुझे उच्च गति प्राप्त होगी।"

जगन्नाथ रथ-यात्राय हइबेन बाहिर ।

ताँर रथ-चाकाय छाड़िमु एइ शरीर ॥11॥

जगन्नाथ रथ-यात्राय-भगवान जगन्नाथ के रथयात्रा उत्सव के अवसर पर; हइबेन बाहिर-वे बाहर आयेंगे; ताँर–उनके; रथ-चाकाय-रथ के पहिए के नीचे; छाड़िमु-मैं त्याग दूँगा; एइ शरीर-यह शरीर।

अनुवाद

"रथयात्रा उत्सव के समय जब भगवान् जगन्नाथ मन्दिर से बाहर आते हैं, तो मैं उनके रथ के पहिए के नीचे अपना शरीर छोड़ दूँगा।"

महाप्रभुर आगे, आर देखि' जगन्नाथ ।

रथे देह छाड़िमु,—एइ परम-पुरुषार्थ" ॥12॥

महाप्रभुर आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष; आर-और; देखि जगन्नाथ-भगवान् जगन्नाथ को देखने के बाद; रथे-रथ के नीचे; देह छाड़िमु-मैं यह शरीर त्याग दूँगा; एइ-यह; परम-पुरुष-अर्थ-जीवन का परम वरदान होगा।

अनुवाद

जगन्नाथजी का दर्शन करने के बाद मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में रथ के पहिए के नीचे अपना शरीर-त्याग कर दूँगा। यह मेरे जीवन का सर्वोच्च वर होगा।"

एइ त निश्चय करि' नीलाचले आइला ।

लोके पुछि' हरिदास-स्थाने उत्तरिला ॥13॥

एइ त'-इस प्रकार; निश्चय करि'–निश्चय करके; नीलाचले आइला-जगन्नाथ पुरी आ गये; लोके पुछि'–लोगों से पूछकर; हरिदास-स्थाने-हरिदास ठाकुर के स्थान; उत्तरिला–पहुँच गये।

अनुवाद

यह निश्चय करके सनातन गोस्वामी नीलाचल गये, जहाँ लोगों से दिशा पूछकर वे हरिदास ठाकुर के निवासस्थान जा पहुँचे।

हरिदासेर कैला तेंह चरण वन्दन ।

जानि' हरिदास ताँरे कैला आलिङ्गन ॥14॥

हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; कैला-की; तेंह-उन्होंने; चरण वन्दन–चरणकमलों की उपासना; जानि'–जानकर; हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; ताँरे–उनको; कैला आलिङ्गन-गले लगा लिया।

अनुवाद

उन्होंने हरिदास ठाकुर के चरणकमलों की वन्दना की। वे उन्हें जानते थे, अतः उन्होंने उनका आलिंगन किया।

महाप्रभु देखिते ताँर उत्कण्ठित मन ।

हरिदास कहे,—"प्रभु आसिबेन एखन" ॥15॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु को देखते-देखने के लिए; ताँर–उनका; उत्कण्ठित-आतुर; मन–मन; हरिदास कहे-हरिदास ने कहा; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभुः आसिबेन एखन-यहाँ आयेंगे।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का दर्शन करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। इसलिए हरिदास ठाकुर ने कहा, "महाप्रभु शीघ्र ही यहाँ आने वाले हैं।"

हेन-काले प्रभु 'उपल-भोग' देखिया ।

हरिदासे मिलिते आइला भक्त-गण लञा ॥16॥

हेन-काले-उस समय; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; उपल-भोग-भगवान जगन्नाथ को लगने वाला उपलभोग; देखिया-देखकर; हरिदासे-हरिदास से; मिलिते-मिलने के लिए; आइला–आये; भक्त-गण लञा-अन्य भक्तों के साथ।

अनुवाद

उसी समय श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर में उपल भोग (प्रात:कालीन जलपान) देखकर अपने अन्य भक्तों के साथ हरिदास ठाकुर से मिलने के लिए आये।

प्रभु देखि' दुँहे पड़े दण्डवत् हञा ।

प्रभु आलिङ्गिला हरिदासेरे उठाञा ॥17॥

प्रभु देखि'–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर; दुँहे-वे दोनों; पड़े-गिर पड़े; दण्डवत् हञा–दण्ड के समान सीधे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; आलिङ्गिला-आलिंगन किया; हरिदासेरे-हरिदास ठाकुर को; उठाञा-उठाकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर हरिदास ठाकुर और सनातन गोस्वामी दोनों ने तुरन्त दण्डवत् प्रणाम किया। तब महाप्रभु ने हरिदास को उठाया और गले लगाया।

हरिदास कहे,–"सनातन करे नमस्कार" ।

सनातने देखि' प्रभु हैला चमत्कार ॥18॥

हरिदास कहे-हरिदास ने कहा; सनातन-सनातन गोस्वामी; करे नमस्कार-अपना प्रणाम अर्पित कर रहे हैं; सनातने देखि'–सनातन गोस्वामी को देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हैला चमत्कार-अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "यह सनातन गोस्वामी आपको प्रणाम कर रहा है।" सनातन गोस्वामी को देखकर महाप्रभु अत्यधिक चकित हुए।"

सनातने आलिङ्गिते प्रभु आगु हैला ।

पाछे भागे सनातन कहिते लागिला ॥19॥

सनातने-सनातन गोस्वामी को; आलिङ्गिते-आलिंगन करने के लिए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आगु हैला-आगे आये; पाछे-पीछे; भागे-भागने लगे; सनातन-सनातन गोस्वामी; कहते लागिला-कहना प्रारम्भ किये।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु उनका आलिंगन करने आगे बढ़े, तो सनातन गोस्वामी पीछे हट गये और इस प्रकार बोले।

"मोरे ना छुडिह, प्रभु, पड़ों तोमार पाय ।

एके नीच-जाति अधम, आर कण्डु-रसा गाय" ॥20॥

मोरे-मुझे; ना छुडिह-कृपया स्पर्श मत कीजिए; प्रभु-मेरे प्रभु; पड़ों-मैं पड़ता हूँ; तोमार पाय-आपके चरणकमलों में; एके-एक ओर; नीच-जाति–एक नीच जाति का; अधम-मनुष्यों में सबसे अधम; आर-और; कण्डु-रसा–पसवाले फोड़ों का एक रोग; गाय-शरीर पर।

अनुवाद

हे प्रभु, कृपया आप मेरा स्पर्श न करें। मैं आपके चरणकमलों पर पड़ता हूँ। मैं नीच जाति में उत्पन्न होने के कारण मनुष्यों में सबसे अधम हूँ। इसके अतिरिक्त मेरे शरीर में खुजली का रोग है।"

बलात्कारे प्रभु तौरे आलिङ्गन कैल ।

कण्डु-क्लेद महाप्रभुर श्री-अङ्गे लागिल ॥21॥

बलात्कारे-जबरदस्ती; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तौरे–उनको; आलिङ्गन कैल-आलिंगन किया; कण्डु-क्लेद-फोड़ों की पस; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; श्री-दिव्य; अङ्गे–शरीर पर; लागिल-लग गई।

अनुवाद

किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने बलपूर्वक सनातन गोस्वामी का आलिंगन कर लिया। इस तरह खुजली के घावों से रिसता तरल पदार्थ श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य शरीर में लग गया।

सब भक्त-गणे प्रभु मिलाइला सनातने ।

सनातन कैला सबार चरण वन्दने ॥22॥

सब-सभी; भक्त-गणे-भक्तों को प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; मिलाइला-मिलवाया; सनातने-सनातन गोस्वामी से; सनातन-सनातन गोस्वामी ने; कैला-की;सबार-उन सभी के; चरण वन्दने-चरणकमलों की वन्दना।

अनुवाद

महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से सबका परिचय कराया और सनातन गोस्वामी ने उन सबके चरणकमलों पर सादर नमस्कार अर्पित किया।

प्रभु ला वसिला पिण्डार उपरे भक्त-गण ।

पिण्डार तले वसिला हरिदास सनातन ॥23॥

प्रभु लञा-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; वसिला-बैठ गये; पिण्डार उपरे-ऊँचे आसन (मँच) पर; भक्त-गण-सभी भक्त; पिण्डार तले-आसन के नीचे; वसिला-बैठ गये; हरिदास सनातन-हरिदास ठाकुर और सनातन गोस्वामी।

अनुवाद

महाप्रभु तथा उनके सारे भक्त चबूतरे के ऊपर बैठ गये और हरिदास ठाकुर तथा सनातन गोस्वामी उसके नीचे बैठे।

कुशल-वार्ता महाप्रभु पुछेन सनातने ।

तेंह कहेन,—"परम मङ्गल देखिनु चरणे" ॥24॥

कुशल-कुशल मंगल; वार्ता-खबर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु (ने); पुछेन-पूछते हैं; सनातने-सनातन गोस्वामी से; तेंह कहेन-उन्होंने कहा; परम मङ्गल-सब कुछ शुभ है; देखिनु चरणे-मैंने आपके चरणकमलों के दर्शन किये हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से उनकी कुशलता का समाचार पूछा। सनातन ने उत्तर दिया, "सब कुशल है, क्योंकि मुझे आपके चरणकमलों के दर्शन हो गये।"

मथुरार वैष्णव-सबेर कुशल पुछिला ।

सबार कुशल सनातन जानाइला ॥25॥

मथुरार-मथुरा के; वैष्णव-सबेर-सभी वैष्णवों की; कुशल पुछिला-कुशलता की जिज्ञासा की; सबार कुशल-उन सभी की कुशलता की; सनातन-सनातन गोस्वामी ने; जानाइला-सूचना दी।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने मथुरा के समस्त वैष्णवों के विषय में पूछा, तो सनातन गोस्वामी ने उनके स्वास्थ्य एवं सौभाग्य के बारे में बतलाया।

प्रभु कहे, इहाँ रूप छिल दश-मास ।

इहाँ हैते गौड़े गेला, हैल दिन दश ॥26॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; इहाँ–यहाँ; रूप-रूप गोस्वामी; छिल-थे; दश-मास-दस महीने तक; इहाँ हैते–यहाँ से; गौड़े गेला–बंगाल चले गये; हैल–हो गये; दिन-दिन; दश–दस।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बतलाया,"श्रील रूप गोस्वामी यहाँ पर दस महीने तक थे। वे दस दिन पहले ही बंगाल चले गये हैं।

तोमार भाइ अनुपमेर हैल गङ्गा-प्राप्ति ।

भाल छिल, रघुनाथे दृढ़ तार भक्ति ॥ 27॥

तोमार भाइ–तुम्हारे भाई; अनुपमेर-अनुपम का; हैल–हो गया; गङ्गा-प्राप्ति- देहान्त; भाल छिल-वह बहुत अच्छा व्यक्ति था; रघुनाथे-भगवान् रघुनाथ (रामचन्द्र) में; दृढ़-दृढ़; तार भक्ति-उसकी भक्ति थी।

अनुवाद

तुम्हारा भाई अनुपम अब नहीं रहा। वह एक उत्तम भक्त था, जिसका रघुनाथ (भगवान् रामचन्द्र) में दृढ़ विश्वास था।"

सनातन कहे,–"नीच-वंशे मोर जन्म" ।

अधर्म अन्याय यत,—आमार कुल-धर्म ॥28॥

सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने कहा; नीच-वंशे-एक नीच कुल में; मोर जन्म-मेरा जन्म; अधर्म-अधर्म; अन्याय-पापकर्म; यत-सभी; आमार-मेरे; कुल-धर्म-कुल के कार्य हैं।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा, "मैं निम्न कुल में उत्पन्न हुआ, क्योंकि मेरा परिवार सभी प्रकार के अधार्मिक कार्य करता है, जिनसे शास्त्र के आदेशों का उल्लंघन होता है।"

हेन वंश घृणा छाड़ि' कैला अङ्गीकार ।

तोमार कृपाय वंशे मङ्गल आमार ॥29॥

हेन-ऐसे; वंश-कुल से; घृणा-घृणा; छाड़ि'–छोड़कर; कैला-आपने किया है; अङ्गीकार–स्वीकार; तोमार-आपकी; कृपाय-कृपा द्वारा; वंशे-कुल में; मङ्गल- सौभाग्य; आमार-मेरे।

अनुवाद

"हे प्रभु, आपने मेरे परिवार से घृणा किये बिना मुझे अपने सेवक के रूप में स्वीकार किया है। केवल आपकी कृपा से ही मेरे परिवार में मंगल ही मंगल है।"

सेइ अनुपम-भाइ शिशु-काल हैते ।

रघुनाथ-उपासना करे दृढ़-चित्ते ॥30॥

सेइ-वह; अनुपम-भाइ-अनुपम नामक भाई; शिशु-काल हैते-बाल्यकाल के प्रारम्भ से ही; रघुनाथ–भगवान् रामचन्द्र की; उपासना-उपासना; करे-करता; दृढ़-चित्ते-अत्यन्त दृढ़ निश्चयपूर्वक।

अनुवाद

"मेरा छोटा भाई अनुपम अपने बचपन से ही रघुनाथ (भगवान् रामचन्द्र) का महान् भक्त था और वह अत्यन्त दृढ़ता से उनकी पूजा करता था।"

रात्रि-दिने रघुनाथेर 'नाम' आर 'ध्यान' ।

रामायण निरवधि शुने, करे गान ॥31॥

रात्रि-दिने-दिन-रात; रघुनाथेर-भगवान् रामचन्द्र के; नाम-पवित्र नाम; आर- और; ध्यान-चिन्तन; रामायण-रामायण नामक भगवान् रामचन्द्र की लीलाओं के विषय में एक ग्रन्थ; निरवधि-लगातार; शुने-सुनता; करे गान–गाता।

अनुवाद

"वह सदैव रघुनाथ के पवित्र नाम का कीर्तन करता था और उन्हीं का ध्यान करता था। वह निरन्तर रामायण से भगवान् की लीलाओं के विषय में सुनता था और उन्हीं का कीर्तन करता था।

आमि आर रूप—तार ज्येष्ठ-सहोदर ।

आमा-दहा-सङ्गे तेंह रहे निरन्तर ॥ 32॥

आमि-मैं; आर-और; रूप-रूप गोस्वामी; तार-उसके; ज्येष्ठ-सहोदर-बड़े भाई हैं; आमा-दहा-हम दोनों के; सङ्गे–साथ; तेंह-वह; रहे-रहता; निरन्तर–सदैव।

अनुवाद

"रूप तथा मैं उसके बड़े भाई हैं। वह लगातार हमारे साथ रहा।

आमा-सबा-सङ्गे कृष्ण-कथा, भागवत शुने ।

ताहार परीक्षा कैलुँ आमि-दुइ-जने ॥33॥

आमा-सबा-हम सभी के; सङ्गे–साथ; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण के विषय में बातें; भागवत शुने- श्रीमद्भागवत सुनता; ताहार-उसकी; परीक्षा-परीक्षा; कैलुँ-की; आमि-दुइ-जने–हम दोनों ने।

अनुवाद

वह हमारे साथ श्रीमद्भागवत तथा कृष्ण विषयक वार्ताएँ सुनता था और हम दोनों उसकी परीक्षा लिया करते थे।

शुनह वल्लभ, कृष्ण–परम-मधुर ।

सौन्दर्य, माधुर्य, प्रेम-विलास–प्रचुर ॥34॥

शुनह–कृपया सुनो; वल्लभ-प्रिय वल्लभ; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; परम-मधुर-सर्वाधिक आकर्षक; सौन्दर्य-सुन्दरता; माधुर्य–मधुरता; प्रेम-विलास-माधुर्य लीलाएँ; प्रचुर-असीमित।

अनुवाद

“हम कहते, ‘हे वल्लभ, हमसे सुनो। भगवान् कृष्ण परम आकर्षक हैं। उनका सौन्दर्य, मधुरता तथा प्रेम की लीलाएँ अनन्त हैं।”

“कृष्ण-भजन कर तुमि आमा-हार सङ्गे ।

तिन भाइ एकत्र रहिमु कृष्ण-कथा-रङ्गे” ॥35॥

कृष्ण-भजन-भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेममयी सेवा; कर-करो; तुमि-तुम; आमा-दुँहार-हम दोनों के; सङ्गे-साथ; तिन भाइ–तीनों भाई; एकत्र–एक स्थान पर; रहिमु-हम रहेंगे; कृष्ण-कथा- भगवान् कृष्ण की लीलाओं के; रङ्गे-आनन्द में।

अनुवाद

“तुम हम दोनों के साथ कृष्ण की भक्ति में लगो। हम तीनों भाई एकसाथ रहेंगे और भगवान् कृष्ण की लीलाओं की चर्चा का आनन्द लेंगे।”

एइ-मत बार-बार कहि दुइ-जन ।

आमा-दुँहार गौरवे किछु फिरि’ गेल मन ॥ 36॥

एइ-मत-इस प्रकार; बार-बार-बारम्बार; कहि-हम कहते; दुइ-जन-दोनों लोग; आमा-हार-हम दोनों के प्रति; गौरवे-सम्मान के कारण; किछु-कुछ; फिरि’ गेल-बदल गया; मन-मन।

अनुवाद

“इस तरह हम दोनों ने उससे बारम्बार कहा और हमारे फुसलाने तथा हमारे प्रति आदरभाव से उसका मन कुछ-कुछ हमारे उपदेशों की ओर मुड़ा।”

तोमा-दुँहार आज्ञा आमि केमने लङ्घिमु ।

दीक्षा-मन्त्र देह’ कृष्ण-भजन करिमु ॥37॥

तोमा-आपके; दुँहार-दोनों के; आज्ञा-आदेश की; आमि-मैं; केमने-किस प्रकार; लङ्घिमु-अवज्ञा करूँगा; दीक्षा-दीक्षा; मन्त्र-मन्त्र; देह”-दीजिए; कृष्ण-भजन-कृष्ण की प्रेममयी सेवा; करिमु-मैं करूँगा।

अनुवाद

“वल्लभ ने उत्तर दिया, ‘हे प्रिय भ्राताओं, मैं आपके आदेशों का उल्लंघन कैसे कर सकता हूँ? मुझे कृष्ण-मन्त्र की दीक्षा दीजिये, जिससे मैं कृष्ण-भक्ति कर सकें।”

एत कहि’ रात्रि-काले करेन चिन्तन ।

केमने छाड़िमु रघुनाथेर चरण ॥38॥

एत कहि’-यह कहकर; रात्रि-काले-रात को; करेन चिन्तन-सोचने लगा;केमने-कैसे; छाड़िमु–छोड़ पाऊँगा; रघुनाथेर चरण-भगवान् रघुनाथ के चरणकमल।

अनुवाद

"यह कहकर रात में वह सोचने लगा, मैं किस तरह भगवान् रघुनाथ के चरणकमलों को छोड़ पाऊँगा?"

सब रात्रि क्रन्दन करि' कैल जागरण ।

प्रातः-काले आमा-दुँहाय कैल निवेदन ॥39॥

सब रात्रि-सम्पूर्ण रात्रि; क्रन्दन-रोकर; करि–करके; कैल जागरण-जागता रहा; प्रातः काले-सुबह को; आमा-दुँहाय-हम दोनों से; कैल–करने लगा; निवेदन–विनति ।

अनुवाद

"वह रात-भर जागता रहा और रोता रहा। प्रातःकाल वह हमारे पास आया और इस प्रकार निवेदन करने लगा।"

रघुनाथेर पाद-पद्मे वेचियाछों माथा ।

काड़िते ना पारों माथा, पाऊ बड़ व्यथा ॥40॥

रघुनाथेर-भगवान् रामचन्द्र के; पाद-पद्मे-चरणकमलों में; वेचियाछों माथा-मैंने अपना मस्तक बेच दिया है; काड़िते-हटाने में; ना पारों-मैं असमर्थ हूँ; माथा-मस्तक; पाऊ–मैं पाता हूँ; बड़ व्यथा-अत्यन्त कष्ट।

अनुवाद

"मैंने अपना सिर भगवान् रामचन्द्र के चरणकमलों पर बेच दिया है। मैं इसे वापस नहीं ले सकता। यह मेरे लिए अत्यधिक पीड़ादायक होगा।"

कृपा करि' मोरे आज्ञा देह' दुइ-जन ।

जन्मे-जन्मे सेवों रघुनाथेर चरण ॥41॥

कृपा करि'–दया करके; मोरे-मुझे; आज्ञा देह'–आदेश दीजिए; दुइ-जन-आप दोनों; जन्मे-जन्मे–जन्म जन्मान्तर; सेवों-मैं सेवा करूँ; रघुनाथेर चरण-भगवान् रामचन्द्र के चरणकमलों की।

अनुवाद

"आप दोनों मुझ पर कृपालु हों तथा इस तरह आज्ञा दें कि मैं जन्म-जन्मान्तर भगवान् रघुनाथ के चरणकमलों की सेवा कर सकें।"

रघुनाथेर पाद-पद्म छाड़ान ना याय ।

छाड़िबार मन हैले प्राण फाटि' झाय' ॥42॥

रघुनाथेर-भगवान् रघुनाथ के; पाद-पद्म-चरणकमल; छाड़ान ना याय-त्यागना असम्भव है; छाड़िबार-त्यागने का; मन हैले–जब मैं विचार करता हूँ; प्राण-मेरा हृदय; फाटि' याय-फट जाता है।

अनुवाद

मेरे लिए भगवान् रघुनाथ के चरणकमलों को छोड़ पाना असम्भव है। जब मैं उनको छोड़ने के लिए सोचता भी हूँ, तो मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है।"

तबे आमि-हे तारे आलिङ्गन कैलुँ ।

साधु, दृढ़-भक्ति तोमार—कहि' प्रशंसिलुँ ॥43॥

तबे—उस समय; आमि-दुँहे-हम दोनों ने; तारे-उसे; आलिङ्गन कैलुँ-आलिंगन किया; साधु-बहुत अच्छी; दृढ़-अत्यन्त दृढ़ है; भक्ति-भक्ति; तोमार—तुम्हारी; कहि'-कहकर; प्रशंसिलुँ-हमने प्रशंसा की।

अनुवाद

यह सुनकर हम दोनों ने उसका आलिंगन किया और उसे यहकहकर प्रोत्साहित किया, "तुम महान् सन्त भक्त हो, क्योंकि भक्ति में तुम्हारा संकल्प दृढ़ है। इस तरह हम दोनों ने उसकी प्रशंसा की।"

ये वंशेर उपरे तोमार हय कृपा-लेश ।

सकल मङ्गल ताहे खण्डे सब क्लेश ॥44॥

ये वंशेर-जिस कुल के; उपरे-ऊपर; तोमार-आपकी; हय-है; कृपा-लेश-थोड़ी सी कृपा; सकल मङ्गल-सर्व शुभ; ताहे-उस पर; खण्डे-नष्ट हो जाती हैं; सब-सभी; क्लेश-कष्टपूर्ण परिस्थितियाँ।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप जिस वंश पर लेश मात्र भी कृपा करते हैं, वह सदैव भाग्यशाली होता है, क्योंकि ऐसी कृपा से सारे कष्ट लुप्त हो जाते हैं।"

गोसाञि कहेन,–"एइ-मत मुरारि-गुप्त ।

पूर्वे आमि परीक्षिलुँ तार एइ रीत" ॥ 45 ॥

गोसाञि कहेन–श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; एइ-मत-इस प्रकार; मुरारि गुप्त-मुरारी गुप्त; पूर्वे-पहले; आमि-मैंने; परीक्षिलुँ-परीक्षा ली; तार-उसकी; एइ-इस; रीत-प्रकार से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "ऐसी ही घटना मुरारि गुप्त के सम्बन्ध में भी है। पहले मैंने उसकी परीक्षा ली और उसका संकल्प ऐसा ही था।"

सेइ भक्त धन्य, ग्रे ना छाड़े प्रभुर चरण ।

सेइ प्रभु धन्य, ये ना छाड़े निज-जन ॥46॥

सेइ भक्त-वह भक्त; धन्य-धन्य है; ये-जो; ना-नहीं; छाड़े-त्यागता; प्रभुर चरण-भगवान् के चरणकमल; सेइ प्रभु-वह भगवान्; धन्य-धन्य हैं; ये-जो; ना-नहीं; छाड़े-त्यागते; निज-जन-अपने सेवक को।

अनुवाद

"वह भक्त धन्य है, जो अपने स्वामी की शरण नहीं छोड़ता और वह स्वामी धन्य है, जो अपने सेवक को नहीं छोड़ता।"

दुर्दैवे सेवक यदि याय अन्य स्थाने ।

सेइ ठाकुर धन्य तारे चुले धरि आने ॥ 47॥

दुर्दैवे-दुर्भाग्यवश; सेवक-सेवक; यदि-यदि; याय-जाता है; अन्य स्थाने-अन्य स्थान को; सेइ ठाकुर-वह स्वामी; धन्य-धन्य है; तारे-उसे; चुले-बालों से; धरि'- पकड़कर; आने-वापस लाता है।

अनुवाद

"यदि संयोगवश सेवक सेवा से नीचे गिर जाता है और अन्यत्र चला जाता है, तो वह स्वामी धन्य है, जो उसको बालों से पकड़कर वापस लाता है।

भाल हैल, तोमार इहाँ हैल आगमने ।

एइ घरे रह इहाँ हरिदास-सने ॥48॥

भाल हैल-यह बहुत अच्छा हुआ; तोमार-तुम्हारा; इहाँ–यहाँ; हैल-हो गया; आगमने-आना; एइ घरे-इस कक्ष में; रह-रहो; इहाँ–यहाँ; हरिदास-सने-हरिदास ठाकुर के साथ।

अनुवाद

"यह अच्छा हुआ कि तुम यहाँ आ गये। अब इस कमरे में हरिदास ठाकुर के साथ रहो।"

"कृष्ण-भक्ति-रसे दुँहे परम प्रधान ।

कृष्ण-रस आस्वादन कर, लह कृष्ण-नाम" ॥49॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण की भक्ति-रसे—प्रेममयी सेवा के दिव्य रस में; हे-आप दोनों; परम प्रधान-अत्यन्त दक्ष हो; कृष्ण-रस-कृष्ण का दिव्य स्वाद; आस्वादन-आस्वादन; कर-करो; लह कृष्ण-नाम-कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करो।

अनुवाद

"तुम दोनों ही कृष्ण-भक्ति के रसों को समझने में दक्ष हो। इसलिए तुम दोनों को ऐसे कार्यों का तथा हरे कृष्ण महामन्त्र का आस्वादन करते रहना चाहिए।"

एत बलि' महाप्रभु उठिया चलिला।

गोविन्द-द्वाराय दुँहे प्रसाद पाठाइला ॥50॥

एत बलि'—यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; उठिया चलिला-उठकर चल दिये; गोविन्द-द्वाराय-गोविन्द के द्वारा; दुँहे-उन दोनों को प्रसाद पाठाइला–प्रसाद भिजवाया।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु उठे और चल दिये तथा गोविन्द के द्वारा उन्होंने उनके खाने के लिए प्रसाद भेजा।

एइ-मत सनातन रहे प्रभु-स्थाने।

जगन्नाथेर चक्र देखि' करेन प्रणामे ॥51॥

एइ-मत-इस प्रकार; सनातन-सनातन गोस्वामी; रहे-रहे हैं; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के संरक्षण में; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ के; चक्र-मन्दिर के शीर्ष पर स्थित चक्र को; देखि-देखकर; करेन प्रणामे-सादर प्रणाम करते हैं।

अनुवाद

इस तरह सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु की देखरेख में रहे। वे जगन्नाथ मन्दिर के शिखर के चक्र को देखते तथा नमस्कार करते।

प्रभु आसि' प्रति-दिन मिलेन दुइ-जने।

इष्ट-गोष्ठी, कृष्ण-कथा कहे कत-क्षणे ॥52॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आसि'–आकर; प्रति-दिन-प्रतिदिन; मिलेन दुइ-जने-उन दोनों से मिलते; इष्ट-गोष्ठी-वार्तालाप; कृष्ण-कथा- भगवान् कृष्ण के विषय में चर्चा; कहे-कहते; कत-क्षणे-कुछ समय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिदिन इन दोनों महान् भक्तों से भेंट करने जाते और कुछ काल तक उनके साथ कृष्ण-कथाओं पर बातें करते।

दिव्य प्रसाद पाय नित्य जगन्नाथ-मन्दिरे ।

ताहा आनि' नित्य अवश्य देन दोंहाकारे ॥53॥

दिव्य-उच्च कोटी का; प्रसाद–प्रसाद; पाय-प्राप्त करते; नित्य-रोज; जगन्नाथ-मन्दिरे-भगवान जगन्नाथ के मन्दिर में; ताहा आनि'-वह लाकर; नित्य-रोज; अवश्य-अवश्य ही; देन-देते; दोंहाकारे उन दोनों को।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर में प्रसाद की भेंट सर्वोच्च कोटि की होती थी। श्री चैतन्य महाप्रभु यह प्रसाद लाते और दोनों भक्तों को देते।

एक-दिन आसि' प्रभु दुँहारे मिलिला ।

सनातने आचम्बिते कहिते लागिला ॥54॥

एक-दिन-एक दिवस; आसि'-आकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; दुँहारे मिलिला-उन दोनों से मिले; सनातने-सनातन गोस्वामी से; आचम्बिते-अचानक ही; कहते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

एक दिन जब महाप्रभु उनसे मिलने आये, तो वे सहसा सनातन गोस्वामी से कहने लगे।

सनातन, देह-त्यागे कृष्ण यदि पाइये ।

कोटि-देह क्षणेके तबे छाड़िते पारिये ॥55॥

सनातन-मेरे प्रिय सनातन; देह-त्यागे-आत्महत्या करके; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यदि यदि; पाइये-मैं प्राप्त कर सकें; कोटि-देह-करोड़ों शरीर; क्षणेके-एक क्षण में; तबे-तो; छाड़िते पारिये-मैं त्याग सकता हूँ।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "हे सनातन, यदि मैं आत्महत्या करके कृष्ण को पा सकें, तो करोड़ों शरीर त्यागने में मुझे तनिक भी द्विधा नहीं होगी।"

देह-त्यागे कृष्ण ना पाई, पाइये भजने ।

कृष्ण-प्राप्त्येर उपाय कोन नाहि 'भक्ति' विने ॥56॥

देह-त्यागे-शरीर त्याग करके; कृष्ण-भगवान् कृष्ण को; ना पाइ–मैं नहीं प्राप्त कर सकता; पाइये-मैं प्राप्त कर सकता हूँ; भजने-प्रेममयी सेवा द्वारा; कृष्ण-प्राप्त्येर-कृष्ण की शरण प्राप्त करने का उपाय-साधन; कोन-कोई; नाहि-नहीं है; भक्ति विने- प्रेममयी सेवा के अलावा।

अनुवाद

"तुम जान लो कि मात्र शरीर त्यागने से कोई कृष्ण को प्राप्त नहीं कर सकता। कृष्ण तो भक्ति से प्राप्य हैं। उन्हें प्राप्त करने का कोई अन्य उपाय नहीं है।"

देह-त्यागादि व्रत, सब—तमो-धर्म ।

तमो-रजो-धर्मे कृष्णेर ना पाइये मर्म ॥ 57॥

देह-त्याग-आदि-भौतिक शरीर त्यागना आदि; व्रत–जितने भी; सब-सब; तमः-धर्म-तमोगुण में किये जाने वाले; तमः-रजः-धर्मे-तमो तथा रजोगुण के अधीन रहने से;कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; ना पाइये-मैं नहीं पा सकता; मर्म–सत्य।

अनुवाद

आत्महत्या जैसे कर्म तमोगुण से प्रेरित होते हैं एवं तमो तथा रजोगुण में मनुष्य यह नहीं समझ सकता कि कृष्ण कौन हैं।

'भक्ति' विना कृष्णे कभु नहे 'प्रेमोदय'।

प्रेम विना कृष्ण-प्राप्ति अन्य हैते नय ॥58॥

भक्ति विना-प्रेममयी सेवा के बिना; कृष्णे-कृष्ण में; कभु-किसी भी काल में; नहे-नहीं; प्रेम-उदय-कृष्ण के प्रति प्रसुप्त प्रेम का उदय; प्रेम विना-कृष्ण-प्रेम के बिना; कृष्ण-प्राप्ति-कृष्ण की प्राप्ति; अन्य कुछ और हैते–द्वारा; नय–सम्भव नहीं है।

अनुवाद

जब तक कोई भक्ति सम्पन्न नहीं करता, तब तक वह अपने सुप्त कृष्ण-प्रेम को जागृत नहीं कर सकता और उस सुप्त प्रेम को जागृत किये बिना कृष्ण को प्राप्त करने का अन्य कोई साधन नहीं है।

न साधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म उद्धव।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ 59॥

न-कभी नहीं; साधयति–सन्तोष प्रदान करते हैं; माम्-मुझे; योगः-संयम की प्रक्रिया; न-न ही; साङ्ख्यम्-परम सत्य के विषय में दार्शनिक ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया; धर्मः-ऐसा काम; उद्धव-मेरे प्रिय उद्धव; न-न ही; स्वाध्यायः-वेदों का अध्ययन; तपः–तपस्याएँ; त्यागः-त्याग, संन्यास ग्रहण करना या दान देना; यथा-जितनी; भक्तिः-प्रेममयी सेवा; मम–मेरे प्रति; ऊर्जिता-विकसित।

अनुवाद

"[पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ने कहा :] 'हे उद्धव, न तो अष्टांग योग द्वारा, न निर्विशेष एकेश्वरवाद द्वारा, न सांख्य योग द्वारा, न वेदों के अध्ययन द्वारा, न तपस्या, दान या संन्यास द्वारा कोई मुझे उतना तुष्ट कर सकता है जितना कि मेरी शुद्ध भक्ति विकसित करके कर सकता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.14.20) से है।

देह-त्यागादि तमो-धर्म–पातक-कारण ।

साधक ना पाय ताते कृष्णेर चरण ॥60॥

देह-त्याग-आत्महत्या द्वारा भौतिक शरीर त्यागना; आदि–आदि; तमः-धर्म-तमोगुण के स्तर पर; पातक-कारण-पापकर्मों के कारण; साधक-भक्त; ना पाय-नहीं प्राप्त करता; ताते-उससे; कृष्णेर चरण-कृष्ण के चरणकमल।

अनुवाद

आत्महत्या जैसे उपाय पाप के कारण हैं। ऐसे कर्मों से भक्त कभी भी कृष्ण के चरणकमलों में शरण प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रेमी भक्त वियोगे चाहे देह छाड़िते ।

प्रेमे कृष्ण मिले, सेह ना पारे मरिते ॥61॥

प्रेमी भक्त-कृष्ण से प्रेम द्वारा अनुरक्त भक्त; वियोगे-विरह में; चाहे-चाहता है; देह छाड़िते-शरीर त्यागना; प्रेमे-ऐसे प्रेमभाव से; कृष्ण मिले वह कृष्ण से मिलता है; सेह-ऐसा भक्त; ना पारे मरिते-मर नहीं सकता।

अनुवाद

"कृष्ण से वियोग की भावनाओं के कारण कभी-कभी उन्नत भक्त अपना जीवन त्याग देना चाहता है। किन्तु ऐसे प्रेम से कृष्ण का दर्शन होता है और उस समय वह शरीर त्याग नहीं पाता।"

गाढ़ानुरागेर वियोग ना याय सहन ।

ताते अनुरागी वाञ्छे आपन मरण ॥62॥

गाढ़-अनुरागेर-जिसे गहरी आसक्ति है; वियोग-विरह; ना-नहीं; याय सहन-सहन होना; ताते-अतः; अनुरागी–एक अत्यन्त आसक्त भक्त; वाञ्छे-चाहता है; आपन मरण-अपनी मृत्यु।

अनुवाद

"जो व्यक्ति कृष्ण से प्रगाढ़ प्रेम करता है, वह उनके वियोग को सहन नहीं कर सकता। इसलिए ऐसा भक्त सदैव अपनी मृत्यु चाहता है।"

यस्याङ्घि-पङ्कज-रजः-स्नपनं महान्तो

वाञ्छन्त्युमा-पतिरिवात्म-तमोऽपहत्यै ।

यहम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं

जह्यामसुन्व्रत-कृशाञ्छत-जन्मभिः स्यात् ॥ 63 ॥

मस्य–जिसके; अघ्रि-चरणों की; पङ्कज-कमल; रजः-धूल में; स्नपनम्-स्नान करके; महान्तः–महात्मा; वाञ्छन्ति–चाहते हैं; उमा-पतिः-शिवजी; इव-जैसे; आत्म-अपना; तमः-अज्ञान; अपहत्यै-दूर करने के लिए; यर्हि-जब; अम्बुज-अक्ष-हेकमलनयन; न लभेय-मुझे नहीं मिलती; भवत्-प्रसादम्-आपकी कृपा; जह्याम्-मैं त्याग दूँगा; असून्-जीवन; व्रत-कृशान् व्रत करके कमजोर होकर; शत-जन्मभिः-हजारों जन्मों तक; स्यात्-यदि ऐसा सम्भव हो।

अनुवाद

हे कमलनयन, शिवजी जैसे महापुरुष अज्ञान को भगाने के लिए आपके चरणकमलों की धूल में स्नान करने की इच्छा करते हैं। यदि मुझे आपकी कृपा प्राप्त नहीं होती, तो मैं अपनी आयु को कम करने के व्रत का पालन करूँगी और यदि इस तरह आपकी कृपा मिल सकेगी, तो मैं सैकड़ों जन्मों तक शरीर त्यागती रहूँगी।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.52.43) में रुक्मिणी देवी द्वारा कहा गया है। राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी देवी ने कृष्ण के दिव्य गुणों के विषय में सुन रखा था, अतएव वे कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए इच्छुक थीं। दुर्भाग्यवश

उनका बड़ा भाई रुक्मी कृष्ण से द्वेष रखता था, इसलिए वह उन्हें शिशुपाल को दिये जाने के पक्ष में था। जब रुक्मिणी को इसका पता चला, तो वे अत्यधिक दुःखी हुईं। अतएव उन्होंने एक गोपनीय पत्र कृष्ण के नाम लिखा, जिसे एक ब्राह्मण दूत ने ले जाकर उनके समक्ष प्रस्तुत किया और पढ़कर सुनाया। यह श्लोक उसी पत्र में था।

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृत-पूरकेण

हासावलोक-कल-गीत-ज-हृच्छयाग्निम् ।

नो चेद्वयं विरह-जाग्न्युपयुक्त-देहा

ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥ 64॥

सिञ्च-जल छिड़क दो; अङ्ग-हे मेरे प्रिय कृष्ण; नः-हमारे; त्वत्-आपके; अधर-होठों के; अमृत-अमृत के; पूरकण-बहाव से; हास-हँसी, मुस्कान; अवलोक-चितवन;कल-मधुर; गीत-वाणी; जद्वारा उत्पन्न; हृत्-हृदय में; शय-आराम; अग्निम्-आग पर; न उ चेत्-यदि नहीं; वयम्-हम; विरह-विरह से; ज-उत्पन्न; अग्नि-अग्नि द्वारा;उपयुक्त-ग्रासित; देहाः-जिनके शरीर; ध्यानेन-ध्यान द्वारा; याम–जाएँगी; पदयो:-चरणकमलों के; पदवी-पदाश्रित; सखे-हे मेरे प्रिय मित्र; ते-आपके।

अनुवाद

“हे प्रिय कृष्ण, आपने अपनी हँसीयुक्त चितवन तथा मधुर बातों से हमारे हृदयों में कामवासना की अग्नि उत्पन्न कर दी है। अब आपको अपने होठों की अमृतधारा से हमें चूमकर इस अग्नि को बुझाना चाहिए। तुम कृपा करके ऐसा करें। अन्यथा हे मित्र, आपके विरह के कारण हमारे हृदयों के भीतर की अग्नि हमारे शरीरों को क्षार कर देगी। इस तरह ध्यान द्वारा हम आपके चरणकमलों की शरण पा सकेंगी।”

तात्पर्य

यह श्लोक (भागवत 10.29.35) गोपियों द्वारा तब कहा गया था, जब वे शरदकालीन चाँदनी में कृष्ण की वंशी-ध्वनि द्वारा आकृष्ट हुईं थीं। वे सभी उन्मत्त होकर कृष्ण के पास आईं, किन्तु उनके प्रेम को वर्धित करने के उद्देश्य से कृष्ण

ने उन्हें घर लौट जाने का नैतिक उपदेश दिया। गोपियों ने इन उपदेशों की परवाह नहीं की। वे कृष्ण द्वारा चुम्बन चाहती थीं, क्योंकि वे उनके साथ नाचने की कामवासना से पूरित होकर वहाँ आई थीं।

कुबुद्धि छाड़िया कर श्रवण-कीर्तन ।

अचिरात् पाबे तबे कृष्णेर चरण ॥65॥

कु-बुद्धि-प्रेममयी सेवा करने के लिए अनुपयुक्त बुद्धि; छाड़िया-त्यागकर; कर-करो; श्रवण-कीर्तन-श्रवण और कीर्तन; अचिरात्-अति शीघ्र ही; पाबे-तुम प्राप्त करोगे; तबे-तब; कृष्णेर चरण-कृष्ण के चरणकमल।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को कहा, "तुम अपनी समस्त व्यर्थ की इच्छाएँ छोड़ दो, क्योंकि वे कृष्ण के चरणकमलों की शरण पाने के लिए अनुपयुक्त हैं। तुम अपने आपको श्रवण तथा कीर्तन में लगाओ। तब तुम तुरन्त ही बिना संशय के कृष्ण की शरण पा सकोगे।

नीच-जाति नका -भजने अयोग्य ।

सत्कुल-विप्र नहे भजनेर योग्य ॥66॥

नीच-जाति–एक नीच जाति का व्यक्ति; नहे-नहीं होता; कृष्ण-भजने-प्रेममयीसेवा करने के; अयोग्य-अयोग्य; सत्-कुल-विप्र-एक अत्यन्त सम्मानित कुलीन परिवार में जन्मा ब्राह्मण; नहे-नहीं होता; भजनेर योग्य-प्रेममयी सेवा करने के योग्य।

अनुवाद

निम्न कुल में उत्पन्न व्यक्ति भगवान् कृष्ण की भक्ति करने के लिए अयोग्य नहीं होता, न ही कोई व्यक्ति भक्ति के लिए इसलिए योग्य होता है कि वह कुलीन ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुआ है।

येइ भजे सेइ बड़, अभक्त–हीन, छार ।

कृष्ण-भजने नाहि जाति-कुलादि-विचार ॥ 67॥

येइ भजे–जो कोई भी भक्तिमयी सेवा करता है; सेइ-वही; बड़-महान् है; अभक्त-अभक्त, नास्तिक; हीन छार–सबसे घृणित और दुष्ट; कृष्ण-भजने-भगवत्सेवा करने में;नाहि-नहीं है; जाति-जाति; कुल-कुल; आदि–इत्यादि सबका; विचार-विचार।

अनुवाद

"जो भी भक्ति करता है, वही महान् है, जबकि अभक्त सदैव गर्हितएवं निन्दनीय है। इसलिए भगवद्भक्ति करने में किसी के जाति, कुल इत्यादि का विचार नहीं होता।"

दीनेरे अधिक दया करे भगवान् ।

कुलीन, पण्डित, धनीर बड़ अभिमान ॥ 68॥

दीनेरे-दीन पर; अधिक-अधिक; दया-कृपा; करे-प्रदर्शित करते हैं; भगवान्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कुलीन-उच्च कुल वाले; पण्डित–विद्वान; धनीर-एक धनी व्यक्ति का; बड़ अभिमान-अत्यन्त अहंकार।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण सदैव दीनों तथा दुखियारों के प्रति कृपालु रहते हैं, किन्तु कुलीन, विद्वान तथा धनी सदैव अपने पदों का गर्व करते हैं।"

विप्राद् द्वि-षड्-गुण-युतादरविन्द-नाभ-

पादारविन्द-विमुखात् श्रुपचं वरिष्ठम् ।

मन्ये तदर्पत-मनो-वचनेहितार्थ-

प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरि-मानः ॥69॥

विप्रात्-एक ब्राह्मण की तुलना में; द्वि-षट्-गुण-युतात्-जिसमें ब्राह्मण के 12 गुणहैं; अरविन्द-नाभ-भगवान् विष्णु के, जिनकी नाभि कमल के समान है; पाद-अरविन्द-के चरणकमलों से; विमुखात्-भक्ति भाव से रहित व्यक्ति से; श्व-पचम्-एक चण्डाल अथवा कुत्ते का मांस खानेवाला व्यक्ति; वरिष्ठम्-अधिक प्रशंसनीय है; मन्ये-मैं मानता हूँ; तत्-

अर्पित-उनके प्रति समर्पित; मनः-मन; वचन-वचन; इंहित-कर्म; अर्थ-सम्पत्ति; प्राणम्-जीवन; पुनाति–शुद्ध कर देता है; सः-वह; कुलम्-अपने परिवार को; न तु-परन्तु नहीं; भूरि-मानः-ऐसे गुणों से युक्त होने के घमण्ड वाला ब्राह्मण।

अनुवाद

"भले ही कोई ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो और बारहों ब्राह्मण-गुणों से युक्त हो, किन्तु इतना योग्य होते हुए भी यदि वह कमलनाभ भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में समर्पित नहीं होता, तो वह उस चण्डाल के समान भी नहीं है, जिसने अपना मन, वचन, कर्म, धन तथा प्राण भगवान् की सेवा में अर्पित कर दिया है। मात्र ब्राह्मण कुल में जन्म लेना या ब्राह्मण-गुणों से युक्त होना पर्याप्त नहीं है। मनुष्य को भगवद्भक्त होना आवश्यक है। इस तरह यदि कोई श्वपच या चण्डाल भक्त है, तो वह न केवल अपना, अपितु अपने सारे परिवार का भी उद्धार करता है, जबकि एक ब्राह्मण, जो भक्त नहीं है, किन्तु केवल ब्राह्मण-योग्यताओं से युक्त है, अपने आपको भी शुद्ध नहीं कर सकता, अपने परिवार की तो बात ही जाने दें।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (7.9.10) से है।

भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नव-विधा भक्ति ।

"कृष्ण-प्रेम", 'कृष्ण' दिते धरे महा-शक्ति ॥ 70 ॥

भजनेर मध्ये-भक्ति के निष्पादन में; श्रेष्ठ–सर्वश्रेष्ठ; नव-विधा भक्ति-भगवत्सेवाकी नौ विधियाँ; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण के प्रति प्रेमभाव; कृष्ण–तथा कृष्ण; दिते-देने की;धरे-धारण करती हैं; महा-शक्ति-महान् शक्ति।

अनुवाद

"भक्ति सम्पन्न करने की विधियों में नौ संस्तुत विधियाँ सर्वश्रेष्ठ हैं, क्योंकि इन विधियों में कृष्ण तथा उनके प्रति प्रेम प्रदान करने की महान् शक्ति निहित है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (7.5.23) में नौ प्रकार की भक्ति का उल्लेख हुआ है :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

ये नौ प्रकार हैं-श्रवण, कीर्तन, कृष्ण का स्मरण, कृष्ण के चरणों की सेवा, मन्दिर में पूजा करना, स्तुति करना, सेवक की तरह कार्य करना, कृष्ण से मैत्री करना तथा कृष्ण की बिना शर्त शरण ग्रहण करना। भक्ति की इन नौ विधियों से कृष्ण तथा कृष्ण-प्रेम मिलता है। प्रारम्भ में विधि-विधानों के अनुसार भक्ति करनी होती है, किन्तु धीरे-धीरे यही भक्ति भक्त की जीवनाधार बन जाती है और उसे कृष्ण-प्रेम का सर्वोच्च पद प्राप्त होता है। अन्ततोगत्वा कृष्ण ही जीवन के लक्ष्य हैं। कृष्ण के चरणकमलों को प्राप्त करने के लिए न तो कुलीन ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने की आवश्यकता है, न ही निम्न कुल में उत्पन्न व्यक्ति कृष्ण के चरणकमल प्राप्त करने के अयोग्य होता है। श्रीमद्भागवत (3.33.7) में देवहूति कपिलदेव से कहती हैं :

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्

यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।

तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या

ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥

“हे प्रभु, चण्डालों के निम्न कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी धन्य है यदि वह भगवान् के पवित्र नाम का सदैव कीर्तन करता है। ऐसा व्यक्ति पहले से ही सभी तरह की तपस्याएँ तथा वैदिक यज्ञ सम्पन्न कर चुका होता है, पहले ही पवित्र नदियों में स्नान कर चुका होता है एवं समस्त वेदों का भी अध्ययन कर चुका होता है। इस तरह वह एक महापुरुष बन चुका होता है।” इसी तरह कुन्तीदेवी भगवान् कृष्ण से कहती हैं :

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ।

नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वाम् अकिञ्चनगोचरम् ॥

“जो व्यक्ति अपने जन्म, ऐश्वर्य, ज्ञान तथा सौंदर्य पर गर्व करता है, वह आपके चरणकमलों को प्राप्त नहीं कर सकता। आप तो केवल अकिंचन तथा दीन को सहज उपलब्ध हैं, अभिमानी को नहीं।”(भागवत 1.8.26)

तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नाम-सङ्कीर्तन ।

निरपराधे नाम लैले पाय प्रेम-धन ॥ 71॥

तार मध्ये-प्रेममयी सेवा की नौ विभिन्न विधियों में; सर्व-श्रेष्ठ-सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण; नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन; निरपराधे-अपराधों से रहित; नाम लैले–यदि कोई पवित्र नाम लेता है; पाय-वह प्राप्त करता है। प्रेम-धन-सबसे अमूल्य कृष्ण के प्रति प्रेमभाव।

अनुवाद

“भक्ति की नौं विधियों में से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है भगवान् के पवित्र नाम का सदैव कीर्तन करना। यदि कोई दस प्रकार के अपराधों से बचते हुए ऐसा करता है, तो वह आसानी से भगवान् के अमूल्य प्रेम को प्राप्त कर लेता है।”

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी प्रभु ने भक्ति-सन्दर्भ (270) में निम्नलिखित निर्देश दिये हैं :

इयं च कीर्तनाख्या भक्तिर्भगवतो द्रव्यजातिगुणक्रियाभिर्दीनजनैक--विषयापार--करुणामयीति श्रुतिपुराणादिविश्रुतिः। अतएव कलौ स्वभावत एवातिदीनेषु लोकेषु आविर्भूय तान् अनायासेनैव तत्तद् युगगतमहासाधनानां सर्वमेव फलं ददाना सा कृतार्थयति। यत एव तयैव कलौ भगवतो विशेषतश्च सन्तोषो भवति ।

“भगवन्नाम कीर्तन भगवत्प्रेम प्राप्त करने का मुख्य साधन है। यह कीर्तन या भक्ति न तो किसी साज-सामग्री पर, न ही अच्छे कुल में जन्म लेने पर निर्भर करती है। दीनता तथा विनम्रता से मनुष्य कृष्ण का ध्यान आकृष्ट करता है। यही सारे वेदों का निर्णय है। इसलिए यदि कोई अत्यन्त विनीत एवं दीन बन जाता है, तो वह कलियुग में सरलता से कृष्ण के चरणकमल प्राप्त कर सकता है। यही बड़े-बड़े यज्ञों एवं तपस्याओं की पूर्ति है, क्योंकि जब कोई भगवत्प्रेम प्राप्त कर लेता है, तब उसे जीवन की पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसलिए मनुष्य भक्ति को सम्पन्न करने के लिए जो भी करे, उसके

साथ भगवान् के पवित्र नाम कीर्तन अवश्य करता रहे।" कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे- की प्रशंसा श्रील रूप गोस्वामी ने नामाष्टक (श्लोक 1) में की है :

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला

घुतिनीराजितपादपङ्कजान्त ।

अयि मुक्तकुलैरुपास्यमानं

परितस्त्वां हरिनाम संश्रयामि ॥

"हे हरिनाम! आपके चरणकमलों के अँगूठों के अग्रभाग समस्त वेदों के मौलि रत्न उपनिषद् रूपी रत्नों से निकलने वाली कान्ति से निरन्तर पूजित होते हैं। आपकी पूजा निरन्तर नारद तथा शुकदेव जैसे मुक्तात्मा करते हैं। हे हरिनाम ! मैं पूरी तरह आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।"

इसी तरह श्रील सनातन गोस्वामी ने पवित्र नाम के कीर्तन की प्रशंसा बृहद्भागवतामृत (भाग 1, अध्याय 1, श्लोक 9) में की है :

जयति जयति नामानन्दरूपं मुरारे-

विरमतिनिजधर्मध्यानपूजादियत्नम् ।

कथमपि सकृदात्तं मुक्तिदं प्राणिनां

यत्परममृतमेकं जीवनं भूषणं मे ॥

"समस्त आनन्दमय पवित्र कृष्ण-नाम की जय हो, जो भक्त के सारे धार्मिक कर्म, ध्यान तथा पूजा को छुड़वा देता है। यदि जीव एक बार भी किसी तरह नामोच्चारण करता है, तो यह नाम उसे मुक्ति प्रदान करता है। कृष्ण-नाम सर्वश्रेष्ठ अमृत है। यह तो मेरा प्राण तथा एकमात्र धन है।"

शुकदेव गोस्वामी ने श्रीमद्भागवत (2.1.11) में कहा है :

एतन्निर्विद्यमानानाम् इच्छतामकुतोभयम् ।

योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥

“हे राजन्, महापुरुषों के मार्ग पर चलते हुए भगवान् के पवित्र नाम का निरन्तर कीर्तन सबके लिए संशयरहित तथा भयरहित सफलता का मार्ग है। इसमें समस्त भौतिक इच्छाओं से रहित, भौतिक भोग के लिए इच्छुक तथा दिव्यज्ञान के बल पर आत्मतुष्ट लोग सम्मिलित हैं।”

श्रीमद्भागवतम् (6.3.22) में यमराज कहते हैं :

एतवानेव लोकेऽस्मिन् पुसांम् धर्मः परः स्मृतः।

भक्तियोगो भगवती तन्नाम ग्रहणादिभिः ॥

“भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन से प्रारम्भ होने वाली भक्ति मानव समाज में रहने वाले मनुष्य के लिए परम धर्म है।”

इसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिक्षाष्टक (3) में कहा है :

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।

अमानिना नदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

“अपने आपको मार्ग में पड़े तिनके से भी तुच्छ मानकर विनीत भाव से भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए। भक्त को वृक्ष से भी अधिक सहनशील, झूठी प्रतिष्ठा के भाव से रहित तथा अन्यों का आदर करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। ऐसी मनोदशा में रहकर मनुष्य भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन निरन्तर कर सकता है।” नाम-कीर्तन से सम्बन्धित दस अपराधों के लिए देखें आदिलीला (अध्याय 8 का श्लोक 24)।

एत शुनि’ सनातनेर हैल चमत्कार।

प्रभुरे ना भाय मोर मरण-विचार ॥72॥

एत शुनि’-यह सुनकर; सनातनेर-सनातन गोस्वामी को; हैल चमत्कार-आश्चर्य हुआ; प्रभुरे ना भाय-श्री चैतन्य महाप्रभु को पसन्द नहीं आया; मोर-मेरा; मरण-विचार-आत्महत्या करने का निर्णय।

अनुवाद

यह सुनकर सनातन गोस्वामी को अत्यधिक आश्चर्य हुआ। वे समझ गये, "आत्महत्या करने का मेरा निर्णय श्री चैतन्य महाप्रभु को अच्छा नहीं लगा।"

सर्वज्ञ महाप्रभु निषेधिला मोरे ।

प्रभुर चरण धरि' कहेन ताँहारे ॥73॥

सर्व-ज्ञ-जो सब कुछ जानते हैं; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; निषेधिला-निषेध कर दिया है; मोरे-मुझे; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण-चरण; धरि'-पकड़कर; कहेन ताँहारे-उनसे कहने लगे।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने निष्कर्ष निकाला, "भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जानने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुझे आत्महत्या करने से मना किया है।" तब वे महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़े और उनसे इस तरह बोले।

सर्वज्ञ, कृपालु तुमि ईश्वर स्वतन्त्र ।

यैछे नाचाओ, तैछे नाचि,—येन काष्ठ-ग्रन्त्र ॥ 74॥

सर्व-ज्ञ-सब जानने वाले; कृपालु कृपालु; तुमि-आप; ईश्वर-परम भगवान्; स्वतन्त्र–स्वतन्त्र; यैछे-जैसे; नाचाओ-आप नचाएँ, तैछे-वैसे; नाचि-मैं नाचता हूँ; येन-जैसे; काष्ठ-ग्रन्त्र-कठपुतली।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप सर्वज्ञ, कृपालु तथा स्वतन्त्र परमेश्वर हैं। मैं तो कठपुतली की ही तरह, जैसा आप चाहते हैं, नाचता हूँ।"

"नीच, अधम, पामर मुनि पामर-स्वभाव ।

मोरे जियाइले तोमार किबा हबे लाभ?" ॥ 75॥

नीच-नीच जन्म; अधम–सबसे पतित; पामर-पापी; मुञि-मैं; पामर-स्वभाव-स्वभाव से ही पापी; मोरे जियाइले–यदि आप मुझे बचा लें; तोमार-आपका; किबा-क्या; हबे-होगा; लाभ-लाभ।

अनुवाद

"मैं नीच कुल में जन्मा हूँ। निस्सन्देह, मैं सबसे नीच हूँ। मैं घृणित हूँ, क्योंकि मुझमें पापी व्यक्ति के सारे दुर्गुण हैं। यदि आप मुझे जीवित रखते हैं, तो क्या लाभ होगा?"

प्रभु कहे,–"तोमार देह मोर निज-धन ।

तुमि मोरे करियाछ आत्म-समर्पण" ॥ 76॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं; तोमार देह-तुम्हारा शरीर; मोर-मेरी; निज-धन-अपनी सम्पत्ति है; तुमि-तुमने; मोरे-मुझे; करियाछ–किया है; आत्म-समर्पण-सम्पूर्ण समर्पण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "तुम्हारा शरीर मेरी सम्पत्ति है। तुम इसे पहले ही मुझको समर्पण कर चुके हो। इसलिए अब अपने शरीर पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है।

परेर द्रव्य तुमि केने चाह विनाशिते? ।

धर्माधर्म विचार किबा ना पार करिते? ॥77॥

परेर द्रव्य-दूसरे की सम्पत्ति; तुमि-तुम; केने-क्यों; चाह–चाहते हो; विनाशिते-नष्ट करना; धर्म-अधर्म-पुण्य क्या है और पाप क्या है; विचार-विचार; किबा-क्यों; ना-नहीं; पार-तुम सकते; करिते-करना।

अनुवाद

"तुम दूसरे की सम्पत्ति को क्यों नष्ट करना चाहते हो? क्या तुम यह विचार नहीं कर सकते कि क्या उचित है और क्या अनुचित?"

"तोमार शरीर—मोर प्रधान साधन" ।

ए शरीरे साधिमु आमि बहु प्रयोजन ॥ 78 ॥

तोमार शरीर-तुम्हारा शरीर; मोर-मेरा; प्रधान-मुख्य; साधन-साधन है; ए शरीरे—इस शरीर से; साधिमु–करूँगा; आमि-मैं; बहु–अनेक प्रयोजन-आवश्यकताओं की पूर्ति।

अनुवाद

तुम्हारा शरीर अनेक आवश्यक कार्य सम्पन्न कराने के लिए मेरा प्रमुख साधन है। तुम्हारे शरीर के द्वारा मैं अनेक कार्यों को पूरा करूँगा।

भक्त-भक्ति-कृष्णप्रेम-तत्त्वेर निधार।

वैष्णवेर कृत्य, आर वैष्णव-आचार ॥79॥

भक्त-भक्त; भक्ति-प्रेममयी सेवा; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण का प्रेम; तत्त्वेर-सत्य का; निधार-निर्धारण; वैष्णवेर कृत्य-एक वैष्णव के कर्तव्य; आर-और; वैष्णव-आचार-एक वैष्णव के आचरण।

अनुवाद

तुम्हें भक्त, भक्ति, ईश्वर-प्रेम, वैष्णवों के कर्तव्य तथा वैष्णव के गुणों का निर्धारण करना होगा।

कृष्ण-भक्ति, कृष्णप्रेम-सेवा-प्रवर्तन।

लुप्त-तीर्थ-उद्धार, आर वैराग्य-शिक्षण ॥80॥

कृष्ण-भक्ति-कृष्ण के प्रति प्रेममयी सेवा; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; सेवा-सेवा; प्रवर्तन की स्थापना; लुप्त-तीर्थ-विलुप्त तीर्थस्थानों का; उद्धार–पुर्नरुद्धार; आर-और;वैराग्य-शिक्षण-संन्यास आश्रम पर उपदेश।

अनुवाद

"तुम्हें कृष्ण-भक्ति बतलानी होगी, कृष्ण-प्रेम अनुशीलन के केन्द्र स्थापित करने होंगे, लुप्त तीर्थस्थलों का उद्धार करना होगा तथा लोगों को शिक्षा देनी होगी कि संन्यास किस तरह ग्रहण किया जाए।"

निज-प्रिय-स्थान मोर–मथुरा-वृन्दावन।

ताहाँ एत धर्म चाहि करिते प्रचारण ॥81॥

निज-अपना; प्रिय-स्थान-अत्यन्त प्रिय स्थान; मोर-मेरा; मथुरा-वृन्दावन-मथुरा और वृन्दावन; ताहाँ-वहाँ; एत-अनेक; धर्म–कार्यकलाप; चाहि-मैं चाहता हूँ; करिते- करना; प्रचारण–प्रचार।

अनुवाद

"मथुरा-वृन्दावन मेरा अति प्रिय अपना धाम है। मैं कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए वहाँ अनेक कार्य करना चाहता हूँ।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु श्रील सनातन गोस्वामी द्वारा ग्रन्थों का संकलन करवाकर कई उद्देश्य पूरे करना चाह रहे थे। पहला कार्य था-सनातन गोस्वामी ने बृहद्भागवतामृत नामक ग्रन्थ की रचना लोगों को यह शिक्षा देने के लिए की कि किस तरह भक्त बना जाए, कैसे भक्ति की जाए और किस तरह कृष्ण-प्रेम प्राप्त किया जाए। दूसरा कार्य था—उन्होंने हरिभक्ति विलास नामक ग्रन्थ का संकलन किया, जो वैष्णव आचरण के सम्बन्ध में शास्त्रों के आदेशों का प्रामाणिक संग्रह है। श्री सनातन गोस्वामी के प्रयासों से ही वृन्दावन क्षेत्र के लुप्त तीर्थस्थलों का पुनरुद्धार हो सका। उन्होंने वृन्दावन क्षेत्र में प्रथम अर्चाविग्रह मदनमोहन की स्थापना की। उन्होंने अपने व्यक्तिगत आचरण से शिक्षा दी कि किस तरह संन्यास आश्रम में पूर्णतया भगवान् की सेवा में लगे रहकर कर्म करना चाहिए। उन्होंने अपने निजी दृष्टान्त से लोगों को शिक्षा दी कि किस तरह भक्ति करने के लिए वृन्दावन में रहना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु का मुख्य उद्देश्य कृष्णभावनामृत का प्रचार करना था। मथुरा तथा वृन्दावन भगवान् कृष्ण के धाम हैं। इसलिए ये दोनों ही स्थान श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय हैं और वे सनातन गोस्वामी के माध्यम से इनकी महिमा बढ़ाना चाहते थे।

मातार आज्ञाय आमि वसि नीलाचले ।

ताहाँ 'धर्म' शिखाइते नाहि निज-बले ॥82॥

मातार–मेरी माता के; आज्ञाय-आदेश से; आमि-मैं; वसि–वास कर रहा हूँ; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; ताहाँ-मथुरा और वृन्दावन में; धर्म शिखाइते-धर्म के सिद्धान्त सिखाने के लिए; नाहि-नहीं; निज-बले-मेरी क्षमता।

अनुवाद

"मैं अपनी माता के आदेश से जगन्नाथ पुरी में रह रहा हूँ, अतएव मैं लोगों को धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार रहना सिखाने के लिए मथुरा-वृन्दावन नहीं जा सकता।

एत सब कर्म आमि ये-देहे करिमु ।

ताहा छाड़िते चाह तुमि, केमने सहिमु? ॥83॥

एत सब-यह सब; कर्म-कार्य; आमि-मैं; ये-देहे-जिस शरीर के माध्यम से; करिमु–करूँगा; ताहा-वह; छाड़िते-त्यागना; चाह तुमि-तुम चाहते हो; केमने-कैसे; सहिमु-मैं सहन करूँगा।

अनुवाद

"मुझे यह सारा कार्य तुम्हारे शरीर के माध्यम से कराना है, किन्तु तुम इसे त्यागना चाहते हो। यह मैं कैसे सह सकता हूँ?"

तबे सनातन कहे,–"तोमाके नमस्कारे ।

तोमार गम्भीर हृदय के बुझिते पारे?" ॥84॥

तबे-उस समय; सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने कहा; तोमाके नमस्कारे-मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ; तोमार-आपका; गम्भीर-गम्भीर; हृदय-हृदय; के-कौन; बुझिते पारे-समझ सकता है।

अनुवाद

उस समय सनातन गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। आप अपने हृदय के भीतर जो गहन विचार करते हैं, उन्हें कोई नहीं समझ सकता।

काष्ठेर पुतली येन कुहके नाचाय ।

आपने ना जाने, पुतली किबा नाचे गाय! ॥85॥

काष्ठेर पुतली-कठपुतली; येन-जैसे; कुहके नाचाय-जादुगर नचाता है; आपने-स्वयं; ना जाने–नहीं जानती; पुतली–कठपुतली; किबा–कैसे; नाचे-नाचती है; गाय-गाती है।

अनुवाद

कठपुतली जादूगर के निर्देशानुसार नाचती-गाती है, किन्तु यह नहीं जानती कि वह किस तरह नाच-गा रही है।

यारे यैछे नाचाओ, से तैछे करे नर्तने ।

कैछे नाचे, केबा नाचाय, सेह नाहि जाने" ॥86॥

यारे-जिसको; यैछे-जैसे; नाचाओ-आप नचाते हैं; से-वह व्यक्ति; तैछे-वैसे; करे नर्तने-नाचता है; कैछे-कैसे; नाचे-वह नाचता है; केबा नाचाय-कौन नचाता है; सेह-वह; नाहि जाने-नहीं जानता।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप जिस तरह नचाते हैं, मनुष्य उसी के अनुसार नाचता है, किन्तु वह कैसे नाचता है और उसे कौन नचाता है, वह यह नहीं जानता।"

हरिदासे कहे प्रभु,–"शुन, हरिदास ।

परेर द्रव्य इँहो चाहेन करिते विनाश" ॥ 87॥

हरिदासे-हरिदास ठाकुर को ; कहे प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु सम्बोधित करते हैं; शुन हरिदास-मेरे प्रिय हरिदास, कृपया सुनो; परेर द्रव्य-दूसरे की सम्पत्ति; इँहो–यह सनातन गोस्वामी; चाहेन–चाहता है; करिते विनाश-नष्ट करना।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर से कहा, "हे प्रिय हरिदास, जरा मेरी बात सुनो। यह भद्र पुरुष पराई सम्पति को नष्ट करना चाहता है।"

"परेर स्थाप्य द्रव्य केह ना खाय, विलाय ।

निषेधिह इँहारे,—येन ना करे अन्याय” ॥88॥

परेर-दूसरे द्वारा; स्थाप्य-संभालने के लिए; द्रव्य-सम्पत्ति; केह ना खाय-कोई प्रयोग नहीं करता; विलाय-बाँटता है; निषेधिह-मना करो; इँहारे-इसे; येन–ताकि; ना करे-यह न करे; अन्याय-कुछ अन्याय।

अनुवाद

“जिसे पराया धन सौंपा जाता है, वह न तो उसे वितरित करता है, न ही अपने उपयोग में लाता है। इसलिए उससे कहो कि ऐसा अवैध कार्य न करे।”

हरिदास कहे,-“मिथ्या अभिमान करि ।

तोमार गम्भीर हृदय बुझिते ना पारि” ॥89॥

हरिदास कहे-हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया; मिथ्या-झूठे; अभिमान करि–अभिमान करते हैं; तोमार-आपके; गम्भीर-गहरे; हृदय-भाव को; बुझिते ना पारि-हम समझ नहीं सकते।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, “हम अपनी क्षमताओं पर झूठे ही गर्व करते हैं। वस्तुतः हम आपके गहन विचारों को समझ नहीं सकते।”

कोन् को कार्य तुमि कर कोन् द्वारे ।

तुमि ना जानाइले केह जानते ना पारे ॥90॥

कोन् को कार्य-कौन से कार्य; तुमि-आप; कर-करते हैं; कोन् द्वारे-किसके द्वारा; तुमि ना जानाइले–जब तक आप न समझाएँ; केह जानते ना पारे-कोई भी समझ नहीं सकता।

अनुवाद

“जब तक आप हमें बताते नहीं, तब तक हम न तो आपके अभिप्राय को समझ पाते हैं, न ही यह कि किसके माध्यम से आप क्या कराना चाहते हैं।”

“एतादृश तुमि इँहारे करियाछ अङ्गीकार।

एत सौभाग्य इहाँ ना हय काहार” ॥91॥

एतादृश-ऐसे; तुमि-आपने; इँहारे-इसे; करियाछ अङ्गीकार–स्वीकार किया है; एत सौभाग्य-अत्यन्त सौभाग्य; इहाँ-इसका; ना हय–सम्भव नहीं है; काहार–किसी और के द्वारा।

अनुवाद

“हे महोदय, चूँकि आप जैसे महापुरुष ने सनातन गोस्वामी को स्वीकार कर लिया है, अतएव वह अत्यधिक भाग्यशाली है। उसके समान भाग्यशाली कोई दूसरा नहीं हो सकता।”

तबे महाप्रभु करि’ हुँहारे आलिङ्गन।

‘मध्याह्न’ करिते उठि’ करिला गमन ॥ 92॥

तबे-तब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करि’ दुँहारे आलिङ्गन-दोनों को गले लगाकर; मध्य-अह्न करिते-अपने दोपहर के कृत्य करने के लिए; उठि’–उठकर; करिला गमन–चले गये।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर तथा सनातन गोस्वामी दोनों का आलिंगन किया और तब उठ खड़े हुए एवं दोपहर का कृत्य करने के लिए चले गये।

सनातने कहे हरिदास करि’ आलिङ्गन।

“तोमार भाग्येर सीमा ना याय कथन” ॥93॥

सनातने-सनातन गोस्वामी से; कहे-कहा; हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; करि’ आलिङ्गन-आलिंगन करके; तोमार-तुम्हारे; भाग्येर–सौभाग्य की; सीमा-सीमा का; ना याय कथन-वर्णन नहीं किया जा सकता।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने सनातन का आलिंगन करते हुए कहा, "हे प्रिय सनातन, कोई भी व्यक्ति तुम्हारे सौभाग्य की सीमा नहीं पा सकता।

तोमार देह कहेन प्रभु मोर निज-धन ।

तोमा-सम भाग्यवान् नाहि कोन जन ॥94॥

तोमार देह-तुम्हारे शरीर को; कहेन प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं; मोर-मेरा; निज-धन-अपनी सम्पत्ति; तोमा-सम-तुम्हारे समान; भाग्यवान्– भाग्यवान व्यक्ति; नाहि-नहीं है; कोन जन-कोई।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुम्हारे शरीर को अपना व्यक्तिगत धन मान लिया है। अतएव तुम्हारे सौभाग्य की कोई तुलना नहीं कर सकता।"

निज-देहे ये कार्य ना पारेन करिते ।

से कार्य कराइबे तोमा, सेह मथुराते ॥95॥

निज-देहे-अपने शरीर से; ये कार्य-जो कार्यकलाप; ना पारेन करिते-वे नहीं कर सकते; से कार्य-वे कार्य; कराइबे–वे करवाएँगे; तोमा-तुमसे; सेह-वे; मथुराते-मथुरा में।

अनुवाद

"जो कुछ श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी शरीर से नहीं कर सकते, उसे वे तुम्हारे माध्यम से कराना चाहते हैं और वे इसे मथुरा में कराना चाहते हैं।"

ये कराइते चाहे ईश्वर, सेइ सिद्ध हय ।

तोमार सौभाग्य एइ कहिलुँ निश्चय ॥ 96॥

ये-जो कुछ भी; कराइते-करवाना; चाहे-चाहते हैं; ईश्वर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; सेइ-वह; सिद्ध-सफल; हय-है; तोमार सौभाग्य-तुम्हारा महान् सौभाग्य; एइ–यह; कहिलुँ-मैंने कहा है; निश्चय–मेरा गम्भीर विचार है।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हमसे जो भी कराना चाहते हैं, वह सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जायेगा। यह तुम्हारा महान् सौभाग्य है। यह मेरा परिपक्व मत है।"

भक्ति-सिद्धान्त, शास्त्र-आचार-निर्णय ।

तोमा-द्वारे कराइबेन, बुझिलुँ आशय ॥97॥

भक्ति-सिद्धान्त-भक्तिमयी सेवा में सैद्धान्तिक निर्णय; शास्त्र-शास्त्र के विधानों के अनुसार;आचार-निर्णय-आचरण का निर्धारण; तोमा-द्वारे-तुम्हारे द्वारा; कराइबेन-करवाएँगे; बुझिलुँ-मैं समझ सकता हूँ; आशय-उनकी इच्छा।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की बातों से समझ सकता हूँ कि वे चाहते हैं। कि तुम भक्ति के सिद्धान्त तथा शास्त्रनिर्णित विधि-विधान पर ग्रन्थ लिखो।

आमार एइ देह प्रभुर कार्ये ना लागिल ।

भारत-भूमिते जन्मि' एइ देह व्यर्थ हैल ॥98॥

आमार-मेरा; एइ–यह; देह-शरीर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कार्ये-सेवा में; ना लागिल—प्रयुक्त नहीं हो सका; भारत-भूमिते–भारत भूमि में; जन्मि-जन्म लेकर; एइ देह-यह शरीर; व्यर्थ हैल-व्यर्थ हो गया।

अनुवाद

"मेरा शरीर श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में काम न आ सका। इसलिए भारत-भूमि में जन्म लेकर भी यह शरीर व्यर्थ रहा।"

तात्पर्य

भारत-भूमि की महत्ता की अधिक व्याख्या के लिए देखें आदिलीला 9.41 तथा श्रीमद्भागवत 5.19.19-27। भारत में जन्म लेने का विशेष गुण यह है कि भारत में जन्मा व्यक्ति स्वयमेव भगवद् भावनामय बन जाता है। भारत के

प्रत्येक भाग में, विशेषतया तीर्थस्थानों में एक सामान्य अशिक्षित व्यक्ति भी कृष्णभावना की ओर उन्मुख रहता है और ज्योंही वह किसी कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को देखता है, उसे नमस्कार करता है। भारत में गंगा, यमुना, नर्मदा, कावेरी तथा कृष्णा जैसी अनेक पवित्र नदियाँ हैं और इन नदियों में स्नान करने मात्र से ही लोग मुक्त हो जाते हैं एवं कृष्णभावनाभावित हो जाते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं :

भारतभूमिते हैल मनुष्यजन्म यार ।

जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार ।।

जिसने भारत-भूमि में जन्म लिया है, उसे अपने जन्म का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। उसे वेदों के ज्ञान तथा आध्यात्मिक संस्कृति में पूर्णतया निपुण बनना चाहिए और कृष्णभावनामृत के अनुभव को सारे जगत् में वितरित करना चाहिए। सारे विश्व में लोग बुरी तरह से इन्द्रियतृप्ति में लगे हुए हैं और इस तरह वे अपने मनुष्य-जीवन को नष्ट कर रहे हैं। इस कारण अगले जन्म में उनके पशु या इससे भी बदतर बनने की सम्भावना है। मानव समाज को ऐसी भयावह सभ्यता तथा पशु बनने की विपदपूर्ण स्थिति से बचाने के लिए भगवत् चेतना या कृष्णभावना को जागृत करना होगा। कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी उद्देश्य के लिए चलाया गया है। इसलिए निष्पक्ष लोगों को कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सिद्धान्तों का अध्ययन करना चाहिए और मानव समाज को बचाने के लिए इस आन्दोलन का पूरा साथ देना चाहिए।

सनातन कहे,–"तोमा-सम केबा आछे आन ।

महाप्रभुर गणे तुमि-महा-भाग्यवान्!" ॥ 99॥

सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने कहा; तोमा-सम-आपके समान; केबा-कौन; आछे-है; आन–दूसरा; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; गणे–अन्तरंग अनुयायियों में; तुमि-आप; महा-भाग्यवान्–सबसे भाग्यवान।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, "हे हरिदास ठाकुर, आपके समान कौन है? आप श्री चैतन्य महाप्रभु के संगियों में से एक हैं। अतएव आप सर्वाधिक भाग्यवान हो।"

अवतार-कार्य प्रभुर—नाम-प्रचारे ।

सेइ निज-कार्य प्रभु करेन तोमार द्वारे ॥100 ॥

अवतार-कार्य-अवतार का उद्देश्य प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम-प्रचारे- भगवान् के पवित्र नाम के महत्त्व का प्रचार करना; सेइ-उस; निज-कार्य-अपने जीवन के उद्देश्य को प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन-कर रहे हैं; तोमार द्वारे-आपके द्वारा।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु जिस उद्देश्य के लिए अवतार के रूप में आये हैं, वह भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन की महत्ता का विस्तार करना है। अब वे इसे स्वयं करने के बदले आपके माध्यम से इसका विस्तार कर रहे हैं।"

प्रत्यह कर तिन-लक्ष नाम-सङ्कीर्तन ।

सबार आगे कर नामेर महिमा कथन ॥ 101॥

प्रति-अह-प्रतिदिन; कर-आप करते हो; तिन-लक्ष–3,00,000; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का जप; सबार आगे-सबके सामने; कर-आप करते हो; नामेर-पवित्र नाम की; महिमा कथन-महिमा के विषय में चर्चा।

अनुवाद

"हे महोदय, आप तो नित्य ही तीन लाख बार नाम का कीर्तन करते हो और हर एक को ऐसे कीर्तन की महत्ता के विषय में बतलाते हो।"

आपने आचरे केह, ना करे प्रचार ।

प्रचार करेन केह, ना करेन आचार ॥102॥

आपने-निजि रूप से; आचरे–आचरण; केह-कोई; ना करे प्रचार-प्रचार कार्य नहीं करता; प्रचार करेन-प्रचार करता है; केह-कोई; ना करेन आचार-नियमों के अनुसार दृढ़ आचरण नहीं करता।

अनुवाद

“कुछ लोग बहुत अच्छा आचरण करते हैं, किन्तु कृष्णभावनामृत सम्प्रदाय का प्रचार नहीं करते, जबकि अन्य लोग प्रचार करते हैं, किन्तु उचित रीति से आचरण नहीं करते।”

‘आचार’, ‘प्रचार’,—नामेर करह ‘दुइ’ कार्य ।

तुमि–सर्व-गुरु, तुमि जगतेर आर्य ॥ 103 ॥

आचार प्रचार-अच्छा आचरण करना और प्रचार करना; नामेर-पवित्र नाम का; करह-आप करते हो; दुइ-दोनों; कार्य-कार्य; तुमि-आप; सर्व-गुरु-सबके आध्यात्मिक गुरु; तुमि-आप; जगतेर आर्य-इस संसार में सबसे श्रेष्ठ भक्त।

अनुवाद

“आप अपने निजी आचरण तथा अपने प्रचार द्वारा पवित्र नाम से सम्बन्धित दोनों कार्यों को एक ही साथ करते हो। इसलिए आप सारे जगत् के गुरु हो, क्योंकि आप जगत् में सबसे उन्नत भक्त हो।”

तात्पर्य

यहाँ पर सनातन गोस्वामी प्रामाणिक जगद्गुरु की स्पष्ट परिभाषा देते हैं।इस सम्बन्ध में जो योग्यताएँ बताई गई हैं, वे हैं : व्यक्ति शास्त्रीय आदेशों के अनुसार कार्य करे और उसी के साथ-साथ प्रचार करे। जो ऐसा करता है, वही प्रामाणिक गुरु है। हरिदास ठाकुर आदर्श गुरु थे, क्योंकि वे नियत संख्या में नित्य नाम-जप करते थे। निस्सन्देह, वे प्रतिदिन तीन लाख नाम-जप करते थे। इसी तरह कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अनुयायी प्रतिदिन कम-से-कम सोलह माला जप करते हैं, जिसे बिना कठिनाई के किया जा सकता है। उसी के साथ-साथ उन्हें भगवद्गीता यथारूप के उपदेश के अनुसार चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह जगद्गुरु बनने के लिए उपयुक्त है।

एइ-मत दुइ-जन नाना-कथा-रङ्गे ।

कृष्ण-कथा आस्वादय रहि’ एक-सङ्गे ॥104॥

एइ-मत-इस प्रकार; दुइ-जन-दोनों व्यक्ति; नाना-कथा-रङ्गे–अनेक विषयों की चर्चा के आनन्द में; कृष्ण-कथा-कृष्ण विषयक वार्ताओं का; आस्वादय-आस्वादन करते;रहि’ एक-सङ्गे–एक साथ रहते हुए।

अनुवाद

इस तरह वे दोनों कृष्ण विषयक कथाओं की चर्चा करते हुए अपना समय बिताते थे। अतः दोनों ने एकसाथ जीवन का आनन्द लिया।

यात्रा-काले आइला सब गौड़ेर भक्त-गण ।

पूर्ववत् कैला सबे रथ-यात्रा दरशन ॥ 105॥

यात्रा-काले–रथयात्रा के समय; आइला-आये; सब-सभी; गौड़ेर भक्त-गण- बंगाल के भक्त; पूर्ववत्-पहले की तरह; कैला-किया; सबे-सभी ने; रथ-यात्रा दरशन-भगवान जगन्नाथ के रथयात्रा उत्सव का दर्शन।

अनुवाद

रथयात्रा के समय बंगाल के सारे भक्त रथ-उत्सव के दर्शन हेतु आये, जैसाकि वे पहले आये थे।

रथ-अग्रे प्रभु तैछे करिला नर्तन ।

देखि चमत्कार हैल सनातनेर मन ॥106 ॥

रथ-अग्रे-रथ के सामने; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तैछे-उसी प्रकार; करिला नर्तन-नृत्य किया; देखि-देखकर; चमत्कार हैल–चकित हो गया; सनातनेर मन- सनातन का मन।

अनुवाद

रथयात्रा उत्सव के समय श्री चैतन्य महाप्रभु पुनः जगन्नाथजी के रथ के आगे-आगे नाचे। जब सनातन गोस्वामी ने यह देखा, तो उनका मन चकित हो गया।

वर्षार चारि-मास रहिला सब निज भक्त-गणे ।

सबा-सङ्गे प्रभु मिलाइला सनातने ॥107॥

वर्षार चारि-मास-वर्षा के चार महीने; रहिला-रहे; सब–सभी; निज भक्त-गणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त; सबा-सङ्गे–उन सबसे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; मिलाइला–परिचित करवाया; सनातने–सनातन गोस्वामी को।

अनुवाद

बंगाल से आये महाप्रभु के भक्त वर्षा ऋतु के चार महीने जगन्नाथ पुरी में रहे और श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबसे सनातन गोस्वामी का परिचय कराया।

अद्वैत, नित्यानन्द, श्रीवास, वक्रेश्वर ।

वासुदेव, मुरारि, राघव, दामोदर ॥ 108॥

पुरी, भारती, स्वरूप, पण्डित-गदाधर ।

सार्वभौम, रामानन्द, जगदानन्द, शङ्कर ॥ 109॥

काशीश्वर, गोविन्दादि व्रत भक्त-गण ।

सबा-सने सनातनेर कराइला मिलन ॥ 110॥

अद्वैत-अद्वैत आचार्य; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; श्रीवास–श्रीवास ठाकुर, वक्रेश्वर–वक्रेश्वर पण्डित; वासुदेव-वासुदेव दत्त; मुरारि—मुरारी गुप्त; राघव-राघव पण्डित; दामोदर-दामोदर पण्डित; पुरी-परमानन्द पुरी; भारती–ब्रह्मानन्द भारती; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; पण्डित-गदाधर-गदाधर पण्डित; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; रामानन्द-रामानन्द राय; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; शङ्कर-शंकर पण्डित; काशीश्वर–काशीश्वर; गोविन्द-गोविन्द; आदि-और अन्य; ग्रत भक्त-गण-सभी भक्तगण; सबा-सने–उन सबसे; सनातनेर-सनातन गोस्वामी का; कराइला मिलन-परिचय करवाया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द प्रभु, श्रीवास ठाकुर, वक्रेश्वर पण्डित, वासुदेव दत्त, मुरारि गुप्त, राघव पण्डित, दामोदर पण्डित, परमानन्द पुरी, ब्रह्मानन्द भारती, स्वरूप दामोदर, गदाधर पण्डित,

सार्वभौम भट्टाचार्य, रामानन्द राय, जगदानन्द पण्डित, शंकर पण्डित, काशीश्वर तथा गोविन्द तथा अन्य चुने हुए भक्तों से सनातन गोस्वामी का परिचय कराया।

यथा-योग्य कराइल सबार चरण वन्दन ।

तौंरे कराइला सबार कृपार भाजन ॥111॥

यथा-स्रोग्य-यथायोग्य रूप से; कराइल-करवाया; सबार-सभी के; चरण वन्दन–चरणकमलों की वन्दना; तौंरे-उसे; कराइला-बनाया; सबार-उन सभी की; कृपार भाजन-कृपा का पात्र।

अनुवाद

महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से समस्त भक्तों को उपयुक्त ढंग से नमस्कार करने को कहा। इस तरह उन्होंने उन सबसे सनातन गोस्वामी का परिचय उनकी कृपा का पात्र बनाने के उद्देश्य से कराया।

सद्गुणे, पाण्डित्ये, सबार प्रिय—सनातन ।

ग्रथा-योग्य कृपा-मैत्री-गौरव-भाजन ॥ 112॥

सत्-गुणे-अच्छे गुणों में; पाण्डित्ये-विद्वत्ता में; सबार प्रिय-सब को प्रिय; सनातन-सनातन गोस्वामी; ग्रथा-योग्य-यथोचित रूप से; कृपा-कृपा; मैत्री-मित्रता; गौरव-मान; भाजन-अर्पित करने योग्य।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी अपने पाण्डित्य तथा उत्तम गुणों के कारण हर एक को प्रिय थे। इसलिए उन लोगों ने उन्हें योग्यता के अनुसार कृपा, मित्रता तथा सम्मान प्रदान किया।

सकल वैष्णव ग्नबे गौड़-देशे गेला ।

सनातन महाप्रभुर चरणे रहिला ॥ 113 ॥

सकल-सभी; वैष्णव-भक्तगण; यबे-जब; गौड़-देशे-बंगाल को; गेला-वापस लौटे; सनातन-सनातन गोस्वामी; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे रहिला-चरणकमलों में रहे।

अनुवाद

जब रथयात्रा उत्सव के बाद अन्य सारे भक्त बंगाल लौट गये, तो सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के संरक्षण में रहते रहे।

दोल-यात्रा-आदि प्रभुर सङ्गेते देखिल।

दिने-दिने प्रभु-सङ्गे आनन्द बाड़िल ॥114॥

दोल-यात्रा-दोल यात्रा का उत्सव; आदि-और अन्य; प्रभुर सङ्गेते-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; देखिल-उन्होंने देखा; दिने-दिने–दिनोंदिन; प्रभु-सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; आनन्द बाड़िल-उनका आनन्द बढ़ गया।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ दोल यात्रा उत्सव देखा। इस तरह महाप्रभु की संगति में उनका आनन्द बढ़ता गया।

पूर्वे वैशाख-मासे सनातन यबे आइला।

ज्यैष्ठ-मासे प्रभु ताँरे परीक्षा करिला ॥115॥

पूर्वे-पहले; वैशाख-मासे-अप्रैल-मई मास के दौरान; सनातन-सनातन गोस्वामी; यबे-जब; आइला–आये; ज्यैष्ठ-मासे-मई-जून के मास में; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे–उनकी; परीक्षा करिला-परीक्षा ली।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु को मिलने जगन्नाथ पुरी में अप्रैल-मई के महीने में आये थे और श्री चैतन्य महाप्रभु ने मई-जून के महीने में उनकी परीक्षा ली थी।

ज्यैष्ठ-मासे प्रभु ग्रमेश्वर-टोटा आइला।

भक्त-अनुरोधे ताहाँ भिक्षा ये करिला ॥116॥

ज्यैष्ठ-मासे-मई-जून मास के दौरान; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ग्रमेश्वर-टोटा-शिवजी के बगीचे यमेश्वर में; आइला-आये; भक्त-अनुरोधे-भक्तों के अनुरोध पर; ताहाँ-वहाँ; भिक्षा ये करिला–प्रसाद ग्रहण किया।

अनुवाद

मई-जून माह में श्री चैतन्य महाप्रभु यमेश्वर (शिवजी) के उद्यान में आये और वहाँ पर भक्तों के अनुरोध पर प्रसाद ग्रहण किया।

मध्याह्न-भिक्षा-काले सनातने बोलाइल ।

प्रभु बोलाइला, ताँर आनन्द बाड़िल ॥117॥

मध्य-अह्न दोपहर को; भिक्षा-काले–भोजन के समय; सनातने–सनातन गोस्वामी को; बोलाइल-उन्होंने बुलवाया; प्रभु बोलाइला–भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने बुलाया है; ताँर–उनकी; आनन्द-खुशी; बाड़िल-बढ़ गई।

अनुवाद

दोपहर में जब भोजन का समय हुआ, तो महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बुलाया, जिनका सुख इस बुलावे के कारण बढ़ गया।

मध्याह्ने समुद्र-बालु हाछे अग्नि-सम ।

सेइ-पथे सनातन करिला गमन ॥ 118॥

मध्य-अह्न–दोपहर को; समुद्र-बालु–समुद्र किनारे की रेत; हाछे-हो गई थी;अग्नि-सम-आग के समान गर्म; सेइ-पथे-उसी मार्ग से; सनातन-सनातन गोस्वामी;करिला गमन-आये।

अनुवाद

दोपहर के समय समुद्र-तट की बालू आग के समान झुलस रही थी, किन्तु सनातन गोस्वामी उसी रास्ते से आये।

‘प्रभु बोलाञाछे’,—एइ आनन्दित मने ।

तप्त-बालुकाते पा पोड़े, ताहा नाहि जाने ॥ 119॥

प्रभु बोलाञाछे–महाप्रभु ने बुलाया है; एइ–इस; आनन्दित–प्रसन्नता से; मने-मन में; तप्त-बालुकाते-गर्म रेत पर; पा-पैर; पोड़े-जल रहे थे; ताहा-वह; नाहि जाने-जान नहीं पाये।

अनुवाद

महाप्रभु द्वारा बुलाए जाने के हर्ष से अभिभूत सनातन गोस्वामी को यह अनुभव नहीं हुआ कि उनके पाँव गरम बालू से जले जा रहे हैं।

दुइ पाये फोस्का हैल, तबु गेला प्रभु-स्थाने ।

भिक्षा करि' महाप्रभु करियाछेन विश्रामे ॥120॥

दुइ पाये-दोनों पाँवों पर; फोस्का हैल–छाले पड़ गये; तबु-फिर भी; गेला-आये; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; भिक्षा करि'–भोजन समाप्त करके; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करियाछेन विश्रामे–विश्राम कर रहे थे।

अनुवाद

यद्यपि गर्मी के कारण उनके दोनों पाँवों के तलुवों में फफोले पड़ गये थे, तो भी वे श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गये। वहाँ उन्होंने महाप्रभु को भोजन के बाद विश्राम करते पाया।

भिक्षा-अवशेष-पात्र गोविन्द तारे दिला ।

प्रसाद पाञा सनातन प्रभु-पाशे आइला ॥ 121॥

भिक्षा-अवशेष-भोजन के अवशिष्ट की; पात्र-थाली; गोविन्द-गोविन्द ने; तारे दिला-उन्हें दे दी; प्रसाद पाञा–भोजन का उच्छिष्ट ग्रहण करके; सनातन-सनातन गोस्वामी; प्रभु-पाशे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के पास; आइला–आये।

अनुवाद

गोविन्द ने सनातन गोस्वामी को महाप्रभु के भोजन का अवशेष-पात्र प्रदान किया। प्रसाद पाने के बाद सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गये।

प्रभु कहे,–"कोन्पथे आइला, सनातन?"।

तेंह कहे,—"समुद्र-पथे, करिलॅ आगमन" ॥122॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने पूछा; कोन् पथे-किस मार्ग से; आइला सनातन-तुम आये हो, सनातन; तेंह कहे-उन्होंने उत्तर दिया; समुद्र-पथे—समुद्र किनारे के मार्ग से; करिलँ आगमन-मैं आया हूँ।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने पूछा, "तुम किस मार्ग से होकर आये हो?" तो सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, "मैं समुद्र-तट के मार्ग से आया हूँ।"

प्रभु कहे,–"तप्त-बालुकाते केमने आइला?"।

सिंह-द्वारेर पथ—शीतल, केने ना आइला? ॥123॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तप्त-वालुकाते-गर्म रेत में; केमने आइला-तुम कैसे आये; सिंह-द्वारेर पथ–सिंह द्वार का मार्ग; शीतल-बहुत शीतल है; केने-क्यों; ना आइला-तुम नहीं आये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "तुम समुद्र किनारे से होकर कैसे आये, जहाँ की बालू इतनी गरम है? तुम सिंह-द्वार के सामने के मार्ग से क्यों नहीं आये? वह अत्यन्त शीतल है।"

तात्पर्य

सिंह-द्वार जगन्नाथ मन्दिर के पूर्व की ओर के मुख्य द्वार का सूचक है।

"तप्त-बालुकाय तोमार पाय हैल व्रण।

चलिते ना पार, केमने करिला सहन?" ॥124॥

तप्त-बालुकाय-गर्म रेत से; तोमार-तुम्हारे; पाय-पावों में; हैल-हो गये; व्रण-छाले; चलिते ना पार-तुम चल नहीं सकते; केमने-कैसे; करिला सहन-तुमने सहन किया।

अनुवाद

"गरम बालू ने तुम्हारे तलवों में फफोले उत्पन्न कर दिये होंगे। अब तुम चल नहीं सकते। तुमने इसे कैसे सहन किया?"

सनातन कहे, "दुख बहुत ना पाइलुँ।

पाये व्रण हाञाछे ताहा ना जानिलुँ" ॥125॥

सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया; दुख–कष्ट; बहुत-अधिक; ना पाइलुँ–मुझे अनुभव नहीं हुआ; पाये-पाँवों में; व्रण हाञाछे–छाले हो गये; ताहा-वह; ना जानिलुँ-मुझे पता नहीं चला।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, "मुझे न तो अधिक पीड़ा का अनुभव। हुआ, न ही मैं यह जान पाया कि तपिश के कारण फफोले पड़े हैं।"

सिंह-द्वारे याइते मोर नाहि अधिकार।

विशेषे–ठाकुरेर ताहाँ सेवकेर प्रचार ॥126॥

सिंह-द्वारे–सिंहद्वार नामक अग्र द्वार के सामने; याइते-जाने का; मोर-मेरा; नाहि अधिकार-अधिकार नहीं है; विशेषे-विशेष रूप से; ठाकुरेर-भगवान जगन्नाथ के; ताहाँ-वहाँ; सेवकेर प्रचार–सेवकों की भीड़।

अनुवाद

सिंह-द्वार के निकट से जाने का मुझे अधिकार नहीं है, क्योंकि वहाँ जगन्नाथजी के सेवक सदा आते-जाते रहते हैं।

“सेवक गतागति करे, नाहि अवसर ।

तार स्पर्श हैले, सर्व-नाश हबे मोर” ॥127॥

सेवक-सेवक; गतागति करे-आते-जाते हैं; नाहि अवसर-कोई खाली स्थान नहींहोता; तार स्पर्श हैले–यदि मैं उन्हें स्पर्श कर लूँगा; सर्व-नाश हबे मोर-मैं नष्ट हो जाऊँगा।

अनुवाद

“वहाँ सेवक निरन्तर आते-जाते रहते हैं। यदि मैं उन्हें छू लेता, तो मेरा सर्वनाश हो जाता।”

तात्पर्य

यहाँ यह स्पष्ट सूचित हुआ है कि जो पुरोहित अर्चाविग्रह की पूजा करते हों, उन्हें अपने आपको पूर्णतः शुद्ध रखना चाहिए और बाहरी व्यक्तियों द्वारा छुए जाने से बचना चाहिए। सनातन गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर मुसलमानों से अपनी विगत संगति के कारण अपने आपको म्लेच्छ तथा यवन मानकर न तो मन्दिर में प्रवेश करते थे, न ही मन्दिर के द्वार के सामने के मार्ग पर चलते-फिरते थे। भारत में मन्दिर के पुजारियों में यह प्रथा है कि वे न तो बाहरी लोगों को छूते हैं, न ही किसी से छू जाने पर अर्चाविग्रह कक्ष में प्रवेश करते हैं। मन्दिर-पूजा में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है।

शुनि’ महाप्रभु मने सन्तोष पाइला ।

तुष्ट हुआ ताँरे किछु कहिते लागिला ॥128॥

शुनि’–सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मने-मन में; सन्तोष पाइला–बहुतप्रसन्न हो गये; तुष्ट हा-आनन्दित होकर; ताँरे–उनसे; किछु-कुछ; कहिते लागिला-कहना प्रारम्भ किया।

अनुवाद

इन सब बातों को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए और इस तरह बोले।

“यद्यपिओ तुमि हओ जगत्पावन ।

तोमा-स्पर्शे पवित्र हय देव-मुनि-गण ॥ 129॥

तथापि भक्त-स्वभाव–मर्यादा-रक्षण ।

मर्यादा-पालन हय साधुर भूषण ॥130॥

यद्यपिओ-यद्यपि; तुमि-तुम; हओ-हो; जगत्-पावन-समस्त ब्रह्माण्ड का उद्धार करने वाले; तोमा-तुम्हारे; स्पर्शे-स्पर्श द्वारा; पवित्र-शुद्ध; हय-होते हैं; देव-मुनि-गण-देवता और महान् सन्त गण; तथापि-फिर भी; भक्त-स्वभाव-एक भक्त का स्वभाव;मर्यादा-मर्यादा; रक्षण-पालन या रक्षा करना; मर्यादा पालन-मर्यादा पालन करना; हय-है; साधुर भूषण-भक्त का अलंकार।

अनुवाद

"हे प्रिय सनातन, यद्यपि तुम सारे ब्रह्माण्ड के उद्धारक हो, और देवता तथा बड़े-बड़े सन्त तक तुम्हारे स्पर्श से शुद्ध बन जाते हैं, किन्तु वैष्णव-शिष्टाचार का पालन और रक्षण करना भक्त का गुण है। वैष्णव-शिष्टाचार को बनाये रखना भक्त का आभूषण है।"

मर्यादा-लङ्घने लोक करे उपहास ।

इह-लोक, पर-लोक दुइ हय नाश ॥131॥

मर्यादा-लङ्घने-मर्यादा के रिवाजों का उल्लंघन करने से; लोक-लोग; करे उपहास-उपहास करते हैं; इह-लोक-यह लोक; पर-लोक-अगला लोक; दुइ-दोनों; हय नाश-नष्ट हो जाते हैं।

अनुवाद

यदि कोई व्यक्ति शिष्टाचार के नियमों का उल्लंघन करता है, तो लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं और इस तरह वह इह लोक तथा परलोक दोनों में विनष्ट हो जाता है।

"मर्यादा राखिले, तुष्ट कैले मोर मन ।

तुमि ऐछे ना करिले करे को जन?" ॥ 132॥

मर्यादा राखिले–क्योंकि तुमने मर्यादा का पालन किया है; तुष्ट कैले–तुमने सन्तुष्टकिया है; मोर मन–मेरा मन; तुमि-तुम; ऐछे-वैसा; ना करिले–नहीं करो; करे–करेगा;को जन-कौन।

अनुवाद

"तुमने शिष्टाचार का पालन करके मेरे मन को तुष्ट किया है। तुम्हारे अतिरिक्त इस उदाहरण को कौन दिखलाएगा?"

एत बलि' प्रभु ताँरे आलिङ्गन कैल ।

ताँर कण्डु-रसा प्रभुर श्री-अङ्गे लागिल ॥ 133॥

एत बलि'-यह कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे–उन्हें; आलिङ्गन कैल-आलिंगन किया; ताँर-उनके; कण्डु-रसा–छालों से निकलती पस; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; श्री-अङ्गेलागिल-शरीर पर लग गई।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी का आलिंगन किया। सनातन के शरीर के खुजली के घावों से रिसने वाली पस महाप्रभु के शरीर में लग गई।

बार बार निषेधेन, तबु करे आलिङ्गन ।

अङ्गे रसा लागे, दुःख पाय सनातन ॥134॥

बार बार-बारम्बार; निषेधेन–मना करते; तबु-फिर भी; करे आलिङ्गन-वे आलिंगन करते; अङ्गे–शरीर पर; रसा लागे-पस लगती; दुःख–अप्रसन्नता; पाय-पाते; सनातन-सनातन गोस्वामी।

अनुवाद

यद्यपि सनातन गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को आलिंगन करने से बार-बार मना किया, किन्तु महाप्रभु ने फिर भी वही किया। अतः उनके शरीर पर सनातन के शरीर से निकली पस का लेप हो गया। इससे सनातन गोस्वामी अत्यधिक दुःखी हुए।

एइ-मते सेवक-प्रभु दुँहे घर गेला ।

आर दिन जगदानन्द सनातनेरे मिलिला ॥ 135॥

एइ-मते-इस प्रकार; सेवक-प्रभु-सेवक तथा स्वामी; दुँहे-वे दोनों; घर गेला-अपने-अपने स्थान पर चले गये; आर दिन-अगले दिन; जगदानन्द-जगदानन्द; सनातनेरे मिलिला–सनातन गोस्वामी से मिले।

अनुवाद

इस तरह सेवक तथा स्वामी अपने-अपने घर चले गये। अगले दिन जगदानन्द पण्डित सनातन गोस्वामी से मिलने गये।

दुइ-जन वसि' कृष्ण-कथा-गोष्ठी कैला।

पण्डितेरे सनातन दुःख निवेदिला ॥136॥

दुइ-जन वसि'–दोनों बैठकर; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण की कथाओं; गोष्ठी-चर्चा; कैला-करने लगे; पण्डितेरे-जगदानन्द पण्डित के समक्ष; सनातन-सनातन गोस्वामी; दुःख निवेदिला-अपना दुःख व्यक्त किया।

अनुवाद

जब जगदानन्द पण्डित तथा सनातन गोस्वामी एकसाथ बैठ गये और कृष्ण विषयक कथाएँ चलाने लगे, तो सनातन गोस्वामी ने जगदानन्द पण्डित से अपना दुःख कह सुनाया।

"इहाँ आइलाँ प्रभुरे देखि' दुःख खण्डाइते ।

येबा मने, ताहा प्रभु ना दिला करिते" ॥137॥

इहाँ–यहाँ (जगन्नाथ पुरी); आइलाँ-मैं आया हूँ; प्रभुरे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभुको; देखि'–देखकर; दुःख खण्डाइते-अपना दुःख दूर करने; येबा मने-जो मेरे मन में था; ताहा-वह; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ना दिला करिते-मुझे करने की अनुमति नहीं दी।

अनुवाद

यहाँ मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करके अपना दुःख कम करने आया था, किन्तु महाप्रभु ने मुझे वह नहीं करने दिया जो मेरे मन में था।

निषेधिते प्रभु आलिङ्गन करेन मोरे ।

मोर कण्डु-रसा लागे प्रभुर शरीरे ॥138॥

निषेधिते-यद्यपि मैंने मना किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु को; आलिङ्गन-आलिंगन; करेन-करते हैं; मोरे-मुझे; मोर कण्डु-रसा-मेरे छालों की पस; लागे-लग जाती है; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; शरीरे-शरीर पर।

अनुवाद

यद्यपि मैं उन्हें ऐसा करने से मना करता हूँ, तो भी श्री चैतन्य महाप्रभु मेरा आलिंगन करते हैं, जिससे उनके शरीर पर मेरी खुजली के घावों से निकली पस का लेप हो जाता है।

अपराध हय मोर, नाहिक निस्तार ।

जगन्नाथेह ना देखिये,—ए दुःख अपार ॥139॥

अपराध-अपराध; हय-है; मोर-मेरा; नाहिक निस्तार-कोई उपाय नहीं है; जगन्नाथेह-भगवान जगन्नाथ भी; ना देखिये-मैं नहीं देख सकता; ए-यह; दुःख अपार-महान् दुःख।

अनुवाद

"इस तरह मैं उनके चरणकमलों पर अपराध कर रहा हूँ, जिसके कारण निश्चय ही मेरा उद्धार नहीं होगा। साथ ही, मैं भगवान जगन्नाथ के दर्शन भी नहीं कर सकता। यही मेरा महान् दुःख है।"

हित-निमित्त आइलाङ आमि, हैल विपरीते ।

कि करिले हित हय नारि निर्धारिते" ॥140॥

हित-निमित्त-हित की आकांक्षा से; आइलाङ–आया था; आमि-मैं; हैल विपरीते-बिल्कुल विपरीत हो गया; कि करिले-कैसे; हित हय-हित होगा; नारि निर्धारिते-मैं निर्धारण नहीं कर सकता।

अनुवाद

"मैं तो यहाँ अपने लाभ के लिए आया था, किन्तु मैं अब देखता हूँ। कि मुझे ठीक उसका विपरीत मिल रहा है। मैं नहीं जानता, न ही मैं निश्चित कर सकता हूँ कि मुझे किस तरह लाभ होगा।"

पण्डित कहे,–"तोमार वास-योग्य वृन्दावन" ।

रथ-यात्रा देखि ताहाँ करह गमन ॥141॥

पण्डित कहे–जगदानन्द पण्डित कहते हैं; तोमार-तुम्हारे; वास-योग्य-रहने के लिए योग्य निवासस्थान; वृन्दावन-वृन्दावन; रथ-यात्रा देखि'–रथयात्रा उत्सव देखकर; ताहाँ-वहाँ; करह गमन-जाओ।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित ने कहा, "तुम्हारे रहने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थान वृन्दावन है। तुम रथयात्रा उत्सव का दर्शन करने के बाद वहाँ लौट सकते हो।"

प्रभुर आज्ञा हाछे तोमा' दुइ भाये ।

वृन्दावने वैस, ताहाँ सर्व-सुख पाइये ॥ 142॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आज्ञा-आदेश; हाछे-हो गया है; तोमा'-तुम; दुइभाये-दोनों भाइयों को; वृन्दावने वैस-वृन्दावन में रहो; ताहाँ-वहाँ; सर्व-सुख-सर्व सुख; पाइये तुम्हें प्राप्त होगा।

अनुवाद

"महाप्रभु ने पहले ही तुम दोनों भाइयों को आदेश दे दिया है कि वृन्दावन में जाकर रहो। वहाँ तुम्हें सारा सुख मिलेगा।"

ये-कार्ये आइला, प्रभुर देखिला चरण ।

रथे जगन्नाथ देखि' करह गमन ॥143॥

ये-का-जिस कार्य के लिए; आइला-तुम आये थे; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; देखिला-तुमने देख लिए; चरण-चरण; रथे-रथ पर; जगन्नाथ–भगवान जगन्नाथ को; देखि'–देखकर; करह गमन–चले जाओ।

अनुवाद

"यहाँ आने का तुम्हारा उद्देश्य पूरा हो चुका है, क्योंकि तुम महाप्रभु के चरणकमलों का दर्शन कर चुके हो। इसलिए रथयात्रा में रथ पर जगन्नाथजी के दर्शन करने के बाद तुम जा सकते हो।"

सनातन कहे,–"भाल कैला उपदेश"।

ताहाँ याब, सेइ मोर "प्रभु-दत्त देश" ॥144॥

सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया; भाल कैला उपदेश-आपने अच्छी सलाह दी है; ताहाँ ग्राब-मैं वहाँ जाऊँगा; सेइ-वह; मोर-मुझे; प्रभु-दत्त-महाप्रभु द्वारा दिया हुआ; देश-निवासस्थान है।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, "आपने मुझे बहुत अच्छा परामर्श दिया है। मैं वहाँ अवश्य जाऊँगा, क्योंकि उसी स्थान को महाप्रभु ने मेरे रहने के लिए दिया है।"

तात्पर्य

प्रभु-दत्त देश पद अत्यन्त सार्थक है। श्री चैतन्य महाप्रभु का भक्ति सम्प्रदाय मनुष्य को एक स्थान पर बैठे रहने की नहीं, अपितु सारे जगत् में इसका विस्तार करने की शिक्षा देता है। महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी को वृन्दावन में तीर्थस्थानों का जीर्णोद्धार तथा मरम्मत करने के लिए और वहीं से भक्ति सम्प्रदाय की स्थापना करने के लिए भेजा। इसलिए सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी को उनके निवासस्थान के रूप में वृन्दावन दिया गया था। इसी तरह से श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्ति सम्प्रदाय की परम्परा के हर व्यक्ति को अपने गुरु के वचनों को शिरोधार्य करके कृष्णभावनामृत आन्दोलन का विस्तार करना चाहिए। उन्हें विश्व के सारे भागों में, उन स्थानों को प्रभु-दत्त देश अर्थात् गुरु या कृष्ण द्वारा दिया गया निवासस्थान समझकर जाना चाहिए। गुरु तो भगवान् कृष्ण के प्रतिनिधि होते हैं, इसलिए जो अपने गुरु के आदेशों का पालन करता है, वह कृष्ण या चैतन्य महाप्रभु के आदेशों का पालन करता माना जाता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु भक्ति सम्प्रदाय को सारे विश्व में फैलाना चाहते थे (पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम)। इसलिए कृष्णभावनामृत की परम्परा के लोगों को विश्व के विभिन्न भागों में जाकर गुरु के आदेशानुसार प्रचार करना चाहिए। इससे श्री चैतन्य महाप्रभु तुष्ट होंगे।

एत बलि' दुँहे निज-कार्ये उठि' गेला ।

आर दिन महाप्रभु मिलिबारे आइला ॥145 ॥

एत बलि'-ऐसी वार्ता करते हुए; दुँह-जगदानन्द पण्डित और सनातन गोस्वामी दोनों;निज-कार्ये-अपने-अपने कार्यों में; उठि'–उठकर; गेला–चले गये; आर दिन–अगले दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मिलिबारे आइला–मिलने आये।

अनुवाद

इस तरह बातें करके सनातन गोस्वामी तथा जगदानन्द पण्डित अपने अपने कार्यों पर लौट गये। अगले दिन श्री चैतन्य महाप्रभु हरिदास तथा सनातन गोस्वामी से मिलने गये।

हरिदास कैला प्रभुर चरण वन्दन ।

हरिदासे कैला प्रभु प्रेम-आलिङ्गन ॥146॥

हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; कैला–किया; प्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के;चरण वन्दन–चरणकमलों की वन्दना; हरिदासे–हरिदास ठाकुर को; कैला-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; प्रेम-आलिङ्गन-प्रेमभाव में आलिंगन।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर नमस्कार किया और महाप्रभु ने प्रेमावेश में उनका आलिंगन किया।

दूर हैते दण्ड-परणाम करे सनातन ।

प्रभु बोलाय बार बार करिते आलिङ्गन ॥147॥

दूर हैते-दूर से ही; दण्ड-परणाम-प्रणाम और दण्डवत्; करे–किया; सनातन-सनातन गोस्वामी ने; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; बोलाय–बुलाये; बार बार-बारम्बार; करिते आलिङ्गन-आलिंगन करने के लिए।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने दूर ही से नमस्कार तथा दण्डवत् किया, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनको आलिंगन करने के लिए बारम्बार पास बुलाया।

अपराध-भये तेंह मिलिते ना आइल ।

महाप्रभु मिलिबारे सेइ ठाञि गेल ॥148॥

अपराध-भये-अपराध के भय से; तेंह-सनातन गोस्वामी; मिलिते-मिलने के लिए; ना आइल-आगे नहीं आये; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मिलिबारे-मिलने के लिए; सेइ ठाञि-सनातन गोस्वामी के पास; गेल-गये॥

अनुवाद

अपराध करने के भय से सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने आगे नहीं आये। किन्तु महाप्रभु उनसे मिलने आगे बढ़े।

सनातन भागि' पाछे करेन गमन ।

बलात्कारे धरि, प्रभु कैला आलिङ्गन ॥149॥

सनातन-सनातन गोस्वामी; भागि'–भागकर; पाछे-पीछे; करेन गमन-हो गये; बलात्कारे-जबरदस्ती; धरि-पकड़कर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला आलिङ्गन- आलिंगन किया।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी पीछे हट गये, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें बलपूर्वक पकड़ लिया और उनका आलिंगन कर लिया।

दुइ जन लञा प्रभु वसिला पिण्डाते ।

निर्विण्ण सनातन लागिला कहिते ॥ 150॥

दुइ जन लञा–उन दोनों को लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; वसिला-बैठ गये;पिण्डाते-एक मंच पर; निर्विण्ण-वैराग्य में प्रधान; सनातन-सनातन गोस्वामी; लागिला कहिते-कहने लगे।

अनुवाद

महाप्रभु दोनों को अपने साथ लेकर एक पवित्र स्थान पर बैठ गये। तब वैराग्य में उन्नत सनातन गोस्वामी बोलने लगे।

हित लागि' आइनु मुञि, हैल विपरीत ।

सेवा-योग्य नहि, अपराध करों निति निति ॥ 151॥

हित लागि'-लाभ के लिए; आइनु मुञि मैं आया हूँ; हैल विपरीत–विपरीत हो गया; सेवा-योग्य नहि-मैं सेवा करने योग्य नहीं हूँ; अपराध करों-मैं अपराध करता हूँ; निति निति-दिनों दिन।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "मैं तो यहाँ अपने लाभ के लिए आया था, किन्तु मैं देखता हूँ कि उसका उल्टा हो रहा है। मैं सेवा के लिए अयोग्य हूँ। मैं दिन-प्रतिदिन अपराध ही करता हूँ।

सहजे नीच-जाति मुञि, दुष्ट, 'पापाशय' ।

मोरे तुमि छुडिले मोर अपराध हय ॥152॥

सहजे–स्वभाव से; नीच-जाति-अधम जाति का; मुञि-मैं; दुष्ट-पापी; पाप-आशय-पापकर्मों का आगार; मोरे-मुझे; तुमि छुडिले–यदि आप छूएँगे; मोर-मेरा; अपराध हय–अपराध है।

अनुवाद

मैं स्वभाव से निम्नजन्मा हूँ। मैं पापकर्मों का प्रदूषित जलाशय हूँ। यदि आप मुझे छूते हैं, तो वह मेरे लिए और भी बड़ा अपराध होगा।

ताहाते आमार अङ्गे कण्डु-रसा-रक्त चले ।

तोमार अङ्गे लागे, तबु स्पर्शह तुमि बले ॥153॥

ताहाते-यही नहीं; आमार-मेरे; अङ्गे–शरीर पर; कण्डु-रसा-गीले, छालों का;रक्त–खून; चले–बहता है; तोमार अङ्गे लागे-आपके शरीर को स्पर्श करता है; तबु-फिर भी; स्पर्शह–स्पर्श करते हैं; तुमि-आप; बले-जबरदस्ती।

अनुवाद

"तिस पर मेरे शरीर के खाज के घावों से जो खून बह रहा है, आपके शरीर को लगता है, फिर भी आप मुझे बलपूर्वक छूते हैं।"

बीभत्स स्पर्शिते ना कर घृणा-लेशे ।

एइ अपराधे मोर हबे सर्व-नाशे ॥154॥

बीभत्स–भयानक; स्पर्शिते-स्पर्श करना; ना कर-आप नहीं करते; घृणा-लेशे-घृणा का एक अंश मात्र भी; एइ अपराधे-इस अपराध के कारण; मोर-मेरा; हबे-हो जायेगा; सर्व-नाशे-सब सौभाग्य का नाश।

अनुवाद

हे महोदय, मेरा शरीर भयावह स्थिति में है, फिर भी उसका स्पर्श करने में आपको तनिक भी घृणा नहीं होती। इस अपराध के कारण मेरे लिए प्रत्येक मंगल समाप्त हो जायेगा।

ताते इहाँ रहिले मोर ना हय 'कल्याण' ।

आज्ञा देह'–रथ देखि' याङ वृन्दावन ॥ 155॥

ताते-इस कारण; इहाँ–यहाँ; रहिले–यदि मैं रहूँगा; मोर-मेरा; ना-नहीं; हय-होगा; कल्याण-शुभ; आज्ञा देह"–कृपया आदेश दीजिए; रथ देखि'–रथयात्रा उत्सवदेखकर; ग्राङवृन्दावन–मैं वृन्दावन चला जाऊँ।

अनुवाद

"इसलिए मैं देखता हूँ कि यहाँ रुककर मैं कोई भी मंगल नहीं कर पाऊँगा। कृपया मुझे रथयात्रा उत्सव के बाद वृन्दावन लौट जाने की अनुमति का आदेश दें।"

"जगदानन्द-पण्डिते आमि युक्ति पुछिल।

वृन्दावन याइते तेंह उपदेश दिल" ॥156॥

जगदानन्द-पण्डिते-जगदानन्द पण्डित से; आमि-मैंने; युक्ति–सुझाव; पुछिल-पूछा; वृन्दावन याइते-वृन्दावन जाने का; तेंह-उन्होंने; उपदेश दिल-उपदेश दिया है।

अनुवाद

"मैंने जगदानन्द पण्डित से उनका मत जानने के लिए परामर्श किया है और उन्होंने भी वृन्दावन लौट जाने का परामर्श दिया है।"

एत शुनि' महाप्रभु सरोष-अन्तरे।

जगदानन्दे क्रुद्ध हञा करे तिरस्कारे ॥157॥

एत शुनि'-यह सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; स-रोष-अन्तरे-क्रोध भाव में; जगदानन्दे जगदानन्द पण्डित पर; क्रुद्ध हञा–अत्यन्त क्रोधित होकर; करे तिरस्कारे-डाँटते हैं।

अनुवाद

यह सुनकर क्रुद्ध होकर श्री चैतन्य महाप्रभु जगदानन्द पण्डित की भर्त्सना करने लगे।

कालिकार बटुया जगा ऐछे गर्वी हैल।

तोमा-सबारेह उपदेश करिते लागिल ॥ 158॥

कालिकार–नया; बटुया-लड़का; जगा–जगदानन्द; ऐछे-इतना; गर्वी हैल-घमण्डी हो गया है; तोमा-सबारेह-तुम्हारे जैसे व्यक्ति को; उपदेश करिते-उपदेश देना; लागिल-प्रारम्भ कर दिया।

अनुवाद

जगा (जगदानन्द पण्डित) अभी केवल छोकरा है, किन्तु वह इतना गर्वीला हो गया है कि अपने आपको तुम जैसे व्यक्ति को उपदेश देने के लिए सक्षम मानता है।

व्यवहारे-परमार्थे तुमि—तार गुरु-तुल्य ।

तोमारे उपदेशे, ना जाने आपन-मूल्य ॥159॥

व्यवहारे सामान्य व्यवहार में; परम-अर्थ-आध्यात्मिक विषयों में; तुमि-तुम; तार-उसके; गुरु-तुल्य-आध्यात्मिक गुरु सामन; तोमारे-तुम्हें; उपदेशे-वह उपदेश देता है; ना जाने नहीं जानता; आपन-मूल्य-अपना मूल्य।

अनुवाद

"आध्यात्मिक उन्नति के मामले में तथा सामान्य व्यवहार में भी तुम उसके गुरु तुल्य हो। फिर भी वह अपने मूल्य को न जानते हुए तुम्हें परामर्श देने का दुस्साहस करता है।"

आमार उपदेष्टा तुमि—प्रामाणिक आर्य ।

तोमारेह उपदेशे—बालका करे ऐछे कार्य ॥ 160॥

आमार-मेरे; उपदेष्टा-सलाहकार; तुमि-तुम; प्रामाणिक आर्य-प्रामाणिक व्यक्ति;तोमारेह-तुम्हें ही; उपदेशे-वह सुझाव देता है; बालका-लड़का; करे-करता है; ऐछे-ऐसा; कार्य-कार्य।

अनुवाद

हे प्रिय सनातन, तुम तो मेरे सलाहकार जैसे हो, क्योंकि तुम प्रामाणिक व्यक्ति हो। किन्तु जगा तुमको उपदेश देना चाहता है। यह तो एक शरारती बालक की धृष्टता ही है।"

शुनि' सनातन पाये धरि' प्रभुरे कहिल ।

"जगदानन्देर सौभाग्य आजि से जानिल" ॥161॥

शुनि'–सुनकर; सनातन-सनातन गोस्वामी; पाये धरि'–पाँव पकड़कर; प्रभुरे कहिल-श्री चैतन्य महाप्रभु से कहना प्रारम्भ किया; जगदानन्देर-जगदानन्द पण्डित का; सौभाग्य-सौभाग्य; आजि-अब; से-वह; जानिल-मैं समझ गया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु इस तरह जगदानन्द पण्डित को डाँट रहे थे, तो सनातन गोस्वामी महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़े और बोले, "मैं अब जगदानन्द के सौभाग्य को समझ पाया।"

आपनार 'असौभाग्य' आजि हैल ज्ञान ।

जगते नाहि जगदानन्द-सम भाग्यवान् ॥ 162॥

आपनार-मेरा व्यक्तिगत; असौभाग्य-दुर्भाग्य; आजि-आज; हैल ज्ञान-मैं समझ गया; जगते-इस संसार में; नाहि-नहीं है; जगदानन्द-सम-जगदानन्द पण्डित जैसा; भाग्यवान्-भाग्यशाली व्यक्ति।

अनुवाद

"मैं अपने दुर्भाग्य को भी समझ गया। इस जगत् में जगदानन्द के समान भाग्यशाली कोई नहीं है।

जगदानन्दे पियाओ आत्मीयता-सुधा-रस ।

मोरे पियाओ गौरव-स्तुति-निम्ब-निशिन्दा-रस ॥163॥

जगदानन्दे–जगदानन्द पण्डित को; पियाओ-आप पिलाते हैं; आत्मीयता-सुधा-रस-आत्मीय सम्बन्ध का अमृत; मोरे-मुझे; पियाओ-आप पिलाते हैं; गौरव-स्तुति-सम्मान की स्तुति; निम्ब-निशिन्दा-रस-नींबू और निशिन्दा फल का रस।

अनुवाद

"आप तो जगदानन्द को स्नेहमय सम्बन्धों का अमृत पिला रहे हैं। और मेरी गौरव स्तुति करके आप मुझे नीम तथा निशिन्दा का कटु रस पिला रहे हैं।"

आजिह नहिल मोरे आत्मीयता-ज्ञान! ।

मोर अभाग्य, तुमि स्वतन्त्र भगवान्! ॥ 164॥

आजिह-अभी तक भी; नहिल-नहीं; मोरे-मुझे; आत्मीयता-ज्ञान-अपने सम्बन्धियों में से एक मानना; मोर अभाग्य–मेरा दुर्भाग्य; तुमि-आप हैं; स्वतन्त्र भगवान्-स्वतन्त्र परम भगवान्।

अनुवाद

"यह मेरा दुर्भाग्य है कि आपने मुझे अपने आत्मीय जन के रूप में स्वीकार नहीं किया। किन्तु आप पूर्णतया स्वतन्त्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।"

शुनि' महाप्रभु किछु लज्जित हैला मने ।

तारे सन्तोषिते किछु बलेन वचने ॥ 165॥

शुनि'–सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; किछु-कुछ; लज्जित–शर्मिंदा; हैला-हो गये; मने-मन में; तारे–उन्हें; सन्तोषिते-सन्तुष्ट करने के लिए; किछु-कुछ; बलेन-कहे; वचने-शब्द।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु कुछ लज्जित हुए। सनातन गोस्वामी को तुष्ट करने के उद्देश्य से उन्होंने निम्नलिखित शब्द कहे।

जगदानन्द प्रिय आमार नहे तोमा हैते ।

मर्यादा-लङ्गन आमि ना पारों सहिते ॥166॥

जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; प्रिय–मेरा प्रिय; आमार-मेरे लिए; नहे-नहीं है;तोमा हैते-तुमसे अधिक; मर्यादा-लङ्घन-मर्यादा उल्लंघन; आमि-मैं; ना-नहीं; पारों-कर सकता; सहिते-सहन।

अनुवाद

"हे प्रिय सनातन, तुम यह मत सोचना कि जगदानन्द मुझे तुमसे अधिक प्रिय है। किन्तु मैं आदर्श शिष्टाचार का अतिक्रमण सहन नहीं कर सकता।"

काहाँ तुमि—प्रामाणिक, शास्त्रे प्रवीण! ।

काहाँ जगा–कालिकार बटुया नवीन! ॥167॥

काहाँ–कहाँ; तुमि-तुम; प्रामाणिक-प्रामाणिक; शास्त्रे प्रवीण-शास्त्रों के ज्ञान में अनुभवी; काहाँ–कहाँ; जगा–जगा; कालिकार-कल का; बटुया-लड़का; नवीन-नया।

अनुवाद

"तुम शास्त्रों के अनुभवी विद्वान हो, जबकि जगा केवल एक युवा बालक है।"

आमाकेह बुझाइते तुमि धर शक्ति ।

कत ठाञि बुझाञाछ व्यवहार-भक्ति ॥168॥

आमाकेह-यहाँ तक कि मुझे; बुझाइते-समझाने की; तुमि-तुम; धर-रखते हो; शक्ति–शक्ति; कत ठाञि-कितनी बार; बुझाञाछ-तुमसे दर्शाया है; व्यवहार-भक्ति-सामान्य आचरण के साथ ही भक्तिमयी सेवा।

अनुवाद

"तुममें मुझ तक को प्रभावित करने की शक्ति है। तुम पहले ही कईस्थानों पर मुझे अपने सामान्य व्यवहार तथा भक्ति के विषय में समझा चुके हो।

तोमारे उपदेश करे, ना याय सहन ।

अतएव तारे आमि करिये भर्सन ॥ 169॥

तोमारे-तुमको; उपदेश करे-उपदेश दे; ना याय सहन-मैं सहन नहीं कर सकता; अतएव–इसलिए; तारे-उसे; आमि-मैं; करिये-किया; भर्सन–डाँट।

अनुवाद

"जगा का तुम्हें उपदेश देना मुझे असह्य है। इसीलिए मैं उसकी भर्त्सना कर रहा हूँ।"

बहिरङ्ग-ज्ञाने तोमारे ना करि स्तवन ।

तोमार गुणे स्तुति कराय यैछे तोमार गुण ॥170 ॥

बहिरङ्ग-ज्ञाने-अपने अन्तरंग सम्बन्धियों से अलग मानकर; तोमारे-तुम्हारी; ना करि-मैं नहीं करता; स्तवन-स्तुति; तोमार-तुम्हारे; गुणे-गुणों द्वारा; स्तुति कराय-कोई भी स्तुति करने पर विवश हो जाए; यैछे-ऐसा; तोमार—तुम्हारा है; गुण-गुण।

अनुवाद

"मैं तुम्हारी प्रशंसा इसलिए नहीं करता, क्योंकि मैं तुम्हें अपने घनिष्ठ सम्बन्धों से बाहर मानता हूँ, अपितु इसलिए कि तुम वास्तव में इतने योग्य हो कि लोगों को तुम्हारे गुणों की प्रशंसा करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।"

यद्यपि काहार 'ममता' बहु-जने हय ।

प्रीति-स्वभावे काहाते कोन भावोदय ॥ 171॥

यद्यपि-यद्यपि, काहार–किसी का; ममता-स्नेह; बहु-जने–अनेक लोगों के प्रति; हय–होती है; प्रीति-स्वभावे-उसके स्नेह के अनुसार; काहाते-किसी में; कोन-कुछ; भाव-उदय-प्रेमभाव का उदय।

अनुवाद

"यद्यपि एक व्यक्ति का कई व्यक्तियों से स्नेह होता है, किन्तु उनके निजी सम्बन्धों के स्वभाव के अनुसार विभिन्न प्रकार के प्रेमों का उदय होता है।"

तोमार देह तुमि कर बीभत्स-ज्ञान ।

तोमार देह आमारे लागे अमृत-समान ॥ 172॥

तोमार देह तुम्हारा शरीर; तुमि-तुम; कर बीभत्स-ज्ञान-भयानक मानते हो; तोमार देह—तुम्हारा शरीर; आमारे—मुझे; लागे-प्रतीत होता है; अमृत-समान–जैसे अमृत से बना हुआ हो।

अनुवाद

तुम अपने शरीर को बीभत्स मानते हो, किन्तु मैं सोचता हूँ कि तुम्हारा शरीर अमृत के समान है।

अप्राकृत-देह तोमार 'प्राकृत' कभु नय ।

तथापि तोमार ताते प्राकृत-बुद्धि हय ॥ 173॥

अप्राकृत-दिव्य; देह-शरीर; तोमार-तुम्हारा; प्राकृत-भौतिक; कभु नय-कभीनहीं है; तथापि–फिर भी; तोमार-तुम्हारी; ताते-इसमें; प्राकृत-बुद्धि-भौतिक बुद्धि; हय-है।

अनुवाद

वस्तुतः तुम्हारा शरीर दिव्य है, भौतिक नहीं है। किन्तु तुम इसे भौतिक बुद्धि से सोच रहे हो।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इस विषय पर अपना मत व्यक्त करते हैं कि भक्ति में लगा मनुष्य अपने शरीर को किस प्रकार भौतिक से आध्यात्मिक बनाता है। वे कहते हैं, "भगवान् कृष्ण की भक्ति में लगे शुद्ध भक्त के पास किसी निजी इन्द्रियतृप्ति की इच्छा नहीं रहती। इसलिए वह उस कार्य के लिए कभी भी कुछ स्वीकार नहीं करता। वह एकमात्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की प्रसन्नता की कामना करता है और अपने उत्कट कृष्ण-प्रेम के कारण वह विभिन्न प्रकार से कर्म करता है। कर्मीजन सोचते हैं कि यह भौतिक शरीर भौतिक भोग का साधन है, और इसीलिए वे कठोर श्रम करते हैं। किन्तु एक भक्त में ऐसी कोई इच्छा नहीं रहती। भक्त शारीरिक विचारों तथा शारीरिक कर्मों को भूलकर पूरे मन से भगवान् की सेवा में सर्वदा लगा रहता है। कर्मी का शरीर भौतिक कहलाता है, क्योंकि भौतिक कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण कर्मी सदैव भौतिक सुविधाओं का भोग करना चाहता है, किन्तु भक्त का शरीर दिव्य माना जाना चाहिए, क्योंकि वह सदैव कृष्ण की सेवा में लगे रहकर कृष्ण की तुष्टि के लिए ही कठिन श्रम करता है। एक ओर जहाँ कर्मी लोग एकमात्र अपनी इन्द्रिय-तुष्टि में लगे रहते हैं, वहीं भक्तगण भगवान् की तुष्टि के लिए कर्म करते हैं। इसलिए जो व्यक्ति भक्ति तथा सामान्य कर्म में अन्तर नहीं कर पाता, वह शुद्ध भक्त के शरीर को भ्रमवश भौतिक मान बैठता है। जो इसे जानता है, वह ऐसी भूल नहीं करता। भक्ति कार्यों तथा सामान्य भौतिक कार्यों को एक-सा मानने वाले अभक्तगण भगवान्

के पवित्र दिव्य नाम के कीर्तन के प्रति अपराधी हैं। शुद्ध भक्त जानता है कि भक्त का शरीर सदैवदिव्य होने से भगवान् की सेवा करने के लिए उपयुक्त होता है।

भक्ति के सर्वोच्च पद पर स्थित भक्त दीनतावश सोचता है कि वह कोई भक्ति नहीं कर पा रहा। वह सोचता है कि वह भक्ति में निर्धन है और उसका शरीर भौतिक है। दूसरी ओर, सहजिये मूर्खतावश अपने भौतिक शरीरों को दिव्य मानते हैं। इसी कारण वे हमेशा शुद्ध भक्तों की संगति से वंचित रहते हैं। और इसीलिए वे वैष्णवों जैसा व्यवहार नहीं कर सकते। सहजियों के दोषों को देखकर श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपनी पुस्तक कल्याण कल्पतरु में लिखा है :

आमि त' वैष्णव, ए-बुद्धि हइले

अमानी ना हब आमि

प्रतिष्ठाशा आसि, हृदय दूषिबे

हइब निरयगामी ।

निजे श्रेष्ठ जानि, उच्छिष्टादि-दाने,

हबे अभिमान भार

ताइ शिष्य तव, थाकिया सर्वदा

ना लइब पूजा कार ॥

"यदि मैं अपने आपको वैष्णव मानता हूँ, तो मैं अन्यों से आदर पाने की राह देखूँगा। और यदि यश तथा प्रतिष्ठा की इच्छा मेरे हृदय को कलुषित करे, तो मैं निश्चित रूप से नरक जाऊँगा। अन्यों को अपना जूठन देकर मैं अपने आपको श्रेष्ठ मानूँगा और मिथ्या अभिमान के भार से बोझिल हो उठेंगा। इसलिए सदैव आपका शरणागत शिष्य बनकर मैं किसी अन्य की पूजा स्वीकार नहीं करूँगा।" श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने लिखा है (अन्त्य-लीला 20.28)।

प्रेमेर स्वभाव-याहाँ प्रेमेर सम्बन्ध ।

सेइ माने-'कृष्णे मोर नाहि प्रेम-गन्ध' ॥

"जहाँ भी भगवत्प्रेम का सम्बन्ध होता है, ये स्वाभाविक लक्षण हैं कि भक्त अपने आपको भक्त नहीं मानता, अपितु वह हमेशा सोचता है कि उसमें कृष्ण-प्रेम का लेशमात्र भी नहीं है।"

'प्राकृत' हैले ह तोमार वपु नारि उपेक्षिते।

भद्राभद्र-वस्तु-ज्ञान नाहिक 'प्राकृते' ॥174॥

प्राकृत-भौतिक; हैले ह–यदि यह होता; तोमार तुम्हारा; वपु–शरीर; नारि-मैं नहीं कर सकता; उपेक्षिते-उपेक्षा; भद्र-अभद्र-अच्छा या बुरा; वस्तु-ज्ञान-वस्तुओं का ज्ञान;नाहिक नहीं है; प्राकृते-भौतिक संसार में।

अनुवाद

यदि तुम्हारा शरीर भौतिक होता, तो भी मैं उसकी उपेक्षा न कर पाता, क्योंकि भौतिक शरीर को न तो अच्छा मानना चाहिए न बुरा।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से कहा, "चूँकि तुम वैष्णव हो,इसलिए तुम्हारा शरीर आध्यात्मिक है, भौतिक नहीं। इसलिए तुम्हें इस शरीर को श्रेष्ठ या अधम गुणों के अधीन नहीं मानना चाहिए। साथ ही, मैं संन्यासी हूँ। इसलिए यदि तुम्हारा शरीर भौतिक होता, तो भी संन्यासी को अच्छे तथा बुरे शरीर में कोई अन्तर नहीं देखना चाहिए।"

किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत्।

वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥ 175॥

किम्-क्या; भद्रम्-अच्छा; किम्-क्या; अभद्रम्-बुरा; वा-या; द्वैतस्य-इस भौतिक संसार के; अवस्तुनः–जिसका अस्तित्व नश्वर है; कियत्-कितने; वाचा-शब्दों द्वारा; उदितम्-उत्पन्न; तत्-वह; अनृतम्-शाश्वत अस्तित्व से रहित; मनसा-मन द्वारा; ध्यातम्-चिन्तित; एव–निश्चित ही; च-और।

अनुवाद

"कृष्ण से सम्बन्ध न रखने वाली जिस भी वस्तु की अनुभूति की जाती हो, उसे माया समझना चाहिए। शब्दों द्वारा उच्चरित या मन में अनुभव किये गये एक भी भ्रम यथार्थ नहीं होते। चूँकि भ्रम यथार्थ नहीं होता, इसलिए जिसे हम बुरा सोचते हैं और जिसे अच्छा सोचते है, उनमें कोई अन्तर नहीं होता। जब हम परम सत्य की बात करते हैं, तो ऐसी कल्पनाएँ लागू नहीं होतीं।।"

तात्पर्य

यह श्रीमद्भागवत (11.28.4) से उधृत किया गया है।

'द्वैते' भद्राभद्र-ज्ञान, सब–'मनोधर्म' ।

'एइ भाल, एइ मन्द',—एइ सब 'भ्रम' ॥ 176॥

द्वैते–भौतिक संसार में; भद्र-अभद्र-ज्ञान-अच्छे और बुरे का ज्ञान; सब-सब; मनः-धर्म-मन की काल्पनिक रचनाएँ; एइ भाल-यह अच्छा है; एइ मन्द-यह बुरा है; एइ-यह; सब-सब; भ्रम-भ्रम।

अनुवाद

"भौतिक जगत् में अच्छे-बुरे की कल्पनाएँ मन की उपज होती हैं। इसलिए यह कहना कि 'यह अच्छा है' और 'यह बुरा है' कोरी भूल है।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण परम सत्य हैं और विविध शक्तियों के साथ शाश्वत रूप से विद्यमान रहते हैं। जब कोई व्यक्ति कृष्ण की मोहमयी शक्ति में मग्न रहता है और कृष्ण को नहीं समझ पाता, तो वह अपने लिए अच्छे तथा बुरे का निश्चय नहीं कर सकता। अच्छे तथा बुरे के सारे भाव कल्पनाएँ या मनोधर्म हैं। जब मनुष्य यह भूल जाता है कि वह कृष्ण का सनातन सेवक है, तो वह नाना प्रकार की योजनाओं द्वारा भौतिक जगत् का भोग करना चाहता है। उस समय वह ऐसी भौतिक योजनाओं में अन्तर करता है, जो अच्छी होती हैं और जो बुरी होती हैं। किन्तु वास्तव में वे सब झूठी होती हैं।

विद्या-विनय-सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्व-पाके च पण्डिताः सम-दर्शिनः ॥ 177॥

विद्या-ज्ञान; विनय-सज्जनता; सम्पन्ने-युक्त; ब्राह्मणे-एक ब्राह्मण में; गवि-एक गाय में; हस्तिनि-एक हाथी में; शुनि-एक कुत्ते में; च–तथा; एव-भी; श्व-पाके-एक कुत्ता खाने वाले (चण्डाल) में; च-तथा; पण्डिताः-जो वास्तव में आध्यात्मिक ज्ञान में स्थित हैं; सम-दर्शिनः-समान दृष्टि वाले।

अनुवाद

"विनम्र साधु पुरुष वास्तविक ज्ञान के बल पर विद्वान तथा विनीत ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते तथा चण्डाल को समदृष्टि से देखते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक भगवद्गीता (5.18) से उधृत है।

ज्ञान-विज्ञान-तृप्तात्मा कूट-स्थो विजितेन्द्रियः ।

युक्त इत्युच्यते योगी सम-लोष्ट्राश्म-काञ्चनः ॥178॥

ज्ञान-अर्जित ज्ञान द्वारा; विज्ञान-अनुभूत ज्ञान; तृप्त-सन्तुष्ट; आत्मा-जीवात्मा; कूट-स्थः-अपने स्वरूप में स्थित; विजित-वश में की हुई; इन्द्रियः–जिसकी इन्द्रियाँ; युक्तः–परम भगवान् के सम्पर्क में; इति–इस प्रकार; उच्यते-कहा जाता है; योगी-एक योगी; सम-समान; लोष्ट्र-कंकर; अश्म-पत्थर; काञ्चनः-सोना।

अनुवाद

जो व्यक्ति जीवन में अर्जित ज्ञान तथा उसके उपयोग से पूर्णतया सन्तुष्ट रहता है और अपने आध्यात्मिक पद पर स्थिर होता है, जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को पूरी तरह वश में रखता है और जो व्यक्ति कंकर, पत्थर तथा सोने को एक-सा देखता है, वह पूर्ण योगी कहलाता है।

तात्पर्य

यह उद्धरण भी भगवद्गीता (6.8) का है।

आमि त'—सन्यासी, आमार 'सम-दृष्टि' धर्म।

चन्दन-पङ्केते आमार ज्ञान हय 'सम' ॥ 179॥

आमि-मैं; त'–निश्चित रूप से; सन्यासी-संन्यास आश्रम में; आमार-मेरा; सम-दृष्टि-सभी को समान स्तर पर देखना; धर्म-कर्तव्य है; चन्दन-पङ्केते-चन्दन और कीचड़ के मध्य; आमार-मेरा; ज्ञान-ज्ञान; हय-है; सम-समान।

अनुवाद

"चूँकि मैं संन्यासी हूँ, इसलिए मेरा धर्म भेद-भाव करना नहीं, अपितु समदृष्टि रखने का है। मेरा ज्ञान चन्दन तथा कीचड़ में समदृष्टि रखता है।"

तात्पर्य

संन्यासी का धर्म है कि वह सदैव समदृष्टि रखे और एक विद्वान तथा एक वैष्णव का भी यही कर्तव्य है। एक वैष्णव, एक संन्यासी या एक विद्वान में भौतिक जगत् का कोई बोध नहीं होता या तो दूसरे शब्दों में उसे वस्तुओं के भौतिक महत्त्व का बोध नहीं होता। उसे न तो इन्द्रियतृप्ति के लिए चन्दन-लेप का प्रयोग करने की इच्छा रहती है, न ही इन्द्रियतृप्ति उसे कीचड़ से घृणाउत्पन्न कराती है। भौतिक वस्तुओं की स्वीकृति या बहिष्कार संन्यासी, वैष्णव या विद्वान का कार्य नहीं है। उन्नत भक्त को किसी वस्तु के भोगने या बहिष्कार करने की इच्छा नहीं रहती। उसका एकमात्र कर्तव्य कृष्णभावना की उन्नति के लिए जो भी अनुकूल हो उसे स्वीकार करना है। वैष्णव को भौतिक भोग तथा वैराग्य से उदासीन रहना चाहिए और सदैव भगवान् की सेवा हेतु आध्यात्मिक जीवन के लिए लालायित रहना चाहिए।

एइ लागि' तोमा त्याग करिते ना झुयाय।

घृणा-बुद्धि करि यदि, निज-धर्म याय' ॥180॥

एइ लागि'-इस कारण; तोमा-तुम्हें; त्याग करिते-त्याग करना; ना युयाय-उपयुक्त नहीं है; घृणा-बुद्धि करि-मैं घृणा करूँगा; यदि-यदि; निज-धर्म याय-मैं अपने कर्तव्य से विचलित हो जाऊँगा।

अनुवाद

"इस कारण मैं तुम्हारा त्याग नहीं कर सकता। यदि मैं तुमसे घृणा करूँगा, तो मैं अपने वृत्तिपरक धर्म से विचलित हो जाऊँगा।"

हरिदास कहे,–"प्रभु, ये कहिला तुमि ।

एइ 'बाह्य प्रतारणा' नाहि मानि आमि" ॥ 181॥

हरिदास कहे-हरिदास ने कहा; प्रभु-मेरे प्रभुः ये–जो; कहिला–कहा है; तुमि-आपने; एइ–यह; बाह्य प्रतारणा–बाहरी औपचारिकता; नाहि मानि आमि-मैं स्वीकार नहीं करता।

अनुवाद

हरिदास ने कहा, "हे प्रभु, आपने जो कुछ कहा है, वह बाह्य औपचारिकता है। मैं इसे स्वीकार नहीं करता।"

आमा-सब अधमे ये करियाछ अङ्गीकार ।

दीन-दयालु-गुण तोमार ताहाते प्रचार ॥ 182॥

आमा-सब-हम सब; अधर्म-सर्वाधिक पतित; ग्रे-वह; करियाछ-आपने किया; अङ्गीकार–स्वीकार; दीन-दयालु-पतित आत्माओं के प्रति दयालु; गुण-गुण; तोमार-आपका; ताहाते—इसमें; प्रचार–प्रदर्शित।

अनुवाद

"हे प्रभु, हम सब पतित हैं, किन्तु आपने पतितों पर दयालु होने के अपने गुण के कारण हमें स्वीकार किया है। यह जगत-विख्यात है।"

प्रभु हासि' कहे,–"शुन, हरिदास, सनातन ।

तत्त्वतः कहि तोमा-विषये यैछे मोर मन" ॥ 183॥

प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; हासि-हँसकर; कहे-कहते हैं; शुन-सुनो; हरिदास-मेरे प्रिय हरिदास; सनातन-मेरे प्रिय सनातन; तत्त्वतः–वास्तव में; कहि-मैं कह रहा हूँ। तोमा-विषये-तुम्हारे विषय में; यैछे-जैसा; मोर मन-मेरा मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु हँसे और बोले, "हे हरिदास, हे सनातन, सुनो। अब मैं तुमसे सच कह रहा हूँ कि मेरा मन तुम लोगों से किस तरह अनुरक्त है।"

तोमारे 'लाल्य', आपनाके 'लालक' अभिमान ।

लालकेर लाल्ये नहे दोष-परिज्ञान ॥184॥

तोमारे-तुमको; लाल्य–पालित; आपनाके–स्वयं को; लालक-पालक; अभिमान-मानता हूँ; लालकेर-पालनकर्ता का; लाल्ये-पालित के; नहे-नहीं; दोष-दोष; परिज्ञान–विचार।

अनुवाद

"हे हरिदास तथा सनातन, मैं तुम दोनों को अपने बच्चों जैसा मानता हैं, जिनका पालन मेरे द्वारा होना है। पालक कभी भी पालितों के दोषों पर गम्भीरता से विचार नहीं करता।"

तात्पर्य

जब पिता बच्चे को पालता है और बच्चा पिता द्वारा पाला जाता है, तब पिता कभी भी बच्चे की त्रुटियों पर ध्यान नहीं देता। वास्तविक त्रुटियाँ होने पर भी पिता उन पर ध्यान नहीं देता।।

आपनारे हय मोर अमान्य-समान ।

तोमा-सबारे करों मुजि बालक-अभिमान ॥185॥

आपनारे-अपने लिए; हय-है; मोर-मेरा; अमान्य-सम्मान के अयोग्य; समान-जैसे; तोमा-सबारे-तुम सबको; करों-करता हूँ; मुजि-मैं; बालक-अभिमान-अपनी सन्तानों के समान मानता हूँ।

अनुवाद

मैं अपने आपको आदर के अयोग्य समझता हूँ, किन्तु स्नेह के कारण मैं तुम लोगों को अपने बच्चों के समान मानता हूँ।

मातार यैछे बालकेर 'अमेध्य' लागे गाय ।

घृणा नाहि जन्मे, आर महा-सुख पाय ॥186॥

मातार–माता को; शैछे-जैसे; बालकेर-बच्चे के; अमेध्य–मल तथा मूत्र; लागे गाय-शरीर को लग जाएँ; घृणा-घृणा; नाहि जन्मे–उत्पन्न नहीं होती; आर-और भी;महा-सुख-महान् आनन्द; पाय-प्राप्त होता है।

अनुवाद

"जब बालक मल-मूत्र कर देता है, तो वह माता के शरीर में लग जाता है, किन्तु माता कभी भी बच्चे से घृणा नहीं करती। उल्टे उसे धोने में वह अपार आनन्द पाती है।"

'लाल्यामेध्य' लालकेर चन्दन-सम भाय ।

सनातनेर क्लेदे आमार घृणा ना उपजाय ॥187॥

लाल्य–पालित शिशु के; अमेध्य–मल तथा मूत्र; लालकेर-पालक के लिए; चन्दन-सम-चन्दन के समान; भाय-प्रतीत होते हैं; सनातनेर-सनातन गोस्वामी के; क्लेदे–छालों की पस के प्रति; आमार-मेरी; घृणा-घृणा; ना-नहीं; उपजाय-जागती ।

अनुवाद

"माता को पाले जाने वाले बालक का मल-मूत्र चन्दन-लेप के समान प्रतीत होता है। इसी तरह जब सनातन गोस्वामी के घावों से रिसने वाला दुर्गंधयुक्त द्रव्य मेरे शरीर में छू जाता है, तो मुझे उससे घृणा नहीं होती।"

हरिदास कहे,–"तुमि ईश्वर दया-मय ।

तोमार गम्भीर हृदय बुझन ना याय" ॥188॥

हरिदास कहे-हरिदास ठाकुर ने कहा; तुमि-आप; ईश्वर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; दया-मय-कृपावान; तोमार-आपका; गम्भीर-गम्भीर; हृदय-हृदय; बुझन ना याय-समझा नहीं जा सकता।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, "हे महोदय, आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और हमारे प्रति अत्यन्त कृपालु हैं। कोई नहीं जान सकता कि आपके अगाध स्नेहिल हृदय में क्या है।"

वासुदेव—गलत्कुष्ठी, ताते अङ्ग-कीड़ा-मय ।

तारे आलिङ्गन कैला हा सदय ॥189॥

वासुदेव-वासुदेव; गलत्-कुष्ठी-कुष्ठरोग से पीड़ित; ताते-उस पर; अङ्ग–शरीर;कीड़ा-मय-कीड़ों से भरा हुआ; तारे-उसे; आलिङ्गन-आलिंगन; कैला-आपने किया;हा स-दय-कृपा करके।

अनुवाद

"आपने वासुदेव कोढ़ी का आलिंगन किया, जिसका शरीर पूरी तरह कीड़ों से भरा था। आप इतने दयालु हैं कि उसकी ऐसी दशा होते हुए भी आपने उसका आलिंगन किया।"

आलिङ्गिया कैला तार कन्दर्प-सम अङ्ग ।

बुझिते ना पारि तोमार कृपार तरङ्ग ॥190॥

आलिङ्गिया-आलिंगन द्वारा; कैला-आपने किया; तार-उसे; कन्दर्प-सम-कामदेव के समान सुन्दर; अङ्ग-शरीर; बुझिते ना पारि-हम नहीं समझ सकते; तोमार-आपकी; कृपार तरङ्ग-कृपा की लहरों को।

अनुवाद

"आपने उसका आलिंगन करके उसके शरीर को कामदेव का-सा सुन्दर बना दिया। हम आपकी कृपा की तरंगों को समझ नहीं सकते।"

प्रभु कहे,–वैष्णव-देह 'प्राकृत' कभु नये ।

'अप्राकृत' देह भक्तेर 'चिदानन्द-मय' ॥ 191॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; वैष्णव देह-एक वैष्णव का शरीर; प्राकृत-भौतिक; कभुनय-कभी नहीं होता; अप्राकृत-दिव्य; देह-शरीर; भक्तेर-एक भक्त का; चित्-आनन्द-मय-दिव्य आनन्द से पूर्ण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "एक भक्त का शरीर कभी भी भौतिक नहीं होता। वह दिव्य, आध्यात्मिक आनन्द से पूर्ण माना जाता है।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु हरिदास ठाकुर तथा सनातन गोस्वामी को यह समझाना चाहते हैं कि जिस भक्त का जीवन भगवान् की सेवा में समर्पित होता है,उसकी भौतिक बुद्धि नहीं रहती। चूँकि वह सदैव भगवान् की सेवा में लगा रहता है, इसलिए उसका शरीर दिव्य तथा आध्यात्मिक आनन्द से ओतप्रोत होता है। उसके शरीर को भौतिक कभी नहीं मानना चाहिए, जिस तरह मन्दिर में पूजे जाने वाले अर्चाविग्रह को कभी भी पत्थर या काष्ठ का बना नहीं माना जाता। वस्तुतः अर्चाविग्रह प्रत्यक्ष रूप से भगवान् होते हैं, जिस में कोई सन्देह नहीं है। इसीलिए पद्म पुराण में आदेश हैं-अचर्ये विष्णौ शिलाधीगुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धिः... यस्य वा नारकी सः।"वह मनुष्य नरक का निवासी माना जाता है, जो मन्दिर में पूजे जाने वाले अर्चाविग्रह को पत्थर या काष्ठ का मानता है और जो गुरु को एक सामान्य व्यक्ति समझता है और जो पूर्णरूपेण समर्पित वैष्णव भक्त को भौतिक गुणों से सम्बन्धित मानता है।

दीक्षा-काले भक्त करे आत्म-समर्पण।

सेइ-काले कृष्ण तारे करे आत्म-सम ॥192॥

दीक्षा-काले-दीक्षा के समय; भक्त-भक्त; करे-करता है; आत्म-अपना; समर्पण–पूर्ण आत्म-समर्पण; सेइ-काले-उसी समय; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तारे-उसको; करे-बनाते हैं; आत्म-सम-अपने समान दिव्य।

अनुवाद

"दीक्षा के समय जब भक्त अपने आपको भगवान् की सेवा में पूर्णतया समर्पित कर देता है, तब कृष्ण उसे अपने समान ही उत्तम स्वीकार कर लेते हैं।"

सेइ देह करे तार चिदानन्द-मय।

अप्राकृत-देहे ताँर चरण भजय ॥ 193॥

सेइ देह-वह शरीर; करे-बनाते हैं; तार-उसका; चित्-आनन्द-मय-दिव्य आनन्दसे पूर्ण; अप्राकृत-देहे-दिव्य शरीर में; ताँर-उनके; चरण-चरणों की; भजय-उपासना।

अनुवाद

"जब भक्त का शरीर इस तरह आध्यात्मिक बन जाता है, तो भक्त उस दिव्य शरीर से भगवान् के चरणकमलों की सेवा करता है।"

मर्यो यदा त्यक्त-समस्त-कर्मा

निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।

तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो

मयात्म-भूयाय च कल्पते वै ॥ 194॥

मर्त्यः-जन्म और मृत्यु से ग्रस्त जीव; यदा-जैसे ही; त्यक्त-त्यागकर; समस्त-सब;कर्माः-सकाम कर्म; निवेदित-आत्मा-एक पूर्ण शरणागत आत्मा; विचिकीर्षितः–कार्य करने को इच्छित; मे-मेरे द्वारा; तदा-उस समय; अमृतत्वम्-अमरत्व; प्रतिपद्यमानः-प्राप्त होता है; मया-मेरे साथ; आत्म-भूयाय–समान स्वरूपवान बनने के लिए; च-और;कल्पते-योग्य हो जाता है; वै–निश्चित ही।

अनुवाद

"जब जन्म-मृत्यु को प्राप्त होने वाला जीव मेरा आदेश पूरा करने के लिए अपना जीवन मुझे समर्पित करते हुए सारे भौतिक कार्यों को त्याग देता है और इस तरह मेरे आदेशों के अनुसार कर्म करता है, उस समय वह अमरता के पद तक पहुँच जाता है। तब वह मेरे साथ प्रेम-रस के आदान-प्रदान में आध्यात्मिक आनन्द लूटने के योग्य बन जाता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.29.34) का है। दीक्षा के समय भक्त अपना सारा भौतिक विचार छोड़ देता है। अतः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सम्पर्क में होने के कारण वह दिव्य स्तर पर स्थित हो जाता है। इस प्रकार ज्ञान तथा आध्यात्मिक पद पाकर वह कृष्ण के आध्यात्मिक शरीर की सेवा में सदैव लगा रहता है। जब कोई इस तरह से भौतिक सम्बन्धों से मुक्त हो जाता है, तो उसका शरीर तुरन्त आध्यात्मिक बन जाता है और कृष्ण उसकी सेवा अंगीकार कर लेते हैं। किन्तु कृष्ण किसी ऐसे व्यक्ति की कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते, जो देहात्मबुद्धि में हो। जब भक्त में भौतिक इन्द्रियतृप्ति के लिए कोई इच्छा नहीं रह जाती, तब वह आध्यात्मिक स्वरूप में भगवान् की सेवा में लगता है, क्योंकि उसकी सुप्त आध्यात्मिक चेतना का उदय होता है। इस आध्यात्मिक चेतना के उदय से उसका शरीर आध्यात्मिक बन जाता है और इस तरह वह भगवान् की सेवा करने के योग्य बन जाता है। कर्मी लोग भले ही भक्त के शरीर को भौतिक माने, किन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं है, क्योंकि भक्त को भौतिक भोग का कोई बोध नहीं होता। यदि कोई सोचता है कि शुद्ध भक्त का शरीर भौतिक है, तो वह अपराधी है, क्योंकि यह वैष्णव अपराध है। इस सम्बन्ध में देखें श्रील सनातन गोस्वामी कृत बृहद्भागवतामृत (1.3.45 तथा 2.3.139)।

सनातनेर देहे कृष्ण कण्डु उपजाञा ।

आमा परीक्षिते इहाँ दिला पाठाञा ॥ 195॥

सनातनेर-सनातन गोस्वामी के; देहे-शरीर में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; कण्डु-छाले; उपजा उपजाञा-उत्पन्न; आमा-मेरी; परीक्षिते-परीक्षा के लिए; इहाँ–यहाँ; दिला पाठाञा–भेजा है।

अनुवाद

कृष्ण ने किसी प्रकार सनातन गोस्वामी के शरीर में खुजली के घाव प्रकट कर दिये हैं और मेरी परीक्षा लेने के लिए उसे यहाँ भेज दिया है।

घृणा करि' आलिङ्गन ना करिताम यबे ।

कृष्ण-ठाञि अपराध-दण्ड पाइताम तबे ॥ 196॥

घृणा करिघृणा करके; आलिङ्गन-आलिंगन; ना करिताम-मैं नहीं करता; यबे-जब; कृष्ण-ठाञि–भगवान् कृष्ण; अपराध-दण्ड–अपराधों के लिए दण्ड; पाइताम-मुझे मिलता; तबे-तब।

अनुवाद

यदि मैंने सनातन गोस्वामी से घृणा की होती और उसका आलिंगन न किया होता, तो निश्चय ही कृष्ण के प्रति अपराध करने के लिए मैं दण्डित होता।

पारिषद-देह एइ, ना हय दुर्गन्ध ।

प्रथम दिवसे पाइलुँ चतुःसम-गन्ध ॥197॥

पारिषद-देह-कृष्ण के पार्षद का शरीर; एइ-यह; ना हय-नहीं है; दुर्गन्ध-दुर्गन्ध युक्त; प्रथम दिवसे-पहले दिन; पाइलुँ-मैंने प्राप्त किया; चतुःसम-गन्ध-चतुःसम की सुगन्ध, चन्दन, कपूर, अगुरु तथा कस्तूरी का मिश्रण।

अनुवाद

"सनातन गोस्वामी कृष्ण के संगियों में से एक है। उसके शरीर से कोई दुर्गन्ध नहीं आ सकती। पहले दिन जब मैंने उनका आलिंगन किया, तो मुझे चतुःसम (चन्दन, कपूर, अगुरु तथा कस्तूरी के मिश्रण) की सुगन्धि आयी।"

तात्पर्य

भगवान् का संगी वह है, जिसका शरीर पूरी तरह से भगवान् की सेवा में लगा रहता है। भौतिकतावादी व्यक्ति को सनातन गोस्वामी का शरीर खुजली के घावों से भरा दिख सकता है, जिसमें से दुर्गंधयुक्त गन्दा तरल पदार्थ निकल रहा था। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा कि उनके शरीर की सुगन्ध वास्तव में चन्दन, कपूर, अगुरु तथा कस्तूरी के मिश्रण की सुगन्ध थी। गरुड़ पुराण में चतु:सम कहलाने वाले इस मिश्रण का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

कस्तूरिकाया द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य तु ।

कुङ्कमस्य त्रयश्चैक: शशिनः स्यात् चतु:समम् ॥

"दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन, तीन भाग अगुरु या केशर तथा एक भाग कपूर को मिलाने पर चतु:सम बनता है।" चतु:सम की सुगन्ध सुहावनी होती है। हरिभक्ति विलास (विलास 6) में भी इसका उल्लेख है।"

वस्तुतः प्रभु झबे कैला आलिङ्गन ।

ताँर स्पर्शे गन्ध हैल चन्दनेर सम ॥198॥

वस्तुतः–वास्तव में प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; यबे-जब; कैला–किया; आलिङ्गन-आलिंगन; ताँर स्पर्शे-उनके स्पर्श द्वारा; गन्ध हैल–सुगन्ध हो गई; चन्दनेर सम-चन्दन के समान।

अनुवाद

वस्तुतः जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी का आलिंगन किया, तो महाप्रभु के स्पर्श मात्र से चन्दन-लेप के ही समान सुगन्ध प्रकट हुई।

प्रभु कहे,–"सनातन, ना मानिह दुःख ।

तोमार आलिङ्गने आमि पाइ बड़ सुख" ॥199॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु कहना जारी रखा; सनातन-मेरे प्रिय सनातन; ना मानिह दुःख–दुःखी मत होओ; तोमार आलिङ्गने-तुम्हारा आलिंगन करके; आमि–मुझे; पाइ-मिलता है; बड़ सुख-महान् आनन्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे प्रिय सनातन, दुःखी मत हो, क्योंकि जब मैं तुम्हारा आलिंगन करता हूँ, तब वास्तव में मुझे महान् सुख मिलता है।"

ए-वत्सर तुमि इहाँ रह आमा-सने ।

वत्सर रहि तोमारे आमि पाठाइमु वृन्दावने ॥ 200॥

ए-वत्सर-इस वर्ष; तुमि-तुम; इहाँ–यहाँ; रह-रहो; आमा-सने-मेरे साथ; वत्सर-वर्ष; रहि-रहकर; तोमारे-तुम्हें; आमि-मैं; पाठाइमु वृन्दावने-वृन्दावन भेज दूँगा।

अनुवाद

"तुम मेरे साथ जगन्नाथ पुरी में एक वर्ष तक रहो। उसके बाद मैं तुम्हें वृन्दावन भेज दूँगा।"

एत बलि' पुनः ताँरे कैला आलिङ्गन ।

कण्डु गेल, अङ्ग हैल सुवर्णेर सम ॥ 201॥

एत बलि'-यह कहकर पुनः-फिर; ताँरे-उन्हें; कैला-किया; आलिङ्गन- आलिंगन; कण्डु गेल–छाले लुप्त हो गये; अङ्ग–शरीर; हैल–हो गया; सुवर्णेर सम-सोने के समान।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी का पुनः आलिंगन किया। इस तरह सनातन के छाले तुरन्त लुप्त हो गये और उनका सारा शरीर सोने के रंग जैसा हो गया।

देखि' हरिदास मने हैला चमत्कार ।

प्रभुरे कहेन,–"एइ भङ्गी ये तोमार" ॥ 202॥

देखि'–देखकर; हरिदास-हरिदास ठाकुर; मने-मन में; हैला चमत्कार-आश्चर्यचकित हो गये; प्रभुरे कहेन–महाप्रभु से बोले; एइ–यह; भङ्गी-दिव्य कार्य; ये- जो; तोमार-आपका।

अनुवाद

यह परिवर्तन देखकर अत्यधिक आश्चर्यचकित हुए हरिदास ठाकुर ने महाप्रभु से कहा, "यह आपकी लीला है।

सेइ झारिखण्डेर पानी तुमि खाओयाइला ।

सेइ पानी-लक्ष्ये इँहार कण्डु उपजाइला ॥203॥

सेइ-वह; झारिखण्डेर-झारखण्ड का; पानी-जल; तुमि-आपने; खाओयाइला-पिलाया; सेइ पानी-लक्ष्ये-इस जल के प्रभाव से; इँहार-सनातन गोस्वामी के; कण्डु उपजाइला-आपने छाले उत्पन्न किये।

अनुवाद

"हे प्रभु, आपने सनातन गोस्वामी को झारिखण्ड जल पीने को बाध्य किया और वास्तव में उनके शरीर में खुजली के घाव आपने ही उत्पन्न किये।"

कण्डु करि' परीक्षा करिले सनातने ।

एइ लीला-भङ्गी तोमार केह नाहि जाने ॥204॥

कण्डु करि'-छाले उत्पन्न करके; परीक्षा-परीक्षा; करिले-आपने ली; सनातने-सनातन गोस्वामी की; एइ–यह; लीला-लीला; भङ्गी-युक्ति; तोमार-आपकी; केह नाहि जाने-कोई नहीं जानता।

अनुवाद

"इन खुजली के घावों को इस तरह उत्पन्न करके आपने सनातन गोस्वामी की परीक्षा ली। आपकी दिव्य लीलाओं को कोई भी नहीं समझ सकता।"

दुँहे आलिङ्गिया प्रभु गेला निजालय ।

प्रभुर गुण कहे दुँहे हा प्रेम-मय ॥ 205॥

दुँहे-दोनों को; आलिङ्गिया-आलिंगन करके; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला–चले गये; निज-आलय-अपने स्थान पर; प्रभुर गुण-श्री चैतन्य महाप्रभु के गुण; कहे-चर्चा करने लगे; दुँहे-वे दोनों; हा-होकर; प्रेम-मय-भावविभोर होकर।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर तथा सनातन गोस्वामी दोनों का आलिंगन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु अपने स्थान पर लौट गये। तब हरिदास ठाकुर तथा सनातन गोस्वामी ने भावविभोर होकर महाप्रभु के दिव्य गुणों का वर्णन करना शुरू किया।

एइ-मत सनातन रहे प्रभु-स्थाने ।

कृष्ण-चैतन्य-गुण-कथा हरिदास-सने ॥206॥

एइ-मत-इस प्रकार; सनातन-सनातन गोस्वामी; रहे-रहे; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण में; कृष्ण-चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; गुण-गुणों की; कथा-चर्चा; हरिदास-सने-हरिदास ठाकुर के साथ।

अनुवाद

इस तरह सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के संरक्षण में रहे और हरिदास ठाकुर के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य गुणों की चर्चा करते रहे।

दोल-यात्रा देखि प्रभु ताँरे विदाय दिला ।

वृन्दावने ये करिबेन, सब शिखाइला ॥ 207॥

दोल-यात्रा–दोल यात्रा उत्सव; देखि'–देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे-उन्हें; विदाय दिला–विदा किया; वृन्दावने-वृन्दावन में; ये करिबेन–वे जो भी करेंगे;सब-सब; शिखाइला–सिखाया॥

अनुवाद

दोलयात्रा उत्सव देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को वृन्दावन में जो कुछ करना था, उसका पूरी तरह आदेश देकर उन्हें विदा किया।

ये-काले विदाय हैला प्रभुर चरणे ।

दुइ-जनार विच्छेद-दशा ना याय वर्णने ॥ 208॥

ये-काले-जब; विदाय–विदाई; हैला-हुई; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में; दुइ-जनार-उन दोनों की; विच्छेद-दशा-विरह की दशा; ना याय वर्णने-वर्णन नहीं की जा सकती।

अनुवाद

जब सनातन गोस्वामी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक दूसरे से विदा ली, तो जो विरह दृश्य उपस्थित हुआ, उसका यहाँ पर वर्णन नहीं किया जा सकता।

येइ वन-पथे प्रभु गेला वृन्दावन ।

सेइ-पथे याइते मन कैला सनातन ॥209॥

येइ-जिस; वन-पथे–जंगल के मार्ग पर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला वृन्दावन-वृन्दावन गये थे; सेइ-पथे-उसी मार्ग से; याइते-जाने का; मन-मन; कैला-बनाया; सनातन-सनातन गोस्वामी ने।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उसी जंगल के मार्ग से होकर वृन्दावन जाने का निश्चय किया, जिससे होकर महाप्रभु गये थे।

ये-पथे, ये-ग्राम-नदी-शैल, याहाँ ग्रेइ लीला ।

बलभद्र-भट्ट-स्थाने सब लिखि' निला ॥210॥

ये-पथे-जिस मार्ग से; ये-जिस; ग्राम-गाँव; नदी-नदियाँ; शैल–पहाड़; याहाँ-जहाँ; येइ-जो; लीला-लीलाएँ; बलभद्र-भट्ट-स्थाने-बलभद्र भट्ट से; सब-सब कुछ; लिखि'–लिखकर; निला–उन्होंने ले लीं।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने बलभद्र भट्टाचार्य से पूछकर उन सारे गाँवों, नदियों तथा पर्वतों का नाम लिख लिया, जहाँ जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी लीलाएँ सम्पन्न की थीं।

महाप्रभुर भक्त-गणे सबारे मिलिया ।

सेइ-पथे चलि' याय से स्थान देखिया ॥211॥

महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गणे-भक्त; सबारे-सभी; मिलिया-मिलकर; सेइ-पथे-मार्ग पर; चलि' याय-चल दिये; से-उन; स्थान-स्थानों को; देखिया-देखते हुए।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों से मिले और तब उन्होंने उसी रास्ते से यात्रा करके उन स्थानों को देखा, जिनसे होकर श्री चैतन्य महाप्रभु गुजरे थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का एक गीत (शरणागति 31.3) में लिखते हैं :

गौर आमार, ये सब स्थाने

करल भ्रमण रंगे।

से-सब स्थान, हेरिब आमि,

प्रणयि-भकत-संगे।

"मैं चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों की लीलाओं से सम्बन्धित सारे पवित्र स्थानों के दर्शन करना चाहूँगा।" भक्त को यह बात मन में रख लेनी चाहिए कि जहाँ-जहाँ महाप्रभु ने लीलाएँ कीं हैं, उन स्थानों के दर्शन किये जाएँ। निस्सन्देह, श्री चैतन्य महाप्रभु के शुद्ध भक्त उन स्थानों के दर्शन भी करना चाहेंगे, जहाँ महाप्रभु कुछ घण्टों या मिनटों के लिए गये थे।

ये-ये-लीला प्रभु पथे कैला ये-ये-स्थाने ।

ताहा देखि प्रेमावेश हय सनातने ॥ 212 ॥

ये-ये-जो कुछ; लीला-लीलाएँ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पथे-मार्ग में; कैला-किये; ये-ये-स्थाने-जिस-जिस स्थान पर; ताहा–वे स्थान; देखि'–देखकर; प्रेम- आवेश-प्रेम भाव; हय-आ गया; सनातने–सनातन गोस्वामी में।

अनुवाद

जब भी सनातन गोस्वामी ऐसे किसी स्थान को देखते, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु ने मार्ग में अपनी लीलाएँ की थीं, तब वे तुरन्त ही प्रेमावेश से पूरित हो जाते।

एइ-मते सनातन वृन्दावने आइला ।

पाछे आसि' रूप-गोसाञि ताँहारे मिलिला ॥ 213॥

एइ-मते-इस प्रकार; सनातन-सनातन गोस्वामी; वृन्दावने आइला-वृन्दावन आ गये; पाछे आसि'-बाद में आकर; रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी; ताँहारे-उनसे; मिलिला-मिले।

अनुवाद

इस तरह सनातन गोस्वामी वृन्दावन पहुँचे। बाद में रूप गोस्वामी आये और उनसे मिले।

एक-वत्सर रूप-गोसाञिर गौड़े विलम्ब हैल ।

कुटुम्बेर 'स्थिति'-अर्थ विभाग करि' दिले ॥214॥

एक-वत्सर-एक वर्ष तक; रूप-गोसाञिर-श्रील रूप गोस्वामी का; गौड़े-बंगाल में; विलम्ब-देरी; हैल–हो गई थी; कुटुम्बेर-सम्बन्धियों की स्थिति-अर्थ-जीवनयापन के लिए सम्पत्ति; विभाग–विभाजन; करि'-करके; दिल-दिये।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी को बंगाल में एक वर्ष का विलम्ब हो गया, क्योंकि वे अपना धन अपने सम्बन्धियों को बाँट रहे थे और उन्हें उनकी समुचित स्थितियों में स्थापित कर रहे थे।

तात्पर्य

यद्यपि श्रील रूप गोस्वामी अपने पारिवारिक जीवन से विरक्त हो चुके थे, फिर भी वे अपने पारिवारिक सदस्यों के प्रति अन्यायी नहीं थे। संन्यास के बाद भी वे बंगाल लौटे, जहाँ उन्होंने अपने पास के धन का उचित रीति से विभाजन किया और उसे अपने सम्बन्धियों को दे दिया, जिससे उन्हें असुविधा न हो।

गौड़े ने अर्थ छिल, ताहा आनाइला ।

कुटुम्ब-ब्राह्मण-देवालये बाँटि' दिला ॥215॥

गौड़े-बंगाल में; ये-जो कुछ; अर्थ-धन; छिल-था; ताहा-वह; आनाइला-एकत्रित करके; कुटुम्ब–सम्बन्धियों को; ब्राह्मण-ब्राह्मणों को; देवालये–मन्दिरों में बाँटि' दिला-विभाजित किया और बाँटा।

अनुवाद

उन्होंने बंगाल में जो भी धन संग्रह किया था, उसे एकत्र किया और उसे अपने सम्बन्धियों, ब्राह्मणों तथा मन्दिरों में बाँट दिया।

सब मनः-कथा गोसाञि करि' निर्वाहण ।

निश्चिन्त हञा शीघ्र आइला वृन्दावन ॥216॥

सब-सब; मनः-कथा-योजनाएँ; गोसाञि-रूप गोस्वामी; करि' निर्वाहण-उचितप्रकार कार्यान्वित करके; निश्चिन्त हञा-सब चिन्ताओं से मुक्त होकर; शीघ्र आइला-बहुत जल्दी लौट गये; वृन्दावन-वृन्दावन॥

अनुवाद

इस तरह उनके मन में जितने कार्य थे, उन्हें सम्पन्न करके वे पूर्णतया तुष्ट होकर वृन्दावन लौट आये।

दुइ भाइ मिलि' वृन्दावने वास कैला ।

प्रभुर ये आज्ञा, दुँहे सब निर्वाहिला ॥217॥

दुइ भाइ–दोनों भाई; मिलि'—मिलकर; वृन्दावने-वृन्दावन में; वास कैला-वासकरने लगे; प्रभुर ये आज्ञा-जो भी श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश थे; हे-उन दोनों ने;सब-सभी; निर्वाहिला-पूरे किये।

अनुवाद

दोनों भाई वृन्दावन में मिले, जहाँ वे श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा को पूरी करने के लिए रहे।

तात्पर्य

श्रीचैतन्यमनोऽभीष्टं स्थापितं येन भूतले ।

स्वयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम् ॥

“श्रील रूप गोस्वामी प्रभुपाद कब मुझे अपने चरणकमलों में शरण देंगे, जिन्होंने भौतिक जगत् के अन्तर्गत श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा पूरी करने के लिए मिशन की स्थापना की है। पहले श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी नवाब हुसैन शाह की सरकार में मन्त्री थे और वे गृहस्थ भी थे, किन्तु बाद में गोस्वामी बन गये। अतएव गोस्वामी वह है, जो श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा पूरी करता है।”गोस्वामी” पद कोई पैतृक उपाधि नहीं है। यह उस व्यक्ति के लिए है, जिसने अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण पा लिया हो और जो अपना जीवन श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा के निर्वाह हेतु समर्पित कर दे। इसीलिए श्रील सनातन गोस्वामी तथा श्रील रूप गोस्वामी तब वास्तविक गोस्वामी बने, जब उन्होंने अपना जीवन महाप्रभु की सेवा के लिए समर्पित कर दिया।

नाना-शास्त्र आनि’ लुप्त-तीर्थ उद्धारिला ।

वृन्दावने कृष्ण-सेवा प्रकाश करिला ॥ 218॥

नाना-शास्त्र-अनेक प्रकार के ग्रन्थों को; आनि’-इकट्ठा करके; लुप्त-तीर्थ–पवित्र स्थानों के विलुप्त स्थल; उद्धारिला–खोजे; वृन्दावने-वृन्दावन में; कृष्ण-सेवा-भगवान् कृष्ण की प्रत्यक्ष सेवा; प्रकाश करिला–प्रकट करवाई।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी ने अनेक प्रामाणिक शास्त्र एकत्र किये और इन शास्त्रों के साक्ष्य के आधार पर समस्त लुप्त तीर्थस्थलों का पुनरुद्धार किया। इस तरह उन्होंने भगवान् कृष्ण की पूजा हेतु मन्दिरों की स्थापना की।

सनातन ग्रन्थ कैला ‘भागवतामृते’ ।

भक्त-भक्ति-कृष्ण-तत्त्व जानि याहा हैते ॥219॥

सनातन-सनातन गोस्वामी ने; ग्रन्थ-ग्रन्थों की; कैला-रचना की; भागवतामृते-बृहद् भागवतामृत में; भक्त-भक्त; भक्ति-भक्ति; कृष्ण-तत्त्व-परम सत्य, कृष्ण; जानि-हम जान सकें; याहा हैते–जिसके द्वारा।

अनुवाद

श्रील सनातन गोस्वामी ने बृहद्-भागवतामृत का संकलन किया। इस पुस्तक के द्वारा यह जाना जा सकता है कि कौन भक्त है, भक्ति की विधि क्या है और परम सत्य कृष्ण कौन हैं।

सिद्धान्त-सार ग्रन्थ कैला 'दशम-टिप्पनी'।

कृष्ण-लीला-रस-प्रेम याहा हैते जानि ॥ 220॥

सिद्धान्त-सार–परिपक्व सार; ग्रन्थ-ग्रन्थ; कैला-रचना की; दशम-टिप्पनी-दशम स्कन्ध पर टीका; कृष्ण-लीला-भगवान् कृष्ण की लीलाओं के; रस-दिव्य रसों का; प्रेम-प्रेम भाव; याहा हैते–जिसके द्वारा; जानि-हम समझ सकते हैं।

अनुवाद

श्रील सनातन गोस्वामी ने दशम स्कन्ध का भाष्य दशम टिप्पणी के नाम से लिखा, जिससे हम भगवान् कृष्ण की दिव्य लीलाओं तथा प्रेमावेश को समझ सकते हैं।

'हरि-भक्ति-विलास'-ग्रन्थ कैला वैष्णव-आचार।

वैष्णवेर कर्तव्य याहाँ पाइये पार ॥221॥

हरि-भक्ति-विलास- हरिभक्ति विलास नामक; ग्रन्थ-ग्रन्थ; कैला-संकलित किया;वैष्णव-आचार-एक वैष्णव का आदर्श व्यवहार; वैष्णवेर-एक भक्त का; कर्तव्य-कर्तव्य; याहाँ–जिसमें; पाइये पार-उच्चतम स्तर तक समझा जा सकता है।

अनुवाद

उन्होंने हरिभक्ति विलासका भी संकलन किया, जिससे हम भक्त के आदर्श आचरण को तथा वैष्णव के कर्तव्य की पूरी सीमा को समझ सकते हैं।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर लिखते हैं, "हरिभक्ति विलास मूलतः श्रील सनातन गोस्वामी द्वारा संकलित हुआ था। बाद में गोपाल भट्ट गोस्वामी ने इसका लघु संस्करण प्रस्तुत किया और उसमें दिग्दर्शिनी टीका जोड़ दी। हरिभक्ति विलास में सात्वत शास्त्रों से इतने उद्धरण हैं कि कभी-कभी पूछा जाता है कि किस तरह नास्तिक स्मार्तगण इन्हें स्वीकार करने से मना कर सकते हैं और उसके बदले अन्य मतों की कल्पना करते हैं। हरिभक्ति विलास में जो भी लिपिबद्ध हुआ है, वह पूरी तरह वैदिक शास्त्रों के अनुसार है और निश्चित रूप से शुद्ध है, किन्तु कर्मियों की सदैव प्रवृत्ति रहती है कि वे शुद्ध वैष्णव-ज्ञान के प्रमाणों की अवहेलना करते हैं। चूँकि कर्मीजन संसार तथा भौतिक कर्मों में अत्यधिक लिप्त रहते हैं, इसलिए वे वैष्णव-सिद्धान्तों के विरुद्ध नास्तिक सिद्धान्तों की स्थापना करने का प्रयास करते रहते हैं।"

आर यत ग्रन्थ कैला, ताहा के करे गणन ।

'मदन-गोपाल-गोविन्देर सेवा'-प्रकाशन ॥222॥

आर यत–अन्य सभी; ग्रन्थ-ग्रन्थ; कैला-संकलित किये; ताहा–वे; के करे गणन-कौन गिन सकता है; मदन-गोपाल–मदन गोपाल नामक विग्रह; गोविन्देर-श्री गोविन्द नामक विग्रह की; सेवा–सेवा; प्रकाशन प्रकट करना।

अनुवाद

श्रील सनातन गोस्वामी ने अन्य कई ग्रन्थ भी संकलित किये हैं। उनकी गणना कौन कर सकता है? इन ग्रन्थों का मूलभूत सिद्धान्त हम सबको यह बतलाना है कि मदनमोहन तथा गोविन्दजी से किस तरह प्रेम किया जाए।

तात्पर्य

भक्ति रत्नाकर में श्रील सनातन गोस्वामी की निम्नलिखित पुस्तकों का प्रसंग आया है-(1) बृहद्भागवतामृत, (2) हरिभक्ति विलास तथा इसकी टीका दिग्दर्शिनी, (3) लीलास्तव तथा (4) वैष्णव तोषणी, जो कि श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध की टीका है। सनातन गोस्वामी ने अनेकानेक पुस्तकें लिखीं। इन सबका उद्देश्य वृन्दावन के मुख्य अर्चाविग्रहों-

गोविन्द तथा मदनगोपाल की सेवा करने की विधि बतलाना था। बाद में धीरे-धीरे अन्य अर्चाविग्रह स्थापित किये गये और वृन्दावन का महत्त्व बढ़ा।

रूप-गोसाञि कैला 'रसामृत-सिन्धु' सार।

कृष्ण-भक्ति-रसेर याहाँ पाइये विस्तार ॥223॥

रूप-गोसाञि-श्रील रूप गोस्वामी ने; कैला-संकलित किया; रसामृत-सिन्धु- भक्तिरसामृतसिन्धु नामक ग्रन्थ; सार-प्रेममयी सेवा के ज्ञान का सार; कृष्ण-भक्ति-रसेर-कृष्ण की सेवा के दिव्य रसों का; याहाँ–जिसमें; पाइये-हम प्राप्त कर सकते हैं; विस्तार–विस्तृत।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने भी कई ग्रन्थ लिखे, जिनमें से सर्वाधिक विख्यात है भक्तिरसामृतसिन्धु। इस ग्रन्थ से कृष्ण-भक्ति के सार तथा ऐसी सेवा से प्राप्त होने वाले दिव्य रस को समझा जा सकता है।

'उज्ज्वल-नीलमणि'-नाम ग्रन्थ कैल आर।

राधा-कृष्ण-लीला-रस ताहाँ पाइये पार ॥224॥

उज्ज्वल-नीलमणि-उज्ज्वल नीलमणि; नाम-नामक; ग्रन्थ-शास्त्र; कैल-संकलितकिया; आर-भी; राधा-कृष्ण-लीला-रस-राधा और कृष्ण की लीलाओं के दिव्य रस;ताहाँ–उनमें; पाइये-हम प्राप्त करते हैं; पार-उच्चतम सीमा तक।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि नामक ग्रन्थ का भी संकलन किया, जिससे हम श्री श्रीराधाकृष्ण के प्रेम-व्यवहार की पराकाष्ठा को समझ सकते हैं।

'विदग्ध-माधव', 'ललित-माधव',—नाटक-मुगल।

कृष्ण-लीला-रस ताहाँ पाइये सकल ॥ 225॥

विदग्ध-माधव-विदग्ध माधव; ललित-माधव-ललित माधव; नाटक-युगल-दो नाटक; कृष्ण-लीला-रस-भगवान् कृष्ण की लीलाओं से प्राप्त रस; ताहाँ–उनमें; पाइये सकल-हम सब समझ सकते हैं।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने दो महत्त्वपूर्ण नाटक भी लिखे, जिनके नाम विदग्ध माधव तथा ललित माधव हैं, जिनसे कृष्ण की लीलाओं से प्राप्य समस्त रसों को समझा जा सकता है।

'दान-केलि-कौमुदी' आदि लक्ष-ग्रन्थ कैल।

सेइ सब ग्रन्थे व्रजेर रस विचारिल ॥226॥

दान-केलि-कौमुदी–दानकेलिकौमुदी नामक ग्रन्थ; आदि-आदि; लक्ष–एक लाख; ग्रन्थ-श्लोक; कैल-संकलित किये; सेइ-उन; सब-सभी; ग्रन्थे–ग्रन्थों में; व्रजेर-वृन्दावन के; रस विचारिल-दिव्य रसों का विस्तृत वर्णन किया।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने 'दानकेलिकौमुदी' ग्रन्थ से प्रारम्भ करके एक लाख श्लोकों की रचना की। इन शास्त्रों में उन्होंने वृन्दावन-लीलाओं के दिव्य रसों की विस्तार से व्याख्या की है।

तात्पर्य

लक्ष-ग्रन्थ ("एक लाख श्लोक") शब्दों के सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित समस्त श्लोकों की संख्या एक लाख (एक-लक्ष या लक्ष-ग्रन्थ) है। लिपिकार संस्कृत ग्रन्थों के श्लोकों तथा गद्यांशों-दोनों ही की गणना करते हैं। किसी को भूल से यह नहीं सोच लेना चाहिए कि श्रील रूप गोस्वामी ने एक लाख पुस्तकें लिखीं। वस्तुतः उन्होंने 16 पुस्तकें लिखीं, जैसाकि भक्ति रत्नाकर की प्रथम तरंग में उल्लेख आया है (श्रीरूपगोस्वामी ग्रन्थ षोडश करिल)।

ताँर लघु-भ्राता–श्री-वल्लभ-अनुपम।

ताँर पुत्र महा-पण्डित–जीव-गोसाञि नाम ॥227॥

ताँर–उनका; लघु-भ्राता–छोटा भाई; श्री-वल्लभ-अनुपम-श्री वल्लभ या अनुपम नामक; ताँर पुत्र-उसका पुत्र; महा-पण्डित-अत्यन्त विद्वान; जीव-गोसाञि-श्रील जीव गोस्वामी; नाम-नामक।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी के छोटे भाई श्री वल्लभ या अनुपम के पुत्र बहुत बड़े विद्वान थे, जिनका नाम श्रील जीव गोस्वामी था।

सर्व त्यजि' तेंहो पाछे आइला वृन्दावन ।

तेंह भक्ति-शास्त्र बहु कैला प्रचारण ॥228॥

सर्व त्यजि'–सब कुछ त्यागकर; तेंहो-वे (श्रील जीव गोस्वामी); पाछे-बाद में;आइला वृन्दावन-वृन्दावन आ गये; तेंह-उन्होंने; भक्ति-शास्त्र-भक्ति पर ग्रन्थ; बहु- अनेक; कैला-किया; प्रचारण–प्रचार।

अनुवाद

श्रील जीव गोस्वामी अपना सर्वस्व त्यागकर वृन्दावन आये। बाद में उन्होंने भी भक्ति विषयक अनेक पुस्तकें लिखीं और प्रचार-कार्य को बढ़ाया।

'भागवत-सन्दर्भ'-नाम कैल ग्रन्थ-सार ।

भागवत-सिद्धान्तेर ताहाँ पाइये पार ॥229॥

भागवत-सन्दर्भ- भागवत सन्दर्भ, जो षट् सन्दर्भ नाम से भी जाना जाता है; नाम-नामक; कैल-रचना किया; ग्रन्थ-सार-सभी शास्त्रों का सार; भागवत-सिद्धान्तेर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनकी सेवा के विषय में निर्णायक जानकारी; ताहाँ–उनमें; पाइये-हम प्राप्त करते हैं; पार-सीमा।

अनुवाद

श्रील जीव गोस्वामी ने विशेष रूप से भागवत सन्दर्भया षट् सन्दर्भ ग्रन्थ की रचना की, जो समस्त शास्त्रों का निचोड़ है। इस ग्रन्थ से भक्ति तथा भगवान् के विषय में निर्णायक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

‘गोपाल-चम्पू’ नाम ग्रन्थ सार कैल ।

व्रज-प्रेम-लीला-रस-सार देखाइल ॥ 230॥

गोपाल-चम्पू-गोपाल चम्पू; नाम-नामक; ग्रन्थ सार-सभी वैदिक साहित्य का सार; कैल-लिखा; व्रज-वृन्दावन के प्रेम-प्रेम की; लीला-लीलाओं का; रस-रसों का; सार-सार; देखाइल-दर्शाया।

अनुवाद

उन्होंने गोपाल चम्पू नामक ग्रन्थ भी लिखा, जो समस्त वैदिक साहित्य का सार है। इस ग्रन्थ में उन्होंने राधाकृष्ण के प्रेम के आदान-प्रदान तथा वृन्दावन-लीलाओं को प्रदर्शित किया है।

‘षट्सन्दर्भ’ कृष्ण-प्रेम-तत्त्व प्रकाशिल ।

चारि-लक्ष ग्रन्थ तेंहो विस्तार करिल ॥231॥

षट् सन्दर्भ-षट् सन्दर्भ में; कृष्ण-प्रेम-तत्त्व-कृष्ण के दिव्य प्रेम के विषयक तथ्य;प्रकाशिल-उन्होंने प्रकट किये; चारि-लक्ष ग्रन्थ-4,00,000 श्लोक; तेंहो–उन्होंने;विस्तार करिल-विस्तार किया।

अनुवाद

षट् सन्दर्भ में श्रील जीव गोस्वामी ने कृष्ण-प्रेम विषयक सत्य को प्रकट किया है। इस तरह उनके सारे ग्रन्थों का विस्तार चार लाख श्लोकों में हुआ है।

जीव-गोसाञि गौड़ हैते मथुरा चलिला ।

नित्यानन्द-प्रभु-ठाञि आज्ञा मागिला ॥ 232॥

जीव-गोसाञि-श्रीपाद जीव गोस्वामी; गौड़ हैते-बंगाल से; मथुरा चलिला-मथुरा चल दिये; नित्यानन्द-प्रभु-ठाञि-श्री नित्यानन्द प्रभु से; आज्ञा मागिला-उन्होंने अनुमति माँगी।

अनुवाद

जब जीव गोस्वामी की इच्छा बंगाल से मथुरा जाने की हुई, तो उन्होंने श्रील नित्यानन्द प्रभु से अनुमति माँगी।

प्रभु प्रीत्ये ताँर माथे धरिला चरण ।

रूप-सनातन-सम्बन्धे कैला आलिङ्गन ॥233॥

प्रभु प्रीत्ये-श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा के कारण; ताँर-उनके; माथे-मस्तक पर; धरिला चरण-अपने चरणकमल रख दिये; रूप-सनातन-सम्बन्धे-उनके रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से सम्बन्ध के कारण; कैला आलिङ्गन-आलिंगन किया।

अनुवाद

जीव गोस्वामी का रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से, जो कि श्री चैतन्य महाप्रभु के अति कृपापात्र थे, सम्बन्ध होने के कारण श्री नित्यानन्द प्रभु ने श्रील जीव गोस्वामी के सिर पर अपने चरण रखे और उनका आलिंगन किया।

आज्ञा दिला,–"शीघ्र तुमि याह वृन्दावने ।

तोमार वंशे प्रभु दियाछेन सेइ-स्थाने" ॥ 234॥

आज्ञा दिला-उन्होंने आदेश दिया; शीघ्र बहुत जल्दी; तुमि-तुम; याह-जाओ; वृन्दावने-वृन्दावन; तोमार-तुम्हारे; वंशे-कुल को प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभुने; दियाछेन–दिया है; सेइ-स्थाने-वह स्थान।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने आज्ञा दी, "हाँ, तुम शीघ्र वृन्दावन जाओ। वह स्थान श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुम्हारे परिवार को, तुम्हारे पिता तथा चाचाओं को दिया है, इसलिए तुम वहाँ शीघ्र जाओ।"

ताँर आज्ञाय आइला, आज्ञा-फल पाइला ।

शास्त्र करि' कत-काल 'भक्ति' प्रचारिला ॥235॥

ताँर आज्ञाय-उनके आदेश पर; आइला-आये; आज्ञा-फल-उनके आदेश का फल; पाइला–पाया; शास्त्र करि'-अनेक ग्रन्थों की रचना की; कत-काल-दीर्घकाल तक; भक्ति प्रचारिला-भक्ति (प्रेममयी सेवा) का प्रचार किया।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु की आज्ञा से वे वृन्दावन गये और सचमुच ही उन्होंने उनकी आज्ञा का फल प्राप्त किया, क्योंकि उन्होंने दीर्घकाल तक अनेक पुस्तकों की रचना की और वृन्दावन से भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार किया।

एइ तिन-गुरु, आर रघुनाथ-दास ।

इँहा-सबार चरण वन्दों, याँर मुजि 'दास' ॥236॥

एइ-ये; तिन-गुरु-तीन आध्यात्मिक गुरु; आर-और; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास गोस्वामी; इँहा-सबार-इन सभी के; चरण-चरणकमलों की; वन्दों-मैं वन्दना करता हूँ; याँर-जिनका; मुञि-मैं हूँ; दास-सेवक।

अनुवाद

रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी तथा जीव गोस्वामी-ये तीनों तथा रघुनाथ दास गोस्वामी भी उसी तरह से मेरे गुरु हैं। इसलिए मैं उनके चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, क्योंकि मैं उनका दास हूँ।

एइ त कहिलुँ पुनः सनातन-सङ्गमे ।

प्रभुर आशय जानि याहार श्रवणे ॥ 237॥

एइ त कहिलुँ–इस प्रकार मैंने वर्णन किया है; पुनः-फिर; सनातन-सङ्गमे-सनातन गोस्वामी से भेंट; प्रभुर आशय-श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा; जानि-मैं समझ सकता हूँ; याहार श्रवणे-जिसे सुनकर।

अनुवाद

इस तरह मैंने महाप्रभु की सनातन गोस्वामी से पुनः भेंट का वर्णन किया है। इसे सुनकर मैं महाप्रभु की इच्छा समझ सकता हूँ।

चैतन्य-चरित्र एइ–इक्षु-दण्ड-सम ।

चर्वण करिते हय रस-आस्वादन ॥ 238॥

चैतन्य-चरित्र-श्री चैतन्य महाप्रभु के गुण; एइ-ये; इक्षु-दण्ड-सम-गन्ने के समान;चर्वण करिते-चबाने पर; हय–होता है; रस-आस्वादन-रस का आस्वादन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के ये गुण गन्ने के समान हैं, जिससे इसे चूसने वाले को दिव्य रस का स्वाद मिलता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 239॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ–श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों में; ग्रार–जिसकी; आश-आशा है; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्रील रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए, सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए, मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्री चैतन्य-चरितामृत अन्त्य-लीला के अन्तर्गत "जगन्नाथ पुरी में चैतन्य महाप्रभु से सनातन गोस्वामी की भेंट" शीर्षक चतुर्थ अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय पाँच

प्रद्युम्न मिश्र का रामानन्द राय से उपदेश लेना

पाँचवे अध्याय का निम्नलिखित सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में दिया गया है। श्रीहट्ट का एक निवासी प्रद्युम्न मिश्र श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने कृष्ण तथा उनकी लीलाओं के विषय में सुनने के लिए उनके पास आया। किन्तु महाप्रभु ने उसे श्रील रामानन्द राय के पास भेज दिया। श्रील रामानन्द राय मन्दिर में देवदासी नृत्यांगनाओं को प्रशिक्षण दे रहे थे। जब प्रद्युम्न मिश्र ने यह सुना, तो वह श्री चैतन्य महाप्रभु के पास लौट आया। किन्तु महाप्रभु ने श्रील रामानन्द राय के चरित्र का विस्तार से वर्णन किया। तब प्रद्युम्न मिश्र रामानन्द राय से आध्यात्मिक सत्य के विषय में सुनने के लिए पुन: उनके पास गया।

बंगाल के एक ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों के विषय में एक नाटक की रचना की, जिसे महाप्रभु के संगियों को दिखाने के लिए वह जगन्नाथ पुरी गया। जब श्री चैतन्य महाप्रभु के सचिव स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने यह नाटक सुना, तो उन्हें इसमें मायावादी दर्शन की झलक मिली; अतः उन्होंने लेखक से इसकी ओर संकेत किया। यद्यपि स्वरूप दामोदर ने नान्दी श्लोक के गौण अर्थ के सन्दर्भ में पूरे नाटक की ही भत्र्सना की, फिर भी उन्होंने ब्राह्मण को तुष्ट कर दिया। इस तरह वह ब्राह्मण स्वरूप दामोदर गोस्वामी के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हुआ, उसने अपने पारिवारिक सम्बन्ध त्याग दिये और श्री चैतन्य महाप्रभु के संगियों के साथ जगन्नाथ पुरी में रहने लगा।

वैगुण्य-कीट-कलितः पैशुन्य-व्रण-पीड़ितः ।

दैन्यार्णवे निमग्नोऽहं चैतन्य-वैद्यमाश्रये ॥1॥

वैगुण्य-भौतिक कार्यकलापों के; कीट-कीड़ों द्वारा; कलितः-काटा हुआ; पैशुन्य ईर्ष्या के; व्रण-छालों द्वारा; पीड़ितः-पीड़ित; दैन्य-अर्णवे-विनम्रता के समुद्र में; निमग्नः-डूबा हुआ; अहम्-मैं; चैतन्य-वैद्यम्-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु नामक वैद्य की; आश्रये-शरण लेता हूँ।

अनुवाद

मैं भौतिक कर्म के कीटों से दंशित और द्वेष के फोड़ों से पीड़ित हैं। इसलिए दीनता के सागर में गिरकर मैं महान् वैद्य श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण ग्रहण करता हूँ।

जय जय शची-सुत श्री-कृष्ण-चैतन्य ।

जय जय कृपा-मय नित्यानन्द धन्य ॥2॥

जय जय-जय हो; शची-सुत-माता शची के पुत्र की; श्री-कृष्ण-चैतन्यश्री चैतन्य महाप्रभु; जय जय-जय हो; कृपा-मय-सबसे दयावान की; नित्यानन्द धन्य–महान् श्री नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

शची माता के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! निस्सन्देह, वे सर्वाधिक यशस्वी तथा कृपामय हैं।

जयाद्वैत कृपा-सिन्धु जय भक्त-गण ।

जय स्वरूप, गदाधर, रूप, सनातन ॥3॥

जय अद्वैत-अद्वैत प्रभु की जय हो; कृपा-सिन्धु–दया के सागर; जय भक्त-गण-भक्तों की जय हो; जय स्वरूप-स्वरूप दामोदर की जय हो; गदाधर-गदाधर पण्डित; रूप रूप गोस्वामी; सनातन-सनातन गोस्वामी।

अनुवाद

मैं कृपा के सागर अद्वैत प्रभु को तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी, गदाधर पण्डित, श्री रूप गोस्वामी तथा श्री सनातन गोस्वामी जैसे समस्त भक्तों को सादर नमस्कार करता हूँ।

एक-दिन प्रद्युम्न-मिश्र प्रभुर चरणे।

दण्डवत् करि' किछु करे निवेदने ॥4॥

एक-दिन-एक दिन; प्रद्युम्न-मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र नाम का एक भक्त; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में; दण्डवत् करि'–प्रणाम करके; किछु-कुछ; करे निवेदने निवेदन करने लगा।

अनुवाद

एक दिन प्रद्युम्न मिश्र नाम का एक भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आया और उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके अत्यन्त विनीत भाव से कुछ निवेदन करने लगा।

शुन, प्रभु, मुजि दीन गृहस्थ अधम!।

कोन भाग्ये पाञाछों तोमार दुर्लभ चरण ॥5॥

शुन-कृपया सुनिए; प्रभु-मेरे प्रभु, मुत्रि-मैं; दीन-अत्यन्त पतित; गृहस्थ-गृहस्थ; अधम-मनुष्यों में नीच; कोन भाग्ये-किसी सौभाग्य के कारण; पाञाछों-मुझे मिले हैं; तोमार-आपके; दुर्लभ-अत्यन्त दुर्लभ; चरण-चरणकमल।

अनुवाद

उसने कहा, "हे प्रभु, कृपया मेरी बात सुनें। मैं मनुष्यों में सबसे नीच, कृपण गृहस्थ हूँ, किन्तु अपने सौभाग्य से मैंने किसी तरह आपके दुर्लभ चरणकमलों की शरण प्राप्त की है।"

कृष्ण-कथा शुनिबारे मोर इच्छा हय।

कृष्ण-कथा कह मोरे हञा सदय ॥6॥

कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण विषयक कथाएँ; शुनिबारे-सुनने की; मोर-मेरी; इच्छा-इच्छा; हय-है; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण के विषय में कथाएँ; कह-कृपया कहिये; मोरे-मुझसे; हञा-होकर; स-दय-कृपालु।

अनुवाद

"मैं निरन्तर कृष्ण विषयक कथाएँ सुनना चाहता हूँ। कृपया मेरे ऊपर दयालु होइए और मुझे कृष्ण के विषय में कुछ बतलाइये।"

प्रभु कहेन,–"कृष्ण-कथा आमि नाहि जानि ।

सबे रामानन्द जाने, ताँर मुखे शुनि" ॥7॥

प्रभु कहेन–महाप्रभु ने उत्तर दिया; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्णं विषयक कथाएँ; आमि-मैं; नाहि जानि-नहीं जानता; सबे-केवल; रामानन्द जाने-रामानन्द राय जानते हैं; ताँर मुखे-उनके मुख से; शुनि–मैं सुनता हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं कृष्ण विषयक कथाएँ नहीं जानता। मेरे विचार से एकमात्र रामानन्द राय उन्हें जानते हैं, क्योंकि मैं उन्हीं से ये कथाएँ सुनता हूँ।"

भाग्ये तोमार कृष्ण-कथा शुनिते हय मन ।

रामानन्द-पाश याइ' करह श्रवण ॥8॥

भाग्ये-सौभाग्य से; तोमार-तुम्हारा; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण विषयक कथाएँ; शुनिते-सुनने के लिए; हय मन–रुचि हुई है; रामानन्द-पाश-रामानन्द राय के पास; याइ'–जाकर; करह श्रवण-सुनो।

अनुवाद

यह तो तुम्हारा सौभाग्य है कि कृष्ण विषयक कथाएँ सुनने के लिए तुम्हारी रुचि हुई है। तुम्हारे लिए सबसे अच्छा यही होगा कि तुम रामानन्द राय के पास जाओ और उनसे इन कथाओं के विषय में सुनो।

कृष्ण-कथाय रुचि तोमार—बड़ भाग्यवान् ।

यार कृष्ण-कथाय रुचि, सेइ भाग्यवान् ॥9॥

कृष्ण-कथाय-कृष्ण की कथाओं में; रुचि-रस; तोमार तुम्हारा; बड़ भाग्यवान्-अत्यन्त भाग्यशाली; यार-जिसका; कृष्ण-कथाय-कृष्ण के बारे में सुनने में; रुचि-रस है; सेइ भाग्यवान्-वह अत्यन्त भाग्यशाली है।

अनुवाद

मैं देख रहा हूँ कि तुममें कृष्ण विषयक कथा सुनने के प्रति रुचि उत्पन्न हुई है। इसलिए तुम अत्यन्त भाग्यशाली हो। न केवल तुमने, अपितु जिस किसी ने ऐसी रुचि उत्पन्न कर ली है, वही परम भाग्यशाली माना जाता है।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन-कथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥10॥

धर्मः-वर्ण तथा आश्रम के विधानों का पालन; सु-अनुष्ठितः-उचित प्रकार से आचरित; पुंसाम्-लोगों के; विष्वक्सेन-कथासु-विष्वक्सेन अथवा कृष्ण की कथाओं में;यः-जो; न-नहीं; उत्पादयेत् उत्पन्न करते; यदि-यदि; तिम्-रुचि; श्रमः-परिश्रम; एव–निःसन्देह; हि-अवश्य; केवलम् केवल।

अनुवाद

"जो व्यक्ति वर्णाश्रम प्रणाली के अनुसार विधि-विधानों को उचित रीति से सम्पन्न करता है, किन्तु कृष्ण के प्रति सुप्त अनुराग को विकसित नहीं करता अथवा कृष्ण के विषय में सुनने तथा कीर्तन करने के प्रति रुचि उत्पन्न नहीं करता, वह व्यर्थ ही श्रम करता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.2.8) से उधृत है।

तबे प्रद्युम्न-मिश्र गेला रामानन्देर स्थाने ।

रायेर सेवक तौरे वसाइल आसने ॥11॥

तबे-उसके बाद; प्रद्युम्न-मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; गेला-गया; रामानन्देर स्थाने-रामानन्द राय के स्थान पर; रायेर सेवक-रामानन्द राय के सेवक ने; तौरे–उसे; वसाइल आसने-बैठने का आसन दिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के द्वारा इस प्रकार मन्त्रणा दिये जाने पर प्रद्युम्न मिश्र रामानन्द राय के घर गया। वहाँ उनके नौकर ने उसे बैठने के लिए समुचित आसन दिया।

दर्शन ना पाञा मिश्र सेवके पुछिल ।

रायेर वृत्तान्त सेवक कहिते लागिल ॥12॥

दर्शन-दर्शन; ना-नहीं; पाञा–पाकर; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; सेवके-सेवक से; पुछिल–पूछा; रायेर-रामानन्द राय के; वृत्तान्त–कार्यकलाप; सेवक-नौकर; कहते लागिल-बताने लगा।

अनुवाद

रामानन्द राय का तुरन्त दर्शन न पाकर प्रद्युम्न मिश्र ने नौकर से पूछताछ की, जिसने श्री रामानन्द राय की कार्य-व्यस्तता के सम्बन्ध में बताया।

दुइ देव-कन्या हय परम-सुन्दरी ।

नृत्य-गीते सुनिपुणा, वयसे किशोरी ॥13॥

दुइ-दो; देव-कन्या-नृत्य करनेवाली कन्याएँ; हय-हैं; परम-सुन्दरी-अत्यन्त सुन्दर; नृत्य-गीते-नाचने और गाने में; सु-निपुणा-अत्यन्त निपुण; वयसे-आयु में; किशोरी-अत्यन्त युवती।

अनुवाद

"दो नर्तकी कन्याएँ हैं, जो अतीव सुन्दर हैं। वे अत्यन्त तरुणावस्था में हैं और नाचने-गाने में अति दक्ष हैं।"

सेइ दुँहे लञा राय निभृत उद्याने ।

निज-नाटक-गीतेर शिखाय नर्तने ॥14॥

सेइ दुँहे-उन दोनों को; लञा–लेकर; राय-रामानन्द राय; निभृत उद्याने-एक बगीचे में एकान्त स्थान में; निज-नाटक-स्व-लिखित नाटक के; गीतेर-गीतों पर; शिखाय-निर्देश देते हैं; नर्तने–नृत्य में।

अनुवाद

"श्रील रामानन्द राय इन दोनों कन्याओं को अपने उद्यान के एकान्त स्थान में ले गये हैं, जहाँ वे स्वरचित नाटक के लिए लिखे गये गीतों के अनुसार उन्हें नृत्य का प्रशिक्षण दे रहे हैं तथा निर्देशन कर रहे हैं।"

तात्पर्य

जिस नाटक का अभ्यास रामानन्द राय तथा दो तरुणियाँ कर रही थीं, वह सुविख्यात जगन्नाथ वल्लभ नाटक था। ये गीत तथा नृत्य भगवान जगन्नाथ की प्रसन्नता के लिए थे, अतएव रामानन्द राय स्वयं ही प्रशिक्षण दे रहे थे कि नाटक के लिए कैसे नाचा-गाया जाए।

तुमि इहाँ वसि' रह, क्षणेके आसिबेन ।

तबे येइ आज्ञा देह, सेइ करिबेन ॥15॥

तुमि-आप; इहाँ–यहाँ; वसि'–बैठकर, रह-प्रतीक्षा कीजिए; क्षणेके आसिबेन- वह किसी भी क्षण आ जायेंगे; तबे-तब; येइ-जो कुछ; आज्ञा-आदेश; देह-आप देंगे;सेइ-वह; करिबेन–करेंगे।

अनुवाद

"कृपया यहाँ बैठ जायें और कुछ क्षणों तक प्रतीक्षा करें। उनके आते ही आप जो आदेश देंगे वे करेंगे।"

तबे प्रद्युम्न-मिश्र ताहाँ रहिल वसिया ।

रामानन्द निभृते सेइ दुइ-जन लञा ॥16॥

तबे-तब; प्रद्युम्न-मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; ताहाँ-वहाँ; रहिल वसिया-बैठे रहे; रामानन्द-रामानन्द राय; निभृते-एक एकान्त स्थान में; सेइ-वे; दुइ-जन-दोनों कन्याओं को; लञा–लेकर।

अनुवाद

जब प्रद्युम्न मिश्र वहाँ बैठा हुआ था, तब रामानन्द राय दो कन्याओं को एकान्त स्थान में ले गये।

स्व-हस्ते करेन तार अभ्यङ्ग-मर्दन ।

स्व-हस्ते कराने स्नान, गात्र सम्मार्जन ॥17॥

स्व-हस्ते-अपने हाथों से; करेन-करते हैं; तार-उन दोनों कन्याओं के; अभ्यङ्ग-मर्दन–शरीर की तेल से मालिश; स्व-हस्ते-अपने हाथों से; करान स्नान-स्नान करवाते हैं; गात्र सम्मार्जन-सम्पूर्ण शरीर का मार्जन।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने अपने हाथों से उनके शरीर में तेल से मालिश की और जल से स्नान कराया। निस्सन्देह, रामानन्द राय ने अपने हाथों से उनके सारे शरीर को साफ किया।

स्व-हस्ते परान वस्त्र, सर्वाङ्ग मण्डन ।

तबु निर्विकार राय-रामानन्देर मन ॥18॥

स्व-हस्ते-अपने हाथों से; परान वस्त्र-उन्हें वस्त्र पहनाते हैं; सर्वाङ्ग मण्डन–सम्पूर्ण शरीर को सजाना; तबु-फिर भी; निर्विकार-अविचलित; राय-रामानन्देर-रामानन्द राय के; मन–मनोभाव।

अनुवाद

यद्यपि उन्होंने दोनों तरुणियों को वस्त्र पहनाए तथा उनके शरीरों को अपने हाथ से सजाया, किन्तु वे निर्विकार रहे। ऐसा है श्री रामानन्द राय का मन।

काष्ठ-पाषाण-स्पर्शे हय यैछे भाव ।

तरुणी-स्पर्शे रामानन्देर तैछे 'स्वभाव' ॥19॥

काष्ठ-लकड़ी; पाषाण-पत्थर; स्पर्श-स्पर्श द्वारा; हय–होती है; यैछे-जैसी;भाव-मानसिक स्थिति; तरुणी-स्पर्शे–युवती कन्याओं के स्पर्श द्वारा; रामानन्देर-रामानन्द राय का; तैछे-वैसा ही; स्वभाव-स्वभाव रहा।

अनुवाद

उन तरुणियों का स्पर्श करते समय वे काठ या पत्थर का स्पर्श करने वाले व्यक्ति के समान थे, क्योंकि उनका शरीर तथा मन दोनों अप्रभावित थे।

सेव्य-बुद्धि आरोपिया करेन सेवन ।

स्वाभाविक दासी-भाव करेन आरोपण ॥20॥

सेव्य-बुद्धि आरोपिया-पूजनीय मानकर; करेन सेवन–सेवा में नियोजित करते हैं; स्वाभाविक-अपनी स्वाभाविक स्थिति द्वारा; दासी-भाव-एक दासी के रूप में; करेन आरोपण-मानते हैं।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ऐसा इसलिए करते थे, क्योंकि वे अपने आपको अपनी स्वाभाविक स्थिति में गोपियों की दासी के रूप में मानते थे। इस तरह यद्यपि वे बाहर से पुरुष प्रतीत होते थे, किन्तु अन्त:करण से अपनी मूल आध्यात्मिक स्थिति में वे अपने आपको दासी रूप में और दोनों कन्याओं को गोपियाँ मानते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में लिखते हैं, " श्रील रामानन्द राय ने जगन्नाथ वल्लभ नाटक की रचना की और इस नाटक के भावों के प्रदर्शनार्थ उन्होंने दो पेशेवर नर्तकियाँ तथा गायिकाएँ लगा रखी थीं। ऐसी लड़कियाँ जो देवदासी कहलाती हैं, आज भी जगन्नाथ मन्दिर में लगाई जाती हैं, जहाँ वे माहारी कहलाती हैं। श्री रामानन्द राय ने ऐसी दो कन्याएँ लगा रखी थीं और चूँकि उन्हें गोपियों का अभिनय करना था, अतएव वे उन्हें इसकी शिक्षा देते थे कि किस तरह गोपियों के विचार जागृत किये जाँय। चूँकि गोपियाँ पूज्य हैं, अतएव रामानन्द राय, जो कि उन कन्याओं को गोपियाँ तथा स्वयं को उनकी दासी मानते थे, स्वयं ही उनके शरीर को पूरी तरह स्वच्छ रखने के लिए तेल की मालिश करते थे। चूँकि रामानन्द राय सदैव गोपियों की दासी का पद स्वीकार करते थे, अतएव इन कन्याओं के साथ उनका पूर्वाभ्यास वास्तव में आध्यात्मिक स्तर पर होता था।"

चूँकि रामानन्द राय द्वारा उन कन्याओं की सेवा करते समय निजी इन्द्रियतृप्ति का कोई प्रश्न नहीं था, अतएव उनका मन स्थिर था तथा उनका शरीर निर्विकार था। इसकी न तो किसी को नकल करनी चाहिए, न ही रामानन्द राय के

अतिरिक्त किसी में ऐसी मनोवृत्ति सम्भव है, जैसाकि आगे श्री चैतन्य महाप्रभु बतलाएंगे। रामानन्द राय का दृष्टान्त सचमुच ही अनोखा है। श्रीचैतन्य-चरितामृत के रचियता ने यह वर्णन इसलिए दिया है, क्योंकि पूर्ण भक्ति में ऐसी स्थिति प्राप्त की जा सकती है। तो भी, इस विषय को गम्भीरता से समझे जाने की आवश्यकता है और कभी भी ऐसे कार्यों की नकल करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

महाप्रभुर भक्त-गणेर दुर्गम महिमा ।

ताहे रामानन्देर भाव-भक्ति-प्रेम-सीमा ॥21॥

महाप्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गणेर-भक्तों की; दुर्गम-समझनाकठिन है; महिमा-महानता; ताहे-उस सम्बन्ध में; रामानन्देर-श्री रामानन्द राय की;भाव-भक्ति-प्रेम भक्ति के प्रेम-सीमा-कृष्ण-प्रेम की सीमा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की महानता को समझ पाना अत्यधिक कठिन है। इन सबमें श्री रामानन्द राय अनोखे हैं, क्योंकि उन्होंने यह दिखला दिया कि कोई अपने प्रेमावेश (भाव-प्रेम) को किस तरह चरम सीमा (पराकाष्ठा) तक पहुँचा सकता है।

तबे सेइ दुइ-जने नृत्य शिखाइला ।

गीतेर गूढ़ अर्थ अभिनय कराइला ॥22॥

तबे-उसके बाद; सेइ-वे; दुइ-जने–उन दोनों युवा कन्याओं को; नृत्य शिखाइला-नृत्य करना सिखाया; गीतेर-गीतों का; गूढ़ अर्थ-गहरा अर्थ; अभिनय कराइला–अभिनय द्वारा प्रदर्शित करना सिखाया।

अनुवाद

रामानन्द राय ने दोनों लड़कियों को नाचने तथा नाटकीय अभिनयों द्वारा उनके गीतों के गूढ़ अर्थ को व्यक्त करने का निर्देशन दिया।

सञ्चारी, सात्त्विक, स्थायि-भावेर लक्षण ।

मुखे नेत्रे अभिनय करे प्रकटन ॥23॥

सञ्चारी-कुछ समय तक प्रकट होने वाले; सात्त्विक–स्वाभाविक; स्थायि–निरन्तर रहने वाले; भावेर-भावों के लक्षण-लक्षण; मुखे-चेहरे के हावभावों में; नेत्रे-आँखो की गति में; अभिनय-नाटकीय, अभिनय; करे प्रकटन-करके दिखाया।

अनुवाद

उन्होंने उन दोनों को संचारी, सात्त्विक तथा स्थायी भावों के लक्षणों को मुख, नेत्र तथा शरीर के अन्य भागों की गतियों द्वारा व्यक्त करना सिखाया।

भाव-प्रकटन-लास्य राय ये शिखाय ।

जगन्नाथेर आगे दुँहे प्रकट देखाय ॥24॥

भाव-भाव; प्रकटन–प्रकट करना; लास्य-स्त्री सुलभ मुद्राएँ और नृत्य; राय- रामानन्द राय; ग्रे–जो; शिखाय–सिखा रहे थे; जगन्नाथेर आगे-भगवान जगन्नाथ के समक्ष; दुँहे-उन दोनों ने; प्रकट देखाय-प्रदर्शित किये।

अनुवाद

स्त्री सुलभ नृत्य भंगिमाओं के माध्यम से रामानन्द राय द्वारा प्रशिक्षित दोनों तरुणियों ने इन भावाभिव्यक्तियों को भगवान् जगन्नाथ के समक्ष हूबहू प्रदर्शित किया।

तबे सेइ दुइ-जने प्रसाद खाओयाइला ।

निभृते दुँहारे निज-घरे पाठाइला ॥ 25 ॥

तबे-फिर; सेइ-उन दोनों को; दुइ-जने-दोनों कन्याओं को प्रसाद खाओयाइला–प्रसाद खिलाया; निभृते-गुप्त रूप से; दुँहारे-उन दोनों को; निज-घरे-उनके घर; पाठाइला–भेज दिया।

अनुवाद

तब रामानन्द राय ने दोनों तरुणियों को प्रचुर प्रसाद खिलाया और किसी को प्रकट किये बिना उन दोनों को उनके घर भेज दिया।

प्रति-दिन राय ऐछे कराय साधन ।

को जाने क्षुद्र जीव काँहा ताँर मन? ॥ 26॥

प्रति-दिन-रोज; राय-रामानन्द राय; ऐछे-इस प्रकार; कराय साधन–नियमित रूप से प्रशिक्षण देते; को जाने-कौन जान सकता है; क्षुद्र जीव-एक तुच्छ जीव; काँहा-कहाँ; ताँर-उनका; मन–मनोभाव।

अनुवाद

प्रतिदिन वे उन दोनों देवदासियों को नृत्य सिखाते। जिन क्षुद्र जीवों के मन सदैव भौतिक इन्द्रियतृप्ति में लीन रहते हों, भला उनमें से ऐसा कौन होगा, जो श्री रामानन्द राय के मनोभाव को समझ सकता था?

तात्पर्य

कृष्ण की तुष्टि के लिए रामानन्द राय द्वारा गोपियों की सेवा पूर्णतया आध्यात्मिक जगत् का व्यवहार है। आध्यात्मिक परिवेश में पूर्णरूपेण रहे बिना रामानन्द राय के कार्यों को समझ पाना अत्यन्त कठिन है।

मिश्रेर आगमन राये सेवक कहिला ।

शीघ्र रामानन्द तबे सभाते आइला ॥ 27॥

मिश्रेर–प्रद्युम्न मिश्र का; आगमन-आगमन; राये-रामानन्द राय को; सेवक कहिला-सेवक ने बताया; शीघ्र-अति शीघ्र; रामानन्द-रामानन्द राय; तबे-उसके बाद;सभाते आइला–सभाकक्ष में गये।

अनुवाद

जब नौकर ने रामानन्द राय को प्रद्युम्न मिश्र के आगमन की सूचना दी, तो वे तुरन्त ही सभाकक्ष गये।

मिश्रेरे नमस्कार करे सम्मान करिया ।

निवेदन करे किछु विनीत हञा ॥28॥

मिश्रेरे-प्रद्युम्न मिश्र को; नमस्कार करे-प्रणाम करके; सम्मान करिया-आदरपूर्वक;निवेदन करे–निवेदन किया; किछु-कुछ; विनीत हञा–अत्यन्त विनम्रतापूर्वक।

अनुवाद

उन्होंने प्रद्युम्न मिश्र को सादर नमस्कार किया और तब अत्यन्त विनीत होकर इस प्रकार कहा।

बहु-क्षण आइला, मोरे केह ना कहिल ।

तोमार चरणे मोर अपराध हइल ॥29॥

बहु-क्षण-बहुत पहले से; आइला–आप आये; मोरे-मुझे; केह ना कहिल–किसी ने सूचना नहीं दी; तोमार चरणे-आपके चरणकमलों में; मोर-मेरा; अपराध-अपराध; हइल-हो गया।

अनुवाद

“हे महोदय, आप काफी समय पहले यहाँ आये, किन्तु किसी ने मुझे सूचित नहीं किया। इसलिए मैं निश्चित रूप से आपके चरणकमलों पर अपराधी हूँ।”

तोमार आगमने मोर पवित्र हैल घर ।

आज्ञा कर, क्या करें तोमार किङ्कर ॥30॥

तोमार आगमने-आपके आगमन के कारण; मोर-मेरा; पवित्र-पवित्र; हैल-हो गया; घर-घर; आज्ञा कर-कृपया आदेश दीजिए; क्या करों-मैं क्या कर सकता हूँ; तोमार किङ्कर-मैं आपका सेवक हूँ।

अनुवाद

“आपके आने से मेरा सम्पूर्ण घर पवित्र हो गया है। कृपया मुझे आदेश दें। मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ? मैं आपका सेवक हूँ।”

मिश्र कहे,–"तोमा देखिते हैल आगमने ।

आपना पवित्र कैलुँ तोमार दरशने" ॥31॥

मिश्र कहे-प्रद्युम्न मिश्र ने उत्तर दिया; तोमा-आपको; देखते-मिलने के लिए;हैल आगमने-मैं आया था; आपना-मैं स्वयं; पवित्र कैलुँ–पवित्र हो गया हूँ; तोमार दरशने-आपके दर्शन द्वारा।

अनुवाद

प्रद्युम्न मिश्र ने उत्तर दिया, "मैं तो केवल आपका दर्शन करने आया था। अब मैंने आपका दर्शन करके अपने आपको पवित्र कर लिया है।"

अतिकाल देखि मिश्र किछु ना कहिल ।

विदाय हइया मिश्र निज-घर गेल ॥32॥

अतिकाल देखि'–देर होते देख; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; किछु-कुछ; ना कहिल–नहीं बोले; विदाय हइया–विदा होकर; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; निज-घर-अपने घर; गेल-लौट गया।

अनुवाद

यह देखकर कि काफी देर हो चुकी है, उसने रामानन्द राय से कुछ भी नहीं कहा। प्रत्युत उसने विदा ली और अपने घर लौट गया।

आर दिन मिश्र आइल प्रभु-विद्यमाने ।

प्रभु कहे,—'कृष्ण-कथा शुनिला राय-स्थाने'? ॥33॥

आर दिन-अगले दिन; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; आइल-आया; प्रभु-विद्यमाने-श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा; कृष्ण-कथा-कृष्ण की चर्चा; शुनिला-क्या तुमने सुनीं; राय-स्थाने-श्री रामानन्द राय से।

अनुवाद

अगले दिन जब प्रद्युम्न मिश्र श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में आया, तो महाप्रभु ने पूछा, "क्या तुमने श्री रामानन्द राय से कृष्ण के विषय में कथाएँ सुनीं?"

तबे मिश्र रामानन्देर वृत्तान्त कहिला ।

शुनि' महाप्रभु तबे कहिते लागिला ॥34॥

तबे-उसके बाद; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; रामानन्देर-श्री रामानन्द राय के; वृत्तान्त कहिला–कार्यकलापों का वर्णन किया; शुनि–सुनकर; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभुः तबे-तब; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

तब प्रद्युम्न मिश्र ने श्री रामानन्द राय के कार्यकलापों का वर्णन किया। इन्हें सुनने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु बोलने लगे।

आमि त' सन्यासी, आपनारे विरक्त करि' मानि ।

दर्शन रहु दूरे, 'प्रकृतिर' नाम यदि शुनि ॥ 35॥

तबहिं विकार पाय मोर तनु-मन ।

प्रकृति-दर्शने स्थिर हय को जन? ॥ 36॥

आमि-मैं; त'–तो; सन्यासी-एक संन्यासी; आपनारे-स्वयं को; विरक्त करि'- सर्वस्व त्याग दिया; मानि–मैं मानता हूँ; दर्शन रहु दूरे-देखना तो दूर की बात; प्रकृतिर-स्त्री का नाम-नाम; यदि-यदि; शुनि–मैं सुनता हूँ; तबहिं–तुरन्त; विकार-विकार; पाय-प्राप्त करता है; मोर-मेरा; तनु-मन-मन और शरीर; प्रकृति-दर्शने–एक स्त्री को देखकर; स्थिर-धीर; हय-हो; को जन-कौन व्यक्ति।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "मैं एक संन्यासी हूँ और मैं निश्चित रूप से अपने आपको विरक्त मानता हूँ। किन्तु स्त्री को देखने की बात तो दूर रही, यदि मैं स्त्री का नाम भी सुनता हूँ, तो मैं अपने तन तथा मन में विकार का अनुभव करता हूँ। इसलिए स्त्री के दर्शन से कौन अविचलित रह सकता है? यह बहुत कठिन है।"

रामानन्द रायेर कथा शुन, सर्व-जन ।

कहिबार कथा नहे, याहा आश्चर्य-कथन ॥ 37॥

रामानन्द रायेर–श्री रामानन्द राय के; कथा-विषय; शुन-कृपया सुनो; सर्व-जन-सभी लोग; कहिबार-कहने की; कथा-बातें; नहे-वे नहीं हैं; याहा–जो; आश्चर्य-कथन-आश्चर्यजनक और अद्भुत बातें।

अनुवाद

सभी लोग कृपया रामानन्द राय के विषय में इन बातों को सुनो; यद्यपि वे इतनी अद्भुत तथा असामान्य हैं कि उन्हें कहा नहीं जाना चाहिए।

एके देव-दासी, आर सुन्दरी तरुणी ।

तार सब अङ्ग-सेवा करेन आपनि ॥38॥

एके-एक ओर; देव-दासी-नर्तकी कन्याएँ; आर-और; सुन्दरी तरुणी-अत्यन्त सुन्दरी तथा युवतियाँ; तार-उनके; सब-सभी; अङ्ग–अंगों की; सेवा–सेवा; करेन आपनि–स्वयं करते हैं।

अनुवाद

"दोनों पेशेवर नर्तकियाँ सुन्दरी तथा तरुणियाँ हैं, फिर भी श्री रामानन्द राय उनके शरीरों में अपने हाथ से तेल की मालिश करते हैं।"

स्नानादि कराय, पराय वास-विभूषण ।

गुह्य अङ्गेर हय ताहा दर्शन-स्पर्शन ॥39॥

स्नान-आदि कराय-वे उन्हें स्नानादि करवाते हैं; पराय वास-विभूषण-वस्त्र पहनाते हैं तथा उनके शरीर को अनेक प्रकार के आभूषणों से सजाते हैं; गुह्य अङ्गेर-शरीर के गुप्त अंगों का; हय-होता है; ताहा-वह; दर्शन-स्पर्शन-देखना और स्पर्श।

अनुवाद

वे स्वयं ही उन्हें नहलाते हैं और आभूषणों से विभूषित करते हैं। इस तरह वे स्वाभाविक रूप से उनके शरीरों के गुप्तांगों को देखते तथा छूते हैं।

तबु निर्विकार राय-रामानन्देर मन।

नाना-भावोद्गार तारे कराय शिक्षण ॥40॥

तबु-फिर भी; निर्विकार-अविचलित; राय-रामानन्देर मन-श्री रामानन्द राय का मन; नाना-भाव-उद्गार-भक्ति भाव के सभी लक्षण और परिवर्तन; तारे-उनको; कराय शिक्षण-वे सिखाते हैं।

अनुवाद

"तो भी, रामानन्द राय के मन में कभी विकार नहीं आता, यद्यपि वे उन कन्याओं को यह सिखाते हैं कि भाव के सारे लक्षणों को शरीर द्वारा किस तरह व्यक्त किया जाए।"

निर्विकार देह-मन—काष्ठ-पाषाण-सम!।

आश्चर्य,—तरुणी-स्पर्शे निर्विकार मन ॥41॥

निर्विकार-निर्विकार; देह-मन–शरीर तथा मन; काष्ठ-पाषाण-सम-लकड़ी और पत्थर के समान; आश्चर्य-आश्चर्यजनक; तरुणी-स्पर्श-युवा कन्याओं को स्पर्श करने पर; निर्विकार-अविकृत; मन–मन।

अनुवाद

"उनका मन काठ या पत्थर की तरह स्थिर है। निस्सन्देह, यह आश्चर्यजनक है कि जब वे ऐसी तरुणियों का स्पर्श करते हैं, तो भी उनका मन कभी चलायमान नहीं होता।"

एक रामानन्देर हय एइ अधिकार ।

ताते जानि अप्राकृत-देह ताँहार ॥42॥

एक–केवल एक; रामानन्देर-श्री रामानन्द राय का; हय-है; एइ–यह; अधिकार-विशेष अधिकार; ताते-उस प्रकार; जानि-हम समझ सकते हैं; अप्राकृत-आध्यात्मिक; देह-देह; ताँहार-उनकी।

अनुवाद

"ऐसे कार्यों पर एकमात्र रामानन्द राय का जन्मसिद्ध अधिकार है, क्योंकि मैं समझ सकता हूँ कि उनका शरीर भौतिक नहीं, अपितु पूरी तरह आध्यात्मिक हो चुका है।"

ताँहार मनेर भाव तेंह जाने मात्र ।

ताहा जानिबारे आर द्वितीय नाहि पात्र ॥43॥

ताँहार-उनके; मनेर-मन की; भाव-स्थिति; तेंह-वे; जाने-जानते हैं; मात्र-केवल; ताहा जानिबारे-उसे समझने के लिए; आर-अन्य; द्वितीय-दूसरा; नाहि-नहीं है; पात्र-योग्य व्यक्ति।

अनुवाद

"एकमात्र वे ही अपने मन की स्थिति को समझ सकते हैं, अन्य कोई नहीं।"

किन्तु शास्त्र-दृष्ट्ये एक करि अनुमान ।

श्री-भागवत-शास्त्र—ताहाते प्रमाण ॥44॥

किन्तु–लेकिन; शास्त्र-दृष्ट्ये-शास्त्रों के निर्देशानुसार; एक-एक; करि अनुमान- मैं अनुमान करता हूँ; श्री-भागवत-शास्त्र-श्रीमद्भागवत नामक वैदिक शास्त्र; ताहाते-उस सम्बन्ध में; प्रमाण-प्रमाण।

अनुवाद

किन्तु मैं शास्त्र के निर्देशों के अनुसार अनुमान कर सकता हूँ। वैदिक शास्त्र श्रीमद्भागवत इस विषय में प्रत्यक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करता है।

व्रज-वधू-सङ्गे कृष्णेर रासादि-विलास ।

येइ जन कहे, शुने करिया विश्वास ॥ 45 ॥

हृद्-रोग-काम ताँर तत्काले हय क्षय ।

तिन-गुण-क्षोभ नहे, 'महा-धीर' हय ॥46॥

व्रज-वधू-सङ्गे-व्रजभूमि की कन्याओं के संग में; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; रास-आदि-विलास-रास नृत्य जैसी लीलाएँ; येइ-जो; जन-लोग; कहे-वर्णन करते हैं; शुने-सुनते हैं; करिया विश्वास-अत्यन्त श्रद्धापूर्वक; हृत्-रोग-हृदय का रोग; काम-कामवासना; ताँर-उनके; तत्-काले-उसी समय; हय क्षय-नष्ट हो जाता है; तिन-गुण-भौतिक प्रकृति के तीन गुणों का; क्षोभ-विकार; नहे-नहीं; महा-धीर-अत्यन्त धीर;हय–हो जाता है।

अनुवाद

"जब कोई कृष्ण की लीलाओं, यथा गोपियों के साथ उनके रासनृत्य को अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सुनता या कहता है, तो उसके हृदय की कामवासनाएँ तथा भौतिक प्रकृति के तीन गुणों से उत्पन्न क्षोभ तुरन्त ही नष्ट हो जाते हैं और वह धीर तथा शान्त बन जाता है।"

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है, "श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण की रासलीला के विषय में अत्यन्त श्रद्धा तथा दिव्य आध्यात्मिकता से प्रेरित मन से सुनने का इच्छुक कोई भी व्यक्ति तुरन्त स्वाभाविक कामवासनाओं से मुक्त हो जाता है, जो कि भौतिकतावादी मनुष्य के हृदय में पाई जाती हैं।"

जब एक शुद्ध वैष्णव श्रीमद्भागवत के विषय में प्रवचन करता है और दूसरा शुद्ध वैष्णव उस स्वरूप-सिद्ध व्यक्ति से श्रवण करता है, तो दोनों ही ऐसे दिव्य जगत् में रहते हैं, जहाँ भौतिक प्रकृति के गुणों के विकार उनका स्पर्श तक नहीं कर पाते। वक्ता तथा श्रोता दोनों ही प्रकृति के गुणों के कल्मष से छूटकर दिव्य चेतना को प्राप्त करते हैं, जिसमें वे यह

जानते हैं कि दिव्य स्तर पर उनका पद परम भगवान् की सेवा करना है। प्राकृत सहजिया वर्ग के लोग, जो कि कृष्ण-लीलाओं को भौतिक जगत् में होने वाले पुरुष तथा स्त्री के आचरण जैसा मानते हैं, कृत्रिम तौर पर यह सोचते हैं कि रासलीला सुनने से उनके रुग्ण हृदयों की कामवासनाएँ कम होंगी। किन्तु वे विधि-विधानों को न मानकर सामान्य नैतिकता का भी उल्लंघन करते हैं, इसलिए रासलीला के विषय में उनका चिन्तन व्यर्थ का प्रयास है, जिससे कभी-कभी वे गोपियों तथा कृष्ण के कार्यकलापों की नकल करने लगते हैं। प्राकृत सहजियों के ऐसी आदतों का निषेध करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने विश्वास शब्द का प्रयोग करके उनकी भौतिक बुद्धि को अलग कर दिया है। श्रीमद्भागवत (10.33.30) में श्रील शुकदेव गोस्वामी कहते हैं :

नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः ।

विनश्यत्याचरन् मौढ्याद् यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥

"जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नहीं है, उसे अपने मन में भी कभी कृष्ण की दिव्य रासलीला के कार्यों का अनुकरण नहीं करना चाहिए। यदि कोई अज्ञानवश ऐसा करता है, तो वह उसी तरह विनष्ट हो जाता है मानो वह शिवजी का अनुकरण कर रहा हो, जिन्होंने समुद्र से निकले विष को पिया था।"

उज्ज्वल मधुर प्रेम-भक्ति सेइ पाय ।

आनन्दे कृष्ण-माधुर्ये विहरे सदाय ॥47॥

उज्ज्वल-प्रकाशमान; मधुर-मधुर; प्रेम-भक्ति-कृष्ण का प्रेम भाव; सेइ-वह; पाय-प्राप्त करता है; आनन्दे-दिव्य आनन्द में; कृष्ण-माधु-कृष्ण की लीलाओं की मधुरता; विहरे-आनन्द लेता है; सदाय–सदैव।

अनुवाद

"कृष्ण के दिव्य, तेजस्वी, मधुर प्रेम का आस्वादन करते हुए ऐसा व्यक्ति कृष्ण की लीलाओं की मधुरता के दिव्य आनन्द को चौबीसों घण्टे भोग सकता है।"

विक्रीड़ितं व्रज-वधूभिरिदं च विष्णोः

श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ।

भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं

हृद्-रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥48॥

विक्रीड़ितम्-रास नृत्य की लीला; व्रज-वधूभिः-व्रज की कन्याएँ, गोपियाँ; इदम्-यह; च–तथा; विष्णोः -भगवान् कृष्ण की; श्रद्धा-अन्वितः-दिव्य श्रद्धापूर्वक; अनुशृणुयात्-परम्परा में निरन्तर सुनता है; अथ–तथा; वर्णयेत्-वर्णन करता है; यः-जो; भक्तिम्-भक्ति; पराम्-दिव्य; भगवति–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति प्रतिलभ्य-प्राप्त करके; कामम्-भौतिक कामवासनाएँ; हृत्-रोगम्-हृदय का रोग; आशु-अति शीघ्र; अपहिनोति-त्याग देता है; अचिरेण–बिना विलम्ब के; धीरः-जो उन्नत भगवत्सेवा द्वारा धीर है।

अनुवाद

एक दिव्य रूप से धीर व्यक्ति, जो गोपियों के साथ कृष्ण के रासनृत्य की लीलाओं के विषय में किसी स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक निरन्तर श्रवण करता है या जो कोई इनका वर्णन करता है, वह परम पुरुष भगवान् के चरणकमलों में पूर्ण दिव्य भक्ति प्राप्त कर सकता है। इस तरह भौतिक कामेच्छाएँ, जो कि समस्त भौतिकतावादी व्यक्तियों के हृदय का रोग है, उसके लिए तुरन्त ही पूर्णत: विनष्ट हो जाती है ।

तात्पर्य

कृष्ण की सारी लीलाएँ अलौकिक हैं एवं गोपियाँ भी दिव्य पद को प्राप्त हैं। अतएव यदि गोपियों तथा कृष्ण की लीलाओं को गम्भीरतापूर्वक समझ लिया जाए, तो मनुष्य निश्चित रूप से भौतिक आसक्ति से छूट जायेगा। तब भौतिक कामेच्छाओं के उदय होने की कोई सम्भावना नहीं रहती।

ये शुने, ये पड़े, ताँर फल एतादृशी ।

सेइ भावाविष्ट सेइ सेवे अहर्निशि ॥49॥

ताँर फल कि कहिमु, कहने ना याय ।

नित्य-सिद्ध सेइ, प्राय-सिद्ध ताँर काय ॥50॥

ये शुने-जो कोई भी सुनता है; ये पड़े-जो पढ़ता है; ताँर-उसका; फल-परिणाम; एतादृशी-यह; सेइ-वह; भाव-आविष्ट–सदैव कृष्ण के विचारों में निमग्न; सेइ सेवे-जो सेवा करता है; अहः-निशि-दिन-रात; ताँर-उसका; फल-परिणाम; कि कहिमु-मैं क्या कहूँगा; कहने ना याय-यह वर्णन करना कठिन है; नित्य-सिद्ध–नित्य सिद्ध; सेइ-ऐसा व्यक्ति; प्राय-सिद्ध-दिव्य; ताँर-उसका; काय-शरीर।

अनुवाद

"श्रील रूप गोस्वामी के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए यदि दिव्य पद को प्राप्त व्यक्ति कृष्ण की रासलीला के विषय में सुनता और कहता है तथा अपने मन में भगवान् की दिन-रात सेवा करते हुए कृष्ण के विचारों में सदा डूबा रहता है, तो उसे जो फल मिलेगा उसके विषय में मैं क्या कहूँ? यह आध्यात्मिक रूप से इतना महान् है कि शब्दों द्वारा इसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। ऐसा व्यक्ति भगवान् का नित्यमुक्त संगी होता है और उसका शरीर पूर्णतया आध्यात्मिक होता है। यद्यपि वह भौतिक नेत्रों को दिखता है, किन्तु वह आध्यात्मिक पद को प्राप्त रहता है और उसके सारे कार्यकलाप आध्यात्मिक होते हैं। कृष्ण की इच्छा से ऐसे भक्त को आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हुआ समझा जाता है।"

रागानुग-मार्गे जानि रायेर भजन।

सिद्ध-देह-तुल्य, ताते 'प्राकृत' नहे मन ॥51॥

रागानुग-मार्गे–कृष्ण के प्रति स्वाभाविक प्रेम के मार्ग पर; जानि–हम समझ सकते हैं; रायेर भजन-रामानन्द राय की भक्तिमय सेवा; सिद्ध-देह-आध्यात्मिक देह; तुल्य-समान; ताते–अतः; प्राकृत-भौतिक; नहे–नहीं है; मन–मन।

अनुवाद

"श्रील रामानन्द राय भगवान् के रागानुग प्रेम (स्वतःस्फूर्त प्रेम) के मार्ग पर स्थित हैं। अतः वे अपने आध्यात्मिक शरीर में हैं और उनका मन भौतिक रूप से प्रभावित नहीं है।"

आमिह रायेर स्थाने शुनि कृष्ण-कथा।

शुनिते इच्छा हय यदि, पुनः याह तथा ॥52॥

आमिह-मैं भी; रायेर स्थाने-रामानन्द राय से; शुनि-सुनता हूँ; कृष्ण-कथा-कृष्ण की कथाएँ; शुनिते-सुनने की इच्छा-इच्छा; हय-है; यदि-यदि; पुनः–फिर से; याह-जाओ; तथा-वहाँ।

अनुवाद

"मैं भी रामानन्द राय से कृष्ण विषयक कथाएँ सुनता हूँ। यदि तुम ऐसी कथाएँ सुनना चाहते हो, तो उनके पास पुनः जाओ।"

मोर नाम लइह,–"तेंहो पाठाइला मोरे ।

तोमार स्थाने कृष्ण-कथा शुनिबार तरे" ॥53॥

मोर-मेरा; नाम-नाम; लइह-लेना; तेंहो–उन्होंने; पाठाइला–भेजा है; मोरे-मुझे; तोमार स्थाने-आपसे; कृष्ण-कथा-कृष्ण की लीलाएँ; शुनिबार तरे-सुनने के लिए।

अनुवाद

तुम उनके समक्ष यह कहकर मेरा नाम ले सकते हो कि, उन्होंने आपसे कृष्ण के विषय में सुनने के लिए मुझे भेजा है।

शीघ्र याह, यावत्तेहो आछेन सभाते ।

एत शुनि' प्रद्युम्न-मिश्र चलिला तुरिते ॥54॥

शीघ्र ग्राह-जल्दी आओ; यावत्-जब तक; तेंहो-वे; आछेन-हैं; सभाते-सभाकक्ष में; एत शुनि'-यह सुनकर; प्रद्युम्न-मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; चलिला-चला गया; तुरिते-बहुत जल्दी से।

अनुवाद

"जब तक वे सभाकक्ष में हैं, तुम जल्दी से जाओ।" यह सुनकर प्रद्युम्न मिश्र तुरन्त चला गया।

राय-पाश गेल, राय प्रणति करिल ।

“आज्ञा कर, ये लागि’ आगमन हैल” ॥55॥

राय-पाश-रामानन्द राय के पास; गेल-वह गया; राय-रामानन्द राय ने; प्रणति करिल-प्रणाम किया; आज्ञा कर-कृपया आदेश दीजिए; ग्रे लागि’-किस उद्देश्य से; आगमन हैल-आप आये हैं।

अनुवाद

प्रद्युम्न मिश्र रामानन्द राय के पास गया, जिन्होंने उन्हें सादर नमस्कार किया और कहा, “कृपया आज्ञा दें। आप किस कार्य से आये हैं?”

मिश्र कहे,—“महाप्रभु पाठाइला मोरे।

तोमार स्थाने कृष्ण-कथा शुनिबार तरे” ॥56॥

मिश्र कहे-प्रद्युम्न मिश्र ने कहा; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; पाठाइला मोरे-मुझे भेजा है; तोमार स्थाने-आपसे; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण की कथाएँ; शुनिबार तरे-सुनने के लिए।

अनुवाद

प्रद्युम्न मिश्र ने उत्तर दिया, “श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुझे आपसे कृष्ण-कथाएँ सुनने के लिए भेजा है।”

शुनि’ रामानन्द राय हैला प्रेमावेशे।

कहिते लागिला किछु मनेर हरिषे ॥57॥

शुनि’–सुनकर; रामानन्द राय-रामानन्द राय; हैला-हो गये; प्रेम-आवेशे-प्रेमभाव में आविष्ट; कहिते लागिला-कहना प्रारम्भ किया; किछु-कुछ; मनेर हरिषे–दिव्य आनन्द में।

अनुवाद

यह सुनकर रामानन्द राय प्रेमानन्द में मग्न हो गये और अतीव दिव्य हर्षपूर्वक बोलने लगे।

“प्रभुर आज्ञाय कृष्ण-कथा शुनिते आइला एथा।

इहा वइ महा-भाग्य आमि पाब कोथा?" ॥58 ॥

प्रभुर आज्ञाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश पर; कृष्ण-कथा- भगवान् कृष्ण की कथाएँ; शुनिते-सुनने के लिए; आइला एथा-आप यहाँ आये हैं; इहा वइ-इसके बिना; महा-भाग्य-महा सौभाग्य; आमि-मैं; पाब-पाऊँगा; कोथा-कहाँ।

अनुवाद

"आप श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश का पालन करते हुए कृष्ण के विषय में सुनने के लिए आये हैं। यह मेरा परम सौभाग्य है। भला और किस तरह मैं ऐसा अवसर पा सकता था?"

एत कहि तारे लञा निभृते वसिला ।

'कि कथा शुनिते चाह?' मिश्रेरे पुछिला ॥59॥

एत कहि-यह कहकर; तारे-उन्हें; लञा–लेकर; निभृते वसिला-एकान्त स्थान में बैठ गये; कि कथा-किस प्रकार की कथा; शुनिते चाह-आप सुनना चाहते हैं; मिश्रेरे पुछिला-उन्होंने प्रद्युम्न मिश्र से पूछा।

अनुवाद

यह कहकर श्री रामानन्द राय प्रद्युम्न मिश्र को एकान्त स्थान में ले गये और उससे पूछा, "आप मुझसे किस तरह की कृष्ण-कथा सुनना चाहते हैं?"

तेंहो कहे, — "ये कहिला विद्यानगरे ।

सेइ कथा क्रमे तुमि कहिबा आमारे" ॥60॥

तेंहो कहे-उसने उत्तर दिया; ये-जो; कहिला-आपने कहा; विद्यानगरे–विद्यानगर में; सेइ कथा-वही विषय; क्रमे-क्रमपूर्वक; तुमि-आप; कहिबा-कृपया कहिए; आमारे-मुझसे।

अनुवाद

प्रद्युम्न मिश्र ने उत्तर दिया, "कृपया मुझसे वही कथाएँ कहें, जो आपने विद्यानगर में कही थीं।"

आनेर कि कथा, तुमि-प्रभुर उपदेष्टा! ।

आमि त' भिक्षुक विप्र, तुमि–मोर पोष्टा ॥61॥

आनेर कि कथा-अन्यों का क्या कहना; तुमि-आप; प्रभुर उपदेष्टा-श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशकर्ता; आमि-मैं; त'–निश्चित रूप से; भिक्षुक–भिखारी; विप्र-ब्राह्मण; तुमि-आप; मोर-मेरे; पोष्टा-पालक।

अनुवाद

"आप तो श्री चैतन्य महाप्रभु के भी उपदेशक हैं, अन्यों की क्या कही जाए। मैं तो एक भिखारी ब्राह्मण हूँ और आप मेरे पालनकर्ता हैं।"

भाल, मन्द–"किछु आमि पुछिते ना जानि ।

'दीन' देखि' कृपा करि' कहिबा आपनि" ॥62॥

भाल–अच्छा; मन्द-बुरा; किछु-कुछ भी; आमि-मैं; पुछिते-पूछना; ना जानि- नहीं जानता; दीन-ज्ञान में दीन; देखि'–देखकर; कृपा करि'-अत्यन्त कृपापूर्वक; कहिबा-कृपया कहिए; आपनि-आपकी अपनी इच्छा से।

अनुवाद

"मैं नहीं जानता कि कैसे पूछना चाहिए, क्योंकि मैं नहीं जानता कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है। मुझे अल्प ज्ञान वाला देखकर आप अपनी इच्छा से जो मेरे लिए अच्छा हो वही कहें।"

तबे रामानन्द क्रमे कहिते लागिला ।

कृष्ण-कथा-रसामृत-सिन्धु उथलिला ॥ 63॥

तबे-तत्पश्चात्; रामानन्द-रामानन्द राय; क्रमे क्रमपूर्वक; कहिते लागिला-कहना प्रारम्भ किया; कृष्ण-कथा-कृष्ण की कथा; रसामृत-सिन्धु-दिव्य रसों का समुद्र; उथलिला-उद्वेलित हो गया।

अनुवाद

तत्पश्चात् रामानन्द राय ने क्रम से कृष्ण-कथाएँ कहनी शुरू कर दीं। इस तरह उन कथाओं के दिव्य रस का सागर उफनने लगा।

आपने प्रश्न करि' पाछे करेन सिद्धान्त ।

तृतीय प्रहर हैल, नहे कथा-अन्त ॥ 64॥

आपने–स्वयं; प्रश्न करि'–प्रश्न करके; पाछे-उसके बाद; करेन सिद्धान्त–निष्कर्ष देते हैं; तृतीय प्रहर हैल–दोपहर हो गई; नहे कथा-अन्त–उन कथाओं का कोई अन्त नहीं हुआ।

अनुवाद

वे स्वयं प्रश्न करते और फिर निर्णयात्मक कथनों से उनका उत्तर देते। जब दोपहर हो गई, तो भी कथाओं का अन्त नहीं हुआ।

वक्ता श्रोता कहे शुने दुँहे प्रेमावेशे ।

आत्म-स्मृति नाहि, काहाँ जानिब दिन-शेषे ॥65॥

वक्ता–कहने वाला; श्रोता-सुनने वाला; कहे-कहता है; शुने-सुनता है; दुँहे-वे दोनों; प्रेम-आवेशे-प्रेम भाव में; आत्म-स्मृति नाहि-देह स्मृति नहीं रही; काहाँ–कहाँ; जानिब-जान सकते; दिन-शेषे–दिन का अन्त।

अनुवाद

वक्ता तथा श्रोता प्रेमावेश में बोलते तथा सुनते रहे। इस तरह वे अपने शरीर की सुधि-बुध खो बैठे। तो फिर वे दिन के अन्त को कैसे समझ पाते?

सेवक कहिल,—'दिन हैल अवसान' ।

तबे राय कृष्ण-कथार करिला विश्राम ॥66॥

सेवक कहिल–सेवक ने बताया; दिन-दिन; हैल अवसान–समाप्त हो गया है; तबे-उस समय; राय-रामानन्द राय ने; कृष्ण-कथार-कृष्ण की कथाओं का; करिला विश्राम-समापन किया।

अनुवाद

सेवक ने उन्हें बतलाया कि, "दिन ढल चुका है।" तब रामानन्द राय ने कृष्ण विषयक अपनी कथाएँ समाप्त कीं।

बहु-सम्मान करि' मिश्रे विदाय दिला ।

'कृतार्थ हइलाङ' बलि' मिश्र नाचिते लागिला ॥67॥

बहु-सम्मान-अत्यन्त सम्मानपूर्ण व्यवहार; करि'-करके; मिश्रे-प्रद्युम्न मिश्र को;विदाय दिला–विदा किया; कृतार्थ हइलाङ–मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हो गया हूँ; बलि'–कहकर; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; नाचिते लागिला-नाचने लगा।

अनुवाद

रामानन्द राय ने प्रद्युम्न मिश्र का अत्यधिक सम्मान किया और उसे विदा किया। प्रद्युम्न मिश्र ने कहा, "मैं अत्यधिक तुष्ट हूँ।" तब वह नाचने लगा ।

घरे गिया मिश्र कैल स्नान, भोजन ।

सन्ध्या-काले देखिते आइल प्रभुर चरण ॥ 68॥

घरे गिया-घर लौटकर; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र ने; कैल-किया; स्नान-स्नान; भोजन-भोजन; सन्ध्या-काले-साँय को; देखिते-देखने के लिए; आइल-आये; प्रभुर चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

घर लौटकर प्रद्युम्न मिश्र ने स्नान और भोजन किया। शाम को वह श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का दर्शन करने आया।

प्रभुर चरण वन्दे उल्लसित-मने ।

प्रभु कहे,—'कृष्ण-कथा हइल श्रवणे'? ॥69॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण-चरणकमलों की; वन्दे-वह वन्दना करता है; उल्लसित-मने-अत्यन्त प्रसन्नातपूर्वक; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं; कृष्ण- कथा-कृष्ण की लीलाएँ; हइल श्रवणे-क्या तुमने सुनीं।

अनुवाद

"उसने अत्यधिक प्रसन्नता से श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की पूजा की। महाप्रभु ने पूछा, 'क्या तुमने कृष्ण-कथाएँ सुनीं?"

मिश्र कहे,–"प्रभु, मोरे कृतार्थ करिला ।

कृष्ण-कथामृतार्णवे मोरे डुबाइला" ॥ 70 ॥

मिश्र कहे-प्रद्युम्न मिश्र ने कहा; प्रभु-मेरे प्रिय प्रभु; मोरे-मुझे; कृतार्थ–सन्तुष्ट; करिला-आपने कर दिया; कृष्ण-कथा-कृष्ण की कथाओं के; अमृत-अर्णवे-अमृत के समुद्र में; मोरे–मुझे; डुबाइला-आपने डुबा दिया।

अनुवाद

प्रद्युम्न मिश्र ने कहा, "हे प्रभु, आपने मुझे आपका अत्यन्त कृतज्ञ बना दिया है, क्योंकि आपने कृष्ण-कथा के अमृत-सागर में मुझे डुबो दिया है।"

रामानन्द राय-कथा कहिले ना हय ।

'मनुष्य' नहे राय, कृष्ण-भक्ति-रस-मय ॥71 ॥

रामानन्द राय-कथा-रामानन्द राय की वार्ताएँ; कहिले–वर्णन करना; ना हय-सम्भव नहीं है; मनुष्य-एक साधारण मनुष्य; नहे-नहीं हैं; राय-रामानन्द राय; कृष्ण-भक्ति-रस-मय-भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा में निमग्न।

अनुवाद

"मैं रामानन्द राय की कथाओं का ठीक-ठीक वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि वे कोई सामान्य मनुष्य नहीं हैं। वे कृष्ण की भक्ति में पूर्णतया निमग्न हैं।"

तात्पर्य

गुरु को साधारण व्यक्ति मानना निषेध है (गुरुषु नरमतिः) । जब रामानन्द राय ने प्रद्युम्न मिश्र से बात की, तो प्रद्युम्न मिश्र की समझ में आया कि वे कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। आध्यात्मिक रूप से उन्नत व्यक्ति, जो आध्यात्मिक गुरु के रूप में स्वीकृत है-जब बोलता है, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उसके अन्त:करण से उसे निर्देश देते हैं। वह स्वयं नहीं बोल रहा होता। दूसरे शब्दों में, जब कोई शुद्ध भक्त या गुरु बोलता है, तो वह जो कुछ कहता है, उसे परम्परा पद्धति में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा प्रत्यक्ष बोला हुआ मानना चाहिए।

आर एक कथा राय कहिला आमारे ।

‘कृष्ण-कथा-वक्ता करि’ ना जानिह मोरे ॥72॥

आर-दूसरी; एक-एक; कथा–बात; राय-रामानन्द राय ने; कहिला आमारे-मुझसे कही; कृष्ण-कथा-वक्ता-कृष्ण कथाओं का वक्ता; करि’-जैसे; ना जानिह मोरे-मुझे मत मानो।

अनुवाद

“एक अन्य बात भी रामानन्द राय ने मुझसे कही है। तुम मुझे इन कृष्ण-कथाओं का वक्ता मत मानना।”

मोर मुखे कथा कहेन आपने गौरचन्द्र ।

यैछे कहाय, तैछे कहि,—येन वीणा-यन्त्र ॥73॥

मोर मुखे-मेरे मुख में; कथा-कथा; कहेन–कहते हैं; आपने–स्वयं; गौर-चन्द्र-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; यैछे कहाय-जैसा वे बुलवाते हैं; तैछे कहि-वहीं मैं कहता हूँ; येन-जैसे; वीणा-यन्त्र-वीणा नामक तारयुक्त यंत्र।

अनुवाद

“मैं जो भी कहता हूँ, वह श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं बोलते हैं। मैं एक वीणा की तरह हूँ। वे मुझसे जो कहलवाते हैं, उसका ही मैं उच्चारण करता हूँ।”

मोर मुखे कहाय कथा, करे परचार ।

पृथिवीते के जानिबे ए-लीला ताँहार? ॥74॥

मोर मुखे-मेरे मुख से; कहाय-कहलवाते हैं; कथा-प्रवचन; करे परचार–प्रचार करते हैं; पृथिवीते-इस संसार में; के जानिबे-कौन समझेगा; ए-लीला-यह लीला; ताँहार-उनकी।

अनुवाद

"इस तरह महाप्रभु कृष्णभावनामृत सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए मेरे मुख से बोलते हैं। इस संसार में ऐसा कौन है, जो महाप्रभु की इस लीला को समझ सकेगा?"

ये-सब शुनिलँ, कृष्ण-रसेर सागर।

ब्रह्मादि-देवेर ए सब ना हय गोचर ॥75॥

ये-सब-वह सब; शुनि–मैंने सुना; कृष्ण-रसेर-भगवान् कृष्ण के अमृत का; सागर-समुद्र; ब्रह्मा-आदि-देवेर-ब्रह्माजी आदि देवताओं के लिए; ए सब-यह सब; ना हय गोचर-समझना सम्भव नहीं है।

अनुवाद

"मैंने रामानन्द राय से जो कुछ सुना है, वह कृष्ण-कथाओं के अमृत-सागर के तुल्य है। यहाँ तक कि ब्रह्मादि देवता भी इन कथाओं को नहीं समझ पाते।"

हेन 'रस' पान मोरे कराइला तुमि।

जन्मे जन्मे तोमार पाय विकाइलाङ आमि ॥76॥

हेन रस-ऐसा आध्यात्मिक रस; पान-पीना; मोरे-मुझे; कराइला तुमि-आपने करवाया; जन्मे जन्मे–जन्म जन्मातर तक; तोमार पाय-आपके चरणों में; विकाइलाङ आमि-मैं बिक गया हूँ।

अनुवाद

"हे प्रभु, आपने कृष्ण-कथा का यह दिव्य अमृत मुझे पिलाया है। अतएव मैं जन्म-जन्मान्तर के लिए आपके चरणकमलों में बिक गया हूँ।"

प्रभु कहे,–"रामानन्द विनयेर खनि"।

आपनार कथा पर-मुण्डे देन आनि' ॥ 77॥

प्रभु कहे–महाप्रभु ने उत्तर दिया; रामानन्द-रामानन्द राय; विनयेर खनि-विनम्रता की खान; आपनार कथा-अपने शब्द; पर-मुण्डे-दूसरे के मस्तक पर; देन-डाल दिये; आनि'–लाकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "रामानन्द राय समस्त विनयशीलता की खान हैं। इसलिए उन्होंने अपने शब्दों को दूसरे की बुद्धि पर आरोपित कर दिया है।"

महानुभवेर एइ सहज 'स्वभाव' हय ।

आपनार गुण नाहि आपने कहय ॥78॥

महानुभवेर-अनुभूति में उन्नत लोगों का; एइ–यह; सहज-स्वाभाविक; स्वभाव-लक्षण; हय-है; आपनार गुण-अपने निजी गुण; नाहि-नहीं; आपने–स्वयं; कहय-कहते।

अनुवाद

"जो लोग भक्ति में उन्नत होते हैं, उनका यह सहज स्वभाव है। वे अपने सद्गुणों का स्वयं बखान नहीं करते।"

रामानन्द-रायेर एइ कहिलु गुण-लेश ।

प्रद्युम्न मिश्रेरे यैछे कैला उपदेश ॥ 79 ॥

रामानन्द-रायेर–श्री रामानन्द राय का; एइ–यह; कहिलु-मैंने कहा; गुण-लेश- दिव्य गुणों का एक अंश मात्र प्रद्युम्न मिश्रेरे-प्रद्युम्न मिश्र को; यैछे-जिस प्रकार; कैला उपदेश-उन्होंने उपदेश दिया।

अनुवाद

मैंने रामानन्द राय के दिव्य गुणों के अंश मात्र का वर्णन किया है, जो प्रद्युम्न मिश्र को उपदेश देते समय प्रकट हुए।

‘गृहस्थ’ हञा नहे राय षड्-वर्गेर वशे ।

‘विषयी’ हञा सन्न्यासीरे उपदेशे ॥80॥

गृहस्थ हञा-एक गृहस्थ होकर; नहे-नहीं है; राय-रामानन्द राय; षड्-वर्गेर वशे-छः प्रकार के शारीरिक परिवर्तनों के वश में; विषयी हञा–सांसारिक (भोगी जैसा) होकर;सन्न्यासीरे उपदेशे-संन्यास आश्रम के लोगों को उपदेश देते।

अनुवाद

यद्यपि रामानन्द राय गृहस्थ थे, किन्तु वे छः प्रकार के शारीरिक परिवर्तनों के वशीभूत नहीं थे। यद्यपि ऊपर से वे धन-सम्पत्ति में आसक्त व्यक्ति प्रतीत होते थे, किन्तु उन्होंने संन्यासियों तक को उपदेश दिया।

तात्पर्य

बाहर से श्री रामानन्द राय गृहस्थ और माया के वश में प्रतीत होते थे। वे आत्मसंयमी ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ या संन्यासी न थे। गृहस्थजन, जो कि माया के वश में रहते हैं, इन्द्रिय-भोग के लिए ही गृहस्थ जीवन स्वीकार करते हैं, किन्तु दिव्य पद को प्राप्त वैष्णव छः प्रकार के शारीरिक परिवर्तनों (काम,क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य) के भौतिक नियमों द्वारा प्रभावित नहीं होते, भले ही वे गृहस्थ की भूमिका क्यों न निभा रहे हों। इस प्रकार, यद्यपि श्रील रामानन्द राय गृहस्थ की भूमिका निभा रहे थे और धन-सम्पत्ति से आसक्त सामान्य व्यक्ति माने जाते थे, किन्तु वे सदैव दिव्य कृष्ण-लीलाओं में निमग्न रहते थे। इसलिए उनका मन आध्यात्मिक पद को प्राप्त था और वे कृष्ण के विषय में ही रुचि लेते थे। रामानन्द राय उन मायावादी निर्विशेषवादियों या भौतिकतावादी तार्किकों में से नहीं थे, जो कृष्ण की दिव्य लीलाओं के सिद्धान्तों के विरोधी हैं। वे पहले से संन्यासी और आध्यात्मिकता में स्थित थे, अतएव वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति से बालू को सोने में बदलने में समर्थ थे। दूसरे शब्दों में, वे किसी व्यक्ति को भौतिक पद से आध्यात्मिक पद तक ऊपर उठा सकते थे।

एइ-सब गुण ताँर प्रकाश करिते ।

मिश्रेरे पाठाइला ताहाँ श्रवण करिते ॥ 81॥

एइ-सब-ये सब; गुण-गुण; ताँर-रामानन्द राय के प्रकाश करिते-प्रकट करने के लिए; मिश्रेरे-प्रद्युम्न मिश्र को; पाठाइला-उन्होंने भेजा; ताहाँ-वहाँ; श्रवण करिते-सुनने के लिए।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय के दिव्य गुणों के प्रदर्शनार्थ ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रद्युम्न मिश्र को उनसे कृष्ण विषयक चर्चाएँ सुनने के लिए भेजा था।

भक्त-गुण प्रकाशिते प्रभु भाल जाने ।

नाना-भङ्गीते गुण प्रकाशि" निज-लाभ माने ॥82॥

भक्त-गुण-एक भक्त के गुण; प्रकाशिते-प्रदर्शित करना; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभुः भाल जाने-भलीभाँति जानते हैं किस प्रकार; नाना-भङ्गीते-विविध प्रकार से; गुण-गुण; प्रकाशि"-प्रकट करके; निज-लाभ-अपना लाभ; माने-वे मानते हैं।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु अच्छी तरह जानते हैं कि अपने भक्तों के गुणों को किस तरह प्रकट किया जाए। इसलिए वे एक चित्रकार की भाँति इसे अनेक प्रकारों से प्रदर्शित करते हैं और इसे वे निजी लाभ मानते हैं।

आर एक 'स्वभाव' गौरेर शुन, भक्त-गण ।

ऐश्वर्य-स्वभाव गूढ़ करे प्रकटन ॥83॥

आर-दूसरा; एक-एक; स्वभाव-स्वभाव; गौरेर–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का;शुन-सुनो; भक्त-गण-हे भक्तों; ऐश्वर्य-स्वभाव-ऐश्वर्य और स्वभाव; गूढ़-अत्यन्त गम्भीर; करे-करते हैं; प्रकटन-प्रकट।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का एक अन्य गुण भी है। हे भक्तों, ध्यानपूर्वक सुनो कि वे किस तरह अपना ऐश्वर्य तथा गुण प्रकट करते हैं, यद्यपि वे अत्यधिक गूढ़ होते हैं।

सन्यासी पण्डित-गणेर करिते गर्व नाश ।

नीच-शूद्र-द्वारा करेन धर्मेर प्रकाश ॥84॥

सन्यासी-संन्यास आश्रम के लोग; पण्डित-गणेर-विद्वानों का; करिते-करने के लिए; गर्व–घमण्ड; नाश-विनष्ट; नीच–निम्न जाति के; शूद्र-चौथी श्रेणी के व्यक्ति; द्वारा–द्वारा; करेन-करते हैं; धर्मेर प्रकाश-वास्तविक धर्म के नियमों का प्रकाश।

अनुवाद

तथाकथित संन्यासियों एवं पण्डितों के मिथ्या अभिमान को नष्ट करने के लिए वे शूद्र या निम्न कुल के व्यक्ति द्वारा भी वास्तविक धर्म का प्रचार करते हैं।

तात्पर्य

जब कोई व्यक्ति वेदान्त-सूत्र में बड़ा विद्वान होता है, तो वह पण्डित कहलाता है। सामान्यतया यह योग्यता ब्राह्मणों तथा संन्यासियों में पाई जाती है। संन्यास तो ब्राह्मण के लिए, जो कि चारों वर्गों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) में सर्वोच्च होता है, सर्वोपरि पद है। जनमत यह है कि ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, संस्कारों द्वारा शुद्ध किया गया तथा गुरु से उचित रीति से दीक्षा-प्राप्तव्यक्ति वैदिक साहित्य का पण्डित होता है। जब ऐसे व्यक्ति को संन्यास दिया जाता है, तो वह सर्वोच्च पद पर स्थित होता है। ब्राह्मण को अन्य तीन वर्णों–क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्गों का गुरु माना जाता है और संन्यासी को तो उच्च ब्राह्मणों का भी गुरु माना जाता है।

सामान्यतया ब्राह्मणों तथा संन्यासियों को अपने आध्यात्मिक पद का बड़ा गर्व रहता है। इसीलिए उनके इस मिथ्या गर्व को विनष्ट करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय के माध्यम से कृष्णभावनामृत का प्रचार किया, क्योंकि रामानन्द राय न तो संन्यासी थे, न ही ब्राह्मण कुल में उत्पन्न ब्राह्मण थे। वे तो शूद्र वर्ग के एक गृहस्थ थे; तो भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके गुरु बनने की व्यवस्था की और उन्होंने ब्राह्मण कुल में जन्मे अत्यन्त योग्य ब्राह्मण प्रद्युम्न

मिश्र को शिक्षा दी। यहाँ तक कि संन्यासी होते हुए स्वयं महाप्रभु ने श्री रामानन्द राय से उपदेश लिया। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय के माध्यम से अपना ऐश्वर्य प्रकट किया। इस घटना की यही विशेषता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन है- येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेइ "गुरु" हय–जो भी कृष्ण के विज्ञान को जानता है, वह गुरु बन सकता है चाहे वह संन्यासी हो या न हो, ब्राह्मण हो या न हो। सामान्य लोग शास्त्र के सार को नहीं समझ सकते, न ही वे श्री चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तों के दृढ़ अनुयायियों के चरित्र, व्यवहार तथा योग्यताओं को ही समझ सकते हैं। जो शूद्रों से भी नीच माने जाते हैं, कृष्णभावनामृत आन्दोलन ऐसे परिवारों में जन्मे लोगों से भी शुद्ध महान् वैष्णव तैयार कर रहा है। यह इसका प्रमाण है कि वैष्णव किसी भी परिवार में जन्म ले सकता है, जिसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (2.4.18) में हुई है :-

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कशा

आभीरशुम्भा यवनाः खसादयः ।

येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः

शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

"किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कश, आभीर, शुम्भ, यवन तथा खस एवं पापकर्मों में लगी अन्य जातियाँ तक भगवान् के भक्तों की शरण ग्रहण करके शुद्ध बन सकती हैं, क्योंकि भगवान् परम शक्तिमान हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।" भगवान् विष्णु की कृपा से कोई भी व्यक्ति पूर्णतया शुद्ध, कृष्णभावनामृत का प्रचारक तथा अखिल विश्व का गुरु बन सकता है। यह सिद्धान्त समस्त वैदिक साहित्य में स्वीकार हुआ है। शास्त्रों से प्रमाण दिये जा सकते हैं कि किस तरह निम्न कुल में उत्पन्न व्यक्ति अखिल विश्व का गुरु बन सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु को सर्वाधिक वदान्य पुरुष माने जाते हैं, क्योंकि वे वैदिक शास्त्रों का सार ऐसे किसी भी व्यक्ति को वितरित करते हैं, जो उनका निष्ठावान सेवक बनने के कारण योग्य बन जाता है।

'भक्ति', 'प्रेम', 'तत्त्व' कहे राये करि' 'वक्ता' ।

आपनि प्रद्युम्न-मिश्र-सह हय 'श्रोता' ॥85॥

भक्ति-भक्तिमय सेवा; प्रेम-प्रेमभाव; तत्त्व-तथ्य; कहे-वे कहते हैं; राये-रामानन्द राय को; करि–बनाकर; वक्ता-वक्ता; आपनि स्वयं; प्रद्युम्न-मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; सह-साथ; हय श्रोता-श्रोता बन जाते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने निम्न कुल जन्मा गृहस्थ रामानन्द राय को वक्ता बनाकर भक्ति, प्रेम तथा परम सत्य के विषय में प्रचार किया। फिर स्वयं उच्च ब्राह्मण संन्यासी श्री चैतन्य महाप्रभु तथा शुद्ध ब्राह्मण प्रद्युम्न मिश्र-दोनों रामानन्द राय के श्रोता बने।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में कहते हैं कि शंकराचार्य सम्प्रदाय के संन्यासी सदैव यही सोचते हैं कि उन्होंने ब्राह्मण के समस्त कर्तव्य पूरे कर लिए हैं तथा वेदान्त-सूत्र का सार समझ लेने और संन्यासी बन जाने से वे सारे समाज के स्वयंभू गुरु हैं। इसी तरह ब्राह्मण कुलों में उत्पन्न हुए लोग सोचते हैं कि वेदों में वर्णित अनुष्ठान सम्पन्न करने के कारण तथा स्मृति के सिद्धान्तों का पालन करने के कारण केवल वे ही समाज के गुरु बन सकते हैं। ये उच्च ब्राह्मण सोचते हैं कि जब तक मनुष्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न न हो, तब तक वह गुरु नहीं बन सकता और परम सत्य की शिक्षा नहीं दे सकता। इन जात ब्राह्मणों तथा मायावादी संन्यासियों का गर्व चूर करने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह सिद्ध किया कि रामानन्द राय जैसा शूद्र कुल में उत्पन्न एवं गृहस्थ आश्रम में स्थित व्यक्ति स्वयं उनका तथा प्रद्युम्न मिश्र जैसे उच्च व्यक्तियों का गुरु बन सकता है। यह वैष्णव सम्प्रदाय का सिद्धान्त है, जिसका प्रमाण श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं में मिलता है। जो व्यक्ति यह जानता है कि क्या आध्यात्मिक है, क्या भौतिक है और कौन अध्यात्म पद पर दृढ़ता से स्थित है, वह जगद्गुरु बन सकता है। जगद्गुरु बनने के अनिवार्य नियमों को जाने बिना अपने आपको जगद्गुरु विज्ञापित करने से ही कोई जगद्गुरु नहीं बन सकता। यहाँ तक कि ऐसे लोग जिन्होंने यह कभी नहीं देखा कि जगद्गुरु क्या होता है और जो कभी किसी से बातें तक नहीं करते, वे गर्वित संन्यासी बन जाते हैं और अपने आपको जगद्गुरु कहने लगते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु को यह पसन्द नहीं था। जो भी व्यक्ति कृष्णतत्त्व को जानता हो और आध्यात्मिक जीवन के लिए पूर्णतया योग्य हो, वही जगद्गुरु बन सकता है। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं श्री रामानन्द राय से शिक्षा ली और उच्च ब्राह्मण प्रद्युम्न मिश्र को भी उनसे शिक्षा लेने के लिए उनके पास भेजा।

हरिदास-द्वारा नाम-माहात्म्य-प्रकाश ।

सनातन-द्वारा भक्ति-सिद्धान्त-विलास ॥86॥

हरिदास-द्वारा–हरिदास ठाकुर द्वारा; नाम-माहात्म्य-हरे कृष्ण महामन्त्र के जप की महिमा; प्रकाश-प्रकट करवाते हैं; सनातन-द्वारा–सनातन गोस्वामी द्वारा; भक्ति-सिद्धान्त-विलास-भक्ति के सार का प्रसार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् के पवित्र नाम की महिमा हरिदास ठाकुर के माध्यम से प्रकट की, जो मुसलमान परिवार में उत्पन्न हुए थे। इसी तरह उन्होंने सनातन गोस्वामी के माध्यम से भक्ति का सार प्रकट किया, जो लगभग मुसलमान बनाये जा चुके थे।

श्री-रूप-द्वारा व्रजेर प्रेम-रस-लीला।

के बुझिते पारे गम्भीर चैतन्येर खेला? ॥87॥

श्री-रूप-द्वारा-श्री रूप गोस्वामी के माध्यम से; व्रजेर-वृन्दावन के प्रेम-रस-लीला-प्रेमभाव और लीलाओं का वर्णन; के-कौन; बुझिते पारे-समझ सकता है; गम्भीर-गहन; चैतन्येर खेला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी के माध्यम से वृन्दावन के प्रेम तथा उसकी दिव्य लीलाओं को भी प्रकट किया। इन सब पर विचार करने पर भला कौन ऐसा है, जो श्री चैतन्य महाप्रभु की गम्भीर योजनाओं को समझ सकता है?

श्री-चैतन्य-लीला एइ—अमृतेर सिन्धु।

त्रिजगत् भासाइते पारे यार एक बिन्दु ॥88॥

श्री-चैतन्य-लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की दिव्य लीलाएँ; एइ–ये; अमृतेर सिन्धु-अमृत का समुद्र; त्रि-जगत्-तीनों जगत्; भासाइते-डुबाने के लिए; पारे-समर्थ हैं; यार-जिसकी; एक बिन्दु-एक बूँद।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलाप अमृत के सिन्धु के समान हैं। इस सिन्धु की एक बूँद भी तीनों लोकों को आप्लावित कर सकती है।

तात्पर्य

तीनों लोकों को अमृत से आप्लावित करना ही श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का उद्देश्य है। इसे श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी तथा उसके बाद ठाकुर नरोत्तम दास तथा श्यामानन्द गोस्वामी ने दिखाया कि यह किस तरह सम्भव हो सकता है, क्योंकि इन सबने श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा का प्रतिनिधित्व किया। अब वही कृपा कृष्णभावनामृत आन्दोलन के माध्यम से सारे जगत् को आप्लावित कर रही है। वर्तमान कृष्णभावनामृत आन्दोलन श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा अपने काल में स्वयं सम्पन्न की हुई लीलाओं से अभिन्न है, क्योंकि उन्हीं सिद्धान्तों का पालन हो रहा है और वे ही कार्य अनवरत रूप से सम्पन्न किये जा रहे हैं।

चैतन्य-चरितामृत नित्य कर पान ।

याहा हैते 'प्रेमानन्द', 'भक्ति-तत्त्व-ज्ञान' ॥89॥

चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक इस दिव्य ग्रन्थ का; नित्य-प्रतिदिन; कर पान-करो आस्वादन; याहा हैते–जिसके द्वारा; प्रेम-आनन्द-दिव्य आनन्द; भक्ति-तत्त्व-ज्ञान-भक्ति का दिव्य ज्ञान।

अनुवाद

हे भक्तों, श्री चैतन्य-चरितामृत तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के अमृत का नित्य ही पान करो, क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य दिव्य आनन्द में डूब सकता है और भक्ति के पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर सकता है।

एइ-मत महाप्रभु भक्त-गण लञा ।

नीलाचले विहरये भक्ति प्रचारिया ॥90॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; भक्त-गण लञा-अपने शुद्ध भक्तों के संग में; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; विहरये-दिव्य आनन्द लेते; भक्ति प्रचारिया-भक्ति (प्रेममयी सेवा) का प्रचार करके।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने संगियों, अपने शुद्ध भक्तों के साथ जगन्नाथ पुरी (नीलाचल) में नाना प्रकार से भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करते हुए दिव्य आनन्द का आस्वादन किया।

बङ्ग-देशी एक विप्र प्रभुर चरिते ।

नाटक करि' लञा आइल प्रभुके शुनाइते ॥91॥

बङ्ग-देशी-बंगाल से; एक विप्र-एक ब्राह्मण; प्रभुर चरिते-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र के विषय में; नाटक करि'–एक नाटक लिखकर; लञा–लेकर; आइल-आया; प्रभुके शुनाइते-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को सुनाने के लिए।

अनुवाद

बंगाल में रहने वाले एक ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र के विषय में एक नाटक लिखा और उसकी पाण्डुलिपि लेकर महाप्रभु को सुनाने के लिए आया।

भगवानाचार्य-सने तार परिचय ।

ताँरे मिलि ताँर घरे करिल आलय ॥ 92॥

भगवान्-आचार्य-भगवान् आचार्य नामक श्री चैतन्य महाप्रभु का एक भक्त; सने-के साथ; तार परिचय-उसका परिचय; ताँरे मिलि'–उनसे मिलकर; ताँर घरे-उनके घर पर; करिल आलय-निवास किया।

अनुवाद

यह ब्राह्मण श्री चैतन्य महाप्रभु के एक भक्त भगवान् आचार्य का परिचित था। अतएव जगन्नाथ पुरी में उनसे मिलने के बाद वह ब्राह्मण भगवान् आचार्य के घर में रहने लगा।

प्रथमे नाटक तेंहो ताँरे शुनाइल ।

ताँर सङ्गे अनेक वैष्णव नाटक शुनिल ॥93॥

प्रथमे-सर्व प्रथम; नाटक-नाटक; तेंहो–उसने; ताँरे–उन्हें; शुनाइल-सुनाया; ताँर सङे-उनके साथ; अनेक-अनेक; वैष्णव-वैष्णवों ने; नाटक शुनिल-नाटक सुना।

अनुवाद

पहले तो उस ब्राह्मण ने भगवान् आचार्य को वह नाटक सुनाया और तब अनेक भक्तों ने भगवान् आचार्य के साथ उसे सुना।

सबेइ प्रशंसे नाटक "परम उत्तम"।

महाप्रभुरे शुनाइते सबार हैल मन ॥94॥

सबेइ-सभी ने; प्रशंसे—प्रशंसा की; नाटक-नाटक की; परम उत्तम-"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा"; महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; शुनाइते-सुनाने का; सबार-सबका; हैल–हो गया; मन-मन।

अनुवाद

सारे वैष्णवों ने यह कहकर नाटक की प्रशंसा की कि यह बहुत ही अच्छा है। उन्होंने यह भी इच्छा व्यक्त की कि श्री चैतन्य महाप्रभु भी यह नाटक सुनें।

गीत, श्लोक, ग्रन्थ, कवित्व—येइ करि' आने।

प्रथमे शुनाय सेइ स्वरूपेर स्थाने ॥ 95॥

गीत-गीत; श्लोक-श्लोक; ग्रन्थ-ग्रन्थ; कवित्व-कविता; येइ-जो कोई भी; करि'–बनाकर; आने-लाता; प्रथमे-पहले; शुनाय–सुनाता; सेइ-वह व्यक्ति; स्वरूपेर स्थाने–स्वरूप दामोदर गोस्वामी के सामने।

अनुवाद

यह प्रथा थी कि जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में कोई गीत, श्लोक, ग्रन्थ या कविता लिखता, तो सुनाने के लिए उसे सर्वप्रथम स्वरूप दामोदर गोस्वामी के पास लाना पड़ता।

स्वरूप-ठाञि उत्तरे यदि, लञा, ताँर मन।

तबे महाप्रभु-ठाञि कराय श्रवण ॥96॥

स्वरूप-ठात्रि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी के समक्ष; उत्तरे-उत्तीर्ण; यदि-यदि कोई; लञा–लेकर; ताँर मन-उनका मन; तबे-उसके बाद; महाप्रभु-ठाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने; कराय श्रवण-सुनवाते।

अनुवाद

यदि स्वरूप गोस्वामी हाँ कर देते, तो वह श्री चैतन्य महाप्रभु को सुनने के लिए प्रस्तुत किया जाता।

'रसाभास' हय यदि 'सिद्धान्त-विरोध'।

सहिते ना पारे प्रभु, मने हय क्रोध ॥ 97॥

रस-आभास–रसाभास; हय-हो जाता; मदि-यदि; सिद्धान्त-विरोध-भक्ति केसिद्धान्तों के विरुद्ध; सहिते ना पारे-सहन नहीं कर सकते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मने-मन में; हय-होते; क्रोध-गुस्सा।

अनुवाद

यदि इसका संकेत होता कि दिव्य रसों की व्याप्ति इस तरह हुई है, जो भक्ति सिद्धान्त के विरुद्ध हैं, तो श्री चैतन्य महाप्रभु इसे सहन नहीं कर पाते थे और अत्यन्त क्रुद्ध होते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने रसाभास की निम्नलिखित परिभाषा भक्तिरसामृतसिन्धु (उत्तर-विभाग, नवम तरंग 1-3, 33, 38 तथा 41) से दी है :

पूर्वमेवानुशिष्टेन विकला रसलक्षणा।

रसा एव रसाभासा रसज्ञैरनुकीर्तिताः ॥

स्युत्रिधोपरसाश्चानुरसाश्चापरसाश्च ते।

उत्तमा मध्यमाः प्रोक्ताः कनिष्ठाश्चेत्यमी क्रमात् ॥

प्राप्तैः स्थायिविभावानुभावाद्यैस्तु विरूपताम् ।

शान्तादयो रसा एव द्वादशोपरसा मताः ॥

भक्तादिभिर्विभावाद्यैः कृष्णसम्बन्धवर्जितैः ।

रसा हास्यादयः सप्त शान्तश्चानुरसा मताः ॥

कृष्णतत्प्रतिपक्षश्चेद् विषयाश्रयतां गताः ।

हासादीनां तदा तेऽत्र प्राज्ञैरपरसा मताः ॥

भावाः सर्वे तदाभासा रसाभासाश्च केचन ।

अमी प्रोक्त रसाभिज्ञैः सर्वेऽपि रसनाद् रसाः ॥

"जो रस क्षणिक रूप से दिव्य प्रतीत हो, किन्तु पहले बताये गये रसों का विरोध करे तथा रस की कुछ शर्तों को पूरा न करे वह उच्च भक्तों द्वारा, जो दिव्य रसों का आस्वादन करना जानते हैं, रसाभास या रसों का अतिक्रमण कहा जाता है। ऐसे रस उपरस (गौण रस), अनुरस (दिव्य रस की नकल) तथा अपरस (विरोधाभासी दिव्य रस) कहलाते हैं। इस तरह रसाभास अर्थात् रस की व्याप्ति को प्रथम, द्वितीय या तृतीय कोटि का बतलाया जाता है। जब बारह रसों को–यथा शान्त, दास्य तथा सख्य रसों को विरोधी स्थायी भाव, विभाव तथा अनुभाव द्वारा लक्षित किया जाता है, तब वे उपरस कहलाते हैं। जब सात दिव्य गौण रस तथा शुष्क शान्त रस कृष्ण और प्रेमभक्ति से सम्बन्ध न रखने वाले भक्तों तथा भावों द्वारा उत्पन्न होते हैं, तो वे अनुरस कहलाते हैं। यदि कृष्ण तथा उनसे विरोध रखने वाले शत्रु हास्य रस के लक्ष्य तथा आगार बनते हैं, तो इस तरह से उत्पन्न भाव अपरस कहलाते हैं। कभी-कभी दक्ष लोग एक रस से दूसरे का अन्तर करते समय कुछ रसाभासों को आनन्ददायक तथा आस्वादयुक्त होने के कारण रस मान बैठते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं, परस्परवैरयोर्यदि योगस्तदा रसाभास:-"जब दो विरोधी दिव्य रसों का अतिक्रमण होता है, तो वे रसाभास उत्पन्न करते हैं।"

अतएव प्रभु किछु आगे नाहि शुने ।

एइ मर्यादा प्रभु करियाछे नियमे ॥98॥

अतएव–अतः; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; किछु-कुछ भी; आगे-पहले; नाहि शुने–नहीं सुनते; एइ मर्यादा-यह मर्यादा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करियाछे नियमे-एक नियम बना दिया।

अनुवाद

इसलिए जब तक स्वरूप दामोदर पहले सुन न लें, तब तक श्री चैतन्य महाप्रभु उसे नहीं सुनते। महाप्रभु ने इस शिष्टाचार या मर्यादा को नियम बना दिया था।

स्वरूपेर ठाञि आचार्य कैला निवेदन।

एक विप्र प्रभुर नाटक करियाछे उत्तम॥ 99॥

स्वरूपेर ठाञि-स्वरूप दामोदर के सामने; आचार्य-भगवान् आचार्य ने; कैला-की; निवेदन-विनति; एक विप्र-एक ब्राह्मण ने; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु पर; नाटक- नाटक; करियाछे-रचा है; उत्तम-अति उत्तम।

अनुवाद

भगवान् आचार्य ने स्वरूप दामोदर गोस्वामी से निवेदन किया, "एक उत्तम ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में एक नाटक प्रस्तुत किया है, जो अत्युत्तम रीति से लिखा हुआ प्रतीत होता है।"

आदौ तुमि शुन, यदि तोमार मन माने।

पाछे महाप्रभुरे तबे कराइमु श्रवणे॥100॥

आदौ-प्रथम; तुमि-आप; शुन-सुनिये; यदि-यदि; तोमार मन माने-आप स्वीकार करें; पाछे-बाद में; महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; तबे-तब; कराइम श्रवणे-मैं सुनने का निवेदन करूँगा।

अनुवाद

"पहले आप सुन लें और यदि आपका मन इसे स्वीकार करे, तो मैं श्री चैतन्य महाप्रभु से इसे सुनने के लिए प्रार्थना करूँ।"

स्वरूप कहे,–"तुमि 'गोप' परम-उदार।

ये-से शास्त्र शुनिते इच्छा उपजे तोमार" ॥ 101॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा; तुमि-तुम; गोप-ग्वाल बाल; परम-उदार-अत्यन्त उदार; ये-से शास्त्र-कुछ भी शास्त्र के रूप में लिखित; शुनिते-सुनने की; इच्छा-इच्छा; उपजे–जागृत हो जाती है; तोमार तुम्हारी।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने उत्तर दिया, "हे भगवान् आचार्य, तुम अत्यन्त उदार ग्वाले हो। कभी-कभी तुम्हारे भीतर किसी भी प्रकार की कविता को सुनने की इच्छा जागृत हो जाती है।"

'यद्वा-तद्वा' कविर वाक्ये हय 'रसाभास'।

सिद्धान्त-विरुद्ध शुनिते ना हय उल्लास ॥102॥

यद्वा-तद्वा कविर–किसी भी तथाकथित कवि के; वाक्ये-वाक्यों में; हय-होता है; रस-आभास-दिव्य रसों का अतिक्रमण; सिद्धान्त-विरुद्ध-सैद्धान्तिक निष्कर्षों के विरुद्ध; शुनिते-सुनने पर; ना-नहीं; हय–होता; उल्लास-आनन्द।

अनुवाद

"तथाकथित कवियों की रचनाओं में सामान्यतया दिव्य रसों का अतिक्रमण (रसाभास) की सम्भावना रहती है। इस तरह जब रस सिद्धान्तों के विरुद्ध हो जाते हैं, तो ऐसी कविता को सुनना कोई भी पसन्द नहीं करता।"

तात्पर्य

यद्वा-तद्वा कवि उसका सूचक है, जो बिना ज्ञान के काव्य रचना करता है। काव्य रचना और वह भी वैष्णव सिद्धान्त से सम्बन्धित काव्य की रचना अत्यन्त कठिन है। यदि बिना उचित ज्ञान के काव्य रचना की जाती है, तो रसों का अतिक्रमण की पूरी सम्भावना रहती है। जब ऐसा होता है, तो कोई भी विद्वान या उच्च वैष्णव उसे सुनना पसन्द नहीं करेंगे।

'रस', 'रसाभास' यार नाहिक विचार।

भक्ति-सिद्धान्त-सिन्धु नाहि पाय पार ॥103॥

रस-दिव्य रस; रस-आभास-दिव्य रसों का अतिक्रमण; यार–जिसको; नाहिक विचार-कोई विचार नहीं है; भक्ति-सिद्धान्त-सिन्धु-भक्ति के सिद्धान्तों का समुद्र; नाहि-नहीं; पाय-प्राप्त करता; पार–सीमा।

अनुवाद

जिस कवि को दिव्य रसों का तथा उनके अतिक्रमण का ज्ञान नहीं होता, वह भक्ति के सिद्धान्त रूपी सागर को पार नहीं कर सकता।

'व्याकरण' नाहि जाने, ना जाने 'अलङ्कार'।

'नाटकालङ्कार'-ज्ञान नाहिक याहार ॥ 104॥

कृष्ण-लीला वर्णिते ना जाने सेइ छार!।

विशेषे दुर्गम एइ चैतन्य-विहार ॥105॥

व्याकरण-व्याकरण; नाहि जाने-नहीं जानता; ना जाने-नहीं जानता; अलङ्कार-अलंकार; नाटक-अलङ्कार–नाटक के अलंकारों का; ज्ञान-ज्ञान; नाहिक-नहीं है। याहार–जिसको; कृष्ण-लीला-भगवान् कृष्ण की लीलाएँ; वर्णिते-वर्णन करना; ना जाने-नहीं जानता; सेइ-वह; छार–पतित; विशेषे-विशेष रूप से; दुर्गम-अत्यन्त कठिन; एइ-ये; चैतन्य-विहार-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ।

अनुवाद

"जो कवि व्याकरण के नियमों को नहीं जानता, जो अलंकारों, विशेषतया नाटक में प्रयुक्त अलंकारों को नहीं जानता और जो यह नहीं जानता कि श्रीकृष्ण की लीलाओं को किस तरह प्रस्तुत किया जाए, उसे धिक्कार है। इतना ही नहीं, श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ समझने में विशेष रूप से कठिन हैं।"

कृष्ण-लीला, गौर-लीला से करे वर्णन।

गौर-पाद-पद्म याँर हय प्राण-धन ॥106॥

कृष्ण-लीला-भगवान् कृष्ण की लीलाएँ; गौर-लीला-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; से-वह; करे वर्णन-वर्णन करता है; गौर-पाद-पद्म-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; याँर–जिसके; हय-हैं; प्राण-धन-जीवन (प्राण) और आत्मा।

अनुवाद

जिसने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को अपने प्राण-धन के रूप में स्वीकार कर लिया है, वही भगवान् कृष्ण या श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन कर सकता है।

ग्राम्य-कविर कवित्व शुनिते हय 'दुःख'।

विदग्ध-आत्मीय-वाक्य शुनिते हय 'सुख' ॥107॥

ग्राम्य-कविर–पुरुष और स्त्री सम्बन्धी कविताएँ लिखने वाले कवि की; कवित्व- कविता; शुनिते-सुनने से; हय–होता है; दुःख-दुःख; विदग्ध-आत्मीय-प्रेमभाव में पूर्णतया निमग्न भक्त के; वाक्य-वचन; शुनिते-सुनकर; हय होता है; सुख-आनन्द।

अनुवाद

"जिस व्यक्ति को दिव्य ज्ञान नहीं है और जो पुरुष तथा स्त्री के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में लिखता है, उसकी कविता सुनकर केवल दुःख होता है, जबकि प्रेम में डूबे भक्त के शब्दों को सुनकर परम सुख उत्पन्न होता है।"

तात्पर्य

ग्राम्य-कवि द्योतक है ऐसे कवि या लेखक का, जो स्त्री तथा पुरुष के सम्बन्धों के विषय में उपन्यास लिखते हैं। किन्तु विदग्ध-आत्मीय-वाक्य द्योतक है उस भक्त द्वारा लिखे गये शब्दों का, जो शुद्ध भक्ति को भली-भाँति समझता है। ऐसे भक्त जो परम्परा पद्धति का पालन करते हैं, वे सजातीयाशय-स्निग्ध कहलाते हैं—अर्थात् वे अपने ही जैसे लोगों को अच्छे लगने वाले हैं। भक्तगण ऐसे ही काव्य तथा अन्य रचनाओं को अत्यन्त सुखपूर्वक स्वीकार करते हैं।

रूप यैछे दुइ नाटक करियाछे आरम्भे।

शुनिते आनन्द बाड़े यार मुख-बन्धे ॥108॥

रूप-रूप गोस्वामी ने; यैछे-जैसे; दुइ-दो; नाटक-नाटक; करियाछे आरम्भे-रचे हैं; शुनिते-सुनकर; आनन्द बाड़े-दिव्य आनन्द बढ़ जाता है; ग्रार–जिसका; मुख-बन्धे–मात्र आमुख भाग सुनकर ही।

अनुवाद

"रूप गोस्वामी ने नाटक रचना का मानक स्थापित किया है। यदि भक्तगण उनके दो नाटकों के आमुख अंशों को सुनते हैं, तो उनसे उनके आनन्द में वृद्धि होती है।"

भगवानाचार्य कहे,—"शुन एक-बार ।

तुमि शुनिले भाल-मन्द जानिबे विचार" ॥ 109॥

भगवान्-आचार्य-भगवान् आचार्य; कहे-कहते हैं; शुन–कृपया सुनिये; एक-बार-एक बार; तुमि शुनिले–यदि आप सुनते हैं; भाल-मन्द-अच्छा या बुरा; जानिबे विचार–समझ पायेंगे।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर द्वारा इस तरह समझाने के बाद भी भगवान् आचार्य ने अनुरोध किया, "कृपया एक बार तो यह नाटक सुन लीजिये। यदि आप सुनेंगे, तो विचार कर सकेंगे कि यह अच्छा है या बुरा।"

दुइ तिन दिन आचार्य आग्रह करिल ।

ताँर आग्रहे स्वरूपेर शुनिते इच्छा हइल ॥110॥

दुइ तिन दिन-दो या तीन दिन तक; आचार्छ-भगवान् आचार्य ने; आग्रह करिल-अपनी तीव्र इच्छा व्यक्त की; ताँर आग्रहे-उनकी उत्सुकता द्वारा; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर की; शुनिते-सुनने की इच्छा-इच्छा; हइल हो गई।

अनुवाद

भगवान् आचार्य ने लगातार दो-तीन दिनों तक स्वरूप दामोदर गोस्वामी से काव्य सुनने के लिए आग्रह किया। उनके बारम्बार अनुरोधों से स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने बंगाल के ब्राह्मण द्वारा रचित काव्य को सुनने की इच्छा व्यक्त की।

सबा लञा स्वरूप गोसाञि शुनिते वसिला ।

तबे सेइ कवि नान्दी-श्लोक पड़िला ॥111॥

सबा लञा-अन्य भक्तों के संग में; स्वरूप गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; शुनिते वसिला-सुनने के लिए बैठ गये; तब-तब; सेइ कवि–उस कवि ने; नान्दी-श्लोक-नान्दी श्लोक; पड़िला-पढ़ा।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी काव्य सुनने के लिए अन्य भक्तों के साथ बैठ गये और तब कवि ने परिचयात्मक श्लोक (नान्दी श्लोक) पढ़ना प्रारम्भ किया।

विकच-कमल-नेत्रे श्री-जगन्नाथ-संज्ञे

कनक-रुचिरिहात्मन्यात्मतां यः प्रपन्नः ।

प्रकृति-जड़मशेषं चेतयन्नाविरासीत्

स दिशतु तव भव्यं कृष्ण-चैतन्य-देवः ॥112॥

विकच-विस्तृत; कमल-नेत्रे-जिसके कमलनयन; श्री-जगन्नाथ-संज्ञे-श्री जगन्नाथ नामक; कनक-रुचिः-स्वर्णिम कान्ति युक्त; इह-यहाँ जगन्नाथ पुरी में; आत्मनि–शरीर में; आत्मताम्-आत्मत्व; यः-जिन्होंने; प्रपन्नः-प्राप्त कर ली है; प्रकृति-प्रकृति; जड़म्- जड़; अशेषम्-असीमित; चेतयन्–जगाते हुए; आविरासीत्-प्रकट हुए हैं; सः–वे; दिशतु-वर्षा करें; तव-आप पर; भव्यम्-कृपा, सौभाग्य; कृष्ण-चैतन्य-देवः-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने सुनहरा वर्ण धारण कर लिया है और जगन्नाथ नामक शरीर के आत्मा बन गये हैं, जिनके विकसित कमलनेत्र अतीव विस्तृत हैं। इस तरह वे जगन्नाथ पुरी में प्रकट हुए हैं और उन्हों ने जड़ पदार्थ को चेतन बना दिया है। वे श्रीकृष्ण चैतन्यदेव तुम सबको सौभाग्य प्रदान करें।"

श्लोक शुनि' सर्व-लोक ताहारे बाखाने ।

स्वरूप कहे,—"एइ श्लोक करह व्याख्याने" ॥113॥

श्लोक शुनि'–श्लोक सुनकर; सर्व-लोक-सभी ने; ताहारे-उसकी; वाखाने-प्रशंसा की; स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा; एइ श्लोक-इस श्लोक का; करह व्याख्याने–कृपया वर्णन करो।

अनुवाद

जब उपस्थित लोगों ने यह श्लोक सुना, तो सबने कवि की प्रशंसा की, किन्तु स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने उससे अनुरोध किया कि, "कृपया इस श्लोक की व्याख्या करें।"

कवि कहे,—जगन्नाथ—सुन्दर-शरीर ।

चैतन्य-गोसाञि—शरीरी महा-धीर ॥114॥

कवि कहे-कवि ने कहा; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ; सुन्दर-शरीर-अत्यन्त सुन्दर शरीर, चैतन्य-गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु; शरीरी-आत्मा; महा-धीर-अत्यन्त धीर।

अनुवाद

कवि ने कहा, "जगन्नाथजी अत्यन्त सुन्दर शरीर हैं और श्री चैतन्य महाप्रभु जो कि अत्यन्त धीर हैं, उस शरीर के स्वामी हैं।"

तात्पर्य

शरीरी उस व्यक्ति का द्योतक है, जो उस शरीर का मालिक है। भगवद्गीता (2.13) में कहा गया है :

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

“जिस तरह शरीरधारी आत्मा इस शरीर में बाल्यावस्था से तरुणावस्था में और फिर वृद्धावस्था में निरन्तर अग्रसर होता रहता है, उसी प्रकार मृत्यु होने पर आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। धीर व्यक्ति ऐसे परिवर्तन से मोहग्रस्त नहीं होता।” संसार के सामान्य जीव के लिए शरीर तथा शरीर के स्वामी में अन्तर या भेद होता है। किन्तु आध्यात्मिक जगत् में ऐसा अन्तर नहीं है, क्योंकि शरीर स्वयं स्वामी है और स्वामी ही शरीर है। आध्यात्मिक जगत् में हर वस्तु को आध्यात्मिक होना चाहिए। अतएव शरीर तथा शरीरी में कोई अन्तर नहीं है।

सहजे जड़-जगतेर चेतन कराइते ।

नीलाचले महाप्रभु हैला आविर्भूते ॥115॥

सहजे–स्वाभाविक रूप से; जड़-जगतेर-जड़ भौतिक जगत् को; चेतन कराइते-आध्यात्मिक चेतना दिलाने के लिए; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हैला आविर्भूते-प्रकट हुए हैं।

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु यहाँ नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) में सम्पूर्ण जड़ भौतिक जगत् को आध्यात्मिक बनाने के लिए प्रकट हुए हैं।”

शुनिया सबार हैल आनन्दित-मन ।

दुःख पाञा स्वरूप कहे सक्रोध वचन ॥116॥

शुनिया-सुनकर; सबार-सभी को; हैल–हुआ; आनन्दित-मन-मन में अति आनन्द; दुःख पाञा-दुःखी होकर; स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहना प्रारम्भ किया; स-क्रोध वचन-क्रुद्ध वचनों के साथ।

अनुवाद

यह सुनकर वहाँ पर उपस्थित सारे लोग अत्यन्त प्रसन्न थे। किन्तु स्वरूप दामोदर, जो कि अकेले ही अत्यन्त दुःखी थे, अत्यन्त क्रोध से बोले।

आरे मूर्ख, आपनार कैलि सर्व-नाश! ।

दुइ त' ईश्वरे तोर नाहिक विश्वास ॥117॥

आरे मूर्ख-हे मूर्ख; आपना-अपना; कैलि-तुमने किया है; सर्व-नाश-सब सौभाग्य का नाश; दुइ त' ईश्वरे दोनों भगवान् में; तोर-तुम्हारा; नाहिक विश्वास–विश्वास नहीं है।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "तुम मूर्ख हो। तुमने अपने सर्वनाश को अपने आप बुलाया है, क्योंकि तुम्हें न तो दो भगवानों-जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु-का ज्ञान है, न ही उनमें तुम्हारी श्रद्धा है।"

पूर्णानन्द-चित्स्वरूप जगन्नाथ-राय ।

ताँरे कैलि जड़-नश्वर-प्राकृत-काय!! ॥118॥

पूर्ण-आनन्द–सम्पूर्ण दिव्य आनन्द; चित्-स्वरूप-आध्यात्मिक स्वरूप; जगन्नाथ-राय-भगवान जगन्नाथ; ताँरे-उनको; कैलि-तुमने बना दिया; जड़-जड़; नश्वर- नाशवान; प्राकृत-भौतिक; काय-शरीरधारी।

अनुवाद

"भगवान जगन्नाथ सम्पूर्ण आध्यात्मिक हैं और दिव्य आनन्द से परिपूर्ण हैं, किन्तु तुमने उनकी तुलना जड़ नाशवान शरीर से की है, जो भगवान् की निष्क्रिय बहिरंगा शक्ति से बना है।"

तात्पर्य

यदि कोई यह सोचता है कि भगवान जगन्नाथ का स्वरूप काष्ठनिर्मित मूर्ति है, तो वह अपने लिए तुरन्त ही दुर्भाग्य को बुलावा देता है। पद्म पुराण के अनुसार--अर्चे विष्णौ शिलाधी:...यस्य वा नारकी सः ।"जो मन्दिर के अर्चाविग्रह को पत्थर या काष्ठ का बना मानता है, वह नरक का निवासी है।" इस तरह जो व्यक्ति यह सोचता है कि भगवान जगन्नाथ का शरीर पदार्थ का बना है और जो भगवान जगन्नाथ के शरीर तथा आत्मा में अन्तर करता है, उसे धिक्कार है, क्योंकि वह अपराधी है। वह शुद्ध भक्त, जो कृष्णभावना के विज्ञान को जानता है, वह भगवान जगन्नाथ

तथा उनके शरीर में अन्तर नहीं करता। वह जानता है कि वे अभिन्न हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि भगवान् कृष्ण तथा उनका आत्मा एक हैं। जब मनुष्य के नेत्र आध्यात्मिक पद पर सम्पादित भक्ति द्वारा शुद्ध हो जाते हैं, तब वह भगवान जगन्नाथ तथा उनके शरीर को वास्तव में पूर्ण आध्यात्मिक रूप में देख सकता है। इसलिए उन्नत भक्त पूज्य आराध्य श्रीविग्रह को सामान्य व्यक्ति की तरह शरीर के भीतर आत्मा से युक्त नहीं मानता। भगवान् जगन्नाथ के शरीर और आत्मा में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि भगवान् जगन्नाथ सच्चिदानन्द विग्रह हैं, ठीक उसी तरह जैसे कि कृष्ण का शरीर सच्चिदानन्द विग्रह है। वस्तुत: भगवान जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु बंगाल के अज्ञानी कवि ने भगवान् श्री जगन्नाथ के शरीर के लिए भौतिक अन्तर का प्रयोग किया।

पूर्ण-घड़ू-ऐश्वर्य चैतन्य—स्वयं भगवान् ।

तारे कैलि क्षुद्र जीव स्फुलिङ्ग समान!! ॥119॥

पूर्ण-सम्पूर्ण; षट्-ऐश्वर्य-छ: ऐश्वर्यों से युक्त; चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; स्वयम्-स्वयं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; तारे–उनको; कैलि–तुमने बना दिया; क्षुद्र जीव–एक सामान्य जीवात्मा; स्फुलिङ्ग-समान–अंश के समान।

अनुवाद

"तुमने श्री चैतन्य महाप्रभु को, जो कि छ: ऐश्वर्यों से युक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, सामान्य जीव के स्तर को कहा है। उन्हें परम अग्नि के रूप में न जानकर तुमने उन्हें एक स्फुलिंग के रूप में मान लिया है।"

तात्पर्य

उपनिषदों में कहा गया है- यथाग्नेर् विस्फुलिंगा व्युच्चरन्ति–जीव अग्नि के स्फुलिंगों के समान हैं और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मूल विशाल अग्नि माने जाते हैं। जब हम यह श्रुतिवाक्य सुनते हैं, तब हमें भगवान् कृष्ण तथा जीवों के बीच के अन्तर को समझना चाहिए। किन्तु जो व्यक्ति बहिरंगा शक्ति के अधीन होता है, वह इस अन्तर को नहीं समझ सकता। ऐसा व्यक्ति यह नहीं समझ सकता कि परम पुरुष मूल विशाल अग्नि हैं, जबकि जीव उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सूक्ष्म भिन्नांश मात्र हैं। भगवद्गीता (15.7) में कृष्ण कहते हैं :

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

“इस बद्ध जगत् में सारे जीव मेरे शाश्वत अंश हैं। बद्ध जीवन के कारण वे मन सहित छहों इन्द्रियों से घोर संघर्ष कर रहे हैं।”

भौतिक जगत् के जीव के शरीर तथा आत्मा में अन्तर होता है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् जगन्नाथ के कोई भौतिक शरीर नहीं होते हैं, अतएव उनके शरीरों तथा आत्माओं में कोई अन्तर नहीं है। आध्यात्मिक स्तर पर शरीर तथा आत्मा अभिन्न हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं है। श्रीमद्भागवत (1.11.38) में कहा गया है:

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः।

न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥

“यह भगवान् का ईश्वरत्व है। वे भौतिक प्रकृति के गुणों से प्रभावित नहीं होते, यद्यपि वे उनके संसर्ग में रहते हैं। इसी तरह जिन भक्तों ने भगवान् की शरण ले रखी है, वे भौतिक गुणों द्वारा प्रभावित नहीं हो सकते।” पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण प्रकृति के तीन गुणों से प्रभावित नहीं होते। निस्सन्देह, उनके भक्त भी बहिरंगा शक्ति के प्रभाव से अकलुषित रहते हैं, क्योंकि वे भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं। भक्त का शरीर भी आध्यात्मिक बन जाता है, जिस तरह कि अग्नि में रखी हुई लोहे की सलाख अग्नि के समान ही तप्त बन जाती है और जो कोई उसे छूता है, वह तुरन्त जल जाता है। इसलिए बंगाल के कवि ने भगवान जगन्नाथ के शरीर तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जगन्नाथ को दो भिन्न हस्ती-भौतिक तथा आध्यात्मिक-मानकर, जैसे भगवान् कोई सामान्य जीव हों, घोर अपराध किया। भगवान् सदैव भौतिक शक्ति के स्वामी हैं, अतएव वे सामान्य जीव के समान भौतिक शक्ति द्वारा आच्छादित नहीं होते।

दुइ-ठाञि अपराधे पाइबि दुर्गति! ।

अतत्त्व-ज्ञ ‘तत्त्व’ वर्णे, तार एइ रीति! ॥120॥

दुइ-ठाञि-दोनों के प्रति; अपराधे-अपराध द्वारा; पाइबि-तुम्हें मिलेगा; दुर्गति- नरक वास; अ-तत्त्व-ज्ञ-जिसे परम सत्य का कुछ भी ज्ञान नहीं है; तत्त्व वर्णे-परम सत्य का वर्णन करता है; तार-उसकी; एइ–यही; रीति-गति है।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने आगे कहा, "चूँकि तुमने भगवान् जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति अपराध किया है, अतएव तुम्हें नरक की प्राप्ति होगी। तुम यह भी नहीं जानते कि परम सत्य का वर्णन किस तरह किया जाता है, तो भी तुमने ऐसा करने का प्रयास किया है। इसलिए तुम्हें धिक्कार है।"

तात्पर्य

बंगाल से आया ब्राह्मण कवि स्वरूप दामोदर गोस्वामी की दृष्टि से एक अपराधी था, क्योंकि उसने परम सत्य का कोई ज्ञान न होते हुए भी उनका वर्णन करने का प्रयास किया था। यह बंगाली कवि श्री चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् जगन्नाथ दोनों के प्रति अपराधी था। चूँकि उसने भगवान् जगन्नाथ के शरीर तथा आत्मा में अन्तर किया था और उसी के साथ उसने श्री चैतन्य महाप्रभु को जगन्नाथजी से भिन्न कहा था, इसलिए उसने इन दोनों के प्रति अपराध किया था। अ-तत्त्व-ज्ञ वह है, जिसे परम सत्य का कोई ज्ञान नहीं होता अथवा जो अपने शरीर की पूजा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में करता है। यदि सकाम कर्म में लगा या केवल इन्द्रियतृप्ति में लगा रहने वाला व्यक्ति- अहंग्रहोपासक-मायावादी- परम सत्य का वर्णन करता है, तो वह तुरन्त अपराधी बन जाता है।

आर एक करियाछ परम 'प्रमाद'! ।

देह-देहि-भेद ईश्वरे कैले 'अपराध'! ॥121॥

आर एक-एक ओर; करियाछ-तुमने किया है; परम-बड़ी; प्रमाद-गलती; देह- देहि-भेद-शरीर और आत्मा के बीच अन्तर; ईश्वरे-भगवान् में; कैले–तुमने किया है; अपराध-अपराध।

अनुवाद

तुम पूर्णतया भ्रम में हो, क्योंकि तुमने भगवान् (जगन्नाथ अथवा श्री चैतन्य महाप्रभु) के शरीर तथा आत्मा में भेद किया है। यह एक महान् अपराध है।

तात्पर्य

जब कोई व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर तथा आत्मा में अन्तर करता है, तो वह तुरन्त अपराधी बन जाता है। चूँकि भौतिक जगत् में सारे जीव भौतिक शरीरों से आच्छादित होते हैं, अतएव सामान्य मनुष्य के शरीर तथा आत्मा अभिन्न नहीं हो सकते। परम भगवान् हर एक को उसके कर्म का फल देते हैं, क्योंकि वे सकाम कर्म के फलों के स्वामी हैं। वे समस्त कारणों के कारण भी हैं और भौतिक शक्ति के स्वामी हैं। अतएव वे सर्वश्रेष्ठ हैं। किन्तु सामान्य जीव अपनी भौतिक दशा में अपने सकाम कर्मों के फलों का भोग करता है, अतएव उनके प्रभाव में आ जाता है। यहाँ तक कि ब्रह्मभूत की मुक्त अवस्था में भी वह भगवान् की सेवा करता है। इस तरह सामान्य जीव तथा परम भगवान् में अन्तर होते हैं। जो कर्मी तथा ज्ञानी इन अन्तरों की अवहेलना करते हैं, वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों के प्रति अपराधी हैं।

सामान्य व्यक्ति भौतिक शक्ति के वशीभूत हो सकता है, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्–श्री चैतन्य महाप्रभु, भगवान् कृष्ण या भगवान जगन्नाथ-सदैव भौतिक शक्ति के स्वामी हैं, अतएव वे कभी भी उसके प्रभाव के पात्र नहीं होते। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का परम असीम आध्यात्मिक स्वरूप होता है, जो कभी खंडित नहीं होता, किन्तु जीव की चेतना सीमित तथा सूक्ष्म होती है। सारे जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सनातन सूक्ष्म भिन्नांश होते हैं (ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः)। ऐसा नहीं है कि वे बद्ध जीवन में भौतिक शक्ति द्वारा आच्छादित रहते हैं, किन्तु जब इस भौतिक शक्ति के प्रभाव से मुक्त कर दिये जाते हैं, तो वे भगवान् के साथ एकाकार हो जाते हैं। ऐसा विचार अपराध है।

मायावादी मूर्खा के अनुसार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भौतिक भौतिक जगत् में प्रकट होते हैं, तब वे भौतिक शरीर धारण करते हैं। किन्तु एक वैष्णव इसे भलीभाँति जानता है कि सामान्य मनुष्यों की तरह कृष्ण, भगवान जगन्नाथ या श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं होता। यहाँ तक कि भौतिक जगत् में भी भगवान् अपना आध्यात्मिक स्वरूप बनाये रखते हैं। इसीलिए भगवान् कृष्ण ने अपने बाल रूप में भी समस्त ऐश्वर्यों को प्रकट किया। कृष्ण के शरीर तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं है चाहे उनका बाल रूप हो या कौमार रूप। वे सदैव अपने शरीर से अभिन्न हैं। यद्यपि कृष्ण सामान्य मनुष्य की तरह प्रकट होते हैं, किन्तु उन पर भौतिक जगत् के नियम लागू नहीं होते। वे स्वराट् हैं–पूर्ण स्वतन्त्र हैं। वे भौतिक जगत् में प्रकट हो सकते हैं, किन्तु इस मायावादी-मत के अपराधमूलक निष्कर्ष के विपरीत, उनका शरीर भौतिक नहीं होता। इस सन्दर्भ में पुनः श्रीमद्भागवत के उपर्युक्त श्लोक (1.11.38) का उल्लेख किया जा सकता है :

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ।

न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥

परम पुरुष का शरीर सनातन तथा आध्यात्मिक होता है। यदि कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर तथा आत्मा में भेद करना चाहता है, तो वह महान् अपराध करता है।

ईश्वरेर नाहि कभु देह-देहि-भेद ।

स्वरूप, देह,—चिदानन्द, नाहिक विभेद ॥122॥

ईश्वरेर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का; नाहि-नहीं है; कभु-कभी भी; देह-देहि-भेद- शरीर और आत्मा में अन्तर; स्वरूप-स्वरूप; देह-शरीर; चित्-आनन्द–आनन्दमय आध्यात्मिक शक्ति से निर्मित; नाहिक विभेद-कुछ भी अन्तर नहीं है।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर तथा आत्मा में कभी भी कोई अन्तर नहीं होता। उनका स्वरूप तथा उनका शरीर आनन्दमय आध्यात्मिक शक्ति से बना होता है (चिदानन्द)। उनमें कोई अन्तर नहीं होता।

तात्पर्य

नन्द महाराज के पुत्र भगवान् कृष्ण अद्वय-ज्ञान हैं—अर्थात् उनके शरीर तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि उनका अस्तित्व पूर्णतया आध्यात्मिक है। वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वम् से प्रारम्भ होने वाले श्रीमद्भागवत के श्लोक (1.2.11) के अनुसार परम सत्य को सदा तीन दृष्टिबिन्दुओं से समझा जाना चाहिए-ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्। किन्तु भौतिक जगत् की वस्तुओं के विपरीत, परम सत्य सदैव एक और अपरिवर्तित रहता है। इसलिए उनके शरीर तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं होता। अतएव उनके रूप, नाम, गुण तथा लीलाएँ भौतिक जगत् की लीलाओं आदि से सर्वथा भिन्न हैं। यह भलीभाँति समझ लेना होगा कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं है। जब कोई

व्यक्ति उनके शरीर तथा आत्मा में अन्तर की कल्पना करता है, तो वह तुरन्त भौतिक प्रकृति द्वारा बद्ध हो जाता है। चूँकि भौतिक जगत् में मनुष्य ऐसे अन्तर करता है, इसीलिए वह बद्धजीव कहलाता है।

"देह-देहि-विभागोऽयं नेश्वरे विद्यते क्वचित्" ॥123॥

देह-शरीर का; देहि-आत्मा का; विभाग:-भेद; अयम्-यह; न-नहीं; ईश्वरे-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में; विद्यते-होता है; क्वचित्-कभी भी।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर तथा आत्मा में कभी भी कोई अन्तर नहीं होता।"

तात्पर्य

यह उद्धरण लघु भागवतामृत (1.5.342) में सम्मिलित है और कूर्म पुराण का है।

नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपम्

आनन्द-मात्रमविकल्पमविद्ध-वर्चः ।

पश्यामि विश्व-सृजमेकमविश्वमात्मन्

भूतेन्द्रियात्मक-मदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥124॥

तद्वा इदं भुवन-मङ्गल मङ्गलाय

ध्याने स्म नो दरशितं त उपासकानाम् ।

तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं

योऽनादृतो नरक-भाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥ 125॥

न-नहीं; अतः परम्-इससे बढ़कर; परम-हे परमेश्वर; यत्-जो; भवतः-आपके; स्वरूपम्-नित्य स्वरूप; आनन्द-मात्रम्-निराकार ब्रह्मज्योति; अविकल्पम्-परिवर्तन रहित; अविद्ध-वर्चः-शक्ति के क्षय से रहित; पश्यामि-मैं देखता हूँ;

विश्व-सृजम्- ब्रह्माण्ड के रचयिता; एकम्-अद्वितीय; अविश्वम्-जड़ से परे; आत्मन्-हे परम कारण; भूत-शरीर; इन्द्रिय-इन्द्रियाँ; आत्मक-ऐसे व्यक्तित्व पर; मदः–घमण्ड; ते-आपको; उपाश्रितः-समर्पित; अस्मि-मैं हूँ; तत्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; वा-या; इदम्-यह वर्तमान स्वरूप; भुवन-मङ्गल–वे सभी ब्रह्माण्डों के लिए सर्व शुभकारी हैं; मङ्गलाय-सर्वमंगल के लिए; ध्याने-ध्यान में; स्म-यह जैसा था; नः-हमारे लिए; दरशितम्-प्रकट हुआ; ते-आपके; उपासकाना-भक्तों का; तस्मै–उनको; नमः-मेरा सादर प्रणाम; भगवते-भगवान् के लिए; अनुविधेम-मैं करता हूँ; तुभ्यम्-आपको; यः–जो; अनादृतः-आदर नहीं किया गया; नरक-भाग्भिः-नरक जाने योग्य लोगों द्वारा; असत्-प्रसङ्गैः- भौतिक विषयों द्वारा।

अनुवाद

"हे मेरे प्रभु, मैं आपके इस शाश्वत आनन्द तथा ज्ञानमय रूप से श्रेष्ठ अन्य कोई रूप नहीं देखता हूँ। आध्यात्मिक आकाश में आपकी निर्विशेष ब्रह्मज्योति में न तो समय-समय पर कोई परिवर्तन होता है और न आपकी अन्तरंगा शक्ति में कोई ह्रास पाया जाता है। मैं आपके प्रति आत्मसमर्पण करता हूँ, क्योंकि यद्यपि मुझे अपने भौतिक शरीर और इन्द्रियों पर अभिमान है, किन्तु आप पूरे ब्रह्माण्ड की सृष्टि के कारण हैं। फिर भी आपको जड़ पदार्थ स्पर्श नहीं करता।"

"आपका यह वर्तमान स्वरूप अथवा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा विस्तारित कोई अन्य रूप समस्त ब्रह्माण्डों के लिए समान रूप से मंगलकारी है। चूँकि आपने अपने इस शाश्वत व्यक्तिगत रूप को प्रकट किया है, जिसका आपके भक्त ध्यान करते हैं, इसलिए मैं आपको सादर नमन करता हूँ। जिन लोगों के भाग्य में नरक जाना निश्चित हो चुका है, वे लौकिक विषयों के चिन्तन में तल्लीन रहने के कारण आपके निजी रूप की उपेक्षा करते हैं।"

तात्पर्य

ये श्लोक श्रीमद्भागवत (3.9.3-4) से हैं, जिन्हें ब्रह्माजी ने कहा था।

काहाँ 'पूर्णानन्दैश्वर्य' कृष्ण 'मायेश्वर'! ।

काहाँ 'क्षुद्र' जीव 'दुःखी', 'मायार किङ्कर'! ॥126॥

काहाँ–कहाँ; पूर्ण–पूर्ण; आनन्द–आनन्द; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; माया-ईश्वर–भौतिक प्रकृति के स्वामी; काहाँ–कहाँ; क्षुद्र जीव-तुच्छ बद्धजीव; दुःखी- दुःखी; मायार किङ्कर-भौतिक शक्ति का दास।

अनुवाद

"कहाँ दिव्य आनन्द से पूर्ण, छः पूर्ण आध्यात्मिक ऐश्वर्यों से युक्त तथा भौतिक शक्ति के स्वामी परम सत्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण और कहाँ क्षुद्र बद्धजीव, जो सदैव दुःखी रहता है और भौतिक शक्ति का दास है।"

तात्पर्य

जीव तो भौतिक शक्ति (माया) का नित्य बद्ध दास है, जबकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण भौतिक शक्ति के स्वामी (मायेश्वर) हैं। तो भला वे किस तरह समान स्तर पर हो सकते हैं? उनमें कोई तुलना नहीं हो सकती। भगवान् सदैव दिव्य आनन्द की अवस्था को प्राप्त रहते हैं, जबकि जीव भौतिक शक्ति के सम्पर्क में होने के कारण सदैव दुःखी रहता है। परमेश्वर भौतिक शक्ति को नियन्त्रित करते हैं और भौतिक शक्ति बद्धजीवों को नियन्त्रित करती है। इसलिए पूर्ण पूरुषोत्तम भगवान् तथा सामान्य जीवों में कोई तुलना नहीं हो सकती।

ह्लादिन्या सम्विदाश्लिष्टः सच्चिदानन्द-ईश्वरः ।

स्वाविद्या संवृतो जीवः सङ्क्लेश-निकराकरः ॥127॥

ह्लादिन्या-ह्लादिनी शक्ति द्वारा; सम्विदा-सम्वित् शक्ति द्वारा; आश्लिष्टः-आवृत; सत्-चित्-आनन्दः-सदैव दिव्य आनन्द से पूर्ण; ईश्वरः-परम नियन्ता; स्व-अपने; अविद्या-अज्ञान द्वारा; संवृतः-आवृत; जीवः-जीव; सङ्क्लेश-त्रि-तापों के; निकर-भण्डार की; आकरः-खान।

अनुवाद

"परम नियन्ता, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सदैव दिव्य आनन्द से पूरित रहते हैं और ह्लादिनी तथा सम्वित् नामक शक्तियों से युक्त होते हैं। किन्तु बद्धजीव सदैव अविद्या से आवृत रहता है और जीवन के तीन क्लेशों से चिन्तित रहता है। इस तरह वह सभी प्रकार के क्लेशों का आगार होता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीधर स्वामी कृत भावार्थ दीपिका (1.7.6) में है, जहाँ वे श्री विष्णु स्वामी का उद्धरण दे रहे हैं।

शुनि' सभा-सदेर चित्ते हैल चमत्कार ।

"सत्य कहे गोसाञि, दुँहार करियाछे तिरस्कार" ॥128॥

शुनि'–सुनकर; सभा-सदेर-सभा के सभी सदस्यों के; चित्ते–मनों में, हैल-हो गया; चमत्कार-आश्चर्य; सत्य–सच; कहे-कहा; गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने; दुहार दोनों का; करियाछे–किया है; तिरस्कार-अपराध।

अनुवाद

यह व्याख्या सुनकर सभा के सारे सदस्य आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने स्वीकार किया कि, "स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने वास्तविक सत्य कहा है। बंगाल के इस ब्राह्मण ने भगवान जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु का गलत वर्णन करके अपराध किया है।"

शुनिया कविर हैल लज्जा, भय, विस्मय ।

हंस-मध्ये बक यैछे किछु नाहि कय ॥129॥

शुनिया-सुनकर; कविर-कवि का; हैल-हो गया; लज्जा–शर्म; भय-भय; विस्मय-आश्चर्य; हंस-मध्ये-श्वेत हंसों की सभा में; बक-एक बगुला; यैछे-जैसे; किछु-कुछ; नाहि-नहीं; कय–कहता।

अनुवाद

जब बंगाली कवि ने स्वरूप दामोदर गोस्वामी की यह भर्सना सुनी, तो वह लज्जित, भयभीत तथा आश्चर्यचकित हुआ। निस्सन्देह, हंसों के बीच में बगुले की तरह होने से वह कुछ भी नहीं कह सका।

तार दुःख देखि, स्वरूप सदय-हृदय ।

उपदेश कैला तारे यैछे 'हित' हय ॥130॥

तार-उसकी; दुःख देखि-अप्रसन्नता देखकर; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; सदय-हृदय-अत्यन्त दयापूर्ण हृदय से; उपदेश कैला-उपदेश दिये; तारे-उसे; यैछे- ताकि; हित-लाभ; हय-हो सके।

अनुवाद

कवि के दुःख को देखकर अत्यन्त दयालु स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने उसे उपदेश दिया, जिससे उसे कुछ लाभ मिल सके।

याह, भागवत पड़ वैष्णवेर स्थाने ।

एकान्त आश्रय कर चैतन्य-चरणे ॥ 131॥

याह-जाओ; भागवत पड़- श्रीमद्भागवत पढ़ो; वैष्णवेर स्थाने-एक स्वरूप सिद्ध वैष्णव से; एकान्त आश्रय कर– पूर्ण समर्पण करो; चैतन्य-चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "यदि तुम श्रीमद्भागवत समझना चाहते हो, तो तुम्हें किसी स्वरूपसिद्ध वैष्णव के पास जाकर उससे सुनना चाहिए। तुम ऐसा तब कर सकते हो, जब तुम श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में पूरी तरह से शरण ग्रहण करते हो।"

तात्पर्य

यहाँ पर स्वरूप दामोदर गोस्वामी बंगाली कवि को शुद्ध वैष्णव से श्रीमद्भागवत सुनने और उनसे सीखने का उपदेश देते हैं। विशेषतया भारत में आजकल पेशेवर भागवत वाचकों का एक वर्ग है, जिनकी जीविका का साधन एक गाँव से दूसरे गाँव, एक नगर से दूसरे नगर जाकर भागवत का पठन करना तथा धन या सामान यथा छाता, वस्त्र, फल के रूप में दक्षिणा एकत्र करना है। इस तरह अब भागवत का व्यापार चल रहा है, जिसमें एक सप्ताह तक पाठ चलता है, जिसे भागवत सप्ताह कहते हैं, यद्यपि श्रीमद्भागवत में इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं है। श्रीमद्भागवत में कहीं नहीं कहा गया है कि पेशेवर लोगों से एक सप्ताह में भागवत सुनी जाए। प्रत्युत श्रीमद्भागवत का कथन है। (1.2.17): शृण्वतां स्वकथा कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः। नियमित रूप से किसी स्वरूपसिद्ध वैष्णव से श्रीमद्भागवत का श्रवण करना चाहिए।

ऐसे श्रवण से वह पवित्र हो जाता है। हृद्यन्तस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम्। इस तरह जब कोई व्यक्ति नियमित रूप से तथा निष्ठापूर्वक भागवत सुनता है, तो उसका हृदय समस्त भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाता है :

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया।

भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥

"जब कोई व्यक्ति नियमित रूप से भागवत सुनता है और शुद्ध भक्त की सेवा करता है, तो हृदय को कष्ट देने वाली हर वस्तु का लगभग विनाश हो जाता है और उत्तमश्लोक यशस्वी भगवान् के प्रति, जिनकी दिव्य गीतों से स्तुति की जाती है, प्रेमाभक्ति निर्विवाद रूप से स्थापित हो जाती है।" (भागवत 1.2.18)

यही सही विधि है, किन्तु लोग पेशेवर भागवत वाचकों द्वारा पथ-भ्रष्ट किये जाते हैं। इसलिए यहाँ पर स्वरूप दामोदर गोस्वामी परामर्श देते हैं कि पेशेवर वाचकों से श्रीमद्भागवत न सुनी जाए। बल्कि स्वरूपसिद्ध वैष्णव से भागवत सुनी और सीखी जाए। कभी-कभी यह देखा जाता है कि जब कोई मायावादी संन्यासी भागवत का पठन करता है, तो लोगों के झुंड शब्दों की जादूगरी सुनने जाते हैं, जिनसे कृष्ण के प्रति सुप्त प्रेम जागृत नहीं हो पाता। कभी-कभी लोग पेशेवर नाटक देखने तथा अभिनेताओं को भोजन तथा धन भेंट करने जाते हैं, जो इन भेंटों को एकत्र करने में पटु होते हैं। इसका फल यह होता है कि श्रोता लोग गृहमन्धकूपम् अर्थात् पारिवारिक आसक्ति की उसी स्थिति में पड़े रहते हैं और वे कृष्ण-प्रेम को जागृत नहीं कर पाते।

भागवत (7.5.30) में कहा गया है- मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्-गृहव्रत अर्थात् जो भौतिकतावादी जीवन-शैली बनाये रखने के लिए दृढ़ संकल्प हैं, वे कभी भी अपने सुप्त कृष्ण-प्रेम को जागृत नहीं कर पायेंगे, क्योंकि वे गृहस्थ जीवन में अपनी स्थिति को दृढ़ करने के लिए तथा गृहस्थी एवं कामवासना में सुखी रहने के लिए ही भागवत सुनते हैं। पेशेवर लोगों से भागवत सुनने की इस विधि की भर्त्सना करते हुए स्वरूप दामोदर गोस्वामी कहते हैं याह, भागवत पड़ वैष्णवेर स्थाने–"भागवत समझने के लिए तुम्हें स्वरूपसिद्ध वैष्णव के पास जाना चाहिए।" मायावादी या अन्य अभक्त व्याकरण का प्रयोग करके शब्दों के वाग्जाल द्वारा शास्त्रों का मनगढन्त मतलब निकालने का प्रयास करता है और अबोध जनता से धन एकत्र करता है तथा लोगों को अन्धकार में रखता है। ऐसे लोगों से भागवत नहीं सुननी चाहिए।

स्वरूप दामोदर गोस्वामी श्रीमद्भागवत के तथाकथित भौतिकतावादी श्रोताओं के आचरण का कड़ाई से निषेध करते हैं। ऐसे भागवत श्रोता वास्तविक कृष्ण-प्रेम जागृत न करके गृहस्थ जीवन तथा यौन जीवन के प्रति अधिकाधिक आसक्त हो जाते हैं (यन्मैथुनादिगृहमेधिसुखं हि तुच्छम्)। श्रीमद्भागवत ऐसे व्यक्ति से सुननी चाहिए, जिसका भौतिक कार्यकलापों से कोई सम्बन्ध न हो अर्थात् जो परमहंस वैष्णव हो। संन्यास की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त व्यक्ति को परमहंस वैष्णव कहते हैं। निस्सन्देह, ऐसा तब तक सम्भव नहीं है, जब तक मनुष्य श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं करता। श्री चैतन्य महाप्रभु के पदचिह्नों का अनुसरण करने वाला व्यक्ति ही श्रीमद्भागवत को समझ सकता है।

चैतन्येर भक्त-गणेर नित्य कर 'सङ्ग'।

तबेत जानिबा सिद्धान्त-समुद्र-तरङ्ग ॥132॥

चैतन्येर–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गणेर-भक्तों का; नित्य-नियमित; कर-करो; सङ्ग-संग; तबेत–केवल तभी; जानिबा-तुम समझोगे; सिद्धान्त-समुद्र-तरङ्ग-भक्ति के समुद्र की लहरों को।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने आगे कहा, "श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की नियमित रूप से संगति करो, तभी तुम भक्ति के समुद्र की तरंगों को समझ सकोगे।"

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु की भक्ति-पद्धति के अनुयायी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सनातन संगी हैं और परम सत्य के पूर्ण ज्ञाता हैं। यदि कोई श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की संगति करके महाप्रभु के सिद्धान्तों का तुरन्त पालन करता है, तो उसके हृदय से भौतिक भोग की सारी काम-वासनाएँ लुप्त हो जाएँगी। तभी वह श्रीमद्भागवत का अर्थ और इसके सुनने के महत्त्व को समझ सकेगा। अन्यथा ऐसा समझ पाना असम्भव है।

तबेत पाण्डित्य तोमार हइबे सफल।

कृष्णेर स्वरूप-लीला वर्णिबा निर्मल ॥ 133॥

तबेत–केवल तभी; पाण्डित्य–विद्वत्ता; तोमार-तुम्हारी; हइबे-होगी; स-फल- सफल; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; स्वरूप-लीला-दिव्य लीलाएँ; वर्णिबा-तुम वर्णन करोगे; निर्मल-भौतिक कल्मष से रहित।

अनुवाद

जब तुम श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों के सिद्धान्तों का पालन करोगे, तभी तुम्हारी विद्या सफल होगी। तभी तुम भौतिक कल्मष के बिना कृष्ण की दिव्य लीलाओं के विषय में लिख सकोगे।

एइ श्लोक करियाछ पाञा सन्तोष ।

तोमार हृदयेर अर्थे दुँहाय लागे 'दोष' ॥134॥

एइ श्लोक-यह श्लोक; करियाछ-तुमने रचा है; पाञा सन्तोष-सन्तोष पाकर; तोमार हृदयेर–तुम्हारे हृदय का; अर्थे–अर्थ द्वारा; दुँहाय-दोनों के प्रति; लागे दोष- अपराध हुआ है।

अनुवाद

"यद्यपि तुमने इस परिचयात्मक श्लोक की रचना पूर्ण सन्तोषपूर्वक की है, किन्तु जिस अर्थ को तुमने व्यक्त किया है, वह जगन्नाथजी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु दोनों के प्रति अपराध से दूषित है।"

तुमि यैछे-तैछे कह, ना जानिया रीति ।

सरस्वती सेइ-शब्दे करियाछे स्तुति ॥ 135॥

तुमि-तुम; यैछे-तैछे-जैसे-तैसे; कह–कहते हो; ना जानिया रीति-नियमों को जाने बिना; सरस्वती विद्या की देवी ने; सेइ-शब्दे-उन शब्दों में; करियाछे स्तुति-प्रार्थनाएँ बनाई हैं।

अनुवाद

तुमने नियमों को न जानते हुए अनाप-शनाप लिखा है, किन्तु देवी सरस्वती ने तुम्हारे शब्दों का उपयोग भगवान् को अपनी स्तुति भेंट करने के लिए कर लिया है।

तात्पर्य

स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने बंगाली कवि को बतलाया, "तुम अपने अज्ञान तथा मायावादी दर्शन के प्रति झुकाव के कारण मायावाद तथा वैष्णव दर्शन में अन्तर नहीं कर सकते। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान जगन्नाथ की प्रशंसा करने के लिए तुमने जो प्रक्रिया अपनाई है, वह विधिपूर्वक नहीं है, अपितु वह अनियमित तथा अपराधपूर्ण है। किन्तु सौभाग्यवश तुम्हारे शब्दों से सरस्वती माता ने अपने स्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु की स्तुति चतुराई से की है।"

यैछे इन्द्र, दैत्यादि करे कृष्णेर भर्सन ।

सेइ-शब्दे सरस्वती करेन स्तवन ॥136॥

यैछे-जिस प्रकार; इन्द्र–इन्द्र, स्वर्ग का राजा; दैत्य-राक्षस; आदि-और अन्य; करे-करते हैं; कृष्णेर भर्सन-कृष्ण की निन्दा; सेइ-शब्दे-उन शब्दों द्वारा; सरस्वती- विद्या की देवी; करेन स्तवन–प्रार्थनाएँ अर्पित करती हैं।

अनुवाद

कभी-कभी असुर तथा स्वर्ग का राजा इन्द्र तक कृष्ण की भर्त्सना करते थे, किन्तु माता सरस्वती ने उनके शब्दों का लाभ उठाकर भगवान् की स्तुति की।

वाचालं बालिशं स्तब्धं अज्ञं पण्डित-मानिनम् ।

कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा में चक्रुरप्रियम् ॥137॥

वाचालम्-बातूनी; बालिशम्-बचकाना; स्तब्धम्-धृष्ट; अज्ञम् मूर्ख; पण्डित- मानिनम्-स्वयं को महान् विद्वान समझने वाला; कृष्णम्-कृष्ण को; मर्त्यम्-एक साधारण मरणशील मनुष्य; उपाश्रित्य–शरण लेकर; गोपाः-ग्वालों ने; मे–मेरे प्रति; चक्रुः–करते; अप्रियम्-जो बहुत अच्छा नहीं लगता।

अनुवाद

"[इन्द्र ने कहा :] "यह कृष्ण एक सामान्य मनुष्य है और वह वाचाल, बचकाना, उद्धत तथा अज्ञानी है, यद्यपि वह अपने आपको बहुत विद्वान मानता है। वृन्दावन के ग्वालों ने उसको स्वीकार करके मेरा अपमान किया है। यह बात मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगी।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.25.5) से लिया गया है।

ऐश्वर्य-मदे मत्त इन्द्र,—येन मातोयाल ।

बुद्धि-नाश हैल, केवल नाहिक साम्भाल ॥138॥

ऐश्वर्य-मदे-अपने ऐश्वर्य के अभिमान में; मत्त-उन्मत्त; इन्द्र-स्वर्ग का राजा; येन-जैसे; मातोयाल-एक पागल व्यक्ति; बुद्धि-नाश-बुद्धि रहित; हैल–हो गया; केवल- केवल; नाहिक-नहीं; साम्भाल–सावधान।

अनुवाद

"स्वर्ग का राजा इन्द्र अपने स्वर्ग के ऐश्वर्य से अति गर्वित होकर पागल की तरह बन गया। इस तरह बुद्धि से रहित होकर वह कृष्ण के विषय में अनाप-शनाप बोलने से अपने आपको रोक न सका।"

इन्द्र बले,–"मुञि कृष्णेर करियाछि निन्दन" ।

तार-इ मुखे सरस्वती करेन स्तवन ॥ 139॥

इन्द्र बले–इन्द्र कहता है; मुञि-मैंने; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; करियाछि-की है; निन्दन-निन्दा और अपमान; तार-इ मुखे—उसके मुख से; सरस्वती माता सरस्वती, विद्या की देवी; करेन स्तवन–प्रार्थनाएँ करती हैं।

अनुवाद

इस प्रकार इन्द्र ने सोचा, "मैंने ठीक ही कृष्ण की भर्त्सना की और उसकी निन्दा की।" किन्तु विद्या की देवी सरस्वती ने इस अवसर का लाभ कृष्ण की स्तुति करने में उठाया।

'वाचाल' कहिये 'वेद-प्रवर्तक' धन्य ।

‘बालिश’—तथापि ‘शिशु-प्राय’ गर्व-शून्य ॥140॥

वाचाल-बातूनी; कहिये-मैं कहता हूँ; वेद-प्रवर्तक-जो वेद के आधार पर बोल सकता है; धन्य धन्य है; बालिश-बचकाना; तथापि–फिर भी; शिशु-प्राय-बच्चे जैसा; गर्व-शून्य-गर्व रहित।

अनुवाद

‘वाचाल’ शब्द का प्रयोग ऐसे व्यक्ति के लिए किया जाता है, जो वैदिक प्रमाण के अनुसार बोल सकता है और ‘बालिश’ शब्द का अर्थ है ‘अबोध।’ कृष्ण ने वैदिक ज्ञान का प्रवचन किया, फिर भी वे अपने आपको सदैव गर्वशून्य, अबोध बालक के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

वन्द्याभावे ‘अनम्र’—‘स्तब्ध’-शब्दे कय।

याहा हैते अन्य ‘विज्ञ’ नाहि—से ‘अज्ञ’ हय ॥141॥

वन्द्य-अभावे-क्योंकि और कोई नहीं है जिसको प्रणाम किया जा सके; अनम्र-जो वन्दना नहीं करता; स्तब्ध-शब्दे-‘स्तब्ध’ शब्द द्वारा; कय–कहता है; याहा हैते–जिसकी अपेक्षा; अन्य-अन्य; विज्ञ-विद्वान; नाहि-नहीं; से-वे; अज्ञ-जिसके लिए कुछ भी अज्ञात नहीं; हय-है।

अनुवाद

“जब नमस्कार ग्रहण करने वाला कोई न हो, तो वह ‘अनम्र’ कहलाता है, अर्थात् वह जो किसी अन्य को नमस्कार नहीं करता। ‘स्तब्ध’ का यही अर्थ है। और चूँकि कृष्ण से बढ़कर कोई पण्डित नहीं है, इसलिए वे ‘अज्ञ’ कहे जा सकते हैं, जो यह सूचित करता है कि उनसे कुछ भी अज्ञात नहीं है।”

पण्डितेर मान्य-पात्र–हय ‘पण्डित-मानी’।

तथापि भक्त-वात्सल्ये ‘मनुष्य’ अभिमानी ॥ 142॥

पण्डितेर-विद्वानों का; मान्य-पात्र-सम्मान का पात्र; हय-है; पण्डित-मानी-विद्वानों द्वारा सम्मानित व्यक्ति; तथापि-फिर भी; भक्त-वात्सल्ये-भक्तों के प्रति अत्यन्त स्नेहशील होने के कारण; मनुष्य अभिमानी-स्वयं को साधारण मनुष्य जैसा दिखाते हैं।

अनुवाद

'पण्डित-मानी' शब्द का प्रयोग यह सूचित करने के लिए किया जा सकता है कि विद्वान पण्डित भी कृष्ण का आदर करते हैं। तो भी, अपने भक्तों के प्रति स्नेह के कारण कृष्ण सामान्य व्यक्ति की तरह प्रकट होते हैं, इसलिए उन्हें 'मर्त्य' कहा जा सकता है।

जरासन्ध कहे,—"कृष्ण–पुरुष-अधम" ।

तोर सङ्गे ना युझिमु, "याहि बन्धु-हन्" ॥143॥

जरासन्ध कहे जरासंध कहता है; कृष्ण-कृष्ण; पुरुष-अधम-मनुष्यों में अधम है; तोर सङ्गे–तुम्हारे साथ; ना युझिमु-मैं युद्ध नहीं करूँगा; याहि-क्योंकि; बन्धु-हन्- अपने सम्बन्धियों का हत्यारा।

अनुवाद

असुर जरासन्ध ने यह कहकर कृष्ण की भर्त्सना की कि, "तुम मनुष्यों में अधम हो। मैं तुमसे युद्ध नहीं करूँगा, क्योंकि तुमने अपने ही सम्बन्धियों का वध किया है।"

तात्पर्य

इस श्लोक में भी माता सरस्वती कृष्ण की स्तुति करती हैं। पुरुष-अधम शब्द पुरुषोत्तम भगवान् का द्योतक है, जिनके अधीन सारे मनुष्य रहते हैं। अथवा दूसरे शब्दों में, वे पुरुष उत्तम–सर्व जीवों में श्रेष्ठ हैं। इसी तरह बन्धुहन् शब्द का अर्थ है "माया का वध करने वाला।" बद्ध जीवन की अवस्था में मनुष्य माया के साथ बन्धु (मित्र) की तरह सम्बन्धित रहता है, किन्तु जब वह कृष्ण के सम्पर्क में आता है, तो उस सम्बन्ध से मुक्त हो जाता है।

याहा हैते अन्य पुरुष-सकल–'अधम' ।

सेइ हय 'पुरुषाधम'—सरस्वतीर मन ॥144॥

याहा हैते–जिससे; अन्य-अन्य; पुरुष–व्यक्ति; सकल-सभी; अधम-अधीन; सेइ-वह; हय-हैं; पुरुष-अधम-वह व्यक्ति जिसके अधीन सभी रहते हैं; सरस्वतीर मन-माता सरस्वती की व्याख्या।

अनुवाद

माता सरस्वती 'पुरुषाधम' का अर्थ पुरुषोत्तम लगाती हैं-'वह जिसके अधीन सारे मनुष्य हैं।'

'बान्धे सबारे'–ताते अविद्या 'बन्धु' हय।

'अविद्या-नाशक'–'बन्धु-हन्'–शब्दे कय ॥145॥

बान्धे-बाँधती हैं; सबारे-सब को; ताते-अतः; अविद्या-अज्ञान या माया; बन्धु- बाँधनेवाली या सम्बन्धी; हय है; अविद्या-नाशक-माया का नाशकर्ता; बन्धु-हन्-शब्दे- बन्धु-हन् शब्द द्वारा; कय–माता सरस्वती कहती है।

अनुवाद

"अविद्या या माया को 'बन्धु' कहा जा सकता है, क्योंकि इस भौतिक जगत् में वह हर एक को बाँधती है। इसलिए 'बन्धु-हन्' शब्द का प्रयोग करके माता सरस्वती कहना चाहती हैं कि कृष्ण माया के नाशकर्ता हैं।"

तात्पर्य

हर व्यक्ति माया में बद्ध है, किन्तु जैसाकि भगवद्गीता (7.14) में कहा गया है-मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते—जैसे ही कोई कृष्ण की शरण ग्रहण करता है, वह माया से मुक्त हो जाता है। इसीलिए कृष्ण को बन्धु-हन् अर्थात् माया का नाशकर्ता कहा जा सकता है।

एइ-मत शिशुपाल करिल निन्दन।

सेइ-वाक्ये सरस्वती करेन स्तवन ॥146॥

एइ-मत-इसी प्रकार; शिशुपाल–शिशुपाल; करिल निन्दन-निन्दा की; सेइ- वाक्ये-उन शब्दों द्वारा; सरस्वती विद्या की देवी ने; करेन स्तवन–प्रार्थनाएँ बनाई।

अनुवाद

इसी तरह शिशुपाल ने भी कृष्ण की निन्दा की, किन्तु विद्या की देवी सरस्वती ने उसी के शब्दों द्वारा कृष्ण की स्तुति की।

तैछे एइ श्लोके तोमार अर्थे 'निन्दा' आइसे ।

सरस्वतीर अर्थ शुन, याते 'स्तुति' भासे ॥147॥

तैछे-इस प्रकार; एइ श्लोके-इस श्लोक में; तोमार-तुम्हारे; अर्थे–अर्थ द्वारा; निन्दा-निन्दा; आइसे-आती है; सरस्वतीर अर्थ–माता सरस्वती का अर्थ; शुन-सुनो; याते-जिसके द्वारा; स्तुति-प्रार्थनाएँ; भासे-प्रतीत हों।

अनुवाद

इसी तरह यद्यपि तुम्हारे अर्थ के अनुसार तुम्हारा श्लोक निन्दापरक है, किन्तु माता सरस्वती इसका लाभ भगवान् की स्तुति करने में उठाती हैं।

जगन्नाथ हन कृष्णेर 'आत्म-स्वरूप' ।

किन्तु इहाँ दारु-ब्रह्म—स्थावर-स्वरूप ॥148॥

जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ; हन-हैं; कृष्णेर आत्म-स्वरूप-कृष्ण से अभिन्न;किन्तु किन्तु; इहाँ-जगन्नाथ पुरी में; दारु-ब्रह्म-परम भगवान् काष्ठ के रूप में प्रकट; स्थावर-स्वरूप-अचल स्वरूप।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ एवं कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु यहाँ पर भगवान् जगन्नाथ काष्ठ में प्रकट होने वाले परम पुरुष के रूप में स्थिर हैं। इसलिए वे गति नहीं करते।

ताहा-सह आत्मता एक-रूप हञा ।

कृष्ण एक-तत्त्व-रूप-दुई रूप हञा ॥ 149॥

ताँहा-सह-उनके साथ; आत्मता-आत्मा होने का गुण; एक-रूप हञा-एक स्वरूप; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; एक-तत्त्व-रूप-एक सिद्धान्त; दुइ-दो; रूप-रूप; हञा-होकर।

अनुवाद

"इस तरह भगवान् जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु दो दिखते हुए भी एक हैं, क्योंकि दोनों ही कृष्ण हैं, जो केवल एक हैं।"

संसार-तारण-हेतु येइ इच्छा-शक्ति ।

ताहार मिलन करि' एकता यैछे प्राप्ति ॥ 150॥

संसार-तारण-हेतु-समस्त जगत् का उद्धार करने के लिए; येइ-जो; इच्छा-शक्ति-इच्छा शक्ति; ताहार-उस इच्छा के; मिलन करि'-मिलन द्वारा; एकता–एकता; यैछे-ताकि; प्राप्ति-प्राप्त हो।

अनुवाद

"दोनों में समस्त संसार का उद्धार करने की परम इच्छा मिलती है और इसलिए भी वे एक ही हैं।"

सकल संसारी लोकेर करिते उद्धार ।

गौर-जङ्गम-रूपे कैला अवतार ॥ 151॥

सकल-सभी; संसारी-भौतिक दूषणों से युक्त; लोकेर-लोगों का; करिते उद्धार- उद्धार करने के लिए; गौर-श्री चैतन्य महाप्रभु; जङ्गम-सचल; रूपे–रूप में; कैला अवतार–अवतरित हुए हैं।

अनुवाद

"संसार के समस्त दूषित लोगों का उद्धार करने के लिए वही कृष्ण अवतरित हुए हैं और श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में विचरण कर रहे हैं।"

जगन्नाथेर दर्शने खण्डाय संसार।

सब-देशेर सब-लोक नारे आसिबार ॥152॥

जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ के दर्शने-दर्शन द्वारा; खण्डाय संसार–भौतिक अस्तित्व से मुक्ति हो जाती है; सब-देशेर-सभी देशों के; सब-लोक-सभी लोग; नारे आसिबार-आ नहीं सकते।

अनुवाद

भगवान जगन्नाथ का दर्शन करने से मनुष्य भौतिक अस्तित्व से छूट जाता है, किन्तु न तो सारे देशों के सारे लोग जगन्नाथ पुरी आ सकते हैं, न ही उनको प्रवेश दिया जा सकता है।

श्री-कृष्ण-चैतन्य-प्रभु देशे देशे याञा।

सब-लोके निस्तारिला जङ्गम-ब्रह्म हञा ॥ 153॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; देशे देशे याञा-एक देश से दूसरे देश घूमकर; सब-लोके निस्तारिला-सभी बद्धजीवों का उद्धार किया; जङ्गम-ब्रह्म-संचल ब्रह्म; हञा–बनकर।

अनुवाद

किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं या अपने प्रतिनिधियों द्वारा एक देश से दूसरे देश में जाते हैं। इस तरह वे गतिशील ब्रह्म की तरह संसार के समस्त लोकों का उद्धार करते हैं।

सरस्वतीर अर्थ एइ कहिलुँ विवरण।

एहो भाग्य तोमार ऐछे करिले वर्णन ॥ 154॥

सरस्वतीर-सरस्वती का; अर्थ-अर्थ; एइ–यह; कहिलुँ विवरण-मैंने वर्णन किया; एहो–यह; भाग्य-महाभाग्य; तोमार ऐछे-तुम्हारा है; करिले वर्णन-तुमने वर्णन किया।

अनुवाद

इस तरह मैंने माता सरस्वती द्वारा इच्छित अर्थ की व्याख्या की है। यह तुम्हारा परम सौभाग्य है कि तुमने इस तरह भगवान् जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु का वर्णन किया है।

"कृष्णे गालि दिते करे नाम उच्चारण।

सेइ नाम हय तार 'मुक्तिर' कारण" ॥155॥

कृष्णे-भगवान् कृष्ण की; गालि दिते-निन्दा करने में करे नाम उच्चारण-कृष्ण का नाम उच्चारण करता है; सेइ नाम-वही पवित्र नाम; हय-बन जाता है; तार-उसकी; मुक्तिर कारण-मुक्ति का कारण।

अनुवाद

"कभी-कभी ऐसा होता है कि जो व्यक्ति कृष्ण की भर्त्सना करना चाहता है, वह पवित्र नाम का उच्चारण करता है और इस तरह वह नाम उसकी मुक्ति का कारण बन जाता है।"

तबे सेइ कवि सबार चरणे पड़िया।

सबार शरण लैल दन्ते तृण लञा ॥ 156 ॥

तबे-फिर; सेइ-उस; कवि-कवि ने; सबार-सभी के; चरणे-चरणों में; पड़िया-गिरकर; सबार-सभी भक्तों की; शरण लैल-शरण ले ली; दन्ते-मुख में; तृण लञा-तिनका लेकर।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा इस उचित व्याख्या को सुनकर बंगाली कवि समस्त भक्तों के चरणों पर गिर पड़ा और अपने मुँह में तिनका दबाकर उसने सबकी शरण ग्रहण की।

तबे सब भक्त तारे अङ्गीकार कैला।

तार गुण कहि' महाप्रभुरे मिलाइला ॥157॥

तबे-फिर; सब भक्त-सभी भक्तों ने; तारे-उसे; अङ्गीकार कैला-अपने संगियों में से एक के रूप में स्वीकार किया; तार गुण कहि'–उसका विनम्र आचरण वर्णित करके; महाप्रभुरे मिलाइला–उसे श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलवाया।

अनुवाद

तब सारे भक्तों ने उसकी संगति स्वीकार की। उसके विनीत स्वभाव की बातें करते हुए उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु से उसका परिचय कराया।

सेइ कवि सर्व त्यजि' रहिला नीलाचले ।

गौर-भक्त-गणेर कृपा के कहिते पारे? ॥158॥

सेइ कवि-वह कवि; सर्व त्यजि'-सब मूर्खतापूर्ण कार्य छोड़कर; रहिला-रहने लगा; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; गौर-भक्त-गणेर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की; कृपा-दया; के-कौन; कहिते पारे-वर्णन कर सकता है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की कृपा से उस बंगाली कवि ने अन्य सारे कार्य त्याग दिये और वह उनके साथ जगन्नाथ पुरी में रहने लगा। भला श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की कृपा को कौन बतला सकता है?

एइ त' कहिलुँ प्रद्युम्न-मिश्र-विवरण ।

प्रभुर आज्ञाय कैल कृष्ण-कथार श्रवण ॥159॥

एइ त कहिलुँ-इस प्रकार मैंने वर्णन किया है; प्रद्युम्न-मिश्र-विवरण-प्रद्युम्न मिश्र का विवरण; प्रभुर आज्ञाय-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश पर; कैल-किया; कृष्ण-कथा श्रवण-कृष्ण विषयक कथाओं का श्रवण।

अनुवाद

इस प्रकार मैंने प्रद्युम्न मिश्र की कथा का और जिस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा के अनुसार उसने रामानंद राय द्वारा कही गई कृष्ण विषयक वार्ताएँ सुनीं, उसका वर्णन किया है।

तार मध्ये कहिलुँ रामानन्देर महिमा ।

आपने श्री-मुखे प्रभु वर्णे याँर सीमा ॥160॥

तार मध्ये-इन व्याख्यानों में; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; रामानन्देर महिमा- रामानन्द राय की महिमा; आपने-स्वयं; श्री-मुखे-अपने मुख से; प्रभु–महाप्रभु ने; वर्णे-वर्णन किया; याँर-जिनके; सीमा-प्रेमभाव की सीमा का।

अनुवाद

इसी कथा के बीच में मैंने श्री रामानन्द राय के यशस्वी गुणों का वर्णन किया है, जिनके माध्यम से श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं कृष्ण-प्रेम की सीमाओं का वर्णन किया है।

प्रस्तावे कहिलुँ कविर नाटक-विवरण ।

अज्ञ हञा श्रद्धाय पाइल प्रभुर चरण ॥161॥

प्रस्तावे-साथ ही; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया; कविर–कवि का; नाटक-विवरण-नाटक का विवरण; अज्ञ हञा–अज्ञानी होते हुए भी; श्रद्धाय–विश्वास और प्रेम से; पाइल-प्राप्त किया; प्रभुर चरण-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

इस कथा के मध्य मैंने बंगाली कवि के नाटक के विषय में भी कहा है। यद्यपि वह अज्ञानी था, किन्तु अपनी श्रद्धा तथा दीनता के कारण उसने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त की।

श्री-कृष्ण-चैतन्य-लीला—अमृतेर सार ।

एक-लीला-प्रवाहे वहे शत-शत धार ॥162॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-लीला-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; अमृतेर सार- अमृत का सार; एक-लीला-एक लीला के; प्रवाहे-प्रवाह द्वारा; वहे-बहती हैं; शत-शत धार-सैंकड़ों धाराएँ।

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अमृत की सार हैं। उनकी एक लीला की धारा से सैकड़ों-हजारों शाखाएँ बहती हैं।

श्रद्धा करि' एइ लीला येइ पड़े, शुने ।

गौर-लीला, भक्ति-भक्त-रस-तत्त्व जाने ॥ 163॥

श्रद्धा करि'–विश्वास और प्रेम के साथ; एइ लीला-ये लीलाएँ; येइ-जो कोई भी; पड़े शुने-पढ़ता और सुनता है; गौर-लीला- भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; भक्ति-भक्त-रस-तत्त्व-भक्ति, भक्तों और उनके दिव्य रसों के विषय में सब सत्य; जाने-जान सकता है।

अनुवाद

जो व्यक्ति श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक इन लीलाओं को पढ़ता तथा सुनता है, वह भक्ति, भक्त तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के दिव्य रसों के सत्य को समझ सकता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥164॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों में; यार-जिसकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्रीरूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्री चैतन्य-चरितामृत अन्त्य-लीला के पाँचवे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें यह वर्णन हुआ है कि प्रद्युम्न मिश्र ने किस तरह रामानन्द राय से उपदेश प्राप्त किया।

अध्याय छह

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रघुनाथ दास गोस्वामी की भेंट

भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृतप्रवाह भाष्य में इस अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु में प्रेमावेश के दिव्य विकार प्रकट होते थे, तब रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी उनके पास रहते और उनकी इच्छा के अनुरूप उनको सन्तुष्ट किया करते थे। रघुनाथ दास गोस्वामी बहुत समय से श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के निकट आने का प्रयास कर रहे थे, इसलिए अन्ततः उन्होंने घर-बार छोड़ दिया और महाप्रभु से भेंट की।

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जाते समय शान्तिपुर गये थे, तब रघुनाथ दास गोस्वामी ने महाप्रभु के चरणकमलों पर अपना जीवन अर्पित करने की बात की थी। किन्तु इसी बीच एक मुसलमान अधिकारी रघुनाथ दास गोस्वामी के ताऊ हिरण्य दास से ईर्ष्या करने लगा और उसने किसी बड़े दरबारी सचिव को उसको बन्दी बनाने के लिए प्रेरित किया। इस तरह हिरण्य दास ने अपना घर छोड़ दिया, किन्तु रघुनाथ दास की बुद्धिमानी से गलतफहमी दूर हो गई। तब रघुनाथ दास पानिहाटि चले गये और उन्होंने श्री नित्यानन्द प्रभु के आदेश से वहाँ चिड़ादधि महोत्सव सम्पन्न किया, जिसमें उन्होंने चिउड़ा के साथ दही मिलाकर वितरित किया। इस उत्सव के अगले दिन नित्यानन्द प्रभु ने रघुनाथ दास को आशीर्वाद दिया कि उसे शीघ्र ही श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण प्राप्त होगी। इस घटना के बाद रघुनाथ दास अपने पुरोहित यदुनन्दन आचार्य की सहायता से चालाकी से अपने घर से निकल भागे। वे आम रास्ते से न जाकर छिपते हुए जगन्नाथपुरी गये। वे बारह दिनों के बाद जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में पहुँचे।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथदास गोस्वामी को स्वरूप दामोदर गोस्वामी के हाथों सौंप दिया। इसलिए रघुनाथ दास गोस्वामी का दूसरा नाम स्वरूपेर रघु या स्वरूप-दामोदर का रघुनाथ है। रघुनाथ दास गोस्वामी पाँच दिनों तक मन्दिर में प्रसाद लेते रहे, किन्तु बाद में वे सिंह द्वार पर खड़े रहते और भिक्षा से जो भी मिल जाता उसे खाते। बाद में वे विभिन्न छत्रों (लंगरों) से भीख माँगकर जीवन धारण करने लगे। जब रघुनाथ दास के पिता को यह समाचार मिला, तो उसने कुछ सेवक तथा धन भेजा, किन्तु रघुनाथ दास ने यह धन लेने से मना कर दिया। यह जानकर कि रघुनाथदास गोस्वामी छत्रों से भीख माँगकर जीवन-यापन करते हैं, श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी गुंजा माला तथा गोवर्धन पर्वत की एक शिला (गोवर्धन शिला) उन्हें भेंट की। तत्पश्चात् रघुनाथ दास गोस्वामी फेंके गये भोजन को एकत्र करके उसे धोकर खाने लगे। इस विरक्त जीवन से स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु दोनों ही अतीव प्रसन्न थे। एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने वही भोजन छीनकर खाया और रघुनाथ दास गोस्वामी को उनके वैराग्य के लिए आशीर्वाद दिया।

कृपा-गुणैर्यः कुगृहान्ध-कूपाद्

उद्धृत्य भङ्ग्या रघुनाथ-दासम् ।

न्यस्य स्वरूपे विदधेऽन्तरङ्गं

श्री-कृष्ण-चैतन्यममुं प्रपद्ये ॥1॥

कृपा-गुणैः-अहैतुकी कृपा रूपी रस्सियों द्वारा; यः-जो; कु-गृह-घृणित पारिवारिक जीवन रूपी; अन्ध-कूपात्-अन्धकूप से; उद्धृत्य-उद्धार पाकर; भङ्ग्या –युक्ति द्वारा; रघुनाथ-दासम्-रघुनाथ दास गोस्वामी को; न्यस्य–सौंपकर; स्वरूपे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी को; विदधे-बनाया; अन्तः-अङ्गम्-अपने अन्तरंग साथियों में से एक; श्री-कृष्ण-चैतन्यम्-भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को; अमुम्–उनको; प्रपद्ये-मैं प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने अपनी अहैतुकी कृपा रूपी रस्सी से रघुनाथदास गोस्वामी को घृणित पारिवारिक जीवन रूपी अन्धे कुएँ से उद्धार करने के लिए युक्ति का प्रयोग किया। उन्होंने रघुनाथ दास गोस्वामी को स्वरूप दामोदर गोस्वामी के संरक्षण में रखकर अपना निजी संगी बनाया। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द- नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-भगवान् चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! और श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

एइ-मत गौरचन्द्र भक्त-गण-सङ्गे ।

नीलाचले नाना लीला करे नाना-रङ्गे ॥3॥

एइ-मत-इस प्रकार; गौरचन्द्र-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; भक्त-गण-सङ्गे-अपने संगियों के साथ; नीलाचले-नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) में; नाना-अनेक; लीला-लीलाएँ; करे-करते; नाना-रङ्गे–अनेक प्रकार के दिव्य आनन्द में।

अनुवाद

इस तरह भगवान् गौरचन्द्र ने अपने संगियों के साथ जगन्नाथपुरी में नाना प्रकार की दिव्य आनन्ददायिनी लीलाएँ सम्पन्न कीं।

यद्यपि अन्तरे कृष्ण-वियोग बाधये ।

बाहिरे ना प्रकाशय भक्त-दुःख-भये ॥4॥

प्रद्यपि-यद्यपि; अन्तरे-हृदय में; कृष्ण-वियोग-कृष्ण का विरह; बाधये-बाधा देता; बाहिरे-बाहरी रूप से; ना प्रकाशय-नहीं दिखाते; भक्त-दुःख-भये-भक्तों की अप्रसन्नता के भय से।

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण के विछोह की पीड़ा होती थी, किन्तु वे अपनी भावनाओं को बाह्य रूप से प्रकट नहीं करते थे, क्योंकि उन्हें भय था कि भक्तगण दुःखी होंगे।

उत्कट विरह-दुःख यबे बाहिराय ।

तबे ने वैकल्य प्रभुर वर्णन ना याय ॥5॥

उत्कट-तीव्र; विरह-दुःख-विरह का दुःख; यबे-जब; बाहिराय-प्रकट होता; तबे-उस समय; ये-जो; वैकल्य-परिवर्तन; प्रभुर–महाप्रभु के; वर्णन ना याय-वर्णन नहीं किये जा सकते।

अनुवाद

जब कृष्ण के विछोह से उत्पन्न गहन दुःख को महाप्रभु प्रकट करते, तो उनमें जो विकार आते, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

रामानन्देर कृष्ण-कथा, स्वरूपेर गान ।

विरह-वेदनाय प्रभुर राखये पराण ॥6॥

रामानन्देर-रामानन्द राय की; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण की कथाएँ; स्वरूपेर गान-स्वरूप दामोदर के गीत; विरह-वेदनाय–विरह वेदना के समय पर; प्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का; राखये-रखते; पराण-जीवन।

अनुवाद

जब महाप्रभु को कृष्ण के विछोह की तीव्र पीड़ा का अनुभव होता, तब एकमात्र श्री रामानन्द राय द्वारा कही गई कृष्ण कथा तथा स्वरूप दामोदर के मधुर गीत उन्हें जीवित रखते।

दिने प्रभु नाना-सङ्गे हय अन्य मन।

रात्रि-काले बाड़े प्रभुर विरह-वेदन ॥7॥

दिने–दिन के समय; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नाना-सङ्गे–अनेक संगियों द्वारा; हय-हो जाते; अन्य-व्यस्त; मन-उनका मन; रात्रि-काले–रात को; बाड़े-बढ़ जाता; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; विरह-वेदन-विरह का कष्ट।

अनुवाद

दिन के समय विविध भक्तों की संगति होने से महाप्रभु का मन कुछ दूसरी ओर लगा रहता, किन्तु रात में कृष्ण-विरह की पीड़ा तेजी से बढ़ जाती।

ताँर सुख-हेतु सङ्गे रहे दुइ जना।

कृष्ण-रस-श्लोक-गीते करेन सान्त्वना ॥8॥

ताँर सुख-हेतु-उनकी प्रसन्नता के लिए; सङ्गे–उनके संग में; रहे-रहते; दुइ जना-दो व्यक्ति; कृष्ण-रस-कृष्ण के दिव्य रसों के; श्लोक-श्लोकों; गीते-गीतों द्वारा; करेन सान्त्वना-वे सांत्वना देते।

अनुवाद

दो व्यक्ति रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी महाप्रभु के साथ रहते, जो उनकी तुष्टि हेतु कृष्णलीला विषयक विविध श्लोक सुनाकर तथा उपयुक्त गीत गाकर उनको शान्त रखते।

सुबल यैछे पूर्वे कृष्ण-सुखेर सहाय।

गौर-सुख-दान-हेतु तैछे राम-राय ॥9॥

सुबल-सुबल, कृष्ण के गोपसखाओं में से एक; यैछे-जिस प्रकार; पूर्वे-पहले; कृष्ण-सुखेर-कृष्ण को सुख देने के लिए; सहाय–सहायक; गौर-सुख-दान-हेतु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को आनन्द देने के लिए; तैछे-उसी प्रकार; राम-राय-रामानन्द राय।

अनुवाद

पूर्वकाल में जब भगवान् कृष्ण स्वयं उपस्थित थे, तब उनका एक ग्वाल मित्र सुबल उन्हें तब सुख देता, जब वे राधारानी का विरह अनुभव करते। उसी तरह रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु को सुख देने में सहायक बनते।

पूर्वे यैछे राधार ललिता सहाय-प्रधान ।

तैछे स्वरूप-गोसाञि राखे महाप्रभुर प्राण ॥10॥

पूर्वे-पहले; यैछे-जिस प्रकार; राधार–श्रीमती राधारानी की; ललिता-ललिता नामक उनकी सखी; सहाय-प्रधान-सर्वोच्च सहायिका; तैछे-उसी प्रकार; स्वरूप- गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; राखे-रखते; महाप्रभुर प्राण-श्री चैतन्य महाप्रभु का जीवन।

अनुवाद

पूर्वकाल में जब श्रीमती राधारानी कृष्ण-वियोग की पीड़ा का अनुभव करतीं, तब उनकी नित्य सखी ललिता अनेक प्रकार से सहायता करके उन्हें जीवित रखतीं। उसी तरह जब श्री चैतन्य महाप्रभु को राधारानी के भाव आते, तब स्वरूप दामोदर गोस्वामी उनका जीवन बनाये रखने में उनकी सहायता करते।

एइ दुइ जनार सौभाग्य कहन ना याय ।

प्रभुर 'अन्तरङ्ग' बलि' यौरे लोके गाय ॥11॥

एइ दुइ जनार-इन दो लोगों का; सौभाग्य-सौभाग्य; कहन ना याय-वर्णन नहीं किया जा सकता; प्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; अन्तरङ्ग–अत्यन्त अन्तरंग संगी; बलि'-जैसे; याँरे-जिसे; लोके-लोग; गाय-कहते।

अनुवाद

रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी के सौभाग्य का वर्णन कर पाना अत्यन्त कठिन है। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के घनिष्ठ विश्वसनीय मित्रों के रूप में विख्यात थे।

एइ-मत विहरे गौर लञा भक्त-गण ।

रघुनाथ-मिलन एबे शुन, भक्त-गण ॥12॥

एइ-मत-इस प्रकार; विहरे-आनन्द लेते; गौर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा भक्त-गण-अपने भक्तों को साथ लेकर; रघुनाथ-मिलन-रघुनाथ दास गोस्वामी से मिलन; एबे-अब; शुन-सुनिए; भक्त-गण-हे भक्तों।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु अपने भक्तों के साथ जीवन का आनन्द लेते थे। हे श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों, अब सुनो कि रघुनाथ दास गोस्वामी किस तरह महाप्रभु से मिले।

पूर्वे शान्तिपुरे रघुनाथ प्रबे आइला ।

महाप्रभु कृपा करि' ताँरे शिखाइला ॥13॥

पूर्वे-पहले; शान्तिपुरे–शान्तिपुर में; रघुनाथ–रघुनाथ दास; यबे आइला–जब वे आये; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कृपा करि'-अहैतुकी कृपा दर्शाकर; ताँरे शिखाइला-उन्हें शिक्षा दी।

अनुवाद

जब गृहस्थ जीवन के समय रघुनाथ दास श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने शान्तिपुर गये, तब महाप्रभु ने अपनी अहैतुकी कृपावश उन्हें योग्य शिक्षाएँ दीं।

प्रभुर शिक्षाते तेंहो निज-घरे याय ।

मर्कट-वैराग्य छाड़ि' हैला 'विषयि-प्राय' ॥14॥

प्रभुर शिक्षाते-श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेश द्वारा; तेंहो-वे; निज-घरे याय-अपने घर लौट गये; मर्कट-वैराग्य-बन्दर जैसा वैराग्य; छाड़ि'–छोड़कर; हैला-हो गये; विषयि-प्राय-एक विषयी व्यक्ति जैसे।

अनुवाद

तथाकथित वैरागी बनने के स्थान पर रघुनाथ दास महाप्रभु के उपदेशों का अनुसरण करते हुए अपने घर लौटे और विषयी-व्यक्ति की तरह कार्य करने लगे।

भितरे वैराग्य, बाहिरे करे सर्व-कर्म ।

देखिया त' माता-पितार आनन्दित मन ॥15॥

भितरे-अपने हृदय में; वैराग्यपूर्ण विरक्ति; बाहिरे-बाहरी रूप से; करे-करते; सर्व-सब; कर्म-कार्य; देखिया-देखकर; त'–निश्चय ही; माता-पितार-माता और पिता का; आनन्दित–सन्तुष्ट; मन–मन।

अनुवाद

रघुनाथ दास अपने गृहस्थ जीवन से भी भीतर से पूरी तरह विरक्त थे, किन्तु उन्होंने अपने वैराग्य को बाहर प्रकट नहीं किया। उल्टे वे सामान्य व्यापारी की तरह कार्य करते रहे। यह देखकर उनके माता-पिता सन्तुष्ट थे।

'मथुरा हैते प्रभु आइला',—वार्ता यबे पाइला ।

प्रभु-पाश चलिबारे उद्योग करिला ॥16॥

मथुरा हैते–मथुरा से; प्रभु आइला-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु लौट आये हैं; वार्ता-सन्देश; यबे पाइला–जब उन्हें मिला; प्रभु-पाश-श्री चैतन्य महाप्रभु के पास; चलिबारे-जाने का; उद्योग करिला-प्रयास किया।

अनुवाद

जब उन्हें यह सन्देश मिला कि श्री चैतन्य महाप्रभु मथुरापुरी से लौट आये हैं, तो रघुनाथ दास ने महाप्रभु के चरणों तक जाने का प्रयास किया।

हेन-काले मुलुकेर एक म्लेच्छ अधिकारी।

सप्तग्राम-मुलुकेर से हय 'चौधुरी' ॥17॥

हेन-काले-इस समय; मुलुकेर-प्रदेश का; एक-एक; म्लेच्छ-मुस्लिम; अधिकारी-अफसर; सप्तग्राम-मुलुकेर-सप्तग्राम नामक स्थान का; से-वह व्यक्ति; हय-है; चौधुरी–कर संग्रहक।

अनुवाद

उस समय एक मुसलमान अधिकारी सप्तग्राम से कर वसूलता था।

तात्पर्य

पहले जब मुसलमान सरकार शासन करती थी, तब कर वसूल करने के लिए नियुक्त व्यक्ति स्थानीय जमींदारों से कर वसूल करता था। वह एकत्रित राशि का एक चौथाई अपने लाभ के रूप में रख लेता और शेष सरकारी खजाने में जमा कर देता था।

हिरण्य-दास मुलुक निलमक्ररि करिया।

तार अधिकार गेल, मरे से देखिया ॥18॥

हिरण्य-दास-रघुनाथ गोस्वामी के ताऊ; मुलुक निल-प्रदेश का अधिकार लिया; मक्ररि करिया-कुछ समझौते द्वारा; तार अधिकार गेल-मुस्लिम चौधरी ने अपना पद गवाँ दिया; मरे से देखिया-हिरण्य दास से अत्यन्त ईर्ष्या करने लगा।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास के ताऊ हिरण्य दास ने कर वसूलने के लिए सरकार से समझौता किया, तो मुसलमान चौधुरी या कर संग्राहक अपना पद खोने के कारण उससे अत्यधिक ईर्ष्या करने लगा।

बार लक्ष देय राजाय, साधे बिश लक्ष।

से 'तुरुक्' किछु ना पाञा हैल प्रतिपक्ष ॥19॥

बार लक्ष–1,200,000 सिक्के; देय-देते थे; राजाय-मुस्लिम राज्य को; साधे- एकत्रित करते; बिश लक्ष–20,00,000 सिक्के; से तुरुक्-वह तुर्क; किछु-कुछ; ना पाञा-न पाकर; हैल प्रतिपक्ष-उनका शत्रु बन गया।

अनुवाद

हिरण्यदास बीस लाख रुपये एकत्र करते थे, अतएव उन्हें सरकार को पन्द्रह लाख रूपये देने चाहिए थे। किन्तु वे केवल बारह लाख रुपये देते थे और इस तरह तीन लाख रुपये अधिक लाभ उठाते थे। यह देखकर मुसलमान चौधुरी जो कि तुर्क था उनका प्रतिद्वन्द्वी बन गया।

राज-घरे कैफियत् दिया उजीरे आनिल ।

हिरण्य-दास पलाइल, रघुनाथेरे बान्धिल ॥20॥

राज-घरे–राजकोष को; कैफियत् दिया–एक गुप्त हिसाब भेजकर; उजीरे आनिल-अधिकारी मन्त्री को बुला लाया; हिरण्य-दास पलाइल-हिरण्य दास भाग गये; रघुनाथेरे बान्धिल-उसने रघुनाथ दास को बन्दी बना लिया।

अनुवाद

सरकारी खजाने को गुप्त हिसाब भेजकर चौधुरी कार्यकारी मन्त्री को ले आया। हिरण्यदास को पकड़ने के उद्देश्य से चौधुरी आया, किन्तु वे घर छोड़ चुके थे। अतएव चौधुरी ने रघुनाथ दास को बन्दी बना लिया।

प्रति-दिन रघुनाथे करये भर्त्सना ।

'बाप-ज्येठारे आन', नहे पाइबा यातना ॥21॥

प्रति-दिन-रोज;रघुनाथे-रघुनाथ दास को; करये भर्सना-वह डाँटता; बाप- ज्येठारे आने-अपने पिता और ताऊ को लाओ; नहे-अन्यथा; पाइबा यातना-तुम्हें दण्ड मिलेगा।

अनुवाद

प्रतिदिन वह मुसलमान रघुनाथ दास की भर्त्सना करता और उनसे कहता, "अपने पिता तथा उसके बड़े भाई (ताऊ) को ले आओ, अन्यथा तुम्हें दण्ड दिया जायेगा।"

मारिते आनये यदि देखे रघुनाथे ।

मन फिरि' याय, तबे ना पारे मारिते ॥22॥

मारिते-मारने के लिए; आनये-लाता; यदि-जब; देखे-देखता; रघुनाथे-रघुनाथ दास को; मन-उसका मन; फिरि' याय-बदल जाता; तबे-उस समय; ना पारे मारिते- वह मार नहीं पाता।

अनुवाद

चौधुरी उन्हें पीटना चाहता था, किन्तु जब वह रघुनाथ के मुख की ओर देखता, तो उसका मन बदल जाता और वह उन्हें पीट नहीं पाता था।

विशेषे कायस्थ-बुद्ध्ये अन्तरे करे डर ।

मुखे तर्जे गर्जे, मारिते सभय अन्तर ॥23॥

विशेषे–विशेष रूप से; कायस्थ-बुद्ध्ये–एक कायस्थ जानकर; अन्तरे-अपने हृदय में; करे डर–भयभीत होता; मुखे-अपने मुख से; तर्जे गर्जे-डराता; मारिते–मारने में; स-भय-भय; अन्तर–हृदय में।

अनुवाद

निस्सन्देह, वह चौधुरी रघुनाथ दास से भयभीत था, क्योंकि रघुनाथ दास कायस्थ जाति के थे। यद्यपि चौधुरी उसे मुख से डाँटता-डपटता था, किन्तु उन्हें पीटने से डरता था।

तात्पर्य

रघुनाथ दास उच्चकुलीन कायस्थ परिवार के थे। स्थानीय लोगों पर उनका काफी प्रभाव था, इसलिए वह चौधुरी उन्हें पीटने से डरता था। ऊपर से वह रघुनाथ दास को डाँटता-डपटता था, किन्तु उन्हें पीटता नहीं था। भारत में सामान्यतया कायस्थ जाति के लोग अत्यन्त बुद्धिमान तथा व्यापार प्रबन्ध में पटु होते हैं। पहले वे अधिकांशतः सरकारी अफसर थे। उनका उल्लेख याज्ञवल्क्य तक ने किया है, जिसका उद्धरण श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अमृत-प्रवाह-भाष्य में दिया है :

चाटतष्करदुवृतै महासाहसिकादिभिः ।

पीड्यमाना प्रजा रक्षेत् कायस्थैश्च विशेषतः ॥

इस श्लोक से प्रतीत होता है कि कायस्थ जाति के सरकारी अधिकारी कभी-कभी नागरिकों को डाँटते-फटकारते थे, अत: राजा का कर्तव्य होता था कि कायस्थों के अत्याचार से जनता की रक्षा करे। बंगाल में कायस्थ जाति का सम्मान प्रायः ब्राह्मणों जैसा होता है, किन्तु उत्तरी भारत में कायस्थों को शूद्र माना जाता है, क्योंकि ये सामान्यतः माँस खाते हैं तथा मदिरा पीते हैं। जो भी हो, इतिहास से यही प्रतीत होता है कि कायस्थ अत्यन्त बुद्धिमान होते हैं। इसीलिए मुसलमान चौधुरी रघुनाथ दास से भयभीत था, क्योंकि वे कायस्थ जाति के थे।

तबे रघुनाथ किछु चिन्तिला उपाय ।

विनति करिया कहे सेइ म्लेच्छ-पाय ॥24॥

तबे-तब; रघुनाथ–रघुनाथ दास गोस्वामी; किछु-कुछ; चिन्तिला-विचार किया; उपाय-उपाय; विनति करिया-अत्यन्त विनम्रतापूर्वक; कहे-वे कहते हैं; सेइ म्लेच्छ- उस मुस्लिम चौधरी के; पाय-चरणों में।

अनुवाद

जब यह हो रहा था, तो रघुनाथ दास ने इसका समाधान निकालने की एक युक्ति सोची। अतः उन्होंने मुसलमान चौधरी के चरणों पर यह अनुनय किया।

आमार पिता, ज्येठा हय तोमार दुइ भाइ ।

भाइ–भाइये तोमरा कलह कर सर्वदाइ ॥25॥

आमार पिता-मेरे पिता; ज्येठा-और उनके बड़े भाई; हय-हैं; तोमार-आपके; दुइ भाइ-दो भाई; भाइ–भाइये-भाई-भाई के बीच; तोमरा-आप सबका; कलह कर-झगड़ा; सर्वदाई-सदैव।

अनुवाद

“हे महोदय, मेरे पिता तथा उनके बड़े भाई (ताऊ) दोनों ही आपके भाई हुए। सारे भाई किसी न किसी बात के लिए सदैव झगड़ते आये हैं।”

कभु कलह, कभु प्रीति—इहार निश्चय नाई।

कालि पुनः तिन भाइ हइबा एक-ठाञि ॥ 26॥

कभु-कभी; कलह-लड़ाई; कभु-कभी; प्रीति–अति अन्तरंग मैत्रीपूर्ण व्यवहार; इहार-इन सबका; निश्चय नाई-कोई निश्चय नहीं; कालि–अगले दिन; पुनः–फिर; तिन भाइ–तीनों भाई; हइबा-हो जायेंगे; एक-ठाञि-इकट्ठे।

अनुवाद

"कभी भाई-भाई परस्पर लड़ते हैं, तो कभी मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते हैं। इसका कोई निश्चय नहीं कि ऐसे बदलाव कब आ जाए। इस तरह मुझे पूरा विश्वास है कि आज आप लड़ रहे हैं, किन्तु कल आप तीनों भाई शान्ति से एक स्थान पर बैठे होंगे।"

आमि यैछे पितार, तैछे तोमार बालक ।

आमि तोमार पाल्य, तुमि आमार पालक ॥27॥

आमि-मैं; यैछे—जिस प्रकार; पितार-अपने पिता का; तैछे—उसी प्रकार; तोमार-आपका; बालक-पुत्र; आमि-मैं; तोमार-आपका; पाल्य-पालन योग्य व्यक्ति; तुमि-आप; आमार-मेरे; पालक-पालक।

अनुवाद

जिस तरह मैं अपने पिता का पुत्र हूँ, उसी तरह आपका भी हूँ। मैं आपके आश्रित हैं और आप मेरे पालनकर्ता हैं।

"पालक हञा पाल्येरे ताड़िते ना युयाय ।

तुमि सर्व-शास्त्र जान 'जिन्दा-पीर'-प्राय" ॥28॥

पालक हञा-एक पालक होकर; पाल्येरे-आश्रित को; ताड़िते-दण्ड देना; ना युयाय-अच्छा नहीं है; तुमि-आप; सर्व-शास्त्र—सभी शास्त्र; जान-जानते हैं; जिन्दा-पीर–एक जीवित साधु; प्राय-के समान।

अनुवाद

"पालनकर्ता के लिए शोभा नहीं देता कि अपने द्वारा पाले जाने वाले व्यक्ति को दण्ड दे। आप सभी शास्त्रों में निपुण हैं। निस्सन्देह, आप एक जीवन्त सन्त के समान हैं।"

एत शुनि' सेइ म्लेच्छेर मन आर्द्र हैन ।

दाड़ि वाहि' अश्रु पड़े, काँदिते लागिल ॥ 29॥

एत शुनि'-यह सुनकर; सेइ म्लेच्छेर-उस मुस्लिम का; मन–मन; आर्द्र हैल-नर्म हो गया; दादि वाहि'–उसकी दाढ़ी से बहकर; अश्रु पड़े-आँसु गिरने लगे; काँदिते लागिल-रोने लगा।

अनुवाद

रघुनाथ दास की याचनापूर्ण वाणी सुनकर उस मुसलमान का हृदय पिघल गया। वह रोने लगा और उसके आँसू उसकी दाढ़ी से लुढ़क पड़े।

म्लेच्छ बले, —"आजि हैते तुमि—मोर 'पुत्र' ।

आजि छाड़ाइमु तोमा' करि' एक सूत्र" ॥30॥

म्लेच्छ बले-मुस्लिम ने कहा; आजि हैते-आज से; तुमि-तुम; मोर पुत्र-मेरा पुत्र; आजि-आज; छाड़ाइमु तोमा''-मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा; करि' एक सूत्र–किसी न किसी विधि से।

अनुवाद

मुसलमान चौधरी ने रघुनाथ दास से कहा, "आज से तुम मेरे पुत्र हुए। मैं आज तुम्हें किसी न किसी तरह छुड़ाकर रहूँगा।"

उजिरे कहिया रघुनाथे छोड़ाइल ।

प्रीति करि' रघुनाथे कहिते लागिल ॥31॥

उजिरे–मन्त्री को; कहिया–कहकर; रघुनाथे छाड़ाइल-रघुनाथ दास को छुड़वा दिया; प्रीति करि'-अत्यन्त स्नेहपूर्वक; रघुनाथे-रघुनाथ दास को; कहिते लागिल–कहने लगा।

अनुवाद

मन्त्री को सूचित करके चौधुरी ने रघुनाथ दास को छोड़ दिया और तब उनसे अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहने लगा।

तोमार ज्येठा निर्बुद्धि अष्ट-लक्ष खाय ।

आमि—भागी, आमारे किछु दिबारे युयाय ॥32॥

तोमार ज्येठा-तुम्हारे पिता का बड़ा भाई; निर्बुद्धि-बुद्धि विहीन; अष्ट-लक्ष खाय-8,00,000 सिक्के खाता है; आमि-मैं; भागी–भागीदार; आमारे-मुझे; किछु-कुछ; दिबारे-देना; युयाय-उचित है।

अनुवाद

उसने कहा, "तुम्हारे पिता का बड़ा भाई (तुम्हारा ताऊ) कम बुद्धि वाला है। वह आठ लाख रुपयों का भोग करता है, किन्तु क्योंकि मैं उसका भागीदार हूँ, अतएव उसे उसका कुछ हिस्सा मुझे भी देना चाहिए।"

याह तुमि, तोमार ज्येठारे मिलाह आमारे ।

ये-मते भाल हय करुन, भार दिलुँ ताँरे ॥ 33॥

याह-जाओ; तुमि-तुम; तोमार-अपने; ज्येठारे-ताऊ का; मिलाह आमारे-मुझसे मिलन करवाओ; ने-मते-किसी भी विधि से; भाल–अच्छा; हय-है; करुन–उसे करने दो; भार दिलुँ ताँरे-मैं पूर्णतया उस पर निर्भर रहूँगा।

अनुवाद

"अब तुम जाकर मेरे तथा अपने ताऊ के बीच भेंट कराओ। वह जो भला समझता हो वही करे। मैं पूरी तरह उसके निर्णय पर आश्रित रहूँगा।"

रघुनाथ आसि' तबे ज्येठारे मिलाइल ।

म्लेच्छ-सहित वश कैल—सब शान्त हैल ॥34॥

रघुनाथ–रघुनाथ दास ने; आसि-आकर; तबे-तब; ज्येठारे मिलाइल-चौधरी और अपने पिता के बड़े भाई की एक भेंट रखवाई; म्लेच्छ-सहित-मुस्लिम के साथ; वश कैल-उन्होंने समझौता किया; सब-सब कुछ; शान्त हैल-शान्त हो गया।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने अपने ताऊ तथा चौधरी की भेंट का प्रबन्ध किया। उन्होंने कलह का समाधान कर दिया और सब शान्त हो गया।

एइ-मत रघुनाथेर वत्सरेक गेल ।

द्वितीय वत्सरे पलाइते मन कैल ॥ 35 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; रघुनाथेर-रघुनाथ दास का; वत्सरेक-एक वर्ष; गेल-बीत। गया; द्वितीय वत्सरे-अगले साल; पलाइते-घर से भागने का; मन कैल-विचार किया।

अनुवाद

इस तरह रघुनाथ दास ने पूरा एक वर्ष अच्छे व्यापारी प्रबन्धक के रूप में बिताया, किन्तु अगले वर्ष उन्होंने पुनः घर छोड़ने का निश्चय किया।

रात्रे उठि' एकेला चलिला पलाञा ।

दूर हैते पिता ताँरे आनिल धरिया ॥ 36॥

रात्रे-रात को; उठि'–उठकर; एकेला-अकेले; चलिला–निकले; पलाञा-भागने; दूर हैते-कुछ दूरी से; पिता-उनके पिता; ताँरे-उन्हें; आनिल-वापस ले आये; धरिया-पकड़कर।

अनुवाद

एक रात वे अकेले उठे और चल पड़े, किन्तु उनके पिता ने दूर स्थान पर उन्हें पकड़ लिया और वे उन्हें लौटा ले आये।

एइ-मते बारे बारे पलाय, धरि' आने ।

तबे ताँर माता कहे ताँर पिता सने ॥37॥

एइ-मते-इस प्रकार; बारे बारे-बारम्बार; पलाय–वे भाग जाते; धरि आने-उन्हें वापस लाते; तबे-तब; ताँर माता-उनकी माता; कहे-कहती है; ताँर पिता सने–उनके पिता से।

अनुवाद

यह प्रायः प्रतिदिन का व्यापार बन गया था। रघुनाथ घर से भाग जाते और उनके पिता उन्हें फिर लौटा ले आते। तब रघुनाथ दास की माता ने उनके पिता (अपने पति) से कहा।

"पुत्र 'बातुल' हइल, इहाय राखह बान्धिया" ।

ताँर पिता कहे तारे निर्विण्ण हञा ॥38॥

पुत्र-पुत्र; बातुल हइल-पागल हो गया है; इहाय-उसे; राखह बान्दिया–बाँधकर रखो; तर पिता-उसके पिता; कहे-कहते हैं; तारे-उसे (माता को); निविण्ण हञा-बहुत दुःखी होकर।

अनुवाद

माताने कहा, "हमारा पुत्र पागल हो गया है। उसे रस्सी से बाँधकर रखो।" उनके पिता अत्यन्त दुःखी होकर अपनी पत्नी से बोले।

"इन्द्र-सम ऐश्वर्य, स्त्री अप्सरा-सम ।

ए सब बान्धिते नारिलेक याँर मन" ॥ 39॥

इन्द्र-सम-स्वर्ग के राजा इन्द्र के समान; ऐश्वर्य-भौतिक ऐश्वर्य; स्त्री-पत्नी; अप्सरा-सम-स्वर्ग की अप्सरा के समान; ए सब-ये सब; बान्धिते-बाँधने में; नारिलेक–समर्थ नहीं हुए; याँर मन–जिसका मन।

अनुवाद

हमारे पुत्र रघुनाथ दास के पास स्वर्ग के राजा इन्द्र के जैसा ऐश्वर्य है और उसकी पत्नी अप्सरा जैसी सुन्दर है। फिर भी यह सब उसके मन को बाँध नहीं सका।

दड़ि बन्धने तारै राखिबा के-मते? ।

जन्म-दाता पिता नारे 'प्रारब्ध' खण्डाइते ॥40॥

दड़ि बन्धने-रस्सियों के बन्धनों द्वारा; तारै–उसे; राखिबा-तुम रखोगी; के मते- कैसे; जन्म-दाता पिता–जन्म देने वाला पिता; नारे-समर्थ नहीं है; प्रारब्ध-पूर्व कर्मों का फल; खण्डाइते-नष्ट करने में।

अनुवाद

तो फिर हम इस बालक को रस्सियों से बाँधकर घर पर कैसे रख सकते हैं? किसी के पिता के लिए भी यह सम्भव नहीं है कि किसी के विगत कर्मों के फल को निरस्त कर दे।

"चैतन्य-चन्द्रेर कृपा हाछे इँहारे ।

चैतन्य-चन्द्रेर 'बातुल' के राखिते पारे?" ॥41॥

चैतन्य-चन्द्रेर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-कृपा; हाछे इँहारे इस पर हो गई है; चैतन्य-चन्द्रेर–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; बातुल-पागल को; के-कौन; राखिते पारे-रख सकता है।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस पर पूर्ण कृपा की है। चैतन्यचन्द्र के पागल को घर पर कौन रख सकता है?"

तबे रघुनाथ किछु विचारिला मने ।

नित्यानन्द-गोसाञि पाश चलिला आर दिने ॥42॥

तबे-तत्पश्चात्; रघुनाथ–रघुनाथ दास ने; किछु-कुछ; विचारिला मने-अपने मन में विचार किया; नित्यानन्द-गोसाञि पाश-नित्यानन्द गोसांई के पास; चलिला-गये; आर दिने-अगले दिन।

अनुवाद

तब रघुनाथ दास ने अपने मन में कुछ विचार किया और अगले दिन वे नित्यानन्द गोसांई के पास गये।

पानिहाटि-ग्रामे पाइला प्रभुर दरशन ।

कीर्तनीया सेवक सङ्गे आर बहु-जन ॥43॥

पानिहाटि-ग्रामे-पाणिहाटि नामक गाँव में; पाइला–पाए; प्रभुर दरशन-नित्यानन्द प्रभु के दर्शन; कीर्तनीया सेवक-संकीर्तन करने वाले और सेवक; सङ्गे-साथ; आर-और; बह-जन-अन्य अनेक लोग।

अनुवाद

पानिहाटि गाँव में रघुनाथ दास की भेंट नित्यानन्द प्रभु से हुई, जिनके साथ अनेक कीर्तन करने वाले, सेवक तथा अन्य लोग थे।

गङ्गा-तीरे वृक्ष-मूले पिण्डार उपरे ।

वसियाछेन–येन कोटी सूर्योदय करे ॥44॥

गङ्गा-तीरे-गंगा के किनारे; वृक्ष-मूले–एक वृक्ष के नीचे; पिण्डार उपरे–एक शिला के ऊपर; वसियाछेन-बैठे हुए; येन-जैसे; कोटी सूर्य-करोड़ों सूर्य; उदय करे-उदय हो रहे हों।

अनुवाद

गंगानदी के तट पर एक वृक्ष के नीचे एक शिला पर बैठे हुए नित्यानन्द प्रभु करोड़ों उदय होते सूर्यों के समान तेज युक्त प्रतीत हो रहे थे ।

तले उपरे बहु-भक्त हाछे वेष्टित ।

देखि’ प्रभुर प्रभाव रघुनाथ—विस्मित ॥ 45 ॥

तले-भूमि के उपरे-ऊपर; बहु-भक्त–अनेक भक्त; हाछे वेष्टित-वे घिरे हुए थे; देखि'–देखकर; प्रभुर प्रभाव-नित्यानन्द प्रभु का प्रभाव; रघुनाथ-रघुनाथ दास; विस्मित-विस्मित हो गये।

अनुवाद

उन्हें घेरकर भूमि पर अनेक भक्त बैठे हुए थे। नित्यानन्द प्रभु के प्रभाव को देखकर रघुनाथ दास आश्चर्यचकित हो गये।

दण्डवत् हञा सेइ पड़िला कत-दूरे ।

सेवक कहे,–'रघुनाथ दण्डवत् करे' ॥ 46॥

दण्डवत् हञा–एक दण्ड के समान गिरकर; सेइ-वे; पड़िला कत-दूर-दूर से गिरते हैं; सेवक कहे-नित्यानन्द प्रभु के सेवक ने कहा; रघुनाथ-रघुनाथ दास; दण्डवत् करे-प्रणाम कर रहा है।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने दूर स्थान पर ही दण्ड की तरह गिरकर नमस्कार किया और नित्यानन्द प्रभु के सेवक ने इंगित किया, "रघुनाथ दास आपको नमस्कार कर रहा है।"

शुनि' प्रभु कहे,—"चोरा दिलि दरशन ।

आय, आय, आजि तोर करिमु दण्डन" ॥47॥

शुनि'–सुनकर; प्रभु कहे-नित्यानन्द प्रभु ने कहा; चोरा-चोर; दिलि दरशन–तुम मुझे मिलने आये हो; आय आय–इधर आओ, इधर आओ; आजि-आज; तोर-तुम्हें; करिमु-मैं दूँगा; दण्डन–दण्ड।

अनुवाद

यह सुनकर नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "तुम चोर हो। अब तुम मुझे मिलने आये हो। यहाँ आओ, यहाँ आओ। आज मैं तुम्हें दण्ड दूँगा!"

प्रभु बोलाय, तेंहो निकटे ना करे गमन ।

आकर्षिया ताँर माथे प्रभु धरिला चरण ॥48॥

प्रभु बोलाय-प्रभु बुलाते हैं; तेंहो-वे; निकटे-पास; ना करे गमन–नहीं आते; आकर्षिया-उन्हें पास बुलाकर; ताँर माथे-उनके सिर पर; प्रभु-नित्यानन्द प्रभुः धरिला चरण-अपने चरण रखते हैं।

अनुवाद

प्रभु ने उन्हें बुलाया, किन्तु रघुनाथ दास उनके निकट नहीं गये। तब प्रभु ने उन्हें बलपूर्वक पकड़ लिया और उनके सिर पर अपना चरणकमल रख दिया।

कौतुकी नित्यानन्द सहजे दयामय ।

रघुनाथे कहे किछु हञा सदय ॥49॥

कौतुकी-अत्यत विनोदी; नित्यानन्द–भगवान् नित्यानन्द; सहजे–स्वभाव से; दया-मय-अत्यन्त दयालु; रघुनाथे-रघुनाथ दास से; कहे-कहते हैं; किछु-कुछ; हञा स- दय-कृपापूर्वक।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु स्वभाव से अत्यन्त दयालु तथा विनोदी थे। दयालु होने के कारण वे रघुनाथ दास से इस प्रकार बोले।

“निकटे ना आइस, चोरा, भाग’ दूरे दूरे ।

आजि लाग्पाञाछि, दण्डिमु तोमारे” ॥50॥

निकटे-समीप; ना आइस-तुम नहीं आते; चोरा-चोर; भाग-तुम भाग जाते हो; दूरे दूरे-दूर; आजि-आज; लाग् पाञाछि-मैंने पकड़ लिया; दण्डिमु तोमारे-मैं तुम्हें दण्ड दूँगा।

अनुवाद

तुम चोर की भाँति हो, क्योंकि पास आने के बदले तुम दूर रहते हो। अब चूँकि मैंने तुम्हें पकड़ लिया है, इसलिए तुम्हें दण्ड दूँगा।

“दधि, चिड़ा भक्षण कराह मोर गणे”।

शुनि’ आनन्दित हैल रघुनाथ मने ॥51॥

दधि-दही; चिड़ा-चिड़ा; भक्षण कराह-खिलाओ; मोर गणे-मेरे संगियों को; शुनि’–सुनकर; आनन्दित हैल-अत्यन्त प्रसन्न हो गये; रघुनाथ-रघुनाथ दास; मने-मन में।

अनुवाद

“तुम उत्सव मनाओ और मेरे सभी संगियों को दही तथा चिउड़ा खिलाओ।” यह सुनकर रघुनाथ दास अत्यधिक प्रसन्न हुए।

सेइ-क्षणे निज-लोक पाठाइला ग्रामे।

भक्ष्य-द्रव्य लोक सब ग्राम हैते आने ॥52॥

सेइ-क्षणे-तुरन्त; निज-लोक-अपने सेवकों को; पाठाइला ग्रामे उन्होंने समीप के गाँव में भेजा; भक्ष्य-द्रव्य–खाद्य पदार्थ; लोक सब-सभी लोग; ग्राम हैते–गाँव से; आने-लाए।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने तुरन्त ही अपने आदमियों को समस्त प्रकार की खाद्य वस्तुएँ खरीदकर लाने के लिए गाँव में भेजा।

चिड़ा, दधि, दुग्ध, सन्देश, आर चिनि, कला।

सब द्रव्य आनाञा चौदिके धरिला ॥53॥

चिड़ा-चिड़ा; दधि-दही; दुग्ध-दूध; सन्देश-सन्देश (एक मिठाई); आर-और; चिनि-शक्कर; कला-केला; सब-सभी; द्रव्य-पदार्थ; आनाञा-मँगाकर; चौदिके-चारों ओर; धरिला-रख दिये।

अनुवाद

रघुनाथ दास चिउड़ा, दही, दूध, मिठाइयाँ, चीनी, केले तथा अन्य खाद्य सामग्रियाँ ले आये और उन्हें चारों ओर रख दिया।

'महोत्सव'-नाम शुनि' ब्राह्मण-सज्जन ।

आसिते लागिल लोक असङ्ख्य-गणन ॥54॥

महोत्सव–महोत्सव; नाम-नाम; शुनि-सुनकर; ब्राह्मण-सत्-जन-ब्राह्मण और अन्य सज्जन; आसिते लागिल-आने लगे; लोक-लोग; असङ्ख्य-गणन-असंख्य।

अनुवाद

ज्योंही लोगों ने सुना कि उत्सव होने जा रहा है, त्योंही सभी प्रकार के ब्राह्मण तथा अन्य सज्जन पधारने लगे। इस तरह से असंख्य लोग इकडे हो गये।

आर ग्रामान्तर हैते सामग्री आनिल ।

शत दुइ-चारि होल्ना ताँहा आनाइल ॥55॥

आर-तथा; ग्राम-अन्तर हैते-अन्य गावों से; सामग्री–सामान; आनिल-लाकर; शत-सौ; दुइ-चारि-दो से चार; होल्ना-मिट्टी के गोल घड़े; ताँहा-वहाँ; आनाइल- मंगवाएँ।

अनुवाद

भीड़ बढ़ती देखकर रघुनाथ दास ने अन्य गाँवों से और खाद्य पदार्थ मँगाने का प्रबन्ध किया। वे दो-चार सौ बड़े गोल मिट्टी के घड़े भी ले आये।

बड़ बड़ मृत्कुण्डिका आनाइल पाँच साते ।

एक विप्र प्रभु लागि' चिड़ा भिजाय ताते ॥56॥

बड़े बड़े-बड़े बड़े; मृत्-कुण्डिका-मिट्टी के बर्तन; आनाइल-मंगवाएँ; पाँच साते-पाँच या सात; एक विप्र-एक ब्राह्मण; प्रभु लागि'–नित्यानन्द प्रभु के लिए; चिड़ा-चिड़ा; भिजाय–भिगोने लगा; ताते-उनमें।

अनुवाद

उन्होंने पाँच-सात बड़े-बड़े मिट्टी के पात्र भी मंगवाये और एक ब्राह्मण इन पात्रों में नित्यानन्द प्रभु की तुष्टि हेतु चिउड़ा भिगोने लगा।

एक-ठाञि तप्त-दुग्धे चिड़ा भिजाञा ।

अर्धेक छानिल दधि, चिनि, कला दिया ॥57॥

एक-ठाञि-एक तरफ; तप्त-दुग्धे-गर्म दूध में; चिड़ा-चिड़ा; भिजाञा-भिगोया; अर्धेक-उसका आधा; छानिल-मिलाया; दधि-दही; चिनि-शक्कर; कला-केला; दिया-डाल दिया।

अनुवाद

एक स्थान पर इन बड़े पात्रों में गर्म दूध में चिउड़ा भिगोया गया। तब आधा चिउड़ा दही, चीनी तथा केलों के साथ मिलाया गया।

आर अर्धेक घनावृत-दुग्धेते छानिल ।

चाँपा-कला, चिनि, घृत, कर्पूर ताते दिल ॥58॥

आर अर्धेक-आधा; घन-आवृत-गाढे, दुग्धेते-दूध में; छानिल-मिलाया; चाँपा-कला-चांपा केला (एक विशेष प्रकार का केला); चिनि-शक्कर; घृत-घी; कर्पूर-कपूर; ताते दिल-उसमें डाल दिया।

अनुवाद

आधे भाग को गाढ़े दूध में तथा विशेष प्रकार के केले में, जो चाँपा-कला कहलाता है, मिलाया गया। तब चीनी, घी तथा कपूर डाला गया।

धुति परि' प्रभु यदि पिण्डाते वसिला ।

सात-कुण्डी विप्र ताँर आगेते धरिला ॥59॥

धुति परि'-नये वस्त्र पहनकर; प्रभु-भगवान् नित्यानन्द; यदि-जब; पिण्डाते वसिला-एक उच्च आसन पर बैठे; सात-कुण्डी–सात बड़े-बड़े मिट्टी के घड़े; विप्र-ब्राह्मण ने; ताँर आगेते-उनके सामने; धरिला-रख दिये।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु अपनी वस्त्र बदल चुके और चबूतरे पर बैठ गये, तब वह ब्राह्मण उनके सामने सात बड़े-बड़े पात्र ले आया।

चबुतरा-उपरे व्रत प्रभुर निज-गणे ।

बड़ बड़ लोक वसिला मण्डली-रचने ॥60॥

चबुतरा-उपरे-उच्च स्थान पर; व्रत-सभी; प्रभुर निज-गणे-प्रभु के अति अन्तरंग साथी; बड़ बड़ लोक-बड़े बड़े लोग; वसिला-बैठ गये; मण्डली-रचने-एक गोल घेरा बनाकर।

अनुवाद

इस चबूतरे पर श्री नित्यानन्द प्रभु के सभी सर्वाधिक प्रमुख संगी तथा साथ ही अन्य बड़े लोग उनके चारों ओर एक गोलाकार में बैठ गये।

रामदास, सुन्दरानन्द, दास-गदाधर ।

मुरारि, कमलाकर, सदाशिव, पुरन्दर ॥ 61॥

रामदास–रामदास; सुन्दरानन्द–सुन्दरानन्द; दास-गदाधर-गदाधर दास; मुरारि-मुरारि; कमलाकर-कमलाकर; सदाशिव-सदाशिव; पुरन्दर–पुरन्दर।

अनुवाद

इनमें रामदास, सुन्दरानन्द, गदाधर दास, मुरारि, कमलाकर, सदाशिव तथा पुरन्दर सम्मिलित थे।

धनञ्जय, जगदीश, परमेश्वर-दास ।

महेश, गौरीदास, होड़-कृष्णदास ॥62॥

धनञ्जय-धनंजय; जगदीश-जगदीश; परमेश्वर-दास-परमेश्वर दास; महेश-महेश;गौरीदास–गौरीदास; होड़-कृष्णदास-होड़ कृष्णदास।

अनुवाद

धनंजय, जगदीश, परमेश्वर दास, महेश, गौरीदास तथा होड़ कृष्णदास भी उसमें थे।

उद्धारण दत्त आदि यत निज-गण ।

उपरे वसिला सब, के करे गणन? ॥63॥

उद्धारण दत्त-उद्धारण दत्त; आदि-और ऐसे अन्य व्यक्ति; यत निज गण-सभी अन्तरंग लोग; उपरे-ऊपर; वसिला-बैठ गये; सब-सभी; के-कौन; करे गणन-गिन सकता है।

अनुवाद

इसी तरह उद्धारण दत्त ठाकुर तथा नित्यानन्द प्रभु के अन्य निजी संगी उनके साथ उस चबूतरे के ऊपर बैठे। उन सब की गणना कोई नहीं कर सकता था।

तात्पर्य

यहाँ पर उल्लिखित भक्तों का वर्णन श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में किया है। अधिक जानकारी के लिए आदिलीला के निम्नलिखित सन्दर्भो को देखें। रामदास 10.116-118, 11.13-16। सुन्दरानन्द 11.23, गदाधर दास 10.53, 11.13-15 तथा 11.17 । यहाँ पर उल्लिखित मुरारि, मुरारि गुप्त से भिन्न हैं। उनका पूरा नाम मुरारि चैतन्य दास है और वे नित्यानन्द प्रभु के निजी पार्षद हैं। इसी तरह श्लोक 11.20 भी देखें। कमलाकर 11.24, सदाशिव 11.38, पुरन्दर 11.28, धनंजय 11.31, जगदीश 11.30, परमेश्वर 11.29, महेश 11.32, गौरीदास 11.26, होड़ कृष्णदास 11.47 तथा उद्धारण दत्त ठाकुर 11.41 ।

शुनि' पण्डित भट्टाचार्य यत विप्र आइला ।

मान्य करि' प्रभु सबारे उपरे वसाइला ॥64॥

शुनि'–सुनकर; पण्डित भट्टाचार्य–विद्वान और पुजारी; यत-सभी; विप्र-ब्राह्मण; आइला-आ गये; मान्य करि'-सम्मान देकर; प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु ने; सबारे- उन सभी को; उपरे वसाइला-ऊपर बिठाया॥

अनुवाद

उत्सव के विषय में सुनकर सभी प्रकार के विद्वान, ब्राह्मण तथा पुरोहित वहाँ आये। भगवान् नित्यानन्द ने उन सबका सम्मान किया और अपने साथ चबूतरे पर बैठाया।

दुइ दुइ मृत्कुण्डिका सबार आगे दिल ।

एके दुग्ध-चिड़ा, आरे दधि-चिड़ा कैल ॥65॥

दुइ दुइ-दो-दो; मृत्-कुण्डिका-मिट्टी के पात्र; सबार आगे-सभी के सामने; दिल-दिये; एके-एक में; दुग्ध-चिड़ा-चिड़ा और दूध का मिश्रण; आरे-दूसरे में; दधि-चिड़ा-चिड़ा और दही; कैल-डाला॥

अनुवाद

हर एक को दो दो मिट्टी के पात्र दिये गये। एक में चिउड़ा के साथ गाढ़ा दूध रखा था और दूसरे में दही के साथ चिउड़ा था।

आर यत लोक सब चौतरा-तलाने ।

मण्डली-बन्धे वसिला, तार ना हय गणने ॥66॥

आर-अन्य; यत–जितने भी; लोक-लोग; सब-सब; चौतरा-तलाने-मंच के नीचे; मण्डली-बन्धे–मंडली बनाकर; वसिला-बैठ गये; तार-उनकी; ना हय गणने- गिनती नहीं की जा सकती थी॥

अनुवाद

अन्य सारे लोग चबूतरे के चारों ओर मण्डली बनाकर बैठे। कोई यह नहीं गिन सका कि कुल कितने लोग थे।

एकेक जनारे दुइ दुइ होल्ना दिल।

दधि-चिड़ा दुग्ध-चिड़ा, दुइते भिजाइल ॥ 67॥

एकेक जनारे-उनमें से प्रत्येक को; दुइ दुइ-दो दो; होल्ना दिल-मिट्टी के पात्र दिये गये; दधि-चिड़ा-चिड़ा और दही; दुग्ध-चिड़ा-चिड़ा गाढ़े दूध के साथ; दुइते-दो पात्रों में; भिजाइल–भिगोये गये।

अनुवाद

हर एक को दो दो मिट्टी के पात्र दिये गये-एक में दही में भिगोया चिउड़ा था और दूसरे में गाढ़े दूध में भिगोया चिउड़ा था।

कोन कोन विप्र उपरे स्थान ना पाञा।

दुइ होल्नाय चिड़ा भिजाय गङ्गा-तीरे गिया ॥68॥

कोन कोन-कुछ; विप्र-ब्राह्मण; उपरे–मंच पर; स्थान ना पाञा-स्थान न पाकर; दुइ होल्नाय-दो पात्रों में; चिड़ा भिजाय-चिड़ा भिगोकर; गङ्गा-तीरे-गंगा के किनारे; गिया-गये।

अनुवाद

कुछ ब्राह्मण जिन्हें चबूतरे पर स्थान नहीं मिल पाया, अपने दो-दो मिट्टी के पात्र लेकर गंगा के किनारे चले गये और वहीं अपना चिउड़ा भिगोया।

तीरे स्थान ना पाञा आर कत जन।

जले नामि' दधि-चिड़ा करये भक्षण ॥69॥

तीरे-किनारे पर; स्थान-स्थान; ना पाञान पाकर; आर-अन्य; कत-कुछ; जन-व्यक्ति; जले नामि'-पानी में उतरकर; दधि-चिड़ा-दही और चिड़ा; करये भक्षण-खाने लगे।

अनुवाद

अन्य लोग जिन्हें गंगा के किनारे भी स्थान नहीं मिल सका, वे जल में प्रवेश कर गये और वहीं दोनों प्रकार का चिउड़ा खाने लगे।

केह उपरे, केह तले, केह गङ्गा-तीरे ।

बिश-जन तिन-ठाञि परिवेशन करे ॥ 70 ॥

केह उपरे-कुछ मंच पर; केह तले-कुछ मंच के नीचे; केह गङ्गा-तीरे-कुछ गंगा किनारे; बिश-जन-बीस लोग; तिन-ठाञि-तीन स्थानों पर; परिवेशन करे–बाँट रहे

अनुवाद

इस तरह कुछ तो चबूतरे के ऊपर बैठे, कुछ चबूतरे के नीचे और कुछ गंगा के किनारे बैठे और उन सबको भोजन बाँटने वाले बीस व्यक्तियों द्वारा दो-दो पात्र दिये गये।

हेन-काले आइला तथा राघव पण्डित ।

हासिते लागिला देखि' हञा विस्मित ॥ 71॥

हेन-काले-इस समय; आइला-आ गये; तथा-वहाँ; राघव पण्डित-राघव पण्डित नामक महान् विद्वान; हासिते लागिला-हँसने लगे; देखि'–देखकर; हञा विस्मित-हैरान होकर।

अनुवाद

उसी समय राघव पण्डित वहाँ आ गये। वह स्थिति को देखकर अत्यन्त आश्चर्य से हँसने लगे।

नि-सक्ड़ि नाना-मत प्रसाद आनिल ।

प्रभुरे आगे दिया भक्त-गणे बाँटि दिल ॥72॥

नि-सक्ड़ि-घी में पका हुआ भोजन; नाना-मत–अनेक प्रकार के प्रसाद-भगवान् का प्रसाद; आनिल–वे लाये; प्रभुरे आगे-नित्यानन्द प्रभु के समक्ष; दिया-रखकर; भक्त- गणे-सभी भक्तों को; बाँटि दिल-बाँटा।

अनुवाद

वे अपने साथ घी में पकाये हुए अनेक प्रकार के पकवान लाए थे, जिन्हें उन्होंने नित्यानन्द प्रभु को भेंट किया। यह प्रसाद पहले नित्यानन्द प्रभु के समक्ष रखा गया और तब भक्तों में वितरित कर दिया गया।

प्रभुरे कहे,–"तोमा लागि' भोग लागाइल ।

तुमि इहाँ उत्सव कर, घरे प्रसाद रहिल" ॥73॥

प्रभुरे कहे-उन्होंने नित्यानन्द प्रभु से कहा; तोमा लागि'-आपके लिए; भोग लागाइल-मैंने श्री विग्रह को भोग अर्पित किया; तुमि-आप; इहाँ–यहाँ; उत्सव कर-एक उत्सव में व्यस्त हैं; घरे–घर पर; प्रसाद-प्रसाद; रहिल-पड़ा है।

अनुवाद

राघव पण्डित ने नित्यानन्द प्रभु से कहा, "हे महोदय, मैं आपके लिए पहले ही भोजन अर्चाविग्रह को अर्पित कर चुका हूँ, किन्तु आप यहाँ उत्सव में लगे हैं, इसलिए भोजन अछूता पड़ा है।"

प्रभु कहे,–"ए-द्रव्य दिने करिये भोजन ।

रात्र्ये तोमार घरे प्रसाद करिमु भक्षण" ॥74॥

प्रभु कहे-नित्यानन्द प्रभु ने कहा; ए-द्रव्य-यह भोजन; दिने–दिन के समय; करिये भोजन-मुझे खाने दो; रात्र्ये-रात को; तोमार घरे-तुम्हारे घर पर; प्रसाद–प्रसाद; करिमु भक्षण-मैं खाऊँगा।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया, "दिन में मुझे यह सारा भोजन खाने दो और रात में मैं तुम्हारे घर पर भोजन करूँगा।"

"गोप-जाति आमि बहु गोप-गण सङ्गे ।

आमि सुख पाइ एइ पुलिन-भोजन-रङ्गे" ॥ 75 ॥

गोप-जाति-गोपबालकों की जाति का; आमि-मैं; बहु-अनेक; गोप-गण- ग्वालबाल; सङ्गे–साथ; आमि-मैं; सुख पाइ–अत्यन्त प्रसन्न हूँ; एइ–इस; पुलिन–नदी किनारे; भोजन-रङ्गे–भोजन के आनन्द में।

अनुवाद

"मैं ग्वालों की जाति का हूँ, इसलिए सामान्यतया मेरे साथ अनेक ग्वाल संगी रहते हैं। जब हम नदी के रेतीले तट पर इस तरह के वन्य-भोजन में एकसाथ खाते हैं, तो मैं प्रसन्न होता हूँ।"

राघवे वसाञा दुइ कुण्डी देओयाइला ।

राघव द्विविध चिड़ा ताते भिजाइला ॥76॥

राघवे-राघव पण्डित को; वसाञा -बिठाकर; दुइ-दो; कुण्डी-पात्र; देओयाइला–उन्हें दिलवाएँ; राघव-राघव पण्डित ने; द्वि-विध-दो प्रकार के; चिड़ा-चिड़ा; ताते-उनमें; भिजाइला–भिगोये।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने राघव पण्डित को बैठाया और उन्हें भी दो पात्र दिलाए। इनमें दो प्रकार के चिउड़े भिगोये हुए थे।

सकल-लोकेर चिड़ा पूर्ण यबे हइल ।

ध्याने तबे प्रभु महाप्रभुरे आनिल ॥77॥

सकल-लोकेर–सभी का; चिड़ा-चिड़ा; पूर्ण–पूर्ण; यबे-जब; हइल-हो गया; ध्याने-ध्यान में; तबे-उस समय; प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु; महाप्रभुरे आनिल-श्रीचैतन्य महाप्रभु को ले आये।

अनुवाद

जब हर एक को चिउड़ा परोसा जा चुका, तो नित्यानन्द प्रभु ध्यान में श्री चैतन्य महाप्रभु को ले आये।

महाप्रभु आइला देखि निताई उठिला ।

तारे लञा सबार चिड़ा देखिते लागिला ॥78॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु को; आइला-आये; देखि-देखकर; निताइ-नित्यानन्द प्रभु; उठिला–खड़े हो गये; तारे लञा-उनके साथ; सबार-सभी को; चिड़ा-चिड़ा; देखिते लागिला देखने लगे।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु आये, तो नित्यानन्द प्रभु उठ खड़े हुए। तब उन्होंने देखा कि किस तरह अन्य लोग दही तथा घनीभूत दूध के साथ चिउड़ा का आनन्द ले रहे हैं।

सकल कुण्डीर, होल्नार चिड़ार एक एक ग्रास ।

महाप्रभुर मुखे देन करि' परिहास ॥79॥

सकल कुण्डीर-सभी पात्रों से; होल्नार-बड़े पात्रों से; चिड़ार-चिउड़े का; एक एक ग्रास–एक ग्रास; महाप्रभुर मुखे-श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख में; देन–डालकर; करि' परिहास-मजाक करने लगे।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने प्रत्येक पात्र से चिउड़े का एक ग्रास लिया और उसे परिहास वश श्री चैतन्य महाप्रभु के मुँह में ठूँस दिया।

हासि' महाप्रभु आर एक ग्रास लञा ।

ताँर मुखे दिया खाओयाय हासिया हासिया ॥80॥

हासि'-हँसकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आर-दूसरा; एक ग्रास–एक ग्रास; लञा-लेकर; ताँर मुखे–भगवान् नित्यानन्द प्रभु के मुख में; दिया-डालकर; खाओयाय खिलाकर; हासिया हासिया-हँसते हुए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी हँसते-हँसते भोजन का एक कौर लिया, उसे नित्यानन्द प्रभु के मुँह में डाल दिया और नित्यानन्द को खिलाते समय हँसने लगे।

एइ-मत निताई बुले सकल मण्डले ।

दाण्डाञा रङ्ग देखे वैष्णव सकले ॥81॥

एइ-मत-इस प्रकार; निताइ बुले-नित्यानन्द प्रभु गुजर रहे थे; सकल मण्डले सभी दलों के बीच से; दाण्डाञा–खड़े हुए; रङ्ग देखे–मनोरंजन देख रहे थे; वैष्णव सकले-सभी वैष्णव।

अनुवाद

इस तरह नित्यानन्द प्रभु भोजन करने वालों की सभी मंडलियों में से होकर घूम रहे थे और वहाँ पर खड़े सारे वैष्णव यह कौतुक देख रहे थे।

कि करिया बेड़ाय,—इहा केह नाहि जाने ।

महाप्रभुर दर्शन पाय कोन भाग्यवाने ॥82॥

कि करिया-क्या कर रहे थे; बेड़ाय-चलते हुए; इहा-यह; केह नाहि जाने-कोई समझ न सका; महाप्रभुर दर्शन पाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन कर पाए; कोन भाग्यवाने-कुछ भाग्यशाली लोग।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु घूम रहे थे, तब वे क्या कर रहे थे यह कोई नहीं समझ सका। किन्तु कुछ लोग जो बड़े भाग्यशाली थे, यह देख सके कि श्री चैतन्य महाप्रभु भी वहाँ उपस्थित थे।

तबे हासि नित्यानन्द वसिला आसने ।

चारि कुण्डी आरोया चिड़ा राखिला डाहिने ॥83॥

तबे हासि'–फिर हँसकर; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द प्रभु; वसिला आसने-अपने आसन पर बैठ गये; चारि कुण्डी-चार मिट्टी के पात्र; आरोया चिड़ा-उबले धान से नहीं बनाया हुआ चिड़ा; राखिला डाहिने–उन्होंने अपनी दाई ओर रखा।

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु हँसे और बैठ गये। उन्होंने अपने दाहिनी ओर चार पात्र रखे जिनका चिउड़ा उबले चावल से नहीं बनाया गया था।

आसन दिया महाप्रभुरे ताहाँ वसाइला ।

दुइ भाइ तबे चिड़ा खाइते लागिला ॥84॥

आसन दिया-आसन देकर; महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; ताहाँ-वहाँ; वसाइला–बिठाया; दुइ भाइ–दोनों भाई; तबे-उस समय; चिड़ा-चिड़ा; खाइते लागिला-खाने लगे।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने श्री चैतन्य महाप्रभु को स्थान दिया और उन्हें बैठाया। तब दोनों भाई एकसाथ चिउड़ा खाने लगे।

देखि' नित्यानन्द-प्रभु आनन्दित हैला ।

कत कत भावावेश प्रकाश करिला ॥85॥

देखि'–देखकर; नित्यानन्द-प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु; आनन्दित हैला-अत्यन्त प्रसन्न हो गये; कत कत-बहुत से; भाव-आवेश-प्रेमभाव; प्रकाश करिला-उन्होंने प्रकाशित किये।

अनुवाद

अपने साथ चैतन्य महाप्रभु को खाते देखकर नित्यानन्द प्रभु अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने नाना प्रकार के भावावेश प्रदर्शित किये।

आज्ञा दिला,—"हरि बलि' करह भोजन"।

'हरि' 'हरि'-ध्वनि उठि' भरिल भुवन ॥86॥

आज्ञा दिला–उन्होंने आदेश दिया; हरि बलि'–'हरि' बोलते हुए; करह भोजन-आप सब खाइये; हरि हरि-ध्वनि-'हरि, हरि' की गूँज; उठि'–उठकर; भरिल भुवन-समस्त ब्रह्माण्ड में भर गई।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने आज्ञा दी, "सभी लोग हरिनाम का कीर्तन करते हुए भोजन करें।" "हरि, हरि' की ध्वनि की गूंज से तुरन्त ही सारा ब्रह्माण्ड भर गया।

'हरि' 'हरि' बलि' वैष्णव करये भोजन ।

पुलिन-भोजन सबार हइल स्मरण ॥87॥

हरि हरि बलि'–"हरि, हरि" बोलते हुए; वैष्णव-सभी वैष्णव; करये भोजन-खाने लगे; पुलिन-भोजन-यमुना के किनारे भोजन; सबार हइल स्मरण-सभी को स्मरण आ गया।

अनुवाद

जब सारे वैष्णव "हरि, हरि" बोलकर भोजन कर रहे थे, तो उन्हें स्मरण हो आया कि किस तरह कृष्ण तथा बलराम अपने ग्वालबाल साथियों के साथ यमुना के तट पर भोजन करते थे।

नित्यानन्द महाप्रभु कृपालु, उदार ।

रघुनाथेर भाग्ये एत कैला अङ्गीकार ॥88॥

नित्यानन्द महाप्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु और भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; कृपालु दयावान; उदार-उदार; रघुनाथेर भाग्ये-रघुनाथ दास के महान् सौभाग्य द्वारा; एत-यह सब; कैला अङ्गीकार-उन्होंने स्वीकार किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु अत्यन्त दयालु तथा उदार हैं। यह तो रघुनाथदास का सौभाग्य था कि उन्होंने ये सब व्यवहार स्वीकार कर लिए।

नित्यानन्द-प्रभाव-कृपा जानिबे को जन? ।

महाप्रभु आनि' कराय पुलिन-भोजन ॥89॥

नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु का प्रभाव-कृपा-प्रभाव और कृपा; जानिबे-जान सकता है; को जन-कौन; महाप्रभु आनि'–श्री चैतन्य महाप्रभु को बुलाकर; कराय पुलिन-भोजन-उन्हें नदी किनारे भोजन करवाते हैं।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के प्रभाव तथा कृपा को कौन समझ सकता है? वे इतने शक्तिशाली हैं कि उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को गंगा तट पर चिउड़ा खाने आने के लिए प्रेरित किया।

श्री-रामदासादि गोप प्रेमाविष्ट हैला ।

गङ्गा-तीरे 'यमुना-पुलिन' ज्ञान कैला ॥90॥

श्री-रामदास-आदि-श्री रामदास आदि; गोप-ग्वालबाल; प्रेम-आविष्ट हैला- प्रेमभाव में आविष्ट हो गये; गङ्गा-तीरे-गंगा नदी के किनारे को; यमुना-पुलिन-यमुना नदी का किनारा; ज्ञान कैला-उन्होंने माना।

अनुवाद

श्री रामदास इत्यादि जितने ग्वालबाल अन्तरंग भक्त थे, वे प्रेमावेश में डूब गये। वे गंगा के तट को यमुना का तट समझ बैठे।

महोत्सव शुनि' पसारि नाना-ग्राम हैते ।

चिड़ा, दधि, सन्देश, कला आनिल वेचिते ॥91॥

महोत्सव शुनि'–महोत्सव के बारे में सुनकर; पसारि-दुकानदार; नाना-ग्राम-अनेक गाँव; हैते-से; चिड़ा-चिड़ा; दधि-दही; सन्देश-सन्देश (मिठाई); कला केला; आनिल-लाए; वेचिते-बेचने के लिए।

अनुवाद

जब अनेक अन्य गाँव के दुकानदारों ने महोत्सव के बारे में सुना, तो वे चिउड़ा, दही, सन्देश, मिठाई तथा केला बेचने के लिए वहाँ आ गये।

यत द्रव्य लञा आइसे, सब मूल्य करि' लय ।

तार द्रव्य मूल्य दिया ताहारे खाओयाय ॥ 92॥

यत द्रव्य-सभी वस्तुएँ; लञा-लेकर; आइसे–आये; सब-सब; मूल्य करि लय-रघुनाथ ने खरीद ली; तार द्रव्य-उनके वस्तुओं का; मूल्य दिया–मूल्य चुकाकर; ताहारे खाओयाय-उन्हें ही खिला दी।

अनुवाद

जैसे ही वे सभी प्रकार की भोज्य सामग्री लेकर आये, रघुनाथदास ने सारी की सारी खरीद ली। उन्होंने उन्हें उनके सामान का मूल्य चुकता किया और बाद में वही भोजन उन्हें खिला दिया।

कौतुक देखिते आइल यत यत जन ।

सेइ चिड़ा, दधि, कला करिल भक्षण ॥ 93॥

कौतुक-ये मनोरंजक घटनाएँ; देखिते-देखने के लिए; आइल-आये; यत यत जन-जो-जो लोग; सेइ-वे; चिड़ा-चिड़ा; दधि-दही; कला–केला; करिल भक्षण-खाए।

अनुवाद

जो भी यह देखने के लिए आया कि ये कैसे कुतूहलवर्धक कार्य हो रहे हैं, उन्हें भी चिउड़ा, दही तथा केला खिलाया गया।

भोजन करि' नित्यानन्द आचमन कैला ।

चारि कुण्डीर अवशेष रघुनाथे दिला ॥94॥

भोजन करि'–भोजन समाप्त करके; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु ने; आचमन कैला-अपने हाथ मुँह धोये; चारि कुण्डीर-चारों पात्रों में; अवशेष-जो कुछ बचा था; रघुनाथे दिला-रघुनाथ दास को दे दिया।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने भोजन करने के बाद हाथ तथा मुख धोये और रघुनाथ दास को चार पात्रों में बचा हुआ भोजन दिया।

आर तिन कुण्डिकाय अवशेष छिल ।

ग्रासे-ग्रासे करि' विप्र सब भक्ते दिल ॥95॥

आर-अन्य; तिन कुण्डिकाय-तीन पात्रों में; अवशेष छिल-अवशिष्ट भोजन था; ग्रासे-ग्रासे-ग्रास-ग्रास; करि'–करके; विप्र-एक ब्राह्मण ने; सब भक्ते-सभी भक्तों को; दिल-दिया।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द के तीन अन्य बड़े पात्रों में भोजन बचा रहा, जिसे एक ब्राह्मण ने सारे भक्तों को एक-एक ग्रास देकर बाँट दिया।

पुष्य-माला विप्न आनि' प्रभु-गले दिल ।

चन्दन आनिया प्रभुर सर्वाङ्गे लेपिल ॥96॥

पुष्प-माला-एक फूलों का हार; विप्र-एक ब्राह्मण ने; आनि'–लाकर; प्रभु-गले- भगवान् नित्यानन्द प्रभु के गले में; दिल-डाला; चन्दन आनिया-चन्दन लेप लाकर; प्रभुर-नित्यानन्द प्रभु के; सर्वाङ्गे लेपिल-समस्त शरीर पर लेप कर दिया।

अनुवाद

तब एक ब्राह्मण एक फूल की माला ले आया, उसने उसे नित्यानन्द प्रभु के गले में डाल दी और उनके सारे शरीर में चन्दन का लेप किया।

सेवक ताम्बूल लञा करे समर्पण ।

हासिया हासिया प्रभु करये चर्वण ॥97॥

सेवक-सेवक ने; ताम्बूल-पान; लञा–लाकर; करे समर्पण-अर्पित किया; हासिया हासिया-हँसकर; प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु ने; करये चर्वण-चबाया।

अनुवाद

जब नौकर पान ले आया और नित्यानन्द प्रभु को भेंट किया, तो प्रभु हँसने लगे और पान चबाने लगे।

माला-चन्दन-ताम्बूल शेष ये आछिल ।

श्री-हस्ते प्रभु ताहा सबाकारे बाँटि' दिल ॥98॥

माला-चन्दन-ताम्बूल-फूलों का हार, चन्दन का लेप तथा पान का; शेष ये आछिल-जो कुछ अवशेष बचा; श्री-हस्ते-अपने हाथों से; प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु ने; ताहा-वह; सबाकारे-सबको; बाँटि' दिल-बाँट दिया।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने अपने हाथों से सारे भक्तों में बची हुई फूलमालाएँ, चन्दन लेप तथा पान बाँट दिये।

आनन्दित रघुनाथ प्रभुर 'शेष' पाञा ।

आपनार गण-सह खाइला बाँटिया ॥99॥

आनन्दित-अति आनन्दित होकर; रघुनाथ–रघुनाथ दास; प्रभुर शेष पाञा-भगवान् नित्यानन्द प्रभु का शेष प्राप्त करके; आपनार गण-अपने संगियों के; सह–साथ; खाइला-खाया; बाँटिया-बाँटकर।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के बचे भोजन का शेष पाकर अत्यन्त प्रसन्न रघुनाथ दास ने कुछ तो खाया और शेष अपने निजी संगियों में बाँट दिया।

एइ त कहिलुँ नित्यानन्देर विहार ।

'चिड़ा-दधि-महोत्सव'-नामे ख्याति यार ॥ 100॥

एइ त'-इस प्रकार; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; नित्यानन्देर विहार-भगवान् नित्यानन्द प्रभु की लीलाएँ; चिड़ा-दधि-महोत्सव–चिड़ा-दही खाने का महोत्सव; नामे-नाम से; ख्याति-प्रसिद्धि; यार–जिसकी।

अनुवाद

इस तरह मैंने चिड़ा-दही महोत्सव के सम्बन्ध में नित्यानन्द प्रभु की लीलाओं का वर्णन किया है।

प्रभु विश्राम कैला, यदि दिन-शेष हैल ।

राघव-मन्दिरे तबे कीर्तन आरम्भिल ॥101॥

प्रभु-नित्यानन्द प्रभु ने; विश्राम कैला–विश्राम किया; यदि-जब; दिन-शेष हैल- दिन समाप्त हो गया; राघव-मन्दिरे-राघव पण्डित के मन्दिर में; तबे-उस समय; कीर्तन आरम्भिल-पवित्र नाम का संकीर्तन करना प्रारम्भ किया।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने दिन में आराम किया और जब दिन का अन्त हो गया, तो वे राघव पण्डित के मन्दिर गये और वहाँ भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन करना प्रारम्भ कर दिया।

भक्त सब नाचा नित्यानन्द-राय ।

शेषे नृत्य करे प्रेमे जगत् भासाय ॥102॥

भक्त सब–सभी भक्तों को; नाचाज्ञा–नचाया; नित्यानन्द-राय-भगवान् नित्यानन्द प्रभु ने; शेषे–अन्त में; नृत्य करे-नाचना प्रारम्भ किया; प्रेमे-प्रेमभाव में; जगत् भासाय-समस्त संसार को डुबा दिया।

अनुवाद

सर्वप्रथम नित्यानन्द प्रभु ने सारे भक्तों को नाचने के लिए प्रेरित किया और अन्त में वे स्वयं भी नाचने लगे। इस तरह उन्होंने सारे जगत् को प्रेमावेश से आप्लावित कर दिया।

महाप्रभु ताँर नृत्य करेन दरशन ।

सबे नित्यानन्द देखे, ना देखे अन्य-जन ॥103॥

महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर–उनका; नृत्य-नर्तन; करेन दरशन-देख रहे थे; सबे-सब; नित्यानन्द देखे–नित्यानन्द प्रभु देख पाए; ना देखे–नहीं देख पाए; अन्य-जन-अन्य लोग।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु श्री नित्यानन्द प्रभु का नृत्य देख रहे थे। नित्यानन्द प्रभु तो इसे देख सके, किन्तु अन्य लोग नहीं देख पाये।

नित्यानन्देर नृत्य,—येन ताँहार नर्तने।

उपमा दिबार नाहि ए-तिन भुवने ॥104॥

नित्यानन्देर नृत्य-भगवान् नित्यानन्द प्रभु का नृत्य; येन-समान; ताँहार नर्तने–श्री चैतन्य महाप्रभु के नृत्य के; उपमा दिबार नाहि-कोई उपमा नहीं दी जा सकती; ए-तिन भुवने-इन तीनों भुवनों में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के नृत्य की तरह नित्यानन्द प्रभु के नृत्य की तुलना इन तीनों जगतों से किसी भी वस्तु से नहीं की जा सकती।

नृत्येर माधुरी केबा वर्णिबारे पारे ।

महाप्रभु आइसे येइ नृत्य देखिबारे ॥105॥

नृत्येर माधुरी नृत्य की मधुरता; केबा-कौन; वर्णिबारे पारे-वर्णन कर सकता है; महाप्रभु आइसे-श्री चैतन्य महाप्रभु आते हैं; येइ-वह; नृत्य-नृत्य; देखिबारे-देखने के लिए।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के नृत्य की मधुरता का वर्णन उचित प्रकार से कोई नहीं कर सकता। श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं चलकर इसे देखने आते हैं।

नृत्य करि' प्रभु यबे विश्राम करिला ।

भोजनेर लागि' पण्डित निवेदन कैला ॥106॥

नृत्य करि'-नृत्य करके; प्रभु-नित्यानन्द प्रभु ने; यबे-जब; विश्राम करिला-विश्राम किया; भोजनेर लागि'–उनसे भोजन के लिए; पण्डित-राघव पण्डित ने; निवेदन कैला-प्रार्थना की।

अनुवाद

नृत्य के बाद जब नित्यानन्द प्रभु विश्राम कर चुके, तो राघव पण्डित ने उनसे निवेदन किया कि वे रात्रि का भोजन कर लें।

भोजने वसिला प्रभु निज-गण लञा ।

महाप्रभुर आसन डाहिने पातिया ॥107॥

भोजने–भोजन करने के लिए; वसिला-बैठ गये; प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभुः निज-गण लञा-अपने संगीगणों के साथ; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आसन- आसन; डाहिने पातिया-दाई और बिछाते हैं।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु अपने निजी संगियों के साथ भोजन करने बैठ गये और श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए अपने दाहिनी ओर आसन बना दिया।

महाप्रभु आसि' सेइ आसने वसिल ।

देखि' राघवेर मने आनन्द बाड़िल ॥108॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आसि'-आकर; सेइ आसने—उस आसन पर; वसिल-बैठ गये; देखि'–देखकर; राघवेर मने-राघव पण्डित के मन में; आनन्द–महान् आनन्द; बाड़िल-बढ़ गया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ पर आये और अपने आसन पर बैठ गये। यह देखकर राघव पण्डित को अत्यधिक आनन्द हुआ।

दुइ–भाइ-आगे प्रसाद आनिया धरिला ।

सकल वैष्णवे पिछे परिवेशन कैला ॥ 109॥

दुइ-भाइ-आगे-दोनों भाइयों के सामने; प्रसाद-भगवान् कृष्ण को अर्पित भोग का शेष; आनिया-लाकर; धरिला-रख दिया; सकल वैष्णवे-सभी वैष्णवों को; पिछे- उसके बाद; परिवेशन कैला-बाँटने लगें।

अनुवाद

राघव पण्डित दोनों भाइयों के समक्ष प्रसाद ले आये और उसके बाद अन्य सभी वैष्णवों को प्रसाद वितरित किया।

नाना-प्रकार पिठा, पायस, दिव्य शाल्यन्न ।

अमृत निन्दये ऐछे विविध व्यञ्जन ॥ 110॥

नाना-प्रकार पिठा-अनेक प्रकार की मिठाईयाँ; पायस-खीर; दिव्य शाल्यन्न-उत्कृष्ट भात; अमृत-अमृत को; निन्दये-लज्जित करने वाले; ऐछे-ऐसे; विविध व्यञ्जन-विविध व्यंजन।

अनुवाद

उसमें तरह-तरह की मिठाईयाँ, खीर तथा उत्तम पकाए चावल थे, जो अमृत के भी स्वाद को मात करने वाले थे। कई प्रकार की सब्जियाँ भी थीं।

राघव-ठाकुरेर प्रसाद अमृतेर सार ।

महाप्रभु याहा खाइते आइसे बार बार ॥111॥

राघव-ठाकुरेर–राघव पण्डित का; प्रसाद-भगवान् को अर्पित अन्न, प्रसाद; अमृतेर सार-अमृत का सार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; याहा–जिसे; खाइते-खाने के लिए; आइसे-आते थे; बार बार-बारम्बार।

अनुवाद

राघव पण्डित द्वारा तैयार किया गया तथा अर्चाविग्रह को भेंट किया गया भोजन अमृत के सार के तुल्य था। श्री चैतन्य महाप्रभु ऐसा प्रसाद खाने के लिए वहाँ बारम्बार आये।

पाक करि' राघव यबे भोग लागाय ।

महाप्रभुर लागि' भोग पृथक्वाड़य ॥112॥

पाक करि'-पकाने के बाद; राघव-राघव पण्डित; यबे-जब; भोग लागाय-भोगों को श्री विग्रह को अर्पित करते हैं; महाप्रभुर लागि'–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए; भोग-भोग; पृथक्-अलग से; बाड़य-लगाते हैं।

अनुवाद

जब राघव पण्डित भोजन पकाने के बाद उसे अर्चाविग्रह को अर्पित करते, तब वे श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए अलग भोग लगाते।

प्रति-दिन महाप्रभु करेन भोजन ।

मध्ये मध्ये प्रभु तारे देन दरशन ॥113॥

प्रति-दिन-रोज; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन भोजन-खाते हैं; मध्ये मध्ये-कभी-कभी; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे–उन्हें; देन दरशन-अपने दर्शन देते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिदिन राघव पण्डित के घर भोजन करते। कभी-कभी वे राघव पण्डित को अपना दर्शन पाने का अवसर प्रदान करते।

दुइ भाइरे राघव आनि' परिवेशे ।

यत्न करि' खाओयाय, ना रहे अवशेषे ॥ 114॥

दुइ भाइरे—दोनों भाइयों को; राघव-राघव पण्डित; आनि'–बुलाकर; परिवेशे- परोसते; यत्न करि'-अत्यन्त सावधानीपूर्वक; खाओयाय-उन्हें खिलाते; ना रहे अवशेषे- कुछ भी अवशेष न बचता।

अनुवाद

राघव पण्डित प्रसाद लाकर दोनों भाइयों को देते और बड़ी ही सावधानी से उन्हें खिलाते। वे सारा प्रसाद खा जाते, जिससे कोई शेष नहीं बचता था।

कत उपहार आने, हेन नाहि जानि ।

राघवेर घरे रान्धे राधा-ठाकुराणी ॥115॥

कत उपहार–अनेक उपहार; आने-लाते; हेन-इतने; नाहि जानि-मैं नहीं समझ सकता; राघवेर घरे–राघव पण्डित के घर पर; रान्धे-पकाती; राधा-ठाकुराणी-परम माता, श्रीमती राधारानी।

अनुवाद

वे इतने सारे प्रसाद ले आते कि लोग उन्हें ठीक से जान नहीं पाते थे। निस्सन्देह, यह सच था कि परम माता राधारानी स्वयं आकर राघव पण्डित के घर भोजन पकातीं।

दुर्वासार ठाञि तेंहो पाञाछेन वर ।

अमृत हइते पाक ताँर अधिक मधुर ॥116॥

दुर्वासार ठाञि-दुर्वासा मुनि से; तेंहो–उन्हें; पाञाछेन वर-वरदान प्राप्त हुआ था; अमृत हइते-अमृत से भी; पाक-भोजन; ताँर-उनका; अधिक मधुर-अधिक मधुर।

अनुवाद

श्रीमती राधारानी को दुर्वासा मुनि से यह वर मिला था कि वे जो कुछ भी पकायेंगी, वह अमृत से भी अधिक मधुर होगा। उनकी पाक-विद्या का यह विशेष गुण है।

सुगन्धि सुन्दर प्रसाद–माधुर सार ।

दुइ भाइ ताहा खाञा सन्तोष अपार ॥117॥

सु-गन्धि–सुगन्धित; सुन्दर-सुन्दर; प्रसाद-प्रसाद; माधुर्येर सार-समस्त मधुरता का सार; दुइ भाइ–दोनों भाई; ताहा-वह; खाञा-खाते; सन्तोष अपार-अत्यन्त सन्तुष्ट होकर।

अनुवाद

यह भोजन सुगन्धित एवं देखने में सुहावना होता और समस्त मधुरता का सार होता। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु दोनों भाई परम सन्तोष के साथ भोजन करते।

भोजने वसिते रघुनाथे कहे सर्व-जन।

पण्डित कहे,—'इँह पाछे करिबे भोजन' ॥118॥

भोजने-खाने के लिए; वसिते-बैठना; रघुनाथे-रघुनाथ दास से; कहे-निवेदन किये; सर्व-जन-सभी लोग; पण्डित कहे-राघव पण्डित ने कहा; इँह-यह; पाछे-बाद में; करिबे भोजन-प्रसाद खाएँगे।

अनुवाद

वहाँ पर उपस्थित सारे भक्तों ने रघुनाथ दास से प्रार्थना की कि वे बैठकर प्रसाद ग्रहण करें, किन्तु राघव पण्डित ने उन्हें बताया कि, "वे बाद में प्रसाद ग्रहण करेंगे।"

भक्त-गण आकण्ठ भरिया करिल भोजन।

'हरि' ध्वनि करि' उठि' कैला आचमन ॥ 119॥

भक्त-गण-सभी भक्तों ने; आकण्ठ–गले तक; भरिया-भरकर; करिल भोजन- प्रसाद ग्रहण किया; हरि ध्वनि-हरि के पवित्र नाम की ध्वनि; करि-करते हुए; उठि'-उठकर; कैला आचमन-अपने मुख और हाथ धोने लगे।

अनुवाद

सारे भक्तों ने इतना प्रसाद खाया कि उनके गले तक भोजन भर गया। तत्पश्चात् हरि के पवित्र नाम का उच्चारण करते हुए सभी उठ खड़े हुए और सबने अपने-अपने हाथ-मुँह धोये।

भोजन करि' दुइ भाइ कैला आचमन।

राघव आनि' पराइला माल्य-चन्दन ॥120॥

भोजन करि'–खाने के बाद; दुई भाइ-दोनों भाइयों ने; कैला आचमन-अपने हाथ-मुँह धोये; राघव-राघव पण्डित ने; आनि''–लाकर; पराइला–उन्हें पहनाया; माल्य-चन्दन-फूलों के हार तथा चन्दन लेप।

अनुवाद

भोजन के बाद दोनों भाइयों ने हाथ-मुँह धोये। तब राघव पण्डित फूल की मालाएँ तथा चन्दन लेप ले आये और उन्हें सुसज्जित किया।

बिड़ा खाओयाइला, कैला चरण वन्दन।

भक्त-गणे दिला बिड़ा, माल्य-चन्दन॥ 121॥

बिड़ा खाओयाइला-उन्होंने पान खिलाया; कैला चरण वन्दन–चरणकमलों में प्रणाम किया; भक्त-गणे-भक्तों को; दिला–दिये; बिड़ा-पान; माल्य-चन्दन-हार तथा चन्दन लेप।

अनुवाद

राघव पण्डित ने उन्हें पान का बीड़ा खिलाया और उनके चरणकमलों की वन्दना की। उन्होंने भक्तों को भी पान, फूल-मालाएँ तथा चन्दन लेप दिया।

राघवेर कृपा रघुनाथेर उपरे।

दुइ भाइएर अवशिष्ट पात्र दिला ताँरे॥ 122॥

राघवेर-राघव पण्डित की; कृपा-दया; रघुनाथेर उपरे–रघुनाथ दास के प्रति; दुई भाइएर-दोनों भाइयों के; अवशिष्ट-भोजन के शेष; पात्र-बर्तन; दिला ताँरे–उन्हें दे दिये।

अनुवाद

रघुनाथ दास के ऊपर विशेष कृपालु होने के कारण राघव पण्डित ने उन्हें दोनों भाइयों द्वारा छोड़े गये उच्छिष्ट की थालियाँ दीं।

कहिला,-"चैतन्य गोसाञि करियाछेन भोजन।

ताँर शेष पाइले, तोमार खण्डिल बन्धन" ॥123॥

कहिला-उन्होंने कहा; चैतन्य गोसाञि-भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने; करियाछेन भोजन-खाया है; ताँर शेष-उनका शेष; पाइले–यदि तुम ग्रहण करते हो; तोमार- तुम्हारा; खण्डिल-कट जायेगा; बन्धन–बन्धन।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह भोजन किया है। यदि तुम उनके शेष को ग्रहण करोगे, तो तुम अपने परिवार के बन्धन से छूट जाओगे।"

भक्त-चित्ते भक्त-गृहे सदा अवस्थान ।

कभु गुप्त, कभु व्यक्त, स्वतन्त्र भगवान् ॥ 124॥

भक्त-चित्ते–एक भक्त के हृदय में; भक्त-गृहे-भक्त के घर पर; सदा अवस्थान- सदैव निवास करते हैं; कभु गुप्त-कभी गुप्त रूप से; कभु व्यक्त-कभी प्रकट होकर; स्वतन्त्र–पूर्णतया स्वतन्त्र; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सदैव या तो भक्त के हृदय में या उसके घर में निवास करते हैं। यह बात कभी छिपी रहती है और कभी प्रकट होती है, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हैं।

सर्वत्र व्यापक प्रभुर सदा सर्वत्र वास ।

इहाते संशय यार, सेइ याय नाश ॥125॥

सर्वत्र-सब जगह; व्यापक-व्याप्त; प्रभुर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का; सदा-सदैव; सर्वत्र सर्वत्र, सब जगह; वास–निवास; इहाते-इस विषय में; संशय-सन्देह; यार-जिसका; सेइ-वह; याय नाश-नष्ट हो जाता है।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सर्वव्यापी हैं, अतएव वे सर्वत्र निवास करते हैं। जो इसमें सन्देह करता है, उसका विनाश हो जाता है।

प्राते नित्यानन्द प्रभु गङ्गा-स्नान करिया ।

सेइ वृक्ष-मूले वसिला निज-गण लञा ॥126॥

प्राते-प्रातः काल में; नित्यानन्द प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभुः गङ्गा स्नान-गंगा में स्नान; करिया-करके; सेइ वृक्ष-मूले-उसी वृक्ष के नीचे; वसिला-बैठ गये; निज-गण लञा-अपने संगियों के साथ।

अनुवाद

प्रातः काल गंगा स्नान करने के बाद नित्यानन्द प्रभु अपने संगियों के साथ उसी वृक्ष के नीचे बैठ गये, जहाँ वे पहले बैठ चुके थे।

रघुनाथ आसि' कैला चरण वन्दन ।

राघव-पण्डित-द्वारा कैला निवेदन ॥127॥

रघुनाथ–रघुनाथ दास ने; आसि'-आकर; कैला चरण वन्दन-उनके चरणकमलों की वन्दना की; राघव-पण्डित-द्वारा-राघव पण्डित के माध्यम से; कैला निवेदन–अपनी इच्छा व्यक्त की।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने वहाँ जाकर नित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों की पूजा की। उन्होंने राघव पण्डित के द्वारा अपनी इच्छा निवेदित की।

"अधम, पामर मुइ हीन जीवाधम! ।

मोर इच्छा हय–पाङ चैतन्य-चरण" ॥128॥

अधम–सबसे पतित; पामर-सर्वाधिक पापी; मुइ-मैं; हीन-हीन; जीव-अधम-सभी जीवों से नीच; मोर–मेरी; इच्छा-इच्छा; हय-है; पाङ–मैं प्राप्त कर सकें; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण॥

अनुवाद

"मैं मनुष्यों में अधम, अत्यन्त पापी, पतित तथा तिरस्कृत हूँ। तो भी मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण पाने का इच्छुक हूँ।"

वामन हञा येन चान्द धरिबारे चाय ।

अनेक यत्न कैनु, ताते कभु सिद्ध नय ॥129॥

वामन हञा-एक बौना होते हुए; येन-जैसे; चान्द-चन्द्रमा; धरिबारे-पकड़ना; चाय-चाहे; अनेक यत्न–अनेक प्रयास; कैनु-मैंने किये; ताते-उनमें; कभु सिद्ध नय-मैं सफल नहीं हुआ।

अनुवाद

चाँद पकड़ने के इच्छुक किसी बौने की तरह मैंने अनेक बार भरसक प्रयत्न किये, किन्तु कभी सफल नहीं हुआ।

यत-बार पलाइ आमि गृहादि छाड़िया ।

पिता, माता—दुइ मोरे राखये बान्धिया ॥130॥

यत-बार–जितनी बार; पलाइ–भागा; आमि—मैं; गृह-आदि छाड़िया-अपने घर से सम्बन्ध को त्यागकर; पिता माता-पिता और माता; दुइ-दोनों ने; मोरे-मुझे; राखये बान्धिया–बाँध दिया।

अनुवाद

जितनी बार मैंने भाग जाना और अपने घरेलू सम्बन्ध तोड़ देना चाहा, उतनी बार मेरे पिता तथा माता ने दुर्भाग्यवश मुझे बाँधकर रखा।

तोमार कृपा विना केह 'चैतन्य' ना पाय ।

तुमि कृपा कैले ताँरे अधमेह पाय ॥131॥

तोमार कृपा-आपकी कृपा; विना-बिना; केह-कोई भी; चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; ना पाय-नहीं पा सकते; तुमि कृपा कैले–यदि आप कृपा करें; ताँरे- उस पर; अधमेह-एक पतित जीव भी; पाय-प्राप्त कर सकता है।

अनुवाद

“आपकी कृपा के बिना कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण प्राप्त नहीं कर सकता, किन्तु यदि आप कृपालु हों, तो अधम से अधम व्यक्ति भी उनके चरणकमलों की शरण पा सकता है।”

अयोग्य मुइ निवेदन करिते करि भय ।

मोरे ‘चैतन्य’ देह’ गोसाञि हञा सदय ॥132॥

अयोग्य-अयोग्य; मुइ-मैं; निवेदन करिते-अपनी इच्छा प्रकट करते; करि भय-मैं भयभीत हूँ; मोरे-मुझे; चैतन्य देह’–कृपया श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण दे दीजिए; गोसाञि-मेरे प्रभु; हञा स-दय-दया करके।

अनुवाद

“यद्यपि मैं अयोग्य हूँ और यह याचना करते हुए अत्यधिक भयभीत हूँ, तो भी मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में शरण प्रदान करके मेरे प्रति विशेष कृपालु हों।”

“मोर माथे पद धरि’ करह प्रसाद ।

निर्विघ्ने चैतन्य पाङ—कर आशीर्वाद” ॥133॥

मोर माथे-मेरे सिर पर; पद धरि’-अपने चरण रखकर; करह प्रसाद-मुझे कृपा दीजिये; निर्विघ्ने–बिना कठिनाई के; चैतन्य पाङ–मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण प्राप्त कर सकें; कर आशीर्वाद-यह आशीर्वाद दीजिए।

अनुवाद

“आप मेरे सिर पर अपने चरण रखकर मुझे यह आशीर्वाद दें कि मैं बिना कठिनाई के श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण प्राप्त कर सकें। मैं आपसे इसी आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करता हूँ।”

शुनि’ हासि’ कहे प्रभु सब भक्त-गणे ।

“इहार विषय-सुख–इन्द्र-सुख-समे” ॥134॥

शुनि'–सुनकर; हासि'–मुस्कुराकर; कहे-कहते हैं; प्रभु-नित्यानन्द प्रभु; सब भक्त-गणे-सभी भक्तों को; इहार-रघुनाथ दास के; विषय सुख-भौतिक सुख; इन्द्र- सुख-स्वर्ग के राजा इन्द्र के भौतिक सुखों के; सम-समान।

अनुवाद

रघुनाथ दास की यह याचना सुनकर नित्यानन्द प्रभु हँसे और सारे भक्तों से बोले, "रघुनाथ दास के भौतिक सुख का स्तर स्वर्ग के राजा इन्द्र के सुख के तुल्य है।

चैतन्य-कृपाते सेह नाहि भाय मने ।

सबे आशीर्वाद कर—पाउक चैतन्य-चरणे ॥135॥

चैतन्य-कृपाते-श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा द्वारा; सेह-भौतिक सुखों के ऐसे योग को; नाहि भाय-वह मूल्यवान नहीं समझता; मने-मन में; सबे-आप सभी; आशीर्वाद कर-आशीर्वाद दीजिए; पाउक-इसे मिले; चैतन्य-चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु की रघुनाथ दास पर कृपा होने से, इतना भौतिक सुख प्राप्त होने पर भी उसे यह अच्छा नहीं लगता। इसलिए तुम सारे लोग उस पर कृपालु होकर उसे आशीर्वाद दो कि वह शीघ्र ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त करे।"

"कृष्ण-पाद-पद्म-गन्ध येइ जन पाय ।

ब्रह्मलोक-आदि-सुख तारे नाहि भाय" ॥136॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; पाद-पद्म-चरणकमलों की; गन्ध–सुगन्ध; येइ जन-जो कोई भी; पाय-प्राप्त करता है; ब्रह्म-लोक-ब्रह्मलोक; आदि-आदि के; सुख-सुख; तारे-उसे; नाहि भाय-अच्छे नहीं लगते।

अनुवाद

“जो व्यक्ति कृष्ण के चरणकमलों की सुगन्ध का अनुभव करता है, वह सर्वोच्च लोक ब्रह्मलोक में प्राप्त सुख को भी कोई महत्त्व प्रदान नहीं करता। तो फिर स्वर्गिक सुख की क्या बात है?

यो दुस्त्यजान्दार-सुतान्सुहृद्राज्यं हृदि-स्पृशः ।

जहौ युवैव मल-वदुत्तम-श्लोक-लालसः ॥137॥

यः-जो (महाराज भरत); दुस्त्यजान्-त्यागने में कठिन; दार-सुतान्-पत्नी और सन्तान; सुहृत्-मित्र; राज्यम्-राज्य; हृदि-स्पृशः-हृदय की गहराइयों को प्रिय; जहौ- त्यागकर; युवा–युवा; एव–उस अवस्था में; मल-वत्-विष्ठा के समान; उत्तम-श्लोक- लालसः–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य गुणों, लीलाओं और संग की लालसा के कारण।

अनुवाद

“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की कृपा प्राप्त करने के इच्छुक लोगों द्वारा उनकी उत्तम स्तुतियाँ की जाती हैं। इसलिये वे उत्तमश्लोक कहलाते हैं। भगवान् कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए अत्यन्त उत्सुक होने के कारण राजा भरत ने युवावस्था में ही अपनी अत्यन्त आकर्षक पत्नी, स्नेहिल बच्चों, प्रिय मित्रों तथा ऐश्वर्ययुक्त साम्राज्य का उसी तरह परित्याग कर दिया, जिस तरह मल को त्याग दिया जाता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (5.14.43) से है।

तबे रघुनाथे प्रभु निकटे बोलाइला ।

ताँर माथे पद धरि कहिते लागिला ॥138॥

तबे-फिर; रघुनाथे-रघुनाथ दास को; प्रभु-नित्यानन्द प्रभु ने; निकटे बोलाइला-पास बुलाकर; ताँर माथे-उनके सिर पर; पद धरि’-अपने चरण रखकर; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु ने रघुनाथ दास को अपने पास बुलाया, उनके सिर पर अपने चरण रखे और उनसे बोले।

"तुमि ग्रे कराइला एइ पुलिन-भोजन।

तोमाय कृपा करि' गौर कैला आगमन" ॥139॥

तुमि-तुमने; ये-जो; कराइला-करवाया; एइ–यह; पुलिन-भोजन-गंगा के किनारे भोज; तोमाय-तुम पर; कृपा करि'–कृपा करके; गौर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभुः कैला आगमन-आ गये।

अनुवाद

"हे रघुनाथ दास, चूँकि तुमने गंगा नदी के तट पर इस भोजन की व्यवस्था की है, इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु तुम पर मात्र अपनी कृपा दिखाने के लिए यहाँ आये।"

कृपा करि' कैला चिड़ा-दुग्ध भोजन।

नृत्य देखि' रात्र्ये कैला प्रसाद भक्षण ॥140॥

कृपा करि'-अपनी अहैतुकी कृपा द्वारा; कैला-किया; चिड़ा-दुग्ध भोजन-चिड़ा और दूध का भोजन; नृत्य देखि'–नृत्य देखकर; रात्र्ये-रात को; कैला प्रसाद भक्षण- प्रसाद ग्रहण किया।

अनुवाद

"अपनी अहैतुकी कृपा से उन्होंने चिउड़ा तथा दूध खाया। तत्पश्चात् रात में भक्तों का नृत्य देखने के बाद उन्होंने भोजन किया।"

तोमा उद्धारिते गौर आइला आपने।

छुटिल तोमार यत विघ्नादि-बन्धने ॥ 141॥

तोमा-तुम्हारा; उद्धारिते-उद्धार करने के लिए; गौर-श्री चैतन्य महाप्रभु, गौरहरि, आइला आपने–स्वयं आ गये; छुटिल-छूट गये; तोमार तुम्हारे; यत–सभी प्रकार के; विघ्न-आदि-बन्धने-बन्धन के विघ्न।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु गौरहरि तुम्हारा उद्धार करने के लिए स्वयं यहाँ आये। अब समझ लो कि तुम्हारे बन्धन के सारे अवरोध दूर हो गये।"

स्वरूपेर स्थाने तोमा करिबे समर्पणे ।

'अन्तरङ्ग' भृत्य बलि' राखिबे चरणे ॥142॥

स्वरूपेर स्थाने–स्वरूप दामोदर को; तोमा-तुम्हें; करिबे समर्पणे-वे सौंप देंगे; अन्तरङ्ग–अत्यन्त अन्तरंग; भृत्य-सेवक; बलि'–मानकर; राखिबे चरणे-अपने चरणकमलों में रखेंगे।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु तुम्हें स्वीकार कर लेंगे और अपने सचिव स्वरूप दामोदर के अधीन तुम्हें रख देंगे। इस तरह तुम उनके सर्वश्रेष्ठ विश्वस्त अन्तरंग सेवकों में से एक बन जाओगे और श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त करोगे।"

"निश्चिन्त हञा याह आपन-भवन ।

अचिरे निर्विघ्ने पाबे चैतन्य-चरण" ॥143॥

निश्चिन्त-चिन्तामुक्त; हञा–होकर; याह-जाओ; आपन-भवन-अपने घर; अचिरे–अति शीघ्र; निर्विघ्ने–बिना विघ्न के; पाबे-तुम प्राप्त कर लोगे; चैतन्य-चरण-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

"इस तरह आश्वस्त होकर तुम अपने घर लौट जाओ। तुम शीघ्र ही, बिना किसी अवरोध के श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण प्राप्त करोगे।"

सब भक्त-द्वारे तौरे आशीर्वाद कराइला ।

ताँ-सबार चरण रघुनाथ वन्दिला ॥ 144॥

सब-सभी; भक्त-द्वारे-भक्तों द्वारा; तौरे आशीर्वाद कराइला-उन्हें आशीर्वाद दिलवाया; ताँ-सबार-उन सभी के; चरण-चरणकमलों में; रघुनाथ–रघुनाथ दास ने; वन्दिला-वन्दना की।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने समस्त भक्तों से रघुनाथ दास को आशीर्वाद दिलवाया और रघुनाथ दास ने उन सबके चरणकमलों की सादर वन्दना की।

प्रभु-आज्ञा लञा वैष्णवेर आज्ञा लइला ।

राघव-सहिते निभृते युक्ति करिला ॥145॥

प्रभु-आज्ञा-नित्यानन्द प्रभु की आज्ञा; लञा–लेकर; वैष्णवेर आज्ञा–सभी वैष्णवों की आज्ञा; लइला-उन्होंने ली; राघव-सहिते-राघव पण्डित के साथ; निभृते-एकान्त स्थान में; मुक्ति करिला-उन्होंने विचार-विमर्श किया।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु से तथा उसके बाद अन्य सारे वैष्णवों से आज्ञा लेकर रघुनाथ दास ने राघव पण्डित से गुप्त मन्त्रणा की।

युक्ति करि' शत मुद्रा, सोणा तोला-साते ।

निभृते दिला प्रभुर भाण्डारीर हाते ॥146॥

युक्ति करि'-विचार-विमर्श करके; शत मुद्रा-एक सौ मुद्राएँ; सोणा-सोने की; तोला-साते-सात तौले के (लगभग ढाई औंस); निभृते-गुप्त रूप से; दिला–दे दी; प्रभुर-नित्यानन्द प्रभु के; भाण्डारीर-खजांची के; हाते-हाथ में।

अनुवाद

राघव पण्डित से परामर्श लेकर उन्होंने चुपके से नित्यानन्द प्रभु के खजांची के हाथ में एक सौ स्वर्णमुद्राएँ तथा लगभग सात तोला सोना दे दिया।

तारे निषेधिला,-"प्रभुरे एबे ना कहिबा ।

निज-घरे याबेन यबे तबे निवेदिबा" ॥147॥

तारे-उसे; निषेधिला-मना किया; प्रभुरे–नित्यानन्द प्रभु को; एबे-अभी; ना कहिबा-मत बताना; निज-घरे-अपने घर; याबेन-लौट जायेंगे; यबे-जब; तबे-तब; निवेदिबा-कृपया उन्हें बताइएगा।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने खजांची को मना कर दिया कि इसके विषय में अभी नित्यानन्द प्रभु से मत कहना, किन्तु जब वे अपने घर चले जाएँ, तब इस भेंट के बारे में उन्हें बता देना।

तबे राघव-पण्डित तौरे घरे लञा गेला ।

ठाकुर दर्शन कराञा माला-चन्दन दिला ॥148॥

तबे-फिर; राघव-पण्डित-राघव पण्डित; तौरे–उन्हें; घरे लञा गेला-अपने घर ले गये; ठाकुर दर्शन कराञा–उन्हें श्री विग्रह के दर्शन करवाकर; माला-चन्दन-माला और चन्दन लेप; दिला–दिया।

अनुवाद

तत्पश्चात् राघव पण्डित रघुनाथ दास को अपने घर ले गये। उन्हें अर्चाविग्रह का दर्शन कराने के बाद उन्होंने रघुनाथ दास को एक माला तथा कुछ चन्दन लेप दिया।

अनेक 'प्रसाद' दिला पथे खाइबारे ।

तबे पुनः रघुनाथ कहे पण्डितेरे ॥149॥

अनेक प्रसाद-बहुत प्रसाद; दिला–दिया; पथे खाइबारे-मार्ग में खाने के लिए; तबे-तब; पुनः–फिर; रघुनाथ कहे-रघुनाथ दास ने कहा; पण्डितेरे-राघव पण्डित से।

अनुवाद

उन्होंने रघुनाथ दास को रास्ते में खाने के लिए बहुत सारा प्रसाद दिया। तब रघुनाथ दास ने पुनः राघव पण्डित से कहा।

"प्रभुर सङ्गे यत महान्त, भृत्य, आश्रित जन ।

पूजिते चाहिये आमि सबार चरण" ॥150॥

प्रभुर सङ्गे–नित्यानन्द प्रभु के साथ; व्रत-सभी; महान्त-महान् भक्त; भृत्य-सेवक;आश्रित जन–आश्रित लोग; पूजिते-पूजना; चाहिए-चाहता हूँ; आमि-मैं; सबार चरण-उन सभी के चरणकमलों को।

अनुवाद

"मैं नित्यानन्द प्रभु के समस्त महान् भक्तों, सेवकों तथा आश्रित जनों की पूजा के रूप में उनको कुछ धन देना चाहता हूँ।"

बिश, पञ्च-दश, बार, दश, पञ्च हय ।

मुद्रा देह' विचारि' यार यत योग्य हय ॥151॥

बिश-बीस; पञ्च-दश-पंद्रह; बार-बारह; दश–दस; पञ्च–पाँच; हय-हैं; मुद्रा-मुद्राएँ; देह'-दीजिए; विचार-विचार कर; ग्रार–जिसके लिए; यत–जितनी; योग्य हय-योग्य हो।

अनुवाद

"आप जिसे जिस योग्य समझो, उनमें से हर एक को बीस, पन्द्रह, बारह, दस या पाँच मुद्राएँ दे दो।"

सब लेखा करिया राघव-पाश दिला ।

याँर नामे यत राघव चिठि लेखाइला ॥ 152॥

सब–सब; लेखा करिया-लिखकर; राघव-पाश दिला-राघव पण्डित सौंप दिया; यार नामे-किसके नाम पर; यत-कितना; राघव-राघव पण्डित ने; चिठि-सूची; लेखाइला-लिखी।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने दी जाने वाली राशि का विवरण प्रस्तुत किया और उसे राघव पण्डित को दे दिया, जिसने एक सूची बनाई कि प्रत्येक भक्त को कितनी कितनी राशि दी जानी है।

एक-शत मुद्रा आर सोणा तोला-द्वय ।

पण्डितेर आगे दिल करिया विनय ॥153॥

एक-शत मुद्रा-एक सौ मुद्राएँ; आर-और; सोणा-सोना; तोला-द्वय-दो तोला; पण्डितेर आगे-राघव पण्डित के समक्ष; दिल-रख दिया; करिया विनय-अत्यन्त विनम्रतापूर्वक।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने अत्यन्त विनयपूर्वक राघव पण्डित के समक्ष अन्य सारे भक्तों को देने के लिए एक सौ स्वर्ण मुद्राएँ तथा लगभग दो तोला सोना रख दिया।

ताँर पद-धूलि लञा स्वगृहे आइला ।

नित्यानन्द-कृपा पाञा कृतार्थ मानिला ॥ 154॥

ताँर-उनके; पद-धूलि-चरणों की धूल; लञा–लेकर; स्व-गृहे आइला-अपने घर लौट आये; नित्यानन्द-कृपा-भगवान् नित्यानन्द प्रभु की कृपा; पाञा–प्राप्त कर; कृतार्थ मानिला–उन्होंने अत्यन्त कृतार्थ अनुभव किया।

अनुवाद

राघव पण्डित के चरणों की धूल लेने के बाद रघुनाथ दास अपने घर लौट आये और नित्यानन्द प्रभु के प्रति अतीव कृतज्ञता प्रकट की कि उन्होंने अपना कृपापूर्ण आशीर्वाद प्रदान किया है।

सेइ हैते अभ्यन्तरे ना करेन गमन ।

बाहिरे दुर्गा-मण्डपे याञा करेन शयन ॥155॥

सेइ हैते–उन दिन से; अभ्यन्तरे-आन्तरिक कक्षों में; ना करेन गमन–नहीं गये; बाहिरे-बाहर; दुर्गा-मण्डपे-जिस स्थान पर दुर्गा देवी की पूजा की जाती थी; याञा-जाकर; करेन शयन-वह सोते।

अनुवाद

उसी दिन से वे घर के भीतरी भाग में नहीं गये। उल्टे वे दुर्गामण्डप में सोने लगे।

ताँहा जागि' रहे सब रक्षक-गण ।

पलाइते करेन नाना उपाय चिन्तन ॥156॥

ताँहा-वहाँ; जागि'-जागते; रहे-रहते; सब-सभी; रक्षक-गण-पहरेदार; पलाइते-भागने के लिए; करेन-करते; नाना-अनेक; उपाय-उपाय; चिन्तन-विचार।

अनुवाद

किन्तु रखवाले उनकी पूरी चौकसी रखते थे। रघुनाथ दास अनेक उपाय सोचते जिससे वे उनकी निगरानी से भाग निकलें।

हेन-काले गौड़-देशेर सब भक्त-गण ।

प्रभुरे देखिते नीलाचले करिला गमन ॥157॥

हेन-काले-उस समय; गौड़-देशेर-बंगाल के; सब-सभी; भक्त-गण-भक्त; प्रभुरे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; देखिते-दर्शन के लिए; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी; करिला गमन-गये।

अनुवाद

उसी समय बंगाल के सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी जा रहे थे।

ताँ-सबार सङ्गे रघुनाथ याइते ना पारे ।

प्रसिद्ध प्रकट सङ्ग, तबहिं धरा पड़े ॥ 158॥

ताँ-सबार-उन सबके; सङ्गे–साथ; रघुनाथ-रघुनाथ दास; याइते ना पारे-नहीं जा सके; प्रसिद्ध–विख्यात; प्रकट-ज्ञात; सङ्ग–संघ; तबहिं तुरन्त; धरा पड़े-वे पकड़े जाते।

अनुवाद

रघुनाथ दास उनके साथ नहीं जा सकते थे, क्योंकि वे इतने प्रसिद्ध थे कि यदि वह उनके साथ जाते तो पकड़ लिए जाते।

एइ-मत चिन्तिते दैवे एक-दिने ।

बाहिरे देवी-मण्डपे करियाछेन शयने ॥ 159॥

दण्ड-चारि रात्रि यबे आछे अवशेष ।

यदुनन्दन-आचार्य तबे करिला प्रवेश ॥ 160॥

एइ-मत-इस प्रकार; चिन्तिते-विचार करते हुए; दैवे-भाग्य से; एक दिने-एक दिन; बाहिरे घर के बाहर; देवी-मण्डपे-दुर्गा मण्डप पर; करियाछेन शयने–सो रहे थे; दण्ड-चारि–चार दण्ड (96 मिनट); रात्रि-रात; यबे-जब; आछे अवशेष-रह गये; यदुनन्दन-आचार्य-यदुनन्दन आचार्य नामक पुजारी; तब-तब; करिला प्रवेश-प्रवेश किया।

अनुवाद

इस प्रकार रघुनाथ दास ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया कि किस तरह भाग निकला जाए और एक रात जब वह दुर्गामण्डप में सो रहे थे, तो पुरोहित यदुनन्दन आचार्य घर के भीतर गये। तब केवल चार दण्ड रात्रि शेष थी।

वासुदेव-दत्तेर तेंह हय 'अनुगृहीत'।

रघुनाथेर 'गुरु' तेंहो हय 'पुरोहित' ॥161॥

वासुदेव-दत्तेर-वासुदेव दत्त की; तेंह-उन्हें; हय अनुगृहीत-कृपा प्राप्त थी; रघुनाथेर-रघुनाथ दास के; गुरु-आध्यात्मिक गुरु; तेंहो-वे; हय-थे; पुरोहित-पुजारी।

अनुवाद

यदुनन्दन आचार्य रघुनाथ दास के पुरोहित और गुरु थे। यद्यपि वे ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न थे, किन्तु उन्होंने वासुदेव दत्त की कृपा स्वीकार की थी।

अद्वैत-आचार्येर तेंह 'शिष्य अन्तरङ्ग'।

आचार्य-आज्ञाते माने–चैतन्य 'प्राण-धन' ॥162॥

अद्वैत-आचार्येर-अद्वैत आचार्य के; तेंह-यदुनन्दन आचार्य; शिष्य-शिष्य; अन्तरङ्ग–अति अन्तरंग; आचार्य-आज्ञाते-अद्वैत आचार्य के आदेश पर; माने—उन्होंने मान लिया; चैतन्य प्राण-धन-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने प्राण और आत्मा के रूप में।

अनुवाद

यदुनन्दन आचार्य ने प्रामाणिक रूप से अद्वैत आचार्य से दीक्षा ली थी। इस तरह वे श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने जीवन और प्राण मानते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि यद्यपि श्री अद्वैत आचार्य के आदेश का पालन न करने वाले नास्तिक भी अपने आपको अद्वैत आचार्य का अनुयायी कहते हैं, किन्तु वे श्री चैतन्य महाप्रभु को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के रूप में स्वीकार नहीं करते। यदुनन्दन आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के सर्वाधिक अन्तरंग अनुयायियों में से एक थे और अद्वैत आचार्य के दीक्षित शिष्य थे। वे वैष्णवों को जन्म के अनुसार वर्गीकरण करने की भावुक प्रथा से ग्रस्त नहीं थे। इसलिए यदुनन्दन आचार्य ने भी वासुदेव दत्त को अपना गुरु मान लिया था, यद्यपि वे ब्राह्मण परिवार में नहीं जन्मे थे।

अङ्गने आसिया तेंहो यबे दाण्डाइला ।

रघुनाथ आसि' तबे दण्डवत् कैला ॥163॥

अङ्गने-आँगन में; आसिया–प्रवेश करके; तेंहो-यदुनन्दन आचार्य; यबे-जब; दाण्डाइला–खड़े हो गये; रघुनाथ-रघुनाथ दास ने; आसि'–आकर; तबे-उस समय; दण्डवत् कैला-दण्डवत् प्रणाम किया।

अनुवाद

जब यदुनन्दन आचार्य रघुनाथदास के घर में जाकर आँगन में खड़े हुए, तो रघुनाथ दास वहाँ गये और उन्होंने उनके चरणों में गिरकर नमस्कार किया।

ताँर एक शिष्य ताँर ठाकुरेर सेवा करे ।

सेवा छाड़ियाछे, तारे साधिबार तरे ॥164॥

ताँर–उनका; एक-एक; शिष्य-शिष्य; ताँर-उनके; ठाकुरेर-विग्रह की; सेवा- सेवा; करे-करता; सेवा छाड़ियाछे-उसने वह सेवा छोड़ दी; तारे-उसे; साधिबार तरे-प्रेरित करने के लिए।

अनुवाद

यदुनन्दन आचार्य का एक शिष्य अर्चाविग्रह की पूजा करता आ रहा था, किन्तु उसने वह सेवा छोड़ दी थी। यदुनन्दन आचार्य चाहते थे कि रघुनाथ दास उसे वही सेवा पुनः करने के लिए प्रेरित करें।

रघुनाथे कहे,–"तारे करह साधन ।

सेवा येन करे, आर नाहिक ब्राह्मण" ॥165 ॥

रघुनाथे कहे-उन्होंने रघुनाथ दास से कहा; तारे-उसे; करह साधन–सेवा जारी रखने के लिए प्रेरित करना; सेवा–सेवा; येन-वह; करे-वह करे; आर-अन्य; नाहिक- नहीं है; ब्राह्मण-ब्राह्मण।

अनुवाद

यदुनन्दन आचार्य ने रघुनाथ दास से अनुरोध किया, "तुम उस ब्राह्मण को फिर से सेवा करने के लिए प्रेरित करके लाओ, क्योंकि सेवा करने के लिए अन्य कोई ब्राह्मण नहीं है।"

एत कहि' रघुनाथे लञा चलिला ।

रक्षक सब शेष-रात्रे निद्राय पड़िला ॥166॥

एत कहि'-यह कहकर; रघुनाथे लञा-रघुनाथ दास को लेकर; चलिला–वे चले गये; रक्षक सब-सारे पहरेदार; शेष-रात्रे-रात के अन्त में; निद्राय पड़िला-सो गये।

अनुवाद

यह कहकर यदुनन्दन आचार्य ने रघुनाथ दास को अपने साथ ले लिया और दोनों बाहर चले गये। उस समय तक सारे पहरेदार गहरी नींद में सोये हुए थे, क्योंकि रात का अन्तिम प्रहर था।

आचार्येर घर इहार पूर्व-दिशाते ।

कहिते शुनिते दुँहे चले सेइ पथे ॥167॥

आचार्येर घर-यदुनन्दन आचार्य का घर; इहार-इससे; पूर्व-दिशाते-पूर्व दिशा में; कहिते-कहते हुए; शुनिते-सुनते हुए; है-वे दोनों; चले गये; सेइ पथे-उस मार्ग पर।

अनुवाद

रघुनाथ दास के घर से पूर्व की ओर यदुनन्दन आचार्य का घर था। वे दोनों घर की ओर जाते हुए एक दूसरे से बातें करते गये।

अर्ध-पथे रघुनाथ कहे गुरुर चरणे ।

‘आमि सेइ विप्रे साधि’ पाठाइमु तोमा स्थाने ॥168॥

अर्ध-पथे-आधे रास्ते में; रघुनाथ कहे-रघुनाथ दास ने कहा; गुरुर चरणे-अपने गुरुदेव के चरणकमलों में; आमि-मैं; सेइ-उस; विप्रे–ब्राह्मण को; साधि’–मनाकर; पाठाइमु-भेज दूँगा; तोमा स्थाने-आपके घर।

अनुवाद

आधी दूर जाकर रघुनाथ दास ने अपने गुरु के चरणों में निवेदन किया, “मैं उस ब्राह्मण के घर जाऊँगा, उसे लौट आने के लिए प्रेरित करूँगा तथा उसे आपके घर भेज दूँगा।

तुमि सुखे घरे याह–मोरे आज्ञा हय ।

एइ छले आज्ञा मागि’ करिला निश्चय ॥169 ॥

तुमि-आप; सुखे-सुखपूर्वक; घरे याह-अपने घर जाइये; मोरे-मुझे; आज्ञा-आज्ञा; हय-है; एइ छले-इस बहाने; आज्ञा मागि’-आज्ञा माँगकर; करिला निश्चय-निश्चय किया।

अनुवाद

“आप निश्चिन्त होकर घर जा सकते हैं। आपकी आज्ञानुसार मैं उस ब्राह्मण को मना लाऊँगा।” इस निवेदन के साथ उनकी अनुमति लेकर रघुनाथ दास ने चले जाने का निश्चय किया।

“सेवक रक्षक आर केह नाहि सङ्गे ।

पलाइते आमार भाल एइत प्रसङ्गे” ॥170॥

सेवक-सेवक; रक्षक–पहरेदार; आर-और; केह नाहि-कोई नहीं है; सङ्गे- साथ; पलाइते-भागने के लिए; आमार-मेरे; भाल–अच्छा; एइत-यह; प्रसङ्गे–अवसर।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने सोचा, "भाग जाने का यह सबसे अच्छा अवसर है, क्योंकि इस समय मेरे साथ न तो कोई नौकर है, न ही पहरेदार।"

एत चिन्ति' पूर्व-मुखे करिला गमन ।

उलटिया चाहे पाछे,–नाहि कोन जन ॥171॥

एत चिन्ति'-यह सोचकर; पूर्व-मुखे-पूर्व की ओर; करिला गमन-आगे बढ़ने लगे; उलटिया-मुड़कर; चाहे-देखते; पाछे-पीछे; नाहि कोन जन-वहाँ कोई नहीं था।

अनुवाद

इस तरह सोचते हुए वे पूर्व की दिशा में तेजी से बढ़ते गये। कभी- कभी वे घूमकर पीछे देख लेते, किन्तु कोई उनका पीछा नहीं कर रहा था।

श्री-चैतन्य-नित्यानन्द-चरण चिन्तिया ।

पथ छाड़ि' उपपथे यायेन धाञा ॥ 172 ॥

श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु के; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द प्रभु के; चरण-चरणकमलों का; चिन्तिया–चिन्तन करते हुए; पथ छाड़ि'–साधारण मार्ग छोड़कर; उपपथे-उस मार्ग से जिसका सामान्यत: प्रयोग नहीं होता; यायेन धाञा-वे अत्यन्त तेजी से गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों का ध्यान करते हुए उन्होंने आम रास्ता छोड़ दिया और गौण रास्ते से होकर, जो सामान्यत: उपयोग में नहीं लिया जाता था, शीघ्रता से आगे बढ़ने लगे।

ग्रामे-ग्रामेर पथ छाड़ि' याय वने वने ।

काय-मनो-वाक्ये चिन्ते चैतन्य-चरणे ॥173॥

ग्रामे-ग्रामेर-गाँव गाँव के; पथ-सामान्य मार्ग; छाड़ि'–छोड़कर; याय-जाते; वने वने–जंगलों से; काय-मनः-वाक्ये-शरीर, मन तथा वचनों से; चिन्ते-ध्यान करते; चैतन्य चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

वे एक गाँव से दूसरे गाँव के आम रास्ते को छोड़ते हुए अपने प्राणों तथा मन से श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का ध्यान करते हुए जंगलों से होते हुए आगे चलते गये।

पञ्च-दश-क्रोश-पथ चलि' गेला एक-दिने ।

सन्ध्या-काले रहिला एक गोपेर बाथाने ॥174॥

पञ्च-दश-क्रोश-लगभग तीस मील; पथ चलि'–मार्ग पर चलकर; गेला-गये; एक-दिने–एक दिन में; सन्ध्या-काले-शाम को; रहिला-रूके; एक गोपेर-एक ग्वाले की; बाथाने-गोशाला में।

अनुवाद

एक दिन में लगभग तीस मील चले और शाम को उन्होंने एक ग्वाले की गोशाला में विश्राम किया।

उपवासी देखि' गोप दुग्ध आनि' दिला ।

सेइ दुग्ध पान करि' पड़िया रहिला ॥ 175 ॥

उपवासी-उपवास करते; देखि'–देखकर; गोप-ग्वाले ने; दुग्ध-दूध; आनि'–लाकर; दिला–दिया; सेइ दुग्ध-वह दूध; पान करि'-पीकर; पड़िया-लेटकर; रहिला-रह गये।

अनुवाद

जब उस ग्वाले ने देखा कि रघुनाथ दास उपवास कर रहे हैं, तो उसने उन्हें कुछ दूध दिया। रघुनाथ दास ने वह दूध पिया और रात भर विश्राम करने के लिए वहाँ लेट गये।

एथा ताँर सेवक रक्षक तारै ना देखियो ।

ताँर गुरु-पाशे वार्ता पुछिलेन गिया ॥176॥

एथा-यहाँ, उनके घर पर; ताँर–उनके; सेवक-सेवक; रक्षक–पहरेदार; तारै–उन्हें; ना देखिया-न देखकर; ताँर गुरु-पाशे-उनके गुरु के पास; वार्ता–खबर; पुछिलेन-पूछने के लिए; गिया-गये।

अनुवाद

रघुनाथ दास के घर में जब नौकर तथा पहरेदार ने उन्हें नहीं देखा, तो तुरन्त ही वे उनके गुरु यदुनन्दन आचार्य के पास उनके विषय में पूछने गये।

तेंह कहे, 'आज्ञा मागि' गेला निज-घर' ।

'पलाइल रघुनाथ'—उठिल कोलाहल ॥ 177॥

तेंह कहे-उन्होंने कहा; आज्ञा मागि'-मुझसे आज्ञा लेकर; गेला–गया है; निज घर–अपने घर; पलाइल रघुनाथ–रघुनाथ भाग गया; उठिल-गूंज उठी; कोलाहल-उच्च ध्वनि।

अनुवाद

यदुनन्दन आचार्य ने कहा, "वह मुझसे आज्ञा माँगकर घर लौट गया।" इस तरह वहाँ कोलाहल उठने लगा, क्योंकि हर व्यक्ति चिल्ला रहा था कि, "अब रघुनाथ भाग गया है।"

ताँर पिता कहे,–"गौड़ेर सब भक्त-गण ।

प्रभु-स्थाने नीलाचले करिला गमन" ॥ 178॥

ताँर–उनके; पिता-पिता ने; कहे-कहा; गौड़ेर-बंगाल के; सब-सभी; भक्त गण-भक्तगण; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के पास; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी; करिला गमन-गये हैं।

अनुवाद

रघुनाथ दास के पिता ने कहा, "अब बंगाल के सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथपुरी गये हैं।"

सेइ-सङ्गे रघुनाथ गेल पलाञा ।

दश जन याह, तारे आनह धरिया" ॥ 179॥

सेइ-सङ्गे–उनके साथ; रघुनाथ–रघुनाथ दास; गेल पलाञा–भाग गया; दश जन-दस लोग; याह-जाकर; तारे-उसे; आनहलाओ; धरिया-पकड़कर।

अनुवाद

“रघुनाथ दास उन्हीं के साथ भाग गया है। दस व्यक्ति तुरन्त उसे पकड़ने के लिए जायें और उसे लौटा ले आयें।”

शिवानन्दे पत्री दिल विनय करिया ।

‘आमार पुत्रेरे तुमि दिबा बाहुड़िया’ ॥180॥

शिवानन्दे-शिवानन्द सेन को; पत्री-एक पत्र; दिल–भेजा; विनय करिय-निवेदनपूर्वक; आमार पुत्रेरे-मेरे पुत्र को; तुमि-आप; दिबा-कृपया दे दीजिए;बाहुड़िया-वापस।

अनुवाद

रघुनाथ दास के पिता ने शिवानन्द सेन के नाम एक चिट्ठी लिखी और उनसे अत्यन्त विनयपूर्वक अनुरोध किया, “कृपया मेरे पुत्र को लौटाकर भेज दें।”

झाङ्करा पर्यन्त गेल सेइ दश जने ।

झाङ्कराते पाइल गिया वैष्णवेर गणे ॥181॥

झाङ्करा पर्यन्त–झाँकरा नामक स्थान तक; गेल-गये; सेइ दश जने–वे दस लोग;झाङ्कराते–झाँकरा में; पाइल-मिले; गिया-जाकर; वैष्णवेर गणे-वैष्णवों के एक समूह से।

अनुवाद

झाँकरा में दसों व्यक्ति वैष्णवों की एक टोली के साथ हो गये, जो नीलाचल जा रही थी।

पत्री दिया शिवानन्दे वार्ता पुछिल ।

शिवानन्द कहे,–‘तेंह एथा ना आइल’ ॥182॥

पत्री-पत्र; दिया–दिया; शिवानन्दे-शिवानन्द सेन को; वार्ता-खबर; पुछिल–पूछे; शिवानन्द कहे-शिवानन्द सेन ने कहा; तेंह-वह; एथायहाँ; ना आइल-नहीं आया।

अनुवाद

उन लोगों ने वह चिट्ठी देकर शिवानन्द सेन से रघुनाथ दास के विषय में पूछा, किन्तु शिवानन्द सेन ने उत्तर दिया कि, "वह यहाँ नहीं आया।"

बाहुड़िया सेइ दश जन आइल घर।

ताँर माता-पिता हइल चिन्तित अन्तर ॥183॥

बाहुड़िया-लौटकर; सेइ-वे; दश जन-दस लोग; आइल घर-घर वापस आ गये; ताँर-उनके; माता-पिता-माता पिता; हइल-हो गये; चिन्तित-चिन्ताग्रस्त; अन्तर-अपने मन में।

अनुवाद

दसों लोग घर लौट आये। रघुनाथ दास के माता-पिता अत्यधिक चिन्तित हो उठे।

एथा रघुनाथ-दास प्रभाते उठिया।

पूर्व-मुख छाड़ि' चले दक्षिण-मुख हञा ॥ 184॥

एथा-यहाँ; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास; प्रभाते-प्रातः काल में; उठिया-उठकर; पूर्व-मुख-पूर्व दिशा; छाड़ि'–छोड़कर चले-चलने लगे; दक्षिण-मुख-दक्षिण दिशा को; हञा–होकर।

अनुवाद

रघुनाथ दास, जो ग्वाले के घर में विश्राम कर रहे थे, प्रात:काल जल्दी जगे और पूर्व दिशा में जाने के स्थान पर उन्होंने अपना मुँह दक्षिण की ओर मोड़ा और आगे बढ़ने लगे।

छत्रभोग पार हञा छाड़िया सराण।

कुग्राम दिया दिया करिल प्रयाण ॥ 185॥

छत्र-भोग-छत्रभोग नामक स्थान; पार हञा–पार करके; छाड़िया-छोड़कर; सराण-राजमार्ग; कुग्राम दिया दिया-गाँव के मार्गों से होते हुए; करिल प्रयाण-आगे बढ़ते रहे।

अनुवाद

छत्रभोग पार करने के बाद वे आम रास्ते से न जाकर ऐसे रास्ते से गये, जो एक गाँव से दूसरे गाँव होकर जाता था।

तात्पर्य

छत्रभोग अब छाड़खाड़ि कहलाता है और पश्चिम बंगाल के चौबीस परगना जिले में है। यह सुविख्यात गाँव जयनगर मजिलपुर के निकट स्थित है। पहले इस भाग से होकर गंगा नदी या इसकी कुछ शाखाएँ बहती थीं। कभी-कभी भूल से छत्रभोग को बेनापोल में काँसाइ-नदी पर स्थित गाँव के रूप में मान लिया जाता है।

भक्षण अपेक्षा नाहि, समस्त दिवस गमन ।

क्षुधा नाहि बाधे, चैतन्य-चरण-प्राप्त्ये मन ॥186॥

भक्षण अपेक्षा नाहि-खाने की परवाह नहीं की; समस्त दिवस-पूरा दिन; गमन-यात्रा करते; क्षुधा-भूख; नाहि बाधे-बाधा नहीं बनी; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को प्राप्त्ये-प्राप्त करने का; मन–मन।

अनुवाद

भोजन की परवाह न करके वे सारा दिन चलते रहते। भूख बाधक न थी, क्योंकि उनका मन श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण पाने पर केन्द्रित था।

कभु चर्वण, कभु रन्धन, कभु दुग्ध-पान ।

यबे येइ मिले, ताहे राखे निज प्राण ॥187॥

कभु चर्वण-कभी चबाकर; कभु रन्धन-कभी पकाकर; कभु दुग्ध-पान-कभी दूध पीकर; यबे-जब; येइ-जो कुछ; मिले-मिलता; ताहे-उस प्रकार; राखे-रखते; निज प्राण-अपने प्राण।

अनुवाद

कभी वे चबैना चबाते, कभी वे भोजन पकाते और कभी दूध पी लेते। इस तरह जहाँ वे जाते, उन्हें जो कुछ भी मिल जाता उसी से प्राणों की रक्षा करते।

बार दिने चलि' गेला श्री-पुरुषोत्तम ।

पथे तिन-दिन मात्र करिला भोजन ॥188॥

बार दिने-बारह दिन तक; चलि'–यात्रा करके; गेला–पहुँचे; श्री-पुरुषोत्तम-जगन्नाथ पुरी या पुरुषोत्तम क्षेत्र, नीलाचल; पथे-मार्ग में; तिन-दिन-तीन दिन; मात्र-केवल; करिला भोजन-उन्होंने भोजन किया।

अनुवाद

वे बारह दिनों में जगन्नाथपुरी पहुँचे, किन्तु रास्ते में उन्होंने तीन दिन ही भोजन किया।

स्वरूपादि-सह गोसाञि आछेन वसिया ।

हेन-काले रघुनाथ मिलिल आसिया ॥189॥

स्वरूप-आदि-सह-स्वरूप दामोदर आदि भक्तों के संग में; गोसाञि-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु; आछेन वसिया–बैठे हुए थे; हेन-काले—इस समय; रघुनाथ–रघुनाथ दास; मिलिल-मिले; आसिया-आकर।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले, तब महाप्रभु स्वरूप दामोदर इत्यादि अपने संगियों के साथ बैठे हुए थे।

अङ्गनेते दूरे रहि' करेन प्रणिपात ।

मुकुन्द-दत्त कहे,—'एइ आइल रघुनाथ' ॥190॥

अङ्गनेते-आँगन में; दूरे रहि'–स्वयं को दूर रखते हुए; करेन प्रणिपात-प्रणाम किया; मुकुन्द-दत्त कहे-मुकुन्द दत्त ने कहा; एइ–यह; आइल-आ गया; रघुनाथ-रघुनाथ दास।

अनुवाद

आँगन में कुछ दूर रुककर उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया। तब मुकुन्द दत्त ने कहा, "यह रघुनाथ आ गया।"

प्रभु कहेन,–'आइस', तेंहो धरिला चरण ।

उठि' प्रभु कृपाय तारै कैला आलिङ्गन ॥191॥

प्रभु कहेन–महाप्रभु ने कहा; आइस-इधर आओ; तेंहो–उन्होंने (रघुनाथ ने); धरिला चरण-उनके चरणकमल पकड़ लिए; उठि'–उठकर; प्रभु–महाप्रभु ने; कृपाय-कृपापूर्वक; ताँरे–उन्हें; कैला आलिङ्गन-गले से लगा लिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने ये शब्द सुनते ही तुरन्त रघुनाथ दास का स्वागत किया। उन्होंने कहा, "यहाँ आओ।" तब रघुनाथ दास ने उनके चरणकमल पकड़ लिए, किन्तु महाप्रभु खड़े हो गये और अपनी अहैतुकी कृपा से उनका आलिंगन कर लिया।

स्वरूपादि सब भक्तेर चरण वन्दिला ।

प्रभु-कृपा देखि' सबै आलिङ्गन कैला ॥192॥

स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर आदि; सब भक्तेर-सभी भक्तों के; चरण वन्दिला-चरणकमलों में प्रार्थनाएँ की; प्रभु-कृपा-चैतन्य महाप्रभु की कृपा; देखि'–देखकर; सबे-उन सबने; आलिङ्गन कैला-आलिंगन किया।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने स्वरूप दामोदर गोस्वामी इत्यादि सारे भक्तों के चरणकमलों की वन्दना की। उन्होंने भी, यह देखकर कि रघुनाथ दास पर महाप्रभु ने विशेष कृपा की है, उनका आलिंगन किया।

प्रभु कहे,–"कृष्ण-कृपा बलिष्ठ सबा हैते ।

तोमारे काड़िल विषय-विष्ठा-गर्त हैते" ॥193॥

प्रभु कहे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; कृष्ण-कृपा-भगवान् कृष्ण की कृपा; बलिष्ठ-अत्यन्त शक्तिशाली; सबा हैते–सबसे; तोमारे-तुम पर; काड़िल-उन्होंने निकाल दिया; विषय-भौतिक आनन्द; विष्ठा-विष्ठा; गर्त–नाली; हैते–से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "भगवान् कृष्ण की कृपा सबसे प्रबल होती है। इसलिए भगवान् ने तुम्हें भौतिकतावादी जीवन की खाई से उबार लिया है, जो उस छेद के समान है, जिसमें लोग मल त्याग करते हैं।"

तात्पर्य

कर्म के नियम के अनुसार हर व्यक्ति को किसी भौतिक मानदण्ड के अनुसार दुःख या सुख भोगना पड़ता है, किन्तु भगवान् कृष्ण की कृपा इतनी प्रबल है कि मनुष्य के सारे विगत कर्मफलों को बदल सकती है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण-कृपा की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया। यह कृपा अन्य किसी वस्तु से अधिक प्रबल है, क्योंकि इसने रघुनाथ दास को भौतिकतावादी जीवन के प्रबल बन्धन से बचाया, जिसकी तुलना महाप्रभु ने उस छेद से की है, जहाँ लोग मल त्याग करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह निर्णय दिया कि जो लोग भौतिकतावादी जीवन में लिप्त रहते हैं, वे मल में रहने वाले उन कीड़ों के समान हैं, जो उसे त्याग नहीं सकते। एक गृहव्रत जिसने सुविधापूर्ण घर, जो वास्तव में दुःख से भरा होता है, उसमें रहने का दृढ़ संकल्प किया है, वह गर्हित अवस्था में रहता है। केवल कृष्ण की कृपा ही उसे ऐसे कष्ट से बचा सकती है। कृष्ण की कृपा के बिना घृणित भव-पाश से निकल पाना सम्भव नहीं है। बेचारा जीव अपनी इच्छा से भौतिकतावादी स्थिति को त्याग नहीं पाता। जब कृष्ण की विशेष कृपा होती है, तभी वह उसे त्याग पाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु भलीभाँति जानते थे कि रघुनाथ दास पहले ही मुक्त हो चुका है, फिर भी उन्होंने जोर देकर कहा कि धनी पिता का पुत्र होने के कारण रघुनाथ दास का विलासपूर्ण जीवन, जिसमें सुन्दर पत्नी तथा अनेक नौकर हैं, मल की खाई के तुल्य है। इस तरह महाप्रभु ने विशेष रूप से इंगित किया कि भौतिक सुविधाओं तथा पारिवारिक जीवन से अत्यन्त सुखी सामान्य लोग मल के कीटों से किसी तरह भी श्रेष्ठ नहीं हैं।

रघुनाथ मने कहे,—कृष्ण नाहि जानि ।

तव कृपा काड़िल आमा,–एइ आमि मानि' ॥194॥

रघुनाथ–रघुनाथ दास ने; मने कहे-अपने मन में उत्तर दिया; कृष्ण-भगवान् कृष्ण;नाहि जानि-मैं नहीं जानता; तव-आपकी; कृपा-कृपा ने; काड़िल-निकाला है;आमा–मुझे; एइ-यह; आमि मानि–मैं मानता हूँ।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने अपने मन में उत्तर दिया, "मैं नहीं जानता कि कृष्ण कौन हैं। हे प्रभु, मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि आपकी कृपा ने मुझे पारिवारिक जीवन से बचा लिया है।"

प्रभु कहेन,–"तोमार पिता-ज्येठा दुइ जने ।

चक्रवर्ती-सम्बन्धे हाम 'आजा' करि' माने" ॥195॥

प्रभु कहेन–भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तोमार-तुम्हारे; पिता-ज्येठा-पिता और उनके बड़े भाई; दुइ जने-वे दोनों; चक्रवर्ती सम्बन्धे-नीलाम्बर चक्रवर्ती से सम्बन्ध के कारण; हाम-मैं; आजा करि'-अपने नाना के समान; माने-मानता हूँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने आगे कहा, "तुम्हारे पिता तथा ताऊ दोनों ही मेरे नाना (मातामह) नीलाम्बर चक्रवर्ती के भाई जैसे हैं। अतएव मैं उन्हें अपना नाना (आजा) मानता हूँ।"

तात्पर्य

नीलाम्बर चक्रवर्ती श्री चैतन्य महाप्रभु के मातामह (नाना) थे और वे रघुनाथ दास के पिता तथा ताऊ से घनिष्ठतापूर्वक सम्बन्धित थे। नीलाम्बर चक्रवर्ती उन्हें अपना छोटा भाई कहकर पुकारते थे, क्योंकि वे दोनों ब्राह्मणों को अत्यधिक समर्पित और सम्मानित जन थे। इसी तरह वे लोग भी उन्हें दादा चक्रवर्ती कहकर पुकारते थे। किन्तु रघुनाथ दास भगभग श्री चैतन्य महाप्रभु की ही उम्र के थे। सामान्य रूप से नाती अपने नाना से परिहास कर सकता है। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने नाना और रघुनाथ के पिता तथा ताऊ के बीच सम्बन्ध का लाभ उठाया और वे इस तरह परिहास कर रहे थे।

चक्रवर्तीर दुहे हय भ्रातृ-रूप दास ।

अतएव तारे आमि करि परिहास ॥196॥

चक्रवर्तीर-नीलाम्बर चक्रवर्ती के; दुहे-दोनों; हय-हैं; भ्रातृ-रूप दास-छोटे भाई के रूप में सेवक; अतएव–इसलिए; तारे-उन्हें; आमि-मैं; करि परिहास-परिहासपूर्वक कुछ कहता हूँ।

अनुवाद

"चूँकि तुम्हारे पिता तथा ताऊ नीलाम्बर चक्रवर्ती के छोटे भाई हैं, अतएव मैं इस तरह से परिहास कर सकता हूँ।"

तोमार बाप-ज्येठा—विषय-विष्ठा-गर्तेर कीड़ा ।

सुख करि' माने विषय-विषेर महा-पीड़ा ॥197॥

तोमार-तुम्हारा; बाप-पिता; ज्येठा-उसका बड़ा भाई; विषय-भौतिक सुख के;विष्ठा–मल के; गर्तेर–गड्डे के; कीड़ा-कीड़े; सुख करि'-सुख रूप में; माने-वे मानते हैं; विषय-भौतिक सुख के; विषेर-विष की; महा-पीड़ा-महान् पीड़ा को।

अनुवाद

"हे रघुनाथ दास, तुम्हारे पिता तथा ताऊ भौतिक भोग रूपी नाली के मल-कीटों के तुल्य हैं, क्योंकि जिसे वे सुख मानते हैं, वह भौतिक भोग के विष का महान् रोग है।"

तात्पर्य

जब मनुष्य भौतिक भोग में आसक्त रहता है, तो उसे अनेक कष्ट भी घेरे रहते हैं, फिर भी वह अपनी अधम स्थिति को सुख की स्थिति मानता है। ऐसे व्यक्ति के लिए इन्द्रिय भोग इतना प्रबल होता है कि वह उसे त्याग नहीं पाता, ठीक उसी तरह जिस तरह मल का कीड़ा मल को त्याग नहीं पाता। आध्यात्मिक दृष्टि में जब मनुष्य भौतिक भोग में अत्यधिक लिप्त रहता है, तब वह मल के कीड़े के समान ही होता है। यद्यपि यह स्थिति मुक्तात्माओं की दृष्टि में अत्यन्त दयनीय होती है, किन्तु भौतिकतावादी भोक्ता इसमें अत्यधिक आसक्त रहता है।

यद्यपि ब्रह्मण्य करे ब्राह्मणेर सहाय।

'शुद्ध-वैष्णव' नहे, हये वैष्णवेर प्राय' ॥ 198॥

यद्यपि-यद्यपि; ब्रह्मण्य करे–ब्राह्मणों को दान देते हैं; ब्राह्मणेर सहाय-ब्राह्मणों के महान् सहायक; शुद्ध-वैष्णव-शुद्ध वैष्णव; नहे-नहीं हैं; हये-वे; वैष्णवेर प्राय-प्रायःवैष्णव जैसे।

अनुवाद

"यद्यपि तुम्हारे पिता तथा ताऊ ब्राह्मणों को दान देते हैं और उनकी बहुत सहायता करते हैं, किन्तु तो भी वे शुद्ध वैष्णव नहीं हैं। हाँ, वे प्रायः वैष्णवों जैसे हैं।"

तात्पर्य

जैसाकि श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत प्रवाह भाष्य में कहा है। कुछ लोग, जो सामान्यतया धनी होते हैं, वे वैष्णवों जैसे वस्त्र पहनते हैं और ब्राह्मणों को दान देते हैं। वे अर्चाविग्रह पूजा के प्रति भी अनुरक्त रहते हैं, किन्तु

भौतिक भोग के प्रति आसक्ति के कारण वे शुद्ध वैष्णव नहीं हो सकते। अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्। शुद्ध वैष्णव में भौतिक भोग की इच्छा नहीं रहती। शुद्ध वैष्णव की यह मूलभूत योग्यता है। सामान्यतया धनी लोग नियमित रूप से अर्चाविग्रह की पूजा करते हैं, ब्राह्मणों को दान देते हैं। और सभी तरह से पुण्यशाली होते हैं, किन्तु वे शुद्ध वैष्णव नहीं हो सकते। अपनी वैष्णवता तथा दान के बाहरी दिखावे के बावजूद, उनकी आन्तरिक इच्छा भौतिक जीवन के उच्चतर स्तर के भोग की होती है। रघुनाथ दास के पिता गोवर्धन तथा ताऊ हिरण्यदास दोनों ब्राह्मणों को काफी दान देते थे। गौड़ीय जिले के सारे ब्राह्मण एक तरह से उन पर आश्रित थे। इस तरह उन्हें अत्यन्त पवित्र भद्र पुरुष माना जाता था। इस तरह वे सामान्य जनता के समक्ष अपने आपको वैष्णव के रूप में प्रस्तुत करते थे, जबकि शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से वे सामान्य मनुष्य थे, शुद्ध वैष्णव नहीं। वास्तविक वैष्णव उन्हें लगभग वैष्णव जैसे मानते थे, शुद्ध वैष्णव नहीं। दूसरे शब्दों में, वे कनिष्ठ अधिकारी थे, क्योंकि वे उच्च वैष्णव सिद्धान्तों से अनजान थे। फिर भी वे विषयी नहीं कहे जा सकते थे।

तथापि विषयेर स्वभाव करे महा-अन्ध।

सेइ कर्म कराय, याते हय भव-बन्ध ॥199॥

तथापि-फिर भी; विषयेर स्वभाव-भौतिक विषयों का स्वभाव; करे महा-अन्ध-पूर्ण रूप से अन्धा बना देता है; सेइ कर्म कराय-उसे उस प्रकार कर्म करने में विवश करता है; य़ाते-जिसके द्वारा; हय-हो जाता है; भव-बन्ध–जन्म और मृत्यु का बन्धन।

अनुवाद

"जो लोग भौतिकतावादी जीवन के प्रति आसक्त होते हैं और आध्यात्मिक जीवन के प्रति अन्धे बने रहते हैं, वे इस तरह कर्म करते हैं कि अपने कर्मों की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जन्म-मृत्यु के चक्र में बँध जाते हैं।"

तात्पर्य

भगवद्गीता (3.9) में स्पष्ट कहा गया है- यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः-यदि कोई शुद्ध भक्त की तरह कर्म नहीं करता, तो वह जो भी कर्म करेगा उससे कर्मबन्धन का फल उत्पन्न होगा। श्रीमद्भागवत (5.5.4) में कहा गया है :

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म

यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।

न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयम्

असन्नपि क्लेशद आस देहः ॥

"इन्द्रिय भोग के कार्यों में बुरी तरह लगा हुआ भौतिकतावादी व्यक्ति यह नहीं जान पाता कि वह अपने आपको जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसा रहा है और उसका यह क्षणिक शरीर क्लेशों से भरा है।" विषयी व्यक्ति सदैव जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसा रहता है। ऐसा व्यक्ति यह नहीं जान सकता कि भक्ति कैसे की जाए; इसलिए वह कर्मी, ज्ञानी, योगी या अन्य रूप में अपनी इच्छानुसार कर्म करता है। किन्तु वह यह नहीं जानता कि कर्म, ज्ञान तथा योग के कार्यकलाप उसे जन्म-मृत्यु के चक्र में बाँधने वाले हैं।

"हेन 'विषय' हैते कृष्ण उद्धारिला तोमा' ।

या कहन ना याय कृष्ण-कृपार महिमा" ॥200॥

हेन विषय-भौतिक सुख की ऐसी पतित अवस्था; हैते–से; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; उद्धारिला तोमा'-तुम्हें निकाल दिया; कहन ना याय-वर्णन नहीं किया जा सकता; कृष्ण-कृपार-भगवान् कृष्ण की कृपा की; महिमा-महिमा का।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण ने तुम्हें स्वेच्छा से ऐसे गर्हित भौतिकतावादी जीवन से उबार लिया है। इसलिए भगवान् कृष्ण की अहैतुकी कृपा को व्यक्त नहीं किया जा सकता।"

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता (5.54) में कहा गया है कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजाम् । भगवान् कृष्ण इतने दयालु हैं कि वे अपने भक्तों के कर्मफल को रोक सकते हैं। इन्द्रगोप जैसे क्षुद्र कीट से लेकर स्वर्ग के राजा इन्द्र तक हर कोई सकाम कर्मों के फलों से बद्ध है।

यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म-

बन्धानुरूपफलभाजनमातनोति ।

कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजां

गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥

हर प्राणी चाहे वह एक कीड़ा हो या स्वर्ग का राजा, अपने कर्म तथा उसके फल के द्वारा बँधा हुआ है। किन्तु जब वह शुद्ध भक्त बन जाता है अर्थात् भौतिक इच्छाओं से तथा कर्म, ज्ञान और योग के बन्धन से मुक्त होता है, तब वह कृष्ण की अहैतुकी कृपा से कर्ममुक्त हो जाता है। भौतिकतावादी जीवन शैली से छुटकारा दिलाए जाने के लिए मनुष्य कृष्ण के प्रति यथेष्ठ कृतज्ञता व्यक्त नहीं कर सकता।

रघुनाथेर क्षीणता-मालिन्य देखियो ।

स्वरूपेरे कहेन प्रभु कृपाई-चित्त हञा ॥201॥

रघुनाथेर-रघुनाथ दास का; क्षीणता-दुबलापन; मालिन्य-शरीर की अस्वच्छता; देखिया-देखकर; स्वरूपेरे कहेन–स्वरूप दामोदर गोस्वामी से कहा; प्रभु-भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने; कृपा-कृपापूर्वक; आर्द्र-द्रवित; चित्त-हृदय; हञा-होकर।

अनुवाद

रघुनाथ दास को दुर्बल तथा मैला कुचैला देखकर, क्योंकि उन्होंने बारह दिनों तक यात्रा की थी और उपवास रखा था, श्री चैतन्य महाप्रभु का हृदय अहैतुकी कृपा से द्रवित हो उठा और उन्होंने स्वरूप दामोदर से कहा।

एइ रघुनाथे आमि सँपिनु तोमारे ।

पुत्र-भृत्य-रूपे तुमि कर अङ्गीकारे ॥202॥

एइ रघुनाथे—इस रघुनाथ दास को; आमि-मैं; सँपिनु तोमारे तुम्हें सौंप रहा हूँ;पुत्र-पुत्र; भृत्य-सेवक; रूपे-जैसे; तुमि-तुम (स्वरूप दामोदर गोस्वामी); कर अङ्गीकारे–कृपया स्वीकार करो।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "हे प्रिय स्वरूप, मैं इस रघुनाथ दास को तुम्हें सौंपता हूँ। तुम इसे कृपया अपने पुत्र अथवा दास के रूप में स्वीकार करो।"

तिन 'रघुनाथ'-नाम हय आमार गणे।

'स्वरूपेर रघु'–आजि हैते इहार नामे ॥203॥

तिन रघुनाथ–तीन रघुनाथ; नाम-नामक; हय-हैं; आमार गणे-मेरे संगियों में; स्वरूपेर रघु-स्वरूप दामोदर का रघुनाथ; आजि हैते-आज से; इहार-इसका; नामे-नाम।

अनुवाद

"अब मेरे संगियों में तीन रघुनाथ हैं। आज से यह रघुनाथ, स्वरूपेर रघु(स्वरूप दामोदर का रघु) कहलाएगा।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के संगियों में तीन रघु थे-वैद्य रघुनाथ (देखें आदिलीला 11.22), भट्ट रघुनाथ तथा दास रघुनाथ। दास रघुनाथ स्वरूपेर रघु (स्वरूप के रघुनाथ) नाम से विख्यात हुए।

एत कहि' रघुनाथेर हस्त धरिला।

स्वरूपेर हस्ते ताँरे समर्पण कैला ॥ 204॥

एत कहि'-यह कहकर; रघुनाथेर-रघुनाथ दास का; हस्त धरिला-हाथ पकड़ लिया; स्वरूपेर हस्ते–स्वरूप दामोदर के हाथ में; ताँरे–उन्हें; समर्पण कैला-अर्पित कर दिया।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ दास का हाथ पकड़ लिया और उसे स्वरूप दामोदर गोस्वामी के हाथों में सौंप दिया।

स्वरूप कहे,—'महाप्रभुर ने आज्ञा हैल'।

एत कहि' रघुनाथे पुनः आलिङ्गिल ॥205॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहा; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; ये-जो भी; आज्ञा-आज्ञा; हैल-है; एत कहि-यह कहकर; रघुनाथे-रघुनाथ दास को; पुनः-दोबारा; आलिङ्गिल-उन्होंने आलिंगन किया।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने यह कहते हुए रघुनाथ दास को स्वीकार किया कि, "हे प्रभु, आपकी जो भी आज्ञा हो वह स्वीकार्य है।" तब उन्होंने रघुनाथ दास का फिर से आलिंगन किया।

चैतन्येर भक्त-वात्सल्य कहिते ना पारि ।

गोविन्देरे कहे रघुनाथे दया करि' ॥ 206॥

चैतन्येर–भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का; भक्त-वात्सल्य-भक्तों के प्रति स्नेह; कहिते ना पारि-मैं योग्य रूप से वर्णन नहीं कर सकता; गोविन्देरे-गोविन्द से; कहे-उन्होंने कहा; रघुनाथे-रघुनाथ दास पर; दया करि'-अत्यन्त कृपालु होकर।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के अपने भक्तों के प्रति वात्सल्य को ठीक से व्यक्त नहीं कर सकता। रघुनाथ दास के ऊपर दयालु होकर महाप्रभु ने गोविन्द से इस प्रकार कहा।

"पथे इँह करियाछे बहुत लङ्घन ।

कत-दिन कर इहार भाल सन्तर्पण" ॥207॥

पथे-मार्ग में; इँह-रघुनाथ दास ने; करियाछे–किया है; बहुत-बहुत; लङ्घन-उपवास तथा कठिन प्रयत्न; कत-दिन-कुछ दिन तक; कर-करो; इहार-इसका; भाल-अच्छा; सन्तर्पण-ध्यान।

अनुवाद

"रघुनाथ दास ने रास्ते में कई दिनों तक उपवास किया है और अनेक कष्ट उठाये हैं। इसलिए कुछ दिनों तक इसकी ठीक से देखभाल करो, जिससे वह जी भरकर खा सके।"

रघुनाथे कहे–"याञा, कर सिन्धु-स्नान ।

जगन्नाथ देखि' आसि' करह भोजन" ॥208॥

रघुनाथे कहे-उन्होंने रघुनाथ दास से कहा; याञा-जाकर; कर सिन्धु-स्नान-समुद्र स्नान करो; जगन्नाथ देखि'-भगवान जगन्नाथ के दर्शन करके; आसि'-आने के बाद; करह भोजन-अपना भोजन करो।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ दास से कहा, "जाकर समुद्र में स्नान करो। उसके बाद मन्दिर में भगवान जगन्नाथ का दर्शन करो और फिर यहाँ आकर भोजन करो।"

एत बलि' प्रभु मध्याह्न करिते उठिला ।

रघुनाथ-दास सब भक्तेरे मिलिला ॥209॥

एत बलि'-यह कहकर; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; मध्याह्न करिते-अपने दोपहर के नित्यकर्म करने के लिए; उठिला-उठ गये; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास; सब-सभी;भक्तेरे-भक्तों से; मिलिला–मिले।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु उठे और अपना दोपहर का कृत्य करने चले गये। रघुनाथ वहाँ पर उपस्थित सारे भक्तों से मिले।

रघुनाथे प्रभुर कृपा देखि, भक्त-गण ।

विस्मित हञा करे ताँर भाग्य-प्रशंसन ॥ 210॥

रघुनाथे-रघुनाथ दास के प्रति; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-कृपा; देखि-देखकर; भक्त-गण-सभी भक्त; विस्मित-आश्चर्यचकित; हञा–होकर; करे–करने लगे;ताँर-उनके; भाग्य-सौभाग्य की प्रशंसन-प्रशंसा।

अनुवाद

रघुनाथ दास पर श्री चैतन्य महाप्रभु की अहैतुकी कृपा देखकर सारे भक्त आश्चर्यचकित रह गये और उन्होंने उनके सौभाग्य की प्रशंसा की।

रघुनाथ समुद्रे याञा स्नान करिला ।

जगन्नाथ देखि' पुनः गोविन्द-पाश आइला ॥211॥

रघुनाथ–रघुनाथ दास ने; समुद्रे-समुद्र में; याञा-जाकर; स्नान करिला-स्नान किया; जगन्नाथ देखि'–भगवान जगन्नाथ के दर्शन करके; पुनः-फिर; गोविन्द-पाश आइला-गोविन्द के पास आये।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने समुद्र में स्नान किया और जगन्नाथजी के दर्शन किये। तब वे श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी सेवक गोविन्द के पास लौट आये।

प्रभुर अवशिष्ट पात्र गोविन्द तारै दिला ।

आनन्दित हञा रघुनाथ प्रसाद पाइला ॥212॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; अवशिष्ट पात्र–शेष प्रसाद का एक पात्र; गोविन्द महाप्रभु के सेवक, गोविन्द ने; तारै-उन्हें; दिला–दिया; आनन्दित हञा-अत्यन्त प्रसन्न होकर; रघुनाथ–रघुनाथ दास ने; प्रसाद पाइला–प्रसाद ग्रहण किया।

अनुवाद

गोविन्द ने रघुनाथ को श्री चैतन्य महाप्रभु की पत्तल में बचा शेष खाने को दिया, जिन्होंने उस प्रसाद को परम सुखपूर्वक ग्रहण किया।

एइ-मत रहे तेंह स्वरूप-चरणे ।

गोविन्द प्रसाद तारै दिल पञ्च दिने ॥213॥

एइ-मत-इस प्रकार; रहे-रहे; तेंह-वे; स्वरूप-चरणे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी की शरण में; गोविन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के सेवक, गोविन्द प्रसाद-श्री चैतन्य महाप्रभु के भोजन के शेष; तारै–उन्हें; दिल-दिये; पञ्च दिने–पाँच दिन तक।

अनुवाद

रघुनाथ दास स्वरूप दामोदर गोस्वामी की देखभाल में रहे और गोविन्द पाँच दिनों तक उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु का शेष देता रहा।

आर दिन हैते 'पुष्प-अञ्जलि' देखियो ।

सिंह-द्वारे खाड़ा रहे भिक्षार लागिया ॥214॥

आर दिन–अगले दिन; हैते–से; पुष्य-अञ्जलि-भगवान् को फूल अर्पित करने का उत्सव; देखिया-देखने के बाद; सिंह-द्वारे-सिंह द्वार पर; खाड़ा रहे-खड़े हो गये; भिक्षार लागिया-कुछ भिक्षा माँगने के लिए।

अनुवाद

छठे दिन से रघुनाथ दास सिंह द्वार पर खड़े होकर पुष्प-अंजलि उत्सव के बाद, जिसमें भगवान् को फूल अर्पित किये जाते हैं, भिक्षा मांगना शुरू किया।

जगन्नाथेर सेवक यत–'विषयीर गण' ।

सेवा सारि' रात्र्ये करे गृहेते गमन ॥215॥

जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ के; सेवक-सेवक; व्रत-सभी; विषयीर गण-सामान्यतया विषयी नाम से प्रसिद्ध; सेवा सारि'-अपनी सेवा समाप्त कर; रात्र्ये-रात को;करे-करते; गृहेते गमन–घर वापसी।

अनुवाद

जगन्नाथ जी के अनेक सेवक, जो विषयी कहलाते हैं, अपना नियत कार्य पूरा होने के बाद रात में अपने घर लौटते हैं।

सिंह-द्वारे अन्नार्थी वैष्णवे देखियो ।

पसारिर ठाञि अन्न देन कृपा त' करिया ॥216॥

सिंह-द्वारे-सिंह द्वार पर; अन्न-अर्थी-अन्न की आवश्यकता में; वैष्णवे-वैष्णवों को; देखिया-देखकर; पसारिर ठाञि-दुकानदारों से; अन्न देन–कुछ अन्न दिलवाते; कृपा त' करिया-दयावश।

अनुवाद

यदि वे किसी वैष्णव को सिंह द्वार पर खड़े होकर भिक्षा माँगते देखते हैं, तो कृपा करके उसे कुछ खाने के लिए दुकानदार से दिलाने की व्यवस्था करा देते हैं।

एइ-मत सर्व-काल आछे व्यवहार।

निष्किञ्चन भक्त खाड़ा हय सिंह-द्वार ॥217॥

एइ-मत-इस प्रकार; सर्व-काल-सब समय के लिए; आछे-है; व्यवहार-व्यवहार; निष्किञ्चन भक्त–एक भक्त जिसका कोई अन्य आश्रय नहीं है; खाड़ा हय-खड़ा होता है; सिंह-द्वार-सिंह द्वार नामक द्वार पर।

अनुवाद

इस तरह यह सदा से रीति है कि जिस भक्त के पास कोई दूसरा सहारा नहीं होता, वह सेवकों से भिक्षा पाने के लिए सिंहद्वार पर खड़ा रहता है।

सर्व-दिन करेन वैष्णव नाम-सङ्कीर्तन ।।

स्वच्छन्दे करेन जगन्नाथ दरशन ॥218॥

सर्व-दिन-सम्पूर्ण दिन; करेन-करता है; वैष्णव-एक वैष्णव; नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन; स्वच्छन्दे–पूर्ण स्वतन्त्रतापूर्वक; करेन-करता है; जगन्नाथ दरशन-जगन्नाथ भगवान् के दर्शन।

अनुवाद

इस तरह एक पूर्णरूपेण आश्रित वैष्णव सारा दिन भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता है और पूर्ण स्वतन्त्र होकर जगन्नाथजी के दर्शन करता है।

केह छत्रे मागि' खाय, येबा किछु पाय।

केह रात्रे भिक्षा लागि' सिंह-द्वारे रय ॥ 219॥

केह-कुछ; छत्रे-भिक्षास्थली पर; मागि'–भिक्षा माँगकर; खाय-खाते; ग्रेब-जो कुछ भी; किछु-थोड़ा; पाय-वे प्राप्त करते; केह-कुछ; रात्रे-रात को; भिक्षा लागि'-भिक्षा माँगने के लिए; सिंह-द्वारे रय-सिंहद्वार नामक द्वार पर खड़े रहते।

अनुवाद

यह प्रथा है कि कुछ वैष्णव दानशालाओं (छत्रों, लंगरों) से भिक्षा माँगकर जो भी मिलता है खाते हैं, जबकि अन्य लोग सिंहद्वार पर रात्रि के समय खड़े होकर सेवकों से भिक्षा माँगते हैं।

महाप्रभुर भक्त-गणेर वैराग्य प्रधान।

याहा देखि' प्रीत हन गौर-भगवान् ॥220॥

महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गणेर-भक्तों की; वैराग्य–विरक्ति; प्रधान-मुख्य सिद्धान्त; याहा देखि'-जिसे देखकर; प्रीत हन–प्रसन्न होते हैं; गौर-भगवान्-भगवान् गौरहरि, श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

वैराग्य ही मूलभूत सिद्धान्त है, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों का जीवनाधार है। यह वैराग्य देखकर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य अत्यधिक तुष्ट होते हैं।

तात्पर्य

चाहे सामान्य भौतिकतावादी व्यक्ति हो या शुद्ध भक्त, यदि वह ध्यानपूर्वक अध्ययन करे, तो श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों के व्यवहार को समझ सकता है। इस तरह वह देखेगा कि श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त किसी प्रकार के भौतिक भोग में रंचमात्र भी आसक्त नहीं होते। वे इन्द्रिय भोग का पूरी तरह तिरस्कार करके भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में लगे रहते हैं और बिना किसी भौतिक इच्छा के कृष्ण की सेवा में अपना तन-मन अर्पित कर देते हैं। उनकी भक्ति भौतिक इच्छाओं से रहित होती है, इसलिए भौतिक परिस्थितियाँ इसमें बाधक नहीं बनती। यद्यपि सामान्य लोगों को भक्तों की इस प्रवृत्ति को समझने में कठिनाई होती है, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

प्रभुरे गोविन्द कहे,–"रघुनाथ 'प्रसाद' ना लय।

रात्र्ये सिंह-द्वारे खाड़ा हञा मागि' खाय" ॥221॥

प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु से; गोविन्द कहे-गोविन्द ने कहा; रघुनाथ–रघुनाथ दास; प्रसाद ना लय-प्रसाद नहीं लेता; राये-रात को; सिंह-द्वारे–सिंह द्वार पर; खाड़ा हञा-खड़ा होकर; मागि'–भिक्षा माँगकर; खाय-खाता है।

अनुवाद

गोविन्द ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "अब रघुनाथ यहाँ से प्रसाद नहीं लेता। अब वह सिंहद्वार पर खड़ा रहता है, जहाँ खाने के लिए वह भिक्षा माँग लेता है।"

शुनि' तुष्ट हञा प्रभु कहिते लागिल ।

भाल कैल, वैरागीर धर्म आचरिल ॥ 222॥

शुनि'–सुनकर; तुष्ट हञा–अत्यन्त सन्तुष्ट होकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहते लागिल-कहने लगे; भाल कैल-उसने अच्छा किया; वैरागीर-संन्यास आश्रम में स्थित व्यक्ति के; धर्म-कर्तव्यों का; आचरिल-आचरण किया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह सुना, तो वे अत्यधिक तुष्ट हुए। उन्होंने कहा, "रघुनाथ दास ने बहुत अच्छा किया है। उसने वैरागी के लिए उपयुक्त कर्म किया है।

वैरागी करिबे सदा नाम-सङ्कीर्तन ।

मागिया खात्रा करे जीवन रक्षण ॥223॥

वैरागी-संन्यास अवस्था में स्थित व्यक्ति को; करिबे करना चाहिए; सदा-सदैव;नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन; मागिया-भिक्षा माँगकर; खाजा-खाकर; करे जीवन रक्षण-वह अपनी प्राण रक्षा करता है।

अनुवाद

"वैरागी को सदैव भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए। उसे भिक्षा माँगकर खाना चाहिए और इस तरह अपना जीवन-निर्वाह करना चाहिए।"

तात्पर्य

हरि भक्ति विलास के बीसवें विलास के अन्त (366, 379, 382) में कहा गया है :

कृत्यान्येतानि तु प्रायो गृहिणां धनिनां सताम् ।

लिखितानि न तु त्यक्तपरिग्रहमहात्मनाम् ॥

प्रभाते चार्धरात्रे च मध्याह्न दिवस-क्षये ।

कीर्तयन्ति हरिं ये वै ते तरन्ति भवार्णवम् ॥

एवमेकान्तिनां प्रायः कीर्तनं स्मरणं प्रभोः ।

कुर्वतां परमप्रीत्या कृत्यमन्यन्न रोचते ॥

धनवान गृहस्थ वैष्णव उस वैरागी के समान नहीं रह सकता, जो शुद्ध नाम की पूर्ण शरण ग्रहण करता है। ऐसे गृहस्थ को प्रातः, दोपहर तथा संध्या समय कृष्ण नाम का कीर्तन करना चाहिए। तभी वह अविद्या को पार कर सकेगा। किन्तु संन्यास आश्रम में स्थित शुद्ध भक्तों को, जो कि कृष्ण के चरणकमलों के पूर्ण शरणागत हैं, कृष्ण के चरणकमलों का सदैव चिन्तन करते हुए अतीव श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन करना चाहिए। उनके पास भगवान् के पवित्र नाम कीर्तन के अतिरिक्त अन्य कोई काम नहीं होना चाहिए। भक्ति सन्दर्भ (283) में श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं :

यद्यपि श्रीभागवतमते पञ्चरात्रादिवदर्चनमार्गस्यावश्यकत्वं नास्ति, तद् विनापि शरणापत्त्यादीनाम् एकतरेणापि पुरुषार्थसिद्धेरभिहितत्वात्।

"श्रीमद्भागवत का मत है कि अर्चाविग्रह की पूजा की प्रक्रिया वास्तव में आवश्यक नहीं है, जिस तरह पँचरात्र तथा अन्य शास्त्रों के विशेष सिद्धान्तों का पालन अनिवार्य नहीं है। भागवत का आदेश है कि अर्चाविग्रह की पूजा किये बिना भी मनुष्य अन्य किसी आध्यात्मिक विधि से मानव जीवन की पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है, जैसे कि भगवान् से संरक्षण पाने हेतु उनके चरणों में पूर्ण आत्म-समर्पण करना।"

वैरागी हञा **येबा करे परापेक्षा ।**

कार्य-सिद्धि नहे, कृष्ण करेन उपेक्षा ॥224॥

वैरागी हञा-त्यागी होकर; येबा-जो कोई भी; करे-करता है; पर-अपेक्षा–दूसरों का आश्रय; कार्य-सिद्धि नहे—वह सफल नहीं होता; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करेन उपेक्षा-उपेक्षा करते हैं।

अनुवाद

"वैरागी (संन्यासी) को अन्यों पर आश्रित नहीं रहना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है, तो वह असफल होगा और कृष्ण द्वारा उपेक्षित होगा।"

वैरागी हञा **करे जिह्वार लालस ।**

परमार्थ याय, आर हय रसेर वश ॥225॥

वैरागी हञा-त्यागी होकर; करे-करता है; जिह्वार-जीभ का; लालस-लालच; परम-अर्थ-जीवन का लक्ष्य; याय-चला जाता है; आर-तथा; हय-हो जाता है; रसेर वश–स्वाद का गुलाम।

अनुवाद

"यदि वैरागी अपनी जीभ के लिए विभिन्न प्रकार का भोजन चखने के लिए उत्सुक रहता है, तो उसका आध्यात्मिक जीवन समाप्त हो जायेगा और वह अपनी जीभ के स्वाद का गुलाम बन जायेगा।"

वैरागीर कृत्य—सदा नाम-सङ्कीर्तन ।

शाक-पत्र-फल-मूले उदर-भरण ॥ 226॥

वैरागीर त्यागी का; कृत्य-कर्तव्य; सदा-सदैव; नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन; शाक-सब्जियाँ; पत्र-पत्ते; फल-फल; मूले–मूल द्वारा; उदर-भरण-पेट भरना।

अनुवाद

"वैरागी का कर्तव्य है कि वह सदैव हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करे। उसे शाक, पत्ती, फल तथा कन्द जो भी मिल जाये, उसी से वह अपने उदर की तृप्ति करे।"

"जिह्वार लालसे येइ इति-उति धाय ।

शिश्नोदर-परायण कृष्ण नाहि पाय" ॥ 227॥

जिह्वार-जीभ के; लालसे-लालच के कारण; येइ-जो कोई भी; इति-उति–यहाँ-वहाँ; धाय-जाता है; शिश्न-जननेन्द्रियों के; उदर-पेट के; परायण-फेर में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; नाहि पाय-प्राप्त नहीं करता।

अनुवाद

"जो अपनी जीभ का दास है और जो इस प्रकार इधर-उधर घूमता रहता है एवं अपने जननांग तथा पेट के प्रति समर्पित होता है, वह कृष्ण को नहीं पा सकता।"

आर दिन रघुनाथ स्वरूप-चरणे ।

आपनार कृत्य लागि' कैला निवेदने ॥228॥

आर दिन-अगले दिन; रघुनाथ–रघुनाथ दास; स्वरूप-चरणे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी के चरणकमलों में; आपनार-अपने; कृत्य-कर्तव्य; लागि'–के लिए; कैला निवेदने निवेदन किया।

अनुवाद

अगले दिन रघुनाथ दास ने अपने कर्तव्य के विषय में स्वरूप दामोदर के चरणकमलों में निवेदन किया।

"कि लागि' छाड़ाइला घर, ना जानि उद्देश ।

कि मोर कर्तव्य, प्रभु कर उपदेश" ॥229॥

कि लागि'-किस कारण से; छाड़ाइला घर-मैंने अपना घर-परिवार त्यागा है; ना जानि–मैं नहीं जानता; उद्देश-उद्देश्य; कि-क्या; मोर कर्तव्य–मेरा कर्तव्य; प्रभु–मेरे प्रभु; कर उपदेश–कृपया मुझे उपदेश दीजिए।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "मैं नहीं जानता कि मैंने गृहस्थ जीवन क्यों छोड़ा है? मेरा कर्तव्य क्या है? कृपया मुझे उपदेश दें।"

प्रभुर आगे कथा-मात्र ना कहे रघुनाथ ।

स्वरूप-गोविन्द-द्वारा कहाय निज-बात् ॥ 230॥

प्रभुर आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष; कथा-मात्र-कोई बात; ना कहे-नहीं कहते; रघुनाथ–रघुनाथ दास; स्वरूप-गोविन्द-द्वारा-गोविन्द और स्वरूप दामोदर के माध्यम से; कहाय-कहलवाते; निज-बात्-अपने मनोभाव।

अनुवाद

रघुनाथ दास कभी भी महाप्रभु के समक्ष एक शब्द भी नहीं कहते। अपितु, वे स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा गोविन्द के माध्यम से महाप्रभु को अपनी इच्छाएँ सूचित करते।

प्रभुर आगे स्वरूप निवेदिला आर दिने ।

रघुनाथ निवेदय प्रभुर चरणे ॥ 231॥

प्रभुर आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने; निवेदिला–विनति की; आर दिने-अगले दिन; रघुनाथ निवेदय-रघुनाथ दास की विनती है; प्रभुर चरणे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में।

अनुवाद

अगले दिन स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से निवेदन किया, "रघुनाथ दास को आपके चरणों में यह कहना है कि :

"कि मोर कर्तव्य, मुञि ना जानि उद्देश ।

आपनि श्री-मुखे मोरे कर उपदेश" ॥232॥

कि-क्या; मोर कर्तव्य-मेरा कर्तव्य; मुञि-मैं; ना जानि–नहीं जानता; उद्देश-अपने जीवन का लक्ष्य; आपनि-अपने; श्री-मुखे-दिव्य मुख से; मोरे-मुझे; कर उपदेश-उपदेश दीजिए।

अनुवाद

"मैं अपना कर्तव्य अथवा जीवन-लक्ष्य नहीं जानता। इसलिए आप कृपया अपने दिव्य मुख से मुझे उपदेश दें।"

हासि' महाप्रभु रघुनाथेरे कहिल ।

तोमार उपदेष्टा करि' स्वरूपेरे दिल ॥ 233॥

हासि-हँसकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; रघुनाथेरे-रघुनाथ दास से; कहिल–कहा; तोमार-तुम्हारा; उपदेष्टा-उपदेशकर्ता; करि–रूप में; स्वरूपेरे दिल-मैंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी को बनाया है।

अनुवाद

हँसते हुए महाप्रभु ने रघुनाथ दास से कहा, "मैंने पहले ही स्वरूप दामोदर गोस्वामी को तुम्हारे उपदेशक के रूप में नियुक्त कर दिया है।

'साध्य'-'साधन'-तत्त्व शिख इँहार स्थाने ।

आमि तत नाहि जानि, इँहो यत जाने ॥ 234॥

साध्य-कर्तव्य; साधन-उसे किस प्रकार करें; तत्त्व-सत्य; शिख-सीखो; ईंहार स्थाने-इनसे; आमि-मैं; तत-इतना अधिक; नाहि जानि–नहीं जानता; इँहो–यह; यत–जितना; जाने-जानते हैं।

अनुवाद

तुम उनसे अपने कर्तव्य तथा उसे सम्पन्न करने की विधि सीख सकते हो। मैं उनके जितना नहीं जानता।

तथापि आमार आज्ञाय श्रद्धा यदि हय ।

आमार एइ वाक्ये तबे करिह निश्चय ॥ 235॥

तथापि-फिर भी; आमार आज्ञाय–मेरे आदेश में; श्रद्धा-श्रद्धा; यदि यदि; हय-है; आमार-मेरे; एइ–इन; वाक्ये-वचनों द्वारा; तबे-तब; करिह निश्चय-तुम निश्चय कर सकते हो।

अनुवाद

फिर भी यदि तुम श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक मुझसे उपदेश लेना चाहते हो, तो तुम निम्नलिखित शब्दों से अपने कर्तव्य निश्चित कर सकते हो।

ग्राम्य-कथा ना शुनिबे, ग्राम्य-वार्ता ना कहिबे ।

भाल ना खाइबे आर भाल ना परिबे ॥ 236॥

ग्राम्य-कथा-सामान्य लोगों की सांसारिक बातें; ना शुनिबे-कभी मत सुनो; ग्राम्य-वार्ता–सांसारिक बातें; ना कहिबे-मत कहो; भाल–अच्छा; ना खाइबे-मत खाओ; आर-और; भाल-आकर्षक; ना परिबे–वस्त्र मत पहनो।

अनुवाद

“न तो सामान्य लोगों की तरह बोलो और न वे जो कहें उसे सुनो। तुम न तो स्वादिष्ट भोजन करो, न ही सुन्दर वस्त्र पहनो।”

अमानी मानद हञा कृष्ण-नाम सदा ल’बे ।

व्रजे राधा-कृष्ण-सेवा मानसे करिबे ॥237॥

अमानी-सम्मान प्राप्ति की अभिलाषा न करके; मान-द-सभी को सम्मान देना; हञा-ऐसा बनकर; कृष्ण-नाम-भगवान् का पवित्र नाम; सदा-सदैव; ल 'बे-तुम्हें उच्चारण करना चाहिए; व्रजे-वृन्दावन में; राधा-कृष्ण-सेवा-राधा और कृष्ण की सेवा; मानसे-मन में; करिबे-तुम्हें करनी चाहिए।

अनुवाद

कभी सम्मान की आशा मत करो, किन्तु अन्यों को सम्मान दो। सदैव भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का जप करो और अपने मन में वृन्दावन-वासी राधा तथा कृष्ण की सेवा करो।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में कहते हैं कि जब स्त्री-पुरुष विवाहित हो जाते हैं, तो बच्चे उत्पन्न होते हैं और इस तरह वे पारिवारिक जीवन में बँध जाते हैं। ऐसे पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित बातें ग्राम्य कथा है। विरक्त व्यक्ति न तो ऐसी बातें सुनता है, न कहता है। उसे स्वादिष्ट भोजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि विरक्त व्यक्ति के लिए ऐसा भोजन अनुपयुक्त होता है। उसे अन्यों का सम्मान करना चाहिए, किन्तु अपने लिए सम्मान की आशा नहीं रखनी चाहिए। इस तरह उसे भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए तथा उसे यही सोचना चाहिए कि वृन्दावन में राधा तथा कृष्ण की सेवा किस तरह की जाए।

एइ त' सङ्क्षेपे आमि कैलुँ उपदेश।

स्वरूपेर ठाञि इहार पाइबे विशेष ॥238॥

एइ–यह; त'–निश्चित रूप से; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; आमि-मैंने; कैलै उपदेश-उपदेश दिया है; स्वरूपेर ठाञि-स्वरूप दामोदर से; इहार-उस उपदेश का; पाइबे-तुम्हें मिलेगा; विशेष-विस्तार।

अनुवाद

"मैंने संक्षेप में तुम्हें अपना उपदेश दे दिया है। अब तुम इनके विषय में स्वरूप दामोदर से विस्तार में जान सकोगे।"

तृणादपि सु-नीचेन तरोरिव सहिष्णुना।

अमानिना मान-देन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥239॥

तृणाद् अपि-मार्ग पर पड़े तिनके की अपेक्षा (से अधिक); सु-नीचेन-विनम्र होकर; तरोः–एक वृक्ष के; इव-समान; सहिष्णुना–सहनशीलता द्वारा; अमानिना-मिथ्या अभिमान से गर्वित हुए बिना; मान-देन–सभी को सम्मान देकर; कीर्तनीयः-जप किया जा सकता है; सदा-सदैव; हरिः-भगवान् का पवित्र नाम।

अनुवाद

"जो अपने आपको घास से भी तुच्छ समझता है, जो वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु है और जो निजी सम्मान की आशा नहीं रखता, बल्कि अन्यों को सम्मान देने के लिए उद्यत रहता है, वह सदैव सरलतापूर्वक भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन कर सकता है।"

एत शुनि' रघुनाथ वन्दिला चरण।

महाप्रभु कैला ताँरे कृपा-आलिङ्गन॥ 240॥

एत शुनि'-यह सुनकर; रघुनाथ–रघुनाथ दास ने; वन्दिला चरण-चरणकमलों की वन्दना की; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला–किया; ताँरे–उन्हें; कृपा-आलिङ्गन-कृपावश आलिंगन।

अनुवाद

यह सुनकर रघुनाथ दास ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की वन्दना की और महाप्रभु ने कृपापूर्वक उनका आलिंगन किया।

पुनः समर्पिला ताँरे स्वरूपेर स्थाने।

'अन्तरङ्ग-सेवा' करे स्वरूपेर सने॥241॥

पुनः–फिर से; समर्पिला-समर्पित कर दिया; ताँरे–उन्हें; स्वरूपेर स्थाने–स्वरूप दामोदर को; अन्तरङ्ग-सेवा-अत्यन्त गुह्य सेवा; करे-वे करते; स्वरूपेर सने–स्वरूप दामोदर के साथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुनः उन्हें स्वरूप दामोदर को सौंप दिया। इस प्रकार रघुनाथ दास स्वरूप दामोदर गोस्वामी के साथ अत्यन्त गुह्य सेवा करने लगे।

तात्पर्य

अन्तरंग सेवा का अर्थ है अपने आध्यात्मिक शरीर में की गई सेवा। स्वरूप दामोदर गोस्वामी पहले ललिता देवी थे। रघुनाथ दास गोस्वामी ने भी, जो उनके सहायकों में से थे, अब अपने मन में राधा तथा कृष्ण की सेवा करनी प्रारम्भ कर दी।

हेन-काले आइला सब गौड़ेर भक्त-गण ।

पूर्ववत् प्रभु सबाय करिला मिलन ॥ 242॥

हेन-काले—इस समय; आइला-आ गये; सब-सभी; गौड़ेर भक्त-गण-बंगाल से भक्त; पूर्व-वत्-पहले की तरह; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सबाय-उन सभी से; करिला मिलन-मिले।

अनुवाद

इस बार बंगाल से सारे भक्त आये और पहले ही की तरह श्री चैतन्य महाप्रभु उन सबसे प्रेमपूर्वक मिले।

सबा लञा कैला प्रभु गुण्डिचा-मार्जन ।

सबा लञा कैला प्रभु वन्य-भोजन ॥243॥

सबा लञा–उन सब को लेकर; कैला-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; गुण्डिचा-मार्जन-गुंडिचा मन्दिर की सफाई; सबा लञा–उन सबके साथ; कैला–किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; वन्य-भोजन-बगीचे में भोजन।

अनुवाद

पहले की ही तरह उन्होंने भक्तों के साथ मिलकर गुण्डिचा मन्दिर की सफाई की और बगीचे में वन भोज किया।

रथ-यात्राय सबा लञा करिला नर्तन ।

देखि' रघुनाथेर चमत्कार हैल मन ॥244॥

रथ-यात्राय-रथयात्रा के अवसर पर; सबा लञा-उन सबको लेकर; करिला नर्तन-नृत्य किया; देखि'–देखकर; रघुनाथेर-रघुनाथ दास का; चमत्कार–आश्चर्यचकित; हैल-हो गया; मन–मन।

अनुवाद

महाप्रभु ने पुनः रथयात्रा उत्सव के समय भक्तों के साथ नृत्य किया। यह देखकर रघुनाथ दास आश्चर्यचकित हो गये।

रघुनाथ-दास यबे सबारे मिलिला ।

अद्वैत-आचार्य ताँरे बहु कृपा कैला ॥245 ॥

रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास; यबे-ज़ब; सबारे मिलिला–सभी भक्तों से मिले; अद्वैत-आचार्च-अद्वैत आचार्य ने; ताँरे-उन्हें; बहु-अत्यन्त; कृपा-कृपा; कैला-दी।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास सभी भक्तों से मिले, तो अद्वैत आचार्य ने उन पर महती कृपा प्रदर्शित की।

शिवानन्द-सेन ताँरे कहेन विवरण ।

तोमा लैते तोमार पिता पाठाइल दश जन ॥246॥

शिवानन्द-सेन–शिवानन्द सेन ने; ताँरे–उन्हें; कहेन-कही; विवरण-सूचना; तोमा लैते–तुम्हें लाने के लिए; तोमार पिता-तुम्हारे पिता ने; पाठाइल-भेजे; दश जन-दस लोग।

अनुवाद

वे शिवानन्द सेन से भी मिले, जिन्होंने उन्हें बताया कि, "तुम्हारे पिता ने तुम्हें लेने के लिए दस व्यक्ति भेजे थे।"

तोमारे पाठाइते पत्री पाठाइल मोरे ।

झाङ्करा हइते तोमा ना पाञा गेल घरे ॥247॥

तोमारे-तुम्हें; पाठाइते-वापस भेजने के लिए; पत्री-पत्र; पाठाइल मोरे-मुझे भेजा;झाङ्करा हइते-झाँकरा से; तोमा-तुम्हें; ना पाञा-न पाकर; गेल घरे–घर लौट गये।

अनुवाद

"उन्होंने मुझे एक चिट्ठी लिखी कि मैं तुम्हें लौटा दें, किन्तु जब उन दस व्यक्तियों को तुम्हारे विषय में कोई सूचना नहीं मिली, तो वे झाँकरा से घर लौट गये।"

चारि मास रहि' भक्त-गण गौड़े गेला ।

शुनि' रघुनाथेर पिता मनुष्य पाठाइला ॥ 248॥

चारि मास-चार मास तक; रहि-रहकर; भक्त-गण-सभी भक्त; गौड़े गेला-बंगाल लौट गये; शुनि'–सुनकर; रघुनाथेर पिता-रघुनाथ दास के पिता ने; मनुष्य-एक व्यक्ति; पाठाइला–भेजा।

अनुवाद

जब बंगाल के सारे भक्त जगन्नाथपुरी में चार मास रुककर घर लौटे, तो रघुनाथ दास के पिता ने उनके आगमन के विषय में सुना। इसलिए उन्होंने शिवानन्द सेन के पास एक व्यक्ति को भेजा।

से मनुष्य शिवानन्द-सेनेरे पुछिल ।

महाप्रभुर स्थाने एक 'वैरागी' देखिल ॥249॥

से मनुष्य-वह व्यक्ति; शिवानन्द-सेनेरे-शिवानन्द सेन से; पुछिल–पूछा; महाप्रभुर स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; एक वैरागी–एक वैरागी व्यक्ति; देखिल-क्या आपने देखा।

अनुवाद

उस आदमी ने शिवानन्द सेन से पूछा, "क्या आपने श्री चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान पर किसी वैरागी को देखा है?

गोवर्धनेर पुत्र तेंहो, नाम–'रघुनाथ' ।

नीलाचले परिचय आछे तोमार साथ? ॥ 250॥

गोवर्धनेर-गोवर्धन का; पुत्र-बेटा; तेंहो-वह; नाम-नाम; रघुनाथ–रघुनाथ दास; नीलाचले-नीलाचल में; परिचय आछे-क्या भेंट हुई; तोमार साथ-आपके साथ।

अनुवाद

“वह व्यक्ति गोवर्धन मजुमदार का पुत्र रघुनाथ दास है। क्या नीलाचल में उससे आपकी भेंट हुई?”

शिवानन्द कहे,–“तेंहो हय प्रभुर स्थाने ।

परम विख्यात तेंहो, केबा नाहि जाने” ॥251॥

शिवानन्द कहे-शिवानन्द सेन ने उत्तर दिया; तेंहो-वह; हय-है; प्रभुर स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; परम विख्यात–अत्यन्त विख्यात; तेंहो-वह; केबा-कौन; नाहि जाने-नहीं जानता।

अनुवाद

शिवानन्द सेन ने उत्तर दिया, “हाँ, महोदय, रघुनाथ दास श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ है और अत्यन्त विख्यात व्यक्ति है। उसे कौन नहीं जानता?”

स्वरूपेर स्थाने तारे करियाछेन समर्पण ।

प्रभुर भक्त-गणेर तेंहो हय प्राण-सम ॥252॥

स्वरूपेर स्थाने–स्वरूप दामोदर को; तारे-उसे; करियाछेन समर्पण-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने सौंप दिया है; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गणेर-सभी भक्तों में से; तेंहो-वह; हय-है; प्राण-प्राण; सम-समान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसे स्वरूप दामोदर के संरक्षण में रख दिया है। रघुनाथ दास तो महाप्रभु के सभी भक्तों का प्राण बन चुका है।

रात्रि-दिन करे तेंहो नाम-सङ्कीर्तन ।

क्षण-मात्र नाहि छाड़े प्रभुर चरण ॥253॥

रात्रि-दिन-दिन-रात; करे-करता है; तेंहो-वह; नाम-सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन; क्षण-मात्र-एक क्षण के लिए भी; नाहि छाड़े-नहीं छोड़ता; प्रभुर चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

“वह दिन-रात हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करता है। वह क्षण भर के लिए भी श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण नहीं छोड़ता।”

परम वैराग्य तार, नाहि भक्ष्य-परिधान ।

यैछे तैछे आहार करि’ राखये पराण ॥254॥

परम-सर्वश्रेष्ठ; वैराग्य–विरक्ति की भावना; तार-उसकी; नाहि-नहीं; भक्ष्य-खाना; परिधान-पहनना; यैछे तैछे-किसी भी तरह; आहार करि’–खाकर; राखये पराण-प्राण रक्षा करता है।

अनुवाद

“वह सर्वोपरि संन्यास आश्रम में है। वह खाने या पहनने की परवाह नहीं करता। वह जैसे-कैसे भोजन करता है और अपना जीवन यापन करता है।”

दश-दण्ड रात्रि गेले ‘पुष्पाञ्जलि’ देखिया ।

सिंह-द्वारे खाड़ा हय आहार लागिया ॥ 255 ॥

दश-दण्ड–दस दंड (240 मिनट); रात्रि-रात; गेले-होने पर; पुष्पाञ्जलि-पुष्पांजलि; देखिया-देखकर; सिंह-द्वारे–सिंहद्वार पर; खाड़ा हय–खड़ा होता है; आहार लागिया-खाने के लिए कुछ भिक्षा प्राप्त करने के लिए।

अनुवाद

वह दस दण्ड (चार घण्टे) रात बीत जाने पर पुष्पांजलि देख लेने के बाद सिंहद्वार पर खड़ा होकर खाने के लिए भिक्षा माँगता है।

“केह यदि देय, तबे करये भक्षण ।

कभु उपवास, कभु करये चर्वण” ॥256॥

केह-कोई; यदि-यदि; देय-देता है; तबे-तो; करये भक्षण-वह खाता है; कभु-कभी; उपवास-उपवास; कभु-कभी; करये चर्वण-वह चबाता है।

अनुवाद

"यदि कोई कुछ दे देता है, तो वह खा लेता है। कभी-कभी वह उपवास करता है और कभी वह चबैना चबाकर रह जाता है।"

एत शुनि' सेइ मनुष्य गोवर्धन-स्थाने ।

कहिल गिया सब रघुनाथ-विवरणे ॥257॥

एत शुनि'-यह सुनकर; सेइ मनुष्य-वह सन्देशवाहक; गोवर्धन-स्थाने-गोवर्धन मजुमदार के पास; कहिल–बताया; गिया-जाकर; सब-सब कुछ; रघुनाथ-विवरणे-रघुनाथ दास का विवरण।

अनुवाद

यह सुनकर वह सन्देशवाहक गोवर्धन मजुमदार के पास लौट गया और उसने रघुनाथ दास के बारे में उसे सब कुछ बतला दिया।

शुनि' ताँर माता पिता दुःखित हइल ।

पुत्र-ठाञि द्रव्य-मनुष्य पाठाइते मन कैल ॥ 258॥

शुनि'–सुनकर; ताँर-उनके; माता पिता-माता-पिता; दुःखित हइल–अत्यन्त दुःखी हुए; पुत्र-ठाञि-अपने पुत्र के पास; द्रव्य-मनुष्य-सम्पत्ति और सेवक; पाठाइते-भेजने की; मन कैल-इच्छा करने लगे।

अनुवाद

संन्यास आश्रम में रघुनाथ दास के व्यवहार का वर्णन सुनकर उसके माता-पिता अत्यन्त दुःखी थे। इसलिए उन्होंने उसकी सुविधा के लिए कुछ सामान देकर कुछ आदमी भेजने का निश्चय किया।

चारि-शत मुद्रा, दुइ भृत्य, एक ब्राह्मण ।

शिवानन्देर ठाञि पाठाइल तत-क्षण ॥ 259॥

चारि-शत मुद्रा–चार सौ मुद्राएँ; दुइ भृत्य-दो नौकर; एक ब्राह्मण-एक ब्राह्मण; शिवानन्देर ठाञि-शिवानन्द सेन के पास; पाठाइल–भेज दिये; तत-क्षण-उसी समय।

अनुवाद

रघुनाथ दास के पिता ने तुरन्त शिवानन्द सेन के पास चार सौ मुद्राएँ, दो नौकर तथा एक ब्राह्मण भेज दिया।

शिवानन्द कहे,–"तुमि सब याइते नारिबा ।

आमि याइ यबे, आमार सङ्गे याइबा" ॥ 260॥

शिवानन्द कहे-शिवानन्द सेन ने कहा; तुमि-तुम; सब-सब; याइते नारिबा-नहीं जा सकते; आमि याइ-मैं जाऊँगा; यबे-जब; आमार सङ्गे-मेरे साथ; याइबा-तुम आ सकते हो।

अनुवाद

शिवानन्द सेन ने उन सबसे बतलाया, "तुम लोग सीधे जगन्नाथपुरी नहीं जा सकते। जब मैं वहाँ जाऊँ, तब तुम लोग मेरे साथ चल सकते हो।"

एबे घर याह, यबे आमि सब चलिमु ।

तबे तोमा सबाकारे सङ्गे लञा यामु ॥261।

एबे-अभी; घर याह-घर जाओ; यबे-जब; आमि-हम; सब-सब; चलिमु-जायेंगे; तबे-तब; तोमा सबाकारे-तुम सब को; सङ्गे-साथ; लञा–लेकर; यामु-मैं जाऊँगा।

अनुवाद

"अभी घर जाओ। जब हम सभी जायेंगे, तब तुम सबको अपने साथ ले लेंगे।"

एइ त' प्रस्तावे श्री-कवि-कर्णपूर ।

रघुनाथ-महिमा ग्रन्थे लिखिला प्रचुर ॥262॥

एइ त' प्रस्तावे-इस सन्दर्भ में; श्री-कवि-कर्णपूर-कवि कर्णपूर नामक कवि ने; रघुनाथ-महिमा-रघुनाथ दास की महिमा; ग्रन्थे-अपने ग्रन्थ (श्री चैतन्य चन्द्रोदय नाटक) में; लिखिला-लिखा; प्रचुर–विस्तार से।

अनुवाद

इस घटना का वर्णन करते हुए महान् कवि श्री कविकर्णपूर ने अपने ग्रन्थ 'श्री चैतन्य चन्द्रोदय नाटक' में रघुनाथ दास के महिमामय कार्यों के विषय में विस्तार से लिखा है।

आचार्यो यदुनन्दनः सु-मधुरः श्री-वासुदेव-प्रियस्

तच्छिष्यो रघुनाथ इत्यधिगुणः प्राणाधिको मादृशाम् ।

श्री-चैतन्य-कृपातिरेक-सतत-स्निग्धः स्वरूपानुगो

वैराग्यैक-निधिर्न कस्य विदितो नीलाचले तिष्ठताम् ॥ 263॥

आचार्य: यदुनन्दनः-यदुनन्दन आचार्य; सु-मधुरः-अत्यन्त भद्र आचरणशील; श्री-वासुदेव-प्रियः-श्री वासुदेव दत्त ठाकुर के अत्यन्त प्रिय; तत्-शिष्यः-उनका शिष्य;रघुनाथः-रघुनाथ दास; इति–अतः; अधिगुणः-गुणवान; प्राण-अधिकः-प्राणों से अधिक प्रिय; मादृशाम्-मेरे जैसे श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी शिष्यों का; श्री-चैतन्य-कृपा-श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से; अतिरेक-अत्यन्त; सतत-स्निग्धः-सदैव आनन्ददायक; स्वरूप-अनुगः-स्वरूप दामोदर के चरणचिह्नों का अनुसरण करना; वैराग्य-वैराग्य का; एक-निधिः-समुद्र; न-नहीं; कस्य–किसके द्वारा; विदितः–ज्ञात होता है;नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; तिष्ठताम्-जो रह रहे थे।

अनुवाद

"रघुनाथ दास अत्यन्त विनीत तथा कांचनपल्ली निवासी वासुदेव दत्त को अत्यधिक प्रिय यदुनन्दन आचार्य के शिष्य हैं। अपने दिव्य गुणों के कारण रघुनाथ दास श्री चैतन्य महाप्रभु के हम सभी भक्तों को सदैव प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। उन पर श्री चैतन्य महाप्रभु की अत्यधिक कृपा है, इसलिए वे सदैव अत्यन्त प्रिय हैं। वे संन्यास आश्रम के लिए उत्तम आदर्श प्रस्तुत करने वाले हैं और स्वरूप दामोदर गोस्वामी के ये अत्यन्त प्रिय अनुयायी वैराग्य के सागर हैं। नीलाचल (जगन्नाथपुरी) के निवासियों में ऐसा कौन होगा जो उन्हें भलीभाँति न जानता हो?"

तात्पर्य

यह श्लोक कवि कर्णपूर कृत श्री चैतन्य चन्द्रोदय नाटक (10.3) में से लिया गया है।

यः सर्व-लोकैक-मनोऽभिरुच्या

सौभाग्य-भूः काचिदकृष्ट-पच्या ।

यत्रायमारोपण-तुल्य-कालं

तत्प्रेम-शाखी फलवानतुल्यः ॥ 264॥

यः-जो; सर्व-लोक-पुरी के सभी भक्तों का; एक-अग्रणी; मनः–मनों का; अभिरुच्या-स्नेह द्वारा; सौभाग्य-भूः-सौभाग्य का आधार; काचित्-अवर्णनीय; अकृष्ट-पच्या-बिना जोते ही उत्तम या बिना अभ्यास के ही दक्ष; यत्र-जिसमें; अयम्-यह; आरोपण-तुल्य-कालम्-बीज को बोने के समय; तत्-प्रेम-शाखी-श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेम का वृक्ष; फल-वान्-फलयुक्त; अतुल्यः-अतुलनीय।

अनुवाद

"चूँकि वे सारे भक्तों को अत्यन्त मनोहर लगते हैं, इसलिए रघुनाथ दास गोस्वामी आसानी से सौभाग्य की उर्वर भूमि बन गये, जो श्री चैतन्य महाप्रभु का बीज बोने के लिए उपयुक्त थी। उसी समय यह बीज बो दिया गया और यह श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेम रूपी अद्वितीय वृक्ष के रूप में बढ़कर फल उत्पन्न करने लगा।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्री चैतन्य चन्द्रोदय नाटक का अगला श्लोक (10.4) है।

शिवानन्द यैछे सेइ मनुष्ये कहिला ।

कर्णपूर सेइ-रूपे श्लोक वर्णिला ॥ 265 ॥

शिवानन्द-शिवानन्द सेन ने; यैछे-जैसे; सेइ-उस; मनुष्ये-सन्देशवाहक को;कहिला–कहा; कर्णपूर-महान् कवि कर्णपूर ने; सेइ रूपे-उसी प्रकार; श्लोक वर्णिला-श्लोक रचे।

अनुवाद

इन श्लोकों में महाकवि कवि-कर्णपूर वही जानकारी देते हैं, जो शिवानन्द सेन ने रघुनाथ दास के पिता के सन्देशवाहक को दी थी।

वर्षान्तरे शिवानन्द चले नीलाचले ।

रघुनाथेर सेवक, विप्र ताँर सङ्गे चले ॥ 266॥

वर्ष-अन्तरे-अगले वर्ष; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; चले नीलाचले–जगन्नाथ पुरी जाने लगे; रघुनाथेर-रघुनाथ दास के; सेवक-सेवक; विप्र-तथा ब्राह्मण; ताँर सङ्गे–उनके साथ; चले-चल दिये।

अनुवाद

अगले वर्ष जब शिवानन्द सेन हमेशा की तरह जगन्नाथपुरी जाने लगे, तो रघुनाथ के नौकर तथा उनका रसोइया ब्राह्मण उनके साथ चल पड़े।

सेइ विप्र भृत्य, चारि-शत मुद्रा लञा ।

नीलाचले रघुनाथे मिलिला आसिया ॥ 267॥

सेइ विप्र-वह ब्राह्मण; भृत्य-सेवक; चारि-शत मुद्रा-चार सौ मुद्राएँ; लञा-लाकर; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; रघुनाथे-रघुनाथ दास से; मिलिला-मिले;आसिया-आकर।

अनुवाद

वे सेवक तथा वह ब्राह्मण अपने साथ चार सौ मुद्रा जगन्नाथपुरी ले आये और वहाँ रघुनाथ दास से मिले।

रघुनाथ-दास अङ्गीकार ना करिल ।

द्रव्य लञा दुइ-जन ताहाञि रहिल ॥ 268॥

रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास ने; अङ्गीकार ना करिल-स्वीकार नहीं किये; द्रव्य ला-धन लेकर; दुइ-जन-दो लोग; ताहाञ रहिल-वहीं रहे।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने अपने पिता द्वारा भेजा गया धन तथा आदमी स्वीकार नहीं किये। इसलिए एक नौकर तथा वह ब्राह्मण दोनों ही धन लेकर वहीं रुके रहे।

तबे रघुनाथ करि' अनेक यतन ।

मासे दुइ-दिन कैला प्रभुर निमन्त्रण ॥ 269॥

तबे-उस समय; रघुनाथ-रघुनाथ दास ने; करि' अनेक ग्रतन-अत्यन्त सावधानीपूर्वक; मासे-प्रत्येक मास; दुइ-दिन-दो दिन; कैला–किया; प्रभुर निमन्त्रण-श्री चैतन्य महाप्रभु को निमंत्रित।

अनुवाद

उसी समय रघुनाथ दास ने प्रतिमास दो दिन अपने घर पर श्री चैतन्य महाप्रभु को बड़े ध्यान से निमन्त्रित करना शुरू किया।

दुइ निमन्त्रणे लागे कौड़ि अष्ट-पण ।

ब्राह्मण-भृत्य-ठाञि करेन एतेक ग्रहण ॥ 270 ॥

दुइ निमन्त्रणे-इन दो निमन्त्रणों में; लागे-खर्च; कौड़ि अष्ट-पण-640 कोड़ियाँ; ब्राह्मण-भृत्य-ठाञि-ब्राह्मण और सेवक से; करेन–किया; एतेक-इतना ही; ग्रहण-स्वीकार।

अनुवाद

इन दोनों अवसरों पर 640 कौड़ियाँ खर्च होतीं। इसलिए वे उस नौकर तथा ब्राह्मण से इतनी ही राशि लेते।

एइ-मत निमन्त्रण वर्ष दुइ कैला ।

पाछे रघुनाथ निमन्त्रण छाड़ि' दिला ॥ 271॥

एइ-मत-इस प्रकार; निमन्त्रण-निमन्त्रण; वर्ष दुइ-दो वर्ष तक; कैला-लगातार;पाछे-अन्त में; रघुनाथ–रघुनाथ दास ने; निमन्त्रण-निमन्त्रण; छाड़ि' दिला-बन्द कर दिया।

अनुवाद

इस तरह रघुनाथ दास श्री चैतन्य महाप्रभु को दो वर्षों तक आमन्त्रित करते रहे, किन्तु दूसरे वर्ष के अन्त में उन्होंने यह बन्द कर दिया।

मास-दुइ यबे रघुनाथ ना करे निमन्त्रण ।

स्वरूपे पुछिला तबे शचीर नन्दन ॥ 272॥

मास-दुइ-दो मास तक; यबे-जब; रघुनाथ–रघुनाथ दास; ना करे निमन्त्रण-निमन्त्रण नहीं देते; स्वरूपे पुछिला-स्वरूप दामोदर से पूछते हैं; तबे-उस समय; शचीरनन्दन-शची माता के पुत्र, श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास ने लगातार दो मास तक महाप्रभु को आमन्त्रित नहीं किया, तो शचीपुत्र महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर से पूछा।

'रघु केने आमाय निमन्त्रण छाड़ि' दिल?'।

स्वरूप कहे,–"मने किछु विचार करिल" ॥273॥

रघु-रघुनाथ दास ने; केने-क्यों; आमाय-मुझे; निमन्त्रण-निमन्त्रण देना; छाड़ि' दिल–छोड़ दिया; स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया; मने-उसके मन में; किछु-कुछ; विचार करिल-उसने विचार किया है।

अनुवाद

महाप्रभु ने पूछा, "रघुनाथ दास ने मुझे निमन्त्रण देना क्यों बन्द कर दिया है?" स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया, "उसने मन में फिर से कुछ सोचा होगा।"

विषयीर द्रव्य लञा करि निमन्त्रण।

प्रसन्न ना हय इहाय जानि प्रभुर मन ॥ 274॥

विषयीर द्रव्य-भौतिकतावादी लोगों द्वारा प्रदान की गई वस्तुएँ; लञा–लेकर; करि निमन्त्रण-मैं निमंत्रित करता हूँ; प्रसन्न-सन्तुष्ट; ना हय-नही हैं; इहाय-इस कारण से; जानि–मैं समझ सकता हूँ; प्रभुर मन-श्री चैतन्य महाप्रभु का मन॥

अनुवाद

"मैं भौतिकतावादी व्यक्तियों से सामग्री लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु को आमन्त्रित करता हूँ। मैं जानता हूँ कि इससे महाप्रभु का मन प्रसन्न नहीं होता।"

मोर चित्त द्रव्य लइते ना हय निर्मल।

एइ निमन्त्रणे देखि,–'प्रतिष्ठा'-मात्र फल ॥ 275॥

मोर चित्त-मेरी चेतना; द्रव्य लइते-सम्पत्ति लेने के कारण; ना हय-नहीं है; निर्मल-शुद्ध; एइ निमन्त्रणे-इस निमन्त्रण द्वारा; देखि-मैं देखता हूँ; प्रतिष्ठा–सम्मान; मात्र केवल; फल-परिणाम।

अनुवाद

"मेरा मन मलिन है, क्योंकि मैं यह सारा सामान उन लोगों से लेता हूँ जो केवल धन में रुचि रखने वाले हैं। इसलिए ऐसे निमन्त्रण से मैं कुछ भौतिक यश ही प्राप्त करता हूँ।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि देहात्मबुद्धि में फसे लोग भौतिकतावादी कहलाते हैं। यदि हम ऐसे लोगों की भेंटे स्वीकार करके उन्हें भगवान् के समक्ष प्रस्तुत करते हैं तथा वैष्णवों को प्रसाद ग्रहण करने के लिए आमन्त्रित करते हैं, तो उससे हमें केवल भौतिक ख्याति मिल सकेगी, शुद्ध वैष्णव की सेवा के लिए कोई वास्तविक लाभ नहीं होगा। इसलिए मनुष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणों में पूर्णतया समर्पित होकर भगवान् की सेवा करनी चाहिए। यदि ईमानदारी से कमाये गये धन को भगवान् की सेवा में लगाया जाता है, तो वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की, गुरु की तथा वैष्णवों की वास्तविक सेवा है।

उपरोधे प्रभु मोर मानेन निमन्त्रण ।

ना मानिले दुःखी हइबेक मूर्ख जन ॥ 276॥

उपरोधे–विनति पर; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; मोर-मेरा; मानेन–स्वीकार करते हैं; निमन्त्रण-निमन्त्रण; ना मानिले–यदि वे नहीं स्वीकार करते; दुःखी-अप्रसन्न; हइबेक-हो जायेगा; मूर्ख जन-मूर्ख व्यक्ति।

अनुवाद

"मेरे अनुरोध पर श्री चैतन्य महाप्रभु निमन्त्रण स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि यदि वे निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते, तो मुझ जैसा मूर्ख व्यक्ति दुःखी होगा।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि जो लोग विद्वान हैं, किन्तु भौतिक भोग के प्रति आसक्त रहते हैं, जो भौतिक सम्पत्ति, कुलीन जन्म तथा विद्या के कारण गर्वित रहते हैं, वे अर्चाविग्रह की दिखावटी भक्ति कर सकते हैं और वैष्णवों को प्रसाद भी दे सकते हैं। किन्तु अपने अज्ञान के कारण वे यह समझ नहीं सकते कि चूँकि उनके मन भौतिकता से दूषित हैं, इसलिए न तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण, न ही वैष्णव जन उनकी भेंटे स्वीकार करते हैं। यदि कोई ऐसे भौतिकतावादी लोगों से अर्चाविग्रह तथा वैष्णवों को भोजन भेंट करने के लिए धन लेता है, तो शुद्ध वैष्णव इसे स्वीकार नहीं करता। इससे भौतिकतावादियों को दुःख होता है, क्योंकि वे देहात्मबुद्धि में मग्न रहते हैं। इसलिए वे कभी-कभी वैष्णवों के विरुद्ध हो जाते हैं।

एत विचारिया निमन्त्रण छाड़ि' दिल ।

शुनि' महाप्रभु हासि' बलिते लागिल ॥ 277॥

एत विचारिया-यह सोचकर; निमन्त्रण-निमन्त्रण; छाड़ि' दिल-छोड़ दिया; शुनि'–सुनकर; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; हासि-हँसकर; बलिते लागिल-कहने लगे।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने यह कहकर समाप्त किया कि, "इन सारी बातों पर विचार करके उसने आपको आमन्त्रित करना बन्द कर दिया है। यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु हँसे और कहने लगे।"

"विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन ।

मलिन मन हैले नहे कृष्णेर स्मरण" ॥278॥

अनला विषयीर-विषयी लोगों का; अन्न–अन्न; खाइले–यदि कोई खाता है; मलिन-दूषित; हय मन-मन हो जाता है; मलिन–दूषित; मन हैले–जब मन हो जाए; नहे-नहीं होता; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; स्मरण-स्मरण।

अनुवाद

"जब कोई किसी भौतिकतावादी द्वारा भेंट किया हुआ भोजन खाता है, तो उसका मन कलुषित हो जाता है और जब मन कलुषित हो जाता है, तो मनुष्य ठीक से कृष्ण का चिन्तन नहीं कर पाता।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का सुझाव है कि भौतिक रूप से आसक्त लोग और तथाकथित सहजिया वैष्णव, दोनों ही विषयी अर्थात् भौतिकतावादी हैं, जो सभी बातों को गम्भीरता से नहीं लेते। इनके द्वारा दिया हुआ भोजन खाने से कल्मष उत्पन्न होता है और ऐसे कल्मष से गम्भीर से गम्भीर भक्त भी भौतिकतावादी की तरह बन जाता है। संगति छः प्रकार की होती है-दान देना, दान लेना, भोजन ग्रहण करना, भोजन देना, एकान्त में बातें करना और गुप्त रूप से प्रश्न पूछना। सहजियों जो कभी-कभी वैष्णव कहे जाते हैं तथा अवैष्णवों-इन दोनों की संगति करने से बचना चाहिए। इनकी संगति दिव्य कृष्ण भक्ति को इन्द्रियतृप्ति में बदल देती है और जब इन्द्रियतृप्ति भक्त के मन में प्रवेश कर जाती है, तो वह कलुषित हो जाता है। जो भौतिकतावादी व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति के लिए लालायित रहता है, वह कृष्ण के विषय में ठीक से नहीं सोच पाता।

विषयीर अन्न हय 'राजस' निमन्त्रण।

दाता, भोक्ता—दुँहार मलिन हय मन ॥279॥

विषयीर-भौतिकतावादी व्यक्ति द्वारा दिया हुआ; अन्न-अन्न; हय-है; राजस-रजोगुण में; निमन्त्रण-निमन्त्रण; दाता-जो देता है; भोक्ता-जो व्यक्ति ऐसा दान ग्रहण करता है; दुँहार-उन दोनों का; मलिन–दूषित; हय मन-मन हो जाता है।

अनुवाद

"जब कोई व्यक्ति रजोगुण से दूषित किसी व्यक्ति का आमन्त्रण स्वीकार कर लेता है, तो भोजन देने वाला तथा उस भोजन को स्वीकार करने वाला दोनों ही मानसिक रूप से कलुषित हो जाते हैं।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि निमन्त्रण तीन प्रकार के होते हैं-सतोगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी। शुद्ध भक्त का निमन्त्रण स्वीकार करना सतोगुणी है, और जो व्यक्ति पवित्र है, किन्तु भौतिकता में लिप्त है, उस व्यक्ति का निमन्त्रण स्वीकार करना रजोगुणी है एवं भौतिक दृष्टि से पापी व्यक्ति का निमन्त्रण स्वीकार करना तमोगुणी है।

"इँहार सङ्कोचे आमि एत दिन निल।

भाल हैल–जानिया आपनि छाड़ि दिल" ॥280॥

इँहार सङ्कोचे-उसकी आतुरता के कारण; आमि-मैंने; एत दिन-इतने दिन तक; निल-स्वीकार किया; भाल हैल-यह बहुत अच्छा है; जानिया-जानकर; आपनि–स्वयं ही; छाड़ि दिल-उसने छोड़ दिया।

अनुवाद

"रघुनाथ दास की उत्सुकता के कारण मैंने अनेक दिनों तक उसका निमन्त्रण स्वीकार किया। यह अच्छा हुआ कि रघुनाथ दास ने यह जानते हुए अब इस रीति को स्वयं त्याग दिया है।"

कत दिने रघुनाथ सिंह-द्वार छाड़िला ।

छत्रे याइ' मागिया खाइते आरम्भ करिला ॥281॥

कत दिने कुछ दिन बाद; रघुनाथ–रघुनाथ दास ने; सिंह-द्वार छाड़िला–सिंहद्वार पर खड़ा होना छोड़ दिया; छत्रे याइ'–एक भिक्षा स्थल पर जाकर; मागिया-भिक्षा माँगकर; खाइते-खाना; आरम्भ करिला-उन्होंने प्रारम्भ किया।

अनुवाद

कुछ दिनों के बाद रघुनाथ दास ने सिंहद्वार पर खड़े होना बन्द कर दिया और उसके स्थान पर वे अन्नछत्र से भिक्षा माँगकर खाने लगे।

गोविन्द-पाश शुनि' प्रभु पुछेन स्वरूपेरे ।

'रघु भिक्षा लागि' ठाड़ केने नहे सिंह-द्वारे'? ॥282॥

गोविन्द-पाश-गोविन्द से; शुनि'–सुनकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पुछेन स्वरूपेरे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी से पूछे; रघु-रघुनाथ दास; भिक्षा लागि'–भिक्षा के लिए; ठाड़ केने नहे-खड़ा क्यों नहीं होता; सिंह-द्वारे–सिंहद्वार पर।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोविन्द से यह समाचार सुना, तो उन्होंने स्वरूप दामोदर से पूछा, "अब भिक्षा माँगने के लिए रघुनाथ दास सिंहद्वार पर क्यों नहीं खड़ा होता?"

स्वरूप कहे,—"सिंह-द्वारे दुःख अनुभविया ।

छत्रे मागि' खाय मध्याह्न-काले गिया" ॥ 283॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहा; सिंह-द्वारे–सिंहद्वार पर; दुःख अनुभविया-दुःखी अनुभव कर; छत्रे–भिक्षा स्थली पर; मागि'-माँगकर; खाय-वह खाता है; मध्याह्न-काले–दिन में; गिया-जाकर।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया, "रघुनाथ दास को सिंहद्वार पर खड़े होने से दुःख होता था। इसलिए वह अब दोपहर के समय अन्नछत्र में भिक्षा माँगने जाता है।"

प्रभु कहे,–"भाल कैल, छाड़िल सिंह-द्वार"।

सिंह-द्वारे भिक्षा-वृत्ति–वेश्यार आचार ॥284॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; भाल कैल-उसने अच्छा किया; छाड़िल सिंह-द्वार–सिंहद्वार पर खड़ा होना छोड़ दिया; सिंह-द्वारे भिक्षा-वृत्ति-सिंहद्वार पर खड़े होकर भिक्षा माँगना; वेश्यार आचार-एक वेश्या का आचरण है।

अनुवाद

यह समाचार सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "उसने बहुत अच्छा किया कि सिंहद्वार पर खड़ा होना बन्द कर दिया। ऐसी भिक्षावृत्ति वेश्या के आचरण के समान है।"

तथा हि–किमर्थमयमागच्छति, अयं दास्यति, अनेन

दत्तमयमपरः। समेत्ययं दास्यति, अनेनापि न दत्तमन्यः

समेष्यति, स दास्यति इत्यादि ॥285॥

तथा हि-अतः; किम् अर्थम्-क्यों; अयम्-यह व्यक्ति; आगच्छति-आ रहा है; अयम्-यह व्यक्ति; दास्यति–देगा; अनेन–इस व्यक्ति ने; दत्तम्-दिया था; अयम्-यह; अपरः-दूसरा; समेति-पास आ रहा है; अयम्-यह व्यक्ति; दास्यति–देगा; अनेन–इस व्यक्ति ने; अपि-भी; न-नहीं; दत्तम्-दिया; अन्यः-दूसरा; समेष्यति-पास आयेगा; सः-वह; दास्यति–देगा; इति–अतः; आदि-इस प्रकार।

अनुवाद

"यह व्यक्ति आ रहा है। वह मुझे कुछ देगा। इस व्यक्ति ने मुझे पिछली रात में कुछ दिया था। अब एक दूसरा व्यक्ति इधर आ रहा है। वह मुझे कोई वस्तु दे सकता है। अभी जो व्यक्ति इधर से निकला, उसने मुझे कुछ नहीं दिया, किन्तु दूसरा व्यक्ति आयेगा और वह मुझे कुछ देगा।" संन्यास आश्रम में ऐसा व्यक्ति अपनी उदासीनता त्याग देता है और इस या उस व्यक्ति के दान पर आश्रित रहता है। इस तरह सोचते हुए वह वेश्या की वृत्ति ग्रहण कर लेता है।

"छत्रे याइ यथा-लाभ उदर-भरण ।

अन्य कथा नाहि, सुखे कृष्ण-सङ्कीर्तन" ॥ 286॥

छत्रे याइ–मुफ्त प्रसाद वितरण के स्थान पर जाकर; ग्रथा-लाभ-जो कुछ भी मिलता है; उदर-भरण-पेट भरने के लिए; अन्य-अन्य; कथा–बात; नाहि-नहीं है; सुखे-प्रसन्नता से; कृष्ण-सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन।

अनुवाद

"यदि कोई व्यक्ति निःशुल्क भोजन देने वाले लंगर में जाकर जो भी मिले उससे पेट भरता है, तो अवांछित बातों का अवसर नहीं रह जाता और वह शान्तिपूर्वक हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर सकता है।"

एत बलि' ताँरे पुनः प्रसाद करिला ।

'गोवर्धनेर शिला', 'गुञ्जा-माला' ताँरे दिला ॥287॥

एत बलि'-यह कहकर; ताँरे-उन्हें; पुनः-फिर; प्रसाद करिला-कृपा रूप कुछ दिया; गोवर्धनेर शिला-गोवर्धन पर्वत की एक शिला; गुञ्जा-माला-गुंज की एक माला; ताँरे दिला–उन्हें देकर।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोवर्धन पर्वत की एक शिला तथा गुंजामाला (छोटे शंखों की एक माला) देकर रघुनाथ दास पर पुनः कृपा की।

शङ्करानन्द-सरस्वती वृन्दावन हैते आइला ।

तेंह सेइ शिला-गुञ्जा-माला लञा गेला ॥ 288 ॥

शङ्करानन्द-सरस्वती-श्री चैतन्य महाप्रभु का एक भक्त; वृन्दावन हैते–वृन्दावन से; आइला-आया था; तेंह-वह; सेइ-वे; शिला-गुञ्जा-माला-शिला और गुंज माला; लञा लेकर; गेला-आया था।

अनुवाद

पिछली बार जब शंकरानन्द सरस्वती वृन्दावन से आये थे, तो अपने साथ गोवर्धन पर्वत से एक शिला तथा गुंजामाला (छोटे-छोटे शंखों की माला) लाये थे।

पार्श्वे गाँथा गुञ्जा-माला, गोवर्धन-शिला ।

दुइ वस्तु महाप्रभुर आगे आनि' दिला ॥289॥

पार्श्वे–एक ओर; गाँथा-बंधी हुई; गुञ्जा-माला-गुंजमाला; गोवर्धन-शिला-गोवर्धन शिला; दुइ वस्तु-दोनों वस्तुएँ; महाप्रभुर आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने;आनि' दिला–प्रस्तुत की।

अनुवाद

उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को वे दोनों वस्तुएँ-शंखों की माला तथा गोवर्धन पर्वत की शिला-दी थीं।

दुइ अपूर्व-वस्तु पाञा प्रभु तुष्ट हैला ।

स्मरणेर काले गले परे गुञ्जा-माला ॥290॥

दुई–दो; अपूर्व-वस्तु-अद्भुत वस्तुएँ; पाञा–प्राप्त कर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः तुष्ट हैला-अत्यन्त प्रसन्न हुए; स्मरणेर काले-स्मरण के समय (जब वे हरे कृष्ण जप कर रहे थे); गले-गले में; परे-पहनते; गुञ्जा-माला-छोटे-छोटे शंखों से बनी माला।

अनुवाद

इन दो असामान्य वस्तुओं को पाकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यधिक सुखी थे। वे जप करते समय उस माला को अपने गले में डाल लिया करते थे।

गोवर्धन-शिला प्रभु हृदये-नेत्रे धरे ।

कभु नासाय घ्राण लय, कभु शिरे करे ॥291॥

गोवर्धन-शिला-गोवर्धन पर्वत की शिला; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; हृदये-हृदय पर; नेत्रे-आँखों पर; धरे-रखते; कभु-कभी; नासाय-नाक से; घाण लय-पूँघते; कभु-कभी; शिरे करे-सिर पर रखते।

अनुवाद

महाप्रभु इस शिला को कभी अपने हृदय पर रखते तो कभी अपनी आँखों से लगाते। कभी वे अपनी नाक से इसे सूंघते और कभी इसे अपने सिर पर रखते।

नेत्र-जले सेइ शिला भिजे निरन्तर ।

शिलारे कहेन प्रभु—'कृष्ण-कलेवर' ॥292॥

नेत्र-जले-आँखों की आसुओं से; सेइ-वह; शिला-शिला; भिजे-भीगी रहती;निरन्तर–सदैव; शिलारे-शिला को; कहेन–कहते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कृष्ण-कलेवर–भगवान् कृष्ण का शरीर।

अनुवाद

गोवर्धन पर्वत की यह शिला महाप्रभु के नेत्रों से निकलने वाले अश्रुओं से सदैव भीगी रहती थी। श्री चैतन्य महाप्रभु कहा करते, "यह शिला साक्षात् कृष्ण का शरीर है।"

एइ-मत तिन-वत्सर शिला-माला धरिला ।

तुष्ट हञा शिला-माला रघुनाथे दिला ॥293॥

एइ-मत-इस प्रकार; तिन-वत्सर-तीन वर्ष तक; शिला-माला-शिला और गुंजमाला; धरिला-उन्होंने रखी; तुष्ट हञा–जब वे अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये; शिला-माला-शिला और माला; रघुनाथे-रघुनाथ दास को; दिला-उन्होंने दे दी।

अनुवाद

वे उस शिला तथा माला को तीन वर्षों तक अपने पास रखे रहे। तब रघुनाथ दास के आचरण से अत्यधिक प्रसन्न होकर महाप्रभु ने इन दोनों को उन्हें दे दिया।

प्रभु कहे,–"एइ शिला कृष्णेर विग्रह ।

इँहार सेवा कर तुमि करिया आग्रह" ॥294॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; एइ शिला–यह शिला; कृष्णेर विग्रह-भगवान् कृष्ण का स्वरूप; इँहार–इसकी; सेवा-उपासना; कर-करो; तुमि-तुम; करिया आग्रह–अत्यधिक उत्साहपूर्वक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ दास को यह उपदेश दिया, "यह शिला भगवान् कृष्ण का दिव्य स्वरूप है। इस शिला की पूजा अतीव उत्सुकता से करना।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु के मतानुसार गोवर्धन शिला महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण का साक्षात् स्वरूप थी। महाप्रभु ने इस शिला को तीन वर्षों तक धारण की। तब उन्होंने रघुनाथ दास के हृदय में इस शिला के बारे में भक्ति उत्पन्न की। तब महाप्रभु ने वह शिला रघुनाथ दास को अपना सर्वाधिक विश्वासपात्र सेवक स्वीकार करते हुए सौंप दी। किन्तु कुछ ईर्ष्यालु व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चूँकि रघुनाथ दास का जन्म किसी ब्राह्मण कुल में नहीं हुआ था, इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसे अर्चाविग्रह को सीधे पूजने का अधिकार नहीं दिया, अपितु उन्हें गोवर्धन से एक शिला प्रदान की। ऐसा विचार नारकी है। पद्मपुराण में कहा गया है- अर्चे विष्णौ शिलाधीगुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धिः... यस्य वा नारकी सः–यदि कोई सोचता है कि पूज्य शालग्राम शिला मात्र पत्थर है, कि गुरु सामान्य मनुष्य है अथवा भक्ति सम्प्रदाय का विश्वभर में प्रचार करने वाला शुद्ध वैष्णव किसी जाति-पाँति का सदस्य है, तो वह नारकी अर्थात् नरक जाने का पात्र माना जाता है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह उपदेश दिया कि गोवर्धन शिला पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर से अभिन्न है, तो उन्होंने ऐसे मूर्खा को अप्रत्यक्ष यह उपदेश दिया कि किसी अन्य जाति-पाँति वाले वैष्णव से कभी ईर्ष्या न करें। मनुष्य को स्वीकार करना चाहिए कि वैष्णव दिव्य होता है। इस तरह उसे बचाया जा सकता है, अन्यथा वह निश्चित रूप से नारकीय जीवन को प्राप्त होगा।

एइ शिलार कर तुमि सात्त्विक पूजन।

अचिरात् पाबे तुमि कृष्ण-प्रेम-धन ॥295॥

एइ शिलार–इस शिला का; कर-करो; तुमि-तुम; सात्त्विक पूजन-एक दक्ष ब्राह्मण की भाँति पूजन, अथवा सत्त्वगुण में; अचिरात्-अति शीघ्र; पाबे तुमि-तुम प्राप्त करोगे; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम भाव; धन-सम्पत्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "तुम आदर्श ब्राह्मण की तरह सत्त्वगुणी भाव से इस शिला की पूजा करो, क्योंकि ऐसी पूजा से तुम निश्चय ही अविलम्ब कृष्ण का भावमय प्रेम प्राप्त कर सकोगे।

एक कुँजा जल आर तुलसी-मञ्जरी ।

सात्त्विक-सेवा एई शुद्ध-भावे करि ॥296॥

एक-एक; कुँजा–पात्र; जल-जल; आर-और; तुलसी-मञ्जरी–तुलसी की मंजरी; सात्त्विक-सेवा-सत्त्वगुण में सेवा; एइ–यह; शुद्ध-भावे-पूर्ण शुद्धता से; करि-करो।

अनुवाद

"ऐसी पूजा के लिए एक लोटा पानी तथा तुलसी वृक्ष की कुछ मंजरियों की आवश्यकता पड़ती है। यदि परम शुद्धि के साथ इसे सम्पन्न किया जाए, तो यह सत्त्वगुणी पूजा है।"

दुइ-दिके दुइ-पत्र मध्ये कोमल मञ्जरी ।

एइ-मत अष्ट-मञ्जरी दिबे श्रद्धा करि' ॥ 297॥

दुइ-दिके-दो तरफ; दुइ-पत्र-दो तुलसी के पत्ते; मध्ये-बीच में; कोमल मञ्जरी-अति कोमल तुलसी मंजरी; एइ-मत-इस प्रकार; अष्ट-मञ्जरी-आठ मंजरियाँ; दिबे-अर्पित करो; श्रद्धा करि'-श्रद्धा और प्रेम के साथ।

अनुवाद

"तुम्हें चाहिए कि तुम श्रद्धा तथा प्रेम के साथ तुलसी की आठ कोमल मंजरियाँ भेंट चढ़ाओ। और इन आठों में प्रत्येक ओर दो तुलसी की पत्तियाँ हों।"

श्री-हस्ते शिला दिया एइ आज्ञा दिला ।

आनन्दे रघुनाथ सेवा करिते लागिला ॥298॥

श्री-हस्ते-अपने दिव्य हाथ से; शिला-गोवर्धन शिला; दिया-देकर; एइ आज्ञा-यह आदेश; दिला–उन्होंने दिया; आनन्दे-अत्यन्त आनन्द में; रघुनाथ–रघुनाथ दास;सेवा करिते लागिला-सेवा करने लगे।

अनुवाद

इस तरह यह परामर्श देकर कि किस तरह पूजा की जाए, श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ दास को अपने दिव्य हाथ से गोवर्धन शिला प्रदान की। महाप्रभु की आज्ञा के अनुसार ही रघुनाथ दास परम प्रसन्नतापूर्वक शिला की पूजा करने लगे।

एक-वितस्ति दुइ-वस्त्र, पिंड़ा एक-खानि ।

स्वरूप दिलेन कुँजा आनिबारे पानि ॥299॥

एक-वितस्ति-लगभग छ: इंच लम्बे; दुइ-वस्त्र-दो वस्त्र; पिंड़ा एक-खानि-एक लकड़ी का मंच; स्वरूप दिलेन-स्वरूप दामोदर ने दिया; कुँजा-एक पात्र; आनिबारे पानि-जल लाने के लिए।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने रघुनाथ दास को लगभग छह-छह इंच लम्बे दो वस्त्र, एक लकड़ी का पीढ़ा तथा जल रखने के लिए एक पात्र दिया।

एइ-मत रघुनाथ करेन पूजन ।

पूजा-काले देखे शिलाय 'व्रजेन्द्र-नन्दन' ॥300॥

एइ-मत-इस प्रकार; रघुनाथ-रघुनाथ दास गोस्वामी; करेन पूजन-पूजा करने लगे;पूजा-काले–पूजा करते हुए; देखे-वे देखते हैं; शिलाय-गोवर्धन शिला में; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र को।

अनुवाद

इस तरह रघुनाथ दास ने गोवर्धन शिला को पूजना प्रारम्भ कर दिया और जब वे पूजा करते, तो उस शिला में वे नन्द महाराज के पुत्र साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का दर्शन करते।

'प्रभुर स्वहस्त-दत्त गोवर्धन-शिला' ।

एइ चिन्ति' रघुनाथ प्रेमे भासि' गेला ॥ 301॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; स्व-हस्त-अपने हाथों से; दत्त-दी हुई; गोवर्धन-शिला-गोवर्धन शिला; एइ चिन्ति'-यह सोचकर; रघुनाथ–रघुनाथ दास; प्रेमे-प्रेमभाव में; भासि' गेला-डूब गये।

अनुवाद

यह सोचकर कि यह गोवर्धन शिला उन्हें किस तरह स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु के हाथों से प्राप्त हुई है, रघुनाथ दास सदैव प्रेमावेश से अभिभूत होते रहते।

जल-तुलसीर सेवाय ताँर यत सुखोदय ।

षोड़शोपचार-पूजाय तत सुख नय ॥ 302॥

जल-तुलसीर सेवाय-जल तथा तुलसी द्वारा पूजा करके; ताँर–उनको; यत-जितना; सुख-उदय-दिव्य सुख का अनुभव होता; षोड़श-उपचार-पूजाय-16 प्रकार की सामग्रियों द्वारा उपासना करने पर; तत-उतना; सुख-आनन्द; नये-नहीं है।

अनुवाद

केवल जल तथा तुलसी अर्पित करने से रघुनाथ दास को जितना दिव्य आनन्द मिला, उतना सोलह प्रकार की पूजा सामग्रियों से भी अर्चाविग्रह की पूजा करके प्राप्त नहीं किया जा सकता।

एइ-मत कत दिन करेन पूजन ।

तबे स्वरूप-गोसाञि ताँरे कहिला वचन ॥303॥

एइ-मत-इस प्रकार; कत दिन-कुछ दिनों तक; करेन पूजन-उन्होंने पूजा की; तबे-उस समय; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; ताँरे–उनसे; कहिला वचन-कुछ वचन कहे।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास कुछ दिनों तक गोवर्धन शिला की पूजा कर चुके, तो एक दिन स्वरूप दामोदर ने उनसे इस प्रकार कहा।

“अष्ट-कौड़ि खाजा-सन्देश कर समर्पण ।

श्रद्धा करि’ दिले, सेइ अमृतेर सम” ॥ 304॥

अष्ट-कौड़िर-आठ कौड़ि के; खाजा-सन्देश–खाजा और सन्देश (मिठाईयाँ); कर समर्पण–अर्पित करो; श्रद्धा करि'–प्रेम तथा श्रद्धा के साथ; दिले–यदि तुम भोग लगाओ; सेइ-वह; अमृतेर सम-अमृत के समान।

अनुवाद

"तुम इस गोवर्धन शिला को आठ कौड़ियों के मूल्य की सर्वोत्तम खाजा तथा सन्देश मिठाइयाँ अर्पित करो। यदि तुम श्रद्धा तथा प्रेम से इन्हें अर्पित करोगे, तो वे अमृत तुल्य बन जायेंगी।"

तबे अष्ट-कौड़िर खाजा करे समर्पण ।

स्वरूप-आज्ञाय गोविन्द ताहा करे समाधान ॥305॥

तबे-तब; अष्ट-कौड़िर-आठ कौड़ि मूल्य के; खाजा–खाजा नामक मिठाई; करे समर्पण-अर्पित करते हैं; स्वरूप-आज्ञाय-स्वरूप दामोदर के आदेश पर; गोविन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु का सेवक; ताहा-वह; करे समाधान-व्यवस्था करता है।

अनुवाद

तत्पश्चात् रघुनाथ दास खाजा नाम की कीमती मिठाई का भोग लगाने लगे, जिसकी पूर्ति स्वरूप दामोदर की आज्ञा के अनुसार गोविन्द करता था।

रघुनाथ सेइ शिला-माला यबे पाइला ।

गोसाञि अभिप्राय एइ भावना करिला ॥ 306॥

रघुनाथ–रघुनाथ दास गोस्वामी ने; सेइ शिला-वह शिला; मालामाला; यबे-जब; पाइला–प्राप्त की; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु का; अभिप्राय-उद्देश्य; एइ–यह; भावना करिला-उन्होंने सोचा।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास को श्री चैतन्य महाप्रभु से शिला तथा शंखों की माला प्राप्त हुई, तब वे महाप्रभु की आन्तरिक इच्छा समझ गये थे। अतः उन्होंने इस प्रकार सोचा।

शिला दिया गोसाञि समर्पिला 'गोवर्धने' ।

गुञ्जा-माला दिया दिला 'राधिका-चरणे' ॥307॥

शिला दिया-यह शिला देकर; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; समर्पिला–दिया; गोवर्धने-गोवर्धन के निकट एक स्थान; गुञ्जा-माला दिया–गुंजा माला देकर; दिला–दिये; राधिका-चरणे-श्रीमती राधारानी के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह गोवर्धन शिला देकर मुझे गोवर्धन पर्वत के निकट स्थान दिया है और शंख की माला देकर उन्होंने मुझे श्रीमती राधारानी के चरणकमलों में शरण दी है।"

आनन्दे रघुनाथेर बाह्य विस्मरण।

काय-मने सेविलेन गौराङ्ग-चरण ॥308॥

आनन्दे-दिव्य आनन्द में; रघुनाथेर-रघुनाथ दास का; बाह्य विस्मरण-सब बाह्य विस्मृति हो गई; काय-मने-मन और देह से; सेविलेन-सेवा की; गौराङ्ग-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

रघुनाथ दास के आनन्द की कोई सीमा न थी। वे सारी बाह्य वस्तुएँ भूलकर अपने तन तथा मन से श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की सेवा करने लगे।

अनन्त गुण रघुनाथेर के करिबे लेखा?।

रघुनाथेर नियम,—येन पाषाणेर रेखा ॥ 309॥

अनन्त गुण-असीमित दिव्य गुण; रघुनाथेर-रघुनाथ दास के; के-कौन; करिबे लेखा-लिख सकता है; रघुनाथेर-रघुनाथ दास के; नियम-कठोर नियम; येन-जैसे; पाषाणेर रेखा-पत्थर पर रेखा।

अनुवाद

भला रघुनाथ दास के असंख्य दिव्य गुणों की गणना कौन कर सकता है? उनके कठोर नियम पत्थर पर लकीर के समान थे।

तात्पर्य

यहाँ पर पाषाणेर-रेखा शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। रघुनाथ दास नियमों का इतनी कड़ाई से पालन करते कि उसकी तुलना पत्थर पर खिंची लकीरों से की जाती। जिस तरह ऐसी लकीरें कभी भी मिटाई नहीं जा सकतीं, उसीतरह रघुनाथ दास गोस्वामी द्वारा पालन किये जाने वाले नियमों को किसी भी परिस्थिति में बदला नहीं जा सकता था।

साढ़े सात प्रहर याय कीर्तन-स्मरणे ।

आहार-निद्रा चारि दण्ड सेह नहे कोन दिने ॥ 310॥

साढ़े सात प्रहर–7.5 पहर (1 पहर - 3 घंटे); याय-व्यतीत होते; कीर्तन-स्मरणे-हरे कृष्ण महामन्त्र के जप तथा कृष्ण के चरणकमलों का स्मरण करने में; आहार-निद्रा-खाना और सोना; चारि दण्ड–4 दण्ड (1 दण्ड - 24 मिनट); सेह-वह भी; नहे-नहीं;कोन दिने-किसी दिन।

अनुवाद

रघुनाथ दास चौबीस घंटों में से बाईस घंटे से अधिक हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने में तथा भगवान् के चरणकमलों का स्मरण करने में बिताते। वे डेढ़ घंटे से भी कम समय खाने तथा सोने में बिताते और किसी-किसी दिन तो वह भी सम्भव नहीं हो पाता था।

वैराग्येर कथा ताँर अद्भुत-कथन ।

आजन्म ना दिल जिह्वाय रसेर स्पर्शन ॥ 311॥

वैराग्येर–वैराग्य की; कथा–बातें; ताँर–उनकी; अद्भुत-कथन-आश्चर्यजनक विषय है; आ-जन्म-जन्म से; ना दिल-नहीं दिया; जिह्वाय-जीभ को; रसेर स्पर्शन–स्वाद।

अनुवाद

उनके वैराग्य से सम्बन्धित कथाएँ अद्भुत हैं। उन्होंने जीवन भर अपनी जीभ की तृप्ति नहीं होने दी।

छिण्डा कानि काँथा विना ना परे वसन ।

सावधाने प्रभुर कैला आज्ञार पालन ॥312॥

छिण्डा कानि–एक छोटा फटा कपड़ा; काँथा-कांथा सिली हुई चद्दर); विना-सिवाय; ना परे–नहीं पहनते; वसन-वस्त्र; सावधाने-अत्यन्त सावधानीपूर्वक; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; कैला-करते; आज्ञार पालन-आदेशों का पालन।

अनुवाद

उन्होंने पहनने के लिए एक छोटे से फटे वस्त्र तथा लपेटने के लिए गुदड़ी के अतिरिक्त किसी वस्तु का स्पर्श नहीं किया। इस तरह उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा का कठोरता के साथ पालन किया।

तात्पर्य

गुरु के आदेश का पालन कठोरतापूर्वक करना चाहिए। गुरु विभिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न आदेश देता है। उदाहरण के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु ने जीव गोस्वामी, रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी को प्रचार करने का आदेश दिया और रघुनाथ दास गोस्वामी को संन्यास आश्रम के विधि-विधानों का कड़ाई से पालन करने का आदेश दिया। छहों गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों का कड़ाई से पालन करते थे। भक्ति में उन्नति का यही नियम है। गुरु से आदेश मिलने पर मनुष्य को उसका कड़ाई से पालन करने का प्रयास करना चाहिए। यही सफलता की विधि है।

प्राण-रक्षा लागि' येबा करेन भक्षण ।

ताहा खाञा आपनाके कहे निर्वेद-वचन ॥313॥

प्राण-रक्षा लागि'–प्राण धारण करने मात्र के लिए; येबा–जितना; करेन भक्षण-वे खाते; ताहा खाञा-वे खाकर; आपनाके–स्वयं को; कहे-कहते; निर्वेद-वचन-तिरस्कार के वचन।

अनुवाद

वे जो भी खाते, शरीर तथा प्राण की रक्षा मात्र के लिए होता था और जब वे खाने बैठते, तो अपनी भर्त्सना इन शब्दों में करते।

आत्मानं चेद्विजानीयात्परं ज्ञान-धुताशयः ।

किमिच्छन्कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लम्पटः ॥314॥

आत्मानम्-आत्मा को; चेत् यदि; विजानीयात्-कोई समझता है; परम्-परम; ज्ञान-ज्ञान द्वारा; धुत-फेंकी हुई; आशयः-भौतिक इच्छाएँ; किम्-क्या; इच्छन्-इच्छा; कस्य–क्या; वा-या; हेतोः–कारण से; देहम्-भौतिक देह; पुष्णाति-पोषण करता है; लम्पटः-धूर्त।

अनुवाद

"यदि किसी का हृदय पूर्ण ज्ञान द्वारा शुद्ध हो चुका है और उसने परम ब्रह्म कृष्ण को समझ लिया है, तो उसे हर वस्तु प्राप्त हो जाती है। भला ऐसे व्यक्ति को अपने भौतिक शरीर का अच्छी तरह पोषण करने का प्रयास करते हुए लम्पट की तरह क्यों कार्य करना चाहिए?"

तात्पर्य

यह श्लोक (श्रीमद्भागवत 7.15.40) नारद ने युधिष्ठिर महाराज से गृहस्थ की भवबन्धन से मुक्ति के विषय में कहा था। आध्यात्मिक स्तर पर शरीर के लिए व्यर्थ चिन्ता नहीं की जाती। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने कहा है-देहस्मृति नाहि यार, संसार बन्धन काहाँ तार। आध्यात्मिक पद को प्राप्त व्यक्ति यह नहीं सोचता कि वह शरीर है। इसलिए वह संन्यास आश्रम में दिव्य रूप में कठिन तपस्या कर सकता है। ऐसे वैराग्य का सर्वोत्तम उदाहरण रघुनाथ दास गोस्वामी हैं।

प्रसादान्न पसारिर यत ना विकाय।

दुइ-तिन दिन हैले भात सड़ि' याय॥ 315॥

प्रसाद-अन्न-जगन्नाथ का प्रसाद; पसारिर-दुकानदारों का; यत-जितना; ना विकाय-नहीं बिकता; दुइ-तिन दिन-दो या तीन दिन; हैले-बाद; भात-भात; सड़ि याय-सड़ जाता है।

अनुवाद

भगवान जगन्नाथ का प्रसाद दुकानदारों द्वारा बेचा जाता है। जो नहीं बिक पाता वह दो-तीन दिनों बाद सड़ जाता है।

सिंह-द्वारे गाभी-आगे सेइ भात डारे।

सड़ा-गन्धे तैलङ्गी-गाइ खाइते ना पारे॥ 316॥

सिंह-द्वारे–सिंहद्वार पर; गाभी-आगे-गायों के सामने; सेइ भात-वह अन्न; डारे-वे फेंक देते; सड़ा-गन्धे-दुर्गन्ध के कारण; तैलङ्गी-गाइ-तैलंगी की गाय; खाइते ना पारे–खा नहीं पाती थी।

अनुवाद

सारा सड़ा भोजन सिंहद्वार पर तैलंग गौओं के सामने फेंक दिया जाता है। उसकी सड़न की गन्ध के कारण गौवें तक इसे नहीं खा सकतीं।

सेइ भात रघुनाथ रात्रे घरे आनि' ।

भात पाखालिया फेले घरे दिया बहु पानि ॥317॥

सेइ भात-वही फेंका हुआ भात; रघुनाथ–रघुनाथ दास; रात्रे-रात को; घरे आनि'- घर लाकर; भात-भात; पाखालिया-धोकर; फेले-डालते; घरे–घर पर; दिया-डालकर; बह पानि-बहुत सा पानी।

अनुवाद

रात में रघुनाथ दास सड़ा चावल एकत्र करते और घर लाकर उसे प्रचुर पानी से धोते थे।

भितरेर दृढ़ येइ माजि भात पाय ।

लवण दिया रघुनाथ सेइ अन्न खाय ॥318॥

भितरेर-अन्दर से; दृढ़-सख्त हिस्सा; येइ-जो; माजि-भीतरी भाग; भात-चावल; पाय–वे प्राप्त करते; लवण दिया-थोड़े नमक के साथ; रघुनाथ–रघुनाथ दास गोस्वामी;सेइ अन्न-वह अन्न; खाय-खाते।

अनुवाद

तब वे चावल के कड़े भीतरी भाग को नमक मिलाकर खाते।

एक-दिन स्वरूप ताहा करिते देखिला ।

हासिया ताहार किछु मागिया खाइला ॥ 319॥

एक-दिन-एक दिन; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; ताहा–वैसा; करिते-करते; देखिला-देखकर; हासिया-हँसकर; ताहार-उसका; किछु-कुछ भाग; मागिया खाइला-माँगे और खा लिए।

अनुवाद

एक दिन स्वरूप दामोदर ने रघुनाथ दास का यह कृत्य देख लिया, अतः वे हँसे और उस भोजन में से थोड़ा सा अंश माँगकर स्वयं उन्होंने खाया।

स्वरूप कहे,–"ऐछे अमृत खाओ निति-निति ।

आमा-सबाय नाहि देह',—कि तोमार प्रकृति?" ॥320॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहा; ऐछे-ऐसा; अमृत-अमृत; खाओ-तुम खाते हो; निति-निति–प्रतिदिन; आमा-सबाय-हम सबको; नाहि देह'-तुम नहीं देते; कि-क्या है; तोमार-तुम्हारा; प्रकृति-स्वभाव।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने कहा : "तुम प्रतिदिन ऐसा अमृत खाते हो, किन्तु हमें कभी नहीं देते। तुम्हारा स्वभाव कैसा है?"

गोविन्देर मुखे प्रभु से वार्ता शुनिला ।

आर दिन आसि' प्रभु कहिते लागिला ॥321॥

गोविन्देर मुखे-गोविन्द के मुख से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; से वार्ता-वह बात; शुनिला–सुनी; आर दिन–अगले दिन; आसि-आकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस बात का समाचार गोविन्द के मुख से सुना, तो वे अगले दिन वहाँ गये और इस प्रकार बोले।

'काँहा वस्तु खाओ सबे, मोरे ना देह' केने?'।

एत बलि' एक ग्रास करिला भक्षणे ॥322॥

काँहा-क्या; वस्तु-वस्तुएँ; खाओ-तुम खाते हो; सबे-सब; मोरे-मुझे; ना देह केने–तुम क्यों नहीं देते; एत बलि'-यह कहकर; एक ग्रास–एक ग्रास; करिला भक्षणे-खा लिया।

अनुवाद

"तुम कौन सी अच्छी वस्तुएँ खा रहे हो? तुम मुझे कोई वस्तु क्यों नहीं देते?" यह कहकर उन्होंने बलपूर्वक एक ग्रास ले लिया और खाने लगे।

आर ग्रास लैते स्वरूप हातेते धरिला ।

'तव योग्य नहे' बलि' बले काड़ि' निला ॥ 323॥

आर-दूसरा; ग्रास ग्रास; लैते-लेते हुए; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; हातेते-हाथ; धरिला-पकड़ लिए; तव-आपके; योग्य-योग्य; नहे-नहीं है; बलि'–कहकर; बले-बलपूर्वक; काड़ि'–छीनकर; निला–उन्होंने ले लिया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु दूसरा ग्रास उठा रहे थे, तब स्वरूप दामोदर ने उनका हाथ पकड़ लिया और बोले, "यह आपके योग्य नहीं है। इस तरह उन्होंने उस भोजन को बलपूर्वक ले लिया।"

प्रभु बले,–"निति-निति नाना प्रसाद खाइ ।

ऐछे स्वाद आर कोन प्रसादे ना पाइ" ॥ 324॥

प्रभु बले-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; निति-निति-दिन-प्रतिदिन; नाना प्रसाद-अनेक प्रकार के प्रसाद; खाइ-मैं खाता हूँ; ऐछे स्वाद-ऐसा अच्छा स्वाद; आर-अन्य;कोन—किसी; प्रसादे-जगन्नाथ प्रसाद में; ना पाइ–मुझे नहीं मिलता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "निस्सन्देह, मैं हररोज तरह-तरह के प्रसाद खाता हूँ, किन्तु मैंने कभी ऐसा उत्तम प्रसाद नहीं खाया, जैसाकि रघुनाथ खा रहा है।"

एइ-मत महाप्रभु नाना लीला करे।

रघुनाथेर वैराग्य देखि सन्तोष अन्तरे ॥325॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नाना लीला-अनेक लीलाएँ; करे-करते; रघुनाथेर-रघुनाथ दास का; वैराग्य-वैराग्य; देखि'–देखकर; सन्तोष अन्तरे-अर्न्तमन में सन्तुष्ट ।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथपुरी में अनेक लीलाएँ कीं। वे रघुनाथ दास को संन्यास आश्रम में कठिन तपस्या करते देखकर अत्यधिक तुष्ट थे।

आपन-उद्धार एइ रघुनाथ-दास ।

'गौराङ्ग-स्तव-कल्प-वृक्षे' करियाछेन प्रकाश ॥326॥

आपन-उद्धार-अपना उद्धार; एइ रघुनाथ-दास-यह रघुनाथ दास; गौराङ्ग-स्तव-कल्प-वृक्षे-अपनी गौराङ्ग स्तव कल्पवृक्ष नामक कविता; करियाछेन प्रकाश-वर्णित किया है।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने 'गौराङ्गस्तवकल्पवृक्ष' नामक अपनी कविता में अपने उद्धार का वर्णन किया है।

महा-सम्पद्दावादपि पतितमुद्धृत्य कृपया

स्वरूपे यः स्वीये कुजनमपि मां न्यस्य मुदितः ।

उरो-गुञ्जा-हारं प्रियमपि च गोवर्धन-शिलां

ददौ मे गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति ॥ 327॥

महा-सम्पत्-अत्यन्त भौतिक ऐश्वर्य से; दावात्-वन की आग से; अपि-यद्यपि; पतितम्-पतित; उद्धृत्य-उद्धार कर; कृपया-दया द्वारा; स्वरूपे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी को; यः-वे जो (भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; स्वीये-अपने निजी संगी को; कु-जनम्-नीच व्यक्ति; अपि यद्यपि; माम्-मुझे; न्यस्य–सौंपकर; मुदितः–प्रसन्न; उरः-वक्ष का; गुञ्जा-हारम्-गुंजामाला, शंखों का हार; प्रियम्-प्रिय; अपि यद्यपि; च–तथा; गोवर्धन-शिलाम्-गोवर्धन शिला; ददौ-प्रदान की; मे-मुझे; गौराङ्गः-भगवान् गौरांग;हृदये-मेरे हृदय में; उदयन्-प्रकट होकर; माम्-मुझे; मदयति-उन्मत्त करते हैं।

अनुवाद

"यद्यपि मैं पतित, अति अधम हूँ, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी कृपा से महान् भौतिक ऐश्वर्य की प्रज्ज्वलित दावाग्नि से मुझे उबार लिया है। उन्होंने परम प्रसन्नतापूर्वक मुझे अपने निजी संगी स्वरूप दामोदर

को सौंप दिया। महाप्रभु ने मुझे अपने वक्षस्थल पर पड़ी हुई गुंजामाला तथा गोवर्धन शिला दी, यद्यपि ये वस्तुएँ उन्हें अतीव प्रिय थीं। ऐसे श्री चैतन्य महाप्रभु मेरे हृदय के भीतर उदय होकर मुझे उन्मत्त बना देते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक रघुनाथ दास गोस्वामी कृत श्री गौराङ्गस्तवकल्पवृक्ष (11) से लिया गया है।

एइ त कहिलुँ रघुनाथेर मिलन ।

इहा येइ शुने पाय चैतन्य-चरण ॥328॥

एइ–यही; त'–तो; कहिलैं-मैंने वर्णन किया है; रघुनाथेर मिलन-रघुनाथ दास का मिलन; इहा-यह; येइ-जो कोई भी; शुने-सुनता है; पाय-प्राप्त करता है; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु से रघुनाथ दास की भेंट का वर्णन किया है। जो कोई इस घटना के विषय में सुनता है, वह श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को प्राप्त करता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥329॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों में; ग्रार–जिनकी; आश-आशा है; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर मैं कृष्णदास श्री चैतन्य चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्यलीला के 'श्री चैतन्य महाप्रभु से रघुनाथ दास गोस्वामी की भेंट' शीर्षक छठे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय सात

श्री चैतन्य महाप्रभु एवं वल्लभ भट्ट की भेंट

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में अध्याय सात का सारांश इस प्रकार से दिया है : इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु से वल्लभ भट्ट की भेंट का वर्णन हुआ है। इन दोनों महापुरुषों के बीच कुछ हास-परिहास हुआ। अन्त में श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट को सुधारा और कृपा करके उनका निमन्त्रण स्वीकार किया। इसके पूर्व, श्री चैतन्य महाप्रभु ने देखा था कि वल्लभ भट्ट गदाधर पण्डित से अत्यधिक अनुरक्त हैं। इसलिए उन्होंने गदाधर पण्डित से रुष्ट होने का अभिनय किया। बाद में जब वल्लभ भट्ट की महाप्रभु से घनिष्ठता हो गई, तो महाप्रभु ने उन्हें गदाधर पण्डित से उपदेश लेने के लिए कहा। इस तरह महाप्रभु ने गदाधर पण्डित के प्रति अपने प्रेम भाव को व्यक्त किया।

चैतन्य-चरणाम्भोज-मकरन्द-लिहो भजे ।

येषां प्रसाद-मात्रेण पामरोऽप्यमरो भवेत् ॥1॥

चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण-अम्भोज-चरणकमलों के; मकरन्द-शहद को; लिहः-जो चखने (चाटने) में रत हैं; भजे-मैं वन्दना करता हूँ; येषाम्-जिनकी; प्रसाद-मात्रेण कृपा मात्र द्वारा; पामरः-एक पतित जीव; अपि-भी; अमरः-मुक्त; भवेत्-हो जाता है।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों को सादर नमस्कार करता हूँ। महाप्रभु के चरणकमलों से मधु को चाटने में लगे भक्तों की अहैतुकी कृपा से ही एक पतितात्मा तक सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तगणों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो! और श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो।

वर्षान्तरे यत गौड़ेर भक्त-गण आइला ।

पूर्ववत् महाप्रभु सबारे मिलिला ॥3॥

वर्ष-अन्तरे-अगले वर्ष; व्रत-सभी; गौड़ेर-बंगाल के; भक्त-गण-भक्त; आइला–आये; पूर्व-वत्-पहले की तरह; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सबारे मिलिला-उन सबसे मिले।

अनुवाद

अगले वर्ष बंगाल के सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने गये और महाप्रभु पहले की ही तरह उन सबसे मिले।

एइ-मत विलास प्रभुर भक्त-गण लञा ।

हेन-काले वल्लभ-भट्ट मिलिल आसिया ॥4॥

एइ-मत-इस प्रकार; विलास-लीलाएँ; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; भक्त-गण लञा-अपने भक्तों के साथ; हेन-काले-इस समय; वल्लभ-भट्ट-वल्लभ भट्ट नामक महान् विद्वान; मिलिल-मिले; आसिया–आकर।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के साथ अपनी लीलाएँ करते रहे। तब एक विद्वान पण्डित, जिनका नाम वल्लभ भट्ट था, महाप्रभु से मिलने जगन्नाथपुरी गये।

तात्पर्य

वल्लभ भट्ट के वर्णन हेतु मध्यलीला के अध्याय 19 के श्लोक 61 को देखें।

आसिया वन्दिल भट्ट प्रभुर चरणे ।

प्रभु 'भागवत-बुद्धये' कैला आलिङ्गने ॥5॥

आसिया–आकर; वन्दिल-वन्दना की; भट्ट-वल्लभ भट्ट ने; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भागवत-बुद्ध्ये-उन्हें एक महान् भक्त मानकर; कैला आलिङ्गने-आलिंगन किया।

अनुवाद

जब वल्लभ भट्ट आये, तो उन्होंने महाप्रभु के चरणकमलों में नमस्कार किया। महाप्रभु ने उन्हें महान् भक्त के रूप में स्वीकार करते हुए उनका आलिंगन किया।

मान्य करि' प्रभु तारे निकटे वसाइला ।

विनय करिया भट्ट कहिते लागिला ॥6॥

मान्य करि'-अत्यन्त सम्मानपूर्वक; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तारे-उन्हें; निकटे-पास; वसाइला–बैठाया, बिठाया; विनय करिया-अत्यन्त विनम्रतापूर्वक; भट्ट-वल्लभभट्ट; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट को अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने निकट बैठाया। तब वल्लभ भट्ट अत्यन्त विनयपूर्वक कहने लगे।

बहु-दिन मनोरथ तोमा' देखिबारे ।

जगन्नाथ पूर्ण कैला, देखिलुँ तोमारे ॥7॥

बहु-दिन-बहुत समय से; मनोरथ–मेरी इच्छा; तोमा' देखिबारे-आपके दर्शन करने की; जगन्नाथ–भगवान जगन्नाथ ने; पूर्ण कैला–पूर्ण कर दी; देखिलँ तोमारे-मैंने आपके दर्शन प्राप्त किये हैं।

अनुवाद

"हे प्रभु, मैं बहुत समय से आपका दर्शन करना चाह रहा था। अब भगवान् जगन्नाथ ने मेरी यह इच्छा पूरी की है, इसलिए मैं आपका दर्शन कर रहा हूँ।"

तोमार दर्शन ये पाय सेइ भाग्यवान् ।

तोमाके देखिये,—येन साक्षात्भगवान् ॥8॥

तोमार दर्शन-आपके दर्शन; ये पाय-जो प्राप्त करता है; सेइ-वह; भाग्यवान्-बहुत भाग्यशाली; तोमाके देखिये-मैं आपको देख रहा हूँ; येन–समान; साक्षात् भगवान्-साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"जो आपका दर्शन पाता है, वह सचमुच भाग्यशाली है, क्योंकि आप साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।"

तोमारे ये स्मरण करे, से हय पवित्र ।

दर्शने पवित्र हबे,—इथे कि विचित्र? ॥9॥

तोमारे-आपको; ये-जो कोई भी; स्मरण करे-याद करता है; से-वह; हय-हो जाता है; पवित्र-शुद्ध; दर्शने-देखने मात्र से; पवित्र-शुद्ध; हबे-हो जायेगा; इथे-इसमें; कि विचित्र-क्या आश्चर्य है।

अनुवाद

"चूँकि जो कोई आपका स्मरण करता है, वह पवित्र हो जाता है, इसलिए इसमें कौन सा आश्चर्य है कि आपका दर्शन करने पर कोई पवित्र हो जाये?"

येषां संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुध्यन्ति वै गृहाः ।

किं पुनर्दर्शन-स्पर्श-पाद-शौचासनादिभिः ॥10॥

येषाम्-जिनके; संस्मरणात्-स्मरण द्वारा; पुंसाम्-लोगों के; सद्यः-तुरन्त; शुध्यन्ति-शुद्ध हो जाते हैं; वै–निश्चित रूप से; गृहाः-घर; किम् पुनः-क्या कहना; दर्शन-दर्शन द्वारा; स्पर्श-स्पर्श; पाद-शौच-चरणों को धोकर; आसन-आदिभिः-एक आसन अर्पित करना।

अनुवाद

"महापुरुषों का स्मरण करने मात्र से सारा घर पवित्र हो जाता है, तो फिर उनका प्रत्यक्ष दर्शन करने, उनके चरणकमलों का स्पर्श करने, उनका पाद-प्रक्षालन करने या उन्हें आसन देने के विषय में क्या कहा जा सकता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.19.33) से है।

कलि-कालेर धर्म-कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन ।

कृष्ण-शक्ति विना नहे तार प्रवर्तन ॥11॥

कलि-कालेर-इस कलियुग का; धर्म-धर्म; कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का संकीर्तन; कृष्ण-शक्ति विना-भगवान् कृष्ण द्वारा शक्ति प्राप्त किये बिना; नहे–नहीं होता; तार-उसका; प्रवर्तन–प्रचार।

अनुवाद

कलियुग में मूलभूत धार्मिक प्रणाली कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने की है। कृष्ण द्वारा शक्ति प्राप्त किये बिना संकीर्तन आन्दोलन का प्रसार कोई नहीं कर सकता।

ताहा प्रवर्ताइला तुमि,—एइ त 'प्रमाण' ।

कृष्ण-शक्ति धर तुमि,—इथे नाहि आन ॥12॥

ताहा-वह; प्रवर्ताइला–प्रचार किया है; तुमि-आपने; एइ-यह; त–निश्चित रूप से; प्रमाण-प्रमाण; कृष्ण-शक्ति-कृष्ण की शक्ति; धर-धारण करते हो; तुमि-आप; इथे नाहि आन-इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अनुवाद

"आपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन को प्रसारित किया है। इसलिए यह स्पष्ट है कि आप कृष्ण द्वारा शक्ति प्राप्त हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

तात्पर्य

श्री मध्वाचार्य ने नारायण संहिता के निम्नलिखित उद्धरण की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है :

द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पञ्चरात्रैस्तु केवलैः।

कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः॥

"द्वापर युग में पंचरात्रिकी विधि से पूजा करके कृष्ण या विष्णु को तुष्ट किया जा सकता है, किन्तु कलियुग में केवल भगवान् के नाम कीर्तन द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि को तुष्ट किया और पूजा जा सकता है।" श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि कृष्ण की अहैतुकी कृपा से आविष्ट हुए बिना कोई जगद्गुरु नहीं बन सकता। केवल मानसिक-कल्पना से कोई आचार्य नहीं बन सकता। वास्तविक आचार्य विश्वभर में भगवान् के पवित्र नाम का प्रचार करके हर एक को कृष्ण की भेंट देता है। इस तरह नाम कीर्तन करके शुद्ध होकर बद्धजीव संसार की प्रज्वलित अग्नि से बच जाते हैं। इस तरह का आध्यात्मिक लाभ आकाश में चन्द्रमा के समान वर्धित होकर पूर्ण होता है। वास्तविक आचार्य को कृष्ण-कृपा का अवतार मानना चाहिए। निस्सन्देह, वह स्वयं कृष्ण का आलिंगन किये रहता है। इसलिए वह सभी वर्गों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) तथा सभी आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) का गुरु होता है। चूँकि वह सबसे बड़ा भक्त माना जाना चाहिए, इसलिए वह परमहंस ठाकुर कहलाता है। 'ठाकुर' उपाधि परमहंस को प्रदान की जाती है। इसलिए जो आचार्य की भूमिका निभाता है अर्थात् कृष्ण के नाम तथा यश का विस्तार करके कृष्ण को सीधे प्रस्तुत करता है, वह परमहंस ठाकुर भी कहलाता है।

जगते करिला तुमि कृष्ण-नाम प्रकाशे।

येइ तोमा देखे, सेइ कृष्ण-प्रेमे भासे ॥13॥

जगते-सम्पूर्ण विश्व में; करिला–किया है; तुमि-आपने; कृष्ण-नाम प्रकाशे-भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का प्राकट्य; येइ-जो कोई भी; तोमा देखे-आपको देखता है; सेइ-वह; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम में; भासे-डूब जाता है।

अनुवाद

"आपने सारे जगत् में कृष्ण नाम को उजागर किया है। जो भी आपको देखता है, वह तुरन्त कृष्ण-प्रेम में निमग्न हो जाता है।"

प्रेम-परकाश नहे कृष्ण-शक्ति विने।

'कृष्ण'–एक प्रेम-दाता, शास्त्र-प्रमाणे ॥14॥

प्रेम-कृष्ण-प्रेम भाव का; परकाश-प्राकट्य; नहे-नहीं हो सकता; कृष्ण-शक्ति विने-कृष्ण की शक्ति के बिना; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; एक-एक मात्र, प्रेम-दाता-प्रेम देने वाले; शास्त्र-प्रमाणे सभी प्रामाणिक शास्त्रों का निष्कर्ष।

अनुवाद

कृष्ण द्वारा विशेष शक्ति प्राप्त किये बिना कोई कृष्ण-प्रेम उजागर नहीं कर सकता, क्योंकि कृष्ण ही परमानन्द प्रेम के एकमात्र दाता हैं। यही सारे प्रामाणिक शास्त्रों का निर्णय है।

सन्त्ववतारा बहवः

पुष्कर-नाभस्य सर्वतो-भद्राः ।

कृष्णादन्यः को वा

लतास्वपि प्रेम-दो भवति ॥15॥

सन्तु-होने दो; अवतारा:–अवतार; बहवः–अनेक; पुष्कर-नाभस्य–जिनकी नाभि से एक कमल खिलता है; सर्वतः भद्राः–पूर्णतया शुभ; कृष्णात्-भगवान् कृष्ण की अपेक्षा; अन्यः-अन्य; कः वा-कौन (सा); लतासु–शरणागत जीवों को; अपि-भी; प्रेम-दः-प्रेम देनेवाला; भवति–है।

अनुवाद

"भगवान् के कई सर्वमंगलकारी अवतार हो सकते हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण के अतिरिक्त ऐसा कौन है, जो शरणागतों को भगवत्प्रेम प्रदान कर सके?"

तात्पर्य

यह श्लोक बिल्वमंगल ठाकुर कृत है। यह श्री रूप गोस्वामी द्वारा अपने लघु भागवतामृत (1.5.37) में लिया गया है।

महाप्रभु कहे–"शुन, भट्ट महा-मति ।

मायावादी सन्यासी आमि, ना जानि कृष्ण-भक्ति" ॥16॥

महाप्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; शुन-कृपया सुनो; भट्ट–मेरे प्रिय वल्लभ भट्ट; महा-मति–विद्वान पण्डित; मायावादी–मायावादी; सन्यासी-संन्यासी; आमि-हूँ; ना जानि–मैं नहीं जानता; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण भक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "हे प्रिय वल्लभ भट्ट, आप विद्वान पण्डित हो। कृपया मेरी बात सुनो। मैं तो मायावादी संन्यासी हूँ। इसलिए कृष्णभक्ति जानने का मेरे पास कोई अवसर नहीं है।"

अद्वैताचार्य-गोसाञि—'साक्षातीश्वर' ।

ताँर सङ्गे आमार मन हइल निर्मल ॥17॥

अद्वैत-आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य; साक्षात् ईश्वर–साक्षात् भगवान्; ताँर सङ्गे–उनके संग के कारण; आमार-मेरा; मन–मन; हइल-हो गया है; निर्मल-शुद्ध।

अनुवाद

"फिर भी मेरा मन शुद्ध हो गया है, क्योंकि मैंने अद्वैत आचार्य की संगति की है, जो कि साक्षात् भगवान् हैं।"

सर्व-शास्त्रे कृष्ण-भक्त्ये नाहि याँर सम ।

अतएव 'अद्वैत-आचार्य' ताँर नाम ॥18॥

सर्व-शास्त्रे-सभी प्रामाणिक शास्त्रों में; कृष्ण-भक्त्ये-भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा में; नाहि-नहीं है; याँर–जिनके; सम-समान; अतएव-अतः; अद्वैत-जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी न हो; आचार्य-आचार्य; ताँर नाम-उनका नाम।

अनुवाद

उनका समस्त प्रामाणिक शास्त्रों का ज्ञान तथा उनकी भगवान् कृष्ण की भक्ति अद्वितीय है। इसीलिए वे अद्वैत आचार्य कहलाते हैं।

याँहार कृपाते म्लेच्छेर हय कृष्ण-भक्ति ।

के कहिते पारे ताँर वैष्णवता-शक्ति? ॥19॥

याँहार–जिनकी; कृपाते–कृपा द्वारा; म्लेच्छेर–म्लेच्छों की; हय–हो जाती है; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण के प्रति सेवा भावना; के-कौन; कहिते पारे-वर्णन कर सकता है; ताँर-उनकी; वैष्णवता-शक्ति–वैष्णवता की शक्ति।

अनुवाद

"वे इतने महान् पुरुष हैं कि अपनी कृपा से मांसाहारियों (म्लेच्छों) तक को कृष्ण भक्ति दिला सकते हैं। इसलिए उनकी वैष्णवता की शक्ति का अनुमान कौन लगा सकता है?"

तात्पर्य

म्लेच्छ या मांसाहारी को कृष्ण भक्त बना पाना अत्यधिक कठिन है। इसलिए जो ऐसा कर सके, वह वैष्णवता के सर्वोच्च पद पर स्थित होता है।

नित्यानन्द-अवधूत-'साक्षातीश्वर'।

भावोन्मादे मत्त कृष्ण-प्रेमेर सागर ॥20॥

नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; अवधूत-परमहंस; साक्षात् ईश्वर–साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; भाव-उन्मादे-प्रेमभाव के उन्माद में; मत्त-उन्मत्त; कृष्ण-प्रेमेर-कृष्ण के प्रेम का; सागर-समुद्र।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु अवधूत भी साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। वे प्रेमावेश के उन्माद में सदैव उन्मत्त रहते हैं। निस्सन्देह, वे कृष्ण-प्रेम के सागर हैं।

षड्-दर्शन-वेत्ता भट्टाचार्य-सार्वभौम।

षड्-दर्शने जगद्गुरु भागवतोत्तम ॥21॥

षट्-दर्शन-छः दर्शनों के; वेत्ता–ज्ञाता; भट्टाचार्य-सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; षट्-दर्शने-छः दर्शनों में; जगत्-गुरु-समस्त विश्व के शिक्षक; भागवत-उत्तम-भक्तों में सर्वश्रेष्ठ।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य छः दार्शनिक मतों के पूर्ण ज्ञाता हैं। इसलिए वे दर्शन के छः मार्गों को सिखाने में जगद्गुरु हैं। वे भक्तों में सर्वश्रेष्ठ हैं।

तेंह देखाइला मोरे भक्ति-योग-पार ।

ताँर प्रसादे जानिलुँ 'कृष्ण-भक्ति-योग' सार ॥22॥

तेंह-उन्होंने; देखाइला–दिखाया है; मोरे-मुझे; भक्ति-योग-प्रेममयी सेवा; पार-सीमा; ताँर प्रसादे-उनकी कृपा से; जानिलुँ-मैं जान गया हूँ; कृष्ण-भक्ति-भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा; योग–योग पद्धति का; सार–सार।

अनुवाद

"सार्वभौम भट्टाचार्य ने मुझे भक्ति की सीमा दिखलाई है। एकमात्र उन्हीं की कृपा से मैं यह समझ सका हूँ कि कृष्ण की भक्ति ही समस्त योग का सार है।"

रामानन्द-राय कृष्ण-रसेर निधान ।

तेंह जानाइला—कृष्ण–स्वयं भगवान् ॥23॥

रामानन्द-राय-श्रील रामानन्द राय; कृष्ण-रसेर-कृष्ण की प्रेममयी सेवा के दिव्य रसों की; निधान–खान; तेंह-उन्होंने; जानाइला–मुझे उपदेश किया; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; स्वयम्-स्वयं; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय कृष्ण भक्ति के दिव्य रस के आखरी ज्ञाता हैं। उन्होंने मुझे उपदेश दिया है कि कृष्ण ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

ताते प्रेम-भक्ति-'पुरुषार्थ-शिरोमणि' ।

राग-मार्गे प्रेम-भक्ति सर्वाधिक जानि ॥24॥

ताते-अतः; प्रेम-भक्ति-प्रेमभाव में भगवत् सेवा; पुरुषार्थ मानव जीवन के सभी उद्देश्यों में; शिरोमणि-सर्वप्रधान; राग-मार्गे–रागानुग प्रेम के मार्ग पर; प्रेम-भक्ति-कृष्ण-प्रेम; सर्व-अधिक-सबसे बड़ा है; जानि-मैं समझा हूँ।

अनुवाद

रामानन्द राय की कृपा से मैं समझ सका हूँ कि कृष्ण-प्रेम जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है और कृष्ण का रागानुग प्रेम सर्वोच्च पूर्णता है।

तात्पर्य

पुरुषार्थ ("जीवन का लक्ष्य") सामान्यतया धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का द्योतक है। किन्तु इन चार पुरुषार्थों से भी ऊपर है भगवत्प्रेम। यह परम पुरुषार्थ या पुरुषार्थ-शिरोमणि कहलाता है। भगवान् कृष्ण की पूजा साधन भक्ति द्वारा की जाती है, किन्तु भक्ति की सर्वोच्च पूर्णता भगवान् का रागानुग (स्वतः स्फूर्त) प्रेम है।

दास्य, सख्य, वात्सल्य, आर ये शृङ्गार।

दास, सखा, गुरु, कान्ता,—'आश्रय' याहार ॥25॥

दास्य-दासता; संख्य–मित्रता; वात्सल्य–मातृ-पितृ भाव का प्रेम; आर-तथा; ये-जो; शृङ्गार-माधुर्य प्रेम; दास-सेवक; सखा-मित्र; गुरु-वरिष्ठ; कान्ता-प्रेमी;आश्रय-आश्रय; याहार–जिनके।

अनुवाद

दास, मित्र, गुरुजन तथा प्रेमिका-ये दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा शृंगार रसों के आश्रय हैं।

'ऐश्वर्य-ज्ञान-युक्त', 'केवल'-भाव आर।

ऐश्वर्य-ज्ञाने ना पाइ व्रजेन्द्र-कुमार ॥26॥

ऐश्वर्य-ज्ञान-मुक्त-ऐश्वर्य ज्ञान से युक्त; केवल–शुद्ध; भाव-भावना; आर-तथा; ऐश्वर्य-ज्ञाने-ऐश्वर्य के ज्ञान द्वारा; ना पाइ–प्राप्त नहीं हो सकता; व्रजेन्द्र-कुमार-नन्द महाराज का पुत्र।

अनुवाद

"भाव के दो प्रकार हैं। भगवान् के पूर्ण ऐश्वर्यों के ज्ञान से युक्त भाव ऐश्वर्यज्ञान-युक्त कहलाता है। और शुद्ध निष्कलुष भाव केवल कहलाता है। महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण के ऐश्वर्य मात्र के ज्ञान से उनके चरणकमलों की शरण प्राप्त नहीं की जा सकती।"

तात्पर्य

देखें मध्य लीला 19.192।

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिका-सुतः ।

ज्ञानिनां चात्म-भूतानां यथा भक्ति-मतामिह ॥ 27॥

न–नहीं; अयम्-ये भगवान् श्रीकृष्ण; सुख-आपः-सरलता से उपलब्ध; भगवान् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; देहिनाम्-उन भौतिकतावादी लोगों के लिए, जिन्होंने देह को ही आत्मा मान लिया है; गोपिका-सुतः-माता यशोदा के पुत्र; ज्ञानिनाम्-मानसिक चिन्तन में रत लोगों को; च-तथा; आत्म-भूतानाम्-कठिन तपस्याओं में लगे हुए लोगों के लिए या निजी संगियों के लिए; ग्रथा-जैसे; भक्ति-मताम्-जो लोग रागानुग प्रेममयी सेवा में रत हैं; इह-इस संसार में।

अनुवाद

"माता यशोदा के पुत्र, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण उन भक्तों के लिए सुलभ हैं, जो रागानुगा भक्ति में लगे हैं, किन्तु जो लोग मानसिक चिन्तक (ज्ञानी) हैं, जो कठोर तपस्या द्वारा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं या जो शरीर को आत्मा ही मानते हैं, उनके लिए भगवान् दुर्लभ हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.9.21) का है।

'आत्म-भूत'-शब्दे कहे 'पारिषद-गण' ।

ऐश्वर्य-ज्ञाने लक्ष्मी ना पाइला व्रजेन्द्र-नन्दन ॥28॥

आत्म-भूत-शब्दे-आत्म-भूत शब्द का; कहे-अर्थ; पारिषद-गण-पार्षद, अन्तरंग संगी गण; ऐश्वर्य-ज्ञाने-ऐश्वर्य ज्ञान में लक्ष्मी-सौभाग्य की देवी; ना पाइला–प्राप्त नहीं कर सकती; व्रजेन्द्र-नन्दन–नन्द महाराज के पुत्र, कृष्ण की शरण।

अनुवाद

'आत्मभूत' शब्द का अर्थ 'निजी संगी' है। भगवान् के ऐश्वर्य ज्ञान द्वारा लक्ष्मीजी नन्द महाराज के पुत्र की शरण प्राप्त नहीं कर पाई।

तात्पर्य

लक्ष्मीजी को कृष्ण के ऐश्वर्य का पूर्ण ज्ञान है, किन्तु ऐसे ज्ञान से वे कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त नहीं कर सकीं। किन्तु वृन्दावन के भक्तों को कृष्ण का वास्तविक सान्निध्य प्राप्त है।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त-रतेः प्रसादः

स्वर्योषितां नलिन-गन्ध-रुचां कुतोऽन्याः ।

रासोत्सवेऽस्य भुज-दण्ड-गृहीत-कण्ठ-

लब्धाशिषां य उदगाद्व्रज-सुन्दरीणाम् ॥29॥

न-नहीं; अयम्-यह; श्रियः-लक्ष्मी देवी का; अङ्गे–वक्ष पर; उ-हाय; नितान्त-रतेः-जो अत्यन्त निकट से सम्बन्धित है; प्रसादः-अनुग्रह; स्वः–देव लोकों की; योषिताम्-स्त्रियों का; नलिन–कमल पुष्प की; गन्ध–सुगन्ध युक्त; रुचाम्-तथा देह की कान्ति; कुतः-अति निकृष्ट; अन्याः-अन्य सभी; रास-उत्सवे-रास नृत्य के उत्सव में;अस्य-भगवान् श्रीकृष्ण की; भुज-दण्ड–भुजाओं द्वारा; गृहीत-आलिंगित; कण्ठ–उनके गले; लब्ध-आशिषाम्-जिन्होंने ऐसी कृपा प्राप्त की; यः-जो; उदगात्-प्रकट हुई; व्रज-सुन्दरीणाम्-व्रजभूमि की दिव्य कन्याओं, सुन्दर गोपियों का।

अनुवाद

"जब भगवान् श्रीकृष्ण रास लीला में गोपियों के साथ नृत्य कर रहे थे, तब भगवान् की बाहें गोपियों की गर्दन का आलिंगन कर रही थीं। यह दिव्य कृपा न तो कभी लक्ष्मीजी को, न ही वैकुण्ठ में अन्य प्रेयसियों को प्राप्त हो पाई थी। यहाँ तक कि स्वर्ग लोक की सर्वोत्तम सुन्दरियों ने भी, जिनकी शारीरिक कान्ति तथा सुगन्ध कमल पुष्पों के समान होती है,कभी ऐसी कृपा की कल्पना नहीं की थी। तो फिर संसारी स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाए, जो भौतिक अनुमान के अनुसार अत्यन्त सुन्दर कही जाती हैं?"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.47.60) से लिया गया है।

शुद्ध-भावे सखा करे स्कन्धे आरोहण ।

शुद्ध-भावे व्रजेश्वरी करेन बन्धन ॥30॥

शुद्ध-भावे-शुद्ध कृष्णभावना में; सखा–मित्र; करे-करता है; स्कन्धे–कन्धे पर; आरोहण-चढ़ना; शुद्ध-भावे-शुद्ध कृष्णभावना में; व्रज-ईश्वरी-व्रज की रानी, यशोदा; करेन बन्धन-बाँधती हैं।

अनुवाद

शुद्ध कृष्ण चेतना में कृष्ण का मित्र कृष्ण के कन्धों पर चढ़ जाता है और माता यशोदा कृष्ण को बाँध देती हैं।

तात्पर्य

शुद्ध भाव भगवान् के ऐश्वर्यों के ज्ञान पर निर्भर नहीं रहता। ऐसे ऐश्वर्यों के बिना भी, शुद्ध भाव में स्थित भक्त, कृष्ण को मित्र या पुत्र की भाँति प्रेम करने के लिए प्रेरित रहता है।

'मोर सखा', 'मोर पुत्र',—एइ 'शुद्ध' मन।

अतएव शुक-व्यास करे प्रशंसन ॥31॥

मोर सखा-मेरा मित्र; मोर पुत्र-मेरा पुत्र; एइ–यह; शुद्ध-शुद्ध; मन-भावना; अतएव–इसीलिए; शुक-व्यास–शुकदेव गोस्वामी तथा व्यासदेव; करे प्रशंसन-प्रशंसा करते हैं।

अनुवाद

"शुद्ध कृष्ण चेतना में भगवान् के ऐश्वर्यों के ज्ञान के बिना ही भक्त कृष्ण को अपना मित्र या पुत्र मानता है। इसलिए इस भक्ति भाव की प्रशंसा शुकदेव गोस्वामी तथा व्यासदेव जैसे महाजन भी करते हैं।"

इत्थं सतां ब्रह्म-सुखानुभूत्या

दास्यं गतानां पर-दैवतेन।

मायाश्रितानां नर-दारकेण

साकं विजः कृत-पुण्य-पुञ्जाः ॥ 32॥

इत्थम्-इस प्रकार; सताम्-जो भगवान् के निराकार पहलू को चाहते हैं; ब्रह्म-निराकार ज्योति के; सुख-सुख द्वारा; अनुभूत्या-जिसने अनुभव किया है; दास्यम् सेवक का भाव; गतानाम्-जिन्होंने स्वीकार किया है; पर-दैवतेन-जो परम

आराध्य विग्रह हैं; माया-आश्रितानाम्-बहिरंगा शक्ति से प्रभावित सामान्य लोगों के लिए; नर-दारकेण-उनके (भगवान् के) साथ, जो इस भौतिक संसार के एक बालक की भाँति; साकम्-मित्रता;विजः-खेले; कृत-पुण्य-पुञ्जा:-जिन्होंने असंख्य पुण्य कार्य किये होंगे।

अनुवाद

"जो लोग भगवान् की ब्रह्मज्योति की प्रशंसा करते हुए आत्म-साक्षात्कार में लगे हुए हैं तथा जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को स्वामी के रूप में स्वीकार करके भक्ति में लगे हुए हैं अथवा जो भगवान् को सामान्य पुरुष मानकर माया के पाश में बँधे हुए हैं, वे यह नहीं समझ सकते कि कुछ महापुरुष प्रचूर पुण्य कर्म संचित करके भगवान् के साथ मैत्री वश ग्वाल बालों के रूप में खेल रहे हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.12.11) से लिया गया है।

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च साङ्ख्य-योगैश्च सात्वतैः ।

उपगीयमान-माहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम् ॥ 33॥

त्रय्या-तीन वेदों के अनुयायी जो इन्द्र तथा अन्य देवताओं द्वारा किये जानेवाले यज्ञों के समान यज्ञ करते हैं; च–तथा; उपनिषद्भिः -वैदिक ज्ञान के सर्वश्रेष्ठ अंग, उपनिषदों के अनुयायियों द्वारा; च-तथा; साङ्ख्य-ब्रह्माण्ड का विश्लेषण करने वाले दार्शनिकों द्वारा; योगैः–योगियों द्वारा; च-और; सात्वतैः-पंचरात्र तथा अन्य वैदिक ग्रन्थों में वर्णित उपासना पद्धतियों का अभ्यास करने वाले भक्तों द्वारा; उपगीयमान–गाई जाती है; माहात्म्यम्-जिनकी कीर्ति; हरिम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि को; सा-वे, माता यशोदा; अमन्यत-मानती रही; आत्म-जम्-अपना पुत्र, उनकी देह से जन्मा।

अनुवाद

"जब माता यशोदा ने कृष्ण के मुख के भीतर समस्त ब्रह्माण्डों को देखा, तो वे कुछ समय के लिए निश्चय ही आश्चर्यचकित हो गई। जिस प्रकार इन्द्र तथा अन्य देवी-देवताओं की पूजा होती है, उसी प्रकार तीन वेदों के अनुयायी यज्ञों द्वारा भगवान् की पूजा करते हैं। उपनिषदों के अध्ययन द्वारा उनकी महानता को समझने वाले सन्त निराकार ब्रह्म के रूप में उनकी उपासना करते हैं। ब्रह्माण्ड का वैश्लेषिक अध्ययन करने वाले महान्

दार्शनिक पुरुष के रूप में उनकी उपासना करते हैं। महान् योगी सर्वव्यापी परमात्मा के रूप में तथा भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में उनकी उपासना करते हैं। फिर भी माता यशोदा भगवान् को अपना पुत्र ही समझती थीं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.8.45) से लिया गया है।

नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन्श्रेय एवं महोदयम् ।

यशोदा वा महा-भागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ 34॥

नन्दः-नन्द महाराज ने; किम्-क्या; अकरोत्–किया था; ब्रह्मन्-हे ब्राह्मण; श्रेयः-शुभ कार्य; एवम्-जिस कारण से; महा-उदयम्-कृष्ण के पिता के रूप में इतने श्रेष्ठ पद तक उठ गये; यशोदा-माता यशोदा ने; वा-अथवा; महा-भागा-महा भाग्यवती; पपौ–पिए; यस्याः -जिनके; स्तनम्-स्तन; हरिः-परम भगवान् ने।

अनुवाद

"हे ब्राह्मण, नन्द महाराज ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को पुत्र रूप में पाने के लिए कौन सा पुण्य कर्म किया? तथा माता यशोदा ने कौन-सा पुण्यकर्म किया जिससे परम भगवान् कृष्ण ने उन्हें 'माता' कहकर पुकारा और उनके स्तनों का दूध पिया?"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.8.46) से है।

ऐश्वर्य देखिलेह 'शुद्धेर' नहे ऐश्वर्य ज्ञान ।

अतएव ऐश्वर्य हइते 'केवल'-भाव प्रधान ॥ 35॥

ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; देखिलेह-देखने के बाद भी; शुद्धेर-एक शुद्ध भक्त को; नहे-नहीं होता; ऐश्वर्य-ज्ञान-ऐश्वर्य का ज्ञान; अतएव–इसलिए; ऐश्वर्य हइते-ऐश्वर्य ज्ञान की अपेक्षा; केवल-भाव-शुद्ध भाव; प्रधान-अधिक प्रमुख ।

अनुवाद

"यदि शुद्ध भक्त कृष्ण के ऐश्वर्य को देखता भी है, तो वह उसे स्वीकार नहीं करता। इसलिए शुद्ध चेतना (केवल भाव) भगवान् के ऐश्वर्य ज्ञान से अधिक श्रेष्ठ है।"

ए सब शिखाइला मोरे राय-रामानन्द ।

अनर्गल रस-वेत्ता प्रेम-सुखानन्द ॥ 36॥

ए सब-ये सभी; शिखाइला–उपदेश दिये; मोरे-मुझे; राय-रामानन्द-रामानन्द राय ने; अनर्गल–निरन्तर; रस-वेत्ता-जो दिव्य रसों को समझते हैं; प्रेम-सुख-आनन्द-कृष्ण के प्रेमभाव के आनन्द में तल्लीन।

अनुवाद

"रामानन्द राय दिव्य रसों से भलीभाँति अवगत हैं। वे कृष्ण-प्रेमावेश के सुख में निरन्तर तन्मय रहते हैं। उन्हीं ने मुझे यह सब सिखाया है।"

कहन ना याय रामानन्देर प्रभाव ।

राय-प्रसादे जानिलुँ व्रजेर 'शुद्ध' भाव ॥37॥

कहन ना याय-वर्णन नहीं किया जा सकता; रामानन्देर प्रभाव-रामानन्द राय का प्रभाव; राय-रामानन्द राय की; प्रसादे–कृपा द्वारा; जानिलुँ-मैं समझ गया हूँ; व्रजेर-व्रजवासियों का; शुद्ध भाव-विशुद्ध प्रेम।

अनुवाद

रामानन्द राय के प्रभाव तथा ज्ञान का वर्णन कर सकना असम्भव है, क्योंकि उन्हीं की कृपा से मैं वृन्दावनवासियों के शुद्ध प्रेम को समझ सका।

दामोदर-स्वरूप—'प्रेम-रस' मूर्तिमान् ।

याँर सङ्गे हैल व्रज-मधुर-रस-ज्ञान ॥38॥

दामोदर-स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; प्रेम-रस-प्रेमभाव के दिव्य रसों के; मूर्तिमान्–मूर्त रूप; याँर सङ्गे–जिनके संग द्वारा; हैल-हो गया; व्रज-व्रज के; मधुर-रस-माधुर्य प्रेम रस का; ज्ञान-ज्ञान।

अनुवाद

प्रेमावेश का दिव्य रस स्वरूप दामोदर द्वारा मूर्तिमान होता है। उनकी संगति से मैंने वृन्दावन के दिव्य माधुर्य रस को समझा है।

'शुद्ध-प्रेम' व्रज-देवीर—काम-गन्ध-हीन

'कृष्ण-सुख-तात्पर्य',—एइ तार चिह्न ॥ 39॥

शुद्ध-प्रेम-निर्मल प्रेम; व्रज-देवीर-गोपियों या श्रीमती राधारानी का; काम-गन्ध-हीन–भौतिक काम भाव की गन्ध से रहित; कृष्ण-कृष्ण की; सुख–प्रसन्नता; तात्पर्य-उद्देश्य; एइ–यही; तार-उसका; चिह्न-चिह्न।

अनुवाद

"गोपियों तथा श्रीमती राधारानी का शुद्ध प्रेम भौतिक कामवासना के लेशमात्र से रहित है। ऐसे दिव्य प्रेम की कसौटी यह है कि इसका एकमात्र उद्देश्य कृष्ण को तुष्ट करना है।"

यत्ते सुजात-चरणाम्बुरुहं स्तनेषु

भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।

तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित्

कूर्पादिभिर्भमति धीर्भवदायुषां नः ॥40॥

यत्-जो; ते-आपके; सुजात-अत्यन्त कोमल; चरण-अम्बु-रुहम्-चरणकमल; स्तनेषु-स्तनों पर; भीताः–भयभीत; शनैः-धीरे से; प्रिय-हे प्रिय; दधीमहि-हम रखती हैं; कर्कशेषु-कठोर; तेन-उनके द्वारा; अटवीम्-मार्ग; अटसि-आप चलते हैं; तत्-वे; व्यथते-पीड़ित हैं; न-नहीं; किम् स्वित्-हम आश्चर्य करती हैं; कूर्प-आदिभिः-छोटे कंकरों इत्यादि द्वारा; भ्रमति–विचलित होता है; धीः-मन; भवत्-आयुषाम् उनकाजिनके आप ही प्राण-धन हैं; नः-हमारे।

अनुवाद

"हे प्रिय, आपके चरणकमल इतने कोमल हैं कि हम डरते-डरते उन्हें अपने वक्षस्थलों पर धीरे से रखती हैं कि कहीं आपके चरणों को चोट न लग जाए। हमारे प्राण केवल आप पर आश्रित हैं। इसलिए हमारे मन इस बात से चिन्तित हैं कि वनमार्ग में घूमते समय आपके चरण कहीं कंकरों से क्षत-विक्षत न हो जायें।"

तात्पर्य

यह श्लोक गोपियों द्वारा कहा गया है और श्रीमद्भागवत (10.31.19) से है।

गोपी-गणेर शुद्ध-प्रेम ऐश्वर्य-ज्ञान-हीन ।

प्रेमेते भर्त्सना करे एइ तार चिह्न ॥41॥

गोपी-गणेर-गोपियों का; शुद्ध-प्रेम-निर्मल प्रेम; ऐश्वर्य-ज्ञान-हीन-ऐश्वर्य की जानकारी से रहित; प्रेमेते-शुद्ध प्रेम में; भर्सना-डाँटना; करे-करती; एइ–यह; तार-उसी का; चिह्न-लक्षण।

अनुवाद

"ऐश्वर्य के ज्ञान से रहित शुद्ध प्रेम के वशीभूत गोपियाँ कभी-कभी कृष्ण की भर्त्सना करती हैं। यह शुद्ध प्रेम का लक्षण है।"

पति-सुतान्वय-भ्रातृ-बान्धवान्

अतिविलय तेऽन्त्यच्युतागताः ।

गति-विदस्तवोद्गीत-मोहिताः

कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥42॥

पति-पतियों की; सुत–पुत्रों की; अन्वय-परिवार; भ्रातृ-भाइयों की; बान्धवान्–सम्बन्धियों की; अतिविलय-परवाह किये बिना; ते-आपकी; अन्ति-शरण में;अच्युत-हे अच्युत; आगताः-आयी हैं; गति-विदः-जो हमारे सभी कार्यकलाप जानते हैं; तव-आपकी; उद्गीत-वंशी की ध्वनि द्वारा; मोहिताः-आकृष्ट होकर; कितव-हे। महान छलिया; योषितः-सुन्दर स्त्रियों को; कः-कौन; त्यजेत्-त्यागेगा; निशि–आधी रात के समय।

अनुवाद

"हे प्रिय कृष्ण, हम गोपियों ने अपने पतियों, पुत्रों, परिवार, भाइयों तथा मित्रों के आदेश की अवहेलना की है और आपके पास आने के लिए उनका संग छोड़ा है। आप हमारी इच्छाओं के विषय में सब कुछ जानते

हैं। हम आपकी वंशी के सर्वोत्कृष्ट संगीत से आकृष्ट होकर ही आई हैं। किन्तु आप बहुत बड़े शठ निकले, क्योंकि इस रात्रि में ऐसा कौन होगा, जो हम जैसी तरुणियों का साथ छोड़ देगा?"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.31.16) से लिया गया है।

सर्वोत्तम भजन एइ सर्व-भक्ति जिनि' ।

अतएव कृष्ण कहे,—'आमि तोमार ऋणी' ॥43॥

सर्व-उत्तम-सबसे बढ़कर; भजन-प्रेममयी सेवा; एइ-यह; सर्व-भक्ति-सब प्रकार की भक्ति; जिनि'-जीतने वाली; अतएव–अतः; कृष्ण कहे-भगवान् कृष्ण कहते हैं; आमि-मैं; तोमार-तुम्हारा; ऋणी-ऋणी हूँ।

अनुवाद

गोपियों का माधुर्य प्रेम सर्वोच्च भक्ति है, जो भक्ति की अन्य सारी विधियों को पार कर जाती है। इसलिए भगवान् कृष्ण को कहना पड़ा, 'हे गोपियों, मैं तुम लोगों का ऋण नहीं उतार सकता। निस्सन्देह, मैं तुम लोगों का सदैव ऋणी हूँ।'

न पारयेऽहं निरवद्य-संयुजां

स्व-साधु-कृत्यं विबुधायुषापि वः ।

या माभजन्दुर्जय-गेह-शृङ्खलाः

संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥44॥

न–नहीं; पारये-चुका सकता; अहम्-मैं; निरवद्य-संयुजाम्-जो कपट से पूर्णतया रहित हैं; स्व-साधु-कृत्यम्-यथोचित कीमत; विबुध-आयुषा-देवताओं के जीवन काल तक भी; अपि-यद्यपि; वः-आपको; याः-जिन्होंने; मा–मेरी; अभजन्–सेवा की; दुर्जय-गेह-शृङ्खलाः-गृहस्थ जीवन के बन्धन जिन्हें पार करना अत्यन्त कठिन है; संवृश्च्य–काटकर; तत्-वह; वः-आपका; प्रतियातु-चुकता होने दो; साधुना-सुकृत्यों द्वारा ही।

अनुवाद

"हे गोपियों, मैं तुम लोगों की निष्कलंक सेवा के ऋण को ब्रह्मा की आयु तक में भी नहीं चुका सकता। मुझसे तुम लोगों का यह सम्बन्ध निन्दा से परे है। तुम लोगों ने समस्त घरेलू सम्बन्धों को तोड़कर मेरी पूजा की है, जिन्हें तोड़ पाना कठिन होता है। इसलिए तुम्हारे यशस्वी कार्य ही तुम्हारा पुरस्कार बनें।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.32.22) से है।

ऐश्वर्य-ज्ञान हैते केवला-भाव—प्रधान ।

पृथिवीते भक्त नाहि उद्धव-समान ॥ 45 ॥

ऐश्वर्य-ज्ञान हैते-ऐश्वर्यमय दिव्य प्रेम की अपेक्षा; केवला-भाव-शुद्ध प्रेम; प्रधान-अधिक प्रमुख; पृथिवीते-संसार में; भक्त नाहि-कोई भक्त नहीं है; उद्धव-समान-उद्धव के समान।

अनुवाद

शुद्ध कृष्ण-प्रेम ऐश्वर्य में कृष्ण-प्रेम से सर्वथा भिन्न होता है और सर्वोच्च पद पर होता है। इस पृथ्वी पर उद्धव से बढ़कर कोई भक्त नहीं है।

तेंह याँर पद-धूलि करेन प्रार्थन ।

स्वरूपेर सङ्गे पाइलुँ ए सब शिक्षण ॥46॥

तेंह-वह; याँर-जिनके; पद-धूलि-चरणकमलों की धूल; करेन प्रार्थन–चाहते हैं; स्वरूपेर सङ्गे–स्वरूप दामोदर से; पाइलुँ-मैंने पाया है; ए सब-ये सब; शिक्षण-उपदेश।

अनुवाद

"उद्धव गोपियों के चरणकमलों की धूलि अपने सिर पर धारण करना चाहते हैं। मैंने स्वरूप दामोदर से भगवान् कृष्ण के इन सारे दिव्य प्रेम-व्यापारों के विषय में सीखा है।"

आसामहो चरण-रेणु-जुषामहं स्यां

वृन्दावने किमपि गुल्म-लतौषधीनाम् ।

या दुस्त्यजं स्व-जनमार्य-पथं च हित्वा

भेजुर्मुकुन्द-पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥47॥

आसाम्-गोपियों के; अहो–अरे; चरण-रेणु-चरणकमलों की धूल; जुषाम्-समर्पित; अहम् स्याम्-मैं बनूं; वृन्दावने-वृन्दावन में; किम् अपि-कोई भी; गुल्म-लता-औषधीनाम्-झाड़ियों, लताओं या औषधियों में; या-जो; दुस्त्यजम्-छोड़ने में कठिन;स्व-जनम्-परिवार जन; आर्य-पथम्प तिव्रता धर्म; च–तथा; हित्वा–छोड़कर; भेजुः-सेवा की; मुकुन्द-पदवीम्-मुकुन्द, कृष्ण के चरणकमल; श्रुतिभिः-वेदों द्वारा;विमृग्याम्-खोजने योग्य।

अनुवाद

"वृन्दावन की गोपियों ने अपने पतियों, पुत्रों तथा अन्य पारिवारिक जनों का साथ छोड़ दिया है, जिन्हें छोड़ पाना अत्यन्त कठिन होता है। और उन्होंने वैदिक ज्ञान से खोजे जाने वाले मुकुन्द के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने के लिए सतीत्व का मार्ग त्याग दिया है। ओह, यदि मैं वृन्दावन की कोई झाड़ी, लता या औषधी बन जाऊँ, तो कितना भाग्यशाली हूँगा, क्योंकि तब गोपियाँ इन्हें अपने पाँव से रौदंती हुई अपने चरणकमलों की धूल से आशीर्वाद देंगी।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.47.61) से है, जिसे उद्धव ने कहा है। जब कृष्ण ने उद्धव को वृन्दावन में गोपियों की दशा देखने के लिए भेजा, तब वे उनके साथ कुछ महीने रुके रहे और उनसे कृष्ण के विषय में लगातार बातें करते रहे। यद्यपि इससे गोपियाँ तथा वृन्दावन के अन्य निवासी अत्यन्त प्रसन्न थे, किन्तु उद्धव ने देखा कि गोपियाँ कृष्ण-विरह से अत्यन्त तीव्रता से ग्रस्त हैं। उनके हृदय इतने विचलित थे कि कभी-कभी उनके मन विक्षिप्त हो उठते थे। कृष्ण के प्रति गोपियों के शुद्ध प्रेम एवं उनकी अनन्य भक्ति को देखकर उद्धव की इच्छा हुई कि वे वृन्दावन की लता, घास की पत्ती या औषधी होते, तो गोपियाँ कभी न कभी उन पर चलतीं, जिससे उनके चरणों की धूल सिर पर धारण करने को मिल जाती।

हरिदास-ठाकुर–महा-भागवत-प्रधान ।

प्रति दिन लय तेंह तिन-लक्ष नाम ॥48॥

हरिदास-ठाकुर-हरिदास ठाकुर; महा-भागवत-प्रधान-सभी शुद्ध भक्तों में सर्वश्रेष्ठ; प्रति दिन-रोज; लय-जप करते हैं; तेंह-वे; तिन-लक्ष नाम-3,00,000 भगवान् के पवित्र नाम।

अनुवाद

"नामाचार्य हरिदास ठाकुर समस्त शुद्ध भक्तों में से सर्वाधिक पूज्य हैं। वे प्रति दिन तीन लाख पवित्र नामों का जप करते हैं।"

नामेर महिमा आमि ताँर ठाञि शिखिलुँ।

ताँर प्रसादे नामेर महिमा जानिलुँ ॥49॥

नामेर महिमा-पवित्र नाम की महिमा; आमि-मैंने; ताँर ठाञि-उनसे; शिखिलुँ-जानी; ताँर प्रसादे-उनकी कृपा से; नामेर-पवित्र नाम की महिमा-महिमा; जानिलुँ-मैं समझ सका।

अनुवाद

"मैंने तो भगवान् के पवित्र नाम की महिमा के विषय में हरिदास ठाकुर से सीखा है और उनकी कृपा से इस महिमा को जाना है।"

आचार्यरत्न आचार्यनिधि पण्डित-गदाधर।

जगदानन्द, दामोदर, शङ्कर, वक्रेश्वर ॥50॥

काशीश्वर, मुकुन्द, वासुदेव, मुरारि।

आर व्रत भक्त-गण गौड़े अवतरि' ॥51॥

कृष्ण-नाम-प्रेम कैला जगते प्रचार।

इँहा सबार सङ्गे कृष्ण-भक्ति ने आमार ॥52॥

आचार्य्यरत्न-आचार्यरत्न; आचार्य्यनिधि-आचार्यनिधि; पण्डित-गदाधर-गदाधर पण्डित; जगदानन्द-जगदानन्द; दामोदर-दामोदर; शङ्कर-शंकर; वक्रेश्वर–वक्रेश्वर; काशीश्वर–काशीश्वर; मुकुन्द-मुकुन्द; वासुदेव-वासुदेव; मुरारि-मुरारि; आर-तथा; व्रत–जितने भी; भक्त-गण-भक्तगण; गौड़े-बंगाल में; अवतरि'-अवतरित हुए; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण के

पवित्र नाम के प्रेम-दिव्य कृष्ण-प्रेम का; कैला-किया; जगते-समस्त संसार में प्रचार–प्रचार; इँहा सबार-उन सबके; सङ्गे-संग द्वारा; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण की प्रेममयी सेवा; ये-जो; आमार-मेरी।

अनुवाद

आचार्यरत्न, आचार्यनिधि, गदाधर पण्डित, जगदानन्द, दामोदर, शंकर, वक्रेश्वर, काशीश्वर, मुकुन्द, वासुदेव, मुरारि तथा अन्य अनेक भक्तों ने कृष्ण के पवित्र नाम की महिमा तथा कृष्ण के प्रति प्रेम के महत्त्व का जन-जन में प्रचार करने हेतु बंगाल में अवतार लिया है। मैंने इन्हीं से कृष्ण-भक्ति का अर्थ सीखा है।"

भट्टेर हृदये दृढ़ अभिमान जानि' ।

भङ्गी करि' महाप्रभु कहे एत वाणी ॥53॥

भट्टेर हृदये-वल्लभ भट्ट के हृदय में; दृढ़-दृढ़; अभिमान-गर्व; जानि'–जानकर; भङ्गी करि'-संकेत करके; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहे-बोले; एत वाणी-ये वचन।

अनुवाद

यह जानते हुए कि वल्लभ भट्ट का हृदय गर्वित है, श्री चैतन्य महाप्रभु ने ये शब्द यह जताने के लिए कहे कि भक्ति के बारे में किस तरह सीखा जा सकता है।

तात्पर्य

वल्लभ भट्ट को अपने भक्ति विषयक ज्ञान पर अत्यधिक गर्व था, इसीलिए वे महाप्रभु को जाने बिना उनके विषय में बोलना चाह रहे थे। इसीलिए महाप्रभु ने कई प्रकार से इंगित किया कि यदि वल्लभ भट्ट वास्तव में जानना चाहते हैं। कि भक्ति क्या है, तो उन्हें उन सारे भक्तों से सीखना होगा, जिनका उल्लेख उन्होंने किया, यथा अद्वैत आचार्य, भगवान् नित्यानन्द, सार्वभौम भट्टाचार्य, रामानन्द राय इत्यादि। जैसाकि स्वरूप दामोदर ने कहा है कि यदि कोई श्रीमद्भागवत का अर्थ जानना चाहता है, तो उसे किसी स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से शिक्षा लेनी होगी। किसी को गर्वित होकर यह नहीं सोचना चाहिए कि पुस्तकें पढ़ने से ही वह भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति को समझ सकता है। उसे किसी वैष्णव का दास बनना होगा। जैसाकि नरोत्तमदास ठाकुर ने पुष्टि की है- छाड़िया वैष्णव-सेवा निस्तार पायेछे केबा–शुद्ध वैष्णव की श्रद्धापूर्वक सेवा किये बिना दिव्य पद प्राप्त नहीं किया जा सकता। उसे वैष्णव गुरु का आश्रय स्वीकार करना चाहिए

(आदौ गुर्वाश्रयम्) और तब प्रश्नोत्तरों द्वारा धीरे-धीरे सीखना चाहिए कि कृष्ण की भक्ति क्या है। यही परम्परा प्रणाली कहलाती है।

“आमि से ‘वैष्णव’,—भक्ति-सिद्धान्त सब जानि ।

आमि से भागवत-अर्थ उत्तम वाखानि” ॥54॥

आमि-मैं हूँ; से-वह; वैष्णव-वैष्णव; भक्ति-सिद्धान्त-भक्ति के सिद्धान्त; सब-सभी; जानि–मैं जानता हूँ; आमि-मैं; से-वह; भागवत-अर्थ- भागवत का अर्थ;उत्तम-अच्छी तरह; वाखानि-वर्णन कर सकता हूँ।

अनुवाद

[वल्लभ भट्ट सोच रहे थे :] “मैं महान् वैष्णव हूँ। वैष्णव दर्शन के सारे सिद्धान्तों को सीखने के बाद मैं श्रीमद्भागवत का अर्थ समझ सकता हूँ और बहुत अच्छी तरह से इसकी व्याख्या कर सकता हूँ।”

भट्टेर मनेते एइ छिल दीर्घ गर्व ।

प्रभुर वचन शुनि’ से हइल खर्व ॥55॥

भट्टेर मनेते-वल्लभ भट्ट के मन में; एइ–यही; छिल–स्थित था; दीर्घ-लम्बे समय से; गर्व–गर्व; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; वचन-वचन; शुनि’–सुनकर; से-वह; हइल-हो गया; खर्व–नष्ट।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट के मन में ऐसा गर्व दीर्घकाल से चला आ रहा था, किन्तु जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश सुना, तो उनका गर्व चूर-चूर हो गया।

प्रभुर मुखे वैष्णवता शुनिया सबार ।

भट्टेर इच्छा हैल ताँ-सबारे देखिबार ॥56॥

प्रभुर मुखे-श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से; वैष्णवता-वैष्णवता के आदर्श; शुनिया सबार-सभी भक्तों के बारे में सुनकर; भट्टेर-वल्लभ भट्ट की; इच्छा-इच्छा; हैल–हुई; ताँ-सबारे उन सभी को; देखिबार देखने की।

अनुवाद

जब वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से इन सारे भक्तों की शुद्ध वैष्णवता के बारे में सुना, तो तुरन्त उनकी इच्छा उन सबके दर्शनों के लिए हुई।

भट्ट कहे,–"ए सब वैष्णव रहे कोन् स्थाने? ।

कोन् प्रकारे पाइमु इहाँ-सबार दर्शने?" ॥57॥

भट्ट कहे-वल्लभ भट्ट ने कहा; ए सब वैष्णव-ये सभी वैष्णव; रहे-रहते हैं; कोन् स्थाने–कहाँ; कोन् प्रकारे-किस प्रकार; पाइणु-मैं प्राप्त करूँगा; इहाँ-सबार दर्शने-इन सभी वैष्णवों के दर्शन।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट ने कहा, "ये सारे वैष्णव कहाँ रहते हैं और मैं उनका दर्शन किस तरह कर सकता हूँ?"

प्रभु कहे,–"केह गौड़े, केह देशान्तरे ।

सब आसियाछे रथ-यात्रा देखिबारे" ॥58॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; केह गौड़े कुछ बंगाल में; केह-कुछ; देश-अन्तरे-अन्य राज्यों में; सब-सभी; आसियाछे-आये हैं; रथ-यात्रा देखिबारे–भगवान् जगन्नाथ का रथयात्रा उत्सव देखने के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "यद्यपि उनमें से कुछ बंगाल में और कुछ अन्य राज्यों में रहते हैं, किन्तु वे सभी रथयात्रा के दर्शन हेतु यहाँ आये हैं।"

इहाञि रहेन सबे, वासा–नाना-स्थाने ।

इहाञिपाइबा तुमि सबार दर्शने ॥59॥

इहाञि–यहीं; रहेन सबे–वे सभी रह रहे हैं; वासा-उनके निवासस्थान; नाना-स्थाने–अलग-अलग जगह पर; इहाञि–यहीं; पाइबा-पाओगे; तुमि-आप; सबार दर्शने-सबके दर्शन।

अनुवाद

"इस समय वे सब यहीं रह रहे हैं। उनके आवास विभिन्न स्थानों में हैं। यहीं आप उन सबके दर्शन कर सकोगे।"

तबे भट्ट कहे बहु विनय वचन ।

बहु दैन्य करि' प्रभुरे कैल निमन्त्रण ॥ 60॥

तबे-तब; भट्ट कहे-वल्लभ भट्ट ने कहा; बहु-अत्यन्त; विनय-विनम्र; वचन-वचन; बहु दैन्य करि'–पूर्ण विनम्रतापूर्वक; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; कैल निमन्त्रण-भोजन के लिए निमंत्रित किया।

अनुवाद

तत्पश्चात् अत्यन्त विनय तथा दीनतापूर्वक वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर पर भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया।

आर दिन सब वैष्णव प्रभु-स्थाने आइला ।

सबा-सने महाप्रभु भट्टे मिलाइला ॥61॥

आर दिन-अगले दिन; सब वैष्णव-सभी वैष्णव; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; आइला–आये; सबा-सने-उन सबके साथ; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; भट्टे मिलाइला-वल्लभ भट्ट को मिलाया।

अनुवाद

अगले दिन जब सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर आये, तो महाप्रभु ने उस सबसे वल्लभ भट्ट का परिचय कराया।

'वैष्णवे'र तेज देखि' भट्टेर चमत्कार ।

ताँ-सबार आगे भट्ट–खद्योत-आकार ॥62॥

वैष्णवेर-वैष्णवों की; तेज–कान्ति; देखि'–देखकर; भट्टेर-वल्लभ भट्ट को हुआ; चमत्कार-आश्चर्य; ताँ-सबार-उन सभी के; आगे-सामने; भट्ट-वल्लभ भट्ट; खद्योत-आकार–एक जुगनू के समान।

अनुवाद

वे उनके मुखमण्डलों के तेज को देखकर चकित थे। निस्सन्देह, उन सबके बीच में वल्लभ भट्ट एक जुगनू समान लग रहे थे।

तबे भट्ट बहु महा-प्रसाद आनाइल ।

गण-सह महाप्रभुरे भोजन कराइल ॥ 63॥

तबे-उस समय; भट्ट-वल्लभ भट्ट; बहु-अत्यधिक; महा-प्रसाद-भगवान जगन्नाथ का महाप्रसाद; आनाइल-ले आये; गण-सह महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को उनके संगियों के साथ; भोजन कराइल-उन्होंने खिलाया।

अनुवाद

तब वल्लभ भट्ट प्रचुर मात्रा में भगवान् जगन्नाथजी का प्रसाद ले आये और उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों को अच्छी तरह से भोजन कराया।

परमानन्द पुरी-सङ्गे सन्न्यासीर गण ।

एक-दिके वैसे सब करिते भोजन ॥ 64॥

परमानन्द पुरी-सङ्गे-परमानन्द पुरी के साथ; सन्न्यासीर गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी संन्यासी संगी; एक-दिके-एक ओर; वैसे-बैठ गये; सब-सभी; करिते भोजन-प्रसाद गहण करने के लिए।

अनुवाद

परमानन्द पुरी इत्यादि श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे संन्यासी संगी एक ओर बैठ गये और सबने प्रसाद प्राप्त किया।

अद्वैत, नित्यानन्द-राय-पार्श्वे दुइ-जन ।

मध्ये महाप्रभु वसिला, आगे-पाछे भक्त-गण ॥65॥

अद्वैत-अद्वैत आचार्य; नित्यानन्द-राय-नित्यानन्द प्रभु; पार्श्वे-दोनों ओर; दुइ-जन-दोनों लोग; मध्ये-बीच में; महाप्रभु वसिला-श्री चैतन्य महाप्रभु बैठ गये; आगे-सामने; पाछे-पीछे; भक्त-गण-सभी भक्त।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त भक्तों के बीच बैठे। अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु महाप्रभु के दोनों ओर बैठे। अन्य भक्त महाप्रभु के आगे और पीछे बैठे।

गौड़ेर भक्त यत कहिते ना पारि ।

अङ्गने वसिला सब हञा सारि सारि ॥66॥

गौड़ेर-बंगाल के; भक्त यत-सभी भक्त; कहिते-वर्णन करने में; ना पारि-मैं असमर्थ हूँ; अङ्गने-आँगन में; वसिला-बैठ गये; सब–सभी; हञा-होकर; सारि सारि-पंक्तियों में।

अनुवाद

बंगाल के सारे भक्त, जिनकी गिनती करने में मैं असमर्थ हूँ, आँगन में पंक्तियों में बैठ गये।

प्रभुर भक्त-गण देखि' भट्टेर चमत्कार ।

प्रत्येके सबार पदे कैल नमस्कार ॥67॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गण-भक्त; देखि-देखकर; भट्टेर-वल्लभ भट्ट को; चमत्कार-आश्चर्य; प्रति-एके-प्रत्येक के; सबार-सभी के; पदे-चरणकमलों में; कैल नमस्कार–उन्होंने प्रणाम किये।

अनुवाद

जब वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों को देखा, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, और भक्तिवश उन्होंने उनमें से हर एक के चरणकमलों पर नमस्कार निवेदन किया।

स्वरूप, जगदानन्द, काशीश्वर, शङ्कर ।

परिवेशन करे, आर राघव, दामोदर ॥ 68॥

स्वरूप-स्वरूप; जगदानन्द-जगदानन्द; काशीश्वर–काशीश्वर; शङ्कर-शंकर; परिवेशन करे-बाँटने लगे; आर-और; राघव दामोदर-राघव तथा दामोदर।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर, जगदानन्द, काशीश्वर तथा शंकर ने राघव तथा दामोदर पण्डित को साथ लेकर प्रसाद वितरण का कार्य भार सँभाला।

महा-प्रसाद वल्लभ-भट्ट बहु आनाइल ।

प्रभु-सह सन्यासि-गण भोजने वसिल ॥ 69॥

महा-प्रसाद-श्री जगन्नाथ को अर्पित भोग; वल्लभ-भट्ट-वल्लभ भट्ट ने; बहु-अधिक मात्रा; आनाइल-मँगवायी थी; प्रभु-सह-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; सन्यासि-गण-सभी संन्यासी; भोजने वसिल-प्रसाद ग्रहण करने के लिए बैठ गये।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट भगवान् जगन्नाथ को अर्पित ढेर सारा प्रसाद ले आये थे। इस तरह सारे संन्यासी खाने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ बैठ गये।

प्रसाद पाय वैष्णव-गण बले, 'हरि' 'हरि' ।

हरि हरि ध्वनि उठे सब ब्रह्माण्ड भरि' ॥ 70 ॥

प्रसाद-प्रसाद; पाय-पाते हुए; वैष्णव-गण-सभी वैष्णव; बले-बोलते; हरि हरि-हरि, हरि'; हरि हरि ध्वनि-'हरि-हरि' की ध्वनि; उठे-उठती है; सब ब्रह्माण्ड-सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को; भरि'–पूरित कर दिया।

अनुवाद

प्रसाद पाकर सारे वैष्णवों ने "हरि! हरि!" के पवित्र नाम का उच्चारण किया। हरि के पवित्र नाम की उठती ध्वनि ने सारे ब्रह्माण्ड को पूरित कर दिया।

माला, चन्दन, गुवाके, पान अनेक आनिल ।

सबा' पूजा करि' भट्ट आनन्दित हैल ॥71॥

माला-मालाएँ; चन्दन–चन्दन लेप; गुवाक-मसाले; पान-पान; अनेक-कई;आनिल-लाये; सबा' पूज करि–सभी वैष्णवों की पूजा करके; भट्ट-वल्लभ भट्ट;आनन्दित हैल–अत्यन्त प्रसन्न हुए।

अनुवाद

जब सारे वैष्णव खा चुके, तो वल्लभ भट्ट बहुत सी मालाएँ, चन्दन लेप, मसाले तथा पान ले आये। उन्होंने सब भक्तों की आदरपूर्वक पूजा की और इस तरह अत्यन्त सुखी हुए।

रथ-यात्रा-दिने प्रभु कीर्तन आरम्भिला ।

पूर्ववत् सात सम्प्रदाय पृथक् करिला ॥72॥

रथ-यात्रा-दिने-रथयात्रा उत्सव के दिन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कीर्तन आरम्भिला-संकीर्तन प्रारम्भ किया; पूर्व-वत्-पहले की तरह; सात सम्प्रदाय-सात टोलियों में; पृथक् करिला-उन्होंने बाँटा।

अनुवाद

रथयात्रा के उत्सव के दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन प्रारम्भ किया। पहले की ही तरह उन्होंने सारे भक्तों को सात टोलियों में बाँट दिया।

अद्वैत, नित्यानन्द, हरिदास, वक्रेश्वर ।

श्रीवास, राघव, पण्डित-गदाधर ॥73॥

सात जन सात-ठाञि करेन नर्तन ।

'हरि-बोल' बलि' प्रभु करेन भ्रमण ॥74॥

अद्वैत-अद्वैत आचार्य; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; हरिदास–ठाकुर हरिदास; वक्रेश्वर–वक्रेश्वर; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; राघव-राघव; पण्डित-गदाधर-गदाधर पण्डित; सात जन-सात लोग; सात-ठाञि-सात दलों में; करेन नर्तन-नाचे; हरि-बोल बलि'–"हरि बोल" कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन भ्रमण-घूमते हैं।

अनुवाद

अद्वैत, नित्यानन्द, हरिदास ठाकुर, वक्रेश्वर, श्रीवास ठाकुर, राघव पण्डित तथा गदाधर पण्डित-इन सात भक्तों ने सात टोलियाँ बना लीं और नाचने लगे। श्री चैतन्य महाप्रभु "हरि बोल!" कीर्तन करते हुए एक टोली से दूसरी टोली में विचरण करने लगे।

चौद्द मादल बाजे उच्च सङ्कीर्तन ।

एक एक नर्तकेर प्रेमे भासिल भुवन ॥ 75 ॥

चौद्द मादल–चौदह मृदंग; बाजे-बज रहे थे; उच्च सङ्कीर्तन-उच्च नाम संकीर्तन; एक एक–प्रत्येक दल के; नर्तकेर-एक नर्तक के; प्रेमे-प्रेमभाव में; भासिल भुवन-सम्पूर्ण विश्व डूब गया।

अनुवाद

उच्च संकीर्तन के साथ-साथ चौदह मृदंग गूंजने लगे। हर टोली का एक-एक नर्तक था, जिसके प्रेमाविष्ट नृत्य से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आप्लावित हो उठा।

देखि' वल्लभ-भट्टेर हैल चमत्कार ।

आनन्दे विह्वल नाहि आपन-साम्भाल ॥ 76 ॥

देखि'-देखकर; वल्लभ-भट्टेर-वल्लभ भट्ट को; हैल चमत्कार-आश्चर्य हुआ;आनन्दे विह्वल-दिव्य आनन्द से विभोर; नाहि-नहीं हुआ; आपन-साम्भाल-अपनी सामान्य अवस्था बनाये रखना।

अनुवाद

यह सब देखकर वल्लभ भट्ट पूर्णतया चकित थे। वे दिव्य आनन्द से विह्वल और अपने में खोए हुए थे।

तबे महाप्रभु सबार नृत्य राखिला ।

पूर्ववत् आपने नृत्य करते लागिला ॥77॥

तबे-फिर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सबार-उन सभी का; नृत्य राखिला-नृत्य रुकवाया; पूर्ववत्-पहले की तरह; आपने–स्वयं; नृत्य-नृत्य; करिते लागिला-करने लगे।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबका नृत्य रुकवा दिया और पहले की तरह वे स्वयं नाचने लगे।

प्रभुर सौन्दर्य देखि आर प्रेमोदय ।

‘एई त’ साक्षात्कृष्ण’ भट्टेर हइल निश्चये ॥78॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; सौन्दर्य-सुन्दरता; देखि-देखकर; आर—तथा; प्रेम-उदय-प्रेमभाव का प्राकट्य; एइये; त’–निश्चित; साक्षात् साक्षात्; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; भट्टेर-वल्लभ भट्ट का; हइल-था; निश्चय-निश्चय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के सौन्दर्य तथा उनके प्रेमावेश का उदय देखकर वल्लभ भट्ट ने निष्कर्ष निकाला कि, “निस्सन्देह, ये भगवान् कृष्ण हैं।”

एत मत रथ-यात्रा सकले देखिल ।

प्रभुर चरित्रे भट्टेर चमत्कार हैल ॥79॥

एत मत-इस प्रकार; रथ-यात्रा-रथयात्रा उत्सव; सकले-सभी ने; देखिल-देखा; प्रभुर चरित्रे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र द्वारा; भट्टेर-वल्लभ भट्ट को; चमत्कार हैल-आश्चर्य हुआ।

अनुवाद

इस तरह वल्लभ भट्ट ने रथयात्रा उत्सव देखा। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र से चकित थे।

यात्रानन्तरे भट्ट झाइ महाप्रभु-स्थाने ।

प्रभु-चरणे किछु कैल निवेदने ॥80॥

यात्रा-अनन्तरे-रथयात्रा के बाद; भट्ट-वल्लभ भट्ट; ग्राइ-जाकर; महाप्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के निवास पर; प्रभु-चरणे–महाप्रभु के चरणकमलों में; किछु-कुछ;कैल-की; निवेदने-प्रार्थना।

अनुवाद

रथयात्रा समाप्त होने के बाद, एक दिन वल्लभ भट्ट श्री चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान पर गये और उनके चरणकमलों पर एक विनती की।

“भागवतेर टीका किछु करियाछि लिखन ।

आपने महाप्रभु यदि करेन श्रवण” ॥81॥

भागवतेर-श्रीमद्भागवत पर; टीका-व्याख्या; किछु-कुछ; करियाछि लिखन-मैंने लिखी है; आपने-आप; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यदि-यदि; करेन श्रवण-सुनेंगे।

अनुवाद

"मैंने श्रीमद्भागवत पर कुछ टीका लिखी है। क्या कृपा करके आप इसे सुनेंगे?"

प्रभु कहे,–"भागवतार्थ बुझिते ना पारि ।

भागवतार्थ शुनिते आमि नहि अधिकारी" ॥82॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; भागवत-अर्थ- श्रीमद्भागवत का अर्थ; बुझिते ना पारि-मैं समझ नहीं सकता; भागवत-अर्थ- श्रीमद्भागवत का तात्पर्य; शुनिते-सुनने के लिए; आमि नहि अधिकारी-मैं योग्य पात्र नहीं हूँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं श्रीमद्भागवत का अर्थ नहीं समझता। निस्सन्देह, मैं उसका अर्थ सुनने का सुपात्र नहीं हूँ।"

वसि' कृष्ण-नाम मात्र करिये ग्रहणे ।

सङ्ख्या-नाम पूर्ण मोर नहे रात्रि-दिने ॥83॥

वसि'-बैठकर; कृष्ण-नाम- भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; मात्र केवल; करिये ग्रहणे-मैं जप करता हूँ; सङ्ख्या - नाम-निर्धारित संख्यापूर्वक; पूर्ण–पूरा; मोर-मेरा;नहे-नहीं; रात्रि-दिने सम्पूर्ण दिन और रात को।

अनुवाद

"मैं मात्र बैठकर कृष्ण के पवित्र नाम का जप करने का प्रयत्न करता हूँ और यद्यपि मैं रात-दिन नाम-जप करता हूँ, तो भी मैं नियत संख्या पूरी नहीं कर पाता।"

भट्ट कहे, "कृष्ण-नामेर अर्थ-व्याख्याने ।

विस्तार कैराछि, ताहा करह श्रवणे" ॥84॥

भट्ट कहे-वल्लभ भट्ट ने कहा; कृष्ण-नामेर-कृष्ण के पवित्र नाम के; अर्थ-व्याख्याने–अर्थ की व्याख्या; विस्तार-अत्यन्त विस्तारपूर्वक; कैराछि-मैंने बनाई है; ताहा-वह; करह श्रवणे-कृपया सुनिये।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट ने कहा, "मैंने कृष्ण के पवित्र नाम के अर्थ की विस्तार से व्याख्या करने का प्रयास किया है। कृपया उस व्याख्या को सुनें।"

प्रभु कहे,—"कृष्ण-नामेर बहु अर्थ ना मानि ।

'श्याम-सुन्दर' 'यशोदा-नन्दन,'–एइ-मात्र जानि ॥85॥

प्रभु कहे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; कृष्ण-नामेर-कृष्ण के पवित्र नाम के; बहु अर्थ–अनेक अर्थ; ना मानि–मैं नहीं स्वीकार करता; श्यामसुन्दर-श्यामसुन्दर; यशोदा-नन्दन-यशोदानन्दन; एइ-मात्र–केवल यही; जानि–मैं जानता हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं कृष्ण के पवित्र नाम के कई अलग-अलग अर्थ स्वीकार नहीं करता। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि भगवान् कृष्ण श्यामसुन्दर तथा यशोदानन्दन हैं। बस, मैं इतना ही जानता हूँ।"

तमाल-श्यामल-त्विषि श्री-यशोदा-स्तनन्धये ।

कृष्ण-नाम्नो रूढ़िरिति सर्व-शास्त्र-विनिर्णय: ॥86॥

तमाल-श्यामल-त्विषि-जिसकी कान्ति गहरे नीले तमाल वृक्ष के समान है; श्री-प्रशोदा-स्तनम्-धये-माता यशोदा के स्तन का पान करनेवाले; कृष्ण-नाम्नः-कृष्ण नाम का; रूढ़िः–मुख्य अर्थ; इति-यही; सर्व-शास्त्र सारे प्रामाणिक शास्त्रों का; विनिर्णयः-निष्कर्ष।

अनुवाद

"कृष्ण के पवित्र नाम का एकमात्र तात्पर्य है कि वे तमाल वृक्ष की तरह गहरे नीले हैं और माता यशोदा के पुत्र हैं। यही समस्त प्रामाणिक शास्त्रों का निर्णय है।"

तात्पर्य

यह श्लोक नाम कौमुदी से है।

"एइ अर्थ आमि मात्र जानिये निर्धार।

आर सर्व-अर्थे मोर नाहि अधिकार" ॥87॥

एइ अर्थ-यही अर्थ; आमि-मैं; मात्र केवल; जानिये-जानता हूँ; निर्धार-निष्कर्ष आर-अन्य; सर्व-सभी; अर्थे–अर्थों में; मोर-मेरी; नाहि-नहीं है; अधिकार-समझने की क्षमता।

अनुवाद

"मैं श्यामसुन्दर तथा यशोदानन्दन-इन्हीं दो नामों को निश्चित रूप से जानता हूँ। मैं कोई अन्य अर्थ नहीं समझता, न ही उनको समझने की मुझमें क्षमता है।"

फल्गु-प्राय भट्टेर नामादि सब-व्याख्या।

सर्वज्ञ प्रभु जानि' तारे करेन उपेक्षा ॥88॥

फल्गु-प्राय–व्यर्थ प्रायः; भट्टेर-वल्लभ भट्ट की; नाम-आदि-नाम आदि की; सब-सभी; व्याख्या-व्याख्याएँ; सर्व-ज्ञ-सब जानने वाले; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जानि'–जानकर; तारे–उनकी; करेन उपेक्षा–उपेक्षा करते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सर्वज्ञ हैं, अतएव वे यह समझ गये कि वल्लभ भट्ट की कृष्ण के पवित्र नाम तथा श्रीमद्भागवत की व्याख्याएँ व्यर्थ हैं। अतएव उन्होंने उनकी परवाह नहीं की।

विमना हञा भट्ट गेला निज-घर।

प्रभु-विषये भक्ति किछु हइल अन्तर ॥89॥

विमना हञा–दु:खी होकर; भट्ट-वल्लभ भट्ट; गेला-गये; निज-घर-अपने घर;प्रभु-विषये-श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति; भक्ति–विश्वास; किछु-कुछ; हइल–हो गया;अन्तर–परिवर्तित।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनकी व्याख्याएँ सुनने से साफ मना कर दिया, तो वल्लभ भट्ट खिन्न होकर अपने घर चले गये। महाप्रभु के प्रति उसकी श्रद्धा तथा भक्ति बदल गई।

तबे भट्ट गेला पण्डित-गोसाञिर ठाञि ।

नाना मते प्रीति करि' करे आसा-याइ ॥20॥

तबे-फिर; भट्ट-वल्लभ भट्ट; गेला-गये; पण्डित-गोसाञिर ठाञि-गदाधर पण्डित के निवास पर; नाना मते-अनेक प्रकार से; प्रीति करि'–स्नेह दिखाकर; करे आसा-याइ-आते और जाते।

अनुवाद

तत्पश्चात् वल्लभ भट्ट गदाधर पण्डित के घर गये। वे विभिन्न प्रकार से स्नेह प्रदर्शित करके आते-जाते रहे और उनके साथ सम्बन्ध बनाये रखे।

प्रभुर उपेक्षाय सब नीलाचलेर जन ।

भट्टेर व्याख्यान किछु ना करे श्रवण ॥91॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की उपेक्षाय-उपेक्षा के कारण; सब-सब; नीलाचलेर जन-जगन्नाथ पुरी में लोग; भट्टेर व्याख्यान-वल्लभ भट्ट की व्याख्या; किछु-कुछ; ना करे श्रवण-नहीं सुनते।

अनुवाद

चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण नहीं किया, इसलिए जगन्नाथपुरी के किसी भी व्यक्ति ने उनकी कोई व्याख्या नहीं सुनी।

लज्जित हैल भट्ट, हैल अपमाने ।

दुःखित हञा गेल पण्डितेर स्थाने ॥92॥

लज्जित–शर्मिंदा; हैल-होकर; भट्ट-वल्लभ भट्ट; हैल अपमाने-अपमानित अनुभव कर; दुःखित हञा-दुःखी होकर; गेल-गये; पण्डितेर स्थाने-गदाधर पण्डित के पास।

अनुवाद

लज्जित, अपमानित तथा दुःखित वल्लभ भट्ट गदाधर पण्डित के पास गये।

दैन्य करि' कहे,–"निलुँ तोमार शरण ।

तुमि कृपा करि' राख आमार जीवन" ॥ 93॥

दैन्य करि'–अत्यन्त विनम्रतापूर्वक; कहे-बोले; निहुँ–मैंने ली है; तोमार शरण-आपकी शरण; तुमि-आप; कृपा करि'–कृपा करके; राख-बचाइये; आमार जीवन-मेरा जीवन।

अनुवाद

उनके पास अत्यन्त विनीत भाव से पहुँचकर वल्लभ भट्ट ने कहा, "मान्यवर, मैंने आपकी शरण ले रखी है। आप मुझ पर कृपालु हों और मेरे प्राणों की रक्षा करें।

"कृष्ण-नाम-व्याख्या यदि करह श्रवण ।

तबे मोर लज्जा-पङ्क हय प्रक्षालन" ॥ 94॥

कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण के नाम की; व्याख्या-व्याख्या; यदि-यदि; करह श्रवण-आप सुनें; तबे-तो; मोर-मेरा; लज्जा-पङ्क-अपमान का कीचड़; हय-होगा;प्रक्षालन-धुल जायेगा।

अनुवाद

"कृपा करके आप कृष्णनाम के अर्थ की मेरी व्याख्या सुनें। इससे मेरे ऊपर जो लज्जा का कीचड़ पड़ा है, वह धुल सकेगा।"

सङ्कटे पड़िल पण्डित, करये संशय ।

कि करिबेन,—एको, करिते ना पारे निश्चय ॥95॥

सङ्कटे-शंका में; पड़िल पण्डित–गदाधर पण्डित पड़ गये; करये संशय-सन्देह करने लगे; कि करिबेन-वे क्या करेंगे; एको-अकेले; करिते ना पारे निश्चय-निश्चय नहीं कर पाये।

अनुवाद

इस तरह पण्डित गोसांई संकट में पड़ गये। वे ऐसे संशय में थे कि उनके लिए यह निश्चित कर पाना कठिन हो गया कि वे क्या करें।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट को गम्भीरता से नहीं लिया। इसलिए पण्डित गोसांई अर्थात् गदाधर गोसांई बड़े ही संशय में पड़ गये। यदि वे वल्लभ भट्ट की कृष्ण-नाम व्याख्या को सुनते हैं, तो उनकी स्थिति क्या होगी? निश्चय ही, श्री चैतन्य महाप्रभु रुष्ट होंगे। इसलिए गदाधर पण्डित गोसांई कोई निर्णय नहीं कर पाये।

यद्यपि पण्डित आर ना कैला अङ्गीकार ।

भट्ट याइ' तबु पड़े करि' बलात्कार ॥96॥

यद्यपि यद्यपि, पण्डित-गदाधर पण्डित; आर-भी; ना कैला अङ्गीकार-स्वीकार नहीं किये; भट्ट-वल्लभ भट्ट; याइ'–जाकर; तबु-फिर भी; पड़े-पढ़ते रहे; करि' बलात्कार-जबरदस्ती।

अनुवाद

यद्यपि गदाधर पण्डित गोसांई सुनना नहीं चाहते थे, किन्तु वल्लभ भट्ट अत्यन्त बलपूर्वक से अपनी व्याख्या पढ़ने लगे।

आभिजात्ये पण्डित करिते नारे निषेधन ।

ए सङ्कटे राख, कृष्ण लइलाङ शरण ॥ 97॥

आभिजात्ये-उनके उच्च पद के कारण; पण्डित–गदाधर पण्डित; करिते नारे निषेधन–मना नहीं कर पाये; ए सङ्कटे-इस संकट से; राख–कृपया रक्षा करो; कृष्ण-हे भगवान् कृष्ण; लइलाङ–मैं लेता हूँ; शरण-शरण।

अनुवाद

चूँकि वल्लभ भट्ट विद्वान ब्राह्मण थे, अतएव गदाधर पण्डित उन्हें रोक नहीं पाये। इस तरह उन्होंने कृष्ण का ध्यान किया। उन्होंने प्रार्थना की, "हे कृष्ण, इस संकट में मेरी रक्षा करें। मैं आपकी शरण में आया हूँ।"

"अन्तर्यामी प्रभु जानिबेन मोर मन ।

तौरे भय नाहि किछु, 'विषम' ताँर गण" ॥98॥

अन्तर्यामी-सबके हृदय में विद्यमान; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः जानिबेन-जान जायेंगे; मोर मन–मेरा मन; तौरे–उनका; भय-भय; नाहि-नहीं; किछु-कुछ; विषम-जटिल; ताँर गण-उनके संगीगण।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु जन-जन के हृदय में विद्यमान हैं, अतः वे निश्चय ही मेरे मन की बात जान लेंगे। इसलिए मुझे उनसे भय नहीं है। किन्तु उनके संगी अत्यन्त आलोचना-पटु हैं।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु जन-जन के हृदय में उपस्थित रहते हैं। इसलिए वे उस परिस्थिति को जान जायेंगे, जिसके अन्तर्गत पण्डित गोसांई को वल्लभ भट्ट की व्याख्या सुननी पड़ी और वे निश्चय ही रुष्ट नहीं होंगे। किन्तु, श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रहने वाले वैष्णवगण गदाधर पण्डित के आन्तरिक मनोभावों को नहीं समझ सकेंगे और वे आरोप लगा सकते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उपेक्षा किये जाने पर भी उन्होंने वल्लभ भट्ट के साथ समझौता कर लिया। गदाधर पण्डित गोसांई इस तरह गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहे थे।

यद्यपि विचारे पण्डितेर नाहि किछु दोष ।

तथापि प्रभुर गण तौरे करे प्रणय-रोष ॥99॥

यद्यपि यद्यपि; विचारे-देखने पर; पण्डितेर–गदाधर पण्डित का; नाहि किछु दोष-कोई दोष नहीं था; तथापि–फिर भी; प्रभुर गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के गण; तौरे-उनके प्रति; करे प्रणय-रोष-प्रेमपूर्ण क्रोध दिखाया।

अनुवाद

यद्यपि गदाधर पण्डित गोसांई का रंच भर भी दोष नहीं था, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के कुछ भक्तों ने उनके प्रति स्नेहमय रोष प्रकट किया।

प्रत्यह वल्लभ-भट्ट आइसे प्रभु-स्थाने ।

'उद्ग्राहादि' प्राय करे आचार्यादि-सने ॥100॥

प्रति-अह–प्रतिदिन; वल्लभ-भट्ट-वल्लभ भट्ट; आइसे-आते; प्रभु-स्थाने–भगवान् चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; उद्ग्राह-आदि प्राय–व्यर्थ के तर्क; करे-करते; आचार्य-आदि-सने-अद्वैत आचार्य तथा अन्यों के साथ।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट प्रति दिन श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर आते और अद्वैत आचार्य तथा स्वरूप दामोदर जैसे महापुरुषों से व्यर्थ का तर्क करते थे।

येइ किछु करे भट्ट 'सिद्धान्त' स्थापन।

शुनितेइ आचार्य ताहा करेन खण्डन ॥101॥

येइ-जो भी; किछु-कुछ; करे-करते; भट्ट-वल्लभ भट्ट; सिद्धान्त–निष्कर्ष; स्थापन–स्थापित; शुनितेइ-सुनते ही; आचार्य-अद्वैत आचार्य; ताहा-वह; करेन खण्डन–खण्डन कर देते।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट उत्सुकतापूर्वक जितने भी सिद्धान्त प्रस्तुत करते, उन सबका खण्डन अद्वैत आचार्य जैसे भक्त कर देते।

आचार्यादि-आगे भट्ट यबे यबे याय।

राजहंस-मध्ये येन रहे बक-प्राय ॥102॥

आचार्य-आदि-आगे-अद्वैत आचार्य तथा अन्यों के समक्ष; भट्ट-वल्लभ भट्ट; यबे प्रबे-जब भी; याय-जाते; राज-हंस-मध्ये-श्वेत हंसों की सभा में; येन-जैसे; रहे-रहते; बक-प्राय-बगुले के समान।

अनुवाद

जब भी वल्लभ भट्ट अद्वैत आचार्य इत्यादि भक्तों की सभा में प्रवेश करते, वे श्वेत हंसों की सभा में बगुले जैसे प्रतीत होते।

एक-दिन भट्ट पुछिल आचार्येरे।

"जीव-'प्रकृति' 'पति' करि' मानये कृष्णेरे" ॥103॥

एक-दिन-एक दिन; भट्ट-वल्लभ भट्ट ने पुछिल आचार्येर-अद्वैत आचार्य से पूछा; जीव-जीवात्मा; प्रकृति-स्त्री; पति-पति में; करि'-जैसे; मानये कृष्णेर-कृष्ण को स्वीकार करते हैं।

अनुवाद

एक दिन वल्लभ भट्ट ने अद्वैत आचार्य से कहा, "प्रत्येक जीव प्रकृति (स्त्री) है और वह कृष्ण को अपना पति मानता है।"

"पति-व्रता हञा पतिर नाम नाहि लय ।

तोमरा कृष्णा-नाम लह, —कोन् धर्म हय?" ॥ 104॥

पति-व्रता-पति को समर्पित; हञा-होकर; पतिर–पति का नाम-नाम; नाहि लय-नहीं लेती; तोमरा-आप सब; कृष्ण-नाम-लह-कृष्ण का नाम जप करते हैं; कोन्-क्या; धर्म-धार्मिक नियम; हय-यह है।

अनुवाद

"पतिव्रता स्त्री का धर्म है कि वह अपने पति का नाम न ले, किन्तु आप सब लोग तो कृष्ण के नाम का उच्चारण करते हैं। इसे किस तरह धर्म कहा जा सकता है?"

आचार्य कहे,–"आगे तोमार 'धर्म' मूर्तिमान् ।

इँहारे पुछह, इँह करिबेन इहार समाधान" ॥105॥

आचार्य कहे-अद्वैत आचार्य ने कहा; आगे-सामने; तोमार-आपके; धर्म-धार्मिक सिद्धान्त; मूर्तिमान्–मूर्त रूप; इँहारे पुछह-इनसे पूछो; इँह-वे; करिबेन–करेंगे; इहार-इसका; समाधान-समाधान।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया, "आपके समक्ष धर्म के साक्षात् मूर्तिमान् स्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु हैं। आप उनसे पूछो, तो वे ही आपको सही उत्तर देंगे।"

शुनि' प्रभु कहेन,–"तुमि ना जान धर्म-मर्म" ।

स्वामि-आज्ञा पाले,—एइ पति-व्रता-धर्म ॥106॥

शुनि'–सुनकर; प्रभु कहेन–श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तुमि-आप; ना जान-नहीं जानते; धर्म-मर्म-वास्तविक धर्म के रहस्य को; स्वामि-स्वामी का; आज्ञा-आदेश; पाले-पालन करती है; एइ-यह; पति-व्रता-धर्म-एक पतिव्रता स्त्री का धर्म है।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे वल्लभ भट्ट, आप धर्म के सिद्धान्तों को नहीं जानते। वास्तव में पतिव्रता स्त्री का सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि वह अपने पति की आज्ञा का पालन करे।"

पतिर आज्ञा,—निरन्तर ताँर नाम लइते ।

पतिर आज्ञा पति-व्रता ना पारे लङ्घिते ॥107॥

पतिर आज्ञा–पति का आदेश है; निरन्तर–सदैव; ताँर–उनका; नाम-नाम; लइते-जप करना; पतिर आज्ञा–पति का आदेश; पति-व्रता-समर्पित पत्नी; ना पारे लङ्घिते-उल्लंघन नहीं कर सकती।

अनुवाद

कृष्ण की आज्ञा है कि उनके नाम का निरन्तर कीर्तन हो। इसलिए जो स्त्री पतिरूप कृष्ण के परायण है, उसे भगवान् के नाम का कीर्तन करना चाहिए, क्योंकि वह अपने पति के आदेश का उल्लघंन नहीं कर सकती।

"अतएव नाम लय, नामेर 'फल' पाय ।

नामेर फले कृष्ण-पदे 'प्रेम' उपजाय" ॥108॥

अतएव–इसलिए; नाम लय-पवित्र नाम जप करता है; नामेर-नाम का; फल-परिणाम; पाय-प्राप्त करता है; नामेर फले-पवित्र नाम जप के फलस्वरूप; कृष्ण-पदे-कृष्ण के चरणकमलों में, प्रेम-प्रेमभाव; उपजाय-विकसित हो जाता है।

अनुवाद

"इस धार्मिक सिद्धान्त का पालन करते हुए कृष्ण का शुद्ध भक्त सदैव उनके पवित्र नाम का कीर्तन करता है। इसके फलस्वरूप उसे कृष्ण-प्रेम का फल प्राप्त होता है।"

शुनिया वल्लभ-भट्ट हैल निर्वचन ।

घरे याइ' मने दुःखे करेन चिन्तन ॥109॥

शुनिया-सुनकर; वल्लभ-भट्ट-वल्लभ भट्ट; हैल-हो गये; निर्वचन-मौन; घरे याइ'-घर लौटकर; मने-मन में; दुःखे-अप्रसन्न होकर; करेन चिन्तन–सोचने लगे।

अनुवाद

यह सुनकर वल्लभ भट्ट मूक हो गये। वे अत्यन्त दुःखी होकर घर लौट आये और इस तरह विचार करने लगे।

नित्य आमार एइ सभाय हय कक्षा-पात ।

एक-दिन उपरे यदि हय मोर बात् ॥110॥

"तबे सुख हय, आर सब लज्जा याय ।

स्व-वचन स्थापिते आमि कि करि उपाय?" ॥111॥

नित्य-प्रतिदिन; आमार-मेरी; एइ-इस; सभाय—सभा में; हय-होती है; कक्षा-पात-पराजय; एक-दिन-एक दिन; उपरे-ऊपर; यदि-यदि; हय-हो जायें; मोर-मेरे; बात्-वचन; तबे-तब; सुख–प्रसन्नता; हय-हो; आर-तथा; सब-सभी; लज्जा–शर्मिंदगी; याय-चली जाये; स्व-वचन-मेरा विचार; स्थापिते-स्थापित करने के लिए; आमि-मैं; कि-क्या; करि-क; उपाय-उपाय।

अनुवाद

"मैं इस सभा में प्रति दिन पराजित हो जाता हूँ। यदि कदाचित् किसी दिन मैं विजयी हो जाऊँ, तो वह मेरे लिए सुख का महान् स्रोत होगा और मेरी सारी लज्जा जाती रहेगी। किन्तु अपने कथनों को स्थापित करने के लिए मैं किन साधनों को अपनाऊँ?"

आर दिन आसि' वसिला प्रभुरे नमस्करि' ।

सभाते कहेन किछु मने गर्व करि' ॥112॥

आर दिन-अगले दिन; आसि'-आकर; वसिला-बैठ गये; प्रभुरे नमस्करि'-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रणाम करके; सभाते-सभा में; कहेन-वे बोले; किछु-कुछ; मने-मन में; गर्व करि'-गर्व करके।

अनुवाद

अगले दिन जब वे श्री चैतन्य महाप्रभु की सभा में आये, तो महाप्रभु को नमस्कार करके वे बैठ गये और बड़े ही गर्व से कुछ कहने लगे।

भागवते स्वामीर व्याख्यान कैराछि खण्डन ।

लइते ना पारि ताँर व्याख्यान-वचन ॥113॥

भागवते- श्रीमद्भागवत पर अपनी टीका में; स्वामीर-श्रीधर स्वामी की; व्याख्यान- व्याख्या; कैराछि खण्डन-मैंने खण्डन किया है; लइते ना पारि-मैं स्वीकार नहीं कर सकता; ताँर–उनकी; व्याख्यान-वचन-व्याख्या को।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "मैंने अपनी श्रीमद्भागवत की टीका में श्रीधर स्वामी की व्याख्याओं का खण्डन किया है। मैं उनकी व्याख्याओं को स्वीकार नहीं कर सकता।"

"सेइ व्याख्या करेन याहाँ येइ पड़े आनि ।

एक-वाक्यता नाहि, ताते 'स्वामी' नाहि मानि" ॥114॥

सेइ-वे; व्याख्या करेन-व्याख्या करते हैं; याहाँ–जहाँ पर भी; ग्रेइ-जो भी; पड़े-पढ़ते हैं; आनि'–स्वीकार करते हैं; एक-वाक्यता-निरन्तरता; नाहि-नहीं है; ताते-अतः; स्वामी-श्रीधर स्वामी को; नाहि मानि–मैं स्वीकार नहीं कर सकता।

अनुवाद

"श्रीधर स्वामी जो भी पढ़ते हैं, उसकी व्याख्या परिस्थिति के अनुसार करते हैं। इसलिए उनकी व्याख्या में एकरूपता नहीं है और उन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।"

प्रभु हासि' कहे,–"स्वामी ना माने येइ जन ।

वेश्यार भितरे तारे करिये गणन" ॥115॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; हासि-हँसकर; कहे-कहा; स्वामी-पति; ना माने-नहीं मानती; ग्रेइ जन-जो कोई भी; वेश्यार भितरे वेश्याओं के बीच; तारे-उसे; करिये गणन-मैं गिनता हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने हँसते हुए उत्तर दिया, "जो व्यक्ति अपने स्वामी (पति) को अधिकारी नहीं मानता उसे मैं वेश्या समझता हूँ।"

एत कहि' महाप्रभु मौन धरिला ।

शुनिया सबार मने सन्तोष हइला ॥116॥

एत कहि'-यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मौन धरिला-अत्यन्त गम्भीर हो गये; शुनिया-सुनकर; सबार-सभी भक्तों के; मने-मन में; सन्तोष हइला–महान् सन्तोष हुआ।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त गम्भीर हो गये। वहाँ पर उपस्थित सारे भक्तों को यह कथन सुनकर अतीव सन्तोष हुआ।

जगतेर हित लागि' गौर-अवतार ।

अन्तरेर अभिमान जानेन ताहार ॥117॥

जगतेर-समस्त जगत् के; हित लागि'-लाभ के लिए; गौर-अवतार-श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतार; अन्तरेर अभिमान-आन्तरिक गर्व; जानेन–समझ गये; ताहार-उनका।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सारे जगत् के लाभ हेतु अवतार के रूप में प्रकट हुए हैं। इस तरह वे वल्लभ भट्ट के मन को भलीभाँति जान चुके थे।

नाना अवज्ञाने भट्टे शोधेन भगवान् ।

कृष्ण यैछे खण्डिलेन इन्द्रेर अभिमान ॥118॥

नाना-अनेक प्रकार के; अवज्ञाने-असम्मान द्वारा; भट्टे-वल्लभ भट्ट का; शोधेन-शोधन करते हैं; भगवान्-परम भगवान्; कृष्ण-कृष्ण; यैछे-जैसे; खण्डिलेन-काटते हैं; इन्द्रेर अभिमान–इन्द्र का अभिमान।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने अनेक संकेतों तथा खण्डनों के द्वारा वल्लभ भट्ट को उसी तरह सुधारा, जिस तरह कृष्ण ने इन्द्र के मिथ्या दर्प को खण्डित किया था।

तात्पर्य

इन्द्र को अपने पद का बहुत गर्व था। अतएव जब वृन्दावनवासियों ने इन्द्र यज्ञ सम्पन्न न करके कृष्ण के आदेशानुसार गोवर्धन यज्ञ करने का निश्चय किया, तो इन्द्र ने अपने मिथ्या गर्व के कारण वृन्दावनवासियों को दण्डित करना चाहा। उसने अपने आपको अत्यन्त शक्तिशाली मानकर वृन्दावन पर मूसलाधार वर्षा करनी प्रारम्भ कर दी, किन्तु भगवान् कृष्ण ने तुरन्त उसके दर्प को चूर करने के लिए ही वृन्दावनवासियों की रक्षा हेतु गोवर्धन पर्वत को छाते की तरह उठा लिया। इस तरह कृष्ण ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता के समक्ष इन्द्र की शक्ति को नितान्त तुच्छ सिद्ध कर दिखाया।

अज्ञ जीव निज-'हिते' 'अहित करि' माने।

गर्व चूर्ण हैले, पाछे उघाड़े नयने ॥ 119॥

अज्ञ जीव-अज्ञानी जीव; निज-हिते-अपने हित को; अहित करि' माने-हानि मानता है; गर्व चूर्ण हैले–जब गर्व चला जाता है; पाछे-उसके बाद; उघाड़े नयने-आँखे खुलती हैं।

अनुवाद

अज्ञानी जीव अपना वास्तविक हित नहीं पहचान पाता। अज्ञानता तथा भौतिक गर्व के कारण वह कभी-कभी हित को अहित मानता है, किन्तु जब उसका गर्व चूर हो जाता है, तो वह अपने वास्तविक हित को देख सकता है।

घरे आसि' रात्र्ये भट्ट चिन्तिते लागिल।

"पूर्वे प्रयागे मोरे महा-कृपा कैल" ॥120॥

घरे आसि'–घर आकर; रात्र्ये-रात को; भट्ट-वल्लभ भट्ट; चिन्तिते लागिल-सोचने लगे; पूर्वे-पहले; प्रयागे-प्रयाग में; मोरे-मुझ पर; महा-कृपा कैल–अत्यन्त कृपा की थी।

अनुवाद

उस रात घर लौटकर वल्लभ भट्ट ने सोचा, "इसके पूर्व प्रयाग में श्री चैतन्य मुझ पर अत्यन्त दयालु थे।

स्वगण-सहिते मोर मानिला निमन्त्रण ।

एबे केने प्रभुर मोते फिरि' गेल मन? ॥121॥

स्व-गण-सहिते-अपने पार्षदों के साथ; मोर-मेरा; मानिला–स्वीकार किया; निमन्त्रण-निमन्त्रण; एबे-अब; केने-क्यों; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मोते-मेरे प्रति; फिरि' गेल-बदल गया; मन-मन।

अनुवाद

उन्होंने अपने अन्य भक्तों सहित मेरा निमन्त्रण स्वीकार किया था और वे मुझ पर अत्यन्त कृपालु थे। यहाँ जगन्नाथपुरी में वे इतना अधिक क्यों बदल गये हैं?

'आमि जिति',—एइ गर्व-शून्य हउक इँहार चित ।

ईश्वर-स्वभाव,—करेन सबाकार हित ॥ 122॥

आमि जिति–मैं विजयी हो जाऊँ; एइ–यह; गर्व–घमंड; शून्य-रहित; हउक-हो जाये; इँहार चित-इस व्यक्ति का मन; ईश्वर-स्वभाव-परम भगवान् के लक्षण; करेन-वे करते हैं; सजाकार–सभी का; हित-भला।

अनुवाद

"अपनी विद्या पर अत्यधिक गर्वित होकर मैं सोच रहा हूँ, 'मुझे विजयी हो जाने दो।' किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु मेरे इस मिथ्या गर्व को भंग करके मुझे शुद्ध बनाना चाह रहे हैं, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्वभाव है कि वे हर एक के कल्याण के लिए कार्य करते हैं।"

आपना जानाइते आमि करि अभिमान ।

से गर्व खण्डाइते मोर करेन अपमान ॥123॥

आपना जानाइते-अपना विज्ञापन करके; आमि-मैं; करि अभिमान-मिथ्या अभिमान में हूँ; से गर्व-वह गर्व; खण्डाइते-नष्ट करने के लिए; मोर करेन अपमान-उन्होंने मेरा अपमान किया।

अनुवाद

मैं अपने आपको विद्वान पण्डित घोषित करके मिथ्या ही गर्वित हूँ। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु मेरे इस मिथ्या गर्व को चूर करके मुझ पर कृपा करने के लिए मेरा अपमान करते हैं।

आमार 'हित' करेन,—इहो आमि मानि 'दुःख'।

कृष्णेर उपरे कैल येन इन्द्र महा-मूर्ख ॥124॥

आमार-मेरा; हित-भला; करेन-वे कर रहे हैं; इहो–यह; आमि-मैं; मानि-मानता हूँ; दुःख–दुःख; कृष्णेर उपरे–कृष्ण पर; कैल–किया; येन-जैसे; इन्द्र–इन्द्र;महा-मूर्ख-महामूर्ख ने।

अनुवाद

"वे वास्तव में मेरे हित के लिए ऐसा कर रहे हैं, यद्यपि मैं उनके कार्यों को अपमान मानता हूँ। यह उसी घटना के तुल्य है, जिसमें भगवान् कृष्ण ने गर्वित महामूर्ख इन्द्र को सही रास्ते पर लाने के लिए उसके गर्व को चूर किया था।"

एत चिन्ति' प्राते आसि' प्रभुर चरणे।

दैन्य करि' स्तुति करि' लइल शरणे ॥125॥

एत चिन्ति'—यह सोचकर; प्राते-प्रातः काल में; आसि-आकर; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में; दैन्य करि'–विनम्रतापूर्वक; स्तुति करि'–अनेक स्तुतियाँ करके; लइल शरणे-शरण ली।

अनुवाद

इस तरह सोचकर दूसरे दिन प्रातःकाल वल्लभ भट्ट श्री चैतन्य महाप्रभु के पास पहुँचे और अत्यन्त दीनता के साथ अनेक स्तुतियाँ करके उन्होंने महाप्रभु के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली।

"आमि अज्ञ जीव,—अज्ञोचित कर्म कैलुँ।

तोमार आगे मूर्ख आमि पाण्डित्य प्रकाशिलुँ” ॥126॥

आमि-मैं; अज्ञ जीव–अज्ञानी जीव; अज्ञ-उचित मूर्खतापूर्ण; कर्म-कर्म; कैलुँ-मैंने किया है; तोमार आगे-आपके सामने; मूर्ख-मूर्ख; आमि-मैंने; पाण्डित्य प्रकाशिलुँ–विद्वत्ता प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट ने स्वीकार किया, “मैं महामूर्ख हूँ और निसन्देह आपके समक्ष अपना पाण्डित्य प्रदर्शित करने का प्रयास करके मैंने मूर्ख जैसा आचरण किया है।”

तुमि—ईश्वर, निजोचित कृपा ये करिला ।

अपमान करि’ सर्व गर्व खण्डाइला ॥ 127॥

तुमि-आप; ईश्वर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; निज-उचित-आपकी स्थिति के योग्य; कृपा-कृपा; ये-वह; करिला-आपने की है; अपमान करि’-अपमान करके; सर्व-समस्त; गर्व–घमंड; खण्डाइला-आपके चूर कर दिया है।

अनुवाद

“हे प्रभु, आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। आपने मेरा अपमान करकेमेरा समस्त मिथ्या गर्व चूर करने के लिए अपने पद के अनुकूल मुझ पर कृपा की है।”

आमि–अज्ञ, ‘हित’-स्थाने मानि ‘अपमाने’ ।

इन्द्र येन कृष्णेर निन्दा करिल अज्ञाने ॥128॥

आमि-मैं; अज्ञ-मूर्ख; हित-स्थाने-जो मेरे लिए हितकर है; मानि–मैं मानता हूँ; अपमाने-अपमान; इन्द्र-राजा इन्द्र ने; येन-जैसे; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के प्रति; निन्दा-अपराध; करिल-किया था; अज्ञाने-अज्ञान के कारण।

अनुवाद

“मैं अज्ञानी मूर्ख हूँ, क्योंकि जो मेरे हित के लिए है, उसे मैं अपमान मानता हूँ। इस प्रकार मैं राजा इन्द्र के समान हूँ, जिसने अज्ञानवश भगवान् कृष्ण को मात कर देना चाहा था।”

तोमार कृपा-अञ्जने एबे गर्व-आन्ध्य गेल ।

तुमि एत कृपा कैला,—एबे 'ज्ञान' हैल ॥129॥

तोमार कृपा-अञ्जने-आपकी कृपा रूपी अंजन द्वारा; एबे-अब; गर्व-आन्ध्य-मिथ्या अहंकार का अन्धापन; गेल-चला गया; तुमि-आपने; एत-ऐसी; कृपा-कृपा;कैला-की है; एबे-अब; ज्ञान-ज्ञान; हैल–हुआ है।

अनुवाद

"हे प्रभु, आपने मेरी आँखों में अपनी कृपा का अंजन लगाकर मेरे मिथ्या गर्व के अन्धेपन को दूर कर दिया है। आपने मुझ पर इतनी कृपा की है कि अब मेरा अज्ञान समाप्त हो गया है।"

"अपराध कैनु, क्षम, लइनु शरण ।

कृपा करि' मोर माथे धरह चरण" ॥130॥

अपराध कैनु–मैंने अपराध किये हैं; क्षम–कृपया क्षमा करें; लइनु शरणमैं शरण लेता हूँ; कृपा करि'–कृपा करके; मोर माथे-मेरे सिर पर; धरह चरण-आपके चरणकमल रख दीजिये।

अनुवाद

"हे प्रभु, मैंने अपराध किये हैं। कृपया आप मुझे क्षमा कर दें। मैं आपकी शरण में आया हूँ। कृपया अपने चरणकमलों को मेरे सिर पर रखकर आप मुझ पर कृपालु हों।"

प्रभु कहे "तुमि 'पण्डित' 'महा-भागवत' ।

दुइ-गुण याहाँ, ताहाँ नाहि गर्व-पर्वत ॥131॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तुमि-आप; पण्डित-अत्यन्त विद्वान; महा-भागवत–महान् भक्त; दुइ-गुण-दोनों गुण; याहाँ-जहाँ; ताहाँ-वहाँ; नाहि-नहीं हो सकता: गर्व-पर्वत-गर्व का पहाड़।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आप बहुत बड़े पण्डित तथा बहुत बड़े भक्त भी हो। जहाँ भी ऐसे दो गुण होते हैं, वहाँ मिथ्या गर्व का पर्वत नहीं रह सकता।"

श्रीधर-स्वामी निन्दि' निज-टीका कर! ।

श्रीधर-स्वामी नाहि मान',—एत 'गर्व' धर! ॥132॥

श्रीधरस्वामी-श्रीमद्भागवत पर एक महान् भाष्यकार; निन्दि'-निन्दा करके; निज-टीका-अपनी टीका; कर-आपने रची है; श्रीधर-स्वामी–श्रीधर स्वामी को; नाहि मान-आप नहीं मानते; एत-यही; गर्व–घमंड; धर-आप रखते हो।

अनुवाद

"तुमने श्रीधर स्वामी की आलोचना करने का दुःस्साहस किया है। और उनकी प्रामाणिकता को न स्वीकार करके श्रीमद्भागवत पर अपनी टीका करनी शुरू की है। यही आपका मिथ्या गर्व है।"

श्रीधर-स्वामि-प्रसादे 'भागवत' जानि ।

जगद्गुरु श्रीधर-स्वामी 'गुरु' करि' मानि ॥133॥

श्रीधर-स्वामि-श्रीधर स्वामी की; प्रसादे-कृपा द्वारा; भागवत जानि-हम श्रीमद्भागवत को समझ सकते हैं; जगत्-गुरु-समस्त विश्व के गुरु; श्रीधरस्वामी–श्रीधर स्वामी; गुरु करि'-आध्यात्मिक गुरु के समान; मानि–मैं स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

"श्रीधर स्वामी सारे जगत् के गुरु हैं, क्योंकि उनकी कृपा से हम श्रीमद्भागवत को समझ सकते हैं। अतएव मैं उन्हें गुरु के रूप में मानता हूँ।"

श्रीधर-उपरे गर्वे ये किछु लिखिबे ।

'अर्थ-व्यस्त' लिखन सेइ, लोके ना मानिबे ॥134॥

श्रीधर-उपरे-श्रीधर स्वामी से आगे; गर्वे-अहंकार वश; ये किछु लिखिबे-आप जो कुछ भी लिखते हो; अर्थ-व्यस्त–विपरीत अर्थ; लिखन सेइ-ऐसा लेखन; लोके ना मानिबे-कोई भी परवाह नहीं करेगा।

अनुवाद

"श्रीधर स्वामी से श्रेष्ठ बनने का प्रयास करते हुए मिथ्या गर्व से आप चाहे जो भी लिखो, उसका विपरीत तात्पर्य होगा। इसलिए उसकी ओर कोई भी ध्यान नहीं देगा।"

तात्पर्य

परम्परा प्रणाली के अनुसार श्रीमद्भागवत की अनेक टीकाएँ हैं, किन्तु श्रीधर स्वामी की टीका सर्वप्रथम है। अन्य सभी आचार्यों की टीकाएँ उनकी ही टीका का अनुगमन करती हैं। परम्परा प्रणाली पूर्ववर्ती आचार्यों की टीकाओं से विपथ होने की अनुमति किसी को नहीं देती। पूर्ववर्ती आचार्यों पर निर्भर रहकर, सुन्दर टीकाएँ लिखी जा सकती हैं। किन्तु पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। मिथ्या गर्व के कारण यदि कोई यह सोचता है कि वह पूर्ववर्ती आचार्यों से अच्छा लिख सकता है, तो उसकी टीका गलत हो जायेगी। आज यह फैशन बन गया है कि हर कोई मनमाने ढंग से लिखने लगा है, किन्तु ऐसी टीकाएँ गम्भीर भक्तों द्वारा स्वीकार नहीं की जातीं । मिथ्या गर्व के कारण, हर विद्वान और दार्शनिक अपने ढंग से शास्त्रों की, विशेषतया भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत की व्याख्या करके अपने पाण्डित्य को प्रकट करना चाहता है। अपने ढंग से टीका करने की इस पद्धति की श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूरी तरह से भर्त्सना की है। इसीलिए वे कहते हैं अर्थव्यस्त लिखन सेइ। अपनी खुद की दार्शनिक विचारधारा के अनुसार लिखी गई टीकाएँ मान्य नहीं होतीं। प्रामाणिक शास्त्रों पर इस तरह की टीकाओं की कोई प्रशंसा नहीं करेगा।

श्रीधरेर अनुगत ये करे लिखन ।

सब लोक मान्य करि' करिबे ग्रहण ॥135॥

श्रीधरेर–श्रीधर स्वामी के; अनुगत-चरणचिह्नों का अनुसरण करके; ये-जो कोई भी; करे लिखन-लिखता है; सब लोक-सभी; मान्य करि'–सम्मानपूर्वक; करिबे ग्रहण-स्वीकार करेंगे।

अनुवाद

"जो व्यक्ति श्रीधर स्वामी के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए श्रीमद्भागवत पर टीका लिखता है, उसका सभी लोग सम्मान करेंगे और वह सबके द्वारा मान्य होगी।"

श्रीधरानुगत कर भागवत-व्याख्यान ।

अभिमान छाड़ि' भज कृष्ण भगवान् ॥136॥

श्रीधर-अनुगत-श्रीधर स्वामी के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए; कर-करो; भागवत-व्याख्यान-श्रीमद्भागवतम् पर व्याख्या; अभिमान छाड़ि'–मिथ्या अभिमान छोड़कर; भज-सेवा करो; कृष्ण भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की।

अनुवाद

"आप श्रीधर स्वामी के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए श्रीमद्भागवत की अपनी व्याख्या प्रस्तुत करो। आप अपना मिथ्या गर्व त्याग दो और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करो।"

"अपराध छाड़ि' कर कृष्ण-सङ्कीर्तन ।

अचिरात् पाबे तबे कृष्णेर चरण" ॥137॥

अपराध छाड़ि'–अपराध छोड़कर; कर कृष्ण-सङ्कीर्तन-कृष्ण नाम का कीर्तन करो; अचिरात्-अति शीघ्र; पाबे-आप प्राप्त करोगे; तबे-तब; कृष्णेर चरण-भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

"अपने अपराधों को छोड़कर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करो। तब आप शीघ्र ही कृष्ण के चरणकमलों की शरण पा सकोगे।"

भट्ट कहे,–"यदि मोरे हइला प्रसन्न ।

एक-दिन पुनः मोर मान' निमन्त्रण" ॥138॥

भट्ट कहे-वल्लभ भट्ट ने कहा; यदि-यदि; मोरे-मेरे प्रति; हइला प्रसन्न-आप प्रसन्न हैं; एक-दिन-एक दिन; पुनः-फिर; मोर-मेरा; मान'–स्वीकार कीजिये; निमन्त्रण-निमन्त्रण।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की, "यदि आप मुझ पर सचमुच प्रसन्न हैं, तो एक बार फिर मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर लें।"

प्रभु अवतीर्ण हैला जगत्तारिते ।

मानिलेन निमन्त्रण, तारे सुख दिते ॥ 139॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु का; अवतीर्ण हैला–अवतार हुआ है; जगत्-विश्व के; तारिते-उद्धार के लिए; मानिलेन-उन्होंने स्वीकार किया; निमन्त्रण–बुलावा; तारे-उन्हें; सुख–प्रसन्नता; दिते-प्रदान करने के लिए।

अनुवाद

समस्त ब्रह्माण्ड का उद्धार करने के लिए अवतार लेने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट को सुख प्रदान करने हेतु उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

जगतेर 'हित' हउक–एइ प्रभुर मन ।

दण्ड करि' करे तार हृदय शोधन ॥140॥

जगतेर-समस्त विश्व का; हित-भला; हउक-हो; एइ–यह; प्रभुर मन-श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा; दण्ड करि'-दण्ड देकर; करे-करते हैं; तार-उसका; हृदय-हृदय; शोधन-शुद्धीकरण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इस भौतिक जगत् में हर एक को सुखी देखने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं। इसलिए कभी-कभी वे किसी-किसी को दण्ड देते हैं, जिससे वह अपने हृदय को शुद्ध कर सके।

स्वगण-सहित प्रभुर निमन्त्रण कैला ।

महाप्रभु तारे तबे प्रसन्न हइला ॥141॥

स्व-गण-सहित–उनके संगियों के साथ; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण-निमन्त्रण; कैला-किया; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे—उस पर; तबे-तब; प्रसन्न हइला-अत्यन्त प्रसन्न हुए।

अनुवाद

जब वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों को निमन्त्रित किया, तो महाप्रभु उनसे अत्यधिक प्रसन्न थे।

जगदानन्द-पण्डितेर शुद्ध गाढ़ भाव ।

सत्यभामा-प्राय प्रेम 'वाम्य-स्वभाव' ॥ 142॥

जगदानन्द-पण्डितेर–जगदानन्द पण्डित का; शुद्ध-शुद्ध; गाढ़-गहरा; भाव-प्रेमभाव; सत्यभामा-प्राय-सत्यभामा के समान; प्रेम-उनका भगवान् के प्रति प्रेम; वाम्य-स्वभाव-झगड़े के स्वभाव का।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए जगदानन्द पण्डित का शुद्ध प्रेमभाव अत्यन्त प्रगाढ़ था। इसकी तुलना सत्यभामा के प्रेम से की जा सकती है, जो कृष्ण से सदैव झगड़ती रहती थीं।

बार-बार प्रणय कलह करे प्रभु-सने ।

अन्योऽन्ये खट्मटि चले दुइ-जने ॥143॥

बार-बार-बारम्बार; प्रणय-प्रेममय; कलह-झगड़ा; करे-करते; प्रभु-सने–श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; अन्योऽन्ये-आपस में; खट्मटि-अनबन; चले-चलती है; दुइ-जने-दोनों के बीच।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित में महाप्रभु से प्रेमपूर्ण झगड़ा करने की आदत थी। उन दोनों के बीच सदैव कुछ न कुछ खटपट चलती रहती थी।

गदाधर-पण्डितेर शुद्ध गाढ़ भाव ।

रुक्मिणी-देवीर यैछे दक्षिण-स्वभाव ॥ 144॥

गदाधर-पण्डितेर-गदाधर पण्डित का; शुद्ध-शुद्ध; गाढ़-गहरा; भाव-प्रेमभाव; रुक्मिणी-देवीर-रूक्मिणी देवी; यैछे-जैसे; दक्षिण-स्वभाव-समर्पित स्वभाव।

अनुवाद

गदाधर पण्डित का भी श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति शुद्ध प्रेम अत्यन्त प्रगाढ़ था। यह प्रेम रुक्मिणी देवी जैसा था, जो सदैव कृष्ण के प्रति विनीत बनी रहती थीं।

ताँर प्रणय-रोष देखते प्रभुर इच्छा हय ।

ऐश्वर्य-ज्ञाने ताँर रोष नाहि उपजय ॥145 ॥

ताँर-उनका; प्रणय-रोष-स्नेहपूर्ण क्रोध; देखिते-देखने की; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; इच्छा हय-इच्छा होती; ऐश्वर्य-ज्ञाने-ऐश्वर्य ज्ञान के कारण; ताँर-उनका; रोष-क्रोध; नाहि-नहीं; उपजय-जागता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कभी-कभी गदाधर पण्डित का स्नेहिल क्रोध (मान) देखना चाहते थे, किन्तु महाप्रभु के ऐश्वर्य का ज्ञान होने के कारण वे कभी रुष्ट नहीं होते थे।

तात्पर्य

द्वारका में रुक्मिणी से परिहास करते समय कृष्ण ने उन्हें सलाह दी थी कि वे अपने लिए दूसरा पति चुन लें, क्योंकि वे उनके लिए अपने आपको अनुपयुक्त समझते थे। किन्तु रुक्मिणी उनके परिहास को नहीं समझ पाईं, अतएव वे उनके विछोह के भय से तुरन्त पृथ्वी पर अचेत होकर गिर पड़ीं। श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं में जगदानन्द पण्डित सदैव सत्यभामा की तरह महाप्रभु से प्रतिकूल रहते, जबकि गदाधर पण्डित महाप्रभु के ऐश्वर्य से सदैव प्रभावित रहते, अतएव वे हर परिस्थिति में महाप्रभु के प्रति विनीत बने रहते।

एइ लक्ष्य पाञा प्रभु कैला रोषाभास ।

शुनि' पण्डितेर चित्ते उपजिल त्रास ॥146॥

एइ-यह; लक्ष्य-उद्देश्य; पाञा–लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला रोष- आभास-क्रोध का दिखावा करते हैं; शुनि'–सुनकर; पण्डितेर-गदाधर पण्डित के; चित्ते-हृदय में; उपजिल-उत्पन्न हो गया; त्रास-भय।

अनुवाद

इसी कारण से श्री चैतन्य महाप्रभु कभी-कभी ऊपरी रोष प्रकट करते थे। इस रोष को सुनकर गदाधर पण्डित के हृदय में महान् भय उत्पन्न हो जाता।

पूर्वे येन कृष्ण यदि परिहास कैल ।

शुनि' रुक्मिणीर मने त्रास उपजिल ॥147॥

पूर्वे-पहले; येन-जैसे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यदि-जब; परिहास कैल-मजाक करते हैं; शुनि'–सुनकर; रुक्मिणीर मने-रुक्मिणी देवी के मन में; त्रास-भय; उपजिल-उत्पन्न होता।

अनुवाद

पहले, कृष्ण लीला में जब भगवान् कृष्ण ने रुक्मिणी देवी से परिहास किया था, तब उन्होंने उनके शब्दों को गम्भीरता से लिया, जिससे उनके मन में भय उत्पन्न हो गया।

वल्लभ-भट्टेर हय वात्सल्य-उपासन ।

बाल-गोपाल-मन्त्रे तेंहो करेन सेवन ॥148॥

वल्लभ-भट्टेर-वल्लभ भट्ट की; हय-है; वात्सल्य-उपासन-वात्सल्य भाव में उपासना; बाल-गोपाल-मन्त्रे-बालगोपाल मन्त्र से; तेंहो-वे; करेन-करते हैं; सेवन-उपासना।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट भगवान् कृष्ण की बाल रूप की पूजा किया करते थे। इसलिए उन्हें बालगोपाल मन्त्र की दीक्षा मिली थी और वे इसी रूप में भगवान् की पूजा करते थे।

पण्डितेर सने तार मन फिरि' गेल ।

किशोर-गोपाल-उपासनाय मन दिल ॥ 149॥

पण्डितेर सने–गदाधर पण्डित के संग में; तार-उनका; मन–मन; फिरि' गेल-बदल गया; किशोर-गोपाल–किशोर अवस्था के कृष्ण की; उपासनाय-उपासना का; मन दिल-मन बना लिया।

अनुवाद

गदाधर पण्डित की संगति से उनका मन बदल गया और उन्होंने किशोर गोपाल की पूजा में अपने मन को समर्पित कर दिया।

पण्डितेर ठाञि चाहे मन्त्रादि शिखिते ।

पण्डित कहे,–"एइ कर्म नहे आमा हैते" ॥150॥

पण्डितेर ठाञि-गदाधर पण्डित से; चाहे-चाहे; मन्त्र-आदि शिखिते-दीक्षा लेना; पण्डित कहे-गदाधर पण्डित ने कहा; एइ कर्म-यह कार्य; नहे आमा हैते–मेरे लिए सम्भव नहीं है।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट गदाधर पण्डित से दीक्षा लेना चाहते थे, किन्तु गदाधर पण्डित ने यह कहकर मना कर दिया, "मेरे लिए गुरु के रूप में कार्य करना सम्भव नहीं है।"

आमि–परतन्त्र, आमार प्रभु–गौरचन्द्र ।

ताँर आज्ञा विना आमि ना हइ 'स्वतन्त्र' ॥151॥

आमि-मैं; परतन्त्र–अधीन हूँ; आमार प्रभु-मेरे प्रभु; गौरचन्द्र-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर–उनके; आज्ञा-आदेश; विना-बिना; आमि-मैं; ना-नहीं; हइ-हूँ; स्वतन्त्र–स्वतन्त्र।

अनुवाद

"मैं पूरी तरह से परतन्त्र हूँ। मेरे प्रभु तो गौरचन्द्र श्री चैतन्य महाप्रभु हैं। मैं उनके आदेश के बिना स्वतन्त्र रूप से कुछ भी नहीं कर सकता।"

"तुमि ने आमार ठाञि कर आगमन ।

ताहातेइ प्रभु मोरे देन ओलाहन" ॥152॥

तुमि-आप; ये-जो; आमार ठाञि-मेरे पास; कर आगमन-आते हो; ताहातेइ-उस कारण; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मोरे-मुझे; देन-देते हैं; ओलाहन–शब्दों से दण्ड।

अनुवाद

"हे वल्लभ भट्ट, मेरे यहाँ आपका आना श्री चैतन्य महाप्रभु को पसन्द नहीं है। इसलिए कभी-कभी वे मुझे दण्डित करने के लिए बोलते रहते हैं।"

एइ-मत भट्टेर कथेक दिन गेल ।

शेषे यदि प्रभु तारे सुप्रसन्न हैल ॥ 153॥

निमन्त्रणेर दिने पण्डिते बोलाइला ।

स्वरूप, जगदानन्द, गोविन्दे पाठाइला ॥ 154॥

एइ-मत-इस प्रकार; भट्टेर-वल्लभ भट्ट के; कथेक दिन-कुछ दिन; गेल-बीत गये; शेषे–अन्त में; यदि-जब; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे–उन पर; सु-प्रसन्न हैल-प्रसन्न हो गये; निमन्त्रणेर दिने–निमन्त्रण के दिन; पण्डिते बोलाइला–गदाधर पण्डित को उन्होंने बुलाया; स्वरूप-स्वरूप दामोदर को; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित को; गोविन्दे-गोविन्द को; पाठाइला-उन्होंने भेजा।

अनुवाद

इस तरह कुछ दिन बीत गये और जब अन्त में श्री चैतन्य महाप्रभु वल्लभ भट्ट पर प्रसन्न हुए, तो उन्होंने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। तब महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर, जगदानन्द पण्डित तथा गोविन्द को गदाधर पण्डित को बुलाने के लिए भेजा।

पथे पण्डितेरे स्वरूप कहेन वचन ।

"परीक्षिते प्रभु तोमारे कैला उपेक्षण" ॥155॥

पथे-मार्ग में; पण्डितेरे-गदाधर पण्डित से; स्वरूप-स्वरूप दामोदर ने; कहेन वचन-कुछ वचन कहे; परीक्षिते-परीक्षा लेने के लिए; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तोमारे-तुम्हारी; कैला उपेक्षण-उपेक्षा की।

अनुवाद

रास्ते में स्वरूप दामोदर ने गदाधर पण्डित से कहा, "श्री चैतन्य महाप्रभु तुम्हारी परीक्षा लेना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने तुम्हारी उपेक्षा की है।"

"तुमि केने आसि' तारे ना दिला ओलाहन? ।

भीत-प्राय हञा काँहे करिला सहन?" ॥156॥

तुमि-तुमने; केने-क्यों; आसि-आकर; तारे-उन्हें; ना दिला–नहीं दिया; ओलाहन-उलाहना; भीत-प्राय-भयभीत; हा-होकर; काँहे-क्यों; करिला सहन-तुमने सहन किया।

अनुवाद

"तुमने पलटकर उनकी उलाहना क्यों नहीं की? तुमने डरकर उनकी आलोचना क्यों सह ली?"

पण्डित कहेन,—प्रभु स्वतन्त्र सर्वज्ञ-शिरोमणि।

ताँर सने 'हठ' करि,—भाल नाहि मानि॥ 157॥

पण्डित कहेन-गदाधर पण्डित ने कहा; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; स्वतन्त्र-स्वतन्त्र; सर्वज्ञ-शिरोमणि-सर्वश्रेष्ठ सर्वज्ञ हैं; ताँर सने–उनके साथ; हठ करि-यदि मैं समान स्तर पर बात करता हूँ; भाल–अच्छा; नाहि मानि–मैं नहीं मानता।

अनुवाद

गदाधर पण्डित ने कहा, "भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। वे सर्वोच्च सर्वज्ञ पुरुष हैं। मेरे लिए शोभा नहीं देता कि मैं उनके बराबर बनकर उनसे बात करता।"

"येइ कहे, सेइ सहि निज-शिरे धरि'।

आपने करिबेन कृपा गुण-दोष विचारि" ॥158॥

येइ कहे-वे जो भी कहते हैं; सेइ सहि-मैं सहन करता हूँ; निज-शिरे-मेरे सिर पर; धरि'-धारण कर; आपने–स्वयं; करिबेन कृपा-वे कृपा करेंगे; गुण-दोष-गुण और दोष;विचार-विचार करके।

अनुवाद

"वे जो भी कहते हैं, उसे मैं शिरोधार्य करके सहन कर सकता हूँ। वे मेरे गुण तथा दोषों पर विचार करके स्वयं ही मुझ पर कृपालु होंगे।"

एत बलि' पण्डित प्रभुर स्थाने आइला।

रोदन करिया प्रभुर चरणे पड़िला ॥159॥

एत बलि'-यह कहकर; पण्डित-गदाधर पण्डित; प्रभुर स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान पर; आइला-आ गये; रोदन करिया-रोकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे-चरणकमलों में; पड़िला–गिर गये।

अनुवाद

यह कहकर गदाधर पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गये और रोते हुए उनके चरणकमलों पर गिर पड़े।

ईषत् हासिया प्रभु कैला आलिङ्गन।

सबारे शुनाञा कहेन मधुर वचन॥ 160॥

ईषत् हासिया-मन्द मुस्कुराकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला आलिङ्गन-आलिंगन किया; सबारे—सभी को; शुनाञा-सुनाते हुए; कहेन–कहने लगे; मधुर वचन-मधुर वचन।

अनुवाद

कुछ-कुछ हँसते हुए महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया और उनसे मधुर वचन कहे, जिससे अन्य लोग भी सुन सकें।

"आमि चालाइलुँ तोमा, तुमि ना चलिला।

क्रोधे किछु ना कहिला, सकल सहिला"॥ 161॥

आमि-मैंने; चालाइलुँ-विचलित करने का प्रयास किया; तोमा-तुम्हें; तुमि-तुम; ना चलिला–विचलित नहीं हुए; क्रोधे-क्रोध में; किछु—कुछ; ना कहिला-तुमने नहीं कहा; सकल-सब कुछ; सहिला-तुमने सहन किया।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "मैं तुम्हें उत्तेजित करना चाहता था, किन्तु तुम उत्तेजित नहीं हुए। निस्सन्देह, क्रोध में तुमने कुछ नहीं कहा; प्रत्युत तुमने सब सह लिया।

"आमार भङ्गीते तोमार मन ना चलिला।

सुदृढ़ सरल-भावे आमारे किनिला"॥162॥

आमार भङ्गीते–मेरी युक्ति द्वारा; तोमार मन–तुम्हारा मन; ना चलिला–विचलित नहीं हुआ; सुदृढ़-दृढ़; सरल-भावे-सरलता द्वारा; आमारे-मुझे; किनिला तुमने खरीद लिया।

अनुवाद

"तुम्हारा मन मेरी युक्तियों से विचलित नहीं हुआ। प्रत्युत तुम अपनी सरलता में दृढ़ बने रहे। इस तरह तुमने मुझे खरीद लिया है।"

पण्डितेर भाव-मुद्रा कहन ना याय ।

'गदाधर-प्राण-नाथ' नाम हैल याय ॥163॥

पण्डितेर-गदाधर पण्डित का; भाव-मुद्रा-चरित्र और प्रेमभाव; कहन ना याय-वर्णन नहीं किया जा सकता; गदाधर-प्राण-नाथ-गदाधर के प्राणेश्वर; नाम-नाम; हैल-हो; याय-गया।

अनुवाद

कोई भी व्यक्ति गदाधर पण्डित की भाव-भंगिमाओं तथा प्रेम का वर्णन नहीं कर सकता। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु का दूसरा नाम 'गदाधर प्राणनाथ' अर्थात् 'गदाधर पण्डित के प्राण है।

पण्डिते प्रभुर प्रसाद कहन ना याय ।

'गदाइर गौराङ्ग' बलि' याँरै लोके गाय ॥164॥

पण्डिते-गदाधर पण्डित पर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; प्रसाद कृपा; कहन ना याय-कोई वर्णन नहीं कर सकता; गदाइर गौराङ्ग–गदाधर पण्डित के गौरांग; बलि'–कहकर; याँरै-जिन्हें; लोके गाय-लोग बुलाते हैं।

अनुवाद

कोई कह नहीं सकता कि महाप्रभु गदाधर पण्डित पर कितने कृपालु हैं, किन्तु लोग महाप्रभु को गदाइर गौरांग अर्थात् "गदाधर पण्डित के गौरांग महाप्रभु" के रूप में जानते हैं।

चैतन्य-प्रभुर लीला के बुझिते पारे? ।

एक-लीलाय वहे गङ्गार शत शत धारे ॥ 165 ॥

चैतन्य-प्रभुर लीला-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ, के-कौन; बुझिते पारे-समझ सकता है; एक-लीलाय-एक लीला में; वहे-बहती है; गङ्गार-गंगा की; शत शत धारे-सौ-सौ धाराएँ।

अनुवाद

कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को समझ नहीं सकता। वे गंगा के समान हैं, क्योंकि उनकी एक लीला से ही सैकड़ों हजारों शाखाएँ बहती हैं।

पण्डितेर सौजन्य, ब्रह्मण्यता-गुण ।

दृढ़ प्रेम-मुद्रा लोके करिला ख्यापन ॥166॥

पण्डितेर सौजन्य-गदाधर पण्डित का सभ्य आचरण; ब्रह्मण्यता-गुण-एक ब्राह्मण के गुण; दृढ़-दृढ़; प्रेम-मुद्रा-प्रेम का लक्षण; लोके-लोग; करिला ख्यापन-विख्यात हुए।

अनुवाद

गदाधर पण्डित अपने सौम्य आचरण, अपने ब्राह्मण गुणों तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति अपने दृढ़ प्रेम के लिए सारे जगत् में विख्यात हैं।

अभिमान-पङ्क धुञा भट्टरे शोधिला ।

सेइ-द्वारा आर सब लोके शिखाइला ॥167॥

अभिमान-पङ्क-मिथ्या अभिमान का कीचड़; धुञा-धोकर; भट्टेरे शोधिला–वल्लभ भट्ट का शोधन किया; सेइ-द्वारा–उसके द्वारा; आर सब-अन्य सभी; लोके-लोगों को; शिखाइला–शिक्षा दी।

अनुवाद

महाप्रभु ने मिथ्या गर्व के कीचड़ को साफ करके वल्लभ भट्ट को शुद्ध किया। ऐसे कार्यों से महाप्रभु ने अन्यों को भी शिक्षा दी।

अन्तरे अनुग्रह, बाह्ये 'उपेक्षार प्राय' ।

बाह्यार्थ येइ लय, सेइ नाश याय ॥ 168॥

अन्तरे-हृदय में; अनुग्रह-कृपा; बाह्य-बाहर; उपेक्षार प्राय-उपेक्षा जैसे; बाह्य-अर्थ-बाहरी अर्थ; येइ-जो कोई; लय-लेता है; सेइ-वह; नाश याय-नष्ट हो जायेगा।

अनुवाद

वस्तुतः श्री चैतन्य महाप्रभु अपने हृदय के भीतर सदैव कृपालु रहते, किन्तु कभी-कभी वे अपने भक्तों की बाह्य रूप से उपेक्षा करते थे। अतः हमें उनके बाह्य लक्षणों में ही नहीं लगे रहना चाहिए, क्योंकि यदि हम ऐसा करेंगे, तो हमारा विनाश हो जायेगा।

निगूढ़ चैतन्य-लीला बुझिते कार शक्ति? ।

सेइ बुझे, गौरचन्द्रे याँर दृढ़ भक्ति ॥169॥

निगूढ़-अति गहरी; चैतन्य-लीला-चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; बुझिते-समझने की; कार–किसकी; शक्ति-शक्ति; सेइ बुझे-वह समझता है; गौरचन्द्रे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु में; याँर-जिसकी; दृढ़ भक्ति-अबाध भक्ति भावना है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अगाध हैं। इन्हें कौन समझ सकता है? केवल वही इन लीलाओं को समझ सकता है, जिसकी उनके चरणकमलों में दृढ़ एवं अगाध भक्ति होती है।

दिनान्तरे पण्डित कैल प्रभुर निमन्त्रण ।

प्रभु ताहाँ भिक्षा कैल लञा निज-गण ॥ 170 ॥

दिन-अन्तरे-एक और दिन; पण्डित–गदाधर पण्डित ने; कैल प्रभुर निमन्त्रण-श्री चैतन्य महाप्रभु को निमंत्रित किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताहाँ-वहाँ; भिक्षा कैल-प्रसाद ग्रहण किया; लञा निज-गण-अपने संगी गणों के साथ।

अनुवाद

अन्य दिन गदाधर पण्डित ने श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन पर बुलाया। महाप्रभु ने अपने संगियों सहित उनके घर पर भोजन किया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर टीका करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट के प्रति अत्यन्त दयालु शुभचिन्तक के रूप में उनके पांडित्य के झूठे गर्व को शुद्ध करने के लिए बाह्य रूप से अनेक प्रकार से उपेक्षा की। इसी तरह महाप्रभु ने कुछ दिनों तक गदाधर पण्डित की अवहेलना की, क्योंकि वे वल्लभ भट्ट से संगति कर रहे थे। वस्तुतः

वे गदाधर पण्डित से जरा भी अप्रसन्न नहीं थे। चूँकि गदाधर पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु की निजी शक्ति हैं, अतएव महाप्रभु के उनसे कुपित होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु जो व्यक्ति बाह्य वस्तुओं में अत्यधिक लिप्त रहता है, वह श्री चैतन्य महाप्रभु के इन व्यवहारों का गूढ़ अर्थ नहीं समझ सकता। इसलिए यदि कोई गदाधर पण्डित का अनादर करेगा, तो उसका सर्वनाश हो जायेगा।

ताहाञि वल्लभ-भट्ट प्रभुर आज्ञा लैल ।

पण्डित-ठाञि पूर्व-प्रार्थित सब सिद्धि हैल ॥ 171

ताहाडि-वहाँ; वल्लभ-भट्ट-वल्लभ भट्ट; प्रभुर आज्ञा-श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा; लैल-लेकर; पण्डित-ठाञि-गदाधर पण्डित से; पूर्व-प्रार्थित-पहले से प्रार्थित; सब सिद्धि हैल-सब कुछ उत्तम प्रकार से प्राप्त हुआ।

अनुवाद

वहीं पर वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु से अनुमति ली और गदाधर पण्डित से दीक्षा लेने की उनकी इच्छा पूरी हुई।

एइ त' कहिलुँ वल्लभ-भट्टेर मिलन ।

याहार श्रवणे पाय गौर-प्रेम-धन ॥172॥

एइ त कहिलुँ—इस प्रकार मैंने वर्णन किया; वल्लभ-भट्टेर मिलन-वल्लभ भट्ट का मिलन; याहार श्रवणे-जिसे सुनकर; पाय-प्राप्त होता है; गौर-प्रेम-धन-श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेम का खजाना।

अनुवाद

इस तरह मैंने वल्लभ भट्ट से महाप्रभु की भेंट का वर्णन किया। इस घटना को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति प्रेम का धन प्राप्त हो सकता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥173॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणों में; यार-जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा उनकी कृपा की सदैव कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर मैं कृष्णदास श्री चैतन्य चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्य लीला के अन्तर्गत "श्री चैतन्य महाप्रभु एवं वल्लभ भट्ट की भेंट" शीर्षक सातवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय आठ

रामचन्द्र पुरी द्वारा महाप्रभु की आलोचना

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत प्रवाह भाष्य में आठवें अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है : इस अध्याय में रामचन्द्र पुरी के साथ महाप्रभु के व्यवहार की कथा कही गई है। यद्यपि रामचन्द्र पुरी माधवेन्द्र पुरी का शिष्य था, किन्तु वह शुष्क मायावादियों द्वारा प्रभावित था, इसलिए वह माधवेन्द्र पुरी की आलोचना करता था। फलतः माधवेन्द्र पुरी ने उसे अपराधी कहकर तिरस्कृत कर दिया था। चूँकि रामचन्द्र पुरी अपने गुरु द्वारा तिरस्कृत हो चुका था, इसलिए वह केवल अन्यों में दोष निकालता रहता था और उन्हें शुष्क मायावाद दर्शन के अनुसार उपदेश देता था। इसी कारण से वह वैष्णवों का आदर नहीं करता था। बाद में वह इतना पतित हो गया कि श्री चैतन्य महाप्रभु के भोजन करने की भी आलोचना करने लगा। उसकी आलोचना सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने भोजन करना कम कर दिया, किन्तु रामचन्द्र पुरी जब जगन्नाथपुरी से चला गया तो महाप्रभु पूर्ववत् आचरण करने लगे।

तं वन्दे कृष्ण-चैतन्यं रामचन्द्र-पुरी-भयात् ।

लौकिकाहारतः स्वं यो भिक्षान्नं समकोचयत् ॥1॥

तम्-उनकी; वन्दे-मैं वन्दना करता हूँ; कृष्ण-चैतन्यम्-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; रामचन्द्र-पुरी-भयात्-रामचन्द्र पुरी के भय से; लौकिक-साधारण; आहारतः-आहार से; स्वम्-अपना; ग्रः-जिन्होंने; भिक्षा-अन्नम्-भोजन की मात्रा; समकोचयत्-कम कर दी।

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने रामचन्द्र पुरी की आलोचना से डरकर अपना भोजन करना कम कर दिया।

जय जय श्री-चैतन्य करुणा-सिन्धु-अवतार।

ब्रह्मा-शिवादिक भजे चरण याँहार ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; करुणा-सिन्धु-अवतार-जो करुणा के सागर के अवतार हैं; ब्रह्मा-शिव-आदिक-ब्रह्मा, शिव आदि देवगण; भजे-उपासना करते हैं; चरण-चरणकमल; याँहार–जिनके।

अनुवाद

करुणा के सागर श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! उनके चरणकमलों की पूजा ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे देवता तक करते हैं।

जय जय अवधूत-चन्द्र नित्यानन्द।

जगत् बाँधिल येंह दिया प्रेम-फाँद ॥3॥

जय जय-जय हो; अवधूत-चन्द्र-वैरागियों में चन्द्रमा समान; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; जगत्-संसार; बाँधिल-बाँध दिया; येंह-जिन्होंने; दिया-द्वारा; प्रेम-फाँद-कृष्ण के प्रेमभाव की गांठ।

अनुवाद

महानतम अवधूत श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो, जिन्होंने भगवद् प्रेम की गाँठ से सारे जगत् को बाँध दिया।

जय जय अद्वैत ईश्वर अवतार।

कृष्ण अवतारि' कैल जगत् निस्तार ॥4॥

जय जय-जय हो; अद्वैत-अद्वैत आचार्य की; ईश्वर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के;अवतार–अवतार; कृष्ण अवतारि'-कृष्ण का अवतार करवाकर; कैल–किया; जगत्-निस्तार–समस्त संसार का उद्धार।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अवतार श्री अद्वैत प्रभु की जय हो! उन्होंने कृष्ण को अवतरित कराया और इस तरह सम्पूर्ण जगत् का उद्धार किया।

जय जय श्रीवासादि यत भक्त-गण ।

श्री-कृष्ण-चैतन्य प्रभु–याँर प्राण-धन ॥5॥

जय जय-जय हो; श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर आदि; यत भक्त-गण-सारे भक्तों की; श्री-कृष्ण-चैतन्य प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; याँर-जिनके; प्राण-धन-प्राण और जीवन।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर इत्यादि समस्त भक्तों की जय हो! श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु उन सबके प्राण एवं जीवन हैं।

एइ-मत गौरचन्द्र निज-भक्त-सङ्गे ।

नीलाचले क्रीड़ा करे कृष्ण-प्रेम-तरङ्गे ॥6॥

एइ-मत-इस प्रकार; गौरचन्द्र-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-भक्त-सङ्गे-अपने भक्तों के साथ; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; क्रीड़ा करे–विभिन्न लीलाएँ करते हैं; कृष्ण-प्रेम-तरङ्गे–कृष्ण-प्रेम की लहरों में।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथपुरी में निजी भक्तों के साथ कृष्ण-प्रेम की तरंगों में विविध लीलाएँ सम्पन्न कीं।

हेन-काले रामचन्द्र-पुरी-गोसाञि आइला ।

परमानन्द-पुरीरे आर प्रभुरे मिलिला ॥7॥

हेन-काले-इस समय; रामचन्द्र-पुरी-गोसाञि–रामचन्द्र पुरी नामक एक संन्यासी; आइला–आया; परमानन्द-पुरीरे-परमानन्द पुरी; आर-और; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; मिलिला-मिला।

अनुवाद

तभी रामचन्द्र पुरी गोसांई नामक एक संन्यासी परमानन्द पुरी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने आया।

परमानन्द-पुरी कैल चरण वन्दन ।

पुरी-गोसाञि कैल ताँरे दृढ़ आलिङ्गन ॥8॥

परमानन्द-पुरी-परमानन्द पुरी ने; कैल–किया; चरण-चरणों में; वन्दन-वन्दना; पुरी-गोसाञि-रामचन्द्र पुरी ने; कैल–किया; ताँरे–उन्हें; दृढ़-प्रगाढ़; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

परमानन्द पुरी ने रामचन्द्रपुरी के चरणों की वन्दना की और रामचन्द्र पुरी ने उनका गाढ़ आलिंगन किया।

तात्पर्य

चूँकि रामचन्द्र पुरी माधवेन्द्र पुरी का शिष्य था, इसलिए परमानन्द पुरी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु दोनों ने ही उसको नमस्कार किया। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि यद्यपि रामचन्द्र पुरी अत्यन्त ईर्ष्यालु था और वैष्णव मत के विरुद्ध था—दूसरे शब्दों में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके भक्तों के सिद्धान्तों के विरुद्ध था—तो भी सामान्य लोग उसे गोस्वामी या गोसांई कहते थे, क्योंकि उसने बाह्य रूप से संन्यास ग्रहण कर रखा था और संन्यासी जैसा वेश बनाये रहता था। आधुनिक युग में गोस्वामी उपाधि गृहस्थों के एक वर्ग द्वारा प्रयुक्त की जाती है, किन्तु पहले ऐसा नहीं था। उदाहरणार्थ, रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी इसलिए गोस्वामी कहलाते थे, क्योंकि उन्होंने संन्यास ले रखा था। इसी तरह चूँकि परमानन्द पुरी संन्यासी थे, अतः वे पुरी गोस्वामी कहलाते थे। इसलिए छानबीन करने पर देखा जा सकता है। कि गोस्वामी किसी जाति विशेष की उपाधि नहीं है, प्रत्युत यह संन्यासी के लिए उपयुक्त उपाधि है।

महाप्रभु कैला ताँरे दण्डवत् नति ।

आलिङ्गन करि' तेंहो कैल कृष्ण-स्मृति ॥9॥

महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला–किया; ताँरे–उन्हें; दण्डवत् नति–दण्डवत् प्रणाम किया; आलिङ्गन करि'-गले लगाकर; तेंहो–रामचन्द्र पुरी ने; कैल–किया; कृष्ण- स्मृति-कृष्ण का स्मरण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी रामचन्द्र पुरी को नमस्कार किया, जिसने महाप्रभु का आलिंगन किया और इस तरह कृष्ण का स्मरण किया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामचन्द्र पुरी को अपने गुरु ईश्वर पुरी के भी गुरु श्रील माधवेन्द्र पुरी का शिष्य समझकर नमस्कार किया। जब कोई वैष्णव संन्यासी अन्य वैष्णव संन्यासी से मिलता है, तो वे दोनों श्रीकृष्ण का स्मरण करते हैं। मायावादी संन्यासी तक सामान्यतया नारायण का, जो कि कृष्ण हैं, ॐ नमो भगवते नारायणाय या नमो नारायणाय कहकर स्मरण करते हैं। इस तरह कृष्ण का स्मरण करना संन्यासी का कर्तव्य है। स्मृति शास्त्र के अनुसार संन्यासी न तो नमस्कार करता है न आशीर्वाद देता है। कहा जाता है-संन्यासी निराशीर्निर्नमस्क्रिय:-संन्यासी को न तो किसी को आशीर्वाद देना चाहिए, न नमस्कार करना चाहिए।

तिन-जने इष्ठ-गोष्ठी कैला कत-क्षण ।

जगदानन्द-पण्डित ताँरे कैला निमन्त्रण ॥10॥

तिन-जने–तीनों लोगों ने; इष्ठ-गोष्ठी-कृष्ण विषयक चर्चा; कैला-की; कत-क्षण-कुछ समय तक; जगदानन्द-पण्डित-जगदानन्द पण्डित ने; ताँरे–रामचन्द्र पुरी को;कैला निमन्त्रण-निमंत्रित किया।

अनुवाद

इन तीनों ने कुछ समय तक कृष्ण के विषय में बातें कीं और तब जगदानन्द पण्डित ने आकर रामचन्द्र पुरी को निमन्त्रण दिया।

जगन्नाथेर प्रसाद आनिला भिक्षार लागिया ।

यथेष्ट भिक्षा करिला तेंहो निन्दार लागिया ॥11॥

जगन्नाथेर प्रसाद-भगवान जगन्नाथ का प्रसाद; आनिला–लाये; भिक्षार लागिया-खिलाने के लिए; यथेष्ट भिक्षा करिला–पेट भर खाया; तेंहो-उन्होंने; निन्दार लागिया-कुछ दोष निकालने के लिए।

अनुवाद

अधिक मात्रा में जगन्नाथ जी का प्रसाद वितरित करने के लिए लाया गया। रामचन्द्र पुरी ने डटकर भोजन किया, किन्तु उसके बाद वह जगदानन्द पण्डित के दोष ढूँढना चाहता था।

भिक्षा करि' कहे पुरी,–"शुन, जगदानन्द ।

अवशेष प्रसाद तुमि करह भक्षण" ॥12॥

भिक्षा करि'–भोजन समाप्त कर; कहे पुरी–रामचन्द्र पुरी ने कहा; शुन जगदानन्द-मेरे प्रिय जगदानन्द, जरा सुनो; अवशेष प्रसाद-बचा हुआ प्रसाद; तुमि-तुम; करह भक्षण-खा लो।

अनुवाद

भोजन कर लेने के बाद रामचन्द्र पुरी ने अनुरोध किया, "प्रिय जगदानन्द, जरा सुनो तो। तुम इस बचे हुए भोजन को खा लो।"

आग्रह करिया तौरे वसि' खाओयाइल ।

आपने आग्रह करि' परिवेशन कैल ॥ 13॥

आग्रह करिया–अत्यधिक (निवेदन) उत्सुकतापूर्वक; तौरे वसि'–उन्हें बिठाकर; खाओयाइल-खिलाया; आपने-स्वयं; आग्रह करि'–उत्साहपूर्वक; परिवेशन कैल-वितरण किया।

अनुवाद

रामचन्द्र पुरी ने अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक जगदानन्द पण्डित को बैठाया और उन्हें स्वयं प्रसाद परोसा।

आग्रह करिया पुनः पुनः खाओयाइल ।

आचमन कैले निन्दा करिते लागिल ॥14॥

आग्रह करिया-उत्साहपूर्वक; पुनः पुनः–बारम्बार; खाओयाइल-खिलाया;आचमन कैले–जब उन्होंने अपने हाथ-मुँह धो लिए; निन्दा करिते लागिल-निन्दा करना प्रारम्भ किया।

अनुवाद

बारम्बार अनुरोध करके रामचन्द्र पुरी ने उन्हें खूब खिलाया, किन्तु जब जगदानन्द हाथ-मुँह धो चुके, तो रामचन्द्र पुरी उनकी आलोचना करने लगा।

"शुनि, चैतन्य-गण करे बहुत भक्षण ।

‘सत्य’ सेइ वाक्य,—साक्षात् देखिलुँ एखन” ॥15॥

शुनि–मैंने सुना था; चैतन्य-गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी; करे बहुत भक्षण-आवश्यकता से अधिक खाते हैं; सत्य-सच है; सेइ वाक्य-वह कथन; साक्षात्-सामने; देखिलुँ–मैंने देख लिया; एखन-अब।

अनुवाद

उसने कहा, “मैंने सुना है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी आवश्यकता से अधिक खाते हैं। अब मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है कि यह सच है।”

सन्न्यासीरे एत खाओयाञा करे धर्म नाश ।

वैरागी हञा एत खाय, वैराग्येर नाहि ‘भास’ ॥16॥

सन्न्यासीरे-एक संन्यासी को; एत-इतना अधिक; खाओयाञा-खिलाना; करे धर्म नाश-नियमों का नाश करता है; वैरागी हञा-संन्यासी होकर; एत-इतना अधिक; खाय- खाता है; वैराग्येर नाहि भास-वैराग्य का लेशमात्र भी नहीं है।

अनुवाद

“संन्यासी को अत्यधिक खिलाने से उसके नियम भंग हो जाते हैं, क्योंकि जब संन्यासी अत्यधिक भोजन करता है, तो उसका वैराग्य नष्ट हो जाता है।”

एइ त’ स्वभाव ताँर आग्रह करिया ।

पिछे निन्दा करे, आगे बहुत खाओयाञा ॥17॥

एइ-यह; त’–निश्चित रूप से; स्वभाव-लक्षण; ताँर-उसका; आग्रह करिया-उत्साहपूर्वक आग्रह करे; पिछे-बाद में; निन्दा करे–निन्दा करे; आगे-पहले; बहुत-अधिक; खाओयाञा-खिलाकर।

अनुवाद

रामचन्द्र पुरी का स्वभाव था कि वह पहले किसी को आवश्यकता से अधिक खिलाता था और बाद में उसकी आलोचना करता था।

पूर्वे यबे माधवेन्द्र करेन अन्तर्धान ।

रामचन्द्र-पुरी तबे आइला ताँर स्थान ॥18॥

पूर्वे-पूर्व में; बे–जब; माधवेन्द्र-माधवेन्द्र पुरी; करेन अन्तर्धान-प्रयाण के निकट थे; रामचन्द्र-पुरी-रामचन्द्र पुरी; तबे-उस समय; आइला-आया; ताँर स्थान-उनके स्थान पर।

अनुवाद

इसके पहले जब माधवेन्द्र पुरी अन्तिम साँसें गिन रहे थे, तब रामचन्द्र पुरी उनके स्थान पर आया।

पुरी-गोसाञि करे कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन ।

'मथुरा ना पाइनु' बलि' करेन क्रन्दन ॥19॥

पुरी-गोसाञि-माधवेन्द्र पुरी; करे-कर रहे थे; कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन; मथुरा ना पाइनु-मुझे मथुरा में शरण नहीं मिली; बलि'–कहकर; करेन क्रन्दन-रो रहे थे।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन कर रहे थे और कभी-कभी रो रहे थे, "हे प्रभु, मुझे मथुरा में शरण नहीं मिली।"

रामचन्द्र-पुरी तबे उपदेशे ताँरे ।

शिष्य हञा गुरुके कहे, भय नाहि करे ॥20॥

रामचन्द्र-पुरी–रामचन्द्र पुरी ने; तबे-तब; उपदेशे ताँरे–उन्हें उपदेश दिया; शिष्य हञा-एक शिष्य होकर; गुरुके कहे-अपने गुरु से कहा; भय नाहि करे–बिना डर के।

अनुवाद

तब रामचन्द्र पुरी इतना मूर्ख था कि उसने निडर होकर अपने गुरु को उपदेश देने का दुस्साहस किया।

"तुमि–पूर्ण-ब्रह्मानन्द, करह स्मरण ।

ब्रह्मवित् हञा केने करह रोदन?" ॥21॥

तुमि-आपको; पूर्ण-ब्रह्म-आनन्द–पूर्ण दिव्य आनन्द में; करह स्मरण-स्मरण करना चाहिए; ब्रह्म-वित् हञा–ब्रह्म का पूरा ज्ञान होकर; केने-क्यों; करह रोदन–आप रो रहे हैं।

अनुवाद

उसने कहा, "यदि आप दिव्य आनन्द को प्राप्त हैं, तो आपको अब केवल ब्रह्म का स्मरण करना चाहिए। आप क्यों रो रहे हैं?"

तात्पर्य

जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है- ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा–ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुका व्यक्ति सदैव प्रसन्न रहता है। न शोचति न काङ्क्षति- वह न तो शोक करता है, न ही किसी वस्तु की इच्छा करता है। रामचन्द्र पुरी ने बिना समझे-बूझे कि माधवेन्द्र पुरी क्यों रोदन कर रहे हैं, उनका उपदेशक बनना चाहा। इस तरह उसने महान् अपराध किया, क्योंकि शिष्य को कभी भी अपने गुरु को उपदेश नहीं देना चाहिए।

शुनि' माधवेन्द्र-मने क्रोध उपजिल ।

'दूर, दूर, पापिष्ठ' बलि' भर्त्सना करिल ॥22॥

शुनि'–सुनकर; माधवेन्द्र-माधवेन्द्र पुरी के; मने-मन में; क्रोध-क्रोध; उपजिल-उत्पन्न हुआ; दूर दूर चले जाओ; पापिष्ठ-पापी दुष्ट; बलि'–कहकर; भर्त्सना करिल-उन्होंने डाँटा।

अनुवाद

यह उपदेश सुनकर माधवेन्द्र पुरी अत्यधिक क्रुद्ध हुए और, "निकल जा, रे पापी!" कहकर उसको डाँटा।

तात्पर्य

रामचन्द्र पुरी यह नहीं समझ सका कि उसके गुरु माधवेन्द्र पुरी को दिव्य विरह भाव का अनुभव हो रहा था। उनका शोक भौतिक न था—प्रत्युतं यह कृष्ण के प्रेमावेश की सर्वोच्च अवस्था से उत्पन्न था। जब वे विरह में रोदन कर रहे थे कि, "मैं कृष्ण को न पा सका! मैं मथुरा न पहुँच सका!" तो यह सामान्य भौतिक शोक न था। रामचन्द्र पुरी माधवेन्द्र पुरी के उद्गारों को समझने में पर्याप्त दक्ष न था; तो भी वह अपने आपको बहुत उन्नत मानता था। इसलिए माधवेन्द्र पुरी

की अभिव्यक्ति को सामान्य भौतिक शोक मानते हुए उसने उन्हें ब्रह्म का स्मरण करने को कहा, क्योंकि वह प्रच्छन्न रूप से निर्विशेषवादी था। माधवेन्द्र पुरी रामचन्द्र पुरी की स्थिति को एक बड़े मूर्ख के रूप में समझ गये, इसीलिए तुरन्त उसे डाँटा। गुरु द्वारा ऐसी डाँट निश्चय ही शिष्य की भलाई के लिए होती है।

'कृष्ण ना पाइनु, ना पाइनु 'मथुरा' ।

आपन-दुःखे मरों—एइ दिते आइल ज्वाला ॥23॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ना पाइनु-मुझे नहीं मिले; ना पाइनु-नहीं मिला; मथुरा-मथुरा; आपन-दुःखे-अपने दुःख में; मरों-मैं मर रहा हूँ; एइ-यह व्यक्ति; दिते आइल ज्वाला–मुझे और अधिक कष्ट देने आया है।

अनुवाद

"हे भगवान् कृष्ण! मैं न तो आपके पास और न ही आपके धाम मथुरा पहुँच पाया। मैं अपने दुःख में मर रहा हूँ और उस पर यह मूढ़ अब मुझे और पीड़ा देने आया है।"

मोरे मुख ना देखाबि तुइ, याओ यथि-तथि।

तोरे देखि' मैले मोर हबे असद्गति ॥24॥

मोरे-मुझे; मुख-चेहरा; ना देखाबि-मत दिखाओ; तुइ-तुम; याओ-जाओ; यथि-तथि-कहीं ओर; तोरे-तुम्हें; देखि'–देखकर; मैले–यदि मैं मरूँगा; मोर हबे असत्-गति-मेरा सद्गति नहीं होगी।

अनुवाद

"तुम मुझे अपना मुँह मत दिखाओ! तुम अन्यत्र जहाँ कहीं जाना चाहो, चले जाओ। यदि मैं तुम्हारा मुँह देखते हुए मरूँगा, तो मुझे जीवन का गन्तव्य प्राप्त नहीं हो सकेगा।

कृष्ण ना पाइनु मुजि मरों आपनार दुःखे ।

मोरे 'ब्रह्म' उपदेशे एइ छार मूर्ख ॥ 25॥

कृष्ण-कृष्ण को; ना पाइनु-प्राप्त नहीं कर सका; मुजि-मैं; मरों-मर रहा हूँ; आपनार दुःखे-अपने दुःख से; मोरे-मुझे; ब्रह्म–ब्रह्म का; उपदेशे–उपदेश देता है; एइ–यह; छार–निकृष्ट; मूर्खे–मूर्ख।

अनुवाद

"मैं कृष्ण की शरण पाये बिना मर रहा हूँ, इसलिए मैं अत्यधिक दुःखी हूँ। अब यह गर्हित मूर्ख मुझे ब्रह्म के विषय में उपदेश देने आया है।"

एइ ये श्री-माधवेन्द्र श्रीपाद उपेक्षा करिल ।

सेइ अपराधे इँहार 'वासना' जन्मिल ॥ 26॥

एइ–यह; ये-जो; श्री-माधवेन्द्र श्रीपाद श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी; उपेक्षा करिल-उपेक्षा की; सेइ अपराधे-इस अपराध के कारण; इँहार-रामचन्द्र पुरी की; वासना-भौतिक इच्छा; जन्मिल-उत्पन्न हुई।

अनुवाद

इस तरह रामचन्द्र पुरी को माधवेन्द्र पुरी ने तिरस्कृत कर दिया। अपने अपराध के कारण उसके भीतर धीरे-धीरे भौतिक इच्छा उदित हुई।

तात्पर्य

वासना ("भौतिक इच्छाएँ") शब्द शुष्क चिन्तनपरक ज्ञान का सूचक है। ऐसा तार्किक ज्ञान निरा भौतिक होता है। श्रीमद्भागवत (10.14.4) में पुष्टि हुई है कि जो व्यक्ति भक्ति के बिना वस्तुओं को केवल जानना चाहता है। (केवल-बोध-लब्धये) उसे केवल शुष्क ज्ञान प्राप्त होता है, कोई आध्यात्मिक लाभ हाथ नहीं लगता। इसकी पुष्टि भक्ति-सन्दर्भ (111) में भी हुई है :

जीवन्मुक्ता अपि पुनर्यान्ति संसारवासनाम् ।

यद्यचिन्त्यमहाशक्तौ भगवत्यपराधिनः ॥

"भले ही कोई इस जीवन में मुक्त क्यों न हो, यदि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति अपराध करता है, तो वह भौतिक इच्छाओं में गिर जाता है, जिनमें से आध्यात्मिक अनुभूति का शुष्क चिन्तन एक है।"

श्रीमद्भागवत की लघुतोषणी टीका (10.2.32) में जीव गोस्वामी ने कहा है :

जीवन्मुक्ता अपि पुनर्बन्धनं यान्ति कर्मभिः ।

यद्यचिन्त्यमहाशक्तौ भगवत्यपराधिनः ॥

“भले ही कोई इस जीवन में मुक्त हो, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति अपराध करने से वह भौतिक इच्छाओं में लिप्त हो जाता है।”

इसी तरह का एक उद्धरण विष्णु भक्ति चन्द्रोदय में पुराणों से लिया गया है:

जीवन्मुक्ता प्रपद्यन्ते क्वचित् संसारवासनाम् ।

योगिनो ना विलिप्यन्ते कर्मभिः भगवत्पराः ॥

“कभी-कभी मुक्तात्मा भी भौतिक इच्छाओं में आ गिरते हैं, किन्तु जो लोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्तिमयी सेवा में पूरी तरह लगे रहते हैं, वे ऐसी इच्छाओं के शिकार नहीं होते।”

ये प्रामाणिक शास्त्रों के प्रमाण हैं। यदि कोई अपने गुरु या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का अपराधी होता है, तो वह भौतिक स्तर में पतित होकर केवल तर्कवितर्क करता रह जाता है।

शुष्क-ब्रह्म-ज्ञानी, नाहि कृष्णेर ‘सम्बन्ध’ ।

सर्व लोक निन्दा करे, निन्दाते निर्बन्ध ॥27॥

शुष्क–शुष्क; ब्रह्म-ज्ञानी–निराकारवादी दार्शनिक; नाहि-नहीं है; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के साथ; सम्बन्ध–सम्बन्ध; सर्व-सब; लोक-लोगों की; निन्दा करे–निन्दा करता है; निन्दाते निर्बन्ध–निन्दा में निरन्तर रत।

अनुवाद

जो व्यक्ति शुष्क तर्कवितर्क में लगा रहता है, उसका कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उसका कार्य वैष्णवों की आलोचना करना रह जाता है। इस तरह वह आलोचना करने में लगा रहता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में बतलाया है कि। निर्बन्ध शब्द सूचित करता है कि रामचन्द्र पुरी हमेशा दूसरों की निन्दा करना चाहता था। निराकार मायावादी लोग, जिनका सम्बन्ध कृष्ण से नहीं होता, जो भक्ति नहीं अपना सकते तथा जो ब्रह्म को समझने के लिए तर्क-वितर्क में लगे रहते हैं, ऐसे मायावादी लोग कृष्ण

भक्ति को कर्मकाण्ड या सकाम कर्म मानते हैं। उनके अनुसार कृष्ण की भक्ति धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्राप्त करने का एक अन्य साधन है। इसलिए वे भक्तों की आलोचना भौतिक कर्मों में लगे रहने के लिए करते हैं। वे सोचते हैं कि भक्ति माया है और कृष्ण अथवा विष्णु भी माया हैं। इसीलिए वे मायावादी कहलाते हैं। ऐसी प्रवृत्ति उसी व्यक्ति में उदय होती है, जो कृष्ण तथा उनके भक्तों के प्रति अपराधी होता है।

ईश्वर-पुरी गोसाञि करे श्रीपाद-सेवन ।

स्वहस्ते करेन मल-मूत्रादि मार्जन ॥28॥

ईश्वर-पुरी-ईश्वर पुरी; गोसाञि-गोस्वामी; करे-करते; श्रीपाद-सेवन-माधवेन्द्र पुरी की सेवा; स्व-हस्ते-अपने हाथ से; करेन-करते; मल-मूत्र-आदि-मल, मूल आदि; मार्जन-साफ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु ईश्वर पुरी ने अपने हाथों से माधवेन्द्र पुरी का मलमूत्र साफ करके उनकी सेवा की।

निरन्तर कृष्ण-नाम कराय स्मरण ।

कृष्ण-नाम, कृष्ण-लीला शुनाय अनुक्षण ॥29॥

निरन्तर–सदैव; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का नाम; कराये स्मरण-स्मरण करवाते; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पवित्र नाम; कृष्ण-लीला-कृष्ण की लीलाएँ; शुनाय अनुक्षण-हमेशा सुनाते।

अनुवाद

ईश्वर पुरी सदैव माधवेन्द्र पुरी को भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम तथा उनकी लीलाएँ सुनाते थे। इस तरह उन्होंने माधवेन्द्र पुरी को तिरोधान के समय भगवान् कृष्ण के नाम तथा लीलाओं का स्मरण कराने में सहायता की।

तुष्ट हञा पुरी ताँरे कैला आलिङ्गन ।

वर दिला—'कृष्णे तोमार हउक प्रेम-धन' ॥30॥

तुष्ट हञा–सन्तुष्ट होकर; पुरी-माधवेन्द्र पुरी ने; ताँरे-उन्हें; कैला आलिङ्गन-गले लगा लिया; वर दिला–वरदान दिया; कृष्णे-कृष्ण के प्रति; तोमार-तुम्हारा; हउक-हो जाये; प्रेम-धन-प्रेमधन।

अनुवाद

ईश्वर पुरी से प्रसन्न होकर माधवेन्द्र पुरी ने उनका आलिंगन किया और यह वर दिया कि वे कृष्ण के महान् भक्त तथा प्रेमी होंगे।

सेइ हैते ईश्वर-पुरी–'प्रेमेर सागर'।

रामचन्द्र-पुरी हैल सर्व-निन्दाकर ॥31॥

सेइ हैते–इस कारण से; ईश्वर-पुरी-ईश्वर पुरी; प्रेमेर सागर-प्रेमभाव के सागर; रामचन्द्र-पुरी–रामचन्द्र पुरी; हैल-हो गया; सर्व-निन्दा-कर-सबकी निन्दा करने वाला।

अनुवाद

इस तरह ईश्वर पुरी कृष्ण-प्रेम के सागर के तुल्य बन गये, जबकि रामचन्द्र पुरी शुष्क चिन्तक तथा हर एक का आलोचक बना।

महदनुग्रह-निग्रहेर 'साक्षी' दुइ-जने।

एइ दुइ-द्वारे शिखाइला जग-जने ॥32॥

महत्-महात्मा की; अनुग्रह-कृपा की; निग्रहेर–डाँट का; साक्षी-प्रमाण; दुइ-जने-दोनों लोग; एइ दुइ-द्वारे-इन दोनों से; शिखाइला–सिखाया; जग-जने-संसार के लोगों को।

अनुवाद

ईश्वर पुरी को माधवेन्द्र पुरी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ, जबकि रामचन्द्र पुरी को उनकी डाँट मिली। इसलिए ये दो व्यक्ति–ईश्वर पुरी तथा रामचन्द्र पुरी–महापुरुष के आशीर्वाद तथा दण्ड के पात्र होने के दृष्टान्त हैं। माधवेन्द्र पुरी ने ये दो दृष्टान्त प्रस्तुत करके सारे जगत् को शिक्षा दी।

जगद्गुरु माधवेन्द्र करि' प्रेम दान।

एइ श्लोक पड़ि' तेंहो कैल अन्तर्धान ॥33॥

जगत्-गुरु-समस्त विश्व के गुरु; माधवेन्द्र-माधवेन्द्र पुरी; करि' प्रेम दान-कृष्ण प्रेमभाव दान करके; एइ श्लोक पड़ि'-यह श्लोक पढ़कर; तेंहो-वे; कैल अन्तर्धान-इस भौतिक जगत् को त्याग दिया।

अनुवाद

इस तरह समस्त संसार के गुरु, श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी ने कृष्ण-प्रेम का दान किया। इस भौतिक जगत् से विदा लेते समय उन्होंने निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण किया।

अयि दीन-दयार्द्र नाथ हे

मथुरा-नाथ कदावलोक्यसे ।

हृदयं त्वदलोक-कातरं

दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम् ॥34॥

अयि-हे प्रभुः दीन-दीनों पर; दया-आई-दयालु; नाथ-हे स्वामी; हे–हे; मथुरा-नाथ-मथुरा नाथ; कदा–कब; अवलोक्यसे—मैं आपके दर्शन पाऊँगी; हृदयम्-मेरा हृदय; त्वत्-आपको; अलोक–देखे बिना; कातरम्-अत्यन्त व्यथित; दयित-हे सबसे प्रिय; भ्राम्यति–विचलित होता है; किम्-क्या; करोमि–करूँ; अहम्-मैं।

अनुवाद

"हे प्रभु! हे दीनदयाल स्वामी! हे मथुरापति! मैं कब आपको फिर से देखूँगी? आपको न देख पाने के कारण मेरा क्षुब्ध हृदय अस्थिर हो चुका है। हे मेरे परम प्रिय, मैं अब क्या करूँ?"

एइ श्लोके कृष्ण-प्रेम करे उपदेश ।

कृष्णेर विरहे भक्तेर भाव-विशेष ॥35॥

एइ श्लोके–इस श्लोक में; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; करे उपदेश–सिखाते हैं; कृष्णेर विरहे-कृष्ण से विरह अनुभव करके; भक्तेर-भक्त की; भाव-विशेष-दिव्य भावना।

अनुवाद

इस श्लोक में माधवेन्द्र पुरी यह शिक्षा देते हैं कि किस तरह कृष्ण-प्रेम प्राप्त किया जाए। कृष्ण से विरह में व्यक्ति आध्यात्मिक पद को प्राप्त होता है।

पृथिवीते रोपण करि' गेला प्रेमाङ्कुर ।

सेइ प्रेमाङ्कुरेर वृक्ष–चैतन्य-ठाकुर ॥ 36॥

पृथिवीते-इस भौतिक संसार में; रोपण करि'–बोकर; गेला-गये; प्रेम-अङ्कुर-कृष्ण के प्रेमभाव का बीज; सेइ प्रेम-अङ्कुर-कृष्ण के प्रति प्रेमभाव के उस बीज का; वृक्ष-वृक्ष; चैतन्य-ठाकुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

श्री माधवेन्द्र पुरी ने इस भौतिक जगत् में कृष्ण-प्रेम का बीज बोया और तब विदा ली। वही बीज बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में विशाल वृक्ष बन गया।

प्रस्तावे कहिलुँ पुरी-गोसाञिर निर्माण ।

येइ इहा शुने, सेइ बड़ भाग्यवान् ॥ 37॥

प्रस्तावे-संयोग से; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; पुरी-गोसाञिर-माधवेन्द्र पुरी का; निर्माण–तिरोधान; ग्रेइ-जो कोई भी; इहा-यह; शुने-सुनता है; सेइ-वह; बड़ भाग्यवान्-बहुत भाग्यशाली।

अनुवाद

संयोगवश मैंने माधवेन्द्र पुरी के तिरोधान का वर्णन किया है। जो भी इसे सुनता है, उसे अत्यन्त भाग्यशाली माना जाना चाहिए।

रामचन्द्र-पुरी ऐछे रहिला नीलाचले ।

विरक्त स्वभाव, कभु रहे कोन स्थले ॥38॥

रामचन्द्र-पुरी-रामचन्द्र पुरी; ऐछे—इस प्रकार; रहिला नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में रहा; विरक्त–वैरागी का; स्वभाव-नियम; कभु-कभी; रहे—वह रहता है; कोन स्थले-विशेष स्थान पर।

अनुवाद

इस तरह रामचन्द्र पुरी जगन्नाथ पुरी में ठहरा रहा। जैसाकि संन्यासियों में प्रथा है, कभी वे किसी स्थान पर रहते और फिर वहाँ से चले जाते।

अनिमन्त्रण भिक्षा करे, नाहिक निर्णय ।

अन्येर भिक्षार स्थितिर लयेन निश्चय ॥39॥

अनिमन्त्रण–बिना बुलाए; भिक्षा करेभोजन करता; नाहिक निर्णय-कुछ निश्चित नहीं था; अन्येर–अन्यों के; भिक्षार–प्रसाद ग्रहण करने की स्थितिर स्थिति का; लयेन निश्चय–हिसाब करता।

अनुवाद

इसका कोई निश्चय नहीं रहता था कि रामचन्द्र पुरी कहाँ भोजन करेगा, क्योंकि वह अनिमन्त्रित होने पर भी ऐसा करता था। तो भी वह इस बात को सुनिश्चत करने में बहुत सतर्क रहता कि अन्य लोग कैसे भोजन करते हैं।

प्रभुर निमन्त्रणे लागे कौड़ि चारि पण ।

कभु काशीश्वर, गोविन्द खान तिन जन ॥ 40॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; निमन्त्रणे-निमन्त्रण में; लागेलगते; कौड़ि चारि पण–320 कौड़ी; कभु काशीश्वर-कभी काशीश्वर; गोविन्द-चैतन्य महाप्रभु का सेवक; खान-खाते; तिन जन-तीन लोग।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रित करने में 320 कौड़ियाँ व्यय होतीं। इससे श्री चैतन्य महाप्रभु तथा कभी-कभी काशीश्वर और गोविन्द इन तीनों का भोजन हो जाता।

प्रत्यह प्रभुर भिक्षा इति-उति हय ।

केह यदि मूल्य आने, चारि-पण-निर्णय ॥41॥

प्रति-अह-प्रतिदिन; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; भिक्षा-भिक्षा; इति-उति-इधर-उधर; हय-है; केह-कोई; यदि-यदि; मूल्य आने-चुकाता है; चारि-पण—चार पण (चार गुना-अस्सी छोटे शंख); निर्णय–नियत राशि।

अनुवाद

महाप्रभु नित्य अलग-अलग स्थानों में भोजन करते और यदि कोई भोजन का मूल्य चुकता करना चाहता, तो उसका मूल्य केवल चार पण निश्चित था।

प्रभुर स्थिति, रीति, भिक्षा, शयन, प्रयाण ।

रामचन्द्र-पुरी करे सर्वानुसन्धान ॥42॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; स्थिति-स्थिति; रीति–नियामक सिद्धान्त; भिक्षा-प्रसाद ग्रहण करना; शयन–सोना; प्रयाण-गतिविधियाँ; रामचन्द्र-पुरी–रामचन्द्र पुरी; करे सर्व-अनुसन्धान–सब खबर रखता।

अनुवाद

रामचन्द्र पुरी सभी तरह की सूचनाएँ एकत्र करने में लगा रहता कि श्री चैतन्य महाप्रभु कहाँ पर हैं, उनके नियम क्या हैं, वे कहाँ भोजन करते हैं, कहाँ सोते और कहाँ-कहाँ आते जाते हैं।

प्रभुर यतेक गुण स्पर्शिते नारिल ।

छिद्र चाहि' बुले, काँहा छिद्र ना पाइल ॥43॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; ग्रतेक गुण-सभी दिव्य गुण; स्पर्शिते नारिल-नहीं समझ सका; छिद्र चाहि'–दोष ढूँढने के लिए; बुले-घूमता; काँहा-कहीं भी; छिद्र-दोष; ना पाइल-वह नहीं ढूँढ सका।

अनुवाद

चूँकि रामचन्द्र पुरी केवल दोष निकालने में लगा रहता, इसलिए वह श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य गुणों को नहीं समझ सका। उसका एक मात्र कार्य दोष निकालना था, किन्तु फिर भी उसे कोई दोष नहीं मिल पाया।

'सन्यासी हञा करे मिष्टान्न भक्षण ।

एइ भोगे हय कैछे इन्द्रिय-वारण'? ॥44॥

सन्यासी हञा-संन्यासी होकर; करे मिष्टान्न भक्षण-मिठाईयाँ खाते हैं; एइ भोगे-इसे खाने से; हय-होगा; कैछे-कैसे; इन्द्रिय-वारण-इन्द्रिय संयम।

अनुवाद

अन्त में उसने एक दोष ढूंढ निकाला। उसने कहा, "भला एक संन्यासी इतनी तरह की मिठाइयाँ कैसे खा सकता है? यदि वह मिठाइयाँ खाता है, तो उसके लिए इन्द्रियों को वश में रखना अत्यन्त कठिन होगा।"

एइ निन्दा करि' कहे सर्व-लोक-स्थाने ।

प्रभुरे देखितेह अवश्य आइसे प्रति-दिने ॥45॥

एइ निन्दा-यह निन्दा; करि'-करके; कहे-कहता है; सर्व-लोक-स्थाने-सबको; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु के; देखितेंह-दर्शन के लिए; अवश्य-अवश्य; आइसे-आता; प्रति-दिने-प्रतिदिन।

अनुवाद

इस तरह रामचन्द्र पुरी सबके समक्ष महाप्रभु की निन्दा करता, किन्तु तो भी वह नित्यप्रति नियमपूर्वक महाप्रभु के दर्शनार्थ आता।

प्रभु गुरु-बुद्ध्ये करेन सम्भ्रम, सम्मान ।

तेंहो छिद्र चाहि' बुले,—एइ तार काम ॥46॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः गुरु-बुद्ध्ये-उसे अपने गुरु के गुरुभाई मानकर; करेन सम्भ्रम सम्मान–पूर्ण सम्मान तथा प्रणाम करते; तेंहो–रामचन्द्र पुरी; छिद्र चाहि-दोष ढूँढने के लिए; बुले-घूमता है; एइ–यह; तार-उसका; काम–कार्य।

अनुवाद

जब वे दोनों मिलते, तो महाप्रभु उसे गुरु के गुरुभाई मानते हुए नमस्कार करते । किन्तु रामचन्द्र पुरी का कार्य महाप्रभु के दोषों को ढूँढना रहता।

यत निन्दा करे ताहा प्रभु सब जाने ।

तथापि आदर करे बड़इ सम्भ्रमे ॥47॥

यत–जो भी; निन्दा-निन्दा; करे-करता; ताहा-वह; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सब-समस्त; जाने-जानते थे; तथापि-फिर भी; आदर करे-सम्मान करके; बड़ई सम्भ्रमे-आदरपूर्वक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जानते थे कि रामचन्द्र पुरी सबके समक्ष उनकी आलोचना करता है, किन्तु जब भी वह महाप्रभु से भेंट करने आता, तो महाप्रभु उसका सभी प्रकार से सम्मान करते।

एक-दिन प्रातः-काले आइला प्रभुर घर।

पिपीलिका देखि' किछु कहेन उत्तर ॥48॥

एक-दिन-एक दिन; प्रातः-काले-सुबह के समय; आइला-आया; प्रभुर घर-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; पिपीलिका देखि'–अनेक चीटियाँ देखकर; किछु कहेन उत्तर-कुछ कहने लगा।

अनुवाद

एक दिन रामचन्द्र पुरी प्रातःकाल श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर आया। बहुत सी चींटियाँ देखकर महाप्रभु की आलोचना करने की दृष्टि से उसने कुछ कहा।

"रात्रावत्र ऐक्षवमासीत्, तेन पिपीलिकाः सञ्चरन्ति ।

अहो! विरक्तानां सन्यासिनामियमिन्द्रिय-लालसेति ब्रुवन्नुत्थाय गतः" ॥ 49॥

रात्रौ-रात को; अत्र-यहाँ; ऐक्षवम्-मिश्री; आसीत्-थी; तेन-उसके कारण; पिपीलिकाः-चीटियाँ; सञ्चरन्ति-घूम रही हैं; अहो–हाय; विरक्तानाम्-वैरागियों की; सन्यासिनाम्-संन्यासियों की; इयम्-यह; इन्द्रिय-इन्द्रियों की; लालस-आसक्ति; इति-यह; ब्रुवन्–कहकर; उत्थाय-उठकर; गतः-चला गया।

अनुवाद

उसने कहा, "गत रात्रि में यहाँ मिश्री थी, इसलिए यहाँ पर चींटियाँ घूम रही हैं। हाय, यह विरक्त संन्यासी ऐसी इन्द्रियतृप्ति में आसक्त है!" इस तरह कहकर वह उठा और चला गया।

प्रभु परम्पराय निन्दा कैराछेन श्रवण ।

एबे साक्षात् शुनिलेन 'कल्पित' निन्दन ॥50॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; परम्पराय-अन्यों से; निन्दा-निन्दा; कैराछेन श्रवण-सुनी थी; एबे-अब; साक्षात्-प्रत्यक्ष; शुनिलेन-वे सुनते हैं; कल्पित-झूठी; निन्दन-निन्दा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामचन्द्र पुरी द्वारा की जाने वाली निन्दा की अफवाहें तो सुन रखी थीं, किन्तु अब तो उन्होंने उसके मनगढंत आरोपों को प्रत्यक्ष सुना।

तात्पर्य

रामचन्द्र पुरी को श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र में कोई दोष नहीं मिला, क्योंकि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य पद पर स्थित थे। चींटियाँ सामान्यतया सर्वत्र पाई जाती हैं, किन्तु जब रामचन्द्र पुरी ने चींटियों को महाप्रभु के स्थान पर चलते देखा, तो उसने यह मान लिया कि वे वहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा मिठाई खाने से आई होंगी। इस तरह उसने महाप्रभु में कल्पित दोष ढूँढ निकाला और तब वह चला गया।

सहजेइ पिपीलिका सर्वत्र बेड़ाय ।

ताहाते तर्क उठाजा दोष लागाय ॥51॥

सहजेइ-सामान्यतया; पिपीलिका-चीटियाँ; सर्वत्र-सब जगह; बेड़ाय-घूमती हैं; ताहाते-उसके कारण; तर्क उठाजा-विवाद खड़ा करके; दोष लागाय-दोष लगाया।

अनुवाद

चींटियाँ सामान्यतया यहाँ, वहाँ तथा सर्वत्र घूमती रहती हैं, किन्तु रामचन्द्र पुरी तो काल्पनिक दोष की ताक में था, अतएव उसने यह आरोप लगाते हुए महाप्रभु की आलोचना की कि उनके कमरे में मिठाइयाँ रही होंगी।

शुनि' ताहा प्रभुर सङ्कोच-भय मने ।

गोविन्दे बोलाजा किछु कहेन वचने ॥52॥

शुनि'–सुनकर; ताहा-वह; प्रभुर-श्री चैतन्य को; सङ्कोच-संशय; भय-भय; मने-मन में; गोविन्दे बोलाञा-गोविन्द को बुलाकर; किछु-कुछ; कहेन–बोले; वचने-वचन।

अनुवाद

यह आलोचना सुनने के बाद महाप्रभु को संशय तथा भय हुआ। इसलिए उन्होंने गोविन्द को बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया।

आजि हैते भिक्षा आमार एइ त नियम ।

पिण्डा-भोगेर एक चौठि, पाँच-गण्डार व्यञ्जन ॥53॥

आजि हैते–आज से; भिक्षा आमार-मेरा प्रसाद ग्रहण करने का; एइ–यह; त'-निश्चित; नियम-नियम; पिण्डा-भोगेर-भगवान जगन्नाथ के प्रसाद का; एक चौठि-एक पात्र का एक चौथाई; पाँच-गण्डार व्यञ्जन-पांच गंडा मूल्य की सब्जियाँ (एक गंडा चार कौड़ियों के बराबर है)।

अनुवाद

"आज से यह नियम होगा कि मैं जगन्नाथजी के प्रसाद का एक चौथाई मात्र तथा पाँच गण्डा मूल्य की सब्जियाँ ग्रहण किया करूँगा।"

"इहा बइ अधिक आर किछु ना आनिबा ।

अधिक आनिले आमा एथा ना देखिबा" ॥54॥

इहा बइ-इसके अलावा; अधिक-अधिक; आर-और ज्यादा; किछु-कुछ; ना आनिबा-मत लाओ; अधिक आनिले–यदि अधिक लाये; आमा–मुझे; एथा-यहाँ; ना देखिबा-तुम नहीं देखोगे।

अनुवाद

"यदि तुम इससे अधिक कुछ भी लाये, तो तुम मुझे यहाँ नहीं देखोगे।"

सकल वैष्णवे गोविन्द कहे एइ बात् ।

शुनि' सबार माथे यैछे हैल वज्राघात ॥55॥

सकल वैष्णवे-सभी वैष्णवों को; गोविन्द-गोविन्द; कहे-बताते हैं; एइ बात्-यह सन्देश; शुनि'–सुनकर; सबार माथे-सभी के सिर पर; यैछे-मानो; हैल-हो गया;वज्र-आघात-वज्र का प्रहार।

अनुवाद

गोविन्द ने यह सूचना सारे भक्तों को पहुँचा दी। जब उन्होंने इसे सुना, तो उन्हें लगा कि उनके सिरों पर वज्रपात हो गया है।

रामचन्द्र-पुरीके सबाय देय तिरस्कार ।

'एइ पापिष्ठ आसि' प्राण लइल सबार' ॥56॥

रामचन्द्र-पुरीके–रामचन्द्र पुरी को; सबाय-सभी भक्तों ने; देय तिरस्कार-तिरस्कृत किया; एइ पापिष्ठ-यह पापी व्यक्ति; आसि-आकर; प्राण-प्राण; लइल-ले लिया; सबार-सब के।

अनुवाद

सारे भक्तों ने यह कहकर रामचन्द्र पुरी को धिक्कारा, "यह पापी व्यक्ति यहाँ आया हुआ है और इसने हमारे प्राण ले लिये हैं।"

सेइ-दिन एक-विप्र कैल निमन्त्रण ।

एक-चौठि भात, पाँच-गण्डार व्यञ्जन ॥57॥

एइ-मात्र गोविन्द कैल अङ्गीकार ।

माथाय घा मारे विप्र, करे हाहाकार ॥58॥

सेइ-दिन-उस दिन; एक-विप्र-एक ब्राह्मण ने; कैल निमन्त्रण-निमंत्रित किया; एक-चौठि भात-एक पात्र का चौथा हिस्सा; पाँच-गण्डार व्यञ्जन–पाँच गंडा मूल्य की सब्जियाँ; एइ-मात्र केवल यही; गोविन्द-गोविन्द ने; कैल अङ्गीकार–स्वीकार किये; माथाय-अपना सिर; घा मारे-पीटकर; विप्र-ब्राह्मण; करे हाहा-कार-'हाय-हाय' करने लगा।

अनुवाद

उस दिन एक ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रण दिया। जब गोविन्द ने केवल पाँच गण्डा मूल्य की सब्जियाँ तथा अन्नपात्र का एक चौथाई अन्न स्वीकार किया, तो उस ब्राह्मण ने निराशावश अपना माथा पीटा और चिल्लाया, "हाय! हाय!"

सेइ भात-व्यञ्जन प्रभु अर्धेक खाइल ।

ये किछु रहिल, ताहा गोविन्द पाइल ॥59॥

सेइ-वह; भात-भात; व्यञ्जन-सब्जी, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; अर्धेक खाइल-आधी खाई; ये किछु रहिल– जो कुछ बच गया; ताहा-वह; गोविन्द गोविन्द ने; पाइल-लिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आधा चावल तथा आधी सब्जियाँ ही खाईं और जो बचा रहा, उसे गोविन्द ने ग्रहण किया।

अर्धाशन करेन प्रभु, गोविन्द अर्धाशन ।

सब भक्त-गण तबे छाड़िल भोजन ॥60॥

अर्ध-अशन करेन-आधा खाते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गोविन्द-गोविन्द; अर्ध- अशन-आधा खाता; सब भक्त-गण-सभी भक्तों ने; तबे-उस समय; छाड़िल भोजन-भोजन छोड़ दिया।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा गोविन्द आधापेट भोजन करते। इसके कारण अन्य सारे भक्तों ने भोजन करना त्याग दिया।

गोविन्द-काशीश्वरे प्रभु कैला आज्ञापन ।

'दुँहे अन्यत्र मागि' कर उदर भरण' ॥ 61॥

गोविन्द-काशीश्वरे-गोविन्द और काशीश्वर को; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला-दिया; आज्ञापन-आदेश; दुँहे-तुम दोनों; अन्यत्र-कहीं ओर से; मागि'-माँगकर; कर उदर भरण-पेट भर लो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोविन्द तथा काशीश्वर को आज्ञा दी, "तुम दोनों अपना पेट भरने के लिए अन्यत्र भिक्षा ग्रहण कर सकते हो।"

एइ-रूप महा-दुःखे दिन कत गेल ।

शुनि' रामचन्द्र-पुरी प्रभु-पाश आइल ॥62॥

एइ-रूप-इस प्रकार; महा-दुःखे–महान् दुःख में; दिन कत-कुछ दिन; गेल-बीत गये; शुनि'–सुनकर; रामचन्द्र-पुरी–रामचन्द्र पुरी; प्रभु-पाश आइल-श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आया।

अनुवाद

इस तरह से कुछ दिन अतीव दुःख में बीते। यह सब सुनकर रामचन्द्र पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गया।

प्रणाम करि' प्रभु कैला चरण वन्दन ।

प्रभुरे कहये किछु हासिया वचन ॥63॥

प्रणाम करि'-प्रणाम करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला चरण वन्दन-चरणवन्दन किये; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु से; कहये-वह कहता है; किछु-कुछ; हासिया-हँसकर; वचन-वचन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामचन्द्र पुरी के चरणों की पूजा करके उसे नमस्कार किया। तब वह हँसा और महाप्रभु से बोला।

"सन्न्यासीर धर्म नहे इन्द्रिय-तर्पण' ।

यैछे तैछे करे मात्र उदर भरण ॥ 64॥

सन्न्यासीर-एक संन्यासी का; धर्म-धर्म; नहे-नहीं है; इन्द्रिय-तर्पण-इन्द्रिय भोग; यैछे तैछे-किसी तरह से; करे-करता है; मात्र केवल; उदर भरण-पेट भरना।

अनुवाद

रामचन्द्र पुरी ने परामर्श दिया, "यह संन्यासी का कर्तव्य नहीं है कि वह अपनी इन्द्रियों की तृप्ति करे। उसे तो किसी भी तरह अपना पेट भरना चाहिए।

तोमारे क्षीण देखि, शुनि,—कर अर्धाशन ।

एइ 'शुष्क-वैराग्य' नहे सन्न्यासीर 'धर्म' ॥65॥

तोमारे-आपने; क्षीण-दुबला; देखि-मैं देख रहा हूँ; शुनि–मैंने सुना है; कर अर्ध-अशन-आप आधा खा रहे हैं; एइ–यह; शुष्क-वैराग्य-शुष्क वैराग्य; नहे-नहीं है;सन्न्यासीर धर्म-संन्यासी का धर्म।

अनुवाद

"मैंने सुना है कि आपने अपना भोजन आधा कर दिया है। मैं देख रहा हूँ कि आप दुर्बल हैं। ऐसा शुष्क वैराग्य भी संन्यासी का धर्म नहीं है।"

यथा-योग्य उदर भरे, ना करे 'विषय' भोग ।

सन्न्यासीर तबे सिद्ध हय ज्ञान-योग ॥66॥

यथा-योग्य–जितना जरूरी है; उदर भरे-पेट भरता है; ना करे–नहीं करता; विषय भोग-भौतिक भोग; सन्न्यासीर-संन्यासी की; तबे-कब; सिद्ध-सफल; हय–होती है; ज्ञान-योग-आध्यात्मिक ज्ञान में प्रगति।

अनुवाद

संन्यासी तो अपने शरीर के पालन के लिए जितना चाहिए उतना ही खाता है, किन्तु वह अपनी भौतिक इन्द्रियों की तुष्टि नहीं करता। संन्यासी इसी तरह से अपने आध्यात्मिक ज्ञान में पूर्ण बनता है।

नात्यश्नतोऽपि योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।

न चाति-स्वप्न-शीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥67 ॥

"युक्ताहार-विहारस्य युक्त-चेष्टस्य कर्मसु ।

युक्त-स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःख-हा" ॥68 ॥

न–नहीं; अति-अश्नतः-जो बहुत अधिक खाता है; अपि-तथा; योगः–भगवान् से सम्बन्ध; अस्ति–होता है; न-न; च–तथा; एकान्तम्-पूर्णतः; अनश्नतः-जो खाता ही नहीं; न-नहीं; च-तथा; अति-स्वप्न-शीलस्य-जो नींद में अत्यधिक सपने लेता है; जाग्रतः-जो जागृत रहता है; न-नहीं; एव–निश्चय ही; च-तथा; अर्जुन-हे अर्जुन; युक्त–जितना जरूरी है उतना; आहार-भोजन; विहारस्य–जिसका इन्द्रिय भोग; युक्त-संतुलित; चेष्टस्य–जिसके प्रयास; कर्मसु-कर्म करने में; युक्त–जितने जरूरी है; स्वन-सोते हुए स्वप्न; अवबोधस्य-जागने से; योगः–योग का अभ्यास; भवति–होता है; दुःख-हा–कष्ट दूर करने वाला।

अनुवाद

"[भगवान् कृष्ण ने कहा :] 'हे अर्जुन, जो अधिक खाता है या बहुत कम खाता है, जो अधिक सोता है और बहुत स्वप्न देखता है, अथवा जो पर्याप्त नहीं सोता, उसके योगी बनने की कोई सम्भावना नहीं है। जो खाने, सोने, आमोद-प्रमोद तथा कार्य करने के अभ्यास में नियमित रहता है, वह योगाभ्यास द्वारा समस्त भौतिक क्लेशों से मुक्त रह सकता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण भगवद्गीता (6.16-17) से लिया गया है।

प्रभु कहे,–"अज्ञ बालक मुइ शिष्य' तोमार।

मोरे शिक्षा देह',—एइ भाग्य आमार" ॥69॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; अज्ञ-अज्ञानी; बालक-बालक; मुइ-मैं; शिष्य तोमार-आपका शिष्य; मोरे-मुझे; शिक्षा देह'–आप उपदेश दे रहे हैं; एइ–यह; भाग्य आमार-मेरा महा सौभाग्य है।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने विनयपूर्वक निवेदन किया, "मैं एक नादान बालक के समान हूँ और आपके शिष्य के समान हूँ। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आप मुझे शिक्षा दे रहे हैं।"

एत शुनि' रामचन्द्र-पुरी उठि' गेला ।

भक्त-गण अर्धाशन करे,—पुरी गोसाञि शुनिला ॥ 70 ॥

एत शुनि-यह सुनकर; रामचन्द्र-पुरी–रामचन्द्र पुरी; उठि' गेला-उठकर चला गया; भक्त-गण-भक्त; अर्ध-अशन करे–आधा भोजन कर रहे हैं; पुरी गोसाञि-रामचन्द्र पुरी ने; शुनिला-सुना।

अनुवाद

यह सुनकर रामचन्द्र पुरी उठा और चला गया। उसने विभिन्न स्रोतों से यह भी सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्त आधे पेट भोजन कर रहे हैं।

आर दिन भक्त-गण-सह परमानन्द-पुरी ।

प्रभु-पाशे निवेदिला दैन्य-विनय करि' ॥71॥

आर दिन-अगले दिन; भक्त-गण-सह-अन्य भक्तों के साथ; परमानन्द-पुरी-परमानन्द पुरी; प्रभु-पाशे-श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने; निवेदिला–निवेदन किया; दैन्य-विनय करि'-अति विनम्रतापूर्वक।

अनुवाद

अगले दिन, परमानन्द पुरी तथा अन्य भक्त अत्यन्त दीनता तथा विनयपूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु के पास पहुँचे।

"रामचन्द्र-पुरी हय निन्दुक-स्वभाव ।

तार बोले अन्न छाड़ि' किबा हबे लाभ?" ॥72॥

रामचन्द्र-पुरी–रामचन्द्र पुरी; हय-है; निन्दुक-स्वभाव-स्वभाव से निन्दक; तार बोले-उसके शब्दों पर; अन्न छाड़ि'–ठीक से खाना छोड़कर; किबा-क्या; हबे-होगा; लाभ-लाभ।

अनुवाद

परमानन्द पुरी ने कहा, "मेरा गुरुभाई रामचन्द्र पुरी स्वभाव से बुरा आलोचक है। यदि आप उसके शब्दों के कारण भोजन करना त्यागते हैं, तो इससे क्या लाभ होगा?"

पुरीर स्वभाव,—यथेष्ट आहार कराञा ।

ये ना खाय, तारे खाओयाय यतन करिया ॥73॥

पुरीर स्वभाव-रामचन्द्र पुरी का चरित्र है; यथा-इष्ट-जिनता अधिक हो सके; आहार कराञा-किसी को खिलाना; ये-जो; ना खाय-नहीं खाता; तारे खाओयाय-उसे खिलाना; यतन करिया-प्रयास करके।

अनुवाद

"यह तो रामचन्द्र पुरी का स्वभाव है कि वह पहले किसी को पेट भर खाने देता है और यदि कोई आवश्यकता से अधिक नहीं खाता, तो बड़े यत्न से वह उसे खिलाकर रहता है।"

खाओयाञा पुनः तारे करये निन्दन ।

एत अन्न खाओ,—तोमार कत आछे धन? ॥74॥

खाओयाञा–खिलाने के बाद; पुनः-फिर; तारे-उसकी; करये निन्दन-निन्दा करता है; एत-इतना; अन्न-भोजन; खाओ-तुम खाते हो; तोमार-तुम्हारा; कत-कितना; आछे-है; धन-धन।

अनुवाद

"इस तरह वह किसी को भी आवश्यकता से अधिक खिलाता है। और तब प्रत्यक्ष आलोचना करता है कि, "तुम इतना अधिक खाते हो। तुम्हारे खजाने में कितना धन है?"

सन्न्यासीके एत खाओयात्रा कर धर्म नाश! ।

अतएव जानिनु,—तोमार किछु नाहि भास' ॥75 ॥

सन्न्यासीके-संन्यासी को; एत-इतना अधिक; खाओयाञा–खिलाकर; कर धर्म नाश-तुम उनके धार्मिक नियम भ्रष्ट कर रहे हो; अतएव–इसलिए; जानिनु-मैं समझ सकता हूँ; तोमार—तुम्हारी; किछु नाहि भास—कुछ प्रगति नहीं हुई।

अनुवाद

"यही नहीं, संन्यासियों को इतना अधिक खिलाकर तुम उनके धर्म का विनाश करते हो। इसलिए मैं समझ सकता हूँ कि तुममें कोई उन्नति नहीं है।"

के कैछे व्यवहारे, केबा कैछे खाय ।

एई अनुसन्धान तेंहो करय सदाय ॥76॥

के-कौन; कैछे-कैसा; व्यवहारे-व्यवहार; केबा-कौन; कैछे-कैसे; खाय- खाता है; एइ अनुसन्धान—यह खोज; तेंहो-वह; करय-करता है; सदाय-हमेशा।

अनुवाद

यह तो रामचन्द्र पुरी का धंधा बन चुका है कि वह सदैव अन्यों के बारे में पूछताछ करता रहता है कि वे किस तरह खाते हैं और नित्य प्रति किस तरह का व्यवहार करते हैं।

शास्त्रे येइ दुइ धर्म कैराछे वर्जन ।

सेइ कर्म निरन्तर इँहार करण ॥ 77॥

शास्त्रे-शास्त्रों में; येइ-जो; दुइ-दो; धर्म-कर्म; कैराछे वर्जन-वर्जित किये गये हैं; सेइ-वे; कर्म-कार्य; निरन्तर–सदैव; इँहार-उसके; करण-कर्म ।

अनुवाद

शास्त्रों में जिन दो प्रकार के कर्मों का निषेध हुआ है, वे ही उसके नित्य कर्म हैं।

पर-स्वभाव-कर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ।

विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥78॥

पर-स्वभाव-कर्माणि-दूसरों के कार्यों की; न-न; प्रशंसेत्-प्रशंसा; न-न; गर्हयेत्-निन्दा; विश्वम्-संसार को; एक-आत्मकम्-एक समान; पश्यन्-देखना; प्रकृत्या-स्वभाव से; पुरुषेण-जीवों द्वारा; च–तथा।

अनुवाद

“मनुष्य को यह देखना चाहिए कि भौतिक प्रकृति तथा जीव के संयोग के फलस्वरूप यह ब्रह्माण्ड स्वभाव से कार्यशील है। इसलिए अन्यों के स्वभावों या कर्मों की न तो प्रशंसा करनी चाहिए, न आलोचना।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.28.1) से लिया गया है, जिसे कृष्ण ने उद्धव से कहा है।

तार मध्ये पूर्व-विधि ‘प्रशंसा’ छाड़िया ।

पर-विधि 'निन्दा' करे 'बलिष्ठ' जानिया ॥79॥

तार मध्ये दोनों में से; पूर्व-विधि-पहला कार्य; प्रशंसा–तारीफ; छाड़िया-छोड़कर; पर-विधि-दूसरा कार्य; निन्दा-निन्दा करना; करे-करता है; बलिष्ठ जानिया-इसे प्रमुख मानकर।

अनुवाद

इन दो नियमों में से रामचन्द्र पुरी प्रशंसा करना छोड़कर पहले नियम का पालन करता है, किन्तु यह जानते हुए भी कि दूसरा नियम अधिक प्रमुख है, वह अन्यों की आलोचना करके उसकी उपेक्षा कर देता है।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत का उपर्युक्त श्लोक दो आदेश देता है। पहला पूर्व-विधि है, जिसमें किसी की प्रशंसा नहीं की जाती और दूसरा पर-विधि है, जिसमें किसी की आलोचना नहीं की जाती। जैसाकि अगले श्लोक से पता चलेगा, प्रशंसा के विरुद्ध जो आदेश है, वह निन्दा के विरुद्ध आदेश से कम महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य को सावधानी से पर-विधि का पालन करना चाहिए और चाहे तो वह पूर्वविधि की उपेक्षा कर सकता है। इस तरह वास्तविक आदेश यह है कि मनुष्य प्रशंसा तो करे, किन्तु आलोचना न करे। यह श्लेषोक्ति कहलाती है- अर्थात् दो अर्थों वाली उक्ति। किन्तु रामचन्द्र पुरी इससे ठीक विपरीत करता था, क्योंकि वह पर-विधि की अवहेलना करके पूर्वविधि का कड़ाई से पालन करता रहा। चूँकि वह आलोचना न करने के नियम से अपने आपको बचाता रहा, इसलिए उसने दोनों ही नियमों को तोड़ा।

पूर्व-परयोर्मध्ये पर-विधिर्बलवान् ॥80॥

पूर्व-परयो:-पिछले और पहले के; मध्ये-बीच; पर-विधिः-दूसरा; बलवान्-अधिक विशेष होता है।

अनुवाद

"प**हले के और बाद के नियमों में से बाद का नियम ही अधिक महत्त्वपूर्ण है।"**

तात्पर्य

यह श्लोक न्याय ग्रंथों से हैं।

याहाँ गुण शत आछे, ताहा ना करे ग्रहण ।

गुण-मध्ये छले करे दोष-आरोपण ॥81॥

याहाँ-जहाँ; गुण-अच्छे गुण; शत-सैंकड़ों; आछे हैं; ताहा–उन्हें; ना करे ग्रहण-स्वीकार नहीं करता; गुण-मध्ये-इन गुणों में; छल-छलपूर्वक; करे-करता है; दोष-आरोपण-दोषारोपण।

अनुवाद

"एक आलोचक सैकड़ों अच्छे गुणों के होने पर भी उन पर विचार नहीं करता। प्रत्युत वह किसी न किसी चाल से उन गुणों में दोष निकाल लेता है।"

इँहार स्वभाव इहाँ करिते ना युयाय ।

तथापि कहिये किछु मर्म-दुःख पाय ॥82॥

इँहार स्वभाव-इसका स्वभाव; इहाँ–यहाँ; करिते ना युयाय-पालन नहीं करना चाहिए; तथापि–फिर भी; कहिये-मैं कहता हूँ; किछु-कुछ; मर्म-दुःख-हृदय में दुःख; पाय-प्राप्त करके।

अनुवाद

"इसलिए किसी को रामचन्द्र पुरी के सिद्धान्तों का अनुगमन नहीं करना चाहिए। तो भी मुझे उसके विरुद्ध कुछ कहना पड़ रहा है, क्योंकि वह हमारे हृदयों को दुःखी कर रहा है।"

"इँहार वचने केने अन्न त्याग कर? ।

पूर्ववत् निमन्त्रण मान',—सबार बोल धर" ॥83॥

इँहार वचने-उसके शब्दों द्वारा; केने-क्यों; अन्न-भोजन; त्याग कर-आप त्यागते हैं; पूर्व-वत्-पहले की तरह; निमन्त्रण मान'–कृपया निमन्त्रण स्वीकार करें; सबार-सभी के; बोल-वचन; धर-स्वीकार कर।

अनुवाद

"आपने रामचन्द्र पुरी की आलोचना के कारण ठीक से भोजन करना क्यों छोड़ दिया है? कृपया पहले की तरह निमन्त्रण स्वीकार करें। यही हम सबकी प्रार्थना है।"

प्रभु कहे,–"सबे केने पुरीरे कर रोष? ।

‘सहज’ धर्म कहे तेंहो, ताँर किबा दोष?” ॥84॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; सबे-आप सभी; केने-क्यों; पुरीरे-रामचन्द्र पुरी पर; कर रोष-क्रोधित हैं; सहज-स्वाभाविक; धर्म-धर्म के सिद्धान्त; कहे-कहते हैं; तेंहो-वे; ताँर-उनका; किबा-क्या; दोष-दोष।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, “आप सब लोग रामचन्द्र पुरी से रुष्ट क्यों हैं? वे संन्यास जीवन के स्वाभाविक सिद्धान्तों को बता रहे हैं। आप लोग उन्हें क्यों दोष दे रहे हैं?

“यति हञा जिह्वा-लाम्पट्य-अत्यन्त अन्याय।

यतिर धर्म,—प्राण राखिते आहार-मात्र खाय” ॥85॥

यति हञा–संन्यासी होकर; जिह्वा-लाम्पट्य-जीभ को सन्तुष्ट करने में लगना; अत्यन्त अन्याय-बड़ा अपराध; तिर धर्म-संन्यासी का कर्तव्य; प्राण राखिते-जीवन की रक्षा के लिए; आहार-भोजन; मात्र केवल; खाय-खाता है।

अनुवाद

“एक संन्यासी के लिए जिह्वा की तुष्टि में लगना महान् अपराध है। संन्यासी का कर्तव्य है कि जितना शरीर और आत्मा को एक साथ रखने के लिए आवश्यक हो, उतना ही खाना चाहिए।”

तबे सबे मेलि’ प्रभुरे बहु यत्न कैला।

सबार आग्रहे प्रभु अर्धेक राखिला ॥86॥

तबे-फिर; सबे मेलि’-जब सभी भक्त मिलकर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु से; बहु यत्न कैला-बहुत प्रार्थना किये; सबार आग्रहे सभी के अत्यन्त आग्रह के कारण; प्रभु- श्री चैतन्य महाप्रभु ने; अर्धेक राखिला-आधा खाया।

अनुवाद

सबने मिलकर अनुनय-विनय की कि श्री चैतन्य महाप्रभु पूरा भोजन किया करें, तो भी महाप्रभु वैसा करने के लिए राजी नहीं हुए। प्रत्युत उन्होंने पहले का आधा ग्रहण करना स्वीकार करके उनके अनुरोध का उत्तर दिया।

दुइ-पण कौड़ि लागे प्रभुर निमन्त्रणे।

कभु दुइ-जन भोक्ता, कभु तिन-जने ॥87॥

दुइ-पण कौड़ि-दो पण कौड़ी; लागे-खर्च; प्रभुर निमन्त्रणे-श्री चैतन्य महाप्रभु को निमंत्रित करने में; कभु-कभी; दुइ-जन-दो लोग; भोक्ता–खाने; कभु-कभी; तिन-जने–तीन लोग।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रण देने के लिए आवश्यक भोजन का मूल्य दो पण कौड़ियाँ (160 कौड़ियाँ) निश्चित की गई और उस भोजन को दो व्यक्ति, तो कभी-कभी तीन व्यक्ति खाया करते।

अभोज्यान्न विप्र यदि करेन निमन्त्रण।

प्रसाद-मूल्य लइते लागे कौड़ि दुइ-पण ॥88॥

अभोज्य-अन्न विप्र-वह ब्राह्मण जिसके घर पर निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया जा सकता; यदि-यदि; करेन निमन्त्रण-वही निमन्त्रण देता; प्रसाद-मूल्य-प्रसाद का मूल्य; लइते-खर्च करते; लागे–कीमत; कौड़ि दुइ-पण-कौड़ियों के दो पण।

अनुवाद

यदि ऐसा ब्राह्मण निमन्त्रण देता, जिसके घर का निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया जा सकता था, तो उसे प्रसाद खरीदने के लिए दो पण कौड़ियाँ देनी होती थीं।

भोज्यान्न विप्र यदि निमन्त्रण करे।

किछु 'प्रसाद' आने, किछु पाक करे घरे ॥89॥

भोज्य-अन्न विप्र-ऐसा ब्राह्मण जिसको घर पर निमन्त्रण स्वीकार किया जा सकता है; यदि-यदि; निमन्त्रण करे–निमन्त्रण देता है; किछु-कुछ; प्रसाद–प्रसाद; आने-लाता है; किछु-कुछ; पाक करे-पकाता है; घरे–घर पर।

अनुवाद

जब ऐसा ब्राह्मण निमन्त्रण देता, जिसके घर का निमन्त्रण स्वीकार किया जा सकता था, तो वह ब्राह्मण प्रसाद का कुछ अंश खरीदता और शेष को अपने घर में तैयार करता।

पण्डित-गोसाञि, भगवानाचार्य, सार्वभौम ।

निमन्त्रणेर दिने यदि करे निमन्त्रण ॥90॥

ताँ-सबार इच्छाय प्रभु करेन भोजन ।

ताहाँ प्रभुर स्वातन्त्र्य नाइ, यैछे ताँर मन ॥ 91॥

पण्डित-गोसाञि-गदाधर पण्डित; भगवान्-आचार्य-भगवान् आचार्य; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; निमन्त्रणेर दिने-जिस दिन चैतन्य महाप्रभु को अन्य कोई निमंत्रित करते; यदि यदि; करे निमन्त्रण-वे निमंत्रित करते; ताँ-सबार-उन सब की; इच्छाय-इच्छा द्वारा; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन भोजन-उसका प्रसाद ग्रहण करते; ताहाँ उपस्थिति में प्रभुर–चैतन्य महाप्रभु की; स्वातन्त्र्य नाइ–स्वतन्त्रता नहीं थी; यैछे-जैसे; ताँर-उनके; मन–मन।

अनुवाद

यदि किसी दिन श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन करने का निमन्त्रण अन्यों के यहाँ से मिला रहता और यदि गदाधर पण्डित, भगवान् आचार्य या सार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें निमन्त्रण देते, तो श्री चैतन्य महाप्रभु को। तनिक भी छूट नहीं रहती थी। वे उनकी इच्छानुसार उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लेते।

भक्त-गणे सुख दिते प्रभुर 'अवतार' ।

याहाँ यैछे योग्य, ताहाँ करेन व्यवहार ॥ 92॥

भक्त-गणे-अपने भक्तों को; सुख दिते-आनन्द देने के लिए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; अवतार–अवतार; याहाँ यैछे योग्य-देश, काल, पात्र के अनुसार जो भी उचित था; ताहाँ करेन व्यवहार-वे उसी अनुसार आचरण करते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतार वस्तुतः भक्तों को सुख देने के लिए हुआ। इसीलिए समय तथा परिस्थिति के उपयुक्त उन्होंने व्यवहार किया।

कभु लौकिक रीति,—येन 'इतर' जन।

कभु स्वतन्त्र, करेन 'ऐश्वर्य' प्रकटन ॥93॥

कभु-कभी; लौकिक रीति–सामान्य व्यवहार; येन-जैसे; इतर जन-एक सामान्य व्यक्ति; कभु-कभी; स्वतन्त्र–पूर्णतः स्वतन्त्र; करेन-करते; ऐश्वर्य प्रकटन-दिव्य ऐश्वर्य प्रकट।

अनुवाद

पूर्ण स्वतन्त्र होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु कभी सामान्य व्यक्ति की तरह आचरण करते और कभी अपना ईश्वरीय ऐश्वर्य प्रकट करते।

कभु रामचन्द्र-पुरीर हय भृत्य-प्राय।

कभु तारे नाहि माने, देखे तृण-प्राय ॥94॥

कभु-कभी; रामचन्द्र-पुरीर-रामचन्द्र पुरी के; हय-हो जाते; भृत्य-प्राय-एक सेवक के समान; कभु-कभी; तारे-उसे; नाहि माने–नहीं मानते; देखे-देखते; तृण-प्राय-एक तिनके के समान।

अनुवाद

वे कभी रामचन्द्र पुरी को अपना स्वामी मानते और अपने आपको उसका सेवक, तो कभी वे उसकी परवाह न करके उसे तिनके जैसा तुच्छ मानते।

ईश्वर-चरित्र प्रभुर—बुद्धिर अगोचर।

यबे येइ करेन, सेइ सब–मनोहर ॥95॥

ईश्वर-चरित्र-परमेश्वर के समान चरित्र; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; बुद्धिर अगोचर-बुद्धि से परे; यबे-जब; ग्रेइ-जो भी; करेन-वे करते; सेइ-वह; सब-सब कुछ; मनोहर-अत्यन्त मनमोहक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जैसा ही आचरण करते, जो किसी की भी बुद्धि की सीमा के परे होता। उन्होंने जो चाहा सो किया, किन्तु उनके सारे कार्य अतीव सुन्दर होते थे।

एइ-मत रामचन्द्र-पुरी नीलाचले ।

दिन कत रहि गेला तीर्थ' करिबारे ॥96॥

एइ-मत-इस प्रकार; रामचन्द्र-पुरी–रामचन्द्र पुरी; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; दिन कत-कुछ दिन; रहि-रहकर; गेला–चला गया; तीर्थ करिबारे–तीर्थयात्रा के लिए।

अनुवाद

इस प्रकार रामचन्द्र पुरी कुछ दिनों तक नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) में रहा। फिर वह विभिन्न तीर्थस्थानों की यात्रा करने चला गया।

तेंहो गेले प्रभुर गण हैल हरषित ।

शिरेर पाथर येन पड़िल आचम्बित ॥ 97॥

तेंहो गेले-जब वह गया; प्रभुर गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी; हैल हरषित-अत्यन्त प्रसन्न हुए; शिरेर-सिर से; पाथर-एक पत्थर; येन-मानो; पड़िल-गिर गया; आचम्बित-अचानक।

अनुवाद

भक्तगण रामचन्द्र पुरी को अपने सिर के भारी बोझ के समान मानते थे। अतएव जब वह जगन्नाथ पुरी से चला गया, तो वे अपने आपको अत्यन्त सुखी अनुभव करने लगे, मानो उनके सिर से भारी पत्थर का बोझ भूमि पर गिर गया हो।

स्वच्छन्दे निमन्त्रण, प्रभुर कीर्तन-नर्तन ।

स्वच्छन्दे करेन सबे प्रसाद भोजन ॥98॥

स्वच्छन्दे-स्वच्छन्द; निमन्त्रण-निमन्त्रण; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; कीर्तन-नर्तन-नृत्य तथा कीर्तन; स्वच्छन्दे-पूर्ण स्वतन्त्रतापूर्वक; करेन सबे-सभी ने किया; प्रसाद भोजन-प्रसाद ग्रहण।

अनुवाद

उसके चले जाने के बाद सब लोग पुनः सुखी हुए। श्री चैतन्य महाप्रभु सदा की तरह निमन्त्रण स्वीकार करने लगे और सामूहिक कीर्तन तथा नृत्य का नेतृत्व करने लगे। हर कोई बिना रोक-टोक प्रसाद स्वीकार करने लगा।

गुरु उपेक्षा कैले, ऐछे फल हय ।

क्रमे ईश्वर-पर्यन्त अपराधे ठेकय ॥ 99 ॥

गुरु उपेक्षा कैले–यदि किसी का गुरु उसे त्याग दे; ऐछे-ऐसा; फल-परिणाम; हय-होता है; क्रमे-धीरे-धीरे; ईश्वर-पर्यन्त-भगवान् तक; अपराधे ठेकय–अपराध करता है।

अनुवाद

यदि किसी का गुरु उसका तिरस्कार कर देता है, तो वह इतना पतित हो जाता है कि रामचन्द्र पुरी की तरह वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति भी अपराध करता है।

यद्यपि गुरु-बुद्ध्ये प्रभु तार दोष ना लइल ।

तार फल-द्वारा लोके शिक्षा कराइल ॥ 100॥

यद्यपि–यद्यपि; गुरु-बुद्ध्ये-उसे गुरु मानकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तार-उसके; दोष-अपराध; ना लइल-नहीं माने; तार-उसके; फल-परिणाम; द्वारा–द्वारा;लोके-सामान्य लोगों को शिक्षा कराइल-उन्होंने सिखाया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामचन्द्र पुरी के अपराधों पर विचार नहीं किया, क्योंकि वे उसे अपना गुरु मानते थे। किन्तु उसके चरित्र ने हर एक को गुरु का अपमान करने के परिणाम के विषय में शिक्षा दी।

चैतन्य-चरित्र—येन अमृतेर पूर ।

शुनिते श्रवणे मने लागये मधुर ॥101॥

चैतन्य-चरित्र-श्री चैतन्य महाप्रभु का चरित्र; येन-मानो; अमृतेर पूर-अमृत से परिपूर्ण; शुनिते-सुनकर; श्रवणे-कानों को; मने-मन को; लागये–अनुभव होती है; मधुर-मधुरता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का चरित्र अमृत से पूर्ण है। उसके विषय में सुनना कान तथा मन को अच्छा लगता है।

चैतन्य-चरित्र लिखि, शुन एक-मने ।

अनायासे पाबे प्रेम श्री-कृष्ण-चरणे ॥102॥

चैतन्य-चरित्र-श्री चैतन्य महाप्रभु का चरित्र; लिखि-मैं लिखता हूँ; शुन-कृपया सुनो; एक-मने-सावधानीपूर्वक; अनायासे-आसानी से; पाबे-तुम प्राप्त करोगे; प्रेम-प्रेमभाव; श्री-कृष्ण-चरणे-श्रीकृष्ण के चरणकमलों में।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र के विषय में लिख रहा हूँ। हे पाठकों,कृपया ध्यान से इसे सुनो, क्योंकि इससे तुम श्रीकृष्ण के चरणकमलों में परमानन्दमय प्रेम सरलता से प्राप्त कर सकोगे।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥103॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ–श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों में; यार-जिनकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर मैं कृष्णदास श्री चैतन्य चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्य लीला के अन्तर्गत रामचन्द्र पुरी द्वारा महाप्रभु की आलोचना शीर्षक आठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत

श्रीचैतन्य-चरितामृत

अन्त्य लीला, द्वितीय खण्ड

अध्याय 9-20

मूल बंगला श्लोक, श्लोक का हिन्दी लिप्यन्तरण,

शब्दार्थ, अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य सहित

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

विषय-सूची

भूमिका

अध्याय नौ

गोपीनाथ पट्टनायक का उद्धार

अध्याय दस

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों से प्रसाद ग्रहण करते हैं।

अध्याय ग्यारह

हरिदास ठाकुर का महाप्रयाण

अध्याय बारह

श्री चैतन्य महाप्रभु एवं जगदानन्द पण्डित का प्रेम व्यवहार

अध्याय तेरह

जगदानन्द पण्डित तथा रघुनाथ भट्ट गोस्वामी के साथ लीलाएँ

अध्याय चौदह

श्री चैतन्य महाप्रभु का कृष्ण-विरह भाव

अध्याय पंद्रह

श्री चैतन्य महाप्रभु का दिव्य उन्माद

अध्याय सोलह

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा कृष्ण के अधरों का अमृतपान

अध्याय सत्रह

श्री चैतन्य महाप्रभु के शारीरिक विकार

अध्याय अठारह

महाप्रभु का समुद्र से बचाव 549

अध्याय उन्नीस

श्री चैतन्य महाप्रभु का अचिन्त्य व्यवहार 607

अध्याय बीस

परिशिष्ट

लेखक परिचय

विशेष शब्दावली

श्लोकानुक्रमणिका

उधृत श्लोकों की अनुक्रमणिका

बांग्ला वर्णमाला

बांग्ला उच्चारण सम्बन्धी निर्देश

भूमिका

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा उपदेशों का मुख्य ग्रन्थ है। श्री चैतन्य महाप्रभु उस महान् सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, जो भारत में 500 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जिसने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरी धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधाराओं को न केवल भारत में अपितु समग्र विश्व में प्रभावित किया है। उन श्रीकृष्ण चैतन्य के प्रभाव को प्रसारित करने में कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के प्रयासों का मुख्य योगदान रहा है, जो इस ग्रन्थ के अनुवादक तथा भाष्यकार होने के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) के संस्थापक-आचार्य भी हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु को अतीव ऐतिहासिक महत्त्व का पुरुष माना जाता है। किन्तु ऐतिहासिक विश्लेषण की हमारी पारम्परिक विधि, जो व्यक्ति को उनके समय की उपज के रूप में देखती है, यहाँ पर विफल हो जाती है, क्योंकि श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसे पुरुष हैं, जो ऐतिहासिक व्यवस्था के सीमित क्षेत्र से परे हैं।

जिस समय पश्चिम में मानव भौतिक ब्रह्माण्ड की संरचना का अध्ययन करने तथा नवीन सागरों और महाद्वीपों की खोज में समुद्री यात्राएँ करने में अपनी अनुसन्धानात्मक शक्ति लगा रहा था, तभी पूर्व में श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसी क्रान्ति का प्रवर्तन एवं कुशल नेतृत्व कर रहे थे, जो मनुष्य के आध्यात्मिक स्वभाव के सर्वोच्च विज्ञान सम्मत ज्ञान की दिशा में निर्दिष्ट था।

श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवनचरित के मुख्य ऐतिहासिक स्रोत मुरारि गुप्त तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा लिखे गये कड़चा (दैनन्दिनियाँ) हैं। मुरारि गुप्त एक वैद्य तथा श्रीकृष्ण चैतन्य के अन्तरंग पार्षद थे, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास ग्रहण करने तक के प्रारम्भिक चौबीस वर्षों के विषय में विस्तृत टिप्पणियाँ लिखीं। श्री चैतन्य महाप्रभु के अड़तालीस वर्षों के जीवन की शेष घटनाएँ श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्य अन्तरंग पार्षद स्वरूप दामोदर गोस्वामी के कड़चा में अंकित हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृत के तीन खण्ड हैं, जिन्हें लीला कहा जाता है। ये हैं-आदि लीला, मध्य लीला तथा अन्त्य लीला। मुरारि गुप्त का कड़चा ही आदि लीला का आधार है और स्वरूप दामोदर का कड़चा मध्य तथा अन्त्य लीलाओं के लिए विस्तृत विवरण प्रदान करता है।

आदिलीला के सत्रह अध्यायों में से प्रथम बारह अध्याय सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रस्तावना स्वरूप हैं। वैदिक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा कृष्णदास कविराज यह स्थापित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु कलियुग (जो पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जो भौतिकता, दम्भ तथा कलह का प्रतीक है) के लिए कृष्ण के अवतार हैं। लेखक यह भी प्रमाणित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण से अभिन्न हैं और अधम युग के पतितात्माओं को महामन्त्र के संकीर्तन का प्रचार करके शुद्ध भगवत्प्रेम उदारतापूर्ण वितरित करने के लिए अवतरित होते हैं। यह संकीर्तन महामन्त्र का बृहद् सार्वजनिक कीर्तन है। इसके उपरान्त कृष्णदास कविराज ने इस ग्रन्थ के बारहवें अध्याय में इस जगत् में श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का गुह्य प्रयोजन, उनके सह-अवतारों तथा प्रमुख भक्तों का वर्णन किया है और उनकी शिक्षाओं को सार रूप में प्रस्तुत की हैं। आदि लीला के शेष अध्यायों (13 से 17 तक) में लेखक ने चैतन्य महाप्रभु के दिव्य जन्म तथा संन्यास ग्रहण करने तक के जीवन का संक्षिप्त विवरण दिया है। इसमें उनके बचपन के चमत्कारों, अध्ययन, विवाह तथा प्रारम्भिक दार्शनिक शास्त्रार्थों के साथ-साथ उनके व्यापक संकीर्तन-आन्दोलन के संगठन तथा मुस्लिम सरकार द्वारा दमन के विरुद्ध उनके कानून अवज्ञा आन्दोलन का वर्णन है।

तीनों लीलाओं में सबसे लम्बी मध्यलीला की विषय वस्तु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा एक संन्यासी, शिक्षक, दार्शनिक तथा गुरु एवं योगी के रूप में सारे भारत की विस्तृत एवं घटनापूर्ण यात्राओं का विशद् वर्णन है। छह वर्षों की इस अवधि में श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्रमुख शिष्यों को शिक्षाएँ देते हैं। वे अपने समकालीन सुविख्यात दार्शनिकों तथा धर्मज्ञों से, जिनमें शंकराचार्य के अनुयायी, बौद्ध तथा मुसलमान सम्मिलित हैं, शास्त्रार्थ करते हैं और उन्हें तथा उनके शिष्य तथा अनुयायी वर्गों को अपने दल में सम्मिलित करते हैं। इस खण्ड में उड़ीसा में होने वाले विशाल जगन्नाथ रथयात्रा उत्सव के अवसर पर चैतन्य महाप्रभु की चमत्कार-पूर्ण लीलाओं का विस्तृत विवरण सम्मिलित है।

अन्त्यलीला में श्री चैतन्य की प्रकट उपस्थिति के अन्तिम अठारह वर्षों का विवरण है, जिसे उन्होंने जगन्नाथ पुरी के सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर केनिकट लगभग एकान्त में बिताये। इन अन्तिम वर्षों में श्रीकृष्ण चैतन्य भाव-समाधि में गहरे उतरते गये, जो समस्त पूर्वी अथवा पाश्चात्य धार्मिक तथा साहित्यिक इतिहास में अद्वितीय है। उनके नित्य संगी स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा दिये गये प्रत्यक्षदर्शी विवरण, जिनसे श्री चैतन्य की शाश्वत तथा नित्य वर्धमान धार्मिक परमानन्द की अवस्था प्रकट होती है, आधुनिक मनोविज्ञानियों तथा प्रत्यक्षवादियों के धार्मिक अनुभवों की अनुसन्धानात्मक तथा विवरणात्मक क्षमताओं को स्पष्ट रूप से चुनौती देने वाले हैं।

इस महान् ग्रन्थ के रचयिता कृष्णदास कविराज गोस्वामी का जन्म 1507 ई. में हुआ था। वे चैतन्य महाप्रभु के विश्वस्त अनुयायी रघुनाथ दास गोस्वामी के शिष्य थे। रघुनाथ दास विख्यात वैरागी सन्त थे, जिन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा बतलाई गई चैतन्य महाप्रभु की समस्त लीलाओं को सुना था और स्मरण कर रखा था। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के निधन के बाद रघुनाथ दास ने अपने इन आराध्यों की विरह वेदना सहन न कर सकने के कारण गोवर्धन पर्वत से कूदकर आत्महत्या करने के उद्देश्य से वृन्दावन की यात्रा की। किन्तु वृन्दावन में उनकी भेंट चैतन्य महाप्रभु के दो सर्वाधिक अन्तरंग शिष्यों-रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से हुई, जिन्होंने उनसे आत्महत्या की योजना का परित्याग करने तथा चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम जीवन की प्रेरक घटनाओं को प्रकट करने के लिए प्रेरित किया। उस समय कृष्णदास कविराज गोस्वामी भी वृन्दावन में रह रहे थे, जिन्हें रघुनाथ दास गोस्वामी ने श्री चैतन्य के दिव्य जीवन का पूर्ण विवरण प्रदान किया।

उस समय तक श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवन पर अनेक समसामयिक विद्वान तथा भक्तों द्वारा कई जीवन-चरित विषयक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। इनमें मुरारि गुप्त कृत श्रीचैतन्य-चरित, लोचन दास ठाकुर कृत चैतन्य-मंगल तथा वृन्दावन दास कृत चैतन्य-भागवत सम्मिलित हैं, जिनमें से चैतन्य भागवत के लेखक वृन्दावन दास ठाकुर को उस समय श्री चैतन्य के जीवन के विशेषज्ञ माने जाते थे। जब वृन्दावन दास इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना कर रहे थे, तब उन्होंने इस भय से श्री चैतन्य के जीवन की अनेक घटनाओं को, विशेषतया परवर्ती घटनाओं को सम्मिलित नहीं किया कि इससे ग्रन्थ का आकार बढ़ जायेगा। इस अन्तिम लीलाओं को सुनने के इच्छुक वृन्दावन के भक्तों ने कृष्णदास कविराज गोस्वामी से, जिन्हें वे महान् सन्त और विद्वान के रूप में सम्मान देते थे, यह अनुरोध किया कि इन घटनाओं का विस्तार से वर्णन करने वाले ग्रन्थ की रचना करें। इस अनुरोध पर तथा वृन्दावन के मदन मोहन अर्चाविग्रह की अनुमति तथा आशीर्वाद से उन्होंने श्रीचैतन्य चरितामृत की रचना प्रारम्भ की, जिसे चैतन्य महाप्रभु के गहन दर्शन तथा शिक्षाओं के सम्यक् प्रस्तुतीकरण, एवं जीवन-चरित विषयक श्रेष्ठता के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा गूढ़ शिक्षा के सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में आज सारे विश्व में मान्यता दी जा रही है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने वृद्धावस्था में इस ग्रंथ पर कार्य प्रारम्भ किया, जब उनका स्वास्थ्य गिर चुका था। जैसाकि उन्होंने स्वयं लिखा है, "अब मैं अति वृद्ध एवं अक्षमता से विक्षुब्ध हूँ। लिखते समय मेरे हाथ काँपते हैं, मुझे ठीक से किसी बात का स्मरण नहीं हो पाता, न ही मैं ठीक से देख या सुन सकता हूँ, फिर भी मैं लिखता हूँ जो कि अपने आप में एक महान् आश्चर्य है।" तो भी उन्होंने इस

अक्षम अवस्था में मध्यकालीन भारत के इस महान्तम साहित्यिक मणि को पूरा किया, जो साहित्यिक इतिहास के आश्चर्यों में एक है।

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, इसका अंग्रेजी अनुवाद कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा सम्पन्न किया गया, जो समग्र विश्व में भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा के सर्वाधिक विख्यात शिक्षक हैं। श्रील प्रभुपाद का भाष्य दो बँगला भाष्यों पर आधारित है—एक तो उनके गुरु, महान् वैदिक विद्वान, उपदेशक और संत श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, जिन्होंने भविष्यवाणी की थी कि, "एक समय ऐसा आयेगा, जब श्रीचैतन्य चरितामृत पढ़ने के लिए विश्वभर के लोग बँगला सीखेंगे और दूसरा भाष्य श्रील भक्तिसिद्धान्त के पिता भक्तिविनोद ठाकुर का जिन्होंने आधुनिक युग में श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के प्रचार में अग्रदूत का काम किया।

श्रील प्रभुपाद स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा में आते हैं। और वे पहले विद्वान हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य के अनुयायियों के प्रमुख ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। उनकी बँगला तथा संस्कृत में विद्वत्ता और श्रीकृष्ण चैतन्य के उपदेशों से उनका अन्तरंग परिचय ऐसा उपयुक्त मेल है, जो उन्हें इस महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ को अंग्रेजी भाषी संसार के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए सर्वाधिक योग्य बनाता है। वे जिस सहजता तथा स्पष्टता से कठिन दार्शनिक विचारों की स्थापना करते हैं, वह भारत की धार्मिक परम्परा से पूर्णतया अपरिचित पाठक को भी इन गहन तथा स्मरणीय ग्रन्थ को समझने तथा उसकी प्रशंसा करने के लिए समर्थ बनाता है।

तात्पर्य समेत सम्पूर्ण मूल पाठ को नौ सचित्र खण्डों में भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो समकालीन मनुष्य के बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रमुख महत्त्वपूर्ण योगदान का प्रतिनिधित्व करता है।

श्रील प्रभुपाद के द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत का हिन्दी अनुवाद उनके शताब्दी उत्सव के अवसर पर प्रकाशित किया जा रहा है, जो भारत के भक्तों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

-प्रकाशक

अध्याय नौ

गोपीनाथ पट्टनायक का उद्धार

नौंवे अध्याय का सारांश इस प्रकार है। भवानन्द राय का पुत्र गोपीनाथ पट्टनायक सरकारी नौकरी में था, किन्तु उसने कोषागार से कुछ धन आत्मसात् कर लिया। इसलिए राजा प्रतापरुद्र के सबसे बड़े-पुत्र बड़ जाना ने उसे मृत्युदण्ड का आदेश दे दिया। फलस्वरूप गोपीनाथ पट्टनायक को मारने के लिए चांग पर चढ़ाया गया, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से उसका उद्धार हो गया। यही नहीं, उसे उच्चतर पद प्राप्त हुआ।

अगण्य-धन्य-चैतन्य-गणानां प्रेम-वन्यया ।

निन्येऽधन्य-जन-स्वान्त-मरुः शश्वदनूपताम् ॥1॥

अगण्य-अगणित; धन्य-गौरवशाली; चैतन्य-गणानाम्-श्री चैतन्य महाप्रभु के परिकरों की; प्रेम-वन्यया–परमानन्दमयी प्रेम की बाढ के द्वारा; निन्ये-लाया गया; अधन्य-जन-अभागे व्यक्तियों के; स्वान्त-मरुः-हृदयरूपी मरुभूमि को; शश्वत्-सदैव; अनूपताम्-जलमय स्थिति में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के असंख्य गौरवान्वित अनुयायियों ने अभागे जनों के मरुस्थल जैसे हृदयों में भावमय प्रेम की बाढ़ ला दी।

जय जय श्री कृष्ण-चैतन्य दयामय ।

जय जय नित्यानन्द करुण-हृदय ॥2॥

इस तरह अपने निजी भक्तों के साथ सदैव कृष्ण-प्रेम में निमग्न श्री चैतन्य महाप्रभु नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) में रहे। जय जय जय जयकार हो; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; दया-मय-करुणामय; जय जय-जय जयकार हो; नित्यानन्द–भगवान् श्री नित्यानन्द की; करुण-हृदय-जिनका हृदय अत्यन्त करुणामय है।

अनुवाद

सर्वाधिक कृपालु अवतार श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की जय हो! भगवान् नित्यानन्द की जय हो, जिनका हृदय सदैव करुणापूरित रहता है!

जयाद्वैताचार्य जय जय दयामय ।

जय गौर-भक्त-गण सब रसमय ॥ 3॥

जय-जय हो; अद्वैत-आचार्य-श्री अद्वैत आचार्य की; जय जय-जय जयकार हो; दया-मय-करुणामय; जय-जय हो; गौर-भक्त-गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की; सब-समस्त; रस-मय-दिव्य रसमय आनन्द में विभोर।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य की जय हो, जो अत्यन्त दयामय हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो, जो दिव्य आनन्द से सदैव अभिभूत रहते हैं।

एइ-मत महाप्रभु भक्त-गण-सङ्गे ।

नीलाचले वास करेन कृष्ण-प्रेम-रङ्गे ॥4॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भक्त-गण-सङ्गे-अपने भक्तों के साथ; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; वास करेन–निवास करते हैं; कृष्ण-प्रेम-रङ्गे-परमानन्दमय कृष्ण-प्रेम में निमज्जित होकर।

अनुवाद

इस तरह अपने भक्तों के साथ सदैव कृष्ण–प्रेम में निमग्न श्री चैतन्य महाप्रभु नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) में रहे।

अन्तरे-बाहिरे कृष्ण-विरह-तरङ्ग ।

नाना-भावे व्याकुल प्रभुर मन आर अङ्ग ॥5॥

अन्तरे-बाहिरे-आन्तरिक एवं बाह्य रूप से; कृष्ण-विरह-तरङ्ग-कृष्ण विरह की तरंगें; नाना-भावे विविध भावों के द्वारा; व्याकुल-व्याकुल; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; मन आर अङ्ग-मन तथा शरीर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सदैव बाहर तथा भीतर से कृष्ण-वियोग की तरंगों का अनुभव करते रहते थे। उनका मन तथा शरीर सदैव विभिन्न आध्यात्मिक विकारों से क्षुब्ध रहता था।

दिने नृत्य-कीर्तन, जगन्नाथ-दरशन ।

रात्र्ये राय-स्वरूप-सने रस-आस्वादन ॥6॥

दिने–दिन में; नृत्य-कीर्तन-नृत्य एवं कीर्तन; जगन्नाथ-दरशन-भगवान जगन्नाथ के दर्शन; रात्र्ये-रात्रिकाल में; राय-स्वरूप-सने-रामानन्द राय एवं स्वरूप दामोदर के साथ; रस-आस्वादन-दिव्य रस का आस्वादन।

अनुवाद

दिन में वे कीर्तन करते, नृत्य करते और मन्दिर में भगवान जगन्नाथ का दर्शन करते थे। रात में वे रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर के साथ दिव्य आनन्द का आस्वादन करते थे।

त्रिजगतेर लोक आसि' करेन दरशन ।

येइ देखे, सेइ पाय कृष्ण-प्रेम-धन ॥7॥

त्रि-जगतेर–त्रिलोकी के; लोक-लोग; आसि—आकर; करेन दरशन-दर्शन किये; येइ देखे-जिस किसी ने देखा; सेइ पाय-उसको प्राप्त हुआ; कृष्ण-प्रेम-धन-कृष्ण-प्रेम की अलौकिक निधि।

अनुवाद

तीनों लोकों से लोग श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने आते थे। जो भी उन्हें देखता, वह कृष्ण-प्रेम का दिव्य धन प्राप्त करता था।

मनुष्येर वेशे देव-गन्धर्व-किन्नर ।

सप्त-पातालेर यत दैत्य विषधर ॥8॥

मनुष्येर वेशे-मानववेश में; देव-गन्धर्व-किन्नर-देवगण, गन्धर्वगण एवं किन्नरगण; सप्त-पातालेर-सप्त पाताल लोकों के; यत–सभी प्रकार के; दैत्य-दैत्यगण; विष-धर-सर्पगण।

अनुवाद

सातों उच्चतर लोकों के निवासी जिनमें देवता, गन्धर्व तथा किन्नर सम्मिलित थे तथा सातों अधोलोकों (पाताल लोक) के निवासी, जिनमें असुर तथा सर्प सम्मिलित थे, मनुष्य के वेश में श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने आते थे।

सप्त-द्वीपे नव-खण्डे वैसे यत जन ।

नाना-वेशे आसि' करे प्रभुर दरशन ॥9॥

सप्त-द्वीपे–सप्त द्वीपों में; नव-खण्डे–नव खण्डों में; वैसे—निवास करनेवाले; यत जन-समस्त प्राणी; नाना-वेशे-विविध वेशों में; आसि'-आकर; करे प्रभुर दरशन-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन किये।

अनुवाद

सात द्वीप तथा नौ खण्ड़ों से लोग विभिन्न वेशों में श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने आते थे।

प्रह्लाद, बलि, व्यास, शुक आदि मुनि-गण ।

आसि' प्रभु देखि प्रेमे हय अचेतन ॥10॥

प्रह्लाद-प्रह्लाद महाराज; बलि–बलि महाराज; व्यास–व्यासदेव; शुकशुकदेव गोस्वामी; आदि–इत्यादि; मुनि-गण-महान् मुनिगण; आसि'-आकर; प्रभु देखि'–श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करते हुए; प्रेमे-कृष्ण-प्रेम में; हय अचेतन-मूर्छित हुए।

अनुवाद

प्रह्लाद महाराज, बलि महाराज, श्रील व्यासदेव, शुकदेव गोस्वामी तथा अन्य अनेक बड़े-बड़े मुनि श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने आते। उनके दर्शन पाकर वे कृष्ण-प्रेम में अचेत हो जाते।

तात्पर्य

कुछ इतिहासविदों के मतानुसार प्रह्लाद महाराज त्रेतायुग में पंजाब प्रान्त के मुलतान नामक स्थान में उत्पन्न हुए थे। उनका जन्म कश्यप वंश के राजा हिरण्यकशिपु के घर हुआ था। प्रह्लाद महाराज भगवान् विष्णु के महान् भक्त थे, किन्तु उनका पिता विष्णु का कट्टर विरोधी था। इस तरह पिता तथा पुत्र की चेतना में अन्तर था, इसलिए असुर पिता प्रह्लाद को तरह-तरह की शारीरिक यातनाएँ देता रहता था। जब यह यातना असह्य हो गई, तो परम भगवान् नृसिंहदेव के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने महान् असुर हिरण्यकशिपु का वध किया।

बलि महाराज प्रह्लाद महाराज के पौत्र थे। प्रह्लाद महाराज के पुत्र का नाम विरोचन था, जिनके पुत्र बलि हुए। वामन के रूप में प्रकट होकर बलि महाराज से तीन पग भूमि माँगकर भगवान् ने तीनों लोकों पर अधिकार जमा लिया। इस तरह बलि महाराज भगवान् वामन के महान् भक्त बने । बलि महाराज के एक सौ पुत्र थे, जिनमें महाराज बाण ज्येष्ठतम थे और अत्यन्त प्रसिद्ध थे।

व्यासदेव महर्षि पराशर के पुत्र थे। व्यासदेव के अन्य नाम हैं सात्यवतेय तथा कृष्ण द्वैपायन बादरायण मुनि। वेदों के अधिकारी विद्वान होने के कारण उन्होंने मूल वेद को सुगमता के विचार से चार विभागों—साम, यजुः, ऋग् तथा अथर्व में बाँट दिया। वे अठारह पुराणों तथा ब्रह्मसूत्र एवं उसकी स्वाभाविक टीका श्रीमद्भागवत के लेखक हैं। वे ब्रह्म सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं और नारद मुनि के प्रत्यक्ष शिष्य हैं।

शुकदेव गोस्वामी व्यासदेव के पुत्र हैं। वे ब्रह्म-साक्षात्कार को प्राप्त ब्रह्मचारी थे, किन्तु बाद में वे भगवान् कृष्ण के महान् भक्त बन गये। उन्होंने महाराज परीक्षित को श्रीमद्भागवत सुनाई।

बाहिरे फुकारे लोक, दर्शन ना पाञा ।

'कृष्ण कह' बलेन प्रभु बाहिरे आसिया ॥11॥

बाहिरे-बाहर; फु-कारे-तुमुल ध्वनि के साथ; लोक-लोग; दर्शन ना पाञा-दर्शन न पाते हुए; कृष्ण कह-कृष्ण कहो; बलेन-बोलते हैं; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः बाहिरे आसिया–बाहर आते हुए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को न देख सकने के कारण जनता उनके कमरे के बाहर तुमुल ध्वनि करती। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु बाहर आते और उनसे कहते, "हरे कृष्ण का कीर्तन करो।"

प्रभुर दर्शने सब लोक प्रेमे भासे ।

एइ-मत याय प्रभुर रात्रि-दिवसे ॥12॥

प्रभुर दर्शने-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करते हुए; सब लोक-समस्त लोग; प्रेमे भासे प्रेम में विभोर हुए; एइ-मत-इस प्रकार; याय–व्यतीत करते; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; रात्रि-दिवसे–रात्रि एवं दिवस।

अनुवाद

सभी तरह के लोग महाप्रभु का दर्शन करने आते और उन्हें देखने के बाद वे कृष्ण-प्रेम में विभोर हो जाते। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु अपने दिन और रातें व्यतीत करते रहे।

एक-दिन लोक आसि' प्रभुरे निवेदिल ।

गोपीनाथेरे 'बड़ जाना' चाङ्गे चड़ाइल ॥13॥

एक-दिन-एक दिन; लोक-लोग; आसि-आये; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; निवेदिल–निवेदन किया; गोपीनाथेरे-गोपीनाथ पट्टनायक को; बड़ जाना—राजा प्रतापरूद्र के ज्येष्ठ पुत्र ने; चाङ्गे चड़ाइल-चांग पर चढाया गया।

अनुवाद

एक दिन सहसा लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आये और उन्हें बतलाया कि, "भवानन्द राय के पुत्र गोपीनाथ पट्टनायक को राजा के ज्येष्ठ पुत्र बड़जाना ने मृत्यु-दण्ड दे दिया है और उसे चाँग पर चढ़ा दिया गया है।

तात्पर्य

चाँग अपराधी व्यक्ति को जान से मार डालने का एक साधन है। यह एक ऊँचा चबूतरा होता था, जिस पर अपराधी व्यक्ति को खड़ा कर दिया जाता था। इस चबूतरे के नीचे खड़ी तलवारें होती थीं। अपराधी व्यक्ति को नीचे तलवारों के ऊपर फेंक दिया जाता था और इस तरह वह मर जाता था। किसी कारणवश गोपीनाथ पट्टनायक को मृत्युदण्ड दिया गया था और इसीलिए उसे चाँग पर खड़ा कर दिया गया था।

तले खड्ग पाति' तारे उपरे डारिबे ।

प्रभु रक्षा करेन यबे, तबे निस्तारिबे ॥14॥

तले-नीचे; खड्ग-तलवारें; पाति'–स्थापित कर; तारे-उसको; उपरे–उपर; डारिबे–वह फेंकेगा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; रक्षा करेन-रक्षा करेंगे; यबेजब; तबे- तब; निस्तारिबे-उसका उद्धार होगा।

अनुवाद

उन्होंने बतलाया कि, "बड़-जाना ने चबूतरे के नीचे तलवारें लगा दी हैं, जिन पर गोपीनाथ को फेंक दिया जायेगा। हे प्रभु, यदि आप रक्षा करें तभी वह बच सकता है।

सवंशे तोमार सेवक—भवानन्द-राय ।

ताँर पुत्र—तोमार सेवके राखिते युयाय ॥15॥

स-वंशे-अपने वंश के साथ; तोमार-आपके; सेवक-सेवक; भवानन्द-राय-भवानन्द राय; ताँर पुत्र—उनके पुत्र; तोमार सेवके-आपका सेवक; राखिते-रक्षा करना; युयाय-उचित है।

अनुवाद

“भवानन्द राय तथा उनका सारा परिवार आपके सेवक हैं। इसलिए यह सर्वथा उपयुक्त होगा कि आप भवानन्द राय के पुत्र को बचा लें।”

प्रभु कहे,—'राजा केने करये ताड़न?'।

तबे सेइ लोक कहे सब विवरण ॥ 16 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; राजा-राजा; केने-किस कारण से; करये ताड़न-दण्डित करता है; तबे—उस समय; सेइ लोक-उन लोगों ने; कहे-कहा; सब विवरण-समस्त वृत्तान्त।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, “राजा उसे क्यों दण्ड दे रहा है?” इस पर लोगों ने सारी घटना कह सुनाई।

“गोपीनाथ-पट्टनायक–रामानन्द-भाई ।

सर्व-काल हय तेंह राज-विषयी ॥17॥

गोपीनाथ-पट्टनायक–गोपीनाथ पट्टनायक; रामानन्द-भाइ-श्री रामानन्द राय का भाई है; सर्व-काल-हर समय; हय-है; तेह-वह; राज-विषयी-राजा का कोषाध्यक्ष।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “रामानन्द राय का भाई गोपीनाथ पट्टनायक सदा से सरकार का खजांची रहा है।

‘मालञाठ्या-दण्डपाटे' तार अधिकार ।

साधि' पाड़ि’ आनि’ द्रव्य दिल राज-द्वार ॥18॥

मालञाठ्या-दण्डपाटे-मालञाठ्या दण्डपाट नामक स्थान में; तार–उनका; अधिकार-अधिकार; साधि'-अभ्यर्थना कर; पाड़ि’–समाहरण कर; आनि’–लाकर; द्रव्य-सम्पत्ति; दिल-दिया; राज-द्वार-राजद्वार को।

अनुवाद

“वह मालञाळ्या दण्डपाट नामक स्थान में नौकरी करता था, वहीं वह संग्रह कर धन (राजस्व) एकत्र करता था और उसे सरकारी खजाने में जमा करता था।

दुइ-लक्ष काहन तार ठाञि बाकी ह-इल ।

दुइ-लक्ष काहन कौड़ि राजा त' मागिल ॥19॥

दुइ-लक्ष-कौडीओं के 2,00,000 काहन (एक काहन 1,280 कौडीओं के बराबर होता है); तार ठाञि-उनसे; बाकी ह-इल-बाकी रहे; दुइ-लक्ष काहन-2,00,000 कहान; कौड़ि-शङ्खों को; राजा-राजा ने; त'–निश्चयपूर्वक; मागिल-माँगा।

अनुवाद

"एक बार जब उसने एकत्र की गई राशि जमा की, तो दो लाख काहन कौड़ियाँ उस पर बकाया रह गई। इसलिए राजा ने वह राशि माँगी।

तेंह कहे,–"स्थूल-द्रव्य नाहि ये गणि' दिब ।

क्रमे-क्रमे वेचि' किनि' द्रव्य भरिब ॥20॥

तेंह कहे-उसने कहा; स्थूल-द्रव्य-नकद धन; नाहि-नहीं है; ये—जिसको; गणि'–गिनकर; दिब–मैं दे सकें; क्रमे-क्रमे-क्रमशः; वेचि' किनि'–क्रय एवं विक्रय करके; द्रव्य–सम्पत्ति को; भरिब-मैं भर दूँगा।

अनुवाद

"गोपीनाथ पट्टनायक ने उत्तर दिया, 'मेरे पास धन नहीं कि मैं आपको तुरन्त नकद दे सकें। कृपया मुझे कुछ समय दीजिये। मैं धीरे-धीरे अपना सामान बेचकर आपके खजाने में यह राशि जमा कर दूँगा।

घोड़ा दश-बार हय, लह' मूल्य करि"" ॥

एत बलि' घोड़ा आने राज-द्वारे धरि' ॥ 21॥

घोड़ा-अश्व; दश-बार-दस से बारह; हय-हैं; लह'–ले लो; मूल्य करि'–उचित मूल्य पर; एत बलि'—इतना कहते हुए; घोड़ा आने-वे अश्वों को ले आया; राज-द्वारे धरि'-राजा के द्वार पर रखते हुए।

अनुवाद

"मेरे पास दस-बारह अच्छे घोड़े हैं। आप उन्हें उचित मूल्य पर तुरन्त ले लें।' यह कहकर वह सारे घोड़े राजा के द्वार पर ले आया।

एक राज-पुत्र घोड़ार मूल्य भाल जाने ।

तारे पाठाइल राजा पात्र-मित्र सने ॥22॥

एक-एक; राज-पुत्र-राजकुमार; घोड़ार मूल्य-अश्वों का मूल्य; भाल-सम्यक् रूप से; जाने-जानता था; तारे पाठाइल-उसको प्रेषित किया; राजा-राजा ने; पात्र-मित्र सने–आमात्यवर्ग एवं सुहद्गण सहित।

अनुवाद

"राजकुमारों में से एक यह जानता था कि घोड़ों का ठीक से मूल्य कैसे आँका जाता है। इसलिए राजा ने उसे अपने मन्त्रियों तथा मित्रों के साथ आने के लिए बुला भेजा।

सेइ राज-पुत्र मूल्य करे घाटाञा ।

गोपीनाथेर क्रोध हैल मूल्य शुनिया ॥ 23॥

सेइ-उस; राज-पुत्र-राजकुमार ने; मूल्य-मूल्यांकन; करे-किया; घाटाञा-लाघत लाते हुए; गोपीनाथेर-गोपीनाथ का; क्रोध हैल-क्रोध उत्पन्न हुआ; मूल्य शुनिया-मूल्य सुनकर।

अनुवाद

किन्तु उस राजकुमार ने जानबूझकर घोड़ों के मूल्य का अनुमान घटा दिया। जब गोपीनाथ पट्टनायक ने लगाया हुआ मूल्य सुना, तो वह अत्यधिक क्रुद्ध हुआ।

सेइ राज-पुत्रेर स्वभाव,—ग्रीवा फिराय ।

ऊर्ध्व-मुखे बार-बार इति-उति चाय ॥24॥

सेइ राज-पुत्रेर—उस राजकुमार का; स्वभाव-स्वभाव; ग्रीवा फिराय-ग्रीवा को घुमाता है; ऊर्ध्व-मुखे-ऊपर की ओर मुख कर; बार-बार–पुनः पुनः; इति-उति–यहाँ वहाँ; चाय-देखता है।

अनुवाद

“उस राजकुमार को अपनी गर्दन घुमाने तथा आकाश की ओर ताकने की तथा बार-बार इधर-उधर देखने की आदत थी।

तारे निन्दा करि’ कहे सगर्व वचने ।

राजा कृपा करे ताते भय नाहि माने ॥25॥

तारे—उसको; निन्दा करि’—निन्दित करते हुए; कहे-बोला; स-गर्व वचने-अहंकार भरे वचनों को; राजा-राजा; कृपा करे—उसके ऊपर दयालु थे; ताते-अतएव; भय नाहि माने-वह भयभीत नहीं था।

अनुवाद

“गोपीनाथ पट्टनायक ने उस राजकुमार की आलोचना की। वह उस राजकुमार से भयभीत नहीं था, क्योंकि राजा उस पर अत्यन्त दयालु रहता था।

'आमार घोड़ा ग्रीवा ना फिराय ऊर्ध्वे नाहि चाय ।

ताते घोड़ार मूल्य घाटि करिते ना युयाय’ ॥ 26 ॥

आमार घोड़ा-मेरे अश्व; ग्रीवा-गर्दन को; ना फिराय नहीं घुमाते हैं; ऊर्ध्वे-ऊपर की ओर; नाहि चाय-नहीं देखते हैं; ताते-इसलिए; घोड़ार मूल्य-अश्वों का दाम; घाटि करिते-घटाना; ना युयाय-उचित नहीं है।

अनुवाद

“गोपीनाथ पट्टनायक ने कहा, 'मेरे घोड़े कभी अपनी गर्दन नहीं मोड़ते या ऊपर नहीं देखते। इसलिए उनके मूल्य कम नहीं किये जाने चाहिए।'

शुनि’ राजपुत्र-मने क्रोध उपजिल ।

राजार ठाञि याइ’ बहु लागानि करिल ॥ 27॥

शुनि’–सुनकर; राज-पुत्र–राजपुत्र के; मने-मन में; क्रोध-क्रोध; उपजिल-उत्पन्न हुआ; राजार ठाञि-राजा के समक्ष; याइ’–जाकर; बहु लागानि करिल-बहुत मिथ्या आरोप लगाये।

अनुवाद

यह आलोचना सुनकर राजकुमार अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। राजा के पास आकर उसने गोपीनाथ पट्टनायक के विरुद्ध कुछ झूठे आरोप लगाये।

“कौड़ि नाहि दिबे एइ, बेड़ाय छद्म करि’ ।

आज्ञा देह यदि,–'चाङ्गे चड़ाञा ल-इ कौड़ि’ ॥28॥

कौड़ि-धन; नाहि दिबे-नहीं देगा; एइ-यह व्यक्ति; बेड़ाय-अपव्यय करता है; छद्म करि’—किसी बहाने से; आज्ञा देह यदि-यदि आप आदेश दें; चाङ्गे चड़ाया-चाङ्ग पर चढाकर; ल-इ कौड़ि-मैं धन को वापस ले लूँगा।

अनुवाद

उसने कहा, 'यह गोपीनाथ पट्टनायक बकाया लौटाना नहीं चाहता। उल्टे वह बहाना करके उसे बुरी तरह से लुटा रहा है। यदि आप आदेश जारी कर दें, तो मैं उसे चाँग पर चढ़ाकर उससे धन वसूल कर सकता हूँ।

राजा बले,–"येइ भाल, सेइ कर याय ।

ये उपाये कौड़ि पाइ, कर से उपाय" ॥29॥

राजा बले-राजा ने कहा; येइ भाल-जो भी उत्तम हो; सेइ कर—वह करो; याय-जाकर; ये उपाये-जिस उपाय से; कौड़ि पाइ–मैं अपने धन को प्राप्त कर पाऊँ; कर-करो; से उपाय-ऐसा उपाय।

अनुवाद

"राजा ने उत्तर दिया, 'तुम जिस उपाय को सर्वश्रेष्ठ समझो, वही अपनाओ। तुम जिस भी उपाय से धन संग्रह कर सको वही उचित है।

राज-पुत्र आसि' तारे चाङ्गे चड़ाइल ।

खड़ग-उपरे फेलाइते तले खड़ग पातिल" ॥ 30॥

राज-पुत्र-राजपुत्र ने; आसि-आकर; तारे—उसको; चाङ्गे-चांग पर; चड़ाइल-चढाया; खड़ग-उपरे–तलवारों के उपर; फेलाइते-डालने के लिए; तले-नीचे; खड़ग पातिल-उसने तलवारों को बिछा दिया।

अनुवाद

इस तरह राजकुमार लौट गया, उसने गोपीनाथ पट्टनायक को चाँग के चबूतरे पर चढ़ा दिया और उसके नीचे तलवारें फैला दीं, जिन पर उसे फेंका जाना था।"

शुनि' प्रभु कहे किछु करि' प्रणय-रोष ।

"राज-कौड़ि दिते नारे, राजार किबा दोष? ॥31॥

शुनि'–सुनकर; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु बोले; किछु-कुछ; करि' प्रणय-रोष-स्नेहमय रोष करते हुए; राज-कौड़ि-सरकार के धन को; दिते नारे–देने की इच्छा नहीं करता; राजार-राजा का; किबा दोष-क्या दोष है।

अनुवाद

इस विवरण को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्नेहमय क्रोध से उत्तर दिया। महाप्रभु ने कहा, "गोपीनाथ पट्टनायक राजा को धन नहीं लौटाना चाहता, तो फिर उसे दण्डित करने में राजा का क्या दोष है?

राज-विलात्साधि' खाय, नाहि राज-भय ।

दारी-नाटुयारे दिया करे नाना व्यय ॥ 32॥

राज-विलात्-राजा को अर्पित किया जानेवाला धन का; साधि'–संग्रह करके; खाय-वह उपभोग करता है; नाहि राज-भय-राजा के भय के बिना; दारी-नाटुयारे-नृत्यांगनाओं को; दिया-देकर; करे-करता है; नाना विविध; व्यय-अपव्यव्य।

अनुवाद

"गोपीनाथ पट्टनायक सरकार की ओर से धन संग्रह करने का भार लिये हुए है, किन्तु वह इसका दुरुपयोग करता है। वह राजा से डरे बिना नर्तकी युवतियों को देखने में धन लुटा देता है।

येइ चतुर, सेइ कुरुक राज-विषय ।

राज-द्रव्य शोधि' पाय, तार करुक व्यय" ॥ 33॥

येइ-जो; चतुर-चतुर है; सेइ-वह व्यक्ति; कुरुक-उसको करने दो; राज- विषय-राजसेवा; राज-द्रव्य शोधि'–राजो के द्रव्य को अर्पण कर; पाय-जो भी वह प्राप्त करे; तार करुक व्यय-वह उसको व्यय करने दो।

अनुवाद

यदि कोई बुद्धिमान है, तो वह सरकार की नौकरी करे और सरकार का धन चुकता करने के बाद जो धनराशि बचे, उसे वह खर्च कर सकता है।"

हेन-काले आर लोक आइल धाञा ।

'वाणीनाथादि सवंशे लञा गेल बान्धिया' ॥ 34॥

हेन-काले—उस समय; आर—एक अन्य; लोक-व्यक्ति; आइल-आया; धाञा-बहुत जल्दी में; वाणीनाथ-आदि-वाणीनाथ आदि को; स-वंशे लञा-उनके परिवार के साथ; गेल बान्धिया-बन्दी बनाया जा चुका है।

अनुवाद

उसी समय एक अन्य व्यक्ति शीघ्र यह सन्देश लेकर आया कि वाणीनाथ राय सपरिवार बन्दी बना लिया गया है।

प्रभु कहे,_"राजा आपने लेखार द्रव्य ल-इब ।

आमि–विरक्त सन्यासी, ताहे कि करिब?" ॥ 35॥

प्रभु कहे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; राजा-राजा; आपने–निज; लेखार द्रव्य–अवशिष्ट धन को; ल-इब-ले लेगा; आमि–मैं; विरक्त सन्यासी-वैरागी संन्यासी; ताहे-इस विषय में; कि करिब–क्या कर सकता हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "राजा निश्चित रूप से स्वयं बकाया धनराशि संग्रह करेगा। मैं तो मात्र एक वैरागी संन्यासी हूँ। मैं क्या कर सकता हूँ?"

तबे स्वरूपादि यत प्रभुर भक्त-गण ।

प्रभुर चरणे सबे कैला निवेदन ॥ 36॥

तबे—उस समय; स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर आदि; यत-समस्त; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गण-भक्तों ने प्रभुर चरणे-प्रभु के चरणों में; सबे-सभी ने; कैला निवेदन निवेदन किया।

अनुवाद

तभी स्वरूप दामोदर गोस्वामी इत्यादि सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और सबों ने निम्नलिखित याचना की।

"रामानन्द-रायेर गोष्ठी, सब—तोमार 'दास' ।

तोमार उचित नहे ऐछन उदास" ॥ 37॥

रामानन्द-रायेर-रामानन्द राय का; गोष्ठी-परिवार; सब–समस्त; तोमार दास-आपके दास हैं; तोमार-आपके लिए; उचित-योग्य; नहे-नहीं है; ऐछन-इस प्रकार की; उदास-उदासीनता॥

अनुवाद

“रामानन्द राय के परिवार के सारे सदस्य आपके सनातन सेवक हैं। अब वे संकट में हैं। आपके लिए इस तरह से उनके प्रति उदासीन रहना उचित नहीं है।”

शुनि’ महाप्रभु कहे सक्रोध वचने ।

“मोरे आज्ञा देह' सबे, याङराज-स्थाने! ॥ 38॥

शुनि’–सुनकर; महाप्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; कहे-बोले; स-क्रोध वचने-रोषयुक्त वचन; मोरे-मुझे; आज्ञा देह'-आप आदेश देते हैं; सबे-सभी; याङ-मुझे जाना चाहिए; राजस्थाने-राजा के स्थान पर।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु क्रुद्ध मुद्रा में बोले-“तुम लोग मुझे आज्ञा देना चाहते हो कि मैं राजा के पास जाऊँ।”

तोमा-सबार एइ मत,—राज-ठाञि याञा ।

कौड़ि मागि’ लङ्गुञि आँचल पातिया ॥ 39॥

तोमा-सबार-आप सभी का; एइ मत—यह अभिमत है; राज- ठाञि याञा-राजा के पास जाकर; कौड़ि मागि’-कौड़ीयाँ माँगते हुए; लँ–लेकर; मुञि-मैं; आँचल पातिया-वस्त्र बिछाकर।

अनुवाद

“तुम लोगों का मत है कि मैं राजा के महल में जाऊँ और उससे धन माँगने के लिए अपना वस्त्र फैलाऊँ।

पाँच-गण्डार पात्र हय सन्यासी ब्राह्मण ।

मागिले वा केने दिबे दुइ-लक्ष काहन?” ॥40॥

पाँच-गण्डार–पाँच गण्डों के; पात्र-ग्रहण करने के पात्र; हय-हैं; सन्यासी ब्राह्मण-संन्यासी एवं ब्राह्मण; मागिले-माँगकर; वा–अथवा; केने-क्यों; दिबे-दिये जाने चाहिए; दुइ-लक्ष काहन-2,00,000 कौड़ीओं के काहन।

अनुवाद

"निस्सन्देह, एक संन्यासी या ब्राह्मण पाँच गण्डे तक माँग सकता है, किन्तु उसे दो लाख काहन कौड़ियों की अनुपयुक्त राशि क्यों दी जाय?"

हेन-काले आर लोक आइल धाञा ।

खड़ेगर उपरे गोपीनाथे दितेछे डारिया ॥41॥

हेन-काले—उसी समय; आर-अन्य; लोक-व्यक्ति; आइल-आया; धाञा-दौडता हुआ; खड़ेगर उपरे–तलवारों के ऊपर; गोपीनाथे-गोपीनाथ को; दितेछे डारिया-वे फेंक रहे हैं।

अनुवाद

तब एक अन्य व्यक्ति यह समाचार लेकर आया कि गोपीनाथ को तलवारों की नोकों पर फेंकने के लिए पूरी प्रस्तुति हो गई है।

शुनि' प्रभुर गण प्रभुरे करे अनुनय ।

प्रभु कहे,–"आमि भिक्षुक, आमा हैते किछु नय ॥42॥

शुनि'–सुनकर; प्रभुर गण-प्रभु के भक्तों ने; प्रभुरे करे अनुनय-प्रभु से अनुनय किया; प्रभु कहे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; आमि भिक्षुक-मैं एक भिक्षुक हूँ; आमा हैते किछु नयमेरे द्वारा इस विषय में कुछ नहीं हो सकता।

अनुवाद

यह समाचार सुनकर सारे भक्तों ने फिर से महाप्रभु से याचना की, किन्तु महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं तो एक भिक्षुक हूँ। इस विषय में कुछ भी करना मेरे लिए सम्भव नहीं है।"

ताते रक्षा करिते यदि हय सबार मने ।

सबे मेलि' जानाह जगन्नाथेर चरणे ॥ 43 ॥

ताते-अतएव; रक्षा करिते-रक्षा करने के लिए; यदि-यदि; हय-है; सबार-आप सभी का; मने-मन; सबे मेलि'–सब मिलकर; जानाह–प्रार्थना करो; जगन्नाथेर चरणे-भगवान जगन्नाथ के चरणों में।

अनुवाद

"इसलिए यदि तुम लोग उसे बचाना चाहते हो, तो तुम सबों को मिलकर भगवान जगन्नाथ के चरणकमलों पर प्रार्थना करनी चाहिए।

ईश्वर जगन्नाथ,—याँर हाते सर्व 'अर्थ' ।

कर्तुमकर्तुमन्यथा करिते समर्थ" ॥44॥

ईश्वर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ; याँर हाते-जिनके हाथों में; सर्व अर्थ-समस्त शक्तियाँ हैं; कर्तुम् करना; अकर्तुम्-न करना; अन्यथा-अन्यथा ही कर देना; करिते-करने में; समर्थ—सक्षम हैं।

अनुवाद

"भगवान् जगन्नाथ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। उनमें सारी शक्तियाँ हैं। इसलिए वे स्वतन्त्र होकर कर्म कर सकते हैं और जो चाहें बना सकते हैं या बिगाड़ सकते हैं।"

इहाँ यदि महाप्रभु एतेक कहिला ।

हरिचन्दन-पात्र याइ' राजारे कहिला ॥45॥

इहाँ–यहाँ पर; यदि-जब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः एतेक कहिला-इस प्रकार से बोले; हरिचन्दन-पात्र-हरिचन्दन पात्र नामक अधिकारी ने; याइ'–जाकर; राजारे कहिला-राजा को सूचित किया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस प्रकार उत्तर दिया, तब हरिचन्दन पात्र नामक एक अधिकारी ने राजा के पास जाकर यह कहा।

"गोपीनाथ-पट्टनायक—सेवक तोमार।

सेवकेर प्राण-दण्ड नहे व्यवहार" ॥ 46॥

गोपीनाथ-पट्टनायक–गोपीनाथ पट्टनायक; सेवक तोमार—आपके सेवक; सेवकेर प्राण-दण्ड–सेवक को प्राणदण्ड; नहे–नहीं है; व्यवहार-समुचित आचार।

अनुवाद

उसने कहा, "गोपीनाथ पट्टनायक आपका आज्ञाकारी सेवक है। एक सेवक को प्राणदण्ड देना उचित आचरण नहीं है।

विशेष ताहार ठाञि कौड़ि बाकी हय ।

प्राण निले किबा लाभ? निज धन-क्षय ॥47॥

विशेष—विशेष रूप से; ताहार ठाञि-उसके पास से; कौड़ि-कौड़ीयों का; बाकी-ऋण; हय-है; प्राण निले–यदि प्राण हर लिये जाते हैं; किबा-कौनसा; लाभ-लाभ; निज-अपने; धन-धन का; क्षय-नाश।

अनुवाद

"उसका इतना ही दोष है कि उस पर सरकार का कुछ बकाया है। किन्तु यदि उसे मार डाला जाता है, तो इससे क्या लाभ होगा? सरकार तो घाटे में रहेगी, क्योंकि तब उसे धन नहीं मिल पायेगा।

यथार्थ मूल्ये घोड़ा लह, येबा बाकी हय ।

क्रमे क्रमे दिबे, व्यर्थ प्राण केने लय" ॥48॥

यथा-अर्थ मूल्ये-उचित दामों पर; घोड़ा लह-अश्वों को ले लीजिए; येबा-जो कुछ भी; बाकी हय–अवशिष्ट रहे; क्रमे क्रमे-धीरे धीरे; दिबे-वह दे देगा; व्यर्थ-व्यर्थ ही; प्राण-उसका जीवन; केने-क्यो; लय-आप ले रहे हैं।

अनुवाद

"अच्छा यह होगा कि घोड़ों को उचित मूल्य पर ले लिया जाय और शेष राशि उसे धीरे-धीरे चुकता करने दिया जाय। आप उसे व्यर्थ क्यों प्राणदण्ड दे रहे हैं?"

राजा कहे,–"एइ बात् आमि नाहि जानि ।

प्राण केने ल-इब, तार द्रव्य चाहि आमि ॥49॥

राजा कहे-राजा ने कहा; एइ बात्-यह समाचार; आमि-मैं; नाहि जानि-नहीं जानता; प्राण-उसका जीवन; केने-क्यों; ल-इब-मुझे लेना चाहिए; तार-उसका; द्रव्य-धन; चाहि आमि-मुझे चाहिए।

अनुवाद

राजा ने आश्चर्यपूर्वक उत्तर दिया, "मैं इसके बारे में कुछ नहीं जानता। उसके प्राण क्यों लिये जायें? मैं तो उससे केवल धन चाहता हूँ।

तुमि याइ' कर ताहाँ सर्व समाधान ।

द्रव्य यैछे आइसे, आर रहे तार प्राण" ॥50॥

तुमि-तुम; याइ’–जाकर; कर-करो; ताहाँ-वहाँ पर; सर्व समाधान-सब समाधान; द्रव्य-धन; यैछे—जिस प्रकार से; आइसे—आ जाए; आर-और; रहे-रह पाए; तार-उसका; प्राण-जीवन।

अनुवाद

“वहाँ जाओ और सब कुछ व्यवस्थित कर लो। मैं तो द्रव्य चाहता हूँ, उसके प्राण नहीं।”

तबे हरिचन्दन आसि’ जानारे कहिल ।

चाङ्गे हैते गोपीनाथे शीघ्र नामाइल ॥51॥

तबे-उस समय; हरिचन्दन-हरिचन्दन पात्र ने; आसि’-आकर; जानारे कहिल-राजकुमार को सूचित किया; चाड़े हैते-चांग मण्डप पर से; गोपीनाथे-गोपीनाथ को; शीघ्र-जल्दी ही; नामाइल-नीचे उतारा।

अनुवाद

तब हरिचन्दन लौट आया और राजकुमार को राजा की इच्छा बललाई। गोपीनाथ पट्टनायक को तुरन्त ही चाँग से उतार लिया गया।

‘द्रव्य देह' राजा मागे—उपाय पुछिल ।

‘यथार्थ-मूल्ये घोड़ा लह', तेंह त' कहिल ॥52॥

द्रव्य देह-बकाया राशि दे दो; राजा मागे-राजा माँगते हैं; उपाय-प्रणाली; पुछिल-को पूछा; यथा-अर्थ-मूल्ये उचित मूल्य पर; घोड़ा लह-अश्वों का प्रतिग्रहण करो; तेंह त' कहिल-उन्होंने कहा।

अनुवाद

तब उसे बताया गया कि राजा ने उससे बकाया राशि की माँग की है और पूछा गया कि वह चुकता करने के लिए कौन सा उपाय करेगा। उसने उत्तर दिया, “कृपया उचित मूल्य पर मेरे घोड़े ले लीजिये।”

‘क्रमे क्रमे दिमु, आर यत किछु पारि।

अविचारे प्राण लह,—कि बलिते पारि?’ ॥53॥

क्रमे क़मे-धीरे धीरे; दिमु मैं दूँगा; आर—अधिक; यत–जितना; किछु–जो कुछ; पारि-मैं कर सकता हूँ; अविचारे-बिना विचार किये; प्राण लह-तुम मेरे प्राण लेते हो; कि बलिते पारि-मैं क्या कह सकता हूँ।

अनुवाद

“मैं धीरे-धीरे शेष राशि चुकता कर दूँगा। किन्तु आप बिना विचार किये मेरे प्राण लेने जा रहे थे। भला मैं क्या कह सकता हूँ?”

यथार्थ मूल्य करि’ तबे सब घोड़ा ल-इल।

आर द्रव्येर मुद्दती करि’ घरे पाठाइल ॥54॥

यथा-अर्थ मूल्य करि’-यथोचित मूल्यांकन करते हुए; तबे-तब; सब-सब; घोड़ा-अश्वों को; ल-इल-ले लिया; आर द्रव्येर–अवशिष्ट राशि के; मुद्दती करि’-भुगतान का समय निर्धारित करके; घरे पाठाइल-घर भेज दिया।

अनुवाद

तब सरकार ने उचित मूल्य पर सारे घोड़े ले लिये, शेष राशि चुकाने के लिए समय निर्धारित कर दिया गया और गोपीनाथ पट्टनायक को मुक्त कर दिया गया।

एथा प्रभु सेइ मनुष्येरे प्रश्न कैल।

“वाणीनाथ कि करे, यबे बान्धिया आनिल?” ॥55॥

एथा-वहाँ पर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सेइ मनुष्येरे-जो सन्देशवाहक था उसको; प्रश्न कैल–पूछा; वाणीनाथ कि करे-वाणीनाथ क्या कर रहा था; यबे-जब; बान्धिया आनिल-वे बाँधकर वहाँ पर लाया गया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सन्देशवाहक से पूछा, "जब वाणीनाथ को बन्दी बनाकर वहाँ लाया गया, तब वह क्या कर रहा था?"

से—कहे "वाणीनाथ निर्भये लय कृष्ण-नाम ।

'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' कहे अविश्राम" ॥56॥

से कहे-उसने उत्तर दिया; वाणीनाथ-वाणीनाथ; निर्भये-निर्भय होकर; लय कृष्ण-नाम-हरे कृष्ण महामन्त्र का जप कर रहा था; हरे कृष्ण, हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे कृष्ण का; कहे अविश्राम–सतत उच्चारण कर रहा था।

अनुवाद

सन्देशवाहक ने उत्तर दिया, "वह निर्भय होकर लगातार महामन्त्र का-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का-कीर्तन कर रहा था।

सङ्ख्या लागि' दुइ-हाते अङ्गुलीते लेखा ।

सहस्रादि पूर्ण हैले, अङ्गे काटे रेखा" ॥57॥

सङ्ख्या लागि'–संख्या को गिनने के लिए; दुइ-हाते-दोनों हाथों में; अङ्गुलीते-अंगुलियों पर; लेखा--अंकित करते हुए; सहस्र-आदि-एक हजार बार; पूर्ण हैले जब समाप्त हुआ; अङ्गे–शरीर पर; काटे रेखा-रेखा को अंकित करता है।

अनुवाद

उसने दोनों हाथों की अंगुलियों पर जप की गिनती की और जब वह एक हजार बार जप पूरा कर लेता, तो वह अपने शरीर पर एक चिह्न बना लेता।"

शुनि' महाप्रभु ह-इला परम आनन्द ।

के बुझिते पारे गौरेर कृपा-छन्द-बन्ध? ॥58॥

शुनि'–सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ह-इला–हुए; परम आनन्द-परम आनन्दित; के बुझिते पारे-कौन समझ सकता है; गौरेर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-छन्द-बन्ध-उनके भक्त के ऊपर की हुई कृपा को।

अनुवाद

यह समाचार सुनकर महाप्रभु अतीव प्रसन्न हुए। भला अपने भक्त पर महाप्रभु की कृपा को कौन समझ सकता है?

हेन-काले काशी-मिश्र आइला प्रभु-स्थाने ।

प्रभु ताँरे कहे किछु सोद्वेग-वचने ॥59॥

हेन-काले-उसी समय; काशी-मिश्र-काशी मिश्र; आइला–आये; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे–उनको; कहे-कहा; किछु—कुछ; स-उद्वेग-उद्वेगयुक्त; वचने-वचन।

अनुवाद

उसी समय काशी मिश्र श्री चैतन्य महाप्रभु के आवास पर आये और महाप्रभु उनसे कुछ उद्वेग के साथ बातें करते रहे।

“इहाँ रहिते नारि, यामु आलालनाथ।

नाना उपद्रव इहाँ, ना पाइ सोयाथ" ॥ 60॥

इहाँ रहिते नारि-मैं यहाँ नहीं रह सकता; यामु आलालनाथ-मैं आलालनाथ जाऊँगा; नाना-विविध; उपद्रव-उपद्रव; इहाँ–यहाँ; ना पाइ–मैं नहीं प्राप्त कर सकता; सोयाथ-विश्राम।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "अब मैं यहाँ और अधिक नहीं ठहर सकता। मैं आलालनाथ जाऊँगा। यहाँ पर अनेक उपद्रव होते रहते हैं और मैं तनिक भी विश्राम नहीं कर पाता।

भवानन्द-रायेर गोष्ठी करे राज-विषय।

नाना-प्रकारे करे तारा राज-द्रव्य व्यय ॥ 61॥

भवानन्द-रायेर–भवानन्द राय का; गोष्ठी-परिवार; करे–संलग्न है; राज-विषय-सरकारी सेवा में; नाना-प्रकारे विविध प्रकार से; करे-करते हैं; तारा–वे सभी; राज-द्रव्य व्यय-राजद्रव्यों का व्यय॥

अनुवाद

"भवानन्द राय के परिवार के सारे सदस्य सरकारी नौकरी में लगे हैं, किन्तु वे सरकारी धन का व्यय नाना प्रकार से करते हैं।

राजार कि दोष? राजा निज-द्रव्य चाय।

दिते नारे द्रव्य, दण्ड आमारे जानाय ॥ 62॥

राजार-राजा का; कि दोष-क्या दोष है; राजा-राजा; निज-अपना; द्रव्य-धन; चाय-चाहता है; दिते नारे-वे नहीं दे सकते; द्रव्य-धन को; दण्ड–दण्ड को; आमारे-मुझे; जानाय–वे बतलाते हैं।

अनुवाद

“राजा का इसमें क्या दोष है? वह तो सरकार का धन चाहता है। किन्तु जब वे सरकार को जो देय है चुकता नहीं करते, तो दण्डित होते हैं, और वे मेरे पास छुड़वाने के लिए आते हैं।

राजा गोपीनाथे यदि चाङ्गे चड़ाइल ।

चारि-बारे लोके आसि’ मोरे जानाइल ॥ 63 ॥

राजा-राजा ने; गोपीनाथे-गोपीनाथ को; यदि-जब; चाङ्गे–चांग पर; चड़ाइल-चढ़ाया; चारि-बारे–चार बार; लोके–दूतों ने; आसि’–आकर; मोरे-मुझे; जानाइल-सूचित किया।

अनुवाद

“जब राजा ने गोपीनाथ पट्टनायक को चाँग पर चढ़ाया, तो सन्देशवाहक मुझे इस घटना के विषय में बताने के लिए चार बार आये।

भिक्षुक सन्यासी आमि निर्जन-वासी ।

आमाय दुःख देय, निज-दुःख कहि' आसि’ ॥ 64॥

भिक्षुक–भिक्षुक; सन्यासी-यति; आमि-मैं; निर्जन-वासी-निर्जन में निवास करनेवाला; आमाय-मुझे; दुःख–दुःख; देय–वे देते हैं; निज-दुःख–उनका निज दु:ख; कहि'–कहते हैं; आसि-आकर।

अनुवाद

"मैं भिक्षुक संन्यासी के रूप में एकान्त स्थान में अकेला रहना चाहता हूँ, किन्तु ये लोग अपना दुःख मुझे बताने चले आते हैं और मुझे क्षुब्ध करते हैं।

आजि तारे जगन्नाथ करिला रक्षण ।

कालि के राखिबे, यदि ना दिबे राज-धन? ॥ 65॥

आजि-आज; तारे—उसको; जगन्नाथ भगवान जगन्नाथ ने; करिला रक्षण-रक्षण दिया है; कालि-कल; के राखिबे-कौन रक्षा करेगा; यदि-यदि; ना दिबे-वह भुगतान नहीं करेगा; राज-धन-राजा के धन का।

अनुवाद

"आज जगन्नाथ जी ने उसे एक बार मृत्यु से बचा लिया है, किन्तु यदि कल वह पुनः खजाने की बकाया राशि को नहीं चुकता, तो उसे कौन संरक्षण देगा?

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् निश्चय ही उस भक्त की रक्षा करेंगे, जो संयोगवश कोई पाप करता है। जैसाकि भगवद्गीता (9.30-31) में भगवान् कहते हैं :

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति ।

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

"यदि कोई जघन्य से जघन्य कर्म करता है, किन्तु यदि वह भक्ति में रत रहता है, तो उसे साधु मानना चाहिए, क्योंकि वह अपने संकल्प में अडिग रहता है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है और स्थायी शान्ति को प्राप्त करता है। हे कुन्ती पुत्र, निर्भय होकर घोषणा कर दो कि मेरे भक्त का कभी विनाश नहीं होता।" किन्तु यदि कोई तथाकथित भक्त जानबूझकर इस आशा से निरन्तर पाप कर्म करता है कि कृष्ण उसे संरक्षण प्रदान करेंगे, तो कृष्ण उसकी रक्षा नहीं करेंगे। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "कालि के राखिबे, यदि ना दिबे राजधन?-आज तो जगन्नाथ जी ने गोपीनाथ पट्टनायक को राजा द्वारा मारे जाने से बचा लिया है, किन्तु यदि वह यही पाप फिर से करता है, तो उसे कौन संरक्षण प्रदान करेगा?" इस

तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ऐसे समस्त मूर्ख भक्तों को सतर्क करते हैं कि यदि वे इसी तरह पाप करते रहे, तो जगन्नाथ जी उनकी रक्षा नहीं करेंगे।

विषयीर वार्ता शुनि' क्षुब्ध हय मन ।

ताते इहाँ रहि' मोर नाहि प्रयोजन" ॥66॥

विषयीर-भौतिकवादी व्यक्तियों के; वार्ता–समाचार; शुनि'–सुनकर; क्षुब्ध-क्षुभित; हय होता है; मन-मन; ताते-अतएव; इहाँ रहि'–यहाँ पर निवास; मोर-मेरा; नाहि प्रयोजन-आवश्यक नहीं।

अनुवाद

"यदि मैं भौतिकतावादी व्यक्तियों के कार्यों के विषय में सुनता हूँ, तो मेरा मन क्षुब्ध हो उठता है। यहाँ पर मेरे रुकने तथा इस तरह से क्षुब्ध होने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

काशी-मिश्र कहे प्रभुर धरिया चरणे ।

"तुमि केने एइ बाते क्षोभ कर मने? ॥67॥

काशी-मिश्र कहे-काशी मिश्र ने कहा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; धरिया चरणे-चरणों को पकड़कर; तुमि-आप; केने-क्यों; एइ बाते-इन वार्ताओं से; क्षोभ कर-क्षुब्ध होते हैं; मने-मन में।

अनुवाद

काशी मिश्र ने महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिये और कहा, "आप इन बातों से क्षुब्ध क्यों होते हैं?

सन्यासी विरक्त तोमार का-सने सम्बन्ध? ।

व्यवहार लागि' तोमा भजे, सेइ ज्ञान-अन्ध ॥ 68॥

सन्यासी-यति; विरक्त-जिसने समस्त सम्बन्धों को सबके साथ विच्छेदित कर दिया है; तोमार-आपका; का-सने-किसके साथ; सम्बन्ध–सम्बन्ध; व्यवहार लागि'-किसी लौकिक उद्देश्यार्थ; तोमा भजे-भजता है; सेइ-वह; ज्ञान-अन्ध-सब ज्ञान के प्रति अन्धा है।

अनुवाद

"आप विरक्त संन्यासी हैं। आपके सम्बन्ध ही क्या हैं? जो व्यक्ति किसी भौतिक उद्देश्य से आपकी पूजा करता है, वह समस्त ज्ञान के प्रति अन्धा है।"

तात्पर्य

भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भगवान् का भक्त बनना भारी भूल है। अनेक लोग भौतिक लाभों के लिए दिखावटी भक्त बन जाते हैं। निस्सन्देह, भौतिकतावादी लोग कभी-कभी पेशेवर भक्ति करते हैं और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु को जीविकोपार्जन का साधन बनाते हैं। किन्तु इनमें से कोई भी मान्य नहीं है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने उल्लेख किया है कि 'सप्त-शती' नामक ग्रन्थ में देवी दुर्गा की पूजा करने वाला व्यक्ति किस प्रकार उनसे नाना प्रकार के भौतिक लाभ माँगता है। सामान्य लोगों में ऐसे कार्य अत्यन्त लोकप्रिय हैं, किन्तु ये मूर्ख तथा अन्धे व्यक्तियों के प्रयास हैं (सेइ ज्ञान-अन्ध)।

भौतिकतावादी वास्तव में यह नहीं जानता कि कोई भक्त क्यों बने। भक्त की एकमात्र चिन्ता भगवान् को तुष्ट करने की रहती है। श्रील रूप गोस्वामी ने शुद्ध भक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है :

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

मनुष्य को भौतिक इच्छाओं से पूर्ण रूप से युक्त होना चाहिए और कृष्ण की सेवा केवल उन्हें प्रसन्न करने के लिए करनी चाहिए। जब लोग अपनी खुद की इन्द्रियतृप्ति में रुचि लेने लगते हैं (भुक्ति

मुक्ति सिद्धि कामी), तो कुछ लोग जी भरकर भौतिक जगत् का भोग करना चाहते हैं, कुछ मुक्त होना और ब्रह्म में समा जाना चाहते हैं और अन्य लोग योग शक्ति से जादू करना चाहते हैं और इस तरह ईश्वर के अवतार बन जाना चाहते हैं। ये सब बातें भक्ति के नियमों के विरुद्ध हैं। मनुष्य को समस्त भौतिक इच्छाओं से रहित होना चाहिए। निर्विशेषवादी की ब्रह्म से एक हो जाने की इच्छा भी भौतिक है, क्योंकि ऐसा निराकारवादी व्यक्ति कृष्ण में तदाकार होकर उनके चरणकमलों की सेवा करने के बदले अपनी खुद की इन्द्रियों को तृप्त करना चाहता है। यदि ऐसा व्यक्ति ब्रह्म में तदाकार हो भी जाता है, तो वह पुनः इस भौतिक संसार में आ गिरता है। जैसाकि श्रीमद्भागवत (10.2.32) में कहा गया है : ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः ।

पतन्त्यधोऽनादृत युष्मदङ्घ्रयः॥

चूँकि मायावादी दार्शनिकों को भगवान् की दिव्य सेवा की कोई जानकारी नहीं होती, इसलिए उन्हें भौतिक कर्मों से मुक्ति प्राप्त कर लेने तथा ब्रह्म तेज में समा जाने के बाद भी इस भौतिक जगत् में आना पड़ता है।

तोमार भजन-फले तोमाते 'प्रेम-धन' ।

विषय लागि' तोमाय भजे, सेइ मूर्ख जन ॥ 69॥

तोमार-आपकी; भजन-भक्ति के; फले-फल से; तोमाते-आपको; प्रेम-धन-प्रेम की सम्पत्ति; विषय लागि'–भौतिक लाभ के लिए; तोमाय भजे–जो आपकी सेवा में निमग्न होता है; सेइ-वह; मूर्ख जन-मूर्ख।

अनुवाद

काशी मिश्र ने आगे कहा, "यदि आपकी तुष्टि के लिए कोई भक्ति में लगता है, तो फलस्वरूप उसमें आपके प्रति सुप्त प्रेम का अधिकाधिक उदय होगा। किन्तु यदि वह भौतिक उद्देश्यों के लिए आपकी भक्ति करता है, तो उसे पक्का मूर्ख समझना चाहिए।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि ऐसे अनेक भौतिकतावादी व्यक्ति हैं, जो उच्चस्तर जीवन-शैली बनाये रखने तथा अपने और अपने परिवार की इन्द्रियतृप्ति के लिए ही प्रचारक, गुरु, धर्मज्ञ या दार्शनिक बनते हैं। कभी-कभी वे संन्यासी या प्रचारक का वेश धारण करते हैं। वे अपने परिवार वालों में से कुछ को वकील बनने का प्रशिक्षण दिलाते हैं और मन्दिरों की देखभाल के बहाने धन प्राप्त करते रहने के लिए उच्च न्यायालय की सहायता लेते हैं। भले ही ऐसे लोग अपने आपको प्रचारक कह लें, वृन्दावन या नवद्वीप में रहें और अनेक धार्मिक पुस्तकें भी छाप लें, किन्तु यह सब एक ही उद्देश्य-अपनी पत्नियों और सन्तानों के परिपालनार्थ धन उपार्जन के लिए होता है। वे भागवत या अन्य शास्त्र पेशे के रूप में बाँचते हैं, मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा करते हैं और शिष्यों को दीक्षित करते हैं। वे भक्ति की साज-सामग्री का दिखावा करके जनता से कुछ धन भी एकत्र कर सकते हैं। और अपने परिवार वालों के या निकट के सम्बन्धियों के रोग का उपचार करने के लिए उस धन का उपयोग भी कर सकते हैं। कभी-कभी वे बाबाजी बन जाते हैं अथवा दरिद्रनारायण की पूजा करने के बहाने या सामाजिक तथा राजनैतिक उत्थान के लिए धन का संग्रह करते हैं। इस तरह वे सामान्य जनता को, जिसे शुद्ध भक्ति का कोई ज्ञान नहीं होता, ठगकर अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए धन संग्रह करने हेतु व्यापारिक योजनाओं का जाल बिछा देते हैं। ऐसे ठग यह नहीं समझ सकते कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्ति करने से मनुष्य भगवान् के नित्य दासत्व पद को प्राप्त कर सकता है, जो ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं के पद से भी बड़ा है। दुर्भाग्यवश मूर्खा को भक्ति के शाश्वत आनन्द की कोई जानकारी नहीं होती।

तोमा लागि' रामानन्द राज्य त्याग कैला ।

तोमा लागि’ सनातन विषय’ छाड़िला ॥ 70 ॥

तोमा लागि’-आपके निमित्त; रामानन्द-रामानन्द राय; राज्य-राज्य का; त्याग कैला-त्याग किया; तोमा लागि’-आपके लिए; सनातन-सनातन गोस्वामी; विषय-भौतिक जीवन को; छाड़िला–छोड दिया।

अनुवाद

आपके लिए ही रामानन्द राय ने दक्षिण भारत का राज्यपाल पद (गवर्नरी) और सनातन गोस्वामी ने मन्त्री पद का परित्याग किया।

तोमा लागि’ रघुनाथ सकल छाड़िल ।

हेथाय ताहार पिता विषय पाठाइल ॥ 71॥

तोमा लागि’-आपके निमित्त; रघुनाथ–रघुनाथ दास; सकल छाड़िल-सब कुछ छोड दिया; हेथाय-यहाँ पर; ताहार पिता-उसके पिता ने; विषय पाठाइल-धन भेजा था।

अनुवाद

“आपके लिए ही रघुनाथ दास ने अपने पारिवारिक सम्बन्ध त्याग दिये। उसके पिता ने उसकी सेवा के लिए यहाँ धन तथा जन भेजे थे।

तोमार चरण-कृपा हञाछे ताहारे ।

छत्रे मागि’ खाय, ‘विषय’ स्पर्श नाहि करे ॥72॥

तोमार चरण-आपके चरणकमलों की; कृपा-कृपा; हञाछे-हुई है; ताहारे—उसके ऊपर; छत्रे-भोजन वितरक केन्द्रों से; मागि’-भीख माँगकर; खाय-वह खाता है; विषय-धन का; स्पर्श नाहि करे-स्पर्श नहीं करता।

अनुवाद

फिर भी चूंकि उसे आपके चरणकमलों की कृपा प्राप्त हो चुकी है, इसलिए उसने अपने पिता का धन नहीं लिया है। उल्टे वह लंगर से भीख माँगकर भोजन करता है।

रामानन्देर भाइ गोपीनाथ-महाशय ।

तोमा हैते विषय-वाञ्छा, तार इच्छा नय ॥73॥

रामानन्देर-रामानन्द के; भाइ–भाई; गोपीनाथ-गोपीनाथ पट्टनायक; महाशय-महान् सज्जन व्यक्ति; तोमा हैते-आपसे; विषय-वाञ्छा-भौतिक लाभ की कामना; तार इच्छा-उसकी इच्छा; नय-नहीं है।

अनुवाद

"गोपीनाथ पट्टनायक अच्छा भद्र व्यक्ति है। वह आपसे भौतिक लाभ की इच्छा नहीं करता।

तार दुःख देखि' तार सेवकादि-गण ।

तोमारे जानाइल,—याते 'अनन्य-शरण' ॥74॥

तार-उसकी; दुःख-दुःखित दशा को; देखि'-देखकर; तार—उसके; सेवक-आदि-गण-सेवक एवं सुहृजनों ने; तोमारे जानाइल-आपको निवेदित किया; याते-क्योंकि; अनन्य-अन्य कोई; शरण-आश्रय।

अनुवाद

"यह गोपीनाथ नहीं था जिसने उन सारे व्यक्तियों को इसलिए भेजा कि आप उसे दयनीय दशा से मुक्त करा दें, प्रत्युत उसके मित्रों तथा सेवकों ने उसकी क्लेशग्रस्त अवस्था देखकर आपको सूचित किया था, क्योंकि उन सबों को ज्ञात था कि गोपीनाथ आपका शरणागत है।

सेइ 'शुद्ध-भक्त', ये तोमा भजे तोमा लागि' ।

आपनार सुख-दुःखे हय भोग-भोगी' ॥75 ॥

सेइ-वह; शुद्ध-भक्त-शुद्ध भक्त; ये-जो; तोमा भजे-आपको भजता है; तोमा लागि'-आपकी सन्तुष्टि निमित्त; आपनार सुख-दुःखे–निजी सुख तथा दुःख के निमित्त; हय-है; भोग-भोगी–जो इस भौतिक जगत् को भोगना चाहता है।

अनुवाद

"गोपीनाथ पट्टनायक शुद्ध भक्त है और वह आपकी पूजा केवल आपकी तुष्टि के लिए करता है। वह अपने सुख या दुःख की तनिक भी परवाह नहीं करता, क्योंकि यह तो भौतिकतावादी का कार्य है।

तोमार अनुकम्पा चाहे, भजे अनुक्षण ।

अचिरात् मिले ताँरे तोमार चरण ॥ 76 ॥

तोमार-आपकी; अनुकम्पा-कृपा; चाहे-चाहता है; भजे अनुक्षण-चौबीसों घण्टे भजन में लगा रहता है; अचिरात्-अति शीघ्र; मिले–प्राप्त होते हैं; ताँरे—उसको; तोमार चरण-आपके चरणकमल।

अनुवाद

जो व्यक्ति चौबीसों घण्टे आपकी सेवा में एकमात्र आपकी कृपा की कामना करते हुए लगा रहता है, वह शीघ्र ही आपके चरणकमलों की शरण प्राप्त करेगा।

तत्तेऽनुकम्पां सु-समीक्षमाणो

भुञ्जान एवात्म-कृतं विपाकम् ।

हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते

जीवेत यो मुक्ति-पदे स दाय-भाक् ॥ 77 ॥

तत्-अतएव; ते-आपके; अनुकम्पाम्-अनुग्रह की; सु-समीक्षमाणः-याचना करते हुए; भुञ्जानः-सहन करते हुए; एव-निश्चय ही; आत्म-कृतम्-अपने द्वारा किया गया; विपाकम्-सकाम फल; हृत्-हृदय के द्वारा; वाक्-वाणी; वपुर्भिः–तथा शरीर; विदधत्-समर्पित करते हुए; नमः-प्रणतियाँ; ते-आपके प्रति; जीवेत–जीवित रहे; यः-जो कोई भी; मुक्ति-पदे-भक्ति में; सः-वह; दाय-भाक्-प्रामाणिक योग्य व्यक्ति है।

अनुवाद

"जो आपकी कृपा की कामना करता है और इस तरह अपने विगत कर्मों के फलस्वरूप सारी विपरीत परिस्थितियों को सहता है, जो अपने मन, वाणी तथा शरीर से आपकी भक्ति में सदा लगा रहता है और जो आपको सदैव नमस्कार करता है, वह निश्चय ही आपका अनन्य भक्त होने के लिए सही पात्र है।

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.14.8) से लिया गया है।

एथा तुमि वसि' रह, केने याबे आलालनाथ? ।

केह तोमा ना शुनाबे विषयीर बात् ॥ 78 ॥

एथा—यहाँ पर; तुमि-आप; वसि'–निवास करते हुए; रह–कृपया रहें; केने-क्यों; याबे-आप जायेंगे; आलालनाथ-आलालनाथ; केह तोमा ना शुनाबे-कोई आपको नहीं बताएगा; विषयीर बात्-विषयी व्यक्तियों के बारे में।

अनुवाद

"आप कृपा करके यहाँ जगन्नाथपुरी में रहें। आप आलालनाथ क्यों जायें? अब से कोई भी व्यक्ति आपके पास भौतिक विषयों के लिए नहीं आयेगा।"

यदि वा तोमार तारे राखिते हय मन ।

आजि ये राखिल, सेइ करिबे रक्षण" ॥79॥

यदि वा–यदि किसी भी प्रकार से; तोमार-आपका; तारे—उसकी; राखिते-रक्षा करने का; हय-है; मन-मन; आजि-आज; ये-जिसने; राखिल-रक्षा की है; सेइ-वे; करिबे रक्षण-रक्षण देंगे।

अनुवाद

अन्त में काशीमिश्र ने महाप्रभु को बतलाया, "यदि आप गोपीनाथ को संरक्षण प्रदान करना चाहते हैं, तो भगवान जगन्नाथ भविष्य में भी उसी तरह उसकी रक्षा करते रहेंगे, जिस प्रकार कि आज उन्होंने की है।"

एत बलि' काशी-मिश्र गेला स्व-मन्दिरे ।

मध्याह्ने प्रतापरुद्र आइला ताँर घरे ॥ 80॥

एत बलि'—इतना कहकर; काशी-मिश्र-काशी मिश्र; गेला-गये; स्व-मन्दिरे-अपने मन्दिर में; मध्याह्न-मध्याह्न में; प्रतापरुद्र-राजा प्रतापरुद्र; आइला–आये; ताँर घरे-उनके घर पर।

अनुवाद

यह कहकर काशी मिश्र श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान से अपने मन्दिर लौट गये। दोपहर में राजा प्रतापरुद्र काशी मिश्र के घर आये।

प्रतापरुद्रेर एक आछये नियमे ।

यत दिन रहे तेंह श्री-पुरुषोत्तमे ॥ 81 ॥

प्रतापरुद्रेर-राजा प्रतापरुद्र का; एक-एक; आछये-है; नियमे-नियम; यत दिन-जितने दिन; रहे-रहते थे; तेंह-वे; श्री-पुरुषोत्तमे-जगन्नाथ पुरी में।

अनुवाद

जब तक राजा प्रतापरुद्र पुरुषोत्तम में रहे, उन्होंने एक कार्य नियमपूर्वक किया।

नित्य आसि' करे मिश्रेर पाद संवाहन ।

जगन्नाथ-सेवार करे भियान श्रवण ॥ 82 ॥

नित्य आसि'–नित्यप्रति आकर; करे-करते हैं; मिश्रेर–काशी मिश्र के; पाद-चरणों का; संवाहन-मालिश; जगन्नाथ-सेवार--भगवान् जगन्नाथ की सेवा के निमित्त; करे-करते हैं; भियान-व्यवस्थाओं का; श्रवण-श्रवण।

अनुवाद

वे नित्य काशी मिश्र के घर उनके चरणकमलों को दबाने आते थे। वे उनसे यह भी सुनते कि भगवान् जगन्नाथ की सेवा कितनी भव्यता से की जाती है।

राजा मिश्रेर चरण यबे चापिते लागिला ।

तबे मिश्र ताँरे किछु भङ्गीते कहिला ॥ 83॥

राजा-राजा; मिशेर-काशी मिश्र के; चरण-चरणकमलों का; यबे-जब; चापिते लागिला-दबाने लगे; तबे—उस अवसर में; मिश्र-काशी मिश्र ने; ताँरे उनके प्रति; किछु—कुछ; भङ्गीते-संकेत के द्वारा; कहिला–निवेदित किया।

अनुवाद

जब राजा काशी मिश्र के पाँव दबाने लगे, तब उन्होंने राजा से संकेत द्वारा कुछ बतलाया।

"देव, शुन आर एक अपरूप बात्! ।

महाप्रभु क्षेत्र छाड़ि' याबेन आलालनाथ!" ॥84॥

देव-मेरे प्रिय राजा; शुन-सुनो; आर-अन्य; एक-एक; अपरूप-असामान्य; बात्-समाचार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; क्षेत्र छाड़ि'-जगन्नाथ पुरी छोडकर; ग्राबेन-जायेंगे; आलालनाथ-आलालनाथ को।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "हे राजन्, एक असामान्य बात सुनिये। श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी छोड़कर आलालनाथ जाना चाहते हैं।"

शुनि राजा दुःखी हैला, पुछिलेन कारण ।

तबे मिश्र कहे ताँरे सब विवरण ॥85॥

शुनि–सुनकर; राजा-राजा; दुःखी हैला-बहुत व्यथित हुए; पुछिलेन-पूछा; कारण-कारण; तबे-उस समय; मिश्र कहे-मिश्र ने कहा; ताँरे-उनको; सब-सब; विवरण–विवरण।

अनुवाद

जब राजा ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु आलालनाथ जा रहे हैं, तो वह अत्यन्त दुःखी हुआ और उसने इसका कारण पूछा। तब काशी मिश्र ने सारी बातें बताईं।

"गोपीनाथ-पट्टनायके यबे चाङ्गे चड़ाइला ।

तार सेवक सब आसि' प्रभुरे कहिला ॥86॥

गोपीनाथ-पट्टनायके–गोपीनाथ पट्टनायक को; यबे-जब; चाङ्गे-चांग पर; चड़ाइल-उन्होंने चढाया; तार सेवक-उनके सेवकों ने; सब-सभी ने; आसि—आकर; प्रभुरे कहिला-श्री चैतन्य महाप्रभु को सूचित किया।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "जब गोपीनाथ पट्टनायक को चांग पर चढ़ाया गया, तो उसके सारे सेवक श्री चैतन्य महाप्रभु को बताने गये।

शुनिया क्षोभित हैल महाप्रभुर मन ।

क्रोधे गोपीनाथे कैला बहुत भर्त्सन ॥ 87॥

शुनिया-सुनकर; क्षोभित हैल-व्यग्र हुआ; महाप्रभुर मन-श्री चैतन्य महाप्रभु का मन; क्रोधे-रोष में; गोपीनाथे-गोपीनाथ पट्टनायक के प्रति; कैला–किया; बहुत भर्त्सन-बहुत प्रताडन।

अनुवाद

"यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु मन में अत्यधिक दुःखी हुए और क्रोध में आकर उन्होंने गोपीनाथ पट्टनायक की भर्त्सना की।

'अजितेन्द्रिय हञा करे राज़-विषय ।

नाना असत् पथे करे राज-द्रव्य व्यय ॥88॥

'अजितेन्द्रिय हञा–विषयभोग में प्रमत्त होकर; करे राज-विषय-सरकार की सेवा करता है; नाना असत्-पथे विविध पापकार्यों में; करे राज-द्रव्य व्यय-सरकारी द्रव्य का अपव्यय करता है।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा : "चूंकि वह इन्द्रियतृप्ति के पीछे पागल रहता है, इसलिए वह सरकारी नौकर के रूप में कार्य करता है, किन्तु वह सरकारी लगान (राजस्व) का व्यय विविध पापकर्मों में करता है।

ब्रह्मस्व-अधिक एइ हय राज-धन ।

ताहा हरि’ भोग करे महा-पापी जन ॥ 89 ॥

ब्रह्मस्व-ब्राह्मण की सम्पत्ति; अधिक-से भी अधिक; एइ–यह; हय-है; राज-धन-सरकार का धन; ताहा हरि’—उसका अपहरण करके; भोग करे–विषय भोग करता है; महा-पापी जन-महापापी व्यक्ति।

अनुवाद

“सरकारी राजस्व ब्राह्मण की सम्पत्ति से अधिक पवित्र है। जो सरकारी धन को आत्मसात् करता है और इसे इन्द्रियतृप्ति के लिए व्यवहार में लाता है, वह सबसे बड़ा पापी है।

राजार वर्तन खाय, आर चुरि करे ।

राज-दण्ड्य हय सेइ शास्त्रेर विचारे ॥90॥

राजार वर्तन-राजा का वेतन; खाय-लेता है; आर-और; चुरि करे-चोरी करता है; राज-दण्ड्य-राजा के द्वारा दण्डित किये जाने योग्य; हय-है; सेइ-वह; शास्त्रेर विचारे-शास्त्रों का निर्णय।

अनुवाद

“जो व्यक्ति सरकारी नौकरी करता है, किन्तु सरकारी राजस्व की चोरी करता है, वह राजा द्वारा दण्डनीय है। यही समस्त शास्त्रों का मत है।

निज-कौड़ि मागे, राजा नाहि करे दण्ड ।

राजा–महा-धार्मिक, एइ हय पापी भण्ड! ॥91॥

निज-कौड़ि-उनका निजी धन; मागे-माँगते हैं; राजा-राजा; नाहि करे दण्ड-दण्डित नहीं करते; राजा-राजा; महा-धार्मिक-बहुत धार्मिक; एइ—यह व्यक्ति; हय-है; पापी-पापी; भण्ड-पाखण्डी॥

अनुवाद

“राजा अपना राजस्व का भुगतान चाहता था। वह बलात् दण्ड देना नहीं चाहता था। इसलिए राजा अवश्य ही अत्यन्त धार्मिक है, किन्तु गोपीनाथ पट्टनायक एक बहुत बड़ा धोखेबाज है।

राजा-कड़ि ना देय, आमारे फुकारे ।

एइ महा-दुःख इहाँ के सहिते पारे? ॥92॥

राजा-कड़ि-राजा का धन; ना देय नहीं देता; आमारे-मुझको; फु-कारे-पुकारता है; एइ-वह; महा-दुःख-बहुत दु:ख; इहाँ–यहाँ; के सहिते पारे-कौन सहन कर सकता है।

अनुवाद

वह राजा को राजस्व नहीं देता, किन्तु छूटने के लिए मेरी सहायता चाहता है। यह तो बहुत ही पापमय कृत्य है। यहाँ पर मैं इसे सहन नहीं कर सकता।

आलालनाथ याइ’ ताहाँ निश्चिन्ते रहिमु ।

विषयीर भाल मन्द वार्ता ना शुनिमु” ॥93॥

आलालनाथ याइ’–आलालनाथ जाकर; ताहाँ-वहाँ; निश्चिन्ते रहिमु-मैं शान्तिपूर्वक रहूँगा; विषयीर—विषयी व्यक्तियों के; भाल मन्द-अच्छे तथा बुरे; वार्ता–समाचार; ना शुनिमु-मैं नहीं सुनूंगा।

अनुवाद

"इसलिए मैं जगन्नाथपुरी छोड़ दूँगा और आलालनाथ जाऊँगा, जहाँ मैं शान्तिपूर्वक रहूँगा और भौतिकतावादी लोगों की ये सब बातें नहीं सुनूँगा।”

एत शुनि’ कहे राजा पात्रा मने व्यथा ।

सब द्रव्य छाड़ों, यदि प्रभु रहेन एथा ॥94॥

एत शुनि'-इन विवरणों को सुनकर; कहे राजा-राजा ने कहा; पात्रा-पाते हुए; मने व्यथा-अपने मन में व्यथा को; सब द्रव्य छाड़ों-मैं सब अवशिष्ट राशि को छोड़ देंगा; यदि-यदि; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; रहेन एथा—यहाँ रहते हैं।

अनुवाद

जब राजा प्रतापरुद्र ने ये सारी बातें सुनीं, तो उसके मन में बहुत वेदना हुई। उसने कहा, "गोपीनाथ पर जो भी बकाया है, उसे मैं छोड़ दूँगा, यदि श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथपुरी में रहें।

एक-क्षण प्रभुर यदि पाइये दरशन ।

कोटि-चिन्तामणि-लाभ नहे तार सम ॥ 95॥

एक-क्षण-एक पल के लिए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; यदि-यदि; पाइये-मुझे मिलता है; दरशन-साक्षात्कार; कोटि-चिन्तामणि-लाभ-करोडों चिन्तामणियों की प्राप्ति; नहे-नहीं है; तार सम-उसके समान।

अनुवाद

"यदि क्षण भर के लिए भी श्री चैतन्य महाप्रभु से मेरा साक्षात्कार हो सके, तो मैं करोड़ों चिन्तामणियों के लाभ की भी परवाह नहीं करूँगा।

कोन् छार पदार्थ एइ दुइ-लक्ष काहन? ।

प्राण-राज्य करों प्रभु-पदे निर्मज्छन" ॥ 96 ॥

कोन्-कौनसी; छार–छोटी; पदार्थ–बात; एइ–यह; दुइ-लक्ष काहन–2,00,000 काहन; प्राण-जीवन; राज्य-राज्य; करों-मैं करता हूँ; प्रभु-पदे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों में; निर्मज्छन-परित्याग।

अनुवाद

“मुझे दो लाख काहन जैसी इस छोटी राशि की परवाह नहीं है। इसकी क्या बात है, मैं तो शहाप्रभु के चरणों पर अपना प्राण और राज्य समेत सर्वस्व समर्पित कर सकता हूँ।”

मिश्र कहे, “कौड़ि छाड़िबा,—नहे प्रभुर मन ।

तारा दुःख पाय,—एइ ना याय सहन" ॥97॥

मिश्र कहे-काशी मिश्र ने कहा; कौड़ि छाड़िबा-आप धन का परित्याग करें; नहे-नहीं है; प्रभुर मन-श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा; तारा–वे; दुःख पाय-दुःखी होते हैं; एइ–यह; ना याय सहन-सहन नहीं होता।

अनुवाद

काशी मिश्र ने राजा को इंगित किया, “महाप्रभु नहीं चाहते कि आप अपना बकाया (प्राप्य) छोड़ दें। वे तो मात्र इसलिए दुःखी हैं कि सारा परिवार दुःखी है।

राजा कहे,–“तारे आमि दुःख नाहि दिये ।

चाङ्गे चड़ा, खड्गे डारा,—आमि ना जानिये ॥98॥

राजा कहे-राजा ने कहा; तारे–उनको; आमि-मुझे; दुःख-दुःख; नाहि दिये-देने की इच्छा नहीं है; चाङ्गे चड़ा-चांग पर आरोहण; खड्गे-तलवारों पर; डारा-डालना; आमि-मैं; ना जानिये-नहीं जानता था।

अनुवाद

राजा ने उत्तर दिया, "मैं गोपीनाथ पट्टनायक तथा उसके परिवार को न तो दुःख देना चाहता था, न ही मुझे इसका पता था कि उसे चांग पर चढ़ाकर और तलवारों पर फेंककर मार डाला जायेगा।

पुरुषोत्तम-जानारे तेंह कैल परिहास ।

सेइ 'जाना' तारे देखाइल मिथ्या त्रास ॥99॥

पुरुषोत्तम-जानारे-राजकुमार पुरुषोत्तम जाना के प्रति; तेंह-उन्होंने; कैल परिहास-परिहास किया; सेइ जाना—उस राजपुत्र ने; तारे–उनके प्रति; देखाइल-दिखाया; मिथ्या-मिथ्या; त्रास-भय॥

अनुवाद

उसने पुरुषोत्तम जाना का परिहास किया। इसलिए राजकुमार ने दण्ड स्वरूप उसे त्रास देना चाहा था।

तुमि याह, प्रभुरे राखह यत्न करि' ।

एइ मुइ ताहारे छाडिनु सब कौड़ि" ॥100॥

तुमि-आप; याह-जाओ; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; राखह-रखो; यत्न करि'-बहुत प्रयत्न से; एइ मुइ-जहाँ तक मेरी बात है; ताहारे—उसके प्रति; छाडिनु मैं छोड़ता हूँ; सब कौड़ि-सब बकाया राशि।

अनुवाद

"आप स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु के पास जायें और यत्नपूर्वक उन्हें जगन्नाथपुरी में रखें। मैं गोपीनाथ पट्टनायक का सारा कर्ज माफ कर दूँगा।"

मिश्र कहे, "कौड़ि छाड़िबा,—नहे प्रभुर मने ।

कौड़ि छाड़िले प्रभु कदाचित् दुःख माने" ॥ 101॥

मिश्र कहे-काशी मिश्र बोले; कौड़ि छाड़िबा-आप समस्त ऋणों से उऋण करें; नहे-नहीं है; प्रभुर मने-श्री चैतन्य महाप्रभु का यह विचार; कौड़ि छाड़िले-यदि आप समस्त ऋणों को माफ करेंगे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कदाचित् निश्चय ही; दुख माने-दुःखी होंगे।

अनुवाद

काशी मिश्र ने कहा, "गोपीनाथ पट्टनायक का कर्ज माफ कर देने से महाप्रभु दुःखी होंगे, क्योंकि यह उनका आशय नहीं है।"

राजा कहे, "कौड़ि छाड़िमु,—इहा ना कहिबा ।

सहजे मोर प्रिय ता'रा,—इहा जानाइबा ॥102॥

राजा कहे-राजा बोले; कौड़ि छाड़िमु-मैं समस्त ऋणों को माफ कर दूँगा; इहा-यह; ना कहिबा-नहीं कहना; सहजे–सहज रूप से; मोर प्रिय–मेरे प्रिय मित्र; तारा-वे; इहा-यह; जानाइबा-उनको बताना।

अनुवाद

राजा ने कहा, "मैं गोपीनाथ पट्टनायक का सारा ऋण समाप्त कर दूँगा, किन्तु इसकी चर्चा महाप्रभु से न करें। उन्हें केवल इतना बतलायें कि भवानन्द राय के सारे पारिवारिक जन तथा गोपीनाथ पट्टनायक मेरे प्रिय मित्र हैं।

भवानन्द-राय—आमार पूज्य-गर्वित ।

ताँर पुत्र-गणे आमार सहजेइ प्रीत" ॥103 ॥

भवानन्द राय-भवानन्द राय; आमार-मेरे द्वारा; पूज्य–पूजा करने योग्य; गर्वित-सम्मान योग्य; ताँर–उनके; पुत्र-गणे-पुत्रों के प्रति; आमार-मेरा; सहजेइ-स्वाभाविक प्रीत-स्नेह।

अनुवाद

"भवानन्द राय मेरी पूजा तथा सम्मान के योग्य हैं। अतएव मैं उसके पुत्रों के प्रति सहज ही स्नेहिल हूँ।"

एत बलि' मिश्रे नमस्करि' राजा घरे गेला ।

गोपीनाथे 'बड़ जानाय' डाकिया आनिला ॥104॥

एत बलि'—इतना कहकर; मिश्रे नमस्करि'–काशी मिश्र को नमस्कार करने के बाद; राजा-राजा; घरे गेला-अपने महल में लौट गये; गोपीनाथे-गोपीनाथ पट्टनायक को; बड़ जानाय-ज्येष्ठ राजकुमार को; डाकिया आनिला–बुलाया।

अनुवाद

काशी मिश्र को नमस्कार करके राजा अपने महल को चला गया। उसने गोपीनाथ और अपने ज्येष्ठ राजकुमार को बुलवाया।

राजा कहे, –"सब कौड़ि तोमारे छाड़िलुँ ।

सेइ मालञाठ्या दण्ड पाट तोमारे त' दिलुँ ॥ 105॥

राजा कहे-राजा ने कहा; सब-समस्त; कौड़ि-धन को; तोमारे-तुम्हारे प्रति; छाड़िलुँ–माफ करता हूँ; सेइ मालञाठ्या दण्ड पाट–मालञाठ्या दण्डपाट को; तोमारे-तुमको; त'-निश्चय ही; दिलुँ-मैं देता हूँ।

अनुवाद

राजा ने गोपीनाथ पट्टनायक से कहा, "तुम खजाने के जितने धन के ऋणी हो, वह सब माफ किया जाता है और तुम्हें मालञाठ्य दण्डपाट नामक स्थान पुनः वसूली के लिए दिया जाता है।

आर बार ऐछे ना खाइह राज-धन ।

आजि हैते दिलुँ तोमाय द्विगुण वर्तन" ॥ 106 ॥

आर बार-अगली बार; ऐछे-इस प्रकार से; ना खाइह–अपव्यय नहीं करना; राज-धन–सरकारी धन का; आजि हैते–आज से; दिलुँ-मैं प्रदान करता हूँ; तोमाय-तुमको; द्वि-गुण वर्तन-दुगुना वेतन॥

अनुवाद

“अब तुम पुनः सरकारी राजस्व का दुरुपयोग न करना। यदि तुम सोचते हो कि तुम्हारा वेतन अपर्याप्त है, तो अब से उसे दुगुना कर दिया जायेगा।”

एत बलि’ ‘नेत-धटी' तारे पराइल ।

प्रभु-आज्ञा लञा याह, विदाय तोमा दिल" ॥ 107॥

एत बलि'–इतना कहकर; नेत-धटी-रेशमी आवरण वस्त्र; तारे पराइल-उनको पहनाया; प्रभु-आज्ञा लञा-श्री चैतन्य महाप्रभु से आज्ञा लेने के बाद; याह-प्रस्थान करो; विदाय–विदाय; तोमा-तुमको; दिल–देता हूँ।

अनुवाद

यह कहकर राजा ने उसके शरीर पर एक रेशमी चादर डालकर उसे नियुक्त कर दिया। उसने कहा, “श्री चैतन्य महाप्रभु के पास जाओ और उनसे आज्ञा लेकर अपने घर चले जाना। मैं तुम्हें विदा करता हूँ। अब तुम जा सकते हो।”

परमार्थे प्रभुर कृपा, सेह रहु दूरे ।

अनन्त ताहार फल, के बलिते पारे? ॥ 108॥

परमार्थे–आध्यात्मिक उत्थान के लिए; प्रभुर कृपा-श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुग्रह; सेह-वह; रहु दूरे-एक मात्र; अनन्त-अपरिमेय; ताहार-उसका; फल-परिणाम; के-कौन; बलिते पारे-मूल्यांकन कर सकता है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से निश्चय ही आध्यात्मिक प्रगति की जा सकती है। निस्सन्देह, उनकी कृपा के फल का अनुमान कोई नहीं लगा सकता।

‘राज्य-विषय-फल एइ–कृपार 'आभासे’! ।

ताहार गणना कारो मने नाहि आइसे! ॥109॥

राज्य-विषय-राज-वैभव; फल-परिणाम; एइ-यह; कृपार आभासे-कृपा के आभास मात्र से; ताहार-उसका; गणना–परिगणन; कारो-किसी के; मने-मन में; नाहि आइसे–नहीं आता॥

अनुवाद

गोपीनाथ पट्टनायक ने महाप्रभु की कृपा की एक झलक मात्र से राज ऐश्वर्य का फल प्राप्त किया। इसलिए उनकी कृपा की पूरी महिमा की गणना कोई नहीं कर सकता।

काहाँ चाङ्गे चड़ाञा लय धन-प्राण! ।

काहाँ सब छाड़ि’ सेइ राज्यादि-प्रदान! ॥110॥

काहाँ–एक ओर; चाङ्गे–चांग पर; चड़ाञा-चढ़ाकर; लय-ले लेता है; धन-सम्पत्ति; प्राण-जीवन; काहाँ दूसरी ओर; सब–समस्त; छाड़ि’-माफ करते हुए; सेइ-वह; राज्य-आदि-प्रदान-वही राज्यपद आदि का दान।

अनुवाद

कहाँ तो गोपीनाथ पट्टनायक को मारे जाने के लिए चांग पर चढ़ाया गया था और उसका सारा धन छीन लिया गया था, और कहाँ उसका सारा ऋण समाप्त कर दिया गया और उसे उसी स्थान का संग्राहक नियुक्त कर दिया गया।

काहाँ सर्वस्व वेचि' लय, देया ना याय कौड़ि!।

काहाँ द्विगुण वर्तन, पराय नेत-धड़ि! ॥ 111॥

काहाँ-एक ओर; सर्वस्व--सब सम्पत्ति; वेचि'-बेचकर; लय-लेता है; देया ना याय-नही वसूला जाता; कौड़ि-कर्ज; काहाँ-दूसरी ओर; द्विगुण वर्तन-दुगुना वेतन; पराय-पहनाते है; नेत-धड़ि-रेशमी पगड़ी।

अनुवाद

कहाँ तो गोपीनाथ अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर भी अपना बकाया चुकता नहीं कर पा रहा था, कहाँ उसका वेतन अब दुगुना हो गया और उसे रेशमी पगड़ी से सम्मानित किया गया।

प्रभुर इच्छा नाहि, तारे कौड़ि छाड़ाइबे ।

द्विगुण वर्तन करि' पुनः 'विषय' दिबे ॥112॥

प्रभुर इच्छा-प्रभु की अभिलाषा; नाहिं—नहीं थी; तारे कौड़ि छाड़ाइबे-उनका ऋण माफ कर दिया जाए; द्वि-गुण-दुगुना; वर्तन करि'-वेतन बढाकर; पुनः-पुनः; विषय दिबे-उनको पुनः पद दिया जाए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु न तो यह चाहते थे कि गोपीनाथ पट्टनायक का सरकारी बकाया समाप्त कर दिया जाय, न ही उनकी इच्छा थी कि उसका वेतन दुगना कर दिया जाय या वह पुनः उसी स्थान का संग्रहाक नियुक्त कर दिया जाय।

तथापि तार सेवक आसि' कैल निवेदन ।

ताते क्षुब्ध हैल यबे महाप्रभुर मन ॥113॥

तथापि-फिर भी; तार सेवक-उनके सेवक ने; आसि'-आकर; कैल निवेदन-निवेदन किया; ताते-उससे; क्षुब्ध हैल-व्यग्र हुआ; यबे-जब; महाप्रभुर मन-श्री चैतन्य महाप्रभु का अन्त:करण॥

अनुवाद

जब गोपीनाथ पट्टनायक का सेवक श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गया और महाप्रभु को उसकी दयनीय दशा उसने बतलाई, तो महाप्रभु कुछ क्षुब्ध तथा असन्तुष्ट हुए।

विषय-सुख दिते प्रभुर नाहि मनोबल ।

निवेदन-प्रभावेह तबु फले एत फल ॥114॥

विषय-भौतिक वैभव का; सुख-सुख; दिते-प्रदान करना; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; नाहि-नहीं है; मनोबल–मनोरथ; निवेदन-प्रभावेह-क्योंकि केवल उनको उसके विषय में सूचित किया गया था; तबु-तब भी; फले एत फल-इतना अधिक फल मिला।

अनुवाद

महाप्रभु की आन्तरिक इच्छा यह नहीं थी कि उसके भक्त को भौतिक ऐश्वर्य का सुख मिले; फिर भी मात्र उन्हें सूचित किये जाने से ऐसा बड़ा फल प्राप्त हुआ।

के कहिते पारे गौरेर आश्चर्य स्वभाव? ।

ब्रह्मा-शिव आदि याँर ना पाय अन्तर्भाव ॥115॥

के-कौन: कहिते पारे–अन्दाज लगा सकता है। गौरेर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; आश्चर्य स्वभाव-अद्भुत गुण; ब्रह्मा-शिव-ब्रह्माजी, शिवजी; आदितथा अन्य; याँर–जिनका; ना पाय-नहीं समझ पाते; अन्तर्भाव-आन्तरिक अभिप्राय।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के अद्भुत स्वभाव का अनुमान कोई नहीं लगा सकता। यहाँ तक कि ब्रह्माजी तथा शिवजी भी महाप्रभु के मनोभावों को नहीं समझ पाते।

एथा काशी-मिश्र आसि' प्रभुर चरणे ।

राजार चरित्र सब कैला निवेदने ॥ 116 ॥

एथा—यहाँ पर; काशी-मिश्र-काशी मिश्र ने; आसि'-आकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे-चरणों में; राजार-राजा का; चरित्र सब-सब आचरण; कैला निवेदने-सूचित किया।

अनुवाद

काशी मिश्र श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गये और उन्हें राजा का मनोभाव विस्तार से बतलाया।

प्रभु कहे,_"काशी-मिश्र, कि तुमि करिला? ।

राज-प्रतिग्रह तुमि आमा' कराइला?" ॥ 117॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; काशी-मिश्र-मेरे प्रिय काशी मिश्र; कि-क्या; तुमि करिला-तुमने कर दिया; राज-प्रतिग्रह-राजा से ग्रहण करना; तुमि-तुमने; आमा'-मुझे; कराइला-करवाया है।

अनुवाद

राजा के साथ काशी मिश्र की चालों को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे काशी मिश्र, तुमने यह क्या किया? तुमने तो मुझे राजा से अप्रत्यक्ष रूप से सहायता लेने को बाध्य किया है।"

तात्पर्य

जब राजा ने गोपीनाथ पट्टनायक के दुर्भाग्यपूर्ण तिरस्कार का विस्तृत विवरण सुना, तो उसने उसका बकाया माफ कर देना चाहा, विशेषतः इसलिए कि उसे लगा कि इस घटना से श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त क्षुब्ध हुए हैं। महाप्रभु को यह बात अच्छी नहीं लगी कि गोपीनाथ पट्टनायक की बकाया-समप्ति अप्रत्यक्ष रूप से उन पर कृपा हो। इसीलिए उन्होंने तुरन्त विरोध किया।

मिश्र कहे,–"शुन, प्रभु, राजार वचने ।

अकपटे राजा एइ कैला निवेदने ॥ 118॥

मिश्र कहे-काशी मिश्र ने कहा; शुन–कृपया सुनिये; प्रभु-हे प्रिय प्रभु; राजार वचने-राजा का वचन; अकपटे-कपटरहित; राजा-राजा ने; एइ–यह; कैला निवेदने-निवेदन किया है।

अनुवाद

काशी मिश्र ने कहा : "हे प्रभु, राजा ने बिना किसी कपट के ऐसा किया है। कृपया उसका निवेदन तो सुनें।

'प्रभु येन नाहि जानेन,—राजा आमार लागिया ।

दुइ-लक्ष काहन कौड़ि दिलेक छाड़िया ॥ 119॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; येन-जिससे; नाहि जानेन–नहीं विचार करें; राजा-राजा ने; आमार लागिया-मेरे लिए; दुइ-लक्ष काहन कौड़ि-कौडीयों के 2,00,000 काहन; दिलेक छाड़िया–छोड़ दिये।

अनुवाद

“राजा ने कहा, 'महाप्रभु से इस तरह कहें कि वे यह न सोचें कि राजा ने उनके लिए दो लाख काहन कौड़ियाँ छोड़ दी हैं।

तात्पर्य

कौड़ी अमरीकी सेंट या जापानी येन की तरह है। प्राचीन लेन-देन में मुद्रा-की पहली इकाई एक छोटा शंख थी जो कौड़ी कहलाती थी। चार कौड़ी का एक गण्डा होता था, बीस गण्डे का एक पण तथा सोलह पण का एक काहन होता था। गोपीनाथ पट्टनायक पर सरकार के दो लाख काहन का बकाया था। राजा ने यह बकाया समाप्त कर दिया, उसे पुनः उसके पद पर नियुक्त कर दिया और उसका वेतन दुगुना कर दिया।

भवानन्देर पुत्र सब–मोर प्रियतम ।

इँहा-सबकारे आमि देखि आत्म-सम ॥ 120॥

भवानन्देर-भवानन्द राय के; पुत्र सब-सभी पुत्र; मोर-मेरे; प्रियतम-अत्यधिक प्रिय; इँहा-सबकारे-वे सभी; आमि-मैं; देखि-देखता हूँ; आत्म-सम-मेरे सम्बन्धियों के रूप में।

अनुवाद

" श्री चैतन्य महाप्रभु से यह बताओ कि भवानन्द के सारे पुत्र मुझे विशेष रूप से प्रिय हैं। मैं उन्हें अपने परिवार के सदस्यों जैसा मानता हूँ।

अतएव याहाँ याहाँ देइ अधिकार ।

खाय, पिये, लुटे, विलाय, ना करों विचार ॥121॥

अतएव–अतएव; याहाँ याहाँ–जहाँ जहाँ; देइ अधिकार-मैं उनको नियुक्त करता हूँ; खाय-वे खाते हैं; पिये-पीते हैं; लुटे-लूटते हैं; विलाय–वितरित करते हैं; ना करों विचार-मैं विचार नहीं करता।

अनुवाद

"इसलिए मैंने उन्हें विभिन्न स्थानों पर संग्राहक के रूप में नियुक्त कर दिया है और यद्यपि वे सरकारी धन व्यय करते हैं, खाते, पीते, लूटते तथा मनमाना बाँटते हैं, किन्तु मैं इन्हें गम्भीरता से नहीं लेता।

राजमहिन्दार 'राजा' कैनु राम-राय ।

ये खाइल, येबा दिल, नाहि लेखा-दाय ॥122॥

राजमहिन्दार–राजमहेन्द्री नामक स्थान का; राजा-शासक; कैनु-मैंने बनाया; राम-राय-रामानन्द राय को; ये खाइल-जो भी धन उन्होंने ग्रहण किया; येबा–जो भी; दिल-वितरित किया; नाहि लेखा-दाय-उसका कोई हिसाब नहीं है।

अनुवाद

"मैंने रामानन्द राय को राजमहेन्द्री का राज्यपाल (गवर्नर) बना दिया था। उसने उस पद पर रहकर कितना धन एकत्र किया और बाँटा, इसका कोई लेखा-जोखा नहीं है।

तात्पर्य

राजमहेन्द्री के पास एक प्रसिद्ध रेलवे स्टेशन है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की टिप्पणी है कि वर्तमान राजमहेन्द्री शहर गोदावरी के उत्तरी किनारे पर स्थित है। किन्तु जब रामानन्द राय राज्यपाल थे, तब राज्य की राजधानी विद्यानगर या विद्यापुर कहलाती थी, जो गोदावरी के दक्षिणी तट पर गोदावरी तथा समुद्र के संगम पर स्थित थी। तब वह राजमहेन्द्री नामक देश का अंग था। कलिंग देश का उत्तरी

भाग उत्कलिंग या उड़ीसा प्रदेश है। दक्षिणी उड़ीसा की राजधानी राजमहेन्द्री कहलाती थी, किन्तु अब राजमहेन्द्री की स्थिति बदल गई है।

गोपीनाथ एइ-मत 'विषय' करिया।

दुइ-चारि-लक्ष काहन रहे त' खाञा ॥ 123॥

गोपीनाथ-गोपीनाथ; एइ-मत-इस प्रकार से; विषय करिया–कार्य करते हैं; दुइ-चारि-लक्ष काहन-दो से चार लाख काहन; रहे त' खाञा-स्वेच्छा से व्यय करते हैं।

अनुवाद

"संग्राहक नियुक्त हो जाने पर गोपीनाथ पहले की ही तरह, अपनी इच्छानुसार सामान्यतया दो-चार लाख काहन खर्च करता।

किछु देय, किछु ना देय, ना करि विचार।

'जाना'-सहित अप्रीत्ये दुःख पाइल एइ-बार ॥ 124॥

किछु—कुछ; देय-वे भुगतान करते हैं; किछुकुछ; ना देय-वें नहीं देते; ना करि विचार-मैं विचार नहीं करता; जाना सहित–राजपुत्र के साथ; अप्रीत्ये-अप्रीतिकर व्यवहार के कारण; दुःख पाइल-उनको इतना कष्ट हुआ; एइ-बार-इस बार।

अनुवाद

"गोपीनाथ पट्टनायक कुछ संग्रह करता और कुछ देता-वह इच्छानुसार खर्च करता, किन्तु मैं इसे कोई गम्भीर बात नहीं मानता। किन्तु इस बार वह राजकुमार के साथ अप्रीतिकर व्यवहार के कारण कष्ट में पड़ गया।

'जाना' एत कैला,--इहा मुइ नाहि जानों।

भवानन्देर पुत्र-सबे आत्म-सम मानों ॥125 ॥

जाना-राजकुमार ने; एत-ऐसा; कैला–किया है; इहा-यह; मुइ-मैं; नाहि जानों-नहीं जानता था; भवानन्देर पुत्र-भवानन्द राय के पुत्र; सबे-सभी; आत्म-सम मानों-मैं सम्बन्धीओं की तरह मानता हूँ।

अनुवाद

"राजकुमार ने मेरे जाने बिना ही ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी, किन्तु मैं तो भवानन्द राय के सारे पुत्रों को अपने सम्बन्धियों जैसा मानता हूँ।

ताँहा लागि' द्रव्य छाड़ि'-इहा मात् जाने ।

'सहजेइ मोर प्रीति हय ताहा-सने"" ॥ 126॥

ताँहा लागि'–उनके लिए; द्रव्य छाड़ि'-मैं कर्जा छोड़ देता हूँ; इहा-यह; मात् जाने-वे नहीं जानते; सहजेइ-स्वाभाविक रूप से; मोर प्रीति–मेरे प्रति; हय-है; ताहा-सने–उन सभी के साथ।

अनुवाद

"उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण मैंने गोपीनाथ पट्टनायक का सारा बकाया समाप्त कर दिया है। श्री चैतन्य महाप्रभु यह बात नहीं जानते। मैंने जो कुछ किया है, वह भवानन्द राय के परिवार के साथ अपने घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण किया है।"

शुनिया राजार विनय प्रभुर आनन्द ।

हेन-काले आइला तथा राय भवानन्द ॥ 127॥

शुनिया-सुनकर; राजार-राजा का; विनय-समर्पण; प्रभुर आनन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए; हेन-काले-उसी समय; आइला-आये; तथा-वहाँ पर; राय भवानन्द–भवानन्द राय।

अनुवाद

काशी मिश्र से राजा के मनोभावों के विषय में इन कथनों को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसी समय भवानन्द राय भी वहाँ आ गये।

पञ्च-पुत्र-सहिते आसि' पड़िला चरणे ।

उठाञा प्रभु ताँरे कैला आलिङ्गने ॥ 128॥

पञ्च-पुत्र-सहिते-पाँच पुत्रों के साथ; आसि'-आकर; पड़िला चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों में गिर गये; उठाञा-उनको उठाते हुए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताँरे-उनको; कैला आलिङ्गने--आलिंगन किया।

अनुवाद

भवानन्द राय अपने पाँचों पुत्रों सहित श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और महाप्रभु ने उन्हें उठाकर उनका आलिंगन किया।

रामानन्द-राय आदि सबाइ मिलिला ।

भवानन्द-राय तबे बलिते लागिला ॥129॥

रामानन्द-राय आदि-रामानन्द राय एवं अन्य भाई; सबाइ–सब; मिलिला–मिले; भवानन्द-राय-भवानन्द राय ने; तबे-तब; बलिते लागिला-बोलना प्रारम्भ किया।

अनुवाद

इस तरह रामानन्द राय, उनके सारे भाई तथा उनके पिता श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले। तब भवानन्द राय ने कहना प्रारम्भ किया।

"तोमार किङ्कर एइ सब मोर कुल ।

ए विपदे राखि' प्रभु, पुनः निला मूल ॥130॥

तोमार किङ्कर-आपके सेवक; एइ सब-ये सभी; मोर कुल-मेरा परिवार; ए विपदे-इस घोर विपत्ति में; राखि'–रक्षा कर; प्रभु–मेरे प्रभु; पुनः–फिर एक बार; निला मूल-खरीद लिया है।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "मेरे परिवार के ये सारे सदस्य आपके सनातन सेवक हैं। आपने हमें इस महान् विपत्ति से बचाया है, अतएव आपने हमें उचित मूल्य पर खरीद लिया है।

भक्त-वात्सल्य एबे प्रकट करिला।

पूर्वे येन पञ्च-पाण्डवे विपदे तारिला" ॥131॥

भक्त-वात्सल्य-अपने भक्तों के प्रति स्नेह; एबे-अब; प्रकट करिला—आपने प्रदर्शित किया है; पूर्वे-पहले; येन-जिस प्रकार; पञ्च-पाण्डवे-पाँच पाण्डवों को; विपदे-विपत्ति में से; तारिला-आपने बचाया था।

अनुवाद

"अब अपने भक्तों के प्रति अपने प्रेम का प्रदर्शन किया है, जिस तरह पहले आपने पाँचों पाण्डवों को महान् विपत्ति से बचाया था।"

'नेतधटी'-माथे गोपीनाथ चरणे पड़िला।

राजार कृपा-वृत्तान्त सकल कहिला ॥132॥

नेतधटी-माथे-सिर पर रेशमी साफे के साथ; गोपीनाथ-गोपीनाथ पट्टनायक; चरणे पड़िला-चरणकमलों पर गिर पड़े; राजार-राजा की; कृपा-वृत्तान्त–अनुग्रह वार्ता; सकल-समस्त; कहिला–कह सुनायी।

अनुवाद

सिर पर रेशमी चादर लपेटे गोपीनाथ पट्टनायक महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़ा और राजा द्वारा अपने प्रति प्रदर्शित कृपा का विस्तार से वर्णन करने लगा।

बाकी-कौड़ि बाद, आर द्विगुण वर्तन कैला ।

पुनः 'विषय' दिया नेत-धटी' पराइला ॥133॥

बाकी-कौड़ि बाद कर्जे को माफ करते हुए; आर-तथा; द्वि-गुण-दुगुना; वर्तन कैला-वेतन को पुनः–पुनः; विषय दिया-राजपद दिया; नेत-धटी पराइला-रेशमी साफे से अलंकृत किया।

अनुवाद

उसने कहा, "राजा ने मेरा बकाया समाप्त कर दिया है। उसने मुझे रेशमी वस्त्र से सम्मानित करते हुए मेरे पद पर मुझे पुनः नियुक्त कर दिया है और मेरा वेतन दुगना कर दिया है।

काहाँ चाड्गेर उपर सेइ मरण-प्रमाद!।

काहाँ 'नेत-धटी' पुनः,—ए-सब प्रसाद! ॥134॥

काहाँ–एक ओर; चार उपर-चांग के ऊपर; सेइ-वह; मरण-प्रमाद-मृत्यु का भय; काहाँ-दूसरी ओर; नेत-धटी-रेशमी साफा; पुनः-पुनः; ए-सब-यह सब; प्रसाद-कृपा।

अनुवाद

"कहाँ मुझे मार डालने के लिए चांग पर चढ़ा दिया गया था और कहाँ उल्टे मुझे रेश्मी वस्त्र से सम्मानित किया गया। यह सब आपकी कृपा है।

चाड्गेर उपरे तोमार चरण ध्यान कैलुँ।

चरण-स्मरण-प्रभावे एइ फल पाइलुँ ॥ 135॥

चाङ्गेर उपरे–चांग के ऊपर; तोमार चरण-आपके चरणकमलों पर; ध्यान कैलुँ-मैंने ध्यान किया; चरण-स्मरण-प्रभावे-आपके चरणकमलों के स्मरण की शक्ति से; एइ फल-ये फल; पाइलुँ-मैंने पाये।

अनुवाद

चांग पर मैंने आपके चरणकमलों का ध्यान करना प्रारम्भ किया और उस स्मरण की शक्ति से यह सब फल प्राप्त हुआ।

लोके चमत्कार मोर ए सब देखियो ।

प्रशंसे तोमार कृपा-महिमा गाञा ॥136॥

लोके-लोगों में; चमत्कार–महान् आश्चर्य; मोर-मेरा; ए सब-यह सब; देखिया-देखकर; प्रशंसे-वे प्रशंसा करते हैं; तोमार-आपकी; कृपा-कृपा की; महिमा-महानता; गाञा-गाकर।

अनुवाद

"मेरा यह सब देखकर आश्चर्यचकित जनता आपकी कृपा की महानता का वर्णन कर रही है।

किन्तु तोमार स्मरणेर नहे एइ 'मुख्य-फल' ।

'फलाभास' एइ,—याते विषय' चञ्चल ॥ 137॥

किन्तु-परन्तु; तोमार-आपके; स्मरणेर-स्मरण का; नहे-नहीं है; एइ-यह; मुख्य-फल-प्रधान फल; फल-आभास-फल का आभास है; एइ-यह; याते-क्योंकि विषय-भौतिक वैभव; चञ्चल-चलायमान है।

अनुवाद

किन्तु हे प्रभु, आपके चरणकमलों का ध्यान करने का मुख्य फल यह नहीं है। भौतिक ऐश्वर्य नश्वर है, अतएव यह तो आपकी कृपा के फल की एक झलक मात्र है।

तात्पर्य

मनुष्य श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का केवल ध्यान करके सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त कर सकता है। सामान्यतया लोग चार धार्मिक सिद्धान्तों-धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के लिए चिन्तित रहते हैं। किन्तु जैसाकि श्रीमद्भागवत में इंगित हुआ है (धर्म: प्रोज्झित कैतवोऽत्र), ये चार प्रकार के भौतिक तथा आध्यात्मिक लाभ वास्तव में भक्ति के वास्तविक फल नहीं हैं। भक्ति का वास्तविक फल तो प्रत्येक दशा में कृष्ण के प्रति सुप्त प्रेम का विकास है। श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से गोपीनाथ पट्टनायक यह समझ सका कि उसे जो भौतिक लाभ हुआ था, वह महाप्रभु के चरणकमलों का ध्यान करने का आखरी फल नहीं था। वास्तविक फल तो तब मिलता है, जब मनुष्य भौतिक ऐश्वर्य से विरक्त हो जाता है। इसलिए गोपीनाथ पट्टनायक ने ऐसी विरक्ति के लिए महाप्रभु से विनती की।

राम-राये, वाणीनाथे कैला निर्विषय' ।

सेइ कृपा मोते नाहि, याते ऐछे हय! ॥138॥

राम-राये-रामानन्द राय को; वाणीनाथे-वाणीनाथ राय को; कैला-आपने किया है; निर्विषय-भौतिक आसक्तियों से मुक्त; सेइ कृपा-वैसा अनुग्रह; मोते नाहि-मुझे नहीं मिला; याते-जिससे; ऐछे-ऐसा; हय-है।

अनुवाद

आपकी वास्तविक कृपा तो रामानन्द राय तथा वाणीनाथ राय को मिली है, क्योंकि आपने उन्हें समस्त भौतिक ऐश्वर्य से विरक्त करा दिया है। मैं सोचता हूँ कि आपने मुझ पर ऐसी कृपा नहीं की।

"शुद्ध कृपा कर, गोसाञि, घुचाह 'विषय' ।

निर्विण्ण ह-इनु, मोते 'विषय' ना हय" ॥ 139॥

शुद्ध कृपा-शुद्ध प्रसाद; कर-कृपया प्रदान करें; गोसाञि-हे प्रभु; घुचाह विषय-मुझे इन भौतिक विषयों से मुक्त हो जाने दें; निर्विण्ण-अनासक्त; ह-इनु-मैं हो गया हूँ; मोते विषय ना हय-अब मैं भौतिक विषयों में रुचि नहीं रखता हूँ।

अनुवाद

“आप मुझ पर शुद्ध कृपा करें, जिससे मैं भी विरक्त बन सकें। मैं अब और अधिक भौतिक भोग नहीं चाहता।”

प्रभु कहे,—सन्यासी यबे ह-इबा पञ्च-जन ।

कुटुम्ब-बाहुल्य तोमार के करे भरण? ॥ 140॥

प्रभु कहे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; सन्यासी-संन्यासी; यबे-जब; ह-इबा-हो जाओगे; पञ्च-जन–पाँचों लोग; कुटुम्ब-बाहुल्य-कुल के अत्यधिक सदस्य; तोमार-आपके; के-कौन; करे भरण-भरण-पोषण करेगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यदि तुम सबके सब संन्यासी हो जाओगे और आर्थिक-व्यापार में रुचि नहीं लोगे, तो तुम्हारे बड़े परिवार के भरण-पोषण का भार कौन उठायेगा?

महा-विषय कर, किबा विरक्त उदास ।

जन्मे-जन्मे तुमि पञ्च–मोर ‘निज-दास’ ॥ 141॥

महा-विषय-महत् लौकिक व्यापार; कर—तुम करते रहो; किबा-अथवा; विरक्त-विरक्त; उदास-आसक्तिरहित; जन्मे-जन्मे-जन्मों जन्मों में; तुमि पञ्च-तुम पाँच; मोर-मेरे; निज-दास-अपने सेवक।

अनुवाद

“तुम पाँचों भाई चाहे भौतिक कार्यों में मग्न रहो या पूर्णतया विरक्त हो जाओ, तुम सभी जन्म-जन्मांतर मेरे नित्य दास हो।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि मनुष्य को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि वह कृष्ण का सनातन सेवक है। चाहे वह धनादि भौतिक कार्यकलाप में व्यस्त रहे या संन्यासी बन जाये, उसे सदैव यह स्मरण रखना चाहिए कि वह ईश्वर का सनातन सेवक है, क्योंकि जीव का वास्तविक पद वही है। संन्यास ग्रहण करना और आर्थिक व्यापार में लगना दोनों ही बाह्य बातें हैं। कुछ भी हो, मनुष्य को सदैव विचार करना चाहिए कि वह किस तरह कृष्ण को प्रसन्न तथा तुष्ट रखे। इस तरह बड़े-बड़े भौतिक कार्यों में लगे रहकर भी वह लिप्त नहीं होगा। ज्योंही वह भूल जाता है कि वह कृष्ण का नित्य दास है, त्योंही वह भौतिक आसक्तियों में लग जाता है। किन्तु यदि वह सचेष्ट रहे कि कृष्ण परम स्वामी हैं और वह कृष्ण का सनातन सेवक है, तो वह हर स्थिति में मुक्त होता है। भौतिक कार्यकलाप में लिप्त होना उसे प्रभावित नहीं करेगा।

किन्तु मोर करिह एक ‘आज्ञा' पालन ।

‘व्यय ना करिह किछु राजार मूल-धन’ ॥ 142 ॥

किन्तु-परन्तु; मोर-मेरी; करिह–पूर्ण करो; एक-एक; आज्ञा--आज्ञा; पालन-का पालन; व्यय ना करिह–अपव्यय कभी मत करो; किछु-कुछ भी; राजार मूल-धन-राजा का धन।

अनुवाद

“किन्तु मेरी एक आज्ञा का पालन करना। राजा के लगान (राजस्व) से कुछ भी भी खर्च न करना।

तात्पर्य

जब व्यक्ति कृष्ण के नित्य दास के रूप में अपने पद को भूल जाता है, तब वह अनेक पापकर्म करता है। किन्तु जो नित्य दास के पद पर स्थिर रहता है, वह नैतिकता, धर्म तथा सच्चरित्रता के मार्ग से विचलित नहीं होता। सम्प्रति विश्वभर के लोग, विशेषतया भारत के लोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ तथा उनके नित्य सेवकों के साथ अपने सम्बन्ध को भूल चुके हैं। इसलिए नैतिकता, धर्म तथा सच्चरित्रता के सिद्धान्तों का लोप हो चुका है। यह स्थिति मानव-समाज के लिए अत्यन्त अलाभकर है। इसलिए हर व्यक्ति को कृष्णभावना अपनाकर श्री चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए।

राजार मूल-धन दिया ये किछु लभ्य हय ।

सेइ धन करिह नाना धर्मे-कर्मे व्यय ॥143 ॥

राजार-राजा का; मूल-धन-कर; दिया-देकर; ये किछु लभ्य हय-जो कुछ भी उपलब्ध हो; सेइ-वह; धन-वित्त; करिह नाना धर्म-कर्मे व्यय-विविध धार्मिक कार्यों में व्यय करो।

अनुवाद

सर्वप्रथम तुम्हें राजा का लगान अदा करना चाहिए और तब जो बचे उसे तुम धार्मिक तथा सकाम कर्मों में व्यय कर सकते हो।

असद्व्यय ना करिह,—य़ाते दुइ-लोक याय" ।

एत बलि' सबकारे दिलेन विदाय ॥144॥

असत्-व्यय ना करिह-पापाचरण में व्यय न करो; याते-जिसके द्वारा; दुइ-लोक याय-व्यक्ति इहलोक तथा परलोक गवाँ देता है; एत बलि'-इतना कहकर; सबकारे-उन सभी को; दिलेन विदाय–विदाय दी।

अनुवाद

“पाप कर्मों में एक छदाम भी खर्च मत करना, क्योंकि इस तरह तुम दोनों लोकों में (इस जन्म तथा अगले जन्म में) हानि में रहोगे।” यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें विदा किया।

रायेर घरे प्रभुर ‘कृपा-विवर्त' कहिल ।

भक्त-वात्सल्य-गुण याते व्यक्त हैल ॥145॥

रायेर–भवानन्द राय के; घरे–घर पर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-विवर्त-कुछ अन्य प्रतीत होनेवाली कृपा; कहिल–कहा गया; भक्त-वात्सल्य-गुण-भक्तों के प्रति अति स्नेही होने का लक्षण; ग्राते-जिसमें; व्यक्त हैल-प्रस्फुटित हुआ।

अनुवाद

इस तरह भवानन्द राय के परिवार में श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमा का कथन होता रहा। यह कृपा स्पष्ट रूप से प्रदर्शित की गई थी, यद्यपि यह इससे कुछ भिन्न प्रतीत हो रही थी।

तात्पर्य

आध्यात्मिक ज्ञान में प्रगति का फल भौतिक उन्नति नहीं है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोपीनाथ पट्टनायक को परामर्श दिया कि किस तरह पापकर्म के फलों से बचकर भौतिक ऐश्वर्य का उपयोग करना चाहिए। इस उपदेश से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि महाप्रभु गोपीनाथ पट्टनायक को अपनी भौतिक स्थिति सुधारने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे। किन्तु वस्तुतः उन्होंने ऐसा नहीं किया। वास्तव में यह तो अपने भक्त के प्रति उनके महान् स्नेह की अभिव्यक्ति मात्र थी।

सबाय आलिङ्गिया प्रभु विदाय यबे दिला ।

हरि-ध्वनि करि’ सब भक्त उठि’ गेला ॥146॥

सबाय-उन सभी को; आलिङ्गिया-आलिंगन करते हुए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; विदाय–विदाय; यबे दिला-जब उन्होंने दी; हरि-ध्वनि करि'-हरध्विनि करते हुए; सब भक्त-समस्त भक्तगण; उठि'–उठकर; गेला–गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबों का आलिंगन किया और उन्हें विदा किया। तब सारे भक्त उठे और उच्च स्वर से 'हरि बोल' का उच्चारण करते हुए चले गये।

प्रभुर कृपा देखि' सबार हैल चमत्कार ।

ताहारा बुझिते नारे प्रभुर व्यवहार ॥ 147॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-कृपा को; देखि-देखकर; सबार हैल चमत्कार–सभी चकित हुए; ताहारा-वे; बुझिते नारे-समझ नहीं सके; प्रभुर व्यवहार-श्री चैतन्य महाप्रभु का व्यवहार।

अनुवाद

भवानन्द राय के परिवार पर महाप्रभु की असामान्य कृपा होते देखकर प्रत्येक व्यक्ति आश्चर्यचकित था। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के व्यवहार को समझ नहीं सके।

तारा सबे यदि कृपा करिते साधिल ।

'आमा' हैते किछु नहे—प्रभु तबे कहिल ॥ 148॥

तारा-उन; सबे-सब ने; यदि-जब; कृपा करिते-कृपा दिखाने के लिए; साधिल–विनती की; आमा हैते किछु नहे-मैं कुछ नहीं कर सकता; प्रभु-श्री चैतन्य ने; तबे-तब; कहिल–कहा था।

अनुवाद

निस्सन्देह, जब सारे भक्तों ने महाप्रभु से प्रार्थना की थी कि वे गोपीनाथ पट्टनायक पर कृपा करें, तब महाप्रभु ने उत्तर दिया था कि वे ऐसा नहीं कर सकते।

तात्पर्य

जब मनुष्य पापी होता है, तो वह आध्यात्मिक उन्नति तथा भौतिक ऐश्वर्य दोनों का ही अवसर हाथ से खो बैठता है। यदि व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति के लिए भौतिक जगत् का भोग करता है, तो उसका विनाश निश्चित है। भौतिक ऐश्वर्य में उन्नति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की प्रत्यक्ष कृपा नहीं होती, फिर भी यह भगवान् की अप्रत्यक्ष कृपा को तो दिखाती है, क्योंकि भौतिक सम्पत्ति में अत्यधिक लिप्त रहने वाला व्यक्ति भी धीरे-धीरे विरक्त होकर आध्यात्मिक पद को प्राप्त कर सकता है। तब वह भगवान् की अहैतुकी शुद्ध सेवा कर सकता है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कहा कि आमा होते किछु नहे ("यह मेरा कार्य नहीं कि कुछ करूँ"), तब उन्होंने संन्यासी का आदर्श दृष्टान्त प्रस्तुत किया। यदि संन्यासी किसी विषयी अर्थात् भौतिक कार्यों में लिप्त रहने वाले व्यक्ति का पक्ष लेता है, तो उसके चरित्र की निन्दा की जाती है। संन्यासी को भौतिक कार्यों में रुचि नहीं लेनी चाहिए। किन्तु यदि वह किसी विशेष व्यक्ति के प्रति स्नेहवश ऐसा करता है, तो इसे उसकी विशेष कृपा समझनी चाहिए।

गोपीनाथेर निन्दा, आर आपन-निर्वेद ।

एइ मात्र कहिल—इहार ना बुझिबे भेद ॥ 149॥

गोपीनाथेर निन्दा-गोपीनाथ पट्टनायक की भर्त्सना; आर-तथा; आपन-निर्वेद-उनकी उदासीनता; एइ-वह; मात्र—मात्र; कहिल-मैंने कहा है; इहार-इसका; ना बुझिबे भेद-कोई गम्भीर तात्पर्य नहीं समझ सकता।

अनुवाद

मैंने गोपीनाथ पट्टनायक को दण्ड तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की उदासीनता का ही वर्णन किया है। किन्तु इस व्यवहार का गम्भीर अर्थ समझ पाना अत्यन्त कठिन है।

काशी-मिश्रे ना साधिल, राजारे ना साधिल ।

उद्योग विना महाप्रभु एत फल दिल ॥ 150॥

काशी-मिश्रे--काशी मिश्र को; ना साधिल-उन्होंने प्रार्थना नहीं की: राजारे-राजा को; ना साधिल-उन्होंने विनती नहीं की; उद्योग विना-बिना प्रयत्न; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; एत-ऐसा; फल-फल; दिल-दिया।

अनुवाद

काशी मिश्र या राजा को स्वयं प्रार्थना किये जाने के बिना ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोपीनाथ पट्टनायक को इतना अधिक दे दिया।

चैतन्य-चरित्र एइ परम गम्भीर ।

सेइ बुझे, ताँर पदे याँर मन 'धीर' ॥151॥

चैतन्य-चरित्र-श्री चैतन्य महाप्रभु का चरित्र; एइ-यह; परम गम्भीर-अत्यधिक गहन; सेइ बुझे-वह समझता है; ताँर पदे-उनके चरणकमलों में; याँर-जिसका; मन-चित्त; धीर-गम्भीर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के मनोभाव इतने गम्भीर हैं कि कोई उन्हें तभी समझ सकता है, जब उसकी पूर्ण श्रद्धा महाप्रभु के चरणकमलों की सेवा में हो।

येइ इहाँ शुने प्रभुर वात्सल्य-प्रकाश ।

प्रेम-भक्ति पाय, ताँर विपद याय नाश ॥ 152॥

येइ-जो; इहाँ–इसको; शुने-श्रवण करता है; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; वात्सल्य-प्रकाश-विशिष्ट अनुग्रह की अभिव्यक्ति को प्रेम-भक्ति-प्रेममयी सेवा को; पाय-प्राप्त करता है; ताँर-उसके; विपद-जीवन की भयावह स्थिति; याय नाश-का नाश होता है।

अनुवाद

यदि कोई समझकर अथवा बिना समझे बूझे ही गोपीनाथ पट्टनायक के कार्यों तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की उस पर अहैतुकी कृपा सम्बन्धी इस घटना को सुनता है, तो वह निश्चय ही महाप्रभु के प्रेम-भक्ति-पद को प्राप्त करेगा और उसकी सारी विपदाएँ नष्ट हो जायेंगी।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥153 ॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-पादपद्मों में; यार–जिसकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ का; कहे-व्याख्या करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर मैं कृष्णदास श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्य लीला के अन्तर्गत गोपीनाथ पट्टनायक का उद्धार शीर्षक नौवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय दस

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों से प्रसाद ग्रहण करते हैं।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में अध्याय दस का सारांश इस प्रकार दिया है : रथयात्रा उत्सव के पूर्व ही सदा की तरह बंगाल के सारे भक्त जन्नाथपुरी के लिए चल पड़े। राघव पण्डित अपने साथ श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए नाना प्रकार के पकवान लाये। यह भोजन उनकी बहन दमयन्ती ने बनाया था, जिसे उसने थैलियों (झालि) में बाँध दिया था। इस संचित भोजन सामग्री को सामान्यतः राघवेर झालि अर्थात् "राघव की थैलियाँ" के नाम से जाना जाता था। राघव पण्डित के साथ पानिहाटि का एक निवासी मकरध्वज कर आया था, जो राघवेर झालि का हिसाब रखता था।

जिस दिन सारे भक्त जगन्नाथपुरी पहुँचे, उस दिन भगवान् गोविन्द नरेन्द्र सरोवर में जल क्रीड़ा की लीला कर रहे थे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी अपने भक्तों के साथ जल में इस उत्सव का आनन्द लूटा। पहले की ही तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने गुण्डिचा का मार्जन किया और जगमोहन परिमुण्डा याउ सुप्रसिद्ध श्लोक का कीर्तन किया। कीर्तन समाप्त होने पर उन्होंने सभी भक्तों को प्रसाद बाँटा और स्वयं भी कुछ प्रसाद लिया। तब वे गम्भीरा के द्वार पर विश्राम करने के लिए लेट गये। श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी सेवक गोविन्द ने किसी कारण से भगवान् के शरीर को लाँघ लिया और वह उनके पैर दबाने लगा। किन्तु गोविन्द उस दिन बाहर न जा सका और प्रसाद न ले सका। गोविन्द के चरित्र से यह सीखा जा सकता है कि कभी-कभी हम भगवान् की सेवा हेतु अपराध कर सकते हैं, किन्तु वह इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं होता।

श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी सेवक गोविन्द ने बंगाल के भक्तों द्वारा उनकी सेवा के लिए दिये गये सारे भोजन को खाने के लिए महाप्रभु को प्रेरित किया। सारे वैष्णव श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने-अपने घरों में निमन्त्रित किया करते थे। महाप्रभु ने शिवानन्द सेन के पुत्र चैतन्य दास का निमन्त्रण स्वीकार किया और वहाँ दही-भात खाया।

वन्दे श्री-कृष्ण-चैतन्यं भक्तानुग्रह-कातरम् ।

येन केनापि सन्तुष्टं भक्त-दत्तेन श्रद्धया ॥1॥

वन्दे मैं अपने सादर प्रणाम अर्पित करता हूँ; श्री-कृष्ण-चैतन्यम्-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को; भक्त-उनके भक्तों को; अनुग्रह-कातरम्-अनुकम्पा का प्रदर्शन करने के लिए उत्कण्ठित हैं; येन केन-अपि-जिस किसी के द्वारा; सन्तुष्टम्–सन्तुष्ट; भक्त–उनके भक्तों के द्वारा; दत्तेन–समर्पित; श्रद्धया-श्रद्धा एवं प्रेम सहित।

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जो अपने भक्तों द्वारा श्रद्धा तथा प्रेम से प्रदान की गई किसी भी वस्तु को स्वीकार करके सदैव प्रसन्न होते हैं और उन पर कृपावृष्टि करने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ 2 ॥

जय जय-जय जयकार हो; गौरचन्द्र-श्री चैतन्य महाप्रभु का; जय-जय हो; नित्यानन्द-श्री नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-श्री अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-भगवान् गौरांग के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो! श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

वर्षान्तरे सब भक्त प्रभुरे देखिते ।

परम-आनन्दे सबे नीलाचल याइते ॥3॥

वर्ष-अन्तरे-दूसरे वर्ष; सब भक्त-सारे भक्त; प्रभुरे देखिते-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शनार्थ; परम-आनन्दे-परम उल्लास में; सबे–वे सभी; नीलाचल याइते-जगन्नाथ पुरी, नीलाचल प्रस्थान के निमित्त ।

अनुवाद

अगले वर्ष सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन हेतु जगन्नाथपुरी (नीलाचल) जाने के लिए अत्यन्त प्रसन्न थे।

अद्वैताचार्य-गोसाञि—सर्व-अग्र-गण्य ।

आचार्यरत्न, आचार्यनिधि, श्रीवास आदि धन्य ॥4॥

अद्वैत-आचार्य-गोसाञि-श्री अद्वैत आचार्य गोस्वामी; सर्व-सभी में; अग्र-प्रधान; गण्य–गिने जाते हैं; आचार्यरत्न–चन्द्रशेखर; आचार्यनिधि-पुण्डरीक विद्यानिधि; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर; आदि-इत्यादि; धन्य-महिमायुक्त।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य गोसांई ने बंगाल की टोली का नेतृत्व किया। उनके पीछे आचार्यरत्न, आचार्यनिधि, श्रीवास ठाकुर तथा अन्य महिमामंडित भक्त थे।

यद्यपि प्रभुर आज्ञा गौड़े रहिते ।

तथापि नित्यानन्द प्रेमे चलिला देखिते ॥5॥

यद्यपि यद्यपि; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आज्ञा-आदेश; गौड़े रहिते-बंगाल में रहने के लिए; तथापि-फिर भी; नित्यानन्द-श्री नित्यानन्द प्रभु; प्रेमे-प्रेम में; चलिला-गये; देखिते-दर्शनार्थ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को बंगाल में रहने का आदेश दिया था, किन्तु फिर भी प्रेमाविष्ट होने के कारण भगवान् नित्यानन्द भी उनसे मिलने चले गये।

अनुरागेर लक्षण एइ,–"विधि' नाहि माने ।

ताँर आज्ञा भाङ्गे ताँर सङ्गेर कारणे ॥6॥

अनुरागेर-सच्चे अनुराग का; लक्षण-लक्षण; एइ–यह; विधि-नियम; नाहि माने-की परवाह नहीं करता; ताँर–उनके; आज्ञा-आदेश का; भाङ्गे-उल्लंघन करता है; ताँर-उनके; सङ्गेर-संग; कारणे–के प्रयोजन से।

अनुवाद

निस्सन्देह, यह सच्चे स्नेह का लक्षण ही है कि मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेश को, विधि-विधानों की परवाह न करते हुए उनसे सान्निध्य प्राप्त करने के लिए तोड़ता है।

रासे यैछे घर याइते गोपीरे आज्ञा दिला ।

ताँर आज्ञा भाङ्गि' ताँर सङ्गे से रहिला ॥7॥

रासे–रास नृत्य के समय; यैछे-जैसे; घर याइते-घर वापस जाने के लिए; गोपीरे-गोपीयों को; आज्ञा दिला-भगवान् श्रीकृष्ण ने आदेश दिया था; ताँर-उनकी; आज्ञा-आज्ञा; भाङ्गि'-का भंग कर; ताँर सङ्गे–उनके संग में; से उन्होंने; रहिला-अपने आपको रखा।

अनुवाद

रास नृत्य के समय कृष्ण ने सारी गोपियों से घर लौट जाने के लिए कहा, किन्तु गोपियों ने उनकी आज्ञा की अवहेलना की और वे उनकी संगति पाने के लिए वहीं रुकी रहीं।

आज्ञा-पालने कृष्णेर यैछे परितोष ।

प्रेमे आज्ञा भाङ्गिले हय कोटि-सुख-पोष ॥8॥

आज्ञा-पालने-आज्ञापूर्ति में; कृष्णेर-श्रीकृष्ण का; यैछे-जिस प्रकार; परितोष-सन्तोष; प्रेमे-प्रेम में; आज्ञा भाङ्गिले–जब कोई आज्ञा का भंग करता है; हय होता है; कोटि-सुख-पोष-कोटी गुना अधिक आनन्द।

अनुवाद

यदि कोई कृष्ण की आज्ञा का पालन करता है, तो वे निश्चित रूप से प्रसन्न होते हैं, किन्तु यदि कोई व्यक्ति प्रेमानन्द के कारण उनकी आज्ञा भंग करता है, तो उन्हें करोड़ों गुना सुख प्राप्त होता है।

वासुदेव-दत्त, मुरारि-गुप्त, गङ्गादास ।

श्रीमान् सेन, श्रीमान् पण्डित, अकिञ्चन कृष्णदास ॥9॥

मुरारि, गरुड़-पण्डित, बुद्धिमन्त-खाँन ।

सञ्जय-पुरुषोत्तम, पण्डित-भगवान् ॥ 10॥

शुक्लाम्बर, नृसिंहानन्द आर व्रत जन ॥

सबाइ चलिला, नाम ना द्याय लिखन ॥11॥

वासुदेव-दत्त-वासुदेव दत्त; मुरारि-गुप्त-मुरारि गुप्त; गङ्गादास–गंगादास; श्रीमान्-सेन–श्रीमान् सेन; श्रीमान्-पण्डित-श्रीमान् पण्डित; अकिञ्चन कृष्णदास–अकिंचन कृष्णदास; मुरारि-मुरारि गुप्त;

गरुड़-पण्डित–गरुड़ पण्डित; बुद्धिमन्त-खाँन-बुद्धिमन्त खान; सञ्जय पुरुषोत्तम-संजय पुरुषोत्तम; पण्डित-भगवान्-भगवान् पण्डित; शुक्लाम्बर–शुक्लाम्बर; नृसिंहानन्द-नृसिंहानन्द; आर-तथा; व्रत-और अधिक; जन-व्यक्ति; सबाइ–सभी; चलिला—गये; नाम-नामों को; ना याय लिखन-लिखना सम्भव नहीं है।

अनुवाद

जगन्नाथपुरी जाने के लिए वासुदेव दत्त, मुरारि गुप्त, गंगादास, श्रीमान् सेन, श्रीमान् पण्डित, अकिंचन कृष्णदास, मुरारि गुप्त, गरुड़ पण्डित, बुद्धिमन्त खान, संजय पुरुषोत्तम, भगवान् पण्डित, शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी, नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी तथा अन्य कई भक्त साथ हो लिये। उन सबों के नाम गिना पाना असम्भव है।

कुलीन-ग्रामी, खण्ड-वासी मिलिला आसिया ।

शिवानन्द-सेन चलिला सबारे लञा ॥12॥

कुलीन-ग्रामी–कुलीन ग्राम के निवासी; खण्ड-वासी-खण्ड के निवासी; मिलिला आसिया-आकर सम्मिलित हुए; शिवानन्द-सेन–शिवानन्द सेन; चलिला–गये; सबारे लञा-उन सबको लेकर।

अनुवाद

कुलीन ग्राम तथा खण्ड के निवासी भी आकर साथ हो लिये। शिवानन्द सेन ने नेतृत्व संभाला और उन सभी की देखभाल करनी प्रारम्भ कर दी।

राघव-पण्डित चले झालि साजाइया ।

दमयन्ती यत द्रव्य दियाछे करिया ॥ 13 ॥

राघव-पण्डित-राघव पण्डित; चले जाते हैं; झालि साजाइया-अपनी भोजन की थैली को तैयार कर; दमयन्ती-उनकी बहन; यत द्रव्य-समस्त द्रव्य को; दियाछे करिया-पकाया एवं तैयार किया।

अनुवाद

राघव पण्डित अपनी बहन दमयन्ती द्वारा तैयार किये गये स्वादिष्ट भोजन से भरे कई थैले लेकर आये।

नाना अपूर्व भक्ष्य-द्रव्य प्रभुर योग्य भोग।

वत्सरेक प्रभु याहा करेन उपयोग ॥ 14॥

नाना-विविध; अपूर्व–अनुपम; भक्ष्य-द्रव्य-खाद्य सामग्री; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; योग्य भोग-भक्षण योग्य; वत्सरेक-एक वर्ष तक; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः याहा–जिसका; करेन उपयोग–उपयोग करते हैं।

अनुवाद

दमयन्ती ने श्री चैतन्य महाप्रभु के खाने के योग्य नाना प्रकार के अद्वितीय भोजन तैयार किये, जिन्हें महाप्रभु एक वर्ष तक खाते रहे।

आम्र-काशन्दि, आदा-काशन्दि झाल-काशन्दि नाम।

नेम्बु-आदा आम्र-कोलि विविध विधान ॥15॥

आम्सि, आम-खण्ड, तैलाम्र, आम-सत्ता।

यत्न करि' गुण्डा करि' पुराण सुकुता ॥16॥

आम्र-काशन्दि-आम्र-काशन्दि; आदा-काशन्दि-आदा-काशन्दि; झाल-काशन्दि–झाल-काशन्दि; नाम-नामक; नेम्बु-आदा-निम्बु तथा अदरक से निर्मित एक व्यंजन; आम्र-कोलि-आम्र-कोलि; विविध विधान-विविध व्यंजन; आम्सि-आम्सि; आम-खण्ड-आम-खण्ड; तैलाम्र-सरसों तेल

के भीतर आम; आम-सत्ता-आम सत्ता; यत्न करि'-अत्यधिक सावधानी से; गुण्डा करि'-चूर्ण बनाकर; पुराण सुकुता-करेले जैसी सूखी और कटु सब्जीयाँ।

अनुवाद

राघव पण्डित के थैलों में जो अचार तथा मसाले थे, उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं-आम्रकाशन्दि, आदा काशन्दि, झाल काशन्दि, नेम्बु आदा, आम्रकोलि, आम्सि, आमखण्ड, तैलाग्र तथा आमसत्ता। दमयन्ती ने बड़े मनोयोग से सूखी तीती सब्जियों को चूर्ण कर दिया था।

'सुकुता' बलि' अवज्ञा ना करिह चित्ते ।

सुकुताय ये सुख प्रभुर, ताहा नहे पञ्चामृते ॥17॥

सुकुता-सुकुता; बलि'-क्योंकि; अवज्ञा-उपेक्षा; ना करिह-न करो; चित्ते-चित्त में; सुकुताय– सुकुता से; ये-जो; सुख-आनन्द; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; ताहा-वह; नहे-नहीं; पञ्चामृते-पंचामृत में।

अनुवाद

सुकुता नाम सुनकर अवहेलना न करें, क्योंकि यह तीता व्यंजन है। श्री चैतन्य महाप्रभु को इस सुकुता को खाने में पंचामृत (दूध, चीनी, घी, शहद तथा दही का मिश्रण) के पीने से भी अधिक सुख मिलता था।

भाव-ग्राही महाप्रभु स्नेह-मात्र लय ।

सुकुता पाता काशन्दिते महा-सुख पाय ॥18॥

भाव-ग्राही–जो प्रयोजन को ग्रहण करते हैं; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; स्नेह-प्रेम; मात्र केवल; लय-ग्रहण करते हैं; सुकुता पाता–सुकुता के पत्रों में; काशन्दिते-काशन्दि में; महा-सुख-अधिक आनन्द; पाय-प्राप्त करते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, इसलिए वे प्रत्येक वस्तु से भाव ग्रहण कर लेते हैं। उन्होंने अपने प्रति दमयन्ती के स्नेह को स्वीकार किया; इसीलिए उन्हें सुकुता की सूखी तीती पत्तियों तथा काशन्दि (खट्टा मसाला) से भी महान् आनन्द प्राप्त हुआ।

'मनुष्य'-बुद्धि दमयन्ती करे प्रभुर पाय ।

गुरु-भोजने उदरे कभु 'आम' हा याय ॥19॥

मनुष्य-बुद्धि–एक सामान्य मनुष्य समझते हुए; दमयन्ती-राघव पण्डित की बहन; करे-करती है; प्रभुर पाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों में; गुरु-भोजने-अधिक आहार से; उदरे-उदर में; कभु-कभी; आम-आम; हजा याय-होता है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महप्रभु के प्रति सहज प्रेम होने से दमयन्ती महाप्रभु को सामान्य मनुष्य मानती थी। इसलिए उसने सोचा कि अधिक खाने से महाप्रभु बीमार पड़ जायेंगे और उनके उदर में आँव हो जायेगी।

तात्पर्य

शुद्ध प्रेम के कारण गोलोक वृन्दावन या व्रजभूमि में कृष्ण के भक्त कृष्ण को अपने ही जैसे सामान्य व्यक्ति मानकर प्रेम करते थे। यद्यपि वे कृष्ण को अपने में से ही एक मानते थे, तो भी कृष्ण के प्रति उनके प्रेम की कोई सीमा न थी। इसी तरह अत्यधिक प्रेम के कारण राघव पण्डित तथा उनकी बहन

दमयन्ती श्री चैतन्य महाप्रभु को मनुष्य के रूप में समझते थे, किन्तु महाप्रभु के प्रति उनका प्रेम असीम था। अधिक खाने से सामान्य व्यक्ति अम्लपित्त रोग का शिकार हो जाता है। यह रोग अपच के कारण उदर में अम्ल उत्पन्न होने से होता है। दमयन्ती ने सोचा कि ऐसी स्थिति से श्री चैतन्य महाप्रभु पीड़ित हो जायेंगे।

सुकुता खाइले सेइ आम ह-इबेक नाश ।

एइ स्नेह मने भावि' प्रभुर उल्लास ॥20॥

सुकुता खाइले-सुकुता खाकर; सेइ आम-वह आम; ह–इबेक नाश-नष्ट हो जायेगा; एइ-यह; स्नेह-प्रेम का; मने-मन में; भावि'-विचार कर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; उल्लास-सुख।

अनुवाद

निष्ठावान स्नेह के कारण उसने सोचा कि इस सुकुता को खाने से महाप्रभु का रोग ठीक हो जायेगा। दमयन्ती के इन स्नेहिल विचारों को सोचकर महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न थे।

प्रियेण सङ्ग्रथ्य विपक्ष-सन्निधाव्

उपाहितां वक्षसि पीवर-स्तनी ।

स्रजं न काचिद्विजहौ जलाविलां

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि ॥21॥

प्रियेण–प्रिय के द्वारा; सङ्ग्रथ्य-ग्रन्थन करने के पश्चात्; विपक्ष-सन्निधौ-विपक्षी दल के समक्ष; उपाहिताम्-स्थापित किया; वक्षसि-वक्ष स्थल पर; पीवर-स्तनी-उन्नत उरोजद्वय युक्त; स्रजम्-माला; न-नहीं; काचित्-कोई प्रेमी; विजहो–उपेक्षा की; जल-आविलाम्-धूली से धूसरित; वसन्ति–निवास करते हैं; हि-क्योंकि; प्रेम्णि-प्रेम में; गुणाः-गुण; न—नहीं; वस्तुनि–भौतिक पदार्थों में।

अनुवाद

“एक प्रेमी ने माला गॅथी और अपनी प्रेमिका की सौतों की उपस्थिति में ही उसके गले में वह माला डाल दी। उसके स्तन उठे हुए थे और वह अत्यन्त सुन्दर थी, किन्तु उसने उस कीचड़ से सनी माला को अस्वीकार नहीं किया, क्योंकि उसका मूल्य भौतिक वस्तुओं में नहीं अपितु उसमें निहित प्रेम में था।”

तात्पर्य

यह श्लोक भारवी कृत किरातार्जुनीय से लिया गया है।

धनिया-मौहरीर तण्डुल गुण्डा करिया ।

नाडु बान्धियाछे चिनि-पाक करिया ॥ 22॥

धनिया-धनिया का; मौहरीर-सुवा दानों का; तण्डुल–अनाज; गुण्डा करिया-चूर्ण बनाकर; नाडु बान्धियाछे--मोदक में रूपान्तरित कर; चिनि-पाक करिया–शर्करा में पकाकर।

अनुवाद

दमयन्ती ने धनिया तथा सौंफ के बीजों को चूर्ण किया, उन्हें चीनी के साथ पकाया और फिर उनसे छोटे-छोटे लड्डू बना दिये।

शुण्ठि-खण्ड नाडु, आर आम-पित्त-हर ।

पृथक् पृथक् बान्धि' वस्त्रेर कुथली भितर ॥23॥

शुण्ठि-खण्ड नाडु-सूखी अदरक से निर्मित मिष्टि मोदक; आर-तथा; आम-पित्त-हर-जो अत्यधिक पित्त के प्रकोप से होनेवाले आम को हरती है; पृथक्-पृथक्-अलग-अलग; बान्धि'–बाँधकर; वस्त्रेर-कपडे की; कुथली-थैलीयों; भितर–के भीतर।

अनुवाद

उसने अत्यधिक पित्त से उत्पन्न आँव को दूर करने के लिए सूखी अदरक के साथ मिठाई के लड्डु बनाये। उसने इन सारे पकवानों को अलग-अलग छोटी छोटी कपड़े की थैलियों में भरा।

कोलि-शुण्ठि, कोलि-चूर्ण, कोलि-खण्ड आर ।

कत नाम ल-इब, शत-प्रकार 'आचार' ॥24॥

कोलि-शुण्ठि-सूखी अदरक और बेर; कोलि-चूर्ण–बेर का चूर्ण; कोलि-खण्ड-बेरों से बना एक और व्यंजन; आर-और; कत नाम-कितने और नाम; ल-इब-मे लँ; शत-प्रकार-सौ प्रकार के; आचार-मसाले और अचार।

अनुवाद

उसने सैकड़ों प्रकार के मसाले तथा अचार बनाये। उसने कोलिशुण्ठि, कोलिचूर्ण, कोलिखण्ड तथा अनेक अन्य पकवान भी बनाये। मैं कितनों का नाम गिनाऊँ?

नारिकेल-खण्ड नाडु, आर नाडु गङ्गा-जल ।

चिर-स्थायी खण्ड-विकार करिला सकल ॥ 25॥

नारिकेल-खण्ड नाडु-नारियल के चूर्ण से निर्मित मीठे लड्डू; आर-और; नाडु गङ्गा-जल-गंगाजल के सदृश धवलवर्णयुक्त मोदक; चिर-स्थायी-लम्बे समय तक स्थिर रहनेवाले; खण्ड-विकार-शर्करा के मिष्ठान्न के रूप में परिपत; करिला-बनाये; सकल-सभी।

अनुवाद

उसने लड्डु जैसी अनेक मिठाइयाँ बनाई। कुछ चूर्णित नारियल से बनाई गई थीं और दूसरी मिठाइयाँ गंगाजल के समान सफेद दिख रही थीं। इस तरह उसने अनेक प्रकार की टिकाऊ मिश्री की मिठाइयाँ बनाई।

चिर-स्थायी क्षीर-सार, मण्डादि-विकार।

अमृत-कर्पूर आदि अनेक प्रकार ॥ 26 ॥

चिर-स्थायी-लम्बे समय तक टिकनेवाले; क्षीर-सार-पनीर; मण्डादि-विकार-मण्ड अर्थात् दुग्ध और मलाई से निर्मित विविध मिष्टान्न; अमृत-कर्पूर-दूध और कपूर से बने व्यंजन; आदि-और अन्य; अनेक प्रकार-अनेक प्रकार की।

अनुवाद

उसने लम्बे समय तक टिकनेवाला पनीर, दूध तथा मलाई की अनेक मिठाइयाँ तथा अमृत कर्पूर जैसी कई मिठाइयाँ बनाई।

शालिकाचुटि-धान्येर 'आतप' चिड़ा करि'।

नूतन-वस्त्रेर बड़ कुथली सब भरि' ॥ 27 ॥

शालिकाचुटि-धान्येर-एक प्रकार का महीन चावल; आतप–रवि रश्मियों में सुखाया गया; चिड़ा करि'–पौहें बनाकर; नूतन-वस्त्रेर-नवीन वस्त्र की; बड़ कुथली–एक बड़ी थैली; सब-सब; भरि'- भरकर।।

अनुवाद

उसने महीन, बिना उबाले शालि धान से चिउड़ा बनाया और उसे नए कपड़े की बनी एक बड़ी थैली में भर दिया।

कतेक चिड़ा हुड़म्करि' घृतेते भाजिया।

चिनि-पाके नाडु कैला कर्पूरादि दिया ॥28॥

कतेक चिड़ा-उस पौहें में से किंचित्; हुड़म् करि'-मुरमुरे बनाकर; घृतेते भाजिया-घी में सेंककर; चिनि-पाके–चीनी में पकाकर; नाडु कैला–गोलाकार लड्डु बनाकर; कर्पूर-आदि दिया-कपूर और अन्य घटक मिलाकर।

अनुवाद

उसने कुछ चिउड़े को भूनकर घी में तला और चीनी के शीरे में पकाकर कुछ कपूर मिलाकर उसके लड्डु बना लिये।

शालि-धान्येर तण्डुल-भाजा चूर्ण करिया।

घृत-सिक्त चूर्ण कैला चिनि-पाक दिया ॥ 29॥

कर्पूर, मरिच, लवङ्ग, एलाचि, रसवास।

चूर्ण दिया नाडु कैला परम सुवास ॥ 30॥

शालि-धान्येर-उच्च गुणवत्ता वाले चावल का; तण्डुल-अनाज; भाजा-तला गया; चूर्ण करिया-उसको चूर्ण बनाकर; घृत-सिक्त-घी में भिगोकर; चूर्ण-चूर्ण; कैला-बनाया; चिनि-पाक दिया-शक्कर के साथ पकाकर; कर्पूर-कपूर; मरिच-काली-मिर्च; लवङ्ग-लौंग; एलाचि-इलायची; रस-वास-और अन्य मसाले; चूर्ण-चूर्ण में; दिया-मिश्रित कर; नाडु-गोलाकर लड्डु; कैला-बनाये; परम सु-वास-अत्यधिक सुस्वादिष्ट।

अनुवाद

उसने महीन चावल को भूनकर उसका चूर्ण बनाया और उसे घी से सिक्त करके चीनी के शीरे में पका दिया। तत्पश्चात् उसने कपूर, काली मिर्च, लौंग, इलायची तथा अन्य मसाले डाले और छोटे-छोटे लड्डु बना लिये, जो अत्यन्त स्वादिष्ट तथा सुगन्धित थे।

शालि-धान्येर ख-इ पुनः घृतेते भाजिया।

चिनि-पाक उख्ड़ा कैला कर्पूरादि दिया ॥ 31॥

शालि-धान्येर ख-इ-अच्छे धान के सूखे हुए चावल; पुनः–फिर; घृतेते भाजिया-घी में तलकर; चिनि-पाक शक्कर के रस में उबालकर; उख्ड़ा-उखडा; कैला-बनाया; कर्पूर-आदि दिया–कपूर के साथ मिलाकर।

अनुवाद

उसने महीन धान के चावल को भूना, घी में तला, चीनी के शीरे में पकाया और कुछ में कपूर मिलाकर उखड़ा या मुड़ूकि बना लिया।

फुट्कलाइ चूर्ण करि' घृते भाजाइल।

चिनि-पाके कर्पूरादि दिया नाडु कैल ॥ 32॥

फुट्कलाइ–सिके हुए मटर घी में तलकर शक्कर के रस में भिगोना; चूर्ण करि'-चूरा बनाकर; घृते भाजाइल-घी में तलना; चिनि-पाके-शक्कर में पकाना; कर्पूर-आदि-कपूर एवं अन्य सामग्री; दिया–मिलाकर; नाडु कैल-गोलाकार मिठाई बनाई।

अनुवाद

एक अन्य प्रकार की मिठाई बनाने के लिए भूने हुए मटर को चूर्ण करके घी में तलकर चीनी में पकाया गया। फिर उसमें कपूर मिलाकर लड्डु बना लिये गये।

कहिते ना जानि नाम ए-जन्मे याहार।

ऐछे नाना भक्ष्य-द्रव्य सहस्र-प्रकार ॥ 33॥

कहिते ना जानि–मैं नहीं कह सकता; नाम-नाम; ए-जन्मे-इस जन्म में; माहार-जिनके; ऐछे-समान; नाना-अनेक; भक्ष्य-द्रव्य–खाद्य; सहस्र-प्रकार-सैकड़ों एवं हजारों विभिन्न प्रकार के।

अनुवाद

मैं जन्म भर भी गिनाऊँ, तो इन सारे खाद्य पदार्थों का नाम नहीं ले सकूँगा। दमयन्ती ने सैकड़ों हजारों चीजें प्रस्तुत कीं।

राघवेर आज्ञा, आर करेन दमयन्ती ।

दुँहार प्रभुते स्नेह परम-भकति ॥ 34॥

राघवेर आज्ञा-राघव पण्डित की आज्ञा पर; आर-एवं; करेन-बनाया; दमयन्ती-दमयन्ती; दुँहार दोनों को प्रभुते-श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति; स्नेह-स्नेह; परम-भकति–अत्यधिक विकसित भक्ति।

अनुवाद

दमयन्ती ने अपने भाई राघव पण्डित के आदेश से ये सारी चीजें तैयार की थीं। इन दोनों का श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति असीम स्नेह था और वे भक्ति में बहुत उन्नत थे।

गङ्गा-मृत्तिका आनि' वस्त्रेते छानिया ।

पाँपड़ि करिया दिला गन्ध-द्रव्य दिया ॥ 35 ॥

गङ्गा-मृत्तिका–गंगा नदी की मिट्टी; आनि'–लाकर; वस्त्रेते–कपड़े से; छानिया-छानकर; पाँपड़ि करिया दिला–छोटे गोलाकार बनाये; गन्ध-द्रव्य दिया–सुगन्धित पदार्थों में मिलाकर।

अनुवाद

दमयन्ती ने गंगा की मिट्टी ली, उसे सुखाया, चूर्ण किया, महीन कपड़े से छाना, उसमें सुगन्धित द्रव्य मिलाये और उसके छोटे-छोटे गोले बना लिये।

पातल मृत्पात्रे सन्धानादि भरि’ ।

आर सब वस्तु भरे वस्त्रेर कुथली ॥ 36॥

पातल–बारीक; मृत्-पात्रे-मिट्टी के पात्रों में; सन्धान-आदि-मसाले एवं अन्य वस्तु; भरि’-भरकर; आर-अन्य; सब-सब; वस्तु-वस्तुएँ; भरे-भरे; वस्त्रेर कुथली-कपड़े की छोटी थैली।

अनुवाद

मसालों तथा ऐसे ही पदार्थों को मिट्टी के पतले बर्तनों में और शेष सभी वस्तुओं को कपड़े की छोटी-छोटी थैलियों में भरा।

सामान्य झालि हैते द्विगुण झालि कैला ।

पारिपाटि करि’ सब झालि भराइला ॥ 37॥

सामान्य-छोटे; झालि-थैलों; हैते-से; द्वि-गुण-दुगने बड़े; झालि-थैले; कैला-बनाये; पारिपाटि करि’-बड़ी सावधानी से; सब झालि–सभी थैले; भराइला-उसने भरे।

अनुवाद

दमयन्ती ने छोटी थैलियों से दुगने आकार के थैले बनाये और तब बड़ी सावधानी से उसने इन बड़े थैलों में सारी छोटी थैलियाँ भर दीं।

झालि बान्धि' मोहर दिल आग्रह करिया ।

तिन बोझारि झालि वहे क्रम करिया ॥ 38॥

झालि बान्धि'-थैलों को बाँधकर; मोहर दिल-उसने बन्द किया; आग्रह करिया-बहुत ध्यानपूर्वक; तिन बोझारि—तीन वाहक; झालि वहे-थैलों को उठाया; क्रम करिया-एक के बाद एक।

अनुवाद

तब उसने सारे थैलों को लपेटकर हर थैले को ध्यानपूर्वक बन्द कर दिया। इन थैलों को तीन वाहक क्रमानुसार वहन करके ले गये।

सङ्क्षेपे कहिलुँ एइ झालिर विचार ।

'राघवेर झालि' बलि' विख्याति याहार ॥ 39॥

सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कहिलुँ-मैंने बताया; एइ झालिर–इन थैलों के बारे में विचार-वर्णन; राघवेर झालि-राघव के थैले; बलि'–से; विख्याति–प्रसिद्ध; याहार–जिनका।

अनुवाद

इस तरह मैंने संक्षेप में उन थैलों का वर्णन किया, जो 'राघव की झालि' नाम से प्रसिद्ध हैं।

झालिर उपर 'मुन्सिब' मकरध्वज-कर ।

प्राण-रूपे झालि राखे हञा तत्पर ॥ 40 ॥

झालिर उपर-थैलों पर; मुन्सिब–निरीक्षक; मकरध्वज-कर-मकरध्वज कर; प्राण-रूपे-अपने प्राणों के समान; झालि राखे-थैलों को रखा; हञा तत्पर-बहुत ध्यानपूर्वक।

अनुवाद

इन सारे थैलों का निरीक्षक मकरध्वज-कर था, जो इन्हें अपने प्राणों के समान ध्यानपूर्वक रखता था।

एइ-मते वैष्णव सब नीलाचले आइला ।

दैवे जगन्नाथेर से दिन जल-लीला ॥41॥

एइ-मते-इस प्रकार; वैष्णव सब-सभी वैष्णव; नीलाचले आइला-नीलाचल आये; दैवे-संयोग से; जगन्नाथेर-जगन्नाथ भगवान् की ; से दिन-उस दिन; जल-लीला-जल-लीला।

अनुवाद

इस तरह बंगाल के सारे वैष्णव जन जगन्नाथपुरी गये। संयोगवश वे उस दिन पहुँचे थे, जिस दिन भगवान् जगन्नाथ जल-लीला करते हैं।

नरेन्द्रेर जले 'गोविन्द' नौकाते चड़िया ।

जल-क्रीड़ा करे सब भक्त-गण लञा ॥42॥

नरेन्द्रेर जले-नरेन्द्र नामक सरोवर के जल पर; गोविन्द-गोविन्द; नौकाते चड़िया-नौका पर चढकर; जल-क्रीड़ा करे-जल-लीला प्रदर्शित कर रहे थे; सब भक्त-गण-सभी भक्त; लञा-लेकर।

अनुवाद

नरेन्द्र सरोवर के जल में नाव पर आरूढ़ होकर भगवान् गोविन्द ने अपने सारे भक्तों के साथ जल-लीला की।

सेइ-काले महाप्रभु भक्त-गण-सङ्गे ।

नरेन्द्रे आइला देखिते जल-केलि-रङ्गे ॥43॥

सेइ-काले—उस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भक्त-गण-सङ्गे-अपने भक्तों के साथ; नरेन्द्रे आइला–नरेन्द्र सरोवर आये; देखिते-देखने के लिए; जल-केलि-जल-क्रीड़ा; रङ्गे–भारी उल्लासपूर्वक।

अनुवाद

तब नरेन्द्र सरोवर में भगवान जगन्नाथ की आनन्दमय जल-क्रीड़ा देखने के लिए अपने निजी संगियों सहित श्री चैतन्य महाप्रभु आये।

सेइ-काले आइला सब गौड़ेर भक्त-गण ।

नरेन्द्रेते प्रभु-सङ्गे ह-इल मिलन ॥44॥

सेइ-काले—उसी समय; आइला–आये; सब-सभी; गौड़ेर भक्त-गण-बंगाल से भक्त; नरेन्द्रेते-नरेन्द्र सरोवर के पास; प्रभु-सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के संग; ह-इल मिलन-भेंट हुई।

अनुवाद

उसी समय बंगाल के सारे भक्त उस सरोवर में पहुँचे और महाप्रभु से मिले।

भक्त-गण पड़े आसि' प्रभुर चरणे ।

उठाञा प्रभु सबारे कैला आलिङ्गने ॥45॥

भक्त-गण-भक्त; पड़े-गिर पडे; आसि'-आकर; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर; उठाञा-उन्हें उठाया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सबारे—उन सब को; कैला आलिङ्गने-आलिंगन किया।

अनुवाद

सारे भक्त तुरन्त ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़े और महाप्रभु ने प्रत्येक को उठाकर सभी का आलिंगन किया।

गौड़ीया-सम्प्रदाय सब करेन कीर्तन ।

प्रभुर मिलने उठे प्रेमेर क्रन्दन ॥46॥

गौड़ीया-सम्प्रदाय-बंगाल के वैष्णव गण (गौड़िय सम्प्रदाय); सब-सभी; करेन कीर्तन-सामूहिक कीर्तन किया; प्रभुर मिलने-श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने पर; उठे-उठे; प्रेमेर क्रन्दन-भावातिरेक प्रेम में रो पडे।

अनुवाद

बंगाल के सारे भक्तों से युक्त गौड़ीय सम्प्रदाय ने संकीर्तन प्रारम्भ किया। जब वे महाप्रभु से मिले, तो वे प्रेमवश उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगे।

जल-क्रीड़ा, वाद्य, गीत, नर्तन, कीर्तन ।

महा-कोलाहल तीरे, सलिले खेलन ॥47॥

जल-क्रीड़ा-जल-लीला; वाद्य-सुरीला कंपन; गीत-गाना; नर्तन-नृत्य करना; कीर्तन-कीर्तन करना; महा-कोलाहल-अत्यधिक कोलाहल; तीरे-तट पर; सलिले-जल में; खेलन-खेल।

अनुवाद

जल-क्रीड़ा के कारण किनारे पर वाद्य, गायन, कीर्तन, नर्तन तथा अत्यधिक कोलाहल के होने से अत्यधिक उल्लास था।

गौड़ीया-सङ्कीर्तने आर रोदन मिलिया ।

महा-कोलाहल हैल ब्रह्माण्ड भरिया ॥48॥

गौड़ीया-सङ्कीर्तने–गौड़िय वैष्णवों द्वारा संकीर्तन; आर-एवं; रोदन–रुदन; मिलिया-मिलकर; महा-कोलाहल-महान् कोलाहल; हैल–हुआ; ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्ड; भरिया-भर गया।

अनुवाद

गौड़ीय वैष्णवों के कीर्तन तथा क्रन्दन से महान् कोलाहल उत्पन्न हुआ, जिसने समूचे ब्रह्माण्ड को पूरित कर दिया।

सब भक्त लञा प्रभु नामिलेन जले ।

सबा ला जल-क्रीड़ा करेन कुतूहले ॥49॥

सब भक्त–सभी भक्त; लञा-लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नामिलेन जले–जल में उतरे; सबा लञा–उन सभी को लेकर; जल-क्रीड़ा-जल-क्रीड़ा; करेन-प्रदर्शित की; कुतूहले–अत्यन्त उल्लासपूर्वक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों के साथ जल में प्रवेश किया और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वे उनके साथ जल-क्रीड़ा करने लगे।

प्रभुर एइ जल-क्रीड़ा दास-वृन्दावन ।

'चैतन्य-मङ्गले विस्तारि' करियाछेन वर्णन ॥50॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; एइ–इन; जल-क्रीड़ा-जल-क्रीड़ा; दास-वृन्दावन-वृन्दावन दास ठाकुर; चैतन्य-मङ्गले–उनकी पुस्तक 'चैतन्य मंगल' में, जिसे अब चैतन्य भागवत कहा जाता है; विस्तारि'–विस्तारपूर्वक वर्णन; करियाछेन वर्णन किया

अनुवाद

वृन्दावन दास ठाकुर ने 'चैतन्य मंगल' (अब चैतन्य भागवत नाम से विख्यात) में महाप्रभु की जल-क्रीड़ा का बहुत विस्तार से वर्णन किया

पुनः इहाँ वर्णिले पुनरुक्ति हय ।

व्यर्थ लिखन हय, आर ग्रन्थ बाड़य ॥51॥

पुनः-पुनः; इहाँ–यहाँ; वर्णिले–मैं वर्णन करूँ तो; पुनः-उक्ति हय–पुनरुक्ति होगी; व्यर्थ-व्यर्थ; लिखन-लिखना; हय-है; आर-एवं; ग्रन्थ बाड़य-पुस्तक का आकार बढ़ जायेगा।

अनुवाद

यहाँ पर महाप्रभु के कार्यकलापों का फिर से वर्णन करने से कोई लाभ नहीं होगा। यह केवल पुनरुक्ति होगी और इससे पुस्तक का आकार बढ़ जायेगा।

जल-लीला करि' गोविन्द चलिला आलय ।

निज-गण लञा प्रभु गेला देवालय ॥52॥

जल-लीला करि'-जल-लीला समाप्त करके; गोविन्द-भगवान जगन्नाथ अपने गोविन्द के चलते-फिरते रूप में; चलिला आलय-अपने स्थान पर लौट गये; निज-गण-उनके भक्त; लञा-लेते हुए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला-गये; देव-आलय-मन्दिर में।

अनुवाद

जल-लीला समाप्त करने के बाद भगवान् गोविन्द अपने आवास लौट गये। तब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों को साथ लेकर मन्दिर गये।

तात्पर्य

यहाँ जिस अर्चाविग्रह को गोविन्द कहा गया है, वह जगन्नाथ मन्दिर का विजय विग्रह है। जब भी जगन्नाथजी को कहीं ले जाना होता है, तो विजय विग्रह ही ले जाये जाते हैं, क्योंकि जगन्नाथजी का शरीर बहुत भारी है। जगन्नाथ मन्दिर में विजय विग्रह को गोविन्द कहा जाता है। नरेन्द्र सरोवर में लीला हेतु जगन्नाथजी को ले जाने के बदले विजय विग्रह को ले जाया गया था।

जगन्नाथ देखि' पुनः निज-घरे आइला ।

प्रसाद आनाञा भक्त-गणे खाओयाइला ॥53॥

जगन्नाथ देखि'–जगन्नाथ भगवान् के दर्शन करके; पुनः–पुनः; निज-घरे-अपने निवासस्थान; आइला–लौटे; प्रसाद–प्रसाद; आनाञा-मँगवाया; भक्त-गणे खाओयाइला-भक्तों को सेवन करवाया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर होकर अपने निवासस्थान लौट आये, तो उन्होंने पर्याप्त मात्रा में जगन्नाथ जी का प्रसाद मँगवाया, जिसे उन्होंने अपने भक्तों में बाँट दिया, जिससे कि वे भरपेट खा सकें।

इष्ट-गोष्ठी सबा लञा कत-क्षण कैला ।

निज निज पूर्व-वासाय सबाय पाठाइला ॥54॥

इष्ट-गोष्ठी-आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा; सबा लञा–सभी भक्तों को लेकर; कत-क्षण-कुछ समय तक; कैला–किया; निज निज-अपने अपने; पूर्व-वासाय-पूर्व निवासस्थान; सबाय-सभी को; पाठाइला–उन्होंने भिजवाया।

अनुवाद

भक्तों से कुछ समय तक बातें करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबों से अपने-अपने उन्हीं डेरों में स्थान ग्रहण करने के लिए कहा, जिनमें वे पिछले वर्ष रह चुके थे।

गोविन्द-ठाञि राघव झालि समर्पिला ।

भोजन-गृहेर कोणे झालि गोविन्द राखिला ॥55॥

गोविन्द-ठाञि-गोविन्द को सौंपा; राघव-राघव पण्डित; झालि–झालि, खाद्य पदार्थों के थैले; समर्पिला–पहुँचाए; भोजन-गृहेर–भोजन कक्ष के; कोणे-कोने में; झालि-थैले; गोविन्द-गोविन्द; राखिला-रखा।

अनुवाद

राघव पण्डित ने खाद्य सामग्री के थैले गोविन्द को सौंप दिये, जिसने उन्हें भोजन-कक्ष के एक कोने में रख दिये।

पूर्व-वत्सरेर झालि आजाड़ करिया ।

द्रव्य भरिबारे राखे अन्य गृहे लञा ॥56॥

पूर्व-वत्सरेर-पूर्व वर्ष के; झालि-थैले; आजाड़ करिया-खाली किये; द्रव्य भरिबारे-वस्तुओं से भरकर; राखे-रखे; अन्य गृहे-दूसरे कमरे में; लञा-लेकर।

अनुवाद

गोविन्द ने पिछले वर्ष के थैलों को ठीक से खाली किया और उन्हें अन्य कमरे में दूसरी वस्तुओं से भरे जाने के लिए रख लिया।

आर दिन महाप्रभु निज-गण लञा ।

जगन्नाथ देखिलेन शय्योत्थाने याञा ॥57॥

आर दिन-अगले दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-गण लञा-अपने निजी भक्तों के साथ; जगन्नाथ देखिलेन-भगवान जगन्नाथ के दर्शन करने; शय्या-उत्थाने-प्रातः काल में जगने के समय; याञा-गये।

अनुवाद

अगले दिन भगवान जगन्नाथ के प्रातःकाल जगने के समय पर श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी भक्तों के साथ भगवान जगन्नाथ का दर्शन करने गये।

बेड़ा-सङ्कीर्तन तहाँ आरम्भ करिला ।

सात-सम्प्रदाय तबे गाइते लागिला ॥58 ॥

बेड़ा-सङ्कीर्तन-गोलाकार संकीर्तन; ताहाँ-वहाँ पर; आरम्भ करिला-प्रारम्भ किया; सात-सम्प्रदाय-सात टोलियाँ; तबे-तब; गाइते लागिला-कीर्तन करने लगीं।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने बेड़ा संकीर्तन (गोलाकार संकीर्तन) प्रारम्भ किया। उन्होंने सात टोलियाँ बनाईं और वे कीर्तन करने लगीं।

तात्पर्य

बेड़ा सङ्कीर्तन की व्याख्या के लिए देखें मध्यलीला 11.215-238 ।

सात-सम्प्रदाये नृत्य करे सात जन ।

अद्वैत आचार्य, आर प्रभु-नित्यानन्द ॥ 59॥

सात-सम्प्रदाये-सात टोलियों में; नृत्य करे-नृत्य करने वाले; सात जन--सात व्यक्ति; अद्वैत आचार्य-अद्वैत आचार्य; आर-तथा; प्रभु-नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

सातों टोलियों में से हर एक में अद्वैत आचार्य अथवा नित्यानन्द प्रभु जैसा मुख्य नर्तक था।

वक्रेश्वर, अच्युतानन्द, पण्डित-श्रीवास ।

सत्यराज-खाँन, आर नरहरि-दास ॥ 60 ॥

वक्रेश्वर–वक्रेश्वर; अच्युतानन्द-अच्युतानन्द; पण्डित-श्रीवास-श्रीवास पण्डित; सत्यराज-खाँन-सत्यराज खान; आर-तथा; नरहरि-दास-नरहरि दास।

अनुवाद

अन्य टोलियों के नर्तक थे-वक्रेश्वर पण्डित, अच्युतानन्द, पण्डित श्रीवास, सत्यराज खान तथा नरहरि दास।

सात-सम्प्रदाये प्रभु करेन भ्रमण ।

'मोर सम्प्रदाये प्रभु'–ऐछे सबार मन ॥ 61॥

सात-सम्प्रदाये-सात टोलियों में प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन भ्रमण-फिरे; मोर सम्प्रदाये प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु हमारी टोली में हैं; ऐछे—इस प्रकार; सबार मन-हर एक व्यक्ति सोच रहा था।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु निरीक्षण करते हुए एक टोली से दूसरी में विचरण करते, तो प्रत्येक टोली के व्यक्ति यही सोचते कि, "महाप्रभु हमारी टोली में हैं।"

सङ्कीर्तन-कोलाहले आकाश भेदिल ।

सब जगन्नाथ-वासी देखिते आइल ॥62॥

सङ्कीर्तन-कोलाहले–कोलाहल रूप से संकीर्तन गरजना; आकाश भेदिल-आकाश भर गया; सब-सभी; जगन्नाथ-वासी–जगन्नाथ पुरी के निवासी; देखिते आइल-देखने आये।

अनुवाद

सामूहिक कीर्तन से इतनी तुमुल ध्वनि हुई कि उससे आकाश भर गया। जगन्नाथपुरी के सारे निवासी कीर्तन देखने के लिए आये।

राजा आसि' दूरे देखे निज-गण लञा ।

राज-पत्नी सब देखे अट्टाली चड़िया ॥ 63 ॥

राजा-राजा; आसि'–आया; दूरे-दूर से; देखे-देखे; निज-गण लञा-अपने व्यक्तिगत कर्मचारीयों के संग; राज-पत्नी–रानियाँ; सब-सभी; देखे-देखने; अट्टाली चड़िया-महल के ऊपरी स्थानों से।

अनुवाद

राजा भी अपने निजी सहायकों समेत वहाँ आया और दूर से देखता रहा। सारी रानियों ने महल की अटारियों से देखा।

कीर्तन-आटोपे पृथिवी करे टलमल ।

'हरि-ध्वनि' करे लोक, हैल कोलाहल ॥ 64॥

कीर्तन-आटोपे-संकीर्तन की महान पूँज से; पृथिवी-समस्त जगत्; करे टलमल-काँप उठा; हरि-ध्वनि करे–हरिनाम संकीर्तन; लोक-सामान्य लोग; हैल-हुई; कोलाहल-उत्तेजित करनेवाली पूँज।

अनुवाद

कीर्तन की तेज ध्वनि से समस्त जगत् काँपने लगा। जब सबों ने हरिनाम का कीर्तन किया, तो उससे तुमुल ध्वनि उत्पन्न हुई।

एइ-मत कत-क्षण कराइला कीर्तन ।

आपने नाचिते तबे प्रभुर हैल मन ॥65॥

एइ-मत-इस प्रकार; कत-क्षण-कुछ समय तक; कराइला कीर्तन-संकीर्तन करवाया; आपने–स्वयं; नाचिते-नृत्य करना; तबे-फिर; प्रभुर हैल मन-श्री चैतन्य महाप्रभु इच्छुक हुए।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु ने कुछ देर तक तो कीर्तन करवाया, किन्तु तब उन्हें स्वयं नृत्य करने की इच्छा हुई।

सात-दिके सात-सम्प्रदाय गाय, बाजाय ।

मध्ये महा-प्रेमावेशे नाचे गौर-राय ॥66॥

सात-दिके-सातों दिशाओं में; सात-सम्प्रदाय-सात टोलियाँ; गाय-कीर्तन; बाजाय-मृदंग बजाना; मध्ये-मध्य भाग में; महा-प्रेमावेशे-श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम में भावविभोर होकर; नाचे-नृत्य किया; गौर-राय-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

सातों टोलियाँ सात दिशाओं में कीर्तन करने लगीं तथा मृदंग बजाने लगीं और श्री चैतन्य महाप्रभु बीचों-बीच अत्यधिक प्रेमावेश में नृत्य करने लगे।

उड़िया-पद महाप्रभुर मने स्मृति हैल।

स्वरूपेरे सेइ पद गाइते आज्ञा दिल ॥67॥

उड़िया-पद-उड़िसी गीत का वाक्य; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; मने-मन में; स्मृति हैल-स्मरण हुआ; स्वरूपेरे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी को; सेइ पद-वह खास वाक्य; गाइते-गाने की; आज्ञा दिल-आज्ञा दी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को उड़िया भाषा की एक पंक्ति याद आई और उन्होंने इसे स्वरूप दामोदर को गाने का आदेश दिया।

"जगमोहन-परि-मुण्डा याउ" ॥ 68 ॥

जगमोहन-जगमोहन नामक कीर्तन कक्ष; परि–में; मुण्डा-मेरा मस्तक; याउ-अर्पण हो।

अनुवाद

“जगमोहन नामक कीर्तन कक्ष में मेरा सिर जगन्नाथ के चरणों पर गिरे।”

एइ पदे नृत्य करेन परम-आवेशे ।

सब-लोक चौदिके प्रभुर प्रेम-जले भासे ॥69॥

एइ पदे-इस वाक्य से; नृत्य करेन-नृत्य करे; परम-आवेशे-अत्यधिक प्रेम से भावविभोर होकर; सब-लोक-सब लोग; चौ-दिके–चारों दिशाओं में प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; प्रेम-जले-प्रेम भरे अश्रु; भासे-तैरना।

अनुवाद

केवल इस पंक्ति के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु बड़े प्रेमावेश में नृत्य कर रहे थे। उनके चारों ओर के लोग उनके आँसुओं के जल में तैरने लगे।

‘बोल्’ ‘बोल्' बलेन प्रभु श्री-बाहु तुलिया ।

हरि-ध्वनि करे लोक आनन्दे भासिया ॥ 70 ॥

बोल्-गाओ; बोल्-गाओ; बलेन-कहा; प्रभु-भगवान् ने (प्रभु ने); श्री-बाहु-उनके दिव्य बाहु; तुलिया-उठाकर; हरि-ध्वनि करे–हरि का पवित्र नाम गाया; लोक-लोग; आनन्दे भासिया–परमानन्द में तैरते हुए।

अनुवाद

दिव्य आनन्द में तैरते हुए महाप्रभु ने अपनी दोनों बाहें उठाते हुए कहा, "कीर्तन करो! कीर्तन करो!" दिव्य आनन्द में तैरते हुए लोग हरिनाम का कीर्तन करके प्रत्युत्तर देने लगे।

प्रभु पड़ि' मूर्छा याय, श्वास नाहि आर ।

आचम्बिते उठे प्रभु करिया हुङ्कार ॥71॥

प्रभु-प्रभुः पडि'–गिरे; मुर्छा याय-बेहोश होकर; श्वास नाहि-श्वास बन्द होकर; आर-एवं; आचम्बिते-सहसा; उठे-उठे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करिया हुङ्कार-ऊँचे स्वर से।

अनुवाद

महाप्रभु मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े और उनकी श्वास भी नहीं चल रही थी। किन्तु वे सहसा उच्च ध्वनि (हुंकार) करते उठ खड़े हुए।

सघन पुलक,—येन शिमुलेर तरु ।

कभु प्रफुल्लित अङ्ग, कभु हय सरु ॥72॥

स-घन-एक तार; पुलक–रौंगटे खड़े होना; येन-के प्रकार; शिमुलेर तरु-शिमुल वृक्ष; कभु-किसी-किसी समय; प्रफुल्लित-फूला हुआ; अङ्ग-शरीर; कभु-किसी-किसी समय; हय-है; सरु-दुबला पतला।

अनुवाद

उनके शरीर के रोएँ खड़े हो गये, मानो शिमुल वृक्ष के काँटे हों। कभी उनका शरीर फूला हुआ दिखता, तो कभी अत्यन्त दुबला-पतला दिखता।

प्रति रोम-कूपे हय प्रस्वेद, रक्तोद्गम ।

'जज' 'गग' 'परि' 'मुमु'–गद्गद वचन ॥73॥

प्रति रोम-कूपे-हरेक रोम के छिद्र में; हय-था; प्रस्वेद-स्वेद; रक्त-उद्गम-प्रचुरतापूर्वक रक्त बहा; जज गग परि मुमु-'जज गग परी मुमु' इस प्रकार बोलना; गद्गद-लड़खड़ाते हुए; वचन–शब्द।

अनुवाद

उनके शरीर के प्रत्येक रोमकूप से पसीना आ रहा था और रक्त निकल रहा था; उनकी वाणी लड़खड़ा रही थी। वे पंक्ति का ठीक से उच्चारण नहीं कर पा रहे थे। वे केवल "जज गग परि मुमु" ही उच्चारित कर पा रहे थे।

एक एक दन्त येन पृथक् पृथक् नड़े ।

ऐछे नड़े दन्त,—येन भूमे खसि' पड़े ॥74॥

एक एक–हरेक; दन्त-दांत; येन-जैसेकि; पृथक्-पृथक्-अलग-अलग; नड़े-काँपे; ऐछे-इस प्रकार; नड़े-काँपे; दन्त-दांत; येन-जैसे कि; भूमे-भूमि पर; खसि'-ढीले होकर; पड़े-गिर पड़े।

अनुवाद

उनके सारे दाँत हिलने लगे, मानो एक दूसरे से अलग हों। ऐसा लग रहा था मानों वे सब भूमि पर गिर पड़ेंगे।

क्षणे क्षणे बाड़े प्रभुर आनन्द-आवेश ।

तृतीय प्रहर ह-इल, नृत्य नहे शेष ॥75 ॥

क्षणे क्षणे-हरेक क्षण; बाड़े-बढ़ता; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आनन्द-आवेश-दिव्य आनन्द; तृतीय प्रहर–दोपहर; ह-इल-था; नृत्य-नृत्य; नहे शेष समाप्त न हुआ।

अनुवाद

उनका दिव्य आनन्द प्रति क्षण बढ़ता गया। अतः दोपहर के बाद भी उनका नृत्य समाप्त नहीं हुआ।

सब लोकेर उथलिल आनन्द-सागर ।

सब लोक पासरिल देह-आत्म-घर ॥76 ॥

सब लोकेर–हरेक व्यक्ति का; उथलिल-उफन चला; आनन्द-सागर-दिव्य आनन्द के सागर में; सब लोक–हरेक व्यक्ति; पासरिल-भूल गया; देह-शरीर; आत्म–मन; घर–घर।

अनुवाद

दिव्य आनन्द का सागर उफन चला और वहाँ पर उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति अपना शरीर, मन तथा घर भूल गया।

तबे नित्यानन्द प्रभु सृजिला उपाय ।

क्रमे-क्रमे कीर्तनीया राखिल सबाय ॥ 77॥

तबे-उस समय; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु; प्रभु-भगवान्; सृजिला उपाय-एक उपाय खोजा; क्रमे-क़मे-एक एक करके; कीर्तनीया-कीर्तन करनेवाले गायकों को; राखिल-ठहराया; सबाय-सभी।

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु ने कीर्तन को समाप्त करने की विधि ढूँढ निकाली। उन्होंने धीरे-धीरे सारे कीर्तनियों को रोक दिया।

स्वरूपेर सङ्गे मात्र एक सम्प्रदाय ।

स्वरूपेर सङ्गे सेह मन्द-स्वर गाय ॥78॥

स्वरूपेर सङ्गे–स्वरूप दामोदर के संग; मात्र—मात्र; एक-एक; सम्प्रदाय-टोली; स्वरूपेर सङ्गे–स्वरूप दामोदर के संग; सेह-वे; मन्द-स्वर-अतिशय मन्द स्वर में; गाय-गाये।

अनुवाद

केवल एक टोली स्वरूप दामोदर के साथ कीर्तन करती रही। वह भी अत्यन्त मन्द स्वर से कीर्तन कर रही थी।

कोलाहल नाहि, प्रभुर किछु बाह्य हैल ।

तबे नित्यानन्द सबार श्रम जानाइल ॥79॥

कोलाहल-उत्तेजित करनेवाली पूँज; नाहि-नहीं रही; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; किछु-कुछ; बाह्य-बाह्य चेतना; हैल-हुई; तबे—उस समय; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु; सबार-उन सभी की; श्रम-थकान; जानाइल-की जानकारी दी।

अनुवाद

जब कोलाहल नहीं हो रहा था, तो श्री चैतन्य महाप्रभु की बाह्य चेतना लौटी। तब नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें कीर्तनियों तथा नर्तकों की थकान के बारे में सूचित किया।

भक्त-श्रम जानि' कैला कीर्तन समापन ।

सबा लञा आसि' कैला समुद्रे स्नपन ॥80॥

भक्त-श्रम-भक्तों का श्रम; जानि'-जानकर; कैला-किया; कीर्तन समापन-कीर्तन समाप्त; सबा लञा आसि'–उन सभी के संग; कैला–किया; समुद्रे-समुद्र में; स्नपन-स्नान।।

अनुवाद

भक्तों की थकान समझकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन रोक दिया। तब उन्होंने सबों के साथ समुद्र में स्नान किया।

सब लञा प्रभु कैला प्रसाद भोजन ।

सबारे विदाय दिला करिते शयन ॥81॥

सब लञा-उन सबके साथ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला-किया; प्रसाद भोजन-प्रसाद सेवन; सबारे सब को; विदाय दिला–विदा करके; करिते शयन-विश्राम करने के लिए।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबों के साथ प्रसाद लिया और उनसे अपने-अपने निवासस्थान पर लौट जाने तथा आराम करने के लिए कहा।

गम्भीरार द्वारे करेन आपने शयन ।

गोविन्द आसिया करे पाद-सम्वाहन ॥82॥

गम्भीरार द्वारे-कमरे के भीतर गम्भीरा नामक कक्ष के द्वार पर; करेन-किया; आपने-स्वयं; शयन-लेटे; गोविन्द-उनका निजी सेवक गोविन्द; आसिया-आकर; करे–करे; पाद-सम्वाहन-पैरों की मालिश।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु गम्भीरा के द्वार पर लेट गये और गोविन्द वहाँ आकर महाप्रभु के पाँव दबाने लगा।

सर्व-काल आछे एइ सुदृढ़ 'नियम' ।

'प्रभु यदि प्रसाद पाञा करेन शयन ॥83 ॥

गोविन्द आसिया करे पाद-सम्वाहन ।

तबे याइ' प्रभुर 'शेष' करेन भोजन' ॥84॥

सर्व-काल-हर समय; आछे-था; एइ–यह; सु-दृढ़-अपरिवर्तनीय; नियम-नियम; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यदि-जिस समय; प्रसाद पाञा-भोजन के पश्चात्; करेन शयन-लेटते; गोविन्द-गोविन्द; आसिया-आकर; करे-करता; पाद-सम्वाहन-पैरों की मालिश; तबे-तत्पश्चात्; याइ'–जाकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; शेष-भोजन के अवशेष; करेन भोजन-खाता।

अनुवाद

यह दीर्घकाल से चला आ रहा स्थायी नियम था कि भोजन के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु विश्राम करने के लिए लेट जाते और गोविन्द आकर उनके पाँव दबाता। तब गोविन्द श्री चैतन्य महाप्रभु का शेष प्रसाद ग्रहण करता था।

सब द्वार युड़ि' प्रभु करियाछेन शयन ।

भितरे याइते नारे, गोविन्द करे निवेदन ॥85॥

सब द्वार–सम्पूर्ण द्वार; युड़ि'–ग्रहण करते हुए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करियाछेन शयन-लेटे थे; भितरे-भीतर; याइते नारे-जा न पाया; गोविन्द-गोविन्द; करे निवेदन-निवेदन किया।

अनुवाद

इस बार जब महाप्रभु लेटे, तो उन्होंने पूरा द्वार घेर लिया। इससे गोविन्द कमरे के भीतर न प्रवेश कर सका, अतएव उन्होंने निम्न प्रार्थना की।

'एक-पाश हओ, मोरे देह' भितर याइते' ।

प्रभु कहे,–'शक्ति नाहि अङ्ग चालाइते' ॥86॥

एक-पाश हओ-कृपया एक ओर घूमें; मोरे-मुझे; देह'-अनुमति दें; भितर-भीतर; याइते-जाने की; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; शक्ति-शक्ति; नाहि-नहीं; अङ्ग चालाइते-मेरा शरीर हिलाने की।

अनुवाद

गोविन्द ने कहा, "कृपया एक ओर करवट ले लें। मुझे कमरे में प्रवेश करने दें।" किन्तु महाप्रभु ने उत्तर दिया, "अपना शरीर हिलाने-डुलाने की मुझमें शक्ति नहीं है।"

बार बार गोविन्द कहे एक-दिक् ह-इते ।

प्रभु कहे,—'अङ्ग आमि नारि चालाइते' ॥ 87॥

बार बार-बारम्बार; गोविन्द-गोविन्द; कहे-निवेदन करे; एक-दिक् ह-इते-एक ओर घूमने के लिए; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; अङ्ग–मेरा शरीर; आमि-मैं; नारि चालाइते-हिला नहीं पा रहा।

अनुवाद

गोविन्द ने बारम्बार अनुरोध किया, किन्तु महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं अपना शरीर हिला-डुला नहीं सकता।"

गोविन्द कहे,–'करिते चाहि पाद-सम्वाहन' ।

प्रभु कहे,—'कर वा ना कर, येइ लय तोमार मन' ॥88॥

गोविन्द कहे-गोविन्द ने कहा; करिते-करना; चाहि-मैं चाहु; पाद-सम्वाहन-पैरों को दबाना; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; कर-कर; वा-अन्यथा; ना कर-न कर; येइ-जो कुछ; लय तोमार मन–तुम चाहो।

अनुवाद

गोविन्द ने बारम्बार अनुरोध किया, "मैं आपके पाँव दबाना चाहता हूँ, किन्तु महाप्रभु ने कहा, "चाहे दबाओ या न दबाओ। यह सब तुम्हारे मन पर निर्भर है।"

तबे गोविन्द बहिर्वास ताँर उपरे दिया ।

भितर-घरे गेला महाप्रभुरे लङ्घिया ॥89॥

तबे-फिर; गोविन्द-गोविन्द; बहिर्वास–बाहरी वस्त्र; ताँर उपरे–उन पर; दिया-फैलाया; भितर-घरे–कक्ष के भीतर; गेला-गया; महाप्रभुरे लङ्घिया-श्री चैतन्य महाप्रभु को लाँघकर॥

अनुवाद

तब गोविन्द ने महाप्रभु के शरीर पर चादर डाल दी और इस तरह वह उन्हें लाँघकर कमरे में प्रवेश कर गया।

पाद-सम्वाहन कैल, कटि-पृष्ठ चापिल ।

मधूर-मर्दने प्रभुर परिश्रम गेल ॥90॥

पाद-सम्वाहन-पैरों को दबाना; कैल-उसने किया; कटि-कमर; पृष्ठ-पीठ; चापिल-दबाया; मधूर-मर्दने-मृदुलता से दबाया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; परिश्रम-थकावट; गेल-दूर हो गई।

अनुवाद

गोविन्द ने हमेशा की तरह महाप्रभु के पाँव दबाये। उसने महाप्रभु की कमर तथा पीठ हल्के से दबाई और इस तरह महाप्रभु की थकान दूर हो गई।

सुखे निद्रा हैल प्रभुर, गोविन्द चापे अङ्ग ।

दण्ड-दुइ ब-इ प्रभुर हैला निद्रा-भङ्ग ॥91॥

सुखे-अच्छी तरह से; निद्रा हैल प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु सो गये; गोविन्द-गोविन्द; चापे अङ्ग-शरीर को दबाया; दण्ड-दुइ ब-इ-लगभग पैंतालीस मिनट के बाद; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; हैला हुआ; निद्रा-भङ्ग-निद्रा टूटना।

अनुवाद

जब गोविन्द ने उनका शरीर दबाया, तो महाप्रभु लगभग 45 मिनट तक अच्छी तरह सोये और तब उनकी नींद टूटी।

गोविन्दे देखिया प्रभु बले क्रुद्ध हञा ।

'आजि केने एत-क्षण आछिस् वसिया? ॥ 92॥

गोविन्दे देखिया-गोविन्द को देखकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; बले-कहा; क्रुद्ध हञा-क्रोधित होकर; आजि-आज; केने-क्यों; एत-क्षण-इतने समय तक; आछिस् तुम रहे हो; वसिया-बैठे।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने गोविन्द को अपनी बगल में बैठे देखा, तो वे कुछ नाराज हुए और पूछा, "तुम आज इतनी देर तक यहाँ क्यों बैठे रहे हो?"

मोर निद्रा हैले केने ना गेला प्रसाद खाइते?' ।

गोविन्द कहे—'द्वारे शुइला, याइते नाहि पथे' ॥93॥

मोर निद्रा हैले–मैं निद्राव्यवस्था में था; केने-क्यों; ना गेला–नहीं गया; प्रसाद खाइते-प्रसाद सेवन करने; गोविन्द कहे-गोविन्द ने कहा; द्वारे द्वार; शुइला-आप रोक रहे थे; याइते-जाना; नाहि पथे—मार्ग नहीं था।

अनुवाद

महाप्रभु ने पूछा, "मेरे सो जाने के बाद तुम प्रसाद ग्रहण करने क्यों नहीं गये?" गोविन्द ने उत्तर दिया, "आप द्वार रोककर लेटे हुए थे और जाने के लिए कोई रास्ता न था।"

प्रभु कहे,—'भितरे तबे आइला केमने? ।

तैछे केने प्रसाद लैते ना कैला गमने?' ॥94॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; भितरे-भीतर; तबे-उस समय; आइला-तुम आये; केमने-किस प्रकार; तैछे-उसी प्रकार; केने-क्यों; प्रसाद लैते–प्रसाद सेवन करने; ना कैला गमने-नहीं गये।

अनुवाद

महाप्रभु ने पूछा, "तुमने कमरे में प्रवेश कैसे किया? उसी तरह से तुम भोजन करने बाहर क्यों नहीं गये?"

गोविन्द कहे मने–"आमार 'सेवा' से 'नियम' ।

अपराध ह–उक, किबा नरके गमन" ॥ 95॥

गोविन्द कहे-गोविन्द ने कहा; मने-मन में; आमार सेवा-मेरी सेवा; से नियम-यह नियम है; अपराध ह-उक-अपराध क्यों न हो; किबा-या; नरके-नर्क में; गमन-जाना।

अनुवाद

गोविन्द ने मन ही मन उत्तर दिया, "मेरा कर्तव्य तो सेवा करना है, चाहे मुझे अपराध करना पड़े या नरक जाना पड़े।

'सेवा' लागि' कोटि 'अपराध' नाहि गणि ।

स्व-निमित्त 'अपराधाभासे' भय मानि' ॥ 96 ॥

सेवा लागि'-सेवा के लिए; कोटि अपराध-करोड़ों अपराध; नाहि गणि-मुझे चिन्ता नहीं; स्व-निमित्त-स्वयं के लिए; अपराध-आभासे-अपराध के आभास से; भय मानि–मुझे भय है।

अनुवाद

"यदि महाप्रभु की सेवा के लिए मुझे करोड़ों अपराध करने पड़े, तो भी मैं बुरा नहीं मानूंगा, किन्तु मैं अपने लिए एक अपराध की झलक से भी अत्यधिक डरता हूँ।"

एत सब मने करि' गोविन्द रहिला ।

प्रभु ये पुछिला, तार उत्तर ना दिला ॥ 97॥

एत सब-यह सब; मने करि'-मन में सोचकर; गोविन्द रहिला–गोविन्द चुप रहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ये-क्या; पुछिला-पूछा; तार-उसका; उत्तर-उत्तर; ना दिला नहीं दिया।

अनुवाद

इस तरह सोचकर गोविन्द मौन रहा। उसने महाप्रभु के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया।

प्रत्यह प्रभुर निद्राय यान प्रसाद ल-इते ।

से दिवसेर श्रम देखि' लागिला चापिते ॥98॥

प्रति-अह-प्रतिदिन; प्रभुर निद्राय-प्रभु की निद्रावस्था के समय; यान-वह जाता था; प्रसाद ल-इते-प्रसाद सेवन करने; से दिवसेर-उस दिन; श्रम-थकावट; देखि'-देखकर; लागिला चापिते-मलने लगा।

अनुवाद

गोविन्द का अभ्यास था कि वह तब भोजन करता, जब महाप्रभु सोये होते। किन्तु उस दिन महाप्रभु की थकावट देखकर गोविन्द उनके शरीर को दबाता रहा।

याइतेह पथ नाहि, याइबे केमने? ।

महा-अपराध हय प्रभुर लङ्घने ॥99॥

याइतेह-जाने के लिए; पथ नाहि-मार्ग न था; याइबे केमने-कैसे जाता; महा-अपराध-महान् अपराध; हय–होता; प्रभुर लङ्घने-श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर को लाँघना।

अनुवाद

चूँकि जाने के लिए कोई रास्ता न था, अतः वह कैसे जाता? जब उसने महाप्रभु के शरीर को लाँघने का सोचा, तो उसे लगा कि यह बहुत बड़ा अपराध है।

एइ सब हय भक्ति-शास्त्र-सूक्ष्म मर्म ।

चैतन्येर कृपाय जाने एइ सब धर्म ॥100॥

एइ सब-यह सब; हय-है; भक्ति-शास्त्र-भक्ति शास्त्र; सूक्ष्म मर्म–सूक्ष्म नियम; चैतन्येर कृपाय-श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से; जाने-व्यक्ति समझ सकता है; एइ सब-यह सब; धर्म-भक्ति के नियम।

अनुवाद

भक्ति में ये सब शिष्टाचार की सूक्ष्म बातें हैं। जिसने श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त की है, केवल वही इन तत्त्वों को समझ सकता है।

तात्पर्य

कर्मीजन भक्ति के सूक्ष्म तत्त्वों को नहीं समझ सकते, क्योंकि वे भक्ति के विधिविधान-परक महत्त्व को ही स्वीकार करते हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि भक्ति किस तरह भगवान् को तुष्ट करती है। कर्मीजन औपचारिक क्रियाओं को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में उन्नति करने का साधन मानते हैं। यद्यपि ये धर्म का पालन करने के भौतिक परिणाम मात्र हैं, किन्तु कर्मीजन इन्हें ही सब कुछ मानते हैं। ये अनुष्ठान कर्म कहलाते हैं। जो कर्मी भक्ति को शिथिलतापूर्वक ग्रहण करते हैं और इस तरह भौतिक कर्म के स्तर पर बने रहते हैं, वे प्राकृत सहजिया कहलाते हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि वात्सल्य तथा माधुर्य

प्रेम में किस तरह शुद्ध भक्ति की जाती है, क्योंकि इसे वही शुद्ध भक्त समझ सकता है, जिस पर श्री चैतन्य महाप्रभु की विशेष कृपा होती है।

भक्त-गुण प्रकाशिते प्रभु बड़ रङ्गी ।

एइ सब प्रकाशिते कैला एत भङ्गी ॥ 101॥

भक्त-गुण-भक्तों के गुण; प्रकाशिते-प्रकट होना; प्रभु-प्रभु; बड़ रङ्गी-बहुत उत्साहित; एई सब-यह सब; प्रकाशिते-प्रकट होना; कैला-उन्होंने प्रदर्शित किया; एत-इस प्रकार की; भङ्गी–घटना।

अनुवाद

महाप्रभु अपने भक्तों के उच्च गुणों को प्रकट करने में अत्यधिक रुचि रखते हैं और यही कारण है कि उन्होंने इस घटना को घटने दिया।

सङ्क्षेपे कहिलुँ एइ परि-मुण्डा-नृत्य ।

अद्यापिह गाय याहा चैतन्येर भृत्य ॥102॥

सङ्क्षेपे-संक्षिप्त में; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; एइ–यह; परि-मुण्डा-नृत्य-जगन्नाथ मन्दिर के कक्ष में किया गया नृत्य; अद्यापिह-आज तक; गाय-गाए; याहा-इसे; चैतन्येर भृत्य-श्री चैतन्य महाप्रभु के सेवक।

अनुवाद

इस तरह मैंने जगन्नाथ मन्दिर के सभा भवन में श्री चैतन्य महाप्रभु के नृत्य करने का संक्षिप्त वर्णन किया है। श्री चैतन्य महाप्रभु के सेवक अब भी इस नृत्य का गुणगान करते हैं।

एइ-मत महाप्रभु लञा निज-गण ।

गुण्डिचा-गृहेर कैला क्षालन, मार्जन ॥ 103 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा निज-गण-अपने व्यक्तिगत सहयोगीयों के साथ; गुण्डिचा-गृहेर-गुंडीचा मन्दिर; कैला-प्रदर्शित किया; क्षालन-धोना; मार्जन-शुद्ध करना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने हमेशा की तरह अपने निजी संगियों के साथ गुण्डिचा मन्दिर की धुलाई तथा सफाई की।

पूर्ववत् कैला प्रभु कीर्तन, नर्तन ।

पूर्ववत् टोटाय कैला वन्य-भोजन ॥ 104॥

पूर्व-वत्-पहले की तरह; कैला–प्रदर्शित किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कीर्तन-कीर्तन; नर्तन-नृत्य; पूर्व-वत्-जैसे पहले; टोटाय-बाग में; कैला-किया; वन्य-भोजन-भोज।।

अनुवाद

महाप्रभु ने पहले की ही तरह नृत्य और कीर्तन किया और तब बगीचे में भोजन किया।

पूर्ववत् रथ-आगे करिला नर्तन ।

हेरा-पञ्चमी-यात्रा कैला दरशन ॥ 105॥

पूर्व-वत्-पहले की तरह; रथ-आगे-रथ के सामने; करिला नर्तन-नृत्य किया; हेरा-पञ्चमी-यात्रा–हेरा पंचमी का उत्सव; कैला दरशन-उन्होंने देखा।

अनुवाद

उन्होंने पहले ही की तरह जगन्नाथजी के रथ के आगे नृत्य किया और हेरा पंचमी उत्सव मनाया।

चारि-मास वर्षाय रहिला सब भक्त-गण ।

जन्माष्टमी आदि यात्रा कैला दरशन ॥106 ॥

चारि-मास-चार महीनों के लिए; वर्षाय-वर्षा ऋतु के; रहिला-रहे; सब भक्त-गण-सभी भक्त; जन्माष्टमी आदि यात्रा-जन्माष्टमी इत्यादि त्योहार; कैला दरशन-मनाया।

अनुवाद

बंगाल से आये सारे भक्त वर्षा-ऋतु के चार महीने तक जगन्नाथपुरी में रहे और उन्होंने कृष्ण जन्माष्टमी तथा अन्य अनेक उत्सव मनाये।

पूर्वे यदि गौड़ ह-इते भक्त-गण आइल ।

प्रभुरे किछु खाओयाइते सबार इच्छा हैल ॥107 ॥

पूर्वे-पूर्व काल में; यदि-जब; गौड़ ह-इते-बंगाल से; भक्त-गण आइल-भक्त पहुँचे; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; किछु-कुछ; खाओयाइते-भोजन कराने की; सबार इच्छा हैल-सबकी इच्छा हुई।

अनुवाद

पहले जब बंगाल से सारे भक्त आये थे, तो उनकी इच्छा थी कि श्री चैतन्य महाप्रभु को खाने के लिए कोई न कोई वस्तु दें।

केह कोन प्रसाद आनि' देय गोविन्द-ठाञि ।

'इहा येन अवश्य भक्षण करेन गोसाञि' ॥108॥

केह-कोई; कोन प्रसाद-भिन्न प्रकार का प्रसाद; आनि'–लाया; देय-पहुँचाया; गोविन्द-ठाञि-गोविन्द को; इहा-यह; येन-कि; अवश्य-अवश्य; भक्षण करेन-खायें; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

हर भक्त कोई न कोई प्रसाद लाता। वह इसे इस विनती के साथ गोविन्द को सौंपता कि, "कृपया ऐसा करें कि महाप्रभु इस प्रसाद को अवश्य खायें।"

केह पैड़, केह नाडु, केह पिठा-पाना ।

बहु-मूल्य उत्तम-प्रसाद-प्रकार यार नाना ॥109॥

केह-कोई; पैड़-पैड़ा (नारियल से बना पदार्थ); केह-कोई; नाडु-लड्डु; केह-कोई; पिठा–पिठा; पाना-मीठे चावल; बहु-मूल्य-बहुमूल्य; उत्तम-प्रसाद-अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन; प्रकार यार नाना-भिन्न भिन्न प्रकार का।

अनुवाद

कोई पैड़ (नारियल का एक व्यंजन), तो कोई लड्डु, तथा कोई पिष्टक (पिठा) तथा खीर ले आया। यह प्रसाद तरह-तरह का था और बहुमूल्य था।

'अमुकेइ दियाछे' गोविन्द करे निवेदन ।

'धरि' राख' बलि' प्रभु ना करेन भक्षण ॥110॥

अमुक्-अमुक भक्त; एइ-यह; दियाछे–दिया है; गोविन्द-गोविन्द करे निवेदन-बताये; धरि' राख-कृपया इन्हें स्वीकार करें; बलि' कहकर; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; ना करेन भक्षण–सेवन न किया।

अनुवाद

गोविन्द प्रसाद को श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने रखता और कहता, "इसे अमुक भक्त ने दिया है। किन्तु महाप्रभु उसे वास्तव में खाते नहीं थे। वे केवल इतना ही कहते, "इसे कमरे में रख दो।"

धरिते धरिते घरेर भरिल एक कोण ।

शत-जनेर भक्ष्य यत हैल सञ्चयन ॥ 111॥

धरिते धरिते-रखते रखते; घरेर–कमरे का; भरिल–भर गया; एक कोण-एक कोना; शत-जनेर-एक सौ लोगों को; भक्ष्य–खिलाने के लिए पर्याप्त; अत–सब; हैल-था; सञ्चयन-संग्रहण।

अनुवाद

गोविन्द इस खाद्य सामग्री को संचित करता रहा, अतः जल्दी ही कमरे का एक कोना भर गया। यह सामग्री कम से कम एक सौ लोगों के भोजन के लिए पर्याप्त थी।

गोविन्देरे सबे पुछे करिया यतन ।

‘आमा-दत्त प्रसाद प्रभुरे कि कराइला भक्षण? ॥ 112॥

गोविन्देरे-गोविन्द को; सबे-सभी भक्त; पुछे-पूछते; करिया यतन-अत्यन्त उत्साहपूर्वक; आमा-दत्त प्रसाद मैंने दिया हुआ प्रसाद; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कि कराइला भक्षण–सेवन करने दिया?

अनुवाद

सारे भक्त अत्यन्त उत्सुकता से गोविन्द से पूछते, “क्या आपने मेरे द्वारा लाया हुआ प्रसाद श्री चैतन्य महाप्रभु को दिया?”

काहाँ किछु कहि' गोविन्द करे वञ्चन ।

आर दिन प्रभुरे कहे निर्वेद-वचन ॥113 ॥

काहाँ-किसी को; किछ-कुछ; कहि'–कहकर; गोविन्द-गोविन्द; करे वञ्चन-झूठ कहता; आर दिन-एक दिन; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कहे-कहा; निर्वेद-वचन-निराशापूर्वक।

अनुवाद

जब भक्तगण गोविन्द से पूछते, तो उसे उनसे झूठ बोलना पड़ता। इसलिए एक दिन उसने निराश होकर महाप्रभु से कहा।

“आचार्यादि महाशय करिया यतने ।

तोमारे खाओयाइते वस्तु देन मोर स्थाने ॥ 114॥

आचार्य-आदि-अद्वैत आचार्य के नेतृत्व में; महाशय-सम्माननीय सज्जन; करिया यतने-बहुत प्रयास करके; तोमारे खाओयाइते-आपको खिलाने के लिए; वस्तु देन-विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ; मोर स्थाने-मुझे।

अनुवाद

"अद्वैत आचार्य इत्यादि अनेक सम्माननीय भक्त आपके लिए तरह-तरह का भोजन मुझे सौंपने के लिए बड़ा प्रयास करते हैं।

तुमि से ना खाओ, ताँरा पुछे बार बार ।

कत वञ्चना करिमु, केमने आमार निस्तार?” ॥115॥

तुमि-आप; से—यह; ना खाओ-नहीं खाते हैं; ताँरा–वे; पुछे-पूछते हैं; बार बार-बारम्बार; कत वञ्चना करिमु-कब तक मैं छलं; केमने-कैसे; आमार-मेरी; निस्तार–मुक्ति।

अनुवाद

आप उसे नहीं खाते हैं, किन्तु वे मुझसे बारम्बार पूछते रहते हैं। मैं कब तक उन्हें ठगता रहूँगा? मैं इस उत्तरदायित्व से कब छुटकारा पा सकूँगा?”

प्रभु कहे,–'आदि-वस्या' दुःख काँहे माने? ।

केबा कि दियाछे, ताहा आनह एखाने ॥116 ॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; आदि-वस्या-तुम जो मेरे साथ बहुत समय से निवास कर रहे हो; दुःख काँहे माने-तुम इस पर दुःखी क्यों हो?; केबा कि दियाछे-उन्होंने जो कुछ दिया है; ताहा–वह सब; आनह एखाने-इधर लाओ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "तुम मूर्ख की तरह क्यों इतने दुःखी हो? उन लोगों ने तुम्हें जो दिया है, उसे मेरे पास ले आओ।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनाद ठाकुर बतलाते हैं कि आदि-वस्या शब्द उस व्यक्ति का द्योतक है, जो किसी के साथ दीर्घकाल से रह रहा हो। गोविन्द को आदिवस्या कहकर इसलिए सम्बोधित किया गया, क्योंकि वह महाप्रभु के साथ दीर्घकाल से रह रहा था, जबकि अन्य भक्त जो अधिकतर नये थे, आते-जाते रहते थे। वस्तुतः महाप्रभु ने गोविन्द से कहा, "चूँकि तुम मेरे साथ दीर्घकाल से रह रहे हो, अतएव तुम्हें इस बात के लिए मूर्ख की तरह निराश नहीं होना चाहिए। तुम सारा भोजन ले आओ और तुम देखोगे कि मैं उसे खा सकता हूँ।"

एत बलि' महाप्रभु वसिला भोजने ।

नाम धरि' धरि' गोविन्द करे निवेदने ॥117॥

एत बलि'—यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; वसिला भोजने-खाने के लिए बैठे; नाम-नाम; धरि धरि'–कहकर (बताकर); गोविन्द-गोविन्द; करे निवेदने-प्रदान करे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु खाने बैठ गये। तब गोविन्द उन्हें एक-एक करके सारे पकवान देने लगा और साथ ही देने वाले का नाम भी बताता गया।

“आचार्येर एइ पैड़, पाना-सर-पूपी ।

एइ अमृत-गुटिका, मण्डा, कर्पूर-कूपी ॥118॥

आचार-अद्वैत आचार्य ने; एइ–यह; पैड़-पैड़ा; पाना-खीर; सर-पूपी–मलाई से बने रोट; एइ-ये; अमृत-गुटिका-मिठाई; मण्डा-गोलाकार मिठाई; कर्पूर-कूपी-कपूर से भरा मटका (पात्र)।

अनुवाद

“पैड़, खीर, मलाई के बने रोट तथा अमृत गुटिका, मण्डा एवं कपूर का पात्र-ये सारी वस्तुएँ अद्वैत आचार्य द्वारा दी गई हैं।

श्रीवास-पण्डितेर एइ अनेक प्रकार ।

पिठा, पाना, अमृत-मण्डा पद्म-चिनि आर ॥ 119॥

श्रीवास-पण्डितेर-श्रीवास पण्डित के; एइ-ये; अनेक प्रकार-अनेक प्रकार; पिठा-रोट; पाना–मलाई; अमृत-मण्डा-एक प्रकार की मिठाई; पद्म-चिनि-पद्म चिनि; आर-एवं।

अनुवाद

“इसके बाद श्रीवास पण्डित द्वारा दी गई खाद्य सामग्रियाँ हैं-रोट, मलाई, अमृतमण्डा तथा पद्मचिनि।

आचार्यरत्नेर एइ सब उपहार ।

आचार्यनिधिर एइ, अनेक प्रकार ॥120॥

आचार्यरत्नेर–चन्द्रशेखर के; एई-ये; सब-सब; उपहार–उपहार; आचार्यनिधिर-आचार्यनिधी के; एइ-ये; अनेक प्रकार अनेक प्रकार के।

अनुवाद

“ये सारे उपहार आचार्यरत्न के हैं और ये तरह-तरह के उपहार आचार्य निधि द्वारा दिये गये हैं।

वासुदेव-दत्तेर एइ मुरारि-गुप्तेर आर ।

बुद्धिमन्त-खाँनेर एइ विविध प्रकार ॥121॥

वासुदेव-दत्तेर–वासुदेव दत्त का; एइ–ये; मुरारि-गुप्तेर-मुरारी गुप्त का; आर-एवं; बुद्धिमन्त-खाँनेर बुद्धिमन्त खान के; एइ-ये; विविध प्रकार–विभिन्न प्रकार के।

अनुवाद

ये नाना प्रकार की खाद्य वस्तुएँ वासुदेव दत्त, मुरारि गुप्त तथा बुद्धिमन्त खान द्वारा दी गई हैं।

श्रीमान् सेन, श्रीमान् पण्डित, आचार्य-नन्दन ।

ताँ-सबार दत्त एइ करह भोजन ॥122॥

श्रीमान्-सेन–श्रीमान सेन; श्रीमान्-पण्डित-श्रीमान पण्डित; आचार्य-नन्दन-आचार्य नन्दन; ताँ-सबार-सभी का; दत्त–दिया हुआ; एइ-ये; करह भोजन-कृपया भोजन करें।

अनुवाद

ये उपहार श्रीमान सेन, श्रीमान पण्डित तथा आचार्य नन्दन द्वारा दिये गये हैं। कृपया इन सबों को खायें।

कुलीन-ग्रामेर एइ आगे देख यत ।

खण्ड-वासी लोकेर एइ देख तत" ॥123॥

कुलीन-ग्रामेर-कुलीन ग्राम के निवासी; एइ-ये; आगे-पहले; देख-देखा; यत-सब; खण्ड-वासी लोकेर-खण्ड के निवासी का; एइ-ये; देख-देखा; तत-बहुत सारा।

अनुवाद

ये वस्तुएँ कुलीनग्राम के निवासियों द्वारा बनाई हुई हैं और इन वस्तुओं को खण्ड के निवासियों ने बनाई हैं।"

ऐछे सबार नाम लञा प्रभुर आगे धरे ।

सन्तुष्ट हञा प्रभु सब भोजन करे ॥124॥

ऐछे—इस प्रकार; सबार नाम-सबका नाम; लञा-लेकर; प्रभुर आगे-प्रभु के आगे; धरे-रखा; सन्तुष्ट हञा-सन्तुष्ट होकर; प्रभु-प्रभु; सब-सब; भोजन करे-खाने लगे।

अनुवाद

इस तरह गोविन्द ने महाप्रभु के सामने भोजन रखते हुए हर एक का नाम लिया। अत्यन्त सन्तुष्ट होकर महाप्रभु सारी वस्तुएँ खाने लगे।

यद्यपि मासेकेर वासि मुकुता नारिकेल ।

अमृत-गुटिकादि, पानादि सकल ॥ 125॥

तथापि नूतन-प्राय सब द्रव्येर स्वाद ।

'वासि' विस्वाद नहे सेइ प्रभुर प्रसाद ॥ 126॥

यद्यपि-यद्यपि; मासेकेर-एक मास; वासि-शेष रहा; मुकुता नारिकेल–नारियल से बना कड़क और मीठा पदार्थ; अमृत-गुटिका-अमृत गुटिका; आदि-आदि; पाना-मीठा रस; आदि–इत्यादि; सकल-

सब; तथापि तथापि; नूतन-प्राय-मानो ताजा; सब द्रव्येर-सब खाद्य पदार्थ का; स्वाद-स्वाद; वासि–बासी; विस्वाद-बेस्वाद; नहे-नहीं था; सेइ-यह; प्रभुर प्रसाद-महाप्रभु की कृपा।।

अनुवाद

मुकुता नारिकेल, अमृत गुटिका, अनेक प्रकार के मीठे पेय तथा अन्य पदार्थ कम से कम एक मास पहले के बने हुए थे। यद्यपि वे पुराने थे, किन्तु बेस्वाद या बासी नहीं हुए थे। निस्सन्देह, वे सभी ताजे बने रहे थे। यही श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा है।

शत-जनेर भक्ष्य प्रभु दण्डेके खाइला! ।

‘आर किछु आछे?’ बलि' गोविन्दे पुछिला ॥127॥

शत-जनेर-एक सौ लोगों का; भक्ष्य-खाद्य पदार्थ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; दण्डेके खाइला-चौबीस मीनटों में भोजन कर लिया; आर किछु आछे-और कुछ है; बलि' कहकर; गोविन्दे-गोविन्द को; पुछिला-पूछा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अल्पकाल में ही सौ लोगों के लिए पर्याप्त भोजन खा लिया। तब उन्होंने गोविन्द से पूछा, “क्या अब भी कोई चीज बची है?”

गोविन्द बले,–'राघवेर झालि मात्र आछे' ।

प्रभु कहे,–'आजि रहु, ताहा देखिमु पाछे' ॥128॥

गोविन्द बले–गोविन्द ने उत्तर दिया; राघवेर झालि-राघव के दिये गये थैले; मात्र-मात्र; आछे-हैं; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; आजि-आज; रहु-रहने दो; ताहा–यह; देखिमु-मैं देखूगा; पाछे-बाद में।

अनुवाद

गोविन्द ने उत्तर दिया, "अब केवल राघव के थैले बचे हैं।" महाप्रभु ने कहा, "आज उन्हें रहने दो। मैं उन्हें बाद में देखूँगा।"

आर दिन प्रभु यदि निभृते भोजन कैला ।

राघवेर झालि खुलि' सकल देखिला ॥129॥

आर दिन-अगले दिन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यदि-जब; निभृते-एकान्त में; भोजन कैला–भोजन किया; राघवेर-राघव पण्डित के; झालि-थैले; खुलि'–खोलकर; सकल देखिला-सब देखा।

अनुवाद

अगले दिन जब महाप्रभु एकान्त स्थान में भोजन कर रहे थे, तब उन्होंने राघव के थैले खोले और एक-एक करके उनके भीतर देखा।

सब द्रव्येर किछु किछु उपयोग कैला ।

स्वादु, सुगन्धि देखि' बहु प्रशंसिला ॥ 130॥

सब द्रव्येर–सभी पदार्थ; किछु किछु-कुछ कुछ; उपयोग कैला-खाया; स्वादु-स्वादिष्ट; सुगन्धि–सुगन्धित; देखि'–देखकर; बहु-अत्यन्त; प्रशंसिला–प्रशंसा की।

अनुवाद

उन्होंने उनमें से हर वस्तु को थोड़ा-थोड़ा चखा और उनके स्वाद तथा गन्ध की प्रशंसा की।

वत्सरेक तरे आर राखिला धरिया ।

भोजन-काले स्वरूप परिवेशे खसाञा ॥131॥

वत्सरेक-एक वर्ष; तरे के लिए; आर-शेष; राखिला धरिया-भण्डार में रखा; भोजन-काले-भोजन के समय; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; परिवेशे-व्यवस्था करते थे; खसाञा-थोड़ा-थोड़ा देना।

अनुवाद

फिर बचे विभिन्न प्रकार के प्रसाद को वर्ष भर खाने के लिए रख दिया गया। जब श्री चैतन्य महाप्रभु भोजन करते, तब स्वरूप दामोदर गोस्वामी इसे थोड़ा-थोड़ा करके परोसते।

कभु रात्रि-काले किछु करेन उपयोग ।

भक्तेर श्रद्धार द्रव्य अवश्य करेन उपभोग ॥132॥

कभु-कभी; रात्रि-काले-रात्रि काल में; किछ-कुछ; करेन उपयोग–उपयोग किया; भक्तेर-भक्तों के; श्रद्धार-श्रद्धा; द्रव्य-पदार्थ; अवश्य–अवश्य; करेन उपभोग-उपभोग करें।

अनुवाद

कभी-कभी महाप्रभु इसमें से कुछ भाग को रात में खाते। महाप्रभु अपने भक्तों द्वारा श्रद्धा तथा प्रेम से प्रस्तुत की गई वस्तुओं का निश्चय ही भोग करते हैं।

तात्पर्य

कृष्ण अपने भक्तों तथा उनकी भेंटों से अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। इसलिए भगवद्गीता (9.26) में वे कहते हैं :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः॥

"यदि कोई प्रेम तथा श्रद्धा से मुझे एक पत्ती, फूल, फल या जल प्रदान करता है, तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।" यहाँ भी हम देखते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारा भोजन स्वीकार किया, क्योंकि यह उनके भक्तों

द्वारा अर्पित किया गया था। कभी वे दिन में खाते और कभी रात में, किन्तु वे सदैव यही सोचा करते कि चूंकि इसे उनके भक्तों ने बड़े प्रेम तथा स्नेह से दिया है, अतएव उन्हें उसे खाना चाहिए।

एइ-मत महाप्रभु भक्त-गण-सङ्गे ।

चातुर्मास्य गोङाइला कृष्ण-कथा-रङ्गे ॥133॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; भक्त-गण-सङ्गे–उनके व्यक्तिगत भक्तों के साथ; चातुर्मास्य गोङमइला–वर्षा ऋतु के चार महीने बिताये; कृष्ण-कथा-रङ्गे-कृष्ण कथा वर्णित करने के सुख में।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु ने अपने भक्तों के साथ कृष्ण कथा की चर्चा करते हुए चातुर्मास की सारी अवधि सुखपूर्वक बिताई।

मध्ये मध्ये आचार्यादि करे निमन्त्रण ।

घरे भात रान्धे आर विविध व्यञ्जन ॥ 134॥

मध्ये मध्ये–अन्तराल में; आचार्य-आदि-अद्वैत आचार्य इत्यादि; करे निमन्त्रण-निमन्त्रण देते; घरे-घर में; भात-चावल; राधे-पकाये; आर-तथा; विविध व्यञ्जन-विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ।

अनुवाद

समय-समय पर अद्वैत आचार्य तथा अन्य भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु को घर में पकाया चावल तथा नाना प्रकार की सब्जियाँ खाने के लिए निमन्त्रित करते रहते।

मरिचेर झाल, आर मधुराम्ल आर ।

आदा, लवण, लेम्बु, दुग्ध, दधि, खण्ड-सार ॥ 135॥

शाक दुइ-चारि, आर सुकुतार झोल ।

निम्ब-वार्ताकी, आर भृष्ट-पटोल ॥ 136॥

मरिचेर झाल–काली मिर्च से बना तीखा पदार्थ; आर-एवं; मधुराम्ल-खट्टा-मीठा पदार्थ; आर-इसके साथ; आदा-अदरक; लवण-नमकीन पदार्थ; लेम्बु-निंबु; दुग्ध-दूध; दधि-दही; खण्ड-सार-पनीर; शाक दुइ-चारि-दो चार प्रकार की पालक; आर-एवं; सुकुतार झोल-खरबूज से बना झोल; निम्ब-वार्ताकी-निंब के पत्तो के मिश्रण के साथ बैंगन; आर—एवं; भृष्ट-पटोल–तला हुआ पटोल।

अनुवाद

उन्होंने काली मिर्च से बनी तीखी वस्तुएँ, मीठे तथा खट्टे व्यंजन, अदरक, नमकीन, नींबू, दूध, दही, पनीर, दो-चार तरह की शाक-सब्जियाँ, सुकुता से बना सूप, नीम के फूलों से मिश्रित बैंगन तथा तला हुआ पटोल खाने को दिया।

भृष्ट फुल-बड़ी, आर मुद्ग-डालि-सूप ।

विविध व्यञ्जन रान्धे प्रभुर रुचि-अनुरूप ॥137॥

भृष्ट-तला हुआ; फुल-बड़ी–दाल से बना पदार्थ; आर-एवं; मुद्ग-डालि-सूप-मुंग दाल से बनी तरल वस्तु; विविध व्यञ्जन–विभिन्न प्रकार की सब्जी; राधे-पकाते थे; प्रभुर रुचि-अनुरूप-श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त स्वादिष्ट लगती थी।

अनुवाद

उन्होंने फुलबड़ी, मूंग की दाल तथा अनेक तरकारियाँ दीं, जो महाप्रभु के स्वाद के अनुकूल पकाई गई थीं।

जगन्नाथेर प्रसाद आने करिते मिश्रित ।

काहाँ एका यायेन, काहाँ गणेर सहित ॥138॥

जगन्नाथेर-जगन्नाथ भगवान् के; प्रसाद-प्रसाद; आने-लाकर; करिते मिश्रित-मिश्रण करते थे; काहाँ-कहीं; एका यायेन-अकेले जाते; काहाँ-कहीं; गणेर सहित-भक्तों के साथ।

अनुवाद

वे इन खाद्यान्नों के साथ जगन्नाथजी का प्रसाद मिला देते। जब श्री चैतन्य महाप्रभु निमन्त्रण स्वीकार करते, तो कभी वे अकेले जाते और कभी अपने संगियों के साथ जाते।

आचार्यरत्न, आचार्यनिधि, नन्दन, राघव ।

श्रीवास-आदि यत भक्त, विप्र सब ॥139॥

आचार्यरत्न-आचार्यरत्न; आचार्यनिधि-आचार्यनिधि; नन्दन-नन्दन आचार्य; राघव-राघव पण्डित; श्रीवास-आदि-श्रीवास आदि; यत भक्त-सभी भक्त; विप्र सब-सभी ब्राह्मण।।

अनुवाद

आचार्यरत्न, आचार्यनिधि, नन्दन आचार्य, राघव पण्डित तथा श्रीवास जैसे सारे के सारे भक्त ब्राह्मण जाति के थे।

एइ-मत निमन्त्रण करेन यत्न करि ।

वासुदेव, गदाधर-दास, गुप्त-मुरारि ॥ 140 ॥

कुलीन-ग्रामी, खण्ड-वासी, आर व्रत जन ।

जगन्नाथेर प्रसाद आनि' करे निमन्त्रण ॥ 141॥

एइ-मत-इस प्रकार; निमन्त्रण-निमन्त्रण; करेन-दिया; यत्न करि–प्रेम से; वासुदेव-वासुदेव; गदाधर-दास-गदाधर दास; गुप्त-मुरारि-मुरारी गुप्त; कुलीन-ग्रामी–कुलीन ग्राम के निवासी; खण्ड-वासी–

खण्ड के निवासी; आर-एवं; यत जन-अन्य लोग; जगन्नाथेर प्रसाद-जगन्नाथ का प्रसाद; आनि'–लाकर; करे निमन्त्रण-निमन्त्रण दिया।

अनुवाद

वे महाप्रभु को निमन्त्रण दिया करते। वासुदेव दत्त, गदाधर दास, मुरारि गुप्त, कुलीन ग्राम तथा खण्ड ग्राम के वासी एवं अन्य अनेक भक्त, जो ब्राह्मण जाति के नहीं थे, भगवान जगन्नाथ को अर्पित भोजन खरीदा करते और तब श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रित किया करते।

तात्पर्य

न तो कुलीन ग्राम के निवासी, जैसे कि सत्यराज खान तथा रामानन्द वसु, जाति के ब्राह्मण थे, न ही मुकुन्द दास, नरहरि दास तथा रघुनन्दन जैसे खण्ड के निवासी ब्राह्मण जाति के थे। इसलिए वे बाजार से प्रसाद खरीदा करते, जहाँ जगन्नाथ के भोजन का शेष बेचा जाता और तब वे श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रित करते, जबकि आचार्यरत्न, आचार्यनिधि आदि जो जाति के ब्राह्मण थे, वे घर पर भोजन बनाते और महाप्रभु को निमन्त्रित करते। चैतन्य महाप्रभु उस समय के समाज में प्रचलित मर्यादा का पालन केवल ब्राह्मण जाति के लोगों द्वारा पकाया भोजन प्रसाद के रूप में ग्रहण करके करते, किन्तु सिद्धान्ततः वे अपने भक्तों का निमन्त्रण स्वीकार करते, भले ही वे ब्राह्मण न हों।

शिवानन्द-सेनेर शुन निमन्त्रणाख्यान।

शिवानन्देर बड़-पुत्रेर 'चैतन्य-दास' नाम ॥142॥

शिवानन्द-सेनेर-शिवानन्द सेन का; शुन-सुनो; निमन्त्रण-आख्यान-निमन्त्रण की कथा; शिवानन्देर-शिवानन्द सेन के; बड़-पुत्रेर-ज्येष्ठ पुत्र; चैतन्य-दास नाम-चैतन्य दास नामक।

अनुवाद

अब शिवानन्द सेन द्वारा महाप्रभु को दिये गये निमन्त्रण के बारे में सुनें। उनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम चैतन्य दास था।

प्रभुरे मिलाइते ताँरे सङ्गेइ आनिला ।

मिलाइले, प्रभु ताँर नाम त' पुछिला ॥ 143॥

प्रभुरे मिलाइते-प्रभु से परिचय करना; ताँरे–उसे (चैतन्य दास); सङ्गेइ-संग; आनिला–लाये; मिलाइले-जब परिचय कराया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर-उसका; नाम-नाम; त'–उस पर; पुछिला–पूछा।

अनुवाद

जब शिवानन्द सेन अपने पुत्र चैतन्य दास को महाप्रभु से परिचय कराने के लिए लाये, तब महाप्रभु ने उनसे उनका नाम पूछा।

'चैतन्य-दास' नाम शुनि' कहे गौर-राय ।

'किबा नाम धराञाछ, बुझन ना याय' ॥ 144॥

चैतन्य-दास-चैतन्य दास; नाम-नाम; शुनि'–सुनकर; कहे गौर-राय- श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; किबा-क्या; नाम-नाम; धराञाछ—तुमने दिया; बुझन ना याय-समझ न आया।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने सुना कि उसका नाम चैतन्य दास है, तो उन्होंने कहा, तुमने इसका कैसा नाम रखा है? इसे समझना बहुत कठिन है।"

सेन कहे,–'ये जानिलुँ, सेइ नाम धरिल' ।

एत बलि' महाप्रभुरे निमन्त्रण कैल ॥ 145 ॥

सेन कहे-शिवानन्द सेन ने कहा; ये जानिलुँ-मैं जो जानता था; सेइ नाम-वह नाम; धरिल-रखा; एत बलि'—यह कहकर; महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण कैल-निमन्त्रण दिया।

अनुवाद

शिवानन्द सेन ने उत्तर दिया, "उसका जो नाम रखा गया है, वह मेरे भीतर से उत्पन्न हुआ।" तब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन के लिए निमन्त्रित किया।

जगन्नाथेर बहु-मूल्य प्रसाद आनाइला ।

भक्त-गणे लञा प्रभु भोजने वसिला ॥ 146 ॥

जगन्नाथेर–जगन्नाथ भगवान् का; बहु-मूल्य-बहुमूल्य; प्रसाद–प्रसाद; आनाइला-लाया; भक्त-गणे-भक्तगण; लञा–के संग; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भोजने वसिला-प्रसाद सेवन करने बैठे।

अनुवाद

शिवानन्द सेन भगवान् जगन्नाथ का बहुमूल्य प्रसाद खरीद लाये थे। उसे वे भीतर ले आये और श्री चैतन्य महाप्रभु को दिया, जो अपने संगियों सहित प्रसाद पाने के लिए बैठ गये।

शिवानन्देर गौरवे प्रभु करिला भोजन ।

अति-गुरु-भोजने प्रभुर प्रसन्न नहे मन ॥147॥

शिवानन्देर-शिवानन्द सेन के; गौरवे-गौरव से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करिला भोजन-भोजन किया; अति-गुरु-भोजने-अधिक भोजन करके; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; प्रसन्न नहे मन-मन असन्तुष्ट था।

अनुवाद

शिवानन्द सेन की महिमा के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके आग्रह पर सभी प्रकार के प्रसाद का भोजन किया। किन्तु महाप्रभु आवश्यकता से अधिक खा गये, जिससे उनका मन असन्तुष्ट था।

आर दिन चैतन्य-दास कैला निमन्त्रण ।

प्रभुर 'अभीष्ट' बुझि' आनिला व्यञ्जन ॥ 148 ॥

आर दिन-अगले दिन; चैतन्य-दास-शिवानन्द सेन के पुत्र ने; कैला निमन्त्रण-निमन्त्रित किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; अभीष्ट-इच्छा; बुझि-समझकर; आनिला व्यञ्जन–विभिन्न व्यंजन लाये।

अनुवाद

अगले दिन शिवानन्द सेन के पुत्र चैतन्य दास ने महाप्रभु को निमन्त्रण दिया। किन्तु वह महाप्रभु के मन को समझ चुके थे, इसलिए उन्होंने भिन्न प्रकार के भोजन की व्यवस्था की।

दधि, लेम्बु, आदा, आर फुल-बड़ा, लवण ।

सामग्री देखिया प्रभुर प्रसन्न हैल मन ॥ 149॥

दधि-दही; लेम्बु-निंबु; आदा-अदरक; आर-एवं; फुल-बड़ा-दाल से बना; लवण-नमक; सामग्री देखिया-यह सामग्री देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; प्रसन्न–प्रसन्न; हैल–हुए; मन-मन में।

अनुवाद

उन्होंने दही, नींबू, अदरक, मुलायम बड़े तथा नमक लाकर दिया। यह प्रबन्ध देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से चैतन्य दास ने महाप्रभु के मन की बात जान ली। इसलिए उन्होंने ऐसे भोजन की व्यवस्था की, जो पिछले दिन के गरिष्ठ भोजन का निराकरण कर सके।

आगे चलकर चैतन्य दास संस्कृत के विद्वान बने और उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं। उनकी पुस्तकों में से कृष्ण कर्णामृत का भाष्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। एक अन्य पुस्तक चैतन्य-चरितामृत कहलाती है, जो संस्कृत काव्य है। कहा जाता है कि इसकी रचना भी उन्होंने की।

प्रभु कहे,–"एइ बालक आमार मत जाने ।

सन्तुष्ट ह-इलाँ आमि इहार निमन्त्रणे" ॥150॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; एइ बालक-यह बालक; आमार मत-मेरा मन; जाने-समझता है; सन्तुष्ट ह-इलाँ–सन्तुष्ट हूँ; आमि-मैं; इहार निमन्त्रणे-इसके निमन्त्रण से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यह बालक मेरा मन जानता है। अतएव उसका निमन्त्रण स्वीकार करने से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ।"

एत बलि' दधि-भात करिला भोजन ।

चैतन्य-दासेरे दिला उच्छिष्ट-भाजन ॥ 151॥

एत बलि'—यह कहकर; दधि-भात-दही चावल; करिला भोजन-भोजन किया; चैतन्य-दासेरे–चैतन्य दास को; दिला–उन्होंने दिया; उच्छिष्ट-भाजन-उनका शेष।

अनुवाद

यह कहकर महाप्रभु ने चावल और दही को मिला लिया और चैतन्य दास को अपने भोजन का शेष दिया।

चारि-मास एइ-मत निमन्त्रणे याय ।

कोन कोन वैष्णव 'दिवस' नाहि पाय ॥ 152॥

चारि-मास-चार महीनों तक; एइ-मत-इस प्रकार; निमन्त्रणे याय-श्री चैतन्य महाप्रभु उनके निमन्त्रण स्वीकार करते; कोन कोन वैष्णव-कुछ कुछ वैष्णवों को; दिवस-दिन; नाहि पाय-न मिला।

अनुवाद

इस तरह भक्तों के आमन्त्रण स्वीकार करते हुए चातुर्मास बीत गया। किन्तु निमन्त्रणों की बाढ़ के कारण कुछ वैष्णवों को खाली दिन न मिल सका, जब वे महाप्रभु को बुला सकते।

गदाधर-पण्डित, भट्टाचार्य सार्वभौम ।

इँहा सबार आछे भिक्षार दिवस-नियम ॥153 ॥

गदाधर-पण्डित-गदाधर पण्डित; भट्टाचार्य सार्वभौम सार्वभोम भट्टाचार्य; इँहा सबार-यह सब व्यक्ति; आछे-हैं; भिक्षार-निमन्त्रण स्वीकार करने; दिवस-नियम-हर महीने।

अनुवाद

गदाधर पण्डित तथा सार्वभौम भट्टाचार्य ने तो वे तिथियाँ तय कर दी थीं, जब प्रति मास श्री चैतन्य महाप्रभु उनका निमन्त्रण स्वीकार करते।

गोपीनाथाचार्य, जगदानन्द, काशीश्वर ।

भगवान्, रामभद्राचार्य, शङ्कर, वक्रेश्वर ॥ 154॥

मध्ये मध्ये घर-भाते करे निमन्त्रण ।

अन्येर निमन्त्रणे प्रसादे कौड़ि दुइ-पण ॥155॥

गोपीनाथ-आचार्य–गोपीनाथ आचार्य; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; काशीश्वर-काशीश्वर; भगवान्-भगवान्; रामभद्र-आचार्य रामभद्र आचार्य; शङ्कर-शंकर; वक्रेश्वर–वक्रेश्वर; मध्ये मध्ये–अन्तराल में; घर-भाते-घर में चावल बनाकर; करे निमन्त्रण-निमन्त्रित करते; अन्येर निमन्त्रण–दुसरों को निमन्त्रण करने; प्रसादे–प्रसाद; कौड़ि दुइ-पण-शंख के दो पण (160 शंख)।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य, जगदानन्द, काशीश्वर, भगवान्, रामभद्राचार्य, शंकर तथा वक्रेश्वर-ये सभी ब्राह्मण थे, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रण दिया और घर पर पकाया भोजन प्रदान किया, जबकि अन्य भक्त दो पण का जगन्नाथजी का प्रसाद खरीदकर महाप्रभु को निमन्त्रित करते।

प्रथमे आछिल 'निर्बन्ध' कौड़ि चारि-पण।

रामचन्द्र-पुरी-भये घाटाइला निमन्त्रण ॥156॥

प्रथमे-प्रारम्भ में: आछिल-थाः निर्बन्ध–निर्धारित: कौडि चारि-पण-शंख के चार पण; रामचन्द्र-पुरी-भये-रामचन्द्र पुरी के; घाटाइला–कम हुए; निमन्त्रण-निमन्त्रण का।

अनुवाद

पहले जगन्नाथ प्रसाद का मूल्य चार पण कौड़ियाँ था, किन्तु जब रामचन्द्र पुरी वहाँ था, तब यह मूल्य कम करके आधा हो गया था।

चारि-मास रहि' गौड़ेर भक्ते विदाय दिला।

नीलाचलेर सङ्गी भक्त सङ्गेइ रहिला ॥157॥

चारि-मास रहि'–चार महीनों तक रहकर; गौड़ेर भक्ते-बंगाल से आये गौड़िया भक्तों को; विदाय दिला–विदा किया; नीलाचलेर सङ्गी–जगन्नाथ पुरी में सहयोगी; भक्त-भक्त; सङ्गेइ-के संग; रहिला-रहे।

अनुवाद

बंगाल से आये भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ चार महीनों तक लगातार रहे और तब महाप्रभु ने उन्हें विदा दी। बंगाली भक्तों के चले जाने पर जो भक्त जगन्नाथ पुरी में महाप्रभु के साथ रहने वाले थे, वे उनके साथ रहे।

एइ त' कहिलुँ प्रभुर भिक्षा-निमन्त्रण ।

भक्त-दत्त वस्तु यैछे कैला आस्वादन ॥158॥

एइ त'—इस प्रकार; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; भिक्षा-निमन्त्रण-भोजन के लिए निमन्त्रण; भक्त-दत्त-भक्तों द्वारा प्रस्तुत किया गया; वस्तु-वस्तु; यैछे-जैसे; कैला आस्वादन-उन्होंने आस्वादन किया।

अनुवाद

इस तरह मैंने इसका वर्णन किया है कि महाप्रभु ने किस-किस तरह अपने भक्तों के निमन्त्रण स्वीकार किये और उनके द्वारा अर्पित प्रसाद का आस्वादन किया।

तार मध्ये राघवेर झालि-विवरण ।

तार मध्ये परि-मुण्डा-नृत्य-कथन ॥159॥

तार मध्ये-उसके दौरान; राघवेर-राघव पण्डित के; झालि-विवरण-भोजन के थैलों का वर्णन; तार मध्ये—उसके साथ साथ; परि-मुण्डा-नृत्य-कथन-जगन्नाथ के मन्दिर में किये गये नृत्य का वर्णन।

अनुवाद

उस कथा के बीच में राघव पण्डित के भोजन की थैलियों एवं जगन्नाथ मन्दिर में नृत्य का वर्णन आया है।

श्रद्धा करि' शुने येइ चैतन्येर कथा ।

चैतन्य-चरणे प्रेम पाइबे सर्वथा ॥ 160॥

श्रद्धा करि'-अत्यन्त आस्था एवं प्रेम के साथ; शुने-सुने; येइ-जो व्यक्ति; चैतन्येर कथा-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन; चैतन्य-चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; प्रेम-प्रेम; पाइबे-निश्चित रूप से पायेगा; सर्वथा-अवश्य।

अनुवाद

जो व्यक्ति श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के विषय में सुनता है, वह निश्चय ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के प्रति आनन्दमय प्रेम को प्राप्त करेगा।

शुनिते अमृत-सम जुड़ाय कर्ण-मन ।

सेइ भाग्यवान्, येइ करे आस्वादन ॥ 161॥

शुनिते-सुनने में; अमृत-सम-अमृत के समान; जुड़ाय कर्ण-मन-कर्ण और मन को सन्तुष्ट करता है; सेइ भाग्यवान्-वह अत्यन्त सौभाग्यशाली है; येइ-जो; करे आस्वादन-आस्वादन करे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों की कथाएँ सुनने में अमृत-तुल्य हैं। वे कानों तथा मन दोनों को तुष्ट करने वाली हैं। जो भी इन कार्यकलापों के अमृत का आस्वादन करता है, वह निश्चय ही बड़ा भाग्यशाली है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥162॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमल; यार-जिनके; आश-अपेक्षा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत; कहे-कहे; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा उनकी कृपा की सदैव कामना करते हुए, उनके चरणचिह्नों पर चलकर मैं कृष्णदास श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्य लीला के अन्तर्गत श्री चैतन्य महाप्रभु का भक्तों से प्रसाद ग्रहण शीर्षक दसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय ग्यारह

हरिदास ठाकुर का महाप्रयाण

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में इस अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। इस अध्याय में यह वर्णन किया गया है कि ब्रह्मा हरिदास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु की सहमति से कैसे अपना शरीर त्याग दिया और स्वयं महाप्रभु ने कैसे उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की तथा उनके शरीर को समुद्र तक ले गये। उन्होंने शरीर को गड्ढे में रखा, उसे बालू से ढका और उस स्थान पर एक चबूतरा बना दिया। समुद्र स्नान करने के बाद उन्होंने दूकानदारों से जगन्नाथ जी का प्रसाद माँगा और वहाँ पर एकत्रित भक्तों को प्रसाद बाँटा।

नमामि हरिदासं तं चैतन्यं तं च तत्प्रभुम् ।

संस्थितामपि यन्मूर्ति स्वाङ्के कृत्वा ननर्त यः ॥1॥

नमामि मैं नमस्कार करता हूँ; हरिदासम्-हरिदास ठाकुर को; तम्-वे; चैतन्यम्-श्री चैतन्य महाप्रभु को; तम्-वे; च–साथ ही; तत्-प्रभुम्-उनके प्रभु; संस्थिताम्-मृत; अपि-अवश्य; यत्-जिनका; मूर्तिम्-देह; स्व-अङ्के-उनकी गोद में; कृत्वा-रखकर; ननर्त-नृत्य किया; ग्रः-वे जो॥

अनुवाद

मैं हरिदास ठाकुर तथा उनके स्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने हरिदास ठाकुर के शरीर को अपनी गोद में लेकर नृत्य किया।

जय जय श्री-चैतन्य जय दयामय ।

जयाद्वैत-प्रिय नित्यानन्द-प्रिय जय ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; जय-जय हो; दया-मय-सबसे कृपालु; जय-जय हो; अद्वैत-प्रिय-अद्वैत आचार्य के प्रिय प्रभु; नित्यानन्द-प्रिय-श्री चैतन्य महाप्रभु जो श्री नित्यानन्द प्रभु के प्रिय हैं; जय-जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो, जो अत्यन्त दयालु हैं और जो अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु को अत्यन्त प्रिय हैं।

जय श्रीनिवासेश्वर हरिदास-नाथ ।

जय गदाधर-प्रिय स्वरूप-प्राण-नाथ ॥ 3॥

जय-जय हो; श्रीनिवास-ईश्वर–श्रीनिवास (श्रीवास ठाकुर) के प्रभु की; हरिदास-नाथ-हरिदास ठाकुर के प्रभु; जय-जय हो; गदाधर-प्रिय-गदाधर के प्रिय प्रभु की; स्वरूप-प्राण-नाथ–स्वरूप दामोदर के प्राणनाथ की।

अनुवाद

श्रीनिवास ठाकुर के प्रभु की जय हो! हरिदास ठाकुर के स्वामी की जय हो! गदाधर पण्डित के प्रिय स्वामी की जय हो! स्वरूप दामोदर के प्राणनाथ की जय हो!

जय काशी-प्रिय जगदानन्द-प्राणेश्वर ।

जय रूप-सनातन-रघुनाथेश्वर ॥4॥

जय-जय हो; काशी-प्रिय- श्री चैतन्य महाप्रभु जो काशी मिश्र के अति प्रिय हैं; जगदानन्द-प्राण-ईश्वर–जगदानन्द पण्डित के प्राणप्रिय प्रभु; जय-जय हो; रूप-सनातन-रघुनाथ-ईश्वर–रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी एवं रघुनाथ दास गोस्वामी के प्रभु।

अनुवाद

काशी मिश्र के परम प्रिय श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! वे जगदानन्द के प्राणनाथ हैं और रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामी के प्रभु हैं।

जय गौर-देह कृष्ण स्वयं भगवान् ।

कृपा करि' देह' प्रभु, निज-पद-दान ॥5॥

जय-जय हो; गौर-देह-श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य देह की; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; स्वयम्-स्वयं; भगवान्–परमेश्वर; कृपा करि'–कृपा करें; देह'–कृपया प्रदान करें; प्रभु-हे प्रभु; निज-पद-दान-चरणकमलों में शरण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य स्वरूप की जय हो, जो स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं! हे प्रिय प्रभु, आप अपनी अहैतुकी कृपा द्वारा मुझे अपने चरणकमलों में शरण दीजिये।

जय नित्यानन्द-चन्द्र जय चैतन्येर प्राण ।

तोमार चरणारविन्दे भक्ति देह' दान ॥ 6 ॥

जय-जय हो; नित्यानन्द-चन्द्र-नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; चैतन्येर प्राण-श्री चैतन्य महाप्रभु का जीवन और प्राण; तोमार चरण-अरविन्दे-आपके चरणकमल में; भक्ति-भक्ति; देह'–कृपया प्रदान करें; दान-दान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राणाधार श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! हे प्रभु, आप मुझे अपने चरणकमलों की भक्ति में लगा लें।

जय जयाद्वैत-चन्द्र चैतन्येर आर्य ।

स्व-चरणे भक्ति देह' जयाद्वैताचार्य ॥7॥

जय जय जय जय; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; चैतन्येर आर्य-प्रभु के सम्मान के पात्र; स्व-चरणे-आपके चरणकमलों में; भक्ति देह'–कृपया मुझे भक्ति प्रदान करें; जय-जय हो; अद्वैत-आचार्य-अद्वैत आचार्य की।

अनुवाद

उन अद्वैत आचार्य की जय हो, जिन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु उनकी आयु तथा आदरशीलता के कारण श्रेष्ठ मानते हैं। कृपया मुझे अपने चरणकमलों की भक्ति में लगाएँ।

जय गौर-भक्त-गण, गौर याँर प्राण ।

सब भक्त मिलि' मोरे भक्ति देह' दान ॥8॥

जय-जय हो; गौर-भक्त-गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की; गौर-श्री चैतन्य; याँर–जिनके; प्राण-जीवन और प्राण; सब-सब; भक्त-भक्त; मिलि'–मिलकर; मोरे-मुझे; भक्ति-भक्ति; देह' दान–कृपया प्रदान करें।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो, क्योंकि महाप्रभु उनके जीवन और प्राण हैं। कृपया आप सभी मुझे भक्ति का दान दें।

जय रूप, सनातन, जीव, रघुनाथ।

रघुनाथ, गोपाल,—छय मोर नाथ ॥9॥

जय-जय हो; रूप-रूप गोस्वामी; सनातन-सनातन गोस्वामी; जीव-जीव गोस्वामी; रघुनाथ-रघुनाथ दास गोस्वामी; रघुनाथ-रघुनाथ भट्ट गोस्वामी; गोपाल-गोपाल भट्ट गोस्वामी; छय-छः; मोर-मेरे; नाथ-प्रभु।

अनुवाद

रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, जीव गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी तथा गोपाल भट्ट गोस्वामी-वृन्दावन के इन छः गोस्वामियों की जय हो। ये सब मेरे स्वामी हैं।

ए-सब प्रसादे लिखि चैतन्य-लीला-गुण ।

यैछे तैछे लिखि, करि आपन पावन ॥10॥

ए-सब-इन सब की; प्रसादे-कृपा से; लिखि-मैं लिख रहा हूँ; चैतन्य-लीला गुण-श्री चैतन्य महाप्रभु के गुण एवं लीला; यैछे तैछे—किसी तरह; लिखि-मैं लिखारा हूँ; करि—कर रहा हूँ; आपन पावन-स्वयं को पवित्र।

अनुवाद

मैं महाप्रभु की लीलाओं तथा गुणों की यह कथा श्री चैतन्य महाप्रभु एवं उनके भक्तों की कृपा से लिख रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि किस तरह उचित रीति से लिखें, किन्तु इस वर्णन को लिखकर मैं अपने आपको शुद्ध कर रहा हूँ।

एइ-मत महाप्रभुर नीलाचले वास ।

सङ्गे भक्त-गण लञा कीर्तन-विलास ॥11॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; नीलाचले वास–जगन्नाथ पुरी में निवास; सङ्गे–के साथ; भक्त-गण लञा-उनके भक्तों को लेकर; कीर्तन-विलास- हरिनाम संकीर्तन का आनन्द उठाते।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी भक्तों के साथ जगन्नाथपुरी में रहे और उन्होंने हरे कृष्ण महामन्त्र के संकीर्तन का आनन्द लिया।

दिने नृत्य-कीर्तन, ईश्वर-दरशन ।

रात्र्ये राय-स्वरूप-सने रस-आस्वादन ॥12॥

दिने–दिन में; नृत्य-कीर्तन-नृत्य करते और कीर्तन करते; ईश्वर दरशन-जगन्नाथ भगवान् के मन्दिर में जाकर; राये-रात्रि में; राय-रामानन्द राय; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; सने–के साथ; रस-आस्वादन–आनन्दमय रस आस्वादन करते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु दिन में नृत्य, कीर्तन तथा जगन्नाथ मन्दिर का दर्शन करने में लगे रहते। रात में वे अपने अत्यन्त विश्वस्त भक्तों, यथा रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी के साथ श्रीकृष्ण की लीलाओं के दिव्य रस का अमृत आस्वादन करते।

एइ-मत महाप्रभुर सुखे काल याय ।

कृष्णेर विरह-विकार अङ्गे नाना हय ॥13॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; सुखे-सुखमय; काल याय-वक्त गुजरा; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण से; विरह-विरह; विकार-बदलाव; अङ्गे-शरीर पर; नाना-विविध; हय हैं।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु सुखपूर्वक अपने दिन नीलाचल अर्थात् जगन्नाथपुरी में बिता रहे थे। कृष्ण से विरह के कारण उनके शरीर में अनेक दिव्य लक्षण प्रकट होते थे।

दिने दिने बाड़े विकार, रात्र्ये अतिशय ।

चिन्ता, उद्वेग, प्रलापादि यत शास्त्रे कय ॥14॥

दिने दिने–दिन प्रतिदिन; बाड़े-बढ़ते; विकार-बदलाव; रात्र्ये अतिशय-विशेष रूप से रात्रि में; चिन्ता–चिन्ता; उद्वेग-उत्तेजना; प्रलाप–पागल मनुष्य के समान बातचीत करना; आदि–इत्यादि; यत–जितने भी; शास्त्रे कय-शास्त्रों में उल्लिखित हैं।

अनुवाद

दिन प्रतिदिन ये लक्षण बढ़ते गये और रात में ये और भी अधिक बढ़ जाते। ये सारे लक्षण-यथा दिव्य चिन्ता, उद्वेग तथा उन्मत सा प्रलाप उसी रूप में विद्यमान थे, जैसाकि शास्त्रों में उनका वर्णन हुआ है।

स्वरूप गोसाञि, आर रामानन्द-राय ।

रात्रि-दिने करे दोंहे प्रभुर सहाय ॥15॥

स्वरूप गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; आर—तथा; रामानन्द-राय-रामानन्द राय; रात्रि-दिने–दिन-रात; करे-करते हैं; दोहे-वे दोनों; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; सहाय–सहायता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के प्रमुख सहायक स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रामानन्द राय दिन-रात महाप्रभु के साथ रहते।

एक-दिन गोविन्द महा-प्रसाद लञा ।

हरिदासे दिते गेला आनन्दित हञा ॥16॥

एक-दिन-एक दिन; गोविन्द-गोविन्द, श्री चैतन्य महाप्रभु के व्यक्तिगत सेवक; महा-प्रसाद लञा-महाप्रसाद लेकर; हरिदासे दिते-हरिदास को देने; गेला-गया; आनन्दित हञा–अत्यन्त उल्लास के साथ।

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु का निजी सेवक गोविन्द बहुत ही आनन्दित होकर जगन्नाथजी का प्रसाद देने हरिदास ठाकुर के पास गया।

देखे,—हरिदास ठाकुर करियाछे शयन ।

मन्द मन्द करितेछे सङ्ख्या -सङ्कीर्तन ॥17॥

देखे—उसने देखा; हरिदास ठाकुर-हरिदास ठाकुर; करियाछे शयन-लेटे हुए थे; मन्द मन्द-धीरे धीरे; करितेछे—कर रहे थे; सख्या सङ्कीर्तन-जप करना।

अनुवाद

जब गोविन्द हरिदास ठाकुर के पास पहुँचा, तो उसने देखा कि वे अपनी पीठ के बल लेटे हैं और धीरे-धीरे जपमाला में जप कर रहे हैं।

गोविन्द कहे,–'उठ आसि' करह भोजन' ।

हरिदास कहे,—आजि करिमु लङ्घन ॥18॥

गोविन्द कहे-गोविन्द ने कहा; उठ–कृपा करके उठिए; आसि-आया हूँ; करह भोजन-आपके लिए प्रसाद लेकर; हरिदास कहे-हरिदास ने कहा; आजि-आज; करिमु लङ्घन-मैं उपवास रखूँगा।

अनुवाद

गोविन्द ने कहा, "कृपया उठकर अपना महाप्रसाद ग्रहण करें।" हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, "आज मैं उपवास रखूँगा।"

सङ्ख्या -कीर्तन पूरे नाहि, के-मते खाइब? ।

महा-प्रसाद आनियाछ, के-मते उपेक्षिब? ॥19॥

सङ्ख्या -कीर्तन-जप; पूरे नाहि-पूरा नहीं हुआ; के-मते खाइब-मैं कैसे भोजन करूँ?; महा-प्रसाद आनियाछ—तुम महाप्रसाद लाये हो; के-मते उपेक्षिब-मैं कैसे उपेक्षा करूँ?

अनुवाद

"मैंने अभी अपना जप पूर्ण नहीं किया है। तो फिर मैं कैसे खा सकता हूँ? किन्तु तुम तो महाप्रसाद लाये हो। भला मैं उसकी कैसे उपेक्षा करूँ?"

एत बलि' महा-प्रसाद करिला वन्दन ।

एक रञ्च लञा तार करिला भक्षण ॥ 20॥

एत बलि'—यह कहकर; महा-प्रसाद-महाप्रसाद को; करिला वन्दन-वन्दन किया; एक रञ्च–छोटा निवाला; लञा–लिया; तार करिला भक्षण-सेवन किया।

अनुवाद

यह कहकर उन्होंने महाप्रसाद को नमस्कार किया और उसमें से रंचभर लेकर ग्रहण कर लिया।

तात्पर्य

महाप्रसाद कृष्ण से अभिन्न होता है। इसलिए महाप्रसाद को खाने के स्थान पर उसका सम्मान करना चाहिए। इसीलिए यहाँ कहा गया है–करिला वन्दन। महाप्रसाद ग्रहण करते समय उसे सामान्य

भोजन नहीं मानना चाहिए। प्रसाद का अर्थ है कृपा। महाप्रसाद को कृष्ण की कृपा समझनी चाहिए। जैसाकि श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है, कृष्ण बड़ दयामय करिबारे जिह्वा जय स्वप्रसाद-अन्न दिला भाइ।कृष्ण अत्यन्त दयालु हैं। इस भौतिक जगत् में हम नाना प्रकार के भोजनों का स्वाद लेने में आसक्त रहते हैं। इसीलिए कृष्ण नाना प्रकार का भोजन करते हैं और उस भोजन को भक्तों को लौटा देते हैं, जिससे न केवल विविध स्वादों की तुष्टि होती है, अपितु प्रसाद खाने वाला आध्यात्मिक उन्नति भी करता है। इसलिए हमें सामान्य भोजन को कभी भी महाप्रसाद के तुल्य नहीं समझना चाहिए।

आर दिन महाप्रभु ताँर ठाञि आइला ।

सुस्थ हओ, हरिदास–बलि' ताँरे पुछिला ॥21॥

आर दिन-अगले दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर ठाञि-उनके निवासस्थान पर; आइला–आये; सुस्थ हओ-आप ठीक हो; हरिदास–हे हरिदास; बलि'–कहकर; ताँरे–उनसे; पुछिला-पूछा।

अनुवाद

अगले दिन श्री चैतन्य महाप्रभु हरिदास के स्थान पर गये और उनसे पूछा, "हरिदास, तुम ठीक तो हो?"

नमस्कार करि' तेंहो कैला निवेदन ।

शरीर सुस्थ हय मोर, असुस्थ बुद्धि-मन ॥22॥

नमस्कार करि'-दंडवत् करके; तेंहो-वे, हरिदास ठाकुर, कैला निवेदन निवेदन किया; शरीर-शरीर; सुस्थ-ठीक; हय है; मोर-मेरा; असुस्थ-अस्वस्थ; बुद्धि-मन-मन और बुद्धि।

अनुवाद

हरिदास ने महाप्रभु को नमस्कार किया और उत्तर दिया, "मेरा शरीर तो स्वस्थ है, किन्तु मेरा मन और बुद्धि ठीक नहीं हैं।"

प्रभु कहे,–'कोन् व्याधि, कह त' निर्णय?' ।

तेंहो कहे,–'सङ्ख्या -कीर्तन ना पूरय' ॥ 23 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; कोन् व्याधि-क्या पीड़ा; कह त' निर्णय-तुम्हें लगता है; तेंहो कहे-उन्होंने कहा; सङ्ख्या -कीर्तन-जप; ना पूरय-पूरा नहीं हुआ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुनः पूछा, "क्या तुम बता सकते हो कि तुम्हारा रोग क्या है?" हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, "मेरा रोग यही है कि मैं अपनी जप संख्या पूरी नहीं कर पा रहा हूँ।"

तात्पर्य

यदि कोई जप की निर्धारित संख्या पूरी नहीं कर पाता, तो उसे आध्यात्मिक जीवन की रुग्ण अवस्था में समझना चाहिए। श्रील हरिदास ठाकुर नामाचार्य कहलाते हैं। निस्सन्देह, हम हरिदास ठाकुर की नकल नहीं कर सकते, किन्तु हर व्यक्ति को निश्चित संख्या में नाम जप करना चाहिए। हमने अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सोलह माला का न्यूनतम नाम जप निर्धारित कर रखा है, जिससे पाश्चात्यवासी अपने आपको बोझिल अनुभव न करें। इन सोलह मालाओं का जप तो करना ही चाहिए और वह भी उच्च स्वर से, जिससे जपकर्ता स्वयं सुन सके और अन्य लोग भी सुनें।

प्रभु कहे,_"वृद्ध ह-इला 'सङ्ख्या' अल्प कर ।

सिद्ध-देह तुमि, साधने आग्रह केने कर? ॥24॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; वृद्ध ह-इला-तुम वृद्ध हो चुके हो; सङ्ख्या अल्प कर-संख्या घटा दो; सिद्ध-देह तुमि-तुम पहले ही मुक्त हो चुके हो; साधने-साधना; आग्रह केने कर-तुम क्यों उत्सुक हो?

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "चूँकि अब तुम वृद्ध हो गये हो, अतः नित्य जप किये जाने की नाम संख्या घटा सकते हो। तुम तो पहले से मुक्त हो, अतएव तुम्हें कठोरता से नियमों का पालन करने की आवश्यकता नहीं है।

तात्पर्य

जब तक ईश्वर के रागानुग प्रेम के पद तक पहुँच न लिया जाय, तब तक विधि-विधानों का पालन करना चाहिए। हरिदास ठाकुर इसके जीवन्त प्रमाण थे कि विधि-विधानों का किस तरह पालन किया जाय। इसी तरह श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी भी जीवन्त दृष्टान्त थे। षड् गोस्वामी अष्टक में कहा गया है-सङ्ख्यापूर्वकनामगाननतिभिः कालावसानीकृतौ। सारे गोस्वामी भी और विशेष रूप से रघुनाथ दास गोस्वामी सारे विधि-विधानों का कड़ाई से पालन करते थे। पहला नियम यह है कि हरे कृष्ण मन्त्र का उच्चारण इतने उच्च स्वर में किया जाय कि जषकर्ता स्वयं उसे सुन सके और निश्चित संख्या में माला जप का व्रत लिया जाय। रघुनाथ दास गोस्वामी न केवल निश्चित माला का जप करते थे, अपितु उन्होंने अनेक बार भगवान् को नमस्कार करने का भी व्रत ले रखा था।

लोक निस्तारिते एइ तोमार 'अवतार'।

नामेर महिमा लोके करिला प्रचार ॥25॥

लोक निस्तारिते-लोगों का उद्धार करना; एइ-यह; तोमार अवतार-आपका अवतार; नामेर महिमा-हरिनाम का महिमा करने; लोके–यह लोक में; करिला प्रचार-तुमने प्रचार किया है।

अनुवाद

"इस अवतार में तुम्हारी भूमिका सामान्य लोगों का उद्धार करने की है। तुमने इस जगत् में पवित्र नाम की महिमा का पर्याप्त प्रचार किया है।"

तात्पर्य

हरिदास ठाकुर नामाचार्य कहलाते हैं, क्योंकि उन्होंने हरिनाम कीर्तन की महिमा का प्रचार किया। तोमार अवतार कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु पुष्टि करते हैं कि हरिदास ठाकुर ब्रह्माजी के अवतार हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि बड़े-बड़े भक्त भगवान् को उनके अभीष्ट कार्य में सहायता पहुँचाते हैं और ऐसे भक्त या निजी सहायक भगवान् की इच्छा से अवतरित होते हैं। भगवान् स्वेच्छा से अवतरित होते हैं और उनकी इच्छा से दक्ष भक्त भी उनके अभीष्ट कार्य में सहायता करने हेतु अवतरित होते हैं। इस प्रकार हरिदास ठाकुर ब्रह्माजी के अवतार हैं और अन्य भक्त भी, जो भगवान् के अभीष्ट कार्य को सम्पन्न करने में सहायता करते हैं, उसी तरह से अवतार होते हैं।

एबे अल्प सङ्ख्या करि' कर सङ्कीर्तन" ।

हरिदास कहे,–"शुन मोर सत्य निवेदन ॥ 26 ॥

एबे–अब; अल्प सङ्ख्या -अल्प संख्या में जप; करि'-करो; कर सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण महामन्त्र; हरिदास कहे-हरिदास ठाकुर ने कहा; शुन-कृपा करके सुनिये; मोर-मेरा; सत्य–वास्तविक; निवेदन–निवेदन।

अनुवाद

महाप्रभु ने अन्त में कहा, "इसलिए, अब हरे कृष्ण महामन्त्र की जप संख्या कम करो।" हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, "आप कृपया मेरे वास्तविक निवेदन को सुनें।

हीन-जाति जन्म मोर निन्द्य-कलेवर ।

हीन-कर्मे रत मुञि अधम पामर ॥27॥

हीन-जाति-निम्न वर्ग के परिवार; जन्म मोर-मेरा जन्म; निन्द्य–निकृष्ट; कलेवर-शरीर; हीन-कर्म-निम्न कार्यों में; रत मुञि-पूरी तरह व्यस्त हूँ; अधम निम्न वर्ग के मनुष्य; पामर-सबसे अधिक निन्दित।

अनुवाद

"मैं निम्न कुल में उत्पन्न हुआ और मेरा शरीर अत्यन्त गर्हित है। मैं सदैव निम्न कार्यों में लगा रहा हूँ। इसलिए मैं सबसे नीच तथा गर्हित व्यक्ति हूँ।

अदृश्य, अस्पृश्य मोरे अङ्गीकार कैला ।

रौरव ह-इते काड़ि' मोरे वैकुण्ठे चड़ाइला ॥ 28 ॥

अदृश्य-न देखने योग्य; अस्पृश्य-अस्पृश्य; मोरे-मैं; अङ्गीकार कैला-आपने स्वीकार किया है; रौरव ह-इते-नारकीय स्थिति से; काड़ि'–निकाला; मोरे—मुझे; वैकुण्ठे चड़ाइला–वैकुंठ तक उठाया।

अनुवाद

"मैं न देखने योग्य तथा अछूत हूँ, किन्तु आपने मुझे अपने सेवक के रूप में स्वीकार किया है। इसका अर्थ हुआ कि आपने मुझे नारकीय स्थिति से उद्धार किया है और वैकुण्ठ पद पर पहुँचाया है।

स्वतन्त्र ईश्वर तुमि हओ इच्छामय ।

जगत् नाचाओ, यारे यैछे इच्छा हय ॥ 29॥

स्वतन्त्र–स्वतन्त्र; ईश्वर-ईश्वर; तुमि-आप; हओ-हो; इच्छा-मय-आपकी इच्छानुसार व्यवहार कर सकते हो; जगत्-जगत्; नाचाओ-नृत्य करवाते हो; यारे–जो; यैछे—जिस प्रकार; इच्छा हय-आप इच्छा करो।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप पूर्णतः स्वतन्त्र ईश्वर हैं। आप अपनी स्वतन्त्र इच्छा से कार्य करते हैं। आप अपनी इच्छानुसार सारे जगत् को नचाते हैं तथा काम में लगाते हैं।

अनेक नाचाइला मोरे प्रसाद करिया ।

विप्रेर श्राद्ध-पात्र खाइनु 'म्लेच्छ' हञा ॥ 30॥

अनेक-अनेक प्रकार से; नाचाइला-नृत्य करवाया है; मोरे-मुझे; प्रसाद करिया-आपकी कृपा से; विप्रेर-ब्राह्मणों के लिए; श्राद्ध-पात्र-श्राद्ध की थाल; खाइनु-मैंने सेवन किया; म्लेच्छ हञा–म्लेच्छ परिवार में जन्म लेने के बावजूद।

अनुवाद

हे प्रभु, अपनी कृपा से आपने मुझे नाना प्रकार से नचाया है। उदाहरणार्थ, मुझे श्राद्ध पात्र दिलाया, जो कि उत्तम ब्राह्मण को दिया जाना चाहिए था। मैंने उसमें भोजन किया, यद्यपि मेरा जन्म मांसाहारियों के कुल में हुआ था।

तात्पर्य

श्राद्ध पात्र के विषय में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में विष्णु स्मृति से निम्नलिखित उद्धरण दिया है :

ब्राह्मणापसदा ह्येते कथिताः पङ्गिदूषकाः ।

एतान् विवर्जयेद्यत्नात् श्राद्धकर्मणि पण्डितः।

इस श्लोक के अनुसार यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है, किन्तु ब्राह्मण मानदण्डों के अनुसार आचरण नहीं करता, तो उसे श्राद्ध पात्र नहीं दिया जाना चाहिए। यह श्राद्ध पात्र पितरों को दिया जाने वाला प्रसाद होता है। अद्वैत आचार्य ने ब्राह्मण कुल में उत्पन्न एक ब्राह्मण को यह श्राद्ध पात्र देने के बदले हरिदास ठाकुर को दिया। यद्यपि हरिदास ठाकुर का जन्म मांसाहारी परिवार में हुआ था, किन्तु उन्नत भक्त होने के कारण उनका सम्मान उत्तम कोटि के ब्राह्मण से भी बढ़कर किया जाता था।

एक वाञ्छा हय मोर बहु दिन हैते ।

लीला सम्वरिबे तुमि–लय मोर चित्ते ॥ 31॥

एक वाञ्छा-एक इच्छा; हय-है; मोर-मेरी; बहु दिन-बहुत समय से; हैते-चूँकि; लीला-आपकी लीला; सम्वरिबे तुमि-आप अन्त करोगे; लय मोर चित्ते-मैं सोच रहा हूँ।

अनुवाद

"दीर्घकाल से मेरी एक इच्छा रही है। हे प्रभु, मेरे विचार से आप अत्यन्त शीघ्र इस भौतिक जगत् से अपनी लीला समाप्त कर देंगे।

सेइ लीला प्रभु मोरे कभु ना देखाइबा ।

आपनार आगे मोर शरीर पाड़िबा ॥ 32॥

सेइ लीला-वह लीला; प्रभु-प्रभु; मोरे-मुझे; कभु-कभी; ना देखाइबा-ना दिखाना; आपनार आगे-आपके आगे; मोर शरीर-मेरा शरीर; पाड़िबा–गिरने दें।

अनुवाद

"मैं चाहता हूँ कि आप अपनी लीला का यह अन्तिम अध्याय मुझे नहीं दिखलायें। इसके पूर्व कि वह समय आये, मैं चाहता हूँ कि मेरा शरीर आपके सामने धराशायी हो जाय।

हृदये धरिमु तोमार कमल चरण ।

नयने देखिमु तोमार चाँद वदन ॥ 33 ॥

हृदये-मेरे हृदय में; धरिमु-मैं बसाऊँ; तोमार-आपके; कमल चरण-चरणकमल; नयने-मेरे नयनों से; देखिमु-मैं देखें; तोमार-आपका; चाँद वदन–चन्द्र समान मुख।

अनुवाद

“मैं आपके कमलवत् चरणों को अपने हृदय में धारण करना चाहता हूँ और आपके चन्द्रमा सदृश मुखमण्डल का दर्शन करना चाहता हूँ।

जिह्वाय उच्चारिमु तोमार ‘कृष्ण-चैतन्य'-नाम ।

एइ-मत मोर इच्छा,—छाड़िमु पराण ॥ 34॥

जिह्वाय-मेरी जीभ से; उच्चारिमु-मैं जपूं; तोमार-आपका; कृष्ण-चैतन्य-नाम-श्रीकृष्ण चैतन्य का पवित्र नाम; एइ-मत-इस प्रकार; मोर इच्छा–मेरी इच्छा; छाड़िमु पराण-प्राण न्यौछावर कर दें।

अनुवाद

“मेरी इच्छा है कि मैं अपनी जीभ से आपका' श्रीकृष्णचैतन्य' नाम उच्चारण करूँ। कृपया मुझे इस तरह से अपना शरीर छोड़ने दें।

मोर एइ इच्छा यदि तोमार प्रसादे हय ।

एइ निवेदन मोर कर, दयामय ॥ 35 ॥

मोर-मेरी; एइ-इस; इच्छा-इच्छा; यदि-यदि; तोमार प्रसादे-आपकी कृपा से; हय-है; एइ निवेदन-यह निवेदन; मोर-मेरा; कर-करें; दया-मय-हे कृपाशाली।

अनुवाद

“हे अत्यन्त दयालु प्रभु, यदि आपकी कृपा से ऐसा हो सके, तो कृपया मेरी इच्छा पूरी करें।

एइ नीच देह मोर पड़क तवे आगे ।

एइ वाञ्छा-सिद्धि मोर तोमातेइ लागे" ॥ 36॥

एइ–इस; नीच–निम्न; देह-शरीर; मोर-मेरा; पंड़क-गिरने दें; तव आगे-आपके आगे; एइ–यह; वाञ्छा-सिद्धि–इच्छाओं की पूर्णता; मोर-मेरी; तोमातेइ-आपके द्वारा; लागे-सम्भव हो सकती है।

अनुवाद

"इस नीच देह को आपके सामने गिर जाने दें। आप मेरी सारी इच्छाओं की पूर्णता को सम्भव बना सकते हैं।"

प्रभु कहे,–"हरिदास, ये तुमि मागिबे ।

कृष्ण कृपामय ताहा अवश्य करिबे ॥ 37॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; हरिदास-मेरे प्रिय हरिदास; ये-जो भी; तुमि-तुम; मागिबे-निवेदन; कृष्ण-श्रीकृष्ण; कृपा-मय-कृपामय; ताहा-वह; अवश्य-अवश्य; करिबे–पूर्ण करेंगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे हरिदास, कृष्ण इतने दयामय हैं कि तुम जो भी चाहते हो, उसे वे अवश्य पूरा करेंगे।

किन्तु आमार ये किछु सुख, सब तोमा लञा ।

तोमार योग्य नहे,—याबे आमारे छाड़िया" ॥38॥

किन्तु किन्तु; आमार-मेरा; ये-जो भी; किछु-कुछ; सुख-सुख; सब-सब; तोमा लञा–तुम्हारे संग से; तोमार-तुम्हारा; योग्य नहे-योग्य नहीं है; याबे-तुम चले जाओगे; आमारे छाड़िया-मुझे छोड़कर।

अनुवाद

किन्तु मेरा जो भी सुख है, वह तुम्हारी संगति के कारण है। यह तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है कि तुम चले जाओ और मुझे अकेला छोड़ जाओ।"

चरणे धरि' कहे हरिदास,_"ना करिह 'माया' ।

अवश्य मो-अधमे, प्रभु, कर एइ 'दया' ॥ 39॥

चरणे-चरणकमल; धरि-पकड़कर; कहे-कहा; हरिदास-हरिदास ठाकुर; ना करिह माया-माया न बनाएं; अवश्य-अवश्य; मो-अधर्म–मैं जो निम्न हूँ; प्रभु-प्रभुः कर एइ दया-दया दिखाएँ।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को पकड़कर कहा, "हे प्रभु, कृपया आप माया उत्पन्न न करें। यद्यपि मैं अत्यन्त पतित हूँ, किन्तु आप मुझ पर यह दया अवश्य दिखलायें!

मोर शिरोमणि कत कत महाशय ।

तोमार लीलार सहाय कोटि-भक्त हय ॥40॥

मोर-मेरा; शिरोमणि-शिरोमणि; कत कत-बहुत सारे; महाशय-महाशय; तोमार लीलार-आपकी लीला में; सहाय–सहायक; कोटि-भक्त-कोटि भक्त; हय-हैं।

अनुवाद

हे प्रभु, ऐसे अनेक सम्मानित व्यक्ति एवं करोड़ों भक्त हैं, जो मेरे सिर पर बैठने योग्य हैं। वे सभी आपकी लीला में सहायक हैं।

आमा-हेन यदि एक कीट मरि' गेल ।

एक पिपीलिका मैले पृथ्वीर काहाँ हानि हैल? ॥41॥

आमा-हेन–मेरे जैसा; यदि-यदि; एक-एक; कीट-कीड़ा; मरि' गेल-मर जाता है; एक-एक; पिपीलिका-चींटी; मैले–यदि मर जाती है; पृथ्वीर--पृथ्वी पर; काहाँ-कहाँ; हानि हैल-कोई नुकसान होगा।

अनुवाद

"हे प्रभु, यदि मुझ जैसा कोई तुच्छ कीट मर भी जाय, तो कौन सी हानि है? यदि एक चींटी मरती है, तो भौतिक जगत् की कौन सी हानि हो जाती है?

'भकत-वत्सल' प्रभु, तुमि, मुड़ 'भक्ताभास' ।

अवश्य पूराबे, प्रभु, मोर एइ आश" ॥42॥

भकत-वत्सल-भक्तों के प्रति सदैव स्नेहमय; प्रभु-हे प्रभु; तुमि-आप; मुइ-मैं; भक्त-आभास–एक कृत्रिम भक्त; अवश्य-अवश्य; पूराबे-आप पूर्ण करेंगे; प्रभु–हे प्रभुः मोर-मेरी; एइ–यह; आश–इच्छा।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप सदैव अपने भक्तों के प्रति स्नेहिल रहते हैं। मैं तो एक कृत्रिम भक्त हूँ, फिर भी मैं चाहता हूँ कि आप मेरी इच्छा पूरी करें। यही मेरी आशा है।"

मध्याह्न करिते प्रभु चलिला आपने ।

ईश्वर देखिया कालि दिबेन दरशने ॥43॥

मध्याह्न करिते-अपने दोपहर के कार्य पूर्ण करने; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चलिला आपने-उठे; ईश्वर देखिया-जगन्नाथ भगवान् के दर्शन के बाद; कालि-दूसरे दिन; दिबेन दरशने-वे हरिदास ठाकुर को मिलेंगे।

अनुवाद

चूंकि दोपहर के कृत्य करने शेष थे, अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ से विदा होने के लिए उठ खड़े हुए। किन्तु यह तय हुआ कि अगले दिन वे भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने के बाद हरिदास ठाकुर को देखने आयेंगे।

तबे महाप्रभु ताँरे करि' आलिङ्गन ।

मध्याह्न करिते समुद्रे करिला गमन ॥44॥

तबे-तब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे-हरिदास ठाकुर को; करि'-करके; आलिङ्गन-आलिंगन; मध्याह्न करिते-अपने दोपहर के कार्यों को पूर्ण करने; समुद्रे-समुद्र की ओर; करिला गमन-गये।

अनुवाद

उनका आलिंगन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु अपने दोपहर के कृत्य करने चले गये और स्नान करने हेतु समुद्र गये।

प्रातः काले ईश्वर देखि सब भक्त लञा ।

हरिदासे देखिते आइला शीघ्र करिया ॥ 45 ॥

प्रातः-काले-प्रातः काल में; ईश्वर देखि'–जगन्नाथ भगवान् के दर्शन करने के बाद; सब भक्त-सभी भक्त; लञा–के संग; हरिदासे–हरिदास; देखिते-देखने; आइला-आये; शीघ्र करिया-शीघ्रता से॥

अनुवाद

अगले दिन प्रातःकाल जगन्नाथ मन्दिर जाने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु अपने अन्य सारे भक्तों के साथ तेजी से हरिदास ठाकुर को देखने आये।

हरिदासेर आगे आसि' दिला दरशन ।

हरिदास वन्दिला प्रभुर आर वैष्णव-चरण ॥46॥

हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; आगे-आगे; आसि-आकर; दिला दरशन-दर्शन दिये; हरिदास-हरिदास ठाकुर; वन्दिला-वन्दन करके; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; आर-और; वैष्णव-वैष्णवों; चरण– के कमलचरणों में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा अन्य भक्त हरिदास ठाकुर के समक्ष आये। हरिदास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा समस्त वैष्णवों के चरणकमलों में नमस्कार किया।

प्रभु कहे,'हरिदास, कह समाचार' ।

हरिदास कहे,–'प्रभु, ये कृपा तोमार' ॥ 47॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभू ने कहा; हरिदास-मेरे प्रिय हरिदास; कह समाचार-क्या समाचार है; हरिदास कहे-हरिदास ने उत्तर दिया; प्रभु मेरे प्रभु; ये-जो भी; कृपा-कृपा; तोमार-आपकी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "हे हरिदास, क्या समाचार है?" हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, आप मुझ पर जो भी कृपा करें।"

अङ्गने आरम्भिला प्रभु महा-सङ्कीर्तन ।

वक्रेश्वर-पण्डित ताहाँ करेन नर्तन ॥48॥

अङ्गने-आंगन में; आरम्भिला-आरम्भ हुआ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; महा-सङ्कीर्तन-भव्य संकीर्तन; वक्रेश्वर-पण्डित-वक्रेश्वर पण्डित; ताहाँ-वहाँ; करेन नर्तन-नृत्य किया।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त आंगन में महान् संकीर्तन प्रारम्भ कर दिया। इसमें वक्रेश्वर पण्डित प्रमुख नर्तक थे।

स्वरूप-गोसाञि आदि यत प्रभुर गण ।

हरिदासे बेड़ि' करे नाम-सङ्कीर्तन ॥49॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; आदि–तथा अन्य; यत-सब; प्रभुर गण–प्रभु के साथी; हरिदासे बेड़ि'–हरिदास ठाकुर के आसपास; करे–किया; नाम-सङ्कीर्तन-नाम संकीर्तन।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी इत्यादि श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों ने हरिदास ठाकुर को घेर लिया और संकीर्तन प्रारम्भ कर दिया।

रामानन्द, सार्वभौम, सबार अग्रेते ।

हरिदासेर गुण प्रभु लागिला कहिते ॥50॥

रामानन्द-रामानन्द राय; सार्वभौमसार्वभौम भट्टाचार्य; सबार-सभी; अग्रेते–के आगे; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; गुण-गुण; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; लागिला कहिते-वर्णन करने लगे।

अनुवाद

रामानन्द राय तथा सार्वभौम भट्टाचार्य जैसे सारे महान् भक्तों के समक्ष श्री चैतन्य महाप्रभु हरिदास ठाकुर के पवित्र गुणों का वर्णन करने लगे।

हरिदासेर गुण कहिते प्रभु ह-इला पञ्च-मुख ।

कहिते कहिते प्रभुर बाड़े महा-सुख ॥51॥

हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; गुण-गुण; कहिते-कहते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ह-इला–हो गये; पञ्च-मुख-मानो पंच मुखी; कहिते कहिते-वर्णन करते समय; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; बाड़े-बड़ा; महा-सुख-भव्य सुख।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु हरिदास ठाकुर के दिव्य गुणों का वर्णन करने लगे, तो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों उनके पाँच मुख हों। उन्होंने जितना ही अधिक वर्णन किया, उनका सुख उतना ही बढ़ता गया।

हरिदासेर गुणे सबार विस्मित हय मन ।

सर्व-भक्त वन्दे हरिदासेर चरण ॥52॥

हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; गुणे-गुण; सबार-सभी; विस्मित-आश्चर्यचकित; हय-हुए; मन–मन; सर्व-भक्त-सभी भक्त; वन्दे-वन्दन करते; हरिदासेर चरण-हरिदास ठाकुर के कमलचरणों में।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के दिव्य गुणों को सुनकर वहाँ उपस्थित सारे भक्त आश्चर्यचकित हो गये। उन सबों ने हरिदास ठाकुर के चरणकमलों की वन्दना की।

हरिदास निजागृते प्रभुरे वसाइला ।

निज-नेत्र—दुइ भृङ्ग–मुख-पद्म दिला ॥53॥

हरिदास-हरिदास ठाकुर; निज-अग्रेते स्वयं के सामने प्रभुरे वसाइला–प्रभु को आसन ग्रहण कराया; निज-नेत्र–उनके नेत्र; दुइ भृङ्ग–मानो दो भौंरो के समान; मुख-पद्म-कमल समान मुख पर; दिला–केन्द्रित किया।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने समक्ष बैठाया और तब भौंरों के तुल्य अपने दोनों नेत्र महाप्रभु के मुखमण्डल पर टिका दिये।

स्व-हृदये आनि' धरिल प्रभुर चरण ।

सर्व-भक्त-पद-रेणु मस्तक-भूषण ॥54॥

स्व-हृदये-उनके हृदय पर; आनि'–लाकर; धरिल-रखे; प्रभुर चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; सर्व भक्त-सभी भक्तों के; पद-रेणु-चरणों की धूल; मस्तक-भूषण-मस्तक का आभूषण।

अनुवाद

उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को अपने हृदय पर धारण किया और तब समस्त भक्तों के चरणों की धूलि लेकर अपने मस्तक पर लगाई।

'श्री-कृष्ण-चैतन्य' शब्द बलेन बार बार ।

प्रभु-मुख-माधुरी पिये, नेत्रे जल-धार ॥55॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य–श्रीकृष्ण चैतन्य; शब्द-कंपन; बलेन-कहे; बार बार-बार-बार; प्रभु-मुख-माधुरी-श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख का माधुर्य; पिये-पीते; नेत्रे-नेत्रों से; जल-धार-जल धारा।

अनुवाद

उन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य के पवित्र नाम का बारम्बार उच्चारण किया। जब उन्होंने महाप्रभु के मुख की मधुरता का पान किया, तो उनके नेत्रों से लगातार अश्रु बहने लगे।

'श्री-कृष्ण-चैतन्य' शब्द करिते उच्चारण ।

नामेर सहित प्राण कैल उत्क्रामण ॥56॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्रीकृष्ण चैतन्य; शब्द-शब्द का कंपन; करिते उच्चारण-उच्चार करके; नामेर सहित-नाम के साथ; प्राण-प्राण; कैल उत्क्रामण-चले गये।

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य का नाम उच्चारण करते-करते उन्होंने प्राण त्याग दिये और अपना शरीर छोड़ दिया।

महा-योगेश्वर-प्राय देखि' स्वच्छन्दे मरण ।

'भीष्मेर निर्माण' सबार ह-इल स्मरण ॥57॥

महा-योगेश्वर-प्राय-एक महान गूढ़ योगी के समान; देखि'–देखकर; स्वच्छन्दे-स्वयं की इच्छा से; मरण-मरते; भीष्मेर निर्माण-भीष्म के चले जाने के समान; सबार ह-इल स्मरण-सभी को स्मरण हुआ।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर की अद्भुत इच्छा-मृत्यु देखकर हर व्यक्ति को भीष्म के मरण का स्मरण हो आया, क्योंकि यह मृत्यु महान् योगी की मृत्यु जैसी थी।

'हरि' 'कृष्ण'-शब्दे सबे करे कोलाहल ।

प्रेमानन्दे महाप्रभु ह-इला विह्वल ॥58॥

हरि-हरि; कृष्ण-कृष्ण; शब्द-शब्द कंपन से; सबे-सभी; करे–करे: कोलाहल-कोलाहल; प्रेम-आनन्दे-प्रेम आनन्द में; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ह-इला विह्वल-विह्वल हुए।

अनुवाद

जब सबों ने 'हरि' तथा 'कृष्ण' के पवित्र नामों का कीर्तन किया, तो कोलाहल मच गया। श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेमानन्द से विह्वल हो उठे।

हरिदासेर तनु प्रभु कोले लैल उठाञा ।

अङ्गने नाचेन प्रभु प्रेमाविष्ट हञा ॥ 59॥

हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; तनु-देह; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; कोले–गोद में; लैल–लिया; उठाञा -उठाकर; अङ्गने-आँगन में; नाचेन-नृत्य करे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रेम-आविष्ट हञा–अत्यधिक प्रेम भावना से।

अनुवाद

महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर के शरीर को उठाकर अपनी गोद में ले लिया और वे अत्यन्त प्रेमावेश में आकर आँगन में नृत्य करने लगे।

प्रभुर आवेशे अवश सर्व-भक्त-गण ।

प्रेमावेशे सबे नाचे, करेन कीर्तन ॥60॥

प्रभुर आवेशे-श्री चैतन्य महाप्रभु की अत्यधिक प्रेमभावना से; अवश-नि:सहाय; सर्व-भक्त-गण-सभी भक्त; प्रेम-आवेशे-अत्यधिक प्रेम भावना में; सबे-सभी; नाचे-नृत्य करने लगे; करेन कीर्तनसंकीर्तन करने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेमावेश के कारण सारे भक्त निरुपाय थे और वे भी प्रेमावेश में नृत्य तथा सामूहिक कीर्तन करने लगे।

एइ-मते नृत्य प्रभु कैला कत-क्षण ।

स्वरूप-गोसाञि प्रभुरे कराइल सावधान ॥ 61॥

एइ-मते-इस प्रकार; नृत्य-नृत्य करे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला–किया; कत-क्षण-कुछ समय तक; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; कराइल-बताया; सावधान-क्रियाविधि।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कुछ समय तक इसी तरह नृत्य करते रहे और तब स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने ठाकुर हरिदास के शरीर के लिए अन्य क्रियाओं के विषय में उन्हें सूचित किया।

हरिदास-ठाकुरे तबे विमाने चड़ाञा ।

समुद्रे लञा गेला तबे कीर्तन करिया ॥62॥

हरिदास-ठाकुरे–हरिदास ठाकुर; तबे-तब; विमाने–विमान पर; चड़ाञा-उठाया; समुद्रे-समुद्र तट पर; लञा गेला–ले गये; तबे-तब; कीर्तन करिया-संकीर्तन किया।

अनुवाद

तब हरिदास ठाकुर के शरीर को एक वाहन पर चढ़ाया गया, जो विमान जैसा था और सामूहिक कीर्तन के साथ उसे समुद्र ले जाया गया।

आगे महाप्रभु चलेन नृत्य करिते करिते ।

पाछे नृत्य करे वक्रेश्वर भक्त-गण-साथे ॥63 ॥

आगे-आगे; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चलेन-जा रहे थे; नृत्य-नृत्य; करिते करिते-करते हुए; पाछे-पीछे; नृत्य करे-नृत्य करते थे; वक्रेश्वर–वक्रेश्वर; भक्त-गण-साथे—अन्य भक्तों के साथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु शोभायात्रा के आगे आगे नृत्य कर रहे थे और वक्रेश्वर पण्डित अन्य भक्तों के साथ उनके पीछे-पीछे कीर्तन करते हुए नृत्य कर रहे थे।

हरिदासे समुद्र-जले स्नान कराइला ।

प्रभु कहे,–"समुद्र एइ 'महा-तीर्थ' ह-इला" ॥64॥

हरिदासे–हरिदास का देह; समुद्र-जले-समुद्र के पानी में; स्नान कराइला-स्नान कराया गया; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; समुद्र-समुद्र; एइ–यह; महा-तीर्थ ह-इला–बड़ा तीर्थ स्थल बन गया है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर के शरीर को समुद्र में स्नान कराया और घोषित किया, "आज से यह समुद्र महान् तीर्थस्थल बन गया है।"

हरिदासेर पादोदक पिये भक्त-गण ।

हरिदासेर अङ्गे दिला प्रसाद-चन्दन ॥65॥

हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; पाद-उदक-चरणकमलों को छुआ हुआ जल; पिये-पिया; भक्त-गण-भक्तों ने; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; अङ्गे–अंग पर; दिला–लीपा; प्रसाद-चन्दन-जगन्नाथ भगवान् को अर्पण किये चन्दन का प्रसाद।

अनुवाद

हर एक ने उस जल को पिया, जो हरिदास ठाकुर के चरणों का स्पर्श कर चुका था और सबों ने जगन्नाथ जी के चन्दन प्रसाद का हरिदास ठाकुर के शरीर पर लेप किया।

डोर, कड़ार, प्रसाद, वस्त्र अङ्गे दिला ।

वालुकार गर्न करि' ताहे शोयाइला ॥66॥

डोर-रेशमी रस्सीयाँ; कड़ार-जगन्नाथ भगवान् को अर्पण किए चन्दन का प्रसाद; प्रसाद-जगन्नाथजी का प्रसाद; वस्त्र-वस्त्र; अङ्गे–अंग पर; दिला-रखा; वालुकार–रेत में; गर्त–गड़ा; करि'-बनाकर; ताहे—उसमें; शोयाइला-रखा।

अनुवाद

बालू में गड्डा खोदकर उसमें हरिदास ठाकुर का शरीर रख दिया गया। तब भगवान् जगन्नाथ का प्रसाद-यथा उनकी रेशमी रस्सियाँ, चन्दन लेप, भोजन तथा वस्त्र—उनके शरीर के ऊपर रखा गया।

चारि-दिके भक्त-गण करेन कीर्तन।

वक्रेश्वर-पण्डित करेन आनन्दे नर्तन॥ 67॥

चारि-दिके चारों ओर; भक्त-गण-भक्त; करेन-किया; कीर्तन-संकीर्तन; वक्रेश्वर-पण्डित-वक्रेश्वर पण्डित; करेन-किया; आनन्दे-उल्लास में; नर्तन-नृत्य।

अनुवाद

भक्तों ने शरीर के चारों ओर सामूहिक कीर्तन किया और वक्रेश्वर पण्डित ने आनन्दित होकर नृत्य किया।

'हरि-बोल' 'हरि-बोल' बले गौरराय।

आपनि श्री-हस्ते वालु दिला ताँर गाय॥ 68॥

हरि-बोल हरि-बोल-हरिबोल हरिबोल; बले-बोले; गौरराय-श्री चैतन्य महाप्रभुः आपनि–स्वयं; श्री-हस्ते-उनके दिव्य हाथों से; वालु दिला रेत डाली; ताँर गाय-उनके अंग पर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने दिव्य हाथों से हरिदास ठाकुर के शरीर को 'हरि बोल' 'हरि बोल' कीर्तन करते हुए बालू से ढक दिया।

तौरे वालु दिया उपरे पिण्डा बाँधाइला ।

चौदिके पिण्डेर महा आवरण कैला ॥ 69॥

तौरे-हरिदास ठाकुर के देह पर; वालु-रेत; दिया-डाले; उपरे-ऊपर; पिण्डा बाँधाइला-मंच बाँधा; चौ-दिके–चारों ओर; पिण्डेर-मंच की; महा आवरण कैला-एक सुरक्षित चारदीवारी बनाई।

अनुवाद

भक्तों ने हरिदास ठाकुर के शरीर को बालू से ढककर उसी स्थान पर एक चबूतरा बना दिया। इस चबूतरे को चारों ओर से चारदीवारी द्वारा सुरक्षित कर दिया गया।

ताहा बेड़ि' प्रभु कैला कीर्तन, नर्तन ।

हरि-ध्वनि-कोलाहले भरिल भुवन ॥ 70 ॥

ताहा–उसके; बेड़ि'–चारों ओर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला–किया; कीर्तन नर्तन-कीर्तन एवं नृत्य; हरि-ध्वनि-कोलाहले–हरिनाम के कोलाहल से; भरिल-भरा; भुवन–सम्पूर्ण विश्व।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस चबूतरे के चारों ओर नृत्य और कीर्तन किया और जब हरिनाम का कोलाहल हुआ, तो सारा ब्रह्माण्ड उस शब्द से भर गया।

तबे महाप्रभु सब भक्त-गण-सङ्गे।

समुद्रे करिला स्नान-जल-केलि रङ्गे ॥ 71॥

तबे-तभी; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सब-सभी; भक्त-गण-सङ्गे–भक्तों के संग; समुद्रे-समुद्र में; करिला स्नान-स्नान किया; जल-केलि-जल में खेला; रङ्गे-अत्यन्त उल्लास से।

अनुवाद

संकीर्तन के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों के साथ समुद्र में तैरकर तथा हर्षित होकर जलक्रीड़ा करके स्नान किया।

हरिदासे प्रदक्षिण करि' आइल सिंह-द्वारे ।

हरि-कीर्तन-कोलाहल सकल नगरे ॥72॥

हरिदासे–हरिदास; प्रदक्षिण करि'–प्रदक्षिणा करके; आइल सिंह-द्वारे-जगन्नाथ मन्दिर के सिंहद्वार पर आये; हरि-कीर्तन-कोलाहल-संकीर्तन का कोलाहल; सकल नगरे-सम्पूर्ण शहर में।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर की समाधि की प्रदक्षिणा करके श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर के सिंहद्वार पर गये। सारे नगर ने संकीर्तन में भाग लिया और कोलाहल से सारा नगर गुंजायमान हो उठा।

सिंह-द्वारे आसि' प्रभु पसारिर ठाञि।

आँचल पातिया प्रसाद मागिला तथाई ॥73॥

सिंह-द्वारे आसि'–सिंहद्वार पर आकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; पसारिर ठाञि सभी दुकानदारों से; आँचल पातिया-अपने वस्त्र फैलाकर; प्रसाद-जगन्नाथ-प्रसाद; मागिला-माँगा; तथाइ-वहाँ।

अनुवाद

सिंहद्वार पर पहुँचकर श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ के सारे दूकानदारों से वत्र फैलाकर प्रसाद माँगने लगे।

‘हरिदास-ठाकुरेर महोत्सवेर तरे ।

प्रसाद मागिये भिक्षा देह' त' आमारे' ॥74॥

हरिदास-ठाकुरेर-हरिदास ठाकुर के; महोत्सवेर तरे–महोत्सव मनाने के लिए; प्रसाद मागिये—मैं प्रसाद माँगता हूँ; भिक्षा देह'–कृपया भीक्षा दें; त'–अवश्य; आमारे-मुझे।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "मैं हरिदास ठाकुर के देहावसान के सम्मानार्थ उत्सव के लिए प्रसाद माँग रहा हूँ। कृपया मुझे भिक्षा दें।”

शुनिया पसारि सब चाङ्गड़ा उठाञा ।

प्रसाद दिते आसे तारा आनन्दित हञा ॥75॥

शुनिया-सुनकर; पसारि-दूकानदार; सब-सब; चाङ्गड़ा उठाञा-बड़ी-बड़ी टोकरियाँ उठाकर; प्रसाद दिते-प्रसाद देने के लिए; आसे-आये; तारा–वे; आनन्दित हञा–प्रसन्नतापूर्वक।

अनुवाद

यह सुनकर सारे दूकानदार तुरन्त ही बड़ी-बड़ी टोकरियों में प्रसाद भरकर ले आये और प्रसन्नतापूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु को दिया।

स्वरूप-गोसाञि पसारिके निषेधिल ।

चाङ्गड़ा लञा पसारि पसारे वसिल ॥ 76 ॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; पसारिके-दूकानदार; निषेधिल-रोका; चाङ्गड़ा लञा-टोकरियाँ लेकर; पसारि-दूकानदार; पसारे वसिल-अपनी दूकानों में बैठ गये।

अनुवाद

किन्तु स्वरूप दामोदर ने दूकानदारों को रोका और वे अपनी दूकानों में लौटकर अपनी-अपनी टोकरी लेकर बैठ गये।

स्वरूप-गोसाञि प्रभुरे घर पाठाइला ।

चारि वैष्णव, चारि पिछाड़ा सङ्गे राखिला ॥ 77॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; घर पाठाइला-उनके निवासस्थान पर भेज दिया; चारि वैष्णव-चार वैष्णव; चारि पिछाड़ा-चार बोझा ढोनेवाले नौकर; सङ्गे राखिला—उन्होंने साथ रख लिया।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने श्री चैतन्य महाप्रभु को उनके निवासस्थान पर भिजवा दिया और अपने साथ चार वैष्णव तथा चार बोझा ढोने वाले नौकरों को रख लिया।

स्वरूप-गोसाञि कहिलेन सब पसारिरे ।

एक एक द्रव्येर एक एक पुञ्जा देह' मोरे ॥78॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; कहिलेन-कहा; सब पसारिरे सभी दूकारनदारों से; एक एक द्रव्येर–हर एक प्रकार का प्रसाद; एक एक पुञ्जा–चार अंजुली; देह' मोरे-मुझे दे दो।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने सारे दुकानदारों से कहा, "मुझे हर टोकरी में से चार चार अंजुली प्रसाद दे दो।"

एइ-मते नाना प्रसाद बोझा बान्धाञा ।

लञा आइला चारि जनेर मस्तके चड़ाञा ॥79॥

एइ-मते-इस तरह; नाना-कई तरह; प्रसाद-प्रसाद; बोझा-बोझा; बान्धाञा-बाँधकर; लञा आइला-लाया; चारि जनेर-चार व्यक्तियों के; मस्तके–सिर पर; चड़ाञा-चढ़ाकर।

अनुवाद

इस तरह कई तरह के प्रसाद एकत्र कर लिये गये, उन्हें विभिन्न पोटलियों में बाँधा गया और चार नौकरों के सिरों पर रखाकर ले जाया गया।

वाणीनाथ पट्टनायक प्रसाद आनिला ।

काशी-मिश्र अनेक प्रसाद पाठाइला ॥80॥

वाणीनाथ पट्टनायक-वाणीनाथ पट्टनायक; प्रसाद-प्रसाद; आनिला–लाये; काशी-मिश्र-काशी मिश्र; अनेक प्रसाद-अनेक प्रकार का प्रसाद; पाठाइला–भेजा।

अनुवाद

इस तरह न केवल स्वरूप दामोदर गोस्वामी प्रसाद लाये, अपितु वाणीनाथ पट्टनायक तथा काशी मिश्र ने भी प्रचुर मात्रा में प्रसाद भेजा।

सब वैष्णवे प्रभु वसाइला सारि सारि ।

आपने परिवेशे प्रभु लञा जना चारि ॥81॥

सब वैष्णवे-सारे वैष्णव; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; वसाइला-नीचे बैठाया; सारि सारि-पंक्तियों में; आपने–स्वयं; परिवेशे–वितरण किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा–लेकर; जना चारि–चार व्यक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे भक्तों को पंक्तियों में बैठाया और चार अन्य व्यक्तियों के साथ वे स्वयं उस प्रसाद का वितरण करने लगे।

महाप्रभुर श्री-हस्ते अल्प ना आइसे ।

एक-एक पाते पञ्च-जनार भक्ष्य परिवेशे ॥82॥

महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; श्री-हस्ते-दिव्य हाथों में; अल्प-अल्प मात्रा; ना आइसे–नहीं आती; एक-एक पाते-हर एक पत्तल में; पञ्च-जनार-पाँच व्यक्तियों के; भक्ष्य-खाने के लिए; परिवेशे–वे देते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का अल्प मात्रा में प्रसाद लेने का अभ्यास नहीं था। अतएव हर पत्तल में वे इतना रख देते थे, जो पाँच व्यक्तियों के लिए पर्याप्त होता।

स्वरूप कहे,—"प्रभु, वसि' करह दर्शन ।

आमि इँहा-सबा लञा करि परिवेशन ॥83 ॥

स्वरूप कहे स्वरूप दामोदर ने कहा; प्रभु-हे प्रभु; वसि'–बैठ जायें; करह दर्शन-देखें; आमि-मैं; इँहा-सबा लञा-इन सब व्यक्तियों के साथ; करि परिवेशन-वितरित कर रहा हूँ।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से अनुरोध किया, कृपया बैठ जायें और देखें। मेरी सहायता करने वाले इन लोगों के द्वारा मैं यह प्रसाद वितरित किये देता हूँ।"

स्वरूप, जगदानन्द, काशीश्वर, शङ्कर ।

चारि-जन परिवेशन करे निरन्तर ॥ 84॥

स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; काशीश्वर-काशीश्वर; शङ्कर-शंकर; चारि-जन-चार व्यक्ति; परिवेशन करे–वितरण किया; निरन्तर-लगातार।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर, जगदानन्द, काशीश्वर तथा शंकर-इन चार व्यक्तियों ने लगातार प्रसाद का वितरण किया।

प्रभु ना खाइले केह ना करे भोजन ।

प्रभुरे से दिने काशी-मिश्रेर निमन्त्रण ॥85॥

प्रभु ना खाइले–जब तक महाप्रभु नहीं खा लेते; केह ना करे भोजन-कोई भोजन नहीं करता; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; से दिने—उस दिन; काशी-मिश्रेर–काशी मिश्र ने; निमन्त्रण-निमन्त्रण।

अनुवाद

सारे बैठे हुए भक्त तब तक प्रसाद नहीं ग्रहण कर रहे थे, जब तक महाप्रभु प्रसाद नहीं पा लेते। किन्तु उस दिन काशी मिश्र ने महाप्रभु को निमन्त्रित कर रखा था।

आपने काशी-मिश्र आइला प्रसाद लाञा ।

प्रभुरे भिक्षा कराइला आग्रह करिया ॥86॥

आपने–स्वयं; काशी-मिश्र-काशी मिश्र; आइला-आये; प्रसाद लञा–प्रसाद लेकर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; भिक्षा कराइला–प्रसाद दिया; आग्रह करिया-मनोयोग से आग्रह किया।

अनुवाद

इसलिए काशी मिश्र स्वयं वहाँ गये और उन्होंने बड़े मनोयोग से श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रसाद दिया तथा उन्हें खिलाया।

पुरी-भारतीर सङ्गे प्रभु भिक्षा कैला ।

सकल वैष्णव तबे भोजन करिला ॥87॥

पुरी-भारतीर सङ्गे–परमानन्द पुरी और ब्रह्मानन्द भारती के साथ; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; भिक्षा कैला–प्रसाद ग्रहण किया; सकल वैष्णव-सभी वैष्णव; तबे-तब; भोजन करिला–भोजन करना शुरू किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु परमानन्द पुरी तथा ब्रह्मानन्द भारती के साथ बैठ गये और उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया। जब वे खाने लगे, तो सारे वैष्णव भी खाने लगे।

आकण्ठ पूराञा सबाय कराइला भोजन ।

देह' देह' बलि' प्रभु बलेन वचन ॥88॥

आकण्ठ पूराञा-गले तक भरकर; सबाय-हर एक ने; कराइला भोजन-भोजन किया; देह' देह'—और दो, और दो; बलि'–कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; बलेन वचन-कहे।

अनुवाद

हर एक ने जी भरकर भोजन किया, क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु परोसने वालों से कहे जा रहे थे, उन्हें और दो, और दो।"

भोजन करिया सबे कैला आचमन ।

सबारे पराइला प्रभु माल्य-चन्दन ॥89॥

भोजन करिया-भोजन करके; सबे-सभी भक्तों ने; कैला-किया; आचमन-हाथ और मुँह धोकर; सबारे उन सभी ने; पराइला–पहनाया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; माल्य-फूलों की माला; चन्दन-चन्दन लेप।

अनुवाद

जब सारे भक्तों ने प्रसाद ग्रहण करना बन्द कर दिया और अपने अपने हाथ तथा मुँह धो चुके, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने हर एक को फूल माला तथा चन्दन लेप से अलंकृत किया।

प्रेमाविष्ट हञा प्रभु करेन वर-दान ।

शुनि' भक्त-गणेर जुड़ाय मनस्काम ॥90॥

प्रेम-आविष्ट हञा–प्रेमावेश से अभिभूत होकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन वर-दान-आशीर्वाद दिया; शुनि'–सुनकर; भक्त-गणेर-भक्तों के; जुड़ाय-परिपूर्ण हुई; मनः-काम-मन की इच्छा।

अनुवाद

प्रेमावेश से अभिभूत होकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे भक्तों को आशीर्वाद दिया, जिसे सबों ने बड़े ही सन्तोष के साथ सुना।

हरिदासेर विजयोत्सव ये कैल दर्शन ।

ये इहाँ नृत्य कैल, ये कैल कीर्तन ॥11॥

ये ताँरे वालुका दिते करिल गमन ।

तार मध्ये महोत्सवे ये कैल भोजन ॥92॥

अचिरे ह-इबे ता-सबार 'कृष्ण-प्राप्ति' ।

हरिदास-दरशने हय ऐछे 'शक्ति' ॥ 93 ॥

हरिदासेर-हरिदास ठाकुर ने; विजय-उत्सव-विजय उत्सव; ये-जिस किसी ने; कैल दर्शन-देखा है; ये-जिस किसी ने; इहाँ–यहाँ; नृत्य कैल-नृत्य किया; ये—जिस किसी ने; कैल कीर्तन-कीर्तन किया; ये-जिस किसी ने; ताँरे–उनको; वालुका दिते-बालू अर्पण की; करिल गमन-आगे आये; तार मध्ये—इस सम्बन्ध में; महोत्सवे महोत्सव में; ये-जो कोई; कैल भोजन-प्रसाद लिया; अचिरे–अति शीघ्र; ह-इबे-होगा; ता-सबार-उन सबको; कृष्ण-प्राप्ति-कृष्ण की प्राप्ति; हरिदास-दरशने–हरिदास ठाकुर के दर्शन से; हय-है; ऐछे-ऐसी; शक्ति-शक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह आशीर्वाद दिया, "जिस किसी ने श्री हरिदास ठाकुर के विजय उत्सव को देखा है, जिस किसी ने यहाँ कीर्तन और नृत्य किया है, जिस किसी ने हरिदास ठाकुर के शरीर पर बालू डाली है तथा जिस किसी ने प्रसाद ग्रहण उत्सव में भाग लिया है, उसे शीघ्र ही कृष्ण की कृपा प्राप्त होगी। हरिदास ठाकुर के दर्शन में ऐसी अद्भुत शक्ति है।

कृपा करि' कृष्ण मोरे दियाछिला सङ्ग ।

स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा, कैला सङ्ग-भङ्ग ॥ 94॥

कृपा करि'–कृपा करके; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मोरे-मुझे; दियाछिला सङ्ग-संगति प्रदान की; स्वतन्त्र–स्वतन्त्र; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण ने; इच्छा-इच्छा; कैला सङ्ग-भङ्ग–वह संगति छुडा दी है।

अनुवाद

कृष्ण ने मुझ पर कृपा करके हरिदास ठाकुर की संगति प्रदान की। स्वतन्त्र इच्छा के होने के कारण कृष्ण ने अब वह संगति छुड़ा दी है।

हरिदासेर इच्छा यबे ह-इल चलिते ।

आमार शकति तारे नारिल राखिते ॥ 95॥

हरिदासेर-हरिदास ठाकुर ने; इच्छा-इच्छा; यबे-कब; ह-इल-थे; चलिते-चले गये; आमार शकति–मेरी शक्ति; तारे–उनको; नारिल राखिते-नहीं रख सकी।

अनुवाद

"जब हरिदास ठाकुर ने यह भौतिक जगत् छोड़ना चाहा, तो उन्हें रोक पाना मेरी शक्ति के बाहर था।

इच्छा-मात्रे कैला निज-प्राण निष्क्रामण ।

पूर्वे येन शुनियाछि भीष्मेर मरण ॥96॥

इच्छा-मात्रे-अपनी इच्छा से; कैला-किया; निज-प्राण-अपना प्राण छोड़कर; निष्क्रामण-चले गये; पूर्वे-पूर्वकाल में; येन-यह; शुनियाछि—हमने सुना है; भीष्मेर मरण-भीष्मदेव के देह-त्याग का।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर केवल अपनी इच्छा से अपना प्राण छोड़कर उसी तरह चले गये, जिस तरह पूर्वकाल में भीष्म ने अपनी इच्छा से देह त्याग किया था, जैसाकि हमने शास्त्र में सुना है।

हरिदास आछिल पृथिवीर शिरोमणि' ।

ताहा विना रन-शून्या ह-इल मेदिनी ॥97॥

हरिदास-हरिदास ठाकुर; आछिल–थे; पृथिवीर-इस पृथ्वी के; शिरोमणि-मुकुटमणि; ताहा विना-उनके बिना; रत्न-शून्या-मूल्यवान रत्न के बिना; ह-इल-हो गया; मेदिनी—यह जगत् ।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर इस पृथ्वी के मुकुटमणि थे। उनके बिना अब यह जगत् उस मूल्यवान रत्न से शून्य हो गया है।"

'जय जय हरिदास' बलि' कर हरि-ध्वनि" ।

एत बलि' महाप्रभु नाचेन आपनि ॥98॥

जय जय जय जय; हरिदास-हरिदास ठाकुर की; बलि'–बोले; कर हरि-ध्वनि-हरिनाम का कीर्तन करो; एत बलि'—यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नाचेन-नृत्य करने लगे; आपनि–स्वयं।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबों से कहा, "हरिदास ठाकुर की जय' बोलो और पवित्र हरिनाम का कीर्तन करो।" यह कहकर वे स्वयं नृत्य करने लगे।

सबे गाय,–"जय जय जय हरिदास ।

नामेर महिमा येह करिला प्रकाश" ॥99॥

सबे गाय-हर व्यक्ति कीर्तन करने लगा; जय जय जय जय जय जय; हरिदास-हरिदास ठाकुर की; नामेर महिमा-पवित्र भगवन्नाम के कीर्तन की महिमा; येह-उन्होंने; करिला प्रकाश-प्रकाशित किया।

अनुवाद

हर व्यक्ति कीर्तन करने लगा, "हरिदास ठाकुर की जय हो, जिन्होंने भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन की महिमा को प्रकाशित किया है।"

तबे महाप्रभु सब भक्ते विदाय दिला।

हर्ष-विषादे प्रभु विश्राम करिला ॥100॥

तबे-तत्पश्चात्; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सब भक्ते-सारे भक्तों को; विदाय दिला–विदा किया; हर्ष-विषादे-सुख और दुःख से मिश्रित; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; विश्राम करिला–विश्राम किया।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे भक्तों को विदा किया और स्वयं भी सुख तथा दुःख की मिश्रित भावनाओं में डूबे विश्राम करने लगे।

एइ त कहिलुँ हरिदासेर विजय।

याहार श्रवणे कृष्णे दृढ़-भक्ति हय ॥ 101॥

एइ त'-इस तरह; कहिलुँ-मैंने कहा है; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; विजय-विजय; याहार श्रवणे-इस कथा को सुनकर; कृष्णे-भगवान् कृष्ण की; दृढ़-भक्ति-दृढ़ भक्ति; हय-होगी।

अनुवाद

इस तरह मैंने हरिदास ठाकुर के गौरवमय महाप्रयाण का वर्णन किया है। जो भी इस कथा को सुनता है, वह निश्चय ही कृष्ण की भक्ति में अपने मन को दृढ़ करेगा।

तात्पर्य

पुरुषोत्तम क्षेत्र या जगन्नाथपुरी में एक तोटागोपीनाथ का मन्दिर है। वहाँ से समुद्र की ओर जाने पर हरिदास की समाधि को देखा जा सकता है, जो अभी तक वहाँ पर विद्यमान है। वहाँ पर अनन्त चतुर्दशी के दिन प्रतिवर्ष हरिदास ठाकुर के महाप्रयाण की स्मृति में एक उत्सव मनाया जाता है। उसी स्थान पर लगभग 100 वर्ष पूर्व नित्यानन्द प्रभु, कृष्णचैतन्य महाप्रभु तथा अद्वैत प्रभु के अर्चाविग्रह

स्थापित किये गये थे। उड़ीसा प्रान्त के केन्द्रापाड़ा के एक निवासी भ्रमरवर ने इस मन्दिर में इन अर्चाविग्रहों की स्थापना के लिए धन दिया था। इस मन्दिर का प्रबन्ध तोटागोपीनाथ गोस्वामियों के हाथ में था।

बाद में यह मन्दिर किसी अन्यों के हाथ बेच दिया गया और अब वे ही मन्दिर की सेवा पूजा चला रहे हैं। इस मन्दिर तथा हरिदास की समाधि के पास ही श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने एक छोटी सी कुटिया, भक्तिकुटी बनवा दी है। बँगला संवत् 1329 (1922 ई.) को यहाँ पर गौड़ीय मठ की एक शाखा-पुरुषोत्तम मठ-की स्थापना की गई थी। भक्ति रत्नाकर में कहा गया है कि :

श्रीनिवास शीघ्र समुद्रेर कुले गेला ।

हरिदास-ठाकुरेर समाधि देखिला ॥

भूमिते पड़िया कैला प्रणति विस्तर ।

भागवत-गण श्री-समाधि-सन्निधाने ॥

श्रीनिवासे स्थिर कैला सस्नेह वचने ॥

पुनः श्रीनिवास श्रीसमाधि प्रणमिया ।

ये विलाप कैला, ता शुनिले द्रवे हिया ॥

"श्रीनिवास ठाकुर तेजी से दौड़कर समुद्र तट पर गये। जब उन्होंने हरिदास ठाकुर की समाधि देखी, तो वे प्रार्थना करते हुए गिर पड़े और अचेतन जैसे हो गये। तब उपस्थित भक्तों ने अत्यन्त मधुर तथा स्नेहिल शब्द कहकर उन्हें सान्त्वना दी और श्रीनिवास ने पुनः समाधि को नमस्कार किया। हरिदास ठाकुर की समाधि पर अपने शोक में श्रीनिवास ने जो विरह व्यक्त किया है, उसे सुनकर हृदय द्रवित हो उठता है।"

चैतन्येर भक्त-वात्सल्य इहातेइ जानि ।

भक्त-वाञ्छा पूर्ण कैला न्यासि-शिरोमणि ॥ 102॥

चैतन्येर–श्री चैतन्य महाप्रभु ने; भक्त-वात्सल्य-अपने भक्तों के प्रति स्नेह; इहातेइ-इससे; जानि-कोई समझ सकता है; भक्त-वाञ्छा-भक्तों की इच्छा पूर्ण कैला-पूरी की; न्यासि-शिरोमणि-श्री चैतन्य महाप्रभु, संन्यासियों के मुकुटमणि।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के महाप्रयाण की घटना से तथा श्री चैतन्य महाप्रभु ने जिस यत्न के साथ उसको मनाया, उससे यह समझा जा सकता है कि महाप्रभु अपने भक्तों के प्रति कितने वत्सल हैं। यद्यपि वे संन्यासियों में सर्वोच्च हैं, किन्तु उन्होंने हरिदास ठाकुर की इच्छा पूर्ण की।

शेष-काले दिला ताँरे दर्शन-स्पर्शन ।

ताँरे कोले करि' कैला आपने नर्तन ॥ 103 ॥

शेष-काले उनकी की अन्तिम अवस्था में; दिला–दिया; ताँरे-हरिदास ठाकुर को; दर्शन-स्पर्शन-संग रहना और स्पर्श करना; ताँरे—उन्हें; कोले करि'-अपनी गोद में लेकर; कैला-किया; आपने–स्वयं; नर्तन-नृत्य।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर की अन्तिम अवस्था में श्री चैतन्य महाप्रभु अपना संग देते रहे और उन्हें अपना स्पर्श करने की अनुमति देते रहे। तत्पश्चात् हरिदास ठाकुर के शरीर को अपनी गोद में लेकर महाप्रभु ने नर्तन किया।

आपने श्री-हस्ते कृपाय ताँरे वालु दिला ।

आपने प्रसाद मागि' महोत्सव कैला ॥ 104॥

आपने स्वयं; श्री-हस्ते-अपने दिव्य हाथों से; कृपाय-अहैतुकी कृपा से; ताँरे-उनको; वालु दिला-बालू से ढका; आपने-स्वयं; प्रसाद मागि'–प्रसाद माँगकर; महोत्सव कैला–महोत्सव मनाया।

अनुवाद

अपनी अहैतुकी कृपा से महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर के शरीर को बालू से स्वयं ढका और दूकानदारों से स्वयं भिक्षा माँगी। तत्पश्चात् उन्होंने हरिदास ठाकुर के महाप्रयाण का महोत्सव मनाया।

महा-भागवत हरिदास–परम-विद्वान् ।

ए सौभाग्य लागि' आगे करिला प्रयाण ॥105॥

महा-भागवत–महान् भक्त; हरिदास-हरिदास ठाकुर; परम-विद्वान्-महान पण्डित ए सौभाग्य लागि'-उनके महान् भाग्य के कारण; आगे-सामने; करिला प्रयाण-प्रयाण किया।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर न केवल सर्वोच्च भगवद्भक्त थे, अपितु वे एक महान् परम विद्वान भी थे। यह तो उनका परम सौभाग्य था कि उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने प्रयाण किया।

तात्पर्य

यहाँ पर हरिदास ठाकुर को परम-विद्वान् कहा गया है। वस्तुत: भवबन्धन से छूटने के विज्ञान को जानना वही सबसे महत्त्वपूर्ण विज्ञान है। जो कोई भी इस विज्ञान को जानता है, उसे सबसे बड़ा विद्वान मानना चाहिए। जो कोई इस भौतिक जगत् की नश्वरता से परिचित है और आध्यात्मिक जगत् में स्थायी पद पाने में पटु है, जो यह जानता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हमारे व्यावहारिक ज्ञान से परे हैं, वही सबसे बड़ा विद्वान माना जाता है। हरिदास ठाकुर इस विज्ञान से भलीभाँति अवगत थे। इसलिए उन्हें इस

सम्बन्ध में परम-विद्वान् कहा गया है। उन्होंने स्वयं हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन की महत्ता का प्रचार किया, जो शास्त्रों द्वारा अनुमोदित है। श्रीमद्भागवत (7.5.24) में कहा गया है :

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिचेन्नवलक्षणा ।

क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥

कृष्ण-भक्ति की नौ विधियाँ हैं, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है श्रवणं कीर्तनम्-अर्थात् सुनना तथा कीर्तन करना। हरिदास ठाकुर इस विज्ञान को भलीभाँति जानते थे, इसलिए उन्हें शास्त्रीय दृष्टि से सर्वशास्त्राधीती कहा जा सकता है। जिसने सारे वैदिक शास्त्रों के सार को जान लिया हो, वह शास्त्रज्ञान में उच्चकोटि का शिक्षित व्यक्ति माना जाता है।

चैतन्य-चरित्र एइ अमृतेर सिन्धु ।

कर्ण-मन तृप्त करे यार एक बिन्दु ॥106॥

चैतन्य-चरित्र-श्री चैतन्य महाप्रभु का जीवन तथा चरित्र; एइ–यह; अमृतेर सिन्धु-अमृत के सागर; कर्ण–कान; मन–मन; तृप्त करे-तृप्त करते; यार–जिसके; एक-एक; बिन्दु-बिन्दु॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का जीवन तथा उनके गुण अमृत के समुद्र के तुल्य हैं, जिसकी एक बूंद मन तथा कर्णों को तृप्त कर सकती है।

भव-सिन्धु तरिबारे आछे यार चित्त ।

श्रद्धा करि' शुन सेइ चैतन्य-चरित्र ॥107॥

भव-सिन्धु-भवसागर; तरिबारे पार करने की; आछे—है; यार–जिसको; चित्त-इच्छा; श्रद्धा करि'-श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक; शुन-सुनना; सेइ-वह; चैतन्य-चरित्र-श्री चैतन्य महाप्रभु का जीवन तथा चरित्र।

अनुवाद

अतः भवसागर को पार करने के इच्छुक व्यक्ति को श्रद्धापूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा गुणों के विषय में श्रवण करना चाहिए।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥108॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों में; यार—जिसकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत- चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर मैं कृष्णदास श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्यलीला के अन्तर्गत हरिदास ठाकुर का महाप्रयाण शीर्षक ग्यारहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय बारह

श्री चैतन्य महाप्रभु एवं जगदानन्द पण्डित का प्रेम व्यवहार

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में बारहवें अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दिन-रात प्रकट किये जाने वाले प्रेमावेश के विकारों की व्याख्या हुई है। बंगाल के भक्तों ने महाप्रभु का दर्शन करने के लिए पुनः जगन्नाथपुरी की यात्रा की। हमेशा की तरह शिवानन्द सेन ही अग्रणी थे, जिन्होंने अपनी पत्नी तथा बच्चों के साथ यात्रा की। चूँकि रास्ते में व्यवस्था करने में देर हो गई थी और नित्यानन्द प्रभु को रहने के लिए उपयुक्त स्थान नहीं मिल सका, इसलिए वे कुछ असन्तुष्ट हो गये। अतएव वे शिवानन्द पर बहुत क्रुद्ध हो गये, क्योंकि टोली के सारे विषयों का भार उन्हीं पर था। अतः प्रेममय क्रोध में उन्होंने शिवानन्द सेन पर पाद-प्रहार किया। शिवानन्द सेन ने इसे नित्यानन्द प्रभु की महती कृपा के रूप में स्वीकार किया, किन्तु उनका भांजा श्रीकान्त सेन कुछ क्षुब्ध हो गया और वह साथ छोड़कर चला गया। वह अपनी टोली के पहुँचने के पूर्व ही जगन्नाथपुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु से जा मिला।

उस वर्ष परमेश्वर दास मोदक नामक एक भक्त भी जगन्नाथपुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के लिए अपने परिवार सहित गया। भक्तगण प्रायः श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने साथ भोजन करने

के लिए निमन्त्रित करते रहते। जब महाप्रभु ने सबों को विदा कर दिया, तो उन्होंने उनसे बहुत ही मोहक ढंग से बातें कीं। इसके एक वर्ष पूर्व जगदानन्द पण्डित को प्रसाद तथा वस्त्र देकर शचीमाता के पास भेजा गया था। इस वर्ष वे महाप्रभु के सिर की मालिश के लिए सुगन्धित चन्दन तेल की बड़ी-सी हँडिया लेकर लौटे। किन्तु महाप्रभु ने वह तेल स्वीकार नहीं किया। फलस्वरूप जगन्नाथ पण्डित ने उन्ही के सामने वह हँडिया तोड़ डाली और अनशन पर बैठ गये। महाप्रभु ने उन्हें शान्त करने हेतु उनसे अपने लिए भोजन पकाने के लिए आग्रह किया। जब महाप्रभु ने उसका पकाया भोजन ग्रहण किया, तो जगदानन्द पण्डित अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना अनशन समाप्त कर दिया।

श्रूयतां श्रूयतां नित्यं गीयतां गीयतां मुदा ।

चिन्त्यतां चिन्त्यतां भक्ताश्चैतन्य-चरितामृतम् ॥1॥

श्रूयताम्-सुनते रहना; श्रूयताम्-सुनते रहना; नित्यम्-नित्य; गीयताम्-जप करना; गीयताम्-जप करना; मुदा-सुखपूर्वक; चिन्त्यताम्-ध्यान देना; चिन्त्यताम्-ध्यान देना; भक्ताः-भक्त; चैतन्य-चरितामृतम्-श्री चैतन्य महाप्रभु का जीवन और विशिष्ट गुण।

अनुवाद

हे भक्तों, श्री चैतन्य महाप्रभु का दिव्य जीवन तथा उनके गुण अत्यन्त सुखपूर्वक नित्य ही सुने, गाये तथा ध्यान किये जाँय।

जय जय श्री-चैतन्य जय दयामय ।

जय जय नित्यानन्द कृपा-सिन्धु जय ॥2॥

जय जय-जय जय; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; दया-मय-दयामय; जय जय जय जय; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु की; कृपा-सिन्धु–कृपा के सागर; जय-जय हो।

अनुवाद

सर्व दयामय श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! कृपा के सागर नित्यानन्द प्रभु की जय हो!

जयाद्वैत-चन्द्र जय करुणा-सागर।

जय गौर-भक्त-गण कृपा-पूर्णान्तर॥ 3॥

जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय-जय हो; करुणा-सागर-कृपा के सागर; जय-जय हो; गौर-भक्त-गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की; कृपा-पूर्ण-अन्तर–जिनके हृदय सदैव कृपा से भरे हैं।

अनुवाद

कृपा के सागर अद्वैत आचार्य की जय हो! श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो, जिनके हृदय सदैव कृपा से पूरित रहते हैं।

अतःपर महाप्रभुर विषण्ण-अन्तर।

कृष्णेर वियोग-दशा स्फुरे निरन्तर॥4॥

अतःपर-इसके बाद; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; विषण्ण-अन्तर–खिन्न मन; कृष्णेर-कृष्ण के; वियोग-दशा-विरह का भाव; स्फुरे-प्रकट होना; निरन्तर-सदैव।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का मन सदैव खिन्न रहता था, क्योंकि उनमें निरन्तर कृष्ण-विरह का भाव प्रकट हो रहा था।

'हाहा कृष्ण प्राण-नाथ व्रजेन्द्र-नन्दन!।

काहाँ याङ काहाँ पाङ, मुरली-वदन!'॥5॥

हाहा–हे; कृष्ण-मेरे प्रभु कृष्ण; प्राण-नाथ-मेरे प्राणेश्वर; व्रजेन्द्र-नन्दन-महाराज नन्द के पुत्र; काहाँ याङ–मैं कहाँ जाऊँ; काहाँ पाङ—-मैं कहाँ पाऊँ; मुरली-मुरली; वदन-मुख।

अनुवाद

महाप्रभु क्रन्दन करते रहते, "हे मेरे प्रभु कृष्ण, हे मेरे प्राणेश्वर! हे महाराज नन्द के पुत्र, मैं कहाँ जाऊँ? मैं आपको कहाँ पाऊँ? हे अपने मुख पर मुरली रखकर बजाने वाले भगवान्!"

रात्रि-दिन एइ दशा स्वस्ति नाहि मने ।

कष्टे रात्रि गोडाय स्वरूप-रामानन्द-सने ॥6॥

रात्रि-दिन-दिन रात; एइ दशा-ऐसी दशा; स्वस्ति नाहि मने-मन को शान्ति नहीं; कष्टे-बहुत कठिनाई से; रात्रि गोडाय-रात बिताई; स्वरूप-रामानन्द-सने–स्वरूप दामोदर तथा रामानन्द राय के साथ।

अनुवाद

दिन-रात उनकी ऐसी ही दशा थी। मन की शान्ति न पाने के कारण वे स्वरूप दामोदर तथा रामानन्द राय के साथ बहुत कठिनाई से रात बिताते थे।

एथा गौड़-देशे प्रभुर यत भक्त-गण ।

प्रभु देखिबारे सबे करिला गमन ॥7॥

एथा–दूसरी ओर; गौड़-देशे-बंगाल में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; यत-सभी; भक्त-गण-भक्त गण; प्रभु देखिबारे-श्री चैतन्य महाप्रभु को देखने; सबे-सभी; करिला गमन-गये।

अनुवाद

तभी सारे भक्त अपने घरों से श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने बंगाल से यात्रा पर निकले।

शिवानन्द-सेन आर आचार्य-गोसाञि ।

नवद्वीपे सब भक्त हैला एक ठाञि ॥8॥

शिवानन्द-सेन–शिवानन्द सेन; आर-और; आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य; नवद्वीपे–नवद्वीप में; सब भक्त–सभी भक्त; हैला–हुए; एक ठाञि-एकत्र।

अनुवाद

शिवानन्द सेन, अद्वैत आचार्य इत्यादि सारे भक्त नवद्वीप में एकत्र हुए।

कुलीन-ग्राम-वासी आर व्रत खण्ड-वासी ।

एकत्र मिलिला सब नवद्वीपे आसि' ॥9॥

कुलीन-ग्राम-वासी-कुलीनग्राम के निवासी; आर-एवं; व्रत-सभी; खण्ड-वासी-खण्ड के निवासी; एकत्र–एक जगह पर; मिलिला–मिले; सब-वे सब; नवद्वीपे आसि'–नवद्वीप आये।।

अनुवाद

कुलीनग्राम तथा खण्ड गाँव के निवासी भी नवद्वीप में एकत्र हुए।

नित्यानन्द-प्रभुरे प्रद्यपि आज्ञा नाइ ।

तथापि देखिते चलेन चैतन्य-गोसाञि ॥10॥

नित्यानन्द-प्रभुरे–नित्यानन्द प्रभु को; यद्यपि यद्यपि, आज्ञा नाइ-आदेश नहीं था; तथापि फिर भी; देखिते-मिलने के लिए; चलेन-चले गये; चैतन्य-गोसाञि-भगवान् चैतन्य।

अनुवाद

चूंकि नित्यानन्द प्रभु बंगाल में प्रचार कर रहे थे, इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें आदेश दे रखा था कि वे जगन्नाथपुरी न आयें, किन्तु उस वर्ष वे महाप्रभु के दर्शन हेतु टोली के साथ चले गये।

श्रीवासादि चारि भाइ, सङ्गेते मालिनी ।

आचार्यरत्नेर सङ्गे ताँहार गृहिणी ॥11॥

श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर आदि; चारि भाइ–चार भाई; सङ्क्ते मालिनी-अपनी पत्नी मालिनी के साथ; आचार्यरत्नेर सङ्गे–तथा आचार्यरत्न के साथ; ताँहार गृहिणी-उनकी पत्नी।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर भी अपने तीन भाइयों तथा अपनी पत्नी मालिनी के साथ थे। इसी प्रकार आचार्यरत्न भी अपनी पत्नी के साथ थे।

शिवानन्द-पत्नी चले तिन-पुत्र लञा ।

राघव-पण्डित चले झालि साजाञा ॥12॥

शिवानन्द-पत्नी-शिवानन्द सेन की पत्नी; चले–चलीं; तिन-पुत्र लञा–तीन पुत्रों सहित; राघव-पण्डित चले–राघव पण्डित चले; झालि साजाञा-थैले लेकर।

अनुवाद

शिवानन्द सेन की पत्नी भी अपने तीन पुत्रों सहित आईं। राघव पण्डित भी अपने सुप्रसिद्ध भोजन के थैले लेकर उनके साथ हो लिये।

दत्त, गुप्त, विद्यानिधि, आर यत जन ।

दुइ-तिन शत भक्त करिला गमन ॥13॥

दत्त-वासुदेव दत्त; गुप्त-मुरारि गुप्त; विद्यानिधि–विद्यानिधि; आर-और; यत जन-सभी जन; दुइ-तिन शत-दो-तीन सौ; भक्त-भक्त; करिला गमन-गये।

अनुवाद

वासुदेव दत्त, मुरारि गुप्त, विद्यानिधि तथा अन्य अनेक भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शनार्थ गये। कुल मिलाकर दो-तीन सौ की संख्या थी।

शचीमाता देखि सबे ताँर आज्ञा लञा ।

आनन्दे चलिला कृष्ण-कीर्तन करिया ॥14॥

शची-माता देखि'–शचीमाता को मिलकर; सबे-सभी ने; ताँर आज्ञा लञा-उनसे अनुमति ली; आनन्दे–परम सुखपूर्वक; चलिला–रवाना हुए; कृष्ण-कीर्तन करिया-भगवन्नाम का संकीर्तन करते हुए।

अनुवाद

सब भक्त सर्वप्रथम शचीमाता से मिले और उनसे अनुमति ली। तब परम सुखपूर्वक वे भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करते हुए जगन्नाथपुरी के लिए रवाना हुए।

शिवानन्द-सेन करे घाटी-समाधान ।

सबारे पालन करि' सुखे लञा यान ॥15॥

शिवानन्द-सेन–शिवानन्द सेन; करे-किया; घाटी-समाधान-पथ कर; सबारे पालन करि'-सबका पालन-पोषण करना; सुखे-सुखपूर्वक; लञा-करते हुए; यान-गये।

अनुवाद

शिवानन्द सेन ने विभिन्न स्थानों (घाटी) पर पथ-कर चुकता किया। उन्होंने सारे भक्तों का पालन-पोषण करते हुए परम सुखपूर्वक उन सबों का मार्गदर्शन किया।

तात्पर्य

घाटी शब्द प्रत्येक राज्य में जमींदारों द्वारा किये जाने वाले कर चौकी का सूचक है। सामान्यतया यह कर विभिन्न जमीदारों द्वारा शासित सड़कों के रखरखाव के लिए लिया जाता था। चूंकि भक्तगण बंगाल से जगन्नाथपुरी जा रहे थे, इसलिए उन्हें अनेक पथ-कर स्थलों (घाटी) से होकर गुजरना पड़ता था। शिवानन्द सेन के ऊपर ऐसा कर चुकाने का भार था।

सबार सब कार्य करेन, देन वास-स्थान ।

शिवानन्द जाने उड़िया-पथेर सन्धान ॥ 16 ॥

सबार-हर एक; सब-सभी; कार्य-व्यवहार; करेन-थे; देन-देते; वास-स्थान-ठहरने का स्थान; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; जाने-जानते थे; उड़िया-पथेर-उड़ीसा जानेवाले; सन्धान-मार्ग।

अनुवाद

शिवानन्द सेन हर एक की देखभाल करते और हर भक्त को ठहरने का स्थान देते थे। वे उड़ीसा जाने वाले सारे मार्गों को जानते थे।

एक-दिन सब लोक घाटियाले राखिला ।

सबा छाड़ाञा शिवानन्द एकला रहिला ॥17॥

एक-दिन-एक दिन; सब लोक-टोली के सभी लोग; घाटियाले राखिला–टोल संग्रह करने वाले के द्वारा रोक दिये गये; सबा–सभी को; छाड़ाञा–निकल जाने दिया गया; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; एकला रहिला-अकेले रह गये।

अनुवाद

एक दिन जब कर संग्रह करनेवाला इस टोली की छानबीन कर रहा था, तो सारे भक्तों को निकल जाने दिया गया, किन्तु कर अदा करने के लिए शिवानन्द सेन पीछे रह गये।

सबे गिया रहिला ग्राम-भितर वृक्ष-तले ।

शिवानन्द विना वास-स्थान नाहि मिले ॥18॥

सबे-सभी जन; गिया-गये; रहिला-बचे; ग्राम-भितर-गाँव में; वृक्ष-तले–पेड़ के नीचे; शिवानन्द विना-शिवानन्द सेन के बिना; वास-स्थान–निवासस्थान; नाहि मिले-किसी को नहीं मिला।

अनुवाद

यह टोली एक गाँव में पहुँची और एक पेड़ के नीचे प्रतीक्षा करने लगी, क्योंकि शिवानन्द सेन के अतिरिक्त अन्य कोई उनके रहने के लिए स्थान की व्यवस्था नहीं कर सकता था।

नित्यानन्द-प्रभु भोखे व्याकुल हञा ।

शिवानन्दे गालि पाड़े वासा ना पाञा ॥19॥

नित्यानन्द-प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु; भोखे-भूखे हुए; व्याकुल हञा–व्याकुल हुए; शिवानन्दे गालि पाड़े-शिवानन्द को गाली पडी; वासा ना पाञा-उपयुक्त निवासस्थान नहीं मिल पाया।

अनुवाद

इस बीच नित्यानन्द प्रभु को काफी भूख लग आई, जिससे वे व्याकुल हो उठे। चूंकि उन्हें अभी तक रहने के लिए उपयुक्त स्थान नहीं मिल पाया था, अतएव वे शिवानन्द सेन को गाली देने लगे।

‘तिन पुत्र मरुक शिवार, एखन ना आइल ।

भोखे मरि' गेनु, मोरे वासा ना देओयाइल' ॥ 20॥

तिन पुत्र–तीन पुत्र; मरुक-मर जाने दो; शिवार-शिवानन्द सेन के; एखन–यहाँ; ना आइल-वह नहीं आया; भोखे मरि' गेनु-मैं भूख से मर रहा हूँ; मोरे-मेरे लिए; वासा-रहने की व्यवस्था; ना देओयाइल-नहीं की।

अनुवाद

उन्होंने शिकायत की, "शिवानन्द सेन ने मेरे रहने के लिए व्यवस्था नहीं की और मैं इतना भूखा हूँ कि मर सकता हूँ। चूँकि वह नहीं आया है, अतएव मैं उसके तीनों पुत्रों को मरने का शाप देता हूँ।"

शुनि' शिवानन्देर पत्नी कान्दिते लागिला ।

हेन-काले शिवानन्द घाटी हैते आइला ॥21॥

शुनि'–सुनकर; शिवानन्देर-शिवानन्द सेन की; पत्नी-पत्नी; कान्दिते लागिला-रोने लगीं; हेन-काले—इसी समय; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; घाटी हैते-घाटी से; आइला-आये।

अनुवाद

यह शाप सुनकर शिवानन्द सेन की पत्नी रोने लगीं। तभी शिवानन्द सेन घाटी से लौट आये।

शिवानन्देर पत्नी ताँरे कहेन कान्दिया ।

'पुत्रे शाप दिछेन गोसाञि वासा ना पाञा' ॥22॥

शिवानन्देर-शिवानन्द सेन की; पत्नी-पत्नी; ताँरे–उनको; कहेन–कहा; कान्दिया-रोते हुए; पुत्रे-पुत्रों को; शाप-शाप; दिछेन-दे दिया; गोसाञि-नित्यानन्द प्रभु; वासा ना पाञा-उन्हें रहने का स्थान नहीं मिल पाने से।

अनुवाद

उनकी पत्नी ने रोते हुए बतलाया, "नित्यानन्द प्रभु ने हमारे पुत्रों को मरने का शाप दे दिया है, क्योंकि उन्हें रहने का स्थान नहीं मिल पाया।"

तेंहो कहे,_"बाउलि, केने मरिस् कान्दिया? ।

मरुक आमार तिन पुत्र ताँर बालाइ लञा" ॥23॥

तेंहो कहे-उन्होंने कहा; बाउलि–पागल औरत; केने-क्यों; मरिस्-तुम मर रही हो; कान्दिया–रो रही हो; मरुक-मरने दो; आमार-मेरे; तिन-तीन; पुत्र-पुत्र; ताँर-उनकी; बालाइ-असुविधा; लञा–लेकर।

अनुवाद

शिवानन्द सेन ने उत्तर दिया, "अरी पगली, तुम व्यर्थ क्यों रो रही हो? नित्यानन्द प्रभु को जो असुविधा हमारे कारण हुई है, उसके लिए हमारे तीनों पुत्रों को मरने दो।"

एत बलि' प्रभु-पाशे गेला शिवानन्द ।

उठि' ताँरे लाथि माइला प्रभु नित्यानन्द ॥24॥

एत बलि'—यह कहकर; प्रभु-पाशे-नित्यानन्द प्रभु के पास; गेला-गये; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; उठि'–उठकर; ताँरे–उनको; लाथि माइला–पाद-प्रहार किया; प्रभु-प्रभु; नित्यानन्द–नित्यानन्द।

अनुवाद

यह कहकर शिवानन्द सेन नित्यानन्द प्रभु के पास गये, जिन्होंने उठकर उन पर पाद-प्रहार किया।

आनन्दित हैला शिवाइ पाद-प्रहार पाञा ।

शीघ्र वासा-घर कैला गौड़-घरे गिया ॥ 25॥

आनन्दित हैला-अत्यधिक प्रसन्न हुए; शिवाइ-शिवानन्द सेन; पाद-प्रहार पाञा-पाद-प्रहार से; शीघ्र-जल्द ही; वासा-घर-आवास की; कैला-व्यवस्था; गौड़-घरे-ग्वाले के घर में; गिया-गये।

अनुवाद

पाद-प्रहार से अत्यधिक प्रसन्न होकर शिवानन्द सेन ने तुरन्त एक ग्वाले के घर में नित्यानन्द प्रभु के आवास की व्यवस्था कर दी।

चरणे धरिया प्रभुरे वासाय लञा गेला ।

वासा दिया हृष्ट हञा कहिते लागिला ॥26॥

चरणे-चरणकमल; धरिया-पकड़कर; प्रभुरे–नित्यानन्द प्रभु के; वासाय-उनके निवासस्थान; लञा-लेकर; गेला-गये; वासा दिया–कमरा देने के बाद; हृष्ट हञा-अत्यन्त प्रसन्न होकर; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

शिवानन्द सेन ने नित्यानन्द प्रभु के चरणकमल पकड़े और वह उन्हें उनके निवासस्थान पर ले गये। उन्हें कमरा देने के बाद अत्यन्त प्रसन्न होकर शिवानन्द सेन ने इस प्रकार कहा।

“आजि मोरे भृत्य करि’ अङ्गीकार कैला ।

येमन अपराध भृत्येर, योग्य फल दिला ॥ 27॥

आजि-आज; मोरे-मुझे; भृत्य-सेवक; करि'–के रूप में; अङ्गीकार-स्वीकार; कैला-आपने किया; येमन-यह; अपराध-अपराध; भृत्येर–सेवक के; योग्य-योग्य; फल-फल; दिला-आपने दिया।

अनुवाद

"आज आपने मुझे अपने सेवक के रूप में स्वीकार किया है और मेरे अपराध के लिए उचित दण्ड भी दिया है।

'शास्ति'-छले कृपा कर,—ए तोमार 'करुणा' ।

त्रिजगते तोमार चरित्र बुझे कोन् जना? ॥28॥

शास्ति-छले-दण्ड के बहाने; कृपा कर-आप कृपा करते हैं; ए-यह; तोमार करुणा-आपकी अहैतुकी कृपा; त्रि-जगते–तीनों लोकों में; तोमार-आपके; चरित्र-चरित्र; बुझेको समझे; कोन् जना–ऐसा कौन।

अनुवाद

"हे प्रभु, आपके द्वारा दिया गया दण्ड आपकी अहैतुकी कृपा है। तीनों लोकों में ऐसा कौन है, जो आपके वास्तविक चरित्र को समझ सके?

ब्रह्मार दुर्लभ तोमार श्री-चरण-रेणु ।

हेन चरण-स्पर्श पाइल मोर अधम तनु ॥29॥

ब्रह्मार-ब्रह्माजी द्वारा; दुर्लभ प्राप्य नहीं; तोमार-आपके; श्री-चरण-रेणु-चरणकमलों की धूल; हेन–फिर भी; चरण-स्पर्श-चरणकमलों का स्पर्श; पाइल-मिला; मोर-मेरे; अधम-अधम; तनु-शरीर का।

अनुवाद

“आपके चररकमलों की धूल ब्रह्मा तक को प्राप्य नहीं है। फिर भी आपके चरणकमलों ने मेरे अधम शरीर का स्पर्श किया है।

आजि मोर सफल हैल जन्म, कुल, कर्म ।

आजि पाइनु कृष्ण-भक्ति, अर्थ, काम, धर्म" ॥ 30॥

आजि-आज; मोर-मेरा; स-फल-सफल; हैल-हुआ; जन्म-जन्म; कुल-परिवार; कर्म-कर्म; आजि-आज; पाइनु-मैंने प्राप्त की; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण की भक्ति; अर्थ-आर्थिक सफलता; काम-काम; धर्म-धर्म।

अनुवाद

आज मेरा जन्म, मेरा परिवार तथा मेरे कर्म सभी सफल हो गये। आज मैंने धर्म, अर्थ, काम तथा अन्ततः भगवान् कृष्ण की भक्ति प्राप्त की है।”

शुनि’ नित्यानन्द-प्रभुर आनन्दित मन ।

उठि’ शिवानन्दे कैला प्रेम-आलिङ्गन ॥ 31॥

शुनि’–सुनकर; नित्यानन्द-प्रभुर-नित्यानन्द प्रभु; आनन्दित-अत्यधिक प्रसन्न हुए; मन-मन; उठि’–उठकर; शिवानन्दे-शिवानन्द सेन को; कैला-किया; प्रेम-प्रेमवश; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु ने यह सुना, तो वे अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने उठकर अत्यन्त प्रेमवश शिवानन्द का आलिंगन कर लिया।

आनन्दित शिवानन्द करे समाधान ।

आचार्यादि-वैष्णवेरे दिला वासा-स्थान ॥ 32॥

आनन्दित–प्रसन्न होकर; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; करे समाधान-व्यवस्था करने लगे; आचार्य-आदि-वैष्णवेरे-अद्वैत आचार्य तथा सारे वैष्णवों के लिए; दिला–दिया; वासा-स्थान-निवासस्थान।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के व्यवहार से अत्यधिक प्रसन्न होकर शिवानन्द सेन अद्वैत आचार्य इत्यादि सारे वैष्णवों के लिए निवासस्थान की व्यवस्था करने में लग गये।

नित्यानन्द-प्रभुर सब चरित्र—'विपरीत' ।

क्रुद्ध हञा लाथि मारि' करे तार हित ॥ 33॥

नित्यानन्द-प्रभुर–नित्यानन्द प्रभु का; सब चरित्र-सब चरित्र; विपरीत–विपरित; क्रुद्ध हञा-क्रुद्ध होकर; लाथि मारि'-लात मारी; करे-किया; तार हित-उसके हित।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु का विपरीत स्वभाव उनकी विशेषता है। जब वे क्रुद्ध होकर किसी पर पाद-प्रहार करते हैं, तो वस्तुतः वह उसके हित में होता है

शिवानन्देर भागिना,—श्रीकान्त-सेन नाम ।

मामार अगोचरे कहे करि' अभिमान ॥ 34॥

शिवानन्देर-शिवानन्द सेन के; भागिना-बहन का बेटा (भाँजा); श्रीकान्त-सेन नाम-श्रीकान्त सेन नामक; मामार—उनके मामा; अगोचरे–उनके न होने पर; कहे-कहा; करि' अभिमान-उनके असन्तुष्ट के मन के साथ।

अनुवाद

शिवानन्द सेन के भाँजे श्रीकान्त ने अपने आपको अपमानित अनुभव किया और जब उसके मामा नहीं थे, तब उसने इस विषय पर टिप्पणी की।

चैतन्येर पारिषद मोर मातुलेर ख्याति ।

‘ठाकुराली' करेन गोसाञि, ताँरे मारे लाथि" ॥ 35॥

चैतन्येर पारिषद-श्री चैतन्य महाप्रभु के संगी; मोर–मेरे; मातुलेर-मामा; ख्याति-ख्याति; ठाकुराली–श्रेष्ठता; करेन-दिखाना; गोसाञि-नित्यानन्द प्रभु; ताँरे–उनको; मारे लाथि-लात मारना।

अनुवाद

“मेरे मामा श्री चैतन्य महाप्रभु के संगियों में से एक हैं, किन्तु नित्यानन्द प्रभु उन पर पाद-प्रहार करके अपनी श्रेष्ठता दिखाना चाहते हैं।

एत बलि' श्रीकान्त, बालक आगे चलि' यान ।

सङ्ग छाड़ि’ आगे गेला महाप्रभुर स्थान ॥ 36॥

एत बलि'—यह कहकर; श्रीकान्त-शिवानन्द सेन का भाँजा; बालक-बच्चा; आगे चलि' यान-आगे चला; सङ्ग छाड़ि’–उनका संग छोड़कर; आगे-आगे; गेला-गया; महाप्रभुर स्थान–चैतन्य महाप्रभु के वास स्थान पर।

अनुवाद

यह कहकर श्रीकान्त, जो कि अभी बच्चा था, अपनी टोली छोड़कर अकेले ही चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान पर चला गया।

पेटाङ्गि-गाय करे दण्डवत् नमस्कार ।

गोविन्द कहे,–'श्रीकान्त, आगे पेटाङ्गि उतार' ॥ 37॥

पेटाङ्गि-शर्ट और कोट; गाय—शरीर के ऊपर; करे-पहना; दण्डवत्-नमस्कार-नमस्कार किया; गोविन्द कहे-गोविन्द ने कहा; श्रीकान्त-मेरे प्रिय श्रीकान्त; आगे-पहले; पेटाङ्गि उतार-अपना शर्ट और कोट उतारो।

अनुवाद

जब श्रीकान्त ने महाप्रभु को नमस्कार किया, तो वह अपनी कमीज तथा कोट पहने था। इसलिए गोविन्द ने उससे कहा, "हे श्रीकान्त, सर्वप्रथम अपने कपड़ों को उतार डालो।"

तात्पर्य

कमीज अथवा कोट पहनकर अर्चाविग्रह के कक्ष में प्रवेश करना अथवा उन्हें कोई भेट देना वर्जित है। तन्त्रों में कहा गया है :

वस्त्रेणावृत-देहस्तु यो नरः प्रणमेद हरिम् ।

श्वित्री भवति मूढात्मा सप्त जन्मानि भाविनि ॥

"जो अर्चाविग्रह को शरीर के ऊपरी भाग में वस्त्र पहनकर नमस्कार करता है, वह सात जन्मों के लिए कोढ़ी रहता है।"

प्रभु कहे,_"श्रीकान्त आसियाछे पाञा मनो-दुःख ।

किछु ना बलिह, करुक, ग्राते इहार सुख" ॥ 38॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; श्रीकान्त-श्रीकान्त; आसियाछे-आया है; पाञा-पाकर; मनः-दुःख-मन में दु:खी; किछु—कुछ भी; ना बलिह-न बोलो; करुक-जो चाहे करने दो; माते-जिससे; इहार-उसका; सुख-आनन्द।

अनुवाद

जब गोविन्द श्रीकान्त को सावधान कर रहा था, तब महाप्रभु ने कहा, "उसे तंग मत करो। श्रीकान्त जो चाहे सो करने दो, क्योंकि वह यहाँ अत्यन्त दुःखी मानसिक अवस्था में आया है।"

वैष्णवेर समाचार गोसाञि पुछिला ।

एके एके सबार नाम श्रीकान्त जानाइला ॥ 39॥

वैष्णवेर-सभी वैष्णवों का; समाचार-समाचार; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभुः पुछिला-पूछा; एके एके-एक के बाद एक; सबार-सबों के नाम-नाम; श्रीकान्त-शिवानन्द सेन के भाँजे ने; जानाइला–सूचित किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीकान्त से समस्त वैष्णवों के विषय में पूछा और उस बालक ने सबों का नाम लेकर उनके विषय में महाप्रभु को सूचित किया।

'दुःख पाञा आसियाछे'–एइ प्रभुर वाक्य शुनि'।

जानिला 'सर्वज्ञ प्रभु'–एत अनुमानि' ॥40॥

दुःख–दुःख; पाञा-पाकर; आसियाछे—वह आया है; एइ–यह; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; वाक्य-वाक्य; शुनि'–सुनकर; जानिला–समझ गया; सर्वज्ञ प्रभु–महाप्रभु सर्वज्ञ हैं; एत—यह; अनुमानि'–अनुमान।

अनुवाद

जब श्रीकान्त सेन ने महाप्रभु को यह कहते सुना कि, "वह दुःखी है," तो वह समझ गया कि महाप्रभु सर्वज्ञ हैं।

शिवानन्दे लाथि मारिला,—इहा ना कहिला ।

एथा सब वैष्णव-गण आसिया मिलिला ॥41॥

शिवानन्दे-शिवानन्द सेन; लाथि मारिला-(नित्यानन्द प्रभु) लात मारी; इहा-यह; ना कहिला-कुछ नहीं कहा; एथा—यहाँ; सब-सब; वैष्णव-गण-भक्त; आसिया-आकर; मिलिला–मिलने गये।

अनुवाद

इसलिए जब उसने वैष्णवों का हाल बतलाया, तब उसने नित्यानन्द प्रभु द्वारा शिवानन्द सेन पर पाद-प्रहार किये जाने का उल्लेख नहीं किया। इस बीच सारे भक्त आ गये और महाप्रभु से मिलने गये।

पूर्ववत् प्रभु कैला सबार मिलन ।

स्त्री-सब दूर ह-इते कैला प्रभुर दरशन ॥ 42 ॥

पूर्व-वत्-पहले की तरह; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला–किया; सबार मिलन-सबसे मिलन; स्त्री-स्त्री; सब-सब; दूर ह-इते-दूर से; कैला–किया; प्रभुर दरशन-महाप्रभु का दर्शन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पहले के वर्षों की तरह उन सभी का स्वागत किया। किन्तु स्त्रियों ने दूर से महाप्रभु का दर्शन किया।

वासा-घर पूर्ववत् सबारे देओयाइला ।

महाप्रसाद-भोजने सबारे बोलाइला ॥43 ॥

वासा-घर–निवासीय कमरे; पूर्व-वत्-पहले की तरह; सबारे-सबों को; देओयाइला–दिलवाया; महा-प्रसाद-जगन्नाथजी का प्रसाद; भोजने–खाने; सबारे-सबों को; बोलाइला–उन्होंने बुलाया।

अनुवाद

महाप्रभु ने फिर से सारे भक्तों के लिए निवासीय कमरों का प्रबन्ध किया और उसके बाद जगन्नाथजी का प्रसाद पाने के लिए सबों को बुलाया।

शिवानन्द तिन-पुत्रे गोसाञिरे मिलाइला ।

शिवानन्द-सम्बन्धे सबाय बहु-कृपा कैला ॥44॥

शिवानन्द-शिवानन्द सेन; तिन-पुत्रे–तीन पुत्र; गोसाञिरे-श्री चैतन्य महाप्रभु से; मिलाइला–परिचय कराया; शिवानन्द-सम्बन्धे-क्योंकि वे शिवानन्द सेन के पुत्र थे; सबाय-उन सब पर; बहु-कृपा कैला-अत्यधिक कृपा प्रदर्शित की।

अनुवाद

शिवानन्द सेन ने श्री चैतन्य महाप्रभु से अपने तीनों पुत्रों का परिचय कराया। चूँकि वे उनके पुत्र थे, इसलिए महाप्रभु ने इन बालकों पर अत्यधिक कृपा प्रदर्शित की।

छोट-पुत्रे देखि' प्रभु नाम पुछिला ।

'परमानन्द-दास'-नाम सेन जानाइला ॥ 45 ॥

छोट-पुत्रे-छोटे पुत्र; देखि'–देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नाम पुछिला-उसका नाम पूछा; परमानन्द-दास-परमानन्द दास; नाम-नाम; सेन–शिवानन्द सेन; जानाइला-बतलाया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने शिवानन्द सेन के सबसे छोटे पुत्र का नाम पूछा, तो शिवानन्द सेन ने उसका नाम परमानन्द दास बतलाया।

पूर्वे यबे शिवानन्द प्रभु-स्थाने आइला ।

तबे महाप्रभु ताँरे कहिते लागिला ॥ 46॥

“ए-बार तोमार येइ ह-इबे कुमार।

‘पुरी-दास’ बलि' नाम धरिह ताहार ॥47॥

पूर्वे-पहले; यबे-जब; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; आइला–आये; तबे—उस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको; कहिते लागिला-कहने लगे; ए-बार-इस समय; तोमार—तुम्हें; येइ-यह; ह–इबे-होगा; कुमार पुत्र; पुरी-दास-पुरी दास; बलि'–इसका; नाम-नाम; धरिह-देना; ताहार–इसका।

अनुवाद

एक बार जब शिवानन्द सेन श्री चैतन्य महाप्रभु से उनके स्थान पर मिले थे, तब महाप्रभु ने उनसे कहा था, "जब तुम्हें यह पुत्र जन्मे, तो इसका नाम पुरी दास रखना।”

तबे मायेर गर्भे हय सेइ त' कुमार।

शिवानन्द घरे गेले, जन्म हैल तार ॥48॥

तबे-तब; मायेर गर्भ-माँ के गर्भे में; हय–था; सेइ त' कुमार-वह पुत्र; शिवानन्द घरे गेले-जब शिवानन्द सेन घर लौटे; जन्म हैल तार–वह उत्पन्न हुआ था।

अनुवाद

तब यह पुत्र शिवानन्द की पत्नी के गर्भ में था और जब वे घर लौटे, तब पुत्र उत्पन्न हुआ।

प्रभु-आज्ञाय धरिला नाम ‘परमानन्द-दास’।

‘पुरी-दास’ करि’ प्रभु करेन उपहास ॥49॥

प्रभु-आज्ञाय-श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा पर; धरिला नाम-नाम रखा; परमानन्द-दास–परमानन्द दास; पुरी-दास–पुरी दास; करि'–किया; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभुः करेन उपहास-हँस-हँसकर।

अनुवाद

महाप्रभु की आज्ञा के अनुसार बच्चे का नाम परमानन्द दास रखा गया और महाप्रभु ने हँसी-हँसी में उसे पुरी दास कहा।

शिवानन्द यबे सेइ बालके मिलाइला ।

महाप्रभु पादाङ्गुष्ठ तार मुखे दिला ॥50॥

शिवानन्द-शिवानन्द सेन; यबे-जब; सेइ-वह; बालके-बालक; मिलाइला-परिचय; महाप्रभु–महाप्रभु; पाद-अङ्गुष्ठ–अगूंठा; तार-उसके; मुखे-मुँह में; दिला-डाल दिया।

अनुवाद

जब शिवानन्द सेन ने इस बालक का परिचय श्री चैतन्य महाप्रभु से कराया, तब महाप्रभु ने उसके मुँह में अपना अँगूठा डाल दिया।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में महाप्रभु ने जो बाद में कृपा की, उसके लिए देखें अन्त्य लीला, अध्याय 16 श्लोक 65-75 ।

शिवानन्देर भाग्य-सिन्धु के पाइबे पार? ।

याँर सब गोष्ठीके प्रभु कहे 'आपनार' ॥51॥

शिवानन्देर-शिवानन्द सेन के; भाग्य-सिन्धु–सौभाग्य रूपी सागर; के–जो; पाइबे पार–लाँघ सकता है; याँर-जिसका; सब गोष्ठीके-समस्त परिवार को प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; कहे-कहा; आपना-अपना।

अनुवाद

शिवानन्द सेन के सौभाग्य रूपी सागर को कोई लाँघ नहीं सकता, क्योंकि महाप्रभु शिवानन्द के समस्त परिवार को अपना मानते थे।

तबे सब भक्त लञा करिला भोजन ।

गोविन्देरे आज्ञा दिला करि' आचमन ॥52॥

तबे-तब; सब भक्त लञा-सभी भक्तों के साथ; करिला भोजन-भोजन किया; गोविन्देरे-गोविन्द को; आज्ञा दिला-आज्ञा दी; करि' आचमन-हाथ और मुँह धोने के बाद।

अनुवाद

महाप्रभु ने अन्य सारे भक्तों के साथ भोजन किया और हाथ-मुँह धोने के बाद गोविन्द को यह आज्ञा दी।

शिवानन्देर 'प्रकृति', पुत्र—यावतेथाय ।

आमार अवशेष-पात्र तारा येन पाय" ॥53॥

शिवानन्देर-शिवानन्द सेन की; प्रकृति-पत्नी; पुत्र-पुत्र; ग्रावत्-जब तक; एथाय-यहाँ; आमार-मेरे; अवशेष-पात्र-भोजन के अवशेष के थाली; तारा-उन सभी को; येन–दिया; पाय-जाय।।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "जब तक शिवानन्द सेन की पत्नी तथा उसके पुत्र जगन्नाथपुरी में रुकें, उन्हें मेरे भोजन का शेष दिया जाय।"

नदीया-वासी मोदक, तार नाम 'परमेश्वर' ।

मोदक वेचे, प्रभुर वाटीर निकट तार घर ॥54॥

नदीया-वासी-नदिया के निवासी; मोदक–एक हलवाई; तार नाम-उसका नाम; परमेश्वर-परमेश्वर; मोदक वेचे—उसका हलवाई का व्यापार था; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; वाटीर निकट-घर के पास; तार घर-उसका घर।

अनुवाद

नदिया के निवासी परमेश्वर नाम के एक हलवाई (मोदक) थे, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के घर के समीप रहते थे।

बालक-काले प्रभु तार घरे बार बार या' न ।

दुग्ध, खण्ड मोदक देय, प्रभु ताहा खा' न ॥55॥

बालक-काले बाल्य काल में प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; तार घरे—इस घर में; बार बार-बारम्बार; या 'न-जाते थे; दुग्ध-दूध; खण्ड–मिठाइयाँ; मोदक देय-हलवाई देते थे; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; ताहा-वह; खान-खाते थे।

अनुवाद

जब महाप्रभु बालक थे, तब वे परमेश्वर मोदक के घर बारम्बार जाते थे। वह हलवाई उन्हें दूध तथा मिठाइयाँ देता और महाप्रभु उन्हें खाते थे।

प्रभु-विषये स्नेह तार बालक-काल हैते ।

से वत्सर सेह आइल प्रभुरे देखिते ॥56॥

प्रभु-विषये-श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति; स्नेह-स्नेहिल; तार–परमेश्वर मोदक से; बालक-काल हैते–जबसे वे बालक थे; से वत्सर–इस वर्ष; सेह-वह भी; आइल-आये; प्रभुरे देखिते-प्रभु के दर्शन करने।

अनुवाद

परमेश्वर मोदक बाल्यकाल से ही महाप्रभु के प्रति स्नेहिल थे और वे भी इस वर्ष जगन्नाथपुरी महाप्रभु के दर्शनार्थ आये थे।

‘परमेश्वरा मुञि' बलि' दण्डवत् कैल।

तारे देखि’ प्रभु प्रीते ताहारे पुछिल ॥57॥

परमेश्वरा-परमेश्वर; मुञि'-मैं; बलि'–कहकर; दण्डवत् कैल-नमस्कार किया; तारे–उनको; देखि’–देखकर; प्रभु-महाप्रभु; प्रीते-स्नेह के साथ; ताहारे-उनको; पुछिल–पूछा।

अनुवाद

उन्होंने महाप्रभु को नमस्कार करके कहा, "मैं वही परमेश्वर हूँ।” उन्हें देखकर महाप्रभु ने उनसे अत्यन्त स्नेह के साथ प्रश्न पूछे।

‘परमेश्वर कुशल हओ, भाल हैल, आइला' ।

‘मुकुन्दार माता आसियाछे' सेह प्रभुरे कहिला ॥58॥

परमेश्वर-हे परमेश्वर; कुशल हओ-मंगल हो; भाल हैल–अच्छा हुआ; आइला-आप आये; मुकुन्दार माता-मुकुन्द की माता; आसियाछे-आयी है; सेह-वे; प्रभुरे कहिला–प्रभु को बतलाया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “हे परमेश्वर, आपका मंगल हो। अच्छा हुआ कि आप यहाँ आये हो।” तब परमेश्वर ने महाप्रभु को बतलाया, "मुकुन्द की माता भी आई है।”

मुकुन्दार मातार नाम शुनि’ प्रभु सङ्कोच हैला ।

तथापि ताहार प्रीते किछु ना बलिला ॥59॥

मुकुन्दार मातार—मुकुन्द की माताजी; नाम-नाम; शुनि’–सुनकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; सङ्कोच हैला-संकोच हुआ; तथापि तथापि; ताहार–परमेश्वर को; प्रीते-स्नेहवश; किछु-कुछ भी; ना बलिला–नहीं कहा।

अनुवाद

मुकुन्दार माता का नाम सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु को संकोच हुआ, किन्तु परमेश्वर के स्नेहवश उन्होंने कुछ नहीं कहा।

तात्पर्य

संन्यासी को तो स्त्री का नाम सुनना भी निषिद्ध है और श्री चैतन्य महाप्रभु अपने व्रत पालन में अत्यन्त कठोर थे। परमेश्वर ने महाप्रभु को बताया कि उसकी पत्नी मुकुन्दार माता भी उनके साथ आई है। उन्हें उसका उल्लेख नहीं करना चाहिए था, इसीलिए महाप्रभु को क्षणभर संकोच हुआ, किन्तु परमेश्वर के प्रति स्नेह के कारण वे कुछ बोले नहीं। श्री चैतन्य महाप्रभु परमेश्वर मोदक को अपने बचपन से जानते थे, इसीलिए परमेश्वर ने अपनी पत्नी के आने की बात बिना सोचे-विचारे महाप्रभु से बतलाई ।

प्रश्रय-पागल शुद्ध-वैदग्धी ना जाने ।

अन्तरे सुखी हैला प्रभु तार सेइ गुणे ॥60॥

प्रश्रय-घनिष्ठता; पागल-पागल; शुद्ध-शुद्ध; वैदग्धी-शिष्टाचार; ना जाने नहीं जानते; अन्तरे-मन से; सुखी हैला–सुखी हुए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तार-उनके; सेइ गुणे-वास्तव में।

अनुवाद

घनिष्ठता के कारण कभी-कभी सामान्य शिष्टाचार का उल्लंघन हो जाता है। अतएव परमेश्वर ने अपने सरल तथा स्नेहमय आचरण से वास्तव में महाप्रभु के अन्तर को सुखी बनाया।

तात्पर्य

प्रश्रय का अर्थ है स्नेह, दीनता, श्रद्धा या विशेष अनुग्रह की माँग या ऐसी ही छूटों में लिप्त होना। पागल का अर्थ है औद्धत्य, प्रगल्भता और प्रभाव। वैदग्धीका अर्थ है चतुरता, रसिकता, सौन्दर्य, पटुता, विद्या, भंगी तथा आचरण।

पूर्ववत् सबा लञा गुण्डिचा-मार्जन ।

रथ-आगे पूर्ववत् करिला नर्तन ॥ 61॥

पूर्व-वत्-पहले की तरह; सबा-सारे भक्तों ने; लञा–लिया; गुण्डिचा-मार्जन-गुण्डिचा मार्जन; रथ-आगे-रथ के आगे; पूर्व-वत्-पहले की तरह; करिला नर्तन-नृत्य किया।

अनुवाद

सारे भक्तों ने गुण्डिचा मन्दिर-मार्जन में भाग लिया और रथयात्रा में रथ के समक्ष उसी तरह नृत्य किया, जिस तरह उन्होंने पहले किया था।

चातुर्मास्य सब यात्रा कैला दरशन ।

मालिनी-प्रभृति प्रभुरे कैला निमन्त्रण ॥62॥

चातुर्मास्य-चार महीनों के लिए; सब यात्रा-सारे उत्सव; कैला दरशन-देखे; मालिनी-प्रभृति-श्रीवास ठाकुर की पत्नी मालिनी जैसी महिलाएँ; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु को; कैला निमन्त्रण-निमन्त्रण किया।

अनुवाद

भक्तों ने चार महीनों तक सारे उत्सव मनाये। मालिनी इत्यादि पत्नियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन के लिए निमन्त्रण भेजा।

प्रभुर प्रिय नाना द्रव्य आनियाछे देश हैते ।

सेइ व्यञ्जन करि' भिक्षा देन घर-भाते ॥63 ॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; प्रिय–प्रिय (पसन्द); नाना द्रव्य-नाना प्रकार के; आनियाछे-आये थे; देश हैते-अपने देश से; सेइ व्यञ्जन करि'-तैयार हुई तरकारियाँ; भिक्षा देन-दान दिया; घर-भाते-घर पर पकाई हुई।

अनुवाद

भक्तगण अपने साथ बंगाल से नाना प्रकार के बंगाली भोजन ले आये थे, जो श्री चैतन्य महाप्रभु को पसन्द थे। उन्होंने अपने घरों में विविध अन्न तथा तरकारियाँ भी पकाईं और उन्हें महाप्रभु को दिया।

दिने नाना क्रीड़ा करे लञा भक्त-गण ।

रात्र्ये कृष्ण-विच्छेदे प्रभु करेन रोदन ॥64॥

दिने–दिन में; नाना-विविध; क्रीड़ा करे–कार्यों में लगे; लञा भक्त-गण-अपने भक्तों के साथ; रात्र्ये-रात्रि में; कृष्ण-विच्छेदे-कृष्ण के महान् विरह; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन रोदन-रोते ।

अनुवाद

दिन में श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के साथ विविध कार्यों में लगे रहते, किन्तु रात्रि में कृष्ण के महान् विरह का अनुभव करते हुए अश्रु बहाते।

एइ-मत नाना-लीलाय चातुर्मास्य गेल ।

गौड़-देशे याइते तबे भक्ते आज्ञा दिल ॥65॥

एइ-मत-इस तरह; नाना-लीलाय-नाना प्रकार की लीलाओं में; चातुर्मास्य गेल-वर्षाऋतु के चार मास व्यतीत हो गये; गौड़-देशे याइते-बंगाल वापस जाने के लिए; तबे-तब; भक्ते-सारे भक्त; आज्ञा दिल-श्री चैतन्य महाप्रभु ने आज्ञा दी।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु ने नाना प्रकार की लीलाओं में वर्षाऋतु के चार मास व्यतीत किये और तब बंगाली भक्तों को अपने-अपने घर लौट जाने की आज्ञा दी।

सब भक्त करेन महाप्रभुर निमन्त्रण ।

सर्व-भक्ते कहेन प्रभु मधुर वचन ॥66॥

सब भक्त-सारे भक्त; करेन महाप्रभुर निमन्त्रण-श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन के लिए आमन्त्रित करते रहते; सर्व-भक्ते-सारे भक्तों को; कहेन–कहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मधुर वचन–मधुर शब्द।

अनुवाद

बंगाल के सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु को नियमित रूप से भोजन के लिए आमन्त्रित करते रहते और महाप्रभु उनसे अत्यन्त मधुर शब्द कहते।

"प्रति-वर्षे आइस सबे आमारे देखिते ।

आसिते याइते दुःख पाओ बहु-मते ॥ 67॥

प्रति-वर्षे प्रतिवर्ष; आइस-आते हो; सबे-तुम सब; आमारे देखिते-मुझे मिलने के लिए; आसिते-आने में; याइते-लौटने में; दुःख पाओ-तुम्हें अवश्य ही भारी कष्ट होता होगा; बहु-मते-विविध रूप से।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "तुम सब लोग प्रतिवर्ष मुझे मिलने आते रहते हो। यहाँ आने तथा लौटने में तुम लोगों को अवश्य ही भारी कष्ट होता होगा।

तोमा-सबार दुःख जानि' चाहि निषेधिते ।

तोमा-सबार सङ्ग-सुखे लोभ बाड़े चित्ते ॥ 68 ॥

तोमा-सबार-तुम सब का; दुःख-दुःख; जानि'–समझकर; चाहि निषेधिते-ऐसा करने से; तोमा-सबार-तुम सब; सङ्ग-सुखे-तुम लोगों की संगति अच्छी लगती है; लोभ–इच्छा; बाड़े-बढ़ती; चित्ते-मेरे मन में।

अनुवाद

"मैं तुम लोगों को ऐसा करने से मना कर देता, किन्तु मुझे तुम लोगों की संगति इतनी अच्छी लगती है कि तुम लोगों की संगति करने की मेरी इच्छा बढ़ती ही जाती है।

नित्यानन्दे आज्ञा दिलुँ गौड़ेते रहिते ।

आज्ञा लङ्घि' आइला, कि पारि बलिते? ॥ 69॥

नित्यानन्दे-श्री नित्यानन्द प्रभु तक; आज्ञा दिलुँ-मैंने आदेश दिया; गौड़ेते रहिते-बंगाल में रहने का; आज्ञा लङ्घि'–मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके; आइला–वे आये हैं; कि-क्या; पारि बलिते-मैं कह सकता हूँ।

अनुवाद

"मैंने श्री नित्यानन्द प्रभु को बंगाल न छोड़ने का आदेश दिया था, किन्तु वे आज्ञा का उल्लंघन करके मेरे दर्शनार्थ आये हैं। भला मैं क्या कह सकता हूँ?

आइलेन आचार्य-गोसाञि मोरे कृपा करि’ ।

प्रेम-ऋणे बद्ध आमि, शुधिते ना पारि ॥ 70 ॥

आइलेन-आये हैं; आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य; मोरे-मुझ पर; कृपा करि’-कृपा की; प्रेम-प्रेम का; ऋणे-ऋणी हूँ; बद्ध आमि–मैं बँधा हुआ हूँ; शुधिते-उऋण हो पाना; ना पारि-असम्भव है।

अनुवाद

“अद्वैत आचार्य भी मुझ पर अपनी अहैतुकी कृपा के कारण यहाँ आये हैं। मैं उनके स्नेहिल व्यवहार के लिए उनका ऋणी हूँ। मेरे लिए इस ऋण से उऋण हो पाना असम्भव है।

मोर लागि’ स्त्री-पुत्र गृहादि छाड़िया ।

नाना दुर्गम पथ लङ्घि' आइसेन धाञा ॥79॥

मोर लागि’-मेरे लिए; स्त्री-पत्नी; पुत्र-पुत्र; गृह-आदि-घर तथा परिवार आदि को; छाड़िया-छोड़कर; नाना-नाना; दुर्गम-अत्यन्त दुर्गम; पथ–रास्तों से; लङ्घि'-होकर; आइसेन धाञा-बड़ी शीघ्रता से यहाँ आते हैं।

अनुवाद

सारे भक्त यहाँ मेरे लिए आते हैं। वे अपने घरों तथा परिवारों को छोड़कर यहाँ शीघ्र पहुँचने के लिए अत्यन्त दुर्गम रास्तों से होकर यात्रा करते हैं।

आमि एइ नीलाचले रहि ये वसिया ।

परिश्रम नाहि मोर तोमा सबार लागिया ॥72॥

आमि-मैं; एइ–यहाँ; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; रहिरहता; ये वसिया-जाता हूँ; परिश्रम नाहि मोर-थकावट या कष्ट नहीं होता; तोमा सबार लागिया-तुम सबों की कृपा है।

अनुवाद

मुझको कोई थकावट या कष्ट नहीं होता, क्योंकि मैं तो यहाँ नीलाचल, जगन्नाथ पुरी में ही रहता हूँ और कहीं भी नहीं जाता। यह तो तुम सबों की कृपा है।

सन्यासी मानुष मोर, नाहि कोन धन ।

कि दिया तोमार ऋण करिमु शोधन? ॥73॥

सन्यासी मानुष-संन्यास आश्रम में; मोर–मेरे पास; नाहि-नहीं; कोन-कोई; धन-धन; कि–क्या; दिया–दिया; तोमार ऋण-तुम सब का; करिमु शोधन–कैसे चुका सकता हूँ।

अनुवाद

"मैं संन्यासी हूँ और मेरे पास धन नहीं है। भला तुमने मुझ पर जो कृपा दिखलाई है, उसका ऋण मैं कैसे चुकता कर सकता हूँ?

देह-मात्र धन तोमाय कैलुँ समर्पण ।

ताहाँ विकाइ, याहाँ वेचिते तोमार मन" ॥74॥

देह-शरीर; मात्र–केवल; धन-धन; तोमाय-तुम्हारे पर; कैलुँ समर्पण-मैं समर्पित करता हूँ; ताहाँ-वहाँ; विकाइ–मैं बेचता; याहाँ–कहाँ; वेचिते-बेच सकते; तोमार मन–तुम्हारा मन।

अनुवाद

"मेरे पास केवल यह शरीर है, अतएव मैं इसे तुम्हें समर्पित करता हूँ। अब तुम चाहो, तो इसे कहीं भी बेच सकते हो। यह तुम्हारी सम्पत्ति है।"

प्रभुर वचने सबार द्रवी-भूत मन ।

अझोर-नयने सबै करेन क्रन्दन ॥ 75 ॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; वचने-शब्दों से; सबार-सब का; द्रवी-भूत-द्रवीभूत हो गया; मन-मन; अझोर-अश्रु बहाने लगी; नयने-आँखे; सबे-सब की; करेन क्रन्दन-रोने लगे।

अनुवाद

जब सारे भक्तों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के इन मधुर वचनों को सुना, तो उनके हृदय द्रवित हो उठे और वे लगातार अश्रु बहाने लगे।

प्रभु सबार गला धरि' करेन रोदन ।

कान्दिते कान्दिते सबाय कैला आलिङ्गन ॥ 76 ॥

प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; सबार-सभी को; गला–गले से; धरि'-लगाकर; करेन रोदन-रोना शुरू किया; कान्दिते कान्दिते-रोने लगे; सबाय-उन सबों का; कैला आलिङ्गन-आलिंगन किया।

अनुवाद

अपने भक्तों को पकड़कर महाप्रभु ने सबों का आलिंगन किया और स्वयं रोने लगे।

सबाइ रहिल, केह चलिते नारिल ।

आर दिन पाँच-सात एइ-मते गेल ॥ 77॥

सबाइ रहिल–सभी रहे; केह चलिते नारिल-कोई भी न छोड़ पाये; आर-और; दिन पाँच-सात-पाँच सात दिन; एइ-मते-इस प्रकार; गेल-व्यतीत हुए।

अनुवाद

उन्हें न छोड़ पाने के कारण वे सभी वहीं रहे और इस तरह पाँच-सात दिन और बीत गये।

अद्वैत अवधूत किछु कहे प्रभु-पाय ।

"सहजे तोमार गुणे जगत् विकाय ॥78 ॥

अद्वैत-अद्वैत प्रभु; अवधूत-नित्यानन्द प्रभु; किछु-कुछ; कहे-कहा; प्रभु-पाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर; सहजे–सहज रूप से; तोमार-आपके; गुणे-दिव्य गुणों के कारण; जगत् विकाय-सारा जगत् आपके प्रति कृतज्ञ है।

अनुवाद

अद्वैत प्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु ने महाप्रभु के चरणकमलों में ये शब्द निवेदित किये, "आपके दिव्य गुणों के कारण सारा जगत् सहज रूप से आपके प्रति कृतज्ञ है।

आबार ताते बान्ध'—ऐछे कृपा-वाक्य-डोरे ।

तोमा छाड़ि' केबा काहाँ याइबारे पारे?" ॥79॥

आबार फिर से; ताते–तो भी; बान्ध'-आप बाँधते हैं; ऐछे-ऐसे; कृपा-दयापूर्ण; वाक्य-शब्दों से; डोरे-डोरी से; तोमा छाड़ि'–आपको छोड़कर; केबा-कौन; काहाँ-कहाँ भी; याइबारे पारे-जा सकता है।

अनुवाद

फिर भी आप अपने मधुर वचनों से अपने भक्तों को फिर से बाँध लेते हैं। ऐसी अवस्था में कौन कहीं भी जा सकता है?"

तबे प्रभु सबाकारे प्रबोध करिया ।

सबारे विदाय दिला सुस्थिर हञा ॥80॥

तबे-तब; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सजाकारे–उन सब को; प्रबोध करिया-शान्त किया; सबारे-हर एक को; विदाय दिला–विदा कराया; सु-स्थिर हञा–शान्त परिस्थिति में।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबों को शान्त किया और हर एक को विदा किया।

नित्यानन्दे कहिला–"तुमि ना आसिह बार-बार।

तथाइ आमार सङ्ग ह-इबे तोमार" ॥81॥

नित्यानन्दे-नित्यानन्द प्रभु से; कहिला–कहा; तुमि-आप; ना आसिह–नहीं आना चाहिए; बार-बार-बारम्बार; तथाइ-वहाँ (बंगाल में); आमार-मेरा; सङ्ग-संग; ह-इबे—प्राप्त होगा; तोमार—आपको।

अनुवाद

महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु से विशेष अनुरोध किया, "आपको यहाँ पर बारम्बार नहीं आना चाहिए। बंगाल में आपको मेरा संग प्राप्त होगा।"

चले सब भक्त-गण रोदन करिया।

महाप्रभु रहिला घरे विषण्ण हञा ॥82॥

चले–शुरू की; सब-सभी; भक्त-गण-भक्तगण; रोदन करिया-रोना शुरू किया; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; रहिला-रहे; घरे-अपने आवास में; विषण्ण हञा–अत्यन्त खिन्न होकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों ने रोते-रोते यात्रा शुरू की, जबकि महाप्रभु अपने आवास में खिन्न होकर रहे।

निज-कृपा-गुणे प्रभु बान्धिला सबारे।

महाप्रभुर कृपा-ऋण के शोधिते पारे? ॥83॥

निज-अपनी; कृपा-गुणे-दिव्य कृपा से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; बान्धिला–बाँध लिया; सबारे-हर एक को; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; कृपा-ऋण-कृपा के ऋण को; के-कौन; शोधिते पारे–चुका सकता है।

अनुवाद

महाप्रभु ने अपनी दिव्य कृपा से हर एक को बाँध लिया। श्री चैतन्य महाप्रभु की इस कृपा के ऋण को कौन चुका सकता है?

यारे यैछे नाचाय प्रभु स्वतन्त्र ईश्वर ।

ताते तारे छाड़ि' लोक याय देशान्तर ॥84॥

यारे-जिस किसी को; यैछे-जैसे; नाचाय-नचाते हैं; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः स्वतन्त्र ईश्वर–स्वतन्त्र परमेश्वर; ताते—इसलिए; तारे–उनको; छाड़ि'–छोड़कर; लोक-लोग; याय-गये; देश-अन्तर-देश के अलग अलग भागों में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्णरूपेण स्वतन्त्र परमेश्वर हैं। वे हर एक को अपनी इच्छानुसार नचाते हैं। इसलिए सारे भक्त उनका साथ छोड़कर देश के विभिन्न भागों में अपने-अपने घर लौट गये।

काष्ठेर पुतली येन कुहके नाचाय ।

ईश्वर-चरित्र किछु बुझन ना याय ॥85॥

काष्ठेर-(काठ) लकडे से बनी; पुतली–पुतली; येन-जैसे; कुहके-जादूगार के; नाचाय-इच्छानुसार नाचती है; ईश्वर-चरित्र–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरित्र; किछु बुझन ना याय को कौन समझ सकता है।

अनुवाद

जिस तरह काठ की पुतली नचाने वाले की इच्छानुसार नाचती है, उसी तरह हर कार्य भगवान् की इच्छा से सम्पन्न होता है। भला पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरित्र को कौन समझ सकता है?

पूर्व-वर्षे जगदानन्द 'आइ' देखिबारे ।

प्रभु-आज्ञा लञा आइला नदीया-नगरे ॥86॥

पूर्व-वर्षे–पिछले वर्ष; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; आई-शचीमाता; देखिबारे-को देखने; प्रभु-आज्ञा लञा-श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश का पालन करते हुए; आइला-आये; नदीया-नगरे–नदिया शहर।

अनुवाद

पिछले वर्ष महाप्रभु के आदेश का पालन करते हुए जगदानन्द पण्डित शचीमाता को मिलने नदिया शहर लौट आये थे।

आइर चरण याइ' करिला वन्दन ।

जगन्नाथेर वस्त्र-प्रसाद कैला निवेदन ॥ 87॥

आइर–शचीमाता के; चरण-चरणकमलों की; याइ'–जाकर; करिला वन्दन-वन्दना की; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ के; वस्त्र-प्रसाद-वस्त्र और प्रसाद; कैला निवेदन–दिया।

अनुवाद

जब वे आये, तो उन्होंने उनके चरणकमलों की वन्दना की और तब उन्हें जगन्नाथजी के वस्त्र तथा प्रसाद दिये।

प्रभुर नामे मातारे दण्डवत् कैला ।

प्रभुर विनति-स्तुति मातारे कहिला ॥88॥

प्रभुर नामे-श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम से; मातारे-उनकी माता को; दण्डवत् कैला-दण्डवत् प्रणाम किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; विनति-स्तुति–विनती तथा प्रार्थना; मातारे–उनकी माता को; कहिला–कही।

अनुवाद

उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु की ओर से शचीमाता को नमस्कार किया और उनसे भगवान् चैतन्य महाप्रभु की सारी विनती तथा प्रार्थना कही।

जगदानन्दे पाञा माता आनन्दित मने ।

तेंहो प्रभुर कथा कहे, शुने रात्रि-दिने ॥89॥

जगदानन्दे जगदानन्द; पाञा हो गई; माता-शचीमाता; आनन्दित मने-मन से आनन्दित; तेंहो-वह; प्रभुर कथा-श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में; कहे-कहा; शुने-सुना; रात्रि-दिने-रात और दिन।

अनुवाद

जगदानन्द के आने से शचीमाता अत्यधिक आनन्दित हुई। जब वे । चैतन्य महाप्रभु के विषय में बतलाते, तो वे रात-दिन सुनतीं।

जगदानन्द कहे,–"माता, कोन कोन दिने ।

तोमार एथा आसि' प्रभु करेन भोजने ॥90॥

जगदानन्द कहे-जगदानन्द ने कहा; माता-हे माता; कोन कोन दिने-कभी-कभी; तोमार एथा आसि'–यहाँ आते हैं; प्रभु–प्रभु; करेन भोजने–भोजन करते हैं।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित ने कहा, “हे माता, कभी-कभी महाप्रभु यहाँ आते हैं और आप जो भोजन देती हैं, उसे पूरा खा जाते हैं।

भोजन करिया कहे आनन्दित हञा ।

माता आजि खाओयाइला आकण्ठ पूरिया ॥91॥

भोजन करिया-भोजन करने के बाद; कहे-कहते हैं; आनन्दित हञा–अत्यन्त आनन्दित होकर; माता-माता; आजि-आज; खाओयाइला-खिलाया; आकण्ठ-गले तक; पूरिया-भरकर।

अनुवाद

"भोजन करने के बाद महाप्रभु कहते हैं, “आज मेरी माता ने मुझे गले तक भरकर खिला दिया है।

आमि याइ’ भोजन करि—माता नाहि जाने ।

साक्षाते खाइ आमि' तेंहो ‘स्वप्न' हेन माने" ॥92॥

आमि-मैं; याइ’-जाता हूँ; भोजन करि-भोजन देती है; माता-माता; नाहि जाने-नहीं समझ पातीं; साक्षाते-प्रत्यक्ष; खाइ आमि'-मैं खा रहा हूँ; तेंहो-वे; स्वप्न-सपना; हेन-जब; माने-सोचती हैं।

अनुवाद

“मैं वहाँ जाता हूँ और मेरी माता जो भोजन देती हैं उसे खाता हूँ, किन्तु वे यह समझ नहीं पातीं कि मैं प्रत्यक्ष रूप से खा रहा हूँ। वे सोचती हैं कि यह सपना है।”

माता कहे,–“कत रान्धि उत्तम व्यञ्जन ।

निमाञि इहाँ खाय,—इच्छा हय मोर मन ॥ 93॥

माता कहे-माता ने कहा; कत-कभी भी; रान्धि-मैंने पकाई हुई; उत्तम व्यञ्जन-सुन्दर सब्जियाँ; निमाञि-निमाइ; इहाँ–यहाँ; खाय-खाये; इच्छा-इच्छा; हय-है; मोर मन-मेरा मन।

अनुवाद

शचीमाता ने कहा, "मैं चाहती हूँ कि निमाइ मेरे द्वारा पकाई सारी सुन्दर सब्जियाँ खाये। यही मेरी इच्छा है।

निमाञि खाञाछे,—ऐछे हय मोर मन ।

पाछे ज्ञान हय,—मुञि देखिनु 'स्वपन"" ॥94॥

निमाञि खाञाछे–निमाई उन्हें खा चुका है; ऐछे-ऐसा; हय-है; मोर-मेरा; मन-मन; पाछे-बाद में; ज्ञान हय-मैं सोचती हूँ; मुञि-मैं; देखिनु स्वपन–सपना देख रही थी।

अनुवाद

"मैं कभी-कभी सोचती हूँ कि निमाइ उन्हें खा चुका है, किन्तु बाद में सोचती हूँ कि मैं तो केवल सपना देख रही थी।"

एइ-मत जगदानन्द शचीमाता-सने ।

चैतन्येर सुख-कथा कहे रात्रि-दिने ॥95॥

एइ-मत-इस तरह; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; शचीमाता-सने-शचीमाता के साथ; चैतन्येर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; सुख-कथा-सुख के विषय में; कहे-कहते; रात्रि-दिने-रात और दिन।

अनुवाद

इस तरह जगदानन्द पण्डित तथा शचीमाता रात-दिन श्री चैतन्य महाप्रभु के सुख के विषय में बातें करते।

नदीयार भक्त-गणे सबारे मिलिला ।

जगदानन्दे पाञा सबे आनन्दित हैला ॥ 96 ॥

नदीयार-नदिया में, नवद्वीप; भक्त-गणे-भक्तों से; सबारे सारे; मिलिला–मिले; जगदानन्दे जगदानन्द; पाञा-पाकर; सबे-हर एक; आनन्दित हैला-आनन्दित हुए।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित नदिया में अन्य सारे भक्तों से मिले। भक्त उन्हें वहाँ उपस्थित पाकर अत्यन्त आनन्दित हुए।

आचार्य मिलिते तबे गेला जगदानन्द ।

जगदानन्दे पाञा हैल आचार्य आनन्द ॥ 97॥

आचार्य मिलिते-अद्वैत आचार्य से मिलने; तबे-इसके बाद; गेला-गये; जगदानन्द-जगदानन्द; जगदानन्दे पाञा-जगदानन्द को पाकर; हैल–हुए; आचार्य-अद्वैत आचार्य; आनन्द–अत्यन्त आनन्दित।

अनुवाद

इसके बाद जगदानन्द पण्डित अद्वैत आचार्य से मिलने गये। वे भी उनसे मिलकर अत्यन्त आनन्दित हुए।

वासुदेव, मुरारि-गुप्त जगदानन्दे पाञा ।

आनन्दे राखिला घरे, ना देन छाड़िया ॥98॥

वासुदेव-वासुदेव; मुरारि-गुप्त-मुरारि गुप्त; जगदानन्दे पाञा-जगदानन्द पण्डित को पाकर; आनन्दे-अत्यन्त प्रसन्न होकर; राखिला-रखा; घरे–घरों में; ना देन छाड़िया-उन्हें जाने नहीं दिया।

अनुवाद

वासुदेव दत्त तथा मुरारि गुप्त जगदानन्द पण्डित को मिलकर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उन्हें अपने घरों में रखा और उन्हें जाने नहीं दिया।

चैतन्येर मर्म-कथा शुने ताँर मुखे ।

आपना पासरे सबे चैतन्य-कथा-सुखे ॥19॥

चैतन्येर–चैतन्य महाप्रभु की; मर्म-कथा-गोपनीय कथाएँ; शुने-वे सुनते; ताँर मुखे-उनके मुख से; आपना पासरे-अपने आपको भूल जाते; सबे-सब; चैतन्य-कथा-सुखे-चैतन्य महाप्रभु के विषय में सुनने के महा सुख में।

अनुवाद

उन्होंने जगदानन्द पण्डित के मुख से श्री चैतन्य महाप्रभु की गोपनीय कथाएँ सुनीं और महाप्रभु के विषय में सुनने के महा सुख में वे अपने आप को भूल गये।

जगदानन्द मिलिते याय येइ भक्त-घरे ।

सेइ सेइ भक्त सुखे आपना पासरे ॥100॥

जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; मिलिते-मिलने; याय-जाते; येइ-किसी; भक्त-घरे-भक्त के घर; सेइ सेइ-वह; भक्त-भक्त; सुखे-सुख में; आपना पासरे-अपने आपको भूल जाता।

अनुवाद

जब भी जगदानन्द पण्डित किसी भक्त के घर मिलने जाते, तो वह भक्त परम सुख में तुरन्त ही अपने आपको भूल जाता।

चैतन्येर प्रेम-पात्र जगदानन्द धन्य ।

यारे मिले सेइ माने,–'पाइलुँ चैतन्य' ॥101॥

चैतन्येर–श्री चैतन्य महाप्रभु की; प्रेम-पात्र के प्रेमपात्र; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; धन्य-धन्य; यारे मिले-वे जिनसे भी मिले; सेइ माने-वह सोचता है; पाइलुँ चैतन्य–मुझे श्री चैतन्य महाप्रभु की संगति मिल गई।

अनुवाद

जगदानन्द पंडित की जय हो! उन पर श्री चैतन्य महाप्रभु की इतनी कृपा है कि जो भी उनसे मिलता है, वह सोचता है, "अब मुझे साक्षात् श्री चैतन्य महाप्रभु की संगति मिल गई है।"

शिवानन्द-सेन-गृहे याजा रहिला ।

'चन्दनादि तैल ताहाँ एक-मात्रा कैला ॥ 102॥

शिवानन्द-सेन-गृहे शिवानन्द सेन के घर; याजा-जाकर; रहिला-रहे; चन्दन-आदि तैल-सुगन्धित चन्दन का तेल; ताहाँ-वहाँ; एक-मात्रा-एक मात्रा (सोलह सेर, या पन्द्रह किलोग्राम के नजीक); कैला–किया।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित कुछ काल के लिए शिवानन्द सेन के घर में रहे। तभी उन दोनों ने लगभग सोलह सेर चन्दन का सुगन्धित तेल तैयार किया।

सुगन्धि करिया तैल गागरी भरिया ।

नीलाचले लञा आइला यतन करिया ॥ 103 ॥

सुगन्धि करिया–सुगन्धित किया; तैल-तेल; गागरी-बड़ा घड़ा; भरिया-भर दिया; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी को; लञा-लेकर; आइला–आये; यतन करिया-बड़े यत्न से।

अनुवाद

उन्होंने सुगन्धित तेल से एक मिट्टी का बड़ा घड़ा भरा और जगदानन्द पण्डित बड़े यत्न से उसे नीलाचल, जगन्नाथ पुरी ले आये।

गोविन्देर ठाञि तैल धरिया राखिला ।

प्रभु-अङ्गे दिह' तैल" गोविन्दे कहिला ॥104॥

गोविन्देर ठाञि-गोविन्द की निगरानी में; तैल-तेल; धरिया राखिला-रख दिया गया; प्रभु-अङ्गे–श्री चैतन्य महाप्रभु की शरीर पर; दिह'–मल दिया करना; तैल-तेल; गोविन्दे कहिला–उन्होंने गोविन्द से कहा।

अनुवाद

इस तेल को गोविन्द की निगरानी में रख दिया गया और जगदानन्द ने उससे अनुरोध किया, "इस तेल को महाप्रभु के शरीर में मल दिया करना।"

तबे प्रभु-ठाञि गोविन्द कैल निवेदन ।

'जगदानन्द चन्दनादि-तैल आनियाछेन ॥ 105॥

तबे-तब; प्रभु-ठाञि-बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु से; गोविन्द गोविन्द ने; कैल निवेदन-निवेदन किया; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; चन्दन-आदि-तैल-सुगन्धित चन्दन तेल; आनियाछेन-लाये हैं।

अनुवाद

इसलिए गोविन्द ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "जगदानन्द पण्डित कुछ सुगन्धित चन्दन का तेल लाये हैं।

ताँर इच्छा,—प्रभु अल्प मस्तके लागाय ।

पित्त-वायु-व्याधि-प्रकोप शान्त हञा याय ॥106॥

ताँर इच्छा-उनकी इच्छा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; अल्प-थोड़ासा; मस्तके लागाय–सिर पर; पित्त-वायु-व्याधि-पित्त तथा वायु के कारण; प्रकोप–रक्त चाप; शान्त हञा याय-कम हो जायेगा।

अनुवाद

"यह उनकी इच्छा है कि आप अपने सिर पर थोड़ा-सा तेल लगाएँ। इससे पित्त तथा वायु के कारण जो रक्त चाप है, वह काफी कम हो जायेगा।

एक-कलस सुगन्धि तैल गौड़ेते करिया ।

इहाँ आनियाछे बहु यतन करिया" ॥107॥

एक-कलस-एक बड़ा घड़ा; सु-गन्धि तैल-सुगन्धित तेल; गौड़ेते करिया–बंगाल में तैयार किया; इहाँ–यहाँ; आनियाछे-ले आये हैं; बहु यतन करिया-बड़े यत्न से।

अनुवाद

"उन्होंने बंगाल में एक बड़ा घड़ा तेल तैयार किया है और इसे वे बड़े यत्न से यहाँ ले आये हैं।"

प्रभु कहे,_"सन्यासीर नाहि तैले अधिकार ।

ताहाते सुगन्धि तैल,—परम धिक्कार! ॥108॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; सन्यासीर-संन्यासी को; नाहि-नहीं; तैले–तेल से; अधिकार प्रयोजन; ताहाते-विशेषतया; सु-गन्धि तैल-सुगन्धित तेल से; परम धिक्-कार-तुरन्त अस्वीकृत किया।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "संन्यासी को तेल से, वह भी विशेषतया इस प्रकार के सुगन्धित तेल से, कोई प्रयोजन नहीं होता। इसे तुरन्त यहाँ से ले जाओ।

तात्पर्य

स्मार्त विधि-विधानों के प्रतिनिधि रघुनन्दन भट्टाचार्य के अनुसार :

प्रातः स्नाने व्रते श्राद्धे द्वादश्यां ग्रहणे तथा ।

मद्यलेपसमं तैलं तस्मात् तैलं विवर्जयेत् ॥

"जिसने व्रत ले रखा हो यदि वह प्रात:काल स्नान के समय, श्राद्ध आदि अनुष्ठान सम्पन्न करते समय या द्वादशी के दिन अपने शरीर में तेल का मर्दन करता है, तो मानो वह अपने शरीर पर शराब डालता है। अतएव तैल का निषेध है।" व्रत से कभी-कभी संन्यास व्रत को सूचित किया जाता है। रघुनन्दन भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक तिथितत्त्व में यह भी कहा है :

गृहीतं च सार्षपं तैलं यतैलं पुष्पवासितम् ।

अदुष्टं पक्वतैलं च तैलाभ्यंगे च नित्यशः ॥

इसका अर्थ यह है कि घी, सरसों का तेल, पुष्प तेल तथा पकाये हुए तेल का प्रयोग केवल गृहस्थ ही करें।

जगन्नाथे देह' तैल,—दीप येन ज्वले ।

तार परिश्रम हैब परम-सफले" ॥ 109॥

जगन्नाथे-भगवान जगन्नाथ को; देह'–दे दो; तैल-तेल; दीप-दीपक; येन-इसे; ज्वले–जलाये जा सकें; तार परिश्रम-उनका परिश्रम; हैब-हो जायेगा; परम-सफले-पूरी तरह सफल।

अनुवाद

"यह तेल जगन्नाथ मन्दिर में दे दो, जहाँ इसे दीपकों में जलाया जा सके। इस तरह से तेल बनाने का जगदानन्द का परिश्रम पूरी तरह सफल हो जायेगा।"

एइ कथा गोविन्द जगदानन्देरे कहिल ।

मौन करि' रहिल पण्डित, किछु ना कहिल ॥ 110 ॥

एइ कथा—यह समाचार; गोविन्द-गोविन्द; जगदानन्देरे कहिल–जगदानन्द को कहा; मौन करि'-मौन; रहिल-रह गये; पण्डित–जगदानन्द पण्डित; किछु—कुछ भी; ना कहिल–नहीं बोले।

अनुवाद

जब गोविन्द ने यह समाचार जगदानन्द पण्डित से कहा, तो जगदानन्द मौन रह गये तथा एक शब्द भी नहीं बोले।

दिन दश गेले गोविन्द जानाइल आर-बार ।

पण्डितेर इच्छा,–'तैल प्रभु करे अङ्गीकार' ॥111॥

दिन दश गेले-दस दिन बीत गये; गोविन्द-गोविन्द; जानाइल-बताया; आर-बार–पुनः; पण्डितेर इच्छा-जगदानन्द पण्डित की इच्छा; तैल-तेल; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; करे अङ्गीकार–स्वीकार करें।

अनुवाद

जब दस दिन बीत गये, तो गोविन्द ने पुनः श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "जगदानन्द पण्डित की इच्छा है कि आप तेल स्वीकार कर लें।"

शुनि' प्रभु कहे किछु सक्रोध वचन ।

मर्दनिया एक राख करिते मर्दन! ॥112॥

शुनि’–सुनकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहे-कहा; किछु-कुछ; स-क्रोध वचन-क्रोध में आकर; मर्दनिया-मालिश करनेवाला; एक-एक; राख-रख लो; करिते मर्दन-मालिश किया करे।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने यह सुना, तो उन्होंने क्रोध में आकर कहा, “तो एक तेल मालिश करने वाला भी क्यों नहीं रख लेते, जो मेरी मालिश किया करे?

एइ सुख लागि’ आमि करिलुँ सन्यास! ।

आमार 'सर्व-नाश'—तोमा-सबार ‘परिहास’ ॥ 113॥

एइ-ऐसे; सुख-सुख; लागि’–के लिए; आमि–मैंने; करिलुँ सन्यास-संन्यास लिया है; आमार सर्व-नाश–मेरा सर्वनाश; तोमा-सबार-तुम सभी; परिहास-हँसोगे।

अनुवाद

“क्या मैंने ऐसे सुख के लिए संन्यास लिया है? इस तेल को स्वीकार करने से मेरा सर्वनाश हो जायेगा और तुम सभी हँसोगे।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको दृढ़ संन्यासी घोषित किया। संन्यासी से किसी अन्य की सहायता लेने की आशा नहीं की जाती। अपनी मालिश के लिए मालिश करने वाला रखने का अर्थ होगा पराधीन रहना। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने शारीरिक सुख के लिए किसी की भी सहायता न लेने के सिद्धान्त का दृढ़ता से पालन करना चाहते थे।

पथे याइते तैल-गन्ध मोर येइ पाबे ।

‘दारी सन्यासी' करि’ आमारे कहिबे ॥ 114॥

पथे याइते–रास्ते से गुजरते हुए; तैल-गन्ध-तेल की गन्ध; मोर-मेरे; येइ पाबे-किसी ने भी सूँघा; दारी सन्यासी-ऐसा तान्त्रिक संन्यासी जो स्त्रियाँ रखता है; करि'-तब; आमारे कहिबे-मेरे बारे में कहेंगे।

अनुवाद

"यदि रास्ते से गुजरते हुए किसी व्यक्ति ने मेरे सिर के इस तेल को सूँघा, तो मुझे दारी संन्यासी (ऐसा तान्त्रिक संन्यासी जो स्त्रियाँ रखता है) सोचेगा।

शुनि प्रभुर वाक्य गोविन्द मौन करिला ।

प्रातः-काले जगदानन्द प्रभु-स्थाने आइला ॥115॥

शुनि–सुनकर; प्रभुर वाक्य-श्री चैतन्य महाप्रभु के ये शब्द; गोविन्द-गोविन्द; मौन करिला-मौन रहा; प्रातः काले-सबेरे; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के पास; आइला–आये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के ये शब्द सुनकर गोविन्द मौन रहा। अगले दिन प्रातःकाल जगदानन्द, महाप्रभु से मिलने गये।

प्रभु कहे,–"पण्डित, तैल आनिला गौड़ ह-इते ।

आमि त' सन्यासी,—तैल ना पारि ल-इते ॥ 116॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; पण्डित-हे पण्डित; तैल-तेल; आनिला-आपने लाया; गौड़ ह-इते-बंगाल से; आमि-मैं; त'–किन्तु; सन्यासी-संन्यासी; तैल-तेल; ना पारि ल-इते-मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगदानन्द पण्डित से कहा, "हे पण्डित, आप मेरे लिए बंगाल से कुछ तेल लाये हैं, किन्तु संन्यासी होने के कारण मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकता।

जगन्नाथे देह' ला दीप येन ज्वले ।

तोमार सकल श्रम ह-इबे सफले" ॥117॥

जगन्नाथे-भगवान जगन्नाथ को; देह'–दे दो; लञा–लेकर; दीप-दीपकों; येन-जिससे; ज्वले–जलाने के लिए; तोमार-आपका; सकल-सब; श्रम-श्रम; ह-इबे स-फले-सफल हो।

अनुवाद

"यह तेल जगन्नाथ मन्दिर में दे दीजिये, जिससे इसे दीपकों में जलाया जा सके। इस तरह तेल बनाने का आपका श्रम सफल हो जायेगा।"

पण्डित कहे,–'के तोमारे कहे मिथ्या वाणी ।

आमि गौड़ हैते तैल कभु नाहि आनि' ॥118॥

पण्डित कहे जगदानन्ड पण्डित ने कहा; के-कौन; तोमारे-आपसे; कहे-कहा; मिथ्या वाणी-झूठी कहानियाँ; आमि-मैं; गौड़ हैते-बंगाल से; तैल-तेल; कभु नाहि आनि–नहीं लाया।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित ने कहा, "आपसे ये झूठी कहानियाँ कौन कहता है? मैं तो बंगाल से तेल कभी नहीं लाया।"

एत बलि' घर हैते तैल-कलस लञा ।

प्रभुर आगे आड्गिनाते फेलिला भाड्गिया ॥ 119॥

एत बलि'—यह कहकर; घर हैते–कमरे से; तैल-कलस-तेल का घड़ा; लञा-लेकर; प्रभुर आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने; आङ्गिनाते-आँगन में; फेलिला–फेंक दिया; भाङ्गिया-तोड डाला।

अनुवाद

यह कहकर जगदानन्द पण्डित ने तेल का घड़ा कमरे से निकाला और श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने इसे आँगन में फेंक दिया और तोड डाला।

तैल भाङ्गि' सेइ पथे निज-घर गिया ।

शुइया रहिला घरे कपाट खिलिया ॥120॥

तैल भाङ्गि'-तेल का घड़ा तोड़ देने पर; सेइ-वे; पथे—मार्ग से; निज-घर-अपने घर; गिया-गये; शुइया रहिला–लेट गये; घरे–घर में; कपाट–दरवाजा; खिलिया-बन्द कर लिया।

अनुवाद

घड़ा तोड़ देने के बाद जगदानन्द पण्डित अपने घर लौट आये, भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया और लेट गये।

तृतीय दिवसे प्रभु ताँर द्वारे याञा ।

'उठह' पण्डित'–करि' कहेन डाकिया ॥ 121॥

तृतीय दिवसे–तीन दिन बाद; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर–जगदानन्द पण्डित के; द्वारे-दरवाजे के पास; याञा-गये; उठह'–कृपया उठो; पण्डित-हे जगदानन्द पण्डित; करि'–कहकर; कहेन–कहा; डाकिया–बुलाया।

अनुवाद

तीन दिन बाद श्री चैतन्य महाप्रभु उनके कमरे के दरवाजे के पास गये और कहा, "हे जगदानन्द पण्डित, कृपया उठो।

'आजि भिक्षा दिबा आमाय करिया रन्धने ।

मध्याह्ने आसिब, एबे याइ दरशने' ॥122 ॥

आजि-आज; भिक्षा दिबा–भोजन दे दो; आमाय–मेरे लिए; करिया रन्धने-पकाओ; मध्याह्ने आसिब-मैं दोपहर को लौटूगा; एबे–अब; याइ दरशने-मैं जगन्नाथ प्रभु के दर्शन करने जा रहा हूँ।

अनुवाद

मैं चाहता हूँ कि आज आप स्वयं मेरे लिए दोपहर का भोजन बनायें। अभी मैं दर्शन करने मन्दिर जा रहा हूँ। मैं दोपहर को लौटूँगा।"

एत बलि' प्रभु गेला, पण्डित उठिला ।

स्नान करि' नाना व्यञ्जन रन्धन करिला ॥123॥

एत बलि'—यह कहकर; प्रभु गेला-श्री चैतन्य महाप्रभु चले गये; पण्डित उठिला-जगदानन्द पण्डित उठे; स्नान करि'–स्नान किया; नाना-विविध; व्यञ्जन-सब्जियाँ; रन्धन करिला—बनाने लगे।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु यह कहकर चले गये, तो जगदानन्द पण्डित अपने बिस्तर से उठे, स्नान किया और तरह-तरह की सब्जियाँ बनाने लगे।

मध्याह्न करिया प्रभु आइला भोजने ।

पाद प्रक्षालन करि' दिलेन आसने ॥124॥

मध्याह्न करिया-अपने दोपहर के कृत्य पूरे करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः आइला–आये; भोजने–भोजन करने; पाद प्रक्षालन करि'-अपने पाँव धोने के बाद; दिलेन आसने-बैठने के लिए आसन दिया।

अनुवाद

अपने दोपहर के कृत्य पूरे करके महाप्रभु भोजन करने आये। जगदानन्द पण्डित ने महाप्रभु के पाँव धोये और उन्हें बैठने के लिए आसन दिया।

सघृत शाल्यन्न कला-पाते स्तूप कैला ।

कलार डोङ्गा भरि' व्यञ्जन चौदिके धरिला ॥125॥

स-घृत-घी डालकर; शालि-अन्न-महीन चावल; कला-पाते–केले के पत्ते पर; स्तूप कैला-ढेर बनाकर; कलार डोङ्गा–केले की छाल से बने दोने में; भरि'-भरकर; व्यञ्जन-सब्जियाँ; चौ-दिके चारों ओर; धरिला-रख दी।

अनुवाद

उन्होंने घी डालकर महीन चावल पकाया था और उसे केले के पत्ते पर ऊँचाई तक ढेर बनाकर रख दिया था। साथ ही केले की छाल से बने दोने में तरह तरह की सब्जियाँ थीं, जिन्हें उन्होंने चारों ओर रख दिया था।

अन्न-व्यञ्जनोपरि तुलसी-मञ्जरी ।

जगन्नाथेर पिठा-पाना आगे आने धरि' ॥126 ॥

अन्न-चावल; व्यञ्जन-सब्जियाँ; उपरि–के ऊपर; तुलसी-मञ्जरी–तुलसी की मंजरियाँ; जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ का; पिठा-पाना-रोट और खीर; आगे-के सामने; आने धरिलाये।

अनुवाद

चावल तथा सब्जियों के ऊपर तुलसी की मंजरियाँ थीं और महाप्रभु के सामने रोट, खीर तथा जगन्नाथजी का अन्य प्रसाद था।

प्रभु कहे,—"द्वितीय-पाते बाड़' अन्न-व्यञ्जन।

तोमाय आमाय आजि एकत्र करिब भोजनः ॥ 127॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; द्वितीय-पाते-दूसरा पत्तल; बाड़'–लाओ; अन्न-व्यञ्जन-चावल और सब्जियाँ; तोमाय आमाय-आप और मैं; आजि-आज; एकत्र-साथ साथ; करिब भोजन-भोजन करेंगे।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "एक दूसरा पत्तल बिछाकर उसमें चावल तथा सब्जियाँ रख लो, जिससे आज आप और मैं दोनों साथ-साथ भोजन करेंगे।"

हस्त तुलि' रहेन प्रभु, ना करेन भोजन।

तबे पण्डित कहेन किछु सप्रेम वचन ॥128॥

हस्त तुलि'–हाथ ऊपर उठाये; रहेन प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु रहे; ना करेन भोजन-भोजन नहीं किया; तबे-तब तक; पण्डित कहेन–जगदानन्द ने कहा; किछुकुछ; स-प्रेम वचन-स्नेह और प्रेम युक्त वचन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपना हाथ ऊपर उठाये रहे और उन्होंने तब तक भोजन नहीं किया, जब तक जगदानन्द पण्डित ने स्नेह और प्रेम युक्त निम्नलिखित वचन नहीं कहे।

“आपने प्रसाद लह, पाछे मुञि ल-इमु ।

तोमार आग्रह आमि केमने खण्डिमु?” ॥129॥

आपने-आप; प्रसाद लह–प्रसाद ग्रहण करे; पाछे—बाद में; मुञि ल-इमु मैं लूंगा; तोमार-आपका; आग्रह-आग्रह; आमि-मैं; केमने-कैसे; खण्डिमु–टालूँगा।

अनुवाद

कृपया आप पहले प्रसाद ग्रहण करें। मैं बाद में खाऊँगा। मैं आपके आग्रह को नहीं टालूँगा।”

तबे महाप्रभु सुखे भोजने वसिला ।

व्यञ्जनेर स्वाद पात्रा कहिते लागिला ॥130॥

तबे-तब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सुखे-प्रसन्नतापूर्वक; भोजने वसिला-भोजन ग्रहण करने बैठे; व्यञ्जनेर स्वाद-सब्जियों का स्वाद; पात्रा-ले चुके; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक भोजन ग्रहण किया। जब वे सब्जियों का स्वाद ले चुके, तो पुनः कहने लगे।

“क्रोधावेशेर पाकेर हय ऐछे स्वाद! ।

एइ त' जानिये तोमाय कृष्णेर 'प्रसाद' ॥131॥

क्रोध-आवेशेर-क्रोध में; पाकेर पकाते; हय-हो; ऐछे—तो भी; स्वाद-स्वादिष्ट; एइ त'—इसी कारण; जानिये-मैं समझ सकता हूँ; तोमाय-आप पर; कृष्णेर प्रसाद-कृष्ण प्रसन्न हैं।

अनुवाद

“आप जब क्रोध में भी भोजन पकाते हो, तब भी वह अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। इससे पता चलता है कि कृष्ण आप से कितने प्रसन्न हैं।

आपने खाइबे कृष्ण, ताहार लागिया ।

तोमार हस्ते पाक कराय उत्तम करिया ॥ 132॥

आपने-स्वयं; खाइबे–भोजन करेंगे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ताहार लागिया-इस कारण से; तोमार हस्ते-आपके हाथ से; पाक कराय-भोजन बनवाते; उत्तम करिया-अच्छा ।

अनुवाद

चूंकि कृष्ण स्वयं भोजन करेंगे, इसलिए वे आपसे इतना अच्छा भोजन बनवाते हैं।

ऐछे अमृत-अन्न कृष्णे कर समर्पण ।

तोमार भाग्येर सीमा के करे वर्णन?” ॥133॥

ऐछे-ऐसा; अमृत-अन्न-अमृततुल्य अन्न; कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; कर समर्पण-आप समर्पण करते हो; तोमार-आपके; भाग्येर–भाग्य की; सीमा-सीमा; के-कौन; करे वर्णन-वर्णन करेगा।

अनुवाद

“आप ऐसा अमृततुल्य अन्न कृष्ण को अर्पित करते हो। भला आपके सौभाग्य की सीमा का कौन अनुमान लगा सकता है?”

पण्डित कहे,—“ये खाइबे, सेइ पाक-कर्ता ।

आमि-सब—केवल-मात्र सामग्री-आहर्ता" ॥134॥

पण्डित कहे-पण्डित ने कहा; ये खाइबे-जो खाने वाला है; सेइ-उसी ने; पाक-कर्ता–पकाया है; आमि-सब-जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है; केवल-मात्र–केवल; सामग्री-सामग्री को; आहर्ता–जुटाना है।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित ने उत्तर दिया, "जो खाने वाला है, उसी ने इसे पकाया है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो केवल सामग्री जुटाता हूँ।"

पुनः पुनः पण्डित नाना व्यञ्जन परिवेशे ।

भये किछु ना बलेन प्रभु, खायेन हरिषे ॥135॥

पुनः पुनः–पुनः पुनः; पण्डित–जगदानन्द पण्डित; नाना व्यञ्जन-तरह तरह की सब्जियाँ; परिवेशे–परोसते गये; भये-डर के मारे; किछु-कुछ भी; ना बलेन-नहीं बोले; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; खायेन-खाते रहे; हरिषे–प्रसन्नतापूर्वक।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित महाप्रभु को तरह तरह की सब्जियाँ परोसते गये। महाप्रभु ने डर के मारे कुछ नहीं कहा, अपितु वे प्रसन्नतापूर्वक खाते रहे।

आग्रह करिया पण्डित कराइला भोजन ।

आर दिन हैते भोजन हैल दश-गुण ॥136॥

आग्रह करिया-आग्रह करके; पण्डित-जगदानन्द पण्डित; कराइला भोजन-खिला दिया; आर दिन–अन्य दिनों; हैते–तब; भोजन-भोजन; हैल–किया था; दश-गुण-दसगुना।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित ने आग्रह करके महाप्रभु को इतना खिला दिया कि अन्य दिनों की अपेक्षा उन्होंने दसगुना अधिक भोजन किया।

बार-बार प्रभु उठिते करेन मन ।

सेइ-काले पण्डित परिवेशे व्यञ्जन ॥ 137॥

बार-बार–बारम्बार; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; उठिते-उठने का; करेन मन-मन करते; सेइ-काले-उसी समय; पण्डित–जगदानन्द पण्डित; परिवेशे-देते थे; व्यञ्जन-सब्जियाँ।

अनुवाद

महाप्रभु बारम्बार उठने का मन करते, किन्तु जगदानन्द पण्डित उन्हें और सब्जियाँ खिलाते जाते।

किछु बलिते नारेन प्रभु, खायेन तरासे ।

ना खाइले जगदानन्द करिबे उपवासे ॥138॥

किछु—कुछ भी; बलिते नारेन-बोलते नहीं; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभुः खायेन–खाते गये; तरासे-डर के मारे; ना खाइले–यदि वे नहीं खायेंगे; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; करिबे उपवासे-उपवास करेंगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उनको अधिक खिलाने से मना नहीं कर पाये। वे खाते गये और डरते रहे कि यदि वे खाना बन्द कर देंगे, तो जगदानन्द उपवास करेंगे।

तबे प्रभु कहेन करि' विनय-सम्मान ।

'दश-गुण खाओयाइला एबे कर समाधान' ॥139॥

तबे—उस समय; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; कहेन–कहा; करि'—किया; विनय-सम्मान-आदरपूर्वक निवेदन; दश-गुण-दस गुना ज्यादा; खाओयाइला-आपने भोजन करा दिया; एबे–अब; कर समाधान-तो बन्द करो।

अनुवाद

अन्त में महाप्रभु ने आदरपूर्वक निवेदन किया, "हे जगदानन्द, मैं जितना खाने का अभ्यस्त हूँ, उससे दस गुना अधिक भोजन आपने करा दिया। अब तो बन्द करो।"

तबे महाप्रभु उठि' कैला आचमन ।

पण्डित आनिल, मुखवास, माल्य, चन्दन ॥140॥

तबे-तब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; उठि'–उठे; कैला आचमन-अपने हाथ-मुँह धोये; पण्डित–जगदानन्द पण्डित; आनिल-ले आये; मुख-वास-मुखवास; माल्य-माला; चन्दन–चन्दन लेप।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उठ खड़े हुए और उन्होंने अपने हाथ-मुँह धोये। तभी जगदानन्द पण्डित मसाले (मुख शुद्धि), माला तथा चन्दन लेप ले आये।

चन्दनादि लञा प्रभु वसिला सेइ स्थाने ।

'आमार आगे आजि तुमि करह भोजने' ॥ 141॥

चन्दन-आदि लञा–चन्दन लेप और माला स्वीकार करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; वसिला-बैठ गये; सेइ स्थाने-उसी जगह; आमार आगे-मेरे सामने; आजि-अब; तुमि-आप; करह-करो; भोजने–भोजन।

अनुवाद

चन्दन लेप तथा माला स्वीकार करने के बाद महाप्रभु बैठ गये और बोले, "अब आप मेरे सामने भोजन करो।"

पण्डित कहे,—"प्रभु याइ' करुन विश्राम ।

मुइ, एबे ल-इब प्रसाद करि' समाधान ॥142॥

पण्डित कहे-जगदानन्द पण्डित ने कहा; प्रभु-मेरे प्रभु; याइ'–जाकर; करुन विश्राम-विश्राम कीजिये; मुइ-मैं; एबे–अब; ल-इब प्रसाद–प्रसाद ग्रहण करूँगा; करि समाधान-प्रबन्ध करके।

अनुवाद

जगदानन्द ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, आप जाकर आराम करें। मैं कुछ प्रबन्ध कर लूं, तब प्रसाद ग्रहण करूँगा।

रसुइर कार्य कैराछे रामाइ, रघुनाथ ।

इँहा सबाय दिते चाहि किछु व्यञ्जन-भात" ॥ 143 ॥

रसुइर–रसोई का; कार्य-कार्य; कैराछे--किया है; रामाइ–रामाइ; रघुनाथरघुनाथ भट्ट; इँहा-उन्हें; सबाय-सब; दिते चाहि-देना चाहता हूँ; किछु—कुछ; व्यञ्जन-भात-चावल और सब्जियाँ।।

अनुवाद

"रामाइ पण्डित तथा रघुनाथ भट्ट ने रसोई का कार्य किया है। मैं उन्हें कुछ अन्न तथा सब्जियाँ देना चाहता हूँ।"

प्रभु कहेन,–"गोविन्द, तुमि इहाञि रहिबा ।

पण्डित भोजन कैले, आमारे कहिबा" ॥144॥

प्रभु कहेन-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; गोविन्द-गोविन्द; तुमि-तुम; इहाञि रहिबा-तुम यहीं रहो; पण्डित–जगदानन्द पण्डित; भोजन कैले–भोजन कर चुके; आमारे कहिबा-आकर मुझे बताना।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने गोविन्द से कहा, "तुम यहीं रहो। जब पण्डित भोजन कर चुके, तो आकर मुझे बताना।"

एत कहि' महाप्रभु करिला गमन ।

गोविन्देरे पण्डित किछु कहेन वचन ॥145 ॥

एत कहि'—यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करिला गमन–चले गये; गोविन्देरे-गोविन्द से; पण्डित-जगदानन्द पण्डित; किछु-कुछ; कहेन–कहे; वचन-शब्द ।

अनुवाद

जब महाप्रभु यह कहकर चले गये, तो जगदानन्द पण्डित गोविन्द से बोले।

तुमि शीघ्र याह करिते पाद-सम्वाहने ।

कहिह,—'पण्डित एबे वसिल भोजने' ॥ 146॥

तुमि-तुम; शीघ्र-तुरन्त; याह-जाओ; करिते-करो; पाद-सम्वाहने-पैर दबाओ; कहिह-कहकर; पण्डित-जगदानन्द पण्डित; एबे-अभी अभी; वसिल भोजने-अपना भोजन करने बैठे।

अनुवाद

"तुरन्त जाओ और महाप्रभु के पैर दबाओ। तुम उनसे कह सकते हो, 'पण्डित अभी-अभी अपना भोजन करने बैठा है।'

तोमारे प्रभुर 'शेष' राखिमु धरिया ।

प्रभु निद्रा गेले, तुमि खाइह आसिया" ॥147॥

तोमारे-तुम्हारे लिए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; शेष बचा हुआ (शेष); राखिमु-मैं रख देंगा; धरियाले लेना; प्रभु निद्रा गेले-जब श्री चैतन्य महाप्रभु सो जाँय; तुमि-तुम; खाइह आसिया-आकर भोजन खा लेना।

अनुवाद

"मैं तुम्हारे लिए महाप्रभु के भोजन का कुछ शेष रख दूँगा। जब वे सो जाँय, तो आकर अपना भोजन ले लेना।"

रामाइ, नन्दाइ आर गोविन्द, रघुनाथ ।

सबारे बाँटिया दिला प्रभुर व्यञ्जन-भात ॥148॥

रामाइ-रामाइ पण्डित; नन्दाइ–नन्दाइ; आर-और; गोविन्द-गोविन्द; रघुनाथ-रघुनाथ भट्ट; सबारे उन सबके लिए; बाँटिया दिला–वितरित कर दिया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; व्यञ्जन-भात--सब्ज़ियाँ और चावल।

अनुवाद

इस तरह जगदानन्द पण्डित ने महाप्रभु के शेष प्रसाद को रामाइ, नन्दाइ, गोविन्द तथा रघुनाथ भट्ट में वितरित कर दिया।

आपने प्रभुर 'शेष' करिला भोजन ।

तबे गोविन्देरे प्रभु पाठाइला पुनः ॥ 149॥

आपने-स्वयं; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; शेष-छोड़े गये भोजन; करिला भोजन-खाया; तबे-तब; गोविन्देरे-गोविन्द; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पाठाइला-भेजा; पुनः–फिर से।

अनुवाद

उन्होंने स्वयं भी श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा छोड़े गये भोजन का शेष खाया। तब महाप्रभु ने फिर गोविन्द को भेजा।

देख,—जगदानन्द प्रसाद पाय कि ना पाय ।

शीघ्र आसि' समाचार कहिबे आमाय" ॥150॥

देख-देखो; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; प्रसाद–प्रसाद; पाय-मिला; कि-कि; ना-नहीं; पाय-मिला; शीघ्र आसि'-तुरन्त लौटकर; समाचार समाचार; कहिबे-बताओ; आमाय-मुझे।

अनुवाद

महाप्रभु ने उससे कहा, "जाओ और देखो कि जगदानन्द पण्डित खा रहे हैं कि नहीं। फिर तुरन्त लौटकर मुझे बताओ।"

गोविन्द आसि' देखि' कहिल पण्डितेर भोजन ।

तबे महाप्रभु स्वस्त्ये करिल शयन ॥ 151॥

गोविन्द-गोविन्द; आसि–आकर; देखि'–देखकर; कहिल–सूचित किया; पण्डितेर भोजन-जगदानन्द पण्डित खा रहे हैं; तबे-तब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः स्वस्त्ये-शान्त हुए; करिल शयन–सो गये।

अनुवाद

यह देखकर कि जगदानन्द पण्डित सचमुच खा रहे हैं, गोविन्द ने महाप्रभु को सूचित किया। तब वे शान्त हुए और सो गये।

जगदानन्दे-प्रभुते प्रेम चले एइ-मते ।

सत्यभामा-कृष्णे यैछे शुनि भागवते ॥ 152॥

जगदानन्दे-प्रभुते-जगदानन्द पण्डित और श्री चैतन्य माहप्रभु के बीच में; प्रेम-स्नेह; चले-चलता रहा; एइ-मते-उसी तरह; सत्यभामा-कृष्णे-सत्यभामा और कृष्ण के बीच; यैछे-जैसे; शुनि–कथित है; भागवते–श्रीमद्भागवत में।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच ऐसा स्नेहयुक्त प्रेम-व्यवहार उसी तरह चलता रहा, जो कि 'श्रीमद्भागवत' में कथित सत्यभामा तथा कृष्ण के बीच के प्रेम व्यवहार के ही समान था।

जगदानन्देर सौभाग्येर के कहिबे सीमा? ।

जगदानन्देर सौभाग्येर तेंह से उपमा ॥ 153 ॥

जगदानन्देर-जगदानन्द पण्डित के; सौभाग्येर–भाग्य की; के-कौन; कहिबे-कह सकता; सीमा-सीमा; जगदानन्देर-जगदानन्द पण्डित के; सौभाग्येर–भाग्य की; तेंह-वे; से–के; उपमा-उदाहरण।

अनुवाद

भला जगदानन्द पण्डित के भाग्य की सीमा का अनुमान कौन लगा सकता है? वे स्वयं ही अपने महान् सौभाग्य के उदाहरण हैं।

जगदानन्देर 'प्रेम-विवर्त' शुने येइ जन ।

प्रेमेर 'स्वरूप' जाने, पाय प्रेम-धन ॥ 154॥

जगदानन्देर-जगदानन्द के प्रेम-विवर्त–प्रेम व्यवहार; शुने-सुनते ही; येइ जन-कोई भी; प्रेमेर–प्रेम का; स्वरूप-स्वरूप; जाने-वह जानता है; पाय-प्राप्त करता है; प्रेम-धन-कृष्ण-प्रेम रूपी धन।

अनुवाद

जो कोई भी जगदानन्द पण्डित तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच के प्रेम-व्यवहार के विषय में सुनता है या जगदानन्द की पुस्तक 'प्रेमविवर्त को पढ़ता है, वह समझ सकता है कि प्रेम क्या है। यही नहीं, उसे कृष्ण का प्रेमावेश प्राप्त होता है।

तात्पर्य

विवर्त शब्द का अर्थ है, जो जैसा दिखता है उसे उसका सर्वथा विपरीत मानना। यहाँ जगदानन्द पण्डित अत्यन्त क्रुद्ध प्रतीत हो रहे थे, किन्तु उनका यह क्रोध श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति उनके अत्यधिक प्रेम की अभिव्यक्ति था। प्रेम विवर्त एक पुस्तक का भी नाम है, जिसे जगदानन्द पण्डित ने लिखा है। इसीलिए श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने प्रेमविवर्त शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति को सूचित करने के लिए किया है, जो इस पुस्तक को पढ़ता है या श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ जगदानन्द पण्डित के प्रेमपूर्ण व्यवहार के विषय में सुनता है। प्रत्येक दशा में, ऐसा व्यक्ति शीघ्र ही कृष्ण-प्रेम प्राप्त करता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥155॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों में; यार–जिसकी; आश-आकांक्षा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ का; कहे वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए, तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर, मैं कृष्णदास श्री चैतन्य चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्यलीला के अन्तगत श्री चैतन्य महाप्रभु एवं जगदानन्द पण्डित का प्रेम व्यवहार नामक बारहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय तेरह

जगदानन्द पण्डित तथा रघुनाथ भट्ट गोस्वामी के साथ लीलाएँ

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में तेरहवें अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। यह सोचकर कि चैतन्य महाप्रभु को केले की छाल पर सोने में असुविधा होती होगी, जगदानन्द ने उनके लिए एक तकिया तथा रजाई बनवा दी। किन्तु महाप्रभु ने इन्हें स्वीकार नहीं किया। इसके बाद स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने केले के पत्ते के महीन रेशों से दूसरा तकिया तथा रजाई बनवाई, जिन्हें महाप्रभु ने प्रबल विरोध के बाद स्वीकार किया। श्री चैतन्य महाप्रभु की अनुमति से जगदानन्द पण्डित वृन्दावन गये, जहाँ उन्होंने सनातन गोस्वामी से भक्ति विषयक अनेक विचार-विमर्श किये। मुकुन्द सरस्वती के वस्त्र के विषय में भी चर्चा चली। जब जगदानन्द पण्डित जगन्नाथ पुरी लौटे, तो उन्होंने महाप्रभु को सनातन गोस्वामी के कुछ उपहार दिये और तब पीलु फल की घटना घटी।

एक बार श्री चैतन्य महाप्रभु किसी देवदासी के गीत सुनकर भावावेश में आ गये। यह न जानते हुए कि कौन गा रहा है, महाप्रभु कँटीली झाड़ियों के रास्ते से होकर उसकी ओर दौड़े, किन्तु जब गोविन्द ने उन्हें बतलाया कि कोई स्त्री गा रही है, तो वे तुरन्त रुक गये। इस घटना से श्री चैतन्य महाप्रभु ने हर एक को यह उपदेश दिया कि संन्यासियों तथा वैष्णवों को स्त्रियों का गाना नहीं सुनना चाहिए।

जब रघुनाथ भट्ट गोस्वामी अपनी शिक्षा पूरी करके वाराणसी से जगन्नाथपुरी के लिए चल पड़े, तब उनकी भेंट रामदास विश्वास पण्डित से हुई। विश्वास पण्डित को अपनी शिक्षा का अत्यधिक गर्व था। उसके निर्विशेषवादी होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसका ठीक से स्वागत नहीं किया। इस अध्याय के अन्त में रघुनाथ भट्ट गोस्वामी के जीवन चरित का सारांश दिया गया है।

कृष्ण-विच्छेद-जातार्त्या क्षीणे चापि मनस्तनू ।

दधाते फुल्लतां भावैर्यस्य तं गौरमाश्रये ॥1॥

कृष्ण-विच्छेद-कृष्ण से विरह के कारण; जात-उत्पन्न हुआ; आर्या-पीड़ा के कारण; क्षीणे-क्षीण; च-और; अपि-यद्यपि; मनः-मन; तनू–तथा शरीर; दधाते-हो गया; फुल्लताम्-प्रफुल्लित हो उठना; भावैः-प्रेमावेश से; ग्रस्य–जिनका; तम्-उनको; गौरम्-श्री चैतन्य महाप्रभु; आश्रये-मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

अनुवाद

मैं गौरचन्द्र महाप्रभु के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ। कृष्ण-विरह की पीड़ा के कारण उनका मन क्षीण हो गया और शरीर अत्यन्त दुबला हो गया। किन्तु जब उन्हें भगवान् का प्रेमावेश होता, तो वे पुनः पूरी तरह प्रफुल्लित हो उठते।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! तथा महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

हेन-मते महाप्रभु जगदानन्द-सङ्गे ।

नाना-मते आस्वादय प्रेमेर तरङ्गे ॥ 3॥

हेन-मते-इस तरह; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; जगदानन्द-सङ्गे–जगदानन्द पण्डित के संग में; नाना-मते-नाना प्रकार से; आस्वादय–आस्वादन; प्रेमेर तरङ्गे–दिव्य प्रेम सम्बन्धों का।

अनुवाद

इस तरह जगदानन्द पण्डित के संग में श्री चैतन्य महाप्रभु नाना प्रकार के शुद्ध प्रेम-सम्बन्धों का आस्वादन करते।

कृष्ण-विच्छेदे दुःखे क्षीण मन-काय ।

भावावेशे प्रभु कभु प्रफुल्लित हय ॥4॥

कृष्ण-विच्छेदे-कृष्ण के विरह के कारण; दुःखे-दु:ख में; क्षीण-क्षीण; मन-काय-मन और शरीर; भाव-आवेशे-भावावेश में प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कभु-कभी-कभी; प्रफुल्लित हय-प्रफुल्लित तथा स्वस्थ हो जाते।

अनुवाद

कृष्ण के विरह के दु:ख से महाप्रभु का मन क्षीण हो गया और शरीर दुर्बल पड़ गया, किन्तु जब उन्हें भावावेश होता, तब वे पुनः प्रफुल्लित तथा स्वस्थ हो जाते।

कलार शरलाते, शयन, अति क्षीण काय ।

शरलाते हाड़ लागे, व्यथा हय गाय ॥5॥

कलार शरलाते–केले की शुष्क छाल पर; शयन-शयन करते; अति-अति; क्षीण काय-क्षीण शरीर; शरलाते–केले की शुष्क छाल पर; हाड़ लागे–हड्डियों में; व्यथा-पीड़ा होती; हय-है; गाय-शरीर में।

अनुवाद

चूँकि वे अत्यन्त दुर्बल थे, अतएव जब वे केले की शुष्क छाल पर शयन करते, तो उससे उनकी हड्डियों में पीड़ा होती थी।

देखि' सब भक्त-गण महा-दुख पाय ।

सहिते नारे जगदानन्द, सृजिला उपाय ॥6॥

देखि'–देखकर; सब भक्त-गण-सारे भक्त; महा-दुःख-अत्यन्त दुःखी; पाय-हो गये; सहिते-सहन; नारे-न कर पाते; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; सृजिला उपाय-युक्ति निकाली।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को पीड़ा में देखकर सारे भक्त अत्यन्त दुःखी होते। वे इसे सहन न कर पाते। तब जगदानन्द पण्डित ने एक युक्ति निकाली।

सूक्ष्म वस्त्र आनि' गौरिक दिया राङ्गाइला ।

शिमुलीर तूला दिया ताहा पूराइला ॥7॥

सूक्ष्म वस्त्र-महीन वस्त्र; आनि'ले आये; गौरिक-गेरू से रँग; दिया–दिया; राङ्गाइला-रंग दिया; शिमुलीर-सेमल की; तूला-रुई; दिया–साथ; ताहा-उसमें; पूराइला-भर दी।

अनुवाद

वे कुछ महीन वस्त्र ले आये और उसे गेरू से रंग दिया। फिर उसके भीतर सेमल की रुई भर दी।

एक तूली-बालिस गोविन्देर हाते दिला ।

'प्रभुरे शोयाइह इहाय'–ताहारे कहिला ॥8॥

एक-एक; तूली-बालिस-रजाई और तकिया; गोविन्देर-गोविन्द के; हाते-हाथों; दिला-दे दिया; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; शोयाइह-लेटने को; इहाय-इसी पर; ताहारे—उनको; कहिला–कहना।

अनुवाद

इस तरह उन्होंने एक रजाई तथा तकिया बनवा दिया और फिर यह कहते हुए उसे गोविन्द को दे दिया, "महाप्रभु को इसी पर लेटने को कहना।"

स्वरूप-गोसाञिके कहे जगदानन्द ।

'आजि आपने याञा प्रभुरे कराइह शयन' ॥9॥

स्वरूप-गोसाञिके-स्वरूप दामोदर गोस्वामी से; कहे-कहा; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; आजि-आज; आपने-आप स्वयं; याञा-जाकर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; कराइह शयन–शय्या पर लेटने का आग्रह करें।

अनुवाद

जगदानन्द ने स्वरूप दामोदर गोस्वामी से कहा, "आज आप स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु से शय्या पर लेटने के लिए आग्रह करें।"

शयनेर काले स्वरूप ताहाञिरहिला ।

तूली-बालिस देखि' प्रभु क्रोधाविष्ट ह-इला ॥ 10 ॥

शयनेर काले-सोने के समय; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; ताहाञिहिला-पास की रुके; तूली–रजाई; बालिस-तकिया; देखि'-देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः क्रोध-आविष्ट ह-इला-बहुत क्रोधित हो उठे।

अनुवाद

जब महाप्रभु के सोने का समय हुआ, तो स्वरूप दामोदर पास ही रुके रहे, किन्तु जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रजाई तथा तकिया देखा, तो वे तुरन्त अत्यधिक क्रोधित हो उठे।

गोविन्देरे पुछेन, 'इहा कराइल को जन?' ।

जगदानन्देर नाम शुनि' सङ्कोच हैल मन ॥ 11॥

गोविन्देरे पुछेन–गोविन्द से पूछा; इहा-इसे; कराइल–बनवाया; को जन-किसने; जगदानन्देर-जगदानन्द पण्डित का; नाम-नाम; शुनि'–सनुकर; सङ्कोच-भयभीत; हैल–हो गये; मन-मन में।

अनुवाद

महाप्रभु ने गोविन्द से पूछा, "इसे किसने बनवाया?" जब गोविन्द ने जगदानन्द पण्डित का नाम लिया तो श्री चैतन्य महाप्रभु कुछ-कुछ भयभीत हो उठे।

गोविन्देरे कहि' सेइ तूलि दूर कैला ।

कलार शरला-उपर शयन करिला ॥12॥

गोविन्देरे कहि'–गोविन्द से कहा; सेइ तूलि-वह रजाई; दूर कैला-दूर करो; कलार–केले की; शरला-उपर-शुष्क छाल पर; शयन करिला-लेट गये।

अनुवाद

गोविन्द से रजाई तथा तकिया हटाने के लिए कहकर महाप्रभु केले की शुष्क छाल पर लेट गये।

स्वरूप कहे,–'तोमार इच्छा, कि कहिते पारि? ।

शय्या उपेक्षिले पण्डित दुःख पाबे भारी' ॥13॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा; तोमार इच्छा-आपकी इच्छा; कि-कौन; कहिते पारि-कह सकता है; शय्या उपेक्षिले–यदि आप यह बिस्तर स्वीकार नहीं करते; पण्डित-जगदानन्द पण्डित; दुःख-दुःखी; पाबे-होगा; भारी-अत्यधिक।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने महाप्रभु से कहा, "हे प्रभु, मैं आपकी परम इच्छा का खंडन नहीं कर सकता, किन्तु यदि आप यह बिस्तर स्वीकार नहीं करते, तो जगदानन्द पण्डित को अत्यधिक दुःख होगा।"

प्रभु कहेन,–"खाट एक आनह पाड़िते ।

जगदानन्द चाहे आमाय विषय भुञ्जाइते ॥14॥

प्रभु कहेन–श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; खाट–चारपाई; एक-एक; आनह–ले आओ; पाड़िते-लेटने के लिए; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; चाहे-चाहता है; आमाय-मैं; विषय भुञ्जाइते-भौतिक सुख का भोग करूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "तुम मेरे लेटने के लिए एक चारपाई भी ले आओ। जगदानन्द पण्डित चाहता है कि मैं भौतिक सुख का भोग करूँ।

सन्यासी मानुष आमार भूमिते शयन ।

आमारे खाट-तूलि-बालिस मस्तक-मुण्डन" ॥15॥

सन्यासी मानुष-जीवन से संन्यास लिया हुआ मनुष्य; आमार-मुझे; भूमिते शयन-भूमि पर लेटना; आमारे-मुझे; खाट–चारपाई; तूलि-रजाई; बालिस-तकिया; मस्तक-मुण्डन-अत्यन्त लज्जास्पद।

अनुवाद

"मैं संन्यासी हूँ, इसलिए मुझे भूमि पर लेटना चाहिए। चारपाई, रजाई या तकिया का प्रयोग करना मेरे लिए अत्यन्त लज्जास्पद होगा।"

स्वरूप-गोसाञि आसि' पण्डिते कहिला ।

शुनि' जगदानन्द मने महा-दुःख पाइला ॥ 16 ॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; आसि'-लौटकर आये; पण्डिते कहिला-जगदानन्द पण्डित को बतलाया; शुनि'–सुनकर; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; मने-मन से; महा-दुःख पाइला–अतीव दुःख हुआ।

अनुवाद

जब स्वरूप दामोदर लौटकर आये और जगदानन्द पण्डित को सारी घटनाएँ बतलाईं, तो उनको अतीव दुःख हुआ।

स्वरूप-गोसाञि तबे सृजिला प्रकार ।

कदलीर शुष्क-पत्र आनिला अपार ॥ 17॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; तबे-तब; सृजिला प्रकार-एक युक्ति निकाली; कदलीर-केले की; शुष्क-पत्र-सूखी पत्तियाँ; आनिला–लाये; अपार–पर्याप्त मात्रा में।

अनुवाद

तब स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने एक अन्य युक्ति निकाली। उन्होंने पहले पर्याप्त मात्रा में केले की सूखी पत्तियाँ प्राप्त कीं।

नखे चिरि' चिरि' ताहा अति सूक्ष्म कैला ।

प्रभुर बहिर्वास दुइते से सब भरिला ॥18॥

नखे-नाखूनों से; चिरि' चिरि'-चीर चीरकर; ताहा–इनको; अति-अत्यन्त; सूक्ष्म-महीन; कैला-बनाया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; बहिर्वास–बाह्य वस्त्रों; दुइते-दो; से सब-से सबको; भरिला-भर दिया।

अनुवाद

तब उन्होंने अपने नाखूनों से इन पत्तियों को अत्यन्त महीन रेशों में चीर लिया और श्री चैतन्य महाप्रभु के दो बाह्य वस्त्रों (उत्तरीय) को इन रेशों से भर दिया।

एइ-मत दुइ कैला ओड़न-पाड़ने ।

अङ्गीकार कैला प्रभु अनेक यतने ॥19॥

एइ-मत-इस तरह; दुइ-दोनों; कैला-बना दिया; ओड़न-पाड़ने–एक बिस्तर के लिए, एक तकिये के लिए; अङ्गीकार कैला–स्वीकार किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः अनेक यतने-काफी प्रयास के बाद।

अनुवाद

इस तरह स्वरूप दामोदर ने बिस्तर तथा तकिया बना दिया और भक्तों के काफी प्रयास के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें स्वीकार कर लिया।

ताते शयन करेन प्रभु,—देखि' सबे सुखी ।

जगदानन्द–भितरे क्रोध बाहिरे महा-दुःखी ॥ 20॥

ताते-उस पर; शयन करेन-लेटने पर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; देखि-देखकर; सबे सुखी-सारे लोग सुखी थे; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; भितरे-अपने मन में; क्रोध-क्रोधित; बाहिरे-बाहर से; महा-दुःखी-अत्यन्त दुःखी।

अनुवाद

सारे लोग महाप्रभु को उस शय्या पर लेटते देखकर सुखी थे, किन्तु जगदानन्द भीतर से नाराज थे और बाहर से अत्यन्त दुःखी लग रहे थे।

पूर्वे जगदानन्देर इच्छा वृन्दावन याइते ।

प्रभु आज्ञा ना देन तौरे, ना पारे चलिते ॥21॥

पूर्वे-पहले; जगदानन्देर-जगदानन्द पण्डित को; इच्छा-इच्छा; वृन्दावन याइते-वृन्दावन जाने की; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; आज्ञा-अनुमति; ना देन–नहीं दी; तौरे-उनको; ना पारे चलिते-वे नहीं जा पाये।

अनुवाद

पहले जब जगदानन्द पण्डित वृन्दावन जाना चाहते थे, तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें अनुमति नहीं दी थी, अतएव वे जा नहीं पाये थे।

भितरेर क्रोध-दुख प्रकाश ना कैल ।

मथुरा याइते प्रभु-स्थाने आज्ञा मागिल ॥22॥

भितरेरअन्दर से; क्रोध-दुख-क्रोध तथा दुःख; प्रकाश ना कैल–को छिपाते हुए; मथुरा याइते-मथुरा जाने के लिए; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु से; आज्ञा मागिल-अनुमति माँगी।

अनुवाद

अब, अपने क्रोध तथा दुःख को छिपाते हुए जगदानन्द पण्डित ने फिर से मथुरा जाने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु से अनुमति माँगी।

प्रभु कहे,_"मथुरा याइबा आमाय क्रोध करि' ।

आमाय दोष लागाञा तुमि ह–इबा भिखारी" ॥23॥

प्रभु कहे-प्रभु ने कहा; मथुरा याइबा-आप मथुरा गये तो; आमाय-मुझे; क्रोध करि'-क्रोधित होकर; आमाय-मुझे; दोष लागाञा-दोष लगाओगे; तुमि-आप; ह-इबा-बन जाओगे; भिखारी-भिखारी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा, "यदि मथुरा जाते समय आप मुझ पर क्रुद्ध रहोगे, तो आप मात्र भिखारी बन जाओगे और मेरी निन्दा करोगे।"

जगदानन्द कहे प्रभुर धरिया चरण ।

पूर्व हैते इच्छा मोर याइते वृन्दावन ॥ 24॥

जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; कहे-कहा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; धरिया चरण-चरणकमल पकड़कर; पूर्व हैते–दीर्घकाल से; इच्छा-इच्छा; मोर-मेरी; याइते वृन्दावन-वृन्दावन जाने की।

अनुवाद

तब महाप्रभु के चरण पकड़कर जगदानन्द पण्डित ने कहा, "मैं दीर्घकाल से वृन्दावन जाने की इच्छा करता रहा हूँ।

प्रभु-आज्ञा नाहि, ताते ना पारि याइते ।

एबे आज्ञा देह', अवश्य याइमु निश्चिते" ॥ 25॥

प्रभु-आज्ञा-प्रभु की आज्ञा; नाहि-नहीं; ताते-इसलिए; ना पारि याइते–'मैं नहीं जा सका; एबे-अब; आज्ञा-अनुमति; देह'–दें; अवश्य-अवश्य; याइमु-मैं जाऊँगा; निश्चिते-निश्चित रूप से।

अनुवाद

मैं आपकी आज्ञा के बिना नहीं जा सका। अब आप मुझे आज्ञा दें और मैं निश्चित रूप से वहाँ जाऊँगा।"

प्रभु प्रीते ताँर गमन ना करेन अङ्गीकार ।

तेंहो प्रभुर ठाञि आज्ञा मागे बार बार ॥ 26 ॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रीते-स्नेह के कारण; ताँर-उनको; गमन-जाने देने की; ना करेन अङ्गीकार-अनुमति नहीं दे रहे; तेंहो-वे; प्रभुर ठाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु से; आज्ञा-अनुमति; मागे-माँगी; बार बार-बारम्बार।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित के प्रति स्नेह के कारण ही श्री चैतन्य महाप्रभु जाने देने की अनुमति नहीं दे रहे थे, किन्तु जगदानन्द पण्डित बारम्बार हठ कर रहे थे कि महाप्रभु जाने की अनुमति दे दें।

स्वरूप-गोसाञिरे पण्डित कैला निवेदन ।

“पूर्व हैते वृन्दावन याइते मोर मन ॥ 27॥

स्वरूप-गोसाञिरे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी से; पण्डित–जगदानन्द पण्डित; कैला निवेदन निवेदन किया; पूर्व हैते–दीर्घकाल से; वृन्दावन याइते-वृन्दावन जाना; मोर मन-मेरा मन।

अनुवाद

तब जगदानन्दने स्वरूप दामोदर गोस्वामी से निवेदन किया, “दीर्घकाल से मैं वृन्दावन जाना चाह रहा हूँ।

प्रभु-आज्ञा विना ताहाँ याइते ना पारि ।

एबे आज्ञा ना देन मोरे, ‘क्रोधे याह' बलि ॥28॥

प्रभु-आज्ञा-श्री चैतन्य महाप्रभु की अनुमति के; विना-बिना; ताहाँ-वहाँ; माइते-जा; ना पारि-नहीं सकता; एबे–अब; आज्ञा-अनुमति; ना देन–नहीं दी; मोरे-मुझ पर; क्रोधे-क्रोध में; याह-तुम जा रहे हो; बलि-बोले।

अनुवाद

"किन्तु मैं महाप्रभु की अनुमति के बिना वहाँ नहीं जा सकता था और अब भी वे अनुमति देने से मना करते हैं। वे कहते हैं, "तुम इसलिए जाना चाहते हो, क्योंकि तुम मुझ पर क्रुद्ध हो।'

सहजेइ मोर ताहाँ याइते मन हय ।

प्रभु-आज्ञा लञा देह', करिये विनय" ॥29॥

सहेजेइ-सहज इच्छा; मोर-मेरा; ताहाँ-वहाँ; याइते-जाने का; मन-मन; हय-है; प्रभु-आज्ञा-श्री चैतन्य महाप्रभु की अनुमति से; लञा देह'–कृपा करके; करिये विनय-नम्रतापूर्वक निवेदन करें।

अनुवाद

"वृन्दावन जाने की मेरी सहज इच्छा है, अतएव आप उनसे अनुमति देने के लिए विनयपूर्वक अनुरोध करें।"

तबे स्वरूप-गोसाञि कहे प्रभुर चरणे ।

"जगदानन्देर इच्छा बड़ याइते वृन्दावने ॥30॥

तबे-उसके बाद; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; कहे निवेदन किया; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु की चरणकमलों में; जगदानन्देर–जगदानन्द पण्डित ने; इच्छा बड़-प्रबल इच्छा; याइते वृन्दावने-वृन्दावन जाने के लिए।

अनुवाद

तत्पश्चात् स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में यह निवेदन किया, "जगदानन्द पण्डित वृन्दावन जाने के लिए अत्यन्त इच्छुक हैं।

तोमार ठाञि आज्ञा तेंहो मागे बार बार।

आज्ञा देह',-मथुरा देखि' आइसे एक-बार ॥31॥

तोमार ठाञि-आपसे; आज्ञा-अनुमति; तेंहो-वे; मागे-माँगते हैं; बार बार-बारम्बार; आज्ञा देह'–कृपा करके अनुमति दें; मथुरा देखि'–मथुरा देखकर; आइसे वापस आने की; एक-बार–एक बार।

अनुवाद

"वे बारम्बार आपसे अनुमति के लिए याचना कर रहे हैं, अतएव कृपा करके उन्हें मथुरा जाने और फिर लौट आने की आज्ञा दे दें।

आइरे देखिते यैछे गौड़-देशे याय।

तैछे एक-बार वृन्दावन देखि' आय" ॥ 32॥

आइरे-शचीमाता; देखिते-देखने; यैछे–को; गौड़-देशे-बंगाल में; याय–वे गये; तैछे—उसी तरह; एक-बार-एक बार; वृन्दावन देखि'-वृन्दावन देखने के बाद; आय-वे लौट आयेंगे।

अनुवाद

"आपने उन्हें शचीमाता को मिलने बंगाल जाने की अनुमति दी थी; उसी तरह आप उन्हें वृन्दावन जाने और तब यहाँ लौट आने की अनुमति दे सकते हैं।"

स्वरूप-गोसाञिर बोले प्रभु आज्ञा दिला।

जगदानन्दे बोलाञा ताँरे शिखाइला ॥ 33 ॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी के; बोले–अनुरोध पर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आज्ञा दिला-अनुमति दे दी; जगदानन्दे-जगदानन्द पण्डित को; बोलाञा-बुलाया; ताँरे–उनको; शिखाइला–निर्देश दिये।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी के अनुरोध पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगदानन्द पण्डित को जाने की अनुमति दे दी। महाप्रभु ने उन्हें बुलाया और इस प्रकार निर्देश दिये।

“वाराणसी पन्त स्वच्छन्दे याइबा पथे ।

आगे सावधाने याइबा क्षत्रियादि-साथे ॥ 34॥

वाराणसी पर्यन्त-वाराणसी तक; स्वच्छन्दे-बिना किसी उपद्रव; याइबा पथे-आप अपने मार्ग पर जाओ; आगे-उसके बाद; सावधाने-सतर्क रहना; याइबा-आप जा सकते हो; क्षत्रिय-आदि-साथे-क्षत्रियों के साथ।

अनुवाद

“आप वाराणसी तक बिना किसी उपद्रव का सामना किये जा सकते हो, किन्तु वाराणसी के आगे आप क्षत्रियों के साथ मार्ग से यात्रा करते हुए सतर्क रहना।

तात्पर्य

वाराणसी से वृन्दावन तक का मार्ग लुटेरों से भरा पड़ा था, इसलिए उन दिनों यात्रियों की रक्षा करने के लिए क्षत्रिय होते थे।

केवल गौड़िया पाइले ‘बाटपाड़’ करि’ बान्धे ।

सब लुटि’ बाँधि' राखे, याइते विरोधे ॥ 35॥

केवल–अकेले; गौड़िया-बंगाली; पाइले-अगर मिलते हैं; बाटपाड़-लूटपाट; करि'-करते; बान्धे–बाँधकर; सब-सब कुछ; लुटि' ले लेते; बाँधि'–बन्दी बनाकर; राखे-रखते; याइते विरोधे–जाने नहीं देते।

अनुवाद

"जैसे ही ये लुटेरे मार्ग पर किसी बंगाली को अकेले यात्रा करते देखते हैं, वे उसकी हर वस्तु ले लेते हैं, उसे बन्दी बना लेते हैं और जाने नहीं देते हैं।

तात्पर्य

सामान्यतया बंगाली लोग अधिक हृष्टपुष्ट नहीं होते। इसलिए जब कोई अकेला बंगाली यात्री बिहार से होकर गुजरता है, तो मार्ग के लुटेरे उसे बन्दी बना लेते हैं, उसका सारा सामान लूट लेते हैं और अपनी सेवा कराने के लिए उसका अपहरण करके ले जाते हैं। एक मत के अनुसार बिहार के लुटेरे भलीभाँति जानते हैं कि बंगाली बुद्धिमान होते हैं, इसलिए वे इन बंगालियों को ऐसी सेवा के लिए बाध्य करते हैं, जिसमें बुद्धि की आवश्यकता होती है और वे उन्हें जाने नहीं देते।

मथुरा गेले सनातन-सङ्गेइ रहिबा ।

मथुरार स्वामी सबेर चरण वन्दिबा ॥ 36॥

मथुरा गेले-जब तुम मथुरा जाओगे; सनातन-सङ्गेइ-सनातन गोस्वामी के संग; रहिबा-रहकर; मथुरार स्वामी-समस्त प्रमुख जनों के; सबेर-सब के; चरण वन्दिबा-चरणकमलों में नमस्कार करना।

अनुवाद

"तुम मथुरा पहुँचकर सनातन गोस्वामी के साथ रहना और वहाँ समस्त प्रमुख जनों के चरणकमलों में नमस्कार करना।

दूरे रहि' भक्ति करिह सङ्गे ना रहिबा ।

ताँ-सबार आचार-चेष्टा ल-इते नारिबा ॥ 37॥

दूरे रहि'-दूर रहना; भक्ति करिह--दिखावटी भक्त; सङ्गे–के संग में; ना रहिबा-न रहना; ताँ-सबार-उनके; आचार-आचार; चेष्टा-चेष्टा; ल-इते नारिबा-नहीं अपना सकते।

अनुवाद

“मथुरा के निवासियों से आप स्वच्छन्द होकर मत मिलना-जुलना, दूर से ही उनको सम्मान प्रदर्शित करना। चूंकि आप भक्ति के भिन्न स्तर पर हो, अतएव आप उनके आचार-व्यवहार को नहीं अपना सकते।

तात्पर्य

वृन्दावन तथा मथुरा के निवासी वात्सल्य रस में कृष्ण की भक्ति करते हैं। और उनके भाव स्मार्त ब्राह्मणों से सदैव विपरीत होते हैं। जो भक्त कृष्ण की ऐश्वर्य भाव में पूजा करते हैं, वे मथुरा तथा वृन्दावन के निवासियों के वात्सल्य-भक्ति भावों को नहीं समझ सकते, जो रागानुग प्रेम मार्ग का अनुसरण करने वाले हैं। विधि मार्ग (नियमानुसार भक्ति) के पद पर स्थित भक्त राग मार्ग (स्वत:स्फूर्त भक्ति) पर स्थित भक्तों के कार्यों का गलत अर्थ निकाल सकते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगदानन्द पण्डित को वृन्दावनवासियों से दूर रहने का उपदेश दिया, क्योंकि वे रागानुग भक्त हैं, जिससे वे उनके प्रति अनादर भाव प्रदर्शित न कर सकें।

सनातन-सड़े करिह वन दरशन ।

सनातनेर सङ्ग ना छाड़िबा एक-क्षण ॥ 38॥

सनातन-सङ्गे–सनातन गोस्वामी के साथ; करिह—करना; वन दरशन-बारहों वनों का दर्शन; सनातनेर-सनातन गोस्वामी के; सङ्ग–साथ; ना छाड़िबा-ना छोडना; एक-क्षण-एक क्षण भी।

अनुवाद

“आप सनातन गोस्वामी के साथ वृन्दावन के बारहों वनों का दर्शन करना। उनका साथ एक क्षण के लिए भी मत छोड़ना।

शीघ्र आसिह, ताहाँ ना रहिह चिर-काल ।

गोवर्धने ना चड़िह देखिते ‘गोपाल’ ॥ 39॥

शीघ्र-थोड़े ही समय में; आसिह-लौट आना; ताहाँ-वहाँ; ना रहिह-नहीं रहना; चिर-काल-ज्यादा समय के लिए; गोवर्धने-गोवर्धन पर्वत पर; ना चड़िहमत चढ़ना; देखिते गोपाल–गोपाल अर्चाविग्रह का दर्शन करने के लिए।

अनुवाद

“आप वृन्दावन में थोड़े ही समय तक रहना और फिर जितना जल्दी हो सके लौट आना। हाँ, और आप गोपाल अर्चाविग्रह का दर्शन करने के लिए गोवर्धन पर्वत पर मत चढ़ना।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में परामर्श दिया है। कि वृन्दावन में दीर्घकाल तक रहने से अपने आपको बचाना चाहिए, क्योंकि कहावत है, “मान घटे नित घर के जाये।” यदि कोई अनेक दिनों तक वृन्दावन में रह जाता है, तो वह वहाँ के निवासियों का उचित आदर नहीं कर पाता। इसलिए जिन्होंने कृष्ण के प्रति रागानुग प्रेम उत्पन्न नहीं किया है, उन्हें दीर्घकाल तक वृन्दावन में नहीं रहना चाहिए। अच्छा हो कि वे अल्पकालिक यात्रा करें। इसी तरह गोपाल अर्चाविग्रह का दर्शन करने के लिए गोवर्धन पर्वत पर चढ़ने से भी बचना चाहिए। चूँकि गोवर्धन पर्वत गोपाल से अभिन्न है, इसलिए पर्वत पर पाँव नहीं रखना चाहिए। जब गोपाल कहीं अन्यत्र चले जाँय, तब उनका दर्शन करना चाहिए।

आमिह आसितेछि,—कहिह सनातने ।

आमार तरे एक-स्थान येन करे वृन्दावने" ॥40॥

आमिह-मैं भी; आसितेछि-आ रहा हूँ; कहिह सनातने-सनातन गोस्वामी को सूचित करना; आमार तरे-मेरे लिए; एक-स्थान-एक स्थान; येन-इसलिए; करे-प्रबन्ध करें; वृन्दावने-वृन्दावन में।

अनुवाद

"सनातन गोस्वामी को सूचित करना कि मैं दूसरी बार वृन्दावन आ रहा हूँ और वह मेरे ठहरने के लिए एक स्थान का प्रबन्ध कर रखे।"

एत बलि' जगदानन्दे कैला आलिङ्गन ।

जगदानन्द चलिला प्रभुर वन्दिया चरण ॥41॥

एत बलि'—यह कहकर; जगदानन्दे-जगदानन्द पण्डित को; कैला-किया; आलिङ्गन-आलिंगन; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; चलिला-चल पड़े; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; वन्दिया चरण-चरणकमलों की वन्दना करने पर।

अनुवाद

यह कहकर महाप्रभु ने जगदानन्द पण्डित का आलिंगन किया। जगदानन्द ने भी महाप्रभु के चरणकमलों की वन्दना की और फिर वे वृन्दावन के लिए चल पड़े।

सब भक्त-गण-ठाञि आज्ञा मागिला ।

वन-पथे चलि' चलि' वाराणसी आइला ॥42॥

सब भक्त-गण-ठाञि-सारे भक्तों से; आज्ञा मागिला-आज्ञा माँगी; वन-पथे चलि' चलि'–जंगल के रास्ते से होते हुए; वाराणसी आइला-वाराणसी पहुँच गये।

अनुवाद

उन्होंने सारे भक्तों से आज्ञा माँगी और तब प्रस्थान किया। जंगल के रास्ते से होते हुए वे शीघ्र ही वाराणसी पहुँच गये।

तपन-मिश्र, चन्द्रशेखर,—दोंहारे मिलिला ।

ताँर ठाञि प्रभुर कथा सकल-इ शुनिला ॥43॥

तपन-मिश्र-तपन मिश्र, चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर; दोंहारे मिलिला–दोनों मिले; ताँर ठाञि-दोनों ने प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कथा-लीलाएँ; सकल-इ-सभी; शुनिला–उन्होंने सुनीं।

अनुवाद

जब वे वाराणसी में तपन मिश्र तथा चन्द्रशेखर से मिले, तो उन दोनों ने उनसे श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ सुनीं।

मथुराते आसि' मिलिला सनातने ।

दुइ-जनेर सङ्गे पुँहे आनन्दित मने ॥44॥

मथुराते आसि'-जब वे मथुरा पहुँचे; मिलिला सनातने-वे सनातन गोस्वामी से मिले; दुइ-जनेर-दोनों ने; सङ्गे–एक साथ; दुँहे दोनों; आनन्दित मने-मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए।

अनुवाद

अन्त में जगदानन्द पण्डित मथुरा पहुँचे, जहाँ वे सनातन गोस्वामी से मिले। वे एक दूसरे को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

सनातन कराइला ताँरे द्वादश वन दरशन ।

गोकुले रहिला दुँहे देखि' महावन ॥45॥

सनातन-सनातन गोस्वामी; कराइला–किया; तौरे–उनको; द्वादश-बारहों; वन-वन; दरशन-दर्शन; गोकुले-गोकुल में; रहिला-रहे; बँहे-दोनों; देखि'–देखने के बाद; महा-वन-महावन।।

अनुवाद

जब सनातन गोस्वामी जगदानन्द को वृन्दावन के बारहों वन दिखला चुके, जिनमें महावन अन्तिम था, तब वे दोनों गोकुल में रहे।

सनातनेर गोफाते दुँहे रहे एक-ठाञि ।

पण्डित पाक करेन देवालये याइ' ॥46॥

सनातनेर गोफाते-सनातन गोस्वामी की गुफा में; दुँहे-दोनों; रहे-रुके; एक-ठाञि–एक जगह; पण्डित–जगदानन्द; पाक करेन-पकाते थे; देवालये याइ'–मन्दिर में जाकर।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित सनातन गोस्वामी की गुफा में रुके तो थे, किन्तु वे अपना भोजन पास के मन्दिर में जाकर पकाते।

सनातन भिक्षा करेन याइ' महावने ।

कभु देवालये, कभु ब्राह्मण-सदने ॥47॥ ।

सनातन-सनातन गोस्वामी; भिक्षा करेन-भिक्षा माँगने; याइ' महा-वने–महावन के आसपास जाते थे; कभु-कभी; देवालये–मन्दिर में; कभु-कभी; ब्राह्मण-सदने-ब्राह्मण के घर में।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी महावन के आसपास द्वार-द्वार जाकर भिक्षा माँगते थे। कभी वे किसी मन्दिर में जाते और कभी किसी ब्राह्मण के घर जाते।

सनातन पण्डितेर करे समाधान ।

महावने देन आनि' मागि' अन्न-पान ॥48॥

सनातन-सनातन गोस्वामी; पण्डितेर-जगदानन्द पण्डित की; करे समाधान-सारी आवश्यकताएँ पूरी करते; महा-वने-महावन के पास; देन-देते; आनि'–लाते; मागि'-माँगते; अन्न-पान-खाना और पीना।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी जगदानन्द पण्डित की सारी आवश्यकताएँ पूरी करते। वे महावन के आसपास भिक्षा माँगते और जगदानन्द पण्डित के खाने-पीने की सारी वस्तुएँ ले आते।

एक-दिन सनातने पण्डित निमन्त्रिला ।

नित्य-कृत्य करि' तेंह पाक चड़ाइला ॥49॥

एक-दिन-एक दिन; सनातने-सनातन गोस्वामी; पण्डित निमन्त्रिला-जगदानन्द पण्डित को निमन्त्रित किया; नित्य-कृत्य करि'–नित्य कर्म समाप्त करके; तेंह-वे; पाक चड़ाइला–भोजन बनाना प्रारम्भ किया।

अनुवाद

एक दिन जगदानन्द पण्डित ने सनातन को पास के मन्दिर में भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया। नित्य कर्म समाप्त करके उन्होंने भोजन पकाना प्रारम्भ किया।

'मुकुन्द सरस्वती' नाम सन्यासी महाजने ।

एक बहिर्वास तेंहो दिल सनातने ॥50॥

मुकुन्द सरस्वती-मुकुन्द सरस्वती; नाम-नामक; सन्यासी-संन्यासी; महा-जने-महान् संन्यासी; एक-एक; बहिर्वास–बहिर्वास; तेंहो-वे; दिल-दिया; सनातने–सनातन गोस्वामी को।

अनुवाद

इसके पूर्व मुकुन्द सरस्वती नामक एक महान् संन्यासी ने सनातन गोस्वामी को एक बहिर्वास (उत्तरीय) दिया था।

सनातन सेइ वस्त्र मस्तके बान्धिया ।

जगदानन्देर वासा-द्वारे वसिला आसिया ॥51॥

सनातन-सनातन गोस्वामी; सेइ-वह; वस्त्र-वस्त्र; मस्तके सिर पर; बान्धिया-बाँधकर; जगदानन्देर-जगदानन्द पण्डित के; वासा-द्वारे-द्वार पर; वसिला-बैठ गये; आसिया-आकर।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी इस वस्त्र को अपने सिर पर बाँधकर जगदानन्द पण्डित के द्वार पर जाकर बैठ गये।

रातुल वस्त्र देखि' पण्डित प्रेमाविष्ट ह-इला ।

'महाप्रभुर प्रसाद' जानि' ताँहारे पुछिला ॥52॥

रातुल-लाल; वस्त्र-वस्त्र; देखि'–देखकर; पण्डित–जगदानन्द पण्डित, प्रेम-आविष्ट ह-इला–प्रेमाविष्ट होकर; महाप्रभुर प्रसाद-श्री चैतन्य महाप्रभु का उपहार; जानि'–जानकर; ताँहारे पुछिला–उनसे पूछने लगे।

अनुवाद

लाल वस्त्र को श्री चैतन्य महाप्रभु का उपहार समझकर जगदानन्द पण्डित प्रेमाविष्ट हो गये। अतः उन्होंने सनातन गोस्वामी से पूछा।

"काहाँ पाइला तुमि एइ रातुल वसन?" ।

‘मुकुन्द-सरस्वती' दिल,—कहे सनातन ॥53॥

काहाँ–कहाँ; पाइला–से मिला; तुमि-आप; एई–यह; रातुल वसन-लाल वस्त्र; मुकुन्द-सरस्वती दिल-मुकुन्द सरस्वती ने दिया; कहे सनातन-सनातन ने उत्तर दिया।

अनुवाद

जगदानन्द ने पूछा, “सिर में बँधा हुआ यह लाल वस्त्र आपको कहाँ से मिला?” सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, “इसे मुकुन्द सरस्वती ने मुझे दिया है।”

शुनि’ पण्डितेर मने क्रोध उपजिल ।

भातेर हाण्डि हाते लञा मारिते आइल ॥54॥

शुनि’–सुनकर; पण्डितेर–जगदानन्द पण्डित के; मने-मन में; क्रोध-क्रोध; उपजिल-उठा; भातेर हाण्डि–भोजन पकाने की हण्डिया; हाते-अपने हाथ में; लञा-ली; मारिते आइल-मारने के लिए तैयार थे।

अनुवाद

यह सुनकर जगदानन्द पण्डित तुरन्त क्रुद्ध हो उठे और सनातन गोस्वामी को मारने के उद्देश्य से उन्होंने अपने हाथ में भोजन पकाने की हण्डिया उठा ली।

सनातन ताँरे जानि’ लज्जित ह-इला ।

बलिते लागिला पण्डित हाण्डि चुलाते धरिला ॥55॥

सनातन-सनातन गोस्वामी; ताँरे–उनको; जानि’–जानते थे; लज्जित ह-इला-लज्जित हुए; बलिते लागिला–बोलना शुरु किया; पण्डित–जगदानन्द पण्डित; हाण्डि-भोजन बनाने की हण्डि; चुलाते-चूल्हे पर; धरिला-रखा।

अनुवाद

किन्तु सनातन गोस्वामी जगदानन्द पण्डित को अच्छी तरह जानते थे, इसलिए वे कुछ-कुछ लज्जित हुए। इसलिए जगदानन्द पण्डित ने वह हण्डिया चूल्हे पर रख दी और तब इस प्रकार कहा।

तुमि महाप्रभुर हओ पार्षद-प्रधान ।

तोमा-सम महाप्रभुर प्रिय नाहि आन ॥56॥

तुमि-आप; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; हओ-है; पार्षद-प्रधान–पार्षद प्रधान में से एक; तोमा-सम-आप की तरह; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; प्रिय-प्रिय; नाहि-नहीं; आन-और कोई॥

अनुवाद

“आप तो श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रधान पार्षदों में से हैं। निस्सन्देह, उन्हें आपसे बढ़कर कोई अन्य प्रिय नहीं है।

अन्य सन्यासीर वस्त्र तुमि धर शिरे ।

कोन् ऐछे हय,—इहा पारे सहिबारे?” ॥57॥

अन्य सन्यासीर-दूसरे कोई संन्यासी; वस्त्र-वस्त्र; तुमि-आपने; धर—रखा; शिरे-सिर पर; कोन्-कौन; ऐछे हय-ऐसा है; इहा-यह; पारे सहिबारे-कौन सह सकता॥

अनुवाद

“फिर भी आपने दूसरे संन्यासी द्वारा दिये हुए वस्त्र को अपने सिर पर बाँध लिया है। ऐसे व्यवहार को भला कौन सह सकता है?”

सनातन कहे_“साधु पण्डित-महाशय! ।

तोमा-सम चैतन्येर प्रिय केह नय ॥58 ॥

सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने कहा; साधु-संत; पण्डित-महान पण्डित; महाशय-महान्; तोमा-सम-आपके जैसा; चैतन्येर–श्री चैतन्य महाप्रभु के; प्रिय-प्रिय; केह नय-कोई नहीं।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा, "हे जगदानन्द पण्डित, आप महान् पण्डित साधु हो। आपसे बढ़कर महाप्रभु को कोई दूसरा प्रिय नहीं है।

ऐछे चैतन्य-निष्ठा योग्य तोमाते ।

तुमि ना देखाइले इहा शिखिब के-मते? ॥59॥

ऐछे-ऐसे; चैतन्य-निष्ठा-श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति श्रद्धा; योग्य-योग्यता; तोमाते-आप में; तुमि ना देखाइले-आप प्रदर्शित नहीं करोगे; इहा-यह; शिखिब-मैं सीखंगा; के-मते-कैसे । ।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति यह श्रद्धा आपको बिल्कुल शोभा देती है। जब तक आप इसे प्रदर्शित नहीं करोगे, तो भला मैं ऐसी श्रद्धा कैसे सीख सकता हूँ?

याहा देखिबारे वस्त्र मस्तके बान्धिल ।

सेइ अपूर्व प्रेम एइ प्रत्यक्ष देखिल ॥60॥

याहा–जो; देखिबारे-देखने के लिए; वस्त्र-वस्त्र; मस्तके बान्धिल-मैंने अपने सिर पर बाँधा; सेइ-वह; अपूर्व प्रेम-असाधारण प्रेम; एइ–यह; प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष; देखिल-मैंने देख लिया है।

अनुवाद

"इस वस्त्र को अपने सिर पर बाँधने का उद्देश्य आज पूरा हो गया, क्योंकि मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति आपके असाधारण प्रेम को प्रत्यक्ष देख लिया है।

रक्त-वस्त्र 'वैष्णवेर' परिते ना युयाय ।

कोन प्रवासीरे दिमु, कि काय उहाय? ॥ 61॥

रक्त-वस्त्र-केसरिया वस्त्र; वैष्णवेर-वैष्णव के लिए; परिते ना युयाय-पहनने के लिए अनुपयुक्त; कोन प्रवासीरे-अज्ञात व्यक्ति को; दिमु-मैं दे दूँगा; कि-क्या; काय-व्यवहार; उहाय-के साथ।

अनुवाद

"यह केसरिया वस्त्र वैष्णव के पहनने के लिए अनुपयुक्त है, अतएव मेरे लिए इसका कोई उपयोग नहीं है। मैं इसे किसी अज्ञात व्यक्ति को दे दूँगा।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इस घटना पर निम्न प्रकार से टिप्पणी की है। वैष्णवजन मुक्तात्मा होते हैं और किसी भौतिक वस्तु के प्रति आसक्त नहीं होते। इसलिए वैष्णव को अपना उच्च पद सिद्ध करने के लिए संन्यासी वस्त्र स्वीकार करने की जरूरत नहीं होती। श्री चैतन्य महाप्रभु ने मायावादी संन्यासी से संन्यास ग्रहण किया था। किन्तु आज के वैष्णव संन्यासी यह कभी नहीं सोचते कि संन्यासी का वेश धारण करने से वे चैतन्य महाप्रभु के समकक्ष हो गये हैं। वस्तुतः वैष्णव अपने गुरु का नित्य दास बने रहने के लिए संन्यास ग्रहण करता है। वह यह जानते हुए संन्यास स्वीकार करता है। कि वह अपने गुरु के तुल्य नहीं है, जो परमहंस होता है और वह अपने आपको परमहंस जैसा वेश धारण करने के योग्य नहीं समझता। इसलिए वैष्णव दीनतावश संन्यास स्वीकार करता है, किसी गर्ववश नहीं।

सनातन गोस्वामी ने परमहंस का वेश धारण कर रखा था, इसलिए उन्हें अपने सिर पर गेरुआ वस्त्र धारण करना अनुचित था। किन्तु वैष्णव संन्यासी परमहंस वैष्णव के वेश का अनुकरण करने के

लिए अपने आपको उपयुक्त नहीं मानते। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा सुनिश्चित नियमों के अनुसार (तृणादपि सुनीचेन) मनुष्य को अपने आपको सदैव निम्नतम अवस्था में सोचना चाहिए, परमहंस वैष्णव की अवस्था में नहीं। इसलिए कभी-कभी वैष्णव अपने आपको परमहंस वैष्णव से निचले स्तर पर रखने के लिए संन्यास आश्रम ग्रहण करता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का यही आदेश है।

पाक करि' जगदानन्द चैतन्ये समर्पिला ।

दुइ-जन वसि' तबे प्रसाद पाइला ॥ 62 ॥

पाक करि'- भोजन बनाने के बाद; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; चैतन्य समर्पिला-श्री चैतन्य महाप्रभु को अर्पित किया; दुइ-जन-दोनों; वसि-बैठ गये; तबे-तब; प्रसाद–प्रसाद; पाइला–पा लिया।

अनुवाद

जब जगदानन्द पण्डित भोजन बना चुके, तो उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन अर्पित किया। तब वे तथा सनातन गोस्वामी दोनों बैठ गये और प्रसाद पाने लगे।

प्रसाद पाइ अन्योन्ये कैला आलिङ्गन ।

चैतन्य विरहे दुँहे करिला क्रन्दन ॥ 63 ॥

प्रसाद पाइ–प्रसाद पाने के बाद; अन्योन्ये-एक दूसरे का; कैला आलिङ्गन-आलिंगन किया; चैतन्य-विरहे-चैतन्य महाप्रभु से विरह के कारण; दुँहे-दोनों; करिला क्रन्दन-रोने लगे।

अनुवाद

प्रसाद पाने के बाद उन्होंने एक दूसरे का आलिंगन किया और चैतन्य महाप्रभु से विरह के कारण दोनों रोने लगे।

एइ-मत मास दुइ रहिला वृन्दावने ।

चैतन्य-विरह-दुःख ना याय सहने ॥ 64॥

एइ-मत–इस तरह; मास-महिना; दुइ-दो; रहिला-रहे; वृन्दावने-वृन्दावन में; चैतन्य-विरह-श्री चैतन्य महाप्रभु के विरह में; दुःख-दुःख; ना याय सहने–नहीं सह पाये।

अनुवाद

इस तरह उन्होंने वृन्दावन में दो मास बिता दिये। अन्त में वे श्री चैतन्य महाप्रभु के विरह से उत्पन्न दुःख को और अधिक नहीं सह पाये।

महाप्रभुर सन्देश कहिला सनातने ।

'आमिह आसितेछि, रहिते करिह एक-स्थाने' ॥65॥

महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; सन्देश-सन्देश; कहिला–कहा; सनातने-सनातन गोस्वामी को; आमिह आसितेछि-मैं भी आ रहा हूँ; रहिते-मेरे रहने के; करिह एक-स्थाने–स्थान की व्यवस्था करो।

अनुवाद

इसलिए जगदानन्द पण्डित ने महाप्रभु का यह सन्देश सनातन गोस्वामी को दिया, "मैं भी वृन्दावन आ रहा हूँ। कृपया मेरे ठहरने के लिए स्थान की व्यवस्था कर रखो।"

जगदानन्द-पण्डित तबे आज्ञा मागिला ।

सनातन प्रभुरे किछु भेट-वस्तु दिला ॥66॥

जगदानन्द-पण्डित–जगन्नाथ पण्डित; तबे-उस समय; आज्ञा मागिला-अनुमति माँगी; सनातन-सनातन गोस्वामी, प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; किछु—कुछ; भेट-वस्तु-उपहार; दिला–दिये।

अनुवाद

जब सनातन गोस्वामी ने जगदानन्द को जगन्नाथ पुरी लौट जाने की अनुमति दे दी, तो उन्होंने महाप्रभु के लिए जगदानन्द को कुछ उपहार दिये।

रास-स्थलीर वालु आर गोवर्धनेर शिला ।

शुष्क पक्क पीलु-फल आर गुञ्जा-माला ॥ 67॥

रास-स्थलीर वालु–भगवान् कृष्ण के रासलीला स्थल की थोड़ीसी बालू; आर-और; गोवर्धनेर शिला-गोवर्धन पर्वत की एक शिला; शुष्क-सूखे; पक्क–पके हुए; पीलु-फल-पीलु के फल; आर–तथा; गुञ्जा-माला-घुघचियों की माला।

अनुवाद

उपहार में रासलीला स्थल की थोड़ी-सी बालू, गोवर्धन पर्वत की एक शिला, पके हुए पीलु के सूखे फल तथा घुघचियों की माला थी।

जगदानन्द-पण्डित चलिला सब लञा ।

व्याकुल हैला सनातन ताँरे विदाय दिया ॥ 68 ॥

जगदानन्द-पण्डित–जगदानन्द पण्डित; चलिला–चले; सब-सब; लञा-लेकर; व्याकुल हैला-व्याकुल हो गये; सनातन-सनातन गोस्वामी; ताँरे–उनको; विदाय दिया-विदा कर दिया।

अनुवाद

इस तरह ये सारे उपहार लेकर जगदानन्द पण्डित अपनी यात्रा पर चल पड़े। किन्तु विदा करने के बाद सनातन गोस्वामी अत्यन्त क्षुब्ध थे।

प्रभुर निमित्त एक-स्थान मने विचारिल ।

द्वादशादित्य-टिलाय एक 'मठ' पाइल ॥ 69॥

प्रभुर निमित्त-श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए; एक-स्थान-एक स्थान; मने-मन से; विचारिल-सोच रखा; द्वादशादित्य-टिलाय-ऊँचाई पर स्थित द्वादशादित्य टीला; एक-एक; मठ–मन्दिर; पाइल-पाया।

अनुवाद

उसके कुछ समय बाद ही सनातन गोस्वामी ने एक ऐसा स्थान चुन लिया, जहाँ वृन्दावन में अपने प्रवास के समय श्री चैतन्य महाप्रभु ठहर सकें। यह ऊँचाई पर स्थित एक मन्दिर था, जिसका नाम द्वादशादित्य टीला था।

सेइ स्थान राखिला गोसाञि संस्कार करिया ।

मठेर आगे राखिला एक छाउनि बान्धिया ॥ 70 ॥

सेइ स्थान-उस मन्दिर को; राखिला-रख दिया; गोसाञि-सनातन गोस्वामी; संस्कार करिया-स्वच्छा तथा ठीक-ठाक; मठेर आगे–मन्दिर के सामने; राखिला-रखी; एक-एक; छाउनि-छोटी झोपड़ी; बान्धिया–बाँधकर।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उस मन्दिर को अत्यन्त स्वच्छ तथा ठीक-ठाक कराकर रख दिया। इसके सामने उन्होंने एक छोटी सी झोपड़ी बनवा दी।

शीघ्र चलि' नीलाचले गेला जगदानन्द ।

भक्त सह गोसाञि हैला परम आनन्द ॥71॥

शीघ्र-तेजी से; चलि'–चले; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; गेला–गये; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; भक्त सह-उनके भक्तों के संग; गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु; हैला हुए; परम आनन्द–अत्यन्त आनन्दित ।

अनुवाद

तभी तेजी से यात्रा करते हुए जगदानन्द पण्डित शीघ्र ही जगन्नाथ पुरी पहुँच गये, जिससे श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों को आनन्द हुआ।

प्रभुर चरण वन्दि' सबारे मिलिला ।

महाप्रभु तारे दृढ़ आलिङ्गन कैला ॥72॥

प्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण-चरणकमल; वन्दि'-वन्दना करने पर; सबारे मिलिला-हर एक से मिले; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे–उनको; दृढ़-दृढ़; आलिङ्गन-आलिंगन; कैला–किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की वन्दना करने के बाद जगदानन्द पण्डित हर एक से मिले। तब महाप्रभु ने जगदानन्द का गाढ़ आलिंगन किया।

सनातनेर नामे पण्डित दण्डवत् कैला ।

रास-स्थलीर धूलि आदि सब भेट दिला ॥73॥

सनातनेर-सनातन गोस्वामी के; नामे-नाम से; पण्डित–जगदानन्द पण्डित; दण्डवत् कैला-दण्डवत् किया; रास-स्थलीर-रासलीला स्थल की; धूलि–धूल; आदि-आदि; सब-सब; भेट-भेंट; दिला दी।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित ने सनातन गोस्वामी की ओर से भी महाप्रभु को नमस्कार किया। तब उन्होंने महाप्रभु को रासलीला स्थल की धूल तथा अन्य भेटें दीं।

सब द्रव्य राखिलेन, पीलु दिलेन बाँटिया ।

‘वृन्दावनेर फल’ बलि' खाइला हृष्ट हञा ॥74॥

सब-सब; द्रव्य-भेंटें; राखिलेन-रख लीं; पीलु-पीलु फल; दिलेन-दिये; बाँटिया-बाँटने के लिए; वृन्दावनेर फल-वृन्दावन से आये फल; बलि'–इसलिए; खाइला–खाया; हृष्ट हञा-सूखपूर्वक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पीलु फलों के अतिरिक्त सारी भेटें रख लीं और पीलु फलों को भक्तों में बाँट दिया। चूंकि ये फल वृन्दावन से आये थे, इसलिए हरएक ने परम सुखपूर्वक उन्हें खाया।

ये केह जाने, आँटि चुषिते लागिल ।

ये ना जाने गौड़िया पीलु चावाजा खाइल ॥75॥

ये-जो; केह-कोई; जाने-परिचित; आँटि-बीजों को; चुषिते लागिल-चूसना शुरू किया; ये-जो; ना जाने नहीं जानते थे; गौड़िया-बंगाली भक्त; पीलु–पिलु; चावाजा-चबाकर; खाइल–खा लिया।

अनुवाद

जो भक्त पीलु फलों से परिचित थे, उन्होंने बीज को चूसना शुरू कर दिया, किन्तु बंगाली भक्त, जो यह नहीं जानते थे कि ये क्या हैं, उन्होंने बीजों को चबाकर निगल लिया।

मुखे तार झाल गेल, जिह्वा करे ज्वाला ।

वृन्दावनेर 'पीलु' खाइते एइ एक लीला ॥ 76 ॥

मुखे तार–उनके मुँह; झाल–मिर्च जैसे तीते स्वाद से; गेल-लगी; जिह्वा-जीभे; करे ज्वाला-जलने; वृन्दावनेर-वृन्दावन के; पीलु–पीलु; खाइते-खाने से; एइ–यह; एक लीला-एक लीला।

अनुवाद

जिन लोगों ने बीज चबा लिये थे, उनकी जीभें मिर्च जैसे तीते स्वाद से जलने लगीं। इस तरह वृन्दावन से लाये गये पीलु फलों को खाना श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए एक लीला हो गई।

जगदानन्देर आगमने सबार उल्लास ।

एइ-मते नीलाचले प्रभुर विलास ॥77॥

जगदानन्देर-जगदानन्द पण्डित के; आगमने-लौट आने पर; सबार उल्लास-हर व्यक्ति प्रफुल्लित था; एइ-मते-इस तरह; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; विलास-लीलाओं का आनन्द।

अनुवाद

जब जगदानन्द पण्डित वृन्दावन से लौट आये, तो हर व्यक्ति प्रफुल्लित था। इस तरह जगन्नाथ पुरी में निवास करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने लीलाओं का आनन्द लिया।

एक-दिन प्रभु यमेश्वर-टोटा याइते ।

सेइ-काले देव-दासी लागिला गाइते ॥ 78॥

एक-दिन-एक दिन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यमेश्वर-टोटा-यमेश्वर टोटा मन्दिर में; याइते-जब वे जा रहे थे; सेइ-काले-उस समय; देव-दासी-जगन्नाथ मन्दिर की एक स्त्री गायिका; लागिला-प्रारम्भ किया; गाइते-गाना।

अनुवाद

एक दिन जब महाप्रभु यमेश्वर के मन्दिर जा रहे थे, तब एक स्त्री गायिका (देवदासी) ने जगन्नाथ मन्दिर में गाना प्रारम्भ किया।

गुज्जरी-रागिणी लञा सुमधुर स्वरे ।

‘गीत-गोविन्द'-पद गाय जग-मन हरे ॥79॥

गुजरी-रागिणी-गुज्जरी रागिनी; लञा-साथ गाया; सुमधुर स्वरे-मधुर स्वर में; गीत-गोविन्द-जयदेव गोस्वामी कृत, गीतगोविन्द; पद-गाना; गाय-गाया; जग-मन-सारे जगत् के मन को; हरे-आकृष्ट कर लिया।

अनुवाद

उसने अत्यन्त मधुर स्वर में गुजरी रागिनी गायी और चूँकि इसका विषय जयदेव गोस्वामी कृत 'गीतगोविन्द' था, इसलिए गाने ने सारे जगत् के ध्यान को आकृष्ट कर लिया।

दूरे गान शुनि’ प्रभुर ह-इल आवेश ।

स्त्री, पुरुष, के गाय,—ना जाने विशेष ॥80॥

दूरे-दूर से; गान–गाना; शुनि’–सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; ह-इल-हुआ; आवेश-भावावेश; स्त्री-स्त्री; पुरुष–पुरुष; के गाय-कौन गा रहा है; ना जाने-नहीं जान पाये; विशेष—विशेष रूप से।

अनुवाद

दूर से गाने को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु तुरन्त भावाविष्ट हो गये। वे यह नहीं जान पाये कि कोई पुरुष गा रहा है या स्त्री गा रही है।

तारे मिलिबारे प्रभु आवेशे धाइला ।

पथे ‘सिजेर बाड़ि’ हय, फुटिया चलिला ॥81॥

तारे-गानेवाले; मिलिबारे-मिलने के लिए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आवेशे-भावावेश में; धाइला-दौड़े; पथे-रास्ते पर; सिजेर बाड़ि-कॅटीली झाड़ियाँ; हय–थीं; फुटिया-चुभ गईं; चलिला–वे चलते गये।

अनुवाद

जैसे महाप्रभु उस गाने वाले से मिलने के लिए भावावेश में दौड़े, उनके शरीर में कैंटीली झाड़ियाँ चुभ गईं।

अङ्गे काँटा लागिल, किछु ना जानिला! ।

आस्ते-व्यस्ते गोविन्द ताँर पाछेते धाइला ॥82॥

अङ्गे–शरीर पर; काँटा–काँटा; लागिल–चुभने से; किछु-कुछ; ना जानिला-पीड़ा नहीं हो रही थी; आस्ते-व्यस्ते-तेजी से; गोविन्द–उनका सेवक; ताँर–उनको; पाछेते-पीछे से; धाइला-दौड़ा।

अनुवाद

गोविन्द बहुत तेजी से महाप्रभु के पीछे दौड़ा। महाप्रभु को काँटे चुभने से कोई पीड़ा नहीं हो रही थी।

धाञा यायेन प्रभु, स्त्री आछे अल्प दूरे ।

स्त्री गाय' बलि' गोविन्द प्रभुरे कैला कोले ॥83॥

धाबा-बड़ी तेजी से; यायेन-वे जा रहे थे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; स्त्री-वह गायिका (स्त्री); आछे–थी; अल्प दूरे-कुछ ही दूरी पर; स्त्री गाय'-स्त्री गा रही है; बलि' कहकर; गोविन्द–उनका सेवक; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला कोले-अपनी बाँहों में पकड़कर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तेजी से दौड़ रहे थे और वह स्त्री कुछ ही दूरी पर थी। तभी गोविन्द ने महाप्रभु को अपनी बाँहों में पकड़ लिया और वह चिल्लाया, "यह एक स्त्री गा रही है!" ।

स्त्री-नाम शुनि' प्रभुर बाह्य ह-इला ।

पुनरपि सेइ पथे बाहुड़ि' चलिला ॥84॥

स्त्री-नाम-स्त्री" शब्द; शुनि'–सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; बाह्य-बाह्य चेतना; ह-इला-वापस आई; पुनरपि-फिर से; सेइ पथे—उस मार्ग पर; बाहुड़ि' चलिला–वे लौट गये।

अनुवाद

ज्योंही महाप्रभु ने "स्त्री" शब्द सुना, वे बाह्यरूप से सचेत हो उठे और वे लौट पड़े।

प्रभु कहे,_"गोविन्द, आजि राखिला जीवन ।

स्त्री-परश हैले आमार ह-इत मरण ॥85॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; गोविन्द–हे गोविन्द; आजि-आज; राखिला जीवन-तुमने मेरा जीवन बचाया; स्त्री-परश हैले–अगर मैं स्त्री को छू लेता तो; आमार-मेरी; ह-इत–वहीं पर हो जाती; मरण-मृत्यु।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "हे गोविन्द, तुमने मेरा जीवन बचा लिया। यदि मैं स्त्री का शरीर छू लेता, तो अवश्य ही मर गया होता।

ए-ऋण शोधिते आमि नारिमु तोमार" ।

गोविन्द कहे,—जगन्नाथ राखेन मुइ को छार'? ॥86॥

ए-ऋण-यह ऋण; शोधिते-चुका; आमि-मैं; नारिमु-नहीं सकता; तोमार-तुम्हारा; गोविन्द कहे-गोविन्दने उत्तर दिया; जगन्नाथ-भगवान जगन्नाथ; राखेन-बचाया; मुइ–मैं; कोन् छार-बहुत ही तुच्छ हूँ।

अनुवाद

"मैं कभी भी तुम्हारे ऋण को चुका नहीं सकेंगा।" गोविन्द ने उत्तर दिया, "भगवान जगन्नाथ ने आपको बचाया है। मैं तो तुच्छ हूँ।"

प्रभु कहे,–"गोविन्द, मोर सङ्गे रहिबा ।

याहाँ ताहाँ मोर रक्षाय सावधान ह–इबा" ॥87॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु बोले; गोविन्द–हे गोविन्द; मोर सङ्गे रहिबा-तुम सदैव मेरे साथ रहना; याहाँ ताहाँ-कहीं भी और हर समय; मोर-मेरी; रक्षाय-रक्षा करना; सावधान ह-इबा-अत्यन्त सावधानी से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "हे गोविन्द, तुम हमेशा मेरे साथ रहना। कहीं भी और सब जगह खतरा है, इसलिए तुम अत्यन्त सावधानी से मेरी रक्षा करना।"

एत बलि' लेउटि' प्रभु गेला निज-स्थाने ।

शुनि' महा-भय ह-इल स्वरूपादि-मने ॥88 ॥

एत बलि'–यह कहकर; लेउटि'–लौट आये; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला-गये; निज-स्थाने-अपने स्थान पर; शुनि'–सुनकर; महा-भय-अत्यधिक भयभीत; ह-इल-हुए; स्वरूप-आदि-मने–स्वरूप दामोदर और अन्य सेवकों के मन।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु घर लौट आये। जब स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा उनके अन्य सेवकों ने इस घटना के बारे में सुना, तो वे अत्यधिक भयभीत हो उठे।

एथा तपन-मिश्र-पुत्र रघुनाथ-भट्टाचार्य ।

प्रभुरे देखिते चलिला छाड़ि' सर्व कार्य ॥89॥

एथा–दूसरी ओर, तपन-मिश्र-पुत्र-तपन मिश्र के पुत्र; रघुनाथ-भट्टाचार्य-रघुनाथ भट्टाचार्य; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; देखिते-मिलने के लिए; चलिला–चले; छाड़ि'-छोड़कर; सर्व कार्य-सभी कार्य।

अनुवाद

इस बीच तपन मिश्र के पुत्र रघुनाथ भट्टाचार्य ने अपना सारा काम-काज त्यागकर श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने की इच्छा से अपना घर छोड़ दिया।

काशी हैते चलिला तेंहो गौड़-पथ दिया ।

सङ्गे सेवक चले ताँर झालि वहिया ॥10॥

काशी हैते-काशी से; चलिला-चलने लगे; तेंहो-वे; गौड़-पथ दिया-बंगाल से होकर जाने वाले मार्ग से; सङ्गे–उनके साथ; सेवक-एक सेवक; चले-चला; ताँर-उनकी; झालि-यात्रा की सामग्री; वहिया-उठानेवाला।

अनुवाद

साथ में सामान ढोने वाले एक नौकर को लेकर रघुनाथ भट्ट वाराणसी से चले और बंगाल से होकर जाने वाले मार्ग से यात्रा करने लगे।

पथे तारे मिलिला विश्वास-रामदास ।

विश्वास-खानार कायस्थ तेंहो राजार विश्वास ॥91॥

पथे–रास्ते में; तारे-उनको; मिलिला-मिले; विश्वास-रामदास–रामदास विश्वास; विश्वास-खानार-सरकारी लेखांकन के विभाग में; कायस्थ-कायस्थ जाति का; तेंहो-वे; राजार-राजा का; विश्वाससचिव।

अनुवाद

बंगाल में वे रामदास विश्वास से मिले, जो कायस्थ जाति का था। वह राजा के सचिवों में से एक था।

तात्पर्य

विश्वास-खानार कायस्थ शब्द कायस्थ जाति के सचिव या लिपिक का सूचक है। प्राय: कायस्थ लोग राजाओं, गवर्नरों या अन्य प्रमुख व्यक्तियों के सचिव होते थे। कहा जाता है कि उस समय सरकारी सचिवालय में काम करने वाला कोई भी व्यक्ति कायस्थ होता था।

सर्व-शास्त्रे प्रवीण, काव्य-प्रकाश-अध्यापक ।

परम-वैष्णव, रघुनाथ-उपासक ॥92॥

सर्व-शास्त्रे-समस्त प्रामाणिक शास्त्रों में; प्रवीण-महान पण्डित; काव्य-प्रकाश-विख्यात ग्रन्थ काव्य प्रकाश; अध्यापक-अध्यापक; परम-वैष्णव-परम वैष्णव; रघुनाथ-उपासक-भगवान् रामचन्द्र का उन्नत भक्त।

अनुवाद

रामदास विश्वास समस्त प्रामाणिक शास्त्रों में प्रवीण था। वह 'काव्यप्रकाश' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ का अध्यापक था और उन्नत भक्त तथा रघुनाथ (भगवान् रामचन्द्र) के उपासक के रूप में विख्यात था।

तात्पर्य

परम वैष्णव शब्द की टीका करते हुए श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि जो कोई भी भगवान् में तदाकार होना चाहता है, वह शुद्ध वैष्णव नहीं हो सकता, किन्तु रामदास विश्वास भगवान् रामचन्द्र का महान् भक्त था, इसलिए वह लगभग वैष्णव था। उन दिनों शुद्ध वैष्णव तथा छद्म वैष्णव में अन्तर कर पाना कठिन था। इसलिए रामदास विश्वास एक वैष्णव कहलाता था, क्योंकि वह भगवान् रामचन्द्र की पूजा करता था।

अष्ट-प्रहर राम-नाम जपेन रात्रि-दिने ।

सर्व त्यजि' चलिला जगन्नाथ-दरशने ॥ 93 ॥

अष्ट-प्रहर–दिनके चौबीसों घण्टे; राम-नाम-भगवान् राम के पवित्र नाम का; जपेन-जप करता था; रात्रि-दिने-रात और दिन; सर्व-सभी; त्यजि'–छोड़कर; चलिला-चला; जगन्नाथ-दरशने-भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने।

अनुवाद

रामदास ने सब कुछ त्याग दिया था और वह भगवान जगन्नाथ का दर्शन करने जा रहा था। यात्रा करते हुए वह दिन के चौबीसों घण्टे भगवान् राम के पवित्र नाम का जप करता रहता था।

रघुनाथ-भट्टेर सने पथेते मिलिला ।

भट्टेर झालि माथे करि' वहिया चलिला ॥94॥

रघुनाथ-भट्टेर-रघुनाथ भट्ट; सने–के साथ; पथेते–रास्ते में; मिलिला–वह मिला; भट्टेर-रघुनाथ भट्ट का; झालि–सामान; माथे करि'–सिर पर लेकर; वहिया चलिला-उठा ले चला।

अनुवाद

जब वह रास्ते में रघुनाथ भट्ट से मिला, तो उसने रघुनाथ का सामान अपने सिर पर रख लिया और उसे उठा ले चला।

नाना सेवा करि' करे पाद-सम्वाहन ।

ताते रघुनाथेर हय सङ्कचित मन ॥95॥

नाना सेवा करि'–अनेक प्रकार से सेवा करता; करे पाद-सम्वाहन-पाँव भी दबाता; ताते–यहाँ तक कि; रघुनाथेर-रघुनाथ भट्ट के; हय–होता; सङ्कुचित मन-मन में संकोच।

अनुवाद

रामदास अनेक प्रकार से रघुनाथ भट्ट की सेवा करता, यहाँ तक कि वह उनके पाँव भी दबाता। रघुनाथ भट्ट को यह सारी सेवा लेते संकोच होता।

"तुमि बड़ लोक, पण्डित, महा-भागवते ।

सेवा ना करिह, सुखे चल मोर साथे" ॥16॥

तुमि-आप; बड़ लोक-महान् व्यक्ति; पण्डित-विद्वान पण्डित; महा-भागवते-महान् भक्त; सेवा ना करिह-कृपया सेवा न करें; सुखे-प्रसन्न भाव में; चल-चलें; मोर साथे-मेरे साथ।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "आप एक सम्मानित भद्र व्यक्ति, विद्वान पण्डित तथा महान् भक्त हैं। कृपया आप मेरी सेवा करने का प्रयास न करें। बस, मेरे साथ प्रसन्न भाव में चलें।"

रामदास कहे,–"आमि शूद्र अधम! ।

'ब्राह्मणेर सेवा',—एइ मोर निज-धर्म ॥97॥

रामदास कहे-रामदास ने कहा; आमि-मैं; शूद्र-शूद्र; अधम-तुच्छ; ब्राह्मणेर सेवा-ब्राह्मण की सेवा करना; एइ-यह; मोर निज-धर्म-मेरा धार्मिक कर्तव्य।

अनुवाद

रामदास ने उत्तर दिया, "मैं शूद्र हूँ, पतित हूँ। ब्राह्मण की सेवा करना मेरा कर्तव्य तथा धर्म है।

सङ्कोच ना कर तुमि, आमि—तोमार 'दास' ।

तोमार सेवा करिले हय हृदये उल्लास" ॥98॥

सङ्कोच-संकोच; ना-न; कर-करें; तुमि-आपका; आमि-मैं; तोमार-आपका; दास-दास; तोमार-आपकी; सेवा–सेवा; करिले-करने से; हय होता है; हृदये-हृदय; उल्लास-प्रफुल्लित॥

अनुवाद

"इसलिए कृपया संकोच न करें। मैं आपका दास हूँ और जब मैं आपकी सेवा करता हूँ, तो मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठता है।"

एत बलि' झालि वहेन, करेन सेवने ।

रघुनाथेर तारक-मन्त्र जपेन रात्रि-दिने ॥99॥

एत बलि'—यह कहकर; झालि वहेन–सामान उठाते हुए; करेन सेवने-सेवा करते हुए; रघुनाथेर-भगवान् रामचन्द्र; तारक-तारक; मन्त्र-पवित्र नाम का; जपेन-जप करते: रात्रि-दिने-रात और दिन॥

अनुवाद

इस तरह रामदास रघुनाथ भट्ट का सामान उठाए चलता रहा और निष्ठापूर्वक उसकी सेवा करता रहा। वह रात-दिन भगवान् रामचन्द्र के पवित्र नाम का निरन्तर जप करता रहा।

एइ-मते रघुनाथ आइला नीलाचले ।

प्रभुर चरणे याञा मिलिला कुतूहले ॥100॥

एइ-मते-इस तरह; रघुनाथ-रघुनाथ भट्ट; आइला-आये; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में; याञा-गये; मिलिला-मिलने; कुतूहले-परम हर्ष के साथ।

अनुवाद

इस तरह यात्रा करते हुए रघुनाथ भट्ट शीघ्र ही जगन्नाथपुरी आ गये। वहाँ वे परम हर्ष के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले और उनके चरणकमलों में गिर पड़े।

दण्ड-परणाम करि' भट्ट पड़िला चरणे ।

प्रभु 'रघुनाथ' जानि कैला आलिङ्गने ॥ 101॥

दण्ड-परणाम करि'-नमस्कार करते हुए जमीन पर गिर पड़े; भट्ट-रघुनाथ भट्ट; पड़िला चरणे-चरणकमलों में गिर पड़े; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; रघुनाथ–रघुनाथ भट्ट; जानि-जानते हुए; कैला आलिङ्गने-आलिंगन किया।

अनुवाद

रघुनाथ भट्ट श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों में दण्ड की तरह गिर पड़े। तब महाप्रभु ने यह भलीभाँति जानते हुए कि वे कौन हैं, उनका आलिंगन किया।

मिश्र आर शेखरेर दण्डवत् जानाइला ।

महाप्रभु ताँ-सबार वार्ता पुछिला ॥ 102॥

मिश्र-तपन मिश्र के; आर-और; शेखरेर–चन्द्रशेखर के; दण्डवत्-दण्डवत्; जानाइला-उन्होंने बताया; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँ-सबार-सभी की ओर से; वार्ता- समाचार; पुछिला-पूछा।

अनुवाद

रघुनाथ ने तपन मिश्र तथा चन्द्रशेखर की ओर से श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार किया और महाप्रभु ने भी उनके विषय में समाचार पूछा।

"भाल ह-इल आइला, देख‘कमल-लोचन’ ।

आजि आमार एथा करिबा प्रसाद भोजन" ॥103 ॥

भाल ह-इल-बहुत अच्छा हुआ; आइला-तुम यहाँ आये हो; देख-देखने; कमल-लोचन–कमलनयन भगवान जगन्नाथ को; आजि-आज; आमार एथा-मेरे यहाँ; करिबा प्रसाद भोजन-प्रसाद ग्रहण करोगे।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "अच्छा हुआ कि तुम यहाँ आये हो। अब जाकर कमललोचन भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करो। आज तुम मेरे यहाँ प्रसाद ग्रहण करोगे।”

गोविन्देरे कहि' एक वासा देओयाइला ।

स्वरूपादि भक्त-गण-सने मिलाइला ॥104॥

गोविन्देरे-गोविन्द को; कहि'–कहा; एक-एक; वासा-रहने की जगह; देओयाइला-दिलवाई; स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी इत्यादि; भक्त-गण-सने-सारे भक्तों से; मिलाइला–मिलाया।

अनुवाद

महाप्रभु ने गोविन्द से रघुनाथ भट्ट के ठहरने के लिए प्रबन्ध करने को कहा और तब उनका परिचय स्वरूप दामोदर गोस्वामी इत्यादि सारे भक्तों से कराया।

एइ-मत प्रभु-सङ्गे रहिला अष्ट-मास ।

दिने दिने प्रभुर कृपाय बाड़ये उल्लास ॥ 105॥

एइ-मत-इस तरह से; प्रभु-सङ्गे–श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; रहिला-रहे; अष्ट-मास-आठ महीने; दिने दिने–दिनों दिन; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपाय-कृपा से; बाड़ये उल्लास-दिव्य सुख का अनुभव किया।

अनुवाद

इस तरह रघुनाथ भट्ट लगातार आठ महीनों तक श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रहे और महाप्रभु की कृपा से उन्हें प्रतिदिन अधिकाधिक दिव्य सुख का अनुभव होता रहा।

मध्ये मध्ये महाप्रभुर करेन निमन्त्रण ।

घर-भात करेन, आर विविध व्यञ्जन ॥ 106 ॥

मध्ये मध्ये-बीच बीचमें; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; करेन निमन्त्रण-निमन्त्रित करते; घर-भात करेन-घर पर चावल पकाते; आर-और; विविध व्यञ्जन-अनेक प्रकार की सब्जियाँ।

अनुवाद

वे कुछ समय पर विविध सब्जियों के साथ चावल पकाते और श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर आमन्त्रित करते।

रघुनाथ-भट्ट–पाके अति सुनिपुण ।

येइ रान्धे, सेइ हय अमृतेर सम ॥107॥

रघुनाथ-भट्ट-रघुनाथ भट्ट; पाके–रसोई में; अति सु-निपुण-अत्यन्त निपूण; येइ रान्धे-जो भी पकाते; सेइ-वह; हय–होता है; अमृतेर सम-अमृत जैसा।

अनुवाद

रघुनाथ भट्ट दक्ष रसोइया थे। वे जो भी पकाते वह अमृत का सा स्वाद देता।

परम सन्तोषे प्रभु करेन भोजन ।

प्रभुर अवशिष्ट-पात्र भट्टेर भक्षण ॥ 108॥

परम सन्तोषे-परम सन्तोष; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन भोजन-भोजन ग्रहण करते; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; अवशिष्ट-पात्र–बचा हुआ पात्र; भट्टेर-रघुनाथ भट्ट; भक्षण-ग्रहण करते ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उनके द्वारा बनाये गये भोजन को परम सन्तोष के साथ ग्रहण करते। जब महाप्रभु तुष्ट हो जाते, तब रघुनाथ भट्ट उनका शेष ग्रहण करते।

रामदास यदि प्रथम प्रभुरे मिलिला ।

महाप्रभु अधिक तारे कृपा ना करिला ॥109॥

रामदास-भक्त रामदास विश्वास; यदि-जब; प्रथम-पहली बार; प्रभुरे मिलिला-श्री चैतन्य महाप्रभु से मिला; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; अधिक-ज्यादा; तारे-उनके ऊपर; कृपा-कृपा; ना करिला-नहीं की।

अनुवाद

जब रामदास विश्वास श्री चैतन्य महाप्रभु से मिला, तो महाप्रभु ने उस पर कोई विशेष कृपा नहीं दर्शाई, यद्यपि यह उनकी प्रथम भेंट थी।

अन्तरे मुमुक्षु तेंहो, विद्या-गर्ववान् ।

सर्व-चित्त-ज्ञाता प्रभु–सर्वज्ञ भगवान् ॥ 110॥

अन्तरे–अन्तर से; मुमुक्षु-मुक्ति का इच्छुक; तेंहो-वह; विद्या-गर्ववान्-अपनी विद्या के प्रति बहुत अहंकारी; सर्व-चित्त-ज्ञाता-सबके हृदय की बात समझने वाले; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सर्व-ज्ञ भगवान् सर्वज्ञ भगवान्।

अनुवाद

अन्तर से रामदास विश्वास निर्विशेषवादी था, जो भगवान् से तादात्म्य चाहता था और अपनी विद्या के प्रति उसे बहुत अहंकार था। सर्वज्ञ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु किसी के भी हृदय की बात समझ सकते हैं और इस तरह वे इन सारी बातों को जानते थे।

रामदास कैला तबे नीलाचले वास ।

पट्टनायक-गोष्ठीके पड़ाय 'काव्य-प्रकाश' ॥111॥

रामदास–रामदास विश्वास; कैला–किया; तबे-तब; नीलाचले वास–जगन्नाथ पुरी में निवास; पट्टनायक-गोष्ठीके-पट्टनायक परिवार को (भवानन्द राय के वंशजों); पड़ाय-पढ़ाने लगा; काव्य-प्रकाश-काव्यप्रकाश का ग्रन्थ।

अनुवाद

तब रामदास विश्वास ने नीलाचल में ही अपना आवास बना लिया। वह पट्टनायक परिवार (भवानन्द राय के वंशजों) को 'काव्यप्रकाश पढ़ाने लगा।

अष्ट-मास रहि' प्रभु भट्ट विदाय दिला ।

'विवाह ना करिह' बलि' निषेध करिला ॥ 112॥

अष्ट-मास-आठ मास तक; रहि-रहे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भट्टे-रघुनाथ भट्ट को; विदाय दिला–विदा किया; विवाह ना करिह-विवाह मत करना; बलि'–कहकर; निषेध करिला-उन्हें मना किया।

अनुवाद

आठ मास बाद, जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ भट्ट को विदा किया, तो महाप्रभु ने उनसे विवाह करने के लिए स्पष्ट रूप से मना किया। महाप्रभु ने कहा, "विवाह मत करना।" ।

तात्पर्य

अविवाहित रहते हुए रघुनाथ भट्टाचार्य अति उन्नत भक्त बन चुके थे। श्री चैतन्य महाप्रभु इसे जान गये, इसीलिए उन्होंने परामर्श दिया कि वे भौतिक इन्द्रियतृप्ति की विधि शुरू न करें। विवाह तो उन लोगों के लिए छूट है, जो अपनी इन्द्रियों को वश में करने में असमर्थ होते हैं। किन्तु रघुनाथ को इन्द्रियतृप्ति की कोई इच्छा न थी, क्योंकि वे कृष्ण के महान् भक्त थे। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें विवाह-बन्धन में न पड़ने का परामर्श दिया। सामान्यतया जो व्यक्ति विवाहित होता है, वह आध्यात्मिक चेतना में अधिक उन्नति नहीं कर पाता। वह अपने परिवार के प्रति आसक्त हो जाता है और इन्द्रियतृप्ति के प्रति उन्मुख रहता है। इस तरह उसकी आध्यात्मिक उन्नति या तो अत्यन्त मन्द होती है या होती ही नहीं।

वृद्ध माता-पितार याइ' करह सेवन ।

वैष्णव-पाश भागवत कर अध्ययन ॥ 113॥

वृद्ध–वृद्ध; माता-पितार-माता और पिता के यहाँ; याइ'-वापस जाओगे; करह सेवन-सेवा करना; वैष्णव-पाश-शुद्ध वैष्णव; भागवत-श्रीमद् भागवत; कर अध्ययनका अध्ययन करना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ भट्ट से कहा, "जब तुम अपने घर लौटोगे, तो अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा करना, जो कि भक्त हैं और तुम किसी शुद्ध वैष्णव से, जिसने भगवत् साक्षात्कार किया हो, श्रीमद्भागवत का अध्ययन करना।"

तात्पर्य

यह ध्यान देना चाहिए कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने किस तरह रघुनाथ भट्टाचार्य को श्रीमद्भागवत सीखने का उपदेश दिया। उन्होंने किसी पेशेवर व्यक्ति से नहीं, अपितु वास्तविक भक्त अर्थात् भागवत से श्रीमद्भागवत समझने का उपदेश दिया। उन्होंने रघुनाथ भट्ट को अपने माता-पिता की सेवा करने का परामर्श भी दिया, क्योंकि वे दोनों ही भगवान् चैतन्य के भक्त थे। जो कोई भी कृष्णभावनामृत में आगे बढ़ना चाहता है, उसे कृष्ण के भक्तों की सेवा करने का प्रयास करना चाहिए। जैसाकि नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं- छाड़िया वैष्णव-सेवा निस्तार पायेछे केबा–"स्वरूपसिद्ध वैष्णव की सेवा किये बिना भौतिकतावादी जीवन शैली से कोई छुटकारा नहीं पा सकता।" श्री चैतन्य महाप्रभु ने कभी भी रघुनाथ भट्ट को सामान्य माता-पिता की सेवा करने के लिए उपदेश न दिया होता, किन्तु क्योंकि उनके माता-पिता वैष्णव थे, इसलिए उन्होंने उसे माता-पिता की सेवा करने का उपदेश दिया।

कोई प्रश्न कर सकता है कि, "सामान्य माता-पिता की सेवा क्यों नहीं करनी चाहिए?" श्रीमद्भागवत (5.5.18) में कहा गया है :

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्

पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।

दैवं न तत् स्यात् न पतिश्च स स्यान्

न मोचयेद् यः समुपेतमृत्युम्॥

"जो व्यक्ति अपने आश्रित को जन्म-मृत्यु के मार्ग से मुक्त नहीं कर सकता, उसे न तो गुरु, सम्बन्धी, पिता या माता या आराध्य देव बनना चाहिए, न ही ऐसे व्यक्ति को पति बनना चाहिए।" हर व्यक्ति को जन्म के समय से ही सहज में माता तथा पिता मिल जाते हैं, किन्तु वास्तविक माता तथा पिता तो वे होते हैं, जो अपनी संतानों को आसन्न मृत्यु के चंगुल से छुड़ा सकते हैं। ऐसा वे ही माता-पिता कर पाते हैं, जो कृष्णभावना में प्रबुद्ध होते हैं। इसलिए ऐसे माता-पिता जो अपनी संतानों को कृष्णभावना में प्रकाशित

नहीं कर सकते, उन्हें वास्तविक माता-पिता के रूप में नहीं स्वीकार किये जा सकते। भक्तिरसामृतसिन्धु के निम्नलिखित श्लोक (1.2.200) से सामान्य माता-पिता की सेवा करने की व्यर्थता प्रकट होती है :

लौकिकी वैदिकी वापि या क्रिया क्रियते मुने।

हरिसेवानुकूलैव स कार्या भक्तिमिच्छता॥

"मनुष्य को केवल वे ही कार्य-चाहे वे लौकिक हों या वैदिक-करने चाहिए, जो कृष्णभावना के अनुशीलन के अनुकूल हों।"

श्रीमद्भागवत के अध्ययन के सम्बन्ध में श्री चैतन्य महाप्रभु स्पष्ट परामर्श देते हैं कि इसे अवैष्णव पेशेवर वाचक से सुनने से बचा जाय। इस सम्बन्ध में सनातन गोस्वामी ने पद्म पुराण का एक श्लोक उद्धृत किया है :

अवष्णवमुखोद्गीर्ण पूतं हरिकथासतम्

श्रवणं नैव कर्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः॥

"अवैष्णव से न तो सुना जाय, न उपदेश ग्रहण किया जाय। यदि वह कृष्ण के विषय में बोले, तो भी ऐसे उपदेश को ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह सर्प के होठों द्वारा स्पर्श किये हुए दूध के समान होता है। आजकल ऐसे लोगों से भागवत सप्ताह कराना तथा श्रीमद्भागवत सुनना एक प्रथा बन चुकी है, जो प्रबुद्ध भक्त या स्वरूपसिद्ध व्यक्ति न होकर और कुछ होते हैं। ऐसे अनेक मायावादी भी हैं, जो लोगों के समूह के लिए श्रीमद्भागवत बाँचते हैं। हाल ही में वृन्दावन में अनेक मायावादियों ने श्रीमद्भागवत बाँचना प्रारम्भ कर दिया है और चूँकि वे शब्दजाल द्वारा व्याकरण के दाँव-पेच की सहायता से अर्थ को तोड़-मरोड़कर भागवत प्रस्तुत कर सकते हैं, इसलिए ऐसे भौतिकतावादी व्यक्ति जो आध्यात्मिक प्रथा के रूप में वृन्दावन जाते हैं, उन को सुनना पसन्द करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन सबका स्पष्ट रूप से निषेध किया है। हमें यह सावधानीपूर्वक ध्यान देना होगा कि ये मायावादी वाचक श्रीमद्भागवत का अर्थ

स्वयं भी नहीं जानते, अतएव इसे सुनाकर वे अन्यों का उद्धार कर ही नहीं सकते। दूसरी ओर, भगवान् का उन्नत भक्त भौतिक बन्धन से मुक्त होता है। वह अपने जीवन तथा कर्म में श्रीमद्भागवत को मूर्त रूप देता है। इसलिए हमारा परामर्श है कि जो कोई भी श्रीमद्भागवत सीखना चाहता है, वह ऐसे ही स्वरूपसिद्ध आत्मा के पास पहुँचे।

पुनरपि एक-बार आसिह नीलाचले" ।

एत बलि' कण्ठ-माला दिला ताँर गले ॥114॥

पुनरपि फिर से आना; एक-बार-एक बार; आसिह नीलाचले–जगन्नाथ पुरी आना; एत बलि'–ऐसा कहकर; कण्ठ-माला-गले की माला; दिला-दी; ताँर गले-उनके गले में।

अनुवाद

अन्त में श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) फिर से आना।" यह कहकर महाप्रभु ने अपनी कण्ठी-माला रघुनाथ भट्ट के गले में डाल दी।

आलिङ्गन करि' प्रभु विदाय ताँरे दिला ।

प्रेमे गर गर भट्ट कान्दिते लागिला ॥115॥

आलिङ्गन करि'-आलिंगन किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; विदाय ताँरे दिला-विदा कर दिया; प्रेमे-प्रेम में; गर गर–व्याकुल; भट्ट-रघुनाथ भट्ट; कान्दिते लागिला-रोने लगे।

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया और उन्हें विदा किया। प्रेम से विह्वल होकर तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के आसन्न विछोह के कारण रघुनाथ भट्ट रोने लगे।

स्वरूप-आदि भक्त-ठाञि आज्ञा मागिया ।

वाराणसी आइला भट्ट प्रभुर आज्ञा पाञा ॥ 116 ॥

स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी आदि; भक्त-ठाञि-सारे भक्त; आज्ञा मागिया-आज्ञा माँगकर; वाराणसी आइला-वाराणसी लौट गये; भट्ट-रघुनाथ भट्ट; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा पाळा-आज्ञी लेकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से तथा स्वरूप दामोदर आदि सारे भक्तों से आज्ञा लेकर रघुनाथ भट्ट वाराणसी लौट गये।

चारि-वत्सर घरे पिता-मातार सेवा कैला ।

वैष्णव-पण्डित-ठाञि भागवत पड़िला ॥117॥

चारि-वत्सर-चार वर्षों तक; घरे–घर पर; पिता-मातार–माता पिता की सेवा कैला-सेवा करते; वैष्णव-पण्डित-ठाञि-स्वरूपसिद्ध उन्नत वैष्णव से; भागवत पड़िला-उन्होंने श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार वे लगातार चार वर्षों तक अपने माता-पिता की सेवा करते रहे। उन्होंने एक स्वरूपसिद्ध वैष्णव से नियमित रूप से 'श्रीमद्भागवत' का अध्ययन भी किया।

पिता-माता काशी पाइले उदासीन हञा ।

पुनः प्रभुर ठाञि आइला गृहादि छाड़िया ॥ 118॥

पिता-माता-पिता और माता का; काशी पाइले-जब काशी (वाराणसी) में देहान्त हो गया; उदासीन हञा–उदासीन होकर; पुनः–फिर से; प्रभुर ठाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु के पास; आइला–लौट आये; गृह-आदि छाड़िया-अपने घर के सारे सम्बन्धों को त्यागकर।

अनुवाद

जब उनके माता पिता का काशी (वाराणसी) में देहान्त हो गया, तो वे विरक्त हो गये। अतएव अपने घर के सारे सम्बन्धों को त्यागकर वे श्री चैतन्य महाप्रभु के पास लौट आये।

पूर्ववत् अष्ट-मास प्रभु-पाश छिला ।

अष्ट-मास रहि' पुनः प्रभु आज्ञा दिला ॥ 119॥

पूर्व-वत्-पहले की तरह; अष्ट-मास-आठ महीनों के लिए; प्रभु-पाश छिला-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रहे; अष्ट-मास रहि'-आठ महीने रहने के बाद; पुनः–फिर से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आज्ञा दिला–आज्ञा दी।

अनुवाद

पहले की तरह रघुनाथ लगातार आठ महीने श्री चैतन्य महाप्रभु के पास रुके। तब महाप्रभु ने उन्हें यह आदेश दिया।

“आमार आज्ञाय, रघुनाथ, याह वृन्दावने ।

ताहाँ याञा रह रूप-सनातन-स्थाने ॥ 120॥

आमार आज्ञाय-मेरी आज्ञानुसार; रघुनाथ-हे रघुनाथ; याह वृन्दावने-वृन्दावन जाओ; ताहाँ याञा-वहाँ जाकर; रह-रहना; रूप-सनातन-स्थाने-रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी के संरक्षण में।

अनुवाद

“हे रघुनाथ, मेरी आज्ञानुसार तुम वृन्दावन जाओ। वहाँ रूप तथा सनातन गोस्वामियों के संरक्षण में रहना।

भागवत पड़, सदा लह कृष्ण-नाम ।

अचिरे करिबेन कृपा कृष्ण भगवान्” ॥121॥

भागवत पड़-श्रीमद् भागवत पढ़ना; सदा-हमेशा; लह कृष्ण-नाम-हरे कृष्ण मन्त्र का जप करना; अचिरे–जल्द ही; करिबेन–करेंगे; कृपा-कृपा; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

“तुम वृन्दावन जाकर चौबीसों घण्टे हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करना तथा निरन्तर श्रीमद्भागवत पढ़ना। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण शीघ्र ही तुम पर कृपा करेंगे।”

एत बलि' प्रभु ताँरे आलिङ्गन कैला ।

प्रभुर कृपाते कृष्ण-प्रेमे मत्त हैला ॥ 122॥

एत बलि'—यह कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे-रघुनाथ भट्ट; आलिङ्गन कैला-आलिंगन किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपाते–कृपा से; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण के प्रेम में; मत्त हैला-जागृत हो उठा।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ भट्ट का आलिंगन किया और महाप्रभु की कृपा से रघुनाथ में कृष्ण-प्रेम जागृत हो उठा।

चौद्द-हात जगन्नाथेर तुलसीर माला ।

छुटा-पान-विड़ा महोत्सवे पात्राछिला ॥ 123 ॥

चौद्द-हात–चौदह हाथ (लगभग इक्कीस फीट) लम्बी; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ की; तुलसीर माला-तुलसी माला; छुटा-पान-विड़ा-पान; महोत्सवे-एक उत्सव में; पाञाछिला-मिला।

अनुवाद

एक उत्सव में श्री चैतन्य महाप्रभु को कुछ सादे पान तथा चौदह हाथ लम्बी तुलसी की माला दी गई थी। यह माला जगन्नाथ जी की पहनी हुई थी।

सेइ माला, छुटा पान प्रभु ताँरे दिला ।

'इष्ट-देव' करि' माला धरिया राखिला ॥124॥

सेइ माला-वह माला; छुटा पान—वह पान; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे दिला-उन्हें दे दिया; इष्ट-देव-आराध्य देव की तरह; करि'–स्वीकार की; माला-वह माला; धरिया राखिला-रख दी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वह माला तथा पान रघुनाथ भट्ट को दे दिये, जिन्होंने इन्हें आराध्य देव की तरह स्वीकार किया और सुरक्षित रख लिया।

प्रभुर ठाञि आज्ञा लञा गेला वृन्दावने ।

आश्रय करिला आसि' रूप-सनातने ॥ 125॥

प्रभुर ठाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु से; आज्ञा लञा-अनुमति लेकर; गेला वृन्दावने-वृन्दावन को गये; आश्रय करिला-आश्रय लिया; आसि'–आकर; रूप-सनातने रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी की।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु से आज्ञा लेकर रघुनाथ भट्ट वृन्दावन के लिए चल पड़े। वहाँ पहुँचकर वे रूप तथा सनातन गोस्वामियों के संरक्षण में रहने लगे।

रूप-गोसाञि सभाय करेन भागवत-पठन ।

भागवत पड़िते प्रेमे आउलाय ताँर मन ॥126॥

रूप-गोसाञि सभाय-रूप, सनातन और अन्य वैष्णवों की सभा में; करेन-किया; भागवत-पठन–श्रीमद् भागवत पठन किया; भागवत पड़िते- श्रीमद् भागवत पढ़ते समय; प्रेमे-प्रेम से; आउलाय-व्याकुल हो उठा; ताँर मन-उनका मन।

अनुवाद

जब रघुनाथ भट्ट रूप तथा सनातन की संगति में श्रीमद्भागवत पढ़ते, तो वे कृष्ण-प्रेम से अभिभूत हो उठते।

अश्रु, कम्प, गद्गद प्रभुर कृपाते ।

नेत्र कण्ठ रोधे बाष्प, ना पारे पड़िते ॥127॥

अश्रु-अश्रु; कम्प–कम्पन; गद्गद-वाणी लडखडना; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपाते–कृपा से; नेत्र-आँखे; कण्ठ-कण्ठ; रोधे–अवरोध; बाष्य-आँसू; ना पारे पड़िते-सुना नहीं पाते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से उनमें प्रेमावेश के लक्षण-अश्रु, कम्प तथा वाणी अवरोध-प्रकट होने लगते। उनकी आँखें आँसू से भर जातीं, उनका कंठ रुद्ध हो जाता और इस कारण वे श्रीमद्भागवत नहीं सुना पाते थे।

पिक-स्वर-कण्ठ, ताते रागेर विभाग ।

एक-श्लोक पड़िते फिराय तिन-चारि राग ॥ 128॥

पिक-स्वर-कण्ठ-कोयल के समान मीठी वाणी; ताते—उसके ऊपर; रागेर-राग; विभाग–विभाग; एक-श्लोक-एक श्लोक; पड़िते-पाठ; फिराय-बदलकर; तिन-चारि राग-तीन चार रागों में।

अनुवाद

उनकी वाणी कोयल की वाणी के समान मीठी थी और वे श्रीमद्भागवत के प्रत्येक श्लोक को तीन-चार अलग रागों में सुना सकते थे। इस तरह उनका वाचन सुनने में अत्यन्त मधुर लगता।

कृष्णेर सौन्दर्य-माधुर्य यबे पड़े, शुने ।

प्रेमेते विह्वल तबे, किछुइ ना जाने ॥ 129॥

कृष्णेर-कृष्ण के; सौन्दर्य-सौन्दर्य; माधुर्य-माधुर्य; यबे-तब; पड़े-पढ़ते; शुने- सुनते; प्रेमेते-कृष्ण के प्रेम से; विह्वल-विह्वल होकर; तबे-तब; किछुइ-कुछ भी; ना जाने–नहीं जानते थे।

अनुवाद

जब वे कृष्ण के सौन्दर्य और माधुर्य का पाठ करते या सुनते, तब वे प्रेम से विह्वल हो उठते और सब कुछ भूल जाते।

गोविन्द-चरणे कैला आत्म-समर्पण ।

गोविन्द-चरणारविन्द—याँर प्राण-धन ॥ 130॥

गोविन्द-चरणे-भगवान् गोविन्द के चरणकमलों में; कैला आत्म-समर्पण-उन्होंने पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया; गोविन्द-चरण-अरविन्द–भगवान् गोविन्द के चरणकमल; याँर-जिनके; प्राण-धन-जीवनाधार।

अनुवाद

इस तरह रघुनाथ भट्ट पूर्णरूपेण भगवान् गोविन्द के चरणकमलों में समर्पित हो गये और उनके चरणकमल ही उनके जीवनाधार बन गये।

निज शिष्ये कहि' गोविन्देर मन्दिर कराइला ।

वंशी, मकर कुण्डलादि 'भूषण' करि' दिला ॥ 131॥

निज शिष्ये-अपने शिष्यों से; कहि'-कहकर; गोविन्देर- भगवान् गोविन्द के; मन्दिर कराइला–मन्दिर बनवाने का; वंशी-वंशी (बाँसुरी); मकर कुण्डल-आदि-मकराकृतिवाले कान के कुण्डल आदि; भूषण-आभूषण; करि'–तैयार; दिला–किये।

अनुवाद

फलस्वरूप रघुनाथ भट्ट ने अपने शिष्यों से गोविन्द के लिए मन्दिर बनवाने का आदेश दिया। उन्होंने वंशी तथा मकराकृति वाले कान के कुण्डल जैसे विविध आभूषण गोविन्द के लिए तैयार किये।

ग्राम्य-वार्ता ना शुने, ना कहे जिह्वाय ।

कृष्ण-कथा-पूजादिते अष्ट-प्रहर याय ॥ 132॥

ग्राम्य-वार्ता-सामान्य वार्ता; ना शुने-कभी न सुनते; ना-ना; कहे-कहते: जिह्वाय-अपनी वाणी से; कृष्ण-कथा-कृष्ण की वार्ता; पूजा-आदिते-और कृष्ण की पूजा इत्यादि; अष्ट-प्रहर याय-पूरे दिन और रातभर।

अनुवाद

रघुनाथ भट्ट न तो इस भौतिक जगत् की कोई वार्ता सुनते, न उसके विषय में कहते। वे केवल कृष्ण की वार्ता करते और अहर्निश कृष्ण की पूजा करते।

वैष्णवेर निन्द्य-कर्म नाहि पाडे काणे ।

सबे कृष्ण भजन करे,—एइ-मात्र जाने ॥ 133॥

वैष्णवेर-वैष्णव के; निन्द्य-कर्म-निन्दा कर्म; नाहि पाड़े काणे-वे सुनते नहीं; सबे-सब; कृष्ण भजन करे-कृष्ण की सेवा लगा हुआ हो; एइ-मात्र–सिर्फ यह; जाने-समझते।

अनुवाद

वे न तो वैष्णव की निन्दा सुनते, न ही किसी वैष्णव के दुराचार की बात सुनते। वे केवल इतना ही जानते कि हर कोई कृष्ण की सेवा में लगा हुआ है। इसके अतिरिक्त वे और कुछ नहीं समझते थे।

तात्पर्य

रघुनाथ भट्ट ने कभी ऐसा कोई काम नहीं किया जो किसी वैष्णव को हानिप्रद हो। दूसरे शब्दों में, वे न तो कभी भगवान् की सेवा में असावधान रहे, न ही उन्होंने शुद्ध वैष्णव के विधि-विधानों का कभी उल्लंघन किया। वैष्णव आचार्य का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्यों तथा अनुयायियों को वैष्णव आचार के नियमों का उल्लंघन करने से रोके। उसे चाहिए कि वह उन्हें सर्वदा विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करने का उपदेश दे, जिससे वे पतित होने से बच सकें। यद्यपि वैष्णव प्रचारक कभी-कभी अन्यों की आलोचना कर देता है, किन्तु रघुनाथ भट्ट अपने आपको इससे बचाते रहे। यहाँ तक कि यदि कोई दूसरा वैष्णव दोषी होता, तो भी वे उसकी आलोचना नहीं करते थे। वे केवल इतना ही देखते कि हर कोई कृष्ण-सेवा में लगा हुआ है। महाभागवत की ऐसी ही स्थिति होती है। वस्तुतः यदि कोई माया की सेवा करता है, तो उच्च अर्थ में वह भी कृष्ण का सेवक है। क्योंकि माया कृष्ण की दासी है, इसलिए जो भी माया की सेवा करता है, अप्रत्यक्ष रूप से वह कृष्ण की सेवा करता है। इसीलिए कहा गया है :

केह माने, केह ना माने, सब ताँर दास ।

ये ना माने, तार हय सेइ पापे नाश ॥

“कुछ लोग उन्हें मानते हैं, कुछ नहीं मानते; फिर भी हर कोई उनका दास है। किन्तु जो उन्हें नहीं मानता, वह अपने पापकर्मों से विनष्ट हो जायेगा।” (चैतन्य चरितामृत, आदि 6.85)

महाप्रभुर दत्त माला मननेर काले ।

प्रसाद-कड़ार सह बान्धि लेन गले ॥134॥

महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा; दत्त-दी गई; माला-तुलसी माला; मननेर-स्मरण में; काले-उसी समय; प्रसाद-कड़ार-भगवान जगन्नाथ के प्रसाद को निकालते; सह-साथ; बान्धि–बाँधकर; लेन-लेते; गले-गले में।

अनुवाद

जब रघुनाथ भट्ट गोस्वामी कृष्ण के स्मरण में मग्न होते, तो वे श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दी गई तुलसी माला तथा जगन्नाथ जी के प्रसाद को निकालते, उन्हें एक साथ बाँधकर गले में पहन लेते।

महाप्रभुर कृपाय कृष्ण-प्रेम अनर्गल ।

एइ त’ कहिलुँ ताते चैतन्य-कृपा-फल ॥ 135॥

महाप्रभुर कृपाय-श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से; कृष्ण-प्रेम अनर्गल-कृष्ण-प्रेम में विह्वल रहते; एइ त'—इस प्रकार; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; ताते-जिससे; चैतन्य-कृपा-फल-श्री चैतन्य महाप्रभु के कृपा का परिणाम।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा का वर्णन किया है, जिससे रघुनाथ भट्ट गोस्वामी निरन्तर कृष्ण-प्रेम में विह्वल रहते थे।

जगदानन्देर कहिलुँ वृन्दावन-गमन ।

तार मध्ये देव-दासीर गान-श्रवण ॥ 136 ॥

महाप्रभुर रघुनाथे कृपा-प्रेम-फल ।

एक-परिच्छेदे तिन कथा कहिलुँ सकल ॥ 137॥

जगदानन्देर-जगदानन्द पण्डित का; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया; वृन्दावन-गमन-वृन्दावन जाना; तार मध्ये—उसके साथ ही; देव-दासीर–जगन्नाथ मन्दिर में देवदासी का गाना; गान-श्रवण-गायन सुनना; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; रघुनाथे-रघुनाथ भट्ट को; कृपा-कृपा; प्रेम-प्रेम; फल-परिणाम; एक-परिच्छेदे-एक अध्याय में; तिन कथा–तीन कथा; कहिलुँ-मैंने वर्णन की; सकल-सब।

अनुवाद

इस अध्याय में मैंने तीन कथाएँ कही हैं-जगदानन्द पण्डित का वृन्दावन जाना, श्री चैतन्य महाप्रभु का जगन्नाथ मन्दिर में देवदासी का गायन सुनना तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से रघुनाथ भट्ट गोस्वामी द्वारा कृष्ण-प्रेम को प्राप्त करना।

ये एइ-सकल कथा शुने श्रद्धा करि' ।

तारे कृष्ण-प्रेम-धन देन गौरहरि ॥138॥

ये-जो कोई; एइ-सकल-इन सब; कथा-कथाओं को; शुने-सुनता है; श्रद्धा करिश्रद्धा और प्रेम से; तारे–उनको; कृष्ण-प्रेम-धन-कृष्ण-प्रेम रूपी धन; देन-देते; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

जो कोई इन कथाओं को श्रद्धा तथा प्रेम से सुनता है, उसको श्री चैतन्य महाप्रभु (गौरहरि) कृष्ण-प्रेम प्रदान करते हैं।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥139॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों पर; यार—जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत- चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर मैं कृष्णदास श्री चैतन्य चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्यलीला के अन्तर्गत जगदानन्द पण्डित तथा रघुनाथ भट्ट गोस्वामी के साथ लीलाएँ शीर्षक तेरहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय चौदह

श्री चैतन्य महाप्रभु का कृष्ण-विरह भाव

अन्त्यलीला के चौदहवें अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इस प्रकार दिया है। कृष्ण के विरह भाव से श्री चैतन्य महाप्रभु में अत्यधिक दिव्य उन्माद उत्पन्न हो गया। जब वे गरुड़ स्तम्भ के पास खड़े होकर भगवान् जगन्नाथ की स्तुति कर रहे थे, तब उड़ीसा की एक स्त्री ने जगन्नाथ के दर्शन पाने की उत्कट उत्सुकता के कारण महाप्रभु के कन्धे पर अपना पाँव रख दिया। इसके लिए गोविन्द ने उसकी भर्त्सना की, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसकी उत्सुकता की प्रशंसा की। जब चैतन्य महाप्रभु भगवान जगन्नाथ के मन्दिर में गये, तब वे प्रेमाविष्ट हो गये और उन्होंने केवल कृष्ण का दर्शन किया। किन्तु ज्योंही उन्होंने इस स्त्री को देखा, तो उनकी बाह्य चेतना तुरन्त लौट आई और उन्होंने जगन्नाथ, बलदेव तथा सुभद्रा को देखा। श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वप्न में भी कृष्ण को देखा और वे प्रेमावेश में भावविभोर हो गये। जब उन्हें कृष्ण नहीं दिखे, तो उन्होंने अपनी तुलना एक योगी से की और बतलाया कि किस तरह वह योगी वृन्दावन को देख रहा है। कभी-कभी तो उनमें समस्त दिव्य भाव-लक्षण प्रकट हो आते थे। एक रात गोविन्द तथा स्वरूप दामोदर ने देखा कि यद्यपि महाप्रभु के कमरे के तीनों दरवाजे बन्द थे और ताला लगा था, किन्तु महाप्रभु उसके भीतर नहीं थे। यह देखकर स्वरूप दामोदर तथा अन्य भक्त बाहर गये और देखा कि महाप्रभु सिंहद्वार पर अचेतन होकर पड़े हुए हैं। उनका शरीर असामान्य रूप से लम्बा हो गया था और उनकी हड्डियों के जोड़ ढीले पड़ गये थे। भक्तों ने हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करके श्री चैतन्य महाप्रभु को धीरे धीरे सचेत किया और तब उन्हें उनके निवासस्थान पर ले गये। एक बार श्री चैतन्य महाप्रभु चटक पर्वत नामक बालू के एक टीले को गोवर्धन पर्वत समझ बैठे। ज्योंही

वे उसकी ओर दौड़े, वे स्तब्ध हो गये और तब उनके शरीर में कृष्ण के प्रति अपार प्रेम के कारण आठों सात्विक भाव उत्पन्न हो गये। उस समय उन्हें शान्त करने के लिए सभी भक्तों ने हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन किया।

कृष्ण-विच्छेद-विभ्रान्त्या मनसा वपुषा धिया ।

यद् यद्व्यधत्त गौराङ्गस्तल्लेशः कथ्यतेऽधुना ॥1॥

कृष्ण-विच्छेद-कृष्ण के विरह से; विभ्रान्त्या-भ्रान्ति; मनसा-मन से; वपुषा-शरीर से; धिया–बुद्धि से; यत् यत्-जो भी; व्यधत्त-किया; गौराङ्गः-श्री चैतन्य महाप्रभुः तत्-उसका; लेशः-थोड़े अंश का; कथ्यते-वर्णन; अधुना-अब।

अनुवाद

अब मैं श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा मन, बुद्धि तथा शरीर से सम्पन्न कार्यकलापों के अत्यल्प अंश का वर्णन करूँगा, जब वे कृष्ण के तीव्र विरह भाव से मोहग्रस्त हो गये।

जय जय श्री-चैतन्य स्वयं भगवान् ।

जय जय गौरचन्द्र भक्त-गण-प्राण ॥2॥

जय जय-जय जय; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की ; स्वयम् भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; जय जय जय जय; गौर-चन्द्र-श्री चैतन्य महाप्रभु की; भक्त-गण-प्राण-भक्तों के प्राण स्वरूप।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! अपने भक्तों के प्राण स्वरूप गौरचन्द्र की जय हो!

जय जय नित्यानन्द चैतन्य-जीवन ।

जयाद्वैताचार्य जय गौर-प्रियतम ॥ 3 ॥

जय जय-जय जय; नित्यानन्द-श्री नित्यानन्द प्रभु की; चैतन्य-जीवन-श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन; जय-जय हो; अद्वैत-आचार्य-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-प्रियतम-श्री चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन रूप श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय अद्वैत आचार्य की जय हो!

जय स्वरूप, श्रीवासादि प्रभु-भक्त-गण ।

शक्ति देह',—करि येन चैतन्य-वर्णन ॥4॥

जय-जय हो; स्वरूप-स्वरूप दामोदर की; श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर आदि; प्रभु-भक्त-गण-भगवान् के भक्त गण; शक्ति देह'–कृपया शक्ति दीजिये; करि-मैं कर सकें; येन-जिससे; चैतन्य-वर्णन-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र का वर्णन।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर तथा श्रीवास ठाकुर इत्यादि सारे भक्तों की जय हो! आप लोग मुझे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र का वर्णन करने की शक्ति प्रदान करें।

प्रभुर विरहोन्माद-भाव गम्भीर ।

बुझिते ना पारे केह, यद्यपि हय' धीर' ॥5॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; विरह-उन्माद-कृष्ण के विरह का दिव्य उन्माद; भाव-भाव; गम्भीर-अत्यन्त गम्भीर; बुझिते-समझना; ना पारे केह-कोई भी नहीं; यद्यपि-यद्यपि; हय-यह; धीर-बहुत ही विद्वान पण्डित और प्रबुद्ध।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के कृष्णविरह के दिव्य उन्माद का भाव अत्यन्त गम्भीर तथा रहस्यमय है। कोई कितना ही प्रबुद्ध तथा विद्वान (धीर) क्यों न हो, वह इसे समझ नहीं सकता।

बुझिते ना पारि याहा, वणिते के पारे? ।

सेइ बुझे, वर्णे, चैतन्य शक्ति देन याँरे ॥ 6 ॥

बुझिते-समझ पाना; ना पारि–सम्भव नहीं है; याहा-कौनसा विषय; वर्णिते के पारे-कौन वर्णन कर सकता है; सेइ बुझे-वह समझ सकता है; वर्णे-वर्णन कर सकता है; चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; शक्ति-शक्ति; देन-देना; याँरे–उसे।

अनुवाद

भला कोई इन अगाध विषयों का वर्णन कैसे कर सकता है? यह तभी सम्भव है, जब श्री चैतन्य महाप्रभु उसे शक्ति प्रदान करें।

स्वरूप-गोसाञि आर रघुनाथ-दास ।

एइ दुइर कड़चाते ए-लीला प्रकाश ॥7॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; आर--और; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास गोस्वामी; एइ दुइर–इन दोनों ने; कड़चाते-स्मरणिका में; ए-लीला—ये लीलाएँ; प्रकाश-वर्णित की।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के इन समस्त दिव्य कार्यकलापों को अपनी स्मरणिका में लिपिबद्ध किया है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के कृष्ण-विरह के दिव्य भाव को तथा उसके फलस्वरूप उनके उन्माद को भौतिक स्तर पर स्थित व्यक्ति नहीं समझ सकता। तो भी नदीया-नागरी नामक भक्तों की एक तथाकथित टोली का सूत्रपात हुआ है, जिसने विष्णुप्रिया की पूजा चालू की है। इससे श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के विषय में उनकी अज्ञानता उजागर होती है। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के मतानुसार ऐसी पूजा कल्पना की उपज है। इसके अतिरिक्त भी चैतन्य महाप्रभु की पूजा की अन्य अनेक विधियों का सूत्रपात हुआ है, किन्तु भक्तिविनोद ठाकुर जैसे अग्रणी भक्तों ने इन सबों का बहिष्कार कर दिया है। ऐसी अवैध पूजा करने वाली टोलियों की सूची श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने दी है :

आउल, बाउल, कर्त्ताभाजा, नेड़ा, दरवेश, साँइं

सहजिया, सखीभेकी, स्मार्त, जात-गोसाँइ

अतिवाड़ी, चूड़ाधारी, गौराङ्ग-नागरी।

स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों को स्वयं अपनी आँखो से देखा था और उन्होंने इनको दो स्मरणिकाओं में लिपिबद्ध किया है। अतएव इन स्मरणिकाओं का सन्दर्भ लिये बिना श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों को व्यक्ति समझ नहीं सकता। श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा करने के लिए नई विधि की खोज करने वाला कोई भी व्यक्ति महाप्रभु की लीलाओं को समझने में असमर्थ है, क्योंकि वह महाप्रभु के पास पहुँचने की वास्तविक विधि से वंचित है।

से-काले ए-दुइ रहेन महाप्रभुर पाशे।

आर सब कड़चा-कर्ता रहेन दूर-देशे ॥8॥

से-काले-उन दिनों; ए-दुइ-वे दोनों; रहेन-रहते; महाप्रभुर पाशे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; आर-और; सब-सब; कड़चा-कर्ता–टीकाकार; रहेन–अन्य सारे; दूर-देशे-दूर रहते।

अनुवाद

उन दिनों स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामी ही श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रहते थे, जबकि अन्य सारे टीकाकार उनसे बहुत दूर रहते थे।

तात्पर्य

स्वरूप दामोदर तथा रघुनाथ दास गोस्वामी के अतिरिक्त अन्य अनेक लोग थे, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों को लिपिबद्ध किया। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का विश्वास है कि यदि ऐसे विवरण उपलब्ध होते, तो संसार के लोग अत्यधिक लाभान्वित होते। किन्तु मानव-समाज की यह सबसे दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि इनमें से कोई भी स्मरणिका आज विद्यमान नहीं है।

क्षणे क्षणे अनुभवि' एइ दुइ-जन ।

सङ्क्षेपे बाहुल्ये करेन कड़चा-ग्रन्थन ॥9॥

क्षणे क्षणे-क्षण क्षण के; अनुभवि'-अनुभव; एइ दुइ-जन-इन दोनों ने; सङ्क्षेपे-संक्षिप्त में; बाहुल्ये विस्तारपूर्वक; करेन-किया; कड़चा-ग्रन्थन-स्मरणिका में संग्रहित ।

अनुवाद

इन दो महापुरुषों (स्वरूप दामोदर तथा रघुनाथ दास गोस्वामी) ने महाप्रभु के क्षण-क्षण के कार्यकलापों को लिपिबद्ध किया है। उन्होंने अपनी स्मरणिकाओं में इन कार्यकलापों का संक्षेप तथा विस्तृत-दोनों ही का वर्णन किया है।

तात्पर्य

भविष्य के सन्दर्भ हेतु हमें स्मरण रखना चाहिए कि स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने लीलाओं को संक्षेप में और रघुनाथ दास गोस्वामी ने विस्तार से लिपिबद्ध किया। इन दोनों महापुरुषों ने तथ्यों को केवल लिपिबद्ध किया है; उन्होंने कोई वर्णनात्मक साहित्यिक अलंकरण का सृजन नहीं किया।

स्वरूप-सूत्र-कर्ता', रघुनाथ–'वृत्तिकार' ।

तार बाहुल्य वर्णि–पाँजि-टीका-व्यवहार ॥10॥

स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; सूत्र-कर्ता-संक्षिप्त टिप्पणी; रघुनाथ-रघुनाथ दास गोस्वामी; वृत्ति-कार-व्याख्यात्मक विस्तारपूर्वक कार्य करनेवाले; तार-उनका; बाहुल्य-अधिक विस्तार से; वणि-मैं वर्णन करूँगा; पॉजि-रुई को धुना; टीका-व्याख्या; व्यवहार-व्यवहार।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने संक्षेप में लिखा, जबकि रघुनाथ दास गोस्वामी ने विस्तृत वर्णन लिखे। अब मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों का वर्णन अधिक विस्तार से करूँगा, मानो दबी हुई रुई को धुना जा रहा हो।

तात्पर्य

पाँजि-टीका का अर्थ है विषय की और आगे व्याख्या करना। ऐसी व्याख्याएँ लिखना रुई धुनने के समान हैं।

ताते विश्वास करि' शुन भावेर वर्णन ।

ह-इबे भावेर ज्ञान, पाइबा प्रेम-धन ॥11॥

ताते-इस तरह; विश्वास करि'–श्रद्धा रखें; शुन-कृपया सुनें; भावेर वर्णन–प्रेम भावों का वर्णन; ह-इबे-होगा; भावेर-प्रेवावेश; ज्ञान-ज्ञान; पाइबा-आप पा सकते हैं; प्रेम-धन-कृष्ण का प्रेम।

अनुवाद

कृपया श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेम-भावों का यह वर्णन श्रद्धापूर्वक सुनें। इस तरह आप उनके प्रेमावेश को जान सकेंगे और अन्त में भगवत्प्रेम प्राप्त करेंगे।

कृष्ण मथुराय गेले, गोपीर ये दशा हैल ।

कृष्ण-विच्छेदे प्रभुर से दशा उपजिल ॥12॥

कृष्ण मथुराय गेले-भगवान् कृष्ण मथुरा जाने पर; गोपीर-गोपियों की; ये दशा-क्या दशा; हैल–हुई; कृष्ण-विच्छेदे-कृष्ण के विरह से; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; से दशा-वही दशा; उपजिल–हो गई है।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण का विरह संतप्त करता, तो उनकी दशा वैसी ही हो जाती, जैसी कि कृष्ण के मथुरा जाने पर वृन्दावान में गोपियों की हो गई थी।

उद्धव-दर्शने यैछे राधार विलाप ।

क्रमे क्रमे हैल प्रभुर से उन्माद-विलाप ॥13॥

उद्धव-दर्शने-उद्धव को देखने पर; यैछे-जैसे; राधार-श्रीमती राधारानी का; विलाप–विलाप; क्रमे क्रमे-क्रमशः; हैल–हो गया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; से-वह; उन्माद-विलाप–पागलपन में विलाप।

अनुवाद

उद्धव के वृन्दावन आने पर श्रीमती राधारानी का शोक क्रमशः श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य उन्माद का अंग बन गया।

राधिकार भावे प्रभुर सदा 'अभिमान'।

सेइ भावे आपनाके हय 'राधा'-ज्ञान ॥14॥

राधिकार भावे-श्रीमती राधारानी के भाव में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; सदा-सदैव; अभिमान-कल्पित करना; सेइ भावे-वही भाव; आपनाके–स्वयं ही; हय-हो गये; राधा-ज्ञान-श्रीमती राधारानी हैं।

अनुवाद

उद्धव से मिलते समय श्रीमती राधारानी के जो भाव थे, श्री चैतन्य महाप्रभु के वही भाव हो गये। महाप्रभु अपने आपको सदैव राधारानी के स्थान पर कल्पित करते और कभी-कभी सोचते कि वे ही स्वयं श्रीमती राधारानी हैं।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि अभिमान शब्द या "स्वयं की पहचान" का तात्पर्य यह है कि श्री चैतन्य महाप्रभु अपने आपको श्रीमती राधारानी के स्थान पर मानते थे और कृष्ण की इसी प्रकार से सेवा करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं, किन्तु उन्होंने श्रीमती राधारानी का रंग तथा भाव धारण कर रखा था और वे उसी तरह रहे। उन्होंने कभी भी भगवान् कृष्ण का रंग या स्थान ग्रहण नहीं किया। निस्सन्देह, कृष्ण ने श्रीमती राधारानी की भूमिका का अनुभव करना चाहा था। यही मूल कारण है कि उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु का शरीर धारण किया। इसलिए शुद्ध वैष्णवजन कभी भी श्री चैतन्य महाप्रभु को श्रीमती राधारानी होने के भाव में बाधा नहीं डालते।

दुर्भाग्यवश सम्प्रति तथाकथित भक्तों का एक ऐसा समुदाय है, जो यह मानता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु भोक्ता हैं और वे लोग भी भोक्ता हैं। वस्तुतः वे भगवान् की भक्ति से भटक गये हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह प्रदर्शित करने के लिए अपने आपको प्रकट किया है कि विरह में कृष्ण से प्रेम का अनुशीलन करना ही समस्त जीवों के लिए सफलता का सबसे सुगम साधन है। इतना होते हुए भी कुछ ऐसे अध्यात्मविद् हैं, जो यह घोषित करते हैं कि चूंकि श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, अत: ऐसा अनुशीलन उनके लिए तो आसान है, किन्तु जीव के लिए कठिन है; इसलिए मनुष्य खुद जो चाहे ऐसे किसी भी मार्ग से कृष्ण के पास पहुँच सकता है। इस विचार का खंडन करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह व्यावहारिक रूप से प्रदर्शित किया कि कृष्ण के विरह में श्रीमती राधारानी का भाव ग्रहण करके किस प्रकार कृष्ण-प्रेम को प्राप्त किया जा सकता है।

दिव्योन्मादे ऐछे हय, कि इहा विस्मय? ।

अधिरूढ़-भावे दिव्योन्माद-प्रलाप हय ॥15॥

दिव्य-उन्मादे-दिव्य उन्माद में; ऐछे-ऐसा; हय-है; कि इहा विस्मय-क्या आश्चर्य है; अधिरूढ़-भावे-कृष्ण के प्रेम का भाव; दिव्य-उन्माद-दिव्य उन्माद में; प्रलाप-बातें; हय-होती है।

अनुवाद

दिव्य उन्माद की अवस्था ऐसी है। इसे समझना कठिन क्यों है? जब कोई कृष्ण-प्रेम में अत्यधिक उन्नति कर जाता है, तो वह दिव्य रूप से उन्मत्त होकर, उन्मत्त की तरह बातें करता है।

एतस्य मोहनाख्यस्य

गतिं कामप्युपेयुषः

भ्रमाभा कापि वैचित्री

दिव्योन्माद इतीर्यते

उद्घूर्णा-चित्र-जल्पाद्यास्

तद्भेदा बहवो मताः ॥ 16 ॥

एतस्य–इसका; मोहन-आख्यस्य–मोहन भाव; गतिम्-प्रगति; काम् अपि-अस्पष्ट; उपेयुषः–प्राप्त करके; भ्रम-आभा-भ्रम के समान; का अपि-कुछ; वैचित्री-आश्चर्य की स्थिति; दिव्य-उन्माद-दिव्य उन्माद; इति-इस प्रकार; ईर्यते-कहलाता है; उद्घूर्णा-उद्घूर्णा; चित्र-जल्प-चित्रजल्प; आद्याः-इत्यादि; तत्-भेदाः--इसके विभिन्न लक्षण; बहवः-अनेक; मताः-वर्णन किये जाते हैं।

अनुवाद

"जब मोहन भाव की क्रमशः वृद्धि होती है, तब यह भ्रम के समान हो जाता है। तब वैचित्री अर्थात् आश्चर्य की अवस्था प्राप्त होती है, जो दिव्य उन्माद को जागृत करती है। दिव्योन्माद के अनेक विभागों में से उद्घूर्णा तथा चित्रजल्प दो हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण उज्वल नीलमणि (स्थायीभाव प्रकरण 174) का है।

एक-दिन महाप्रभु करियाछेन शयन ।

कृष्ण रास-लीला करे,—देखिला स्वपन ॥17॥

एक-दिन-एक दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करियाछेन शयन-विश्राम कर रहे थे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; रास-लीला करे–रास नृत्य करते; देखिला-उन्होंने देखा; स्वपन–स्वप्न।

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु जब विश्राम कर रहे थे, तब उन्होंने स्वप्न देखा कि कृष्ण रास नृत्य कर रहे हैं।

त्रिभङ्ग-सुन्दर-देह, मुरली-वदन ।

पीताम्बर, वन-माला, मदन मोहन ॥ 18॥

त्रि-भङ्ग-तीन स्थानों में मुड़े हुए; सुन्दर-सुन्दर; देह-शरीर; मुरली-वदन-मुँह में मुरली के साथ; पीत-अम्बर-पीले वस्त्रों के साथ; वन-माला-फूलों की माला; मदन-मोहन-कामदेव को मोहित करते हुए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने देखा कि भगवान् कृष्ण खड़े हैं और उनका सुन्दर शरीर तीन स्थानों से मुड़ा है और वे अपने अधरों पर मुरली धारण किये हुए हैं। पीतवस्त्र तथा वन्य फूलों की माला पहने वे कामदेव को भी मोहित करने वाले दिख रहे थे।

मण्डली-बन्धे गोपी-गण करेन नर्तन ।

मध्ये राधा-सह नाचे व्रजेन्द्र-नन्दन ॥19॥

मण्डली-बन्धे-वृत्त में; गोपी-गण-गोपियाँ; करेन नर्तन-नृत्य करती हुई; मध्ये-बीच में; राधा-सह-श्रीमती राधारानी के साथ; नाचे-नाचते; व्रजेन्द्र-नन्दन–महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण।

अनुवाद

गोपियाँ एक वृत्त में नृत्य कर रही थीं और इस वृत्त के बीच में महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण, राधारानी के साथ नृत्य कर रहे थे।

देखि' प्रभु सेइ रसे आविष्ट हैला ।

'वृन्दावने कृष्ण पाइनु'–एइ ज्ञान कैला ॥ 20॥

देखि'–देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सेइ-वह; रसे—दिव्य रस में; आविष्ट हैला-अभिभूत हो गये; वृन्दावने-वृन्दावन में; कृष्ण पाइनु-मैंने कृष्ण को पाया; एइ-यह; ज्ञान कैला-उन्होंने सोचा।

अनुवाद

यह देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु रास नृत्य के दिव्य रस से अभिभूत हो गये और उन्होंने सोचा, "अब मैं कृष्ण के साथ वृन्दावन में हूँ।"

प्रभुर विलम्ब देखि' गोविन्द जागाइला ।

जागिले 'स्वप्न'-ज्ञान हैल, प्रभु दुःखी हैला ॥21॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; विलम्ब-देर करते; देखि'-देखकर; गोविन्द-गोविन्द ने; जागाइला–उन्हें जगाया; जागिले-जब वे जगे; स्वप्न-ज्ञान हैल–वे समझ गये कि वह केवल स्वप्न था; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; दुःखी हैला-दुःखी हुए।

अनुवाद

जब गोविन्द ने देखा कि महाप्रभु अभी तक नहीं जागे हैं, तो उसने उन्हें जगाया। यह जानकर कि वे मात्र स्वप्न देख रहे थे, महाप्रभु कुछ-कुछ दुःखी हुए।

देहाभ्यासे नित्य-कृत्य करि' समापन ।

काले याइ' कैला जगन्नाथ दरशन ॥22॥

देह-अभ्यासे-आदत से; नित्य-कृत्य-नित्य कृत्य; करि' समापन–सम्पन्न किये काले-ठीक समय पर; याइ'-जाकर; कैला-किया; जगन्नाथ दरशन-भगवान जगन्नाथ का दर्शन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने नित्य कृत्य सम्पन्न किये और ठीक समय पर वे मन्दिर में भगवान जगन्नाथजी का दर्शन करने गये।

यावत् काल दर्शन करेन गरुड़ेर पाछे ।

प्रभुर आगे दर्शन करे लोक लाखे लाखे ॥23॥

यावत् काल-जब तक; दर्शन-दर्शन; करेन-किया; गरुड़ेर पाछे–गरुड़ स्तंभ के पीछे से; प्रभुर आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने; दर्शन करे-दर्शन कर रहे; लोक-लोग; लाखे लाखे-लाखों।

अनुवाद

जब उन्होंने गरुड़ स्तम्भ के पीछे से भगवान जगन्नाथ का दर्शन किया, तब उनके सामने लाखों लोग अर्चाविग्रह का दर्शन कर रहे थे।

उड़िया एक स्त्री भीड़े दर्शन ना पाञा ।

गरुड़े चड़ि' देखे प्रभुर स्कन्धे पद दिया ॥ 24॥

उड़िया-उड़िया; एक-एक; स्त्री-स्त्री; भीड़े-भीड़ में; दर्शन ना पाञा-दर्शन न पाकर; गरुड़े चड़ि'–गरुड़ स्तंभ पर चढ़ गई; देखे-देखने; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; स्कन्धे–कन्धे पर; पद-पैर; दिया-रख दिया।

अनुवाद

भीड़ के कारण भगवान जगन्नाथ का दर्शन न कर पाने के कारण एक उड़िया स्त्री सहसा श्री चैतन्य महाप्रभु के कन्धे पर अपना पाँव रखकर गरुड़ स्तम्भ पर चढ़ गई।

देखिया गोविन्द आस्ते-व्यस्ते स्त्रीके वर्जिला ।

तारे नामाइते प्रभु गोविन्दे निषेधिला ॥25॥

देखिया-देखकर; गोविन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी सहायक; आस्ते-व्यस्ते-शीघ्रता से; स्त्रीके-स्त्री को; वर्जिला-नीचे उतारा; तारे–उनको; नामाइते-नीचे उतरने के लिए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गोविन्दे–गोविन्द; निषेधिला-रोका।

अनुवाद

यह देखकर चैतन्य महाप्रभु के निजी सहायक गोविन्द ने शीघ्रता से उसे वहाँ से नीचे उतारा। किन्तु इसके लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोविन्द की भर्त्सना की।

तात्पर्य

चूँकि गरुड़ भगवान् विष्णु के वाहन हैं, अतएव वे परम वैष्णव हैं। अतएव उनके शरीर को अपने पाँव से छुना या गरुड़ स्तम्भ पर चढ़ना निश्चय ही वैष्णव-अपराध है। वह स्त्री कृष्ण के प्रति भी अपराधिनी थी, क्योंकि वह श्री चैतन्य महाप्रभु के कन्धे पर अपना पाँव रखे थी। इन अपराधों को देखते हुए गोविन्द ने उसे शीघ्रता से नीचे उतारा।

‘आदि-वस्या' एइ स्त्रीरे ना कर वर्जन ।

करुक यथेष्ट जगन्नाथ दरशन ॥26॥

आदि-वस्या-असभ्य पुरुष; एइ-इस; स्त्रीरे-स्त्री को; ना कर वर्जन-मत रोकना; करुक-उसे करने दो; यथा-इष्ट-इच्छापूर्वक; जगन्नाथ दरशन-भगवान जगन्नाथ के दर्शन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोविन्द से कहा, "रे आदिवस्या (असभ्य पुरुष), इस स्त्री को गरुड़-स्तम्भ पर चढ़ने से मना मत करो। उसे जी भरकर जगन्नाथजी का दर्शन करने दो।”

तात्पर्य

आस्ते-व्यस्ते सेइ नारी भूमेते नामिला ।

महाप्रभुरे देखि' ताँर चरण वन्दिला ॥ 27॥

आस्ते-व्यस्ते–बहुत जल्दी से; सेइ नारी—वह स्त्री; भूमेते-भूमि पर; नामिला-उतर गई; महाप्रभुरे देखि'–श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर; ताँर-उनके; चरण वन्दिला-चरणकमलों की याचना की।

अनुवाद

किन्तु जब उस स्त्री को ज्ञात हुआ, तो वह तुरन्त भूमि पर उतर आई और श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर उसने तुरन्त ही क्षमा करने के लिए उनके चरणकमलों पर याचना की।

तार आर्ति देखि' प्रभु कहिते लागिला ।

"एत आर्ति जगन्नाथ मोरे नाहि दिला! ॥28॥

तार-उसकी; आर्ति-उत्सुकता; देखि-देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहिते लागिला-कहने लगे; एत आर्ति इतनी उत्सुकता; जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ; मोरे-मुझ पर; नाहि दिला–नहीं दी।

अनुवाद

उस स्त्री की उत्सुकता को देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा जगन्नाथ जी ने मुझे इतनी उत्सुकता प्रदान नहीं की।

तात्पर्य

वह स्त्री भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने के लिए इतनी उत्सुक थी कि वह यह भूल गई कि गरुड़ स्तम्भ पर चढ़कर वह वैष्णव चरणों पर अपराध कर रही है। उसने इसकी भी चिन्ता नहीं की कि श्री चैतन्य महाप्रभु के कन्धे पर अपना पाँव रखकर उसने भगवान् के प्रति अपराध किया है। ये दोनों ऐसे गम्भीर अपराध हैं, जो भगवान् तथा वैष्णवों को अप्रसन्न करने वाले हैं। किन्तु वह भगवान जगन्नाथ

का दर्शन करने के लिए इतनी उत्सुक थी कि उसने उन सारे अपराधों पर ध्यान तक नहीं दिया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसकी उत्सुकता की प्रशंसा की। उन्होंने खेद व्यक्त किया कि भगवान जगन्नाथ ने उन्हें इतनी उत्सुकता प्रदान नहीं की।

जगन्नाथे आविष्ट इहार तनु-मन-प्राणे ।

मोर स्कन्धे पद दियाछे, ताहो नाहि जाने ॥29॥

जगन्नाथे- भगवान जगन्नाथ में; आविष्ट–पूर्णतया मग्न; इहार-उस स्त्री का; तनु-तन: मन-मन; प्राणे-प्राण; मोर स्कन्धे-मेरे कन्धे पर; पद-पैर; दियाछे-रखा; ताहो-वह; नाहि जाने–नहीं जानती।

अनुवाद

“उसने पूरी तरह से अपना शरीर, मन तथा प्राण भगवान जगन्नाथ में निमग्न कर दिया है। इसलिए उसे पता नहीं चला कि उसने मेरे कन्धे पर अपना पाँव रखा है।

अहो भाग्यवती एइ, वन्दि इहार पाय ।

इहार प्रसादे ऐछे आर्ति आमार वा हय” ॥ 30॥

अहो-ओह!; भाग्यवती–अत्यन्त भाग्यशालिनी; एइ-वह; वन्दि-मैं वन्दना करता हूँ; इहार पाय-उसके चरणों की; इहार प्रसादे—उसकी कृपा से; ऐछे-ऐसी; आर्ति-उत्सुकता; आमार वा हय–मुझे मिले।

अनुवाद

"ओह! यह स्त्री कितनी भाग्यशालिनी है! मैं उसके चरणों की वन्दना करता हूँ कि वह जगन्नाथ जी का दर्शन करने की अपनी महान् उत्सुकता मुझे प्रदान करे।”

पूर्वे आसि’ यबे कैला जगन्नाथ दरशन ।

जगन्नाथे देखे—साक्षात् व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ 31॥

पूर्वे-इसके पूर्व; आसि-आ रहे हैं; यबे-जब; कैला–किया; जगन्नाथ दरशन-भगवान जगन्नाथ के दर्शन; जगन्नाथे देखे-भगवान जगन्नाथ के दर्शन; साक्षात् व्रजेन्द्र-नन्दन-महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण को साक्षात्।

अनुवाद

इसके पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ जी को साक्षात् महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण के रूप में देखते आ रहे थे।

स्वप्नेर दर्शनावेशे तद्रूप हैल मन।

याहाँ ताहाँ देखे सर्वत्र मुरली-वदन ॥32॥

स्वप्नेर-स्वप्न के; दर्शन-आवेशे—उस दृश्य में पूर्णतया निमग्न होकर; तत्-रूप-उसी तरह; हैल मन-मन हुआ; याहाँ ताहाँ–यहाँ वहाँ; देखे-देखते; सर्वत्र–सभी जगह; मुरली-वदन-उन्हें होठों पर अपनी मुरली रखे कृष्ण।

अनुवाद

उस दृश्य में पूर्णतया मग्न होकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोपियों का भाव धारण कर लिया था, यहाँ तक कि वे जहाँ भी देखते, उन्हें होठों पर अपनी मुरली रखे कृष्ण खड़े दिखाई देते।

एबे यदि स्त्रीरे देखि' प्रभुर बाह्य हैल।

जगन्नाथ-सुभद्रा-बलरामेर स्वरूप देखिल ॥ 33॥

एबे-अब; यदि-यदि; स्त्रीरे-स्त्री; देखि'–देखने पर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; बाह्य हैल–बाह्य चेतना; जगन्नाथ-भगवान् जगन्नाथ; सुभद्रा-उनकी बहन, सुभद्रा; बलरामेर-उनके बड़े भाई, बलराम; स्वरूप-रूपों में; देखिल-देखा।

अनुवाद

उस स्त्री को देखने के बाद महाप्रभु की बाह्य चेतना लौट आई और उन्होंने भगवान जगन्नाथ, सुभद्रा तथा बलराम जी के मूल अर्चाविग्रह रूपों को देखा।

कुरुक्षेत्रे देखि' कृष्णे ऐछे हैल मन ।

'काहाँ कुरुक्षेत्रे आइलाङ, काहाँ वृन्दावन?' ॥ 34॥

कुरुक्षेत्रे-कुरुक्षेत्र में; देखि'–देखकर; कृष्णे-भगवान् कृष्ण; ऐछे—उस तरह; हैल मन-उनके मन में आया; काहाँ–कहाँ; कुरुक्षेत्रे आइलाङ–मैं कुरुक्षेत्र में आया हूँ; काहाँ–कहाँ; वृन्दावन-वृन्दावन।

अनुवाद

जब उन्होंने अर्चाविग्रहों को देखा, तो उन्होंने सोचा कि वे कृष्ण को कुरुक्षेत्र में देख रहे हैं। उन्होंने सोचा, "क्या मैं कुरुक्षेत्र में आ गया हूँ? वृन्दावन कहाँ है?"

प्राप्त-रत्न हाराञा ऐछे व्यग्र ह-इला ।

विषण्ण हञा प्रभु निज-वासा आइला ॥ 35॥

प्राप्त-रत्न–प्राप्त किया रत्न; हाराञा-खो जाने से; ऐछे—जिस तरह; व्यग्र ह-इला–व्याकुल हो उठे; विषण्ण हञा–खिन्न होकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-अपने; वासा-घर; आइला–लौट आये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उसी तरह अत्यधिक व्याकुल हो उठे, जिस तरह तुरन्त प्राप्त किये रत्न के खो जाने से कोई व्यक्ति व्याकुल हो उठता है। तब वे अत्यधिक खिन्न हो गये और घर लौट आये।

भूमिर उपर वसि' निज-नखे भूमि लिखे ।

अश्रु-गङ्गा नेत्रे वहे, किछुइ ना देखे ॥ 36॥

भूमिर उपर-भूमि पर; वसि'–बैठकर; निज-नखे-अपने नाखूनों से; भूमि लिखे-भूमि कुरेदना; अश्रु-गङ्गा-गंगा की तरह अश्रु; नेत्रे-आँखों से; वहे-बहे; किछुइ-कुछ भी; ना देखे–नहीं दिख रहा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु भूमि पर बैठकर अपने नाखूनों से भूमि कुरेदने लगे। आँसुओं से उनके नेत्र अन्धे हो चले–ये आँसू उनके नेत्रों से गंगा नदी के समान प्रवाहित हो रहे थे।

'पाइलुँ वृन्दावन-नाथ, पुनः हाराइलुँ।

के मोर निलेक कृष्ण? काहाँ मुइ आइनु'? ॥ 37॥

पाइलुँ-मैंने पाया; वृन्दावन-नाथ-वृन्दावन के स्वामी; पुनः–फिर से; हाराइलुँ-मैंने खो दिया; के–किसने; मोर–मेरा; निलेक ले लिया; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; काहाँ-कहाँ; मुइ आइनु–मैं आया हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैंने वृन्दावन के स्वामी कृष्ण को पाया तो सही, किन्तु उन्हें फिर से खो दिया। मेरे कृष्ण को किसने ले लिया? मैं कहाँ आ गया हूँ?"

तात्पर्य

ये श्रीमती राधारानी के भाव हैं। सर्वप्रथम श्री चैतन्य महाप्रभु को लगा कि वे वृन्दावन ले जाये गये हैं, जहाँ उन्होंने गोपियों के साथ कृष्ण का रास नृत्य देखा। तब उन्हें भगवान जगन्नाथ, उनकी बहन सुभद्रा तथा बलराम को देखने के लिए कुरुक्षेत्र ले जाया गया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन तथा वृन्दावन के स्वामी कृष्ण को खो दिया। इस समय चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण के विरह में दिव्योन्माद का अनुभव हुआ। कुरुक्षेत्र में कृष्ण अपना ऐश्वर्य प्रदर्शित करते हैं, किन्तु वृन्दावन में वे अपने मूल रूप में

रहते हैं। कृष्ण वृन्दावन से एक पग भी दूर नहीं जाते, इसलिए गोपियों के लिए कुरुक्षेत्र वृन्दावन की अपेक्षा कम महत्त्वपूर्ण है।

जो भक्त कृष्ण के ऐश्वर्य रूप (वैकुण्ठ रूप) की पूजा करते हैं, वे भले ही कृष्ण को कुरुक्षेत्र में सुभद्रा तथा बलराम के साथ दर्शन करना पसन्द करें, किन्तु गोपियाँ कृष्ण को वृन्दावन में श्रीमती राधारानी के साथ रासनृत्य करते देखना चाहती हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने व्यावहारिक दृष्टान्त द्वारा दिखलाया कि कोई किस तरह कृष्ण के विरह में राधारानी तथा अन्य गोपियों के भाव को अंगीकार कर सकता है। इस भाव में डूबे हुए भक्तगण कृष्ण को वृन्दावन के अतिरिक्त अन्यत्र देखना पसन्द नहीं करते। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु शोक करने लगे, "मैंने वृन्दावन में कृष्ण को पाया, किन्तु अब पुनः उन्हें खो दिया है और मैं कुरुक्षेत्र आ गया हूँ।" जब तक कोई अत्यन्त उन्नत भक्त नहीं हो जाता, तब तक वह इन जटिल भावों को नहीं समझ सकता। श्री चैतन्य चरितामृत के प्रणेता ने इस दिव्योन्माद की यथासम्भव व्याख्या करने का प्रयास किया है और हमारा कर्तव्य है कि हम सहज भाव से इसकी यथासम्भव प्रशंसा करें। इसलिए प्रणेता ने श्लोक 11 में निम्नलिखित अनुरोध किया है :

ताते विश्वास करि 'शुन भावेर वर्णन।

हइबे भावेर ज्ञान, पाइबा प्रेमधन॥

"प्रिय पाठकों, इस वर्णन को श्रद्धा तथा प्रेम से सुनने का प्रयास करो। इससे तुम्हें दिव्य भाव को समझने में सहायता प्राप्त होगी और अन्त में तुम्हें सरलता से भगवत्प्रेम प्राप्त हो सकेगा।"

स्वप्नावेशे प्रेमे प्रभुर गर गर मन।

बाह्य हैले हय—येन हाराइल धन॥ 38॥

स्वप्न-आवेशे–जब स्वप्न में मग्न; प्रेमे-कृष्ण के प्रेम में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; गर गर–पूर्णतया मग्न; मन–मन; बाह्य हैले–जब वे जागे; हय-हुआ; येन-जैसे; हाराइल-उन्होंने खो दिया; धन-एक अमूल्य रत्न।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रास नृत्य का स्वप्न देखा, तब वे दिव्य आनन्द में पूर्णतया मग्न थे, किन्तु जब उनका स्वप्न टूटा, तो उन्हें लगा कि उनका एक अमूल्य रत्न खो गया है।

उन्मत्तेर प्राय प्रभु करेन गान-नृत्य ।

देहेर स्वभावे करेन स्नान-भोजन-कृत्य ॥ 39॥

उन्मत्तेर प्राय-पागल की तरह; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन-करते; गान-नृत्य-कीर्तन और नृत्य; देहेर–शरीर का; स्वभावे-स्वभाववश; करेन-पूरा कर लेते; स्नान-स्नान करना; भोजन-खाना; कृत्य-कार्य।

अनुवाद

इस तरह दिव्य उन्माद के आनन्द में सदैव मग्न श्री चैतन्य महाप्रभु कीर्तन और नृत्य करते। वे खाने तथा स्नान करने जैसी शारीरिक आवश्यकताओं को स्वभाववश पूरा कर लेते।

रात्रि हैले स्वरूप-रामानन्दे लञा ।

आपन मनेर भाव कहे उघाड़िया ॥40॥

रात्रि हैले–रात्रि के समय; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; रामानन्दे-रामानन्द राय; लञा–साथ लाकर; आपन मनेर-अपने मन के; भाव-भाव; कहे-कहते; उघाड़िया-व्यक्त करके।

अनुवाद

रात्रि के समय श्री चैतन्य महाप्रभु अपने मन के भावों को स्वरूप दामोदर तथा रामानन्द राय के सामने व्यक्त करते थे।

प्राप्त-प्रणष्टाच्युत-वित्त आत्मा

ययौ विषादोज्झित-देह-गेहः ।

गृहीत-कापालिक-धर्मको मे

वृन्दावनं सेन्द्रिय-शिष्य-वृन्दः ॥41॥

प्राप्त प्राप्त किया; प्रणष्ट-खोया; अच्युत-कृष्ण; वित्तः-कृष्ण रूपी रत्न; आत्मा-मन; ययौ-गया; विषाद-शोक; उज्झित-दे दिया; देह-गेहः-शरीर और घर; गृहीत–स्वीकार किया; कापालिक-धर्मकः-कापालिक योगी के धर्म को; मे-मेरा; वृन्दावनम्-वृन्दावन में; स–के साथ; इन्द्रिय-इन्द्रियाँ; शिष्य-वृन्दः-शिष्यों।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "पहले मेरे मन ने कृष्ण रूपी रत्न को जैसे-कैसे प्राप्त किया, किन्तु पुनः उसे खो दिया। इसलिए उसने शोक के कारण मेरे शरीर और घर को छोड़कर कापालिक योगी के धर्म को स्वीकार कर लिया है। तब मेरा मन मेरी इन्द्रियाँ रूपी अपने शिष्यों के साथ वृन्दावन चला गया।"

तात्पर्य

यह श्लोक स्पष्ट रूप से एक रूपक है।

प्राप्त-रत्न हाराञा, तार गुण सडरिया,

महाप्रभु सन्तापे विह्वल ।

राय-स्वरूपेर कण्ठ धरि', कहे 'हाहा हरि हरि',

धैर्य गेल, ह-इला चपल ॥42॥

प्राप्त-प्राप्त किया हुआ; रत्न-रत्न; हाराञा–को खोकर; तार-उसके; गुण-गुण; सड़रिया-स्मरण करके; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सन्तापे–शोक से; विह्वल-विह्वल; राय-रामानन्द राय के; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर गोस्वामी के; कण्ठ धरि'–गले लगकर; कहे-कहा; हाहा हरि हरि-हरि कहाँ हैं? हरि कहाँ हैं?; धैर्य-धैर्य; गेल--गया; ह-इला चपल-चंचल हो उठे।

अनुवाद

अपने प्राप्त किये हुए रत्न को खोकर श्री चैतन्य महाप्रभु उसके गुणों का स्मरण करके शोक से विह्वल हो गये। तब रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी के गले लगकर वे रो पड़े, "हाय! मेरे हरि कहाँ हैं? हरि कहाँ हैं?" अन्त में वे चंचल हो उठे और उनका सारा धैर्य जाता रहा।

"शुन, बान्धव, कृष्णेर माधुरी

यार लोभे मोर मन, छाड़ि' लोक-वेद-धर्म, ।

योगी हञा ह-इल भिखारी ॥43॥

शुन–कृपया सुनो; बान्धव-हे बन्धुओं; कृष्णेर माधुरी-भगवान् कृष्ण की मधुरता; यार–जिसके लिए; लोभे-लोभ से; मोर मन–मेरा मन; छाड़ि'–दे दिया; लोक-वेद-धर्म–सामाजिक तथा वैदिक धर्म के; योगी हञा-योगी बनने के लिए; ह-इल भिखारी-भिखारी बन गया।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "हे बन्धुओं, कृपया कृष्ण की मधुरता के विषय में सुनो। उस मधुरता के लिए महती इच्छा के कारण मेरे मन ने सारे सामाजिक तथा वैदिक धर्म के सिद्धान्तों को त्याग दिया है और उसने योगी की तरह भिखारी की वृत्ति अपना ली है।

कृष्ण-लीला-मण्डल, शुद्ध शङ्ख-कुण्डल,

गड़ियाछे शुक कारिकर ।

सेइ कुण्डल काणे परि', तृष्णा-लाउ-थाली धरि',

आशा-झुलि कान्धेर उपर ॥44॥

कृष्ण-लीला-मण्डल-कृष्ण की रासलीला का वृत्त; शुद्ध-शुद्ध; शङ्ख-कुण्डल-शंख का कुण्डल; गड़ियाछे-बनाया; शुकशुकदेव गोस्वामी; कारिकर-कारीगर; सेइ कुण्डल-वह कुण्डल; काणे परि'-कान में धारण कर; तृष्णा-तृष्णा; लाउ-लौकी; थाली-कटोरा (कमण्डल); धरि'-लेकर; आशा-आशाओं का; झुलि-झोला; कान्धेर उपर-कन्धे पर।

अनुवाद

"अत्यन्त शुभ कारीगर शुकदेव गोस्वामी द्वारा निर्मित कृष्ण की रासलीला का वृत्त, शंख से बने एक कुण्डल की ही तरह शुद्ध है। मेरे मन रूपी योगी ने उस कुण्डल को अपने कान में धारण कर रखा है। उसने एक लौकी से मेरी तृष्णाओं का कमण्डल बना लिया है और मेरी आशाओं का झोला अपने कन्धे पर टाँग लिया है।

चिन्ता-कान्था उढ़ि गाय, धूलि-विभूति-मलिन-काय,

'हाहा कृष्ण' प्रलाप-उत्तर ।

उद्वेग द्वादश हाते, लोभेर झुलनि माथे,

भिक्षाभावे क्षीण कलेवर ॥ 45 ॥

चिन्ता–चिन्ता; कान्था-फटी गुदड़ी; उढ़ि-धारण करना; गाय-शरीर पर; धूलि-धूल; विभूति-विभूति; मलिन-काय-गन्दे शरीर में; हाहा हाय!; कृष्ण-कृष्ण; प्रलाप-उत्तर–पागल उत्तर; उद्वेग-दु:ख की; द्वादश-बारह (बंगडी); हाते-कलाई पर; लोभेर-लोभ की; झुलनि-पगड़ी; माथे-सिर पर; भिक्षा-अभावे-भिक्षा के अभाव में (कुछ न खाने से); क्षीण-दुर्बल; कलेवर–शरीर।

अनुवाद

"मेरा मन रूपी योगी चिन्ता की फटी गुदड़ी धूल तथा राख से सने अपने गन्दे शरीर में धारण करता है। उसके एकमात्र शब्द हैं, 'हाय! कृष्ण!' वह अपनी कलाई में दु:ख की बारह चूड़ियाँ धारण करता है। और अपने सिर पर लोभ की पगड़ी बाँधता है। कुछ न खाने के कारण वह अत्यन्त क्षीण है।

व्यास, शुकादि योगि-गण, कृष्ण आत्मा निरञ्जन,

व्रजे ताँर यत लीला-गण ।

भागवतादि शास्त्र-गणे, करियाछे वर्णने,

सेइ तर्जा पड़े अनुक्षण ॥ 46॥

व्यास-द्वैपायन व्यास; शुक-आदि-तथा शुकदेव गोस्वामी जैसे महान् सन्त; योगि-गण-योगीजन; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; आत्मा-परमात्मा; निरञ्जन-भौतिक कल्मष के बिना; व्रजे-वृन्दावन में; ताँर–उनकी; यत-सभी; लीला-गण-लीलाओं; भागवत-आदि-श्रीमद्भागवत तथा अन्य; शास्त्र-गणे-शास्त्रों में; करियाछे वर्णने-वर्णन किया है; सेइ तर्जा—दो पक्षों में कविता तथा व्याख्यानों की स्पर्धा; पड़े-पढ़ने की; अनुक्षण-हर क्षण।

अनुवाद

“मेरा मन रूपी योगी सदैव कृष्ण की वृन्दावन लीलाओं की कविता तथा व्याख्याओं को पढ़ता है। श्रीमद्भागवत तथा अन्य शास्त्रों में व्यासदेव तथा शुकदेव गोस्वामी जैसे महान् सन्त योगीजनों ने भगवान् कृष्ण का वर्णन परमात्मा के रूप में किया है, जो सारे भौतिक कल्मष से परे हैं।

दशेन्द्रिये शिष्य करि’, 'महा-बाउल’ नाम धरि’,

शिष्य लञा करिल गमन ।

मोर देह स्व-सदन, विषय-भोग महा-धन,

सब छाड़ि’ गेला वृन्दावन ॥47॥

दश-इन्द्रिये-दस इन्द्रियों का; शिष्य करि’-शिष्य बनाकर; महा-बाउल-महान भिक्षुक का; नाम धरि’-नाम धारण किया; शिष्य लञा-शिष्य लिया; करिल गमन-गया; मोर-मेरा; देह-शरीर; स्व-सदन-अपना घर; विषय-भोग-भौतिक भोग; महा-धन–महान् कोष; सब छाड़ि’–सब छोड़कर; गेला वृन्दावन-वृन्दावन गया।

अनुवाद

“मेरे मन रूपी योगी ने महा-बाउल नाम ग्रहण किया है और मेरी दस इन्द्रियों को अपना शिष्य बना लिया है। इस तरह मेरा मन मेरे शरीर रूपी घर को तथा भौतिक भोग के महान् कोष को छोड़कर वृन्दावन चला गया है।

तात्पर्य

यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने मन की उपमा बाउल नामक योगियों से दी है, जो कम से कम दस शिष्य बनाते हैं।

वृन्दावने प्रजा-गण, यत स्थावर-जङ्गम,

वृक्ष-लता गृहस्थ-आश्रमे ।

तार घरे भिक्षाटन, फल-मूल-पत्राशन,

एइ वृत्ति करे शिष्य-सने ॥48॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; प्रजा-गण-नागरिकों; यत-सब; स्थावर-जङ्गम-चर तथा अचर; वृक्ष-लता-वृक्ष तथा लताओं; गृहस्थ-आश्रमे-गृहस्थाश्रम में; तार घरे-उनके घर पर; भिक्षा-अटन-द्वार-द्वार भिक्षा माँगकर; फल-मूल-पत्र-फल, मूल तथा पत्तों को; अशन–खाकर; एइ वृत्ति—यह कार्य; करे-करता; शिष्य-सने-शिष्यों के साथ।

अनुवाद

"वह वृन्दावन में अपने शिष्यों के साथ द्वार-द्वार भीख माँगता है। वह चर तथा अचर दोनों ही तरह के निवासियों से-नागरिकों, वृक्षों तथा लताओं से भीख माँगता है। इस तरह वह फल, मूल तथा पत्तों पर जीवन-निर्वाह करता है।

कृष्ण-गुण-रूप-रस, गन्ध, शब्द, परश,

से सुधा आस्वादे गोपी-गण ।

ता-सबार ग्रास-शेषे, आनि' पञ्चेन्द्रिय शिष्ये,

से भिक्षाय राखेन जीवन ॥49॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; गुण-रूप-रस-गुण, सौन्दर्य और मधुरता; गन्ध शब्द परश-उनकी सुगन्ध, ध्वनि और स्पर्श; से सुधा-वह अमृत का; आस्वादे-आस्वादन; गोपी-गण-सभी गोपियाँ; ता-सबार-उन सभी को; ग्रास-शेषे-बचा हुआ भोजन; आनि'–लाकर; पञ्च-इन्द्रिय-पाँच इन्द्रियाँ; शिष्ये-शिष्य; से भिक्षाय-भीक्षा के लिए; राखेन-धारण करते हैं; जीवन-जीवन।

अनुवाद

"व्रजभूमि की गोपियाँ सदा कृष्ण के गुणों, उनके सौन्दर्य, उनकी मधुरता, उनकी सुगन्ध, उनकी वंशी की ध्वनि तथा उनके शरीर-स्पर्श के अमृत का आस्वादन करती हैं। मेरे मन के पाँच शिष्य, मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ उस अमृत के शेष को गोपियों से एकत्र करके मेरे मन रूपी योगी के पास लाती हैं। इन्द्रियाँ उसी शेष को खाकर अपना जीवन धारण करती हैं।

शून्य-कुञ्ज-मण्डप-कोणे, योगाभ्यास कृष्ण-ध्याने,

ताहाँ रहे लञा शिष्य-गण।

कृष्ण आत्मा निरञ्जन, साक्षात् देखिते मन,

ध्याने रात्रि करे जागरण ॥50॥

शून्य-कुञ्ज-मण्डप-कोणे-एक एकान्त उद्यान के एक कोने में; योग-अभ्यास-योगाभ्यास; कृष्ण-ध्याने–कृष्ण के ध्यान द्वारा; ताहाँ-वहाँ; रहे-रहता है; लञा–लेकर; शिष्य-गण-शिष्यगण; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; आत्मा-परमात्मा; निरञ्जन-भौतिक कल्मष के बिना; साक्षात्-प्रत्यक्ष; देखिते-दर्शन; मन–मन; ध्याने-ध्यान में; रात्रि-रात को; करे जागरण-जागरण करता है।

अनुवाद

"एक एकान्त उद्यान में कृष्ण अपनी लीलाओं का आनन्द लेते हैं और उस उद्यान के मण्डप के एक कोने में मेरा मन रूपी योगी अपने शिष्यों सहित योगाभ्यास करता है। वह योगी कृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए रातभर जागता रहता है और कृष्ण का ध्यान करता है, जो कि परमात्मा हैं और प्रकृति के तीन गुणों से अकलुषित रहते हैं।

मन कृष्ण-वियोगी, दुःखे मन हैल योगी,

से वियोगे दश दशा हय।

से दशाय व्याकुल हञा, मन गेल पलाञा,

शून्य मोर शरीर आलय” ॥51॥

मन–मन; कृष्ण-वियोगी–कृष्ण संग के वियोग के; दुःखे-दुःख में; मन–मन; हैल-बना; योगी-योगी; से वियोगे-वियोग के भाव में; दश–दस; दशा-दिव्य विकार; हय-है; से दशाय-इन दिव्य विकारों से; व्याकुल हा–चलायमान होकर; मन–मन; गेल-चला गया; पलाजा–भागकर; शून्य-शून्य; मोर-मेरा; शरीर-शरीर; आलय-निवासस्थान।

अनुवाद

"जब मेरे मन ने कृष्ण-संग खो दिया और वह उन्हें नहीं देख पाया, तो वह अत्यधिक दुःखी हो गया और उसने योग धारण कर लिया। कृष्ण के वियोग की शून्यता में उसे दस दिव्य विकारों का अनुभव हुआ। इन विकारों से चलायमान होकर मेरा मन अपने निवासस्थान मेरे शरीर को छोड़कर भाग गया है। इस प्रकार मैं पूर्णतया समाधि में हूँ।”

तात्पर्य

इस श्लोक में कापालिक साधुओं के बाह्य कार्यकलापों का वर्णन हुआ है, न कि उनके वास्तविक जीवन का। कापालिक साधु तान्त्रिक भौतिकतावादी होते हैं, जो अपने हाथों में खोपड़ियाँ लिये रहते हैं। वे वैष्णव नहीं होते और आध्यात्मिक जीवन से उन्हें कुछ लेना-देना नहीं होता। इसलिए वे लोग अस्पृश्य हैं। मन तथा कापालिकों के कार्यकलापों की मात्र बाह्य तुलना की गई है, किन्तु उनके व्यवहार का अनुकरण कभी नहीं करना चाहिए।

कृष्णेर वियोगे गोपीर दश दशा हय ।

सेइ दश दशा हय प्रभुर उदय ॥52॥

कृष्णेर वियोगे-कृष्ण के वियोग से; गोपीर-गोपियों का; दश दशा-शरीर के दस प्रकार के दिव्य विकार; हय-हैं; सेइ-ये; दश दशा-शरीर के दस प्रकार के दिव्य विकार; हय-हैं; प्रभुर उदय-श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में प्रकट।

अनुवाद

जब गोपियों को कृष्ण के वियोग का अनुभव हुआ, तब उन्होंने दस प्रकार के शारीरिक विकारों का अनुभव किया। वे ही लक्षण श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में प्रकट हो गये।

चिन्तात्र जागरोद्वेगौ तानवं मलिनाङ्गता ।

प्रलापो व्याधिरुन्मादो मोहो मृत्युर्दशा दश ॥53॥

चिन्ता–चिन्ता; अत्र-यहाँ (कृष्ण से वियोग के कारण); जागर-जागरण; उद्वेगौ-उद्वेग; तानवम्-पतलापन; मलिन-अङ्गता-मलिनता; प्रलापः-प्रलाप; व्याधिः-व्याधि; उन्मादः-उन्माद; मोहः-मोह; मृत्युः-मृत्यु; दशाः-दशा; दश–दस।

अनुवाद

"कृष्ण वियोग से उत्पन्न दस शारीरिक विकार हैं–चिन्ता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह तथा मृत्यु।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत उज्वल नीलमणि (विप्रलंभ-प्रकरण 153) से है, जिसमें श्रीमती राधारानी की दस दशाओं का आंशिक वर्णन हुआ है। इस पुस्तक में उन्होंने दस लक्षणों की विवेचना विस्तार से इस प्रकार की है।

हंसदूत (2) में चिन्ता का वर्णन इस प्रकार मिलता है :

यदा यातो गोपीहृदयमदनो नन्दसदनान्

मुकुन्दो गान्दिन्यास्तनयम् अनुरुन्धन् मधुपुरीम् ।

तदामांक्षीच्चिन्तासरिति घनघूर्णापरिचयै-

रगाधायां बाधामयपयसि राधा विरहिणी ॥

“अक्रूर के आग्रह पर कृष्ण तथा बलराम ने मथुरा के लिए नन्द महाराज के घर से प्रस्थान किया। उस समय श्रीमती राधारानी का मन टूट गया और वे कृष्ण के तीव्र वियोग के कारण विक्षिप्तप्राय हो गईं। उन्हें अत्यन्त मानसिक पीड़ा तथा क्षोभ हो रहा था, जिससे वे चिन्ता रूपी नदी में मनोरथों में डूब गईं। उन्होंने सोचा, ‘अब तो मैं मरने जा रही हूँ और जब मैं मरूंगी, तो कृष्ण अवश्य ही मुझे देखने फिर से लौटेंगे। किन्तु जब वे वृन्दावनवासियों से मेरी मृत्यु के विषय में जब सुनेंगे, तो वे निश्चित रूप से दुःखी होंगे। इसलिए मैं मरूंगी नहीं।” चिन्ता शब्द की यह व्याख्या है।

जागर–जागरण, जैसाकि पद्यावली (326) में कहा गया है :

याः पश्यन्ति प्रियं स्वप्ने धन्यास्ताः सखि योषितः ।

अस्माकं तु गते कृष्णे गता निद्रापि वैरिणी ॥

अपने आपको अत्यन्त अभागिनी सोचते हुए श्रीमती राधारानी अपनी प्रिय सखी विशाखा से कहती हैं, “हे प्रिय सखी, यदि मैं कृष्ण को अपने स्वप्न में देख सकें, तो निश्चय ही मैं अपने परम भाग्य को धन्य मानूंगी। किन्तु मैं कर ही क्या सकती हूँ? नींद भी मेरे साथ चपलता प्रदर्शित करती है। वह मेरी वैरिणी बन गई है। इसलिए जब से कृष्ण गये हैं, मैं सो नहीं पाई।”

उद्वेग-हंसदूत (104) में इस शब्द की व्याख्या इस प्रकार हुई है :

मनो मे हा कष्टं ज्वलति किमहं हन्त करवै

न पारं नावारं सुमुखि कलयाम्यस्य जलधेः ।

इयं वन्दे मूर्ध्ना सपदि तमुपायं कथय मे

परामृश्ये यस्माद् धृति कणिकयापि क्षणिकया ॥

श्रीमती राधारानी ने ललिता को सम्बोधित किया, "हे सुन्दर मुख वाली ललिता, मैं तुम्हें बता नहीं सकती कि मेरा हृदय किस तरह जल रहा है। यह चिन्ता का अगाध विशाल सागर है। फिर भी मैं तुम्हारे चरणकमलों में नमस्कार करना चाहती हूँ। मैं क्या करूँ? मेरी अवस्था पर विचार करके मुझे परामर्श दो कि मैं कैसे शान्त बनूँ। यही मेरी इच्छा है।"

तानव-कृशता, का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

उदाञ्चद्वक्त्राम्भोरुहविकृतिरन्तः कुलषिता

सदाहाराभावग्लपितकुचकोका यदुपते ।

विशुष्यन्ति राधा तव विरहतापादनुदिनं

निदाघे कुल्येव क्रशिमपरिपाकं प्रथयति ॥

जब उद्धव वृन्दावन से मथुरा लौट आये, तब भगवान् कृष्ण ने उनसे राधारानी तथा विशाखा के बारे में पूछा। तब उद्धव ने इस प्रकार उत्तर दिया, "जरा गोपियों की दशा के विषय में विचार तो कीजिये! श्रीमती राधारानी विशेष रूप से आपके वियोग के कारण अत्यन्त वेदनापूर्ण दशा में हैं। वे अत्यन्त क्षीण हो गई हैं, और उनके शरीर की कान्ति लगभग चली गई है। उनका हृदय वेदना में डूब गया है और चूँकि उन्होंने भोजन करना छोड़ दिया है, इसलिए उनके स्तन श्याम पड़ गये हैं, मानो रुग्ण हों। आपके वियोग के कारण सारी गोपियाँ, विशेषतया राधारानी सूर्य की झुलसती धूप में सूखे हुए जल के छिद्रों जैसी हो गई हैं।"

मलिन-अंगता का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

हिमविसर विशीर्णाम्भोजतुल्याननश्री:

खरमरुदपरज्यद्वन्धुजीवोपमौष्ठी ।

अघहर शरदर्कोत्तापितेन्दीवराक्षी

तव विरहविपत्तिम्लापितासीद् विशाखा ॥

उद्धव ने कृष्ण से कहा, "हे परम शुभ कृष्ण, कृपया मेरी बात सुनें। आपकी अनुपस्थिति से उत्पन्न विपत्ति ने विशाखा को म्लान बना दिया है। उनके होंठ प्रबल वायु द्वारा झकोरे गये वृक्ष की तरह काँपते हैं, उनका कमल के फूल जैसा सुन्दर मुख हिम के कारण मुरझा गया है और उनकी आँखें कमल की पंखुड़ी जैसी हैं, जो शरद ऋतु के सूर्य से झुलस गई हैं।"

प्रलाप की व्याख्या ललित माधव में इस प्रकार हुई है :

क्व नन्दकुलचन्द्रमाः क्व शिखिचन्द्रकालंकृतिः

क्व मन्द्रमुरलीरवः क्व नु सुरेन्द्रनीलद्युतिः।

क्व रासरसताण्डवी क्व सखि जीव रक्षौषधि-

र्निधिर्मम सुहृत्तमः क्व तव हन्त हाधिग्विधिः ॥

यह श्रीमती राधारानी का विलाप अपने प्रेमी कृष्ण के लिए है, जो घर से दूर थे। जिस स्त्री का पति घर छोड़कर विदेश चला गया है, वह प्रोषितभर्तृका कहलाती है। जिस तरह से सामान्य स्त्री अपने पति के लिए विलाप करती है, उसी तरह कृष्ण के लिए श्रीमती राधारानी शोक करती हुई कहती हैं, "हे प्रिय सखी, कहाँ हैं नन्द महाराज के परिवार की वह शोभा, जो अपने सिर पर अर्धचन्द्र आभूषण धारण करते हैं? कहाँ हैं कृष्ण, जिनका रंग इन्द्रनीलमणि के समान है और जो अत्यन्त उत्तम रीति से अपनी वंशी बजाते हैं? कहाँ हैं। पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ तुम्हारा मित्र, जो वृत्तों में रास नृत्य करने में इतने पटु हैं? कहाँ

हैं वह, जो हृदय रोग से मर रही मुझ को बचाने की वास्तविक औषधि हैं? मुझे विधाता को कोसना चाहिए, क्योंकि उसने मुझे कृष्ण से विलग करके इतनी पीड़ा पहुँचाई है।"

व्याधि का भी वर्णन ललित माधव में मिलता है : ।

उत्तापी पुटपाकतोऽपि गरलग्रामादपि क्षोभणो

दम्भोलेरपि दुःसहः कटुरलं हृन्मग्नशूल्यादपि ।

तीव्रः प्रौढविशूचिकानिचयतोऽप्युच्चैर्मायं बली

मर्माण्यद्य भिनत्ति गोकुलपतेर्विश्लेषजन्मा ज्वरः ॥

कृष्ण के विछोह की पीड़ा से अत्यधिक दुःखी होकर श्रीमती राधारानी ने कहा "हे ललिता, कृपया मेरी बात सुनो। मैं कृष्ण के विरह के ज्वर को सह नहीं पा रही, न ही तुमसे इसका वर्णन कर सकती हूँ। यह मिट्टी के पात्र में सोने के पिघलने जैसा है। यह ज्वर विष से भी अधिक कष्ट दे रहा है और वज्र से भी अधिक बेधने वाला है। मैं उसी तरह कष्ट पा रही हैं, जैसे कि हैजे के कारण अधमरा व्यक्ति। मुझे इतनी पीड़ा देने के लिए यह ज्वर अवश्य ही अत्यन्त प्रबल होगा।"

उन्माद की विवेचना इस प्रकार की गई है :

भ्रमति भवनगर्भ निर्निमित्तं हसन्ती

प्रथयति तव वार्ता चेतनाचेतनेषु ।

लुठति च भुवि राधा कम्पितांगी मुरारे

विषमविरहखेदोद्गारिविभ्रान्त चित्ता ॥

उद्धव ने कृष्ण से कहा, "हे कृष्ण, आपकी अनुपस्थिति से सारी गोपियाँ इतनी दुःखी हैं कि वे उन्मत्त प्राय हैं। हे मुरारी, श्रीमती राधारानी घर पर व्यर्थ ही हँसती हैं तथा पागल स्त्री की तरह बिना

भेदभाव के हर जीव से, यहाँ तक कि पत्थरों तक से आपके विषय में पूछती हैं। वे आपकी अनुपस्थिति की पीड़ा न सह पाने के कारण भूमि पर लोटती हैं।"

मोह की व्याख्या इस प्रकार हुई है :

निरुन्धे दैन्याब्धि हरति गुरुचिन्ता परिभवं

विलुम्पत्युन्मादं स्थगयति बलाद् बाष्पलहरीम् ।

इदानीं कंसारे कुवलयदृशः केवलमिदं

विधत्ते साचिव्यं तव विरहमूर्छासहचरी ॥

ललिता ने श्रीमती राधारानी की ओर से कृष्ण को यह पत्र लिखा, "हे प्रिय कृष्ण, आपके विरह ने श्रीमती राधारानी के मन को अत्यधिक चंचल बना दिया है और वह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ी है। हे कंस के शत्रु, अब तो आप उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ बन गये हैं; इसलिए आप कदाचित् हर एक को आश्वासन दे सकते हैं। इसलिए कृपया श्रीमती राधारानी की दयनीय दशा पर विचार करें या फिर आप शीघ्र ही उसकी मृत्यु के विषय में सुनेंगे। हो सकता है कि तब आप शोक करोगे, यद्यपि इस समय आप प्रफुल्लित हो।"

हंसदूत (96) में मृत्यु की विवेचना इस प्रकार हुई है :

अये रासक्रीडारसिक मम सख्यं नवनवा

पुरा बद्धा येन प्रणयलहरी हन्त गहना ।

स चेन्मुक्तापेक्षस्त्वमसि धिग् इमां तुलशकलं

यदेतस्या नासानिहितमिदमद्यापि चलति ॥

इस पत्र में ललिता कृष्ण को मथुरा में रह जाने के लिए धिक्कार करती है, "रास नृत्य के मंडल में नाचने मात्र से तुमने श्रीमती राधारानी के प्रेम को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। अब तुम मेरी सखी राधारानी से इतने उदासीन क्यों हो? तुम्हारी लीलाओं को सोच-सोचकर वह प्रायः मूर्छित पड़ी है। उसके नथुनों के पास रुई का फाहा रखकर पता लगाऊँगी कि वह जीवित है। कि नहीं। और यदि वह अब भी जीवित है, तो मैं उसकी भर्त्सना करूँगी।"

एइ दश-दशाय प्रभु व्याकुल रात्रि-दिने ।

कभु कोन दशा उठे, स्थिर नहे मने ॥54॥

एइ–इन; दश-दशाय-दस दशाओं से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; व्याकुल-व्याकुल; रात्रि-दिने-रात और दिन; कभु-कभी; कोन-कुछ; दशा-दशा; उठे-उठता; स्थिर-स्थिर; नहे-नहीं; मने-मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इन दस दशाओं से रात-दिन व्याकुल रहते थे। जब भी ऐसे लक्षण उत्पन्न होते, उनका मन अस्थिर हो उठता।

एत कहि' महाप्रभु मौन करिला ।

रामानन्द-राय श्लोक पड़िते लागिला ॥55॥

एत कहि'-इस तरह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मौन करिला-मौन हो गये; रामानन्द-राय-रामानन्द राय; श्लोक-श्लोक; पड़िते लागिला-सुनाने लगे।

अनुवाद

इस तरह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु मौन हो गये। तब रामानन्द राय विविध श्लोक सुनाने लगे।

स्वरूप-गोसाञि करे कृष्ण-लीला गान ।

दुइ जने किछु कैला प्रभुर बाह्य ज्ञान ॥56॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; करे-किया; कृष्ण-लीला-कृष्ण लीलाओं का; गान–गायन; दुइ जने-दोनों ने; किछु—कुछ; कैला–किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; बाह्य ज्ञान-बाह्य चेतना।

अनुवाद

रामानन्द राय ने 'श्रीमद्भागवत' से कई श्लोक सुनाये और स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कृष्ण लीलाओं का गायन किया। इस तरह उन दोनों ने महाप्रभु की बाह्य चेतना लौटाई।

एइ-मत अर्ध-रात्रि कैला निर्यापण ।

भितर-प्रकोष्ठे प्रभुरे कराइला शयन ॥57॥

एइ-मत-इस प्रकार; अर्ध-रात्रि-आधी रात; कैला निर्यापण-बिताई; भितर-प्रकोष्ठे-भीतरी कमरे में; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; कराइला शयन–शय्या पर लिटाया।

अनुवाद

इस प्रकार आधी रात बीत जाने पर रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को भीतरी कमरे में शय्या पर लिटाया।

रामानन्द-राय तबे गेला निज घरे ।

स्वरूप-गोविन्द दुँहे शुइलेन द्वारे ॥58॥

रामानन्द-राय-रामानन्द राय; तबे-तब; गेला-गये; निज घरे-उनके घर; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; गोविन्द तथा गोविन्द; दुँहे दोनों; शुइलेन-लेट गये; द्वारे-दरवाजे पर।

अनुवाद

तब रामानन्द राय घर लौट आये और स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा गोविन्द श्री चैतन्य महाप्रभु के कमरे के दरवाजे के सामने लेट गये।

सब रात्रि महाप्रभु करे जागरण ।

उच्च करि' कहे कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन ॥59॥

सब रात्रि-सारी रात; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करे-करते; जागरण-जागरण; उच्च करि'-उच्च स्वर में; कहे कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सारी रात उच्च स्वर से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करते हुए जागते रहे।

शब्द ना पाञा स्वरूप कपाट कैला दूरे ।

तिन-द्वार देओया आछे, प्रभु नाहि घरे! ॥ 60॥

शब्द-आवाज; ना-नहीं; पाञा-सुनकर; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; कपाट–दरवाजा; कैला दूरे-खोल दिया; तिन-द्वार-तीर दरवाजों कों; देओया आछे-ताले लगे थे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नाहि घरे–कमरे में नहीं थे।

अनुवाद

कुछ देर बाद स्वरूप दामोदर को श्री चैतन्य महाप्रभु का जप करना नहीं सुनाई पड़ा। जब वे कमरे के भीतर गये, तो उन्होंने देखा कि तीनों दरवाजों पर ताले लगे हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ नहीं हैं।

चिन्तित ह-इल सबे प्रभुरे ना देखिया।

प्रभु चाहि' बुले सबे देउटी ज्वालिया॥ 61॥

चिन्तित ह-इल-अत्यन्त चिन्तित हो उठे; सबे-सभी भक्त; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभुः ना देखिया—न देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः चाहि'–ढूँढ़ने के लिए; बुले-घूमने लगे; सबे-सभी जन; देउटी–दीपक; ज्वालिया-जलाकर।

अनुवाद

जब सारे भक्तों ने देखा कि महाप्रभु अपने कमरे में नहीं हैं, तो वे अत्यन्त चिन्तित हो उठे। वे दीपक जलाकर उन्हें ढूँढ़ने के लिए इधर-उधर घूमने लगे।

सिंह-द्वारेर उत्तर-दिशाय आछे एक ठाञि।

तार मध्ये पड़ि' आछेन चैतन्य-गोसाञि॥ 62॥

सिंह-द्वारेर–सिंहद्वार में; उत्तर-दिशाय-उत्तर दिशा की ओर; आछे-वहाँ थे; एक ठाञि-एक जगह; तार मध्ये एक कोने में; पड़ि-नीचे लेटे; आछेन-थे; चैतन्य-गोसाञि-श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

कुछ देर ढूँढ़ने के बाद उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु सिंहद्वार से उत्तर की दिशा में एक कोने में लेटे मिले।

देखि' स्वरूप-गोसाञि-आदि आनन्दित हैला।

प्रभुर दशा देखि' पुनः चिन्तिते लागिला॥63॥

देखि'–देखकर; स्वरूप-गोसाञि-आदि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी और आदि सारे भक्त; आनन्दित हैला-आनन्दित हो गये; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; दशा-दशा; देखि'–देखकर; पुनः–फिर से; चिन्तिते लागिला-चिन्तित हो उठे।

अनुवाद

पहले तो उन्हें देखकर स्वरूप दामोदर गोस्वामी इत्यादि सारे भक्त आनन्दित हो गये, किन्तु जब उन्होंने उनकी दशा देखी, तो वे चिन्तित हो उठे।

प्रभु पड़ि' आछेन दीर्घ हात पाँच-छय ।

अचेतन देह, नासाय श्वास नाहि वय ॥ 64॥

प्रभु-प्रभु; पड़ि' आछेन-नीचे लेटे थे; दीर्घ-लम्बा; हात पाँच-छय-पाँच से छह हाथ (एक हाथ लगभग डेढ़ फूट जितना होता है); अचेतन देह-अचेतन देह; नासाय-नथुनों से; श्वास-श्वास; नाहि वय-नहीं निकल रही।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अचेत लेटे थे और उनका शरीर लम्बा होकर पाँच-छह हाथ का हो गया था। उनके नथुनों से श्वास नहीं निकल रही थी।

एक एक हस्त-पाद–दीर्घ तिन तिन-हात ।

अस्थि-ग्रन्थि भिन्न, चर्म आछे मात्र तात ॥65॥

हस्त, पाद, ग्रीवा, कटि, अस्थि सन्धि यत ।

एक एक वितस्ति भिन्न हञाछे तत ॥66॥

एक एक–हर एक; हस्त-पाद–हाथ और पाँव; दीर्घ-लम्बे; तिन तिन-हात–तीन तीन हाथ; अस्थि-ग्रन्थि–हड्डीयों का जोड़; भिन्न–अलग अलग; चर्म-चमड़ी; आछे-थी; मात्र केवल; तात–जीवन सूचक थोड़ा शारीरिक तापमान; हस्त-हाथ; पाद-पाँव; ग्रीवा-गरदन; कटि–कमर; अस्थि-हड्डियाँ; सन्धि-जोड़; यत-जितने भी; एक-एक; एक-एक; वितस्ति-छः इंच; भिन्न–अलग; हाञाछे; तत-बहुत सारे।

अनुवाद

उनके हाथ तथा पाँव तीन-तीन हाथ लम्बे हो गये थे। उनके अलग-अलग हुए जोड़ों को केवल चमड़ी बाँधे थी। जीवन-सूचक, महाप्रभु का शारीरिक तापमान, अत्यन्त कम था। उनके हाथ, पाँव, गरदन तथा कमर के सारे जोड़ कम से कम छः इंच अलग हो चुके थे।

चर्म-मात्र उपरे, सन्धि आछे दीर्घ हञा ।

दुःखित ह-इला सबे प्रभुरे देखिया ॥67॥

चर्म-मात्र–सिर्फ चमड़ी; उपरे ऊपर; सन्धि–जोड़ों; आछे-थे; दीर्घ-लम्बे; हञा–थे; दुःखित-दु:खी; ह-इला–हुई; सबे-सारे भक्त; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; देखिया-देखकर।

अनुवाद

ऐसा प्रतीत होता था मानो उनके लम्बायमान जोड़ों को केवल चमड़ी ढके हुए थी। महाप्रभु की दशा देखकर सारे भक्त दुःखी हुए।

मुखे लाला-फेन प्रभुर उत्तान-नयान ।

देखिया सकल भक्तेर देह छाड़े प्राण ॥ 68॥

मुखे-मुँह को; लाला-लार; फेन-झाग; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; उत्तान-उलटी; नयान-आँखे; देखिया-देखकर; सकल भक्तेर—सभी भक्त; देह-शरीर; छाड़े-छोड़कर; प्राण-प्राण।

अनुवाद

जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के मुँह को लार तथा झाग से भरा तथा आँखों को उलटी हुई देखा, तो वे सभी मृतप्राय हो गये।

स्वरूप-गोसाञि तबे उच्च करिया ।

प्रभुर काणे कृष्ण-नाम कहे भक्त-गण लञा ॥ 69॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोसांई; तबे-उस समय; उच्च करिया-जोर से; प्रभुर काणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के कान में; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का; कहे-उच्चारण करने लगे; भक्तगण लञा-सारे भक्त।

अनुवाद

जब उन्होंने यह सब देखा, तो स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा अन्य सारे भक्त महाप्रभु के कान में जोर-जोर से कृष्ण नाम का उच्चारण करने लगे।

बहु-क्षणे कृष्ण-नाम हृदये पशिला ।

'हरि-बोल' बलि' प्रभु गर्जिया उठिला ॥ 70 ॥

बहु-क्षणे-लम्बे समय के बाद; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; हृदये पशिला-हृदय में प्रविष्ट हुआ; हरि-बोल बलि'–"हरि बोल" कहने लगे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः गर्जिया-गर्जना करते हुए; उठिला-उठे।

अनुवाद

जब वे इस तरह देर तक उच्चारण करते रहे, तब कृष्ण का पवित्र नाम श्री चैतन्य महाप्रभु के हृदय में प्रविष्ट हुआ और वे "हरि बोल" की गर्जना करते हुए सहसा उठ गये।

चेतन पाइते अस्थि-सन्धि लागिल ।

पूर्व-प्राय यथावत् शरीर ह-इल ॥71॥

चेतन पाइते-बाह्य चेतना लौट आने पर; अस्थि-सन्धि–हड़ियों के जोड़; लागिल-सिकुड़ गये; पूर्व-प्राय-पहले की तरह; यथावत्-सामान्य अवस्था में; शरीर-शरीर; ह-इल हो गया।

अनुवाद

जैसे ही महाप्रभु की बाह्य चेतना लौट आई, उनके सारे जोड़ सिकुड़ गये और उनका सारा शरीर सामान्य हो गया।

एइ लीला महाप्रभुर रघुनाथ-दास ।

'गौराङ्ग-स्तव-कल्पवृक्षे' करियाछे प्रकाश ॥72॥

एइ लीला-इन लीलाओं; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास गोस्वामी; गौराङ्ग-स्तव-कल्प-वृक्षे–गौराङ्ग स्तव कल्पवृक्ष नामक पुस्तक में; करियाछे प्रकाश-वर्णन किया है।

अनुवाद

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी ने इन लीलाओं का विस्तृत वर्णन अपनी पुस्तक 'गौरांग स्तव कल्पवृक्ष' में किया है।

क्वचिन्मिश्रावासे व्रज-पति-सुतस्योरु-विरहात्

श्लथच्छ्री-सन्धित्वाद्दधदधिक-दैर्ध्य भुज-पदोः ।

लुठभूमौ काक्वा विकल-विकलं गद्गद-वचा

रुदन्श्री-गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति ॥73॥

क्वचित्-कभी-कभी; मिश्र-आवासे-काशी मिश्र के घर में; व्रज-पति-सुतस्य-नन्द महाराज के पुत्र से; उरु-विरहात्-वियोग के तीव्र भाव से; श्लथत्-ढीले पड़कर; श्री-सन्धित्वात्-उनके दिव्य शरीर के जोड़ों से; दधत्-पाकर; अधिक-दैर्व्यम्-ज्यादा लम्बा होना; भुज-पदोः-हाथ पाँव; लुठन्-लोटते; भूमौ जमीन पर; काक्वा-विलाप में रोते; विकल-विकलम्-अत्यन्त शोक से; गद्गद-वचा-अवरुद्ध वाणी से; रुदन्-रोते; श्री-गौराङ्गः-श्री चैतन्य महाप्रभु; हृदये-हृदय में; उदयन्-उदित होकर; माम्-मुझे; मदयति-उन्मत्त बनाते हैं।

अनुवाद

"कभी-कभी श्री चैतन्य महाप्रभु काशी मिश्र के घर में कृष्ण के वियोग का अनुभव करते हुए अत्यधिक दुःखी होते। उनके दिव्य शरीर के जोड़ ढीले पड जाते और उनके हाथ-पाँव लम्बे हो जाते। भूमि पर लोटते हुए महाप्रभु अवरुद्ध वाणी से व्यथा के कारण विलाप करते और अत्यन्त शोक संतप्त होकर रोते। श्री चैतन्य महाप्रभु का यह दृश्य मेरे हृदय में उदित होकर मुझे उन्मत्त बनाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक गौराङ्ग स्तव कल्पवृक्ष (4) से है।

सिंह-द्वारे देखि' प्रभुर विस्मय ह-इला ।

'काँहा कर कि'–एइ स्वरूपे पुछिला ॥74॥

सिंह-द्वारे–सिंहद्वार के नाम के द्वार पर; देखि'–देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; विस्मय ह-इला–चकित थे; काँहा-कहाँ; कर कि'-मैं क्या कर रहा हूँ; एइ–यह; स्वरूपे पुछिला-स्वरूप दामोदर गोस्वामी से पूछा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने आपको सिंहद्वार के सामने पाकर अत्यधिक चकित हुए। उन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी से पूछा, "मैं कहाँ हूँ? मैं यहाँ क्या कर रहा हूँ?"

स्वरूप कहे,— 'उठ, प्रभु, चल निज-घरे ।

तथाइ तोमारे सब करिमु गोचरे' ॥75 ॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहा; उठ प्रभु-हे प्रभु, कृपया उठिये; चल-चलिये; निज-घरे-आपके स्थान पर; तथाइ-वहाँ; तोमारे-आपको; सब-सब; करिमु गोचरे-मैं बताता हूँ।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने कहा, "हे प्रभु, कृपया उठिये। चलिये, आपके स्थान पर चलें। जो कुछ हुआ है, वहीं मैं आपको सब कुछ बतला दूँगा।"

एत बलि' प्रभुरे धरि' घरे लञा गेला ।

ताँहार अवस्था सब कहते लागिला ॥76 ॥

एत बलि'—यह कहकर; प्रभुरे धरि'–श्री चैतन्य महाप्रभु को सहारा देते हुए; घरे-घर; लञा गेला-वापस गये; ताँहार अवस्था—उनकी अवस्था; सब-सभी जन; कहते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

इस तरह सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु को सहारा देते हुए उन्हें उनके घर लौटा ले गये। तब उन्होंने जो कुछ हुआ था सब बतलाया।

शुनि' महाप्रभु बड़ हैला चमत्कार ।

प्रभु कहे,–'किछु स्मृति नाहिक आमार ॥77॥

शुनि'–सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; बड़-बहुत; हैला चमत्कार-आश्चर्यचकित हुए; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; किछु-कोई; स्मृति-स्मरण; नाहिक-नहीं है; आमार-अपना।

अनुवाद

सिंहद्वार के निकट लेटे हुए अपनी दशा का वर्णन सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यधिक आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने कहा, "मुझे इनमें से किसी भी बात का स्मरण नहीं है।

सबे देखि—हय मोर कृष्ण विद्यमान ।

विद्युत्प्राय देखा दिया हय अन्तर्धान' ॥78 ॥

सबे-सिर्फ इतना ही; देखि-देखकर; हय-है; मोर-मेरे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; विद्यमान–समक्ष प्रकट हुए; विद्युत्-प्राय–बिजली की तरह; देखा दिया-प्रकट होकर; हय-हो गये; अन्तर्धान–अन्तर्धान।

अनुवाद

मुझे केवल इतना ही स्मरण है कि मैंने अपने कृष्ण को देखा, किन्तु मात्र एक क्षण के लिए। वे मेरे समक्ष प्रकट हुए और फिर बिजली की तरह तुरन्त अन्तर्धान हो गये।"

हेन-काले जगन्नाथेर पाणि-शङ्ख बाजिला ।

स्नान करि' महाप्रभु दरशने गेला ॥79॥

हेन-काले-उसी समय; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ के; पाणि-शङ्ख-शंख जो हाथ में पकड़ा जाता है; बाजिला-बजा; स्नान करि'-स्नान के बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; दरशने गेला-भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने गये।

अनुवाद

उसी समय सबों ने जगन्नाथ मन्दिर में शंख बजने की ध्वनि सुनी। श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त स्नान किया और जगन्नाथ जी का दर्शन करने चले गये।

एइ त कहिलुँ प्रभुर अद्भुत विकार ।

याहार श्रवणे लोके लागे चमत्कार ॥80॥

एइ त'—इस तरह; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; अद्भुत विकार-देह के असामान्य विकारों का; याहार श्रवणे-जिसे सुनकर; लोके-लोग; लागे–अनुभव करते हैं; चमत्कार-आश्चर्य।

अनुवाद

इस तरह से मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर के असामान्य विकारों का वर्णन किया है। जब लोग इसके विषय में सुनते हैं, तो वे अत्यन्त चकित होते हैं।

लोके नाहि देखि ऐछे, शास्त्रे नाहि शुनि ।

हेन भाव व्यक्त करे न्यासि-चूड़ामणि ॥ 81॥

लोके-लोगों में; नाहि देखि-हम नहीं देखते; ऐछे-ऐसा; शास्त्रे-शास्त्र में; नाहि शुनि-हम नहीं सुनते; हेन-ऐसा; भाव-भाव; व्यक्त करे–व्यक्त किया; न्यासि-चूड़ामणि-परम संन्यासी।

अनुवाद

न तो किसी ने अन्यत्र ऐसे शारीरिक परिवर्तन देखे हैं, न ही शास्त्रों में उनके विषय में किसी ने पढ़ा है। फिर भी परम संन्यासी श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन दिव्य लक्षणों को प्रकट किया।

शास्त्र-लोकातीत येइ येइ भाव हय ।

इतर-लोकेर ताते ना हय निश्चय ॥82॥

शास्त्र-लोक-अतीत–लोगों तथा शास्त्रों की धारणा से परे; येइ येइ-जो जो; भाव-भाव; हय-हैं; इतर-लोकेर-सामान्य लोगों के; ताते—उसमें; ना हय-नहीं है; निश्चय-विश्वास।

अनुवाद

इन भावों का शास्त्रों में वर्णन नहीं हुआ है और वे सामान्य लोगों के लिए अचिन्त्य हैं। इसलिए सामान्य लोग उनमें विश्वास नहीं करते।

रघुनाथ-दासेर सदा प्रभु-सङ्गे स्थिति ।

ताँर मुखे शुनि' लिखि करिया प्रतीति ॥ 83॥

रघुनाथ-दासेर-रघुनाथ दास गोस्वामी के; सदा-हमेशा; प्रभु-सड़े-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; स्थिति-रहते थे; ताँर मुखे-उनके मुँह से निकला हुआ; शुनि'–सुनकर; लिखि-मैं लिखता हूँ; करिया प्रतीति-विश्वास करना।

अनुवाद

रघुनाथ दास गोस्वामी लगातार श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रहते थे। मैंने उनसे जो कुछ सुना है, उसे ही मैं लिख रहा हूँ। यद्यपि सामान्य लोग इन लीलाओं में विश्वास नहीं करते, किन्तु मैं उनमें पूरी तरह से विश्वास करता हूँ।

एक-दिन महाप्रभु समुद्रे याइते ।

'चटक'-पर्वत देखिलेन आचम्बिते ॥84॥

एक-दिन-एक दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; समुद्रे याइते-समुद्र जाने के समय; चटक-पर्वत–चटक पर्वत नामक बालू का टीला; देखिलेन-देखा; आचम्बिते-अचानक।

अनुवाद

एक दिन जब श्री चैतन्य महाप्रभु समुद्र स्नान करने जा रहे थे, तब उन्होंने सहसा बालू का टीला देखा, जिसका नाम चटक पर्वत था।

गोवर्धन-शैल-ज्ञाने आविष्ट ह-इला ।

पर्वत-दिशाते प्रभु धाञा चलिला ॥85॥

गोवर्धन-शैल-गोवर्धन पर्वत; ज्ञाने-भ्रम होकर; आविष्ट ह-इला–प्रेमाविष्ट हो गये; पर्वत-दिशाते-बालू के टीले की ओर; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; धाञा चलिला–दोड़ने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को इस बालू के टीले में गोवर्धन पर्वत का भ्रम हो गया और वे उसकी ओर दौड़ने लगे।

हन्तायमद्रिरबला हरि-दास-वर्यो

यद्राम-कृष्ण-चरण-स्परश-प्रमोदः ।

मानं तनोति सह-गो-गणयोस्तयोर्यत्

पानीय-सूयवस-कन्दर-कन्द-मूलैः ॥86॥

हन्त-ओह; अयम्-यह; अद्रिः-पर्वत; अबलाः-हे मित्रों; हरि-दास-वर्यः-भगवान् के अच्छे सेवकों में श्रेष्ठ; यत्-क्योंकि; राम-कृष्ण-चरण-भगवान् कृष्ण और बलराम के चरणकमलों का; स्परश-स्पर्श पाकर; प्रमोदः--प्रसन्न; मानम्-आदर; तनोति-प्रदान करता; सह–के साथ; गो-गणयोः–गायों, बछड़ों और ग्वाल मित्रों; तयोः–उनको (श्रीकृष्ण और बलराम); यत्-क्योंकि; पानीय-पीने के लिए जल; सूयवस-अत्यन्त कोमल घास; कन्दर–गुफाएँ; कन्द-मूलैः–तथा वनस्पतियाँ।

अनुवाद

"(श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा :)'समस्त भक्तों में यह गोवर्धन पर्वत सर्वश्रेष्ठ है! हे मित्रों, यह पर्वत कृष्ण तथा बलराम एवं उनके बछड़ों, गायों तथा ग्वाल मित्रों की सभी प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करता है। यह पीने के लिए जल, अत्यन्त कोमल घास, गुफाएँ, फल, फूल तथा वनस्पतियाँ प्रदान करता है। इस तरह यह पर्वत भगवान् को नमस्कार करता है। कृष्ण तथा बलराम के चरणकमलों का स्पर्श पाकर यह अत्यन्त हर्षित प्रतीत होता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.21.18) से है। जब शरद ऋतु में कृष्ण तथा बलराम जंगल में प्रविष्ट हुए, तब इस श्लोक को गोपियों ने कहा था। गोपियाँ परस्पर बातें करके कृष्ण तथा बलराम की लीलाओं का गुणगान करने लगीं।

एइ श्लोक पड़ि' प्रभु चलेन वायु-वेगे ।

गोविन्द धाइल पाछे, नाहि पाय लागे ॥87॥

एइ श्लोक-यह श्लोक; पड़ि'–उच्चारण करते हुए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चलेन-जाने लगे; वायु-वेगे-वायु के वेग से; गोविन्द गोविन्द; धाइल-दौड़ा; पाछे-पीछे; नाहि पाय लागे-पकड़ नहीं सका।

अनुवाद

यह श्लोक का उच्चारण करते हुए महाप्रभु वायु के वेग से उस बालू के टीले की ओर दौड़ने लगे। गोविन्द उनके पीछे-पीछे दौड़ा, किन्तु वह उनके पास नहीं पहुँच सका।

फुकार पड़िल, महा-कोलाहल ह-इल ।

येइ याहाँ छिल सेइ उठिया धाइल ॥88॥

फु-कार-जोर से चिल्लाया; पड़िल-उठकर; महा-कोलाहल-कोलाहल; ह-इल-होने लगा; येइ-जो भी; याहाँ-जहाँ भी; छिल-थे; सेइ-वे; उठिया धाइल-उठकर दौड़ने लगे।

अनुवाद

पहले एक भक्त जोर से चिल्लाया और फिर जब सारे भक्त उठकर महाप्रभु के पीछे दौड़ने लगे, तो कोलाहल होने लगा।

स्वरूप, जगदानन्द, पण्डित-गदाधर ।

रामाइ, नन्दाइ, आर पण्डित शङ्कर ॥89॥

स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; पण्डित-गदाधर-गदाधर पण्डित; रामाइ-रामाइ; नन्दाइ–नन्दाइ; आर-तथा; पण्डित-शङ्कर-शंकर पण्डित।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के पीछे दौड़ने वाले कुछ अन्य भक्तगण थे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी, जगदानन्द पण्डित, गदाधर पण्डित, रामाइ, नन्दाइ तथा शंकर पण्डित।

पुरी-भारती-गोसाञि आइला सिन्धु-तीरे ।

भगवानाचार्य खञ्ज चलिला धीरे धीरे ॥90॥

पुरी-परमानन्द पुरी; भारती-गोसाञि-ब्रह्मानन्द भारती; आइला–आये; सिन्धु-तीरे-समुद्रतट की ओर; भगवान्-आचार्य–भगवान् आचार्य; खञ्ज–लँगड़े; चलिला-चल रहे थे; धीरे धीरे-धीरे धीरे।

अनुवाद

परमानन्द पुरी तथा ब्रह्मानन्द भारती भी समुद्रतट की ओर गये और भगवान् आचार्य जो कि लँगड़े थे, उनके पीछे धीरे-धीरे चल रहे थे।

प्रथमे चलिला प्रभु,—येन वायु-गति ।

स्तम्भ-भाव पथे हैल, चलिते नाहि शक्ति ॥91॥

प्रथमे-पहले; चलिला–चल रहे थे; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; येन-जैसे; वायु-गति–वायु की गति; स्तम्भ-भाव-भावावेश में स्तम्भित हुए; पथे–रास्ते में; हैल–हुए; चलिते-चलने की; नाहि-नहीं; शक्ति-शक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु वायु की गति से दौड़ रहे थे, किन्तु सहसा भावावेश में वे स्तम्भित हो गये, जिससे आगे चल पाने की उनकी सारी शक्ति जाती रही।

प्रति-रोम-कूपे मांस—व्रणेर आकार ।

तार उपरे रोमोद्गम-कदम्ब-प्रकार ॥92॥

प्रति-रोम-कुपे–प्रत्येक रोम कूप में; मांस-मांस; व्रणेर आकार–फेंसियों की तरह; तार उपरे-उसके ऊपर; रोम-उद्गम-रोमांच हुआ; कदम्ब-प्रकार-कदम्ब के फूलों जैसा।

अनुवाद

उनका हर रोमकूप फुसियों की तरह फूट पड़ा और उनके शरीर के बाल खड़े हो गये, जो कदम्ब के फूलों जैसे प्रतीत होने लगे।

प्रति-रोमे प्रस्वेद पड़े रुधिरेर धार ।

कण्ठे घर्धर, नाहि वर्णेर उच्चार ॥ 93॥

प्रति-रोमे-हर रोमकूप से; प्रस्वेद-पसीना; पड़े-बहने लगा; रुधिरेर–रक्त की तरह; धार—बहने से; कण्ठे-गले से; घर्घर–घर्राहट की आवाज; नाहि-नहीं; वर्णेर-एक शब्द भी; उच्चार–बोल सकते।

अनुवाद

उनके शरीर के हर रोमकूप से रक्त तथा पसीना लगातार बहने लगा। वे एक शब्द भी नहीं बोल सकते थे; वे अपने गले से केवल घर्राहट का शब्द उत्पन्न कर रहे थे।

दुइ नेत्रे भरि' अश्रु वहये अपार।

समुद्रे मिलिला येन गङ्गा-यमुना-धार॥ 94॥

दुइ नेत्रे-दोनों आँखों में; भरि'–भरकर; अश्रु-अश्रु; वहये-बहने लगे; अपार-अपार; समुद्रे-समुद्र; मिलिला-मिलके; येन--जैसे की; गङ्गा–गंगा की; यमुना-यमुना की; धार-धारा।

अनुवाद

महाप्रभु की आँखे भर आईं और उनसे अपार अश्रु बहने लगे, मानो गंगा तथा यमुना नदियाँ समुद्र में मिल रही हों।

वैवर्ण्य शङ्ख-प्राय श्वेत हैल अङ्ग।

तबे कम्प उठे,—येन समुद्रे तरङ्ग॥ 95॥

वैवर्ण्य-वैवविवर्ण होकर; शङ्ख-प्राय-शंख के समान; श्वेत-श्वेत; हैल–हो गया; अङ्ग–अंग; तबे-तब; कम्प–कम्पन; उठे-उठी; येन-जैसे; समुद्रे-समुद्र में; तरङ्ग-लहरें।

अनुवाद

उनका सम्पूर्ण शरीर विवर्ण होकर श्वेत शंख के रंग का हो गया और तब वे काँपने लगे, मानों समुद्र में लहरें उठ रही हों।

काँपिते काँपिते प्रभु भूमेते पड़िला।

तबे त' गोविन्द प्रभुर निकटे आइला॥ 96॥

काँपिते काँपिते--काँपते काँपते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भूमेते-भूमि पर; पड़िला–गिर पड़े; तबे-तब; त'–निश्चय ही; गोविन्द-गोविन्द; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; निकटे-निकट; आइला-आया।

अनुवाद

इस तरह काँपते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु भूमि पर गिर पड़े। तब गोविन्द उनके पास पहुँचा।

करङ्गेर जले करे सर्वाङ्ग सिञ्चन ।

बहिर्वास लञा करे अङ्ग संवीजन ॥ 97॥

करङ्गेर जले-करंग (कमंडल) के जल से; करे–किया; सर्व-अङ्ग–शरीर के सारे अंग; सिञ्चन–छिड़का; बहिर्वास–बाह्य वस्त्र; लञा-लेकर; करे–किया; अङ्ग-शरीर; संवीजन-पंखा झलने लगा।

अनुवाद

गोविन्द ने करंग (कमंडल) से महाप्रभु के सारे शरीर पर जल छिड़का और तब उनके ही उत्तरीय से वह श्री चैतन्य महाप्रभु पर पंखा झलने लगा।

स्वरूपादि-गण ताहाँ आसिया मिलिला ।

प्रभुर अवस्था देखि' कान्दिते लागिला ॥98॥

स्वरूप-आदि-गण-स्वरूप दामोदर गोस्वामी आदि भक्त; ताहाँ-वहाँ पर: आसिया-आकर; मिलिला–मिले; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; अवस्था—अवस्था; देखि-देखकर; कान्दिते लागिला-रोने लगे।

अनुवाद

जब स्वरूप दामोदर तथा अन्य भक्त उस स्थान पर पहुँचे और उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु की अवस्था देखी, तो वे रोने लगे।

प्रभुर अङ्गे देखे अष्ट-सात्त्विक विकार ।

आश्चर्य सात्त्विक देखि' हैला चमत्कार ॥99॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; अङ्गे–शरीर पर; देखे-उन्होंने देखा; अष्ट-सात्त्विक विकार-आठ प्रकार के दिव्य सात्त्विक विकार; आश्चर्य-आश्चर्य; सात्त्विक-सात्त्विक; देखि'–देखकर; हैला चमत्कार-आश्चर्यचकित हुए।

अनुवाद

महाप्रभु के शरीर में आठों प्रकार के दिव्य सात्त्विक विकार दृष्टिगोचर हो रहे थे। ऐसा दृश्य देखकर सारे भक्त आश्चर्यचकित हुए।

तात्पर्य

आठ सात्त्विक लक्षण हैं-स्तम्भ, प्रस्वेद, रोमांच, गद्गद् वाणी, कम्प, विवर्णता, अश्रु तथा मूर्छा।

उच्च सङ्कीर्तन करे प्रभुर श्रवणे ।

शीतल जले करे प्रभुर अङ्ग सम्मार्जने ॥100॥

उच्च-उच्च; सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन; करे–किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; श्रवणे-श्रवण मर्यादा में; शीतल-शीतल; जले-जल से; करे–किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; अङ्ग-शरीर; सम्मार्जने–नहलाया।

अनुवाद

भक्तों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के निकट उच्च स्वर से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन प्रारम्भ कर दिया और उनके शरीर को शीतल जल से नहलाया।

एइ-मत बहु-बार कीर्तन करिते ।

‘हरि-बोल’ बलि' प्रभु उठे आचम्बिते ॥101॥

एइ-मत-इस तरह; बहु-बार—देर तक; कीर्तन करिते-कीर्तन करते; हरि-बोल बलि'–“हरि बोल" कहते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; उठे-उठ खड़े हुए; आचम्बिते-अचानक।

अनुवाद

जब भक्तगण देर तक इसी तरह कीर्तन करते रहे, तब श्री चैतन्य महाप्रभु “हरि बोल" कहते हुए सहसा उठ खड़े हुए।

सानन्दे सकल वैष्णव बले ‘हरि’ ‘हरि’ ।

उठिल मङ्गल-ध्वनि चतुर्दिक्भरि’ ॥102॥

स-आनन्दे–अत्यन्त प्रसन्नतावश; सकल-सभी; वैष्णव-भक्त; बले-बोले; हरि हरि-भगवान् का पवित्र नाम; उठिल-वहाँ उठा; मङ्गल-ध्वनि-शुभ ध्वनि; चतुः-दिक्-सभी दिशाओं में; भरि-भरकर।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु उठ खड़े हुए, तो सारे वैष्णवों ने प्रसन्नतावश उच्च स्वर से “हरि! हरि!” का कीर्तन किया। यह शुभ ध्वनि सभी दिशाओं में भर गई।

उठि’ महाप्रभु विस्मित, इति उति चाय ।

ये देखते चाय, ताहा देखिते ना पाय ॥ 103॥

उठि'–खड़े होकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; विस्मित–विस्मित होकर; इति उति-इधर-उधर; चाय-देखा; ये क्या; देखिते चाय-वे देखना चाहते थे; ताहा-वह; देखिते ना पाय–वे देख नहीं पाये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु विस्मित होकर खड़े हो गये और कुछ देखने के उद्देश्य से इधर-उधर देखने लगे। किन्तु वे उसे न देख पाये।

'वैष्णव' देखिया प्रभुर अर्ध-बाह्य ह-इल ।

स्वरूप-गोसाञिरे किछु कहिते लागिल ॥ 104॥

वैष्णव देखिया-वैष्णवों को देखकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; अर्ध-बाह्य-आंशिक बाह्य चेतना; ह-इल-हो गई; स्वरूप-गोसाञिरे-स्वरूप गोस्वामी को; किछु-कुछ; कहिते लागिल-कहने लगे।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे वैष्णवों को देखा, तो उनकी आंशिक बाह्य चेतना लौट आई और वे स्वरूप दामोदर से बोले।

"गोवर्धन हैते मोरे के इहाँ आनिल? ।

पाञा कृष्णेर लीला देखिते ना पाइल" ॥ 105॥

गोवर्धन हैते-गोवर्धन पर्वत से; मोरे-मुझे; के-कौन; इहाँ–यहाँ; आनिल-ले आया; पाञा-पाकर; कृष्णेर लीला-कृष्ण की लीलाएँ; देखिते ना पाइल-मैं नहीं देख सकता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मुझे गोवर्धन पर्वत से यहाँ पर कौन ले आया? मैं तो कृष्ण की लीलाएँ देख रहा था, किन्तु अब मैं उन्हें नहीं देख सकता।

इहाँ हैते आजि मुइ गेनु गोवर्धने ।

देखों, यदि कृष्ण करेन गोधन-चारणे ॥ 106 ॥

इहाँ हैते–यहाँ से; आजि-आज; मुइ-मैं; गेनु-गया था; गोवर्धने-गोवर्धन पर्वत पर; देखों-मैं ढूंढ रहा था; यदि-यदि; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करेन-करते हैं; गोधन-चारणे-गौवें चराना।

अनुवाद

"आज मैं यहाँ से गोवर्धन पर्वत पर यह देखने गया था कि क्या कृष्ण वहाँ अपनी गौवें चरा रहे हैं?"

गोवर्धने चड़ि' कृष्ण बाजाइला वेणु ।

गोवर्धनेर चौदिके चरे सब धेनु ॥107॥

गोवर्धने-गोवर्धन पर्वत पर; चड़ि'-चढ़ने; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; बाजाइला वेणु-बाँसुरी बजाते; गोवर्धनेर-गोवर्धन पर्वत के; चौ-दिके-चार दिशाओं में; चरेचर रही थीं; सब-सब; धेनु-गौवें।

अनुवाद

"मैंने कृष्ण को गोवर्धन पर्वत पर चढ़ते और चर रही गौवों से घिरे उन्हें अपनी बाँसुरी बजाते देखा।"

वेणु-नाद शुनि' आइला राधा-ठाकुराणी ।

सब सखी-गण-सड़े करिया साजनि ॥ 108॥

वेणु-नाद-बाँसुरी की ध्वनि; शुनि'–सुनकर; आइला–आयीं; राधा-ठाकुराणी-श्रीमती राधारानी; सब-सब; सखी-गण-सङ्गे–गोपी सखियों के साथ; करिया साजनि-सुन्दर वस्त्र धारण करके।

अनुवाद

"कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि सुनकर श्रीमती राधारानी अपनी सारी गोपी-सखियों के साथ उनसे मिलने वहाँ पर आईं। वे सब सुन्दर वस्त्र धारण किये थीं।

राधा लञा कृष्ण प्रवेशिला कन्दराते ।

सखी-गण कहे मोरे फूल उठाइते ॥109॥

राधा लञा-श्रीमती राधारानी को साथ लेकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; प्रवेशिला-प्रविष्ट हुए; कन्दराते-गुफा में; सखी-गण-गोपियों ने; कहे-कहा; मोरे-मुझे; फुल-फूल; उठाइते-तोड़ने के लिए।

अनुवाद

जब कृष्ण तथा श्रीमती राधारानी एकसाथ गुफा में प्रविष्ट हो गये, तब अन्य गोपियों ने मुझसे कुछ फूल तोड़ने को कहा।

हेन-काले तुमि-सब कोलाहल कैला ।

ताहाँ हैते धरि' मोरे इहाँ लञा आइला ॥110॥

हेन-काले-तभी; तुमि-सब-तुम सबों ने; कोलाहल कैला–कोलाहल किया; ताहाँ हैते-वहाँ से; धरि'-पकड़कर; मोरे-मुझे; इहाँ–यहाँ; लञा आइला–ले आये।

अनुवाद

"तभी तुम सबों ने कोलाहल किया और मुझे तुम वहाँ से इस स्थान पर ले आये।

केने वा आनिला मोरे वृथा दुःख दिते ।

पाञा कृष्णेर लीला, ना पाइनु देखिते" ॥111॥

केने-क्यों; वा-तब; आनिलाले आये; मोरे-मुझे; वृथा–व्यर्थ ही; दुःख दिते-पीड़ा देने के लिए; पाञा-पाकर; कृष्णेर लीला-कृष्ण की लीला; ना पाइनु देखिते-मैं उन्हें देख न सका।

अनुवाद

तुम लोग मुझे व्यर्थ की पीड़ा देकर यहाँ क्यों ले आये? मुझे कृष्ण की लीलाओं का दर्शन करने का अवसर मिला था, किन्तु मैं उन्हें देख न पाया।"

एत बलि' महाप्रभु करेन क्रन्दन ।

ताँर दशा देखि' वैष्णव करेन रोदन ॥ 112॥

एत बलि'-यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन क्रन्दन-रोने लगे; तर दशा-उनकी दशा; देखि'–देखकर; वैष्णव-वैष्णव; करेन रोदन-रोने लगे।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु रोने लगे। जब समस्त वैष्णवों ने उनकी यह दशा देखी, तो वे भी रोने लगे।

हेन-काले आइला पुरी, भारती,—दुइ-जन ।

दुँहे देखि' महाप्रभुर ह-इल सम्भ्रम ॥113॥

हेन-काले—उसी समय; आइला-आये; पुरी-परमानन्द पुरी; भारती–ब्रह्मानन्द भारती; दुइ-जन-दो जन; दुँह देखि'–दोनों को देखकर; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; ह-इल-हुआ; सम्भ्रम-आदर का भाव जायत ।

अनुवाद

उसी समय परमानन्द पुरी तथा ब्रह्मानन्द भारती आये। उन्हें देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु में कुछ-कुछ आदर का भाव जायत हुआ।

निपट्ट-बाह्य ह-इले प्रभु दुँहारे वन्दिला ।

महाप्रभुरे दुइ-जन प्रेमालिङ्गन कैला ॥114॥

निपट्ट-बाह्य-पूर्ण बाह्य चेतना; ह-इले-लौट आई तब; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः दुँहारे-उन दोनों की; वन्दिला-वन्दना की; महाप्रभुरे--श्री चैतन्य महाप्रभु; दुइ-जन-दोनों गुरुजनों ने प्रेम-आलिङ्गन कैला-स्नेहपूर्वक आलिंगन किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की पूर्ण बाह्य चेतना लौट आई और उन्होंने तुरन्त ही उन दोनों की वन्दना की। तब उन दोनों गुरुजनों ने स्नेहपूर्वक महाप्रभु का आलिंगन किया।

प्रभु कहे,'दुँहे केने आइला एत दूरे'? ।

पुरी-गोसाञि कहे,–'तोमार नृत्य देखिबारे' ॥ 115 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; दुँहे-आप दोनों से; केने-क्यों; आइला-आये; एत दूरे-इतने दूर; पुरी-गोसाञि कहे-पुरी गोस्वामी ने कहा; तोमार नृत्य-तुम्हारा नृत्य; देखिबारे-देखने।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुरी गोस्वामी तथा ब्रह्मानन्द भारती से कहा, आप दोनों इतनी दूर क्यों आये?" पुरी गोस्वामी ने उत्तर दिया, "तुम्हारा नृत्य देखने के लिए।"

लज्जित ह-इला प्रभु पुरीर वचने ।

समुद्र-घाट आइला सब वैष्णव-सने ॥116॥

लजित-लज्जित; ह-इला–हुए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पुरीर वचने-परमानन्द पुरी के शब्दों से; समुद्र-समुद्र की; घाट–स्नान करने की जगह; आइला–आये; सब वैष्णव-सने-समस्त वैष्णवों के साथ।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह सुना, तो वे कुछ लज्जित हुए। तब वे समस्त वैष्णवों के साथ समुद्र-स्नान करने गये।

स्नान करि' महाप्रभु घरेते आइला ।

सबा लञा महा-प्रसाद भोजन करिला ॥117॥

स्नान करि'-स्नान करने के बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; घरेते आइला–घर लौटे; सबा लञा-सब को अपने साथ लेकर; महा-प्रसाद-जगन्नाथजी का शेष प्रसाद; भोजन करिला–भोजन किया।

अनुवाद

समुद्र-स्नान के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त भक्तों के साथ अपने घर लौट आये। तब सबों ने जगन्नाथजी को अर्पित किये गये भोजन का शेष ग्रहण किया।

एइ त' कहिलुँ प्रभुर दिव्योन्माद-भाव ।

ब्रह्माओ कहिते नारे याहार प्रभाव ॥118॥

एइ त'-इस तरह; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; दिव्य-उन्माद-भाव-दिव्य उन्माद भावों का; ब्रह्माओ-ब्रह्माजी भी; कहते नारे-वर्णन नहीं कर सकते; याहार–जिसके; प्रभाव-प्रभाव का।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य उन्माद भावों का वर्णन किया है। यहाँ तक कि ब्रह्माजी भी उनके प्रभाव का वर्णन नहीं कर सकते।

'चटक'-गिरि-गमन-लीला रघुनाथ-दास ।

'गौराङ्ग-स्तव-कल्पवृक्षे' करियाछेन प्रकाश ॥ 119॥

चटक-गिरि–चकट पर्वत नाम का बालू का टीला; गमन-जाने की; लीला-लीला; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास गोस्वामी; गौराङ्ग-स्तव-कल्प-वृक्षे–गौराङ्ग स्तव कल्पवृक्ष नामक ग्रन्थ; करियाछेन प्रकाश-वर्णन किया है।

अनुवाद

रघुनाथ दास गोस्वामी ने अपनी पुस्तक 'गौराङ्ग स्तव कल्पवृक्ष' में चटक पर्वत नामक बालू के टीले की ओर भागने की श्री चैतन्य महाप्रभु की लीला का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है।

समीपे नीलाद्रेश्चटक-गिरि-राजस्य कलनाद्

अये गोष्ठे गोवर्धन-गिरि-पतिं लोकितुमितः ।

व्रजन्नस्मीत्युक्त्वा प्रमद इव धावन्नवधृतो

गणैः स्वैर्गौराङ्गड़ो हृदय उदयन्मां मदयति ॥120॥

समीपे-निकट; नीलाद्रेः-जगन्नाथ पुरी; चटक-चटक नामक; गिरि-राजस्य-बालू के टीलों का राजा; कलनात्-देखने पर; अये-ओह; गोष्ठे–गायों को चराने की जगह; गोवर्धन-गिरि-पतिम्-गोवर्धन, सारे पर्वतों का राजा; लोकितुम्-देखने के लिए; इतः–यहाँ से; व्रजन्–जाकर; अस्मि-मैं; इति इस प्रकार; उक्त्वा -कहने; प्रमदः-पागल की तरह; इव-जैसे; धावन्–दौड़े; अवधृतः-पीछे गये; गणैः-सभी भक्त; स्वैः-स्वयं; गौराङ्गः-श्री चैतन्य महाप्रभु; हृदये-हृदय में; उदयन्–उदय होता; माम्-मेरे; मदयति-उन्मत्त।

अनुवाद

"जगन्नाथ पुरी के निकट चटक पर्वत नामक एक विशाल बालू का टीला है। इस पर्वत को देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "ओह! मैं गोवर्धन पर्वत देखने के लिए व्रज भूमि

जाऊँगा!" तब वे उसकी ओर पागल की तरह दौड़ने लगे और सारे वैष्णव उनके पीछे दौड़े। यह दृश्य मेरे हृदय में उदित होता है और मुझे उन्मत्त बना देता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक गौराङ्ग स्तव कल्पवृक्ष (8) से उधृत हुआ है।

एबे प्रभु यत कैला अलौकिक-लीला ।

के वर्णिते पारे सेइ महाप्रभुर खेला? ॥121॥

एबे–अब; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यत-वह सभी; कैला–किया; अलौकिक-लीला-असामान्य लीला; के–कौन; वर्णिते पारे-वर्णन कर सकता है; सेइ-वे; महाप्रभुर खेला-श्री चैतन्य महाप्रभु के खेल।

अनुवाद

भला ऐसा कौन है, जो श्री चैतन्य महाप्रभु की समस्त असामान्य लीलाओं का सही-सही वर्णन कर सके? ये सब मात्र उनके खेल हैं।

सङ्क्षेपे कहिया करि दिक् दरशन ।

येइ इहा शुने, पाय कृष्णेर चरण ॥122॥

सङ्क्षेपे-संक्षिप्त में; कहिया–वर्णन किया; करि दिक् दरशन-मैंने संकेत करने के उद्देश्य से; येइ-जो कोई; इहा-यह; शुने–सुनेगा; पाय-पायेगा; कृष्णेर चरण-भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

मैंने उनकी दिव्य लीलाओं का संकेत करने के उद्देश्य से ही उनका संक्षिप्त वर्णन किया है। तो भी जो कोई उन्हें सुनेगा, वह निश्चित रूप से भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की शरण प्राप्त करेगा।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥123॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों की; यार-जिनको; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन किया; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए तथा उनके चरणचिह्नों पर चलकर, मैं कृष्णदास श्री चैतन्य चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्यलीला के अन्तर्गत श्री चैतन्य महाप्रभु का कृष्ण विरह-भाव शीर्षक चौदहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय पंद्रह

श्री चैतन्य महाप्रभु का दिव्य उन्माद

अन्त्यलीला के पन्द्रहवे अध्याय का सारांश इस प्रकार है। भगवान जगन्नाथ का उपलभोग उत्सव देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु को एक बार फिर भावावेश का अनुभव हुआ। जब उन्होंने समुद्र के तट पर स्थित उद्यान को देखा, तो पुनः उन्होंने सोचा कि वे वृन्दावन में हैं और जब उन्होंने विभिन्न लीलाओं में रत कृष्ण के बारे में सोचना प्रारम्भ किया, तो एक बार पुनः उन्हें दिव्य भावों न उत्तेजित कर दिया। रासनृत्य की रात को कृष्ण की अनुपस्थिति से दुःखित गोपियाँ कृष्ण को एक जंगल से दूसरे जंगल में ढूँढ़ती रहीं। श्री चैतन्य महाप्रभु गोपियों के सदृश ही दिव्य विचारों को ग्रहण करके भावावेश से पूरित हो उठे। स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने महाप्रभु के भावों के अनुकूल ही गीत गोविन्द का एक श्लोक सुनाया। तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने भावोदय, भावसन्धि तथा भाव-शाबल्य इत्यादि विकारों को प्रकट किया। महाप्रभु ने आठों प्रकार के सात्त्विक विकारों का अनुभव किया और उनका अत्यधिक आस्वादन किया।

दुर्गमे कृष्ण-भावाब्धौ निमग्नोन्मग्न-चेतसा ।

गौरेण हरिणा प्रेम-मर्यादा भूरि दर्शिता ॥1॥

दुर्गमे-समझना अत्यन्त कठिन; कृष्ण-भाव-अब्धौ-कृष्ण-प्रेम के सागर में; निमग्न-निमग्न; उन्मग्न-चेतसा–निमग्न हृदय; गौरेण-श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा; हरिणा-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा; प्रेम-मर्यादा-दिव्य प्रेम की उच्च अवस्था; भूरि-विभिन्न प्रकार से; दर्शिता–प्रदर्शित किया।

अनुवाद

ब्रह्माजी जैसे देवताओं के लिए भी कृष्ण के ऊर्मिपूर्ण प्रेम के सागर को समझ पाना कठिन है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी लीलाएँ सम्पन्न करके अपने आपको उस सागर में निमज्जित कर दिया और उनका हृदय उसी प्रेम में निमग्न हो गया। इस तरह उन्होंने कृष्ण के दिव्य प्रेम के उच्च पद को विविध प्रकार से प्रकट किया।

जय जय श्री कृष्ण-चैतन्य अधीश्वर ।

जय नित्यानन्द पूर्णानन्द-कलेवर ॥2॥

जय जय-जय जय; श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; अधीश्वर–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; जय-जय हो; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द की; पूर्ण-आनन्द–दिव्य आनन्द से पूरित; कलेवर–शरीर वाले।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य की जय हो! दिव्य आनन्द से पूरित शरीर वाले भगवान् नित्यानन्द की जय हो!

जयाद्वैताचार्य कृष्ण-चैतन्य-प्रियतम ।

जय श्रीवास-आदि प्रभुर भक्त-गण ॥ 3॥

जय-जय हो; अद्वैत-आचार्य-अद्वैत आचार्य की; कृष्ण-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु के; प्रिय-तम-अत्यन्त प्रिय; जय-जय हो; श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर आदि; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गण-भक्तों की।

अनुवाद

भगवान् चैतन्य के अत्यन्त प्रिय श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! तथा श्रीवास ठाकुर इत्यादि महाप्रभु के भक्तों की जय हो!

एइ-मत महाप्रभु रात्रि-दिवसे ।

आत्म-स्फूर्ति नाहि कृष्ण-भावावेशे ॥4॥

एइ-मत-इस तरह; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; रात्रि-दिवसे–रात और दिन; आत्म-स्फूर्ति नाहि-अपने आपको भूलकर; कृष्ण-भाव-आवेशे-कृष्ण के ऊर्मिपूर्ण प्रेम में निमग्न होकर।

अनुवाद

इस तरह कृष्ण-प्रेम रूपी सागर में निमग्न होने से श्री चैतन्य महाप्रभु दिन-रात अपने आपको भूले रहते।

कभु भावे मग्न, कभु अर्ध-बाह्य-स्फूर्ति ।

कभु बाह्य-स्फूर्ति,—तिन रीते प्रभु-स्थिति ॥5॥

कभु-कभी; भावे-भावाविष्ट; मग्न-मग्न; कभु-कभी; अर्ध-आधे; बाह्य-स्फूर्ति–बाह्य चेतना में; कभु-कभी; बाह्य-स्फूर्ति–पूर्ण बाह्य चेतना में; तिन रीते-तीन प्रकार से; प्रभु-स्थिति-स्थिति में भगवान्।

अनुवाद

महाप्रभु तीन प्रकार की चेतना में अपनी स्थिति बनाये रखते थे-कभी वे पूर्णतया भावाविष्ट हो जाते, कभी आधी बाह्य चेतना में होते, तो कभी पूर्ण बाह्य चेतना में होते।

स्नान, दर्शन, भोजन देह-स्वभावे हय ।

कुमारेर चाक येन सतत फिरय ॥ 6॥

स्नान-स्नान करके; दर्शन–मन्दिर में जाना; भोजन-भोजन करना; देह-स्वभावे-शरीर के स्वभाव से; हय-होते; कुमारेर चाक-कुम्हार की चाक; येन-जैसे; सतत-हमेशा; फिरय-घूमना।

अनुवाद

वस्तुतः श्री चैतन्य महाप्रभु सदैव भावावेश में निमग्न रहते थे, किन्तु जिस तरह कुम्हार को चाक बिना छुए ही चलता रहता है, उसी तरह महाप्रभु के शारीरिक कार्य यथा स्नान करना, जगन्नाथजी के मन्दिर में दर्शन के लिए जाना तथा भोजन करना स्वयं अपने आप होते रहते थे।

एक-दिन करेन प्रभु जगन्नाथ दरशन ।

जगन्नाथे देखे साक्षात्व्रजेन्द्र-नन्दन ॥7॥

एक-दिन-एक दिन; करेन-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जगन्नाथ भगवान् जगन्नाथ; दरशन-दर्शन; जगन्नाथे- भगवान जगन्नाथ; देखे-उन्होंने देखा; साक्षात्-साक्षात्; व्रजेन्द्र-नन्दन–महाराज नन्द के पुत्र।

अनुवाद

एक दिन जब श्री चैतन्य महाप्रभु मन्दिर में भगवान जगन्नाथ की ओर देख रहे थे, तब उन्हें जगन्नाथजी साक्षात् नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण प्रतीत हुए।

एक-बारे स्फुरे प्रभुर कृष्णेर पञ्च-गुण ।

पञ्च-गुणे करे पञ्चेन्द्रिय आकर्षण ॥8॥

एक-बारे–एक बार; स्फूरे-प्रकट हुए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; पञ्च-गुण–पाँच गुण; पञ्च-गुणे-पाँच गुण; करे-किया; पञ्च-इन्द्रिय-पाँच इन्द्रियाँ; आकर्षण-आकर्षण।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु को जगन्नाथ जी में स्वयं कृष्ण की अनुभूति हुई, तो महाप्रभु की पाँचों इन्द्रियाँ भगवान् कृष्ण के पाँच गुणों के आकर्षण में तुरन्त समा गईं।

तात्पर्य

श्रीकृष्ण के सौन्दर्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु की आँखों को आकृष्ट कर लिया। कृष्ण के गायन तथा उनकी वंशीध्वनि ने महाप्रभु के कानों को, कृष्ण के चरणकमलों की दिव्य सुगन्ध ने उनके नथुनों को, कृष्ण की मधुरता ने उनकी जीभ को तथा कृष्ण के शारीरिक स्पर्श ने महाप्रभु की स्पर्शेन्द्रिय को आकृष्ट

कर लिया। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु की पाँच इन्द्रियों में से हर इन्द्रिय भगवान् कृष्ण के पाँचों गुणों में से किसी एक से आकृष्ट हो गई।

एक-मन पञ्च-दिके पञ्च-गुण टाने ।

टानाटानि प्रभुर मन हैल अगेयाने ॥9॥

एक-मन-एक मन; पञ्च-दिके–पाँच दिशाओं में; पञ्च-गुण–पाँच गुण; टाने-आकर्षित; टानाटानि-रस्साकसी में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मन-मन; हैल-हुआ; अगेयाने-अचेत।

अनुवाद

श्री चैतन्य महापभु का एक मन भगवान् कृष्ण के पाँच दिव्य गुणों से पाँच दिशाओं में उसी तरह आकर्षित हो रहा था, जिस तरह रस्साकसी में होता है। अतएव महाप्रभु अचेत हो गये।

हेन-काले ईश्वरेर उपल-भोग सरिल ।

भक्त-गण महाप्रभुरे घरे लञा आइल ॥10॥

हेन-काले—उसी समय; ईश्वरेर-भगवान जगन्नाथ का; उपल-भोग–उपलभोग उत्सव; सरिल-समाप्त हुआ; भक्त-गण-भक्तगण; महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; घरे-घर; लञा आइल-ले आये।

अनुवाद

उसी समय भगवान् जगन्नाथ का उपलभोग उत्सव समाप्त हुआ और जो भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ मन्दिर गये थे, वे उन्हें घर लौटा ले आये।

स्वरूप, रामानन्द,–एइ दुइ-जन लञा ।

विलाप करेन दुँहार कण्ठेते धरिया ॥ 11॥

स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; रामानन्द-रामानन्द राय; एइ दुइ-जन-यह दो जन; लञा-साथ; विलाप करेन-विलाप करते; दुँहार-दोनों के; कण्ठेते-गले; धरिया-पकड़ लिया।

अनुवाद

उस रात श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रामानन्द राय रहे। महाप्रभु उन दोनों के गले में हाथ डालकर विलाप करने लगे।

कृष्णेर वियोगे राधार उत्कण्ठित मन ।

विशाखारे कहे आपन उत्कण्ठा-कारण ॥12॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; वियोगे-महान् वियोग से; राधार–श्रीमती राधारानी ने; उत्कण्ठित-अत्यधिक व्याकुल; मन-मन से; विशाखारे-विशाखा से; कहे-कहा; आपन-अपना; उत्कण्ठा-कारण-उत्कण्ठा का कारण।

अनुवाद

जब श्रीमती राधारानी कृष्ण के महान् वियोग से अत्यधिक व्याकुल हो गईं, तब उन्होंने विशाखा से अपनी महान् चिन्ता तथा व्याकुलता का कारण बतलाने वाला एक श्लोक कहा।

सेइ श्लोक पड़ि' आपने करे मनस्ताप ।

श्लोकेर अर्थ शुनाय दुँहारे करिया विलाप ॥13॥

सेइ श्लोक-उसी श्लोक को; पड़ि'–पढ़कर; आपने-स्वयं; करे-किया; मनः-ताप-मन के संताप भाव को व्यक्त; श्लोकेर-इस श्लोक का; अर्थ-अर्थ; शुनाय-व्याख्या सुनाई; दुँहारे-दोनों को; करिया विलाप–विलाप करते हुए।

अनुवाद

उसी श्लोक को सुनाकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने मन के संताप भाव को व्यक्त किया। तब उन्होंने अत्यन्त विलाप करते हुए स्वरूप दामोदर तथा रामानन्द राय को उस श्लोक की व्याख्या सुनाई।

सौन्दर्यामृत-सिन्धु-भङ्ग ललना-चित्ताद्रि-सम्प्लावकः

कर्णानन्द-सनर्म-रम्य-वचनः कोटीन्दु-शीताङ्गकः ।

सौरभ्यामृत-सम्प्लवावृत-जगत्पीयूष-रम्याधरः

श्री-गोपेन्द्र-सुतः स कर्षति बलात्पञ्चेन्द्रियाण्यालि मे ॥14॥

सौन्दर्य-उनका सौंदर्य; अमृत-सिन्धु-अमृत सागर की; भङ्ग-लहरों से; ललना-स्त्रीयों का; चित्त-हृदय; अद्रि–पहाड़ियाँ; सम्प्लावकः-आप्लावित; कर्ण–कानों से; आनन्दि-आनन्द प्रदान करते हुए; स-नर्म-आनन्द से; रम्य-सुन्दर; वचनः-जिसका आवाज; कोटि-इन्दु-करोड़ों चन्द्रमाओं से; शीत-अधिक शीतल; अङ्गकः-जिनका शरीर; सौरभ्य-उनकी सुगन्ध; अमृत-अमृत का; सम्प्लव-आप्लावित; आवृत ढक दिया; जगत्-समग्र जगत्; पीयूष-अमृत; रम्य-सुन्दर; अधरः-जिनके होंठ; श्री-गोप-इन्द्र-नन्द महाराज के; सुतः-पुत्र; सः-वे; कर्षति–आकर्षित करते हैं; बलात्-बलपूर्वक; पञ्च-इन्द्रियाणि–पाँचों इन्द्रियों को; आलि-हे सखी; मे–मेरी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा : "यद्यपि गोपियों के हृदय ऊँची पहाड़ियों के सदृश हैं, किन्तु वे कृष्ण के सौन्दर्य रूपी अमृत-सागर की लहरों से आप्लावित हैं। उनकी मधुर वाणी उनके कानों में प्रविष्ट होकर उन्हें दिव्य आनन्द प्रदान करती है। उनके शरीर का स्पर्श करोड़ों चन्द्रमाओं से भी अधिक शीतल है और उनकी शारीरिक सुगन्ध का अमृत सम्पूर्ण जगत् को

आप्लावित करता है। हे सखी, वे कृष्ण, जो नन्द महाराज के पुत्र हैं और जिनके होंठ अमृत तुल्य हैं, मेरी पाँचों इन्द्रियों को बलपूर्वक खींच रहे हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील कृष्णदास कविराज कृत गोविन्दलीलामृत (8.3) में पाया जाता है।

कृष्ण-रूप-शब्द-स्पर्श, सौरभ्य-अधर-रस,

यार माधुर्य कहन ना याय ।

देखि लोभे पञ्च-जन, एक अश्व–मोर मन,

चड़ि' पञ्च पाँच-दिके धाय ॥ 15 ॥

कृष्ण भगवान् कृष्ण का; रूप-सौन्दर्य; शब्द-शब्द; स्पर्श-स्पर्श; सौरभ्य-सुगन्ध; अधर-अधरों (होठों) का; रस–स्वाद; यार–जिनकी; माधुर्य–मधुरता; कहन-वर्णन करना; ना याय—सम्भव नहीं है; देखि'–देखना; लोभे-लोभ में; पञ्च-जन–पाँच जन; एक-एक; अश्व-घोड़ा; मोर-मेरा; मन-मन; चड़ि-चढ़ जाना; पञ्च–सभी पाँच; पाँच-दिके-पाँच दिशाओं में; धाय-दौड़ते हैं।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण का सौन्दर्य, उनके शब्दों की ध्वनि तथा उनकी वंशी की ध्वनि, उनका स्पर्श, उनकी सुगन्ध तथा उनके अधरों का स्वाद-ये सब अवर्णनीय मधुरता से ओतप्रोत हैं। जब ये सारे गुण मेरी पाँचों इन्द्रियों को एकाएक आकृष्ट करते हैं, तो मेरी सारी इन्द्रियाँ मेरे मन रूपी अकेले घोड़े पर एक साथ चढ़ जाती हैं, किन्तु वे पाँच विभिन्न दिशाओं में जाना चाहती हैं।

सखि हे, शुन मोर दुःखेर कारण

मोर पञ्चेन्द्रिय-गण, महा-लम्पट दस्यु-गण, ।

सबे कहे,—हर' पर-धन ॥16॥

सखि-सखी; हे-हे; शुन-कृपया सुनो; मोर-मेरे; दुःखेर कारण-दुःख का कारण; मोर-मेरे; पञ्च-इन्द्रिय-गण-पाँच इन्द्रियों का बोध; महा-बहुत; लम्पट–असंयमी; दस्यु-गण-धूर्त; सबे कहे-सब कहते हैं; हर'-लूटते हैं; पर-धन-दूसरों की सम्पत्ति।

अनुवाद

हे सखी, मेरे दुःख का कारण सुनो। मेरी पाँचों इन्द्रियाँ वस्तुतः असंयमी धूर्त हैं। वे भलीभाँति जानती हैं कि कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, किन्तु तो भी वे कृष्ण की सम्पत्ति का हरण करना चाहती हैं।

एक अश्व एक-क्षणे, पाँच पाँच दिके टाने,

एक मन कोन्दिके याय? ।

एक-काले सबै टाने, गेल घोड़ार पराणे,

एइ दुःख सहन ना याय ॥17॥

एक-एक; अश्व-घोड़ा; एक-क्षणे-एक समय पर; पाँच–पाँच व्यक्ति; पाँच दिके–पाँच दिशाओं में; टाने-खींचती हैं; एक-एक; मन-मन; कोन् दिके-किस दिशा में; याय-जायेगा; एक-काले–एक समय; सबे-सब; टाने-खींचते हैं; गेल-जायेंगे; घोड़ार–घोड़े का; पराणे-जीवन; एइ–यह; दुःख–दुःख; सहन-सहन करना; ना याय-सम्भव नहीं है।

अनुवाद

“मेरा मन उस अकेले घोड़े के समान है, जिस पर दृष्टि इत्यादि पाँच इन्द्रियाँ आरूढ़ हैं। हर इन्द्रिय उस घोड़े पर आरूढ़ होना चाहती है। इस तरह वे मन को एक साथ पाँच दिशाओं में खींचती हैं। तो यह किस दिशा में जायेगा? यदि वे सब इकट्ठी खींचती हैं, तो बेचारा घोड़ा निश्चित रूप से अपने प्राण त्याग देगा। भला मैं इस क्रूरता को कैसे सह सकती हूँ?

इन्द्रिये ना करि रोष, इँहा-सबार काहाँ दोष,

कृष्ण-रूपादिर महा आकर्षण ।

रूपादि पाँच पाँचे टाने, गेल घोड़ार पराणे,

मोर देहे ना रहे जीवन ॥ 18॥

इन्द्रिये-इन्द्रियों पर; ना-नहीं; करि रोष-मैं क्रोध कर सकती; इँहा-सबार-उन सबका; काहाँ-कहाँ; दोष-दोष; कृष्ण-रूप-आदिर-भगवान् कृष्ण के सौन्दर्य, शब्द, स्पर्श, सुगन्ध इत्यादि; महा-महान्; आकर्षण-आकर्षण; रूप-आदि-सौन्दर्य इत्यादि; पाँच-पाँच; पाँचे-पाँच इन्द्रियाँ; टाने-खींचती है; गेल-चली जाती है; घोड़ार–घोड़े का; पराणे-जीवन; मोर-मेरे; देहे-देह में; ना-नहीं; रहे-रहता; जीवन-जीवन।

अनुवाद

"हे सखी, यदि तुम कहो कि ‘अपनी इन्द्रियों को वश में करने का प्रयास करो' तो मैं क्या कहूँ? मैं अपनी इन्द्रियों पर रुष्ट नहीं हो सकती। क्या यह उनका दोष है? कृष्ण का सौन्दर्य, शब्द, स्पर्श, सुगन्ध तथा स्वाद स्वभावतः अत्यधिक आकर्षक हैं। ये पाँचों गुण मेरी इन्द्रियों को आकृष्ट कर रहे हैं और इनमें से हर एक मेरे मन को अलग-अलग दिशा में खींच ले जाना चाहता है। इस प्रकार मेरे मन का प्राण महान् संकट में है, जिस तरह किसी घोड़े पर बैठकर पाँच दिशाओं में एक साथ जाने का प्रयास किया जाय। इस तरह मैं भी मृत्यु के संकट में हूँ।

कृष्ण-रूपामृत-सिन्धु, ताहार तरङ्ग-बिन्दु,

एक-बिन्दु जगत् डुबाय ।

त्रिजगते यत नारी, तार चित्त-उच्च-गिरि,

ताहा डुबाइ आगे उठि' धाय ॥19॥

कृष्ण-रूप-कृष्ण का दिव्य रूप; अमृत-सिन्धु-अमृत का महासागर; ताहार-उसका; तरङ्ग-बिन्दु-लहर का बिन्दु; एक-बिन्दु-एक बिन्दु; जगत्-सम्पूर्ण जगत्; डुबाय-आप्लावित हो सकता है; त्रि-जगते–तीनों लोकों में; यत नारी-सारी स्त्रियाँ; तार चित्त-उनकी चेतना; उच्च-गिरि-ऊँचे पर्वत; ताहा–वह; डुबाइ–डुबाकर; आगे-आगे; उठि'–उठकर; धाय-दौड़ती है।

अनुवाद

"तीनों लोकों में प्रत्येक स्त्री की चेतना निश्चित रूप से एक ऊँचे पर्वत की तरह है, किन्तु कृष्ण की सौन्दर्य-माधुरी समुद्र के तुल्य है। उस समुद्र की एक बूंद भी सम्पूर्ण जगत् को आप्लावित कर सकती है और चेतना के सारे ऊँचे पर्वतों को जलमग्न कर सकती है।

कृष्णेर वचन-माधुरी, नाना-रस-नर्म-धारी,

तार अन्याय कथन ना याय ।

जगतेर नारीर काणे, माधुरी-गुणे बान्धि' टाने,

टानाटानि काणेर प्राण याय ॥ 20॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; वचन-माधुरी-वचनों की मधुरता; नाना-नाना; रस-नर्म-धारी-परिहास के शब्दों से पूर्ण; तार-उसके; अन्याय-अन्याय; कथन-वर्णन; ना याय नहीं किया जा सकता; जगतेर–जगत् का; नारीर-स्त्रियों का; काणे-कान में; माधुरी-गुणे-मधुरता का गुण; बान्धि'–बाँधकर; टाने-खींचता है; टानाटानि- खींचातानी; काणेर-कान का; प्राण याय-प्राण जाता है।

अनुवाद

कृष्ण के परिहासपूर्ण वचनों की मधुरता सारी स्त्रियों के हृदयों का अवर्णनीय ध्वंस करती है। उनके शब्द स्त्रियों के कानों को उनके माधुर्य के साथ बाँध लेते हैं। इस तरह की खींचातानी के कारण कान का प्राण चला जाता है।

कृष्ण-अङ्ग सुशीतल, कि कहिमु तार बल,

छटाय जिने कोटीन्दु-चन्दन ।

सशैल नारीर वक्ष, ताहा आकर्षिते दक्ष,

आकर्षये नारी-गण-मन ॥21॥

कृष्ण-अङ्ग-कृष्ण का शरीर; सु-शीतल-अत्यन्त शीतल; कि कहिमु-मैं क्या कहूँ; तार-उसका; बल-बल; छटाय–किरणों से; जिने–मात करता है; कोटि-इन्दु-करोड़ों चन्द्रमाओं; चन्दन–चन्दन लेप; स-शैल-उन्नत पर्वतों जैसे; नारीर-स्त्रियों के; वक्ष-स्तनों को; ताहा-वह; आकर्षिते-आकृष्ट करने के लिए; दक्ष-अत्यन्त दक्ष; आकर्षये-आकृष्ट करता है; नारी-गण-मन-समस्त स्त्रियों के मनों को।

अनुवाद

"कृष्ण का दिव्य शरीर इतना शीतल है कि उसकी उपमा चन्दन-लेप से या करोड़ों चन्द्रमाओं से भी नहीं दी जा सकती। यह समस्त स्त्रियों के उन्नत पर्वतों जैसे स्तनों को दक्षतापूर्वक आकृष्ट करता है। निस्सन्देह, कृष्ण का दिव्य शरीर तीनों लोकों की समस्त स्त्रियों के मनों को आकृष्ट करता है।

कृष्णाङ्ग–सौरभ्य-भर, मृग-मद-मद-हर,

नीलोत्पलेर हरे गर्व-धन ।

जगत् नारीर नासा, तार भितर पाते वासा,

नारी-गणे करे आकर्षण ॥ 22॥

कृष्ण-अङ्ग-कृष्ण के शरीर की; सौरभ्य-भर-सुगन्ध से परिपूर्ण; मृग-मद–कस्तूरी से; मद-हर-अधिक मादक; नीलोत्पलेर-नीलकमल; हरे-हर लेती है; गर्व-धन-गर्व रूपी धन को; जगत्-नारीर-समस्त जगत् की स्त्रियों के; नासा-नथुनों; तार भितर-के भीतर; पाते वासा–निवासस्थान बनाकर; नारी-गणे-स्त्रियाँ; करे आकर्षण-आकृष्ट करती है।

अनुवाद

"कृष्ण के शरीर की सुगन्ध कस्तूरी की सुगन्ध से भी अधिक मादक है और यह नीलकमल की सुगन्ध का भी अतिक्रमण करने वाली है। यह संसार की समस्त स्त्रियों के नथुनों में प्रवेश करती है और वहीं अपना निवासस्थान बनाकर उन्हें आकृष्ट करती रहती है।

कृष्णेर अधरामृत, ताते कर्पूर मन्द-स्मित,

स्व-माधुर्ये हरे नारीर मन।

अन्यत्र छाड़ाय लोभ, ना पाइले मने क्षोभ,

व्रज-नारी-गणेर मूल-धन" ॥ 23 ॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; अधर-अमृत-होठों की मधुरता; ताते-उसके साथ; कर्पूर-कपूर; मन्द-स्मित-मन्द हास; स्व-माधुर्ये—उनकी मधुरता से; हरे-आकृष्ट करते हैं; नारीर मन-समस्त स्त्रियों के मन; अन्यत्र-अन्य कहीं; छाड़ाय-नष्ट कर देते हैं; लोभ-लोभ; ना पाइले–नहीं मिल पाती; मने-मन में; क्षोभ-बड़ा क्षोभ; व्रज-नारी-गणेर-वृन्दावन की सभी गोपियों का; मूल-धन-धन।

अनुवाद

“कृष्ण के होंठ इतने मधुर हैं कि जब उनमें उनके मन्द हास का कपूर मिल जाता है, तब वे समस्त स्त्रियों के मनों को आकृष्ट करते हैं और उन्हें बाध्य कर देते हैं कि वे अन्य सारे आकर्षणों का परित्याग कर दें। यदि कृष्ण की मन्दहास रूपी मधुरता नहीं मिल पाती, तो इससे महान् मानसिक कठिनाइयाँ तथा शोक उत्पन्न होता है। यह मधुरता ही वृन्दावन की गोपियों का एकमात्र धन है।”

एत कहि' गौरहरि, दुइ-जनार कण्ठ धरि’,

कहे,— 'शुन, स्वरूप-रामराय ।

काहाँ करों, काहाँ याङ काहाँ गेले कृष्ण पाङ

दुँहे मोरे कह से उपाय’ ॥24॥

एत कहि-यह कहकर; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु; दुइ-जनार-दोनों के; कण्ठ धरि’-गले लगकर; कहे-कहा; शुन–कृपया सुनो; स्वरूप-राम-राय-स्वरूप दामोदर तथा रामानन्द राय; काहाँ करों-मैं क्या करूँ; काहाँ याङ–मैं कहाँ जाऊँ; काहाँ गेले-कहाँ गये; कृष्ण पाङ–मैं कृष्ण को पा सकुँ; दुँहे तुम दोनों; मोरे-मुझे; कह-कहो; से उपाय-ऐसा उपाय।

अनुवाद

इस तरह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर के गले लग गये। फिर महाप्रभु ने कहा, “हे मित्रों, कृपया मेरी बात सुनो। मैं क्या करूँ? मैं कहाँ जाऊँ? कृष्ण को पाने के लिए कहाँ जा सकता हूँ? तुम दोनों मुझे बताओ कि मैं उनको कैसे पा सकता हूँ।”

एइ-मत गौर-प्रभु प्रति दिने-दिने ।

विलाप करेन स्वरूप-रामानन्द-सने ॥ 25॥

एइ-मत-इस तरह; गौर-प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रति दिने-दिने प्रति दिन; विलाप करेन-विलाप करते; स्वरूप-रामानन्द-सने–स्वरूप दामोदर गोस्वामी और रामानन्द राय के संग में।

अनुवाद

इस तरह दिव्य पीड़ा में निमग्न श्री चैतन्य महाप्रभु दिन प्रति दिन स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रामानन्द राय की गोष्ठी में विलाप करते।

सेइ दुइ-जन प्रभुरे करे आश्वासन ।

स्वरूप गाय, राय करे श्लोक पठन ॥ 26 ॥

सेइ-वे; दुइ-जन-दोनों जन; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; करे-करते; आश्वासन-आश्वस्त; स्वरूप गाय-स्वरूप दामोदर गाते; राय-रामानन्द राय; करे-करते; श्लोक पठन–श्लोकों का पठन।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी उपयुक्त गीत गाते और रामानन्द राय उपयुक्त श्लोक सुनाते, जिससे महाप्रभु का आनन्द वर्धित होता रहे। इस तरह वे उन्हें सान्त्वना दे पाते।

कर्णामृत, विद्यापति, श्री-गीत-गोविन्द ।

इहार श्लोक-गीते प्रभुर कराय आनन्द ॥ 27॥

कर्णामृत-कर्णामृत नामक ग्रन्थ; विद्यापति विद्यापति नामक ग्रन्थकार; श्री-गीत-गोविन्द-जयदेव गोस्वामी कृत श्री गीत गोविन्द ग्रन्थ; इहार–इनके; श्लोक-गीते-श्लोक और गीत; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कराय-करते; आनन्द-आनन्दित।

अनुवाद

महाप्रभु बिल्वमंगल ठाकुर कृत कृष्णकर्णामृत, विद्यापति की कविता तथा जयदेव गोस्वामी कृत श्री गीतगोविन्द को विशेष रूप से सुनना पसन्द करते थे। जब श्री चैतन्य महाप्रभु के साथी इन पुस्तकों से श्लोक सुनाते और गीत गाते, तब महाप्रभु अत्यधिक आनन्दित होते।

एक-दिन महाप्रभु समुद्र-तीरे याइते ।

पुष्पेर उद्यान तथा देखेन आचम्बिते ॥28॥

एक-दिन-एक दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; समुद्र-तीरे-समुद्र के किनारे; याइते-जाते समय; पुष्पेर उद्यान-पुष्पवाटिका; तथा—वहाँ; देखेन-देखी; आचम्बिते-अचानक।

अनुवाद

एक दिन समुद्र के किनारे जाते समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने अचानक एक पुष्पवाटिका देखी।

वृन्दावन-भ्रमे ताहाँ पशिला धाञा ।

प्रेमावेशे बुले ताहाँ कृष्ण अन्वेषिया ॥29॥

वृन्दावन-भ्रमे-उसे वृन्दावन समझकर; ताहाँ-वहाँ; पशिला–प्रवेश किया; धाञा-भागकर; प्रेम-आवेशे-कृष्ण के प्रेम में मग्न होकर; बुले-घूमते; ताहाँ-वहाँ; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अन्वेषिया–को खोजते हुए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस पुष्पवाटिका को वृन्दावन समझ लिया और वे तेजी से उसमें प्रवेश कर गये। कृष्ण-प्रेम में मग्न होकर वे पुष्पवाटिका में घूमते रहे और कृष्ण को खोजते रहे।

रासे राधा लञा कृष्ण अन्तर्धान कैला ।

पाछे सखी-गण यैछे चाहि' बेड़ाइला ॥ 30॥

रासे–रास नृत्य में; राधा-श्रीमती राधारानी; लञा–लेकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अन्तर्धान कैला-अदृश्य हो गये; पाछे-फिर से; सखी-गण-सारी गोपियाँ; यैछे-ऐसे ही; चाहि'-देखकर; बेड़ाइला-घूमते रहे।

अनुवाद

जब रास नृत्य के समय कृष्ण राधारानी को लेकर अदृश्य हो गये, तब गोपियाँ उन्हें ढूँढ़ती हुईं जंगल में घूमने लगीं। उसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु उस पुष्पवाटिका में घूमते रहे।

सेइ भावावेशे प्रभु प्रति-तरु-लता ।

श्लोक पड़ि' पड़ि' चाहि' बुले यथा तथा ॥31॥

सेइ-वह; भाव-आवेशे-भाव में मग्न होकर; प्रभु-भगवान् चैतन्य महाप्रभु; प्रति-तरु-लता-हर वृक्ष और लता; श्लोक पड़ि' पड़ि'–श्लोक सुना सुनाकर; चाहि'–पूछते हुए; बुले-घूमने लगे; यथा तथा—यहाँ और वहाँ।

अनुवाद

गोपियों के भाव में मग्न होकर श्री चैतन्य महाप्रभु इधर-उधर घूमने लगे। वे सारे वृक्षों तथा लताओं से श्लोक सुना सुनाकर कृष्ण के विषय में पूछने लगे।

तात्पर्य

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत से निम्नलिखित तीन श्लोक उद्धृत किये (10.30.9, 7, 8)।

चूत-प्रियाल-पनसासन-कोविदार-

जम्ब्वर्क-बिल्व-बकुलाम्र-कदम्ब-नीपाः ।

येऽन्ये परार्थ-भवका यमुनोपकूलाः

शंसन्तु कृष्ण-पदवीं रहितात्मनां नः ॥ 32॥

चूत-हे चूत वृक्ष (आम का एक प्रकार); प्रियाल–हे प्रियाल वृक्ष; पनस-हे पनस वृक्ष; आसन-हे आसन वृक्ष; कोविदार-हे कोविदार वृक्ष; जम्बु-हे जम्बु वृक्ष; अर्क-हे अर्क वृक्ष; बिल्व-हे बेल फल के वृक्ष; बकुल–हे बकुल वृक्ष; आम्र–हे आम वृक्ष; कदम्ब-हे कदम्ब वृक्ष; नीपाः-हे नीप वृक्ष; ये-जो; अन्ये-अन्य; पर-अर्थ-भवकाः-अन्यों के लिए अत्यन्त लाभदायी; यमुना-उपकूलाः-यमुना के तट पर; शंसन्तु–कृपया कहो; कृष्ण-पदवीम् कृष्ण कहाँ गये; रहित-आत्मनाम्-जो अपना मन खो चुकी हैं; नः-हम।

अनुवाद

"[गोपियों ने कहा :], 'हे चूत वृक्ष, प्रियाल, पनस, आसन तथा कोविदार वृक्षों, हे जंबु वृक्ष, हे अर्क वृक्ष, हे बेल, बकुल तथा आम, हे कदम्ब, हे नीप तथा अन्यों का कल्याण करने वाले यमुना तट पर खड़े अन्य वृक्षों, कृपा करके हमें बता दो कि कृष्ण कहाँ गये हैं? हम अपने मन को खो चुकी हैं और मृतप्राय हैं।

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्द-चरण-प्रिये ।

सह त्वालि-कुलैर्बिभ्रद्दृष्टस्तेऽति-प्रियोऽच्युतः ॥ 33 ॥

कच्चित्-या; तुलसि-हे तुलसी वृक्ष; कल्याणि-सर्वमंगलकारी; गोविन्द-चरण-गोविन्द के चरणकमलों को; प्रिये-अत्यन्त प्रिय; सह–साथ; त्वा-तुमने; अलि-कुलैः-भौरों के झुंड से; बिभ्रत्-युक्त; दृष्टः–देखा हुआ; ते-तुमने; अति-प्रियः-अत्यन्त प्रिय; अच्युतः-भगवान् कृष्ण।

अनुवाद

“हे सर्वमंगल तुलसी वृक्ष, तुम गोविन्द के चरणकमलों को अत्यन्त प्रिय हो और वे तुम्हें अत्यन्त प्रिय हैं। क्या तुमने अपने पत्रों की माला पहने और भौरों के झुंड से घिरे कृष्ण को यहाँ जाते हुए देखा है?

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके।

प्रीतिं वो जनयन् यातः कर-स्पर्शेन माधवः ॥ 34॥

मालति-हे मालती पुष्पों के वृक्ष; अदर्शि—देखा हुआ; वः-तुमने; कच्चित्-क्या; मल्लिके-हे मल्लिका फूलों के वृक्ष; जाति-हे जाति फूलों के वृक्ष; यूथिके-हे यूथिका फूलों के वृक्ष; प्रीतिम्-आनन्दित करने; वः–तुम्हारा; जनयन्—करने; ग्रातः-इधर से जाते; कर-स्पर्शेन-अपने हाथों से स्पर्श करते; माधवः-श्रीकृष्ण।

अनुवाद

“हे मालती, मल्लिका, जाती तथा यूथिका पुष्पों के वृक्षों, क्या तुमने कृष्ण को अपने हाथों से तुम्हें आनन्दित करने के लिए तुम्हारा स्पर्श करते हुए इधर से जाते देखा है?”

आम्र, पनस, पियाल, जम्बु, कोविदार।

तीर्थ-वासी सबे, कर पर-उपकार ॥ 35॥

आम्र–हे आम के वृक्ष; पनस-हे पनस वृक्ष; पियाल–हे पियाल वृक्ष; जम्बु-हे जम्बु वृक्ष; कोविदार–हे कोविदार वृक्ष; तीर्थ-वासी–तीर्थ स्थान के निवासी; सबे-सब; कर-कृपया करो; पर-उपकार-अन्यों का कल्याण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "हे आम के वृक्ष, हे कटहल के वृक्ष, हे पियाल, जम्बु तथा कोविदार वृक्षों, तुम सभी तीर्थ स्थान के निवासी हो। इसलिए तुम कृपया अन्यों के कल्याण हेतु कार्य करो।

कृष्ण तोमार इहाँ आइला, पाइला दरशन? ।

कृष्णेर उद्देश कहि' राखह जीवन ॥ 36॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तोमार-तुम्हारे; इहाँ–यहाँ; आइला–आये; पाइला दरशन-तुमने देखा; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के उद्देश-किस दिशा से; कहि'–कहो; राखह जीवन-हमारे प्राण बचा लो।

अनुवाद

"क्या तुमने कृष्ण को इधर आते देखा है? कृपा करके हमें बतला दो कि वे किधर से गये हैं और हमारे प्राण बचा लो।"

उत्तर ना पाञा पुनः करे अनुमान ।

एइ सब–पुरुष-जाति, कृष्णेर सखार समान ॥ 37॥

उत्तर-उत्तर; ना-नहीं; पाञा-पाया; पुनः-पुनः; करे-किया; अनुमान–अनुमान; एइ सब-ये सब; पुरुष-जाति-पुरुष जाति; कृष्णेर-कृष्ण के; सखार समान-अच्छे मित्र॥

अनुवाद

जब वृक्षों ने उत्तर नहीं दिया, तो गोपियों ने अनुमान लगाया, "चूंकि ये सारे वृक्ष पुरुष जाति के हैं, अतएव अवश्य ही ये कृष्ण के मित्र होंगे।

ए केने कहिबे कृष्णेर उद्देश आमाय? ।

ए—स्त्री-जाति लता, आमार सखी-प्राय ॥ 38॥

ए-ये; केने-क्यों; कहिबे–कहेंगे; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; उद्देश-दिशा की ओर; आमाय-हमें; ए-ये; स्त्री-जाति-स्त्री जाति की; लता-लता; आमार-हमारी; सखी-प्राय–सखियों जैसी।

अनुवाद

"भला ये वृक्ष हमें क्यों बताने लगे कि कृष्ण कहाँ गये हैं? चलो इन लताओं से क्यों न पूछे; ये स्त्री जाति की हैं और ये हमारी सखियों जैसी हैं।

अवश्य कहिबे,—पाञाछे कृष्णेर दर्शने।

एत अनुमानि' पुछे तुलस्यादि-गणे ॥39॥

अवश्य-अवश्य; कहिबे-बतलायेंगी; पाछे—उन्होंने पाया है; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; दर्शने-दर्शन; एत—यह; अनुमानि'-अनमान लगाकर; पुछे-पूछा; तुलसी-आदि-गणे—तुलसी आदि वृक्षों तथा लताओं से।

अनुवाद

"ये हमें अवश्य बतलायेंगी कि कृष्ण कहाँ गये हैं, क्योंकि उन्हें इन्होंने स्वयं देखा है। इस तरह अनुमान लगाते हुए गोपियों ने तुलसी आदि वृक्षों तथा लताओं से पूछा।

"तुलसि, मालति, यूथि, माधवि, मल्लिके।

तोमार प्रिय कृष्ण आइला तोमार अन्तिके? ॥40॥

तुलसि-हे तुलसी; मालति-हे मालती; यूथि-हे यूथी; माधवि-हे माधवी; मल्लिके-हे मल्लिका; तोमार-तुम्हारे; प्रिय-अत्यन्त प्रिय; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; आइला–आये; तोमार अन्तिके--तुम्हारे पास।

अनुवाद

“हे तुलसी! हे मालती! हे यूथी, माधवी तथा मल्लिका! तुम सबों को कृष्ण अत्यन्त प्रिय हैं, अतएव वे तुम्हारे पास अवश्य आये होंगे।

तुमि-सब—हओ आमार सखीर समान ।

कृष्णोद्देश कहि' सबे राखह पराण" ॥41॥

तुमि-सब-तुम सभी; हओ-हो; आमार-हमारी; सखीर-सखियों के; समान-समान; कृष्ण-उद्देश-कृष्ण किधर गये; कहि'–कहो; सबे-तुम सब; राखह पराण-हमारे प्राणों की रक्षा करो।

अनुवाद

“तुम सभी हमारी सखियों के समान हो। कृपा करके हमें बताओ कि कृष्ण किधर गये हैं और हमारे प्राणों की रक्षा करो।”

उत्तर ना पाञा पुनः भावेन अन्तरे ।

'एह—कृष्ण-दासी, भये ना कहे आमारे ॥42॥

उत्तर-उत्तर; ना-नहीं; पाञा-पाकर; पुनः–पुनः; भावेन–सोचा; अन्तरे-मन में; एह-ये; कृष्ण-दासी-कृष्ण की दासियाँ; भये-भयवश; ना कहे-नहीं कहेंगी; आमारे-हमें।

अनुवाद

इतने पर भी जब उन्हें उत्तर नहीं मिला, तो गोपियों ने सोचा, “ये सारी लताएँ कृष्ण की दासियाँ हैं और भयवश ये हमें नहीं बतलायेंगी।”

आगे मृगी-गण देखि’ कृष्णाङ्ग-गन्ध पाञा ।

तार मुख देखि’ पुछेन निर्णय करिया ॥43॥

आगे-आगे; मृगी-गण-मृगियों; देखि'–देखकर; कृष्ण-अङ्ग-गन्ध-कृष्ण के शरीर की सुगन्ध; पाञा-पाकर; तार मुख-मृगियों के मुखों को; देखि'–देखकर; पुछेन-पूछा; निर्णय करिया–निश्चित किया।

अनुवाद

"तब गोपियों ने मृगियों को देखा। कृष्ण के शरीर की सुगन्ध पाकर तथा मृगियों के मुखों को देखकर, गोपियों ने यह निश्चित करने के लिए कि क्या कृष्ण पास में ही हैं, उनसे पूछा।

अप्येण-पत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्

तन्वन्दृशां सखि सु-निवृतिमच्युतो वः ।

कान्ताङ्ग-सङ्ग-कुच-कुङ्कम-रञ्जितायाः

कुन्द-स्रजः कुल-पतेरिह वाति गन्धः ॥44॥

अपि-क्या; एण-पत्नि-हे मृगी; उपगतः-आये हैं; प्रियया-अपनी प्रेयसी के साथ; इह-यहाँ; गात्रैः-अपने अंगों के द्वारा; तन्वन्-वर्धित करते हुए; दृशाम्-अपनी आँखों से ; सखि-हे प्रिय सखी; सु-निवृतिम्-आनन्दित; अच्युतः-कृष्ण; वः-तुम सबों ने; कान्ता-अङ्ग–प्रिया के अंग; सङ्ग-का संग; कुच-कुङ्कम-स्तनों पर लगा कुंकुम चूर्ण; रञ्जितायाः-रंजित; कुन्द-स्रजः–कुन्द फूलों की माला; कुल-पतेःकृष्ण के; इह-यहाँ; वाति-बहना; गन्धः-सुगन्ध।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे मृगी, भगवान् कृष्ण अपनी प्रेयसी का आलिंगन कर रहे थे, जिससे उसके उठे हुए स्तनों पर लगा कुंकुम कुन्द फूलों की उनकी माला पर चिपक गया है। उस माला की सुगन्ध यहाँ बह रही है। हे प्रिय सखी, क्या तुमने कृष्ण को अपनी

सर्वप्रिय संगिनी के साथ इस ओर से जाते और तुम सबों की आँखों के आनन्द को वर्धित करते देखा है?'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.30.11) से उधृत है।

"कह, मृग, राधा-सह श्री कृष्ण सर्वथा ।

तोमाय सुख दिते आइला? नाहिक अन्यथा ॥ 45 ॥

कह-कृपया कहो; मृगि-हे मृगी; राधा-सह-श्रीमती राधारानी के संग; श्री-कृष्ण-भगवान् श्रीकृष्ण; सर्वथा--सर्व प्रकार से; तोमाय-तुम्हें; सुख दिते-आनन्दित करने के लिए; आइला--आये होंगे; नाहिक अन्यथा-अवश्य ही।

अनुवाद

"हे मृगी, श्रीकृष्ण तुम्हें आनन्दित करने में सदैव प्रसन्न रहते हैं। कृपा करके हमें बताओ कि क्या वे श्रीमती राधारानी के साथ इधर से निकले हैं? हम सोचती हैं कि वे अवश्य ही इधर आये होंगे।

राधा-प्रिय-सखी आमरा, नहि बहिरङ्ग ।

दूर हैते जानि तार यैछे अङ्ग-गन्ध ॥ 46॥

राधा-श्रीमती राधारानी की; प्रिय-सखी-प्रिय सखियाँ; आमरा-हम; नहि बहिरङ्ग-बाहरी नहीं हैं; दूर हैते-दूर से ही; जानि-हम जानती हैं; तार-भगवान् कृष्ण के; यैछे-जैसे; अङ्ग-गन्ध-शारीरिक गन्ध को।

अनुवाद

“हम कोई बाहरी स्त्रियाँ नहीं हैं। श्रीमती राधारानी की प्रिय सखियाँ होने के कारण हम दूर से ही कृष्ण की शारीरिक गन्ध को जान सकती हैं।

राधा-अङ्ग-सङ्गे कुच-कुङ्कुम-भूषित ।

कृष्ण-कुन्द-माला-गन्धे वायु–सुवासित ॥47॥

राधा-अङ्ग–श्रीमती राधारानी का शरीर; सङ्गे-आलिंगन से; कुच-कुङ्कम-वक्षस्थलों में लगा कुंकुम चूर्ण; भूषित–सुशोभित; कृष्ण-भगवान् श्रीकृष्ण को; कुन्द-माला-कुन्द की फुलों की माला की; गन्धे-सुगन्ध; वायु–वायु को; सु-वासित सुवासित।

अनुवाद

“कृष्ण द्वारा श्रीमती राधा का आलिंगन करने से उनके वक्षस्थलों में लगा कुंकुम चूर्ण कृष्ण के शरीर को सुशोभित करने वाली कुन्द-माला में लग गया है। उस माला की सुगन्ध ने पूरे वायुमण्डल को सुगन्धित बना दिया है।

कृष्ण इहाँ छाड़ि’ गेला, इहों—विरहिणी ।

किबा उत्तर दिबे एइ–ना शुने काहिनी" ॥48॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; इहाँ–यहाँ; छाड़ि’ गेला–छोड़ दिया; इहों-मृगी; विरहिणी-विरह का अनुभव करते हुए; किबा-क्या; उत्तर–उत्तर; दिबे-उन्होंने दिया; एइये; ना शुने-नहीं सुनो; काहिनी–हमारे शब्द।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण ने यह स्थान छोड़ दिया है, इसीलिए मृगियाँ विरह का अनुभव कर रही हैं। वे हमारे शब्द नहीं सुन रहीं, अतएव वे उत्तर दें तो कैसे दें?”

आगे वृक्ष-गण देखे पुष्प-फल-भरे ।

शाखा सब पड़ियाछे पृथिवी-उपरे ॥49॥

आगे-आगे; वृक्ष-गण-वृक्ष; देखे-देखे; पुष्प-फल-भरे-फूलों और फलों से लदी होने के कारण; शाखा सब-सभी शाखाएँ; पड़ियाछे-झुक गईं; पृथिवी-उपरे-पृथ्वी पर।

अनुवाद

"तब गोपियाँ अनेक वृक्षों के पास आईं, जिनकी शाखाएँ फलों तथा फूलों से लदी होने के कारण भूमि पर झुक गईं थीं।

कृष्णे देखि' एइ सब करेन नमस्कार ।

कृष्ण-गमन पुछे तारे करिया निर्धार ॥50॥

कृष्णे देखि'–कृष्ण को देखकर; एइ-ये; सब-सब; करेन नमस्कार–सादर नमस्कार करते हुए; कृष्ण-गमन-कृष्ण को जाते हुए; पुछे-पूछा; तारे–उनसे; करिया निर्धार-निश्चित करने के लिए।

अनुवाद

"गोपियों ने सोचा कि चूंकि इन सारे वृक्षों ने कृष्ण को अपने पास से जाते हुए देखा होगा, इसलिए वे उन्हें सादर नमस्कार कर रहे हैं। निश्चित करने के उद्देश्य से उन्होंने वृक्षों से पूछा।

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीत-पद्मो

रामानुजस्तुलसिकालि-कुलैर्मदान्धैः ।

अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणाम

किं वाभिनन्दति चरन्प्रणयावलोकैः ॥51॥

बाहुम्-बाहु; प्रिया-अंसे-अपनी प्रेयसी के कन्धे पर; उपधाय-रखकर; गृहीत-पकड़े हुए; पद्मः–कमल फूल; राम-अनुजः-बलराम के छोटे भाई (कृष्ण);तुलसिका-तुसली के फूलों की माला के कारण; अलि-कुलैः-भौरों से; मद-अन्धैः-सुगन्ध से अन्धे; अन्वीयमानः-पीछा किये जाते; इह-यहाँ; वः—तुम्हारे; तरवः-हे वृक्षों; प्रणामम्-प्रणाम; किम् वा-अथवा; अभिनन्दति-स्वागत किया; चरन्-जाते हुए; प्रणय-अवलोकैः-प्रेममयी चितवन से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "हे वृक्षों, कृपा करके हमें बतलाओ कि क्या बलराम के छोटे भाई कृष्ण ने इधर से जाते हुए, श्रीमती राधारानी के कन्धे पर अपना एक हाथ रखे तथा दूसरे हाथ में कमल लिए हुए तथा तुलसी दलों की सुगन्ध से उन्मत्त भौरों के दल से पीछा किये जाते हुए, तुम्हारे प्रणाम का स्वागत प्रेममयी चितवन से किया है?'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.30.12) से लिया गया है।

प्रिया-मुखे भृङ्ग पड़े, ताहा निवारिते ।

लीला-पद्म चालाइते हैल अन्य-चित्ते ॥52॥

प्रिया-मुखे-प्रिया के मुख पर; भृङ्ग-भौरों को; पड़े-बैठने से; ताहा-वह; निवारिते-रोकने के लिए; लीला-लीला; पद्म-कमल पुष्प; चालाइते-चलायमान; हैल–था; अन्य-चित्ते–मन विचलित हुआ।

अनुवाद

"अपनी प्रिया के मुख पर भौरों को बैठने से रोकने के लिए उन्होंने अपने हाथ में लिए कमलफूल से उन्हें भगा दिया और इस तरह उनका मन कुछ चलायमान हुआ।

तोमार प्रणामे कि कैराछेन अवधान? ।

किबा नाहि करेन, कह वचन-प्रमाण ॥53॥

तोमार-तुमने; प्रणामे-नमस्कार किया; कि-क्या; कैराछेन–दिया है; अवधान-ध्यान; किबा-या; नाहि करेन-नहीं दिया; कह-कृपया बोलो; वचन–शब्द; प्रमाण-साक्ष्य।

अनुवाद

"जब तुम लोगों ने उन्हें नमस्कार किया, तो उन्होंने उस पर ध्यान दिया कि नहीं? कृपा करके अपने शब्दों के लिए साक्ष्य दो।

कृष्णेर वियोगे एइ सेवक दुःखित ।

किबा उत्तर दिले? इहार नाहिक सम्वित्" ॥54॥

कृष्णेर वियोगे-कृष्ण के वियोग से; एइ-ये; सेवक-सेवक; दुःखित-अत्यन्त दु:खी; किबा-क्या; उत्तर–उत्तर; दिबे-वे देंगे; इहार–इनकी; नाहिक-नहीं है; सम्वित्-चेतना।

अनुवाद

“कृष्ण के वियोग ने इन सेवकों को अत्यन्त दु:खी बना दिया है। अपनी चेतना खोकर भला ये हमें किस तरह उत्तर दे सकते हैं?”

एत बलि' आगे चले यमुनार कूले ।

देखे,—ताहाँ कृष्ण हय कदम्बेर तले ॥55॥

एत बलि'-यह कहकर; आगे चले–अग्रसर हुई; यमुनार कूले-यमुना नदी के तट की ओर; देखे-उन्होंने देखा; ताहाँ-वहाँ; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; हय-उपस्थित हैं; कदम्बेर तले-कदम्ब वृक्ष के नीचे।

अनुवाद

यह कहकर गोपियाँ यमुना नदी के तट की ओर अग्रसर हुईं। वहाँ पर उन्होंने कृष्ण को एक कदम्ब वृक्ष के नीचे देखा।

कोटि-मन्मथ-मोहन मुरली-वदन ।

अपार सौन्दर्ये हरे जगन्नेत्र-मन ॥56॥

कोटि-करोड़ों; मन्मथ-कामदेवों को; मोहन-मोहिने वाले; मुरली-वदन-होठों पर रखी वंशी से; अपार-अपार; सौन्दर्ये-सुन्दरता से; हरे-आकृष्ट करते हैं; जगत्-समस्त जगत् की; नेत्र-मन-आँखों और मनों को।

अनुवाद

वहाँ पर खड़े अपने होठों पर वंशी रखे हुए, करोड़ों कामदेवों को मोहित करने वाले कृष्ण अपनी असीम सुन्दरता से समस्त जगत् की आँखों तथा मनों को आकृष्ट कर रहे थे।

सौन्दर्य देखिया भूमे पड़े मूर्च्छा पाञा ।

हेन-काले स्वरूपादि मिलिला आसिया ॥57॥

सौन्दर्य-सौन्दर्य; देखिया-देखकर; भूमे-भूमि पर; पड़े-गिर पड़े; मूर्च्छ पाञा-अचेत होकर; हेन-काले—उस समय; स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी आदि भक्तगण; मिलिला आसिया-वहाँ आये और मिले।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् की दिव्य सुन्दरता देखी, तो वे अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े। उस समय स्वरूप दामोदर गोस्वामी इत्यादि सारे भक्तगण उस पुष्पवाटिका में उनके पास आ गये।

पूर्ववत्सर्वाङ्गे सात्त्विक-भाव-सकल ।

अन्तरे आनन्द-आस्वाद, बाहिरे विह्वल ॥58॥

पूर्व-वत्-पहले की ही तरह; सर्व-अङ्गे-सम्पूर्ण शरीर में; सात्त्विक–दिव्य; भाव-सकल-प्रेमावेश के लक्षणों को; अन्तरे-भीतर से; आनन्द-आस्वाद-दिव्य आनन्द का आस्वादन; बाहिरे—बाहर से; विह्वल-विह्वल।

अनुवाद

उन्होंने पहले की ही तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में दिव्य प्रेमावेश के लक्षणों को प्रकट देखा। यद्यपि वे बाहर से विह्वल लग रहे थे, किन्तु भीतर से वे दिव्य आनन्द का आस्वादन कर रहे थे।

पूर्ववत्सबे मिलि' कराइला चेतन ।

उठिया चौदिके प्रभु करेन दर्शन ॥59॥

पूर्व-वत्-पहले की ही तरह; सबे-सारे; मिलि'-साथ मिलकर; कराइला चेतन-चेतना लाई; उठिया-उठकर; चौ-दिके-चारों ओर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन दर्शन-देखने लगे।

अनुवाद

एक बार फिर सारे भक्तों ने मिलकर प्रयासपूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु को फिर से सचेत किया। तब महाप्रभु उठे और चारों ओर देखते हुए इधर-उधर घूमने लगे।

"काहाँ गेला कृष्ण? एखनि पाइनु दरशन! ।

ताँहार सौन्दर्य मोर हरिल नेत्र-मन! ॥60॥

काहाँ–कहाँ; गेला कृष्ण-कृष्ण चले गये; एखनि-अभी-अभी; पाइनु दरशन-मैंने देखा; ताँहार-उनका; सौन्दर्य-सौन्दर्य; मोर-मेरे; हरिल-हर लिये; नेत्र-मन-आँख और मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मेरे कृष्ण कहाँ चले गये हैं? मैंने उन्हें अभी देखा था और उनके सौन्दर्य ने मेरे नेत्रों तथा मन को हर लिया है।

पुनः केने ना देखिये मुरली-वदन! ।

ताँहार दर्शन-लोभे भ्रमय नयन" ॥61॥

पुनः पुनः; केने-क्यों; ना देखिये-मैं नहीं देखता हूँ; मुरली-वदन-होठों पर मुरली रखे; ताँहार–उनको; दर्शन-लोभे-देखने की आशा से; भ्रमय-घूम रही; नयन-मेरी आँखें।

अनुवाद

"मैं कृष्ण को उनके होठों पर मुरली रखे पुनः क्यों नहीं देख पा रहा हूँ? मेरी आँखें उन्हें एक बार पुनः देखने की आशा से इधर-उधर घूम रही हैं ।

विशाखारे राधा यैछे श्लोक कहिला ।

सेइ श्लोक महाप्रभु पड़िते लागिला ॥ 62॥

विशाखारे-विशाखा से; राधा-श्रीमती राधारानी; शैछे-जैसे; श्लोक कहिला-श्लोक कहा; सेइ-वह; श्लोक-श्लोक; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पड़िते लागिला-पढ़ना शुरू किया।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने निम्नलिखित श्लोक सुनाया, जिसे श्रीमती राधारानी ने अपनी प्रिय सखी विशाखा से कहा था।

नवाम्बुद-लसद्द्युतिर्नव-तड़िमनोज्ञाम्बरः

सुचित्र-मुरली-स्फुरच्छरदमन्द-चन्द्राननः ।

मयूर-दल-भूषितः सुभग-तार-हार-प्रभः

स मे मदन-मोहनः सखि तनोति नेत्र-स्पृहाम् ॥ 63 ॥

नव-अम्बुद-नवनिर्मित बादल; लसत्-तेजोमय; द्युतिः–जिसकी आभा; नव-नवीन; तड़ित्–बिजली से; मनोज्ञ-आकर्षक; अम्बरः-जिनके वस्त्र; सु-चित्र-अत्यन्त मनोहर; मुरली-मुरली के साथ; स्फुरत्-सुन्दर लगने वाला; शरत्-शरद ऋतु; अमन्द-चमकीला; चन्द्र–चन्द्रमा के समान; आननः-जिनका मुखमण्डल; मयूर-मोर; दल-पंख के साथ; भूषितः-सुशोभित; सु-भग–सुहावना; तार-मोतियों की; हार–गले की माला; प्रभः-आभा से; सः-वे; मे-मेरा; मदन-मोहनः-भगवान् कृष्ण, कामदेव को मोहित करने वाले; सखि हे प्रिय सखी; तनोति-बढ़ाते हैं; नेत्र-स्पृहाम्-आँखों की इच्छाएँ।

अनुवाद

"हे प्रिय सखी, कृष्ण के शरीर की द्युति नवनिर्मित बादल से भी अधिक तेजोमय है और उनका पीताम्बर प्रकट होने वाली नवीन बिजली से अधिक आकर्षक है। उनके सिर पर मोरपंख सुशोभित है और उनके गले में मोतियों की चमकीली माला लटक रही है। ज्योंही वे अपने होठों पर मनोहर मुरली धारण करते हैं, उनका मुखमण्डल पूर्ण शरत्कालीन चन्द्रमा के समान सुन्दर लगता है। ऐसे सौन्दर्य से युक्त कामदेव को मोहित करने वाले मदनमोहन उनके दर्शनार्थ मेरी आँखों की इच्छाओं को बढ़ा रहे हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक गोविन्दलीलामृत (8.4) में भी आया है।

नव-घन-स्निग्ध-वर्ण, दलिताञ्जन-चिक्कण,

इन्दीवर-निन्दि सुकोमल ।

जिनि' उपमान-गण, हरे सबार नेत्र-मन,

कृष्ण-कान्ति परम प्रबल ॥ 64॥

नव-घन-नवनिर्मित बादल; स्निग्ध-आकर्षक; वर्ण–शरीर का रंग; दलित-चूर्ण किया हुआ; अञ्जन-अंजन; चिक्कण-चमकीला; इन्दीवर–नीलकमल; निन्दि-से अधिक; सु-कोमल-कोमल; जिनि'–पार कर जाता है; उपमान-गण-सारी उपमाओं को; हरे-आकृष्ट करता है; सबार–सारे; नेत्र-मन-नेत्र और मन; कृष्ण-कान्ति-कृष्ण का रंग; परम प्रबल-अति श्रेष्ठ।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "श्रीकृष्ण का रंग चूर्ण किये हुए अंजन की भाँति चमकीला है। यह नवनिर्मित बादल की शोभा को अतिक्रमण करने वाला है और नीले कमल से भी अधिक कोमल है। निस्सन्देह, उनका रंग इतना मोहक है कि यह हर एक के नेत्रों तथा मन को आकृष्ट करता है और इतना प्रबल है कि सारी उपमाओं को पार कर जाता है।

कह, सखि, कि करि उपाय?

कृष्णाद्भुत बलाहक, मोर नेत्र-चातक, ।

ना देखि' पियासे मरि' याय ॥65॥

कह-कृपया कहो; सखि-हे प्रिय सखी; कि करि उपाय-मैं क्या करूँ; कृष्ण-कृष्ण; अद्भुत-अद्भुत; बलाहक-बादल; मोर–मेरी; नेत्र-आँखें; चातक–चातक पक्षी की तरह; ना देखि'–ना देखे; पियासे-प्यास से; मरि' याय-मरूँगा।

अनुवाद

“हे प्रिय सखी, मुझे बताओ कि मैं क्या करूँ? कृष्ण अद्भुत बादल के समान आकर्षक हैं और मेरी आँखें चातक पक्षी के समान हैं, जो प्यास के मारे मर रही हैं, क्योंकि वे ऐसा बादल नहीं देख पा रहीं।

सौदामिनी पीताम्बर, स्थिर नहे निरन्तर,

मुक्ता-हार बक-पाँति भाल ।

इन्द्र-धनु शिखि-पाखा, उपरे दियाछे देखा,

आर धनु वैजयन्ती-माल ॥66॥

सौदामिनी-बिजली; पीत-अम्बर-पीताम्बर; स्थिर-स्थिर; नहे-नहीं है; निरन्तर-सदैव; मुक्ता-हार-मोती की माला; बक-पाँति भाल-बगुलों की पंक्ति जैसी; इन्द्र-धनु-इन्द्रधनुष; शिखि-पाखा–मोर पंख; उपरे–सिर पर; दियाछे देखा-दिखता है; आर धनु-अन्य इन्द्रधनुष; वैजयन्ती-माल-वैजयन्ती माला।

अनुवाद

"कृष्ण का पीताम्बर आकाश में चंचल बिजली के समान प्रतीत होता है और उनके गले की मोती की माला बादल के नीचे उड़ रही बगुलों की पंक्ति जैसी प्रतीत होती है। उनके सिर का मोर पंख तथा उनकी वैजयन्ती माला (पाँच रंग के फूलों वाली) इन्द्रधनुषों के समान लगती है।

मुरलीर कल-ध्वनि, मधुर गर्जन शुनि’,

वृन्दावने नाचे मयूर-चय ।

अकलङ्क पूर्ण-कल, लावण्य-ज्योत्स्ना झलमल,

चित्र-चन्द्रेर ताहाते उदय ॥ 67॥

मुरलीर-मुरली की; कल-ध्वनि-धीमी कम्पन; मधुर-मधुर; गर्जन-गरजते हुए; शुनि–सुनकर; वृन्दावने-वृन्दावन के सारे; नाचे-नृत्य; मयूर-चय–मोर; अकलङ्क-निष्कलंक; पूर्ण-कल–पूर्ण चन्द्रमा; लावण्य-सौन्दर्य; ज्योत्स्ना-प्रकाश; झलमल-चमकती; चित्र-चन्द्रेर—सुन्दर चन्द्रमा के; ताहाते-उसमें; उदय-उठना।

अनुवाद

"कृष्ण के शरीर की कान्ति नवोदित निष्कलंक पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर है और उनकी वंशी की ध्वनि नवनिर्मित बादल की मधुर गर्जना के समान है। जब वृन्दावन के मोर उस ध्वनि को सुनते हैं, तो वे नृत्य करने लगते हैं।

लीलामृत-वरिषणे, सिञ्चे चौद्द भुवने,

हेन मेघ यबे देखा दिल ।

दुर्दैव-झञ्झा-पवने, मेघे निल अन्य-स्थाने,

मरे चातक, पिते ना पाइल ॥ 68॥

लीला-कृष्ण की लीलाएँ; अमृत-अमृत; वरिषणे-अमृतवर्षा; सिञ्चे-सिक्त कर रहे हैं; चौद्द भुवने-चौदहों लोकों को; हेन मेघऐसा बादल; यबे-जब; देखा दिल-देख लिया; दुर्दैव-दुर्भाग्यवश; झञ्झा-पवने-हवा का झोंका; मेघे-बादल; निल-लाया; अन्य-स्थाने-अन्य जगह; मरे–मृतप्राय; चातक–चातक पक्षी; पिते ना पाइल-पी न सका।

अनुवाद

"कृष्ण-लीलाओं का बादल अपनी अमृतवर्षा से चौदहों लोकों को सिक्त कर रहा है। दुर्भाग्यवश जब वह बादल प्रकट हुआ, तो हवा का एक प्रबल झोंका आया जो उसे मुझसे दूर उड़ा ले गया। उस बादल को न देख पाकर मेरे चकोर रूपी नेत्र प्यास से मृतप्राय हो गये हैं।"

पुनः कहे,–'हाय हाय, पड़ पड़ राम-रय',

कहे प्रभु गद्गद आख्याने।

रामानन्द पड़े श्लोक, शुनि' प्रभुर हर्ष-शोक,

आपने प्रभु करेन व्याख्याने ॥69॥

पुनः पुनः; कहे-कहा; हाय हाय-हाय, हाय; पड़ पड़-पढ़ते रहो; राम-राय-रामानन्द राय; कहे-कहा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गद्गद आख्याने–अवरुद्ध वाणी में; रामानन्द-रामानन्द राय; पड़े-पढ़ो; श्लोक-श्लोक; शुनि'–सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; हर्ष-शोक-हर्षित और शोकसंतप्त; आपने–स्वयं ही; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन व्याख्याने व्याख्या करने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अवरुद्ध वाणी से पुनः कहा, "हाय, हाय, रामराय, तुम पढ़ते रहो।" इस तरह रामानन्द राय एक श्लोक पढ़ने लगे। इस श्लोक को सुनते हुए महाप्रभु कभी अत्यधिक हर्षित होते, तो कभी शोकसंतप्त हो जाते। बाद में महाप्रभु ने स्वयं ही इस श्लोक की व्याख्या की।

वीक्ष्यालकावृत-मुखं तव कुण्डल-श्री-

गण्ड-स्थलाधर-सुधं हसितावलोकम्।

दत्ताभयं च भुज-दण्ड-युगं विलोक्य

वक्षः श्रियैक-रमणं च भवाम दास्यः ॥ 70 ॥

वीक्ष्य-देखकर; अलक-आवृत-चुंघराले बालों से सुशोभित; मुखम् मुख; तव-आपके; कुण्डल-श्री-कुण्डलों की शोभा; गण्ड-स्थल-आपके गाल पर लटकते; अधर-सुधम्-आपके होठों के अमृत को;

हसित-अवलोकम्-आपकी हँसी की (चितवन) चमक; दत्त-अभयम्-अभय प्रदान करनेवाली; च-और; भुज-दण्ड-युगम्-दोनों भुजाओं को; विलोक्य-देखकर; वक्षः-वक्ष; श्रिया-के सौन्दर्य से; एक-रमणम्-दाम्पत्य का आकर्षण उत्पन्न करनेवाले; च-और; भवाम-हम हो गई हैं; दास्यः-आपकी दासी।

अनुवाद

"हे कृष्ण, धुंघराले बालों से सुशोभित आपके सुन्दर मुख को, आपके गाल पर लटकते कुण्डलों की शोभा को, आपके होठों के अमृत को, आपकी हँसीली चितवनों के सौन्दर्य को, अभय प्रदान करनेवाली आपकी दोनों भुजाओं को तथा दाम्पत्य का आकर्षण उत्पन्न करनेवाला आपके चौड़े वक्षस्थल के सौन्दर्य को देखकर हमने आपकी दासी बनने के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.29.39) से है, जिसे गोपियों ने रास नृत्य के समय कृष्ण के पास आने पर कहा था।

कृष्ण जिनि' पद्म-चान्द, पातियाछे मुख फान्द,

ताते अधर-मधु-स्मित चार।

व्रज-नारी आसि' आसि', फान्दे पड़ि' हय दासी,

छाड़ि' लाज-पति-घर-द्वार ॥71॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; जिनि-जीतने के पर; पद्म-चान्द-कमल फूल और चन्द्रमा; पातियाछे–फैलाया; मुख-मुख; फान्द-फन्दे को; ताते-उसमें; अधर-होंठ; मधु-स्मित-मधुर हँसी; चार–चारा; व्रज-नारी-व्रज की नारियाँ; आसि' आसि'-आकर; फान्दे–फन्दे में; पड़ि'—पड़ने के लिए; हय दासी–दासियाँ बन गई; छाड़ि'–छोड़कर; लाज–प्रतिष्ठा; पति-पति; घर-घर; द्वार–परिवार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "चन्द्रमा तथा कमल को जीत लेने के बाद कृष्ण ने मृगी समान गोपियों को पकड़ना चाहा। इसलिए उन्होंने अपने सुन्दर मुख रूपी फन्दे को फैला दिया और गोपियों को फँसाने के लिए उसमें अपनी मधुर हँसी का चारा रख दिया। गोपियाँ उस फन्दे की शिकार बन गईं और अपने घर, परिवार, पति तथा प्रतिष्ठा को त्यागकर कृष्ण की दासियाँ बन गईं।

बान्धव कृष्ण करे व्याधेर आचार

नाहि माने धर्माधर्म, हरे नारी-मृगी-मर्म, ।

करे नाना उपाय ताहार ॥72॥

बान्धव-हे सखी; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करे-किया; व्याधेर आचार–शिकारी जैसा आचरण; नाहि-नहीं; माने-परवाह करते; धर्म-अधर्म-धर्म और अधर्म; हरे-आकर्षित करते हैं; नारी-स्त्री के; मृगी-मृगी; मर्म-हृदय को; करे-किया; नाना-नाना प्रकार की; उपाय-युक्तियाँ; ताहार—उस प्रयोजन के लिए।

अनुवाद

हे सखी, कृष्ण एक शिकारी जैसा ही आचरण करते हैं। यह शिकारी पुण्य या पाप की परवाह नहीं करता। वह मृगी सदृश गोपियों के अन्तरतम को जीतने के लिए नाना प्रकार की युक्तियाँ अपनाता है।

गण्ड-स्थल झलमल, नाचे मकर-कुण्डल,

सेइ नृत्ये हरे नारी-चय ।

सस्मित कटाक्ष-बाणे, ता-सबार हृदये हाने,

नारी-वधे नाहि किछु भय ॥73॥

गण्ड-स्थल–गालों पर; झलमल-चमकते; नाचे नृत्य करते; मकर-कुण्डल-मकर के आकार के कुण्डल; सेइ-वह; नृत्ये-नृत्य करते; हरे-आकर्षित करते; नारी-चय-सारी स्त्रियाँ; स-स्मित-मधुर मुस्कान; कटाक्ष-चितवन के; बाणे-बाणों से; ता-सबार-सभी के; हृदये-हृदय को; हाने–बेधकर; नारी-वधे-स्त्रियों का वध; नाहि-नहीं; किछु-करते हुए; भय–भय।

अनुवाद

"कृष्ण के गालों पर नृत्य करते कुण्डल मकर के आकार के हैं और वे बहुत उज्जवल प्रकाश से चमकते हैं। ये नृत्य करते कुण्डल सारी स्त्रियों के मनों को आकर्षित करते हैं। इसके अतिरिक्त कृष्ण अपनी मधुर मुस्कान भरी चितवन के बाणों से स्त्रियों के हृदयों को बेध देते हैं। इस तरह से स्त्रियों का वध करते हुए वे तनिक भी भयभीत नहीं होते।

अति उच्च सुविस्तार, लक्ष्मी-श्रीवत्स-अलङ्कार,

कृष्णेर ये डाकातिया वक्ष ।

व्रज-देवी लक्ष लक्ष, ता-सबार मनो-वक्ष,

हरि-दासी करिबारे दक्ष ॥74॥

अति-अधिक; उच्च-उच्च; सु-विस्तार-चौड़ा; लक्ष्मी-श्रीवत्स-भगवान् के वक्षस्थल की दाई ओर चाँदी के बालों का चिह्न, लक्ष्मी के निवास का सूचक; अलङ्कार-आभूषण; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; ये-वह; डाकातिया-लुटेरों जैसा; वक्ष–वक्षस्थल; व्रज-देवी-व्रज की सुन्दरियाँ; लक्ष लक्ष-लाखों; ता-सबार–वे सब; मनः-वक्ष-मन और वक्षस्थल; हरि-दासी–भगवान् की दासियाँ; करिबारे–बनाने में; दक्ष-दक्ष।

अनुवाद

“कृष्ण के वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न जैसे आभूषण हैं, जो लक्ष्मी के निवास का सूचक चिह्न है। उनका वक्षस्थल, जो लुटेरों के वक्षस्थल जैसा चौड़ा है, लाखों व्रजबालाओं के मनों तथा वक्षस्थलों को बलात् आकृष्ट करता है। इस तरह वे सब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दासियाँ बन जाती हैं।

सुललित दीर्घार्गल, कृष्णेर भुज-युगल,

भुज नहे,—कृष्ण-सर्प-काय ।

दुइ शैल-छिद्रे पैशे, नारीर हृदये दंशे,

मरे नारी से विष-ज्वालाय ॥75 ॥

सु-ललित-अत्यन्त सुन्दर; दीर्घ-अर्गल-लम्बी जंजीरों; कृष्णेर-कृष्ण की; भुज-युगल-दोनों भुजाएँ; भुज-भुजाएँ; नहे–नहीं; कृष्ण-काले; सर्प-सर्पो के; काय—शरीर से; दुई–दो; शैल-छिद्रे-दो पर्वतों के बीच की जगह; पैशे-प्रवेश; नारीर-स्त्रियों के; हृदये-हृदय में; दंशे–डस; मरे–मर जाती है; नारी-स्त्री; से—वह; विष-ज्वालाय–विष की अगन से।

अनुवाद

“कृष्ण की दोनों सुन्दर भुजाएँ लम्बी जंजीरों (पाश) के समान हैं। वे उन काले सर्यों के शरीर से भी मिलती जुलती हैं, जो स्त्रियों के दो पर्वताकार-स्तनों के बीच की सन्धि में प्रवेश करके उनके हृदयों को डस लेते हैं। तब स्त्रियाँ विष की अगन से मर जाती हैं।

तात्पर्य

दूसरे शब्दों में, गोपियाँ कामवासना से अत्यन्त उत्तेजित हो उठती हैं। वे कृष्ण की सुन्दर बाहों रूपी काले सर्पो के डसने से उत्पन्न विष से जल रही हैं।

कृष्ण-कर-पद-तल, कोटि-चन्द्र-सुशीतल,

जिनि' कर्पूर-वेणा-मूल-चन्दन ।

एक-बार यार स्पर्शे, स्मर-ज्वाला-विष नाशे,

यार स्पर्शे लुब्ध नारी-मन ॥76 ॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; कर-पद-तल-हथेलियाँ और पैरों के तलवे; कोटि-चन्द्र-करोड़ों चन्द्रमाओं; सु-शीतल-शीतल और मनभावन; जिनि'–मात करती है; कर्पूर-कपूर; वेणा-मूल-खसखस की जड़ें; चन्दन–चन्दन लेप; एक-बार-एक बार; यार–जिसके; स्प-स्पर्श से; स्मर-ज्वाला—कामवासना की ज्वाला; विष-विषविष; नाशे-नष्ट हो जाता है; यार—जिसके; स्पर्श-स्पर्श से; लुब्ध-लुभा जाना, बहक जाना; नारी-मन-स्त्रियों का मन।

अनुवाद

"कपूर, खसखस की जड़ें तथा चन्दन इन तीनों के सम्मिलित शीतलकारी प्रभाव को कृष्ण की हथेलियों की तथा उनके पैरों के तलवों की शीतलता अतिक्रमण कर जाती है, क्योंकि ये करोड़ों चन्द्रमाओं से भी अधिक शीतल तथा मनभावन हैं। यदि स्त्रियों को इनका एक बार भी स्पर्श हो जाता है, तो उनके मन बहक जाते हैं और कृष्ण के लिए कामेच्छा की विष ज्वाला तुरन्त दूर हो जाती है।"

एतेक विलाप करि' प्रेमावेशे गौरहरि,

एइ अर्थे पड़े एक श्लोक ।

सेइ श्लोक पड़ि' राधा, विशाखारे कहे बाधा,

उघाड़िया हृदयेर शोक ॥ 77॥

एतेक-ऐसा; विलाप करि'–विलाप करते; प्रेम-आवेशे-कृष्ण के प्रेमावेश में; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु; एइ अर्थे—आशय समझने में; पड़े-पढ़ा; एक श्लोक-एक श्लोक; सेइ श्लोक-यह श्लोक; पड़ि'–

पढ़कर; राधा-श्रीमती राधारानी; विशाखारे-विशाखा को; कहे-कहा; बाधाबाधा; उघाड़िया-प्रकट किया; हृदयेर–हृदय का; शोक-शोक।

अनुवाद

प्रेमावेश में विलाप करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने तब निम्नलिखित श्लोक सुनाया, जिसे श्रीमती राधारानी ने अपनी सखी श्रीमती विशाखा से अपने हृदय का शोक प्रकट करने के लिए कहा था।

हरिमणि-कवाटिका-प्रतत-हारि-वक्षः-स्थलः

स्मरार्त-तरुणी-मनः-कलुष-हारि-दोरर्गलः ।

सुधांशु-हरि-चन्दनोत्पल-सिताभ्र-शीताङ्गकः

स मे मदन-मोहनः सखि तनोति वक्षः-स्पृहाम् ॥78॥

हरिट्-मणि-इन्द्रनील मणि के; कवाटिका-द्वार की तरह; प्रतत-चौड़ा; हारि-आकर्षक; वक्षः-स्थलः–जिनका वक्षस्थल; स्मर-आर्त—कामवासना से पीड़ित; तरुणी-युवतियों के; मनः-मन की; कलुष-पीड़ा; हारि-हर लेती हैं; दोः-जिनकी दोनों बाँहें; अर्गलः-जंजीर की तरह; सुधांशु-चन्द्रमा; हरि-चन्दन–चन्दन; उत्पल-कमल फूल; सिताभ्र-कपूर; शीत-शीतल; अङ्कः -जिनका शरीर; सः-वह; मे-मेरे; मदन-मोहनः-कृष्ण, जो कामदेव से अधिक आकर्षक हैं; सखि-हे सखी; तनोति बढ़ा रहे हैं; वक्षः-स्पृहाम्-वक्षस्थलों की इच्छा को।

अनुवाद

“हे सखी, कृष्ण का वक्षस्थल इन्द्रनील मणि से बने द्वार की तरह चौड़ा और आकर्षक है। उनकी दोनों बाँहें जंजीर की तरह दृढ़ हैं और वे उन युवतियों की मानसिक चिन्ता को दूर कर सकती हैं, जो उनके लिए कामेच्छाओं से पीड़ित हैं। उनका शरीर चन्द्रमा, चन्दन, कमल

पुष्प तथा कपूर से भी अधिक शीतल है। इस तरह कामदेव को आकर्षित करने वाले मदनमोहन मेरे वक्षस्थलों की इच्छा को बढ़ा रहे हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक गोविन्द लीलामृत (8.7) में भी पाया जाता है।

प्रभु कहे,—"कृष्ण मुञि एखन-इ पाइनु ।

आपनार दुर्दैवे पुनः हाराइनु ॥79॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मुत्रि-मैं; एखन-इ-अभी अभी; पाइनु–पाया; आपनार-मैंने स्वयं; दुर्दैवे-दुर्भाग्यवश; पुनः पुनः; हाराइनु-खो दिया।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "अभी-अभी मुझे कृष्ण मिले थे, किन्तु दुर्भाग्यवश मैंने पुनः उन्हें खो दिया है।

चञ्चल-स्वभाव कृष्णेर, ना रय एक-स्थाने ।

देखा दिया मन हरि' करे अन्तर्धाने ॥80॥

चञ्चल-चंचल; स्वभाव-स्वभाव से; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; ना-नहीं; रय-रुकते; एक-स्थाने–एक स्थान पर; देखा दिया-दर्शन दिया; मन–मन; हरि-हर; करे-लेते हैं; अन्तर्धाने-अन्तर्धान।

अनुवाद

"कृष्ण स्वभाव से अत्यधिक चंचल हैं। वे एक स्थान पर नहीं रुकते। वे किसी से मिलते हैं, उसके मन को हर लेते हैं और तब अन्तर्धान हो जाते हैं।

तासां तत्सौभग-मदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।

प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयते ॥81॥

तासाम्-गोपियों को; तत्-उनका; सौभग-मदम्-सौभाग्य से गर्वित होना; वीक्ष्य-देखकर; मानम्-श्रेष्ठता के भाव को; च-और; केशवः-कृष्ण, ब्रह्मा क (ब्रह्माजी) और ईशा (शिवजी) का दमन करनेवाले; प्रशमाय-दमन करने के लिए; प्रसादाय-कृपा प्रदर्शित करने के लिए; तत्र-वहाँ; एव–एव; अन्तरधीयत-अन्तर्धान हो गये।

अनुवाद

"गोपियाँ अपने महान् सौभाग्य से गर्वित हो गईं। उनकी श्रेष्ठता के भाव को दमित करने के लिए तथा उन पर विशेष कृपा प्रदर्शित करने के लिए केशव, जो कि ब्रह्माजी तथा शिवजी का भी दमन करने वाले हैं, रासनृत्य से अन्तर्धान हो गये।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.29.48) से उधृत है, जिसे शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित से कहा था।

स्वरूप-गोसाञिरे कहेन,_"गाओ एक गीत ।

याते आमार हृदयेर हये त' 'सम्वित् ॥82॥

स्वरूप-गोसाञिरे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने; कहेन–कहा; गाओ-गाओ; एक-एक; गीत-गीत; याते-जिससे; आमार-मेरे; हृदयेर–हृदय को; हये-है; त'–निश्चित रूप से; सम्वित्-चेतना।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर गोस्वामी से कहा, "आप कृपया एक गीत गाओ जो मेरे हृदय को सचेष्ट कर सके।

स्वरूप-गोसाञि तबे मधुर करिया ।

गीत-गोविन्देर पद गाय प्रभुरे शुनाञा ॥83 ॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; तबे-उसके बाद; मधुर करिया-अत्यन्त मधुरता से; गीत-गोविन्देर-गीत गोविन्द नामक ग्रन्थ का; पद-एक पद; गाय-गाया; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु; शुनाञा–को सुनाया।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रसन्नता के लिए स्वरूप दामोदर गोस्वामी गीत गोविन्द का निम्नलिखित पद अत्यन्त मधुर स्वर में गाने लगे।

रासे हरिमिह विहित-विलासम् ।

स्मरति मनो मम कृत-परिहासम् ॥84॥

रासे–रास नृत्य में; हरिम्-श्रीकृष्ण; इह-यहाँ; विहित-विलासम्-लीलाएँ करते हुए; स्मरति-स्मरण करती; मनः-मन; मम-मेरा; कृत-परिहासम्-परिहास करने का इच्छुक।

अनुवाद

“यहाँ रास नृत्य के स्थल में मैं कृष्ण का स्मरण करती हैं, जिन्हें परिहास करना तथा लीलाएँ करना अत्यन्त प्रिय है।”

तात्पर्य

यह श्लोक गीतगोविन्द (2.3) से उद्धृत है और श्रीमती राधारानी द्वारा गाया गया है।

स्वरूप-गोसाञि यबे एइ पद गाहिला ।

उठि’ प्रेमावेशे प्रभु नाचिते लागिला ॥85॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; यबे-जब; एइ–यह; पद-पद; गाहिला-गाया; उठि-उठ खड़े हुए; प्रेम-आवेशे-कृष्ण के प्रेमावेश में; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः नाचिते लागिला-नृत्य करने लगे।

अनुवाद

जब स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने यह विशिष्ट पद गाया, तो श्री चैतन्य महाप्रभु तुरन्त उठ खड़े हुए और प्रेमावेश में नृत्य करने लगे।

'अष्ट-सात्त्विक' भाव अङ्गे प्रकट ह-इल ।

हर्षादि व्यभिचारी' सब उथलिल ॥86॥

अष्ट-सात्त्विक-आठ आध्यात्मिक; भाव-भाव; अङ्गे–शरीर में; प्रकट ह-इल-प्रकट हुए; हर्ष-आदि-हर्ष इत्यादि; व्यभिचारी-तैतीसों व्यभिचारी भाव; सब-सभी; उथलिल–प्रकट हुए।

अनुवाद

उस समय श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में आठों प्रकार के आध्यात्मिक विकार (सात्त्विक भाव) प्रकट ही आये। यही नहीं, शोक तथा हर्ष इत्यादि तैतीसों व्यभिचारी भाव भी प्रकट हो गये।

भावोदय, भाव-सन्धि, भाव-शाबल्य ।

भावे-भावे महा-युद्धे सबार प्राबल्य ॥ 87॥

भाव-उदय-सभी भावमय लक्षणों का प्राकट्य; भाव-सन्धि-भावमय लक्षणों की सन्धि; भाव-शाबल्य-भावमय लक्षणों का मिश्रण; भावे-भावे-भावों के बीच; महा-मुछे–महायुद्ध; सबार-उन सब में; प्राबल्य-प्रबल।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में सारे भाव लक्षण यथा भावोदय, भाव-सन्धि तथा भावशाबल्य उदय हो आये। फिर भावों में परस्पर विकट युद्ध होने लगा और उनमें से हर एक प्रधान बन गया।

सेइ पद पुनः पुनः कराय गायन ।

पुनः पुनः आस्वादये, करेन नर्तन ॥88॥

सेइ पद-उसी श्लोक को पुनः पुनः-बारम्बार; कराय गायन-गाने के लिए कहा; पुनः पुनः–बारम्बार; आस्वादये—आस्वादन; करेन नर्तन-नृत्य करते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर से बारम्बार उसी श्लोक को गाने के लिए कहा। वे जितनी बार गाते, महाप्रभु को नया आस्वादन प्राप्त होता और वे बारम्बार नृत्य करने लगते।

एइ-मत नृत्य यदि ह-इल बहु-क्षण ।

स्वरूप-गोसाञि पद कैला समापन ॥89॥

एइ-मत-इस तरह; नृत्य-नृत्य करते; यदि-जब; ह–इल-करते; बहु-क्षण–देर तक; स्वरूप-गोसाञि–स्वरूप दामोदर गोस्वामी; पद-श्लोक; कैला समापन–बन्द कर दिया।

अनुवाद

जब महाप्रभु देर तक नृत्य करते रहे, तब स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने उस श्लोक को गाना बन्द कर दिया।

'बल्' 'बल्' बलि' प्रभु कहेन बार-बार ।

ना गाय स्वरूप-गोसाञि श्रम देखि' ताँर ॥90॥

बल्-गाओ; बल्-गाओ; बलि'–कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहेन–कहने लगे; बार-बार–बारम्बार; ना–नहीं; गाय-गाया; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; श्रम-थकान को; देखि'–देखकर; ताँर–चैतन्य महाप्रभु की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने बारम्बार कहा, "गाओ, गाते रहो! गाते रहो!" किन्तु महाप्रभु की थकान को देखते हुए स्वरूप दामोदर ने उसे फिर नहीं गाया।

'बल्' 'बल्' प्रभु बलेन, भक्त-गण शुनि' ।

चौदिकेते सबे मेलि' करे हरि-ध्वनि ॥91॥

बल् बल्-गाते रहो, गाते रहो; प्रभु बलेन-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; भक्त-गण-सभी भक्तोंने; शुनि'–सुनकर; चौ-दिकेते-चारों ओर; सबे-सबने; मेलि'–एकत्र; करे हरि-ध्वनि-हरिनाम का कीर्तन करने लगे।

अनुवाद

जब भक्तों ने महाप्रभु को "गाते रहो!" कहते सुना, तब वे सब उनके चारों ओर एकत्र हो गये और एक साथ हरिनाम का कीर्तन करने लगे।

रामानन्द-राय तबे प्रभुरे वसाइला ।

वीजनादि करि' प्रभुर श्रम घुचाइला ॥92॥

रामानन्द-राय-रामानन्द राय; तबे—उस समय; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभुः वसाइला–को बैठाया; वीजन-आदि करि'-पंखा झलकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; श्रम-थकान; घुचाइला–दूर की।

अनुवाद

उस समय रामानन्द राय ने महाप्रभु को बैठाया और उन पर पंखा झलकर उनकी थकान दूर की।

प्रभुरे लञा गेला सबे समुद्रेर तीरे ।

स्नान कराञा पुनः तारे लञा आइला घरे ॥ 93 ॥

प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा–लेकर; गेला–गये; सबे-सब; समुद्रेर तीरे-समुद्र तट पर; स्नान कराञा-स्नान कराया; पुनः–पुनः; तारे–उनको; लञा आइला-लौटा ले आये; घरे—उनके घर।

अनुवाद

तब सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु को समुद्र तट ले गये और उन्हें स्नान कराया। अन्त में वे उन्हें घर लौटा ले आये।

भोजन कराञा प्रभुरे कराइला शयन ।

रामानन्द-आदि सबे गेला निज-स्थान ॥ 94॥

भोजन कराञा–भोजन कराने; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; कराइला शयन-उन्हें लिटा दिया; रामानन्द-आदि-रामानन्द राय इत्यादि; सबे–वे सब; गेला–गये; निज-स्थान-अपने घरों को।

अनुवाद

महाप्रभु को दोपहर का भोजन कराने के बाद उन्हें लिटा दिया गया। तब रामानन्द इत्यादि सारे भक्त अपने-अपने घरों को लौट गये।

एइ त' कहिलुँ प्रभुर उद्यान-विहार ।

वृन्दावन-भ्रमे याहाँ प्रवेश ताँहार ॥95॥

एइ त'—इस तरह; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; उद्यान-विहार–पुष्पवाटिका का भ्रमण; वृन्दावन-भ्रमे-वृन्दावन समझकर; याहाँ-जहाँ; प्रवेश-प्रवेश; ताँहार—उनका।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के पुष्पवाटिका भ्रमण की लीला का वर्णन किया है। महाप्रभु ने वृन्दावन समझकर इस पुष्पवाटिका में प्रवेश किया था।

प्रलाप सहित एइ उन्माद-वर्णन ।

श्री-रूप-गोसाञि इहा करियाछेन वर्णन ॥ 96 ॥

प्रलाप–प्रलाप; सहित–सहित; एइ–यह; उन्माद-उन्माद का; वर्णन-वर्णन; श्री-रूप-गोसाञि-श्री रूप गोस्वामी; इहा-इस प्रकार; करियाछेन वर्णन-वर्णन किया है।

अनुवाद

वहाँ पर उन्होंने दिव्य उन्माद तथा प्रलाप प्रकट किया, जिसे रूप गोस्वामी ने अपनी 'स्तवमाला' में सुन्दर ढंग से इस प्रकार अंकित किया है।

पयो-राशेस्तीरे स्फुरदुपवनाली-कलनया

मुहुर्वृन्दारण्य-स्मरण-जनित-प्रेम-विवशः ।

क्वचित्कृष्णावृत्ति-प्रचल-रसनो भक्ति-रसिकः

स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥ 97॥

पयः-राशेः-समुद्र के; तीरे-तट पर; स्फुरत्-सुन्दर; उपवन-आली-उद्यान; कलनया-देखकर; मुहुः-निरन्तर; वृन्दारण्य-वृन्दावन का जंगल; स्मरण-जनित-समझकर; प्रेम-विवशः-कृष्ण-प्रेम से पूर्णतया विह्वल होकर; क्वचित्-कभी-कभी; कृष्ण-कृष्ण का पवित्र नाम; आवृत्ति-उच्चारण करते; प्रचल-

निरन्तर चलती रहती; रसनः-जिनकी जीभ; भक्ति-रसिकः- भक्ति में दक्ष; सः-वह; चैतन्यः-श्री चैतन्य महाप्रभुः किम्-क्या; मे–मेरी; पुनः अपि पुनः; दृशोः-आँखों के; यास्यति–समक्ष; पदम्-मार्ग में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सर्वोच्च भक्त हैं। समुद्र तट पर विचरण करते हुए कभी-कभी वे पास ही सुन्दर उद्यान देखते और उसे वृन्दावन का जंगल समझ बैठते। इस तरह वे कृष्ण-प्रेम से पूर्णतया विह्वल हो जाते तथा पवित्र नाम का कीर्तन और नृत्य करने लगते। जब वे 'कृष्ण! कृष्ण का उच्चारण करते, तो उनकी जीभ निरन्तर चलती रहती। क्या वे पुनः मेरे नेत्रों के समक्ष दृष्टिगोचर होंगे?"

तात्पर्य

यह श्लोक रूप गोस्वामी कृत स्तवमाला में प्रथम चैतन्याष्टक का छठा श्लोक है। यह वहीं से उधृत हुआ है।

अनन्त चैतन्य-लीला ना याय लिखन।

दिंकू-मात्र देखाजा ताहा करिये सूचन ॥98॥

अनन्त-अनन्त; चैतन्य-लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; ना याय लिखन-लिख पाना सम्भव नहीं; दिक्-मात्र–केवल इंगित कर सकता हूँ; देखाना-दिखाने का; ताहा–उनका; करिये सूचन–मैंने परिचय दिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अनन्त हैं। उनको ठीक-ठीक लिख. पाना सम्भव नहीं है। मैं उनका परिचय देने के प्रयास में उनको इंगित मात्र कर सकता हूँ।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य चरितामृत कहे कृष्णदास ॥19॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ–श्री रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों की; यार–जिनकी; आश-कामना करते हुए; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए मैं कृष्णदास श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्य लीला के अन्तर्गत श्री चैतन्य महाप्रभु का दिव्योन्माद शीर्षक पन्द्रहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय सोलह

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा कृष्ण के अधरों का अमृतपान

अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने सोलहवें अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। जब महाप्रभु के बंगाली भक्त जगन्नाथपुरी लौटे, तो उनके साथ रघुनाथ दास गोस्वामी के चाचा कालिदास भी श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने गये। कालिदास ने बंगाल में सारे वैष्णवों का, यहाँ तक कि झडु ठाकुर तक का, उच्छिष्ट भोजन ग्रहण किया था। इसके कारण जगन्नाथपुरी में उसे श्री चैतन्य महाप्रभु का आश्रय प्राप्त हो सका।

जब कवि कर्णपूर केवल सात वर्ष के थे, तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरे कृष्ण महामन्त्र द्वारा उनको दीक्षा दी थी। बाद में वे वैष्णव आचार्यों में महानतम कवि हुए।

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भोग खाया, तो उन्होंने भगवान् के ऐसे शेष प्रसाद की महिमा का वर्णन किया और तब इस प्रसाद को सारे भक्तों को खिलाया। इस तरह सबों ने कृष्ण के अधरों के अमृत का पान किया।

वन्दे श्री-कृष्ण-चैतन्यं कृष्ण-भावामृतं हि यः ।

आस्वाद्यास्वादयन्भक्तान्प्रेम-दीक्षामशिक्षयत् ॥1॥

वन्दे-मैं नमस्कार करता हूँ; श्री-कृष्ण-चैतन्यम्-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कृष्ण-भाव-अमृतम्-कृष्ण-प्रेम के अमृत का; हि-अवश्य; ग्रः-वे जो; आस्वाद्य-आस्वादन करके; आस्वादयन्–आस्वादन करवाकर; भक्तान्-भक्तगण; प्रेम-कृष्ण के प्रेम में; दीक्षाम्-दीक्षित, अशिक्षयत्-उपदेश दिया।

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने स्वयं कृष्ण-प्रेम के अमृत का आस्वादन किया और फिर अपने भक्तों को उपदेश दिया कि उसका आस्वादन किस तरह करें। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें दिव्य ज्ञान में दीक्षित करने के लिए कृष्ण के प्रेमाबेश के विषय में उन्हें उपदेश दिया।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय जय; श्री-चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! तथा महाप्रभु के समस्त भक्तवृन्द की जय हो!

एइ-मत महाप्रभु रहेन नीलाचले ।

भक्त-गण-सङ्गे सदा प्रेम-विह्वले ॥ 3 ॥

एइ-मत-इस तरह; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; रहेन-रहते; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; भक्त-गण-सङ्गे-भक्तों के संग में; सदा-सदैव; प्रेम-विह्वले–प्रेमावेश में निमग्न।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के साथ सदैव प्रेम-भक्ति में निमग्न रहते हुए जगन्नाथ पुरी में रहे।

वर्षान्तरे आइला सब गौड़ेर भक्त-गण ।

पूर्ववत् असि' कैल प्रभुर मिलन ॥ 4॥

वर्ष-अन्तरे-अगले वर्ष; आइला–आये; सब-सभी; गौड़ेर-बंगाल के; भक्त-गण-भक्तगण; पूर्व-वत्-पिछले वर्षों की तरह; आसि'–आकर; कैल–किया; प्रभुर मिलन-श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलाप।

अनुवाद

अगले वर्ष, हमेशा की तरह सब भक्तगण बंगाल से जगन्नाथ पुरी गये और पिछले वर्षों की तरह वहाँ भक्तों तथा श्री चैतन्य महाप्रभु का मिलाप हुआ।

ताँ-सबार सङ्गे आइल कालिदास नाम ।

कृष्ण-नाम विना तेंहो नाहि कहे आन ॥5॥

ताँ-सबार सङ्गे–उन सबके साथ; आइल-आये; कालिदास नाम-कालिदास नामक एक सज्जन; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पवित्र नाम; विना-सिवाय; तेंहो-वे; नाहि नहीं; कहे-कहते; आन-और कुछ भी।

अनुवाद

बंगाल के भक्तों के साथ कालिदास नाम के एक सज्जन आये। वे पवित्र कृष्णनाम के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं कहते थे।

महा-भागवत तेंहो सरल उदार ।

कृष्ण-नाम-सङ्केते' चालाय व्यवहार ॥6॥

महा-भागवत-बहुत उन्नत भक्त; तेंहो-वे; सरल उदार-सरल और उदार; कृष्ण-नाम-सङ्केते-कृष्ण के पवित्र नामक का कीर्तन; चालाय-करते; व्यवहार-कामकाज करते समय।

अनुवाद

कालिदास बहुत उन्नत भक्त थे, किन्तु थे सरल और उदार। वे अपने सारे काम-काज करते समय कृष्ण नाम का कीर्तन करते रहते थे।

कौतुकेते तेंहो यदि पाशक खेलाय ।

'हरे कृष्ण' 'कृष्ण' करि' पाशक चालाय ॥7॥

कौतुकेते-हँसी में; तेंहो-वे; यदि-जब; पाशक खेलाय–पाँसे खेलते; हरे कृष्ण-भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; कृष्ण-कृष्ण; करि'-कीर्तन; पाशक चालाय-पाँसा फेंकते।

अनुवाद

जब वह हँसी में पाँसे खेलते, तो भी वे हरे कृष्ण कहकर पाँसा फेंकते थे।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इस युग के लोगों को सतर्क करते हैं कि वे कालिदास जैसे महाभागवत की हँसी का अनुकरण न करें। यदि कोई हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते हुए पाँसा खेलने या जुआ खेलने का अनुकरण करता है, तो वह निश्चित रूप से पवित्र नाम के प्रति अपराध का भागी बनेगा। जैसाकि कहा गया है-हरि-नाम-बले पापे प्रवृत्ति-मनुष्य को हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन के बल पर पापकर्म नहीं करने चाहिए। पाँसा खेलना निश्चित रूप से जुआ खेलना है, किन्तु यहाँ यह स्पष्ट कहा गया है कि कालिदास केवल हँसी में ऐसा करते थे। महाभागवत कुछ भी कर सकते हैं, किन्तु वह मूलभूत सिद्धान्तों को कभी नहीं भूलते। इसीलिए कहा गया है तार वाक्य क्रियामुद्रा विज्ञेह ना बुझय–"शुद्ध वैष्णव के कार्यकलापों को कोई नहीं समझ सकता।" हमें कालिदास का अनुकरण नहीं करना है।

रघुनाथ-दासेर तेंहो हय ज्ञाति-खुड़ा ।

वैष्णवेर उच्छिष्ट खाइते तेंहो हैल बुड़ा ॥8॥

रघुनाथ-दासेर-रघुनाथ दास गोस्वामी के; तेंहो-वे (कालिदास); हय-है; ज्ञाति-सम्बन्धी; खुड़ा-चाचा; वैष्णवेर-वैष्णवों द्वारा; उच्छिष्ट–बचा हुआ भोजन; खाइते-खाने का; तेंहो-वे; हैल-करते; बुड़ा-बुढ़ापे में।

अनुवाद

कालिदास रघुनाथ दास गोस्वामी के चाचा थे। वे आजीवन, यहाँ तक कि वृद्धावस्था में भी, वैष्णवों द्वारा छोड़े गये उच्छिष्ट को खाने का प्रयास करते।

गौड़-देशे हय यत वैष्णवेर गण ।

सबार उच्छिष्ट तेंहो करिल भोजन ॥9॥

गौड़-देशे-बंगाल में; हय-है; यत-ज्यादा से; वैष्णवेर गण-वैष्णव गण; सबार-सबों का; उच्छिष्ट–बचा हुआ भोजन; तेंहो–उन्होंने; करिल भोजन-खाया।

अनुवाद

कालिदास ने, बंगाल में जितने वैष्णव थे, उन सबों का उच्छिष्ट खाया था।

ब्राह्मण-वैष्णव यत–छोट, बड़ हय ।

उत्तम-वस्तु भेट लञा ताँर ठाञि याय ॥ 10॥

ब्राह्मण-वैष्णव-ब्राह्मण कुलों से आये हुए वैष्णव; व्रत-सभी; छोट–नये शिष्य; बड़े-बड़े भक्त; हय-हों; उत्तम-वस्तु–उत्तम खाद्य वस्तुएँ; भेट लञा-वस्तुएँ भेट; ताँर ठाञि-उनको; याय-करते।

अनुवाद

वे ब्राह्मण कुलों में उत्पन्न समस्त वैष्णवों के पास जाते, चाहे वे नये भक्त हों या उन्नत भक्त हों, और उन्हें उत्तम खाद्य वस्तुएँ भेंट करते थे।

ताँर ठाञि शेष-पात्र लयेन मागिया ।

काहाँ ना पाय, तबे रहे लुकाञा ॥11॥

ताँर ठाञि-उनसे; शेष-पात्र-बची हुई थाली; लयेन-लेते; मागिया-माँगकर; काहाँ–कहाँ; ना पाय-नहीं पाते; तबे-तब; रहे-रहते; लुकाञा-छिपकर।

अनुवाद

वे ऐसे वैष्णवों से जूठन माँगते और यदि उन्हें कुछ नहीं मिलता था, तो वे छिप जाते थे।

भोजन करिले पात्र फेलाञा याय ।

लुकाञा सेइ पात्र आनि' चाटि' खाय ॥12॥

भोजन करिले–भोजन के बाद; पात्र–पत्तों की थाली; फेलाञा याय-फेंक देते; लुकाञा-छिपकर; सेइ पात्र-वह पत्तों की थाली; आनि'–लेकर; चाटि' खाय-जूठन खाते।

अनुवाद

जब वैष्णव भोजन कर लेते और अपने पत्तल फेंक देते, तो कालिदास छुपी जगह से बाहर निकल आते और पत्तलों को लेकर जूठन चाटते।

शूद्र-वैष्णवेर घरे याय भेट लञा ।

एइ-मत ताँर उच्छिष्ट खाय लुकाञा ॥13॥

शूद्र-वैष्णवेर-शूद्र परिवारों में उत्पन्न वैष्णवों के; घरे–घरों में; याय-जाते; भेट लञा-भेंट लेकर; एइ-मत-इस प्रकार; ताँर–उनका; उच्छिष्ट–बचा हुआ, जूठन; खाय-खाते; लुकाञा-छिपकर।

अनुवाद

शूद्र परिवारों में उत्पन्न वैष्णवों के भी घरों में भेंट लेकर जाते। तब वे छिप जाते और जब वे जूठन फेंकते तो उसे खाते।

भूडिमालि-जाति, 'वैष्णव' 'झड़' ताँर नाम ।

आम्र-फल लञा तेंहो गेला ताँर स्थान ॥14॥

भूडिमालि-जाति-मुँइमालि जाते के; वैष्णव-एक महान् वैष्णव; झडु-झडु; ताँर-उनका; नाम-नाम; आम्र-फल-आम फल; लञा–लेकर; तेंहो-वे; गेला-गये; ताँर स्थान-उनके घर।

अनुवाद

झडु ठाकुर नाम के एक महान् वैष्णव थे, जो मुँइमालि जाति के थे। "कालिदास उनके घर अपने साथ आम लेकर गये।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि, "कालिदास तथा झडु ठाकुर दोनों ही की पूजा भेदो या भदुया नामक गाँव में श्रीपाटबाटी नामक स्थान में की जाती है। यह गाँव रघुनाथ दास गोस्वामी की जन्मभूमि कृष्णपुरा से, जो कि बर्दवान रेललाइन के ब्यांडेल जंक्शन से लगभग एक मील पश्चिम में है, लगभग तीन मील दक्षिण की ओर स्थित है। वहाँ का डाकघर देवानन्द पुर है। झडु ठाकुर श्री मदनगोपाल की मूर्ति की पूजा करते थे। आज भी इस मूर्ति की पूजा रामप्रसाद दास नामक भक्त द्वारा की जाती है, जो रामायेत जाति के हैं। कहा जाता है कि कालिदास जिस मूर्ति की पूजा करते थे, वह अभी तक सरस्वती नदी के तट पर शंख्य नामक गाँव में पूजी जाती थी, किन्तु त्रिवेणी ग्राम के मतिलाल चट्टोपाध्याय नामक एक महाशय इस मूर्ति को उठा ले गये। अब यह मूर्ति उनके घर पर पूजी जाती है।"

आम्र भेट दिया ताँर चरण वन्दिला।

ताँर पनीरे तबे नमस्कार कैला ॥15॥

आम्र-आम; भेट-भेंट; दिया-देकर; ताँर-उनके; चरण-चरण; वन्दिला-नमस्कार किया; ताँर पत्नीरे-उनकी पत्नी को भी; तबे-उसके बाद; नमस्कार कैला-नमस्कार किया।

अनुवाद

कालिदास ने वे आम झडु ठाकुर को भेंट किये और उन्हें नमस्कार किया। तब उन्होंने ठाकुर की पत्नी को भी नमस्कार किया।

पत्नी-सहित तेंहो आछेन वसिया।

बहु सम्मान कैला कालिदासेरे देखिया ॥16॥

पत्नी-सहित-उनकी पत्नी के साथ; तेंहो-वे (झडू ठाकूर); आछेन वसिया-बैठे थे; बहु-बहुत; सम्मान-नमस्कार; कैला--किया; कालिदासेरे देखिया–कालिदास को देखकर।

अनुवाद

जब कालिदास झड़ु ठाकुर के यहाँ गये, तो उन्होंने देखा कि वे साधु पुरुष अपनी पत्नी के साथ बैठे हैं। ज्योंही झड़ु ठाकुर ने कालिदास को देखा, उन्होंने भी उसी तरह नमस्कार किया।

इष्टगोष्ठी कत-क्षण करि' ताँर सने ।

झड़ु-ठाकुर कहे ताँरे मधुर वचने ॥17॥

इष्ट-गोष्ठी-चर्चा; कत-क्षण-कुछ काल तक; करि'-की; ताँर सने-उनके साथ; झड़-ठाकुर-झड़ु ठाकुर; कहे-कहा; ताँरे–उनको (कालिदास को); मधुर वचने-मधुर शब्दों में।

अनुवाद

कालिदास के साथ कुछ काल तक चर्चा करने के बाद झड़ु ठाकुर ने उनसे निम्नलिखित मधुर शब्दों में कहा।

"आमि—नीच-जाति, तुमि,—अतिथि सर्वोत्तम ।

कोन् प्रकारे करिमु आमि तोमार सेवन? ॥18॥

आमि-मैं; नीच-जाति-नीच जाति का; तुमि-आप; अतिथि–अतिथि; सर्व-उत्तम-अति सम्मानित; कोन् प्रकारे-कैसे; करिमु–करूँ; आमि-मैं; तोमार सेवन-आपकी सेवा।

अनुवाद

मैं नीच जाति का हूँ और आप मेरे अति सम्मानित अतिथि हैं। मैं किस तरह आपकी सेवा करूँ?

आज्ञा देह',—ब्राह्मण-घरे अन्न लञा दिये ।

ताहाँ तुमि प्रसाद पाओ, तबे आमि जीये" ॥19॥

आज्ञा देह'–मुझे आज्ञा दें; ब्राह्मण-घरे–ब्राह्मण के घर; अन्न-भोजन; ला दिये-मैं भेज दें; ताहाँ-वहाँ; तुमि-आप; प्रसाद पाओ–प्रसाद ग्रहण करें; तबे-तब; आमि-मैं; जीये-जी पाऊँगा।

अनुवाद

"यदि आप आज्ञा दें, तो मैं कुछ भोजन ब्राह्मण के घर भेज दें, जहाँ आप प्रसाद ग्रहण कर सकते हैं। यदि आप ऐसा करें, तो मैं अत्यन्त सुखपूर्वक जी पाऊँगा।"

कालिदास कहे,–"ठाकुर, कृपा कर मोरे ।

तोमार दर्शने आइनु मुइ पतित पामरे ॥20॥

कालिदास कहे-कालिदास ने कहा; ठाकुर–हे ठाकुर; कृपा कर-कृपा करें; मोरे-मुझ पर; तोमार दर्शने-आपका दर्शन करने; आइनु-आया हूँ; मुइ-मैं; पतित पामरे-बहुत नीच और पापी।

अनुवाद

कालिदास ने उत्तर दिया, "हे महोदय, आप मुझ पर कृपा करें। मैं आपका दर्शन करने आया हूँ, यद्यपि मैं अत्यन्त नीच तथा पापी हूँ।

पवित्र ह-इनु मुइ पाइनु दरशन ।

कृतार्थ ह–इनु, मोर सफल जीवन ॥21॥

पवित्र ह-इनु-पवित्र हो गया हूँ; मुड़-मैं; पाइनु दरशन-आपका दर्शन मिलने से; कृत-अर्थ-कृतज्ञ; ह-इनु-मैं हो चुका हूँ; मोर-मेरा; सफल-सफल; जीवन-जीवन।

अनुवाद

"आपके दर्शन मात्र से मैं पवित्र हो गया हूँ। मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, क्योंकि अब मेरा जीवन सफल हो गया है।

एक वाञ्छा हय,—यदि कृपा करि' कर ।

पाद-रज देह', पाद मोर माथे धर" ॥22॥

एक वाञ्छा-एक इच्छा; हय-है; यदि-अगर; कृपा करि'–कृपा करके; कर-आप करें; पाद-रज-आपके चरणों की धूल; देह'–दें; पाद-पाँव; मोर–मेरे; माथे-सिर पर; धर–कृपया रखें।

अनुवाद

"हे महोदय, मेरी एक इच्छा है। आप मेरे सिर पर अपना पाँव रखने की कृपा करें, जिससे आपके पाँव की धूल मेरे सिर का स्पर्श कर सके।"

ठाकुर कहे,–"ऐछे बात् कहिते ना युयाय ।

आमिनीच-जाति, तुमि सुसज्जन राय" ॥23॥

ठाकुर कहे-झडु ठाकुर ने कहा; ऐछे बात्-ऐसी विनति; कहिते ना युयाय-कहना मत; आमि-मैं; नीच-जाति-नीच जाति के परिवार से आया; तुमि-आप; सु-सत्-जन राय-अति सम्माननीय और धनी सज्जन।

अनुवाद

झडु ठाकुर ने उत्तर दिया, "मुझसे इसके लिए कहना आपको शोभा नहीं देता। मैं अत्यन्त निम्न जाति का हूँ, जबकि आप सम्माननीय धनी सज्जन हैं।"

तबे कालिदास श्लोक पड़ि' शुनाइल ।

शुनि' झडु-ठाकुरेर बड़ सुख ह-इल ॥24॥

तबे-तब; कालिदास-कालिदास; श्लोक-श्लोक; पड़ि'–पढ़कर; शुनाइल-सुनाने का कार्य; शुनि'–सुनाया; झडु-ठाकुरेर–झडु ठाकुर के; बड़-बहुत महान्; सुख-सुखी; ह-इल–हुए।

अनुवाद

तब कालिदास ने कुछ श्लोक सुनाये, जिन्हें सुनकर झडु ठाकुर अत्यन्त सुखी हुए।

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्व-पचः प्रियः ।

तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥25॥

न-नहीं; मे-मेरा; अभक्तः-शुद्ध भक्ति से रहित; चतुः-वेदी-चारों वेदों में पण्डित मत्-भक्तः–मेरा भक्त; श्व-पचः-कुत्ते खाने वाले परिवार में के; प्रियः-अत्यन्त प्रिय; तस्मै–उनको (शुद्ध भक्त); देयम्-दे सकते हैं; ततः-उनके पास से; ग्राह्यम्-स्वीकारना (उच्छिष्ट भोजन); सः-वह मनुष्य; च-भी; पूज्यः-पूजा करने योग्य; यथा-जितना; हि–अवश्य; अहम्-मैं।

अनुवाद

"कोई संस्कृत साहित्य में कितना ही विद्वान पण्डित क्यों न हो, यदि वह शुद्ध भक्ति में नहीं लगा है, तो वह मेरा भक्त नहीं माना जाता। किन्तु यदि चण्डाल परिवार में उत्पन्न कोई व्यक्ति शुद्ध भक्त होता है, जिसे सकाम कर्म या ज्ञान के माध्यम से भोग की इच्छा नहीं रहती, तो वह मुझे अत्यन्त प्रिय होता है। उसे सभी तरह का आदर दिया जाना चाहिए और वह जो भी दे उसे स्वीकार किया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसे भक्त मेरे ही समान पूज्य हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक भगवान् द्वारा कहा गया है और हरिभक्ति विलास में पाया जाता है।

विप्राद् द्वि-षड्-गुण-युतादरविन्द-नाभ-

पादारविन्द-विमुखात्श्व-पचं वरिष्ठम् ।

मन्ये तदर्पित-मनो-वचनेहितार्थ-

प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरि-मानः ॥ 26 ॥

विप्रात्-ब्राह्मण से; द्वि-षट्-गुण-युतात्-बारहों ब्राह्मणों की विद्या से युक्त; अरविन्द-नाभ-भगवान् विष्णु के, कमल जैसी नाभि वाले; पाद-अरविन्द-चरणकमलों को; विमुखात्-भक्ति से विहीन व्यक्ति; श्व-पचम्-चण्डाल अर्थात् कुत्ते का मांस खाने की आदतवाला व्यक्ति; वरिष्ठम्-अधिक महिमाशाली; मन्ये-मानता हूँ; तत्-अर्पित-उसको समर्पित; मनः-मन; वचन-वचन; इंहित-कर्म; अर्थ–धन; प्राणम्-जीवन; पुनाति-शुद्ध करता है; सः—वह; कुलम्-अपने कुल को; न तु किन्तु नहीं; भूरि-मानः-ऐसे गुणों से युक्त गर्वित ब्राह्मण।

अनुवाद

"ब्राह्मण कुल में जन्मा और बारहों ब्राह्मण गुणों से सम्पन्न व्यक्ति योग्य होते हुए भी यदि कमलनाभ भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की भक्ति नहीं करता, तो वह उस चण्डाल के तुल्य भी नहीं होता, जो अपना मन, वचन, कर्म, धन तथा जीवन भगवान् की सेवा में समर्पित कर चुका है। केवल ब्राह्मण कुल में जन्म लेना अथवा ब्राह्मण गुणों से युक्त होना पर्याप्त नहीं है। मनुष्य को भगवान् का शुद्ध भक्त बनना चाहिए। यदि कोई श्वपच या चण्डाल व्यक्ति भक्त होता है, तो वह न केवल अपना, अपितु अपने पूरे परिवार का उद्धार कर देता है, जबकि अभक्त ब्राह्मण, ब्राह्मण गुणों से युक्त होते हुए भी अपने आपको भी पवित्र नहीं कर सकता, अपने परिवार की बात तो दूर रही।

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगला श्लोक श्रीमद्भागवत (7.6.10 तथा 3.33.7) से उद्धृत हैं।

अहो बत श्व-पचोऽतो गरीयान्

यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।

तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या

ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥ 27॥

अहो बत—यह कितना अद्भुत है; श्व-पचः–कुत्ते का मांस खानेवाला; अतः-दीक्षित ब्राह्मण से भी; गरीयान्-अधिक महिमावान; यत्-जिसकी; जिह्वा-अग्ने-जिह्वा पर; वर्तते-रहता है; नाम-पवित्र नाम; तुभ्यम्-आपका; तेपुः–किया है; तपः-तप; ते-वे; जुहुवुः-यज्ञ किये हैं; सस्नुः–तीर्थों में स्नान किया है; आर्याः–वास्तव में आर्य जाति का; ब्रह्म-सारे वेद; अनूचुः-अभ्यास किया है; नाम-पवित्र नाम; गृणन्ति-जप करता है; ये-जो; ते-वे।

अनुवाद

"हे प्रभु, जो भी व्यक्ति आपके पवित्र नाम को सदा अपनी जिह्वा पर रखता है, वह दीक्षित ब्राह्मण से भी बढ़कर है। भले ही उसने श्वपच (चण्डाल) कुल में जन्म लिया हो और भौतिकता की दृष्टि से मनुष्यों में अधम हो, फिर भी वह महिमामंडित है। भगवान् के पवित्र नाम का जप करने की यही तो अद्भुत शक्ति है! जो पवित्र नाम का जप करता है, समझ लो कि वह सभी तरह की तपस्याएँ कर चुका है। वह सारे वेदों का अध्ययन कर चुका है, उसने वेदवर्णित सारे महान् यज्ञ सम्पन्न कर लिये हैं और उसने समस्त तीर्थस्थलों में पहले ही स्नान कर लिया है और सचमुच वही आर्य है।"

शुनि' ठाकुर कहे,–"शास्त्र एइ सत्य कय ।

सेइ श्रेष्ठ, ऐछे याँते कृष्ण-भक्ति हय ॥28॥

शुनि'–सुनकर; ठाकुर कहे-झडु ठाकुर ने कहा; शास्त्र-प्रामाणिक शास्त्र; एइ-यह; सत्य-सत्य; कय–कहते हैं; सेइ-वे; श्रेष्ठ–महान्; ऐछे—इस तरह; याँते–जिसमें; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण की भक्ति; हय है।

अनुवाद

श्रीमद्भागवत शास्त्र से इन उद्धरणों को सुनकर झडु ठाकुर ने उत्तर दिया, "हाँ, यह सच है, क्योंकि यह शास्त्र का कथन है। किन्तु यह उसके लिए सत्य है, जो कृष्ण-भक्ति में वास्तव में अग्रसर हो।

आमि—नीच-जाति, आमार नाहि कृष्ण-भक्ति ।

अन्य ऐछे हय, आमाय नाहि ऐछे शक्ति" ॥29॥

आमि-मैं; नीच-जाति-निम्न जाति का; आमार-मेरी; नाहि-नहीं है; कृष्ण-भक्ति कृष्ण भक्ति; अन्य-अन्य; ऐछे हय-हो सकते हैं; आमाय-मुझमें; नाहि-नहीं है; ऐछे शक्ति-ऐसी शक्ति।

अनुवाद

"ऐसा पद अन्यों के लिए उपयुक्त हो सकता है, किन्तु मुझमें ऐसी आध्यात्मिक शक्ति नहीं है। मैं तो नीच जाति का हूँ और मुझमें रंच मात्र भी कृष्ण-भक्ति नहीं है।"

तात्पर्य

अपने कथन में झडु ठाकुर अपने आपको निम्न जाति में उत्पन्न व्यक्ति बताते हैं, जिनके पास भगवान् कृष्ण का प्रामाणिक भक्त बनने की कोई योग्यता नहीं है। वे स्वीकार करते हैं कि यदि निम्न कुल में उत्पन्न व्यक्ति वैष्णव हो, तो वह अत्यन्त उच्च होता है। किन्तु उन्हें लगता है कि श्रीमद्भागवत के ये विवरण अन्यों पर लागू होने के लिए हैं; वे उन पर लागू नहीं होते। झडु ठाकुर की प्रवृत्ति सच्चे वैष्णव के अनुरूप है, क्योंकि वैष्णव अपने आपको कभी उच्च नहीं मानता, चाहे वह कितने ही बड़े पद को प्राप्त क्यों न हो। वह सदैव विनीत तथा विनम्र रहता है और कभी भी अपने आपको बड़ा भक्त नहीं मानता। वह अपने आपको निम्न स्थान पर रखता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि वह सचमुच ही निम्न है। एक बार सनातन गोस्वामी ने कहा कि वे निम्न जाति के हैं, क्योंकि यद्यपि वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न थे, किन्तु सरकारी मन्त्री होने के कारण उनकी संगति म्लेच्छों तथा यवनों से थी। इसी तरह

झडु ठाकुर भी अपने आपको नीच जाति के बतलाते हैं, यद्यपि वास्तव में वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न अनेक व्यक्तियों से भी बहुत उच्च स्तर पर थे। इसका प्रमाण न केवल श्रीमद्भागवत में है, जैसाकि कालिदास ने श्लोक 26 तथा 27 को उद्धृत किया है, अपितु अन्य शास्त्रों में भी इस निर्णय के पर्याप्त प्रमाण हैं। उदाहरणार्थ, महाभारत (वनपर्व, अध्याय 177, श्लोक 20) में कहा गया है :

शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते ।

न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥

"यदि ब्राह्मण के लक्षण शूद्र जाति में जन्मे व्यक्ति में पाये जाँय और ब्राह्मण जाति में जन्मे व्यक्ति में न हों, तो उस शूद्र को शूद्र नहीं मानना चाहिए और न उस ब्राह्मण को ब्राह्मण मानना चाहिए।"

इसी प्रकार वन पर्व के अध्याय 203, श्लोक 11-12 में कहा गया है :

शूद्रयोनौ हि जातस्य सद्गुणानुपतिष्ठतः।

आर्जवे वर्तमानस्य ब्राह्मण्यमभिजायते ॥

"यदि शूद्र कुल में उत्पन्न व्यक्ति ब्राह्मण गुण यथा सत्य, शम, दम (आत्म संयम) तथा आर्जव (सरलता) उत्पन्न कर लेता है, तो वह ब्राह्मण का उच्च पद प्राप्त करता है।"

और अनुशासन पर्व के अध्याय 163 में कहा गया है :

स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति ।

क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयः स गच्छति ॥

एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा ।

शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत ॥

न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च सन्ततिः ।

कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ॥

“यदि कोई वास्तव में ब्राह्मण वृत्ति में स्थित है, तो उसे ब्राह्मण माना जाना चाहिए, भले ही वह क्षत्रिय या वैश्य कुल में उत्पन्न क्यों न हो। हे देवी, यदि शूद्र कुल में जन्मा व्यक्ति भी ब्राह्मण की वृत्ति एवं शुद्ध आचार में लगा हो, तो वह ब्राह्मण बन जाता है। इतना ही नहीं, एक वैश्य क्षत्रिय बन सकता है। इसलिए न तो किसी के जन्म का स्रोत, न उसके संस्कार, न ही शिक्षा ब्राह्मण के मानदंड हैं। वृत्त अर्थात् प्रवृत्ति ही वास्तविक मानदण्ड है, जिससे कोई ब्राह्मण कहलाता है।”

हमने देखा है कि ऐसा व्यक्ति जो डाक्टर का पुत्र नहीं है और जिसने मेडिकल कालेज का मुँह नहीं देखा, कभी-कभी चिकित्सा करता है। शल्य क्रिया के क्षेत्र में व्यावहारिक ज्ञान के द्वारा तथा किस तरह औषधियों को मिलाया जाय या विशेष रोगों के लिए कौन सी औषधि कैसे दी जाए, इसके ज्ञान के द्वारा भी व्यक्ति प्रमाण-पत्र पा सकता है और व्यावहारिक क्षेत्र में चिकित्सक बन सकता है। वह चिकित्सा कार्य करके डाक्टर कहला सकता है। भले ही योग्य चिकित्सक उसे ओझा मानें, किन्तु सरकार उसके कार्य को मान्यता प्रदान करेगी। विशेषतया, भारत में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जो सफलतापूर्वक चिकित्सा कार्य करते हैं। इन्हें सरकार भी मान्यता देती है। इसी तरह यदि कोई ब्राह्मण-सेवा या वृत्ति में लगा रहता है, तो उसे ब्राह्मण माना जाना चाहिए, चाहे वह जिस किसी कुल में उत्पन्न हो। यही समस्त शास्त्रों का निर्णय है।

श्रीमद्भागवत (7.11.35) में कहा गया है :

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।

यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥

यह नारद मुनि का महाराज युधिष्ठिर से कथन है, जिसमें नारद बतलाते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के लक्षणों का वर्णन शास्त्र में हुआ है। इसलिए यदि किसी में ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य के

लक्षण तथा गुण दिखते हैं और वह ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य की वृत्ति अपनाता है, तो भले ही वह ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य कुल में उत्पन्न न हुआ हो, किन्तु उसे उसके गुणों तथा वृत्ति के अनुसार ऐसा माना जाना चाहिए।

इसी तरह पद्म पुराण में कहा गया है :

न शूद्रा भगवद्भक्तास्ते तु भागवता मताः ।

सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने ।।

"भक्त को कभी शूद्र नहीं माना जाना चाहिए। भगवान् के सारे भक्तों को भागवत के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। किन्तु यदि कोई कृष्ण-भक्त नहीं है, तो उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य कुल में उत्पन्न होने पर भी शूद्र माना जाना चाहिए।"

पद्म पुराण में यह भी कहा गया है :

श्वपाकमिव नेक्षेत लोके विप्रमवैष्णवम् ।

वैष्णवो वर्णोबाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम् ।।

"यदि ब्राह्मण कुल में उत्पन्न कोई व्यक्ति अवैष्णव है, अभक्त है, तो उसका मुँह भी नहीं देखना चाहिए- ठीक उसी तरह जिस तरह चण्डाल या श्वपच का मुख नहीं देखा जाता। किन्तु ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य वर्गों में जन्मा वैष्णव तीनों लोकों को पवित्र कर सकता है।"

पद्म पुराण में और आगे कहा गया है :

शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा ।

वीक्षते जातिसामान्यात् स याति नरकं ध्रुवम् ।।

“जो व्यक्ति शूद्रों, निषादों या चण्डालों के परिवार में उत्पन्न भगवद्भक्त को उस विशेष जाति का मानता है, वह निश्चय ही नरक जाता है।”

ब्राह्मण को वैष्णव तथा पण्डित होना चाहिए। इसीलिए भारत में ब्राह्मण को पण्डित कहकर सम्बोधित किया जाता है। ब्रह्म ज्ञान के बिना मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नहीं समझ सकता। इसलिए वैष्णव पहले से ब्राह्मण होता है, जबकि ब्राह्मण वैष्णव बन सकता है। गरुड पुराण में कहा गया है :

भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते ।

स विप्रेन्द्रो मुनिश्रेष्ठः स ज्ञानी स च पण्डितः ॥

“यदि म्लेच्छ कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी भक्त बन जाता है, तो उसे श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा विद्वान पण्डित मानना चाहिए।”

इसी तरह तत्त्व सागर का कथन है :

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः ।

तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥

“जिस तरह तकनीकी विधि से कांस में पारा मिलाने से वह सोना बन जाता है, उसी तरह प्रामाणिक गुरु द्वारा समुचित रीति से प्रशिक्षित तथा दीक्षित व्यक्ति तुरन्त ब्राह्मण बन जाता है। शास्त्रों में प्राप्त यह सारा प्रमाण यह सिद्ध करता है कि वैदिक उक्ति के अनुसार वैष्णव को कभी अब्राह्मण नहीं मानना चाहिए। वैष्णव को कभी भी निम्न जाति का नहीं मानना चाहिए, भले ही वह म्लेच्छ या यवन कुल में उत्पन्न क्यों न हुआ हो। कृष्ण भक्त बन जाने से वह शुद्ध हो जाता है और ब्राह्मण पद को प्राप्त कर लेता है (द्विजत्वं जायते नृणाम्) ।

तारे नमस्करि’ कालिदास विदाय मागिला ।

झड़-ठाकुर तबे ताँर अनुव्रजि' आइला ॥30॥

तारे–उनको (झडु ठाकुर) को; नमस्करि'-नमस्कार किया; कालिदास-कालिदास; विदाय मागिला-जाने की अनुमति माँगी; झड़-ठाकुर-झडु ठाकुर; तबे-उसी समय; ताँर–उनके; अनुव्रजि'-पीछे; आइला-गये।

अनुवाद

कालिदास ने फिर से झडु ठाकुर को नमस्कार किया और उनसे जाने की अनुमति माँगी। उनके जाते ही सन्त झडु ठाकुर उनके पीछे गये।

ताँरे विदाय दिया ठाकुर यदि घरे आइल ।

ताँर चरण-चिह्न येइ ठाञि पड़िल ॥ 31॥

ताँरे–उनको (कालिदास को); विदाय दिया–विदा कर दिया; ठाकुर-झडु ठाकुर; यदि-जब; घरे आइल-घर लौट आये; ताँर चरण-चिह-उनके पदचिह्नः येइ ठाञि-गिरे; पड़िल-जहाँ।

अनुवाद

कालिदास को विदा करने के बाद झडु ठाकुर अपने घर लौट आये और अनेक स्थानों पर अपने पदचिह्न छोड़ते आये, जो स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे।

सेइ धूलि लञा कालिदास सर्वाङ्गे लेपिला ।

ताँर निकट एक-स्थाने लुकाञा रहिला ॥ 32॥

सेइ धूलि-वह धूल; लञा-लेकर; कालिदास-कालिदास; सर्व-अड़े-सारे शरीर पर; लेपिला-लगा दी; ताँर निकट–उनके निकट के स्थान; एक-स्थाने-एक स्थान में; लुकाञा रहिला-छिपे रह गये।

अनुवाद

कालिदास ने उन चरणचिह्नों की धूल अपने सारे शरीर पर पोत ली। तब वे झड़ु ठाकुर के घर के निकट एक स्थान में छिप गये।

झड़ु-ठाकुर घर याइ' देखि' आम्र-फल ।

मानसेइ कृष्ण-चन्द्रे अर्पिला सकल ॥ 33॥

झड़ु-ठाकुर-झड़ु ठाकुर; घर याइ'–घर लौट आये; देखि' आम्र-फल-आम को देखकर; मानसेइ-मन ही मन; कृष्ण-चन्द्रे-कृष्ण को; अर्पिला-अर्पित किया; सकल-सभी।

अनुवाद

घर लौटकर झड़ु ठाकुर ने कालिदास द्वारा भेंट किये गये आमों को देखा। उन्होंने मन ही मन उन्हें कृष्णचन्द्र को अर्पित कर दिया।

कलार पाटुया-खोला हैते आम्र निकाशिया ।

ताँर पत्नी ताँरे देन, खायेन चूषिया ॥ 34॥

कलार–केले की पत्ती; पाटुया-खोला–पत्तीयाँ और छाल; हैते–उसमें से; आम्र-आमों को; निकाशिया-बाहर निकाला; ताँर पत्नी-उनकी पत्नी; ताँरे–उनको; देन-दिया; खायेन–खाने; चूषिया-चूसना।

अनुवाद

तब झड़ु ठाकुर की पत्नी ने केले की पत्ती तथा छाल से लपेटे आमों को निकाला और उन्हें झड़ु ठाकुर को दिया, जिन्होंने उनको चूसना प्रारम्भ कर दिया।

चूषि' चूषि' चोषा आँठि फेलिला पाटुयाते ।

तारे खाओयाञा ताँर पत्नी खाय पश्चाते ॥ 35॥

चूषि' चूषि'-चूसते चूसते; चोषा-चूसा; आँठि-गुठली; फेलिला–छोड़ दी; पाटुयाते-पत्ते पर; तारे–उनका; खाओयाञा–खिलाने के बाद; ताँर पत्नी-उनकी पत्नी; खाय-खाया; पश्चाते—उसने बाद।

अनुवाद

जब वे उन्हें चूस चुके, तो उन्होंने गुठली और छिलके को केले के पत्ते पर छोड़ दिया और उनकी पत्नी अपने पति को खिलाने के बाद स्वयं खाने लगी।

आँठि-चोषा सेइ पाटुया-खोलाते भरिया ।

बाहिरे उच्छिष्ट गर्ने फेलाइला लञा ॥ 36॥

आँठि–गुठलियाँ; चोषा-चुस लेने पर; सेइ-वह; पाटुया-खोलाते–केले के पत्ते और छाल; भरिया-भरकर; बाहिरे--बाहर; उच्छिष्ट-गर्ते-कूड़ेदान में; फेलाइला लञा- उठाकर फेंक दिया।

अनुवाद

जब वह खा चुकी, तो उसने केले की पत्तों और छाल में गुठलियाँ तथा छिलके ले लिये और उन्हें ले जाकर कूड़ादान में फेंक दिया।

सेइ खोला, आँठि, चोकला चूषे कालिदास ।

चूषिते चूषिते हय प्रेमेते उल्लास ॥ 37॥

सेइ-वह; खोला–केले के पत्ते; आँठि-आम की गुठली; चोकला-आम के छिलके; चूषे-चूसे; कालिदास–कालिदास; चूषिते चूषिते-चूसते समय; हय–हो गये; प्रेमेते उल्लास–प्रसन्नता के मारे प्रेमाविष्ट।

अनुवाद

कालिदास ने केले के पत्ते तथा आम की गुठली और छिलके को चूसा। चूसते समय वे प्रसन्नता के मारे प्रेमाविष्ट हो गये।

एइ-मत यत वैष्णव वैसे गौड़-देशे ।

कालिदास ऐछे सबार निला अवशेषे ॥ 38॥

एइ-मत-इस तरह; यत–जितने; वैष्णव-वैष्णवजन; वैसे—निवास करने वाले; गौड़-देशे-बंगाल में; कालिदास-कालिदास; ऐछे—इस तरह; सबार-उन सभी का; निला–खाया; अवशेषे–बचा हुआ।

अनुवाद

इस तरह कालिदास ने बंगाल में निवास करने वाले सारे वैष्णवों का जूठन खाया।

सेइ कालिदास यबे नीलाचले आइला ।

महाप्रभु ताँर उपर महा-कृपा कैला ॥ 39॥

सेइ कालिदास-यही कालिदास; बे-जब; नीलाचले आइला-जगन्नाथ पुरी आये; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर उपर–उन पर; महा-कृपा–महान् कृपा; कैला-की।

अनुवाद

जब यही कालिदास जगन्नाथपुरी अर्थात् नीलाचल आये, तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन पर महान् कृपा की।

प्रति-दिन प्रभु यदि या'न दरशने ।

जल-करङ्ग लञा गोविन्द ग़ाय प्रभु-सने ॥40॥

प्रति-दिन-प्रतिदिन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यदि-जब; या'न-जाते; दरशने-भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने; जल-करङ्ग-पानी का पात्र; लञा–लेकर; गोविन्द-महाप्रभु की निजी सेवक (गोविन्द); याय-जाता; प्रभु-सने-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिदिन नियमित रूप से जगन्नाथ जी के मन्दिर में दर्शन करने जाते और उस समय उनका निजी सेवक गोविन्द उनका कमण्डल लेकर उनके साथ-साथ जाता।

सिंह-द्वारेर उत्तर-दिके कपाटेर आड़े ।

बाइश 'पाहाच'-तले आछे एक निम्न गाड़े ॥41॥

सिंह-द्वारेर–सिंहद्वार की; उत्तर-दिके-उत्तर दिशा की ओर; कपाटेर आड़े-दरवाजे के पीछे; बाइश पाहाच-बाईस सीढ़ियाँ; तले–के नीचे; आछे-वहाँ है; एक-एक; निम्न–गहरा; गाड़े– गड्ढा।

अनुवाद

सिंहद्वार के उत्तर में, दरवाजे के पीछे से बाईस सीढ़ियाँ मन्दिर को जाती हैं और इन सीढ़ियों के नीचे एक गड्ढा है।

सेइ गाड़े करेन प्रभु पाद-प्रक्षालने ।

तबे करिबारे याय ईश्वर-दरशने ॥42॥

सेइ गाड़े-इस गड्ढे में; करेन-करते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पाद-प्रक्षालने-पाँव धोते; तबे—उसके बाद; करिबारे-करते; याय–वे जाते; ईश्वर-दरशने–भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इसी गड्ढा में अपने पाँव धोया करते और उसके बाद भगवान जगन्नाथ का दर्शन करने मन्दिर में प्रवेश करते।

गोविन्देरे महाप्रभु कैराछे नियम ।

‘मोर पाद-जल येन ना लय कोन जन’ ॥43॥

गोविन्देरे–गोविन्द को; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, कैराछे–दिया; नियम-आदेश दिया; मोर-मेरे; पाद-जल-पाँव धोने वाले जल को; येन-वह; ना लय-न ले; कोन जन-कोई भी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने सेवक गोविन्द को आदेश दे रखा था कि उनके पादप्रक्षालित जल को कोई न ले।

प्राणि-मात्र ल-इते ना पाय सेइ जल ।

अन्तरङ्ग भक्त लय करि’ कोन छल ॥44॥

प्राणि-मात्र–सभी प्राणी मात्र; ल-इते-लेने के लिए; ना पाय-न पाते; सेइ जल-वह पानी; अन्तरङ्ग–अत्यन्त अन्तरंग; भक्त-भक्त; लय-लेते; करि’--करने; कोन छल-कुछ उपाय से।

अनुवाद

महाप्रभु की सख्त आज्ञा के कारण कोई जीव यह जल नहीं ले सकता था। किन्तु उनके कुछ अन्तरंग भक्त किसी न किसी युक्ति से इसे ले लेते।

एक-दिन प्रभु ताँहा पाद प्रक्षालिते ।

कालिदास आसि’ ताहाँ पातिलेन हाते ॥ 45 ॥

एक-दिन-एक दिन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँहा-वहाँ; पाद प्रक्षालिते-अपने पाँव धोने; कालिदास-कालिदास; आसि-आये; ताहाँ-वहाँ; पातिलेन-फैलाये; हाते-अपनी हथेलियाँ।

अनुवाद

एक दिन जब श्री चैतन्य महाप्रभु उसी स्थान पर अपने पाँव धो रहे थे, तो कालिदास वहाँ आये और जल लेने के लिए अपनी अंजुली बढ़ाई।

एक अञ्जलि, दुइ अञ्जलि, तिन अञ्जलि पिला ।

तबे महाप्रभु ताँरे निषेध करिला ॥ 46॥

एक अञ्जलि-एक अँजुली भरकर; दुइ अञ्जलि-दूसरी अँजुली भरकर; तिन अञ्जलि-तीसरी अँजुली भरकर; पिला-उन्होंने पिया; तबे-उस समय; महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे-उन्हें; निषेध करिला-मना किया।

अनुवाद

कालिदास ने एक अँजुली पानी पिया, फिर दूसरी और तीसरी अंजुली भरकर भी पानी पिया। तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने और अधिक पीने से उन्हें मना कर दिया।

"अतःपर आर ना करिह पुनर्बार ।

एतावता वाञ्छा-पूरण करिलुँ तोमार" ॥47॥

अतःपर—अब फिर; आर—फिर कभी; ना करिहमत करना; पुनः-बार फिर से; एतावता-यथासम्भव; वाञ्छा-पूरण-इच्छा पूरी; करिलुँ-मैंने की है; तोमार-तुम्हारी।

अनुवाद

"अब फिर से इस तरह मत करना। मैंने यथासम्भव तुम्हारी इच्छा पूरी कर दी है।"

सर्वज्ञ-शिरोमणि चैतन्य ईश्वर ।

वैष्णवे ताँहार विश्वास, जानेन अन्तर ॥48॥

सर्व-ज्ञ-सर्वज्ञ; शिरोमणि-सर्वश्रेष्ठ; चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; ईश्वर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; वैष्णवे-वैष्णवों में; ताँहार विश्वास-उनकी श्रद्धा; जानेन-वे जान गये; अन्तर-मन में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्ञ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। इसलिए वे जान गये कि कालिदास के अन्तर में वैष्णवों के प्रति पूरी श्रद्धा है।

सेइ-गुण लञा प्रभु ताँरे तुष्ट ह-इला ।

अन्येर दुर्लभ प्रसाद ताँहारे करिला ॥49॥

सेइ-गुण-इसी गुण; लञा-स्वीकार करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उन्हें; तुष्ट ह-इला–तुष्ट किया; अन्येर–अन्य किसी ने; दुर्लभ प्राप्त नहीं की; प्रसाद-कृपा; ताँहारे—उनको; करिला-दिखाया।

अनुवाद

इसी गुण के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें ऐसी कृपा से तुष्ट किया, जो अन्य किसी के लिए प्राप्त नहीं है।

बाइश 'पाहाच'-पाछे उपर दक्षिण-दिके ।

एक नृसिंह-मूर्ति आछेन उठिते वाम-भागे ॥50॥

बाइश पाहाच-बाईस सीढ़ियों; पाछे–के पीछे; उपर-ऊपर; दक्षिण-दिके-दक्षिण दिशा की ओर; एक-एक; नृसिंह-मूर्ति-भगवान् नृसिंह का विग्रह; आछेन-वहाँ पर; उठिते-ऊपर जाते हुए; वाम-भागे-वाम दिशा की ओर।

अनुवाद

दक्षिण दिशा में बाइस सीढ़ियों के पीछे ऊपर की ओर नृसिंह देव के अर्चाविग्रह हैं, जो सीढ़ियों से चढ़कर मन्दिर जाते समय बाँई ओर पड़ती है।

प्रति-दिन ताँरे प्रभु करेन नमस्कार।

नमस्करि' एइ श्लोक पड़े बार-बार ॥51॥

प्रति-दिन-प्रतिदिन; ताँरे-नृसिंह भगवान् को प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन-करते; नमस्कार-नमस्कार; नमस्करि'-नमस्कार अर्पण; एइ श्लोक-इस श्लोक का; पड़े-पठन; बार-बार-बारम्बार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु मन्दिर जाते समय अपने बाएँ पड़ने वाले नृसिंह भगवान् के अर्चाविग्रह को नमस्कार करते। नमस्कार करते समय वे बारम्बार निम्नलिखित श्लोक पढ़ते।

नमस्ते नर-सिंहाय प्रह्लादाह्लाद-दायिने।

हिरण्यकशिपोर्वक्षः-शिला-टङ्क-नखालये ॥52॥

नमः-मैं आपको मेरा सादर नमस्कार करता हूँ; ते-आपको; नर-सिंहाय-भगवान् नृसिंहदेव; प्रह्लाद-महाराज प्रह्लाद को; आह्लाद-आनन्द को; दायिने-देने वाले; हिरण्यकशिपोः-हिरण्यकशिपु के; वक्षः-वक्षस्थल; शिला-पत्थर की तरह; टङ्क–छेनी की तरह; नख-आलये-उनके नाखूनों ने।

अनुवाद

"हे नृसिंहदेव, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। आप प्रह्लाद महाराज को हर्ष प्रदान करने वाले हैं। आपके नाखूनों ने हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल को पत्थर काटने की छेनी के समान विदीर्ण कर डाला था।

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगला श्लोक नृसिंह पुराण से उधृत हैं।

इतो नृसिंहः परतो नृसिंहो

यतो यतो यामि ततो नृसिंहः ।

बहिर्नृसिंहो हृदये नृसिंहो

नृसिंहमादिं शरणं प्रपद्ये ॥53॥

इतः–यहाँ; नृसिंहः-भगवान् नृसिंह; परतः—उस ओर; नृसिंहः-भगवान् नृसिंह; यतः यतः-हर तरफ; यामि-मैं जाता हूँ; ततः-वहाँ; नृसिंहः-भगवान् नृसिंह; बहिः-बाहर; नृसिंहः-भगवान् नृसिंह; हृदये-मेरे हृदय में; नृसिंहः-भगवान् नृसिंह; नृसिंहम्-भगवान् नृसिंह; आदिम्पू र्ण पुरुषोत्तम भगवान्; शरणम् प्रपद्ये-मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

अनुवाद

“इधर भगवान् नृसिंह हैं, उस ओर भी भगवान् नृसिंह हैं। मैं जहाँ भी जाता हूँ, वहाँ भगवान् नृसिंहदेव को देखता हूँ। वे मेरे हृदय के बाहर और भीतर हैं। इसलिए मैं आदि भगवान् नृसिंहदेव की शरण ग्रहण करता हूँ, जो कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।”

तबे प्रभु करिला जगन्नाथ दरशन ।

घरे आसि’ मध्याह्न करि’ करिल भोजन ॥54॥

तबे-इसके बाद; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करिला–किया; जगन्नाथ दरशन-भगवान् जगन्नाथ का दर्शन; घरे आसि’-घर आने के बाद; मध्याह्न करि’–दोपहर के कृत्य करने के बाद; करिल भोजन-भोजन किया।

अनुवाद

भगवान् नृसिंहदेव को नमस्कार करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान जगन्नाथ के मन्दिर में दर्शन किये। तब अपने घर आकर दोपहर के कृत्य करने के बाद उन्होंने भोजन किया।

बहिर्द्वारि आछे कालिदास प्रत्याशा करिया ।

गोविन्देरे ठारे प्रभु कहेन जानिया ॥55॥

बहिः-द्वारे-दरवाजे के बाहर; आछे-था; कालिदास-कालिदास; प्रत्याशी करिया-आशा करते; गोविन्देरे-गोविन्द को; ठारे-संकेत से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहेन–कहा; जानिया-जानते हुए।

अनुवाद

कालिदास श्री चैतन्य महाप्रभु के शेष प्रसाद की आशा में दरवाजे के बाहर खड़े थे। यह जानते हुए महाप्रभु ने गोविन्द को संकेत किया।

महाप्रभुर इङ्गित गोविन्द सब जाने ।

कालिदासेरे दिल प्रभुर शेष-पात्र-दाने ॥56॥

महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; इङ्गित–संकेतों को; गोविन्द–उनका निजी सेवक; सब-सब; जाने-जानता; कालिदासेरे–कालिदास को; दिल-दिया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; शेष-पात्र बचा हुआ भोजन; दाने-प्रदान किया।

अनुवाद

गोविन्द श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे संकेतों को जानता था। इसलिए उसने तुरन्त ही श्री चैतन्य महाप्रभु के भोजन का शेष प्रसाद कालिदास को दे दिया।

वैष्णवेर शेष-भक्षणेर एतेक महिमा ।

कालिदासे पाओयाइल प्रभुर कृपा-सीमा ॥57॥

वैष्णवेर-वैष्णव के; शेष-भक्षणेर-बचा हुआ भोजन ग्रहण करने की; एतेक महिमा-इतना महत्त्व; कालिदासे-कालिदास; पाओयाइल-पाने पर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-सीमा सर्वोच्च कृपा।

अनुवाद

वैष्णव के भोजन का शेष ग्रहण करना इतना महत्त्वपूर्ण है कि श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी सर्वोच्च कृपा कालिदास पर अर्पित करने के लिए प्रेरित हुए।

ताते 'वैष्णवेर झुटा' खाओ छाड़ि' घृणा-लाज ।

याहा हैते पाइबा निज वाञ्छित सब काज ॥58॥

ताते-इसलिए; वैष्णवेर झुटा-वैष्णवों का बचा हुआ भोजन; खाओ-खाओ; छाड़ि'–छोड़कर; घृणा-लाज-घृणा तथा संकोच; याहा हैते–जिससे; पाइबा-तुम प्राप्त करोगे; निज-तुम्हारा स्वयं का; वाञ्छित-वांछित लक्ष्य; सब-सब; काज-सफलता।

अनुवाद

इसलिए घृणा तथा संकोच को त्यागकर वैष्णवों के भोजन का शेष खाने का प्रयास करो, क्योंकि इस तरह से तुम्हें जीवन का वांछित लक्ष्य प्राप्त हो सकेगा।

कृष्णेर उच्छिष्ट हय 'महा-प्रसाद' नाम ।

'भक्त-शेष' हैले 'महा-महाप्रसादाख्यान' ॥59॥

कृष्णेर उच्छिष्ट-कृष्ण का बचा हुआ भोजन; हय-है; महा-प्रसाद नाम-महाप्रसाद कहा जाता है; भक्त-शेष-भक्तों का बचा हुआ भोजन; हैले–होता है; महा-महा-प्रसाद-महा महाप्रसाद; आख्यान-नामक।

अनुवाद

कृष्ण को अर्पित किये गये भोजन का शेष महाप्रसाद कहलाता है। और जब यह महाप्रसाद किसी भक्त द्वारा ग्रहण किया जाता है, तो यह शेष महा-महाप्रसाद बन जाता है।

भक्त-पद-धूलि आर भक्त-पद-जल ।

भक्त-भुक्त-अवशेष, तिन महा-बल ॥60॥

भक्त-पद-धूलि–भक्त के चरणों की धूल; आर-और; भक्त-पद-जल-भक्त के चरणों का प्रक्षालित जल; भक्त-भुक्त-अवशेष—और भक्त द्वारा छोड़ा गया बचा हुआ भोजन; तिन-तीन; महा-बल-अत्यन्त शक्तिशाली।

अनुवाद

भक्त के चरणों की धूल, भक्त के चरणों का प्रक्षालित जल तथा भक्त द्वारा छोड़ा गया शेष भोजन-ये तीन अत्यन्त शक्तिशाली वस्तुएँ हैं।

एइ तिन-सेवा हैते कृष्ण-प्रेमा हय ।

पुनः पुनः सर्व-शास्त्रे फुकारिया कय ॥ 61॥

एइ तिन-सेवा-इन तीन की सेवा; हैते–से; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण का प्रेम; हय–होता है; पुनः पुनः–बारम्बार; सर्व-शास्त्रे-सारे प्रामाणिक शास्त्रों में; फु-कारिया कय-पुकार पुकारकर घोषणा करते हैं।

अनुवाद

इन तीनों की सेवा से मनुष्य को कृष्ण-प्रेम का परम लक्ष्य प्राप्त होता है। सारे प्रामाणिक शास्त्रों में बारम्बार पुकार-पुकारकर इसकी घोषणा की गई है।

ताते बार बार कहि,—शुन भक्त-गण ।

विश्वास करिया कर ए-तिन सेवन ॥ 62॥

ताते—इसलिए; बार बार-बारम्बार; कहि-मैं कहता हूँ; शुन-सुनो; भक्त-गण-हे भक्तों; विश्वास करिया-श्रद्धा रखो; कर-करो; ए-तिन सेवन-इन तीनों की सेवा।

अनुवाद

इसलिए हे प्रिय भक्तों, कृपया मुझसे यह सुन लो, क्योंकि मैं बारम्बार आग्रहपूर्वक कहता हूँ कि इन तीनों में श्रद्धा रखो और बिना संकोच के इनकी सेवा करो।

तिन हैते कृष्ण-नाम-प्रेमेर उल्लास ।

कृष्णेर प्रसाद, ताते 'साक्षी' कालिदास ॥63 ॥

तिन हैते–इन तीनों से; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; प्रेमेर उल्लास-प्रेम की जागृति; कृष्णेर प्रसाद- भगवान् कृष्ण की दया; ताते-उसमें; साक्षी-प्रमाण; कालिदास-कालिदास।

अनुवाद

इन तीनों से मनुष्य को जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य-कृष्ण-प्रेम-प्राप्त होता है। यह भगवान् कृष्ण की सबसे बड़ी कृपा है। कालिदास इसके प्रत्यक्ष प्रमाण ।

नीलाचले महाप्रभु रहे एइ-मते ।

कालिदासे महा-कृपा कैला अलक्षिते ॥ 64॥

नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; रहे-रहे; एइ-मते-इस प्रकार; कालिदासे-कालिदास पर; महा-कृपा-महान् कृपा; कैला–प्रदान की; अलक्षिते-अप्रत्यक्ष रीति से।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथपुरी अर्थात् नीलाचल में रहे और उन्होंने कालिदास पर अप्रत्यक्ष रीति से महती कृपा प्रदान की।

से वत्सर शिवानन्द पत्नी लञा आइला ।

'पुरी-दास'-छोट-पुत्रे सङ्क्ते आनिला ॥65॥

से वत्सर-इस वर्ष; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; पत्नी-पत्नी; लञा-लेकर; आइला-आये; पुरी-दास-पुरीदास; छोट-पुत्रे--सबसे छोटे पुत्र; सते आनिला–वे अपने साथ ले आये।

अनुवाद

इस वर्ष शिवानन्द सेन अपने साथ अपनी पत्नी तथा अपने सबसे छोटे पुत्र पुरीदास को भी ले आये।

पुत्र सङ्गे लञा तेंहो आइला प्रभु-स्थाने ।

पुत्रेरे कराइला प्रभुर चरण वन्दने ॥66॥

पुत्र-पुत्र को; सङ्गे-साथ; लञा-लेकर; तेंहो-वे; आइला–आये; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के निवास पर; पुत्रेरे-उनके पुत्र को; कराइला-करवाया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरण वन्दने-चरणकमलों पर सादर नमस्कार।

अनुवाद

शिवानन्द सेन अपने पुत्र को लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने उनके निवास पर गये। उन्होंने अपने पुत्र से महाप्रभु के चरणकमलों पर सादर नमस्कार करवाया।

'कृष्ण कह' बलि' प्रभु बलेन बार बार।

तबु कृष्ण-नाम बालक ना करे उच्चार ॥ 67॥

कृष्ण कह-कृष्ण कहो; बलि'–कहकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; बलेन-बोले; बार बार-बारम्बार; तबु-फिर भी; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का; बालक-बालक; ना करे उच्चार–नामोच्चारण नहीं किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस बालक से कृष्ण नाम का उच्चारण करने के लिए बारम्बार कहा, किन्तु बालक ने पवित्र नाम का उच्चारण नहीं किया।

शिवानन्द बालकेरे बह यत्न करिला।

तबु सेइ बालक कृष्ण-नाम ना कहिला ॥68॥

शिवानन्द-शिवानन्द सेन; बालकेरे-बालक से; बह-बहुत; यत्न–प्रयत्न; करिला किया; तबु–लेकिन; सेइ बालक-उस बालक ने; कृष्ण-नाम-कृष्ण के नाम का; ना कहिला-उच्चारण नहीं किया।

अनुवाद

यद्यपि शिवानन्द सेन ने उस बालक से कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण करवाने का काफी प्रयास किया, किन्तु बालक ने नामोच्चारण नहीं किया।

प्रभु कहे,–"आमि नाम जगते लओयाइलुँ।

स्थावरे पर्यन्त कृष्ण-नाम कहाइलुँ ॥69॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; आमि-मैं; नाम-पवित्र नाम; जगते सारे जगत् में; लओयाइलुँ-लेने के लिए प्रेरित किया; स्थावरे-अचर; पर्यन्त–तक; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पवित्र नाम; कहाइलुँ-कीर्तन के लिए प्रेरित किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैंने तो सारे जगत् को कृष्ण नाम लेने के लिए प्रेरित किया। मैंने वृक्षों तथा अचर वनस्पतियों को भी पवित्र नाम का कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया।

इहारे नारिलुँ कृष्ण-नाम कहाइते!" ।

शुनिया स्वरूप-गोसाञि लागिला कहिते ॥ 70 ॥

इहारे—यह बालक; नारिलुँ-मैं नहीं कर सका; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पवित्र नाम; कहाइते-कहने के लिए; शुनिया-सुनकर; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; लागिला-लगे; कहिते-कहने।

अनुवाद

"किन्तु मैं इस बालक से कृष्ण नाम नहीं कहलवा सका।" यह सुनकर स्वरूप दामोदर गोस्वामी कहने लगे।

"तुमि कृष्ण-नाम-मन्त्र कैला उपदेशे ।

मन्त्र पाञा का'र आगे ना करे प्रकाशे ॥71॥

तुमि-आप; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पवित्र नाम; मन्त्र—यह मन्त्र; कैला उपदेशे उपदेश दिया है; मन्त्र पाञा-मन्त्र प्राप्त किया; का'र आगे-सबों के आगे; ना करे प्रकाशे–व्यक्त नहीं करेगा।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "हे प्रभु, आप उसे कृष्ण नाम में दीक्षित कर चुके हैं। किन्तु मन्त्र प्राप्त करने के बाद वह सबों के समक्ष उसे व्यक्त नहीं करेगा।

मने मने जपे, मुखे ना करे आख्यान ।

एइ इहार मनः-कथा—करि अनुमान" ॥72॥

मने मने-मन ही मन में; जपे-जप करता है; मुखे-मुँह में; ना करे आख्यान-व्यक्त नहीं करता; एइ–उसका; इहार—वह; मनः-कथा-मनोभाव; करि अनुमान-मेरा अनुमान।

अनुवाद

"यह बालक मन ही मन मन्त्र का जप करता है, उसे उच्च स्वर से नहीं कहता। जहाँ तक मेरा अनुमान है, यही उसका मनोभाव है।"

आर दिन कहेन प्रभु,–'पड़, पुरी-दास' ।

एइ श्लोक करि' तेंहो करिला प्रकाश ॥73॥

आर दिन–अन्य दिन; कहेन प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; पड़-वर्णन करो; पुरी-दास–पुरीदास; एइ–यह; श्लोक-श्लोक; करि'-बनाकर; तेंहो–उसने; करिला प्रकाश-व्यक्त किया।

अनुवाद

एक अन्य दिन जब महाप्रभु ने उस बालक से कहा, "हे पुरीदास, तुम सुनाओ।" तो उसने निम्नलिखित श्लोक बनाकर सबों के सामने व्यक्त किया।

श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोर्

अञ्जनमुरसो महेन्द्र-मणि-दाम ।

वृन्दावन-रमणीनां

मण्डनमखिलं हरिर्जयति ॥ 74॥

श्रवसोः-दो कानों का; कुवलयम्-नीलकमल; अक्ष्णोः –दो आँखों का; अञ्जनम्-अंजन; उरसः-वक्षस्थल का; महेन्द्र-मणि-दाम-इन्दनील रत्नों का हार; वृन्दावन-रमणीनाम्-वृन्दावन की गोपियों के; मण्डनम्-आभूषण; अखिलम्-सब; हरिः जयति-भगवान् श्रीकृष्ण की जय हो।

अनुवाद

" श्रीकृष्ण वृन्दावन की गोपांगनाओं के कानों के लिए नीले कमल के फूल के तुल्य हैं। वे आँखों के अंजन हैं, वक्षस्थल के लिए इन्द्रनीलमणि की माला हैं और उनके आभूषण हैं। उन भगवान् श्री हरि, कृष्ण की जय हो।"

सात वत्सरेर शिशु, नाहि अध्ययन ।

ऐछे श्लोक करे,—लोकेर चमत्कार मन ॥75 ॥

सात वत्सरेर-सात वर्ष का; शिशु-बालक; नाहि अध्ययन-कोई शिक्षा बिना; ऐछे—उसे; श्लोक-श्लोक; करे–रचा; लोकेर-सभी व्यक्ति; चमत्कार-आश्चर्यचकित; मन–मन।

अनुवाद

यद्यपि वह बालक केवल सात वर्ष का था और उसे कोई शिक्षा नहीं मिली थी, फिर भी उसने इतना अच्छा श्लोक रचा। इससे हर व्यक्ति आश्चर्यचकित हो गया।

चैतन्य-प्रभुर एइ कृपार महिमा ।

ब्रह्मादि देव यार नाहि पाय सीमा ॥76 ॥

चैतन्य-प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; एइ-यह; कृपार महिमा-कृपा की महिमा; ब्रह्मा-आदि-ब्रह्माजी इत्यादि; देव-देवतागण; यार–जिसका; नाहि पाय-नहीं पाया; सीमा-सीमा।

अनुवाद

यह श्री चैतन्य महाप्रभु की अहैतुकी कृपा की महिमा ही है, जिसका अनुमान ब्रह्माजी एवं देवतागण भी नहीं लगा सकते।

भक्त-गण प्रभु-सङ्गे रहे चारि-मासे ।

प्रभु आज्ञा दिला सबे गेला गौड़-देशे ॥77॥

भक्त-गण-सारे भक्त; प्रभु-सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; रहे-रहे; चारि-मासे–चार महीने; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आज्ञा दिला-आज्ञा दी; सबे-सबको; गेला-लौट गये; गौड़-देशे-बंगाल को।

अनुवाद

सारे भक्त लगातार चार महीने श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रहे। तब महाप्रभु ने उन्हें बंगाल लौट जाने की आज्ञा दी। इसलिए वे लौट गये।

ताँ-सबार सङ्गे प्रभुर छिल बाह्य-ज्ञान ।

ताँरा गेले पुनः हैला उन्माद प्रधान ॥ 78 ॥

ताँ-सबार-ये सभी; सङ्गे-साथ; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; छिल-हो गई; बाह्य-ज्ञान-बाह्य चेतना; ताँरा गेले-जब वे गये; पुनः–फिर से; हैला हो गया; उन्माद-उन्माद; प्रधान-प्रधान कार्य।

अनुवाद

जब तक ये भक्त नीलाचल अर्थात् जगन्नाथपुरी में रहे, श्री चैतन्य महाप्रभु ने बाह्य चेतना बनाए रखी, किन्तु उनके जाते ही महाप्रभु पुनः कृष्ण-प्रेम के उन्माद में खो गये।

रात्रि-दिने स्फुरे कृष्णेर रूप-गन्ध-रस ।

साक्षादनुभवे,—येन कृष्ण-उपस्पर्श ॥79॥

रात्रि-दिने-रात और दिन; स्फुरे–की स्फूरणा होती थी; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; रूप-सौन्दर्य; गन्ध–सुगन्ध; रस-रस; साक्षात्-अनुभवे-प्रत्यक्ष अनुभव करना; येन-जैसे; कृष्ण-उपस्पर्श-कृष्ण का प्रत्यक्ष स्पर्श।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु रात-दिन कृष्ण के सौन्दर्य, सुगन्ध तथा रस का प्रत्यक्ष आस्वादन करने लगे, मानो वे कृष्ण का प्रत्यक्ष स्पर्श कर रहे हों।

एक-दिन प्रभु गेला जगन्नाथ-दरशने ।

सिंह-द्वारे दल-इ आसि' करिल वन्दने ॥80॥

एक-दिन-एक दिन; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला-गये; जगन्नाथ-दरशने-भगवान जगन्नाथ के दर्शन के लिए; सिंह-द्वारे–सिंहद्वार नामक द्वार के; दल-इ-द्वारपाल; आसि—आकर; करिल वन्दने-नमस्कार किया।

अनुवाद

एक दिन जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथजी के मन्दिर में दर्शन के लिए गये, तो सिंहद्वार के द्वारपाल ने उनके पास पहुँचकर उन्हें नमस्कार किया।

तारे बले,–'कोथा कृष्ण, मोर प्राण-नाथ? ।

मोरे कृष्ण देखाओ' बलि' धरे तार हात ॥81॥

तारे-उनको; बले-कहा; कोथा कृष्ण-कृष्ण कहाँ हैं; मोर-मेरे; प्राण-नाथ-प्राणनाथ; मोरे-मुझे; कृष्ण देखाओ-कृपया कृष्ण दिखलाओ; बलि' कहकर; धरे-पकड़कर; तार–उनका; हात–हाथ।

अनुवाद

महाप्रभु ने उससे पूछा, "मेरे प्राणनाथ कृष्ण कहाँ हैं? मुझे कृष्ण दिखलाओ।" यह कहकर उन्होंने द्वारपाल का हाथ पकड़ लिया।

सेह कहे,—इँहा हय व्रजेन्द्र-नन्दन ।

आइस तुमि मोर सङ्गे, कराङदरशन' ॥82॥

सेह कहे—उसने कहा; इँहा-यहाँ; हय-हैं; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र; आइस-आओ; तुमि-आप; मोर सङ्गे-मेरे साथ; कराङदरशन-मैं दिखाऊँगा।

अनुवाद

द्वारपाल ने उत्तर दिया, "महाराज नन्द के पुत्र यहीं हैं। कृपया मेरे साथ आयें। मैं आपको दर्शन करा दूँगा।"

'तुमि मोर सखा, देखाह—काहाँ प्राण-नाथ?' ।

एत बलि' जगमोहन गेला धरि' तार हात ॥83॥

तुमि-तुम; मोर सखा-मेरे मित्र; देखाह-कृपया दिखाओ; काहाँ–कहाँ; प्राण-नाथ-मेरे हृदय के स्वामी; एत बलि'-यह कहकर; जगमोहन-जगमोहन को; गेला-गये; धरि'-पकड़कर; तार-उसका; हात–हाथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने द्वारपाल से कहा : "तुम मेरे मित्र हो। कृपया मुझे मेरे हृदय के स्वामी को दिखला दो।" इतना कहने के बाद वे दोनों जगमोहन नामक स्थान पर गये, जहाँ सभी लोग भगवान जगन्नाथ का दर्शन पाते हैं।

सेह बले,—'एइ देख श्री-पुरुषोत्तम ।

नेत्र भरिया तुमि करह दरशन' ॥84॥

सेह बले-वह बोला; एइ-यह; देख-देखो; श्री-पुरुष-उत्तम-भगवान् श्रीकृष्ण, पुरुषोत्तम भगवान्; नेत्र भरिया-आपकी आँखे भरकर; तुमि-आप; करह दरशन-दर्शन कर लो।

अनुवाद

द्वारपाल ने कहा, "वह देखो, श्री पुरुषोत्तम वहाँ हैं! यहाँ से आप जी भरकर भगवान् का दर्शन कर सकते हैं।"

गरुड़ेर पाछे रहि' करेन दरशन ।

देखेन,—जगन्नाथ हय मुरली-वदन ॥85॥

गरुड़ेर पाछे-गरुड़ स्तम्भ के पीछे; रहि-रहकर; करेन दरशन-दर्शन कर रहे थे; देखेन-उन्होंने देखा; जगन्नाथ-भगवान जगन्नाथ; हय–थे; मुरली-वदन-भगवान् कृष्ण अपने मुख में वंशी लिये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु गरुड़ स्तम्भ के पीछे खड़े रहे और उन्होंने वहाँ से जगन्नाथ जी को देखा। किन्तु जैसे ही उन्होंने देखा, जगन्नाथ जी भगवान् कृष्ण बन गये, जो अपने मुख में वंशी धारण किये थे।

एइ लीला निज-ग्रन्थे रघुनाथ-दास ।

'गौराङ्ग-स्तव-कल्पवृक्षे करियाछेन प्रकाश ॥ 86 ॥

एइ लीला--यह लीला; निज-ग्रन्थे-अपने ग्रन्थ में; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास गोस्वामी; गौराङ्ग-स्तव-कल्प-वृक्षे–गौरांगस्तव कल्पवृक्ष; करियाछेन प्रकाश-वर्णन किया है।

अनुवाद

रघुनाथ दास गोस्वामी ने अपनी पुस्तक 'गौरांगस्तव कल्पवृक्ष' में इस घटना का बहुत सुन्दर वर्णन किया है।

क्व मे कान्तः कृष्णस्त्वरितमिह तं लोकय सखे

त्वमेवेति द्वाराधिपमभिवदन्नुन्मद इव ।

द्रुतं गच्छ द्रष्टुं प्रियमिति तदुक्तेन धृत-तद्

भुजान्तर्गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति ॥87॥

क्व–कहाँ; मे–मेरे; कान्तः–प्राणनाथ; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; त्वरितम्-जल्दी; इह-यहाँ; तम्-उनको; लोकय–दिखाओ; सखे-हे मित्र; त्वम्-तुम; एव–निश्चय ही; इति–इस प्रकार; द्वार-अधिपम्-द्वारपाल; अभिवदन्–विनति करके; उन्मदः-उन्मत्त व्यक्ति; इव-जैसे; द्रुतम्-जल्दी; गच्छ-आओ; द्रष्टुम् देखने; प्रियम्-प्रिय; इति–इस प्रकार; तत्-उनका; उक्तेन–शब्दों से; धृत-पकड़े; तत्-उनके; भुज-अन्तः–हाथ; गौराङ्गः-श्री चैतन्य महाप्रभु; हृदये-मेरे हृदय में; उदयन्–उदय; माम्-मेरे; मदयति-उन्मत्त।

अनुवाद

"हे द्वारपाल, हे मेरे मित्र, मेरे प्राणधन कृष्ण कहाँ हैं? मुझे उनका दर्शन शीघ्रता से कराओ।' श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्मत्त की तरह उस द्वारपाल को इन शब्दों से सम्बोधित किया। द्वारपाल ने उनका हाथ पकड़कर शीघ्रता में उत्तर दिया, 'आइये, आप अपने प्रियतम को देखिये!' वे श्री चैतन्य महाप्रभु मेरे हृदय में उदय हों और मुझे भी उन्मत्त बनायें।"

हेन-काले 'गोपाल-वल्लभ'-भोग लागाइल ।

शङ्ख-घण्टा-आदि सह आरति बाजिल ॥88॥

हेन-काले—इस समय; गोपाल-वल्लभ-भोग–गोपाल वल्लभ भोग नामक भोजन; लागाइल-अर्पित किया; शङ्ख-शंख; घण्टा-आदि-घण्टा आदि; सह–के साथ; आरति-आरति; बाजिल–आवाज आ रही थी।

अनुवाद

तभी भगवान जगन्नाथ को गोपाल वल्लभ भोग नामक भोजन अर्पित किया जा रहा था और शंख ध्वनि तथा घंटे की ध्वनि के साथ आरती की जा रही थी।

भोग सरिले जगन्नाथेर सेवक-गण ।

प्रसाद लञा प्रभु-ठाञि कैल आगमन ॥89॥

भोग सरिले–प्रसाद बाहर ले जाया जा रहा था; जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ के; सेवक-गण-सेवकगण; प्रसाद लञा–प्रसाद लेकर; प्रभु-ठाञि-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के पास; कैल आगमन-देने आये।

अनुवाद

जब आरती समाप्त हो गई, तो प्रसाद बाहर लाया गया और भगवान् जगन्नाथ के सेवकगण कुछ प्रसाद लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु को देने आये।

माला पराञा प्रसाद दिल प्रभुर हाते ।

आस्वाद दूरे रहु, यार गन्धे मन माते ॥90॥

माला पराञा-माला पहनाकर; प्रसाद-भगवान जगन्नाथजी का बचा हुआ भोजन; दिल-दिया; प्रभुर हाते-श्री चैतन्य महाप्रभु के हाथ में; आस्वाद–स्वाद की; दूरे रहु-बात छोड़ दो; यार–जिसकी; गन्धे-सुगन्ध से; मन–मन; माते-उन्मत्त हो जाता है।

अनुवाद

भगवान जगन्नाथ के सेवकों ने सर्वप्रथम श्री चैतन्य महाप्रभु को माला पहनाई और तब उन्हें जगन्नाथ जी का प्रसाद दिया। यह प्रसाद इतना अच्छा था कि स्वाद की बात छोड़ दें, इसकी सुगन्ध ही मन को उन्मत्त बनाने वाली थी।

बहु-मूल्य प्रसाद सेइ वस्तु सर्वोत्तम ।

तार अल्प खाओयाइते सेवक करिल यतन ॥91॥

बहु-मूल्य-अत्यन्त मूल्यवान; प्रसाद-बचा हुआ भोजन; सेइ-वह; वस्तु-सामग्री; सर्व-उत्तम-सर्वोत्तम; तार--उसका; अल्प-थोड़ासा भी; खाओयाइते-खिलाना; सेवक-सेवक; करिल यतन-प्रयत्न करते थे।

अनुवाद

यह प्रसाद बहुमूल्य वस्तुओं से बना हुआ था। इसलिए सेवकगण उसका थोड़ा-सा अंश श्री चैतन्य महाप्रभु को खिलाना चाह रहे थे।

तार अल्प लञा प्रभु जिह्वाते यदि दिला ।

आर सब गोविन्देर आँचले बान्धिला ॥92॥

तार-उसका; अल्प-अत्यन्त थोड़ासा; लञा-लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जिह्वाते-जिह्वा पर; यदि-जब; दिला-रखा; आर सब-बचा हुआ; गोविन्देर-गोविन्द ने; आँचले–वस्त्र के छोर में; बान्धिला-बाँध लिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रसाद का थोड़ा अंश चखा। शेष भाग गोविन्द ने अपने वस्त्र के छोर में बाँध लिया।

कोटि-अमृत-स्वाद पाञा प्रभुर चमत्कार ।

सर्वाङ्गे पुलक, नेत्रे वहे अश्रु-धार ॥93 ॥

कोटि-करोड़ों से करोड़ों गुना; अमृत-अमृत; स्वाद-स्वाद; पाञा-पाया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के चमत्कार–पूर्णतया तुष्ट होना; सर्व-अङ्गे-संपूर्ण शरीर में; पुलक-रोमांच हुआ; नेत्रे-आँखों से; वहे-बहने लगी; अश्रु-धार-अश्रुधारा।

अनुवाद

यह प्रसाद श्री चैतन्य महाप्रभु को अमृत से करोड़ों गुना अधिक स्वादिष्ट लगा, अतएव वे पूर्णतया तुष्ट हो गये। उन्हें रोमांच हो आया और उनके नेत्रों से अविरत अश्रुधारा बहने लगी।

‘एइ द्रव्ये एत स्वाद काहाँ हैते आइल?।

कृष्णेर अधरामृत इथे सञ्चारिल’ ॥94॥

एइ द्रव्ये-इन सामग्री में; एत-इतना; स्वाद–स्वाद; काहाँ–कहाँ; हैते-से; आइल-आया; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; अधर-अमृत-होठों के अमृत के स्पर्श से; इथे-ऐसा; सञ्चारिल-हुआ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने विचार किया, “इस प्रसाद में ऐसा स्वाद कहाँ से आया? निश्चय ही कृष्ण के होठों के अमृत के स्पर्श से ऐसा हुआ है।”

एइ बुद्ध्ये महाप्रभुर प्रेमावेश हैल ।

जगन्नाथेर सेवक देखि’ सम्वरण कैल ॥95॥

एइ बुद्ध्ये—यह समझकर; महाप्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु को, प्रेम-आवेश-प्रेमावेश; हैल-हुआ; जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ के; सेवक-सेवकों को; देखि'–देखकर; सम्वरण कैल-अपने आपको सँभाला।

अनुवाद

यह समझकर श्री चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण के प्रेमावेश का अनुभव हुआ, किन्तु भगवान् जगन्नाथ के सेवकों को देखकर उन्होंने अपने आपको सँभाला।

'सुकृति-लभ्य फेला-लव'—बलेन बार-बार।

ईश्वर-सेवक पुछे,—'कि अर्थ इहार'? ॥ 96 ॥

सुकृति-बड़े सौभाग्य से; लभ्य–मिल सकने वाला; फेला-लव-बचे हुए का कण; बलेन-कहते हैं; बार-बार-बारम्बार; ईश्वर-सेवक-जगन्नाथ के सेवक; पुछे-पूछा; कि-क्या; अर्थ-अर्थ; इहार–इसका।

अनुवाद

महाप्रभु बारम्बार कहते रहे, "बहुत ही सौभाग्य से भगवान् को अर्पित प्रसाद का एक कण मिल पाता है।" जगन्नाथ मन्दिर के सेवकों ने पूछा, इसका अर्थ क्या है?"

तात्पर्य

कृष्ण के भोजन के शेष में उनका लार मिला रहता है। महाभारत तथा स्कन्द पुराण में कहा गया है :

महाप्रसादे गोविन्दे नामब्रह्मणि वैष्णवे।

स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते ॥

“जिन लोगों ने अधिक पुण्य कर्म नहीं किये हैं, वे न तो भगवान् के प्रसाद (भोजन के शेष) में विश्वास करते हैं, न भगवान् के गोविन्द नाम में, न ही वैष्णवों में।”

प्रभु कहे,–“एइ ये दिला कृष्णाधरामृत।

ब्रह्मादि-दुर्लभ एइ निन्दये ‘अमृत' ॥ 97॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; एइ–यह; ये-जो; दिला-आपने दिया है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; अधर-अमृत-होठों के अमृत से; ब्रह्मा-आदि-ब्रह्मा जैसे देवताओं के लिए; दुर्लभ-पाना दुर्लभ; एइ–यह; निन्दये-परास्त करता है; अमृत-अमृत।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, “ये कृष्ण द्वारा किये गये भोजन के शेष हैं, अतएव उनके होठों के स्पर्श से अमृत में परिणत हो गये हैं। यह स्वर्गिक अमृत से बढ़कर है और ब्रह्मा जैसे देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।

कृष्णेर ये भुक्त-शेष, तार 'फेला'-नाम।

तार एक 'लव’ ये पाय, सेइ भाग्यवान् ॥98॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; ये-जो भी; भुक्त-शेष-बचा हुआ भोजन; तार-उसका; फेला-नाम-फेला नाम का; तार-उसका; एक-एक; लव-अल्पांश; ये-जो कोई; पाय-पाता है; सेइ-वह; भाग्यवान्-भाग्यशाली।

अनुवाद

कृष्ण द्वारा छोड़ा गया भोजन फेला कहलाता है। जो इसका अल्पांश भी प्राप्त कर लेता है, उसे अत्यन्त भाग्यशाली मानना चाहिए।

सामान्य भाग्य हैते तार प्राप्ति नाहि हय ।

कृष्णेर याँते पूर्ण-कृपा, सेइ ताहा पाय ॥99॥

सामान्य-सामान्य; भाग्य-भाग्य; हैते–से; तार-उसकी; प्राप्ति-प्राप्ति; नाहि-नहीं; हय–हो सकती; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; याँते–जिन पर; पूर्ण-कृपा-पूर्ण कृपा; सेइ-वही; ताहा-वह; पाय-पाता है।

अनुवाद

"जो केवल सामान्य भाग्यवान् है, उसे ऐसी कृपा प्राप्त नहीं हो सकती। केवल वे ही ऐसा शेष प्रसाद पा सकते हैं, जिन पर कृष्ण की पूर्ण कृपा हो।

'सुकृति'-शब्दे कहे 'कृष्ण-कृपा-हेतु पुण्य' ।

सेइ याँर हय, 'फेला' पाय सेइ धन्य" ॥100॥

सुकृति-सुकृति (पूण्य कर्म); शब्दे-शब्द; कहे-समझा जाना चाहिए; कृष्ण-कृपा-कृष्ण की कृपा; हेतु-के कारण; पुण्य-पूण्य कर्म; सेइ-वे; याँर-जिनका; हय-है; फेला-बचा हुआ भोजन; पाय-पाता है; सेइ-वह; धन्य-धन्य है।

अनुवाद

"सुकृति' शब्द कृष्ण कृपा से सम्पन्न होने वाले पुण्य कर्मों का द्योतक है। जो ऐसी कृपा प्राप्त करने के लिए भाग्यशाली होता है, वही भगवान् के भोजन का शेष पाता है और धन्य हो जाता है।"

एत बलि' प्रभु ता-सबारे विदाय दिला ।

उपल-भोग देखिया प्रभु निज-वासा आइला ॥101॥

एत बलि'—यह कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ता-सबारे उन सबको; विदाय दिला–विदा कर दिया; उपल-भोग-उपल भोग; देखिया-देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-वासा-अपने स्थान पर; आइला–लौट आये।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे सेवकों को विदा कर दिया। फिर उपल भोग उत्सव के दर्शन करने के उपरान्त वे अपने स्थान पर लौट आये।

मध्याह्न करिया कैला भिक्षा निर्वाहण ।

कृष्णाधरामृत सदा अन्तरे स्मरण ॥102॥

मध्याह्न करिया-दोपहर के कृत्य करने के बाद; कैला भिक्षा निर्वाहण-दोपहर का भोजन किया; कृष्ण-अधर-अमृत-कृष्ण के होठों का अमृत; सदा-सदा; अन्तरे-अपने अन्तर में; स्मरण-स्मरण करते हुए।

अनुवाद

दोपहर के कृत्य पूरे करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने दोपहर का भोजन किया, किन्तु वे लगातार कृष्ण के शेष प्रसाद का स्मरण करते रहे।

बाह्य-कृत्य करेन, प्रेमे गरगर मन ।

कष्टे सम्वरण करेन, आवेश सघन ॥ 103॥

बाह्य-कृत्य-बाह्य कार्य; करेन-करते; प्रेमे-प्रेम से; गरगर-पूरित रहते; मन–मन; कष्टे-बड़ी कठिनाइ से; सम्वरण करेन-रोक पाना; आवेश-आवेश; सघन-अत्यन्त गहन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने बाह्य कार्य तो सम्पन्न करते, किन्तु उनका मन प्रेम से पूरित रहता। वे बड़ी कठिनाई से अपने मन को रोक पाते, तो भी वह सदैव गहन भाव से अभिभूत हो उठता।

सन्ध्या-कृत्य करि' पुनः निज-गण-सङ्गे ।

निभृते वसिला नाना-कृष्ण-कथा-रङ्गे ॥104॥

सन्ध्या-कृत्य-सन्ध्या कर्म; करि'-कर लेने के बाद; पुनः पुनः; निज-गण-सङ्गे-अपने निजी संगियों के साथ; निभृते-एकान्त स्थान में; वसिला-बैठ गये; नाना-नाना; कृष्ण-कथा-कृष्ण की लीलाओं की; रङ्गे–हर्ष के साथ।

अनुवाद

अपने सन्ध्या कर्म समाप्त कर लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु एकान्त स्थान में अपने निजी संगियों के साथ बैठ गये और अत्यन्त हर्ष के साथ कृष्ण की लीलाओं की चर्चा की।

प्रभुर इङ्गिते गोविन्द प्रसाद आनिला ।

पुरी-भारतीरे प्रभु किछु पाठाइला ॥105॥

प्रभुर इङ्गिते-श्री चैतन्य महाप्रभु के संकेत से; गोविन्द-गोविन्द; प्रसाद आनिला-भगवान जगन्नाथ जी का बचा हुआ भोजन ले आया; पुरी-परमानन्द पुरी को; भारतीरे-ब्रह्मानन्द भारती को; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; किछु-कुछ; पाठाइला–भिजवाया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के संकेत पर गोविन्द भगवान जगन्नाथ जी का प्रसाद ले आया। महाप्रभु ने कुछ प्रसाद परमानन्द पुरी तथा ब्रह्मानन्द भारती के लिए भिजवाया।

रामानन्द-सार्वभौम-स्वरूपादि-गणे ।

सबारे प्रसाद दिल करिया वण्टने ॥106 ॥

रामानन्द-रामानन्द राय; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; आदि–इत्यादि; गणे-उनको; सबारे-सबको; प्रसाद-भगवान जगन्नाथ जी का बचा हुआ प्रसाद; दिल–दे दिया; करिया वण्टने-हिस्सा बनाकर।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रसाद का कुछ अंश रामानन्द राय, सार्वभौम भट्टाचार्य, स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा अन्य सारे भक्तों को दिया।

प्रसादेर सौरभ्य-माधुर्य करि' आस्वादन ।

अलौकिक आस्वादे सबार विस्मित हैल मन ॥ 107॥

प्रसादेर-प्रसाद की; सौरभ्य-माधुर्य–मधुरता और सुगन्ध; करि' आस्वादन-आस्वादन किया; अलौकिक-असाधारण; आस्वादे-स्वाद से; सबार-हर एक का; विस्मित-आश्चर्यचकित; हैल–हुआ; मन–मन।

अनुवाद

जब उन सबों ने प्रसाद की असाधारण मधुरता तथा सुगन्ध का आस्वादन किया, तो हर एक का मन आश्चर्यचकित हो गया।

प्रभु कहे,–"एइ सब हय 'प्राकृत' द्रव्य ।

ऐक्षव, कर्पूर, मरिच, एलाइच, लवङ्ग, गव्य ॥ 108॥

रसवास, गुड़त्वक-आदि यत सब ।

'प्राकृत' वस्तुर स्वाद सबार अनुभव ॥ 109॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; एइ-ये; सब-सब; हय-हैं; प्राकृत-भौतिक; द्रव्य-वस्तुएँ; ऐक्षव-चीनी; कर्पूर-कपूर; मरिच–काली मिर्च; एलाइच-इलायची; लवङ्ग-लौंग; गव्य-मक्खन; रसवास-मसाले; गुड़त्वक-मुलेठी; आदि-आदि; यत सब-ये सभी; प्राकृत-भौतिक; वस्तुर वस्तुएँ; स्वाद–स्वाद; सबार-हर एक का; अनुभव–अनुभव है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "चीनी, कपूर, काली मिर्च, इलायची, लौंग, मक्खन, मसाले तथा मुलेठी-ये सभी तो भौतिक वस्तुएँ हैं। इन सभी भौतिक वस्तुओं का स्वाद प्रत्येक ने पहले लिया है।

तात्पर्य

प्राकृत शब्द उन वस्तुओं का द्योतक है, जिनका आस्वादन बद्धजीव अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए करते हैं। ऐसे पदार्थ भौतिक नियमों से सीमित हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु यह बताना चाह रहे थे कि भौतिक वस्तुओं का स्वाद भौतिकता में लिप्त लोगों को पहले से ज्ञात होता है, जो मात्र इन्द्रियतृप्ति में रुचि रखते हैं।

सेइ द्रव्ये एत आस्वाद, गन्ध लोकातीत ।

आस्वाद करिया देख,—सबार प्रतीत ॥ 110॥

सेइ द्रव्ये-ऐसी वस्तुओं में; एत-इतना; आस्वाद–आस्वाद; गन्ध–सुगन्ध; लोक-अतीत–किसी सामान्य व्यक्ति ने पहले कभी अनुभव नहीं किया; आस्वाद करिया-आस्वाद लिया; देख-देखो; सबार-सभी को; प्रतीत–अनुभव करके।

अनुवाद

महाप्रभु ने आगे कहा, "किन्तु इन वस्तुओं में असामान्य स्वाद तथा सुगन्ध है। जरा चखो तो और अन्तर का अनुभव करके देखो।

आस्वाद दूरे रहु, यार गन्धे माते मन ।

आपना विना अन्य माधुर्य कराय विस्मरण ॥111॥

आस्वाद-आस्वाद; दूरे रहु-दूर रहने दो; यार—जिसकी; गन्धे-गन्ध तक; माते-भाती है; मन-मन को; आपना विना-किसी भी; अन्य-अन्य; माधुर्य–मधुरता को; कराय विस्मरण-भुला देती है।

अनुवाद

"स्वाद के अतिरिक्त सुगन्ध तक मन को भाती है और वह उसके आगे अन्य किसी भी मधुरता को भुला देती है।

ताते एइ द्रव्ये कृष्णाधर-स्पर्श हैल ।

अधरेर गुण सब इहाते सञ्चारिल ॥ 112॥

ताते-इसलिए; एइ द्रव्ये—इन द्रव्यों में; कृष्ण-अधर-कृष्ण के होठों का; स्पर्श-स्पर्श; हैल-हुआ है; अधरेर–होठों के; गुण-गुण; सब-सब; इहाते-इन द्रव्यों में; सञ्चारिल-आ गये हैं।

अनुवाद

"इसलिए इससे यह समझना चाहिए कि इन सामान्य वस्तुओं में कृष्ण के होठों के दिव्य अमृत का स्पर्श हुआ है, जिससे इनमें उन होठों के सारे आध्यात्मिक गुण आ गये हैं।

तात्पर्य

चूँकि सभी भक्त इन वस्तुओं का आस्वादन पहले से कर चुके थे, तो फिर ये वस्तुएँ क्यों असाधारण तथा आध्यात्मिक रूप से स्वादिष्ट बन गई थीं ? यही प्रमाण था कि कृष्ण के होठों का स्पर्श पाकर भोजन या प्रसाद असाधारण रूप से सुगन्ध युक्त तथा स्वादिष्ट बन जाता है।

अलौकिक-गन्ध-स्वाद, अन्य-विस्मारण ।

महा-मादक हय एइ कृष्णाधरेर गुण ॥ 113॥

अलौकिक-असाधारण; गन्ध-गन्ध; स्वाद-स्वाद; अन्य-विस्मारण-अन्य सारों को विस्मृत करवाने वाला; महा-मादक-अत्यन्त मोहक; हय-हुआ; एइ-यह; कृष्ण-अधरेर कृष्ण के होठों के; गुण-गुण।

अनुवाद

कृष्ण के होठों के गुण हैं-" असाधारण अत्यन्त मोहक सुगन्ध तथा स्वाद, जो अन्य सारे अनुभवों को विस्मृत करा देते हैं।

अनेक 'सुकृते' इहा हञाछे सम्प्राप्ति ।

सबे एइ आस्वाद कर करि' महा-भक्ति" ॥114॥

अनेक-अनेक; सुकृते-पुण्य कार्यों के; इहा-यह; हञाछे सम्प्राप्ति-प्राप्य हुआ है; सबे-तुम सब; एइ-इसे; आस्वाद कर-आस्वादन करो; करि' महा-भक्ति-महान् भक्ति के साथ।

अनुवाद

"यह प्रसाद अनेक पुण्य कार्यों के फलस्वरूप ही प्राप्त हुआ है। अब इसका अतीव श्रद्धा तथा भक्ति के साथ आस्वादन करो।"

हरि-ध्वनि करि' सबे कैला आस्वादन ।

आस्वादिते प्रेमे मत्त ह-इल सबार मन ॥ 115॥

हरि-ध्वनि करि'-हरि नाम का कीर्तन करते हुए; सबे-उन सब ने; कैला आस्वादन-आस्वादन किया; आस्वादिते-आस्वादन करते ही; प्रेमे-प्रेमावेश से; मत्त-उन्मत्त; ह-इल-हो उठे; सबार मन-सबके मन।

अनुवाद

सबों ने उच्च स्वर से हरि नाम का कीर्तन करते हुए प्रसाद का आस्वादन किया। उसका आस्वादन करते ही उनके मन प्रेमावेश से उन्मत्त हो उठे।

प्रेमावेशे महाप्रभु यबे आज्ञा दिला ।

रामानन्द-राय श्लोक पड़िते लागिला ॥116 ॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यबेजब; आज्ञा दिला-आदेश दिया; रामानन्द-राय-रामानन्द राय; श्लोक-श्लोक; पड़िते लागिला-पढ़ने लगे।

अनुवाद

प्रेमावेश में श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को कुछ श्लोक सुनाने का आदेश दिया। तब रामानन्द राय इस प्रकार बोले।

सुरत-वर्धनं शोक-नाशनं

स्वरित-वेणुना सुष्ठ-चुम्बितम् ।

इतर-राग-विस्मारणं नृणां

वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ 117॥

सुरत-वर्धनम्-भोग की कामेच्छाओं को बढ़ाता है; शोक-नाशनम्-सर्व शोक को कम करता है; स्वरित-वेणुना-वंशी की ध्वनि से; सुष्ठ-अच्छी तरह; चुम्बितम्-स्पर्श किया; इतर-राग-विस्मारणम्-अन्य सारी आसक्तियों को भुलाने वाली; नृणाम्-मनुष्यों को; वितर-प्रदान करें; वीर-हे दानवीर; नः-हमें; ते-आपके; अधर-अमृतम्-होठों का अमृत।

अनुवाद

"हे दानवीर, कृपया हमें अपने होठों का अमृत प्रदान करें। यह अमृत भोग की कामेच्छाओं को बढ़ाता है और भौतिक जगत् में शोक को कम करता है। कृपया हमें अपने उन होठों का अमृत दें, जिनका स्पर्श आपकी दिव्य ध्वनि करने वाली वंशी करती है, क्योंकि वह अमृत सारे मनुष्यों को उनकी अन्य सारी आसक्तियों को भूल जाने के लिए प्रेरित करता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.31.14) का है।

श्लोक शुनि' महाप्रभु महा-तुष्ट हैला।

राधार उत्कण्ठा-श्लोक पड़िते लागिला ॥118॥

श्लोक शुनि'–श्लोक सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; महा-तुष्ट-अत्यधिक तुष्ट; हैला–हुए; राधार-श्रीमती राधारानी के; उत्कण्ठा-श्लोक-श्लोक अत्यन्त उत्कण्ठा में; पड़िते लागिला-पढ़ने लगे।

अनुवाद

रामानन्द राय द्वारा यह श्लोक सुनाने पर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यधिक तुष्ट हुए। तब उन्होंने स्वयं निम्नलिखित श्लोक सुनाया, जिसे श्रीमती राधारानी ने अत्यन्त उत्कण्ठा में कहा था।

व्रजातुल-कुलाङ्गनेतर-रसालि-तृष्णा-हर-

प्रदीव्यदधरामृतः सुकृति-लभ्य-फेला-लवः ।

सुधा-जिदहिवल्लिका-सुदल-वीटिका-चर्वितः

स मे मदन-मोहनः सखि तनोति जिह्वा-स्पृहाम् ॥ 119॥

व्रज-वृन्दावन का; अतुल-अतुलनीय; कुल-अङ्गना-गोपियों का; इतर–अन्य; रस-आलि-रस के लिए; तृष्णा-इच्छा; हर-हरते हुए; प्रदीव्यत्-सबका अतिक्रमण करनेवाला; अधर-अमृतः-जिनके होठों का अमृत; सुकृति-अनेक पुण्य कर्मों के बाद; लभ्य-प्राप्त होने वाला; फेला–जिनके होठों का अमृत; लवः-एक अंश; सुधा-जित्-अमृत को परारत करने वाला; अहि-वल्लिका–पान की लता; सु-दल-चुने गये पत्तों से बना; वीटिका-पान; चर्वितः-चबाकर; सः-वे; मे-मेरा; मदन-मोहनः–मदनमोहन; सखि-हे प्रिय सखी; तनोति–बढ़ाता है; जिह्वा-जिह्वा की; स्पृहाम्-इच्छा।

अनुवाद

“हे सखी, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के होठों का अद्वितीय अमृत अनेकानेक पुण्य कर्मों के बाद ही प्राप्त किया जा सकता है। वृन्दावन की सुन्दर गोपियों के लिए वह अमृत अन्य सारे स्वादों की इच्छा को दूर करता है। मदनमोहन सदैव पान खाते हैं, जो स्वर्ग के अमृत को भी मात करता है। वे निश्चित रूप से हमारी जीभ की इच्छाओं को वर्धित कर रहे हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक गोविन्द लीलामृत (8.8) से लिया गया है।

एत कहि' गौर-प्रभु भावाविष्ट हञा ।

दुई श्लोकेर अर्थ करे प्रलाप करिया ॥ 120॥

एत कहियह कहकर; गौर-प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भाव-आविष्ट–प्रेमावेश से विह्वल; हञा–होकर; दुइ श्लोकेर-दो श्लोकों का; अर्थ-अर्थ; करे-करते; प्रलाप करिया-उन्मत्त की तरह।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेमावेश से विह्वल हो गये। उन्मत्त की तरह बातें करते हुए वे इन दोनों श्लोकों का अर्थ बतलाने लगे।

तनु-मन कराय क्षोभ, बाड़ाय सुरत-लोभ,

हर्ष-शोकादि-भार विनाशय

पासराय अन्य रस, जगत्करे आत्म-वश,

लज्जा, धर्म, धैर्य करे क्षय

नागर, शुन तोमार अधर-चरित

माताय नारीर मन, जिह्वा करे आकर्षण,

विचारिते सब विपरीत

तनु-तन; मन-मन; कराय-को करके; क्षोभ-चंचल; बाड़ाय-बढ़ाना; सुरत-लोभ-कामेच्छा का उपभोग; हर्ष-हर्ष; शोक-शोक; आदि-आदि; भार–भार; विनाशय-नष्ट करता है; पासराय-भुलवा देता है; अन्य रस-अन्य स्वाद; जगत्-सारा जगत्; करे–किया; आत्म-वश–उनके नियन्त्रण में; लज्जा–लज्जा; धर्म-धर्म; धैर्य-धैर्य; करे क्षय-नष्ट किया; नागर-हे प्रेमी; शुन-सुनो; तोमार-आपके; अधर-होठों के; चरित-गुणों (चरित्र) का; माताय-उन्मत्त बनाते हैं; नारीर-स्त्री का; मन–मन; जिह्वा-जिह्वा; करे आकर्षण-आकृष्ट करता है; विचारिते-विचार करते; सब-सब; विपरीत-विपरीत।

अनुवाद

भगवान् चैतन्य ने श्रीमती राधारानी के भाव में कहा, "हे प्रेमी, आपके दिव्य होठों के कुछ गुणों का मुझे वर्णन करने दो। वे हर एक के मन तथा तन को चंचल बनाते हैं, वे भोग की

कामेच्छा को बढ़ाते हैं, वे भौतिक सुख और शोक के भार को नष्ट कर देते हैं और सारे भौतिक स्वादों को भुलवा देते हैं। सारा संसार उनके वशीभूत हो जाता है। वे विशेषतया स्त्रियों की लज्जा, धर्म तथा धैर्य को विनष्ट कर देते हैं। निस्सन्देह, वे समस्त स्त्रियों के मन में उन्मत्तता को बढ़ावा देते हैं। आपके होठ जीभ के लोभ को बढ़ाकर उसे अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। इन सब बातों पर विचार करते हुए हम देखती हैं कि आपके दिव्य होठ हमें सदैव व्याकुल बनाते हैं।

आछुक नारीर काय, कहिते वासिये लाज,

तोमार अधर बड़ धृष्ट-राय ।

पुरुषे करे आकर्षण, आपना पियाइते मन,

अन्य-रस सब पासराय ॥123॥

आछुक-होने दो; नारीर-स्त्रियों के; काय-शरीर का; कहिते-कहना; वासिये-मैं अनुभव करती हूँ; लाज-लाज; तोमार—तुम्हारा; अधर-होठ; बड़-बहुत; धृष्ट-राय-निर्लज्ज; पुरुषे–पुरुष; करे आकर्षण-आकृष्ट करते हैं; आपना-उनको; पियाइते-पिलाते हैं; मन–मन; अन्य-रस-अन्य स्वाद; सब-सब; पासराय-भूला देते हैं।

अनुवाद

"हे कृष्ण, चूँकि आप पुरुष हो, इसलिए यह कोई असाधारण बात नहीं है कि आपके होठों का आकर्षण स्त्रियों के मन को क्षुब्ध करता है। किन्तु मुझे यह कहते लज्जा आती है कि आपके होठ कभी-कभी आपकी वंशी तक को आकृष्ट करते हैं, जो एक पुरुष माना जाता है। वह तुम्हारे होठों के अमृत का पान करना पसन्द करता है, इसीलिए उसे भी अन्य सारे स्वादों की विस्मृति हो जाती है।

सचेतन रहु दूरे, अचेतन सचेतन करे,

तोमार अधर—बड़ वाजिकर।

तोमार वेणु शुष्केन्धन, तार जन्माय इन्द्रिय-मन,

तारे आपना पियाय निरन्तर ॥ 124॥

स-चेतन-चेतन जीवों के; रहु दूरे–की बात छोड़ो; अचेतन-अचेतन; स-चेतन-चेतन; करे-करते हैं; तोमार—आपके; अधर-होठ; बड़-बहुत बड़े; वाजिकर-जादूगर; तोमार-आपकी; वेणु-वंशी; शुष्क-इन्-धन-सूखा काष्ठ; तार-उसीके; जन्माय-बनाते हैं; इन्द्रिय-मन-इन्द्रिय और मन; तारे-वंशी; आपना-अपना; पियाय-पीने का कारण; निरन्तर निरन्तर।

अनुवाद

"आपके होठों द्वारा चेतन जीवों के अतिरिक्त कभी-कभी अचेतन पदार्थ भी चेतन बना दिये जाते हैं। इसलिए आपके होठ बहुत बड़े जादूगर हैं। विडम्बना तो यह है कि यद्यपि आपकी वंशी मात्र सूखा काष्ठ है, किन्तु आपके होठ उसे अपना अमृत पिलवाते हैं। वे शुष्क काष्ठ की बनी वंशी में मन तथा इन्द्रियाँ उत्पन्न करते हैं और उसे दिव्य आनन्द प्रदान करते हैं।

वेणु धृष्ट-पुरुष हञा, पुरुषाधर पिया पिया,

गोपी-गणे जानाय निज-पान ।

अहो शुन, गोपी-गण, बले पिडो तोमार धन,

तोमार यदि थाके अभिमान ॥125॥

वेणु-वंशी; धृष्ट-पुरुष-धृष्ट पुरुष; हञा-होकर; पुरुष-अधर-पुरुष के होठों के; पिया पिया-पिते रहे; गोपी-गणे-गोपियों तक; जानाय-जाने; निज-पान-निज पान; अहो–अहो; शुन-सुनो; गोपी-गण-गोपियाँ;

बले-कहती हैं; पिडो-पीना; तोमार-तुम्हारी; धन-सम्पत्ति; तोमार-तुम्हारा; यदि-अगर; थाके-है; अभिमान–गर्व।

अनुवाद

“वह वंशी (वेणु) अत्यन्त धृष्ट पुरुष है, जो अन्य पुरुष के होठों के स्वाद का बारम्बार पान करता है। यह वंशी रूपी पुरुष अपने गुणों का विज्ञापन करते हुए गोपियों से कहता है, 'हे गोपियों, यदि तुम्हें स्त्रियाँ होने का गर्व है, तो आगे आओ और अपनी सम्पत्ति का—भगवान् के होठों के अमृत का-भोग करो।'

तबे मोरे क्रोध करि’, लज्जा भय, धर्म, छाड़ि’,

छाड़ि’ दिमु, कर आसि’ पान ।

नहे पिमु निरन्तर, तोमाय मोर नाहिक डर,

अन्ये देखों तृणेर समान ॥126॥

तबे-इस पर; मोरे-मुझ से; क्रोध करि’-क्रोधित होकर; लज्जा-लाज; भय-भय; धर्म-धर्म; छाड़ि’–छोड़कर; छाड़ि’–छोड़कर; दिमु-मैं देता हूँ; कर आसि’ पान-पीने आओ; नहे-नहीं; पिमु-मैं पिऊँगा; निरन्तर--नित्य; तोमाय-तुम्हें; मोर-मेरा; नाहिक-नहीं है; डर-डर; अन्ये-अन्यों को; देखों-देखो; तृणेर समान-तिनके के समान।

अनुवाद

“इस पर वंशी ने क्रुद्ध होकर मुझसे कहा, 'तुम अपनी लाज, भय तथा धर्म छोड़ दो और आकर कृष्ण के होठों का पान करो। इस शर्त पर मैं उनके प्रति अपनी अनुरक्ति छोडूंगी, किन्तु यदि तुम अपनी लाज तथा भय नहीं छोड़ सकती, तो मैं निरन्तर कृष्ण के होठों का अमृत पान

करती रहूँगी। मैं कुछ कुछ भयभीत हूँ, क्योंकि तुम्हें भी उस अमृत को पीने का अधिकार है, लेकिन अन्यों को मैं तिनके के बराबर मानती हूँ।

अधरामृत निज-स्वरे, सञ्चारिया सेइ बले,

आकर्षय त्रिजगत्जन ।

आमरा धर्म-भय करि', रहि' यदि धैर्य धरि',

तबे आमाय करे विड़म्बन ॥127॥

अधर-अमृत-होठों का अमृत; निज-स्वरे-वंशी ध्वनि के साथ; सञ्चारिया-मिलकर; सेइ-वह; बले-बल से; आकर्षय-आकृष्ट करता है; त्रि-जगत्-जन तीनों लोकों के सारे लोगों को; आमरा-हम; धर्म-धर्म; भय-भय; करि'–के कारण; रहि'–रहती; यदि-अगर; धैर्य धरि'-धैर्य धारण किये; तबे-तब; आमाय-हमारी; करे विड़म्बन-आलोचना करते।

अनुवाद

"कृष्ण के होठों का अमृत उनकी वंशी ध्वनि के साथ मिलकर तीनों लोकों के सारे लोगों को आकृष्ट करता है। किन्तु यदि हम गोपियाँ धर्म का आदर करने के कारण धैर्य धारण किये रहती हैं, तो यह वंशी हमारी आलोचना करती है।

नीवि खसाय गुरु-आगे, लज्जा-धर्म कराय त्यागे,

केशे धरि' येन लञा याय ।

आनि' कराय तोमार दासी, शुनि' लोक करे हासि',

एइ-मत नारीरे नाचाय ॥ 128॥

नीवि-कमरपट्टा; खसाय–ढीला होने से; गुरु-आगे-गुरुजनों के पहले; लज्जा-धर्म-लज्जा तथा धर्म; कराय-करके; त्यागे-त्याग; केशे धरि'-केश पकड़कर; येन-जैसे; लञा याय-हमें ले जाते; आनि'–लाकर; कराय-होने के लिए प्रेरित करते हैं; तोमार-तुम्हारी; दासी–दासी; शुनि'–सुनकर; लोक-लोग; करे हासि-हँसते हैं; एइ-मत-इस तरह; नारीरे-स्त्री; नाचाय-नचाते हैं।

अनुवाद

"आपके होठों का अमृत तथा आपकी वंशी की ध्वनि दोनों मिलकर हमारे कमरपट्टे को ढीला कर देते हैं और हमें अपने गुरुजनों के समक्ष भी अपनी लज्जा तथा धर्म को छोड़ने के लिए प्रेरित करते हैं। मानो वे हमारे केश पकड़कर बलपूर्वक हमें ले जाते हैं और आपकी दासी बनने के लिए हमसे आत्म समर्पण कराते हैं। ये घटनाएँ सुनकर लोग हम पर हँसते हैं। इस तरह हम पूरी तरह वंशी के अधीन हो गई हैं।

शुष्क बाँशेर लाठिखान, एत करे अपमान,

एइ दशा करिल, गोसाञि ।

ना सहि' कि करिते पारि, ताहे रहि मौन धरि',

चोरार माके डाकि' कान्दिते नाइ ॥ 129॥

शुष्क-सूखा; बाँशेर-बाँस; लाठि-खान-लाठी; एत—यह; करे अपमान-अपमान; एई–यह; दशा-अवस्था; करिल-किया; गोसाञि-स्वामिनी; ना सहि'-सहन न करते हुए; कि-क्या; करिते पारि-हम कर सकते; ताहे-उस समय; रहि-रहते हैं; मौन धरि'-मौन रखकर; चोरार-चोर की; माके–माता ने; डाकि'–उच्च स्वर में; कान्दिते-रोना; नाइ–सम्भव नहीं।

अनुवाद

"यह वंशी मात्र बांस की सूखी लाठी है, किन्तु यह हमारी स्वामिनी बनकर इतने प्रकार से हमारा अपमान करती है कि हम दुःखद स्थिति के लिए बाध्य हो जाती हैं। भला इसको सहन करने के अतिरिक्त हम कर भी क्या सकती हैं? जब चोर दण्डित हो रहा हो, तब चोर की माता न्याय के लिए उच्च स्वर से रो नहीं सकती। इसलिए हम मात्र मौन रह जाती हैं।

अधरेर एइ रीति, आर शुन कुनीति,

से अधर-सने यार मेला ।

सेइ भक्ष्य-भोज्य-पान, हय अमृत-समान,

नाम तार हय 'कृष्ण-फेला' ॥130॥

अधरेर-होठों की; एइ–यह; रीति-नीति; आर-अन्य; शुन-सुनो; कुनीति-अन्यायों का; से-वे; अधर-होठ; सने–के साथ; यार–जिसके; मेला-मिलकर; सेइ-वे; भक्ष्य–खाने की वस्तु; भोज्य-भोजन; पान–पिना अथवा पान; हय-होता है; अमृत-समान–अमृत के समान; नाम-नाम; तार–उनका; हय-है; कृष्ण-फेला-कृष्ण का बचा हुआ भोजन।

अनुवाद

"इन होठों का यही रीति है। जरा अन्य अन्यायों का तो विचार करो। इन होठों को जो भी वस्तु छू जाती है-चाहे भोजन, पेय या पान ही क्यों न हो-अमृत के समान बन जाती है। तब वह वस्तु कृष्ण-फेला अर्थात् कृष्ण का शेष प्रसाद कहलाती है।

से फेलार एक लव, ना पाय देवता सब,

ए दम्भे केला पातियाय? ।

बहु-जन्म पुण्य करे, तबे 'सुकृति' नाम धरे,

से 'सुकृते' तार लव पाय ॥131॥

से फेलार—वह बचा हुआ शेष; एक-एक; लव-छोटा अंश; ना पाय-नहीं पाते; देवता-देवता; सब-सब; ए दम्भे-यह गर्व; केबाजो ; पातियाय–मान सकते हैं; बहु-जन्म-अनेक जन्मों के लिए; पुण्य करे-पुण्य करने पर; तबे-तब; सुकृति-पुण्य कर्म करने वाला; नाम-नाम; धरे-धारण करता है; से-वे; सुकृते-पुण्य कर्मों से; तार-उसका; लव-अंश; पाय-पा सकती है।

अनुवाद

"अनेक प्रार्थनाओं के बाद भी देवता ऐसे भोजन के शेष का एक छोटा-सा अंश तक नहीं पा सकते। जरा उस शेष प्रसाद के गर्व की कल्पना तो करो! जिस व्यक्ति ने अनेकानेक जन्मों तक पुण्य किये हैं। और इस तरह से भक्त बन गया है, वही ऐसे भोजन का शेष प्राप्त कर सकता है।

कृष्ण ये खाय ताम्बूल, कहे तार नाहि मूल,

ताहे आर दम्भ-परिपाटी ।

तार येबा उद्गार, तारे कय 'अमृत-सार',

गोपीर मुख करे 'आलबाटी' ॥132॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ये-क्या; खाय-चबाते हैं; ताम्बूल-पान; कहे–कहा जाता है; तार-उसका; नाहि-नहीं होता; मूल-मूल्य; ताहे-उसके ऊपर; आर-भी; दम्भ-परिपाटी-पूरा गर्व; तार-उसका; येबा-जो भी; उद्गार-उद्गार; तारे-वह; कय-कहलाता है; अमृत-सार-अमृत का सार; गोपीर-गोपियों के; मुख–मुख; करे-बनाता है; आलबाटी-पीकदान।

अनुवाद

“कृष्ण द्वारा चलाया गया पान अमूल्य है और उनके मुख से ऐसे चबाये हुए पान का शेष अमृत का सार कहलाता है। जब गोपियाँ इस उच्छिष्ट को ग्रहण करती हैं, तब उनके मुख कृष्ण के पीकदान बन जाते हैं।

ए-सब—तोमार कुटिनाटि, छाड़ एइ परिपाटी,

वेणु-द्वारे काँहे हर' प्राण ।

आपनार हासि लागि', नह नारीर वध-भागी,

देह' निजाधरामृत-दान" ॥ 133 ॥

ए-सब-ये सब; तोमार--आपकी; कुटिनाटि-चालें; छाड़-त्याग दो; एइथे; परिपाटी–आपके दक्षतापूर्ण कार्य; वेणु-द्वारे-वंशी से; काँहे-क्यों; हर-तुम ले लेते हो; प्राण-प्राण; आपना-अपनी; हासि-हँसी; लागि'-के लिए; नह-मत करो; नारीर-स्त्रियों का; वध-भागी–वध करने के उत्तरदायी; देह'–कृपया दो; निज-अधर-अमृत-अपने होठों के अमृत का; दान-दान।

अनुवाद

"इसलिए हे कृष्ण, आपने जितनी चालें इतनी दक्षता से चला रखी हैं, उन सबों को त्याग दो। अपनी वंशी की ध्वनि से गोपियों के प्राण लेने का प्रयास मत करो। अपनी हँसी तथा उपहास से आप स्त्रियों का वध करने के उत्तरदायी बन रहे हो। आपके लिए अच्छा होगा कि हमें अपने होठों के अमृत का दान देकर हमें तुष्ट करो।”

कहिते कहिते प्रभुर मन फिरि' गेल ।

क्रोध-अंश शान्त हैल, उत्कण्ठा बाड़िल ॥ 134॥

कहिते कहिते-कहते कहते; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मन–मन; फिरि' गेल-बदल गया; क्रोध-अंश-क्रोध का अंश; शान्त हैल-शान्त हुआ; उत्कण्ठा-मानसिक क्षोभ; बाड़िल-बढ़ गया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु इस तरह बातें कर रहे थे, तब उनका मन बदल गया। उनका क्रोध शान्त हो गया, किन्तु उनका मानसिक क्षोभ बढ़ गया।

परम दुर्लभ एई कृष्णाधरामृत ।

ताहा येइ पाय, तार सफल जीवित ॥ 135॥

परम-सर्वोपरि; दुर्लभ पाने के लिए कठिन; एइ-यह; कृष्ण-कृष्ण के; अधर-अमृत-होठों का अमृत; ताहा-वह; येइ-किसी एक को; पाय-मिल जाता है; तार-उसका; स-फल-सफल; जीवित–जीवन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "कृष्ण के होठों का यह अमृत प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ है, किन्तु यदि किसी को यह थोड़ा-सा भी मिल जाता है, तो उसका जीवन सफल हो जाता है।

योग्य हञा केह करिते ना पाय पान ।

तथापि से निर्लज, वृथा धरे प्राण ॥136॥

योग्य-योग्य; हञा–होकर; केह-कोई भी; करिते-करना; ना पाय-प्राप्त नहीं करता; पान-पीकर; तथापि-फिर भी; से-वह व्यक्ति; निर्लज्ज–निर्लज्ज; वृथा-व्यर्थ ही; धरे प्राण-जीवन धारण करता है।

अनुवाद

जब इस अमृत को पीने के लिए समर्थ व्यक्ति इसका पान नहीं करता, तो वह निर्लज्ज व्यक्ति व्यर्थ ही जीवन धारण करता है।

अयोग्य हञा ताहा केह सदा पान करे ।

योग्य जन नाहि पाय, लोभे मात्र मरे ॥137॥

अयोग्य-अयोग्य; हञा–होकर; ताहा-वह; केह-कोई एक; सदा-सदा; पान करे-पीते हैं; योग्य जन-योग्य व्यक्ति; नाहि पाय-प्राप्त नहीं करता; लोभ-लाभवश; मात्र-सीधे; मरे–मर जाते हैं।

अनुवाद

“ऐसे लोग भी हैं, जो उस अमृत को पीने के योग्य नहीं हैं, फिर भी वे उसे लगातार पीते हैं, जबकि कुछ ऐसे योग्य व्यक्ति हैं, जो उसे कभी नहीं पाते और ललचाते हुए मर जाते हैं।

ताते जानि,—कोन तपस्यार आछे बल ।

अयोग्येरे देओयाय कृष्णाधरामृत-फल ॥ 138॥

ताते—इसलिए; जानि-मैं समझ सकता हूँ; कोन-किसी ने; तपस्यार-तपस्या के; आछे-है; बल-बल पर; अयोग्येरे-अयोग्य को; देओयाय-दे दिया; कृष्ण-अधर-अमृत-कृष्ण के होठों का अमृत; फल-फल।

अनुवाद

"इससे यह समझ लेना होगा कि ऐसे अयोग्य व्यक्ति ने किसी तपस्या के बल पर कृष्ण के होठों का अमृत प्राप्त किया होगा।”

‘कह राम-राय, किछु शुनिते हय मन’ ।

भाव जानि’ पड़े राय गोपीर वचन ॥139॥

कह-कहो; राम-राय-रामानन्द राय; किछु-कुछ; शुनिते-सुनने; हय मन-की इच्छा; भाव-स्थिति; जानि’–समझने; पड़े राय-रामानन्द राय पढ़ने लगे; गोपीर वचन- गोपियों के वचन (शब्द)।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुनः रामानन्द राय से कहा, "कृपया कुछ कहो। मैं सुनना चाहता हूँ।" स्थिति समझते हुए रामानन्द राय ने गोपियों के निम्नलिखित वचन सुनाये।

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्

दामोदराधर-सुधामपि गोपिकानाम् ।

भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्ट-रसं ह्रदिन्यो

ह्रष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथार्याः ॥ 140॥

गोप्यः-हे गोपियों; किम्-क्या; आचरत्-किया; अयम्-यह; कुशलम्-शुभ कर्म; स्म-निश्चय ही; वेणुः-वंशी; दामोदर-कृष्ण के; अधर-सुधाम्-होठों का अमृत; अपि-भी; गोपिकानाम्-गोपियों का; भुङ्क्ते-भोग करती है; स्वयम् स्वतन्त्र रूप से; यत्-जिससे; अवशिष्ट–बचा हुआ; रसम्-रस; ह्रदिन्यः-नदियाँ; ह्रष्यत्-हर्षित होकर; त्वचः-जिनके शरीर; अश्रु-अश्रु; मुमुचुः–बहाये; तरवः-वृक्ष; यथा-जिस तरह; आर्याः–पूर्वज।

अनुवाद

" हे गोपियों, इस वंशी ने स्वतन्त्र रूप से कृष्ण के होठों का अमृत पान करने के लिए तथा वास्तव में जिन गोपियों के निमित्त यह अमृत है, उन्हें केवल थोड़ा-सा अवशिष्ट दिलाने के लिए कौन से पुण्य कर्म किये होंगे? वंशी के पूर्वज बांस के वृक्षों ने प्रसन्नता के आँसू बहाये। उसकी माता, नदी, जिसके किनारे बाँस उगे थे, हर्ष का अनुभव करती है, इसीलिए उसके शरीर में खिले हुए कमलपुष्प रोमांच (खडे हुए रोम) की तरह लग रहे हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.21.9) का है, जो गोपियों में परस्पर हुई चर्चा का भाग है। वृन्दावन में शरद ऋतु के आते ही भगवान् कृष्ण गाएँ चराते थे और अपनी वंशी बजाते थे। तब गोपियाँ कृष्ण की प्रशंसा और उनकी वंशी के भाग्य की चर्चा करने लगीं।

एइ श्लोक शुनि' प्रभु भावाविष्ट हञा ।

उत्कण्ठाते अर्थ करे प्रलाप करिया ॥ 141॥

एइ श्लोक-इस श्लोक; शुनि'–सुनकर; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; भाव-आविष्ट-प्रेमाविष्ट; हञा–हो गये; उत्कण्ठाते-चंचल मन से; अर्थ करे–अर्थ करने लगे; प्रलाप करिया-उन्मत्त होकर बोलने लगे।

अनुवाद

इस श्लोक का पाठ सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो गये और अत्यन्त चंचल मन से उन्मत्त व्यक्ति की तरह इसका अर्थ ऐसे करने लगे।

एहो व्रजेन्द्र-नन्दन, व्रजेर कोन कन्या-गण,

अवश्य करिब परिणय ।

से-सम्बन्धे गोपी-गण, यारे माने निज-धन,

से सुधा अन्येर लभ्य नय ॥ 142॥

एहो–यह; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र; व्रजेर-वृन्दावन की; कोन-कोई; कन्या-गण-गोपियाँ; अवश्य-निश्चय ही; करिब परिणय-विवाह करेंगे; से-सम्बन्धे-इस सम्बन्ध में; गोपी-गण-गोपियाँ; यारे-जो; माने-सोचती हैं; निज-धन-निजी धन; से सुधा–वह अमृत; अन्येर-कोई दूसरे के द्वारा; लभ्य नय-प्राप्य नहीं है।

अनुवाद

"कुछ गोपियों ने अन्य गोपियों से कहा, 'जरा व्रजेन्द्र नन्दन कृष्ण की आश्चर्यजनक लीलाओं को तो देखो! वे निश्चित रूप से वृन्दावन की सारी गोपियों के साथ विवाह करेंगे। इसीलिए गोपियाँ निश्चिन्त हैं कि कृष्ण के होठों का अमृत उनकी निजी सम्पत्ति है और इसे कोई दूसरा नहीं भोग सकता।'

गोपी-गण, कह सब करिया विचारे

कोन् तीर्थ, कोन् तप, कोन् सिद्ध-मन्त्र-जप, ।

एइ वेणु कैल जन्मान्तरे? ॥143॥

गोपी-गण-हे गोपियों; कह-कहो; सब-सब; करिया विचारे-पूरा विचार करके; कोन्-कौन से; तीर्थ–तीर्थ; को-कौन से; तप-तप; को-कौन से; सिद्ध-मन्त्र-जप-सिद्ध मन्त्र का जप; एइ-यह; वेणु-वंशी; कैल-किया; जन्म-अन्तरे–विगत जीवन में।

अनुवाद

"हे गोपियों? ठीक से विचार करो कि इस वंशी ने अपने विगत जीवन में कितने पुण्यकर्म किये होंगे। हम नहीं जानतीं कि उसने कितने तीर्थों का भ्रमण किया, कौन सी तपस्या की अथवा कौन से सिद्ध मन्त्र का जप किया।

हेन कृष्णाधर-सुधा, ये कैल अमृत मुधा,

यार आशाय गोपी धरे प्राण ।

एइ वेणु अयोग्य अति, स्थावर 'पुरुष-जाति',

सेइ सुधा सदा करे पान ॥ 144॥

हेन-ऐसे; कृष्ण-अधर-कृष्ण के होठों का; सुधा–अमृत; ये-जो; कैल–किया; अमृत-अमृत; मुधा-लाँघ दिया; यार आशाय–जिसकी आशा में; गोपी-गोपियाँ; धरे प्राण-जीना चालु रखती हैं; एइ वेणु-यह वंशी; अयोग्य-अयोग्य; अति–पूर्णतया; स्थावर-मृत; पुरुष-जाति-पुरुष जाति की; सेइ सुधा-वह अमृत; सदा-सदा; करे पान-पान करती है।

अनुवाद

"यह वंशी सर्वथा अयोग्य है, क्योंकि यह केवल जड़ बाँस का खण्ड है। इतना ही नहीं, यह पुरुष जाति की है। फिर भी यह वंशी कृष्ण के होठों के उस अमृत का पान कर रही है, जो प्रत्येक प्रकार के वर्णनयोग्य अमृत की मधुरता को लाँघने वाला है। गोपियाँ उस अमृत की आशा में ही जीवित हैं।

यार धन, ना कहे तारे, पान करे बलात्कारे,

पिते तारे डाकिया जानाय ।

तार तपस्यार फल, देख इहार भाग्य-बल,

इहार उच्छिष्ट महा-जने खाय ॥ 145 ॥

यार–जिसका; धन-धन; ना कहे-नहीं बोलता; तारे–उनको; पान करे-पान करता है; बलात्कारे-बलपूर्वक; पिते-पीते समय; तारे–उनको; डाकिया-जोर से पुकारकर; जानाय—बताता है; तार-उसकी; तपस्यार-तपस्या का; फल-फल; देख-देखकर; इहार-उसका; भाग्य-बल-भाग्य का बल; इहार-उसका; उच्छिष्ट–शेष; महा-जने-महाजन; खाय-पान करते हैं।

अनुवाद

“यद्यपि कृष्ण के होठों का अमृत एक मात्र गोपियों का धन है, किन्तु यह नगण्य लाठी जैसी बंशी बलपूर्वक उस अमृत का पान कर रही है और गोपियों को भी पीने के लिए उच्च

स्वर से निमन्त्रण दे रही है। जरा इस वंशी की तपस्या तथा सौभाग्य के बल को तो देखो! बड़े-बड़े भक्त तक वंशी द्वारा कृष्ण के होठों का अमृत पान किये जाने के बाद ही उस अमृत का पान करते हैं।

मानस-गङ्गा, कालिन्दी, भुवन-पावनी नदी,

कृष्ण यदि ताते करे स्नान ।

वेणुर झुटाधर-रस, हञा लोभे परवश,

सेइ काले हर्षे करे पान ॥146॥

मानस-गङ्गा-दिव्य जगत् की गंगा; कालिन्दी-यमुना; भुवन-विश्व; पावनी-पवित्र करने वाली; नदी-नदियाँ; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यदि-यदि; ताते-उनमें; करे स्नान-स्नान करते हैं; वेणुर-वंशी का; झुट-अधर-रस-होठों का उच्छिष्ट रस; हञा-होकर; लोभे-लोभ से; परवश-वश में कर लेती; सेइ काले—उस समय; हर्षे–हर्ष में; करे पान-पीते।

अनुवाद

“जब कृष्ण यमुना तथा मानस गंगा जैसी विश्व को पवित्र करने वाली नदियों में स्नान करते हैं, तब वे नदियाँ लोभ तथा हर्ष के साथ उनके होठों के अमृतमय रस के उच्छिष्ट का पान करती हैं।

ए-त नारी रहु दूरे, वृक्ष सब तार तीरे,

तप करे पर-उपकारी ।

नदीर शेष-रस पाञा, मूल-द्वारे आकर्षिया,

केने पिये, बुझिते ना पारि ॥147॥

ए-त नारी-ये नारियाँ; रहु दूरे–को दूर रखकर; वृक्ष-वृक्ष; सब-सब; तार तीरे-उनके किनारों पर; तप करे-तप करते हैं; पर-उपकारी–सारे जीवों का कल्याण करने वाले; नदीर-नदियों का; शेष-रस-बचा हुआ अमृत रस; पाञा-पाकर; मूल-द्वारे-जड़ों से; आकर्षिया-खींचकर; केने-क्यों; पिये-पिया; बुझिते ना पारि—हम नहीं समझ पातीं।

अनुवाद

"इन नदियों के अतिरिक्त, ये वृक्ष जो उनके किनारों पर महामुनियों की तरह खड़े हैं और सारे जीवों का कल्याण करने में लगे हैं, वे अपनी जड़ों से नदी के जल को खींचकर कृष्ण के होठों के अमृत का पान करते रहते हैं। हम नहीं समझ पातीं कि वे इस तरह क्यों पान करते हैं।

निजाङ्करे पुलकित, पुष्पे हास्य विकसित,

मधु-मिषे वहे अश्रु-धार।

वेणुरे मानि' निज-जाति, आर्येर येन पुत्र-नाति,

'वैष्णव' हैले आनन्द-विकार॥ 148॥

निज-अङ्करे-उनके अंकुरों द्वारा; पुलकित–प्रसन्न; पुष्पे-फूलों द्वारा; हास्य-हँसते; विकसित-प्रतीत होते; मधु-मिषे-मधु के रूप में; वहे-बहते; अश्रु-धार-अश्रु की धारा गिराते; वेणुरे-वंशी; मानि'–मानकर; निज-जाति–इनके ही परिवार से; आर्येर-पूर्वज के; येन-जिस तरह; पुत्र-नाति–पुत्र या पौत्र; वैष्णव-वैष्णव; हैले–जब होते हैं; आनन्द-विकार-दिव्य सुख का विकार।

अनुवाद

"यमुना तथा गंगा नदियों के किनारे के वृक्ष सदैव प्रसन्न रहते हैं। वे अपने फूलों से हँसते और झरते मधु के रूप में अश्रु गिराते प्रतीत होते हैं। जिस तरह वैष्णव पुत्र या पौत्र के पूर्वज

दिव्य आनन्द का अनुभव करते हैं, उसी तरह ये वृक्ष भी आनन्दित हैं, क्योंकि वंशी इनके परिवार की सदस्या है।'

वेणुर तप जानि यबे, सेइ तप करि तबे,

ए—अयोग्य, आमरा—योग्या नारी ।

या ना पाञा दुःखे मरि, अयोग्य पिये सहिते नारि,

ताहा लागि' तपस्या विचारि ॥149॥

वेणुर-वंशी के; तप-तप को; जानि-जानकर; यबे-जब; सेइ-उन; तप-तप; करि–हम करते हैं; तबे-तब; ए—यह (वंशी); अयोग्य-अयोग्य; आमरा-हम; योग्या नारी-योग्य नारियाँ; या-जो; ना पाञा-नहीं पातीं; दुःखे-दुःख में; मरि–हम मरती हैं; अयोग्य-बहुत ही अयोग्य; पिये-पिती है; सहिते नारि–हम सहन नहीं कर सकतीं; ताहा लागि'–उस कारण से; तपस्या-तपस्या; विचारि-हम सोचती हैं।

अनुवाद

"गोपियों ने विचार किया, 'यह वंशी अपने पद के सर्वथा अयोग्य है। हम यह जानना चाहती हैं कि इस वंशी ने किस तरह की तपस्या की है, जिससे कि हम भी वही तपस्या कर सकें । यद्यपि यह वंशी अयोग्य है, किन्तु वह कृष्ण के होठों का अमृत पान कर रही है। यह देखकर हम योग्य गोपियाँ दुःख के मारे मरी जा रही हैं। इसलिए हमें वंशी द्वारा विगत जीवन में की हुई तपस्या पर विचार करना चाहिए।'

एतेक प्रलाप करि', प्रेमावेशे गौरहरि,

सङ्गे लञा स्वरूप-राम-राय ।

कभु नाचे, कभु गाय, भावावेशे मूर्च्छा याय,

एइ-रूपे रात्रि-दिन याय ॥ 150॥

एतेक-इतना; प्रलाप करि'-उन्मत्त पुरुष की तरह बोलकर; प्रेम-आवेशे—प्रेमावेश में; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभु; सङ्गे लञा-अपने साथ लेकर; स्वरूप-राम-राय-स्वरूप दामोदर गोस्वामी और रामानन्द राय; कभु नाचे-कभी नाचते; कभु गाय-कभी गाते; भाव-आवेशे-प्रेमावश में; मूर्च्छा याय-मूर्छित हो जाते; एइ-रूपे—इस तरह; रात्रि-दिन-पूरी रात और दिन; याय–बिताते।

अनुवाद

इस प्रकार उन्मत्त पुरुष की तरह बातें करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो गये। वे स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रामानन्द राय-इन अपने दो मित्रों के संग कभी नृत्य करते, कभी गाते, तो कभी प्रेमावेश में मूर्छित हो जाते। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने दिन तथा अपनी रातें इसी प्रकार बिताते।

स्वरूप, रूप, सनातन, रघुनाथेर श्री-चरण,

शिरे धरि करि यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत, अमृत हैते परामृत,

गाय दीन-हीन कृष्णदास ॥151॥

स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; रूप-श्रील रूप गोस्वामी; सनातन-सनातन गोस्वामी; रघुनाथेर-रघुनाथ दास गोस्वामी के; श्री-चरण-चरणकमल; शिरे-सिर पर;धरि'-रखकर; करि यार आश-कृपा की आशा करते हुए; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; अमृत हैते–अमृत से; पर-अमृत-बहुत अमृतमय; गाय-गाते हैं; दीन-हीन-दीनहीन; कृष्णदास-कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

स्वरूप, रूप, सनातन तथा रघुनाथ दास की कृपा की आशा करते हुए तथा उनके चरणकमलों को सिर पर धारण करते हुए मैं, अत्यन्त पतित कृष्णदास, श्री चैतन्य-चरितामृत महाकाव्य का गायन कर रहा हूँ, जो कि दिव्य आनन्द रूपी अमृत से भी मधुर है।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्य लीला के अन्तर्गत श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा कृष्ण के अधरों का अमृतपान शीर्षक सोलहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय सत्रह

श्री चैतन्य महाप्रभु के शारीरिक विकार

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत प्रवाह भाष्य में इस अध्याय का जो सारांश दिया है, वह इस प्रकार है। श्री चैतन्य महाप्रभु दिव्य भाव में मग्न होने के कारण एक रात को अपने कमरे के दरवाजे को खोले बिना बाहर चले गये। तीन दीवालें लाँघने के बाद वे तैलंग जिले की कुछ गायों के बीच जा गिरे। वहाँ वे कछुए के भाव में अचेत पड़े रहे।

लिख्यते श्रील-गौरेन्दोरत्यद्भुतमलौकिकम् ।

यैदृष्टं तन्मुखाच्छ्रुत्वा दिव्योन्माद-विचेष्टितम् ॥ 1॥

लिख्यते-वे लिखे जा रहे हैं; श्रील–सर्वाधिक ऐश्वर्यशाली; गौर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; इन्दोः-चन्द्रमा समान; अति-अत्यन्त; अद्भुतम्-अद्भुत; अलौकिकम्-असामान्य; यैः–जिसके द्वारा; दृष्टम्-स्वयं देखा; तत्-मुखात्-उनके मुख से; श्रुत्वा-सुनने के बाद; दिव्य-उन्माद-दिव्य उन्माद में; विचेष्टितम्-कार्यों को।

अनुवाद

मैं भगवान् गौरचन्द्र की दिव्य लीलाओं तथा आध्यात्मिक उन्माद के विषय में लिखने का प्रयास कर रहा हूँ, जो कि अत्यन्त अद्भुत तथा असामान्य हैं। मैं उनके विषय में लिखने का साहस इसलिए कर रहा हूँ, क्योंकि मैंने उनके मुखों से सुना है, जिन्होंने महाप्रभु के कार्यों को स्वयं देखा है।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय जय; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो! महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

एइ-मत महाप्रभु रात्रि-दिवसे ।

उन्मादेर चेष्टा, प्रलाप करे प्रेमावेशे ॥ 3 ॥

एइ-मत-इस तरह; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; रात्रि-दिवसे–दिन-रात; उन्मादेर-उन्मत्त की तरह; चेष्टा–कार्य; प्रलाप करे–प्रलाप करते; प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में ।

अनुवाद

भावमग्न श्री चैतन्य महाप्रभु दिन-रात उन्मत्त की तरह कार्य करते और बोलते रहते।

एक-दिन प्रभु स्वरूप-रामानन्द-सङ्गे ।

अर्ध-रात्रि गोडाइला कृष्ण-कथा-रङ्गे ॥4॥

एक-दिन-एक दिन; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; स्वरूप-रामानन्द-सङ्गे–स्वरूप दामोदर गोस्वामी और रामानन्द राय के साथ; अर्ध-रात्रि-आधी रात; गोडाइला-बिता दी; कृष्ण-कथा-कृष्ण लीलाओं की चर्चा के; रङ्गे–विषय में।

अनुवाद

एक बार स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रामानन्द राय के संग में श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण लीलाओं के विषय में बातें करते-करते आधी रात बिता दी।

यबे येइ भाव प्रभुर करये उदय ।

भावानुरूप गीत गाय स्वरूप-महाशय ॥5॥

यबे-जब भी; येइ-कुछ भी; भाव-भाव; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; करये उदय-उठते; भाव-अनुरूप-दिव्य भावों के अनुरूप; गीत-गीत; गाय-गाते; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; महाशय-महात्मा।

अनुवाद

जब वे कृष्ण के विषय में बातें करते, तो स्वरूप दामोदर गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य भावों के अनुरूप गीत गाया करते।

विद्यापति, चण्डीदास, श्री-गीत-गोविन्द ।

भावानुरूप श्लोक पड़ेन राय-रामानन्द ॥ 6 ॥

विद्यापति विद्यापति लेखक; चण्डीदास-चण्डीदास लेखक; श्री-गीत-गोविन्द-जयदेव गोस्वामी कृत प्रसिद्ध ग्रन्थ; भाव-अनुरूप-भाववेश के अनुसार; श्लोक-श्लोक; पड़ेन-पढ़ते; राय-रामानन्द-रामानन्द राय।

अनुवाद

रामानन्द राय विद्यापति तथा चण्डीदास की पुस्तकों से, और विशेष रूप से जयदेव गोस्वामी कृत 'गीतगोविन्द' से श्लोक उद्धृत करते, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के भावों को बढ़ावा देते।

मध्ये मध्ये आपने प्रभु श्लोक पड़िया ।

श्लोकेर अर्थ करेन प्रभु विलाप करिया ॥7॥

मध्ये मध्ये-बीच बीच में; आपने स्वयं ही; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; श्लोक-श्लोक; पड़िया-पढ़कर; श्लोकेर-श्लोक की; अर्थ-व्याख्या; करेन-करते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; विलाप करिया-विलाप करते हुए।

अनुवाद

बीच बीच में श्री चैतन्य महाप्रभु भी कोई श्लोक पढ़ देते। तब वे शोक करते हुए इसकी व्याख्या करते।

एइ-मते नाना-भावे अर्ध-रात्रि हैल ।

गोसाञिरे शयन कराइ' दुँहे घरे गेल ॥8॥

एइ-मते-इस तरह; नाना-भावे-नाना प्रकार के भावों में; अर्ध-रात्रि-आधी रात; हैल-बिता दी; गोसाञिरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; शयन कराइ'–उनके बिस्तर पर लिटाकर; दुँहे-सब; घरे गेल-घर चले गये।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने नाना प्रकार के भावों का अनुभव करते करते आधी रात बिता दी। अन्त में, महाप्रभु को उनके बिस्तर पर लिटाकर स्वरूप दामोदर तथा रामानन्द राय दोनों अपने अपने घर चले गये।

गम्भीरार द्वारे गोविन्द करिला शयन ।

सब-रात्रि प्रभु करेन उच्च-सङ्कीर्तन ॥9॥

गम्भीरार-श्री चैतन्य महाप्रभु के कमरे; द्वारे–के दरवाजे पर; गोविन्द-उनका निजी सेवक; करिला शयन-लेट गया; सब-रात्रि-रात भर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन-करते रहे; उच्च-सङ्कीर्तन-उच्च स्वर में कीर्तन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का निजी सेवक गोविन्द उनके कमरे के दरवाजे पर लेट गया और महाप्रभु रात भर उच्च स्वर से हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते रहे।

आचम्बिते शुनेन प्रभु कृष्ण-वेणु-गान ।

भावावेशे प्रभु ताहाँ करिला प्रयाण ॥10॥

आचम्बिते-सहसा; शुनेन–सुनाई; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कृष्ण-वेणु-कृष्ण की वंशी; गान-ध्वनि; भाव-आवेशे-भावावेश में प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताहाँ-वहाँ; करिला प्रयाण-चले।

अनुवाद

सहसा श्री चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनाई पड़ी। अतः भावावेश में वे कृष्ण का दर्शन करने के लिए चल पड़े।

तिन-द्वारे कपाट ऐछे आछे त' लागिया ।

भावावेशे प्रभु गेला बाहिर हञा ॥11॥

तिन-द्वारे-तीनों दरवाजे; कपाट–दरवाजे; ऐछे-पहले से; आछे-हैं; त' लागिया-बन्द; भाव-आवेशे-भावावेश में प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला–गये; बाहिर-बाहर; हञा-होकर।।

अनुवाद

तीनों दरवाजे हमेशा की तरह बन्द कर दिये गये थे, किन्तु फिर भी अति भावावेश में श्री चैतन्य महाप्रभु कमरे के बाहर निकल आये और घर को छोड़ दिया।

सिंह-द्वार-दक्षिणे आछे तैलङ्गी-गाभी-गण ।

ताहाँ याइ' पड़िला प्रभु हञा अचेतन ॥12॥

सिंह-द्वार-सिंहद्वार नामक की द्वार पर; दक्षिणे-दक्षिण दिशा में; आछे-थे; तैलङ्गी-गाभी-गण-तैलंग जिले की गायें; ताहाँ-वहाँ; याइ'–जाकर; पड़िला–गिर पड़े; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हञा अचेतन-अचेत होकर।

अनुवाद

वे सिंहद्वार की दक्षिणी ओर की गोशाला में गये और तैलंग जिले की गायों के बीच अचेत होकर गिर पड़े।

एथा गोविन्द महाप्रभुर शब्द ना पाञा ।

स्वरूपेरे बोलाइल कपाट खुलिया ॥13॥

एथा–यहाँ; गोविन्द-गोविन्द; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; शब्द-शब्द; ना पाञा-न सुनकर; स्वरूपेरे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; बोलाइल–बुलाकर; कपाट-दरवाजे; खुलिया-खोले॥

अनुवाद

इस बीच श्री चैतन्य महाप्रभु का कोई शब्द न सुनकर गोविन्द ने तुरन्त स्वरूप दामोदर को बुलाया और दरवाजे खोले।

तबे स्वरूप-गोसाञि सङ्गे लञा भक्त-गण ।

देउटि ज्वालिया करेन प्रभुर अन्वेषण ॥14॥

तबे-तब; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; सङ्गे–के साथ; लञा-लेकर; भक्त-गण-भक्तों; देउटि-दीपक; ज्वालिया-जलाया; करेन-की; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; अन्वेषण–खोज।

अनुवाद

तब स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने दीपक जलाया और वे श्री चैतन्य महाप्रभु को खोजने के लिए सारे भक्तों समेत बाहर चले गये।

इति-उति अन्वेषिया सिंह-द्वारे गेला ।

गाभी-गण-मध्ये याइ' प्रभुरे पाइला ॥15॥

इति-उति–इधर उधर; अन्वेषिया-ढूंढने के लिए; सिंह-द्वारे–सिंहद्वार नामक द्वार पर; गेला-गये; गाभी-गण-मध्ये-गायों के बीच में; याइ'–जाकर; प्रभुरे पाइला-श्री चैतन्य महाप्रभु मिले।

अनुवाद

इधर-उधर ढूँढने के बाद अन्त में वे सब सिंहद्वार के निकट गोशाला में पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को गायों के बीच अचेत लेटे हुए पाया।

पेटेर भितर हस्त-पद—कूर्मेर आकार।

मुखे फेन, पुलकाङ्ग, नेत्रे अश्रु-धार॥ 16॥

पेटेर-पेट; भितर–के भीतर; हस्त-पद-हाथ और पाँव; कूर्मेर आकार-कछुवे के जैसे; मुखे-मुख में; फेन-झाग; पुलक-अङ्ग–शरीर में फुसियाँ; नेत्रे-आँखों में; अश्रु-धार-अश्रुधारा।

अनुवाद

उनके हाथ तथा पाँव उनके पेट के भीतर प्रवेश कर गये थे, मानो कछुवे के अंग हों। उनके मुख से झाग निकल रहा था, उनके शरीर भर में फुसियाँ निकल आई थीं और उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे।

अचेतन पड़ियाछेन,—येन कुष्माण्ड-फल।

बाहिरे जड़िमा, अन्तरे आनन्द-विह्वल॥17॥

अचेतन-अचेत; पड़ियाछेन-पड़े हुए थे; येन-जैसे; कुष्माण्ड-फल-कहू के फल जैसा; बाहिरे-बाहर से; जड़िमा–पूर्णतया जड़; अन्तरे-भीतर से; आनन्द-विह्वल-दिव्य आनन्द से विह्वल।

अनुवाद

जब महाप्रभु वहाँ अचेत पड़े थे, तब उनका शरीर एक बड़े कुम्हड़े जैसा लग रहा था। बाहर से वे पूर्णतया जड़ थे, किन्तु भीतर ही भीतर वे अपार दिव्य आनन्द का अनुभव कर रहे थे।

गाभी सब चौदिके शुङ्के प्रभुर श्री-अङ्ग ।

दूर कैले नाहि छाड़े प्रभुर श्री-अङ्ग-सङ्ग ॥18॥

गाभी-गौवें; सब-सारी; चौ-दिके-चारों ओर; शुङ्के-हूँघती थीं; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; श्री-अङ्ग-दिव्य शरीर को; दूर कैले-रोकना चाहा; नाहि छाडे-नहीं त्याग करना चाहा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; श्री-अङ्ग-सङ्ग-दिव्य शरीर का संग।

अनुवाद

महाप्रभु के चारों ओर सारी गौवें उनके दिव्य शरीर को सँघ रही थीं। जब भक्तों ने उन्हें रोकना चाहा, तो उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य शरीर का संग त्याग करना नहीं चाहा।

अनेक करिला यत्न, ना हय चेतन ।

प्रभुरे उठाञा घरे आनिला भक्त-गण ॥19॥

अनेक-अनेक; करिला–किया; यत्न-प्रयत्न; ना हय-नहीं थी; चेतन-चेतना; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; उठाञा-उठकर; घरे–घर; आनिला–लाये; भक्त-गण-भक्तगण।

अनुवाद

भक्तों ने नाना प्रकार से महाप्रभु को उठाना चाहा, किन्तु उनकी चेतना लौट नहीं आई। इसलिए उन सबों ने उन्हें उठा लिया और घर लौटा ले आये।

उच्च करि' श्रवणे करे नाम-सङ्कीर्तन ।

अनेक-क्षणे महाप्रभु पाइला चेतन ॥20॥

उच्च करि'—उच्च स्वर में; श्रवणे-कान में; करे–किया; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का संकीर्तन; अनेक-क्षणे-काफी देर बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पाइला चेतन-चेतना प्राप्त हुई।

अनुवाद

सारे भक्त महाप्रभु के कान में उच्च स्वर से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने लगे, तो काफी देर बाद श्री चैतन्य महाप्रभु को फिर से चेतना प्राप्त हुई।

चेतन ह-इले हस्त-पाद बाहिरे आइल ।

पूर्ववत् यथा-योग्य शरीर ह-इल ॥21॥

चेतन ह-इले-जब चेतना आई; हस्त-पाद-हाथ और पाँव; बाहिरे-बाहर; आइल-आये; पूर्ववत्-पहले जैसे; यथा-योग्य-यथायोग्य; शरीर-शरीर; ह-इल-हो गया।

अनुवाद

जब उन्हें चेतना आई, तब उनके हाथ पाँव उनके शरीर से बाहर निकल आये और उनका सारा शरीर पूर्ववत् हो गया।

उठिया वसिलेन प्रभु, चाहेन इति-उति ।

स्वरूपे कहेन,–"तुमि आमा आनिला कति ? ॥ 22॥

उठिया-उठकर; वसिलेन-बैठ गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चाहेन-देखने लगे; इति-उति-इधर-उधर; स्वरूपे-स्वरूप दामोदर को; कहेन–कहा; तुमि-तुम; आमा-मुझे; आनिला–ले आये हो; कति–कहाँ।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु उठ खड़े हुए और फिर से बैठ गये। इधर-उधर देखकर उन्होंने स्वरूप दामोदर से पूछा, "तुम मुझे कहाँ ले आये हो ?

वेणु-शब्द शुनि' आमि गेलाङवृन्दावन ।

देखि,—गोष्ठे वेणु बाजाय व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ 23 ॥

वेणु-शब्द-वंशी की ध्वनि; शुनि'–सुनकर; आमि-मैं; गेलाङ–गया; वृन्दावन-वृन्दावन को; देखि-मैंने देखा; गोष्ठे-गोचौरण भूमि में; वेणु-वंशी; बाजाय-बजाते थे; व्रजेन्द्र-नन्दन-कृष्ण, महाराज नन्द के पुत्र।

अनुवाद

"वंशी की ध्वनि सुनकर मैं वृन्दावन चला गया और वहाँ पर मैंने देखा कि महाराज नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण गोचौरण भूमि में अपनी वंशी बजा रहे हैं।

सङ्केत-वेणु-नादे राधा आनि' कुञ्ज-घरे ।

कुञ्जेरे चलिला कृष्ण क्रीड़ा करिबारे ॥24॥

सङ्केत-वेणु-नादे-वंशी की ध्वनि के संकेत से; राधा-श्रीमती राधारानी; आनि'-ले आये; कुञ्ज-घरे-कुंज में; कुञ्जेरे-कुंज के भीतर; चलिला–चले गये; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; क्रीड़ा करिबारे–लीला करने के लिए।

अनुवाद

"अपनी वंशी की ध्वनि के संकेत से वे श्रीमती राधारानी को एक कुंज में ले आये। फिर वे उनके साथ लीला करने के लिए कुंज के भीतर चले गये।

ताँर पाछे पाछे आमि करिनु गमन ।

ताँर भूषा-ध्वनिते आमार हरिल श्रवण ॥ 25 ॥

ताँर पाछे पाछे—उनके पीछे; आमि-मैं; करिनु गमन-गया; ताँर-उनके; भूषा-ध्वनिते-आभूषणों की ध्वनि से; आमार-मेरे; हरिल-मुग्ध हो गये; श्रवण-कान।

अनुवाद

"मेरे कान उनके आभूषणों की ध्वनि से मुग्ध हो गये और मैंने कृष्ण के पीछे-पीछे कुंज में प्रवेश किया।

गोपी-गण-सह विहार, हास, परिहास ।

कण्ठ-ध्वनि-उक्ति शुनि' मोर कर्णोल्लास ॥ 26 ॥

गोपी-गण-सह-गोपियों के साथ; विहार-लीला; हास-हास; परिहास-परिहास; कण्ठ-ध्वनि-उक्ति-कण्ठध्वनि; शुनि'–सुनकर; मोर-मेरा; कर्ण-उल्लास-कानों का उल्लास।

अनुवाद

मैंने देखा कि कृष्ण तथा गोपियाँ हास-परिहास करते हुए सभी प्रकार की क्रीड़ा का आनन्द ले रहे थे। उनकी कण्ठध्वनि सुनकर मेरे कानों का उल्लास बढ़ गया।

हेन-काले तुमि-सब कोलाहल करि' ।

आमा इँहा लञा आइला बलात्कार करि' ॥ 27॥

हेन-काले—इस समय; तुमि-सब-तुम सब; कोलाहल करि'–कोलाहल करते हुए; आमा–मुझे; इँहा-यहाँ; लञा आइला-ले आये; बलात्कार करि'–बलपूर्वक।

अनुवाद

"तभी तुम सब कोलाहल करते हुए मुझे बलपूर्वक यहाँ ले आये।

शुनिते ना पाइनु सेइ अमृत-सम वाणी ।

शुनिते ना पाइनु भूषण-मुरलीर ध्वनि” ॥28॥

शुनिते ना पाइनु-मैं सुन नहीं सका; सेइ-उन; अमृत-सम-अमृतमयी; वाणी-वाणी; शुनिते ना पाइनु–सुन नहीं पाया; भूषण-आभूषणों की; मुरलीर-मुरली की; ध्वनि-ध्वनि।

अनुवाद

चूँकि तुम लोग मुझे यहाँ लौटा ले आये, इसलिए मैं न तो कृष्ण एवं गोपियों की अमृतमयी वाणी सुन पाया, न ही मैं उनके आभूषणों या मुरली की ध्वनि सुन सका।”

भावावेशे स्वरूपे कहेन गद्गद-वाणी ।

‘कर्ण तृष्णाय मरे, पड़ रसायन, शुनि’ ॥29॥

भाव-आवेशे-अत्यन्त भावावेश में; स्वरूपे-स्वरूप दामोदर को; कहेन–कहा; गद्गद-वाणी–गद्गद् वाणी से; कर्ण-कान; तृष्णाय-तृष्णा के कारण; मरे–मर रहे हैं; पड़-पढ़ो; रस-आयन–कुछ आस्वाद्य; शुनि–मुझे सुनने दो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यन्त भावावेश में स्वरूप दामोदर से अवरुद्ध वाणी में कहा, “मेरे कान तृष्णा के कारण मर रहे हैं। कृपा करके इस तृष्णा को बुझाने के लिए कुछ सुनाओ और मुझे सुनने दो।”

स्वरूप-गोसाञि प्रभुर भाव जानिया ।

भागवतेर श्लोक पड़े मधुर करिया ॥ 30॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भाव-भाव को; जानिया-जानकर; भागवतेर-श्रीमद्भागवत से; श्लोक-श्लोक; पड़े-पढ़ा; मधुर करिया–मधुर स्वर में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के ऊर्मिपूर्ण भाव को जानकर स्वरूप दामोदर ने मधुर स्वर में श्रीमद्भागवत' से निम्नलिखित श्लोक सुनाया।

का स्त्र्यङ्ग ते कल-पदामृत-वेणु-गीत-

सम्मोहितार्य-चरितान्न चलेत्रि-लोक्याम् ।

त्रैलोक्य-सौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं

यद्गो-द्विज-द्रुम-मृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥ 31॥

का-कौन सी; स्त्री-स्त्री; अङ्ग-हे कृष्ण; ते-आपके; कल-पद-मधुर पदों वाले; अमृत-वेणु-गीत-वंशी से निकले मधुर गीत; सम्मोहिता-पूर्णतया मोहित; आर्य-चरितात्-वैदिक संस्कृति के अनुसार सतीत्व के मार्ग से; न-नहीं; चलेत्-चलित हो जायेगी; त्रि-लोक्याम्-तीनों लोकों में; त्रैलोक्य-सौभगम्-तीनों लोकों के कल्याणकारक; इदम्-यह; च–तथा; निरीक्ष्य-देखकर; रूपम् सुन्दरता; यत्-जो; गो-गौवें; द्विज-पक्षी; द्रुम-वृक्ष; मृगाः-हिरन जैसे जंगल के प्राणी; पुलकानि-दिव्य हर्ष; अबिभ्रन्-व्यक्त करते हैं।

अनुवाद

“(गोपियों ने कहा :) ‘हे कृष्ण, तीनों लोकों में ऐसी कौन स्त्री है, जो आपकी अद्भुत वंशी से निकले मधुर गीतों की लय से मोहित न हो जाय? इस तरह ऐसी कौन होगी, जो सतीत्व के मार्ग से च्युत नहीं हो जायेगी? आपका सौन्दर्य तीनों लोकों में अत्यन्त उत्कृष्ट है। आपकी सुन्दरता को देखकर गौवें, पक्षी, पशु, तथा जंगल के वृक्ष भी हर्ष से स्तम्भित हो जाते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.29.40) से उधृत है।

शुनि' प्रभु गोपी-भावे आविष्ट ह-इला।

भागवतेर श्लोकेर अर्थ करिते लागिला ॥ 32॥

शुनि'–सुनकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गोपी-भावे-गोपी भाव से; आविष्ट ह-इला–विह्वल हो गये; भागवतेर-श्रीमद्भागवत के; श्लोकेर-श्लोक का; अर्थ-अर्थ; करिते लागिला-व्याख्या करने लगे।

अनुवाद

यह श्लोक सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु गोपी-भाव से अभिभूत हो गये और उसकी व्याख्या करने लगे।

हैल गोपी-भावावेश, कैल रासे परवेश,

कृष्णेर शुनि' उपेक्षा-वचन।

कृष्णेर मुख-हास्य-वाणी, त्यागे ताहा सत्य मानि',

रोषे कृष्णे देन ओलाहन ॥ 33॥

हैल–था; गोपी-गोपियों का; भाव-आवेश-भावावेश; कैल–किया; रासे-रासस्थली में; परवेश-प्रविष्ट हुईं; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; शुनि'–सुनकर; उपेक्षा-वचन-उपेक्षा के शब्द; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; मुख–मुख; हास्य-हँसकर; वाणी-लेकर; त्यागे-परित्याग; ताहा-वह; सत्य मानि'–सत्य मानकर; रोषे क्रोध में; कृष्णे-भगवान् कृष्ण को; देन–दिया; ओलाहन-उलाहना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "गोपियाँ भावावेश में रासनृत्य की स्थली में प्रविष्ट हुईं, किन्तु कृष्ण से उपेक्षा तथा उदासीनता के शब्द सुनकर वे समझ गईं कि कृष्ण उनका परित्याग करने वाले हैं। इसलिए वे उन्हें क्रोध में उलाहना देने लगीं।

"नागर, कह, तुमि करिया निश्चय

एइ त्रिजगत् भरि', आछे यत योग्या नारि, ।

तोमार वेणु काहाँ ना आकर्षय? ॥ 34॥

नागर-हे प्रियतम; कह–कहो; तुमि-आप; करिया-करके; निश्चय–निश्चय; एइ-यह; त्रि-जगत्-त्रिभुवन; भरि'-भरकर; आछे-हैं; यत-कितनी; योग्या-योग्य; नारी-स्त्रियाँ; तोमार-आपकी; वेणु-वंशी; काहाँ-जहाँ; ना-नहीं; आकर्षय-आकृष्ट करती।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "हे प्रियतम, जरा हमारे एक प्रश्न का उत्तर तो दो। इस ब्रह्माण्ड में कौन ऐसी तरुणी है, जो आपकी वंशी की ध्वनि से आकृष्ट नहीं होती?

कैला जगते वेणु-ध्वनि, सिद्ध-मन्त्रा योगिनी

दूती हञा मोहे नारी-मन ।

महोत्कण्ठा बाड़ाञा, आर्य-पथ छाड़ाञा,

आनि' तोमाय करे समर्पण ॥ 35॥

कैला-आपने किया है; जगते–जगत् में; वेणु-ध्वनि-वंशी की ध्वनि; सिद्ध-मन्त्रा–मन्त्रों के उच्चारण में सिद्ध; योगिनी-योगिनी; दूती–दूती; हञा–होकर; मोहे-मोहित करती है; नारी-मन-स्त्रियों के

मन; महा-उत्कण्ठा–तीव्र उत्कंठा; बाड़ाञा-बढ़ाती है; आर्य-पथ-विधिविधान; छाड़ाञा-परित्याग करवाती है; आनि'–लाकर; तोमाय-आपके पास; करे समर्पण-देती है।

अनुवाद

"जब आप अपनी वंशी बजाते हो, तब यह ध्वनि मन्त्रोच्चारण-कला में पटु योगिनी के जैसी दूती का सा कार्य करती है। यह दूती ब्रह्माण्ड की सारी स्त्रियों को विमोहित करती है और उन्हें आपकी ओर आकृष्ट करती है। तब वह उनकी उत्कण्ठा को बढ़ाकर अपने से बड़ों की आज्ञा मानने के विधान का परित्याग करवाती है। अन्त में वह उन्हें बलपूर्वक आपके पास माधुर्य-प्रेम में आत्म समर्पण कराने लाती है।

धर्म छाड़ाय वेणु-द्वारे, हाने कटाक्ष-काम-शरे,

लज्जा, भय, सकल छाड़ाय।

एबे आमाय करि' रोष, कहि' पति-त्यागे 'दोष',

धार्मिक हञा धर्म शिखाय! ॥ 36॥

धर्म-धार्मिक सिद्धान्त; छाड़ाय-त्यागने के लिए प्रेरित करती है; वेणु-द्वारे-वंशी द्वारा; हाने–बेघती है; कटाक्ष–चितवन; काम-शरे काम के बाण; लज्जा–लज्जा; भय-भय; सकल-सब; छाड़ाय-त्यागने के लिए प्रेरित करती है; एबे-अब; आमाय-हमको; करि' रोष-क्रोधित होकर; कहि'–कहते हो; पति-त्यागे-अपने पतियों को छोड़ना; दोष-दोष; धार्मिक-अत्यन्त धार्मिक; हञा-होकर; धर्म-धार्मिक सिद्धान्त; शिखाय-आप सीखाते हो।

अनुवाद

"आपकी वंशी की ध्वनि हमें काम के बाणों से बलात् बेधने वाली आपकी चितवन के साथ मिलकर हमें धार्मिक जीवन के विधिविधानों की उपेक्षा करने के लिए प्रेरित करती है।

इस तरह हम कामेच्छाओं से उत्तेजित होकर सारी लज्जा तथा भय त्यागकर आपके पास आती हैं। किन्तु अब आप हमसे रूठे हुए हो। आप हमारे द्वारा धार्मिक सिद्धान्तों का उल्लंघन किये जाने से तथा अपने अपने घरों तथा पतियों को छोड़ने पर हममें दोष निकाल रहे हो। जब आप हमें धार्मिक सिद्धान्तों का उपदेश देते हो, तो हम निरुपाय हो जाती हैं।

अन्य-कथा, अन्य-मन, बाहिरे अन्य आचरण,

एइ सब शठ-परिपाटी ।

तुमि जान परिहास, हय नारीर सर्व-नाश,

छाड़ एइ सब कुटीनाटी ॥ 37॥

अन्य–भिन्न; कथा-शब्द; अन्य–भिन्न; मन-मन; बाहिरे-बाह्य रूप से; अन्य-भिन्न; आचरण-आचरण; एइ–ये; सब–सब; शठ-परिपाटी–सुनियोजित चाल; तुमि-आप; जान-जानते हैं; परिहास-परिहास; हय-है; नारीर-स्त्रियों का; सर्व-नाश-सर्वनाश; छाड़-कृपया त्याग दो; एइ-ये; सब-सब; कुटीनाटी-चातुर्यपूर्ण चाल।

अनुवाद

"हम जानती हैं कि यह आपकी सुनियोजित चाल है। आपको ऐसा परिहास करना आता है, जिससे स्त्रियों का सर्वनाश हो जाता है, किन्तु हम समझ सकती हैं कि आपके वास्तविक मन, वचन तथा व्यवहार सर्वथा भिन्न हैं। इसलिए आप कृपया इन चातुर्यपूर्ण चालों को छोड़ दो।

वेणु-नाद अमृत-घोले, अमृत-समान मिठा बोले,

अमृत-समान भूषण-शिञ्जित ।

तिन अमृते हरे काण, हरे मन, हरे प्राण,

केमने नारी धरिबेक चित?" ॥ 38॥

वेणु-नाद-वंशी की ध्वनि; अमृत-घोले-अमृत तुल्य छाछ के समान; अमृत-समान-अमृत के समान; मिठा बोले–मधुर वाणी; अमृत-समान-अमृत के समान; भूषण-शिञ्जित-आभूषणों की ध्वनि; तिन-है; अमृते-अमृत; हरे-आकृष्ट करती है; काण-कान; हरे-आकृष्ट करती है; मन-मन; हरे-आकृष्ट करती है; प्राण-प्राण; केमने-कैसे; नारी-स्त्री; धरिबेक-धारण करेगी; चित-धैर्य या चेतना।

अनुवाद

"आपकी वंशी की ध्वनि की अमृतमय छाछ, आपके मधुर शब्दों का अमृत तथा आपके आभूषणों की अमृत तुल्य ध्वनि-ये तीनों हमारे कानों, मनों तथा प्राणों को आकृष्ट करने के लिए मिल जाते हैं। इस तरह आप हमें मार डाल रहे हो।"

एत कहि' क्रोधावेशे, भावेर तरङ्गे भासे,

उत्कण्ठा-सागरे डुबे मन ।

राधार उत्कण्ठा-वाणी, पड़ि' आपने वाखानि,

कृष्ण-माधुर्य करे आस्वादन ॥ 39॥

एत कहि'-यह कहकर; क्रोध-आवेशे-रोष के भाव में; भावेर तरङ्गे-प्रेमावेश की तरंगों में; भासे-तैरते थे; उत्कण्ठा-उत्कंठा के; सागरे-सागर में; डुबे मन-मन को लीन करके; राधार–श्रीमती राधारानी के; उत्कण्ठा-वाणी-उत्कंठा से भरे शब्द; पड़ि'-पढ़कर; आपने-स्वयं; वाखानि-व्याख्या की; कृष्ण-माधुर्य-कृष्ण की मधुरता; करे आस्वादन-आस्वादन किया।

अनुवाद

चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेम की तरंगों में तैर रहे थे, अतः उन्होंने ये शब्द रोष की मुद्रा में कहे। उत्कण्ठा के सागर में डूबकर उन्होंने उसी भाव को व्यक्त करने वाला श्रीमती राधारानी

द्वारा कहा हुआ श्लोक सुनाया। तब उन्होंने स्वयं इस श्लोक की व्याख्या की और कृष्ण की मधुरता का आस्वादन किया।

नदज्जलद-निस्वनः श्रवण-कर्षि-सच्छिञ्जितः

सनर्म-रस-सूचकाक्षर-पदार्थ-भङ्ग्युक्तिकः ।

रमादिक-वराङ्गना-हृदय-हारि-वंशी-कलः

स मे मदन-मोहनः सखि तनोति कर्ण-स्पृहाम् ॥ 40॥

नदत्-गर्जन करने वाला; जलद-बादल; निस्वनः—जिनकी वाणी; श्रवण-कान; कर्षि-आकृष्ट करती है; सत्-शिञ्जितः-जिनके आभूषणों की रुनझुन; स-नर्म–गहन अर्थ से; रस-सूचक-परिहास भरे; अक्षर-शब्द; पद-अर्थ-अर्थ; भङ्गि–सूचित करते हैं; उक्तिकः-जिनके शब्द; रमा-आदिक-लक्ष्मी देवी से लेकर; वर-अङ्गना-सुन्दरियों का; हृदय-हारि-हृदय आकृष्ट करते हैं; वंशी-कलः-जिनकी वंशी की ध्वनि; सः-वह; मे-मेरा; मदन-मोहनः-मदनमोहन; सखि-हे प्रिय सखी; तनोति-वर्धित करते हैं; कर्ण-स्पृहाम्-मेरे कानों की इच्छा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "हे सखी, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की वाणी आकाश में गर्जन करने वाले बादल के समान गम्भीर है। वे अपने आभूषणों की रुनझुन से गोपियों के कानों को और अपनी वंशी की ध्वनि से लक्ष्मी देवी तक को तथा अन्य सुन्दरियों को आकृष्ट करते हैं। मदनमोहन नाम से विख्यात वे भगवान्, जिनके परिहास के वचन अनेक संकेत तथा गम्भीर अर्थ रखते हैं, मेरे कानों की कामेच्छाओं को वर्धित कर रहे हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक गोविन्द लीलामृत (8.5) में प्राप्य है।

“कण्ठेर गम्भीर ध्वनि, नवघन-ध्वनि जिनि’,

यार गुणे कोकिल लाजाय।

तार एक श्रुति-कणे, डुबाय जगतेर काणे,

पुनः काण बाहुड़ि’ ना आय ॥41॥

कन्ट्:एर-कंठ की; गम्भीर-गम्भीर; ध्वनि-ध्वनि; नव-घन-नवीन बादल की; ध्वनि-गर्जन; जिनि’-को जीतने वाली; यार-जिसके; गुणे-लक्षण; कोकिल-कोयल को; लाजाय-लज्जित करती है; तार-उसके; एक-एक; श्रुति-कणे-ध्वनि का कण; डुबाय-आप्लावित करता है; जगतेर-समग्र जगत् को; काणे-कान; पुनः–पुनः; काण-कान; बाहुड़ि’–बाहर जाकर; ना आय–नहीं आ सकता।

अनुवाद

“कृष्ण की गम्भीर वाणी नवीन उमड़े बादलों से भी अधिक गर्जन करने वाली है और उनका मधुर गीत कोयल की मधुर वाणी को भी पराजित करने वाला है। निस्सन्देह, उनका गीत इतना मधुर है कि उसकी ध्वनि का एक कण भी सारे जगत् को आप्लावित कर सकता है। यदि ऐसा कण किसी के कान में प्रवेश करता है, तो वह तुरन्त ही समस्त अन्य प्रकार के श्रवण से विहीन हो जाता है।

कह, सखि, कि करि उपाय?

कृष्णेर से शब्द-गुणे, हरिले आमार काणे, ।

एबे ना पाय, तृष्णाय मरि’ याय ॥42॥

कह-कृपया कहो; सखि-हे प्रिय सखी; कि-क्या; करि-मैं करूँ; उपाय-साधन, उपाय; कृष्णेर-कृष्ण का; से-वह; शब्द-ध्वनि के; गुणे-गुण; हरिले-आकृष्ट होकर; आमार-मेरे; काणे-कान; एबे-अब; ना पाय-नहीं पाती; तृष्णाय-तृष्णा से; मरि याय-मैं मर रही हूँ।

अनुवाद

“हे सखी, मुझे बताओ कि मैं क्या करूँ। मेरे कानों को कृष्ण की ध्वनि के गुणों ने लूट लिया है। किन्तु अब मैं यह दिव्य ध्वनि नहीं सुन पा रही और मैं उसके बिना मृतप्राय हूँ।

नुपर-किङ्किणी-ध्वनि, हंस-सारस जिनि’,

कङ्कण-ध्वनि चटके लाजाय ।

एक-बार येइ शुने, व्यापि रहे' तार काणे,

अन्य शब्द से-काणे ना याय ॥43॥

नूपुर-नूपुरों की; किङ्किणी–रुनझुन; ध्वनि-ध्वनि; हंस-हंस; सारस-सारस; जिनि’-को जीतने वाली; कङ्कण-ध्वनि-कंगनों की ध्वनि; चटके-चटक पक्षी; लाजाय–को लज्जित करने वाली; एक-बार-एक बार; येइ-जो भी; शुने-सुनता है; व्यापि-व्यापित होता है; रहे-रहता है; तार काणे-कान में; अन्य-अन्य; शब्द-ध्वनि; से-काणे-कान में; ना याय नहीं जाती।

अनुवाद

“कृष्ण के नूपुरों की ध्वनि हंस तथा सारस के गीतों का भी अतिक्रमण कर जाती है और उनके कंगनों की ध्वनि चटक पक्षी के गाने को भी लज्जा देती है। यदि एक बार भी इन ध्वनियों को कानों में प्रविष्ट होने दिया जाय, तो फिर अन्य कुछ भी सुनना सहन नहीं हो सकता।

से श्री-मुख-भाषित, अमृत हैते परामृत,

स्मित-कर्पूर ताहाते मिश्रित ।

शब्द, अर्थ, —दुइ-शक्ति, नाना-रस करे व्यक्ति,

प्रत्यक्षर—नर्म-विभूषित ॥44॥

से-वह; श्री–सुन्दर; मुख–मुख से; भाषित-बोली हुई; अमृत-अमृत; हैते-से भी; पर-अमृत-अधिक अमृतमय; स्मित-हँसी; कर्पूर-कपूर; ताहाते-उसमें; मिश्रित-मिल जाती है; शब्द-ध्वनि; अर्थ-अर्थ; दुइ-शक्ति-दो शक्तियाँ; नाना-नाना; रस-रस; करे व्यक्ति-व्यक्त करते हैं; प्रति-अक्षर–प्रत्येक शब्द; नर्म-विभूषित-अर्थ से पूर्ण।

अनुवाद

"कृष्ण की वाणी अमृत से भी कहीं अधिक मीठी होती है। उनका प्रत्येक हर्षित शब्द अर्थपूर्ण होता है और जब उनकी वाणी उनकी कपूर जैसी हँसी से मिल जाती है, तो इस तरह से कृष्ण के शब्दों से उत्पन्न ध्वनि तथा उसका गम्भीर अर्थ विविध दिव्य रसों को उत्पन्न करते हैं।

से अमृतेर एक-कण, कर्ण-चकोर-जीवन,

कर्ण-चकोर जीये सेइ आशे ।

भाग्य-वशे कभु पाय, अभाग्ये कभु ना पाय,

ना पाइले मरये पियासे ॥ 45 ॥

से अमृतेर—उस अमृत का; एक-कण-एक कण; कर्ण-चकोर-कान का, जो चकोर पक्षी के समान है; जीवन-जीवन; कर्ण-कान; चकोर–चकोर पक्षी; जीये-जीता है; सेइ आशे—उस आशा के साथ; भाग्य-वशे–सौभाग्य से; कभु-कभी-कभी; पाय-पाता है; अभाग्ये-दुर्भाग्य से; कभु-कभी-कभी; ना पाय-नहीं पाता; ना पाइले-यदि नहीं पाता; मरये–मर जाता है; पियासे-प्यास से॥

अनुवाद

"उस दिव्य आनन्दमय अमृत का एक कण कान का प्राण है, जो चकोर पक्षी की तरह उस अमृत का आस्वादन करने की आशा में जीवित रहता है। भाग्यवश यह पक्षी कभी तो

उसका आस्वादन कर सकता है, किन्तु कभी-कभी दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं कर पाता, इसलिए वह तृष्णा से मरणासन्न हो जाता है।

येबा वेणु-कल-ध्वनि, एक-बार ताहा शुनि',

जगन्नारी-चित्त आउलाय।

नीवि-बन्ध पड़े खसि', विना-मूले हय दासी,

बाउली हञा कृष्ण-पाशे धाय ॥46॥

येबा-जो भी; वेणु-वंशी की; कल-ध्वनि-मधुर ध्वनि; एक-बार-एक बार; ताहा-वह; शुनि'–सुनती है; जगत्-जगत् की; नारी–त्रियों के; चित्त-हृदय; आउलाय–विचलित हो जाते हैं; नीवि-बन्ध–कमरबन्ध; पड़े हो जाते हैं; खसि'-ढीले; विना-मूले-नि:शुल्क; हय–वे हो जाती हैं; दासी–दासियाँ; बाउली-बावली; हञा–हो जाती हैं; कृष्ण-पाशे-कृष्ण के पीछे; धाय-दौड़ती हैं।

अनुवाद

कृष्ण की वंशी की दिव्य ध्वनि विश्वभर की स्त्रियों के हृदयों को विचलित करती है, चाहे वे उसे एक बार ही क्यों न सुनें। इस तरह उनके कमरबन्ध ढीले पड़ जाते हैं और ये स्त्रियाँ कृष्ण की निशुल्क दासियाँ बन जाती हैं। निस्सन्देह, वे बावली स्त्रियों की तरह कृष्ण की ओर दौड़ती हैं।

येबा लक्ष्मी-ठाकुराणी, तेंहो ये काकली शुनि',

कृष्ण-पाश आइसे प्रत्याशाय।

ना पाय कृष्णेर सङ्ग, बाड़े तृष्णा-तरङ्ग,

तप करे, तबु नाहि पाय ॥47॥

येबा-भी; लक्ष्मी-ठाकुराणी लक्ष्मीजी; तेंहो-वे; ये-जो; काकली-वंशी की ध्वनि; शुनि'–सुनकर; कृष्ण-पाश-भगवान् कृष्ण को; आइसे-आती हैं; प्रत्याशाय-बड़ी आशा के साथ; ना पाय-नहीं पातीं; कृष्णेर सङ्ग-कृष्ण का संग; बाड़े-बढ़ती है; तृष्णा तृष्णा; तरङ्ग-तरंगें; तप करे–तपस्या करती हैं; तबु–फिर भी; नाहि पाय-नहीं पाती।

अनुवाद

"कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनकर लक्ष्मीजी भी उनकी संगति की बहुत बड़ी आशा बाँधकर उनके पास आती हैं, किन्तु तो भी उन्हें वह संगति नहीं मिल पाती। जब उनकी संगति की तृष्णा की लहरें बढ़ती हैं, तो लक्ष्मीजी तपस्या करती हैं, किन्तु तो भी वे उनको नहीं मिल पातीं।

एइ शब्दामृत चारि, यार हय भाग्य भारि,

सेइ कर्णे इहा करे पान ।

इहा येइ नाहि शुने, से काण जन्मिल केने,

काणाकड़ि-सम सेइ काण" ॥48॥

एइये; शब्द-अमृत-अमृत तुल्य ध्वनि; चारि–चार; यार–जिनका; हय-है; भाग्य भारि—महान् भाग्य; सेइ-ऐसा व्यक्ति; कर्णे-कान से; इहा-ये ध्वनियाँ; करे पान-पीता है; इहा-ये ध्वनियाँ; येइ-जो भी; नाहि शुने-नहीं सुनता; से-वे; काण-कान; जन्मिल-जन्म लेते हैं; केने-क्यों; काणाकड़ि-छोटे शंख का छेद; सम-के समान; सेइ कोण-ये कान।

अनुवाद

जो अत्यन्त भाग्यवान है, वही इन अमृत तुल्य चार प्रकार के शब्दों को सुन सकता है- कृष्ण के शब्द, उनकी नुपूरों तथा कंगनों की रुनझुन, उनकी वाणी तथा उनकी वंशी की ध्वनि।

यदि वह इन ध्वनियों को नहीं सुन सकता, तो उसके कान छोटे शंख के छेद के समान व्यर्थ हैं।"

करिते ऐछे विलाप, उठिल उद्वेग, भाव,

मने काहो नाहि आलम्बन ।

उद्वेग, विषाद, मति, औत्सुक्य, त्रास, धृति, स्मृति,

नाना-भावेर ह-इल मिलन ॥49॥

करिते-करके; ऐछे-ऐसा; विलाप-शोक; उठिल-उदय हुआ; उद्वेग-उद्वेग; भाव-भाव; मने-मन में; काहो–कहीं भी; नाहि-नहीं था; आलम्बन-आश्रय; उद्वेग-उद्वेग; विषाद-विषाद; मति–मति; औत्सुक्य-उत्सुकता; त्रास–त्रास; धृति-धृति; स्मृति-स्मृति; नाना-भावेर-विविध भावों का; ह-इल-था; मिलन-संमिश्रण।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु इस तरह विलाप कर रहे थे, तो उनके मन में उद्वेग तथा भाव का उदय हुआ, जिससे वे अति चंचल हो उठे। उनमें अनेक दिव्य भावों का मिश्रण हो रहा था यथा उद्वेग, विषाद, मति, उत्सुकता, त्रास, धृति तथा स्मृति इत्यादि।

भाव-शाबल्ये राधार उक्ति, लीला-शुके हैल स्फूर्ति,

सेइ भावे पड़े एक श्लोक ।

उन्मादेर सामर्थ्य, सेइ श्लोकेर करे अर्थे,

येइ अर्थ नाहि जाने लोक ॥50॥

भाव-शाबल्ये-सारे भावों के समन्वय में; राधार-श्रीमती राधारानी के; उक्ति-विधान; लीला-शुके–विल्वमंगल ठाकुर में; हैल–हुआ; स्फूर्ति-उदय; सेइ भावे-उस भाव में; पड़े-पढ़ा; एक-एक; श्लोक-श्लोक; उन्मादेर-उन्मत्तता के; सामर्थ्य-बल पर; सेइ श्लोकेर-उस श्लोक का; करे अर्थे–अर्थ बताया; येइ अर्थ-जो अर्थ; नाहि नहीं था; जाने-ज्ञात; लोक-लोगों को।

अनुवाद

इन भावों के समन्वय से बिल्वमंगल ठाकुर (लीला शुक) के मन में श्रीमती राधारानी के एक कथन का उदय हुआ। अब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसी भाव में उस श्लोक को सुनाया और उन्माद के बल पर उन्होंने उसका अर्थ बतलाया, जो सामान्य लोगों को ज्ञात नहीं है।

किमिह कृणुमः कस्य ब्रूमः कृतं कृतमाशया

कथयत कथामन्यां धन्यामहो हृदये शयः ।

मधुर-मधुर-स्मेराकारे मनोनयनोत्सवे

कृपण-कृपणा कृष्णे तृष्णा चिरं बत लम्बते ॥51॥

किम्-क्या; इह-यहाँ; कृणुमः-मैं करूँ; कस्य–किसे; ब्रूमः—-मैं कहूँ; कृतम्-जो किया गया है; कृतम्–किया है; आशया-आशा में; कथयत-कृपया कहो; कथाम्-शब्द; अन्याम्-अन्य; धन्याम्-शुभ; अहो–हाय; हृदये-मेरे हृदय में; शयः-पड़े हुए हैं; मधुर-मधुर-मधुरता से भी मधुर; स्मेर-हँसी; आकारे-जिनका रूप; मनः-नयन-मन तथा आँखों को; उत्सवे-जो आनन्द देते हैं; कृपण-कृपणा सर्वाधिक कृपण; कृष्णे-कृष्ण के लिए; तृष्णा-तृष्णा; चिरम्-प्रतिक्षण; बत-हाय; लम्बते-बढ़ती जाती है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हाय, मैं क्या करूँ? मैं किससे कहूँ? मैंने कृष्ण से मिलने की आशा में जो कुछ किया है, उसे अब समाप्त हो जाने दो। कृपया अब कोई शुभ बात कहो,

किन्तु कृष्ण के विषय में मत कहो। हाय, कृष्ण तो मेरे हृदय में कामदेव की तरह पड़े हुए हैं, तो फिर मैं उनके विषय में बातें करना कैसे बन्द कर दें? मैं कृष्ण को भूल नहीं सकती, जिनकी हँसी स्वयं मधुरता से भी अधिक मधुर है और जो मेरे मन तथा आँखों को आनन्द देने वाले हैं। हाय, कृष्ण के लिए मेरी अगाध तृष्णा प्रति क्षण बढ़ती जा रही है!'

तात्पर्य

यह श्रीमती राधारानी का कथन है, जिसे कृष्ण कर्णामृत (42) से उद्धृत किया गया है।

"एइ कृष्णेर विरहे, उद्वेगे मन स्थिर नहे,

प्राप्त्युपाय-चिन्तन ना याय ।

येबा तुमि सखी-गण, विषादे बाउल मन,

कारे पुछों, के कहे उपाय? ॥52॥

एइ-यह; कृष्णेर-कृष्ण के; विरहे-विरह में; उद्वेगे-उद्वेग में; मन–मन; स्थिर-अधीर; नहे-नहीं है; प्राप्ति-उपाय-पाने का उपाय; चिन्तन ना याय-मैं नहीं सोच पा रही; येबा-सब; तुमि-तुम; सखी-गण-सखियाँ; विषादे-विषाद में; बाउल-बावली; मन–मन; कारे-किसे; पुछों-मैं पूछं; के–जो; कहे-कहेगा; उपाय-उपाय।

अनुवाद

"कृष्ण के विरह से उत्पन्न चिन्ता ने मुझे अधीर बना दिया है और मैं उनसे मिलने का कोई उपाय नहीं सोच पा रही। हे सखियों, तुम भी विषाद से बावली हो रही हो। अतएव अब मुझे कौन बतायेगा कि उन्हें कैसे खोजा जाय?

हा हा सखि, कि करि उपाय!

काँहा करों, काहाँ याङ, काहाँ गेले कृष्ण पाङ ।

कृष्ण विना प्राण मोर याय" ॥53॥

हा हा-हे; सखि–सखियों; कि-क्या; करि-मैं करूँ; उपाय-उपाय; काँहा करों-मैं क्या करूँ; काहाँ याङ–मैं कहाँ जाऊँ; काहाँ गेले–कहाँ जाकर; कृष्ण पाङ-कृष्ण को पा सकती हूँ; कृष्ण विना-कृष्ण के बिना; प्राण-प्राण; मोर-मेरे; याय-निकल रहे हैं।

अनुवाद

हे प्रिय सखियों, मैं कृष्ण को कैसे पा सकेंगी? मैं क्या करूँ? मैं कहाँ जाऊँ? मैं उनसे कहाँ मिल सकती हूँ? कृष्ण के न मिलने से मेरे प्राण निकल रहे हैं।"

क्षणे मन स्थिर हय, तबे मने विचारय,

बलिते ह-इल भावोद्गम ।

पिङ्गलार वचन-स्मृति, कराइल भाव-मति,

ताते करे अर्थ-निर्धारण ॥54॥

क्षणे-एक क्षण में; मन-मन; स्थिर हय-शान्त हो गया; तबे-उस समय; मने-मन में; विचारय-वे सोचने लगे; बलिते-कहने के लिए; ह-इल–था; भाव-उद्गम-भाव का उदय; पिङ्गलार–पिंगला के; वचन-स्मृति-शब्दों का स्मरण करके; कराइल–किया; भाव-मति–मन में भाव; ताते—उसमें; करे-किया; अर्थ-निर्धारण-अर्थ बताने लगे।

अनुवाद

एकाएक श्री चैतन्य महाप्रभु शान्त हो गये और अपनी मनोदशा पर विचार करने लगे। उन्हें पिंगला के शब्द स्मरण हो आये और इससे उनके मन में भावावेश का उदय हुआ, जिसने उन्हें बोलने के लिए प्रेरित किया। इस तरह वे इस श्लोक का अर्थ बतलाने लगे।

तात्पर्य

पिंगला एक वेश्या थी, जिसने कहा था, "आशा न होने पर भी आशा करने से मात्र कष्ट होता है। नितान्त निराशा सबसे बड़ा सुख है।" इस कथन का स्मरण करके श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में आ गये। यह पिंगला की कथा श्रीमद्भागवत (11.8.22-44) में तथा महाभारत (शान्ति पर्व, अध्याय174) में भी पाई जाती है।

"देखि एइ उपाये, कृष्ण-आशा छाड़ि' दिये,

आशा छाड़िले सुखी हय मन ।

छाड़' कृष्ण-कथा अधन्य, कह अन्य-कथा धन्य,

याते हय कृष्ण-विस्मरण" ॥55॥

देखि-देखकर; एइ उपाये-उपाय; कृष्ण-आशा-कृष्ण की आशा; छाड़ि' दिये-मैं त्याग देता हूँ; आशा-आशा; छाड़िले–यदि मैं त्याग दें; सुखी-सुखी; हय–हो जाऊँगा; मन-मन; छाड़'-त्याग दो; कृष्ण-कथा-कृष्ण की चर्चा; अधन्य-अति महिमाहीन; कह-कहो; अन्य-कथा-अन्य बातें; धन्य-महिमामण्डित; ग्राते-जिसके द्वारा; हय-होता है; कृष्ण-विस्मरण-कृष्ण का विस्मरण।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यदि मैं कृष्ण से मिलने की आशा त्याग दें, तो मैं सुखी रहूँगा। इसलिए हम कृष्ण विषयक इस अति महिमाहीन चर्चा को बन्द करें। अच्छा हो कि हम महिमामण्डित कथाओं के विषय में बातें करें और कृष्ण को भूल जायें।"

कहितेइ ह-इल स्मृति, चित्ते हैल कृष्ण-स्फूर्ति,

सखीरे कहे हञा विस्मिते ।

यारे चाहि छाड़िते, सेइ शुञा आछे चित्ते,

कोन रीते ना पारि छाड़िते" ॥56॥

कहितेइ-बोलते हुए; ह-इल-हुआ; स्मृति-स्मरण; चित्ते-हृदय में; हैल-हुआ; कृष्ण-स्फूर्ति-कृष्ण का प्राकट्य; सखीरे-सखियों को; कहे–कहा; हञा विस्मिते-अत्यन्त चकित होकर; यारे-वह जिसे; चाहि छाड़िते-मैं छोड़ना चाहती हूँ; सेइ-वह व्यक्ति; शुञा आछे-स्थित है; चित्ते-हृदय में; कोन रीते-किसी विधि से; ना पारि-मैं समर्थ नहीं हूँ; छाड़िते-छोड़ने के लिए।

अनुवाद

इस तरह बोलते हुए श्रीमती राधारानी को सहसा कृष्ण का स्मरण हो आया। निस्सन्देह, वे उनके हृदय के भीतर प्रकट हुए। अत्यन्त चकित होकर उन्होंने अपनी सखियों से कहा, "मैं जिस पुरुष को भूलना चाहती हूँ, वह तो मेरे हृदय में स्थित है।"

राधा-भावेर स्वभाव आन, कृष्णे कराय'काम'-ज्ञान,

काम-ज्ञाने त्रास हैल चित्ते ।

कहे–"ये जगत्मारे, से पशिल अन्तरे,

एइ वैरी ना देय पासरिते" ॥57॥

राधा-भावेर-श्रीमती राधारानी के भाव का; स्वभाव-स्वभाव; आन–अन्य; कृष्णे-कृष्ण को; कराय-उन्हें करवाता है; काम-ज्ञान-कामदेव के रूप में; काम-कामदेव; ज्ञाने-का ज्ञान; त्रास-भय; हैल-

हुआ; चित्ते-मन में; कहे-उन्होंने कहा; ये-जो व्यक्ति; जगत्-सारा जगत्; मारे-जीतता है; से—वह व्यक्ति; पशिल-प्रवेश किया है; अन्तरे-मेरे हृदय में; एइ वैरी-यह शत्रु; ना देय-अनुमति नहीं देता; पासरिते-भूलने की।

अनुवाद

श्रीमती राधारानी के भाव ने उन्हें यह सोचने के लिए भी बाध्य किया कि कृष्ण कामदेव हैं और इस ज्ञान से वे भयभीत हो उठीं। उन्होंने कहा, "यह कामदेव, जिसने सारे जगत् को जीतकर मेरे हृदय में प्रवेश किया है, मेरा सबसे बड़ा शत्रु है, क्योंकि वह मुझे उन्हें भूलने की अनुमति नहीं देता।"

औत्सुक्येर प्रावीण्ये, जिति' अन्य भाव-सैन्ये,

उदय हैल निज-राज्य-मने ।

मने ह-इल लालस, ना हय आपन-वश.

दुःखे मने करेन भर्सने ॥58॥

औत्सुक्येर-उत्सुकता के प्रावीण्ये विकास के कारण; जिति–जीत लिया; अन्य-अन्य; भाव-सैन्ये-भाव के सैनिक; उदय-उदय; हैल-हुई; निज-राज्य-मने-उनके मनोराज्य में; मने-मन में; ह-इल-थी; लालस-लालसा; ना-नहीं; हय-हुई; आपन-वश-उनके वश में; दुःखे-दु:खी होकर; मने-मन की; करेन-की; भर्सने–भर्सना।

अनुवाद

"तब महान् उत्सुकता ने भाव के अन्य सारे सैनिकों को जीत लिया और श्रीमती राधारानी के मनोराज्य में ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई, जो वश में नहीं आ रही थी। तब अत्यन्त दुःखी होकर, उन्होंने अपने ही मन की भर्त्सना की।

“मन मोर वाम-दीन, जल विना येन मीन,

कृष्ण विना क्षणे मरि’ याय ।

मधुर-हास्य-वदने, मन-नेत्र-रसायने,

कृष्ण-तृष्णा द्विगुण बाड़ाय ॥ 59॥

मन मोर-मेरा मन; वाम-दीन-अति दीन; जल-जल; विना-के बिना; येन-जैसे; मीन-मछली; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; विना-के बिना; क्षण-क्षणभर में; मरि’ याय-मर जायेगा; मधुर-मधुर; हास्य-हँसी; वदने—मुख; मन-मन; नेत्र-आँखें; रस-आयने-अत्यन्त सुहावना; कृष्ण-तृष्णा-कृष्ण के लिए तृष्णा; द्वि-गुण-द्विगुणित; बाड़ाय-बढ़ती है।

अनुवाद

“यदि मैं कृष्ण के विषय में न सोचूं, तो मेरा दीन मन क्षणभर में मर जायेगा, जिस तरह जल के बाहर आने पर मछली मर जाती है। किन्तु जब मैं कृष्ण के मधुर हास्ययुक्त मुख को देखती हूँ, तो मेरा मन तथा मेरी आँखें इतनी प्रसन्न हो जाती हैं कि उनके देखने के लिए मेरी इच्छा पुनः द्विगुणित हो जाती है।

हा हा कृष्ण प्राण-धन, हा हा पद्म-लोचन,

हा हा दिव्य सद्गुण-सागर! ।

हा हा श्याम सुन्दर, हा हा पीताम्बर-धर,

हा हा रास-विलास नागर ॥ 60॥

हा हा-हाय; कृष्ण-हे कृष्ण; प्राण-धन-मेरे जीवन के निधि; हा हा-हाय; पद्म-लोचन–कमलनयन; हा हा-हाय; दिव्य-दिव्य; सत्-गुण-सागर-दिव्य गुणों के सागर; हा हा-हाय; श्यामसुन्दर श्यामसुन्दर; हा हा-हाय; पीत-अम्बर-धर-पीताम्बरधारी; हा हा-हाय; रास-विलास-रासनृत्य के; नागर-नायक।

अनुवाद

"हाय! मेरे जीवन की निधि कृष्ण कहाँ हैं? वे कमलनेत्र कहाँ हैं? हाय! वे समस्त दिव्य गुणों के दिव्य सागर कहाँ हैं? हाय! वे सुन्दर साँवले रंग वाले और पीताम्बर धारण किये हुए युवक कहाँ हैं? हाय! रासनृत्य के नायक कहाँ हैं?

काहाँ गेले तोमा पाइ, तुमि कह,—ताहाँ याइ",

एत कहि' चलिला धाञा।

स्वरूप उठि' कोले करि', प्रभुरे आनिल धरि',

निज-स्थाने वसाइला लैञा ॥ 61॥

काहाँ–कहाँ; गेले-जाकर; तोमा-आप; पाइ-मैं पाऊँ; तुमि-आप; कह-कृपया कहो; ताहाँ-वहाँ; याइ–मैं जाऊँगा; एत कहि'—यह कहकर; चलिला धाञा-दौड़ने लगे; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; उठि'–उठकर; कोले करि'-अपनी गोद में लेकर; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु; आनिल-वापस लाये; धरि'-पकड़कर; निज-स्थाने-अपने स्थान में; वसाइला-बैठ गये; लैञा-लेकर।

अनुवाद

"मैं कहाँ जाऊँ? मैं आपको कहाँ पा सकता हूँ? कृपया मुझे बताओ। मैं वहीं जाऊँगा।" इस तरह कहते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु दौड़ने लगे। किन्तु स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने खड़े होकर उन्हें पकड़ लिया और अपनी गोद में उठा लिया। तब स्वरूप दामोदर उन्हें उनके स्थान पर लौटा ले आये और उन्हें बैठा दिया।

क्षणेके प्रभुर बाह्य हैल, स्वरूपेरे आज्ञा दिल,

"स्वरूप, किछु कर मधुर गान" ।

स्वरूप गाय विद्यापति, गीत-गोविन्द-गीति,

शुनि' प्रभुर जुड़ाइल काण ॥62॥

क्षणेके–सहसा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; बाह्य-बाह्य चेतना; हैल-हुई; स्वरूपेरे आज्ञा दिल-उन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी को आज्ञा दी; स्वरूप-हे प्रिय स्वरूप; किछु-कुछ; कर-करो; मधुर-मधुर; गान-गीत; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; गाय-गाया; विद्यापति-विद्यापति के गीत; गीत-गोविन्द-गीति-गीत-गोविन्द के गीत; शुनि'–सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; जुड़ाइल–हो गये तृप्त; काण-कान।

अनुवाद

सहसा श्री चैतन्य महाप्रभु की बाह्यचेतना जायत हुई और उन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी से कहा, "हे प्रिय स्वरूप, कोई मधुर गीत गाओ।" जब महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर को गीत गोविन्द के तथा विद्यापति रचित गीत गाते सुना, तो उनके कर्ण तृप्त हो गये।

एइ-मत महाप्रभु प्रति-रात्रि-दिने ।

उन्माद चेष्टित हय प्रलाप-वचने ॥ 63॥

एइ-मत-इस तरह; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, प्रति-रात्रि-दिने प्रत्येक दिन और रात; उन्माद-उन्मत्त; चेष्टित–कार्य; हय हैं; प्रलाप-वचने-उन्मत्त की तरह बोलते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इसी तरह प्रत्येक रात और दिन उन्मत्त हो उठते और एक पागल की तरह बातें करते।

एक-दिने यत हय भावेर विकार ।

सहस्र-मुखे वर्णे यदि, नाहि पाय पार ॥ 64॥

एक-दिने-एक दिन में; यत हय–जितने होते; भावेर-भाव; विकार के विकार; सहस्र-मुखे-हजार मुखों वाले अनन्त देव; वर्ण यदि-यदि वर्णन करे; नाहि पाय-नहीं पहुँच सकते; पार-सीमा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को एक दिन में जितने भाव-विकारों का अनुभव होता, उसका पूरा पूरा वर्णन हजार मुखों वाले अनन्तदेव भी नहीं कर सकते।

जीव दीन कि करिबे ताहार वर्णन? ।

शाखा-चन्द्र-न्याय करि' दिग्दरशन ॥ 65 ॥

जीव-जीव; दीन-दीन; कि-क्या; करिबे-करेगा; ताहार-उसका; वर्णन-वर्णन; शाखा-चन्द्र-न्याय-वृक्ष की शाखाओं के बीच से चन्द्रमा को दिखाने का तर्क; करि'-मैं करता हूँ; दिक्-दरशन-दिशा का दर्शन।

अनुवाद

मुझ जैसा दीन प्राणी उन विकारों का वर्णन कैसे कर सकता है? मैं तो केवल उनका संकेत कर सकता हूँ, जिस तरह वृक्ष की शाखाओं के बीच से चन्द्रमा को दिखलाया जा रहा हो।

इहा येइ शुने, तार जुड़ाय मन-काण ।

अलौकिक गूढ़-प्रेम-चेष्टा हय ज्ञान ॥ 66 ॥

इहा-यह; येइ शुने-जो सुनता है; तार–उनका; जुड़ाय–सन्तुष्ट होता है; मन-काण-मन तथा कान; अलौकिक-असामान्य; गूढ़-प्रेम-कृष्ण के लिए गहन प्रेम; चेष्टा-कार्य; हय ज्ञान-वह समझ सकता है।

अनुवाद

किन्तु यह वर्णन उस व्यक्ति के मन तथा कानों को तुष्ट करेगा, जो इसे सुनेगा और वह कृष्ण के गहन प्रेम के इन असामान्य कार्यकलापों को समझ सकेगा।

अद्भुत निगूढ़ प्रेमेर माधुर्य-महिमा ।

आपनि आस्वादि' प्रभु देखाइला सीमा ॥ 67॥

अद्भुत-अद्भुत; निगूढ़-निगूढ़; प्रेमेर-कृष्ण के लिए; माधुर्य-महिमा-मधुरता की महिमा; आपनि–स्वयं; आस्वादि'-आस्वादन करके; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभुः देखाइला–दिखाई; सीमा–चरम सीमा।

अनुवाद

कृष्ण के लिए प्रेमावेश अद्भुत तथा निगूढ़ है। उस प्रेम के महिमामय माधुर्य का स्वयं आस्वादन करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने हमें इसकी चरम सीमा दिखलाई है।

अद्भुत-दयालु चैतन्य–अद्भुत-वदान्य! ।

ऐछे दयालु दाता लोके नाहि शुनि अन्य ॥68॥

अद्भुत-अद्भुत; दयालु दयालु; चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु; अद्भुत-वदान्य-अद्भुत वदान्य; ऐछे-ऐसे; दयालु--दयालु; दाता–दानी; लोके-इस जगत् में; नाहि-नहीं; शुनि-हमने सुना है; अन्य-अन्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अद्भुत कृपालु एवं अद्भुत वदान्य हैं। हमने इस जगत् में उन जैसे दयालु तथा दानी अन्य किसी के बारे में नहीं सुना है।

सर्व-भावे भज, लोक, चैतन्य-चरण ।

याहा हैते पाइबा कृष्ण-प्रेमामृत-धन ॥ 69॥

सर्व-भावे-सब प्रकार से; भज-पूजा करो; लोक-हे समग्र जगत्; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; याहा हैते–जिसके द्वारा; पाइबा--तुम प्राप्त करोगे; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण का प्रेम; अमृत-अमृत का; धन-कोष।

अनुवाद

हे संसार के लोगों, श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की सभी प्रकार से पूजा करो। केवल इसी विधि से तुम उन्मत कृष्ण-प्रेम के अमृतमय कोष को प्राप्त कर सकोगे।

एइ त' कहिलुँ 'कूर्माकृति'-अनुभाव ।

उन्माद-चेष्टित ताते उन्माद-प्रलाप ॥ 70 ॥

एइ त' कहिलुँ– इस तरह मैंने वर्णन किया है; कूर्म-आकृति-कूर्म के समान बनना; अनुभाव-भाव का लक्षण; उन्माद-चेष्टित-उन्मत्त की तरह कार्य करना; ताते-उसमें; उन्माद-प्रलाप-उन्मत्त की तरह बोलना।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के कूर्म जैसे बनने के विकार का वर्णन किया है। उस भाव में वे उन्मत्त की तरह बातें और कार्य करते थे।

एइ लीला स्व-ग्रन्थे रघुनाथ-दास ।

गौराङ्ग-स्तव-कल्पवृक्षे कैराछेन प्रकाश ॥71॥

एइ लीला-यह लीला; स्व-ग्रन्थे-अपने ग्रन्थ में; रघुनाथ-दास-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; गौराङ्ग-स्तव-कल्प-वृक्षे- गौराङ्गस्तव कल्पवृक्ष नामक; कैराछेन प्रकाश-पूरा वर्णन किया है।

अनुवाद

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी ने अपनी पुस्तक 'गौराङ्गस्तव कल्पवृक्ष' में इस लीला का भलीभाँति वर्णन किया है।

अनुद्घाट्य द्वार-त्रयमुरु च भित्ति-त्रयमहो

विलछयोच्चैः कालिङ्गिक-सुरभि-मध्ये निपतितः ।

तनूद्यत्सङ्कोचात्कमठ इव कृष्णोरु-विरहाद्

विराजन्गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति ॥72॥

अनुद्घाट्य–बिना खोले; द्वार-त्रयम्-तीन दरवाजे; उरु-मजबूत; च-तथा; भित्ति-त्रयम्-तीन दीवारें; अहो–कितना अद्भुत; विलङ्घय-लाँघ करके; उच्चैः-बहुत ऊँची; कालिङ्गिक तैलंग जिले के कलिंग देश की; सुरभि-मध्ये-गायों के बीच; निपतितः-गिर गये; तनु-उद्यत्-सङ्कोचात्-शरीर के भीतर समेटकर; कमठः-कुछुवे; इव-की तरह; कृष्ण-उरु-विरहात्-कृष्ण के तीव्र विरहभाव में; विराजन्–प्रकट होकर; गौराङ्गः- श्री चैतन्य महाप्रभु; हृदये-मेरे हृदय में; उदयन्-उदित होकर; माम्-मुझे; मदयति-उन्मत्त बनाते हैं।

अनुवाद

"कितनी विचित्र बात है! श्री चैतन्य महाप्रभु ने तीन सुदृढ़तापूर्वक बन्द किए हुए दरवाजों को बिना खोले ही अपना घर छोड़ दिया। तब उन्होंने तीन ऊँची दीवालें लाँधीं और बाद में वे कृष्ण-विरह की प्रबल अनुभूति के कारण तैलंग जिले की गौवों के बीच में गिर गये

और अपने शरीर के सारे अंगों को कछुवे की तरह भीतर समेट लिया। इस तरह प्रकट होने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु मेरे हृदय में उदित होकर मुझे उन्मत्त बनाते हैं।"

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥73॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ- श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों में; यार-जिनकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए तथा उनके चरणचिह्नों पर चलकर मैं कृष्णदास श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत के अन्त्य लीला के अन्तर्गत श्री चैतन्य महाप्रभु के शारीरिक विकार शीर्षक सत्रहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय अठारह

महाप्रभु का समुद्र से बचाव

अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अठारहवें अध्याय का सांराश इस प्रकार दिया है। शरदऋतु में पूर्णमासी सन्ध्या में श्री चैतन्य महाप्रभु आइटोटा मन्दिर के पास समुद्र तट पर भ्रमण कर रहे थे। समुद्र को यमुना नदी समझकर वे कृष्ण तथा श्रीमती राधारानी तथा अन्य गोपियों की

जललीला देखने के उद्देश्य से उसमें कूद पड़े। समुद्र में तैरते हुए वे कोणार्क मन्दिर तक बह गये, जहाँ एक मछुआरे ने उन्हें बड़ी मछली समझकर अपने जाल में पकड़ लिया और उन्हें समुद्र के तट पर ले आया। श्री चैतन्य महाप्रभु अचेत थे और उनका शरीर अत्यधिक परिवर्तित हो चुका था। उस मछुआरे ने ज्योंही महाप्रभु के शरीर का स्पर्श किया, त्योंही वह कृष्ण-प्रेम में उन्मत्त हो उठा। किन्तु उसे अपनी उन्मत्तता से भय लगा, क्योंकि उसने सोचा कि उसे कोई भूत-प्रेत लग गया है। जब वह भूत-प्रेत झाड़ने वाले को ढूँढ़ने जाने वाला था, तो उसे स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा अन्य भक्त समुद्र तट पर मिले, जो महाप्रभु की सर्वत्र खोज कर रहे थे। कुछ पूछताछ के बाद स्वरूप दामोदर समझ गये कि मछुआरे ने अपने जाल में श्री चैतन्य महाप्रभु को ही पकड़ा है। चूंकि मछुआरे को डर था कि उसे भूत-प्रेत सता रहा है, अतएव स्वरूप दामोदर ने उसको एक चपत लगाई और हरे कृष्ण का उच्चारण किया, जिससे वह तुरन्त शान्त हो गया। तत्पश्चात् जब भक्तों ने उच्च स्वर से हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन किया, तो श्री चैतन्य महाप्रभु की बाह्य चेतना जायत हुई। तब वे उन्हें उनके घर ले आये।

शरज्ज्योत्स्ना-सिन्धोरवकलनया जात-यमुना-

भ्रमाद्धावन् योऽस्मिन्हरि-विरह-तापार्णव इव ।

निमग्नो मूर्च्छालः पयसि निवसन्रात्रिमखिलां

प्रभाते प्राप्तः स्वैरवतु स शची-सूनुरिह नः ॥1॥

शरत्-ज्योत्स्ना-शरद की चाँदनी में; सिन्धोः-समुद्र को; अवकलनया-देखकर; जात-लगा; यमुना-यमुना नदी; भ्रमात्-गलती से; धावन्-दौड़कर; यः-वे जो; अस्मिन्-इसमें; हरि-विरह-हरि के विरह के कारण; ताप–पीड़ा का; अर्णवे-समुद्र में; इव-जैसे; निमग्नः-कूद गये; मूच्छलः-अचेत; पयसि-जल में; निवसन्-रहकर; रात्रिम्-रात्रि; अखिलाम्-सारी; प्रभाते-प्रातःकाल; प्राप्तः–पाये गये; स्वैः-उनके निजी संगियों द्वारा; अवतु-रक्षा करें; सः-वे; शची-सूनुः-माता शची के पुत्र; इह-यहाँ; नः-हमारी।

अनुवाद

शरद की चाँदनी रात में समुद्र देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु को उसमें यमुना नदी का भ्रम हो गया। कृष्ण विरह से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण वे दौड़कर समुद्र में कूद गये और सम्पूर्ण रात्रि जल में अचेतन पड़े रहे। प्रातःकाल उनके आत्मीय भक्तों ने उन्हें पाया। ऐसे शची माता के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी दिव्य लीलाओं से हमारी रक्षा करें।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय जय; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द–नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

एइ-मते महाप्रभु नीलाचले वैसे ।

रात्रि-दिने कृष्ण-विच्छेदार्णवे भासे ॥ 3॥

एइ-मते-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी में; वैसे-रहे; रात्रि-दिने–दिन-रात; कृष्ण-विच्छेद-कृष्ण के विरह के; अर्णवे-समुद्र में; भासे-तैरते रहे।

अनुवाद

इस तरह जगन्नाथपुरी में रहते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु रात-दिन कृष्ण के विरह रूपी समुद्र में तैरते रहे।

शरत्कालेर रात्रि, सब चन्द्रिका-उज्वल ।

प्रभु निज-गण लञा बेड़ान रात्रि-सकल ॥4॥

शरत्-कालेर-शरद की; रात्रि-रात; सब-सारी; चन्द्रिका-उज्वल-चाँदनी से प्रकाशमान; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-गण-अपने पार्षदों को; लञा–साथ लेकर; बेड़ान–चले; रात्रि-सकल-सारी रात।

अनुवाद

शरद ऋतु की रात में जब पूर्ण चन्द्रमा हर वस्तु को प्रकाशमान कर रहा था, तब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के साथ रात भर भ्रमण करते रहे।

उद्याने उद्याने भ्रमेन कौतुक देखिते ।

रास-लीलार गीत-श्लोक पड़िते शुनिते ॥5॥

उद्याने उद्याने–एक उद्यान से दूसरे उद्यान में; भ्रमेन–वे भ्रमण करते रहे; कौतुक देखिते-देखते हुए; रास-लीलार–रास नृत्य के; गीत-श्लोक-गीत तथा श्लोक; पड़िते शुनिते-पढ़ते तथा सुनते हुए।

अनुवाद

वे भगवान् कृष्ण की लीलाएँ देखते तथा रासलीला विषयक गीतों तथा श्लोकों को सुनते-सुनाते एक बगीचे से दूसरे बगीचे में भ्रमण करते रहे।

प्रभु प्रेमावेशे करेन गान, नर्तन ।

कभु भावावेशे रास-लीलानुकरण ॥6॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; करेन-किया; गान-गायन; नर्तन-नृत्य; कभु-कभी-कभी; भाव-आवेशे-भावावेश में; रास-लीला-रासलीला का नृत्य; अनुकरण-का अनुकरण करके।

अनुवाद

वे प्रेमावेश में नाचते गाते रहे और कभी-कभी भावावेश में रासनृत्य का अनुकरण करते रहे।

कभु भावोन्मादे प्रभु इति-उति धाय ।

भूमे पड़ि' कभु मूर्च्छा, कभु गड़ि' याय ॥7॥

कभु-कभी; भाव-उन्मादे-प्रेमावेश के उन्माद में प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः इति-उति–इधर-उधर; धाय-दौड़ते; भूमे पड़ि-भूमि पर गिरते; कभु मूर्च्छा—कभी अचेत होते; कभु-कभी; गड़ि' याय-भूमि पर लुढ़कते।

अनुवाद

वे भावोन्माद में कभी इधर-उधर दौड़ते और कभी भूमि पर गिरकर लुढ़कने लगते। कभी वे पूर्णतया अचेत हो जाते।

रास-लीलार एक श्लोक यबे पड़े, शुने ।

पूर्ववत्तबे अर्थ करेन आपने ॥8॥

रास-लीलार–रासलीला का; एक-एक; श्लोक-श्लोक; यबे-जब; पड़े-पढ़ते; शुने-सुनते; पूर्व-वत्-पहले की तरह; तबे-तब; अर्थ करेन-व्याख्या करते; आपने-स्वयं।

अनुवाद

जब वे स्वरूप दामोदर को रासलीला से सम्बन्धित कोई श्लोक पढ़ते सुनते या स्वयं कोई श्लोक सुनाते, तब वे स्वयं उसकी व्याख्या करते, जैसाकि वे पहले कर चुके थे।

एइ-मत रास-लीलाय हय यत श्लोक ।

सबार अर्थ करे, पाय कभु हर्ष-शोक ॥9॥

एइ-मत-इस तरह; रास-लीलाय–रासलीला में; हय-हैं; यत श्लोक-जितने श्लोक; सबार-उन सबका; अर्थ करे-उन्होंने अर्थ बतलाया; पाय-पाया; कभु-कभी-कभी; हर्ष-शोक-हर्ष तथा शोक।

अनुवाद

इस तरह उन्होंने रासलीला से सम्बन्धित सारे श्लोकों का अर्थ बतलाया। कभी-कभी वे अत्यन्त खिन्न हो जाते, तो कभी अत्यन्त हर्षित हो जाते।

से सब श्लोकेर अर्थ, से सब 'विकार' ।

से सब वर्णिते ग्रन्थ हय अति-विस्तार ॥10॥

से सब-उन सब; श्लोकेर-श्लोकों का; अर्थ--अर्थ; से-उन; सब-सब; विकार-विकार; से सब-उन सब; वर्णिते-वर्णन करने के लिए; ग्रन्थ हय-ग्रन्थ हो जायेगा; अति-विस्तार-बहुत बड़ा।

अनुवाद

उन सारे श्लोकों की तथा महाप्रभु के शरीर में हुए समस्त विकारों की पूर्ण व्याख्या करने के लिए बहुत बड़े ग्रन्थ की आवश्यकता होगी।

द्वादश वत्सरे ये ये लीला क्षण-क्षणे ।

अति-बाहुल्य-भये ग्रन्थ ना कैलुँ लिखने ॥11॥

द्वादश वत्सरे-बारह वर्षों में; ये ये-जो भी: लीला-लीलाएँ; क्षण-क्षणे-प्रतिक्षण; अति-बाहुल्य-अत्यन्त विस्तृत; भये-के डर से; ग्रन्थ-ग्रन्थ; ना-नहीं; कैलुँ लिखने-मैंने लिखा है।

अनुवाद

कहीं इस ग्रन्थ का आकार न बढ़ जाय, इस भय से मैंने महाप्रभु की सारी लीलाओं के विषय में नहीं लिखा, क्योंकि वे बारह वर्षों तक प्रतिदिन प्रति क्षण इन लीलाओं को सम्पन्न करते रहे।

पूर्वे येइ देखाञाछि दिग्दरशन ।

तैछे जानिह 'विकार' 'प्रलाप' वर्णन ॥12॥

पूर्वे-पहले; येइ-जैसे; देखाञाछि-मैंने इंगित किया है; दिक्-दरशन-केवल संकेत; तैछे-इसी प्रकार; जानिह-आप जानिये; विकार-विकार; प्रलाप–प्रलाप; वर्णन-वर्णन।

अनुवाद

जैसा मैं पहले इंगित कर चुका हूँ, मैं महाप्रभु के प्रलापों तथा शारीरिक विकारों का संक्षिप्त वर्णन ही कर रहा हूँ।

सहस्र-वदने यबे कहये 'अनन्त' ।

एक-दिनेर लीलार तबु नाहि पाय अन्त ॥13॥

सहस्र-वदने-हजारो मुखों से; यबे-जब; कहये-कहेंगे; अनन्त-अनन्त देव; एक-दिनेर-एक दिन की; लीलार–लीलाएँ; तबु-फिर भी; नाहि-नहीं; पाय-पायेंगे; अन्त-अन्त।

अनुवाद

यदि अपने एक हजार फनों से अनन्त देव श्री चैतन्य महाप्रभु की एक दिन की ही लीलाओं का वर्णन करना चाहें, तो उनके लिए इनका पूरी तरह से वर्णन कर पाना असम्भव होगा।

कोटि-युग पर्यन्त यदि लिखये गणेश ।

एक-दिनेर लीलार तबु नाहि पाय शेष ॥14॥

कोटि-युग-करोड़ों युग; पर्यन्त–तक; यदि-यदि; लिखये-लिखेंगे; गणेश-गणेश देव (शिवजी के पुत्र); एक-दिनेर-एक दिन की; लीलार–लीलाएँ; तबु-फिर भी; नाहि पाय-नहीं पायेंगे; शेष-सीमा।

अनुवाद

यदि शिव के पुत्र तथा देवताओं के पटु लिपिक गणेश जी, महाप्रभु की एक दिन की लीलाओं का पूरी तरह से वर्णन करने का प्रयास करोड़ों युगों तक करें, तो भी वे उनकी सीमा नहीं पा सकेंगे।

भक्तेर प्रेम-विकार देखि' कृष्णेर चमत्कार! ।

कृष्ण यार ना पाय अन्त, केबा छार आर? ॥15॥

भक्तेर-भक्त के; प्रेम-विकार-भाव के विकारों को; देखि'–देखकर; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; चमत्कार-आश्चर्य; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यार–जिसका; ना पाय-नहीं पाते; अन्त–अन्त; केबा-जो ; छार–नगण्य; आर-अन्य।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण तक अपने भक्तों के भाव विकारों को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। यदि स्वयं कृष्ण ऐसे भावों की सीमाओं का अनुमान नहीं लगा सकते, तो अन्य लोग कैसे लगा सकेंगे?

भक्त-प्रेमार यत दशा, ये गति प्रकार ।

यत दुःख, यत सुख, यतेक विकार ॥ 16 ॥

कृष्ण ताहा सम्यक् ना पारे जानिते ।

भक्त-भाव अङ्गीकरे ताहा आस्वादिते ॥ 17॥

भक्त-प्रेमार-भक्त का प्रेमावेश; यत–सब; दशा-दशा; ये-जो; गति प्रकार-प्रगति की रीति; यत-सब; दुःख-दुःख; यत-सब; सुख-सुख; यतेक-सब; विकार-विकार; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ताहा-वह; सम्यक् पूर्णतया; ना पारे जानिते–नहीं समझ सकते; भक्त-भाव-भक्त का भाव; अङ्गीकरे-वे स्वीकार करते हैं; ताहा-वह; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए।

अनुवाद

स्वयं कृष्ण भी अपने भक्तों की दशा, प्रगति, सुख तथा दुःख एवं प्रेमभावों को पूरी तरह नहीं समझ पाते। इसलिए वे इन भावों का पूर्ण आस्वादन करने हेतु भक्त की भूमिका अंगीकार करते हैं।

कृष्णेरे नाचाय प्रेमा, भक्तेरे नाचाय ।

आपने नाचये,—तिने नाचे एक-ठाञि ॥18॥

कृष्णेरे-कृष्ण; नाचाय-नचाता है; प्रेमा-कृष्ण-प्रेम; भक्तेरे-भक्त; नाचाय-नचाता है; आपने–स्वयं; नाचये-नाचता है; तिने–तीनों; नाचे-नाचते हैं; एक-ठाञि-एक स्थान पर।

अनुवाद

कृष्ण का प्रेम कृष्ण तथा उनके भक्तों को नचाता है और स्वयं भी नाचता है। इस तरह तीनों ही एक साथ एक स्थान में नाचते हैं।

प्रेमार विकार वर्णिते चाहे येइ जन ।

चान्द धरिते चाहे, येन हञा 'वामन' ॥19॥

प्रेमार-कृष्ण का प्रेम; विकार-विकार; वर्णिते-वर्णन करने के लिए; चाहे-चाहता है; येइ जन-जो व्यक्ति; चान्द धरिते-चन्द्रमा को पकड़ने के लिए; चाहे वह चाहता है; येन-जैसे; हञा–होकर; वामन–बौना।

अनुवाद

जो व्यक्ति कृष्ण के प्रेम-विकारों का वर्णन करना चाहता है, वह उस बौने के समान है, जो आकाश में स्थित चन्द्रमा को पकड़ने का प्रयास करता है।

वायु यैछे सिन्धु-जलेर हरे एक 'कण' ।

कृष्ण-प्रेम-कण तैछे जीवेर स्पर्शन ॥20॥

वायु–वायु; यैछे-जैसे; सिन्धु-जलेर-समुद्र के जल का; हरे-ले जाता है; एक कण-एक कण; कृष्ण-प्रेम-कण-कृष्ण-प्रेम का एक कण; तैछे—उसी तरह; जीवेर स्पर्शन-जीव स्पर्श कर सकता है।

अनुवाद

जिस तरह वायु समुद्र के जल की एक बूंद को ही उड़ा ले जा सकती है, उसी तरह जीव कृष्ण के प्रेम रूपी सागर के केवल एक कण का ही स्पर्श कर सकता है।

क्षणे क्षणे उठे प्रेमार तरङ्ग अनन्त ।

जीव छार काहाँ तार पाइबेक अन्त? ॥ 21॥

क्षणे क्षण-क्षण प्रति क्षण; उठे-उठती हैं; प्रेमार-कृष्ण-प्रेम की; तरङ्ग-लहरें; अनन्त–अनन्त; जीव-जीव; छार–तुच्छ; काहाँ–कहाँ; तार—उसकी; पाइबेक-पायेगा; अन्त-सीमा।

अनुवाद

प्रेम के उस सागर में क्षण प्रति क्षण अनन्त लहरें उठती हैं। भला एक तुच्छ जीव किस तरह उनकी सीमाओं का अनुमान लगा सकता है?

श्री-कृष्ण-चैतन्य याहा करेन आस्वादन ।

सबे एक जाने ताहा स्वरूपादिगण' ॥22॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभुः याहा–जो भी; करेन-करते हैं; आस्वादन–आस्वादन; सबे–पूर्णतया; एक-एक; जाने-जानते हैं; ताहा-वह; स्वरूप-आदि गण-स्वरूप दामोदर जैसे भक्त।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी जैसे व्यक्ति ही पूरी तरह जान सकते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु अपने कृष्ण-प्रेम में क्या आस्वादन करते हैं।

जीव हञा करे येइ ताहार वर्णन ।

आपना शोधिते तार छोंये एक 'कण' ॥ 23 ॥

जीव हञा-सामान्य जीव होने से; करे-करता है; येइ-जो भी; ताहार-उसका; वर्णन-वर्णन; आपना–स्वयं को; शोधिते-शुद्ध करने के लिए; तार-उसका; छोंये-स्पर्श करता है; एक कण--एक कण।

अनुवाद

जब कोई सामान्य जीव श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन करता है, तब वह स्वयं उस महासागर की एक बूंद का स्पर्श करके अपने आपको पवित्र बनाता है।

एइ-मत रासेर श्लोक-सकल-इ पड़िला ।

शेषे जल-केलिर श्लोक पड़िते लागिला ॥ 24॥

एइ-मत-इस प्रकार; रासेर–रास नृत्य के; श्लोक-श्लोक; सकल-इ-सब; पड़िला-पढ़े गये; शेषे–अन्त में; जल-केलिर–जलक्रीड़ा की लीला का; श्लोक-श्लोक; पड़िते लागिला-सुनाने लगे।

अनुवाद

इस तरह रासलीला विषयक सारे के सारे श्लोक सुनाये गये। तब अन्त में जल-क्रीड़ा विषयक लीला का श्लोक सुनाया गया।

ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्ग-सङ्ग-

घृष्ट-स्रजः स कुच-कुङ्कम-रञ्जितायाः ।

गन्धर्व-पालिभिरनुद्रुत आविशद्वाः

श्रान्तो गजीभिरिभ-राङ् इव भिन्न-सेतुः ॥ 25 ॥

ताभिः-उनके (गोपियों के); युतः-साथ; श्रमम्-थकान; अपोहितुम्-दूर करने के लिए; अङ्ग-सङ्ग–देह के स्पर्श से; घृष्ट-मर्दित; स्रजः-फूलों की माला से; सः-वे; कुच-कुङ्कम-उरोजों पर लगे कुंकुम से; रञ्जितायाः-रंजित; गन्धर्व-प-गन्धर्व लोक के दैवी जीवों जैसे; अलिभिः-भौंरों द्वारा; अनुद्रुतः-पीछा किये जाने वाले; आविशत्-प्रवेश किया; वाः-जल में; श्रान्तः-थके हुए; गजीभिः-हाथिनियों द्वारा; इभ-हाथी के; राट्-राजा; इव-समान; भिन्न-सेतुः-वेदों के नैतिकता के सिद्धान्तों से परे।

अनुवाद

"जिस तरह हाथियों का स्वतन्त्र प्रमुख अपनी हथिनियों के साथ जल में प्रवेश करता है, उसी तरह वैदिक नैतिकता के सिद्धान्तों से परे कृष्ण ने गोपियों समेत यमुना में प्रवेश किया। उनका वक्षस्थल गोपियों के उरोजों के संपर्क में आने के कारण उनके गले की माला मर्दित हो गई थी और वह लाल कुंकुम चूर्ण से रँग गई थी। उस माला की सुगन्ध से आकृष्ट होकर भौंरे

कृष्ण का पीछा करने लगे मानों गन्धर्व लोक के दैवी जीव हों। इस तरह भगवान् कृष्ण ने रासलीला की थकान को दूर किया।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.33.22) से है।

एइ-मत महाप्रभु भ्रमिते भ्रमिते ।

आइटोटा हैते समुद्र देखेन आचम्बिते ॥ 26॥

एइ-मत-इस तरह; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भ्रमिते भ्रमिते-भ्रमण करते हुए; आइटोटा हैते– आइटोटा के मन्दिर से; समुद्र-समुद्र; देखेन-देखा; आचम्बिते-अचानक।

अनुवाद

इस तरह आइटोटा मन्दिर के निकट भ्रमण करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने सहसा समुद्र देखा।

चन्द्र-कान्त्ये उछलित तरङ्ग उज्वल ।

झलमल करे,—येन 'यमुनार जल' ॥ 27॥

चन्द्र-कान्त्ये-चन्द्रमा की चमकती किरणों से; उछलित-ऊँची ऊँची; तरङ्ग-लहरें; उज्वल-उज्वल; झलमल करे-चमकती; येन-जैसे; यमुनार जल-यमुना नदी का जल।

अनुवाद

चन्द्रमा के उज्वल प्रकाश से चमकती समुद्र की ऊँची-ऊँची लहरें यमुना नदी के जल जैसी झलमल कर रही थीं।

यमुनार भ्रमे प्रभु धाञा चलिला ।

अलक्षिते याइ' सिन्धु-जले झाँप दिला ॥28॥

यमुनार भ्रमे-गलती से यमुना समझकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; धाञा चलिला-तेजी से दौड़ने लगे; अलक्षिते-दिखे बिना; याइ'–जाकर; सिन्धु-जले-समुद्र के जल में; झाँप दिला–वे कूद पड़े।

अनुवाद

समुद्र को यमुना नदी समझकर महाप्रभु तेजी से दौड़े और अन्यों के देखे बिना जल में कूद पड़े।

पड़ितेइ हैल मूर्च्छा, किछुइ ना जाने ।

कभु डुबाय, कभु भासाय तरङ्गेर गणे ॥29॥

पड़ितेइ-गिरकर; हैल मूर्च्छा–वे अचेत हो गये; किछुइ-कुछ भी; ना जाने-समझ नहीं सके; कभु-कभी-कभी; डुबाय-डूब जाते; कभु-कभी-कभी; भासाय-तैरते; तरङ्गेर गणे–तरंगों में।

अनुवाद

समुद्र में गिरते ही उनकी चेतना चली गई और वे यह न समझ सके कि वे कहाँ हैं। वे कभी लहरों के नीचे डूब जाते और कभी उनके ऊपर तैरते रहते।

तरङ्गे वहिया फिरे,—येन शुष्क काष्ठ ।

के बुझिते पारे एइ चैतन्येर नाट? ॥ 30 ॥

तरङ्गे-लहरें; वहिया फिरे-इधर-उधर ले जाती; येन-जैसे; शुष्क काष्ठ-सूखे काष्ठ का टुकडा; के-कौन; बुझिते पारे-समझ सकता है; एइ-यह; चैतन्येर नाट–श्री चैतन्य महाप्रभु का नाटकीय प्रदर्शन।

अनुवाद

लहरें उन्हें इधर-उधर बहा ले गईं मानो कोई सुखे काठ का लट्ठा हो। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा किये जाने वाले इस नाटकीय प्रदर्शन को कौन समझ सकता है?

कोणार्केर दिके प्रभुरे तरङ्गे लञा याय ।

कभु डुबाञा राखे, कभु भासाञा लञा याय ॥31॥

कोणार्केर दिके–कोणार्क मन्दिर की ओर; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु; तरङ्गे–लहरें; लञा याय-गईं; कभु-कभी-कभी; डुबाञा-डूबो देतीं; राखे-रखतीं; कभु-कभी-कभी; भासाञा-तैराये रखतीं; लञा याय-ले जातीं।

अनुवाद

लहरें कभी महाप्रभु को डुबो देतीं और कभी ऊपर तैराये रखतीं। इस तरह वे उन्हें कोणार्क मन्दिर की ओर बहा ले गईं।

तात्पर्य

कोणार्क सामन्यतया अर्कतीर्थ कहलाता है और यह सूर्यदेव का मन्दिर है। यह जगन्नाथपुरी से 19 मील उत्तर की ओर समुद्रतट पर स्थित है। इसका निर्माण काले पत्थरों से शक सम्वत् की तेरहवीं सदी के प्रारम्भ में हुआ था और वह शिल्पकला तथा वास्तुकला का उत्तम नमूना है।

यमुनाते जल-केलि गोपी-गण-सङ्गे ।

कृष्ण करेन-महाप्रभु भग्न सेइ रङ्गे ॥ 32 ॥

यमुनाते-यमुना नदी में; जल-केलि-जलक्रीडा; गोपी-गण-सङ्गे–गोपियों के साथ; कृष्ण करेन-कृष्ण ने की थीं; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मग्न–पूर्णतया निमग्न; सेइ रङ्गे–उन लीलाओं में।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण ने गोपियों के साथ यमुना के जल में जो लीलाएँ की थीं, श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हीं लीलाओं में पूरी तरह निमग्न थे।

इहाँ स्वरूपादि-गण प्रभु ना देखिया ।

'काहाँ गेला प्रभु?' कहे चमकित हञा ॥33॥

इहाँ–यहाँ; स्वरूप-आदि-गण-स्वरूप दामोदर आदि भक्तगण; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ना देखिया-न देखकर; काहाँ–कहाँ; गेला–चले गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः कहे-कहा; चमकित हञा–चकित होकर।

अनुवाद

इस बीच स्वरूप दामोदर इत्यादि सारे भक्तों ने जब श्री चैतन्य महाप्रभु को नहीं देखा, तो वे सभी चकित होकर यह पूछते हुए उनको खोजने लगे कि, "महाप्रभु कहाँ चले गये?"

मनो-वेगे गेला प्रभु, देखिते नारिला ।

प्रभुरे ना देखिया संशय करिते लागिला ॥ 34॥

मनः-वेगे-मन के वेग से; गेला–गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; देखिते नारिला-कोई देख नहीं सका; प्रभुरे–महाप्रभु; ना देखिया-न देखकर; संशय-संशय; करिते लागिला-होने लगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु मन के वेग से भागे थे। कोई उन्हें नहीं देख सका। अतः वे कहाँ थे उसके विषय में सारे लोग संशय में थे।

'जगन्नाथ देखिते किबा देवालये गेला? ।

अन्य उद्याने किबा उन्मादे पड़िला? ॥ 35॥

जगन्नाथ–भगवान् जगन्नाथ; देखिते-दर्शन करने; किबा-या; देवालये–मन्दिर में; गेला–गये; अन्य-अन्य; उद्याने-उद्यान में; किबा-या; उन्मादे-उन्मत्तता में; पड़िला-गिर गये।

अनुवाद

"क्या महाप्रभु जगन्नाथजी के मन्दिर गये हैं या वे उन्मत्ततावश किसी उद्यान में गिर पड़े हैं?

गुण्डिचा-मन्दिरे गेला, किबा नरेन्द्रेरे? ।

चटक-पर्वते गेला, किबा कोणार्केरे?' ॥ 36॥

गुण्डिचा-मन्दिरे-गुण्डिचा मन्दिर को; गेला-गये हैं; किबा–अथवा; नरेन्द्रेरे-नरेन्द्र सरोवर को; चटक-पर्वते-चटक पर्वत को; गेला-गये हैं; किबा-अथवा; कोणार्केरे-कोणार्क मन्दिर में।

अनुवाद

"हो सकता है कि वे गुण्डिचा मन्दिर गये हैं या नरेन्द्र सरोवर अथवा चटक पर्वत गये हैं। हो सकता है कि वे कोणार्क के मन्दिर में गये हों।"

एत बलि' सबे फिरे प्रभुरे चाहिया ।

समुद्रेर तीरे आइला कत जन लञा ॥ 37॥

एत बलि'—यह कहकर; सबे–वे सब; फिरे-घूमते हुए; प्रभुरे चाहिया-श्री चैतन्य महाप्रभु को खोजते हुए; समुद्रेर तीरे-समुद्र तट पर; आइला-आ पहुँचे; कत–अनेक; जन-लोग; लञा–के साथ।

अनुवाद

इस तरह बातें करते हुए भक्त जन महाप्रभु को खोजने के लिए इधर-उधर घूमने लगे। अन्त में वे अन्य अनेक लोगों समेत समुद्र के किनारे आये।

चाहिये बेड़ाइते ऐछे रात्रि-शेष हैल ।

‘अन्तर्धान ह-इला प्रभु',—निश्चय करिल ॥ 38॥

चाहिये-खोजते हुए; बेड़ाइते-घूमते हुए; ऐछे—इस तरह; रात्रि-शेष हैल-रात्रि बीत गई; अन्तर्धान ह-इला–अन्तर्धान हो गये हैं; प्रभु–महाप्रभु; निश्चय करिल-उन्होंने निश्चय किया।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु की खोज करते हुए रात बीत गई। अतः उन्होंने निश्चय किया, “अब श्री चैतन्य महाप्रभु अन्तर्धान हो गये हैं।”

प्रभुर विच्छेदे कार देहे नाहि प्राण ।

अनिष्टा-शङ्का विना कार मने नाहि आन ॥ 39॥

प्रभुर–महाप्रभु से; विच्छेदे-वियोग के कारण; कार–वे सब; देहे-शरीर में; नाहि प्राण–बिना प्राण के; अनिष्टा-शङ्का-किसी दुर्घटना की आशंका में; विना-बिना; कार-वे सब; मने-मन में; नाहे आन-अन्य कुछ भी।

अनुवाद

महाप्रभु के वियोग में सबों को ऐसा लग रहा था मानो उनके प्राण निकल चुके हों। सभी भक्तों ने यह निष्कर्ष निकाला कि अवश्य ही कोई दुर्घटना घटी है। इसके अतिरिक्त वे और कुछ नहीं सोच पाये।

“अनिष्ट-शङ्कीनि बन्धु-हृदयानि भवन्ति हि" ॥40॥

अनिष्ट-किसी अनिष्ट का; शङ्कीनि–शंकाशील; बन्धु-मित्र या सम्बन्धी के प्रति हृदयानि–हृदय; भवन्ति–होता है; हि–निश्चय ही।

अनुवाद

"कोई सम्बन्धी या घनिष्ठ मित्र अपने प्रिय के अनिष्ट के प्रति सदैव भयभीत रहता है।"

तात्पर्य

यह उद्धरण अभिज्ञान शाकुन्तला नाटक से है।

समुद्रेर तीरे आसि' युकति करिला ।

चिरायु-पर्वत-दिके कत-जन गेला ॥41॥

समुद्रेर तीरे-समुद्र के तट पर; आसि'–आकर; ग्रुकति करिला-उन्होंने विचार-विमर्श किया; चिरायु-पर्वत–चटक पर्वत की; दिके-दिशा में; कत-जन-उनमें से कुछ; गेला-गये।

अनुवाद

जब वे समुद्र के किनारे आये, तो उन्होंने परस्पर विचार-विमर्श किया। तब उनमें से कुछ लोग श्री चैतन्य महाप्रभु को ढूँढ़ने चटक पर्वत गये।

पूर्व-दिशाय चले स्वरूप लञा कत जन ।

सिन्धु-तीरे-नीरे करेन प्रभुर अन्वेषण ॥42॥

पूर्व-दिशाय-पूर्व दिशा में; चले गये; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; लञा-लेकर; कत जन-कुछ लोग; सिन्धु-तीरे-समुद्र के तट पर; नीरे-जल में; करेन-की; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; अन्वेषण–खोज।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर अन्यों के साथ महाप्रभु को समुद्र के किनारे अथवा जल में ढूंढते हुए पूर्व की ओर बढ़े।

विषादे विह्वल सबे, नाहिक 'चेतन' ।

तबु प्रेमे बुले करि' प्रभुर अन्वेषण ॥43॥

विषादे-अत्यन्त खिन्न होकर; विह्वल-विह्वल; सबे-सब में; नाहिक-नहीं थी; चेतन-चेतना; तबु–फिर भी; प्रेमे प्रेम में; बुले-घूमते रहे; करि'-करते हुए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; अन्वेषण–खोजते हुए।

अनुवाद

सारे लोग खिन्नता से विह्वल थे और लगभग अचेत जैसे हो गये थे, किन्तु प्रेमवश वे सभी महाप्रभु को खोजने के लिए इधर-उधर घूमते रहे।

देखेन–एक जालिया आइसे कान्धे जाल करि' ।

हासे, कान्दे, नाचे, गाय, बले 'हरि' 'हरि' ॥44॥

देखेन-उन्होंने देखा; एक जालिया-एक मछुआरे को; आइसे-आते हुए; कान्धे-कन्धे पर; जाल करि'-जाल लेकर; हासे-हँसता; कान्दे-रोता; नाचे-नाचता; गाय-गाता; बले-कहता; हरि हरि-हरि, हरि।

अनुवाद

समुद्र तट से होकर जाते हुए सबों ने एक मछुआरे को आते देखा, जो अपने कन्धे पर अपना जाल लिये था। वह हँसता, रोता, नाचता तथा गाता "हरि, हरि" का उच्चारण किये जा रहा था।

जालियार चेष्टा देखि' सबार चमत्कार ।

स्वरूप-गोसाञि तारे पुछेन समाचार ॥ 45 ॥

जालियार-मछुआरे के; चेष्टा–कार्यकलाप; देखि'–देखकर; सबार-सब को; चमत्कार-आश्चर्य; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; तारे-उसको; पुछेन-पूछा; समाचार-समाचार॥

अनुवाद

मछुआरे के कार्यकलाप को देखकर सारे लोग आश्चर्यचकित हो गये। इसलिए स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने उससे समाचार पूछा।

“कह, जालिया, एइ दिके देखिला एक-जन? ।

तोमार एइ दशा केने,—कहत' कारण?” ॥ 46॥

कह-कृपया कहो; जालिया-हे मछुआरे; एइ दिके-इस दिशा में; देखिला-तुमने देखा; एक-जन-कोई व्यक्ति; तोमार-तुम्हारी; एइ–यह; दशा-दशा; केने-क्यों; कहत'–कृपया कहो; कारण-कारण।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “हे मछुआरे, तुम ऐसा व्यवहार क्यों कर रहे हो? क्या तुमने इधर किसी व्यक्ति को देखा है? तुम्हारे इस व्यवहार का क्या कारण है? कृपा करके हमसे कहो।”

जालिया कहे,–“इहाँ एक मनुष्य ना देखिल ।

जाल वाहिते एक मृतक मोर जाले आइल ॥47॥

जालिया कहे-मछुआरे ने कहा; इहाँ–यहाँ; एक-एक; मनुष्य-मनुष्य; ना देखिल-मैंने नहीं देखा; जाल वाहिते-जाल डालते समय; एक-एक; मृतक-शव; मोर जाले-मेरे जाल में; आइल-आया।

अनुवाद

मछुआरे ने उत्तर दिया, “मैंने यहाँ एक भी व्यक्ति को नहीं देखा, किन्तु जल में अपना जाल डालते समय मैंने एक शव को पकड़ा है।

बड़ मत्स्य बलि' आमि उठाइलें यतने ।

मृतक देखिते मोर भय हैल मने ॥48॥

बड़-बड़ी; मत्स्य-मछली; बलि'–सोचकर; आमि-मैंने; उठाइलँ-उठाया; यतने-सावधानी से; मृतक-शव को; देखिते-देखकर; मोर-मेरा; भय-भय, हैल-हो गया; मने-मन में।

अनुवाद

"मैंने यह सोचकर कि कोई बड़ी मछली है उसे बड़ी सावधानी से उठाया, किन्तु ज्योंहीं मैंने देखा कि यह एक शव है, तो मेरे मन में अति भय व्याप्त हो गया।

जाल खसाइते तार अङ्ग-स्पर्श ह-इल ।

स्पर्श-मात्रे सेइ भूत हृदये पशिल ॥49॥

जाल-जाल; खसाइते--छुड़ाने के लिए; तार-उसके; अङ्ग-स्पर्श-शरीर का स्पर्श; ह-इल-हो गया; स्पर्श-मात्रे-ज्योंही मैंने स्पर्श किया; सेइ-वह; भूत-भूत; हृदये-मेरे हृदय में; पशिल-प्रविष्ट हो गया।

अनुवाद

"जब मैं जाल छुड़ाने का प्रयास कर रहा था, तब मैंने उस शरीर का स्पर्श किया और ज्योंही मैंने उसे स्पर्श किया, एक भूत मेरे हृदय में प्रविष्ट हो गया।

भये कम्प हैल, मोर नेत्रे वहे जल ।

गद्गद वाणी, रोम उठिल सकल ॥50॥

भये-भय से; कम्प-काँपता हुआ; हैल-था; मोर-मेरा; नेत्रे-आँखों में; वहे-प्रवाह; जल-अश्रु; गद्गद-अवरुद्ध; वाणी–वाणी; रोम-रोम; उठिल-खड़े हो गये; सकल-सारे।

अनुवाद

"मैं भय से काँप उठा और मेरी आँखों से आंसू बहने लगे, मेरी वाणी अवरुद्ध होने लगी और मेरे शरीर के सारे रोम खड़े हो गये।

किबा ब्रह्म-दैत्य, किबा भूत, कहने ना याय ।

दर्शन-मात्रे मनुष्येर पैशे सेइ काय ॥51॥

किबा-या; ब्रह्म-दैत्य-ब्राह्मण का भूत; किबा-या; भूत-सामान्य भूत; कहने ना याय-मैं नहीं कह सकता; दर्शन-मात्रे-ज्योंही कोई देखता है; मनुष्येर-मनुष्य का; पैशे-प्रवेश कर जाता है; सेइ काय-शरीर में।

अनुवाद

"मैं नहीं जानता कि वह शव किसी मृत ब्राह्मण का भूत था या किसी सामान्य व्यक्ति का, किन्तु ज्योंही कोई इसे देखता है, तो यह उसके शरीर में प्रवेश कर जाता है।

शरीर दीघल तार–हात पाँच-सात ।

एकेक-हस्त-पद तार, तिन तिन हात ॥52॥

शरीर-शरीर; दीघल-लम्बा; तार-उसका; हात–हाथ जितना; पाँच-सात-पाँच से सात; एकेक–प्रत्येक; हस्त-पद-हाथ तथा पाँव; तार-उसका; तिन–तीन; तिन-तीन; हात–हाथ।

अनुवाद

"इस भूत का शरीर बहुत लम्बा, पाँच-सात हाथ तक है। उसकी भुजाएँ तथा टाँगें तीन-तीन हाथ लम्बी हैं।

अस्थि-सन्धि छुटिले चर्म करे नड़-बड़े ।

ताहा देखि' प्राण कार नाहि रहे धड़े ॥53॥

अस्थि-सन्धि-हड़ियों के जोड़; छुटिले–अलग होकर; चर्म-चमड़ी; करे-हो गई है; नड़-बड़े-लटकती; ताहा-वह; देखि-देखकर; प्राण-प्राण; कार–जिसका; नाहि-नहीं; रहे-रहता; धड़े-शरीर में।

अनुवाद

“चमड़ी के नीचे के इसके सारे के सारे हड्डियों के जोड़ अलग-अलग हो गये हैं और पूरी तरह से ढीले हो चुके हैं। कोई इसे देख नहीं सकता, न उसे देखने पर कोई जीवित रह सकता है।

मड़ा-रूप धरि’ रहे उत्तान-नयन ।

कभु गों-गों करे, कभु रहे अचेतन ॥54॥

मड़ा-शव का; रूप-रूप; धरि–धारण किया है; रहे-रहता है; उत्तान-नयन-खुली आँखों के साथ; कभु-कभी-कभी; गों-गों-गों गों ध्वनि; करे-करता है; कभु-कभी-कभी; रहे-रहता है; अचेतन-अचेत ।

अनुवाद

“उस भूत ने शव का रूप धारण कर लिया है, किन्तु उसकी आँखे खुली हुई हैं। कभी वह गों गों का शब्द करता है और कभी अचेत पड़ा रहता है।

साक्षात् देखेछों,–मोरे पाइल सेइ भूत ।

मुइ मैले मोर कैछे जीवे स्त्री-पुत् ॥55॥

साक्षात्-प्रत्यक्ष; देखेछों-मैंने देखा है; मोरे-मेरे; पाइल-प्रविष्ट हुआ है; सेइ-वह; भूत-भूत; मुइ मैले–यदि मैं मर जाऊँ; मोर-मेरे; कैछे--कैसे; जीवे-जीयेंगे; स्त्री-पुत्-पत्नी तथा बच्चे।

अनुवाद

“मैंने उस भूत को प्रत्यक्ष देखा है और वह मेरे चारों ओर घूम रहा है। किन्तु यदि मैं मर जाऊँ, तो मेरी पत्नी तथा बच्चों की देखभाल कौन करेगा?

सेइ त' भूतेर कथा कहन ना याय ।

ओझा-ठाञि याइछों,—यदि से भूत छाड़ाय ॥56॥

सेइ-वह; त'-निश्चय ही; भूतेर-भूत की; कथा–बात; कहन-कहना; ना याय-सम्भव नहीं है; ओझा-ठाञि-ओझा को; याइछों-मैं जा रहा हूँ; यदि-यदि; से-वह; भूत-भूत; छाड़ाय-छुटकारा दिला सकता है।

अनुवाद

"उस भूत के बारे में कुछ कह पाना सचमुच बहुत कठिन है, किन्तु मैं कोई ओझा को ढूंढने जा रहा हूँ और मैं उससे पूछूगा कि क्या वह मुझे इससे छुटकारा दिला सकता है?

एका रात्रे बुलि' मत्स्य मारिये निर्जने ।

भूत-प्रेत आमार ना लागे 'नृसिंह'-स्मरणे ॥57॥

एका-अकेला; रात्रे-रात में; बुलि'-फिरता हूँ; मत्स्य-मछली; मारिये-मारता हूँ; निर्जने-एकान्त स्थान में; भूत-प्रेत-भूत-प्रेत; आमार-मुझे; ना लागे-छू नहीं सकते; नृसिंह-स्मरणे-भगवान् नृसिंह का स्मरण करने से ।

अनुवाद

"मैं रात में एकान्त स्थानों में मछली मारता फिरता हूँ; फिर भी भूत प्रेत मुझे नहीं छू पाते, क्योंकि मैं नृसिंह देव की स्तुति का स्मरण करता हूँ।

एइ भूत नृसिंह-नामे चापये द्विगुणे ।

ताहार आकार देखिते भय लागे मने ॥58॥

एइ भूत-यह भूत; नृसिंह-नामे-भगवान् नृसिंह के पवित्र नाम से; चापये-मुझ पर आ जाता है; द्वि-गुणे-दूगनी शक्ति के साथ; ताहार-उसका; आकार-रूप; देखिते-देखकर; भय-भय; लागे मने-मन में होता है।

अनुवाद

"किन्तु यह भूत मेरे द्वारा नृसिंह मन्त्र का उच्चारण करने पर दूनी शक्ति से मुझे पछाड़ देता है। इस भूत को देखते ही मेरे मन में अत्यधिक भय उठने लगता है।

ओथा 'ना याइह, आमि निषेधि तोमारे ।

ताहाँ गेले सेइ भूत लागिबे सबारे" ॥59॥

ओथा-वहाँ; ना याइह-न जायें; आमि-मैं; निषेधि-मना करता हूँ; तोमारे-आप; ताहाँ-वहाँ; गेले–यदि जायेंगे; सेइ भूत-वह भूत; लागिबे-पकड़ लेगा; सबारे-आप सबको।

अनुवाद

"आप वहाँ मत जायें। मैं आपको मना करता हूँ। यदि आप जायेंगे, तो वह भूत आप सबको पकड़ लेगा।"

एत शुनि' स्वरूप-गोसाञि सब तत्त्व जानि' ।

जालियारे किछु कय सुमधुर वाणी ॥ 60॥

एत शुनि'—यह सुनकर; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; सब-सब; तत्त्व-हकीकत; जानि'–समझकर; जालियारे–मछुआरे को; किछु—कुछ; कय–कहा; सु-मधुर मधुर; वाणी–शब्द।

अनुवाद

यह सुनकर स्वरूप दामोदर इस बात की पूरी हकीकत समझ गये। वे उस मछुआरे से मधुर वाणी में बोले।

‘आमि—बड़ ओझा जानि भूत छाड़ाइते'।

मन्त्र पड़ि’ श्री-हस्त दिला ताहार माथाते॥ 61॥

आमि-मैं; बड़-बड़ा; ओझा-ओझा; जानि–मैं जानता हूँ; भूत-भूत; छाड़ाइते-कैसे छुड़ाना है; मन्त्र पड़ि’-मन्त्र पढ़कर; श्री-हस्त-अपना हाथ; दिला-रखा; ताहार माथाते-उसके सिर पर।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "मैं एक प्रसिद्ध ओझा हूँ और मैं जानता हूँ कि तुम्हें इस भूत से कैसे छुड़ाना होगा।” तब उन्होंने कुछ मन्त्र पढ़े और मछुआरे के सिर पर अपना हाथ रखा।

तिन चापड़ मारि’ कहे,–'भूत पलाइल।

भय ना पाइह'–बलि' सुस्थिर करिल॥ 62॥

तिन चापड़ मारि’-तीन थप्पड़ मारकर; कहे--कहा; भूत-भूत; पलाइल-भाग गया है; भय ना पाइह-डरो मत; बलि'–कहकर; सु-स्थिर करिल-सान्त्वना दी।

अनुवाद

उन्होंने उस मछुआरे को तीन थप्पड़ लगाये और कहा, “अब भूत भाग गया है। डरो मत।” यह कहकर उन्होंने मछुआरे को सान्त्वना दी।

एके प्रेम, आरे भय,—द्विगुण अस्थिर।

भय-अंश गेल,—से हैल किछु धीर॥ 63॥

एके-एक ओर; प्रेम-प्रेमावेश; आरे-दूसरी ओर; भय-भय; द्वि-गुण-दुगुना; अस्थिर-चंचल; भय-अंश-भय का अंश; गेल-चला गया; से-वह; हैल–हो गया; किछु—कुछ; धीर-शान्त।

अनुवाद

मछुआरा उन्मत प्रेम से प्रभावित था, किन्तु भयभीत भी था। इस तरह वह दुगुना चंचल हो गया था। किन्तु अब उसका भय शमित हो चुका था और वह कुछ सामान्य हो गया था।

स्वरूप कहे,—"याँरे तुमि कर 'भूत'-ज्ञान।

भूत नहे—तेंहो कृष्ण-चैतन्य भगवान्॥ 64॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा; याँरे-जिस व्यक्ति को; तुमि-तुम; कर भूत-ज्ञान-भूत मान रहे हो; भूत नहे-भूत नहीं हैं; तेंहो-वे; कृष्ण-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने मछुआरे से कहा, "हे महाशय, जिसे तुम भूत मान रहे हो वह वास्तव में भूत नहीं, अपितु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु हैं।

प्रेमावेशे पड़िला तेंहो समुद्रेर जले।

ताँरे तुमि उठाइला आपनार जाले॥65॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश के कारण; पड़िला-गिर गये; तेंहो-वे; समुद्रेर जले-समुद्र के जल में; ताँरे–उनको; तुमि-तुमने; उठाइला-बाहर निकाला; आपनार जाले–तुम्हारे जाल में।

अनुवाद

प्रेमावेश के कारण महाप्रभु समुद्र में गिर पड़े और तुमने उन्हें अपने जाल में पकड़कर उनकी रक्षा की है।

ताँर स्पर्शे ह-इल तोमार कृष्ण-प्रेमोदय ।

भूत-प्रेत-ज्ञाने तोमार हैल महा-भय ॥66॥

ताँर स्पर्शे-उनके स्पर्श से; ह-इल-था; तोमार-तुम्हारा; कृष्ण-प्रेम-उदय-कृष्ण-प्रेम का उदय; भूत-प्रेत-ज्ञाने-भूत मानकर; तोमार--तुम्हारा; हैल–हुआ; महा-भय-बहुत भय।

अनुवाद

“उनके स्पर्श मात्र से तुम्हारा सुप्त कृष्ण-प्रेम जाग उठा है, किन्तु तुमने उन्हें भूत मान लिया था, इसीलिए तुम उनसे इतना अधिक डरे हुए थे।

'एबे भय गेल, तोमार मन हैल स्थिरे ।

काहाँ ताँरे उठाञाछ, देखाह आमारे" ॥ 67॥

एबे-अब; भय-भय; गेल-चला गया है; तोमार-तुम्हारा; मन-मन; हैल-हुआ है; स्थिरे-शान्त; काहाँ–कहाँ; ताँरे–उनको; उठाञाछ—तुमने उठाया; देखाह-जगह दिखाओ; आमारे-मुझे।

अनुवाद

“अब चूंकि तुम्हारा भय जा चुका है और तुम्हारा मन शान्त है, अतएव मुझे दिखलाओ कि वे कहाँ हैं?”

जालिया कहे,–“प्रभुरे देख्याछों बार-बार ।

तेंहो नहेन, एइ अति-विकृत आकार" ॥68 ॥

जालिया कहे-मछुआरे ने कहा; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; देख्याछों-मैंने देखा है; बार-बार-कई बार; तेंहो–उनको; नहेन–नहीं हैं; एइ–यह; अति-विकृत-अत्यन्त विकृत; आकार-शरीर।

अनुवाद

मछुआरे ने उत्तर दिया, "मैंने महाप्रभु को कई बार देखा है, किन्तु वे यह नहीं हैं। यह शरीर तो अत्यन्त विकृत है।"

स्वरूप कहे,–"ताँर हय प्रेमेर विकार ।

अस्थि-सन्धि छाड़े, हय अति दीर्घाकार" ॥69॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहा; ताँर–उनका; हय-है; प्रेमेर-भगवत्प्रेम; विकार-शरीर का विकार; अस्थि-सन्धि-हड़ियों के जोड़; छाडे-अलग हो जाते हैं; हय-होता है; अति-अत्यन्त; दीर्घ-आकार-लम्बा शरीर।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने कहा, "महाप्रभु का शरीर ईश्वर-प्रेम के कारण विकृत हो जाता है। कभी उनकी हड्डियों के जोड़ अलग हो जाते हैं और उनका शरीर अत्यन्त लम्बा हो जाता है।"

शुनि, सेइ जालिया आनन्दित ह-इल ।

सबा लञा गेल, महाप्रभुरे देखाइल ॥ 70 ॥

शुनि'–सुनकर; सेइ-वह; जालिया-मछुआरा; आनन्दित ह-इल-अत्यन्त प्रसन्न हुआ; सबा लञा-सबको लेकर; गेल-गया; महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; देखाइल-दिखाये।।

अनुवाद

यह सुनकर मछुआरा अत्यधिक प्रसन्न हुआ। उसने अपने साथ सारे भक्तों को ले जाकर उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु का स्थान दिखलाया।

भूमिते पड़ि' आछे प्रभु दीर्घ सब काय ।

जले श्वेत-तनु, वालु लागियाछे गाय ॥71॥

भूमिते-भूमि पर; पड़ि'-पड़े थे; आछे-थे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; दीर्घ-लम्बा; सब काय-सारा शरीर; जले-जल से; श्वेत-तनु-श्वेत शरीर; वालु-बालू; लागियाछे गाय-शरीर पर लगी थी।

अनुवाद

महाप्रभु भूमि पर लेटे थे। उनका शरीर लम्बा तथा जल से सफेद रंग का हो गया था। वे सिर से पाँव तक बालू से सने थे।

अति-दीर्घ शिथिल तनु-चर्म नट्काय ।

दूर पथ उठाञा घरे आनान ना याय ॥72॥

अति-दीर्घ–अत्यधिक लम्बा; शिथिल-शिथिल; तनु-शरीर; चर्म-चमड़ी; नकाय-लटक रही थी; दूर पथ-लम्बी दूरी; उठाञा-उठाकर; घरे–घर; आनान-ले जाना; ना याय—सम्भव नहीं था।

अनुवाद

महाप्रभु का शरीर लम्बा हो गया था और उनकी चमड़ी ढीली होकर लटक रही थी। उन्हें उठाकर लम्बी दूरी तक घर ले जाना असम्भव था।

आर्द्र कौपीन दूर करि' शुष्क पराञा ।

बहिर्वासे शोयाइला वालुका छाड़ाञा ॥73॥

आर्द्र-गीला; कौपीन-कौपीन; दूर करि'-दूर करके; शुष्क सूखा; पराञा-पहनाया; बहिर्वासे-उत्तरीय वस्त्र; शोयाइला–लिटाया; वालुका-बालू; छाड़ाञा-हाटाई।

अनुवाद

भक्तों ने उनका गीला कौपीन हटाया और उसके स्थान पर सूखा कौपीन पहनाया। तब उन्होंने महाप्रभु को उत्तरीय वस्त्र पर लिटाकर उनके शरीर की बालू हटाई।

सबे मेलि' उच्च करि' करेन सङ्कीर्तने ।

उच्च करि' कृष्ण-नाम कहेन प्रभुर काणे ॥74॥

सबे मेलि'—सब ने मिलकर; उच्च करि'-उच्च स्वर से; करेन-किया; सङ्कीर्तने - पवित्र नाम का कीर्तन; उच्च करि'-जोर से; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पवित्र नाम; कहेन-कहा; प्रभुर काणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के कान में।

अनुवाद

उन सबों ने महाप्रभु के कान में कृष्ण का उच्च स्वर से पवित्र नाम लेकर संकीर्तन किया।

कत-क्षणे प्रभुर काणे शब्द परशिल ।

हुङ्कार करिया प्रभु तबहि उठिल ॥75 ॥

कत-क्षणे-कुछ समय के बाद; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; काणे-कान में; शब्द-ध्वनि; परशिल-प्रविष्ट हुई; हुङ्कार करिया–हुंकार करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तबहि-तुरन्त; उठिल-उठ खड़े हुए।

अनुवाद

कुछ समय के बाद महाप्रभु के कान में पवित्र नाम की ध्वनि प्रविष्ट हुई, तो वे उच्च हुंकार करते हुए तुरन्त उठ खड़े हुए।

उठितेइ अस्थि सब लागिल निज-स्थाने ।

‘अर्ध-बाह्ये' इति-उति करेन दरशने ॥ 76 ॥

उठितेइ-उनके उठते ही; अस्थि-हड्डियाँ; सब-सब; लागिल-आ गईं; निज-स्थाने-अपने स्थानों में; अर्ध-बाह्य-अर्धबाह्य चेतना में; इति-उति-इधर-उधर; करेन दरशने-देखने लगे।

अनुवाद

उनके उठते ही उनकी हड्डियाँ अपने सही स्थानों पर आ गईं। महाप्रभु ने आर्ध बाह्य चेतना से इधर-उधर देखा।

तिन-दशाय महाप्रभु रहेन सर्व-काल ।

‘अन्तर्दशा', 'बाह्य-दशा', ‘अर्ध-बाह्य' आर ॥77॥

तिन-दशाय-तीन दशाओं में; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; रहेन-रहते थे; सर्व-काल-सभी समय; अन्तः-दशा-आन्तरिक दशा; बाह्य-दशा-बाह्य दशा; अर्ध-बाह्य-अर्धबाह्य चेतना; आर-तथा।

अनुवाद

महाप्रभु सभी समय चेतना की तीन दशाओं-अन्तः, बहिः तथा अर्धबाह्य दशाओं में से किसी एक में रहते थे।

अन्तर्दशार किछु घोर, किछु बाह्य-ज्ञान ।

सेइ दशा कहे भक्त ‘अर्ध-बाह्य'-नाम ॥78 ॥

अन्तः-दशार--आन्तरिक दशा को; किछु—कुछ; घोर-गहरी अवस्था; किछु-कुछ; बाह्य-ज्ञान-बाह्य चेतना; सेइ दशा-वह दशा; कहे-कहते हैं; भक्त-भक्त; अर्ध-बाह्य-अर्धबाह्य चेतना; नाम-नाम से।

अनुवाद

जब महाप्रभु अन्तःचेतना में गम्भीरता से मग्न रहते हुए भी कुछ बाह्य चेतना प्रदर्शित करते थे, तो भक्त उनकी इस दशा को अर्धबाह्य कहते थे।

'अर्ध-बाह्य' कहेन प्रभु प्रलाप-वचने ।

आकाशे कहेन प्रभु, शुनेन भक्त-गणे ॥79॥

अर्ध-बाह्य-अर्धबाह्य चेतना में; कहेन–कहते हैं; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रलाप-वचने-उन्मत्तता भरे शब्द; आकाशे-आकाश से; कहेन–बातें करते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; शुनेन–सुनते; भक्त-गणे-भक्तगण।

अनुवाद

इस अर्धबाह्य चेतना में श्री चैतन्य महाप्रभु उन्मत्त की तरह बातें करते थे। भक्तगण उन्हें आकाश से बातें करते स्पष्ट रूप से देख सकते थे।

"कालिन्दी देखिया आमि गेलाङवृन्दावन ।

देखि,—जल-क्रीड़ा करेन व्रजेन्द्र-नन्दन ॥80॥

कालिन्दी-यमुना नदी; देखिया-देखकर; आमि-मैं; गेलाङ–गया; वृन्दावन-वृन्दावन; देखि–मैंने देखी; जल-क्रीड़ा-जलक्रीड़ा; करेन-करते हुए; व्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "यमुना नदी को देखकर मैं वृन्दावन चला गया। वहाँ मैंने नन्द महाराज के पुत्र को जल में क्रीड़ा करते देखा।

राधिकादि गोपी-गण-सङ्गे एकत्र मेलि' ।

यमुनार जले महा-रङ्गे करेन केलि ॥81॥

राधिका-आदि-श्रीमती राधारानी इत्यादि; गोपी-गण-सड़े-गोपियों के साथ; एकत्र मेलि'-साथ मिलकर; यमुनार-यमुना नदी के; जले-जल में; महा-रङ्गे–अत्यन्त क्रीड़ामय ढंग से; करेन केलि-लीलाएँ करते थे।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण श्रीमती राधारानी इत्यादि गोपियों के साथ यमुना के जल में थे। वे अत्यन्त क्रीड़ामय ढंग से लीलाएँ कर रहे थे।

तीरे रहि' देखि आमि सखी-गण-सङ्गे।

एक-सखी सखी-गणे देखाय सेइ रङ्गे ॥82॥

तीरे-तट पर; रहि'–खड़े होकर; देखि-देखी; आमि-मैंने; सखी-गण-सङ्गे-गोपियों के साथ; एक-सखी-एक गोपी; सखी-गणे-दूसरी गोपी को; देखाय-दिखला रही थी; सेइ रङ्गे-वह लीला।

अनुवाद

"मैंने यह लीला गोपियों के साथ यमुना के किनारे खड़े होकर देखी। एक गोपी दूसरी गोपियों को राधा तथा कृष्ण की जल लीला दिखला रही थी।

पट्ट-वस्त्र, अलङ्कारे, समर्पिया सखी-करे,

सूक्ष्म-शुक्ल-वस्त्र-परिधान।

कृष्ण लञा कान्ता-गण, कैला जलावगाहन,

जल-केलि रचिला सुठाम ॥83॥

पट्ट-वस्त्र-रेशमी वस्त्र; अलङ्कारे-गहने; समर्पिया–सौंप दिये; सखी-करे-अपनी गोपी सखी को; सूक्ष्म-महीन; शुक्ल-वस्त्र-श्वेत वस्त्र; परिधान-धारण करके; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; लञा-लेकर; कान्ता-

गण-प्रिय गोपियाँ; कैला–किया; जल-अवगाहन-जल में स्नान; जल-केलि-जलक्रीड़ाएँ; रचिलाकी; सु-ठाम–अत्युत्तम।

अनुवाद

"सारी गोपियों ने अपने रेशमी वस्त्र तथा आभूषण अपनी सखियों को सौंप दिये और महीन सफेद वस्त्र धारण कर लिया। भगवान् कृष्ण ने अपनी प्रिय गोपियों को साथ लेकर स्नान किया और यमुना के जल में अत्युत्तम लीलाएँ सम्पन्न कीं।

सखि हे, देख कृष्णेर जल-केलि-रङ्गे

कृष्ण मत्त करि-वर, चञ्चल कर-पुष्कर, ।

गोपी-गण करिणीर सङ्गे ॥84॥

सखि हे-हे सखियों; देख-जरा देखो; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; जल-केलि-जलक्रीड़ा की; रङ्गे–परिहासमय; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मत्त-उन्मत्त; करि-वर-हाथियों का सरदार; चञ्चल-चंचल; कर-पुष्कर-कमल समान हथेलियाँ; गोपी-गण-गोपियाँ; करिणीर-हथिनियों के; सङ्गे-संग में।

अनुवाद

"हे सखियों, जरा कृष्ण की जलक्रीड़ा को तो देखो! कृष्ण की चंचल हथेलियाँ कमल के फूल समान हैं। कृष्ण उन्मत्त हाथियों के सरदार लगते हैं और उनके साथ की गोपियाँ हथिनियों जैसी हैं।

आरम्भिला जल-केलि, अन्यो'न्ये जल फेलाफेलि,

हुड़ाहुड़ि, वर्षे जल-धार ।

सबे जय-पराजय, नाहि किछु निश्चय,

जल-युद्ध बाड़िल अपार ॥85॥

आरम्भिला-प्रारम्भ हुई; जल-केलि-जलक्रीड़ा; अन्योन्ये-एक-दूसरे पर; जल-जल; फेलाफेलि-उछालने लगे; हुड़ाहुड़ि-प्रबल कार्य; वर्षे–वर्षा; जल-धार-जल की बौछार; सबे-उन सब; जय-पराजय-हार तथा जीत; नाहि-नहीं; किछु–कोई; निश्चय-निश्चित; जल-युद्ध-जल-युद्ध; बाड़िल-बढ़ा; अपार-अपार।

अनुवाद

जल क्रीड़ा प्रारम्भ हुई और हर कोई आगे-पीछे जल उछालने लगा। जल की प्रबल उथल-पुथल में यह निश्चित नहीं हो पा रहा था कि कौन सा पक्ष जीत रहा है और कौन सा हार रहा है। यह जल युद्ध (जलकेलि) की क्रीड़ा अपार रीति से बढ़ती गई।

वर्षे स्थिर तड़िगण, सिञ्चे श्याम नव-धन,

घन वर्षे तड़ित् उपरे ।

सखी-गणेर नयन, तृषित चातक-गण,

सेइ अमृत सुखे पान करे ॥86॥ ।

वर्षे-उस वर्षा में; स्थिर-स्थिर; तडितु-गण-बिजली की रेखा; सिञ्चे-छिड़कना; श्याम-श्याम; नव-घन-नवीन बादल; घन-बादल; वर्षे–वर्षा; तड़ित्-उपरे–बिजली की रेखाओं पर; सखी-गणेर-गोपियों की; नयन-आँखें; तृषित-प्यासे; चातक-गण-चातक पक्षी; सेइ अमृत-वह अमृत; सुखे-सुख में; पान करे-पान कर रही थीं।

अनुवाद

“गोपियाँ बिजली की स्थिर रेखाओं जैसी थीं और कृष्ण श्याम मेघ के तुल्य थे। बिजली ने बादल के ऊपर जल छिड़कना शुरू किया और बादल ने बिजली पर। गोपियों की आँखें तृषित पपीहों की तरह बादल के अमृततुल्य जल को सुखपूर्वक पिये जा रही थीं।

प्रथमे युद्ध ‘जलाजलि', तबे युद्ध कराकरि’,

तार पाछे युद्ध 'मुखामुखि’ ।

तबे युद्ध 'हृदाहृदि', तबे हैल ‘रदारदि',

तबे हैल युद्ध 'नखानखि’ ॥87॥

प्रथमे-प्रारम्भ में; युद्ध-युद्ध; जलाजलि-एक-दूसरे पर पानी उछालना; तबे-तब; युद्ध-युद्ध; कराकरि-हाथ से हाथ; तार पाछे-इसके बाद; युद्ध-युद्ध; मुखामुखि–मुख से मुख; तबे-तब; युद्ध युद्ध; हृदाहृदि छाती से छाती; तबे-तब; हैल-था; रदारदि-दाँत से दाँत; तबे-तब; हैल–था; युद्ध–युद्ध; नखानखि-नाखून से नाखून।

अनुवाद

“जब युद्ध प्रारम्भ हो गया, तो उन्होंने एक दूसरे पर पानी उछाला। तब उन्होंने हाथ से हाथ, फिर मुख से मुख, छाती से छाती, दाँत से दाँत और अन्त में नाखून से नाखून की लड़ाई की।

सहस्र-करे जल सेके, सहस्र नेत्रे गोपी देखे,

सहस्र-पदे निकट गमने ।

सहस्र-मुख-चुम्बने, सहस्त्र-वपु-सङ्गमे,

गोपी-नर्म शुने सहस्र-काणे ॥88॥

सहस्र-हजारों; करे-हाथों से; जल-जल; सेके-उछाला; सहस्र-हजारों; नेत्रे-आँखों से; गोपी-गोपियाँ, देखे-देखा; सहस्र-हजारों; पदे-पाँवों से; निकट-निकट; गमने-जाने में; सहस्र-हजारों; मुख–मुखों; चुम्बने-चुम्बन किया; सहस्र-हजारों; वपु-शरीरों; सङ्गमे-आलिंगन किया; गोपी-गोपियाँ; नर्म-परिहास; शुने-सुना; सहस्र-हजारों; काणे-कानों में।

अनुवाद

"हजारों हाथों ने पानी उछाला और गोपियों ने कृष्ण को हजारों आँखों से देखा। वे हजारों पाँवों से उनके निकट आईं और उन्होंने हजारों मुखों से उनका चुम्बन किया। हजारों शरीरों ने उनका आलिंगन किया। गोपियों ने हजारों कानों से उनके परिहास-वचन सुने।

कृष्ण राधा लञा बले, गेला कण्ठ-दघ्न जले,

छाड़िला ताहाँ, याहाँ अगाध पानी ।

तेंहो कृष्ण-कण्ठ धरि', भासे जलेर उपरि,

गजोखाते यैछे कमलिनी ॥89॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; राधा-श्रीमती राधारानी; लञालेकर; बले-बलपूर्वक; गेला-गये; कण्ठ-दघ्न–गले तक; जले-जल में; छाड़िला–छोड़ दिया; ताहाँ-वहाँ; याहाँ–कहाँ; अगाध-अति गहरा; पानी-पानी; तेंहो-वे; कृष्ण-कण्ठ-कृष्ण का गला; धरि'-पकड़कर; भासे-तैरती रही; जलेर उपरि–जल पर; गज-उत्खाते-हाथी द्वारा तोड़ा गया; यैछे-जैसे; कमलिनी–कमल पुष्प।।

अनुवाद

"कृष्ण श्रीमती राधारानी को बलपूर्वक दूर बहाकर उनके गले तक पानी के भीतर ले गये। तब उन्होंने उन्हें वहाँ पर छोड़ दिया, जहाँ पानी बहुत गहरा था। किन्तु उन्होंने कृष्ण का

गला पकड़ लिया और पानी के ऊपर इस तरह तैरती रहीं, मानो हाथी की सैंड द्वारा तोड़ा गया कमल का फूल हो।

यत गोप–सुन्दरी, कृष्ण तत रूप धरि',

सबार वस्त्र करिला हरणे ।

यमुना-जल निर्मल, अङ्ग करे झलमल,

सुखे कृष्ण करे दरशने ॥90॥

यत-जितनी; गोप–सुन्दरी–सुन्दर गोपियाँ; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तत–उतने; रूप-रूप; धरि'–स्वीकार करके; सबार-सबके; वस्त्र-वस्त्रों को; करिला हरणे-ले लिया; यमुना-जल-यमुना का जल; निर्मल-निर्मल; अङ्ग–अंग; करे झलमल-झलमलाते; सुखे-प्रसन्नतापूर्वक; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करे दरशने-दर्शन किया।

अनुवाद

"जितनी गोपियाँ थीं, कृष्ण ने उतने ही रूपों में अपना विस्तार कर लिया और तब उनके पहने हुए सारे वस्त्रों को छीन लिया। यमुना नदी का जल निर्मल था, अतः कृष्ण ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक गोपियों के झलमलाते अंगों का दर्शन किया।

पद्मिनी-लता—सखी-चय, कैल कारो सहाय,

तरङ्ग-हस्ते पत्र समर्पिल ।

केह मुक्त-केश-पाश, आगे कैल अधोवास,

हस्ते केह कञ्जलि धरिल ॥91॥

पद्मिनी-लता-कमल पुष्प की नाल; सखी-चय-गोपियों के मित्र; कैल-दी; कारो-कुछ गोपियों को सहाय-सहायता; तरङ्ग-हस्ते-यमुना की लहरों से, जिसकी तुलना हाथों से की जाती है; पत्र-कमल के पत्ते; समर्पिल–दिये; केह-किसी ने; मुक्त-खोल दिया; केश-पाश बालों को; आगे-सामने के; कैल–किया; अधोवास–अधोवस्त्र; हस्ते हाथों से; केह-कुछ; कञ्चलि-चोलियाँ; धरिल-रखा।

अनुवाद

"कमलनाल गोपियों के मित्र थे, जिन्होंने कमल की पत्तियाँ देकर उनकी सहायता की। कमलों ने यमुना की लहरों रूपी अपने हाथों से विशाल गोल पत्तियों को पानी की सतह पर फैलाकर गोपियों के शरीरों को ढक दिया। कुछ गोपियों ने अपने शरीर के अधोभागों को ढकने के लिए अपने बालों को खोलकर अपने सामने का वस्त्र बना लिया और अपने हाथों रूपी चोलियों से अपने स्तनों को ढक लिया।

कृष्णेर कलह राधा-सने, गोपी-गण सेइ-क्षणे,

हेमाब्ज-वने गेला लुकाइते ।

आकण्ठ-वपु जले पैशे, मुख-मात्र जले भासे,

पद्म-मुखे ना पारि चिनिते ॥92॥

कृष्णेर-कृष्ण का; कलह-झगड़ा; राधा-सने-राधा के साथ; गोपी-गण-गोपियाँ; सेइ-क्षणे-उस समय; हेम-अब्ज-श्वेत कमल पुष्प; वने-वन में; गेला–गईं; लुकाइते-छुपर्ने; आकण्ठ–गले तक; वपु-शरीर; जले-पानी में; पैशे-प्रविष्ट हुईं; मुख-मात्र-केवल कमल पुष्प तथा मुख; जले-जल में; भासे-तैर रहे थे; पद्म-मुखे-कमल पुष्प तथा मुखों के बीच; ना पारि-नहीं हो रहा था; चिनिते–अन्तर।

अनुवाद

“तब कृष्ण ने श्रीमती राधारानी से झगड़ना शुरू किया और सारी गोपियाँ श्वेत कमल पुष्पों के समूह में छिप गईं। उन्होंने अपने शरीरों को गले तक पानी में डुबो दिया। केवल उनके मुख ही पानी की सतह पर तैर रहे थे और ये मुख कमलों से अलग पहचाने नहीं जा रहे थे।

एथा कृष्ण राधा-सने, कैला ये आछिल मने,

गोपी-गण अन्वेषिते गेला ।

तबे राधा सूक्ष्म-मति, जानिया सखीर स्थिति,

सखी-मध्ये आसिया मिलिला ॥93॥

एथा-यहाँ; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; राधा-सने–श्रीमती राधारानी के साथ; कैला-किया; ये-क्या; आछिल-थामने-मन में; गोपी-गण-सारी गोपियाँ; अन्वेषिते-खोजने के लिए; गेला–गईं; तबे-उस समय; राधा-श्रीमती राधारानी; सूक्ष्म-मति-सूक्ष्म बुद्धिवाली; जानिया-जानकर; सखीर-गोपियों की स्थिति-स्थिति; सखी-मध्ये-सखियों के बीच; आसिया-आकर; मिलिला-मिल गईं।

अनुवाद

“अन्य गोपियों की अनुपस्थिति में भगवान् कृष्ण ने श्रीमती राधारानी के साथ स्वतन्त्र होकर इच्छानुसार व्यवहार किया। जब गोपियाँ कृष्ण की खोज करने लगीं, तो श्रीमती राधारानी, अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि वाली होने तथा अपनी सखियों की स्थिति जानने के कारण तुरन्त ही जाकर उनके बीच मिल गईं।

यत हेमाब्ज जले भासे, तत नीलाब्ज तार पाशे,

आसि’ आसि’ करये मिलन ।

नीलाब्जे हेमाब्जे ठेके, युद्ध हय प्रत्येके,

कौतुके देखे तीरे सखी-गण ॥ 94॥

यत–जितने थे; हेम-अब्ज-श्वेत कमल; जले-जल में; भासे-तैर रहे थे; तत-उतने; नील-अब्ज-नीलकमल; तार पाशे-उनके पास; आसि' आसि'–आकर; करये मिलन-वे मिले; नील-अब्जे-नीलकमल; हेम-अब्जे-श्वेत कमलों के साथ; ठेके-भिड़े; मुद्ध-युद्ध; हय-हुआ; प्रति-एके-एक-दूसरे के साथ; कौतुके-बड़े कौतुक के साथ; देखे-देखा; तीरे-किनारे पर; सखी-गण-गोपियाँ।

अनुवाद

"जल में अनेक श्वेत कमल तैर रहे थे और उतने ही नीलकमल पास आ गये। जब वे पास आये, तो श्वेत तथा नीले कमलों की भिड़न्त हुई और वे एक दूसरे से युद्ध करने लगे। गोपियाँ यमुना के किनारे से बड़े ही विनोद से यह दृश्य देख रही थीं।

चक्रवाक-मण्डल, पृथक्पृथक् झुगल,

जल हैते करिल उद्गम ।

उठिल पद्म-मण्डल, पृथक्पृथक् युगल,

चक्रवाके कैल आच्छादन ॥ 95॥

चक्रवाक-मण्डल-चक्रवाक पक्षी के मण्डल; पृथक्-पृथक्-अलग-अलग; युगल-युगलों में; जल हैते-जल से; करिल–किया; उद्गम-प्राकट्य; उठिल-उठे; पद्म-मण्डल-कमल पुष्पों का मण्डल; पृथक्-पृथक्-अलग; मुगल-युगल; चक्रवाके-चक्रवाक पक्षी; कैल–किया; आच्छादन-ढक दिया।

अनुवाद

"जब गोपियों के उन्नत उरोज, जो कि चक्रवाक पक्षियों के गोलमटोल शरीरों के सदृश थे, जल में से पृथक्-पृथक् जोड़ों में बाहर आये, तो कृष्ण के नीलकमल सदृश हाथ उन्हें ढकने के लिए ऊपर उठ गये।

उठिल बहु रक्तोत्पल, पृथक्पृथक् युगल,

पद्म-गणेर कैल निवारण ।

‘पद्म' चाहे लुटि’ निते, ‘उत्पल’ चाहे राखिते',

'चक्रवाक' लागि’ दुँहार रण ॥ 96 ॥

उठिल-उठे; बहु-अनेक; रक्त-उत्पल-लालकमल के पुष्प; पृथक्-पृथक्-अलग-अलग; मुगल-युगल; पद्म-गणेर-नीलकमल का; कैल-किया; निवारण-निवारण; पद्म-नीलकमल; चाहे-चाहा; लुटि’–लूट; निते-लेना; उत्पल-लालकमल; चाहे राखिते'–रक्षा करना चाहा; चक्रवाक लागि’-चक्रवाक पक्षीओं के लिए; दुँहार-दोनों के बीच (लाल तथा नीले कमलों के बीच); रण-युद्ध।

अनुवाद

“गोपियों के हाथ, जो कि लालकमल के फूलों के समान थे, नीले फूलों को रोकने के लिए जोड़ी बनाकर जल के बाहर उठे। नीले कमलों ने श्वेत चक्रवाक पक्षियों को लूटना चाहा और लालकमलों ने उनकी रक्षा करने का प्रयास किया। इस तरह दोनों के बीच युद्ध हुआ।

पद्मोत्पल–अचेतन, चक्रवाक सचेतन,

चक्रवाके पद्म आस्वादय ।

इहाँ दुँहार उल्टा स्थिति, धर्म हैल विपरीति,

कृष्णेर राज्ये ऐछे न्याय हय ॥97॥

पद्म-उत्पल-नीले तथा लाल कमल पुष्प; अचेतन-अचेतन; चक्रवाक-चक्रवाक पक्षी; स-चेतन-चेतन; चक्रवाके-चक्रवाक पक्षी; पानीलकमल; आस्वादय-आस्वाद; इहाँ–यहाँ; दुँहार-उन दोनों की;

उल्टा स्थिति–विपरित स्थिति; धर्म-धर्म; हैल-हुआ; विपरीति-विपरित; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; राज्ये राज्य में; ऐछे-ऐसा; न्याय-सिद्धान्त; हय-होता है।

अनुवाद

"नीले तथा लाल कमल तो अचेतन वस्तु हैं, जबकि चक्रवाक पक्षी चेतन तथा सजीव हैं। तो भी प्रेमवश नीले कमल चक्रवाकों का भोग करने लगे। यह उनके स्वाभाविक व्यवहार के विपरीत है, किन्तु कृष्ण के राज्य में ऐसे विपर्यय तो उनकी लीलाओं के नियम हैं।

तात्पर्य

सामान्यतया चक्रवाक पक्षी कमल के फूलों का आस्वादन करते हैं, किन्तु कृष्ण की लीलाओं में अचेतन कमल चक्रवाक का आस्वादन करता है।

मित्रेर मित्र सह-वासी, चक्रवाके लुटे आसि',

कृष्णेर राज्ये ऐछे व्यवहार ।

अपरिचित शत्रुर मित्र, राखे उत्पल,—ए बड़ चित्र,

एइ बड़ 'विरोध-अलङ्कार' ॥98॥

मित्रेर-सूर्यदेव के; मित्र-मित्र; सह-वासी-चक्रवाक पक्षीयों के साथ रहते हैं; चक्रवाके-चक्रवाक पक्षी; लुटे-लूटते हैं; आसि-आकर; कृष्णेर राज्ये-कृष्ण के राज्य में; ऐछे-ऐसा; व्यवहार-आचरण; अपरिचित-अपरिचित; शत्रुर मित्र-शत्रु का मित्र; राखे-रक्षा करता है; उत्पल-लालकमल; ए-यह; बड़ चित्र-अत्यन्त अद्भुत; एइ–यह; बड़-महान्; विरोध-अलङ्कार–विरोध अलंकार।

अनुवाद

“नीलकमल सूर्यदेव के मित्र हैं और वे सभी एक साथ रहते हैं, किन्तु नीलकमल चक्रवाकों को लूटते रहते हैं। किन्तु लालकमल रात में खिलते हैं, अतएव वे चक्रवाकों के लिए अपरिचित अथवा शत्रु हैं। फिर भी कृष्ण की लीलाओं में गोपियों के कर रूप ये लालकमल उनके चक्रवाक रूपी स्तनों की रक्षा करते हैं। यह विरोध अलंकार है।”

तात्पर्य

चूँकि नीलकमल सूर्य के उदय होते ही खिलते हैं, इसलिए सूर्य उनका मित्र है। चक्रवाक पक्षी भी सूर्य के उदय होने पर दिखते हैं, अतएव चक्रवाकों तथा नीलकमलों का मेल होता है। यद्यपि नीलकमल सूर्य का मित्र है, किन्तु कृष्णलीलाओं में यह अपने मित्र चक्रवाक को लूटता है। सामान्यतया चक्रवाक निश्चल खड़े कमलों के बीच में विचरण करते हैं, किन्तु यहाँ पर कृष्ण के हाथ, जो नीलकमलों के तुल्य हैं, गोपियों के स्तनों पर आक्रमण करते हैं, जिनकी उपमा चक्रवाकों से दी गई है। यह विरोध अलंकार कहलाता है। रात्रि में लाल कमल खिलते हैं, किन्तु सूर्य के प्रकाश में ये बन्द हो जाते हैं। इसलिए लाल कमल सूर्य का शत्रु है और सूर्य के मित्र चक्रवाक को इसका पता नहीं है। किन्तु गोपियों के स्तनों की उपमा चक्रवाकों से तथा उनके हाथों की उपमा लालकमलों से दी गई है, जो उनकी रक्षा करते हैं। यह विरोध अलंकार का अद्भुत उदाहरण है।

अतिशयोक्ति, विरोधाभास, दुइ अलङ्कार प्रकाश,

करि’ कृष्ण प्रकट देखाइल ।

याहा करि’ आस्वादन, आनन्दित मोर मन,

नेत्र-कर्ण-युग्म जुड़ाइल ॥ 99॥

अतिशय-उक्ति-अतिशयोक्ति वाली भाषा; विरोध-आभास–विरोधाभास; दुइ अलङ्कार–दो अलंकार; प्रकाश-प्राकट्य; करि’-करके; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; प्रकट-प्रकट किया; देखाइल-दिखाया;

याहा-जो; करि' आस्वादन-आस्वादन करके; आनन्दित-आनन्दित; मोर मन–मेरा मन; नेत्र-कर्ण-आँख तथा कान के; युग्म-युगल; जुड़ाइल–सन्तुष्ट हुए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "कृष्ण ने अपनी लीलाओं में अतिशयोक्ति तथा विरोधाभास अलंकारों का प्रदर्शन किया। इनका आस्वादन करने से मेरे मन को हर्ष हुआ और इससे मेरे कान तथा नेत्र पूर्णतया तुष्ट हो गये।

ऐछे विचित्र क्रीड़ा करि', तीरे आइला श्री-हरि,

सङ्गे लञा सब कान्ता-गण ।

गन्ध-तैल-मर्दन, आमलकी-उद्वर्तन,

सेवा करे तीरे सखी-गण ॥100॥

ऐछे-ऐसी; विचित्र-अद्भुत; क्रीड़ा-लीलाएँ; करि'–करके; तीरे-किनारे पर; आइला–आये; श्री-हरि-भगवान् श्रीकृष्ण; सङ्गे–उनके साथ; लञा–लेकर; सब कान्ता-गण-सारी प्रिय गोपियाँ; गन्ध–सुगन्धित; तैल-तेल; मर्दन–मलकर; आमलकी-आमलकी फल का; उद्वर्तन-लेप लगाकर; सेवा करे-सेवा की; तीरे-यमुना के किनारे पर; सखी-गण-सारी गोपियाँ।

अनुवाद

"ऐसी अद्भुत लीलाएँ करने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सभी प्रिय गोपिकाओं को साथ लेकर यमुना नदी के किनारे पर आ गये। तब नदी के किनारे खड़ी गोपियों ने कृष्ण तथा अन्य गोपियों के शरीरों पर सुगन्धित तेल मलकर तथा आमलकी फल का लेप लगाकर सेवा की।

पुनरपि कैल स्नान, शुष्क-वस्त्र परिधान,

रत्न-मन्दिरे कैला आगमन।

वृन्दा-कृत सम्भार, गन्ध-पुष्प-अलङ्कार,

वन्य-वेश करिल रचन॥ 101॥

पुनरपि-पुनः; कैल-किया; स्नान-स्नान; शुष्क-वस्त्र-सूखे वस्त्र परिधान-पहनकर; रत्न-मन्दिरे-रत्न-मन्दिर में; कैला–किया; आगमन-आगमन; वृन्दा-कृत-वृन्दा गोपी ने व्यवस्था की; सम्भार–सभी प्रकार की वस्तुएँ, गन्ध-पुष्प-अलङ्कार–सुगन्धित पुष्प तथा आभूषण; वन्य-वेश-वन्य वेश; करिल-की; रचन-रचना।

अनुवाद

"तत्पश्चात् सबों ने पुनः स्नान किया और फिर सूखे वस्त्र पहनने के बाद वे छोटे से रत्न-मन्दिर में गये, जहाँ वृन्दा नामक गोपी ने उन्हें सुगन्धित फूलों, हरी पत्तियों तथा अन्य सभी प्रकार के आभूषणों से सजाकर उनकी वन्य वेशभूषा बना दी।

वृन्दावने तरु-लता, अद्भुत ताहार कथा,

बार-मास धरे फुल-फल।

वृन्दावने देवी-गण, कुञ्ज-दासी यत जन,

फल पाड़ि' आनिया सकल॥ 102॥

वृन्दावने-वृन्दावन में; तरु-लता-वृक्ष तथा लताएँ; अद्भुत-अद्भुत; ताहार कथा-उनकी कथा; बार-मास-बारह महीने; धरे-उत्पन्न करते हैं; फुल-फल-फूल तथा फल; वृन्दावने-वृन्दावन में; देवी-गण-सारी गोपियाँ; कुञ्ज-दासी-कुंजों में दासियाँ; यत जन-जितनी दासियाँ; फल पाड़ि-फल तोड़कर; आनिया लाईं; सकल-सभी प्रकार के।

अनुवाद

वृन्दावन में वृक्ष तथा लताएँ अद्भुत हैं, क्योंकि वे बारहों महीने सभी प्रकार के फल तथा फूल उत्पन्न करते हैं। वृन्दावन की कुंजों में गोपियाँ तथा दासियाँ इन फलों तथा फूलों को तोड़कर राधा तथा कृष्ण के पास ले आईं।

उत्तम संस्कार करि', बड़ बड़ थाली भरि',

रत्न-मन्दिरे पिण्डार उपरे।

भक्षणेर क्रम करि', धरियाछे सारि सारि,

आगे आसन वसिबार तरे॥ 103॥

उत्तम–उत्तम; संस्कार-सफाई; करि'—करके; बड़ बड़-बड़ी; थाली–थालियाँ; भरि'-भरकर; रत्न-मन्दिरे–रत्न मन्दिर में; पिण्डार उपरे–चबूतरे पर; भक्षणेर क्रम करि'-खाने की व्यवस्था की; धरियाछे-रखा; सारि सारि-एक के बाद एक; आगे-सामने; आसन-आसन; वसिबार तरे-बैठने के लिए।

अनुवाद

"गोपियों ने सारे फलों के छिलके उतार दिये और उन्हें रत्नमन्दिर के चबूतरे पर बड़ी-बड़ी थालियों में लाकर रख दिये। उन्होंने खाने के लिए फलों को पंक्तियों में सजा दिया और इसके सामने बैठने के लिए आसन बना दिया।

एक नारिकेल नाना-जाति, एक आम्र नाना भाति,

कला, कोलि—विविध-प्रकार।

पनस, खर्जुर, कमला, नारङ्ग, जाम, सन्तरा,

द्राक्षा, बादाम, मेओया यत आर॥ 104॥

एकएक वस्तु; नारिकेल–नारियल; नाना-जाति–अनेक प्रकार के; एक–एक; आम्र-आम; नाना भाति–विविध प्रकार के; कला-केला; कोलि–बेर; विविध-प्रकार–विविध प्रकार के; पनस-कटहल; खर्जुर-खजूर; कमला–कमला; नारङ्ग-नारंगी; जाम-जाम; सन्तरा–संतरा; द्राक्षा-अंगूर; बादाम-बादाम; मेओया-मेवे; यत-जितने प्रकार के; आर—तथा।

अनुवाद

"फलों में नाना प्रकार के नारियल तथा आम, केले, बेर, कटहल, खजूर, कमला, नारंगी, जाम, संतरे, अंगूर, बादाम तथा सभी प्रकार के मेवे थे।

खरमुजा, क्षीरिका, ताल, केशुर, पानी-फल, मृणाल,

बिल्व, पीलु, दाड़िम्बादि यत ।

कोन देशे कार ख्याति, वृन्दावने सब-प्राप्ति,

सहस्र-जाति, लेखा याय कत? ॥105॥

खरमुजा-खरबूजा; क्षीरिका-क्षीरिका; ताल-ताड़-फल; केशुर–केशूर-फल; पानी-फल-पानीफल; मृणाल-कमल के फल; बिल्व-बेल; पीलु-पीलु; दाडिम्ब- आदि-अनार तथा अन्य फल; यत–जितने प्रकार के; कोन देशे कोई देश में; कार-जिसकी; ख्याति–ख्याति; वृन्दावने-वृन्दावन में; सब-प्राप्ति-सभी प्राप्य; सहस्र-जाति-हजारों जातियाँ; लेखा याय-लिखना सम्भव; कत-कितना॥

अनुवाद

"वहाँ खरबूजा, क्षीरिका, ताड़ के फल, केशुर, पानीफल, कमल के फल, बेल, पीलु, अनार तथा अन्य कई फल थे। इनमें से कुछ भिन्न-भिन्न स्थानों में विविध नामों से जाने जाते हैं, किन्तु वे सभी वृन्दावन में इतने हजार प्रकारों में सदैव उपलब्ध रहते हैं कि कोई उनका वर्णन नहीं कर सकता।

गङ्गाजल, अमृतकेलि, पीयूषग्रन्थि, कर्पूरकेलि,

सरपूरी, अमृति, पद्मचिनि।

खण्ड-क्षीरसार-वृक्ष, घरे करि' नाना भक्ष्य,

राधा याहा कृष्ण लागि' आनि ॥ 106॥

गङ्गा-जल-गंगाजल मिठाई; अमृत-केलि–अमृतकेलि (दूध की मिठाई); पीयूष-ग्रन्थि-पीयूषग्रंथि; कर्पूर-केलि-कपूरकेलि; सर-पूरी-सरपूरी; अमृति-अमृति (चावल के आटे की मिठाई); पद्म-चिनि-पद्मचिनि (कमल पुष्प से बनी मिठाई); खण्ड-क्षीरि-सार-वृक्ष-खण्डक्षीरसार (वृक्ष के आकार में मिश्री से बनी मिठाई); घरे–घर पर; करि'-बनाकर; नाना भक्ष्य-नाना प्रकार की खाने की वस्तुएँ; राधा-श्रीमती राधारानी; याहा-जो; कृष्ण लागि'-कृष्ण के लिए; आनि-लाई।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी ने घर पर दूध तथा मिश्री से अनेक प्रकार की मिठाईंयाँ बनाई थीं, यथा गंगाजल, अमृतकेलि, पीयूषग्रंथि, कपूरकेलि, सरपूरी, अमृति, पद्मचिनि तथा खण्डक्षीरसार वृक्ष। तब वे इन सबों को कृष्ण के लिए ले आई थीं।

भक्ष्येर परिपाटी देखि', कृष्ण हैला महा-सुखी,

वसि' कैल वन्य भोजन।

सङ्गे लञा सखी-गण, राधा कैला भोजन,

दुँहे कैला मन्दिरे शयन ॥107॥

भक्ष्येर–भोजन की; परिपाटी–व्यवस्था; देखि'–देखकर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; हैला-हुए; महा-सुखी-अत्यन्त प्रसन्न; वसि'–बैठ गये; कैल–किया; वन्य भोजन-वन्य भोजन; सङ्गे-के साथ; लञा–

लेकर; सखी-गण-सारी गोपियाँ; राधा-श्रीमती राधारानी; कैला भोजन–शेष बचा ग्रहण किया; दुँहे उन दोनों ने; कैला–किया; मन्दिरे-रत्न-मन्दिर में; शयन-लेट गये।

अनुवाद

"जब कृष्ण ने भोजन की उत्तम व्यवस्था देखी, तो वे प्रसन्नतापूर्वक बैठ गये और उन्होंने वन्य भोजन किया। तब श्रीमती राधारानी तथा उनकी गोपी सखियों ने शेष बचे हुए का भोजन किया और उसके बाद कृष्ण तथा राधा उस रत्नमन्दिर में एक ही साथ लेट गये।

केह करे वीजन, केह पाद-सम्वाहन,

केह कराय ताम्बूल भक्षण ।

राधा-कृष्ण निद्रा गेला, सखी-गण शयन कैला,

देखि' आमार सुखी हैल मन ॥ 108।।

केह-कोई; करे-करती थी; वीजन-पंखा झल रही थी; केह-कोई; पाद-सम्वाहन-पाँव दबा रही थी; केह-कोई; कराय-उन्हें कराया; ताम्बूल भक्षण-पान खिला रही थी; राधा-कृष्ण-राधा और कृष्ण; निद्रा गेला–सो गये; सखी-गण-सारी गोपियाँ; शयन कैला-सो गईं; देखि'–देखकर; आमार-मेरा; सुखी–प्रसन्न; हैल-हुआ; मन-मन।

अनुवाद

"कुछ गोपियाँ राधा तथा कृष्ण पर पंखा झल रही थीं, कुछ उनके पाँव दबा रही थीं और कुछ उन्हें पान खिला रही थीं। जब राधा तथा कृष्ण सो गये, तो सारी गोपियाँ भी लेट गईं। जब मैंने यह देखा, तो मेरा मन अत्यन्त आनन्दित हुआ।

हेन-काले मोरे धरि, महा-कोलाहल करि',

तुमि-सब इहाँ लञा आइला।

काँहा यमुना, वृन्दावन, काँहा कृष्ण, गोपी-गण,

सेइ सुख भङ्ग कराइला!" ॥109॥

हेन-काले—उस समय; मोरे धरि'–मुझे उठाकर; महा-कोलाहल करि'—बड़ा कोलाहल करके; तुमि-सब-तुम सब ने; इहाँ–यहाँ; लञा आइला–लाये; काँहा-कहाँ; यमुना-यमुना नदी; वृन्दावन-वृन्दावन; काँहा–कहाँ; कृष्ण-कृष्ण; गोपी-गण-गोपियाँ; सेइ सुख-वह सुख; भङ्ग कराइला-तुमने भंग कर दिया।

अनुवाद

"एकाएक तुम लोगों ने घोर शब्द उत्पन्न किया और मुझे उठाकर फिर से यहाँ ले आये। अब यमुना नदी कहाँ है? कहाँ है वृन्दावन? कहाँ हैं कृष्ण तथा गोपियाँ? तुम लोगों ने तो मेरे सुखद स्वप्न को भंग कर दिया!"

एतेक कहिते प्रभुर केवल 'बाह्य' हैल।

स्वरूप-गोसाञिरे देखि' ताँहारे पुछिल ॥ 110॥

एतेक-यह; कहिते-कहते हुए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; केवल–केवल; बाह्य-बाह्य चेतना; हैल-हुई; स्वरूप-गोसाञिरे-स्वरूप गोस्वामी; देखि'-देखकर; ताँहारे पुछिल-उन्होंने उनसे पूछा।

अनुवाद

इस तरह कहते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी बाह्य चेतना में पूरी तरह फिर से लौट आये। स्वरूप दामोदर गोस्वामी को देखकर महाप्रभु ने पूछा।

'इहाँ केने तोमरा आमारे लञा आइला?'।

स्वरूप-गोसाञि तबे कहिले लागिला ॥ 111॥

इहाँ–यहाँ; केने- क्यों; तोमरा-तुम; आमारे-मुझे; लञा आइला-लाये हो; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; तबे-उस समय; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

उन्होंने पूछा, "तुम मुझे यहाँ क्यों ले आये?" तब स्वरूप दामोदर ने उन्हें उत्तर दिया।

"यमुनार भ्रमे तुमि समुद्रे पड़िला ।

समुद्रेर तरङ्गे आसि, एत दूर आइला! ॥ 112॥

यमुनार भ्रमे-यमुना समझकर; तुमि-आप; समुद्रे-समुद्र में; पड़िला-कूद पड़े; समुद्रेर तरङ्गे-समुद्र की लहरों से; आसिलाकर; एत-इतनी; दूर-दूरी पर; आइला-आप आ गये हो।

अनुवाद

"आप समुद्र को यमुना नदी समझकर उसमें कूद पड़े थे। आप समुद्र की लहरों से इतनी दूर बहाकर लाये गये हो।

एइ जालिया जाले करि' तोमा उठाइल ।

तोमार परशे एइ प्रेमे मत्त ह-इल ॥113॥

एइ जालिया-यह मछुआरा; जाले-जाल में; करि-पकड़कर; तोमा-आप; उठाइल-पानी से बचाया; तोमार परशे-आपके स्पर्श से; एइ-यह व्यक्ति; प्रेमे-प्रेमावेश में; मत्त ह-इल-पागल हो गया है।

अनुवाद

"इस मछुआरे ने आपको अपने जाल में पकड़ा और जल से आपको बचाया। अब वह आपका स्पर्श करने से कृष्ण के प्रेमावेश में पागल हो गया है।

सब रात्रि सबे बेड़ाइ तोमारे अन्वेषिया ।

जालियार मुखे शुनि' पाइनु आसिया ॥ 114॥

सब रात्रि-सारी रात; सबे-हम सब; बेड़ाइ-चलते रहे; तोमारे-आपको; अन्वेषिया-खोजते हुए; जालियार मुखे-इस मछुआरे के मुख से; शुनि'–सुनकर; पाइनु-हमें मिले; आसिया-आकर।

अनुवाद

"हम लोग आपको रात भर खोजते रहे। इस मछुआरे से सुनकर हम यहाँ आये, तो हमें आप मिल गये।

तुमि मूर्च्छा-छले वृन्दावने देख क्रीड़ा ।

तोमार मूर्च्छा देखि' सबे मने पाइ पीड़ा ॥115॥

तुमि-आप; मूर्च्छा-छले-अचेत जैसे; वृन्दावने-वृन्दावन को; देख-देखकर; क्रीड़ा-लीलाएँ; तोमार मूर्च्छा देखि'–आपकी मुर्छा देखकर; सबे-हम सब; मने-मन में; पाइ–हुए; पीड़ा-पीड़ित ।

अनुवाद

"जब आप बाह्य रूप से अचेत थे, तभी आपने वृन्दावन में लीलाएँ देखीं, किन्तु जब हम लोगों ने आपको अचेत देखा, तो हमारे मनों में महान् पीड़ा हुई।

कृष्ण-नाम ल-इते तोमार 'अर्ध-बाह्य' ह-इल ।

ताते ये प्रलाप कैला, ताहा ये शुनिल" ॥116 ॥

कृष्ण-नाम ल-इते-कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन; तोमार-आपकी; अर्ध-बाह्य-अर्ध चेतना; ह-इल-हुई; ताते-तत्पश्चात्; ये-जो भी; प्रलाप-प्रलाप; कैला-आपने किया; ताहा-वह; ये-जो; शुनिल-सुना है।

अनुवाद

"किन्तु जब हम लोगों ने कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण किया, तो आपको अर्ध चेतना आई और हम आपको उन्मत्त की तरह बोलते सुनते रहे।"

प्रभु कहे,–"स्वप्ने देखि' गेलाङवृन्दावने ।

देखि,—कृष्ण रास करेन गोपीगण-सने ॥117॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; स्वप्ने देखि'–स्वप्न देखते हुए; गेलाङ वृन्दावने-मैं वृन्दावन गया; देखि-मैंने देखा; कृष्ण-भगवान् कृष्ण को; रास करेन-रास नृत्य करते हुए; गोपी-गण-सने-गोपियों के साथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं स्वप्न में वृन्दावन चला गया, जहाँ मैंने भगवान् कृष्ण को सारी गोपियों के साथ रास नृत्य करते देखा।

जल-क्रीडा करि' कैला वन्य-भोजने ।

देखि' आमि प्रलाप कैलुँ–हेन लय मने" ॥ 118॥

जल-क्रीड़ा-जलक्रीड़ा; करि-करने के बाद; कैला-किया; वन्य-भोजने-वन भोजन; देखि'–देखकर; आमि-मैं; प्रलाप कैलुँ–प्रलाप किया; हेन-ऐसा; लय–लिया; मने-मेरे मन में।

अनुवाद

"जल में क्रीड़ा करने के बाद कृष्ण ने वन्य भोजन का आनन्द लिया। मैं समझ सकता हूँ कि इसे देखने के बाद मैंने अवश्य ही उन्मत्त की तरह बातें की होंगी।"

तबे स्वरूप-गोसाञि ताँरे स्नान कराञा ।

प्रभुरे लञा घर आइला आनन्दित हञा ॥119॥

तबे-तत्पश्चात्; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; ताँरे–उनकोः कराञा-नहलाया; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा-लेकर; घर आइला-अपने घर आये; आनन्दित हञा–अत्यन्त प्रसन्न होकर।

अनुवाद

तत्पश्चात् स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को समुद्र में नहलाया और तब वे उन्हें अत्यन्त आनन्दित भाव से घर ले आये।

एइ त कहिलुँ प्रभुर समुद्र-पतन ।

इहा येइ शुने, पाय चैतन्य-चरण ॥ 120॥

एइ त'–इस प्रकार; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; समुद्र-पतन-समुद्र में गिरने की; इहा-यह कथा; येइ शुने-जो सुनता है; पाय-पाता है; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल की शरण।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के समुद्र में गिरने की घटना का वर्णन किया है। जो भी इस लीला को सुनेगा, वह निश्चय ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त करेगा।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥121॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ- श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों में; यार-जिसकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत ग्रन्थ; कहे-वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा, सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर मैं कृष्णदास श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत के अन्तर्गत महाप्रभु की समुद्र से रक्षा शीर्षक अठारहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय उन्नीस

श्री चैतन्य महाप्रभु का अचिन्त्य व्यवहार

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत प्रवाह भाष्य में इस अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिवर्ष अपनी माता को मिलने के लिए वस्त्र तथा प्रसाद का उपहार देकर जगदानन्द पण्डित को नवद्वीप जाने के लिए कहते थे। ऐसी एक भेंट के बाद जगदानन्द पण्डित अद्वैत आचार्य द्वारा लिखित एक गीत लेकर पुरी लौटे। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसे पढ़ा, तो उनका भाव इतना प्रबल हो गया कि सारे भक्तों को लगा कि महाप्रभु का शीघ्र ही प्रयाण हो जायेगा। महाप्रभु की दशा इतनी गम्भीर थी कि वे रात को दीवाल से अपना मुख रगड़कर रक्तरंजित होने लगे। इसे रोकने के लिए स्वरूप दामोदर ने शंकर पंडित से कहा कि रात में वह महाप्रभु के साथ उसी कमरे में रुक जाय।

इस अध्याय में इसका भी वर्णन हुआ है कि किस तरह वैशाख (अप्रैल-मई) मास की पूर्णिमा के दिन श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ-वल्लभ उद्यान में प्रविष्ट हुए और उन्हें नाना प्रकार के भावों का अनुभव हुआ। भगवान् कृष्ण को एकाएक अशोक वृक्ष के नीचे देखकर प्रेमावेश के कारण महाप्रभु ने आध्यात्मिक उन्माद के विविध लक्षण प्रकट किये।

वन्दे तं कृष्ण-चैतन्यं मातृ-भक्त-शिरोमणिम् ।

प्रलप्य मुख-सङ्घर्षी मधूद्याने ललास यः ॥1॥

वन्दे-मैं सादर नमस्कार करता हूँ; तम्-उनको; कृष्ण-चैतन्यम्-श्री चैतन्य महाप्रभु; मातृ-भक्त-महान् मातृभक्त; शिरो-मणिम्-शिरोमणि; प्रलप्य-उन्मत्त की तरह बोलते; मुख-सङ्घर्षी-अपना मुख रगड़ते; मधु-उद्याने–जगन्नाथ-वल्लभ उद्यान में; ललास-आनन्द लिया; यः-जो।

अनुवाद

मातृभक्तों के शिरोमणि श्री चैतन्य महाप्रभु उन्मत्त की तरह बोलते तथा दीवालों पर अपना मुख रगड़ते थे। प्रेमावेश से अभिभूत होकर वे कभी-कभी अपनी लीला सम्पन्न करने के लिए जगन्नाथ-वल्लभ उद्यान में चले जाते थे। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय जय; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-भगवान् गौरांग के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! तथा चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

एइ-मते महाप्रभु कृष्ण-प्रेमावेशे ।

उन्माद-प्रलाप करे रात्रि-दिवसे ॥ 3 ॥

एइ-मते-इस तरह; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः कृष्ण-प्रेम-आवेशे–कृष्ण-प्रेम के आवेश में; उन्माद-उन्मत्त; प्रलाप-प्रलाप; करे-करते; रात्रि-दिवसे–दिन-रात।

अनुवाद

इस तरह कृष्ण-प्रेम के आवेश में श्री चैतन्य महाप्रभु उन्मत्त की तरह व्यवहार करते और रात-दिन पागल की तरह बोलते रहते।

प्रभुर अत्यन्त प्रिय पण्डित-जगदानन्द ।

याहार चरित्रे प्रभु पायेन आनन्द ॥4॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; अत्यन्त–अत्यन्त; प्रिय-प्रिय; पण्डित-जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; याहार चरित्रे-जिनके कार्यकलापों में प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु पायेन-पाते; आनन्द-बड़ा आनन्द।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय भक्त थे। महाप्रभु को उनके कार्यों से अत्यधिक आनन्द मिलता था।

प्रति-वत्सर प्रभु ताँरे पाठान नदीयाते ।

विच्छेद-दुःखिता जानि' जननी आश्वासिते ॥5॥

प्रति-वत्सर–प्रति वर्ष; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको; पाठान-भेजते; नदीयाते-नवद्वीप को; विच्छेद-दुःखिता जानि'–विरह के कारण उनका दुःख जानकर; जननी-उनकी माता; आश्वासिते-सान्त्वना देने के लिए।

अनुवाद

उनके वियोग में अपनी माता को अत्यन्त दुःखी जानकर महाप्रभु जगदानन्द पण्डित को प्रतिवर्ष नवद्वीप भेजा करते कि वे जाकर उन्हें सान्त्वना दें।

"नदीया चलह, मातारे कहिह नमस्कार।

आमार नामे पाद-पद्म धरिह ताँहार॥ 6॥

नदीया चलह-नदिया जाओ; मातारे-मेरी माता को; कहिह-कहना; नमस्कार-मेरे नमस्कार; आमार नामे-मेरी ओर से; पाद-पद्म-चरणकमल; धरिह-पकड़कर; ताँहार-उनके।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगदानन्द पण्डित से कहा, "आप नदिया जाओ और मेरी माता से मेरा नमस्कार कहना। मेरी ओर से उनके चरणकमलों का स्पर्श करना।

कहिह ताँहारे 'तुमि करह स्मरण।

नित्य आसि' आमि तोमार वन्दिये चरण॥7॥

कहिह ताँहारे-उनसे कहना; तुमि करह स्मरण-कृपया स्मरण में रखें; नित्य आसि'-हररोज आकर; आमि-मैं; तोमार-आपके; वन्दिये चरण-चरणकमलों में नमस्कार करता हूँ।

अनुवाद

"मेरी ओर से उनसे कहना, 'कृपया स्मरण रखें कि मैं प्रतिदिन यहाँ आकर आपके चरणकमलों की वन्दना करता हूँ।

ये-दिने तोमार इच्छा कराइते भोजन।

से-दिने आसि' अवश्य करिये भक्षण ॥8॥

ये-दिने-किसी दिन; तोमार-आपकी; इच्छा-इच्छा; कराइते भोजन-मुझे भोजन कराने की; से-दिने-उस दिन; आसि-आकर; अवश्य-निश्चय ही; करिये भक्षण में खाता हूँ।

अनुवाद

"यदि किसी दिन आप मुझे भोजन कराना चाहती हैं, मैं निश्चय ही आकर आप जो कुछ देती हैं, उसे स्वीकार करता हूँ।

तोमार सेवा छाड़ि' आमि करिलुँ सन्यास।

'बाउल' हञा आमि कैलुँ धर्म-नाश ॥9॥

तोमार सेवा छाड़ि'–आपकी सेवा छोड़कर; आमि–मैंने; करिलुँ-स्वीकार किया है; सन्यास-संन्यास आश्रम; बाउल हञा-उन्मत्त होकर; आमि-मैं; कैलुँ–किया; धर्म-नाश-धर्म का नाश।

अनुवाद

"मैंने आपकी सेवा करना छोड़कर संन्यास व्रत धारण कर लिया है। इस तरह मैं उन्मत्त हो गया हूँ और मैंने धर्म के सिद्धान्तों को नष्ट कर दिया है।

एइ अपराध तुमि ना ल-इह आमार।

तोमार अधीन आमि–पुत्र से तोमार ॥10॥

एइ अपराध-यह अपराध; तुमि-आप; ना-नहीं; ल-इह-लें; आमार-मेरा; तोमार-आपका; अधीन–आश्रित; आमि-मैं; पुत्र-पुत्र; से-वह; तोमार-आपका।

अनुवाद

"हे माता, कृपया आप इसे अपराध के रूप में न लें, क्योंकि मैं आपका पुत्र हूँ और पूर्णतया आप पर आश्रित हूँ।

नीलाचले आछि आमि तोमार आज्ञाते ।

यावत् जीब, तावतामि नारिब छाड़िते" ॥11॥

नीलाचले–जगन्नाथ पुरी, नीलाचल; आछि आमि-मैं हूँ; तोमार आज्ञाते-आपकी आज्ञा के अनुसार; यावत् जीब-जब तक मैं जीवित हूँ; तावत्-तब तक; आमि-मैं; नारिब–नहीं; छाड़िते-छोड़ूँगा।

अनुवाद

"मैं आपके आदेशानुसार यहाँ नीलाचल, जगन्नाथपुरी में रह रहा हूँ। जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक मैं यह स्थान नहीं छोड़ूँगा।"

गोप-लीलाय पाइला येइ प्रसाद-वसने ।

मातारे पाठान ताहा पुरीर वचने ॥12॥

गोप-लीलाय-गोप बालक की लीला में; पाइला-पाया; येइ-जो भी; प्रसाद-प्रसाद; वसने-वस्त्र; मातारे-अपनी माता को; पाठान-भेजा; ताहा-वह; पुरीर वचने-परमानन्द पुरी की आज्ञा से।

अनुवाद

परमानन्द पुरी की आज्ञा का पालन करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता के पास वह प्रसाद-वस्त्र भेजा, जिसे भगवान जगन्नाथ ने अपनी गोपलीला के बाद छोड़ दिया था।

जगन्नाथेर उत्तम प्रसाद आनिया यतने ।

मातारे पृथक् पाठान्, आर भक्त-गणे ॥ 13 ॥

जगन्नाथेर-भगवान जगन्नाथ का; उत्तम–उत्तम; प्रसाद–प्रसाद; आनिया यतने-यत्नपूर्वक ले आये; मातारे-अपनी माता को; पृथक्-अलग से; पाठान-भेजा; आर भक्त-गणे–तथा अन्य भक्तों को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु यत्नपूर्वक जगन्नाथ जी का उत्तम कोटि का प्रसाद ले आये और उन्होंने इसे अलग-अलग थैलियों में अपनी माता तथा नदिया के भक्तों के लिए भेजा।

मातृ-भक्त-गणेर प्रभु हन शिरोमणि ।

सन्यास करिया सदा सेवेन जननी ॥14॥

मातृ-भक्त-गणेर-मातृभक्तों में प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हन-हैं; शिरोमणि-शिरोमणि; सन्यास करिया-संन्यास लेने के बाद भी; सदा-सदैव; सेवेन–सेवा की; जननी-उनकी माता की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त मातृ-भक्तों में सर्वश्रेष्ठ हैं। उन्होंने संन्यास व्रत लेने के बाद भी अपनी माता की सेवा की।

जगदानन्द नदीया गिया मातारे मिलिला ।

प्रभुर यत निवेदन, सकल कहिला ॥15॥

जगदानन्द-जगदानन्द; नदीया-नवद्वीप को; गिया-गये; मातारे–माता शची; मिलिला–मिले; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; यत निवेदन–सर्व नमस्कार; सकल-सब कुछ; कहिला-उन्होंने कहा।

अनुवाद

इस तरह जगदानन्द पण्डित नदिया लौट आये और जब वे शचीमाता से मिले, तो उन्होंने उनसे महाप्रभु का नमस्कार कहा।

आचार्यादि भक्त-गणे मिलिला प्रसाद दिया ।

माता-ठाञि आज्ञा ल-इला मासेक रहिया ॥16॥

आचार्य-आदि-अद्वैत आचार्य इत्यादि; भक्त-गणे-सारे भक्त; मिलिला–वे मिले; प्रसाद दिया-भगवान जगन्नाथ का प्रसाद दिया; माता-ठाञि-माता शची से; आज्ञा ल-इला-जाने की आज्ञा माँगी; मासेक रहिय-एक मास रहने के बाद।

अनुवाद

इसके बाद वे अद्वैत आचार्य इत्यादि अन्य सारे भक्तों से मिले और उन्हें जगन्नाथ जी का प्रसाद दिया। एक मास रहने के बाद उन्होंने शची माता से विदा होने की आज्ञा माँगी।

आचार्येर ठाञि गिया आज्ञा मागिला ।

आचार्य-गोसाञि प्रभुरे सन्देश कहिला ॥ 17॥

आचार्येर ठाञि-अद्वैत आचार्य के पास; गिया-जाकर; आज्ञा मागिला-जाने की अनुमति माँगी; आचार्य-गोसाञि-अद्वैत आचार्य; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; सन्देश कहिला–सन्देश भेजा।

अनुवाद

जब अद्वैत आचार्य के पास जाकर उन्होंने लौट जाने की अनुमति माँगी, तो अद्वैत प्रभु ने श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए एक सन्देश दिया।

तरजा-प्रहेली आचार्य कहेन ठारे-ठोरे ।

प्रभु मात्र बुझेन, केह बुझिते ना पारे ॥18॥

तरजा-प्रहेली-द्विअर्थी भाषा में एक गीत; आचार्य-अद्वैत आचार्य; कहेन–कहा; ठारे-ठोरे-कुछ संकेत करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मात्र-केवल; बुझेन–समझ सकते थे; केह बुझिते ना पारे-अन्य लोग नहीं समझ सकते थे।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने द्विअर्थी भाषा में एक गीत लिखा था, जिसका आशय श्री चैतन्य महाप्रभु तो समझ सकते थे, किन्तु अन्य लोग नहीं समझ सकते थे।

"प्रभुरे कहिह आमार कोटि नमस्कार ।

एइ निवेदन ताँर चरणे आमार ॥19॥

प्रभुरे कहिह-भगवान् चैतन्य को बता दो; आमार-मेरे; कोटि नमस्कार-करोड़ों नमस्कार; एइ निवेदन-इस निवेदन में; ताँर–उनके; चरणे-चरणकमलों में; आमार-मेरे।

अनुवाद

इस गीत में अद्वैत प्रभु ने सर्वप्रथम श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में करोड़ों बार नमस्कार किया था। तत्पश्चात् उन्होंने उनके चरणकमलों में यह निवेदन किया था।

बाउलके कहिह,—लोक ह-इल बाउल ।

बाउलके कहिह,—हाटे ना विकाय चाउल ॥20॥

बाउलके कहिह-जो बावले का अभिनय कर रहे हैं, उन श्री चैतन्य महाप्रभु को कहना; लोक-लोग; ह-इल–हो गये हैं; बाउल-प्रेम में बावले; बाउलके कहिह-श्री चैतन्य महाप्रभु से कहो; हाटे-बाजार में; ना-नहीं; विकाय–बिकता है; चाउल-चावल।

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु, जो कि बावले की तरह अभिनय कर रहे हैं, उनसे कृपया यह कहना कि यहाँ हर व्यक्ति उन्हीं की तरह बावला हो गया है। कृपया उनसे यह भी कहना कि बाजार में अब चावल की कोई मांग नहीं है।

बाउलके कहिह,—काये नाहिक आउल ।

बाउलके कहिह,—इहा कहियाछे बाउल" ॥21॥

बाउलके कहिह-बावरे श्री चैतन्य महाप्रभु से कहना; काये-व्यापार में; नाहिक-नहीं है; आउल-प्रेम में बावले हुए व्यक्तियों को; बाउलके कहिह-बावरे श्री चैतन्य महाप्रभु को यह भी कहना; इहा--यह; कहियाछे–कहा है; बाउल-अन्य बावरे श्री अद्वैत प्रभु ने।

अनुवाद

"और उन्हें कहना कि जो लोग भावावेश में बावले हैं, वे अब भौतिक जगत् में रुचि नहीं रखते। श्री चैतन्य महाप्रभु से यह भी कहना कि प्रेम में बावले हुए व्यक्ति (अद्वैत प्रभु) ने ये शब्द कहे हैं।”

एत शुनि’ जगदानन्द हासिते लागिला ।

नीलाचले आसि’ तबे प्रभुरे कहिला ॥22॥

एत शुनि'—यह सुनकर; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; हासिते लागिला-हँसने लगे; नीलाचले–जगन्नाथ पुरी को; आसि'-लौटकर; तबे--तब; प्रभुरे कहिला-उन्होंने यह सब श्री चैतन्य महाप्रभु को बताया।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य के वचन सुनकर जगदानन्द पण्डित हँसने लगे और जब वे जगन्नाथपुरी या नीलाचल लौटकर आये, तो उन्होंने चैतन्य महाप्रभु को सब सूचित कर दिया।

तरजा शुनि' महाप्रभु ईषत् हासिला ।

'ताँर येइ आज्ञा'—बलि' मौन धरिला ॥ 23 ॥

तरजा शुनि'–गीत सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ईषत् हासिला-मुस्कुराये; ताँर येइ आज्ञा-यह उनका आदेश है; बलि'–कहकर; मौन धरिला-मौन हो गये।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य से द्विअर्थी गीत सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु चुपके-चुपके हँसने लगे और उन्होंने कहा, "यह उनका आदेश है।" तब वे मौन हो गये।

जानियाओ स्वरूप गोसाञि प्रभुरे पुछिल ।

'एइ तरजार अर्थ बुझिते नारिल' ॥24॥

जानियाओ-यद्यपि जानते थे; स्वरूप गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; प्रभुरे पुछिल-श्री चैतन्य महाप्रभु से पूछा; एइ तरजार अर्थ-इस गीत का अर्थ; बुझिते-समझने के लिए; नारिल-मैं समर्थ नहीं हूँ।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने रहस्य जानते हुए भी महाप्रभु से पूछा, "इस गीत का क्या अर्थ है? मैं इसे समझ नहीं सका।"

प्रभु कहेन,–'आचार्य हय पूजक प्रबल ।

आगम-शास्त्रेर विधि-विधाने कुशल ॥ 25॥

प्रभु कहेन–श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; आचार्य हय पूजक प्रबल-अद्वैत आचार्य महान् आराधक हैं; आगम-शास्त्रेर–वैदिक साहित्य के; विधि-विधाने कुशल-विधि-विधानों में निपुण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "अद्वैत आचार्य भगवान् के महान् आराधक हैं और वे वैदिक साहित्य में निर्देशित विधि-विधानों में अत्यन्त पारंगत हैं।

उपासना लागि' देवेर करेन आवाहन ।

पूजा लागि' कत काल करेन निरोधन ॥ 26॥

उपासना लागि'-अर्चाविग्रह की पूजा करने के लिए; देवेर-भगवान् की; करेन आवाहन-आने के लिए आमन्त्रित करते हैं; पूजा लागि'-पूजा करने के लिए; कत काल-कुछ समय तक; करेन निरोधन-वे विग्रह को रखते हैं।

अनुवाद

"अद्वैत आचार्य भगवान् को आने तथा पूजित होने के लिए आमन्त्रित करते हैं। वे पूजा करने के लिए अर्चाविग्रह को कुछ समय तक रखते हैं।

पूजा-निर्वाहण हैले पाछे करेन विसर्जन ।

तरजार ना जानि अर्थ, किबा ताँर मन ॥27॥

पूजा-निर्वाहण-पूजा पूरी होने पर; हैले–जब होता है; पाछे-अन्त में; करेन विसर्जन-विग्रह को वापस भेज देते हैं; तरजार-गीत का; ना जानि–मैं नहीं जानता; अर्थ-अर्थ; किबा ताँर मन-उनके मन में क्या है।

अनुवाद

"पूजा पूरी हो जाने पर वे अर्चाविग्रह को अन्यत्र भेज देते हैं। मैं न तो इस गीत का अर्थ जानता हूँ, न ही यह जानता हूँ कि अद्वैत प्रभु के मन में क्या है।

महा-योगेश्वर आचार्य–तरजाते समर्थ ।

आमिह बुझिते नारि तरजार अर्थ' ॥28॥

महा-योगेश्वर–महान् योगी; आचार्य-अद्वैत आचार्य; तरजाते समर्थ-गीत लिखने में अति निपुण; आमिह–फिर भी मैं; बुझिते-समझने के लिए; नारि-समर्थ नहीं हूँ; तरजार-गीत का; अर्थ-अर्थ।।

अनुवाद

"अद्वैत आचार्य महान् योगी हैं। उन्हें कोई नहीं समझ सकता। वे गीत लिखने में इतने पटु हैं कि मैं भी नहीं समझ पाता।"

शुनिया विस्मित ह-इला सब भक्त-गण ।

स्वरूप-गोसाञि किछु ह-इला विमन ॥29॥

शुनिया–सुनकर; विस्मित–चकित; ह-इला–हो गये; सब-सब; भक्त-गण-भक्त; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; किछु-कुछ; ह-इला–हो गये; विमन-खिन्न।

अनुवाद

यह सुनकर सारे भक्त चकित हो गये, किन्तु स्वरूप दामोदर गोस्वामी तो विशेष रूप से कुछ-कुछ खिन्न हो गये।

सेइ दिन हैते प्रभुर आर दशा ह-इल ।

कृष्णेर विच्छेद-दशा द्विगुण बाड़िल ॥ 30॥

सेइ दिने हैते-उस दिन से; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; आर-अन्य; दशा-दशा; ह-इल-हुई; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण से; विच्छेद-दशा-विरह की दशा; द्वि-गुण-द्विगुणित; बाड़िल-वृद्धि हुई।

अनुवाद

उस दिन से श्री चैतन्य महाप्रभु की भावदशा विशेष रूप से बदल गई। कृष्ण से वियोग की उनकी भावना द्विगुणित हो उठी।

उन्माद-प्रलाप-चेष्टा करे रात्रि-दिने ।

राधा-भावावेशे विरह बाड़े अनुक्षणे ॥ 31॥

उन्माद-उन्माद; प्रलाप–प्रलाप; चेष्टा–कार्य; करे रात्रि-दिने-जो वे दिन-रात करते; राधा-भाव-आवेशे-श्रीमती राधारानी के भाव में; विरह-विरह; बाड़े-बढ़ा; अनुक्षणे-प्रतिक्षण।

अनुवाद

चूँकि श्रीमती राधारानी के भावावेश में महाप्रभु की विरह-भावना प्रतिक्षण बढ़ती गई, अतः दिन तथा रात दोनों ही समय उनके कार्य उग्र तथा अविवेकपूर्ण होने लगे।

आचम्बिते स्फुरे कृष्णेर मथुरा-गमन ।

उद्घुर्णा-दशा हैल उन्माद-लक्षण ॥ 32॥

आचम्बिते-अचानक; स्फुरे–उदय हुआ; कृष्णेर- भगवान कृष्ण का; मथुरा-गमन-मथुरा के लिए प्रस्थान; उद्घूर्णा-दशा-उद्घुर्णा नामक भाव दशा; हैल-हुई; उन्माद-लक्षण-उन्माद के लक्षण।

अनुवाद

एकाएक श्री चैतन्य महाप्रभु के भीतर भगवान् कृष्ण के मथुरा गमन का दृश्य उदय हो आया और वे उद्घूर्णा नामक उन्माद के लक्षण प्रदर्शित करने लगे।

रामानन्देर गला धरि' करेन प्रलापन ।

स्वरूपे पुछेन मानि' निज-सखी-गण ॥ 33॥

रामानन्देर-रामानन्द राय का; गला धरि'-गला पकड़कर; करेन प्रलापन-प्रलाप करने लगे; स्वरूपे पुछेन–स्वरूप दामोदर से पूछा; मानि'–मानकर; निज-सखी-गण-गोपी सखी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उन्मत्त की तरह रामानन्द राय का गला पकड़कर बोलने लगे और स्वरूप दामोदर को अपनी गोपी सखी मानकर उनसे प्रश्न पूछने लगे।

पूर्वे येन विशाखारे राधिका पुछिला ।

सेइ श्लोक पड़ि' प्रलाप करिते लागिला ॥ 34॥

पूर्वे-पहले; येन-जैसे; विशाखारेविशाखा को; राधिका–श्रीमती राधारानी; पुछिला–पूछा या; सेइ श्लोक-वह श्लोक; पड़ि-पढ़कर; प्रलाप-उन्मत्त की तरह बोलते हुए; करिते लागिला-करने लगे।

अनुवाद

जिस तरह श्रीमती राधारानी ने अपनी निजी सखी विशाखा से पूछा था, उसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु भी वही श्लोक पढ़कर उन्मत्त की तरह बोलने लगे।

क्व नन्द-कुल-चन्द्रमाः क्व शिखि-चन्द्रकालङ्कतिः

क्व मन्द्र-मुरली-रवः क्व नु सुरेन्द्र-नील-द्युतिः ।

क्व रास-रस-ताण्डवी क्व सखि जीव-रक्षौषधिर्

निधिर्मम सुहृत्तमः क्व बत हन्त हा धिग्विधिम् ॥ 35॥

क्व–कहाँ; नन्द-कुल-चन्द्रमाः–कृष्ण, जो नन्द महाराज के कुल रूपी सागर में चन्द्रमा की तरह उदित हुए हैं; क्व–कहाँ; शिखि-चन्द्रक-अलङ्कतिः-कृष्ण, जिनका सर मोरपंख से सुशोभित है; क्व–कहाँ; मन्द्र-मुरली-रवः-कृष्ण, जिनकी वंशी गहरी ध्वनि उत्पन्न करती है; क्व–कहाँ; नु–निश्चय ही; सुरेन्द्र-नील-द्युतिः-कृष्ण, जिनकी शारीरिक कान्ति इन्द्रनील मणि के समान है; क्व–कहाँ; रास-रस-ताण्डवी-कृष्ण, जो रास नृत्य में निपुण हैं; क्व-कहाँ; सखि-हे प्रिय सखी; जीव-रक्षा-औषधिः-कृष्ण, जो औषघ रूप हैं, जो प्राण बचा सकते हैं; निधिः-निधि; मम-मेरे; सुहृत्-तमः-सुहद मित्र; क्व–कहाँ; बत-मैं खिन्न हूँ; हन्त–हाय; हा–अरे; धिक् विधिम्-विधाता को धिक्कार है।

अनुवाद

“हे प्रिय सखी, कहाँ हैं वे कृष्ण, जो कि महाराज नन्द के कुलरूपी सागर से उदय होने वाले चन्द्रमा की तरह हैं? कहाँ हैं वे कृष्ण, जिनका सिर मोर पंख से सुशोभित है? कहाँ हैं वे? कहाँ हैं वे कृष्ण, जिनकी वंशी इतना गम्भीर स्वर उत्पन्न करती है? ओह! कहाँ हैं वे कृष्ण, जिनकी शारीरिक कान्ति इन्द्रनील मणि के समान है? कहाँ है वे कृष्ण, जो रास नृत्य में इतने निपुण हैं? ओह! कहाँ हैं वे, जो मेरे प्राण बचा सकते हैं? कृपा करके मुझे बतलाओ कि अपने जीवन के कोष तथा सर्वोत्कृष्ट मित्र कृष्ण को कहाँ पा सकती हूँ? उनसे विरह का अनुभव करती हुई मैं अपने भाग्य के निर्माता विधाता को धिक्कारती हूँ।

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत ललित माधव (3.25) में पाया जाता है।

व्रजेन्द्र-कुल दुग्ध-सिन्धु, कृष्ण ताहे पूर्ण इन्दु,

जन्मि' कैला जगत् उजोर ।

कान्त्यमृत ग्रेबा पिये, निरन्तर पिया जिये,

व्रज-जनेर नयन-चकोर ॥ 36॥

व्रजेन्द्र-कुल-व्रजभूमि में महाराज नन्द का कुल; दुग्ध-सिन्धु–दुग्ध के सागर के समान; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ताहे-उसमें; पूर्ण–पूर्ण; इन्दु-चन्द्रमा; जन्मि'–उदित; कैला–हुए हैं; जगत्-सारा जगत्; उजोर-प्रकाशित; कान्ति-अमृत-उनकी शारीरिक कान्ति का अमृत; ग्रेबा पिये-जो भी पाता है; निरन्तर–सदैव; पिया-पाते हुए; जिये-जीते हैं; व्रज-जनेर-वृन्दावन के निवासी; नयन-चकोर-चकोर पक्षी के समान आँखें।

अनुवाद

"महाराज नन्द का परिवार दुग्ध सागर की तरह है, जिसमें से भगवान् कृष्ण समग्र ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाले पूर्ण चन्द्रमा के समान उदित हुए हैं। व्रजवासियों के नेत्र उन चकोर पक्षियों के समान हैं, जो उनकी शारीरिक द्युति के अमृत का निरन्तर पान करते हैं और इस तरह शान्तिपूर्वक जीवन बिताते हैं।

सखि हे, कोथा कृष्ण, कराह दरशन

क्षणेके याहार मुख, ना देखिले फाटे बुक, ।

शीघ्र देखाह, ना रहे जीवन ॥ 37॥

सखि हे-हे प्रिय सखी; कोथा कृष्ण-भगवान् कृष्ण कहाँ हैं; कराह दरशन-कृपया मुझे उन्हें देखने दो; क्षणेके–क्षणभर में; याहार–जिनका; मुख–मुख; ना देखिले-यदि नहीं देखती; फाटे बुक-मेरा हृदय फटता है; शीघ्र-जल्दी; देखाह–दिखाओ; ना रहे जीवन-जीवित नहीं रह सकती।

अनुवाद

"हे प्रिय सखी, कहाँ हैं कृष्ण? कृपया मुझे उनका दर्शन करने दो। यदि क्षण भर भी मैं उनका मुख नहीं देखती, तो मेरा हृदय फटने लगता है। कृपया मुझे तुरन्त ही उन्हें दिखलाओ, अन्यथा मैं जीवित नहीं रह सकती।

एइ व्रजेर रमणी, कामार्क-तप्त-कुमुदिनी,

निज-करामृत दिया दान ।

प्रफुल्लित करे येइ, काहाँ मोर चन्द्र सेइ,

देखाह, सखि, राख मोर प्राण ॥ 38 ॥

एइ-ये; व्रजेर रमणी-वृन्दावन की स्त्रियाँ; काम-अर्क-तप्त-कुमुदिनी-कामवासना से तप्त कुमुदिनियों के समान; निज-अपने; कर-अमृत-हाथों के अमृत से; दिया-देकर; दान-दान; प्रफुल्लित-प्रफुल्लित; करे-करते हैं; येइ-जो; काहाँ–कहाँ ; मोर-मेरे; चन्द्र–चन्द्रमा; सेइ-वे; देखाह-कृपया दिखाओ; सखि-हे प्रिय सखी; राख-कृपया बचाओ; मोर प्राण-मेरा जीवन।

अनुवाद

"वृन्दावन की स्त्रियाँ कामवासनाओं के सूर्य से तप्त कुमुदिनियों के तुल्य हैं। किन्तु चन्द्रमा तुल्य कृष्ण उन्हें अपने हाथों का अमृत प्रदान करके प्रफुल्लित बनाते हैं। हे प्रिय सखी, अब मेरा वह चन्द्रमा कहाँ है? मुझे उसका दर्शन कराकर मेरा जीवन बचा लो!

काहाँ से चूड़ार ठाम, शिखि-पिञ्छेर उड़ान,

नव-मेघे येन इन्द्र-धनु।

पीताम्बर—तड़ियुति, मुक्ता-माला—बक-पाँति,

नवाम्बुद जिनि' श्याम-तनु ॥ 39॥

काहाँ–कहाँ; से-वह; चूड़ार ठाम-मुकुट का सौन्दर्य; शिखि-पिछेर उड़ान-जिसके ऊपर मोरपंख है; नव-मेघे–नवीन बादलों में; येन-जैसे; इन्द्रधनु-इन्द्रधनुष; पीत-अम्बर-पिताम्बर; तड़ित्-द्युति–बिजली की चमक के समान; मुक्ता-माला-मोतियों का हार; बक-पाँति-बगुलों की पंक्ति के समान; नव-अम्बुद-नवीन बादल; जिनि'-परास्त करनेवाला; श्याम-तनु-श्यामल देह।

अनुवाद

"हे प्रिय सखी, कहाँ है वह सुन्दर मुकुट, जिसके ऊपर मोरपंख नवीन बादलों में इन्द्रधनुष जैसा लगता है? वह पीताम्बर कहाँ है, जो बिजली के समान चमकता है? और कहाँ है वह मोतियों का गले का हार, जिसके मोती आकाश में उड़ रहे बगुलों की पंक्ति के समान लगते हैं? कृष्ण का श्यामल शरीर श्याम रंग के नये बादलों को पराजित करने वाला है।

एक-बार यार नयने लागे, सदा तार हृदये जागे,

कृष्ण-तनु–येन आम्र-आठा।

नारी-मने पैशे हाय, यत्न नाहि बाहिराय,

तनु नहे,—सेया-कुलेर काँटा ॥ 40॥

एक-बार-एक बार; यार–जिसकी; नयने-आँखें; लागे–बन्दी बनाती है; सदा-सदैव; तार-उसके; हृदये-हृदय में; जागे-प्रमुख बना रहता है; कृष्ण-तनु-कृष्ण का देह; येन-के समान; आम्र-आठा-आम के वृक्ष का रस; नारी-मने-स्त्रियों के मन में; पैशे--प्रवेश करता है; हाय-हाय; यत्ने-अत्यन्त प्रयत्न करने पर

भी; नाहि-नहीं; बाहिराय-बाहर आता; तनु नहे-साधारण शरीर नहीं है; सेया-कुलेर काँटा–सेया बेर वृक्ष के काँटे के समान।

अनुवाद

"यदि किसी व्यक्ति की आँखें एक बार भी कृष्ण के सुन्दर शरीर को बन्दी बना लेती हैं, तो वह उसके हृदय के भीतर सदैव प्रमुख बना रहता है। कृष्ण का शरीर आम वृक्ष के रस के समान है, क्योंकि जब यह स्त्रियों के मनों में प्रवेश करता है, तो महान् प्रयत्न करने पर भी यह बाहर नहीं आता। इस तरह कृष्ण का अद्वितीय शरीर सेया बेर वृक्ष के काँटे के समान है।

जिनिया तमाल-द्युति, इन्द्रनील-सम कान्ति,

से कान्तिते जगत्माताय ।

श्रङ्गार-रस-सार छानि', ताते चन्द्र-ज्योत्स्ना सानि',

जानि विधि निरमिला ताय ॥41॥

जिनिया–को पराजित करने वाली; तमाल-द्युति-तमाल वृक्ष की आभा के समान; इन्द्र-नील-इन्द्रनील मणि; सम कान्ति–के समान कान्ति; से कान्तिते-उस कान्ति से; जगत् माताय-सारा जगत् उन्मत्त हो जाता है; शृङ्गार-रस-माधुर्य प्रेम का रस; सार-सार; छानि'-छानकर; ताते-उसमें; चन्द्र-ज्योत्स्ना–पूर्ण चन्द्र की चाँदनी; सानि'–मिलाकर; जानि-मैं जानती हूँ; विधि-विधाता; निरमिला-निर्मल बनाया है; ताय-वह।

अनुवाद

"कृष्ण की शारीरिक द्युति इन्द्रनीलमणि के समान चमकीली है और वह तमालवृक्ष की कान्ति को पराजित करने वाली है। उनके शरीर की कान्ति सारे जगत् को पागल बना देती

है, क्योंकि विधाता ने माधुर्य प्रेम के रस के सार को परिष्कृत करके उसे चाँदनी से मिलाकर पारदर्शी बना दिया है।"

काहाँ से मुरली-ध्वनि, नवाभ्र-गर्जित जिनि',

जगताकर्षे श्रवणे याहार।

उठि' धाय व्रज-जन, तृषित चातक-गण,

आसि' पिये कान्त्यमृत-धार ॥42॥

काहाँ-जहाँ; से-वह; मुरली-ध्वनि-वंशी की ध्वनि; नव-अभ्र-गर्जित जिनि'-नवीन बादल की गर्जन को जीतने वाली; जगत्-सारा जगत्; आकर्षे–आकर्षित करती है; श्रवणे-श्रवणेन्द्रिय को; याहार–जिनकी; उठि'–उठकर; धाय–दोड़ते हैं; व्रज-जन-व्रजभूमि के निवासी; तृषित चातक-गण-तृषित चातक पक्षीओं की तरह; आसि-आकर; पिये-पीते हैं; कान्ति-अमृत-धार-कृष्ण की शारीरिक कान्ति के अमृत की धारा को।

अनुवाद

"कृष्ण की वंशी की गहरी ध्वनि नवीन बादलों की गर्जना को पराजित कर देती है और सारे जगत् के कानों को आकृष्ट करती है। इस तरह वृन्दावन के निवासी जब उठते हैं, तब वे तृषित पपीहों की तरह कृष्ण की शारीरिक कान्ति के अमृत की धारा को पीकर उस ध्वनि का पीछा करते हैं।

"मोर सेइ कला-निधि, प्राण-रक्षा-महौषधि,

सखि, मोर तेंहो सुहृत्तम।

देह जीये ताँहा विने, धिक् एइ जीवने,

विधि करे एत विड़म्बन!” ॥43॥

मोर-मेरे; सेइ-वह; कला-निधि-कला तथा संस्कृति के आगार; प्राण-रक्षा-महा-औषौधि-मेरे प्राण बचाने की औषधि; सखि-हे प्रिय सखी; मोर–मेरे; तेंहो-वे; सुहृत्-तम-सुहृद मित्र; देह जीये-मेरा शरीर जीता है; ताँहा विने-उनके बिना; धिक्-धिक्कार है; एइ जीवने-इस जीवन को; विधि-विधाता; करे-करता है; एत विड़म्बन-इतनी ठगाई।

अनुवाद

“कृष्ण कला तथा संस्कृति के आगार हैं और वे वह रामबाण औषधि हैं, जो मेरे जीवन को बचाती है। हे सखी, चूंकि मैं अपने मित्रों में से सर्वोत्तम मित्र के बिना जीवित हूँ, अतएव मैं अपनी आयु को धिक्कारती हूँ। मैं सोचती हूँ कि विधाता ने मुझे कई तरह से ठगा है।”

‘ये-जन जीते नाहि चाय, तारे केने जीयाय’,

विधि-प्रति उठे क्रोध-शोक ।

विधिरे करे भर्सन, कृष्णे देन ओलाहन,

पड़ि’ भागवतेर एक श्लोक ॥44॥

ये-जन-जो व्यक्ति; जीते-जीना; नाहि चाय-नहीं चाहता; तारे-उसे; केने-क्यों; जीयाय-जीने देता है; विधि-प्रति-विधाता के प्रति; उठे-जायत हुआ; क्रोध-शोक-क्रोध तथा शोक; विधिरे-विधाता की; करे-करता है; भर्सन-भत्र्सना; कृष्णे-भगवान् कृष्ण पर; देन–लगाता है; ओलाहन-आक्षेप; पड़ि’–पढ़ा; भागवतेर–श्रीमद्भागवत का; एक श्लोक-एक श्लोक।

अनुवाद

"भला विधाता उस व्यक्ति को क्यों जीने देता है, जो जीना नहीं चाहता?" इस विचार से श्री चैतन्य महाप्रभु में क्रोध तथा शोक उत्पन्न हो गया। तब उन्होंने श्रीमद्भागवत का एक श्लोक पढ़ा, जो विधाता को धिक्कारता है और कृष्ण के प्रति आक्षेप लगाता है।

अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया

संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ।

तांश्चाकृतार्थान्वियुनङ्क्ष्यपार्थकं

विचेष्टितं तेऽर्भक-चेष्टितं यथा ॥ 45 ॥

अहो-अहो; विधातः-हे विधाता; तव-तुम्हारी; न-नहीं; क्वचित् कभी भी; दया-दया; संयोज्य–संयोग करते हो; मैत्र्या-मित्रता द्वारा; प्रणयेन–तथा स्नेह द्वारा; देहिनः-देहधारी जीवों का; तान्–उनको; च–तथा; अकृत-अर्थान्–प्राप्त किये बिना; वियुनङ्क्षि-तुम करवाते हो; अपार्थकम्-वियोग; विचेष्टितम्-कार्यकलाप; ते तुम्हारे; अर्भक-बच्चे का; चेष्टितम्-बचकाना खेल; यथा-जैसा।

अनुवाद

"हे विधाता, तुममें तनिक भी दया नहीं है! तुम पहले तो मैत्री तथा स्नेह के द्वारा देहधारी जीवों को पास-पास लाते हो, किन्तु इसके पूर्व कि उनकी इच्छाएँ पूरी हों, तुम उन्हें विलग कर देते हो। तुम्हारे कार्यकलाप बच्चों के मूर्खतापूर्ण खिलवाड़ों जैसे हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.39.19) से उधृत हुआ है। यह श्लोक व्रज बालाओं ने तब कहा था, जब अक्रूर तथा बलराम के साथ कृष्ण वृन्दावन से मथुरा के लिए चल पड़े। गोपियाँ शोक कर रही थीं कि विधाता ने पहले तो कृष्ण तथा बलराम से स्नेह तथा प्रेम में उनके मिलन को सम्भव बनाया, किन्तु उसके बाद उसने उन्हें विलग कर दिया है।

"ना जानिस् प्रेम-मर्म, व्यर्थ करिस् परिश्रम,

तोर चेष्टा–बालक-समान ।

तोर यदि लाग् पाइये, तबे तोरे शिक्षा दिये,

एमन येन ना करिस् विधान ॥ 46॥

ना जानिस्-तुम नहीं जानते; प्रेम-मर्म-प्रेम-व्यवहार का मर्म; व्यर्थ करिस्-तुम व्यर्थ बनाते हो; परिश्रम-सर्व प्रयास; तोर चेष्टा-तुम्हारे कार्यकलाप; बालक-समान–बच्चे के बचकाने कार्य जैसे; तोर यदि लागू पाइये-यदि मैं तुम से मिलने का अवसर प्राप्त करूँ; तबे-तब; तोरे-तुमको; शिक्षा दिये-कुछ पाठ पढ़ायें; एमन-इस तरह; येन-जिससे; ना करिस् विधान-व्यवस्था नहीं करोगे।

अनुवाद

हे विधाता, तुम प्रेम-व्यापार के मर्म को नहीं जानते, इसलिए तुम हमारे प्रयासों को व्यर्थ बना देते हो। यह तुम्हारे बचपने को बतलाता है। यदि हम तुम्हें पकड़ पायें, तो ऐसा पाठ पढ़ायें कि तुम फिर कभी ऐसी व्यवस्था न करो।

अरे विधि, तुइ बड़-इ निठुर

अन्यो'न्य दुर्लभ जन, प्रेमे कराञा सम्मिलन, ।

'अकृतार्थान्' केने करिस् दूर? ॥47॥

अरे-अरे; विधि-विधाता; तुइ–तुम; बड़-इ-अत्यन्त; निठुर-क्रूर; अन्यः अन्य-एक-दूसरे को; दुर्लभ जन-विरले ही मिलनेवाले; प्रेमे-प्रेम में; कराञा सम्मिलन-साथ मिलाते हो; अकृत-अर्थान्-असफल; केने—क्यों; करिस्-तुम करते हो; दूर-दूर।

अनुवाद

"रे क्रूर विधाता! तुम बड़े ही निष्ठुर हो, क्योंकि तुम ऐसे लोगों में प्रेम उत्पन्न करते हो, जो विरले ही एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। और जब तुम उन्हें मिलाते हो, तो इसके पूर्व कि उनकी इच्छाएँ पूरी हों, उन्हें पुनः दूर दूर कर देते हो।

अरे विधि अकरुण, देखाञा कृष्णानन,

नेत्र-मन लोभाइला मोर ।

क्षणेके करिते पान, काड़ि' निला अन्य स्थान,

पाप कैलि 'दत्त-अपहार' ॥48॥

अरे अरे; विधि-विधाता; अकरुण-सर्वाधिक निर्दय; देखाञा–दिखाकर; कृष्ण-आनन-कृष्ण का सुन्दर मुख; नेत्र-मन-मन तथा आँखें; लोभाइला–लुभाकर; मोर-मेरा; क्षणेके करिते पान-क्षणभर के लिए पान करके; काड़ि' निला-वापस ले लिया; अन्य स्थान-अन्य स्थान पर; पाप कैलि–बहुत पापमय काम किया; दत्त-अपहार–दान में दी हुई चीज वापस लेकर।

अनुवाद

"रे विधाता, तुम कितने निर्दय हो! तुम कृष्ण का सुन्दर मुख प्रकट करते हो और मन तथा आँखों को लुभाते हो, किन्तु वे क्षणभर भी उस अमृत का पान नहीं कर पाते कि तुम कृष्ण को दूसरे स्थान पर भगा देते हो। यह बहुत बड़ा पाप है, क्योंकि इस तरह से तुम दान दी हुई वस्तु को छीन लेते हो।

'अक्रूर करे तोमार दोष, आमाय केने कर रोष',

इहा यदि कह 'दुराचार' ।

तुइ अक्रूर-मूर्ति धरि', कृष्ण निलि चुरि करि',

अन्येर नहे ऐछे व्यवहार ॥49॥

अक्रूर-अक्रूर; करे-किया; तोमार दोष-तुम्हारा दोष; आमाय-मुझे; केने—क्यों; कर—तुम करते हो; रोष-क्रोध; इहा-यह; यदि-यदि; कह-तुम कहो; दुराचार–हे। दुराचारी (विधाता); तुइ-तुम; अक्रूर-मूर्ति धरि'-अक्रूर का रूप धारण करके; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; निलि-तुमने लिया है; चुरि करि–चुराया; अन्येर–अन्यों का; नहे-नहीं है; ऐछे-इस प्रकार का; व्यवहार-आचरण।

अनुवाद

"ऐ दुराचारी विधाता! यदि तुम हमसे कहो कि, 'अकूर ही सचमुच दोषी है; तुम मुझ पर क्यों क्रोधित हो?" तो मैं तुमसे कहती हैं, 'रे विधाता, तुम्हीं ने अक्रूर का रूप धारण करके कृष्ण को चुरा लिया है। अन्य कोई व्यक्ति ऐसा व्यवहार नहीं करता।'

आपनार कर्म-दोष, तोरे किबा करि रोष,

तोय-मोय सम्बन्ध विदूर।

ये आमार प्राण-नाथ, एकत्र रहि याँर साथ,

सेइ कृष्ण ह-इला निठुर! ॥50॥

आपनार कर्म-दोष—यह मेरे अपने भाग्य का दोष है; तोरे-तुम पर; किबा-क्या; करि रोष-मैं आक्षेप करूँ; तोय-मोय-तुम और मेरे बीच; सम्बन्ध–सम्बन्ध; विदूर-दूर का; ये-वे ही हैं; आमार-मेरे; प्राण-नाथ–प्राणनाथ; एकत्र-साथ-साथ; रहि-हम रहते हैं; याँर साथ-जिनके साथ; सेइ कृष्ण-वे कृष्ण; ह-इला निठुर-क्रूर हो गये हैं।

अनुवाद

“किन्तु यह तो मेरे ही भाग्य का दोष है। मैं तुम पर व्यर्थ ही आक्षेप क्यों करूँ? तुम्हारे तथा मेरे बीच कोई घनिष्ठता नहीं है। किन्तु कृष्ण तो मेरे प्राण तथा आत्मा हैं। हम एक साथ रहने वाले हैं, किन्तु वे ही हैं, जो अब इतने क्रूर बन गये हैं।

सब त्यजि' भजि याँरे, सेइ आपन-हाते मारे,

नारी-वधे कृष्णेर नाहि भय ।

ताँर लागि’ आमि मरि, उलटि’ ना चाहे हरि,

क्षण-मात्रे भाङ्गिल प्रणय ॥51॥

सब त्यजि-सब कुछ त्यागकर; भजि याँरे-जिसकी मैं पूजा करती हूँ; सेइ-वह व्यक्ति; आपन-हाते-अपने ही हाथ से; मारे—मारता है; नारी-वधे-स्त्री को मारने में; कृष्णेर-कृष्ण का; नाहि भय-डर नहीं है; ताँर लागि’–उनके लिए; आमि मरि-मैं मरती हूँ; उलटि’–मूडकर; ना चाहे हरि-कृष्ण देखते नहीं; क्षण-मात्रे-क्षणभर में; भाङ्गिल-तोड़ दिया; प्रणय-सारे प्रेम व्यवहार को।

अनुवाद

“जिनके लिए मैंने अपना सब कुछ त्याग दिया, वे ही मुझे अपने हाथों से मार रहे हैं। कृष्ण को स्त्रियों का वध करते हुए कोई डर नहीं लगता। निस्सन्देह, मैं उन पर मर रही हूँ, किन्तु वे मेरी ओर मुड़कर देखते तक नहीं। उन्होंने क्षणभर में हमारे प्रेम व्यापार को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है।

कृष्णे केने करि रोष, आपन दुर्दैव-दोष,

पाकिल मोर एइ पाप-फल ।

ये कृष्ण—मोर प्रेमाधीन, तारे कैल उदासीन,

एइ मोर अभाग्य प्रबल" ॥52॥

कृष्णे-कृष्ण पर; केने-क्यों; करि रोष-मैं रोष करूँ; आपन-मेरे अपने; दुर्दैव-दुर्भाग्य का; दोष-दोष; पाकिल-पक गया है; मोर-मेरा; एइ-यह; पाप-फल-पापफल; ग्रे-वह; कृष्ण-कृष्ण; मोर-मेरे; प्रेम-अधीन–प्रेम के अधीन; तारे-उनको; कैल–किया है; उदासीन-उदासीन; एइ मोर—यह मेरा है; अभाग्य-दुर्भाग्य; प्रबल-अत्यन्त प्रबल।

अनुवाद

“फिर भी, मैं कृष्ण पर क्यों रुष्ट होऊँ? यह तो मेरे अपने दुर्भाग्य का दोष है। मेरे पापकर्मों का फल पक चुका है, इसलिए वे कृष्ण जो सदैव मेरे प्रेम के वश में रहते थे, अब मेरे प्रति उदासीन हैं। इसका अर्थ यही है कि मेरा दुर्भाग्य अत्यन्त प्रबल है।”

एइ-मत गौर-राय, विषादे करे हाय हाय,

‘हा हा कृष्ण, तुमि गेला कति?’।

गोपी-भाव हृदये, तार वाक्ये विलापये,

‘गोविन्द दामोदर माधवेति' ॥53॥

एइ-मत-इस प्रकार; गौर-राय-श्री चैतन्य महाप्रभु; विषादे-विरह के कारण शोक से; करे हाय हाय-सदैव कहते “हाय, हाय”; हा हा कृष्ण-हा हा, कृष्ण; तुमि गेला कति–आप कहाँ चले गये हैं; गोपी-भाव हृदये-हृदय में गोपियों के प्रेमावेश के साथ; तार वाक्ये-उनके शब्दों में; विलापये-वे शोक करते; गोविन्द दामोदर माधव-हे गोविन्द, हे दामोदर, हे माधव; इति–इस प्रकार।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु विरह भाव में शोक करते, "हाय, हाय! हे कृष्ण, आप कहाँ चले गये हैं?" श्री चैतन्य महाप्रभु अपने हृदय में गोपियों के भावों को अनुभव करते हुए "हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!" जैसे उनके शब्दों से अपनी पीड़ा व्यक्त करते।

तबे स्वरूप-राम-राय, करि' नाना उपाय,

महाप्रभुर करे आश्वासन ।

गायेन सङ्गम-गीत, प्रभुर फिराइला चित,

प्रभुर किछु स्थिर हैल मन ॥54॥

तबे-तब; स्वरूप-राम-राय-स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रामानन्द राय; करि' नाना उपाय–अनेक उपाय करके; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; करे आश्वासन-शान्त किया; गायेन-उन्होंने गाये; सङ्गम-गीत-मिलन के गीत; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; फिराइला चित-हृदय परिवर्तित हुआ; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; किछु—कुछ; स्थिर-शान्त; हैल–हो गया; मन-मन।

अनुवाद

तब स्वरूप दामोदर तथा रामानन्द राय ने महाप्रभु को सान्त्वना देने के लिए तरह-तरह के उपाय किये। उन्होंने मिलाप के गीत गाये, जिनसे उनका हृदय परिवर्तित हुआ और उनका मन शान्त हो गया।

एइ-मत विलपिते अर्ध-रात्रि गेल ।

गम्भीराते स्वरूप-गोसाञि प्रभुरे शोयाइल ॥55॥

एइ-मत-इस प्रकार; विलपिते-विलाप करते हुए: अर्ध-रात्रि गेल-आधी रात बीत गई; गम्भीराते-गम्भीरा नामक कमरे में; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; प्रभुरे शोयाइल-महाप्रभु को सुला दिया।

अनुवाद

इस तरह से श्री चैतन्य महाप्रभु को विलाप करते-करते आधी रात बीत गई। तब स्वरूप दामोदर ने उन्हें गम्भीरा नामक कमरे में सुला दिया।

प्रभुरे शोयाञा रामानन्द गेला घरे ।

स्वरूप, गोविन्द शुइला गम्भीरार द्वारे ॥56॥

प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; शोयाञा-सुला दिया गया; रामानन्द-रामानन्द राय; गेला घरे-अपने घर लौट गये; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; गोविन्द-गोविन्द; शुइला-लेट गये; गम्भीरार द्वारे-गम्भीरा के दरवाजे पर।

अनुवाद

जब महाप्रभु को सुला दिया गया, तो रामानन्द राय अपने घर चले गये और स्वरूप दामोदर तथा गोविन्द गम्भीरा के दरवाजे पर लेट गये।

प्रेमावेशे महाप्रभुर गर-गर मन ।

नाम-सङ्कीर्तन करि' करेन जागरण ॥57॥

प्रेम-आवेशे-प्रेमावेश में; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; गर-गर मन-मन पूर्णतया अभिभूत था; नाम-सङ्कीर्तन करि'-हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करते हुए; करेन-किया; जागरण-जागरण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का मन आध्यात्मिक आनन्द से अभिभूत था, इसलिए वे हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करते हुए सारी रात जागते रहे।

विरहे व्याकुल प्रभु उद्वेगे उठिला ।

गम्भीरार भित्त्ये मुख घषिते लागिला ॥58॥

विरहे-विरह के शोक में; व्याकुल-अत्यन्त व्याकुल; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः उद्वेगे-अत्यन्त उद्वेग में; उठिला-उठ खड़े हुए; गम्भीरार-गम्भीर की; भित्त्ये-दीवारों पर; मुख–मुख; घषिते-रगड़ने; लागिला–लगे।

अनुवाद

कृष्ण से विरह का अनुभव करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु इतने किंकर्तव्यमूढ़ हो गये कि वे उस महान् चिन्ता में उठ खड़े हुए और गम्भीरा की दीवालों पर अपना मुख रगड़ने लगे।

मुखे, गण्डे, नाके क्षत ह-इल अपार ।

भावावेशे ना जानेन प्रभु, पड़े रक्त-धार ॥59॥

मुखे-मुख पर; गण्डे-गाल पर; नाके-नाक पर; क्षत-घाव; ह-इल-हो गये; अपार–अनेक; भाव-आवेशे-भावावेश में; ना जानेन-नहीं जान सके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पड़े-बहने लगी; रक्त-धार-रक्त की धारा।

अनुवाद

उनके मुँह, नाक तथा गालों में हुए अनेक घावों से रक्त निकलने लगा, किन्तु अपने भावावेश के कारण महाप्रभु को इसका पता नहीं चल पाया।

सर्व-रात्रि करेन भावे मुख सङ्घर्षण ।

गों-गों-शब्द करेन,—स्वरूप शुनिला तखन ॥ 60॥

सर्व-रात्रि-सारी रात; करेन-किया; भावे-भाव में; मुख सङ्घर्षण–मुख का रगड़ना; गों-गों-शब्द करेन-गों गों की विचित्र आवाज; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; शुनिला–सुनते थे; तखन-तब।

अनुवाद

भावावेश में श्री चैतन्य महाप्रभु सारी रात दीवालों पर अपना मुख रगड़ते रहे और गोंगों का विचित्र शब्द निकालते रहे, जिसे स्वरूप दामोदर दरवाजे से सुन सकते थे।

दीप ज्वालि' घरे गेला, देखि' प्रभुर मुख ।

स्वरूप, गोविन्द दुँहार हैल बड़ दुःख ॥ 61॥

दीप ज्वालि'–दीपक जलाकर; घरे–कमरे में; गेला–गये; देखि'–देखकर; प्रभुर मुख-महाप्रभु का चेहरा; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; गोविन्द तथा गोविन्द; दुँहार-दोनों को; हैल बड़ दुःख-बहुत दुःख हुआ।

अनुवाद

तब दीपक जलाकर स्वरूप दामोदर तथा गोविन्द ने उस कमरे में प्रवेश किया। जब उन्होंने महाप्रभु का चेहरा देखा, तो दोनों ही अत्यन्त दुःखी हो गये।

प्रभुरे शय्याते आनि' सुस्थिर कराइला ।

'काँहे कैला एइ तुमि?'–स्वरूप पुछिला ॥ 62॥

प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु; शय्याते-बिस्तर पर; आनि'–लाकर; सु-स्थिर कराइला-उन्हें शान्त किया; काँहे-क्यों; कैला–किया है; एइ-यह; तुमि-आपने; स्वरूप पुछिला–स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने पूछा।

अनुवाद

वे महाप्रभु को उनके बिस्तर पर ले आये, उन्हें शान्त किया और तब पूछा, "आपने अपने साथ यह क्या कर रखा है?"

प्रभु कहेन,–“उद्वेगे घरे ना पारि रहिते ।

द्वार चाहि' बुलि' शीघ्र बाहिर ह-इते ॥63॥

प्रभु कहेन–श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; उद्वेगे-अत्यन्त उद्वेग के कारण; घरे-कमरे में; ना पारि—में समर्थ नहीं था; रहिते-रहने में; द्वार चाहि'–दरवाजे को खोजते हुए; बुलि'-घूमते हुए; शीघ्र-जल्दी; बाहिर ह-इते-बाहर जाने के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, “मैं इतने उद्वेग में था कि मैं कमरे में ठहर नहीं सकता था। मैं बाहर जाना चाहता था, इसलिए दरवाजे की खोज में कमरे में इधर-उधर घूमने लगा।

द्वार नाहि' पाञा मुख लागे चारि-भिते ।

क्षत हय, रक्त पड़े, ना पाइ याइते" ॥ 64॥

द्वार नाहि' पाञा–दरवाजा न हूँढ पाने के कारण; मुख लागे-चेहरा पटका; चारि-भिते-चारों दिवारों पर; क्षत हय–घायल हुआ; रक्त पड़े खून निकला; ना पाइ याइते-फिर भी मैं बाहर नहीं जा सका।

अनुवाद

"दरवाजा न ढूँठ सकने के कारण मैं अपना मुँह चारों दीवारों पर पटकता रहा। इससे मेरा मुँह घायल हो गया और रक्त बहने लगा, फिर भी मैं बाहर न जा सका।”

उन्माद-दशाय प्रभुर स्थिर नहे मन ।

येइ करे, येइ बोले सब,—उन्माद-लक्षण ॥65॥

उन्माद-दशाय-ऐसी उन्माद की अवस्था में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; स्थिर नहे मन-मन स्थिर नहीं था; येइ करे-वे जो भी करते; येइ बोले-वे जो भी बोलते; सब-सब; उन्माद-लक्षण–केवल उन्माद के लक्षण।

अनुवाद

उन्माद की इस अवस्था में श्री चैतन्य महाप्रभु का मन अस्थिर था। वे जो भी कहते या करते, वह सब उन्माद का लक्षण था।

स्वरूप-गोसाञि तबे चिन्ता पाइला मने ।

भक्त-गण लञा विचार कैला आर दिने ॥66॥

स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; तबे-तब; चिन्ता–चिन्ता या विचार; पाइला मने-उनके मन में आया; भक्त-गण लञा-सब भक्तों के साथ; विचार कैला-विचार किया; आर दिने दूसरे दिन।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर अत्यधिक चिन्तित थे, किन्तु तभी उनके मन में एक विचार आया। अगले दिन, उन्होंने अन्य भक्तों से मिलकर इस पर विचार किया।

सब भक्त मेलि' तबे प्रभुरे साधिल ।

शङ्कर-पण्डिते प्रभुर सङ्गे शोयाइल ॥ 67॥

सब भक्त मेलि'–सब भक्त साथ मिलकर; तबे-तब; प्रभुरे साधिल- श्री चैतन्य महाप्रभु से विनति की; शङ्कर-पण्डिते-शंकर पण्डित; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; सङ्गे-साथ; शोयाइल-सुलाया।

अनुवाद

परस्पर विचार-विमर्श करने के बाद सबों ने श्री चैतन्य महाप्रभु से विनती की कि वे अपने साथ उस कमरे में शंकर पंडित को भी लेटने दें।

प्रभु-पाद-तले शङ्कर करेन शयन ।

प्रभु ताँर उपर करेन पाद-प्रसारण ॥ 68॥

प्रभु-पाद-तले-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के पास; शङ्कर-शंकर; करेन शयन-लेट जाते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर-उसके; उपर-शरीर पर; करेन-करते; पाद-प्रसारण-पैरों का विस्तार॥

अनुवाद

इस तरह शंकर पंडित श्री चैतन्य महाप्रभु के पाँवों के पास लेटता और महाप्रभु अपने पाँव शंकर के शरीर पर रखते।

'प्रभु-पादोपाधान' बलि' ताँर नाम ह-इल ।

पूर्वे विदुरे येन श्री-शुक वर्णिल ॥69॥

प्रभु-पाद-उपाधान-श्री चैतन्य महाप्रभु के पैरों का तकिया; बलि'–के नाम से कहे जाने वाले; ताँर नाम-उनका नाम; ह-इल–हो गया; पूर्वे-पहले; विदुरे–विदुर; येन-जैसे; श्री-शुक वर्णिल-श्री शुकदेव गोस्वामी ने वर्णन किया है।

अनुवाद

शंकर प्रभु-पादोयधान अर्थात् " श्री चैतन्य महाप्रभु का तकिया" के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे विदुर के समान थे, जैसाकि शुकदेव गोस्वामी इसके पूर्व उनका वर्णन कर चुके हैं।

इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं

सहस्त्र-शीर्णश्चरणोपधानम् ।

प्रहृष्ट-रोमा भगवत्कथायां ।

प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ॥ 70 ॥

इति–इस प्रकार; ब्रुवाणम्-बोलते हुए; विदुरम्-विदुर से; विनीतम् नम्रता से; सहस्र-शीर्णः-भगवान् कृष्ण का; चरण-उपधानम्-पैरों का तकिया; प्रष्ट-रोमा-शरीर में रोमांच हो आया; भगवत्-कथायाम्पू र्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कथा में; प्रणीयमानः-प्रेरित होकर; मुनिः-महामुनि मैत्रेय; अभ्यचष्ट-कहने लगे।

अनुवाद

जब भगवान् कृष्ण के चरणों के रखने के स्थान रूप विनीत विदुर जी मैत्रेय से इस प्रकार कह चुके, तो मैत्रेय ने बोलना प्रारम्भ किया। भगवान् कृष्ण विषयक कथाओं की चर्चा से उत्पन्न दिव्य आनन्द के कारण उनको रोमांच हो आया।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (3.13.5) से है।

शङ्कर करेन प्रभुर पाद-सम्वाहन ।

घुमाञा पड़ेन, तैछे करेन शयन ॥79॥

शङ्कर-शंकर; करेन-करते; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु; पाद-सम्वाहन-पाँव दबाते; घुमाना पड़ेन–सो जाते; तैछे—इस प्रकार; करेन शयन-लेट जाते।

अनुवाद

शंकर श्री चैतन्य महाप्रभु के पाँव दबाते, किन्तु पाँव दबाते-दबाते सोने लगते और इस प्रकार लेट जाते।

उघाड़-अङ्गे पड़िया शङ्कर निद्रा याय ।

प्रभु उठि' आपन-काँथा ताहारे जड़ाय ॥72॥

उघाड़-अड़े-शरीर को बिना ढके ही; पड़िया-लेट जाते; शङ्कर-शंकर; निद्रा याय–सो जाते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; उठि'–उठकर; आपन-काँथा-अपनी रजाई; ताहारे जड़ाय-उन पर डाल देते ।

अनुवाद

वे शरीर को बिना ढ़के ही सोते रहते और श्री चैतन्य महाप्रभु जगकर उन पर अपनी रजाई डाल देते।

निरन्तर घुमाय शङ्कर शीघ्र-चेतन ।

वसि' पाद चापि' करे रात्रि-जागरण ॥73॥

निरन्तर–निरन्तर; घुमाय–सो जाते; शङ्कर-शंकर; शीघ्र-शीघ्र ही; चेतन-जाग जाते; वसि'–बैठकर; पाद चापि'–पाँव दबाने लगते; करे-करते; रात्रि-जागरण-रात को जगते रहते।

अनुवाद

शंकर पंडित सदा सो तो जाते थे, किन्तु शीघ्र ही जागकर बैठ जाते और पुनः श्री चैतन्य महाप्रभु के पाँव दबाने लगते। इस तरह वे पूरी रात जागते रहते।

ताँर भये नारेन प्रभु बाहिरे याइते ।

ताँर भये नारेन भित्त्ये मुखाब्ज घषिते ॥ 74॥

ताँर भये-उनके भय से; नारेन-समर्थ नहीं थे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; बाहिरे याइते-बाहर जाने के लिए; ताँर भये-उनके भय से; नारेन-समर्थ नहीं थे; भित्त्ये-दीवारों पर; मुख-अब्ज घषिते-कमल समान मुख रगड़ने के लिए।

अनुवाद

शंकर के भय से श्री चैतन्य महाप्रभु न तो अपना कमरा छोड़ते, न ही अपने कमल सदृश मुँह को दीवालों पर रगड़ते।

एइ लीला महाप्रभुर रघुनाथ-दास ।

गौराङ्ग-स्तव-कल्पवृक्षे करियाछे प्रकाश ॥75 ॥

एइ लीला—यह लीला; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास गोस्वामी; गौराङ्ग-स्तव-कल्प-वृक्षे-गौराङ्ग स्तव कल्पवृक्ष नामक अपने ग्रन्थ में; करियाछे प्रकाश-अच्छी तरह से वर्णन किया है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की इस लीला का बहुत ही सुन्दर वर्णन रघुनाथ दास गोस्वामी ने अपनी पुस्तक 'गौराङ्ग स्तव कल्पवृक्ष' में किया है।

स्वकीयस्य प्राणार्बुद-सदृश-गोष्ठस्य विरहात्

प्रलापानुन्मादात्सततमति कुर्वन्विकल-धीः ।

दधद्भित्तौ शश्वद्वदन-विधु-घर्षेण रुधिरं

क्षतोत्थं गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति ॥76 ॥

स्वकीयस्य-अपने प्राण-अर्बुद-जीवन की अनगिनत श्वास; सदृश-समान; गोष्ठस्य-वृन्दावन के; विरहात्-विरह के कारण; प्रलापान्–प्रलाप; उन्मादात्-उन्माद के कारण; सततम्-सदैव; अति-अत्यन्त; कुर्वन्—करके; विकल-धीः-जिनकी बुद्धि विक्षिप्त थी; दधत्-बहता था; भित्तौ-दीवारों पर; शश्वत्-सदैव;

वदन-विधु-कमल समान मुख को; घर्षेण-रगड़ने से; रुधिरम्-खून; क्षत-उत्थम्-घावों से निकलता था; गौराङ्गः- श्री चैतन्य महाप्रभु; हृदये-मेरे हृदय में; उदयन् उदित हों; माम्-मेरे; मदयति-उन्मत्त।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्राणतुल्य वृन्दावन अनेक मित्रों के विरह के कारण उन्मत की तरह बातें करते। उनकी बुद्धि विकृत हो गई थी। वे दिन-रात अपने चन्द्रमा सदृश मुखड़े को दीवालों पर रगड़ते, जिससे घावों से रक्त बहता रहता। ऐसे श्री चैतन्य महाप्रभु मेरे हृदय में उदित हों और मुझे प्रेम से उन्मत्त कर दें।"

एइ-मत महाप्रभु रात्रि-दिवसे ।

प्रेम-सिन्धु-मग्न रहे, कभु डुबे, भासे ॥ 77॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; रात्रि-दिवसे–दिन-रात; प्रेम-सिन्धु-मग्न रहे-कृष्ण-प्रेम के सागर में निमग्न; कभु डुबे-कभी डूब जाते; भासे-कभी तैरते।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु रात-दिन कृष्ण के प्रेम रूपी सिन्धु में मग्न रहते। कभी वे डूबे रहते और कभी तैरते रहते।

एक-काले वैशाखेर पौर्णमासी-दिने ।

रात्रि-काले महाप्रभु चलिला उद्याने ॥78॥

एक-काले–एक बार; वैशाखेर–वैशाख (अप्रैल-मई) मास की; पौर्णमासी-दिने-पूर्णमासी की रात को; रात्रि-काले-रात में; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; चलिला-गये; उद्याने-उद्यान में।

अनुवाद

एक बार वैशाख (अप्रैल-मई) मास की पूर्णमासी की रात में श्री चैतन्य महाप्रभु एक उद्यान में गये।

'जगन्नाथ-वल्लभ' नाम उद्यान-प्रधाने ।

प्रवेश करिला प्रभु लञा भक्त-गणे ॥79॥

जगन्नाथ-वल्लभ-जगन्नाथ-वल्लभ; नाम-नामक; उद्यान-प्रधाने-उत्तम उद्यानों में से एक; प्रवेश करिला–प्रविष्ट हुए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; लञा-लेकर; भक्त-गणे-भक्तों को।

अनुवाद

महाप्रभु अपने भक्तों सहित जगन्नाथ-वल्लभ नामक सुन्दरतम उद्यान में प्रविष्ट हुए।

प्रफुल्लित वृक्ष-वल्ली,—येन वृन्दावन ।

शुक, शारी, पिक, भृङ्ग करे आलापन ॥80॥

प्रफुल्लित–पूर्णतया खीले हुए; वृक्ष-वल्ली-वृक्ष तथा लताएँ; येन वृन्दावन-वृन्दावन के समान ही; शुकशुक पक्षी; शारी–शारी पक्षी; पिक–पिक पक्षी; भृङ्ग-भौंरे; करे-करते थे; आलापन-एक-दूसरे से बातें।

अनुवाद

इस उद्यान में फूलों से लदे वृक्ष तथा लताएँ वृन्दावन जैसे ही थे। भौंरे, शुक, शारी एवं पिक पक्षी एक दूसरे से बातें कर रहे थे।

पुष्प-गन्ध लञा वहे मलय-पवन ।

'गुरु' हञा तरु-लताय शिखाय नाचन ॥81॥

पुष्प-गन्ध-पुष्पों की सुगन्ध; लञा-लेकर; वहे-बहती थी; मलय-पवन-मन्द पवन; गुरु हञा–गुरु बनकर; तरु-लताय–वृक्ष तथा लताओं को; शिखाय-सीखा रही थी; नाचन-नृत्य।

अनुवाद

मन्द पवन सुगन्धित पुष्पों की गन्ध लेकर बह रही थी। यह पवन गुरु बनकर सारे वृक्षों तथा लताओं को नृत्य सिखा रही थी।

पूर्ण-चन्द्र-चन्द्रिकाय परम उज्वल ।

तरु-लतादि ज्योत्स्नाय करे झलमल ॥82॥

पूर्ण-चन्द्र–पूर्ण चन्द्रमा की; चन्द्रिकाय–चाँदनी से; परम-अत्यन्त; उज्वल-उज्वल; तरु-लता-आदि-लताएं, वृक्ष इत्यादि; ज्योत्स्नाय–चाँदनी के प्रकाश में; करे-करते थे; झलमल-झलमला रहे थे।

अनुवाद

पूर्ण चन्द्रमा के तेज से प्रकाशित सारे वृक्ष तथा लताएँ प्रकाश में झलमला रहे थे।

छय ऋतु-गण याहाँ वसन्त प्रधान ।

देखि' आनन्दित हैला गौर भगवान् ॥83॥

छय-छः; ऋतु-गण-ऋतुएँ; याहाँ-जहाँ; वसन्त प्रधान-वसन्त ऋतु प्रधान; देखि'–देखकर; आनन्दित-अत्यन्त प्रसन्न; हैला–हुए; गौर-श्री चैतन्य महाप्रभुः भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ।

अनुवाद

ऐसा लग रहा था मानो वहाँ पर छहों ऋतुएँ, विशेषतया वसन्त ऋतु, उपस्थित हों। उस उद्यान को देखकर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए।

"ललित-लवङ्ग-लता" पद गाओयाञा ।

नृत्य करि' बुलेन प्रभु निज-गण लञा ॥84॥

ललित-लवङ्ग-लता-ललित लवंगलता शब्दों से शुरू होने वाला; पद-श्लोक; गाओयाञा-गाने के लिए कहकर; नृत्य करि' नृत्य किया; बुलेन-घूमे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-गण लञा-अपने पार्षदों के साथ।

अनुवाद

इस वातावरण में महाप्रभु ने अपने संगियों से ललित लवंगलता' से प्रारम्भ होने वाला 'गीत गोविन्द' का श्लोक गाने को कहा और वे स्वयं नृत्य करने लगे तथा उनके साथ चारों ओर घूमने लगे।

प्रति-वृक्ष-वल्ली ऐछे भ्रमिते भ्रमिते ।

अशोकेर तले कृष्णे देखेन आचम्बिते ॥85॥

प्रति-वृक्ष-वल्ली–प्रत्येक वृक्ष तथा लता की चारों ओर; ऐछे—इस प्रकार; भ्रमिते भ्रमिते-घूमते हुए; अशोकेर तले-अशोक वृक्ष के नीचे; कृष्णे-भगवान् कृष्ण; देखेन-उन्होंने देखा; आचम्बिते-अचानक।

अनुवाद

इस तरह वे प्रत्येक वृक्ष तथा लता के चारों ओर घूमते हुए अशोक वृक्ष के नीचे आये और सहसा उन्होंने भगवान् कृष्ण को देखा।

कृष्ण देखि' महाप्रभु धाञा चलिला ।

आगे देखि' हासि' कृष्ण अन्तर्धान ह-इला ॥86॥

कृष्ण देखि'–कृष्ण को देखकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; धाञा चलिला-तेजी से दौड़ने लगे; आगे-आगे; देखि'–देखकर; हासि'-मुसकाते हुए; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अन्तर्धान ह-इला–अदृश्य हो गये।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण को देखा, तो वे तेजी से दौड़ने लगे, किन्तु कृष्ण स्मितहास्य करते हुए अदृश्य हो गये।

आगे पाइला कृष्णे, ताँरे पुनः हाराञा ।

भूमेते पड़िला प्रभु मूर्च्छित हञा ॥87॥

आगे-प्रारम्भ में; पाइला–पाकर; कृष्णे-भगवान् कृष्ण; ताँरे–उनको; पुनः-फिर; हाराञा–खोकर; भूमेते-भूमि पर; पड़िला–गिर पड़े; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मूर्च्छित-अचेत; हञा-होकर।

अनुवाद

पहले कृष्ण को पाने तथा उसके बाद पुनः उन्हें खो देने से श्री चैतन्य महाप्रभु अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े।

कृष्णेर श्री-अङ्ग-गन्धे भरिछे उद्याने ।

सेइ गन्ध पाञा प्रभु हैला अचेतने ॥88॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; श्री-अङ्ग-गन्धे-दिव्य देह की सुगन्ध; भरिछे-भर गई; उद्याने-उद्यान में; सेइ गन्ध पाञा-उस सुगन्ध को पाकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हैला–हो गये; अचेतने-अचेत ।

अनुवाद

भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य शरीर की सुगन्ध से सारा उद्यान भर गया। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस सुगन्ध को सँघा, तो वे तुरन्त अचेत हो गये।

निरन्तर नासाय पशे कृष्ण-परिमल ।

गन्ध आस्वादिते प्रभु ह-इला पागल ॥89॥

निरन्तर–निरन्तर; नासाय-नथुनों में; पशे-प्रवेश कर रही थी; कृष्ण-परिमल-कृष्ण के शरीर की सुगन्ध; गन्ध आस्वादिते-सुगन्ध का आस्वादन करने के लिए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ह-इला पागल-पागल हो गये।

अनुवाद

किन्तु कृष्ण के शरीर की सुगन्ध उनके नथुनों में निरन्तर प्रवेश कर रही थी और महाप्रभु उसका आस्वादन करने के लिए उन्मत्त हो रहे थे।

कृष्ण-गन्ध-लुब्धा राधा सखीरे ये कहिला ।

सेइ श्लोक पड़ि' प्रभु अर्थ करिला ॥90॥

कृष्ण-गन्ध-कृष्ण के शरीर की सुगन्ध; लुब्धा-के पीछे लालायित; राधा-श्रीमती राधारानी; सखीरे-अपनी गोपी सखियों से; ग्रे कहिला-उन्होंने जो कुछ कहा; सेइ-वह; श्लोक-श्लोक; पड़ि'–पढ़कर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; अर्थ करिला-उसका अर्थ बताया।

अनुवाद

श्रीमती राधारानी ने अपनी गोपी सखियों से एक बार बतलाया कि वे किस तरह कृष्ण के शरीर की दिव्य सुगन्ध के लिए लालायित हो रही हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसी श्लोक को पढ़ा और उसका अर्थ स्पष्ट किया।

कुरङ्ग-मद-जिद्वपुः-परिमलोर्मि-कृष्टाङ्गनः

स्वकाङ्ग-नलिनाष्टके शशि-युताब्ज-गन्ध-प्रथः ।

मदेन्दुवर-चन्दनागुरु-सुगन्धि-चर्चार्चितः

स मे मदन-मोहनः सखि तनोति नासा-स्पृहाम् ॥91॥

कुरङ्ग-मद-जित्-कस्तूरी की सुगन्ध को परास्त करने वाली; वपुः-उनके दिव्य शरीर की; परिमल-ऊर्मि–सुगन्ध की लहरों से; कृष्ट-अङ्गनः-वृन्दावन की गोपियों को आकर्षित करके; स्वक-अङ्ग-नलिन-अष्टके शरीर के आठ कमल समान अंगों पर (मुख, नाभि, आँखें, हथेलियाँ तथा चरण); शशि-युत-अब्ज-गन्ध-प्रथः-जो कपूर से मिश्रित कमल की सुगन्ध को वितरित करते हैं; मद-इन्दुवर-चन्दन-अगुरु-सुगन्धि-चर्चा-अर्चितः–कस्तूरी, कपूर, श्वेत चन्दन तथा अगरु के लेप से लेपित; सः-वे; मे-मेरे; मदन-मोहनः-भगवान् कृष्ण, जो कामदेव को भी मोहित करने वाले हैं; सखि-हे प्रिय सखी; तनोति बढ़ाती है; नासा-स्पृहाम्-मेरे नथुनों की इच्छा को।

अनुवाद

"कृष्ण के दिव्य शरीर की सुगन्ध कस्तूरी की सुगन्ध को भी पराजित करने वाली और समस्त स्त्रियों के मनों को आकृष्ट करने वाली है। उनके शरीर के कमल समान आठ अंग कमल के साथ कपूर की मिश्रित सुगन्ध को वितरित करते हैं। उनके शरीर पर कस्तूरी, कपूर, चन्दन तथा अगुरु जैसी सुगन्धित वस्तुओं का लेप लगा हुआ है। हे सखी, ऐसे भगवान्, जो कि मदनमोहन भी कहे जाते हैं, सदैव मेरे नथुनों की इच्छा को वर्धित करते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक गोविन्द लीलामृत (8.6) में पाया जाता है।

कस्तूरिका-नीलोत्पल, तार येइ परिमल,

ताहा जिनि' कृष्ण-अङ्ग-गन्ध ।

व्यापे चौद्द-भुवने, करे सर्व आकर्षणे,

नारी-गणेर आङ्घि करे अन्ध ॥92॥

कस्तूरिका–कस्तूरी; नीलोत्पल-नीलकमल के साथ मिश्रित; तार-उसकी; येइ-जो भी; परिमल-सुगन्ध; ताहा-वह; जिनि'-जीतकर; कृष्ण-अङ्ग-कृष्ण के दिव्य शरीर की; गन्ध–सुगन्ध; व्यापे–फैलती है; चौद्द-भुवने-चौदही भुवनों में; करे-करती है; सर्व आकर्षणे-सब को आकर्षित; नारी-गणेर-स्त्रियों की; आङ्खि-आँखें; करे-करती है अन्ध-अन्धी।

अनुवाद

"कृष्ण के शरीर की सुगन्ध कस्तूरी तथा नीलकमल के फूलों की सुगन्ध को पराजित करने वाली है। चौदहों लोकों में फैलकर यह हर एक को आकृष्ट करती है और समस्त स्त्रियों के नेत्रों को अन्धा बनाती है।

सखि हे, कृष्ण-गन्ध जगत्माताय

नारीर नासाते पशे, सर्व-काल ताहाँ वैसे, ।

कृष्ण-पाश धरि' लञा याय ॥93॥

सखि हे-हे प्रिय सखी; कृष्ण-गन्ध-कृष्ण के शरीर की सुगन्ध; जगत् माताय-सारे जगत् को मोहित करती है; नारीर-स्त्रियों के; नासाते-नथुनों में; पशे-प्रविष्ट होकर; सर्व-काल-सदैव; ताहाँ-वहाँ; वैसे-रहती है; कृष्ण-पाश-भगवान् कृष्ण के पास; धरि'-पकड़कर; लञा याय-जाती है।

अनुवाद

“हे प्रिय सखी, कृष्ण के शरीर की सुगन्ध सारे जगत् को मोहित करती है। विशेषतया स्त्रियों के नथुनों में प्रविष्ट होकर यह वहीं पर रुक जाती है। इस तरह यह उन्हें बन्दी बनाकर बलपूर्वक कृष्ण के पास ले आती है।

नेत्र-नाभि, वदन, कर-युग चरण,

एइ अष्ट-पद्म कृष्ण-अङ्गे ।

कर्पूर-लिप्त कमल, तार यैछे परिमल,

सेइ गन्ध अष्ट-पद्म-सङ्गे ॥ 94॥

नेत्र-आँखें; नाभि-नाभि; वदन-मुख; कर-युग–हथेलियाँ; चरण-चरण; एइ-ये; अष्ट-आठ; पद्म-कमल पुष्प; कृष्ण-अङ्गे–कृष्ण के शरीर में; कर्पूर-कपूर के साथ; लिप्त-लिप्त; कमल-कमल पुष्प; तार-उसके; यैछे-जैसी; परिमल-सुगन्ध; सेइ गन्ध-वह सुगन्ध; अष्ट-पद्म-सङ्गे-आठ कमल पुष्पों से सम्बन्धित।

अनुवाद

कृष्ण की आँखें, नाभि तथा मुँह, हाथ तथा पैर-ये उनके शरीर पर आठ कमलपुष्पों के समान हैं। इन आठों कमलों से कपूर तथा कमल की मिली-जुली सुगन्ध निकलती है। यह सुगन्ध उनके शरीर से सम्बन्धित है।

हेम-कीलित चन्दन, ताहा करि’ घर्षण,

ताहे अगुरु, कुङ्कम, कस्तूरी ।

कर्पूर-सने चर्चा अङ्गे, पूर्व अङ्गेर गन्ध सङ्गे,

मिलि' तारे येन कैल चुरि ॥95॥

हेम–सुवर्ण के साथ; कीलित–सुशोभित; चन्दन-श्वेत चन्दन; ताहा-वह; करि'-करके; घर्षण-घिसकर; ताहे-उसमें; अगुरु-अगरु की सुगन्ध; कुङ्कम-कुंकुम; कस्तूरी–तथा कस्तूरी; कर्पूर-कपूर; सने-के साथ; चर्चा–लेप करके; अङ्गे–शरीर पर; पूर्व-पहले; अङ्गेर-शरीर की; गन्ध–सुगन्ध; सङ्गे–के साथ; मिलि'–मिलकर; 'तारे-वह; येन-जैसे; कैल-किया; चुरि-चोरी करना या आच्छादित करना।

अनुवाद

"जब चन्दन को अगुरु, कुंकुम, कस्तूरी तथा कपूर के साथ मिलाकर कृष्ण के शरीर पर लेप किया जाता है, तो यह कृष्ण की मूल शारीरिक सुगन्ध के साथ मिल जाता है और उसे आच्छादित करता प्रतीत होता है।

तात्पर्य

अन्य एक संस्करण में इस श्लोक की अन्तिम पंक्ति कामदेवेर मन कैल चुरि के रूप में भी पाई जाती है, जिसका अर्थ है, "इन सारी वस्तुओं की सुगन्ध कृष्ण के शरीर की पहले की सुगन्ध से मिल जाती है और कामदेव के मन को चुरा लेती है।"

हरे नारीर तनु-मन, नासा करे घूर्णन,

खसाय नीवि, छुटाय केश-बन्ध ।

करिया आगे बाउरी, नाचाय जगत् नारी,

हेन डाकातिया कृष्णाङ्ग-गन्ध ॥ 96 ॥

हरे-मोहित करती है; नारीर-स्त्रियों के; तनु-मन-मन तथा शरीर; नासा-नथुने; करे घूर्णन-भ्रमित करती है; खसाय-शिथिल करती है; नीवि-कटिबन्ध; छुटाय-छोड़ती है; केश-बन्ध-केशों को; करिया-करके; आगे-सामने; बाउरी-बावरी स्त्री के समान; नाचाय-नचाती है; जगत्-नारी-जगत् की सारी स्त्रियों को; हेन-ऐसी; डाकातिया-डाकू; कृष्ण-अङ्ग-गन्ध-कृष्ण के शरीर की सुगन्ध।

अनुवाद

“कृष्ण के दिव्य शरीर की सुगन्ध इतनी आकर्षक है कि यह सारी स्त्रियों के शरीरों तथा मनों को मोह लेती है। यह उनके नथुनों को भ्रमित करती है, उनके कटिबन्धों तथा केशों को शिथिल बनाती है और उन्हें उन्मत्त करती है। विश्वभर की स्त्रियाँ इसके प्रभाव में आ जाती हैं, इसीलिए कृष्ण के शरीर की सुगन्ध एक डाकू के समान है।

सेइ गन्ध-वश नासा, सदा करे गन्धेर आशा,

कभु पाय, कभु नाहि पाय ।

पाइले पिया पेट भरे, पिङपिङतबु करे,

ना पाइले तृष्णाय मरि’ याय ॥97॥

सेइ-वह; गन्ध-वश–सुगन्ध के वश में; नासा-नथुने; सदा-सदैव; करे-करते हैं; गन्धेर–सुगन्ध के लिए; आशा-आशा; कभु पाय-कभी वे प्राप्त करते हैं; कभु नाहि पाय-कभी प्राप्त नहीं करते; पाइले–यदि पाते हैं; पिया-पान करते हैं; पेट-पेट; भरे-भरकर; पिङ–मुझे पीने दो; पिङ–मुझे पीने दो; तबु-फिर भी; करे–वे लालायित रहते हैं; ना पाइले–यदि वे नहीं पाते; तृष्णाय-प्यास के मारे; मरि’ याय–वे मरते हैं।

अनुवाद

“इसके पूर्ण प्रभाव में आकर नथुने इसके लिए निरन्तर लालायित रहते हैं, यद्यपि वे कभी इसे प्राप्त कर पाते है, तो कभी नहीं भी कर पाते। किन्तु जब वे इसे पाते हैं, तो जी भरकर पान करते हैं, यद्यपि वे और अधिक की चाह करते हैं। किन्तु यदि वे नहीं पाते, तो तृष्णा के मारे मर जाते हैं।

मदन-मोहन-नाट, पसारि गन्धेर हाट,

जगन्नारी-ग्राहके लोभाय ।

विना-मूल्ये देय गन्ध, गन्ध दिया करे अन्ध,

घर याइते पथ नाहि पाय” ॥98॥

मदन-मोहन-नाट–अभिनेता मदनमोहन; पसारि-दुकानदार; गन्धेर हाट-सुगन्ध की दुकान; जगत्-नारी-जगत् की स्त्रियों को; ग्राहके ग्राहकों को; लोभाय-आकर्षित करती है; विना-मूल्ये-बिना मूल्य लिये; देय–वितरित करते हैं; गन्ध–सुगन्ध; गन्ध दिया–सुगन्ध देते हैं; करे अन्ध-ग्राहकों को अन्धा बना देती है; घर याइते-घर वापस जाने का; पथ–मार्ग; नाहि पाय-ढूंढ नहीं पातीं।

अनुवाद

“अभिनेता मदनमोहन ने सुगन्ध की दूकान खोल रखी है और यह सुगन्ध विश्वभर की स्त्रियों को ग्राहक के रूप में आकृष्ट करती है। वे इस सुगन्ध को निःशुल्क बाँटते हैं, किन्तु यह सारी स्त्रियों को इस तरह अन्धा बना देती है कि वे घर लौटने का मार्ग तक ढूंढ नहीं पातीं।”

एइ-मत गौरहरि, गन्धे कैल मन चुरि,

भृङ्ग-प्राय इति-उति धाय।

याय वृक्ष-लता-पाशे, कृष्ण स्फुरे सेइ आशे,

कृष्ण ना पाय, गन्ध-मात्र पाय ॥19॥

एइ-मत-इस प्रकार; गौरहरि-श्री चैतन्य महाप्रभुः गन्धे-सुगन्ध से; कैल–किया; मन चुरि–मन चुरा लिया; भृङ्ग-प्राय-भौंरे की तरह; इति-उति धाय–इधर-उधर घूमते; याय-जाते; वृक्ष-लता-पाशे-वृक्ष तथा लताओं के पास; कृष्ण स्फुरे–भगवान् कृष्ण प्रकट होंगे; सेइ आशे—उस आशा में; कृष्ण ना पाय-कृष्ण को प्राप्त न करके; गन्ध-मात्र पाय-केवल सुगन्ध प्राप्त करते।

अनुवाद

इस तरह कृष्ण के शरीर की सुगन्ध ने श्री चैतन्य महाप्रभु का मन चुरा लिया, जिससे वे भौंरे की तरह इधर-उधर दौड़ने लगे। वे वृक्षों तथा लताओं के पास इस आशा से दौड़ जाते कि भगवान् कृष्ण प्रकट होंगे, किन्तु उनको केवल कृष्ण के शरीर की सुगन्ध ही प्राप्त हो पाती।

स्वरूप-रामानन्द गाय, प्रभु नाचे, सुख पाय,

एइ-मते प्रातः-काल हैल ।

स्वरूप-रामानन्द-राय, करि नाना उपाय,

महाप्रभुर बाह्य-स्फूर्ति कैल ॥100॥

स्वरूप-रामानन्द गाय-स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रामानन्द राय गाने लगे; प्रभु नाचे-श्री चैतन्य महाप्रभु नृत्य करने लगे; सुख पायसुख पाया; एइ-मते-इस प्रकार; प्रातः-काल हैल-प्रात:काल हुआ; स्वरूप-रामानन्द-राय-स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रामानन्द राय दोनों; करि–किये; नाना-विविध; उपाय-उपाय; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; बाह्य-स्फूर्ति कैल-बाह्य चेतना जगाने के।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर तथा रामानन्द राय दोनों ही महाप्रभु के लिए गाने लगे और महाप्रभु नृत्य करने लगे। वे प्रातः होने तक सुख का आनन्द लेते रहे। तब महाप्रभु को दोनों पार्षदों ने महाप्रभु की बाह्य चेतना जगाने के लिए उपाय सोचा।

मातृ-भक्ति, प्रलापन, भित्त्ये मुख-घर्षण,

कृष्ण-गन्ध-स्फूर्ये दिव्य-नृत्य ।

एइ चारि-लीला-भेदे, गाइल एइ परिच्छेदे,

कृष्णदास रूप-गोसाञि-भृत्य ॥101॥

मातृ-भक्ति-उनकी मातृभक्ति; प्रलापन-प्रलाप के शब्द; भित्त्ये-दीवारों पर; मुख-घर्षण–मुख रगड़ना; कृष्ण-गन्ध-भगवान् कृष्ण की सुगन्ध; स्फूर्ये-प्राकट्य पर; दिव्य-नृत्य-दिव्य नृत्य; एइये; चार–चार; लीला-लीलाएँ; भेदे—विविध; गाइल-गायी हैं; एइ परिच्छेदे—इस अध्याय में; कृष्णदास-कृष्णदास कविराज; रूप-गोसाञि-भृत्य-श्रील रूप गोस्वामी का सेवक।

अनुवाद

इस तरह श्रील रूप गोस्वामी का दास मैं, कृष्णदास, ने इस अध्याय में महाप्रभु की चार प्रकार की लीलाओं का गान किया है—महाप्रभु की मातृभक्ति, उनके पागलपन के शब्द, रात में दीवालों पर उनका मुख रगड़ना तथा भगवान् कृष्ण की सुगन्ध प्रकट होने पर उनका नृत्य करना।

तात्पर्य

कृष्णदास कविराज गोस्वामी कहते हैं कि श्रील रूप गोस्वामी के आशीर्वाद से वे श्री चैतन्य महाप्रभु की इन चार प्रकार की लीलाओं का वर्णन कर सके हैं। वास्तव में कृष्णदास कविराज श्रील रूप गोस्वामी के प्रत्यक्ष शिष्य नहीं थे, किन्तु उन्होंने श्रील रूप गोस्वामी द्वारा भक्तिरसामृतसिन्धु में दिये गये आदेशों का पालन किया था। इसीलिए वे उनके निर्देशानुसार कार्य कर सके और हर अध्याय में उन्होंने उनकी कृपा के लिए प्रार्थना की है।

एइ-मत महाप्रभु पाञा चेतन ।

स्नान करि' कैल जगन्नाथ-दरशन ॥102॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पाञा चेतन-चेतना पाई; स्नान करि'-स्नान करने के बाद; कैल जगन्नाथ-दरशन-भगवान जगन्नाथ का दर्शन किया।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु को फिर से बाह्य चेतना आ गई। तब उन्होंने स्नान किया और वे भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने गये।

अलौकिक कृष्ण-लीला, दिव्य-शक्ति तार ।

तर्केर गोचर नहे चरित्र याहार ॥ 103॥

अलौकिक-असामान्य; कृष्ण-लीला-भगवान् कृष्ण की लीलाएँ; दिव्य-शक्ति-दिव्य शक्ति; तार-उसकी; तर्केर-तर्क; गोचर-की परिधि में; नहे-नहीं हैं; चरित्र-चरित्र; याहार–जिसका।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण की लीलाएँ अलौकिक तथा दिव्य शक्ति से ओतप्रोत हैं। ऐसी लीलाओं की विशेषता है कि वे तर्क की परिधि में नहीं आतीं।

एइ प्रेम सदा जागे याहार अन्तरे ।

पण्डितेह तार चेष्टा बुझिते ना पारे ॥104॥

एइ-यह; प्रेम-भगवत्प्रेम; सदा-सदैव; जागे-जायत होता है; याहार–जिसका; अन्तरे हृदय में; पण्डितेह–विद्वान पण्डित भी; तार-उसके; चेष्टा–कार्यकलाप; बुझिते-समझ; ना पारे–नहीं सकता।

अनुवाद

जब किसी के हृदय में कृष्ण का दिव्य प्रेम जागृत होता है, तब बड़े से बड़ा विद्वान भी उस व्यक्ति के कार्यकलापों को नहीं समझ सकता।

धन्यस्यायं नवः प्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि ।

अन्तर्वाणीभिरप्यस्य मुद्रा सुष्ठ सु-दुर्गमा ॥105॥

धन्यस्य-उस सद्भागी व्यक्ति को; अयम्-यह; नवः–नया; प्रेमा-भगवत्प्रेम; यस्य–जिसका; उन्मीलति-प्रकट होता है; चेतसि-हृदय में; अन्तः-वाणीभिः-शास्त्रों में प्रवीण व्यक्ति द्वारा; अपि-भी; अस्य-उसके; मुद्रा-लक्षण; सुष्ठ-अत्यधिक; सु-दुर्गमा-समझना मुश्किल।

अनुवाद

"जिस महान् व्यक्ति के हृदय में भगवत्प्रेम का उदय हुआ हो, उसके कार्यों तथा लक्षणों को बड़े से बड़ा विद्वान भी नहीं समझ सकता।"

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.4.17) से उधृत है।

अलौकिक प्रभुर चेष्टा', 'प्रलाप' शुनिया।

तर्क ना करिह, शुन विश्वास करिया॥ 106॥

अलौकिक-असामान्य; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; चेष्टा-लीलाएँ; प्रलाप-उन्मत्त की तरह बोलना; शुनिया-सुनना; तर्क-अनावश्यक तर्क; ना करिह-न करें; शुन–केवल सुनें; विश्वास करिया–पूर्ण श्रद्धा के साथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलाप, विशेषतया उन्मत्त की तरह उनका बोलना निस्सन्देह असामान्य हैं। अतएव जो भी इन लीलाओं को सुने, उसे चाहिए कि संसारी तर्क न करे। उसे इन लीलाओं का पूरी श्रद्धापूर्वक श्रवण मात्र करना चाहिए।

इहार सत्यत्वे प्रमाण श्री-भागवते।

श्री-राधार प्रेम-प्रलाप 'भ्रमर-गीता' ते॥ 107॥

इहार–इन बातों की; सत्यत्वे-सत्यता का प्रमाण-प्रमाण; श्री-भागवते-श्रीमद्भागवत में; श्री-राधार–श्रीमती राधारानी का; प्रेम-प्रलाप–प्रेमावेश में प्रलाप करना; भ्रमर-गीताते-भ्रमर गीत नामक विभाग में।

अनुवाद

इन बातों के सत्य होने की प्रामाणिकता' श्रीमद्भागवत' में प्राप्त है। दशम दसवें के 'भ्रमर गीत' नामक अध्याय में श्रीमती राधारानी कृष्ण के प्रेमावेश में उन्मत्त जैसी बातें करती हैं।

तात्पर्य

जब उद्धव गोपियों के लिए सन्देश लेकर मथुरा से आये, तब गोपियाँ कृष्ण के विषय में बातें करने लगीं और क्रन्दन करने लगीं। तब श्रीमती राधारानी ने एक भौंरा देखा और उसे उद्धव का दूत या उनका अथवा कृष्ण का कोई अतिप्रिय व्यक्ति समझकर उससे उन्मत्त की भाँति बातें करने लगीं। ये श्लोक इस प्रकार हैं (भागवत 10.47.12-21) :

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशांघ्रिं सपत्न्याः

कुचविलुलितमालाकुंकुमश्मश्रुभिर्नः ।

वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं

यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक॥

“हे भौंरे, तुम उद्धव तथा कृष्ण के अत्यन्त चतुर मित्र हो। लोगों का पादस्पर्श करने में तुम अत्यन्त पटु हो, किन्तु मैं इस भुलावे में आने वाली नहीं हूँ। ऐसा लगता है कि तुम कृष्ण की किसी सखी के स्तनों पर बैठकर आये हो, क्योंकि तुम्हारी मूच्छों पर कुंकुम चूर्ण लगा है। अब मथुरा में कृष्ण अपनी युवती सखियों की चापलूसी में लगे हैं। अब तो वे मथुरावासियों के मित्र कहे जा सकते हैं, इसलिए उन्हें अब वृन्दावनवासियों की कोई सहायता नहीं चाहिए। उन्हें हम गोपियों को तुष्ट करने का कोई कारण नहीं

दिखता। चूँकि तुम उस जैसे व्यक्ति के दूत हो, अतएव यहाँ पर तुम्हारी उपस्थिति से क्या लाभ है? निश्चय ही इस सभा में तुम्हारी उपस्थिति से कृष्ण लज्जित होंगे।"

आखिर कृष्ण ने गोपियों को किस तरह अनादर किया कि वे अपने मनों से उन्हें निकाल रही हैं? इसका उत्तर नीचे दिया जाता है :

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा

सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक् ।

परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा

ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः॥

"अब कृष्ण हमें अपने अधरों का मोहक अमृत नहीं देते, उसे अब वे मथुरा की स्त्रियों को देते हैं। कृष्ण हमारे मनों को प्रत्यक्ष रूप से आकृष्ट करते हैं, किन्तु वे तुम भौंरे जैसे ही हैं, क्योंकि वे एक सुन्दर फूल का संग छोड़कर दूसरे निकृष्ट फूल पर चले जाते हैं। कृष्ण ने हमारे साथ ऐसा ही व्यवहार किया है। मेरी समझ में नहीं आता कि लक्ष्मीजी उनके चरणकमलों को छोड़ने के स्थान पर उनकी निरन्तर सेवा में क्यों लगी हुई हैं। स्पष्ट है कि वे कृष्ण के झूठे शब्दों पर विश्वास करती हैं। किन्तु हम गोपियाँ लक्ष्मीजी जैसी बुद्धिहीना नहीं हैं।"

भौंरे का मधुर गीत सुनकर तथा यह पहचानकर कि मेरे सन्तोष के लिए ही यह कृष्ण का गुणगान कर रहा है, एक गोपी ने उत्तर दिया :

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूनाम्

अधिपतिमगृहाणां अग्रतो नः पुराणम् ।

विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः

क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥

“हे भौंरे, कृष्ण का यहाँ कोई आवास नहीं है, किन्तु हम उन्हें यदुपति (यदुकुल के राजा) के रूप में जानती हैं। हम उन्हें भलीभाँति जानती हैं, अतएव हम उनके विषय में और अधिक गीत सुनने की इच्छुक नहीं हैं। अच्छा हो कि तुम ये गीत उनको सुनाओ, जो अब कृष्ण को अति प्रिय हैं। मथुरा की स्त्रियों को अब उनके द्वारा आलिंगित होने का अवसर मिला है। वे अब उनकी प्रियाएँ हैं, इसलिए अब वे उनके वक्षस्थलों की जलन को शान्त कर चुके हैं। यदि तुम वहाँ जाकर उन भाग्यशालिनी स्त्रियों के समक्ष अपने गीत गाओगे, तो वे अत्यन्त प्रसन्न होंगी और तुम्हारा आदर करेंगी।” ।

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः

कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः ।

चरणरज उपास्ते यस्त भूतिर्वयं का

अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥

“हे मधुसंग्राहक, हम गोपियों को न देखकर कृष्ण अत्यन्त दु:खी होंगे। निश्चय ही वे हमारी लीलाओं की स्मृतियों से खिन्न होंगे। इसलिए उन्होंने हम लोगों को तुष्ट करने के लिए तुम्हें दूत बनाकर भेजा है। तुम हमसे मत बोलो। तीनों लोकों में स्वर्ग, मध्य तथा अधोलोकों में-जहाँ मृत्यु अनिवार्य है, कृष्ण को सारी स्त्रियाँ उपलब्ध हैं, क्योंकि उनकी वक्र भौंहे अत्यन्त आकर्षक हैं। इतना ही नहीं, लक्ष्मीजी सदैव अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करती रहती हैं। उनकी तुलना में हम नगण्य हैं। निस्सन्देह, हम कुछ भी नहीं हैं। यद्यपि कृष्ण अत्यन्त चतुर हैं, किन्तु साथ ही अत्यन्त दानी भी हैं। तुम उनसे कहना कि अभागे व्यक्तियों के प्रति दयालुता के लिए उनकी प्रशंसा की जाती है और इसीलिए वे उत्तमश्लोक कहलाते हैं।”

विसृज शिरसि पादं वेम्यहं चाटुकारै

रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ।

स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका

व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन् ॥

“तुम मेरे पैरों पर इसलिए गुनगुना रहे हो कि तुम्हारे विगत अपराध क्षमा कर दिये जाँय। कृपा करके मेरे पाँवों से दूर हो जाओ ! मैं जानती हूँ कि मुकुन्द ने तुम्हें यह सिखाकर भेजा है कि तुम मधुर चापलूसी भरे वचन कहो और उनके दूत का कार्य करो। हे भौंरे, ये निश्चय ही कुछ कुटिल चालें हैं, जिन्हें मैं भलीभाँति समझती हूँ। यह कृष्ण का अपराध है। मैंने जो कुछ कहा है उसे कृष्ण से मत कहना, यद्यपि मैं जानती हूँ कि तुम अत्यन्त ईर्ष्यालु हो। हम गोपियों ने अपने पति, पुत्र तथा वे सारे धार्मिक सिद्धान्त, जिनसे अच्छा जन्म मिल सकता है, त्याग दिये हैं और अब हमारे पास कृष्ण की सेवा करने के अतिरिक्त कोई दूसरा कार्य नहीं है। फिर भी, कृष्ण ने अपने मन को वश में करके हम सबों को आसानी से भुला दिया है। अतएव अब उनके विषय में अधिक मत कहो। हमें अपना सम्बन्ध भूल जाने दो।”

मृगयुरिव कपीन्द्र विव्यधे लुब्धधर्मा

स्त्रियमकृतविरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ।

बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद्ध्वांक्षवद्यस्

तदलमसितसख्यै र्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥

“हे भौंरे, जब हम कृष्ण के विगत जन्मों का स्मरण करती हैं, तो हम उनसे अत्यधिक भयभीत हो उठती हैं। रामचन्द्र का अवतार लेकर, उन्होंने शिकारी जैसा कार्य किया और अन्यायपूर्वक अपने मित्र बालि को मार डाला। कामार्त शूर्पणखा रामचन्द्र की इच्छा पूरी करने आई, किन्तु वे सीतादेवी में इतने अनुरक्त थे कि उन्होंने शूर्पणखा की नाक काट ली। वामनदेव का अवतार लेकर उन्होंने बलि महाराज को लूट लिया और उनकी सारी सम्पत्ति ले ली और उनकी पूजा स्वीकार करने के बहाने उन्हें धोखा दिया । वामन देव ने बलि महाराज को उसी तरह पकड़ लिया, जिस तरह कोई कौवे को पकड़ ले। हे भौंरेऐसे

व्यक्ति से मित्रता रखना बहुत अच्छा नहीं है। मैं जानती हूँ कि जब कोई कृष्ण के विषय में बातें करने लगता है, तो उन्हें रोक पाना बहुत कठिन होता है, और मैं यह स्वीकार करती हूँ कि मुझमें उतनी शक्ति नहीं कि उनके विषय में बातें करना बन्द कर सकूँ।"

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्

सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः।

सपदि गृहकुटुम्ब दीनमुत्सृज्य दीना

बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥

"कृष्णविषयक कथाएँ इतनी बलशालिनी हैं कि वे चारों पुरुषार्थों-धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-को नष्ट कर देती हैं। जो भी अपने कानों के माध्यम से कृष्णकथा की एक छोटी-सी बूंद को भी पीता है, वह सारी भौतिक आसक्ति तथा ईर्ष्या से मुक्त हो जाता है। ऐसा व्यक्ति जीविका का कोई साधन न होते हुए पक्षी की तरह साधु बन जाता है और भिक्षा माँगकर जीवित रहता है। सामान्य पारिवारिक मामले उसके लिए कष्टप्रद बन जाते हैं और वह बिना आसक्ति के सहसा सब कुछ त्याग देता है। यद्यपि ऐसी विरक्ति उपयुक्त होती है, किन्तु स्त्री होने के कारण मैं इसे ग्रहण करने में असमर्थ हूँ।"

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः

कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हिरण्यः ।

ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्र-

स्मररुज उपमन्त्रिन् भाण्यतामन्यवार्ता ॥

"हे दूत, मैं उस मूर्ख पक्षी के तुल्य हूँ, जो शिकारी के मधुर संगीत को सुनता है और सरलतावश उस पर विश्वास करने से उसके हृदय को बेध दिया जाता है तथा सभी प्रकार के कष्ट सहने को वह बाध्य हो जाता है। चूंकि हमने कृष्ण के वचनों पर विश्वास किया है, इसलिए हमें अत्यधिक पीड़ा हुई है। निस्सन्देह,

कृष्ण के नाखूनों के स्पर्श से हमारे मुख घायल हुए हैं। उन्होंने हमें कितनी पीड़ा पहुँचायी है! अतएव तुम उनकी कथा मत चलाओ। तुम कोई अन्य बात कहो।"

श्रीमती राधिका से ये सारी बातें सुनकर भौंरा चला गया, किन्तु वह फिर से लौटा। कुछ सोच-विचार के बाद गोपी ने कहा :

प्रियसख पुनरागा: प्रेयसा प्रेषित: किं

वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसिमेऽङ्ग ।

नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्व

सततमुरुसि सौम्य श्रीर्वधू: साकमास्ते ॥

"तुम कृष्ण के अत्यन्त प्रिय मित्र हो और उनकी आज्ञा से तुम यहाँ फिर से आये हो। इसलिए तुम मेरे लिए पूज्य हो। हे दूतश्रेष्ठ, अब मुझसे कहो कि तुम क्या कहना चाहते हो? तुम्हें क्या चाहिए? कृष्ण माधुर्य प्रेम नहीं त्याग सकते, इसलिए मेरी समझ में तुम हमें लेने आये हो। किन्तु तुम ऐसा कैसे करोगे ? हम जानती हैं कि इस समय कृष्ण के वक्षस्थल पर अनेक लक्ष्मियों का वास है और वे निरन्तर हमसे बढ़कर कृष्ण की सेवा कर रही हैं।"

भौंरे की भद्रता की प्रशंसा करते हुए वे परम हर्ष से बोलीं।

अपि बत मधुपूर्याम् आर्यपुत्रोऽधुनास्ते

स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान् ।

क्वचिदपि स कथा नः किंकरीणां गृणीते

भुजमगुरुसुगन्धं मूर्त्यधास्यत् कदा नु ॥

“अब कृष्ण वृन्दावन की गोपियों को भुलाकर मथुरा में गुरुकुल के भद्र व्यक्ति की तरह रह रहे हैं। किन्तु क्या वे अपने पिता नन्द महाराज के प्रिय घर का स्मरण नहीं करते ? हम सभी उनकी स्वाभाविक दासियाँ हैं। क्या वे हम सबों का स्मरण नहीं करते ? क्या वे कभी हमारे विषय में बातें करते हैं या वे हमें पूरी तरह से भूल चुके हैं? क्या वे कभी हमें क्षमा करके एक बार फिर उन अगुरु से सुगन्धित अपने हाथों से हमारा स्पर्श करेंगे?”

महिषीर गीत येन ‘दशमे'र शेषे ।

पण्डिते ना बुझे तार अर्थ-विशेषे ॥ 108॥

महिषीर-रानियों के; गीत-गीत; येन-जैसे; दशमेर-दसवें स्कन्ध के; शेषे–अन्त में; पण्डिते-अत्यन्त विद्वान पण्डित; ना-नहीं; बुझे-समझते; तार-उसके; अर्थ-विशेषे-विशेष अर्थ को।

अनुवाद

श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्त में वर्णित द्वारका की रानियों के गीत विशेष अर्थपूर्ण हैं। उन्हें बड़े-बड़े पंडित भी नहीं समझ पाते।

तात्पर्य

ये गीत श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के नब्बेवें अध्याय के श्लोक 15-24 के रूप में हैं।

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे

स्वपिति जगति रात्र्याम् ईश्वरो गुप्तबोधः ।

वयमिव सखि कच्चिदगाढनिर्भिन्नचेता

नलिननयन हासोदारलीलेक्षितेन ॥

सारी रानियाँ निरन्तर कृष्ण के विषय में सोचती रहतीं। जलक्रीड़ा के बाद रानियों ने कहा, "हे प्रिय मित्र कुररी, अब कृष्ण सोये हुए हैं, किन्तु हम उनके कारण रातभर जागती रहती हैं। तुम हमें रात में जागी देखकर हम पर हँसती हो, किन्तु तुम क्यों नहीं सो रही? तुम कृष्ण के विचारों में डूबी जान पड़ती हो। क्या तुम भी कृष्ण की हँसी से बिंधी हुई हो? उनकी हँसी अत्यन्त मधुर है। जो ऐसे तीर से बिंधा हो, वह अत्यन्त भाग्यशाली है।"

नेत्रे निमीलयसिनक्तमदृष्टबन्धु-

स्त्वम् रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकी।

दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां

किंवा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥

"हे चक्रवाकी, रात में तुम अपनी आँखें खोले रहती हो, क्योंकि तुम अपने मित्र को नहीं देख सकती। निस्सन्देह, तुम्हें अतीव कष्ट होता है। क्या तुम करुणावश रुदन करती हो या तुम कृष्ण का स्मरण करके उन्हें पकड़ने का प्रयास करती हो? कृष्ण के चरणकमलों का स्पर्श पाकर सारी रानियाँ अत्यन्त सुखी हैं। क्या तुम कृष्ण की माला अपने सिर पर धारण करना चाहती हो? हे चक्रवाकी, कृपया तुम इन प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर दो, जिससे हम समझ सकें।"

भो भोः सदा निष्टनसे उदन्वन्

अलब्धनिद्रोऽधिगत प्रजागरः।

किं वा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः

प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥

"हे सागर, तुम्हें रात में शान्ति से सोने का अवसर नहीं मिल पाता। इसके बदले तुम सदैव जागे रहकर रोते रहते हो। तुम्हें यह वर मिला है और तुम्हारा हृदय हमारी ही तरह भग्न है। मुकुन्द का हमारे साथ

केवल इतना ही कार्य है कि वे हमारे कुंकुम चिह्नों को पोंछ लेते हैं। हे सागर, तुम हमारे समान ही कष्ट पाते हो।"

त्वं यक्ष्मणा बलवतासि गृहीत इन्दो

क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि ।

कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं

विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥

"हे चन्द्रमा, ऐसा लगता है कि तुम्हें तीव्र ज्वर है, शायद यक्ष्मा है। निस्सन्देह, तुम्हारे तेज में अन्धकार को नष्ट करने की शक्ति नहीं है। क्या तुम कृष्ण का संगीत सुनकर पागल हो गये हो? क्या इसीलिए तुम मौन हो? तुम्हारा कष्ट देखकर हमें लगता है कि तुम हम में से एक हो।"

किं त्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ।

गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरन् ॥

"हे मलय समीर, कृपा करके हमसे कहो कि हमने तुम्हें क्या हानि पहुँचाई है। तुम हमारे हृदयों में इच्छाओं की ज्वाला क्यों भड़का रहे हो? हम तो गोविन्द की चितवन रूपी तीर से बिंधी हुई हैं, क्योंकि वे कामदेव के प्रभाव को जागृत करने की कला में निपुण हैं।"

मेघ श्रीमांस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनं

श्रीवत्साङ्कं वयमिव भवान् ध्यायति प्रेमबद्धः ।

अत्युत्कण्ठः शवलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः

स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः ॥

“हे प्रिय मेघ, हे कृष्ण के मित्र, क्या तुम हम रानियों की तरह, जो कि कृष्ण के प्रेम में जुड़ी हुई हैं, कृष्ण के वक्षस्थल के श्रीवत्स चिह्न के विषय में सोच रहे हो? शायद तुम कृष्ण की संगति का स्मरण करते हुए उनके ध्यान में मग्न हो, इसीलिए तुम दु:ख के आँसू बहा रहे हो।”

प्रियरावपदानि भाषसे

मृतसञ्जीविकयानया गिरा ।

करवाणि किमद्य ते प्रियं

वद मे वल्गितकण्ठ कोकिल ॥

"हे प्रिय कोयल, तुम्हारी वाणी अत्यन्त मधुर है और अन्यों का अनुकरण करने में तुम अत्यन्त निपुण हो। तुम अपनी वाणी से मृत शरीर को भी उत्तेजित कर सकते हो। इसलिए रानियों से कहो कि उनका उत्तम व्यवहार ही उनका उचित कर्तव्य है।”

न चलसि न वदस्युदारबुद्धे

क्षितिधर चिन्तयसे महान्तमर्थम् ।

अपिबत वसुदेवनन्दनाङ्घ्रि

वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥

“हे वदान्य पर्वत, तुम अत्यन्त उदार तथा गम्भीर हो और कुछ महान् कार्य करने के विचार में खोये रहते हो। हमारी ही तरह तुमने अपने हृदय में वसुदेव पुत्र कृष्ण के चरणकमलों को धारण करने का व्रत ले रखा है।”

शुष्यद्ग्रदाः कर्शिता बत सिन्धु-पत्न्यः

सम्प्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः ।

यद्वद्वयं मधुपतेः प्रणयावलोकम्

अप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्षिताः स्म ॥

“हे सागरपत्नी नदियों, हम देखती हैं कि समुद्र तुम्हें सुख नहीं देता। इसीलिए तुम लगभग सूख गई हो और तुममें सुन्दर कमल विद्यमान नहीं हैं। वे कमल क्षीण हो गये हैं और धूप में भी सारे आनन्द से विहीन हैं। इसी तरह हम अभागी रानियों के हृदय भी सूख चुके हैं और हमारे शरीर क्षीण हो गये हैं, क्योंकि हम अब मधुपति के प्रेम से विहीन हैं। क्या तुम भी हमारी तरह शुष्क, सौन्दर्यविहीन हो, क्योंकि तुम कृष्ण की प्रेमभरी चितवन से वंचित हो?”

हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्गशौरेः कथां

दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा ।

किंवा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद् भजामो वयं

क्षौद्रालापयकामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥

“हे हंस, तुम इतनी प्रसन्नतापूर्वक यहाँ आये हो! तुम्हारा स्वागत है। हमारे विचार से तुम सदैव कृष्ण के दूत बने रहते हो। अब तुम यह दूध पीते हुए हमें यह बताओ कि उनका सन्देश क्या है। क्या कृष्ण ने हमारे विषय में तुमसे कुछ कहा है? क्या हम तुमसे पूछ सकती हैं कि क्या कृष्ण सुखी हैं? हम यही जानना चाहती हैं। क्या वे हमारा स्मरण करते हैं? हम जानती हैं कि एकमात्र लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती हैं। हम तो केवल उनकी दासियाँ हैं। भला हम उनकी पूजा कैसे कर सकती हैं, जो मधुर शब्द बोलते हैं, किन्तु कभी हमारी इच्छाएँ पूरी नहीं करते हैं ?”

महाप्रभु-नित्यानन्द, दोंहार दासेर दास ।

यारे कृपा करेन, तार हय इथे विश्वास ॥109॥

महाप्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभु; नित्यानन्द–भगवान् नित्यानन्द; दोंहार दासेर दास-मैं इन दोनों के दास का दास हूँ; यारे कृपा करेन-यदि कोई उनकी कृपा प्राप्त करता है; तार हय-वह अवश्य रखता है; इथे विश्वास-इन बातों में श्रद्धा।

अनुवाद

यदि कोई व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के दासों का दास बन जाता है और उनकी कृपा प्राप्त कर लेता है, तो वह इन सारी बातों पर विश्वास कर सकता है।

श्रद्धा करि, शुन इहा, शुनिते महा-सुख ।

खण्डिबे आध्यात्मिकादि कुतर्कादि-दुःख ॥ 110॥

श्रद्धा करि–महान् श्रद्धा के साथ; शुन-सुनो; इहा-ये सब विषय; शुनिते-सुनना भी; महा-सुख-महान् आनन्द; खण्डिबे–वह नाश करेगा; आध्यात्मिक-आदि-शरीर, मन इत्यादि से प्राप्त कष्ट; कुतर्क-आदि-दुःख–तथा कुतर्क के प्रयोग से उत्पन्न दुःखदायक दशा।

अनुवाद

इन कथाओं को श्रद्धापूर्वक सुनने का प्रयास करो, क्योंकि इनके सुनने में भी परम आनन्द होता है। इसे सुनने से शरीर, मन तथा अन्य जीवों से सम्बन्धित सारे कष्ट नष्ट हो जायेंगे और उसी के साथ मिथ्या तर्कों का दुःख भी दूर हो जायेगा।

चैतन्य-चरितामृत—नित्य-नूतन ।

शुनिते शुनिते जुड़ाय हृदय-श्रवण ॥111॥

चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; नित्य-नूतन-नित्य नवीन; शुनिते शुनिते-सुनते रहने से; जुड़ाय-शान्त होते हैं; हृदय-श्रवण-कान तथा हृदय।

अनुवाद

श्री चैतन्य चरितामृत नित्य नवीन है। इसको बार-बार सुनने से मनुष्य के हृदय तथा कान शान्त होते हैं।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥112॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों में; यार-जिसकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर, मैं कृष्णदास, श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्यलीला के अन्तर्गत श्री चैतन्य महाप्रभु का अचिन्त्य व्यवहार शीर्षक उन्नीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय बीस

शिक्षाष्टक प्रार्थनाएँ

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में बीसवें अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रामानन्द राय के साथ शिक्षाष्टक प्रार्थनाओं के अर्थ का आस्वादन करते हुए रातें बिताईं। कभी वे जयदेव गोस्वामी के गीत गोविन्द से श्लोक सुनाते तो कभी श्रीमद्भागवत से, कभी श्रीरामानन्द राय कृत जगन्नाथ वल्लभ नाटक से, तो कभी बिल्वमंगल ठाकुर कृत कृष्ण कर्णामृत से। इस तरह वे भावों में ही डूबे रहते। श्री चैतन्य महाप्रभु बारह वर्षों तक जगन्नाथपुरी में रहे और इतने काल तक वे ऐसे दिव्य श्लोक सुनाकर उनका आस्वादन करते रहे। महाप्रभु कुल मिलाकर अड़तालीस वर्षों तक इस मर्त्य जगत् में रहे। महाप्रभु के अन्तर्धान होने का संकेत करने के बाद श्री चैतन्य चरितामृत के रचनाकार ने सम्पूर्ण अन्त्य लीला का संक्षिप्त विवरण देते हुए अपने ग्रन्थ का समापन किया है।

प्रेमोद्भावित-हर्षेर्ष्योद्वेग-दैन्यार्ति-मिश्रितम् ।

लपितं गौरचन्द्रस्य भाग्यवद्भिर्निषेव्यते ॥1॥

प्रेम-उद्भावित–प्रेमावेश तथा भाव से उत्पन्न; हर्ष-हर्ष; ईर्ष्या-ईर्ष्या; उद्वेग-उद्वेग; दैन्य-दैन्य; आर्ति–संताप; मिश्रितम्-के साथ मिश्रित; लपितम्-उन्मतत्त व्यक्ति की तरह बातें; गौर-चन्द्रस्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; भाग्यवद्भिः---अत्यन्त भाग्यवान द्वारा; निषेव्यते-आस्वाद्य।

अनुवाद

केवल अति भाग्यशाली व्यक्ति ही श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रलापों का आस्वादन करेगा, क्योंकि वे हर्ष, ईर्ष्या, उद्वेग, दैन्य तथा संताप से मिश्रित हैं और सभी प्रेमावेश से उत्पन्न होते हैं।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय जय; गौरचन्द्र-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-श्री नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत चन्द्र की जय हो तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो! ।

एइ-मत महाप्रभु वैसे नीलाचले ।

रजनी-दिवसे कृष्ण-विरहे विह्वले ॥3॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; वैसे नीलाचले-नीलाचल में रहे; रजनी-दिवसे–दिन-रात; कृष्ण-विरहे-कृष्ण के विरह के कारण; विह्वले–अभिभूत ।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु इस तरह से जगन्नाथ पुरी (नीलाचल) में निवास कर रहे थे, तब वे रात-दिन लगातार कृष्ण के विरह से अभिभूत रहते थे।

स्वरूप, रामानन्द,—एइ दुइजन-सने ।

रात्रि-दिने रस-गीत-श्लोक आस्वादने ॥4॥

स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; रामानन्द-रामानन्द राय; एइ-ये; दुइ-जन-सने-दोनों व्यक्ति के साथ; रात्रि-दिने-दिन-रात; रस-गीत-श्लोक-दिव्य आनन्द के रस से युक्त श्लोक तथा गीत; आस्वादने-आस्वादन करने में।

अनुवाद

वे स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रामानन्द राय, इन दो संगियों के साथ रात-दिन दिव्य आनन्दमय गीतों तथा श्लोकों का आस्वादन करते थे।

नाना-भाव उठे प्रभुर हर्ष, शोक, रोष ।

दैन्योद्वेग-आर्ति उत्कण्ठा, सन्तोष ॥5॥

नाना-भाव-सब प्रकार के भाव; उठे-जायत होते; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; हर्ष-हर्ष; शोक-शोक; रोष-क्रोध; दैन्य-दैन्य; उद्वेग-उद्वेग; आर्ति-संताप; उत्कण्ठा-उत्कण्ठा; सन्तोष–सन्तोष।

अनुवाद

वे विविध दिव्य भावों के लक्षणों यथा हर्ष, शोक, रोष, दैन्य, उद्वेग, संताप, उत्कण्ठा तथा सन्तोष का आस्वादन करते।

सेइ सेइ भावे निज-श्लोक पड़िया ।

श्लोकेर अर्थ आस्वादये दुइ-बन्धु लञा ॥6॥

सेइ सेइ भावे-उस विशेष भाव में; निज-श्लोक पड़िया-अपने श्लोक पढ़ते; श्लोकेर-श्लोकों का; अर्थ-अर्थ; आस्वादये-आस्वादन करते; दुइ-बन्धु लञा-दो मित्रों के साथ।

अनुवाद

वे अपने बनाये श्लोक सुनाते और उनके अर्थ तथा भाव बतलाते। इस तरह वे अपने इन दो मित्रों के साथ उनका आस्वादन करके आनन्द लेते।

कोन दिने कोन भावे श्लोक-पठन ।

सेइ श्लोक आस्वादिते रात्रि-जागरण ॥7॥

कोन दिने-कभी-कभी; कोन भावे-कुछ भाव में; श्लोक-पठन–श्लोक पढ़कर; सेइ श्लोक-वे श्लोक; आस्वादिते-आस्वादन करने के लिए; रात्रि-जागरण-रातभर जागते रहते।

अनुवाद

कभी-कभी महाप्रभु किसी विशेष भाव में डूब जाते और उससे सम्बन्धित श्लोक सुनाकर तथा उसका आस्वादन करते हुए रातभर जगे रहते।

हर्षे प्रभु कहेन,–"शुन स्वरूप-राम-राय ।

नाम-सङ्कीर्तन–कलौ परम उपाय ॥8॥

हर्षे–हर्ष में प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहेन–कहा; शुन–कृपया सुनो; स्वरूप-राम-राय-हे प्रिय स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रामानन्द राय; नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन; कलौ–कलियुग में; परम उपाय–मुक्ति पाने का सर्वसुलभ साधन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने परम हर्ष में कहा, "हे स्वरूप दामोदर तथा रामानन्द राय, तुम मुझसे जान लो कि इस कलियुग में पवित्र नामों का कीर्तन ही मुक्ति का सर्वसुलभ साधन है।

सङ्कीर्तन-यज्ञे कलौ कृष्ण-आराधन ।

सेइ त' सुमेधा पाय कृष्णेर चरण ॥9॥

सङ्कीर्तन-यज्ञे-हरे कृष्ण महामन्त्र के संकीर्तन का यज्ञ; कलौ–इस कलियुग में; कृष्ण-आराधन-कृष्ण की पूजा की विधि; सेइ त'-ऐसा व्यक्ति; सु-मेधा-अत्यन्त बुद्धिमान; पाय-पाता है; कृष्णेर चरण-कृष्ण के चरणकमलों में आश्रय।

अनुवाद

इस कलियुग में कृष्ण की आराधना की विधि यह है कि भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन द्वारा यज्ञ किया जाय। जो ऐसा करता है, वह निश्चय ही अत्यन्त बुद्धिमान है और वह कृष्ण के चरणकमलों में शरण प्राप्त करता है।

तात्पर्य

अधिक जानकारी हेतु देखें आदि लीला, अध्याय तीन, श्लोक 77-78 ।

कृष्ण-वर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गात्र-पार्षदम् ।

यज्ञैः सङ्कीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सु-मेधसः ॥10॥

कृष्ण-वर्णम्-कृष्ण वर्गों का उच्चार करने वाले; त्विषा–आभा के साथ; अकृष्णम्-श्याम नहीं (सुनहरी); स-अङ्ग-पार्षदों के साथ; उपाङ्ग–सेवकों; अस्त्र-अस्त्रों; पार्षदम्-विश्वस्त साथियों; यज्ञैः-यज्ञ द्वारा; सङ्कीर्तन-प्रायैः–मुख्य रूप से संकीर्तन द्वारा; यजन्ति–वे पूजा करते हैं; हि-निश्चय ही; सु-मेधसः–बुद्धिमान व्यक्ति।

अनुवाद

"कलियुग में बुद्धिमान व्यक्ति निरन्तर कृष्ण नाम का गायन करने वाले ईश्वर के अवतार की पूजा करने के लिए संकीर्तन करते हैं। यद्यपि उनका वर्ण श्याम नहीं है, तो भी वे साक्षात् कृष्ण हैं। वे अपने पार्षदों, सेवकों, अस्त्रों तथा विश्वस्त संगियों से युक्त हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक सन्त करभाजन द्वारा श्रीमद्भागवत (11.5.32) में कहा गया है। अधिक जानकारी के लिए देखें आदि लीला, अध्याय 3, श्लोक 52।

नाम-सङ्कीर्तन हैते सर्वानर्थ-नाश ।

सर्व-शुभोदय, कृष्ण-प्रेमेर उल्लास ॥11॥

नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन से; हैते–से; सर्व-अनर्थ-नाश-समस्त अवांछित वस्तुओं का नाश; सर्व-शुभ-उदय-सद्भाग्य का उदय; कृष्ण-प्रेमेर उल्लास-कृष्ण-प्रेम के प्रवाह का शुभारम्भ ।

अनुवाद

एकमात्र भगवान् कृष्ण के नाम का कीर्तन करने से मनुष्य समस्त अवांछित अभ्यासों से मुक्त हो सकता है। यह समस्त सौभाग्य के उदय कराने तथा कृष्ण-प्रेम की तरंगों के प्रवाह को शुभारम्भ कराने का साधन है।

चेतो-दर्पण-मार्जनं भव-महा-दावाग्नि-निर्वापणं

श्रेयः-कैरव-चन्द्रिका-वितरणं विद्या-वधू-जीवनम् ।

आनन्दाम्बुधि-वर्धनं प्रति-पदं पूर्णामृतास्वादनं

सर्वात्म-स्नपनं परं विजयते श्री-कृष्ण-सङ्कीर्तनम् ॥12॥

चेतः-हृदय के; दर्पण-दर्पण को; मार्जनम्-स्वच्छ करता है; भव-भवसागर की; महा-दाव-अग्नि-महदावाग्नि; निर्वापणम्-बुझाता है; श्रेयः-सौभग्य का; कैरव-श्वेत कमल; चन्द्रिका-चाँदनी; वितरणम्-फैलाता है; विद्या-सर्व ज्ञान का; वधू-वधू; जीवनम्-जीवन; आनन्द-आनन्द के; अम्बुधि-सागर की; वर्धनम्-वृद्धि करता है; प्रति-पदम्-प्रत्येक पग पर; पूर्ण-अमृत–पूर्ण अमृत का; आस्वादनम्-आस्वादन

करता है; सर्व-सब को; आत्म-स्नपनम्-आत्मा का स्नान; परम्-दिव्य; विजयते विजय हो; श्री-कृष्ण-सङ्कीर्तनम्-कृष्ण के पवित्र नाम के संकीर्तन की।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम के संकीर्तन की परम विजय हो, जो हृदय रूपी दर्पण को स्वच्छ बना सकता है और भवसागर रूपी प्रज्वलित अग्नि के दुःखों का शमन कर सकता है। यह संकीर्तन उस वर्धमान चन्द्रमा के समान है, जो समस्त जीवों के लिए सौभाग्य रूपी श्वेत कमल का वितरण करता है। यह समस्त विद्या का जीवन है। कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन दिव्य जीवन के आनन्दमय सागर विस्तार करता है। यह सबों को शीतलता प्रदान करता है और मनुष्य को प्रति पग पर पूर्ण अमृत का आस्वादन करने में समर्थ बनाता है।

तात्पर्य

यह श्री चैतन्य महाप्रभु के शिक्षाष्टक का प्रथम श्लोक है। अन्य सात श्लोक 16, 21, 29, 32, 36, 39 तथा 47 क्रमांक के श्लोकों के रूप में मिलेंगे।

सङ्कीर्तन हैते पाप-संसार-नाशन।

चित्त-शुद्धि, सर्व-भक्ति-साधन-उद्गम॥ 13॥

सङ्कीर्तन हैते–पवित्र नाम के जप की विधि से; पाप-संसार-नाशन-पापों से उत्पन्न भौतिकतावादी जीवन का नाश; चित्त-शुद्धि-हृदय की शुद्धि; सर्व-भक्ति-सभी प्रकार की भक्ति; साधन–सभी प्रकार की साधना; उद्गम-उदय।

अनुवाद

हरे कृष्ण मन्त्र का सामूहिक कीर्तन करने से मनुष्य संसार की पापमय स्थिति का विनाश कर सकता है, अपने मलीन हृदय को स्वच्छ कर सकता है और सभी प्रकार की भक्ति का उदय कर सकता है।

कृष्ण-प्रेमोद्गम, प्रेमामृत-आस्वादन ।

कृष्ण-प्राप्ति, सेवामृत-समुद्रे मज्जन ॥ 14॥

कृष्ण-प्रेम-उद्गम-कृष्ण-प्रेम का उदय; प्रेम-अमृत-आस्वादन-कृष्ण-प्रेम के दिव्य आनन्द का आस्वाद; कृष्ण-प्राप्ति-कृष्ण के चरणकमलों की प्राप्ति; सेवा-अमृत-सेवा के अमृत के; समुद्रे-सागर में; मज्जन–निमग्न।

अनुवाद

कीर्तन के फलस्वरूप मनुष्य में कृष्ण-प्रेम का उदय होता है और वह दिव्य आनन्द का आस्वादन करता है। अन्ततोगत्वा उसे कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त होता है और वह उनकी भक्ति में लग जाता है, मानो वह प्रेम के महासागर में निमग्न हो रहा हो।"

उठिल विषाद, दैन्य,—पड़े आपन-श्लोक ।

याहार अर्थ शुनि' सब याय दुःख-शोक ॥15॥

उठिल विषाद-शोक का उदय हुआ; दैन्य-दैन्य; पड़े-पढ़ा; आपन-श्लोक-अपना निजी श्लोक; याहार–जिसका; अर्थ शुनि'–अर्थ सुनकर; सब-सब; याय–चले गये; दुःख-शोक-दुःख तथा शोक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्तर में विषाद तथा दैन्य भावों का उदय हो आया और वे स्वनिर्मित दूसरा श्लोक सुनाने लगे। उस श्लोक का अर्थ सुनकर मनुष्य सारे दुःख तथा शोक को भूल सकता है।

नाम्नामकारि बहुधा निज-सर्व-शक्तिस्

तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।

एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि

दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥ 16 ॥

नाम्नाम्-भगवान् का पवित्र नाम; अकारि-प्रकट हुए; बहुधा–विविध प्रकार के; निज-सर्व-शक्तिः–सर्व प्रकार की निजी शक्तियाँ; तत्र—उसमें; अर्पिता-भर दी हैं; नियमितः–नियम; स्मरणे-स्मरण करने में; न-नहीं; कालः–काल का विचार; एतादृशी-इतनी ; तव-आपकी; कृपा-कृपा; भगवन्-हे प्रभु; मम–मेरा; अपि-यद्यपि; दुर्दैवम् दुर्भाग्य; ईदृशम्-ऐसा; इह-इस (पवित्र नाम) में; अजनि-उत्पन्न हुआ; न–नहीं; अनुरागः-अनुराग।

अनुवाद

"हे प्रभु, हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, आपके पवित्र नाम में जीव के लिए सर्व सौभाग्य निहित है, अतः आपके अनेक नाम हैं यथा कृष्ण तथा गोविन्द, जिनके द्वारा आप अपना विस्तार करते हैं। आपने अपने इन नामों में अपनी सारी शक्तियाँ भर दी हैं और उनका स्मरण करने के लिए कोई निश्चित नियम भी नहीं हैं। हे प्रभु, यद्यपि आप अपने पवित्र नामों की उदारतापूर्वक शिक्षा देकर पतित बद्ध जीवों पर ऐसी कृपा करते हैं, किन्तु मैं इतना अभागा हूँ कि मैं पवित्र नाम का जप करते समय अपराध करता हैं, अतः मुझ में जप करने के लिए अनुराग उत्पन्न नहीं हो पाता है।'

अनेक-लोकेर वाञ्छा—अनेक-प्रकार ।

कृपाते करिल अनेक-नामेर प्रचार ॥17॥

अनेक-लोकेर–अनेक लोगों की; वाञ्छा-इच्छाएँ; अनेक प्रकार–अनेक प्रकार की; कृपाते-आपकी कृपा से; करिल-आपने किया है; अनेक-अनेक; नामेर-पवित्र नाम का; प्रचार–प्रचार॥

अनुवाद

"चूंकि लोगों की इच्छाओं में विविधता है, इसीलिए आपने कृपा करके विविध नामों का वितरण किया है।

खाइते शुइते यथा तथा नाम लय ।

काल-देश-नियम नाहि, सर्व सिद्धि हय ॥18॥

खाइते-खाते समय; शुड़ते-सोते समय; यथा-जैसे; तथा-वैसे; नाम लय-पवित्र नाम लेता है; काल-काल में; देश-स्थान में; नियम-नियम; नाहि-नहीं है; सर्व सिद्धि हय–सर्व सिद्धि प्राप्त करता है।

अनुवाद

"देश या काल से निरपेक्ष जो व्यक्ति खाते तथा सोते समय भी पवित्र नाम का उच्चारण करता है, वह सर्व सिद्धि प्राप्त करता है।

“सर्व-शक्ति नामे दिला करिया विभाग।

आमार दुर्दैव,—नामे नाहि अनुराग!!” ॥19॥

सर्व-शक्ति-सारी शक्तियाँ; नामे–पवित्र नाम में; दिला-आपने प्रदान की है; करिया विभाग–विभाग करके; आमार दुर्दैव-मेरा दुर्भाग्य; नामे–पवित्र नामों के जप में; नाहि-नहीं है; अनुराग–अनुराग॥

अनुवाद

“आपने अपने हर नाम में अपनी पूरी शक्ति भर दी है, किन्तु मैं इतना अभागा हूँ कि मुझमें आपके पवित्र नाम के कीर्तन के प्रति कोई अनुराग नहीं है।”

ये-रूपे लइले नाम प्रेम उपजय ।

ताहार लक्षण शुन, स्वरूप-राम-राय ॥20॥

ये-रूपे—जिस विधि से; ल-इले–यदि कीर्तन; नाम-पवित्र नाम; प्रेम उपजय-कृष्ण का सुप्त प्रेम जायत होता है; ताहार लक्षण शुन-उसके लक्षण सुनो; स्वरूप-राम-राय-हे स्वरूप दामोदर तथा रामानन्द राय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "हे स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रामानन्द राय, मुझसे तुम उन लक्षणों को सुनो, जिस प्रकार मनुष्य को अपने सुप्त कृष्ण-प्रेम को सुगमता से जागृत करने के लिए हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करना चाहिए।

तृणादपि सु-नीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मान-देन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥21॥

तृणात् अपि-रास्ते पर पड़े हुए तृण से भी; सु-नीचेन-अधिक नीच; तरोः–वृक्ष के; इव-समान; सहिष्णुना-सहिष्णु; अमानिना-मिथ्या गर्व से रहित; मान-देन–सब को सम्मान देते हुए; कीर्तनीयः-कीर्तन करता है; सदा-सदैव; हरिः-भगवान् के पवित्र नाम का।

अनुवाद

"जो अपने आपको घास से भी तुच्छ मानता है, जो वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु है तथा जो निजी सम्मान न चाहकर अन्यों को आदर देने के लिए सदैव तत्पर रहता है, वह सदैव भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन अत्यन्त सुगमता से कर सकता है।'

उत्तम हञा आपनाके माने तृणाधम ।

दुइ-प्रकारे सहिष्णुता करे वृक्ष-सम ॥22॥

उत्तम हञा–अत्यन्त उन्नत होते हुए भी; आपनाके–स्वयं; माने-मानता है; तृण-अधम-धरती पर पड़े हुए तृण से भी नीच; दुइ-प्रकारे—दो प्रकार से; सहिष्णुता–सहिष्णु; करे-करता है; वृक्ष-सम-वृक्ष के समान।

अनुवाद

ये उसके लक्षण हैं, जो हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करता है। यद्यपि वह अति उत्तम होता है, किन्तु वह अपने आपको धरती की घास से भी तुच्छ मानता है और वृक्ष की तरह वह दो प्रकार से सब कुछ सहन करता है।

वृक्ष येन काटिलेह किछु ना बोलय ।

शुकाञा मैलेह कारे पानी ना मागय ॥ 23 ॥

वृक्ष-वृक्ष; येन-जैसे; काटिलेह-जब काटा जाता है; किछु ना बोलय-कुछ कहता नहीं; शुकाञा-सूखने पर; मैलेह-यदि मर रहा है; कारे-किसी से; पानि–पानी; ना मागय–माँगता नहीं।

अनुवाद

“जब वृक्ष को काटा जाता है, तब वह कुछ बोलता नहीं है और सूखते रहने पर भी कभी किसी से पानी नहीं माँगता।

येइ ये मागये, तारे देय आपन-धन ।

घर्म-वृष्टि सहे, आनेर करये रक्षण ॥24॥

येइ ये मागये-यदि कोई वृक्ष से कुछ माँगता है; तारे—उसको; देय-देता है; आपन-धन-अपनी सम्पत्ति; घर्म-वृष्टि-सूर्य की तपती धूप तथा वर्षा की झड़ी; सहे-सहन करता है; आनेर-अन्यों को; करये रक्षण-आश्रय देता है।

अनुवाद

"वृक्ष हर किसी को अपने फल, फूल तथा जो भी उसके पास होता है, दे देता है। वह तपती धूप तथा वर्षा की झड़ी को सहन करता है, फिर भी वह अन्यों को आश्रय देता है।

उत्तम हञा वैष्णव हबे निरभिमान ।

जीवे सम्मान दिले जानि' 'कृष्ण'-अधिष्ठान ॥25॥

उत्तम हञा–अत्यन्त उन्नत होने पर भी; वैष्णव-भक्त; हबे-होता है; निरभिमान-निराभिमानी; जीवे हर एक जीव के प्रति सम्मान दिबे-सम्मान देता है; जानि'–जानकर; कृष्ण-अधिष्ठान-कृष्ण का रहने का स्थान।

अनुवाद

"यद्यपि वैष्णव अत्युच्च व्यक्ति होता है, तो भी वह निरभिमानी होता है और हर एक को कृष्ण का रहने का स्थान समझकर उसका आदर करता है।

एइ-मत हञा येइ कृष्ण-नाम लय ।

श्री कृष्ण-चरणे ताँर प्रेम उपजय ॥ 26 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; हञा–होकर; येइ-जो कोई भी; कृष्ण-नाम लय-कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करता है; श्री-कृष्ण-चरणे-भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में; ताँर-उसका; प्रेम उपजय-कृष्ण-प्रेम जागृत होता है।

अनुवाद

"यदि कोई इस तरह से कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करता है, तो वह निश्चय ही कृष्ण के चरणकमलों के प्रति अपना सुप्त प्रेम जागृत कर लेगा।"

कहिते कहिते प्रभुर दैन्य बाड़िला ।

'शुद्ध-भक्ति' कृष्ण-ठाञि मागिते लागिला ॥ 27॥

कहिते कहिते-इस तरह बोलते हुए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; दैन्य-दैन्य; बाड़िला–बढ़ गया; शुद्ध-भक्ति-शुद्ध भक्ति; कृष्ण-ठाञि-कृष्ण से; मागिते लागिला-प्रार्थना करने लगे।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु इस तरह बोल रहे थे, तो उनका दैन्य बढ़ गया और वे कृष्ण से शुद्ध भक्ति सम्पन्न कर पाने के लिए प्रार्थना करने लगे।

प्रेमेर स्वभाव—याहाँ प्रेमेर सम्बन्ध ।

सेइ माने,–'कृष्णे मोर नाहि प्रेम-गन्ध' ॥28॥

प्रेमेर स्वभाव-भगवत्प्रेम का स्वभाव; याहाँ-जहाँ; प्रेमेर सम्बन्ध-भगवत्प्रेम का सम्बन्ध; सेइ माने-वह मानता है; कृष्णे-भगवान् कृष्ण के प्रति; मोर-मेरा; नाहि नहीं है; प्रेम-गन्ध-रंच मात्र भी प्रेम।

अनुवाद

जहाँ भी भगवत्प्रेम का सम्बन्ध होता है, इसका स्वाभाविक लक्षण यही है कि भक्त अपने आपको भक्त नहीं समझता। बल्कि वह सदैव यही सोचता है कि उसमें कृष्ण के प्रति रंच मात्र भी प्रेम नहीं है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि जिन लोगों में भगवत्प्रेम या भक्ति का लेशमात्र भी नहीं होता, वे अपने आपको बहुत बड़े भक्त के रूप में विज्ञापित करते हैं, यद्यपि वे किसी भी समय भक्ति के दिव्य आनन्द का आस्वादन नहीं कर सकते। ऐसे तथाकथित भक्तों की एक श्रेणी, जो प्राकृत सहजिया के नाम से विख्यात है, कभी-कभी अपना सौभाग्य प्रदर्शित करने के लिए भक्ति के लक्षण प्रकट करते हैं। किन्तु वे केवल ढोंग करते हैं, क्योंकि ये भक्ति के लक्षण केवल बाहरी होते हैं। प्राकृत सहजिये इन लक्षणों को कृष्ण-प्रेम में अपनी तथाकथित प्रगति का विज्ञापन करने के लिए दिखाते हैं, किन्तु इन प्राकृत सहजियों के दिव्य भाव-लक्षणों की प्रशंसा करना तो दूर रहा, शुद्ध भक्तगण इनकी संगति तक नहीं करना चाहते। इसलिए प्राकृत सहजियों की शुद्ध भक्तों से तुलना करना उचित नहीं है। जब कोई सचमुच ही कृष्ण के प्रेम में प्रबुद्ध होता है, तो वह अपने आपको विज्ञापित करना नहीं चाहता, किन्तु भगवान् की अधिकाधिक सेवा करने का प्रयास करता है। प्राकृत सहजिये कभी-कभी शुद्ध भक्तों को दार्शनिक, पंडित, सत्य के ज्ञाता या सूक्ष्म दर्शन करने वाले कहकर उनकी आलोचना करते हैं, किन्तु उन्हें भक्त नहीं कहते। इतना ही नहीं, वे अपने आपको अत्यन्त उन्नत, दिव्य आनन्दमय भक्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो भक्ति में डूबे हुए तथा दिव्य रस का आस्वादन करने के लिए बावले रहते हैं। वे अपने आपको स्वतःस्फूर्त प्रेम में उन्नत भक्त, दिव्य रसों के ज्ञाता, कृष्ण के माधुर्यरस में सर्वोच्च भक्त इत्यादि के रूप में वर्णित करते हैं। वे ठीक से भगवत्प्रेम की दिव्य प्रकृति को न जानते हुए अपने भौतिक भावों को प्रगति का सूचक मान बैठते हैं। इस तरह वे भक्ति की विधि को दूषित करते हैं। वे वैष्णव साहित्य के प्रणेता बनने की चेष्टा में शुद्ध भक्ति के अन्तर्गत जीवन की भौतिक अनुभूतियों को प्रविष्ट कर देते हैं। अपनी भौतिक धारणाओं के कारण वे अपने आपको दिव्य रसों के ज्ञाता के रूप में विज्ञापित करते हैं, किन्तु वे भक्ति की दिव्य प्रकृति को नहीं समझते।

न धनं न जनं न सुन्दरीं

कवितां वा जगदीश कामये ।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे

भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥29॥

न-नहीं; धनम्-धन; न-नहीं; जनम्-अनुयायीगण; न-नहीं; सुन्दरीम्-सुन्दर स्त्री; कविताम्-अलंकारिक भाषा में वर्णित सकाम कर्म; वा-अथवा; जगत्-ईश-हे जगदीश; कामये-मैं चाहता हूँ; मम-मेरा; जन्मनि-जन्म; जन्मनि-जन्मांतर; ईश्वरे-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की; भवतात्-हो; भक्तिः–भक्ति; अहैतुकी-अहैतुकी; त्वयि-आपके प्रति।

अनुवाद

“हे जगदीश, मुझे भौतिक सम्पत्ति, भौतिकतावादी अनुयायी, सुन्दर पत्नी या आलंकारिक भाषा में वर्णित सकाम कर्मों की कामना नहीं है। मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि मैं जन्म-जन्मांतर आपकी अहैतुकी भक्ति करता रहूँ।'

“धन, जन नाहि मागों, कविता सुन्दरी।

‘शुद्ध-भक्ति' देह' मोरे, कृष्ण कृपा करि"" ॥ 30॥

धन-धन; जन-अनुयायीगण; नाहि-नहीं; मागों-मैं चाहता; कविता सुन्दरी-सुन्दर पत्नी या सकाम कर्म; शुद्ध-भक्ति-शुद्ध भक्ति; देह'–कृपया प्रदान करें; मोरे-मुझे; कृष्ण-हे भगवान् कृष्ण; कृपा करि’–कृपा करके।

अनुवाद

“हे कृष्ण, मैं आपसे न तो भौतिक सम्पत्ति चाहता हूँ, न अनुयायी, न सुन्दर स्त्री या सकाम कर्मों का फल चाहता हूँ। मेरी तो यही प्रार्थना है। कि आप अपनी अहैतुकी कृपा से मुझे जन्म-जन्मांतर अपनी शुद्ध भक्ति प्रदान करें।

अति-दैन्ये पुनः मागे दास्य-भक्ति-दान।

आपनारे करे संसारी जीव-अभिमान ॥ 31॥

अति-दैन्य-अत्यन्त दीनतापूर्वक; पुनः पुनः; मागे-याचना की; दास्य-भक्ति-दान-सेवाभाव में भक्ति का दान; आपनारे-स्वयं को; करे-करके; संसारी-भौतिकतावादी; जीव-अभिमान-बद्धजीव समझते हुए।

अनुवाद

अपने आपको भौतिक जगत् का बद्धजीव समझते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यन्त दीनतापूर्वक पुनः भगवान् की सेवा प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की।

अयि नन्द-तनुज किङ्करं

पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ ।

कृपया तव पाद-पङ्कज-

स्थित-धूली-सदृशं विचिन्तय ॥ 32॥

अयि-हे प्रभु; नन्द-तनुज-महाराज नन्द के पुत्र, कृष्ण; किङ्करम्-सेवक; पतितम्-पतित; माम्-मेरा; विषमे-विषम; भव-अम्बुधौ–भवसागर; कृपया-अहैतुकी कृपा से; तव-आपके; पाद-पङ्कज-चरणकमल; स्थित में स्थित; धूली-सदृशम्-धूलि के समान; विचिन्तय–कृपया समझें।

अनुवाद

“हे प्रभु, हे महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण!' मैं आपका सनातन सेवक हूँ, किन्तु अपने ही सकाम कर्मों के कारण मैं अज्ञान के इस भयावह समुद्र में गिर गया हूँ। अब आप मुझ पर अहैतुकी कृपा करें। मुझे अपने चरणकमलों की धूलि का एक कण मानें।'

“तोमार नित्य-दास मुइ, तोमा पासरिया ।

पड़ियाछों भवार्णवे माया-बद्ध हञा ॥ 33॥

तोमार-आपका; नित्य-दास–नित्य दास; मुइ-मैं; तोमा पासरिया-आपको भूलकर; पड़ियाछों-मैं पतित हो गया हूँ; भव-अर्णवे-भवसागर में; माया-बद्ध हञा-बहिरंगा शक्ति द्वारा बद्ध होकर।

अनुवाद

"मैं आपका नित्यदास हूँ, किन्तु मैंने आपको भुला दिया है। अब मैं अज्ञान के सागर में पतति हुआ हूँ और बहिरंगा शक्ति द्वारा बद्ध हुआ हूँ।

कृपा करि' कर मोरे पद-धूलि-सम ।

तोमार सेवक करों तोमार सेवन" ॥ 34॥

कृपा करि'–कृपालु होकर; कर-बनायें; मोरे-मुझे; पद-धूलि-सम-आपके चरणकमलों में धूल का एक कण; तोमार सेवक-चूँकि मैं आपका सनातन सेवक हूँ; करों-मुझे लगने दो; तोमार सेवन–आपकी सेवा में।

अनुवाद

"आप अपने चरणकमलों की धूल के कणों में मुझे स्थान देकर मुझ पर अहैतुकी कृपा करें, जिससे मैं आपके सनातन सेवक के रूप में आपकी सेवा में लग सकूँ।"

पुनः अति-उत्कण्ठा, दैन्य ह-इल उद्गम ।

कृष्ण-ठाञि मागे प्रेम-नाम-सङ्कीर्तन ॥ 35॥

पुनः–पुनः; अति-उत्कण्ठा-अत्यन्त उत्कण्ठा; दैन्य-दीनता; ह-इल उद्गम-का उदय हुआ; कृष्ण-थाञि-भगवान् कृष्ण से; मागे-प्रार्थना की; प्रेम-प्रेमावेश में; नाम-सङ्कीर्तन–महामन्त्र का कीर्तन।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु में सहज दीनता तथा उत्कण्ठा का उदय हुआ। उन्होंने कृष्ण से प्रार्थना की कि प्रेमावेश में महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए वे उन्हें सामर्थ्य दें।

नयनं गलदश्रु-धारया

वदनं गद्गद-रुद्धया गिरा ।

पुलकैर्निचितं वपुः कदा

तव नाम-ग्रहणे भविष्यति ॥ 36॥

नयनम्-नेत्र; गलत्-अश्रु-धारया-बहते हुए अश्रुओं की धारा; वदनम्-मुख; गद्गद गद्गद; रुद्धया–अवरुद्ध; गिरा-वाणी से; पुलकैः-दिव्य सुख के कारण रोमांच; निचितम्-आच्छादित; वपुः-देह; कदा-कब; तव-आपके; नाम-ग्रहणे-नाम का उच्चारण करने में; भविष्यति–होगा ।

अनुवाद

“हे प्रभु, कब आपके पवित्र नाम का कीर्तन करते हुए मेरे नेत्र प्रवहमान अश्रुओं से पूरित होकर सुशोभित होंगे? कब आपके पवित्र नाम का कीर्तन करते हुए दिव्य आनन्द में मेरी वाणी अवरूद्ध होगी और मेरे शरीर में रोमांच उत्पन्न होगा?’

“प्रेम-धन विना व्यर्थ दरिद्र जीवन ।

'दास’ करि’ वेतन मोरे देह प्रेम-धन" ॥ 37॥

प्रेम-धन-प्रेमावेश रूपी धन; विना के बिना; व्यर्थ-व्यर्थ; दरिद्र जीवन-दरिद्र जीवन; दास करि’-आपके सनातन सेवक के रूप में स्वीकार करके; वेतन-वेतन; मोरे-मुझे; देह-दीजिये; प्रेम-धन-भगवत्प्रेम रूपी धन।

अनुवाद

"भगवत्प्रेम के बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे अपने सनातन सेवक के रूप में स्वीकार करें और वेतन के रूप में मुझे भगवत्प्रेम प्रदान करें।"

रसान्तरावेशे ह-इल वियोग-स्फुरण ।

उद्वेग, विषाद, दैन्ये करे प्रलपन ॥ 38॥

रस-अन्तर-आवेशे विभिन्न रसों के लक्षणों वाला प्रेमावेश; ह-इल-हुई; वियोग-स्फुरण-वियोग की स्फुरणा; उद्वेग-उद्वेग; विषाद-विषाद; दैन्ये-दीनता; करे प्रलपन-उन्मत्त व्यक्ति की तरह बोलने लगे।

अनुवाद

कृष्ण के वियोग के कारण महाप्रभु में उद्वेग, विषाद तथा दैन्य नामक विविध रसों का उदय हो आया। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु उन्मत्त की तरह बोलने लगे।

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।

शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्द-विरहेण मे ॥ 39॥

युगायितम्-बड़े युग के समान; निमेषेण–क्षणभर में; चक्षुषा–आँखों से; प्रावृषायितम्-अश्रुओं की धारा बहती है; शून्यायितम्-शून्य लगता है; जगत्-जगत्; सर्वम्-सारा; गोविन्द-भगवान् गोविन्द, कृष्ण से; विरहेण मे-मेरे विरह के कारण।

अनुवाद

“हे गोविन्द, आपके वियोग में एक क्षण मुझे एक युग सा प्रतीत हो रहा है। मेरे नेत्रों से वर्षाधारा के समान अश्रु की धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं और मैं सारे जगत् को शून्य सा देखता हूँ।’

उद्वेगे दिवस ना याय, ‘क्षण' हैल 'युग'-सम ।

वर्षार मेघ-प्राय अश्रु वरिषे नयन ॥ 40 ॥

उद्वेगे-अत्यन्त उद्वेग के कारण; दिवस-दिन; ना-नहीं; याय-कटता; क्षण-क्षण; हैल-हो गया है; युग-सम-युग के समान; वर्षार-वर्षा ऋतु के; मेघ-प्राय-बादलों के समान; अश्रु-अश्रु; वरिषे–बरस रहे हैं; नयन-आँखों से।

अनुवाद

"उद्वेग के कारण मेरा दिन नहीं कटता, क्योंकि हर क्षण मुझे एक युग जैसा प्रतीत होता है। निरन्तर अश्रुपात करने से मेरी आँखें वर्षा ऋतु के बादलों जैसी बनी हुई हैं।

गोविन्द-विरहे शून्य ह-इल त्रिभुवन ।

तुषानले पोड़े,—येन ना याय जीवन ॥41॥

गोविन्द-विरहे–गोविन्द के विरह के कारण; शून्य-शून्य; ह-इल-हो गये हैं; त्रि-भुवन–तीनों भुवन; तुष-अनले–मन्द अग्नि में; पोड़े-जलता है; येन-जैसे; ना याय-नहीं जाता; जीवन-जीवन।

अनुवाद

गोविन्द के विरह के कारण तीनों जगत् शून्य बन चुके हैं। मुझे ऐसा लगता है कि मैं जीवित ही मन्द अग्नि में जला जा रहा हूँ।

कृष्ण उदासीन ह-इला करिते परीक्षण ।

सखी सब कहे,–'कृष्णे कर उपेक्षण' ॥42॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; उदासीन-उदासीन; ह-इला–हो गये हैं; करिते-करने के लिए; परीक्षण-परीक्षा; सखी सब कहे-सारी सखियाँ कहती हैं; कृष्णे-कृष्ण की; कर-करो; उपेक्षण-उपेक्षा।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण मेरे प्रेम की परीक्षा लेने के लिए मुझसे उदासीन हो गये हैं और मेरी सखियाँ कहती हैं, 'अच्छा हो कि तुम कृष्ण की उपेक्षा करो।"

एतेक चिन्तिते राधार निर्मल हृदय ।

स्वाभाविक प्रेमार स्वभाव करिल उदय ॥43॥

एतेक-इस प्रकार; चिन्तिते-सोचते हुए; राधार–श्रीमती राधारानी का; निर्मल हृदय-शुद्ध हृदय होने से; स्वाभाविक-स्वाभाविक; प्रेमार-कृष्ण-प्रेम; स्वभाव-स्वभाव; करिल उदय-उदय हुआ।

अनुवाद

जब श्रीमती राधारानी इस प्रकार सोच रही थीं, तब उनमें स्वाभाविक प्रेम के गुण प्रकट हो गये, क्योंकि उनका हृदय शुद्ध था।

ईर्ष्या, उत्कण्ठा, दैन्य, प्रौढ़ि, विनय ।

एत भाव एक-ठाञि करिल उदय ॥44॥

ईर्ष्या–ईर्ष्या; उत्कण्ठा-उत्कण्ठा; दैन्य-दीनता; प्रौढ़ि-उत्साह; विनय-विनय; एत भाव-ये सब दिव्य भाव; एक-ठाञि-एक स्थान पर; करिल उदय-उदित हुए।

अनुवाद

फिर तुरन्त ही ईर्ष्या, अत्यन्त उत्कण्ठा, दैन्य, उत्साह तथा विनय के भाव-लक्षण एक साथ प्रकट हो उठे।

एत भावे राधार मन अस्थिर ह-इला ।

सखी-गण-आगे प्रौढ़ि-श्लोक ये पड़िला ॥ 45 ॥

एत भावे-उस भाव में; राधार–श्रीमती राधारानी का; मन-मन; अस्थिर ह-इला-उत्तेजित हो गया; सखी-गण-आगे-सखियों के आगे; प्रौढ़ि-श्लोक-उन्नत भक्ति का श्लोक; ये-जो; पड़िला-उन्होंने पढ़ा।

अनुवाद

उस भाव में श्रीमती राधारानी का मन क्षुब्ध था, अतएव उन्होंने अपनी गोपी-सखियों से उत्तम भक्ति का एक श्लोक कहा।

सेइ भावे प्रभु सेइ श्लोक उच्चारिला ।

श्लोक उच्चारिते तद्रूप आपने ह-इला ॥46॥

सेइ भावे-उस भावावेश में; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सेइ-वह; श्लोक-श्लोक; उच्चारिला-सुनाया; श्लोक-श्लोक; उच्चारिते-सुनाने द्वारा; तत्-रूप-श्रीमती राधारानी के समान; आपने–स्वयं; ह-इला–हो गये।

अनुवाद

भाव के उस उन्माद में श्री चैतन्य महाप्रभु ने वह श्लोक सुनाया और ज्योंही उन्होंने श्लोक पढ़ा, उन्हें लगा कि वे श्रीमती राधारानी हैं।

आश्लिष्य वा पाद-रतां पिनष्टु माम्

अदर्शनान्मर्म-हतां करोतु वा ।

यथा तथा वा विदधातु लम्पटो

मत्प्राण-नाथस्तु स एव नापरः ॥47॥

आश्लिष्य-बड़े हर्ष से आलिंगन करके; वा–अथवा; पाद-रताम्-जो चरणकमलों में गिरा है; पिनष्टु-भले ही वे रौंद दें; माम्-मुझे; अदर्शनात्-दर्शन न देकर; मर्म-हताम्-हृदय तोड़ दें; करोतु-उन्हें करने

दो; वा-अथवा; यथा-जैसे (वे चाहें); तथा–वैसा; वा-अथवा; विदधातु-वे करें; लम्पटः-लम्पट, अन्य स्त्रियों के साथ सम्बन्ध रखनेवाले; मत्-प्राण-नाथः–मेरे प्राणनाथ; तु–किन्तु; सः-वे; एव–केवल; न अपरः-अन्य कोई नहीं।

अनुवाद

"अपने चरणकमलों पर पड़ी हुई इस दासी का कृष्ण गाढ़ आलिंगन करें या अपने पाँवों तले कुचल डालें अथवा कभी अपना दर्शन न देकर मेरा हृदय तोड़ दें। आखिर वे लम्पट हैं और जो चाहें सो कर सकते हैं, तो भी वे मेरे हृदय के परम आराध्य प्रभु हैं।'

"आमि—कृष्ण-पद-दासी, तेंहो—रस-सुख-राशि,

आलिङ्गिया करे आत्म-साथ ।

किबा ना देय दरशन, जारेन मोर तनु-मन,

तबु तेंहो—मोर प्राण-नाथ ॥48॥

आमि-मैं; कृष्ण-पद-दासी–कृष्ण के चरणकमलों की दासी; तेंहो-वे; रस-सुख-राशि-दिव्य रसों के आगर; आलिङ्गिया-आलिंगन करके; करे-करें; आत्म-साथ-विलीन; किबा–अथवा; ना देय न दें; दरशन-दर्शन; जारेन-क्षार करें; मोर-मेरा; तनु-मन-देह तथा मन; तबु–फिर भी; तेंहो-वे; मोर प्राण-नाथ-मेरे प्राणनाथ।

अनुवाद

"मैं कृष्ण के चरणकमलों की दासी हूँ। वे दिव्य सुख तथा रस के मूर्तिमन्त स्वरूप हैं। यदि वे चाहें तो मेरा गाढ़ आलिंगन कर सकते हैं और मुझे अपने साथ एकात्मता का अनुभव करा सकते हैं। अथवा मुझे अपना दर्शन न देकर वे मेरे मन तथा शरीर को जलाकर क्षार कर करते हैं। फिर भी वे ही मेरे प्राणनाथ हैं।

सखि हे, शुन मोर मनेर निश्चय

किबा अनुराग करे, किबा दुःख दिया मारे, ।

मोर प्राणेश्वर कृष्ण–अन्य नय ॥49॥

सखि हे हे प्रिय सखी; शुन-जरा सुनो; मोर-मेरे; मनेर-मन का; निश्चय-निश्चय; किबा–यदि; अनुराग–अनुराग; करे–दिखाते हैं; किबा-या; दुःख-दुःख; दिया-देकर; मारे-मारते हैं; मोर–मेरे; प्राण-ईश्वर-प्राणेश्वर; कृष्ण-कृष्ण; अन्य नय-अन्य कोई नहीं।

अनुवाद

"हे सखी, तुम मेरे मन का निर्णय सुन लो। समस्त परिस्थितियों में कृष्ण ही मेरे जीवन के स्वामी हैं, चाहे वे मुझसे प्रेम करें या दुःख दे देकर मुझे मार डालें।

छाड़ि' अन्य नारी-गण, मोर वश तनु-मन,

मोर सौभाग्य प्रकट करिया ।

ता-सबारे देय पीड़ा, आमा-सने करे क्रीड़ा,

सेइ नारी-गणे देखाञा ॥50॥

छाड़ि'–छोड़कर; अन्य-अन्य; नारी-गण-स्त्रियों का; मोर-मेरे; वश-वश में; तनु-मन-मन तथा देह; मोर-मेरा; सौभाग्य-सौभाग्य; प्रकट करिया-प्रकट करके; ता-सबारे उन सब को; देय पीड़ा-पीड़ा पहुँचाते हैं; आमा-सने मेरे साथ; करे क्रीड़ा-प्रेम व्यवहार करते हैं; सेइ नारी-गणे-इन स्त्रियों को; देखाञा-दिखाकर।

अनुवाद

"कभी-कभी कृष्ण अन्य गोपियों का साथ छोड़ देते हैं और उनका तन तथा मन मेरे द्वारा नियन्त्रित होता है। इस तरह वे मेरे सौभाग्य को प्रकट करते हैं और मेरे साथ प्रेमालाप करके अन्यों को पीड़ा पहुँचाते हैं।

किबा तेंहो लम्पट, शठ, धृष्ट, सकपट,

अन्य नारी-गण करि' साथ।

मोरे दिते मनः-पीड़ा, मोर आगे करे क्रीड़ा,

तबु तेंहो—मोर प्राण-नाथ ॥51॥

किबा-अथवा; तेंहो-वे; लम्पटलम्पट; शठ--शठ; धृष्ट-धृष्ट; सकपट-धोखा देने की प्रवृत्ति; अन्य-अन्य; नारी-गण-स्त्रियाँ; करि'–स्वीकार करके; साथ-साथी के रूप में; मोरे-मुझे; दिते-देने के लिए; मनः-पीड़ा-मन में पीड़ा; मोर आगे-मेरे ही सामने; करे क्रीड़ा-प्रेम-क्रीड़ा करते हैं; तबु–फिर भी; तेंहो-वे; मोर प्राण-नाथ–मेरे प्राणनाथ।

अनुवाद

"अथवा, चूंकि वे ठहरे अत्यन्त चतुर धृष्ट लम्पट जिसमें धोखा देने की प्रवृत्ति है, इसीलिए वे अन्य स्त्रियों का साथ करते हैं। तब वे उनके साथ, मेरे ही सामने मेरे मन को पीड़ा पहुँचाने के लिए प्रेमक्रीड़ा करने लगते हैं। इतने पर भी वे मेरे प्राणनाथ हैं।

ना गणि आपन-दुःख, सबे वाञ्छि ताँर सुख,

ताँर सुख–आमार तात्पर्य ।

मोरे यदि दिया दुःख, ताँर हैल महा-सुख,

सेइ दुःख–मोर सुख-वर्य ॥52॥

ना-नहीं; गणि-मैं गिनती हूँ; आपन-दुःख-मेरा खुद का दुःख; सबे-केवल; वाञ्छि– मैं चाहती हूँ; ताँर सुख–उनका सुख; ताँर सुख–उनका सुख; आमार तात्पर्य-मेरे जीवन का लक्ष्य; मोरे—मुझे; यदि-यदि; दिया दुःख-दुःख देने में; ताँर–उनका; हैल–होता है; महा-सुख-बड़ा सुख; सेइ दुःख-वह दुःख; मोर सुख-वर्य–मेरा सब से बड़ा सुख।

अनुवाद

"मुझे अपनी खुद की पीड़ा की चिन्ता नहीं है। मैं तो कृष्ण के सुख की ही कामना करती हैं, क्योंकि उनका सुख ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। किन्तु यदि वे मुझे पीड़ा देने में ही महान् सुख का अनुभव करते हैं, तो वह पीड़ा मेरा सबसे श्रेष्ठ सुख है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि भक्त अपने खुद के सुख तथा दुःख की चिन्ता नहीं करता। वह तो केवल कृष्ण को सुखी देखना चाहता है और इसी उद्देश्य से वह विविध कार्यों में लगा रहता है। शुद्ध भक्त को सुख की अनुभूति करने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नहीं होता कि वह यह देखे कि कृष्ण सभी प्रकार से सुखी हैं। यदि कृष्ण उसे पीड़ा पहुँचाकर सुखी बनते हैं, तो ऐसा भक्त उस दुःख को सबसे बड़े सुख के रूप में स्वीकार करता है। किन्तु जो भौतिकतावादी हैं, जो भौतिक सम्पत्ति पर बहुत गर्व करते हैं और जिन्हें कोई आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता यथा प्राकृत सहजिए, वे अपने ही सुख को जीवन का लक्ष्य मानते हैं। उनमें से कुछ कृष्ण के सुख में हिस्सा बँटाकर स्वयं भोग करने की महती आकांक्षा रखते हैं। यह उन सकाम कर्मियों की मनोवृत्ति है, जो कृष्ण की सेवा का प्रदर्शन करके इन्द्रियतृप्ति का आनन्द लेना चाहते हैं।

ये नारीरे वाञ्छे कृष्ण, तार रूपे सतृष्ण,

तारे ना पाञा हय दुःखी ।

मुइ तार पाय पड़ि', लञा याङ हाते धरि',

क्रीड़ा कराञा ताँरे करों सुखी ॥53॥

ये नारीरे—जिस स्त्री के; वाञ्छे कृष्ण-साथ की कृष्ण इच्छा करते हैं; तार रूपे सतृष्ण-उसके सौन्दर्य से आकृष्ट होकर; तारे-उसे; ना पाञा-न पाकर; हय दुःखी-दुःखी होते हैं; मुइ-मैं; तार पाय पड़ि'–उसके पैरों में गिरकर; लञा याङ–लेकर; हाते धरि'—हाथ पकड़कर; क्रीड़ा-क्रीड़ा; कराञा-करने के लिए; ताँरे–भगवान् कृष्ण; करों सुखी-मैं सुखी करती हूँ।

अनुवाद

यदि कृष्ण किसी अन्य स्त्री के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उसके साथ रमण करना चाहते हैं, किन्तु दुःखी रहते हैं कि वे उसे नहीं पा सकते, तो मैं उसके पाँवों पर गिरकर उसका हाथ पकड़कर कृष्ण के पास लाती हूँ। और उनकी प्रसन्नता के लिए उसे कृष्ण के साथ क्रीड़ा करने के लिए छोड़ देती हूँ।

कान्ता कृष्णे करे रोष, कृष्ण पाय सन्तोष,

सुख पाय ताड़न-भर्सने ।

यथा-योग्य करे मान, कृष्ण ताते सुख पान,

छाड़े मान अल्प-साधने ॥54॥

कान्ता–प्रिया; कृष्णे-भगवान् कृष्ण के प्रति; करे रोष-क्रोध प्रकट करती है; कृष्ण पाय सन्तोष-कृष्ण अत्यन्त तुष्ट होते हैं; सुख पाय–सुख पाते हैं; ताड़न-भर्सने–मर्सना के द्वारा; यथा-योग्य-यथा योग्य; करे मान-गर्व दिखाती है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ताते-ऐसे कार्यकलाप में; सुख पान-सुख पाते हैं; छाड़े मान-गर्व छोड़ देती है; अल्प-साधने-थोड़े प्रयत्न के बाद।

अनुवाद

“जब कोई प्रिया गोपी कृष्ण से क्रोध प्रकट करती है, तो कृष्ण अत्यन्त तुष्ट होते हैं। निस्सन्देह, जब उनकी ऐसी गोपी द्वारा भर्त्सना की जाती है, तब वे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। वह उपयुक्त ढंग से अपना गर्व प्रदर्शित करती है और कृष्ण उस मुद्रा का आनन्द लूटते हैं। तब वह कुछ प्रयत्न के बाद अपना गर्व छोड़ देती है।

सेइ नारी जीये केने, कृष्ण-मर्म व्यथा जाने,

तबु कृष्णे करे गाढ़ रोष ।

निज-सुखे माने काज, पड़ुक तार शिरे वाज,

कृष्णेर मात्र चाहिये सन्तोष ॥55॥

सेइ नारी-वह स्त्री; जीये-जीवित रहती है; केने-क्यों; कृष्ण-मर्म-कृष्ण का हृदय; व्यथा-दुःखी; जाने-जानते हुए; तबु-फिर भी; कृष्णे-कृष्ण को; करे-करती है; गाढ़ रोष-गहरा रोष; निज-सुखे-अपने सुख में; माने-मानती है; काज-एक मात्र कार्य; पड़क-गिरने दो; तारे—उसके; शिरे–सिर पर; वाज-वज्र; कृष्णेर-कृष्ण का; मात्र–केवल; चाहिये-हम चाहती हैं; सन्तोष-सुख॥

अनुवाद

“जो स्त्री जानती है कि कृष्ण का हृदय दुःखी है और फिर भी वह उनके प्रति अपना गहरा रोष प्रकट करती है, ऐसी स्त्री क्यों जीवित रहती है? वह अपने ही सुख में रुचि लेती है। मैं ऐसी स्त्री को धिक्कारती हूँ। उसके सिर पर वज्र गिरे, क्योंकि हम तो केवल कृष्ण का सुख चाहती हैं।

तात्पर्य

जो भक्त केवल अपनी ही इन्द्रियतृप्ति से तुष्ट होता है, वह निश्चय ही कृष्ण सेवा से पतित हो जाता है। भौतिक सुख से आकृष्ट होने के बाद वह प्राकृत सहजियों का साथ कर लेता है, जो अभक्त माने जाते हैं।

ये गोपी मोर करे द्वेषे, कृष्णेर करे सन्तोषे,

कृष्ण यारे करे अभिलाष ।

मुइ तार घरे याञा, तारे सेवों दासी हञा,

तबे मोर सुखेर उल्लास ॥56॥

ये गोपी-कोई गोपी जो; मोर-मुझे; करे द्वेषे-ईर्ष्या दिखाती है; कृष्णेर करे सन्तोषे–किन्तु कृष्ण को तुष्ट करती है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण को; यारे-जिसको; करे-करते हैं; अभिलाष—इच्छा; मुइ-मैं; तार-उसके; घरे याञा-घर जाकर; तारे सेवों-उसकी सेवा करूँगी; दासी हञा–दासी बनकर; तबे-तब; मोर-मेरा; सुखेर उल्लास-सुख का उदय।

अनुवाद

“यदि मुझसे ईर्ष्या करने वाली कोई गोपी कृष्ण को तुष्ट करती है और कृष्ण उसे चाहने लगते हैं, तो मैं उसके घर जाने में नहीं हिचकेंगी और उसकी दासी बन जाऊँगी, क्योंकि तब मेरा सुख जाग्रत हो उठेगा।

कुष्ठी-विप्रेर रमणी, पतिव्रता-शिरोमणि,

पति लागि’ कैला वेश्यार सेवा ।

स्तम्भिल सूर्येर गति, जीयाइल मृत पति,

तुष्ट कैल मुख्य तिन-देवा ॥57॥

कुष्ठी-विप्रेर–कुष्ठ रोग से पीड़ित ब्राह्मण की; रमणी-पत्नी; पति-व्रता-शिरोमणि-सती स्त्रियों में श्रेष्ठ; पति लागि'-अपने पति के सन्तोष के लिए; कैला-की; वेश्यार सेवा–वेश्या की सेवा; स्तम्भिल-रोक दी; सूर्येर गति–सूर्य की गति; जीयाइल-जीवित किया; मृत पति-मृत पति को; तुष्ट कैल–तुष्ट किया; मुख्य–मुख्य; तिन-देवा–तीन देवताओं को।

अनुवाद

"कुष्ठरोग से पीड़ित ब्राह्मण की पत्नी ने अपने पति को तुष्ट करने के लिए एक वेश्या की सेवा करके अपने आपको सर्वश्रेष्ठ सती के रूप में प्रकट किया। इस तरह उसने सूर्य की गति रोक दी, अपने मृत पति को जीवित किया और तीन प्रमुख देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर) को तुष्ट किया।

तात्पर्य

आदित्य पुराण, मार्कण्डेय पुराण तथा पद्म पुराण में एक ब्राह्मण की कथा आती है, जो कुष्ठ रोग से पीड़ित था, किन्तु जिसकी पत्नी अत्यन्त आज्ञाकारिणी तथा सती थी। वह ब्राह्मण एक वेश्या के साथ सम्भोग करना चाहता था, अतएव उसकी पत्नी उस वेश्या के पास गई और उसकी दासी बन गई, जिससे उसके पति की सेवा के प्रति उसका ध्यान आकृष्ट हो। जब वह वेश्या उसके पति के साथ संभोग के लिए तैयार हो गई, तो वह सती अपने कोढ़ी पति को उसके पास ले आई। जब उस कोढ़ी पापी ब्राह्मण-पुत्र ने अपनी पत्नी के सतीत्व को देखा, तो उसके पापमय मनोभाव बदल गये। किन्तु घर आते समय उसका शरीर मार्कण्डेय ऋषि के शरीर से स्पर्श कर गया, जिन्होंने उसे सूर्योदय के साथ मर जाने का शाप दे दिया। वह स्त्री अपने सतीत्व के कारण अत्यन्त बलशाली थी। अतएव जब उसने शाप के विषय में सुना, तो उसने सूर्योदय को रोकने का व्रत लिया। अपने पति की सेवा करने के प्रबल निश्चय के कारण तीनों देवता–ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर–अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे यह वर दिया कि उसका पति स्वस्थ हो जाय और जीवित हो उठे। यह दृष्टान्त यहाँ पर इस बात पर बल देने के लिए दिया गया है कि

भक्त को केवल कृष्ण की तुष्टि हेतु निजी स्वार्थ के बिना अपने आपको उनकी सेवा में लगाना चाहिए। इससे उसका जीवन सफल हो जायेगा।

“कृष्ण—मोर जीवन, कृष्ण—मोर प्राण-धन,

कृष्ण—मोर प्राणेर पराण ।

हृदय-उपरे धरों, सेवा करि’ सुखी करों,

एइ मोर सदा रहे ध्यान ॥58॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मोर जीवन-मेरे जीवन और प्राण; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मोर प्राण-धन-मेरे जीवन के धन; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मोर प्राणेर पराण-मेरे प्राण के भी प्राण; हृदय-उपरे—मेरे हृदय में; धरों-मैं रखती हूँ; सेवा करि’-सेवा करके; सुखी करों-मैं सुखी करती हूँ; एइ–यह; मोर-मेरा; सदा-सदा; रहे-रहता है; ध्यान-ध्यान।

अनुवाद

“कृष्ण मेरे प्राण हैं। कृष्ण मेरे जीवन के धन हैं। निस्सन्देह, वे मेरे प्राण के भी प्राण हैं। इसलिए मैं उन्हें सदा अपने हृदय में रखती हूँ और सेवा करके उन्हें प्रसन्न करना चाहती हूँ। इसी पर मेरा निरन्तर ध्यान रहता है।

मोर सुख—सेवने, कृष्णेर सुख—सङ्गमे,

अतएव देह देङदान ।

कृष्ण मोरे ‘कान्ता' करि’, कहे मोरे ‘प्राणेश्वरि’,

मोर हय ‘दासी'-अभिमान ॥ 59॥

मोर सुख-मेरा सुख; सेवने-सेवा में; कृष्णेर सुख-कृष्ण का सुख; सङ्गमे मेरे साथ संग में; अतएव-अतः; देह-मेरा शरीर; देङ–मैं अर्पण करती हूँ; दान-दान में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; मोरे-मुझे; कान्ता करि'-प्रिया के रूप में स्वीकार करके; कहे-कहते हैं; मोरे-मुझे; प्राण-ईश्वर-प्राणेश्वरी; मोर-मेरा; हय-है; दासी-अभिमान-उनकी दासी समझकर।

अनुवाद

"मेरा सुख तो कृष्ण की सेवा में है और कृष्ण का सुख मेरे साथ संयोग में है। इसीलिए मैं अपना शरीर कृष्ण के चरणकमलों पर दान देती हूँ। वे मुझे अपनी प्रिया के रूप में स्वीकार करके मुझे सर्वाधिक प्रिय (प्रिया) कहकर पुकारते हैं। तभी मैं अपने आपको उनकी दासी करके मानती हूँ।

कान्त-सेवा-सुख-पूर, सङ्गम हैते सुमधुर,

ताते साक्षी लक्ष्मी ठाकुराणी ।

नारायण-हृदि स्थिति, तबु पाद-सेवाय मति,

सेवा करे 'दासी'-अभिमानी ॥ 60॥

कान्त-सेवा-सुख-पूर-भगवान् की सेवा सुख का घर है; सङ्गम हैते सु-मधुर-प्रत्यक्ष संयोग से भी मधुर; ताते—उसका; साक्षी-प्रमाण; लक्ष्मी ठाकुराणी लक्ष्मीजी; नारायण-हृदि-नारायण के हृदय पर; स्थिति-स्थित; तबु–फिर भी; पाद-सेवाय मति-चरणकमलों की सेवा करने की उनकी इच्छा; सेवा करे-सेवा करती हैं; दासी-अभिमानी-अपने आपको दासी समझकर।

अनुवाद

"मेरे प्रेमी की सेवा सुख का घर है और प्रेमी के प्रत्यक्ष संयोग की अपेक्षा अधिक मधुर है। इसका प्रमाण लक्ष्मीजी हैं, क्योंकि वे नारायण के हृदय पर निरन्तर रहते हुए भी उनके

चरणकमलों की सेवा करना चाहती हैं। इसीलिए वे अपने आपको दासी मानती हैं और उनकी निरन्तर सेवा करती हैं।"

एइ राधार वचन, विशुद्ध-प्रेम-लक्षण,

आस्वादये श्री-गौर-राय ।

भावे मन नहे स्थिर, सात्त्विके व्यापे शरीर,

मन-देह धरण ना याय ॥61॥

एइ-ये; राधार वचन–श्रीमती राधारानी के कथन; विशुद्ध-प्रेम-लक्षण-कृष्ण के शुद्ध प्रेम के लक्षण; आस्वादये-आस्वादन करते हैं; श्री-गौर-राय-श्री चैतन्य महाप्रभुः भावे--इस भाव के कारण; मन नहे स्थिर-मन स्थिर नहीं रहता; सात्त्विके-दिव्य प्रेम के लक्षण; व्यापे–व्याप्त होते हैं; शरीर-शरीर; मन-देह-मन तथा शरीर; धरण-धारण करना; ना याय–सम्भव नहीं है।

अनुवाद

श्रीमती राधारानी के ये कथन श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा आस्वादन किये गये शुद्ध कृष्ण-प्रेम के लक्षणों को प्रदर्शित करते हैं। उस प्रेमावेश में उनका मन अस्थिर रहता था। उनके सारे शरीर में दिव्य प्रेम के विकार व्याप्त हो जाते और वे अपने शरीर तथा मन को धारण नहीं कर पाते थे।

व्रजेर विशुद्ध-प्रेम,– येन जाम्बू-नद हेम,

आत्म-सुखेर याहाँ नाहि गन्ध ।

से प्रेम जाना'ते लोके, प्रभु कैला एइ श्लोके,

पदे कैला अर्थेर निर्बन्ध ॥ 62॥

व्रजेर-वृन्दावन का; विशुद्ध-प्रेम-कृष्ण का शुद्ध प्रेम; येन-जैसे; जाम्बू-नद हेम-जाम्बू नदी में पाया जाने वाला सुनहरा कण; आत्म-सुखेर–निजी इन्द्रियतृप्ति का; साहाँ-कहाँ; नाहि गन्ध--गन्ध भी नहीं है; से प्रेम-उस भगवत्प्रेम की; जाना 'ते लोके-लोगों में विज्ञापन करने हेतु; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला-लिखा है; एइ श्लोके–यह श्लोक; पदे विभिन्न पदों में; कैला अर्थेर निर्बन्ध–वास्तविक अर्थ को स्पष्ट किया है।

अनुवाद

"वृन्दावन में शुद्ध भक्ति जाम्बू नदी में सुनहले कण के समान है। वृन्दावन में निजी इन्द्रियतृप्ति का रंच मात्र भी अस्तित्त्व नहीं है। ऐसे ही शुद्ध प्रेम को इस भौतिक जगत् में विज्ञापित करने हेतु श्री चैतन्य महाप्रभु ने पिछला श्लोक लिखा है और उसकी व्याख्या की है।

तात्पर्य

यहाँ जिस श्लोक का उल्लेख किया गया है, वह श्लोक 47 है, जो कि शिक्षाष्टक का आठवाँ श्लोक है।

एइ-मत महाप्रभु भावाविष्ट हञा ।

प्रलाप करिला तत् तत् श्लोक पड़िया ॥ 63॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भाव-आविष्ट हञा–प्रेमावेश से अभिभूत होकर; प्रलाप करिला-उन्मत्त शब्द कहे; तत्-तत्-उपयुक्त; श्लोक पड़िया-श्लोक सुनाकर।

अनुवाद

इस तरह प्रेमावेश से अभिभूत होकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्मत्त की तरह बोलकर उपयुक्त श्लोक सुनाये।

पूर्वे अष्ट-श्लोक करि' लोके शिक्षा दिला ।

सेइ अष्ट-श्लोकेर अर्थ आपने आस्वादिला ॥64॥

पूर्वे-पहले; अष्ट-श्लोक करि'-आठ श्लोकों की रचना करके; लोके शिक्षा दिला–सामान्य लोगों के शिक्षा दी; सेइ-वे; अष्ट-श्लोकेर-आठ श्लोकों का; अर्थ-अर्थ; आपने आस्वादिला–स्वयं आस्वादन किया।

अनुवाद

महाप्रभु ने पहले इन आठ श्लोकों की रचना सामान्य जनों को शिक्षा देने के लिए की थी। अब उन्होंने स्वयं इन श्लोकों के अर्थ का आस्वादन किया, जिन्हें शिक्षाष्टक कहा जाता है।

प्रभुर 'शिक्षाष्टक'-श्लोक येइ पड़े, शुने ।

कृष्णे प्रेम-भक्ति तार बाड़े दिने-दिने ॥65॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; शिक्षा-अष्टक-शिक्षाष्टक के; श्लोक-श्लोक; येइ-जो कोई भी; पड़े-पढ़ता है; शुने–या सुनता है; कृष्णे-भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेम-भक्ति-प्रेमावेश तथा भक्ति; तार-उसकी; बाड़े-बढ़ते हैं; दिने-दिने–दिन प्रतिदिन।

अनुवाद

यदि कोई व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा लिखित इन शिक्षाष्टक श्लोकों को सुनाता या सुनता है, तो कृष्ण के प्रति उसका प्रेमावेश तथा भक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं।

यद्यपिह प्रभु कोटी-समुद्र-गम्भीर ।

नाना-भाव-चन्द्रोदये हयेन अस्थिर ॥66॥

यद्यपिह-यद्यपि; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कोटी-समुद्र-गम्भीर-करोड़ों समुद्रों के समान गहन; नाना-विविध; भाव-भावावेश; चन्द्रोदये-चन्द्रोदय के कारण; हयेन-कभी हो जाते हैं; अस्थिर-अस्थिर।

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु करोड़ों समुद्रों के समान गहन तथा गम्भीर हैं, किन्तु जब उनके विविध भावों का चन्द्रमा उदय होता है, तब वे अस्थिर हो जाते हैं।

येइ येइ श्लोक जयदेव, भागवते ।

रायेर नाटके, येइ आर कर्णामृते ॥67॥

सेइ सेइ भावे श्लोक करिया पठने ।

सेइ सेइ भावावेशे करेन आस्वादने ॥ 68॥

येइ येइ-जब जब; श्लोक-श्लोक; जयदेव-जयदेव गोस्वामी; भागवते-श्रीमद्भागवत; रायेर नाटके-रामानन्द राय द्वारा रचित नाटक; येइ-जो भी; आर-एवं; कर्णामृते-बिल्वमंगल ठाकुर कृत कृष्ण कर्णामृत ग्रन्थ में; सेइ सेइ भावे-उन भावों में; श्लोक-श्लोक; करिया पठने–नियमित रूप से पढ़ते; सेइ सेइ-उसमें; भाव-आवेशे-भावावेश; करेन आस्वादने-वे आस्वादन करते।

अनुवाद

जब जब श्री चैतन्य महाप्रभु जयदेव कृत 'गीत गोविन्द, 'श्रीमद्भागवत,' रामानन्द राय कृत 'जगन्नाथ वल्लभ नाटक' तथा बिल्व मंगल ठाकुर कृत 'कृष्ण कर्णामृत' के श्लोक पढ़ते, तब तब वे उन श्लोकों के भावों से अभिभूत हो उठते। इस तरह वे उनके तात्पर्यों का आस्वादन करते।

द्वादश वत्सर ऐछे दशा–रात्रि-दिने ।

कृष्ण-रस आस्वादये दुइ-बन्धु-सने ॥ 69॥

द्वादश वत्सर-बारह वर्षों तक; ऐछे दशा-ऐसी अवस्था में; रात्रि-दिने दिन-रात; कृष्ण-रस-कृष्ण के सम्बन्ध में दिव्य आनन्द तथा रस; आस्वादये-वे आस्वादन करते; दुइ-बन्धु-सने-रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी दोनों मित्रों के साथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु बारह वर्षों तक रात-दिन ऐसी अवस्था में रहे। उन्होंने अपने दोनों मित्रों के साथ उन श्लोकों के अर्थ का आस्वादन किया, जो कृष्णभावनामृत के दिव्य आनन्द तथा रस के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

सेइ सब लीला-रस आपने अनन्त ।

सहस्र-वदने वर्णि' नाहि पान अन्त ॥ 70 ॥

सेइ सब-ये सब; लीला-रस-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के दिव्य रस; आपने–स्वयं; अनन्त-भगवान् अनन्त; सहस्र-वदने-अपने हजारों मुखों से; वर्णि'-वर्णन करते हुए; नाहि-नहीं; पान-पाते हैं; अन्त–अन्त।

अनुवाद

हजार मुखों वाले अनन्तदेव भी श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के दिव्य आनन्द का वर्णन करते हुए अन्त नहीं पाते।

जीव क्षुद्र-बुद्धि को ताहा पारे वर्णिते?।

तार एक कणा स्पर्शि आपना शोधिते ॥ 71॥

जीव-जीव; क्षुद्र-बुद्धि-क्षुद्र बुद्धि वाला; कोन्-जो; ताहा-वह; पारे-समर्थ है; वर्णिते-लिखने के लिए; तार-उसका; एक कणा-एक कण; स्पर्शि-में छूता हूँ; आपना शोधिते-मुझे शुद्ध करने के लिए।

अनुवाद

तो भला एक सामान्य जीव अपनी क्षुद्र बुद्धि द्वारा किस तरह ऐसी लीलाओं का वर्णन कर सकता है? फिर भी मैं अपने आपको शुद्ध करने के लिए उनके एक कण को छूने का प्रयास कर रहा हूँ।

यत चेष्टा, यत प्रलाप,–नाहि पारावार ।

सेइ सब वर्णिते ग्रन्थ हय सुविस्तार ॥72॥

यत चेष्टा-सारी चेष्टा; यत प्रलाप–सारा प्रलाप; नाहि पारावार-अन्त नहीं है; सेवा सब-उन सब का; वर्णिते-वर्णन करने में; ग्रन्थ-ग्रन्थ; हय-हो जायेगा; सु-विस्तार-बहुत विस्तृत ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों तथा उनके उन्माद के शब्दों की कोई सीमा नहीं है। इसलिए उन सबों का वर्णन करने से इस ग्रन्थ का कलेवर बहुत अधिक बढ़ जायेगा।

वृन्दावन-दास प्रथम ये लीला वर्णिल ।

सेइ-सब लीलार आमि सूत्र-मात्र कैल ॥73॥

वृन्दावन-दास-वृन्दावन दास ठाकुर; प्रथम-प्रथम; ये-जो भी; लीला-लीलाएँ; वर्णिल-वर्णित की हैं; सेइ-सब-वे सब; लीलार–लीलाओं का; आमि-मैंने; सूत्र-मात्र कैल-संक्षिप्त में दिया है।

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने जिन लीलाओं का सर्वप्रथम वर्णन किया है, उनको मैंने केवल संक्षिप्त में दे दिया है।

ताँर त्यक्त 'अवशेष' सङ्क्षेपे कहिल ।

लीलार बाहुल्ये ग्रन्थ तथापि बाड़िल ॥74॥

ताँर–उनकी; त्यक्त-बाकी बची; अवशेष-शेष; सङ्क्षेपे कहिल-मैंने संक्षेप में वर्णन किया है; लीलार बाहुल्ये-लीलाएँ अनेक होने के कारण; ग्रन्थ-यह ग्रन्थ; तथापि-तथापि; बाड़िल-बढ़ गया है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जिन लीलाओं का वर्णन वृन्दावन दास ठाकुर ने नहीं किया है, केवल उनका वर्णन मैंने अति संक्षेप में किया है। तो भी, ये दिव्य लीलाएँ इतनी अधिक हैं कि इस ग्रन्थ का कलेवर बढ़ गया है।

अतएव सेइ-सब लीला ना पारि वर्णिबारे ।

समाप्ति करिलुँ लीलाके करि' नमस्कारे ॥75 ॥

अतएव–अतः; सेइ-सब-ये सब; लीला-लीलाएँ; ना पारि-मैं समर्थ नहीं हूँ; वर्णिबारे-वर्णन करने में; समाप्ति करिलुँ-अब मैंने समाप्त की है; लीलाके-लीलाएँ; करि' नमस्कारे—मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

अनुवाद

चूँकि सारी लीलाओं का विस्तार से वर्णन कर पाना असम्भव है, इसलिए मैं यह वर्णन समाप्त करूँगा और उन्हें सादर नमस्कार करूँगा।

ये किछु करिलुँ एइ दिग्दरशन ।

एइ अनुसारे हबे तार आस्वादन ॥ 76 ॥

ये किछु–जो भी; कहिलुँ-मैंने कहा है; एइ–यह; दिक्-दरशन-केवल संकेत करने के लिए; एइ अनुसारे—इस प्रकार; हबे-होगा; तार-उसका; आस्वादन–आस्वादन।

अनुवाद

मैंने जो कुछ कहा है, वह मात्र संकेत है, किन्तु इस संकेत का अनुसरण करने पर मनुष्य श्री चैतन्य महाप्रभु की सारी लीलाओं का आस्वादन कर सकता है।

प्रभुर गम्भीर-लीला ना पारि बुझिते ।

बुद्धि-प्रवेश नाहि ताते, ना पारि वर्णिते ॥77॥

प्रभुर–श्री चैतन्य महाप्रभु की; गम्भीर-गम्भीर; लीला-लीलाएँ; ना पारि-मैं समर्थ नहीं हूँ; बुझिते-समझने के लिए; बुद्धि-प्रवेश नाहि-मेरी बुद्धि प्रवेश नहीं कर सकती; ताते-इसके कारण; ना पारि-मैं समर्थ नहीं हूँ; वर्णिते-यथायोग्य वर्णन करने के लिए।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की अत्यन्त गम्भीर तथा अर्थपूर्ण लीलाओं को नहीं समझ सकता। मेरी बुद्धि उनमें प्रवेश नहीं कर सकती, इसलिए मैं उनका उचित रीति से वर्णन नहीं कर सका।

सब श्रोता वैष्णवेर वन्दिया चरण ।

चैतन्य-चरित्र-वर्णन कैलुँ समापन ॥78 ॥

सब श्रोता-समस्त पाठक; वैष्णवेर-वैष्णवों के; वन्दिया चरण-चरणकमलों में सादर नमस्कार करते हुए; चैतन्य-चरित्र-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र का; वर्णन-वर्णन; कैलुँ-मैं कर रहा हूँ; समापन समाप्त।

अनुवाद

अपने समस्त वैष्णव पाठकों के चरणकमलों में सादर नमस्कार करके मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र का यह वर्णन समाप्त करूँगा।

आकाश–अनन्त, ताते यैछे पक्षि-गण ।

यार यत शक्ति, तत करे आरोहण ॥79॥

आकाश-आकाश; अनन्त-अनन्त; ताते—उस आकाश में; शैछे—जिस तरह; पक्षि-गण-सभी प्रकार के पक्षी; यार–किसी की; यत शक्ति-जो शक्ति; तत-उतना; करे आरोहण-ऊपर उठ सकता है।

अनुवाद

आकाश असीम है, किन्तु अनेक पक्षी अपनी अपनी क्षमता के अनुसार ऊँची से ऊँची उड़ान भरते हैं।

ऐछे महाप्रभुर लीला—नाहि ओर-पार ।

'जीव' हञा केबा सम्यक् पारे वर्णिबार? ॥80॥

ऐछे-इसी प्रकार; महाप्रभुर लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; नाहि ओर-पार-ऊपर या नीचे अन्त नहीं है; जीव हञा-सामान्य जीव होने के कारण; केबा-कौन; सम्यक् पूर्णतया; पारे-समर्थ है; वर्णिबार-वर्णन करने में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ असीम आकाश के समान हैं। तब भला कोई सामान्य जीव उन सबका वर्णन कैसे कर सकता है?

यावत् बुद्धिर गति, ततेक वर्णिलुँ ।

समुद्रेर मध्ये येन एक कण छुडिलुँ ॥81॥

यावत्-जहाँ तक; बुद्धिर गति–मेरी बुद्धि की मर्यादा है; ततेक-वहाँ तक; वर्णिलुँ–मैंने वर्णन किया है; समुद्रेर मध्ये–महान् समुद्र के बीच में; येन-जिस तरह; एक कण-एक कण; छुडिलुँ-मैंने स्पर्श किया है।

अनुवाद

मैंने अपनी बुद्धिभर उनका वर्णन करने का प्रयास किया है, मानो मैं महासागर के बीच में एक बूंद का स्पर्श करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

नित्यानन्द-कृपा-पात्र—वृन्दावन-दास ।

चैतन्य-लीलाय तेंहो हयेन 'आदि-व्यास' ॥82॥

नित्यानन्द-श्री नित्यानन्द प्रभु के; कृपा-पात्र–प्रिय भक्त; वृन्दावन-दास-वृन्दावन दास ठाकुर; चैतन्य-लीलाय-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीला में; तेंहो-वे; हयेन-हैं; आदि-व्यास-आदि व्यासदेव।

अनुवाद

वृन्दावन दास ठाकुर श्री नित्यानन्द प्रभु के प्रिय भक्त हैं, अतएव वे श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन करने में आदि व्यासदेव हैं।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि वृन्दावन दास ठाकुर के बाद के सारे लेखक, जो कि श्री चैतन्य महाप्रभु के शुद्ध भक्त हैं तथा जिन्होंने महाप्रभु के कार्यकलापों का वर्णन करने का प्रयास किया है, व्यास सदृश माने जाने चाहिए। चैतन्य लीला का वर्णन करने में श्रील वृन्दावन दास ठाकुर आदि व्यासदेव हैं और अन्य सारे भक्त जो कि श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन करके उनके पदचिह्नों का अनुसरण करते हैं, वे भी व्यासदेव कहलाये जाने चाहिए। प्रमाणित गुरु भी व्यास का

प्रतिनिधि होने के कारण, व्यास कहलाता है। ऐसे गुरु के जन्म दिन की पूजा करना व्यासपूजा कहलाता है।

ताँर आगे यद्यपि सब लीलार भाण्डार।

तथापि अल्प वर्णिया छाड़िलेन आर ॥83॥

ताँर आगे-उनके आगे; ग्रद्यपि यद्यपि; सब-सब; लीलार–लीलाओं का; भाण्डार-भण्डार; तथापि–फिर भी; अल्प-बहुत अल्प; वर्णिया-वर्णन किया; छाड़िलेन-उन्होंने छोड़ दिया; आर-अन्य को।

अनुवाद

यद्यपि वृन्दावन दास ठाकुर के पास, अपनी सीमाओं के अन्तर्गत, श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का पूरापूरा भण्डार था, किन्तु उन्होंने अधिकांश को छोड़कर केवल अल्पांश का वर्णन किया है।

ये किछु वर्णिलुँ, सेह सङ्क्षेप करिया।

लिखिते ना पारेन, तबु राखियाछेन लिखिया ॥84॥

ये किछु वर्णिलुँ–मैंने जो वर्णन किया है; सेह-उनका; सङ्क्षेप-संक्षेप में; करिया-करके; लिखिते ना पारेन-वृन्दावन दास ठाकुर ने वर्णन नहीं किया था; तबु-फिर भी; राखियाछेन–दिया है; लिखिया-लिखा हुआ।

अनुवाद

मैंने जिस अंश का वर्णन किया है, वह वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा छोड़ दिया गया था। किन्तु उन्होंने इन लीलाओं का वर्णन न करने पर भी हमें एक सारांश प्रदान किया है।

चैतन्य-मङ्गले तेंहो लिखियाछे स्थाने-स्थाने।

सेइ वचन शुन, सेइ परम-प्रमाणे ॥85 ॥

चैतन्य-मङ्गले- चैतन्य मंगल नामक ग्रन्थ; तेंहो-वृन्दावन दास ठाकुर; लिखियाछे-ने लिखा है; स्थाने-स्थाने-कुछ स्थानों पर; सेइ वचन शुन-कृपया उन वचनों को सुनें; सेइ परम-प्रमाणे-यही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।

अनुवाद

उन्होंने 'चैतन्य मंगल' (चैतन्य भागवत) नामक अपनी पुस्तक में अनेक स्थलों पर इन लीलाओं का वर्णन किया है। मैं अपने पाठकों से अनुरोध करता हूँ कि वे इस पुस्तक को सुनें, क्योंकि यह सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।

सङ्क्षेपे कहिलुँ, विस्तार ना याय कथने ।

विस्तारिया वेद-व्यास करिब वर्णने ॥86॥

सङ्क्षेपे कहिलुँ-मैंने बहुत संक्षेप में वर्णन किया है; विस्तार ना याय कथने-उनका पूरा वर्णन करना सम्भव नहीं है; विस्तारिया-विस्तार करेंगे; वेद-व्यास-व्यासदेव के प्रतिनिधि; करिब–करेंगे; वर्णने-वर्णन करने में।

अनुवाद

मैंने बहुत ही संक्षेप में लीलाओं का वर्णन किया है, क्योंकि उनका पूरी तरह से वर्णन कर पाना मेरे लिए असम्भव है। किन्तु भविष्य में वेदव्यास उनका विस्तार से वर्णन करेंगे।

चैतन्य-मङ्गले इहा लिखियाछे स्थाने-स्थाने ।

सत्य कहेन,–'आगे व्यास करिब वर्णने' ॥87॥

चैतन्य-मङ्गले- चैतन्य मंगल नामक ग्रन्थ में, जो अब चैतन्य भागवत के नाम से जाना जाता है; इहा-यह कथन; लिखियाछे-लिखा है; स्थाने-स्थाने-अनेक स्थानों पर; सत्य-सत्य; कहेन-वे कहते हैं; आगे-भविष्य में; व्यास करिब वर्णने–व्यासदेव अधिक विस्तार से वर्णित करेंगे।

अनुवाद

चैतन्य मंगल में श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने अनेक स्थानों पर यह यथार्थ सत्य लिखा है कि भविष्य में व्यासदेव इनका विस्तार से वर्णन करेंगे।

तात्पर्य

आगे व्यास करिब वर्णने कथन चैतन्य भागवत के एक श्लोक (आदि खण्ड, अध्याय 1, श्लोक 180) जैसा है, जिसमें वृन्दावन दास ठाकुर कहते हैं :

शेषखण्डे चैतन्येर अनन्त विलास ।

विस्तारिया वर्णिते आछेन वेदव्यास ॥

“श्री चैतन्य महाप्रभु की अनन्त लीलाओं का वर्णन भविष्य में व्यासदेव द्वारा किया जायेगा।” श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि ये कथन यह सूचित करते हैं कि भविष्य में व्यासदेव के अन्य प्रतिनिधि भगवान् चैतन्य की लीलाओं का विस्तार से वर्णन करेंगे। तात्पर्य यह है कि गुरु-शिष्य परम्परा में कोई शुद्ध भक्त, जो श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन करता है, वह व्यासदेव का प्रतिनिधि समझा जाता है।

चैतन्य-लीलामृत-सिन्धु–दुग्धाब्धि-समान ।

तृष्णानुरूप झारी भरि’ तेंहो कैला पान ॥88॥

चैतन्य-लीला-अमृत-सिन्धु-श्री चैतन्य महाप्रभु की अमृतमयी लीलाओं का सागर; दुग्ध-अब्धि-समान–दुग्ध के सागर के समान; तृष्णा-अनुरूप-अपनी तृष्णा के अनुसार; झारी-झारी, पात्र; भरि'–भरकर; तेंहो-उन्होंने; कैला पान-पान किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की अमृतमयी लीलाओं का सागर क्षीर सागर के समान है। वृन्दावन दास ठाकुर ने अपनी तृष्णा के अनुसार अपनी झारी (पात्र) भरी और उस सागर से पान किया।

ताँर झारी-शेषामृत किछु मोरे दिला ।

ततेके भरिल पेट, तृष्णा मोर गेला ॥89॥

ताँर झारी-शेष-अमृत-वृन्दावन दास ठाकुर के पात्र का शेष दूध; किछु-कुछ; मोरे दिला-मुझे दिया है; ततेके—उस शेष से; भरिल पेट-मेरा पेट भर गया है; तृष्णा मोर गेला–अब मेरी प्यास बुझ गई है।

अनुवाद

वृन्दावन दास ठाकुर ने जो भी दुग्ध, उच्छिष्ट रूप में मेरे लिए छोड़ा है, वह मेरा पेट भरने के लिए पर्याप्त है। अब मेरी तृष्णा पूरी तरह से बुझ गई है।

अमि—अति-क्षुद्र जीव, पक्षी राङ्गा-टुनि ।

से यैछे तृष्णाय पिये समुद्रेर पानी ॥90॥

तैछे आमि एक कण छुङिलुँ लीलार ।

एइ दृष्टान्ते जानिह प्रभुर लीलार विस्तार ॥91॥

आमि-मैं; अति-क्षुद्र जीव-एक अत्यन्त नगण्य जीव; पक्षी राङ्गा-टुनि-लाल चोंच वाले छोटे पक्षी जैसा; से-वह; यैछे—जिस तरह; तृष्णाय-तृष्णा में; पिये-पीता है; समुद्रेर पानी–समुद्र का पानी; तैछे-इसी तरह; आमि-मैं; एक कण-एक छोटे कण का; छुङिलुँ–स्पर्श किया है; लीलार–श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का; एइ दृष्टान्ते-इस उदाहरण से; जानिह–आप सब जान सकते हैं; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; लीलार विस्तार–लीलाओं का विस्तार।

अनुवाद

मैं छोटी लाल चोंच वाले पक्षी की तरह एक नगण्य जीव हूँ। जिस तरह यह पक्षी अपनी तृष्णा बुझाने के लिए समुद्र का जल पीता है, उसी तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के समुद्र में से केवल एक बूंद का स्पर्श किया है। इस उदाहरण से आप सब समझ सकते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ कितनी अपार विस्तीर्ण हैं।

‘आमि लिखि’,—एह मिथ्या करि अनुमान ।

आमार शरीर काष्ठ-पुतली-समान ॥92॥

आमि लिखि-मैं लिखता हूँ; एह मिथ्या-यह गलत है; करि अनुमान-मैं अनुमान करूँ; आमार शरीर-मेरा शरीर; काष्ठ-पुतली-समान-कठपुतली के समान ही है।

अनुवाद

मैं यह निष्कर्ष निकालें कि, “मैंने लिखा है तो यह गलत ज्ञान है, क्योंकि मेरा शरीर तो कठपुतली के समान है।

वृद्ध जरातुर आमि अन्ध, बधिर ।

हस्त हाले, मनो-बुद्धि नहे मोर स्थिर ॥93॥

वृद्ध–वृद्ध व्यक्ति; जरा-आतुर–असामर्थ्य से सताया गया; आमि-मैं; अन्ध-अन्ध; बधिर-बहरा; हस्त हाले-मेरे हाथ काँपते हैं; मनः-बुद्धि-मन तथा बुद्धि; नहे-नहीं; मोर–मेरे; स्थिर–स्थिर।

अनुवाद

मैं वृद्ध हो गया हूँ और असामर्थ्य से सताया हुआ हूँ। मैं लगभग अन्धा तथा बहरा हूँ, मेरे हाथ काँपते हैं और मेरे मन तथा बुद्धि अस्थिर हैं।

नाना-रोग-ग्रस्त,—चलिते वसिते ना पारि ।

पञ्च-रोग-पीड़ा-व्याकुल, रात्रि-दिने मरि ॥94॥

नाना-रोग-ग्रस्त–अनेक रोगों से ग्रस्त; चलिते-चलने में; वसिते-बैठने में; ना पारि-मैं ठीक से सक्षम नहीं हूँ; पञ्च-रोग-पीड़ा-व्याकुल-पाँच प्रकार के रोगों से सदा व्याकुल; रात्रि-दिने–दिन या रात; मरि-मैं कभी भी मर सकता हूँ।

अनुवाद

अनेक रोगों से ग्रस्त होने के कारण न तो मैं ठीक से चल पाता हूँ, न ठीक से बैठ पाता हूँ। मैं सदैव पाँच प्रकार के रोगों से व्याकुल रहता हूँ। मैं दिन या रात में किसी भी समय मर सकता हूँ।

पूर्वे ग्रन्थे इहा करियाछि निवेदन ।

तथापि लिखिये, शुन इहार कारण ॥ 95॥

पूर्वे-पहले; ग्रन्थे–ग्रन्थ में; इहा-इस; करियाछि निवेदन-मैंने निवेदन किया है; तथापि-फिर भी; लिखिये-मैं लिख रहा हूँ; शुन-कृपया सुनें; इहार कारण-इसका कारण।

अनुवाद

मैं पहले ही अपनी असमर्थताओं का लेखा-जोखा दे चुका हूँ। किन्तु फिर भी मैं लिख रहा हूँ, इसका कारण आप लोग कृपया सुनें।

श्री गोविन्द, श्री-चैतन्य, श्री-नित्यानन्द ।

श्री-अद्वैत, श्री-भक्त, आर श्री-श्रोतृ-वृन्द ॥ 96 ॥

श्री-स्वरूप, श्री-रूप, श्री-सनातन ।

श्री-रघुनाथदास श्री-गुरु, श्री-जीव-चरण ॥ 97॥

इँहा-सबार चरण-कृपाय लेखाय आमारे ।

आर एक हय,— तेंहो अति-कृपा करे ॥98॥

श्री-गोविन्द-श्री गोविन्ददेव; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभुः श्री-नित्यानन्द-भगवान् नित्याननन्द; श्री-अद्वैत-अद्वैत आचार्य; श्री-भक्त-अन्य भक्तगण; आर-भी; श्री-श्रोतृ-वृन्द-इस ग्रन्थ के पाठकगण; श्री-स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; श्री-रूप-श्री रूप गोस्वामी; श्री-सनातन-श्री सनातन गोस्वामी; श्री-रघुनाथ-दास-श्री रघुनाथ दास गोस्वामी; श्री-गुरु-मेरे गुरु; श्री-जीव-चरण-श्री जीव गोस्वामी के चरणकमल; इँहा सबार-उन सब के; चरण-कृपाय-चरणकमलों की कृपा से; लेखाय-के कारण लिख रहा हूँ; आमारे-मुझे; आर एक-अन्य एक; हय-हुई है; तेंहो-वे; अति-कृपा करे–अति कृपा की है।

अनुवाद

मैं यह ग्रन्थ श्री गोविन्द देव, श्री चैतन्य महाप्रभु, भगवान् नित्यानन्द, श्री अद्वैत आचार्य, अन्य भक्तगण तथा इस ग्रन्थ के पाठकगण एवं श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी, श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, अपने गुरु श्री रघुनाथ दास गोस्वामी तथा श्री जीव गोस्वामी

के चरणकमलों की कृपा से लिख रहा हूँ। एक अन्य परम पुरुष ने भी मुझ पर विशेष कृपा की है।

श्री-मदन-गोपाल मोरे लेखाय आज्ञा करि' ।

कहिते ना युयाय, तबु रहिते ना पारि ॥99॥

श्री-मदन-गोपाल-वृन्दावन के मदनमोहन विग्रह; मोरे-मुझे; लेखाय–लिखवाया; आज्ञा करि'-आदेश देकर; कहिते-कहना; ना युयाय-उचित नहीं है; तबु-फिर भी; रहिते-मौन रहना; ना पारि-मैं समर्थ नहीं हूँ।

अनुवाद

वृन्दावन के श्री मदनमोहन अर्चाविग्रह ने मुझे आदेश दिया, जिसके कारण मैं यह ग्रन्थ लिखने को बाध्य हुआ। यद्यपि इसको प्रकट नहीं करना चाहिए था, किन्तु मैं प्रकट कर रहा हूँ, क्योंकि मैं मौन नहीं रह सकता।

ना कहिले हय मोर कृत-घ्नता-दोष ।

दम्भ करि बलि' श्रोता, ना करिह रोष ॥100 ॥

ना कहिले–यदि मैं नहीं कहता; हय-होता है; मोर-मेरा; कृतघ्नता-दोष-अकृतज्ञता का दोष; दम्भ करि-मैं गर्वित हूँ; बलि'–मानकर; श्रोता-हे पाठकों; ना करिह रोष–रुष्ट न हों।

अनुवाद

यदि मैं इस बात को प्रकट न करता, तो मैं भगवान् के प्रति अकृतज्ञता का दोषी होता। इसीलिए हे पाठकों, आपलोग मुझे अधिक गर्वित मानकर मुझ पर रुष्ट न हों।

तोमा-सबार चरण-धूलि करिनु वन्दन ।

ताते चैतन्य-लीला हैल ये किछु लिखन ॥101॥

तोमा-सबार-आप सब के; चरण-धूलि-चरणों की धूलि; करिनु वन्दन- मैंने वन्दना की है; ताते-उस कारण से; चैतन्य-लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; हैल-हुई; ये-जो भी; किछु-कुछ; लिखन-लिखा।

अनुवाद

क्योंकि मैंने आप सबों के चरणकमलों की वन्दना की है, इसीलिए मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में जो कुछ लिखा है, वह सम्भव हो पाया है।

एबे अन्त्य-लीला-गणेर करि अनुवाद ।

‘अनुवाद' कैले पाइ लीलार 'आस्वाद' ॥102॥

एबे-अब; अन्त्य-लीला-गणेर करि अनुवाद-इस अन्त्य लीला की सारी लीलाओं को दुहराता हूँ; अनुवाद कैले–इसे दुहराने से; पाइ–मैं पाता हूँ; लीलार–लीलाओं का; आस्वाद–आस्वादन।

अनुवाद

अब मैं अन्त्य लीला की समस्त लीलाओं को दुहराता हूँ, क्योंकि ऐसा करने से मैं उन लीलाओं का पुनः आस्वादन कर सकूँगा।

प्रथम परिच्छेदे—रूपेर द्वितीय-मिलन ।

तार मध्ये दुइ-नाटकेर विधान-श्रवण ॥103 ॥

प्रथम परिच्छेदे-प्रथम अध्याय में; रूपेर-रूप गोस्वामी का; द्वितीय-मिलन-भगवान् चैतन्य के साथ दूसरा मिलन; तार मध्ये—इस अध्याय में; दुइ-नाटकेर-दो नाटकों का; विधान-श्रवण-लिखे हुए को सुना।

अनुवाद

प्रथम अध्याय में बताया गया है कि रूप गोस्वामी किस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु से दूसरी बार मिले और किस तरह महाप्रभु ने उनके दो नाटकों (विदग्ध माधव तथा ललित माधव) को सुना।

तार मध्ये शिवानन्द-सङ्गे कुक्कुर आइला ।

प्रभु तारे कृष्ण कहाञा मुक्त करिला ॥ 104॥

तार मध्ये-इस अध्याय में; शिवानन्द-सङ्गे–शिवानन्द सेन के साथ; कुक्कुर–कुत्ता; आइला–आया; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे-उसको (कुत्ते को); कृष्ण कहाञा-कृष्ण नाम का उच्चारण करवाया; मुक्त करिला-मुक्त हो गया।

अनुवाद

इसी अध्याय में शिवानन्द सेन के कुत्ते की घटना का भी उल्लेख है, जिससे महाप्रभु ने कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण कराया और इस तरह वह कुत्ता मुक्त हो गया।

द्वितीये—छोट-हरिदासे कराइला शिक्षण ।

तार मध्ये शिवानन्देर आश्चर्य दर्शन ॥ 105॥

द्वितीये-दूसरे अध्याय में; छोट-हरिदासे-छोटा हरिदास; कराइला शिक्षण-उन्होंने सख्त शिक्षा दी; तार मध्ये-इसी अध्याय में; शिवानन्देर-शिवानन्द सेन का; आश्चर्य दर्शन-अद्भुत दर्शन।

अनुवाद

दूसरे अध्याय में महाप्रभु ने शिक्षा देने के उद्देश्य से छोटे हरिदास को दण्ड दिया। इसी अध्याय में शिवानन्द सेन के अद्भुत दर्शन का वर्णन भी है।

तृतीये—हरिदासेर महिमा प्रचण्ड ।

दामोदर-पण्डित कैला प्रभुरे वाक्य-दण्ड ॥106॥

तृतीये-तीसरे अध्याय में; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर का; महिमा प्रचण्ड–प्रचण्ड महिमा; दामोदर-पण्डित-दामोदर पण्डित; कैला–किया; प्रभुरे–श्री चैतन्य महाप्रभु; वाक्य-दण्ड–शब्दों द्वारा आलोचना।

अनुवाद

तीसरे अध्याय में हरिदास ठाकुर की प्रचण्ड महिमाओं का वर्णन हुआ है। इसमें इसका भी उल्लेख है कि दामोदर पण्डित ने किस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु की आलोचना की।

प्रभु 'नाम' दिया कैला ब्रह्माण्ड-मोचन ।

हरिदास करिला नामेर महिमा-स्थापन ॥107॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नाम दिया-पवित्र नाम प्रदान किया; कैला-किया; ब्रह्माण्ड-मोचन-ब्रह्माण्ड का उद्धार; हरिदास-हरिदास; करिलाकिया; नामेर-पवित्र नाम के; महिमा-स्थापन–महिमा की स्थापना।

अनुवाद

इस तीसरे अध्याय में इसका भी वर्णन है कि चैतन्य महाप्रभु ने किस तरह ब्रह्माण्ड को भगवान् का पवित्र नाम प्रदान करके हर एक का उद्धार किया। इसमें इसका भी वर्णन है कि हरिदास ठाकुर ने अपने व्यावहारिक दृष्टान्त से किस तरह पवित्र नाम की महिमा की स्थापना की।

चतुर्थे–श्री-सनातनेर द्वितीय-मिलन ।

देह-त्याग हैते ताँर करिला रक्षण ॥ 108॥

चतुर्थे–चौथे अध्याय में; श्री-सनातनेर-सनातन गोस्वामी की; द्वितीय-मिलन-द्वितीय भेंट; देह-त्याग हैते-आत्महत्या करने से; ताँर करिला रक्षण-श्री चैतन्य महाप्रभु ने रक्षा की।

अनुवाद

चौथे अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु से सनातन गोस्वामी की द्वितीय भेट तथा सनातन द्वारा आत्महत्या किये जाने से महाप्रभु द्वारा उन्हें बचाने का वर्णन हुआ है।

ज्यैष्ठ-मासेर धूपे ताँरे कैला परीक्षण ।

शक्ति सञ्चारिया पुनः पाठाइला वृन्दावन ॥ 109॥

ज्यैष्ठ-मासेर-मई-जून महीने की; धूपे-धूप में; ताँरे–उनकी; कैला-की; परीक्षण–परीक्षा; शक्ति-शक्ति; सञ्चारिया-उनको देकर; पुनः–पुनः; पाठाइला वृन्दावन-वृन्दावन वापस भेज दिया।

अनुवाद

चौथे अध्याय में यह भी बतलाया गया है कि ज्येष्ठ मास (मई-जून) की धूप में सनातन गोस्वामी की किस तरह परीक्षा ली गई और तब उन्हें शक्ति प्रदान करके पुनः वृन्दावन भेज दिया गया।

पञ्चमे—प्रद्युम्न-मिश्रे प्रभु कृपा करिला ।

राय-द्वारा कृष्ण-कथा ताँरे शुनाइला ॥110॥

पञ्चमे-पाँचवे अध्याय में; प्रद्युम्न-मिश्रे-प्रद्युम्न मिश्र को; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुः कृपा करिला-कृपा की; राय-द्वारा–रामानन्द राय की सहायता से; कृष्ण-कथा-कृष्ण कथा; ताँरे शुनाइला–सुनवाई॥

अनुवाद

पाँचवे अध्याय में बताया गया है कि महाप्रभु ने प्रद्युम्न मिश्र पर किस तरह कृपा की और रामानन्द राय से उसे कृष्ण कथा सुनवाई।

तार मध्ये 'बाङ्गाल'-कविर नाटक-उपेक्षण ।

स्वरूप-गोसाञि कैला विग्रहेर महिमा-स्थापन ॥ 111॥

तार मध्ये-इस अध्याय में; बाङ्गाल-कविर-बंगाल के एक कवि का; नाटक-उपेक्षण-नाटक का अस्वीकार; स्वरूप-गोसाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; कैला-किया; विग्रहेर-विग्रह के; महिमा-स्थापन-महिमा की स्थापना।

अनुवाद

इसी अध्याय में यह भी वर्णन किया गया है कि स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने एक बंगाली कवि के नाटक को अस्वीकार करके किस तरह अर्चाविग्रह की महिमा की स्थापना की।

षष्ठे–रघुनाथ-दास प्रभुरे मिलिला ।

नित्यानन्द-आज्ञाय चिड़ा-महोत्सव कैला ॥112॥

षष्ठे-छठे अध्याय में; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास गोस्वामी; प्रभुरे मिलिला-श्री चैतन्य महाप्रभु को मिले; नित्यानन्द-आज्ञाय-नित्यानन्द प्रभु की आज्ञा से; चिड़ा-महोत्सव कैला–चिउड़ा उत्सव सम्पन्न किया।

अनुवाद

छठे अध्याय में रघुनाथ दास गोस्वामी की श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट का तथा नित्यानन्द प्रभु के आदेश पर चिउड़ा उत्सव सम्पन्न किये जाने का वर्णन हुआ है।

दामोदर-स्वरूप-ठाञि ताँरे समर्पिल ।

‘गोवर्धन-शिला', 'गुञ्जा-माला' ताँरे दिल ॥ 113॥

दामोदर-स्वरूप-ठाञि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी के संरक्षण में; ताँरे समर्पिल-महाप्रभु ने दिया; गोवर्धन-शिला-गोवर्धन शिला; गुञ्जा-माला-छोटे शंखों की माला; ताँरे दिल-उन्हें प्रदान किया।

अनुवाद

उस अध्याय में यह भी बताया गया है कि महाप्रभु ने किस तरह रघुनाथ दास गोस्वामी को स्वरूप दामोदर गोस्वामी के संरक्षण में रख दिया और उन्हें गोवर्धन पर्वत का एक पत्थर तथा घुघुची (छोटे शंख) की माला प्रदान की।

सप्तम-परिच्छेदे वल्लभ भट्टर मिलन ।

नाना-मते कैला ताँर गर्व खण्डन ॥ 114॥

सप्तम-परिच्छेदे-सातवें अध्याय में; वल्लभ भट्टर मिलन-वल्लभ भट्ट की श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट; नाना-मते-नाना प्रकार से; कैला–किया; ताँर-उसका; गर्व गर्व; खण्डन–खण्डन ।

अनुवाद

सातवें अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु की वल्लभ भट्ट से भेंट का तथा अनेक प्रकार से उसके मिथ्या गर्व के खण्डन का वर्णन हुआ है।

अष्टमे–रामचन्द्र-पुरीर आगमन ।

ताँर भये कैला प्रभु भिक्षा सङ्कोचन ॥115॥

अष्टमे-आठवें अध्याय में; रामचन्द्र-पुरीर आगमन–रामचन्द्र पुरी का आगमन; ताँर भये-उनके भय से; कैला–किया; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; भिक्षा सङ्कोचन–अपना खाना कम।

अनुवाद

आठवें अध्याय में रामचन्द्रपुरी के आगमन तथा उनके भय से श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा अपने भोजन में कमी करने का वर्णन है।

नवमे—गोपीनाथ-पट्टनायक-मोचन ।

त्रिजगतेर लोक प्रभुर पाइल दरशन ॥ 116 ॥

नवमे-नवें अध्याय में; गोपीनाथ-पट्टनायक-मोचन-रामानन्द राय के भाई गोपीनाथ पट्टनायक का उद्धार; त्रि-जगतेर–तीन लोकों के; लोक-लोग; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; पाइल दरशन-दर्शन पाया।

अनुवाद

नवें अध्याय में गोपीनाथ पट्टनायक के उद्धार का तथा तीनों लोकों द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन का उल्लेख है।

दशमे–कहिलुँ भक्त-दत्त-आस्वादन ।

राघव-पण्डितेर ताहाँ झालिर साजन ॥117॥

दशमे-दसवें अध्याय में; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; भक्त-दत्त-आस्वादन-भक्तों द्वारा दिये गये भोजन का आस्वादन; राघव-पण्डितेर-राघव पण्डित की; ताहाँ-वहाँ; झालिर साजन-थैलियों की विविध सामग्री।

अनुवाद

दसवें अध्याय में मैंने यह बताया है कि किस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों द्वारा दिये हुए भोजन का आस्वादन किया और इसी के साथ मैंने इसका भी वर्णन किया है कि राघव पंडित की थैलियों में तरह-तरह के प्रसाद किस प्रकार सजाये गये थे।

तार मध्ये गोविन्देर कैला परीक्षण ।

तार मध्ये परिमुण्डा-नृत्येर वर्णन ॥118॥

तार मध्ये-इसी अध्याय में: गोविन्देर-उनके निजी सेवक गोविन्द की: कैला-की: परीक्षण–परीक्षा; तार मध्ये—इस अध्याय में; परिमुण्डा-नृत्येर वर्णन–श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा मन्दिर में नृत्य करने का वर्णन।

अनुवाद

इसी अध्याय में महाप्रभु द्वारा गोविन्द की परीक्षा लिये जाने का तथा उनके द्वारा मन्दिर में नृत्य किये जाने का वर्णन हुआ है।

एकादशे–हरिदास-ठाकुरेर निर्याण ।

भक्त-वात्सल्य याहाँ देखाइला गौर भगवान् ॥ 119॥

एकादशे-ग्यारहवें अध्याय में; हरिदास-ठाकुरेर निर्याण-श्रील हरिदास ठाकुर का तिरोधान; भक्त-वात्सल्य-भक्तों के प्रति स्नेह; याहाँ–जहाँ; देखाइला–प्रदर्शित किया; गौर भगवान्–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

ग्यारहवें अध्याय में हरिदास ठाकुर के तिरोधान का तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा अपने भक्तों पर स्नेह किये जाने का वर्णन है।

द्वादशे–जगदानन्देर तैल-भञ्जन ।

नित्यानन्द कैला शिवानन्देरे ताड़न ॥120॥

द्वादशे-बारहवें अध्याय में; जगदानन्देर-जगदानन्द पण्डित द्वारा; तैल-भञ्जन–तेल पात्र तोड़ने का; नित्यानन्द–भगवान् नित्यानन्द, कैला-की; शिवानन्देरे ताड़न-शिवानन्द सेन की ताड़ना।

अनुवाद

बारहवें अध्याय में जगदानन्द पण्डित द्वारा तैल पात्र के तोड़े जाने का तथा भगवान् नित्यानन्द द्वारा शिवानन्द सेन की ताड़ना का वर्णन हुआ है।

त्रयोदशे–जगदानन्द मथुरा याइ' आइला।

महाप्रभु देव-दासीर गीत शुनिला ॥121॥

त्रयोदशे-तेरहवें अध्याय में; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित का; मथुरा याइ'-मथुरा जाने का; आइला-वापस आने का; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; देव-दासीर–देवी दासी का; गीत शुनिला-गीत सुनने का।

अनुवाद

तेरहवें अध्याय में जगदानन्द पंडित के मथुरा जाने और लौटने का तथा संयोगवश श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा एक देवदासी युवती द्वारा गाये गये गीत के सुने जाने का उल्लेख हुआ है।

रघुनाथ-भट्टाचार ताहाञि मिलन।

प्रभु ताँरे कृपा करि' पाठाइला वृन्दावन ॥ 122॥

रघुनाथ-भट्टाचार-रघुनाथ भट्ट का; ताहाञि–वहाँ; मिलन–मिलन; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँरे–उनको; कृपा करि'-अहैतुकी कृपा दर्शाकर; पाठाइला वृन्दावन-वृन्दावन भेजना।

अनुवाद

इसी तेरहवें अध्याय में रघुनाथ भट्ट की श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट और महाप्रभु की अहैतुकी कृपा से उनके वृन्दावन भेजे जाने का भी वर्णन है।

चतुर्दशे—दिव्योन्माद-आरम्भ वर्णन।

‘शरीर' एथा प्रभुर, ‘मन’ गेला वृन्दावन ॥ 123॥

चतुर्दशे-चौदहवें अध्याय में; दिव्य-उन्माद-आरम्भ-श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्योन्माद का प्रारम्भ; वर्णन-वर्णन किया है; शरीर-शरीर; एथा–यहाँ; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मन–मन; गेला–गया; वृन्दावन-वृन्दावन को।

अनुवाद

चौदहवें अध्याय में महाप्रभु के दिव्योन्माद के प्रारम्भ का वर्णन है, जिसमें उनका शरीर तो जगन्नाथ पुरी में रहता, किन्तु उनका मन वृन्दावन में होता था।

तार मध्ये प्रभुर सिंह-द्वारे पतन ।

अस्थि-सन्धि-त्याग, अनुभावेर उद्गम ॥ 124॥

तार मध्ये—इसी अध्याय में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; सिंह-द्वारे पतन–सिंहद्वार पर गिरने का; अस्थि-सन्धि-हड्डियों के जोड़ों का; त्याग–अलग होना; अनुभावेर उद्गम-ध्यान तथा भाव के उदय का।

अनुवाद

इसी अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा जगन्नाथ मन्दिर के सिंहद्वार के सामने गिरने, उनकी हड्डियों के जोड़ों के अलग होने तथा महाप्रभु में विविध दिव्य लक्षणों के उदय होने का भी वर्णन है।

चटक-पर्वत देखि’ प्रभुर धावन ।

तार मध्ये प्रभुर किछु प्रलाप-वर्णन ॥125 ॥

चटक-पर्वत–चटक पर्वत नामक टीला; देखि’–देखकर; प्रभुर धावन-श्री चैतन्य महाप्रभु का दौड़ना; तार मध्ये—उस अध्याय में; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; किछु-कुछ; प्रलाप वर्णन-उन्मत्त की तरह बोलना।

अनुवाद

इसी में श्री चैतन्य महाप्रभु का चटक पर्वत की ओर भागने तथा पागल की तरह बातें करने का भी वर्णन हुआ है।

पञ्चदश-परिच्छेदे—उद्यान-विलासे ।

वृन्दावन-भ्रमे याहाँ करिला प्रवेशे ॥126॥

पञ्चदश-परिच्छेदे-पन्द्रहवें अध्याय में; उद्यान-विलासे-उद्यान में उनकी लीलाओं में; वृन्दावन-भ्रमे उनके द्वारा उद्यान को वृन्दावन मान लेना; याहाँ–जहाँ; करिला प्रवेशे-वे प्रविष्ट हुए।

अनुवाद

पन्द्रहवें अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा समुद्र के किनारे के एक उद्यान में प्रवेश करने का तथा उसे वृन्दावन मान लेने का वर्णन हुआ है।

तार मध्ये प्रभुर पञ्चेन्द्रिय-आकर्षण ।

तार मध्ये करिला रासे कृष्ण-अन्वेषण ॥127॥

तार मध्ये—उसमें; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; पञ्च-इन्द्रिय-आकर्षण–पाँचों इन्द्रियों का आकर्षण; तार मध्ये—इस अध्याय में; करिला—की; रासे–रास नृत्य में; कृष्ण-अन्वेषण-कृष्ण की खोज।

अनुवाद

इसी अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु की पाँचों इन्द्रियों का कृष्ण के प्रति आकर्षण का तथा रास नृत्य में उनके द्वारा कृष्ण की खोज का वर्णन हुआ है।

षोड़शे–कालिदासे प्रभु कृपा करिला ।

वैष्णवोच्छिष्ट खाइबार फल देखाइला ॥128॥

षोड़शे-सोलहवें अध्याय में; कालिदासे–कालिदास पर; प्रभु–श्री चैतन्य महाप्रभुः कृपा करिला-कृपा की; वैष्णव-उच्छिष्ट खाइबार-वैष्णवों का शेष खाने का; फल देखाइला-फल दिखाया।

अनुवाद

सोलहवें अध्याय में बताया गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने किस तरह से कालिदास पर अपनी कृपा प्रदर्शित की और इस प्रकार वैष्णवों का उच्छिष्ट खाने के फल का प्रदर्शन किया।

शिवानन्देर बालके श्लोक कराइला ।

सिंह-द्वारे द्वारी प्रभुरे कृष्ण देखाइला ॥ 129॥

शिवानन्देर-शिवानन्द सेन का; बालके-पुत्र; श्लोक कराइला–श्लोक रचा; सिंह- द्वारे-जगन्नाथ मन्दिर के सिंहद्वार पर; द्वारी-चौकीदार ने; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कृष्ण देखाइला- भगवान् कृष्ण का दर्शन कराया।

अनुवाद

इस अध्याय में इसका भी वर्णन है कि शिवानन्द के पुत्र ने किस तरह एक श्लोक रचा और किस तरह सिंहद्वार के रक्षक ने श्री चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण का दर्शन कराया।

महा-प्रसादेर ताहाँ महिमा वर्णिला ।

कृष्णाधरामृतेर फल-श्लोक आस्वादिला ॥ 130॥

महा-प्रसादेर-भगवान् के महाप्रसाद का; ताहाँ-वहाँ; महिमा-महिमा; वर्णिला-वर्णन किया; कृष्ण-अधर-अमृतेर-कृष्ण के अधरामृत के; फल-श्लोक-फल का निर्देश करनेवाला श्लोक; आस्वादिला–आस्वादन किया।

अनुवाद

इसी अध्याय में महाप्रसाद की महिमा का वर्णन है और उनके द्वारा कृष्ण के अधरामृत के प्रभाव का वर्णन करने वाले एक श्लोक का आस्वादन किया गया है।

सप्तदशे—गाभी-मध्ये प्रभुर पतन ।

कूर्माकार-अनुभावेर ताहाडि उद्गम ॥ 131॥

सप्तदशे-सत्रहवें अध्याय में; गाभी-मध्ये-गायों के बीच; प्रभुर पतन-श्री चैतन्य महाप्रभु का गिरना; कूर्म-आकार-अनुभावेर-कुछुए के रूप में भावावेश का; ताहाडि-वहाँ; उद्गम-उदय होना।

अनुवाद

सत्रहवें अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु का गायों के बीच गिरने तथा भावावेश उदय होने पर उनके द्वारा कछुए का रूप धारण करने का उल्लेख हुआ है।

कृष्णेर शब्द-गुणे प्रभुर मन आकर्षिला ।

“का स्त्रयङ्ग ते" श्लोकेर अर्थ आवेशे करिला ॥132॥

कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; शब्द-गुणे-ध्वनि के गुणों द्वारा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मन–मन; आकर्षिला-आकृष्ट हुआ; का स्त्रय् अङ्ग ते श्लोकेर-कास्त्र्यङ्ग ते शब्दों से शुरू होने वाले श्लोक का; अर्थ-अर्थ; आवेशे-आवेश में; करिला-वर्णन किया।

अनुवाद

इसी अध्याय में कृष्ण की ध्वनि के गुणों द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु के मन के आकृष्ट होने का तथा भावावेश में उनके द्वारा "कास्त्यङ्ग ते" श्लोक का अर्थ करने का भी वर्णन हुआ है।

भाव-शाबल्ये पुनः कैला प्रलपन ।

कर्णामृत-श्लोकेर अर्थ कैला विवरण ॥ 133॥

भाव-शाबल्ये-सर्व भावों के समुच्चय से; पुनः पुनः; कैला प्रलपन-उन्होंने उन्मत्त की तरह बातें की; कर्णामृत-श्लोकेर-कृष्ण कर्णामृत के एक श्लोक का; अर्थ–अर्थ; कैला विवरण–विस्तार से वर्णन किया।

अनुवाद

सत्रहवें अध्याय में विविध भावों के संमिश्रण से श्री चैतन्य महाप्रभु का पुनः प्रलाप करना तथा कृष्णकर्णामृत के एक श्लोक की विस्तृत व्याख्या किये जाने का भी वर्णन हुआ है।

अष्टादश परिच्छेदे—समुद्रे पतन ।

कृष्ण-गोपी-जल-केलि ताहाँ दरशन ॥134॥

अष्टादश परिच्छेदे-अठारहवें अध्याय में; समुद्रे पतन–महाप्रभु का समुद्र में गिरना; कृष्ण-गोपी-जल-केलि-कृष्ण तथा गोपियों की जलक्रीडा; ताहाँ दरशन-वहाँ देखने का।

अनुवाद

अठारहवें अध्याय में महाप्रभु के समुद्र में गिरने का तथा आवेश में स्वप्न में कृष्ण तथा गोपियों के मध्य जल क्रीड़ा के देखे जाने का वर्णन हुआ है।

ताहाङिदेखिला कृष्णेर वन्य-भोजन ।

जालिया उठाइल, प्रभु आइला स्व-भवन ॥135॥

ताहाङि-वहाँ; देखिला-उन्होंने देखा; कृष्णेर-कृष्ण का; वन्य-भोजन-वन्य-भोजन; जालिया-मछुआरा; उठाइल-उनको पकड़ा; प्रभु–महाप्रभु; आइला-वापस आये; स्व-भवन-अपने निवासस्थान पर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस स्वप्न में कृष्ण को जंगल में वन्य-भोजन का आनन्द लेते देखा। जब श्री चैतन्य महाप्रभु समुद्र में तैरने लगे, तब एक मछुआरे ने उन्हें पकड़ा और उसके बाद महाप्रभु अपने घर लौट आये। यह सब अठारहवें अध्याय में वर्णित हुआ है।

ऊनविंशे—भित्त्ये प्रभुर मुख-सङ्घर्षण ।

कृष्णेर विरह-स्फूर्ति-प्रलाप-वर्णन ॥ 136 ॥

ऊनविंशे-उन्नीसवें अध्याय में; भित्त्ये-दीवारों पर; प्रभुर मुख-सङ्घर्षण–महाप्रभु का मुँह रगड़ना; कृष्णेर विरह-स्फूर्ति-कृष्ण के विरह का उदय; प्रलाप-वर्णन-उन्मत्त की तरह बातें करना।

अनुवाद

उन्नीसवें अध्याय में इसका वर्णन है कि किस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु दीवालों से अपना मुँह रगड़ते तथा कृष्ण के विरह के फलस्वरूप उन्मत्त की तरह बातें करते थे।

वसन्त-रजनीते पुष्पोद्याने विहरण ।

कृष्णेर सौरभ्य-श्लोकेर अर्थ-विवरण ॥ 137॥

वसन्त-रजनीते–वसन्त ऋतु की रात में पुष्प-उद्याने–पुष्प उद्यान में; विहरण-विचरण करना; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के; सौरभ्य-श्लोकेर शरीर की सुगन्ध से सम्बन्धित एक श्लोक; अर्थ-विवरण-अर्थ का वर्णन करना।

अनुवाद

इसी अध्याय में वसन्त की रात में एक बगीचे में कृष्ण के विचरण करने का भी वर्णन है। इस में कृष्ण के शरीर की सुगन्ध से सम्बन्धित एक श्लोक के अर्थ का भी पूरा-पूरा वर्णन हुआ है।

विंश-परिच्छेदे—निज-'शिक्षाष्टक' पड़िया ।

तार अर्थ आस्वादिला प्रेमाविष्ट हञा ॥ 138॥

विंश-परिच्छेदे–बीसवें अध्याय में; निज-शिक्षाष्टक पड़िया-अपने ही शिक्षाष्टक के श्लोकों को पढ़ना; तार अर्थ-उनके अर्थ का; आस्वादिला–आस्वादन किया; प्रेम-आविष्ट हञा–प्रेमावेश में निमग्न होकर।

अनुवाद

बीसवें अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने ही शिक्षाष्टक को सुनाया और प्रेमावेश में उसके अर्थों का आस्वादन किया।

भक्ते शिखाइते येइ शिक्षाष्टक कहिला ।

सेइ श्लोकाष्टकेर अर्थ पुनः आस्वादिला ॥139॥

भक्ते-भक्तों को; शिखाइते-शिक्षा देने के लिए; येइ-जो; शिक्षा-अष्टक-शिक्षाष्टक; कहिला–वर्णन किया; सेइ श्लोक-अष्टकेर-उन्हीं आठ श्लोकों का; अर्थ-अर्थ; पुनः आस्वादिला–पुनः उन्होंने आस्वादन किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन आठों श्लोकों की रचना भक्तों को शिक्षा देने के लिए की थी, किन्तु उन्होंने स्वयं भी उनके अर्थ का आस्वादन किया।

मुख्य-मुख्य-लीलार अर्थ करिलुँ कथन ।

'अनुवाद' हैते स्मरे ग्रन्थ-विवरण ॥140॥

मुख्य-मुख्य-लीलार-श्री चैतन्य महाप्रभु की मुख्य लीलाओं का; अर्थ-अर्थ; करिलुँ–किया है; कथन-वर्णन; अनुवाद हैते–पुनरावृत्ति करने से; स्मरे-स्मरण में रहता है; ग्रन्थ-विवरण-ग्रन्थ का विवरण।

अनुवाद

इस तरह मैंने मुख्य लीलाओं तथा उनके अर्थ का वर्णन किया है, क्योंकि ऐसी पुनरावृत्ति से ग्रन्थ के विवरणों को स्मरण में रखा जा सकता है ।

एक एक परिच्छेदेर कथा—अनेक-प्रकार ।

मुख्य-मुख्य कहिलुँ, कथा ना याय विस्तार ॥ 141॥

एक एक परिच्छेदेर–प्रत्येक अध्याय में; कथा-कथा; अनेक प्रकार-अनेक प्रकार की; मुख्य-मुख्य कहिलुँ-मैंने केवल मुख्य कथाओं को दोहराया है; कथा-वर्णन; ना याय–सम्भव नहीं है; विस्तार–विस्तार।

अनुवाद

प्रत्येक अध्याय में अनेक प्रकार की कथाएँ हैं, किन्तु मैंने केवल उन्हीं को दोहराया है, जो मुख्य हैं, क्योंकि उन सबों का पुनः वर्णन नहीं किया जा सकता था।

श्री-राधा-सह 'श्री-मदन-मोहन' ।

श्री-राधा-सह 'श्री-गोविन्द'-चरण ॥142॥

श्री-राधा-सह श्रील 'श्री-गोपीनाथ'।

एइ तिन ठाकुर हय 'गौड़ियार नाथ' ॥ 143॥

श्री-राधा-सह-श्रीमती राधारानी के साथ; श्री-मदन-मोहन-मदनमोहन जी विग्रह; श्री-राधा-सह-श्रीमती राधारानी के साथ; श्री-गोविन्द-चरण-श्री गोविन्द जी के चरणकमल; श्री-राधा-सह-श्रीमती राधारानी के साथ; श्रील श्री-गोपीनाथ–सर्वथा सुन्दर तथा ऐश्वर्यमय गोपीनाथ जी; एइ तिन-ये तीनों; ठाकुर-विग्रह; हय-हैं; गौड़ियार नाथ-सारे गौड़ीय वैष्णवे के आराध्य।

अनुवाद

वृन्दावन में श्रीमती राधारानी के साथ मदनमोहन, श्रीमती राधारानी के साथ गोविन्द तथा श्रीमती राधारानी के साथ गोपीनाथ के अर्चाविग्रह गौड़ीय वैष्णवों के प्राण हैं।

श्रीकृष्ण-चैतन्य, श्री-युत नित्यानन्द।

श्री-अद्वैत-आचार्य, श्री-गौर-भक्त-वृन्द ॥ 144॥

श्री-स्वरूप, श्री-रूप, श्री-सनातन।

श्री-गुरु श्री-रघुनाथ, श्री-जीव-चरण ॥145 ॥

निज-शिरे धरि' एइ सबार चरण।

याहा हैते हय सब वाञ्छित-पूरण ॥ 146 ॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; श्री-युत नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; श्री-अद्वैत-आचार्यश्री अद्वैत प्रभु; श्री-गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त; श्री-स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; श्री-रूप-श्री रूप गोस्वामी; श्री-सनातन-श्रील सनातन गोस्वामी; श्री-गुरु-श्री गुरु; श्री-रघुनाथ–

रघुनाथ दास गोस्वामी; श्री-जीव-चरण-श्रील जीव गोस्वामी के चरणकमल; निज-शिरे धरि'-मेरे सिर पर धारण करके; एइ सबार चरण-उन सबके चरणकमल; याहा हैते–जिससे; हय-होगी; सब-सर्व; वाञ्छित-पूरण-इच्छाओं की पूर्ति।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु, श्री अद्वैत आचार्य तथा उनके भक्त, एवं श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी, श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, अपने गुरु श्री रघुनाथ दास गोस्वामी तथा श्रील जीव गोस्वामी-इन सारे पुरुषों के चरणकमलों को अपने सिर पर धारण करता हूँ, जिससे मेरी इच्छाएँ पूरी हो सकें।

तात्पर्य

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी कृष्णदास कविराज गोस्वामी के शिक्षा-गुरु थे, इसीलिए श्रीगुरु के रूप में उनका वर्णन हुआ है।

सबार चरण-कृपा–'गुरु उपाध्यायी'।

मोर वाणी–शिष्या, तारे बहुत नाचाइ ॥147॥

सबार-उन सब के; चरण-कृपा-चरणकमलों की कृपा; गुरु उपाध्यायी-मेरे वैदिक गुरु; मोर वाणी-मेरे शब्द; शिष्या-शिष्य; तारे–उनको; बहुत नाचाइ–मैंने अनेक प्रकार से नचाया।

अनुवाद

उनके चरणकमलों की कृपा ही मेरा गुरु है और मेरे शब्द मेरे शिष्यों के रूप में हैं, जिन्हें मैंने अनेक प्रकार से नचाया है।

तात्पर्य

उपाध्यायी या उपाध्याय उसका द्योतक है, जो पास जाने पर शिक्षा देता है (उपेत्य अधीयते अस्मात्)। मनु-संहिता में कहा गया है :

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः ।

योऽध्यापयति वृत्त्यर्थम् उपाध्यायः स उच्यते ॥

“जो व्यक्ति अन्यों को वेद या वेदांग की शिक्षा देता है, वह उपाध्याय कहलाता है।” कला सिखाने वाले को भी उपाध्याय कहते हैं।

शिष्यार श्रम देखि’ गुरु नाचान राखिला ।

‘कृपा' ना नाचाय, 'वाणी' वसिया रहिला ॥ 148॥

शिष्यार-शिष्यों की; श्रम-थकान; देखि-देखकर; गुरु-गुरु; नाचान राखिला-नचाना बन्द किया; कृपा-कृपा; ना नाचाय-नहीं नचाती; वाणी-वाणी; वसिया–बैठकर; रहिला-मौन हो गई है।

अनुवाद

शिष्यों की थकान देखकर गुरु ने उन्हें नचाना बन्द कर दिया है और चूंकि वह कृपा अब उन्हें आगे नहीं नचा सकती, इसलिए मेरे शब्द मौन होकर बैठ रहे हैं।

अनिपुणा वाणी आपने नाचिते ना जाने ।

यत नाचाइला, नाचि' करिला विश्रामे ॥ 149॥

अनिपुणा वाणी-अनुभवहीन शब्द; आपने-अपने आप; नाचिते-नाचना; ना-नहीं; जाने-जानते; यत-जो भी; नाचाइला–नचाया; नाचि'–नाचने के बाद; करिला विश्रामे-विश्राम लिया।

अनुवाद

मेरे अनुभवहीन शब्द अपने आपसे नाचना नहीं जानते। गुरु की कृपा ने यथासम्भव उन्हें नचाया और अब नाच चुकने के बाद उन्होंने विश्राम ले लिया है।

सब श्रोता-गणेर करि चरण वन्दन ।

याँ-सबार चरण-कृपा–शुभेर कारण ॥ 150॥

सब-सब; श्रोता-गणेर–पाठकों के; करि-मैं करता हूँ; चरण वन्दन–चरणकमलों की वन्दना; या-सबार–जिन सब के; चरण-कृपा-चरणकमलों की कृपा से; शुभेर कारण-सर्व सौभाग्य का कारण।

अनुवाद

अब मैं अपने समस्त पाठकों के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, क्योंकि उन सबों के चरणकमलों की कृपा से सर्व सौभाग्य का उदय होता है।

चैतन्य-चरितामृत येइ जन शुने ।

ताँर चरण धुञा करों मुञि पाने ॥151॥

चैतन्य-चरितामृत-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन; येइ जन शुने-जो को सुनता है; ताँर चरण-उसके चरणकमलों को; धुञा-धोकर; करों-करता हूँ; मुञि-मैं; पाने-पान।

अनुवाद

यदि कोई व्यक्ति श्री चैतन्य-चरितामृत में वर्णित श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को सुनता है, तो मैं उसके चरणकमल धोकर उस जल का पान करता हूँ।

श्रोतार पद-रेणु करों मस्तक-भूषण ।

तोमरा ए-अमृत पिले सफल हैल श्रम ॥ 152॥

श्रोतार-श्रोताओं के; पद-रेणु-चरणकमलों की धूल; करों-मैं करता हूँ; मस्तक-भूषण-मेरा सिर अलंकृत; तोमरा-आप सब; ए-अमृत-इस अमृत का; पिले–पान किया है; स-फल-सफल; हैल-हो गया है; श्रम-मेरा परिश्रम।

अनुवाद

मैं अपने श्रोताओं के चरणकमलों की धूल से अपने सिर को अलंकृत करता हूँ। चूंकि आप सब इस अमृत का पान कर चुके हैं, इसलिए मेरा परिश्रम सफल है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥153 ॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-के चरणकमलों में; यार—जिसकी; आश–आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर मैं कृष्णदास श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

चरितममृतमेतच्छील-चैतन्य-विष्णोः

शुभ-दमशुभ-नाशि श्रद्धयास्वादयेद् यः ।।

तदमल-पद-पद्मे भृङ्गतामेत्य सोऽयं ।

रसयति रसमुच्चैः प्रेम-माध्वीक-पूरम् ॥ 154॥

चरितम्-चरित्र तथा कार्य; अमृतम्-अमृतमय; एतत्-यह; श्रील–सर्वाधिक ऐश्वर्यमय; चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु; विष्णोः –उनका जो स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु हैं; शुभ-दम्-सौभाग्य प्रदान करने वाला; अशुभ-नाशि-समस्त अशुभ का नाश करने वाला; श्रद्धया-श्रद्धा तथा प्रेम के साथ; आस्वादयेत्-आस्वादन करना चाहिए; ये-जो कोई; तत्-अमल-पद-पद्म–पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के निष्कलंक चरणकमलों में; भृङ्गताम् एत्य-भौंरे के समान बनकर; सः-वह व्यक्ति; अयम्-यह; रसयति-आस्वादन करता है; रसम्-दिव्य रस; उच्चैः-बड़ी मात्रा में प्रेम-माध्वीक-प्रेमावेश रूपी मधु; पूरम् पूर्ण।

अनुवाद

'श्री चैतन्य चरितामृत' पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों से भरा है। यह समस्त सौभाग्य को लाने वाला है और सारी अशुभ वस्तुओं को विनष्ट करने वाला है। यदि कोई व्यक्ति श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक चैतन्य चरितामृत के अमृत का आस्वादन करता है, तो मैं उसके चरणकमलों से दिव्य प्रेम रूप मधु का आस्वादन करने वाला भौंरा बन जाता हूँ।

श्रीमन्मदन-गोपाल-गोविन्ददेव तुष्टये ।

चैतन्यार्पितमस्त्वेतच्चैतन्य-चरितामृतम् ॥ 155॥

श्रीमत्-सर्वथा सुन्दर; मदन-गोपाल–मदनमोहन विग्रह के; गोविन्द-देव-वृन्दावन में श्री गोविन्ददेव विग्रह के; तुष्टये-सन्तोष के लिए; चैतन्य-अर्पितम्-श्री चैतन्य महाप्रभु को अर्पित; अस्तु-हो; एतत्-यह ग्रन्थ; चैतन्य-चरितामृतम्-श्री चैतन्य महाप्रभु की अमृतमयी लीलाओं से युक्त।

अनुवाद

चूंकि अब यह चैतन्य-चरितामृत ग्रन्थ पूर्ण है, जो अत्यन्त ऐश्वर्यवान मदनमोहन जी तथा गोविन्द जी के अर्चाविग्रहों की तुष्टि के हेतु लिखा गया है, इसे मैं श्रीकृष्ण चैतन्य के चरणकमलों पर अर्पित करता हूँ।

परिमल-वासित-भुवनं

स्व-रसोन्मादित-रसज्ञ-रोलम्बम् ।

गिरिधर-चरणाम्भोजं

कः खलु रसिकः समीहते हातुम् ॥ 156 ॥

परिमल-सुगन्ध से; वासित–सुरभित हो रहा है; भुवनम्-सारा जगत्; स्व-रस-उन्मादित-अपने ही रसों से प्रेरित; रस-ज्ञ-भक्तगण; रोलम्बम्-भौरों के तुल्य; गिरिधर-चरण-अम्भोजम्-भगवान् गिरीधारी के चरणकमल; कः-जो; खलु-निश्चय ही; रसिकः-स्वरूपसिद्ध आत्मा; समीहते हातुम्-छोड़ने का प्रयास करेगा।

अनुवाद

स्वरूपसिद्ध (रसज्ञ) भक्तगण उन भौरों के तुल्य हैं, जो कृष्ण के चरणकमलों पर अपने ही रस से उन्मत्त हो चुके हैं। उन चरणकमलों की सुगन्ध सारे जगत् को सुरभित कर रही है। भला ऐसा कौन स्वरूपसिद्ध (रसिक) है, जो उनको छोड़ना चाहेगा?

शाके सिन्ध्वग्नि-वाणेन्दौ ज्यैष्ठे वृन्दावनान्तरे ।

सूर्याहेऽसित-पञ्चम्यां ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः ॥ 157॥

शाके शक सम्वत् में; सिन्धु-अग्नि-वाण-इन्दौ-1537 में; ज्यैष्ठे–ज्येष्ठ (मई-जून) मास में; वृन्दावन-अन्तरे-वृन्दावन में; सूर्य-अहे-रविवार के दिन; असित-पञ्चम्याम्-कृष्णपक्ष की पंचमी को; ग्रन्थः-ग्रन्थ; अयम्-यह (चैतन्य-चरितामृत); पूर्णताम्-पूरा; गतः–हुआ।

अनुवाद

शक सम्वत् 1537 के ज्येष्ठ मास (सन् 1615 ईस्वी के मई-जून) में रविवार के दिन कृष्णपक्ष की पंचमी को यह चैतन्य-चरितामृत वृन्दावन में पूरा हुआ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्य लीला के अन्तर्गत शिक्षाष्टक शीर्षक बीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अन्त्य लीला समाप्त